दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली-५
ओ३म्

ओ३म्
ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं
दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली-५

ओ३म्

वेद

भाषा भाष्य

प्रथम-भाग

प्रकाशक—
पंडिता राकेश रानी
मंत्री— दयानन्द संस्थान

दूरभाष : ५६६६३८

परम पिता परमात्मा की अमृत वाणी के प्रकाशन यज्ञ की सफलता के लिए
प्राप्त आहुतियां

क्र०	नाम	राशि
१	श्री डा० नारायणदास जी, गोहाटी	२००१-००
२	श्री मनोहर विद्यालंकार, दिल्ली	१००१-००
३	श्री राय रतन लाल जी, गाजियाबाद	१००१-००
४	श्री अनन्त राम जी गुप्त, कानपुर	१००१ ००
५	आर्य महिला केन्द्रीय सभा, अमृतसर	१००१-००
६	आर्य समाज लक्कड़ बाजार, शिमला	१००१ ००
७	श्री ओमप्रकाश गोयल दिल्ली	१००१ ००
८	श्री लक्ष्मीनारायण तथा श्रीमती दुर्गादेवीजी, गोहाटी	१००१-००
९	श्री बाबा हरिदास वनखण्डी आश्रम, ओमायचा	१००१-००
१०	श्री वैद्य यागीराज आयुर्वेदालंकार, दीनानगर	१००१ ००
११	श्रीमती चन्द्रकांता विद्यालंकृता, नागपुर	५०१-००
१२	श्री किशनलाल रामचन्द्र, हैदराबाद	५०१-००
१३	श्री मन्त्री आर्य समाज, जींद	५०१ ००
१४	श्री मा० बद्रीप्रसाद गुप्त, जींद	५०१-००
१५	श्री प० हरिश्चन्द्र जी, जींद	५०१-००
१६	श्री माता भगवती देवी जी जींद	५०१-००
१७	श्री प० रामस्वरूप जी, जींद	५०१-००
१८	श्री बलदेव वानप्रस्थी, चांदपुर	५०१-००
१९	श्रीमती माता जानकी देवी तथा श्री किशनदास जी, दिल्ली की स्मृति में	५०१-००
२०	डा० जगन्नाथ जी व श्रीमती भगवती देवी की स्मृति में	५०१-००
२१	श्रीमती कौशल्या देवी, अमृतसर	५०१-००
२२	श्री एस० पी० आर्य, बेलगाछी	५०१-००
२३	श्री भाड़ाभाई, लक्ष्मण भाई, मलाबार	५०१-००
२४	श्री बी० शिवानन्द, नैटाल	५०१-००
२५	श्री ला० बेलीराम जी, करनाल	५०१-००
२६	श्रीमती राज सूरी, दिल्ली	५०१-००
२७	भारत टैक्सटाइल्स, कलकत्ता	५०१-००
२८	श्री मायादास भगवानदास, तिनसुकिया	५०१-००
२९	श्री बनारसीदास गुप्ता, दिल्ली	५०१-००
३०	श्री सूर्यकांत मिश्र, रुड़की	५०१-००
३१	श्रीमती प्र भवती दरगन, ज्वालापुर	५०१-००
३२	श्री वेदप्रकाश अग्रवाल, आगरा छावनी	५०१-००
३३	स्वर्गीया सुशीला देवी धर्मपत्नी श्री आनन्दप्रिय जसपुर, नैनीताल, की स्मृति में—	५०१-००

मूल्य ७१) रु

मुद्रक—
डीलक्स प्रिंटर्स
पहाड़ी धीरज, दिल्ली-६

दयानन्द संस्थान द्वारा
प्रकाशित प्रथम संस्करण

दीपमाला, संवत् २०३०

अपनी ओर से ....
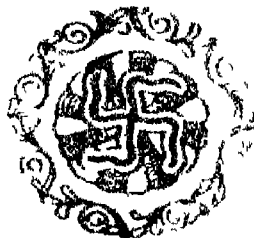
परमात्मा की दिव्य वाणी जन-जन को अर्पित है

आज से १ अरब, ९७ करोड़, २९ लाख, ४९ हजार तेहत्तर (१,९७,२९,४९०७३) वर्ष पूर्व जब सृष्टि का आरंभ हुआ और जब मनुष्य की उत्पत्ति हुयी, तब परमपिता परमात्मा ने मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए जो मार्ग-दर्शक ज्ञान अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा ऋषियों के अन्तर में प्रकट किया, उसे ही 'श्रुति' या 'वेद' के नाम से जाना जाता है। जैसे पिता अपने पुत्र को चलना-पढ़ना सिखाकर सब भांति उसका कल्याण चाहता है ऐसे ही सर्व सृष्टि के रचयिता प्रभु द्वारा सृष्टि के आरंभ में अपने पुत्रों के लिए ऐसे निर्देश देने आवश्यक थे जिनके द्वारा समस्त सृष्टि पदार्थों का उचित प्रयोग करके मनुष्य ऐहिक और पारलौकिक सुख, शान्ति और आनन्द प्राप्त कर अपनी जीवन यात्रा पूर्ण कर सकें।

'वेद' ईश्वरीय ज्ञान है। वह ऐसी दिव्य वाणी है जो देश-काल-इतिहास-की सीमाओं में न बंधकर समान रूप से, सदा सब को कल्याण का निर्देशन करती है। संसार के सब से प्राचीन ग्रन्थ के रूप में 'वेद' की गौरव गरिमा के सम्मुख सभी विद्वान् एक मत में नत मस्तक हैं। "वेद" का अर्थ है 'ज्ञान', और ज्ञान का लक्ष्य है निर्माण, कल्याण, उत्थान। बुराइयां, पाप हमारे निकट नहीं आएं और हम सत्य, न्याय, नैतिकता के मार्ग पर चलते हुए विज्ञान द्वारा भौतिक पदार्थों का स्व-हित के लिए प्रयोग कर सकें। ज्ञान हमारा नेतृत्व करे और विज्ञान हमारी सुख सुविधा का कारण हो, हम जीवन के प्रत्येक चरण में आनन्द-सुधा का पान करते रहें।

"धर्म की पावन गंगा का प्रवाह प्रभु ने 'वेद' रूप में धरती पर प्रवाहित किया। आदि सृष्टि में महाभारत काल पर्यन्त मनुष्य जाति 'वेद-मार्ग' पर चलते हुए उत्कर्ष की राह पर बढ़ती रही। किन्तु दुर्भाग्य-वश स्वार्थ और अज्ञान के वशीभूत हो प्रभु का ज्ञान विस्मृत होता गया और जैसे सूर्य के छिपने पर नाना दीपक जल उठते हैं वैसे ही वेद-भानु के अस्त होते ही मनुष्य कृत नाना मत मतान्तरों का उदय हुआ, मनुष्य-और मनुष्य के मध्य विभिन्न दीवारें खड़ी हो गयीं, धरती अन्धकार में डूबती गयी।

१९ वीं शताब्दी के मध्य में जब भारत राष्ट्र पराधीनता और अज्ञान के कारण निराशा के सागर में डूब रहा था तब प्रभु कृपा से एक दिव्य विभूति ने भगवान् दयानन्द के रूप में फिर से 'वेद के प्रचार-प्रसार का व्रत लिया। ऋषि दयानन्द ने बताया कि "**वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है**" और कहा कि जब तक मनुष्य जाति 'वेद' के, प्रभु के बताये मार्ग पर नहीं चलेगी तब तक उसका कल्याण नहीं होगा।

मानव मात्र के कल्याणार्थ और जनमानस का अन्धकार दूर कर प्रकाश प्रसारित करने के पावन लक्ष्य से यह आनन्द और उन्नति का पावन संगीत, प्रभु वीणा की कल्याणी वाणी और ज्ञान की अमृत गंगा का पुण्य प्रवाह, "वेद-भाष्य" के रूप में हमने धरती के हर घर-आंगन में प्रतिष्ठित करने का व्रत लिया है।

हमारी प्रबल कामना है कि संसार का प्रत्येक मनुष्य, मनुष्य कृत ग्रन्थों के माया जाल से मुक्त हो, प्रभु के दिव्य स्वरों का, संगीत सुन अपना जीवन सफल करे। 'वेद' की ज्योति से ज्योतिर्मय हो, मनुष्य प्रभु पुत्र इस धरती पर साकार स्वर्ग लाने में समर्थ हों। श्रद्धा से, आदर से, भावना से, पक्षपात त्याग 'वेद' का पाठ कीजिए, मनन कीजिए, दिव्य दर्शन के गहन भावों पर चिन्तन कर उन्हें जीवन में ढालिए, आपका जीवन मंगलमय हो जाएगा। शान्ति आपके घर-आंगन में ज्योति-सुधा रस-धार बरसाएगी।

एक पिता की सन्तान, धरती के ४०० करोड़ पुत्र और पुत्रियां अपने हृदय मंदिर में सत्य-ज्ञान की प्रतिष्ठा करें तो परमात्मा स्वयं प्रकाश से हमारे जीवन का हर अन्धकार हर लेंगे। जीवन की यात्रा मंगलमय हो, जीवन के प्रतिक्षण में आनन्द बरसे, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता मिलती रहे, इसके लिए यह प्रभु की अमर वाणी हम आपको शुभ कामनाओं सहित अर्पित करते हैं।

यह भी प्रभु की असीम अनुकंपा का एक अनुपम उदाहरण है कि हम जैसे साधन विहीन व्यक्ति के मन ने जब इस पवित्र ज्ञान के प्रसार का व्रत लिया तो प्रभु का आशीर्वाद मुक्तहस्त हो हम पर बरसा। संसार के ज्ञात इतिहास में प्रथम बार (१२,५००) बारह हजार पांच सौ प्रतियां एक साथ वेद भक्तों को अर्पित करने का सौभाग्य (लागत से अत्यन्त अल्प मूल्य पर) प्राप्त करना क्या प्रभु के आशीर्वाद के बिना संभव था?

हमारी एकमात्र इच्छा है कि वह दिन शीघ्र आए जब परमात्मा के इस अनुपम ज्ञान भंडार को हम धरती के हर आंगन में विभिन्न भाषाओं के अनुवाद सहित पहुंचाने में समर्थ हों। सभी प्रभु पुत्र प्रभु के दिखाए मार्ग पर चलें, और यह धरती स्वर्ग बन जाए। अज्ञान पाप और दुखों का लेश भी कहीं शेष न रहे। सब प्रभु की वाणी को पढ़ें। ऋचाओं का संगीत सुनें। शाश्वत् ज्ञान की ज्योति से मन का, मस्तिष्क का अन्धकार मिटा हम वह लक्ष्य पा लें जिसे पाने के लिए हमें यह मनुष्य शरीर मिला है।

वेद-भाष्य-प्रकाशन यज्ञ के संयोजक बने आचार्य जगदीश विद्यार्थी और पं० मनोहर विद्यालंकार। इन दोनों वेद भक्तों ने अपनी पूर्ण शक्ति से यज्ञ की सफलता हेतु प्रयत्न किए। आचार्य जगदीश विद्यार्थी ने शुद्ध मुद्रण व संपादन के गुरुतर कार्य भार में योग देकर पवित्र यज्ञ की सफलता का पुण्य प्राप्त किया। परम तपस्वी साधक श्री स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती ने प्रचार प्रसार में आशीर्वाद और सक्रिय सहयोग देकर हमें सदा प्रोत्साहित किया। वैदिक साहित्य संस्थान दीनानगर के अध्यक्ष स्वामी सर्वानन्द जी महाराज ने १००० प्रतियां मंगाकर वेद-प्रचार यज्ञ में अपनी श्रद्धा का परिचय दिया।

विद्वद्वर्ग आचार्य श्री वैद्यनाथ जी शास्त्री ने अपने अमूल्य परामर्श से समय-समय पर हमारा मार्ग दर्शन किया। जिससे अनेक जटिल समस्याएं सुलझीं और पथ प्रशस्त हुआ। दर्शन वाचस्पति आचार्य उदयवीर शास्त्री पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड, आचार्य श्री पं० [illegible] शास्त्री एकादश तीर्थ, ने भी समय-समय पर प्रकाशन यज्ञ की सफलता के लिए अपना आशीर्वाद प्रदान किया। मुद्रण व्यवस्था में श्री पं० चन्द्रमोहन शास्त्री के सहयोग से ही यह ग्रन्थ इस रूप में हम भेंट कर रहे हैं। कु० ज्योत्स्ना एम० ए० व श्रीमती राकेश रानी ने व्यवस्था का पूर्ण भार सम्भाला। हम हृदय से सभी सहयोगियों विद्वानों के प्रति आभारी हैं।

प्रभु की असीम अनुकम्पा से जो व्रत हम ने लिया था उस का प्रथम चरण पूर्ण हुआ। तीन चरण अभी शेष हैं। वे भी शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण होवें, प्रभु और वेद के भक्तों का आशीर्वाद ज्ञान की गंगा धरती पर बहाने के लिए हमें सदा प्राप्त होता रहेगा, इसी विश्वास से हम बढ़ते जा रहे हैं।

अन्तर्यामिन् प्रभो! आप से अधिक कौन जान सकता है हमारे हृदय की भावना को। बस ऐसी कृपा करो कि जीवन का हर सांस आपके ज्ञान का संगीत गुंजाता रहे। धरती के प्रत्येक मन मंदिर में 'वेद' की कल्याणी वाणी की झंकृतियां हम गुंजा सकें परम पिता परमात्मन्! आशीर्वाद दो, आप के आशीर्वाद से ही यज्ञ सफल होगा और सारी धरती के सारे पूजा स्थानों में, परिवारों में, विद्या मंदिरों में आप के ज्ञान 'वेद' का, और वेद के विज्ञान का विकास होगा।

अर्पित है यह पावन ज्ञान ग्रन्थ, धर्म ग्रन्थ,
आपके पवित्र हाथों में, इस आशीर्वाद के
साथ कि प्रभु आप को 'वेद' की ज्योति से
ज्योतिर्मय करें!

— भारतेन्द्र नाथ

अध्यक्ष
दयानन्द-संस्थान
१५६७ हरध्यान सिंह मार्ग
नई दिल्ली—५

भाष्यकार की लेखनी से

भूमिका

ओ३म् सह नाववतु सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै
तेजस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै । ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

तैत्तिरीय आरण्यक । नवम प्रपाठक । प्रथम अनुवाक

हे सर्वशक्तिमन् ईश्वर ! आपकी कृपा, रक्षा और सहाय से हम लोग परस्पर एक दूसरे की रक्षा करें। और हम सब लोग परम प्रीति से मिलके सबसे उत्तम ऐश्वर्य अर्थात् चक्रवर्ती राज्य आदि सामग्री से आनन्द को आपके अनुग्रह से सदा भोगें। हे कृपानिधे ! आपके सहाय से हम लोग एक दूसरे के सामर्थ्य को पुरुषार्थ से सदा बढ़ाते रहें। हे प्रकाशमय सब विद्या के देने वाले परमेश्वर ! आपके सामर्थ्य से ही हम लोगों का पढ़ा पढ़ाया सब संसार में प्रकाश को प्राप्त हो। हे प्रीति के उत्पादक ! आप ऐसी कृपा कीजिए कि जिससे हम लोग परस्पर विरोध कभी न करें किन्तु एक दूसरे के मित्र होके सदा वर्त्तें।

जो ब्रह्म अनन्त आदि विशेषणों से युक्त है जिसकी वेद विद्या सनातन है उस को अत्यन्त प्रेम भक्ति से मैं नमस्कार करके इस वेद भाष्य के बनाने का आरम्भ करता हूँ। ईश्वर की कृपा के सहाय से सब मनुष्यों, के हित के लिए इस वेद भाष्य का विधान मैं करता हूँ। इस वेदभाष्य में अप्रमाण लेख कुछ भी नहीं किया जाता है, किन्तु जो ब्रह्मा से लेके व्यास पर्यन्त मुनि और ऋषि हुए हैं उनकी जो व्याख्या रीति है उससे युक्त ही यह वेद-भाष्य बनाया जायगा। और इस भाष्य से वेदों का जो सत्य अर्थ है सो संसार में प्रसिद्ध हो कि **वेदों के सनातन अर्थ को** सब लोग यथावत् जान लें, इसलिए यह प्रयत्न मैं करता हूँ सो परमेश्वर के सहाय से यह काम अच्छे प्रकार सिद्ध हो, यही सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से मेरी प्रार्थना है। आप की कृपा के सहाय से सब विघ्न हम से दूर रहें कि जिससे इस वेदभाष्य के करने का हमारा अनुष्ठान सुख से पूर्ण हो। यह वेद भाष्य आप की कृपा से सम्पूर्ण होके सब मनुष्यों का सदा उपकार करने वाला हो और आप अन्तर्यामी की प्रेरणा से सब मनुष्यों का इस वेद भाष्य में श्रद्धा सहित अत्यन्त उत्साह हो, जिस से वेद भाष्य करने में जो हम लोगों का प्रयत्न है सो यथावत् सिद्धि को प्राप्त हो। इसी प्रकार से आप हमारे और सब जगत् के ऊपर कृपा दृष्टि करते रहें, जिस से इस बड़े सत्य काम को हम लोग सहज से सिद्ध करें।

जगदीश्वर को अच्छी प्रकार प्रणाम करके संवत् १९३४ मार्गशीर्ष शुक्ल ६ सोमवार के दिन सम्पूर्ण ज्ञान के देने वाले ऋग्वेद के भाष्य का आरम्भ करता हूँ। इस ऋग्वेद से पदार्थों की स्तुति होती है। अर्थात् ईश्वर ने जिस में सब पदार्थों के गुणों का प्रकाश किया है। इसलिए विद्वान् लोगों को चाहिए कि ऋग्वेद को प्रथम पढ़ के उन मन्त्रों से ईश्वर से लेके पृथ्वी पर्य्यन्त सब पदार्थों को यथावत् जान संसार में उपकार के लिए प्रयत्न करें। ऋग्वेद शब्द का अर्थ यह है कि जिस से सब पदार्थों के गुणों और स्वभावों का वर्णन किया जाए, वह ऋक् और वेद अर्थात् जो यह सत्य-सत्य ज्ञान का हेतु है, इन दो शब्दों से ऋग्वेद शब्द बनता है। ''अग्निमीळे'' यहाँ से लेके ''यथा वः सुसहासति'' इस अंत के मन्त्र पर्यन्त ऋग्वेद में आठ अष्टक और एक-एक अष्टक में आठ-आठ अध्याय हैं. सब अध्याय मिल के ६४ होते हैं।

और आठों अष्टक के सब वर्ग २०२४ होते हैं। तथा इसमें दस मंडल हैं। प्रथम मंडल में २४ अनुवाक और १९१ सूक्त तथा १९७६ मन्त्र, दूसरे मंडल में ४ अनुवाक, ४३ सूक्त, ४२९ मन्त्र, तीसरे में पाँच अनुवाक, ६२ सूक्त, ६१७ मन्त्र हैं। चौथे में ५ अनुवाक, ५८ सूक्त, ५८९ मन्त्र हैं। पाँचवें मण्डल में ६ अनुवाक, ८७ सूक्त ७२७ मन्त्र हैं। छठे मंडल में ६ अनुवाक, ७५ सूक्त, ७६५ मन्त्र हैं। सातवें में ६ अनुवाक, १०४ सूक्त, ८४१ मन्त्र हैं। आठवें में १० अनुवाक, १०३ सूक्त, १७१६ मन्त्र हैं। नवम् में ७ अनुवाक, ११४ सूक्त, १०९७ मन्त्र हैं। और दशम मंडल में १२ अनुवाक, १९१ सूक्त, १७५४ मन्त्र हैं। तथा दसों मंडल में ८५ अनुवाक, १०२८ सूक्त और १०५८९ मन्त्र हैं। सब सज्जनों को उचित है कि इस बात को ध्यान में कर लें जिस से किसी प्रकार का गड़बड़ न हो।

हे सर्वविद्यामय सर्वार्थवित् जगदीश्वर ! हम पर आप कृपा धारण करें जिस से हम लोग विघ्नों से सदा अलग रहें और सत्य अर्थ सहित इस वेद भाष्य को सम्पूर्ण बना के आप के बनाए वेदों के सत्य अर्थ की विस्तार रूप जो कीर्ति है उसको जगत् में सदा के लिए बढ़ावें—और इस भाष्य को देख के वेदों के अनुसार सत्य का अनुष्ठान कर के हम सब श्रेष्ठ गुणों से युक्त सदा हों। इसलिए हम लोग आप की प्रार्थना प्रेम से सदा करते हैं। इस को आप कृपा से शीघ्र सुनें। जिस से यह जो सब का उपकार करने वाला वेदभाष्य का अनुष्ठान है सो यथावत् सिद्धि को प्राप्त हो।

—(स्वामी) दयानन्द सरस्वती

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद

-हिन्दी भाष्य-

~महर्षि दयानन्द सरस्वती

वेद सब
सत्य विद्याओं
का पुस्तक है।
— महर्षि दयानन्द

प्रथम मण्डल : प्रथम सूक्त

प्रथमाष्टक : प्रथम अध्याय : प्रथम अनुवाक :

अथास्य नवर्चस्य सूक्तस्य मधुच्छन्दा ऋषिः अग्निर्देवता गायत्री छन्दः षड्ज स्वरः ॥

यहाँ प्रथम मन्त्र में अग्नि शब्द से ईश्वर ने अपना और भौतिक अर्थ का उपदेश किया है—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥ १ ॥

पदार्थ— (**यज्ञस्य**) हम लोग विद्वानों के सत्कार, संगम, महिमा और कर्म के (**होतारम्**) देने तथा ग्रहण करनेवाले (**पुरोहितम्**) उत्पत्ति के समय से पहले परमाणु आदि सृष्टि के धारण करने और (**ऋत्विजम्**) बारंबार उत्पत्ति के समय में स्थूल सृष्टि के रचनेवाले तथा ऋतु-ऋतु में उपासना करने योग्य (**रत्नधातमम्**) और निश्चय करके मनोहर पृथिवी वा सुवर्ण आदि रत्नों के धारण करने वा (**देवम्**) देने तथा सब पदार्थों के प्रकाश करनेवाले परमेश्वर की (**ईळे**) स्तुति करते हैं।

तथा उपकार के लिए (**यज्ञस्य**) हम लोग विद्यादि दान और शिल्पक्रियाओं से उत्पन्न करने योग्य पदार्थों के (**होतारम्**) देनेहारे तथा (**पुरोहितम्**) उन पदार्थों के उत्पन्न करने के समय से पूर्व भी छेदन, धारण और आकर्षण आदि गुणों के धारण करने वाले (**ऋत्विजम्**) शिल्पविद्या साधनों के हेतु (**रत्नधातमम्**) अच्छे-अच्छे सुवर्ण आदि रत्नों के धारण कराने तथा (**देवम्**) युद्धादिकों में कलायुक्त शस्त्रों से विजय करानेहारे भौतिक अग्नि की (**ईळे**) बारंबार इच्छा करते हैं ॥ १ ॥

यहाँ अग्नि शब्द के दो अर्थ करने में प्रमाण ये हैं कि (**इन्द्रं मित्र०**) इस ऋग्वेद के मन्त्र से यह जाना जाता है कि एक सद्ब्रह्म के इन्द्र आदि अनेक नाम हैं। तथा (**तदेवाग्नि०**) इस यजुर्वेद के मन्त्र से भी अग्नि आदि नामों से सच्चिदानन्दादि लक्षणवाले ब्रह्म को जानना चाहिए। (**ब्रह्म ह्य०**) इत्यादि शतपथ ब्राह्मण के प्रमाणों से अग्नि शब्द ब्रह्म और आत्मा इन दो अर्थों का वाची है। (**अयं वा०**) इस प्रमाण में अग्नि शब्द से प्रजा शब्द करके भौतिक और प्रजापति शब्द से ईश्वर का ग्रहण होता है (**अग्नि०**) इस प्रमाण से सत्याचरण के नियमों का जो यथावत् पालन करना है सो ही व्रत कहाता है, और इस व्रत का पति परमेश्वर है (**त्रिभिः पवित्रै०**) इस ऋग्वेद के प्रमाण से ज्ञानवाले तथा सर्वज्ञ, प्रकाश करनेवाले विशेषण से अग्नि शब्द से ईश्वर का ग्रहण होता है।

निरुक्तकार यास्कमुनिजी ने भी ईश्वर और भौतिक पक्षों को अग्नि शब्द की भिन्न-भिन्न व्याख्या करके सिद्ध किया है, सो संस्कृत में यथावत् देख लेना चाहिए, परन्तु सुगमता के लिए कुछ संक्षेप से यहाँ भी कहते हैं। यास्कमुनिजी ने स्थौलाष्ठीवि ऋषि के मत से अग्नि शब्द का अग्रणी=सब से उत्तम अर्थ किया है अर्थात् जिसका सब यज्ञों में पहले प्रतिपादन होता है वह सब से उत्तम ही है। इस कारण अग्नि शब्द से ईश्वर तथा दाहगुणवाला भौतिक अग्नि इन दो ही अर्थों का ग्रहण होता है।

(**प्रशासितारं०, एतमे०**) मनुजी के इन दो श्लोकों में भी परमेश्वर के अग्नि आदि नाम प्रसिद्ध हैं। (**ईळे०**) इस ऋग्वेद के प्रमाण से भी उस अनन्त विद्यावाले और चेतनस्वरूप आदि गुणों से युक्त परमेश्वर का ग्रहण होता है।

अब भौतिक अर्थ के ग्रहण करने में प्रमाण दिखलाते हैं— (**यदश्वं०**) इत्यादि शतपथ ब्राह्मण के प्रमाणों से अग्नि शब्द से भौतिक अग्नि का ग्रहण होता है। यह अग्नि बैल के समान सब देशदेशान्तरों में पहुँचानेवाला होने के कारण वृष और अश्व भी कहाता है, क्योंकि वह कलाओं के द्वारा अश्व अर्थात् शीघ्र चलानेवाला होकर शिल्पविद्या के जाननेवाले विद्वान् लोगों के विमान आदि यानों को वेग से वाहनों के समान दूर-दूर देशों में पहुँचाता है। (**तूर्णि०**) इस प्रमाण से भी भौतिक अग्नि का ग्रहण है, क्योंकि वह उक्त शीघ्रता आदि हेतुओं से हव्यवाट् और तूर्णि भी कहाता है। (**अग्निर्वै यो०**) इत्यादिक और भी अनेक प्रमाणों से अश्व नाम से भौतिक अग्नि का ग्रहण किया गया है। (**वृषो०**) जबकि इस भौतिक अग्नि को शिल्पविद्यावाले विद्वान् लोग यन्त्रकलाओं से सवारियों में प्रदीप्त करके युक्त करते हैं, तब (**देववाहनः**) उन सवारियों में बैठे हुए विद्वान् लोगों को देशान्तर में बैलों वा घोड़ों के समान शीघ्र पहुँचानेवाला होता है। हे मनुष्यो! तुम लोग (**हविष्मन्तम्**) वेगादि गुणवाले अश्वरूप अग्नि के गुणों को (**ईळते**) खोजो। इस प्रमाण से भी भौतिक अग्नि का ग्रहण है ॥ १ ॥

भावार्थ— इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार से दो अर्थों का ग्रहण होता है। पिता के समान कृपाकारक परमेश्वर सब जीवों के हित और सब विद्याओं की प्राप्ति के लिए कल्प-कल्प की आदि में वेद का उपदेश करता है। जैसे पिता वा अध्यापक अपने शिष्य वा पुत्र को शिक्षा करता है कि तू ऐसा कर वा ऐसा वचन कह, सत्य वचन बोल, इत्यादि शिक्षा को सुनकर बालक वा शिष्य भी कहता है कि सत्य बोलूँगा, पिता और आचार्य्य की सेवा करूँगा, झूठ न कहूँगा, इस प्रकार जैसे परस्पर शिक्षक लोग शिष्य वा लड़कों को उपदेश करते हैं, वैसे ही 'अग्निमीळे०' इत्यादि वेदमन्त्रों में भी जानना चाहिए। क्योंकि ईश्वर ने वेद सब जीवों के उत्तम सुख के लिए प्रकट किया है। इसी 'अग्निमीळे०' वेद के उपदेश का परोपकार फल होने से इस मन्त्र में 'ईळे' यह उत्तम पुरुष का प्रयोग भी है।

(**अग्निमीळे०**) परमार्थ और व्यवहार विद्या की सिद्धि के लिए अग्नि शब्द से परमेश्वर और भौतिक ये दोनों अर्थ लिए जाते हैं। जो पहले समय में आर्य लोगों ने अश्वविद्या के नाम से शीघ्र गमन का हेतु शिल्पविद्या उत्पन्न की थी वह अग्निविद्या की ही उन्नति थी। आप ही आप प्रकाशमान सब का प्रकाश और अनन्त ज्ञानवान् आदि हेतुओं से अग्निशब्द से परमेश्वर तथा रूप, दाह, प्रकाश, वेग, छेदन आदि गुण और शिल्पविद्या के मुख्य साधक आदि हेतुओं से प्रथम मन्त्र में भौतिक अर्थ का ग्रहण किया है ॥ १ ॥

उक्त अग्नि किन के स्तुति करने वा खोजने योग्य है इसका उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत । स देवाँ एह वक्षति ॥ २ ॥

पदार्थ— (**पूर्वेभिः**) वर्तमान वा पहले समय के विद्वान् (**नूतनैः**) वेदार्थ के पढ़ने वाले ब्रह्मचारी तथा नवीन तर्क और कार्यों में ठहरने वाले प्राण (**ऋषिभिः**) मन्त्रों के अर्थों को देखने वाले विद्वान्, उन लोगों के तर्क और कारणों में रहने वाले प्राण, इन सभों का (**अग्निः**) वह परमेश्वर (**ईड्यः**) स्तुति करने योग्य और यह भौतिक अग्नि नित्य खोजने योग्य है ॥ २ ॥

प्राचीन और नवीन ऋषियों में प्रमाण ये हैं कि— (**ऋषिप्रशंसा०**) वे ऋषि लोग गूढ़ और अल्पार्थाभिप्राययुक्त मन्त्रों के अर्थों को यथावत् जानने से प्रशंसा के योग्य होते हैं, और उन्हीं ऋषियों की मन्त्रों में (**दृष्टि**) अर्थात् उनके अर्थों के विचार में पुरुषार्थ से यथार्थ ज्ञान और विज्ञान की प्रवृत्ति होती है, इसी से वे सत्कार करने योग्य भी हैं। तथा (**साक्षात्कृत०**) जो धर्म और अधर्म की ठीक-ठीक परीक्षा करने वाले धर्मात्मा और यथार्थवक्ता थे, तथा जिन्होंने सब विद्या यथावत् जान ली थी, वे ही ऋषि हुए, और जिन्होंने मन्त्रों के अर्थ ठीक-ठीक नहीं जाने थे और नहीं जान सकते थे उन लोगों को अपने उपदेश द्वारा वेदमन्त्रों का अर्थ सहित ज्ञान कराते हुए चले आये, इस प्रयोजन के लिए कि जिससे उत्तरोत्तर अर्थात् पीढ़ी दर पीढ़ी आगे को भी वेदार्थ का प्रचार उन्नति के साथ बना रहे, तथा जिससे कोई मनुष्य अपने और उक्त ऋषियों के किये हुए व्याख्यान सुनने के लिए अपने निर्बुद्धिपन से ग्लानि को प्राप्त हो, इस बात के सहाय में उनको सुगमता से वेदार्थ का ज्ञान होने के लिए उन ऋषियों ने निघण्टु और निरुक्त आदि ग्रन्थों का उपदेश किया है, जिससे कि सब मनुष्यों को वेद और वेदाङ्गों का यथार्थ बोध हो जावे। (**पुरस्तान्मनुष्या०**) इस प्रमाण से ऋषि शब्द का अर्थ तर्क ही सिद्ध होता है। (**अविज्ञात०**) यह न्यायशास्त्र में गौतम मुनिजी ने तर्क का लक्षण कहा है, इससे यही सिद्ध होता है कि जो सिद्धान्त के जानने के लिए विचार किया जाता है उसी का नाम तर्क है। (**प्राणा०**) इन शतपथ के प्रमाणों से ऋषि शब्द से प्राण और देव शब्द करके ऋतुओं का ग्रहण होता है। (**स उत**) वही परमेश्वर (**इह**) इस संसार वा इस जन्म में (**देवान्**) अच्छी-अच्छी इन्द्रियाँ, विद्या आदि गुण, भौतिक अग्नि और अच्छे-अच्छे भोगने योग्य पदार्थों को (**आवक्षति**) प्राप्त करता है।

(**अग्निः पूर्वे०**) इस मन्त्र का अर्थ निरुक्तकार ने जैसा कुछ किया है सो इस मन्त्र के भाष्य में लिख दिया है।

भावार्थ— जो मनुष्य सब विद्याओं को पढ़के औरों को पढ़ाते हैं तथा अपने उपदेश से सब का उपकार करने वाले हैं वा हुए हैं वे पूर्व शब्द से, और जो कि अब पढ़ने वाले, विद्या ग्रहण के लिए अभ्यास करते हैं, वे नूतन शब्द से ग्रहण किये जाते हैं। और वे सब पूर्ण विद्वान् शुभ गुण सहित होने पर ऋषि कहाते हैं क्योंकि जो मन्त्रों के अर्थों को जाने हुए, धर्म और विद्या के प्रचार, अपने सत्य उपदेश से सब पर कृपा करने वाले, निष्कपट, पुरुषार्थी, धर्म के सिद्ध होने के लिए ईश्वर की उपासना करने वाले और कार्यों की सिद्धि के लिए भौतिक अग्नि के गुणों को जानकर अपने कामों को सिद्ध करने वाले होते हैं, तथा प्राचीन और नवीन विद्वानों के तत्त्व जानने के लिए युक्ति प्रमाण से सिद्ध तर्क और कारण वा कार्य्य जगत् में रहने वाले जो प्राण हैं, इन सब से ईश्वर और भौतिक अग्नि का अपने-अपने गुणों के साथ खोज करना योग्य है। और जो सर्वज्ञ परमेश्वर ने पूर्व और वर्तमान अर्थात् त्रिकालस्थ ऋषियों को अपने सर्वज्ञपन से जानके इस मन्त्र में परमार्थ और व्यवहार ये दो विद्या दिखलाई हैं, इस से इसमें भूत वा भविष्य काल की बातों के कहने में कोई भी दोष नहीं आ सकता, क्योंकि वेद सर्वज्ञ परमेश्वर का वचन है। वह परमेश्वर उत्तम गुणों को तथा भौतिक अग्नि व्यवहार कार्यों में संयुक्त किया हुआ उत्तम-उत्तम भोग के पदार्थों का देने वाला होता है। पुराने की अपेक्षा एक पदार्थ से दूसरा नवीन और नवीन की अपेक्षा पहला पुराना होता है।

देखो यही अर्थ इस मन्त्र का निरुक्तकार ने भी किया है कि— प्राकृत जन अर्थात् अज्ञानी लोगों ने जो प्रसिद्ध भौतिक अग्नि पाक बनाने आदि कार्यों में लिया है, वह इस मन्त्र में नहीं लेना, किन्तु सब का प्रकाश करनेहारा परमेश्वर और सब विद्याओं का हेतु जिसका नाम विद्युत् है वही भौतिक अग्नि यहाँ अग्नि शब्द से लिया है ॥ २ ॥

अब परमेश्वर की उपासना और भौतिक अग्नि के उपकार से क्या-क्या फल प्राप्त होता है, सो अगले मन्त्र से उपदेश किया है—

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे । यशसं वीरवत्तमम् ॥ ३ ॥

पदार्थ— यह मनुष्य (**अग्निना एव**) अच्छी प्रकार ईश्वर की उपासना और

भौतिक अग्नि ही को कलाओं मे संयुक्त करने से (दिवे दिवे) प्रतिदिन (पोषम्) आत्मा और शरीर की पुष्टि करने वाला (यशसम्) जो उत्तम कीर्ति का बढ़ाने वाला और (वीरवत्तमम्) जिसको अच्छे-अच्छे विद्वान् वा शूरवीर लोग चाहा करते हैं (रयिम्) विद्या और सुवर्णादि उत्तम उस धन को सुगमता से (अश्नवत्) प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार से दो अर्थों का ग्रहण है। ईश्वर की आज्ञा मे रहने तथा शिल्पविद्या सम्बन्धि कार्यों की सिद्धि के लिए भौतिक अग्नि को सिद्ध करने वाले मनुष्यों को अक्षय, अर्थात् जिसका कभी नाश नहीं होता, सो धन प्राप्त होता है, तथा मनुष्य जिस धन से कीर्ति की वृद्धि और जिस धन को पाके वीर पुरुषों से युक्त होकर नाना सुखों से युक्त होते है, सब को उचित है कि उस धन को अवश्य प्राप्त करें ॥ ३ ॥

उक्त भौतिक अग्नि और परमेश्वर किस प्रकार के हैं,
यह भेद अगले मन्त्र मे जनाया है—

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि । स इद्देवेषु गच्छति ॥ ४ ॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर ! आप (विश्वतः) सर्वत्र व्याप्त होकर (यम्) जिस (अध्वरम्) हिंसा आदि दोषरहित (यज्ञम्) विद्या आदि पदार्थों के दानरूप यज्ञ को (परिभूः) सब प्रकार से पालन करनेवाले है, (स इत्) वही यज्ञ (देवेषु) विद्वानों के बीच में (गच्छति) फैलके जगत् को सुख प्राप्त करता है।

तथा (अग्ने) जो यह भौतिक अग्नि (विश्वतः) पृथिव्यादि पदार्थों के साथ अनेक दोषों से अलग होकर (यम्) जिस (अध्वरम्) विनाश आदि दोषों से रहित (यज्ञम्) शिल्पविद्यामय यज्ञ को (परिभूः) सब प्रकार से सिद्ध करता है (स इत्) वही यज्ञ (देवेषु) अच्छे-अच्छे पदार्थों में (गच्छति) प्राप्त होकर सब को लाभकारी होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है। जिस कारण व्यापक परमेश्वर अपनी सत्ता से उक्त यज्ञ की निरन्तर रक्षा करता है, इसी से वह अच्छे-अच्छे गुणों के देने का हेतु होता है। इसी प्रकार ईश्वर ने दिव्यगुणयुक्त अग्नि भी रचा है कि जो उत्तम शिल्पविद्या का उत्पन्न करने वाला है। इन गुणों को केवल धार्मिक, उद्योगी और विद्वान् मनुष्य ही प्राप्त होने के योग्य होता है ॥ ४ ॥

फिर भी परमेश्वर और भौतिक अग्नि किस प्रकार के हैं
सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः । देवो देवेभिरा गमत् ॥५॥

पदार्थ—जो (सत्य) अविनाशी (देव) आप-से-आप प्रकाशमान (कविक्रतु) सर्वज्ञ है, जिसने परमाणु आदि पदार्थ और उनके उत्तम-उत्तम गुण रच के दिखलाये हैं, जो सब विद्यायुक्त वेद का उपदेश करता है, और जिससे परमाणु आदि पदार्थों द्वारा सृष्टि के उत्तम पदार्थों का दर्शन होता है, वही कवि अर्थात् सर्वज्ञ ईश्वर है। तथा भौतिक अग्नि भी स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों मे कलायुक्त होकर देश-देशान्तर मे गमन करानेवाला दिखलाया है। (चित्रश्रवस्तम) जिसका अति आश्चर्य-रूपी श्रवण है, वह परमेश्वर (देवेभि.) विद्वानों के साथ समागम करने से (आगमत्) प्राप्त होता है।

तथा जो (सत्य) श्रेष्ठ विद्वानों का हित अर्थात् उनके लिए सुखरूप (देव) उत्तम गुणों का प्रकाश करने वाला (कविक्रतु) सब जगत् को जानने और रचने-हारा परमात्मा और जो भौतिक अग्नि सब पृथिवी आदि पदार्थों के साथ व्यापक और शिल्पविद्या का मुख्य हेतु (चित्रश्रवस्तम.) जिसको अद्भुत अर्थात् अति आश्चर्यरूप सुनते हैं, वह दिव्य गुणों के साथ (आगमत्) जाना जाता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है—सब का आधार, सर्वज्ञ, सब का रचनेवाला, विनाशरहित, अनन्त शक्तिमान् और सब का प्रकाशक आदि गुण हेतुओ के पाये जाने से अग्नि शब्द के द्वारा परमेश्वर, और आकर्षणादि गुणों से मूर्तिमान् पदार्थों का धारण करनेहारादि गुणों के होने से भौतिक अग्नि का भी ग्रहण होता है। सिवाय इसके मनुष्यों को यह भी जानना उचित है कि विद्वानों के समागम और ससारी पदार्थों को उनके गुण सहित विचारने से परमदयालु परमेश्वर अनन्त सुखदाता और भौतिक अग्नि शिल्पविद्या का सिद्ध करने वाला होता है ॥ ५ ॥

यह पहला वर्ग समाप्त हुआ।

अब अग्नि शब्द से ईश्वर का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि । तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (अङ्गिरः) ब्रह्माण्ड के अङ्ग ! पृथिवी आदि पदार्थों का प्राण-रूप और शरीर के अङ्गों को अन्तर्यामिरूप से रसरूप होकर रक्षा करनेवाले होने से यहाँ अङ्गिर शब्द से ईश्वर लिया है। (अङ्ग) हे सब के मित्र (अग्ने) परमेश्वर ! (यत्) जिस हेतु से आप (दाशुषे) निर्लोभता से उत्तम-उत्तम पदार्थों के दान करने वाले मनुष्य के लिए (भद्रम्) कल्याण, जो कि शिष्ट विद्वानों के योग्य है उसको, (करिष्यसि) करते हैं, सो यह (तवेत्) आपही का (सत्यम्) सत्य व्रत—शील है ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो न्याय, दया, कल्याण और सब का मित्रभाव करने वाला परमेश्वर है, उसी की उपासना करके जीव इस लोक और मोक्ष के सुख को प्राप्त होता है। क्योंकि इस प्रकार सुख देने का स्वभाव और सामर्थ्य केवल परमेश्वर का है, दूसरे का नहीं, जैसे शरीरधारी अपने शरीर को धारण करता है वैसे ही परमेश्वर सब ससार को धारण करता है, और इसी से इस ससार की यथावत् रक्षा और स्थिति होती है ॥ ६ ॥

उक्त परमेश्वर कैसे उपासना करके प्राप्त होने के योग्य है
इसका विधान अगले मन्त्र में किया है—

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ॥७॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सब के उपासना करने योग्य परमेश्वर ! हम लोग (दिवेदिवे) अनेक प्रकार के विज्ञान होने के लिए (धिया) अपनी बुद्धि और कर्मों से आपकी (भरन्त) उपासना को धारण और (दोषावस्तः) रात्रि-दिन मे निरन्तर (नम) नमस्कार आदि करते हुए (उपेमसि) आप के शरण को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे सब को देखने और सब मे व्याप्त होने वाले उपासना के योग्य परमेश्वर ! हम लोग सब कामों के करने मे एक क्षण भी आप को नहीं भूलते, इसी से हम लोगों को अधर्म करने मे कभी इच्छा भी नहीं होती, क्योंकि जो सर्वज्ञ सब का साक्षी परमेश्वर है, वह हमारे सब कामों को देखता है, इस निश्चय से ॥ ७ ॥

फिर भी वह परमेश्वर किस प्रकार का है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानं स्वे दमे ॥ ८ ॥

पदार्थ—(स्वे) अपने (दमे) उस परम आनन्द पद मे कि जिस में बड़े-बड़े दुःखों से छूटकर मोक्षसुख को प्राप्त हुए पुरुष रमण करते हैं, (वर्धमानम्) सब से बड़ा (राजन्तम्) प्रकाशस्वरूप (अध्वराणाम्) पूर्वोक्त यज्ञादिक अच्छे-अच्छे कर्म और धार्मिक मनुष्य तथा (गोपाम्) पृथिव्यादिकों की रक्षा (ऋतस्य) सत्यविद्या युक्त चारों वेदों और कार्य जगत् के अनादि कारण के (दीदिविम्) प्रकाश करने वाले परमेश्वर को हम लोग उपासना-योग से प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे विनाश और अज्ञान आदि दोष रहित परमात्मा अपने अन्तर्यामि-रूप से सब जीवों को सत्य का उपदेश तथा श्रेष्ठ विद्वान् और सब जगत् की रक्षा करता हुआ अपनी सत्ता और परम आनन्द मे प्रवृत्त हो रहा है, वैसे ही परमेश्वर के उपासक भी आनन्दित, वृद्धियुक्त होकर विज्ञान में विहार करते हुए परम आनन्द रूप विशेष फलों को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

वह परमेश्वर किसके समान किसको रक्षा करता है,
सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (स) उक्त गुणयुक्त (अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! (पितेव) जैसे पिता (सूनवे) अपने पुत्र के लिए उत्तम ज्ञान का देने वाला होता है, वैसे ही आप (न) हम लोगों के लिए (सूपायन) शोभन ज्ञान, जो कि सब सुखों का साधक और उत्तम-उत्तम पदार्थों का प्राप्त करने वाला है, उसके देने वाले होकर (न.) हम लोगों को (स्वस्तये) सब सुख के लिए (सचस्व) संयुक्त कीजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को उत्तम प्रयत्न और ईश्वर की प्रार्थना इस प्रकार से करनी चाहिए कि—हे भगवन् ! जैसे पिता अपने पुत्रों को अच्छी प्रकार पालन करके और उत्तम-उत्तम शिक्षा देकर उनको शुभ गुण और श्रेष्ठ कर्म करने योग्य बना देता है, वैसे ही आप हम लोगों को शुभ गुण और शुभ कर्मों में युक्त सदैव कीजिए ॥ ९ ॥

इस प्रथम सूक्त मे पहिले पाँच मन्त्रों के द्वारा श्लेषालङ्कार से व्यवहार और परमार्थ की विद्याओं का प्रकाश किया, और चार मन्त्रों से ईश्वर की उपासना और स्वभाव वर्णन किया है।

यह पहला सूक्त और दूसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ नवर्चस्य द्वितीयसूक्तस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । १-३ वायुः, ४-६ इन्द्रवायू, ७-९ मित्रावरुणौ च देवता. । १, २ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री; ३-५, ७-९ गायत्री, ६ निचृद्गायत्री च छन्द. । षड्ज स्वरः ॥

अब द्वितीय सूक्त का प्रारम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र मे उन पदार्थों का वर्णन किया है कि जिन्होंने सब पदार्थ शोभित कर रखे हैं—

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः । तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥१॥

पदार्थ—(दर्शत) हे ज्ञान से देखने योग्य (वायो) अनन्त बलयुक्त सब के प्राणरूप अन्तर्यामी परमेश्वर ! आप हमारे हृदय मे (आयाहि) प्रकाशित हूजिए। कैसे आप है कि जिन्होंने (इमे) इन प्रत्यक्ष (सोमा.) ससारी पदार्थों को (अरंकृताः) अलंकृत अर्थात् सुशोभित कर रखा है। (तेषाम्) आप ही उन पदार्थों के रक्षक है, इससे उनकी (पाहि) रक्षा भी कीजिए और (हवम्) हमारी स्तुति को (श्रुधि) सुनिए।

तथा (दर्शत) स्पर्शादि गुणों से देखने योग्य (वायो) सब मूर्तिमान् पदार्थों का आधार और प्राणियों के जीवन का हेतु भौतिक वायु (आयाहि) सब को प्राप्त होता है फिर जिस भौतिक वायु ने (इमे) प्रत्यक्ष (सोमः) ससार के पदार्थों को (अरंकृताः) शोभायमान किया है, वही (तेषाम्) उन पदार्थों की (पाहि) रक्षा का हेतु है और (हवम्) जिससे सब प्राणी लोग कहने और सुनने रूप व्यवहार को (श्रुधि) कहते-सुनते हैं ॥ १ ॥

आगे ईश्वर और भौतिक वायु के पक्ष में प्रमाण दिखलाते हैं—(प्रवायुमच्छा०) इस प्रमाण मे वायु शब्द से परमेश्वर और भौतिक वायु पुष्टिकारी और जीवों को यथायोग्य कामों मे पहुँचाने वाले गुणों से ग्रहण किये गये हैं। (अथातो०) जो-जो पदार्थ अन्तरिक्ष में हैं उनमें प्रथमगामी वायु अर्थात् उन पदार्थों मे रमण करने वाला कहाता है, तथा सब जगत् को जानने से वायु शब्द करके परमेश्वर का ग्रहण होता है। तथा मनुष्य लोग वायु से प्राणायाम करके और उसके गुणों के ज्ञान द्वारा परमेश्वर और शिल्पविद्यामय यज्ञ को जान सकता है। इस अर्थ से वायु शब्द करके ईश्वर और

भौतिक का ग्रहण होता है। अथवा जो चराचर जगत् मे व्याप्त हो रहा है, इस अर्थ से वायु शब्द द्वारा परमेश्वर का तथा जो सब लोको को परिधिरूप से घेर रहा है इस अर्थ से भौतिक वायु का ग्रहण होता है, क्योंकि परमेश्वर अन्तर्यामिरूप और भौतिक वायु प्राणरूप से संसार मे रहने वाले हैं। इन्हीं दो अर्थों की कहने वाली वेद की (वायवा याहि०) यह ऋचा जाननी चाहिए।

इसी प्रकार से इस ऋचा का (**वायवा याहि दर्शतेमे**) इत्यादि व्याख्यान निरुक्तकार ने भी किया है, सो संस्कृत मे देख लेना वहाँ भी वायु शब्द से परमेश्वर और भौतिक वायु इन दोनो का ग्रहण है जैसे--(**वायुः सोमस्य०**) वायु अर्थात् परमेश्वर उत्पन्न हुए जगत् की रक्षा करने वाला और उसमे व्याप्त होकर उसके अंश-अंश के साथ भर रहा है। इस अर्थ से ईश्वर का तथा सोमवल्ली आदि ओषधियो के रस हरने और समुद्रादिको के जल को ग्रहण करने से भौतिक वायु का ग्रहण जानना चाहिए। (**वायुर्वा अ०**) इत्यादि वाक्यों मे वायु को अग्नि के अर्थ मे भी लिया है। परमेश्वर का उपदेश है कि मै वायुरूप होकर इस जगत् को आप ही प्रकाश करता हूँ, तथा मैं ही अन्तरिक्ष लोक मे भौतिक वायु को अग्नि के तुल्य परिपूर्ण और यज्ञादिकों को वायुमण्डल में पहुँचाने वाला हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे परमेश्वर के सामर्थ्य से रचे हुए पदार्थ नित्य ही सुशोभित होते हैं, वैसे ही जो ईश्वर का रचा हुआ भौतिक वायु है, उसकी धारणा से भी सब पदार्थों की रक्षा और शोभा तथा जैसे जीव की प्रेमभक्ति से की हुई स्तुति को सर्वगत ईश्वर प्रतिक्षण सुनता है, वैसे ही भौतिक वायु के निमित्त से भी जीव शब्दो के उच्चारण और श्रवण करने को समर्थ होता है ॥ १ ॥

उक्त परमेश्वर और भौतिक वायु किस प्रकार स्तुति करने योग्य हैं,
सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

वायं उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितारः। सुतसोमा अहर्विदः ॥२॥

पदार्थ—(**वायो**) हे अनन्त बलवान् ईश्वर ! जो-जो (**अहर्विदः**) विज्ञानरूप प्रकाश को प्राप्त होने (**सुतसोमाः**) ओषधि आदि पदार्थों के रस को उत्पन्न करने (**जरितारः**) स्तुति और सत्कार के करने वाले विद्वान् लोग है, वे (**उक्थेभिः**) वेदोक्त स्तोत्रों से (**त्वाम्**) आपको (**अच्छ**) साक्षात् करने के लिए (**जरन्ते**) स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—यहाँ श्लेषालङ्कार है। इस मन्त्र से जो वेदादि शास्त्रो मे कहे हुए स्तुतियो के निमित्त स्तोत्र हैं, उन से व्यवहार और परमार्थ विद्या की सिद्धि के लिए परमेश्वर और भौतिक वायु के गुणो का प्रकाश किया गया है ॥ २ ॥

पूर्वोक्त स्तोत्रों का जो श्रवण और उच्चारण का निमित्त है
उसका प्रकाश अगले मन्त्र में किया है—

वायो तव प्रपृञ्चती धेना जिगाति दाशुषे। उरूची सोमपीतये ॥३॥

पदार्थ—(**वायो**) हे वेद विद्या के प्रकाश करने वाले परमेश्वर ! (**तव**) आपकी (**प्रपृञ्चती**) सब विद्याओ के सम्बन्ध से विज्ञान का प्रकाश कराने, और (**उरूची**) अनेक विद्याओं के प्रयोजनो का प्राप्त कराने वाली (**धेना**) चार वेदों की वाणी है, सो (**सोमपीतये**) जानने योग्य संसारी पदार्थों के निरन्तर विचार करने, तथा (**दाशुषे**) निष्कपटता से प्रीति के साथ विद्या देने वाले पुरुषार्थी विद्वान् को (**जिगाति**) प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

भावार्थ—यहाँ भी श्लेषालङ्कार है। दूसरे मन्त्र मे जिस वेदवाणी से परमेश्वर और भौतिक वायु के गुण प्रकाश किये हैं, उस का फल और प्राप्ति इस मन्त्र मे प्रकाशित की है। अर्थात् प्रथम अर्थ से वेद विद्या और दूसरे से जीवो की वाणी का फल और उसकी प्राप्ति का निमित्त प्रकाश किया है ॥ ३ ॥

अब जो स्तोत्रो से प्रकाशित पदार्थ हैं, उनकी वृद्धि और रक्षा के
निमित्त का अगले मन्त्र मे उपदेश किया है—

इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम्। इन्दवो वामुशन्ति हि ॥४॥

पदार्थ—(**इमे सुताः**) जैसे प्रत्यक्ष जलक्रियामय यज्ञ और प्राप्त होने योग्य भोग (**इन्द्रवायू**) सूर्य और पवन के योग से प्रकाशित होते है। (**इन्दवः**) यहाँ 'इन्द्र' शब्द के लिए ऋग्वेद के मन्त्र का प्रमाण दिखलाते हैं -(**इन्द्रेण०**) सूर्यलोक ने अपनी प्रकाशमान किरण तथा पृथिवी आदि लोक अपने आकर्षण अर्थात् पदार्थ खेंचने के सामर्थ्य से पुष्टता के साथ स्थिर करके धारण किये है कि जिससे वे 'न परापतेत्' अपने अपने भ्रमणचक्र अर्थात् घूमने के मार्ग को छोड़कर इधर-उधर हटके नही जा सकते हैं ॥ ४ ॥

(**इमे चिदिन्द्र०**) सूर्यलोक भूमि आदि लोको को प्रकाश के धारण करने के हेतु से उनका रोकने वाला है, अर्थात् वह अपनी खैंचने की शक्ति से पृथिवी के किनारे और मेघ के जल के स्रोत को रोक रहा है। जैसे आकाश के बीच मे फेंका हुआ मिट्टी का ढेला पृथिवी की आकर्षण शक्ति से पृथिवी ही पर लौटकर आ पड़ता है, इसी प्रकार दूर भी ठहरे हुए पृथिवी आदि लोको को सूर्य ही ने आकर्षण शक्ति की खैंच से धारण कर रखा है। इससे यही सूर्य बड़ा भारी आकर्षण प्रकाश और वर्षा का निमित्त है। (**इन्द्र.०**) यही सूर्य भूमि आदि लोकों मे ठहरे हुए रस और मेघ को भेदन करनेवाला है। भौतिक वायु के विषय मे 'वायवा याहि०'' इस मन्त्र की व्याख्या मे जो प्रमाण कहे हैं, वे यहाँ भी जानने चाहिएँ।

अथवा जिस प्रकार सूर्य और पवन संसार के पदार्थों को प्राप्त होते हैं, वैसे उनके साथ इन निमित्तों के द्वारा सब प्राणी अन्न आदि तृप्ति करनेवाले पदार्थों के सुखो की कामना कर रहे हैं। (**इन्दवः**) जो जलक्रियामय यज्ञ और प्राप्त होने योग्य भोग हैं, वे (**हि**) जिस कारण से पूर्वोक्त सूर्य और पवन के संयोग से (**उशन्ति**) प्रकाशित होते हैं, इसी कारण (**प्रयोभिः**) अन्नादि पदार्थों के योग से सब प्राणियों को सुख प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में परमेश्वर ने प्राप्त होने योग्य और प्राप्त कराने वाले इन दो पदार्थों का प्रकाश किया है ॥ ४ ॥

अब पूर्वोक्त सूर्य और पवन जिन्हें ईश्वर ने धारण किया है वे किस-किस कर्म की सिद्धि के निमित्त रचे गये हैं, इस विषय का अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

वायविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसू। तावा यातमुप द्रवत् ॥५॥

पदार्थ—हे (**वायो**) ज्ञानस्वरूप ईश्वर ! आपके धारण किये हुए (**वाजिनीवसू**) प्रातःकाल के तुल्य प्रकाशमान (**इन्द्रश्च**) पूर्वोक्त सूर्यलोक और वायु (**सुतानाम्**) आपके उत्पन्न किये हुए पदार्थों का (**चेतथः**) धारण और प्रकाश करके उन को जीवो के दृष्टिगोचर करते हैं, इसी कारण वे (**द्रवत्**) शीघ्रता से (**आयातमुप**) उन पदार्थों के समीप होते रहते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे परमेश्वर की सत्ता के अवलम्ब से उक्त इन्द्र और वायु अपने-अपने कार्य्य करने को समर्थ होते है, यह वर्णन किया है ॥ ५ ॥

यह तीसरा वर्ग समाप्त हुआ।

पूर्वोक्त इन्द्र और वायु के शरीर के भीतर और बाहरले कार्य्यों का
अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम्। मक्ष्वि१त्था धिया नरा ॥६॥

पदार्थ—(**वायो**) हे सब के अन्तर्यामी ईश्वर ! जैसे आपके धारण किये हुए (**नरा**) संसार के सब पदार्थों को प्राप्त करानेवाले (**इन्द्रश्च**) अन्तरिक्ष में स्थित सूर्य का प्रकाश और पवन हैं, वैसे (**मक्षु**) शीघ्र गमन से (**इत्था**) धारण, पालन, वृद्धि और क्षय हेतु से सोम आदि सब ओषधियो के रस को (**सुन्वतः**) उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार (**नरा**) शरीर मे रहने वाले जीव और प्राणवायु उस शरीर में सब धातुओ के रस को उत्पन्न करके (**इत्था**) धारण, पालन, वृद्धि और क्षय हेतु से (**मक्षु**) सब अङ्गों को शीघ्र प्राप्त होकर (**धिया**) धारण करने वाली बुद्धि और कर्मों से (**निष्कृतम्**) कर्मों के फलों को (**आयातमुप**) प्राप्त होते है ॥ ६ ॥

भावार्थ—ब्रह्माण्डस्थ सूर्य्य और वायु सब संसारी पदार्थों को बाहर से तथा जीव और प्राण शरीर के भीतर के अङ्ग आदि सबको प्रकाश देने और पुष्ट करने वाले हैं, परन्तु ईश्वर के आधार की अपेक्षा सब स्थानो मे रहती है ॥ ६ ॥

ईश्वर पूर्वोक्त सूर्य्य और वायु को दूसरे नाम से अगले मन्त्र मे स्पष्ट करता है—

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्। धियं घृताचीं साधन्ता ॥७॥

पदार्थ—मैं विद्या का चाहने (**पूतदक्षम्**) पवित्र बल, सब सुखो के देने वा (**मित्रम्**) ब्रह्माण्ड और शरीर मे रहने वाले सूर्य तथा (**रिशादसम्**) रोग और शत्रुओं के नाश करने वा (**वरुणं च**) शरीर के बाहर और भीतर रहने वाले प्राण और अपानरूप वायु को (**हुवे**) प्राप्त होऊँ, अर्थात् बाहर और भीतर के पदार्थ जिस-जिस विद्या के लिए रचे गये है, उन सब का उस-उस के लिए उपयोग करूँ ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे लुप्तोपमालङ्कार है। जैसे समुद्र आदि जलस्थलो से सूर्य के आकर्षण से वायु द्वारा जल आकाश मे उड़कर वर्षा होने से सब की वृद्धि और रक्षा होती है, वैसे ही प्राण और अपान आदि ही से शरीर की रक्षा और वृद्धि होती है। इसलिए मनुष्यो को प्राण, अपान आदि वायु के निमित्त से व्यवहार विद्या की सिद्धि करके सब के साथ उपकार करना उचित है ॥ ७ ॥

किस हेतु से ये दोनों सामर्थ्य वाले हैं, यह विद्या अगले मन्त्र में कही है—

ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा। क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥८॥

पदार्थ—(**ऋतेन**) सत्यस्वरूप ब्रह्म के नियम मे बँधे हुए (**ऋतावृधौ**) ब्रह्मज्ञान बढ़ाने, जल के खींचने और वर्षाने (**ऋतस्पृशा**) ब्रह्म की प्राप्ति कराने के निमित्त तथा उचित समय पर जलवृष्टि के करने वाले (**मित्रावरुणौ**) पूर्वोक्त मित्र और वरुण (**बृहन्तम्**) अनेक प्रकार के (**क्रतुम्**) जगत्‌रूप यज्ञ को (**आशाथे**) व्याप्त होते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—परमेश्वर के आश्रय से उक्त मित्र और वरुण ब्रह्मज्ञान के निमित्त, जल वर्षाने वाले सब मूर्त्तिमान् वा अमूर्त्तिमान् जगत् को व्याप्त होकर उस की वृद्धि विनाश और व्यवहारो की सिद्धि करने मे हेतु होते हैं ॥ ८ ॥

वे हमारे लिए किन किन पदार्थों के धारण करने वाले हैं, इस बात का
प्रकाश अगले मन्त्र में किया है—

कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया। दक्षं दधाते अपसम् ॥९॥

पदार्थ—(**तुविजातौ**) जो बहुत कारणों से उत्पन्न और बहुतो मे प्रसिद्ध (**उरुक्षया**) संसार के बहुत-से पदार्थों मे रहने वाले (**कवी**) दर्शनादि व्यवहार के हेतु (**मित्रावरुणा**) पूर्वोक्त मित्र और वरुण हैं, वे (**नः**) हमारे (**दक्षम्**) बल तथा [**अपसम्**] सुख वा दुःखयुक्त कर्मों को (**दधाते**) धारण करते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो ब्रह्माण्ड मे रहने वाले बल और कर्म के निमित्त पूर्वोक्त मित्र और वरुण हैं उन से क्रिया और विद्याओ की पुष्टि तथा धारणा होती है ॥ ९ ॥

यह दूसरा सूक्त और चौथा वर्ग समाप्त हुआ।

卐

अथास्य द्वादशर्चस्य तृतीयसूक्तस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । १-३ अश्विनौ; ४-६ इन्द्रः; ७-६ विश्वेदेवाः; १०-१२ सरस्वती देवता । १, ३, ५-१०, १२ गायत्री; २ निचृद्गायत्री, ४, ११ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब तृतीय सूक्त का प्रारम्भ करते हैं । इसके आदि के मन्त्र मे अग्नि और जल अश्वि नाम से लिया है—

अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती । पुरुभुजा चनस्यतम् ॥१॥

पदार्थ—हे विद्या के चाहने वाले मनुष्यो ! तुम लोग (**द्रवत्पाणी**) शीघ्र वेग का निमित्त पदार्थ विद्या के व्यवहार सिद्धि करने मे उत्तम हेतु (**शुभस्पती**) शुभ गुणो के प्रकाश को पालने और (**पुरुभुजा**) अनेक खाने पीने के पदार्थो के देने में उत्तम हेतु (**अश्विना**) अर्थात् जल और अग्नि तथा (**यज्वरी**) शिल्प विद्या का सम्बन्ध कराने वाली (**इषः**) अपनी चाही हुई अन्न आदि पदार्थों की देने वाली कारीगरी की क्रियाओ को (**चनस्यतम्**) अन्न के समान अति प्रीति से सेवन किया करो ॥ १ ॥

अब 'अश्विनी' शब्द के विषय मे निरुक्त आदि के प्रमाण दिखलाते हैं— हम लोग अच्छी-अच्छी सवारियो को सिद्ध करने के लिए (**अश्विना**) पूर्वोक्त जल और अग्नि को जिनके गुणो से अनेक सवारियों की सिद्धि होती है, तथा(**देवौ**) जो कि शिल्प विद्या में अच्छे-अच्छे गुणो के प्रकाशक और सूर्य के प्रकाश से अन्तरिक्ष मे विमान आदि सवारियों से मनुष्यो को पहुँचाने वाले होते है, (**ता**) उन दोनो को शिल्प विद्या की सिद्धि के लिए ग्रहण करते है । मनुष्य जहाँ-जहाँ साधे हुए अग्नि और जल के सम्बन्ध युक्त रथो से जाते हैं, वहाँ सोमविद्या वाले विद्वानो का विद्या प्रकाश निकट ही है ।

(**अथा०**) इस निरुक्त मे जो कि द्युस्थान शब्द है, उस से प्रकाश मे रहनेवाले और प्रकाश मे युक्त सूर्य, अग्नि, जल और पृथिवी आदि पदार्थ ग्रहण किये जाते है । उन पदार्थों मे दो-दो के योग को 'अश्वि' कहते है, वे सब पदार्थों मे प्राप्त होने वाले है, उन में से यहाँ अश्वि शब्द करके अग्नि और जल का ग्रहण करना ठीक है, क्योकि जल अपने वेगादि गुण और रस से तथा अग्नि अपने प्रकाश और वेगादि अश्वो से सब जगत् को व्याप्त होता है । इसी से अग्नि और जल का अश्वि नाम है । इसी प्रकार अपने अपने गुणो से पृथिवी आदि भी दो-दो पदार्थ मिलकर अश्वि कहाते है ।

जबकि पूर्वोक्त अश्वि धारण और हनन करने के लिए शिल्प विद्या के व्यवहारो अर्थात् कारीगरियो के निमित्त विमान आदि सवारियो मे जोड़े जाते है, तब सब कलाओं के साथ उन सवारियो के धारण करने वाले, तथा जब उक्त कलाओ से ताड़ित अर्थात् चलाये जाते हैं, तब अपने चलने से उन सवारियो को चलाने वाले होते हैं, उन अश्वियों को 'तुर्फरी' भी कहते है, क्योकि तुर्फरी शब्द के अर्थ से वे सवारियो मे वेगादि गुणो के देने वाले समझे जाते है । इस प्रकार वे अश्वि कलाघरो मे संयुक्त किये हुए जल से परिपूर्ण देखने योग्य महासागर हैं । उन मे अच्छी प्रकार जाने-आने वाली नौका अर्थात् जहाज आदि सवारियो में जो मनुष्य स्थित होते हैं, उन के आने-जाने के लिए होते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे ईश्वर ने शिल्पविद्या को सिद्ध करने का उपदेश किया है, जिससे मनुष्य कलायुक्त सवारियो को बनाकर ससार मे अपने तथा अन्य लोगो के उपकार से सब सुख पावें ॥ १ ॥

फिर वे अश्वि किस प्रकार के हैं, सो उपदेश अगले मन्त्रों मे किया है—

अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया । धिष्ण्या वनतं गिरः ॥२॥

पदार्थ— हे विद्वानो ! तुम लोग (**पुरुदंससा**) जिनसे शिल्पविद्या के लिए अनेक कर्म सिद्ध होते हैं (**धिष्ण्या**) जो सवारियो मे वेगादिको की तीव्रता के उत्पन्न करने में प्रबल (**नरा**) उस विद्या के फल का देनेवाले और (**शवीरया**) वेग देनेवाली (**धिया**) क्रिया से कारीगरी मे युक्त करने योग्य अग्नि और जल हैं, वे (**गिरः**) शिल्पविद्या के गुणो की बतानेवाली वाणियो को (**वनतम्**) सेवन करनेवाले हैं इसलिए इनसे अच्छी प्रकार उपकार लेते रहो ॥ २ ॥

भावार्थ— यहाँ भी अग्नि और जल के गुणो को प्रत्यक्ष दिखाने के लिए मध्यम पुरुष का प्रयोग है । इस से सब कारीगरों को चाहिए कि तीव्र वेग देनेवाली कारीगरी और अपने पुरुषार्थ से शिल्पविद्या की सिद्धि के लिए उक्त अश्वियो की अच्छी प्रकार से योजना करें । जो शिल्पविद्या को सिद्ध करने की इच्छा करते है, उन पुरुषो को चाहिए कि विद्या और हस्तक्रिया से उक्त अश्वियो को प्रसिद्ध करके उनसे उपयोग लेवें ॥ २ ॥

दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः । आ यातं रुद्रवर्तनी ॥३॥

पदार्थ—हे (**युवाकवः**) एक दूसरी से मिली वा पृथक् क्रियाओ को सिद्ध करने (**सुताः**) पदार्थविद्या के सार को सिद्ध करने, प्रकट करने (**वृक्तबर्हिषः**) उसके फल को दिखलानेवाले विद्वान् लोगो ! (**रुद्रवर्तनी**) जिनका प्राणमार्ग है, वे (**दस्रा**) दु.खो के नाश करनेवाले (**नासत्या**) जिनमे एक भी गुण मिथ्या नहीं (**आयातम्**) जो अनेक प्रकार के व्यवहारो को प्राप्त करानेवाले है, उन पूर्वोक्त अश्वियो को जब विद्या से उपकार में ले आओगे उस समय तुम उत्तम सुखो को प्राप्त होओगे ॥ ३ ॥

भावार्थ—परमेश्वर मनुष्यो को उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम को सब सुखों की सिद्धि से दु.खो के विनाश के लिए शिल्पविद्या मे अग्नि और जल का यथावत् उपयोग करना चाहिए ॥ ३ ॥

परमेश्वर ने अगले मन्त्र मे इन्द्र शब्द से अपना और सूर्य्य का उपदेश किया है—

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ॥४॥

पदार्थ—(**चित्रभानो**) हे आश्चर्य्यप्रकाशयुक्त (**इन्द्र**) परमेश्वर ! आप हमको कृपा करके प्राप्त हूजिए । कैसे आप हैं कि जिन्होंने (**अण्वीभिः**) कारणों के भागो से (**तना**) सब संसार मे विस्तृत (**पूतासः**) पवित्र और (**त्वायवः**) आपके उत्पन्न किये हुए व्यवहारों से युक्त (**सुताः**) उत्पन्न हुए मूर्तिमान् पदार्थ उत्पन्न किये हैं, हम लोग जिनसे उपकार लेनेवाले होते हैं, इससे हम लोग आप ही के शरणागत हैं ।

दूसरा अर्थ— जो सूर्य्य अपने गुणों से सब पदार्थों को प्राप्त होता है, वह (**अण्वीभिः**) अपनी किरणों से (**तना**) संसार में विस्तृत (**त्वायवः**) उसके निमित्त से जीनेवाले (**पूतासः**) पवित्र (**सुताः**) ससार के पदार्थ हैं, वही इन उन को प्रकाशयुक्त करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—यहाँ श्लेषालङ्कार समझना । जो-जो इस मन्त्र में परमेश्वर और सूर्य्य के गुण और कर्म प्रकाशित किये गये हैं, इनसे परमार्थ और व्यवहार की सिद्धि के लिए अच्छी प्रकार उपयोग लेना सब मनुष्यों को योग्य है ॥ ४ ॥

ईश्वर ने अगले मन्त्र में अपना प्रकाश किया है—

इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥५॥

पदार्थ— (**इन्द्र**) हे परमेश्वर ! (**धिया**) निरन्तर ज्ञानयुक्त बुद्धि वा उत्तम कर्म से (**इषितः**) प्राप्त होने और (**विप्रजूतः**) बुद्धिमान् विद्वान् लोगों के जानने योग्य आप (**ब्रह्माणि**) ब्राह्मण अर्थात् जिन्होंने वेदों का अर्थ और (**सुतावतः**) विद्या के पदार्थ जाने हों, तथा (**वाघतः**) जो यज्ञविद्या के अनुष्ठान से सुख उत्पन्न करनेवाले हों, इन सभो को कृपा से (**उपायाहि**) प्राप्त हूजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यो को उचित है कि जो सब कार्य्यजगत् की उत्पत्ति करने मे आदिकारण परमेश्वर है, उसको शुद्ध बुद्धि विज्ञान से साक्षात् करना चाहिए ॥ ५ ॥

ईश्वर ने अगले मन्त्र में भौतिक वायु का उपदेश किया है—

इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥६॥

पदार्थ—(**हरिवः**) जो वेगादिगुणयुक्त (**तूतुजानः**) शीघ्र चलनेवाला (**इन्द्र**) भौतिक वायु है, वह (**सुते**) प्रत्यक्ष उत्पन्न वाणी के व्यवहार में (**नः**) हमारे लिए (**ब्रह्माणि**) वेद के स्तोत्रो को (**आयाहि**) अच्छी प्रकार प्राप्त करता है, तथा वह (**नः**) हम लोगो के (**चनः**) अन्नादि व्यवहार को (**दधिष्व**) धारण करता है ॥ ६ ॥

भावार्थ— जो शरीरस्थ प्राण है वह सब क्रिया का निमित्त होकर खाना, पीना, पकाना, ग्रहण करना और त्यागना आदि क्रियाओं से कर्म का करना तथा शरीर मे रुधिर आदि धातुओ के विभागो को जगह-जगह मे पहुँचानेवाला है, क्योंकि वही शरीर आदि की पुष्टि और नाश का हेतु है ॥ ६ ॥

यह पाँचवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ईश्वर ने अगले मन्त्रों मे विद्वानों के लक्षण और आचरणों का प्रकाश किया है—

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत । दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ॥७॥

पदार्थ— (**ओमासः**) जो अपने गुणो से संसार के जीवों की रक्षा करने, ज्ञान से परिपूर्ण, विद्या और उपदेश मे प्रीति रखने, विज्ञान से तृप्त, यथार्थ निश्चययुक्त, शुभ गुणों को देने और सब विद्याओ को सुनाने, परमेश्वर के जानने के लिए पुरुषार्थी, श्रेष्ठ विद्या के गुणो की इच्छा से दुष्ट गुणों के नाश करने, अत्यन्त ज्ञानवान् (**चर्षणीधृतः**) सत्य उपदेश से मनुष्यो के सुख के धारण करने और कराने (**दाश्वांसः**) अपने शुभ गुणो से सब को निर्भय करनेहारे (**विश्वेदेवासः**) सब विद्वान् लोग हैं, वे (**दाशुषः**) सज्जन मनुष्यो के सामने (**सुतम्**) सोम आदि पदार्थ और विज्ञान का प्रकाश (**आ गत**) नित्य करते रहें ॥ ७ ॥

भावार्थ— ईश्वर विद्वानो को आज्ञा देता है कि — तुम लोग एक जगह पाठशाला मे अथवा इधर-उधर देशदेशान्तरो मे भ्रमते हुए अज्ञानी पुरुषो को विद्यारूपी ज्ञान देके विद्वान् किया करो, जिससे सब मनुष्य विद्या धर्म और श्रेष्ठ शिक्षा युक्त होके अच्छे-अच्छे कर्मों से युक्त होकर सदा सुखी रहें ॥ ७ ॥

विश्वे देवासो अप्तुरः सुतमा गन्त तूर्णयः । उस्रा इव स्वसराणि ॥८॥

पदार्थ— हे (**अप्तुरः**) मनुष्यो को शरीर और विद्या आदि का बल देने और (**तूर्णयः**) उस विद्या आदि के प्रकाश करने मे शीघ्रता करनेवाले (**विश्वे देवासः**) सब विद्वान् लोगो ! जैसे (**स्वसराणि**) दिनो को प्रकाश करने के लिए (**उस्रा इव**) सूर्य्य की किरण आती-जाती हैं, वैसे ही तुम भी मनुष्यो के समीप (**सुतम्**) कर्म, उपासना और ज्ञान को प्रकाश करने के लिए (**आगन्त**) नित्य आया-जाया करो ॥ ८ ॥

भावार्थ— इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । ईश्वर ने जो आज्ञा दी है इसको सब विद्वान् निश्चय करके जान लेवें कि विद्या आदि शुभ गुणो के प्रकाश करने मे किसी को कभी थोड़ा भी विलम्ब वा आलस्य करना योग्य नहीं है । जैसे दिन की निकासी में सूर्य्य सब मूर्तिमान् पदार्थों का प्रकाश करता है, वैसे ही विद्वान् लोगो को भी विद्या के विषयों का प्रकाश सदा करना चाहिए ॥ ८ ॥

विद्वान् लोग कैसे स्वभाववाले होकर कैसे कर्मों को सेवें, इस विषय को ईश्वर ने अगले मन्त्र में दिखाया है—

विश्वे देवासो अस्रिध एहिमायासो अद्रुहः । मेधं जुषन्त वह्नयः ॥९॥

पदार्थ—(**एहिमायासः**) हे क्रिया में बुद्धि रखनेवाले (**अस्रिधः**) दृढ़ ज्ञान से परिपूर्ण (**अद्रुहः**) द्रोहरहित (**वह्नयः**) संसार को सुख पहुँचानेवाले (**विश्वे**) सब (**देवासः**) विद्वान् लोगो ! तुम (**मेधम्**) ज्ञान और क्रिया से सिद्ध करने योग्य यज्ञ को प्रीतिपूर्वक यथावत् सेवन किया करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—ईश्वर आज्ञा देता है कि—हे विद्वान् लोगो ! तुम दूसरे के विनाश और द्रोह से रहित तथा अच्छी विद्या से क्रियावाले होकर सब मनुष्यों को सदा विद्या से सुख देते रहो ॥ ९ ॥

विद्वानों को किस प्रकार की वाणी की इच्छा करनी चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में ईश्वर ने कहा है—

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥१०॥

पदार्थ—(वाजेभिः) जो सब विद्या की प्राप्ति के निमित्त अन्न आदि पदार्थ हैं, और जो उनके साथ (वाजिनीवती) विद्या से सिद्ध की हुई क्रियाओं से युक्त (धियावसुः) शुद्ध कर्म के साथ वास देने और (पावका) पवित्र करनेवाले व्यवहारों को चितानेवाली (सरस्वती) जिसमें प्रशंसा योग्य ज्ञान आदि गुण हों ऐसी उत्तम सब विद्याओं की देनेवाली वाणी है, वह हम लोगों के (यज्ञम्) शिल्पविद्या के महिमा और कर्मरूप यज्ञ को (वष्टु) प्रकाश करनेवाली हो ॥ १० ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिए कि वे ईश्वर की प्रार्थना और अपने पुरुषार्थ से सत्य विद्या और सत्य वचनयुक्त कामों में कुशल और सब के उपकार करनेवाली वाणी को प्राप्त रहें, यह ईश्वर का उपदेश है ॥ १० ॥

ईश्वर ने वह वाणी किस प्रकार की है, इस बात का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् । यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ११ ॥

पदार्थ—(सूनृतानाम्) जो मिथ्या वचन के नाश करने, सत्य वचन और सत्य कर्म को सदा सेवन करने (सुमतीनाम्) अत्यन्त उत्तम बुद्धि और विद्यावाले विद्वानों की (चेतन्ती) समझने तथा (चोदयित्री) शुभ गुणों को ग्रहण करानेहारी (सरस्वती) वाणी है, वही सब मनुष्यों के शुभ गुणों के प्रकाश करानेवाले यज्ञ आदि कर्म धारण करनेवाली होती है ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो आप्त अर्थात् पूर्ण विद्यायुक्त और छल आदि दोषरहित विद्वान् मनुष्यों की सत्य उपदेश करानेवाली यथार्थ वाणी है, वही सब मनुष्यों के सत्य ज्ञान होने के लिए योग्य होती है, अविद्वानों की नहीं ॥ ११ ॥

महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना । धियो विश्वा वि राजति ॥१२॥

पदार्थ—जो (सरस्वती) वाणी (केतुना) शुभ कर्म अथवा श्रेष्ठ बुद्धि से (महः) अगाध (अर्णः) शब्दरूपी समुद्र को (प्रचेतयति) जनानेवाली है, वही मनुष्यों की (विश्वा०) सब बुद्धियों को विशेष करके प्रकाश करती है ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकोपमेयलुप्तोपमालङ्कार दिखलाया है । जैसे वायु से तरङ्गयुक्त और सूर्य्य से प्रकाशित समुद्र अपने रत्न और तरङ्गों से युक्त होने के कारण बहुत उत्तम व्यवहार और रत्नादि की प्राप्ति में बड़ा भारी माना जाता है, वैसे ही जो आकाश और वेद का अनेक विद्यादि गुणवाला शब्दरूपी महासागर उस को प्रकाश करानेवाली वेदवाणी और विद्वानों का उपदेश है, वही साधारण मनुष्यों की यथार्थ बुद्धि का बढ़ानेवाला होता है ॥ १२ ॥

और जो दूसरे सूक्त की विद्या का प्रकाश करके क्रियाओं का हेतु अश्विशब्द का अर्थ और उसके सिद्ध करनेवाले विद्वानों का लक्षण तथा विद्वान् होने का हेतु सरस्वती शब्द से सब विद्याप्राप्ति का निमित्त वाणी के प्रकाश करने से जान लेना चाहिए कि दूसरे सूक्त के अर्थ के साथ तीसरे सूक्त के अर्थ की सङ्गति है ।

[यह] प्रथम अनुवाक, तीसरा सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथास्य दशर्चस्य चतुर्थसूक्तस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, २, ४-९ गायत्री; ३ विराड्गायत्री; १० निचृद्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब चौथे सूक्त का आरम्भ करते हैं । ईश्वर ने इस सूक्त के पहले मन्त्र में उक्त विद्या के पूर्ण करनेवाले साधन का प्रकाश किया है—

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

पदार्थ—जैसे दूध की इच्छा करनेवाला मनुष्य दूध दोहने के लिए सुलभ दुहानेवाली गौओं को दोहके अपनी कामनाओं को पूर्ण कर लेता है, वैसे हम लोग (द्यविद्यवि) सब दिन अपने निकट स्थित मनुष्यों को (ऊतये) विद्या की प्राप्ति के लिए (सुरूपकृत्नुम्) परमेश्वर जो कि अपने प्रकाश से सब पदार्थों को उत्तम रूपयुक्त करनेवाला है उसकी (जुहूमसि) स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे मनुष्य गाय के दूध को प्राप्त होके अपने प्रयोजन को सिद्ध करते हैं, वैसे ही विद्वान् धार्मिक पुरुष भी परमेश्वर की उपासना से श्रेष्ठ विद्या आदि गुणों को प्राप्त होकर अपने-अपने कार्य्यों को पूर्ण करते हैं ॥ १ ॥

अगले मन्त्र में ईश्वर ने इन्द्र शब्द से सूर्य्य के गुणों का वर्णन किया है—

उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद्रेवतो मदः ॥२॥

पदार्थ—(सोमपाः) जो सब पदार्थों का रक्षक और (गोदाः) नेत्र के व्यवहार को देनेवाला सूर्य्य अपने प्रकाश से (सोमस्य) उत्पन्न हुए कार्य्यरूप जगत् के (सवना) ऐश्वर्य्ययुक्त पदार्थों के प्रकाश करने को अपनी किरण द्वारा सम्मुख (आगहि) आता है, इसी से यह (नः) हम लोगों तथा (रेवतः) पुरुषार्थ से अच्छे-अच्छे पदार्थों को प्राप्त होनेवाले पुरुषों को (मदः) आनन्द बढ़ाता है ॥ २ ॥

भावार्थ—जिस प्रकार सब जीव सूर्य्य के प्रकाश में अपने अपने कर्म करने को प्रवृत्त होते हैं, उस प्रकार रात्रि में सुख से नहीं हो सकते ॥ २ ॥

जिसने सूर्य्य को बनाया है, उस परमेश्वर ने अपने जानने का उपाय अगले मन्त्र में बताया है—

अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ॥३॥

पदार्थ—हे परम ऐश्वर्य्ययुक्त परमेश्वर ! (ते) आपके (अन्तमानाम्) निकट अर्थात् आपको जानकर आपके समीप तथा आपकी आज्ञा में रहनेवाले विद्वान् लोग, जिनकी (सुमतीनाम्) वेदादिशास्त्र परोपकाररूपी धर्म करने में श्रेष्ठ बुद्धि हो रही है, उनके समागम से हम लोग (विद्याम) आपको जान सकते हैं, और आप (नः) हमको (आगहि) प्राप्त अर्थात् हमारे आत्माओं में प्रकाशित हूजिए, और (अथ) इसके अनन्तर कृपा करके अन्तर्यामिरूप से हमारे आत्माओं में स्थित हुए (मातिख्यः) सत्य उपदेश को मत रोकिए, किन्तु उसकी प्रेरणा सदा किया कीजिए ॥ ३ ॥

भावार्थ - जब मनुष्य इन धार्मिक श्रेष्ठ विद्वानों के समागम से शिक्षा और विद्या को प्राप्त होते हैं, तभी पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्य्यन्त पदार्थों के ज्ञान द्वारा नाना प्रकार से सुखी होके फिर वे अन्तर्यामी ईश्वर के उपदेश को छोड़कर कभी इधर-उधर नहीं भ्रमते ॥ ३ ॥

मनुष्य विद्वानों के समीप जाकर क्या करें और वे इनके साथ कैसे वर्तें, इस विषय का उपदेश ईश्वर ने अगले मन्त्र में किया है—

परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् । यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥४॥

पदार्थ—हे विद्या की अपेक्षा करनेवाले मनुष्यो ! जो विद्वान् तुझ और (ते) तेरे (सखिभ्यः) मित्रों के लिए (आवरम्) श्रेष्ठ विज्ञान को देता हो, उस (विग्रम्) श्रेष्ठ बुद्धिमान् (अस्तृतम्) हिंसा आदि अधर्मरहित (इन्द्रम्) विद्या, परमैश्वर्य्ययुक्त (विपश्चितम्) यथार्थ सत्य कहनेवाले मनुष्य के समीप जाकर उस विद्वान् से (पृच्छ) अपने सन्देह पूछ, और फिर उनके कहे यथार्थ उत्तरों को ग्रहण करके औरों के लिए तू भी उपदेश कर, परन्तु जो मनुष्य अविद्वान् अर्थात् मूर्ख, ईर्ष्या करने वा कपट और स्वार्थ में संयुक्त हो उससे तू (परेहि) सदा दूर रह ॥ ४ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को यही योग्य है कि प्रथम सत्य का उपदेश करनेहारे, वेद पढ़े हुए और परमेश्वर की उपासना करनेवाले विद्वानों को प्राप्त होकर अच्छी प्रकार उनके साथ प्रश्नोत्तर की रीति से अपनी सब शङ्का निवृत्त करें, किन्तु विद्याहीन मूर्ख मनुष्य का सङ्ग वा उनके दिए हुए उत्तरों में विश्वास कभी न करें ॥ ४ ॥

ईश्वर ने फिर इसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत । दधाना इन्द्र इद्दुवः ॥ ५ ॥

पदार्थ - जो परमेश्वर की (दुवः) सेवा को धारण किये हुए, सब विद्या, धर्म और पुरुषार्थ में वर्तमान हैं, वे ही (नः) हम लोगों के लिए, सब विद्याओं का उपदेश करें, और जो (चित्) नास्तिक (निदः) निन्दक वा धूर्त मनुष्य हैं, वे सब हम लोगों के निवास स्थान से (निरारत) दूर चले जावें, किन्तु (उत) निश्चय करके और देशों से भी दूर हो जाएँ अर्थात् अधर्मी पुरुष किसी देश में न रहें ॥ ५ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को उचित है कि आप्त धार्मिक विद्वानों का सङ्ग कर और मूर्खों के सङ्ग को सर्वथा छोड़के ऐसा पुरुषार्थ करना चाहिए कि जिससे सर्वत्र विद्या की वृद्धि, अविद्या की हानि, मानने योग्य श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार, दुष्टों को दण्ड, ईश्वर की उपासना आदि शुभ कर्मों की वृद्धि और अशुभ कर्मों का विनाश नित्य होता रहे ॥ ५ ॥

यह सातवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

अब मनुष्यों को कैसा स्वभाव धारण करना चाहिए, इस विषय का उपदेश ईश्वर ने अगले मन्त्र में किया है—

उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः । स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥६॥

पदार्थ—हे (दस्म) दुष्टों को दण्ड देने वाले परमेश्वर ! हम लोग (इन्द्रस्य) आप के दिये हुए (शर्मणि) नित्य सुख वा आज्ञा पालने में (स्याम) प्रवृत्त हों, और ये (कृष्टयः) सब मनुष्य प्रीति के साथ मनुष्यों के लिए सब विद्याओं को (वोचेयुः) उपदेश से प्राप्त करें, जिससे सत्य के उपदेश को प्राप्त हुए (नः) हम लोगों को (अरिः, उत) शत्रु भी (सुभगान्) श्रेष्ठ विद्या ऐश्वर्ययुक्त जानें वा कहें ॥ ६ ॥

भावार्थ—जब सब मनुष्य विरोध को छोड़कर सब के उपकार करने में प्रयत्न करते हैं, तब शत्रु भी मित्र हो जाते हैं, जिससे सब मनुष्यों को ईश्वर की कृपा से निरन्तर उत्तम आनन्द प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

परमेश्वर प्रार्थना करने योग्य क्यों है, यह विषय अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—

एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् । पतयन्मन्दयत्सखम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे इन्द्र परमेश्वर ! आप अपनी कृपा करके हम लोगों के अर्थ (आशवे) यानों में सब सुख वा वेगादि गुणों की शीघ्र प्राप्ति के लिए जो (आशुम्) वेग आदि गुणवाले अग्नि वायु आदि पदार्थ (यज्ञश्रियम्) चक्रवर्त्ति राज्य के महिमा की शोभा (ईम्) जल और पृथिवी आदि (नृमादनम्) जो मनुष्यों को अत्यन्त आनन्द देनेवाले तथा (पतयत्) स्वामिपन को करनेवाले वा (मन्दयत्सखम्) जिसमें आनन्द को प्राप्त होने वा विद्या के जनानेवाले मित्र हों ऐसे (भर) विज्ञान आदि धन को हमारे लिए धारण कीजिए ॥

भावार्थ—ईश्वर पुरुषार्थी मनुष्य पर कृपा करता है, आलस करनेवाले पर नहीं, क्योंकि जब तक मनुष्य ठीक-ठीक पुरुषार्थ नहीं करता तब तक ईश्वर की कृपा

और अपने किये हुए कर्मों से प्राप्त हुए पदार्थों की रक्षा भी करने में समर्थ कभी नहीं हो सकता। इसलिए मनुष्यों को पुरुषार्थी होकर ही ईश्वर की कृपा का भागी होना चाहिए ॥ ७ ॥

फिर भी परमेश्वर ने सूर्य्यलोक के स्वभाव का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है —

अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः। प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥८॥

पदार्थ— हे पुरुषोत्तम ! जैसे यह (**घन**) मूर्तिमान् होके सूर्य्यलोक (**अस्य**) जलरस को (**पीत्वा**) पीकर (**वृत्राणाम्**) मेघ के अङ्गरूप जलबिन्दुओं को वर्षाके सब ओषधि आदि पदार्थों को पुष्ट करके सब की रक्षा करता है, वैसे ही हे (**शतक्रतो**) असंख्यात कर्मों के करनेवाले शूरवीरो ! तुम लोग भी सब रोग और धर्म के विरोधी दुष्ट शत्रुओं का नाश करनेहारे होकर (**अस्य**) इस जगत् के रक्षा करनेवाले (**अभवः**) हूजिए। इसी प्रकार जो (**वाजेषु**) दुष्टों के साथ युद्ध में प्रवर्त्तमान धार्मिक और (**वाजिनम्**) शूरवीर पुरुष है, उसकी (**प्राव**) अच्छी प्रकार रक्षा सदा करते रहिए ॥ ८ ॥

भावार्थ— इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जैसे जो मनुष्य दुष्टों के साथ धर्मपूर्वक युद्ध करता है उसी का ही विजय होता है और का नहीं। तथा परमेश्वर भी धर्मपूर्वक युद्ध करनेवाले मनुष्यों का ही सहाय करनेवाला होता है औरों का नहीं ॥ ८ ॥

फिर इन्द्र शब्द से अगले मन्त्र में ईश्वर का प्रकाश किया है —

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो। धनानामिन्द्र सातये ॥९॥

पदार्थ— हे (**शतक्रतो**) असंख्यात वस्तुओं में विज्ञान रखनेवाले (**इन्द्र**) परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर ! हम लोग (**धनानाम्**) पूर्ण विद्या और राज्य को सिद्ध करनेवाले पदार्थों का (**सातये**) सुखभोग वा अच्छे प्रकार सेवन करने के लिए (**वाजेषु**) युद्धादि व्यवहारों में (**वाजिनम्**) विजय करानेवाले और (**तम्**) उक्त गुणयुक्त (**त्वा**) आपको ही (**वाजयामः**) नित्य प्रति जानने और जनाने का प्रयत्न करते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य दुष्टों को युद्ध से निर्बल करता तथा जितेन्द्रिय वा विद्वान् होकर जगदीश्वर की आज्ञा का पालन करता है, वही उत्तम धन वा युद्ध में विजय को अर्थात् सब शत्रुओं को जीतने वाला होता है ॥ ९ ॥

फिर भी वह परमेश्वर कैसा है और क्यों स्तुति करने योग्य है, इस विषय का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है —

यो रायो३वनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा। तस्मा इन्द्राय गायत ॥१०॥

पदार्थ— हे विद्वान् मनुष्यो ! जो बड़ों-से-बड़ा (**सुपार**) अच्छी प्रकार सब कामनाओं की परिपूर्णता करनेहारा (**सुन्वत**) प्राप्त हुए सोमविद्या वाले धर्मात्मा पुरुष को (**सखा**) मित्रता से सुख देने, तथा (**राय**) विद्या सुवर्ण आदि धन का (**अवनिः**) रक्षक और इस संसार में उक्त पदार्थों में जीवों को पहुँचाने और उनका देने वाला करुणामय परमेश्वर है, (**तस्मै**) उस की तुम लोग (**गायत**) नित्य पूजा किया करो ॥ १० ॥

भावार्थ—किसी मनुष्य को केवल परमेश्वर की स्तुति मात्र ही करने से सन्तोष न करना चाहिए किन्तु उस की आज्ञा में रहकर और ऐसा समझकर कि परमेश्वर मुझको सर्वत्र देखता है, इसलिए अधर्म से निवृत्त होकर और परमेश्वर के सहाय की इच्छा करके मनुष्य को सदा उद्योग ही में वर्त्तमान रहना चाहिए ॥ १० ॥

उस तीसरे सूक्त की कही हुई विद्या से, धर्मात्मा पुरुषों को परमेश्वर का ज्ञान सिद्ध करना तथा आत्मा और शरीर के स्थिर भाव, आरोग्य की प्राप्ति तथा दुष्टों के विजय और पुरुषार्थ से चक्रवर्त्ति राज्य को प्राप्त होना, इत्यादि अर्थ द्वारा इस चौथे सूक्त के अर्थ की सङ्गति समझनी चाहिए।

यह चौथा सूक्त और आठवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ दशर्चस्यास्य पञ्चमसूक्तस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। १ विराड्गायत्री, २ आर्च्युष्णिक्, ३ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री, ४, १० गायत्री, ५-७, ९ निचृद्गायत्री, ८ पादनिचृद्गायत्री च छन्दः। १, ३-१० षड्जः; २ ऋषभः स्वरः ॥

पांचवें सूक्त के प्रथम मन्त्र में इन्द्र शब्द से परमेश्वर और स्पर्शगुण वाले वायु का प्रकाश किया है—

आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत। सखायः स्तोमवाहसः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (**स्तोमवाहसः**) प्रशंसनीय गुणयुक्त वा प्रशंसा कराने और (**सखायः**) सब से मित्रभाव में वर्त्तने वाले विद्वान् लोगो ! तुम और हम लोग सब मिलके परस्पर प्रीति के साथ मुक्ति और शिल्प विद्या को सिद्ध करने में (**आनिषीदत**) स्थित हों, अर्थात् उसकी निरन्तर अच्छी प्रकार से यत्नपूर्वक साधना करने के लिए (**इन्द्रम्**) परमेश्वर वा बिजली से जुड़े हुए वायु का (**अभिप्रगायत**) अर्थात् उसके गुणों का उपदेश करें और सुनें कि जिससे वह अच्छी रीति से सिद्ध की हुई विद्या सब को प्रकट हो जावे, (**तु**) और उस से तुम सब लोग सब सुखों को (**एत**) प्राप्त होओ ॥ १ ॥

भावार्थ—जब तक मनुष्य हठ, छल और अभिमान को छोड़कर सत्य प्रीति के साथ परस्पर मित्रता करके परोपकार करने के लिए तन, मन और धन से यत्न नहीं करते, तब तक उन के सुखों और विद्या आदि उत्तम गुणों की उन्नति कभी नहीं हो सकती ॥ १ ॥

फिर भी अगले मन्त्र में उन्हीं दोनों के गुणों का प्रकाश किया है—

पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्य्याणाम्। इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ २ ॥

पदार्थ- हे मित्र विद्वान् लोगो ! (**वार्य्याणाम्**) अत्यन्त उत्तम (**पुरूणाम्**) आकाश से लेके पृथिवी पर्य्यन्त असंख्यात पदार्थों को (**ईशानम्**) रचने में समर्थ (**पुरूतमम्**) दुष्ट स्वभाव वाले जीवों को ग्लानि प्राप्त कराने वाले (**इन्द्रम्**) और श्रेष्ठ जीवों को सब ऐश्वर्य्य के देने वाले परमेश्वर के—तथा (**वार्य्याणाम्**) अत्यन्त उत्तम (**पुरूतमम्**) आकाश से लेके पृथिवी पर्य्यन्त बहुत से पदार्थों की विद्याओं के साधक (**पुरूणाम्**) दुष्ट जीवों वा कर्मों के भोग के निमित्त और (**इन्द्रम्**) जीवमात्र को सुख-दुःख देने वाले पदार्थों के हेतु भौतिक वायु के—गुणों का (**अभिप्रगायत**) अच्छी प्रकार उपदेश करो। और (**तु**) जो कि (**सुते**) रस खींचने की क्रिया से प्राप्त वा (**सोमे**) उस विद्या से प्राप्त होने योग्य (**सचा**) पदार्थों के निमित्त कार्य्य हैं, उनको उक्त विद्याओं से सब के उपकार के लिए यथायोग्य युक्त करो ॥ २ ॥

भावार्थ— इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। पीछे के मन्त्र से इस मन्त्र में 'सखायः; तु, अभिप्रगायत' इन तीन शब्दों को अर्थ के लिए लेना चाहिए। इस मन्त्र में यथायोग्य व्यवस्था करके उन के किये हुए कर्मों का फल देने से ईश्वर तथा इन कर्मों के फल भोग कराने के कारण वा विद्या और सब क्रियाओं के साधक होने से भौतिक अर्थात् संसारी वायु का ग्रहण किया है ॥ २ ॥

वे तुम, हम और सब प्राणियों के लिए क्या करते हैं, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है —

स घा नो योग आ भुवत्स राये स पुरन्ध्याम्। गमद्वाजेभिरा स नः ॥३॥

पदार्थ - (**स**) पूर्वोक्त इन्द्र परमेश्वर और स्पर्शवान् वायु (**नः**) हम लोगों के (**योगे**) सब सुखों के सिद्ध कराने वाले वा पदार्थों को प्राप्त कराने वाले योग तथा (**स**) वे ही (**राये**) उत्तम धन के लाभ के लिए और (**सः**) वे (**पुरन्ध्याम्**) अनेक शास्त्रों की विद्याओं से युक्त बुद्धि में (**आ भुवत्**) प्रकाशित हों। इसी प्रकार (**स**) वे (**वाजेभिः**) उत्तम अन्न और विमान आदि सवारियों के सह वर्त्तमान (**नः**) हम लोगों को (**आगमत्**) उत्तम सुख होने का ज्ञान देता तथा यह वायु भी इस विद्या की सिद्धि में हेतु होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस में भी श्लेषालङ्कार है। ईश्वर पुरुषार्थी मनुष्य का सहायकारी होता है आलसी का नहीं, तथा स्पर्शवान् वायु भी पुरुषार्थ ही से कार्य्यसिद्धि का निमित्त होता है क्योंकि किसी प्राणी को पुरुषार्थ के बिना धन वा बुद्धि का और इनके बिना उत्तम सुख का लाभ कभी नहीं हो सकता। इसलिए सब मनुष्यों को उद्योगी अर्थात् पुरुषार्थी आशावाले अवश्य होना चाहिए ॥ ३ ॥

ईश्वर ने अपने आप और सूर्य्यलोक का गुण सहित चौथे मन्त्र से प्रकाश किया है—

यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः। तस्मा इन्द्राय गायत ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (**यस्य**) जिस परमेश्वर वा सूर्य्य के (**हरी**) पदार्थों को प्राप्त करने वाले बल और पराक्रम तथा प्रकाश और आकर्षण (**संस्थे**) इस संसार में वर्त्तमान हैं, जिन के सहाय से (**समत्सु**) युद्धों में (**शत्रवः**) वैरी लोग (**न वृण्वते**) अच्छी प्रकार बल नहीं कर सकते, (**तस्मै**) उस (**इन्द्राय**) परमेश्वर वा सूर्य्य लोक को उनके गुणों की प्रशंसा कह और सुन के यथावत् जानलो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस में श्लेषालङ्कार है। जब तक मनुष्य लोग परमेश्वर को अपना इष्ट देव समझने वाले और बलवान् अर्थात् पुरुषार्थी नहीं होते, तब तक उनको दुष्ट शत्रुओं की निर्बलता करने का सामर्थ्य भी नहीं होता ॥ ४ ॥

ये संसारी पदार्थ किसलिए उत्पन्न किये गये और कैसे हैं, ये किस से पवित्र किये जाते हैं, इस विषय का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है—

सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये। सोमासो दध्याशिरः ॥५॥

पदार्थ— परमेश्वर ने वा वायु सूर्य से जिस कारण (**सुतपाव्ने**) अपने उत्पन्न किये हुए पदार्थों की रक्षा करने वाले जीव के तथा (**वीतये**) ज्ञान वा भोग के लिए (**दध्याशिर**) जो धारण करने वाले उत्पन्न होते हैं, तथा (**शुचयः**) जो पवित्र (**सोमास**) जिन से अच्छे व्यवहार होते हैं, वे सब पदार्थ जिसने उत्पादन करके पवित्र किये हैं, इसी से सब प्राणी लोग इन को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जब ईश्वर ने सब जीवों पर कृपा करके कर्मों के अनुसार यथायोग्य फल देने के लिए सब कार्य्य रूप जगत् को रचा और पवित्र किया है, तथा पवित्र करने वाले सूर्य्य और पवन को रचा है, उसी हेतु से सब जड़ पदार्थ वा जीव पवित्र होते हैं। परन्तु जो मनुष्य पवित्र गुण-कर्मों के ग्रहण से पुरुषार्थी होकर संसारी पदार्थों से यथावत् उपयोग लेते तथा सब जीवों को उनके उपयोगी कराते हैं, वे ही मनुष्य पवित्र और सुखी होते हैं ॥ ५ ॥

यह नवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ईश्वर ने, जीव क्या करके पूर्वोक्त उपयोग के ग्रहण करने को समर्थ होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः। इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥६॥

पदार्थ— हे (**इन्द्र**) विद्यादि परमैश्वर्य्ययुक्त (**सुक्रतो**) श्रेष्ठ कर्म करने और उत्तम बुद्धि वाले विद्वान् मनुष्य ! (**त्वम्**) तू (**सद्यः**) शीघ्र (**सुतस्य**) संसारी पदार्थों के रस के (**पीतये**) पान वा ग्रहण और (**ज्यैष्ठ्याय**) अत्युत्तम कर्मों के अनुष्ठान करने के लिए (**वृद्धः**) विद्या आदि शुभ गुणों के ज्ञान के ग्रहण और सब के उपकार करने में श्रेष्ठ (**अजायथाः**) हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—ईश्वर जीव के लिए उपदेश करता है कि—हे मनुष्य ! तू जब तक विद्या में वृद्ध होकर अच्छी प्रकार परोपकार न करेगा, तब तक तुझ को मनुष्यपन और सर्वोत्तम सुख की प्राप्ति कभी न होगी, इस से तू परोपकार करने वाला सदा हो ॥ ६ ॥

उक्त कार्य के आचरण करने वाले जीव को आशीर्वाद कौन देता है, इस बात का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है—

आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः । शन्ते सन्तु प्रचेतसे ॥७

पदार्थ—हे धार्मिक (**गिर्वणः**) प्रशंसा के योग्य कर्म करने वाले (**इन्द्र**) विद्वन् जीव ! (**आशवः**) वेगादि गुण सहित सब क्रियाओं से व्याप्त (**सोमासः**) सब पदार्थ (**त्वा**) तुझ को (**आविशन्तु**) प्राप्त हों, तथा इन पदार्थों को प्राप्त हुए (**प्रचेतसे**) शुद्ध ज्ञान वाले (**ते**) तेरे लिए (**शम्**) ये सब पदार्थ मेरे अनुग्रह से सुख करने वाले (**सन्तु**) हों ॥ ७ ॥

भावार्थ—ईश्वर ऐसे मनुष्यों को आशीर्वाद देता है कि जो मनुष्य विद्वान्, परोपकारी होकर अच्छी प्रकार नित्य उद्योग करके इन सब पदार्थों से उपकार ग्रहण करके सब प्राणियों को सुखयुक्त करता है, वही सदा सुख को प्राप्त होता है, अन्य कोई नहीं ॥ ७ ॥

ईश्वर ने उक्त अर्थ के ही प्रकाश करने वाले इन्द्र शब्द का अगले मन्त्र में भी प्रकाश किया है—

त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो । त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥८

पदार्थ—हे (**शतक्रतो**) असंख्यात कर्मों के करने और अनन्त विज्ञान के जानने वाले परमेश्वर ! जैसे (**स्तोमाः**) वेद के स्तोत्र तथा (**उक्था**) प्रशंसनीय स्तोत्र आपको (**अवीवृधन्**) अत्यन्त प्रसिद्ध करते हैं, वैसे ही (**नः**) हमारी (**गिरः**) विद्या और सत्य-भाषणयुक्त वाणी भी (**त्वाम्**) आपको (**वर्धन्तु**) प्रकाशित करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो विश्व में पृथिवी, सूर्य्य आदि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रचे हुए पदार्थ हैं, वे सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले तथा धन्यवाद देने के योग्य परमेश्वर ही को प्रसिद्ध करके जनाते हैं कि जिस से न्याय और उपकार आदि ईश्वर के गुणों को अच्छी प्रकार जानके विद्वान् भी वैसे ही कर्मों में प्रवृत्त हों ॥ ८ ॥

वह जगदीश्वर हमारे लिए क्या करे, सो अगले मन्त्र में वर्णन किया है—

अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् । यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ॥९

पदार्थ—जो (**अक्षितोतिः**) नित्य ज्ञान वाला (**इन्द्रः**) सब ऐश्वर्य्य युक्त परमेश्वर है, वह कृपा करके हमारे लिए (**यस्मिन्**) जिस व्यवहार में (**विश्वानि**) सब (**पौंस्या**) पुरुषार्थ से युक्त बल हैं (**इमम्**) इस (**सहस्रिणम्**) असंख्यात सुख देने वाले (**वाजम्**) पदार्थों के विज्ञान को (**सनेत्**) सम्यक् सेवन करावें कि जिससे हम लोग उत्तम-उत्तम सुखों को प्राप्त हों ॥ ९ ॥

भावार्थ—जिस की सत्ता से संसार के पदार्थ बलवान् होकर अपने-अपने व्यवहारों में वर्त्तमान हैं, उन सब बल आदि गुणों से उपकार लेकर विश्व के नाना प्रकार के सुख भोगने के लिए हम लोग पूर्ण पुरुषार्थ करें, तथा ईश्वर इस प्रयोजन में हमारा सहाय करे, इसलिए हम लोग ऐसी प्रार्थना करते हैं ॥ ९ ॥

किस की रक्षा से पुरुषार्थ सिद्ध होता है, इस विषय का प्रकाश ईश्वर ने अगले मन्त्र में किया है—

मा नो मर्त्ता अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः । ईशानो यवया वधम् ॥१०

पदार्थ—हे (**गिर्वणः**) वेद वा उत्तम-उत्तम शिक्षाओं से सिद्ध की हुई वाणियों के द्वारा सेवा करने योग्य सर्वशक्तिमान् (**इन्द्र**) सब के रक्षक (**ईशान**) परमेश्वर ! आप (**नः**) हमारे (**तनूनाम्**) शरीरों का (**वधम्**) नाश, दोष सहित (**मा**) कभी मत (**यवय**) कीजिए तथा आपके उपदेश से (**मर्त्ताः**) ये सब मनुष्य लोग भी (**नः**) हम से (**माभिद्रुहन्**) वैर कभी न करें ॥ १० ॥

भावार्थ—कोई मनुष्य अन्याय से किसी प्राणी को मारने की इच्छा न करे, किन्तु परस्पर सब मित्र भाव से वर्त्तें, क्योंकि जैसे परमेश्वर बिना अपराध के किसी का तिरस्कार नहीं करता, वैसे ही सब मनुष्यों को भी करना चाहिए ॥ १० ॥

इस पञ्चम सूक्त की विद्या से मनुष्यों को किस प्रकार पुरुषार्थ और सब का उपकार करना चाहिए इस विषय के कहने से चौथे सूक्त के अर्थ के साथ इसकी सङ्गति जाननी चाहिए ।

यह पांचवां सूक्त और दशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ दशर्चस्य षष्ठस्य सूक्तस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । १—३ इन्द्रः; ४, ६, ८, ९ मरुतः; ५, ७ मरुत इन्द्रश्च; १० इन्द्रश्च देवताः । १, ३, ५—७, ९, १० गायत्री; २ विराड्गायत्री; ४, ८ निचृद्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

छठे सूक्त के प्रथम मन्त्र में यथायोग्य कार्यों में किस प्रकार से किन-किन पदार्थों को संयुक्त करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है—

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥

पदार्थ—जो मनुष्य (**अरुषम्**) अङ्ग-अङ्ग में व्याप्त होने वाले हिंसारहित सब सुख को करने (**चरन्तम्**) सब जगत् को जानने वा सब में व्याप्त (**परितस्थुषः**) सब मनुष्य वा स्थावर जङ्गम पदार्थ और चराचर जगत् में भरपूर हो रहा है (**ब्रध्नम्**) उस महान् परमेश्वर को उपासना योग द्वारा प्राप्त होते हैं, वे (**दिवि**) प्रकाशरूप परमेश्वर और बाहर सूर्य्य वा पवन के बीच में (**रोचनाः**) ज्ञान से प्रकाशमान होके (**रोचन्ते**) आनन्द में प्रकाशित होते हैं ।

तथा जो मनुष्य (**अरुषम्**) बाह्य देश में रूप का प्रकाश करने तथा अग्नि रूप होने से लाल गुणयुक्त (**चरन्तम्**) सर्वत्र गमन करने वाले (**ब्रध्नम्**) महान् सूर्य्य और अग्नि को शिल्प विद्या में (**परियुञ्जन्ति**) सब प्रकार से युक्त करते हैं, वे जैसे (**दिवि**) सूर्य्यादि के गुणों के प्रकाश में पदार्थ प्रकाशित होते हैं, वैसे (**रोचनाः**) तेजस्वी होके (**रोचन्ते**) नित्य उत्तम-उत्तम आनन्द से प्रकाशित होते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—जो लोग विद्या-सम्पादन में निरन्तर उद्योग करने वाले होते हैं, वे ही सब सुखों को प्राप्त होते हैं । इसलिए विद्वान् को उचित है कि पृथिवी आदि पदार्थों से उपयोग लेकर सब प्राणियों को लाभ पहुंचावे कि जिस से उनको भी सम्पूर्ण सुख मिलें ॥ १ ॥

उक्त सूर्य्य और अग्नि आदि के कैसे गुण हैं, और वे कहां-कहां उपयुक्त करने योग्य हैं, सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥

पदार्थ—जो विद्वान् (**अस्य**) सूर्य्य और अग्नि के (**काम्या**) सब के इच्छा करने योग्य (**शोणा**) अपने-अपने वर्ण के प्रकाश करनेहारे वा गमन के हेतु (**धृष्णू**) दृढ (**विपक्षसा**) विविध कला और जल के चक्र घूमने वाले पंखरूप यन्त्रों से युक्त (**नृवाहसा**) अच्छी प्रकार सवारियों में जुड़े हुए मनुष्यादिकों को देश देशान्तर में पहुँचाने वाले (**हरी**) आकर्षण और वेग तथा शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष रूप दो घोड़े जिन से सब का हरण किया जाता है, इत्यादि श्रेष्ठ गुणों को पृथिवी, जल और आकाश में जाने-आने के लिए अपने-अपने रथों में (**युञ्जन्ति**) जोड़ें ॥ २ ॥

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि—मनुष्य लोग जब तक भू, जल आदि पदार्थों के गुण, ज्ञान और उन के उपकार से भू, जल और आकाश में जाने-आने के लिए अच्छी सवारियों को नहीं बनाते, तब तक उनको उत्तम राज्य और धन आदि उत्तम सुख नहीं मिल सकते ॥ २ ॥

जिसने संसार के सब पदार्थ उत्पन्न किये हैं, वह कैसा है, यह बात अगले मन्त्र में प्रकाशित की है—

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्य्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥

पदार्थ—(**मर्य्याः**) हे मनुष्य लोगो ! जो परमात्मा (**अकेतवे**) अज्ञानरूपी अन्धकार के विनाश के लिए (**केतुम्**) उत्तम ज्ञान, और (**अपेशसे**) निर्धनता दारिद्र्य तथा कुरूपता विनाश के लिए (**पेशः**) सुवर्ण आदि धन और श्रेष्ठ रूप को (**कृण्वन्**) उत्पन्न करता है, उसको तथा सब विद्याओं को (**समुषद्भिः**) जो ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल वर्त्तने वाले हैं उनसे मिल-मिलकर जानके (**अजायथाः**) प्रसिद्ध हूजिए । तथा हे जानने की इच्छा करने वाले मनुष्य ! तू भी उस परमेश्वर के समागम से (**अजायथाः**) इस विद्या को यथावत् प्राप्त हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को प्रति रात्रि के चौथे प्रहर में आलस्य छोड़कर फुरती से उठकर अज्ञान और दरिद्रता के विनाश के लिए प्रयत्न वाले होकर तथा परमेश्वर के ज्ञान और संसारी पदार्थों से उपकार लेने के लिए उत्तम उपाय सदा करना चाहिए ॥ ३ ॥

अगले मन्त्र में वायु के कर्मों का उपदेश किया है—

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—जैसे (**मरुत**) वायु (**नाम**) जल और (**यज्ञियम्**) यज्ञ के योग्य देश को (**दधाना**) सब पदार्थों को धारण किये हुए (**पुनः**) फिर-फिर (**स्वधामनु**) जलों में (**गर्भत्वम्**) उनके समूहरूपी गर्भ को (**एरिरे**) सब प्रकार से प्राप्त होते कराते, वैसे (**आत्**) उसके उपरान्त वर्षा करते हैं, ऐसे ही बार-बार जलों को चढ़ाते, वर्षाते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो जल सूर्य्य वा अग्नि के संयोग से छोटा-छोटा हो जाता है, उस को धारण कर और मेघ के आकार का बना के वायु ही उसे फिर-फिर वर्षाता है, उसीसे सब का पालन और सब को सुख होता है ॥ ४ ॥

उन पवनों के साथ सूर्य्य क्या करता है, सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः । अविन्द उस्रिया अनु ॥५॥

पदार्थ—(**चित्**) जैसे मनुष्य लोग अपने पास के पदार्थों को उठाते धरते हैं, (**चित्**) वैसे ही सूर्य्य भी (**वीळु**) दृढ बल से (**उस्रियाः**) अपनी किरणों के द्वारा संसारी पदार्थों को (**अविन्दः**) प्राप्त होता है, (**अनु**) उसके अनन्तर सूर्य्य उनको छेदन करके (**आरुजत्नुभिः**) भङ्ग करने और (**वह्निभिः**) आकाश आदि देशों में पहुँचाने वाले पवन के साथ ऊपर नीचे करता हुआ (**गुहा**) अन्तरिक्ष अर्थात् पोल में सदा चढ़ाता-गिराता रहता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे बलवान् पवन अपने वेग से भारी भारी दृढ वृक्षों को तोड़-फोड़ डालते और उनको ऊपर नीचे-गिराते रहते हैं, वैसे ही सूर्य्य भी अपनी किरणों से उनका छेदन करता रहता है, इस से वे ऊपर-नीचे गिरते रहते हैं । इसी प्रकार ईश्वर के नियम से सब पदार्थ उत्पत्ति और विनाश को भी प्राप्त होते रहते हैं ॥ ५ ॥

यह ग्यारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

फिर वे पवन कैसे हैं, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः । महामनूषत श्रुतम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—जैसे (देवयन्तः) सब विज्ञानयुक्त (गिरः) विद्वान् मनुष्य (विदद्वसुम्) सुखकारक पदार्थविद्या से युक्त (महाम्) अत्यन्त बड़ी (मतिम्) बुद्धि (श्रुतम्) सब शास्त्रों के श्रवण और कथन को (अच्छ) अच्छी प्रकार (अनूषत) प्रकाश करते हैं, वैसे ही अच्छी प्रकार साधन करने से वायु भी शिल्प अर्थात् सब कारीगरी को (अनूषत) सिद्ध करते है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । मनुष्यों को वायु के उत्तम गुणों का ज्ञान, सब का उपकार और विद्या की वृद्धि के लिए प्रयत्न सदा करना चाहिए जिससे सब व्यवहार सिद्ध हों ॥ ६ ॥

उक्त पदार्थ किस के सहाय से कार्य्य के सिद्ध करने वाले होते हैं, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥

पदार्थ—यह वायु (अबिभ्युषा) भय दूर करने वाली (इन्द्रेण) परमेश्वर की सत्ता के साथ (संजग्मानः) अच्छी प्रकार प्राप्त हुआ तथा वायु के साथ सूर्य्य (संदृक्षसे) अच्छी प्रकार दृष्टि मे आता है, (हि) जिस कारण ये दोनों (समानवर्चसा) पदार्थों मे प्रसिद्ध बलवान् है, इसीसे वे सब जीवों को (मन्दू) आनन्द के देने वाले होते है ॥ ७ ॥

भावार्थ—ईश्वर ने जो अपनी व्याप्ति और सत्ता से सूर्य्य और वायु आदि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये है, इन सब पदार्थों के बीच मे से सूर्य्य और वायु ये दोनों मुख्य हैं, क्योंकि इन्हीं के धारण, आकर्षण और प्रकाश के योग से सब पदार्थ सुशोभित होते हैं । मनुष्यों को चाहिए कि इनको विद्या और उपकार लेने के लिए युक्त करें ॥ ७ ॥

पूर्वोक्त व्यवहार किस प्रकार से नित्य वर्त्तमान है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—

अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ८ ॥

पदार्थ—जो यह (मखः) सुख और पालन होने का हेतु यज्ञ है, वह (इन्द्रस्य) सूर्य्य की (अनवद्यैः) निर्दोष (अभिद्युभिः) सब ओर से प्रकाशमान और (काम्यैः) प्राप्ति की इच्छा करने के योग्य (गणैः) किरणों वा पवनों के साथ मिलकर सब पदार्थों को (सहस्वत्) जैसे दृढ़ होते हैं, वैसे ही (अर्चति) श्रेष्ठ गुण करने वाला होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो शुद्ध, अत्युत्तम होम के योग्य पदार्थों के अग्नि मे किये हुए होम से सिद्ध किया हुआ यज्ञ है, वह वायु और सूर्य्य की किरणों की शुद्धि के द्वारा रोगनाश करने के हेतु से सब जीवों को सुख देकर बलवान् करता है ॥ ८ ॥

अगले मन्त्र में गमनस्वभाव वाले पवन का प्रकाश किया है—

अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि । समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥ ९ ॥

पदार्थ—जिस वायु मे वाणी का सब व्यवहार सिद्ध होता है, वह (परिज्मन्) सर्वत्र गमन करता हुआ सब पदार्थों को तले ऊपर पहुँचाने वाला पवन (अतः) इस पृथिवी स्थान मे जलकणों का ग्रहण करके (अध्यागहि) ऊपर पहुँचता और फिर (दिवः) सूर्य्य के प्रकाश से (वा) अथवा (रोचनात्) जो कि रुचि का बढ़ाने वाला मेघमण्डल है, उससे जल को गिराता हुआ तले पहुँचाता है, (अस्मिन्) इसी बाहर और भीतर रहने वाले पवन मे सब पदार्थ स्थिति को प्राप्त होते है ॥ ९ ॥

भावार्थ—यह बलवान् वायु अपने गमन-आगमन गुण से सब पदार्थों के गमन-आगमन, धारण तथा शब्दों के उच्चारण और श्रवण का हेतु है ॥ ९ ॥

अगले मन्त्र मे सूर्य्य के कर्म का उपदेश किया है—

इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि । इन्द्रं महो वा रजसः ॥ १० ॥

पदार्थ—हम लोग (इतः) इस (पार्थिवात्) पृथिवी के संयोग (वा) और (दिवः) इस अग्नि के प्रकाश (वा) लोकलोकान्तरों अर्थात् चन्द्र और नक्षत्रादि लोकों से भी (सातिम्) अच्छी प्रकार पदार्थों के विभाग करते हुए (वा) अथवा (रजसः) पृथिवी आदि लोकों से (महः) अति विस्तारयुक्त (इन्द्रम्) सूर्य्य को (ईमहे) जानने हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—सूर्य्य की किरणे पृथिवी मे स्थित हुए जलादि पदार्थों को भिन्न-भिन्न करके बहुत छोटे-छोटे कर देती हैं, इसीसे वे पदार्थ पवन के साथ ऊपर को चढ़ जाते हैं, क्योंकि वह सूर्य्य सब लोकों से बड़ा है ॥ १० ॥

सूर्य्य और पवन से जैसे पुरुषार्थ की सिद्धि करनी चाहिए तथा वे लोक जगत् मे किस प्रकार से वर्त्तते रहते हैं और कैसे उनसे उपकार की सिद्धि होती है, इन प्रयोजनों से पाँचवें सूक्त के अर्थ के साथ छठे सूक्तार्थ की सङ्गति जाननी चाहिए ।

यह छठा सूक्त और बारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ दशर्चस्य सप्तमस्य सूक्तस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ३, ५—७ गायत्री । २, ४ निचृद्गायत्री, ८, १० पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री, ९ पादनिचृद्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सातवें सूक्त का आरम्भ है । इस में प्रथम मन्त्र के द्वारा इन्द्र शब्द से तीन अर्थों का प्रकाश किया है—

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥

पदार्थ—जो (गाथिनः) गान करनेवाले और (अर्किणः) विचारशील विद्वान् हैं, वे (अर्केभिः) सत्कार करने के पदार्थ सत्य-भाषण, शिल्पविद्या से सिद्ध किये हुए कर्म, मन्त्र और विचार से (वाणीः) चारों वेद की वाणियों को प्राप्त होने के लिए (बृहत्) सबसे बड़े (इन्द्रम्) परमेश्वर (इन्द्रम्) सूर्य्य और (इन्द्रम्) वायु के गुणों के ज्ञान से (अनूषत) यथावत् स्तुति करें ॥ १ ॥

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि मनुष्यों को वेदमन्त्रों के विचार से परमेश्वर, सूर्य्य और वायु आदि पदार्थों के गुणों को अच्छी प्रकार जानकर सब के सुख के लिए उनसे प्रयत्न के साथ उपकार लेना चाहिए ॥ १ ॥

पूर्व मन्त्र में इन्द्र शब्द से कहे हुए तीन अर्थों में से वायु और सूर्य्य का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है—

इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ २ ॥

पदार्थ—जिस प्रकार यह (सम्मिश्लः) पदार्थों में मिलने तथा (इन्द्रः) ऐश्वर्य्य का हेतु स्पर्शगुणवाला वायु, अपने (सचा) सब में मिलनेवाले और (वचोयुजा) वाणी के व्यवहार को वर्त्तानेवाले (हर्य्योः) हरने और प्राप्त करने वाले गुणों का (आ) सब पदार्थों मे युक्त करता है, वैसे ही (वज्री) संवत्सर वा तापवाला (हिरण्ययः) प्रकाशस्वरूप (इन्द्रः) सूर्य्य भी अपने हरण और आहरण गुणों को सब पदार्थों मे युक्त करता है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे लुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वायु के संयोग मे वचन, श्रवण आदि व्यवहार तथा सब पदार्थों के गमन-आगमन, धारण और स्पर्श होते हैं, वैसे ही सूर्य्य के योग से पदार्थों के प्रकाश और छेदन भी होते हैं ॥ २ ॥

इसके अनन्तर किसने, किसलिए सूर्य्यलोक बनाया है, सो अगले मन्त्र मे प्रकाश किया है—

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्य्यं रोहयद्दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ३ ॥

पदार्थ—(इन्द्रः) जो सब संसार का बनानेवाला परमेश्वर है, उसने (दीर्घाय) निरन्तर, अच्छी प्रकार (चक्षसे) दर्शन के लिए (दिवि) सब पदार्थों के प्रकाश होने के निमित्त जिस (सूर्य्यम्) प्रसिद्ध सूर्य्यलोक को (आरोहयत्) लोकों के बीच मे स्थापित किया है, वह (गोभिः) जो अपनी किरणों के द्वारा (अद्रिम्) मेघ को (व्यैरयत्) अनेक प्रकार से वर्षा होने के लिए ऊपर चढ़ाकर बारबार वर्षाता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—रचने की इच्छा करनेवाले ईश्वर ने सब लोकों मे दर्शन, धारण और आकर्षण आदि प्रयोजनों के लिए प्रकाशरूप सूर्य्यलोक को सब लोकों के बीच मे स्थापित किया है, इसी प्रकार यह हरएक ब्रह्माण्ड का नियम है कि वह क्षण-क्षण मे जल को ऊपर खेंचकर पवन के द्वारा ऊपर स्थापन करके बार-बार संसार मे वर्षाता है, इसी से यह वर्षा का कारण है ॥ ३ ॥

इन्द्र शब्द के व्यवहार को दिखलाकर अब प्रार्थनारूप से अगले मन्त्र में परमेश्वरार्थ का प्रकाश किया है—

इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! (इन्द्र) परमैश्वर्य्य देने तथा (उग्रः) सब प्रकार से अनन्त पराक्रमवान् आप (सहस्रप्रधनेषु) असंख्यात धन को देनेवाले चक्रवर्त्ति राज्य को सिद्ध करनेवाले (वाजेषु) महायुद्धों मे (उग्राभिः) अत्यन्त सुख देने वाली (ऊतिभिः) उत्तम-उत्तम पदार्थों की प्राप्ति तथा पदार्थों के विज्ञान और आनन्द मे प्रवेश कराने से हम लोगों की (अव) रक्षा कीजिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—परमेश्वर का यह स्वभाव है कि युद्ध करनेवाले धर्मात्मा पुरुषों पर अपनी कृपा करता है और आलसियों पर नहीं । इसी से जो मनुष्य जितेन्द्रिय, विद्वान्, पक्षपात का छोड़नेवाले शरीर और आत्मा के बल से अत्यन्त पुरुषार्थी तथा आलस्य को छोड़े हुए धर्म से बड़े-बड़े युद्धों को जीतके प्रजा का निरन्तर पालन करते हैं, वे ही महाभाग्य को प्राप्त होके सुखी रहते हैं ॥ ४ ॥

फिर भी उक्त अर्थ और सूर्य्य तथा वायु के गुणों का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है—

इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हम लोग (महाधने) बड़े-बड़े भारी संग्रामों मे (इन्द्रम्) परमेश्वर का (हवामहे) अधिक स्मरण करने रहते हैं, और (अर्भे) छोटे-छोटे संग्रामों में भी इसी प्रकार (वज्रिणम्) किरणवाले (इन्द्रम्) सूर्य्य वा जलवाले वायु का जो कि (वृत्रेषु) मेघ के अङ्गों मे (युजम्) युक्त होनेवाले इन के प्रकाश और सब में गमनागमनादि गुणों के समान विद्या, न्याय, प्रकाश और दूतों के द्वारा सब राज्य का वर्त्तमान विदित करना आदि गुणों का धारण सब दिन करते रहें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जो बड़े-बड़े भारी और छोटे-छोटे संग्रामों मे ईश्वर को सर्वव्यापक और रक्षा करनेवाला मान के धर्म और उत्साह के

साथ दुष्टों से युद्ध करें तो मनुष्यों का अचल विजय होता है । तथा जैसे ईश्वर भी सूर्य्य और पवन के निमित्त से वर्षा आदि के द्वारा संसार का अत्यन्त सुख सिद्ध किया करता है, वैसे मनुष्य लोगों को भी पदार्थों का निमित्त करके कार्य्यसिद्धि करनी चाहिए ॥ ५ ॥

यह तेरहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

मनुष्यों को परमेश्वर की प्रार्थना किस प्रयोजन के लिए करनी चाहिए,
वा सूर्य्य किसका निमित्त है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स नो॑ वृषन्न॒मुं च॒रुं सत्रा॑दाव॒न्नपा॑ वृधि । अ॒स्मभ्य॒मप्र॑तिष्कुतः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (वृषन्) सुखों के वर्षाने और (सत्रादावन्) सत्यज्ञान को देने वाले (सः) परमेश्वर ! आप (अस्मभ्यम्) जो कि हम लोग आपकी आज्ञा वा अपने पुरुषार्थ में वर्त्तमान हैं, उनके लिए (अप्रतिष्कुतः) निश्चय करानेहारे (नः) हमारे (अमुम्) उस आनन्द करनेहारे प्रत्यक्ष मोक्ष का द्वार (चरुम्) ज्ञानलाभ को (अपावृधि) खोल दीजिए ।

तथा हे परमेश्वर ! जो यह आपका बनाया हुआ (वृषन्) जल को वर्षाने और (सत्रादावन्) उत्तम-उत्तम पदार्थों को प्राप्त करनेवाला (अप्रतिष्कुतः) अपनी कक्षा ही में स्थिर रहता हुआ सूर्य्य (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए (अमुम्) आकाश में रहने वाले इस (चरुम्) मेघ को (अपावृधि) भूमि में गिरा देता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपनी दृढ़ता से सत्यविद्या का अनुष्ठान और नियम से ईश्वर की आज्ञा का पालन करता है, उसके आत्मा में से अविद्यारूपी अन्धकार का नाश अन्तर्य्यामी परमेश्वर कर देता है, जिससे वह पुरुष धर्म और पुरुषार्थ को कभी नहीं छोड़ता ॥ ६ ॥

फिर भी अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से परमेश्वर का प्रकाश किया है—

तु॒ञ्जेतु॑ञ्जे॒ य उत्त॑रे॒ स्तोमा॒ इन्द्र॑स्य व॒ज्रिणः॑ ।
न वि॑न्धे अस्य सुष्टु॒तिम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—(ये) जो (वज्रिणः) अनन्त पराक्रमवान् (इन्द्रस्य) सब दुःखों के विनाश करनेहारे (अस्य) इस परमेश्वर के (तुञ्जे तुञ्जे) पदार्थ पदार्थ के देने में (उत्तरे) सिद्धान्त से निश्चित किये हुए (स्तोमाः) स्तुतियों के समूह हैं, उनसे भी (अस्य) परमेश्वर की (सुष्टुतिम्) शोभायमान स्तुति का पार मैं जीव (न) नहीं (विन्धे) पा सकता हूँ ॥ ७ ॥

भावार्थ—ईश्वर ने इस संसार में प्राणियों के सुख के लिए इन पदार्थों में अपनी शक्ति से जितने दृष्टान्त वा उनमें जिस प्रकार की रचना और अलग-अलग उनके गुण उनसे उपकार लेने के लिए रखे हैं, उन सब के जानने को मैं अल्पबुद्धि पुरुष होने से समर्थ कभी नहीं हो सकता और न कोई मनुष्य ईश्वर के गुणों की समाप्ति जानने को समर्थ है, क्योंकि जगदीश्वर अनन्त गुण और अनन्त सामर्थ्यवाला है, परन्तु मनुष्य उन पदार्थों से जितना उपकार लेने को समर्थ हो उतना सब प्रकार से लेना चाहिए ॥ ७ ॥

परमेश्वर मनुष्यों को कैसे प्राप्त होता है, सो अर्थ अगले मन्त्र में
प्रकाशित किया है—

वृषा॑ यू॒थेव॒ वंस॑गः कृ॒ष्टीरि॑य॒र्त्योज॑सा । ईशा॑नो॒ अप्र॑तिष्कुतः ॥ ८ ॥

पदार्थ—जैसे (वृषा) वीर्य्यदाता, रक्षा करनेहारा (वंसगः) यथायोग्य गाय के विभागों का सेवन करनेहारा बैल (ओजसा) अपने बल से (यूथेव) गाय के समूहों को प्राप्त होता है, वैसे ही (वंसगः) धर्म के सेवन करनेवाले पुरुष को प्राप्त होने और (वृषा) शुभ गुणों की वर्षा करनेवाला (ईशानः) ऐश्वर्य्यवान् जगत् का रचनेवाला परमेश्वर अपने (ओजसा) बल से (कृष्टीः) धर्मात्मा मनुष्यों को तथा (वंसगः) अलग-अलग पदार्थों को पहुँचाने और (वृषा) जल वर्षानेवाला सूर्य्य (ओजसा) अपने बल से (कृष्टीः) आकर्षण आदि व्यवहारों को (इयर्त्ति) प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और श्लेषालङ्कार हैं । मनुष्य ही परमेश्वर को प्राप्त हो सकते हैं, क्योंकि वे ज्ञान की वृद्धि करने के स्वभाववाले होते हैं । और धर्मात्मा ज्ञानवाले मनुष्यों का परमेश्वर को प्राप्त होने का स्वभाव है । तथा जो ईश्वर ने रचकर कक्षा में स्थापन किया हुआ सूर्य्य है, वह अपने सामने अर्थात् समीप के लोकों को चुम्बक पत्थर और लोहे के समान खींचने को समर्थ रहता है ॥ ८ ॥

सब प्रकार से सब का सहायकारी परमेश्वर ही है, इस विषय का
अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

य एक॑श्चर्षणी॒नां वसू॑नामिर॒ज्यति॑ । इन्द्रः॒ पञ्च॑ क्षिती॒नाम् ॥ ९ ॥

पदार्थ—(यः) जो (इन्द्रः) दुष्ट शत्रुओं का विनाश करनेवाला परमेश्वर (चर्षणीनाम्) मनुष्य (वसूनाम्) अग्नि आदि आठ निवास के स्थान, और (पञ्च) जो नीच, मध्यम, उत्तम, उत्तमतर और उत्तमतम गुणवाले पाँच प्रकार के (क्षितीनाम्) पृथिवी लोक हैं, उन्हीं के बीच (इरज्यति) ऐश्वर्य के देने और सब के सेवा करने योग्य परमेश्वर है, वह (एकः) अद्वितीय और सब का सहाय करने वाला है ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो सब का स्वामी अन्तर्यामी व्यापक और सब ऐश्वर्य्य का देने वाला, जिसमें कोई दूसरा ईश्वर और जिसको किसी दूसरे की सहाय की इच्छा नहीं है, वही सब मनुष्यों को इष्ट बुद्धि से सेवा करने योग्य है । जो मनुष्य उस परमेश्वर को छोड़ के दूसरे को इष्टदेव मानता है, वह भाग्यहीन बड़े-बड़े घोर दुःखों को सदा प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

उक्त परमेश्वर सर्वोपरि विराजमान है, इस विषय का प्रकाश अगले
मन्त्र में किया है—

इन्द्रं॑ वो वि॒श्वत॒स्परि॒ हवा॑महे॒ जने॑भ्यः । अ॒स्माक॑मस्तु॒ केव॑लः ॥ १० ॥

पदार्थ—हम लोग जिस (विश्वतः) सब पदार्थों वा (जनेभ्यः) सब प्राणियों से (परि) उत्तम-उत्तम गुणों के द्वारा श्रेष्ठतर (इन्द्रम्) पृथिवी में राज्य देनेवाले परमेश्वर का (हवामहे) बार-बार अपने हृदय में स्मरण करते हैं, वही परमेश्वर (वः) हे मित्र लोगो ! तुम्हारे और हमारे पूजा करने योग्य इष्टदेव (केवलः) चेतनमात्र स्वरूप एक ही है ॥ १० ॥

भावार्थ—ईश्वर इस मन्त्र में सब मनुष्यों के हित के लिए उपदेश करता है—हे मनुष्यो ! तुम को अत्यन्त उचित है कि मुझे छोड़कर उपासना करने योग्य किसी दूसरे देव को कभी मत मानो, क्योंकि एक मुझ को छोड़कर कोई दूसरा ईश्वर नहीं है । जब वेद में ऐसा उपदेश है तो जो मनुष्य अनेक ईश्वर वा उसके अवतार मानता है, वह सब से बड़ा मूढ़ है ॥ १० ॥

इस सप्तम सूक्त में जिस ईश्वर ने अपनी रचना के सिद्ध रहने के लिए अन्तरिक्ष में सूर्य्य और वायु स्थापन किये हैं, वही एक सर्वशक्तिमान् सर्वदोषरहित और सब मनुष्यों का पूज्य है । इस व्याख्यान से इस सप्तम सूक्त के अर्थ के साथ छठे सूक्त के अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिए ।

यह दूसरा अनुवाक, सातवाँ सूक्त और चौदहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथास्य दशर्चस्याष्टमसूक्तस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ५,
८ निचृद्गायत्री, २ प्रतिष्ठागायत्री । ३, ४, ६, ७, ९ गायत्री,
१० वर्धमाना गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब अष्टमसूक्त के प्रथम मन्त्र में यह उपदेश है कि ईश्वर के अनुग्रह
और अपने पुरुषार्थ से कैसा धन प्राप्त करना चाहिए—

ऐन्द्र॑ सान॒सिं र॒यिं स॒जित्वा॑नं सदा॒सह॑म् । वर्षि॑ष्ठमू॒तये॑ भर ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! आप कृपा करके हमारी (ऊतये) रक्षा, पुष्टि और सब सुखों की प्राप्ति के लिए (वर्षिष्ठम्) जो अच्छी प्रकार वृद्धि करने वाला (सानसिम्) निरन्तर सेवन के योग्य (सदासहम्) दुष्टशत्रु तथा हानि वा दुःखों के सहने का मुख्य हेतु (सजित्वानम्) और तुल्य शत्रुओं का जिताने वाला (रयिम्) धन है, उस को (आभर) अच्छी प्रकार दीजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को सर्वशक्तिमान् अन्तर्यामी ईश्वर का आश्रय लेकर अपने पूर्ण पुरुषार्थ के साथ चक्रवर्त्ति राज्य के आनन्द को बढ़ाने वाली विद्या की उन्नति, सुवर्ण आदि धन और सेना आदि बल सब प्रकार से रखना चाहिए, जिससे अपने आप को और सब प्राणियों को सुख हो ॥ १ ॥

कैसे धन से परम सुख होता है, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

नि येन॑ मुष्टिह॒त्यया॒ नि वृ॒त्रा रु॒णधा॑महै । त्वोता॑सो॒ न्यर्व॑ता ॥ २ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! (त्वोतासः) आप के सकाश से रक्षा को प्राप्त हुए हम लोग (येन) जिस पूर्वोक्त धन से (मुष्टिहत्यया) बाहुयुद्ध और (अर्वता) अश्व आदि सेना की सामग्री से (निवृत्रा) निश्चित शत्रुओं को (निरुणधामहै) रोकें अर्थात् उनको निर्बल कर सकें, ऐसे उत्तम धन का दान हम लोगों के लिए कृपा से कीजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—ईश्वर के सेवक मनुष्यों को उचित है कि अपने शरीर और बुद्धिबल को बहुत बढ़ावें, जिससे श्रेष्ठों का पालन और दुष्टों का अपमान सदा होता रहे, और जिससे शत्रुजन उनके मुष्टिप्रहार को न सह सकें, इधर-उधर छिपते, भागते फिरें ॥ २ ॥

मनुष्य किसको धारण करने से शत्रुओं को जीत सकते हैं, सो अगले मन्त्र
में प्रकाश किया है—

इन्द्र॒ त्वोता॑स॒ आ व॒यं वज्रं॑ घ॒ना द॑दीमहि । जये॑म॒ सं यु॒धि स्पृधः॑ ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अनन्त बलवान् ईश्वर ! (त्वोतासः) आपके सकाश से रक्षा आदि और बल को प्राप्त हुए (वयम्) हम लोग धार्मिक और शूरवीर होकर अपने विजय के लिए (वज्रम्) शत्रुओं के बल का नाश करने का हेतु आग्नेयास्त्रादि अस्त्र और (घना) श्रेष्ठ शस्त्रों का समूह जिनको कि भाषा में तोप, बन्दूक, तलवार और धनुष-बाण आदि करके प्रसिद्ध कहते हैं, जो युद्ध की सिद्धि में हेतु हैं, उनको (आददीमहि) ग्रहण करते हैं । जिस प्रकार हम लोग आपके बल का आश्रय और सेना की पूर्ण सामग्री के द्वारा (स्पृधः) ईर्ष्या करने वाले शत्रुओं को (युधि) संग्राम में (जयेम) जीतें ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि धर्म और ईश्वर के आश्रय से शरीर की पुष्टि और विद्या के द्वारा आत्मा का बल तथा युद्ध की पूर्ण सामग्री, परस्पर अविरोध और उत्साह आदि श्रेष्ठ गुणों को ग्रहण करके दुष्ट शत्रुओं के पराजय करने से अपने और सब प्राणियों के लिए सुख सदा बढ़ाते रहें ॥ ३ ॥

किस-किस के सहाय से उक्त सुख सिद्ध होता है, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम् । सासह्याम पृतन्यतः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) युद्ध में उत्साह के देनेवाले परमेश्वर ! (**त्वया**) आपको अन्तर्यामी इष्टदेव मानकर आपकी कृपा से धर्मयुक्त व्यवहारों में अपने सामर्थ्य के (**युजा**) योग कराने वाले के योग से (**वयम्**) युद्ध के करने वाले हम लोग (**अस्तृभिः**) सब शस्त्र-अस्त्रों के चलाने में चतुर (**शूरेभिः**) उत्तमों में उत्तम शूरवीरों के साथ होकर (**पृतन्यतः**) सेना आदि बल से युक्त होकर लड़ने वाले शत्रुओं को (**सासह्याम**) बार-बार सहें, अर्थात् उन का निर्बल करें, इस प्रकार शत्रुओं को जीतकर न्याय के साथ चक्रवर्ति राज्य का पालन करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—शूरता दो प्रकार की होती है, एक तो शरीर की पुष्टि और दूसरी विद्या तथा धर्म से संयुक्त आत्मा की पुष्टि। इन दोनों से परमेश्वर की रचना के क्रमों को जानकर न्याय, धीरज, उत्तम स्वभाव और उद्योग आदि से उत्तम-उत्तम गुणों से युक्त होकर सभाप्रबन्ध के साथ राज्य का पालन और दुष्ट शत्रुओं का निरोध अर्थात् उनको सदा कायर करना चाहिए ॥ ४ ॥

उक्त कार्य्यसहाय करनेहारा जगदीश्वर किस प्रकार का है, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है

महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ ५ ॥

पदार्थ—(**न**) जैसे मूर्त्तिमान् संसार को प्रकाशयुक्त करने के लिए (**द्यौः**) सूर्य्यप्रकाश (**प्रथिना**) विस्तार से प्राप्त होता है, वैसे ही जो (**महान्**) सब प्रकार से अनन्तगुण, अत्युत्तम स्वभाव, अतुल सामर्थ्ययुक्त और (**परः**) अत्यन्त श्रेष्ठ (**इन्द्रः**) सब जगत् की रक्षा करने वाला परमेश्वर है, और (**वज्रिणे**) न्याय की रीति से दण्ड देने वाले परमेश्वर (**नु**) जो कि अपने सहायरूपी हेतु से हम को विजय देता है, उसी की यह (**महित्वम्**) महिमा (**च**) तथा बल है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। धार्मिक युद्ध करने वाले मनुष्यों को उचित है कि जो शूरवीर युद्ध में अति धीर मनुष्यों के साथ होकर दुष्ट शत्रुओं पर अपना विजय हुआ है उसका धन्यवाद अनन्त शक्तिमान् जगदीश्वर को देना चाहिए कि जिससे निरभिमान होकर मनुष्यों के राज्य की सदैव बढ़ती होती रहे ॥ ५ ॥

यह पन्द्रहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

मनुष्यों को कैसे होकर युद्ध करना चाहिए, यह विषय अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ । विप्रासो वा धियायवः ॥ ६ ॥

पदार्थ—(**विप्रासः**) जो अत्यन्त बुद्धिमान् (**नरः**) मनुष्य हैं, वे (**समोहे**) संग्राम के निमित्त शत्रुओं को जीतने के लिए (**आशत**) तत्पर हैं, (**वा**) अथवा (**धियायवः**) जो कि विज्ञान देने की इच्छा करने वाले हैं, वे (**तोकस्य**) सन्तानों के (**सनितौ**) विद्या की शिक्षा में (**आशत**) उद्योग करते रहें ॥ ६ ॥

भावार्थ—ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता है कि—इस संसार में मनुष्यों को दो प्रकार का काम करना चाहिए। इनमें से जो विद्वान् हैं वे अपने शरीर और सेना का बल बढ़ाते और दूसरे उत्तम विद्या की वृद्धि करके शत्रुओं के बल का सदैव तिरस्कार करते रहें। मनुष्यों को जब-जब शत्रुओं के साथ युद्ध करने की इच्छा हो तब-तब सावधान होके प्रथम उनकी सेना आदि पदार्थों से कम-से-कम अपना दोगुना बल करके उनके पराजय से प्रजा की रक्षा करनी चाहिए। तथा जो विद्याओं के पढ़ाने की इच्छा करने वाले हैं, वे शिक्षा देने योग्य पुत्र वा कन्याओं को यथायोग्य विद्वान् करने में अच्छे प्रकार यत्न करें, जिससे शत्रुओं के पराजय और अज्ञान के विनाश से चक्रवर्त्ति राज्य और विद्या की वृद्धि सदैव बनी रहे ॥ ६ ॥

अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से सूर्य्यलोक के गुणों का व्याख्यान किया है

यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते । उर्वीरापो न काकुदः ॥ ७ ॥

पदार्थ—(**समुद्र इव**) जैसे समुद्र को जल (**आपो न काकुदः**) शब्दों के उच्चारण आदि व्यवहारों के कराने वाले प्राण वाणी को सेवन करते हैं, वैसे (**कुक्षिः**) सब पदार्थों से रस को खींचने वाला तथा (**सोमपातमः**) सोम अर्थात् संसार के पदार्थों का रक्षक जो सूर्य्य है, वह (**उर्वीः**) सब पृथिवी का सेवन वा सेचन करता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। ईश्वर ने जैसे जल की स्थिति और वृष्टि का हेतु समुद्र तथा वाणी के व्यवहार का हेतु प्राण बनाया है, वैसे ही सूर्य्यलोक वर्षा होने, पृथिवी के खींचने, प्रकाश और रसविभाग करने का हेतु बनाया है, इसी से सब प्राणियों के अनेक व्यवहार सिद्ध होते हैं ॥ ७ ॥

उक्त अर्थों के निमित्त और कार्य्य का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है—

एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही । पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ८ ॥

पदार्थ—(**पक्वा शाखा न**) जैसे आम और कटहर आदि वृक्ष, पकी डाली और फलयुक्त होने से प्राणियों को सुख देनेहारे होते हैं (**अस्य हि**) वैसे ही इस परमेश्वर की (**गोमती**) जिसको बहुत से विद्वान् सेवन करने वाले हैं, जो (**सूनृता**) प्रिय और सत्यवचन प्रकाश करने वाली (**विरप्शी**) महाविद्यायुक्त और (**मही**) सब को सत्कार करने योग्य चारों वेद की वाणी है, सो (**दाशुषे**) पढ़ने में मन लगाने वालों को सब विद्याओं का प्रकाश करने वाली है।

तथा (**अस्य हि**) जैसे इस सूर्य्यलोक की (**गोमती**) उत्तम मनुष्यों के सेवन करने योग्य (**सूनृता**) प्रीति के उत्पादन करने वाले पदार्थों का प्रकाश करने वाली (**विरप्शी**) बड़ी-से-बड़ी (**मही**) बड़े-बड़े गुणयुक्त दीप्ति है, वैसे वेदवाणी (**दाशुषे**) राज्य की प्राप्ति के लिए राज्यकर्मों में चित्त देने वालों को सुख देने वाली होती है ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे विविध प्रकार के फलफूलों से युक्त आम और कटहर आदि वृक्ष नाना प्रकार के फलों के देने वाले होके सुख देनेहारे होते हैं, वैसे ही ईश्वर से प्रकाश की हुई वेदवाणी बहुत प्रकार की विद्याओं को देनेहारी होकर सब मनुष्यों को परम आनन्द देनेवाली है। जो विद्वान् लोग इसको पढ़के धर्मात्मा होते हैं, वे ही वेदों का प्रकाश और पृथिवी में राज्य करने को समर्थ होते हैं ॥ ८ ॥

जो मनुष्य ऐसा करते हैं, उनको क्या सिद्ध होता है, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित्सन्ति दाशुषे ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) जगदीश्वर ! आपकी कृपा से जैसे (**ते**) आपके (**विभूतयः**) जो-जो उत्तम ऐश्वर्य और (**ऊतयः**) रक्षा विज्ञान आदि गुण मुझ को प्राप्त (**सन्ति**) हैं, वैसे (**मावते**) मेरे तुल्य (**दाशुषे चित्**) सब के उपकार और धर्म में मन को देने वाले पुरुष को (**सद्य एव**) शीघ्र ही प्राप्त हों ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। ईश्वर की आज्ञा का प्रकाश इस रीति से किया है कि—जब मनुष्य पुरुषार्थी होके सबका उपकार करने वाले और धार्मिक होते हैं, तभी वे पूर्ण ऐश्वर्य और ईश्वर की यथायोग्य रक्षा आदि को प्राप्त होके सर्वत्र सत्कार के योग्य होते हैं ॥ ९ ॥

उक्त सब प्रशंसा किस की है, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये ॥ १० ॥

पदार्थ—(**अस्य**) जो-जो इन चार वेदों के (**काम्या**) अत्यन्त मनोहर (**शंस्या**) प्रशंसा करने योग्य कर्म वा (**स्तोमः**) स्तोत्र हैं, (**च**) तथा (**उक्थम्**) जिनमें परमेश्वर के गुणों का कीर्त्तन है, वे (**इन्द्राय**) परमेश्वर की प्रशंसा के लिए हैं। कैसा वह परमेश्वर है कि जो (**सोमपीतये**) अपनी व्याप्ति से सब पदार्थों के अंश-अंश में रम रहा है ॥ १० ॥

भावार्थ—जैसे इस संसार में अच्छे-अच्छे पदार्थों की रचना विशेष देखकर उस रचने वाले की प्रशंसा होती है, वैसे ही संसार के प्रसिद्ध अत्युत्तम पदार्थों तथा विशेष रचना को देखकर ईश्वर ही को धन्यवाद दिये जाते हैं। इस कारण से परमेश्वर की स्तुति के समान वा उससे अधिक किसी की स्तुति नहीं हो सकती ॥ १० ॥

इस प्रकार जो मनुष्य ईश्वर की उपासना और वेदोक्त कर्मों के करने वाले हैं, वे ईश्वर के आश्रित होके वेद-विद्या से आत्मा के सुख और उत्तम क्रियाओं से शरीर के सुख को प्राप्त होते हैं, वे परमेश्वर ही की प्रशंसा करते रहें। इस अभिप्राय से इस आठवें सूक्त के अर्थ की पूर्वोक्त सातवें सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए।

यह आठवाँ सूक्त और सोलहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ नवमस्य दशर्चस्य सूक्तस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता।
१, ३, ७, १० निचृद्गायत्री; २, ४, ८, ९ गायत्री;
५, ६ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री च छन्दः।
षड्जः स्वरः ॥

अब नवम सूक्त के आरम्भ के मन्त्र में इन्द्र शब्द से परमेश्वर और सूर्य्य का प्रकाश किया है—

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ १ ॥

पदार्थ—जिस प्रकार से (**अभिष्टिः**) प्रकाशमान (**महान्**) पृथिवी आदि से बहुत बड़ा (**इन्द्रः**) यह सूर्य्यलोक है, वह (**ओजसा**) बल वा (**विश्वेभिः**) सब (**सोमपर्वभिः**) पदार्थों के अङ्गों के साथ (**अन्धसः**) पृथिवी आदि, अन्नादि पदार्थों के प्रकाश से (**एहि**) प्राप्त होता और (**मत्सि**) प्राणियों को आनन्द देता है, वैसे ही हे (**इन्द्र**) सर्वव्यापक ईश्वर ! आप (**महान्**) उत्तमों में उत्तम (**अभिष्टिः**) सर्वज्ञ और सब ज्ञान के देनेवाले (**ओजसा**) बल वा (**विश्वेभिः सोमपर्वभिः**) सब पदार्थों के अंशों के साथ वर्त्तमान होकर (**एहि**) प्राप्त होते और (**अन्धसः**) भूमि आदि, अन्नादि उत्तम पदार्थों को देकर हमको (**मत्सि**) सुख देते हो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और लुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे ईश्वर इस संसार के परमाणु-परमाणु में व्याप्त होकर सब की रक्षा निरन्तर करता है; वैसे ही सूर्य्य भी सब लोकों से बड़ा होने से अपने सम्मुख हुए पदार्थों को आकर्षण वा प्रकाश करके अच्छे प्रकार स्थापन करता है ॥ १ ॥

शिल्पविद्या के उत्तम साधन जल और अग्नि का वर्णन अगले मन्त्र में किया है—

एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने । चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ २ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (**सुते**) उत्पन्न हुए इस संसार में (**विश्वानि**) सब सुखों के उत्पन्न होने के अर्थ (**मन्दिने**) ऐश्वर्य प्राप्ति की इच्छा करने तथा (**मन्दिम्**) आनन्द बढ़ाने वाले (**चक्रये**) पुरुषार्थ करने के स्वभाव और (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य होने वाले मनुष्य के लिए (**चक्रिम्**) शिल्पविद्या से सिद्ध किये हुए

साधनों में (एतम्) इन (ईम्) जल और अग्नि को (आसृजत) प्रति प्रकाशित करो ॥ २ ॥

भावार्थ—विद्वानों को उचित है कि इस संसार में पृथिवी से लेके ईश्वरपर्यन्त पदार्थों के विशेषज्ञान, उत्तम शिल्प विद्या से सब मनुष्यों को उत्तम-उत्तम क्रिया सिखाकर सब सुखों का प्रकाश करना चाहिए ॥ २ ॥

अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से परमेश्वर का प्रकाश किया है—

मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे । सचैषु सवनेष्वा ॥३॥

पदार्थ—हे (**विश्वचर्षणे**) सब संसार के देखने तथा (**सुशिप्र**) श्रेष्ठज्ञानयुक्त परमेश्वर ! आप (**मन्दिभिः**) जो विज्ञान वा आनन्द के करने वा करानेवाले (**स्तोमेभिः**) वेदोक्त स्तुतिरूप गुणप्रकाश करनेहारे स्तोत्र हैं उनसे स्तुति को प्राप्त होकर (**एषु**) इन प्रत्यक्ष (**सवनेषु**) ऐश्वर्य्य देनेवाले पदार्थों में हम लोगों को (**सचा**) युक्त करके (**मत्स्व**) अच्छे प्रकार आनन्दित कीजिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिसने संसार के प्रकाश करने वाले सूर्य्य को उत्पन्न किया है, उसकी स्तुति करने में जो श्रेष्ठ पुरुष एकाग्रचित्त है, अथवा सब को देखने वाले परमेश्वर को जानकर सब प्रकार से धार्मिक और पुरुषार्थी होकर सब ऐश्वर्य्य को उत्पन्न और उस की रक्षा करने में मिलकर रहते हैं, वे ही सब सुखों को प्राप्त होने के योग्य वा औरों को भी उत्तम-उत्तम सुखों के देने वाले हो सकते हैं ॥ ३ ॥

असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत । अजोषा वृषभं पतिम् ॥४॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे परमेश्वर ! जो (**ते**) आपकी (**गिरः**) वेदवाणी हैं, वे (**वृषभम्**) सब से उत्तम, सब की इच्छा पूर्ण करने वाले (**पतिम्**) सब के पालन करनेहारे (**त्वाम्**) वेदों के वक्ता आप को (**उदहासत**) उत्तमता के साथ जनाती है, और जिन वेदवाणियों का आप (**अजोषाः**) सेवन करते हो, उन्हीं से मैं भी (**प्रति**) उक्त गुणयुक्त आपको (**असृग्रम्**) अनेक प्रकार से वर्णन करता हूँ ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिस ईश्वर ने प्रकाश किये हुए वेदों से जैसे अपने-अपने स्वभाव, गुण और कर्म प्रकट किये हैं, वैसे ही वे सब लोगों को जानने योग्य है, क्योंकि ईश्वर के सत्य स्वभाव के साथ अनन्तगुण और कर्म हैं, उन को हम अल्पज्ञ लोग अपने सामर्थ्य से जानने को समर्थ नहीं हो सकते। तथा जैसे हम लोग अपने-अपने स्वभाव, गुण और कर्मों को जानते हैं वैसे औरों को उनका यथावत् जानना कठिन होता है, इसी प्रकार सब विद्वान् मनुष्यों को वेदवाणी के बिना ईश्वर आदि पदार्थों को यथावत् जानना कठिन होता है। इसलिए प्रयत्न से वेदों को जानके उन के द्वारा सब पदार्थों से उपकार लेना तथा उसी ईश्वर को अपना इष्टदेव और पालन करनेहारा मानना चाहिए ॥ ४ ॥

ईश्वर की उपासना से क्या लाभ होता है, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

सं चोदय चित्रमर्वाग्राध इन्द्र वरेण्यम् । असदित्ते विभु प्रभु ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) करुणामय सब सुखों के देने वाले परमेश्वर ! (**ते**) आपकी सृष्टि में जो-जो (**वरेण्यम्**) अति श्रेष्ठ (**विभु**) उत्तम-उत्तम पदार्थों से पूर्ण (**प्रभु**) बड़े-बड़े प्रभावों का हेतु (**चित्रम्**) जिससे श्रेष्ठ विद्या चक्रवर्त्ति राज्य से सिद्ध होने वाले मणि, सुवर्ण और हाथी आदि अच्छे-अच्छे अद्भुत पदार्थ होते हैं, ऐसा (**राधः**) धन (**असत्**) हो, सो-सो कृपा करके हम लोगों के लिए (**सञ्चोदय**) प्रेरणा करके प्राप्त कीजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को ईश्वर के अनुग्रह और अपने पुरुषार्थ से आत्मा और शरीर के सुख के लिए विद्या और ऐश्वर्य्य की प्राप्ति वा उनकी रक्षा और उन्नति तथा सत्य मार्ग वा उत्तम दानादि धर्म अच्छी प्रकार से सदैव सेवन करना चाहिए जिससे दारिद्र्य और आलस्य से उत्पन्न होने वाले दुःखों का नाश होकर अच्छे-अच्छे भोग करने योग्य पदार्थों की वृद्धि होती रहे ॥ ५ ॥

यह सत्रहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

अन्तर्यामी ईश्वर हम लोगों को कैसे-कैसे कामों में प्रेरणा करे, इस विषय का अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

अस्मान्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः । तुविद्युम्न यशस्वतः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (**तुविद्युम्न**) अत्यन्त विद्यादिधनयुक्त (**इन्द्र**) अन्तर्यामी ईश्वर ! (**रभस्वतः**) जो आलस्य को छोड़के कार्य्यों के आरम्भ करने (**यशस्वतः**) सत्कीर्तिसहित (**अस्मान्**) हम लोग पुरुषार्थी विद्या, धर्म और सर्वोपकार से नित्य प्रयत्न करने वाले मनुष्यों को (**तत्र**) श्रेष्ठ पुरुषार्थ में (**राये**) उत्तम-उत्तम धन की प्राप्ति के लिए (**सुचोदय**) अच्छी प्रकार युक्त कीजिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को उचित है कि इस सृष्टि में परमेश्वर की आज्ञा के अनुकूल वर्त्तमान तथा पुरुषार्थी और यशस्वी होकर विद्या तथा राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति के लिए सदैव उपाय करें। इसी से उक्त गुण वाले पुरुषों को ही लक्ष्मी से सब प्रकार का सुख मिलता है, क्योंकि ईश्वर ने पुरुषार्थी सज्जनों के लिए ही सब सुख रचे हैं ॥ ६ ॥

फिर भी उक्त धन कैसा है, इस विषय का अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत् । विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) अनन्त विद्यायुक्त सब को धारण करनेहारे ईश्वर ! आप (**अस्मे**) हमारे लिये (**गोमत्**) जो धन, श्रेष्ठ वाणी और अच्छे-अच्छे उत्तम पुरुषों को प्राप्त कराने (**वाजवत्**) नाना प्रकार के अन्न आदि पदार्थों को प्राप्त कराने वा (**विश्वायुः**) पूर्ण सौ वर्ष वा अधिक आयु को बढ़ाने (**पृथु**) अति विस्तृत (**बृहत्**) अनेक शुभ गुणों से प्रसिद्ध अत्यन्त बड़ा (**अक्षितम्**) प्रतिदिन बढ़ने वाला (**श्रवः**) जिस में अनेक प्रकार की विद्या वा सुवर्ण आदि धन सुनने में आता है, उस धन को (**संधेहि**) अच्छे प्रकार नित्य के लिए दीजिए ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि ब्रह्मचर्य्य का धारण, विषयों की लम्पटता का त्याग, भोजन आदि व्यवहारों के श्रेष्ठ नियमों से विद्या और चक्रवर्त्ति राज्य की लक्ष्मी को सिद्ध करके सम्पूर्ण आयु भोगने के लिए पूर्वोक्त धन के जोड़ने की इच्छा अपने पुरुषार्थ द्वारा करें कि जिससे इस संसार का वा परमार्थ का दृढ़ और विशाल अर्थात् अति श्रेष्ठ सुख सदैव बना रहे, परन्तु यह उक्त सुख केवल ईश्वर की प्रार्थना से ही नहीं मिल सकता, किन्तु उसकी प्राप्ति के लिए पूर्ण पुरुषार्थ करना भी अवश्य उचित है ॥ ७ ॥

अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम् । इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥८॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) अत्यन्त बलयुक्त ईश्वर ! आप (**अस्मे**) हमारे लिए (**सहस्रसातमम्**) असंख्यात सुखों का मूल (**बृहत्**) नित्य वृद्धि को प्राप्त होने योग्य (**द्युम्नम्**) प्रकाशमय ज्ञान तथा (**श्रवः**) पूर्वोक्त धन और (**रथिनीरिषः**) अनेक रथ आदि साधन सहित सेनाओं को (**धेहि**) अच्छे प्रकार दीजिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे जगदीश्वर ! आप कृपा करके जो अत्यन्त पुरुषार्थ के साथ, जिस धन के द्वारा बहुत-से सुखों को सिद्ध करने वाली सेना प्राप्त होती है, उसको हम लोगों में नित्य स्थापन कीजिए ॥ ८ ॥

फिर भी वह इन्द्र कैसा है, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम् । होम गन्तारमूतये ॥ ९ ॥

पदार्थ—(**गीर्भिः**) वेदवाणी से (**गृणन्तः**) स्तुति करते हुए हम लोग (**वसुपतिम्**) अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्यलोक, द्यौः अर्थात् प्रकाशमान लोक, चन्द्रलोक और नक्षत्र अर्थात् जितने तारे दीखते हैं, इन सब का नाम वसु है, क्योंकि ये ही निवास के स्थान हैं, इनका पति, स्वामी और रक्षक (**ऋग्मियम्**) वेदमन्त्रों के प्रकाश करनेहारे (**गन्तारम्**) सब का अन्तर्यामी अर्थात् अपनी व्याप्ति से सब जगह प्राप्त होने तथा (**इन्द्रम्**) सब के धारण करने वाले परमेश्वर को (**वसोः**) संसार में सुख के साथ वास कराने का हेतु जो विद्या आदि धन है उसकी (**ऊतये**) प्राप्ति और रक्षा के लिए (**होम**) प्रार्थना करते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को उचित है कि जो ऐश्वर्य का निमित्त, संसार का स्वामी, सर्वत्र व्यापक इन्द्र परमेश्वर है, उसकी प्रार्थना और ईश्वर के न्याय आदि गुणों की प्रशंसा, पुरुषार्थ के साथ सब प्रकार से अति श्रेष्ठ विद्या, राज्यलक्ष्मी आदि पदार्थों को प्राप्त होकर उनकी उन्नति और रक्षा सदा करें ॥ ९ ॥

किस प्रयोजन के लिए परमेश्वर की प्रार्थना करनी चाहिए सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः । इन्द्राय शूषमर्चति ॥ १० ॥

पदार्थ—जो (**अरिः**) सब श्रेष्ठ गुण और उत्तम सुखों को प्राप्त होनेवाला विद्वान मनुष्य (**सुतेसुते**) उत्पन्न हुए सब पदार्थों में (**बृहते**) सम्पूर्ण श्रेष्ठ गुणों से महान् सब में व्याप्त (**न्योकसे**) निश्चित जिसके निवासस्थान हैं, (**इत्**) उसी (**इन्द्राय**) परमेश्वर के लिए अपने (**बृहत्**) सब प्रकार से बढ़े हुए (**शूषम्**) बल और सुख को (**आ**) अच्छी प्रकार (**अर्चति**) समर्पण करता है, वही बलवान् होता है ॥ १० ॥

भावार्थ—जब शत्रु मनुष्य भी सब में व्यापक मङ्गलमय, उपमारहित परमेश्वर के प्रति नम्र होता है, तो जो ईश्वर की आज्ञा और उसकी उपासना में वर्त्तमान मनुष्य हैं, वे ईश्वर के लिए नम्र क्यों न हों ? जो ऐसे हैं वे ही बड़े-बड़े गुणों से महात्मा होकर सब से सत्कार किये जाने के योग्य होते, और वे ही विद्या और चक्रवर्त्ति राज्य के आनन्द को प्राप्त होते हैं। जो उन से विपरीत हैं वे उस आनन्द को कभी प्राप्त नहीं हो सकते ॥ १० ॥

इस सूक्त में इन्द्र शब्द के वर्णन, उत्तम-उत्तम धन आदि की प्राप्ति के अर्थ ईश्वर की प्रार्थना और अपने पुरुषार्थ करने की आज्ञा के प्रतिपादन करने से इस नवमे सूक्त के अर्थ की सङ्गति आठवें सूक्त के साथ मिलती है, ऐसा समझना चाहिए।

यह नवमा सूक्त और अठारहवाँ वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अथ द्वादशर्चस्य दशमस्य सूक्तस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
१—३, ५, ६ विराडनुष्टुप्, ४ भुरिगुष्णिक्, ७, ९—१२
अनुष्टुप्, ८ निचृदनुष्टुप् छन्दः । १—३, ५—१२
गान्धारः, ४ ऋषभः स्वरः ॥

अब दशम सूक्त का आरम्भ किया जाता है। इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में इस बात का प्रकाश किया है कि कौन-कौन पुरुष किस-किस प्रकार से इन्द्रसंज्ञक परमेश्वर का पूजन करते हैं—

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (**शतक्रतो**) असंख्यात कर्म और उत्तम ज्ञानयुक्त परमेश्वर !

(**ब्रह्माण**) जैसे वेदों को पढ़कर उत्तम-उत्तम क्रिया करने वाले मनुष्य श्रेष्ठ उपदेश गुण और अच्छी-अच्छी शिक्षाओं से (**वंशम्**) अपने वंश को (**उद्येमिरे**) प्रशस्त गुणायुक्त करके उद्यमवान् करते हैं, वैसे ही (**गायत्रिण.**) जिन्हों के गायत्र अर्थात प्रशंसा करने योग्य छन्द, राग आदि पढ़े हुए धार्मिक और ईश्वर की उपासना करने वाले है, वे पुरुष (**त्वा**) आपकी (**गायन्ति**) सामवेदादि के गानो से प्रशंसा करते हैं, तथा (**अर्किण**) अर्क अर्थात् जो वेद के मन्त्र पढ़ने के नित्य अभ्यासी हैं, वे (**अर्कम्**) सब मनुष्यो को पूजने योग्य (**त्वा**) आपका (**अर्चन्ति**) नित्य पूजन करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे सब मनुष्यो को परमेश्वर ही की पूजा करनी चाहिए अर्थात् उसकी आज्ञा के अनुकूल वेदविद्या को पढ़कर अच्छे-अच्छे गुणो के साथ अपने और अन्यो के वंश को भी पुरुषार्थी करते हैं, वैसे ही अपने आप का भी होना चाहिए । और जो परमेश्वर के सिवाय दूसरे का पूजन करने वाला पुरुष है, वह कभी उत्तम फल को प्राप्त होने योग्य नही हो सकता, क्योंकि न तो ईश्वर की ऐसी आज्ञा ही है, और न ईश्वर के समान कोई दूसरा पदार्थ है कि जिसका उसके स्थान मे पूजन किया जावे । इससे सब मनुष्यो को उचित है कि परमेश्वर ही का गान और पूजन करे ॥ १ ॥

फिर भी ईश्वर को कैसे जानें, सो अगले मन्त्र मे प्रकाश किया है—

यत्सानोः सानुमारुहद्भूर्य्यस्पष्ट कर्त्त्वम् ।

तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥ २ ॥

पदार्थ— जैसे (**यूथेन**) वायुगण अथवा सुख के साधन हेतु पदार्थों के साथ (**वृष्णि.**) वर्षा करने वाला सूर्य्य अपने प्रकाश के द्वारा (**सानो**) पर्वत के एक शिखर से (**सानुम्**) दूसरे शिखर को (**भूरि**) बहुधा (**आरुहत्**) प्राप्त होता (**अस्पष्ट**) स्पर्श करता हुआ (**एजति**) क्रम से अपनी कक्षा में घूमता और घुमाता है, वैसे ही जो मनुष्य क्रम से एक कर्म को सिद्ध करके दूसरे को (**कर्त्त्वम्**) करने को (**भूरि**) बहुधा (**आरुहत्**) आरम्भ तथा (**अस्पष्ट**) स्पर्श करता हुआ (**एजति**) प्राप्त होता है, उस पुरुष के लिए (**इन्द्र.**) सर्वज्ञ ईश्वर उन कर्मों के करने को (**सानो**) अनुक्रम से (**अर्थम्**) प्रयोजन के विभाग के साथ (**भूरि**) अच्छी प्रकार (**चेतति**) प्रकाश करता है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे भी 'इव' शब्द की अनुवृत्ति से उपमालङ्कार समझना चाहिए । जैसे सूर्य्य अपने सम्मुख के पदार्थों का वायु के साथ बारबार क्रम से अच्छी प्रकार आक्रमण, आकर्षण और प्रकाश करके सब पृथिवी लोकों को घुमाता है, वैसे ही जो मनुष्य विद्या मे करने योग्य अनेक कर्मों को सिद्ध करने के लिए प्रवृत्त होता है, वही अनेक क्रियाओ मे सब कार्य्यों के करने को समर्थ हो सकता तथा ईश्वर की सृष्टि मे अनेक सुखो को प्राप्त होता, और उसी मनुष्य को ईश्वर भी अपनी कृपा दृष्टि से देखता है, आलसी को नही ॥ २ ॥

अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से ईश्वर और सूर्य्यलोक का प्रकाश किया है—

युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा ।

अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (**सोमपा**) उत्तम पदार्थों के रक्षक (**इन्द्र**) सब मे व्याप्त होनेवाले ईश्वर ! जैसे आपका रचा हुआ सूर्य्यलोक जो अपने (**केशिना**) प्रकाश युक्त बल और आकर्षण अर्थात् पदार्थों के खींचने का सामर्थ्य जो कि (**वृषणा**) वर्षा के हेतु और (**कक्ष्यप्रा**) अपनी-अपनी कक्षाओ मे उत्पन्न हुए पदार्थों को पूरण करने अथवा (**हरी**) हरण और व्याप्ति स्वभाववाले घोड़ो के समान और आकर्षण गुण हैं, उनको अपने-अपने कार्यों मे जोड़ता है, वैसे ही आप (**न**) हम लोगो का भी सब विद्या के प्रकाश के लिए उन विद्याओ मे (**युङ्क्ष्व**) युक्त कीजिए । (**अथ**) इसके अनन्तर आपकी स्तुति मे प्रवृत्त जो (**न**) हमारी (**गिराम्**) वाणी हैं, उनका (**उपश्रुतिम्**) श्रवण (**चर**) स्वीकार वा प्राप्त कीजिए ॥ ३ ॥

भावार्थ - इस मन्त्र मे लुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्यो को सब विद्या पढ़ने के पीछे उत्तम क्रियाओ की कुशलता मे प्रवृत्त होना चाहिए । जैसे सूर्य्य का उत्तम प्रकाश संसार मे वर्त्तमान है, वैसे ही ईश्वर के गुण और विद्या के प्रकाश का सब मे उपयोग करना चाहिए ॥ ३ ॥

मनुष्यों को परमेश्वर से क्या-क्या मांगना चाहिए, सो अगले मन्त्र मे प्रकाश किया है—

एहि स्तोमाँ अभि स्वराभि गृणीह्या रुव ।

ब्रह्म च नो वसो सचेन्द्र यज्ञं च वर्धय ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) स्तुति करने के योग्य परमेश्वर ! जैसे कोई सब विद्याओ से परिपूर्ण विद्वान् (**स्तोमान्**) आपकी स्तुतियो के अर्थों को (**अभिस्वर**) यथावत् स्वीकार करता-कराता वा गाता है, वैसे ही (**न**) हम लोगों को प्राप्त कीजिए । तथा हे (**वसो**) सब प्राणियों को बसाने वा उनमे बसनेवाले ! कृपा से इस प्रकार प्राप्त होके (**न**) हम लोगो के (**स्तोमान्**) वेदस्तुति के अर्थों को (**सचा**) विज्ञान और उत्तम कर्मों का संयोग कराके (**अभिस्वर**) अच्छी प्रकार उपदेश कीजिए (**ब्रह्म च**) और वेदार्थ को (**अभिगृणीहि**) प्रकाशित कीजिए । (**यज्ञं च**) हमारे लिए होम, ज्ञान और शिल्पविद्यारूप क्रियाओ को (**वर्धय**) नित्य बढ़ाइए ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे लुप्तोपमालङ्कार है । जो पुरुष वेदविद्या वा सत्य के संयोग से परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करते हैं, उनके हृदय मे ईश्वर अन्तर्यामिरूप से वेदमन्त्रो के अर्थों को यथावत् प्रकाश करके निरन्तर उनके लिए सुख का प्रकाश करता है, इससे उन पुरुषो से विद्या और पुरुषार्थ कभी नष्ट नहीं होते ॥ ४ ॥

फिर भी ईश्वर किस प्रकार का है, इस विषय का अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे ।

शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत्सख्येषु च ॥ ५ ॥

पदार्थ—(**यथा**) जैसे कोई मनुष्य अपने (**सुतेषु**) सन्तानों और (**सख्येषु**) मित्रों के उपकार करने को प्रवृत्त होके सुखी होता है, वैसे ही (**शक्र**) सर्वशक्तिमान जगदीश्वर (**पुरुनिष्षिधे**) पुष्कल शास्त्रो को पढने-पढ़ाने और धर्मयुक्त कामों मे विचरनेवाले (**इन्द्राय**) सब के मित्र और ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाले धार्मिक जीव के लिए (**वर्धनम्**) विद्या आदि गुणों के बढ़ानेवाले (**शंस्यम्**) प्रशंसा (**च**) और (**उक्थम्**) उपदेश करने योग्य वेदोक्त स्तोत्रों के अर्थों का (**रारणत्**) अच्छी प्रकार प्रकाश करके सुखी बना रहे ॥ ५ ॥

भावार्थ इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । इस संसार मे जो-जो शोभायुक्त रचना, प्रशंसा और धन्यवाद हैं, वे सब परमेश्वर ही की अनन्त शक्ति का प्रकाश करते हैं, क्योंकि जैसे सिद्ध किये हुए पदार्थों मे प्रशंसायुक्त रचना के अनेक गुण उन पदार्थों के रचनेवाले की ही प्रशंसा के हेतु है, वैसे ही परमेश्वर की प्रशंसा जानने वा प्रार्थना के लिए है । इस कारण जो-जो पदार्थ हम ईश्वर से प्रार्थना के साथ चाहते हैं, सो-सो हमारे अत्यन्त पुरुषार्थ के द्वारा ही प्राप्त होने योग्य है, केवल प्रार्थनामात्र से नही ॥ ५ ॥

किस-किस पदार्थ की प्राप्ति के लिए ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिए, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

तमित्सखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्य्ये ।

स शक्र उत नः शकदिन्द्रो वसु दयमानः ॥ ६ ॥

पदार्थ—जो (**न**) हमारे लिए (**दयमान**) सुखपूर्वक रमण करने योग्य विद्या, आरोग्यता और सुवर्णादि धन का देनेवाला, विद्यादि गुणों का प्रकाशक और निरन्तर रक्षक तथा दुःख दोष वा शत्रुओ के विनाश और अपने धार्मिक सज्जन भक्तों के ग्रहण करने (**शक्र**) अनन्त सामर्थ्ययुक्त (**इन्द्र**) दुःखो का विनाश करनेवाला जगदीश्वर है, वही (**वसु**) विद्या और चक्रवर्त्ति राज्यादि परम धन देने को (**शकत्**) समर्थ है, (**तमित्**) उसी को हम लोग (**उत**) वेदादि शास्त्र, सब विद्वान्, प्रत्यक्षादि प्रमाण और अपने भी निश्चय से (**सखित्वे**) मित्रो और अच्छे कर्मों के होने के निमित्त (**तम्**) उसको (**राये**) पूर्वोक्त विद्यादि धन के अर्थ और (**तम्**) उसी को (**सुवीर्य्ये**) श्रेष्ठ गुणो से युक्त उत्तम पराक्रम की प्राप्ति के लिए (**ईमहे**) याचते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यो को उचित है कि सब सुख और शुभ गुणों की प्राप्ति के लिए परमेश्वर ही की प्रार्थना करे, क्योंकि वह अद्वितीय, सर्वमित्र, परमैश्वर्य्य वाला, अनन्त शक्तिमान् ही उक्त पदार्थों के देने मे समर्थ है ॥ ६ ॥

यह उन्नीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अगले मन्त्र मे इन्द्र शब्द से ईश्वर और सूर्य्यलोक का प्रकाश किया है—

सुविवृतं सुनिरजमिन्द्र त्वादातमिद्यशः ।

गवामप व्रजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः ॥ ७ ॥

पदार्थ—जैसे यह (**अद्रिव**) उत्तम प्रकाशादि धनवाला (**इन्द्र**) सूर्य्यलोक (**सुनिरजम्**) सुख से प्राप्त होने योग्य (**त्वादातम्**) उसी से सिद्ध होनेवाले (**यश**) जल को (**सुविवृतम्**) अच्छी प्रकार विस्तार को प्राप्त (**गवाम्**) किरणो के (**व्रजम्**) समूह को संसार मे प्रकाश होने के लिए (**अपवृधि**) फैलाता तथा (**राध**) धन को प्रकाशित (**कृणुष्व**) करता है, वैसे हे (**अद्रिव**) प्रशंसा करने योग्य (**इन्द्र**) महायशस्वी सब पदार्थों के यथायोग्य बाँटने वाले परमेश्वर ! आप हम लोगो के लिए (**गवाम्**) अपने विषय को प्राप्त होनेवाली मन आदि इन्द्रियो के ज्ञान और उत्तम-उत्तम सुख देनेवाले पशुओ के (**व्रजम्**) समूह को (**अपवृधि**) प्राप्त करके उनके सुख के दरवाजे खोल तथा (**सुविवृतम्**) देश-देशान्तर मे प्रसिद्ध और (**सुनिरजम्**) सुख से करने और व्यवहारों मे यथायोग्य प्रतीत होने के योग्य (**यश**) कीर्ति को बढ़ानेवाले अत्युत्तम (**त्वादातम्**) आपके ज्ञान से शुद्ध किया हुआ (**राध**) जिससे कि अनेक सुख सिद्ध हों, ऐसे विद्या सुवर्णादि धन को हमारे लिए (**कृणुष्व**) कृपा करके प्राप्त कीजिए ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेष और लुप्तोपमालङ्कार हैं । हे परमेश्वर ! जैसे आपने सूर्य्यादि जगत् को उत्पन्न करके अपना यश और संसार का सब सुख प्रसिद्ध किया है, वैसे ही आप की कृपा से हम लोग भी अपने मन आदि इन्द्रियों को शुद्धि के साथ विद्या और धर्म के प्रकाश से युक्त तथा सुखपूर्वक सिद्ध और अपनी कीर्ति, विद्या-धन और चक्रवर्त्ति राज्य का प्रकाश करके सब मनुष्यों को निरन्तर आनन्दित और कीर्तिमान् करें ॥ ७ ॥

फिर अगले मन्त्रों में ईश्वर का प्रकाश किया है—

नहि त्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः ।

जेषः स्वर्वतीरपः सं गा अस्मभ्यं धूनुहि ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे परमेश्वर ! ये (**उभे**) दोनों (**रोदसी**) सूर्य्य और पृथिवी

जिस (महाममानमम्) पूजा करने योग्य आपकी (नहि) नहीं (इन्वतः) व्याप्त हो सकते, सो आप हम लोगों के लिए (स्वर्वतीः) जिनसे हमको अत्यन्त सुख मिले ऐसे (अपः) कर्मों को (जेषः) विजयपूर्वक प्राप्त करने के लिए हमारे (गाः) इन्द्रियों को (संधूनुहि) अच्छी प्रकार पूर्वोक्त कार्यों में संयुक्त कीजिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—जब कोई पूछे कि ईश्वर कितना बड़ा है, तो उसका उत्तर यह है कि जिसको सब आकाश आदि बड़े-बड़े पदार्थ भी घेर में नहीं ला सकते, क्योंकि वह अनन्त है। इससे सब मनुष्यों को उचित है कि उसी परमात्मा का सेवन, उत्तम-उत्तम कर्म करने और श्रेष्ठ पदार्थों की प्राप्ति के लिए उसी की प्रार्थना करते रहें। जब जिसके गुण और कर्मों की गणना कोई नहीं कर सकता, तो कोई उसके अन्त पाने को समर्थ कैसे हो सकता है ? ॥ ८ ॥

आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद्दधिष्व मे गिरः ।
इन्द्र स्तोममिमं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम् ॥ ९ ॥

पदार्थ—(आश्रुत्कर्ण) हे निरन्तर श्रवणशक्तिरूप कर्णवाले (इन्द्र) सर्वान्तर्यामि परमेश्वर ! (चित्) जैसे प्रीति बढ़ानेवाले मित्र अपनी (युजः) सत्य विद्या और उत्तम-उत्तम गुणों में युक्त होनेवाले मित्र की (गिरः) वाणियों को प्रीति के साथ सुनता है, वैसे ही आप (नु) शीघ्र ही (मे) मेरी (गिरः) स्तुति तथा (हवम्) ग्रहण करने योग्य सत्य वचनों को (श्रुधि) सुनिए। तथा (मम) मेरी (स्तोमम्) स्तुतियों के समूह को (अन्तरम्) अपने ज्ञान के बीच (दधिष्व) धारण करके (युजः) पूर्वोक्त कामों में उक्त प्रकार से युक्त हुए हम लोगों को (अन्तरम्) भीतर की शुद्धि को (कृष्व) कीजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि जो सर्वज्ञ जीवों के किये हुए वाणी के व्यवहारों का यथावत् श्रवण करनेहारा, सर्वाधार, अन्तर्यामी, जीव और अन्तःकरण की यथावत् शुद्धि का हेतु तथा सब का मित्र ईश्वर है, वही एक जानने वा प्रार्थना करने योग्य है ॥ ९ ॥

फिर भी मनुष्य परमेश्वर को कैसा जानें, इस विषय का अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

विद्मा हि त्वा वृषन्तमं वाजेषु हवनश्रुतम् ।
वृषन्तमस्य हूमह ऊतिं सहस्रसातमाम् ॥ १० ॥

पदार्थ—हे परमेश्वर ! हम लोग (वाजेषु) संग्रामों में (हवनश्रुतम्) प्रार्थना को सुनने योग्य और (वृषन्तमम्) अभीष्ट कामों के अच्छी प्रकार देने और जाननेवाले (त्वा) आपको (विद्म) जानते हैं, (हि) जिस कारण हम लोग (वृषन्तमस्य) अतिशय करके श्रेष्ठ कामों को मेघ के समान वर्षानेवाले (तव) आपकी (सहस्रसातमाम्) अच्छी प्रकार अनेक सुखों को देनेवाली जो (ऊतिम्) रक्षा, प्राप्ति और विज्ञान हैं, उनको (हूमहे) अधिक-से-अधिक मानते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को सब कामों की सिद्धि देने और युद्ध में शत्रुओं के विजय के हेतु परमेश्वर ही देनेवाला है, जिसने इस संसार में सब प्राणियों के सुख के लिए असंख्यात पदार्थ उत्पन्न वा रक्षित किये हैं, उस परमेश्वर वा उसकी आज्ञा का आश्रय करके सर्वथा उपाय के साथ अपना वा सब मनुष्यों का सब प्रकार से सुख सिद्ध करना चाहिए ॥ १० ॥

फिर परमेश्वर कैसा और मनुष्यों के लिए क्या करता है, इस विषय का अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब ।
नव्यमायुः प्र सू तिर कृधी सहस्रसामृषिम् ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (कौशिक) सब विद्याओं के उपदेशक और उनके अर्थों के निरन्तर प्रकाश करनेवाले (इन्द्र) सर्वानन्दस्वरूप परमेश्वर ! (मन्दसानः) आप उत्तम-उत्तम स्तुतियों को प्राप्त हुए और सब को यथायोग्य जानते हुए (नः) हम लोगों के (सुतम्) यत्न से उत्पन्न किये हुए सोमादि रस वा प्रिय शब्दों से की हुई स्तुतियों का (आ) अच्छी प्रकार (पिब) पान कराइए (तु) और कृपा करके हमारे लिए (नव्यम्) नवीन (आयुः) अर्थात् निरन्तर जीवन को (प्रसूतिर) दीजिए, तथा (नः) हम लोगों में (सहस्रसाम्) अनेक विद्याओं के प्रकट करने वाले (ऋषिम्) वेदवक्ता पुरुष को भी (कृधि) कीजिए ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपने प्रेम से विद्या का उपदेश करनेवाला होकर अर्थात् सभी के लिए सब विद्याओं का प्रकाश सर्वदा शुद्ध परमेश्वर की स्तुति के साथ आश्रय करते हैं, वे सुख और विद्यायुक्त पूर्ण आयु तथा ऋषि भाव को प्राप्त होकर सब विद्या चाहनेवाले मनुष्यों को प्रेम के साथ उत्तम-उत्तम विद्या से विद्वान् करते हैं ॥ ११ ॥

उक्त सब स्तुति ईश्वर ही के गुणों का कीर्त्तन करती हैं, इस विषय का अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः ।
वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (गिर्वणः) वेदों तथा विद्वानों की वाणियों से स्तुति को प्राप्त होने योग्य परमेश्वर ! (विश्वतः) इस संसार में (इमाः) जो वेदोक्त वा विद्वान् पुरुषों की कही हुई (गिरः) स्तुति हैं, वे (परि) सब प्रकार से सब की स्तुतियों से सेवन करने योग्य जो आप हैं, उनको (भवन्तु) प्रकाश करनेहारी हों, और इसी प्रकार (वृद्धयः) वृद्धि को प्राप्त होने योग्य (जुष्टा.) प्रीति की देनेवाली स्तुतियाँ (जुष्टयः) जिनसे सेवन करते हैं, वे (वृद्धायुम्) जो कि निरन्तर सब कार्यों में अपनी उन्नति को आप ही बढ़ानेवाले आप का (अनुभवन्तु) अनुभव करें ॥ १२ ॥

भावार्थ—हे भगवन् परमेश्वर ! जो-जो अत्युत्तम प्रशंसा है सो-सो आपकी ही है, तथा जो-जो सुख और आनन्द की वृद्धि होती है सो-सो आप ही को सेवन करके विशेष वृद्धि को प्राप्त होती है। इस कारण जो मनुष्य ईश्वर तथा सृष्टि के गुणों का अनुभव करते हैं, वे ही प्रसन्न और विद्या की वृद्धि को प्राप्त होकर संसार में पूज्य होते हैं ॥ १२ ॥

जो लोग क्रम से विद्या आदि शुभ गुणों को ग्रहण और ईश्वर की प्रार्थना करके अपने उत्तम पुरुषार्थ का आश्रय लेकर परमेश्वर की प्रशंसा और धन्यवाद करते हैं, वे ही अविद्या आदि दुष्ट गुणों की निवृत्ति से शत्रुओं को जीत कर तथा अधिक अवस्थावाले और विद्वान् होकर सब मनुष्यों को सुख उत्पन्न करके सदा आनन्द में रहते हैं। इस अर्थ से इस दशम सूक्त की सङ्गति नवम सूक्त के साथ जाननी चाहिए ॥ १२ ॥ १० ॥ २० ॥

यह दशम सूक्त और बीसवाँ वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अथाष्टर्चस्यैकादशसूक्तस्य जेता माधुच्छन्दस ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब ग्यारहवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है। तथा पहले मन्त्र में इन्द्र शब्द से ईश्वर वा विजय करनेवाले पुरुष का उपदेश किया है—

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ १ ॥

पदार्थ—हमारी ये (विश्वाः) सब (गिरः) स्तुतियाँ (समुद्रव्यचसम्) जो आकाश में अपनी व्यापकता से परिपूर्ण ईश्वर, वा जो नौका आदि पूर्ण सामग्री से शत्रुओं को जीतनेवाले मनुष्य (रथीनाम्) जो बड़े-बड़े युद्धों में विजय कराने वा करनेवाले (रथीतमम्) जिसमें पृथिवी आदि रथ अर्थात् सब क्रीडाओं के साधन, तथा जिसके युद्ध के साधन बड़े-बड़े रथ हैं, (वाजानाम्) अच्छी प्रकार जिनमें जय और पराजय प्राप्त होते हैं, उनके बीच (सत्पतिम्) जो विनाशरहित प्रकृति आदि द्रव्यों का पालन करनेवाला ईश्वर, वा सत्पुरुषों की रक्षा करनेहारा मनुष्य (पतिम्) जो चराचर जगत् और प्रजा के स्वामी, वा सज्जनों की रक्षा करनेवाले और (इन्द्रम्) विजय के देनेवाले परमेश्वर के वा शत्रुओं को जीतनेवाले धर्मात्मा मनुष्य के (अवीवृधन्) गुणानुवादों को नित्य बढ़ाती रहें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। सब वेदवाणी परमैश्वर्य्ययुक्त, सब में रहने, सब जगह रमण करने, सत्य स्वभाव तथा धर्मात्मा सज्जनों को विजय देनेवाले परमेश्वर और धर्म वा बल से दुष्ट मनुष्यों को जीतने तथा धर्मात्मा वा सज्जन पुरुषों की रक्षा करनेवाले मनुष्य का प्रकाश करती है। इस प्रकार परमेश्वर वेदवाणी से सब मनुष्यों को आज्ञा देता है ॥ १ ॥

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (शवसः) अनन्तबल वा सेनाबल के (पते) पालन करनेहारे ईश्वर वा अध्यक्ष ! (अभिजेतारम्) प्रत्यक्ष शत्रुओं को जिताने वा जीतनेवाले (अपराजितम्) जिस का पराजय कोई भी न कर सके (त्वा) उस आप को (वाजिनः) उत्तम विद्या वा बल से अपने शरीर के उत्तम बल वा समुदाय को जानते हुए हम लोग (प्रणोनुमः) अच्छी प्रकार आप की वार-वार स्तुति करते हैं, जिससे (इन्द्र) हे सब प्रजा वा सेना के स्वामी ! (ते) आप जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष के साथ (सख्ये) हम लोग मित्रभाव करके शत्रुओं वा दुष्टों से कभी (मा भेम) भय न करें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा के पालने वा अपने धर्मानुष्ठान से परमात्मा तथा शूरवीर आदि मनुष्यों में मित्रभाव अर्थात् प्रीति रखते हैं, वे बलवाले होकर किसी मनुष्य से पराजय वा भय को प्राप्त कभी नहीं होते ॥ २ ॥

पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः ।
यदी वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—(यदि) जो परमेश्वर वा सभा और सेना का स्वामी (स्तोतृभ्यः) जो जगदीश्वर वा सृष्टि के गुणों की स्तुति करने वाले धर्मात्मा विद्वान् मनुष्य हैं, उनके लिए (वाजस्य) जिसमें सब सुख प्राप्त होते हैं उस व्यवहार, तथा (गोमतः) जिसमें उत्तम पृथिवी, गौ आदि पशु और वाणी आदि इन्द्रियाँ वर्तमान हैं, उसके सम्बन्धी (मघम्) विद्या और सुवर्णादि धन को (मंहते) देता है, तो इस (इन्द्रस्य) परमेश्वर तथा सभा सेना के स्वामी की (पूर्वीः) सनातन प्राचीन (रातयः) दानशक्ति तथा (ऊतयः) रक्षा हैं, वे कभी (न) नहीं (विदस्यन्ति) नाश को प्राप्त होतीं, किन्तु नित्य प्रति वृद्धि ही को प्राप्त रहती हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में भी श्लेषालङ्कार है। जैसे ईश्वर वा राजा की इस संसार में दान और रक्षा निश्चल न्याययुक्त होती हैं, वैसे अन्य मनुष्यों को भी प्रजा के बीच में विद्या और निर्भयता का निरन्तर विस्तार करना चाहिए। जो ईश्वर न

होता तो यह जगत् कैसे उत्पन्न होता ? तथा जो ईश्वर सब पदार्थों को उत्पन्न करके सब मनुष्यों के लिए नहीं देता तो मनुष्य लोग कैसे जी सकते ? इस से सब कार्य्यों का उत्पन्न करने और सब सुखों का देने वाला ईश्वर ही है, अन्य कोई नहीं, यह बात सब को माननी चाहिए ॥ ३ ॥

फिर अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से सूर्य्य और सेनापति के गुणों का उपदेश किया है–

पुराम्भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।

इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ ४ ॥

पदार्थ– जो यह (**अमितौजा**) अनन्त बल वा जलवाला (**वज्री**) जिसके सब पदार्थों को प्राप्त करानेवाले शस्त्रसमूह वा किरण हैं, और (**पुराम्**) भिन्न हुए शत्रुओं के नगरों वा पदार्थों का (**भिन्दुः**) अपने प्रताप वा ताप से नाश वा अलग-अलग करने (**युवा**) अपने गुणों से पदार्थों का मेल करने वा कराने तथा (**कविः**) राजनीति, विद्या वा दृश्य पदार्थों का अपने किरणों से प्रकाश करने वाला (**पुरुष्टुतः**) बहुत विद्वान् वा गुणों से स्तुति करने योग्य (**इन्द्रः**) सेनापति और सूर्य्यलोक (**विश्वस्य**) सब जगत् के (**कर्मणः**) कार्यों का (**धर्ता**) अपने बल और आकर्षण गुण से धारण करने वाला (**अजायत**) उत्पन्न होता और हुआ है, वह सदा जगत् के व्यवहारों की सिद्धि का हेतु है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जैसे ईश्वर का रचा और धारण किया हुआ यह सूर्य्य लोक अपने वज्र रूपी किरणों से सब मूर्तिमान् पदार्थों का अलग-अलग करने तथा बहुत से गुणों का हेतु और अपने आकर्षण रूप गुण से पृथिवी आदि लोकों का धारण करने वाला है, वैसे ही सेनापति को उचित है कि शत्रुओं के बल का छेदन साम, दाम और दण्ड से शत्रुओं को भिन्न-भिन्न करके बहुत उत्तम गुणों को ग्रहण करता हुआ भूमि में अपने राज्य का पालन करे ॥ ४ ॥

फिर भी अगले मन्त्र में सूर्य्य के गुणों का उपदेश किया है–

त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम् ।

त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ॥ ५ ॥

पदार्थ– (**अद्रिवः**) जिसमें मेघ विद्यमान है ऐसा जो सूर्य्यलोक है, वह (**गोमतः**) जिसमें अपने किरण विद्यमान हैं उस (**अबिभ्युषः**) भयरहित (**वलस्य**) मेघ के (**बिलम्**) जलसमूह को (**अपावः**) अलग-अलग कर देता है, (**त्वाम्**) इस सूर्य्य को (**तुज्यमानासः**) अपनी-अपनी कक्षाओं में भ्रमण करते हुए (**देवाः**) पृथिवी आदिलोक (**आविषुः**) विशेष करके प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ– जैसे सूर्य्यलोक अपनी किरणों से मेघ के कठिन-कठिन बद्दलों को छिन्न-भिन्न करके भूमि पर गिराता हुआ जल की वर्षा करता है क्योंकि यह मेघ उसकी किरणों में ही स्थिर रहता, तथा इसके चारों ओर आकर्षण अर्थात् खींचने के गुणों से पृथिवी आदि लोक अपनी-अपनी कक्षा में उत्तम-उत्तम नियम से घूमते हैं, इसीसे समय के विभाग जो उत्तरायण, दक्षिणायन तथा ऋतु मास पक्ष, दिन, घड़ी पल आदि हो जाते हैं, वैसे ही गुण वाला सेनापति होना उचित है ॥ ५ ॥

अब अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से शूरवीर के गुणों का उपदेश किया है—

तवाहं शूर रातिभिः प्रत्यायं सिन्धुमावदन् ।

उपातिष्ठन्त गिर्वणो विदुष्टे तस्य कारवः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (**शूर**) धार्मिक घोर युद्ध से दुष्टों की निवृत्ति करने तथा विद्या, बल, पराक्रम वाले वीर पुरुष ! जो (**तव**) आपके निर्भयता आदि दानों से मैं (**सिन्धुम्**) समुद्र के समान गम्भीर वा सुख देनेवाले आपको (**आवदन्**) निरन्तर कहता हुआ (**प्रत्यायम्**) प्रतीत करके प्राप्त होऊँ । हे (**गिर्वणः**) मनुष्यों की स्तुतियों से सेवन करने योग्य ! जो (**ते**) आपके (**तस्य**) युद्ध राज्य वा शिल्पविद्या के सहायक (**कारवः**) कारीगर हैं, वे भी आप को शूरवीर (**विदुः**) जानते तथा (**उपातिष्ठन्त**) समीपस्थ होकर उत्तम काम करते हैं, वे सब दिन सुखी रहते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ– इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता है कि – जैसे मनुष्यों को धार्मिक प्रशंसनीय सभाध्यक्ष वा सेनापति मनुष्यों के अभयदान से निर्भयता को प्राप्त होकर जैसे समुद्र के गुणों को जानते हैं वैसे ही उक्त पुरुष के आश्रय से अच्छी प्रकार जानकर उनको प्रसिद्ध करना चाहिए तथा दुष्टों के निवारण से सब सुखों के लिए परस्पर विचार भी करना चाहिए ॥ ६ ॥

फिर भी अगले मन्त्र में सूर्य्य के गुणों का उपदेश किया है—

मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः ।

विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेषां श्रवांस्युत्तिर ॥ ७ ॥

पदार्थ– हे परमैश्वर्य्य को प्राप्त कराने तथा शत्रुओं की निवृत्ति कराने वाले शूरवीर मनुष्य ! (**त्वम्**) तू उत्तम बुद्धि, सेना तथा शरीर के बल से युक्त होके (**मायाभिः**) विशेष बुद्धि के व्यवहारों से (**शुष्णम्**) जो धर्मात्मा सज्जनों का चित्त व्याकुल करने (**मायिनम्**) दुर्बुद्धि, दुःख देने वाला सब का शत्रु मनुष्य है, उसका (**अवातिरः**) पराजय किया कर, (**तस्य**) उसके मारने में (**मेधिराः**) जो शास्त्रों को जानने तथा दुष्टों का मारने में अति प्रवीण मनुष्य हैं, वे (**ते**) तेरे सङ्ग्राम में सुखी और अन्नादि पदार्थों को प्राप्त हों (**तेषाम्**) उन धर्मात्मा पुरुषों के सहाय से शत्रुओं के बलों को (**उत्तिर**) अच्छी प्रकार निवारण कर ॥ ७ ॥

भावार्थ—बुद्धिमान् मनुष्यों को ईश्वर आज्ञा देता है कि—साम, दाम, दण्ड और भेद की युक्ति से दुष्ट और शत्रुजनों की निवृत्ति करके विद्या और चक्रवर्ति राज्य की यथावत् उन्नति करनी चाहिए । तथा जैसे इस संसार में कपटी, छली और दुष्ट पुरुष वृद्धि को प्राप्त न हों, वैसा उपाय निरन्तर करना चाहिए ॥ ७ ॥

अगले मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमा अनूषत ।

सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥ ८ ॥

पदार्थ– (**यस्य**) जिस जगदीश्वर के ये सब (**स्तोमाः**) स्तुतियों के समूह (**सहस्रम्**) हजारों (**उत वा**) अथवा (**भूयसीः**) अधिक (**रातयः**) दान (**सन्ति**) हैं, उस (**ओजसा**) अनन्त बल के साथ वर्त्तमान (**ईशानम्**) कारण से सब जगत् को रचने वाले तथा (**इन्द्रम्**) सकल ऐश्वर्ययुक्त जगदीश्वर के (**अभ्यनूषत**) सब प्रकार से गुण कीर्त्तन करते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ– जिस दयालु ईश्वर ने प्राणियों के सुख के लिए जगत् में अनेक उत्तम-उत्तम पदार्थ अपने पराक्रम से उत्पन्न करके जीवों को दिये हैं, उसी ब्रह्म के स्तुतिविषयक सब धन्यवाद होते हैं, इसलिए सब मनुष्यों को उसी का आश्रय लेना चाहिए ॥ ८ ॥

इस सूक्त में इन्द्र शब्द से ईश्वर की स्तुति, निर्भयता-सम्पादन, सूर्य्यलोक के कार्य्य, शूरवीर के गुणों का वर्णन, दुष्ट शत्रुओं का निवारण, प्रजा की रक्षा तथा ईश्वर के अनन्त सामर्थ्य से कारण के द्वारा जगत् की उत्पत्ति आदि के विधान से इस ग्यारहवें सूक्त की सङ्गति दशवें सूक्त के अर्थ के साथ जाननी चाहिए ।

यह प्रथम मण्डल में तीसरा अनुवाक, ग्यारहवाँ सूक्त और इक्कीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ द्वादशर्चस्य द्वादशसूक्तस्य काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब बारहवें सूक्त के प्रथम मन्त्र में भौतिक अग्नि के गुणों का उपदेश किया है—

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥

पदार्थ– क्रिया करने की इच्छा करने वाले हम मनुष्य लोग (**अस्य**) प्रत्यक्ष सिद्ध करने योग्य (**यज्ञस्य**) शिल्पविद्यारूप यज्ञ के (**सुक्रतुम्**) जिससे उत्तम-उत्तम क्रिया सिद्ध होती हैं तथा (**विश्ववेदसम्**) जिस से कारीगरों को सब शिल्प आदि साधनों का लाभ होता है, (**होतारम्**) यानों में वेग आदि को देने (**दूतम्**) पदार्थों को एक देश से दूसरे देश को प्राप्त करने (**अग्निम्**) सब पदार्थों को अपने तेज से छिन्न-भिन्न करने वाले भौतिक अग्नि को (**वृणीमहे**) स्वीकार करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ– ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता है कि यह प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष से विद्वानों ने जिसके गुण प्रसिद्ध किये हैं तथा पदार्थों को ऊपर नीचे पहुँचाने से दूत स्वभाव तथा शिल्पविद्या से जो कलायन्त्र बनते हैं, उनके चलाने में हेतु और विमान आदि यानों में वेग आदि क्रियाओं का देने वाला भौतिक अग्नि अच्छी प्रकार विद्या से सब सज्जनों के उपकार के लिए निरन्तर ग्रहण करना चाहिए, जिससे सब उत्तम-उत्तम सुख हों ॥ १ ॥

अब अगले मन्त्र में दो प्रकार के अग्नि का उपदेश किया है—

अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥

पदार्थ– जैसे हम लोग (**हवीमभिः**) ग्रहण करने योग्य उपासनादिकों तथा शिल्पविद्या के साधनों से (**पुरुप्रियम्**) बहुत सुख कराने वाले (**विश्पतिम्**) प्रजाओं के पालन हेतु और (**हव्यवाहम्**) देने लेने योग्य पदार्थों को देने और इधर-उधर पहुँचाने वाले (**अग्निम्**) परमेश्वर, प्रसिद्ध अग्नि और बिजुली को (**वृणीमहे**) स्वीकार करते हैं, वैसे ही तुम लोग भी सदा (**हवन्त**) उस का ग्रहण करो ॥ २ ॥

भावार्थ– इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । और पिछले मन्त्र से 'वृणीमहे' इस पद की अनुवृत्ति आती है । ईश्वर सब मनुष्यों के लिए उपदेश करता है कि—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को विद्युत् अर्थात् बिजुली रूप तथा प्रत्यक्ष भौतिक अग्नि से कलाकौशल आदि सिद्ध करके इष्ट सुख सदैव भोगने और भुगवाने चाहिएँ ॥ २ ॥

अगले मन्त्र में अग्नि शब्द से ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है –

अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ॥ ३ ॥

पदार्थ– हे (**अग्ने**) स्तुति करने योग्य जगदीश्वर ! जो आप (**इह**) इस स्थान में (**जज्ञानः**) प्रकट कराने वा (**होता**) हवन किये हुए पदार्थों को ग्रहण करने तथा (**ईड्यः**) खोज करने योग्य (**असि**) हैं, सो (**नः**) हम लोग और (**वृक्तबर्हिषे**) अन्तरिक्ष में होम के पदार्थों को प्राप्त करनेवाले विद्वान् के लिए (**देवान्**) दिव्यगुणयुक्त पदार्थों को (**आवह**) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिए ॥ ३ ॥

जो (**होता**) हवन किये हुए पदार्थों का ग्रहण करने तथा (**जज्ञानः**) उनकी उत्पत्ति करानेवाला (**अग्ने**) भौतिक अग्नि (**वृक्तबर्हिषे**) जिसके द्वारा होम करने योग्य पदार्थ अन्तरिक्ष में पहुँचाये जाते हैं, वह उस ऋत्विज् के लिए (**इह**) इस स्थान में (**देवान्**) दिव्यगुणयुक्त पदार्थों को (**आवह**) सब प्रकार से प्राप्त करता है । इस कारण (**नः**) हम लोगों को वह (**ईड्यः**) खोज करने योग्य (**असि**) होता है ॥ २ ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिस प्रत्यक्ष अग्नि में सुगन्धि आदि गुणयुक्त पदार्थों का होम किया करते हैं, जो उन पदार्थों के साथ अन्तरिक्ष में ठहरनेवाले वायु और मेघ के जल को शुद्ध करके इस संसार में

दिव्य सुख उत्पन्न करता है, इस कारण हम लोगों को इस अग्नि के गुणों की खोज करना चाहिए, यह ईश्वर की आज्ञा सब को अवश्य माननी योग्य है ॥ ३ ॥

अगले मन्त्र में भौतिक अग्नि के गुणों का उपदेश किया है—

ताँ उ॑श॒तो वि बो॑धय॒ यद॑ग्ने॒ यासि॑ दू॒त्य॑म् । दे॒वैरा स॑त्सि ब॒र्हिषि॑ ॥४॥

पदार्थ—यह (**अग्ने**) अग्नि (**यत्**) जिस कारण (**बर्हिषि**) अन्तरिक्ष में (**देवैः**) दिव्य पदार्थों के संयोग से (**दूत्यम्**) दूत भाव को (**आयासि**) सब प्रकार से प्राप्त होता है, (**तान्**) उन दिव्य गुणों को (**विबोधय**) विदित कराने वाला होता और उन पदार्थों के (**असित**) दोषों का विनाश करता है, इस से सब मनुष्यों को विद्या सिद्धि के लिए इस अग्नि की ठीक-ठीक परीक्षा करके प्रयोग करना चाहिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—परमेश्वर आज्ञा देता है कि— हे मनुष्यो ! यह अग्नि तुम्हारा दूत है, क्योंकि हवन किये हुए परमाणुरूप पदार्थों को अन्तरिक्ष में पहुँचाता और उत्तम उत्तम भोगों की प्राप्ति का हेतु है । इस से सब मनुष्यों को अग्नि के जो प्रसिद्ध गुण हैं, उनको संसार में अपने कार्य्यों की सिद्धि के लिए अवश्य प्रकाशित करना चाहिए ॥ ४ ॥

उक्त अग्नि फिर भी क्या करता है, सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—

घृता॑हवन दीदिवः॒ प्रति॑ ष्म॒ रिष॑तो दह । अग्ने॒ त्वं र॑क्ष॒स्विनः॑ ॥ ५ ॥

पदार्थ—(**घृताहवन**) जिसमें घी तथा जल क्रिया सिद्ध होने के लिए छोड़ा जाता और जो अपने (**दीदिवः**) शुभ गुणों से पदार्थों को प्रकाश करने वाला है, (**त्वम्**) वह (**अग्ने**) अग्नि (**रक्षस्विनः**) जिन समूहों में राक्षस अर्थात् दुष्ट-स्वभाववाले और निन्दा से भरे हुए मनुष्य विद्यमान हैं, तथा जो (**रिषतः**) हिंसा के हेतु दोष और शत्रु हैं उनका (**प्रति दह स्म**) अनेक प्रकार से विनाश करता है, हम लोगों को चाहिए कि उस अग्नि को कार्यों में नित्य संयुक्त करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो अग्नि इस प्रकार सुगन्ध्यादि गुणवाले पदार्थों से संयुक्त होकर सब दुर्गन्ध आदि दोषों को निवारण करके सब के लिए सुखदायक होता है, वह अच्छे प्रकार काम में लाना चाहिए । ईश्वर का यह वचन सब मनुष्यों को मानना उचित है ॥ ५ ॥

वह अग्नि कैसे प्रकाशित होता और किस प्रकार का है, सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

अ॒ग्निना॒ग्निः समि॑ध्यते क॒विर्गृ॒हप॑ति॒र्युवा॑ । ह॒व्य॒वाड् जु॒ह्वा॑स्यः ॥ ६ ॥

पदार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जो (**जुह्वास्यः**) जिस का मुख ज्वाला तेज और (**कविः**) क्रान्तदर्शन अर्थात् जिसमें स्थिरता के साथ दृष्टि नहीं पड़ती, तथा जो (**युवा**) पदार्थों के साथ मिलने और उनको पृथक्-पृथक् करने (**हव्यवाट्**) होम किये हुए पदार्थों को देशान्तरों में पहुँचाने और (**गृहपतिः**) स्थान तथा उनमें रहने वालों का पालन करनेवाला है, उससे (**अग्निः**) यह प्रत्यक्ष रूपवान् पदार्थों को जलाने, पृथिवी और सूर्य्यलोक में ठहरनेवाला अग्नि (**अग्निना**) बिजुली से (**समिध्यते**) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता है, उसे बहुत कामों को सिद्ध करने के लिए प्रयुक्त करना चाहिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो यह सब पदार्थों में मिला हुआ विद्युद्रूप अग्नि कहाता है, उसी से प्रत्यक्ष यह सूर्य्यलोक और भौतिक अग्नि प्रकाशित होते हैं, और फिर जिसमें छिपे हुए विद्युद्रूप होके रहते हैं, जो इनके गुण और विद्या को ग्रहण करके मनुष्य लोग उपकार करें, तो उनसे अनेक व्यवहार सिद्ध होकर उनको अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति होती है, यह जगदीश्वर का वचन है ॥ ६ ॥

अगले मन्त्र में अग्नि शब्द से ईश्वर का उपदेश किया है—

क॒विम॒ग्निमुप॑ स्तुहि स॒त्यध॑र्माणमध्व॒रे । दे॒वम॑मीव॒चात॑नम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! तू (**अध्वरे**) उपासना करने योग्य व्यवहार में (**सत्यधर्माणम्**) जिसके धर्म नित्य और सनातन हैं, जो (**अमीवचातनम्**) अज्ञान आदि दोषों का विनाश करने तथा (**कविम्**) सब की बुद्धियों को अपने सर्वज्ञता से प्राप्त होकर (**देवम्**) सब सुखों का देनेवाला (**अग्निम्**) सर्वज्ञ ईश्वर है, उस को (**उपस्तुहि**) मनुष्यों के समीप प्रकाशित कर ॥ ७ ॥

हे मनुष्य ! तू (**अध्वरे**) करने योग्य यज्ञ में (**सत्यधर्माणम्**) जो कि अविनाशी गुण और (**अमीवचातनम्**) ज्वरादि रोगों का विनाश करने तथा (**कविम्**) सब स्थूल पदार्थों को दिखाने वाला और (**देवम्**) सब सुखों का दाता (**अग्निम्**) भौतिक अग्नि है, उसको (**उपस्तुहि**) सब के समीप सदा प्रकाशित करें [२] ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । मनुष्यों को सत्यविद्या से धर्म की प्राप्ति तथा शिल्पविद्या की सिद्धि के लिए ईश्वर और भौतिक अग्नि के गुण अलग-अलग प्रकाशित करने चाहियें जिससे प्राणियों को रोग आदि के विनाशपूर्वक सब सुखों की प्राप्ति यथावत् हो ॥ ७ ॥

फिर भी अगले मन्त्र में ईश्वर का उपदेश किया है—

यस्त्वाम॑ग्ने ह॒विष्प॑तिर्दू॒तं दे॑व सप॒र्यति॑ । तस्य॑ स्म प्रावि॒ता भ॑व ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (**देव**) सब के प्रकाश करनेवाले (**अग्ने**) विज्ञानस्वरूप जगदीश्वर ! जो मनुष्य (**हविष्पतिः**) देने-लेने योग्य वस्तुओं का पालन करनेवाला (**यः**) जो मनुष्य (**दूतम्**) ज्ञान देनेवाले आपका (**सपर्य्यति**) सेवन करता है, (**तस्य**) उस सेवक मनुष्य के आप (**प्राविता**) अच्छी प्रकार जनानेवाले (**भव**) हों ॥ ८ ॥

(**यः**) जो (**हविष्पतिः**) देने लेने योग्य पदार्थों की रक्षा करनेवाला मनुष्य (**देव**) प्रकाश और दाहगुणवाले (**अग्ने**) भौतिक अग्नि का (**सपर्य्यति**) सेवन करता है, (**तस्य**) उस मनुष्य का वह अग्नि (**प्राविता**) नाना प्रकार के सुखों से रक्षा करनेवाला (**भव**) होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । दूत शब्द का अर्थ दो पक्ष में समझना चाहिए, अर्थात् एक इस प्रकार से कि सब मनुष्यों में ज्ञान का पहुँचाना ईश्वर पक्ष, तथा एक देश से दूसरे देश में पदार्थों का पहुँचाना भौतिक पक्ष में ग्रहण किया गया है । जो आस्तिक अर्थात् परमेश्वर में विश्वास रखनेवाले मनुष्य अपने हृदय में सर्वसाक्षी का ध्यान करते हैं, वे पुरुष ईश्वर से रक्षा को प्राप्त होकर पापों से बचकर धर्मात्मा हुए अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं, तथा जो युक्ति से विमान आदि रथों में भौतिक अग्नि को संयुक्त करते हैं, वे भी युद्धादिकों में रक्षा को प्राप्त होकर औरों की रक्षा करने वाले होते हैं ॥ ८ ॥

यो अ॒ग्निं दे॒ववी॑तये ह॒विष्माँ॑ आ॒विवा॑सति । तस्मै॑ पावक मृळय ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (**पावक**) पवित्र करने वाले ईश्वर ! (**यः**) जो (**हविष्मान्**) उत्तम-उत्तम पदार्थ वा कर्म करने वाला मनुष्य (**देववीतये**) उत्तम-उत्तम गुण और भोगों की परिपूर्णता के लिए (**अग्निम्**) सब सुखों के देने वाले आपको (**आविवासति**) अच्छी प्रकार सेवन करता है, (**तस्मै**) उस सेवन करने वाले मनुष्य को आप (**मृळय**) सब प्रकार सुखी कीजिए ॥ ९ ॥

यह जो (**हविष्मान्**) उत्तम पदार्थ वाला मनुष्य (**देववीतये**) उत्तम भोगों की प्राप्ति के लिए (**अग्निम्**) सुख कराने वाले भौतिक अग्नि का (**आविवासति**) अच्छी प्रकार सेवन करता है, (**तस्मै**) उसको यह अग्नि (**पावक**) पवित्र करने वाला होकर (**मृळय**) सुखयुक्त करता है ॥ २ ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जो मनुष्य अपने सत्य भाव, कर्म और विज्ञान से परमेश्वर का सेवन करते हैं, वे दिव्य गुण, पवित्र कर्म और उत्तम-उत्तम सुखों को प्राप्त होते हैं । तथा जिससे यह दिव्य गुणों का प्रकाश करने वाला अग्नि रचा है, उस अग्नि से मनुष्यों को उत्तम-उत्तम उपकार लेने चाहिएँ इस प्रकार ईश्वर का उपदेश है ॥ ९ ॥

स नः॑ पावक दीदि॒वोऽग्ने॑ दे॒वाँ इ॒हा व॑ह । उप॑ य॒ज्ञं ह॒विश्च॑ नः ॥१०॥

पदार्थ—हे (**दीदिव**) अपने सामर्थ्य से प्रकाशवान् (**पावक**) पवित्र करने तथा (**अग्ने**) सब पदार्थों को प्राप्त कराने वाले (**सः**) जगदीश्वर ! आप (**नः**) हम लोगों के सुख के लिए (**इह**) इस संसार में (**देवान्**) विद्वानों को (**आवह**) प्राप्त कीजिए तथा (**नः**) हमारे (**यज्ञम्**) उक्त तीन प्रकार के यज्ञ और (**हविः**) देने-लेने योग्य पदार्थों को (**उपावह**) हमारे समीप प्राप्त कीजिए ॥ १० ॥

(**यः**) जो (**दीदिवः**) प्रकाशमान तथा (**पावक**) शुद्धि का हेतु (**अग्ने**) भौतिक अग्नि अच्छी प्रकार कलायन्त्रों में युक्त किया हुआ (**नः**) हम लोगों के सुख के लिए (**इह**) हमारे समीप (**देवान्**) दिव्य गुणों को (**आवह**) प्राप्त करता है, वह (**नः**) हमारे तीन प्रकार के उक्त (**यज्ञम्**) यज्ञ को तथा (**हविः**) उक्त पदार्थों को प्राप्त होकर सुखों को (**उपावह**) हमारे समीप प्राप्त करता रहता है ॥ २ ॥ ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जिस प्राणी को किसी पदार्थ की इच्छा उत्पन्न हो, वह अपनी कामसिद्धि के लिए परमेश्वर की प्रार्थना और पुरुषार्थ करे । जैसे इस वेद में जगदीश्वर के गुण, स्वभाव तथा अन्यों में प्रतिपादित किये हुए दृष्टिगोचर होते हैं, वैसे मनुष्यों को उनके अनुकूल कर्म के अनुष्ठान से अग्नि आदि पदार्थों के गुणों को ग्रहण करके अनेक प्रकार व्यवहार की सिद्धि करनी चाहिए ॥१०॥

स नः॒ स्तवा॑न॒ आ भ॑र गाय॒त्रेण॒ नवी॑यसा । र॒यिं वी॒रव॑ती॒मिष॑म् ॥११

पदार्थ—हे भगवन् ! (**सः**) जगदीश्वर आप ! (**नवीयसा**) अच्छी प्रकार मन्त्रों के नवीन पाठ गानयुक्त (**गायत्रेण**) गायत्री छन्द वाले प्रगाथों से (**स्तवानः**) स्तुति को प्राप्त किये हुए (**नः**) हमारे लिए (**रयिम्**) विद्या और चक्रवर्ति राज्य से उत्पन्न होने वाले धन तथा जिस में (**वीरवतीम्**) अच्छे-अच्छे वीर तथा विद्वान् हों, उस (**इषम्**) सज्जनों के इच्छा करने योग्य उत्तम क्रिया का (**आभर**) अच्छी प्रकार धारण कीजिए ॥ ११ ॥

(**सः**) उक्त भौतिक अग्नि (**नवीयसा**) अच्छी प्रकार मन्त्रों के नवीन नवीन पाठ तथा गानयुक्त स्तुति और (**गायत्रेण**) गायत्री छन्द वाले प्रगाथों से (**स्तवानः**) गुणों के साथ ग्रहण किया हुआ (**रयिम्**) उक्त प्रकार का धन (**च**) और (**वीरवतीम्, इषम्**) उक्त गुण वाली उत्तम क्रिया को (**आभर**) अच्छी प्रकार धारण करता है [२] ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । तथा पहले मन्त्र से 'चकार' की अनुवृत्ति की है । हर एक मनुष्य को वेद आदि के नवीन-नवीन अध्ययन से वेद की उच्चारण क्रिया प्राप्त होती है, इस कारण 'नवीयसा' इस पद का उच्चारण किया है । जिन धर्मात्मा मनुष्यों ने यथावत् शब्दार्थपूर्वक वेद के पढ़ने और वेदोक्त कर्मों के अनुष्ठान से जगदीश्वर को प्रसन्न किया है, उन मनुष्यों को वह उत्तम-उत्तम विद्या आदि धन तथा शूरता आदि गुणों को उत्पन्न करने वाली श्रेष्ठ कामना को देता है, क्योंकि जो वेद के पढ़ने और परमेश्वर के सेवन में युक्त मनुष्य हैं, वे अनेक सुखों का प्रकाश करते हैं ॥ ११ ॥

अग्ने॑ शु॒क्रेण॑ शो॒चिषा॒ विश्वा॑भिर्दे॒वहू॑तिभिः । इ॒मं स्तोमं॑ जुषस्व नः ॥१२

पदार्थ—हे (**अग्ने**) प्रकाशमय ईश्वर ! आप कृपा करके (**शुक्रेण**) अनन्त

वीर्य के साथ (शोचिषा) शुद्धि करने वाले प्रकाश तथा (विश्वाभिः) विद्वान् और वेदों की वाणियों से सब प्राणियों के लिए (नः) हमारे (इमम्) इस प्रत्यक्ष (स्तोमम्) स्तुतिसमूह को (जुषस्व) प्रीति के साथ सेवन कीजिए ॥ १२ ॥

यह (अग्ने) भौतिक अग्नि (विश्वाभिः) सब (देवहूतिभिः) विद्वान् तथा वेदों की वाणियों से अच्छी प्रकार सिद्ध किया हुआ (शुक्रेण) अपनी कान्ति वा (शोचिषा) पवित्र करने वाले प्रकाश से (नः) हमारे (इमम्) इस (स्तोमम्) प्रशंसा करने योग्य कला की कुशलता को (जुषस्व) सेवन करता है ॥ २ ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। दिव्य विद्याओं के प्रकाशक होने से देव शब्द से वेदों का ग्रहण किया है। जब मनुष्य लोग सत्य प्रेम के साथ वेदवाणी से जगदीश्वर की स्तुति करते हैं, तब वह परमेश्वर उन मनुष्यों को विद्यादान से प्रसन्न करता है, वैसे ही यह भौतिक अग्नि भी विद्या से कलाकौशल में युक्त किया हुआ ईंधन आदि पदार्थों में ठहरकर सब क्रियाकाण्ड का सेवन करता है ॥ १२ ॥

इस बारहवें सूक्त के अर्थ की अग्नि शब्द के अर्थ के योग से ग्यारहवें सूक्त के अर्थ से सङ्गति जाननी चाहिए।

यह बारहवाँ सूक्त और तेईसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथास्य द्वादशर्चस्य त्रयोदशसूक्तस्य मेधातिथि काण्व ऋषिः । इध्म समिद्धोऽग्निः, तनूनपात्, नराशंस, इळ, बर्हिः, देवीर्द्वार, उषासानक्ता, दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, सरस्वतीळा भारत्यस्तिस्रो देव्य, त्वष्टा, वनस्पतिः, स्वाहाकृतयश्च द्वादश देवता.। गायत्री छन्द । षड्ज स्वर. ॥

अब तेरहवें सूक्त के अर्थ का आरम्भ करते हैं। इसके प्रथम मन्त्र में परमेश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

सुसमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते । होतः पावक यक्षि च ॥१

पदार्थ—हे (होतः) पदार्थों को देने और (पावक) शुद्ध करने वाले (अग्ने) विश्व के ईश्वर ! जिस हेतु से (सुसमिद्धः) अच्छी प्रकार प्रकाशवान् आप कृपा करके (नः) हमारे (च) तथा (हविष्मते) जिसके बहुत हवि अर्थात् पदार्थ विद्यमान हैं उस विद्वान् के लिए (देवान्) दिव्य पदार्थों को (आवह) अच्छी प्रकार प्राप्त करते हैं, इससे मैं आपका निरन्तर (यक्षि) सत्कार करता हूँ ॥ १ ॥

जिससे यह (पावक) पवित्रता का हेतु (होता) पदार्थों का ग्रहण करने तथा (सुसमिद्ध) अच्छी प्रकार प्रकाश वाला (अग्ने) भौतिक अग्नि (नः) हमारे (च) तथा (हविष्मते) उक्त पदार्थ वाले विद्वान् के लिए (देवान्) दिव्य पदार्थों को (आवह) अच्छी प्रकार प्राप्त करता है, इससे मैं उक्त अग्नि को (यक्षि) कार्यसिद्धि के लिए अपने समीपवर्त्ती करता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो मनुष्य बहुत प्रकार की सामग्री को ग्रहण करके विमान आदि यानों में सब पदार्थों के प्राप्त कराने वाले अग्नि की अच्छी प्रकार योजना करता है, उस मनुष्य के लिए वह अग्नि नाना प्रकार के सुखों की सिद्धि कराने वाला होता है ॥ १ ॥

अगले मन्त्र में शरीर आदि की रक्षा करने वाले भौतिक अग्नि के गुण वर्णन किये हैं—

मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे । अद्या कृणुहि वीतये ॥ २ ॥

पदार्थ—जो (तनूनपात्) शरीर तथा ओषधि आदि पदार्थों के छोटे-छोटे अंशों का भी रक्षा करने और (कवे) सब पदार्थों का दिखाने वाला अग्नि है, वह (देवेषु) विद्वानों तथा दिव्य पदार्थों में (वीतये) सुख प्राप्त होने के लिए (अद्य) आज (नः) हमारे (मधुमन्तम्) उत्तम-उत्तम रसयुक्त (यज्ञम्) यज्ञ को (कृणुहि) निश्चित करता है ॥ २ ॥

भावार्थ—जब अग्नि में सुगन्धि आदि पदार्थों का हवन होता है, तभी वह यज्ञ वायु आदि पदार्थों को शुद्ध तथा शरीर और ओषधि आदि पदार्थों की रक्षा करके अनेक प्रकार के रसों को उत्पन्न करता है, तथा उन शुद्ध पदार्थों के भोग से प्राणियों के विद्या, ज्ञान और बल की वृद्धि भी होती है ॥ २ ॥

अब अगले मन्त्र में मनुष्यों के प्रशंसा करने योग्य भौतिक अग्नि के गुणों का उपदेश किया है—

नराशंसमिह प्रियमस्मिन् यज्ञ उप ह्वये । मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—मैं (अस्मिन्) इस (यज्ञे) अनुष्ठान करने योग्य यज्ञ तथा (इह) संसार में (हविष्कृतम्) जो कि होम करने योग्य पदार्थों से प्रदीप्त किया जाता है, और (मधुजिह्वम्) जिसकी काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिङ्गिनी और विश्वरूपी ये अति प्रकाशमान चपल ज्वालारूपी जीभें हैं (प्रियम्) जो सब जीवों को प्रीति देने और (नराशंसम्) जिस सुख की मनुष्य प्रशंसा करते हैं, उस के प्रकाश करने वाले अग्नि को (उपह्वये) समीप प्रज्वलित करता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो भौतिक अग्नि इस संसार में होम के निमित्त युक्ति से ग्रहण किया हुआ प्राणियों की प्रसन्नता कराने वाला है, उस अग्नि की सात जीभें हैं। अर्थात् काली जोकि सुपेद आदि रङ्ग का प्रकाश करने वाली, कराली—सहने में कठिन, मनोजवा—मन के समान वेगवाली, सुलोहिता—जिसका उत्तम रक्तवर्ण है, सुधूम्रवर्णा जिसका सुन्दर धुमलासा वर्ण है, स्फुलिङ्गिनी—जिससे बहुत से चिनगे उठते हों, तथा विश्वरूपी—जिसका सब रूप है। ये देवी अर्थात् अतिशय करके प्रकाशमान और लेलायमाना—प्रकाश से सब जगह जानेवाली सात प्रकार की जिह्वा हैं, अर्थात् सब पदार्थों को ग्रहण करने वाली होती हैं। इस उक्त सात प्रकार की अग्नि की जीभों से सब पदार्थों में मनुष्यों को उपकार लेना चाहिए ॥ ३ ॥

उक्त अग्नि इस प्रकार उपकार में लिया हुआ जिसका हेतु होता है, सो उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईळित आ वह । असि होता मनुर्हितः ॥ ४ ॥

पदार्थ—जो (अग्ने) भौतिक अग्नि (मनुः) विद्वान् लोग जिसको मानते हैं तथा (होता) सब सुखों का देने और (ईळितः) मनुष्यों को स्तुति करने योग्य (असि) है, वह (सुखतमे) अत्यन्त सुख देने तथा (रथे) गमन और विहार कराने वाले विमान आदि सवारियों में (हितः) स्थापित किया हुआ (देवान्) दिव्य भोगों को (आवह) अच्छे प्रकार देशान्तर में प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को बहुत कलाओं से संयुक्त पृथिवी, जल और अन्तरिक्ष में गमन का हेतु तथा अग्नि वा जल आदि पदार्थों से संयुक्त तीन प्रकार का रथ कल्याण-कारक तथा अत्यन्त सुख देनेवाला होकर बहुत उत्तम-उत्तम कार्यों की सिद्धि को प्राप्त करानेवाला होता है ॥ ४ ॥

फिर वह भौतिक अग्नि उक्त प्रकार से क्रिया में युक्त किया हुआ क्या करता है, सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

स्तृणीत बर्हिरानुषग्घृतपृष्ठं मनीषिणः । यत्रामृतस्य चक्षणम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (मनीषिणः) बुद्धिमान् विद्वानो ! (यत्र) जिस अन्तरिक्ष में (अमृतस्य) जलसमूह का (चक्षणम्) दर्शन होता है, उस (आनुषक्) चारों ओर से घिरे और (घृतपृष्ठम्) जल से भरे हुए (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (स्तृणीत) होम के धूम से आच्छादन करो, उसी अन्तरिक्ष में अन्य भी बहुत पदार्थ जल आदि को जानो ॥ ५ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग अग्नि में जो घृत आदि पदार्थ छोड़ते हैं, वे अन्तरिक्ष को प्राप्त होकर वहाँ के ठहरे हुए जल को शुद्ध करते हैं, और वह शुद्ध हुआ जल सुगन्धि आदि गुणों से सब पदार्थों को आच्छादन करके सब प्राणियों को सुखयुक्त करता है ॥ ५ ॥

अब अगले मन्त्र में घर, यज्ञशाला और विमान आदि रथ अनेक द्वारों के सहित बनाने चाहिएँ, इस विषय का उपदेश किया है—

वि श्रयन्तामृतावृधो द्वारो देवीरसश्चतः । अद्या नूनं च यष्टवे ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (मनीषिणः) बुद्धिमान् विद्वानो ! (अद्य) आज (यष्टवे) यज्ञ करने के लिए घर आदि के (असश्चतः) अलग-अलग (ऋतावृधः) सत्य सुख और जल के वृद्धि करनेवाले (देवीः) तथा प्रकाशित (द्वारः) दरवाजों का (नूनम्) निश्चय से (विश्रयन्ताम्) सेवन करो, अर्थात् अच्छी रचना से उनको बनाओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को अनेक प्रकार के द्वारों के घर, यज्ञशाला और विमान आदि यानों को बनाकर उनमें स्थिति होम और देशान्तरों में जाना-आना करना चाहिए ॥ ६ ॥

यह चौबीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

उक्त कर्म से दिनरात सुख होता है, सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—

नक्तोषासा सुपेशसास्मिन् यज्ञ उप ह्वये । इदं नो बर्हिरासदे ॥ ७ ॥

पदार्थ—मैं (अस्मिन्) इस घर तथा (यज्ञे) सङ्गत करने के कामों में (सुपेशसा) अच्छे रूपवाले (नक्तोषसा) रात्रिदिन को (उपह्वये) उपकार में लाता हूँ, जिस कारण (नः) हमारा (बर्हिः) निवासस्थान (आसदे) सुख की प्राप्ति के लिए हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि इस संसार में विद्या से सदैव उपकार लेवें, क्योंकि रात्रिदिन सब प्राणियों के सुख का हेतु होता है ॥ ७ ॥

अब अगले मन्त्र में उन अग्नियों का उपदेश किया है कि जो शुद्ध करनेवाले विद्युद्रूप से अप्रसिद्ध और प्रत्यक्ष स्थूलरूप से प्रसिद्ध हैं—

ता सुजिह्वा उप ह्वये होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥८

पदार्थ—मैं क्रियाकाण्ड का अनुष्ठान करनेवाला इस घर में जो (नः) हमारे (इमम्) प्रत्यक्ष (यज्ञम्) हवन वा शिल्पविद्यामय यज्ञ को (यक्षताम्) प्राप्त करते हैं, उन (सुजिह्वौ) सुन्दर पूर्वोक्त सात जीभ (होतारा) पदार्थों का ग्रहण करने (कवी) तीव्र दर्शन देने और (दैव्या) दिव्य पदार्थों में रहनेवाले प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध अग्नियों को (उपह्वये) उपकार में लाता हूँ ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे एक बिजुली, वेग आदि अनेक गुणवाला अग्नि है इसी प्रकार प्रसिद्ध अग्नि भी है। तथा ये दोनों सकल पदार्थों के देखने में और अच्छे प्रकार क्रियाओं में नियुक्त किये हुए शिल्प आदि अनेक कार्यों की सिद्धि के हेतु होते हैं। इसलिए इन्हीं से मनुष्यों को सब उपकार लेने चाहिएँ ॥ ८ ॥

यहाँ तीन प्रकार की क्रिया का प्रयोग करना चाहिए, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः । बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! तुम लोग एक (इळा) जिससे स्तुति होती, दूसरी

(सरस्वती) जो अनेक प्रकार विज्ञान का हेतु, और तीसरी (मही) बड़ों-में-बड़ी पूजनीय नीति है, वह (अस्रिधः) हिंसारहित और (मयोभुवः) सुखों का सम्पादन करानेवाली (देवी) प्रकाशवान् तथा दिव्य गुणों को सिद्ध कराने में हेतु जो (तिस्रः) तीन प्रकार की वाणी है, उसको (बर्हिः) घर-घर के प्रति (सीदन्तु) यथावत् प्रकाशित करो ॥ ९ ॥

भावार्थ— मनुष्यों को 'इडा' जो कि पठनपाठन की प्रेरणा देनेहारी, 'सरस्वती' जो उपदेशरूप ज्ञान का प्रकाश करने और 'मही' जो सब प्रकार से प्रशंसा करने योग्य है, ये तीनों वाणी कुतर्क से खण्डन करने योग्य नहीं है, तथा सब सुख के लिए तीनों प्रकार की वाणी सदैव स्वीकार करनी चाहिएँ, जिससे निष्फलता से अविद्या का नाश हो ॥ ९ ॥

फिर वहाँ क्या-क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुप ह्वये । अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥

पदार्थ—मैं जिस (विश्वरूपम्) सर्वव्यापक (अग्रियम्) सब वस्तुओं के आगे होने तथा (त्वष्टारम्) सब दुःखों के नाश करने वाले परमात्मा को (इह) इस घर में (उपह्वये) अच्छी प्रकार आह्वान करता हूँ, वही (अस्माकम्) उपासना करनेवाले हम लोगों का (केवलः) इष्ट और स्तुति करने योग्य (अस्तु) हो ॥ १० ॥

और मैं (विश्वरूपम्) जिसमें सब गुण है, (अग्रियम्) सब साधनों के आगे होने तथा (त्वष्टारम्) सब पदार्थों को अपने तेज से अलग अलग करनेवाले भौतिक अग्नि के (इह) इस शिल्पविद्या में (उपह्वये) जिसको युक्त करता हूँ, वह (अस्माकम्) हवन तथा शिल्पविद्या के सिद्ध करनेवाले हम लोगों का (केवलः) अत्युत्तम साधन (अस्तु) होता है ॥ २ ॥ १० ॥

भावार्थ— इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । मनुष्यों को अनन्त सुख देनेवाले ईश्वर ही की उपासना करनी चाहिए, तथा जो यह भौतिक अग्नि सब पदार्थों का छेदन करने, सब रूप, गुण और पदार्थों का प्रकाश करने, सब से उत्तम और हम लोगों की शिल्पविद्या का अद्वितीय साधन है, उसका उपयोग शिल्पविद्या में यथावत् करना चाहिए ॥ १० ॥

वह अग्नि किससे प्रज्वलित हुआ इन कार्य्यों को सिद्ध करता है,
इसका उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अव सृजा वनस्पते देव देवेभ्यो हविः । प्र दातुरस्तु चेतनम् ॥११॥

पदार्थ—जो (देव) फल आदि पदार्थों को देनेवाला (वनस्पते) वनों के वृक्ष और ओषधि आदि पदार्थों को अधिक वृष्टि के हेतु से पालन करनेवाला (देवेभ्यः) दिव्य गुणों के लिए (हविः) हवन करने योग्य पदार्थों को (अवसृज) उत्पन्न करता है, वह (प्रदातुः) सब पदार्थों की शुद्धि चाहने वाले विद्वान् जन के (चेतनम्) विज्ञान को उत्पन्न करानेवाला (अस्तु) होता है ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्यों से पृथिवी तथा सब पदार्थ जलमय युक्ति से क्रियाओं में युक्त किये हुए अग्नि से प्रदीप्त होकर रोगों की निर्मूलता से बुद्धि और बल को देने के कारण ज्ञान के बढ़ाने के हेतु होकर दिव्यगुणों का प्रकाश करते हैं ॥ ११ ॥

इस क्रियाकाण्ड को मनुष्य लोग किस प्रकार से करें, सो उपदेश
अगले मन्त्र में किया है—

स्वाहा यज्ञं कृणोतनेन्द्राय यज्वनो गृहे । तत्र देवाँ उप ह्वये ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे शिल्पविद्या के सिद्ध यज्ञ करने और करानेवाले, विद्वानो ! तुम लोग जैसे जहाँ (यज्वनः) यज्ञकर्त्ता के (गृहे) घर, यज्ञशाला तथा कलाकुशलता से सिद्ध हुए विमान आदि यानों में (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य की प्राप्ति के लिए परम विद्वानों को बुला के (स्वाहा) उत्तम क्रियासमूह के साथ (यज्ञम्) जिस तीनों प्रकार के यज्ञ को (कृणोतन) सिद्ध करने वाले हो, वैसे वहाँ मैं (देवान्) उन उक्त चतुर श्रेष्ठ विद्वानों को (उपह्वये) प्रार्थना के साथ बुलाता रहूँ ॥ १२ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग विद्या तथा क्रियावान् होकर यथायोग्य बने हुए स्थानों में उत्तम विचार से क्रियासमूह से सिद्ध होनेवाले कर्मकाण्ड को नित्य करते हुए और वहाँ विद्वानों को बुलाकर वा आपही उनके समीप जाकर उनकी विद्या और क्रिया की चतुराई को ग्रहण करें । हे सज्जन लोगो ! तुमको विद्या और क्रिया की कुशलता आलस्य से कभी नहीं छोड़नी चाहिए, क्योंकि ऐसी ही ईश्वर की आज्ञा सब मनुष्यों के लिए है ॥ १२ ॥

इस तेरहवें सूक्त के अर्थ की अग्नि आदि दिव्य पदार्थों के उपकार लेने के विधान से बारहवें सूक्त के अभिप्राय के साथ संगति जाननी चाहिए ।

यह तेरहवाँ सूक्त और पच्चीसवाँ वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अथास्य द्वादशर्चस्य चतुर्दशसूक्तस्य कण्वो मेधातिथिर्ऋषिः ।
विश्वेदेवा देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब चौदहवें सूक्त का आरम्भ है । उसके पहिले मन्त्र में बहुत पदार्थों के साथ संयोग करनेवाले ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है—

ऐभिरग्ने दुवो गिरो विश्वेभिः सोमपीतये । देवेभिर्याहि यक्षि च ॥१॥

पदार्थ—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! आप (एभिः) इन (विश्वेभिः) सब (देवेभिः) दिव्य गुण और विद्वानों के साथ (सोमपीतये) सुख करनेवाले पदार्थों के पीने के लिए (दुवः) सत्कारादि व्यवहार तथा (गिरः) वेदवाणियों को (याहि) प्राप्त हूजिए ॥ १ ॥

जो यह (अग्ने) भौतिक अग्नि (एभिः) इन (विश्वेभिः) सब (देवेभिः) दिव्यगुण और पदार्थों के साथ (सोमपीतये) जिससे सुखकारक पदार्थों का पीना हो, उस यज्ञ के लिए (दुवः) सत्कारादि व्यवहार तथा (गिरः) वेदवाणियों को (याहि) प्राप्त करता है, उसको (एभिः) इन (विश्वेभिः) सब (देवेभिः) विद्वानों के साथ (सोमपीतये) उक्त सोम के पीने के लिए (यक्षि) स्वीकार करता हूँ, तथा ईश्वर के (दुवः) सत्कारादि व्यवहार और वेदवाणियों को (यक्षि) संगत अर्थात् अपने मन और कामों में अच्छी प्रकार सदैव यथाशक्ति धारण करता हूँ ॥ २ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जिन मनुष्यों को व्यवहार और परमार्थ के सुख की इच्छा हो, वे वायु, जल और पृथिवीमयादि यन्त्र तथा विमान आदि रथों के साथ अग्नि को स्वीकार करके उत्तम क्रियाओं को सिद्ध करते और ईश्वर की आज्ञा का सेवन, वेदों का पढ़ना-पढ़ाना और वेदोक्त कर्मों का अनुष्ठान करते रहते हैं, वे ही सब प्रकार से आनन्द भोगते हैं ॥ १ ॥

अब अगले मन्त्र में अग्नि शब्द के अर्थों का उपदेश किया है—

आ त्वा कण्वा अहूषत गृणन्ति विप्र ते धियः ।
देवेभिरग्न आ गहि ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! जैसे (कण्वाः) मेधावी विद्वान् लोग (त्वा) आपका (गृणन्ति) पूजन तथा (अहूषत) प्रार्थना करते हैं, वैसे ही हम लोग भी आपका पूजन और प्रार्थना करें । हे (विप्र) मेधाविन् विद्वन् ! जैसे (ते) तेरी (धियः) बुद्धि जिस ईश्वर के (गृणन्ति) गुणों का कथन और प्रार्थना करती है, वैसे हम सब लोग परस्पर मिलकर उसी की उपासना करते रहें । हे मङ्गलमय परमात्मन् ! आप कृपा करके (देवेभिः) उत्तम गुणों के प्रकाश और भोगों के देने के लिए हम लोगों को (आगहि) अच्छी प्रकार प्राप्त हूजिए ॥ २ ॥

हे (विप्र) मेधावी विद्वन् मनुष्य ! जैसे (कण्वाः) अन्य विद्वान् लोग (अग्ने) अग्नि को (गृणन्ति) गुण प्रकाश और (अहूषत) शिल्पविद्या के लिए युक्त करते हैं, वैसे तुम भी करो । जैसे (अग्ने) यह अग्नि (देवेभिः) दिव्यगुणों के साथ (आगहि) अच्छी प्रकार अपने गुणों को विदित करता है और (ते) तेरी (धियः) बुद्धि अग्नि के (गृणन्ति) जिन गुणों का कथन तथा (अहूषत) अधिक-से अधिक मानती हैं, उससे तुम बहुत-से कार्य्यों को सिद्ध करो ॥ २ ॥ २ ॥

भावार्थ— इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । मनुष्यों को इस संसार में ईश्वर के रचे हुए पदार्थों को देखकर यह कहना चाहिए कि ये सब धन्यवाद और स्तुति ईश्वर ही में घटती हैं ॥ २ ॥

अब अगले मन्त्र में सब देवों में से कई एक देवों का उपदेश किया है—

इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम् । आदित्यान् मारुतं गणम् ॥३॥

पदार्थ—हे (कण्वाः) बुद्धिमान् विद्वान् लोगो ! आप क्रिया तथा आनन्द की सिद्धि के लिए (इन्द्रवायू) बिजुली और पवन (बृहस्पतिम्) बड़े-से-बड़े पदार्थों के पालनहेतु सूर्य्यलोक (मित्रा) प्राण (अग्निम्) प्रसिद्ध अग्नि (पूषणम्) ओषधियों के समूह के पुष्टि करनेवाले चन्द्रलोक (भगम्) सुखों के प्राप्त करानेवाले चक्रवर्ति आदि राज्य के धन (आदित्यान्) बारहों महीने और (मारुतम्) पवनों के (गणम्) समूह को (अहूषत) ग्रहण तथा (गृणन्ति) अच्छी प्रकार जानके संयुक्त करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से 'कण्वाः', 'अहूषत' और 'गृणन्ति' इन तीन पदों की अनुवृत्ति आती है । जो मनुष्य ईश्वर के रचे हुए उक्त इन्द्र आदि पदार्थों और उनके गुणों को जानकर क्रियाओं में संयुक्त करते हैं, वे आप सुखी होकर सब प्राणियों को सुखयुक्त सदैव करते हैं ॥ ३ ॥

उक्त पदार्थ इस प्रकार संयुक्त किये हुए किस-किस कार्य को सिद्ध करते हैं,
इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्र वो भ्रियन्त इन्दवो मत्सरा मादयिष्णवः । द्रप्सा मध्वश्चमूषदः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैंने धारण किये, पूर्व मन्त्र में इन्द्र आदि पदार्थ कह आये हैं, उन्हीं से (मध्वः) मधुर गुणवाले (मत्सराः) जिनसे उत्तम आनन्द को प्राप्त होते हैं (मादयिष्णवः) आनन्द के निमित्त (द्रप्साः) जिन से बल अर्थात् सेना के लोग अच्छी प्रकार आनन्द को प्राप्त होते और (चमूषदः) जिनसे विकट शत्रुओं की सेनाओं में स्थिर होते हैं, उन (इन्दवः) रसवाले सोम आदि ओषधियों के समूह के समूहों को (वः) तुम लोगों के लिए (भ्रियन्ते) अच्छी प्रकार धारण कर रखे हैं, तैसे तुम लोग भी मेरे लिए इन पदार्थों को धारण करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—ईश्वर सब मनुष्यों के प्रति कहता है कि जो मेरे रचे हुए पहले मन्त्र में प्रकाशित किये बिजुली आदि पदार्थों से ये सब पदार्थ, धारण करके मैंने पुष्ट किये हैं, तथा जो मनुष्य इनसे वैद्यक वा शिल्पशास्त्रों की रीति से उत्तम रस के उत्पादन और शिल्प कार्य्यों की सिद्धि के साथ उत्तम सेना के सम्पादन होने से रोगों का नाश तथा विजय की प्राप्ति करते हैं, वे लोग नाना प्रकार के सुख भोगते हैं ॥ ४ ॥

अब अगले मन्त्र में अग्नि शब्द से ईश्वर का उपदेश किया है—

ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः । हविष्मन्तो अरंकृतः ॥५॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! हम लोग जिनके (हविष्मन्तः) देने-लेने और

भोजन करने योग्य पदार्थ विद्यमान है, तथा (**अरङ्कृत**) जो सब पदार्थों को सुशोभित करनेवाले हैं, (**अवस्यव**) जिनका अपनी रक्षा चाहने का स्वभाव है वे (**कण्वास**) बुद्धिमान् और (**वृक्तबर्हिष**) यथाकाल यज्ञ करनेवाले विद्वान् लोग जिस (**त्वाम्**) सब जगत् के उत्पन्न करनेवाले आपकी (**ईळते**) स्तुति करते हैं, उसी आपकी स्तुति करें ॥ ५ ॥

भावार्थ -हे सृष्टि के उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर ! जिस आपने सब प्राणियों के सुख के लिए सब पदार्थों का रचकर धारण किया है, इससे हम लोग आपही की स्तुति, सब की रक्षा की इच्छा, शिक्षा और विद्या से सब मनुष्यों को भूषित करते हुए उत्तम क्रियाओं के लिए निरन्तर अच्छी प्रकार यत्न करते हैं ॥ ५ ॥

ईश्वर के रचे हुए बिजुली आदि पदार्थ कैसे गुण वाले हैं, सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है --

घृतपृष्ठा मनोयुजो ये त्वा वहन्ति वह्नयः । आ देवान्त्सोमपीतये ॥६॥

पदार्थ हे विद्वानो ! जो युक्ति से संयुक्त किये हुए (**घृतपृष्ठा**) जिनके पृष्ठ अर्थात् आधार में जल है (**मनोयुज**) तथा जो उत्तम ज्ञान से रथों में युक्त किये जाते (**वह्नय**) वार्त्ता, पदार्थ वा यानों को दूर देश में पहुँचानेवाले अग्नि आदि पदार्थ हैं, जो (**सोमपीतये**) जिसमें सोम आदि पदार्थों का पीना होता है उस यज्ञ के लिए (**त्वा**) उस भूषित करने योग्य यज्ञ को और (**देवान्**) दिव्य-गुण, दिव्य-भोग और वसन्त आदि ऋतुओं को (**आवहन्ति**) अच्छी प्रकार प्राप्त करते हैं, उनको सब मनुष्य यथावत् जानके अनेक कार्यों को सिद्ध करने के लिए ठीक-ठीक प्रयुक्त करना चाहिए ॥ ६ ॥

भावार्थ --जो मेघ आदि पदार्थ हैं, वे ही जल को ऊपर-नीचे अर्थात् अन्तरिक्ष को पहुँचाते और वहाँ से वर्षाते हैं, और तारारूय यन्त्र से चलाई हुई बिजुली मन के वेग के समान वार्त्ताओं को एक देश से दूसरे देश में प्राप्त करती है । इसी प्रकार सब सुखों को प्राप्त करानेवाले ये ही पदार्थ हैं ऐसी ईश्वर की आज्ञा है ॥ ६ ॥

यह छब्बीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

अब अगले मन्त्र में अग्नि शब्द से ईश्वर का उपदेश किया है -

तान् यजत्राँ ऋतावृधोऽग्ने पत्नीवतस्कृधि । मध्वः सुजिह्व पायय ॥७

पदार्थ - हे (**अग्ने**) जगदीश्वर ! आप (**यजत्रान्**) जो कला आदि पदार्थों में संयुक्त करने योग्य तथा (**ऋतावृध**) सत्यता और यज्ञादि उत्तम कर्मों की वृद्धि करने वाले हैं, (**तान्**) उन विद्युत् आदि पदार्थों को श्रेष्ठ करते हो, उन्हीं से हम लोगों को (**पत्नीवत**) प्रशंसायुक्त स्त्रीवाले (**कृधि**) कीजिए । हे (**सुजिह्व**) श्रेष्ठता से पदार्थों की धारणाशक्तिवाले ईश्वर ! आप (**मध्व**) मधुर पदार्थों के रस को कृपा करके (**पायय**) पिलाइए ॥ ७ ॥

(**सुजिह्व**) जिसकी लपट में अच्छी प्रकार होम करते हैं, सो यह (**अग्ने**) भौतिक अग्नि (**ऋतावृध**) उन जल की वृद्धि करानेवाले (**यजत्रान्**) कलाओं में संयुक्त करने योग्य (**तान्**) विद्युत् आदि पदार्थों को उत्तम (**कृधि**) करता है, और वह अच्छी प्रकार कलायन्त्रों में संयुक्त किया हुआ हम लोगों को (**पत्नीवत**) पत्नीवान् अर्थात् श्रेष्ठ गृहस्थ (**कृधि**) कर देता, तथा (**मध्वः**) मीठे-मीठे पदार्थों के रस को (**पायय**) पिलाने का हेतु होता है ॥ २ ॥ ७ ॥

भावार्थ--इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । मनुष्यों को अच्छी प्रकार ईश्वर के आराधन और अग्नि की क्रियाकुशलता से रससारादि को रचकर तथा उपकार में लाकर गृहस्थ आश्रम में सब कार्यों को सिद्ध करना चाहिए ॥ ७ ॥

फिर उक्त पदार्थ किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है --

ये यजत्रा य ईड्यास्ते ते पिबन्तु जिह्वया । मधोरग्ने वषट्कृति ॥८॥

पदार्थ (**ये**) जो मनुष्य विद्युत् आदि पदार्थ (**यजत्रा**) कलादिकों में संयुक्त करते हैं (**ते**) वे, वा (**ये**) जो गुणवाले (**ईड्या**) सब प्रकार से खोजने योग्य हैं (**ते**) वे (**जिह्वया**) ज्वालारूपी शक्ति से (**अग्ने**) अग्नि में (**वषट्कृति**) यज्ञ के विशेष-विशेष काम करने से (**मधो**) मधुरगुणों के अंशों का (**पिबन्तु**) यथावत् पीते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ - मनुष्यों को इस जगत् में सब संयुक्त पदार्थों से दो प्रकार का कर्म करना चाहिए अर्थात् एक तो उनके गुणों का जानना, दूसरा उनसे कार्य्य की सिद्धि करना । जो विद्युत् आदि पदार्थ सब मूर्तिमान् पदार्थों से रस का ग्रहण करके फिर छोड़ देते हैं, इससे उनकी शुद्धि के लिए सुगन्धि आदि पदार्थों का होम निरन्तर करना चाहिए, जिससे वे सब प्राणियों को सुख सिद्ध करने वाले हों ॥ ८ ॥

किस प्रकार के मनुष्य उन गुणों का ग्रहण कर सकते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आकीं सूर्य्यस्य रोचनाद्विश्वान् देवाँ उषर्बुधः । विप्रो होतेह वक्षति ॥९॥

पदार्थ --जो (**होता**) होम में छोड़ने योग्य वस्तुओं का देने लेने वाला (**विप्र**) बुद्धिमान् विद्वान् पुरुष है, वही (**सूर्य्यस्य**) चराचर के आत्मा परमेश्वर वा सूर्य्यलोक के (**रोचनात्**) प्रकाश से (**इह**) इस जन्म वा लोक में (**उषर्बुध**) प्रातःकाल को प्राप्त होकर सुखों को जिताने वाले (**विश्वान्**) समस्त (**देवान्**) श्रेष्ठ भोगों को (**वक्षति**) प्राप्त होता वा कराता है, वही सब विद्याओं को प्राप्त होके आनन्दयुक्त होता है ॥ ९ ॥

भावार्थ -इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जो ईश्वर इन पदार्थों को उत्पन्न नहीं करता तो कोई पुरुष उपकार लेने को समर्थ नहीं हो सकता, और जब मनुष्य निद्रा में स्थित होते हैं, तब कोई मनुष्य किसी भोग करने योग्य पदार्थ को प्राप्त नहीं हो सकता, किन्तु जाग्रत अवस्था को प्राप्त होकर उनके भोग करने को समर्थ होता है । इससे इस मन्त्र में 'उषर्बुध' इस पद का उच्चारण किया है । संसार के इन पदार्थों से बुद्धिमान् मनुष्य ही क्रिया की सिद्धि को कर सकता है, अन्य कोई नहीं ॥ ९ ॥

किसके साथ में यह विद्युत् अग्नि क्रियाओं की सिद्धि कराने वाला होता है, सो अगले मन्त्र में कहा है—

विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना । पिबा मित्रस्य धामभिः ॥१०

पदार्थ--(**अग्ने**) यह अग्नि (**इन्द्रेण**) परम ऐश्वर्य कराने वाले (**वायुना**) स्पर्श वा गमन करने हारे पवन के और (**मित्रस्य**) सब में रहने तथा सब के प्राणरूप होकर वर्तने वाले वायु के साथ (**विश्वेभिः**) सब (**धामभिः**) स्थानों से (**सोम्यम्**) सोमसम्पादन के योग्य (**मधु**) मधुर आदि गुणयुक्त पदार्थ को (**पिब**) ग्रहण करता है ॥ १० ॥

भावार्थ -- यह विद्युत्रूप अग्नि ब्रह्माण्ड में रहने वाले पवन तथा शरीर में रहने वाले प्राणों के साथ वर्तमान होकर सब पदार्थों से रस को ग्रहण करके उगलता है, इससे यह मुख्य शिल्पविद्या का साधन है ॥ १० ॥

अब अगले मन्त्र में अग्नि शब्द से ईश्वर का उपदेश किया है —

त्वं होता मनुर्हितोऽग्ने यज्ञेषु सीदसि । सेमं नो अध्वरं यज ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अतिशय करके पूजन करने योग्य जगदीश्वर ! आप (**मनुर्हित**) मनुष्य आदि पदार्थों के धारण करने और (**होता**) सब पदार्थों के देने वाले हैं (**त्वम्**) जो (**यज्ञेषु**) क्रियाकाण्ड को आदि लेकर ज्ञान होने पर्य्यन्त करने योग्य यज्ञों में (**सीदसि**) स्थित हो रहे हो, (**स**) सो आप (**न**) हमारे (**इमम्**) इस (**अध्वरम्**) ग्रहण योग्य सुख के हेतु यज्ञ को (**यज**) संगत अर्थात् इसकी सिद्धि को दीजिए ॥ ११ ॥

भावार्थ — जिस ईश्वर ने सब मनुष्य आदि प्राणियों के शरीर आदि पदार्थों को उत्पन्न करके धारण किया है, तथा जो यह सब कर्म, उपासना तथा ज्ञानकाण्ड में अतिशय पूजने के योग्य है, वही इस जगत्रूपी यज्ञ को सिद्ध करके हम लोगों को सुखयुक्त करता है ॥ ११ ॥

फिर अगले मन्त्र में भौतिक अग्नि के गुणों का उपदेश किया है—

युक्ष्वा ह्यरुषी रथे हरितो देव रोहितः । ताभिर्देवाँ इहा वह ॥ १२ ॥

पदार्थ—(**देव**) विद्वान् मनुष्य ! तू (**रथे**) पृथिवी, समुद्र और अन्तरिक्ष में जाने-आने के लिए विमान आदि रथ में (**रोहित**) नीची-ऊँची जगह उतारने-चढ़ाने (**हरित**) पदार्थों को हरने (**अरुषी**) लाल रङ्गयुक्त तथा गमन कराने-वाली ज्वाला अर्थात् लपटों को (**युक्ष्व**) युक्त कर और (**ताभि**) इनसे (**इह**) संसार में (**देवान्**) दिव्यक्रियासिद्ध व्यवहारों को (**आवह**) अच्छी प्रकार प्राप्त कर ॥ १२ ॥

भावार्थ—विद्वानों को कला और विमान आदि यानों में अग्नि आदि पदार्थों को संयुक्त करके इनसे इस संसार में मनुष्यों के सुख के लिए दिव्य पदार्थों का प्रकाश करना चाहिए ॥ १२ ॥

सब देवों के गुणों के प्रकाश तथा क्रियाओं के समुदाय से इस चौदहवें सूक्त की सङ्गति पूर्वोक्त तेरहवें सूक्त के अर्थ के साथ जाननी चाहिए ।

यह चौदहवाँ सूक्त और सत्ताईसवाँ वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अथ द्वादशर्चस्य पञ्चदशसूक्तस्य कण्वो मेधातिथिर्ऋषिः । ऋतव इन्द्र, मरुत, त्वष्टा, अग्नि, इन्द्र, मित्रावरुणौ, द्रविणोदा, अश्विनौ, अग्निश्च देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

अब पन्द्रहवें सूक्त का आरम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में ऋतु-ऋतु में रस की उत्पत्ति और गति का वर्णन किया है—

इन्द्र सोमं पिब ऋतुना त्वा विशन्त्विन्दवः । मत्सरासस्तदोकसः ॥१॥

पदार्थ -हे मनुष्य ! यह (**इन्द्र**) समय का विभाग करने वाला सूर्य्य (**ऋतुना**) वसन्त आदि ऋतुओं के साथ (**सोमम्**) ओषधि आदि पदार्थों के रस को (**पिब**) पीता है, और ये (**तदोकस**) जिनके अन्तरिक्ष, वायु आदि निवास के स्थान तथा (**मत्सरास**) आनन्द के उत्पन्न करने वाले हैं, वे (**इन्दव**) जलों के रस (**ऋतुना**) वसन्त आदि ऋतुओं के साथ (**त्वा**) इस प्राणी वा प्राणी को क्षण-क्षण (**आविशन्तु**) आवेश करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ —यह सूर्य्य वर्ष, उत्तरायण दक्षिणायन, वसन्त आदि ऋतु, चैत्र आदि बारहों महीने, शुक्ल और कृष्णपक्ष, दिनरात मुहूर्त जो तीस कलाओं का संयोग, कला जो ३० [तीस] काष्ठा का संयोग, काष्ठा जो अठारह निमेष आदि समय के विभागों को प्रकाशित करता है, जैसे मनुजी ने कहा; और उन्हीं के साथ सब ओषधियों के रस और सब स्थानों से जलों को खींचता है, वे किरणों के साथ अन्तरिक्ष में स्थित होते हैं, तथा वायु के साथ आते-जाते हैं ॥ १॥

अब ऋतुओं के साथ पवन आदि पदार्थ सब को सींचते और पवित्र करते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मरुतः पिबत ऋतुना पोत्राद्यज्ञं पुनीतन । यूयं हि ष्ठा सुदानवः ॥२॥

पदार्थ—ये (**मरुतः**) पवन (**ऋतुना**) वसन्त आदि ऋतुओं के साथ सब रसों को (**पिबत**) पीते हैं, वे ही (**पोत्रात्**) अपने पवित्रकारक गुण से (**यज्ञम्**) उक्त तीन प्रकार के यज्ञ को (**पुनीतन**) पवित्र करते हैं, तथा (**हि**) जिस कारण (**यूयम्**) वे (**सुदानवः**) पदार्थों के अच्छी प्रकार दिलानेवाले (**स्थ**) हैं, इससे वे युक्ति के साथ क्रियाओं में युक्त हुए कार्य्यों को सिद्ध करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—ऋतुओं के अनुक्रम से पवनों में भी यथायोग्य गुण उत्पन्न होते हैं, इसीसे वे त्रसरेणु आदि पदार्थों के हेतु होते हैं, तथा अग्नि के बीच में सुगन्धित पदार्थों के होम द्वारा वे पवित्र होकर प्राणिमात्र को सुखसंयुक्त करते हैं, और वे ही पदार्थों के देनेलेने में हेतु होते हैं ॥ २ ॥

अब ऋतुओं के साथ विद्युत् अग्नि क्या करता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना ।
त्वं हि रत्नधा असि ॥ ३ ॥

पदार्थ—यह (**नेष्टः**) शुद्धि और पुष्टि आदि हेतुओं से सब पदार्थों का प्रकाश करनेवाली बिजुली (**ऋतुना**) ऋतुओं के साथ रसों को (**पिब**) पीती है, तथा (**हि**) जिस कारण (**रत्नधाः**) उत्तम पदार्थों की धारण करनेवाली (**असि**) है, (**त्वम्**) सो यह (**ग्नावः**) सब पदार्थों की प्राप्ति करानेहारी (**नः**) हमारे इस (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**अभिगृणीहि**) सब प्रकार से ग्रहण करती है, इसलिए तुम लोग इससे सब कार्य्यों को सिद्ध करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो बिजुली अग्नि की सूक्ष्म अवस्था है, सो सब स्थूल पदार्थों के अवयवों में व्याप्त होकर उनको धारण और छेदन करती है, इसीसे यह प्रत्यक्ष अग्नि उत्पन्न होके उसी में विलय हो जाता है ॥ ३ ॥

अग्नि भी ऋतुओं का संयोजक होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्ने देवाँ इहा वह सादया योनिषु त्रिषु । परि भूष पिब ऋतुना ॥४॥

पदार्थ—यह (**अग्ने**) प्रसिद्ध वा अप्रसिद्ध भौतिक अग्नि (**इह**) इस संसार में (**ऋतुना**) ऋतुओं के साथ (**त्रिषु**) तीन प्रकार के (**योनिषु**) जन्म, नाम और स्थानरूपी लोकों में (**देवान्**) श्रेष्ठ गुणों से युक्त पदार्थों को (**आ वह**) अच्छी प्रकार प्राप्त करता (**सादय**) हननकर्ता (**परिभूष**) सब ओर से भूषित करता और सब पदार्थों के रसों को (**पिब**) पीता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—दाह गुणयुक्त यह अग्नि अपने रूप के प्रकाश से सब ऊपर-नीचे वा मध्य में रहने वाले पदार्थों को अच्छी प्रकार सुशोभित करता, होम और शिल्पविद्या में संयुक्त किया हुआ दिव्य-दिव्य सुखों का प्रकाश करता है ॥ ४ ॥

ऋतुओं के साथ वायु क्या-क्या कार्य्य करता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु । तवेद्धि सख्यमस्तृतम् ॥५॥

पदार्थ—जो (**इन्द्र**) ऐश्वर्य वा जीवन का हेतु वायु (**ब्राह्मणात्**) बड़े का अवयव (**राधसः**) पृथिवी आदि लोकों के धन से (**अनुऋतून्**) अपने-अपने प्रभाव से पदार्थों के रस को हरनेवाले वसन्त आदि ऋतुओं के अनुक्रम से (**सोमम्**) सब पदार्थों के रस को (**पिब**) ग्रहण करता है, इससे (**हि**) निश्चय से (**तव**) उस वायु का पदार्थों के साथ (**अस्तृतम्**) अविनाशी (**सख्यम्**) मित्रपन है ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जगत् के रचने वाले परमेश्वर ने वायु आदि पदार्थों में जो-जो नियम स्थापन किये हैं उन-उन को जानकर कार्य्यों को सिद्ध करना चाहिए। और उनमें सिद्ध किये हुए धन से सब ऋतुओं में सब प्राणियों के अनुकूल हित सम्पादन करना चाहिए तथा युक्ति के साथ सेवन किये हुए पदार्थ मित्र के समान होते और इससे विपरीत शत्रु के समान होते हैं ऐसा जानना चाहिए ॥ ५ ॥

अब वायुविशेष प्राण वा उदान ऋतुओं के साथ क्या-क्या प्रकाश करते हैं, इस बात का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

युवं दक्षं धृतव्रत मित्रावरुणा दूळभम् । ऋतुना यज्ञमाशाथे ॥ ६ ॥

पदार्थ—(**युवम्**) ये (**धृतव्रतौ**) बलों को धारण करनेवाले (**मित्रावरुणौ**) प्राण और अपान (**ऋतुना**) ऋतुओं के साथ (**दूळभम्**) जो कि शत्रुओं को दुःख के साथ धर्षण कराने योग्य (**दक्षम्**) बल तथा (**यज्ञम्**) उक्त तीन प्रकार के यज्ञ को (**आशाथे**) व्याप्त होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो सब का मित्र बाहर आने वाला प्राण तथा शरीर के भीतर रहनेवाला उदान है; इन्हीं से प्राणी ऋतुओं के साथ सब संसाररूपी यज्ञ और बल को धारण करके व्याप्त होते हैं, जिससे सब व्यवहार सिद्ध होते हैं ॥ ६ ॥

यह अट्ठाईसवाँ वर्ग पूरा हुआ ॥

फिर अगले मन्त्र में ईश्वर और भौतिक अग्नि के गुणों का उपदेश किया है—

द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे । यज्ञेषु देवमीळते ॥ ७ ॥

पदार्थ—(**द्रविणोदाः**) जो विद्या, बल, राज्य और धनादि पदार्थों का देने और दिव्य गुणवाला परमेश्वर तथा उत्तम धन आदि पदार्थ देने और दिव्य गुणवाला भौतिक अग्नि है, जिस (**देवम्**) देव को (**ग्रावहस्तासः**) स्तुतिसमूह, ग्रहण वा हनन और पत्थर आदि यज्ञ सिद्ध करनेहारे शिल्पविद्या के पदार्थ हाथ में हैं जिनके ऐसे जो (**द्रविणसः**) यज्ञ करने वा द्रव्यसंपादक विद्वान् हैं, वे (**अध्वरे**) अनुष्ठान करने योग्य क्रियासाध्य हिंसा के अयोग्य और (**यज्ञेषु**) अग्निहोत्र आदि अश्वमेध पर्य्यन्त वा शिल्पविद्यामय यज्ञों में (**ईळते**) पूजन वा उसके गुणों का खोज करके संयुक्त करते हैं वे ही मनुष्य सदा आनन्दयुक्त रहते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। सब मनुष्यों को सब कर्म, उपासना तथा ज्ञानकाण्ड यज्ञों में परमेश्वर ही की पूजा तथा भौतिक अग्नि, होम वा शिल्पादि कामों में अच्छी प्रकार संयुक्त करने योग्य है ॥ ७ ॥

उक्त अग्नि ही सब पदार्थों का देने वा उनका दिलानेवाला है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

द्रविणोदा ददातु नो वसूनि यानि शृण्विरे । देवेषु ता वनामहे ॥८

पदार्थ—हम लोगों के (**यानि**) जिन (**देवेषु**) विद्वान् वा दिव्य सूर्य्य आदि अर्थात् शिल्पविद्या से सिद्ध विमान आदि पदार्थों में (**वसूनि**) जो विद्या, चक्रवर्त्ति राज्य और प्राप्त होने योग्य उत्तम धन (**शृण्विरे**) सुनने में आते तथा हम लोग (**वनामहे**) जिनका सेवन करते हैं (**ता**) उन का (**द्रविणोदाः**) जगदीश्वर (**नः**) हम लोगों के लिए (**ददातु**) देवे तथा अच्छी प्रकार सिद्ध किया हुआ भौतिक अग्नि भी देता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने इस संसार में जीवों के लिए जो पदार्थ उत्पन्न किये हैं, उपकार में संयुक्त किये हैं, उन पदार्थों से जितने प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष वस्तु से सुख उत्पन्न होते हैं, वे विद्वानों ही के सङ्ग से सुख देनेवाले होते हैं ॥ ८ ॥

यज्ञ करनेवाले मनुष्यों को ऋतुओं में करने योग्य कार्य्यों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत । नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! जैसे (**द्रविणोदाः**) यज्ञ का अनुष्ठान करनेवाला विद्वान् मनुष्य यज्ञों में सोम आदि ओषधियों के रस को (**पिपीषति**) पीने की इच्छा करता है, वैसे ही तुम भी उन यज्ञों को (**नेष्ट्रात्**) विज्ञान से (**जुहोत**) देनेलेने का व्यवहार करो, तथा उन यज्ञों को विधि के साथ सिद्ध करके (**ऋतुभिः**) ऋतु-ऋतु के संयोग से सुखों के साथ (**प्रतिष्ठत**) प्रतिष्ठा को प्राप्त हो और उनकी विद्या को सदा (**इष्यत**) जानो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को अच्छे ही काम सीखने चाहिए, दुष्ट नहीं, और सब ऋतुओं में सब सुखों के लिए यथायोग्य कर्म्म करना चाहिए तथा जिस ऋतु में जो देश, स्थिति करने वा जाने-आने योग्य हो, उसमें उसी समय, स्थिति वा जाना-आना तथा उस देश के अनुसार खाना-पीना, वस्त्र-धारणादि व्यवहार करके सब व्यवहारों में सुखों को निरन्तर सेवन करना चाहिए ॥९॥

फिर ऋतु-ऋतु में ईश्वर का ध्यान करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यत्त्वा तुरीयमृतुभिर्द्रविणोदो यजामहे । अध स्मा नो ददिर्भव ॥१०॥

पदार्थ—हे (**द्रविणोदः**) आत्मा की शुद्धि करनेवाले विद्या आदि धनदायक ईश्वर! हम लोग (**यत्**) जिस (**तुरीयम्**) स्थूल, सूक्ष्म, कारण और परम कारण आदि पदार्थों में चौथी संख्या पूरण करने वाले (**त्वा**) आपको (**ऋतुभिः**) पदार्थों को प्राप्त करानेवाले ऋतुओं के योग में (**यजामहे स्म**) सुखपूर्वक पूजते हैं, सो आप (**नः**) हमारे लिए धनादि पदार्थों को (**अध**) निश्चय करके (**ददिः**) देनेवाले (**भव**) हूजिए ॥ १० ॥

भावार्थ—परमेश्वर तीन प्रकार के अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म और कारणरूप जगत् से अलग होने के कारण चौथा है, जो कि सब मनुष्यों को सर्वव्यापी, सब का अन्तर्यामी और आधार, नित्य पूजन करने योग्य है, उसको छोड़कर ईश्वरबुद्धि करके किसी दूसरे पदार्थ की उपासना न करनी चाहिए, क्योंकि इससे भिन्न कोई कर्म के अनुसार जीवों को फल देने वाला नहीं है ॥ १० ॥

फिर ऋतुओं के साथ में सूर्य्य और चन्द्रमा के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अश्विना पिबतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता । ऋतुना यज्ञवाहसा ॥११॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो! तुम (**शुचिव्रता**) पदार्थों की शुद्धि करने (**यज्ञवाहसा**) होम किये हुए पदार्थों को प्राप्त कराने तथा (**दीद्यग्नी**) प्रकाशहेतुरूप अग्निवाले (**अश्विना**) सूर्य्य और चन्द्रमा (**मधु**) मधुर रस को (**पिबतम्**) पीते हैं, जो (**ऋतुना**) ऋतुओं के साथ रसों को प्राप्त करते हैं, उनको यथावत् जानो ॥ ११ ॥

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि मैंने जो सूर्य्य, चन्द्रमा तथा इस प्रकार

मिले हुए अन्य भी दो-दो पदार्थ कार्य्यों की सिद्धि के लिए संयुक्त किये हैं, हे मनुष्यो तुम्हें वे अच्छी प्रकार सब ऋतुओं के सुख तथा व्यवहार की सिद्धि को प्राप्त करते हैं । इनको सब लोग समझें ॥ ११ ॥

फिर भी भौतिक अग्नि के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है--

गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि । देवान् देवयते यज ॥ १२ ॥

पदार्थ जो (**सन्त्य**) क्रियाओं के विभाग में अच्छी प्रकार प्रकाशित होनेवाला भौतिक अग्नि (**गार्हपत्येन**) गृहस्थों के व्यवहार में (**ऋतुना**) ऋतुओं के साथ (**यज्ञनीः**) तीन प्रकार के यज्ञ को प्राप्त कराने वाला (**असि**) है, सो (**देवयते**) यज्ञ करनेवाले विद्वान् के लिए शिल्पविद्या में (**देवान्**) दिव्य व्यवहारों का (**यज**) संगम करता है ॥ १२ ॥

भावार्थ जो विद्वानों से सब व्यवहार रूप कामों में ऋतु-ऋतु के प्रति विद्या के साथ अच्छी प्रकार प्रयोग किया हुआ अग्नि है, सो मनुष्य आदि प्राणियों के लिए दिव्य सुखों को प्राप्त करता है ॥ १२ ॥

जो सब देशों के अनुयोगी वसन्त आदि ऋतु हैं, उनके यथायोग्य गुण प्रतिपादन से चौदहवें सूक्त के अर्थ के साथ इस पन्द्रहवें सूक्त के अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिए ।

यह पन्द्रहवां सूक्त और उनतीसवां वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अथ नवर्च्चस्य षोडशसूक्तस्य काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः ।
इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सोलहवें सूक्त का आरम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में सूर्य्य के गुणों का उपदेश किया है—

आ त्वा वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये । इन्द्र त्वा सूरचक्षसः ॥१॥

पदार्थ हे विद्वन् ! जिस (**वृषणम्**) वर्षा करनेहारे सूर्य्यलोक का (**सोमपीतये**) जिस व्यवहार में सोम अर्थात् ओषधियों के अर्क खिंचे हुए पदार्थों का पान किया जाता है, उसके लिए (**सूरचक्षसः**) जिनका सूर्य्य में दर्शन होता है, (**हरयः**) हरण करनेहारे किरण प्राप्त करते हैं (**त्वा**) उसको तू भी प्राप्त हो, जिसको सब कारीगर लोग प्राप्त होते हैं, उसको सब मनुष्य (**आवहन्तु**) प्राप्त हों । हे मनुष्यो ! जिसको हम लोग जानते हैं (**त्वा**) उसको तुम भी जानो ॥ १ ॥

भावार्थ—सूर्य्य की प्रत्यक्ष दीप्ति सब रसों के हरने, सब का प्रकाश करने तथा वर्षा करानेवाली है, वह यथायोग्य अनुकूलता के साथ सेवन करने से मनुष्यों को उत्तम-उत्तम सुख देती है ॥ १ ॥

फिर भी अगले मन्त्र में सूर्य्यलोक के गुणों का ही उपदेश किया है—

इमा धाना घृतस्नुवो हरी इहोप वक्षतः । इन्द्रं सुखतमे रथे ॥ २ ॥

पदार्थ—(**हरी**) जो पदार्थों को हरनेवाले सूर्य्य के कृष्ण वा शुक्ल पक्ष हैं, वे (**इह**) इस लोक में (**इमाः**) इन (**धानाः**) दीप्तियों को तथा (**इन्द्रम्**) सूर्य्यलोक को (**सुखतमे**) जो बहुत अच्छी प्रकार सुखहेतु (**रथे**) रमण करने योग्य विमान आदि रथों के (**उप**) समीप (**वक्षतः**) प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस संसार में रात्रि और दिन, शुक्ल तथा कृष्णपक्ष, दक्षिणायन और उत्तरायण हरण करनेवाले कहलाते हैं, उनसे सूर्य्यलोक आनन्दरूप व्यवहारों को प्राप्त करता है ॥ २ ॥

अब अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से तीन अर्थों का उपदेश किया है

इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्यध्वरे । इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥

पदार्थ- हम लोग (**प्रातः**) नित्य प्रति (**इन्द्रम्**) परम ऐश्वर्य्य देनेवाले ईश्वर का (**प्रयत्यध्वरे**) बुद्धिप्रद उपासना यज्ञ में (**हवामहे**) आह्वान करें । हम लोग (**प्रयति**) उत्तम ज्ञान देनेवाले (**अध्वरे**) क्रिया से सिद्ध होने योग्य यज्ञ में (**प्रातः**) प्रतिदिन (**इन्द्रम्**) उत्तम ऐश्वर्य्यसाधक विद्युत् अग्नि को (**हवामहे**) क्रियाओं में उपदेश कह सुनके संयुक्त करें, तथा हम लोग (**सोमस्य**) सब पदार्थों के सार रस का (**पीतये**) पीने के लिए (**प्रातः**) प्रतिदिन यज्ञ में (**इन्द्रम्**) बाहरले वा शरीर के भीतरले प्राण को (**हवामहे**) विचार में लावें, और उसके सिद्ध करने का विचार करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को परमेश्वर प्रतिदिन उपासना करने योग्य है, और उसकी ही आज्ञा के अनुकूल वर्त्तना चाहिए, बिजुली तथा जो प्राणरूप वायु है उसकी विद्या से पदार्थों का भोग करना चाहिए ॥ ३ ॥

अब अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से वायु के गुणों का उपदेश किया है—

उप नः सुतमा गहि हरिभिरिन्द्र केशिभिः । सुते हि त्वा हवामहे ॥४

पदार्थ—(**हि**) जिस कारण यह (**इन्द्र**) वायु (**केशिभिः**) जिनके बहुत से केश अर्थात् किरण विद्यमान हैं वे (**हरिभिः**) पदार्थों के हरने वा स्वीकार करने वाले अग्नि, विद्युत् और सूर्य्य के साथ (**नः**) हमारे (**सुतम्**) उत्पन्न किये हुए होम वा शिल्प आदि व्यवहार के (**उपागहि**) निकट प्राप्त होता है, इससे (**त्वा**) उसको (**सुते**) उत्पन्न किये हुए होम वा शिल्प आदि व्यवहारों में हम लोग (**हवामहे**) ग्रहण करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ--जो पदार्थ हम लोगों को शिल्प आदि व्यवहारों में उपकारयुक्त करने चाहिए, वे अग्नि, विद्युत्, सूर्य और वायु ही के निमित्त से प्रकाशित होते तथा जाते-आते हैं ॥ ४ ॥

फिर भी अगले मन्त्र में इन्द्र के गुणों का उपदेश किया है—

सेमं नः स्तोममा गह्युपेदं सवनं सुतम् । गौरो न तृषितः पिब ॥५॥

पदार्थ—उक्त सूर्य्य (**नः**) हमारे (**इमम्**) अनुष्ठान किये हुए (**स्तोमम्**) प्रशंसनीय यज्ञ वा (**सवनम्**) ऐश्वर्य प्राप्त करानेवाले क्रियाकाण्ड को (**न**) जैसे (**तृषितः**) प्यासा (**गौरः**) गौरगुणविशिष्ट हिरन (**उपागहि**) समीप प्राप्त होता है, वैसे (**सः**) वह (**इदम्**) इस (**सुतम्**) उत्पन्न किये ओषधि आदि रस को (**पिब**) पीता है ॥ ५ ॥

भावार्थ- इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे अत्यन्त प्यासे मृग आदि पशु और पक्षी वेग से दौड़कर नदी, तलाब आदि स्थान को प्राप्त होके जल को पीते हैं, वैसे ही यह सूर्य्यलोक अपनी वेगवती किरणों से ओषधि आदि को प्राप्त होकर उसके रस को पीता है, सो यह विद्या की वृद्धि के लिए मनुष्यों को यथावत् उपयुक्त करना चाहिए ॥ ५ ॥

यह तीसवां वर्ग पूरा हुआ ॥

अब वायु किस लिए किसमें किन पदार्थों के रस को पीता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इमे सोमास इन्दवः सुतासो अधि बर्हिषि । ताँ इन्द्र सहसे पिब ॥६॥

पदार्थ—जो (**अधि बर्हिषि**) जिसमें सब पदार्थ वृद्धि को प्राप्त होते हैं, उस अन्तरिक्ष में (**इमे**) ये (**सोमासः**) जिनसे सुख उत्पन्न होते हैं, (**इन्दवः**) और सब पदार्थों को गीला करनेवाले रस हैं, वे (**सहसे**) बल आदि गुणों के लिए ईश्वर ने (**सुतासः**) उत्पन्न किये हैं (**तान्**) उन्हीं को (**इन्द्र**) वायु क्षण-क्षण में (**पिब**) पिया करता है ॥ ६ ॥

भावार्थ ईश्वर ने इस संसार में प्राणियों के बल आदि वृद्धि के लिए जितने मूर्तिमान् पदार्थ उत्पन्न किये हैं, सूर्य्य से छिन्न-भिन्न किये हुए उनको पवन अपने निकट करके धारण करता है, उसके संयोग से प्राणी-अप्राणी बलपराक्रमवाले होते हैं ॥ ६ ॥

उक्त वायु कैसे गुणवाला है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अयं ते स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शन्तमः । अथा सोमं सुतं पिब ॥७

पदार्थ —मनुष्यों को जैसे यह वायु प्रथम (**सुतम्**) उत्पन्न किये हुए (**सोमम्**) सब पदार्थों के रस को (**पिब**) पीता है, (**अथ**) उसके अनन्तर (**ते**) जो उस वायु का (**अग्रियः**) अत्युत्तम (**हृदिस्पृक्**) अन्तःकरण में सुख का स्पर्श करानेवाला (**स्तोमः**) उसके गुणों से प्रकाशित होकर क्रियाओं का समूह विदित (**अस्तु**) हो, वैसे काम करने चाहिए ॥ ७ ॥

भावार्थ मनुष्यों के लिए उत्तम गुण तथा शुद्ध किया हुआ यह पवन अत्यन्त सुखकारी होता है ॥ ७ ॥

विश्वमित् सवनं सुतमिन्द्रो मदाय गच्छति । वृत्रहा सोमपीतये ॥ ८ ॥

पदार्थ यह (**वृत्रहा**) मेघ को हनन करनेवाला (**इन्द्रः**) वायु (**सोमपीतये**) उत्तम-उत्तम पदार्थों का पिलानेवाला तथा (**मदाय**) आनन्द के लिए (**इत्**) निश्चय करके (**सवनम्**) जिससे सब सुखों को सिद्ध करते हैं, उस (**सुतम्**) उत्पन्न हुए (**विश्वम्**) जगत् को (**गच्छति**) प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ वायु आकाश में अपने गमनागमन से सब संसार को प्राप्त होकर मेघ की वृष्टि करने या सब में वेगवाला होकर सब प्राणियों को सुखयुक्त करता है । इसके बिना कोई प्राणी किसी व्यवहार को सिद्ध करने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ ८ ॥

अब अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

सेमं नः काममा पृण गोभिरश्वैः शतक्रतो । स्तवाम त्वा स्वाध्यः ॥९

पदार्थ—हे (**शतक्रतो**) असंख्यात कामों को सिद्ध करने वाले, अनन्तविज्ञानयुक्त जगदीश्वर ! जिस (**त्वा**) आपकी (**स्वाध्यः**) अच्छे प्रकार ध्यान करनेवाले हम लोग (**स्तवाम**) नित्य स्तुति करें, (**सः**) सो आप (**गोभिः**) इन्द्रिय, पृथिवी, विद्या का प्रकाश और पशु तथा (**अश्वैः**) शीघ्र चलने और चलाने वाले अग्नि आदि पदार्थ वा घोड़े, हाथी आदि से (**नः**) हमारी (**कामम्**) कामनाओं को (**आपृण**) सब ओर से पूरण कीजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—ईश्वर में यह सामर्थ्य सर्वदा रहता है कि पुरुषार्थी, धर्मात्मा मनुष्यों को उन के कर्मों के अनुसार सब कामनाओं से पूर्ण करना तथा जो संसार में परम उत्तम-उत्तम पदार्थों का उत्पादन तथा धारण करके सब प्राणियों को सुखयुक्त करता है, इससे सब मनुष्यों को उसी परमेश्वर की नित्य उपासना करनी चाहिए ॥ ९ ॥

ऋतुओं के सम्पादक जो सूर्य्य और वायु आदि पदार्थ हैं, उनके यथायोग्य प्रतिपादन से पूर्व पन्द्रहवें सूक्त के अर्थ के साथ इस सोलहवें सूक्त के अर्थ की संगति समझनी चाहिए ।

यह सोलहवां सूक्त और इकत्तीसवां वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अथास्य नवर्चस्य सप्तदशसूक्तस्य काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रावरुणौ देवते । १, ३, ७, ९ गायत्री; २ यवमध्याविराड्गायत्री, ४ पादनिचृद्गायत्री, ५ भुरिगार्च्यी गायत्री, ६ निचृद्गायत्री, ८ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सत्रहवें सूक्त का आरम्भ है । इसके पहले मन्त्र में इन्द्र और वरुण के गुणों का उपदेश किया है—

इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे । ता नो मृळात ईदृशे ॥ १ ॥

पदार्थ—मैं जिन (सम्राजोः) अच्छी प्रकार प्रकाशमान (इन्द्रावरुणयोः) सूर्य्य और चन्द्रमा के गुणों से (अवः) रक्षा को (आवृणे) अच्छी प्रकार स्वीकार करता हूँ, और (ता) वे (ईदृशे) चक्रवर्त्ति राज्य सुखरूप व्यवहार में (नः) हम लोगों को (मृळातः) सुखयुक्त करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—जैसे प्रकाशमान, संसार के उपकार करने, सब सुखों के देने, व्यवहारों के हेतु और चक्रवर्त्ति राजा के समान सब की रक्षा करनेवाले सूर्य्य और चन्द्रमा हैं, वैसे ही हम लोगों को भी होना चाहिए ॥ १ ॥

अब इन्द्र और वरुण से संयुक्त किये हुए अग्नि और जल के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः । धर्त्तारा चर्षणीनाम् ॥ २ ॥

पदार्थ—जो (हि) निश्चय करके ये सम्प्रयोग किये हुए अग्नि और जल (मावतः) मेरे समान पण्डित तथा (विप्रस्य) बुद्धिमान् विद्वान् के (हवम्) पदार्थों का लेना-देना करानेवाले होम वा शिल्प व्यवहार को (गन्तारा) प्राप्त होते तथा (चर्षणीनाम्) पदार्थों के उठानेवाले मनुष्य आदि जीवों के (धर्त्तारा) धारण करनेवाले (स्थः) होते हैं, इससे मैं इनको अपने सब कामों की (अवसे) क्रिया की सिद्धि के लिए (आवृणे) स्वीकार करता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—पूर्वमन्त्र से इस मन्त्र में 'आवृणे' इस पद का ग्रहण किया है । विद्वानों से युक्ति के साथ कलायन्त्रों में युक्त किये हुए अग्नि, जल जब कलाओं से बल में आते हैं, तब रथों को शीघ्र चलाने, उनमें बैठे हुए मनुष्य आदि प्राणी पदार्थों के धारण कराने और सब को सुख देनेवाले होते हैं ॥ २ ॥

इस प्रकार साधे हुए ये दोनों किस-किसके हेतु होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अनुकामं तर्पयेथामिन्द्रावरुण राय आ । ता वां नेदिष्ठमीमहे ॥ ३ ॥

पदार्थ—जो (इन्द्रावरुण) अग्नि और जल (अनुकामम्) हर एक कार्य्य में (रायः) धनों को देकर (तर्पयेथाम्) तृप्ति करते हैं, (ता) उन (वाम्) दोनों को हम लोग (नेदिष्ठम्) अच्छी प्रकार अपने निकट जैसे हों, वैसे (ईमहे) प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जिस प्रकार अग्नि और जल के गुणों को जानकर क्रियाकुशलता में संयुक्त किये हुए ये दोनों बहुत उत्तम-उत्तम सुखों को प्राप्त करें, उस युक्ति के साथ कार्य्यों में अच्छी प्रकार इनका प्रयोग करना चाहिए ॥ ३ ॥

उक्त कार्य्य के करने से क्या होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनाम् । भूयाम वाजदाव्नाम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हम लोग (हि) जिस कारण (शचीनाम्) उत्तम वाणी वा श्रेष्ठ कर्मों के (युवाकु) मेल तथा (वाजदाव्नाम्) विद्या वा अन्न के उपदेश करने वा देने और (सुमतीनाम्) श्रेष्ठ बुद्धिवाले विद्वानों के (युवाकु) पृथग्भाव करने को (भूयाम) समर्थ होवें, इस कारण से इनको साधें ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को सदा आलस्य छोड़कर अच्छे कामों का सेवन तथा विद्वानों का समागम नित्य करना चाहिए, जिससे अविद्या और दरिद्रता जड़ मूल से नष्ट हों ॥ ४ ॥

फिर इन्द्र और वरुण किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इन्द्रः सहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम् । क्रतुर्भवत्युक्थ्यः ॥ ५ ॥

पदार्थ—सब मनुष्यों को योग्य है कि जो (इन्द्रः) अग्नि, बिजुली और सूर्य्य (हि) जिस कारण (सहस्रदाव्नाम्) असंख्यात धन के देनेवालों के मध्य में (क्रतुः) उत्तमता से कार्य्यों को सिद्ध करनेवाले (भवति) होते हैं, तथा जो (वरुणः) जल, पवन और चन्द्रमा भी (शंस्यानाम्) प्रशंसनीय पदार्थों में उत्तमता से कार्य्यों के साधक हैं, इससे जानना चाहिए कि उक्त बिजुली आदि पदार्थ (उक्थ्यः) साधुता के साथ विद्या की सिद्धि करने में उत्तम हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—पहिले मन्त्र से इस मन्त्र में 'हि' इस पद की अनुवृत्ति है । जितने पृथिवी आदि वा अन्न आदि पदार्थ दान आदि के साधक हैं उनमें अग्नि, विद्युत् और सूर्य्य मुख्य हैं, इससे सब को चाहिए कि उनके गुणों का उपदेश करके उनकी स्तुति वा उनका उपदेश सुनें और करें, क्योंकि जो पृथिवी आदि पदार्थों में जल, वायु और चन्द्रमा अपने-अपने गुणों के साथ प्रशंसा करने और जानने योग्य हैं, वे क्रियाकुशलता में संयुक्त किये हुए उन क्रियाओं को सिद्धि करानेवाले होते हैं ॥ ५ ॥

यह बत्तीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

फिर उन दोनों से मनुष्यों को क्या-क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

तयोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि । स्यादुत प्ररेचनम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हम लोग जिन इन्द्र और वरुण के (अवसा) गुण, ज्ञान वा उनके उपकार करने से (इत्) ही जिन सुख और उत्तम धनों को (सनेम) सेवन करें (तयोः) उनके निमित्त से (च) और उनसे पाये हुए असंख्यात धन को (निधीमहि) स्थापित करें, अर्थात् कोश आदि उत्तम स्थानों में भरें, और जिन धनों से हमारा (प्ररेचनम्) अच्छी प्रकार अत्यन्त खर्च (उत) भी (स्यात्) सिद्ध हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि अग्नि आदि पदार्थों के उपयोग से पूर्ण धन का सम्पादन और उसकी रक्षा वा उन्नति करके यथायोग्य खर्च करने से विद्या और राज्य की वृद्धि से सब के हित की उन्नति करनी चाहिए ॥ ६ ॥

कैसे धन के लिए उपाय करना चाहिए, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इन्द्रावरुण वामहं हुवे चित्राय राधसे । अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृतम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—जो अच्छी प्रकार क्रिया कुशलता में प्रयोग किये हुए (अस्मान्) हम लोगों को (सुजिग्युषः) उत्तम विजययुक्त (कृतम्) करते हैं, (वाम्) उन इन्द्र और वरुण को (चित्राय) जो कि आश्चर्य्यरूप राज्य, सेना, नौकर, पुत्र, मित्र, रत्न, हाथी, घोड़े आदि पदार्थों से भरा हुआ (राधसे) जिससे उत्तम-उत्तम सुखों को सिद्ध करते हैं, उस सुख के लिए (अहम्) मैं मनुष्य (हुवे) ग्रहण करता हूँ ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अच्छी प्रकार साधन किये हुए मित्र और वरुण को कामों में युक्त करते हैं, वे नाना प्रकार के धन आदि पदार्थ वा विजय आदि सुखों को प्राप्त होकर आप सुखसंयुक्त होते तथा औरों को भी सुखसंयुक्त करते हैं ॥ ७ ॥

फिर उन से क्या-क्या सिद्ध होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इन्द्रावरुण नू नु वां सिषासन्तीषु धीष्वा । अस्मभ्यं शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—जो (सिषासन्तीषु) उत्तम कर्म करने को चाहने और (धीषु) शुभ-अशुभ वृत्तान्त धारण करनेवाली बुद्धियों में (नु) शीघ्र (नु) जिस कारण (अस्मभ्यम्) पुरुषार्थी विद्वानों के लिए (शर्म) दुःखविनाश करने वाले उत्तम सुख का (आयच्छतम्) अच्छी प्रकार विस्तार करते हैं, इससे (वाम्) उन (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण को कार्य्यों की सिद्धि के लिए मैं निरन्तर (हुवे) ग्रहण करता हूँ ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से 'हुवे' पद का ग्रहण किया है । जो मनुष्य शास्त्र से उत्तमता को प्राप्त हुई बुद्धियों से शिल्प आदि उत्तम व्यवहारों में उक्त इन्द्र और वरुण को अच्छी रीति से युक्त करते हैं, वे ही इस संसार में सुखों को फैलाते हैं ॥ ८ ॥

उक्त इन्द्र और वरुण के यथायोग्य गुणकीर्तन करने की योग्यता का अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

प्र वामश्नोतु सुष्टुतिरिन्द्रावरुण यां हुवे । यामृधाथे सधस्तुतिम् ॥ ९ ॥

पदार्थ—मैं जिस प्रकार से इस संसार में जिन इन्द्र और वरुण के गुणों की यह (सुष्टुतिः) अच्छी स्तुति (प्राश्नोतु) अच्छी प्रकार व्याप्त होवे, उसको (हुवे) ग्रहण करता हूँ, और (याम्) जिस (सधस्तुतिम्) कीर्ति के साथ शिल्पविद्या को (वाम्) जो (इन्द्रावरुणौ) इन्द्र और वरुण (ऋधाथे) बढ़ाते हैं, उस शिल्पविद्या को (हुवे) ग्रहण करता हूँ ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को जिस पदार्थ के जैसे गुण हैं उनको वैसे ही जानकर और उनसे सदैव उपकार ग्रहण करना चाहिए, इस प्रकार ईश्वर का उपदेश है ॥ ९ ॥

पूर्वोक्त सोलहवें सूक्त के अनुयोगी मित्र और वरुण के अर्थ का इस सूक्त में प्रतिपादन करने से इस सत्रहवें सूक्त के अर्थ के साथ सोलहवें सूक्त के अर्थ की सङ्गति करनी चाहिए ।

यह चौथा अनुवाक, सत्रहवां सूक्त और तेतीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ नवर्चस्य अष्टादशस्य सूक्तस्य काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः । १ - ३ ब्रह्मणस्पति , ४ बृहस्पतीन्द्रसोमा , ५ बृहस्पतिदक्षिणे , ६—८ सदसस्पति , ९ सदसस्पति-नाराशंसौ च देवता । १ विराड्गायत्री, २, ७, ९ गायत्री, ३, ६, ८ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री, ४ निचृद्गायत्री, ५ पादनिचृद्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब अठारहवें सूक्त का आरम्भ है । उसके पहले मन्त्र में यजमान ईश्वर की प्रार्थना कैसी करे, इस विषय का उपदेश किया है --

सोमानं स्वरंणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवंन्तं य औंशिजः ॥ १ ॥

पदार्थ (**ब्रह्मणस्पते**) वेद के स्वामी ईश्वर ! (**यः**) जो मैं (**औशिजः**) विद्या के प्रकाश में संसार को विदित होनेवाला और विद्वानों के पुत्र के समान हूँ, उस मुझ को (**सोमानम्**) ऐश्वर्य्य सिद्ध करने वाले यज्ञ का कर्त्ता (**स्वरणम्**) शब्द, अर्थ के सम्बन्ध का उपदेशक और (**कक्षीवन्तम्**) कक्षा अर्थात् हाथ वा अङ्गुलियों की क्रियाओं में होनेवाली प्रशंसनीय शिल्पविद्या का कृपा से सम्पादन करने वाला (**कृणुहि**) कीजिए ॥ १ ॥

भावार्थ इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो कोई विद्या के प्रकाश में प्रसिद्ध मनुष्य है, वही पढ़ाने वाला और सम्पूर्ण शिल्पविद्या के प्रसिद्ध करने योग्य है । क्योंकि ईश्वर भी ऐसे ही मनुष्य को अपने अनुग्रह से चाहता है ।

फिर वह ईश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है

यो रेवान्यो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः । स नः सिषक्तु यस्तुरः ॥ २ ॥

पदार्थ—(**यः**) जो जगदीश्वर (**रेवान्**) विद्या आदि अनन्त धनवान्, (**यः**) जो (**पुष्टिवर्धनः**) शरीर और आत्मा की पुष्टि बढ़ाने तथा (**वसुवित्**) सब पदार्थों का जानने (**अमीवहा**) अविद्या आदि रोगों का नाश करने तथा (**यः**) जो (**तुरः**) शीघ्र सुख करनेवाला वेद का स्वामी जगदीश्वर है, (**सः**) सो (**नः**) हम लोगों को विद्या आदि धनों के साथ (**सिषक्तु**) अच्छी प्रकार संयुक्त करे ॥ २ ॥

भावार्थ— जो मनुष्य सत्यभाषण आदि नियमों से संयुक्त ईश्वर की आज्ञा का अनुष्ठान करते हैं वे अविद्या आदि रोगों से रहित और शरीर वा आत्मा की पुष्टि-वाले होकर चक्रवर्ति राज्य आदि धन तथा सब रोगों को हरनेवाली ओषधियों को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

अगले मन्त्र में ईश्वर की प्रार्थना का प्रकाश किया है—

मा नः शंसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ्मर्त्यस्य । रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (**ब्रह्मणस्पते**) वेद वा ब्रह्माण्ड के स्वामी जगदीश्वर ! आप (**अररुषः**) जो दान आदि धर्मरहित मनुष्य है, उस (**मर्त्यस्य**) मनुष्य के सम्बन्ध से (**नः**) हमारी (**रक्ष**) रक्षा कीजिए जिससे कि वह (**नः**) हम लोगों के बीच में कोई मनुष्य (**धूर्तिः**) विनाश करने वाला न हो, और आपकी कृपा से जो (**नः**) हमारा (**शंसः**) प्रशंसनीय यज्ञ अर्थात् व्यवहार है वह (**मा प्रणक्**) कभी नष्ट न होवे ॥ ३ ॥

भावार्थ —किसी मनुष्य को धूर्त अर्थात् छल-कपट करने वाले मनुष्य का सङ्ग न करना तथा अन्याय से किसी की हिंसा न करनी चाहिए किन्तु सब को न्याय ही से रक्षा करनी चाहिए ॥ ३ ॥

अगले मन्त्र में इन्द्रादिकों के कार्य्यों का उपदेश किया है—

स घा वीरो न रिष्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।
सोमो हिनोति मर्त्यम् ॥ ४ ॥

पदार्थ उक्त इन्द्र (**ब्रह्मणस्पतिः**) ब्रह्माण्ड का पालन करने वाला जगदीश्वर और (**सोमः**) सोमलता आदि ओषधियों का रस समूह (**यम्**) जिस (**मर्त्यम्**) मनुष्य आदि प्राणी को (**हिनोति**) उन्नतियुक्त करते हैं (**सः**) वह (**वीरः**) शत्रुओं का जीतने वाला वीर पुरुष (**न घ रिष्यति**) निश्चय है कि वह विनाश को प्राप्त कभी नहीं होता ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य वायु विद्युत् सूर्य्य और सोम आदि ओषधियों के गुणों को ग्रहण करके अपने कार्य्यों को सिद्ध करते हैं, वे कभी दुःखी नहीं होते ॥ ४ ॥

कैसे वे रक्षा करनेवाले होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम् । दक्षिणा पात्वंहसः ॥ ५ ॥

पदार्थ हे (**ब्रह्मणस्पते**) ब्रह्माण्ड के पालन करने वाले जगदीश्वर ! (**त्वम्**) आप (**अंहसः**) पापों से जिसको (**पातु**) रक्षा करते हैं, (**तम्**) उस धर्मात्मा यज्ञ करने वाले (**मर्त्यम्**) विद्वान् मनुष्य की (**सोमः**) सोमलता आदि ओषधियों के रस (**इन्द्रः**) वायु और (**दक्षिणा**) जिससे वृद्धि को प्राप्त होते हैं, ये सब (**पातु**) रक्षा करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अधर्म से दूर रहकर अपने सुखों के बढ़ाने की इच्छा करते हैं, वे ही परमेश्वर के सेवक और उक्त सोम, इन्द्र और दक्षिणा इन पदार्थों को युक्ति के साथ सेवन कर सकते हैं ॥ ५ ॥

यह चौंतीसवां वर्ग पूरा हुआ ॥

अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से परमेश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनिं मेधामयासिषम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—मैं (**इन्द्रस्य**) जो सब प्राणियों को ऐश्वर्य्य देने (**काम्यम्**) उत्तम (**सनिम्**) पापपुण्य कर्मों के यथायोग्य फल देने और (**प्रियम्**) सब प्राणियों को प्रसन्न कराने वाले (**अद्भुतम्**) आश्चर्य्यमय गुण और स्वभाव (**सदसस्पतिम्**) और जिसमें विद्वान् धार्मिक न्याय करने वाले स्थित हों, उस सभा के स्वामी परमेश्वर की उपासना और सब उत्तम गुण स्वभाव परोपकारी सभापति को प्राप्त होके (**मेधाम्**) उत्तम ज्ञान को धारण करने वाली बुद्धि को (**अयासिषम्**) प्राप्त होऊँ ॥ ६ ॥

भावार्थ जो मनुष्य सर्वशक्तिमान्, सब के अधिष्ठाता और सब आनन्द के देने वाले परमेश्वर की उपासना करने और उत्कृष्ट न्यायाधीश को प्राप्त होते हैं, वे ही सब शास्त्रों के बोध से प्रसिद्ध क्रियाओं से युक्त बुद्धियों को प्राप्त और पुरुषार्थी होकर विद्वान् होते हैं ॥ ६ ॥

वही सब जगत् को रचता है, इसका उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन । स धीनां योगमिन्वति ॥ ७ ॥

पदार्थ हे मनुष्यो ! (**यस्मात्**) जिस (**विपश्चितः**) अनन्त विद्या वाले सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर के (**ऋते**) विना (**यज्ञः**) जो कि दृष्टिगोचर संसार है, सो (**चन**) कभी (**न सिध्यति**) सिद्ध नहीं हो सकता, (**सः**) वह जगदीश्वर सब मनुष्यों की (**धीनाम्**) बुद्धि और कर्मों के (**योगम्**) संयोग को (**इन्वति**) व्याप्त होता वा जानता है ॥ ७ ॥

भावार्थ व्यापक ईश्वर सब में रहने वाले और व्याप्त जगत् का नित्य सम्बन्ध है वही सब संसार को रचकर तथा धारण करके सब की बुद्धि और कर्मों को अच्छी प्रकार जानकर सब प्राणियों के लिए उनके शुभ-अशुभ कर्मों के अनुसार सुख-दुःखरूप फल को देता है । कभी ईश्वर को छोड़के अपने आप स्वभाव मात्र से सिद्ध होने वाला अर्थात् जिस का कोई स्वामी न हो ऐसा संसार नहीं हो सकता, क्योंकि जड़ पदार्थों के अचेतन होने से यथायोग्य नियम के साथ उत्पन्न होने की योग्यता कभी नहीं होती ॥ ७ ॥

फिर वह यज्ञ कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आदृध्नोति हविष्कृतिं प्राञ्चं कृणोत्यध्वरम् । होत्रा देवेषु गच्छति ॥ ८ ॥

पदार्थ जो उक्त सर्वज्ञ सभापति देव परमेश्वर (**प्राञ्चम्**) सब में व्याप्त और जिसको प्राणी अच्छी प्रकार प्राप्त होते हैं, (**हविष्कृतिम्**) होम करने योग्य पदार्थों का जिस में व्यवहार और (**अध्वरम्**) क्रियाजन्य अर्थात् क्रिया से उत्पन्न होने वाले जगत्‌रूप यज्ञ में (**होत्राणि**) होम सिद्ध करानेवाली क्रियाओं को (**कृणोति**) उत्पन्न करता तथा (**आदृध्नोति**) अच्छी प्रकार बढ़ाता है, फिर वही यज्ञ (**देवेषु**) दिव्य गुणों में (**गच्छति**) प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ - जिस कारण परमेश्वर सकल संसार को रचता है, इस से सब पदार्थ परस्पर अपने-अपने संयोग में बढ़ते, और ये पदार्थ क्रियामययज्ञ और शिल्पविद्या में अच्छी प्रकार संयुक्त किये हुए बड़े-बड़े सुखों को उत्पन्न करते हैं ॥ ८ ॥

फिर वह यज्ञ कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

नराशंसं सुधृष्टममपश्यं सप्रथस्तमम् । दिवो न सद्ममखसम् ॥ ९ ॥

पदार्थ—मैं (**न**) जैसे प्रकाशमय सूर्य्यादिकों के प्रकाश से (**सद्ममखसम्**) जिस में प्राणी स्थिर होते और जिसमें जगत् प्राप्त होता है, (**सप्रथस्तमम्**) जो बड़े-बड़े आकाश आदि पदार्थों के साथ अच्छी प्रकार व्याप्त (**सुधृष्टमम्**) उत्तमता से सब संसार को धारण करने (**नराशंसम्**) सब मनुष्यों को अवश्य स्तुति करने योग्य पूर्वोक्त (**सदसस्पतिम्**) सभापति परमेश्वर को (**अपश्यम्**) ज्ञानदृष्टि से देखता हूँ वैसे तुम भी सभाओं के पति को प्राप्त होके न्याय से सब प्रजा का पालन करके नित्य दर्शन करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे मनुष्य सब जगह विस्तृत हुए सूर्य्यादि के प्रकाश को देखता है, वैसे ही सब जगह व्याप्त ज्ञानप्रकाश रूप परमेश्वर को जानकर सुख के विस्तार को प्राप्त होता है ।

इस मन्त्र में 'सदसस्पतिम्' इस पद की अनुवृत्ति जाननी चाहिए ॥ ९ ॥

पूर्व सत्रहवें सूक्त के अर्थ के साथ मित्र और वरुण के साथ अनुयोगी बृहस्पति आदि अर्थों के प्रतिपादन से इस अठारहवें सूक्त के अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिए ।

यह अठारहवां सूक्त और पैंतीसवां वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अथ नवर्चस्यैकोनविंशस्य सूक्तस्य काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्मरुतश्च देवताः । १, ३—८ गायत्री, २ निचृद्गायत्री, ९ पिपीलिका-मध्यानिचृद् गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब उन्नीसवें सूक्त का आरम्भ है । उसके पहले मन्त्र में अग्नि के गुणों का उपदेश किया है—

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ १ ॥

पदार्थ—जो (**अग्ने**) भौतिक अग्नि (**मरुद्भिः**) विशेष पवनों के साथ

(आगहि) सब प्रकार से प्राप्त होता है, वह विद्वानों की क्रियाओं से (त्यम्) उक्त (चारुम् अध्वरम् प्रति) प्रत्येक उत्तम-उत्तम यज्ञ में उनकी सिद्धि वा (गोपीथाय) अनेक प्रकार की रक्षा के लिए (प्रहूयसे) अच्छी प्रकार क्रिया में युक्त किया जाता है ॥ १ ॥

भावार्थ—जो यह भौतिक अग्नि और प्रसिद्ध सूर्य्य बिजुलीरूप से पवनों के साथ प्रदीप्त होता है, वह विद्वानों को प्रशंसनीय बुद्धि से हरएक क्रिया-सिद्धि वा सबकी रक्षा के लिए, गुणों के विज्ञानपूर्वक उपदेश करना वा सुनना चाहिए ॥ १ ॥

अगले मन्त्र में अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि के गुणों का उपदेश किया है—

नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विज्ञानस्वरूप परमेश्वर! आप कृपा करके (मरुद्भिः) प्राणों के साथ (आगहि) प्राप्त हूजिए, अर्थात् विदित हूजिए। आप कैसे हैं कि जिनकी (परः) अत्युत्तम (महः) महिमा है, (तव) आपके (क्रतुम्) कर्मों का पूर्णता से जानने को (नहि) न कोई (देवः) विद्वान् (न) और न कोई (मर्त्यः) अज्ञानी मनुष्य योग्य है, तथा जो (अग्ने) जिस भौतिक अग्नि का (परः) अति श्रेष्ठ (महः) महिमा है, वह (क्रतुम्) कर्म और बुद्धि को प्राप्त करता है (तव) उसके गुणों को (न देवः) न कोई विद्वान् और (न मर्त्यः) न कोई अज्ञानी मनुष्य जान सकता है, वह अग्नि (मरुद्भिः) प्राणों के साथ (आगहि) सब प्रकार से प्राप्त होता है ॥ २ ॥

भावार्थ—परमेश्वर की सर्वोत्तमता से उसकी महिमा वा कर्म अपार हैं, इससे उनका पार कोई नहीं पा सकता, किन्तु जितनी जिसकी बुद्धि वा विद्या है, उसके अनुसार समाधियोगयुक्त प्राणायाम से जो कि अन्तर्यामिरूप करके वेद और संसार में परमेश्वर ने अपनी रचना स्वरूप वा गुण वा जितने अग्नि आदि पदार्थ प्रकाशित किये हैं उतने ही जान सकता है, अधिक नहीं ॥ २ ॥

अगले मन्त्र में अग्निशब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि के गुणों का उपदेश किया है—

ये महो रजसो विदुर्विश्वे देवासो अद्रुहः। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥३॥

पदार्थ—(ये) जो (अद्रुहः) किसी से द्रोह न रखने वाले (विश्वे) सब (देवासः) विद्वान् लोग हैं, जो कि (मरुद्भिः) पवन और अग्नि के साथ संयोग में (महः) बड़े-बड़े (रजसः) लोकों को (विदुः) जानते हैं, वे ही सुखी होते हैं। हे (अग्ने) स्वयंप्रकाश होनेवाले परमेश्वर! आप (मरुद्भिः) पवनों के साथ (आगहि) विदित हूजिए, और जो आपका बनाया हुआ (अग्ने) सब लोकों का प्रकाश करने वाला भौतिक अग्नि है, सो भी आपकी कृपा से (मरुद्भिः) पवनों के साथ कार्य्यसिद्धि के लिए (आगहि) प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग अग्नि से आकर्षण वा प्रकाश द्वारा तथा पवनों की चेष्टा द्वारा धारण किये हुए लोक हैं, उनको जानकर उनसे कार्य्यों में उपयोग लेना जानते हैं, वे ही अत्यन्त सुखी होते हैं ॥ ३ ॥

फिर उक्त पवन किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

य उग्रा अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ४ ॥

पदार्थ—(ये) जो (उग्राः) तीव्र वेग आदि गुणवाले (अनाधृष्टासः) किसी के रोकने में न आ सकें, वे पवन (ओजसा) अपने बल आदि गुणों से संयुक्त हुए (अर्कम्) सूर्य्यादि लोकों को (आनृचुः) गुणों से प्रकाशित करते हैं, इन (मरुद्भिः) पवनों के साथ (अग्ने) यह बिजुली और प्रसिद्ध अग्नि (आगहि) कार्य्य में सहाय करनेवाला होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जितना बल वर्त्तमान है उतना वायु और बिजुली के सकाश से उत्पन्न होता है, ये वायु सब लोकों के धारण करनेवाले हैं, इनके संयोग से बिजुली वा सूर्य्य आदि लोक प्रकाशित होते तथा धारण भी किये जाते हैं, इससे वायु के गुणों का जानना वा उनसे उपकार ग्रहण करने से अनेक प्रकार के कार्य्य सिद्ध होते हैं ॥ ४ ॥

फिर भी उक्त वायु कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ५ ॥

पदार्थ—(ये) जो (घोरवर्पसः) घोर अर्थात् जिनका पदार्थों को छिन्न-भिन्न करनेवाला रूप और जो (रिशादसः) रोगों को नष्ट करने वाला (सुक्षत्रासः) तथा अन्तरिक्ष में निर्भय राज्य करनेहारे और (शुभ्राः) अपने गुणों से सुशोभित पवन हैं, उनके साथ (अग्ने) भौतिक अग्नि (आगहि) प्रकट होता अर्थात् कार्य्यसिद्धि को देता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो यज्ञ के धूम से शोधे हुए पवन हैं, वे अच्छे राज्य के कराने वाले होकर रोग आदि दोषों का नाश करते हैं। और जो अशुद्ध अर्थात् दुर्गन्ध आदि दोषों से भरे हुए हैं वे सुखों का नाश करते हैं, इस से मनुष्यों को चाहिए कि अग्नि में होम द्वारा वायु की शुद्धि से अनेक प्रकार के सुखों को सिद्ध करें ॥ ५ ॥

यह छत्तीसवां वर्ग पूरा हुआ॥

फिर भी उक्त पवन कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ये नाकस्याधि रोचने दिवि देवास आसते। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥६॥

पदार्थ—(ये) जो (देवासः) प्रकाशमान और अच्छे-अच्छे गुणों वाले पृथिवी वा चन्द्र आदि लोक (नाकस्य) सुख की सिद्धि करनेवाले सूर्य्य लोक के (रोचने) रुचिकारक (दिवि) प्रकाश में (अध्यासते) उनके धारण और प्रकाश करने वाले हैं, उन पवनों के साथ (अग्ने) यह अग्नि (मरुद्भिः) प्राणों के साथ (आगहि) सुखों की प्राप्ति कराता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—सब लोक परमेश्वर के प्रकाश से प्रकाशवान् हैं, परन्तु उसके रचे हुए सूर्य्य लोक की दीप्ति अर्थात् प्रकाश से पृथिवी और चन्द्रलोक प्रकाशित होते हैं, उन अच्छे-अच्छे गुणवालों के साथ रहने वाले अग्नि को सब कार्य्यों में संयुक्त करना चाहिए ॥ ६ ॥

फिर उक्त पवन किन कार्य्यों के हेतु होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

य ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम्। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ७ ॥

पदार्थ—(ये) जो वायु (पर्वतान्) मेघों को (ईङ्खयन्ति) छिन्न-भिन्न करते और वर्षाते हैं, (अर्णवम्) समुद्र का (तिरः) तिरस्कार करते वा (समुद्रम्) अन्तरिक्ष को जल से पूर्ण करते हैं, उन (मरुद्भिः) पवनों के साथ (अग्ने) अग्नि अर्थात् बिजुली (आगहि) प्राप्त होती अर्थात् सन्मुख आती-जाती है ॥ ७ ॥

भावार्थ—वायु के संयोग से ही वर्षा होती है और जल के कण वा रेणु अर्थात् सब पदार्थों के अत्यन्त छोटे-छोटे कण पृथिवी से अन्तरिक्ष को जाते तथा वहाँ से पृथिवी को आते हैं, उनके साथ वा उनके निमित्त से बिजुली उत्पन्न होती और बद्दलों में छिप जाती है ॥ ७ ॥

ये ही प्रकाश आदि गुणों का विस्तार करते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्रमोजसा। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥८॥

पदार्थ—(ये) जो वायु अपने (ओजसा) बल वा वेग से (समुद्रम्) अन्तरिक्ष को प्राप्त होते तथा जलमय समुद्र का (तिरः) तिरस्कार करते हैं, तथा जो (रश्मिभिः) सूर्य्य की किरणों के साथ (आतन्वन्ति) विस्तार को प्राप्त होते हैं, उन (मरुद्भिः) पवनों के साथ (अग्ने) भौतिक अग्नि (आगहि) कार्य्यों की सिद्धि को देता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—इन पवनों की व्याप्ति से सब पदार्थ बढ़कर बल देनेवाले होते हैं, इससे मनुष्यों को वायु और अग्नि के योग से अनेक प्रकार के कार्य्यों की सिद्धि करनी चाहिए ॥ ८ ॥

फिर उनसे क्या सिद्ध करना चाहिए, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अभि त्वा पूर्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥९॥

पदार्थ—जिन (मरुद्भिः) पवनों से (अग्ने) भौतिक अग्नि (आगहि) कार्य्यसाधक होता है, उनमें (पूर्वपीतये) पहले जिसमें पीति अर्थात् सुख का भोग है, उस उत्तम आनन्द के लिए (सोम्यम्) जो सुखों के उत्पन्न करने योग्य है, (त्वा) उस (मधु) मधुर आनन्द देनेवाले पदार्थों के रस को मैं (अभिसृजामि) सब प्रकार से उत्पन्न करता हूँ ॥ ९ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग जिन वायु, अग्नि आदि पदार्थों के अनुयोग से सब शिल्पक्रियारूपी यज्ञ को सिद्ध करते हैं, उन्हीं पदार्थों से सब मनुष्यों को सब कार्य्य सिद्ध करने चाहिएं ॥ ९ ॥

अठारहवें सूक्त में कहे हुए बृहस्पति आदि पदार्थों के साथ इस सूक्त से जिन अग्नि वा वायु का प्रतिपादन है, उनकी विद्या की एकता होने से इस उन्नीसवें सूक्त की सङ्गति जाननी चाहिए।

इस अध्याय में अग्नि और वायु आदि पदार्थों की विद्या के उपयोग के लिए प्रतिपादन करता और पवनों के साथ रहने वाले अग्नि का प्रकाश करता हुआ परमेश्वर अध्याय की समाप्ति को प्रकाशित करता है।

यह प्रथम अष्टक में प्रथम अध्याय, उन्नीसवां सूक्त और सैंतीसवां वर्ग समाप्त हुआ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

卐

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥

अथाष्टर्चस्य विंशस्य सूक्तस्य काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः । ऋभवो देवता । १, २, ६, ७ गायत्री, ३ विराड्गायत्री, ४ निचृद्गायत्री, ५, ८ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब दूसरे अध्याय का प्रारम्भ है । उसके पहिले मन्त्र में ऋभु की स्तुति का प्रकाश किया है—

अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया । अकारि रत्नधातमः ॥१॥

पदार्थ—(विप्रेभिः) ऋभु अर्थात् बुद्धिमान् विद्वान् लोग (आसया) अपने मुख से (देवाय) अच्छे-अच्छे गुणों के भोगों से युक्त (जन्मने) दूसरे जन्म के लिए (रत्नधातमः) अर्थात् अति सुन्दरता से सुखों की दिलानेवाली जैसी (अयम्) विद्या के विचार से प्रत्यक्ष की हुई परमेश्वर की (स्तोमः) स्तुति है, वह वैसे जन्म के भोग करनेवाली होती है ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पुनर्जन्म का विधान जानना चाहिए । मनुष्य जैसे कर्म किया करते हैं, वैसे ही जन्म और भोग उनको प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

फिर वे विद्वान् कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी । शमीभिर्यज्ञमाशत ॥ २ ॥

पदार्थ—(ये) जो ऋभु अर्थात् उत्तम बुद्धिवाले विद्वान् लोग (मनसा) अपने विज्ञान से (वचोयुजा) वाणियों से सिद्ध किये हुए (हरी) गमन और धारण गुणों को (ततक्षुः) अति सूक्ष्म करते और उनको (शमीभिः) दण्डों से कलायन्त्रों को घुमाके (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य प्राप्ति के लिए (यज्ञम्) पुरुषार्थ से सिद्ध करने योग्य यज्ञ को (आशत) परिपूर्ण करते हैं, वे सुखों को बढ़ा सकते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् पदार्थों के संयोग वा वियोग से धारण, आकर्षण वा वेगादि गुणों को जानकर क्रियाओं से शिल्पव्यवहार आदि यज्ञ को सिद्ध करते हैं, वे ही उत्तम-उत्तम ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

वे उक्त विद्वान् किससे क्या-क्या सिद्ध करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है

तक्षन्नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथम् । तक्षन् धेनुं सबर्दुघाम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—जो बुद्धिमान् विद्वान् लोग (नासत्याभ्याम्) अग्नि और जल से (परिज्मानम्) जिससे सब जगह में जाना-आना बने उस (सुखम्) सुशोभित विस्तारवाले (रथम्) विमान आदि रथ को (तक्षन्) क्रिया से बनाते हैं, वे (सबर्दुघाम्) सब ज्ञान को पूर्ण करने वाली (धेनुम्) वाणी को (तक्षन्) सूक्ष्म करते हुए धीरज से प्रकाशित करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अङ्ग, उपाङ्ग और उपवेदों के साथ वेदों को पढ़कर उनसे प्राप्त हुए विज्ञान से अग्नि आदि पदार्थों के गुणों को जानकर कलायन्त्रों से सिद्ध होने वाले विमान आदि रथों में संयुक्त करके उनको सिद्ध किया करते हैं, वे कभी दुःख और दरिद्रता आदि दोषों को नहीं देखते ॥ ३ ॥

फिर वे विद्वान् कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः । ऋभवो विष्ट्यक्रत ॥ ४ ॥

पदार्थ—जो (ऋजूयवः) कर्मों से अपनी सरलता को चाहने और (सत्यमन्त्राः) सत्य अर्थात् यथार्थ विचार के करने वाले (ऋभवः) बुद्धिमान् सज्जन पुरुष हैं, वे (विष्टी) व्याप्त होने (युवाना) मेल-अमेल स्वभाव वाले तथा (पितरा) पालन हेतु पूर्वोक्त अग्नि और जल को क्रिया की सिद्धि के लिए बारम्बार (अक्रत) अच्छी प्रकार प्रयुक्त करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो आलस्य को छोड़े हुए सत्य में प्रीति रखने और सरल बुद्धिवाले मनुष्य हैं, वे ही अग्नि और जल आदि पदार्थों से उपकार लेने को समर्थ हो सकते हैं ॥ ४ ॥

फिर वे किससे क्या करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सं वो मदासो अग्मतेन्द्रेण च मरुत्वता । आदित्येभिश्च राजभिः ॥५॥

पदार्थ—हे मेधावी विद्वानो ! तुम लोग (मरुत्वता) जिसके सम्बन्धी पवन हैं, उस (इन्द्रेण) बिजुली वा (राजभिः) प्रकाशमान (आदित्येभिः) सूर्य्य की किरणों के साथ युक्त करते हो, इससे (मदासः) विद्या के आनन्द (वः) तुम लोगों को (अग्मत) प्राप्त होते हैं, इससे तुम लोग उनसे ऐश्वर्य्यवाले हूजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग जब वायु और बिजुली का आलम्ब लेकर सूर्य्य की किरणों के समान आग्नेयादि अस्त्र, असि आदि शस्त्र और विमान आदि यानों को सिद्ध करते हैं, तब वे शत्रुओं को जीत राजा होकर सुखी होते हैं ॥ ५ ॥

यह पहला वर्ग समाप्त हुआ ॥

उक्त कार्य्य के करने में किसका सामर्थ्य होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उत त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम् । अकर्त्त चतुरः पुनः ॥६॥

पदार्थ—जब विद्वान् लोग जो (त्वष्टुः) शिल्पी अर्थात् कारीगर (देवस्य) विद्वान् का (निष्कृतम्) सिद्ध किया हुआ काम सुख का देनेवाला है (त्यम्) उस (नवम्) नवीन दृष्टिगोचर कर्म को देखकर (उत) निश्चय से (पुनः) उसके अनुसार फिर (चतुरः) भू, जल, अग्नि और वायु से सिद्ध होने वाले शिल्पकार्मों को (अकर्त्त) अच्छी प्रकार सिद्ध करते हैं, तब आनन्दयुक्त होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग किसी क्रियाकुशल कारीगर के निकट बैठकर उसकी चतुराई को दृष्टिगोचर करके फिर सुख के साथ कारीगरी के काम करने को समर्थ हो सकते हैं ॥ ६ ॥

इस प्रकार से सिद्ध किये हुए इन पदार्थों से क्या क्या सिद्ध होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ते नो रत्नानि धत्तन त्रिरा साप्तानि सुन्वते । एकमेकं सुशस्तिभिः ॥७॥

पदार्थ—जो विद्वान् (सुशस्तिभिः) अच्छी-अच्छी प्रशंसा वाली क्रियाओं से (साप्तानि) जो सात संख्या के वर्ग अर्थात् ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासियों के कर्म, यज्ञ का करना, विद्वानों का सत्कार तथा उनसे मिलाप और दान अर्थात् सब के उपकार के लिए विद्या का देना है, इनसे (एकमेकम्) एक-एक कर्म करके (त्रिः) त्रिगुणित सुखों को (सुन्वते) प्राप्त करते हैं (ते) वे बुद्धिमान् लोग (नः) हमारे लिए (रत्नानि) विद्या और सुवर्णादि धनों को (धत्तन) अच्छी प्रकार धारण करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को उचित है कि जो ब्रह्मचारी आदि चार आश्रमों के कर्म तथा यज्ञ के अनुष्ठान आदि तीन प्रकार के हैं उनको मन, वाणी और शरीर से यथावत् करें । इस प्रकार मिलकर सात कर्म होते हैं, जो मनुष्य इनको किया करते हैं उनके मङ्गल, उपदेश और विद्या से रत्नों को प्राप्त होकर सुखी होते हैं । वे एक-एक कर्म को सिद्ध वा समाप्त करके दूसरे का आरम्भ करें, इस क्रम से शान्ति और पुरुषार्थ से सब कर्मों का सेवन करते रहें ॥ ७ ॥

वे उक्त कर्म को करके किसको प्राप्त होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अधारयन्त वह्नयोऽभजन्त सुकृत्यया । भागं देवेषु यज्ञियम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—जो (वह्नयः) संसार में शुभकर्म वा उत्तम गुणों को प्राप्त कराने वाले बुद्धिमान् सज्जन पुरुष (सुकृत्यया) श्रेष्ठ कर्म से (देवेषु) विद्वानों में रहकर (यज्ञियम्) यज्ञ से सिद्ध कर्म को (अधारयन्त) धारण करते हैं, वे (भागम्) आनन्द को निरन्तर (अभजन्त) सेवन करते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि अच्छे कर्म वा विद्वानों की सङ्गति तथा पूर्वोक्त यज्ञ के अनुष्ठान के द्वारा व्यवहार सुख से लेकर मोक्षपर्यन्त सुख की प्राप्ति करनी चाहिए ॥ ८ ॥

उन्नीसवें सूक्त में कहे हुए पदार्थों से उपकार लेने को बुद्धिमान् ही समर्थ होते हैं । इस अभिप्राय से इस बीसवें सूक्त के अर्थ का मेल पिछले उन्नीसवें सूक्त के साथ जानना चाहिए ।

यह बीसवां सूक्त और दूसरा वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अथैकविंशस्य षडृचस्य सूक्तस्य काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । १, ३, ४, ६, गायत्री, २ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री, ५ निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब इक्कीसवें सूक्त का आरम्भ है । उसके पहले मन्त्र में इन्द्र और अग्नि के गुण प्रकाशित किये हैं—

इहेन्द्राग्नी उप ह्वये तयोरित्स्तोममुश्मसि । ता सोमं सोमपातमा ॥१॥

पदार्थ—(इह) इस संसार में होमादि शिल्प जो (सोमपातमा) पदार्थों के अत्यन्त पालन के निमित्त और (सोमम्) संसारी पदार्थों की निरन्तर रक्षा करने वाले (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि हैं (ता) उनको मैं (उपह्वये) अपने समीप काम की सिद्धि के लिए वश में लाता हूँ, और (तयोः) उनके (इत्) और (स्तोमम्) गुणों के प्रकाश करने को हम लोग (उश्मसि) इच्छा करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को वायु और अग्नि के गुण जानने की इच्छा करनी चाहिए क्योंकि कोई भी मनुष्य उनके गुणों के उपदेश वा श्रवण के बिना उपकार लेने को समर्थ नहीं हो सकता है ॥ १ ॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ता यज्ञेषु प्र शंसतेन्द्राग्नी शुम्भता नरः । ता गायत्रेषु गायत ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (नरः) यज्ञ करने वाले मनुष्यो ! तुम जिन पूर्वोक्त (इन्द्राग्नी)

वायु और अग्नि के (प्रशंसत) गुणों को प्रकाशित तथा (शुम्भत) सब जगह कामों में प्रदीप्त करते हो (ता) उनको (गायत्रेषु) गायत्री छन्द वाले वेद स्तोत्रों में (गायत) षड्ज आदि स्वरों से गाओ ॥ २ ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य अभ्यास के बिना वायु और अग्नि के गुणों के जानने वा उनसे उपकार लेने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ २ ॥

वे किस उपकार के करने वाले होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ता मित्रस्य प्रशस्तय इन्द्राग्नी ता हवामहे । सोमपा सोमपीतये ॥ ३ ॥

पदार्थ—जैसे विद्वान् लोग वायु और अग्नि के गुणों को जानकर उपकार लेते हैं, वैसे हम लोग भी (ता) उन पूर्वोक्त (मित्रस्य) सब के उपकार करनेहारे और सब के मित्र के (प्रशस्तये) प्रशंसनीय सुख के लिए तथा (सोमपीतये) सोम अर्थात् जिस व्यवहार में संसारी पदार्थों की अच्छी प्रकार रक्षा होती है उसके लिए (ता) उन (सोमपा) सब पदार्थों की रक्षा करने वाले (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि को (हवामहे) स्वीकार करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जब मनुष्य मित्रपन का आश्रय लेकर एक दूसरे के उपकार के लिए विद्या से वायु और अग्नि को कार्य्यों में संयुक्त करके रक्षा के साथ पदार्थ और व्यवहारों की उन्नति करते हैं तभी वे सुखी होते हैं ॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उग्रा सन्ता हवामह उपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी एह गच्छताम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हम लोग विद्या की सिद्धि के लिए जिन (उग्रा) तीव्र (सन्ता) वर्त्तमान (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि का (हवामहे) उपदेश वा श्रवण करते हैं वे (इदम्) इस प्रत्यक्ष (सवनम्) अर्थात् जिससे पदार्थों को उत्पन्न और (सुतम्) उत्तम शिल्पक्रिया से सिद्ध किये हुए व्यवहार को (उपागच्छताम्) हमारे निकटवर्ती करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को जिस कारण से दृष्टिगोचर हुए तीव्र वेग आदि गुण वाले वायु और अग्नि शिल्पक्रियायुक्त व्यवहार में सम्पूर्ण कार्य्यों के उपयोगी होते हैं, इससे इनको विद्या की सिद्धि के लिए कार्य्यों में संयुक्त करना चाहिए ॥ ४ ॥

ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम् । अप्रजाः सन्त्वत्रिणः ॥५॥

पदार्थ—मनुष्यों ने जो अच्छी प्रकार क्रिया की कुशलता में संयुक्त किये हुए (महान्ता) बड़े-बड़े उत्तम गुण वाले (ता) पूर्वोक्त (सदस्पती) सभाओं के निमित्त (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि हैं, जो (रक्षः) दुष्ट व्यवहारों को (उब्जतम्) नाश करते और उनसे (अत्रिणः) शत्रुजन (अप्रजाः) पुत्रादिरहित (सन्तु) हों, उनका उपयोग सब लोग क्यों न करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—विद्वानों को योग्य है कि जो सब पदार्थों के स्वरूप वा गुणों से अधिक वायु और अग्नि हैं उनको अच्छी प्रकार जानकर क्रियाव्यवहार में संयुक्त करें तो वे दुःखों को निवारण करके अनेक प्रकार की रक्षा करने वाले होते हैं ॥ ५ ॥

फिर वे किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

तेन सत्येन जागृतमधि प्रचेतुने पदे । इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—जो (इन्द्राग्नी) प्राण और बिजुली हैं वे (तेन) उस (सत्येन) अविनाशी गुणों के समूह से (प्रचेतुने) जिस में आनन्द से चित्त प्रफुल्लित होता है (पदे) उस सुखप्रापक व्यवहार में (अधिजागृतम्) प्रसिद्ध गुणवाले होते और (शर्म) उत्तम सुख को भी (यच्छतम्) देते हैं, उनको क्यों उपयुक्त न करना चाहिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण भी नित्य होते हैं, जो शरीर में वा बाहर रहने वाले प्राणवायु तथा बिजुली हैं वे अच्छी प्रकार सेवन किये हुए चेतनता कराने वाले होकर सुख देने वाले होते हैं ॥ ६ ॥

बीसवें सूक्त में कहे हुए बुद्धिमानों की पदार्थविद्या की सिद्धि के वायु और अग्नि मुख्य हेतु होते हैं, इस अभिप्राय के जानने से पूर्वोक्त बीसवें सूक्त के अर्थ के साथ इस इक्कीसवें सूक्त के अर्थ का मेल जानना चाहिए।

यह इक्कीसवाँ सूक्त और तीसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथास्यैकविंशत्यृचस्य द्वाविंशस्य सूक्तस्य काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः । १—४ अश्विनौ;
५—८ सविता, ९—१० अग्निः, ११ देव्यः, १२ इन्द्राणीवरुणान्यग्नाय्यः,
१३—१४ द्यावापृथिव्यौ; १५ पृथिवी, १६ विष्णुर्देवो वा;
१७—२१ विष्णुश्च देवता. । १—३, ८, १२, १७, १८
पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री, ४—५, ७, ९—११,
१३—१४, १६, २०—२१ गायत्री; ६, १९
निचृद्गायत्री; १५ विराड्गायत्री च
छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब बाईसवें सूक्त का आरम्भ है। इसके पहले मन्त्र में अश्विनी के गुणों का उपदेश किया है—

प्रातर्युजा वि बोधयाश्विनावेह गच्छताम् । अस्य सोमस्य पीतये ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् मनुष्य ! जो (प्रातर्युजा) शिल्पविद्या-सिद्ध यन्त्रकलाओं में पहले बल देनेवाले (अश्विनौ) अग्नि और पृथिवी (इह) इस शिल्पव्यवहार में (आगच्छताम्) प्राप्त होते हैं, इससे उनको (अस्य) इस (सोमस्य) उत्पन्न करने योग्य सुख समूह को (पीतये) प्राप्ति के लिए तुम हम को (विबोधय) अच्छी प्रकार विदित कराइए ॥ १ ॥

भावार्थ - शिल्प कार्य्यों की सिद्धि करने की इच्छा करने वाले मनुष्यों को चाहिए कि उस में भूमि और अग्नि का पहले ग्रहण करें, क्योंकि इनके बिना विमान आदि यानों की सिद्धि वा गमन का सम्भव नहीं हो सकता ॥ १ ॥

फिर वे किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

या सुरथा रथीतमोभा देवा दिविस्पृशा । अश्विना ता हवामहे ॥ २ ॥

पदार्थ हम लोग (या) जो (दिविस्पृशा) आकाशमार्ग से विमान आदि यानों को एक स्थान से दूसरे स्थान में शीघ्र पहुँचाने (रथीतमा) निरन्तर प्रशंसनीय रथों को सिद्ध करने वाले (सुरथा) जिनके योग से उत्तम-उत्तम रथ सिद्ध होते हैं (देवा) प्रकाशादि गुणवाले (अश्विना) व्याप्तिस्वभाववाले पूर्वोक्त अग्नि और जल हैं, (ता) उन (उभा) एक दूसरे के साथ संयोग करने योग्यों को (हवामहे) ग्रहण करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्यों के लिए अत्यन्त सिद्धि कराने वाले अग्नि और जल हैं वे शिल्पविद्या में संयुक्त किये हुए कार्य्यसिद्धि के हेतु होते हैं ॥ २ ॥

वे क्रिया में किनसे संयुक्त हो सकते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती । तया यज्ञं मिमिक्षतम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे उपदेश करने वा सुनने तथा पढ़ने-पढ़ाने वाले मनुष्यो ! (वाम्) तुम्हारे (अश्विना) गुणप्रकाश करनेवालों की (या) जो (सूनृतावती) प्रशंसनीय बुद्धि से सहित (मधुमती) मधुरगुणयुक्त (कशा) वाणी है (तया) उससे तुम (यज्ञम्) श्रेष्ठ शिक्षारूप यज्ञ को (मिमिक्षतम्) प्रकाश करने की इच्छा नित्य किया करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—उपदेश के बिना किसी मनुष्य को ज्ञान की वृद्धि कुछ भी नहीं हो सकती, इससे सब मनुष्यों को उत्तम विद्या का उपदेश तथा श्रवण निरन्तर करना चाहिए ॥ ३ ॥

इनको करके अश्वियों के योग से क्या होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

नहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः । अश्विना सोमिनो गृहम् ॥४

पदार्थ—हे रथों के रचने वा चलानेहारे सज्जन लोगो ! तुम (यत्र) जहाँ उक्त (अश्विना) अश्वियों से संयुक्त (रथेन) विमान आदि यान से (सोमिनः) जिनके प्रशंसनीय पदार्थ विद्यमान हैं उस पदार्थविद्या वाले के (गृहम्) घर को (गच्छथः) जाते हो वह दूर स्थान भी (वाम्) तुम को (दूरके) दूर (नहि) नहीं है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस कारण अग्नि और जल के वेग से युक्त किया हुआ रथ अति दूर स्थानों में भी शीघ्र पहुँचाता है, इससे तुम लोगों को भी इस शिल्पविद्या का अनुष्ठान निरन्तर करना चाहिए। ॥ ४ ॥

अगले मन्त्र में परमैश्वर्य्य कराने वाले परमेश्वर का प्रकाश किया है—

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये । स चेत्ता देवता पदम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—मैं (ऊतये) प्रीति के लिए जो (पदम्) सब चराचर जगत् को प्राप्त और (हिरण्यपाणिम्) जिससे व्यवहार में सुवर्ण आदि रत्न मिलते हैं उस (सवितारम्) सब जगत् के अन्तर्यामी ईश्वर को (उपह्वये) अच्छी प्रकार स्वीकार करता हूँ (सः) वह परमेश्वर (चेत्ता) ज्ञानस्वरूप और (देवता) पूज्यतम देव है ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों के द्वारा, चेतनमय सब जगह प्राप्त होने और निरन्तर पूजन करने योग्य प्रीति का एक पुञ्ज और सब ऐश्वर्य्यों का देनेवाला परमेश्वर है वही निरन्तर उपासना के योग्य है, इस विषय में इसके बिना कोई दूसरा पदार्थ उपासना के योग्य नहीं है ॥ ५ ॥

यह चौथा वर्ग पूरा हुआ ॥

फिर उस परमेश्वर की स्तुति करनी चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अपां नपातमवसे सवितारमुप स्तुहि । तस्य व्रतान्युश्मसि ॥ ६ ॥

पदार्थ - हे धार्मिक विद्वन् मनुष्य ! जैसे मैं (अवसे) रक्षा आदि के लिए (अपाम्) जो सब पदार्थों को व्याप्त होने अन्त आदि पदार्थों के वर्त्तने तथा (नपातम्) अविनाशी और (सवितारम्) सकल ऐश्वर्य के देने वाले परमेश्वर की स्तुति करता हूँ, वैसे तू भी उसकी (उपस्तुहि) निरन्तर प्रशंसा कर। हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जिसके (व्रतानि) निरन्तर धर्मयुक्त कर्मों को (उश्मसि) प्राप्त होने की कामना करते हैं, वैसे (तस्य) उसके गुण, कर्म और स्वभाव को प्राप्त होने की कामना तुम भी करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् मनुष्य परमेश्वर की स्तुति करके उसकी आज्ञा का आचरण करता है, वैसे तुम लोगों को भी उचित है कि उस परमेश्वर के रचे हुए संसार में अनेक प्रकार के उपकार ग्रहण करो ॥ ६ ॥

अगले मन्त्र में सविता शब्द से ईश्वर और सूर्य्य के गुणों का उपदेश किया है—

विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः । सवितारं नृचक्षसम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जैसे हम लोग (**नृचक्षसम्**) मनुष्यों में अन्तर्यामिरूप से विज्ञान प्रकाश करने (**वसोः**) पदार्थों से उत्पन्न हुए (**चित्रस्य**) अद्भुत (**राधसः**) विद्या, सुवर्ण वा चक्रवर्त्ति राज्य आदि धन के यथायोग्य (**विभक्तारम्**) जीवों के कर्म के अनुकूल विभाग से फल देने वा (**सवितारम्**) जगत् के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर और (**नृचक्षसम्**) जो मूर्तिमान द्रव्यों का प्रकाश करने (**वसोः चित्रस्य, राधसः**) उक्त धन सम्बन्धी पदार्थों का (**विभक्तारम्**) अलग-अलग व्यवहारों में वर्त्ताने और (**सवितारम्**) ऐश्वर्य हेतु सूर्य्यलोक को (**हवामहे**) स्वीकार करें वैसे तुम भी उनका ग्रहण करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है । मनुष्यों को उचित है कि जिससे परमेश्वर सर्वशक्तिमत्ता वा सर्वज्ञता से सब जगत् की रचना करके सब जीवों को उनके कर्मों के अनुसार सुख-दुःखरूप फल को देता और जैसे सूर्य्यलोक अपने ताप वा छेदनशक्ति से मूर्तिमान द्रव्यों का विभाग और प्रकाश करता है इससे तुम भी सब को न्यायपूर्वक दण्ड वा सुख और यथायोग्य व्यवहार में चलाके विद्यादि शुभ गुणों को प्राप्त कराया करो ॥ ७ ॥

कैसे मनुष्य इस उपकार को ग्रहण कर सकें, सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

सखाय आ नि षीदत सविता स्तोम्यो नु नः ।

दाता राधांसि शुम्भति ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग सदा (**सखायः**) आपस में मित्र सुख वा उपकार करने वाले होकर (**आनिषीदत**) सब प्रकार स्थित रहो और जो (**स्तोम्यः**) प्रशंसनीय (**नः**) हमारे लिए (**राधांसि**) अनेक प्रकार के उत्तम धनों का (**दाता**) देनेवाला (**सविता**) सकल ऐश्वर्ययुक्त जगदीश्वर (**शुम्भति**) सब का सुशोभित करता है उसकी (**नु**) शीघ्रता के साथ नित्य प्रशंसा करो । तथा हे मनुष्यो ! जो (**स्तोम्यः**) प्रशंसनीय (**नः**) हमारे लिए (**राधांसि**) उक्त धनों का (**शुम्भति**) सुशोभित कराता वा उनके (**दाता**) देने का हेतु (**सविता**) ऐश्वर्य देने का निमित्त सूर्य्य है उसकी (**नु**) नित्य शीघ्रता के साथ प्रशंसा करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । मनुष्यों का परस्पर मित्रभाव के बिना कभी सुख नहीं हो सकता । इससे सब मनुष्यों को योग्य है कि एक दूसरे के साथी होकर जगदीश्वर वा अग्निमय सूर्य्यादि का उपदेश कर वा सुनकर उनसे सुखों के लिए सदा उपकार ग्रहण करें ॥ ८ ॥

फिर अगले मन्त्र में अग्नि के गुणों का उपदेश किया है—

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप । त्वष्टारं सोमपीतये ॥ ९ ॥

पदार्थ—(**अग्ने**) जो यह भौतिक अग्नि (**सोमपीतये**) जिस व्यवहार में सोम आदि पदार्थों का ग्रहण होता है उसके लिए (**देवानाम्**) इकत्तीस जो कि पृथिवी आदि लोक हैं उनकी (**उशतीः**) अपने-अपने आधार के गुणों का प्रकाश करने वाली (**पत्नीः**) स्त्रीवत् वर्त्तमान अदिति आदि पत्नी और (**त्वष्टारम्**) छेदन करने वाले सूर्य्य वा कारीगर को (**उपावह**) अपने सामने प्राप्त करता है उसका प्रयोग ठीक-ठीक करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—विद्वानों को उचित है कि जो बिजुली, प्रसिद्ध अग्नि और सूर्य्यरूप से तीन प्रकार का भौतिक अग्नि शिल्पविद्या की सिद्धि के लिए पृथिवी आदि पदार्थों के सामर्थ्य प्रकाश करने में मुख्य हेतु है उसी का स्वीकार करें और इस शिल्पविद्यारूपी यज्ञ में पृथिवी आदि पदार्थों के सामर्थ्य का पत्नी नाम विधान किया है उसको जानें ॥ ९ ॥

वे कौन-कौन देवपत्नी हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ ग्ना अग्न इहावसे होत्रां यविष्ठ भारतीम् । वरूत्रीं धिषणां वह ॥१०

पदार्थ—हे (**यविष्ठ**) पदार्थों को मिलाने वा उन में मिलने वाले (**अग्ने**) क्रियाकुशल विद्वन् ! तू (**इह**) शिल्पकार्य्यों में (**अवसे**) प्रवेश करने के लिए (**ग्नाः**) पृथिवी आदि पदार्थ (**होत्राम्**) होम किये हुए पदार्थों को बहाने (**भारतीम्**) सूर्य्य की प्रभा (**वरूत्रीम्**) स्वीकार करने योग्य दिन-रात्रि और (**धिषणाम्**) जिससे पदार्थों का ग्रहण करते हैं उस वाणी को (**आवह**) प्राप्त हो ॥ १० ॥

भावार्थ—विद्वानों को इस संसार में मनुष्य जन्म पाकर वेद द्वारा सब विद्या प्रत्यक्ष करनी चाहिए क्योंकि कोई भी विद्या पदार्थों के गुण और स्वभाव को प्रत्यक्ष किये बिना सफल नहीं हो सकती ॥ १० ॥

यह पांचवां वर्ग पूरा हुआ ॥

अब विद्वानों की स्त्रियां भी उक्त कार्य्यों को करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अभि नो देवीरवसा महः शर्मणा नृपत्नीः ।

अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम् ॥ ११ ॥

पदार्थ—(**अच्छिन्नपत्राः**) जिन के अविनष्ट कर्मसाधन और (**देवीः, नृपत्नीः**) जो विद्या कुशलता में चतुर विद्वान् पुरुषों की स्त्रियां हैं वे (**महः**) बड़े (**शर्मणा**) सुखसम्बन्धी घर (**अवसा**) रक्षा में प्रवेश आदि कर्मों के साथ (**नः**) हम लोगों को (**अभिसचन्ताम्**) अच्छी प्रकार मिलें ॥ ११ ॥

भावार्थ—जैसी विद्या, गुण, कर्म और स्वभाव वाले पुरुष हों उनकी स्त्री भी वैसी ही होनी ठीक है, क्योंकि जैसा तुल्य रूप, विद्या, गुण, कर्म, स्वभाव वालों को सुख का सम्भव होता है, वैसा अन्य को कभी नहीं हो सकता । इससे स्त्री अपने समान पुरुष वा पुरुष अपने समान स्त्रियों के साथ आपस में प्रसन्न होकर स्वयंवर विधान से विवाह करके सब कर्मों को सिद्ध करें ॥ ११ ॥

फिर वे कैसी देवपत्नी हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इहेन्द्राणीमुप ह्वये वरुणानीं स्वस्तये । अग्नायीं सोमपीतये ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जैसे हम लोग (**इह**) इस व्यवहार में (**स्वस्तये**) अविनाशी प्रशंसनीय सुख वा (**सोमपीतये**) ऐश्वर्यों का जिस में भोग होता है उस कर्म के लिए जैसा (**इन्द्राणीम्**) सूर्य्य (**वरुणानीम्**) वायु वा जल और (**अग्नायीम्**) अग्नि की शक्ति हैं, वैसी स्त्रियों को पुरुष और पुरुषों को स्त्रियां (**उपह्वये**) उपयोग के लिए स्वीकार करें वैसे तुम भी ग्रहण करो ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को उचित है कि ईश्वर के बनाये हुए पदार्थों के आश्रय से अविनाशी, निरन्तर सुख की प्राप्ति के लिए उद्योग करके परस्पर प्रसन्नता युक्त स्त्री और पुरुष का विवाह करें, क्योंकि तुल्य स्त्री-पुरुष और पुरुषार्थ के बिना किसी मनुष्य को कुछ भी ठीक-ठीक सुख का सम्भव नहीं हो सकता ॥ १२ ॥

शिल्पविद्या में भूमि और अग्नि मुख्य साधन है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् ।

पिपृतां नो भरीमभिः ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे उपदेश के करने और सुनने वाले मनुष्यो ! तुम दोनों जो (**मही**) बड़े-बड़े गुण वाले (**द्यौः**) प्रकाशमय बिजुली, सूर्य्य आदि और (**पृथिवी**) अप्रकाश वाले पृथिवी आदि लोकों का समूह (**भरीमभिः**) धारण और पुष्टि करने वाले गुणों से (**नः**) हमारे (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) शिल्पविद्यामय यज्ञ (**च**) और (**नः**) हम लोगों को (**पिपृताम्**) सुख के साथ अङ्गों से अच्छी प्रकार पूर्ण करते है, वे (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) शिल्पविद्यामय यज्ञ को (**मिमिक्षताम्**) सिद्ध करने की इच्छा करो तथा (**पिपृताम्**) उन्हीं से अच्छी प्रकार सुखों को परिपूर्ण करो ॥ १३ ॥

भावार्थ—'द्यौः' यह नाम प्रकाशमान लोकों का उपलक्षण अर्थात् जो जिसका नाम उच्चारण किया हो वह उसके समतुल्य सब पदार्थों के ग्रहण करने से होता है तथा 'पृथिवी' यह बिना प्रकाश वाले लोकों का है । मनुष्यों को इन से प्रयत्न के साथ सब उपकारों को ग्रहण करके उत्तम-उत्तम सुखों को सिद्ध करना चाहिए ॥ १३ ॥

उक्त दो प्रकार के लोकों से क्या-क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

तयोरिद् घृतवत्पयो विप्रा रिहन्ति धीतिभिः । गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे ॥१४

पदार्थ—जो (**विप्राः**) बुद्धिमान् पुरुष जिन से प्रशंसनीय होते हैं (**तयोः**) उन प्रकाशमय और अप्रकाशमय लोकों के (**धीतिभिः**) धारण और आकर्षण आदि गुणों से (**गन्धर्वस्य**) पृथिवी को धारण करने वाले वायु का (**ध्रुवे**) जो सब जगह भरा निश्चल (**पदे**) अन्तरिक्ष स्थान है, उस में विमान आदि यानों को (**रिहन्ति**) गमनागमन करते हैं वे प्रशंसित होके, उक्त लोकों के आश्रय से ही (**घृतवत्**) प्रशंसनीय जल वाले (**पयः**) रस आदि पदार्थों को ग्रहण करते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ—विद्वानों को पृथिवी आदि पदार्थों से विमान आदि यान बनाकर उनकी कलाओं में जल और अग्नि के प्रयोग से भूमि, समुद्र और आकाश में जाना-आना चाहिए ॥ १४ ॥

यह भूमि किस लिए और कैसी है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥१५॥

पदार्थ—जो यह (**पृथिवी**) अति विस्तार युक्त (**स्योना**) अत्यन्त सुख देने तथा (**अनृक्षरा**) जिस में दुःख देने वाले कण्टक आदि न हों (**निवेशनी**) और जिस में सुख से प्रवेश कर सकें, वैसी (**भव**) होती है, सो (**नः**) हमारे लिए (**सप्रथः**) विस्तारयुक्त, सुखकारक पदार्थ वालों के साथ (**शर्म**) उत्तम सुख को (**यच्छ**) देती है ॥ १५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि—यह भूमि ही सब मूर्तिमान् पदार्थों के रहने की जगह और अनेक प्रकार के सुखों की कराने वाली और बहुत रत्नों को प्राप्त कराने वाली होती है—ऐसा ज्ञान करें ॥ १५ ॥

यह षष्ठ वर्ग समाप्त हुआ ॥

अब पृथिवी आदि पदार्थों को रचने और धारण करने वाला कौन है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे।
पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥ १६ ॥

पदार्थ—(यतः) जिस सदा वर्तमान नित्य कारण से (विष्णुः) चराचर संसार में व्यापक जगदीश्वर (पृथिव्याः) पृथिवी को लेकर (सप्त) सात अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, विराट्, परमाणु और प्रकृति पर्यन्त लोकों को (धामभिः) जो सब पदार्थों को धारण करते हैं उनके साथ (विचक्रमे) रचता है (अतः) उसी से (देवाः) विद्वान् लोग (नः) हम लोगों को (अवन्तु) उक्त लोकों की विद्या को समझाते वा प्राप्त कराते हुए हमारी रक्षा करते रहें ॥ १६ ॥

भावार्थ—विद्वानों के उपदेश के बिना किसी मनुष्य को यथावत् सृष्टिविद्या का बोध कभी नहीं हो सकता। ईश्वर के उत्पादन करने के बिना किसी पदार्थ का साकार होना नहीं बन सकता और इन दोनों कारणों के जाने बिना कोई मनुष्य पदार्थों से उपकार लेने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ १६ ॥

ईश्वर ने इस संसार को कितने प्रकार का रचा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूळ्हमस्य पांसुरे ॥१७॥

पदार्थ—मनुष्य लोग जो (विष्णुः) व्यापक ईश्वर (त्रेधा) तीन प्रकार का (इदम्) यह प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष (पदम्) प्राप्त होने वाला जगत् है, उसको (विचक्रमे) यथायोग्य प्रकृति और परमाणु आदि के पद वा अंशों को ग्रहण कर सावयव अर्थात् शरीर वाला करता और जिससे (अस्य) इस तीन प्रकार के जगत् का (समूळ्हम्) अच्छी प्रकार तर्क से जानने योग्य और आकाश के बीच में रहने वाला परमाणुमय जगत् है उसको (पांसुरे) जिसमें उत्तम-उत्तम मिट्टी आदि पदार्थों के अति सूक्ष्म कण रहते हैं, उनको आकाश में (निदधे) धारण किया है।

जो प्रजा का शिर अर्थात् उत्तम भाग कारणरूप और जो विद्या आदि धर्मों का शिर अर्थात् उत्तम फल आनन्दरूप तथा जो प्राणों का शिर अर्थात् प्रीति उत्पादन करने वाला सुख है, ये सब 'विष्णुपद' कहाते हैं, यह और्णवाभ आचार्य्य का मत है। 'पार्थिवः पुरुषः इति वा' इसके कहने से कारणों से कार्य्य की उत्पत्ति की है ऐसा जानना चाहिए। 'पदं न दृश्यते' जो इन्द्रियों से ग्रहण नहीं होते वे परमाणु आदि पदार्थ अन्तरिक्ष में रहते भी हैं परन्तु आँखों से नहीं दीखते। 'इदं त्रेधाभावाय' इस तीन प्रकार के जगत् को जानना चाहिए, अर्थात् एक प्रकाशरहित पृथिवीरूप, दूसरा कारणरूप जो कि देखने में नहीं आता, और तीसरा प्रकाशमय सूर्य्य आदि लोक हैं। इस मन्त्र में विष्णु शब्द से व्यापक ईश्वर का ग्रहण है ॥ १७ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने इस संसार में तीन प्रकार का जगत् रचा है अर्थात् एक पृथिवीरूप, दूसरा अन्तरिक्ष आकाश में रहने वाला त्रसरेणुरूप और तीसरा प्रकाशमय सूर्य्य आदि लोक तीन आधाररूप हैं, इनमें से आकाश में वायु के आधार से रहने वाला जो कारणरूप है, वही पृथिवी और सूर्य आदि लोकों का बढ़ाने वाला है और इस जगत् को ईश्वर के बिना कोई बनाने को समर्थ नहीं हो सकता, क्योंकि किसी का ऐसा सामर्थ्य ही नहीं ॥ १७ ॥

फिर वह सर्वव्यापक जगदीश्वर क्या-क्या करता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः।
अतो धर्माणि धारयन् ॥ १८ ॥

पदार्थ—जिस कारण यह (अदाभ्यः) अपने अविनाशीपन से किसी की हिंसा में नहीं आ सकता (गोपाः) और सब संसार की रक्षा करने वाला, सब जगत् को (धारयन्) धारण करने वाला (विष्णुः) संसार का अन्तर्यामी परमेश्वर (त्रीणि) तीन प्रकार के (पदानि) जान, जानने और प्राप्त होने योग्य पदार्थों और व्यवहारों को (विचक्रमे) विधान करता है, इसी कारण से सब पदार्थ उत्पन्न होकर अपने-अपने (धर्माणि) धर्मों को धारण कर सकते हैं ॥ १८ ॥

भावार्थ—ईश्वर के धारण के बिना किसी पदार्थ की स्थिति सम्भव नहीं हो सकती। उस की रक्षा के बिना किसी के व्यवहार की सिद्धि भी नहीं हो सकती ॥ १८ ॥

फिर व्यापक परमेश्वर के किये हुए कर्म मनुष्य नित्य देखें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! तुम जो (इन्द्रस्य) जीव का (युज्यः) अपनी व्याप्ति से पदार्थों के संयोग करने वाले दिशा, काल और आकाश हैं, उनमें व्यापक होके रमने वा (सखा) सब सुखों के सम्पादन करने से मित्र है (यतः) जिससे जीव (व्रतानि) सत्य बोलने और न्याय करने आदि उत्तम कर्मों को (पस्पशे) प्राप्त होता है उस (विष्णोः) सर्वत्र व्यापक, शुद्ध और स्वभाव-सिद्ध अनन्त सामर्थ्य वाले परमेश्वर के (कर्माणि) जो कि जगत् की रचना, पालना, न्याय और प्रलय करना आदि कर्म हैं, उनको तुम लोग (पश्यत) अच्छे प्रकार विदित करो ॥ १९ ॥

भावार्थ—क्योंकि सब के मित्र जगदीश्वर ने पृथिवी आदि लोक तथा जीवों के साधन सहित शरीर रचे हैं इसी से सब प्राणी अपने-अपने कार्यों के करने को समर्थ होते हैं ॥ १९ ॥

वह ब्रह्म कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम् ॥२०॥

पदार्थ—(सूरयः) धार्मिक, बुद्धिमान्, पुरुषार्थी, विद्वान् लोग (दिवि) सूर्य आदि के प्रकाश में (आततम्) फैले हुए (चक्षुरिव) नेत्रों के समान जो (विष्णोः) व्यापक-आनन्दस्वरूप परमेश्वर का विस्तृत (परमम्) उत्तम-से-उत्तम (पदम्) चाहने, जानने और प्राप्त होने योग्य उक्त वा वक्ष्यमाण पद है (तत्) उस को (सदा) सब काल में विमल, शुद्ध ज्ञान के द्वारा अपने आत्मा में (पश्यन्ति) देखते हैं ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे प्राणी सूर्य्य के प्रकाश में शुद्ध नेत्रों से मूर्तिमान् पदार्थों को देखते हैं वैसे ही विद्वान् लोग निर्मल विज्ञान से विद्या वा श्रेष्ठ विचारयुक्त शुद्ध अपने आत्मा में जगदीश्वर को सब आनन्दों से युक्त और प्राप्त होने योग्य मोक्ष पद को देखकर प्राप्त होते हैं। इस की प्राप्ति के बिना कोई मनुष्य सब सुखों को प्राप्त होने में समर्थ नहीं हो सकता। इस से इसकी प्राप्ति के निमित्त सब मनुष्यों को निरन्तर यत्न करना चाहिए ॥ २० ॥

कैसे मनुष्य उक्त पद को प्राप्त होने योग्य हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥२१॥

पदार्थ—(विष्णोः) व्यापक जगदीश्वर का (यत्) जो उक्त (परमम्) सब उत्तम गुणों से प्रकाशित (पदम्) प्राप्त होने योग्य पद है (तत्) उसको (विपन्यवः) अनेक प्रकार के जगदीश्वर के गुणों की प्रशंसा करने वाले (जागृवांसः) सत्कर्म में जागृत (विप्रासः) बुद्धिमान् सज्जन पुरुष हैं, वे ही (समिन्धते) अच्छे प्रकार प्रकाशित करके प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अविद्या और अधर्माचरणरूप नींद को छोड़कर विद्या और धर्माचरण में जाग रहे हैं, वे ही सच्चिदानन्दस्वरूप सब प्रकार से उत्तम, सब को प्राप्त होने योग्य निरन्तर सर्वव्यापी विष्णु अर्थात् जगदीश्वर को प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥

पहिले सूक्त में जो दो पदों के अर्थ कहे थे उनके सहचारी अश्वि, सविता, अग्नि, देवी, इन्द्राणी, वरुणानी, अग्नायी, द्यावापृथिवी, भूमि, विष्णु और इनके अर्थों का प्रकाश इस सूक्त में किया है इससे पहले सूक्त के साथ इस सूक्त की सङ्गति जाननी चाहिए।

यह सातवां वर्ग समाप्त हुआ।

यह बाईसवां सूक्त और पांचवां अनुवाक समाप्त हुआ।

卐

अथास्य चतुर्विंशत्यृचस्य त्रयोविंशस्य सूक्तस्य काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः। १ वायुः, २, ३ इन्द्रवायू; ४—६ मित्रावरुणौ; ७—९ इन्द्रो मरुत्वान्; १०—१२ विश्वेदेवा, १३—१५ पूषा; १६—२२ आपः; २३, २४ अग्निश्च देवताः। १—१८ गायत्री; १९ पुर उष्णिक्; २० अनुष्टुप्, २१ प्रतिष्ठा, २२—२४ अनुष्टुप् च छन्दांसि। १—१८ षड्जः १९ ऋषभः, २० गान्धारः। २१ षड्जः, २२—२४ गान्धारश्च स्वराः॥

अब तेइसवें सूक्त का आरम्भ है, इस के पहले मन्त्र में वायु के गुण प्रकाशित किये हैं—

तीव्राः सोमास आ गह्याशीर्वन्तः सुता इमे।
वायो तान् प्रस्थितान् पिब ॥ १ ॥

पदार्थ—जो (इमे) (तीव्राः) तीक्ष्ण वेगयुक्त (आशीर्वन्तः) जिनकी कामना प्रशंसनीय होती है (सुताः) उत्पन्न हो चुके वा (सोमासः) प्रत्यक्ष में होते हैं (तान्) उन सब को (वायो) पवन (आगहि) सर्वथा प्राप्त होता है तथा वही उन (प्रस्थितान्) इधर-उधर अति सूक्ष्मरूप से चलायमानों को (पिब) अपने भीतर कर लेता है ॥ १ ॥

भावार्थ—प्राणी जिनको प्राप्त होने की इच्छा करते और जिन के अभिलाषु होते हैं सब को पवन ही प्राप्त करके यथावत् स्थिर करता है, इससे जिन पदार्थों के तीक्ष्णता वा कोमल गुण हैं उन को यथावत् जानके मनुष्य लोग उन से उपकार लेवें ॥ १ ॥

अब अगले मन्त्र में परस्पर संयोग करने वाले पदार्थों का प्रकाश किया है—

उभा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥ २ ॥

पदार्थ—हम लोग (**अस्य**) इस प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष (**सोमस्य**) उत्पन्न करने वाले संसार के सुख के (**पीतये**) भोगने के लिए (**दिविस्पृशा**) जो प्रकाशयुक्त आकाश में विमान आदि यानों को पहुँचाने और (**देवा**) दिव्यगुण वाले (**उभा**) दोनों (**इन्द्रवायू**) अग्नि और पवन हैं उन को (**हवामहे**) साधने की इच्छा करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—जो अग्नि पवन और जो वायु अग्नि से प्रकाशित होता है, जो ये दोनों परस्पर आकांक्षायुक्त अर्थात् सहायकारी हैं, जिनसे सूर्य्य प्रकाशित होता है, मनुष्य लोग जिनको साथ और युक्ति के साथ नित्य क्रियाकुशलता में सम्प्रयोग करते हैं, जिनके सिद्ध करने से मनुष्य बहुत से सुखों को प्राप्त होते हैं, उन के जानने की इच्छा क्यों न करनी चाहिए ॥ २ ॥

फिर वे किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इन्द्रवायू मनोजुवा विप्रा हवन्त ऊतये । सहस्राक्षा धियस्पती ॥ ३ ॥

पदार्थ—(**विप्रा**) विद्वान् लोग (**ऊतये**) क्रियासिद्धि की इच्छा के लिए (**सहस्राक्षा**) जिन में असंख्यात अक्ष अर्थात् इन्द्रियवत् साधन सिद्ध होते (**धियः**) शिल्प कर्म के (**पती**) पालने और (**मनोजुवा**) मन के समान वेगवाले हैं उन (**इन्द्रवायू**) विद्युत् और पवन को (**हवन्ते**) ग्रहण करते हैं, उन के जानने की इच्छा अन्य लोग भी क्यों न करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—विद्वानों को उचित है कि शिल्पविद्या की सिद्धि के लिए असंख्यात व्यवहारों को सिद्ध करानेवाले वेग आदि गुणयुक्त बिजुली और वायु के गुणों की क्रियासिद्धि के लिए अच्छे प्रकार सिद्धि करना चाहिए ॥ ३ ॥

इस विद्या के प्राप्त करानेवाले प्राण और उदान हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है

मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये । जज्ञाना पूतदक्षसा ॥ ४ ॥

पदार्थ—(**वयम्**) हम पुरुषार्थी लोग (**सोमपीतये**) जिस में सोम अर्थात् अपने अनुकूल सुखों को देने वाले रसयुक्त पदार्थों का पान होता है उस व्यवहार के लिए (**पूतदक्षसा**) पवित्र बल करने वाले (**जज्ञाना**) विज्ञान के हेतु (**मित्रम्**) जीवन के निमित्त बाहर वा भीतर रहनेवाले प्राण और (**वरुणम्**) जो श्वासरूप ऊपर को आता है उस बल करनेवाले उदान वायु का (**हवामहे**) ग्रहण करते हैं उनको तुम लोगों को भी क्यों न जानना चाहिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को प्राण और उदान वायु के विना सुखों का भोग और बल का सम्भव कभी नहीं हो सकता, इस हेतु से इन के सेवन की विद्या को ठीक-ठीक जानना चाहिए ॥ ४ ॥

फिर वे किस प्रकार के हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा । क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥ ५ ॥

पदार्थ—मैं (**यौ**) जो (**ऋतेन**) परमेश्वर ने उत्पन्न करके धारण किये हुए (**ऋतावृधौ**) जल का बढ़ाने और (**ऋतस्य**) यथार्थस्वरूप (**ज्योतिषः**) प्रकाश के (**पती**) पालन करने वाले (**मित्रावरुणौ**) सूर्य और वायु हैं उनको (**हुवे**) ग्रहण करता हूँ ॥ ५ ॥

भावार्थ—न सूर्य और वायु के विना जल और ज्योति अर्थात् प्रकाश की योग्यता, न ईश्वर के उत्पादन किये विना सूर्य्य और वायु की उत्पत्ति का सम्भव है, और न इन के विना मनुष्यों के व्यवहारों की सिद्धि हो सकती है ॥ ५ ॥

यह अष्टम वर्ग समाप्त हुआ ।

फिर वे क्या करते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः । करतां नः सुराधसः ॥६

पदार्थ—जैसे यह अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ (**वरुण**) बाहर वा भीतर रहनेवाला वायु (**विश्वाभिः**) सब (**ऊतिभिः**) रक्षा आदि निमित्तों से सब प्राणियों को पदार्थों के द्वारा (**प्राविता**) सुख प्राप्त करने वाला (**भुवत्**) होता है (**मित्रश्च**) और सूर्य्य भी जो (**नः**) हम लोगों को (**सुराधसः**) सुन्दर विद्या और चक्रवर्त्ति राज्य सम्बन्धी धनयुक्त (**करताम**) करते हैं जैसे विद्वान् लोग इन से बहुत कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वैसे हम लोग भी इसी प्रकार इन का सेवन क्यों न करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । क्योंकि इन उक्त वायु और सूर्य का आश्रय करके सब पदार्थों के रक्षा आदि व्यवहार सिद्ध होते हैं, इसलिए विद्वान् लोग भी इन से बहुत कार्य्यों को सिद्ध करके उत्तम-उत्तम धनों को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

अब अगले मन्त्र में वायु के सहचारी इन्द्र के गुण उपदेश किये हैं—

मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये । सजूर्गणेन तृम्पतु ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे इस संसार में हम लोग (**सोमपीतये**) पदार्थों के भोगने के लिए जिस (**मरुत्वन्तम्**) पवनों के सम्बन्ध से प्रसिद्ध होने वाली (**इन्द्रम्**) बिजली को (**हवामहे**) ग्रहण करते हैं (**सजूः**) जो सब पदार्थों में एकसी वर्तने वाली (**गणेन**) पवनों के समूह के साथ (**नः**) हम लोगों को (**आतृम्पतु**) अच्छे प्रकार तृप्त करती है वैसे उसको तुम लोग भी सेवन करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि सहायकारी पवन के विना अग्नि कभी प्रज्वलित होने को समर्थ और उक्त प्रकार बिजली रूप अग्नि के विना किसी पदार्थ की बढ़ती का सम्भव नहीं हो सकता, ऐसा जानें ॥ ७ ॥

अब वे पवनों के समूह किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः । विश्वे मम श्रुता हवम् ॥८॥

पदार्थ—जो (**पूषरातयः**) सूर्य्य के सम्बन्ध से पदार्थों को देने (**इन्द्रज्येष्ठाः**) जिन के बीच में सूर्य्य बड़ा प्रशंसनीय हो रहा है और (**देवासः**) दिव्य गुण वाले (**विश्वे**) सब (**मरुद्गणाः**) पवनों के समूह (**मम**) मेरे (**हवम्**) कार्य्य करने योग्य शब्द व्यवहार को (**श्रुत**) सुनाते हैं वे ही आप लोगों को भी सुनावें ॥ ८ ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य जिन पवनों के विना कहना, सुनना और पुष्ट होनादि व्यवहारों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता जिनके मध्य में सूर्य्यलोक सब से बड़ा विद्यमान, जो इसके प्रदीपन कराने वाले हैं, जो यह सूर्य्यलोक अग्निरूप ही है, जिन और जिस बिजुली के विना कोई भी प्राणी अपनी वाणी के व्यवहार करने को भी समर्थ नहीं हो सकता इत्यादि इन सब पदार्थों की विद्या को जानके मनुष्यों को सदा सुखी होना चाहिए ॥ ८ ॥

फिर वे किस प्रकार के हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण सहसा युजा । मा नो दुःशंस ईशत ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! आप जो (**सुदानवः**) उत्तम पदार्थों को प्राप्त कराने (**सहसा**) बल और (**युजा**) अपने अनुकूल (**इन्द्रेण**) सूर्य्य वा बिजुली से साथी होकर (**वृत्रम्**) मेघ को (**हत**) छिन्न-भिन्न करते हैं उनसे (**नः**) हम लोगों के (**दुःशंसः**) दुःख करानेवाले (**मा, ईशत**) कभी मत हूजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—हम लोग ठीक पुरुषार्थ और ईश्वर की उपासना करके विद्वानों की प्रार्थना करते हैं कि जिससे हम लोगों को जो पवन, सूर्य्य की किरण वा बिजुली के साथ मेघमण्डल में रहने वाले जल को छिन्न-भिन्न और वर्षा करके और फिर पृथिवी से जल समूह को उठाकर ऊपर को प्राप्त करते हैं, उनकी विद्या मनुष्यों को प्रयत्न से अवश्य जाननी चाहिए ॥ ९ ॥

विश्वान् देवान् हवामहे मरुतः सोमपीतये । उग्रा हि पृश्निमातरः ॥१०

पदार्थ—विद्या की इच्छा करने वाले हम लोग (**हि**) जिस कारण से जो ज्ञान-क्रिया के निमित्त से शिल्प व्यवहारों को प्राप्त कराने वाले (**उग्राः**) तीक्ष्णता वा श्रेष्ठ वेग के सहित और (**पृश्निमातरः**) जिनकी उत्पत्ति का निमित्त आकाश वा अन्तरिक्ष है इस से उन (**विश्वान्**) सब (**देवान्**) दिव्यगुणों के सहित उत्तम गुणों के प्रकाश कराने वाले वायुओं को (**हवामहे**) उत्तम विद्या की सिद्धि के लिए जानना चाहते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—जिस से यह वायु आकाश ही से उत्पन्न, आकाश में आने-जाने और तेजस्विभाव वाले हैं, इससे विद्वान् लोग कार्य्य के अर्थ इनका स्वीकार करते हैं ॥ १० ॥

यह नवम वर्ग समाप्त हुआ ।

अब अगले मन्त्र में पवन और बिजुली के गुण उपदेश किये हैं—

जयतामिव तन्यतुर्मरुतामेति धृष्णुया । यच्छुभं याथना नरः ॥११॥

पदार्थ—हे (**नरः**) धर्मयुक्त शिल्पविद्या के व्यवहारों को प्राप्त करने वाले मनुष्यो ! आप लोग भी (**जयतामिव**) जैसे विजय करने वाले योद्धाओं के सहाय से राजा विजय को प्राप्त होता और जैसे (**मरुताम्**) पवनों के सङ्ग से (**धृष्णुया**) दृढ़ता आदि गुणयुक्त (**तन्यतुः**) अपने वेग को अति शीघ्र विस्तार करने वाली बिजुली मेघ को जीतती है वैसे (**यत्**) जितना (**शुभम्**) कल्याणयुक्त सुख है उस सब को प्राप्त हूजिए ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग शूरवीरों की सेना से शत्रुओं के विजय वा जैसे पवनों के घिसने से बिजुली के यन्त्र को चलाकर दूरस्थ देशों को जा वा आग्नेयादि अस्त्रों की सिद्धि को करके सुखों को प्राप्त होते हैं वैसे ही तुमको भी विज्ञान वा पुरुषार्थ करके इनसे व्यावहारिक और पारमार्थिक सुखों को निरन्तर बढ़ाना चाहिए ॥ ११ ॥

फिर वे पवन किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

हस्काराद्विद्युतस्पर्य्यतो जाता अवन्तु नः । मरुतो मृळयन्तु नः ॥१२॥

पदार्थ—हम लोग जिस कारण (**हस्कारात्**) अति प्रकाश से (**जाताः**) प्रकट हुई (**विद्युतः**) जोकि चपलता के साथ प्रकाशित होती हैं वे बिजली (**नः**) हम लोगों के सुखों को (**अवन्तु**) प्राप्त करती हैं, जिससे उनको (**परि**) सब प्रकार से साधते और जिससे (**मरुतः**) पवन (**नः**) हम लोगों को (**मृळयन्तु**) सुखयुक्त करते हैं (**अतः**) इससे उनको भी शिल्प आदि कार्यों में (**परि**) अच्छे प्रकार से साधें ॥ १२ ॥

भावार्थ—मनुष्य जब पहले वायु फिर बिजुली उस के अनन्तर जल, पृथिवी और ओषधी की विद्या को जानते हैं तब अच्छे प्रकार सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥

अब अगले मन्त्र में सूर्य्यलोक के गुण प्रकाशित किये हैं—

आ पूषञ्चित्रबर्हिषमाघृणे धरुणं दिवः । आजा नष्टं यथा पशुम् ॥१३॥

पदार्थ—जैसे कोई पशुओं का पालने वाला मनुष्य (नष्टम्) खो गये (पशुम्) गो आदि पशुओं को प्राप्त होकर प्रकाशित करता है वैसे यह (आघृणे) परिपूर्ण किरणो (पूषन्) पदार्थों को पुष्ट करनेवाला सूर्यलोक (दिवः) अपने प्रकाश से (चित्रबर्हिषम्) जिस से विविध आश्चर्य्यरूप अन्तरिक्ष विदित होता है (धरुणम्) धारण करनेहारे भूगोलों को (आज) अच्छे प्रकार प्रकाश करता है ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे पशुओं को पालने वाले अनेक काम करके, गो आदि पशुओं को पुष्ट करके, उनके दुग्ध आदि पदार्थों से मनुष्यों को सुखी करते हैं, वैसे ही यह सूर्य्यलोक चित्र-विचित्र लोकों से युक्त आकाश वा आकाश में रहनेवाले पदार्थों को, अपनी किरण वा आकर्षण शक्ति से पुष्ट करके प्रकाशित करता है ॥ १३ ॥

अब अगले मन्त्र में पूषन् शब्द से ईश्वर की सर्वज्ञता का प्रकाश किया है—

पूषा राजानमाघृणिरपगूळ्हं गुहा हितम् । अविन्दच्चित्रबर्हिषम् ॥१४॥

पदार्थ—जिस से यह (आघृणिः) पूर्ण प्रकाश वा (पूषा) जो अपनी व्याप्ति से सब पदार्थों को पुष्ट करता है वह जगदीश्वर (गुहा, हितम्) आकाश वा बुद्धि में यथायोग्य स्थापन किये हुए वा स्थित (चित्रबर्हिषम्) जो अनेक प्रकार के कार्य्य को करता (अपगूळ्हम्) अत्यन्त गुप्त (राजानम्) प्रकाशमान प्राणवायु और जीव को (अविन्दत्) जानता है इससे वह सर्वशक्तिमान् है ॥ १४ ॥

भावार्थ—जिस कारण जगत् का रचने वाला ईश्वर सब को पुष्ट करनेहारे हृदयस्थ प्राण और जीव को जानता है इससे सब का जानने वाला है ॥ १४ ॥

फिर अगले मन्त्र में उस ईश्वर के ही गुणों का उपदेश किया है—

उतो स मह्यमिन्दुभिः षड्युक्ताँ अनुसेषिधत् । गोभिर्यवं न चर्कृषत् ॥१५॥

पदार्थ—जैसे खेती करने वाला मनुष्य हरएक अन्न की सिद्धि के लिए भूमि को (चर्कृषत्) वारम्वार जोतता है (न) वैसे (स) वह ईश्वर (मह्यम्) जो मैं धर्मात्मा, पुरुषार्थी हूँ उसके लिए (इन्दुभिः) स्निग्ध, मनोहर पदार्थों और वसन्त आदि (षट्) छः (ऋतून्) ऋतुओं को (युक्तान्, गोभिः) गौ, हाथी और घोड़े आदि पशुओं के साथ सुखसंयुक्त और (यवम्) यव आदि अन्न को (अनुसेषिधत्) वारम्वार हमारे अनुकूल प्राप्त करे इससे मैं उसी को इष्टदेव मानता हूँ ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य वा खेती करने वाला किरण वा हल आदि से वारम्वार भूमि को आकर्षित वा खन, जौ और धान्य आदि की प्राप्ति कर सचिक्कन कर पदार्थों के सेवन के साथ वसन्त आदि छः ऋतुओं को सुखों से संयुक्त करता है, वैसे ईश्वर भी समय के अनुकूल सब जीवों को कर्मों के अनुसार रस को उत्पन्न वा ऋतुओं के विभाग से उक्त ऋतुओं को सुख देने वाली करता है ॥ १५ ॥

यह दसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

अब अगले मन्त्र में जल के गुण प्रकाशित किये हैं—

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम् । पृञ्चतीर्मधुना पयः ॥१६॥

पदार्थ—जैसे भाइयों को (जामयः) भाई लोग अनुकूल आचरण से सुख सम्पादन करते हैं वैसे ये (अम्बयः) रक्षा करने वाले जल (अध्वरीयताम्) जो हम लोग अपने आप को यज्ञ करने की इच्छा करते हैं उनको (मधुना) मधुरगुण के साथ (पयः) सुखकारक रस को (अध्वभिः) मार्गों से (पृञ्चतीः) पहुँचाने वाले (यन्ति) प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जैसे बन्धुजन अपने भाई को अच्छे प्रकार पुष्ट करके सुख करते हैं, वैसे ये जल ऊपर-नीचे जाते-आते हुए मित्र के समान प्राणियों के सुखों का सम्पादन करते हैं और इनके बिना प्राणी वा अप्राणी की उन्नति नहीं हो सकती, इससे ये रस की उत्पत्ति के द्वारा सब प्राणियों का माता-पिता के तुल्य पालन करते हैं ॥ १६ ॥

फिर वे जल कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह । ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥१७॥

पदार्थ—(याः) जो (अमूः) जल दृष्टिगोचर नहीं होते (सूर्ये) सूर्य वा इस के प्रकाश के मध्य में वर्त्तमान हैं (वा) अथवा (याभिः) जिन जलों के (सह) साथ सूर्यलोक वर्त्तमान है (ताः) वे (नः) हमारे (अध्वरम्) हिंसा-रहित सुखरूप यज्ञ को (उपहिन्वन्तु) प्रत्यक्ष सिद्ध करते हैं ॥ १७ ॥

भावार्थ—जो जल पृथिवी आदि मूर्तिमान् पदार्थों से सूर्य्य की किरणों के द्वारा छिन्न-भिन्न अर्थात् कण-कण होता हुआ सूर्य के सामने ऊपर को जाता है, वही ऊपर से वृष्टि के द्वारा गिरा हुआ पान आदि व्यवहार वा विमान आदि यानों में अच्छे प्रकार संयुक्त किया हुआ सुख बढ़ाता है ॥ १७ ॥

अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः । सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥१८॥

पदार्थ—(यत्र) जिस व्यवहार में (गावः) सूर्य की किरणें (सिन्धुभ्यः) समुद्र और नदियों से (देवीः) दिव्य गुणों को प्राप्त करने वाले (अपः) जलों को (पिबन्ति) पीती हैं उन जलों को (नः) हम लोगों के (हविः) हवन करने योग्य पदार्थों के (कर्त्वम्) उत्पन्न करने के लिए मैं (उपह्वये) अच्छे प्रकार स्वीकार करता हूँ ॥ १८ ॥

भावार्थ—सूर्य की किरणें जितना जल छिन्न-भिन्न अर्थात् कण-कण कर वायु के संयोग से खैंचती हैं उतना ही वहाँ से निवृत्त होकर भूमि और ओषधियों को प्राप्त होता है। विद्वान् लोगों को वह जल, पान, स्नान और शिल्पकार्य आदि में संयुक्त कर नाना प्रकार के सुख सम्पादन करने चाहिएँ ॥ १८ ॥

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये । देवा भवत वाजिनः ॥१९॥

पदार्थ—हे (देवाः) विद्वानो ! तुम (प्रशस्तये) अपनी उत्तमता के लिए (अप्सु) जलों के (अन्तः) भीतर जो (अमृतम्) मार डालने वाला, रोग का निवारण करने वाला अमृतरूप रस (उत) तथा (अप्सु) जलों में (भेषजम्) औषध है उनको जानकर (अपाम्) उन जलों की क्रियाकुशलता से (वाजिनः) उत्तम श्रेष्ठ ज्ञान वाले (भवत) हो जाओ ॥ १९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम अमृतरूपी रस वा ओषधि वाले जलों से शिल्प और वैद्यकशास्त्र की विद्या से उनके गुणों को जानकर कार्य्य सिद्धि वा सब रोगों की निवृत्ति नित्य करो ॥ १९ ॥

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।

अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेषजीः ॥ २० ॥

पदार्थ—जैसे यह (सोम) ओषधियों का राजा चन्द्रमा वा सोमलता (मे) मेरे लिए (अप्सु) जलों के (अन्तः) बीच में (विश्वानि) सब (भेषजा) ओषधि (च) तथा (विश्वशम्भुवम्) सब जगत् के लिए सुख करने वाले (अग्निम्) बिजुली को (अब्रवीत्) प्रसिद्ध करता है इसी प्रकार (विश्वभेषजीः) जिनके निमित्त से सब ओषधियाँ होती हैं वे (आपः) जल भी अपने में उक्त सब ओषधियों और उक्त गुण वाले अग्नि को जानते हैं ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सब पदार्थ अपने गुणों से अपने-अपने स्वभावों और उनमें ओषधियों की पुष्टि कराने वाला चन्द्रमा और जो ओषधियों में मुख्य सोमलता है ये दोनों जल के निमित्त और ग्रहण करने योग्य सब ओषधियों का प्रकाश करते हैं, वैसे सब ओषधियों के हेतु जल अपने अन्तर्गत समस्त सुखों का हेतु मेघ का प्रकाश और जो जलों में ओषधियों का निमित्त और जो जल में अग्नि का निमित्त है ऐसा जानना चाहिए ॥ २० ॥

प्रथम अष्टक दूसरा अध्याय ग्यारहवाँ वर्ग समाप्त ॥

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥२१॥

पदार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि सब पदार्थों को व्याप्त होने वाले प्राण (सूर्यम्) सूर्यलोक के (दृशे) दिखलाने वा (ज्योक्) बहुत काल जिवाने के लिए (मम) मेरे (तन्वे) शरीर के लिए (वरूथम्) श्रेष्ठ (भेषजम्) रोग नाश करने वाले व्यवहार को (पृणीत) परिपूर्णता से प्रकट कर देते हैं उनका सेवन युक्ति से ही करना चाहिए ॥ २१ ॥

भावार्थ—प्राणों के बिना कोई प्राणी वा वृक्ष आदि पदार्थ बहुत काल शरीर धारण करने को समर्थ नहीं हो सकते, इससे क्षुधा और प्यास आदि रोगों के निवारण के लिए परम अर्थात् उत्तम-से-उत्तम औषधी को सेवने से योगयुक्ति से प्राणों का सेवन ही परम उत्तम है, ऐसा जानना चाहिए ॥ २१ ॥

इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि ।

यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥ २२ ॥

पदार्थ—मैं (यत्) जैसा (किम्) कुछ (मयि) कर्म का अनुष्ठान करने वाले मुझ में (दुरितम्) दुष्ट स्वभाव के अनुष्ठान से उत्पन्न हुआ पाप (च) वा श्रेष्ठता से उत्पन्न हुआ पुण्य (वा) अथवा (यत्) अत्यन्त क्रोध से (अभिदुद्रोह) प्रत्यक्ष किसी से द्रोह करता वा मित्रता करता (वा) अथवा (यत्) जो कुछ अत्यन्त ईर्ष्या से किसी सज्जन को (शेपे) शाप देता वा किसी को कृपादृष्टि से चाहता हुआ जो (अनृतम्) झूठ (उत) वा सत्य काम करता हूँ (इदम्) सो यह सब आचरण किये हुए को (आपः) मेरे प्राण मेरे साथ होके (प्रवहत) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

भावार्थ—मनुष्य जैसा कुछ पाप वा पुण्य करते हैं, सो ईश्वर अपनी न्याय व्यवस्था से उनको प्राप्त कराता ही है ॥ २२ ॥

आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि ।

पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ॥ २३ ॥

पदार्थ—हम लोग जो (रसेन) स्वाभाविक रसगुण संयुक्त (आपः) जल हैं उनको (समगस्महि) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं जिनसे मैं (पयस्वान्) रस युक्त शरीर वाला होकर जो कुछ (अन्वचारिषम्) विद्वानों के अनुचरण अर्थात् अनुकूल उत्तम काम करके उसको प्राप्त होता और जो यह (अग्ने) भौतिक अग्नि (आ) मुझ को इस जन्म और जन्मान्तर अर्थात् एक जन्म से दूसरे जन्म में (आगहि) प्राप्त होता है अर्थात् वही पिछले जन्म में (तम्) उसी कर्मों के नियम से पालने वाले (मा) मुझे (अद्य) आज वर्त्तमान भी (वर्चसा) दीप्ति से (संसृज) सम्बन्ध कराता है उन और उसको युक्ति से सेवन करना चाहिए ॥ २३ ॥

भावार्थ—सब प्राणियों को पिछले जन्म में किये हुए पुण्य वा पाप का फल वायु, जल और अग्नि आदि पदार्थों के द्वारा इस जन्म वा अगले जन्म में प्राप्त होता ही है ॥ २३ ॥

वह अग्नि किस प्रकार का है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात्सह ऋषिभिः ॥ २४ ॥

पदार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो (ऋषिभिः) वेदार्थ जानने वालों के (सह) साथ (देवाः) विद्वान् लोग और (इन्द्रः) परमात्मा (अग्ने) भौतिक अग्नि (वर्चसा) दीप्ति (प्रजया) सन्तान आदि पदार्थ और (आयुषा) जीवन से (मा) मुझे (संसृज) संयुक्त करता है उस और (मे) मेरे (अस्य) इस जन्म के कारण को जानने और (विद्यात्) जानता है इससे उनका संग और उसकी उपासना नित्य करें ॥ २४ ॥

भावार्थ—जब जीव पिछले शरीर को छोड़कर अगले शरीर को प्राप्त होता है तब उसके साथ स्वाभाविक मानस अग्नि जाता है वही फिर शरीर आदि पदार्थों को प्रकाशित करता है जो जीवों के पाप-पुण्य और जन्म का कारण है उसको वे ऋषि तुल्य विद्वान् ही परमेश्वर के सिवाय जानते हैं किन्तु परमेश्वर तो निश्चय के साथ यथायोग्य जीवों के पाप वा पुण्य को जानकर, उनके कर्म के अनुसार शरीर देकर, सुख-दुःख का भोग कराता ही है ॥ २४ ॥

पूर्व सूक्त से कहे हुए अश्वि आदि पदार्थों के अनुयङ्गी जो वायु आदि पदार्थ हैं, उनके वर्णन से पिछले बाईसवें सूक्त के अर्थ के साथ इस तेईसवें सूक्त के अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तेईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥ २३ ॥

ॐ

अथास्य पञ्चदशर्चस्य चतुर्विंशस्य सूक्तस्य आजीगर्तिः शुनःशेपः कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातिर्ऋषिः । १ प्रजापतिः । २ अग्निः । ३—५ सविता भगो वा
६—१५ वरुणश्च देवता । १, २, ६—१५ त्रिष्टुप्,
३—५ गायत्री छन्दः । १, २, ६—१५
धैवतः, ३—५ षड्जश्च स्वरौ ॥

अब चौबीसवें सूक्त का प्रारम्भ है । उसके पहले मन्त्र में प्रजापति का प्रकाश किया है—

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च ॥ १ ॥

पदार्थ—हम लोग (कस्य) कैसे गुण कर्म स्वभाव युक्त (कतमस्य) किस बहुत (अमृतानाम्) उत्पत्ति, विनाशरहित, अनादि मोक्षप्राप्त जीवों और जो जगत् के नित्य कारण के मध्य में व्यापक अमृतस्वरूप अनादि तथा एक पदार्थ (देवस्य) प्रकाशमान सर्वोत्तम सुखों को देने वाले देव का निश्चय के साथ (चारु) सुन्दर (नाम) प्रसिद्ध नाम को (मनामहे) जानें कि जो (नूनम्) निश्चय करके (कः) कौन सुखस्वरूप देव (नः) मोक्ष को प्राप्त हुए भी हम लोगों को (मह्यै) बड़ी, कारणरूप, नाश रहित (अदितये) पृथिवी के बीच में (पुनः) पुनर्जन्म (दात्) देता है । जिस से कि हम लोग (पितरम्) पिता (च) और (मातरम्) माता (च) और स्त्री, पुत्र, बन्धु आदि को (दृशेयम्) देखने की इच्छा करें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में प्रश्न का विषय है कौन ऐसा पदार्थ है जो सनातन अर्थात् अविनाशी पदार्थों में भी सनातन अविनाशी है कि जिसका अत्यन्त उत्कर्ष युक्त नाम का स्मरण करें वा जानें और कौन देव हम लोगों के लिए किस-किस हेतु से एक जन्म से दूसरे जन्म का सम्पादन करता और अमृत वा आनन्द के कराने वाली मुक्ति को प्राप्त कराकर भी फिर हम लोगों को माता-पिता से दूसरे जन्म में शरीर को धारण कराता है ॥ १ ॥

इन प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में प्रकाशित किये हैं—

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च ॥ २ ॥

पदार्थ—हम लोग जिस (अग्नेः) ज्ञानस्वरूप (अमृतानाम्) विनाश धर्म रहित पदार्थ वा मोक्ष प्राप्त जीवों में (प्रथमस्य) अनादि, विस्तृत अद्वितीय, स्वरूप (देवस्य) सब जगत् के प्रकाश करने वा संसार में सब पदार्थों के देने वाले परमेश्वर का (चारु) पवित्र (नाम) गुणों का गान करना (मनामहे) जानते हैं (सः) वही (नः) हमको (मह्यै) बड़े-बड़े गुण वाली (अदितये) पृथिवी के बीच में (पुनः) फिर जन्म (दात्) देता है जिससे हम लोग (पुनः) फिर (पितरम्) पिता (च) और (मातरम्) माता (च) और स्त्री, पुत्र, बन्धु आदि को (दृशेयम्) देखते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग जिस अनादि स्वरूप, सदा अमर रहने वा जो हम सब लोगों के किये हुए पाप और पुण्यों के अनुसार यथायोग्य सुख-दुःख फल देने वाले जगदीश्वर देव को निश्चय करते और जिसकी न्याययुक्त व्यवस्था से पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं तुम लोग भी उसी को जानो किन्तु इससे अन्य दूसरा कोई उक्त कर्म करने वाला नहीं है । ऐसा निश्चय हम लोगों को है कि वही मोक्षपदवी को पहुँचे हुए जीवों का भी महाकल्प के अन्त में फिर पाप-पुण्य की तुल्यता से पिता-माता और स्त्री आदि के बीच में मनुष्यजन्म धारण कराता है ॥ २ ॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम् । सदावन्भागमीमहे ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (सवितः) पृथिवी आदि पदार्थों की उत्पत्ति वा (अवन्) रक्षा करने और (देव) सब आनन्द के देने वाले जगदीश्वर हम लोग (वार्याणाम्) स्वीकार करने योग्य पृथिवी आदि पदार्थों की (ईशानम्) यथायोग्य व्यवस्था करने (भागम्) सब के सेवा करने योग्य (त्वा) आपको (सदा) सब काल में (अभि) (ईमहे) प्रत्यक्ष याचते हैं अर्थात् आप ही से सब पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों द्वारा—जो सब का प्रकाशक, सकल जगत् को उत्पन्न वा सब की रक्षा करने वाला जगदीश्वर है वही सब समय में उपासना करने योग्य है क्योंकि इसको छोड़के अन्य किसी की उपासना करके ईश्वर की उपासना का फल चाहे तो कभी नहीं हो सकता, इससे इसकी उपासना के विषय में कोई भी मनुष्य किसी दूसरे पदार्थ का स्थापन कभी न करे ॥ ३ ॥

फिर भी अगले मन्त्र में परमेश्वर ने अपना ही प्रकाश किया है—

यश्चिद्धि त इत्था भगः शशमानः पुरा निदः । अद्वेषो हस्तयोर्दधे ॥४॥

पदार्थ—हे जीव ! जैसे (अद्वेषः) सब से मित्रतापूर्वक वर्तने वाला द्वेषादि दोषरहित मैं ईश्वर (इत्था) इस प्रकार सुख के लिए (यः) जो (शशमानः) स्तुति (भगः) और स्वीकार करने योग्य धन है उसको (ते) तेरे धर्मात्मा के लिए (हि) निश्चय करके (हस्तयोः) हाथों में आमले का फल वैसे धर्म के साथ प्रशंसनीय धन को (दधे) धारण करता हूँ और जो (निदः) सब की निन्दा करने हारा है उस के लिए उस धन समूह का विनाश कर देता हूँ वैसे तुम लोग भी किया करो ॥४॥

भावार्थ—यहाँ वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मैं ईश्वर सब के निन्दक मनुष्य के लिए दुःख और स्तुति करने वाले के लिए सुख देता हूँ वैसे तुम भी सदा किया करो ॥४॥

फिर भी अगले मन्त्र में परमेश्वर ही का प्रकाश किया है—

भगभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा । मूर्द्धानं राय आरभे ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! जिससे हम लोग (भगभक्तस्य) जो सब के सेवने योग्य पदार्थों का यथायोग्य विभाग करने वाले (ते) आपकी कीर्ति को (उदशेम) अत्यन्त उन्नति के साथ व्याप्त हों कि उससे (तव) आपकी (अवसा) रक्षणादि कृपादृष्टि से (रायः) अत्यन्त धन के (मूर्द्धानम्) उत्तम-से-उत्तम भाग को प्राप्त होकर (आरभे) आरम्भ करने योग्य व्यवहारों में नित्य प्रवृत्त हों अर्थात् उसकी प्राप्ति के लिए नित्य प्रयत्न कर सकें ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपने किया, कर्म से ईश्वर की आज्ञा में प्राप्त होते हैं वे ही उससे रक्षा को सब प्रकार से प्राप्त और सब मनुष्यों में उत्तम ऐश्वर्य वाले होकर प्रशंसा को प्राप्त होते हैं क्योंकि वही ईश्वर जीवों को उनके कर्मों के अनुसार न्याय व्यवस्था से विभाग कर फल देता है इससे ॥ ५ ॥

पुनः वह ईश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं वयश्चनामी पतयन्त आपुः ।
नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! (क्षत्रम्) अखण्ड राज्य को (पतयन्तः) इधर-उधर चलायमान होते हुए (अमी) ये लोकलोकान्तर (न) नहीं (आपुः) व्याप्त होते हैं और न (वयः) पक्षी भी (न) नहीं (सहः) बल को (न) नहीं (मन्युम्) जो कि दुष्टों पर क्रोध है उसको भी (न) नहीं व्याप्त होते हैं (न) नहीं ये (अनिमिषम्) निरन्तर (चरन्तीः) बहने वाले (आपः) जल वा प्राण आपके सामर्थ्य को (प्रमिनन्ति) परिमाण कर सकते और (ये) जो (वातस्य) वायु के वेग हैं वे भी आपकी सत्ता का परिमाण (न) नहीं कर सकते इसी प्रकार और भी सब पदार्थ आपकी (अभ्वम्) सत्ता का निषेध भी नहीं कर सकते ॥ ६ ॥

भावार्थ—ईश्वर के अनन्त सामर्थ्य होने से उसका परिमाण वा उसकी बराबरी कोई [illegible] सकता है । ये सब लोक चलते हैं परन्तु लोकों के चलने से उनमें व्याप्त [illegible] क्योंकि जो सब जगह पूर्ण है वह कभी चलेगा ? इस ईश्वर की उपासना [illegible] किसी जीव का पूर्ण अखण्डित राज्य वा सुख कभी नहीं हो सकता [illegible] अप्रमेय वा विनाश रहित परमेश्वर की सदा उपासना करनी योग्य है [illegible]

अब अगले मन्त्र में वायु और सविता के गुण प्रकाशित करते हैं—

अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः ।
नीचीनाः स्थुरुपरि बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः ॥७॥

पदार्थ—[illegible] स्वरूप वाला (राजा) प्रकाशमान (वरुणः) [illegible] (अबुध्ने) अन्तरिक्ष से पृथक् अत्युत्तम बड़े आकाश में (वनस्य) जो कि [illegible] से सेवने योग्य संसार है (ऊर्ध्वम्)

उस पर (स्तूपम्) अपनी किरणों को (ददते) छोड़ता है जिसकी (नीचीनाः) नीचे को गिरती हुई (केतवः) किरणें (एषाम्) इस संसार के पदार्थों (उपरि) पर (स्थुः) ठहरती हैं (अन्तर्हित) जो उनके बीच में जल और (बुध्न) मेघादि पदार्थ (स्थुः) हैं और जो (केतवः) किरणें वा प्रज्ञान (अस्मे) हम लोगों में (निहिताः) स्थिर (स्थुः) होते हैं उनको यथावत् जानो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जिससे यह सूर्य्यरूप के न होने से अन्तरिक्ष का प्रकाश नहीं कर सकता इससे जो ऊपरली वा बिचली किरणें हैं वे ही मेघ की निमित्त हैं जो उनमें जल के परमाणु रहते हैं वे अति सूक्ष्मता के कारण दृष्टिगोचर नहीं होते इसी प्रकार वायु अग्नि और पृथिवी आदि के भी अतिसूक्ष्म अवयव अन्तरिक्ष में रहते तो अवश्य हैं परन्तु वे भी दृष्टिगोचर नहीं होते ॥ ७ ॥

अब अगले मन्त्र में वरुण शब्द से आत्मा और वायु के गुणों का प्रकाश करते हैं—

उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् ॥ ८ ॥

पदार्थ—(चित्) जैसे (अपवक्ता) मिथ्यावादी, छली, दुष्ट स्वभावयुक्त पराये पदार्थ को लेने और (हृदयाविध) अन्याय से परपीड़ा करनेहारे शत्रु को दृढ़ बन्धनों से वश में रखते हैं वैसे जो (वरुण, राजा) अतिश्रेष्ठ और प्रकाशमान परमेश्वर वा श्रेष्ठता और प्रकाश का हेतु वायु (सूर्याय) सूर्य के (अन्वेतवै) गमनागमन के लिए (उरुम्) विस्तारयुक्त (पन्थाम्) मार्ग को (चकार) सिद्ध करते (उत) और (अपदे) जिसके कुछ भी पादरूप चिह्न नहीं है उस अन्तरिक्ष में (प्रतिधातवे) धारण कराने के लिए सूर्य के (पादा) जिनसे जाना और आना बने उन गमन और आगमन गुणों को (अकः) सिद्ध करते हैं (उ) और जो परमात्मा सब का धर्त्ता (हि) और वायु इस काम के सिद्ध करने का हेतु है उसकी सब मनुष्य उपासना और प्राण का उपयोग क्यों न करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है। जिस परमेश्वर ने निश्चय के साथ सब से बड़े सूर्यलोक के लिए बड़ी-सी कक्षा अर्थात् उसके घूमने का मार्ग बनाया है, जो इसको वायुरूपी ईंधन से प्रदीप्त करता और सब लोक अन्तरिक्ष में अपनी-अपनी परिधियुक्त है, किसी लोक का किसी लोकान्तर के साथ सङ्ग नहीं है किन्तु सब अन्तरिक्ष में ठहरे हुए अपनी-अपनी परिधि पर चारों ओर घूमा करते हैं और जो आपस में ईश्वर और वायु के आकर्षण और धारण-शक्ति से अपनी-अपनी परिधि को छोड़कर इधर-उधर चलने को समर्थ नहीं हो सकते तथा परमेश्वर और वायु के बिना अन्य कोई भी इनका धारण करने वाला नहीं है। जैसे परमेश्वर मिथ्यावादी, अधर्म करनेवाले से पृथक् है वैसे प्राण भी हृदय के विदीर्ण करनेवाले रोग से अलग है, उसकी उपासना वा कार्य्यों में योजना सब मनुष्य क्यों न करें ॥ ८ ॥

अब जो राजा और प्रजा के मनुष्य हैं वे किस प्रकार के हों
इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

शतं ते राजन् भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु ।
बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥ ९ ॥

पदार्थ—(राजन्) हे प्रकाशमान प्रजाध्यक्ष प्रजाजन वा जिस (भिषजः) सर्वरोग निवारण करनेवाले (ते) आपकी (शतम्) असख्यात ओषधि और (सहस्रम्) असख्यात (गभीरा) गहरी (उर्वी) विस्तारयुक्त भूमि है उस (निर्ऋतिम्) भूमि की (त्वम्) आप (सुमति) उत्तम बुद्धिमान् होके रक्षा कर, जो दुष्ट स्वभावयुक्त प्राणी के (प्रमुमुग्धि) दुष्ट कर्मों को छुड़ादे और जो (पराचैः) धर्म से अलग होने वालों ने (कृतम्) किया हुआ (एनः) पाप है उसको (अस्मत्) हम लोगों से (दूरे) दूर रखिए और उन दुष्टों को उनके कर्म के अनुकूल फल देकर आप (बाधस्व) उनकी ताड़ना और हम लोगों के दोषों को भी निवारण किया कीजिए ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को जानना चाहिए कि जो सभाध्यक्ष और प्रजा के उत्तम मनुष्य पाप वा सर्वरोग निवारण और पृथिवी के धारण करने, अत्यन्त बुद्धि, बल देकर दुष्टों को दण्ड दिलाने वाले होते हैं वे ही सेवा के योग्य हैं और यह भी जानना कि किसी का किया हुआ पाप भोग के बिना निवृत्त नहीं होता और इसके निवारण के लिए कुछ परमेश्वर की प्रार्थना वा अपना पुरुषार्थ करना भी योग्य नहीं है किन्तु यह तो है जो कर्म जीव वर्त्तमान में करता वा करेगा उसकी निवृत्ति के लिए तो परमेश्वर की प्रार्थना वा उपदेश भी होता है ॥ ९ ॥

जो लोक अन्तरिक्ष में दिखाई पड़ते हैं वे किस के ऊपर वा किसने धारण किये हैं
इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद्दिवेयुः ।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति ॥ १० ॥

पदार्थ—हम पूछते हैं कि ये (अमी) प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष (ऋक्षाः) सूर्यचन्द्रतारादिक नक्षत्रलोक किसने (उच्चाः) ऊपर को (निहितासः) यथायोग्य अपनी-अपनी कक्षा में ठहराये हैं क्यों ये (नक्तम्) रात्रि में (ददृश्रे) दीख पड़ते हैं और (दिवा) दिन में (कुहचित्) कहाँ (ईयुः) जाते हैं। इन प्रश्नों के उत्तर—जो (वरुणस्य) परमेश्वर वा सूर्य के (अदब्धानि) हिंसारहित (व्रतानि) नियम वा कर्म हैं जिन से ये ऊपर ठहरे हैं (नक्तम्) रात्रि में (विचाकशत्) अच्छे प्रकार प्रकाशमान होते हैं ये कहीं नहीं जाते न आते हैं किन्तु आकाश के बीच में रहते हैं (चन्द्रमा) चन्द्र आदि लोक (एति) अपनी-अपनी दृष्टि के सामने आते और दिन में सूर्य के प्रकाश वा किसी लोक की आड़ से नहीं दीखते हैं ये प्रश्नों के उत्तर हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है तथा इस मन्त्र के पहले भाग से प्रश्न और पिछले भाग से उनका उत्तर जानना चाहिए कि जब कोई किसी से पूछे कि ये नक्षत्रलोक अर्थात् तारागण किसने बनाये और किसने धारण किये हैं और रात्रि में दीखते तथा दिन में कहाँ जाते हैं ? इनके उत्तर ये हैं कि ये सब ईश्वर ने बनाये और धारण किये हैं इनमें आप ही प्रकाश नहीं किन्तु सूर्य के ही प्रकाश से प्रकाशमान होते हैं और ये कहीं नहीं जाते किन्तु छपे हुए दीखते नहीं और रात्रि में सूर्य की किरणों से प्रकाशमान होकर दीखते हैं ये सब धन्यवाद देने योग्य ईश्वर के ही कर्म हैं ऐसा सब सज्जनों को जानना चाहिए ॥ १० ॥

फिर वह वरुण कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः ॥११॥

पदार्थ—हे (उरुशंस) सर्वथा प्रशंसनीय (वरुण) जगदीश्वर ! जिस (त्वा) आपका आश्रय लेके (यजमान) उक्त तीन प्रकार के यज्ञ करने वाला विद्वान् (हविर्भिः) होम आदि साधनों से (तत्) अत्यन्त सुख की (आशास्ते) आशा करता है उन आप को (ब्रह्मणा) वेद से स्मरण और अभिवादन तथा (अहेळमानः) आपका अनादर अर्थात् अपमान नहीं करता हुआ मैं (यामि) आपको प्राप्त होता हूँ आप कृपा करके मुझे (इह) इस संसार में (बोधि) बोधयुक्त कीजिए और (नः) हमारी (आयुः) उमर (मा, प्रमोषीः) मत व्यर्थ खोइए अर्थात् अति शीघ्र मेरे आत्मा को प्रकाशित कीजिए ॥ १ ॥ (तत्) सुख की इच्छा करता हुआ (यजमान) तीन प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान करने वाला जिस (उरुशंस) अत्यन्त प्रशंसनीय (वरुण) सूर्य को (आशास्ते) चाहता है (त्वा) उस सूर्य को (ब्रह्मणा) वेदोक्त क्रियाकुशलता से (वन्दमान) स्मरण करता हुआ (अहेळमानः) किन्तु उसके गुणों को न भूलता और (इह) इस संसार में (तत्) उक्त सुख की इच्छा करता हुआ मैं (यामि) प्राप्त होता हूँ कि जिस से यह (उरुशंस) अत्यन्त प्रशंसनीय सूर्य्य हमको (बोधि) विदित होकर (नः) हम लोगों की (आयुः) उमर (मा, प्रमोषीः) न नष्ट करे अर्थात् अच्छे प्रकार बढ़ावे ॥ २ ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को वेदोक्त रीति से परमेश्वर और सूर्य को जानकर सुखों को प्राप्त होना चाहिए और किसी मनुष्य को परमेश्वर वा सूर्यविद्या का अनादर न करना चाहिए सर्वदा ईश्वर की आज्ञा का पालन और उसके रचे हुए जो सूर्यादिक पदार्थ हैं उन के गुणों को जानकर उनसे उपकार लेके अपनी उमर निरन्तर बढ़ानी चाहिए ॥ ११ ॥

तदिन्नक्तं तद्दिवा मह्यमाहुस्तदयं केतो हृद आ वि चष्टे ।
शुनःशेपो यमह्वद्गृभीतः सो अस्मान्राजा वरुणो मुमोक्तु ॥१२॥

पदार्थ—विद्वान् लोग (नक्तम्) रात (दिवा) दिन जिस ज्ञान का (आहुः) उपदेश करते हैं (तत्) उस और जो (मह्यम्) विद्याधन की इच्छा करने वाले मेरे लिए (हृदः) मन के साथ आत्मा के बीच में (केतः) उत्तम बोध (आविचष्टे) सब प्रकार से सत्य प्रकाशित होता है (तदित्) उसी वेद बोध अर्थात् विज्ञान को मैं मानता, कहता और करता हूँ (यम्) जिसको (शुनःशेपः) अत्यन्त ज्ञान वाले विद्याव्यवहार के लिए प्राप्त और परमेश्वर वा सूर्य्य का (अह्वत्) उपदेश करते हैं जिस से (वरुण) श्रेष्ठ (राजा) प्रकाशमान परमेश्वर हमारी उपासना को प्राप्त होकर (अस्मान्) हम पुरुषार्थी धर्मात्माओं को पाप और दुःखों से (मुमोक्तु) छुड़ावे और उक्त सूर्य्य भी अच्छे प्रकार जाना और क्रियाकुशलता में युक्त किया हुआ बोध (मह्यम्) विद्याधन की इच्छा करने वाले मुझ को प्राप्त होता है (सः) हम लोगों को योग्य है कि उस ईश्वर की उपासना और सूर्य्य का उपयोग यथावत् किया करें ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। सब मनुष्यों को इस प्रकार उपदेश करना तथा मानना चाहिए कि विद्वान्, वेद और ईश्वर हमारे लिए जिस ज्ञान का उपदेश करते हैं तथा हम जो अपनी शुद्ध बुद्धि से निश्चय करते हैं वही मुझ को और हे मनुष्यो ! तुम सब लोगों को स्वीकार करके पाप और अधर्म करने से दूर रक्खा करे ॥ १२ ॥

शुनःशेपो ह्यह्वद्गृभीतस्त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः ।
अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद्विद्वाँ अदब्धो वि मुमोक्तु पाशान् ॥१३॥

पदार्थ—जैसे (शुनःशेपः) उक्त गुणवाला विद्वान् (त्रिषु) कर्म, उपासना और ज्ञान में (आदित्यम्) अविनाशी परमेश्वर का (अह्वत्) आह्वान करता है वह हम लोगों से (गृभीतः) स्वीकार किया हुआ उक्त तीनों कर्म, उपासना और ज्ञान को प्रकाशित कराता है और जो (द्रुपदेषु) क्रियाकुशलता की सिद्धि के लिए विमान आदि यानों के खम्भों में (बद्धः) नियम से युक्त किया हुआ वायु ग्रहण किया है वैसे वह लोगों को भी ग्रहण करना चाहिए जैसे-जैसे गुणवाले पदार्थ को (अदब्धः) अति प्रशंसनीय (वरुण) अत्यन्त श्रेष्ठ (राजा) और प्रकाशमान परमेश्वर (अवससृज्यात्) पृथक्-पृथक् बनाकर सिद्ध करे वह हम लोगों को भी वैसे ही गुणवाले कामों में संयुक्त करे। हे भगवन् परमेश्वर ! आप हमारे (पाशान्) बन्धनों को (विमुमोक्तु) बार-बार छुड़वाइए। इसी प्रकार हम लोगों की क्रियाकुशलता

में संयुक्त किये हुए प्राण आदि पदार्थ (पाशान्) सकल दरिद्ररूपी बन्धनों को (विमुमोक्तु) बार-बार छुड़वा देवें वा देते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में भी लुप्तोपमा और श्लेषालङ्कार है। परमेश्वर ने जिस-जिस गुण वाले जो-जो पदार्थ बनाये हैं उन-उन पदार्थों के गुणों को यथावत् जानकर इन-इन को कर्म, उपासना और ज्ञान में नियुक्त करे। जैसे परमेश्वर न्याय्य अर्थात् न्याययुक्त कर्म करता है वैसे ही हम लोगों को भी कर्म नियम के साथ नियुक्त कर जो बन्धनों के करनेवाले पापात्मक कर्म हैं उनको दूर से ही छोड़कर पुण्यरूप कर्मों का सदा सेवन करना चाहिए ॥ १३ ॥

अव॑ ते हेळो॑ वरुण नमो॑भिरव॑ यज्ञेभि॑रीमहे ह॒विर्भिः॑ ।
क्षय॑न्न॒स्मभ्य॑मसुर प्रचेता राज॒न्नेनां॑सि शिश्रथः कृ॒तानि॑ ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे (**राजन्**) प्रकाशमान (**प्रचेतः**) अत्युत्तम विज्ञान (**असुर**) प्राणों में रमने (**वरुण**) अत्यन्त प्रशंसनीय (**अस्मभ्यम्**) हम को विज्ञान देनेहारे भगवन् जगदीश्वर! जिसलिए हम लोगों के (**कृतानि**) किये हुए (**एनांसि**) पापों को (**क्षयन्**) विनाश करते हुए (**अवशिश्रथः**) विज्ञान आदि दान से उनके फलों को शिथिल अच्छे प्रकार करते हैं इसलिए हम लोग (**नमोभिः**) नमस्कार वा (**यज्ञेभिः**) कर्म, उपासना, ज्ञान और (**हविर्भिः**) होम करने योग्य अच्छे-अच्छे पदार्थों से (**ते**) आपका (**हेळः**) निरादर (**अव**) न कभी (**ईमहे**) करना जानते और मुख्य प्राण की भी विद्या को चाहते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ—जिन मनुष्यों ने परमेश्वर के रचे हुए संसार में पदार्थों के प्रकट किये हुए बोध से, किये हुए पाप कर्मों को फलों से शिथिल कर दिया वैसा अनुष्ठान करें। जैसे अज्ञानी पुरुष को पापफल दुःखी करते हैं वैसे ज्ञानी पुरुष को दुःख नहीं दे सकते ॥ १४ ॥

फिर भी अगले मन्त्र में वरुण शब्द ही का प्रकाश किया है—

उदु॑त्त॒मं व॑रुण॒ पाश॑म॒स्मदवा॑ध॒मं वि म॑ध्य॒मं श्र॑थाय ।
अथा॑ व॒यमा॑दित्य व्र॒ते तवाना॑गसो॒ अदि॑तये स्याम ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे (**वरुण**) स्वीकार करने योग्य ईश्वर! आप (**अस्मत्**) हम लोगों से (**अधमम्**) निकृष्ट (**मध्यमम्**) मध्यम अर्थात् निकृष्ट से कुछ विशेष (**उत्**) और (**उत्तमम्**) अति दृढ़ अत्यन्त दुःख देने वाले (**पाशम्**) बन्धन को (**व्यवश्राय**) अच्छे प्रकार नष्ट कीजिए (**अथ**) इसके अनन्तर हे (**आदित्य**) विनाशरहित जगदीश्वर! (**तव**) उपदेश करने वाले सब के गुरु आपके (**व्रते**) सत्याचरणरूपी व्रत को करके (**अनागसः**) निरपराधी होके हम लोग (**अदितये**) अखण्ड अर्थात् विनाशरहित सुख के लिए (**स्याम**) नियत होवें ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो ईश्वर की आज्ञा को यथावत् नित्य पालन करते हैं वे ही पवित्र और सब दुःख बन्धनों से अलग होकर सुखों को निरन्तर प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥

तेईसवें सूक्त के कहे हुए वायु आदि अर्थों के अनुकूल प्रजापति आदि अर्थों के कहने से इस चौबीसवें सूक्त की उक्त सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

प्रथमाष्टक के प्रथमाध्याय में यह पन्द्रहवाँ वर्ग तथा प्रथम मण्डल के षष्ठानुवाक में चौबीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥ २४ ॥

卐

अथैकविंशत्यृचस्य पञ्चविंशस्य सूक्तस्याजीगर्तिः शुनःशेप ऋषिः। वरुणो देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

अब पच्चीसवें सूक्त का प्रारम्भ है। उसके पहले मन्त्र में परमेश्वर ने दृष्टान्त के साथ अपनी प्रार्थना का प्रकाश किया है—

यच्चि॒द्धि ते॒ विशो॑ यथा॒ प्र दे॑व वरुण व्र॒तम् । मि॒नी॒मसि॒ द्यवि॑द्यवि ॥१॥

पदार्थ—हे (**देव**) सुख देने वाले (**वरुण**) उत्तमों-में-उत्तम जगदीश्वर! आप (**यथा**) जैसे अज्ञान से किसी राजा वा मनुष्य के (**विशः**) प्रजा वा सन्तान आदि (**द्यवि द्यवि**) प्रतिदिन अपराध करते हैं किन्हीं कामों को नष्ट कर देते हैं वह उन पर न्याययुक्त दण्ड और करुणा करता है वैसे ही हम लोग (**ते**) आपका (**यत्**) जो (**व्रतम्**) सत्य आचरण आदि नियम हैं (**हि**) उन को कदाचित् (**प्रमिणीमसि**) अज्ञानपन से छोड़ देते हैं उसका यथायोग्य न्याय (**चित्**) और हमारे लिए करुणा करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे भगवन् जगदीश्वर! जैसे पिता आदि विद्वान् और राजा छोटे-छोटे अल्पबुद्धि, उन्मत्त बालकों पर करुणा, न्याय और शिक्षा करते हैं वैसे ही आप भी प्रतिदिन हमारे ऊपर न्याय, करुणा और शिक्षा करने वाले हैं ॥ १ ॥

फिर भी अगले मन्त्रों में उक्त अर्थ ही का प्रकाश किया है—

मा नो॑ व॒धाय॑ ह॒त्नवे॑ जिही॒ळा॒नस्य॑ रीरधः । मा हृ॑णा॒नस्य॑ म॒न्यवे॑ ॥२॥

पदार्थ—हे वरुण जगदीश्वर! आप जो (**जिहीळानस्य**) अज्ञान से हमारा अनादर करे उसके (**हत्नवे**) मारने के लिए (**नः**) हम लोगों को कभी (**मा रीरधः**) प्रेरित और प्रवृत्त मत कीजिए, इसी प्रकार (**हृणानस्य**) जो हमारे सामने लज्जित हो रहा है उस पर (**मन्यवे**) क्रोध करने को हम लोगों को (**मा रीरधः**) कभी मत प्रवृत्त कीजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! जो अल्पबुद्धि अज्ञानी जन अपनी अज्ञानता से तुम्हारा अपराध करें तुम उसको दण्ड ही देने को मत प्रवृत्त होवो और वैसे ही जो अपराध करके लज्जित हो अर्थात् तुम से क्षमा करवावे तो उस पर क्रोध मत करो किन्तु उसका अपराध सहो ॥ २ ॥

वि मृ॑ळी॒काय॑ ते॒ मनो॑ र॒थीरश्वं॒ न संदि॑तम् । गी॒र्भिर्व॑रुण सीमहि ॥३॥

पदार्थ—हे (**वरुण**) जगदीश्वर! हम लोग (**रथीः**) रथवाले के (**संदितम्**) रथ में जोड़े हुए (**अश्वम्**) घोड़े के (**न**) समान (**मृळीकाय**) उत्तम सुख के लिए (**ते**) आपके सम्बन्ध में (**गीर्भिः**) पवित्र वाणियों द्वारा (**मनः**) ज्ञान (**विसीमहि**) बाँधते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे भगवन् जगदीश्वर! जैसे रथ के स्वामी का भृत्य घोड़े को चारों ओर से बाँधता है वैसे ही हम लोग आपका जो वेदोक्त ज्ञान है उसको अपनी बुद्धि के अनुसार मन में दृढ़ करते हैं ॥ ३ ॥

फिर भी उसी अर्थ को दृष्टान्त से अगले मन्त्र में सिद्ध किया है—

परा॒ हि मे॒ विम॑न्यवः॒ पत॑न्ति॒ वस्य॑इष्टये । वयो॒ न व॑स॒तीरुप॑ ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर! जैसे (**वयः**) पक्षी (**वसतीः**) अपने रहने के स्थानों को छोड़-छोड़ दूर देश को (**उपपतन्ति**) उड़ जाते हैं (**न**) वैसे (**मे**) मेरे निवास स्थान से (**वस्य इष्टये**) अत्यन्त धन होने के लिए (**विमन्यवः**) अनेक प्रकार के क्रोध करने वाले दुष्ट जन (**परापतन्ति, हि**) दूर ही चले जावें ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे उड़ाये हुए पक्षी दूर जाके बसते हैं वैसे ही क्रोधी जीव मुझ से दूर बसें और मैं भी उनसे दूर बसूँ जिससे हमारा उलटा स्वभाव और धन की हानि कभी न होवे ॥ ४ ॥

फिर वह वरुण कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

क॒दा क्ष॑त्र॒श्रियं॒ नर॒मा वरु॑णं करामहे । मृ॒ळी॒काया॑रु॒चक्ष॑सम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हम लोग (**कदा**) कब (**मृळीकाय**) अत्यन्त सुख के लिए (**उरुचक्षसम्**) जिसको वेद अनेक प्रकार से वर्णन करते और (**नरम्**) सब को सन्मार्ग पर चलाने वाले उस (**वरुणम्**) परमेश्वर को सेवन करके (**क्षत्रश्रियम्**) चक्रवर्त्ति राज्य की लक्ष्मी को (**करामहे**) अच्छे प्रकार सिद्ध करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को परमेश्वर की आज्ञा का पालन करके सब सुख और चक्रवर्त्ति राज्य न्याय के साथ सदा सेवन करने चाहिएँ ॥ ५ ॥

यह सोलहवाँ वर्ग पूरा हुआ ॥

अब अगले मन्त्र में सूर्य्य और वायु का प्रकाश किया है—

तदित्स॑मा॒नमा॑शाते॒ वेन॑न्ता॒ न प्र यु॑च्छतः । धृ॒तव्र॑ताय दा॒शुषे॑ ॥ ६ ॥

पदार्थ—य (**प्रयुच्छतः**) आनन्द करते हुए (**वेनन्ता**) बाजा बजाने वालों के (**न**) समान सूर्य और वायु (**धृतव्रताय**) जिसने सत्य भाषण आदि नियम वा क्रियामय यज्ञ धारण किया है उस (**दाशुषे**) उत्तम दान आदि धर्म करने वाले पुरुष के लिए (**तत्**) जो उसका होम में चढ़ाया हुआ पदार्थ वा विमान आदि रथों की रचना (**इत्**) उसी को (**समानम्**) बराबर (**आशाते**) व्याप्त होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे अति हर्ष करने वाले बाजे बजाने में अति कुशल दो पुरुष बाजों को लेकर चलाकर बजाते हैं वैसे ही सिद्ध किये विद्या के धारण करने वाले मनुष्य से होमे हुए पदार्थों को सूर्य और वायु चालन करके धारण करते हैं ॥ ६ ॥

उक्त विद्या को यथावत् कौन जानता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वेदा॒ यो वी॒नां प॒दम॒न्तरि॑क्षेण॒ पत॑ताम् । वेद॑ ना॒वः स॑मु॒द्रियः॑ ॥ ७ ॥

पदार्थ—(**यः**) जो (**समुद्रियः**) समुद्र अर्थात् अन्तरिक्ष वा जलमय प्रसिद्ध समुद्र में अपने पुरुषार्थ से युक्त विद्वान् मनुष्य (**अन्तरिक्षेण**) आकाश मार्ग से (**पतताम्**) जाने-आने वाले (**वीनाम्**) विमान सब लोक वा पक्षियों के और समुद्र में जाने वाली (**नावः**) नौकाओं के (**पदम्**) रचन, चालन, ज्ञान और मार्ग को (**वेद**) जानता है वह शिल्पविद्या की सिद्धि के करने को समर्थ हो सकता है अन्य नहीं ॥ ७ ॥

भावार्थ—ईश्वर ने वेदों में अन्तरिक्ष, भू और समुद्र में जाने-आने वाले यानों की विद्या का उपदेश किया है उनको सिद्ध करने को जो पूर्ण विद्या, शिक्षा और हस्तक्रियाओं के कलाकौशल में कुशल मनुष्य होता है वही उन्हें बनाने में समर्थ हो सकता है ॥ ७ ॥

फिर वह क्या जानता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

वेद॑ मा॒सो धृ॒तव्र॑तो॒ द्वाद॑श प्र॒जाव॑तः । वेदा॒ य उ॑प॒जाय॑ते ॥ ८ ॥

पदार्थ—(**यः**) जो (**धृतव्रतः**) सत्य नियम विद्या और बल को धारण

करने वाला विद्वान् मनुष्य (प्रजावतः) जिन में नाना प्रकार के संसारी पदार्थ उत्पन्न होते हैं (द्वादश) बारह (मासः) महीनों और जो (उपजायते) उन में अधिक मास अर्थात् तेरहवाँ महीना उत्पन्न होता है उसको (वेद) जानता है वह काल के सब अवयवों को जानकर उपकार करने वाला होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे परमेश्वर सर्वज्ञ होने से सब लोक वा काल की व्यवस्था को जानता है वैसे मनुष्यों को सब लोक तथा काल के महिमा की व्यवस्था को जानकर, एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोना चाहिए ॥ ८ ॥

वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः । वेदा ये अध्यासते ॥ ९ ॥

पदार्थ—जो मनुष्य (ऋष्वस्य) सब जगह जाने आने (उरो) अत्यन्त गुणवान् (बृहतः) बड़े, अत्यन्त बलयुक्त (वातस्य) वायु के (वर्तनिम्) मार्ग को (वेद) जानता है (ये) और जो पदार्थ इस में (अध्यासते) इस वायु के आधार से स्थित हैं उनके भी (वर्तनिम्) मार्ग को (वेद) जाने वह भूगोल-खगोल के गुणों का जानने वाला होता है ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों में परिमाण वा गुणों से बड़ा, सब मूर्ति वाले पदार्थों का धारण करने वाला वायु है उसका कारण अर्थात् उत्पत्ति और जाने-आने के मार्ग और जो उस में स्थूल वा सूक्ष्म पदार्थ ठहरे हैं उनको भी यथार्थता से जान इनसे अनेक कार्य सिद्ध कर-कराके सब प्रयोजनों को सिद्ध कर लेता है वह विद्वानों में गणनीय विद्वान् होता है ॥ ९ ॥

जो मनुष्य इस वायु को ठीक-ठीक जानता है वह किसको प्राप्त होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्या३स्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ॥१०॥

पदार्थ—जैसे (धृतव्रतः) सत्य नियम पालने (सुक्रतुः) अच्छे-अच्छे कर्म वा उत्तम बुद्धियुक्त (वरुणः) अति श्रेष्ठ सभा, सेना का स्वामी (पस्त्यासु) अत्युत्तम घर आदि पदार्थों से युक्त प्रजाओं में (साम्राज्याय) चक्रवर्ती राज्य को करने की योग्यता से युक्त मनुष्य (आनिषसाद) अच्छे प्रकार स्थित होता है वैसे ही हम लोगों को भी होना चाहिए ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे परमेश्वर सब प्राणियों का उत्तम राजा है वैसे जो ईश्वर की आज्ञा में वर्त्तमान धार्मिक-शरीर और बुद्धि, बल-युक्त मनुष्य हैं वे ही उत्तम राज्य करने योग्य होते हैं ॥ १० ॥

अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति ।
कृतानि या च कर्त्वा ॥ ११ ॥

पदार्थ—जिस कारण जो (चिकित्वान्) सब को चेताने वाला धार्मिक, सकल विद्याओं को जानने; न्याय करने वाला मनुष्य (या) जो (विश्वानि) सब (कृतानि) अपने किये हुए (च) और (कर्त्वा) जो आगे करने योग्य कर्मों और (अद्भुतानि) आश्चर्य्यरूप वस्तुओं को (अभिपश्यति) सब प्रकार से देखता है (अतः) इसी कारण वह न्यायाधीश होने को समर्थ होता है ॥ ११ ॥

भावार्थ—जिस प्रकार ईश्वर सब जगह व्याप्त और सर्वशक्तिमान् होने से सृष्टि रचनादि रूपी कर्म और जीवों के तीनों कालों के कर्मों को जानकर इनको उन-उन कर्मों के अनुसार फल देने को योग्य है, इसी प्रकार जो विद्वान् मनुष्य पहले हो गये उनके कर्मों और आगे अनुष्ठान करने योग्य कर्मों के करने में युक्त होता है वही सब को देखता हुआ सब के उपकार करने वाले उत्तम-से-उत्तम कर्मों को कर सब का न्याय करने को योग्य होता है ॥ ११ ॥

स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत् ।
प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ १२ ॥

पदार्थ—जैसे (आदित्यः) अविनाशी परमेश्वर, प्राण वा सूर्य्य (विश्वाहा) सब दिन (नः) हम लोगों को (सुपथा) अच्छे मार्ग में चलाने और (नः) हमारी (आयूंषि) उमर (प्रतारिषत्) सुख के साथ परिपूर्ण (करत्) करते हैं वैसे ही (सुक्रतुः) श्रेष्ठ कर्म और उत्तम-उत्तम जिससे ज्ञान हो वह (आदित्यः) विद्या धर्म प्रकाशित न्यायकारी मनुष्य (विश्वाहा) सब दिनों में (नः) हम लोगों को (सुपथा) अच्छे मार्ग में (करत्) करें और (नः) हम लोगों की (आयूंषि) उमरों को (प्रतारिषत्) सुख से परिपूर्ण करें ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य ब्रह्मचर्य्य और जितेन्द्रियता आदि से आयु बढ़ाकर धर्म मार्ग में विचरते हैं उन्हीं को जगदीश्वर अनुगृहीत कर आनन्द युक्त करता है। जैसे प्राण और सूर्य्य अपने बल और तेज से ऊँचे-नीचे स्थानों को प्रकाशित कर प्राणियों को सुख के मार्ग से युक्त करके उचित समय पर दिन-रात आदि सब कालविभागों को अच्छे प्रकार सिद्ध करते हैं वैसे ही अपने आत्मा, शरीर और सेना के बल से न्यायाधीश मनुष्य धर्मयुक्त छोटे, मध्यम और बड़े कर्मों के प्रचार से अधर्मयुक्त को छुड़ा उत्तम और नीच मनुष्यों का विभाग सदा किया करे ॥ १२ ॥

फिर वह वरुण किस प्रकार का है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

बिभ्रद् द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम् ।
परि स्पशो नि षेदिरे ॥ १३ ॥

पदार्थ—जैसे इस वायु वा सूर्य्य के तेज में (स्पशः) स्पर्शवान् अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म सब पदार्थ (निषेदिरे) स्थिर होते हैं और वे दोनों (वरुणः) वायु और सूर्य्य (निर्णिजम्) शुद्ध (हिरण्ययम्) अग्न्यादिरूप पदार्थों को (बिभ्रत्) धारण करते हुए (द्रापिं) बल, तेज और निद्रा को (परिवस्त) सब प्रकार से प्राप्त कर जीवों के ज्ञान को ढाँप देते हैं वैसे (निर्णिजम्) शुद्ध (हिरण्ययम्) ज्योतिर्मय प्रकाशयुक्त को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (द्रापिम्) निद्रादि के हेतु रात्रि को (परिवस्त) निवारण कर अपने तेज से सब को ढाँप लेता है ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे वायु बल का करनेहारा होने से सब अग्नि आदि स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों को धरके आकाश में गमन और आगमन करता हुआ चलता और जैसे सूर्य्यलोक भी स्वयं प्रकाशरूप होने से रात्रि को निवारण कर अपने प्रकाश से सब को प्रकाशता है वैसे विद्वान् लोग भी विद्या और उत्तम शिक्षा के बल से सब मनुष्यों को धारण कर धर्म में चल अन्य सब मनुष्यों को चलाया करें ॥ १३ ॥

न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम् ।
न देवमभिमातयः ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम सब लोग (जनानाम्) विद्वान्, धार्मिक वा मनुष्य आदि प्राणियों से (दिप्सवः) झूठे अभिमान और झूठे व्यवहार को चाहने वाले मनुजन (यम्) जिस (देवम्) दिव्य गुणवाले वाले परमेश्वर वा विद्वान् को (न, दिप्सन्ति) विरोध से न चाहें (द्रुह्वाणः) द्रोह करने वाले जिस को द्रोह से (न) न चाहें तथा जिसके साथ (अभिमातयः) अभिमानी पुरुष (न) अभिमान से न वर्तें उन उपासना करने योग्य परमेश्वर वा विद्वानों को जानो ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो हिंसक, परद्रोही, अभिमानयुक्त जन हैं वे अज्ञानपन से परमेश्वर वा विद्वानों के गुणों को जानकर उनसे उपकार लेने को समर्थ नहीं हो सकते इसलिए सब मनुष्यों को योग्य है कि उनके गुण, कर्म और स्वभाव का सदैव ग्रहण करें ॥ १४ ॥

उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या । अस्माकमुदरेष्वा ॥ १५ ॥

पदार्थ—(यः) जो हमारे (उदरेषु) अर्थात् भीतर (उत) और बाहर भी (असामि) पूर्ण (यशः) प्रशंसा के योग्य कर्म को (आचक्रे) सब प्रकार से करता है जो (मानुषेषु) जीवों और जड़ पदार्थों में सर्वथा कीर्ति को किया करता है सो वरुण, परमात्मा वा विद्वान् सब मनुष्यों को उपासनीय और सेवनीय क्यों न होवे ॥ १५ ॥

भावार्थ—जिस सृष्टि करनेवाले अन्तर्यामी जगदीश्वर ने परोपकार वा जीवों को उनके कर्म के अनुसार भोग कराने के लिए सम्पूर्ण जगत् कल्प-कल्प में रचा है जिस की सृष्टि में पदार्थों के बाहर-भीतर चलने वाला वायु सब कर्मों का हेतु है और विद्वान् लोग विद्या का प्रकाश और अविद्या का हनन करनेवाले प्रयत्न कर रहे हैं इसलिए इस परमेश्वर के धन्यवाद के योग्य कर्म सब मनुष्यों को जानने चाहिएँ ॥ १५ ॥

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु । इच्छन्तीरुरुचक्षसम् ॥१६

पदार्थ—जैसे (गव्यूतीः) अपने स्थानों को (इच्छन्तीः) जाने की इच्छा करती हुई (गावः) गौ आदि पशुजाति के (न) समान (मे) मेरी (धीतयः) कर्म की वृत्तियाँ (उरुचक्षसम्) बहुत विज्ञान वाले मुझ को (परायन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं वैसे सब कर्त्ताओं को अपने-अपने किये हुए कर्म प्राप्त होते ही हैं ऐसा जानना योग्य है ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को ऐसा निश्चय करना चाहिए कि जैसे गौ आदि पशु अपने-अपने वेग के अनुसार दौड़ते हुए चाहे हुए स्थान को पहुँचकर थक जाते हैं वैसे ही मनुष्य अपनी बुद्धि, बल के अनुसार परमेश्वर, वायु और सूर्य्य आदि पदार्थों के गुणों को जानकर थक जाते हैं। किसी मनुष्य की बुद्धि वा शरीर का वेग ऐसा नहीं हो सकता कि जिसका अन्त न हो सके जैसे पक्षी अपने-अपने बल के अनुसार आकाश को जाते हुए आकाश का पार कोई भी नहीं पाता इसी प्रकार कोई मनुष्य विद्या विषय के अन्त को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता है ॥ १६ ॥

मनुष्यों को यथायोग्य विद्या किस प्रकार प्राप्त होनी चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम् । होतेव क्षदसे प्रियम् ॥१७॥

पदार्थ—(यतः) जिस से हम आचार्य और शिष्य दोनों (होतेव) जैसे यज्ञ कराने वाला विद्वान् (नु) परस्पर (क्षदसे) अविद्या और रोगजन्य दुःखान्धकार विनाश के लिए (आभृतम्) विद्वानों के उपदेश से जो धारण किया जाता है उस यजमान के (प्रियम्) प्रियसम्पादन करने के समान (मधु) मधुर गुण विशिष्ट विज्ञान का (वोचावहै) उपदेश नित्य करें कि उससे (मे) हमारी और तुम्हारी (पुनः) बार-बार विद्यावृद्धि होवे ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे यज्ञ कराने और करनेवाले प्रीति के साथ मिलकर यज्ञ को सिद्ध कर पूर्ण करते हैं वैसे ही गुरु शिष्य मिलकर सब विद्याओं का प्रकाश करें। सब मनुष्यों को इस बात की चाहना निरन्तर रखनी चाहिए कि जिससे हमारी विद्या की वृद्धि प्रतिदिन होती रहे ॥ १७ ॥

फिर भी वे क्या-क्या करें इस विषय का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है—

दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि । एता जुषत मे गिरः ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (अधिक्षमि) जिन व्यवहारों में उत्तम और

निकृष्ट बातों का सहना होता है उनमें ठहर कर (**विश्वदर्शतम्**) जो विद्वानों की ज्ञानदृष्टि से देखने के योग्य परमेश्वर है उसको (**दर्शम्**) वारम्वार देखने (**रथम्**) विमान आदि यानों को (**नु**) भी (**दर्शम्**) पुनः पुनः देखके सिद्ध करने के लिए (**मे**) मेरी (**गिरः**) वाणियों को (**जुषत**) सदा सेवन करो ॥ १८॥

भावार्थ जिससे क्षमा आदि गुणों से युक्त मनुष्यों को यह जानना योग्य है कि प्रश्न और उत्तर के व्यवहार के किये बिना परमेश्वर का जानने और शिल्पविद्या सिद्ध विमान आदि रथों को कभी बनाने को शक्य नहीं और जो उनमें गुण हैं उनके जानने के लिए सदैव प्रयत्न करना चाहिए ॥ १८ ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है --

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय । त्वामवस्युरा चके ॥ १९ ॥

पदार्थ हे (**वरुण**) सब से उत्तम विपश्चित् ! (**अद्य**) आज (**अवस्युः**) अपनी रक्षा वा विज्ञान को चाहता हुआ मैं (**त्वाम्**) आपकी (**आ चके**) अच्छी प्रकार प्रशंसा करता हूँ । आप (**मे**) मेरी की हुई (**हवम्**) ग्रहण करने योग्य स्तुति को (**श्रुधि**) श्रवण कीजिए तथा मुझ को (**मृळय**) विद्यादान से सुख दीजिए ॥ १९ ॥

भावार्थ– जैसे परमात्मा, जो उपासकों द्वारा निश्चय से सत्य भाव और प्रेम के साथ की हुई स्तुतियों को अपने सर्वज्ञपन से यथावत् सुनकर उनके अनुकूल स्तुति करने वालों को सुख देता है वैसे विद्वान् लोग भी धार्मिक मनुष्यों की योग्य प्रशंसा को सुन सुखयुक्त किया करें ॥ १९ ॥

फिर वह परमात्मा कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों मे किया है—

त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि । स यामनि प्रति श्रुधि ॥२०

पदार्थ हे (**मेधिर**) अत्यन्त विज्ञानयुक्त वरुण विद्वन् ! (**त्वम्**) आप, जैसे ईश्वर (**दिवः**) प्रकाशवान् सूर्य आदि (**च**) वा अन्य (**ग्मः**) प्रकाशरहित पृथिवी आदि (**विश्वस्य**) सब लोकों के (**यामनि**) जिस-जिस काल मे जीवों का आना-जाना होता है उस-उस मे प्रकाशित हो रहे है (**सः**) वह हमारी स्तुतियों को सुनकर आनन्द देते है वैसे होकर इस राज्य के मध्य मे (**राजसि**) प्रकाशित हूजिए और हमारी स्तुतियों को (**प्रतिश्रुधि**) सुनिए ॥ २० ॥

भावार्थ –इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे परब्रह्म ने इस सब संसार के दो भेद किये है एक प्रकाश वाला सूर्य आदि और दूसरा प्रकाश रहित पृथिवी आदि लोक, जो इनकी उत्पत्ति वा विनाश का निमित्त कारण काल है उसमे सदा एकसा रहने वाला परमेश्वर सब प्राणियों के संकल्प से उत्पन्न हुई बातों का भी श्रवण करता है इससे कभी अधर्म के अनुष्ठान की कल्पना भी मनुष्यों को नहीं करनी चाहिए वैसे इस सृष्टिक्रम को जानकर मनुष्यों को ठीक ठीक वर्त्तना चाहिए ॥ २० ॥

उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत । अवाधमानि जीवसे ॥२१॥

पदार्थ—हे अविद्यान्धकार के नाश करनेवाले जगदीश्वर ! आप (**नः**) हम लोगो के (**जीवसे**) बहुत जीने के लिए हमारे (**उत्तमम्**) श्रेष्ठ (**मध्यमम्**) मध्यम दुःखरूपी (**पाशम्**) बन्धनों को (**उन्मुमुग्धि**) अच्छे प्रकार छुडाइए तथा (**अधमानि**) जो हमारे दोषरूपी निकृष्ट बन्धन हैं उनका भी (**व्यवचृत**) विनाश कीजिए ॥ २१ ॥

भावार्थ जैसे धार्मिक, परोपकारी विद्वान् होकर ईश्वर की प्रार्थना करते है जगदीश्वर उनके सब दुःख बन्धनों को छुडाकर सुखयुक्त करता है वैसे कर्म हम लोगो को क्या न करने चाहिएँ ॥ २१ ॥

चौबीसवें सूक्त मे कहे हुए प्रजापति आदि अर्थों के बीच जो वरुण शब्द है उसके अर्थ को इस पच्चीसवें सूक्त मे कहने मे इस सूक्त के अर्थ की संगति पहले सूक्त के अर्थ के साथ जाननी चाहिए ॥

यह पहिले अष्टक और दूसरे अध्याय मे उन्नीसवां वर्ग और पहिले मण्डल में छठे अनुवाक मे पच्चीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥ २५ ॥

卐

अथास्य दशर्चस्य षड्विंशस्य सूक्तस्याजीगर्तिः शुनःशेप ऋषिः । अग्निर्देवता । १, ८, ९ आर्ची उष्णिक् छन्दः, ऋषभः स्वरः । २, ६ निचृद् गायत्री, ३ प्रतिष्ठागायत्री, ४, १० गायत्री, ५, ७ विराड्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब छब्बीसवें सूक्त का प्रारम्भ है । उसके पहले मन्त्र मे यज्ञ कराने और करने वालो के गुण प्रकाशित किये हैं—

वसिष्वा हि मियेध्य वस्त्राण्यूर्जां पते । सेमं नो अध्वरं यज ॥ १ ॥

पदार्थ हे (**ऊर्जाम्**) बल पराक्रम और अन्न आदि पदार्थों के (**पते**) पालन करने और कराने वाले तथा (**मियेध्य**) अग्नि द्वारा पदार्थों को फैलाने वाले विद्वन् (**वस्त्राणि**) वस्त्रों को (**वसिष्व**) धारण कर (**सः**) वह तू (**हि**) ही (**नः**) हम लोगो के (**इमम्**) इस प्रत्यक्ष (**अध्वरम्**) तीन प्रकार के यज्ञ को (**यज**) सिद्ध कर ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है । यज्ञ करने वाला विद्वान् हस्तक्रियाओं मे बहुत पदार्थों को सिद्ध करने वाले विद्वानों का स्वीकार और उनका सत्कार कर अनेक कार्य्यों को सिद्ध कर सुख को प्राप्त करे वा करावे । कोई भी मनुष्य उत्तम विद्वान् पुरुषों के सङ्ग किये बिना कुछ भी व्यवहार वा परमार्थरूपी कार्य्य को सिद्ध करने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ १ ॥

फिर वह किस प्रकार का है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है —

नि नो होता वरेण्यः सदा यविष्ठ मन्मभिः ।
अग्ने दिवित्मता वचः ॥ २ ॥

पदार्थ – हे (**यविष्ठ**) अत्यन्त बल वाले (**अग्ने**) यजमान ! जो (**मन्मभिः**) जिनसे पदार्थ जाने जाते है उन पुरुषार्थों के साथ वर्त्तमान (**वरेण्यः**) स्वीकार करने योग्य (**होता**) सुख देने वाला (**नः**) हम लोगो के (**दिवित्मता**) जिनसे अत्यन्त प्रकाश होता है उनसे प्रसिद्ध (**वचः**) वाणी को (**यज**) सिद्ध करता है उसी का (**सदा**) सब काल मे सङ्ग करना चाहिए ॥ २ ॥

भावार्थ इस मन्त्र मे पूर्व मन्त्र से (**यज**) इस पद की अनुवृत्ति आती है । मनुष्यों को योग्य है कि सज्जन मनुष्यों के सङ्ग से सकल कामनाओं की सिद्धि करें इसके बिना कोई भी मनुष्य सुखी रहने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ २ ॥

फिर वह किस प्रकार का है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये । सखा सख्ये वरेण्यः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**पिता**) पालन करनेवाला (**सूनवे**) पुत्र के (**सखा**) मित्र (**सख्ये**) मित्र के और (**आपिः**) सुख देने वाला विद्वान् (**आपये**) उत्तम गुण व्याप्त होने वाले विद्यार्थी के लिए (**आयजति**) अच्छे प्रकार यत्न करता है । वैसे परस्पर प्रीति के साथ कार्यों को सिद्ध कर (**हि**) निश्चय करके (**स्म**) वर्त्तमान मे उपकार के लिए तुम सङ्गत हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अपने लडकों को सुखसम्पादक उन पर कृपा करनेवाला पिता स्वमित्रों को सुख देने वाला मित्र और विद्यार्थियों को विद्या देने वाला विद्वान् अनुकूल वर्तता है वैसे ही सब मनुष्य सब के लिए अच्छे प्रकार निरन्तर यत्न करें ऐसा ईश्वर का उपदेश है ॥ ३ ॥

फिर वे कैसे वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—

आ नो बर्ही रिशादसो वरुणो मित्रो अर्यमा । सीदन्तु मनुषो यथा ॥४

पदार्थ –हे मनुष्यो ! (**यथा**) जैसे (**रिशादसः**) दुष्टों के मारने वाले (**वरुण**) सब विद्याओं मे श्रेष्ठ (**मित्रः**) सब का सुहृद (**अर्यमा**) न्यायकारी (**मनुषः**) सभ्य मनुष्य (**नः**) हम लोगो के (**बर्हिः**) सब सुख के देने वाले आसन मे बैठते है वैसे आप भी बैठिए ॥ ४ ॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे सभ्यतापूर्वक सभाचतुर मनुष्य सभा मे वर्तें वैसे ही सब मनुष्यों को सब दिन वर्तना चाहिए ॥ ४ ॥

फिर वह कैसे वर्त्ते इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—

पूर्व्य होतरस्य नो मन्दस्व सख्यस्य च । इमा उ षु श्रुधी गिरः ॥५॥

पदार्थ - हे (**पूर्व्य**) पूर्व विद्वानों द्वारा बना हुए मित्र (**होतः**) यज्ञ करने वा कराने वाले विद्वन् ! तू (**नः**) हमारे (**अस्य**) इस (**सख्यस्य**) मित्रकर्म की (**मन्दस्व**) इच्छा कर (**उ**) निश्चय है कि हम लोगो को (**इमाः**) ये जो प्रत्यक्ष (**गिरः**) वेदविद्या से सस्कार की हुई वाणी हैं उनको (**सुश्रुधि**) अच्छे प्रकार सुन और सुनाया कर ॥ ५ ॥

भावार्थ मनुष्यों को उचित है कि सब मनुष्यों मे मित्रता रखकर उत्तम शिक्षा और विद्या को पढ-सुन और विचारके विद्वान् होवें ॥ ५ ॥

यह बीसवां वर्ग पूरा हुआ ॥

फिर यज्ञ आदि करने-कराने वाले हम लोगों को क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है —

यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे । त्वे इद्धूयते हविः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जैसे हम लोग (**यत्**) जिससे ये (**शश्वता**) अनादि (**तना**) विस्तारयुक्त कारण मे (**इत्**) ही उत्पन्न हैं । इससे उन (**देवंदेवम्**) विद्वान् विद्वान् और सब पृथिवी आदि दिव्यगुण वाले पदार्थ-पदार्थ को (**चित्**) भी (**यजामहे**) सङ्गत अर्थात् सिद्ध करते है (**त्वे**) उसमे (**हि**) ही (**हविः**) हवन करने योग्य वस्तु (**हूयते**) छोडते हैं वैसे तुम भी किया करो ॥६॥

भावार्थ —यहाँ वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । इस संसार मे जितने प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष पदार्थ है वे सब अनादि अति विस्तार वाले कारण से उत्पन्न हैं ऐसा जानना चाहिए ॥ ६ ॥

फिर हम लोगों को परस्पर किस प्रकार वर्तना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—

प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः ।
प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥ ७ ॥

पदार्थ – हे मनुष्यो ! जैसे (**स्वग्नयः**) जिन्होंने अग्नि को सुखकारक किया

हैं वे हम लोग (प्रियाः) राजपुरुष को प्रिय हैं जैसे (होता) यज्ञ का करने-कराने (मन्द्रः) स्तुति के योग्य धर्मात्मा (वरेण्यः) स्वीकार करने योग्य विद्वान् (विश्पतिः) प्रजा का स्वामी सभाध्यक्ष (नः) हम को प्रिय है वैसे अन्य मनुष्य भी हों ॥ ७ ॥

भावार्थ —जैसे हम लोग सब के साथ मित्रभाव से वर्त्तते हैं, और ये सब लोग हम लोगों के साथ मित्रभाव और प्रीति से वर्त्तते हैं, वैसे आप लोग भी वर्तें ॥ ७ ॥

फिर वे कैसे वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

स्वग्नयो हि वार्यं देवासो दधिरे च नः । स्वग्नयो मनामहे ॥ ८ ॥

पदार्थ —जैसे (स्वग्नय.) उत्तम अग्नियुक्त (देवासः) दिव्यगुण वाले विद्वान् (च) वा पृथिवी आदि पदार्थ (नः) हम लोगों के लिए (वार्यम्) स्वीकार करने योग्य पदार्थों को (दधिरे) धारण करते हैं वैसे हम लोग (स्वग्नयः) अग्नि के उत्तम अनुष्ठान युक्त होकर इनसे विद्यासमूह को (मनामहे) जानते हैं वैसे तुम भी जानो ॥ ८ ॥

भावार्थ — इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि ईश्वर ने इस ससार मे जितने पदार्थ उत्पन्न किये हैं उनके जानने के लिए विद्याओं का सम्पादन करके कार्यों की सिद्धि करें ॥ ८ ॥

फिर किसलिए उस ईश्वर की प्रार्थना करना और मनुष्यों को परस्पर कैसे वर्त्तना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है —

अथा न उभयेषाममृत मर्त्यानाम् । मिथः सन्तु प्रशस्तयः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (अमृत) अविनाशिस्वरूप जगदीश्वर ! आप की कृपा से जैसे उत्तम गुण, कर्मों के ग्रहण से (अथ) अनन्तर (नः) हम लोग जोकि विद्वान् वा मूर्ख हैं (उभयेषाम्) उन दोनों प्रकार के (मर्त्यानाम्) मनुष्यों की (मिथः) परस्पर ससार मे (प्रशस्तय.) प्रशसा (सन्तु) हो वैसे सब मनुष्यों की हों ऐसी प्रार्थना करते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—जब तक मनुष्य राग वा द्वेष को छोडकर परस्पर उपकार के लिए विद्या शिक्षा और पुरुषार्थ से उत्तम-उत्तम कर्म नहीं करते तब तक वे सुखों के सम्पादन करने मे समर्थ नहीं हो सकते । इसलिए सब को योग्य है कि परमेश्वर की आज्ञा मे वर्त्तमान होकर सब का कल्याण करें ॥ ९ ॥

फिर वे कैसे वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है —

विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः । चनो धाः सहसो यहो ॥१०॥

पदार्थ— हे (यहो) शिल्पकर्म मे चतुर के अपत्य, कार्य्यरूप अग्नि के उत्पन्न करनेवाले (अग्ने) विद्वन् ! जैसे आप सब सुखों के लिए (सहस) अपने बल स्वरूप से (विश्वेभिः) सब (अग्निभिः) बिजुली, सूर्य्य और प्रसिद्ध कार्य्यरूप अग्नियों से (इमम्) इस प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष (यज्ञम्) संसार के व्यवहाररूप यज्ञ और (इदम्) हम लोगों से कहा हुआ (वचः) विद्यायुक्त प्रशसा का वाक्य (चन) और खाने, स्वाद लेने, चाटने और चूसने योग्य पदार्थों को (धा) धारण कर चुका हो वैसे तू भी सदा धारण कर ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि अपने सन्तानों को निम्नलिखित ज्ञान-कार्य्य मे युक्त करें जो कारणरूप नित्य अग्नि है उससे ईश्वर की रचना मे बिजुली आदि कार्यरूप पदार्थ सिद्ध होते हैं फिर उनसे जो सब जीवों के अन्न को पचाने वाले अग्नि के समान अनेक पदार्थ उत्पन्न होते हैं उन सब अग्नियों को कारणरूप अग्नि ही धारण करता है । जितने अग्नि के कार्य हैं वे वायु के निमित्त से ही प्रसिद्ध होते हैं उन सब पदार्थों को ससारी लोग धारण करते हैं अग्नि और वायु के बिना कभी किसी पदार्थ का धारण नहीं हो सकता, इत्यादि ॥ १० ॥

पहले सूक्त मे वरुण के अर्थ के अनुषङ्गी अर्थात् सहायक अग्नि शब्द के इस सूक्त में प्रतिपादन करने से पिछले सूक्त के अर्थ के साथ इस छब्बीसवें सूक्त के अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह पहले अष्टक के दूसरे अध्याय का इक्कीसवाँ वर्ग तथा पहले मण्डल के छठे अनुवाक का छब्बीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥ २६ ॥

卐

अथ त्रयोदशर्चस्य सप्तविंशस्य सूक्तस्याजीगर्तिः शुनःशेप ऋषिः । १-१२ अग्निः विश्वेदेवा देवता । १-१२ गायत्री, १३ त्रिष्टुप् छन्दः ।
१-१२ षड्जः, १३ धैवतः स्वरश्च ॥

अब सत्ताईसवें सूक्त का प्रारम्भ है । उसके पहले मन्त्र में अग्नि का प्रकाश किया है—

अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।
सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥ १ ॥

पदार्थ—हम लोग (नमोभिः) नमस्कार, स्तुति और अन्न आदि पदार्थों के साथ (वारवन्तम्) उत्तम केशवाले (अश्वम्) वेगवान् घोड़े के (न) समान (अध्वराणाम्) राज्य के पालन, अग्निहोत्र से लेकर शिल्प पर्य्यन्त यज्ञों मे (सम्राजन्तम्) प्रकाशयुक्त (त्वा) आप विद्वान् को (वन्दध्यै) स्तुति करने को प्रवृत्त हुए सेवा करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् स्वविद्या के प्रकाश आदि गुणों से अपने राज्य मे अविद्या अन्धकार को निवारण कर प्रकाशित होते हैं वैसे परमेश्वर सर्वज्ञपन आदि से सर्वत्र प्रकाशमान है ॥ १ ॥

अब अगले मन्त्र में सन्तान के गुण प्रकाशित किये हैं—

स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः ।
मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥ २ ॥

पदार्थ—जो (सूनु) धर्मात्मा पुत्र (शवसा) अपने पुरुषार्थ, बल आदि गुण से (पृथुप्रगामा) अत्यन्त विस्तारयुक्त विमानादि रथों से उत्तम गमन करने तथा (मीढ्वान्) योग्य सुख का सींचने वाला है वह (नः) हम लोगों की (घ) ही उत्तम क्रिया से धर्म और शिल्प कार्यों को करने वाला (बभूयात्) हो ।

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्या सुशिक्षा से धार्म्मिक सुशील पुत्र अनेक अनुकूल कामों को करके पिता-माता आदि के सुखों को नित्य सिद्ध करता है वैसे ही बहुत गुण वाला यह भौतिक अग्नि विद्या के अनुकूल रीति से सप्रयुक्त किया हुआ हम लोगों के सब सुखों को सिद्ध करता है ॥२॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः । पाहि सदमिद्विश्वायुः ॥३॥

पदार्थ—(विश्वायु.) जिससे समस्त आयु सुख से प्राप्त होती है (स) वह जगदीश्वर वा भौतिक अग्नि (अघायो) जो पाप करना चाहते हैं उन (मर्त्यात्) शत्रुजनों से (दूरात्) दूर वा (आसात्) समीप मे (नः) हम लोगों की वा हम लोगों के (सद) सब सुख रहने वाले शिल्पव्यवहार वा देहादिकों की (नि पाहि) निरन्तर रक्षा करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है । मनुष्यों से उपासना किया हुआ ईश्वर वा सम्यक् सेवित विद्वान् युद्ध मे शत्रुओं से रक्षा करने वाला वा रक्षा का हेतु होकर शरीर आदि वा विमानादि की रक्षा करके हम लोगों के लिए सब आयु देता है ॥ ३ ॥

अब अगले मन्त्र में अग्नि शब्द से ईश्वर का प्रकाश किया है—

इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् । अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥४॥

पदार्थ— हे (अग्ने) अनन्त विद्यामय जगदीश्वर ! (त्वम्) सब विद्याओं का उपदेश करने और सब मङ्गलों के देने वाले आप जैसे सृष्टि के आदि में (देवेषु) पुण्यात्मा अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा नामक मनुष्यों के आत्माओं मे (नव्यांसम्) नवीन-नवीन बोध कराने वाला (गायत्रम्) गायत्री आदि छन्दों से युक्त (सुसनिम्) जिस मे सब प्राणी सुखों का सेवन करते हैं उन चारों वेदों का (प्रवोच.) उपदेश किया और अगले कल्प-कल्पादि में फिर भी करोगे वैसे उसको (उ) विविध प्रकार से (अस्माकम्) हमारे आत्माओं मे (सु) अच्छे प्रकार कीजिए ॥ ४ ॥

भावार्थ —हे जगदीश्वर ! आप ने जैसे ब्रह्मा आदि महर्षि धार्मिक विद्वानों के आत्माओं में वेद द्वारा बोध का प्रकाश कर उनको उत्तम सुख दिया वैसे ही हम लोगों के आत्माओं मे बोध प्रकाशित कीजिए जिससे हम लोग विद्वान् होकर उत्तम-उत्तम धर्मकार्यों को सदा करते रहें ॥ ४ ॥

फिर मनुष्यों के प्रति विद्वानों को कैसे वर्त्तना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु । शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वन् मनुष्य ! (परमेषु) उत्तम (मध्यमेषु) मध्यम आनन्द के देने वाले वा (वाजेषु) सुख प्राप्तिमय युद्धों वा उत्तम अन्नादि मे (अन्तमस्य) जिस प्रत्यक्ष सुख मिलने वाले सग्राम के बीच मे (नः) हम लोगों को (आशिक्ष) सब विद्याओं की शिक्षा कीजिए इसी प्रकार हम लोगों के (वस्वः) धन आदि उत्तम-उत्तम पदार्थों को (आभज) अच्छे प्रकार स्वीकार कीजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस प्रकार जिन धार्मिक पुरुषार्थी पुरुषों से सेवन किया हुआ विद्वान् सब विद्याओं को प्राप्त कराके उनको सुखयुक्त करे तथा इस जगत् मे उत्तम, मध्यम और निकृष्ट भेद से तीन प्रकार के भोग, लोक और मनुष्य हैं इन को यथाबुद्धि विद्या देता रहे ॥ ५ ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ ।
सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥ ६ ॥

पदार्थ—जैसे हे (चित्रभानो) विविधविद्यायुक्त विद्वन् मनुष्य ! आप (सिन्धो) समुद्र की (ऊर्मा) तरंगों मे जल के बिन्दुकणों के समान सब पदार्थविद्या के (विभक्ता) अलग-अलग करने वाले (असि) हैं और (दाशुषे) विद्या का ग्रहण वा अनुष्ठान करनेवाले मनुष्य के लिए (उपाके) समीप, सत्य बोध उपदेश को (सद्य) शीघ्र (आक्षरसि) अच्छे प्रकार वर्षाते हो वैसे भाग्यशाली विद्वान् आप हम सब लोगों के सत्कार के योग्य हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे समुद्र के जलकण अलग हुए आकाश को प्राप्त होकर वहाँ इकट्ठे होकर वर्षते है वैसे ही विद्वान् अपनी विद्या से सब पदार्थों का विभाग करके उनका बार-बार मनुष्यो के आत्माओं में प्रकाश किया करते हैं ॥ ६ ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) सेनाध्यक्ष ! आप (**यम्**) जिस युद्ध करनेवाले (**मर्त्यम्**) मनुष्य को (**पृत्सु**) सेनाओ के बीच (**अवा**) रक्षा करें (**यम्**) जिस धार्मिक शूरवीर को (**वाजेषु**) सग्रामो में (**जुनाः**) प्रेरें जो इस (**शश्वती·**) अनादि काल से वर्त्तमान (**इषः**) प्रजा को निरन्तर रक्षा करें इस कारण से (**सः**) सो आप हमारे (**यन्ता**) नियमो में चलानेवाले नायक बनिए इस प्रकार हम प्रतिज्ञा करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे जगदीश्वर अनादि काल से वर्त्तमान प्रजा की रक्षा, रचना और व्यवस्था करने वाला है वैसे जो मनुष्य इस सर्वव्यापी सब प्रकार की रक्षा करनेवाले परमेश्वर की उपासना कर यथोक्त काम करता है उसको कभी पीडा वा पराजय नहीं होता ॥ ७ ॥

नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् । वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥८॥

पदार्थ—हे (**सहन्त्य**) सहनशील विद्वन् ! (**नकि**) जो धर्म की मर्यादा उल्लंघन न करने और (**पर्येता**) सब पर पूर्ण कृपा करने वाले आप (**अस्य**) जिस (**कयस्य**) युद्ध करने और शत्रुओ को जीतने वाले शूरवीर पुरुष का (**श्रवाय्य**) श्रवण करने योग्य (**वाज**) युद्ध करना (**अस्ति**) होता है उसको सब उत्तम पदार्थ सदा दिया कीजिए इस प्रकार आप का नियोग हम लोग करते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे कोई भी जीव अनन्त शुभ गुणयुक्त परिणाम सहित सब से उत्तम परमेश्वर के गुणो की न्यूनता वा उसका परिणाम करने को योग्य नहीं हो सकता जिसका सब ज्ञान निर्भ्रम है वैसे जो मनुष्य वर्त्तता है वही सब राजकार्यों का स्वामी नियत करना चाहिए ॥ ८ ॥

स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता । विप्रेभिरस्तु सनिता ॥ ९ ॥

पदार्थ—जो (**विश्वचर्षणि**) जिसके सब मनुष्य रक्षा के योग्य (**तरुता**) शत्रु निमित्तक दुःखो के पार पहुँचाने वाला (**सनिता**) ज्ञान और सुख का विभाग करके देनेहारा सेनापति हमारी सेना मे (**विप्रेभि**) बुद्धि चातुर्ययुक्त पुरुष (**अर्वद्भि**) घोडे आदि से सहित हो हमको (**वाजम्**) युद्ध मे विजय की प्राप्ति और शत्रुओ का पराजय करनेहारा सेनापति है वही हमारे बीच मे सेना स्वामी (**अस्तु**) हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्यो को सब दुःखरूपी सागर से पार करने और युद्ध मे विजय देने वाला विद्वान् है वही अच्छे विद्वानो के समागम से सेना का अधिपति होने योग्य है ॥ ९ ॥

जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय । स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥१०॥

पदार्थ—हे (**जराबोध**) गुण, कीर्त्तन से प्रकाशित होनेवाले सेनापति ! आप जिससे (**विशेविशे**) प्राणी-प्राणी के सुख के लिए (**यज्ञियाय**) यज्ञ कर्म के योग्य (**रुद्राय**) दुष्टो को रुलाने वाले के लिए सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाले (**दृशीकम्**) देखने योग्य (**स्तोमम्**) स्तुतिसमूह, गुण, कीर्त्तन को (**विविड्ढि**) व्याप्त करते हो (**तत्**) इससे माननीय हो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे पूर्णोपमालङ्कार है । युद्धविद्या के जानने वाले के गुणों को श्रवण किये बिना इस का ज्ञान नहीं होता और जो प्रजा के सुख के लिए अति तीक्ष्ण स्वभाव वाले शत्रुओ के बल के नाश करनेहारे भृत्यो को अच्छी प्रकार शिक्षित करता है वही प्रजापालन मे योग्य होता है ॥ १० ॥

अब अगले मन्त्र में भौतिक अग्नि के गुण प्रकाशित किये हैं—

स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः । धिये वाजाय हिन्वतु ॥११॥

पदार्थ—मनुष्यो को योग्य है कि जो (**धूमकेतु**) जिसका धूम ध्वजा के समान (**पुरुश्चन्द्र**) बहुतो को आनन्द देने (**अनिमान**) जिसका निमान अर्थात् परिमाण नहीं है (**महान्**) अत्यन्त गुणयुक्त भौतिक अग्नि है (**स**) वह (**धिये**) उत्तम कर्म वा (**वाजाय**) विज्ञानरूप वेग के लिए (**न**) हम लोगो को (**हिन्वतु**) तृप्त करता है ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो सब प्रकार श्रेष्ठ किसी के छिन्न-भिन्न करने मे नही आता, सब का आधार, सब आनन्द का देने वाला वा विज्ञानसमूह परमेश्वर है और जिसने महागुण युक्त भौतिक अग्नि रचा है वही उत्तम कर्म वा शुद्ध विज्ञान में हम लोगो को सदा प्रेरणा करे ॥ ११ ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः । उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ॥१२॥

पदार्थ—हे विद्वन् मनुष्य ! तुम जो (**दैव्य**) देवों मे कुशल (**केतु**) रोग को दूर करने मे हेतु (**विश्पति**) प्रजा को पालने वाला (**बृहद्भानु**) बहुत प्रकाशयुक्त (**रेवान् इव**) अत्यन्त धन वाले के समान (**अग्निः**) सब को सुख प्राप्त करनेवाला अग्नि (**उक्थैः**) वेदोक्त स्तोत्रो के साथ सुना जाता है उसको (**शृणोतु**) सुन और (**नः**) हम लोगो के लिए सुनाइए ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे पूर्ण धन वाला विद्वान् मनुष्य धन भोगने योग्य पदार्थों से सब मनुष्यों को सुख संयुक्त करता और सब की वार्त्ताओं को सुनता है वैसे ही जगदीश्वर सबकी की हुई स्तुति को सुनकर उनको सुखसंयुक्त करता है ॥ १२ ॥

अब अगले मन्त्र में सब का अवश्य सत्कार करना है इस बात का प्रकाश किया है—

नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः ।
यजाम देवान् यदि शक्नवाम मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः ॥१३॥

पदार्थ—हे (**देवा**) सब विद्याओ को प्रकाशित करने वाले विद्वानो ! हम लोग (**महद्भ्य**) पूर्ण विद्यायुक्त विद्वानो के लिए (**नमः**) सत्कार, अन्न (**यजाम**) करें और दें (**अर्भकेभ्य**) थोडे गुणवाले विद्यार्थियो के (**नमः**) तृप्ति (**युवभ्यः**) युवावस्था से जो बल वाले विद्वान् हैं उनके लिए (**नमः**) सत्कार (**आशिनेभ्यः**) समस्त विद्याओ मे व्याप्त जो बुड्ढे विद्वान् हैं उन के लिए (**नमः**) सेवापूर्वक देते हुए (**यदि**) जो सामर्थ्य के अनुकूल विचार मे (**शक्नवाम**) समर्थ हो तो (**ज्यायसः**) विद्या आदि उत्तम गुणो से अति प्रशसनीय (**देवान्**) विद्वानों से (**यजाम**) अच्छे प्रकार विद्या ग्रहण करें इसी प्रकार हम सब (**शंसम्**) इन की स्तुति-प्रशंसा को (**मावृक्षि**) कभी न काटें ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे ईश्वर का यह उपदेश है कि मनुष्यो को चाहिए अभिमान छोडकर अन्नादि से सब उत्तम जनो का सत्कार करें अर्थात् जितना धन पदार्थ आदि उत्तम बातों से अपना सामर्थ्य हो उतना उनका सङ्ग करके विद्या प्राप्त कर किन्तु उनकी कभी निन्दा न करें ॥ १३ ॥

पिछले सूक्त मे अग्नि का वर्णन है उसको अच्छे प्रकार जानने वाले विद्वान् ही होते हैं उनका वहाँ वर्णन करने से छब्बीसवें सूक्तार्थ के साथ इस सत्ताईसवें सूक्त की संगति जाननी चाहिए ।

यह पहले अष्टक के दूसरे अध्याय का चौबीसवाँ वर्ग और पहिले मण्डल के छठे अनुवाक का सत्ताईसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥ २७ ॥

卐

अथ नवर्चस्याष्टाविंशस्य सूक्तस्याजीगर्त्तिः शुनःशेप ऋषिः । इन्द्रयज्ञसोमा देवता । १—६ अनुष्टुप्, ७—९ गायत्री च छन्दसी । १—६ गान्धारः, ७—९ षड्जश्च स्वरौ ॥

अब अट्ठाईसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके पहले मन्त्र में कर्म के अनुष्ठान करने वाले जीव को जो-जो करना चाहिए इस विषय का उपदेश किया है—

यत्र ग्रावा पृथुबुध्न ऊर्ध्वो भवति सोतवे ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्ययुक्त कर्म के करनेवाले मनुष्य ! तुम (**यत्र**) जिन यज्ञ आदि व्यवहारो मे (**पृथुबुध्नः**) बडी जड का (**ऊर्ध्वः**) जो भूमि से कुछ ऊँचे रहने वाले (**ग्रावा**) पत्थर और मुसल को (**सोतवे**) अन्न आदि कूटने के लिए (**भवति**) युक्त करते हो उन मे (**उलूखलसुतानाम्**) उखली-मूसल के कूटे हुए पदार्थों को ग्रहण करके उनकी सदा उत्तमता के साथ रक्षा करो (**उ**) और अच्छे विचारो से युक्ति के साथ पदार्थ सिद्ध होने के लिए (**जल्गुलः**) इसको नित्य ही चलाया करो ॥ १ ॥

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम यव आदि ओषधियो के असार निकालने और सार लेने के लिए भारी से पत्थर मे जैसा चाहिए वैसा गढ्ढा करके उसको भूमि मे गाडो और वह भूमि से कुछ ऊँचा रहे जिससे कि नाज के सार वा असार का निकालना अच्छे प्रकार बने उस मे यव आदि अन्न स्थापन करके मूसल से उसको कूटो ॥ १ ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यत्र द्वाविव जघनाधिषवण्या कृता ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्रजल्गुलः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) भीतर, बाहर के शरीर साधनो से ऐश्वर्य वाले विद्वन् मनुष्य ! तुम (**द्वाविव जघना**) दो जंघो के समान (**यत्र**) जिस व्यवहार मे (**अधिषवण्या**) अच्छे प्रकार वा असार अलग-अलग करने के पात्र अर्थात् शिलबट्टे होते हैं उनको (**कृता**) अच्छे प्रकार सिद्ध करके (**उलूखलसुतानाम्**) शिलबट्टे से शुद्ध किये हुए पदार्थों के सकाश से सार को (**अव**) प्राप्त हो (**उ**) और उत्तम विचार से (**इत्**) उसी को (**जल्गुलः**) बार २ पदार्थों पर चला ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । मनुष्यो को योग्य है कि जैसे दोनों जाँघो के सहाय से मार्ग का चलना-चलाना सिद्ध होता है वैसे ही एक तो पत्थर की शिला नीचे रक्खें और दूसरा ऊपर से पीसने के लिए बट्टा जिसको हाथ में लेकर पदार्थ पीसे जाएं इन से ओषधि आदि पदार्थों को पीसकर यथावत् भक्ष्य आदि पदार्थों को सिद्ध करके खावें यह भी दूसरा साधन उखली मूसल के समान बनाना चाहिए ॥२॥

अब अगले मन्त्र में वह विद्या कैसे ग्रहण करनी चाहिए इस विषय का उपदेश किया है—

यत्र नार्यपच्यवमुपच्यवं च शिक्षते ।

उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) इन्द्रियों के स्वामी जीव ! तू (यत्र) जिस कर्म में घर के बीच (नारी) स्त्रियाँ काम करने वाली अपनी सङ्गि स्त्रियों के लिए (उलूखल-सुतानाम्) उक्त उलूखलों से सिद्ध की हुई विद्या को (अपच्यवम्, उपच्यवम्) (च) अर्थात् जैसे डालना-निकालनादि क्रिया करनी होती है वैसे उस विद्या को (शिक्षते) शिक्षा से ग्रहण करती और कराती हैं उसको (उ) अनेक तर्कों के साथ (जल्गुलः) सुनो और इस विद्या का उपदेश करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—यह उलूखलविद्या जो भोजनादि के पदार्थ सिद्ध करने वाली है गृहसम्बन्धि कार्य करने वाली होने से यह विद्या स्त्रियों को नित्य ग्रहण करनी और अन्य स्त्रियों को सिखानी भी चाहिए जहाँ पाक सिद्ध किये जाते हों वहाँ ये सब उलूखल आदि साधन स्थापन करने चाहिएँ क्योंकि इन के बिना कूटना, पीसना आदि क्रिया सिद्ध नहीं हो सकती ॥ ३ ॥

इस के सम्बन्धी और भी साधन का अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

यत्र मन्थां विबध्नते रश्मीन्यमितवा इव ।

उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सुख की इच्छा करने करने वाले विद्वन् मनुष्य ! तू (रश्मीन्, इव, यमितवै) जैसे सूर्य्य अपनी किरणों को वा सारथि जैसे घोड़े आदि पशुओं की रस्सियों को (यत्र) जिस क्रिया से सिद्ध होने वाले व्यवहार में (मन्थाम्) घृत आदि पदार्थों के निकालने के लिए मन्थनियो को (विबध्नते) अच्छे प्रकार बाँधते हैं वहाँ (उलूखलसुतानाम्) उलूखल से सिद्ध हुए पदार्थों को (अव) वैसे ही सिद्ध करने की इच्छा कर (उ) और (इत्) उसी विद्या को (जल्गुलः) युक्ति के साथ उपदेश कर ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। ईश्वर उपदेश करता है कि हे विद्वानो ! जैसे सूर्य्य अपनी किरणो के साथ भूमि को आकर्षण शक्ति से बाँधता और जैसे सारथि रश्मियों से घोडो को नियम मे रखता है वैसे ही मथने, बाँधने और चलाने की विद्या से दूध आदि वा ओषधि आदि पदार्थों से मक्खन आदि पदार्थों को युक्ति के साथ सिद्ध करो ॥ ४ ॥

उक्त उलूखल से क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे ।

इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (उलूखलक) उलूखल से व्यवहार लेने वाले विद्वन् ! तू (यत्) जिस कारण (हि) प्रसिद्ध (गृहे गृहे) घर-घर मे (युज्यसे) उक्त विद्या का व्यवहार बर्त्तता है (इह) इस ससार गृह वा स्थान मे (जयताम्) शत्रुओ को जीतने वालो के (दुन्दुभिः) नगारो के (इव) समान (द्युमत्तमम्) जिस मे अच्छे शब्द निकलें वैसे उलूखल के व्यवहार को (वद) इस विद्या का उपदेश करे ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। सब घरो मे उलूखल और मूसल का स्थापन करना चाहिए जैसे शत्रुओ के जीतने वाले शूरवीर मनुष्य अपने नगारो को बजाकर युद्ध करते हैं वैसे ही रस चाहने वाले मनुष्यों को उलूखल मे यव आदि ओषधियों को डालकर मुसल से कूटकर बूसा आदि दूरकरके सार-सार लेना चाहिए ॥ ५ ॥

फिर वह किसलिए ग्रहण करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उत स्म ते वनस्पते वातो वि वात्यग्रमित् ।

अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखल ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (वातः) वायु (इत्) ही (वनस्पते) वृक्ष आदि पदार्थों के (अग्रम्) ऊपरले भाग को (उत) भी (विवाति) अच्छे प्रकार पहुँचाता (स्म) पहुँचा वा पहुँचेगा (अथो) इसके अनन्तर (इन्द्राय) प्राणियो के लिए (सोमम्) सब ओषधियों के सार को (पातवे) पान करने को सिद्ध करता है वैसे (उलूखल) ऊखरी मे यव आदि ओषधियो के समुदाय के सार को (सुनु) सिद्ध कर ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जब पवन सब वनस्पतियो, ओषधियों को अपने वेग से स्पर्श कर बढ़ाता है तभी प्राणी उनको उलूखल में स्थापन करके उनका सार ले सकते और रस भी पीते हैं इस वायु के बिना किसी पदार्थ की वृद्धि वा पुष्टि सम्भव नहीं हो सकती ॥ ६ ॥

फिर मूसल और उलूखल कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आयजी वाजसातमा ता ह्युच्चा विजर्भृतः । हरी इवान्धांसि बप्सता ॥ ७ ॥

पदार्थ—(आयजी) जो अच्छे प्रकार पदार्थों को प्राप्त होने वाले (वाजसातमा) संग्रामों को जीतते हैं (ता) वे स्त्री-पुरुष (अन्धांसि) अन्नों को (बप्सता) खाते हुए (हरी) घोड़ों के (इव) समान उलूखल आदि से (उच्चा) जो अति उत्तम काम हैं उनको (विजर्भृतः) अनेक प्रकार से सिद्ध कर धारण करते रहें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे खाने वाले घोड़े रथ आदि को वहते हैं वैसे ही मूसल और ऊखरी से पदार्थों को अलग-अलग करने आदि अनेक कार्यों को सिद्ध करते हैं ॥ ७ ॥

फिर वे कैसे करने चाहिएँ इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ता नो अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः सोतृभिः ।

इन्द्राय मधुमत्सुतम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—जो (सोतृभिः) रस खींचने मे चतुर (ऋष्वेभिः) बड़े विद्वानों ने (ऋष्वौ) अति स्थूल (वनस्पती) काठ के ऊखली मूसल सिद्ध किये हो जो (नः) हमारे (इन्द्राय) ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाले व्यवहार के लिए (अद्य) आज (मधुमत्) मधुर आदि प्रशसनीय गुण वाले पदार्थों को (सुतम्) सिद्ध करने के हेतु होते हो (ता) वे सब मनुष्यो को साधने योग्य हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे पत्थर के मूसल और ऊखरी होते हैं वैसे ही काष्ठ, लोहा, पीतल, चाँदी, सोना तथा औरो के भी किये जाते हैं, उन उत्तम ऊखल मूसलो से मनुष्य औषध आदि पदार्थों के अभिषव अर्थात् रस आदि खींचने के व्यवहार करें ॥ ८ ॥

फिर उनसे क्या-क्या सिद्ध करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उच्छिष्टं चम्वोर्भर सोमं पवित्र आ सृज । नि धेहि गोरधि त्वचि ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! तुम (चम्वोः) पैदल और सवारो की सेनाओ के समान (शिष्टम्) शिक्षा करने योग्य (सोमम्) सर्व रोगविनाशक बलपुष्टि और बुद्धि को बढ़ाने वाले उत्तम ओषधि के रस को (उद् भर) उत्कृष्टता से धारण कर उससे दो सेनाओं को (पवित्रे) उत्तम (आसृज) कीजिए (गो) पृथिवी के (अधि) ऊपर अर्थात् (त्वचि) उस की पीठ पर उन सेनाओ को (निधेहि) स्थापन करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—राजपुरुषो को चाहिए कि दो प्रकार की सेना रखें अर्थात् एक तो सवारो की दूसरी पैदलों की। उनके लिए उत्तम रस और शस्त्र आदि सामग्री इकट्ठी करें अच्छी शिक्षा और ओषधि देकर शुद्ध बलयुक्त और नीरोग कर पृथिवी पर एक चक्र राज्य नित्य करें ॥ ९ ॥

सत्ताईसवें सूक्त से अग्नि और विद्वान् जिस-जिस गुण को कहे हैं मूसल और ऊखरी आदि साधनों को ग्रहण कर ओषध्यादि पदार्थों से ससार के पदार्थों से अनेक प्रकार के उत्तम-उत्तम पदार्थ उत्पन्न करें इस अर्थ का इस सूक्त में सम्पादन करने से सत्ताईसवें सूक्त के कहे हुए अर्थ के साथ अट्ठाईसवें सूक्त की सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥ ९ ॥

यह पहिले अष्टक के दूसरे अध्याय का २६वां वर्ग और पहले मण्डल के छठे अनुवाक का २८वां सूक्त समाप्त हुआ ।

卐

अथ सप्तर्चस्यैकोनत्रिंशस्य सूक्तस्याजीगर्तिः शुनःशेप ऋषिः । इन्द्रो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब उनतीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके पहले मन्त्र में इन्द्र शब्द से न्यायाधीश के गुणों का प्रकाश किया है—

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (सोमपाः) उत्तम पदार्थों की रक्षा करने वाले (तुवीमघ) अनेक प्रकार के प्रशंसनीय धनयुक्त (सत्य) अविनाशि स्वरूप (इन्द्र) उत्तम ऐश्वर्य-प्रापक न्यायाधीश ! आप (यच्चित्) जो कभी हम लोग (अनाशस्ताइव) अप्रशसनीय गुण सामर्थ्य वालों के समान (स्मसि) हों (तु) तो (नः) हम लोगों को (सहस्रेषु) असंख्यात (शुभ्रिषु) अच्छे सुख देने वाले (गोषु) पृथिवी, इन्द्रियाँ वा गो-बैल (अश्वेषु) घोड़े आदि पशुओं मे (हि) ही (आशंसय) प्रशसा वाले कीजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। जैसे आलस्य के कारण मनुष्य अश्रेष्ठ अर्थात् कीर्ति रहित होते हैं वैसे हम लोग भी जो कभी हो तो यह न्यायाधीश हम लोगों को प्रशंसनीय पुरुषार्थ और गुणयुक्त करे जिस से हम लोग पृथिवी आदि राज्य और बहुत उत्तम-उत्तम हाथी, घोड़े, गौ, बैल आदि पशुओ को प्राप्त होकर उनका पालन वा उनकी वृद्धि करके उन के उपकार से प्रशंसा वाले हों ॥ १ ॥

फिर वह विभूतियुक्त सभाध्यक्ष कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस्तव दंसना ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (शिप्रिन्) प्राप्त होने योग्य प्रशंसनीय ऐहिक वा पारमार्थिक

सुखों को देनेहारे (**शचीव:**) बहुविध प्रज्ञा वा कर्मयुक्त (**वाजानाम्**) बड़े-बड़े युद्धों के (**पते**) पालन करने और (**तुवीमघ**) अनेक प्रकार के प्रशसनीय विद्याधन युक्त (**इन्द्र**) परमैश्वर्य सहित सभाध्यक्ष ! जो (**तव**) आप की (**दसना**) वेद-विद्यायुक्त वाणी सहित क्रिया है उससे आप (**सहस्रेषु**) हजारों (**शुभ्रिषु**) शोभन विमान आदि रथ वा उनके उत्तम साधन (**गोषु**) सत्य भाषण और शास्त्र की शिक्षा सहित वाक् आदि इन्द्रियाँ (**अश्वेषु**) तथा वेग आदि गुण वाले अग्नि आदि पदार्थों से युक्त घोड़े आदि व्यवहारों मे (**न:**) हम लोगो को (**आशसय**) अच्छे गुणयुक्त कीजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को इस प्रकार जगदीश्वर की प्रार्थना करनी चाहिए कि हे भगवन् ! कृपा करके जैसे न्यायाधीश अत्युत्तम राज्य आदि को प्राप्त कराता है वैसे हम लोगो को पृथिवी के राज्य, सत्य बोलने और शिल्पविद्या आदि व्यवहारो की सिद्धि करने मे बुद्धिमान् नित्य कीजिए ॥ २ ॥

फिर वह क्या-क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (**तुविमघ**) अनेक प्रकार के धनयुक्त (**इन्द्र**) अविद्यारूपी निद्रा और दोषो को दूर करने वाले विद्वन् ! जो-जो (**मिथूदृशा**) विषयासक्ति अर्थात् खोटे काम वा प्रमाद अच्छे कामो के विनाश को दिखाने वाले या (**अबुध्यमाने**) बो निवारक शरीर और मन (**सस्ताम्**) शयन और पुरुषार्थ का नाश करते हैं उन को आप (**निष्वापय**) अच्छे प्रकार निवारण कर दीजिए (**तु**) फिर (**सहस्रेषु**) हजारहा (**शुभ्रिषु**) प्रशसनीय गुण वाले (**गोषु**) पृथिवी आदि पदार्थ वा (**अश्वेषु**) वस्तु-वस्तु मे रहने वाले अग्नि आदि पदार्थों मे (**न**) हम लोगो को (**आशंसय**) अच्छे गुण वाले कीजिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को शरीर और आत्मा के आलस्य को दूर छोड़के उत्तम कर्मों मे नित्य प्रयत्न करना चाहिए ॥ ३ ॥

मनुष्यों को कैसे वीरों को ग्रहण करके शत्रु निवारण करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—

ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (**तुवीमघ**) विद्या, सुवर्ण, सेना आदि धनयुक्त (**शूर**) शत्रुओ के बल को नष्ट करने वाले सेनापते ! आप के (**अरातय**) जो दान आदि धर्म से रहित शत्रुजन हैं वे (**ससन्तु**) सो जावें और जो (**रातय**) दान आदि धर्म के कर्त्ता है (**त्या**·) वे (**बोधन्तु**) जाग्रत होकर शत्रु और मित्रो को जानें (**तु**) फिर हे (**इन्द्र**) अत्युत्तम ऐश्वर्ययुक्त सभाध्यक्ष सेनापत वीरपुरुष ! तू (**सहस्रेषु**) हजार (**शुभ्रिषु**) अच्छे-अच्छे गुण वाले (**गोषु**) गौ वा (**अश्वेषु**) घोड़े, हाथी, सुवर्ण आदि धनो मे (**न:**) हम लोगो को (**आशसय**) शत्रुओ के विजय से प्रशसा वाला कर ॥ ४ ॥

भावार्थ—हम लोगो को अपनी सेना मे शूर मनुष्य ही रखकर आनन्दित करने चाहिए जिससे भय के मारे दुष्ट शत्रुजन जैसे निद्रा मे शान्त होते है वैसे सर्वदा हो जिससे हम लोग निष्कटक अर्थात् बेखटके चक्रवर्ति राज्य का सेवन नित्य करे ॥४॥

फिर वह वीर कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—

समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सभाध्यक्ष ! तू (**गर्दभम्**) गदहे के समान (**अमुया**) हमारे पीछे (**पापया**) पाप रूप मिथ्याभाषण से युक्त गवाही और भाषण आदि कपट से हम लोगो की (**नुवन्तम्**) स्तुति करने हुए शत्रु का (**समृण**) अच्छे प्रकार दण्ड दे (**तु**) फिर (**तुवीमघ**) हे बहुत-स विद्या वा धर्मरूपी धनवाले (**इन्द्र**) न्यायाधीश तू (**सहस्रेषु**) हजारह (**शुभ्रिषु**) शुद्धभाव वा धमयुक्त व्यवहारो से ग्रहण किय हुए (**गोषु**) पृथिवी आदि पदार्थ वा (**अश्वेषु**) हाथी घोड़ा आदि पशुओ के निमित्त (**न**) हम लोगो का (**आशंसय**) अच्छे व्यवहार वर्त्तने वाले अपराध रहित कीजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सभा स्वामी न्याय से अपने सिंहासन पर बैठकर गदहा जैसे रूखे और खोटे शब्द के उच्चारण से औरो की निन्दा करते हुए जन को दण्ड दे और सत्यवादी धार्मिक जन का सत्कार करे । जो अन्याय के साथ औरो के पदार्थ को लेते है उनको दण्ड देके जिसका जो पदार्थ हो वह उसको दिला देवे इस प्रकार सनातन न्याय करने वालो के धर्म मे प्रवृत्त पुरुष का सत्कार हम लोग निरन्तर करें ॥ ५ ॥

अब अगले मन्त्र मे अशुद्ध वायु के निवारण का विधान किया है—

पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (**तुविमघ**) अनेकविध धनो को सिद्ध करनेहारे (**इन्द्र**) सर्वोत्कृष्ट विद्वान् ! आप जैसे (**वात:**) पवन (**कुण्डृणाच्या**) कुटिलगति से (**वनात्**) जगत् और सूर्य की किरणो से (**अधि**) ऊपर वा इनके नीचे से प्राप्त होकर आनन्द करता है वैसे (**तु**) वारंवार (**सहस्रेषु**) हजारो (**अश्वेषु**) वेग आदि गुण वाले घोड़े आदि (**गोषु**) पृथिवी, इन्द्रिय, किरण और चौपाए (**शुभ्रिषु**) शुद्ध व्यवहारों मे सब प्राणियो और अप्राणियो को सुशोभित करता है वैसे (**न:**) हम को (**आशंसय**) प्रशसित कर ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो को ऐसा जानना चाहिए कि यह पवन सब जगह जाता हुआ अग्नि आदि पदार्थों से अधिक कुटिलता से गमन करनेहारा और बहुत से ऐश्वर्य की प्राप्ति तथा पशु वृक्षादि पदार्थों के व्यवहार, उनके बढ़ने-घटने और समस्त वाणी के व्यवहार का हेतु है ॥ ६ ॥

फिर वह क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (**तुवीमघ**) अनन्त बलयुक्त (**इन्द्र**) सब शत्रुओ के विनाश करने वाले जगदीश्वर ! आप जो (**न**) हमारे (**सहस्रेषु**) अनेक (**शुभ्रिषु**) शुद्ध कर्मयुक्त व्यवहार वा (**गोषु**) पृथिवी के राज्य आदि व्यवहार तथा (**अश्वेषु**) घोड़े आदि सेना के अगो मे विनाश का कराने वाला व्यवहार हो उस (**परिक्रोशम्**) सब प्रकार से रुलाने वाले व्यवहार को (**जहि**) विनष्ट कीजिए तथा जो (**न:**) हमारा शत्रु हो (**कृकदाश्वम्**) उस दु:ख देने वाले को भी (**जम्भय**) विनाश को प्राप्त कीजिए इस रीति से (**तु**) फिर (**न**) हम लोगो को (**आशंसय**) शत्रुओ से पृथक् कर सुखयुक्त कीजिए ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को इस प्रकार जगदीश्वर की प्रार्थना करनी चाहिए कि हे परमात्मन् ! आप हम लोगो में जो दुष्ट व्यवहार अर्थात् खोटे चलन तथा जो हमारे शत्रु हैं उनको दूरकर हम लोगो के लिए सकल ऐश्वर्य दीजिए ॥ ७ ॥

पिछले सूक्त मे पदार्थविद्या और उसके साधन कहे है उनके उपादान अत्यन्त प्रसिद्ध करानेहारे ससार के पदार्थ हैं जो कि परमेश्वर ने उत्पन्न किये हैं उस सूक्त मे उन पदार्थों से उपकार ले सकने वाली सभाध्यक्ष सहित सभा होती है उसके वर्णन करने से पूर्वोक्त अट्ठाईसवे सूक्त के अर्थ के साथ इस उनतीसवें सूक्त के अर्थ की संगति जाननी चाहिए ।

यह प्रथम अष्टक के दूसरे अध्याय का सत्ताईसवां वर्ग वा प्रथम मण्डल के छठे अनुवाक का उनतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥ २९ ॥

卐

अथ द्वाविंशत्यृचस्य त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्याजीगर्त्तिः शुन:शेप ऋषि । १-१६ इन्द्र., १७-१९ अश्विनौ, २०-२२ उषादेवता: । १-१०, १२-१५, १७-२२ गायत्री, ११ पादनिचृद्गायत्री, १६ त्रिष्टुप् च छन्दांसि । १-२२ षड्ज:, १६ धैवतश्च स्वर ॥

अब तीसवें सूक्त का आरम्भ है । इसके पहले मन्त्र में इन्द्र शब्द से शूरवीरों के गुणो का प्रकाश किया है—

आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् ।

मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष मनुष्य ! (**यथा**) जैसे खेती करने वाले किसान (**क्रिविम्**) कुए को खोद प्राप्त होकर उसके जल मे खेतो का (**सिञ्च**) सींचते है और जैसे (**वाजयन्त**) वगयुक्त वायु (**इन्दुभि**) जलो से (**शतक्रतुम्**) जिस से अनेक कर्म होते है (**मंहिष्ठम्**) बड़े (**इन्द्रम्**) सूर्य को सींचते वैसे तू भी प्रजाओं को सुखो से अभिषिक्त कर ॥ १ ।

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे मनुष्य पहले कुए को खोदकर उसके जल से खान-पान और खेत बगीचे आदि स्थानो के सींचने से सुखी होते है वैसे ही विद्वान् लोग यथायोग्य कलायन्त्रो मे अग्नि को जोड़के उसकी सहायता से कलों मे जल का स्थापन करके उनको चलाने से बहुत कार्य्यों को सिद्ध करके सुखी होते है ।१।

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम् । एदु निम्नं न रीयते ॥२॥

पदार्थ—जो शुद्धगुण-कर्म-स्वभावयुक्त विद्वान् हैं उसी से यह जो भौतिक अग्नि है वह (**निम्नम्, न**) जैसे नीचे स्थान को जाते हैं वैसे (**शुचीनाम्**) शुद्ध कलायन्त्र वा प्रकाश वाले पदार्थों का (**शतम्**) सौगुना (**वा**) अथवा (**समाशिराम्**) जो सब प्रकार से पकाए जावें उन पदार्थों का (**सहस्रम्**) वा हजारगुणा (**आ, इत, उ**) आधार और दाह गुण वाला (**रीयते**) जानता है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । यह अग्नि, सूर्य्य और बिजली जिस के प्रसिद्ध रूप—सैकड़ो पदार्थों की शुद्धि करता है और पचाने योग्य पदार्थों में हजारों पदार्थों को अपने वेग से पकाता है जैसे जल नीची जगह को जाता है वैसे ही यह अग्नि ऊपर को जाता है । इन अग्नि और जल को लौट पौट करने अर्थात् अग्नि को नीचे जल को ऊपर स्थापन करने से वा दोनों के संग्राम से वेग आदि गुण उत्पन्न होते हैं ॥ २ ॥

फिर वह किस प्रकार का है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है —

सं यन्मदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे। समुद्रो न व्यचो दधे ॥ ३ ॥

पदार्थ—मैं (**हि**) अपने निश्चय से (**मदाय**) आनन्द और (**शुष्मिणे**) प्रशंसनीय बल और ऊर्जा जिस व्यवहार में हो उसके लिए (**समुद्रः न**) जैसे समुद्र (**व्यच**) अनेक व्यवहार (**न**) सैकड़ह हजार गुणी सहित (**यत्**) जो क्रिया है उन क्रियाओं को (**सवधे**) अच्छे प्रकार धारण करूं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे समुद्र के मध्य में अनेक गुण, रत्न और जीव-जन्तु और अगाध जल है वैसे ही अग्नि और जल के सकाश से प्रयत्न के साथ बहुत प्रकार का उपकार लेना चाहिए ॥ २३ ॥

फिर भी उसका अगले मन्त्र में प्रकाश किया है -

अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम्। वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ ४ ॥

पदार्थ—(**अयम्**) यह इन्द्र अग्नि जोकि परमेश्वर का रचा है (**उ**) हम जानते हैं कि जैसे (**गर्भधिम्**) कबूतरी को (**कपोत इव**) कबूतर प्राप्त हो वैसे (**नः**) हमारी (**वचः**) वाणी को (**समोहसे**) अच्छे प्रकार प्राप्त होना है और (**चित्**) वही सिद्ध किया हुआ (**नः**) हम लोगो को (**तत्**) पूर्व कहे हुए बल आदि गुण बढ़ाने वाले आनन्द के लिए (**अतसि**) निरन्तर प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। जैसे कबूतर वेग से कबूतरी को प्राप्त होता है वैसे ही शिल्पविद्या से सिद्ध किया हुआ अग्नि अनुकूल अर्थात् जैसी चाहिए वैसी गति को प्राप्त होता है। मनुष्य इस विद्या का उपदेश वा श्रवण से पा सकते हैं ॥ ४ ॥

अब अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से सभा वा सेना के स्वामी का उपदेश किया है —

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते। विभूतिरस्तु सूनृता ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (**गिर्वाह**) जानने योग्य पदार्थों के जानने और सब दुःखो के नाश करने वाले तथा (**राधानाम्**) जिन पृथिवी आदि पदार्थों मे सुख सिद्ध होते है उन के (**पते**) पालन करने वाले सभा वा सेना स्वामी विद्वन्! (**यस्य**) जिन (**ते**) आप का (**सूनृता**) श्रेष्ठता से सब गुण का प्रकाश करने वाला (**विभूति.**) अनेक प्रकार का ऐश्वर्य है सो आप के सकाश से हम लोगों के लिए (**स्तोत्रम्**) स्तुति (**न**) हमारे पूर्वोक्त (**मदाय**) आनन्द और (**शुष्मिणे**) बल के लिए (**अस्तु**) हो ।५।

भावार्थ - इस मन्त्र मे पिछले तीसरे मन्त्र से "**मदाय, शुष्मिणे, न**" इन तीन पदो की अनुवृत्ति है। हम लोगो को सब का स्वामी जो वेदोक्त गुणो से परिपूर्ण विज्ञानरत, ऐश्वर्ययुक्त और यथायोग्य न्याय करने वाला सभाध्यक्ष वा सेनापति विद्वान् है उसी को न्यायाधीश मानना चाहिए ॥ ५ ॥

फिर वह सभाध्यक्ष वा सेनापति कैसा है इस विषय का उपदेश
अगले मन्त्र मे किया है—

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन्वाजे शतक्रतो। समन्येषु ब्रवावहै ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (**शतक्रतो**) अनेक प्रकार के कर्म वा अनेक प्रकार की बुद्धियुक्त सभा वा सेना के स्वामी जो आप के सहाय के योग्य हैं उन सब कार्यों मे हम (**ब्रवावहै**) परस्पर कह-सुन सम्मति से चलें और तू (**न**) हम लोगो की (**ऊतये**) रक्षा करने के लिए (**ऊर्ध्व**) सबसे ऊचा (**तिष्ठ**) बैठ इस प्रकार आप और हम सब मे से प्रतिजन अर्थात् दो-दो होकर (**वाजे**) युद्ध तथा (**अन्येषु**) अन्य कर्तव्य जोकि उपदेश वा श्रवण है उस को नित्य करें ॥ ६ ॥

भावार्थ - सत्य आचार-विचारशील और ध्यानावस्थित पुरुषो को योग्य है कि जो अपने आत्मा से अन्तर्यामी जगदीश्वर है उस की आज्ञा से सभापति वा सेनापति के साथ सत्य और मिथ्या वा करने और न करने योग्य कामो का निश्चय किया करें। इस के बिना कभी किसी को विजय या सत्य बोध नहीं हो सकता। जो सर्वव्यापी जगदीश्वर न्यायाधीश को मान कर वा धार्मिक शूरवीर को सेनापति करके शत्रुओ के साथ युद्ध करते हैं उन्ही का निश्चय से विजय होता है औरो का नही ॥ ६ ॥

फिर ईश्वर वा सेनाध्यक्ष कैसे है इस का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये ॥ ७ ॥

पदार्थ—हम लोग (**सखाय.**) परस्पर मित्र होकर अपनी (**ऊतये**) उन्नति वा रक्षा के लिए (**योगे योगे**) अति कठिनता से प्राप्त होने वाले पदार्थ-पदार्थ में वा (**वाजेवाजे**) युद्ध-युद्ध मे (**तवस्तरम्**) जो अच्छे प्रकार वेदो से जाना जाता है उस (**इन्द्रम्**) सब से विजय देने वाले जगदीश्वर वा दुष्ट शत्रुओ को दूर करने और आत्मा वा शरीर के बल वाले धार्मिक सभाध्यक्ष को (**हवामहे**) बुलावें अर्थात् बार-बार उसकी विज्ञप्ति करते रहें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को परस्पर मित्रता सम्पादन कर अलभ्य पदार्थों की रक्षा और सब जगह विजय करना चाहिए तथा परमेश्वर और सेनापति का नित्य आश्रय करना चाहिए और यह भी स्मरण रखना चाहिए कि उक्त आश्रय से ही उत्तम कार्यसिद्धि होने के योग्य हो सो ही नहीं किन्तु विद्या और पुरुषार्थ भी उनके लिए करने चाहिएँ ॥ ७ ॥

वह किसके साथ प्राप्त हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः। वाजेभिरुप नो हवम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—(**यदि**) जो वह सभा वा सेना का स्वामी (**नः**) हम लोगों की (**आ हवम्**) प्रार्थना को (**श्रवत्**) श्रवण करे (**घ**) वही (**सहस्रिणीभिः**) हजारो प्रशंसनीय पदार्थ प्राप्त होते हैं जिन मे उन (**ऊतिभि**) रक्षा आदि व्यवहार वा (**वाजेभि.**) अन्न, ज्ञान और युद्ध निमित्तक विजय के साथ प्रार्थना को (**उपागमत्**) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ ८ ॥

भावार्थ - जहाँ मनुष्य सभा वा सेना के स्वामी का सेवन करते हैं वहाँ सभाध्यक्ष अपनी सेना के अङ्ग वा अन्नादि पदार्थों के साथ उनके समीप स्थिर होता है इस की सहायता के बिना किसी को सत्य-सत्य सुख वा विजय नही होते हैं ॥ ८ ॥

अब ईश्वर और सभाध्यक्ष की प्रार्थना सब मनुष्यों को करनी चाहिए
इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम्। यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य! (**ते**) तेरा (**पिता**) जनक वा आचार्य (**यम्**) जिस (**प्रत्नस्य**) सनातन कारण वा (**ओकस.**) सब के ठहरने योग्य आकाश के सकाश से (**तुविप्रतिम्**) बहुत पदार्थों को प्रसिद्ध करने और (**नरम्**) सब को यथायोग्य कार्यों मे लगाने वाले परमेश्वर वा सभाध्यक्ष का (**पूर्वं**) पहले (**हुवे**) आह्वान करता रहा उस का मैं भी (**अनुहुवे**) तदनुकूल आह्वान वा स्तवन करता हूँ ॥९॥

भावार्थ - ईश्वर मनुष्यो को उपदेश करता है, कि हे मनुष्यो! तुम को औरो के लिए ऐसा उपदेश करना चाहिए कि जो अनादि कारण से अनेक प्रकार के कार्यों को उत्पन्न करता है, तथा जिस की उपासना पहले विद्वानो ने की वा अबके करते और अगले करेंगे उसी की उपासना नित्य करनी चाहिए। इस मन्त्र मे ऐसा विषय है कि कोई किसी से पूछे कि तुम किसकी उपासना करते हो उस के लिए ऐसा उत्तर देवे कि जिस की तुम्हारे पिता वा सब विद्वान् जन करते तथा वेद जिस निराकार, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, अज और अनादिस्वरूप जगदीश्वर का प्रतिपादन करते हैं उसी की उपासना मैं निरन्तर करता हूँ ॥ ९ ॥

अब ईश्वर की प्रार्थना के विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

तं त्वा वयं विश्ववारा शास्महे पुरुहूत। सखे वसो जरितृभ्यः ॥ १० ॥

पदार्थ हे (**विश्ववार**) संसार को अनेक प्रकार सिद्ध करने (**पुरुहूत**) सब से स्तुति को प्राप्त होने (**वसो**) सब मे रहने वा सबको अपने मे बसाने वाले (**सखे**) सब के मित्र जगदीश्वर! (**तम्**) पूर्वोक्त (**त्वा**) आपकी (**वयम्**) हम लोग (**जरितृभ्य**) स्तुति करने वाले धार्मिक विद्वानो से (**आ**) सब प्रकार से (**शास्महे**) आशा करते हैं अर्थात् आपका विशेष ज्ञान प्रकाश हम सब मे होने की इच्छा करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ - मनुष्यो को विद्वानो के समागम ही से सब जगत के रचने, सब के पूजने योग्य, सब के मित्र, सब के आधार, पिछले मन्त्र से प्रतिपादित किये हुए परमेश्वर के विज्ञान वा उपासना की नित्य इच्छा करनी चाहिए क्योकि विद्वानो के उपदेश के बिना किसी को यथार्थ विशेष ज्ञान नही हो सकता है ॥ १० ॥

फिर सभा सेनाध्यक्ष के प्राप्त होने की इच्छा करने का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है —

अस्माकं शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपाव्नाम्। सखे वज्रिन्त्सखीनाम् ॥ ११ ॥

पदार्थ (**सोमपा**) उत्पन्न किये हुए पदार्थ की रक्षा करने वाले (**वज्रिन्**) सब अविद्यारूपी अन्धकार के विनाशक उत्तम ज्ञानयुक्त (**सखे**) समस्त सुख देने और (**सोमपाव्नाम्**) सांसारिक पदार्थों की रक्षा करने वाले (**सखीनाम्**) सब के मित्र हम लोगो के तथा (**सखीनाम्**) सब का हित चाहनहारी (**शिप्रिणीनाम्**) वा इस लोक और परलोक के व्यवहार ज्ञानवाली हमारी स्त्रियो का सब प्रकार से प्रधान (**त्वा**) आप को (**वयम्**) करने वाले हम लोग (**आशास्महे**) प्राप्त होने की इच्छा करते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है और पूर्व मन्त्र से "त्वा, वयम्, आ, शास्महे" इन चार पदो की अनुवृत्ति है। सब पुरुष वा सब स्त्रियो को परस्पर मित्रभाव का वर्ताव कर व्यवहार की सिद्धि के लिए परमेश्वर की प्रार्थना वा आर्य्य राजविद्या और धर्मसभा प्रयत्न के साथ सदा सम्पादन करनी चाहिए ॥ ११ ॥

अब उस सभाध्यक्ष को क्या-क्या उपदेश करने के योग्य है यह अगले मन्त्र मे कहा है —

तथा तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन् तथा कृणु।
यथा त उश्मसीष्टये ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (**सोमपा**) सांसारिक पदार्थों मे जीवों की रक्षा करने वाले (**वज्रिन्**) सभाध्यक्ष! जैसे हम लोग (**इष्टये**) अपने सुख के लिए (**ते**) आप शस्त्रास्त्रवित् (**सखे**) मित्र की मित्रता के अनुकूल जिस मित्राचरण को (**उश्मसि**) चाहते और करते हैं (**तथा**) उसी प्रकार से आपकी (**तत्**) मित्रता हमारे मे (**अस्तु**) हो, आप (**तथा**) वैसा (**कृणु**) कीजिए ॥ १२ ॥

भावार्थ - जैसे सब का हित चाहने वाला और सकलविद्यायुक्त सभा सेनाध्यक्ष निरन्तर प्रजा की रक्षा करे वैसे ही प्रजा सेना के मनुष्यो को भी उनकी रक्षा करनी चाहिए ॥ १२ ॥

उस में क्या-क्या स्थापन करके सब मनुष्यो को सुखयुक्त होना चाहिए
इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है —

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः। क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १३ ॥

पदार्थ—(**क्षुमन्त.**) जिन के अनेक प्रकार के अन्न विद्यमान हैं वे हम लोग

(**याभि**) जिन प्रजाओं के साथ (**सधमादे**) आनन्दयुक्त एक स्थान में जैसे आनन्दित होवें वैसे (**तुविवाजा**) बहुत प्रकार के विद्याबोधवाली (**रेवती**) जिनके प्रशसनीय धन है वे प्रजा (**इन्द्रे**) परमैश्वर्य के निमित्त (**सन्तु**) हों ॥ १३ ॥

भावार्थ—यहाँ वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को सभाध्यक्ष, सेनाध्यक्ष सहित सभाओं में सब राज्य, विद्या और धर्म के प्रचार करने वाले कार्य स्थापित करके सब सुख भोगना वा भोगाना चाहिए । और वेद की आज्ञा से एक से रूप, स्वभाव और एकसी विद्या वाले तथा युवा अवस्था के स्त्री और पुरुषों की परस्पर इच्छा से स्वयंवर विधान से विवाह होने योग्य हैं । वे अपने घर के कामों में तथा एक दूसरे के सत्कार में नित्य यत्न करें । और वे ईश्वर की उपासना वा उसकी आज्ञा तथा सत्पुरुषों की आज्ञा में सदा चित्त देवें किन्तु उक्त व्यवहार से विरुद्ध व्यवहार में कभी किसी पुरुष वा स्त्री का क्षणभर भी न रहना चाहिए ॥ १३ ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ घ त्वावान्त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः ।
ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे (**धृष्णो**) अति धृष्ट (**त्मना**) अपनी कुशलता से (**आप्त**) सर्वविद्यायुक्त सत्य के उपदेश करने और (**इयान**) राज्य के जानने वाले राजन् ! (**त्वावान्**) आप से (**घ**) आप ही हो जो आप (**चक्र्योः**) रथ के पहियों की (**अक्षम्**) धुरी के (**न**) समान (**स्तोतृभ्य**) स्तुति करने वालों को (**आऋणोः**) प्राप्त होते हो ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार और प्रतीपालङ्कार है । जैसे पहियों की धुरी रथ को धारण करने वाली घूमती हुई भी अपने ही में ठहरीसी रहती है और रथ को देशान्तर में प्राप्त करने वाली होती है वैसे ही आप राज्य में व्याप्त होकर यथायोग्य नियम में रखते हो ॥ १४ ॥

फिर उसके सेवन से क्या फल होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ यद्दुवः शतक्रतवा कामं जरितृणाम् । ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥१५॥

पदार्थ—हे (**शतक्रतो**) अनेकविध विद्या, बुद्धि वा कर्मयुक्त राजसभा स्वामिन् ! आप स्तुति करने वाले धार्मिक जनों में (**यत्**) जो आप का (**दुव**) सेवन है उसको प्राप्त होकर (**शचीभि**) रथ के योग्य कर्मों में (**अक्षम्**) उसकी धुरी के (**न**) समान उन (**जरितृणाम्**) स्तुति करने वाले धार्मिक जनों की (**कामम्**) कामनाओं को (**आ, ऋणो**) अच्छी प्रकार पूरी करते हो ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे विद्वानों का सेवन विद्यार्थियों के अभीष्ट अर्थात् उन की इच्छा के अनुकूल कामों को पूरा करता है वैसे परमेश्वर का सेवन धार्मिक सज्जन मनुष्यों का अभीष्ट पूरा करता है इसलिए सबको चाहिए कि परमेश्वर की सेवा नित्य करें ॥ १५ ॥

फिर वह सभाध्यक्ष कैसा और क्या करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है

शश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय नानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि ।
स नो हिरण्यरथं दंसनावान्त्स नः सनिता सनये स नोऽदात् ॥ १६ ॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) जगत् का रचने वाला ईश्वर (**शश्वत्**) अनादि सनातन कारण से (**नानदद्भि**) तड़क और गर्जना आदि शब्दों का करती हुई अचेतन बिजली और नदी और जीव तथा (**शाश्वसद्भि**) अति प्रशसनीय प्राण वाले चर वा (**पोप्रुथद्भि**) स्थूल जो कि अचर हैं उन कार्य्यरूपी पदार्थों से (**धनानि**) पृथिवी सुवर्ण और विद्या आदि धनों को (**जिगाय**) प्रकर्षता अर्थात् उन्नति को प्राप्त करता है (**स**) वह (**दंसनावान्**) कर्मों का फल देनेहारा और साधनों से संयुक्त ईश्वर (**न**) हमारे लिए (**हिरण्यरथम्**) ज्योति वाले सूर्य आदि लोक वा सुवर्ण आदि पदार्थों के प्राप्त कराने वाले पदार्थों और विमान आदि रथों को (**अदात्**) प्रत्यक्ष करता है (**स**) वह (**न**) हमको सुखों के (**सनये**) भोग के लिए (**सनिता**) विद्या, कर्म और उपदेश से विभाग करने वाला होकर सब सुखों को (**अदात्**) देता है वैसे सभा, सेनापति और न्यायाधीश भी वर्तें ॥ १६ ॥

भावार्थ—जैसे जगदीश्वर सनातन कारण से चर अचर कार्यों को उत्पन्न करके इन से सब जीवों को सुख देता है वैसे सभा सेनापति, न्यायाधीश लोग सब सभा सेना और न्याय के अंगों को सिद्ध कर सब प्रजा को निरन्तर आनन्दयुक्त करें । जैसे इस से भिन्न और कोई संसार का रचने वा कर्म फल का देने और ठीक न्याय से राज्य का पालन करने वाला नहीं हो सकता वैसे वे भी सब कार्य्य करें ॥ १६ ॥

फिर वे कैसे हों इसका प्रकाश अगले मन्त्र में किया है—

आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया । गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे (**दस्रा**) दारिद्र्य विनाश करानेवाले (**अश्विनौ**) बिजली और पृथिवी के समान विद्या और क्रियाकुशल शिल्पी लोगो ! तुम (**इषा**) चाही हुई (**अश्वावत्या**) वेग आदि गुणयुक्त (**शवीरया**) देशान्तर को प्राप्त कराने वाली गति के साथ (**हिरण्यवत्**) जिसके सुवर्ण आदि साधन हैं और (**गोमत्**) जिस में सिद्ध किये हुए धन से सुख प्राप्त कराने वाली बहुत सी क्रिया हैं उस रथ को (**आयातम्**) अच्छे प्रकार देशान्तर को पहुँचाइए ॥ १७ ॥

भावार्थ—पूर्वोक्त अश्वि अर्थात् सूर्य्य और पृथिवी के गुणों से चलाया हुआ रथ शीघ्रगमन से भूमि, जल और अन्तरिक्ष में गति करता है इसलिए इसको शीघ्र साधना चाहिए ॥ १७ ॥

फिर वे किस प्रकार के हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

समानयोजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः । समुद्रे अश्विनेयते ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे (**दस्रौ**) मार्ग चलने की पीड़ा को हरनेवाले (**अश्विना**) उक्त अश्वि के समान शिल्पकारी विद्वानो ! (**वाम्**) तुम्हारा सिद्ध किया हुआ (**समयोजन**) जिस में तुल्य गुण से अश्व लगाये हों (**अमर्त्य**) जिसके खींचने में मनुष्य आदि प्राणी न लगे हों वह (**रथ**) नाव आदि रथसमूह (**समुद्रे**) जल से पूर्ण सागर वा अन्तरिक्ष में (**अश्वावत्या**) वेग आदि गुणयुक्त (**शवीरया**) देशान्तर को प्राप्त करानेवाली गति के साथ (**ईयते**) समुद्र के पार और वार को प्राप्त कराने वाला होता है उस को सिद्ध कीजिए ॥ १८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से "अश्वावत्या, शवीरया" इन दो पदों की अनुवृत्ति है । मनुष्यों की जो अग्नि वायु और जलयुक्त कलायन्त्रों से सिद्ध की हुई नाव हैं वे निस्सन्देह समुद्र के अन्त को जल्दी पहुँचाती हैं । ऐसी-ऐसी नावों के बिना अभीष्ट समय में चाहे हुए एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना नहीं हो सकता ॥१८॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

न्यघ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः । परि द्यामन्यदीयते ॥१९॥

पदार्थ—हे अश्विनौ विद्यायुक्त शिल्पि लोगो ! तुम दोनों (**अघ्न्यस्य**) जो कि विनाश करने योग्य नहीं है उस (**रथस्य**) विमान आदि यान के (**मूर्धनि**) उत्तम अङ्ग अग्रभाग में जो एक और (**अन्यत्**) दूसरा नीचे की ओर कलायन्त्र बनाओ तो वे दो चक्र समुद्र वा (**द्याम्**) आकाश पर भी (**नियेमथुः**) देश-देशान्तर में जाने के वास्ते बहुत अच्छे हों । इन दोनों चक्रों से जुड़ा हुआ रथ जहाँ चाहो वहाँ (**ईयते**) पहुँचाने वाला होता है ॥ १९ ॥

भावार्थ—शिल्पि विद्वानों को योग्य है कि जो शीघ्र जाने-आने के लिए रथ बनाना चाहें तो उस के आगे एक-एक कलायन्त्रयुक्त चक्र तथा सब कलाओं के घूमने के लिए दूसरा चक्र नीचे भाग में रचके उस में यन्त्र के साथ जल और अग्नि आदि पदार्थों का प्रयोग करें इस प्रकार रचे हुए यान भार सहित शिल्पि विद्वान् लोगों को भूमि, समुद्र और अन्तरिक्ष मार्ग से सुखपूर्वक देशान्तर को प्राप्त कराते हैं ॥ १९ ॥

अब इस विद्या के उपयोग करने वाले प्रातःकाल का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

कस्त उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये । कं नक्षसे विभावरि ॥२०॥

पदार्थ—हे विद्याप्रियजन ! जो यह (**अमर्त्ये**) कारण प्रवाह रूप से नाशरहित (**कधप्रिये**) कथनप्रिय (**विभावरि**) और विविध जगत् को प्रकाश करने वाली, (**उषः**) प्रातःकाल की वेला (**भुजे**) सुख भोग कराने के लिए प्राप्त होती है उसको प्राप्त होकर तू (**कम्**) किस मनुष्य को (**नक्षसे**) प्राप्त नहीं होता और (**क**) कौन (**मर्त्त**) मनुष्य (**भुजे**) सुख भोगने के लिए (**ते**) तेरे आश्रय को नहीं प्राप्त होता ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में काक्वर्थ है । कौन मनुष्य इस काल की सूक्ष्म गति जो व्यर्थ खोने के अयोग्य है उसको जाने । जो पुरुषार्थ के आरम्भ का आदि समय प्रातःकाल है उसके निश्चय से प्रातःकाल उठकर, जब तक सोने का समय न हो एक भी क्षण व्यर्थ न खोवे । इस प्रकार समय की सार्थकता को जानते हुए मनुष्य सब काल सुख भोग सकते हैं, किन्तु आलस्य करने वाले नहीं ॥ २० ॥

फिर वह वेला कैसी जाननी चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वयं हि ते अमन्मह्यान्तादा पराकात् । अश्वे न चित्रे अरुषि ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे कालविद्यावित् जन ! जैसे (**वयम्**) समय के प्रभाव को जानने वाले हम लोग जो (**चित्रे**) आश्चर्यरूप (**अरुषि**) कुछ एक लाल गुणयुक्त उषा है उस को (**आ अन्तात्**) प्रत्यक्ष समीप वा (**आपराकात्**) एक नियम किये हुए दूर देश से (**अश्वे**) नित्य शिक्षा के योग्य घोड़े पर बैठके जाने-आने वाले के (**न**) समान (**अमन्महि**) जानें वैसे इस को तू भी जान ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान काल का यथायोग्य उपयोग लेना जानते हैं उनके पुरुषार्थ से समीप वा दूर के सब कार्य सिद्ध होते हैं । इस से किसी मनुष्य को भी क्षण भर भी व्यर्थ काल न खोना चाहिए ॥ २१ ॥

फिर वह कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वं त्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः । अस्मे रयिं नि धारय ॥२२॥

पदार्थ—हे काल के माहात्म्य को जानने वाले विद्वन् ! (**त्वम्**) तू जो (**दिव**) सूर्य किरणों से उत्पन्न हुई उन की (**दुहित**) लड़की के समान प्रातःकाल की वेला (**त्येभि**) अपने उत्तम अवयव अर्थात् दिन-महीना आदि विभागों से वह हम लोगों को (**वाजेभि**) अन्न आदि पदार्थों के साथ प्राप्त होती और अन्नादि पदार्थों की प्राप्ति का निमित्त होती है उस से (**अस्मे**) हम लोगों के लिए (**रयिम्**) विद्या सुवर्णादि धनों को (**निधारय**) निरन्तर ग्रहण कराओ और (**आगहि**) इस

प्रकार विद्या की प्राप्ति कराने के लिए प्राप्त हुआ कीजिए कि जिससे हम लोग भी समय को निरर्थक न खोवें ॥ २२ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य काल को व्यर्थ नहीं खोते उन का सब काल सब कामों की सिद्धि करनेवाला होता है ॥ २२ ॥

इस मन्त्र में पिछले सूक्त के अनुबंधी "इन्द्र, अश्वि और उषा" समय के वर्णन से पिछले सूक्त के अनुबंधी अर्थों के साथ इस सूक्त के अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिए।

यह पहले अष्टक दूसरे अध्याय में इकत्तीसवां वर्ग तथा पहले मण्डल में छठा अनुवाक और तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥ ३० ॥

卐

अथाष्टादशर्चस्यैकत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्याङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः । अग्निर्देवता ।

१—७, ९—१५, १७ जगती छन्दो निषादः स्वरः । ८, १६, १८

त्रिष्टुप् च छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब इकत्तीसवें सूक्त का आरम्भ है । उसके पहिले मन्त्र में

ईश्वर का प्रकाश किया है—

त्वम॑ग्ने प्रथ॒मो अङ्गि॑रा॒ ऋषि॑र्दे॒वो दे॒वाना॑मभवः शि॒वः सखा॑ ।

तव॑ व्र॒ते क॒वयो॑ विद्म॒नाप॒सोऽजा॑यन्त म॒रुतो॒ भ्राज॑दृष्टयः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) आप ही प्रकाशित और विज्ञानस्वरूपयुक्त जगदीश्वर ! जिस कारण (त्वम्) आप (प्रथमः) अनादिस्वरूप अर्थात् जगत्कल्प के आदि में सदा वर्त्तमान (अङ्गिराः) ब्रह्माण्ड के पृथिवी आदि, शरीर के हस्त, पाद आदि अङ्गों के रसरूप अर्थात् अन्तर्यामी (ऋषिः) सर्व विद्या से परिपूर्ण वेद के उपदेश करने और (देवानाम्) विद्वानों के (देवः) आनन्द उत्पन्न करने (शिवः) मंगलमय तथा प्राणियों को मंगल देने तथा (सखा) उनके दुःख दूर करने में सहायकारी (अभवः) होते हो और जो (विद्मनापसः) ज्ञान के हेतु काम युक्त (मरुतः) धर्म को प्राप्त मनुष्य (तव) आप की (व्रते) आज्ञा, नियम में रहते हैं, इससे वही (भ्राजदृष्टयः) प्रकाशित अर्थात् ज्ञान वाले (कवयः) कवि, विद्वान् (अजायन्त) होते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—जो ईश्वर की आज्ञा पालन, धर्म और विद्वानों के संग के सिवाय और कुछ काम नहीं करते उनकी परमेश्वर के साथ मित्रता होती है, फिर उस मित्रता से उनके आत्मा में सद्विद्या का प्रकाश होता है, और वे विद्वान् होकर उत्तम काम का अनुष्ठान करके सब प्राणियों के सुख देने के लिए प्रसिद्ध होते हैं ॥ १ ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वम॑ग्ने प्रथ॒मो अङ्गि॑रस्तमः क॒विर्दे॒वानां॒ परि॑ भूषसि व्र॒तम् ।

वि॒भुर्विश्व॑स्मै॒ भुव॑नाय॒ मेधि॑रो द्विमा॒ता श॒युः क॑ति॒धा चि॑दा॒यवे॑ ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सब दुःखों के नाश करने और सब दुष्ट शत्रुओं के दाह करनेवाले जगदीश्वर वा सभासेनाध्यक्ष ! जिस कारण (त्वम्) आप (प्रथमः) अनादिस्वरूप वा पहले मानने योग्य (शयुः) प्रलय में सब प्राणियों को सुलाने (मेधिरः) सृष्टि समय में सब को चिताने (द्विमाता) प्रकाशवान् वा अप्रकाशवान् लोकों के निर्माण अर्थात् सिद्ध करने वा तद्विद्या को जनाने वाले (अङ्गिरस्तमः) जीव, प्राण और मनुष्यों में अत्यन्त उत्तम (विभुः) सर्वव्यापक वा सभा सेना के अङ्गों से शत्रु बलों में व्याप्त स्वभाव (कविः) और सब को जानने वाले हैं (चित्) उसी कारण से (आयवे) मनुष्य वा (विश्वस्मै) सब (भुवनाय) संसार के लिए (देवानाम्) विद्वान् वा सूर्य और पृथिवी आदि लोकों के (व्रतम्) धर्मयुक्त नियमों को (कतिधा) कई प्रकार से (परिभूषसि) सुशोभित करते हो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । परमेश्वर वेद द्वारा वा उसके पढ़ाने से विद्वान् मनुष्य के विद्या धर्मरूपी व्रत वा लोकों के नियमरूपी व्रत को सुशोभित करता है । जिस ईश्वर ने सूर्य आदि प्रकाशवान् वा वायु, पृथिवी आदि अप्रकाशवान् लोकसमूह रचा है वह सर्वव्यापी है । जो ईश्वर की रची हुई सृष्टि से विद्या को प्रकाशित करता है वह विद्वान् होता है । उस ईश्वर और विद्वानों के बिना कोई यथार्थ-विद्या वा कारण से कार्यरूप सब लोकों के रचने, धारणे और जानने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ २ ॥

त्वम॑ग्ने प्रथ॒मो मा॑त॒रिश्व॑न आ॒विर्भ॑व सुक्रतू॒या वि॒वस्व॑ते ।

अरे॑जेतां॒ रोद॑सी होतृ॒वूर्येऽस॑घ्नोर्भा॒रमय॑जो म॒हो व॑सो ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) परमात्मन् वा विद्वन् ! (प्रथमः) अनादिस्वरूप वा समस्त कार्यों में अग्रगन्ता (त्वम्) आप जिस (सुक्रतूया) श्रेष्ठ बुद्धि और कर्मों को सिद्ध करानेवाले पवन से (होतृवूर्ये) होताओं को ग्रहण करने योग्य (रोदसी) विद्युत् और पृथिवी (अरेजेताम्) अपनी कक्षा में घूमा करते हैं उस (मातरिश्वने) अपनी आकाश रूपी माता में सोने वाले पवन वा (विवस्वते) सूर्यलोक के लिए उनको (आविः, भव) प्रकट कराइए । हे (वसो) सब को निवास करानेहारे ! आप शत्रुओं का (असघ्नोः) विनाश कीजिए जिनसे (महः) बड़े-बड़े (भारम्) भारयुक्त यान को (अयजः) देश-देशान्तर में पहुँचाते हो उनका बोध हमको कराइए ॥ ३ ॥

भावार्थ—कारण रूप अग्नि अपने कारण और वायु के निमित्त से सूर्य रूप से प्रसिद्ध तथा अन्धकार विनाश करके पृथिवी वा आकाश का धारण करता है । वह यज्ञ वा शिल्पविद्या के निमित्त से कलायन्त्रों में संयुक्त किया हुआ बड़े-बड़े भारयुक्त विमान आदि यानों को शीघ्र ही देश-देशान्तर में पहुँचाता है ॥ ३ ॥

फिर वह ईश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

त्वम॑ग्ने॒ मन॑वे॒ द्याम॑वाशयः पुरू॒रव॑से सु॒कृते॑ सु॒कृत्त॑रः ।

श्वा॒त्रेण॒ यत्पि॒त्रोर्मुच्य॑से॒ पर्या त्वा॒ पूर्व॑मनय॒न्नाप॑रं॒ पुनः॑ ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! (सुकृत्तरः) अत्यन्त सुकृत कर्म करने वाले (त्वम्) सर्वप्रकाशक आप (पुरूरवसे) जिसके बहुत से उत्तम-उत्तम विद्यायुक्त वचन हैं और (सुकृते) अच्छे-अच्छे कर्मों को करने वाला है उस (मनवे) ज्ञानवान् विद्वान् के लिए (द्याम्) उत्तम सूर्यलोक को (अवाशयः) प्रकाशित किये हुए हैं । विद्वान् लोग (श्वात्रेण) धन और विज्ञान के साथ वर्त्तमान (पूर्वम्) पूर्वकल्प वा पूर्वजन्म में प्राप्त होने योग्य और (अपरम्) इसके आगे जन्म-मरण आदि से अलग प्रतीत होने वाले आपको (पुनः) बार-बार (अनयन्) प्राप्त होते हैं । हे जीव ! तू जिस परमेश्वर को वेद और विद्वान् लोग उपदेश से प्रतीत कराते हैं जो (त्वा) तुझे (श्वात्रेण) धन और विज्ञान के साथ वर्त्तमान (पूर्वम्) पिछले (अपरम्) अगले देह को प्राप्त कराता है और जिसके उत्तम ज्ञान से मुक्त दशा में (पित्रोः) माता और पिता से तू (पर्यामुच्यसे) सब प्रकार के दुःख से छूट जाता तथा जिसके नियम से मुक्ति से महाकल्प के अन्त में फिर संसार में आता है उसका विज्ञान वा सेवन तू (आ) अच्छे प्रकार कर ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिस जगदीश्वर ने सूर्य आदि जगत् रचा वा जिस विद्वान् से सुशिक्षा का ग्रहण किया जाता है उस परमेश्वर वा विद्वान् की प्राप्ति अच्छे कर्मों से होती है तथा चक्रवर्त्ति राज्य आदि धन का सुख भी वैसे ही होता है ॥ ४ ॥

त्वम॑ग्ने वृष॒भः पु॑ष्टि॒वर्ध॑न॒ उद्य॑तस्रुचे भवसि श्र॒वाय्यः॑ ।

य आहु॑तिं॒ परि॒ वेदा॒ वष॑ट्कृति॒मेका॑यु॒रग्रे॒ विश॑ आ॒विवा॑ससि ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) यज्ञक्रिया फलवित् जगद्गुरो परेश ! जो (त्वम्) आप (अग्रे) प्रथम (उद्यतस्रुचे) स्रुक् अर्थात् होम और ग्रहण करने वाली वस्तु चढ़ाने के पात्र को अच्छे प्रकार ग्रहण करने वाले मनुष्य के लिए (श्रवाय्यः) सुनने-सुनाने योग्य (वृषभः) और सुख वर्षाने वाले (एकायुः) एक सत्य गुण कर्म स्वभाव युक्त वर्त्तमान तथा रूप (पुष्टिवर्धनः) पुष्टि-वृद्धि करने वाले (भवसि) होते हैं (यः) जो आप (वषट्कृतिम्) जिसमें कि उत्तम-उत्तम क्रिया की जाएं (आहुतिम्) तथा जिससे धर्मयुक्त आचरण किये जाएं उसका विज्ञान कराते हैं (विशः) प्रजा पुष्टि-वृद्धि के साथ उन आप और सुखों को (पर्याविवाससि) अच्छे प्रकार से सेवन करती है ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि पहले जगत् का कारण ब्रह्मज्ञान और यज्ञ की विद्या में जो क्रिया, जिस प्रकार के होम करने योग्य पदार्थ उनको अच्छे प्रकार जानकर उनकी यथायोग्य क्रिया जानने में शुद्ध वायु और वर्षा जल की शुद्धि के निमित्त जो पदार्थ हैं उनका होम अग्नि में करने से इस जगत् में बड़े-बड़े, उत्तम-उत्तम सुख बढ़ते हैं और उनसे सब प्रजा आनन्दयुक्त होती है ॥ ५ ॥

अब ईश्वर का उपासक वा प्रजा पालनेहारा पुरुष क्या-क्या कृत्य करे

इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वम॑ग्ने वृजि॒नव॑र्तनिं॒ नरं॒ सक्म॑न्पिपर्षि वि॒दथे॑ विचर्षणे ।

यः शूर॑साता॒ परि॑तक्म्ये॒ धने॑ द॒भ्रेभि॑श्चि॒त्समृ॑ता॒ हंसि॒ भूय॑सः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (सक्मन्) सब पदार्थों का सम्बन्ध कराने (विचर्षणे) अनेक प्रकार के पदार्थों को अच्छे प्रकार देखने वाले (अग्ने) राजनीतिविद्या से शोभायमान सेनापते ! (यः) जो तू (विदथे) धर्मयुक्त यज्ञरूपी (शूरसाती) संग्राम में (दभ्रेभिः) थोड़े ही साधनों से (वृजिनवर्त्तनिम्) अधर्म मार्ग में चलने वाले (नरम्) मनुष्य और (भूयसः) बहुत शत्रुओं का (हंसि) हननकर्त्ता है और (समृता) अच्छे प्रकार सत्य कर्मों का (पिपर्षि) पालनकर्त्ता है । (परितक्म्ये) सब ओर से देखने योग्य (धने) सुवर्ण, विद्या और चक्रवर्त्ति राज्य आदि धन की रक्षा करने के निमित्त आप हमारे सेनापति हूजिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—परमेश्वर का यह स्वभाव है कि जो पुरुष अधर्म छोड़ धर्म करने की इच्छा करते हैं उनको अपनी कृपा से शीघ्र ही धर्म में स्थिर करता है । जो धर्म से युद्ध वा धन को सिद्ध करना चाहते हैं उनकी रक्षा कर उनके कर्मों के अनुसार उनके लिए धन देता और जो खोटे आचरण करते हैं उनको उनके कर्मों के अनुसार दण्ड देता है । जो ईश्वर की आज्ञा में वर्त्तमान धर्मात्मा थोड़े भी युद्ध के पदार्थों से युद्ध करने को प्रवृत्त होते हैं ईश्वर उन्हीं को विजय देता है औरों को नहीं ॥ ६ ॥

फिर वह ईश्वर जीवों के लिए क्या करता है इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

त्वं तम॑ग्ने अमृत॒त्व उ॑त्त॒मे मर्तं॑ दधासि॒ श्रव॑से दि॒वेदि॑वे ।

यस्ता॑तृषा॒ण उ॒भया॑य॒ जन्म॑ने॒ मयः॑ कृ॒णोषि॒ प्रय॒ आ च॑ सू॒रये॑ ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! आप (यः) जो (सूरिः) बुद्धिमान्

मनुष्य (**दिवेदिवे**) प्रतिदिन (**श्रवसे**) सुनने के योग्य अपने लिए मोक्ष को चाहता है उस (**मर्तम्**) मनुष्य को (**उत्तमे**) अत्युत्तम (**अमृतत्वे**) मोक्षपद में स्थापन करते हो और जो बुद्धिमान् अत्यन्त सुख भोगकर फिर (**उभयाय**) पूर्व और पर (**जन्मने**) जन्म के लिए चाहना करता हुआ उस मोक्षपद से निवृत्त होता है उस (**सूरये**) बुद्धिमान् सज्जन के लिए (**मय**) सुख और (**प्रय**) प्रसन्नता को (**आ कृणोषि**) सिद्ध करते हो ॥ ७ ॥

भावार्थ - जो ज्ञानी धर्मात्मा मनुष्य मोक्षपद को प्राप्त होते हैं उनका उस समय ईश्वर ही आधार है। जो जन्म हो गया वह पहला और जो मृत्यु वा मोक्ष होके होगा वह दूसरा, जो है वह तीसरा और जो विद्या वा आचार्य से होता है वह चौथा जन्म है, ये चार जन्म मिलके एक जन्म, जो मोक्ष के पश्चात् होता है वह दूसरा जन्म है। इन दोनों जन्मों के धारण करने के लिए सब जीव प्रवृत्त हो रहे हैं, यह व्यवस्था ईश्वर के अधीन है ॥ ७ ॥

फिर परमात्मा का उपासक प्रजा के वास्ते कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है —

त्वं नो॑ अग्ने स॒नये॒ धना॑नां य॒शसं॑ का॒रुं कृ॑णुहि॒ स्तवा॑नः ।

ऋ॒ध्याम॒ कर्मा॒पसा॒ नवे॑न दे॒वैर्द्या॑वापृथिवी॒ प्राव॑तं नः ॥ ८ ॥

पदार्थ —हे (**अग्ने**) कीर्ति और उत्साह के प्राप्त करानेवाले जगदीश्वर वा परमेश्वरोपासक ! (**स्तवान**) आप स्तुति को प्राप्त होते हुए (**न**) हम लोगों के (**धनानाम्**) विद्या, सुवर्ण, चक्रवर्ति राज्य, प्रसिद्ध धनों के (**सनये**) यथायोग्य कार्यों में व्यय करने के लिए (**यशसम्**) कीर्तियुक्त (**कारुम्**) उत्साह से उत्तम कर्म करने वाले उद्योगी मनुष्य को नियुक्त (**कृणुहि**) कीजिए जिससे हम लोग नवीन (**अपसा**) (पुरुषार्थ) से नित्य-नित्य वृद्धियुक्त होते रहें और दोनों विद्या की प्राप्ति के लिए (**देवै**) विद्वानों का साथ करते हुए (**नः**) हम लोगों की और (**द्यावा-पृथिवी**) सूर्य प्रकाश और भूमि की (**प्रावतम्**) रक्षा कीजिए ॥ ८ ॥

भावार्थ - मनुष्यों को परमेश्वर की इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिए कि हे परमेश्वर ! कृपा करके हम लोगों में उत्तम धन देने वाली सब शिल्पविद्या के जानने वाले उत्तम विद्वानों को सिद्ध कीजिए जिससे हम लोग उनके साथ नवीन-नवीन पुरुषार्थ करके पृथिवी के राज्य और सब पदार्थों से यथायोग्य उपकार ग्रहण करें ॥ ८ ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है —

त्वं नो॑ अग्ने पि॒त्रोरु॒पस्थ॒ आ दे॒वो दे॒वेष्व॑नवद्य॒ जागृ॑विः ।

त॒नू॒कृद्बो॑धि॒ प्रम॑तिश्च का॒रवे॒ त्वं क॑ल्याण॒ वसु॒ विश्व॒मोपि॑षे ॥ ९ ॥

पदार्थ - हे (**अनवद्य**) उत्तम कर्मयुक्त सब पदार्थों के जानने वाले सभापते ! (**जागृवि**) धर्मयुक्त पुरुषार्थ में जागने (**देव**) सत्य प्रकाश करने (**तनूकृत्**) और बड़े-बड़े पृथिवी आदि बड़े लोक में ठहरनेहारे आप (**देवेषु**) विद्वान् वा अग्नि आदि तेजस्वी दिव्य गुणयुक्त लोकों में (**पित्रो**) माता-पिता के (**उपस्थे**) समीपस्थ व्यवहार में (**न**) हम लोगों को (**ऊपिषे**) बार-बार नियुक्त कीजिए (**कल्याण**) हे अत्यन्त सुख देने वाले राजन् ! (**प्रमति**) उत्तम ज्ञान देते हुए आप (**कारवे**) कारीगरी के चाहने वाले मुझ को (**वसु**) विद्या, चक्रवर्ति राज्य आदि पदार्थों से सिद्ध होने वाले (**विश्वम्**) समस्त धन का (**अबोधि**) अच्छे प्रकार बोध कराइए ॥ ९ ॥

भावार्थ फिर भी ईश्वर की इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिए कि हे भगवन् ! जब-जब आप जन्म दें तब-तब श्रेष्ठ विद्वानों के सम्पर्क में जन्म दें और वहाँ हम लोगों को सब विद्यायुक्त कीजिए जिससे हम लोग सब धनों को प्राप्त होकर सदा सुखी हों ॥ ९ ॥

त्वम॑ग्ने॒ प्रम॑ति॒स्त्वं पि॒तासि॑ न॒स्त्वं व॑य॒स्कृत्तव॑ जा॒मयो॑ व॒यम् ।

सं त्वा॒ रायः॑ श॒तिनः॒ सं स॑ह॒स्रिणः॑ सु॒वीरं॑ यन्ति व्रत॒पाम॑दाभ्य ॥ १० ॥

पदार्थ —हे (**अदाभ्य**) उत्तम कर्मयुक्त (**अग्ने**) यथायोग्य रचना कर्म जाननेवाले सभाध्यक्ष ! (**प्रमति**) अत्यन्त मान को प्राप्त हुए (**त्वम्**) समस्त सुख के प्रकट करनेहारे आप (**न**) हम लोगों के (**पिता**) पालनेवाले तथा (**त्वम्**) आयु के बढ़ानेहारे आप हम लोगों को (**वय कृत**) बुढ़ापे तक विद्या सुख में आयु व्यतीत करानेहारे हैं (**तव**) मुझ उत्पन्न करने वाले आपकी कृपा से हम लोग (**जामय**) ज्ञानवान् संतान युक्त हों, दयायुक्त (**त्वम्**) आप वैसा प्रबन्ध कीजिए और जैसे (**शतिन**) सैकड़ों वा (**सहस्रिण**) हजारों प्रशंसित पदार्थविद्या वा कर्म-युक्त विद्वान् लोग (**व्रतपाम्**) सत्य पालन आदि (**सुवीरम्**) अच्छे-अच्छे वीर युक्त आपको प्राप्त होकर (**राय**) धन को (**सम्, यन्ति**) अच्छी प्रकार प्राप्त होते हैं वैसे आपका आश्रय किये हुए हम लोग भी उन धनों को प्राप्त होवें ॥ १० ॥

भावार्थ -जैसे पिता सन्तानों द्वारा मान और सत्कार करने के योग्य है वैसे प्रजजनों द्वारा सभापति राजा है ॥ १० ॥

फिर वह कैसा है और क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है -

त्वाम॑ग्ने प्रथ॒मम॒ायुमा॒यवे॑ दे॒वा अ॑कृण्व॒न्नहु॑षस्य वि॒श्पति॑म् ।

इळा॑मकृण्व॒न्मनु॑षस्य॒ शास॑नीं पि॒तुर्यत्पु॒त्रो मम॑कस्य॒ जाय॑ते ॥ ११ ॥

पदार्थ —हे (**अग्ने**) अमृतस्वरूप सभापते ! तू जैसे (**देवा**) विद्वान् लोग (**शासनीम्**) सत्यासत्य के निर्णय का निमित्त (**इळाम्**) चार वेदों की वाणी को (**अकृण्वन्**) करें। (**नहुषस्य**) मनुष्य (**आयवे**) विशेष ज्ञान के लिए (**शास-नीम्**) जिससे सब विद्या और धर्माचार युक्त नीति से उसको ग्रहण करके (**प्रथमम्**) अनादिस्वरूप जिस न्याय से प्रजा योग्य (**आयुम्**) प्राप्त होवे (**विश्पतिम्**) प्रजा, पुत्र आदिकों के रक्षा करनेवाले सभापति राजा को चारों वेदों की वाणी व सत्य व्यवस्था को (**अकृण्वन्**) प्रकाशित करते हैं वैसे ही (**ममकस्य**) ज्ञानवान् (**नहु-षस्य**) मनुष्य की वेदवाणी है उसको आप प्रकाशित कीजिए।

भावार्थ —ईश्वरोक्त व्यवस्था करने वाले वेद शास्त्र और राजनीति के बिना प्रजा पालनहारा सभापति राजा प्रजा नहीं पाल सकता और प्रजा राजा के अंश सन्तान के तुल्य होती है इससे सभापति राजा पुत्र के समान प्रजा को शिक्षा देवे ।११।

अगले मन्त्र में भी सभापति का उपदेश किया है —

त्वं नो॑ अग्ने॒ तव॑ देव पा॒युभि॑र्म॒घोनो॑ रक्ष त॒न्व॑श्च वन्द्य ।

त्रा॒ता तो॒कस्य॒ तन॑ये॒ गवा॑म॒स्यनि॑मेषं॒ रक्ष॑माण॒स्तव॑ व्र॒ते ॥ १२ ॥

पदार्थ —हे (**देव**) सब सुख देने और (**वन्द्य**) स्तुति करने योग्य (**अग्ने**) तथा यथोचित सब की रक्षा करने वाले सभेश्वर ! (**तव**) सर्वाधिपते आपके (**व्रते**) सत्य पालन आदि नियम में प्रवृत्त और (**मघोन**) प्रशसनीय धनयुक्त (**न**) हम लोगों को और हमारे (**तन्व**) शरीरों को (**पायुभि.**) उत्तम रक्षादि व्यवहारों से (**अनिमेषम्**) प्रतिक्षण (**रक्ष**) पालिए (**रक्षमाण**) रक्षा करते हुए आप जो आपके उस नियम में वर्तमान (**तोकस्य**) छोटे-छोटे बालक वा (**गवाम्**) प्राणियों की मन आदि इन्द्रियाँ और गाय, बैल आदि पशु हैं उनके तथा (**अस्य**) सब चराचर जगत् के प्रतिक्षण (**त्राता**) रक्षक अर्थात् अत्यन्त आनन्द देने वाले हूजिए ॥ १२ ॥

भावार्थ सभापति राजा ईश्वर के जो संसार की धारणा और पालना आदि गुण हैं उनके तुल्य उत्तम गुणों से अपने राज्य के नियम में प्रवृत्त जनों की निरन्तर रक्षा करे ॥ १२ ॥

अब अगले मन्त्रों से भौतिक अग्नि गुणयुक्त सभा स्वामी का उपदेश किया है—

त्वम॑ग्ने॒ यज्य॑वे पा॒युरन्त॑रोऽनिष॒ङ्गाय॑ चतुर॒क्ष इ॑ध्यसे ।

यो रा॒तह॑व्योऽवृ॒काय॒ धाय॑से की॒रेश्चि॒न्मन्त्रं॒ मन॑सा व॒नोषि॒ तम् ॥ १३ ॥

पदार्थ —हे सभापते ! तू (**मनसा**) विज्ञान से (**मन्त्रम्**) विचार वा वेद-मन्त्र को सेवन करनेवाले के (**चित्**) सदृश (**रातहव्य**) होम में लेने-देने के योग्य पदार्थों का दाता (**पायु**) पालना का हेतु (**अन्तर**) मध्य में रहने वाला और (**चतुरक्ष**) सेना के अङ्ग अर्थात् हाथी, घोड़े और रथ के आश्रय से युद्ध करने वाले और पैदल योद्धाओं में अच्छी प्रकार चित्त देता हुआ (**अनिषङ्गाय**) जिस पक्षपात रहित न्याययुक्त (**अवृकाय**) चोरी आदि दोष के सर्वथा त्याग और (**धायसे**) उत्तम गुणों के धारण (**यज्यवे**) तथा यज्ञ वा शिल्पविद्या सिद्ध करने वाले मनुष्य के लिए (**इध्यसे**) तेजस्वी होकर अपना प्रताप दिखाता है क्योंकि जिसको (**वनोषि**) सेवन करता है उस (**कीरे**) प्रशंसनीय वचन कहने वाले विद्वान् से विनय को प्राप्त होके प्रजा का पालन किया कर ॥ १३ ॥

भावार्थ -इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे विद्यार्थी लोग अध्यापक अर्थात् पढ़ाने वालों से उत्तम विचार के साथ उत्तम-उत्तम विद्याओं का सेवन करते हैं वैसे तू भी धार्मिक विद्वानों के उपदेश के अनुकूल होके राजधर्म का सेवन करता रह ।१३।

त्वम॑ग्न उरु॒शंसा॑य वा॒घते॑ स्पा॒र्हं यद्रेक्णः॑ पर॒मं व॒नोषि॒ तत् ।

आ॒ध्रस्य॑ चि॒त्प्रम॑तिरुच्यसे पि॒ता प्र पा॒कं

शास्सि॒ प्र दिशो॑ वि॒दुष्ट॑रः ॥ १४ ॥

पदार्थ —हे (**अग्ने**) विज्ञानप्रिय, न्यायकारिन् ! (**यत्**) जिस कारण (**प्रमति**) उत्तम ज्ञानयुक्त (**विदुष्टर**) नाना प्रकार के दुःखों से तारने वाले आप (**उरुशंसाय**) बहुत प्रकार की स्तुति करनेवाले (**वाघते**) ऋत्विक् मनुष्य के लिए (**स्पार्हम्**) चाहने योग्य (**परमम**) अत्युत्तम (**रेक्ण**) धन (**पाकम्**) पवित्र-धर्म और (**दिश**) उत्तम विद्वानों का (**वनोषि**) अच्छे प्रकार चाहते हैं और राज्य को धर्म से (**आध्रस्य**) धारण किये हुए (**पिता**) पिता के (**चित्**) तुल्य सब का (**प्रशासित**) शिक्षा करते हैं (**तत**) इसी से आप सब के माननीय हैं ॥१४॥

भावार्थ इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे पिता अपने सन्तानों को पालता वा उनको धन देता वा शिक्षा आदि करता है वैसे राजा सब प्रजा के धारण करने और सब जीवों को यथायोग्य गति के देने से उनके कर्मों के अनुसार सुखी दुःख देता रहे ॥ १४ ॥

फिर वह क्या करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

त्वम॑ग्ने॒ प्रय॑तदक्षिणं॒ नरं॒ वर्मे॑व स्यू॒तं परि॑ पासि वि॒श्वतः॑ ।

स्वा॒दु॒क्षद्मा॒ यो व॑स॒तौ स्यो॑न॒कृज्जी॑वया॒जं यज॑ते॒ सोप॒मा दि॒वः ॥ १५ ॥

पदार्थ हे (**अग्ने**) सब को अच्छे प्रकार जाननेवाले सभापति ! आप (**वर्मेव**) कवच के समान (**य**) जो (**स्वादुक्षद्मा**) शुद्ध अन्न, जल का भोक्ता (**स्योनकृत्**) सब को सुखकारी मनुष्य (**वसतौ**) निवासदेश में नाना साधन युक्त यज्ञों में (**यजते**) यज्ञ करता है उस (**प्रयतदक्षिणम्**) अच्छे प्रकार विद्या धर्म के उपदेश करने (**जीवयाजम्**) और जीवों को यज्ञ करानेवाले (**स्यूतम्**) अनेक साधनों से कारीगरी में चतुर (**नरम्**) नम्र मनुष्य को (**विश्वत:**) सब प्रकार से

(**परिपासि**) पालते हो (स.) ऐसे धर्मात्मा, परोपकारी, विद्वान् आप (**दिव.**) सूर्य के प्रकाश की (**उपमा**) उपमा पाते हो ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो सब के सुख करने वाले पुरुषार्थी मनुष्य यत्न के साथ यज्ञों को करते हैं वे जैसे सूर्य सब को प्रकाशित करके सुख देता है वैसे ही सब को सुख देने वाले होते हैं । जैसे युद्ध मे प्रवृत्त हुए वीरो को शस्त्रो के घातों से बख्तर बचाता है वैसे ही सभापति राजा और राजजन सब धार्मिक सज्जनो की सब दुःखों से रक्षा करते रहें ॥ १५ ॥

यह पहले अष्टक के दूसरे अध्याय में चौतीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात् ।
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भृमिरस्यृषिकृन्मर्त्यानाम् ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) सब को सहने वाले सर्वोत्तम विद्वन् ! जो आप (**सोम्यानाम्**) शान्त्यादि गुणयुक्त (**मर्त्यानाम्**) मनुष्यों को (**आपि**) प्रीति से प्राप्त (**पिता**) और सर्वपालक (**प्रमति**) उत्तम विद्यायुक्त (**भृमि**) नित्य भ्रमण करने और (**ऋषिकृत्**) वेदार्थ का बोध कराने वाले है तथा (**न**) हमारी (**इमाम्**) इस (**शरणिम्**) विज्ञानाशक अविद्या को (**मीमृष**) अत्यन्त दूर करानेहारे है वे आप और हम (**यम्**) जिसको हम लोग (**दूरात**) दूर से उल्लंघन करके (**इमम्**) वक्ष्यमाण (**अध्वानम्**) धर्ममार्ग के (**अगाम**) सम्मुख आवें उसकी सेवा करें ॥ १६ ॥

भावार्थ—जब मनुष्य सत्य भाव से अच्छे मार्ग को प्राप्त करना चाहते है, तब जगदीश्वर उनको उत्तम ज्ञान का प्रकाश करने वाले विद्वानो का सग करने के लिए प्रीति और जिज्ञासा अर्थात् उनके उपदेश के जानने की इच्छा उत्पन्न करता है इससे वे श्रद्धालु हुए अत्यन्त दूर भी बसने वाले सत्यवादी योगी विद्वानो के समीप जा उनका सगकर अभीष्ट बोध प्राप्त कर धर्मात्मा होते है ॥ १६ ॥

मनुष्वदग्ने अङ्गिरस्वदङ्गिरो ययातिवत्सदने पूर्ववच्छुचे ।
अच्छ याह्या वहा दैव्यं जनमा सादय बर्हिषि यक्षि च प्रियम् ॥१७॥

पदार्थ—हे (**शुचे**) पवित्र (**अङ्गिर**) प्राण के समान धारण करने वाले (**अग्ने**) विद्याओ से सर्वत्र व्याप्त सभाध्यक्ष ! आप (**मनुष्वत्**) मनुष्यो के जाने-आने के समान वा (**अङ्गिरस्वत्**) शरीर मे व्याप्त प्राण वायु के सदृश राज्य कर्म मे व्याप्त पुरुष के तुल्य वा (**ययातिवत्**) जैसे पुरुष यत्न के साथ कामों को सिद्ध करने-कराते हैं वा (**पूर्ववत्**) जैसे उत्तम प्रतिष्ठा वाले विद्वान् विद्या देने वाले हैं वैसे (**प्रियम्**) सब को प्रसन्न करनेहारे (**दैव्यम्**) विद्वानो मे अति चतुर (**जनम्**) मनुष्य को (**अच्छ**) अच्छे प्रकार (**आयाहि**) प्राप्त हूजिए उस मनुष्य को विद्या और धर्म की ओर (**वह**) प्राप्त कीजिए तथा (**बर्हिषि, सदने**) उत्तम मोक्ष के साधन मे (**आसादय**) स्थित और (**यक्षि**) वहाँ उसको प्रतिष्ठित कीजिए ।१७।

भावार्थ—जिन मनुष्यों ने विद्या, धर्मानुष्ठान और प्रेम से सभापति की सेवा की है वह उनका उत्तम-उत्तम धर्म के कामो मे लगाता है ॥ १७ ॥

फिर वह कैसा है इस का प्रकाश अगले मन्त्र मे किया है—

एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व शक्ती वा यत्ते चकृमा विदा वा ।
उत प्र णेष्यभि वस्यो अस्मान्त्सं नः सृज सुमत्या वाजवत्या ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) सर्वोत्कृष्ट विद्वन् ! आप (**ब्रह्मणा**) वेदविद्या (**वाजवत्या**) उत्तम अन्न, युद्ध और विज्ञान वा (**शक्ति**) आत्म सामर्थ्य (**सुमत्या**) श्रेष्ठ विचार (**न**) हमारे लिए (**वस्य**) अत्यन्त धन (**अभिसृज**) सब प्रकार से प्रकट कीजिए (**उत**) और आप (**विदा**) अपने उत्तम ज्ञान से (**वावृधस्व**) नित्य उन्नति को प्राप्त हूजिए (**ते**) आपका (**यत्**) जो प्रेम है वह हम लोग (**चकृम**) करें और आप (**अस्मान्**) हम लोगो को (**प्रणेषि**) श्रेष्ठ बोध को प्राप्त कीजिए ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य वेद की रीति से धर्मयुक्त व्यवहार का करते है वे ज्ञानवान् और श्रेष्ठमति वाले होकर जिस उत्तम विद्वान् की सेवा करते हैं, वह उन को श्रेष्ठ सामर्थ्य और उत्तम विद्यासयुक्त करता है ॥ १८ ॥

इस सूक्त मे सेनापति आदि के अनुयोगी अर्थों के प्रकाश से पिछले सूक्त के साथ इस सूक्त की सगति जाननी चाहिए ।

यह पहले अष्टक में दूसरे अध्याय का पैंतीसवां वर्ग वा पहले मण्डल के सातवें अनुवाक मे इकतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥ ३१ ॥

卐

अथ पञ्चदशर्चस्य द्वात्रिंशस्य सूक्तस्याङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषि. । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

अब बत्तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है । उसके पहले मन्त्र में इन्द्र शब्द से सूर्यलोक की उपमा करके राजा के गुणों का प्रकाश किया है—

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोग जैसे (**इन्द्रस्य**) सूर्य्य के (**यानि**) जिन (**प्रथमानि**) प्रसिद्ध (**वीर्याणि**) पराक्रमो को कहो उनको मैं भी (**नु, प्रवोचम्**) शीघ्र कहूँ जैसे वह (**वज्री**) सब पदार्थों के छेदन करने वाले किरणो से युक्त सूर्य्य (**अहिम्**) मेघ को (**अहन्**) हनन करके वर्षाता, उस मेघ के अवयव रूप (**अप**) जलो को नीचे-ऊपर (**चकार**) करता उसको (**ततर्द**) पृथिवी पर गिराता और (**पर्वतानाम्**) उन मेघों के सकाश से (**प्रवक्षणा**) नदियो को छिन्न-भिन्न करके बहाता है वैसे मैं शत्रुओ को मारूँ उनको इधर-उधर फेंकूँ और उनको तथा किला आदि स्थानो से युद्ध करने के लिए आई सेनाओ को छिन्न-भिन्न करूँ ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । ईश्वर का उत्पन्न किया हुआ यह अग्निमय सूर्यलोक जैसे अपने स्वाभाविक गुणों से युक्त अन्नादि, प्रकाश, आकर्षण, दाह, छेदन और वर्षा की उत्पत्ति के निमित्त कामो को दिन-रात करता है वैसे जो प्रजा के पालन मे तत्पर राजपुरुष है उनको भी नित्य प्रति करना चाहिए ॥ १ ॥

फिर वह सूर्य्य तथा सभापति क्या करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥ २ ॥

पदार्थ—जैसे यह (**त्वष्टा**) सूर्य्यलोक (**पर्वते**) मेघमण्डल मे (**शिश्रियाणम्**) रहने वाले (**स्वर्य्यम्**) गर्जनशील (**अहिम्**) मेघ का (**अहन्**) मारता है (**अस्मै**) इस मेघ के लिए (**वज्रम्**) काटने के स्वभाव वाले किरणों को (**ततक्ष**) छोड़ता है । इस कर्म से (**वाश्रा धेनव इव**) बछड़ो को प्रीतिपूर्वक चाहती हुई गौओ के समान (**स्यन्दमानाः**) चलते हुए (**अञ्ज**) प्रकट (**आप**) जल (**समुद्रम्**) जल से पूर्ण समुद्र को (**अवजग्मु**) नदियो के द्वारा जाते हैं वैसे ही सभाध्यक्ष राजा का चाहिए कि किला मे रहने वाले दुष्ट शत्रु को मारे इस शत्रु के लिए उत्तम शस्त्र छोड़े इस प्रकार उसके बछड़ों को चाहने वाली गौओ के समान चलते हुए प्रसिद्ध प्राणो को अन्तरिक्ष मे प्राप्त करे, उन कण्टक शत्रुओ को मारके प्रजा को सुख देवे ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य अपनी किरणो से अन्तरिक्ष में रहने वाले मेघ को भूमि पर गिराकर जगत् को जिलाता है वैसे ही सेनापति किला, पर्वत आदि में रहने वाले शत्रु को भी पृथिवी मे गिरा के प्रजा का निरन्तर सुखी करता है ॥ २ ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—

वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य ।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—जो (**वृषायमाण**) वीर्य्यवृद्धि का आचरण करता हुआ सूर्य्यलोक मेघ के समान (**सुतस्य**) इस उत्पन्न हुए जगत् के (**त्रिकद्रुकेषु**) जिनकी उत्पत्ति, स्थिरता और विनाश ये तीन कला व्यवहार मे वर्त्तने वाले है उन पदार्थों मे (**सोमम्**) उत्पन्न हुए रस को (**अवृणीत**) स्वीकार करता (**अपिबत्**) उसको अपने ताप मे भर लेता और (**मघवा**) यह बहुत सा धन दिलाने वाला सूर्य (**सायकम्**) शस्त्ररूप (**वज्रम्**) किरण समूह को (**आदत्त**) लेने हुए के समान (**अहीनाम्**) मेघो मे (**प्रथमजाम्**) प्रथम प्रकट हुए (**एनम्**) इस मेघ को (**अहन्**) मारता है । वैसे गुण, कर्म, स्वभावयुक्त पुरुष सेनापति का अधिकार पाने योग्य होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे बैल-वीर्य को बढ़ा, बलवान् हो सुखी होता है वैसे सेनापति दूध आदि पीकर बलवान् होवे और जैसे सूर्य्य रस को पी अच्छे प्रकार बरसाता है वैसे शत्रुओ के बल को खींच अपना बल बढ़ाके प्रजा मे सुखो की वृष्टि करे ॥ ३ ॥

फिर वह किस प्रकार का है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—

यदिन्द्राहन्प्रथमजामहीनामान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः ।
आत्सूर्यं जनयन्द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किलाऽविवित्से ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे सेनापते ! जैसे (**इन्द्र**) सब पदार्थों को विदीर्ण अर्थात् छिन्न-भिन्न करने वाला सूर्य्यलोक (**अहीनाम्**) छोटे-छोटे मेघो के मध्य मे (**प्रथमजाम्**) संसार के उत्पन्न होने के समय में उत्पन्न हुए मेघ को (**अहन्**) हनन करता है । जिनकी (**मायिनाम्**) सूर्य्य के प्रकाश का आवरण करने वाली बड़ी-बड़ी घटा उठती हैं उन मेघो की (**माया**) उक्त अन्धकार रूप घटाओ को (**प्रामिना.**) अच्छे प्रकार हरता है (**तादीत्ना**) तब (**यत्**) जिस (**सूर्य्यम्**) किरणसमूह (**उषसम्**) प्रातःकाल और (**द्याम्**) अपने प्रकाश को (**प्रजनयन्**) प्रकट करता हुआ दिन उत्पन्न करता है (**न**) वैसे ही तू शत्रुओ को (**विवित्से**) प्राप्त हुआ उनकी छल-कपट आदि मायाओ का हनन कर और उस समय सूर्य्यरूप न्याय का प्रसिद्ध करके सत्य विद्या के व्यवहाररूप सूर्य्य का प्रकाश किया कर ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे कोई राजपुरुष अपने वैरियो के बल और छल का निवारण कर और उनको जीतके अपने राज्य मे सुख तथा न्याय का प्रकाश करता है वैसे ही सूर्य भी मेघ की घटाओ की घनता और अपने प्रकाश के ढाँपने वाले मेघ को निवारण कर अपनी किरणो को फैला मेघ को छिन्न-भिन्न और अन्धकार को दूर कर अपनी दीप्ति को प्रसिद्ध करता है ॥ ४ ॥

फिर वह सूर्य्य उस मेघ को कैसा करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अहन्वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।

स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाहिः शयत उपपृक् पृथिव्याः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे महावीर सेनापते ! आप जैसे (इन्द्र) सूर्य वा बिजुली (महता) अतिविस्तार युक्त (कुलिशेन) अत्यन्त धारवाली तलवार रूप (वज्रेण) पदार्थों के छिन्न-भिन्न करनेवाले अतिताप युक्त किरणसमूह से (विवृक्णा) कटे हुए (स्कन्धांसीव) कन्धों के समान (व्यंसम्) छिन्न-भिन्न अङ्ग जैसे हों वैसे (वृत्रतरम्) अत्यन्त सघन (वृत्रम्) मेघ को (अहन्) मारता है अर्थात् छिन्न-भिन्न कर पृथिवी पर बरसाता है और वह (वधेन) सूर्य्य के गुणो से मृतकवत् होकर (अहि) मेघ (पृथिव्या) पृथिवी के (उपपृक्) ऊपर (शयते) सोता है वैसे ही वैरियो का हनन कीजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमा और उपमालङ्कार है। जैसे कोई अति-तीक्ष्ण तलवार आदि शस्त्रों से शत्रुओं के शरीर को छेदन कर भूमि मे गिरा देता और वह मरा हुआ शत्रु पृथिवी पर सो जाता है वैसे ही वह सूर्य्य और बिजुली मेघ के अङ्गों को छेदन कर भूमि मे गिरा देती और वह भूमि में गिरा हुआ सोते के समान दीख पड़ता है ॥ ५ ॥

फिर वे कैसे युद्ध करते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम् ।

नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥ ६ ॥

पदार्थ—(दुर्मद) दुष्ट अभिमानी (अयोद्धेव) युद्ध की इच्छा न करने वाले पुरुष के समान मेघ (ऋजीषम्) पदार्थों के रस को इकट्ठे करने और (तुविबाधम्) बहुत शत्रुओं को मारनेहारे के तुल्य (महावीरम्) अत्यन्त बलयुक्त शूरवीर के समान सूर्य्यलोक को (आजुह्वे) ईर्ष्या से पुकारते हुए के सदृश वर्त्तता है जब उसको रोते हुए के सदृश सूर्य ने मारा तब वह मारा हुआ (इन्द्रशत्रुः) सूर्य्य का शत्रु मेघ (पिपिषे) सूर्य से पिस जाता है और वह (अस्य) इस सूर्य की (वधानाम्) ताड़नाओं के (समृतिम्) समूह को (नातारीत्) सह नही सकता और (हि) निश्चय है कि इस मेघ के शरीर से उत्पन्न हुई (रुजानाः) नदियाँ पर्वत और पृथिवी के बड़े-बड़े टीलों को छिन्न-भिन्न करती हुई बहती हैं वैसे ही सेनाओं में प्रकाशमान सेनाध्यक्ष शत्रुओं मे चेष्टा किया करे ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। जैसे मेघ ससार के प्रकाश के लिए सूर्य्य के वर्त्तमान प्रकाश को अकस्मात् पृथिवी से उठा और रोककर उसके साथ युद्ध करते हुए के समान वर्त्तता है तो भी वह मेघ सूर्य के सामर्थ्य का पार नही पाता। जब यह सूर्य मेघ को मारकर भूमि में गिरा देता है तब उसके शरीर के अवयवो से निकले हुए जलो से नदी पूर्ण होकर समुद्र मे जा मिलती है वैसे राजा को उचित है कि शत्रुओ को मारके निर्मूल करता रहे ॥ ६ ॥

फिर वह मेघ कैसा होकर पृथिवी पर गिरता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान ।

वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन् पुरुत्रा वृत्रो अशयद् व्यस्तः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे सब सेनाओ के स्वामी ! आप (वृत्र) जैसे मेघ (वृष्ण) वीर्य सींचने वाले पुरुष की (प्रतिमानम्) समानता को (बुभूषन्) चाहते हुए (वध्रि) निर्बल, नपुसक के समान जिस (इन्द्रम्) सूर्यलोक के प्रति (अपृतन्यत्) युद्ध के लिए इच्छा करने वाले के समान (अस्य) इस मेघ के (सानौ, अधि) पर्वत के शिखरो के समान बद्दलों पर सूर्य्यलोक (वज्रम्) अपने किरण रूपी वज्र को (आजघान) छोड़ता है उस से मरा हुआ मेघ (अपादहस्त) पैर-हाथ कटे हुए मनुष्य के तुल्य (व्यस्त) अनेक प्रकार फैला पड़ा हुआ (पुरुत्रा) अनेक स्थानो में (अशयत्) सोता सा मालूम देता है वैसे इस प्रकार के शत्रुओ को छिन्न-भिन्न कर सदा जीता कीजिए ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे कोई निर्बल पुरुष बड़े बलवान् के साथ युद्ध चाहें वैसे ही वृत्र मेघ सूर्य के साथ प्रवृत्त होता है और जैसे अन्त मे वह मेघ सूर्य से छिन्न-भिन्न होकर पराजित हुए के समान पृथिवी पर गिर पड़ता है वैसे जो धर्मात्मा, बलवान् पुरुष के सङ्ग लड़ाई को प्रवृत्त होता है उसकी भी ऐसी ही दशा होती है ॥ ७ ॥

फिर वे दोनों परस्पर क्या करते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—

नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः ।

याश्चिद्वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव ॥ ८ ॥

पदार्थ—भो राजाधिराज ! आप जैसे यह (वृत्र.) मेघ (महिना) अपनी महिमा से (पर्यतिष्ठत्) सब ओर से एकता को प्राप्त और (अहि) सूर्य के ताप से मारा हुआ (तासाम्) उन जलो के बीच मे स्थित (पत्सुतःशी) पादों के तले सोनेवाला-सा (बभूव) होता है उस मेघ का शरीर (मनः) मननशील अन्तः-करण के सदृश (रुहाणा) उत्पन्न होकर चलने वाली नदी जो अन्तरिक्ष में रहने वाले (चित्) ही (याः) जो अन्तरिक्ष में वा भूमि में रहने वाले (आपः) जल (भिन्नम्) विदीर्ण तट वाले (शयानम्) सोते हुए के (न) तुल्य (नदम्) महाप्रवाहयुक्त नद को (अति) जाते और वे जल (न, अमुया) इस पृथिवी के साथ प्राप्त होते हैं वैसे सब शत्रुओ को बाँधके वश में कीजिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा और उपमालङ्कार है। जितना जल सूर्य से छिन्न-भिन्न होकर पवन के साथ मेघमण्डल को जाता है वह सब जल मेघरूप ही हो जाता है। जब मेघ के जल का समूह अत्यन्त बढ़ता है तब मेघ घनी-घनी घटाओं से घुमड़-घुमड़के सूर्य के प्रकाश को ढाँप लेता है। उसको सूर्य अपनी किरणों से जब छिन्न-भिन्न करता है तब इधर-उधर आये हुए जल बड़े-बड़े नद, ताल और समुद्र आदि स्थानो को प्राप्त होकर सोते हैं वह मेघ भी पृथिवी को प्राप्त होकर जहाँ-तहाँ सोता है अर्थात् मनुष्य आदि प्राणियो के पैरो में सोता-सा मालूम होता है, वैसे अधार्मिक मनुष्य भी प्रथम बढ़के शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

फिर वह कैसा होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

नीचावया अभवद्वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार ।

उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे सभापते ! (वृत्रपुत्रा) जिसका मेघ लड़के के समान है वह मेघ की माता (नीचावयाः) निकृष्ट उमर को प्राप्त हुई। (सूः) पृथिवी और (उत्तरा) ऊपरली अन्तरिक्ष नामवाली (अभवत्) है (अस्या) इसके पुत्र मेघ के (वध) वध अर्थात् ताड़न का (इन्द्र) सूर्य (अवजभार) करता है इससे इसका (नीचावयाः) निकृष्ट उमर को प्राप्त हुआ (पुत्र.) पुत्र मेघ (अधरः) नीचे (आसीत्) गिर पड़ता है और जो (दानुः) सब पदार्थों की देने वाली भूमि जैसे (सहवत्सा) बछड़े के साथ (धेनुः) गाय हो (न) वैसे अपने पुत्र के साथ (शये) सोती-सी दीखती है वैसे आप अपने शत्रुओं को भूमि के साथ सोते के सदृश किया कीजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। मेघ की दो माता हैं एक पृथिवी दूसरी अन्तरिक्ष अर्थात् इन्ही दोनो से मेघ उत्पन्न होता है। जैसे कोई गाय अपने बछड़े के साथ रहती है वैसे ही जब जल का समूह मेघ अन्तरिक्ष में जाकर ठहरता है तब उसकी माता अन्तरिक्ष अपने पुत्र मेघ के साथ और जब वह वर्षा से भूमि को आता है तब भूमि उस अपने पुत्र मेघ के साथ सोती-सी दीखती है। इस मेघ को उत्पन्न करने वाला सूर्य है इसलिये वह पिता के स्थान मे समझा जाता है। उस सूर्य की भूमि वा अन्तरिक्ष दो स्त्री के समान हैं। वह पदार्थों से जल को वायु के द्वारा खींच-कर जब अन्तरिक्ष मे फेंकता है तब वह पुत्र—मेघ प्रमत्त के सदृश बढ़कर उठता और सूर्य के प्रकाश को ढक लेता है तब सूर्य उसको मारकर भूमि मे गिरा देता अर्थात् भूमि मे वीर्य छोड़ने के समान जल पहुँचाता है। इस प्रकार यह मेघ कभी ऊपर, कभी नीचे होता है वैसे ही राजपुरुषों को उचित है कि कंटकरूप शत्रुओ को इधर-उधर निर्जीव करके प्रजा का पालन करें ॥ ९ ॥

फिर उस मेघ का शरीर कैसा और कहाँ स्थित होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम् ।

वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घन्तम आशयदिन्द्रशत्रुः ॥ १० ॥

पदार्थ—हे सभास्वामिन् ! तुम को चाहिए कि जिस (वृत्रस्य) मेघ के (अनिवेशनानाम्) जिनको स्थिरता नही होती (अतिष्ठन्तीनाम्) जो सदा बहने वाले हैं उन जलो के बीच (निण्यम्) निश्चय करके स्थिर (शरीरम्) जिसका छेदन होता है ऐसा शरीर है वह (काष्ठानाम्) सब दिशाओ के बीच (निहितम्) स्थित होता है। तथा जिसके शरीर रूप (अप) जल (दीर्घम्) बड़े (तमः) अन्धकार रूप घटाओ में (विचरन्ति) इधर-उधर जाते हैं वह (इन्द्रशत्रु) मेघ उन जलो में इकट्ठा वा अलग-अलग, छोटा-छोटा बद्दल रूप होके (आशयत्) सोता है। वैसे ही प्रजा के द्रोही शत्रुओ को उनके सहायियो के सहित बाँधके सब दिशाओं में सुलाना चाहिए ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सभापति को योग्य है कि जैसे यह मेघ अन्तरिक्ष में ठहरने वाले जलो में सूक्ष्मता के कारण नहीं दीखता, फिर जब घनाकार वर्षा के द्वारा जल का समुदाय रूप होता है तब वह देखने में आता है और जैसे ये जल एक क्षण भी स्थित नही होते हैं किन्तु सर्वदा ऊपर जाते वा नीचे आते रहते हैं और जो मेघ के शरीर रूप हैं वे अन्तरिक्ष में रहते हुए अति सूक्ष्म होने से नही दीख पड़ते, वैसे बड़े-बड़े बल वाले शत्रुओ को भी अल्प बल वाले करके वशीभूत किया करे ॥ १० ॥

फिर सूर्य उस मेघ के प्रति क्या करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः ।

अपां बिलमपिहितं यदासीद्वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे सभापते ! (पणिनेव) गाय आदि पशुओं के पालने और (गावः) गौओ को यथायोग्य स्थानो मे रोकने वाले के समान (दासपत्नीः) अति बल देने वाला मेघ जिनका पति के समान और (अहिगोपाः) रक्षा करने वाला है वे (निरुद्धा) रोके हुए (आपः) जल (अतिष्ठन्) स्थित होते हैं उन (अपाम्) जलों का (यत्) जो (बिलम्) गर्त अर्थात् एक गढ़े के समान स्थान (अपिहि

तत्) द्वीप-सा रक्खा (आसीत्) है उस (वृत्रम्) मेघ को सूर्य (जघन्वान्) मारता है मारकर (तत्) उस जल की (अपववार) रुकावट तोड़ देता है वैसे आप शत्रुओं को दुष्टाचार से रोकके न्याय अर्थात् धर्ममार्ग को प्रकाशित रखिए ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे गोपाल अपनी गौओं को अपने अनुकूल स्थानों में रोक रखता और फिर उस स्थान का दरवाजा खोल के निकाल देता है, और जैसे मेघ अपने मण्डल में जलों का द्वार रोकके उन जलों को वश में रखता है वैसे सूर्य उस मेघ को ताड़ना देता और जल की रुकावट को तोड़के अच्छे प्रकार उसे बरसाता है वैसे ही राजपुरुषों को चाहिए कि शत्रुओं को रोककर प्रजा का यथायोग्य पालन किया करें ॥ ११ ॥

फिर वे दोनों परस्पर क्या करते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्त्वा प्रत्यहन्देव एकः ।
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (शूर) वीर के तुल्य भयरहित (इन्द्र) शत्रुओं को विदीर्ण करनेहारे सेना के स्वामी ! आप जैसे (यत्) जो (अश्व्यः) वेग आदि गुणों में निपुण (वारः) स्वीकार करने योग्य (एकः) असहाय और (देवः) उत्तम-उत्तम दानादिगुण वाला मेघ सूर्य के साथ युद्ध करनेहारा (अभवः) होता है (सृके) किरणरूपी वज्र में अपने बद्दलों के जाल को (प्रत्यहन्) छोड़ता है अर्थात् किरणों को उस घन जाल से रोकता है सूर्य उस मेघ को जीतकर (गाः) उससे अपनी किरणों को (अजयः) अलग करता अर्थात् एक देश से दूसरे देश में पहुँचाता और (सोमम्) पदार्थों के रस को (अजयः) जीतता है इस प्रकार करता हुआ वह सूर्यलोक जलों को (सर्तवे) ऊपर-नीचे जाने-आने के लिए सब लोकों में स्थिर होने वाले (सिन्धून्) बड़े-बड़े जलाशय, नदी, कुँआ और साधारण तालाब ये चार जल के स्थान पृथिवी पर और समीप, बीच और दूर देश में रहने वाले तीन जलाशय इन (सप्त) सात जलाशयों को (अवासृजः) उत्पन्न करता है वैसे शत्रुओं में चेष्टा करते हो (तत्) इसी कारण (त्वा) आपको युद्धों में हम लोग अधिष्ठाता करते हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे यह मेघ सूर्य के प्रकाश को ढाँप देता है तब सूर्य अपनी किरणों से उसको छिन्न-भिन्न कर भूमि में जल को वर्षाता है। इसी से यह सूर्य उस जल समुदाय को लाने के लिए समुद्रों को रचने का हेतु होता है वैसे प्रजा का रक्षक राजा शत्रुओं को शीघ्र शस्त्रों से काट और नीच गति को प्राप्त कराके प्रजा को धर्मयुक्त मार्ग में चलाने का निमित्त होवे ॥ १२ ॥

इन दोनों के इस युद्ध में किस का विजय होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद्ध्रादुनिं च ।
इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे सेनापते ! आप जैसे मेघ ने (अस्मै) इस सूर्यलोक के लिए छोड़ी हुई (विद्युत्) बिजुली (न, सिषेध) इसकी कुछ रुकावट नहीं कर सकती (तन्यतुः) उस मेघ की गर्जना भी उस सूर्य को (न, सिषेध) नहीं रोक सकती और वह (अहिः) मेघ (याम्) जिस (ह्रादुनिम्) गर्जना आदि गुणवाली (मिहम्) वरसा को (च) भी (अकिरत्) छोड़ता है वह भी सूर्य की (न, सिषेध) हानि नहीं कर सकती है यह (इन्द्रः) सूर्यलोक अपनी किरणरूपी पूर्ण सेना से युक्त (उत) और अपनी (अपरीभ्यः) अधूरी सेना से युक्त (अहिः) मेघ (च) भी ये दोनों (युयुधाते) परस्पर युद्ध किया करते हैं (यत्) अधिक बलयुक्त होने के कारण (मघवा) अत्यन्त प्रकाशवान् सूर्यलोक उस मेघ को (च) भी (विजिग्ये) अच्छे प्रकार जीत लेता है वैसे ही धर्मयुक्त पूर्ण बल सम्पादन करके शत्रुओं को विजय कीजिए ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजपुरुषों को योग्य है कि जैसे वृत्र अर्थात् मेघ के जितने बिजली आदि युद्ध के साधन हैं, वे सब सूर्य के आगे क्षुद्र अर्थात् सब प्रकार निर्बल और थोड़े हैं, और सूर्य के युद्धसाधन उसकी अपेक्षा से बड़े-बड़े हैं, इसी से सर्वदा सूर्य ही का विजय और मेघ का पराजय होता रहता है वैसे ही धर्म से शत्रुओं को जीतें ॥ १३ ॥

फिर उन दोनों में परस्पर क्या होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत्ते जघ्नुषो भीरगच्छत् ।
नव च यन्नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे इन्द्र ! योद्धा जिस युद्ध व्यवहार में शत्रुओं का (जघ्नुषः) हनने वाले (ते) आपका प्रभाव (अहेः) मेघ के गर्जन आदि शब्दों से प्राणियों को (यत्) जो (भीः) भय (अगच्छत्) प्राप्त होता है विद्वान् लोग उस मेघ के (यातारम्) देश-देशान्तर में पहुँचाने वाले सूर्य को छोड़ और (कम्) किसको देखें ? सूर्य से ताड़ना को प्राप्त हुआ मेघ (भीतः) डरे हुए (श्येनः, न) बाज के समान (च) भूमि में गिरके (नवनवतिम्) अनेक (स्रवन्तीः) जल बहाने वाले नदी वा नाड़ियों को पूरित करता है (यत्) जिस कारण सूर्य अपने प्रकाश आकर्षण और छेदन आदि गुणों से बड़ा है इसी से (रजांसि) सब लोकों को (अतरः) तरता अर्थात् प्रकाशित करता है इसके समान आप हैं वे आप (हृदि) अपने मन में जिसको शत्रु (अपश्यः) देखो उसी को मारा करो ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। राजसेना के वीर पुरुषों को योग्य है कि जैसे किसी से पीड़ा को पाकर डरा हुआ श्येन पक्षी इधर-उधर, गिरता-पड़ता उड़ता है वा सूर्य से अनेक प्रकार की ताड़ना और आकर्षण को प्राप्त होकर मेघ इधर-उधर देश-देशान्तर में अनेक नदी वा नहरों को पूर्ण करता है इस मेघ की उत्पत्ति का सूर्य से भिन्न कोई निमित्त नहीं है। और जैसे अन्धकार में प्राणियों को भय होता है वैसे ही मेघ के बिजली और गर्जना आदि गुणों से भय होता है उस भय का दूर करने वाला भी सूर्य ही है तथा सब लोकों के व्यवहारों का अपने प्रकाश और आकर्षण आदि गुणों से चलाने वाला है वैसे ही दुष्ट शत्रुओं को जीता करें। इस मन्त्र में (नवनवतिम्) यह पद संख्या का उपलक्षण होने से असंख्यात अर्थ में है ॥ १४ ॥

फिर उक्त सूर्य कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः ।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमिः परि ता बभूव ॥ १५ ॥

पदार्थ—सूर्य्य के समान (वज्रबाहुः) शस्त्रास्त्रयुक्त बाहु (इन्द्रः) दुष्टों का निवारणकर्त्ता (यातः) गमन आदि व्यवहार को वर्त्ताने वाला सभापति (अवसितस्य) निश्चित चराचर जगत् (शमस्य) शान्ति करने वाले मनुष्य आदि प्राणियों (शृङ्गिणः) सींगों वाले गाय आदि पशुओं और (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के बीच (अरान्) पहियों को धारने वाले (नेमिः) धुरी के (न) समान (राजा) प्रकाशमान होकर (ता) उत्तम तथा नीच कर्मों के कर्त्ताओं को सुख-दुःखों को तथा (रजांसि) उक्त लोकों को (परिक्षयति) पहुँचाता और निवास करता है (उ, इत्) वैसे ही (सः) वह सभी के (राजा) न्याय का प्रकाश करने वाला (बभूव) होवे ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार और पूर्व मन्त्र से (रजांसि) इस पद की अनुवृत्ति आती है। राजा को चाहिए कि—जैसे रथ का पहिया धुरियों को चलाता है, और जैसे यह सूर्य चराचर, शान्त-अशान्त संसार में प्रकाशमान होकर सब लोकों को धारण किये हुए उन को अपनी-अपनी कक्षा में चलाता है; सूर्य के बिना अति निकट मूर्तिमान् लोक की धारणा, आकर्षण, प्रकाश और मेघ की वर्षा आदि काम किसी से नहीं हो सकते हैं—वैसे धर्म से प्रजा का पालन किया करे ॥ १५ ॥

इस सूक्त में सूर्य और मेघ के युद्ध वर्णन करने से इस सूक्त की पिछले सूक्त में प्रकाशित किये अग्नि शब्द के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए।

यह पहले अष्टक के दूसरे अध्याय में अड़तीसवां वर्ग और पहिले मण्डल के सातवें अनुवाक में बत्तीसवां सूक्त और दूसरा अध्याय भी समाप्त हुआ ॥ ३२ ॥

卐

अथ पञ्चदशर्चस्य त्रयस्त्रिंशस्य सूक्तस्याङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

१, २, ४, ८, ९, १२, १३ निचृत् त्रिष्टुप्, ३, ६, १०
त्रिष्टुप्, ५, ७, ११ विराट् त्रिष्टुप्, १४, १५, भुरिक्
पङ्क्तिश्छन्दः । पङ्क्तेः पञ्चमः ।
त्रिष्टुभो धैवतः स्वरश्च ॥

अब तेतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है। उसके पहले मन्त्र में इन्द्र शब्द से ईश्वर और सभापति का प्रकाश किया है—

एतायामोप गव्यन्त इन्द्रमस्माकं सु प्रमतिं वावृधाति ।
अनामृणः कुविदादस्य रायो गवां केतं परमावर्जते नः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (गव्यन्तः) अपने आत्मा, गौ आदि पशु और शुद्ध इन्द्रियों की इच्छा करने वाले हम लोग जो (अस्माकम्) हम लोगों और (अस्य) इस जगत् के (कुवित्) अनेक प्रकार के (रायः) उत्तम धनों को (वावृधाति) बढ़ाता और जो (आत्) इसके अनन्तर (नः) हम लोगों के लिए (अनामृणः) हिंसा वैर पक्षपातरहित होकर (गवाम्) मन आदि इन्द्रिय, पृथिवी आदि लोक तथा गौ आदि पशुओं के (परम्) उत्तम (केतम्) ज्ञान को बढ़ाता और अज्ञान का (आवर्जते) नाश करता है उस (सुप्रमतिम्) उत्तम ज्ञानयुक्त (इन्द्रम्) परमेश्वर और न्यायकर्त्ता को (उपायाम) प्राप्त होते हैं वैसे तुम लोग भी (एत) प्राप्त होओ ॥ १ ॥

भावार्थ—यहाँ श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि संसार में अविद्या का नाश तथा विद्या के दान से जो उत्तम-उत्तम धनों को बढ़ाता है, उस परमेश्वर की आज्ञा का पालन और उपासना करके उसी से शरीर तथा आत्मा का बल नित्य बढ़ावें। इसकी सहायता के बिना कोई भी मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी फल प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सकता ॥ १ ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उपेदहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि ।
इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैर्यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन् ॥ २ ॥

पदार्थ—(यः) जो (हव्यः) ग्रहण करने योग्य ईश्वर (स्तोतृभ्यः) अपनी स्तुति करने वालों के लिए धन देने वाला (अस्ति) है उस (अप्रतीतम्) चक्षु आदि इन्द्रियों से अगोचर (धनदाम्) धन देने वाले (इन्द्रम्) परमेश्वर को

(**नमस्यन्**) नमस्कार करता हुआ (**अहम्**) मैं (**न**) जैसे (**जुष्टाम्**) पूर्व काल में सेवन किये हुए (**वसतिम्**) घोंसले को (**श्येन**) बाज पक्षी प्राप्त होता है वैसे (**यामन्**) गतिशील इस संसार में (**उपमेभि**) उपमा देने के योग्य (**अर्कै**) अनेक सूर्य प्रकाशों में (**इत्**) ही (**उपयतामि**) प्राप्त होता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे श्येन अर्थात् वेगवान् पक्षी अपने पहले सेवन किये हुए सुख देने वाले स्थान को स्थानान्तर से चलकर प्राप्त होता है वैसे ही परमेश्वर का नमस्कार करते हुए मनुष्य उसी के बनाये इस संसार के सूर्य्य आदि लोकों के दृष्टान्तों से ईश्वर का निश्चय करके उसी की प्राप्ति करें क्योंकि जितने इस संसार में रचे हुए पदार्थ हैं वे सब रचने वाले का निश्चय कराते हैं और रचने वाले के बिना किसी जड़ पदार्थ की रचना कभी नहीं हो सकती जैसे इस व्यवहार में रचने वाले के बिना कुछ भी पदार्थ नहीं बन सकता वैसे ही ईश्वर की सृष्टि में भी जानना चाहिए। बड़ा आश्चर्य है कि ऐसे निश्चय हो जाने पर भी जो ईश्वर का अनादर करके नास्तिक हो जाते हैं उनको यह बड़ा अज्ञान क्योंकर प्राप्त होता है ॥ २ ॥

अब अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से शूरवीर के गुण प्रकाशित किये हैं—

नि सर्वसेन इषुधीँरसक्त समर्यो गा अजति यस्य वष्टि ।

चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (**अधिप्रवृद्ध**) महोत्तमगुणयुक्त ! (**इन्द्र**) शत्रुओं को विदीर्ण करनेवाले (**सर्वसेन**) जिसके सब सेना (**पणि**) सत्य व्यवहारी (**चोष्कूयमाण**) सब शत्रुओं का भगानेवाले आप (**भूरि**) बहुत (**इषुधीन्**) जिनमें बाण रक्खे जाते हैं उनको धरके जैसे (**अर्य्य**) वैश्य (**गा**) पशुओं को (**समजति**) चलाता और खवाता है वैसे (**न्यसक्त**) शत्रुओं को दृढबन्धनों में बाँध और (**अस्मत्**) हम से (**वामम्**) अकथिकर कर्म का कर्त्ता (**मा भूः**) मत हो जिससे (**यस्य**) आपका प्रताप (**वष्टि**) प्रकाशित हो और आप विजयी हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। राजा को चाहिए कि जैसे वैश्य गौओं का पालन तथा चराकर दुग्धादिकों से व्यवहार सिद्ध करता है और जैसे ईश्वर से उत्पन्न हुए सब लोकों में बड़े सूर्यलोक की किरणें बाण के समान छेदन करनेवाली सब पदार्थों में प्रवेश करके वायु से ऊपर नीचे पहुँचाकर सब पदार्थों को रस सहित बनाकर सुख सिद्ध करती हैं, इसके समान वह भी प्रजा का पालन करे ॥ ३ ॥

अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से उसी के गुणों का उपदेश किया है—

वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र ।

धनोरधि विषुणक्ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्ययुक्त शूरवीर ! एकाकी आप जैसे ईश्वर वा सूर्यलोक (**उपशाकेभि**) सामर्थ्यरूपी कर्मों से (**एकः**) एक ही (**चरन्**) जानता हुआ दुष्टों को मारता है वैसे (**घनेन**) वज्ररूपी शस्त्र से (**दस्युम्**) बल और अन्याय से दूसरे के धन को हरने वाले दुष्ट का (**वधी**) नाश कीजिए और (**विषुणक**) अधर्म से धर्मात्माओं को दुःख देने वालों के नाश करनेवाले आप (**धनो**) धनुष् के (**अधि**) ऊपर बाणों को निकालकर दुष्टों का निवारण करके (**धनिनम्**) धार्मिक धनाढ्य की वृद्धि कीजिए जैसे ईश्वर की निन्दा करने वाले तथा सूर्यलोक के शत्रु मेघावयव (**घनेन**) सामर्थ्य वा किरण समूह से नाश को (**व्यायन्**) प्राप्त होते हैं वैसे (**हि**) निश्चय करके (**ते**) तुम्हारे (**अयज्वान**) यज्ञ का न करने तथा (**सनका**) अधर्म से औरों के पदार्थों का सेवन करने वाले मनुष्य (**प्रेतिम्**) मरण को (**ईयु**) प्राप्त हों वैसा यत्न कीजिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ईश्वर शत्रुओं से रहित है, तथा सूर्यलोक भी मेघ से निवृत्त हो जाता है वैसे ही मनुष्यों को चोर, डाकू वा शत्रुओं को मार और धनवाले धर्मात्माओं की रक्षा करके शत्रुओं से अवश्य रहित होना चाहिए ॥ ४ ॥

अब अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से शूरवीर के काम का उपदेश किया है—

परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्रायज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः ।

प्र यद्दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रताँ अधमो रोदस्योः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (**हरिव**) प्रशंसित सेना आदि के साधन घोड़े, हाथियों से युक्त (**प्रस्थात**) युद्ध में स्थित होने और (**उग्र**) दुष्टों के प्रति तीक्ष्ण व्रत धारण करने वाले (**इन्द्र**) सेनापति (**चित्**) जैसे हरण, आकर्षण गुणयुक्त किरणवान् युद्ध में स्थित होने और दुष्टों को अत्यन्त ताप देने वाला सूर्यलोक (**रोदस्यो**) अन्तरिक्ष और पृथिवी का प्रकाश और आकर्षण करता हुआ मेघ के अवयवों को छिन्न-भिन्न कर उसका निवारण करता है वैसे आप (**यत्**) जो (**अयज्वानः**) यज्ञ के न करने वाले (**यज्वभि**) यज्ञ के करने वालों से (**स्पर्द्धमाना**) ईर्ष्या करते हैं वे जैसे (**शीर्षाः**) अपने शिरों को (**ते**) तुम्हारे सकाश से (**ववृजु**) छोड़ने वाले हों वैसे उन (**अव्रतान्**) सत्याचरण आदि व्रतों से रहित मनुष्यों को (**निरधम**) अच्छे प्रकार दण्ड देकर शिक्षा कीजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सूर्य दिन, पृथिवी और प्रकाश का धारण तथा मेघ रूप अन्धकार का निवारण करके वृष्टि द्वारा सब प्राणियों को सुखयुक्त करता है, वैसे ही मनुष्यों को उत्तम-उत्तम गुणों का धारण, और खोटे गुणों का त्याग, धार्मिकों की रक्षा और अधर्म्मी दुष्ट मनुष्यों को दण्ड देकर विद्या, उत्तम शिक्षा और धर्मोपदेश की वर्षा से सब प्राणियों को सुख देके सत्य के राज्य का प्रचार करना चाहिए ॥ ५ ॥

फिर उसका क्या कार्य है यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अयुयुत्सन्ननवद्यस्य सेनामयातयन्त क्षितयो नवग्वाः ।

वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (**नवग्वा**) नवीन-नवीन शिक्षा वा विद्या के प्राप्त करने (**वृषायुध**) अति प्रबल शत्रुओं के साथ युद्ध करने (**चितयन्तः**) युद्धविद्या से युक्त (**क्षितय**) मनुष्यो ! आप (**अनवद्यस्य**) जिस उत्तम गुणों से प्रशंसनीय सेनाध्यक्ष की (**सेनाम**) सेना को (**अयातयन्त**) उत्तम शिक्षा से यत्नवाली करके शत्रुओं के साथ (**अयुयुत्सन्**) युद्ध की इच्छा करो जिस (**इन्द्रात्**) शूरवीर सेनाध्यक्ष से (**वध्रय**) निर्बल नपुंसकों के (**न**) समान शत्रु लोग (**निरष्टाः**) दूर-दूर भागते हुए (**प्रवद्भि**) पलायन योग्य मार्गों से (**आयन्**) निकल जावें उस पुरुष को सेनापति कीजिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य शरीर और आत्मबल वाले शूरवीर धार्मिक मनुष्य को सेनाध्यक्ष और सर्वथा उत्तम सेना को सम्पादन करके जब दुष्टों के साथ युद्ध करते हैं तभी जैसे सिंह के समीप से बकरी और मनुष्य के समीप से भीरु मनुष्य और सूर्य के ताप से मेघ के अवयव नष्ट होते हैं वैसे ही उक्त वीरों के समीप से शत्रु लोग सुख से रहित और पीठ दिखाकर इधर-उधर भाग जाते हैं। इससे सब मनुष्यों को इस प्रकार का सामर्थ्य सम्पादन करके राज्य का भोग करना चाहिए ॥ ६ ॥

फिर अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से शूरवीर के काम का उपदेश किया है—

त्वमेतान् रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे ।

अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सेना के ऐश्वर्य से युक्त सेनाध्यक्ष ! (**त्वम्**) आप (**एतान्**) इन दूसरों को पीड़ा देने, दुष्ट कर्म करने वाले (**रुदत**) रोते हुए जीवों (**च**) और (**दस्युम्**) डाकुओं को दण्ड दीजिए तथा अपने भृत्यों को (**जक्षत**) अनेक प्रकार के भोजन आदि देते हुए आनन्द करने वाले मनुष्यों को उनके साथ (**अयोधय**) अच्छे प्रकार युद्ध कराइए और इन धर्म के शत्रुओं को (**रजसः**) पृथिवी लोक के (**पारे**) परभाग में करके (**अवादह**) भस्म कीजिए इसी प्रकार (**दिव**) उत्तम शिक्षा से ईश्वर, धर्म, शिल्प, युद्धविद्या और परोपकार आदि के प्रकाशन से (**उच्चा**) उत्तम-उत्तम कर्म वा सुखों को (**प्रसुन्वत**) सिद्ध करने तथा (**आस्तुवत**) गुणस्तुति करने वालों की (**आव**) रक्षा कीजिए और उनकी (**शसम्**) प्रशंसा को प्राप्त हूजिए ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को युद्ध के लिए अनेक प्रकार के कर्म करने चाहिएँ। पहले अपनी सेना के मनुष्यों की पुष्टि, आनन्द तथा दुष्टों का बल वा उत्साहभङ्ग नित्य करना चाहिए जैसे सूर्य अपनी किरणों से सबको प्रकाशित करके मेघ के अन्धकार निवारण के लिए प्रवृत्त होता है वैसे सब काल में उत्तम कर्म वा गुणों के प्रकाश और दुष्ट कर्म दोषों की निवृत्ति के लिए नित्य यत्न करना चाहिए ॥ ७ ॥

फिर अगले मन्त्रों में इन्द्र के कृत्य का उपदेश किया है—

चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः ।

न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशो अदधात् सूर्येण ॥ ८ ॥

पदार्थ—जैसे जिनको सूर्य्य (**पर्य्यदधात्**) सब ओर से धारण करता है (**ते**) वे मेघ के अवयव बादल सूर्य के प्रकाश को (**स्पशः**) बाँधने वाले (**पृथिव्या**) पृथिवी का (**परीणहम्**) चारों ओर से घेरे हुए के समान (**चक्राणासः**) युद्ध करते हुए (**हिरण्येन**) प्रकाशरूप (**मणिना**) मणि से जैसे (**सूर्य्येण**) सूर्य्य के तेज से (**शुम्भमाना**) शोभायमान (**हिन्वानास**) सुखों का सम्पादन करते हुए (**इन्द्रम्**) सूर्यलोक को (**न**) नहीं (**तितिरु**) उल्लङ्घन कर सकते हैं वैसे ही सेनाध्यक्ष अपने धार्मिक शूरवीर आदि को शत्रुजन जैसे जीतने को समर्थ न हों वैसा प्रयत्न सब लोग किया करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे परमेश्वर ने सूर्य के साथ प्रकाश आकर्षणादि कर्मों का निबन्धन किया है, वैसे ही विद्या, धर्म, न्याय शूरवीरों की सेनादि सामग्री को प्राप्त हुए पुरुष के साथ इस पृथिवी के राज्य का नियोजन किया है ॥ ८ ॥

परि यदिन्द्र रोदसी उभे अबुभोजीर्महिना विश्वतः सीम् ।

अमन्यमानाँ अभि मन्यमानैर्निर्ब्रह्मभिरधमो दस्युमिन्द्र ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्य का योग करने वाले राजन् ! आपको योग्य है कि जैसे सूर्यलोक (**महिना**) अपनी महिमा से (**उभे**) दोनों (**रोदसी**) प्रकाश और भूमि को (**सीम्**) जीवों के सुख की प्राप्ति के लिए (**विश्वतः**) सब प्रकार आकर्षण से पालन करता और (**मन्यमानैः**) ज्ञानसम्पादक (**ब्रह्मभि**) बड़े आकर्षणादि बलयुक्त किरणों से (**दस्युम्**) मेघ और (**अमन्यमानान्**) सूर्य्यप्रकाश के रोकने वाले मेघ के अवयवों को (**निरधमः**) चारों ओर से अपने तापरूप अग्नि से निवारण करता है वैसे सब प्रकार अपनी महिमा से प्राणियों के सुख के लिए (**उभे**) दोनों (**रोदसी**) प्रकाश और पृथिवी का (**पर्य्यबुभोजीः**) भोग कीजिए इसी प्रकार

हे (इन्द्र) राज्य के ऐश्वर्य्य से युक्त सेनाध्यक्ष शूरवीर पुरुष ! आप (मन्यमानैः) शिक्षा की नम्रता से युक्त हठ, दुराग्रह रहित (ब्रह्मभिः) वेद के जानने वाले विद्वानों से (अमन्यमानान्) अमानी, दुराग्रही मनुष्यों को (अभिनिरधमः) साक्षात्कार, शिक्षा कराया कीजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्यलोक सब पृथिव्यादि मूर्तिमान् लोकों का प्रकाश, आकर्षण से धारण और पालन करने वाला होकर मेघ और रात्रि के अन्धकार को निवारण करता है वैसे ही हे मनुष्यो ! आप लोग उत्तम शिक्षित विद्वानों से मूर्खों की मूढ़ता छुड़ा और दुष्ट शत्रुओं को शिक्षा दिलाकर बड़े राज्य के सुख का भोग नित्य कीजिए ॥ ९ ॥

न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुर्न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन् ।

युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्ज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत् ॥ १० ॥

पदार्थ— हे सभा के स्वामी ! आप जैसे इस मेघ के (ये) जो बद्दलादि अवयव (दिवः) सूर्य के प्रकाश और (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष की (अन्तम्) मर्यादा को (नापुः) नहीं प्राप्त होते (मायाभिः) अपनी गर्जना, अन्धकार और बिजुली आदि माया से (धनदाम्) पृथिवी का (न, पर्यभूवन्) अच्छे प्रकार आच्छादन नहीं कर सकते हैं उन पर (वृषभः) वृष्टिकर्त्ता (इन्द्रः) छेदन करनेहारा सूर्य (युजम्) प्रहार करने योग्य (वज्रम्) किरण समूह को फेंकके (ज्योतिषा) अपने तेज प्रकाश से (तमसः) अन्धेरे को (निश्चक्रे) निकाल देता और (गाः) पृथिवी लोकों को वर्षा से (अदुक्षत्) पूर्ण कर देता है । वैसे ही आप ऐसा वर्त्ताव करें जिससे शत्रुजन न्याय के प्रकाश और भूमि के राज्य के अन्त को न पावें, धन देनेवाली राजनीति का नाश न कर सकें । उन वैरियों पर अपनी प्रभुता, विद्यादान से अविद्या की निवृत्ति और प्रजा को सुखों से पूर्ण किया कीजिए ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि सूर्य के तेजरूप स्वभाव और प्रकाश के सदृश कर्म कर और सब शत्रुओं के अन्यायरूप अन्धकार का नाश करके धर्म से राज्य का सेवन करें । क्योंकि छली-कपटी लोगों का राज्य स्थिर कभी नहीं होता इससे सब को छलादि दोष रहित, विद्वान् होके शत्रुओं की माया में न फँसके राज्य का पालन करने के लिए अवश्य उद्योग करना चाहिए ॥१०॥

अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्यावर्धत मध्य आ नाव्यानाम् ।

सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नभि द्यून् ॥ ११ ॥

पदार्थ— हे सेना के अध्यक्ष ! आप जैसे (अस्य) इस मेघ का शरीर (नाव्यानाम्) नदी, तड़ाग और समुद्रों में (आवर्धत) जैसे इस मेघ में स्थित हुए (आपः) जल सूर्य से छिन्न-भिन्न होकर (अनुस्वधाम्) अन्न-अन्न के प्रति (अक्षरन्) प्राप्त होते और जैसे यह मेघ (सध्रीचीनेन) साथ चलने वाले (ओजिष्ठेन) अत्यन्त बलयुक्त (हन्मना) हनन करने के साधन (मनसा) मन के सदृश वेग से इस सूर्य के (अभिद्यून्) प्रकाशयुक्त दिनों को (अहन्) अन्धकार से ढाँप लेता और जैसे सूर्य अपने साथ चलने वाले किरणसमूह के बल वा वेग से (तम्) उस मेघ को (अहन्) मारता और अपने (अभिद्यून्) प्रकाशयुक्त दिनों का प्रकाश करता है वैसे नदी, तड़ाग और समुद्र के बीच नौका आदि साधन के सहित अपनी सेना को बढ़ा तथा इस युद्ध में प्राण आदि सब इन्द्रियों को अन्नादि पदार्थों से पुष्ट करके अपनी सेना से (तम्) उस शत्रु को (अहन्) मारा कीजिए ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे बिजुली द्वारा मेघ को मारकर पृथिवी पर गिराई हुई वृष्टि यव आदि अन्न को बढ़ाती और नदी, तड़ाग, समुद्र के जल को बढ़ाती है वैसे ही मनुष्यों को चाहिए कि सब प्रकार शुभ गुणों की वर्षा से प्रजासुख, शत्रुओं का मारण और विद्या-वृद्धि से उत्तम गुणों का प्रकाश करके धर्म का सेवन करें ॥ ११ ॥

न्यविध्यदिलीबिशस्य दृळ्हा वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः ।

यावत्तरो मघवन्यावदोजो वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (मघवन्) अत्यन्त धनदाता महाधनयुक्त वीर ! आप जैसे (इन्द्रः) बिजुली आदि बलयुक्त सूर्य्यलोक (इलीबिशस्य) पृथिवी के गढ़ों में सोने वाले मेघ के सम्बन्धी (दृळ्हा) दृढ़रूप बद्दलादिकों को (अभिनत्) भिन्न-भिन्न करता और अपना (यावत्) जितना (तरः) बल और (यावत्) जितना (ओजः) पराक्रम है उस से युक्त हुए (वज्रेण) किरण समूह से (शृङ्गिणम्) सींगों के समान ऊँचे (शुष्णम्) ऊपर चढ़ते पदार्थों को सुखाने वाले मेघ को (न्यविध्यत्) नष्ट और (पृतन्युम्) सेना की इच्छा करते हुए (शत्रुम्) शत्रु के समान मेघ का (अवधीः) हनन करता है वैसे शत्रुओं में चेष्टा किया करें ॥ १२ ॥

भावार्थ— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे बिजुली अवयवों को भिन्न-भिन्न और जल को वर्षा कर सब का सुखयुक्त करती है, वैसे ही सब मनुष्यों को उचित है कि उत्तम-उत्तम शिक्षायुक्त सेना से दुष्ट गुण वाले दुष्ट मनुष्यों को उपदेश दे और शस्त्र-अस्त्र वृष्टि से शत्रुओं का निवारण कर प्रजा में सुखों की वृष्टि निरन्तर किया करें ॥ १२ ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्वि तिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत् ।

सं वज्रेणासृजद्वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः ॥ १३ ॥

पदार्थ— जैसे (अस्य) इस सूर्य का (सिध्मः) विजय प्राप्त कराने वाला वेग (तिग्मेन) तीक्ष्ण (वृषभेण) वृष्टि करनेवाले तेज से (शत्रून्) मेघ के अवयवों को (अजिगात्) प्राप्त होता और इस मेघ के (पुरः) नगरों के सदृश समुदायों को (अभेत्) भेदन करता है जैसे (शाशदानः) अत्यन्त छेदन करने वाली (इन्द्रः) बिजुली (वृत्रम्) मेघ को (वज्रेण) तेज से (समसृजत्) मिलाता है, तथा (स्वाम्) अपने (मतिम्) ज्ञान से (प्रातिरत्) अच्छे प्रकार नीचा करता है वैसे ही इस सेनाध्यक्ष को होना चाहिए ॥ १३ ॥

भावार्थ— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे बिजुली मेघ के अवयव बद्दलों को तीक्ष्ण वेग से छिन्न-भिन्न और भूमि में गेरकर उसको वश में करती है वैसे ही सभासेनाध्यक्ष को चाहिए कि बुद्धि, शरीर-बल वा सेना के वेग से शत्रुओं को छिन्न-भिन्न और शस्त्रों के अच्छे प्रहार से पृथिवी पर गिराकर अपनी सम्मति में लावें ॥ १३ ॥

फिर अगले मन्त्र में इन्द्र के कृत्य का उपदेश किया है—

आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।

शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्यामुच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ ॥ १४ ॥

पदार्थ- हे इन्द्र सभापते ! जैसे सूर्यलोक (यस्मिन्) जिस युद्ध में (युध्यन्तम्) युद्ध करते हुए (वृषभम्) वृष्टि के कराने वाले (दशद्युम्) दश दिशाओं में प्रकाशमान मेघ के प्रति (कुत्सम्) वज्र मारके जगत् की (आवः) रक्षा करता है और (श्वैत्रेयः) भूमि का पुत्र मेघ (शफच्युतः) गौ आदि पशुओं के खुरों के चिह्नों में गिरी हुई (रेणुः) धूलि (द्याम्) प्रकाशयुक्त नाक को (नक्षत) प्राप्त होती है उस को (नृषाह्याय) मनुष्यों के लिए (चाकन्) वह कान्ति वाला मेघ (उत्तस्थौ) उठता और सुखों को देता है वैसे सभा सहित आपको प्रजा के पालन में यत्न करना चाहिए ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्यलोक अपनी किरणों से पृथिवी पर मेघ को गिराकर सब प्राणियों को सुखयुक्त करता है वैसे ही हे सभाध्यक्ष, तू भी सेना, शिक्षा और शस्त्रबल से शत्रुओं को अस्तव्यस्त कर नीचे गिराके प्रजा की रक्षा निरन्तर किया कर ॥ १४ ॥

फिर इन्द्र का क्या कृत्य है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम् ।

ज्योक् चिदत्र तस्थिवांसो अक्रञ्छत्रूयतामधरा वेदनाकः ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे (मघवन्) बड़े धन के हेतु सभा के स्वामी ! आप जैसे सूर्यलोक (क्षेत्रजेषे) अन्नादि सहित पृथिवी के राज्य को प्राप्त कराने के लिए (श्वित्र्यम्) भूमि के ढाँप लेने में कुशल (वृषभम्) वर्षण स्वभाव वाले मेघ के (तुग्र्यासु) जलों में (गाम्) किरण समूह को (आवः) प्रवेश करता हुआ (शत्रूयताम्) शत्रु के समान आचरण करने वाले उन मेघावयवों के (अधरा) नीचे के (वेदना) दुष्टों को वेदनारूप पापफलों को (तस्थिवांसः) स्थापित हुई किरणें (ज्योक्) निरन्तर (अक्रन्) छेदन करती हैं (अत्र) और फिर इस भूमि में वह मेघ (अकः) गमन करता है उसके (चित्) समान शत्रुओं का निवारण और प्रजा को सुख दिया कीजिए ॥ १५ ॥

भावार्थ- इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सूर्य अन्तरिक्ष से मेघ के जल को भूमि पर गिराके सब प्राणियों के लिए सुख देता है वैसे सेनाध्यक्षादि लोग दुष्ट शत्रुओं को बाँधकर धार्मिक मनुष्यों की रक्षा करके सुखों का भोग करें और करावें ॥ १५ ॥

इस सूक्त में सूर्य और मेघ के युद्ध के वर्णन तथा उपमान-उपमेय अलङ्कार वा मनुष्यों के युद्धविद्या के उपदेश करने से पिछले सूक्तार्थ के साथ इस सूक्तार्थ की सङ्गति जाननी चाहिए ।

यह तीसरा वर्ग तेतीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥ ३३ ॥

卐

अथास्य द्वादशर्चस्य चतुस्त्रिंशस्य सूक्तस्य हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः । अश्विनौ देवते । १, ६ विराड् जगती, २, ३, ७, ८ निचृज्जगती, ५, १०, ११ । जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ४ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । १२ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ९ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब चौंतीसवें सूक्त का आरम्भ है । उसके पहले मन्त्र में अश्वि के दृष्टान्त से कारीगरों के गुणों का उपदेश किया है—

त्रिश्चिन्नो अद्या भवतं नवेदसा विभुर्वां याम उत रातिरश्विना ।

युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससोऽभ्यायंसेन्या भवतं मनीषिभिः ॥ १ ॥

पदार्थ - हे परस्पर उपकारक और मित्र (अभ्यायंसेन्या) साक्षात् कार्य्यसिद्धि के लिए मिले हुए (नवेदसा) सब विद्याओं के जानने वाले (अश्विना) अपने प्रकाश से व्याप्त सूर्य्य-चन्द्रमा के समान सब विद्याओं में व्याप्त कारीगर लोगो ! आप (मनीषिभिः) सब विद्वानों के साथ, दिनों के साथ (हिम्या इव) शीतकाल की रात्रियों के समान (नः) हम लोगों के (अद्य) इस वर्त्तमान दिवस में शिल्पकार्य्य के साधक (भवतम्) हूजिए (हि) जिस कारण (युवोः) आपके सकाश से (यन्त्रम्) कलायन्त्र को सिद्ध कर यानसमूह को चलाया करें जिनसे (नः) हम लोगों को (वाससः) रात्रि, दिन के बीच (रातिः) वेगादि गुणों से दूर देश को

प्राप्त होवे (उत) और (वाम्) आपके सकाश से (विभुः) सब मार्गों में चलने वाला (यानः) रथ प्राप्त हुआ हम लोगों को देशान्तर को सुख से (त्रिः) तीन बार पहुँचावे इसलिए आपका सङ्ग हम लोग करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि जैसे रात्रि वा दिन की क्रम से संगति होती है वैसी संगति करें। जैसे विद्वान् लोग पृथिवी विकारों के यान, कला, कील और यन्त्रादिको को रचकर उनके घुमाने और उनमें अग्न्यादि के संयोग से भूमि, समुद्र वा आकाश मे जाने-आने के लिए यानों को सिद्ध करते हैं। वैसे ही मुझ को भी विमानादि यान सिद्ध करने चाहिएँ। क्योंकि इस विद्या के विना किसी के दारिद्र्य का नाश वा लक्ष्मी की वृद्धि कभी नहीं हो सकती इससे इस विद्या में सब मनुष्यों को अत्यन्त प्रयत्न करना चाहिए। जैसे मनुष्य लोग हेमन्त ऋतु में वस्त्रो को अच्छे प्रकार धारण करते हैं वैसे ही सब प्रकार कील, कला, यन्त्रादिको से यानो को संयुक्त रखना चाहिए ॥ १ ॥

फिर उनसे क्या-क्या सिद्ध करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद्विदुः ।

त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा ॥ २ ॥

पदार्थ—हे अश्वि अर्थात् वायु और बिजुली के समान सम्पूर्ण शिल्पविद्याओ को यथावत् जानने वाले विद्वान् लोगो ! आप जिस (मधुवाहने) मधुर गुणयुक्त द्रव्यों की प्राप्ति के हेतु (रथे) विमान मे (त्रयः) तीन (पवयः) वज्र के समान घूमने के कला चक्र और (त्रयः) तीन (स्कम्भासः) बन्धन के लिए खंभ (स्कभितासः) स्थापित और धारण किये जाते हैं, उसमे स्थित अग्नि और जल के समान कार्य्यसिद्धि करके (त्रिः) तीन बार (नक्तम्) रात्रि और (त्रिः) तीन बार (दिवा) दिन मे इच्छित स्थान को (उपयाथः) पहुँचो वहाँ भी आपके विना कार्य्यसिद्धि कदापि नहीं होती। मनुष्य जिस मे बैठके (सोमस्य) ऐश्वर्य की (वेनाम्) प्राप्ति को करती हुई कामना वा चन्द्रलोक की कान्ति को प्राप्त होते और जिसको (आरभे) आरम्भ करने योग्य गमनागमन व्यवहार मे (विश्वे) सब विद्वान् (इत्) ही (विदुः) जानते हैं उस (उ) अद्भुत रथ को ठीक-ठीक सिद्ध कर अभीष्ट स्थानो मे शीघ्र आया-जाया करो ॥ २ ॥

भावार्थ—भूमि, समुद्र और अन्तरिक्ष मे जाने की इच्छा करने वाले मनुष्यो को योग्य है कि तीन चक्र, अग्नि के घर और खंभयुक्त यान को रच कर उसमे बैठ कर एक दिन रात मे भूगोल, समुद्र, अन्तरिक्ष मार्ग से तीन-तीन बार जाने को समर्थ हो सकें उस यान मे इस प्रकार के खंभ रचने चाहिएँ कि जिसमे कलावयव अर्थात् काष्ठ, लोष्ठ आदि खंभो के अवयव स्थित हो फिर वहाँ अग्नि जल का सम्प्रयोग कर चलावें। क्योंकि इनके विना कोई मनुष्य शीघ्र भूमि, समुद्र, अन्तरिक्ष मे जाने-आने को समर्थ नहीं हो सकता। इस से इनकी सिद्धि के लिए सब मनुष्यो को बड़े-बड़े यत्न अवश्य करने चाहिएँ ॥ २ ॥

फिर उनसे सिद्ध किये हुए यानों से क्या-क्या सिद्ध करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

समाने अहन्त्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम् ।

त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुषसश्च पिन्वतम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (अश्विना) अग्नि जल के समान यानों को सिद्ध करके प्रेरणा करने और चलाने तथा (अवद्यगोहना) निन्दित दुष्ट कर्मों को दूर करनेवाले विद्वान् मनुष्यो ! (युवम्) तुम दोनो (समाने) एक (अहन्) दिन मे (मधुना) जल से (यज्ञम्) ग्रहण करने योग्य शिल्पादि विद्यासिद्धि करने वाले यज्ञ को (त्रिः) तीन बार (मिमिक्षतम्) सींचने की इच्छा करो और (अद्य) आज (अस्मभ्यम्) शिल्पक्रियाओ को सिद्ध करने और करानेवाले हम लोगो के लिए (दोषा) रात्रियों और (उषसः) प्रकाश को प्राप्त हुए दिनो मे (त्रिः) तीन बार यानो का (पिन्वतम्) सेवन करो और (वाजवतीः) उत्तम-उत्तम सुखदायक (इषः) इच्छासिद्धि करनेवाले नौकादि यानो का (त्रिः) तीन बार (पिन्वतम्) प्रीति से सेवन करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—शिल्पविद्या को जानने और कलायन्त्रो से यान को चलाने वाला- ये दोनो प्रतिदिन शिल्पविद्या से यानो को सिद्ध कर तीन प्रकार अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और मानसिक सुख के लिए धन आदि अनेक उत्तम-उत्तम पदार्थों को इकट्ठा कर सब प्राणियो को सुखयुक्त करें जिससे दिन-रात मे सब लोग अपने पुरुषार्थ से इस विद्या की उन्नति करें और आलस्य को छोड़के उसके उत्साह मे उसकी रक्षा मे निरन्तर प्रयत्न करें ॥ ३ ॥

फिर उनसे क्या कार्य करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने त्रिः सुप्राव्ये त्रेधेव शिक्षतम् ।

त्रिर्नान्द्यं वहतमश्विना युवं त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (अश्विना) विद्या देने वा ग्रहण करने वाले विद्वान् मनुष्यो ! (युवम्) तुम दोनो (अस्मे) हम लोगो के (वर्तिः) मार्ग को (त्रिः) तीन बार (यातम्) प्राप्त हुआ करो। तथा (सुप्राव्ये) अच्छे प्रकार प्रवेश करने योग्य (अनुव्रते) जिसके अनुकूल सत्याचरण व्रत है उस (जने) बुद्धि के उत्पादन करने वाले मनुष्य के निमित्त (त्रिः) तीन बार (यातम्) प्राप्त हूजिए और शिष्य के लिए (त्रेधेव) तीन प्रकार अर्थात् हस्तक्रिया, रक्षा और यान चालन के ज्ञान को शिक्षा करते हुए अध्यापक के समान (अस्मे) हम लोगो को (त्रिः) तीन बार (शिक्षतम्) शिक्षा और (नान्द्यम्) समृद्धि होने योग्य शिल्प ज्ञान को (त्रिः) तीन बार (वहतम्) प्राप्त करो और (अक्षरेव) जैसे नदी तालाब और समुद्र आदि जलाशय मेघ के सकाश से जल को प्राप्त होते हैं वैसे हम लोगों को (पृक्षः) विद्या-सम्पर्क को (त्रिः) तीन बार (पिन्वतम्) प्राप्त कराओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। शिल्पविद्या के जानने वाले मनुष्यों को योग्य है कि विद्या की इच्छा करने वाले अनुकूल बुद्धिमान् मनुष्यो को पदार्थविद्या पढ़ा और उत्तम-उत्तम शिक्षा बार-बार देकर कार्यों को सिद्ध करने मे समर्थ करें और उनको भी चाहिए कि इस विद्या का सम्पादन करके यथावत् चतुराई और पुरुषार्थ से सुखो के उपकार को ग्रहण करें ॥ ४ ॥

फिर वे किस कार्य के साधक हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्रिर्नो रयिं वहतमश्विना युवं त्रिर्देवताता त्रिरुतावतं धियः ।

त्रिः सौभगत्वं त्रिरुत श्रवांसि नस्त्रिष्ठं वां सूरे दुहिता रुहद्रथम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (देवताता) शिल्पक्रिया और यज्ञसम्पत्ति के मुख्य कारण वा विद्वान् तथा शुभ गुणो को बढ़ाने और (अश्विना) आकाश पृथिवी के तुल्य प्राणियों को सुख देने वाले विद्वान् लोगो ! (युवम्) आप (नः) हम लोगो के लिए (रयिम्) उत्तम धन (त्रिः) तीन बार अर्थात् विद्या, राज्य, श्री की प्राप्ति और रक्षण क्रिया-रूप ऐश्वर्य को (वहतम्) प्राप्त करो (नः) हम लोगों की (धियः) बुद्धियों (उत) और बल को (त्रिः) तीन बार (अवतम्) प्रवेश कराइए (नः) हम लोगों के लिए (त्रिष्ठम्) तीन अर्थात् शरीर, आत्मा और मन के सुख में रहने और (सौभगत्वम्) उत्तम ऐश्वर्य के उत्पन्न करनेवाले पुरुषार्थ को (त्रिः) तीन अर्थात् भृत्य, सन्तान और स्वात्म भार्यादि के शिक्षणको प्राप्त कीजिए (उत) और (श्रवांसि) वेदादि शास्त्र वा अन्नों को (त्रिः) शरीर, प्राण और मन की रक्षा सहित प्राप्त करते और (वाम्) जिन अश्वियो के सकाश से (सूरे) सूर्य की (दुहिता) पुत्री के समान कान्ति (नः) हम लोगो के (रथम्) विमानादि यानसमूह को (त्रिः) तीन अर्थात् प्रेरक, साधक और चालन क्रिया से (आरुहत्) ले जाती है उन दोनो को हम लोग शिल्पकार्यों मे अच्छे प्रकार युक्त करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को उचित है कि अग्नि भूमि के अवलम्ब से शिल्पकार्यों को सिद्ध और बुद्धि बढ़ाकर सौभाग्य और उत्तम अन्नादि पदार्थों को प्राप्त हो तथा इस सब सामग्री से सिद्ध हुए यानो में बैठके-देश देशान्तरो का जा-आ और व्यवहार द्वारा धन को बढ़ा कर सदा आनन्द मे रहें ॥ ५ ॥

फिर उनसे क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—

त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिरु दत्तमद्भ्यः ।

ओमानं शंयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (शुभस्पती) कल्याणकारक मनुष्यो के कर्मों की पालना करने और (अश्विना) विद्या की ज्योति को बढाने वाले शिल्पि लोगो ! आप दोनो (नः) हम लोगो के लिए (अद्भ्यः) जलो से (दिव्यानि) विद्यादि उत्तम गुण प्रकाश करनेवाले (भेषजा) रसमय सोमादि ओषधियो को (त्रिः) तीन ताप निवारणार्थ (दत्तम्) दीजिए (उ) और (पार्थिवानि) पृथिवी के विकारयुक्त ओषधि (त्रिः) तीन प्रकार से दीजिए और (ममकाय) मेरे (सूनवे) औरस अथवा विद्यापुत्र के लिए (शंयोः) सुख तथा (ओमानम्) विद्या मे प्रवेश और क्रिया के बोध कराने वाले रक्षणीय व्यवहार को (त्रिः) तीन बार कीजिए और (त्रिधातु) लोहा, ताँबा पीतल इन तीन धातुओ के सहित भू, जल और अन्तरिक्ष में जाने वाले (शर्म) गृहस्वरूप यान को मेरे पुत्र के लिए (त्रिः) तीन बार (वहतम्) पहुँचाइए ॥६॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि जो जल और पृथिवी मे उत्पन्न हुई रोग नष्ट करने वाली ओषधि हैं उनका त्रिविध ताप निवारण के लिये भोजन किया करें और अनेक धातुओ से युक्त काष्ठमय घर के समान यान को बना उत्तम-उत्तम यव आदि ओषधि स्थापन, अग्नि के घर मे अग्नि को काष्ठो से प्रज्वलित, जल के घर मे जलो का स्थापन, भाप के बल यानो को चला, व्यवहार के लिए देश-देशान्तरो को जा और वहाँ से आकर जल्दी अपने देश को प्राप्त हो इस प्रकार करने से बड़े-बड़े सुख प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

यह चौथा वर्ग समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—

त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे परि त्रिधातु पृथिवीमशायतम् ।

तिस्रो नासत्या रथ्या परावत आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम् ॥७॥

पदार्थ—हे (नासत्या) असत्य व्यवहार रहित (यजता) मेल करने तथा (रथ्या) विमानादि यानो को प्राप्त करानेवाले (अश्विना) जल और अग्नि के समान कारीगर लोगो ! तुम दोनों (पृथिवीम्) भूमि वा अन्तरिक्ष को प्राप्त होकर (त्रिः) तीन बार (पर्य्यशायतम्) शयन करो (आत्मेव) जैसे जीवात्मा के समान (वातः) प्राण (स्वसराणि) अपने कार्य्यों मे प्रवृत्त करने वाले दिनों को नित्य-नित्य प्राप्त होते हैं वैसे (गच्छतम्) देशान्तरों को प्राप्त हुआ करो और जो (नः) हम लोगो के (त्रिधातु) सोना, चाँदी आदि धातुओ से बनाये हुए यान (परावतः) दूर स्थानो को (तिस्रः) ऊँची-नीची और सम चाल चलते हुए मनुष्यादि प्राणियो को पहुँचाते हैं उन को कार्यसिद्धि के अर्थ हम लोगो के लिए बनाओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। संसार सुख की इच्छा करने वाले पुरुष जैसे जीव अन्तरिक्ष आदि मार्गों से दूसरे शरीरो को शीघ्र प्राप्त होता और वायु शीघ्र चलता है वैसे ही पृथिव्यादि विकारों से कलायन्त्रयुक्त यानों को रच और

उनमें अग्नि जल आदि का अच्छे प्रकार प्रयोग करके चाहे हुए दूर देशों को शीघ्र पहुँचा करें । इस ज्ञान के बिना संसारसुख होने संभव नहीं है ॥ ७ ॥

फिर वे कैसे हैं और उन से क्या-क्या सिद्ध करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्रिरश्विना सिन्धुभिः सप्तमातृभिस्त्रय आहावास्त्रेधा हविष्कृतम् ।
तिस्रः पृथिवीरुपरि प्रवा दिवो नाकं रक्षेथे द्युभिरक्तुभिर्हितम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (प्रवा) गमन कराने वाले (अश्विना) सूर्य और वायु के समान कारीगर लोगो ! आप (सप्तमातृभिः) जिन की सप्त अर्थात् पृथिवी, अग्नि, सूर्य, वायु, बिजुली, जल और आकाश सात माता के तुल्य उत्पन्न करने वाले हैं (त्रयः) (सिन्धुभिः) नदियों और (द्युभिः) दिन (अक्तुभिः) रात्रि के साथ जिसके (त्रयः) ऊपर, नीचे और मध्य में चलने वाले (आहावाः) जलाधार मार्ग हैं उस (त्रेधा) तीन प्रकार से (हविष्कृतम्) ग्रहण करने योग्य शोधे हुए (नाकम्) सब दुःखों से रहित (हितम्) स्थित द्रव्य को (उपरि) ऊपर चढ़ाके (तिस्रः) स्थूल, त्रसरेणु और परमाणु नाम वाली तीन प्रकार की (पृथिवीः) विस्तारयुक्त पृथिवी और (दिवः) प्रकाशस्वरूप किरणों को प्राप्त कराके उस को इधर-उधर चला और नीचे वर्षा के इससे सब जगत् की (त्रिः) तीन बार (रक्षेथे) रक्षा कीजिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि—सूर्य वायु के छेदन, आकर्षण और वृष्टि करानेवाले गुणों से नदी चलती तथा हवन किया हुआ द्रव्य दुर्गन्धादि दोषों का निवारण कर सब दुःखों से रहित सुखों को सिद्ध करता है । दिन-रात सुख बढ़ता है इसके बिना कोई प्राणी जीने को समर्थ नहीं हो सकता इससे इस की शुद्धि के लिए यज्ञरूप कर्म नित्य करें ॥ ८ ॥

फिर उनसे क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

क्व१ त्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य क्व१ त्रयो वन्धुरो ये सनीळाः ।
कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (नासत्या) सत्य गुण और स्वभाव वाले कारीगर लोगो ! तुम दोनों (यज्ञम्) दिव्यगुणयुक्त विमान आदि यान से जाने-आने योग्य मार्ग को (कदा) कब (उपयाथः) शीघ्र जैसे निकट पहुँच जावें वैसे पहुँचते हो और (येन) जिस से पहुँचते हो उस (रासभस्य) शब्द करनेवाले (वाजिनः) प्रशंसनीय वेग से युक्त (त्रिवृतः) रचन, चालन आदि सामग्री से पूर्ण (रथस्य) और भूमि, जल, अन्तरिक्ष मार्ग में रमण करानेवाले विमान में (क्व) कहाँ (त्री) तीन (चक्रा) चक्र रचने चाहिएँ और इस विमानादि यान में (ये) जो (सनीळाः) बराबर बन्धनों के स्थान वा अग्नि रहने का घर (वन्धुरः) नियमपूर्वक चलाने के हेतु कोष्ठ होते हैं उनका (योगः) योग (क्व) कहाँ रहना चाहिए—ये तीन प्रश्न हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में कहे हुए तीन प्रश्नों के ये उत्तर जानने चाहिएँ—विभूति की इच्छा रखने वाले पुरुषों को उचित है कि रथ के आदि, मध्य और अन्त में सब कलाओं के बन्धनों के आधार के लिए तीन बन्धन विशेष सम्पादन करें तथा तीन कला घूमने-घुमाने के लिए सम्पादन करें—एक मनुष्यों के बैठने, दूसरी अग्नि की स्थिति और तीसरी जल की स्थिति के लिए करके जब-जब चलने की इच्छा हो तब-तब यथायोग्य जलकाष्ठों को स्थापन, अग्नि को युक्त और कला को वायु से प्रदीप्त करके भाप के वेग से चलाये हुए यान से शीघ्र दूर स्थान को भी निकट के समान जाने में समर्थ होवें क्योंकि इस प्रकार किये बिना निर्विघ्नता से स्थानान्तर को कोई मनुष्य शीघ्र नहीं जा सकता ॥ ९ ॥

फिर उनसे क्या सिद्ध करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

आ नासत्या गच्छतं हूयते हविर्मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिः ।
युवोर्हि पूर्वं सवितोषसो रथमृताय चित्रं घृतवन्तमिष्यति ॥ १० ॥

पदार्थ—हे शिल्पि लोगो ! तुम दोनों (नासत्या) जल और अग्नि के सदृश जिस (हविः) सामग्री का (हूयते) हवन करते हो उस हवि से शुद्ध हुए (मध्वः) मधुर जल (मधुपेभिः) शुद्ध जल पीने वाले (आसभिः) अपने मुखों से (पिबतम्) पियो और हम लोगों को आनन्द देने के लिए (घृतवन्तम्) बहुत जल की कलाओं से युक्त (चित्रम्) वेगादि आश्चर्य गुणसहित (रथम्) विमानादि यानों से देशान्तरों को (गच्छतम्) शीघ्र जाओ-आओ (युवोः) तुम्हारा जो रथ (उषसः) प्रातःकाल से (पूर्वम्) पहले (सविता) सूर्यलोक के समान प्रकाशमान (इष्यति) शीघ्र चलता है (हि) वही (ऋताय) सत्य सुख के लिए समर्थ होता है ॥ १० ॥

भावार्थ—जब यानों में जल और अग्नि को प्रदीप्त करके चलाते हैं तब ये यान और स्थानों को शीघ्र प्राप्त कराते हैं उन में जल और भाप के निकलने का एक ऐसा स्थान रच लेवें कि जिस में होकर भाप के निकलने से वेग की वृद्धि होवे । इस विद्या का जानने वाला ही अच्छे प्रकार सुखों को प्राप्त होता है ॥ १० ॥

आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे शिल्पि लोगो ! तुम दोनों (नासत्या) सत्यगुण स्वभावयुक्त (सचाभुवा) मेल करानेवाले जल और अग्नि के समान (देवेभिः) विद्वानों के साथ (इह) इन उत्तम यानों में बैठके (त्रिभिः) तीन दिन और तीन रात्रियों में महासमुद्र के पार और (एकादशैः) ग्यारह दिन और ग्यारह रात्रियों में भूगोल पृथिवी के अन्त को (यातम्) पहुँचो (द्वेषः) शत्रु और (रपांसि) पापों को (निर्मृक्षतम्) अच्छे प्रकार दूर करो (मधुपेयम्) मधुर गुणयुक्त पीने योग्य द्रव्य और (आयुः) उमर को (प्रतारिष्टम्) प्रयत्न से बढ़ाओ उत्तम सुखों को (सेधतम्) सिद्ध करो और शत्रुओं को जीतने वाले (भवतम्) होओ ॥ ११ ॥

भावार्थ—जब मनुष्य ऐसे यानों में बैठ कर उनको चलाते हैं तब तीन दिन और तीन रात्रियों में सुख से समुद्र के पार तथा ग्यारह दिन और ग्यारह रात्रियों में ब्रह्माण्ड के चारों ओर जाने में समर्थ हो सकते हैं । इसी प्रकार करते हुए विद्वान् लोग सुखयुक्त पूर्ण आयु को प्राप्त हो दुःखों को दूर और शत्रुओं को जीतकर चक्रवर्त्ति-राज्य भोगने वाले होते हैं ॥ ११ ॥

आ नो अश्विना त्रिवृता रथेनार्वाञ्चं रयिं वहतं सुवीरम् ।
शृण्वन्ता वामवसे जोहवीमि वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे कारीगरी में चतुरजनो ! (शृण्वन्ता) श्रवण कराने वाले (अश्विना) वह विद्या बलयुक्त आप दोनों जल और पवन के समान (त्रिवृता) तीन अर्थात् स्थल, जल और अन्तरिक्ष में पूर्णगति से जाने के लिए वर्त्तमान (रथेन) विमान आदि यान से (नः) हम लोगों को (अर्वाञ्चम्) ऊपर से नीचे अभीष्ट स्थान को प्राप्त होने वाले (सुवीरम्) उत्तम वीर युक्त (रयिम्) चक्रवर्ति राज्य से सिद्ध हुए धन को (आवहतम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होके पहुँचाइए (च) और (नः) हम लोगों के (वाजसातौ) सङ्ग्राम में (वृधे) वृद्धि के अर्थ विजय को प्राप्त कराने वाले (भवतम्) हूजिए जैसे मैं (अवसे) रक्षादि के लिए (वाम्) तुम्हारा (जोहवीमि) वारंवार ग्रहण करता हूँ वैसे आप मुझ को ग्रहण कीजिए ॥ १२ ॥

भावार्थ—जल अग्नि से प्रयुक्त किये हुए रथ के बिना कोई मनुष्य स्थल, जल और अन्तरिक्ष मार्गों में शीघ्र जाने को समर्थ नहीं हो सकता । इससे राज्यश्री, उत्तम सेना और वीर पुरुषों को प्राप्त होके ऐसे विमानादि यानों से युद्ध में विजय पा सकते हैं । इस कारण इस विद्या में मनुष्य सदा युक्त हों ॥ १२ ॥

पूर्व सूक्त से इस विद्या के सिद्ध करने वाले इन्द्र शब्द के अर्थ का प्रतिपादन किया तथा इस सूक्त से इस विद्या के साधक अश्वि अर्थात् द्यावापृथिवी आदि अर्थ प्रतिपादन किये हैं इस से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ।

यह पाँचवाँ वर्ग और चौंतीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥ ३४ ॥

卐

अथैकादशर्चस्य पञ्चत्रिंशस्य सूक्तस्याङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः । आदिमस्य मन्त्रस्याग्निर्मित्रावरुणौ रात्रिः सविता च । २—११ सविता च देवता ।
१ विराड् जगती, ६ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ।
२, ५, १०, ११ । विराट् त्रिष्टुप्, ३, ४, ६
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ७, ८ भुरिक्
पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पैंतीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके पहले मन्त्र में अग्नि आदि के गुणों को जानके सब प्रयोजन सिद्ध करें इस विषय का वर्णन किया है—

ह्वयाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये ह्वयामि मित्रावरुणाविहावसे ।
ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीं ह्वयामि देवं सवितारमूतये ॥ १ ॥

पदार्थ—मैं (इह) इस शरीर धारणादि व्यवहार में (स्वस्तये) उत्तम सुख होने के लिए (प्रथमम्) शरीर धारण के आदि साधन (अग्निम्) रूप गुण-युक्त अग्नि के (ह्वयामि) ग्रहण की इच्छा करता हूँ (अवसे) रक्षणादि के लिए (मित्रावरुणौ) प्राण वा उदान वायु को (ह्वयामि) स्वीकार करता हूँ (जगतः) संसार को (निवेशनीम्) निद्रा में निवेश कराने वाली (रात्रीम्) सूर्य के अभाव से अन्धकार रूप रात्रि को (ह्वयामि) प्राप्त होता हूँ (ऊतये) क्रियासिद्धि की इच्छा के लिए (देवम्) द्योतनात्मक (सवितारम्) सूर्यलोक को (ह्वयामि) ग्रहण करता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि दिन-रात सुख के लिए अग्नि, वायु और सूर्य से उपकार को ग्रहण करके सब सुखों को प्राप्त होवें क्योंकि इस विद्या के बिना कभी किसी पुरुष को पूर्ण सुख सम्भव नहीं हो सकता ॥ १ ॥

अब अगले मन्त्र में सूर्यलोक के गुणों का उपदेश किया है—

आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ २ ॥

पदार्थ—यह (सविता) सब जगत् को उत्पन्न करने वाला (देवः) सब से अधिक प्रकाशयुक्त परमेश्वर (आकृष्णेन) अपनी आकर्षण शक्ति से (रजसा) सब सूर्य्यादि लोकों के साथ व्यापक (वर्त्तमानः) हुआ (अमृतम्) अन्तर्यामिरूप वा वेद द्वारा मोक्ष साधक सत्य ज्ञान (च) और (मर्त्यम्) कर्मों और प्रलय की व्यवस्था से मरणयुक्त जीव को (निवेशयन्) अच्छे प्रकार स्थापन करता हुआ

(**हिरण्ययेन**) यशोमय (**रथेन**) ज्ञानस्वरूप रथ से युक्त (**भुवनानि**) लोकों को (**पश्यन्**) देखता हुआ (**आयाति**) अच्छे प्रकार सब पदार्थों को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ यह (**सविता**) प्रकाश, वृष्टि और रसों का उत्पन्न करने वाला (**कृष्णेन**) प्रकाश रहित (**रजसा**) पृथिवी आदि लोकों के साथ (**आवर्त्तमानः**) अपनी आकर्षण शक्ति से वर्त्तमान इस जगत् में (**अमृतम्**) वृष्टि द्वारा अमृतस्वरूप रस (**च**) तथा (**मर्त्यम्**) काल व्यवस्था से मरण को (**निवेशयन्**) अपने-अपने सामर्थ्य में स्थापन करता हुआ (**हिरण्ययेन**) प्रकाशस्वरूप (**रथेन**) गमन शक्ति से (**भुवनानि**) लोकों को (**पश्यन्**) दिखाता हुआ (**आयाति**) अच्छे प्रकार वर्षा आदि रूपों की अलग-अलग प्राप्ति कराता है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे पृथिवी आदि लोक मनुष्यादि प्राणियों को, वा सूर्यलोक अपने आकर्षण से पृथिवी आदि लोकों को, या ईश्वर अपनी सत्ता से सूर्यादि लोकों को धारण करता है। ऐसे क्रम से सब लोकों का धारण होता है। इसके विना अन्तरिक्ष में किसी अत्यन्त भारयुक्त लोक की अपनी परिधि में स्थिति होने का सम्भव नहीं होती और लोकों के घूमे विना क्षण, मुहूर्त्त, प्रहर, दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतु और संवत्सर आदि कालों के अवयव उत्पन्न नहीं हो सकते ॥ २ ॥

अब वायु और सूर्य्य के दृष्टान्त के साथ अगले मन्त्र में शूरवीर के गुणों का उपदेश किया है—

याति॑ दे॒वः प्र॒वता॒ यात्यु॒द्वता॒ याति॑ शु॒भ्राभ्यां॑ यज॒तो हरि॑भ्याम् ।
आ दे॒वो या॑ति सवि॒ता प॑रा॒वतोऽप॒ विश्वा॑ दुरि॒ता बाध॑मानः ॥ ३ ॥

पदार्थ—जैसे (**विश्वा**) सब (**दुरिता**) दुष्ट दुःखों को (**अप, बाधमान**) दूर करता हुआ (**यजत**) सगम करने योग्य (**देव**) श्रवण आदि ज्ञान का प्रकाशक वायु (**प्रवता**) नीचे मार्ग से (**याति**) जाता-आता और (**उद्वता**) ऊर्ध्व मार्ग से (**याति**) जाता आता है और जैसे सब दुःख देने वाले अन्धकारादिकों को दूर करता हुआ (**यजत**) सगन होने योग्य (**सविता**) प्रकाशक सूर्यलोक (**शुभ्राभ्याम्**) शुद्ध (**हरिभ्याम्**) कारण वा शुक्लपक्षों से (**परावत**) दूरस्थ पदार्थों को अपनी किरणों से प्राप्त होकर पृथिव्यादि लोकों को (**आयाति**) सब प्रकार प्राप्त होता है वैसे शूरवीरादि लोग सेना आदि सामग्री सहित ऊँचे-नीचे मार्ग से जा-आकर शत्रुओं को जीतकर प्रजा की रक्षा निरन्तर किया करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ईश्वर की उत्पन्न की हुई सृष्टि में वायु नीचे, ऊपर वा समगति से चलता हुआ नीचे के पदार्थों को ऊपर और ऊपर के पदार्थों को नीचे करता है और जैसे दिन, रात वा आकर्षण, धारण गुण वाले अपने किरणसमूह से युक्त सूर्यलोक अन्धकारादिकों के दूर करने से दुःखों का विनाश कर सुख और सुखों का विनाश कर दुःखों को प्रकट करता है वैसे ही सभापति आदि का भी अनुष्ठान करना चाहिए ॥ ३ ॥

फिर भी अगले मन्त्र में उन दोनों के दृष्टान्त से राजकार्य्य का उपदेश किया है

अ॒भीवृ॑तं॒ कृश॑नैर्वि॒श्वरू॑पं॒ हिर॑ण्यशम्यं यज॒तो बृ॒हन्त॑म् ।
आस्था॒द्रथं॑ सवि॒ता चि॒त्रभा॑नुः कृ॒ष्णा रजां॑सि॒ तवि॑षीं॒ दधा॑नः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे सभा के स्वामी राजन् ! आप जैसे (**यजत**) सङ्गति करने वा प्रकाश का देने वाला (**चित्रभानु**) चित्र-विचित्र दीप्ति युक्त (**सविता**) सूर्यलोक वा वायु (**कृशनैः**) तीक्ष्ण करने वाले किरण वा विविध रूपों से (**बृहन्तम्**) बड़े (**हिरण्यशम्यम्**) जिस में सुवर्ण वा ज्योति शान्त करने योग्य हो (**अभीवृतम्**) चारों ओर से वर्त्तमान (**विश्वरूपम्**) जिसके प्रकाश वा चाल में बहुत रूप हैं उस (**रथम्**) रमणीय रथ (**कृष्णा**) आकर्षण वा कृष्णवर्णयुक्त (**रजांसि**) पृथिव्यादि लोकों और (**तविषीम्**) बल को (**दधान**) धारण करता हुआ (**आस्थात्**) अच्छे प्रकार स्थित होता है वैसे अपना वर्त्ताव कीजिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य आदि की उत्पत्ति का निमित्त, सूर्य आदि लोक का धारण करने वाला बलवान् सब लोकों और आकर्षणरूपी बल का धारण करता हुआ, वायु विचरता है और जैसे सूर्यलोक अपने समीप स्थलों का धारण और सब रूप विषय का प्रकट करता हुआ बल वा आकर्षण शक्ति से सब को धारण करता है। और इन दोनों के विना किसी स्थूल वा सूक्ष्म वस्तु का धारण सम्भव नहीं होता वैसे ही राजा को चाहिए कि उत्तम गुणों से युक्त होकर राज्य का धारण किया करे ॥ ४ ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वि जना॑ञ्छ्या॒वाः शि॑ति॒पादो॑ अख्य॒न्रथं॒ हिर॑ण्यप्रउगं॒ वह॑न्तः ।
शश्व॒द्विशः॑ सवि॒तुर्दैव्य॑स्यो॒पस्थे॒ विश्वा॒ भुव॑नानि तस्थुः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे सज्जन पुरुष ! जैसे-जिस (**दैव्यस्य**) विद्वान् वा दिव्य पदार्थों से उत्पन्न होने वाले (**सवितुः**) सूर्यलोक की (**उपस्थे**) गोद अर्थात् आकर्षण शक्ति में (**विश्वा**) सब (**भुवनानि**) पृथिवी आदि लोक (**तस्थुः**) स्थित होते हैं उसके (**शितिपादः**) अपने श्वेत अवयवों से युक्त (**श्यावाः**) प्राप्त होने वाले किरण (**जनान्**) विद्वानों (**हिरण्यप्रउगम्**) जिस में ज्योतिरूप अग्नि के मुख के समान स्थान है उस (**रथम्**) विमान आदि यान और (**शश्वत्**) अनादि रूप (**विशः**) प्रजाओं को (**वहन्तः**) धारण और बढ़ाते हुए (**अख्यन्**) अनेक प्रकार प्रकट होते हैं वैसे तेरे समीप विद्वान् लोग रहें और तू भी विद्या तथा धर्म का प्रचार कर ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जैसे सूर्यलोक के प्रकाश वा आकर्षण आदि गुण सब जगत् को धारणपूर्वक यथायोग्य प्रकट करते हैं, और जो सूर्य के समीप लोक हैं वे सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं, जो अनादि रूप प्रजा है उसका भी वायु धारण करता है इस प्रकार होने से सब लोक अपनी-अपनी परिधि में स्थित होते हैं वैसे तुम सद्गुणों को धारण और अपने-अपने अधिकारों में स्थित होकर अन्य सब को न्याय मार्ग में स्थापन किया करो ॥ ५ ॥

फिर भी वायु और सूर्य्य के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ति॒स्रो द्याव॑ः सवि॒तुर्द्वा उ॒पस्थाँ॒ एका॑ य॒मस्य॒ भुव॑ने विरा॒षाट् ।
आ॒णिं न रथ्य॑म॒मृताधि॑ तस्थुरि॒ह ब्र॑वीतु॒ य उ॒ तच्चिके॑तत् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! तू (**रथ्यम्**) रथ आदि के चलाने योग्य (**आणिम्**) संग्राम को जीतने वाले राजभृत्यों के (**न**) समान इस (**सवितुः**) सूर्यलोक के प्रकाश में जो (**तिस्रः**) तीन अर्थात् (**द्यावः**) सूर्य, अग्नि और विद्युत् रूप के साधनों से युक्त (**अधितस्थुः**) स्थित होते हैं उन में से (**द्वौ**) दो प्रकाश वा भूगोल सूर्यमण्डल के (**उपस्था**) समीप में रहते हैं और (**एका**) एक (**विराषाट्**) शूरवीर, ज्ञानवान् प्राप्ति स्वभाव वाले जीवों को सहने वाली बिजुली रूप दीप्ति (**यमस्य**) नियम करने वाले वायु के (**भुवने**) अन्तरिक्ष में ही रहती है और जो (**अमृता**) कारणरूप से नाशरहित चन्द्र-तारे आदि लोक हैं वे इस सूर्यलोक के प्रकाश में प्रकाशित होकर (**अधितस्थुः**) स्थित होते हैं (**यः**) जो मनुष्य (**उ**) वादविवाद से इन को (**चिकेतत्**) जाने और उस ज्ञान को (**इह**) इस संसार वा विद्या में (**ब्रवीतु**) अच्छे प्रकार उपदेश करे उसी के समान होके हम को सद्गुणों का उपदेश किया करे ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। ईश्वर ने अग्निरूप कारण से सूर्य, अग्नि और बिजुली रूप तीन प्रकार की दीप्ति रची है जिन के द्वारा सब कार्य सिद्ध होते हैं। जब कोई ऐसा पूछे कि जीव अपने शरीरों को छोड़के जिस यम के स्थान को प्राप्त होते हैं वह कौन है तब उत्तर देने वाला अन्तरिक्ष में रहने वाले वायु को प्राप्त होते हैं ऐसा कहे। जैसे युद्ध में रथ, भृत्य आदि सेना के अङ्गों में स्थित होते हैं वैसे मरे और जीते हुए जीव वायु के अवलम्ब से स्थित होते हैं। पृथिवी, चन्द्रमा और नक्षत्रादि लोक सूर्यप्रकाश के आश्रय से स्थित होते हैं। जो विद्वान् हो वही प्रश्नों के उत्तर कह सकता है, मूर्ख नहीं। इसलिए मनुष्यों को मूर्ख अर्थात् अनाप्तों के कहने में विश्वास और विद्वानों के कथन में अश्रद्धा कभी न करनी चाहिए ॥ ६ ॥

फिर इस सूर्यलोक के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वि सु॑प॒र्णो अ॒न्तरि॑क्षाण्यख्यद्गभी॒रवे॑पा॒ असु॑रः सुनी॒थः ।
क्वे॒३॑दानीं॒ सूर्य॒ः कश्चि॑केत कत॒मां द्यां र॒श्मिर॒स्या त॑तान ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे विद्वज्जन ! जैसे यह सूर्यलोक जो (**असुर**) सब के लिए प्राणदाता अर्थात् रात्रि में सोये हुओं को उदय के समय चेतनता देने (**गभीरवेपा**) जिसका कम्पन गभीर अर्थात् सूक्ष्म होने से साधारण पुरुषों के मन में नहीं बैठता (**सुनीथ**) उत्तम प्रकार से पदार्थों की प्राप्ति कराने और (**सुपर्ण**) उत्तम पतन स्वभाव किरणयुक्त सूर्य्य (**अन्तरिक्षाणि**) अन्तरिक्ष में ठहरे हुए सब लोकों को (**व्यख्यत**) प्रकाशित करता है (**इदानीम्**) इस वर्त्तमान समय रात्रि में (**क्व**) कहाँ है ? इस बात को (**कः**) कौन (**चिकेत**) जानता तथा (**कतमाम्**) बहुतों में किस (**द्याम्**) प्रकाश को (**अस्य**) इस सूर्य के (**रश्मि**) किरण (**आततान**) व्याप्त हो रहे हैं इस बात को भी कौन जानता है ? अर्थात् कोई-कोई जो विद्वान् हैं वे ही जानते हैं सब साधारण पुरुष नहीं। इसलिए सूर्य्यलोक का स्वरूप और गति आदि को तू जान ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जब यह भूगोल अपने भ्रमण से सूर्य्य के प्रकाश का आच्छादन कर अन्धकार करता है तब साधारण मनुष्य पूछते हैं कि अब वह सूर्य्य कहाँ गया ? उस प्रश्न का उत्तर से समाधान करें कि पृथिवी के दूसरे पृष्ठ में है। जिसका चलना अति सूक्ष्म है जैसे वह मूर्ख मनुष्यों से जाना नहीं जाता वैसे ही महाशय मनुष्यों का आशय भी अविद्वान् लोग नहीं जान सकते ॥ ७ ॥

फिर इसके कृत्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अ॒ष्टौ व्य॑ख्यत्क॒कुभ॑ः पृथि॒व्यास्त्री धन्व॒ योज॑ना स॒प्त सिन्धू॑न् ।
हि॒र॒ण्या॒क्षः स॑वि॒ता दे॒व आगा॒द्दध॒द्रत्ना॑ दा॒शुषे॒ वार्या॑णि ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे सभेश ! जैसे जो (**हिरण्याक्ष**) जिस के सुवर्ण के समान ज्योति हैं वह (**सविता**) वृष्टि उत्पन्न करने वाला (**देव**) द्योतनात्मक सूर्यलोक (**पृथिव्या**) पृथिवी से सम्बन्ध रखने वाली (**अष्टौ**) आठ (**ककुभ**) दिशा अर्थात् चार दिशा और चार उपदिशाओं (**त्री**) तीन भूमि, अन्तरिक्ष और प्रकाश के अर्थात् ऊपर, नीचे और मध्य में ठहरने वाले (**धन्व**) प्राप्त होने योग्य (**योजना**) सब वस्तु के आधार तीन लोकों और (**सप्त**) सात (**सिन्धून्**) भूमि, अन्तरिक्ष वा ऊपर स्थित हुए जलसमुदायों को (**व्यख्यत्**) प्रकाशित करता है वह (**दाशुषे**) सर्वोपकारक विद्यादि उत्तम पदार्थ देने वाले यजमान के लिए (**वार्याणि**) स्वीकार करने योग्य (**रत्ना**) पृथिवी आदि वा सुवर्ण आदि रमणीय रत्नों को (**दधत्**) धारण करता हुआ (**आगात्**) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी वर्त्तो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे यह सूर्यलोक सब मूर्तिमान् पदार्थों का प्रकाश छेदन वायु द्वारा अन्तरिक्ष में प्राप्त और वहाँ से नीचे गेरकर रमणीय सुखों को जीवों के लिए उत्पन्न करता है और पृथिवी में स्थित उनचास कोश पर्यन्त अन्तरिक्ष में स्थूल, सूक्ष्म, लघु और गुरु रूप से स्थित हुए जलों

को अर्थात् जिनका सूर्त्तिषु नाम है आकर्षणशक्ति से धारण करता है वैसे सब विद्वान् लोग विद्या और धर्म से सब प्रजा को धारण करके सब को आनन्द में रक्खें ॥ ८ ॥

फिर वह क्या करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते ।
अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभिकृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष ! जैसे (**हिरण्यपाणिः**) जिसके हिरण्यरूप ज्योति हाथों के समान ग्रहण करने वाले हैं (**विचर्षणिः**) पदार्थों को छिन्न-भिन्न और (**सविता**) रसों को उत्पन्न करने वाला सूर्यलोक (**उभे**) दोनों (**द्यावापृथिवी**) प्रकाशभूमि को (**अन्तः**) अन्तरिक्ष के मध्य में (**ईयते**) प्राप्त (**अमीवाम्**) रोग, पीड़ा का (**अपबाधते**) निवारण (**सूर्यम्**) सब का प्राप्त होने वाले अपने किरण-समूह को (**अभिवेति**) साक्षात् प्रकट और (**कृष्णेन**) पृथिवी आदि प्रकाश रहित (**रजसा**) लोकसमूह के साथ अपने (**द्याम्**) प्रकाश को (**ऋणोति**) प्राप्त करता है वैसे मुझ को भी होना चाहिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे सभापते ! जैसे यह सूर्यलोक बहुत लोकों के साथ आकर्षण सम्बन्ध से वर्त्तमान सब वस्तुमात्र को प्रकाशित करता हुआ प्रकाश तथा पृथिवीलोक का मेल करता है वैसे स्वभावयुक्त आप हूजिए ॥ ९ ॥

अब अगले मन्त्र में वायु के गुणों का उपदेश किया है—

हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
अपसेधन्रक्षसो यातुधानानस्थाद्देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥ १० ॥

पदार्थ—हे सभापते ! आप जैसे यह (**हिरण्यहस्तः**) जिसका चलना हाथ के समान है (**असुरः**) प्राणों की रक्षा करने वाला रूप गुण रहित (**सुनीथः**) सुन्दर रीति से सब को प्राप्त होने (**सुमृळीकः**) उत्तम व्यवहारों से सुखयुक्त करने और (**स्ववान्**) उत्तम-उत्तम स्पर्श आदि गुण वाला (**अर्वाङ्**) अपने नीचे-ऊपर टेढ़े जाने वाले वेगों को प्राप्त होता हुआ वायु चारों ओर से चलता है तथा (**प्रतिदोषम्**) रात्रि-रात्रि के प्रति (**गृणानः**) गुण कथन से स्तुति करने योग्य (**देवः**) सुखदायक वायु दुःखों को निवृत्त और सुखों को प्राप्त करके (**अस्थात्**) स्थित होता है वैसे (**रक्षसः**) दुष्ट कर्म करने वाले (**यातुधानान्**) जिनसे पीड़ा आदि दुःख होते हैं उन डाकुओं को (**अपसेधन्**) निवारण करते हुए श्रेष्ठों को प्राप्त हूजिए ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे सभापते ! जैसे यह वायु अपने आकर्षण और बल आदि गुणों से सब पदार्थों को व्यवस्था में रखता है और जैसे दिन में चार प्रबल नहीं हो सकते हैं वैसे आप भी हूजिए जिस जगदीश्वर ने बहुत गुणयुक्त सुख प्राप्त करने वाले वायु आदि पदार्थ रचे हैं उसी को सब धन्यवाद देने योग्य हैं ॥ १० ॥

अब अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से ईश्वर का उपदेश किया है

ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (**सवितः**) सकल जगत् के रचने और (**देव**) सर्व सुख देने वाले जगदीश्वर ! (**ये**) जो (**ते**) आपके (**अरेणवः**) जिनमें कुछ भी धूलि के अंशों के समान विघ्नरूप मल नहीं हैं तथा (**पूर्व्यासः**) जो हमारी अपेक्षा से प्राचीनों ने सिद्ध और सेवन किये हैं (**सुकृताः**) अच्छे प्रकार सिद्ध किये हुए (**पन्थाः**) मार्ग (**अन्तरिक्षे**) अपने व्यापकता रूप ब्रह्माण्ड में वर्त्तमान हैं (**तेभिः**) उन (**सुगेभिः**) सुखपूर्वक सेवन करने योग्य (**पथिभिः**) मार्गों से (**नः**) हम लोगों की (**अद्य**) आज (**रक्ष**) रक्षा कीजिए (**च**) और (**नः**) हम लोगों के लिए सब विद्याओं का (**अधिब्रूहि**) उपदेश (**च**) भी कीजिए ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! आपने जो सूर्य आदि लोकों के घूमने और प्राणियों के सुख के लिए आकाश वा अपने महिमारूप संसार में शुद्ध मार्ग रचे हैं जिन में सूर्यादि लोक यथानियम से घूमते और सब प्राणी विचरते हैं उन सब पदार्थों के मार्गों तथा गुणों का उपदेश कीजिए कि जिससे हम लोग इधर-उधर चलायमान न होवें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में सूर्यलोक, वायु और ईश्वर के गुणों का प्रतिपादन करने से चौंतीसवें सूक्त के साथ इस सूक्त की सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह सातवाँ वर्ग सातवाँ अनुवाक और पैंतीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥ ३५ ॥

卐

अथ विंशत्यृचस्य षट्त्रिंशस्य सूक्तस्य घौरः काण्व ऋषिः । अग्निर्देवता । १, १२ भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । २ निचृत्सतः पङ्क्तिः, ४ निचृत्पङ्क्तिः, १०, १४ निचृद्विस्तारपङ्क्तिः, १८ विस्तारपङ्क्तिः, २० सतः पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३, ११ निचृत्पथ्या बृहती, ५, १६ निचृद्बृहती, ६ भुरिग् बृहती, ७ बृहती, ८ स्वराड् बृहती, ९ निचृदुपरिष्टाद् बृहती, १३ उपरिष्टाद् बृहती, १५ विराट् पथ्याबृहती, १७ विराडुपरिष्टाद्बृहती, १९ पथ्याबृहती च छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब छत्तीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके पहले मन्त्र में अग्नि शब्द से ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम् ।
अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिरीमहे यं सीमिदन्य ईळते ॥ १ ॥

पदार्थ—हम लोग जैसे (**अन्ये**) अन्य परोपकारी, धर्मात्मा, विद्वान् लोग (**सूक्तेभिः**) जिन में अच्छे प्रकार विद्या कही है उन (**वचोभिः**) वेद के अर्थ-ज्ञान-युक्त वचनों से (**देवयतीनाम्**) अपने लिए दिव्य-भोग वा दिव्य-गुणों की इच्छा करने वाले (**पुरूणाम्**) बहुत (**वः**) तुम (**विशाम्**) प्रजा लोगों के सुख के लिए (**यम्**) जिस (**यह्वम्**) अनन्त गुणयुक्त (**अग्निम्**) परमेश्वर की (**सीम्+ईळते**) सब प्रकार स्तुति करते हैं वैसे उस (**इत्**) ही की (**ईमहे**) अच्छे प्रकार याचना और गुणों का प्रकाश करें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे तुम पूर्ण विद्यायुक्त विद्वान् लोग प्रजा के सुख की सम्पत्ति के लिए सर्वव्यापी परमेश्वर का निश्चय तथा उपदेश करके प्रयत्न से जानते हो वैसे ही हम लोग भी उसके गुण प्रकाशित करें। जैसे ईश्वर अग्नि आदि पदार्थों के रचन और पालन से जीवों में सब सुखों को धारण करता है वैसे हम लोग भी सब प्राणियों के लिए सदा सुख वा विद्या को सिद्ध करते रहें ऐसा जानो ॥ १ ॥

फिर अगले मन्त्र में उक्त विषय का उपदेश किया है—

जनासो अग्निं दधिरे सहोवृधं हविष्मन्तो विधेम ते ।
स त्वं नो अद्य सुमना इहाविता भवा वाजेषु सन्त्य ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (**सन्त्य**) सब वस्तु देनेहारे ईश्वर ! जैसे (**हविष्मन्तः**) उत्तम देने-लेने योग्य वस्तु वाले (**जनासः**) विद्या में प्रसिद्ध हुए विद्वान् लोग जिस (**ते**) आपके आश्रय का (**दधिरे**) धारण करते हैं वैसे उन (**सहोवृधम्**) बल को बढ़ाने वाले (**अग्निम्**) सब के रक्षक आप को हम लोग (**विधेम**) सेवन करें (**सः**) सो (**सुमनाः**) उत्तम ज्ञान वाले (**त्वम्**) आप (**अद्य**) आज (**नः**) हम लोगों के (**इह**) संसार और (**वाजेषु**) युद्धों में (**अविता**) रक्षक और सब विद्याओं में प्रवेश करानेवाले (**भव**) हूजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को एक अद्वितीय परमेश्वर की उपासना से ही सन्तुष्ट रहना चाहिए, क्योंकि विद्वान् लोग परमेश्वर के स्थान में अन्य वस्तु को उपासना भाव से स्वीकार कभी नहीं करते। इसी कारण उनका युद्ध वा इस संसार में कभी पराजय नहीं दीख पड़ता क्योंकि वे धार्मिक होते हैं। और ईश्वर की उपासना न करने वाले उनको जीतने में समर्थ नहीं होते, क्योंकि ईश्वर जिनकी रक्षा करने वाला है उनका पराजय कैसे हो सकता है ॥ २ ॥

अब अगले मन्त्र में भौतिक अग्नि के दृष्टान्त से राजदूतों के गुणों का उपदेश किया है—

प्र त्वा दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
महस्ते सतो वि चरन्त्यर्चयो दिवि स्पृशन्ति भानवः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् राजदूत ! जैसे हम लोग (**विश्ववेदसम्**) सब शिल्पविद्या का हेतु (**होतारम्**) ग्रहण करने और (**दूतम्**) सब पदार्थों को तपाने वाले अग्नि को (**वृणीमहे**) स्वीकार करते हैं वैसे (**त्वा**) तुझ को भी ग्रहण करते हैं तथा जैसे (**महः**) महागुणविशिष्ट (**सतः**) सत्कारणरूप से नित्य अग्नि के (**भानवः**) किरण सब पदार्थों में (**स्पृशन्ति**) सम्बन्ध करते और (**अर्चयः**) प्रकाशरूप ज्वाला (**दिवि**) द्योतनात्मक सूर्य्य के प्रकाश में (**विचरन्ति**) विशेष करके प्राप्त होती हैं वैसे तेरे भी सब काम होने चाहिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे अपने काम में प्रवीण राजदूत ! जैसे सब मनुष्य महाप्रकाशादिगुणयुक्त अग्नि को पदार्थों की प्राप्ति वा अप्राप्ति के कारण दूत के समान जान और शिल्पकार्यों को सिद्ध करके सुखों को स्वीकार करते और जैसे इस बिजुली रूप अग्नि की दीप्ति सब जगह बसती है और प्रसिद्ध अग्नि की दीप्ति छोटी होने तथा वायु के छेदक होने से अवकाश करने वाली होकर ज्वाला ऊपर जाती है वैसे तू भी अपने कामों में प्रवृत्त हो ॥ ३ ॥

फिर वह दूत कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

देवासस्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा सं दूतं प्रत्नमिन्धते ।
विश्वं सो अग्ने जयति त्वया धनं यस्ते ददाश मर्त्यः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) धर्म, विद्या, श्रेष्ठ गुणों से प्रकाशमान सभापते ! (**यः**) जो (**ते**) तेरा (**दूतः**) दूत (**मर्त्यः**) मनुष्य तेरे लिए (**धनम्**) विद्या, राज्य, सुवर्णादि श्री को (**ददाश**) देता है तथा जो (**त्वया**) तेरे साथ शत्रुओं को (**जयति**) जीतता है (**मित्रः**) सबका सुहृद् (**वरुणः**) सब से उत्तम (**अर्यमा**) न्यायकारी (**देवासः**) ये सब सभ्य विद्वान् मनुष्य जिसको (**समिन्धते**) अच्छे प्रकार प्रशंसित जानकर स्वीकार के लिए शुभ गुणों से प्रकाशित करें जो (**त्वा**) तुझ और सब प्रजा को प्रसन्न रखे (**सः**) वह दूत (**प्रत्नम्**) जो कि कारणरूप से अनादि है (**विश्वम्**) राज्य को सुरक्षित रखने को योग्य होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य सब शास्त्रों में प्रवीण राजधर्म को ठीक-ठीक जानने, पर-अपर इतिहासों के वेत्ता, धर्मात्मा, निर्भयता से सब विषयों के वक्ता,

शूरवीर दूतों और उत्तम राजा सहित सभासदों के बिना राज्य को पाने, पालने, बढ़ाने और परोपकार में लगाने को समर्थ नहीं हो सकते इस से पूर्वोक्त प्रकार ही से राज्य की प्राप्ति आदि का विधान सब लोग सदा किया करें ॥ ४ ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है—

मन्द्रो होता गृहपतिरग्ने दूतो विशामसि ।

त्वे विश्वा संगतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृण्वत ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) शरीर और आत्मा के बल से सुशोभित ! जिस से आप (मन्द्रः) पदार्थों की प्राप्ति करने से सुख का हेतु (होता) सुखों के देने (गृहपतिः) गृहकार्यों का पालन (दूतः) दुष्ट शत्रुओं को तप्त और छेदन करने वाले (विशाम्) प्रजाओं के (पतिः) रक्षक (असि) हैं इससे सब प्रजा (यानि) जिन (विश्वा) सब (ध्रुवा) निश्चल (संगतानि) सम्यक् युक्त समयानुकूल प्राप्त हुए (व्रता) धर्मयुक्त कर्मों को (देवाः) धार्मिक विद्वान् लोग (अकृण्वत) करते हैं उनका सेवन (त्वे) आप के रक्षक होने से सदा कर सकती हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो प्रशस्त राजा, दूत और सभासद् होते हैं वे ही राज्य का पालन कर सकते हैं इनसे विपरीत मनुष्य नहीं कर सकते ॥ ५ ॥

अब अग्नि के दृष्टान्त से राजपुरुषों के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वे इदग्ने सुभगे यविष्ठ्य विश्वमा हूयते हविः ।

स त्वं नो अद्य सुमना उतापरं यक्षि देवान्त्सुवीर्या ॥ ६ ॥

हे (यविष्ठ्य) पदार्थों के मेल करने में बलवान् (अग्ने) सुख देनेवाले राजन् ! जैसे होता से (अग्नौ) अग्नि में (विश्वम्) सब (हविः) उत्तमता से संस्कार किया हुआ पदार्थ (आहूयते) डाला जाता है वैसे जिस (सुभगे) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त (त्वे) आप में न्याय करने का काम स्थापित करते हैं सो (सुमनाः) अच्छे मनवाले (त्वम्) आप (अद्य) आज (उत) और (अपरम्) दूसरे दिन भी (नः) हम लोगों को (सुवीर्या) उत्तम वीर्य वाले (देवान्) विद्वान् (इत्) ही (यक्षि) बनाइये ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् लोग वह्नि में पवित्र होम करने योग्य घृतादि पदार्थों को होमके संसार के लिए सुख उत्पन्न करते हैं वैसे ही राजपुरुष दुष्टों को बन्दीघर में डालके सज्जनों को आनन्द सदा दिया करें ॥ ६ ॥

फिर उसी अर्थ का उपदेश अगले मन्त्र में किया है

तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।

होत्राभिरग्निं मनुषः समिन्धते तितिर्वांसो अति स्रिधः ॥ ७ ॥

पदार्थ—जो (नमस्विनः) उत्तम सत्कार करनेवाले (मनुषः) मनुष्य (होत्राभिः) हवनयुक्त सत्य क्रियाओं से (स्वराजम्) अपने राजा (अग्निम्) ज्ञानवान् सभाध्यक्ष को (घ) ही (उपासते) उपासना और (तम्) उसी का (समिन्धते) प्रकाश करते हैं वे मनुष्य (स्रिधः) हिंसा, नाश करने वाले शत्रुओं को (अति तितिर्वांसः) अच्छे प्रकार जीतकर पार हो सकते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य, सभाध्यक्ष की उपासना करने वाले भृत्य और सभासदों के बिना अपने राज्य की सिद्धि को प्राप्त होकर शत्रुओं से विजय को प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ७ ॥

फिर पूर्वोक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

घ्नन्तो वृत्रमतरन्रोदसी अप उरु क्षयाय चक्रिरे ।

भुवत्कण्वे वृषा द्युम्न्याहुतः क्रन्ददश्वो गविष्टिषु ॥ ८ ॥

पदार्थ—राजपुरुष ! जैसे बिजुली, सूर्य और उस के किरण (वृत्रम्) मेघ का छेदन करते और वर्षाते हुए आकाश और पृथिवी को जल से पूर्ण तथा इन कर्मों को प्राणियों के संसार में अधिक निवास के लिए करते हैं वैसे ही शत्रुओं को (घ्नन्तः) मारते हुए (रोदसी) प्रकाश और अन्धेरे में (अपः) कर्म को करें और सब जीवों को (अतरन्) दुःखों के पार करें तथा (गविष्टिषु) गाय आदि पशुओं के सघातों में (क्रन्दत्) शब्द करते हुए (अश्वः) घोड़े के समान (आहुतः) राज्याधिकार में नियत किया (वृषा) सुख की वृष्टि करने वाला (उरुक्षयाय) बहुत निवास के लिए (कण्वे) बुद्धिमान् में (द्युम्नी) बहुत ऐश्वर्य को धरता हुआ सुखी (भुवत्) होवे ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे बिजुली, अग्नि भौतिक और सूर्य यही तीन प्रकार के अग्नि मेघ को छिन्न-भिन्न कर सब लोकों को जल से पूर्ण करते हैं उनका यह कर्म सब प्राणियों के अधिक सुख के लिए होता है, वैसे ही सभाध्यक्षादि राजपुरुषों को चाहिए कि कण्टकरूप शत्रुओं को मारके प्रजा को निरन्तर तृप्त करें ॥ ८ ॥

अब अगले मन्त्र में सभापति के गुणों का उपदेश किया है—

सं सीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीतमः ।

वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ ९ ॥

पदार्थ- हे (प्रशस्त) विद्याविनययुक्त (मियेध्य) प्राज्ञ (अग्ने) विद्वन् सभापते ! जो आप (महान्) बड़े-बड़े गुणों से युक्त (असि) हैं सो (देववीतमः) विद्वानों को व्याप्त होनेहारे आप न्याय धर्म में स्थित होकर (संसीदस्व) सब दोषों का नाश कीजिए और (शोचस्व) प्रकाशित हूजिए । हे (प्रशस्त) प्रशंसा करने योग्य राजन् ! आप (विधूमम्) धूम सदृश मल से रहित (अरुषम्) देखने योग्य (दर्शतम्) रूप को (सृज) उत्पन्न कीजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—प्रशंसित बुद्धिमान् राजपुरुषों को चाहिए कि अग्नि के समान तेजस्वि और बड़े-बड़े गुणों से युक्त हो और श्रेष्ठ गुणवाले पृथिवी आदि भूतों के तत्त्व को जानके प्रकाशमान होते हुए निर्मल देखने योग्य रूप को उत्पन्न करें ॥ ९ ॥

मनुष्य किस प्रकार के पुरुष को सभाध्यक्ष करें ? इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यं त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।

यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्पृतं यं वृषा यमुपस्तुतः ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (हव्यवाहन) ग्रहण करने योग्य वस्तुओं की प्राप्ति कराने वाले सभ्यजन ! (यम्) जिस विचारशील (यजिष्ठम्) अत्यन्त यज्ञ करने वाले (त्वा) आप को (देवासः) विद्वान् लोग (मनवे) विचारने योग्य राज्य की शिक्षा के लिए (इह) इस पृथिवी में (दधुः) धारण करने (यम्) जिस शिक्षा पाये हुए (धनस्पृतम्) विद्या, सुवर्ण आदि धन से युक्त आपको (मेध्यातिथिः) पवित्र अतिथियों से युक्त अध्यापक (कण्वः) विद्वान् पुरुष स्वीकार करता (यम्) जिस सुख की वृष्टि करने वाले (त्वा) आप को (वृषा) सुखों का फैलाने वाला धारण करता और (यम्) जिस स्तुति के योग्य आप को (उपस्तुतः) समीपस्थ सज्जनों की स्तुति करने वाला राजपुरुष धारण करता है उन आप को हम लोग सभापति के अधिकार में नियत करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—इस सृष्टि में सब मनुष्यों को चाहिए कि विद्वान् और अन्य सब श्रेष्ठ, चतुर पुरुष मिलके जिस विचारशील ग्रहण योग्य वस्तुओं के प्राप्त कराने वाले, शुभ गुणों से भूषित विद्या सुवर्णादिधनयुक्त, सभा के योग्य पुरुष को राज्य शासन के लिए नियुक्त करें वही पिता के तुल्य पालन करनेवाला जन राजा होवे ॥ १० ॥

फिर सभाध्यक्षादि लोग अग्नि आदि पदार्थों से कैसे उपकार लेवें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यमग्निं मेध्यातिथिः कण्व ईध ऋतादधि ।

तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा ऋचस्तमग्निं वर्धयामसि ॥ ११ ॥

पदार्थ—(मेध्यातिथिः) पवित्र सेवक शिष्यवर्गों से युक्त (कण्वः) विद्यासिद्ध कर्मकाण्ड में कुशल विद्वान् (ऋतादधि) मेघमण्डल के ऊपर से सामर्थ्य होने के लिए (यम्) जिस (अग्निम्) दाहयुक्त सब पदार्थों के काटने वाले अग्नि को (ईधे) प्रदीप्त करता है (तस्य) उस अग्नि के (इषः) घृतादि पदार्थों को मेघमण्डल में प्राप्त करने वाले किरण (प्र) अत्यन्त (दीदियुः) प्रज्वलित होते हैं और (इमाः) ये (ऋचः) वेद के मन्त्र जिस अग्नि के गुणों का प्रकाश करते हैं (तम्) उसी (अग्निम्) अग्नि को सभाध्यक्षादि राजपुरुष हम लोग शिल्पक्रिया सिद्धि के लिए (वर्धयामसि) बढ़ाते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—सभाध्यक्षादि राजपुरुषों को चाहिए कि होता आदि विद्वान् लोग वायु वृष्टि के शोधक हवन के लिए जिस अग्नि को प्रकाशित करते हैं जिस के किरण ऊपर को प्रकाशित होते और जिसके गुणों को वेदमन्त्र कहते हैं उसी अग्नि को राज्यसाधक क्रियासिद्धि के लिए बढ़ावें ॥ ११ ॥

फिर भी अगले मन्त्र में उन्हीं राजपुरुषों के गुणों का उपदेश किया है—

रायस्पूर्धि स्वधावोऽस्ति हि तेऽग्ने देवेष्वाप्यम् ।

त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृळ महाँ असि ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (स्वधावः) भोगने योग्य अन्नादि पदार्थों से युक्त (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी सभाध्यक्ष ! (हि) जिस कारण (ते) आपकी (देवेषु) विद्वानों के (आप्यम्) ग्रहण करने योग्य मित्रता (अस्ति) है इसलिए आप (रायः) विद्या, सुवर्ण और चक्रवर्त्ति राज्यादि धनों को (पूर्धि) पूर्ण कीजिए जो आप (महान्) बड़े-बड़े गुणों से युक्त (असि) हैं और (श्रुत्यस्य) सुनने के योग्य (वाजस्य) युद्ध बीच में प्रकाशित होते हैं (सः) सो (त्वम्) पुत्र के तुल्य प्रजा की रक्षा करने हारे आप (नः) हम लोगों को (मृळ) सुखयुक्त कीजिए ॥ १२ ॥

भावार्थ- वेदों का जानने वाले उत्तम विद्वानों में मित्रता रखते हुए सभाध्यक्षादि राजपुरुषों को उचित है कि अन्न, धन आदि पदार्थों के कोशों को निरन्तर भर और प्रसिद्ध डाकुओं के साथ निरन्तर युद्ध करने में समर्थ होके प्रजा के लिए बड़े-बड़े सुख देने वाले होवें ॥ १२ ॥

फिर वह सभाध्यक्ष कैसा होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।

ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे सभापते ! आप (देवः) सब को प्रकाशित करनेहारे (सविता) सूर्यलोक के (न) समान (नः) हम लोगों की रक्षादि के लिए (ऊर्ध्वः) ऊंचे आसन पर (सुतिष्ठ) सुशोभित हूजिए (उ) और (ऊर्ध्वः) उन्नति

को प्राप्त हुए (वाजस्य) युद्ध के (सनितः) सेवन करने वाले हूजिए इसलिए हम लोग (अग्निभिः) यज्ञ के साधनों को प्रसिद्ध करने तथा (स्वध्वरैः) सब ऋतुओं में यज्ञ करने वाले विद्वानों के साथ (विधेम) विविध प्रकार के शब्दों से आप की स्तुति करते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ—सूर्य के समान अति तेजस्वी सभापति को चाहिए कि संग्राम सेवन से दुष्ट शत्रुओं को हटाके सब प्राणियों की रक्षा के लिए प्रसिद्ध विद्वानों के साथ सभा में ऊँचे आसन पर बैठे ॥ १३ ॥

फिर वह सभापति कैसा होवे यह अगले मन्त्र में कहा है—

ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह ।

कृधी न ऊर्ध्वान् चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे सभापते ! आप (केतुना) बुद्धि के दान से (नः) हम लोगों की (अंहसः) दूसरे का पदार्थ हरणरूप पाप से (निपाहि) निरन्तर रक्षा कर (विश्वम्) सब (अत्रिणम्) अन्याय से दूसरे के पदार्थों को खाने वाले शत्रुमात्र को (संदह) अच्छे प्रकार जलाइए और (ऊर्ध्वः) सब से उत्कृष्ट आप (चरथाय) ज्ञान और सुख की प्राप्ति के लिए (नः) हम लोगों को (ऊर्ध्वान्) बड़े-बड़े गुण, कर्म और स्वभाव वाले (कृधि) कीजिए तथा (नः) हम को (देवेषु) धार्मिक विद्वानों में (जीवसे) जीवन प्राप्ति होने के लिए (दुवः) सेवा को (विदाः) प्राप्त कीजिए ॥ १४ ॥

भावार्थ—अच्छे गुण, कर्म और स्वभाव वाले सभाध्यक्ष राजा को चाहिए कि राज्य की रक्षा, नीति और दण्ड के भय से सब मनुष्यों को पाप से हटा सब शत्रुओं को मार और विद्वानों की सब प्रकार सेवा करके, प्रजा में ज्ञान, सुख और जीवन बढ़ाने के लिए सब प्राणियों को शुभगुणयुक्त सदा किया करे ॥ १४ ॥

फिर उस सभाध्यक्ष राजा से प्रजा और सेना के जन क्या-क्या प्रार्थना करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।

पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे (बृहद्भानो) बड़े-बड़े विद्यादि ऐश्वर्य्य के तेजवाले (यविष्ठ्य) अत्यन्त तरुणावस्था युक्त (अग्ने) सब से मुख्य सब की रक्षा करनेवाले मुख्य सभाध्यक्ष महाराज ! आप (धूर्तेः) कपटी, अधर्मी (अराव्णः) दान, धर्म रहित कृपण (रक्षसः) महाहिंसक दुष्ट मनुष्य से (नः) हम को (पाहि) बचाइए (रिषतः) सब को दुःख देने वाले सिंह आदि दुष्ट जीव और दुष्टाचारी मनुष्य से हम को पृथक् रखिए (उत) और (वा) भी (जिघांसतः) मारने की इच्छा करते हुए शत्रु से हमारी रक्षा कीजिए ॥ १५ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिए कि सब प्रकार रक्षा के लिए सर्वरक्षक, धर्मोन्नति की इच्छा करने वाले सभाध्यक्ष की सर्वदा प्रार्थना करें और अपने आप भी दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्य आदि प्राणियों से, और सब पापों से मन, वाणी और शरीर से दूर रहें क्योंकि रहने के विना कोई मनुष्य सर्वदा सुखी नहीं रह सकता ॥ १५ ॥

फिर अगले मन्त्र में उसी सभाध्यक्ष का उपदेश किया है—

घनेव विष्वग्वि जह्यराव्णस्तपुर्जम्भ यो अस्मध्रुक् ।

यो मर्त्यः शिशीते अत्यक्तुभिर्मा नः स रिपुरीशत ॥ १६ ॥

पदार्थ—(तपुर्जम्भ) शत्रुओं को सताने और नाश करने के शस्त्र बांधने वाले सेनापते ! (विष्वक्) सर्वथा सेनादि बलों से युक्त होके आप (अराव्णः) दान रहित शत्रुओं को (घनेव) घन के समान (विजहि) विशेष करके जीत और (यः) जो (मर्त्यः) मनुष्य (अक्तुभिः) रात्रियों से (अस्मध्रुक्) हमारा द्रोही (अतिशिशीते) अति हिंसा करता हो (सः) वह (रिपुः) वैरी (नः) हम लोगों को पीड़ा देने में (मा ईशत) मत समर्थ होवे ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । सेनाध्यक्षादि लोग जैसे लोहे के घन से लोहे और पाषाणादिकों को तोड़ते हैं वैसे ही अधर्म्मी दुष्ट शत्रुओं के अङ्गों को छिन्न-भिन्न कर दिन-रात धर्म्मात्मा प्रजाजनों के पालन में तत्पर हों जिस से शत्रुजन इन प्रजाओं को दुःख देने को समर्थ न हो सकें ॥ १६ ॥

फिर इन सभाध्यक्षादि राजपुरुषों के गुण अग्नि के दृष्टान्त से अगले मन्त्र में कहे हैं—

अग्निर्वव्ने सुवीर्यमग्निः कण्वाय सौभगम् ।

अग्निः प्रावन्मित्रोत मेध्यातिथिमग्निः साता उपस्तुतम् ॥ १७ ॥

पदार्थ—जो विद्वान् (अग्निः) भौतिक अग्नि के समान (साती) युद्ध में (उपस्तुतम्) उपगत स्तुति के योग्य (सुवीर्य्यम्) अच्छे प्रकार शरीर और आत्मा के बल, पराक्रम (अग्निः) विद्युत् के सदृश (कण्वाय) उसी बुद्धिमान् के लिए (सौभगम्) अच्छे ऐश्वर्य्य को (वव्ने) किसी से याचित किया हुआ देता है (अग्निः) पावक के तुल्य (मित्रा) मित्रों को (प्रावत्) पालन करता (उत) और (अग्निः) जाठराग्निवत् (उपस्तुतम्) शुभ गुणों से स्तुति करने योग्य (मेध्यातिथिम्) कारीगर विद्वान् को सेवे वही पुरुष राजा होने को योग्य होता है ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे यह भौतिक अग्नि विद्वानों द्वारा ग्रहण किया हुआ उन के लिए बल, पराक्रम और सौभाग्य को देकर शिल्पविद्या में प्रवीण और उनके मित्रों की सदा रक्षा करता है वैसे ही प्रजा और सेना के भद्रपुरुषों से प्रार्थना किया हुआ यह सभाध्यक्ष राजा उन के लिए बल, पराक्रम, उत्साह और ऐश्वर्य का सामर्थ्य देकर युद्धविद्या में प्रवीण और उनके मित्रों को सब प्रकार पाले ॥ १७ ॥

सब मनुष्य सभाध्यक्ष से मिलके दुष्टों को कैसे मारें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्निना तुर्वशं यदुं परावत उग्रादेवं हवामहे ।

अग्निर्नयन्नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीतिं दस्यवे सहः ॥ १८ ॥

पदार्थ—हम लोग जिस (अग्निना) अग्नि के समान तेजस्वी सभाध्यक्ष राजा के साथ मिलके (उग्रादेवम्) तेज स्वभाव वालों को जीतने की इच्छा करने तथा (तुर्वशम्) शीघ्र ही दूसरे के पदार्थों को ग्रहण करनेवाले (यदुम्) दूसरे का धन मारने के लिए यत्न करते हुए डाकू पुरुष को (परावतः) दूसरे देश से (हवामहे) युद्ध के लिए बुलावें यह (दस्यवे) अपने विशेष बल से दूसरे का पदार्थ हरनेवाले डाकू का (सहः) तिरस्कार करने योग्य बल वाला (अग्निः) अग्रणी सभाध्यक्ष राजा (नववास्त्वम्) एकान्त में नवीन घर बनाने (बृहद्रथम्) बड़े-बड़े रमण के साधन रथों वाले (तुर्वीतिम्) हिंसक दुष्टपुरुषों को यहां (नयत्) कैद में रक्खे ॥ १८ ॥

भावार्थ—सब धार्मिक पुरुषों को चाहिए कि तेजस्वी सभाध्यक्ष राजा के साथ मिलके वेग से अन्य पदार्थों को हरने, खोटे स्वभावयुक्त और अपने विजय की इच्छा करनेवाले डाकुओं को बुला उनके पर्वतादि एकान्त स्थानों में बने हुए घरों को गिराकर और उनको बांध के कैद में रखें ॥ १८ ॥

फिर उन राजपुरुषों का सहायक जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।

दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) परमात्मन् ! (यम्) जिस (त्वाम्) आप को (शश्वते) अनादि स्वरूप (जनाय) जीवों की रक्षा के लिए (कृष्टयः) सब विद्वान् मनुष्य (नमस्यन्ति) पूजते और हे विद्वान् लोगो ! जिसको आप (दीदेथ) प्रकाशित करते हैं उस (ज्योतिः) ज्ञान के प्रकाश करने वाले परब्रह्म को (ऋतजातः) सत्याचरण से प्रसिद्ध (उक्षितः) आनन्दित (मनुः) विज्ञानयुक्त मैं (कण्वे) बुद्धिमान् मनुष्य में (निदधे) स्थापित करता हूँ उसकी सब मनुष्य उपासना करें ॥ १९ ॥

भावार्थ—सब के पूजने योग्य परमात्मा के कृपाकटाक्ष से प्रजा की रक्षा के लिए राज्य के अधिकारी सब मनुष्यों को योग्य है कि सत्य व्यवहार की प्रसिद्धि से धर्मात्माओं को आनन्द और दुष्टों को ताड़ना देवें ॥ १९ ॥

अब उस सभापति के प्रति क्या-क्या उपदेश करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वेषासो अग्नेरमवन्तो अर्चयो भीमासो न प्रतीतये ।

रक्षस्विनः सदमिद्यातुमावतो विश्वं समत्रिणं दह ॥ २० ॥

पदार्थ—हे तेजस्वी सभास्वामिन् ! आप (अग्नेः) सूर्य, विद्युत् और प्रसिद्ध रूप अग्नि की (त्वेषासः) प्रकाशस्वरूप (भीमासः) भयकारक (अर्चयः) ज्वाला के (न) समान जो (अमवन्तः) निन्दित रोग करनेवाले (रक्षस्विनः) राक्षस अर्थात् निन्दित पुरुष हैं उन और (अत्रिणम्) बल से दूसरे के पदार्थों को हरनेवाले शत्रु को (इत्) ही (संदह) अच्छे प्रकार भस्म कीजिए और (प्रतीतये) विज्ञान वा उत्तम सुख की प्रतीति के लिए (विश्वम्) सब (सदम्) संसार तथा (यातुमावतः) मेरे समान प्राप्त होने वालों की रक्षा कीजिए ॥ २० ॥

भावार्थ—सभाध्यक्ष आदि राजपुरुषों और प्रजा के मनुष्यों को चाहिए कि जिस प्रकार अग्नि आदि पदार्थ वन आदि को भस्म कर देते हैं वैसे दुःख देने वाले शत्रुजनों के विनाश करें । इस प्रकार प्रयत्नों द्वारा सदा प्रजारक्षण करते रहें ॥२०॥

इस सूक्त में सब की रक्षा करने वाले परमेश्वर तथा दूत के दृष्टान्त से भौतिक अग्नि के गुणों का वर्णन, दूत के गुणों का उपदेश, अग्नि के दृष्टान्त से राजपुरुषों के गुणों का वर्णन, सभापति का कृत्य, सभापति होने के अधिकारी का कथन, अग्नि आदि पदार्थों से उपयोग लेने की रीति, मनुष्यों की सभापति से प्रार्थना, सब मनुष्यों को सभाध्यक्ष के साथ मिलके दुष्टों का मारना और राजपुरुषों के सहायक जगदीश्वर के उपदेश से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ।

यह छत्तीसवां सूक्त और ग्यारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥ ३६ ॥

卐

अथास्य पञ्चदशर्चस्य सप्तत्रिंशस्य सूक्तस्य घौरः कण्व ऋषिः । मरुतो देवता । १, २, ४, ६—८, १२ गायत्री, ३, ६, ११, १४ निचृद्-गायत्री, ५ विराड् गायत्री, १०, १५ पिपीलिकामध्या निचृद्-गायत्री, १३ पादनिचृद्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सैंतीसवें सूक्त का आरम्भ है । इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में विद्वानों को वायु के गुणों से क्या-क्या उपकार लेना चाहिए इस विषय का उपदेश किया है—

क्रीळं वः शर्धो मारुतमनर्वाणं रथे शुभम् । कण्वा अभि प्र गायत ॥ १ ॥

पदार्थ - हे (**कण्वा**) मेधावी विद्वान्मनुष्यो ! तुम जो (**वः**) आप लोगों के (**अनर्वाणम्**) घोड़ों के योग से रहित (**रथे**) विमानादियानों में (**क्रीळम्**) क्रीडा का हेतु क्रिया में (**शुभम्**) शोभनीय (**मारुतम्**) पवनों का समूह रूप (**शर्धः**) बल है उसको (**अभि प्रगायत**) अच्छे प्रकार सुनो वा उपदेश करो ॥ १ ॥

भावार्थ—बुद्धिमान् पुरुषों को चाहिए कि जो पवन प्राणियों के चेष्टा, बल, वेग, यान और मंगल आदि व्यवहारों को सिद्ध करते हैं, इससे इनके गुणों की परीक्षा करके इन पवनों से यथायोग्य उपकार ग्रहण करें ॥ १ ॥

फिर वे विद्वान् कैसे होने चाहिएं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः । अजायन्त स्वभानवः ॥ २ ॥

पदार्थ—(**ये**) जो (**पृषतीभिः**) पदार्थों को सींचने (**ऋष्टिभिः**) व्यवहारों को प्राप्त और (**अञ्जिभिः**) पदार्थों को प्रकट करानेवाली (**वाशीभिः**) वाणियों के (**साकम्**) साथ क्रियाओं के करने की चतुराई में प्रयत्न करते हैं वे (**स्वभानवः**) अपने ऐश्वर्य के प्रकाश से प्रकाशित (**अजायन्त**) होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ - हे विद्वान मनुष्यो ! तुम लोगों को उचित है कि ईश्वर की रची हुई इस कार्यसृष्टि में जैसे अपने-अपने स्वभाव के प्रकाश करनेवाले वायु के सकाश से जल की वृष्टि, चेष्टा का करना, अग्नि आदि की प्रसिद्धि और वाणी के व्यवहार अर्थात् कहना, सुनना, स्पर्श करना आदि सिद्ध होते हैं वैसे ही विद्या और धर्मादि शुभ गुणों का प्रचार करो ॥ २ ॥

फिर वे विद्वान् लोग इन पवनों से क्या-क्या उपकार लेवें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान् । नि यामञ्चित्रमृञ्जते ॥ ३ ॥

पदार्थ—मैं (**यत्**) जिस कारण (**एषाम्**) इन पवनों की (**कशाः**) रज्जु के समान चेष्टा के साधन नियमों को प्राप्त करानेवाली क्रिया (**हस्तेषु**) हस्त आदि अङ्गों में हैं इससे सब चेष्टा और जिससे प्राणी व्यवहार सम्बन्धी वचन का (**वदान्**) बोलते हैं उसको (**इहेव**) जैसे इस स्थान में स्थित होकर वैसे करता और (**शृण्वे**) श्रवण करता हूं और जिससे सब प्राणी और अप्राणी (**यामन्**) सुख हेतु व्यवहारों के प्राप्त करानेवाले मार्ग में (**चित्रम्**) आश्चर्यरूप कर्म को (**न्यृञ्जते**) निरन्तर सिद्ध करते हैं उसके करने को समर्थ उसी से मैं भी होता हूं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । पदार्थ विद्या की इच्छा करनेवाले विद्वानों को चाहिए कि मनुष्य आदि प्राणी जितने कर्म करते हैं उन सबों के हेतु पवन है । जो वायु न हो तो कोई मनुष्य कुछ भी कर्म करने में समर्थ न हो सके और दूरस्थित मनुष्य से उच्चारण किये हुए शब्द निकट के उच्चारण के समान वायु की चेष्टा के विना कोई भी कह वा सुन न सके और मनुष्य मार्ग में चलने आदि जितने बल वा पराक्रमयुक्त कर्म करते हैं वे सब वायु ही के योग से होते हैं । इस से यह सिद्ध है कि वायु के विना कोई नेत्र के चलाने को भी समर्थ नहीं हो सकता । इसलिए इसके शुभ गुणों की खोज सर्वदा किया करें ॥ ३ ॥

फिर वे विद्वान् लोग वायु से किस-किस प्रयोजन के लिए क्या-क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे । देवत्तं ब्रह्म गायत ॥ ४ ॥

पदार्थ - हे विद्वान् मनुष्यो ! जो ये पवन (**वः**) तुम लोगों के (**शर्धाय**) बल प्राप्त करनेवाले (**घृष्वये**) जिसके लिए परस्पर लड़ते-भिड़ते हैं उस (**शुष्मिणे**) अत्यन्त प्रशंसित बलयुक्त व्यवहार वाले (**त्वेषद्युम्नाय**) प्रकाशमान यश के लिए हैं तुम लोग उनके नियोग से (**देवत्तम्**) ईश्वर से दिये वा विद्वानों से पढ़ाये हुए (**ब्रह्म**) वेद को (**प्रगायत**) अच्छे प्रकार षड्जादि स्वरों से स्तुतिपूर्वक गाया करो ॥ ४ ॥

भावार्थ— विद्वान् मनुष्यों को चाहिए कि ईश्वर के कहे हुए वेदों को पढ़, वायु के गुणों को जान और यश वा बल के कर्मों का अनुष्ठान करके सब प्राणियों के लिए सुख देवें ॥ ४ ॥

फिर इन के योग से क्या-क्या होता है यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है-

प्र शंसा गोष्वघ्न्यं क्रीळं यच्छर्धो मारुतम् । जम्भे रसस्य वावृधे ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे विद्वान्मनुष्यो ! तुम (**यत्**) जो (**गोषु**) पृथिवी आदि भूत वा वाणी आदि इन्द्रिय तथा गौ आदि पशुओं में (**क्रीळम्**) क्रीडा के निमित्त (**अघ्न्यम्**) नहीं हनन करने योग्य वा इन्द्रियों के लिए हितकारी (**मारुतम्**) पवनों का विकाररूप (**रसस्य**) भोजन किये हुए अन्नादि पदार्थों से उत्पन्न (**जम्भे**) जिससे गात्रों का सञ्चलन हो मुख में प्राप्त होके शरीर में स्थित (**शर्धः**) बल (**वावृधे**) वृद्धि को प्राप्त होता है उसको मेरे लिए नित्य (**प्रशंस**) शिक्षा करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो वायु सम्बन्धी शरीर आदि में क्रीड़ा और बल का बढ़ाना है उसको नित्य बढ़ावें और जितना रस आदि ज्ञान है वह सब वायु के संयोग से होता है, इससे परस्पर इस प्रकार शिक्षा करनी चाहिए कि जिससे सब लोगों को वायु के गुणों की विद्या विदित हो जावे ॥ ५ ॥

फिर इन पवनों से मनुष्यों को क्या-क्या करना वा जानना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च ग्मश्च धूतयः । यत्सीमन्तं न धूनुथ ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! (**धूतयः**) शत्रुओं को कँपाने वाले (**नरः**) नीतियुक्त (**यत्**) ये तुम लोग (**दिवः**) प्रकाशवाले सूर्य आदि (**च**) वा उनके सम्बन्धी और तथा (**ग्मः**) पृथिवी (**च**) और उनके सम्बन्धी प्रकाश रहित लोकों को (**सीम्**) सब ओर से अर्थात् तृण, वृक्ष आदि अवयवों के सहित ग्रहण करके कँपाते हुए वायुओं के (**न**) समान शत्रुओं का (**अन्तम्**) नाश कर दुष्टों को जब (**आधूनुथ**) अच्छे प्रकार कँपाओ तब (**वः**) तुम लोगों के बीच में (**कः**) कौन (**वर्षिष्ठः**) यथावत् श्रेष्ठ विद्वान् प्रसिद्ध न हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । विद्वान् राजपुरुषों को चाहिए कि जैसे कोई बलवान् मनुष्य निर्बल मनुष्य के केशों का ग्रहण करके कँपाता है और जैसे वायु सब लोकों का ग्रहण तथा चलायमान करके अपनी-अपनी परिधि में प्राप्त करते हैं वैसे ही सब शत्रुओं को कँपा और उन के स्थानों से चलायमान करके प्रजा की रक्षा करें ॥ ६ ॥

फिर वे राजा और प्रजाजन कैसे होने चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे । जिहीत पर्वतो गिरिः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे प्रजासेना के मनुष्यो ! जिस सभापति राजा के भय से, वायु के बल से (**गिरिः**) जल को रोकने, गर्जना करने वाले (**पर्वतः**) मेघ, शत्रु लोग (**जिहीत**) भागते हैं वह (**मानुषः**) सभाध्यक्ष राजा (**वः**) तुम लोगों के (**यामाय**) यथार्थ व्यवहार चलाने और (**मन्यवे**) क्रोधरूप (**उग्राय**) तीव्र दण्ड देने के लिए राज्यव्यवस्था को (**दध्रे**) धारण कर सकता है ऐसा तुम लोग जानो ॥ ७ ॥

भावार्थ— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे प्रजा सेनास्थ मनुष्यो ! तुम लोगों के सब व्यवहार वायु के समान राजव्यवस्था ही से ठीक-ठीक चल सकते हैं और जब तुम लोग अपने नियमोपनियमों पर नहीं चलते हो तब तुमको सभाध्यक्ष राजा वायु के समान शीघ्र दण्ड देता है और जिसके भय से वायु से मेघों के समान शत्रुजन पलायमान होते हैं उसको तुम लोग पिता के समान जानो ॥ ७ ॥

फिर उन पवनों के योग से क्या होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वाँ इव विश्पतिः । भिया यामेषु रेजते ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! (**येषाम्**) जिन पवनों के (**अज्मेषु**) पहुँचाने, फेंकने आदि गुणों में (**भिया**) भय से (**जुजुर्वानिव**) जैसे वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ (**विश्पतिः**) प्रजा की पालना करने वाला राजा शत्रुओं से कँपाता है वैसे (**पृथिवी**) पृथिवी आदि लोक (**यामेषु**) अपने-अपने चलने रूप परिधि मार्गों में (**रेजते**) चलायमान होते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ – इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे कोई राजा जीर्ण अवस्था को प्राप्त हुआ रोग वा शत्रुओं के भय से काँपता है वैसे पवनों से सब प्रकार धारण किये हुए पृथिवी आदि लोक घूमते हैं । और सूत्र के समान बँधे हुए वायु के विना किसी लोक की स्थिति वा भ्रमण सम्भव नहीं हो सकते ॥ ८ ॥

फिर वे वायु कैसे गुण वाले हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

स्थिरं हि जानमेषां वयो मातुर्निरेतवे । यत्सीमनु द्विता शवः ॥ ९ ॥

पदार्थ- हे मनुष्यो ! (**एषाम्**) इन पवनों का (**यत्**) जो (**स्थिरम्**) निश्चल (**जानम्**) जन्मस्थान आकाश (**शवः**) बल और जिसमें (**द्विता**) शब्द और स्पर्श गुण का योग है जिसके आश्रय से (**वयः**) पक्षी (**मातुः**) अन्तरिक्ष के बीच में (**सीम्**) सब प्रकार (**निरेतवे**) निरन्तर जाने-आने को समर्थ होते हैं उन वायुओं को आप लोग (**अनु**) पश्चात् विशेषता से जानिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—ये कार्यरूप पवन आकाश में उत्पन्न होकर इधर-उधर जाते-आते हैं, जहाँ-जहाँ अवकाश है वहाँ जिनका सब प्रकार गमन सम्भव होता है और जिनकी अनुकूलता से सब प्राणी जीवन को प्राप्त होकर बल वाले होते हैं उनको युक्ति के साथ तुम लोग सेवन किया करो ॥

फिर वे कैसे काम करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा अज्मेष्वत्नत । वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥ १० ॥

पदार्थ- हे राजप्रजा के मनुष्यो ! आप लोगों (**त्ये**) वे अन्तरिक्ष में रहने वा (**सूनवः**) प्राणियों के गर्भ छुड़ाने वाले पवन (**अभिज्ञु**) जिनकी सम्मुख जंघा हो (**वाश्राः**) उन शब्द करती वा बछड़ों को सब प्रकार प्राप्त होती हुई गौओं के समान (**गिरः**) वाणी वा (**काष्ठाः**) जलों को (**अज्मेषु**) जाने के मार्गों में (**उ**)

और (आततं) प्राप्त होने को विस्तार करते हुओं के समान सुख का (तनु प्रतनुत) अच्छे प्रकार विस्तार कीजिए ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। राजा और प्रजा के मनुष्यों को जानना चाहिए कि जैसे ये वायु ही वाणी और जलों को चलाकर विस्तृत करके अच्छे प्रकार शब्दों को श्रवण कराते हुए गमनागमन, जन्म-वृद्धि और नाश के हेतु हैं वैसे ही शुभाशुभ कर्मों का अनुष्ठान सुख-दुःख का निमित्त है ॥

यह तेरहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥ १३ ॥

फिर वे राजपुरुष क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्यं चिद् घा दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृध्रम् ।

प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे राजपुरुषो ! तुम लोग जैसे (मिहः) वर्षाजल से सींचने वाले पवन (यामभिः) अपने जाने के मार्गों से (घ) ही (त्यम्) उस (नपातम्) जल को न गिराने और (अमृध्रम्) गीला न करनेवाले (पृथुम्) बड़े (चित्) भी (दीर्घम्) स्थूल मेघ को (प्रच्यावयन्ति) भूमि पर गिरा देते हैं वैसे शत्रुओं को गिराके प्रजा को आनन्दित करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजपुरुषों को चाहिए कि जैसे पवन ही मेघ के निमित्त बहुत जल को ऊपर पहुँचाकर परस्पर घिसने से बिजुली को उत्पन्न कर उस न गिरने योग्य तथा न गीला करने और बड़े आकार वाले मेघ को भूमि में गिराते हैं वैसे ही धर्म-विरोधी सब व्यवहारों को छोड़ें और छुड़ावें ॥

फिर वे राजप्रजाजन वायु के समान कर्म करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन । गिरीँरचुच्यवीतन ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) पवनों के समान सेनाध्यक्षादि राजपुरुषो ! तुम लोग (यत्) जिस कारण (वः) तुम्हारा (ह) प्रसिद्ध (बलम्) सेना आदि दृढ़ बल है इसलिए जैसे वायु (गिरीन्) मेघों को (अचुच्यवीतन) इधर-उधर आकाश, पृथिवी में घुमाया करते हैं वैसे (जनान्) प्रजा के मनुष्यों को (अचुच्यवीतन) अपने-अपने उत्तम व्यवहारों में प्रेरित करो ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सभाध्यक्षादि राजपुरुषों को चाहिए कि जैसे वायु मेघों को इधर-उधर घुमाके वर्षाते हैं वैसे ही प्रजा के सब मनुष्यों को न्याय की व्यवस्था से अपने-अपने कर्मों में, आलस्य छुड़ा के सदा नियुक्त करते रहें ॥ १२ ॥

वे वायुओं से क्या-क्या उपकार लेवें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यद्ध यान्ति मरुतः सं ह ब्रुवतेऽध्वन्ना । शृणोति कश्चिदेषाम् ॥ १३ ॥

पदार्थ—जैसे (यत्) ये (मरुतः) पवन (यान्ति) जाते-आते हैं वैसे (अध्वन्) विद्यामार्ग में कारीगर विद्वान् लोग (ह) स्पष्ट (समाब्रुवते) मिलके अच्छे प्रकार परस्पर उपदेश करते हैं और (एषाम्) इन वायुओं की विद्या को (कश्चित्) कोई विद्वान् पुरुष (आशृणोति) सुनता और जानता है, सब साधारण पुरुष नहीं ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस वायुविद्या को कोई विद्वान् ही ठीक-ठीक जान सकता है जड़-बुद्धि नहीं जान सकता ॥ १३ ॥

मनुष्यों को वायुओं से क्या-क्या कार्य्य लेना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्र यात शीभमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवः ।

तत्रो षु मादयाध्वै ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे राजपुरुषो ! तुम लोग (आशुभिः) शीघ्र ही गमनागमन कराने वाले यानों से (शीभम्) शीघ्र वायु के समान (प्र यात) अच्छे प्रकार अभीष्ट स्थान को प्राप्त हुआ करो जिन (कण्वेषु) बुद्धिमान् विद्वानों में (वः) तुम लोगों की (दुवः) सत् क्रिया हैं (तत्रो) उन विद्वानों में तुम लोग (सुमादयाध्वै) सुन्दर रीति से प्रसन्न रहो ॥ १४ ॥

भावार्थ—राजा और प्रजा के विद्वानों को चाहिए कि वायु के समान अभीष्ट स्थानों को शीघ्र जाने-आने के लिए विमानादि यान बनाके अपने कार्यों को निरन्तर सिद्ध करें और धर्मात्माओं की सेवा तथा दुष्टों का ताड़ने में सर्वदा आनन्दित रहें ॥ १४ ॥

फिर वे वायु किस-किस प्रयोजन के लिए हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेषाम् ।

विश्वं चिदायुर्जीवसे ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! (एषाम्) जानी है विद्या जिन की उन पवनों के सकाश से (हि) जिस कारण (स्म) निश्चय करके (वः) तुम लोगों के (मदाय) आनन्दपूर्वक (जीवसे) जीने के लिए (विश्वम्) सब (आयु) अवस्था है इसी प्रकार (वयम्) आप से उपदेश को प्राप्त हुए हम लोग (चित्) भी (स्मसि, स्म) निरन्तर होवें ॥ १५ ॥

भावार्थ—जैसे योगाभ्यास करके प्राणविद्या और वायु से विकारों को ठीक-ठीक जानने वाले पथ्यकारी विद्वान् लोग आनन्दपूर्वक सब आयु भोगते हैं वैसे अन्य मनुष्यों को भी चाहिए कि उन विद्वानों से उस वायुविद्या को जानके सम्पूर्ण आयु भोगें ॥ १५ ॥

इस सूक्त में अग्नि के प्रकाश करने वाले सब चेष्टा, बल और आयु के निमित्त वायु और उस वायुविद्या को जानने वाले राजा, प्रजा, अश्व और विद्वानों के गुण वर्णन से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥ १५ ॥

यह चौदहवां वर्ग और सैंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥ ३७ ॥

卐

अथास्य पञ्चदशर्चस्याष्टत्रिंशस्य सूक्तस्य घौरः कण्व ऋषिः । मरुतो देवता । १, ८, ११, १३, १५ गायत्री, २, ६, ७, ९, १० निचृद् गायत्री, ३, ४ पादनिचृत्, ५, १२ पिपीलिकामध्या निचृत्, १४ यवमध्या विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब अड़तीसवें सूक्त का आरम्भ है। उसके पहले मन्त्र में वायु के समान मनुष्यों को होना चाहिए इस विषय का वर्णन किया है—

कद्ध नूनं कधप्रियः पिता पुत्रं न हस्तयोः । दधिध्वे वृक्तबर्हिषः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (कधप्रियाः) सत्य कथाओं से प्रीति करानेवाले (वृक्तबर्हिषः) ऋत्विज् विद्वान् लोगो ! (न) जैसे (पिता) उत्पन्न करनेवाला जनक (पुत्रम्) पुत्र को (हस्तयोः) हाथों से धारण करता है, और जैसे पवन, लोकों को धारण कर रहे हैं वैसे (कद्ध) कब प्रसिद्धि से (नूनम्) निश्चय करके यज्ञ कर्म को (दधिध्वे) धारण करोगे ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे पिता हाथों से अपने पुत्र को ग्रहण कर शिक्षापूर्वक पालना तथा अच्छे कार्यों में नियुक्त करके सुखी होता और जैसे पवन सब लोकों को धारण करते हैं वैसे जो मनुष्य विद्या से यज्ञ का ग्रहण कर युक्ति से अच्छे प्रकार सेवन करते हैं वे ही सुखी होते हैं ॥१॥

फिर मनुष्यों को परस्पर किस प्रकार प्रश्नोत्तर करने चाहिएँ इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

क्व नूनं कद्वो अर्थं गन्ता दिवो न पृथिव्याः ।

क्व वो गावो न रण्यन्ति ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (न) जैसे (कत्) कब (नूनम्) निश्चय से (पृथिव्याः) भूमि के बाष्प और (दिवः) प्रकाश कर्मवाले सूर्य की (गावः) किरणें (अर्थम्) पदार्थों को (गन्त) प्राप्त होती हैं वैसे (क्व) कहाँ (वः) तुम्हारे अर्थ को (गन्त) प्राप्त होते हो जैसे (गावः) गौ आदि पशु अपने बछड़ों के प्रति (रण्यन्ति) शब्द करते हैं वैसे तुम्हारी गाय आदि शब्द करते हुओं के समान वायु कहाँ शब्द करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य की किरणें पृथिवी में स्थित हुए पदार्थों को प्रकाशित करती हैं वैसे तुम भी विद्वानों के समीप जाकर, कहाँ पवनों का नियोग करना चाहिए ऐसा पूछकर अर्थों को प्रकाशित करो और जैसे गौ अपने बछड़ों के प्रति शब्द करके दौड़ती हैं वैसे तुम भी विद्वानों की सङ्गति को प्राप्त हो, तथा हम लोगों की इन्द्रियाँ वायु के समान कहाँ स्थित होकर अर्थों को प्राप्त होती हैं ऐसा पूछकर निश्चय करो ॥ २ ॥

क्व वः सुम्ना नव्यांसि मरुतः क्व सुविता । क्वो३ विश्वानि सौभगा ॥३॥

पदार्थ—हे (मरुतः) वायु के समान शीघ्र गमन करनेवाले मनुष्यो ! तुम लोग विद्वानों के समीप प्राप्त होकर (वः) आप लोगों के (विश्वानि) सब (नव्यांसि) नवीन (सुम्ना) सुख (क्व) कहाँ, सब (सुविता) प्रेरणा कराने वाले गुण (क्व) कहाँ और सब नवीन (सौभगा) सौभाग्य प्राप्ति कराने वाले कर्म (क्वो) कहाँ हैं ऐसा पूछो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे शुभ कर्मों में वायु के समान शीघ्र चलनेवाले मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिए कि विद्वानों से पूछ कर—जिस प्रकार नवीन क्रिया की सिद्धि के निमित्त कर्म प्राप्त होवें वैसा अच्छे प्रकार निरन्तर यत्न किया करो ॥ ३ ॥

वे राजपुरुष कैसे होने चाहिएँ इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यद्यूयं पृश्निमातरो मर्तासः स्यातन । स्तोता वो अमृतः स्यात् ॥४॥

पदार्थ—हे (पृश्निमातरः) जिन वायुओं का माता आकाश है उनके सदृश (मर्तासः) मरणधर्म युक्त राजा और प्रजा के पुरुषो ! आप पुरुषार्थयुक्त (यत्) जो अपने-अपने कामों में (स्यातन) हों तो (वः) तुम्हारी (स्तोता) रक्षा करने वाला सभाध्यक्ष राजा (अमृतः) अमृत सुखयुक्त (स्यात्) होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—राजा और प्रजा के पुरुषों को उचित है कि आलस्य छोड़ वायु के समान अपने-अपने कामों में नियुक्त होवें, जिससे सब का रक्षक सभाध्यक्ष राजा शत्रुओं से मारा नहीं जा सके ॥ ४ ॥

उन वायुओं के सम्बन्ध से जीव का क्या होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः । पथा यमस्य गादुप ॥५॥

पदार्थ—हे राजा और प्रजा के जनो ! आप लोग (**न**) जैसे (**मृग**) हिरन (**यवसे**) खाने योग्य घास को खाने के निमित्त प्रवृत्त होता है वैसे (**वः**) तुम्हारा (**जरिता**) विद्याओं का दाता (**अजोष्य**) असेवनीय अर्थात् पृथक् (**मा भूत्**) न होवे तथा (**यमस्य**) निग्रह करने वाले वायु के (**पथा**) मार्ग से (**मोप गात्**) कभी अल्पायु होकर मृत्यु को प्राप्त न हो, वैसा काम किया करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे हिरन युक्ति से निरन्तर घास खाकर सुखी होता है ऐसे प्राणवायु की विद्या का जानने वाला मनुष्य युक्ति के साथ आहार-विहार कर यम के मार्ग को अर्थात् मृत्यु को प्राप्त नहीं होता और सम्पूर्ण अवस्था को भोगके सुख से शरीर को छोड़ता है ॥ ५ ॥

मो षु णः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणा वधीत् । पदीष्ट तृष्णया सह ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे अध्यापक लोगो ! आप जैसे (**परापरा**) उत्तम, मध्यम और निकृष्ट (**दुर्हणा**) दुःख से हटने योग्य (**निर्ऋतिः**) वायु के योग करने वा दुःख देनेवाली गति (**तृष्णया**) प्यास वा लोभ गति के (**सह**) साथ (**नः**) हम लोगों को (**मोपदीष्ट**) कभी न प्राप्त हो और (**मावधीत्**) बीच में न मारें किन्तु जो इन पवनों की सुख देने वाली गति है वह हम लोगों को नित्य प्राप्त होवे वैसा प्रयत्न किया कीजिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—पवनों की दो प्रकार की गति होती है एक सुखकारक और दूसरी दुःख करनेवाली उनमें से जो उत्तम नियमों से सेवन की हुई रोगों का हनन करती हुई शरीर आदि के सुख का हेतु है वह प्रथम और जो खोटे नियम और प्रमाद से उत्पन्न हुई क्लेश दुःख और रोगों की देने वाली वह दूसरी, इन्हों के मध्य में से मनुष्यों को उचित है कि परमेश्वर के अनुग्रह और अपने पुरुषार्थ से पहली गति को उत्पन्न करके दूसरी गति का नाश करके सुख की उन्नति करें और जो पिपासा आदि धर्म हैं वह वायु के निमित्त से तथा जो लोभ का वेग है वह अज्ञान से ही उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥

फिर वे कैसे हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सत्यं त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रियासः ।

मिहं कृण्वन्त्यवाताम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे (**धन्वन्**) अन्तरिक्ष में (**त्वेषाः**) बाहर-भीतर घिसने से उत्पन्न हुई बिजुली से प्रदीप्त (**अमवन्तः**) जिन का रोगों और गमनागमन रूप बलों के साथ सम्बन्ध है (**रुद्रियासः**) प्राणियों के जीने के निमित्त वायु (**अवाताम्**) हिंसा रहित (**मिहम्**) सींचने वाली वृष्टि को (**आ-कृण्वन्ति**) अच्छे प्रकार सम्पादन करते हैं और इनका (**सत्यम्**) सत्य कर्म है (**चित्**) वैसे ही सत्य कर्म का अनुष्ठान किया करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जैसे अन्तरिक्ष में रहने तथा सत्यगुण और स्वभाव वाले पवन वृष्टि के हेतु हैं वे ही युक्ति से सेवन किये हुए अनुकूल होकर सुख देते और युक्ति रहित सेवन किये प्रतिकूल होकर दुःखदायक होते हैं वैसे युक्ति से धर्मानुकूल कर्मों का सेवन करें ॥ ७ ॥

ये मनुष्य किस के समान क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति ।

यदेषां वृष्टिरसर्जि ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग (**यत्**) जो (**एषाम्**) इन वायुओं के योग से उत्पन्न हुई (**विद्युत्**) बिजुली (**वाश्रेव**) जैसे गौ अपने (**वत्सम्**) बछड़े को इच्छा करती हुई सेवन करती है वैसे (**मिहम्**) वृष्टि को (**मिमाति**) उत्पन्न करती और इच्छा करती हुई (**माता**) मान्य देने वाली माता पुत्र को दूध से (**सिषक्ति न**) जैसे सींचती है वैसे पदार्थों को सेवन करती है (**वृष्टिः**) वर्षा को (**असर्जि**) करती है वैसे शुभ गुण, कर्मों से एक दूसरे के सुख करनेहारे हूजिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोगों को उचित है कि जैसे अपने-अपने बछड़ों का सेवन करने के लिए इच्छा करती हुई गौ और अपने छोटे बालक को सेवन करनेहारी माता ऊँचे स्वर से शब्द करके उनकी ओर दौड़ती हैं वैसे बिजुली बड़-बड़े शब्दों को करती हुई मेघ के अवयवों के सेवन के लिए दौड़ती है ॥ ८ ॥

वे वायु क्या करते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

दिवा चित्तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन । यत्पृथिवीं व्युन्दन्ति ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे विद्वान लोगो ! आप (**यत्**) जो पवन (**उदवाहेन**) जलों को धारण वा प्राप्त करानेवाले (**पर्जन्येन**) मेघ से (**दिवा**) दिन में (**तमः**) अन्धकाररूप रात्रि के (**चित्**) समान अन्धकार (**कृण्वन्ति**) करते हैं (**पृथिवीम्**) भूमि को (**व्युन्दन्ति**) मेघ के जल से आर्द्र करते हैं उनका युक्ति से सेवन करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। पवन ही जल के अवयवों को कठिन कर, घनाकार मेघ द्वारा दिन में भी अन्धकार उत्पन्न करके फिर बिजली को पैदा कर उस बिजुली से उन मेघों के अवयवों को छिन्न-भिन्न और पृथिवी में गेरकर जलों से स्निग्ध करके अनेक ओषधि आदि समूहों को उत्पन्न करते हैं उनका उपदेश विद्वान् लोग अन्य मनुष्यों को सदा किया करें ॥ ९ ॥

फिर इन पवनों के योग से क्या होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अध स्वनान्मरुतां विश्वमा सद्म पार्थिवम् । अरेजन्त प्र मानुषाः ॥१०॥

पदार्थ—हे (**मानुषाः**) मननशील मनुष्यो ! तुम जिन (**मरुताम्**) पवनों के (**स्वनात्**) शब्द के उत्पन्न होने के (**अध**) अनन्तर (**विश्वम्**) सब (**पार्थिवम्**) पृथिवी में विदित वस्तुमात्र का (**सद्म**) स्थान कांपता और प्राणिमात्र (**प्रारेजन्त**) अच्छे प्रकार कम्पित होते हैं इस प्रकार जानो ॥ १० ॥

भावार्थ—हे ज्योतिष शास्त्र के विद्वान लोगो ! आप पवनों के योग ही से सब मूर्तिमान द्रव्य चेष्टा को प्राप्त होते, प्राणी लोग बिजुली के भयंकर शब्द से भय को प्राप्त होकर कम्पित होते और भूगोल आदि प्रतिक्षण भ्रमण किया करते हैं ऐसा निश्चित समझो ॥ १० ॥

फिर वे मनुष्य पवनों से क्या करते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मरुतो वीळुपाणिभिश्चित्रा रोधस्वतीरनु । यातेमखिद्रयामभिः ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (**मरुतः**) योगाभ्यासी योगव्यवहार सिद्धि चाहने वाले पुरुषो ! तुम लोग (**अखिद्रयामभिः**) निरन्तर गमनशील (**वीळुपाणिभिः**) दृढ़ बलरूप ग्रहण के साधक व्यवहार वाले पवनों के साथ (**रोधस्वतीः**) बहुत प्रकार के बांध वा आवरण और (**चित्राः**) आश्चर्य गुण वाली नदी वा नाड़ियों के (**ईम्, अनु**) अनुकूल (**यात**) प्राप्त हो ॥ ११ ॥

भावार्थ—पवनों में गमन, बल और व्यवहार के हेतु रूप स्वाभाविक धर्म हैं और ये निश्चय ही नदियों को चलाने वाले, नाड़ियों के मध्य में गमन करते हुए रुधिर, रसादि को शरीर के अवयवों में प्राप्त करते हैं इस कारण योगी लोग योगाभ्यास और अन्य मनुष्य बल आदि के साधनरूप वायुओं से बड़े-बड़े उपकार ग्रहण करें ॥ ११ ॥

स्थिरा वः सन्तु नेमयो रथा अश्वास एषाम् ।

सुसंस्कृता अभीशवः ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! (**वः**) तुम्हारे (**एषाम्**) इन पवनों के सकाश से (**सुसंस्कृताः**) उत्तम शिल्पविद्या से संस्कार किये हुए (**नेमयः**) कलाचक्र युक्त (**रथाः**) विमान आदि रथ (**अभीशवः**) मार्गों को व्याप्त करनेवाले (**अश्वासः**) अग्नि आदि वा घोड़ों के सदृश (**स्थिराः**) दृढ़ बलयुक्त (**सन्तु**) होवें ॥ १२ ॥

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है—हे मनुष्यो ! तुम को चाहिए कि अनेक प्रकार के कलाचक्र युक्त विमान आदि यानों को रचकर उनमें जल्दी चलनेवाले अग्नि, जल के सम्प्रयोग वा पवनों के योग से सुखपूर्वक जाने-आने और शत्रुओं को जीतने आदि सब व्यवहारों को सिद्ध करो ॥ १२ ॥

फिर इस विमानादि विद्या का उपदेशक विद्वान् कैसा होवे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है

अच्छा वदा तना गिरा जरायै ब्रह्मणस्पतिम् ।

अग्निं मित्रं न दर्शतम् ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे सब विद्या के जानने वाले विद्वन् ! तू (**न**) जैसे (**ब्रह्मणः**) वेद के पढ़ाने और उपदेश से (**पतिम्**) पालनहारे (**दर्शतम्**) देखने योग्य (**अग्निम्**) तेजस्वी (**मित्रम्**) मित्र को मित्र उपदेश करता है वैसे (**जरायै**) गुणज्ञान के लिए (**तना**) गुणों के प्रकाश को बढ़ानेहारी (**गिरा**) अपनी वेदयुक्त वाणी से विमानादि यानविद्या का (**अच्छा वद**) अच्छे प्रकार उपदेश कर ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिए कि जैसे प्रिय मित्र अपने प्रिय तेजस्वी वेदोपदेशक मित्र को सेवा और गुणों की स्तुति से तृप्त करता है वैसे सब विद्याओं का विस्तार करने वाली वेदवाणी से विमानादि यानों के रचने की विद्या का उस के गुणज्ञान के लिए निरन्तर उपदेश करो ॥ १३ ॥

फिर उस विद्वान् का पढ़ाया शिष्य कैसा होना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्यइव ततनः । गाय गायत्रमुक्थ्यम् ॥१४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! तू (**आस्ये**) अपने मुख में (**श्लोकम्**) वेद की शिक्षा से युक्त वाणी को (**मिमीहि**) निर्माण कर और उस वाणी को (**पर्जन्य इव**) जैसे मेघ वृष्टि करता है वैसे (**ततनः**) फैला और (**उक्थ्यम्**) कहने योग्य (**गायत्रम्**) गायत्री छन्द वाले स्तोत्ररूप वैदिक सूक्तों को (**गाय**) पढ़ तथा पढ़ा ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे विद्वानों से विद्या पढ़े हुए मनुष्यो ! तुम लोगों को उचित है कि सब प्रकार प्रयत्न के साथ अपनी वाणी को वेदविद्या से सुसंस्कृत करके, वाचस्पति के समान वक्ता होकर वायु आदि पदार्थों के गुणों की स्तुति तथा उपदेश किया करो ॥ १४ ॥

फिर वह विद्वान् क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वन्दस्व मारुतं गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम् । अस्मे वृद्धा असन्निह ॥१५॥

पदार्थ—हे विद्वन् मनुष्य ! तू जैसे (**इह**) इस सब व्यवहार में (**अस्मे**) हम लोगो

के मध्य में (वृद्धाः) बड़ी विद्या और आयु से युक्त वृद्ध पुरुष सत्याचरण करनेवाले (असन्) होवें वैसे (अर्किणम्) प्रशंसनीय (त्वेषम्) अग्नि आदि प्रकाशवान् द्रव्यों से युक्त (पनस्युम्) अपने आत्मा के व्यवहार की इच्छा के हेतु (मारुतम्) वायु के इस (गणम्) समूह की (वन्दस्व) कामना कर ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे लुप्तोपमालंकार है । मनुष्यों को चाहिए कि जैसे पवन कार्यों को सिद्ध करने के साधन होने से सुख देने वाले होवें वैसे विद्या और अपने पुरुषार्थ से प्रयत्न किया करें ॥ १५ ॥

इस सूक्त में वायु के दृष्टान्त से विद्वानों के गुण वर्णन करने से पूर्व सूक्त के साथ इस सूक्त की संगति जाननी चाहिए ॥

यह सत्रहवाँ वर्ग और अड़तीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥ ३८ ॥

卐

अथ दशर्चस्यैकोनचत्वारिंशस्य सूक्तस्य घोरपुत्रः कण्व ऋषिः । मरुतो देवताः । १, ५, ६, पथ्याबृहती, ७ उपरिष्टाद्विराड् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । २, ८, १० विराट् सतः पङ्क्तिः, ४, ६ निचृत्सतः पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

अब उनतालीसवें सूक्त का आरम्भ है । फिर वे विद्वान् लोग परस्पर किस-किस प्रकार वर्त्ताव करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्र यदि॒त्था प॑रा॒वतः॑ शो॒चिर्न मान॒मस्य॑थ ।
कस्य॒ क्रत्वा॑ मरुतः॒ कस्य॒ वर्प॑सा॒ कं या॑थ॒ कं ह॑ धूतयः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) विद्वान् लोगो ! आप (यत्) जो (धूतयः) सब को कँपाने वाले वायु (शोचिर्न) जैसे सूर्य की ज्योति और वायु पृथिवी पर दूर से गिरते हैं इस प्रकार (परावतः) दूर से (कस्य) किसके (मानम्) परिमाण का (अस्यथ) छोड़ देते (इत्था) इसी हेतु से (कस्य) सुखस्वरूप परमात्मा के (क्रत्वा) कर्म वा ज्ञान और (वर्पसा) रूप के साथ (कम्) सुखदायक देश को (याथ) प्राप्त होते हो—इन प्रश्नों के उत्तर दीजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है । सुख की इच्छा करनेवाले विद्वान् पुरुषों को चाहिए कि जैसे सूर्य की किरणें दूर देश से भूमि को प्राप्त होकर पदार्थों को प्रकाशित करती हैं वैसे ही अभिमान को दूर से त्यागके सब सुख देने वाले परमात्मा और भाग्यशाली परमविद्वान् से वायु के गुण, कर्म, स्वभाव और मार्ग को ठीक-ठीक जानके उन्हीं मे रमण करें । ये वायु का ज्ञान कराने के साधन कारण कारणस्वरूप से स्थित और कारण मे ही लीन हो जाते हैं ॥ १ ॥

अब ईश्वर सबको उपदेश और आशीर्वाद देकर सब से कहता है कि तुमको क्या-क्या सिद्ध करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—

स्थि॒रा वः॑ स॒न्त्वायु॑धा परा॒णुदे॑ वी॒ळू उ॒त प्र॑ति॒ष्कभे॑ ।
यु॒ष्माक॑मस्तु॒ तवि॑षी॒ पनी॑यसी॒ मा मर्त्य॑स्य मा॒यिनः॑ ॥ २ ॥

पदार्थ—हे धार्मिक मनुष्यो ! (वः) तुम्हारे (आयुधा) आग्नेय आदि अस्त्र और तलवार, धनुष् बाण, भुसुंडी (बन्दूक) शतघ्नी (तोप) आदि शस्त्र-अस्त्र (पराणुदे) शत्रुओं को व्यथा करनेवाले युद्ध (उत) और (प्रतिष्कभे) रोकने-बाँधने और मारने रूप कर्मों के लिए (स्थिरा) दृढ, चिरस्थायी (वीळू) दृढ़ बड़े-बड़े उत्तम बलयुक्त (तविषी) प्रशस्त सेना (पनीयसी) अतिशय करके स्तुति करने योग्य वा व्यवहार को सिद्ध करनेवाली (अस्तु) हो और पूर्वोक्त पदार्थ (मायिनः) कपट आदि अधर्माचरण युक्त (मर्त्यस्य) दुष्ट मनुष्यो के (मा) कभी मत हो ॥ २ ॥

भावार्थ—धार्मिक मनुष्य ही परमात्मा के कृपापात्र होकर सदा विजय को प्राप्त होते हैं दुष्ट नहीं । परमात्मा भी धार्मिक मनुष्यो ही को आशीर्वाद देता है पापियो को नहीं । पुण्यात्मा मनुष्यों को उचित है कि उत्तम-उत्तम शस्त्र-अस्त्र रखकर उनके फेंकने का अभ्यास करके सेना को उत्तम शिक्षा देकर शत्रुओं का निरोध वा पराजय करके न्याय से मनुष्यों की निरन्तर रक्षा किया करें ॥ २ ॥

अब अगले मन्त्र में विद्वान् मनुष्यों के कार्य का उपदेश किया है—

परा॑ ह॒ यत् स्थि॒रं ह॒थ नरो॑ व॒र्तय॑था गु॒रु ।
वि या॑थन व॒निनः॑ पृथि॒व्या व्याशाः॒ पर्व॑तानाम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (नरः) नीतियुक्त मनुष्यो ! तुम जैसे (वनिनः) सम्यक् विभाग और सेवन करने वाले किरण सम्बन्धी वायु अपने बल से (यत्) जिन (पर्वतानाम्) पहाड़ और मेघो (पृथिव्याः) और भूमि को (व्याशाः) चारो दिशाओं में व्यासवत् व्याप्त होकर उस (स्थिरम्) दृढ़ और (गुरु) बड़े-बड़े पदार्थों को धरते और वेग से वृक्षादि को उखाड़के तोड़ देते हैं वैसे विजय के लिए शत्रुओं की सेनाओं को (पराहथ) अच्छे प्रकार नष्ट करो और (ह) निश्चय से इन शत्रुओं को (विवर्त्तयथ) तोड़-फोड़, उलट-पलट कर अपनी कीर्ति से (आशा) दिशाओं को (वियाथन) अनेक प्रकार व्याप्त करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे वेगयुक्त वायु वृक्षादि को उखाड़, तोड़, झंझोड़ देते और पृथिव्यादि को धरते हैं वैसे धार्मिक न्यायाधीश अधर्माचारियों को रोकके धर्मयुक्त न्याय से प्रजा का धारण करें और सेनापति दृढ़ बलयुक्त हो उत्तम सेना का धारण, शत्रुओं को मार, पृथिवी पर चक्रवर्ति राज्य का सेवन कर सब दिशाओं मे अपनी उत्तम कीर्ति का प्रचार करें और जैसे प्राण सब से अधिक प्रिय होते हैं वैसे राजपुरुष विनय व शील द्वारा प्रजा को प्रिय हों ॥ ३ ॥

फिर वे विद्वान् किस प्रकार के हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—

न॒हि वः॒ शत्रु॑र्विवि॒दे अधि॒ द्यवि॒ न भूम्यां॑ रिशादसः ।
यु॒ष्माक॑मस्तु॒ तवि॑षी॒ तना॑ यु॒जा रुद्रा॑सो॒ नू चि॑दा॒धृषे॑ ॥ ४ ॥

हे (रिशादसः) शत्रुओं के नाशकारक (रुद्रासः) अन्यायकारी मनुष्यों को रुलाने वाले वीर पुरुष ! (चित्) जो (युष्माकम्) तुम्हारे (आधृषे) प्रगल्भ होने वाले व्यवहार के लिए (तना) विस्तृत (युजा) बलादि सामग्री युक्त (तविषी) सेना (अस्तु) हो तो (अधिद्यवि) न्याय प्रकाश करने मे (वः) तुम लोगो को (शत्रुः) विरोधी शत्रु (नु) शीघ्र (नहि) नहीं (विविदे) प्राप्त हो और (भूम्याम्) भूमि के राज्य मे भी तुम्हारा कोई मनुष्य विरोधी उत्पन्न न हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—जैसे पवन आकाश मे शत्रु रहित विचरते हैं वैसे मनुष्य विद्या, धर्म, बल, पराक्रमवाले न्यायाधीश हो सब को शिक्षा दे और दुष्ट शत्रुओं को दण्ड देके शत्रुओं से रहित होकर रहा करें ॥ ४ ॥

फिर वे कैसे कर्म्म करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्र वे॑पयन्ति॒ पर्व॑तान्॒ वि वि॑ञ्चन्ति॒ वन॒स्पती॑न् ।
प्रो आ॑रत मरुतो दु॒र्मदा॑ इव॒ देवा॑सः॒ सर्व॑या वि॒शा ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) वायुवत् बलिष्ठ और प्रिय (देवासः) न्यायाधीश सेनापति सभाध्यक्ष विद्वान् लोगो ! तुम जैसे वायु (वनस्पतीन्) बड़ और पिप्पल आदि वनस्पतियो को (प्रवेपयन्ति) कँपाने और जैसे (पर्वतान्) मेघो को (विविञ्चन्ति) पृथक्-पृथक् कर देते हैं वैसे (दुर्मदा इव) मदोन्मत्तो के समान वर्त्तते हुए शत्रुओं को युद्ध से (प्रो आरत) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिए और (सर्वया) सब (विशा) प्रजा के साथ सुख से वर्त्तिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है । जैसे राजधर्म मे वर्त्तने वाले विद्वान् लोग दण्ड से घमण्डी डाकुओं को वश में करके धर्मात्मा प्रजाओं का पालन करते हैं वैसे तुम भी अपनी प्रजा का पालन करो और जैसे पवन भूगोल के चारो ओर विचरते हैं वैसे आप लोग भी सर्वत्र जाओ-आओ ।

यह अठारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥ १८ ॥

फिर मनुष्यो को किस के साथ इन को युक्त करके कार्यों को सिद्ध करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—

उपो॒ रथे॑षु॒ पृष॑तीरयुग्ध्वं॒ प्रष्टि॑र्वहति॒ रोहि॑तः ।
आ वो॒ यामा॑य पृथि॒वी चि॑दश्रो॒दबी॑भयन्त॒ मानु॑षाः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (मानुषाः) विद्वान् लोगो ! तुम (वः) अपने (यामाय) स्थानान्तर मे जाने के लिए (प्रष्टिः) प्रश्नोत्तरादि विद्या व्यवहार से विदित (रोहितः) रक्त गुणयुक्त अग्नि (पृथिवी) स्थल, जल, अन्तरिक्ष मे जिन को (चित्, उपोवहति) अच्छे प्रकार चलाता है जिनके शब्दो को (अश्रोत्) सुनते और (अबीभयन्त) भय को प्राप्त होते हैं उन (रथेषु) रथो मे (पृषतीः) वायुओं को (आ, अयुग्ध्वम्) युक्त करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—यदि मनुष्य यानो मे जल, अग्नि और वायु को युक्त कर उन में बैठ गमनागमन करें तो सुख से ही सर्वत्र जाने-आने मे समर्थ हों ॥ ६ ॥

फिर वे कैसे हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ वो॑ म॒क्षू तना॑य॒ कं रुद्रा॒ अवो॑ वृणीमहे ।
गन्ता॑ नू॒नं नोऽव॑सा॒ यथा॑ पु॒रेत्था कण्वा॑य बि॒भ्युषे॑ ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (रुद्राः) दुष्टों को रोदन करानेवाले ४४ वर्ष पर्यन्त अखण्डित ब्रह्मचर्य सेवन से सकल विद्याओं को प्राप्त विद्वान् लोगो ! (यथा) जैसे हम लोग (वः) आप लोगो के लिए (अवसा) रक्षादि से (मक्षु) शीघ्र (नूनम्) निश्चित (कम्) सुख का (वृणीमहे) सिद्ध करते हैं (इत्था) ऐसे तुम भी (नः) हमारे वास्ते (अवः) सुखवर्द्धक रक्षादि कर्म (गन्त) किया करो और जैसे ईश्वर (बिभ्युषे) दुष्ट प्राणी वा दुःखो से भयभीत (तनाय) सब को सद्विद्या और धर्म के उपदेश से सुखकारक (कण्वाय) आप्त विद्वान् के अर्थ रक्षा करता है वैसे तुम और हम मिलके सब प्रजा की रक्षा सदा किया करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जैसे मेधावी विद्वान् लोग वायु आदि के द्रव्य और गुणो के योग से भय को निवारण करके तुरन्त सुखी होते हैं वैसे हम लोगो को भी होना चाहिए ॥ ७ ॥

फिर तुम को उन से क्या सिद्ध करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यु॒ष्मेषि॑तो मरुतो॒ मर्त्ये॑षित॒ आ यो नो॒ अभ्व॒ ईष॑ते ।
वि तं यु॑योत॒ शव॑सा॒ व्योज॑सा॒ वि यु॒ष्माका॑भिरू॒तिभिः॑ ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) विद्वानो ! तुम (वः) जो (अभ्वः) विरोधी मित्र-

शत्रु रहित (युष्मेषितः) तुम लोगों को जीतने और (मर्त्येषितः) मनुष्यों से विजय की इच्छा करनेवाला शत्रु (नः) हम लोगों को (ईषते) मारता है उस को (शवसा) बलयुक्त सेना वा (ओजसा) अनेक प्रकार के पराक्रम और (युष्माकाभिः) तुम्हारी कृपापात्र (ऊतिभि) रक्षा, प्रीति, तृप्ति, ज्ञान आदिकों से युक्त सेनाओं से (वियुयोत) विशेषता से दूर कर दीजिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जो स्वार्थी, परोपकार से रहित, दूसरे को पीड़ा देने में अत्यन्त प्रसन्न शत्रु हैं उन को विद्या वा शिक्षा के द्वारा खोटे कर्मों से निवृत्त कर वा उत्तम सेना बल को सम्पादन कर युद्ध से जीत उनका निवारण करके सब के हित का विस्तार करें ॥ ८ ॥

फिर उन से शोधे वा प्रेरे हुए व क्या क्या कर इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

असामि हि प्रयज्यवः कण्वं दद प्रचेतसः ।

असामिभिर्मरुत आ न ऊतिभिर्गन्ता वृष्टिं न विद्युतः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (प्रयज्यव) अच्छे प्रकार परोपकार करने (प्रचेतस) उत्तम ज्ञानयुक्त (मरुत) विद्वान् लोगो ! तुम (असामिभि) नाश रहित (ऊतिभिः) रक्षा, सेना आदि से (न) जैसे विद्युत) सूर्य, बिजुली आदि (वृष्टिम्) वर्षा कर सुखी करते हैं वैसे (न) हम लोगों को (असामि) अखण्डित सुख (दद) दीजिए (हि) निश्चय से दुष्ट शत्रुओं को जीतने के वास्ते (कण्वम्) और आप्त विद्वान् के समीप नित्य (आगन्त) अच्छे प्रकार जाया कीजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जैसे पवन सूर्य बिजुली आदि वर्षा करके सब प्राणियों के सुख के लिए अनेक प्रकार के फल, पत्र पुष्प, अन्न आदि को उत्पन्न करते हैं वैसे विद्वान् लोग भी सब प्राणिमात्र का वेदविद्या देकर उत्तम-उत्तम सुखों को निरन्तर सम्पादन करें ॥ ९ ॥

फिर वे क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

असाम्योजो बिभृथा सुदानवोऽसामि धूतयः शवः ।

ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम् ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (धूतय) दुष्टों को कँपाने (सुदानव) उत्तम दान स्वभाव (मरुत) विद्वान लोगो ! तुम (न) जैसे (परिमन्यव) सब प्रकार क्रोधयुक्त शूरवीर मनुष्य (द्विषम्) शत्रु के प्रति (इषुम्) बाण आदि शस्त्र समूहों को छोड़ते हैं वैसे (ऋषिद्विषे) वेद, वेदों को जाननेवाले और ईश्वर के विरोधी दुष्ट मनुष्यों के लिए (असामि) अखिल (ओजः) विद्या, पराक्रम (असामि) सम्पूर्ण (शवः) बल को (बिभृथ) धारण करो और उस शत्रु के प्रति शस्त्र वा अस्त्रों को (सृजत) छोड़ो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे धार्मिक शूरवीर मनुष्य क्रोध को उत्पन्न कर शस्त्रों के प्रहारों से प्रहारों को जीत निष्कण्टक राज्य को प्राप्त होकर प्रजा को सुखी करते हैं वैसे ही सब मनुष्य वेद, विद्वान् वा ईश्वर के विरोधियों के प्रति सम्पूर्ण बल, पराक्रमों से शस्त्र-अस्त्रों को छोड़ उनको जीतकर ईश्वर, वेद, विद्या और विद्वान् युक्त राज्य को सम्पादन करें ॥१०॥

इस सूक्त में वायु और विद्वानों के गुण वर्णन करने से पूर्व सूक्तार्थ के साथ इस सूक्त के अर्थ की संगति जाननी चाहिए।

यह उनतालीसवां सूक्त और उन्नीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥ ३९ ॥ १९ ॥

卐

अथाष्टर्चस्य चत्वारिंशस्य सूक्तस्य घोरपुत्रः कण्व ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता १,२,८ निचृदुपरिष्टाद्बृहतीछन्दः, ५ पथ्या बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः । ३,७ आर्चीत्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ४,६ शतः पङ्क्तिर्निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब चालीसवें सूक्त का आरम्भ है। फिर मनुष्यों को उचित है कि वेदविद जनों को कैसे उपदेश करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे ।

उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (ब्रह्मणस्पते) वेद की रक्षा करनेवाले (इन्द्र) अखिल विद्यादि परमैश्वर्यसंयुक्त विद्वन् ! जैसे (सचा) विज्ञान से (देवयन्त) सत्य विद्याओं की कामना करने (सुदानव) उत्तम दान स्वभाव वाले (मरुत) विद्याओं के सिद्धान्तों के प्रचार के अभिलाषी हम लोग (त्वा) आपको (ईमहे) प्राप्त होते और जैसे सब धार्मिक जन (उपप्रयन्तु) समीप आवें वैसे आप (प्राशू) सब सुखों के प्राप्त करानेवाले (भव) हूजिए और सब के हितार्थ प्रयत्न कीजिए ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्य पुरुषार्थ से विद्वानों का संग, उनकी सेवा, विद्या, योग, धर्म और सब का उपकार करना आदि उपायों से समग्र विद्याओं के अध्येता परमात्मा के विज्ञान और प्राप्ति से सब मनुष्यों को प्राप्त हों और इसी से अन्य सब को सुखी करें ॥१॥

फिर वे लोग आपस में कैसे वर्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उपब्रूते धने हिते ।

सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यं दधीत यो व आचके ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (सहसस्पुत्र) ब्रह्मचर्य और विद्यादि गुणों से शरीर, आत्मा के पूर्ण बलयुक्त के पुत्र ! (य) जो (मर्त्यः) विद्वान् मनुष्य (त्वाम्) तुझ को सब विद्या (उपब्रूते) पढ़ाता हो और हे (मरुत) बुद्धिमान् लोगो ! आप जो (व) आप लोगों को (हिते) कल्याणकारक (धने) सत्यविद्यादि धन में (आचके) तृप्त करें (इत्) उसी के लिए (स्वश्व्यम्) उत्तम विद्या विषयों में उत्पन्न (सुवीर्यम्) अत्युत्तम पराक्रम को तुम लोग धारण करो ॥२॥

भावार्थ—मनुष्य पढ़ने-पढ़ाने आदि धर्मयुक्त कर्मों ही से एक दूसरे का उपकार करके सुखी हों ॥२॥

फिर ये लोग अन्योऽन्य कैसे वर्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।

अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् (ब्रह्मण) वेदों का (पति) प्रचार करनेवाले ! आप जिस (पङ्क्तिराधसम्) धर्मात्मा और वीर पुरुषों को सिद्धिकारक (नर्यम्) हितकारक (अच्छावीरम्) शुद्ध, पूर्ण शरीर, आत्मबलयुक्त वीरों की प्राप्ति के हेतु (यज्ञम्) पठन-पाठन, श्रवण आदि क्रिया रूप यज्ञ को (प्रैतु) प्राप्त होते और हे विद्यायुक्त स्त्री ! (सूनृता) उस वेदवाणी की शिक्षा सहित (देवी) सब विद्या सुशीलता से प्रकाशमान होकर आप भी जिस यज्ञ को प्राप्त हों उस यज्ञ को (देवाः) विद्वान् लोग (न) हम लोगों को (प्रणयन्तु) प्राप्त करावें ॥३॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को ऐसी इच्छा करनी चाहिए कि जिससे विद्या की वृद्धि होती जाए ॥३॥

विद्वान् और अन्य मनुष्यों को एक-दूसरे के साथ क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः ।

तस्मा इळां सुवीरामा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—(य) जो मनुष्य (वाघते) विद्वान् के लिए (सूनरम्) जिससे उत्तम मनुष्य हो उस (वसु) धन को (ददाति) देता है और जिस (अनेहसम्) हिंसा के अयोग्य (सुप्रतूर्तिम्) उत्तमता से शीघ्र प्राप्ति कराने (सुवीराम्) जिस से उत्तम शूरवीर प्राप्त हों (इळाम्) पृथिवी वा वाणी को हम लोग (आयजामहे) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं उस से (स) वह पुरुष (अक्षिति) जो कभी क्षीणता को न प्राप्त हो उस (श्रव) धन और विद्या के श्रवण को (धत्ते) करता है ॥४॥

भावार्थ—जो मनुष्य शरीर, वाणी, मन और धन से विद्वानों का सेवन करता है वही अक्षय विद्या को प्राप्त हो और पृथिवी के राज्य को भोगकर मुक्ति को प्राप्त होता है। जो पुरुष वाणीविद्या को प्राप्त होते हैं, वे विद्वान् दूसरे को भी पण्डित कर सकते हैं आलसी अविद्वान् पुरुष नहीं ॥ ४ ॥

अब ईश्वर कैसा है उसका उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् ।

यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥ ५ ॥

पदार्थ—जो (ब्रह्मणस्पति.) बड़े भारी जगत् और वेदों का पति स्वामी न्यायाधीश ईश्वर (नूनम्) निश्चय करके (उक्थ्यम्) कहने-सुनने योग्य वेदवचनों में होने वाले (मन्त्रम्) वेदमन्त्र-समूह का (प्रवदति) उपदेश करता है वा (यस्मिन्) जिस जगदीश्वर में (इन्द्र) बिजुली (वरुणः) समुद्र, चन्द्र, तारे, आदि लोकान्तर (मित्रः) प्राण (अर्यमा) वायु और (देवा) पृथिवी आदि लोक और विद्वान् लोग (ओकांसि) स्थानों को (चक्रिरे) किये हुए हैं, उसी परमेश्वर का हम लोग सत्कार करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जिस ईश्वर ने वेदों का उपदेश किया है, जो सब जगत् में व्याप्त होकर स्थित है, जिसमें सब पृथिवी आदि लोक रहते और मुक्ति समय में विद्वान् लोग निवास करते हैं, उसी परमेश्वर की उपासना करें, इस से भिन्न किसी की नहीं ॥ ५ ॥

यह बीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥ २० ॥

अब अगले मन्त्र में सब मनुष्यों के लिए वेदों के पढ़ने का अधिकार है इस विषय का उपदेश किया है—

तमिद्वोचेमा विदथेषु शम्भुवं मन्त्रं देवा अनेहसम् ।

इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद्वामा वो अश्नवत् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (देवा) विद्वानो ! (व.) तुम लोगों के लिए हम लोग (विदथेषु) जानने योग्य पढ़ने-पढ़ाने आदि व्यवहारों में जिस (अनेहसम्)

प्रशंसनीय, सर्वथा रमणीय, दोषरहित (शम्भुवम्) कल्याणकारक (मन्त्रम्) पदार्थों को मनन करानेवाले मन्त्र अर्थात् श्रुतिसमूह को (वोचेम) उपदेश करें (तम्) उस वेद को (इत्) ही तुम लोग ग्रहण करो (इत्) जो (इमाम्) इस (वाचम्) वेदवाणी को (प्रतिहर्य्यथ) बार-बार जानो तो (विश्वा) सब (वामा) प्रशंसनीय वाणी (वः) तुम लोगों को (अश्नवत्) प्राप्त होवे ॥ ६ ॥

भावार्थ—विद्वानों को योग्य है कि विद्या के प्रचार के लिए मनुष्यों को निरन्तर अर्थ, अङ्ग, उपाङ्ग, रहस्य, स्वर और हस्तक्रिया सहित वेदों का उपदेश करें और ये लोग अर्थात् मनुष्यमात्र इन विद्वानों से सब वेदविद्या को साक्षात् करें। जो कोई पुरुष सुख चाहे तो वह विद्वानों के सङ्ग से विद्या को प्राप्त करे तथा इस विद्या के विना किसी को सत्य सुख नहीं होता इस से पढ़ने-पढ़ाने वालों को प्रयत्न से सकल विद्याओं को ग्रहण करना वा कराना चाहिए ॥ ६ ॥

कोई मनुष्य विद्वान् को प्राप्त होकर ही विद्या को ग्रहण कर सकता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

को दे॑व॒यन्त॑मश्नव॒ज्जनं॒ को वृ॒क्तब॑र्हिषम् ।
प्रप्र॑ दा॒श्वान् प॒स्त्या॑भिरस्थितान्त॒र्वाव॒त् क्षयं॑ दधे ॥ ७ ॥

पदार्थ—(कः) कौन मनुष्य (देवयन्तम्) विद्वानों की कामना करने और (कः) कौन (वृक्तबर्हिषम्) सब विद्याओं में कुशल सब ऋतुओं में यज्ञ करनेवाले (जनम्) सकल विद्याओं में प्रकट हुए मनुष्य को (अश्नवत्) प्राप्त तथा कौन (दाश्वान्) दानशील पुरुष (प्रास्थित) प्रतिष्ठा को प्राप्त होवे और कौन (पस्त्याभिः) उत्तमगृह वाली भूमि में (अन्तर्वावत्) सब के अन्तर्गत चलनेवाले वायु से युक्त (क्षयम्) निवास करने योग्य घर को (दधे) धारण करे ॥ ७ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य विद्याप्रचार की कामना वाले उत्तम विद्वान् को नहीं प्राप्त होते और न सब दानशील होकर सब ऋतुओं में सुखरूप घर को धारण कर सकते हैं, किन्तु कोई भाग्यशाली विद्वान् मनुष्य ही इन सब को प्राप्त हो सकता है ॥ ७॥

ऐसे विद्वान् का कैसा राज्य होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उप॑ क्ष॒त्रं पृ॑ञ्ची॒त हन्ति॒ राज॑भिर्भ॒ये चि॑त्सुक्षि॒तिं द॑धे ।
नास्य॑ व॒र्ता न त॑रु॒ता म॑हाध॒ने नार्भे॑ अस्ति व॒ज्रिणः॑ ॥ ७ ॥

पदार्थ—जो मनुष्य (क्षत्रम्) राज्य को (पृञ्चीत) सम्बन्ध तथा (सुक्षितिम्) उत्तमोत्तम भूमि की प्राप्ति करानेवाले व्यवहार को (दधे) धारण करता है (अस्य) इस सर्व सभाध्यक्ष (वज्रिणः) बली के (राजभिः) राजपूतों के साथ (भये) युद्ध भीति में अपने मनुष्यों को कोई भी शत्रु (न) नहीं (हन्ति) मार सकता (न, महाधने) नहीं महाधन की प्राप्ति के हेतु बड़े युद्ध में (वर्त्ता) विपरीत वर्त्तने वाला और (न) इस वीर्य वाले के समीप (अर्भे) छोटे युद्ध में (चित्) भी (तरुता) बल को उल्लंघन करने वाला कोई (अस्ति) होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो राजपुरुष महाधन की प्राप्ति के निमित्त बड़े युद्ध वा छोटे युद्ध में शत्रुओं को जीत व बाँधके निवारण करने और धर्म से प्रजा का पालन करने में समर्थ होते हैं, वे इस संसार में आनन्द को भोगकर परलोक में भी बड़े भारी आनन्द को भोगते हैं ॥ ८ ॥

उनतालीसवें सूक्त में कहे हुए विद्वानों के कार्यरूप अर्थ के साथ ब्रह्मणस्पति आदि शब्दों के अर्थों के सम्बन्ध से पूर्व सूक्त की सङ्गति जाननी चाहिए।

यह चालीसवां सूक्त और इक्कीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥ ४० ॥ २१ ॥

卐

अथ नवर्चस्यैकचत्वारिंशस्य सूक्तस्य घोरः कण्व ऋषिः । १—३, ७—९ वरुणमित्रार्यमणः । ४—६ आदित्याश्च देवताः । १, ४, ५, ८ गायत्री । २, ३, ६ । विराड्गायत्री ७, ९ निचृद्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब इकतालीसवें सूक्त का आरम्भ है। अनेक वीरों से रक्षित राजा भी कभी शत्रु से पीड़ित होता ही है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यं रक्ष॑न्ति॒ प्रचे॑तसो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा । नू चि॒त्स द॑भ्यते॒ जनः॑ ॥१

पदार्थ—(प्रचेतसः) उत्तम ज्ञानवान् (वरुणः) उत्तम गुण वा श्रेष्ठ होने से सभाध्यक्ष होने योग्य (मित्रः) सब का मित्र (अर्यमा) पक्षपात छोड़कर न्याय करने को समर्थ ये सब (यम्) जिस मनुष्य वा राज्य तथा देश की (रक्षन्ति) रक्षा करते हों (सः, चित्) वह भी (जनः) मनुष्य आदि (नु) जल्दी सब शत्रुओं से कदाचित् (दभ्यते) मारा जाता है ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि सब से उत्कृष्ट सेना, सभाध्यक्ष, सब के मित्र, दूत, पढ़ाने वा उपदेश करनेवाले धार्मिक मनुष्य को न्यायाधीश करें, तथा उन विद्वानों के सकाश से रक्षा आदि की प्राप्ति हो, सब शत्रुओं को शीघ्र मार और चक्रवर्तिराज्य का पालन करके सब के हित का सम्पादन करें। किसी को भी मृत्यु से भय करना योग्य नहीं है क्योंकि जिनका जन्म हुआ है उनका मृत्यु अवश्य होता है, इसलिए मृत्यु से डरना मूर्खों का काम है ॥ १ ॥

वह रक्षा किया हुआ किसको प्राप्त होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यं बा॒हुते॑व॒ पिप्र॑ति॒ पान्ति॒ मर्त्यं॑ रि॒षः । अरि॑ष्टः॒ सर्व॑ एधते ॥ २ ॥

पदार्थ—ये वरुण आदि धार्मिक विद्वान् लोग (बाहुतेव) जैसे शूरवीर बाहुबलों से चोर आदि का निवारण कर दुःखों को दूर करते हैं वैसे (यम्) जिस (मर्त्यम्) मनुष्य को (पिप्रति) सुखों से पूर्ण करते और (रिषः) हिंसा करनेवाले शत्रु से (पान्ति) बचाते हैं (सः) वे (सर्वः) समस्त मनुष्यमात्र (अरिष्टः) सब विघ्नों से रहित होकर वेदविद्या आदि उत्तम गुणों से नित्य (एधते) वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सभा और सेनाध्यक्ष के सहित राजपुरुष बाहुबल वा उपाय के द्वारा शत्रु, डाकू, चोर आदि और दरिद्रता का निवारण कर मनुष्यों की अच्छे प्रकार रक्षा, पूर्ण सुखों का सम्पादन, सब विघ्नों को दूर, पुरुषार्थ में संयुक्त कर, ब्रह्मचर्य सेवन वा विषयों की लिप्सा छोड़ने से शरीर की वृद्धि और विद्या वा उत्तम शिक्षा से आत्मा की उन्नति करते हैं; वैसे ही प्रजाजन भी किया करें ॥ २ ॥

फिर वे राजपुरुष क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वि दु॒र्गा वि द्विषः॑ पु॒रो घ्नन्ति॒ राजा॑न एषाम् ।
नय॑न्ति दुरि॒ता ति॒रः ॥ ३ ॥

पदार्थ—जो (राजानः) उत्तम कर्म वा गुणों से प्रकाशमान राजा लोग (एषाम्) इन शत्रुओं के (दुर्गा) दुःख से जाने योग्य परकोटों और (पुरः) नगरों को (वि, घ्नन्ति) छिन्न-भिन्न करते और (द्विषः) शत्रुओं को तथा (दुरिता) दुःखों को (वि, तिरो नयन्ति) नष्ट कर देते हैं, वे चक्रवर्त्ति राज्य को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो अन्याय करनेवाले मनुष्य धार्मिक मनुष्यों को पीड़ा देकर दुर्ग में रहते और फिर आकर दुःखी करते हों उनको नष्ट और श्रेष्ठों के पालन करने के लिए विद्वान्, धार्मिक राजपुरुषों को चाहिए उनके परकोट और नगरों का विनाश और शत्रुओं को छिन्न-भिन्न, मार और वशीभूत करके धर्म से राज्य का पालन करें ॥ ३ ॥

फिर वे क्या सिद्ध करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सु॒गः पन्था॑ अनृक्ष॒र आदि॑त्यास ऋ॒तं य॒ते ।
नात्रा॑वखा॒दो अ॑स्ति वः ॥ ४ ॥

पदार्थ—जहाँ (आदित्यासः) अच्छे प्रकार से अड़तालीस वर्षयुक्त ब्रह्मचर्य के सेवन से शरीर, आत्मा के बल सहित होने से सूर्य के समान प्रकाशित हुए अविनाशी धर्म्म को जानने वाले विद्वान् लोग रक्षा करनेवाले हों वा जहाँ इन से जिस (अनृक्षरः) कण्टक, गड्ढा, चोर, डाकू, अविद्या, अधर्माचरण से रहित सरल (सुगः) सुख से जानने योग्य (पन्थाः) जल, स्थल, अन्तरिक्ष में जाने के लिए वा विद्या, धर्म, न्याय प्राप्ति के मार्ग का सम्पादन किया हो उस और (ऋतम्) ब्रह्म, सत्य वा यज्ञ को (यते) प्राप्त होने के लिए तुम लोगों को (अत्र) इस मार्ग में (अवखादः) भय (नास्ति) कभी नहीं होता ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को भूमि समुद्र अन्तरिक्ष में रथ, नौका, विमानों के लिए सरल, दृढ़, कण्टक, चोर, डाकू भय आदि दोष रहित मार्गों का सम्पादन करना चाहिए; जहाँ किसी को कुछ भी दुःख वा भय न होवे। इन सब को सिद्ध करके अखण्ड चक्रवर्ति राज्य का भोग करना चाहिए ॥ ४ ॥

फिर ये किस की रक्षा कर किस को प्राप्त होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यं य॒ज्ञं नय॑था नर॒ आदि॑त्या ऋ॒जुना॑ प॒था ।
प्र वः॒ स धी॒तये॑ नशत् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (आदित्याः) सकल विद्याओं से सूर्य्यवत् प्रकाशमान (नरः) न्याययुक्त राज-सभासदो ! आप लोग (धीतये) सुखों को प्राप्त करानेवाली क्रिया के लिए (यम्) जिस (यज्ञम्) राजधर्मयुक्त व्यवहार को (ऋजुना) शुद्ध, सरल (पथा) मार्ग से (नयथ) प्राप्त होते हो (सः) वह (वः) तुम लोगों को (प्रणशत्) नष्ट करनेहारा नहीं होता ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से 'न' इस पद की अनुवृत्ति है। जहाँ विद्वान् लोग सभा सेनाध्यक्ष सभा में रहने वाले भृत्य होकर विनयपूर्वक न्याय करते हैं वहाँ सुख का नाश कभी नहीं होता ॥ ५ ॥

फिर वह रक्षा को प्राप्त होकर किस को प्राप्त होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

स रत्नं॒ मर्त्यो॒ वसु॒ विश्वं॑ तो॒कमु॒त त्मना॑ । अच्छा॑ गच्छ॒त्यस्तृ॑तः ॥ ६ ॥

पदार्थ—जो (अस्तृतः) हिंसा रहित (मर्त्यः) मनुष्य है (सः) वह (त्मना) आत्मा, मन वा प्राण से (विश्वम्) सब (रत्नम्) मनुष्यों के मनों के रमण करानेवाले (वसु) उत्तम-से-उत्तम द्रव्य (उत) और (तोकम्)

सब उत्तम गुणो से युक्त पुत्रो को (अच्छ गच्छति) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

भावार्थ —विद्वान् मनुष्यो से अच्छे प्रकार रक्षा किये हुए मनुष्य आदि प्राणी सब उत्तम-से-उत्तम पदार्थ और सन्तानो को प्राप्त होते हैं । रक्षा के विना किसी पुरुष वा प्राणी की बढ़ती नहीं होती ॥ ६ ॥

सबको क्या करके इस सुख को प्राप्त करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

कथा राधाम सखायः स्तोमं मित्रस्यार्य्यम्णः ।
महि प्सरो वरुणस्य ॥ ७ ॥

पदार्थ –हम लोग (**सखाय**) सब के मित्र होकर (**मित्रस्य**) सब के सखा (**अर्य्यम्ण**) न्यायाधीश (**वरुणस्य**) और सब से उत्तम अध्यक्ष के (**महि**) बड़े (**स्तोमम्**) गुण-स्तुति के समूह को (**कथा**) किस प्रकार से (**राधाम**) सिद्ध करें और किस प्रकार हम को (**प्सरः**) सुखों का भोग सिद्ध होवे ॥ ७ ॥

भावार्थ—जब कोई मनुष्य किसी से पूछे कि हम किस प्रकार से मित्रता, न्याय और उत्तम विद्याओं को प्राप्त होवें तो वह उनको ऐसा कहे कि परस्पर मित्रता, विद्यादान और परोपकार ही से यह सब प्राप्त हो सकता है। इसके विना कोई भी मनुष्य किसी सुख को सिद्ध करने मे समर्थ नही हो सकता ॥ ७ ॥

सभाध्यक्ष आदि लोग प्रजाजनों के साथ क्या-क्या प्रतिज्ञा करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—

मा वो घ्नन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम् ॥
सुम्नैरिद्व आ विवासे ॥ ८ ॥

पदार्थ —मै (**व**) मित्ररूप तुमको (**घ्नन्तम्**) मारते हुए जन से (**मा प्रतिवोचे**) सम्भाषण भी न करूं (**व**) तुम को (**शपन्तम्**) कोसते हुए मनुष्य से प्रिय (**मा वोचे**) न बोलूं किन्तु (**सुम्नै**) सुखो से सहित तुम को सुख देनेहारे (**इत्**) ही (**देवयन्तम्**) दिव्यगुणो की कामना करनेहारे की (**आविवासे**) अच्छे प्रकार सेवा सदा किया करूं ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्य को योग्य है कि न अपने शत्रु और न मित्र के शत्रु मे प्रीति करे। मित्र की रक्षा और विद्वानो की प्रियवाक्य, भोजन, वस्त्र, पान आदि से सेवा करनी चाहिए, क्योकि मित्र रहित पुरुष सुख की वृद्धि नहीं कर सकता, इससे विद्वान् लोग बहुत से धर्मात्माओ को मित्र करें ॥८॥

जो कहे और जिनको आगे कहते हैं उन चार दुष्टों से नित्य भय करके उनका विश्वास कभी न करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है —

चतुरश्चिद्ददमानाद् बिभीयादा निधातोः । न दुरुक्ताय स्पृहयेत् ॥ ९ ॥

पदार्थ— मनुष्य (**चतुर**) मारने, शाप देने और (**ददमानात्**) विषाद देने और (**निधातो**) अन्याय से दूसरे के पदार्थों को हरनेवाले इन चार प्रकार के मनुष्यो का विश्वास न करे (**चित्**) और इन से (**बिभीयात**) नित्य डरे और (**दुरुक्ताय**) दुष्ट वचन कहने वाले मनुष्य के लिए (**न स्पृहयेत्**) इन को मित्र करने की इच्छा कभी न करें ॥

भावार्थ—मनुष्य दुष्ट कर्म्म करने वा दुष्ट वचन बोलने वाले मनुष्यो का संग और विश्वास तथा मित्र से द्रोह, दूसरे का अपमान और विश्वासघात आदि कर्म्म कभी न करें ॥ ९ ॥

इस सूक्त मे प्रजा की रक्षा, शत्रुओ को जीतना, मार्ग का शोधना, यान की रचना और उनका चलाना, द्रव्यो की उन्नति करना, श्रेष्ठो के साथ मित्रता, दुष्टो मे विश्वास न करना और अधर्माचरण से नित्य डरना; इस प्रकार कथन से पूर्व—सूक्तार्थ के साथ इस सूक्त के अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिए ।

यह पहले अष्टक के तीसरे अध्याय मे तेईसवां वर्ग और पहले मण्डल में इकतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥४१॥

卐

अथ दशर्चस्य द्विचत्वारिंशस्य सूक्तस्य घोरः कण्व ऋषि । पूषा देवता ।

१,९ निचृद्गायत्री, २,३,५-८,१० गायत्री,
४ विराड् गायत्री च छन्द । षड्जः स्वर. ॥

अब बयालीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके पहले मन्त्र मे प्रवास करते हुए मनुष्य मार्ग मे किस-किस पदार्थ की इच्छा करें इस विषय का उपदेश किया है—

सम्पूषन्नध्वनस्तिर व्यंहो विमुचो नपात् । सक्ष्वा देव प्र णस्पुरः ॥ १ ॥

पदार्थ —हे (**पूषन्**) सब जग का पोषण करनेवाले (**नपात्**) नाश रहित (**देव**) दिव्य गुण सम्पन्न विद्वन् ! दु ख के (**अध्वनः**) मार्ग से (**वितिर**) पार होकर हम को भी पार कीजिए (**अहः**) रोगरूपी दु खो के वेग को (**विमुचः**) दूर कीजिए (**पुर**) पहले (**न**) हम लोगो को (**प्रसक्ष्व**) उत्तम-उत्तम गुणो मे प्रसक्त कीजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्य जैसे परमेश्वर की उपासना वा उसकी आज्ञा के पालन से सब दुःखो के पार होकर सब सुखो को प्राप्त करें; इसी प्रकार धर्मात्मा, सब के मित्र परोपकार करनेवाले विद्वानो के समीप वा उनके उपदेश से अविद्या जालरूपी मार्ग से पार होकर विद्यारूपी सूर्य्य को प्राप्त करें ॥ १ ॥

जो धर्म और राज्य के मार्गों मे विघ्न करते हैं उनका निवारण करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति ।
अप स्म तं पथो जहि ॥ २ ॥

पदार्थ — हे (**पूषन्**) सब जगत् को विद्या से पुष्ट करनेवाले विद्वन् ! आप (**य**) जो (**अघ**) पाप करने (**दु शेव**) दु ख मे शयन कराने योग्य (**वृकः**) स्तेन अर्थात् दु ख देनेवाला चोर (**न**) हम लोगो को (**आदिदेशति**) उद्देश करके पीडा देता हो (**तम्**) उस दुष्ट स्वभाव वाले को (**पथ**) राजधर्म और प्रजामार्ग से (**अपजहि**) नष्ट वा दूर कीजिए ॥ २ ॥

भावार्थ – मनुष्यो को उचित है कि शिक्षा, विद्या तथा सेना के बल से दूसरे के धन को लेनेवाले शठ और चोरो को मार सर्वथा दूरकर, निरन्तर बाँधके राजनीति के मार्गों को भय रहित करें । जैसे जगदीश्वर दुष्टो को उनके कर्मों के अनुसार दण्ड के द्वारा शिक्षा देता है वैसे हम लोग भी दुष्टो को दण्ड द्वारा शिक्षा देकर श्रेष्ठ स्वभावयुक्त करें ॥ २ ॥

फिर इस मार्ग से किन-किन का निवारण करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अप त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम् । दूरमधि स्रुतेरज ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् राजन् ! आप (**त्यम्**) उस (**परिपन्थिनम्**) प्रतिकूल चलनेवाले डाकू (**मुषीवाणम्**) चोर-कर्म से भित्ति को फोडकर, दृष्टि का आच्छादन कर दूसरे के पदार्थों को हरने (**हुरश्चितम्**) उत्कोचक अर्थात् हाथ मे दूसरे के पदार्थ को ग्रहण करनेवाले, अनेक प्रकार से चोरी को (**स्रुते**) राजधर्म और प्रजामार्ग से (**दूरम्, अध्यपाज**) उन पर दण्ड और शिक्षा कर दूर कीजिए ॥ ३ ॥

भावार्थ —चोर अनेक प्रकार के होते हैं कोई डाकू, कोई कपट से हरने, कोई मोहित करके दूसरे के पदार्थों को ग्रहण करने, कोई रात मे सुरग लगाकर ग्रहण करने, कोई उत्कोचक अर्थात् हाथ से छीन लेने, कोई नाना प्रकार के व्यवहारी दुकानो मे बैठ छल से पदार्थों को हरने, कोई शुल्क अर्थात् रिश्वत लेने, कोई भृत्य होकर स्वामी के पदार्थों को हरने, कोई छल-कपट से औरों के राज्य को स्वीकार करने, कोई धर्मोपदेश से मनुष्यो को भ्रमाकर गुरु बन शिष्यो के पदार्थों को हरने, कोई प्राड्विवाक अर्थात् वकील होकर मनुष्यो का विवाद मे फँसाकर पदार्थों को हर लेने और कोई न्यायासन पर बैठ प्रजा मे धन लेके अन्याय करने वाले इत्यादि हैं, इन सब को चोर जानो, इन को सब उपायो से निकाल कर मनुष्यो को धर्म से राज्य का पालन करना चाहिए ॥ ३ ॥

फिर इन पूर्वोक्त चोरों की क्या गति करनी चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—

त्वं तस्य द्वयाविनोऽघशंसस्य कस्य चित् । पदाभि तिष्ठ तपुषिम् ॥४॥

पदार्थ—हे सेनासभाध्यक्ष ! (**त्वम्**) आप (**तस्य**) उस (**द्वयाविन**) प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष औरो के पदार्थों को हरनेवाले (**कस्यचित्**) किसी (**अघशंसस्य तपुषिम्**) चोरो की सेना को (**पदाभितिष्ठ**) बल से वशीभूत कीजिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—न्याय करने वाले मनुष्यो को उचित है कि किसी अपराधी चोर को दण्ड दिए विना कभी न छोड़े नही तो प्रजा पीडायुक्त होकर नष्ट-भ्रष्ट होने से राज्य का नाश हो जाए, इस कारण प्रजा की रक्षा के लिए दुष्ट कर्म करनेवाले अपराध किए हुए माता, पिता, पुत्र, आचार्य्य और मित्र आदि को भी अपराध के अनुसार ताडना अवश्य देनी चाहिए ॥ ४ ॥

फिर वह न्यायाधीश कैसा होवे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ तत्ते दस्र मन्तुमः पूषन्नवो वृणीमहे । येन पितॄनचोदयः ॥ ५ ॥

पदार्थ —हे (**दस्र**) दुष्टो को नाश करने (**मन्तुम**) उत्तम ज्ञानयुक्त (**पूषन्**) सर्वथा पुष्टि करनेवाले विद्वन् ! आप (**येन**) जिस रक्षादि से (**पितॄन्**) अवस्था वा ज्ञान से वृद्धो को (**अचोदय**) प्रेरणा करो (**तत्**) उस (**ते**) आपके (**अव**) रक्षादि को हम लोग (**आवृणीमहे**) सर्वथा स्वीकार करें ॥ ५ ॥

भावार्थ —जैसे प्रेम प्रीति के साथ सेवा द्वारा पिता, अध्यापक तथा ज्ञान वा अवस्था से वृद्धो को तृप्त करें वैसे ही सब प्रजाओ के सुख के लिए दुष्ट मनुष्यो को दण्ड देके धार्मिको को सदा सुखी रक्खें ॥ ५ ॥

फिर वह न्यायाधीश प्रजा में क्या करे इस विषयका उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अधा नो विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम । धनानि सुषणा कृधि ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (**विश्वसौभग**) सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को प्राप्त होने (**हिरण्यवाशीमत्तम**) अतिशय सत्य के प्रकाशक, उत्तम कीर्ति और सुशिक्षित वाणीयुक्त सभाध्यक्ष ! आप (**न**) हम लोगो के लिए (**सुषणा**) सुख से सेवन करने योग्य (**धनानि**) विद्याधर्म और चक्रवर्ति राज्य की लक्ष्मी से सिद्ध किये हुए धनों को प्राप्त कराके (**अध**) पश्चात् हम लोगो को सुखी (**कृधि**) कीजिए ॥ ६ ॥

पदार्थ—ईश्वर के अनन्त सौभाग्य वा सभासेना न्यायाधीश राजा के चक्रवर्ति राज्य आदि सौभाग्य होने से इन दोनों के आश्रय से मनुष्यों के असंख्यात विद्या, सुवर्ण आदि धनों की प्राप्ति से अत्यन्त सुखों के भोग को प्राप्त होना वा कराना चाहिए ॥ ६ ॥

फिर वह हम लोगों को किस प्रकार का करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अति नः सश्चतो नय सुगा नः सुपथा कृणु । पूषन्निह क्रतुं विदः ॥७॥

भावार्थ—हे (पूषन्) सब को पुष्ट करनेवाले जगदीश्वर वा प्रजा का पोषण करनेहारे सभाध्यक्ष विद्वन् ! आप (इह) इस संसार वा जन्म में (सश्चत) विज्ञानयुक्त विद्या, धर्म को प्राप्त हुए (नः) हम लोगों को (सुगा) सुखपूर्वक जाने के योग्य (सुपथा) उत्तम विद्या, धर्मयुक्त विद्वानों के मार्ग से (अतिनय) अत्यन्त प्रयत्न से चलाइए और हम लोगों को उत्तम विद्यादि धर्म मार्ग से (क्रतुम्) उत्तम कर्म या उत्तम प्रज्ञा से (विदः) जानने वाले कीजिए ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । सब मनुष्यों को ईश्वर की प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिए कि हे जगदीश्वर ! आप कृपा करके अधर्म मार्ग से हम लोगों को अलग कर धर्म मार्ग में नित्य चलाइए । तथा विद्वान् से पूछना वा उनका सेवन करना चाहिए कि हे विद्वन् ! आप हम लोगों को शुद्ध सरल वेदविद्या से सिद्ध किये हुए मार्ग में सदा चलाया कीजिए ॥७॥

फिर उनसे किसको प्राप्त होना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अभि सूयवसं नय न नवज्वारो अध्वने । पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (पूषन्) सभाध्यक्ष ! इस संसार वा जन्मान्तर में (अध्वने) श्रेष्ठ मार्ग के लिए हम लोगों को (सुयवसम्) उत्तम यव आदि औषधि होने वाले देश को (अभिनय) सब प्रकार प्राप्त कीजिए और (क्रतुम्) उत्तम कर्म वा प्रज्ञा को (विदः) प्राप्त हूजिए जिससे इस मार्ग में चलके हम लोगों में (नवज्वारः) नवीन-नवीन सन्ताप (न) न हो ॥८॥

भावार्थ—हे सभाध्यक्ष ! आप अपनी कृपा से श्रेष्ठ देश वा उत्तम गुण हम लोगों को दीजिए और सब दुःखों को निवारण कर सुखों को प्राप्त कीजिए । हे सभासेनाध्यक्ष ! विद्वान् लोगों को विनयपूर्वक पालन से विद्या पढ़ाकर इस राज्य में सुखयुक्त कीजिए ॥८॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

शग्धि पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम् । पूषन्निह क्रतुं विदः ॥९॥

पदार्थ—हे (पूषन्) सभासेनाधिपते ! आप हम लोगों के (शग्धि) सुख देने के लिए समर्थ (पूर्धि) सब सुखों की पूर्त्ति कर (प्रयंसि) दुष्ट कर्मों से पृथक् रह (शिशीहि) सुखपूर्वक सो, वा दुष्टों का छेदन कर (प्रासि) सब सेना वा प्रजा के अङ्गों को पूर्ण कीजिए और हम लोगों के (उदरम्) उदर को उत्तम अन्नों से (इह) इस प्रजा के सुख से पूर्ण तथा (क्रतुम्) युद्ध विद्या को (विदः) प्राप्त हूजिए ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । सभा सेनाध्यक्ष से भिन्न इस संसार में कोई सामर्थ्य को देने वा सुखों से अलङ्कृत करने, पुरुषार्थ को देने, चोर-डाकुओं से भय निवारण करने, सबको उत्तम भोग देने और न्यायविद्या का प्रकाश करने वाला, अन्य नहीं हो सकता, इससे दोनों का आश्रय सब मनुष्य करें ॥९॥

उसका आश्रय लेकर कैसे होना वा क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

न पूषणं मेथामसि सूक्तैरभि गृणीमसि । वसूनि दस्ममीमहे ॥ १० ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (सूक्तैः) वेदोक्त स्तोत्रों से (पूषणम्) सभा और सेनाध्यक्ष को (अभिगृणीमसि) गुण ज्ञानपूर्वक स्तुति करते हैं (दस्मम्) शत्रु को (मेथामसि) मारते हैं । (वसूनि) उत्तम वस्तुओं की (ईमहे) याचना करते हैं और आपस में द्वेष कभी (न) नहीं करते वैसे तुम भी किया करो ॥१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । किसी मनुष्य को मूर्खता से सभाध्यक्ष की आज्ञा को छोड़ शत्रु की याचना न करनी चाहिए किन्तु वेदों से राजनीति को जानके इन दोनों के सहाय से शत्रुओं को मार, विज्ञान वा सुवर्ण आदि धनों को प्राप्त होकर सुपात्रों के लिए दान देकर विद्या का विस्तार करना चाहिए ॥१०॥

इस सूक्त में पूषन् शब्द का वर्णन, शक्ति का बढ़ाना दुष्ट शत्रुओं का निवारण, सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य की प्राप्ति, सुमार्ग में चलना, बुद्धि वा कर्म का बढ़ाना कहा है । इस से इस सूक्त के अर्थ की संगति पूर्व सूक्तार्थ के साथ जाननी चाहिए ।

यह पच्चीसवां वर्ग और बयालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

卐

अथ नवर्चस्य त्रयश्चत्वारिंशस्य सूक्तस्य घौरः कण्व ऋषिः । १,२,४—६ रुद्रः, ३ मित्रावरुणौ, ७—९ सोमश्च देवता । १—४,७,८ गायत्री, ५ विराड् गायत्री, ६ पादनिचृद् गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः । ९ अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब तेतालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है । उसके पहले मन्त्र में रुद्र शब्द के अर्थ का उपदेश किया है—

कद्रुद्राय प्रचेतसे मीळ्हुष्टमाय तव्यसे । वोचेम शन्तमं हृदे ॥ १ ॥

पदार्थ—हम लोग (कत्) कब (प्रचेतसे) उत्तम ज्ञानयुक्त (मीळ्हुष्टमाय) अतिशय करके सेचन करने वा (तव्यसे) अत्यन्त वृद्ध (हृदे) हृदय में रहने वाले (रुद्राय) परमेश्वर, जीव वा प्राण वायु के लिए (शंतमम्) अत्यन्त सुखरूप वेद का (वोचेम) अच्छे प्रकार उपदेश करें ॥१॥

भावार्थ—रुद्र शब्द से तीन अर्थों का ग्रहण है, परमेश्वर, जीव और वायु, उनमें से परमेश्वर अपने सर्वज्ञपन से जिसने जैसा पाप कर्म किया उस कर्म के अनुसार फल देने से उसको रोदन करानेवाला है । जीव निश्चय करके मरते समय अन्य सम्बन्धियों की इच्छा करता हुआ शरीर को छोड़ता है, तब अपने आप रोता है । और वायु शूल आदि पीड़ा कर्म से रोदन कर्म का निमित्त है । इसलिए इन तीनों को रुद्र समझना चाहिए ॥१॥

फिर वह क्या करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यथा नो अदितिः करत् पश्वे नृभ्यो यथा गवे ।
यथा तोकाय रुद्रियम् ॥ २ ॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (तोकाय) उत्पन्न हुए बालक के लिए (अदितिः) माता (यथा) जैसे (पश्वे) पशु समूह के लिए पशुओं का पालक (यथा) जैसे (नृभ्यः) मनुष्यों के लिए राजा (यथा) जैसे (गवे) इन्द्रियों के लिए जीव वा पृथिवी के लिए खेती करनेवाला (करत्) सुखों को करता है वैसे (नः) हम लोगों के लिए (रुद्रियम्) परमेश्वर वा पवनों का कर्म प्राप्त हो ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे माता, पिता, पुत्र के लिए गोपाल पशुओं के लिए और राजसभा प्रजा के लिए सुखकारी होते हैं वैसे ही सुखों के करने और करानेवाले परमेश्वर और पवन भी हैं । विद्या और पुरुषार्थ के बिना सुख नहीं मिलता ॥२॥

अब सब के साथ विद्वान् लोग कैसे वर्तें इस का उपदेश किया है—

यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति । यथा विश्वे सजोषसः ॥३॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (मित्रः) सखा वा प्राण (वरुणः) उत्तम उपदेष्टा वा उदान (यथा) जैसे (रुद्रः) परमेश्वर (नः) हम लोगों को (चिकेतति) ज्ञानयुक्त करते हैं (यथा) जैसे (विश्वे) सब (सजोषसः) स्वतुल्य प्रीति-सेवन करनेवाले विद्वान् लोग सब विद्याओं के जानने वाले होते हैं, वैसे यथार्थवक्ता पुरुष सबको जनाया करें ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् लोग सब मनुष्यों को मित्रता और उत्तम शील धारण कराकर उनके लिए यथार्थ विद्याओं की प्राप्ति कराते हैं और जैसे परमेश्वर ने वेद द्वारा सब विद्याओं का प्रकाश किया है, वैसे अध्यापकों को भी सब मनुष्यों को विद्यायुक्त करना चाहिए ॥३॥

फिर वह रुद्र कैसा है इस का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजम् । तच्छंयोः सुम्नमीमहे ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (गाथपतिम्) स्तुति करने वालों के पालक (मेधपतिम्) यज्ञ वा पवित्र पुरुषों की पालना करनेवाले (जलाषभेषजम्) जिससे सुख के लिए भेषज अर्थात् औषध हो उस (रुद्रम्) परमेश्वर के आश्रय होकर (तत्) उस विज्ञान वा (शंयोः) व्यावहारिक, पारमार्थिक सुख से भी (सुम्नम्) मोक्ष के सुख की (ईमहे) याचना करते हैं वैसे तुम भी करो ॥४॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य स्तुति यज्ञ वा दुःखों के नाश करनेवाली ओषधियों की प्राप्ति करानेवाले परमेश्वर, विद्वान् और प्राणायाम के बिना विज्ञान और लौकिक सुख वा मोक्ष सुख प्राप्त करने के योग्य नहीं हो सकता ॥४॥

फिर वह कैसा है इस का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते । श्रेष्ठो देवानां वसुः ॥ ५ ॥

पदार्थ—(यः) जो पूर्व कहा हुआ रुद्र सेनापति (सूर्यः, शुक्र इव) तेजस्वी शुद्ध भास्कर सूर्य के समान (हिरण्यमिव) सुवर्ण के तुल्य प्रीतिकारक (देवानाम्) सब विद्वान् वा पृथिवी आदि के मध्य में (श्रेष्ठः) अत्युत्तम (वसुः) सम्पूर्ण प्राणिमात्र का बसाने वाला (रोचते) प्रीतिकारक हो उसको सेना का प्रधान करो ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को उचित है कि जैसे परमेश्वर सब ज्योतियों का ज्योति, आनन्दकारियों का आनन्दकारी, श्रेष्ठों का श्रेष्ठ विद्वानों का विद्वान्, आधारों का आधार है, वैसे ही जो न्यायकारियों में न्यायकारी, आनन्द देने वालों में आनन्द देने वाला, श्रेष्ठ स्वभाव वालों में श्रेष्ठ स्वभाव वाला,

विद्वानों में विद्वान् और वास हेतुओं का वासहेतु वीर पुरुष हो उसको सभाध्यक्ष बनाएं या मानें ।

यह प्राणियों के लिए क्या करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये । नृभ्यो नारिभ्यो गवे ॥ ६ ॥

पदार्थ—जो रुद्रस्वामी (नः) हम लोगों की (अर्वते) अश्वजाति (मेषाय) मेषजाति (मेष्ये) भेड़-बकरी (नृभ्यः) मनुष्य जाति (नारिभ्यः) स्त्री जाति और (गवे) गोजाति के लिए (सुगम्) सुगम (शम्) सुख को (करति) निरन्तर करे वही न्यायाधीश करना चाहिए ॥६॥

भावार्थ—मनुष्यों को अपने सुख तथा अपने वा पराये मनुष्यों और पशुओं के सुख के लिए परमेश्वर की प्रार्थना, विद्वानों की सहायता, प्राणवायुओं का यथावत् उपयोग और अपना पुरुषार्थ करना चाहिए ॥६॥

अब अगले मन्त्र में रुद्र के गुणों का उपदेश किया है—

अस्मे सोम श्रियमधि नि धेहि शतस्य नृणाम् ।

महि श्रवस्तुविनृम्णम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (सोम) जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष आप ! (अस्मे) हम लोगों के लिए वा हम लोगों के (शतस्य) बहुत (नृणाम्) वीर पुरुषों के (तुविनृम्णम्) अनेक प्रकार के धन (महि) पूज्य वा बहुत (श्रवः) विद्या का श्रवण और (श्रियम्) राज्यलक्ष्मी को (अधि निधेहि) स्थापन कीजिए ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। कोई प्राणी परमेश्वर की कृपा सभाध्यक्ष की सहायता वा अपने पुरुषार्थ के बिना पूर्ण विद्या, पशु, चक्रवर्ति राज्य और लक्ष्मी को प्राप्त नहीं हो सकता ॥७॥

फिर वह किसका निवारण करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मा नः सोमपरिबाधो मारातयो जुहुरन्त । आ न इन्दो वाजे भज ॥८॥

पदार्थ—हे (इन्दो) सुशिक्षा से आर्द्र करनेवाले सभाध्यक्ष ! (नः) हम लोगों को (सोमपरिबाधः) जो उत्तम पदार्थों को सब प्रकार दूर करनेवाले विरोधी पुरुष हैं वे, हम पर (मा जुहुरन्त) प्रबल न होवें और (अरातयः) जो दान आदि धर्मरहित हठ करनेवाले शत्रु है वे, भी हम पर प्रबल न हों । (नः) हम लोगों को इन शत्रुओं को (वाजे) युद्ध मे पराजय करने को (आभज) अच्छे प्रकार युक्त कीजिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है। मनुष्यो को अत्यन्त उत्तम बल के साहित्य से तथा युद्ध द्वारा सब शत्रुओं को जीतकर न्याययुक्त राज्य का पालन करना चाहिए ॥ ८ ॥

फिर सोम की प्रजा कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन्धामन्नृतस्य ।

मूर्धा नाभा सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेदः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (सोम) विज्ञान के देनेवाले (वेन.) कमनीयस्वरूप (मूर्धा) सर्वोत्तम ! सोम तू (ऋतस्य) सत्यस्वरूप वा सत्यप्रिय (अमृतस्य) नाशरहित (नाभा) स्थिर सुख के बन्धनरूप (धामन्) न्याय वा आनन्दमय स्थान मे वर्त्तमान ईश्वर के समान न्यायकारी है (ते) तेरी (याः) जो (प्रजाः) प्रजा हैं उनको (आभूषन्ती) सब प्रकार भूषणयुक्त होने की (वेन.) इच्छा कर और उनको (वेद) सब विद्याओ से प्राप्त हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जहां मनुष्य, ईश्वर ही की उपासना करनेहारे अत्युत्तम सभाध्यक्ष का आश्रय करते हैं वहां वे दुःख के लेश को भी नहीं प्राप्त होते। जैसे परमेश्वर और सभाध्यक्ष श्रेष्ठ आचरण करने वाले मनुष्यों की इच्छा करते हैं वैसे ही प्रजा मे रहने वाले मनुष्य परमेश्वर वा सभाध्यक्ष की नित्य इच्छा करें क्योंकि इस के विना बहुत सुख कभी प्राप्त नहीं हो सकते ॥ ९ ॥

इस सूक्त में रुद्र शब्द के अर्थ का वर्णन, सब सुखों का प्रतिपादन, मित्रपन का आचरण, परमेश्वर वा सभाध्यक्ष के आश्रय से सुखों की प्राप्ति, एक ईश्वर ही की उपासना, परमसुख की प्राप्ति और सभाध्यक्ष का आश्रय करना कहा है इससे इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तैंतालीसवां सूक्त और सत्ताईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥ ४३ ॥ २७ ॥

卐

अथ चतुर्दशर्चस्य चतुश्चत्वारिंशस्य सूक्तस्य प्रस्कण्व ऋषिः । अग्निर्देवता ।

१, ५ उपरिष्टाद्विराड्बृहती, ३ निचृदुपरिष्टाद्बृहती, ७, ११ निचृत्पथ्या-बृहती, १२ भुरिग्बृहती, १३ पथ्याबृहती च छन्दः ।

मध्यमः स्वरः । २, ४, ६, ८, १४ विराट् सत.-

पङ्क्तिः, १० विराड् विस्तारपङ्क्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः । ९ आर्चीत्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

अब चवालीसवें सूक्त का आरम्भ है । उसके पहले मन्त्र में अग्नि शब्द के सम्बन्ध से विद्वानों की कामना करनी चाहिए यह उपदेश किया है—

अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।

आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (विवस्वत्) स्वप्रकाशस्वरूप वा विद्याप्रकाशयुक्त (अमर्त्य) मरण धर्म से रहित वा साधारण मनुष्य-स्वभाव से विलक्षण (जातवेद.) उत्पन्न हुए पदार्थों को जानने वा प्राप्त होनेवाले (अग्ने) जगदीश्वर वा विद्वन् ! जिस से (त्वम्) आप (अद्य) आज (दाशुषे) पुरुषार्थी मनुष्य के लिए (उषसः) प्रातःकाल से (चित्रम्) अद्भुत (विवस्वत्) सूर्य्य के समान प्रकाश करनेवाले (राधः) धन को देते हो वह आप (उषर्बुधः) प्रातःकाल में जागनेवाले विद्वानों को (आवह) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को परमेश्वर की आज्ञा पालन के लिए अपने पुरुषार्थ से परमेश्वर वा आलस्य रहित उत्तम विद्वानों का आश्रय लेकर चक्रवर्ति राज्य, विद्या और राज्यलक्ष्मी का स्वीकार करना चाहिए। सब विद्याओं के जाननेवाले विद्वान् लोग, जो उत्तम गुण युक्त और अपने करने योग्य श्रेष्ठ कर्म हैं उन को नित्य करें और जो दुष्ट कर्म है उस को कभी न करें ॥ १ ॥

फिर विद्वानों के सग के गुणो का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।

सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) पावक के समान राजविद्या के जाननेवाले विद्वन् ! (हि) जिस कारण आप (जुष्ट) प्रसन्न प्रकृति और (दूत) शत्रुओं को ताप करानेवाले होकर (अध्वराणाम्) अहिंसनीय यज्ञो को सिद्ध करते (रथीः) प्रशंसनीय रथयुक्त (हव्यवाहन) देने-लेने योग्य वस्तुओं को प्राप्त होने (सजूः) अपने तुल्यों के सेवन करनेवाले (असि) हो इसमे (अस्मे) हम लोगों मे (अश्विभ्याम्) वायु जल (उषसा) प्रातःकाल से सिद्ध हुई क्रिया से सिद्ध किये हुए (बृहत्) बडे (सुवीर्यम्) उत्तम पराक्रमकारक (श्रवः) सब विद्या के श्रवण का निमित्त अन्न को (धेहि) धारण कीजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—कोई मनुष्य विद्वानों के सग के विना, विद्या को प्राप्त करने शत्रु विजय रूप उत्तम पराक्रम, व चक्रवर्त्ति राज्यलक्ष्मी को प्राप्त करने मे समर्थ नहीं हो सकता और अग्नि, जल आदि के योग के विना उत्तम व्यवहार की सिद्धि भी नहीं कर सकता ॥ २ ॥

फिर कैसे मनुष्य को स्वीकार करें इस का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अद्या दूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुरुप्रियम् ।

धूमकेतुं भाऋजीकं व्युष्टिषु यज्ञानामध्वरश्रियम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हम लोग (अद्य) आज मनुष्य जन्म वा विद्या की प्राप्ति समय को प्राप्त होकर (व्युष्टिषु) अनेक प्रकार की कामनाओं मे (भाऋजीकम्) कामनाओं के प्रकाश (यज्ञानाम्) अग्निहोत्र आदि अश्वमेध पर्यन्त वा योग उपासना ज्ञान शिल्पविद्यारूप यज्ञों के मध्य (अध्वरश्रियम्) अहिंसनीय यज्ञों की श्री, शोभारूप (धूमकेतुम्) जिस का धूम ही ध्वजा है (वसुम्) सब विद्याओं का घर वा बहुत धन की प्राप्ति का हेतु (पुरुप्रियम्) बहुतों को प्रिय (दूतम्) पदार्थों को दूर पहुँचाने वाले (अग्निम्) भौतिक अग्नि के सदृश विद्वान् दूत को (वृणीमहे) अंगीकार करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि विद्या वा राज्य की प्राप्ति के लिए सब विद्याओं के कथन करने वा सब बातों का उत्तर देने वाले विद्वान् को दूत बनाएं और बहुत गुणों के योग से बहुत कार्य्यों को प्राप्त करानवाली बिजुली को स्वीकार करके सब कार्यों को सिद्ध करें ॥ ३ ॥

फिर किस प्रकार के विद्वान् को ग्रहण करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

श्रेष्ठं यविष्ठमतिथिं स्वाहुतं जुष्टं जनाय दाशुषे ।

देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसमग्निमीळे व्युष्टिषु ॥ ४॥

पदार्थ—मैं (व्युष्टिषु) विशिष्ट पढ़ने के योग्य कामनाओं मे (यातवे) प्राप्ति के लिए (दाशुषे) दाता (जनाय) धार्मिक विद्वान् मनुष्य के अर्थ (श्रेष्ठम्) अति उत्तम (यविष्ठम्) परम बलवान् (जुष्टम्) विद्वान् से प्रसन्न वा सेवित (स्वाहुतम्) अच्छे प्रकार बुलाके सत्कार के योग्य (जातवेदसम्) सब पदार्थों में व्याप्त (अतिथिम्) सेवा करने के योग्य (अग्निम्) अग्नि के तुल्य वर्तमान सज्जन अतिथि और (देवान्) दिव्यगुण वाले विद्वानों को (अच्छ) अच्छे प्रकार सत्कार करूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित ही है कि उत्तम धर्म, बलवाले, प्रसन्न स्वभाव वाले और सब के उपकारक विद्वान् अतिथियों का ही सत्कार करें जिस से सब जनों का हित हो ॥ ४ ॥

स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन ।

अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन ॥ ५ ॥

पदार्थ—(अमृत) अविनाशिस्वरूप (भोजन) पालनकर्त्ता (नियेध्य) प्रमाण करने (हव्यवाहन) लेने-देने योग्य पदार्थों को प्राप्त करानेवाले (अग्ने) परमेश्वर (अहम्) मैं (विश्वस्य) सब जगत् के (त्रातारम्) रक्षक (यविष्ठम्) अत्यन्त यवन करनेवाले (अमृतम्) नित्यस्वरूप (त्वा) तेरी ही (स्तविष्यामि) स्तुति करूँगा ॥ ५ ॥

भावार्थ—विद्वानों को योग्य है कि सब जगत् के रक्षक, मोक्ष देनेवाले तथा विद्या, काम, आनन्द के देने वाले वा उपासना करने योग्य परमेश्वर को छोड़ अन्य किसी का भी ईश्वरभाव से आश्रय या स्तुति न करें ॥ ५ ॥

फिर वह अग्नि कैसा है, किस के लिए क्या करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठ्य मधुजिह्वः स्वाहुतः ।

प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जीवसे नमस्या दैव्यं जनम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (यविष्ठ्य) अत्यन्त बलवान् (नमस्य) पूजने योग्य विद्वन् ! (मधुजिह्वः) मधुर ज्ञानरूप जिह्वा युक्त (सुशंसः) उत्तम स्तुति से प्रशंसित (स्वाहुतः) सुख से आह्वान, बुलाने योग्य (प्रस्कण्वस्य) उत्तम मेधावी विद्वान् के (जीवसे) जीवन के लिए (आयुः) जीवन को (प्रतिरन्) दुःखों से पार करते जो आप (गृणते) सत्य की स्तुति करते हुए मनुष्य के लिए शास्त्रों का (बोधि) बोध कीजिए और जिस से (दैव्यम्) विद्वानों में उत्पन्न हुए (जनम्) मनुष्य की रक्षा करते हो इस से सत्कार के योग्य हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को उचित है कि जो सब से उत्कृष्ट विद्वान् है उसी का सत्कार करें ऐसे ही इस का अच्छे प्रकार आश्रय कर सब उमर और विद्या को प्राप्त करें ।

फिर वह अग्नि किस प्रकार का है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते ।

स आ वह पुरुहूत प्रचेतसोऽग्ने देवाँ इह द्रवत् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (पुरुहूत) बहुत विद्वानों से बुलाये हुए (अग्ने) विशिष्ट ज्ञानयुक्त विद्वन् ! (प्रचेतसः) उत्तम ज्ञानयुक्त (विशः) प्रजा जिस (होतारम्) हवन के कर्त्ता (विश्ववेदसम्) सब सुख प्राप्त (त्वा) आप को (हि) निश्चय करके (समिन्धते) अच्छे प्रकार प्रकाश करती हैं (सः) सो आप (इह) इन युद्ध आदि कर्मों में उत्तम ज्ञानवाले (देवान्) शूरवीर विद्वानों को (आवह) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिए ॥ ७ ॥

भावार्थ—विद्वानों के सहाय के विना, प्रजा के सुख वा दिव्य गुणों की प्राप्ति और शत्रुओं पर विजय नहीं हो सकती इस से यह सब मनुष्यों को प्रयत्न के साथ सिद्ध करना चाहिए ॥ १ ॥

फिर वह कैसा और किस के सहाय से किस को प्राप्त होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सवितारमुषसमश्विना भगमग्निं व्युष्टिषु क्षपः ।

कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (स्वध्वर) उत्तम यज्ञ वाले विद्वन् ! जो (सुतसोमाः) उत्तम पदार्थों को सिद्ध करते (कण्वासः) मेधावी विद्वान् लोग (व्युष्टिषु) कामनाओं में (सवितारम्) सूर्य्यप्रकाश (उषसम्) प्रातःकाल (अश्विना) वायुजल (भगम्) ऐश्वर्य (अग्निम्) विद्युत् (क्षपः) रात्रि और (हव्यवाहम्) होम करने योग्य द्रव्यों को प्राप्त करानेवाले (त्वा) आपको (इन्धते) अच्छे प्रकार प्रकाशित करते हैं, वह आप भी उनको प्रकाशित कीजिए ॥८॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि सब क्रियाओं में दिन रात, प्रयत्न से सूर्य्य आदि पदार्थों को संयुक्तकर वायु, वृष्टि की शुद्धि करनेवाले शिल्परूप यज्ञ का प्रकाश करके कार्य्यों को सिद्ध करें और विद्वानों के संग से इनके गुण जानें ॥८॥

फिर वह विद्वान् कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

पतिर्ह्यध्वराणामग्ने दूतो विशामसि ।

उषर्बुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! जो तू (हि) निश्चय करके (अध्वराणाम्) यज्ञ और (विशाम्) प्रजाओं के (पतिः) पालक (असि) हो इससे आप (अद्य) आज (सोमपीतये) अमृतरूपी रसों के पीने रूप व्यवहार के लिए (उषर्बुधः) प्रातःकाल में जागने वाले (स्वर्दृशः) विद्यारूपी सूर्य्य के प्रकाश से यथावत् देखने वाले (देवान्) विद्वान् वा दिव्यगुणों को (आवह) प्राप्त हूजिए ॥९॥

भावार्थ—सभासेनाध्यक्षादि विद्वान् लोग विद्या पढ़ाके प्रजापालनादि यज्ञों की रक्षा के लिए प्रजा में दिव्य गुणों का प्रकाश नित्य किया करें ॥९॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः ।

असि ग्रामेष्वविता पुरोहितोऽसि यज्ञेषु मानुषः ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (विभावसो) विशेष दीप्ति को बसाने वाले (अग्ने) विद्या को प्राप्त करनेहारे विद्वन् ! (विश्वदर्शतः) सभों को देखने योग्य आप (पूर्वाः) पहले व्यतीत (अनु) फिर (उषसः) आने वाली और वर्त्तमान प्रभात और रात-दिनों को (दीदेथ) जानकर एक क्षण भी व्यर्थ न खोवें । आप ही (ग्रामेषु) मनुष्यों के निवास योग्य ग्रामों में (अविता) रक्षा करनेवाले (असि) हो और (यज्ञेषु) अश्वमेध आदि शिल्प पर्य्यन्त क्रियाओं में (मानुष) मनुष्य व्यक्ति (पुरोहितः) सब साधनों के द्वारा सब सुखों को सिद्ध करने वाले (असि) हो ॥ १० ॥

भावार्थ—विद्वान् सब दिन एक क्षण भी व्यर्थ न खोवे, सर्वथा बहुत उत्तम-उत्तम कार्यों के अनुष्ठान के लिए सब दिनों को जानकर, निरन्तर प्रजा की रक्षा वा यज्ञ का अनुष्ठान करने वाला हो ॥१०॥

फिर वह किस प्रकार का हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

नि त्वा यज्ञस्य साधनमग्ने होतारमृत्विजम् ।

मनुष्वद्देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (देव) दिव्य विद्यासम्पन्न (अग्ने) भौतिक अग्नि के सदृश उत्तम पदार्थों को सम्पादन करनेवाले मेधावी विद्वन् ! हम लोग (यज्ञस्य) तीन प्रकार के यज्ञ के (साधनम्) मुख्य साधक (होतारम्) हवन करने वा ग्रहण करने वाले (ऋत्विजम्) यज्ञसाधक (प्रचेतसम्) उत्तम विज्ञानयुक्त (जीरम्) वेगवान् (अमर्त्यम्) साधारण मनुष्यस्वभाव से रहित वा स्वरूप से नित्य (दूतम्) प्रशसनीय बुद्धियुक्त वा पदार्थों को देशान्तर में प्राप्त करने वाले (त्वा) आपको (मनुष्वत्) मननशील मनुष्य के समान (निधीमहि) निरन्तर धारण करें ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । और आठवें मन्त्र से 'सुतसोमास', 'कण्वास' इन दो पदों की अनुवृत्ति है । विद्वान् अग्नि आदि साधन और द्रव्य आदि सामग्री के बिना यज्ञ की सिद्धि नहीं कर सकता ॥ ११ ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यद्देवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरो यासि दूत्यम् ।

सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयोऽग्नेर्भ्राजन्तेऽअर्चयः ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (मित्रमहः) मित्रों में बड़े पूजनीय विद्वन् ! (यत्) जो आप (सिन्धोरिव) समुद्र की (प्रस्वनितासः) शब्द करती हुई (ऊर्मयः) लहरों के सदृश और (अग्नेः) अग्नि की (अर्चयः) दीप्तियों के तुल्य (भ्राजन्ते) प्रकाशित होते हैं, और (पुरोहितः) अग्रगामी तथा (अन्तरः) मध्यस्थ होकर (देवानाम्) विद्वानों के (दूत्यम्) दूत के कर्म वा स्वभाव को (यासि) प्राप्त होते हैं, सो आप हम लोगों से सत्कार के योग्य क्यों न हो ॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम जैसे परमेश्वर सबका मित्र, पूजनीय, पुरोहित, अन्तर्यामी होकर दूत के समान सत्य-असत्य कर्मों को जानता है, जिस ईश्वर की अनन्त दीप्ति विचरती है वह ईश्वर सबका धाता, रचने वा पालन करनेवाला है । जैसे न्यायकारी महाराज सब को उपासने योग्य है, वैसे उत्तम दूत भी राजपुरुषों को माननीय होता है ॥१२॥

फिर वह विद्वान् कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।

आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे (श्रुत्कर्ण) श्रवण करनेवाले (अग्ने) विद्याप्रकाशक विद्वन् ! आप प्रीति के साथ (सयावभिः) तुल्य जाने वाले (वह्निभिः) सत्याचार के भार धरनेहारे मनुष्य आदि (देवैः) विद्वान् और दिव्यगुणों के साथ (अस्माकम्) हम लोगों की वार्त्ताओं को (श्रुधि) सुनो, तुम और हम लोग (मित्रः) सब के हितकारी (अर्यमा) न्यायाधीश (प्रातर्यावाणः) प्रतिदिन पुरुषार्थ से युक्त (सर्वे) सब (अध्वरम्) अहिंसनीय पहले कहे हुए यज्ञ को प्राप्त होकर (बर्हिषि) उत्तम व्यवहार में (आसीदन्तु) ज्ञान को प्राप्त हों वा स्थित हों ॥१३॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि सब विद्याओं को श्रवण किये हुए धार्मिक मनुष्यों को राजव्यवहार में विशेष करके युक्त करें । विद्वान् लोग शिक्षा से युक्त भृत्यों से सब कार्य्यों को सिद्ध करें और सर्वदा आलस्य को छोड़ निरन्तर पुरुषार्थ में यत्न करें । इसके विना निश्चय है कि व्यवहार वा परमार्थ कभी सिद्ध नहीं होते ॥१३॥

फिर वे विद्वान् कैसे होवें इस का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।

पिबतु सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विभ्यामुषसा सजूः ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (अग्निजिह्वाः) जिनकी अग्नि के समान शब्दविद्या प्रकाशित हुई जिह्वा है (ऋतावृधः) सत्य के बढ़ानेवाले (सुदानवः) उत्तम दानशील (मरुतः) विद्वानों ! तुम लोगों के (स्तोमम्) स्तुति वा न्यायप्रकाश को (शृण्वन्तु) श्रवण करो, इसी प्रकार प्रतिदिन (सजूः) तुल्य सेवने (वरुणः) श्रेष्ठ (धृतव्रतः) सत्य व्रत का धारण करनेहारे सब मनुष्यजन (उषसा) प्रभात

(अधिक्याम्) व्याप्तिशील सभा, सेना, शाला, धर्माध्यक्ष, अध्वर्युओं के साथ (सोमम्) पदार्थविद्या से उत्पन्न हुए आनन्दरूपी रस को (पिबतु) पीओ ॥१४॥

भावार्थ—विद्या, धर्म वा राजसभाओं से जो आज्ञा प्रकाशित हो सब मनुष्य उसका श्रवण तथा अनुष्ठान करें। जो सभासद् हों वे भी पक्षपात को छोड़कर प्रतिदिन सब के लिए सब मिलकर जैसे अविद्या, अधर्म, अन्याय का नाश होवे वैसा यत्न करें ॥१४॥

इस सूक्त में धर्म की प्राप्ति, दूत का करना, सब विद्याओं का श्रवण, उत्तम श्री की प्राप्ति, श्रेष्ठ सङ्ग, स्तुति और सत्कार, पदार्थविद्याओं, सभाध्यक्ष, दूत और यज्ञ का अनुष्ठान, मित्रादिकों का ग्रहण, परस्पर मिलकर सब कार्य्यों की सिद्धि, उत्तम व्यवहारों में स्थिति, परस्पर विद्या, धर्म, राजसभाओं को सुनकर अनुष्ठान करना कहा है इससे इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए।

यह तीसवां वर्ग और चवालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

卐

अथ दशर्चस्य पञ्चचत्वारिंशस्य सूक्तस्य प्रस्कण्वः काण्व ऋषिः। अग्निर्देवाश्च देवता। १ भुरिगुष्णिक्, ५ उष्णिक् छन्दः। ऋषभ स्वरः। २, ३, ७, ८ अनुष्टुप् ४ निचृदनुष्टुप्। ६, ९, १० विराडनुष्टुप् च छन्दः। गान्धार स्वरः ॥

अब पैंतालीसवें सूक्त का आरम्भ है। इसके पहले मन्त्र में बिजुली के दृष्टान्त से विद्वान् के गुणों का उपदेश किया है—

त्वम॑ग्ने॒ वसूँ॑रि॒ह रु॒द्राँ आ॑दि॒त्याँ उ॒त।
यजा॑ स्वध्व॒रं जनं॒ मनु॑जातं घृत॒प्रुष॑म् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) बिजुली के समान वर्त्तमान विद्वन्! आप (इह) इस संसार में (वसून्) जो चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य से विद्या को प्राप्त हुए पण्डित (रुद्रान्) जिन्होंने चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य किया हो उन महाबली विद्वान् और (आदित्यान्) जिन्होंने अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य किया हो उन महाविद्वान् लोगों को (उत) और भी (घृतप्रुषम्) यज्ञ से सिद्ध हुए घृत से सेचन करने वाले (मनुजातम्) मननशील मनुष्य से उत्पन्न हुए (स्वध्वरम्) उत्तम यज्ञ को सिद्ध करनेहारे (जनम्) पुरुषार्थी मनुष्य को (यज) समागम कराया कर ॥१॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि अपने पुत्रों का कम-से-कम चौबीस और अधिक-से-अधिक अड़तालीस वर्ष तक और कन्याओं को कम से-कम सोलह और अधिक से-अधिक चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करावें, जिससे सम्पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को पाकर परीक्षा और स्वयंवर विधि से विवाह करें जिससे सब सुखी रहें ॥१॥

फिर वह विद्वान् क्या करे इसका उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

श्रु॒ष्टी॒वानो॒ हि दा॒शुषे॑ दे॒वा अ॑ग्ने॒ विचे॑तसः।
तान्रो॑हिदश्व गिर्वण॒स्त्रय॑स्त्रिंशत॒मा व॑ह ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (रोहिदश्व) वेग आदि गुणयुक्त (गिर्वणः) वाणियों से सेवित (अग्ने) विद्वन्! (त्वम्) आप इस संसार में जो (विचेतसः) नाना प्रकार के शास्त्रोक्त ज्ञानयुक्त (श्रुष्टीवानः) यथार्थ विद्या के सेवन करनेवाले (देवाः) दिव्य गुणवान् विद्वान् (दाशुषे) दानशील पुरुषार्थी मनुष्य के लिए सुख देते हैं (तान्) उन (त्रयस्त्रिंशतम्) भूमि आदि तेंतीस दिव्य गुण वालों को (हि) निश्चय करके (आवह) प्राप्त हूजिए ॥२॥

भावार्थ—जब विद्वान् विद्यार्थियों को तेंतीस देव अर्थात् पृथिवी आदि तेंतीस पदार्थों की विद्या को अच्छे प्रकार साक्षात्कार कराते हैं तब वे बिजुली आदि अनेक पदार्थों से उत्तम-उत्तम व्यवहारों की सिद्धि कर सकते हैं ॥२॥

फिर वह विद्वान् क्या करे इसका उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्रि॒य॒मे॒ध॒वद॑त्रि॒वज्जात॑वेदो विरूप॒वत्।
अ॒ङ्गि॒र॒स्वन्म॑हिव्रत॒ प्रस्क॑ण्वस्य श्रुधी॒ हव॑म् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (जातवेद) उत्पन्न हुए पदार्थों को जाननेहारे (महिव्रत) बड़े व्रतयुक्त विद्वन्! आप (प्रियमेधवत्) विद्याप्रिय बुद्धि वाले के तुल्य (अत्रिवत्) तीन अर्थात् शरीर, अन्य प्राणी और मन आदि इन्द्रियों के दुःखों से रहित के समान (विरूपवत्) अनेक प्रकार के रूपवाले के तुल्य (अङ्गिरस्वत्) अङ्गों के रसरूप प्राणों के सदृश (प्रस्कण्वस्य) उत्तम मेधावी मनुष्य के (हवम्) देने-लेने, पढाने योग्य व्यवहार को (श्रुधि) श्रवण किया करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे सब के प्रिय करने वाले लोग शरीर, वाणी और मन के दोषों से रहित नाना विद्याओं को प्रत्यक्ष करने और अपने प्राण के समान सब जानते हुए विद्वान् मनुष्यों के प्रिय कार्य्यों को सिद्ध करते हैं, वैसे तुम भी किया करो ॥ ३ ॥

फिर विद्वान् लोग उसको किसके लिए प्रेरणा करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

महि॑केरव ऊ॒तये॑ प्रि॒यमे॑धा अहूषत।
राज॑न्तमध्व॒राणा॑म॒ग्निं शु॒क्रेण॑ शो॒चिषा॑ ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे महाविद्वानो! (महिकेरवः) जिनके बड़े-बड़े शिल्पविद्या के सिद्ध करनेवाले कारीगर हों ऐसे (प्रियमेधाः) सत्यविद्या वा शिक्षाओं की प्राप्ति करानेवाली मेधा बुद्धियुक्त आप लोग (अध्वराणाम्) पालनीय व्यवहाररूपी कर्मों की (ऊतये) रक्षा आदि के लिए (शुक्रेण) शुद्ध शीघ्रकारक (शोचिषा) तेज से (राजन्तम्) प्रकाशमान् (अग्निम्) प्रसिद्ध वा बिजुली रूप आग के सदृश सभापति को (अहूषत) उपदेश वा उससे श्रवण किया करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—कोई मनुष्य धार्मिक बुद्धिमानों के सङ्ग के विना उत्तम-उत्तम व्यवहारों की सिद्धि करने को समर्थ नहीं हो सकता। इससे सब मनुष्यों को योग्य है कि इनके सङ्ग से इन विद्याओं का साक्षात्कार अवश्य करें ॥ ४ ॥

फिर वह किससे जानने को समर्थ होवे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

घृता॑हवन सन्त्ये॒मा उ॒ षु श्रु॑धी॒ गिरः॑।
याभिः॒ कण्व॑स्य सू॒नवो॒ हव॒न्तेऽव॑से त्वा ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (सन्त्य) सुखों की क्रियाओं में कुशल (घृताहवन) घी को अच्छे प्रकार ग्रहण करनेवाले विद्वन् मनुष्य! जैसे (कण्वस्य) मेधावी विद्वान् के (सूनवः) पुत्र, विद्यार्थी (अवसे) रक्षा आदि के लिए (याभिः) जिन वेद-वाणियों से जिस (त्वा) तुझको (हवन्ते) ग्रहण करते हैं सो आप (उ) भी उनसे उनकी (इमाः) इन प्रत्यक्ष (गिरः) वाणियों को (सुश्रुधि) अच्छे प्रकार सुनें और ग्रहण करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य इस संसार में विदुषी माता, विद्वान् पिता और सब उत्तर देने वाले आचार्य्य आदि से शिक्षा वा विद्या को ग्रहण कर परमार्थ और व्यवहार को सिद्ध कर विज्ञान और शिल्प को करने में प्रवृत्त होता है वे सब सुखों को प्राप्त होता है, आलसी कभी नहीं होते ॥ ५ ॥

फिर उसको किस प्रकार ग्रहण करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वां चि॑त्रश्रवस्तम॒ हव॑न्ते वि॒क्षु ज॒न्तवः॑।
शो॒चिष्के॑शं पुरुप्रि॒याग्ने॑ ह॒व्याय॒ वोळ्ह॑वे ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (चित्रश्रवस्तम) अत्यन्त अद्भुत अन्न वा श्रवणों से व्युत्पन्न (पुरुप्रिय) बहुतों को तृप्त करनेवाले (अग्ने) बिजुली के तुल्य विद्याओं में व्यापक विद्वन्! जो (जन्तवः) प्राणी लोग (विक्षु) प्रजाओं में (वोळ्हवे) विद्या प्राप्ति करानेहारे (हव्याय) करने योग्य पठन-पाठनरूप यज्ञ के लिए जिस (शोचिष्केशम्) जिसके पवित्र आचरण हैं उस (त्वाम्) आपको (हवन्ते) ग्रहण करते हैं, वह आप उन को विद्या और शिक्षा देकर विद्वान् और शीलयुक्त शीघ्र कीजिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि अनेक गुणयुक्त अग्नि के समान विद्वान् को प्राप्त होके विद्याओं को ग्रहण करें ॥ ६ ॥

फिर उसको किस प्रकार जानकर धारण करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

नि त्वा॒ होता॑रमृ॒त्विजं॑ दधि॒रे व॑सु॒वित्त॑मम्।
श्रुत्क॑र्णं स॒प्रथ॑स्तमं॒ विप्रा॑ अग्ने॒ दिवि॑ष्टिषु ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) बहुश्रुत सत्पुरुष! जो (विप्राः) मेधावी, विद्वान् लोग (दिविष्टिषु) पवित्र पठन-पाठन क्रियाओं में अग्नि के तुल्य जिस (होतारम्) ग्रहणकारक (ऋत्विजम्) ऋतुओं को सङ्गत करने (श्रुत्कर्णम्) सब विद्याओं को सुनने (सप्रथस्तमम्) अत्यन्त विस्तार के साथ वर्त्तने (वसुवित्तमम्) पदार्थों को ठीक-ठीक जाननेवाले (त्वा) तुझको (निदधिरे) धारण करते हैं उन को तू भी धारण कर ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य उत्तम कार्यसिद्धि के लिए प्रयत्न करते और चक्रवर्ती राज्य, श्री और विद्याधन की सिद्धि करने को समर्थ हो सकते हैं वे शोक को प्राप्त नहीं होते ॥ ७ ॥

फिर उसको कैसा जानें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ त्वा॒ विप्रा॑ अचुच्यवुः सु॒तसो॑मा अ॒भि प्रयः॑।
बृ॒हद्भा बिभ्र॑तो ह॒विरग्ने॒ मर्ता॑य दा॒शुषे॑ ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) बिजुली के समान वर्त्तमान विद्वन्! जैसे क्रियाओं में कुशल (दाशुषे) दानशील मनुष्य के लिए (प्रयः) अन्न (बृहत्) बड़े सुख करनेवाले (हविः) देने-लेने योग्य पदार्थ और (भाः) प्रकाशकारक क्रियाओं को (बिभ्रतः) धारण करते हुए (सुतसोमाः) ऐश्वर्ययुक्त (विप्राः) विद्वान् लोग (त्वा) तुझको (अभ्यचुच्यवुः) सब प्रकार प्राप्त हों वैसे तू भी इनको प्राप्त हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—विद्वान् मनुष्यों को चाहिए जिस प्रकार उत्तम सुख हो उसको विद्याविशेष परीक्षा से प्रत्यक्ष कर अनुक्रम से सबको ग्रहण करावें जिससे इन लोगों के सब काम सिद्ध होवें ॥ ८ ॥

इस के अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य किसके लिए क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

प्रा॒त॒र्याव्णः॑ सहस्कृत सोम॒पेया॑य सन्त्य।
इ॒हाद्य दैव्यं॒ जनं॑ ब॒र्हिरा सा॑दया वसो ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (**सहस्कृत**) सबको सिद्ध करने (**सत्य**) जो संभजनीय क्रियाओं में कुशल विद्वानों मे सज्जन (**वसो**) श्रेष्ठ गुणों मे वसने वाले विद्वन् ! तू (**इह**) इस विद्या व्यवहार में (**अद्य**) आज (**सोमपेयाय**) सोमरस के पीने के लिए (**प्रातर्यावाण.**) प्रात:काल पुरुषार्थ को प्राप्त होनेवाले विद्वानो और (**दैव्यम्**) विद्वानों में कुशल (**जनम्**) पुरुषार्थयुक्त धार्मिक मनुष्य और (**बर्हि.**) उत्तम आसन को (**आसादय**) प्राप्त कर ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य उत्तम गुणयुक्त मनुष्यो को ही उत्तम वस्तु देते हैं ऐसे मनुष्यों का ही सग सब करें । कोई भी मनुष्य विद्या वा पुरुषार्थयुक्त मनुष्यों के सग वा उपदेश के विना पवित्र गुण, पवित्र वस्तुओ और दिव्य सुखो को प्राप्त नही हो सकता ॥ ९ ॥

अर्वाञ्चं दैव्यं जनमग्ने यक्ष्व सहूतिभिः ।

अयं सोमः सुदानवस्तं पात तिरोअह्न्यम् ॥१०॥

पदार्थ—(**हे सुदानव**) उत्तम दानशील विद्वान् लोगो ! आप (**सहूतिभि**) तुल्य आह्वानयुक्त क्रियाओ से (**अर्वाञ्चम्**) वेगादि गुणवाले घोडो को प्राप्त करने वा करानेवाले (**दैव्यम्**) दिव्य गुणो म प्रवृत्त (**तिरोअह्न्यम्**) चोर आदि का तिरस्कार करनेहारे दिन मे प्रसिद्ध (**जनम्**) पुरुषार्थ म प्रकट हुए मनुष्य की (**पात**) रक्षा कीजिए और जैसे (**अयम्**) यह (**सोम**) पदार्थों का समूह सब के सत्कारार्थ है, वैसे (**अग्ने**) हे विद्वन् ! (**तम्**) उसका तू भी (**यक्ष्व**) सत्कार कर ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्यो को उचित है कि सर्वदा सज्जनो को बुला, सत्कार कर सब पदार्थों का विज्ञान, शोधन और उनसे उपकार ग्रहण करना चाहिए और उत्तरोत्तर इसको जानकर इस विद्या का प्रचार किया करें ॥ १० ॥

इस सूक्त मे वसु, रुद्र और आदित्यो की गति तथा प्रमाण आदि कहा है इससे इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥ ४५ ॥

यह पैंतालीसवाँ सूक्त और बत्तीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चदशर्चस्य षट्चत्वारिंशस्य सूक्तस्य प्रस्कण्व ऋषि । अश्विनौ देवते । १, १०, विराड्गायत्री, ३, ६, ११, १२, १४, गायत्री, २, ४, ५, ७—९, १३, १५ निचृद्गायत्री च छन्दः । षड्ज स्वरः ॥

अब छयालीसवें सूक्त का आरम्भ है । इसके पहले मन्त्र में उषा और सूर्य-चन्द्र के दृष्टान्त से विदुषी स्त्रियों का प्रकाश किया है—

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥१॥

पदार्थ—हे विदुषि ! तू—जैसे (**एषो**) यह (**अपूर्व्या**) किसी पूर्ववर्ती के द्वारा न बनाई गई (**दिव.**) सूर्य्यप्रकाश से उत्पन्न हुई (**प्रिया**) सब की प्रीति को बढाने वाली (**उषा.**) दाहनशील उषा अर्थात् प्रातःकाल की वेला (**बृहत्**) बड़े दिन को प्रकाशित करती है वैसे मुझको (**व्युच्छति**) आनन्दित करती है और जैसे वह (**वाम् अश्विना**) सूर्य और चन्द्रमा के तुल्य पढाने और उपदेश करनेहारी स्त्रियो के (**स्तुषे**) गुणो का प्रकाश करती है, वैसे मै भी तुझको सुखो मे बसाऊ और तेरी प्रशसा भी करूँ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो स्त्रियाँ सूर्य, चन्द्र और उषा के सदृश सब प्राणियो को सुख देती हैं, वे आनन्द को प्राप्त होती हैं इनसे विपरीत कभी आनन्द को प्राप्त नहीं हो सकती ॥ १ ॥

फिर वे अश्वि कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों मे किया है—

या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् । धिया देवा वसुविदा ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (**या**) जो (**दस्रा**) दुःखो को नष्ट करने वाले (**सिन्धुमातरा**) समुद्र व नदियो के प्रमाणकारक (**मनोतरा**) मन के समान पार करनेहारे (**धिया**) कर्म से (**रयीणाम्**) धनो के (**देवा**) देनेहारे (**वसुविदा**) बहुत धन को प्राप्त करानेवाले अग्नि और जल के तुल्य वर्त्तमान अध्यापक और उपदेशक है उनकी सेवा करो ॥ २ ॥

भावार्थ—जैसे कारीगर लोगो से ठीक-ठीक प्रयुक्त किये हुए अग्नि, जल-यानों को मन के वेग के समान तुरन्त पहुँचाने वाले वा बहुत धन को प्राप्त कराने वाले होते है, उसी प्रकार अध्यापक और उपदेशको को होना चाहिए ॥ २ ॥

वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि । यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥३॥

पदार्थ—हे कारीगरो ! जो (**जूर्णायां**) वृद्धावस्था मे वर्त्तमान (**ककुहास.**) बड़े विद्वान् (**वाम्**) तुम शिल्पविद्या पढने-पढाने वालों को विद्याओ का (**वच्यन्ते**) उपदेश करें तो (**वाम्**) आप लोगों का बनाया हुआ (**रथ.**) विमानादि सवारी (**विभि.**) पक्षियो के तुल्य (**विष्टपि**) अन्तरिक्ष में (**अधि**) ऊपर (**पतात्**) चलें ॥३॥

भावार्थ—जो मनुष्य बड़े ज्ञानियो के समीप से कारीगरी और शिक्षा को ग्रहण करें तो विमानादि सवारियों को रचके पक्षी के तुल्य आकाश मे जाने-आने को समर्थ होवें ॥३॥

हविषा जारो अपां पिपर्त्ति पपुरिर्नरा । पिता कुटस्य चर्षणिः ॥४॥

पदार्थ—हे (**नरा**) नीति के सिखाने-पढाने और उपदेश करनेहारे लोगो ! तुम जैसे (**जारः**) विभागकर्त्ता (**पपुरि.**) अच्छे प्रकार पूर्त्ति (**पिता**) पालन करने (**कुटस्य**) कुटिल मार्ग को (**चर्षणि**) दिखलानेहारा सूर्य (**हविषा**) आहुति से बढकर (**अपाम्**) जलो के योग से (**पिपर्ति**) पूर्णकर प्रजाओ का पालन करता है, वैसे प्रजा का पालन करो ॥४॥

भावार्थ—मनुष्यो को योग्य है कि जैसे सविता वर्षा के द्वारा प्राणी और अप्राणियों को पुष्ट करता है वैसे ही सब को पुष्ट करें ॥४॥

आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा । पातं सोमस्य धृष्णुया ॥५॥

पदार्थ—हे (**नासत्या**) पवित्रगुण स्वभावयुक्त (**मतवचसा**) ज्ञान से बोलने वाले सभा सेना के पति ! (**वाम्**) तुम्हारे (**आदार**) सब प्रकार से शत्रुओं को विदारणकर्त्ता गुण हैं उनसे और (**धृष्णुया**) प्रगल्भता से (**सोमस्य**) ऐश्वर्य्य और (**मतीनाम्**) मनुष्यो की (**पातम्**) रक्षा करो ॥५॥

भावार्थ—राजपुरुषो को चाहिए कि दृढ बल युक्त सेना से शत्रुओ को जीत अपनी प्रजा के ऐश्वर्य्य की निरन्तर वृद्धि किया करें ॥५॥

फिर सूर्य्य चन्द्रमा के सभा व सेनापति क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों मे किया है—

या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः ।

तामस्मे रासाथामिषम् ॥६॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) सभासेनाध्यक्षो ! जैसे सूर्य्य और चन्द्रमा की (**ज्योतिष्मती**) उत्तम प्रकाशयुक्त कान्ति (**तम**) रात्रि का निवारण करके प्रभात और शुक्लपक्ष से सबका पोषण करती है वैसे (**अस्मे**) हमारी अविद्या को छुड़ा विद्या का प्रकाश कर (**न**) हम सबको (**ताम्**) उस (**इषम्**) अन्न आदि को (**रासाथाम्**) दिया करो ॥६॥

भावार्थ—यहाँ वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिस प्रकार सूर्य्य और चन्द्रमा अन्धकार को दूर कर प्राणियो को सुखी करते है वैसे ही सभा और सेना के अध्यक्षों को चाहिए कि अन्याय को दूर कर प्रजा को सुखी करें ॥६॥

आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे । युञ्जाथामश्विना रथम् ॥७॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) व्यवहार करनेवाले कारीगरो ! आप (**मतीनाम्**) मनुष्यो की (**नावा**) नौका से (**पाराय**) पार (**गन्तवे**) जाने के लिए (**नः**) हमारे वास्ते (**आयातम्**) प्राप्त हूजिए और (**रथम्**) विमान आदि यान समूहों को (**युञ्जाथाम्**) युक्तकर चलाइए ॥७॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि रथ से स्थल अर्थात् सूखे मे, नाव से जल में विमान से आकाश मे आया-जाया करें ॥७॥

फिर वह यान किस प्रकार का बनाना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः । धिया युयुज्र इन्दवः ॥८॥

पदार्थ—हे कारीगरो ! जो (**वाम्**) आप लोगो का (**पृथु**) विस्तृत (**रथ**) यानसमूह अर्थात् अनेकविध सवारी हैं उनको (**सिन्धूनाम्**) समुद्रों के (**तीर्थे**) तरानेवाले मे (**अरित्रम्**) यान रोकने और बहुत जल के थाह ग्रहणार्थ लोहे का साधन (**दिव**) प्रकाशमान बिजुली अग्न्यादि और (**इन्दव**) जलादि को आप (**धिया**) क्रिया से (**युयुज्रे**) युक्त कीजिए ॥८॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य अग्नि जल आदि से चलनेवाले यान अर्थात् सवारी के विना पृथिवी, समुद्र और अन्तरिक्ष मे सुख से आने-जाने मे समर्थ नही हो सकता ॥८॥

फिर वे कारीगर क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—

दिवस्कण्वास इन्दवो वसु सिन्धूनां पदे । स्वं वव्रिं कुह धित्सथः ॥९॥

पदार्थ—हे (**कण्वास**) मेधावी विद्वान् लोगो ! तुम इन कारीगरो से पूछो कि तुम लोग (**सिन्धूनाम्**) समुद्रो के (**पदे**) मार्ग मे जो (**दिव.**) प्रकाशमान् अग्नि और (**इन्दव**) जल आदि हैं उन्हे और (**स्वम्**) अपना (**वव्रिम्**) सुन्दर रूपयुक्त (**वसु**) धन (**कुह**) कहाँ (**धित्सथ**) धरने की इच्छा करते हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानो की शिक्षा के अनुकूल अग्नि, जल के प्रयोग से युक्त यानो पर स्थित होके राजा-प्रजा के व्यवहार की सिद्धि के लिए समुद्रो के छोर तक जावें-आवें तो बहुत उत्तमोत्तम धन को प्राप्त होवें ॥ ९ ॥

इस विषय का उत्तर अगले मन्त्र में दिया है—

अभूदु भा उ अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः ।

व्यख्यज्जिह्वयाऽसितः ॥ १० ॥ ३४ ॥

पदार्थ—हे कारीगरो ! तुम लोग जैसे (**असितः**) अबद्ध अर्थात् जिस का किसीके साथ बन्धन नही है (**भाः**) प्रकाशयुक्त (**सूर्य्यः**) सूर्य्य के (**अंशवे**) किरणो के विभागार्थ (**जिह्वया**) जीभ के समान (**व्यख्यत्**) प्रसिद्धि से सम्मुख प्रकाशमान् (**अभूत्**) होता है वैसे उसी पर यान का स्थापन कर उचित स्थान में (**हिरण्यम्**) सुवर्णादि उत्तम पदार्थों को धरो ॥१०॥

भावार्थ—हे सवारी पर चलने वाले मनुष्यो ! तुम दिशाओं के जानने वाले चुम्बक, ध्रुवयन्त्र और सूर्यादि कारण से दिशाओ को जान, यानो को चलाया और ठहराया भी करो जिससे भ्रान्ति में पड़कर अन्यत्र गमन न हो, अर्थात् जहाँ जाना चाहते हो ठीक वहीं पहुँचो, भटकना न हो ॥१०॥

फिर उसी उत्तर का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया । अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः ॥११॥

पदार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि समुद्र के (**पारम्**) पार (**एतवे**) जाने के लिए जहाँ (**दिव**) प्रकाशमान् सूर्य्य और (**ऋतस्य**) जल का (**विस्रुतिः**) अनेक प्रकार गमनार्थ (**पन्था**) मार्ग (**अभूत्**) हो वहाँ स्थिर होके (**साधुया**) उत्तम सवारी से सुखपूर्वक देश-देशान्तरो का (**अदर्शि**) देखें तो श्रीमन्त क्यों न होवें ॥११॥

भावार्थ—मनुष्यो को उचित है कि सर्वत्र आने जाने के लिए सीधे और शुद्ध मार्गों को रथ और विमानादि यानो से इच्छापूर्वक गमन करके नाना प्रकार के सुखो को प्राप्त करें ॥११॥

फिर सभा और सेनापति अश्वियों से क्या पाना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

तत्तदिदश्विनोरवो जरिता प्रति भूषति । मदे सोमस्य पिप्रतोः ॥१२॥

पदार्थ—जो (**जरिता**) स्तुति करनेवाला विद्वान् मनुष्य (**पिप्रतो**) पूर्ण करनेवाले (**अश्विनो**) सभा और सेनापति से (**सोमस्य**) उत्पन्न हुए जगत् के बीच (**मदे**) आनन्दयुक्त व्यवहार मे (**अव**) रक्षादि का (**प्रतिभूषति**) अलङ्कृत करता है (**तत्तत्**) उस-उस सुख को (**इत्**) ही प्राप्त होता है ॥१२॥

भावार्थ—कोई भी विद्वानो से शिक्षा वा क्रिया को ग्रहण किये बिना सब सुखो को प्राप्त नहीं हो सकता इसमे उसका खोज नित्य करना चाहिए ॥१२॥

फिर वे अश्विनौ कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा ।
मनुष्वच्छम्भू आ गतम् ॥ १३ ॥

पदार्थ हे (**वावसाना**) अत्यन्त सुख मे वसाने (**शम्भू**) सुखो के उत्पन्न करनेवाले पढ़ाने और सत्य के उपदेश करनेहारे ! आप (**विवस्वति**) सूर्य के प्रकाश में (**सोमस्य**) उत्पन्न हुए जगत् के मध्य मे (**पीत्या**) रक्षारूपी क्रिया वा (**गिरा**) वाणी से हमको (**मनुष्वत्**) रक्षा करनेवाले मनुष्यो के तुल्य (**आ, गतम्**) सब प्रकार प्राप्त हूजिए ॥१३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जिस प्रकार परोपकारी मनुष्य प्राणियो के निवास और विद्याप्रकाश के दान से सुखो को प्राप्त कराते हैं, वैसे तुम भी उनको बहुत सुख प्राप्त कराओ ॥१३॥

हम अश्विनौ से क्या प्राप्त करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत् । ऋता वनथो अक्तुभिः ॥१४॥

पदार्थ—हे (**ऋता**) उचित गुण सुन्दरस्वरूप सभासेनापते ! जैसे (**उषा**) प्रभात समय (**अक्तुभि**) रात्रियो के साथ (**उपाचरत्**) प्राप्त होता है वैसे जिन (**परिज्मनो**) सर्वत्र गमनकर्त्ता पदार्थों को प्रकाश से फेंकनेहारे सूर्य और चन्द्रमा के सदृश वर्त्तमान (**युवो**) आपका न्याय और रक्षा हमको प्राप्त होवे आप (**श्रियम्**) उत्तम लक्ष्मी को (**अनुवनथः**) अनुकूलता से सेवन कीजिए ॥१४॥

भावार्थ—राजा और प्रजाजनो को चाहिए कि परस्पर प्रीति से बड़े ऐश्वर्य्य को प्राप्त करके सदा सबके उपकार मे यत्न किया करें ॥१४॥

फिर वे अश्विनौ हम लोगों के लिए क्या क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम् ।
अविद्रियाभिरूतिभिः ॥ १५ ॥ ३५ ॥

पदार्थ—हे सभा और सेना के ईश ! (**अश्विना**) सम्पूर्ण विद्या और सुख मे व्याप्त होनेवाले ! तुम दोनो अमृतरूप ओषधियो के रस को (**पिबतम्**) पीओ और (**उभा**) दोनो (**अविद्रियाभि**) अखण्डित क्रियायुक्त (**ऊतिभि**) रक्षाओ से (**नः**) हमको (**शर्म**) सुख (**यच्छतम्**) देओ ॥१५॥

भावार्थ—जो सभा और सेनापति आदि राजपुरुष प्रीति और विनय से प्रजा की पालना करें तो प्रजा भी उनकी रक्षा अच्छे प्रकार करें ॥१५॥

इस सूक्त मे उषा और अश्वियो का प्रत्यक्षार्थ वर्णन किया है इससे इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ।

यह पैंतीसवाँ वर्ग छयालीसवाँ सूक्त और तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ।

इति श्रीमत्परिव्राजकाचार्य्य महाविद्वान् श्रीयुत स्वामी विरजानन्द सरस्वतीजी के शिष्य दयानन्दसरस्वती स्वामी ने आर्य्यभाषा से सुशोभित प्रमाण सहित ऋग्वेदभाष्य के तीसरे अध्याय को पूर्ण किया ॥ ३ ॥

卐

अथ चतुर्थाऽध्यायाऽऽरम्भः ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथ दशर्चस्य सप्तचत्वारिंशस्य सूक्तस्य प्रस्कण्व ऋषि । अश्विनौ देवते । १,५ निचृत्पथ्या बृहती, ३,७ पथ्या बृहती, ६ विराट् पथ्या बृहती च छन्द. । मध्यम स्वर । २,६,८ निचृत्सत पङ्क्ति, ४,१० सत पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

अब इसके आगे चौथे अध्याय के भाष्य का आरम्भ है उसके पहले मन्त्र मे अश्वियों से क्या सिद्ध करना चाहिए इस विषय का उपदेश किया है—

अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोम ऋतावृधा ।
तमश्विना पिबतं तिरो अह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥ १ ॥

पदार्थ हे (**ऋतावृधा**) जल वा यथार्थ शिल्पक्रिया से बढ़ानेवाले ! (**अश्विना**) सूर्य्य, वायु के तुल्य सभा और सेना के ईश ! (**वाम्**) जो (**अयम्**) यह (**मधुमत्तम**) अत्यन्त मधुरादि गुणयुक्त (**सोम**) यान, व्यापार वा वैद्यक शिल्पक्रिया से हम ने (**सुत**) सिद्ध किया है (**तम्**) उस (**तिरो अह्न्यम्**) तिरस्कृत दिन मे उत्पन्न हुए रस को तुम लोग (**पिबतम्**) पीओ और विद्यादान करनेवाले विद्वान् के लिए (**रत्नानि**) रमणीय सुवर्णादि को (**धत्तम्**) धारण करो ॥ १ ॥

भावार्थ सभा के अध्यक्ष आदि सदा ओषधियो के सेवन से अच्छे प्रकार बलवान् होकर प्रजा की शोभाओ को बढ़ावें ॥ १ ॥

उनसे सिद्ध किये हुए यान से क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेना यातमश्विना ।
कण्वासो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सु शृणुतं हवम् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) पावक और जल के तुल्य सभा और सेना के ईश ! तुम लोग जैसे (**कण्वास**) बुद्धिमान् लोग (**अध्वरे**) अग्निहोत्रादि वा शिल्पक्रिया से सिद्ध यज्ञ मे जिस (**त्रिवन्धुरेण**) तीन बन्धनयुक्त (**त्रिवृता**) तीन शिल्पक्रिया के प्रकारो से पूरित (**सुपेशसा**) उत्तम रूप वा सोने से जटित (**रथेन**) विमान आदि यान से देशदेशान्तरो मे शीघ्र जा-आके (**ब्रह्म**) अन्नादि पदार्थों को (**कृण्वन्ति**) करते हैं वैसे उससे देशदेशान्तर और दीपद्वीपान्तरो को (**आयातम्**) जाओ-आओ (**तेषाम्**) उन बुद्धिमानो के (**हवम्**) ग्रहण करने योग्य विद्याओ के उपदेश को (**शृणुतम्**) सुनो और अन्नादि समृद्धि को बढ़ाया करो ॥ २ ॥

भावार्थ—यहाँ वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो को योग्य है कि विद्वानो के सङ्ग से पदार्थविज्ञानपूर्वक यज्ञ और शिल्पविद्या की हस्तक्रिया का साक्षात् करके व्यवहार कार्यों को सिद्ध करें ॥२॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा ।
अथाद्य दस्रा वसु बिभ्रता रथे दाश्वांसमुप गच्छतम् ॥३॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) सूर्य्य, वायु के समान कर्म करनेवाले और (**दस्रा**) दु खो के दूर करनेवाले ! (**वसु**) सबसे उत्तम धन को (**बिभ्रता**) धारण करते तथा (**ऋतावृधा**) यथार्थ गुणसयुक्त प्राप्ति साधन से बढ़े हुए सभा और सेना के पति आप (**अद्य**) आज वर्त्तमान दिन मे (**मधुमत्तमम्**) अत्यन्त मधुरादि गुणो से युक्त (**सोमम्**) वीर रस की (**पातम्**) रक्षा करो (**अथ**) तत्पश्चात् पर्वोक्त (**रथे**) विमानादि यान मे स्थित होकर (**दाश्वांसम्**) देने वाले मनुष्य के (**उपगच्छतम्**) समीप प्राप्त हुआ कीजिए ॥३॥

भावार्थ—यहाँ वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वायु से सूर्य्य-चन्द्रमा की पुष्टि और अन्धेरे का नाश होता है वैसे ही सेना के पतियो से प्रजास्थ प्राणियो की सन्तुष्टि, दु खो का नाश और धन की वृद्धि होती है ॥३॥

त्रिषधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम् ।
कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवो युवां हवन्ते अश्विना ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (**विश्ववेदसा**) अखिल धनो के प्राप्त करनेवाले (**अश्विना**) क्षत्रियो के धर्म मे स्थित सभा सेनाओ के रक्षक ! आप जैसे (**अभिद्यव**) सब प्रकार से विद्याओ के प्रकाशक और विद्युदादि पदार्थों के साधक (**सुतसोमा**) उत्पन्न पदार्थों के ग्राहक (**कण्वासः**) मेधावी विद्वान् लोग (**त्रिषधस्थे**) जिस में तीनो भूमि जल पवन स्थिति के लिए हों उस (**बर्हिषि**) अन्तरिक्ष में (**मध्वा**) मधुर रस से (**वाम्**) आप और (**यज्ञम्**) शिल्पकर्म को (**हवन्ते**) ग्रहण करते हैं वैसे (**मिमिक्षतम्**) सिद्ध करने की इच्छा करो ॥४॥

भावार्थ—जैसे मनुष्य लोग विद्वानों से विद्या सीख, यान रच और उसमे जल आदि युक्त करके शीघ्र जाने-आने के लिए समर्थ होते हैं वैसे अन्य उपाय से नहीं, इसलिए उसमे परिश्रम अवश्य करें ॥४॥

फिर वे क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना ।

ताभिः ष्व१स्माँ अवतं शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥५॥

पदार्थ—हे (ऋतावृधा) सत्य अनुष्ठान से बढ़नेवाले (शुभस्पती) कल्याणकारक कर्म्म वा श्रेष्ठ गुणसमूह के पालक ! (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा के गुणयुक्त सभा सेनाध्यक्ष ! (युवम्) आप दोनों (याभि) जिन (अभिष्टिभिः) इच्छाओं से (सोमम्) अपने ऐश्वर्य और (कण्वम्) मेधावी विद्वान् की (पातम्) रक्षा करते हैं उनसे (अस्मान्) हम लोगों की (सु) अच्छे प्रकार (आवतम्) रक्षा कीजिए और जिनसे हमारी रक्षा करें उनसे सब प्राणियों की (आवतम्) रक्षा कीजिए ॥५॥

भावार्थ—सभा और सेना के पति राजपुरुष जैसे अपने ऐश्वर्य की रक्षा करें वैसे ही प्रजा और सेनाओं की रक्षा सदा किया करें ॥५॥

यहाँ पहला वर्ग समाप्त हुआ ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सुदासे दस्रा वसु बिभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना ।

रयिं समुद्रादुत वा दिवस्पर्य्यस्मे धत्तं पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥

पदार्थ हे (दस्रा) शत्रुओं के नाश करनेवाले (वसु) विद्यादि धन समूह को (बिभ्रता) धारण करते हुए (अश्विना) वायु और बिजुली के समान पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त ! आप जैसे (सुदासे) उत्तम सेवकयुक्त (रथे) विमानादि यान मे (समुद्रात्) सागर वा अन्तरिक्ष से (उत) और (दिव) प्रकाशयुक्त सर्य से पार (पृक्षः) सुखप्राप्ति की निमित्त (पुरुस्पृहम्) जो बहुतों की इच्छित हो उस (रयिम्) राज्यलक्ष्मी को धारण करते हैं वैसे (अस्मे) हमारे लिए (परिधत्तम्) धारण कीजिए ॥६॥

भावार्थ—राजपुरुषों को योग्य है कि सेना और प्रजा के अर्थ नाना प्रकार का धन और समुद्रादि के पार जाने के लिए विमान आदि यान रचकर सब प्रकार सुख की उन्नति करें ॥६॥

फिर वे क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अधि तुर्वशे ।

अतो रथेन सुवृता न आ गतं साकं सूर्य्यस्य रश्मिभिः ॥७॥

पदार्थ—हे (नासत्या) सत्य-गुण-कर्म स्वभाव वाले सभा सेना के ईश ! आप (यत्) जिस (सुवृता) उत्तम अङ्गों से परिपूर्ण (रथेन) विमान आदि यान से (यत्) जिस (परावति) दूर देश मे गमन करने तथा (तुर्वशे) वेद और शिल्पविद्या के जानने वाले विद्वान् जन के (अधिष्ठ) ऊपर स्थित होते हैं (अत.) इससे (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (रश्मिभि) किरणो के (साकम्) साथ (न) हम लोगों को (आगतम्) सब प्रकार प्राप्त हूजिए ॥७॥

भावार्थ—राजसभा के पति जिस सवारी से अन्तरिक्ष मार्ग से देशान्तर जाने मे समर्थ होवें उसको प्रयत्न से बनावें ॥७॥

फिर वह किस हेतु वाले हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ।

इषं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानव आ बर्हिः सीदतं नरा ॥८॥

पदार्थ—हे (अर्वाञ्चा) घोड़े के समान वेगो को प्राप्त (पृञ्चन्ता) सुखो के करानेवाले (नरा) सभा सेनापते ! आप, जो (वाम्) तुम्हारे (सप्तय) भाप आदि अश्वयुक्त (सुकृते) सुन्दर कर्म करने (सुदानवे) उत्तम दाता मनुष्य के लिए (इषम्) धर्म की इच्छा वा उत्तम अन्न आदि (बर्हि) आकाश वा श्रेष्ठ पदार्थ (सवना) यज्ञ की सिद्धि की क्रिया (अध्वरश्रिय) और पालनीय चक्रवर्ती राज्य की लक्ष्मियो को (आवहन्तु) प्राप्त करावें उन पुरुषों का (उपसीदतम्) सङ्ग सदा किया करो ॥८॥

भावार्थ—राजा और प्रजाजनो को चाहिए कि आपस मे उत्तम पदार्थों को दे-लेकर सुखी हों ॥८॥

फिर वे क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तेन नासत्या गतं रथेन सूर्य्यत्वचा ।

येन शश्वदूहथुर्दाशुषे वसु मध्वः सोमस्य पीतये ॥९॥

पदार्थ—हे (नासत्या) सत्याचरण करनेहारे सभासेना के स्वामी ! आप (येन) जिस (सूर्य्यत्वचा) सूर्य्य की किरणों के समान भास्वर (रथेन) गमन करानेवाले विमानादि यान से (आगतम्) अच्छे प्रकार आगमन करें (तेन) उससे (दाशुषे) दानशील मनुष्य के लिए (मध्व.) मधुरगुणयुक्त (सोमस्य) पदार्थ समूह के (पीतये) पान वा भोग के अर्थ (वसु) कार्य्यरूपी द्रव्य को (ऊहथु) प्राप्त कराइए ॥९॥

भावार्थ—राजपुरुष जैसे अपने हित के लिए प्रयत्न करते हैं उसी प्रकार प्रजा के सुख के लिए भी प्रयत्न करें ॥९॥

फिर उनके प्रति प्रजाजन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उक्थेभिरर्वागवसे पुरूवसू अर्कैश्च नि ह्वयामहे ।

शश्वत्कण्वानां सदसि प्रिये हि कं सोमं पपथुरश्विना ॥१०॥ २ ॥

पदार्थ—हे (पुरूवसू) बहुत विद्वानों में बसनेवाले (अश्विना) वायु और सूर्य के समान वर्त्तमान धर्म्म और न्याय के प्रकाशक ! (अवसे) रक्षादि के अर्थ हम लोग (उक्थेभिः) वेदोक्त स्तोत्र वा वेदविद्या के जाननेवाले विद्वानों के इष्ट वचनो के (अर्कै.) विचार से जहाँ (कण्वानाम्) विद्वानो की (प्रिये) प्यारी (सदसि) सभा मे आप लोगो को (निह्वयामहे) अतिशय श्रद्धा कर बुलाते हैं वहाँ आप लोग (अर्वाक्) पीछे (शश्वत्) सनातन (कम्) सुख को प्राप्त होओ (च) और (हि) निश्चय से (सोमम्) सोमवल्ली आदि ओषधियो के रसों को (पपथु) पिओ ॥ १० ॥

भावार्थ—राजप्रजाजनो को चाहिए कि विद्वानो की सभा मे जाकर नित्य उपदेश सुनें जिससे सब करने और न करने योग्य विषयों का बोध हो ॥ १० ॥

यहाँ राजा और प्रजा के धर्म्म का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह दूसरा वर्ग और सैंतालीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

卐

अथाऽस्य षोडशर्चस्याऽष्टचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य प्रस्कण्व ऋषिः । उषा देवता । १, ३, ७, ९ विराट् पथ्याबृहती, ५, ११, १३, निचृत्पथ्याबृहती, १२ बृहती, १५ पथ्याबृहती च छन्द । मध्यमः स्वरः । ४, ६, १४ विराट् सतः पङ्क्तिः, २, १०, १६ निचृत्सतः पङ्क्ति, ८ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चम. स्वरः ॥

अब अड़तालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है । उसके पहले मन्त्र मे उषा के समान पुत्रियों के गुण होने चाहिएँ इस विषय का उपदेश किया है—

सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः ।

सह द्युम्नेन बृहता विभावरि राया देवि दास्वती ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (दिव) सूर्यप्रकाश की (दुहित) पुत्री के समान (उष) उषा के तुल्य वर्त्तमान (विभावरि) विविध दीप्तियुक्त (देवि) विद्या सुशिक्षाओं से प्रकाशमान् कन्या (दास्वती) प्रशस्त दानयुक्त ! तू (बृहता) बड़े (वामेन) प्रशंसित प्रकाश (द्युम्नेन) न्यायप्रकाश के सहित (राया) विद्या चक्रवर्ति राज्यलक्ष्मी के (सह) सहित (न) हम लोगो को (व्युच्छ) विविध प्रकार प्रेरणा कर ॥ १ ॥

भावार्थ—यहाँ वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे कोई स्वामी भृत्य को वा भृत्य स्वामी को सचेत कर व्यवहारो मे प्रेरणा करता है और जैसे उषा अर्थात् प्रातःकाल की वेला प्राणियो को पुरुषार्थ युक्त कर बड़े-बड़े पदार्थ समूह वा सुख से युक्त कर आनन्दित तथा सायकाल मे सब व्यवहारो से निवृत्त कर आरामस्थ करती है वैसे ही माता, पिता, विद्या और अच्छी शिक्षा आदि व्यवहारो मे अपनी कन्याओं को प्रेरणा करें ॥ १ ॥

फिर वह उषा कैसी और क्या करती है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदो भूरि च्यवन्त वस्तवे ।

उदीरय प्रति मा सूनृता उषश्चोद राधो मघोनाम् ॥२॥

पदार्थ—हे (उषः) उषा के सदृश स्त्रि ! तू जैसे यह शुभ गुणयुक्ता उषा है वैसे (अश्वावती) प्रशंसनीय व्याप्तियुक्त (गोमती) बहुत गौ आदि पशु सहित (विश्वसुविद) सब वस्तुओं को अच्छे प्रकार जानने वाली (सूनृता) अच्छे प्रकार प्रियादियुक्त वाणियों को (वस्तवे) सुख मे निवास के लिए (भूरि) बहुत (उदीरय) प्रेरणा कर और जो व्यवहारो से (च्यवन्त) निवृत्त होते हैं उन को (मघोनाम्) धनवानों के सकाश से (राध) उत्तम-से-उत्तम धन को (चोद) प्रेरणा, कर उन से (मा) मुझे (प्रति) आनन्दित कर ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अच्छी शोभायमान उषा सब प्राणियो को सुख देती है वैसे स्त्रियाँ अपने पतियो को निरन्तर सुख दिया करें ॥ २ ॥

फिर वह कैसी हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम् ।

ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे समुद्रे न श्रवस्यवः ॥३॥

पदार्थ—जो स्त्री उषा के समान (जीरा) वेगयुक्त (देवी) सुख देने वाली (रथानाम्) आनन्ददायक यानो के मध्य (उवास) बसती है (ये) जो (अस्याः) इस सती स्त्री के (आचरणेषु) धर्म्मयुक्त आचरणो में (समुद्रे, न) जैसे सागर मे (श्रवस्यवः) अपने आप विद्या के सुनने वाले विद्वान् लोग उत्तम नौका से जाते-आते हैं वैसे (दध्रिरे) प्रीति को धरते हैं वे पुरुष अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जिस को अपने समान विदुषी और सर्वथा अनुकूल स्त्री मिलती है वह सुख को प्राप्त होता है और नहीं ॥ ३ ॥

जो प्रभात समय में योगाभ्यास करते हैं वे किसको प्राप्त होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः ।

अत्राह तत्कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम् ॥४॥

पदार्थ – हे विद्वन् ! जो (**सूरय**) स्तुति करने वाले विद्वान् लोग (**ते**) आप से उपदेश पाके (**अत्र**) इस (**उषः**) प्रभात के (**यामेषु**) प्रहरों में (**दानाय**) विद्यादि दान के लिए (**मन**) विज्ञानयुक्त चित्त को (**प्रयुञ्जते**) प्रयुक्त करते हैं वे जीवन्मुक्त होते हैं और जो (**कण्व**) मेधावी (**एषाम्**) इन (**नृणाम्**) प्रधान विद्वानों के (**नाम**) नामों का (**गृणाति**) प्रशंसित करता है वह (**कण्वतम**) अतिशय मेधावी होता है ॥ ७ ॥

भावार्थ – जो मनुष्य एकान्त, पवित्र, निरुपद्रव देश में स्थिर होकर यमादि संयमान्त उपासना के नव अंगों का अभ्यास करते हैं वे निर्मल आत्मा होकर ज्ञानी, आप्त और सिद्ध होते हैं और जो इनका संग और सेवा करते हैं वे भी शुद्ध अन्तःकरण होके आत्मयोग के जानने के अधिकारी होते हैं ॥ ४ ॥

फिर वह उषा क्या करती है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती ।

जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः ॥५॥३॥

पदार्थ—जो (**योषेव**) सत्स्त्री के समान (**प्रभुञ्जती**) अच्छे प्रकार भोगती (**सूनरी**) अच्छे प्रकार प्राप्त होती (**जरयन्ती**) जीर्णावस्था को करती (**उषाः**) प्रातः समय (**पद्वत**) पगों के तुल्य (**वृजनम्**) मार्ग को (**ईयते**) प्राप्त होती हुई (**याति**) जाती और (**पक्षिणः**) पक्षियों को (**उत्पातयति**) उड़ाती है उस काल में सब को योगाभ्यास (**घ**) ही करना चाहिए ॥ ५ ॥

भावार्थ – जैसे प्रातः काल की वेला निर्मल तथा सब प्रकार से सुख की देने वाली, योगाभ्यास का कारण है उसी प्रकार स्त्रियों को होना चाहिए ॥ ५ ॥

फिर वह कैसी हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है —

वि या सृजति समनं व्यर्थिनः पदं न वेत्योदती ।

वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवती ॥६॥

पदार्थ – हे योगाभ्यास करनेहारी स्त्रि ! आप जैसे (**या**) जो (**ओदती**) आर्द्रता को करती हुई (**नकिः**) शब्द को न करती (**वाजिनीवती**) बहुत क्रियाओं का निमित्त (**उषः**) प्रातः समय (**अर्थिनः**) प्रशस्त अर्थ वाले का (**पदं न**) प्राप्ति के योग्य के समान (**समनम्**) सुन्दर संग्राम को जैसे (**विवेति**) व्याप्त होती है जिस की (**व्युष्टौ**) दहन करने वाली कान्ति में (**पप्तिवांस**) पतनशील (**वयः**) पक्षी (**आसते**) स्थिर होते हैं वह वेला (**ते**) तेरे योगाभ्यास के लिए है, इसको तू जान ॥ ६ ॥

भावार्थ – इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे स्त्रियाँ व्यवहार से अपने पदार्थों को प्राप्त होती हैं वैसे उषा अपने प्रकाश से अधिकार को प्राप्त होती है जैसे वह दिन को उत्पन्न और सब प्राणियों को उठाकर अपने-अपने व्यवहार में प्रवर्त्तमान कर रात्रि को निवृत्त करती और दिन के होने से दाह को भी उत्पन्न करती है वैसे ही सब स्त्रियों को भी होना चाहिए ॥ ६ ॥

फिर उषा के समान स्त्रियाँ हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है —

एषायुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि ।

शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वि यात्यभि मानुषान् ॥७॥

पदार्थ – हे स्त्रियो ! जैसे (**एषा**) यह (**उषा**) प्रातःकाल (**परावतः**) दूर देश से (**सूर्यस्य**) सूर्यमण्डल के (**उदयनात्**) उदय से (**अधि**) उपरान्त (**अध्यभ्ययुक्त**) ऊपर से, सम्मुख से सब में युक्त होती है जिस प्रकार (**इयम्**) यह (**सुभगा**) उत्तम ऐश्वर्य्ययुक्त (**रथेभिः**) रमणीय यानों से (**शतम्**) असंख्यात (**मानुषान्**) मनुष्यादिकों को (**वियाति**) विविध प्रकार प्राप्त होती है वैसे तुम भी युक्त होओ ॥ ७ ॥

भावार्थ – जैसे पतिव्रता स्त्रियाँ नियम से अपने पतियों की सेवा करती हैं । जैसे उषा से सब पदार्थों का दूर देश में संयोग होता है वैसे दूरस्थ कन्या, पुत्रों का युवावस्था में स्वयंवर विवाह करना चाहिए जिससे दूर देश में रहनेवाले मनुष्यों से प्रीति बढ़े । जैसे निकटस्थों का विवाह दुःखदायक होता है वैसे ही दूरस्थों का विवाह आनन्दप्रद होता है ॥ ७ ॥

फिर वह कैसी हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।

अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदप स्रिधः ॥८॥

पदार्थ – हे स्त्रियो ! तुम जैसे (**मघोनी**) प्रशंसनीय धननिमित्त (**सूनरी**) अच्छे प्रकार प्राप्त करनेवाली (**दिवः**) प्रकाशमान् सूर्य्य की (**दुहिता**) पुत्री के सदृश (**उषा**) प्रकाशने वाली प्रभात की वेला (**विश्वम्**) सब जगत् को (**चक्षसे**) देखने के लिए (**ज्योतिः**) प्रकाश को (**कृणोति**) करती है और (**स्रिधः**) हिंसक (**द्वेषः**) द्वेष करनेवाले शत्रुओं को (**अपोच्छत्**) दूर करती है वैसे पति आदिकों में वर्त्तो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सती स्त्री विघ्नों को दूर कर कर्त्तव्य कर्मों को सिद्ध करती हैं, वैसे ही उषा डाकू, चोर, शत्रु आदि को दूर कर कार्य्य की सिद्धि करानेवाली होती है ॥ ८ ॥

फिर वह कैसी होके क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः ।

आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ॥९॥

पदार्थ—हे (**दिवः**) सूर्य्य के प्रकाश की (**दुहितः**) पुत्री के तुल्य कन्ये ! जैसे (**उषा**) प्रकाशमान् उषा (**भानुना**) सूर्य्य और (**चन्द्रेण**) चन्द्रमा से (**अस्मभ्यम्**) हम पुरुषार्थी लोगों के लिए (**भूरि**) बहुत (**सौभगम्**) ऐश्वर्य्य के समूहों को (**आवहन्ती**) सब ओर से प्राप्त कराती (**दिविष्टिषु**) प्रकाशित कान्तियों में (**व्युच्छन्ती**) निवास कराती हुई संसार को प्रकाशित करती है वैसे ही तू विद्या और शमादि से (**आ भाहि**) सुशोभित हो ॥ ९ ॥

भावार्थ – इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विदुषी धार्मिक कन्या माता और पिता दोनों के कुलों को उज्ज्वल करती है वैसे उषा स्थूल, सूक्ष्म अर्थात् बड़ी छोटी दोनों तरह की वस्तुओं को प्रकाशित करती है ॥ ९ ॥

फिर वह उषा कैसी होकर किससे क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि ।

सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् ॥१०॥४॥

पदार्थ – हे (**सूनरि**) अच्छे प्रकार व्यवहारों को प्राप्त (**विभावरि**) विविध प्रकाशयुक्त (**चित्रामघे**) चित्र-विचित्र धन से सुशोभित स्त्रि ! जैसे उषा (**बृहता**) बड़े (**रथेन**) रमणीय स्वरूप वा विमानादि यान से विद्यमान, जिसमें (**विश्वस्य**) सब प्राणियों के (**प्राणनम्**) प्राण और (**जीवनम्**) जीविका की प्राप्ति का सम्भव होता है वैसे ही (**त्वे**) तेरे में होता है (**यत्**) जो तू (**नः**) हम लोगों को (**व्युच्छसि**) विविध प्रकार वास करती है वह तू हमारे (**हवम्**) सुनने-सुनाने योग्य वाक्यों को (**श्रुधि**) सुन ॥ १० ॥

भावार्थ – इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे उषा से सब प्राणिमात्र को सुख होते हैं वैसे ही पतिव्रता स्त्री से प्रसन्न पुरुष को सब आनन्द होते हैं ॥ १० ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने ।

तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ॥११॥

पदार्थ – हे (**उषः**) प्रभात वेला के तुल्य वर्त्तमान स्त्रि ! तू (**यः**) जो (**चित्रः**) अद्भुत गुण, कर्म, स्वभावयुक्त (**सुकृतः**) उत्तम कर्म करनेवाला तेरा पति है उस (**मानुषे, जने**) विद्या, धर्मादि गुणों से प्रसिद्ध मनुष्य में (**वाजम्**) ज्ञान वा अन्न को (**हि**) निश्चय करके (**वंस्व**) सम्यक् प्रकार से सेवन कर (**ये**) जो (**वह्नयः**) प्राप्ति करनेवाले विद्वान् मनुष्य जिस कारण से (**अध्वरान्**) अध्वर, यज्ञ वा अहिंसनीय विद्वानों की (**उपगृणन्ति**) अच्छे प्रकार स्तुति करते और तुझको उपदेश करते हैं (**तेन**) उससे उनको (**आवह**) सुखों को प्राप्त कराती रह ॥ ११ ॥

भावार्थ – जो मनुष्य जैसे सूर्य उषा को प्राप्त होके दिन को कर सब को सुख देता है वैसे अपनी स्त्रियों को भूषित करते हैं उनको स्त्रियाँ भूषित कर इस प्रकार परस्पर प्रीति उपकार से सदा सुखी रहें ॥ ११ ॥

फिर वह क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है —

विश्वान्देवाँ आ वह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुषस्त्वम् ।

सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्यमुषो वाजं सुवीर्यम् ॥१२॥

पदार्थ – हे (**उषः**) प्रभात वेला के तुल्य स्त्रि ! मैं (**सोमपीतये**) सोम आदि पदार्थों को पीने के लिए (**अन्तरिक्षात्**) ऊपर से (**विश्वान्**) अखिल (**देवान्**) दिव्य गुणयुक्त पदार्थों और जिस तुझको प्राप्त होता हूँ उन्हीं को तू भी (**आवह**) अच्छे प्रकार प्राप्त हो, हे (**उषः**) उषा के समान हित करने और (**सा**) तू (**सब**) इष्ट पदार्थों को प्राप्त करानेवाली (**अस्मासु**) हम लोगों में (**गोमत्**) इन्द्रिय, किरण और पृथिवी आदि से (**अश्वावत्**) और अत्युत्तम तुरंगों से युक्त (**सुवीर्य्यम्**) उत्तम वीर्य्य पराक्रमकारक (**वाजम्**) विज्ञान वा अन्न को (**धाः**) धारण कर ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे यह उषा अपने प्रादुर्भाव से शुद्ध वायु, जल प्रकाश आदि दिव्य गुणों को प्राप्त कराके दोषों का नाश कर सब उत्तम पदार्थ समूह को प्रकट करती है वैसे उत्तम स्त्री गृह कार्य्य में हो ॥१३॥

फिर वह कैसी होकर क्या देवे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत ।

सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुग्म्यम् ॥१३॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! (**यस्याः**) जिस के सकाश से ये (**रुशन्तः**) चोर, डाकू अन्धकार आदि का नाश और (**भद्राः**) कल्याण करनेवाली (**अर्चयः**) दीप्ति (**प्रत्यदृक्षत**) प्रत्यक्ष होती है (**सा**) जैसे वह (**उषा**) सुरूप को देनेवाली

प्रभात की वेला (नः) हम लोगों के लिए (विश्ववारम्) सब आच्छादन करने योग्य (सुपेशसम्) शोभनरूपयुक्त (रयिम्) चक्रवर्त्ति राज्यलक्ष्मी (सुम्नम्) सुख को (वदाति) देती है वैसे होकर तू भी हम को सुखदायक हो ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे दिन की निमित्त उषा के विना सुख से कार्य्य सिद्ध नहीं होते और स्वरूप की प्राप्ति भी नहीं होती वैसे ही सती स्त्री के विना यह सब नहीं होता ॥ १३ ॥

फिर वह किस प्रयोजन के लिए समर्थ होती है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्वं ऊतये जुहूरेऽवसे महि ।

सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ॥१४॥

पदार्थ—हे उषा के तुल्य वर्त्तमान (महि) महागुणविशिष्ट पण्डिता स्त्रि ! (ये) जो (पूर्वे) अध्ययन किये हुए वेदार्थ के जाननेवाले विद्वान् लोग (ऊतये) अत्यन्त गुण प्राप्ति वा (अवसे) रक्षण आदि प्रयोजन के लिए (त्वाम्) तुझे (जुहूरे) प्रशंसित करें तो (सा) तू (शुक्रेण) शुद्ध कामों के हेतु (शोचिषा) धर्मप्रकाश से युक्त (राधसा) बहुत धन से (नः) हमारे (चित्) ही (स्तोमान्) स्तुतिसमूहों को (हि) निश्चय से (अभि) सम्मुख होकर (गृणीहि) स्वीकार कर ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जिन्होंने वेदों को अध्ययन किया वे पूर्व ऋषि, और जो वेदों को पढ़ते हों उनको नवीन ऋषि जानें, और जैसे विद्वान् लोग पदार्थों को जानकर उपकार लेते हैं वैसे अन्य पुरुषों को भी करना चाहिए। किसी मनुष्य को मूर्खों की चालचलन पर न चलना चाहिए और जैसे विद्वान् लोग अपनी विद्या से पदार्थों के गुणों का प्रकाश कर उपकार करते हैं, जैसे यह उषा अपने प्रकाश से सब पदार्थों को प्रकाशित करती है वैसे ही विदुषी स्त्रियाँ विश्व को सुभूषित करती रहें ॥१५॥

फिर वह क्या करती है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उषो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः ।

प्र नो यच्छतादवृकं पृथु च्छर्दिः प्र देवि गोमतीरिषः ॥१५॥

पदार्थ—हे (देवि) दिव्य गुणयुक्त स्त्रि ! जैसे (उषा) प्रभात समय (अद्य) इस दिन में (भानुना) अपने प्रकाश से (द्वारौ) गृहादि वा इन्द्रियों के प्रवेश और निकलने के निमित्त (प्रार्णवः) अच्छे प्रकार प्राप्त होती और जैसे (नः) हम लोगों के लिए (यत् अवृकम्) हिंसक प्राणियों से रहित (पृथु) सब ऋतुओं के स्थान और अवकाश के योग्य होने से विशाल (छर्दिः) शुद्ध आच्छादन से प्रकाशमान् घर और जैसे (दिवः) प्रकाशादि गुण (गोमती) बहुत ज्ञान किरणों से युक्त (इषः) इच्छाओं को देती है वैसे (वि प्रयच्छतात्) सम्पूर्ण दिया कर ॥१५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे उषा अपने प्रकाश से अतीत, वर्त्तमान और आनेवाले दिनों में सब मार्ग और द्वारों को प्रकाश करती है वैसे ही मनुष्यों को चाहिए कि सब ऋतुओं में सुख देनेवाले घरों को रच, उनमें सब भोग्य पदार्थों का स्थापन कर और वह सब स्त्री के अधीन कर प्रति दिन सुखी रहें ॥१५॥

फिर वह किससे क्या दे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सं नो राया बृहता विश्वपेशसा मिमिक्ष्वा समिळाभिरा ।

सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि सं वाजैर्वाजिनीवति ॥१६॥५॥

पदार्थ—हे (उषः) प्रातः समय के समतुल्य वर्त्तमान (वाजिनीवति) प्रशंसनीय क्रियायुक्त (महि) पूजनीय विदुषी स्त्रि ! तू जैसे (उषा) सब रूप को प्रकाश करनेवाली प्रातः समय की वेला (विश्वपेशसा) सब सुन्दर रूपयुक्त (बृहता) बड़े (विश्वतुरा) सब को प्रवृत्त करनेवाले (सद्युम्नेन) विद्या, धर्मादि गुण प्रकाशयुक्त (राया) प्रशंसनीय धन (समिळाभिः) भूमि, वाणी, नीति और (सं वाजैः) अच्छे प्रकार युक्त अन्न, विज्ञान से (नः) हम लोगों को सुख देती है वैसे ही इनसे तू हमें सुख दे ॥१५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे विद्वानों की वस्तुएं शिक्षा से उषा के गुण का ज्ञान उससे पुरुषार्थसिद्धि फिर उससे सब सुखों की निमित्त वस्तुएँ प्राप्त होती हैं वैसे ही माता की शिक्षा से पुत्र उत्तम होते हैं अन्यथा नहीं ॥१६॥

इस सूक्त में उषा के दृष्टान्त से कन्या और स्त्रियों के लक्षणों का प्रतिपादन करने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह अड़तालीसवाँ सूक्त और पाँचवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथास्य चतुर्ऋचस्यैकोनपञ्चाशस्य सूक्तस्य प्रस्कण्व ऋषिः । उषा देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

अब उनचासवें सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में उषा के दृष्टान्त से स्त्रियों के कर्म का उपदेश किया है—

उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद्रोचनादधि ।

वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् ॥१॥

पदार्थ—हे शुभ गुणों से प्रकाशमान् स्त्रि ! जैसे (उषः) उषा कल्याणनिमित्त (रोचनात्) अच्छे प्रकार प्रकाशमान् से (अधि) ऊपर (भद्रेभिः) कल्याणकारक गुणों से अच्छे प्रकार आती है वैसे ही तू (आगहि) प्राप्त हो और जैसे यह (दिवः) प्रकाश के समीप प्राप्त होती है वैसे ही (त्वा) तुझको (अरुणप्सवः) रक्त गुणविशिष्ट छेदन करके भोक्ता (सोमिनः) उत्तम पदार्थ वाले विद्वान् के (गृहम्) निवास स्थान को (उपवहन्तु) समीप प्राप्त करें ॥१॥

भावार्थ—जिस उषा की, भूमि-संयुक्त सूर्य के प्रकाश से उत्पत्ति है, वह दिन रूप परिणाम को प्राप्त होकर पदार्थों को प्रकाशित करती हुई सबको आह्लादित करती है, वैसे ही ब्रह्मचर्य, विद्या, योग से युक्त स्त्री श्रेष्ठ हो ॥१॥

फिर वह कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सुपेशसं सुखं रथं यमध्यस्था उषस्त्वम् ।

तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः ॥२॥

पदार्थ—हे (दिवः) प्रकाशमान सूर्य्य की (दुहितः) पुत्री के तुल्य (उषः) वर्त्तमान स्त्रि ! तू (यम्) जिस (सुपेशसम्) सुन्दर रूप (सुखम्) आनन्दकारक (रथम्) क्रीड़ा के साधन यान के (अध्यस्थाः) ऊपर बैठने वाले प्राणी आनन्द को बढ़ाते हैं (तेन) उस रथ से (सुश्रवसम्) उत्तम श्रवणयुक्त (जनम्) विद्वान् मनुष्य की (प्राव) अच्छे प्रकार रक्षा आदि कर ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्य लोग जैसे सूर्य्य के प्रकाश से सुरूप की प्रसिद्धि होती है वैसे ही विदुषी स्त्री से घर का काम और पुत्रों की उत्पत्ति होती है—ऐसा जानकर उनसे उपकार लेवें ॥२॥

फिर वह कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि ।

उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥३॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जैसे (अर्जुनि) अच्छे प्रकार प्रयत्न का निमित्त (उषः) उषा (दिवः) सूर्य्यप्रकाश से (अन्तेभ्यः) समीप से (ऋतून्) ऋतुओं को सिद्ध और (द्विपत्) मनुष्यादि तथा (चतुष्पत्) पशु आदि का बोध कराती हुई सबको प्राप्त होके जैसे इससे (पतत्रिणः) नीचे-ऊँचे उड़नेवाले (वयः) पक्षी (प्रारन्) इधर-उधर जाते (चित्) वैसे ही (ते) तेरे गुण हों ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जैसे उषा मुहूर्त्त, प्रहर, दिन, मास, ऋतु, अयन अर्थात् दक्षिणायन और वर्षों का विभाग करती हुई सब प्राणियों के व्यवहार और चेतना को विभक्त करती है वैसे ही स्त्री सब गृहकृत्यों को पृथक् पृथक् करें ॥३॥

फिर वह कैसी और क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम् ।

तां त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ॥४॥६॥

पदार्थ—हे (वसूयवः) ! पृथिवी आदि वसुओं को संयुक्त और वियुक्त करनेवाले (कण्वाः) बुद्धिमान् लोग जैसे (उषः) उषा (व्युच्छन्ती) विविध प्रकार से बसाने वाली (हि) निश्चय ही (रश्मिभिः) किरणों से (रोचनम्) रुचिकारक (विश्वम्) सब संसार को (आभासि) अच्छे प्रकार प्रकाशित करती है वैसी (ताम्) उस (त्वाम्) तुझ स्त्री को (गीर्भिः) वेदशिक्षायुक्त अपनी वाणियों से (अहूषत) प्रशंसित करें ॥४॥

भावार्थ—विद्वानों को चाहिए कि उषा के गुणों के तुल्य स्त्री उत्तम होती है इस बात को समझें और सब को उपदेश करें ॥४॥

इसमें उषा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह उनचासवाँ सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथास्य त्रयोदशर्चस्य पञ्चाशस्य सूक्तस्य प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । १, ६ निचृद्गायत्री, २, ४, ८, ९ पिपीलिका मध्या निचृद्गायत्री, ३ गायत्री, ५ यवमध्या विराड्गायत्री विराड्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः । १०, ११ निचृदनुष्टुप् १२, १३ अनुष्टुप् च छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब पचासवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके पहले मन्त्र में कैसे लक्षण वाला सूर्य है इस विषय का उपदेश किया है—

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जैसे (केतवः) किरणें (विश्वाय) सबके (दृशे) दीखने (उ) और दिखलाने के योग्य व्यवहार के लिए (त्यम्) उस (जातवेदसम्) उत्पन्न किये हुए पदार्थों को प्राप्त करनेवाले (देवम्) प्रकाशमान् (सूर्यम्) रविमण्डल को (उद्वहन्ति) ऊपर वहते हैं वैसे ही गृहाश्रम का सुख देने के लिए सुशोभित स्त्रियों को विवाह विधि से प्राप्त होओ ॥१॥

भावार्थ—धार्मिक माता-पिता आदि विद्वान् लोग—जैसे घोड़े रथ को और किरणें सूर्य्य को वहन करता है ऐसे ही विद्या और धर्म के प्रकाश युक्त अपने तुल्य स्त्रियों से सब पुरुषों का विवाह करावें ॥१॥

फिर कौन किसके लिए क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥२॥

पदार्थ—हे स्त्री-पुरुषो ! तुम (**यथा**) जैसे (**अक्तुभिः**) रात्रियों के साथ (**नक्षत्रा**) नक्षत्र आदि क्षय रहित लोक और (**तायवः**) वायु (**विश्वचक्षसे**) विश्व के दिखाने वाले (**सूराय**) सूर्य्यलोक के अर्थ (**अपयन्ति**) संयुक्त-वियुक्त होते हैं वैसे ही विवाहित स्त्रियों के साथ संयुक्तवियुक्त हुआ करो ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जैसे रात्रि में नक्षत्र चन्द्रमा के साथ और प्राण शरीर के साथ रहते हैं वैसे विवाह करके स्त्री पुरुष आपस में रहा करें ॥२॥

फिर वे कैसे हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥३॥

पदार्थ—(**यथा**) जैसे (**अस्य**) इस सविता के (**भ्राजन्तः**) प्रकाशमान् (**अग्नयः**) प्रज्वलित (**केतवः**) जनाने वाली (**रश्मयः**) किरणें (**जनान्**) मनुष्यादि प्राणियों को (**अनु**) अनुकूलता से प्रकाश करती हैं वैसे मैं अपनी विवाहित स्त्री और अपने पति ही को समागम के योग्य देखूं अन्य को नहीं ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जैसे प्रज्वलित हुए अग्नि और सूर्य्यादिक बाहर सब में प्रकाशमान् हैं वैसे ही अन्तरात्मा में ईश्वर का प्रकाश वर्त्तमान है इसके जानने के लिए सब मनुष्यों को प्रयत्न करना योग्य है। उस परमात्मा की आज्ञा से परस्त्री के साथ पुरुष और परपुरुष के संग स्त्री व्यभिचार को सर्वथा छोड़के पाणिगृहीत अपनी-अपनी स्त्री और अपने-अपने पुरुष के साथ ऋतुगामी ही होवें ॥३॥

फिर वह सूर्य कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचनम् ॥४॥

पदार्थ—हे (**सूर्य्य**) चराचर के आत्मा ईश्वर ! जिससे (**विश्वदर्शतः**) विश्व के दिखाने और (**तरणिः**) शीघ्र सबका आक्रमण करने (**ज्योतिष्कृत्**) स्वप्रकाशस्वरूप आप ! (**रोचनम्**) रुचिकारक (**विश्वम्**) सब जगत् को प्रकाशित करते हैं इसी से आप स्वप्रकाशस्वरूप हैं ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे सूर्य्य और बिजुली बाहर-भीतर रहने वाले सब स्थूल पदार्थों को प्रकाशित करते हैं वैसे ही ईश्वर भी सब वस्तुमात्र को प्रकाशित करता है ॥४॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् ।

प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥५॥७॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! आप (**देवानाम्**) दिव्य पदार्थों वा विद्वानों के (**विशः**) प्रजा (**मानुषान्**) मनुष्यों को (**प्रत्यङ्ङुदेषि**) अच्छे प्रकार प्राप्त हो और सबके आत्माओं में (**प्रत्यङ्**) प्राप्त होते हो इससे (**विश्वं स्वर्दृशे**) सब सुखों के देखने के अर्थ सबों के (**प्रत्यङ्**) प्रत्यगात्मरूप से उपासनीय हो ॥५॥

भावार्थ—क्योंकि ईश्वर सब कहीं व्यापक, सबके आत्मा का जाननेवाला और सब कर्मों का साक्षी है इसलिए वही सब सज्जनों द्वारा नित्य उपासना करने के योग्य है ॥५॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥६॥

पदार्थ—हे (**पावक**) पवित्रकारक (**वरुण**) सबसे उत्तम जगदीश्वर ! आप (**येन**) जिस (**चक्षसा**) विज्ञान प्रकाश से (**भुरण्यन्तम्**) धारण वा पोषण करते हुए लोकों या (**जनान्**) मनुष्यादि को (**अनुपश्यसि**) अच्छे प्रकार देखते हो उस ज्ञानप्रकाश से हम लोगों को कृपापूर्वक संयुक्त कीजिए ॥६॥

भावार्थ—परमेश्वर की उपासना के बिना किसी मनुष्य को विज्ञान वा पवित्रता सम्भव नहीं हो सकते। इससे सब मनुष्यों को एक परमेश्वर ही की उपासना करनी चाहिए ॥६॥

फिर वह ईश्वर क्या करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः । पश्यन् जन्मानि सूर्य ॥७॥

पदार्थ—हे (**सूर्य्य**) चराचरात्मन् परमेश्वर ! आप जैसे सूर्य्यलोक (**अक्तुभिः**) प्रसिद्ध रात्रियों से (**पृथु**) विस्तारयुक्त (**रजः**) लोकसमूह और (**अहा**) दिनों को (**मिमानः**) निर्माण करता हुआ (**पृथु**) बड़े बड़े (**रजः**) लोकों को प्राप्त होके नियम व्यवस्था करता है वैसे हम लोगों के (**जन्मानि**) पहले-पिछले और वर्त्तमान जन्मों को (**पश्यन्**) देखते हुए (**व्येषि**) अनेक प्रकार से जानने और प्राप्त होने वाले हो ॥७॥

भावार्थ—जिसने सूर्य्य आदि लोक बनाये और सब जीवों के पाप-पुण्य को देखके ठीक ठीक उनके सुख दुःख रूप फलों को देता है वही सबका सत्य-स्वरूप न्यायकारी राजा है ऐसा सब मनुष्य जानें ॥७॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ॥८॥

पदार्थ—हे (**विचक्षण**) सबको देखने (**देव**) सुख देनेहारे (**सूर्य्य**) ज्ञानस्वरूप जगदीश्वर ! जैसे (**सप्त**) हरितादि सात (**हरितः**) जिनसे रसों को हरता है वे किरणें (**शोचिष्केशम्**) पवित्र दीप्तिवाले सूर्य्यलोक को (**रथे**) रमणीय सुन्दरस्वरूप रथ में (**वहन्ति**) प्राप्त करते हैं वैसे (**त्वा**) आपको गायत्री आदि वेदस्थ सात छन्द प्राप्त कराते हैं ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। हे मनुष्यो ! जैसे रश्मियों के बिना सूर्य्य का दर्शन नहीं हो सकता वैसे ही वेदों को ठीक जाने बिना परमेश्वर का दर्शन नहीं हो सकता ऐसा निश्चय जानो ॥८॥

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः ।

ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे ईश्वर ! जैसे (**सूरः**) सब का प्रकाशक (**सप्त**) पूर्वोक्त सात (**नप्त्यः**) नाश से रहित (**शुन्ध्युवः**) शुद्धि करने वाली किरणों को (**रथस्य**) रमणीय स्वरूप जगत् में (**अयुक्त**) युक्त करता और उनके सहित प्राप्त होता है वैसे आप (**ताभिः**) उन (**स्वयुक्तिभिः**) अपनी युक्तियों से सब संसार को संयुक्त रखते हो ऐसा हम को दृढ़ निश्चय है ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो सूर्य के समान स्वयं प्रकाशस्वरूप, आकाश के तुल्य सर्वत्र व्यापक, उपासकों का पवित्रकर्त्ता परमात्मा है वही सब मनुष्यों का उपास्य देव है ॥९॥

उद्वयन्तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम् ।

देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**ज्योतिः**) ईश्वर से उत्पन्न किये प्रकाशमान सूर्य्य को (**पश्यन्तः**) देखते हुए (**वयम्**) हम लोग (**तमसः**) अज्ञानान्धकार से अलग होके (**ज्योतिः**) प्रकाशस्वरूप (**उत्तरम्**) सबसे उत्तम, प्रलय से ऊर्ध्व वर्त्तमान वा प्रलय करनेवाले (**देवत्रा**) देव, मनुष्य, पृथिव्यादिकों में व्यापक (**देवम्**) सुख देने (**उत्तमम्**) उत्कृष्ट गुण-कर्म-स्वभावयुक्त (**सूर्यम्**) सर्वात्मा ईश्वर को (**पर्य्यगन्म**) सब प्रकार प्राप्त होवें वैसे तुम भी उसको प्राप्त होओ ॥१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्यों को योग्य है—कि परमेश्वर के सदृश कोई भी उत्तम पदार्थ नहीं और न इसकी प्राप्ति के बिना कोई मनुष्य मुक्ति सुख को प्राप्त हो सकता है ऐसा निश्चित जानें ॥१०॥

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् ।

हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (**मित्रमहः**) मित्रों से सत्कार के योग्य (**सूर्य्य**) सब ओषधि और रोगनिवारण विद्याओं के जाननेवाले विद्वन् ! आप जैसे सूर्य (**अद्य**) आज (**उद्यन्**) उदय को प्राप्त हुआ वा (**उत्तराम्**) कारणरूपी (**दिवम्**) दीप्ति को (**आरोहन्**) अच्छे प्रकार करता हुआ अन्धकार का निवारण कर दिन को प्रकट करता है वैसे मेरे (**हृद्रोगम्**) हृदय के रोगों और (**हरिमाणम्**) हरणशील चोर आदि को (**नाशय**) नष्ट कीजिए ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे सूर्य के उदय होने पर अन्धेरा और चोरादि निवृत्त हो जाते हैं वैसे उत्तम वैद्य की प्राप्ति से कुपथ्य और रोगों का निवारण हो जाता है ॥११॥

फिर वे क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि ।

अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि ॥ १२ ॥

पदार्थ—जैसे श्रेष्ठ वैद्य लोग कहें वैसे हम लोग (**शुकेषु**) शुकों के समान किये हुए कर्मों और (**रोपणाकासु**) लेप आदि क्रियाओं से (**मे**) मेरे (**हरिमाणम्**) चित्त को खेंचनेवाले रोगनाशक ओषधियों को (**दध्मसि**) धारण करें (**अथो**) इसके पश्चात् (**हारिद्रवेषु**) जो सुखहरने और मल बहाने वाले रोग हैं उनमें (**मे**) अपने (**हरिमाणम्**) हरणशील चित्त को (**निदध्मसि**) निरन्तर स्थिर करें ॥१२॥

भावार्थ—मनुष्य लेपनादि क्रियाओं से रोगों का निवारण करके बल को प्राप्त होवें ॥१२॥

फिर मनुष्य किस प्रकार प्रजाओं का पालन करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह ।

द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्मो अहं द्विषते रधम् ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! यथा (**अयम्**) यह (**आदित्यः**) नाशरहित सूर्य्य (**उदगात्**) उदय को प्राप्त होता है वैसे तू (**विश्वेन**) अखिल (**सहसा**) बल के साथ उदित हो जैसे तू (**मह्यम्**) धार्मिक मनुष्य के (**द्विषन्तम्**) द्वेष करते हुए शत्रु को (**रन्धयन्**) मारता हुआ वर्त्तता है वैसे (**अहम्**) मैं (**द्विषते**) शत्रु के लिए वर्त्तूं। जैसे यह शत्रु मुझ को मारता है वैसे इसको मैं भी मारूं जो मुझे न मारे उसे मैं भी (**मो रधम्**) न मारूं ॥१३॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि अनन्त बलयुक्त परमेश्वर के, बल के निमित्त प्राण वा बिजुली के दृष्टान्त से वर्त्तके सत्पुरुषों के साथ मित्रता कर सब प्रजाओं का पालन यथावत् किया करें ॥१३॥

इस सूक्त में परमेश्वर वा अग्नि के कार्य-कारण के दृष्टान्त से राजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ।

यह आठवां वर्ग, नवम अनुवाक और पचासवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

卐

अथास्य पञ्चदशर्चस्यैकपञ्चाशस्य सूक्तस्याङ्गिरसः सव्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १,६, १० जगती, २,५,८ विराड् जगती, ११-१३ निचृज्जगती च छन्दः । निषादः स्वरः । ३,४ भुरिक् त्रिष्टुप्, ६,७ त्रिष्टुप्, १४,१५ विराट् त्रिष्टुप् च छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब इक्यावनवें सूक्त का आरम्भ है । उसके पहले मन्त्र में इन्द्र शब्दार्थ के समान विद्वानों के गुणों का उपदेश किया है—

अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषा भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (**अर्णवम्**) समुद्र के तुल्य (**त्यम्**) उस (**मेषम्**) वृष्टि द्वारा सेचन करनेहारे (**पुरुहूतम्**) बहुत विद्वानों से स्तुत (**ऋग्मियम्**) ऋचाओं से मान करने योग्य (**मंहिष्ठम्**) गुणों से बड़े (**इन्द्रम्**) समग्र ऐश्वर्य से युक्त शत्रुओं को विदारण करनेवाले राजा को (**गीर्भिः**) सत्य प्रशंसित वाणियों से (**अभिमदत**) हर्षित करो और सूर्य्य के (**द्यावः**) किरणों के (**न**) समान (**यस्य**) जिसका (**भुजे**) भोग के लिए (**मानुषा**) मनुष्यों के हित करनेवाले गुण (**विचरन्ति**) विचरते हैं उस (**वस्वः**) धन के देनेवाले (**विप्रम्**) विद्वान् का (**अभ्यर्चत**) सदा सत्कार करो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । मनुष्यों को योग्य है कि जो बहुत गुणों के योग से सूर्य्य के सदृश विद्यायुक्त राजा हो, उसीका सत्कार सदा किया करें । इसके बिना किसी को सुख भोग नहीं होता है ॥१॥

फिर वह इन्द्र कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

अभीमवन्वन्त्स्वभिष्टिमूतयोऽन्तरिक्षप्रां तविषीभिरावृतम् ।
इन्द्रं दक्षास ऋभवो मदच्युतं शतक्रतुं जवनी सूनृतारुहत् ॥२॥

पदार्थ—हे सेनापते ! जिस आपकी (**ऊतयः**) रक्षा प्रजा का पालन करती है (**दक्षासः**) विज्ञानवृद्ध शीघ्र कार्य को सिद्ध करनेवाले (**ऋभवः**) मेधावी, विद्वान् लोग जिस (**स्वभिष्टिम्**) उत्तम इष्टियुक्त (**अन्तरिक्षप्राम्**) अपने तेज से अन्तरिक्ष अर्थात् अवकाश में सबको सुख से पूर्ण करने (**मदच्युतम्**) हर्षादि को पृथक् रखने अथवा शत्रुओं के मद अर्थात् गर्व को नष्ट करनेवाले (**शतक्रतुम्**) अनेक कर्मों के कर्त्ता (**तविषीभिः**) बल आकर्षण आदि गुणों से युक्त सेना से (**आवृतम्**) संयुक्त (**इन्द्रम्**) बिजुली के सदृश वर्त्तमान आपको (**अभ्यवन्वन्**) कार्यों को करने के लिए सब प्रकार से वृद्धियुक्त करते हैं जिसको (**जवनी**) वेगयुक्त (**सूनृता**) अन्नादि पदार्थों को सिद्ध करनेहारी राजनीति (**आरुहत्**) बढ़के प्राप्त होवे उस आपकी रक्षा हम किया करें ॥२॥

भावार्थ—धर्मात्मा बुद्धिमान लोग जिसका आश्रय करें उसी का शरण ग्रहण सब मनुष्य करें ॥२॥

त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरपोतात्रये शतदुरेषु गातुवित् ।
ससेन चिद्विमदायावहो वस्वाजावद्रिं वावसानस्य नर्तयन् ॥३॥

पदार्थ—हे (**ससेन**) सेना से सहित सेनाध्यक्ष ! आप जैसे सूर्य (**अङ्गिरोभ्यः**) प्राणस्वरूप पवनों से (**अद्रिम्**) पर्वत और मेघ के तुल्य वर्त्तमान (**अत्रये**) जिसमें तीन अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःख नहीं हैं उस (**आजौ**) सङ्ग्राम में शत्रुओं के बल को (**अपावृणोः**) दूर कर देते हो (**वावसानस्य**) ढांकने वाले शत्रुपक्ष की सेना को (**नर्तयन्**) नचाने के समान कंपाते हुए (**विमदाय**) विविध आनन्द के वास्ते (**वसु**) धन को (**आवहः**) अच्छे प्रकार प्राप्त कर (**उत**) और (**गातुवित्**) भूगर्भ विद्या के जाननेवाले आप (**शतदुरेषु**) असंख्य मेघ के अवयवों में ढके हुए पदार्थों के समान ढकी हुई अपनी सेना को बचाते हो सो आप सत्कार के योग्य हो ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । सेनापति आदि जबतक सूर्य के समान पराक्रमी नहीं होते तब तक शत्रुओं को नहीं जीत सकते ॥३॥

फिर वह किसके समान क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

त्वमपामपिधानावृणोरपाधारयः पर्वते दानुमद्वसु ।
वृत्रं यदिन्द्र शवसावधीरहिमादित्सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे ॥४॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) जगदीश्वर ! (**यत्**) जिस कारण (**त्वम्**) आप जैसे सूर्य (**अपाम्**) जलों के (**अपिधाना**) आच्छादनों को दूर करता है वैसे शत्रुओं के बल को (**अपावृणोः**) दूर करते हो जैसे (**पर्वते**) मेघ में (**दानुमत्**) उत्तम शिखरयुक्त (**वसु**) द्रव्य वा जल को (**अधारयः**) धारण करता और (**शवसा**) बल से (**अहिम्**) व्याप्त होने योग्य (**वृत्रम्**) मेघ को (**अवधीः**) मारता है वैसे शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करते हो और जैसे किरणसमूह (**सूर्यम्**) सूर्य को (**अरोहयः**) अच्छे प्रकार स्थापित करते हैं वैसे न्याय के प्रकाश से युक्त हैं इससे राज्य करने के योग्य हैं ॥४॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो मेघ के द्वार का छेदन एवं आकर्षण कर अन्तरिक्ष में स्थापन कर, वर्षा कर वा सबको प्रकाश करके सुखों को देता है उस सूर्य को ईश्वर ने ही रचकर स्थापन किया है ऐसा जानें ॥४॥

त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत ।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ॥५॥९॥

पदार्थ—हे (**नृमणः**) मनुष्यों में मन रखनेवाले सभाध्यक्ष ! (**त्वम्**) आप (**पुरः**) प्रथम (**स्वधाभिः**) अन्नादि पदार्थों से (**पिप्रोः**) न्याय को पूर्ण करनेहारे न्यायाधीशों की आज्ञा और (**ऋजिश्वानम्**) ज्ञान आदि सरल गुणों से युक्त की (**प्राविथ**) रक्षा कर और जो (**मायिनः**) निन्दित बुद्धि वाले (**मायाभिः**) कपट छलादि से वा (**शुप्तौ**) सोने के उपरान्त पराये पदार्थों को (**अजुह्वत**) हरण करते हैं उन डाकू आदि दुष्टों को (**अपाधमः**) दूर कीजिए और उनको (**दस्युहत्येषु**) डाकुओं के हननरूप संग्रामों में (**प्रारुजः**) छिन्न-भिन्न कर दीजिए ॥५॥

भावार्थ—जो सभाध्यक्ष अपने सत्यरूपी न्याय से उत्तम वा दुष्ट कर्मों के करनेवाले मनुष्यों के लिए फलों को देकर दोनों की यथायोग्य रक्षा करता है वही इस जगत् में सत्कार के योग्य होवे ॥५॥

त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथारन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम् ।
महान्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! शूरवीर मनुष्य ! जिससे (**त्वम्**) तू (**पदा**) पाद से आक्रान्त हुए शत्रुसमूह को मारनेवाले के (**चित्**) समान (**शुष्णहत्येषु**) शत्रुओं के बलों के हनने योग्य व्यवहारों में (**महान्तम्**) महागुणविशिष्ट (**कुत्सम्**) शस्त्रवर वज्र को धारण करके प्रजा की (**आविथ**) रक्षा करते और दुष्टों को (**अरन्धय**) मारते हो (**अतिथिग्वाय**) अतिथियों के जाने-आने को शुद्ध मार्ग के लिए (**अर्बुदम्**) असंख्यातगुणविशिष्ट (**शम्बरम्**) बल का (**निक्रमीः**) क्रम से बढ़ाते हो (**सनात्**) अच्छे प्रकार सेवन से (**पदा**) पदाक्रान्त शत्रुसेना का नाश करते हो (**दस्युहत्याय**) शत्रुओं के मारने रूप व्यवहार के लिए (**एव**) ही (**जज्ञिषे**) उत्पन्न हुए हो इससे हम लोग आप का सत्कार करते हैं ॥६॥

भावार्थ—सभाध्यक्षादिकों को योग्य है कि शत्रुओं को मार, श्रेष्ठों की रक्षा, मार्गों को शुद्ध और असंख्यात बल को धारण कर शत्रुओं के लिए अत्यन्त प्रभाव बढ़ावें ॥६॥

फिर वह सभा आदि का अध्यक्ष कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वे विश्वा तविषी सध्र्यग्घिता तव राधः सोमपीथाय हर्षते ।
तव वज्रश्चिकिते बाह्वोर्हितो वृश्चा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वन् मनुष्य ! (**त्वे**) आप में जो (**विश्वा**) सब (**तविषी**) बल (**हिता**) स्थापित किया हुआ (**सध्र्यक्**) साथ सेवन करनेवाला (**राधः**) धन (**सोमपीथाय**) सुख करनेवाले पदार्थों के भोग के लिए (**हर्षते**) हर्षयुक्त करता है (**तव**) आपके (**बाह्वोः**) भुजाओं में (**हितः**) धारण किया (**वज्रः**) शस्त्रसमूह है जिससे आप (**चिकिते**) सुखों को जानते हो उससे हम लोगों के (**विश्वानि**) सब (**वृष्ण्या**) वीरों के लिए हित करनेवाले बल की (**अव**) रक्षा और (**शत्रोः**) शत्रु के बल का नाश कीजिए ॥७॥

भावार्थ—जो श्रेष्ठों में बल उत्पन्न हो तो उनसे सब मनुष्यों को सुख होवे, जो दुष्टों में बल होवे तो उससे सब मनुष्यों को दुःख होवे, इससे श्रेष्ठों के सुख की वृद्धि और दुष्टों के बल की हानि निरन्तर करनी चाहिए ॥७॥

फिर वह सभाध्यक्ष क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

वि जानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! तू (**बर्हिष्मते**) उत्तम सुखादि गुणों के उत्पन्न करने वाले व्यवहार की सिद्धि के लिए (**आर्य्यान्**) सर्वोपकारक धार्मिक विद्वान् मनुष्यों को (**विजानीहि**) जान और (**ये**) जो (**दस्यवः**) परपीड़ा करने वाले अधर्मी दुष्ट मनुष्य हैं उनको जानकर (**बर्हिष्मते**) धर्म की सिद्धि के लिए (**रन्धय**) मार और उन (**अव्रतान्**) सत्यभाषणादि धर्म रहित मनुष्यों को (**शासत्**) शिक्षा करते हुए (**यजमानस्य**) यज्ञ के कर्त्ता का (**चोदिता**) प्रेरणाकर्त्ता और (**शाकी**) उत्तम शक्ति, सामर्थ्य को (**भव**) सिद्ध कर जिससे (**ते**) तेरे उपदेश वा सङ्ग से (**सधमादेषु**) सुखों के साथ वर्त्तमान स्थानों में (**ता**) उन (**विश्वा**) सब कर्मों को सिद्ध करने की (**इत्**) ही मैं (**चाकन**) इच्छा करता हूँ ॥८॥

भावार्थ—मनुष्यों को दस्यु अर्थात् दुष्ट स्वभाव को छोड़कर आर्य्य अर्थात् श्रेष्ठ स्वभावों के आश्रय से वर्त्तना चाहिए । वे ही आर्य हैं जो उत्तम विद्यादि के प्रचार से सबके उत्तम भोग की सिद्धि और अधर्मी दुष्टों के निवारण के लिए निरन्तर यत्न करते हैं । निश्चय ही कोई मनुष्य आर्य्यों के संग उनसे अध्ययन वा उपदेशों के बिना यथावत् विद्वान्, धर्मात्मा आर्यस्वभावयुक्त नहीं हो सकता । इससे निश्चय ही आर्य के गुण और कर्मों को सेवन कर और दस्यु कर्मों को छोड़कर निरन्तर सुखी रहना चाहिए ॥८॥

अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रतानाभूभिरिन्द्रः श्नथयन्ननाभुवः ।
वृद्धस्य चिद्वर्धतो द्यामिनक्षतः स्तवानो वम्रो वि जघान सन्दिहः ॥९

पदार्थ — मनुष्यों का उचित है कि जो (इन्द्र) परम विद्या आदि ऐश्वर्य्य, सभा, शाला, सेना और न्याय का अध्यक्ष (आभूभि) उत्तम वीरों को शिक्षा करनेवाली क्रियाओं के साथ वर्त्तमान (अनुव्रताय) अनुकूल धर्मयुक्त व्रतों के धारण करने वाले आर्य मनुष्य के लिए (अपव्रतान्) मिथ्याभाषणादि दुष्ट कर्मयुक्त दस्यु मनुष्यों को (रन्धयन्) अति ताडना करता हुआ (अनाभुव) धर्मात्माओं से विरुद्ध पापी मनुष्य को (श्नथयन्) शिथिल करता (इनक्षत) व्याप्तियुक्त (वर्धत) गुण दोषों से बढ़नेवाले (वृद्धस्य) ज्ञानादि गुणों से युक्त श्रेष्ठ की (स्तवान) स्तुति कर्त्ता (वम्र) अधर्म का नाश (सदिह) धर्माऽधर्म का संदेह से निश्चय करने वाला (द्याम्) सूर्यप्रकाश के (चित्) समान विद्या के प्रकाश को विस्तारयुक्त करता हुआ दुष्टों को (विजघान) विशेष करके मारता है उसी कुल को सुभूषित करनेवाले आर्य मनुष्य को सभाधिपति रूप में स्वीकार कर राजधर्म का यथावत् पालन करें ॥९॥

भावार्थ — इस मन्त्र में उपमालंकार है । सब धार्मिक मनुष्यों को उचित है कि सब मनुष्यों को अविद्या से निवारण और विद्या पढ़ा विद्वान् करके धर्माऽधर्म के विचारपूर्वक निश्चय में धर्म का ग्रहण और अधर्म का त्याग करें । सदैव आर्यों का सङ्ग, दस्युओं के सङ्ग का त्यागकर सबसे उत्तम व्यवस्था में वर्त्तें ॥९॥

फिर वह सभाध्यक्ष कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों किया है—

तक्षद्यत्त उशना सहसा सहो वि रोदसी मज्मना बाधते शवः ।
आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुज आ पूर्यमाणमवहन्नभि श्रवः ॥१०॥१०

पदार्थ — हे (नृमण) मनुष्यों में मन देनेवाले (उशना) कामयमान विद्वन् ! आप (सहसा) अपने सामर्थ्य से शत्रुओं के (सह) बल का हनन करके जैसे सूर्य (रोदसी) भूमि और प्रकाश को करता है वैसे (मज्मना) शुद्ध बल से (शव) शत्रुओं के बल को (विबाधते) बिलोडन वा (तक्षत) छेदन करते हो और (ते) आपके (मनोयुज) मन से युक्त होनेवाले भृत्य (त्वा) आपका आश्रय लेके (ते) आपके (वातस्य) बलयुक्त वायु के सम्बन्धी (आपूर्यमाणम्) न्यूनता रहित (श्रव) श्रवण और अन्नादि को (अभ्यावहन्) प्राप्त होवें ॥१०॥

भावार्थ — इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । विद्वान् सेनाध्यक्ष के विना पृथिवी के राज्य की व्यवस्था, शत्रुओं के बल की हानि, विद्यादि सद्गुणों का प्रकाश, और उत्तम अन्नादि की प्राप्ति नहीं होती ॥१०॥

मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधि तिष्ठति ।
उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृजद्वि शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत्पुरः ॥११॥

पदार्थ — हे (मन्दिष्ट) अतिशय करके स्तुति करनेवाले जो (उग्र) दुष्टों को मारनेवाले (इन्द्र) सभाध्यक्ष ! आप जैसे सूर्य (स्रोतसा) स्रोतों से (अप) जलों को बहाता है वैसे (उशने) अतीव सुन्दर (यत्) जिस (काव्ये) कवियों के कर्म में जो (वङ्कू) कुटिल (वङ्कुतरा) अतिशय करके कुटिल चालवाले शत्रु और उदासी मनुष्यों के (अधितिष्ठति) राज्य में अधिष्ठाता होते हो जैसे सविता (सचा) अपने गुणों से (ययिम्) मेघ को (निरसृजत्) नित्य सर्जन करता है वैसे (शुष्णस्य) बल की (दृंहिता) वृद्धि करानेहारी क्रियाओं को (पुर) पहले (व्यैरयत्) प्राप्त करते हो सो आप सबके द्वारा सत्कार करने योग्य हो ॥११॥

भावार्थ — इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । मनुष्यों को योग्य है कि जो कवि, सब शास्त्र का वक्ता, कुटिलता का विनाश करनेवाला दुष्टों, पर कठोर, श्रेष्ठों पर कोमल, सर्वथा बल को बढानेवाला पुरुष है, उसी को सभा आदि के अधिकारों में युक्त करें ॥११॥

आ स्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दसे ।
इन्द्र यथा सुतसोमेषु चाकनोऽनर्वाणं श्लोकमा रोहसे दिवि ॥१२॥

पदार्थ — हे (इन्द्र) उत्तम ऐश्वर्य वाले सभाध्यक्ष ! जिससे तू (यथा) जैसे विद्वान् लोग पदार्थविद्या को सिद्ध करके सुखों को प्राप्त होते और जो (शार्यातस्य) वीर पुरुष के (येषु) जिन (सुतसोमेषु) उत्तम रसों से युक्त (वृषपाणेषु) पुष्टि करने वाले सोमलतादि पदार्थों अर्थात् वैद्यक शास्त्र की रीति से अति श्रेष्ठ बनाये हुए और उत्तम व्यवहारों में (प्रभृता) धारण किये हो वैसे उनको प्राप्त होके (मन्दसे) आनन्दित होते और (अनर्वाणम्) अग्नि आदि अश्व सहित पशु आदि अश्व रहित (श्लोकम्) सब अवयवों से सहित रथ के मध्य (स्म) ही (आतिष्ठसि) स्थित और उसकी (चाकन.) इच्छा करते हैं और (दिवि) प्रकाशरूप सूर्यलोक में (आरोहसे) आरोहण करते हो (स्म) इसीलिए आप योग्य हो ॥१२॥

भावार्थ — इस मन्त्र में उपमालंकार है । विमानादि यान और विद्वानों के सङ्ग के बिना किसी मनुष्य को सुख नहीं हो सकता इससे विद्वानों की सभा और पदार्थों के ज्ञान का उपयोग करके सब मनुष्यों को आनन्द में रहना चाहिए ॥ १२ ॥

अददा अर्भां महते वचस्यवे कक्षीवते वृचयामिन्द्र सुन्वते ।
मेनाभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या ॥१३॥

पदार्थ — हे (सुक्रतो) शोभनकर्मयुक्त (इन्द्र) शिल्पविद्या को जाननेवाले विद्वन् ! तु (वचस्यवे) अपने को शास्त्रोपदेश की इच्छा करने वा (महते) महागुण विशिष्ट (सुन्वते) शिल्पविद्या को सिद्ध करने (कक्षीवते) विद्याप्राप्त अङ्गुली वाले मनुष्य के लिए जिस (वृचयाम्) छेदनभेदनरूप (अर्भाम्) थोड़ी भी शिल्पक्रिया को (अददा) देते हो (सवनेषु) प्रेरणा करनेवाले कर्मों में (प्रवाच्या) अच्छे प्रकार कथन करने योग्य (मेना) वाणी (वृषणश्वस्य) शिल्पक्रिया की इच्छा करनेवाले (ते) आपके (विश्वा) सब कार्य्य हैं (ता, इत्) उन ही के सिद्ध करने को समर्थ (अभव) हूजिए ॥१३॥

भावार्थ — विद्वान् मनुष्यों को अग्नि आदि पदार्थों का विद्यादान करके सब मनुष्यों के लिए हित के काम करने चाहिएँ ॥१३॥

फिर वह कैसे गुणवाला हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेके पज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः ।
अश्वयुर्गव्यू रथयुर्वसूयुरिन्द्र इद्रायः क्षयति प्रयन्ता ॥१४॥

पदार्थ जो (अश्वयु) अपने अश्वों (गव्यु) अपने गौ पृथिवी, इन्द्रिय, किरणों (रथयु) अपने रथ और (वसूयु) अपने द्रव्यों की इच्छा और (प्रयन्ता) अच्छे प्रकार नियम करनेवाले के (इत्) समान (इन्द्र) विद्यादि ऐश्वर्ययुक्त विद्वान् (राय) धनों को (क्षयति) निवासयुक्त करता है वह (सुध्य) जो उत्तम बुद्धिवाले विद्वान् मनुष्य हैं उनसे (दुर्य) गृहसम्बन्धी (यूप) खम्भे के (न) समान (इन्द्र) विद्यादि ऐश्वर्यवान् (निरेके) शङ्कारहित (पज्रेषु) शिल्पादि व्यवहारों में (स्तोम) स्तुति करने योग्य (अश्रायि) सेवनयुक्त होता है ॥१४॥

भावार्थ — इस मन्त्र में उपमालंकार है । जैसे सूर्य से बहुत उत्तम-उत्तम कार्य सिद्ध होते हैं वैसे विद्वान् और अग्निजलादि से रथ की सिद्धि के द्वारा धन की प्राप्ति होती है ॥१४॥

अब अगले मन्त्र में सभाध्यक्ष के गुणों का उपदेश किया है—

इदं नमो वृषभाय स्वराजे सत्यशुष्माय तवसेऽवाचि ।
अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीराः स्मत्सूरिभिस्तव शर्मन्त्स्याम ॥१५॥११॥

पदार्थ हे (इन्द्र) परम पूजनीय सभापते ! जैसे (सूरिभि) विद्वानों ने (वृषभ) सुख की वृष्टि करने (सत्यशुष्माय) विनाशरहित बलयुक्त (तवसे) अति बल से प्रवृद्ध (स्वराजे) अपने आप प्रकाशमान परमेश्वर को (इदम्) इस (नम) सत्कार को (अवाचि) कहा है वैसे हम भी करें । ऐसा करके हम लोग (तव) आपके (अस्मिन्) इस जगत् वा इस (वृजने) दुःखों को दूर करनेवाले बल से युक्त (शर्मन्) गृह में (स्मत्) अच्छे प्रकार सुखी (स्याम) होवें ॥ १५ ॥

भावार्थ — इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्यों को विद्वानों के साथ रहकर परमेश्वर ही की उपासना, पूर्ण प्रीति से विद्वानों का सङ्ग कर परम आनन्द को प्राप्त करना और कराना चाहिए ॥ १५ ॥

इस सूक्त में सूर्य, अग्नि और बिजुली आदि पदार्थों का वर्णन, बलादि की प्राप्ति अनेक अलङ्कारों के कथन से विविध अर्थों का वर्णन और सभाध्यक्ष तथा परमेश्वर के गुणों का प्रतिपादन किया है, इससे इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति माननी चाहिए ॥

यह ग्यारहवां वर्ग और इक्यावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥ ५१ ॥

卐

अथास्य पञ्चदशर्चस्य द्विपञ्चाशस्य सूक्तस्याङ्गिरस सव्य ऋषि । इन्द्रो देवता ।
१, ८, भुरिक् त्रिष्टुप्, ७ त्रिष्टुप्, ६, १० स्वराट् त्रिष्टुप् १२, १३,
१५ निचृत्त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर । २, ४ निचृज्जगती, ५, १४
जगती, ६, ११ विराट् जगती च छन्द । निषाद स्वर ॥

अब बावनवें सूक्त का आरम्भ है । इसके पहले मन्त्र में इन्द्र कैसा है
इस विषय का उपदेश किया है —

त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभ्वः साकमीरते ।
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥१॥

पदार्थ — (यस्य) जिस परमैश्वर्य्ययुक्त सभाध्यक्ष के (शतम्) असंख्यात (सुभ्व) सुखों को उत्पन्न करनेवाले कारीगर लोग (सुवृक्तिभि) दुःखों को दूर करनेवाली उत्तम क्रियाओं के (साकम्) साथ (अत्यम्) अश्व के (न) समान अग्नि, जलादि से (अवसे) रक्षादि के लिए (हवनस्यदम्) सुखपूर्वक आकाश मार्ग में प्राप्त करनेवाले (वाजम्) वेगयुक्त (इन्द्रम्) परमोत्कृष्ट ऐश्वर्य के दाता (स्वर्विदम्) जिससे आकाश मार्ग से जा-आ सके उस (रथम्) विमान आदि यान को (ईरते) प्राप्त होते हैं और जिससे मैं (ववृत्याम्) वर्त्तता हूँ (त्यम्) उस (मेषम्) सुख को वर्षाने वाले को हे विद्वन् ! तू उसका (सुमहय) अच्छे प्रकार सत्कार कर ॥ १॥

भावार्थ — इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि जैसे अश्व को युक्त कर रथ आदि को चलाते हैं वैसे अग्नि आदि से यानों को चला के कार्यों को सिद्ध करें ॥ १ ॥

फिर वह कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तविषीषु वावृधे ।

इन्द्रो यद्वृत्रमवधीन्नदीवृतमुब्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा ॥२॥

पदार्थ—हे राजप्रजाजन ! जैसे (**धरुणेषु**) धारकों में (**अच्युतः**) सत्य सामर्थ्ययुक्त (**अर्णांसि**) जलों को (**उब्जन्**) बल पकड़ता हुआ (**इन्द्रः**) सविता (**नदीवृतम्**) नदियों से युक्त वा नदियों को वर्त्ताने वाले (**वृत्रम्**) मेघ को (**अवधीत्**) मारता है (**सः**) वह (**पर्वतः**) पर्वत के (**न**) समान (**वावृधे**) बढ़ता है वैसे (**यत्**) जो तू शत्रुओं को मार (**सहस्रमूतिः**) असंख्यात रक्षा करने हारे (**तविषीषु**) बलों में (**जर्हृषाणः**) बार-बार हर्ष को प्राप्त करता हुआ (**अन्धसा**) अन्नादि के साथ वर्त्तमान बार-बार बढ़ाता रह ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य के सदृश सेना आदि को धारण कर और मेघ के तुल्य अन्नादि सामग्री के साथ वर्त्तमान होके बलों को बढ़ाता है वह पर्वत के समान स्थिर, सुखी हो शत्रुओं को मारकर राज्य के बढ़ाने में समर्थ होता है ॥ २ ॥

स हि द्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि चन्द्रबुध्नो मदवृद्धो मनीषिभिः ।

इन्द्रं तमह्वे स्वपस्यया धिया मंहिष्ठरातिं स हि पप्रिरन्धसः ॥३॥

पदार्थ—जो (**ऊधनि**) प्रातःकाल में (**द्वरिषु**) अन्धकारावृत व्यवहारों में (**द्वरः**) अन्धकार से आवृत द्वार (**चन्द्रबुध्नः**) बुध्न अर्थात् अन्तरिक्ष में सुवर्ण वा चन्द्रमा के वर्णों से युक्त (**मदवृद्धः**) हर्ष से बढ़ा हुआ (**अन्धसः**) अन्नादि को (**पप्रिः**) पूर्ण करनेवाला (**वव्रः**) कूप के समान मेघ है उसके तुल्य (**मनीषिभिः**) मेधावियों के साथ (**हि**) निश्चय करके वर्त्तमान सभाध्यक्ष है (**तम्**) उस (**मंहिष्ठरातिम्**) अत्यन्त पूजनीय दानयुक्त (**इन्द्रम्**) विद्वान् को (**स्वपस्यया**) उत्तम कर्मयुक्त व्यवहार में होने वाली (**धिया**) बुद्धि से मैं (**अह्वे**) आह्वान करता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि जो मेघ के तुल्य प्रजा-पालन और सूर्यवत् सुखों की वर्षा करता है उस परमैश्वर्ययुक्त पुरुष को सभाध्यक्ष का अधिकार देवें ॥ ३ ॥

आ यं पृणन्ति दिवि सद्मबर्हिषः समुद्रं न सुभ्वः स्वा अभिष्टयः ।

तं वृत्रहत्ये अनु तस्थुरूतयः शुष्मा इन्द्रमवाता अह्रुतप्सवः ॥४॥

पदार्थ—(**सद्मबर्हिषः**) उत्तम स्थान आसनयुक्त (**सुभ्वः**) उत्तम होने वाले मनुष्य (**अवाताः**) वायु के चलाने से रहित नदियाँ (**समुद्रं न**) जैसे सागर वा आकाश को प्राप्त होकर स्थिर होती हैं वैसे जिस (**इन्द्रम्**) सभासदों सहित सभापति को (**वृत्रहत्ये**) जिसमें मेघावयवों के हनन तुल्य हनन होता उस संग्राम में (**स्वाः**) अपने (**अभिष्टयः**) शुभेच्छा युक्त (**शुष्माः**) बल सहित (**अह्रुतप्सवः**) कुटिलता रहित सूर्यरूप (**ऊतयः**) सुरक्षित प्रजा (**आपृणन्ति**) सुखी करें (**तम्**) परमैश्वर्यकारक वीर पुरुष के (**अनुतस्थुः**) अनुकूल स्थित होवें वही चक्रवर्ती राज्य करने को योग्य होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे नदी समुद्र वा अन्तरिक्ष को प्राप्त होकर स्थिर होती है वैसे ही सभासदों के सहित विद्वान् को प्राप्त होकर सब प्रजा स्थिर सुखवाली होती है ॥ ४ ॥

अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः ।

इन्द्रो यद्वज्री धृषमाणो अन्धसा भिनद्वलस्य परिधीँरिव त्रितः ॥५॥१२॥

पदार्थ—(**यत्**) जो सूर्य के समान (**स्ववृष्टिम्**) अपने शस्त्रों की वृष्टि करता हुआ (**धृषमाणः**) शत्रुओं को प्रगल्भता दिखाने हारा (**वज्री**) शत्रुओं को छेदन करनेवाले शस्त्रसमूह से युक्त (**इन्द्रः**) सभाध्यक्ष (**मदे**) हर्ष में (**अस्य**) इस (**युध्यतः**) युद्ध करते हुए (**वलस्य**) शत्रु के (**त्रितः**) ऊपर, मध्य और टेढ़ी तीन रेखाओं से (**परिधीँरिव**) सब प्रकार ऊपर की गोल रेखा के समान बल को (**अभिभिनत्**) सब प्रकार से भेदन करता है उसके (**अन्धसा**) अन्नादि वा जल से (**रघ्वीरिव**) जैसे जल से पूर्ण नदियाँ (**प्रवणे**) नीचे स्थान में जाती हैं वैसे (**ऊतयः**) रक्षा आदि (**सस्रुः**) गमन करती है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे जल नीचे स्थान को जाते हैं वैसे सभाध्यक्ष नम्र होकर विनय को प्राप्त होवे ॥ ५ ॥

फिर वह सभाध्यक्ष किसके तुल्य क्या करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

परीं घृणा चरति तित्विषे शवोऽपो वृत्वी रजसो बुध्नमाशयत् ।

वृत्रस्य यत्प्रवणे दुर्गृभिश्वनो निजघन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम् ॥६॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सूर्य के समान वर्त्तमान सभाध्यक्ष ! जैसे (**तित्विषे**) प्रकाश के लिए (**यत्**) जिस सूर्य का (**शवः**) बल वा (**घृणा**) दीप्ति (**ईम्**) जल को (**परिचरति**) सेवन करती है (**दुर्गृभिश्वनः**) दुःख से जिसका ग्रहण हो (**वृत्रस्य**) मेघ का (**बुध्नम्**) शरीर (**रजसः**) अन्तरिक्ष के मध्य में (**अपः**) जल को (**वृत्वी**) आवरण करके (**आशयत्**) सोता है उसके (**हन्वोः**) आगे पीछे के मुख के अवयवों में (**तन्यतुम्**) बिजली को छोड़कर उसे (**प्रवणे**) नीचे (**निजघन्थ**) मार कर गेर देता है वैसे वर्त्तमान होकर न्याय में प्रवृत्त हूजिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि वे सूर्य वा मेघ के समान वर्त्त के विद्या और न्याय की वर्षा का प्रकाश करें ॥ ६ ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

ह्रदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना ।

त्वष्टा चित्ते युज्यं वावृधे शवस्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम् ॥७॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) बिजुली के समान वर्त्तमान (**ते**) आप के (**वर्धना**) बढ़ानेहारे (**ब्रह्माणि**) बड़े-बड़े धन (**ऊर्मयः**) तरंग आदि (**ह्रदम्, न**) जैसे नदी जलस्थान को प्राप्त होती है वैसे (**हि**) निश्चय करके ज्योतियों को (**न्यृषन्ति**) प्राप्त होते है वह (**त्वष्टा**) मेघावयव वा मूर्तिमान् द्रव्यों का छेदन करनेवाले (**शवः**) बल (**अभिभूत्योजसम्**) ऐश्वर्ययुक्त पराक्रम तथा (**युज्यम्**) युक्त करने योग्य (**वज्रम्**) प्रकाशसमूह का प्रहार करके सब पदार्थों को (**ततक्ष**) छेदन करता है वैसे आप भी हूजिए ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे जल नीचे स्थानों को जाकर स्थिर वा स्वच्छ होता है वैसे ही राजपुरुष उत्तम-उत्तम गुणयुक्त तथा विनय वाले पुरुष को प्राप्त होकर स्थिर और शुद्धि करनेवाले होते हैं ॥ ७ ॥

जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतविन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः ।

अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसमधारयो दिव्या सूर्यं दृशे ॥८॥

पदार्थ—हे (**सम्भृतक्रतो**) क्रियाप्रज्ञाओं को धारण किये हुए (**इन्द्र**) मेघावयवों का छेदन करनेवाले सूर्य के समान शत्रुओं को ताड़नेवाले सभापति ! आप जैसे सूर्य अपने किरणों से (**वृत्रम्**) मेघ को (**जघन्वान्**) गिराता हुआ (**अपः**) जलों को (**मनवे**) मनुष्यों को (**गातुयन्**) पृथिवी पर प्राप्त कराता हुआ प्रजा को धारण करता है वैसे ही प्रजा की रक्षा के लिए (**बाह्वोः**) बल तथा आकर्षणों के समान भुजाओं के मध्य (**आयसम्**) लोहे के (**वज्रम्**) किरण समूह के तुल्य शस्त्रों को (**आधारय**) अच्छे प्रकार धारण कीजिए, वीरों को कराइए और सब मनुष्यों को सुख देने के लिए (**दिवि**) शुद्ध व्यवहार में (**सूर्यम्**) सूर्यमण्डल के समान न्याय और विद्या के प्रकाश को (**दृशे**) दिखाने के लिए (**अयच्छथाः**) सब प्रकार से प्रदान कीजिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्यलोक बल और आकर्षण गुणों द्वारा सब लोकों के धारण से जल का आकर्षण कर वर्षा से दिव्य सुखों को उत्पन्न करता है वैसे ही सभा सब गुणों का घर, धनकार्य्य में सुपात्रों को सुमार्ग की प्रवृत्ति के लिए दान देकर प्रजा के लिए आनन्द को प्रकट करे ॥ ८ ॥

फिर वह क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

बृहत्स्वश्चन्द्रममवद्यदुक्थ्य१मकृण्वत भियसा रोहणं दिवः ।

यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः स्वर्नृषाचो मरुतोऽमदन्ननु ॥९॥

पदार्थ—जो (**मानुषप्रधनाः**) मनुष्यों को उत्तम धन प्राप्त करते तथा (**नृषाचः**) मनुष्यों को कर्म में संयुक्त करनेवाले (**मरुतः**) प्राण आदि हैं वे (**इन्द्रम्**) बिजुली को प्राप्त होकर (**यत्**) जिस (**बृहत्**) बड़े (**स्वश्चन्द्रम्**) अपने आह्लादकारक प्रकाश से युक्त (**अमवत्**) उत्तम ज्ञान (**उक्थ्यम्**) प्रशंसनीय (**स्वः**) सुख को (**अकृण्वत**) सम्पादन करते हैं और (**यत्**) जो (**भियसा**) दुःख के भय में (**दिवः**) प्रकाशमान, मोक्ष सुख का (**रोहणम्**) आरोहण (**ऊतयः**) रक्षा आदि होती है उन को करके (**अन्वमदन्**) उसके अनुकूल आनन्द करते हैं वे मनुष्य मुख्य सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—विद्याधन, राज्य, पराक्रम, बल वा पुरुषों की सहायता ये सब जिस धार्मिक विद्वान् मनुष्य को प्राप्त होते हैं, उस के लिये उत्तम सुख उत्पन्न करते हैं ॥ ९ ॥

द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेः स्वनादयोयवीद्भियसा वज्र इन्द्र ते ।

वृत्रस्य यद्बद्बधानस्य रोदसी मदे सुतस्य शवसाभिनच्छिरः ॥१०॥१३॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) परम ऐश्वर्य के हेतु सेनापते ! जो (**अस्य**) इस (**ते**) आप का और इस सूर्य्य का (**द्यौः**) प्रकाश (**अहेः**) (**बद्बधानस्य**) रोकनेवाले मेघ के (**सुतस्य**) उत्पन्न हुए (**वृत्रस्य**) आवरण कारक जल के अवयवों को (**अयोयवीत्**) मिलाता वा पृथक् करता है (**चित्**) वैसे (**अमवान्**) बलकारी (**वज्रः**) वज्र के (**स्वनात्**) शब्दों से (**भियसा**) और भय से (**शवसा**) बल के साथ शत्रु लोग भागते हैं (**रोदसी**) आकाश और पृथिवी के समान (**मदे**) आनन्दकारी व्यवहार में वर्त्तमान शत्रु का (**शिरः**) शिर (**अभिनत्**) काटते हैं सो आप हम लोगों का पालन कीजिए ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे सूर्य के किरण और बिजुली मेघ के साथ प्रवृत्त होती हैं वैसे ही सेनापति आदि के साथ सेना को होना चाहिए ॥ १० ॥

यदिन्न्विन्द्र पृथिवी दशभुजिरहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः ।

अत्राह ते मघवन् विश्रुतं सहो द्यामनु शवसा बर्हणा भुवत् ॥११॥

पदार्थ—हे (**मघवन्**) उत्कृष्ट धन और विद्या के ऐश्वर्य से युक्त (**इन्द्र**) सभा सेनाध्यक्ष ! आप (**यत्**) जो (**दशभुजिः**) दश इन्द्रियों से (**पृथिवी**) भूमि को भोगते हो (**ते**) आप के (**बर्हणा**) सब सुख प्राप्त कराने वा (**शवसा, सह**)

बल से ही (**धाम्**) राज्य पालन (**अनुविश्रुतम्**) अनुकूल कीर्ति करने वाला यश (**सह**) बल (**भुवत्**) होवे उससे युक्त होके आप प्रयत्न कीजिए जिससे (**अत्र**) इस राज्य मे (**कृष्टय**) मनुष्य लोग (**विश्वा**) सब (**अहानि**) दिनो को (**इत्**) ही सुख से (**मु**) जल्दी (**ततनन्त**) विस्तार करें ॥ ११ ॥

भावार्थ --राजपुरुषो को चाहिए कि जैसे अपने राज्य मे सुखो की वृद्धि और अनेक प्रकार से गुणो की प्राप्ति हो वैसा अनुष्ठान करें ॥ ११ ॥

फिर इस जगत् का राजा परमात्मा कैसा है इस का उपदेश किया है --

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः ।

चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥१२॥

पदार्थ -हे (**धृषन्मन**) अनन्त प्रगल्भ विज्ञानयुक्त जगदीश्वर ! जो (**परिभूः**) सब प्रकार होने (**स्वभूत्योजा**) अपने ऐश्वर्य वा पराक्रम से (**त्वम्**) आप (**अवसे**) रक्षा आदि के लिए (**अस्य**) इस संसार के (**रजस**) पृथिवी आदि लोको तथा (**व्योमन**) आकाश के (**पारे**) अपरभाग मे भी (**एषि**) प्राप्त है और आपने (**ओजस**) पराक्रम आदि के (**प्रतिमानम्**) अवधि (**स्व**) सुख (**दिवम्**) शुद्ध विज्ञान के प्रकाश (**भूमिम्**) भूमि और (**अप**) जलो को (**आचकृषे**) अच्छे प्रकार किया है उन आपकी हम सब लोग उपासना करते हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ जैसे परमेश्वर सब से उत्तम, सबसे परे वर्त्तमान होकर अपने सामर्थ्य से लोको को रचके उन मे सब प्रकार से व्याप्त हो, धारण कर सब को व्यवस्था मे युक्त करता हुआ जीवो के पाप-पुण्य की व्यवस्था करने से न्यायाधीश होकर वर्त्तता है वैसे ही न्यायाधीश भी राज्य को करता हुआ सब के लिए सुखो को उत्पन्न करे ॥ १२ ॥

फिर वह परब्रह्म कैसा है इस का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—

त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः ।

विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् ॥१३॥

पदार्थ हे जगदीश्वर ! जो (**त्वम्**) आप (**पृथिव्या**) विस्तृत आकाश और (**भुव**) भूमि के (**प्रतिमानम्**) परिमाणकर्त्ता तथा (**बृहत**) महाबलयुक्त (**ऋष्ववीरस्य**) बड़े गुणयुक्त जगत का वा महावीर मनुष्य के (**पति**) पालन करनेवाले (**भू**) है तथा आप (**विश्वम्**) सब जगत् (**अन्तरिक्षम्**) अनेक लोको के मध्य मे अवकाशस्वरूप आकाश और (**सत्यम्**) कारणरूप से अविनाशी अच्छे प्रकार परीक्षा किये हुए चारो वेदो द्वारा प्रकट हुए सत्य को (**महित्वा**) बड़ी व्याप्ति से व्याप्त होकर (**अद्धाप्रा**) साक्षात् पूर्ण करते हो इस से (**त्वावान्**) आपके सदृश (**अन्य**) दूसरा (**नकि**) विद्यमान कोई भी नही है ॥ १३ ॥

भावार्थ जैसे परमेश्वर सब जगत् का रचयिता परिमाणकर्त्ता व्यापक और सत्य का प्रकाश करनेवाला है, इसलिए ईश्वर के सदृश कोई भी पदार्थ न हुआ और न होगा ऐसा समझकर, हम लोग उसी की उपासना करें ॥१३॥

न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः ।

नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥१४॥

पदार्थ --(**यस्य**) जिस (**रजस**) ऐश्वर्ययुक्त जगदीश्वर की (**अनुव्यच**) अनन्तव्याप्ति के अनुकूल वर्त्तमान (**द्यावापृथिवी**) प्रकाश अप्रकाशयुक्त लोक और चन्द्रमादि भी (**अन्तम्**) अन्त अर्थात् सीमा को (**न**) नही (**आनशु**) प्राप्त होते हैं । हे परमात्मन् ! जैसे (**स्ववृष्टिम्**) अपनी पदार्थों की वर्षा के प्रति (**मदे**) आनन्द मे (**युध्यत**) युद्ध करते हुए मेघ का सूर्य के सामने विजय नही होता वैसे (**एक**) सहाय रहित अद्वितीय जगदीश्वर (**अन्यत्**) अपने से भिन्न द्वितीय (**विश्वम्**) जगत् को (**आनुषक्**) अपनी व्याप्ति से युक्त किया है इससे आप उपासना के योग्य है ॥१४॥

भावार्थ जैसे परमेश्वर के किसी गुण की कोई मनुष्य वा कोई लोक सीमा को ग्रहण नही कर सकता और जैसे जगदीश्वर पापयुक्त कर्म करनेवाले मनुष्यो के लिए दुःखरूप फल देने से पीडा देता, दुष्टो को ताड़ना, और सूर्य मेघाऽवयवो को विदारण करता हुआ, युद्ध करनेवाले मनुष्य के समान वर्त्तता है, वैसे ही सब सज्जन मनुष्यो को वर्त्तना चाहिए ॥१४॥

फिर ईश्वरोपासक कैसे हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आर्चन्नत्र मरुतः सस्मिन्नाजौ विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ।

वृत्रस्य यद्भृष्टिमता वधेन नि त्वमिन्द्र प्रत्यानं जघन्थ ॥१५॥१४॥

पदार्थ --हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्ययुक्त सभा सेना के स्वामी ! (**यत्**) जो (**त्वम्**) आप (**भृष्टिमता**) प्रशंसनीय नीति वाले न्याय व्यवहार से युक्त (**वधेन**) हनन से (**वृत्रस्य**) अधर्मी मनुष्य के समान (**आनम्**) प्राण को (**जघन्थ**) नष्ट करते हो उन (**त्वा**) आपको (**सस्मिन्**) सब (**आजौ**) संग्राम वा (**अत्र**) इस आप मे श्रद्धा करनेवाले (**विश्वेदेवास**) सब विद्वान् और (**मरुत**) ऋत्विज् लोग (**न्यार्चन्**) नित्य सत्कार करते हैं इससे वे प्रजा के प्राणी (**प्रत्यन्वमदन्**) सब को आनन्दित करके आप आनन्दित होते हैं ॥१५॥

भावार्थ - जो एक परमेश्वर की उपासना, विद्या का ग्रहण और शत्रुओं को ताड़ विजय को प्राप्त कर प्रजा को निरन्तर आनन्दित करते हैं वे ही धार्मिक विद्वान् सुखी रहते हैं ॥१५॥

इस सूक्त मे विद्वान्, बिजुली आदि, अग्नि और ईश्वर के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह बावनवां सूक्त और चौदहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथैकादशर्चस्य त्रिपञ्चाशस्य सूक्तस्याङ्गिरस सव्य ऋषि । इन्द्रो देवता । १,३ निचृज्जगती, २ भुरिग्जगती, ४ जगती, ५,७ विराड्जगती च छन्द । निषाद स्वर । ६,८,९ त्रिष्टुप्, १० भुरिक् त्रिष्टुप् च छन्द । धैवत स्वर । ११ सत पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

अब त्रेपनवें सूक्त का आरम्भ है । उसके पहले मन्त्र में मनुष्यों को धर्म विचार कर क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश किया है —

न्यू३षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः ।

नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥१॥

पदार्थ हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (**महे**) महासुखप्रापक (**सदने**) स्थान मे (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य के प्राप्त करने के लिए (**सु**) शुभ लक्षणयुक्त (**वाचम्**) वाणी को (**निभरामहे**) निश्चित धारण करते हैं स्वप्न मे (**ससतामिव**) सोते हुए पुरुषो के समान (**विवस्वत**) सूर्यप्रकाश मे (**रत्नम**) रमणीय सुवर्णादि के समान (**गिर**) स्तुतियो को धारण करते हैं किन्तु (**द्रविणोदेषु**) सुवर्णादि वा विद्यादिको के देने वाले हम लोगो मे (**दुष्टुति**) दुष्ट स्तुति और पाप की कीर्ति अर्थात् निन्दा (**न प्रशस्यते**) श्रेष्ठ नही होती वैसे तुम भी होओ ॥१॥

भावार्थ --इस मन्त्र मे उपमालंकार है । मनुष्यो को जैसे निद्रा मे स्थित हुए मनुष्य आराम को प्राप्त होते हैं वैसे सर्वदा विद्या और उत्तम शिक्षाओ से संस्कार की हुई वाणी को स्वीकार प्रशंसनीय कर्म का सेवन और निन्दा को दूर कर स्तुति का प्रकाश करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए ॥१॥

अब अगले मन्त्र मे विद्वानों के गुणो का उपदेश किया है ---

दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।

शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥२॥

पदार्थ हे (**इन्द्र**) विद्वन् ! जो (**अकामकर्शन**) आलस्ययुक्त मनुष्यों को कृश (**शिक्षानर**) शिक्षाओ को प्राप्त करने वा (**सखिभ्य**) मित्रो के (**सखा**) मित्र (**पति**) पालन करने वा (**इन**) ईश्वर के तुल्य सामर्थ्ययुक्त आप (**अश्वस्य**) व्याप्तिकारक अग्नि आदि वा तुरंग आदि के द्वारो को प्राप्त होके सुख देने वाली (**गो**) वाणी वा दूध देने वाली गौ के (**दुर**) सुख देनेवाले द्वारो को जान (**यवस्य**) उत्तम यव आदि अन्न (**प्रदिव**) उत्तम विज्ञान, प्रकाश और (**वसुन**) उत्तम धन देनेवाले (**असि**) है (**तम्**) उस आप की (**इदम्**) पूजा वा सत्कारपूर्वक (**गृणीमसि**) स्तुति करते है ॥२॥

भावार्थ - इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । परमेश्वर के तुल्य धार्मिक विद्वान् के विना किसी के लिए सब पदार्थ वा सब सुखो के देने वाला कोई नही है परन्तु जो निश्चय करके सबके मित्र शिक्षाओ को प्राप्त किये हुए मनुष्य है वे ही इन सब सुखो को प्राप्त होते हैं आलसी मनुष्य नही ॥२॥

फिर वह कैसा है यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है ---

शचीव इन्द्र पुरुकृद्द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु ।

अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ॥३॥

पदार्थ --हे (**शचीव**) प्रशंसनीय प्रज्ञा, वाणी और कर्मयुक्त (**द्युमत्तम**) अतिशय करके सर्वज्ञता विद्याप्रकाशयुक्त (**पुरुकृत्**) बहुत सुखो के दाता (**इन्द्र**) परमैश्वर्य युक्त जगदीश्वर वा ऐश्वर्यप्रापक सभापति विद्वन् ! आप की कृपा वा आपके सहाय से मनुष्य (**अभित**) सब ओर से (**इदम्**) इस (**वसु**) उत्तम धन को (**चेकिते**) जानता है । हे (**अभिभूते**) शत्रुओं के पराजय करनेवाले ! जिस कारण आप (**त्वायत**) आप वा उसके आत्मा की इच्छा करते हुए (**जरितु**) स्तुति करनेवाले धार्मिक भक्तजन की (**कामम्**) इष्टसिद्धि को (**आभर**) पूर्ण करें (**अत**) इस पुरुषार्थ से आप को (**संगृभ्य**) ग्रहण करके मैं वर्त्तता हूँ और आप मुझे सब कामो से पूर्ण कीजिए आपकी इच्छा करते हुए स्तुति करनेवाले मेरी इष्टसिद्धि को (**मोनयी**) कभी क्षीण मत कीजिए ॥३॥

भावार्थ --मनुष्यों को निश्चय ही परमेश्वर वा विद्वान् मनुष्य के संग के विना सब कामनाओ की पूर्ति करना सम्भव नहीं है । इससे इसी की उपासना वा विद्वान् मनुष्य का सत्संग करके इष्टसिद्धि को सम्पादन करना चाहिए ॥३॥

एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।

इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥४॥

पदार्थ हम लोग जो (**अमतिम्**) विज्ञान वा सुख से अविद्या, दरिद्रता तथा सुन्दर रूप को (**निरुन्धान**) निरोध वा ग्रहण करता हुआ (**सुमना:**) उत्तम विज्ञानयुक्त सभाध्यक्ष है उसकी प्राप्ति कर उसके सहाय वा (**एभि:**) इन

(ऋभिः) प्रकाशयुक्त द्रव्य (एभिः) इन (इन्दुभिः) आह्लादकारक गुण वा पदार्थ इन (गोभिः) प्रशंसनीय गौ, पृथिवी (अश्विना) अग्नि, जल, सूर्य, चन्द्र आदि (इन्द्रा) इच्छा वा अन्नादि (इन्दुभिः) बलकारक सोमरसादि पेयों (इन्द्रेण) बिजुली और उसके रचे हुए विदारण करनेवाले शस्त्र से (दस्युम्) बल से दूसरे के धन को लेनेवाले दुष्ट को (दरयन्त) विदारण करते हुए (युतद्वेषसः) द्वेष से अलग होने वाले शत्रुओं के साथ युद्ध को सुख से (समारभेमहि) आरम्भ करें ॥४॥

भावार्थ—जो सभाध्यक्ष सब प्रकार की दरिद्रता को नष्टकर, शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर विद्याओं की शिक्षा कर हम लोगों को सुखी करता है उसका सब मनुष्यों को सेवन करना चाहिए। इसके सहाय के बिना कोई भी मनुष्य व्यावहारिक और परमार्थविषयक आनन्द को प्राप्त नहीं हो सकता। इससे इसके सहाय से सब धर्मयुक्त कार्यों का आरम्भ वा सुख का सेवन करना चाहिए ॥४॥

फिर इसके सहाय से मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।

सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥५॥१५॥

पदार्थ - हे (इन्द्र) सभाध्यक्ष ! जैसे हम लोग आपके सहाय से (राया) उत्तम राज्यलक्ष्मी (समिषा) धर्म की इच्छा वा अन्नादि (अभिद्युभिः) विद्या, व्यवहार और प्रकाशयुक्त (पुरुश्चन्द्रैः) बहुत आह्लादकारक सुवर्ण और उत्तम चाँदी आदि धातु (वाजेभिः) विज्ञानादि गुण वा संग्राम तथा (प्रमत्या) उत्तम मतियुक्त (देव्या) दिव्य गुण सहित विद्या से युक्त सेना से (गोअग्रया) श्रेष्ठ इन्द्रिय, गौ और पृथिवी से युक्त (वीरशुष्मया) शूरवीर योद्धाओं के बल से युक्त (अश्वावत्या) प्रशंसनीय वेग बलयुक्त घोड़े वाली सेना के साथ वर्त्तमान होके शत्रुओं के साथ (सं रभेमहि) अच्छे प्रकार संग्राम को करें इस सब कार्य्य को करके लौकिक और पारमार्थिक सुखों को (रभेमहि) सिद्ध करें ॥५॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य विद्वान् की सहायता के बिना अच्छे प्रकार पुरुषार्थ की सिद्धि को प्राप्त नहीं हो सकता और निश्चय ही बल, आरोग्य, पूर्ण सामग्री और उत्तम शिक्षा से युक्त धार्मिक शूरवीर से युक्त चतुरंगिणी सेना के बिना शत्रुओं का पराजय वा विजय को प्राप्त नहीं हो सकता, इससे मनुष्यों का सर्वथा इन कार्यों की उन्नति करनी चाहिए ॥५॥

फिर उन मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ते त्वा मदा अमदन्तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते ।

यत्कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥६॥

पदार्थ—हे (सत्पते) सत्पुरुषों के पालन करनेवाले सभाध्यक्ष ! (यत्) जो आप (बर्हिष्मते) विज्ञानयुक्त (कारवे) कर्म करनेवाले मनुष्य के लिए (वृत्राणि) शत्रुओं को रोकनेहारे कर्म (दश) दश (सहस्राणि) हजार अर्थात् असंख्यात सेनाओं के (अप्रति) अप्रतीति जैसे हो वैसे प्रतिकूल कर्मों को (निबर्हयः) निरन्तर बढ़ाइए उस आपके आश्रित होकर (ते) वे (सोमासः) उत्तम-उत्तम पदार्थों को उत्पन्न करने (मदाः) आनन्दित करनेवाले शूरवीर धार्मिक विद्वान् लोग (त्वा) आपको (वृत्रहत्येषु) शत्रुओं के मारने योग्य संग्रामों में (तानि) उन (वृष्ण्या) सुख वर्षाने वाले उत्तम-उत्तम कर्मों को आचरण करते हुए (अमदन्) प्रसन्न होते हैं ॥६॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिए कि सत्पुरुषों के संग से अनेक साधनों को प्राप्त कर आनन्द भोगें ॥६॥

फिर वह सेनाध्यक्ष कैसा होवे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।

नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥७॥

पदार्थ - हे (इन्द्र) सभा सेनाध्यक्ष ! (यत्) जिस कारण तुम (धृष्णुया) दृढ़ता आदि गुणयुक्त (सख्या) मित्र समूह (युधा) युद्ध करनेवाले (ओजसा) बल के साथ (पुरा) पहिले (इदम्) इस (पुरम्) शत्रुओं के नगर को (हंसि) नष्ट करते तथा (युधम्) युद्ध करते हुए शत्रु को (इत्) भी (घ) निश्चय करके (एषि) प्राप्त करते और (नम्या) जैसे रात्रि अन्धकार से सब पदार्थों का आवरण करती है वैसे अन्याय से अन्धकार करनेवाले (नाम) प्रसिद्ध (नमुचिम्) छुटकारे से रहित (मायिनम्) छल कपटयुक्त दुष्ट कर्म करनेवाले मनुष्य वा पश्वादि को (परावति) दूर देश में (निबर्हयः) निःसारण करते हो इससे आपको मूर्द्धाभिषिक्त करके हम लोग सभाध्यक्ष के अधिकार में स्वीकार करके राजपदवी से मान्य करते हैं ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्यों को चाहिए कि बहुत उत्तम-उत्तम मित्रों को प्राप्त, दुष्ट शत्रुओं का निवारण, दुष्ट दल वा शत्रुओं के पुरों का विदारण, सब अन्यायकारी मनुष्यों को निरन्तर कैद घर में बाँध, ताड़ना दे और धर्मयुक्त चक्रवर्त्ति राज्य की प्रशासन करके उत्तम ऐश्वर्य को सिद्ध करें ॥७॥

फिर वह क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।

त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत् पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥८॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष ! जिस कारण (त्वम्) आप इस युद्ध व्यवहार में (तेजिष्ठया) अत्यन्त तीक्ष्ण सेना वा नीतियुक्त बल से (करञ्जम्) धार्मिकों को दुःख देने (पर्णयम्) दूसरे के वस्तु को लेनेवाले चोर को (उत) भी (वधीः) मारते और जो (अतिथिग्वस्य) अतिथियों के आने-जाने के वास्ते (वर्तनी) सत्कार करनेवाली क्रिया है उसकी रक्षा कर (अनानुदः) अनुकूल न वर्त्तने (वङ्गृदस्य) जहर आदि पदार्थों को देने वा दुष्ट व्यवहारों का उपदेश करनेवाले दुष्ट मनुष्य के (शता) असंख्यात (पुरः) नगरों को (अभिनत्) भेदन करते और जो (परिषूता) सब प्रकार से उत्पन्न किये हुए पदार्थ हैं उनकी (ऋजिश्वना) कोमल गुणयुक्त कुत्तों की शिक्षा करनेवाले के समान व्यवहार के साथ रक्षा करते हो इससे आप ही सभा आदि के अध्यक्ष होने योग्य हो ऐसा हम लोग निश्चय करते हैं ॥८॥

भावार्थ—राजमनुष्यों को दुष्ट शत्रुओं के छेदन से पूर्ण विद्यायुक्त परोपकारी धार्मिक अतिथियों के सत्कार के लिए सब प्राणी वा सब पदार्थों की रक्षा करके धर्मयुक्त राज्य का सेवन करना चाहिए जैसे कुत्ते अपने स्वामी की रक्षा करते हैं वैसी अन्य जन्तु रक्षा नहीं कर सकते इससे इन कुत्तों को सिखाकर इनकी रक्षा करनी चाहिए ॥८॥

त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।

षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥९॥

पदार्थ—हे सभा और सेना के अध्यक्ष ! जैसे (श्रुतः) श्रवण करनेवाले (त्वम्) तुम (एतान्) इन (अबन्धुना) अबन्धु अर्थात् मित्र रहित, अनाथ वा (सुश्रवसा) उत्तम श्रवण अन्नयुक्त मित्र के साथ वर्त्तमान (उपजग्मुषः) समीप होनेवाले (षष्टिम्) साठ (नवतिम्) नव्वे (नव) नौ (दश सहस्राणि) दस हजार (जनराज्ञः) धार्मिक राजायुक्त मनुष्यादिकों को (दुष्पदा) दुःख से प्राप्त होने योग्य (रथ्या) रथ को प्राप्त करनेवाले (चक्रेण) शस्त्र विशेष वा चक्रादि अङ्गयुक्त यान समूह से (द्विः) दो बार (न्यवृणक्) नित्य दुःखों से अलग करते हो वैसे तू भी पापाचरण से सदा दूर रह ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। चक्रवर्त्ति राजा को माण्डलिक वा महा-माण्डलिक राजा, भृत्य, गृहस्थ वा विरक्तों को प्रसन्न और शरणागत आये हुए मनुष्य की रक्षा करके धर्मयुक्त सार्वभौम राज्य का यथावत् पालन करना चाहिए और दश आदि से लेके सब संख्यावाची शब्द उपलक्षण के लिए हैं, इससे राजपुरुषों को योग्य है कि सब की यथावत् रक्षा वा दुष्टों को दण्ड देवें ॥९॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।

त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥१०॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभासेनाध्यक्ष ! (त्वम्) आप (अस्मै) इस (महे) महा उत्तम-उत्तम गुणयुक्त (यूने) युवावस्था में वर्त्तमान (राज्ञे) न्याय, विनय और विद्यादि गुणों से देदीप्यमान राजा के लिए (तव) आपके (ऊतिभिः) रक्षण आदि कर्मों से सेनादि सहित और (तव) वर्त्तमान आपके (त्रामभिः) रक्षा करनेवाले धार्मिक विद्वानों से रक्षा किये हुए जिस (अतिथिग्वम्) अतिथियों को प्राप्त करते कराते (तूर्वयाणम्) शत्रु बलों के हिंसा करनेवाले यान सहित (आयुम्) जीवन युक्त (सुश्रवसम्) उत्तम श्रवण वा अन्नादि युक्त मनुष्यों का (अरन्धनायः) पूर्ण धनवाले मनुष्य के समान आचार करते और (त्वम्) आप जिस (कुत्सम्) वज्र के समान वीर पुरुष की (आविथ) रक्षा करते हो उसको कुछ भी दुःख नहीं होता ॥१०॥

भावार्थ—राजपुरुषों को योग्य है कि शत्रुओं को निवारण कर सब की रक्षा करके सर्वथा उनको सुखयुक्त करें, तथा ये निश्चय करके राजोन्नतिरूपी लक्ष्मी से सदा युक्त रहें, और विद्याशाला अध्यक्ष उत्तम शिक्षा से सब विद्वानों को शस्त्रास्त्र, विद्या में कुशल, निपुण सम्पन्न करके इन से प्रजा की निरन्तर रक्षा करें ॥१०॥

फिर वे लोग परस्पर कैसे वर्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

य उदृचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम ।

त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥११॥१६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभासेनाध्यक्ष ! (ते) आपके (देवगोपाः) रक्षक विद्वान् वा दिव्य गुण कर्मों की रक्षा करने (शिवतमाः) अतिशय करके कल्याण लक्षणयुक्त (सखायः) परस्पर मित्र हम लोग (असाम) होवें (त्वया) आपके साथ रक्षा वा शिक्षा किये (सुवीराः) उत्तम वीरयुक्त (प्रतरम्) दुःख दूर करते (द्राघीयः) अत्यन्त विस्तारयुक्त सौ वर्ष से अधिक (आयुः) उमर को (दधानाः) धारण करके (उदृचि) उत्तम ऋचायुक्त अध्ययन व्यवहार में (त्वाम्) शुभ लक्षणयुक्त आपके (स्तोषाम) गुणों का कीर्त्तन करें ॥११॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को परस्पर निश्चित मैत्री, सब स्त्री-पुरुषों को उत्तम विद्यायुक्त जितेन्द्रियता आदि गुणों को ग्रहणकर और कराके पूर्ण आयु का भोग करना चाहिए ॥११॥

इस सूक्त में विद्वान् सभाध्यक्ष तथा प्रजा के पुरुषों को परस्पर प्रीति से वर्त्तमान रहकर सुख को प्राप्त करना कहा है, इससे इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह सोलहवां वर्ग और तिरेपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

卐

अथास्यैकादशर्चस्य चतुःपञ्चाशस्य सूक्तस्याङ्गिरस सव्य ऋषि । इन्द्रो देवता । १,४,१० विराड्जगती, २,३,५ निचृज्जगती, ७ जगती च छन्द । निषाद स्वर । ६ विराट् त्रिष्टुप्, ८,९, ११ निचृत् च छन्द । धैवत स्वर ॥

अब चौवनवें सूक्त का आरम्भ है उसके पहले मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

मा नो॑ अ॒स्मिन्म॑घवन् पृ॒त्स्वंह॑सि न॒हि ते॒ अन्त॒: शव॑सः परी॒णशे॑ ।
अक्र॑न्दयो न॒द्यो॒३॒॑ रोरु॑वद्वना क॒था न क्षो॒णीर्भि॒यसा॒ समा॑रत ॥१॥

पदार्थ - हे (मघवन्) उत्तम धनयुक्त जगदीश्वर ! जो आप (पृत्सु) सेनाओं (अस्मिन्) इस जगत् और (परीणशे) सब प्रकार से नष्ट करनेवाले (अंहसि) पाप मे हम लोगो को (माक्रन्दय) मत फँसाइए जिस (ते) आप के (शवस) बल के (अन्त) अन्त को कोई भी (नहि) नही पा सकता वह आप (नद्य·) नदियो के समान हमको मत भ्रमाइए (भियसा) भय से (मारोरुवत्) बार बार मत रुलाइए जो आप (क्षोणी.) बहुत गुणयुक्त पृथिवी के निर्माण व धारण करने को समर्थ हैं इसलिए मनुष्य आपको (कथा) क्यो (न) नहीं (समारत) प्राप्त होवें ॥१॥

भावार्थ - मनुष्यो को चाहिए कि जो परमेश्वर अनन्त होने से सत्य भाव के साथ, उपासना किया हुआ दु ख उत्पन्न करनेवाल अधर्म मार्ग से निवृत्त कर मनुष्यों को सुखी करता है, तथा अनन्त स्वरूप गुण होने से कोई भी उसके अन्त को ग्रहण नही कर सकता । इससे उस ईश्वर की उपासना को छोडके कौन अभागा पुरुष दूसरे की उपासना करे ॥१॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अर्चा॑ श॒क्राय॑ शा॒किने॒ शची॑वते शृ॒ण्वन्त॒मिन्द्रं॑ म॒हय॑न्न॒भि ष्टु॑हि ।
यो धृ॒ष्णुना॒ शव॑सा॒ रोद॑सी उ॒भे वृषा॑ वृष॒त्वा वृ॑ष॒भो न्यृ॒ञ्जते॑ ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जैसे (वृषा) जल वर्षाने और (वृषभ·) वर्षा के निमित्त बादलो को प्रसिद्ध करानेहारा सूर्य्य (वृषत्वा) सुखो की वर्षा के तत्त्व और (धृष्णुना) दृढता आदि गुणयुक्त (शवसा) आकर्षण बल से (उभे) दोनो (रोदसी) द्यावापृथिवी को (न्यृञ्जते) निरन्तर प्रसिद्ध करता है वैसे (य·) जो तू राज्य का यथायोग्य प्रबन्ध करता है उस (शाकिने) प्रशसनीय शक्ति आदि गुणयुक्त (शचीवते) प्रशसित बुद्धिमान् (शक्राय) समर्थ के लिए (अर्च) सत्कार कर उस सबके न्याय को (शृण्वन्तम्) श्रवण करने वाले (इन्द्रम्) प्रशसनीय ऐश्वर्ययुक्त सभाध्यक्ष का (महयन्) सत्कार करता हुआ (अभिष्टुहि) गुणो की प्रशसा किया कर ॥२॥

भावार्थ — जो गुणो की अधिकता होने से सार्वभौम सभाध्यक्ष धर्म से सब को शिक्षा देकर धर्म के नियमो मे स्थापन करता है उसी का सब मनुष्यो को सेवन वा आश्रय करना चाहिए ॥२॥

फिर वह सभाध्यक्ष कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है —

अर्चा॑ दि॒वे बृ॑ह॒ते शू॒ष्यं१॒॑ वच॒: स्वक्ष॑त्रं॒ यस्य॑ धृष॒तो धृ॒षन्मन॑: ।
बृ॒हच्छ्र॑वा॒ असु॑रो ब॒र्हणा॑ कृ॒तः पु॒रो हरि॑भ्यां वृष॒भो रथो॒ हि षः ॥३॥

पदार्थ हे विद्वन् मनुष्य ! तू (यस्य) जिस (धृषत) अधार्मिक दुष्टो का कर्मों के अनुसार फल प्राप्त करनेवाले सभाध्यक्ष का (धृषत्) दृढ कर्म करने वाला (मन) क्रियासाधक विज्ञान (हि) निश्चय करके है जो (बृहच्छ्रवा) महाश्रवण युक्त (असुर) जैसे प्रज्ञा देनेवाले (पुर) पूर्व (हरिभ्याम्) हरण-आहरण करने वा सुशिक्षित घोडो से युक्त मेघ (दिवे) सूर्य के अर्थ वर्त्तता है वैसे (वृषभ) पूर्वोक्त वर्षाने वालो के प्रकाश करनेवाले (रथ) यानसमूह को (बर्हणा) वृद्धि से (कृत) निर्मित किया है उस (बृहते) विद्यादि गुणो से वृद्ध (दिवे) शुभगुणो के प्रकाश करनेवाले के लिए (स्वक्षत्रम्) अपने राज्य बल और (शूष्यम्) बल तथा निपुणतायुक्त (वच) विद्या, शिक्षा प्राप्त करनेवाले वचन का (अर्च) पूजन अर्थात् उनके सहाय युक्त शिक्षा कर ॥ ३ ॥

भावार्थ – मनुष्यो को अपना राज्य, ईश्वर द्वारा इष्ट सभाध्यक्ष द्वारा प्रशासित एक मनुष्य के रूप म राजा के प्रशासन से रहित राज्य के रूप मे सम्पादन करना चाहिए जिससे कभी दु ख, अन्याय, आलस्य, अज्ञान और शत्रुओं के परस्पर विरोध से प्रजा पीडित नहीं होव ॥ ३ ॥

फिर वह सभाध्यक्ष कैसा होवे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों मे किया है—

त्वं दि॒वो बृ॑ह॒तः सानु॑ कोप॒योऽव॒ त्मना॑ धृष॒ता शम्ब॑रं भिनत् ।
यन्मा॒यिनो॑ व्र॒न्दिनो॑ म॒न्दिना॑ धृ॒षच्छि॒तां गभ॑स्तिम॒शनिं॑ पृत॒न्यसि॑ ॥४॥

पदार्थ हे सभाध्यक्ष ! जो (धृषत्) शत्रुओं का धर्षण करता (त्वम्) आप जैसे सूर्य्य (बृहत) महा सत्य, शुभ गुणयुक्त (दिव) प्रकाश से (सानु) सेवने योग्य मेघ के शिखरों पर (शिताम्) अतितीक्ष्ण (अशनिम्) छेदन-भेदन करने से वज्रस्वरूप बिजुली और (गभस्तिम्) वज्ररूप किरणों का प्रसार कर (शम्बरम्) मेघ को (भिनत्) काटके भूमि में गिरा देता है वैसे शस्त्र और अस्त्रों को चलाके अपने (त्मना) आत्मा से दुष्ट मनुष्यो को (अवकोपय·) कोप कराते (व्रन्दिन) निन्दित मनुष्यादि समूहो वाले (मायिन) कपटादि दोषयुक्त मनुष्यों को विदीर्ण करते और उनके निवारण के लिए (पृतन्यसि) अपने न्यायादि गुणों की प्रकाश करनेवाली विद्या वा वीर पुरुषो से युक्त सेना की इच्छा करते हो सो आप राज्य के योग्य होते हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे जगदीश्वर पापकर्म करनेवाले मनुष्यों के लिए अपने अपने पाप के अनुसार दुःख के फलो को देकर यथा योग्य पीडा देता है इसी प्रकार सभाध्यक्ष को चाहिए कि शस्त्रों और अस्त्रो की शिक्षा से धार्मिक शूर वीर पुरुषो की सेना को सिद्ध और दुष्ट कर्म करनेवाले मनुष्यों का निवारण करके धर्मयुक्त प्रजा का निरन्तर पालन करे ॥ ४ ॥

नि यद्वृ॒णक्षि॑ श्वस॒नस्य॑ मू॒र्धनि॒ शुष्ण॑स्य चिद् व्र॒न्दिनो॒ रोरु॑वद्वना ।
प्रा॒ची॒नेन॒ मन॑सा ब॒र्हणा॑वता॒ यद॒द्या चि॑त्कृ॒णव॒: कस्त्वा॒ परि॑ ॥५॥१७॥

पदार्थ -हे सभाध्यक्ष विद्वन् ! (यत्) जो आप जैसे सविता (वना) रश्मियुक्त मेघ का निवारण करता है वैसे (प्राचीनेन) सनातन (बर्हणावता) अनेक प्रकार वृद्धियुक्त (मनसा) विज्ञान से (श्वसनस्य) प्राणवबलवान् (शुष्णस्य) शोषणकर्ता के (मूर्धनि) उत्तम अङ्ग मे प्रहार के (चित्) समान (व्रन्दिन) निन्दित कर्म करनेवाले दुष्ट मनुष्यो को (रोरुवत्) रोदन कराते हुए (यत्) जिस कारण (अद्य) आज (निवृणक्षि) निरन्तर उन दुष्टो को अलग करते हो इससे (चित्) भी (त्वा) आप के (कृणव) मारने को (क) कोई भी समर्थ (परि) नही हो सकता ॥ ५ ॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे परमेश्वर अपने अनादि विज्ञानयुक्त न्याय से सब को शिक्षा देता और काट-काटकर गिराता है वैसे ही सभापति आदि धर्म से सब को शिक्षा देवें और शत्रुओ को नष्ट-भ्रष्ट करें ॥ ५ ॥

त्वमा॑विथ॒ नर्यं॑ तु॒र्वशं॒ यदुं॒ त्वं तु॒र्वीतिं॑ व॒य्यं॑ शतक्रतो ।
त्वं रथ॒मेत॑शं॒ कृत्व्ये॒ धने॒ त्वं पुरो॑ नव॒तिं द॑म्भयो॒ नव॑ ॥६॥

पदार्थ– हे (शतक्रतो) बहुत बुद्धियुक्त विद्वन् सभाध्यक्ष ! जिस कारण (त्वम्) आप (नर्यम्) मनुष्यो मे कुशल (तुर्वशम्) उत्तम (यदुम्) यत्न करनेवाले मनुष्य की रक्षा (त्वम्) आप (तुर्वीतिम्) दोष वा दुष्ट प्राणियो को नष्ट करनेवाले (वय्यम्) ज्ञानवान् मनुष्य की रक्षा और (त्वम्) आप (कृत्व्ये) सिद्ध करने योग्य (धने) विद्या, चक्रवर्त्ति राज्य से सिद्ध हुए द्रव्य के विषय (एतशम्) वेगादि गुण वाले अश्वादि से युक्त (रथम्) सुन्दर रथ की (आविथ) रक्षा करते और (त्वम्) आप दुष्टो के (नव) नौ सख्यायुक्त (नवतिम्) नव्वे अर्थात् निन्नाणवे (पुर) नगरो को (दम्भय) नष्ट करते हो इस कारण इस राज्य मे आप ही का आश्रय हम लोगो को करना चाहिए ॥ ६ ॥

भावार्थ मनुष्यो को योग्य है कि जो राज्य की रक्षा करने मे समर्थ न होवे उस को राजा कभी न बनावें ॥ ६ ॥

फिर उस सभाध्यक्ष को क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है —

स घा॒ राजा॒ सत्प॑तिः शूशुव॒ज्जनो॑ रा॒तह॑व्य॒: प्रति॒ यः शास॒मिन्व॑ति ।
उ॒क्था वा॒ यो अ॑भिगृ॒णाति॒ राध॑सा॒ दानु॑रस्मा॒ उप॑रा पिन्वते दि॒वः ॥७॥

पदार्थ-- (य) जो (रातहव्य.) हव्य पदार्थों को देने (सत्पति) सत्पुरुषों का पालन करने (जन) उत्तम गुण और कर्मों से सहित वर्त्तमान (राजा) न्याय, विनयादि गुणो से प्रकाशमान सभाध्यक्ष (प्रतिशासम्) शास्त्र-शास्त्र के प्रति प्रजा को (इन्वति) न्याय मे व्याप्त करता (वा) अथवा (शूशुवत्) राज्य करने को जानता है और जो (राधसा) न्याय करके प्राप्त हुए धन से (दानु) दानशील हुआ (उक्था) कहने योग्य वेदस्तोत्र वा वचनों को (अभिगृणाति) सब मनुष्यों के लिए उपदेश करता है (अस्मै) इस सभाध्यक्ष के लिए (दिव उपरा) जैसे सूर्य के प्रकाश से मेघ उत्पन्न होकर भूमि को (पिन्वते) सींचता है वैसे सब सुखो को (पिन्वते) सेवन करे (स) वही राज्य कर सकता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । कोई भी मनुष्य उत्तम विद्या, विनय, न्याय और वीर पुरुषो की सेना के ग्रहण वा अनुष्ठान के बिना राज्य पर शासन करने, शत्रुओ के जीतने और सब सुखो का प्राप्त करने मे समर्थ नहीं हो सकता, इसलिए सभाध्यक्ष को इन बातो का अवश्य अनुष्ठान करना चाहिए ॥ ७ ॥

फिर वह क्या करे, यह विषय अगले मन्त्रों मे कहा है—

अस॑मं क्ष॒त्रमस॑मा मनी॒षा प्र सो॑म॒पा अप॑सा सन्तु॒ नेमे॑ ।
ये त॑ इन्द्र द॒दुषो॑ व॒र्धय॑न्ति॒ महि॑ क्ष॒त्रं स्थवि॑रं॒ वृष्ण्यं॑ च ॥८॥

पदार्थ - हे (इन्द्र) सभाध्यक्ष ! जो (ददुष·) दान करते हुए (ते) आप का (असमम्) समता रहित कर्म वा सादृश्य रहित (क्षत्रम्) राज्य तथा (असमा) समता वा उपमा रहित (मनीषा) बुद्धि होवे तो (ये) जो (नेमे) सब (सोमपा.) सोम आदि ओषधिरसो के पीनेवाले धार्मिक विद्वान् पुरुष (अपसा) कर्म से (स्थविरम्) वृद्ध (वृष्ण्यम्) शत्रुओं के बलनाशक सुख वर्षाने

वालों के लिए कल्याणकारक (महि) महागुणयुक्त (क्षत्रम्) राज्य को (प्रवर्धयन्ति) बढ़ाते हैं वे सब आप की सभा में बैठने योग्य सभासद् (च) और भृत्य (सन्तु) होवें ॥ ८ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को प्रजा से और प्रजा में रहनेवाले पुरुषों को राजपुरुषों से विरोध कभी न करना चाहिए किन्तु परस्पर प्रीति का उपकार बुद्धि के साथ सब राज्य को सुखों से बढ़ाना चाहिए क्योंकि इस प्रकार किये विना राज्य पालन की व्यवस्था निश्चित नहीं हो सकती ॥ ८ ॥

तुभ्येदेते बहुला अद्रिदुग्धाश्चमूषदश्चमसा इन्द्रपानाः ।
व्यश्नुहि तर्पया काममेषामथा मनो वसुदेयाय कृष्व ॥९॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभाध्यक्ष ! जैसे (एते) ये (बहुलाः) बहुत सुख वा कर्मों को देनेवाले (इन्द्रपानाः) परमैश्वर्य के हेतु सूर्य्य को प्राप्त होनेहारे (चमसाः) मेघ सब कर्मों को पूर्ण करते हैं वैसे (अद्रिदुग्धाः) मेघ वा पर्वतों से प्राप्तविद्या (चमूषदः) सेनाओं में स्थित शूरवीर पुरुष (तुभ्यम्) आप को तृप्त करें तथा आप इन को (वसुदेयाय) सुन्दर धन देने के लिए (मनः) मन (कृष्व) कीजिए और आप इन को (तर्पय) तृप्त वा (एषाम्) इन की (कामम्) कामना पूर्ण कीजिए (अथ) इस के अनन्तर (इत्) ही सब कामनाओं को (व्यश्नुहि) प्राप्त हूजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—सभा आदि के अध्यक्ष उत्तम शिक्षा वा पालन से उत्पादन किये हुए शूरवीरों और प्रजा की निरन्तर पालना करके इनके लिए सब सुखों को देवें और वे प्रजा के पुरुष भी सभाध्यक्षादिकों को निरन्तर सन्तुष्ट रक्खें जिससे सब कामना पूर्ण होवें ॥ ९ ॥

अब वह सूर्य्य के समान क्या करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया गया है—

अपामतिष्ठद् धरुणह्वरं तमोऽन्तर्वृत्रस्य जठरेषु पर्वतः ।
अभीमिन्द्रो नद्यो वव्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्नते ॥१०॥

पदार्थ—हे सभेश ! (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य देनेहारे आप जैसे सूर्य्य (वृत्रस्य) मेघ सम्बन्धी (अपाम्) जलों के (अन्तः) मध्यस्थ (जठरेषु) जहाँ से वर्षा होती है उनमें (धरुणह्वरम्) धारण करनेवाला कुटिल कर्मों का हेतु (तमः) अन्धकार (अतिष्ठत्) स्थित है उसका निवारण कर (वव्रिणा) रूप से सह वर्त्तमान जो (पर्वतः) पक्षीवत् आकाश में उड़ने हारा मेघ (ईम्) जल को (अभि) सम्मुख गिराता है जिससे (प्रवणेषु) नीचे स्थानों में (अनुष्ठाः) अनुकूलता से बहनेहारी (विश्वा) सब (हिताः) प्रतिक्षण चलनेवाली (नद्यः) नदियाँ (जिघ्नते) समुद्र पर्यन्त चली जाती हैं वैसे आप हूजिए ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य जिस जल को आकर्षण कर अन्तरिक्ष में पहुँचाता और उस को वायु धारण करता है जब वह जल मिल तथा पर्वताकार होकर सूर्य के प्रकाश का आवरण करता है उस को बिजुली छेदन करके भूमि में गिरा देती है । उस से उत्पन्न हुई, नानारूपयुक्त नीचे जानेवाली चलती हुई नदियाँ पृथिवी, पर्वत और वृक्षादिकों को छिन्न-भिन्न कर, फिर वह जल समुद्र वा अन्तरिक्ष को प्राप्त होकर बार-बार इसी प्रकार वर्षता है, सभाध्यक्षादिकों को भी वैसा होना चाहिए ॥ १० ॥

फिर सभा के अध्यक्ष के कृत्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

स शेवृधमधि धा द्युम्नमस्मे महि क्षत्रं जनाषाळिन्द्र तव्यम् ।
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीन्राये च नः स्वपत्या इषे धाः ॥११॥१८॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य्य-सम्पादक सभाध्यक्ष ! जो (जनाषाट्) जनों को सहन करनेहारे आप (अस्मे) हम लोगों के लिए (शेवृधम्) सुख (तव्यम्) बलयुक्त (महि) महासुखदायक पूजनीय (क्षत्रम्) राज्य को (अधि, धाः) अच्छे प्रकार सर्वोपरि धारण कर (मघोनः) प्रशंसनीय धन वा (नः) हम लोगों की (रक्ष) रक्षा (च) और (सूरीन्) बुद्धिमान् विद्वानों की (पाहि) रक्षा कीजिए (च) और (नः) हम लोगों के (राये) धन (च) और (स्वपत्यै) उत्तम अपत्ययुक्त (इषे) इष्टरूप राजलक्ष्मी के लिए (द्युम्नम्) कीर्तिकारक धन को (धाः) धारण करते हो (सः) वह आप हम लोगों से सत्कार योग्य क्यों न होवें ॥ ११ ॥

भावार्थ—सभाध्यक्ष को योग्य है कि सब प्रजा की अच्छे प्रकार रक्षा कर और सब शिक्षितों को विद्वान् बना कर चक्रवर्त्ति राज्य वा धन की उन्नति करे ॥११॥

इस सूक्त में सूर्य्य, बिजुली, सभाध्यक्ष, शूरवीर और राज्य की पालना आदि का विधान किया है इससे इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ।

यह अठारहवां वर्ग और चौअनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

卐

अथास्याऽष्टर्चस्य पञ्चपञ्चाशस्य सूक्तस्याङ्गिरसः सव्य ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
१, ४ जगती, २, ५—७ निचृज्जगती, ३, ८ विराड्जगती
च छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब पचपनवें सूक्त के पहले मन्त्र में सभाध्यक्ष के गुणों का उपदेश किया है—

दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ इन्द्रं न मह्ना पृथिवी चन प्रति ।
भीमस्तुविष्माञ्चर्षणिभ्य आतपः शिशीते वज्रं तेजसे न वंसगः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (अस्य) इस सविता के (दिवः) प्रकाश से (वरिमा) उत्तमता का भाव (मह्ना) बड़ाई से (विपप्रथे) विशेष करके प्रसिद्ध होता है (पृथिवी) जिसके बराबर भूमि (चन) भी तुल्य (न) नहीं और न (आतपः) सब प्रकार प्रतापयुक्त (वंसगः) बलवान् विभागकर्त्ता के समान सविता (पृथिवी) भूमि के (प्रति) मध्य में (तेजसे) प्रकाशार्थ (वज्रम्) किरणों को (शिशीते) अति शीतल उदक में प्रक्षेप करता है वैसे जो दुष्टों के लिए भयङ्कर, धर्मात्माओं के वास्ते सुखदाता होके प्रजाओं का पालन करे वह सब से सत्कार के योग्य है, अन्य नहीं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्यमण्डल सब लोकों से उत्कृष्ट, गुणयुक्त और बड़ा है और जैसे सांड गोसमूहों में उत्तम और बलवान् होता है वैसे उत्कृष्ट गुणयुक्त बड़े मनुष्य को सभा आदि का पति बनाना चाहिए और वे सभाध्यक्षादि दुष्टों को भय देने और धार्मिकों के लिए आप भी धर्मात्मा होके सुख देनेवाले सदा होवें ॥ १ ॥

फिर वह कैसे गुण वाला हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सो अर्णवो न नद्यः समुद्रियः प्रति गृभ्णाति विश्रिता वरीमभिः ।
इन्द्रः सोमस्य पीतये वृषायते सनात्स युध्म ओजसा पनस्यते ॥२॥

पदार्थ—जो (इन्द्रः) सभाध्यक्ष सूर्य के समान (सोमस्य) वैद्यक विद्या से सम्पादित वा स्वभाव से उत्पन्न हुए रस के (पीतये) पीने के लिए (वृषायते) बैल के समान आचरण करता है (सः) वह (युध्मः) युद्ध करनेवाला पुरुष (न) जैसे (विश्रिताः) नाना प्रकार के देशों का सेवन करनेहारी (नद्यः) नदियाँ (अर्णवः) समुद्र को प्राप्त होके स्थिर होती और जैसे (समुद्रियः) सागरों में चलने योग्य नौकादि यान समूह पार पहुँचाता है जैसे (सनात्) निरन्तर (ओजसा) बल से (वरीमभिः) धर्म वा शिल्पी क्रिया से (पनस्यते) व्यवहार करनेवाले के समान आचरण और पृथिवी आदि के राज्य को (प्रतिगृभ्णाति) ग्रहण कर सकता है वह राज्य करने और सत्कार के योग्य है उस को सब मनुष्य स्वीकार करें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे समुद्र नाना प्रकार के रत्न और नाना प्रकार की नदियों को अपनी महिमा से अपने में धारण करता है वैसे ही सभाध्यक्ष आदि भी अनेक प्रकार के पदार्थ और अनेक प्रकार की सेनाओं को स्वीकार कर दुष्टों को जीत और श्रेष्ठों की रक्षा करके अपनी महिमा फैलावें ॥ २ ॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे महो नृम्णस्य धर्मणामिरज्यसि ।
प्र वीर्येण देवताति चेकिते विश्वस्मा उग्रः कर्मणे पुरोहितः ॥३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभाध्यक्ष ! जो (देवता) विद्वान् (उग्रः) तीव्रकारी (पुरोहितः) पुरोहित के समान उपकार करनेवाले (त्वम्) आप जैसे बिजुली (पर्वतम्) मेघ के आश्रय करनेवाले बद्दलों के (न) समान (वीर्येण) पराक्रम से (भोजसे) पालन वा भोग के लिए (तम्) उस शत्रु को हनन कर (महः) बड़े (नृम्णस्य) धन और (धर्मणाम्) धर्मों के योग से (अतीरज्यसि) अतिशय ऐश्वर्य करते हो और जो आप (विश्वस्मै) सब (कर्मणे) कर्मों को (प्रचेकिते) जानते हो वह आप हम लोगों में राजा हूजिए ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य प्रवृत्ति का आश्रय और धन का सम्पादन करके भोगों को प्राप्त करते हैं वे सभाध्यक्ष के सहित विद्या, बुद्धि, विनय और धर्मयुक्त वीर पुरुषों की सेना को प्राप्त होकर दुष्ट जनों के विषय में तेजधारी और धर्मात्माओं में क्षमायुक्त हो, सब के हितकारक होते हैं ॥ ३ ॥

फिर वह कैसा कर्म करे, यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

स इद्वने नमस्युभिर्वचस्यते चारु जनेषु प्रब्रुवाण इन्द्रियम् ।
वृषा छन्दुर्भवति हर्यतो वृषा क्षेमेण धेनां मघवा यदिन्वति ॥४॥

पदार्थ—(यत्) जो अध्यापक वा उपदेशकर्त्ता (वने) एकान्त में एकाग्र चित्त से (जनेषु) प्रसिद्ध मनुष्यों में (चारु) सुन्दर (इन्द्रियम्) मन को (प्रब्रुवाणः) अच्छे प्रकार कहता (हर्यतः) और सब को उत्तम बोध की कामना करता हुआ (प्रभवति) समर्थ होता है (वृषा) दृढ़ (मघवा) प्रशंसित विद्या और धनवाला (छन्दुः) स्वच्छन्द (वृषा) सुख वर्षानेवाला (क्षेमेण) रक्षण के सहित (धेनाम्) विद्या, शिक्षायुक्त वाणी को (इन्वति) व्याप्त करता है (स इत्) वही (नमस्युभिः) नम्र विद्वानों से (वचस्यते) प्रशंसा को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—उत्तम विद्वान् सभाध्यक्ष सब मनुष्यों के लिए सब विद्याओं को प्राप्त करके सब को विद्यायुक्त, बहुश्रुत, सुशिक्षित वा स्वच्छन्दतायुक्त करे कि जिससे सब सन्देह शून्य होकर सदा सुखी रहें ॥ ४ ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

स इन्महानि समिथानि मज्मना कृणोति युध्म ओजसा जनेभ्यः ।
अधा चन श्रद्दधति त्विषीमत इन्द्राय वज्रं निघनिघ्नते वधम् ॥५॥१९॥

पदार्थ—जो (**स**) वह (**युध्म**) युद्ध करनेवाला उपदेशक (**मज्मना**) बल वा (**ओजसा**) पराक्रम से युक्त होके (**जनेभ्य**) मनुष्यादिकों के सुख के लिए उपदेश से (**महानि**) बड़े पूजनीय (**समिथानि**) संग्रामों को जीतनेवाले के तुल्य अविद्या विजय को (**कृणोति**) करता है (**वज्रम्**) वज्रप्रहार के समान शत्रुओं के (**वधम्**) मारने को (**निघनिघ्नते**) मारनेवाले के समान आचरण करता है सो (**अध**) इस के अनन्तर (**इत्**) ही (**अस्मै**) इस (**त्विषीमते**) प्रशंसनीय प्रकाशयुक्त (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्य की प्राप्ति करानेवाले के लिए सब मनुष्य लोग (**जन**) भी (**श्रद्दधति**) प्रीति से सत्य का धारण करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे सूर्य मेघ को उत्पन्न, काट और वर्षा करके अपने प्रकाश में सब मनुष्यों को आनन्दयुक्त करता है वैसे ही अध्यापक और उपदेशक अन्धपरम्परा को निवारण कर विद्या, न्यायादि का प्रकाश करके सब प्रजा को सुखी करें ॥५॥

फिर वह क्या करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

स हि श्रंवस्युः सदनानि कृत्रिमा क्ष्मया वृधान ओजंसा विनाशयन् ।
ज्योतींषि कृण्वन्नवृकाणि यज्यवेऽव सुक्रतुः सर्तवा अपः सृंजत् ॥६॥

पदार्थ—जो (**सुक्रतु**) श्रेष्ठ बुद्धि वा कर्मयुक्त (**ओजसा**) पराक्रम से (**क्ष्मया**) पृथिवी के साथ (**वृधान**) बढ़ता हुआ और (**श्रवस्युः**) अपने आत्मा के वास्ते अन्न की इच्छा से सब शास्त्रों का श्रवण कराता हुआ (**यज्यवे**) राज्य के अनुष्ठान के वास्ते (**सर्तवै**) जाने-आने को (**कृत्रिमाणि**) किये हुए (**अवृकाणि**) चोरादि रहित (**सदनानि**) मार्ग और सुन्दर घरों को सुशोभित (**कृण्वन्**) करता हुआ (**अप**) जलों का वर्षानेहारा (**ज्योतींषि**) चन्द्रादि नक्षत्रों को प्रकाशित करते हुए सूर्य्य के तुल्य (**विनाशयन्**) अविद्या का नाश करता हुआ राज्य (**अवसृजत्**) बनावे, वही सब मनुष्यों को माता, पिता मित्र और रक्षक मानने योग्य है ॥६॥

भावार्थ –इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्य, जो सूर्य्य के सदृश विद्या धर्म और राजनीति का प्रचारकर्त्ता होके सब मनुष्यों को उत्तम बोधयुक्त करता है वह सब मनुष्यादि प्राणियों का कल्याणकारी है, ऐसा जानें ॥६॥

फिर वह कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

दानाय मनः सोमपावन्नस्तु तेऽर्वाञ्चा हरी वन्दनश्रुदा कृधि ।
यमिष्ठासः सारथयो य इन्द्र ते न त्वा केता आ दंभ्नुवन्ति भूर्णयः ॥७॥

पदार्थ—हे (**वन्दनश्रुत्**) स्तुति वा भाषण के सुनने-सुनाने और (**सोमपावन्**) श्रेष्ठ रसों के पीनेवाले (**इन्द्र**) परमैश्वर्ययुक्त सभाध्यक्ष ! (**ते**) आपका (**मन**) मन (**दानाय**) पुत्रों को विद्यादि दान के लिए (**अस्तु**) अच्छे प्रकार होवे जैसे वायु वा सूर्य्य के (**अर्वाञ्चा**) वेगादि गुणों को प्राप्त करान वाली (**हरी**) धारणाकर्षण गुण और जैसे (**भूर्णय**) पोषक (**यमिष्ठास**) अतिशय करके यमन करता (**सारथय**) रथों को चलाने वाले सारथि घोड़े आदि को सुशिक्षा कर नियम में रखते हैं वैसे तू सब मनुष्यादि को धर्म में चला और सब में (**केता**) शास्त्रीय प्रज्ञाओं को (**आकृधि**) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिए, इस प्रकार करने से (**ये**) जो तेरे शत्रु हैं वे (**ते**) तेरे वश में हो जाएँ, जिससे (**त्वा**) तुझको (**न दभ्नुवन्ति**) दु:खित न कर सकें ॥७॥

भावार्थ— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे उत्तम सारथि घोड़े को अच्छे प्रकार शिक्षा देकर नियम में चलाता है और जैसे शिक्षा चलनेवाला ॥ नियन्ता है वैसे धार्मिक पढ़ाने और उपदेश करनेहारे विद्वान् सत्यावधा और सत्य-उपदेशों से सबको सत्याचार में निश्चित करें । इन दोनों के बिना मनुष्यों का धर्मात्मा बनाने में कोई भी समर्थ नहीं हो सकता ॥७॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है -

अप्रक्षितं वसुं बिभर्षि हस्तयोरषाळ्हं सहंस्तन्वि श्रुतो दंधे ।
आवृतासोऽवतासो न कर्तृभिस्तनूषु ते क्रतंव इन्द्र भूरयः ॥८॥२०॥

पदार्थ - हे (**इन्द्र**) सभाध्यक्ष ! (**श्रुत**) प्रशंसायुक्त तू जिस (**अप्रक्षितम्**) क्षयरहित (**वसु**) धर्म और (**अषाढम्**) शत्रुओं से असह्य (**सह**) बल को (**तन्वि**) शरीर में (**हस्तयो**) हाथ में आंवले के फल के समान (**बिभर्षि**) धारण करता है जो (**आवृतास**) सुखों से युक्त (**अवतास**) अच्छे प्रकार रक्षित मनुष्यों के (**न**) समान (**ते**) आपकी (**भूरय**) बहुत शास्त्र विद्यायुक्त (**क्रतव**) बुद्धि और कर्मों का (**कर्तृभि**) पुरुषार्थी मनुष्य (**तनूषु**) शरीरों में धारण करते हैं उनको मैं (**दधे**) धारण करता हूँ ॥८॥

भावार्थ इस मन्त्र में उपमालंकार है । जैसे सभासद् वा विद्वान् लोग क्षय रहित विज्ञान बल, धन, श्रवण और बहुत उत्तम कर्मों का धारण करते हैं वैसे ही ये सब कर्म प्रजा के मनुष्यों का भी धारण करने चाहिएँ ॥८॥

इस सूक्त में सूर्य्य, प्रजा और सभाध्यक्ष के कृत्य का वर्णन किया है, इसी से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह बीसवाँ वर्ग और पचपनवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

卐

अथास्य षडर्चस्य षट्पञ्चाशस्य सूक्तस्याङ्गिरस सव्य ऋषि । इन्द्रो देवता ।
१,३,४, निचृज्जगती, २ जगती च छन्द । निषाद स्वर ।
५ त्रिष्टुप्, ६ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्द । धैवत. स्वर ॥

अब छप्पनवें सूक्त का आरम्भ है, उसके पहले मन्त्र में अध्यापक और उपदेशक के गुणों का उपदेश किया है—

एष प्र पूर्वीरव तस्यं चम्रिषोऽत्यो न योषामुदयंस्त भुर्वणिः ।
दक्षं महे पाययते हिरण्ययं रथमावृत्या हरियोगमृभ्वंसम् ॥ १ ॥

पदार्थ– जो (**एष**) यह (**भुर्वणि**) धारण वा पोषण करनेवाला सभा का अध्यक्ष वा सूर्य (**न**) जैसे (**अत्य**) घोड़ा घोड़ियों से संयोग करता है वैसे (**योषाम्**) विदुषी स्त्री से युक्त होके (**तस्य**) उस परमैश्वर्य की प्राप्ति के लिए (**चम्रिष**) भोगों को करनेवाली (**पूर्वी**) सनातन प्रजा को (**अवोदयंस्त**) अच्छे प्रकार अधर्म वा निकृष्टता से निवृत्त कर वह उस प्रजा के वास्ते (**महे**) पूजनीय मार्ग में कान आदि इन्द्रियों को (**आवृत्य**) युक्तकर (**हिरण्ययम्**) बहुत तेज वा सुवर्ण (**ऋभ्वसम्**) मनुष्यादिकों के प्रक्षेपण करनेवाला (**हरियोगम्**) अग्नियुक्त वा अश्वादि युक्त हुए (**दक्षम्**) बल, चतुरता वा शिल्पी मनुष्ययुक्त (**रथम्**) यानसमूह को (**आवृत्य**) सामग्री से आच्छादन करके सुखरूपी रसों को (**पाययते**) पान कराता है, वह सबसे मान को प्राप्त होता है ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालंकार हैं । उपदेशक अपने तुल्य विदुषी स्त्री के साथ विवाह करके, जैसे आप पुरुषों को उपदेश और बालकों को पढ़ावे वैसे उस की स्त्री स्त्रियों को उपदेश और कन्याओं को पढ़ावे । ऐसा करने से किसी ओर से अविद्या और भय से दुःख नहीं हो सकता ॥१॥

फिर वे कैसे हों, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है —

तं गूर्तयो नेमन्निषः परीणसः समुद्रं न सञ्चरणे सनिष्यवः ।
पतिं दक्षस्य विदथस्य नू सहो गिरिं न वेना अधि रोह तेजसा ॥२॥

पदार्थ -हे कन्ये ! तू (**सञ्चरणे**) अच्छे प्रकार समागम में (**न**) जैसे (**सनिष्यव**) सम्यक् विविध देशों का सेवन करनेहारी नदियाँ (**समुद्रम्**) सागर को प्राप्त होती हैं और (**न**) जैसे बद्दल (**गिरिम्**) मेघ को प्राप्त होते हैं वैसे जो (**परीणस**) बहुत (**नेमन्निष**) प्राप्त होने योग्य इष्ट सुखदायक (**गूर्तय**) उद्यमयुक्त बुद्धिमती ब्रह्मचारिणी और (**वेना**) बुद्धिमान् ब्रह्मचारी समावर्त्तन के पश्चात् परस्पर प्रीति के साथ विवाह करें (**दक्षस्य**) हे कन्ये ! तू सब विद्याओं में अति चतुर (**विदथस्य**) पूर्णविद्यायुक्त विद्वान् से विद्या को प्राप्त हुए (**पतिम्**) स्वामी को (**अधिरोह**) प्राप्त हो (**तेजसा**) अतीव तेज से (**तम्**) उसको प्राप्त होके (**सह**) बल को (**नु**) शीघ्र प्राप्त हो ॥२॥

भावार्थ इस मन्त्र में उपमालंकार है । सब लड़के और लड़कियों को योग्य है कि यथावत् ब्रह्मचर्य्य के सेवन से सम्पूर्ण विद्याओं को पढ़के पूर्ण युवावस्था में अपने तुल्य गुण कर्म और स्वभावों की परस्पर परीक्षा करके अतीव प्रेम के साथ विवाह कर पुन जो पूर्ण विद्यावाले हों तो लड़का-लड़कियों को पढ़ाया करें, जो क्षत्रिय हों तो राजपालन और न्याय किया करें, जो वैश्य हों तो अपने वर्ण के कर्म और जो शूद्र हों तो अपने कर्म किया करें ॥२॥

स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः ।
येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि ॥३॥

पदार्थ – हे (वर की इच्छा करनेहारी कन्या ! जैसे तू जो (**तुर्वणि**) शीघ्र सुखकारी (**दुध्र**) बल से पूर्ण (**आयस**) विज्ञान से युक्त (**महान्**) सर्वोत्कृष्ट (**पौंस्ये**) पुरुषार्थयुक्त व्यवहार में प्रवीण (**तुजा**) दुःखों का नाशक (**आभूषु**) सब प्रकार सबको सुभूषितकारक (**अरेणु**) क्षयरहित कर्म को (**मदे**) हर्षित होने में (**रामयन्**) क्रीडा का हेतु (**शव**) उत्तम बल को प्राप्त होके (**न**) जैसे (**गिरे**) मेघ के (**भृष्टि**) उत्तम शिखर (**भ्राजते**) प्रकाशित होते हैं वैसे (**तम्**) उस (**शुष्णम्**) बलयुक्त (**मायिनम्**) अत्युत्तम बुद्धिमान् वर को (**येन**) जिस बल से (**दामनि**) सुखदायक गृहाश्रम में स्वीकार करती हो वैसे (**स**) वह वर भी तुझे उसी बल से प्रेमबद्ध करे ॥३॥

भावार्थ - इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार है । अति उत्तम विवाह वह है जिस में तुल्य रूप स्वभावयुक्त कन्या और वर का सम्बन्ध होवे, परन्तु कन्या से वर का बल और आयु ड्योढ़ा वा दूना होना चाहिए ॥३॥

देवी यदि तविषी त्वावृधोतय इन्द्रं सिषक्त्युषसं न सूर्यः ।
यो धृष्णुना शवसा बाधते तम इयर्ति रेणुं बृहदर्हरिष्वणिः ॥४॥

पदार्थ - हे स्त्रि ! (**य**) जो (**अर्हरिष्वणि**) अहिंसक, धार्मिक और पापी लोगों का विवेककर्त्ता पुरुष (**धृष्णुना**) दृढ़ (**शवसा**) बल से (**न**) जैसे (**सूर्य्य**) रवि (**उषसम्**) प्रातः समय को प्राप्त होके (**बृहत्**) बड़े (**तम:**) अन्धकार को दूर कर देता है वैसे तेरे दुःख को दूर कर देता है । हे पुरुष ! (**यदि**) जो (**त्वावृधा**) तुझे सुख से बढ़ानेहारी (**तविषी**) पूर्ण बलयुक्त (**देवी**) विदुषी अतीव प्रिया स्त्री (**रेणुम**) रमणीय स्वरूप तुझको (**इयर्ति**) प्राप्त होती है और (**ऊतये**) रक्षादि के वास्ते (**इन्द्रम्**) परम सुखप्रद तुझ (**सिषक्ति**) उत्तम सुख से युक्त करती है सो तू और वह स्त्री दोनों एक दूसरे के आनन्द के लिए सदा वर्त्ता करो ॥४॥

भावार्थ— इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । जब स्त्री से प्रसन्न पुरुष और पुरुष से प्रसन्न स्त्री होवे तभी गृहाश्रम में निरन्तर आनन्द बढ़े ॥४॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वि यत्तिरो धरुणमच्युतं रजोऽतिष्ठिपो दिव आतासु बर्हणा ।

स्वर्मीळ्हे यन्मद इन्द्र हर्ष्याऽहन् वृत्रं निरपामौब्जो अर्णवम् ॥५॥

पदार्थ—हे परमैश्वर्ययुक्त (इन्द्र) सभेश ! जैसे (औब्ज.) कोमल करनेवाले से सिद्ध हुआ (यत्) जो सूर्य (दिव.) प्रकाश वा आकर्षण से (आतासु) दिशाओं मे (तिर.) तिरछा किया हुआ (बर्हणा) वृद्धियुक्त (अच्युतम्) कारणरूप वा प्रवाहरूप से अविनाशी (धरुणम्) आधारकर्त्ता (रजः) पृथिवी आदि सब लोको को (व्यतिष्ठिपः) विशेष करके स्थापन करता और (मदे) आनन्दयुक्त (स्वर्मीळ्हे) अन्तरिक्ष में वर्त्तमान (हर्ष्या) हर्ष उत्पन्न कराने योग्य कर्मों को करता हुआ (यत्) जिस (वृत्रम्) मेघ को (अहन्) नष्ट कर (अपाम्) जलो के (अर्णवम्) समुद्र को सिद्ध करता है वैसे अपने राज्य और न्याय को धारण कर शत्रुओ को मार अपनी स्त्री को आनन्द दिया कर ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे सूर्यलोक अपने प्रकाश और आकर्षणादि गुणों से सब लोको को अपनी-अपनी कक्षा मे भ्रमण कराता, सब दिशाओं में अपने तेज वा रस का विस्तार और वर्षा को उत्पन्न करता हुआ प्रजा के पालन का हेतु होता है, वैसे स्त्री-पुरुषों को भी वर्त्तना चाहिए ॥५॥

फिर वह सभाध्यक्ष कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—

त्वं दिवो धरुणं धिष ओजसा पृथिव्या इन्द्र सदनेषु माहिनः ।

त्वं सुतस्य मदे अरिणा अपो वि वृत्रस्य समया पाष्यारुजः ॥६॥२१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्यसम्पादक सभाध्यक्ष ! (माहिन·) पूजनीय महत्व गुणवाले (त्वम्) आप (ओजसा) बल से जैसे सविता (दिवः) दिव्य-गुणयुक्त प्रकाश से (पृथिव्याः) पृथिवी और पदार्थों का (धरुणम्) आधार है वैसे (सदनेषु) गृहादिकों मे (धिषे) धारण करते हो वा जैसे बिजुली (वृत्रस्य) मेघ को मारकर (अप·) जलो को वर्षाती है वैसे (त्वम्) आप (सुतस्य) उत्पन्न हुए वस्तुओं के (मदे) आनन्दकारक व्यवहार मे (समया) यथासमय (अपः) जलो की वर्षा से सबको सुख देते हो वैसे (पाष्या) चूर्णकारक क्रिया मे शत्रुओ को (व्यरुज.) मरणप्राय करके (अरिणाः) सुख को प्राप्त कीजिए ॥६॥

भावार्थ - इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे विद्वान सूर्य्य के समान राज्य को सुप्रकाशित कर शत्रुओ को निवारके प्रजा का पालन करते है, वैसा ही हम लोगो को भी अनुष्ठान करना चाहिए ।

इस सूक्त मे सूर्य्य वा विद्वान् के गुण वर्णन से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह इक्कीसवां वर्ग और छप्पनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षडृचस्य सप्तपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्याङ्गिरस· सव्य ऋषि । इन्द्रो देवता । १,२, ४ जगती, ३ विराट्, ६ निचृज्जगती छन्दः । निषाद. स्वर. । ५ भुरिक्त्रिष्टुप् छन्द. । मध्यम स्वरः ॥

अब सत्तावनवें सूक्त का आरम्भ है । फिर सभाध्यक्ष कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।

अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥१॥

पदार्थ— जैसे मैं (यस्य) जिस सभा आदि के (शवसे) बल के लिए (प्रवणे) नीचे स्थान में (अपामिव) जलो के समान (अपावृतम्) दान वा भोग के लिए प्रसिद्ध (विश्वायु) पूर्ण आयुयुक्त (दुर्धरम्) दुष्ट जनो द्वारा दु ख से धारण करने योग्य (राध.) विद्या, राज्य से सिद्ध हुआ धन और (मतिम्) विज्ञान को (सत्यशुष्माय) सत्य बलो के निमित्त (तवसे) बलवान् (बृहद्रये) बड़े उत्तम-उत्तम धनयुक्त (बृहते) गुणो से बड़े (मंहिष्ठाय) अत्यन्त दान करने वाले सभाध्यक्ष के लिए (प्रभरे) उत्तम रीति से धारण करता हूं वैसे तुम भी धारण कराओ ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है । जैसे जल ऊँचे देश से आकर नीचे देश अर्थात् जलाशय को प्राप्त होके स्वच्छ, स्थिर होता है, वैसे नम्र बलवान् पुरुषार्थी धार्मिक विद्वान् मनुष्य को प्राप्त हुआ विद्यारूप धन निश्चल होता है । जो राजलक्ष्मी को प्राप्त होके सब के हित न्याय वा विद्या की वृद्धि तथा शरीर, आत्मा के बल की उन्नति के लिए देता है उसी शूरवीर विद्यादि देने वाले सभा शाला सेनापति मनुष्य का हम लोग अभिषेक करें ॥१॥

फिर बिजुली के दृष्टान्त से सभा आदि के अध्यक्ष के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।

यत्पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥२॥

पदार्थ— (यत्) जिस (हविष्मतः) उत्तम दानग्रहणकर्त्ता (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य वाले सभाध्यक्ष का (हिरण्ययः) ज्योतिःस्वरूप (वज्रः) शस्त्ररूप किरणें (पर्वते) मेघ मे (न) जैसे (श्नथिता) हिंसा करनेवाला होता है वैसे (हर्यतः) उत्तम व्यवहार (समशीत) प्रसिद्ध हो (अध) इसके अनन्तर (ते) आपके समाश्रय से (विश्वम्) सब जगत् (सवना) ऐश्वर्य का (आपः) जल (निम्नेव) जैसे नीचे स्थान को जाते हैं वैसे (इष्टये) अभीष्ट सिद्धि के लिए (ह) निश्चय करके (असत्) हो उसी सभाध्यक्ष वा बिजुली का हम सब मनुष्यो को समाश्रय वा उपयोग करना चाहिए ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेष और वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे पर्वत वा मेघ का समाश्रय कर सिह आदि वा जल, रक्षा को प्राप्त होकर स्थित होते हैं, जैसे नीचे स्थानो मे रहने वाला जलसमूह सुख देने वाला होता है, वैसे ही सभाध्यक्ष के आश्रय से प्रजा स्थिररूप से सुखी होवें ॥२॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।

यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् मनुष्य ! तू (यस्य) जिस सभाध्यक्ष का (धाम) विद्यादि सुखो का धारण करनेवाला (श्रवसे) श्रवण वा अन्न के लिए है जिसने (अयसे) विज्ञान के वास्ते (हरित·) दिशाओ के (न) समान (नाम) प्रसिद्ध (इन्द्रियम्) प्रशसनीय बुद्धिमान् आदि वा चक्षु आदि (अकारि) किया है (अस्मै) इस (भीमाय) दुष्ट वा पापियो को भय देने (पनीयसे) यथायोग्य व्यवहार स्तुति करने योग्य सभाध्यक्ष के लिए (शुभ्रे) शोभायमान शुद्धिकारक (अहिंसनीय) धर्मयुक्त यज्ञ (उषः) प्रात·काल के (न) समान (नमसा) नमस्ते वाक्य के साथ (समाभर) अच्छे प्रकार धारण वा पोषण कर ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है । मनुष्यो को समुचित है कि जैसे प्रात काल सब अन्धकार का निवारण और सब को प्रकाश से आनन्दित करता है वैसे ही शत्रुओ को भय करनेवाले मनुष्य को गुणो की अधिकता से स्तुति, सत्कार वा सग्रामादि व्यवहारो में स्थापन करें । जैसे दिशा व्यवहार की जनानेहारी होती है वैसे ही जो विद्या, उत्तम शिक्षा, सेना, विनय, न्यायादि से सब को सुभूषित धन, अन्न आदि से सयुक्त कर सुखी कर उसीको सभा आदि अधिकारो मे सब मनुष्यो को अधिकार देना चाहिए ॥३॥

अब अगले मन्त्र मे ईश्वर और सभा के अध्यक्ष के गुणों का उपदेश किया है—

इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।

नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः ॥४॥

पदार्थ—हे (प्रभूवसो) समर्थ वा सुखो मे वास देने (गिर्वणः) वेद-विद्या से सस्कार की हुई वाणियो से सेवनीय (पुरुष्टुत) बहुतो से स्तुति करनेवाले (हर्य) कमनीय वा सर्वसुखप्रापक (इन्द्र) जगदीश्वर ! (ते) आप की कृपा के सहाय से हम लोग (सघत् क्षोणीरिव) जैसे शूरवीर शत्रुओ को मारते हुए पृथिवी-राज्य को प्राप्त होते हैं वैसे (न.) हम लोगो के लिए (गिर.) वेद-विद्या से अधिष्ठित वाणियो को प्राप्त कराने की इच्छा करनेवाले (त्वत्) आप से (अन्यः) भिन्न (नहि) कोई भी नही है (तत्) उन (वचः) वचनो को सुन वा प्राप्त करा जो (इमे) ये सम्मुख मनुष्य वा (ये) जो (ते) दूर रहने वाले मनुष्य और (वयम्) हम लोग परस्पर मिलकर (ते) आपके शरण होकर (त्वारभ्य) आपके सामर्थ्य का आश्रय करके निर्भय हुए (प्रचरामसि) परस्पर सदा सुखयुक्त विचरते हैं ॥४॥

भावार्थ—जो मनुष्य परब्रह्म से भिन्न किसी वस्तु की उपासना नही करते, और उससे उपदिष्ट वेद प्रतिपादित मत से भिन्न मत नही मानते, वे ही यहां पूज्य होते हैं ॥४॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—

भूरि त इन्द्र वीर्यं१ तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन्काममा पृण ।

अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥५॥

पदार्थ—हे (मघवन्) उत्तम धनयुक्त (इन्द्र) सेनादि बल वाले सभाध्यक्ष ! जिस (ते) आपका जो (भूरि) बहुत (वीर्यम्) पराक्रम है जिस के हम लोग (स्मसि) आश्रित और जिस (तव) आपकी (इयम्) यह (बृहती) बड़ी (द्यौः) विद्या विनययुक्त न्यायप्रकाश और राज्य के वास्ते (पृथिवी) भूमि (ओजसे) बलयुक्त के लिए और भोगने के लिए (नेमे) नम्र के समान है वह आप (अस्य) इस (स्तोतुः) स्तुतिकर्ता के (कामम्) कामना को (आपृण) परिपूर्ण करें ॥५॥

भावार्थ—मनुष्यो को योग्य है कि ईश्वर के अनन्त वीर्य का आश्रय करके सब कामनाओं की सिद्धि वा पृथिवी के राज्य की प्राप्ति करके निरन्तर सुखी रहें ॥५॥

फिर ईश्वर का उपासक कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन्पर्वशश्चकर्तिथ ।

अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ॥६॥२२॥१०॥

पदार्थ—हे (वज्रिन्) प्रशस्त शस्त्रविद्यावित् (इन्द्र) दुष्टो के विदारण करनेहारे सभाध्यक्ष ! जो (त्वम्) आप (महाम्) श्रेष्ठ (उरुम्) वीर पुरुषो की सत्कार के योग्य उत्तम बड़ी सेना को (अवासृज·) बनाइए और (वज्रेण)

वज्र से जैसे सूर्य्य (पर्वतम्) मेघ को छिन्न-भिन्नकर (निवृताः) निवृत्त हुए (अपः) जलों को धारण करता और पुन पृथिवी पर गिराता है वैसे शत्रुदल को (पर्वशः) अङ्ग-अङ्ग से (चकर्त्तिथ) छिन्न-भिन्नकर शत्रुओं का निवारण करते हो (सना) कारण रूप से सत्यस्वरूप (विश्वम्) जगत् का अर्थात् राज्य को धारण करके (केवलम्) असहाय (सह) बल को (सर्त्तवे) सबका सुख से आने-जाने के न्यायमार्ग मे चलन को (दधिषे) धरते हो (तम्) उस आपको सभा आदि के पति हम लोग स्वीकार करते हैं ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि जो शत्रुओं के छेदन, प्रजा के पालन मे तत्पर बल और विद्या से युक्त है उसी को सभा आदि का रक्षक अधिष्ठाता स्वामी बनावे ॥६॥

इस सूक्त मे अग्नि और सभाध्यक्ष आदि के गुणों के वर्णन से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह बाईसवां वर्ग और सत्तावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

卐

अथ नवर्चस्याष्टपञ्चाशस्य सूक्तस्य गोतमो नोधा ऋषि. । अग्निर्देवता । १,५ जगती २ विराड् जगती, ४ निचृज्जगती च छन्द । निषाद स्वर' । ३ त्रिष्टुप्, ६,७,६ निचृत्त्रिष्टुप्, ८ विराट् त्रिष्टुप् छन्द. । धैवत स्वर. ॥

अब अट्ठावनवें सूक्त का आरम्भ है । उसके पहले मन्त्र में अग्नि के दृष्टान्त से जीव के गुणों का उपदेश किया है—

नू चित्सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद्दूतो अभवद्विवस्वतः ।
वि साधिष्ठेभिः पथिभी रजो मम आ देवताता हविषा विवासति ॥१॥

पदार्थ हे मनुष्यो ! (यत्) जो (चित्) विद्युत् के समान स्वप्रकाश (अमृत) स्वस्वरूप से नाशरहित (सहोजा) बल का उत्पादन करनेहारा (होता) कर्मफल का भोक्ता सब मन और शरीर आदि का धर्त्ता (दूत') सब को चलानेहारा (अभवत्) होता है (देवताता) दिव्य पदार्थों के मध्य मे दिव्यस्वरूप (साधिष्ठेभि) अधिष्ठानो से साथ वर्त्तमान (पथिभि) मार्गों से (रज) पृथिवी आदि लोकों को (नु) शीघ्र बनानेहारे (विवस्वत) स्वप्रकाशस्वरूप परमेश्वर के मध्य मे वर्त्तमान होकर (हविषा) ग्रहण किये हुए शरीर के सहित (नि तुन्दते) निरन्तर जन्म-मरण आदि मे पीडित होता और अपने कर्मों के फलो का (विवासति) सेवन और अपने कर्म मे (व्याममे) सब प्रकार से वर्त्तता है सो जीवात्मा है ऐसा तुम लोग जानो ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम अनादि अर्थात् उत्पत्तिरहित, सत्यस्वरूप, ज्ञानमय, आनन्दस्वरूप, सर्वशक्तिमान्, स्वप्रकाश, सब का धारक और सब विश्व के उत्पादक, देश, काल और वस्तुओं के परिच्छेद से रहित और सर्वत्र व्यापक परमेश्वर मे नित्य व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध से जो अनादि नित्य चेतन, अल्प, एकदेशस्थ और अल्पज्ञ है वही जीव है ऐसा निश्चित जानो ॥ १ ॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्रों मे कहा है—

आ स्वमद्म युवमानो अजरस्तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठति ।
अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जो (युवमान) सयोग और विभागकर्त्ता (अजर) जरादि रोग रहित देह आदि की (अविष्यन्) रक्षा करनेवाला होता हुआ (अतसेषु) आकाशादि पदार्थों मे (तिष्ठति) स्थित होता (प्रुषितस्य) पूर्ण परमात्मा मे कार्य्य का सेवन करता हुआ (न) जैसे (अत्य) घोड़ा (पृष्ठम्) अपनी पीठ पर भार को वहता है वैसे देहादि को वहता है (न) जैसे (दिव) प्रकाश मे (सानु) पर्वत के शिखर वा मेघ की घटा प्रकाशित होती है वैसे (रोचते) प्रकाशमान होता है जैसे (स्तनयन्) बिजुली शब्द करती है वैसे (अचिक्रदत्) सर्वथा शब्द करता है जो (स्वम्) अपने किये (अद्म) भोक्तव्य कर्म को (तृषु) शीघ्र (आ) सब प्रकार से भोगता है वह देह का धारण करनेवाला जीव है ॥ २ ॥

भावार्थ -इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो पूर्ण ईश्वर से धारण किया हुआ, आकाशादि तत्त्वो मे प्रयत्नकर्त्ता सब बुद्धि आदि का प्रकाशक, ईश्वर के न्याय नियम से अपने किये शुभाशुभ कर्म के सुखदु:खस्वरूप फल का भोगता है सो इस शरीर मे स्वतन्त्रकर्त्ता भोक्ता जीव है ऐसा सब मनुष्य जानें ॥ २ ॥

क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषाळमर्त्यः ।
रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्वति ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जो (रुद्रेभि) प्राणो और (वसुभि) वास देनेहारे पृथिवी आदि पदार्थों के साथ (निषत्त) स्थिर, चलता फिरता (होता) देहादि का धारण करनेहारा (पुरोहित) प्रथम ग्रहण करने योग्य (रयिषाट्) धन का सहनकर्त्ता (अमर्त्य) मरण धर्म रहित (क्राणा) कर्मों का कर्त्ता (ऋञ्जसान) जो किये हुए कर्म को प्राप्त होता (विक्षु) प्रजाओं मे (रथो न) रथ के समान शरीर सहित होके (आयुषु) बाल्यादि जीवनावस्थाओं मे (आनुषक्) अनुकूलता से वर्त्तमान (वार्या) उत्तम पदार्थ और सुख को (ऋण्वति) विविध प्रकार सिद्ध करता है वही (देव') शुद्ध प्रकाशस्वरूप जीवात्मा है ऐसा जानो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो पृथिवी में प्राणो के साथ चेष्टा, मन के अनुकूल रथ के समान शरीर के साथ क्रीडा, श्रेष्ठ वस्तु और सुख की इच्छा करते हैं वे ही जीव हैं, ऐसा सब लोग जानें ॥ ३ ॥

वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः ।
तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णन्त एम रुशदूर्मे अजर ॥४॥

पदार्थ - हे (रुशदूर्मे) अपने स्वभाव की लहरीयुक्त (अजर) वृद्धावस्था से रहित (अग्ने) बिजुली के तुल्य वर्त्तमान जीव ! जो तू (अतसेषु) आकाशादि व्यापक पदार्थों मे (वितिष्ठते) ठहरता (यत्) जो (वातजूत) वायु का प्रेरक और वायु के समान वेग वाला (तुविष्वणि') बहुत पदार्थों का सेवक (जुहूभि.) ग्रहण करने के साधनरूप क्रियाओं और (सृण्या) धारण तथा हननरूप कर्म से सह वर्त्तमान (वनिन) विद्युत् युक्त प्राणों को प्राप्त होके तू (तृषु) शीघ्र (वृषायसे) बलवान् होता है जिस (ते) तेरे (कृष्णम्) कर्षणरूप गुण को हम लोग (एम) प्राप्त होते हैं सो तू (वृथा) वृथा अभिमान को छोड़के अपने स्वरूप को जान ॥ ४ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यो को ईश्वर उपदेश करता है कि जैसा मैंने जीव के स्वभाव का उपदेश किया है वही तुम्हारा स्वरूप है यह निश्चित जानो ॥ ४ ॥

तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो यूथे न साह्वाँ अव वाति वंसगः ।
अभिव्रजन्नक्षितं पाजसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः ॥५॥२३॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! (वंसगः) भिन्न-भिन्न पदार्थों को प्राप्त होता (वातचोदित) प्राणो से प्रेरित (तपुर्जम्भः) जिस का मुख के समान प्रताप, वह जीव अग्नि के सदृश जैसे (यूथे) सेना मे (साह्वान्) हननशील वीर (अववाति) सब शरीर को चेष्टा कराता है जो विस्तृत होके दुःखो का हनन करता जो (अभिव्रजन्) जाता-आता हुआ (चरथम्) चरनेहारे (अक्षितम्) नाशरहित (रज) कारण के सहित लोकसमूह को (पाजसा) बल से धरता जो (स्थातु) स्थिर वृक्ष मे बैठे हुए (पतत्रिण) पक्षी के समान (भयते) भय करता है सो तुम्हारा आत्मस्वरूप है इस प्रकार तुम लोग जानो ॥ ५ ॥

भावार्थ— मनुष्यो को योग्य है कि जो अन्त करण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार, प्राण अर्थात् प्राणादि दशवायु, इन्द्रिय अर्थात् श्रोत्रादि दश इन्द्रियों का प्रेरक इन का धारक और नियन्ता स्वामी, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान आदि गुण वाला है वह इस देह मे जीव है ऐसा निश्चित जानो ॥ ५ ॥

दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेष्वा रयिं न चारुं सुहवं जनेभ्यः ।
होतारमग्ने अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने ॥६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश स्वप्रकाशस्वरूप जीव ! तू जिस (त्वा) तुझ को (भृगव) परिपक्व ज्ञान वाले विद्वान् (मानुषेषु) मनुष्यो मे (जनेभ्य') विद्वानो से विद्या को प्राप्त होके (चारुम्) सुन्दरस्वरूप (सुहवम्) सुखो के देनेहारे (रयिम्) धन के (न) समान (होतारम्) आनन्ददाता (अतिथिम्) अनियत स्थिति अर्थात् अतिथि के सदृश देह-देहान्तर और स्थान स्थानान्तर में जानेहारा (वरेण्यम्) ग्रहण करने योग्य (शेवम्) सुखरूप जीव को प्राप्त होके (दिव्याय) शुद्ध (जन्मने) जन्म के लिए (मित्रं न) मित्र के सदृश तुझको (आदधु) सब प्रकार धारण करते हैं उसी को जीव जान ॥ ६ ॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे मनुष्य विद्या वा लक्ष्मी तथा मित्रो को प्राप्त होकर सुखों को प्राप्त होते है वैसे ही जीव के स्वरूप को जानने वाले विद्वान् लोग अत्यन्त सुखो को प्राप्त होते है ॥ ६ ॥

होतारं सप्त जुह्वो३ यजिष्ठं यं वाघतो वृणते अध्वरेषु ।
अग्निं विश्वेषामरतिं वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥७॥

पदार्थ-- हे मनुष्यो ! जिस के (सप्त) सात (जुह्व) सुख की इच्छा के साधन हैं उस (होतारम्) सुखो के दाता (यजिष्ठम्) अतिशय सगति मे निपुण (विश्वेषाम्) सब (वसूनाम्) पृथिव्यादि लोको को (अरतिम्) प्राप्त होनेहारा (यम्) जिस को (वाघत) बुद्धिमान् लोग (प्रयसा) प्रीति से (अध्वरेषु) अहिंसनीय गुणो मे (अग्निम्) अग्नि के सदृश (वृणते) स्वीकार करते हैं उस (रत्नम्) रमणीयानन्दस्वरूप वाले जीव को मैं (यामि) प्राप्त होता और (सपर्यामि) सेवा करता हूँ ॥ ७ ॥

भावार्थ -जो मनुष्य अपने आत्मा को जान के परब्रह्म को जानते हैं वे ही मोक्ष पाते हैं ॥ ७ ॥

अब आत्मज्ञ योगिजन क्या करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ ।
अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्योर्जो नपात्पूर्भिरायसीभिः ॥८॥

पदार्थ—हे (सहसः) पूर्ण ब्रह्मचर्य्य से शरीर और विद्या से आत्मा के बलयुक्त जन का (सूनो) पुत्र (मित्रमहः) सब के मित्र और पूजनीय (अग्ने) अग्निवत् प्रकाशमान विद्वन् ! (नपात्) नीच कक्षा मे न गिरनेवाला तू (अद्य) आज अपने आत्मस्वरूप के उपदेश से (न') हम को (अंहसः) पापाचरण से (पाहि) अलग रक्षा कर (अच्छिद्रा) छेद-भेद रहित (शर्म) सुखों को (यच्छ) प्राप्त कर (स्तोतृभ्य.) विद्वानों से विद्याओ की प्राप्ति हम को करा । हे विद्वन् ! तू आत्मा की (गृणन्तम्) स्तुति के कर्त्ता को (आयसीभिः) सुवर्ण आदि आभूषणों

की ईश्वर की रक्षारूप (पूर्भिः) रक्षा करने में समर्थ अन्न आदि क्रियाओं के साथ (ऊर्जः) पराक्रम के बल से (उरुष्य) दुःख से पृथक् रख ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे आत्मा और परमात्मा को जाननेवाले योगी लोगो ! तुम आत्मा और परमात्मा के उपदेश से सब मनुष्यों को दुःख से दूर करके निरन्तर सुखी किया करो ॥८॥

फिर वह सभापति कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

भवा वरूथं गृणते विभावो भवा मघवन्मघवद्भ्यः शर्म ।

उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥९॥२४॥

पदार्थ—हे (मघवन्) उत्तम धनवाले (अग्ने) विज्ञान आदि गुणयुक्त सभाध्यक्ष विद्वन् ! तू (गृणते) गुणों के कीर्त्तन करनेवाले और (मघवद्भ्यः) विद्यादि धनयुक्त विद्वानों के लिए (वरूथम्) घर को और (शर्म) सुख को (विभावः) प्राप्त करा तथा आप भी घर और सुख को (भव) प्राप्त हो (गृणन्तम्) स्तुति करते हुए मनुष्य की (अंहसः) पाप से (मक्षु) शीघ्र (उरुष्य) रक्षा कर और आप भी पाप से अलग (भव) हूजिए; ऐसा जो (धियावसुः) प्रज्ञा वा कर्म से वास कराने योग्य (प्रातः) प्रति दिन प्रजा की रक्षा करता है वह सुखों को (जगम्यात्) अतिशय करके प्राप्त होवे ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो विद्वान् धर्म वा विनय से सब प्रजा को शिक्षा देकर पालना करता है उसी को सभा आदि का अध्यक्ष करें ॥ ९ ॥

इस सूक्त में अग्नि वा विद्वानों के गुण वर्णन करने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अट्ठावनवाँ सूक्त और चौबीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथास्य सप्तर्चस्यैकोनषष्टितमस्य सूक्तस्य गोतमो नोधा ऋषिः । अग्निर्वैश्वानरो देवता ।
१ निचृत् त्रिष्टुप्, २, ४ विराट् त्रिष्टुप्, ५—७ त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः । ३ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब उनसठवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में अग्नि और ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

वया इदग्ने अग्नयस्ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते ।

वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेव जनाँ उपमिद्ययन्थ ॥१॥

पदार्थ—हे (वैश्वानर) सम्पूर्ण को नियम में रखनेहारे (अग्ने) जगदीश्वर ! जिस (ते) आप के सकाश से जो (अन्ये) भिन्न (विश्वे) सब (अमृताः) अविनाशी (अग्नयः) सूर्य आदि ज्ञानप्रकाशक पदार्थों के तुल्य जीव (त्वे) आप में (वयाः) शाखा के (इत्) समान बढ़के (मादयन्ते) आनन्दित होते हैं जो आप (क्षितीनाम्) मनुष्यादिकों के (नाभिः) मध्यवर्त्ति (असि) हो (जनान्) मनुष्यादिकों को (उपमित्) धर्मविद्या में स्थापित करते हुए (स्थूणेव) धारण करनेवाले खम्भ के समान (ययन्थ) सब को नियम में रखते हो वही आप हमारे उपास्य देवता हो ॥ १ ॥

भावार्थ—जैसे वृक्ष अपनी शाखा और खम्भे गृह को धारण करके आनन्दित करते हैं वैसे ही परमेश्वर हम को धारण करके आनन्द देता है ॥ १ ॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या अथाभवदरती रोदस्योः ।

तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय ॥२॥

पदार्थ—हे (वैश्वानर) सब संसार के नायक ! जो आप (अग्निः) बिजुली के समान (दिवः) प्रकाश वा (पृथिव्याः) भूमि के मध्य समान (मूर्धा) उत्कृष्ट और (नाभिः) मध्यवर्तिव्यापक (अभवत्) होते हो (अथ) इन सब लोकों की रचना के अनन्तर जो (रोदस्योः) प्रकाश और अप्रकाश रूप सूर्यादि और भूमि आदि लोकों के (अरतिः) आप व्यापक होके अध्यक्ष (अभवत्) होते हो जो (आर्याय) उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव वाले मनुष्य के लिए (ज्योतिः) ज्ञान प्रकाश वा मूर्त्त द्रव्यों के प्रकाश को (इत्) ही करते हैं जिस (देवम्) प्रकाशमान (त्वा) आपको (देवासः) विद्वान् लोग (अजनयन्त) प्रकाशित करते हैं वा जिस बिजुली-रूप अग्नि को विद्वान् लोग "अजनयन्त" प्रकट करते हैं (तम्) उस आप ही की उपासना हम लोग करें ॥ २ ॥

भावार्थ—जिस जगदीश्वर ने आर्य अर्थात् उत्तम मनुष्यों के विज्ञान के लिए सब विद्याओं के प्रकाश करने वाले वेदों को प्रकाशित किया है तथा जो सबसे उत्तम सब का आधार जगदीश्वर है उस को जानकर मनुष्यों को उसी की उपासना करनी चाहिए ॥ २ ॥

आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि ।

या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु या मानुषेष्वसि तस्य राजा ॥३॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! जिस इस द्रव्यसमूह जगत् के आप (राजा) प्रकाशक (असि) हैं (तस्य) उस के मध्य में (या) जो (पर्वतेषु) पर्वतों में (या) जो (ओषधीषु) ओषधियों में जो (अप्सु) जलों में और (मानुषेषु) जो मनुष्यों में (वसूनि) द्रव्य हैं उन सब को (सूर्ये) सवितृलोक में (रश्मयः) किरणों के (न) समान (अग्ना वैश्वानरे) आप में (ध्रुवासः) निश्चल प्रजाओं को विद्वान् लोग (आदधिरे) धारण कराते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है तथा पूर्व मन्त्र से 'देवासः' इस पद की अनुवृत्ति आती है । मनुष्यों को योग्य है कि जैसे प्राणी प्रकाशमान सूर्य की विद्यमानता में सब कार्यों को सिद्ध करते हैं वैसे जगदीश्वर की उपासना से सब कार्य सिद्ध होते हैं । इसी प्रकार करते हुए मनुष्यों को कभी सुख और धन का नाश तथा दुःख वा दरिद्रता नहीं होते ॥३॥

अब अगले मन्त्र में पुरुषोत्तम के गुणों का उपदेश किया है—

बृहती इव सूनवे रोदसी गिरो होता मनुष्यो३ न दक्षः ।

स्वर्वते सत्यशुष्माय पूर्वीर्वैश्वानराय नृतमाय यह्वीः ॥४॥

पदार्थ—जैसे (सूनवे) पुत्र के लिए (बृहती इव) महागुणयुक्त माता वर्त्तती है जैसे (रोदसी) प्रकाश भूमि और (दक्षः) चतुर (मनुष्यः) पढ़ानेहारे विद्वान् मनुष्य पिता के (न) समान (होता) देने-लेने वाला विद्वान् ईश्वर वा सभापति विद्वान् प्रसन्न होता है जैसे विद्वान् लोग इस (स्वर्वते) प्रशंसनीय सुख में वर्त्तमान (सत्यशुष्माय) सत्यबलयुक्त (नृतमाय) पुरुषों में उत्तम (वैश्वानराय) परमेश्वर के लिए (पूर्वीः) सनातन (यह्वीः) महागुण लक्षणयुक्त (गिरः) वेदवाणियों को (दधिरे) धारण करते हैं वैसे ही उस परमेश्वर के उपासक सभाध्यक्ष में सब मनुष्यों को वर्त्तना चाहिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे भूमि वा सूर्यप्रकाश सब को धारण करके सुखी करते हैं, जैसे पिता वा अध्यापक पुत्र के हित के लिए प्रवृत्त होता है, जैसे परमेश्वर प्रजासुख के वास्ते वर्त्तता है, वैसे सभापति प्रजा के अर्थ वर्ते, इस प्रकार सब वेदवाणियाँ प्रतिपादन करती हैं ॥ ४ ॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

दिवश्चित्ते बृहतो जातवेदो वैश्वानर प्र रिरिचे महित्वम् ।

राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥५॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) जिससे वेद उत्पन्न हुए, वेदों को जानने वा उनको प्राप्त कराने तथा उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान (वैश्वानर) सबको प्राप्त होने वाले (प्रजापते) जगदीश्वर ! जिस (ते) आपका (महित्वम्) महागुणयुक्त प्रभाव (बृहतः) बड़े (दिवः) सूर्यादि प्रकाश से (चित्) भी (प्ररिरिचे) अधिक है जो आप (कृष्टीनाम्) मनुष्यादि (मानुषीणाम्) मनुष्य सम्बन्धी प्रजाओं के (राजा) प्रकाशमान अधीश (असि) हो और जो आप (देवेभ्यः) विद्वानों के लिए (युधा) संग्राम से (वरिवः) सेवा को (चकर्थ) प्राप्त कराने हो सो आप ही हम लोगों के न्यायाधीश हूजिए ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है । सभा में रहने वाले मनुष्यों को अनन्त सामर्थ्यवान् तथा सबके अधिष्ठाता होने से परमेश्वर की उपासना करनी चाहिए और महाशुभ गुणयुक्त होने से सभा आदि के अध्यक्ष सर्वाधिकारी बन कर युद्ध से दुष्टों को जीत के प्रजा-पालन करके विद्वानों की सेवा तथा सत्सङ्ग को सदा करना चाहिए ॥५॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते ।

वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वाँ अधूनोत्काष्ठा अव शम्बरं भेत् ॥६॥

पदार्थ—(यम्) जिस परमेश्वर को (पूरवः) विद्वान् लोग अपने आत्मा के साथ (सचन्ते) युक्त करते हैं जैसे (अग्निः) सर्वत्र व्यापक विद्युत् (वृत्रहणम्) मेघ के नाशकर्त्ता सूर्य को दिखलाती है जैसे (वैश्वानरः) सम्पूर्ण प्रजा को नियम में रखने वाला सूर्य्य (दस्युम्) डाकू के तुल्य (शम्बरम्) मेघ को (जघन्वान्) हनन करता (अधूनोत्) कंपाता (अवभेत्) विदीर्ण करता है जिसके बीच में (काष्ठाः) दिशा भी व्याप्य हैं उस (वृषभस्य) सब से उत्तम सूर्य के (महित्वम्) महिमा को मैं (नु) शीघ्र (प्रवोचम्) प्रकाशित करूँ वैसे सब विद्वान् लोग किया करें ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिसकी महिमा को सब संसार प्रकाशित करता है वही अनन्त शक्तिमान् परमेश्वर सब की उपासना के योग्य है ॥६॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर्भरद्वाजेषु यजतो विभावा ।

शातवनेये शतिनीभिरग्निः पुरुणीथे जरते सूनृतावान् ॥७॥२५॥

पदार्थ—जो (विश्वकृष्टिः) सबके उत्पन्नकर्त्ता (यजतः) पूजन के योग्य (विभावा) विशेष करके प्रकाशमान (सूनृतावान्) प्रशंसनीय अन्नादि का आधार (वैश्वानरः) सबको प्राप्त करानेवाला (अग्निः) सूर्य के समान जगदीश्वर अपने जगत्रूप (महिम्ना) महिमा के साथ (भरद्वाजेषु) धारण करने वा जानने योग्य पृथिवी आदि पदार्थों में (शतिनीभिः) असंख्यात गतियुक्त क्रियाओं से सहित (पुरुणीथे) बहुत प्राणियों में प्राप्त (शातवनेये) असंख्यात विभागयुक्त क्रियाओं से सिद्ध हुए संसार में वर्त्तता है उसका जो मनुष्य (जरते) अर्चन, पूजन करता है वह निरन्तर सत्कार को प्राप्त होता है ॥७॥

भावार्थ—जो असंख्यात पदार्थों में असंख्यात क्रियाओं का हेतु विद्युत् के समान ईश्वर है वही सब जगत् को धारण करता है जो मनुष्य उसकी विद्या को जानता है वह सदा महिमा को प्राप्त होता है ॥७॥

इस सूक्त में वैश्वानर शब्दार्थ वर्णन से इसके अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह पच्चीसवां वर्ग और उनसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

卐

अथास्य पञ्चर्चस्य षष्टितमस्य सूक्तस्य गौतमो नोधा ऋषिः । अग्निर्देवता । १ विराट् त्रिष्टुप्, ३, ५ त्रिष्टुप् च छन्दः । धैवतः स्वरः । २, ४ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब साठवें सूक्त का प्रारम्भ है, फिर वह ईश्वर कैसा है, यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

वह्निं॑ य॒शसं॑ वि॒दथ॑स्य के॒तुं सु॑प्रा॒व्यं॑ दू॒तं स॒द्यो अ॑र्थम् ।
द्वि॒जन्मा॑नं र॒यिमि॑व प्रश॒स्तं रा॒तिं भ॑र॒द्भृग॑वे मात॒रिश्वा॑ ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**मातरिश्वा**) अन्तरिक्ष में शयन करता वायु (**भृगवे**) भूजने वा पकाने के लिए (**विदथस्य**) युद्ध के (**केतुम्**) ध्वजा के समान (**यशसम्**) कीर्तिकारक (**सुप्राव्यम्**) उत्तमता से चलाने के योग्य (**दूतम्**) देशान्तर को प्राप्त करने (**रातिम्**) दान का निमित्त (**प्रशस्तम्**) अत्यन्त श्रेष्ठ (**द्विजन्मानम्**) वायु वा कारण से जन्मसहित (**वह्निम्**) सब को वहनेहारे अग्नि को (**रयिमिव**) उत्तम लक्ष्मी के समान (**सद्यो अर्थम्**) शीघ्रगामी पृथिव्यादि द्रव्य को (**भरत्**) धरता है वैसे तुम भी काम किया करो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार हैं। जैसे वायु, अग्नि आदि वस्तु का धारण करके सब चराचर लोकों का धारण करता है वैसे राजपुरुष विद्या-धर्म धारणपूर्वक प्रजाओं को न्याय में रक्खें ॥१॥

अ॒स्य शासु॑रु॒भया॑सः सचन्ते ह॒विष्म॑न्त उ॒शिजो॒ ये च॒ मर्ताः॑ ।
दि॒वश्चि॒त्पूर्वो॒ न्य॑सादि॒ होता॒पृच्छ्यो॑ वि॒श्पति॑र्वि॒क्षु वे॒धाः ॥२॥

पदार्थ—(**ये**) जो (**हविष्मन्त**) उत्तम सामग्रीयुक्त (**उशिज**) शुभ गुण कर्मों की कामना करनेहारे (**उभयास**) राजा और प्रजा के (**मर्त्ता**) मनुष्य जिस (**अस्य**) इस (**शासु**) सत्य न्याय के शासन करनेवाले (**विक्षु**) प्रजाओं में (**सचन्ते**) संयुक्त होते हैं जो (**होता**) शुभ कर्मों का ग्रहण करने हारा (**आपृच्छ्य**) सब प्रकार के प्रश्नों के पूछने योग्य (**वेधा**) विविध विद्या का धारण करनेवाला (**विश्पति**) प्रजाओं का स्वामी (**दिव**) प्रकाश के (**पूर्व.**) पूर्व स्थित सूर्य के (**चित्**) समान धार्मिक जनों ने जो राज्यपालन के लिए नियुक्त किया हो (**च**) वही सब मनुष्यों को आश्रय करने के योग्य है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। मनुष्यों को योग्य है कि जो विद्वान् धर्मात्मा और न्यायाधीशों से प्रशंसा को प्राप्त हो, जिनके शील से सब प्रजा सन्तुष्ट हो, उनकी सेवा पिता के समान सब लोग करें ॥२॥

तं नव्य॑सी हृ॒द आ जाय॑मानम॒स्मत्सु॑की॒र्तिर्मधु॑जिह्वमश्याः ।
यमृ॒त्विजो॑ वृ॒जने॒ मानु॑षासः॒ प्रय॑स्वन्त आ॒यवो॒ जीज॑नन्त ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! जैसे (**ऋत्विज**) ऋतुओं के योग्य कर्मकर्त्ता (**प्रयस्वन्त**) उत्तम विज्ञानयुक्त (**आयव**) सत्यासत्य का विवेक करनेहारे (**हृद**) सब के मित्र (**मानुषास**) विद्वान्मनुष्य जानने की इच्छा करनेवालों को (**वृजने**) अधर्म रहित धर्ममार्ग में (**जीजनन्त**) विद्याओं से प्रकट कर देते हैं जिस (**जायमानम्**) प्रसिद्ध हुए (**मधुजिह्वम्**) स्वादिष्ट भोग का (**नव्यसी**) अति नूतन प्रजा सेवन करती है (**तम्**) उसको (**अस्मत्**) हम से प्राप्त हुई शिक्षा से युक्त (**सुकीर्त्ति**) अति प्रशंसा के योग्य तू (**आश्या**) अच्छे प्रकार भोग कर ॥३॥

भावार्थ मनुष्यों को उचित है कि जो अधर्म को छुड़ाके धर्म का ग्रहण कराते हैं उनका सब प्रकार से सन्मान किया करें ॥३॥

उ॒शिक्पा॑व॒को वसु॒र्मानु॑षेषु॒ वरे॑ण्यो॒ होता॑धायि वि॒क्षु ।
दमू॑ना गृ॒हप॑ति॒र्दम॒ आँ अ॒ग्निर्भु॑वद्रयि॒पती॑ रयी॒णाम् ॥४॥

पदार्थ मनुष्यों को उचित है कि जो (**उशिक्**) सत्य की कामनायुक्त (**पावक**) अग्नि के तुल्य पवित्र करने (**वसु**) वास कराने (**वरेण्य**) स्वीकार करने योग्य (**दमूना**) दम अर्थात् शान्तियुक्त (**गृहपति**) गृह का पालन करने तथा (**रयिपति**) धनों को पालने (**अग्नि**) अग्नि के समान (**मानुषेषु**) युक्तिपूर्वक आहार-विहार करने वाले मनुष्य (**विक्षु**) प्रजा और (**दमे**) गृह में (**रयीणाम्**) राज्य आदि धन और (**होता**) सुखों का देने वाला (**भुवत्**) होवे वही प्रजा में राजा (**अधायि**) धारण करने योग्य है ॥४॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि अधर्मी मूर्खजन को राज्य की रक्षा का अधिकार कदापि न देवें ॥४॥

तं त्वा॑ व॒यं पति॑मग्ने रयी॒णां प्र शं॑सामो म॒तिभि॒र्गोत॑मासः ।
आ॒शुं न वा॑जंभ॒रं म॒र्जय॑न्तः प्रा॒तर्म॒क्षू धि॒याव॑सुर्जगम्यात् ॥५॥२६॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) पावकवत्पवित्र स्वरूप विद्वन् ! जैसे (**धियावसुः**) बुद्धियों में बसाने वाला (**मतिभि**) बुद्धिमानों के साथ (**वाजंभरम्**) वेग को धारण करनेवाले को (**प्रात.**) प्रति दिन (**आशुमश्व न**) जैसे शीघ्र चलनेवाले घोड़े को जोड़के स्थानान्तर को तुरन्त जाते-आते हैं वैसे (**मक्षु**) शीघ्र (**रयीणाम्**) चक्रवर्त्ति राज्यलक्ष्मी आदि धनों के (**पतिम्**) पालन करनेवाले को (**जगम्यात्**) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे। वैसे (**तम्**) उस (**त्वा**) तुझ को (**मर्जयन्तः**) शुद्ध कराते हुए (**गोतमास**) अतिशय करके स्तुति करनेवाले (**वयम्**) हम लोग (**प्रशंसाम**) स्तुति से प्रशंसित करते हैं ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार हैं। जैसे मनुष्य उत्तम यान अर्थात् सवारियों में घोड़ों को जोड़कर शीघ्र देशान्तर को जाते हैं वैसे ही विद्वानों के सङ्ग से विद्या के पाराऽवार को प्राप्त होते हैं ॥५॥

इस सूक्त में शरीर और यान आदि में संयुक्त करने योग्य अग्नि के दृष्टान्त से विद्वानों के गुण वर्णन से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह छब्बीसवां वर्ग और साठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

卐

अथास्य षोडशर्चस्यैकषष्टितमस्य सूक्तस्य गोतमो नोधा ऋषिः । इन्द्रो देवता । १,१४,१६ विराट् त्रिष्टुप्, २,७,६ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत स्वरः । ३,४,६,८,१०,१२ पङ्क्तिः, ५, १५ विराट् पङ्क्तिः, ११ भुरिक् पङ्क्तिः, १३ निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब इकसठवें सूक्त का प्रारम्भ है। उसके पहले मन्त्र में सभा आदि का अध्यक्ष कैसा हो इस विषय का उपदेश किया है—

अ॒स्मा इदु॒ प्र त॒वसे॑ तु॒राय॒ प्रयो॒ न ह॑र्मि॒ स्तोमं॒ माहि॑नाय ।
ऋची॑षमा॒याध्रि॑गव॒ ओह॒मिन्द्रा॑य॒ ब्रह्मा॑णि रा॒तत॑मा ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! जैसे मैं (**उ**) वितर्कपूर्वक (**प्रय.**) तृप्ति करने वाले अन्न के (**न**) समान (**तवसे**) बलवान् (**तुराय**) कार्यसिद्धि के लिए शीघ्र करता (**ऋचीषमाय**) स्तुति करने को प्राप्त होने तथा (**अध्रिगवे**) शत्रुओं से असह्य वीरों को प्राप्त होनेहारे (**माहिनाय**) उत्तम-उत्तम गुणों से बड़े (**अस्मै**) इस (**इन्द्राय**) सभाध्यक्ष के लिए (**इत्**) ही (**ओहम्**) प्राप्त करनेवाले (**स्तोमम्**) स्तुति को (**राततमा**) अतिशय करने के योग्य (**ब्रह्माणि**) संस्कार किये हुए अन्न वा धनों को (**प्र, हर्मि**) देता हूँ वैसे तुम भी किया करो ॥१॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि स्तुति के योग्य पुरुषों को राज्य का अधिकार देकर उनके लिए यथायोग्य कर द्वारा प्राप्त धनों को देकर उत्तम-उत्तम अन्नादिकों से सदा सत्कार करें और राजपुरुषों को चाहिए कि प्रजा के पुरुषों का सत्कार करें ॥१॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अ॒स्मा इदु॒ प्रय॑इव॒ प्र यं॑सि॒ भरा॑म्याङ्गू॒षं बाधे॑ सुवृ॒क्ति ।
इन्द्रा॑य हृ॒दा मन॑सा मनी॒षा प्र॒त्नाय॒ पत्ये॒ धियो॑ मर्जयन्त ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वन् मनुष्य ! तुम (**अस्मै**) इस (**प्रत्नाय**) प्राचीन, सबके मित्र (**पत्ये**) स्वामी (**इन्द्राय**) शत्रुओं को विदारण करनेवाले के लिए (**प्रयइव**) जैसे प्रीतिकारक अन्न वा धन वैसे (**प्रयंसि**) सुख देते हो जिस परमैश्वर्ययुक्त धार्मिक के लिए मैं सब सामग्री अर्थात् (**हृदा**) हृदय (**मनीषा**) बुद्धि (**मनसा**) विज्ञानपूर्वक मन से (**सुवृक्ति**) उत्तमता से गमन करानेवाले यान का (**भरामि**) धारण करता वा पुष्ट करता हूँ जैसे (**आङ्गूषम्**) युद्ध में प्राप्त हुए शत्रु को (**बाधे**) ताड़ना देता जिस वीर के वास्ते सब प्रजा के मनुष्य (**धिय**) बुद्धि वा कर्म को (**मर्जयन्त**) शुद्ध करते हैं उस पुरुष के लिए (**इत्**) ही (**उ**) तर्क के साथ मैं भी बुद्धि तथा कर्मों को शुद्ध करूँ ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। मनुष्यों को उचित है कि पहले परीक्षा किये, पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक, सबके उपकार करनेवाले, प्राचीन पुरुष को सभा का अधिपति करें तथा इससे विरुद्ध मनुष्य को स्वीकार नहीं करें, और सब मनुष्य उसके प्रिय आचरण करें ॥२॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अ॒स्मा इदु॒ त्यमु॑प॒मं स्व॒र्षां भरा॑म्याङ्गू॒षमा॒स्ये॑न ।
मंहि॑ष्ठ॒मच्छो॑क्तिभिर्मती॒नां सु॑वृ॒क्तिभिः॑ सू॒रिं वा॑वृ॒धध्यै॑ ॥३॥

पदार्थ हे मनुष्यो ! जैसे मैं (**अस्मै**) इस सभाध्यक्ष के लिए (**मतीनाम्**) मनुष्यों के (**वावृधध्यै**) अत्यन्त बढ़ाने को (**आस्येन**) मुख से (**सुवृक्तिभिः**) जिन में अच्छे प्रकार अधर्म और अविद्या छोड़ सकें (**अच्छोक्तिभिः**) श्रेष्ठ वचन

स्तुतियों से (इत्) भी (उ, त्यम्) उसी (उपमं) उपमा करने योग्य (स्वर्षाम्) सुखों की प्राप्त कराने (आङ्गूषम्) स्तुति को प्राप्त किये हुए (मंहिष्ठम्) अतिशय करके विद्या से बड़ा (सूरिम्) शास्त्रों को जाननेवाले विद्वान् को (भरामि) धारण करता हूँ, वैसे तुम लोग भी किया करो ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे विद्वानों द्वारा मनुष्यों के सुख के लिए सबसे उत्तम उपमारहित यत्न किया जाता है, वैसे इसके सत्कार के वास्ते सब मनुष्य भी प्रयत्न किया करें ॥३॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय ।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (मेधिराय) अच्छे प्रकार जानने (गिर्वाहसे) विद्यायुक्त वाणियों को प्राप्त करानेवाले (अस्मै) इस (इन्द्राय) विद्या की वृष्टि करनेवाले विद्वान् (इत्) ही के लिए (उ) तर्कपूर्वक (रथम्) यानसमूह के (न) समान (तत्सिनाय) यानसमूह के बन्धन के लिए (तष्टेव) तीक्ष्ण करनेवाले कारीगर के तुल्य (विश्वमिन्वम्) सब विज्ञान को प्राप्त कराने (सुवृक्ति) जिससे सब दोषो को छोड़ते हैं उस (स्तोमम्) शास्त्रों के अभ्यासयुक्त स्तुति (च) और (गिरः) वेदवाणियो को (संहिनोमि) सम्यक् बढ़ाता हूँ वैसे तुम भी प्रयत्न किया करो ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे रथ के बनाने वाला वुद्ध रथ को बनाने के लिए उत्तम बन्धनों सहित यन्त्रकलाओं को अच्छे प्रकार रचकर अपने प्रयोजनो को सिद्ध करता और सुखपूर्वक आ, जाकर आनन्दित होता है वैसे ही मनुष्य विद्वान् का आश्रय लेकर उसके सम्बन्ध से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करके सदा आनन्द मे रहें ॥४॥

अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा३समञ्जे ।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥५॥२७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (श्रवस्या) अपने करने की इच्छा (जुह्वा) विद्याओ के लेने-देने वाली क्रियाओ से (अस्मै) इस (इन्द्राय) परमैश्वर्य प्राप्त करनेवाले (इत्) सभाध्यक्ष का ही (उ) विशेष तर्क के साथ (वन्दध्यै) स्तुति कराने के लिए (सप्तिमिव) वेगवाले घोड़े के समान (गूर्तश्रवसम्) जिसने सब शास्त्रों के श्रवणों का ग्रहण किया है (पुराम्) शत्रुओ के नगरो के (दर्माणम्) विदारण करने वा (दानौकसम्) दान वा स्थानयुक्त (अर्कम्) सत्कार के हेतु (वीरम्) विद्या शौर्यादि गुणयुक्त वीर (इत्) ही को (समञ्जे) अच्छे प्रकार कामना करता हूँ वैसी तुम भी कामना किया करो ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है। जैसे मनुष्य रथ में घोड़े को जोड़ उसके ऊपर स्थित होकर जाने-आने से कार्यों को सिद्ध करते हैं, वैसे वर्त्तमान विद्वान् मनुष्य वीर पुरुषो के सङ्ग से सब कार्यों को सिद्ध करें ॥५॥

अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद्वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं१ रणाय ।
वृत्रस्य चिद्विदद्येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥६॥

पदार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जो (त्वष्टा) प्रकाश करने (ईशानः) समर्थ (कियेधाः) कितनों को धारण करनेवाला शत्रुओ को (तुजन्) मारता हुआ (वृत्रस्य) मेघ के ऊपर अपने किरणों को छोड़ता (विदत्) प्राप्त होते हुए सूर्य के समान (स्वर्यम्) सुख के हेतु (स्वपस्तमम्) अतिशय करके उत्तम कर्मों के उत्पन्न करनेवाले (वज्रम्) किरणसमूह को (तक्षत्) छेदन करते हुए सूर्य के (चित्) समान (अस्मै) इस (रणाय) सङ्ग्राम के वास्ते जिस (मर्म) जीवननिमित्त स्थान को (तुजता) काटते हुए (येन) जिस वज्र से शत्रुओं को जीतता है (इदु) उसी को सभा आदि का अध्यक्ष करना चाहिये ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है। जैसे सूर्य अपने प्रताप से मेघ को छिन्न-भिन्न कर भूमि मे जल को गिराके सब को सुखी करता है वैसे ही सभा आदि का अध्यक्ष विद्या, विनय वा शस्त्र-अस्त्रो के सीखने-सिखाने से युद्धो मे कुशल सेना को सिद्ध कर शत्रुओं को जीतकर सब प्राणियो को आनन्दित किया करे ॥६॥

अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना ।
मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥७॥

पदार्थ—जो (अस्य) इस (मातुः) शत्रु और अपने बल का परिमाण करनेवाले सभाध्यक्ष (सवनेषु) ऐश्वर्यों मे (महः) बड़े (पचतम्) परिपक्व (चारु) सुन्दर (पितुम्) सत्कार किये हुए अन्न को (पपिवान्) खाने-पीने तथा (सहीयान्) अतिशय करके सहन करनेवाला वीर मनुष्य (अन्ना) अन्नों को (अस्ता) प्रक्षेपण करने (मुषायत्) अपने को चोर की इच्छा करते हुए के तुल्य (विष्णुः) सब विद्याओं के अङ्गों मे व्यापक (अद्रिम्) पर्वताकार (वराहम्) मेघ को (तिरः) नीचे (विध्यत्) गिराते हुए सूर्य के समान शत्रुओ को (सद्यः) शीघ्र नष्ट करे (इदु) वही मनुष्य सेनाध्यक्ष होने के योग्य होता है ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे सूर्य अन्न-जल के रसों को चोर के समान हरता वा रक्षा करता हुआ अपने किरणों से मेघ को इकट्ठा करके प्रकट करता हुआ छिन्न-भिन्न कर गिराकर विजय को प्राप्त होता है, वैसे ही सेना आदि अध्यक्ष के सेना आदि ऐश्वर्यों में स्थित हुए शूरवीर पुरुष शत्रुओं का पराजय करें ॥७॥

अस्मा इदु ग्नाश्चिद्देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥८॥

पदार्थ—हे सभापति ! जैसे यह सूर्य (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि को (जभ्रे) धारण करता वा जिसके वश मे (उर्वी) बहुधा रूपप्रकाश युक्त पृथिवी है (अस्य) जिस इस सभाध्यक्ष के (अहिहत्ये) मेघो के हनन व्यवहार में (चित्) प्रकाशभूमि की (महिमानम्) महिमा के (न परि स्तः) सब प्रकार छेदन को समर्थ नहीं हो सकते वैसे उस (अस्मै) इस (इन्द्राय) ऐश्वर्य प्राप्त करनेवाले सभाध्यक्ष के लिए (इदु) ही (देवपत्नीः) विद्वानो से पालनीय पतिव्रता स्त्रियो के सदृश (ग्नाः) वेदवाणी (अर्कम्) दिव्य गुण सम्पन्न अर्चनीय वीर पुरुष को (पर्यूवुः) सब प्रकार तन्तुओ के समान विस्तृत करती हैं वही राज्य करने के योग्य होता है ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे सूर्य के प्रताप और महत्त्व के आगे पृथिवी आदि लोकों की गणना स्वल्प है, वैसे ही पूर्ण विद्यावाले पुरुष की महिमा के आगे मूर्ख की गणना तुच्छ है ॥८॥

अब सूर्य सभाध्यक्ष कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥९॥

पदार्थ—जो (विश्वगूर्त्तः) सब भोज्य वस्तुओं को भक्षण करने (स्वरिः) उत्तम शत्रुवाला (अमत्रः) ज्ञानवान् ज्ञान का हेतु (स्वराट्) अपने आप प्रकाश सहित (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त सूर्य वा सभाध्यक्ष (दमे) उत्तम घर वा ससार में (रणाय) सग्राम के लिए (ववक्षे) रोष वा अच्छे प्रकार घात करता है वा जिसकी (दिवः) प्रकाश (पृथिव्याः) भूमि और (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से (इत्) भी (परि) सब प्रकार (महित्वम्) पूज्य वा महागुणविशिष्ट महिमा (प्र रिरिचे) विशेष है उस (अस्य) इस सूर्य वा सभाध्यक्ष का (एव) ही कार्यों मे उपयोग वा सभादि मे अधिकार देना चाहिए ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। मनुष्यो को, जैसे सूर्य पृथिव्यादिकों से गुण वा परिणाम के द्वारा अधिक है, वैसे ही उत्तमगुण युक्त सभा आदि के अधिपति राजा को अधिकार देकर सब कार्यों की सिद्धि करनी चाहिए ॥९॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद्वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ॥१०॥२८॥

पदार्थ—जो (सचेताः) तुल्य ज्ञानवान् (इन्द्रः) सेनाधिपति (अस्य) इस सभाध्यक्ष (एव) ही के (शवसा) बल तथा (वज्रेण) तेज से (शुषन्तम्) द्वेष से क्षीण हुए (वृत्रम्) प्रकाश के आवरण करनेवाले मेघ के समान आवरण करनेवाले शत्रु को (विवृश्चत्) छेदन करता है वह (गाः) पशुओ के पालने वाले बन्धन से छुड़ाकर वन को प्राप्त करते हुए के (न) समान (अवनीः) पृथिवी को (व्राणाः) आवरण किये हुए जल के तुल्य (दावने) देनेवाले के लिए (श्रव) अन्न को (इत्) भी (अभ्यमुञ्चत्) सब प्रकार से छोड़ता है वह राज्य करने को समर्थ होता है ॥१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेष और उपमालङ्कार है। जैसे बिजुली के सहाय से सूर्य वा सूर्य्य के सहाय से बिजुली बढ़के विश्व को प्रकाशित और मेघ को छिन्न-भिन्नकर भूमि मे गेर देती है, जैसे ग्वाला गौओ को बन्धन से छोड़कर सुखी करता है, वैसे ही सभा सेना के अध्यक्ष मनुष्य न्याय की रक्षा और शत्रुओ को छिन्न-भिन्न कर और धार्मिको को दु:खरूपी बन्धनो से छुड़ाकर, सुखी करें ॥१०॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद्वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद्दाशुषे दशस्यन्तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥११॥

पदार्थ—(अस्य) इस सभाध्यक्ष के (त्वेषसा) विद्या, न्याय बल के साथ जो वर्त्तमान शूरवीर बिजुली के समान (रन्त) रमण करते हैं (सिन्धव) समुद्र के समान (वज्रेण) शस्त्र से (सीम्) सब प्रकार शत्रु की सेनाओ को (पर्यच्छत्) निग्रह करता है वह (दाशुषे) दानशील मनुष्य के (ईशानकृत्) ऐश्वर्ययुक्त करने वाला (तुर्वीतये) शीघ्र करनेवालो के लिए (दशस्यन्) दमन के समान आवरण करता हुआ (तुर्वणि) शीघ्रकरने वालो को सेवन करनेवाला मनुष्य (गाधम्) शत्रुओं का विलोडन (कः) करता है ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सभाध्यक्ष वा सूर्य के सहाय से शत्रु वा मेघादिकों को जीतकर पृथिवी के राज्य का सेवन कर सुखी और प्रतापी होता है, वह सब शत्रुओं का विलोडन करने योग्य है ॥११॥

अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥१२॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष ! (कियेधा) कितने गुणो को धारण करनेवाला (ईशान.) ऐश्वर्य्ययुक्त (तूतुजानः) शीघ्र करनेहारे आप जैसे सूर्य्य (अपाम्) जलों के सम्बन्ध से (अर्णांसि) जलों के प्रवाहों को (चरध्यै) बहाने के अर्थ (वृत्राय) मेघ के वास्ते वर्त्तता है वैसे (अस्मै) इस शत्रु के वास्ते शस्त्र को

(प्र) अच्छे प्रकार (भर) धारण कर (तिरश्चा) टेढ़ी गतिवाले वज्र से (गोर्न) वाणियों के विभाग के समान (पर्व) उसके अङ्ग-अङ्ग को काटने को (इष्यन्) इच्छा करता हुआ (इदु) ऐसे ही (विरद) अनेक प्रकार हनन कीजिए ॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। हे सेनापते ! आप, जैसे प्राण वायु से तालु आदि स्थानों में जीभ का ताड़न कर भिन्न-भिन्न अक्षर वा पदों के विभाग प्रसिद्ध होते हैं वैसे ही सभाध्यक्ष शत्रुबल को छिन्न-भिन्न और अङ्गों को विभागयुक्त करके इसी प्रकार शत्रुओं को जीता करे ॥१२॥

अब वह सभाध्यक्ष क्या करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥१३॥

पदार्थ—हे विद्वन् मनुष्य ! (यत्) जो सभा आदि का पति जैसे (ऋघायमाण) मरे हुए के समान आचरण करनेवाले (आयुधानि) तोप, बन्दूक, तलवार आदि शस्त्र-अस्त्रों को (इष्णानः) नित्य-नित्य सम्हालते और शोधते हुए (नव्य) नवीन शस्त्रास्त्र विद्या को पढ़े हुए आप (युधे) संग्राम में (शत्रून्) दुष्ट शत्रुओं को (निरिणाति) मारते हो उस (तुरस्य) शीघ्रतायुक्त (अस्य) सभापति आदि के (इत्) ही (उक्थैः) कहने योग्य वचनों से (पूर्व्याणि) प्राचीन सत्पुरुषों ने किये (कर्माणि) करने योग्य और करने वाले को अत्यन्त इष्ट कर्मों को करता है वैसे (प्र ब्रूहि) अच्छे प्रकार कहो ॥१३॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि सभाध्यक्ष आदि के विद्या, विनय, न्याय और शत्रुओं को जीतना आदि कर्मों की प्रशंसा करके और उत्साह देकर इनका सदा सत्कार करें तथा इन सभाध्यक्ष आदि राजपुरुषों द्वारा, शस्त्रास्त्र चलाने की शिक्षा और शिल्पविद्या की चतुराई को प्राप्त हुए सेना में रहनेवाले वीर पुरुषों को जीतकर प्रजा की निरन्तर रक्षा करें ॥१३॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अस्येदु भिया गिरयश्च दृळ्हा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद्वीर्याय नोधाः ॥१४॥

पदार्थ—जो (जोगुवान) अव्यक्त शब्द करने (नोधा) सेना का नायक सभा आदि का अध्यक्ष (सद्य) शीघ्र (वीर्याय) पराक्रम के सिद्ध करने के लिए (भुवत्) हो जैसे सूर्य से (दृळ्हा) पुष्ट (गिरयः) मेघ के समान (अस्य) इस (वेनस्य) मेधावी के (इत् उ) ही (भिया) भय से (च) शत्रुजन कम्पायमान होते हैं जैसे (द्यावा) प्रकाश (च) और भूमि (तुजेते) काँपते है वैसे (जनुषः) मनुष्य लोग भय को प्राप्त होते है वैसे हम लोग उस सभाध्यक्ष के (उपो) निकट भय को प्राप्त न (भूम) हो और वह सभाध्यक्ष भी (ओणिम्) दुःख को दूरकर सुख को प्राप्त होता है ॥१४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यह सब को निश्चय समझना चाहिए कि विद्या आदि उत्तम गुण तथा ईश्वर से जगत् की उत्पत्ति के विना सभाध्यक्ष आदि प्रजा का पालन करने में, जैसे सूर्य सब लोकों को प्रकाशित तथा धारण करने में समर्थ होता है, समर्थ नहीं हो सकते। इसलिए विद्या आदि श्रेष्ठ गुणों का ग्रहण और परमेश्वर की स्तुति करना उचित है ॥१४॥

फिर उक्त सभाध्यक्ष और विद्युत् कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद्वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥१५॥

पदार्थ—जैसे विद्वानों ने (एषाम्) इन मनुष्यादि प्राणियों को सुख (दायि) दिया हो वैसे जो (एकः) उत्तम सहाय रहित (भूरेः) अनेक प्रकार के ऐश्वर्य्य का (ईशानः) स्वामी (इन्द्रः) सभा आदि का पति (सूर्ये) सूर्य्यमण्डल में है वैसे (सौवश्व्ये) उत्तम-उत्तम घोड़ों से युक्त सेना में (यत्) जिस (पस्पृधानम्) परस्पर स्पर्द्धा करते हुए (सुष्विम्) उत्तम ऐश्वर्य्य के देने वाले (एतशम्) घोड़े की (अनुवव्ने) यथायोग्य याचना करता है (त्यत्) उस को (अस्मै) इस (इदु) सभाध्यक्ष ही के लिए (प्रावत्) अच्छे प्रकार रक्षा करे वह सभा के योग्य होता है ॥१५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि जो बहुत सुख देनेवाला तथा घोड़ों की विद्या को जाननेवाला और उपमा रहित पुरुषार्थी विद्वान् मनुष्य है उसीको प्रजा की रक्षा में नियुक्त करें, और बिजुली की विद्या का ग्रहण भी अवश्य करें ॥१५॥

फिर वह सभाध्यक्ष कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१६॥२९॥

पदार्थ—हे (हारियोजन) यानों में घोड़े वा अग्नि आदि पदार्थ युक्त होने वालों को पढ़ने वा जाननेवाले (इन्द्र) परम ऐश्वर्य के प्राप्त करानेवाले (धियावसु) बुद्धि और कर्म के निवास करनेवाले आप जो (एषु) इन स्तुति तथा विद्या पढ़नेवाले मनुष्यों में (विश्वपेशसम्) सब विद्यारूप गुणयुक्त (धियम्) धारणा वाली बुद्धि को (प्रातः) प्रतिदिन (मक्षु) शीघ्र (धाः) अच्छे प्रकार धारण करते हो सो जिनको ये सब विद्या (जगम्यात्) बार-बार प्राप्त होवें (गोतमासः) अत्यन्त सब विद्याओं की स्तुति करनेवाले (ते) आपके लिए (एव) ही (सुवृक्ति) अच्छे प्रकार दोषों को अलग करनेवाले शुद्धि किये हुए (ब्रह्माणि) बड़े-बड़े सुख करनेवाले अन्नों को देने के लिए (अक्रन्) सम्पादन करते हैं उनकी अच्छे प्रकार सेवा कीजिए ॥१६॥

भावार्थ—परोपकारी विद्वानों को उचित है कि नित्य प्रयत्नपूर्वक अच्छी शिक्षा और विद्या के दान से सब मनुष्यों को अच्छी शिक्षा से युक्त विद्वान् करें तथा मनुष्यों को चाहिए कि पढ़ानेवाले विद्वानों को अपने निष्कपट मन, वाणी और कर्मों से प्रसन्न करके ठीक-ठीक पकाये हुए अन्न आदि पदार्थों से नित्य सेवा करें। क्योंकि पढ़ने और पढ़ाने से भिन्न दूसरा कोई उत्तम धर्म नहीं है। इसलिए सब मनुष्यों को परस्पर प्रीतिपूर्वक विद्या की वृद्धि करनी चाहिए ॥१६॥

इस सूक्त में सभाध्यक्ष आदि का वर्णन और अग्निविद्या का प्रचार करना आदि कहा है, इससे इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह उन्तीसवां वर्ग चौथा अध्याय इकसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

इति श्रीयुतपरिव्राजकाचार्य्येण श्रीयुतमहाविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते आर्य्यभाषाविभूषिते सुप्रमाणयुक्ते ऋग्वेदभाष्ये चतुर्थोऽध्याय समाप्तिमगात् ।

卐

अथ पञ्चमाध्यायाऽऽरम्भः ॥

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथ त्रयोदशर्चस्य द्विषष्टितमस्य सूक्तस्य गोतमो नोधा ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
१,४,६ विराडार्षी त्रिष्टुप्, २,५,९, निचृदार्षीत्रिष्टुप्, १०-१३
आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । १-२,४-६, ९-१३ धैवत स्वरः । ३,७ ८
भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चम स्वर ॥

अब पांचवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है इसके प्रथम सूक्त के प्रथम मन्त्र में ईश्वर और सभाध्यक्ष के गुणों का वर्णन किया है—

प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् ।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! जैसे हम (सुवृक्तिभिः) दोषों को दूर करनेहारी क्रियाओं से (शवसानाय) ज्ञान-बलयुक्त (गिर्वणसे) वाणियों से स्तुति के योग्य (ऋग्मियाय) ऋचाओं से स्तुत्य (नरे) न्याय करने (विश्रुताय) अनेक गुणों के साथ वर्त्तमान होने के कारण श्रवण करने योग्य (स्तुवते) सत्य की प्रशंसा वाले सभाध्यक्ष के लिए (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के बल के समान (शूषम्) बल और (अर्कम्) पूजा करने योग्य (आङ्गूषम्) विज्ञान और स्तुति समूह को (अर्चाम) पूजा करें और (प्रमन्महे) मानें और उससे प्रार्थना करें वैसे तुम भी किया करो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि जैसे परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना से सुख को प्राप्त होते हैं वैसे सभाध्यक्ष के आश्रय से व्यवहार और परमार्थ सुखों को सिद्ध करें ॥१॥

फिर मनुष्यों को इस विषय में क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यं शवसानाय साम ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (वः) तुम वा (नः) हम लोगों को (अङ्गिरसः) प्राणादि विद्या और (पदज्ञाः) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को जाननेवाले (महे) बड़े (शवसानाय) ज्ञानबलयुक्त सभाध्यक्ष के लिए (महि) बहुत (साम) दुःख नाश करनेवाले (आङ्गूष्यम्) विज्ञानयुक्त (नमः) नमस्कार वा अन्न का (अर्चन्तः) सत्कार करते हुए (पूर्वे) पहले सब विद्याओं को पढ़ते हुए (पितरः) विद्यादि सद्गुणों से रक्षा करनेवाले विद्वान् लोग (येन) जिस विज्ञान वा कर्म से (गाः) विद्या, प्रकाशयुक्त वाणियों को (अविन्दन्) प्राप्त हों उनका तुम लोग (प्रभरध्वम्) भरणपोषण सदा किया करो ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग वेद, सृष्टिक्रम और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से कहे हुए धर्मयुक्त मार्ग से चलते हुए सब प्रकार परमेश्वर का पूजन करके सब के हित को धारण करते हैं वैसे ही तुम लोग भी करो ॥२॥

फिर मनुष्यों को पूर्वोक्त कृत्य किसलिए करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टौ विदत्सरमा तनयाय धासिम् ।
बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः समुस्रियाभिर्वावशन्त नरः ॥३॥

पदार्थ—हे (नरः) सुखों को प्राप्त करानेवाले मनुष्यो ! जैसे (सरमा) विद्या, धर्मादि बोधों को उत्पन्न करनेवाली माता (तनयाय) पुत्र के लिए (धासिम्) अन्न आदि अच्छे पदार्थों को (विदत्) प्राप्त करती है। जैसे (बृहस्पतिः) बड़े-बड़े पदार्थों को रक्षा करनेवाला सभाध्यक्ष जैसे सूर्य (उस्रियाभिः) किरणों से (अद्रिम्) मेघ को (भिनत्) विदारण और (गाः) सुशिक्षित वाणियों को (विदत्) प्राप्त करता है वैसे तुम भी (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य वाले परमेश्वर, सभाध्यक्ष वा सूर्य (च) और (अङ्गिरसाम्) विद्या, धर्म और राज्य वाले विद्वानों की (इष्टौ) इष्ट की सिद्ध करनेवाली नीति में विद्यादि उत्तम गुणों का (संवावशन्त) अच्छे प्रकार बार-बार प्रकाश करो जिससे सब संसार में दुष्टगुण नष्ट हों ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्यों को उचित है कि माता के समान प्रजा में वर्त्तें, सूर्य के समान विद्यादि उत्तम गुणों का प्रकाश कर ईश्वर की कही वा विद्वानों से अनुष्ठान की हुई नीति में स्थित हों और सब के उपकार को करते हुए, विद्यादि सद्गुण के आनन्द में सदा मग्न रहें ॥३॥

मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः स्वरेणाद्रिं स्वर्यो३नवग्वैः ।
सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र वलं रवेण दरयो दशग्वैः ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त (शक्र) शक्ति को प्राप्त करनेवाले सभाध्यक्ष ! (सः) वह आप (नवग्वैः) नवों से प्राप्त हुई गति वा (दशग्वैः) दश दिशाओं से जाने (सरण्युभिः) सब शास्त्रों में विज्ञान करनेवाली गतियों से युक्त (विप्रैः) बुद्धिमान् विद्वानों के साथ जैसे सूर्य्य (सुष्टुभा) उत्तम द्रव्य, गुण और क्रियाओं के स्थिर करने वा (स्तुभा) धारण करनेवाले (रवेण) शास्त्रों के शब्द से जैसे सूर्य (सप्त) सात संख्या वाले के मध्य में वर्त्तमान (स्वरेण) उदात्तादि वा षड्जादि स्वर से (अद्रिम्) बलयुक्त (फलिगम्) मेघ का हनन करता है वैसे शत्रुओं को (दरयः) विदारण करते हो (सः) सो आप हम लोगों से (स्वर्यः) स्तुति करने योग्य हो ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे बिजुली अपने उत्तम-उत्तम गुणों से वर्त्तमान हुई जीवन के हेतु मेघ की उत्पत्ति आदि कार्यों को सिद्ध करती है वैसे ही सभाध्यक्ष आदि अत्यन्त उत्तम-उत्तम विद्या, बल से युक्त जनों के साथ वर्त्तमान रहके विद्यारूपी न्याय के प्रकाश से अन्याय वा दुष्टों का निवारण कर चक्रवर्त्ति राज्य का पालन करें ॥४॥

फिर वह सभाध्यक्ष कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

गृणानो अङ्गिरोभिर्दस्म वि वरुषसा सूर्येण गोभिरन्धः ।
वि भूम्या अप्रथय इन्द्र सानु दिवो रज उपरमस्तभायः ॥५॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) शत्रुओं के (दस्म) नाश करनेवाले सभाध्यक्ष ! (गृणान) उपदेश करते हुए आप जैसे बिजुली (अङ्गिरोभिः) प्राण (उषसा) प्रातःकाल के (सूर्येण) सूर्य के प्रकाश तथा (गोभिः) किरणों से (अन्धः) अन्न को प्रकट करती है वैसे धर्मराज्य और सेना को (विवः) प्रकट करो वैसे बिजुली को (व्यप्रथय) विविध प्रकार से विस्तृत कीजिए जैसे सूर्य (भूम्याः) पृथिवी में श्रेष्ठ (दिवः) प्रकाश के (सानु) ऊपरले भाग (रजः) सब लोकों और (उपरम्) मेघ को (अस्तभायः) संयुक्त राज्य की सेना को विस्तार युक्त कीजिए। शत्रुओं का बन्धन करते हुए आप हम सब लोगों से स्तुति करने के योग्य हो ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्यों को प्रातःकाल सूर्य के किरण और प्राणों के समान उक्त गुणों का प्रकाश करके दुष्टों का निवारण करना चाहिए। जैसे सूर्य प्रकाश को फैला और मेघ को उत्पन्न कर वर्षाता है वैसे ही सभाध्यक्ष आदि मनुष्यों को प्रजा में उत्तम विद्या उत्पन्न करके सुखों की वर्षा करनी चाहिए ॥५॥

फिर भी इस सभाध्यक्ष के कैसे कर्म हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तदु प्रयक्षतममस्य कर्म दस्मस्य चारुतममस्ति दंसः ।
उपह्वरे यदुपरा अपिन्वन्मध्वर्णसो नद्य१श्चतस्रः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को उचित है कि (अस्य) इस (दस्मस्य) दुःख नष्ट करनेवाले सभाध्यक्ष वा बिजुली के (उपह्वरे) कुटिलतायुक्त व्यवहार में (यत्) जो (प्रयक्षतमम्) अत्यन्त पूजने योग्य (चारुतमम्) अतिसुन्दर (दंसः) विद्या वा सुखों के जानने का हेतु (कर्म) कर्म (अस्ति) है (तदु) उसको जानकर आचरण करना वा जिनके इस प्रकार के कर्म से (मध्वर्णसः) मधुर जलवाली (नद्यः) नदी और (चतस्रः) चार (उपराः) दिशा (अपिन्वत्) सेवन वा सेवन करती हैं उन दोनों को विद्या से अच्छे प्रकार सेवन करना चाहिए ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। मनुष्यों को चाहिए कि अति उत्तम-उत्तम कर्मों का सेवन, यज्ञ का अनुष्ठान और राज्य का पालन करके सब दिशाओं में कीर्त्ति की वर्षा करें ॥६॥

फिर सभाध्यक्ष कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

द्विता वि वव्रे सनजा सनीळे अयास्यः स्तवमानेभिरर्कैः ।
भगो न मेने परमे व्योमन्नधारयद्रोदसी सुदंसाः ॥७॥

पदार्थ—जैसे विद्वानों से जो (सनीळे) समीप (स्तवमानेभिः) स्तुतियुक्त (अर्कैः) स्तोत्रों से (सनजा) सनातन कारण से उत्पन्न हुई (द्विता) दो अर्थात् प्रजा और सभाध्यक्ष को (विवव्रे) विशेष करके स्वीकार किया जाता है वैसे मनुष्य (अयास्यः) अनायास से सिद्ध करनेवाला (सुदंसाः) उत्तम कर्मयुक्त मैं जैसे (परमे, व्योमन्) उत्तम अन्तरिक्ष में (रोदसी) प्रकाश और भूमि को (भगो न) सूर्य्य के समान विद्वान् (मेने) मानता और (अधारयत्) धारण करता है वैसे इसको धारण करता और मानता हूँ ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्यों को चाहिए कि जैसे सभा आदि का अध्यक्ष ऐश्वर्य को और सूर्य प्रकाश तथा पृथिवी को धारण करता है वैसे ही न्याय और विद्या का धारण करें ॥७॥

अब रात्रि और दिन के दृष्टान्त से स्त्री और पुरुष किस प्रकार वर्त्ताव करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सनाद्दिवं परि भूमा विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवैः ।
कृष्णेभिरक्तोषा रुशद्भिर्वपुर्भिरा चरतो अन्यान्या ॥८॥

पदार्थ—हे स्त्री-पुरुषो ! तुम जैसे (सनात्) सनातन कारण से (दिवम्) सूर्य्य प्रकाश और (भूमा) भूमि को प्राप्त होकर (पुनर्भुवा) बार-बार, पर्य्याय से उत्पन्न होके (युवती) युवावस्था को प्राप्त हुए स्त्री-पुरुष के समान (विरूपे) विविध रूप से युक्त (अक्ता) रात्रि (उषाः) दिन (स्वेभिः) क्षण आदि अवयव (एवैः) प्राप्ति के हेतु रूपादि गुणों के साथ (वपुर्भिः) अपनी आकृति आदि शरीर वा (कृष्णेभिः) परस्पर आकर्षणादि को (रुशद्भिः) प्राप्त करनेवाले गुणों के साथ (अन्यान्या) भिन्न-भिन्न परस्पर मिले हुए (पर्य्याचरतः) आते-जाते हैं वैसे स्वयंवर अर्थात् परस्पर की प्रसन्नता से विवाह करके एक-दूसरे के साथ प्रीतियुक्त होके सदा आनन्द में वर्त्तो ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्यों को योग्य है कि जैसे चक्र के समान सर्वदा परिवर्त्तनशील रात्रि, दिन परस्पर संयुक्त रहते हैं, वैसे विवाहित स्त्री और पुरुष अत्यन्त प्रेम के साथ वर्त्ता करें ॥८॥

फिर वे कैसे हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः ।
आमासु चिद्दधिषे पक्वमन्तः पयः कृष्णासु रुशद्रोहिणीषु ॥९॥

पदार्थ—जो (स्वपस्यमानः) उत्तम कर्मों को करते हुए के समान (सुदंसाः) उत्तम कर्म्मयुक्त (सनात्) शुभ गुणों की प्राप्ति करता हुआ तू जैसे (सूनुः) सत्पुत्र अपने माता-पिता का पोषण करते हुए के समान रात्रि दिन (सनेमि) प्राचीन (सख्यम्) मित्रपन के कालावयवों को (दाधार) धारण करता और (रोहिणीषु) उत्पन्नशील (कृष्णासु) सब प्रकार से पकी हुई (चित्) और (आमासु) कच्ची ओषधियों के (अन्तः) मध्य में (पयः) रस को धारण करता है वैसे (शवसा) बल के साथ गृहाश्रम को (दधिषे) धारण कर ॥९॥

भावार्थ—विद्वानों को जैसे ये दिन-रात कच्चे-पक्के रसों के उत्पन्न करने और उत्पन्न हुए पदार्थों की वृद्धि वा नाश करनेवाले सखा के समान वर्त्तमान हैं वैसे सब मनुष्यों के साथ वर्त्तना योग्य है ॥९॥

सनात्सनीळा अवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः ।
पुरू सहस्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति स्वसारो अह्रयाणम् ॥१०॥२॥

पदार्थ—जैसे (अवाताः) हिंसारहित (अवनीः) भूमि सब की रक्षा (पुरुसहस्रा) बहुत हजार (जनयः) उत्पन्न करनेहारे पति (पत्नीः न) जैसे अपनी स्त्रियों की रक्षा करते हैं वैसे (सनीळाः) समीप में वर्त्तमान (अमृताः) नाशरहित विद्वान् लोग (सहोभिः) विद्या, योग, धर्म बालों से (सनात्) सनातन (व्रता) सत्य धर्म के आचरणों की (रक्षन्ते) रक्षा करते हैं और जैसे (स्वसारः) बहिनें (अह्रयाणम्) लज्जा को अप्राप्त अपने भाई की (दुवस्यन्ति) सेवा करती हैं वैसे विद्या और धर्म ही को सेवते हैं वे मुक्ति को प्राप्त होते हैं ॥१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे पति अपनी स्त्रियों, बहिन अपने भाइयों तथा विद्यार्थी आचार्यों की सेवा से सुख और विद्याओं को प्राप्त होते हैं वैसे धर्मात्मा, विद्वान् पुरुष और स्त्रियाँ घर में बसते हुए भी मुक्ति को प्राप्त होते हैं ॥१०॥

फिर भी दिन और रात्रि कैसे तथा इनके जाननेवाले विद्वान् लोग कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सनायुवो नमसा नव्यो अर्कैर्वसूयवो मतयो दस्म दद्रुः ।
पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तं स्पृशन्ति त्वा शवसावन्मनीषाः ॥११॥

पदार्थ—हे (शवसावन्) बलयुक्त (दस्म) अविद्यान्धकार विनाशक सभापते ! तू जैसे (सनायुवः) सनातन कर्म के करनेवालों के समान आचरण करते (नमसा)

अन्न वा नमस्कार तथा (अर्कैः) मन्त्र अर्थात् विचारों के साथ वर्त्तमान (वसूयवः) अपने लिए विद्या धनो और (मनीषा.) विज्ञानों की इच्छा करने (मतय) सबको जाननेवाले विद्वान् लोग (न) जैसे (नव्यः) नवीन (उशतीः) काम की चेष्टा से युक्त (पत्नी) स्त्री (उशन्तम्) काम की इच्छा करनेवाले (पतिम्) पति का (स्पृशन्ति) आलिङ्गन करती हैं और जैसे (शवः) कुटिल गति को प्राप्त होने वालो को जानते हैं वैसे (त्वा) तुझको प्रजा सेवें ॥११॥

भावार्थ – इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्यो को समझना चाहिए कि जैसे स्त्री-पुरुषो के साथ वर्त्तमान होने से सन्तानों की उत्पत्ति होती है, वैसे ही रात-दिन के एक साथ वर्त्तमान होने से सब व्यवहार सिद्ध होते हैं और जैसे सूर्य का प्रकाश और पृथिवी की छाया के बिना रात और दिन सम्भव नहीं, वैसे ही स्त्री-पुरुष के बिना मैथुनी सृष्टि नही हो सकती ॥११॥

अब अगले मन्त्र मे सूर्य्य और सभापति आदि के गुणों का उपदेश किया है—

सनादेव तव रायो गभस्तौ न क्षीयन्ते नोप दस्यन्ति दस्म ।

द्युमाँ असि क्रतुमाँ इन्द्र धीरः शिक्षा शचीवस्तव नः शचीभिः ॥१२॥

पदार्थ—हे (दस्म) शत्रुओ के नाश करनेवाले (शचीवः) उत्तम बुद्धि वा वाणी से युक्त ! (इन्द्र) उत्तम धनवाले सभाध्यक्ष ! जो आप (द्युमान्) विद्यादि श्रेष्ठ गुणो के प्रकाश मे युक्त (क्रतुमान्) बुद्धि से विचारकर कर्म करने वाले (धीरः) ध्यानी (असि) हैं उस (तव) आपके (गभस्तौ) राजनीति के प्रकाश मे (सनात्) सनातन से (रायः) धन (नैव) नही (क्षीयन्ते) क्षीण तथा (तव) आपके प्रबन्ध से (न) नही (उपदस्यन्ति) नष्ट होते हैं सो आप अपनी (शचीभिः) बुद्धि, वाणी और कर्म से (नः) हम लोगो को (शिक्ष) उपदेश दीजिए ॥१२॥

भावार्थ- मनुष्यो को चाहिए कि जो सनातन वेद के ज्ञान से शिक्षा को और सभापति आदि के अधिकार को प्राप्त होके प्रजा का पालन करे उसी मनुष्य को धर्मात्मा जाने ॥१२॥

फिर सभाध्यक्ष के गुणों का उपदेश किया है—

सनायते गोतम इन्द्र नव्यमतक्षद्ब्रह्म हरियोजनाय ।

सुनीथाय नः शवसान नोधाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१३॥३॥

पदार्थ—हे (शवसान) बलयुक्त (इन्द्र) उत्तम धनवाले सभाध्यक्ष (धियावसुः) बुद्धि और कर्म के साथ बसनेवाले (गोतम) अत्यन्त स्तुति के योग्य तथा (नोधाः) स्तुति करनेवाले आप (हरियोजनाय) मनुष्यो के समाधान के लिए (नव्यम्) नवीन (ब्रह्म) बडे धन को (अतक्षत्) क्षीण करते हो (नः) हमें लोगों को (सुनीथाय) सुखों की प्राप्ति के लिए (प्रातः) प्रतिदिन (मक्षु) शीघ्र (सनायते) सनातन के समान आचरण करते हो तथा (नः) हम लोगो के सुखों के लिए (जगम्यात्) प्राप्त हो ॥१३॥

भावार्थ—सभापति आदि को चाहिए कि मनुष्यो के हित के लिए प्रतिदिन नवीन-नवीन धन और अन्न को उत्पन्न करें। जैसे प्राणवायु मनुष्यो को सुख देता है वैसे ही सभाध्यक्ष सब को सुखी करे ॥१३॥

इस सूक्त मे ईश्वर, सभाध्यक्ष, दिन, रात, विद्वान्, सूर्य और वायु के गुणो का वर्णन होने से पूर्व सूक्तार्थ के साथ इस सूक्तार्थ की सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह बासठवां सूक्त और तीसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ नवर्चस्य त्रिषष्टितमस्य सूक्तस्य गोतमो नोधा ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ७, ९ भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः, ३ विराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २, ४ विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ भुरिगार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ६ स्वराडार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब त्रेसठवें सूक्त का आरम्भ है उसके पहले मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

त्वं महाँ इन्द्र यो ह शुष्मैर्द्यावा जज्ञानः पृथिवी अमे धाः ।

यद्ध ते विश्वा गिरयश्चिदभ्वा भिया दृळ्हासः किरणा नैजन् ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) उत्तम सम्पदा के देनेवाले परमात्मन् ! जो (त्वम्) आप (महान्) गुणों से अनन्त (जज्ञानः) प्रसिद्ध (शुष्मैः) बलादि के (अमे) प्रकाश मे (ह) निश्चय करके (द्यावापृथिवी) प्रकाश और पृथिवी को (धाः) धारण करते हो (ते) आप के (अभ्वा) उत्पत्ति रहित सामर्थ्य के (भिया) भय से (ह) ही (यत्) जो (विश्वा) सब (गिरयः) पर्वत वा मेघ (दृळ्हासः) दृढ हुए (चित्) और (किरणा) कान्ति (नैजन्) कभी कम्प को नही प्राप्त होते ॥ १ ॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यो को चाहिए कि जो परमेश्वर अपने सामर्थ्य और बल आदि से सब जगत् को रच के दृढता से धारण करता है उसी की सर्वदा उपासना करें। सूर्य्यलोक ने अपने आकर्षण आदि गुणो से पृथिवी आदि जिन लोको को धारण किया है उन को भी परमेश्वर का बनाया और धारण किया जानें ॥ १ ॥

अब अगले मन्त्र में सभापति आदि के गुणों का उपदेश किया है—

आ यद्धरी इन्द्र विव्रता वेरा ते वज्रं जरिता बाह्वोर्धात् ।

येनाविहर्यतक्रतो अमित्रान् पुर इष्णासि पुरुहूत पूर्वीः ॥२॥

पदार्थ—हे (अविहर्य्यतक्रतो) दुष्ट बुद्धि और पाप कर्मों से रहित (पुरुहूत) बहुत विद्वानो से सत्कार को प्राप्त करानेवाले सभाध्यक्ष ! आप (यत्) जिस कारण (विव्रता) नाना प्रकार के नियमो के उत्पन्न करनेवाले (हरी) सेना और न्याय के प्रकाश को (आवेः) अच्छे प्रकार जानते हो (येन) जिस वज्र से (अमित्रान्) शत्रुओ को मारते तथा जिससे उनके (पूर्वीः) बहुत (पुरः) नगरों को (इष्णासि) जीतने के लिए इच्छा करते और शत्रुओ के पराजय और अपने विजय के लिए प्रतिक्षण जाते हो इससे (जरिता) सब विद्याओ की स्तुति करने वाला मनुष्य (ते) आपके (बाह्वोः) भुजाओ के बल के आश्रय मे (वज्रम्) वज्र को (आधात्) धारण करता है ॥ २ ॥

भावार्थ —सभापति आदि को उचित है कि इस प्रकार के उत्तम स्वभाव, गुण और कर्मों का स्वीकार करें, जिससे सब मनुष्य इस कर्म को देख तथा शिष्ट होकर निष्कण्टक राज्य के सुख को सदा भोगें ॥ २ ॥

फिर वह सभाध्यक्ष कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान् त्वमृभुक्षा नर्य्यस्त्वं षाट् ।

त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन् ॥३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) उत्तम सम्पदा के देनेवाले सभाध्यक्ष ! (त्वम्) आप जिस कारण (सत्य) जीव स्वरूप से अनादि है जिस कारण (त्वम्) आप (धृष्णुः) दृढ हो तथा जिस कारण (त्वम्) आप (ऋभुक्षाः) गुणो से बडे (नर्य्यः) मनुष्यो के बीच चतुर और (षाट्) सहनशील हो इससे (वृजने) जिसमे शत्रुओ को प्राप्त होते हैं (पृक्षे) सयुक्त इकट्ठे होते हैं जिस में उस (आणौ) सग्राम मे (सचा) शिष्टो के सम्बन्ध से (कुत्साय) शस्त्रों का धारण किये (द्युमते) उत्तम प्रकाशयुक्त (यूने) शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त हुए मनुष्य के लिए (शुष्णम्) पूर्ण बल को देते हो। जिस कारण आप शत्रुओं को (अहन्) मारते तथा (एतान्) इन धर्मात्मा श्रेष्ठ पुरुषो का पालन करते हो इससे पूजने योग्य हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—सभा और सभापति के बिना शत्रुओ का पराजय और राज्य का पालन किसी से नहीं हो सकता। इसलिए श्रेष्ठ गुण वालो की सभा और सभापति से इन सब कार्य्यों को सिद्ध कराना मनुष्यों का मुख्य काम है ॥ ३ ॥

त्वं ह त्यदिन्द्र चोदीः सखा वृत्रं यद्वज्रिन्वृषकर्मन्नुभ्नाः ।

यद्ध शूर वृषमणः पराचैर्वि दस्यूँर्योनावकृतो वृथाषाट् ॥४॥

पदार्थ—हे (वज्रिन्) उत्तम शस्त्रों के धारण करने तथा (इन्द्र) उत्तम गुणों के जाननेवाले सभाध्यक्ष ! जिस कारण (त्वम्) आप (ह) निश्चय करके (त्यत्) उस (वृत्रम्) शत्रु को (पराचैः) दूर (चोदीः) कर देते हो इसी कारण श्रेष्ठ पुरुषों के धारण और पालन करने को समर्थ हो। हे (वृषकर्मन्) श्रेष्ठ मनुष्यों के समान उत्तम कर्मों के करनेवाले सभाध्यक्ष ! (यत्) जिस कारण आप (सखा) सब के मित्र हो इसी मे मित्रो की रक्षा करते हो। हे (शूर) निर्भय सेनाध्यक्ष ! (यत्) जो आप (ह) निश्चय करके (दस्यून्) दूसरे के पदार्थो को छीन लेने वाले दुष्टो को (अकृतः) दूर से (वि) विशेष करके छेदन करते हो इससे प्रजा की रक्षा करने के योग्य हो। हे (वृषमणः) शूरवीरो में विचारशील सभाध्यक्ष ! आप जिस कारण सुखो को (उभ्नाः) पूर्ण करते हो इस से सत्कार करने के योग्य हो। तथा हे सभाध्यक्ष ! जिस कारण आप (वृथाषाट्) सहज स्वभाव से सहन करनेवाले हो इससे (योनौ) घर मे रहनेवाले सब मनुष्यो के सुखों को पूर्ण करते हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि जैसे सूर्य्य अपने प्रकाश मे सब को आनन्दित कर तथा मेघ को उत्पन्न करके वर्षाता है और अन्धकार को निवारण करके अपने प्रकाश को फैलाता है वैसे ही सभाध्यक्ष विद्यादि उत्तम गुणो से सब का सुखी शरीर वा आत्मा के बल का सिद्ध, धर्म, शिक्षा, अभय आदि को वर्षा अधर्मरूपी अन्धकार और शत्रुओ का निवारण करके राज्य मे प्रकाशित होवे ॥ ४ ॥

त्वं ह त्यदिन्द्रारिषण्यन्दृळ्हस्य चिन्मर्तानामजुष्टौ ।

व्य१स्मदा काष्ठा अर्वते वर्घनेव वज्रिञ्छ्नथिह्यमित्रान् ॥५॥४॥

पदार्थ- हे (अरिषण्यन्) अपने शरीर से हिंसा, अधर्म्म की इच्छा नहीं करनेवाले (वज्रिन्) उत्तम आयुधो से युक्त (इन्द्र) सभापते ! (त्वम्) आप (ह) प्रसिद्ध (अस्मत्) हम लोगो से (अर्वते) घोडे आदि धनों से युक्त सेना के लिए (व्याव) अनेक प्रकार स्वीकार करते हो (त्यत्) उस (दृळ्हस्य) स्थिर राज्य (चित्) और (मर्त्तानाम्) प्रजा के मनुष्यों को शत्रुओं की (अजुष्टौ) अप्रीति होने मे (घनेव) जैसे सूर्य मेघो को काटता (अमित्रान्) वैसे धर्मविरोधी शत्रुओं को (काष्ठाः) दिशाओ के प्रति (श्नथिहि) मारो ॥ ५ ॥

भावार्थ इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। सभा, सभापति आदि को उचित है कि राज्य तथा सेना मे प्रीति और शत्रुओं में द्वेष उत्पन्न करके जैसे सूर्य्य मेघों का नित्य छेदन करता है वैसे दुष्ट शत्रुओं का सदैव छेदन किया करें ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यों को ईश्वर और सभापति आदि के सहाय की इच्छा कहां-कहां करनी चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्वां ह त्यदिन्द्रार्णसातौ स्वर्मीळ्हे नर आजा हवन्ते ।
तव स्वधाव इयमा समर्य ऊतिर्वाजेष्वतसाय्या भूत् ॥६॥

पदार्थ—हे (स्वधाव) उत्तम अन्न और (इन्द्र) श्रेष्ठ ऐश्वर्य के प्राप्त करानेवाले जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष (नर) राजनीति के जानने वाले मनुष्य (त्यत्) उस (अर्णसातौ) विजय की प्राप्ति करानेवाले शूरवीर योधा मनुष्यों का सेवन ही जिस (स्वर्मीळ्हे) सुख के सींचने से युक्त (आजौ) संग्राम में (त्वाम्) आपको (ह) निश्चय करके (आहवन्ते) पुकारते हैं । जिस कारण (तव) आप की जो (इयम्) यह (समर्ये) संग्राम वा (वाजेषु) विज्ञान, अन्न और सेनादिकों में (अतसाय्या) निरन्तर सुखों की प्राप्ति करानेवाले (ऊतिः) रक्षण आदि क्रिया है वह हम लोगों को प्राप्त (भूत्) होवे ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि सब धर्म-सम्बन्धि कार्य्यों में ईश्वर वा सभाध्यक्ष का सहाय लेके सम्पूर्ण कार्य्यों को सिद्ध करें ॥ ६ ॥

फिर अगले मन्त्र में सभापति आदि के गुणों का उपदेश किया है—

त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन् पुरो वज्रिन् पुरुकुत्साय दर्दः ।
बर्हिर्न यत्सुदासे वृथा वर्गंहो राजन्वरिवः पूरवे कः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (वज्रिन्) उत्तम शस्त्रों से युक्त (राजन्) प्रकाश करने तथा (इन्द्र) विजय के देनेवाले सभा के अधिपति ! जो आपके (सप्त) सभा, सभासद् सभापति, सेना, सेनापति, भृत्य, प्रजा ये सात हैं उन्हीं के साथ प्रेम से वर्त्तमान होके शत्रुओं के साथ (युध्यन्) युद्ध करते हुए जिस कारण तुम उन-उन शत्रुओं के (पुरः) नगरों को (दर्दः) विदारण करते हो । जो आप (अंहो) प्राप्त होने योग्य राज्य के (पुरुकुत्साय) बहुत मनुष्यों को ग्रहण करने योग्य (पूरवे) पूर्ण सुख के लिए (यत्) जो (वरिवः) सेवन करने योग्य पदार्थों को (सुदासे) उत्तम दान करनेवाले मनुष्यों से युक्त देश में (बर्हिः) अन्तरिक्ष के (न) समान (कः) करते हो (यत्) जो (वृथा) व्यर्थ काम करनेवाले मनुष्य हों (त्यत्) उनको (वर्क्) वर्जित करते हो इस कारण हम सब लोगों को सत्कार करने योग्य हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य्य सब जगत् के हित के लिए मेघ को वर्षाता है वैसे ही सब का स्वामी सभापति सब का हित सिद्ध करे ॥ ७ ॥

अब सभाध्यक्षादि और विद्युत् अग्नि के गुणों का उपदेश किया है—

त्वं त्यां न इन्द्र देव चित्रामिषमापो न पीपयः परिज्मन् ।
यया शूर प्रत्यस्मभ्यं यंसि त्मनमूर्जं न विश्वध क्षरध्यै ॥८॥

पदार्थ—हे बिजुली के समान (परिज्मन्) सब ओर से दुष्टों के नष्ट करने (विश्वध) विश्व के धारण करने (शूर) निर्भय (देव) विद्या और शिक्षा के प्रकाश करने और (इन्द्र) सुखों के देनेवाले सभाध्यक्ष ! जैसे (त्वम्) आप (यया) जिससे (नः) हम लोगों के (त्मनम्) आत्मा को (क्षरध्यै) चलायमान होने को (ऊर्जम्) अन्न वा पराक्रम के (न) समान (यंसि) दुष्ट काम से रोक देते हो (त्याम्) उस (चित्राम्) अद्भुत सुखों को करनेवाली (इषम्) इच्छा वा अन्न को (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए (आपो न) जलों के समान (प्रतिपीपय) वार-वार पिलाते हो वैसे हम भी आप को अच्छे प्रकार प्रसन्न करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अन्न क्षुधा का और जल तृषा को निवारण करके सब प्राणियों को सुखी करते हैं, वैसे सभापति आदि को सुखी करें ॥ ८ ॥

फिर भी उक्त सभाध्यक्ष कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अकारि त इन्द्र गोतमेभिर्ब्रह्माण्योक्ता नमसा हरिभ्याम् ।
सुपेशसं वाजमा भरा नः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥९॥५॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभा आदि के पति ! (ते) आप के जिन (गोतमेभिः) विद्या से उत्तम शिक्षा को प्राप्त हुए शिक्षित पुरुषों से (नमसा) अन्न और धन (हरिभ्याम्) बल और पराक्रम से जिन (ओक्ता) अच्छे प्रकार प्रशंसा किये हुए (ब्रह्माणि) बड़े-बड़े अन्न और धनों को (अकारि) करते हैं उनके साथ (नः) हम लोगों के लिए उन को जैसे (धियावसुः) कर्म और बुद्धि से सुखों में बसानेवाला विद्वान् (सुपेशसम्) उत्तमरूपयुक्त (वाजम्) विज्ञान समूह को (प्रातः) प्रतिदिन (जगम्यात्) पुनः-पुनः प्राप्त होवे और इस का धारण करे वैसे आप पूर्वोक्त सब को (मक्षु) शीघ्र (आभर) सब ओर से धारण कीजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—जैसे बिजुली सूर्य्य आदि रूप से सब जगत् को पुष्ट करती है वैसे सभाध्यक्ष आदि भी उत्तम धन और श्रेष्ठ गुणों से प्रजा को पुष्ट करें ॥९॥

इस सूक्त में ईश्वर सभाध्यक्ष और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ के साथ संगति समझनी चाहिए ।

यह त्रेसठवां सूक्त और पांचवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चदशर्चस्य चतुःषष्टितमस्य सूक्तस्य गौतमो नोधा ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
१,४,६,९,१४ विराड्जगती, २,३,५,७,१०—१३
निचृज्जगती, ८,१२ जगती छन्दः । निषादः स्वरः ।
१५ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब चौंसठवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है । उसके पहिले मन्त्र में वायु के गुणों के दृष्टान्त से विद्वान् के गुणों का उपदेश किया है—

वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे नोधः सुवृक्तिं प्र भरा मरुद्भ्यः ।
अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुवः ॥१॥

पदार्थ—हे (नोधः) स्तुति करनेवाले मनुष्य ! (आभुवः) अच्छे प्रकार उत्पन्न होनेवाले (अपः) कर्म वा प्राणों के समान (धीरः) संयम से रहनेवाला विद्वान् (सुहस्त्यः) उत्तम हस्तक्रियाओं में कुशल मैं (मनसा) विज्ञान और (मरुद्भ्यः) पवनों के सकाश से (विदथेषु) युद्धादि चेष्टामय यज्ञों में (गिरः) वाणी (सुवृक्तिम्) उत्तमता से दुष्टों को रोकनेवाली क्रिया को (समञ्जे) अपनी इच्छा से ग्रहण करता हूं वैसे ही तू (प्रभर) धारण कर ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को जानना चाहिए कि जितनी चेष्टा, भावना, बल, विज्ञान, पुरुषार्थ, धारण करना, छोड़ना, कहना, सुनना, बढ़ना, नष्ट होना, भूख, प्यास आदि हैं वे सब वायु के निमित्त से ही होते हैं । जिस प्रकार इस विद्या को मैं जानता हूं वैसे ही तुम भी ग्रहण करो ऐसा उपदेश सर्वदा करना चाहिए ॥१॥

फिर भी उक्त वायु कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः ।
पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को उचित है कि जो (रुद्रस्य) जीव वा प्राण के सम्बन्धी पवन (दिवः) प्रकाश से (जज्ञिरे) उत्पन्न होते हैं जो (सूर्या इव) सूर्य के किरणों के समान (ऋष्वासः) ज्ञान के हेतु (उक्षणः) सेचन और (पावकासः) पवित्र करनेवाले (शुचयः) शुद्ध जो (सत्वानः) बल, पराक्रमवाले प्राणियों के (न) समान (मर्याः) मरणधर्मयुक्त (असुराः) प्रकाशरहित (अरेपसः) पापों से पृथक् (द्रप्सिनः) नाना प्रकार के मोहों से युक्त (घोरवर्पसः) भयङ्कर हैं (ते) उन्हीं के संग से विद्यादि उत्तम गुणों का ग्रहण करो ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं । जैसे ईश्वर की सृष्टि में सिंह, हाथी और मनुष्य आदि प्राणी बलवान् होते हैं वैसे वायु भी है । जैसे सूर्य की किरणें पवित्र करने वाली हैं वैसे वायु भी । इन दोनों के विना रोग का नाश, मरण और जन्म आदि व्यवहार नहीं हो सकते । इससे मनुष्यों को चाहिए कि इनके गुणों को जानके सब कार्यों में यथावत् सम्प्रयोग करें ॥२॥

युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनो ववक्षुरध्रिगावः पर्वता इव ।
दृळ्हा चिद्विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो ये (पर्वता इव) पर्वत वा मेघ के समान धारण करनेवाले (युवानः) पदार्थों के मिलाने तथा पृथक् करने में बड़े बलवान् (अभोग्घनः) भोजन करने तथा मरने से पृथक् (अध्रिगावः) किरणों को नहीं धारण करनेवाले अर्थात् प्रकाशरहित (अजराः) जन्म लेके वृद्ध होना फिर मरना इत्यादि कामों से रहित तथा कारणरूप से नित्य (रुद्राः) ज्वर आदि की पीड़ा से रुलाने वाले वायु जीवों को (ववक्षुः) रुष्ट करते हैं (मज्मना) बल से (पार्थिवा) भूगोल आदि (दिव्यानि) प्रकाश के रहनेवाले सूर्य आदि लोक (चित्) और (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक (दृळ्हा) दृढ़, स्थिरों को भी (प्रच्यावयन्ति) चलायमान करते हैं उन को विद्या से यथावत् जानकर कार्य्यों के बीच लगाओ ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को जैसे मेघ जलों के आधार और पर्वत ओषधि के आधार हैं वैसे ही ये संयोग-वियोग करनेवाले सबके आधार सुख-दुःख के हेतु नित्य, रूपरहित, स्पर्श गुणवाले पवन हैं ऐसा समझना योग्य है । और इनके विना जल, अग्नि और भूगोल तथा इनके परमाणु भी जाने-आने में समर्थ नहीं हो सकते ॥३॥

चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्माँ अधि येतिरे शुभे ।
अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुरृष्टयः साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो ये (ऋष्टयः) इधर-उधर चलने तथा (नरः) पदार्थों को प्राप्त करनेवाले पवन (चित्रैः) आश्चर्यरूप क्रिया गुण और स्वभाव तथा (अञ्जिभिः) प्रकट करना आदि धर्मों से (शुभे) सुन्दर (वपुषे) शरीर के धारण के लिए (व्यञ्जते) विशेष करके प्राप्त होते हैं जो (वक्षःसु) हृदयों में (रुक्मान्) बिजुली तथा जठराग्नि के प्रकाशों को (अधियेतिरे) यत्न-पूर्वक सिद्ध करते (स्वधया) पृथिवी, आकाश तथा अन्न के (साकम्) साथ (जायन्ते) उत्पन्न होते और (दिवः) सूर्य आदि के प्रकाशों का उत्पन्न करते हैं (एषाम्) इन पवनों के योग से (अंसेषु) बल, पराक्रम के मूल कन्धों में (निमिमृक्षुः) सब पदार्थसमूह को प्राप्त हो सकते हैं उनको यथावत् जानकर अपने कार्य्यों में सम्प्रयुक्त करो ॥४॥

भावार्थ—विद्वानों को उचित है कि ऐसे विलक्षण गुणवाले वायुओं को जानकर शुद्ध सुखों को भोगें ॥४॥

ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान्विद्युतस्तविषीभिरक्रत ।
दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः ॥५॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो ये (**ईशानकृतः**) जीवों को ऐश्वर्य्य युक्त करने (**धुनयः**) धूलि के वर्षाने, वृक्ष आदि के कम्पाने (**रिशादसः**) जीवों को दुःख देनेवाले रोगों के नाश करने (**धूतयः**) सब पदार्थों को कम्पाने और (**परिज्रयः**) सब ओर से पदार्थों को जीर्ण करनेवाले वायु (**तविषीभिः**) अपने बलों से (**विद्युतः**) बिजुली आदि को (**अक्रत**) उत्पन्न करते हैं तथा जो (**पयसा**) जल वा रस से (**ऊधः**) उषा को (**दुहन्ति**) पूर्ण करते हैं जो (**भूमिम्**) पृथिवी (**दिव्यानि**) शुद्ध जल आदि वस्तु तथा उत्तम कार्य्यों का (**पिन्वन्ति**) सेवन वा सेचन करते हैं (**वातान्**) उन पवनों को जानो ॥५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम्हारे लिए परमेश्वर वायु के गुणों का उपदेश करता है कि कहे वा न कहे गुणवाले वायु, बिजुली को उत्पन्न करके वर्षा द्वारा भूमि पर ओषधि आदि के सेचन से सब प्राणियों को सुख देनेवाले होते हैं ऐसा तुम लोग जानो ॥५॥

पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद्विदथेष्वाभुवः ।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे (**आभुवः**) अच्छे प्रकार उत्पन्न होने तथा (**सुदानवः**) उत्तम दान देने के हेतु (**मरुतः**) पवन (**विदथेषु**) यज्ञों में (**घृतवत्**) घृत के तुल्य (**पयः**) जल वा रस को (**पिन्वन्ति**) सेवन वा सेचन करते हैं (**मिहे**) वीर्य वृष्टि के लिए (**अत्यम्**) घोड़े के (**न**) समान (**अपः**) प्राण, जल वा अन्तरिक्ष के अवयवों को (**वि नयन्ति**) नाना प्रकार से प्राप्त करते हैं (**उत्सम्**) और कूप के समान (**अक्षितम्**) नाशरहित (**स्तनयन्तम्**) शब्द करते हुए (**वाजिनम्**) उत्तम वेगवान् पुरुष को (**दुहन्ति**) पूर्ण करते हैं वैसे हो और उनको कार्यों में लगाओ ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा तथा वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे यज्ञ में घृत आदि पदार्थ, क्षेत्र पशु आदि की तृप्ति के लिए कूप और घोड़ी सेचन के लिए घोड़ा है वैसे विद्या से सम्प्रयोग किये हुए पवन सब कार्यों को सिद्ध करते हैं ॥६॥

महिषासो मायिनश्चित्रभानवो गिरयो न स्वतवसो रघुष्यदः ।
मृगा इव हस्तिनः खादथा वना यदारुणीषु तविषीरयुग्ध्वम् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (**यत्**) जैसे (**महिषासः**) बड़े-बड़े सेवन करने योग्य गुणों से युक्त (**चित्रभानवः**) चित्र-विचित्र दीप्तिवाले (**मायिनः**) उत्तम बुद्धि होने के हेतु (**स्वतवसः**) अपने बल से बलवान् (**रघुष्यदः**) अच्छे स्वाद के कारण वा उत्तम चलन क्रिया से युक्त (**गिरयो न**) मेघों के समान जलों को तथा (**हस्तिनः**) हाथी और (**मृगा इव**) बलवाले हिरनों के समान वेगयुक्त वायु (**वना**) जल वा वनों को (**खादथ**) भक्षण करते हैं वैसे इन (**तविषीः**) बलों को (**आरुणीषु**) प्राप्त होते हैं सुख जिन्हों में उन सेना और यानों की क्रियाओं में (**अयुग्ध्वम्**) ठीक-ठीक विचारपूर्वक संयुक्त करो ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं । मनुष्यों को चाहिए कि पवनों के बिना हमारे चलना, खाना, यान का चलना आदि काम सिद्ध नहीं हो सकते, इससे इन वायुओं का विमान और नौका आदि यानों में संयुक्त करके अग्नि-जलों के संयोग से यानों को शीघ्र चलाया करें ॥७॥

सिंहा इव नानदति प्रचेतसः पिशा इव सुपिशो विश्ववेदसः ।
क्षपो जिन्वन्तः पृषतीभिर्ऋष्टिभिः समित्सबाधः शवसाहिमन्यवः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो ये (**प्रचेतसः**) उत्तम विज्ञान होने के हेतु (**सुपिशः**) सुन्दर अवयवों के करनेवाले (**सबाधः**) पदार्थों को अपने नियम से रखनेवाले (**अहिमन्यवः**) मेघ की वर्षा का ज्ञान करानेवाले वायु (**इत्**) ही (**ऋष्टिभिः**) व्यवहारों के प्राप्त कराने और (**पृषतीभिः**) अपने गमनागमन वेगादिगणों से (**क्षपः**) रात्रि को (**संजिन्वन्तः**) तृप्त करते हुए (**विश्ववेदसः**) सब कर्मों के प्राप्त करनेवाले पवन (**शवसा**) अपने बलों से (**सिंहा इव**) सिंहों के समान तथा (**पिशा इव**) बड़े बलवाले हाथियों के समान (**नानदति**) अत्यन्त शब्द करते हैं उनको कार्यों की सिद्धि के लिए यथावत् संयुक्त करो ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं । हे मनुष्यो ! तुम ऐसा जानो कि जितना बल, पराक्रम, जीवन, सुनना-विचारना आदि क्रिया हैं वे सब वायु के सकाश से ही होती हैं ॥ ८ ॥

रोदसी आ वदता गणश्रियो नृषाचः शूराः शवसाहिमन्यवः ।
आ वन्धुरेष्वमतिर्न दर्शता विद्युन्न तस्थौ मरुतो रथेषु वः ॥९॥

पदार्थ—हे (**गणश्रियः**) इकट्ठे होके शोभा को प्राप्त होने (**नृषाचः**) मनुष्यों को कर्मों में संयुक्त करने और (**अहिमन्यवः**) अपनी व्याप्ति को जाननेवाले (**शूराः**) शूरवीर के तुल्य (**मरुतः**) शिल्पविद्या के जाननेवाले ऋत्विज् विद्वान् लोग जो (**अमतिर्न**) जैसे रूप तथा (**दर्शता**) देखने योग्य (**विद्युत्**) बिजुली (**तस्थौ**) वर्त्तमान होती वैसे वर्त्तमान वायु (**वन्धुरेषु**) यान यन्त्रों के बन्धनों में जो (**शवसा**) बल से (**रोदसी**) प्रकाश और भूमि को धारण करते हैं तथा जो (**वः**) तुम लोगों के (**रथेषु**) रथों में जोड़े हुए कार्य्यों को सिद्ध करते हैं उनका हम लोगों के लिए (**आवदत**) उपदेश कीजिए ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं । मनुष्यों को ऐसा जानना योग्य है कि सब मूर्तिमान् द्रव्यों के आधार, शूरवीरता और शिल्पविद्या के कार्य्यों के हेतु पवन ही हैं ॥९॥

विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः संमिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः ।
अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्योरनन्तशुष्मा वृषखादयो नरः ॥१०॥७॥

पदार्थ—हे (**नरः**) विद्या को प्राप्त होनेवाले मनुष्यो ! तुम लोग जो (**समोकसः**) जिन से अच्छे प्रकार निवास होता है (**संमिश्लासः**) अग्नि आदि चार तत्त्वों के साथ अत्यन्त मिले हुए (**इषुम्**) बाण वा इच्छा विशेष छोड़ते हुए (**वृषखादयः**) रसों का वर्षानेवाले पदार्थों के खानेवाले (**अनन्तशुष्माः**) अनन्त बलवान् (**विरप्शिनः**) बड़े (**विश्ववेदसः**) सब पदार्थों की प्राप्ति के हेतु होके सब पदार्थों को इधर-उधर चलानेवाले वायु (**रयिभिः**) चक्रवर्त्ति राज्य की शोभा आदि तथा (**तविषीभिः**) बल, पराक्रम, सेना आदि प्रजा और (**गभस्त्योः**) किरण युक्त सूर्य्य वा प्रसिद्ध अग्नि के समान भुजाओं में बल को (**दधिरे**) धारण करते हैं उनके गुणों को ठीक-ठीक जानकर उनमें विद्या, शिक्षा और यान के चलाने की क्रियाओं को ग्रहण करो ॥१०॥

भावार्थ—मनुष्य विद्वानों तथा वायु आदि पदार्थविद्या के बिना परलोक और इस लोक के सुखों की सिद्धि कभी नहीं कर सकते ॥१०॥

हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृध उज्जिघ्नन्त आपथ्यो३ न पर्वतान् ।
मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतो दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥११॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोग (**आपथ्यो न**) अच्छे प्रकार (**हिरण्ययेभिः**) सुवर्ण आदि के योग से प्रकाशरूप (**पविभिः**) पवित्र चक्रों के रथ से मार्ग में चलाने के समान (**भ्राजदृष्टयः**) जिन से व्यवहार प्राप्त कराने वाली कान्ति प्रसिद्ध हो (**दुध्रकृतः**) धारण करनेवाले बलादि से उत्पन्न करने (**ध्रुवच्युतः**) निश्चल आकाश से चलायमान (**स्वसृतः**) अपने गुणों को प्राप्त होके चलनेहारे (**पयोवृधः**) जल वा रात्रि के बढ़ानेवाले (**मखाः**) यज्ञ के योग्य (**अयासः**) प्राप्त होने के स्वभाव से युक्त (**मरुतः**) पवन (**पर्वतान्**) मेघ वा पर्वतों को (**उज्जिघ्नन्ते**) नष्ट करते हैं उन पवनों के गुणों को जानकर अपने कार्यों में संयुक्त करो ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि जिन वायुओं से वृष्टि आदि की उत्पत्ति होती है उनका युक्ति के साथ सेवन किया करें ॥११॥

फिर वायुओं के समुदाय कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसि ।
रजस्तुरं तवसं मारुतं गणमृजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (**हवसा**) दान और ग्रहण से (**श्रिये**) विद्या, शिक्षा और चक्रवर्त्ति राज्य की प्राप्ति के लिए जिस (**रुद्रस्य**) मुख्य वायु के (**सूनुम्**) पुत्र के समान वर्त्तमान (**विचर्षणिम्**) भेद करने तथा (**वनिनम्**) संग्राम करनेवाले (**घृषुम्**) घिसने के स्वभाव से युक्त (**पावकम्**) पवित्र करनेवाले (**तवसम्**) महाबलवान् (**रजस्तुरम्**) लोकों को शीघ्र चलाने (**ऋजीषिणम्**) उत्तम शुद्धि होने के कारण और (**वृषणम्**) वृष्टि करनेवाले (**मारुतम्**) पवनों के (**गणम्**) समूह का (**गृणीमसि**) उपदेश करते हैं उसको तुम भी (**सश्चत**) जानो ॥१२॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि वायुसमुदाय के बिना हमारे कोई काम सिद्ध नहीं हो सकते ऐसा निश्चय तथा वायुविद्या को स्वीकार करके अपने कार्यों की सिद्धि अवश्य करें ॥१२॥

फिर वे उक्त वायु कैसे गुणवाले हैं यह विषय कहा है—

प्र नू स मर्तः शवसा जनाँ अति तस्थौ व ऊती मरुतो यमावत ।
अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभिरापृच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति ॥१३॥

पदार्थ—हे (**मरुतः**) युक्ति से सेवन किये हुए वायु के समान तुम (**यम्**) जिस मनुष्य की (**आवत**) रक्षा आदि करते हो (**सः**) वह (**मर्तः**) मनुष्य (**ऊती**) रक्षा आदि के सहित (**शवसा**) विद्याक्रियायुक्त बल (**अर्वद्भिः**) घोड़ों और (**नृभिः**) मनुष्यों के साथ (**वाजम्**) वेग अन्न (**वः**) तुम (**जनान्**) मनुष्यादि प्राणियों और (**धना**) धनों को पूछने योग्य (**क्रतुम्**) बुद्धि वा कर्म्म को (**नु**) शीघ्र (**प्रभरते**) अच्छे प्रकार धारण करता (**आक्षेति**) अच्छे प्रकार निवास युक्त करता, आत्मा और अन्तःकरण से (**पुष्यति**) बल को पुष्ट करता हुआ (**तस्थौ**) स्थित होता है ॥ १३॥

भावार्थ—जो मनुष्य प्राणवायु की विद्या को जानकर उपयोग करते हैं वे बलवान्, प्रतिष्ठा को प्राप्त हो और दुःख तथा शत्रुओं को जीतकर उत्तम हाथी, घोड़े, मनुष्य, धन और बुद्धि से युक्त होके सदा सब को पुष्ट करते हैं ॥१३॥

चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन ।
धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः ॥१४॥

पदार्थ—हे (मरुतः) पवनवद्वर्त्तमान मनुष्यो ! जैसे हम (पृत्सु) सेनाओं में (बर्हस्पम) बार-बार करने योग्य कार्यों में कुशल (दुष्टरम्) दुःख से पार होने योग्य (द्युमन्तम्) अति प्रकाशयुक्त (शुष्मम्) सुखानेवाले बल को (मघवत्सु) प्रशंसनीय धनयुक्त राजकार्य्यों में (धनस्पृतम्) धन से प्रसन्न वा सेवा को प्राप्त हुए (उक्थ्यम्) कहने-सुनने योग्य (विश्वचर्षणिम्) सब को देखने योग्य (तोकम्) पुत्र तथा (तनयम्) विद्वान् पौत्र को प्राप्त होके (शतं हिमाः) हेमन्त-ऋतुयुक्त सौ वर्ष पर्य्यन्त (पुष्येम) बल पराक्रम आदि से पुष्ट होवें वैसे कर्म करके तुम भी सुख को (धत्तन) धारण करो ॥१४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग पवनों के योग से हमारे बिजुली, यन्त्र, बैल, सौ वर्ष पर्य्यन्त जीना और शरीर आदि से पुष्टि का होना ये सब काम होते हैं इसलिए इन वायुओं की विद्या को युक्ति के साथ जानकर इनसे उपयोग लिया करते हैं वैसे अन्य लोग भी आचरण करें ॥१४॥

नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्तमृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त ।
सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१५॥८॥११॥

पदार्थ—हे (मरुतः) पवन के तुल्य वर्त्तमान ! जैसे विद्वान् लोग (अस्मासु) हम लोगों में (स्थिरम्) निश्चल (वीरवन्तम्) प्रशंसा करने योग्य वीर पुरुषों से युक्त (ऋतीषाहम्) सत्य के सहन करनेवाले (रयिम्) विद्या, राज्य और सुवर्ण आदि धन को धारण करें और (धियावसुः) बुद्धि और कर्मों से युक्त विद्वान् (जगम्यात्) शीघ्र प्राप्त हो वैसे उन को तुम (प्रातः) प्रतिदिन (मक्षू) शीघ्र (धत्त) धारण करो ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे अति प्रशंसा करने योग्य बुद्धिमान् विद्या, पुरुषार्थों से युक्त विद्वान् वायु आदि पदार्थों के सकाश से दृढ़, निश्चल बहुत सुखों को सिद्ध करके आनन्द को प्राप्त होता है वैसे तुम भी इस विद्या को प्राप्त होकर आनन्द भोगो ॥ १५ ॥

इस सूक्त में वायु के गुणों का उपदेश करने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह ग्यारहवां अनुवाक चौसठवां सूक्त और आठवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चषष्टितमस्य सूक्तस्य पराशर ऋषिः । अग्निर्देवता । १, २, ३, ५ निचृत्पङ्क्तिः, ४ विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पैंसठवें सूक्त का आरम्भ है। इस के पहले मन्त्र में सर्वत्र व्यापक अग्नि शब्द का वाच्य जो पदार्थ है उस का उपदेश किया है—

पश्वा न तायुं गुहा चतन्तं नमो युजानं नमो वहन्तम् ।
सजोषा धीराः पदैरनु ग्मन्नुप त्वा सीदन् विश्वे यजत्राः ॥१॥

पदार्थ—हे सर्वविद्यायुक्त सभेश ! (विश्वे) सब (यजत्राः) सङ्गति प्रिय (सजोषाः) तुल्य प्रीति को सेवन करनेवाले (धीराः) बुद्धिमान् लोग (पदैः) प्रत्यक्ष प्राप्त गुणों के नियम से (न) जैसे (पश्वा) पशु को ले जानेवाले (तायुम्) चोर को प्राप्त कर आनन्द होता है वैसे जिस (गुहा) गुफा में (चतन्तम्) व्याप्त (नमः) वज्र के समान प्रकाश का (युजानम्) समाधान करने (नमः) सत्कार को (वहन्तम्) प्राप्त करते हुए (त्वा) आपको (अनुग्मन्) अनुकूलतापूर्वक तथा (उपसीदन्) समीपस्थित होते हैं उस आप को हम लोग भी इस प्रकार प्राप्त होके आप के समीप स्थित होते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे वस्तु को चुराये हुए चोर के पाद आदि अङ्ग वा स्वरूप देखने से उस को पकड़कर चुराये हुए पशु आदि पदार्थों को प्राप्त करते हैं वैसे ही अन्तःकरण में उपदेश करनेवाले, सब के आधार, विज्ञान से जानने योग्य परमेश्वर तथा बिजुलीरूप अग्नि को जान और प्राप्त होके सब आनन्दों को स्वीकार करो ॥१॥

फिर उसको किस प्रकार का हम लोग जानें यह विषय कहा है—

ऋतस्य देवा अनु व्रता गुर्भुवत् परिष्टिर्द्यौर्न भूम ।
वर्धन्तीमापः पन्वा सुशिश्विमृतस्य योना गर्भे सुजातम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (न) जैसे विद्वान् लोग (परिष्टिः) सब प्रकार खोजने योग्य (द्यौः) सूर्य्य के प्रकाश के तुल्य (भुवत्) होकर सब पदार्थों को दृष्टिगोचर करता है वैसे (ऋतस्य) सत्य, धर्म, स्वरूप, आज्ञा विज्ञान से (व्रता) सत्यभाषण आदि नियमों को (अनुगुः) प्राप्त होकर आचरण करते हैं तथा जैसे वे (ऋतस्य) कारणरूपी सत्य की (योना) योनि अर्थात् निमित्त में स्थित (सुजातम्) अच्छी प्रकार प्रसिद्ध (सुशिश्विम्) अच्छे पढ़ानेवाले सभापति की (पन्वा) स्तुति करने योग्य कर्म्म से (ईम्) पृथिवी को (आपः) जल वा प्राण को (वर्धन्ति) बढ़ाकर ज्ञानयुक्त कर देते हैं वैसे हम लोग (भूम) होवें और तुम भी होओ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य के प्रकाश से सब पदार्थ दृष्टि में आते हैं वैसे ही विद्वानों के संग से वेदविद्या के उत्पन्न होने और धर्माचरण की प्रवृत्ति में परमेश्वर और बिजुली आदि पदार्थ अपने-अपने गुण-कर्म-स्वभावों से अच्छे प्रकार देखे जाते हैं ऐसा तुम लोग जानकर अपने विचार से निश्चित करो ॥ २ ॥

फिर वह परमात्मा कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

पुष्टिर्न रण्वा क्षितिर्न पृथ्वी गिरिर्न भुज्म क्षोदो न शम्भु ।
अत्यो नाज्मन्त्सर्गप्रतक्तः सिन्धुर्न क्षोदः क ईं वराते ॥३॥

पदार्थ—जो मनुष्य उस परमेश्वर को (रण्वा) सुख से प्राप्त करानेवाला (पुष्टिः) शरीर, आत्मा और इन्द्रियों की पुष्टि के (न) समान (क्षोदः) जल (शम्भु) सुख सम्पन्न करनेवाले के (न) समान तथा (अज्मन्) मार्ग में (अत्यः) घोड़े के समान (सर्गप्रतक्तः) जल को संकोच करनेवाले (सिन्धुः) समुद्र (क्षोदः) जल के (न) समान (ईम्) जनाने तथा प्राप्त करने योग्य परमेश्वर वा बिजुलीरूप अग्नि को (कः) कौन विद्वान् मनुष्य (वराते) स्वीकार करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। कोई विद्वान् मनुष्य ही परमेश्वर को प्राप्त होके और बिजुलीरूप अग्नि को जानके उससे उपकार लेने को समर्थ होता है। जैसे उत्तम पुष्टि, पृथिवी का राज्य, मेघ की वृष्टि, उत्तम जल, उत्तम घोड़े और समुद्र बहुत सुखों को प्राप्त कराते हैं। वैसे ही परमेश्वर और बिजुली भी सब आनन्दों को प्राप्त कराते हैं। परन्तु इन दोनों का जानना बाधा विद्वान् मनुष्य दुर्लभ है ॥ ३ ॥

अब भौतिक अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

जामिः सिन्धूनां भ्रातेव स्वस्रामिभ्यान्न राजा वनान्यत्ति ।
यद्वातजूतो वना व्यस्थादग्निर्ह दाति रोमा पृथिव्याः ॥४॥

पदार्थ—(यत्) जो (वातजूतः) वायु से वेग को प्राप्त हुआ (अग्निः) अग्नि (वना) वनों का (दाति) छेदन करता तथा (पृथिव्याः) पृथिवी के (ह) निश्चय करके (रोमा) रोमों के समान छेदन करता है वह (सिन्धूनाम्) समुद्र और नदियों के (जामिः) सुख प्राप्त करानेवाला बन्धु (स्वस्राम्) बहिनों के (भ्रातेव) भाई के समान तथा (इभ्यान्) हाथियों की रक्षा करनेवाले पीलवानों को (राजेव) राजा के समान (व्यस्थात्) स्थित होता और (वनानि) वनों को (अत्ति) अनेक प्रकार भक्षण करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। जब मनुष्य यान-चालन आदि कार्यों में वायु से संयुक्त किये हुए अग्नि को प्रयुक्त करते हैं तब वह बहुत कार्यों को सिद्ध करता है ऐसा सब मनुष्य को जानना चाहिए ॥ ४ ॥

फिर वह सभेश कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

श्वसित्यप्सु हंसो न सीदन् क्रत्वा चेतिष्ठो विशामुषर्भुत् ।
सोमो न वेधा ऋतप्रजातः पशुर्न शिश्वा विभुर्दूरेभाः ॥५॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो (अप्सु) जलों में (हंसः) हंस पक्षी के (न) समान (सीदन्) जाता-आता, डूबता-उछलता हुआ (विशाम्) प्रजाओं को (उषर्भुत्) प्रातःकाल में बोध कराने वा (क्रत्वा) अपनी बुद्धि वा कर्म्म से (चेतिष्ठः) अत्यन्त ज्ञान करानेवाले (सोमः) ओषधिसमूह के (न) समान (ऋतप्रजातः) कारण में उत्पन्न होकर वायु-जल में प्रसिद्ध (वेधाः) पुष्ट करने वाले (शिश्वा) बछड़ा आदि में (पशुः) गौ आदि के (न) समान (विभुः) व्यापक हुआ (दूरेभाः) दूरदेश में दीप्तियुक्त बिजुली आदि अग्नि के समान (श्वसिति) प्राण, अपान आदि को करता है, उस को शिल्पादि कार्यों में संप्रयुक्त करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे बिजुली के बिना किसी मनुष्य के व्यवहार की सिद्धि नहीं हो सकती इस अग्नि विद्या से परीक्षा करके कार्यों में संयुक्त किया हुआ अग्नि बहुत सुखों को सिद्ध करता है ॥ ५ ॥

इस सूक्त में ईश्वर, अग्निरूप बिजुली के वर्णन से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए।

यह पैंसठवां सूक्त और नवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य षट्षष्टितमस्य सूक्तस्य शाक्त्यः पराशर ऋषिः । अग्निर्देवता । १ पङ्क्तिः, २ भुरिक्पङ्क्तिः ३, निचृत्पङ्क्तिः, ४, ५ विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब छासठवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है। इस के प्रथम मन्त्र में पूर्वोक्त अग्नि के गुणों का उपदेश किया है—

रयिर्न चित्रा सूरो न संदृगायुर्न प्राणो नित्यो न सूनुः ।
तक्वा न भूर्णिर्वना सिषक्ति पयो न धेनुः शुचिर्विभावा ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप सब लोग (रयिः) द्रव्य समूह के समान (चित्रा) आश्चर्य गुणवाले (सूरः) सूर्य्य के (न) समान (संदृक्) अच्छे प्रकार दिखानेवाला (आयुः) जीवन के (न) समान (प्राणः) सब शरीर में रहनेवाला (नित्यः) कारणरूप से अविनाशिस्वरूप वायु के (न) समान (सूनुः) कार्य्यरूप से वायु के पुत्र के तुल्य वर्त्तमान (पयः) दूध के (न) समान (धेनुः) दूध देने वाली गौ (तक्वा) चोर के (न) समान (भूर्णिः) धारण करने (विभावा) अनेक पदार्थों का प्रकाश करनेवाला (शुचिः) पवित्र अग्नि (वना) वन वा किरणों को (सिषक्ति) संयुक्त होता वा संयोग करता है उसको यथावत् जानके कार्यों में उपयुक्त करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है। मनुष्यो का उचित है कि जिस ईश्वर ने प्रजा के हित के लिए बहुत गुणवाले अनेक कार्य्यों के उपयोगी, सत्य स्वभाव वाले इस अग्नि को रचा है उसी की सदा उपासना करें ॥ १ ॥

फिर वह मनुष्य कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—

दाधार क्षेममोको न रण्वो यवो न पक्वो जेता जनानाम् ।
ऋषिर्न स्तुभ्वा विक्षु प्रशस्तो वाजी न प्रीतो वयो दधाति ॥२॥

पदार्थ—जो मनुष्य (**ओक**) घर के (**न**) समान (**रण्व**) रमणीय-स्वरूप (**पक्व**) पके (**यव**) सुख करनेवाले यव के (**न**) समान (**ऋषि**) मन्त्रो के अर्थ का जाननेवाले विद्वान् के (**न**) समान (**स्तुभ्वा**) सत्कार के योग्य (**वाजी**) वेगवान् घोड़े के समान (**प्रीत**) कमनीय (**विक्षु**) प्रजाओ मे (**प्रशस्त**) श्रेष्ठ (**जनानाम्**) मनुष्य आदि प्राणियो को (**जेता**) सुख प्राप्त करानेवाला (**वय**) जीवन (**दधाति**) धारण करता है वह (**क्षेमम्**) रक्षा को (**दाधार**) धारण करता है ॥ २ ॥

भावार्थ जो मनुष्य जीवन के निमित्त ब्रह्मचर्य्यादि कर्मों को काम की सिद्धि के लिए अच्छे प्रकार जानके युक्तिपूर्वक आहार और व्यवहार के अर्थ यथायोग्य पदार्थों का धारण करते है वे बहुत काल पर्यन्त जीके सदा सुखी होते हैं ॥२॥

दुरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यो जायेव योनावरं विश्वस्मै ।
चित्रो यदभ्राट् श्वेतो न विक्षु रथो न रुक्मी त्वेषः समत्सु ॥३॥

पदार्थ—(**यत्**) जो मनुष्य (**क्रतु**) बुद्धि वा कर्म के (**न**) समान (**नित्य**) अविनाशि स्वभाव (**जायेव**) भार्या के समान (**योनौ**) कारण रूप मे (**अरम्**) अलकरता (**श्वेत**) शुद्ध, शुक्लवर्ण के (**न**) समान (**विक्षु**) प्रजाओ मे शुद्ध करने (**रथ**) सुवर्णादि से निर्मित विमानादि यान के (**न**) समान (**रुक्मी**) रुचि करनेवाले कर्म वा गुणयुक्त (**दुरोकशोचिः**) दूरस्थानो मे दीप्तियुक्त (**विश्वस्मै**) सब जगत् के लिए सुख करने (**समत्सु**) सग्रामो मे (**चित्र**) अद्भुत स्वभावयुक्त (**अभ्राट्**) आप ही प्रकाशमान होने से शुद्ध (**त्वेष**) प्रदीप्त स्वभाव वाला है वही चक्रवर्त्ति राजा होने के योग्य होता है ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। मनुष्यो को जानना चाहिए कि जो ज्ञान और कर्मकाण्ड के समान सदा वर्त्तमान अनुकूल स्त्री के समान सब सुखो का निमित्त, सूर्य के समान शुभगुणो को प्रकाश करने, आश्चर्य गुणवाले रथ के समान मोक्ष मे प्राप्त करने, वीर के समान युद्धो मे विजय करनेवाला हो वह राज्यलक्ष्मी को प्राप्त होता है ॥३॥

सेनेव सृष्टामं दधात्यस्तुर्न दिद्युत्त्वेषप्रतीका ।
यमो ह जातो यमो जनित्वं जारः कनीनां पतिर्जनीनाम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो सेनापति (**यम**) नियम करनेवाला (**जात**) प्रकट (**यम**) सर्वथा नियमकर्त्ता (**जनित्वम्**) जन्मादि कारणयुक्त (**कनीनाम्**) कन्यावत वर्त्तमान रात्रियो के (**जार**) आयु का हननकर्त्ता सूर्य के समान (**जनीनाम्**) उत्पन्न हुई प्रजाओ का (**पति**) पालनकर्त्ता (**सृष्टा**) प्रेरित (**सेनेव**) अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई वीर पुरुषो की विजय करनेवाली सेना के समान (**अस्तु**) शत्रुओ के ऊपर शस्त्र-अस्त्र चलानेवाले (**त्वेषप्रतीका**) दीप्तियो के प्रतीति करनेवाले (**दिद्युन्न**) बिजुली के समान (**अमम्**) अपरिपक्व विज्ञानयुक्त जन को (**दधाति**) धारण करता है उसका सेवन करो ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। मनुष्यो को जानना चाहिए कि विद्या से अच्छे प्रयत्न द्वारा जैसे उत्तम शिक्षा से सिद्ध की हुई सेना शत्रुओ को जीतकर विजय करती है जैसे धनुर्वेद के जाननेवाले विद्वान् लोग शत्रुओ के ऊपर शस्त्रो को छोड़ उनका छेदन करके भगा देते हैं वैसे उत्तम सेनापति सब दुःखो का नाश करता है ॥४॥

तं वश्चराथा वयं वसत्याऽस्तं न गावो नक्षन्त इद्धम् ।
सिन्धुर्न क्षोदः प्र नीचीरैनोन्नवन्त गावः स्वर्दृशीके ॥५॥१०॥

पदार्थ जो (**चराथा**) चररूप (**वसत्या**) वास करने योग्य पृथिवी के साथ वर्त्तमान (**गाव**) गौ (**न**) जैसे (**अस्तम्**) घर का (**नक्षन्ते**) प्राप्त होती जैसे (**गाव**) किरण (**स्वर्दृशीके**) देखने के हेतु व्यवहार मे (**इद्धम्**) सूर्य्य को (**नक्षन्ते**) प्राप्त होते हैं (**न**) जैसे (**सिन्धु**) समुद्र (**नीची**) नीचे के (**क्षोद**) जल को प्राप्त होता है वैसे (**व.**) तुम लोगो का (**प्रौनोत्**) प्राप्त होता है उसी की सेवा हम लोग करें ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सभापति आदि इस प्रकार परमेश्वर का सेवन और विद्युत् अग्नि को सिद्ध करते है उनको जैसे गौ घर और किरण सूर्य को प्राप्त होते है और जैसे मनुष्य समुदाय को प्राप्त होके नाना प्रकार के कामो को सुशोभित करता है वैसे ही सज्जन पुरुषो को उचित है कि अन्तर्य्यामी परमेश्वर की उपासना तथा विद्युत् विद्या को यथावत् सिद्ध करके अपनी सब कामनाओ को पूर्ण करें ॥५॥

इस सूक्त में ईश्वर और अग्नि के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह छासठवाँ सूक्त तथा दशवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य सप्तषष्टितमस्य सूक्तस्य शाक्त्यः पराशर ऋषिः । अग्निर्देवता ।
१,२,४ निचृत् पङ्क्ति, ३ पङ्क्ति, ५ विराट्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चम स्वर ॥

अब सड़सठवें सूक्त का प्रारम्भ है। इसके प्रथम मन्त्र मे विद्वान् कैसा हो इस विषय को कहा है—

वनेषु जायुर्मर्तेषु मित्रो वृणीते श्रुष्टिं राजेवाजुर्यम् ।
क्षेमो न साधुः क्रतुर्न भद्रो भुवत्स्वाधीर्होता हव्यवाट् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो विद्वान् (**वनेषु**) सम्यक् सेवन योग्य पदार्थ (**जायु**) जीतने के हेतु सूर्य्य के समान (**अजुर्यम्**) युद्ध विद्या से सङ्कल सेना के तुल्य योग्य (**श्रुष्टिम्**) शीघ्रता करनेवाले को (**राजेव**) राजा के समान (**क्षेम**) रक्षक (**साधु**) सत्पुरुष के समान (**भद्र**) कल्याणकारी (**क्रतुर्न**) उत्तम बुद्धि और कर्मकर्त्ता के तुल्य (**स्वाधी**) अच्छे प्रकार धारण करने (**होता**) देने तथा अनुग्रह करने और (**हव्यवाट्**) लेने-देने योग्य पदार्थों का प्राप्त कराने वाला (**भुवत्**) हो तथा धर्मात्मा मनुष्यो को (**वृणीते**) स्वीकार करें उसका सदा सेवन करो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। मनुष्यो को उचित है कि विद्वानों का संग करके सदैव आनन्द भोग करें ॥१॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

हस्ते दधानो नृम्णा विश्वान्यमे देवान्धाद्गुहा निषीदन् ।
विदन्तीमत्र नरो धियन्धा हृदा यत्तष्टान्मन्त्राँ अशंसन् ॥२॥

पदार्थ—(**यत्**) जो (**नर**) प्राप्ति करनेवाला मनुष्य जैसे (**धियन्धा**) प्रज्ञा कर्म को धारण करनेवाले (**तष्टान्**) विद्याओ को तीक्ष्ण करनेवाले (**मन्त्रान्**) वेदो के अवयव वा विचाररूपी मन्त्रो को (**विदन्ति**) जानते (**अशंसन्**) स्तुति करते है। जैसे देनेवाला उदार मनुष्य (**हस्ते**) हाथ मे (**विश्वानि**) सब (**नृम्णा**) धनो का (**दधान**) धारण किया हुआ अन्य सुपात्र मनुष्यो को देता है। जैसे (**गुहा**) सब विद्याओ से युक्त बुद्धि मे (**निषीदन्**) स्थित हुआ ईश्वर वा योगी विद्वान् (**अत्र**) इस (**अमे**) विज्ञान आदि मे (**देवान्**) विद्वान् दिव्य गुणो का (**धात्**) धारण करता है, वैसे होते हैं, वे अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होते है ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिए कि जो अन्तर्यामी आत्मा सत्य-झूठ का उपदेश करता और बाह्य अध्ययन करानेवाला विद्वान वर्त्तमान है उसको छोड़कर किसीकी उपासना वा संगत कभी मत करो ॥२॥

अब अगले मन्त्रों मे ईश्वर और विद्वान् के गुणों का उपदेश किया है—

अजो न क्षां दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रेभिः सत्यैः ।
प्रिया पदानि पश्वो नि पाहि विश्वायुरग्ने गुहा गुहं गाः ॥३॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) पूर्णविद्यायुक्त विद्वन् ! तू जैसे परमात्मा (**सत्यै**) सत्य लक्षणो से प्रकाशित ज्ञानयुक्त (**मन्त्रेभि**) विचारो मे (**क्षाम्**) भूमि को (**दाधार**) अपने बल से धारण करता (**पृथिवीम्**) अन्तरिक्ष मे स्थित जो अन्य लोक (**द्याम्**) तथा प्रकाशमय सूर्य्यादि लोको को (**तस्तम्भ**) प्रतिबन्धयुक्त करता और (**प्रिया**) प्रीतिकारक (**पदानि**) प्राप्त करने योग्य ज्ञानो को प्राप्त कराता है (**गुहा**) बुद्धि मे स्थित हुए (**गुहम्**) गूढ विज्ञान भीतर के स्थान को (**गा**) प्राप्त हो वा होते है (**पश्व**) बन्धन से हम लोगो की रक्षा करता है वैसे धर्म से प्रजा की (**निपाहि**) निरन्तर रक्षा कर और (**अजो न**) न्यायकारी ईश्वर के समान हूजिए ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है। जैसे परमेश्वर वा जीव कभी उत्पन्न वा नष्ट नही होता वैसे कारण भी विनाश मे नही आता, जैसे परमेश्वर अपने विज्ञान बल आदि गुणो से पृथिवी आदि जगत् को रचकर धारण करता है वैसे सत्य विचारो से सभाध्यक्ष राज्य का धारण करे जैसे प्रिय मित्र अपने मित्र को दुःख के बन्धनो से पृथक् करके उत्तम-उत्तम सुखो को प्राप्त कराता है वैसे ईश्वर और सूर्य्य भी सब सुखो को प्राप्त कराते हैं, जैसे अन्तर्य्यामिरूप से ईश्वर जीवादि को धारण करके प्रकाश करता है वैसे सभाध्यक्ष सत्य-न्याय से राज्य और सूर्य्य अपने आकर्षणादि गुणों से जगत् को धारण करता है ॥३॥

य ईं चिकेत गुहा भवन्तमा यः ससाद धारामृतस्य ॥
वि ये चृतन्त्यृता सपन्त आदिद्वसूनि प्र ववाचास्मै ॥४॥

पदार्थ—(**य.**) जो मनुष्य (**गुहा**) बुद्धि तथा विज्ञान मे (**ईम्**) विज्ञान-स्वरूप (**भवन्तम्**) विज्ञानस्वरूप जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष को (**चिकेत**) जानता है (**य**) जो (**ऋतस्य**) सत्य विद्यारूप चारो वेद जल के (**धाराम्**) वाणी वा प्रवाह को (**आससाद**) प्राप्त कराता है (**ये**) जो मनुष्य (**ऋता**) सत्यो को (**सपन्त**) संयुक्त करते हुए (**वसूनि**) विद्या, सुवर्ण आदि धनों को (**विचृतन्ति**) ग्रन्थियुक्त करते हैं जिस लिए परमेश्वर ने (**प्रववाच**) कहा है (**आत्**) इसके पीछे (**इत्**) उसीके लिए सब सुख प्राप्त होते हैं ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालकार है। किसी मनुष्य को परमेश्वर की उपासना वा विज्ञान, सत्यविद्या और उत्तम आचरणों के बिना सुख प्राप्त नहीं हो सकते ॥४॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर और विद्युत् अग्नि के गुणों का वर्णन किया है—

वि यो वीरुत्सु रोधन्महित्वोत प्रजा उत प्रसूष्वन्तः ।

चित्तिरपां दमे विश्वायुः सद्मेव धीराः संमाय चक्रुः ॥५॥११॥

पदार्थ—हे (धीराः) ज्ञानवाले विद्वान् मनुष्यो ! (संमाय) अच्छे प्रकार मान कर (सद्मेव) जैसे घर वा संग्राम के लिए जिस लाभ को (चक्रुः) करते हो वैसे (यः) जो जगदीश्वर वा बिजुली (महित्वा) सत्कार करके (वीरुत्सु) रचना विशेष से निरोध प्राप्त हुए कारण कार्य द्रव्यों में (प्रजाः) प्रजा (विरोधत्) विशेष करके आवरण करता है जो (उत, प्रसूषु) उत्पन्न होने वालों मे भी (अन्तः) मध्य मे वर्त्तमान है जो (उत, विश्वायु) पूर्ण आयु युक्त भी (चित्ति) अच्छे प्रकार जानने वाला (दमे) शान्तियुक्त घर तथा (अपाम्) प्राण वा जलो के मध्य मे प्रजा को धारण करता है उसकी सेवा अच्छे प्रकार करो ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं । मनुष्यों को चाहिए कि जो अन्तर्यामिरूप तथा रूप वेगादि गुणो को प्रजा मे नियत करता है उसी जगदीश्वर की उपासना और विद्युत् अग्नि को अपने कार्यों मे संयुक्त करके वैसे विद्वान् लोग घर मे स्थित हुए संग्राम मे शत्रुओं को जीतकर सुखी करते हैं वैसे सुखी करें ॥ ५ ॥

इस सूक्त मे ईश्वर सभाध्यक्ष और विद्युत् अग्नि के गुणों का वर्णन होने से पूर्व सूक्तार्थ के साथ इस सूक्तार्थ की संगति जाननी चाहिए ॥

यह सड़सठवां सूक्त और ग्यारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्याष्टषष्टितमस्य सूक्तस्य शाक्त्य पराशरऋषि । अग्निर्देवता ।
१,४, निचृत्पङ्क्ति., २,३,५ पङ्क्तिश्छन्द. ।
पञ्चम· स्वर. ॥

फिर वे ईश्वर और विद्युत् अग्नि कैसे गुणवाले हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

श्रीणन्नुप स्थाद्दिवं भुरण्युः स्थातुश्चरथमक्तून् व्यूर्णोत् ।

परि यदेषामेको विश्वेषां भुवद्देवो देवानां महित्वा ॥१॥

पदार्थ—(यत्) जो (भुरण्युः) धारण वा पोषण करने वाला (श्रीणन्) परिपक्व करता हुआ मनुष्य (दिवम्) प्रकाश करनेवाले परमेश्वर वा विद्युत् अग्नि के (उपस्थात्) उपस्थित होवे और (स्थातु·) स्थावर (चरथम्) जङ्गम तथा (अक्तून्) प्रकट प्राप्त करने योग्य पदार्थों को (पर्यूर्णोत्) आच्छादन वा स्वीकार करता है वह (एषाम्) इन वर्त्तमान (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों के बीच (एक·) सहाय रहित (देव) दिव्य गुणयुक्त (महित्वा) पूजा को प्राप्त होकर (विभुवत्) विभव अर्थात् ऐश्वर्य्य को प्राप्त होवे ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है । कोई मनुष्य परमेश्वर की उपासना वा विद्युत् अग्नि के आश्रय को छोड़कर सब परमार्थ और व्यवहार के सुखों को प्राप्त नहीं हो सकता ॥ १ ॥

फिर जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

आदित्ते विश्वे क्रतुं जुषन्त शुष्काद्यद्देव जीवो जनिष्ठाः ।

भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सपन्तो अमृतमेवैः ॥२॥

पदार्थ—हे (देव) जगदीश्वर ! आप का आश्रय करके (यत्) जो (विश्वे) सब (जनिष्ठा) अतिज्ञान युक्त (सपन्त) एक सम्मत विद्वान् लोग (एवै) प्राप्तिकारक गुणो और (शुष्कात्) धर्मानुष्ठान के तप से (ते) आपके (देवत्वम्) दिव्य गुण प्राप्त करने वाले (क्रतुम्) बुद्धि और कर्म (नाम) प्रसिद्ध अर्थयुक्त संज्ञा को सिद्ध (जुषन्त) प्रीति से सेवा करें वे (ऋतम्) सत्य रूप को (भजन्त) सेवन करते हैं वैसे (अमृतम्) मोक्ष को (जीवा) इच्छादि गुणवाला चेतनस्वरूप मनुष्य (आत्) इस से अनन्त (इत्) ही इस सब को प्राप्त हो ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य परमेश्वर की उपासना वा आज्ञानुष्ठान के बिना व्यवहार और परमार्थ के सुखो को प्राप्त नहीं हो सकते ॥ २ ॥

फिर वे ईश्वर और विद्वान् कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे कहा है—

ऋतस्य प्रेषा ऋतस्य धीतिर्विश्वायुर्विश्वे अपांसि चक्रुः ।

यस्तुभ्यं दाशाद्यो वा ते शिक्षात्तस्मै चिकित्वान्रयिं दयस्व ॥३॥

पदार्थ—जिस ईश्वर वा विद्युत् अग्नि से (विश्वे) सब (प्रेषा) अच्छी प्रकार जिन की इच्छा की जाती है वे बोधसमूह को प्राप्त होते हैं (ऋतस्य) सत्य विज्ञान तथा कारण का (धीति) धारण और (विश्वायु) सब आयु प्राप्त होती है उस का आश्रय करके जो (ऋतस्य) स्वरूप प्रवाह से सत्य के बीच वर्त्तमान विद्वान् लोग (अपांसि) न्याययुक्त कर्मों को (चक्रुः) करते हैं (यः) जो मनुष्य इस विद्या को (तुभ्यम्) ईश्वरोपासना धर्म पुरुषार्थयुक्त मनुष्य के लिए (दाशात्) देवे वा उस से ग्रहण करे (य) जो (चिकित्वान्) ज्ञानवान् मनुष्य (ते) तेरे लिए (शिक्षात्) शिक्षा करे वा तुझ से शिक्षा लेवे (तस्मै) उस के लिए आप (रयिम्) सुवर्णादि धन को (दयस्व) दीजिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । मनुष्यो को ऐसा जानना चाहिए ईश्वर की रचना के विना जड़ कारण से कुछ भी कार्य उत्पन्न वा नष्ट होने तथा आधार के बिना आधेय भी स्थित होने को समर्थ नहीं हो सकता । और कोई मनुष्य कर्म के बिना क्षण भर भी स्थित नहीं हो सकता । जो विद्वान् विद्या आदि उत्तम गुणों को अन्य सज्जनो के लिए देते तथा उनसे ग्रहण करते हैं, उन्हीं दोनो का सत्कार करें औरों का नहीं ॥ ३ ॥

फिर अध्यापक और शिष्य कैसे हों यह विषय कहा है—

होता निषत्तो मनोरपत्ये स चिन्न्वासां पती रयीणाम् ।

इच्छन्त रेतो मिथस्तनूषु सं जानत स्वैर्दक्षैरमूराः ॥४॥

पदार्थ—जो (निषत्तः) सर्वत्र स्थित (मनो·) मनुष्य के (अपत्ये) सन्तान में (रयीणाम्) राज्यश्री आदि धनों का (होता) देने वाला है (स) वह ईश्वर विद्युत् अग्नि (आसाम्) इन प्रजाओं का (पतिः) पालन करने वाला है । हे (अमूरा) मूढपन आदि गुणों से रहित ज्ञानवाले (स्वैः) अपने (दक्षैः) शिक्षा सहित चतुराई आदि गुणों के साथ (तनूषु) शरीरों मे वर्त्तमान होते हुए (मिथः) परस्पर (रेतः) विद्या, शिक्षारूपी वीर्य का विस्तार करते हुए तुम लोग इस की (समिच्छन्त) अच्छे प्रकार शिक्षा करो (चित्) और तुम सब विद्याओं को (नु) शीघ्र (जानत) अच्छे प्रकार जानो ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को उचित है कि परस्पर मित्र हो और समग्र विद्याओ को शीघ्र जानकर निरन्तर आनन्द भोगें ॥ ४ ॥

फिर वे पढ़ने और पढ़ानेहारे कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

पितुर्न पुत्राः क्रतुं जुषन्त श्रोषन्ये अस्य शासं तुरासः ।

वि राय और्णोद्दुरः पुरुक्षुः पिपेश नाकं स्तृभिर्दमूनाः ॥५॥१२॥

पदार्थ—(ये) जो (तुरासः) अच्छे कर्मों को शीघ्र करने वाले मनुष्य (पितुः) पिता के (पुत्रा) पुत्रो के (न) समान (अस्य) जगदीश्वर वा सत्पुरुष की (शासम्) शिक्षा को (श्रोषन्) सुनते हैं वे सुखी होते हैं जो (दमूना·) शान्तिवाला (पुरुक्षु·) बहुत अन्नादि पदार्थों से युक्त (स्तृभिः) प्राप्त करने योग्य गुणों से (राय) धनो के (और्णोत्) स्वीकारकर्त्ता तथा (नाकम्) सुख को स्वीकार कर और (दुर.) हिंसा करने वाले शत्रुओं के (पिपेश) अवयवों को पृथक्-पृथक् करता है उसी की सेवा सब मनुष्य करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेष और उपमालङ्कार है । मनुष्यो को जानना चाहिए कि ईश्वर की आज्ञापालन विना किसी मनुष्य को कुछ भी सुख का सम्भव नहीं होता तथा जितेन्द्रियता आदि गुणो के विना मनुष्य को सुख प्राप्त नहीं हो सकता । इससे ईश्वर की आज्ञा और जितेन्द्रियता आदि का सेवन अवश्य करें ॥ ५ ॥

इस सूक्त मे अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह अड़सठवां सूक्त और बारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

पञ्चर्चस्य नवषष्टितमस्य सूक्तस्य शक्तिपुत्र· पराशर ऋषिः । अग्निर्देवता ।
१ पङ्क्ति., २, ३ निचृत्पङ्क्ति, ४, भुरिक्पङ्क्तिः,
५ विराट् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वरः ॥

अब उनहत्तरवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है । इस के प्रथम मन्त्र मे विद्वानों के गुणों का उपदेश किया है—

शुक्रः शुशुक्वाँ उषो न जारः पप्राः समीची दिवो न ज्योतिः ।

परि प्रजातः क्रत्वा बभूथ भुवो देवानां पिता पुत्रः सन् ॥ १ ॥

पदार्थ—जो मनुष्य (उष·) प्रात काल की वेला के (जार) आयु के हन्ता सूर्य के (न) समान (शुक्र) वीर्यवान् शुद्ध (शुशुक्वान्) शुद्ध कराने (पप्राः) अपनी विद्या से पूर्ण (भुवः) भूमि के मध्य (दिवः) प्रकाश से (समीची) पृथिवी को प्राप्त हुए (ज्योति) दीप्ति के (न) समान (परि) सब प्रकार (प्रजात·) प्रसिद्ध उत्पन्न (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि वा कर्म्म के साथ वर्त्तमान (देवानाम्) विद्वानो के (पुत्र) पुत्र के तुल्य पढ़ने वाला सब विद्याओ को पढ़ के (पिता) पढ़ाने वाला (बभूथ) होता है उस का सेवन सब मनुष्य करें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेष और उपमालङ्कार है । विद्यार्थी हुए बिना कोई भी मनुष्य विद्वान् नहीं हो सकता, और किसी मनुष्य को बिजुली आदि विद्या तथा उसके संप्रयोग के बिना बड़ा भारी सुख भी नहीं हो सकता ॥ १ ॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

वेधा अदृप्तो अग्निर्विजानन्नूधर्न गोनां स्वाद्मा पितूनाम् ।

जने न शेव आहूर्यः सन्मध्ये निषत्तो रण्वो दुरोणे ॥२॥

पदार्थ—सब मनुष्यो को चाहिए कि जो (गोनाम्) गौओ के (ऊध) दूध के स्थान के (न) समान (जने) गुणो से उत्तम, सेवन योग्य मनुष्य मे (शेव) सुख करने वाले के (न) समान (वेधा) पूर्ण ज्ञानयुक्त (अदृप्त) मोह रहित (स्वाद्म.) स्वादिष्ट (पितूनाम्) अन्नो का भोक्ता (दुरोणे) घर मे (रण्व) रमण करने वाला (आहूर्य.) आह्वान करने योग्य सभा के मध्य मे (निषत्त)

स्थित (विजानन्) सब विद्या का अनुभव करता हुआ (अग्नि:) अग्नि के तुल्य ज्ञानप्रकाश से युक्त सभाध्यक्ष है उस का सदा सेवन करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम लोगो को चाहिए कि जैसे गौओं का ऐन दूध आदि से सब को सुख देता है वैसे विद्वान् मनुष्य सब का उपकारी होता है वैसे ही सब में अभिव्याप्त जीव के मध्य मे अन्तर्य्यामी रूप से व्याप्त ईश्वर पक्षपात को छोड़के न्याय करता है वैसे सभा आदि में स्थित सभापति तुम सब को सुख कराने वाले होओ ॥ २ ॥

पुत्रो न जातो रण्वो दुरोणे वाजी न प्रीतो विशो वि तारीत् ।

विशो यदह्वे नृभिः सनीळा अग्निर्देवत्वा विश्वान्यश्याः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! (यत्) जो (अग्नि:) अग्नि के तुल्य सभाध्यक्ष (दुरोणे) गृह मे (जातः) उत्पन्न हुआ (पुत्र) पुत्र के (न) समान (रण्व:) रमणीय (वाजी) अश्व के (न) समान (प्रीत) आनन्ददायक (विश:) प्रजा को (वितारीत्) दुःखो से छुड़ाता है (अह्वे) व्याप्त होने वाले व्यवहार में (सनीळा:) समानस्थान (विश) प्रजाओ को (विश्वानि) सब (देवत्वा) विद्वानो के गुण कर्मों को प्राप्त करता है उस को तू (अश्याः) प्राप्त हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को विज्ञान और विद्वानो के सङ्ग के विना सब सुख प्राप्त नही हो सकते ऐसा जानना चाहिए ॥ ३ ॥

नकिष्ट एता व्रता मिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यः श्रुष्टिं चकर्थ ।

तत्तु ते दंसो यदहन्त्समानैर्नृभिर्यद्युक्तो विवे रपांसि ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो (ते) आप के (एता) ये (व्रता) व्रत हैं वे कोई भी (नकि) नहीं (मिनन्ति) हिंसा कर सकते हैं (यत्) जो आप (एभ्य:) इन (नृभ्य) मनुष्यो के लिए (यत्) जिस (श्रुष्टिम्) शीघ्र सत्यविद्यासमूह को (चकर्थ) करते हो वा (रपांसि) सत्कर्म और व्यक्त उपदेशयुक्त वचनों को (विवे) प्राप्त करते हो तथा (यत्) जो (ते) आप का (दंस:) यह (समानै:) विद्यादि गुणो मे तुल्य (नृभि:) मनुष्यो के साथ (दंस:) कर्म है (तत्) उसको (तु) कोई मनुष्य (नकि) नही (अहन्) हनन कर सकता जो (युक्त) युक्त होकर आप करते हो उसको हम लोग भी सत्य ही जानते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यो को चाहिए कि जैसे परमेश्वर वा पूर्णविद्यायुक्त विद्वान् पक्षपात छोड़कर मनुष्यादि प्राणियो मे सत्य उपकार करने वाले कर्मों के साथ वर्त्तमान है वैसे सदा वर्त्तें ॥ ४ ॥

उषो न जारो विभावोस्रः संज्ञातरूपश्चिकेतदस्मै ।

त्मना वहन्तो दुरो व्यृण्वन्नवन्त विश्वे स्व१र्दृशीके ॥५॥१३॥

पदार्थ—जो (उष) प्रातःकाल के (न) समान (जार) दुःख का नाश करने वाला (उस्र) किरणो के समान (संज्ञातरूप) अच्छी प्रकार रूप जानने (विभावा) सब प्रकाश करने वाला है उसको मनुष्य (चिकेतत्) जाने (अस्मै) उस ईश्वर वा विद्वान् के लिए सब कुछ उत्तम पदार्थ समर्पण करे । हे मनुष्यो ! जैसे इस प्रकार करते हुए (विश्वे) सब विद्वान् लोग (त्मना) आत्मा से (स्व) सुख प्राप्त करने वाले विद्यासमूह को (वहन्त) प्राप्त होते हुए (दृशीके) देखने योग्य व्यवहार मे (दुर) शत्रुओ को (व्यृण्वन्) मारते तथा सज्जनों की प्रशंसा करते हैं वैसे तुम भी शत्रुओ को मारो तथा (नवन्त) सज्जनों की स्तुति करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेष, उपमा और लुप्तोपमालङ्कार हैं । मनुष्यो को चाहिए कि जो सूर्य्य के समान विद्या का प्रकाशक अग्नि के समान सब दुःखो को भस्म करनेवाला परमेश्वर वा विद्वान् है उसको अपने आत्मा से आश्रय कर दुष्ट-व्यवहारों को त्याग और सत्यव्यवहारो मे स्थित होकर सदा सुख को प्राप्त हो ॥ ५ ॥

इस सूक्त मे विद्वान् बिजुली और ईश्वर के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह उनहत्तरवां सूक्त तथा तेरहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य सप्ततितमस्य सूक्तस्य पराशरऋषि । अग्निर्देवता । १,४ विराट्पङ्क्ति , २ पङ्क्ति , ३,५ निचृत् पङ्क्ति , ६ याजुषी पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

अब सत्तरवें सूक्त का प्रारम्भ किया जाता है । इसके पहले मन्त्र में मनुष्यों के गुणों का उपदेश किया है—

वनेम पूर्वीरर्यो मनीषा अग्निः सुशोको विश्वान्यश्याः ।

आ दैव्यानि व्रता चिकित्वाना मानुषस्य जनस्य जन्म ॥१॥

पदार्थ—हम लोग जो (सुशोकः) उत्तम दीप्तियुक्त (चिकित्वान्) ज्ञानवान् (अग्नि:) ज्ञान आदि गुण वाला (अर्य्य:) ईश्वर वा मनुष्य (मनीषा) बुद्धि तथा विज्ञान से (पूर्वी:) पूर्व हुई प्रजा और (विश्वानि) सब (दैव्यानि) दिव्य गुण वा कर्मों से सिद्ध हुए (व्रता) विद्याधर्मानुष्ठान और (मानुषस्य) मनुष्य जाति में हुए (जनस्य) श्रेष्ठ विद्वान् मनुष्य के (जन्म) शरीरधारण वा उत्पत्ति को (अश्याः) अच्छी प्रकार प्राप्त कराता है उसका (वनेम) अच्छे प्रकार विभाग से सेवन करें ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है । मनुष्यों को जिस जगदीश्वर वा मनुष्य के कार्य्य कारण और जीव प्रजा शुद्ध गुण और कर्मों को व्याप्त किया करे उसी की उपासना वा सत्कार करना चाहिए क्योंकि इसके बिना मनुष्य जन्म ही व्यर्थ जाता है ॥१॥

फिर वह कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

गर्भो यो अपां गर्भो वनानां गर्भश्च स्थातां गर्भश्चरथाम् ।

अद्रौ चिदस्मा अन्तर्दुरोणे विशां न विश्वो अमृतः स्वाधीः ॥२॥

पदार्थ—हम लोग जो जगदीश्वर वा जीव (अपाम्) प्राण वा जलों के (मध्य) बीच (गर्भ:) स्तुति योग्य वा भीतर रहने वाला (वनानाम्) सम्यक् सेवा करने योग्य पदार्थ वा किरणो मे (गर्भ) गर्भ के समान आच्छादित (अद्रौ) पर्वत आदि बड़े-बड़े पदार्थों में (चित्) भी गर्भ के समान (दुरोणे) घर मे गर्भ के समान (विश्व:) सब चेतन तत्त्वस्वरूप (अमृत) नाशरहित (स्वाधी:) अच्छी प्रकार पदार्थों का चिन्तन करने वाला (विशाम्) प्रजाओं के बीच आकाश वायु के (न) समान बाह्यदेशो मे भी सब दिव्य गुण कर्मयुक्त व्रतो को (अश्या) प्राप्त होवे (अस्मै) उसके लिए सब पदार्थ हैं उसका (वनेम) सेवन करें ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेष और उपमालङ्कार हैं । पूर्व मन्त्र से (अश्या:, वनेम, विश्वानि, दैव्यानि, व्रता) इन पाँच पदो की अनुवृत्ति आती है । मनुष्यों को ज्ञानस्वरूप परमेश्वर के बिना कोई भी वस्तु अव्याप्त नहीं है और चेतनस्वरूप जीव अपने कर्म के फलभोग से एक क्षण भी अलग नही रहता । इससे उस सब मे अभिव्याप्य अन्तर्य्यामी ईश्वर को जानकर सर्वदा पापों को छोड़कर धर्मयुक्त कार्यों में प्रवृत्त होना चाहिए । जैसे पृथिवी आदि कार्य रूप प्रजा अनेक तत्त्वो के संयोग से उत्पन्न और वियोग से नष्ट होती है वैसे यह ईश्वर जीव कारणरूप आदि वा संयोग वियोग से अलग होने से अनादि है ऐसा जानना चाहिए ॥२॥

फिर वह मनुष्य कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स हि क्षपावाँ अग्नी रयीणां दाशद्यो अस्मा अरं सूक्तैः ।

एता चिकित्वो भूमा नि पाहि देवानां जन्म मर्तांश्च विद्वान् ॥३॥

पदार्थ—हे (चिकित्वः) ज्ञानवान् जगदीश्वर वा (विद्वान्) जानने वाले ! (य) जो (क्षपावान्) जिस मे उत्तम बहुत रात्रि हैं (अग्नि) सब सुखो की देने वाली बिजुली के समान (अस्मै) इन (रयीणाम्) विद्या रत्न, राज्य आदि पदार्थों की (अरम्) पूर्णप्राप्ति के लिए (एता) इन (अरम्) पूर्ण (सूक्तै) उत्तम वचनो से (भूम) बहुत (देवानाम्) दिव्यगुण वा विद्वानो के (जन्म) जन्म (मर्त्तान्) मनुष्य (च) मनुष्य से भिन्नों को (दाशत्) देते हो (स:) सो आप (हि) निश्चय करके इनकी (नि पाहि) निरन्तर रक्षा कीजिए ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो परमेश्वर वेद अन्तर्यामित्व द्वारा तथा उपदेशो से सब मनुष्यों के लिए सब विद्याओ को देता है मनुष्यो को उसकी उपासना तथा सत्सङ्ग करना चाहिए ॥३॥

फिर वह मनुष्य कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

वर्धान्यं पूर्वीः क्षपो विरूपाः स्थातुश्च रथमृतप्रवीतम् ।

अराधि होता स्व१र्निषत्तः कृण्वन् विश्वान्यपांसि सत्या ॥४॥

पदार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि जो (अराधि) सिद्ध हुआ वा (यम्) जिस परमेश्वर तथा जीव को (पूर्वी) सनातन (क्षप) शान्तियुक्त रात्रि (विरूपा) नाना प्रकार के रूपो से युक्त प्रजा (वर्धान्) बढ़ाती हैं जिसने (स्थातु) स्थित जगत् के (ऋतप्रवीतम्) सत्य कारण से उत्पन्न वा जल से चलाये हुए (रथम्) रमण करने योग्य संसार वा यान को बनाया जो (स्व) सुखस्वरूप वा सुख करनेहारा (निषत्त:) निरन्तर स्थित (होता) ग्रहण करने वा देने वाला (विश्वानि) सब (सत्या) सत्य धर्म से शुद्ध हुए (अपांसि) कर्मों को (कृण्वन्) करता हुआ वर्त्तता है उसको जाने वा सत्सङ्ग करें ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है । मनुष्यों को उचित है कि जिस परमेश्वर का ज्ञान कराने वाली यह सब प्रजा है वा जिसको जानना चाहिए, जिसके उत्पन्न करने के बिना किसी की उत्पत्ति का सम्भव नही होता, जिसके पुरुषार्थ के बिना कुछ भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता और जो सत्यमानी, सत्यकारी, सत्यवादी हो उसीका सदा सेवन करें ॥४॥

फिर ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

गोषु प्रशस्तिं वनेषु धिषे भरन्त विश्वे बलिं स्वर्णः ।

वि त्वा नरः पुरुत्रा सपर्यन् पितुर्न जिव्रेर्वि वेदो भरन्त ॥५॥

पदार्थ—हे (भरन्त) सब विश्व वा सब गुणो को धारण करने वाले जगदीश्वर ! जिस कारण (पुरुत्रा) बहुत दान करने योग्य आप (गोषु) पृथिवी आदि पदार्थों मे (बलिम्) संवरण (स्व) आदित्य (वनेषु) किरणों में (प्रशस्तिम्) उत्तम व्यवहार और (न) हम लोगो को (विधिषे) विशेष धारण करते हो (विश्वे) सब (नर:) इससे विद्वान् लोग जैसे (पुत्रा:) पुत्र (जिव्रे:) वृद्धावस्था को प्राप्त हुए (पितु:) पिता के सकाश से (वेदः) विद्याधन को (भरन्त) धारण करें (न) वैसे (त्वा) आप का (सपर्यन्) सेवन करते हैं ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । हे मनुष्यो ! तुम सब लोग जिस जगदीश्वर ने सनातन कारण से सब कार्य अर्थात् स्थूलरूप वस्तुओं को उत्पन्न करके स्पर्श आदि गुणों को प्रकाशित किया है, जिसकी सृष्टि में उत्पन्न हुए सब पदार्थों के पिता पुत्र के समान सब जीव दायभागी हैं जो सब प्राणियों के लिए सब सुखों को देता है उसीकी आत्मा मन, वाणी, शरीर और धनो से सेवा करो ॥५॥

फिर वह सभाध्यक्ष कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

साधुर्न गृध्नुरस्तेव शूरो यातेव भीमस्त्वेषः समत्सु ॥६॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जो (गृध्नुः) दूसरे के उत्कर्ष की इच्छा करने वाले (साधुः) परोपकारी मनुष्य के (न) समान (अस्ता इव) शत्रुओं के ऊपर शस्त्र पहुँचाने वाले (शूरः) शूरवीर के समान (भीमः) भयंकर (यातेव) तथा दण्ड प्राप्त करने वाले के समान (समत्सु) संग्रामों मे (त्वेषः) प्रकाशमान परमेश्वर वा सभाध्यक्ष है उसका नित्य सेवन करो ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालंकार हैं । हे मनुष्यो ! तुम लोग परमेश्वर वा धर्मात्मा विद्वान् को छोड़कर शत्रुओं को जीतने और दण्ड देने तथा सुखों का बढ़ाने वाला अन्य कोई अपना राजा नहीं है ऐसा निश्चय करके सब लोग परोपकारी होके सुखों को बढ़ाओ ॥६॥

इस सूक्त में ईश्वर मनुष्य और सभा आदि अध्यक्ष के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह सत्तरवां सूक्त और चौदहवां वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अथ दशर्चस्यैकसप्ततितमस्य सूक्तस्य पराशरऋषिः । अग्निर्देवता । १,६,७ त्रिष्टुप्, २,५ निचृत् त्रिष्टुप्, ३,४,८,१० विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ९ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब इकहत्तरवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है । इसके प्रथम मन्त्र में सभाध्यक्ष आदि के गुणों का उपदेश किया है ॥

उप प्र जिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जनयः सनीळाः ।
स्वसारः श्यावीमरुषीमजुष्रञ्चित्रमुच्छन्तीमुषसं न गावः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम विद्वान् लोग जिस (नित्यम्) व्यभिचार रहित, स्वरूप से नित्य, अविनाशी (चित्रम्) आश्चर्यगुणकर्म और स्वभावयुक्त परमेश्वर वा सभाध्यक्ष के (सनीळाः) एक ईश्वर के बीच रहने से समानस्थान वाले (जनयः) प्रजा वा (उशतीः) शोभायमान (स्वसारः) युवती भगिनी (उशन्तम्) शोभायमान अपने-अपने (पतिम्) पालन करनेवाले पति के (न) समान तथा (गावः) किरण वा धेनु (श्यावीम्) धुमैले वर्ण से युक्त वा (अरुषीम्) अत्यन्त लालवर्ण वाली (उच्छन्तीम्) विशेष वास कराती हुई (उषसम्) प्रातःकाल की वेला के (न) समान (उपाजुषन्) सेवन करके (प्रजिन्वन्) अत्यन्त तृप्त रहो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेष और उपमालंकार है । सब मनुष्यो को चाहिए कि जैसे धर्मात्मा विदुषी स्त्री विवाहित पति का और धर्मात्मा विद्वान् मनुष्य विवाहित स्त्री का सेवन करता है, जैसे प्रातःकाल होते ही किरण वा गौ आदि पशु पृथिवी आदि पदार्थों का सेवन करते है वैसे ही परमेश्वर वा सभाध्यक्ष का निरन्तर सेवन करें ॥१॥

फिर किन को कौन कैसे सेवा करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वीळु चिद् दृळ्हा पितरो न उक्थैरद्रिं रुजन्नङ्गिरसो रवेण ।
चक्रुर्दिवो बृहतो गातुमस्मे अहः स्वर्विविदुः केतुमुस्राः ॥२॥

पदार्थ—हम लोगो को चाहिए कि जो (पितरः) ज्ञानी मनुष्य (उक्थैः) कहे हुए उपदेशों से (नः) हम लोगों के (दृळ्हा) दृढ़ (केतुम्) प्रज्ञा (वीळु) बल (स्वः, चित्) और सुख को (उस्राः) किरण वा (गातुम्) पृथिवी के समान (अहः) तथा दिन और (बृहतः) बड़े (दिवः) द्योतमान पदार्थों के समान (विविदुः) जानते हैं वा (अङ्गिरसः) वायु (रवेण) स्तुतिसमूह से (अद्रिम्) मेघ को (रुजन्) पृथिवी पर गिराते हुए के समान (अस्मे) हम लोगों के दुःखों को (चक्रुः) नष्ट करते हैं उनको सेवें ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । मनुष्यो को चाहिए कि पूर्णविद्यायुक्त विद्वानों का सेवन तथा विद्या बुद्धि को उत्पन्न करके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष फलो का सेवन करें ॥२॥

जैसे ब्रह्मचर्याश्रम का सेवन करके पुरुष विद्वान् होते हैं वैसे स्त्रियों को भी होना योग्य है यह विषय कहा है—

दधन्नृतं धनयन्नस्य धीतिमादिदर्यो दिधिष्वो३ विभृत्राः ।
अतृष्यन्तीरपसो यन्त्यच्छा देवाञ्जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः ॥३॥

पदार्थ—जो (विभृत्राः) विशेष धारण करने वाली (दिधिष्वः) भूषण आदि से युक्त (अतृष्यन्तीः) तृष्णा आदि दोषों से पृथक् (वर्धयन्तीः) उन्नति करने वाली कुमारी कन्या (देवान्) दिव्य गुणों को प्राप्त होकर (अर्य्यः) वैश्य के (इत्) समान (ऋतम्) सत्य विज्ञान को (धनयन्) विद्याधनयुक्त कर (आत्) इसके अनन्तर (अस्य) ब्रह्मचर्य की (धीतिम्) धारणा को (दधन्) धारण कर (प्रयसा) अन्न के समान वर्त्तमान (अपसः) कर्म्म (देवान्) विद्वान् (जन्म) और विद्या की प्राप्ति को (अच्छ) अच्छे प्रकार (यन्ति) प्राप्त होती हैं वेदादि शास्त्रों की विदुषी होकर सब सुखों को प्राप्त होती हैं ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जैसे वैश्य लोग धर्म्म के अनुकूल धन का संचय करते हैं वैसे ही कन्या विवाह से पहले ब्रह्मचर्यपूर्वक पूर्ण विदुषी पढाने वाली स्त्रियों को प्राप्त हो पूर्णशिक्षा और विद्या का ग्रहण तथा विवाह करके प्रजासुख को सम्पादन करे । विवाह के पीछे विद्याध्ययन का समय नहीं समझना चाहिए । किसी पुरुष वा स्त्री को विद्या के पढ़ने का अधिकार नहीं है ऐसा किसी को नहीं समझना चाहिए किन्तु सर्वथा सबको पढ़ने का अधिकार है ॥३॥

फिर उन स्त्रियों को कैसा होना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मथीद्यदीं विभृतो मातरिश्वा गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत् ।
आदीं राज्ञे न सहीयसे सचा सन्ना दूत्यं१ भृगवाणो विवाय ॥४॥

पदार्थ—(भृगवाणः) अनेकविध पदार्थविद्या से पदार्थों को व्यवहार में लानेहारों के तुल्य विद्याग्रहण की हुई कन्याओ ! जैसे यह (विभृतः) अनेक प्रकार की पदार्थविद्या का धारण करने वाला (श्येतः) प्राप्त होने का (जेन्यः) और विजय का हेतु तथा (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष मे सोने आदि विहारों का करने वाला वायु (यत्) जो (दूत्यम्) दूत का कर्म है उसको (आविवाय) अच्छे प्रकार स्वीकार करता और (गृहे-गृहे) घर-घर अर्थात् कलायन्त्रों के कोठे-कोठे मे (ईम्) प्राप्त हुए अग्नि को (मथीत्) मथता है (आत्) अथवा (सहीयसे) बल से सहने वाले (राज्ञे) राजा के लिए (न) जैसे (ईम्) विजय सुख प्राप्त कराने वाली सेना (सचा) सङ्गति के साथ (सन्) वर्त्तमान (भूत्) होती है वैसे विद्या के योग से सुख कराने वाली होओ ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार है । विद्याग्रहण के बिना स्त्रियों को कुछ भी सुख नहीं होता जैसे अविद्याओं का ग्रहण किये हुए मूढ़ पुरुष उत्तमलक्षण युक्त विद्वान् स्त्रियों को पीडा देते हैं, वैसे विद्या, शिक्षा से रहित स्त्री अपने विद्वान् पतियों को दुःख देती हैं । इससे विद्या ग्रहण के अनन्तर ही परस्पर प्रीति के साथ स्वयंवर विधान से विवाह कर निरन्तर सुखयुक्त होना चाहिए ॥४॥

फिर सूर्य के समान अध्यापक के गुणों का उपदेश किया है—

महे यत्पित्र ईं रसं दिवे करव त्सरत्पृशन्यश्चिकित्वान् ।
सृजदस्ता धृषता दिद्युमस्मै स्वायां देवो दुहितरि त्विषिं धात् ॥५॥१५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगो को जैसे (यत्) जो (कः) सुखदाता (पृशन्यः) स्पर्श करने (अस्ता) फेंकने (चिकित्वान्) जानने (देवः) विद्या प्रकाश के देखने वाला सूर्य्य (महे) बड़े (पित्रे) प्रकाश के देने से पालन करने वाले (दिवे) प्रकाश के लिए (ईम्) प्राप्त करने योग्य (रसम्) ओषधि के फल को (अवसृजत्) रचता (ईम्, त्सरत्) अन्धकार को दूर करता (स्वायाम्) अपनी (दुहितरि) कन्या के समान उषा मे (त्विषिम्) प्रकाश वा तेज को (धात्) धारण करता उसके अनन्तर (दिद्युम्) दीप्ति की (धृषता) दृढ़ता से सुख देता है वैसे किया करो ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । सब माता-पिता आदि मनुष्यों को अपने-अपने सन्तानों मे विद्यास्थापन करना चाहिए । जैसे प्रकाशमान सूर्य सबको प्रकाश करके आनन्दित करता है वैसे ही विद्यायुक्त पुत्र वा पुत्री सब सुखों को देते हैं ॥५॥

फिर भी अध्यापक के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—

स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति नमो वा दाशादुशतो अनु द्यून् ।
वर्धो अग्ने वयो अस्य द्विबर्हा यासद्राया सरथं यं जुनासि ॥६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विज्ञानप्रद ! (वर्धो, द्विबर्हाः) विद्या और शिक्षा से बार-बार बढ़ानेहारे आप जैसे अग्नि (स्वे) अपने (दमे) घर मे (तुभ्यम्) तुम को (नमः) अन्न (आदाशात्) अच्छे प्रकार देता (आविभाति) और अत्यन्त प्रकाश को करता (वा) अथवा (अस्य) इस जगत् की (वयः) अवस्था को (यासत्) पहुँचाता है वैसे (यः) जो शिष्य अपने घर मे तुम्हारे लिए अन्न देता अर्थात् यथायोग्य सत्कार करता और आप से गुणों को प्राप्त हुआ प्रकाशित होता अथवा इस अपने पुत्र आदि की अवस्था को पहुँचाता अर्थात् ओषधि आदि पदार्थों मे नीरोगता को प्राप्त करता है और (राया) विद्यादि धन (सरथम्) मनोहर कर्म का गुणों के सहित (यम्) जिस मनुष्य को (जुनासि) व्यवहार में चलाते हो उन सबको (अनु द्यून्) प्रतिदिन (उशतः) अति उत्तम कीजिए ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिए कि जो तुम्हारे पिता अर्थात् उत्पन्न करने वाले वा पढ़ाने वाले आचार्य्य तुम्हारे लिए उत्तम शिक्षा से सूर्य के समान विद्याप्रकाश वा अन्नादि देकर सुखी रखते हैं उनका निरन्तर सेवन करो ॥६॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्निं विश्वा अभि पृक्षः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्त यह्वीः ।
न जामिभिर्वि चिकिते वयो नो विदा देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् ॥७॥

पदार्थ—जो (चिकित्वान्) ज्ञानवान् ज्ञान का हेतु (नः) हम लोगों को

(देवेषु) विद्वान् वा दिव्यगुणों मे (प्रमतिम्) उत्तम ज्ञान को (दिवाः) प्राप्त करता (वय) जीवन का (चिकिते) विशेष ज्ञान कराता है उस (अग्निम्) अग्नि के समान विद्वान् (विश्वाः) सब (पृक्षः) विद्यासम्पर्क करने वाले पुत्र वा दीप्ति (समुद्रम्) समुद्र वा (स्रवत) नदी के समान शरीर को गमन कराते हुए (सप्त) सात अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान इन पांच के और सूत्ररूप आत्मा के समान तथा (यह्वी.) रुधिर वा बिजुली आदि की गतियों के (न) समान (अभिसवसे) सम्बन्ध करती हैं जिससे हम लोग मूर्ख वा दुःख देने वाली (जामिभिः) स्त्रियों के साथ (न) नहीं वर्ते ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा तथा वाचकलुप्तोपमालकार है। जैसे समुद्र को नदी वा प्राणो को बिजुली आदि गतिसंयुक्त करती हैं वैसे ही मनुष्य सब पुत्र वा कन्या ब्रह्मचर्य से विद्या वा व्रतों को समाप्त करके युवावस्था वाले होकर विवाह से सन्तानो को उत्पन्न कर उनको इसी प्रकार विद्या शिक्षा सदा ग्रहण करावें। पुत्रों के लिए विद्या वा उत्तम शिक्षा करने के समान कोई बडा उपकार नहीं है ॥ ७ ॥

फिर वह अध्यापक कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् छुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके ।
अग्निः शर्धमनवद्यं युवानं स्वाध्यं जनयत्सूदयच्च ॥८॥

पदार्थ—हे युवते ! जैसे (द्यौ) प्रकाशस्वरूप (अग्नि.) विद्युत् (अभीके) सग्राम में (इषे) इच्छा की पूर्णता के लिए (यत्) जो (निषिक्तम्) स्थापन किये हुए (शुचि) पवित्र (रेत.) वीर्य और (तेज.) प्रगल्भता को (आनट्) प्राप्त करती है उससे युक्त तू वैसे (शर्धम्) बली (अनवद्यम्) निन्दारहित (युवानम्) युवावस्था वाले (स्वाध्यम्) उत्तम विद्यायुक्त विद्वान् (नृपतिम्) मनुष्यों मे राजमान पति को स्वेच्छा से प्रसन्नतापूर्वक प्राप्त होके (आजनयत्) सन्तानो को उत्पन्न (च) और अविद्या दुःख को (सूदयत्) दूर कर ॥ ८ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यो को जानना चाहिए कि कभी उत्तम विद्या वा प्रदीप्त अग्नि के समान विद्वान् के विना व्यवहार और परमार्थ के सुख प्राप्त नही होते और अपने सन्तानों का विद्या देने के बिना माता-पिता आदि कृतकृत्य नहीं हो सकते ॥८॥

विद्या से क्या प्राप्त होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मनो न योऽध्वनः सद्य एत्येकः सत्रा सूरो वस्व ईशे ।
राजाना मित्रावरुणा सुपाणी गोषु प्रियममृतं रक्षमाणा ॥९॥

पदार्थ—हे स्त्रीपुरुषो ! तुम विद्वान्मनुष्य जैसे (मन) सकल्पविकल्परूप अन्तःकरण की वृत्ति के (न) समान वा (सूरः) प्राणियो के गर्भों को बाहर करनेहारी प्राणस्थ बिजुली के तुल्य विमान आदि यानों से (अध्वन) मार्गों को (सद्य) शीघ्र (एति) जाता और (य) जो (एक) सहायरहित एकाकी (सत्रा) सत्य गुण, कर्म और स्वभाव वाला (वस्व) द्रव्यो को शीघ्र (ईशे) प्राप्त करता है वैसे (गोषु) पृथिवीराज्य मे (प्रियम) प्रीतिकारक (अमृतम्) सब सुखो दुखो के नाश करने वाले अमृत की (रक्षमाणा) रक्षा करने वाले (सुपाणी) उत्तम व्यवहारो से युक्त (मित्रावरुणौ) सब के मित्र सब से उत्तम (राजाना) सभा वा विद्या के अध्यक्षो के सदृश होके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध किया करो ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार है। जैसे मनुष्य विद्या और विद्वानो के सग के बिना विमानादि यानों को रच और उनमे स्थित होकर देश देशान्तर म शीघ्र आना-जाना, सत्य विज्ञान, उत्तम द्रव्यो की प्राप्ति और धर्मात्मा राजा राज्य के सम्पादन करने को समर्थ नही हो सकते वैसे स्त्री और पुरुषो मे निरन्तर विद्या और शरीरबल की उन्नति के बिना सुख की बढती कभी नहीं हो सकती ॥९॥

फिर वह कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मा नो अग्ने सख्या पित्र्याणि प्र मर्षिष्ठा अभि विदुष्कविः सन् ।
नभो न रूपं जरिमा मिनाति पुरा तस्या अभिशस्तेरधीहि ॥१०॥

पदार्थ - हे (अग्ने) सब विद्याओ को प्राप्त हुए विद्वन् ! (जरिमा) स्तुति के योग्य (कवि) पूर्णविद्या को (विदु.) जानने वाले (सन्) होकर आप (नभोरूप न) जैसे आकाश सब रूप वाले पदार्थों का अपने मे नाश के समय गुप्त कर लेता है वैसे (न) हम लोगो के (पुरा) प्राचीन (पित्र्याणि) पिता आदि से आये हुए (सख्या) मित्रता आदि कर्मों को (माभि प्र मर्षिष्ठा) नष्ट मत कीजिए और (तस्या) उस (अभिशस्ते) नाश को (अधीहि) अच्छी प्रकार स्मरण रखिए इसी प्रकार होकर जो सुख को (मिनाति) नष्ट करता है उसको दूर कीजिए ॥१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार है। जैसे रूप वाले पदार्थ सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त होकर अन्तरिक्ष मे नही दीखते वैसे हम लोगो के मित्रपन आदि व्यवहार नष्ट न होवें किन्तु हम सब लोग विरोध सर्वथा छोडकर परस्पर मित्र होके सब काल मे सुखी रहें ॥१०॥

इस सूक्त मे ईश्वर, सभाध्यक्ष, स्त्री, पुरुष और बिजुली, विद्वानो के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सगति समझनी चाहिए ॥

यह इकहत्तरवां सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ दशर्चस्य द्विसप्ततितमस्य सूक्तस्य पराशर ऋषि.। अग्निर्देवता।
१,२,५,६,९, विराट् त्रिष्टुप्, धैवतः स्वरः, ४,१० त्रिष्टुप्,
७ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। ३,८ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः।
पञ्चमः स्वरः ॥

अब बहत्तरवें सूक्त का आरम्भ किया है इसके पहले मन्त्र में मनुष्यों को वेदों के पढ़ने-पढ़ाने से क्या-क्या फल होता है इस विषय को कहा है—

नि काव्या वेधसः शश्वतस्कर्हस्ते दधानो नर्या पुरूणि ।
अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणां सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वा ॥१॥

पदार्थ—जो (अग्नि.) अग्नि के तुल्य विद्वान् मनुष्य (वेधसः) सब विद्याओं के धारण और विधान करनेवाले (शश्वतः) अनादि स्वरूप परमेश्वर के सम्बन्ध से प्रकाशित हुए (पुरूणि) बहुत (सत्रा) सत्य अर्थ के प्रकाश करने तथा (अमृतानि) मोक्षपर्यन्त अर्थों को प्राप्त करनेवाले (विश्वा) सब (नर्या) मनुष्यो को सुख होने के हेतु (काव्या) सर्वज्ञ निर्मित वेदो के स्तोत्र हैं उन को (हस्ते) हाथ मे प्रत्यक्ष पदार्थ के तुल्य (दधान) धारण कर तथा विद्या-प्रकाश को (चक्राणः) करता हुआ धर्माचरण को (नि कः) निश्चय करके सिद्ध करता है वह (रयीणाम्) विद्या, चक्रवर्त्ति राज्य आदि धनो का (रयिपतिः) पालन करने वाला श्रीपति (भुवत्) होता है ॥१॥

भावार्थ— हे मनुष्यो ! अनन्त सत्यविद्यायुक्त अनादि सर्वज्ञ परमेश्वर ने तुम लोगों के हित के लिए जिन अपने विद्यामय अनादि रूप वेदो को प्रकाशित किया है उनको पढ-पढा और धर्मात्मा विद्वान् होकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि फलो को सिद्ध करो ॥१॥

जो लोग इन उक्त वेदों को पढते हैं वे ही सदा आनन्द में रहते हैं और जो नहीं पढते उनका परिश्रम व्यर्थ जाता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अस्मे वत्सं परि षन्तं न विन्दन्निच्छन्तो विश्वे अमृता अमूराः ।
श्रमयुवः पदव्यो धियन्धास्तस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः ॥२॥

पदार्थ—जो (विश्वे) सब (अमृता) उत्पत्तिमृत्युरहित अनादि (अमूराः) मूढतादि दोषरहित (श्रमयुवः) श्रम से युक्त (पदव्य) सुखो को प्राप्त (धियन्धा) बुद्धि वा कर्म को धारण करने वाले (इच्छन्तः) श्रद्धालु होकर मनुष्य (अस्मे) हम लोगो को (वत्सम्) पुत्रवत्सुखो मे निवास कराती हुई प्रसिद्ध चारो वेद से युक्त वाणी के (सन्तम्) वर्त्तमान को (परिविन्दन्) प्राप्त करते हैं वे (अग्ने , चारु) श्रेष्ठ जैसे हो वैसे परमात्मा के (परमे) सब से उत्तम (पदे) प्राप्त होने योग्य सुखरूपी मोक्ष पद मे (तस्थु) स्थित होते हैं और जो नही जानते वे उस ब्रह्म पद को प्राप्त नही होते ॥२॥

भावार्थ—सब जीव अनादि है जो इनके बीच मनुष्य देहधारी है उनके प्रति ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम सब लोग वेदो को पढ-पढाकर अज्ञान से ज्ञानवाले पुरुषार्थी होके सुख भोगो क्योंकि वेदार्थज्ञान के विना कोई भी मनुष्य सत्य विद्याओ को प्राप्त नही हो सकता इससे तुम लोगो को वेदविद्या की वृद्धि निरन्तर करनी उचित है ॥२॥

फिर वे उन वेदों को किसलिए पढ़ें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्रिरो यदग्ने शरदस्त्वामिच्छुचिं घृतेन शुचयः सपर्यान् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियान्यसूदयन्त तन्वः सुजाताः ॥३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (यत्) जो (शुचय) पवित्र (सुजाता) विद्याक्रियाओं मे उत्तम कुशलता से प्रसिद्ध मनुष्य (शुचिम्) पवित्र (त्वाम्) तुझको (त्रिरः) तीन (शरद) ऋतु वाले सवत्सरों को (सपर्यान्) सेवन करें वे (इत्) ही (यज्ञियानि) कर्म्म, उपासना और ज्ञान को सिद्ध करने योग्य व्यवहार (नामानि) अर्थज्ञान सहित सज्ञाओ को (दधिरे) धारण करें (चित्) और (घृतेन) घृत वा जलो के साथ (तन्व) शरीरो को भी (असूदयन्त) चलावें ॥३॥

भावार्थ— कोई भी मनुष्य वेदविद्या के बिना पढे विद्वान नही हो सकता और विद्याओ के विना निश्चय करके मनुष्यजन्म की सफलता तथा पवित्रता नहीं होती इसीलिए सब मनुष्यो को उचित है कि इस धर्म का सेवन नित्य करें ॥३॥

वेदों को पढने वाले किस प्रकार के हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ रोदसी बृहती वेविदानाः प्र रुद्रिया जभ्रिरे यज्ञियासः ।
विदन्मर्तो नेमधिता चिकित्वानग्निं पदे परमे तस्थिवांसम् ॥४॥

पदार्थ—जो (रुद्रिया) दुष्ट शत्रुओ को रुलाने वाले के सम्बन्धी (वेविदाना) अत्यन्त ज्ञानयुक्त (यज्ञियास) यज्ञ की सिद्धि करने वाले विद्वान् लोग (बृहती) बडे (रोदसी) भूमि राज्य वा विद्या प्रकाश को (आजभ्रिरे) धारण पोषण करते और समग्र विद्याओ का जानते हैं उनसे विज्ञान को प्राप्त होकर जो (चिकित्वान्) ज्ञानवान् (नेमधिता) प्राप्त पदार्थों का धारण करने वाला

(मर्त्तः) मनुष्य (परमे) सबसे उत्तम (पदे) प्राप्त करने योग्य मोक्ष पद में (तस्थिवांसम्) स्थित हुए (अग्निम्) परमेश्वर को (अविदत्) जानता है वही सुख भोक्ता है ॥४॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि वेद के जाननेवाले विद्वानों से उत्तम नियम द्वारा वेदविद्या को प्राप्त हों, विद्वान् होके परमेश्वर तथा उसके रचे हुए जगत् को जान अन्य मनुष्यों के लिए निरन्तर विद्या देवें ॥४॥

फिर वे विद्वान् कैसे हों यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

संजानाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन् ।
रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः ॥५॥१७॥

पदार्थ—जो (संजानानाः) अच्छी प्रकार जानते हुए (पत्नीवन्त) प्रशंसा योग्य विद्यायुक्त यज्ञ को जाननेवाली स्त्रियों के सहित (रक्षमाणाः) धर्म और विद्या की रक्षा करते हुए विद्वान् लोग (रिरिक्वांसः) विशेष करके पापों से पृथक् (अभिज्ञु) अभ्यासों से (उपसीदन्) सम्मुख समीप बैठना जानते हैं तथा (नमस्यम्) नमस्कार करने योग्य परमेश्वर और पढ़ानेवाले विद्वान् का (नमस्यन्) सत्कार करते और (निमिषि) अधिक विद्या के होने से स्पर्द्धायुक्त निरन्तर व्यवहार में क्षण-क्षण में (सख्युः) मित्र के (सखा) मित्र के समान (स्वाः) अपने (तन्वः) शरीरों को (कृण्वत) बल और रोगरहित करते हैं वे मनुष्य भाग्यशाली होते हैं ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। ईश्वर और विद्वान् के सत्कार किये विना किसी मनुष्य को विद्या के पूर्ण सुख नहीं हो सकते। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि सत्कार करने योग्य मनुष्यों का ही सत्कार और अयोग्यों का असत्कार करें ॥ ५ ॥

इन विद्वानों को विद्या से किसको जान के वर्त्तना योग्य है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्रिः सप्त यद्गुह्यानि त्वे इत्पदाविदन् निहिता यज्ञियासः ।
तेभी रक्षन्ते अमृतं सजोषाः पशूँश्च स्थातॄँश्चरथं च पाहि ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे (त्वे) कोई (यज्ञियास) यज्ञ के सिद्ध करनेवाले विद्वान् (यत्) जिन (निहिता) स्थापित विद्यादि धनरूप (गुह्यानि) गुप्त वा सब प्रकार करने (पदा) प्राप्त होने योग्य (सप्त) सात अर्थात् चार वेदों और तीन क्रियाकौशल, विज्ञान और पुरुषार्थों को (त्रिः) श्रवण, मनन और विचार करने से (अविन्दन्) प्राप्त करते हैं वैसे तुम भी इन को प्राप्त होओ। हे जानने की इच्छा करनेहारे सज्जन ! जैसे (सजोषाः) समान प्रीति के सेवन करने वाले (तेभिः) उन्हीं से (अमृतम्) धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी सुख (पशून्) पशुओं के तुल्य मूर्खत्वयुक्त मनुष्य वा पशु आदि (च) और भृत्य आदि (स्थातॄन्) भूमि आदि स्थावर (च) और राज्य रत्नादि सम्पदा (चरथम्) मनुष्य आदि जङ्गम (च) और स्त्री, पुत्र आदि की (रक्षन्ते) रक्षा करते हैं। वैसे इन की तू (इत्) भी (पाहि) रक्षा कर ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों का अनुकरण करें मूर्खों का नहीं जैसे सज्जन पुरुष उत्तम कार्यों मे प्रवृत्त होते और दुष्ट कर्मों का त्याग कर देते हैं वैसा ही सब मनुष्य करें ॥ ६ ॥

फिर भी अगले मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

विद्वाँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां व्यानुषक् शुरुधो जीवसे धाः ।
अन्तर्विद्वाँ अध्वनो देवयानानतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाट् ॥७॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सब सुख प्राप्त करानेवाले जगदीश्वर ! जिस कारण (अन्तर्विद्वान्) अन्तःकरण के सब व्यवहारों को तथा (विद्वान्) बाहर के कार्यों को जाननेवाले (अतन्द्रः) आलस्य रहित (हविर्वाट्) विज्ञान आदि प्राप्त कराने वाले आप (क्षितीनाम्) मनुष्यों के (वयुनानि) विज्ञानों को (जीवसे) जीवन के लिए (शुरुधः) प्राप्त करने योग्य सुखों को (आनुषक्) अनुकूलतापूर्वक (विधाः) विविध प्रकार से धारण करते हो वेद द्वारा (देवयानान्) विद्वानों के आने-जाने वाले (अध्वनः) मार्गों के (दूत) विज्ञान करानेवाले (अभव) होते हो इससे आप का सत्कार हम लोग अवश्य करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो प्रार्थना वा सेवन किया हुआ ईश्वर धर्ममार्ग वा विज्ञान को विचारकर सुखों को देता है उस का सेवन अवश्य करना चाहिए ॥ ७ ॥

फिर वे ब्रह्म के जाननेवाले विद्वान् कैसे होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

स्वाध्यो दिव आ सप्त यह्वी रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन् ।
विदद्गव्यं सरमा दृळ्हमूर्वं येना नु कं मानुषी भोजते विट् ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे-जैसे (स्वाध्यः) सब के कल्याण को यथावत् विचारने (ऋतज्ञाः) सत्य के जाननेवाले (येन) जिस पुरुषार्थ से (यह्वी) बड़े (सप्त) सात संख्या वाले (दिवः) सूर्य के तुल्य विद्या (रायः) अति उत्तम धनों के (दुरः) प्रवेश के स्थानों को (व्यजानन्) जानते तथा (सरमा) बोध के समान करनेवाली (मानुषी) मनुष्यों की (विट्) प्रजा (दृळ्हम्) दृढ़, निश्चल (ऊर्वम्) दोषों का नाश (गव्यम्) पशु और इन्द्रियों के हितकारक सुख को (नु) शीघ्र (विदत्) प्राप्त होती है वैसे इस कर्म का सदा सेवन करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को यह योग्य है कि जैसी विद्या को पढ़ें वैसी ही कपट-छल छोड़कर सब मनुष्यों को पढ़ावें और उपदेश करें जिस से मनुष्य लोग सब सुखों को प्राप्त हों ॥ ८ ॥

फिर वे कैसे हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—

आ ये विश्वा स्वपत्यानि तस्थुः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।
मह्ना महद्भिः पृथिवी वि तस्थे माता पुत्रैरदितिर्धायसे वेः ॥९॥

पदार्थ—जैसे (आ) ये (अमृतत्वाय) मोक्षादि सुख होने के लिए (गातुम्) भूमि के समान बोध के कोश को (कृण्वानास) सिद्ध करते हुए विद्वान् लोग (महद्भिः) अतिसुख करनेवाले गुणों के साथ (विश्वा) सब (स्वपत्यानि) उत्तम शिक्षायुक्त पुत्रादिकों को (मह्ना) बड़े-बड़े गुणों से (धायसे) धारण के लिए (पृथिवी) भूमि के तुल्य (पुत्रैः) पुत्रों के साथ (माता) माता के समान (अदितिः) प्रकाशस्वरूप सूर्य स्थूल पदार्थों में (वेः) व्याप्ति करनेवाले पक्षी के समान (आतस्थुः) स्थित होते हैं वैसे मैं इस कर्म का (वितस्थे) विशेष करके ग्रहण करता हूँ ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को विद्वानों के समान अपने सन्तानों को विद्या-शिक्षा से युक्त करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी सुखों को प्राप्त करना चाहिए ॥ ९ ॥

फिर वे विद्वान् किस का धारण करते हैं यह विषय कहा है—

अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन् दिवो यदक्षी अमृता अकृण्वन् ।
अध क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः प्र नीचीरग्ने अरुषीरजानन् ॥१०॥१८॥

पदार्थ—जैसे (यत्) जो (अमृताः) मरण-जन्म रहित मोक्ष को प्राप्त हुए विद्वान् लोग (अस्मिन्) इस लोक में (श्रियम्) विद्या तथा राज्य के ऐश्वर्य की शोभा को (अधिनिदधुः) अधिक धारण (चारुम्) श्रेष्ठ व्यवहार (दिवः) प्रकाश और विज्ञान से (अक्षी) बाहर-भीतर से देखने की विद्याओं को (अकृण्वन्) सिद्ध करते (सृष्टाः) उत्पन्न की हुई (सिन्धवः) नदियों के (न) समान (अध) अनन्तर सुखों को (क्षरन्ति) देते हैं (नीचीः) निरन्तर सेवन करने तथा (अरुषीः) प्रभात के समान सब सुख प्राप्त करनेवाली विद्या और क्रिया को (प्राजानन्) अच्छा जानते हैं वैसे हे (अग्ने) विद्वन् मनुष्य ! तू भी यथाशक्ति सब कर्मों को सिद्ध कर ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र म उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! तुम लोग यथायोग्य विद्वानों के आचरण को स्वीकार करो और अविद्वानों का नहीं। तथा जैसे नदी सुखों के होने की हेतु होती हैं वैसे सब के लिए सुखों को उत्पन्न करो ॥ १० ॥

इस सूक्त मे ईश्वर और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति समझनी चाहिए ॥

यह बहत्तरवां सूक्त और अठारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ दशर्चस्य त्रिसप्ततितमस्य सूक्तस्य पराशर ऋषिः । अग्निर्देवता १, २, ४, ५, ७, ९, १०, निचृत्त्रिष्टुप्, ३, ६ त्रिष्टुप्; ८ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवत स्वरः ॥

अब तिहत्तरवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है। इसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् के गुणों का उपदेश किया है—

रयिर्न यः पितृवित्तो वयोधाः सुप्रणीतिश्चिकितुषो न शासुः ।
स्योनशीरतिथिर्न प्रीणानो होतेव सद्म विधतो वि तारीत् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (यः) जो विद्वान् (पितृवित्त) पिता-पितामहादि अध्यापकों से प्रतीत विद्यायुक्त हुए (रयिः) धनसमूह के (न) समान (वयोधाः) जीवन को धारण करने (सुप्रणीतिः) उत्तम नीतियुक्त तथा (चिकितुषः) उत्तमविद्या वाले (शासुः) उपदेशक मनुष्य के (न) समान (स्योनशीः) विद्या, धर्म्म और पुरुषार्थयुक्त सुख में सोने (प्रीणानः) प्रसन्न तथा (अतिथिः) महाविद्वान् भ्रमण और उपदेश करनेवाले परोपकारी मनुष्य के (न) समान (विधतः) वा सब व्यवहारों को विधान करता है उस के (होतेव) देने-लेनेवाले (सद्म) घर के तुल्य वर्त्तमान शरीर का (वितारीत्) सेवन और उस से उपकार लेके सब को सुख देता है उसका नित्य सेवन और उस से परोपकार कराया करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। विद्याधर्मानुष्ठान, विद्वानों का संग तथा उत्तम विचार के बिना किसी मनुष्य को विद्या और सुशिक्षा का साक्षात्कार, पदार्थों का ज्ञान नहीं होता और निरन्तर भ्रमण करनेवाले अतिथि विद्वानों के उपदेश के बिना कोई मनुष्य सन्देहरहित नहीं हो सकता इस से सब मनुष्यों को अच्छा आचरण करना चाहिए ॥ १ ॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

देवो न यः सविता सत्यमन्मा क्रत्वा निपाति वृजनानि विश्वा ।
पुरुप्रशस्तो अमतिर्न सत्य आत्मेव शेवो दिधिषाय्यो भूत् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (**यः**) जो (**सविता**) सूर्य (**देवः**) दिव्य गुण के (**न**) समान (**सत्यमन्मा**) सत्य को जानने वा जनानेवाला विद्वान् (**क्रत्वा**) बुद्धि वा कर्म से (**विश्वा**) सब (**वृजनानि**) बलों की (**निपाति**) रक्षा करता है (**पुरुप्रशस्तः**) बहुतों में अति श्रेष्ठ (**अमतिः**) उत्तम स्वरूप के (**न**) समान (**सत्यः**) अविनाशिस्वरूप (**विविधाय्यः**) धारण वा पोषण करनेवाले (**आत्मेव**) आत्मा के समान (**शेवः**) सुखस्वरूप अध्यापक वा उपदेष्टा (**भूत्**) है उस का सेवन करके विद्या की उन्नति करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्य विद्वानों के सत्सङ्ग से सत्यविद्या, बल, सुख और सौन्दर्य आदि के प्राप्त होने को समर्थ हो सकते हैं इस से इन दोनों का सेवन निरन्तर करें ॥ २ ॥

देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो तुम लोग (**यः**) जो (**देवः**) अच्छे सुखों का देनेवाला परमेश्वर वा विद्वान् (**पृथिवीम्**) भूमि के समान (**विश्वधायाः**) विश्व को धारण करनेवाले (**हितमित्रः**) मित्रों को धारण किये हुए (**राजा**) सभा आदि के अध्यक्ष के (**न**) समान (**उपक्षेति**) जानता वा निवास कराता है तथा (**पुरःसदः**) प्रथम शत्रुओं को मारने वा युद्ध के जानने (**शर्मसदः**) सुख में स्थिर होने और (**वीराः**) युद्ध में शत्रुओं के फेंकने वाले के (**न**) समान तथा (**अनवद्या**) विद्यासौन्दर्यादि शुद्धगुणयुक्त (**नारी**) नर की स्त्री (**पतिजुष्टेव**) जो कि पति की सेवा करनेवाली उस के समान सुखों में निवास कराता है उस को सदा सेवन करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्य लोग परमेश्वर वा विद्वानों के साथ प्रेम-प्रीति से वर्त्तने के विना सब बल वा सुखों को प्राप्त नहीं हो सकते इस से इन्हीं के साथ सदा प्रीति करें।

तं त्वा नरो दम आ नित्यमिद्धमग्ने सचन्त क्षितिषु ध्रुवासु ।
अधि द्युम्नं नि दधुर्भूर्यस्मिन् भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम् ॥४॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विज्ञान करानेवाले विद्वन् ! (**रयीणाम्**) विद्या और सब पृथिवी के राज्य से सिद्ध किये हुए धनों के (**धरुणः**) धारण करनेवाले (**विश्वायुः**) सम्पूर्ण जीवनयुक्त आप (**अस्मिन्**) इस मनुष्य जन्म वा जगत् में सहायकारी (**भव**) हूजिए जो (**भूरि**) बहुत (**द्युम्नम्**) विद्याप्रकाशरूपी धन और कीर्त्ति को धारण करते हो (**तम्**) उन (**नित्यम्**) निरन्तर (**इद्धम्**) प्रदीप्त (**त्वा**) आप को (**ध्रुवासु**) दृढ़ (**क्षितिषु**) भूमियों में जो (**नरः**) नयन करनेवाले सब मनुष्य (**अधिनिदधुः**) धारण करें और (**दमे**) शान्तियुक्त घर में (**आसचन्त**) सेवन करें उन का सेवन नित्य किया करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जिस जगदीश्वर ने अनेक पदार्थों को रच कर धारण किया है और जिस विद्वान् ने जाना है उसकी उपासना वा सत्सङ्ग के विना किसी मनुष्य को सुख नहीं होता ऐसा जानो ॥ ४ ॥

परमेश्वर की कृपा और विद्वानों के सङ्ग से मनुष्यों को क्या-क्या प्राप्त होता है यह अगले मन्त्र में कहा है—

वि पृक्षो अग्ने मघवानो अश्युर्वि सूरयो ददतो विश्वमायुः ।
सनेम वाजं समिथेष्वर्यो भागं देवेषु श्रवसे दधानाः ॥५॥१९॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) सुखस्वरूप विद्वान् आपके उपदेश से जैसे (**अर्य्यः**) स्वामी वा वैश्य (**भागम्**) सेवनीय पदार्थों के समान (**मघवानः**) सत्कारयुक्त धनवाले (**ददतः**) दानशील (**सूरयः**) मेधावी लोग (**समिथेषु**) सङ्ग्रामों तथा (**देवेषु**) विद्वान् वा दिव्यगुणों में (**वाजम्**) विज्ञान को (**दधानाः**) धारण करते हुए (**श्रवसे**) श्रवण करने योग्य कीर्त्ति के लिए (**पृक्षः**) अत्युत्तम अन्न और (**विश्वम्**) सब (**आयुः**) जीवन को (**व्यश्युः**) विशेष करके भोगें वा (**विसनेम**) विशेष करके सेवन करें वैसे हम भी किया करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य ईश्वर और विद्वानों के सहाय और अपने पुरुषार्थ से सब सुखों को प्राप्त हो सकते हैं अन्यथा नहीं ॥ ५ ॥

अब विद्वानों के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः स्मदूध्नीः पीपयन्त द्युभक्ताः ।
परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सस्रुरद्रिम् ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे (**वावशानाः**) अत्यन्त शोभायमान (**स्मदूध्नीः**) बहुत दूध देनेवाली (**धेनवः**) गायें (**पीपयन्त**) दूध आदि से बढ़ाती हैं जैसे (**द्युभक्ताः**) प्रकाश से भिन्न-भिन्न किरणें (**परावतः**) दूरदेश से (**अद्रिम्**) मेघ को (**समया**) समय पर वर्षाती हैं (**सिन्धवः**) नदियाँ (**सस्रुः**) बहती हैं वैसे तुम (**सुमतिम्**) उत्तम विज्ञान को (**भिक्षमाणाः**) जिज्ञासा से (**वि**) विशेष जानकर अन्य मनुष्यों के लिए विद्या और सुशिक्षापूर्वक (**ऋतस्य हि**) मेघ से उत्पन्न हुए जल के समान सत्य ही की वर्षा करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे यज्ञ से सम्यक् प्रकार शोधा हुआ जल शक्ति को बढ़ाने वाला होकर विज्ञान को बढ़ाता है वैसे ही धर्म्मात्मा विद्वान् हो ॥ ६ ॥

वे मनुष्य कैसे हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः ।
नक्ता च चक्रुरुषसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धुः ॥७॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) पढ़ानेहारे विद्वन् ! जो (**दिवि**) प्रकाशस्वरूप (**त्वे**) आप के समीप स्थित हुए (**भिक्षमाणाः**) विद्याओं ही की भिक्षा करनेवाले (**यज्ञियासः**) अध्ययनरूप कर्मचतुर विद्वान् लोग (**सुमतिम्**) उत्तम बुद्धि को (**दधिरे**) धारण करते तथा (**श्रवः**) श्रवण वा अन्न को (**सन्धुः**) धारण करते हैं (**नक्ता**) रात्रि (**च**) और (**उषसा**) दिन के साथ (**कृष्णम्**) श्याम (**अरुणम्**) लाल (**वर्णम्**) वर्ण को (**च**) तथा इन से भिन्न वर्णों से युक्त पदार्थों को धारण करते हैं (**च**) और (**विरूपे**) विरुद्ध रूपों का विज्ञान (**चक्रुः**) करते हैं वे सुखी होते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—परमेश्वर की सृष्टि के विज्ञान के विना कोई मनुष्य पूर्ण विद्वान् होने को समर्थ नहीं होता। जैसे रात्रि, दिवस भिन्न-भिन्न रूप वाले हैं वैसे ही अनुकूल और विरुद्ध धर्मादि के विज्ञान से सब पदार्थों को जानके उपयोग में लेवें ॥७॥

फिर सृष्टिकर्त्ता ईश्वर कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यान् राये मर्त्तान्त्सुषूदो अग्ने ते स्याम मघवानो वयं च ।
छायेव विश्वं भुवनं सिसक्ष्यापप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ॥८॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) जगदीश्वर ! जो आप (**यान्**) जिन (**सुषूदः**) क्षय-वृद्धि धर्म्मयुक्त (**मर्त्तान्**) मनुष्यों को (**राये**) विद्यादि धन के लिए (**सिसक्षि**) संयुक्त करते हो (**ते**) वे (**वयम्**) हम लोग (**मघवानः**) प्रशंसा योग्य धनवाले (**स्याम**) होवें (**च**) और जो आप (**छायेव**) शरीरों की छाया के समान (**विश्वम्**) सब (**भुवनम्**) जगत् और (**रोदसी**) आकाश, पृथिवी और (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष को (**आपप्रिवान्**) पूर्ण करनेवाले हो उन आप की सब लोग उपासना करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि ईश्वर की उपासना और अपने पुरुषार्थ से आप विद्यादि धनवाले होकर सब मनुष्यों को भी करें ॥ ८ ॥

फिर वे मनुष्य कैसे हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नॄन् वीरैर्वीरान् वनुयामा त्वोताः ।
ईशानासः पितृवित्तस्य रायो वि सूरयः शतहिमा नो अश्युः ॥९॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) सब सुखों के प्राप्त करानेवाले परमेश्वर ! आप से (**त्वोताः**) रक्षित हम लोग (**अर्वद्भिः**) प्रशंसा योग्य घोड़ों से (**अर्वतः**) घोड़ों को (**नृभिः**) विद्यादिश्रेष्ठगुणयुक्त मनुष्यों से (**नॄन्**) शिक्षा धर्म्मवाले मनुष्यों और (**वीरैः**) शौर्यादियुक्त शूरवीरों से (**वीरान्**) शूरता आदि गुणवाले शूरवीरों की प्राप्ति (**वनुयाम**) होने को चाहें और याचना करें। आप की कृपा से (**पितृवित्तस्य**) पिता के भोगे हुए (**रायः**) धन के (**ईशानासः**) समर्थ स्वामी हम लोग हों और (**सूरयः**) मेधावी विद्वान् (**नः**) हम लोगों को (**शतहिमाः**) सौ हेमन्त ऋतु पर्यन्त (**व्यश्युः**) प्राप्त होते रहें ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग ईश्वर के गुण, कर्म्म, स्वभाव के अनुकूल वर्त्तने और अपने पुरुषार्थ के विना उत्तम विद्या और पदार्थों के प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकते इस से इस का सदा अनुष्ठान करना उचित है ॥ ९ ॥

फिर उस को उस के सहाय से क्या प्राप्त होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

एता ते अग्न उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च ।
शकेम रायः सुधुरो यमं तेऽधि श्रवो देवभक्तं दधानाः ॥१०॥

पदार्थ—हे (**वेधः**) सब के अन्तःकरण में रहने से सबको बुद्धिप्रद धर्त्ता (**अग्ने**) विज्ञान के देनेवाले जगदीश्वर ! (**ते**) आपकी कृपा से (**एता**) (**उचथानि**) वेदवचन हम लोगों के (**मनसे**) मन (**च**) और (**हृदे**) आत्मा के लिए (**जुष्टानि**) सेवन किये हुए प्रीतिकारक (**सन्तु**) होवें वे (**ते**) आपके सम्बन्ध से (**यमम्**) नियम करने (**देवभक्तम्**) विद्वानों से सेवन किये हुए (**श्रवः**) श्रवण को (**दधानाः**) धारण करते हुए (**सुधुरः**) उत्तम पदार्थों के धारण करनेवाले हम लोग (**रायः**) धनों के प्राप्त होने को (**अधि शकेम**) समर्थ हों ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि आप सब सुखों को प्राप्त होकर और सब के लिए प्राप्त करावें ॥ १० ॥

इस सूक्त में ईश्वर, अग्नि, विद्वान् और सूर्य के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी उचित है ॥

यह तिहत्तरवां सूक्त बीसवां वर्ग और बारहवां अनुवाक पूरा हुआ ॥

卐

अथ नवर्चस्य चतुःसप्ततितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । १, २, ८, ९ निचृद्गायत्री; ३, ५, ६ गायत्री; ४, ७, विराड्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब चौहत्तरवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है इसके प्रथम मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (उपप्रयन्तः) समीप प्राप्त होने वाले हम लोग इस (अस्मे) हम लोगों के (आरे) दूर (च) और समीप में (शृण्वते) श्रवण करते हुए (अग्नये) परमेश्वर के लिए (अध्वरम्) हिंसारहित (मन्त्रम्) विचार को निरन्तर (वोचेम) उपदेश करें वैसे तुम भी किया करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि बाहर-भीतर व्याप्त होके हम लोगों के दूर समीप व्यवहार के कर्मों को जानते हुए परमात्मा को जानकर अधर्म से अलग होकर सत्यधर्म का सेवन करके आनन्दयुक्त रहें ॥ १ ॥

फिर वह परमेश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद्दाशुषे गयम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (पूर्व्यः) पूर्वज विद्वान् लोगो ने साक्षात्कार किये हुए जगदीश्वर (संजग्मानासु) एक दूसरे के सङ्ग चलती हुई (स्नीहितीषु) स्नेह करनेवाली (कृष्टिषु) मनुष्य आदि प्रजा में (दाशुषे) विद्यादि शुभ गुण देनेवाले के लिए (गयम्) धन को (अरक्षत्) रक्षा करता है उस (अग्नये) ईश्वर के लिए (अध्वरम्) हिंसारहित (मन्त्रम्) विचार को हम लोग (वोचेम) कहें, वैसे तुम भी कहा करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । पूर्व मन्त्र से "अग्नये, अध्वरम्, मन्त्रम्, वोचेम" इन चार पदो की अनुवृत्ति आती है । प्रजा मे रहनेवाले किसी जीव की परमेश्वर के बिना रक्षा और सुख नही हो सकता इस से सब मनुष्यों को उचित है कि इस का सेवन सर्वदा करें ॥ २ ॥

उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि । धनञ्जयो रणेरणे ॥३॥

पदार्थ—जो (रणेरणे) युद्ध-युद्ध मे (धनञ्जयः) धन से जिताने वाला (वृत्रहा) मेघ को नष्ट करनेहारे सूर्य्य के समान (अग्निः) परमेश्वर (दाशुषे) विद्या, शुभ गुणों के दान करनेवाले मनुष्य के लिए (गयम्) धन को (उदजनि) उत्पन्न करता है (उत) और भी जिस का विद्वान् लोग उपदेश करते हैं (जन्तवः) सब मनुष्य (अध्वरम्) हिंसारहित (मन्त्रम्) उसी के विचार को (उत ब्रुवन्तु) परस्पर उपदेश करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो तुम जिसके आश्रय से शत्रुओं के पराजय द्वारा अपने विजय से राज्य, धनों की प्राप्ति होती है उस परमेश्वर का नित्य सेवन किया करो ॥ ३ ॥

यस्य दूतो असि क्षये वेषि हव्यानि वीतये । दस्मत्कृणोष्यध्वरम् ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप (यस्य) जिस मनुष्य के (वीतये) विज्ञान के लिए अग्नि के तुल्य (दूतः) दुःख नाश करनेवाले (असि) हैं (क्षये) घर में (हव्यानि) हवन करने योग्य उत्तम द्रव्य, गुणकर्मों को (वेषि) प्राप्त वा उत्पन्न करते हो (दस्मत्) दुःख नाश करनेवाले (अध्वरम्) अग्निहोत्रादि यज्ञ के समान विद्याविज्ञान को बढ़ानेवाले यज्ञ को (कृणोषि) सिद्ध करते हो उसका सब मनुष्य सेवन करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिस मनुष्य ने परमेश्वर के समान विद्वान् पढ़ाने और उपदेश करने वाले की चाहना की है उसको कभी दुःख नहीं होता ॥ ४ ॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

तमित्सुहव्यमङ्गिरः सुदेवं सहसो यहो । जना आहुः सुबर्हिषम् ॥५॥२१॥

पदार्थ—हे (अंगिरः) अङ्गों के रसरूप (सहसः) बल के (यहो) पुत्ररूप विद्वान् मनुष्य जिस तुझको बिजुली के तुल्य (सुदेवम्) दिव्यगुणों के देने (सुबर्हिषम्) विज्ञानयुक्त (सुहव्यम्) उत्तम ग्रहण करनेवाले आपको (जनाः) विद्वान लोग (आहुः) कहते हैं (तम्) उसको (इत्) ही हम लोग सेवन करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । मनुष्यो को चाहिए कि विद्वानों के सङ्ग से पदार्थविद्या को जान और सम्यक् परीक्षा करके अन्य मनुष्यों को बतावें ॥ ५ ॥

आ च वहासि ताँ इह देवाँ उप प्रशस्तये । हव्या सुश्चन्द्र वीतये ॥६॥

पदार्थ—हे (सुश्चन्द्र) अच्छे आनन्द के देनेवाले विद्वान् आप (इह) संसार में (प्रशस्तये) प्रशंसा (च) और (वीतये) सुखों की प्राप्ति के लिए जिन (हव्या) ग्रहण के योग्य (देवान्) दिव्य गुणों वा विद्वानों को (उपावहासि) समीप में सब प्रकार प्राप्त हो (तान्) उन आप को हम लोग प्राप्त होवें ॥ ६ ॥

भावार्थ—जब तक मनुष्य परमेश्वर के जानने के लिए धर्मात्मा विद्वान् पुरुषों से शिक्षा और अग्नि आदि पदार्थों से उपकार लेने मे ठीक-ठीक पुरुषार्थ नहीं करते तब तक पूर्ण विद्या की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती ॥६॥

न योरुपब्दिरश्व्यः शृण्वे रथस्य कच्चन । यदग्ने यासि दूत्यम् ॥७॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य विद्या से प्रकाशित विद्वन् ! आप जैसे (उपब्दि) अत्यन्त शब्द करने (अश्व्यः) शीघ्र चलनेवाले यानों मे अत्यन्त वेगकारक (यत्) जिस अग्नियुक्त और (योः) चलने-चलानेवाले (रथस्य) विमानादि यानसमूह के बीच स्थिर होके (दूत्यम्) दूत के तुल्य अपने कर्म को (यासि) प्राप्त होते हो मैं उस अग्नि के समीप और शब्दों को (कच्चन) कभी (न) नहीं (शृण्वे) सुनता (किन्तु) प्राप्त होता हूँ तू भी नहीं सुन सकता परन्तु प्राप्त हो सकता है ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । मनुष्य लोग शिल्पविद्या से सिद्ध किये हुए यान और यन्त्रादिकों मे युक्त अत्यन्त गमन करानेवाले अग्नि के समीपस्थ शब्द के निकट अन्य शब्दों को नहीं सुन सकते ॥७॥

त्वोतो वाज्यह्रयोऽभि पूर्वस्मादपरः । प्र दाश्वाँ अग्ने अस्थात् ॥८॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्यायुक्त जैसे (अह्रयः) शीघ्रयान मार्गों को प्राप्त करानेवाले अग्नि आदि (अपरः) और भिन्न देश वा भिन्न कारीगर (त्वोतः) आप से संगम को प्राप्त हुआ (वाजी) प्रशंसा के योग्य वेगवाला (दाश्वान्) दाता (पूर्वस्मात्) पहले स्थान से (अभि) सम्मुख (प्रास्थात्) देशान्तर को चलानेवाला होता है वैसे अन्य मन आदि पदार्थ भी हैं ऐसा तू जान ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । मनुष्यो को यह जानना चाहिए कि शिल्पविद्यासिद्ध यन्त्रों के बिना अग्नि यानो का चलानेवाला नहीं होता ॥८॥

उत द्युमत्सुवीर्यं बृहदग्ने विवाससि । देवेभ्यो देव दाशुषे ॥९॥

पदार्थ—हे (देव) दिव्य गुण, कर्म्म और स्वभाववाला (अग्ने) अग्निवत् प्रज्ञा से प्रकाशित विद्वन् ! तू (दाशुषे) देने के स्वभाववाले कार्य्यों के अध्यक्ष (उत) अथवा (देवेभ्यः) विद्वानों के लिए (द्युमत्) अच्छे प्रकाशवाले (बृहत्) बड़े (सुवीर्य्यम्) अच्छे पराक्रम को (विवाससि) सेवन करता है वैसे हम भी उसका सेवन करें ॥९॥

भावार्थ—जो कार्यों के स्वामी होवें उन विद्वानो के सकाश से विद्या और पुरुषार्थ करके विद्वान् तथा भृत्यों को बड़े-बड़े उपकारो का ग्रहण करना चाहिए ॥९॥

इस सूक्त में ईश्वर, विद्वान् और विद्युत् अग्नि के गुणों का वर्णन होने से पूर्व सूक्तार्थ के साथ इस सूक्त की सङ्गति है ।

यह चौहत्तरवां सूक्त और बाईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चसप्ततितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । १ गायत्री, २,४,५ निचृद्गायत्री, ३ विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब पचहत्तरवें सूक्तार्थ का आरम्भ किया जाता है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् लोग कैसे हों इस विषय का उपदेश किया है—

जुषस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम् । हव्या जुह्वान आसनि ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् (आसनि) अपने मुख मे (हव्या) भोजन करने योग्य पदार्थों को (जुह्वानः) खानेवाले आप जो विद्वानों का (सप्रथस्तमम्) अतिविस्तार युक्त (देवप्सरस्तमम्) विद्वानों को अत्यन्त ग्रहण करने योग्य व्यवहार वा (वचः) वचन है (तम्) उसको (जुषस्व) सेवन करो ॥१॥

भावार्थ—जो मनुष्य युक्तिपूर्वक भोजन, पान और चेष्टाओं से युक्त ब्रह्मचारी हों वे शरीर और आत्मा के सुख को प्राप्त होते हैं ॥१॥

फिर उससे विद्वान् क्या कहें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अथा ते अङ्गिरस्तमाग्ने वेधस्तम प्रियम् । वोचेम ब्रह्म सानसि ॥२॥

पदार्थ—हे (अंगिरस्तम) सब विद्याओं के जानने और (वेधस्तम) अत्यन्त धारणा करनेवाले (अग्ने) विद्वन् ! जैसे हम लोग वेदों को पढ़के (अथ) इसके पीछे (ते) तुझे (सानसि) सदा से वर्त्तमान (प्रियम्) प्रीतिकारक (ब्रह्म) चारों वेदों का (वोचेम) उपदेश करें वैसे ही तू कर ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । वेदादि सत्यशास्त्रो के उपदेश के बिना किसी मनुष्य को परमेश्वर और विद्युत् अग्नि आदि पदार्थों के विषय का ज्ञान नहीं होता ॥२॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः । को ह कस्मिन्नसि श्रितः ॥३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (जनानाम्) मनुष्यो के बीच (ते) आपका (कः) कौन मनुष्य (ह) निश्चय करके (जामिः) जाननेवाला है (कः) (दाश्वध्वरः) दान देने और रक्षा करनेवाला है तू (कः) कौन है और (कस्मिन्) किस में (श्रितः) आश्रित (असि) है इस सब बात का उत्तर दे ॥३॥

भावार्थ—बहुत मनुष्यों मे कोई ऐसा होता है कि जो परमेश्वर और अग्न्यादि पदार्थों को ठीक-ठीक जाने और जनावे क्योंकि ये दोनो अत्यन्त आश्चर्य्य गुण, कर्म और स्वभाव वाले है ॥

त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः । सखा सखिभ्य ईड्यः ॥४॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) पण्डित जिस कारण (**जनानाम्**) मनुष्यों को (**जामिः**) जल के तुल्य सुख देने वाले (**मित्रः**) सबके मित्र (**प्रियः**) कामना को पूर्ण करनेवाले, योग्य विद्वान (**त्वम्**) आप (**सखिभ्यः**) सबके मित्र मनुष्यो को (**ईड्यः**) स्तुति करने योग्य (**सखा**) मित्र हो इसीसे सबको सेवने योग्य विद्वान् (**असि**) हो ॥४॥

भावार्थ—मनुष्यो को उस परमेश्वर और उस विद्वान् मनुष्य की सेवा क्यो नहीं करनी चाहिए कि जो ससार मे विद्यादि शुभगुण और सबको सुख देता है ॥४॥

यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत् ।
अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥५॥ व० २३ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) पूर्ण विद्यायुक्त विद्वन् मनुष्य ! जिस कारण (**त्वम्**) आप अपने (**दमम्**) उत्तम स्वभावरूपी घर को (**यक्षि**) प्राप्त होते हैं इसीसे (**नः**) हमारे लिए (**मित्रावरुणा**) बल और पराक्रम के करनेवाले प्राण और उदान को (**यज**) अरोग कीजिए (**बृहत्**) बड़े-बड़े विद्यादिगुणयुक्त (**ऋतम्**) सत्य विज्ञान को (**यज**) प्रकाशित कीजिए ॥५॥

भावार्थ—जैसे परमेश्वर का परोपकार के लिए न्याय आदि शुभ गुण देने का स्वभाव है वैसे ही विद्वानो को भी अपना स्वभाव रखना चाहिए ॥५॥

इस सूक्त में ईश्वर, अग्नि और विद्वान् के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सगति समझनी चाहिए ॥

यह पचहत्तरवां सूक्त और तेईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य षट्सप्ततितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता ।
१,३,५ निचृत्त्रिष्टुप्, २,४ विराट् त्रिष्टुप्छन्द ।
धैवत स्वर ॥

अब छिहत्तरवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है । इसके प्रथम मन्त्र मे विद्वान् के गुणो का उपदेश किया है—

का त उपेतिर्मनसो वराय भुवदग्ने शंतमा का मनीषा ।
को वा यज्ञैः परि दक्षं त आप केन वा ते मनसा दाशेम ॥१॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) शान्ति के देनेवाले विद्वन् मनुष्य ! (**ते**) तुझ अति श्रेष्ठ विद्वन की (**का**) कौन (**उपेतिः**) सुखो का प्राप्त करनेवाली नीति (**मनसः**) चित्त की (**वराय**) श्रेष्ठता के लिए (**भुवत्**) होती है (**का**) कौन (**शंतमा**) सुख का प्राप्त करनेवाली (**मनीषा**) बुद्धि होती है (**कः**) कौन मनुष्य (**वा**) निश्चय करके (**ते**) आपके (**दक्षम्**) बल को (**यज्ञैः**) पढने पढाने आदि यज्ञो को (**परि**) सब ओर से (**आप**) प्राप्त होता है (**वा**) अथवा हम लोग (**केन**) किस प्रकार के (**मनसा**) मन मे (**ते**) आपके लिए क्या (**दाशेम**) देवें ॥१॥

भावार्थ—मनुष्यो को परमेश्वर और विद्वान् की ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए कि हे परमात्मन् वा विद्वन् पुरुष ! आप कृपा करके हमारी शुद्धि के लिए श्रेष्ठ बुद्धि और श्रेष्ठ बल को दीजिए जिससे हम लोग आपका ज्ञान और प्राप्त होके सुखी हो ॥१॥

फिर उस विद्वान् की प्रार्थना किसलिए करनी चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

एह्यग्न इह होता नि षीदादब्धः सु पुरएता भवा नः ।
अवतां त्वा रोदसी विश्वमिन्वे यजा महे सौमनसाय देवान् ॥२॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) सबके उपकार करनेवाले विद्वन् ! (**अदब्धः**) अहिंसक हम लोगो को सेवा करने योग्य आप (**इह**) इस ससार मे (**होता**) देने वाले (**नः**) हम लोगों को (**आ, इहि**) प्राप्त हूजिए (**सु**) अच्छे प्रकार (**नि**) नित्य (**सीद**) ज्ञान दीजिए (**पुरएता**) पहले प्राप्त करनेवाले (**भव**) हूजिए जिस (**त्वा**) आपको (**विश्वमिन्वे**) सब ससार को तृप्त करनेवाले (**रोदसी**) विद्याप्रकाश और भूगोल का राज्य अथवा आकाश और पृथिवी (**अवताम्**) प्राप्त हों सो आप (**महे**) बडे (**सौमनसाय**) मन का वैरभाव छुडाने के लिए (**देवान्**) विद्वान् दिव्य गुणो को स्वात्मा मे (**यज**) सगत कीजिए ॥२॥

भावार्थ—इस प्रकार सत्यभाव से प्राथना किया हुआ परमेश्वर और सेवा किया हुआ धर्मात्मा विद्वान् सब सुख मनुष्यों को देता है ॥२॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्र सु विश्वान्रक्षसो धक्ष्यग्ने भवा यज्ञानामभिशस्तिपावा ।
अथा वह सोमपतिं हरिभ्यामातिथ्यमस्मै चकृमा सुदाव्ने ॥३॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) दुष्टो को शिक्षा करनेवाले सभाध्यक्ष जिस प्रकार आप (**विश्वान्**) सब (**रक्षसः**) दुष्ट मनुष्यो वा दोषों का (**प्र**) अच्छे प्रकार (**धक्षि**) नाश करते हैं इसी कारण (**यज्ञानाम्**) जो जानने योग्य कारीगरी है उन के साधकों की (**अभिशस्तिपावा**) हिंसा से रक्षा करनेवाले (**सु**) अच्छे प्रकार (**भव**) हूजिए जैसे सूर्य (**हरिभ्याम्**) धारण और आकर्षण से सब सुखों को प्राप्त करता है वैसे (**सोमपतिम्**) ऐश्वर्यों के स्वामी को (**आवह**) प्राप्त हूजिए (**अथ**) इसके पीछे (**अस्मै**) इस (**सुदाव्ने**) विद्या, विज्ञान, अच्छी शिक्षा, राज्यादि धनो के देनेवाले आप के लिए हम लोग (**आतिथ्यम्**) सत्कार (**चकृम**) करते है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ईश्वर ने जगत् में प्राणियो के वास्ते सब पदार्थ दिये हैं वैसे जो मनुष्य उत्तम विद्या और शिक्षा देवे उसी का सत्कार करें अन्य का नही ॥ ३ ॥

प्रजावता वचसा वह्निरासा च हुवे नि च सत्सीह देवैः ।
वेषि होत्रमुत पोत्रं यजत्र बोधि प्रयन्तर्जनितर्वसूनाम् ॥४॥

पदार्थ—हे (**यजत्र**) दाता (**वह्निः**) सुखों को प्राप्त करानेवाले तू (**इह**) इस ससार में (**देवैः**) विद्वानो के साथ (**सत्सि**) सभा में (**प्रजावता**) प्रजा की सम्मति के अनुकूल (**वचसा**) वचनो से (**बोधि**) बोध कराता है जिस से (**होत्रम्**) हवन करने योग्य (**च**) और (**पोत्रम्**) पवित्र करनेवाले वस्तुओं को (**उत**) भी (**नि**) निरन्तर (**वेषि**) प्राप्त होता है (**जनितः**) सुखोत्पन्न करने वाले (**प्रयन्तः**) प्रयत्न से तू जैसे (**वसूनाम्**) पृथिव्यादि पदार्थों का जाननेवाला है वैसे मै (**आसा**) मुख से तेरी (**च**) अन्य विद्वानो की भी (**आहुवे**) स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य परमेश्वर और धार्मिक विद्वानों के सहाय और सग से शुद्धि को प्राप्त होकर सब श्रेष्ठ वस्तुओं को प्राप्त हो ॥४॥

यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर्देवाँ अयजः कविभिः कविः सन् ।
एवा होतः सत्यतर त्वमद्याग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व ॥५॥ २४॥

पदार्थ—हे (**सत्यतर**) अतिशय सत्याचारनिष्ठ (**होतः**) सत्यग्रहण करनेहारे दाता (**अग्ने**) विद्वन (**यथा**) जैसे कोई धार्मिक विद्वान् विद्यार्थी (**विप्रस्य**) बुद्धिमान् अध्यापक, विद्वान् (**मनुषः**) मनुष्य के अनुकूल होके सब का सुखदायक होता है वैसे (**एव**) ही (**त्वम्**) तू (**अद्य**) इसी समय (**कविभिः**) पूर्ण विद्यायुक्त बहुदर्शी विद्वानों के साथ (**कविः**) विद्वान् बहुदर्शी (**सन्**) होके जिन (**हविर्भिः**) ग्रहण करने योग्य गुण, कर्म, स्वभावो के साथ (**देवान्**) विद्वान् और दिव्य गुणो को (**अयजः**) प्राप्त होता है उस (**मन्द्रया**) आनन्द करनेहारी (**जुह्वा**) दान क्रिया से हम को (**यजस्व**) प्राप्त हो ॥५॥

भावार्थ—जैसे कोई मनुष्य विद्वानो से सब विद्याओ को प्राप्त सब का उपकारक हो सब प्राणियो को सुख दे सब मनुष्यो को विद्वान् करके आनन्दित होता है वैसे ही आप्त अर्थात् पूर्ण विद्वान् धार्मिक होता है ॥ ५ ॥

इस सूक्त मे ईश्वर और विद्वान्‌के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ।

यह छहत्तरवां सूक्त और चौबीसवां वर्ग पूरा हुआ ।

卐

अथ पञ्चर्चस्य सप्तसप्ततितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता ।
१ निचृत्पङ्क्तिश्छन्द , पञ्चम स्वरः , २ निचृत्त्रिष्टुप्,
३—५ विराट्त्रिष्टुप् छन्द. । धैवत स्वर. ॥

अब सतहत्तरवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है । इसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् कैसा हो यह विषय कहा है ॥

कथा दाशेमाग्नये कास्मै देवजुष्टोच्यते भामिने गीः ।
यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा होता यजिष्ठ इत्कृणोति देवान् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग विद्वानों के साथ होते हैं वैसे (**यः**) जो (**मर्त्येषु**) मरणधर्मयुक्त शरीरादि में (**अमृतः**) मृत्युरहित (**ऋतावा**) सत्य गुण, कर्म, स्वभाव युक्त (**होता**) दाता और ग्रहण करनेहारा (**यजिष्ठः**) अत्यन्त सत्सगी (**देवान्**) दिव्य गुण वा दिव्य पदार्थों वा विद्वानो को (**कृणोति**) करता है (**अस्मै**) इस उपदेशक (**भामिने**) दुष्टो पर क्रोधकारक (**अग्नये**) सत्यासत्य जाननेहारे के लिए (**का**) कौन (**कथा**) किस हेतु से (**देवजुष्टा**) विद्वानो ने सेवन की हुई (**गीः**) वाणी (**उच्यते**) कही है उस (**इत्**) ही को (**दाशेम**) विद्या देवें वैसे तुम भी किया करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान ईश्वर की स्तुति और विद्वानो को सेवन करके दिव्य गुणों को प्राप्त होकर सुखों को प्राप्त होता है वैसे ही हम लोगों को सेवन करना चाहिए ॥ १ ॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है ॥

यो अध्वरेषु शन्तम ऋतावा होता तमू नमोभिरा कृणुध्वम् ।

अग्निर्यद्वेर्मर्ताय देवान्त्स चा बोधाति मनसा यजाति ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! तुम लोग (यः) जो (अग्निः) विज्ञानस्वरूप परमेश्वर वा विद्वान् (अध्वरेषु) सदैव ग्रहण करने योग्य यज्ञो में (शन्तमः) अत्यन्त आनन्द को देनेहारा तथा (ऋतावा) शुभ गुण, कर्म और स्वभाव से सत्य है (होता) सब जगत् और विज्ञान का देनेवाला है तथा (यत्) जो (मर्ताय) मनुष्य के लिए (देवान्) विज्ञान आदि श्रेष्ठ गुणों को (बोधाति) अच्छे प्रकार जाने (च) और (यजाति) संगत करे इसलिए (तम् उ) उसी परमेश्वर वा विद्वान् को (नमोभिः) नमस्कार वा अन्नो से प्रसन्न (आ कृणुध्वम्) करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है । परमेश्वर और धर्मात्मा मनुष्य के बिना मनुष्यो को विद्या का देने वाला दूसरा कोई नहीं है तथा उन दोनों को छोड़ के उपासना तथा सत्कार भी किसी का न करना चाहिए ॥ २ ॥

स हि क्रतुः स मर्यः स साधुर्मित्रो न भूदद्भुतस्य रथीः ।

तं मेधेषु प्रथमं देवयन्तीर्विश उप ब्रुवते दस्ममारीः ॥३॥

पदार्थ—(देवयन्तीः) कामनायुक्त (आरीः) ज्ञानवाली (विशः) प्रजा (मेधेषु) पढ़ने-पढ़ाने और संग्राम आदि यज्ञो मे (तम्) उस (दस्मम्) दुःख नाश करनेवाले को सभाध्यक्ष मानकर (प्रथमम्) सबसे उत्तम (उप ब्रुवते) कहती है कि जो (मित्रः) सबका मित्र (न) जैसा (भूत्) हो (स हि) वही सब प्रकार (क्रतुः) बुद्धि और सुकर्म से युक्त (सः) वही (मर्यः) मनुष्यपन का रखनेवाला और (सः) वही (साधुः) सबका उपकार करने तथा श्रेष्ठ मार्ग मे चलनेवाला विद्वान् (अद्भुतस्य) आश्चर्य कर्मों से युक्त सेना का (रथीः) उत्तम रथवाला रथी होवे ॥३॥

भावार्थ - मनुष्यो को चाहिए कि जो सबसे अधिक गुण कर्म और स्वभाव तथा सबका उपकार करनेवाला सज्जन मनुष्य है उसी को सभाध्यक्ष का अधिकार देके राजा माने अर्थात् किसी एक मनुष्य को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देवें किन्तु शिष्ट पुरुषों की जो सभा है उसके अधीन राज्य के सब काम रक्खें ॥३॥

स नो नृणां नृतमो रिशादा अग्निर्गिरोऽवसा वेतु धीतिम् ।

तना च ये मघवानः शविष्ठा वाजप्रसूता इषयन्त मन्म ॥४॥

पदार्थ— जो (नः) हमारे (नृणाम्) मनुष्यों के बीच (नृतमः) अत्यन्त उत्तम मनुष्य (अग्निः) पावक के तुल्य अधिक ज्ञान प्रकाशवाला (अवसा) रक्षण आदि से (गिरः) वाणी और (धीतिम्) धारणा को चाहता है (सः) वह मनुष्य हमारे बीच में सभाध्यक्ष के अधिकार को (वेतु) प्राप्त हो जो (नृणाम्) मनुष्यो मे (रिशादाः) शत्रुओ को नष्ट करनेहारे (वाजप्रसूताः) विज्ञान आदि गुणों से शोभायमान (शविष्ठाः) अत्यन्त बलवान् (मघवानः) प्रशंसित धनवाले (तना) विस्तृत धनो की और (मन्म) विज्ञान (च) विद्या आदि अच्छे-अच्छे गुणो की (इषयन्त) इच्छा करते हैं, इसी से हमारी सभा में वे लोग सभासद् हों ॥४॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि अत्युत्तम सभाध्यक्ष मनुष्यो के सहित सभा बनाके राज्य व्यवहार की रक्षा से चक्रवर्त्ति राज्य की शिक्षा करें इसके बिना कभी स्थिर राज्य नहीं हो सकता इसलिए पूर्वोक्त कर्म का अनुष्ठान करके एक को राजा नही मानना चाहिए ॥४॥

एवाग्निर्गोतमेभिर्ऋतावा विप्रेभिरस्तोष्ट जातवेदाः ।

स एषु द्युम्नं पीपयत्स वाजं स पुष्टिं याति जोषमा चिकित्वान्

॥ ५ ॥ २५ ॥

पदार्थ—(गोतमेभिः) अत्यन्त स्तुति करनेवाले (विप्रेभिः) बुद्धिमान् लोगों से जो (जातवेदाः) ज्ञान और प्राप्त होनेवाला (ऋतावा) सत्य हैं गुण, कर्म और स्वभाव जिसके (अग्निः) वह ईश्वर स्तुति किया जाता और (अस्तोष्ट) जिसकी विद्वान् स्तुति करता है (एव) वही (एषु) इन धार्मिक विद्वानों मे (चिकित्वान्) ज्ञानवाला (द्युम्नम्) विद्या के प्रकाश को प्राप्त होता है (सः) वह (वाजम्) उत्तम अन्नादि पदार्थों को (पीपयत्) प्राप्त कराता और (सः) वही (जोषम्) प्रसन्नता और (पुष्टिम्) धातुओं की समता को (आ याति) प्राप्त होता है ॥५॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि श्रेष्ठ धर्मात्मा विद्वानों के साथ उनकी सभा में रहकर उनसे विद्या और शिक्षा को प्राप्त होके सुखों का सेवन करें ॥५॥

इस सूक्त में ईश्वर, विद्वान् और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति समझनी चाहिए ।

यह सतहत्तरवां सूक्त और पच्चीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्याष्टसप्ततितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब अठहत्तरवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है इसके प्रथम मन्त्र में उन्हीं विद्वानों के गुणों का उपदेश किया है ।

अभि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विचर्षणे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥१॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) पदार्थों के जाननेवाले (विचर्षणे) सबसे प्रथम देखने योग्य परमेश्वर ! जिस आपकी जैसे (गोतमाः) अत्यन्त स्तुति करनेवाले (द्युम्नैः) धन और विमानादिक गुणों तथा (गिरा) उत्तम वाणियों के साथ (अभि) चारो ओर से स्तुति करते हैं और जैसे हम लोग (अभि, प्रणोनुमः) अत्यन्त नम्र होके (त्वा) आपकी प्रशंसा करते हैं वैसे सब मनुष्य करें ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्यों को चाहिए कि परमेश्वर की उपासना और विद्वानों का सङ्ग करके विद्या का विचार करें ॥१॥

तमु त्वा गोतमो गिरा रायस्कामो दुवस्यति । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे धनपते (रायस्कामः) धन की इच्छा करनेवाला (गोतमः) विद्वान् मनुष्य (गिरा) वाणी से (त्वा) तेरी (दुवस्यति) सेवा करता है वैसे (तम् उ) उसी आपकी (द्युम्नैः) श्रेष्ठ कीर्ति के साथ वर्त्तमान हम लोग (अभि) सब ओर से (प्रणोनुमः) अति प्रशंसा करते हैं ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को ऐसा विचार अपने मन में सदैव रखना चाहिए कि परमेश्वर की उपासना और विद्वान् मनुष्य के सङ्ग के बिना हम लोगों की धन की कामना पूरी कभी नहीं हो सकती ॥२॥

तमु त्वा वाजसातममङ्गिरस्वद्धवामहे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् (द्युम्नैः) पुण्यरूपी कीर्तियो के साथ जिस (वाजसातमम्) अतिप्रशंसित बोधों से युक्त विद्वान् की और (त्वा) आपकी हम लोग (हवामहे) स्तुति करें (उ) अच्छे प्रकार (अङ्गिरस्वत्) प्रशंसित प्राण के समान (अभि) सब ओर से (प्रणोनुमः) सत्कार करते हैं सो तुम (तम्) उसी की स्तुति और प्रणाम किया करो ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग विद्वान् को उक्त प्रकार के सत्कार से सन्तुष्ट करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करो ॥३॥

तमु त्वा वृत्रहन्तमं यो दस्यूँरवधूनुषे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (यः) जो (त्वम्) तू (दस्यून्) महादुष्ट डाकुओं को (अवधूनुषे) कम्पाके नष्ट करता है (तम्) उसी (वृत्रहन्तमम्) मेघ वर्षानेवाले सूर्य के समान (त्वा) तेरी (द्युम्नैः) कीर्त्तिकारी शस्त्रों के सहित हम लोग (अभि) सम्मुख होके (प्रणोनुम) सब प्रकार स्तुति करें ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जिसका कोई शत्रु न हो ऐसा विद्वान् सभाध्यक्ष जो कि दुष्ट शत्रुओं को परास्त कर सके उसकी सदैव सेवा करो ॥४॥

अवोचाम रहूगणा अग्नये मधुमद्वचः । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥५॥२६॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! (रहूगणाः) अधर्मयुक्त पापियो के समूह के त्याग करनेवाले तुम जैसे (द्युम्नैः) उत्तम कीर्ति के साथ वर्तमान (अग्नये) विद्वान् के लिए (मधुमत्) मिष्ट (वचः) वचन बोलते हो वैसे हम भी (अवोचाम) बोला करें । जैसे हम लोग उसको (अभि प्रणोनुमः) नमस्कारादि से प्रसन्न करते है वैसे तुम भी किया करो ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो को अत्यावश्यक है कि धर्मयुक्त कीर्तिवाले मनुष्यो ही की प्रशंसा करें अन्य की नहीं ॥५॥

इस सूक्त में ईश्वर और विद्वानो के गुण कथन से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ।

यह अठहत्तरवां सूक्त और छब्बीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ द्वादशर्चस्य नवसप्ततितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता ।
१ विराट् त्रिष्टुप्; २, ३ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।
४ आर्च्युष्णिक्; ५, ६ निचृदार्च्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ।
७, ८, १०, ११ निचृद्गायत्री, ९, १२
गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब उनासीवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है उसके प्रथम मन्त्र में विद्युत् अग्नि कैसा है इस विषय का उपदेश किया है ।

हिरण्यकेशो रजसो विसारेऽहिर्धुनिर्वात इव ध्रजीमान् ।

शुचिभ्राजा उषसो नवेदा यशस्वतीरपस्युवो न सत्याः ॥१॥

पदार्थ—हे कुमारि ब्रह्मचर्ययुक्त कन्याओ ! (रजसः) ऐश्वर्य के (विसारे) स्थिरता में (हिरण्यकेशः) हिरण्य सुवर्णवत् वा प्रकाशवत् न्याय के प्रचार करने वाले (धुनिः) मनुष्यो को कम्पाने वाले (अहिः) मेघ के समान (ध्रजीमान्)

शीघ्र चलनेवाले (वात इव) वायु के तुल्य (उषसः) प्रातःकाल के समान (शुचिभ्राजाः) पवित्र विद्याविज्ञान से युक्त (मनेवा) अविद्या का निषेध करने वाली विद्यायुक्त (यशस्वती) उत्तम कीर्तियुक्त (अपस्युवः) प्रशस्त कर्म्म करने वाली के (न) समान तुम (सत्या) सत्य गुण, कर्म्म, स्वभाव वाली होओ ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो कन्याएं चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य सेवन और जितेन्द्रिय होकर छः अङ्ग अर्थात् शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष । उपाङ्ग अर्थात् मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त तथा आयुर्वेद अर्थात् वैद्यक विद्या आदि को पढ़ती हैं वे संसारस्थ मनुष्यजाति की शोभा करनेवाली होती हैं ॥१॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

आ ते सुपर्णा अमिनन्तँ एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम् ।

शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात्पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्रा ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जैसे (सुपर्णाः) किरणें (आऽमिनन्त) सब ओर से वर्षा को प्रेरणा करती है (एवैः) प्राप्त होनेवाले गुणों के सहित (कृष्णः) आकर्षण करता (वृषभः) वर्षानेवाला सूर्य (इदम्) जल को वर्षाता है वैसे विद्या की (नोनाव) प्रशंसित वृष्टि करे तथा (स्मयमानाभिः) सदा प्रसन्न वदन (शिवाभिः) शुभ गुणकर्म्मयुक्त कन्याओं के साथ तत्तुल्य ब्रह्मचारियों के विवाह के (न) समान सुख को (यदि) जो (आगात्) प्राप्त हो और जैसे (अभ्रा) मेघ (स्तनयन्ति) गर्जते तथा (मिहः) वर्षा के जल (आपतन्ति) वर्षते हैं वैसे विद्या को वर्षावे तो (ते) तुझ को क्या अप्राप्त हो अर्थात् सब सुख प्राप्त हों ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा और उपमालंकार है । जिन विद्वान् ब्रह्मचारियों की विदुषी ब्रह्मचारिणी स्त्री हों वे पूर्ण सुख को क्यों न प्राप्त हों ॥२॥

यदीमृतस्य पयसा पियानो नयन्नृतस्य पथिभी रजिष्ठैः ।

अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा त्वचं पृञ्चन्त्युपरस्य योनौ ॥३॥

पदार्थ—(यत्) जब (ऋतस्य) उदक के (पयसा) रस को (पियानः) पीनेवाला (रजिष्ठैः) अत्यन्त धूलीयुक्त (पथिभिः) मार्गों से (उपरस्य) मेघ के (योनौ) कारणरूप मण्डल में (ईम्) जल को (नयन्) प्राप्त करता हुआ (अर्यमा) नियन्ता सूर्य (मित्रः) प्राण (वरुणः) उदान और (परिज्मा) सब ओर जाने-आने वाला जीव (ऋतस्य) सत्य के (त्वचम्) त्वचारूप उपरि भाग को (पृञ्चन्ति) सम्बन्ध करते हैं तब सब के जीवन का सम्भव होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जब कार्य्य और कारण में रहनेवाले प्राण और जलादि पदार्थों के साथ जीव सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं तब शरीरों के धारण करने को समर्थ होते हैं ॥ ३ ॥

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।

अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) प्राप्त विज्ञान (अग्ने) विद्युत् के समान विद्या प्रकाशयुक्त विद्वन् (सहसः) बलयुक्त पुरुष के (यहो) पुत्र (गोमतः) धन से युक्त (वाजस्य) अन्न के (ईशानः) स्वामी आप (अस्मे) हम लोगों में (महि) बड़े (श्रवः) विद्याश्रवण को (धेहि) धारण कीजिए ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो मनुष्य विदुषी माता और विद्वान् पिताओं के सन्तान होके माता-पिता और आचार्य्य से विद्या की शिक्षा को प्राप्त होकर बहुत अन्नादि ऐश्वर्य और विद्याओं को प्राप्त हों वे अन्य मनुष्यों में भी यह सब बढ़ावें ॥४॥

स इधानो वसुष्कविरग्निरीळेन्यो गिरा ।

रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (पुर्वणीक) बहुत सेनाओं से युक्त जो तू जैसे ईंधनों से (अग्निः) अग्नि प्रकाशमान होता है वैसे (इधानः) प्रकाशमान (गिरा) वाणी से (ईळेन्यः) स्तुति करने योग्य (वसुः) सुख में बसानेवाला और (कविः) सर्वशास्त्रवित् होता है (सः) सो (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (रेवत्) बहुत धन करने वाला सब विद्या के श्रवण को (दीदिहि) प्रकाशित करे ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । पूर्व मन्त्र से 'श्रवः' इस पद की अनुवृत्ति आती है । जैसे बिजुली, प्रसिद्ध पावक, सूर्य, अग्नि सब मूर्त्तिमान् द्रव्य को प्रकाश करता है वैसे सर्वविद्यावित्पुरुष सब विद्या का प्रकाश करता है ॥ ५ ॥

क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः ।

स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ६ ॥ २७ ॥

पदार्थ—हे (तिग्मजम्भ) तीव्र मुख से बोलनेहारे (अग्ने) विद्वन् ! (राजन्) न्याय, विनय से प्रकाशमान तू (त्मना) अपने आत्मा से जैसे सूर्य (क्षपः) रात्रियों को निवर्त्त करके (सः) वह (वस्तोः) दिन (उत) और (उषसः) प्रभातों का विद्यमान करता है वैसे धार्मिक सज्जनों में विद्या और विनय का प्रकाश (उत) और (रक्षसः) दुष्टाचारियों को (प्रतिदह) प्रत्यक्ष दग्ध कर ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे सविता निकट प्राप्त जगत् को प्रकाशित कर वृष्टि करके सब जगत् की रक्षा और अन्धकार का निवारण करता है वैसे सज्जन राजा लोग धार्मिकों की रक्षाकर दुष्टों के दण्ड से राज्य की रक्षा करें ॥ ६ ॥

फिर वह सभाध्यक्ष कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि । विश्वासु धीषु वन्द्य ॥७॥

पदार्थ—हे (वन्द्य) अभिवादन और प्रशंसा करने योग्य (अग्ने) विज्ञानस्वरूप सभाध्यक्ष आप (ऊतिभिः) रक्षण आदि से (गायत्रस्य) गायत्री के प्रगाथ वा आनन्दकारक व्यवहार का (प्रभर्मणि) अच्छी प्रकार राज्यादि का धारण हो जिसमें उस तथा (विश्वासु) सब (धीषु) बुद्धियों में (नः) हम लोगों की (अव) रक्षा कीजिए ॥७॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिए कि जो सभाध्यक्ष विद्वान् हमारी बुद्धि को शुद्ध करता है उसका सत्कार करें ॥७॥

आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम् । विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥८॥

पदार्थ—हे (अग्ने) दान देने वा दिलानेवाले सभाध्यक्ष आप (नः) हम लोगों के लिए (विश्वासु) सब (पृत्सु) सेनाओं में (सत्रासाहम्) सत्य का सहन करते हैं जिससे उस (वरेण्यम्) अच्छे गुण और स्वभाव होने का हेतु (दुष्टरम्) शत्रुओं के दुःख से तरने योग्य (रयिम्) अच्छे द्रव्यसमूह को (आभर) अच्छी प्रकार धारण कीजिए ॥८॥

भावार्थ—मनुष्यों को सभाध्यक्ष आदि के आश्रय और अग्न्यादि पदार्थों के विज्ञान के बिना सम्पूर्ण सुख प्राप्त कभी नहीं हो सकता ॥ ८ ॥

आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् । मार्डीकं धेहि जीवसे ॥९॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विज्ञान और सुख के देनेवाले विद्वन् ! आप (नः) हमारे (जीवसे) जीवन के लिए (सुचेतुना) अच्छे विज्ञान से युक्त (विश्वायुपोषसम्) सम्पूर्ण अवस्था में पुष्टि करने (मार्डीकम्) सुखों के सिद्ध करनेवाले (रयिम्) धन को (आधेहि) सब प्रकार धारण कीजिए ॥९॥

भावार्थ—मनुष्यों को अच्छी प्रकार सेवा किया हुआ विद्वान् विज्ञान और धन को देके पूर्ण आयु भोगने के लिए विद्या धन को देता है ॥९॥

फिर भी अगले मन्त्रों में विद्वान् कैसा हो इस विषय का उपदेश किया है—

प्र पूतास्तिग्मशोचिषे वाचो गोतमाग्नये । भरस्व सुम्नयुर्गिरः ॥१०॥

पदार्थ—हे (गोतम) अत्यन्त स्तुति और (सुम्नयुः) सुख की इच्छा करने वाले विद्वन् ! तू (तिग्मशोचिषे) तीक्ष्ण बुद्धि प्रकाशवाले (अग्नये) विज्ञानरूप और विज्ञानवाले विद्वान् के लिए (पूताः) पवित्र करनेवाली (गिरः) विद्या की शिक्षा और उपदेश से युक्त वाणियों को धारण करते हैं उन (वाचः) वाणियों को (प्रभरस्व) सब प्रकार धारण कर ॥१०॥

भावार्थ—जिस कारण परमेश्वर और परमविद्वान् के बिना कोई दूसरा सत्यविद्या के प्रकाश करने को समर्थ नहीं होता इसलिए ईश्वर की सदा सेवा करनी चाहिए ॥१०॥

यो नो अग्नेऽभिदासत्यन्ति दूरे पदीष्ट सः । अस्माकमिद्वृधे भव ॥११॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विज्ञान देनेवाले (यः) जो विद्वान् आप (अन्ति) समीप और (दूरे) दूर (नः) हमारे लिए (अभिदासति) अभीष्ट वस्तुओं को देते और (पदीष्ट) प्राप्त होते हो (सः) सो आप (अस्माकम्) हमारी (इत्) ही (वृधे) वृद्धि करनेवाले (भव) हूजिए ॥११॥

भावार्थ—मनुष्यों को उस ईश्वर की सेवा अवश्य क्यों नहीं करनी चाहिए जो बाहर-भीतर सर्वत्र व्यापक होके ज्ञान देता है तथा जो विद्वान् दूर वा समीप स्थित होके सत्य उपदेश से विद्या देता है ॥११॥

सहस्राक्षो विचर्षणिरग्नी रक्षांसि सेधति । होता गृणीत उक्थ्यः ॥१२॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (उक्थ्यः) स्तुति करने योग्य (सहस्राक्षः) असंख्य नेत्रों की सामर्थ्य से युक्त (विचर्षणिः) साक्षात् देखनेवाला (होता) अच्छे-अच्छे विद्या आदि पदार्थों को देनेवाला (अग्निः) परमेश्वर (रक्षांसि) दुष्टकर्म वा दुष्टकर्मवाले प्राणियों को (सेधति) दूर और वेदों का (गृणीते) उपदेश करता है वैसे तू हो ॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । परमेश्वर वा विद्वान् जिन कर्मों के करने की आज्ञा देवे उनको करो और जिनका निषेध करें उनको छोड़ दो ॥१२॥

इस सूक्त में अग्नि ईश्वर और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इसके अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति समझनी चाहिए ॥

यह उनासीवां सूक्त और अठ्ठाईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षोडशर्चस्याशीतितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषिः। इन्द्रो देवता।
१,११ निचृदास्तारपङ्क्तिः; ५,६,९,१०,१३,१४
विराट्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। २-४,७,१२,
१५ भुरिग्बृहती। ८,१६ बृहतीछन्दः।
मध्यमः स्वरः॥

अब अस्सीवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है। इसके प्रथम मन्त्र में सभापति आदि का वर्णन किया है—

इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम्।

शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम्॥१॥

पदार्थ—हे (शविष्ठ) बलयुक्त (वज्रिन्) शस्त्रास्त्रविद्या से सम्पन्न सभापति जैसे सूर्य (अहिम्) मेघ को वैसे (ब्रह्मा) चारों वेद के जाननेवाला (ओजसा) अपने पराक्रम से (पृथिव्याः) विस्तृत भूमि के मध्य (मदे) आनन्द और (सोमे) ऐश्वर्य की प्राप्ति करानेवाले में (स्वराज्यम्) अपने राज्य की (अन्वर्चन्) अनुकूलता से सत्कार करता हुआ (इत्था) इस हेतु से (वर्धनम्) बढ़ती को (चकार) करे वैसे ही तू सब अन्यायाचरणों को (इत् हि) ही (निःशशाः) दूर कर दे॥१॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि चक्रवर्तिराज्य की सामग्री इकट्ठी कर और उसकी रक्षा करके विद्या और सुख की निरन्तर वृद्धि करें॥१॥

फिर वह सभाध्यक्ष आदि कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

स त्वामदद्वृषा मदः सोमः श्येनाभृतः सुतः।

येना वृत्रं निरद्भ्यो जघन्थ वज्रिन्नोजसार्चन्ननु स्वराज्यम्॥२॥

पदार्थ—हे (वज्रिन्) शस्त्र और अस्त्रों की विद्या को धारण करनेवाले और सभाध्यक्ष (येन) जिस न्याय वर्षाने और मद करनेवाले जो कि बाज पक्षी के समान धारण किया जावे उस उत्पादन किये हुए पदार्थों के समूह से तू (ओजसा) पराक्रम से (स्वराज्यम्) अपने राज्य को (अन्वर्चन्) शिक्षानुकूल किये हुए जैसे सूर्य (अद्भ्यः) जलों से अलग कर (वृत्रम्) जल को स्वीकार अर्थात् पत्थर सा कठिन करते हुए मेघ को निरन्तर छिन्न-भिन्न करता है वैसे प्रजा से अलग कर प्रजा सुख को स्वीकार करते हुए शत्रु को (निर्जघन्थ) छिन्न-भिन्न करते हो (सः) वह (वृषा, मदः, श्येनाभृत, सुतः) उक्त गुणवाला (सोमः) पदार्थों का समूह (त्वा) तुझ को (अमदत्) आनन्दित करावे॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि जिन पदार्थ और कामों से प्रजा प्रसन्न हो उनसे प्रजा की उन्नति करें और शत्रुओं की निवृत्ति करके धर्मयुक्त राज्य की नित्य प्रशंसा करें॥२॥

प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते।

इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम्॥३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परम सुखकारक जैसे सूर्य का (वज्र) किरणसमूह (वृत्रम्) मेघ को (हनः) मारता और (अपः) जलों को (नियंसते) नियम में रखता है वैसे जो (ते) आपके शत्रु हैं उन शत्रुओं का हनन करके (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) सत्कार करता हुआ (हि) निश्चय करके (नृम्णम्) धन को (प्रेहि) प्राप्त हो (शवः) बल को (अभीहि) चारों ओर से बढ़ा शरीर और आत्मा के बल से (धृष्णुहि) दृढ़ हो तथा (जयाः) जीत को प्राप्त हो इस प्रकार करते हुए (ते) आपका पराजय (न) होगा॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजपुरुष सूर्यप्रकाश के तुल्य प्रसिद्ध कीर्त्ति वाले हैं वे राज्य के ऐश्वर्य के भोगनेहारे होते हैं॥३॥

निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जघन्थ निर्दिवः।

सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम्॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य के देनेहारे! तू जैसे सूर्य (वृत्रम्) मेघ का ताड़नकर (भूम्याः) पृथिवी के (अधि) ऊपर (इमाः) ये (जीवधन्याः) जीवों में अन्नादि की सिद्धि में हितकारक (मरुत्वतीः) मनुष्यादि प्रजा के व्यवहारों को सिद्ध करनेवाले (अपः) जलों को (निर्जघन्थ) नित्य पृथिवी में पहुँचाता है और (दिवः) प्रकाशों को प्रकट करता है वैसे अधर्मियों को दण्ड दे धर्माचरण का प्रकाश कर (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) यथायोग्य सत्कार करता हुआ प्रजाशासन किया कर और नाना प्रकार के सुखों को (निरवसृज) निरन्तर सिद्ध कर॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राज्य करने की इच्छा करे वह विद्या, धर्म और विशेषनीति का प्रचार करके आप धर्मात्मा होकर सब प्रजाओं में पिता के समान वर्त्ते॥४॥

फिर उस सभाध्यक्ष के कर्त्तव्य कर्मों का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण हीळितः।

अभिक्रम्याव जिघ्नतेऽपः सर्माय चोदयन्नर्चन्ननु स्वराज्यम्॥५॥२९॥

पदार्थ—हे विद्वन्! जैसे (इन्द्रः) सूर्य्य (वज्रेण) किरणों से (वृत्रस्य) मेघ के (अपः) जलों को (अभिक्रम्य) आक्रमण करके (सानुम्) मेघ के शिखरों को छेदन करता है वैसे (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) सत्कार करता हुआ राजा (जिघ्नते) हनन करनेवाले (सर्माय) प्राप्त हुए शत्रु के पराजय के लिए अपनी सेनाओं को (चोदयन्) प्रेरणा करता हुआ (दोधतः) क्रुद्ध शत्रु के बल के आक्रमण से सेना को छिन्न-भिन्न करके (हीळितः) प्रजाओं से अनादर को प्राप्त होता हुआ शत्रु पर क्रोध को (अव) कर॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सूर्य के समान अविद्या अन्धकार को छुड़ा विद्या का प्रकाश कर दुष्टों को दण्ड और धर्मात्माओं का सत्कार करते हैं वे विद्वानों में सत्कार को प्राप्त होते हैं॥५॥

अधि सानौ नि जिघ्नते वज्रेण शतपर्वणा।

मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुमिच्छत्यर्चन्ननु स्वराज्यम्॥६॥

पदार्थ—हे राजन् जैसे (इन्द्रः) विद्युत् अग्नि (शतपर्वणा) असंख्यात अच्छे-अच्छे कर्मों से युक्त (वज्रेण) अपने किरणों से मेघ के (सानावधि) अवयवों पर प्रहार करता हुआ (निजिघ्नते) प्रकाश को रोकनेवाले मेघ के लिए सदैव प्रतिकूल रहता है वैसे ही जो आप (गातुम्) उत्तम रीति से शिक्षायुक्त वाणी की (इच्छति) इच्छा करते हैं सो (सखिभ्यः) मित्रों के लिए (मन्दान) आनन्द बढ़ाते हुए और (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) सत्कार करते हुए (अन्धसः) अन्न के दाता हों॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सब जगत् का उपकार करनेवाला सूर्य्य है वैसे ही सभाध्यक्ष आदि को भी होना चाहिए॥६॥

इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन्वीर्यम्।

यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम्॥७॥

पदार्थ—हे (अद्रिवः) मेघ शिखरवत् पर्वतादि युक्त स्वराज्य से सुभूषित (वज्रिन्) अत्युत्तम शस्त्रास्त्रों से युक्त (इन्द्र) सभेश! (यत्) जिससे (त्वम्) उस (मायिनम्) कपटी (मृगम्) मृग के तुल्य पदार्थ भोगने वाले को (मायया) बुद्धि से (ह) निश्चय करके (अवधीः) हनन करता है (त्यम्) सूर्य्य के समान (अनुत्तम्) स्वाधीन पुरुषार्थ से ग्रहण किये हुए (वीर्यम्) पराक्रम को ग्रहण करके (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) सत्कार करता हुआ (तमु) उसी दुष्ट को दण्ड देता है उस (तुभ्यमित्) तेरे ही लिए उत्तम-उत्तम धन हम लोग देवें॥७॥

भावार्थ—जो प्रजा की रक्षा के लिए सूर्य के समान शरीर और आत्मा तथा न्यायविद्याओं का प्रकाश करके कपटियों को दण्ड देते हैं वे राज्य के बढ़ाने और करों को प्राप्त होने में समर्थ होते हैं॥७॥

फिर भी अगले मन्त्र में पूर्वोक्त सभाध्यक्ष और सूर्य के गुणों का वर्णन किया है—

वि ते वज्रासो अस्थिरन्नवतिं नाव्या३ अनु।

महत्त इन्द्र वीर्यं बाह्वोस्ते बलं हितमर्चन्ननु स्वराज्यम्॥८॥

पदार्थ—हे (इन्द्र)! जो (ते) तेरे (वज्रासः) शस्त्रास्त्रयुक्त दृढ़तर सेना (नवतिम्) नब्बे (नाव्याः) तारनेवाली नौकाओं को (अनुव्यस्थिरन्) अनुकूलता से व्यवस्थित करते हैं और जो (ते) तेरे (बाह्वोः) भुजाओं में (महत्) बड़ा (वीर्यम्) पराक्रम और (ते) तेरे भुजाओं में (बलम्) बल (हितम्) स्थित है उससे (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) यथावत् सत्कार करता हुआ राज्यलक्ष्मी को तू प्राप्त हो॥८॥

भावार्थ—जो विद्वान् राज्य के बढ़ाने की इच्छा करें वे बड़े अग्नियन्त्र से चलाने योग्य नौकाओं को बनाकर द्वीपान्तरों में जा-आके, व्यवहार से धन आदि के लाभों को बढ़ाके अपने राज्य को धन-धान्य से सुभूषित करें॥८॥

फिर राजपुरुषों को क्या करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सहस्रं साकमर्चत परि ष्टोभत विंशतिः।

शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम्॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! तुम लोग जो सभाध्यक्ष (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) सत्कार करता हुआ वर्त्तमान होता है (एनम्) उसका आश्रय करके उस अपने राज्य को सब प्रकार से अधर्माचरण से (परिष्टोभत) रोको (साकम्) परस्पर मिलके (सहस्रम्) असंख्यात गुणों से युक्त पुरुषों से सहित (अर्चत) सत्कार करो। जिसको (विंशतिः) बीस (शता) सैकड़े (अनु) अनुकूलता से (अनोनवुः) स्तुति करो जो (उद्यतम्) प्रसिद्ध (ब्रह्म) वेद वा अन्न को (अर्चन्) सत्कार करता हुआ वर्त्तता है उस (इन्द्राय) अधिक सम्पत् वाले सभाध्यक्ष के लिए अनुकूल होके स्तुति करो॥९॥

भावार्थ—मनुष्यों को विरोध के बिना छोड़े परस्पर सुख कभी नहीं होता। मनुष्यों को उचित है कि विद्या तथा उत्तम सुख से रहित और निन्दित मनुष्य को सभाध्यक्ष आदि का अधिकार कभी न देवें॥९॥

फिर भी पूर्वोक्त सभाध्यक्ष के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इन्द्रो वृत्रस्य तविषीं निरहन्त्सहसा सहः।

महत्तदस्य पौंस्यं वृत्रं जघन्वाँ असृजदर्चन्ननु स्वराज्यम्॥१०॥

पदार्थ—जो (इन्द्रः) सभाध्यक्ष विद्युद्रूप सूर्य (वृत्रम्) मेघ को नष्ट करने के समान शत्रु को (जघन्वान्) मारता हुआ निरन्तर हनन करता है तथा जो (सहसा) बल से सूर्य जैसे (वृत्रस्य) मेघ के बल को वैसे शत्रु के (तविषीम्)

बल को (निरहन्) निरन्तर हनन करता और (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) सत्कार करता हुआ सुख को (असृजत्) उत्पन्न करता है (तत्) वही (अस्य) इसका (महत्) बड़ा (पौंस्यम्) पुरुषार्थरूप बल के (सहः) सहन का हेतु है ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य अत्यन्त बल और तेज से सब का आकर्षण और प्रकाश करता है वैसे सभाध्यक्ष आदि को भी उचित है कि अपने अत्यन्त बल से शुभ गुणों के आकर्षण और न्याय के प्रकाश से राज्य की शिक्षा करें ॥ १० ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इमे चित्तव मन्यवे वेपेते भियसा मही ।

यदिन्द्र वज्रिन्नोजसा वृत्रं मरुत्वाँ अवधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥११॥

पदार्थ—हे (वज्रिन्) शस्त्रविद्या को ठीक-ठीक जाननेवाले (इन्द्र) सभाध्यक्ष राजन् (यत्) जिस (तव) आपके (ओजसा) सेना के बल से जैसे सूर्य्य के आकर्षण और ताडन से (इमे) ये (मही) लोक (वेपेते) कम्पते हैं उनके समान जो आप (भियसा) भयबल से (मन्यवे) क्रोध की शान्ति के लिए शत्रुलोग (अनु) अनुकूल होके कम्पते रहते हैं जैसे (मरुत्वान्) बहुत वायु से युक्त सूर्य (वृत्रम्) मेघ को मारता है वैसे ही (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अर्चन्) सत्कार करता हुआ (चित्) और शत्रु को (अवधीः) मारा कर ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे सभाप्रबन्ध के होने से सुखपूर्वक प्रजा के मनुष्य अच्छे मार्ग मे चलते-चलाते हैं वैसे ही सूर्य के आकर्षण से सब भूगोल इधर-उधर चलते-फिरते हैं । जैसे सूर्य मेघ को वर्षा के सब प्रजा का पालन करता है वैसे सभा और सभापति आदि को भी चाहिए कि शत्रु और अन्याय का नाश करके विद्या और न्याय के प्रचार से प्रजा का पालन करें ॥ ११ ॥

फिर भी सभाध्यक्ष कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

न वेपसा न तन्यतेन्द्रं वृत्रो वि बीभयत् ।

अभ्येनं वज्र आयसः सहस्रभृष्टिरायतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१२॥

पदार्थ—हे सभापते ! (स्वराज्यमन्वर्चन्) अपने राज्य का सत्कार करता हुआ तू जैसे (वृत्र) मेघ (वेपसा) वेग से (इन्द्रम्) सूर्य्य को (न विबीभयत्) भय प्राप्त नही करा सकता और उस मेघ से प्रकाश की हुई (तन्यता) बिजुली से भी भय को (न) नहीं दे सकता (एनम्) इस मेघ के ऊपर सूर्यप्रेरित (सहस्रभृष्टिः) सहस्र प्रकार के दाह से युक्त (आयसः) लोहे के शस्त्र वा आग्नेयास्त्र के तुल्य (वज्रः) वज्ररूप किरण (अभ्यायत) चारो ओर से प्राप्त होता है वैसे शत्रुओं पर आप हूजिए ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालंकार है । जैसे मेघ आदि सूर्य्य को नही जीत सकते वैसे ही शत्रु भी धर्मात्मा, सभा और सभापति का तिरस्कार कभी नही कर सकते ॥ १२ ॥

फिर भी अगले मन्त्र में सभाध्यक्ष के गुणों का उपदेश किया है—

यद् वृत्रं तव चाशनिं वज्रेण समयोधयः ।

अहिमिन्द्र जिघांसतो दिवि ते बद्बधे शवोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य्ययुक्त सभेश ! (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन) सत्कार करता हुआ तू (यत्) जैसे (दिवि) आकाश मे सूर्य्य (अशनिम्) बिजुली का प्रहार करके (वृत्रम्) कुटिल (अहिम्) मेघ का (बद्बधे) हनन करता है वैसे (वज्रेण) शस्त्रास्त्रों के सहित अपनी सेनाओं का शत्रुओं के साथ (समयोधयः) अच्छे प्रकार युद्ध करा शत्रुओं को (जिघांसतः) मारने वाले (तव) आपके (शवः) बल अर्थात् सेना का विजय हो इस प्रकार वर्त्तमान करनेहारे (ते) आपका (च) यश बढ़ेगा ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे सूर्य्य अपने बहुत-से किरणों से बिजुली और मेघ का परस्पर युद्ध कराता है वैसे ही सेनपति आग्नेयादि अस्त्रयुक्त सेना का शत्रु-सेना के साथ युद्ध करावे । इस प्रकार के सेनापति का कभी पराजय नहीं हो सकता ॥ १३ ॥

फिर इस सभाध्यक्ष को क्या करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अभिष्टने ते अद्रिवो यत् स्था जगच्च रेजते ।

त्वष्टा चित्तव मन्यव इन्द्र वेविज्यते भियार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१४॥

पदार्थ—हे (अद्रिवः) बहुमेघयुक्त सूर्य्य के समान (इन्द्र) परमैश्वर्य्ययुक्त सभाध्यक्ष ! (यत्) जब (ते) आपके (अभिष्टने) सर्वथा उत्तम न्याययुक्त व्यवहार मे (स्थाः) स्थावर (जगच्च) और जङ्गम (रेजते) कम्पायमान होता है तथा जो (त्वष्टा) शत्रुच्छेदक सेनापति है (तव) उसके (मन्यवे) क्रोध के लिए (भियाचित्) भय से भी (वेविज्यते) उद्विग्न होता है तब आप (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) सत्कार करते हुए सुखी हो सकते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ - इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । मनुष्यो को चाहिए कि जैसे सूर्य के योग से प्राणधारी अपने-अपने कर्म मे वर्त्तते और सब भूगोल अपनी अपनी कक्षा मे यथावत् भ्रमण करते हैं वैसे ही सभा से प्रशासन किये राज्य के संयोग से सब मनुष्यादि प्राणी धर्म के साथ अपने-अपने व्यवहार मे वर्त्तके सन्मार्ग की अनुकूलता से गमनागमन करते है ॥ १४ ॥

अब ईश्वर और महाविद्वान् को प्राप्त होकर विद्वान् लोग क्या-क्या करें.
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नहि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः ।

तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं देवा ओजांसि सं दधुरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१५॥

पदार्थ—जो (परः) उत्तमगुणयुक्त राजा (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) अनुकूलता से सत्कार करता हुआ वर्त्तता है, जिस राज्य मे (देवाः) दिव्यगुणयुक्त विद्वान् लोग (नृम्णम्) धन को (क्रतुम्) और बुद्धि वा पुरुषार्थ को (उत) और भी (ओजांसि) शरीर, आत्मा और मन के पराक्रमों को (सन्दधुः) धारण करते है तथा जिस परमेश्वर को प्राप्त होकर हम लोग (वीर्या) विद्या आदि वीर्यों को (अधीमसि) प्राप्त होवें उस (इन्द्रम्) अनन्तपराक्रमी जगदीश्वर वा पूर्ण वीर्य्ययुक्त राजा को प्राप्त होकर (कः) कौन मनुष्य धन को (नु) शीघ्र (नहि यात्) प्राप्त हो उस राज्य मे कौन पुरुष धन को तथा बुद्धि वा बलों को शीघ्र नहीं धारण करता ॥ १५ ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य परमेश्वर वा महाविद्वान् की प्राप्ति के विना उत्तम विद्या और श्रेष्ठ सामर्थ्य को नही प्राप्त हो सकता इस हेतु से इनका सदा आश्रय करना चाहिए ॥ १५ ॥

फिर मनुष्य उनको प्राप्त होकर किसको प्राप्त होते हैं इस विषय को कहा है—

यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत ।

तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१६॥३१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे (स्वराज्यम्) अपने राज्य की उन्नति से सब का (अन्वर्चन्) सत्कार करता हुआ (दध्यङ्) उत्तम गुणो को प्राप्त होने वाला (अथर्वा) हिंसा आदि दोषरहित (पिता) वेद का प्रवक्ता अध्यापक वा (मनुः) विज्ञानवाला मनुष्य ये (याम्) जिस (धियम्) शुभ विद्या आदि गुण क्रिया के धारण करनेवाली बुद्धि को प्राप्त होकर जिस व्यवहार में सुखों को (अत्नत) विस्तार करते हैं वैसे इस को प्राप्त होकर (तस्मिन्) उस व्यवहार में सुखों का विस्तार करो और जिस (इन्द्रे) अच्छे प्रकार सेवित परमेश्वर में (पूर्वथा) पूर्व पुरुषो के तुल्य (ब्रह्माणि) उत्तम अन्न धन (उक्था) कहने योग्य वचन प्राप्त होते हैं (तस्मिन्) उसको सेवित कर तुम भी उनको (समग्मत) प्राप्त होओ ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । मनुष्य परमेश्वर की उपासना करनेवाले विद्वानो के सग प्रीति के सदृश कर्म करके सुन्दर बुद्धि, उत्तम अन्न, धन और वेदविद्या से सुशिक्षित संभाषणों को प्राप्त होकर उनको सब मनुष्यों के लिए देना चाहिए ॥ १६ ॥

इस सूक्त मे सभा आदि अध्यक्ष, सूर्य, विद्वान् और ईश्वर शब्दार्थ का वर्णन करने से पूर्व सूक्त के साथ इस सूक्त के अर्थ की सगति जाननी चाहिए ॥

यह अस्सीवां सूक्त और इकतीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

इस अध्याय मे इन्द्र, मरुत्, अग्नि, सभा आदि के अध्यक्ष और अपने राज्य का पालन आदि का वर्णन करने से चतुर्थ अध्याय के साथ पञ्चम अध्याय के अर्थ की संगति जाननी चाहिए ॥

इति श्रीमत्परिव्राजकाचार्य श्रीयुतविरजानन्दसरस्वतीस्वामीजी के शिष्य श्रीमद्दयानन्द-सरस्वतीस्वामी ने आर्यभाषा से सुभूषित ऋग्वेदभाष्य में पञ्चम अध्याय पूरा किया ॥

卐

अथ प्रथमाष्टके षष्ठाध्यायारम्यते ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥

अथ नवर्चस्यैकाशीतितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ७, ८ विराट् पङ्क्तिः; ३—६, ९ निचृदास्तारपङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ भुरिग् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब इसके मन्त्र में सभाध्यक्ष के गुणों का उपदेश किया है—

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥१॥

पदार्थ—हम लोग जो (वृत्रहा) सूर्य्य के समान (इन्द्रः) सेनापति (नृभिः) शूरवीर नायकों के साथ (शवसे) बल और (मदाय) आनन्द के लिए (वावृधे) बढ़ता है जिस को (महत्सु) बड़े (आजिषु) संग्रामों (उत) और (अर्भे) छोटे संग्रामों में (हवामहे) बुलाते और (तमित्) उसी को (ईम्) सब प्रकार से सेनाध्यक्ष करते हैं (सः) वह (वाजेषु) संग्रामों में (नः) हम लोगों की (प्राविषत्) अच्छे प्रकार रक्षा करें ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जो पूर्ण विद्वान्, अति बलिष्ठ, धार्मिक सब का हित चाहनेवाला, शस्त्रास्त्र क्रिया और शिक्षा में अतिचतुर भृत्य और वीर पुरुष योद्धाओं में पिता के समान देशकाल के अनुकूलता से युद्ध करने के लिए समय के अनुकूल व्यवहार जाननेवाला हो उसी को सेनापति करना चाहिए अन्य को नहीं ॥ १ ॥

फिर वह कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः ।
असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥२॥

पदार्थ—हे वीर सेनापते ! जो तू (हि) निश्चय करके (भूरि) बहुत (सेन्यः) सेनायुक्त (असि) है (भूरि) बहुत प्रकार से (पराददिः) शत्रुओं के बल को नष्टकर ग्रहण करनेवाला है (दभ्रस्य) छोटे (चित्) और (महतः) बड़े युद्ध का जीतनेवाला (असि) है (वृधः) बल से बढ़नेवाले वीरों को (शिक्षसि) शिक्षा करता है उस (सुन्वते) विजय की प्राप्ति करनेहारे (यजमानाय) सुखदाता के (ते) तेरे लिए (भूरि) बहुत (वसु) धन प्राप्त हो ॥ २ ॥

भावार्थ— जैसे सेनापतियों से सेना शिक्षित, पाली और सुखी की जाती है वैसे सेनास्थ भृत्यों से सेनापतियों का पालन और उसको आनन्दित करना योग्य है ॥ २ ॥

फिर इनको परस्पर कैसे वर्त्ताव रखना चाहिए सो कहा है—

यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सेना के स्वामी ! (यत्) जब (आजयः) संग्राम (उदीरते) उत्कृष्टता से प्राप्त हों तब (धृष्णवे) दृढ़ता के लिए (धना) धनों को (धीयते) धरता है सो तू (मदच्युता) बड़े बलिष्ठ (हरी) घोड़ों को रथादि में (युक्ष्व) युक्त कर (कं) किसी शत्रु को (हनः) मार (कं) किसी मित्र को (वसौ) धन कोष में (दधः) धारण कर और (अस्मान्) हमको (वसौ) धन में (दधः) अधिकारी कर ॥ ३ ॥

भावार्थ— जब युद्ध करना हो तब सेनापति लोग सवारी शतघ्नी (तोप) भुशुण्डी (बन्दूक) आदि शस्त्र, आग्नेय आदि अस्त्र और भोजन आच्छादन आदि सामग्री को पूर्ण करके किन्हीं शत्रुओं को मार, किन्हीं मित्रों का सत्कार कर युद्धादि कर्मों से धर्मात्मा जनों को संयुक्तकर युक्ति से युद्ध कराके सदा विजय को प्राप्त हों ॥ ३ ॥

फिर सेनापति क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृधे शवः ।
श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवान्दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥४॥

पदार्थ—जो (हरिवान्) बहुत उत्तम अश्वों से युक्त (शिप्री) शत्रुओं को रुलाने (भीमः) और भय देनेवाला (महान्) बड़ा (ऋष्वः) प्राप्त विद्या सेनापति (शवः) बल (श्रिये) शोभा और लक्ष्मी के अर्थ (उपाकयोः) समीप में प्राप्त हुई अपनी और शत्रुओं की सेना के समीप (हस्तयोः) हाथों में (आयसम्) लोहे आदि से बनाये हुए (वज्रम्) शस्त्रसमूह को धारण करके शत्रुओं को जीतता है वही राज्याधिकारी होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो बुद्धिमान् बड़े-बड़े उत्तम गुणों से युक्त शत्रुओं को भयकर्त्ता, सेनाओं का शिक्षक, अत्यन्त युद्ध करनेहारा पुरुष है उसको सेनापति करके धर्म से राज्य के पालन की न्यायव्यवस्था करनी चाहिए ॥४॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

आ पप्रौ पार्थिवं रजो बद्बधे रोचना दिवि ।
न त्वावाँ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यतेऽति विश्वं ववक्षिथ ॥५॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य्ययुक्त ईश्वर ! जिससे (कश्चन) कोई भी (त्वावान्) तेरे सदृश (न जातः) न हुआ (न जनिष्यते) न होगा और तू (विश्वम्) जगत् को (ववक्षिथ) यथायोग्य नियम से प्राप्त करता है और जो (पार्थिवम्) पृथिवी और आकाश में वर्त्तमान (रजः) परमाणु और लोक में (आपप्रौ) सब ओर से व्याप्त हो रहा है (दिवि) प्रकाशरूप सूर्यादि जगत् में (रोचना) प्रकाशमान भूगोलों को (अतिबद्बधे) एक-दूसरे वस्तु के धर्षण से बद्ध करता है वह सबका उपास्य देव है ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग जिसने सब जगत् को रचके व्याप्त कर रक्षित किया है जो जन्म और उपमा से रहित, जिसके तुल्य कुछ भी वस्तु नहीं है तो उस परमेश्वर से अधिक कुछ कैसे होवे । इसकी उपासना को छोड़के अन्य किसी पृथक् वस्तु का ग्रहण वा गणना मत करो ॥ ५ ॥

फिर वह परमात्मा कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यो अर्यो मर्त्तभोजनं पराददाति दाशुषे ।
इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु वि भजा भूरि ते वसु भक्षीय तव राधसः ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (यः) जो (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य का देनेहारा (अर्यः) ईश्वर (ते) तुझ (दाशुषे) दाता और (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (भूरि) बहुत (वसु) धन को (मर्त्तभोजनम्) वा मनुष्यों के भोजनार्थ पदार्थ को (पराददाति) देता है उस ईश्वर निर्मित पदार्थों को आप हमको सदा (शिक्षतु) शिक्षा करो और (तव) आपके (राधसः) शिक्षित कार्यरूप धन का मैं (भक्षीय) सेवन करूँ ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो ईश्वर इस जगत् को रच, धारण कर जीवों को न देता तो किसी को कुछ भी भोग-सामग्री प्राप्त न हो सकती । जो यह परमात्मा वेद द्वारा मनुष्यों को शिक्षा न करता तो किसी को विद्या का लेश भी प्राप्त न होता इससे विद्वान् को योग्य है कि सबके सुख के लिए विद्या का विस्तार करना चाहिए ॥६॥

फिर वह ईश्वर का उपासक कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
सं गृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (ऋजुक्रतुः) सरल ज्ञान और कर्मयुक्त (ददिः) दाता आप ईश्वर की आज्ञापालन और उपासना से (मदेमदे) आनन्द-आनन्द में (हि) निश्चय से (नः) हमारे लिए (उभयाहस्त्या) दोनों हाथों की क्रिया में उत्तम (पुरु) बहुत (शता) सैकड़ों (वसु) द्रव्यों का (शिशीहि) प्रबन्ध कीजिए (गवाम्) किरण इन्द्रियाँ और पशुओं के (यूथा) समूहों को (आभर) चारों ओर से धारण कर (रायः) धनों को (संगृभाय) सम्यक् ग्रहण कर ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सब आनन्दों का देनेवाला, सब साधन, साध्य रूप पदार्थों का उत्पादक सब धनों को देता है वही ईश्वर हमारा उपास्य है अन्य नहीं ॥ ७ ॥

फिर वह सभापति कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव ॥८॥

पदार्थ—हे (शूर) दुष्ट दोष और शत्रुओं का निवारण करनेहारे हम (सुते) इस उत्पन्न जगत् में (पुरूवसुम्) बहुतों को बसानेवाले (त्वा) आपका (उप) आश्रय करके (अथ) पश्चात् (कामान्) अपनी कामनाओं को (ससृज्महे) सिद्ध करते हैं (हि) निश्चय करके (विद्म) जानते भी हैं तू (नः) हमारा (अविता) रक्षक (भव) हो और इस जगत् में (सचा) संयुक्त (शवसे) बलकारक (राधसे) धन के लिए (मादयस्व) आनन्द कराया कर ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को सेनापति के आश्रय के विना शत्रु का विजय, काम की सिद्धि अपना रक्षण, उत्तम धन, बल और परम सुख प्राप्त नहीं हो सकता ॥८॥

अब ईश्वर कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ॥९॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! जिस (ते) तेरी सृष्टि में जो (एते) ये (जन्तवः) जीव (वार्यम्) स्वीकार के योग्य (विश्वम्) जगत् को (पुष्यन्ति) पुष्ट करते हैं (तेषाम्) उन (जनानाम्) मनुष्य आदि प्राणियों के (अन्तः) मध्य में वर्त्तमान (अदाशुषाम्) दानादि कर्मरहित मनुष्यों के

(अर्य:) ईश्वर तू (वेद) जिससे सुख प्राप्त होता है उसको (हि) निश्चय करके (अव) उपदेश करता है वह तू (न:) हमारे लिए (वेद:) विज्ञान रूप धन का (प्रभार) दान कर ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो ईश्वर बाहर-भीतर, सर्वत्र व्याप्त होकर सब भीतर-बाहर के व्यवहारों को जानता, सत्य उपदेश और सब जीवों के हित की इच्छा करता है उसका आश्रय लेकर परमार्थ और व्यवहार सिद्ध करके सुखों को तुम प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

इस सूक्त में सेनापति ईश्वर और सभाध्यक्ष के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की सङ्गति पूर्व सूक्तार्थ के साथ समझनी चाहिए ॥

यह इक्यासीवां सूक्त और दूसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षडर्चस्य द्व्यशीतितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषि । इन्द्रो देवता ।
१, ४ निचृदास्तारपङ्क्ति , २, ३, ५ विराडास्तारपङ्क्तिश्छन्द ।
पञ्चम स्वर: । ६ विराड् जगती छन्द । निषाद स्वर ॥
अब बयासीवें सूक्त का आरम्भ है । परमात्मा का उपासक सेनापति कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—

उपो षु शृणुही गिरो मघवन्मातथा इव ।
यदा न: सूनृतावत: कर आदर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते हरी ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सेनापते ! जो (ते) आपके (हरी) धारणाऽऽकर्षण के लिए घोडे वा अग्नि आदि पदार्थ हैं उनको (नु) शीघ्र (योज) युक्त करो । प्रियवाणी बोलनेहारे विद्वान् से (अर्थयासे) याञ्चा कीजिए । हे (मघवन्) अच्छे गुणो के प्राप्त करनेवाले (न) हमारी (गिर) वाणियो को (उपोसुशृणुहि) समीप होकर सुनिए (आत्) पश्चात् हमारे लिए (अतथा इवेत्) विपरीत आचरण करनेवाले जैसे ही (मा) मत हो (यदा) जब हम तुम से सुखो की याचना करते हैं तब आप (न:) हमको (सूनृतावत:) सत्य वाणीयुक्त (कर:) कीजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को योग्य है कि जैसे राजा ईश्वर के सेवन वा सेनापति से पालन की हुई सेना सुखो को प्राप्त होती है जैसे सभाध्यक्ष, प्रजा और सेना के अनुकूल वर्त्तमान करें वैसे उनके अनुकूल प्रजा और सेना के मनुष्यो को आचरण करना चाहिए ॥ १ ॥

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभापते ! जो (ते) तेरे (हरी) धारण आकर्षण करनेहारे वाहन वा घोडे है उनको तू हमारे लिए (नुयोज) शीघ्र युक्त कर । हे (स्वभानव) स्वप्रकाशस्वरूप सूर्यादि के तुल्य (विप्रा) बुद्धिमान लोगो ! आप (नविष्ठया) अतिशय नवीन (मती) बुद्धि के सहित होके (प्रिया:) प्रिय हूजिए सबके लिए सब शास्त्रो की (हि) निश्चय से (अस्तोषत) प्रशसा आप किया कीजिए शत्रु और दु:खो को (अवाधूषत) छुडाइए (अक्षन्) विद्यादि शुभगुणो मे व्याप्त हूजिए (अमीमदन्त) अतिशय करके आनन्दित हूजिए और हमको भी ऐसे ही कीजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को योग्य है कि श्रेष्ठ गुणकर्म्म स्वभावयुक्त सब प्रकार उत्तम आचरण करनेहारे सेना और सभापति तथा सत्योपदेशक आदि के गुणो की प्रशसा और कर्मों से नवीन-नवीन विज्ञान और पुरुषार्थ को बढाकर सदा प्रसन्नता से आनन्द का भोग करें ॥ २ ॥

सुसंदृशं त्वा वयं मघवन्वन्दिषीमहि ।
प्र नूनं पूर्णवन्धुर: स्तुतो याहि वशाँ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥३॥

पदार्थ—हे (मघवन्) परमपूजित धनयुक्त (इन्द्र) सुखप्रद ! जैसे (वयम्) हम (सुसदृशम) कल्याण दृष्टियुक्त (त्वा) आपको (वन्दिषीमहि) प्रशसित करें वैसे हमसे सहित होके (पूर्णवन्धुर) समस्त सत्य प्रबन्ध और प्रेम युक्त (स्तुत) प्रशंसा को प्राप्त होके आप जो प्रजा के शत्रु है उनको (नु) शीघ्र (वशान्) वश करो जो (ते) आपके (हरी) सूय के धारणाकर्षणादि गुणवत् सुशिक्षित अश्व हैं उनको (अनुयोज) युक्त करो विजय के लिए (नूनम्) निश्चय करके (प्रयाहि) अच्छे प्रकार जाया करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब मनुष्य सबके द्रष्टा परमेश्वर की स्तुति करनेहारे सभापति का आश्रय लेते हैं तब इन शत्रुओ का शीघ्र निग्रह कर सकते हैं ॥ ३ ॥

स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।
य: पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमविद्याधनयुक्त (य:) जो आप (हारियोजनम्) अग्नि वा घोडों से युक्त किये इस (पूर्णम्) सब सामग्री से युक्त (पात्रम्) रक्षा निमित्त (रथम्) रथ को बनाना (चिकेतति) जानते हो (स:) सो उस रथ में (हरी) वेगादिगुणयुक्त घोडो को (नुयोज) शीघ्र युक्त कर । हे (इन्द्र) सेनापते ! जो (ते) आपके (वृषणम्) शत्रु के सामर्थ्य का नाशक (गोविदम्) जिससे भूमि का राज्य प्राप्त हो (तम्) उस रथ पर (अधितिष्ठाति) बैठे (घ) वही विजय को प्राप्त क्यों न होवे ॥४॥

भावार्थ—सेनापति को योग्य है कि शिक्षा बल से हृष्ट-पुष्ट हाथी, घोड़े, रथ, शस्त्र, अस्त्रादि सामग्री से पूर्ण सेना को प्राप्त करके शत्रुओ को जीता करे ॥४॥

फिर वह सेनापति क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

युक्तस्ते अस्तु दक्षिण उत सव्य: शतक्रतो ।
तेन जायामुप प्रियां मन्दानो याह्यन्धसो योजा न्विन्द्र ते हरी ॥५॥

पदार्थ—हे (इन्द्र:) सबको सुख के देनेहारे (शतक्रतो) असख्य उत्तम बुद्धि और क्रियाओ से युक्त (ते) आपके जो सुशिक्षित (हरी) घोड़े हैं उनको रथ मे तू (नुयोज) शीघ्र युक्त कर जिस (ते) तेरे रथ के (एक) एक घोड़ा (दक्षिण) दाहिने (उत) और (सव्य) बाईं ओर (अस्तु) हो (तेन) उस रथ पर बैठ शत्रुओ को जीतके (प्रियाम्) अतिप्रिय (जायाम्) स्त्री को साथ बैठा (मन्दान:) आप प्रसन्न और उसको प्रसन्न करता हुआ (अन्धस:) अन्नादि सामग्री के (उपयाहि) समीपस्थ होके तुम दोनों शत्रुओं को जीतने के अर्थ आया करो ॥५॥

भावार्थ—राजा को योग्य है कि अपनी राणी के साथ अच्छे सुशिक्षित घोड़ों से युक्त रथ में बैठके युद्ध मे विजय और व्यवहार मे आनन्द को प्राप्त होवें । जहाँ-जहाँ युद्ध मे वा भ्रमण के लिए जावें वहाँ-वहाँ उत्तम कारीगरो से बनाये सुन्दर रथ मे स्त्री के सहित स्थित होके ही जावें ॥५॥

फिर उसके भृत्य क्या करें और उस रथ से वह क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

युनज्मि ते ब्रह्मणा केशिना हरी उप प्र याहि दधिषे गभस्त्यो: ।
उत्त्वा सुतासो रभसा अमन्दिषु: पूषण्वान्वज्रिन्त्समु पत्न्यामद: ॥६॥

पदार्थ—हे (वज्रिन्) उत्तम शस्त्रयुक्त सेनाध्यक्ष ! जैसे मैं (ते (तेरे (ब्रह्मणा) अन्नादि से युक्त नौका रथ मे (केशिना) सूर्य की किरण के समान प्रकाशमान (हरी) घोडो को (युनज्मि) जोडता हूँ जिस मे बैठके तू (गभस्त्यो:) हाथो मे घोडों की रस्सी को (दधिषे) धारण करता है उस रथ मे (उपप्रयाहि) अभीष्ट स्थानो को जा जैसे बल वेगादि युक्त (सुतास) सुशिक्षित (भृत्या:) नौकर लोग जिस (त्वा) तुझको (उ) अच्छे प्रकार (उदमन्दिषु:) आनन्दित करें वैसे इनको तू भी आनन्दित कर और (पूषण्वान्) शत्रुओ की शक्तियो को रोकनेहारा तू अपनी (पत्न्या) स्त्री के साथ (सममद:) अच्छे प्रकार आनन्द को प्राप्त हो ॥६॥

भावार्थ—मनुष्यो को योग्य है कि जो अश्वादि की शिक्षा, सेवा करनेहारे और उनको सवारियो मे चलानेवाले भृत्य हों वे अच्छी शिक्षायुक्त हों और अपनी स्त्रियादि को भी अपने से प्रसन्न रखके आप भी उनमे यथावत् प्रीति कर सर्वदा युक्त होके सुपरीक्षित स्त्री आदि मे धर्म कार्यों को साधा करें ॥६॥

इस सूक्त मे सेनापति और ईश्वर के गुणो का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति समझनी चाहिए ॥

यह बयासीसवाँ सूक्त और तीसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षडर्चस्य त्र्यशीतितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषि: । इन्द्रो देवता ।
१,३—५ निचृज्जगती, २ जगती छन्द । निषाद: स्वर ।
६ त्रिष्टुप्छन्द । धैवत: स्वर ॥
अब तयासीवें सूक्त का आरम्भ है फिर वह कैसे रथ में बैठा हुआ कार्मो को सिद्ध करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभि: ।
तमित्पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतस: ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सब की रक्षा करनेहारे राजन् ! जो (मर्त्य:) अच्छी शिक्षायुक्त धार्मिक मनुष्य (तव) तेरी (ऊतिभि) रक्षा आदि से रक्षित भृत्य (अश्वावति) उत्तम घोड़ो से युक्त रथ में बैठके (गोषु) पृथिवी के विभागों में युद्ध के लिए (प्रथम:) प्रथम (गच्छति) जाता है उससे तू प्रजाओं को (सुप्रावी) अच्छे प्रकार रक्षा कर (तमित्) उसी को (यथा) जैसे (विचेतस) चेतनारहित जड (आप:) जल वा वायु (अभित:) चारों ओर से (सिन्धुम्) नदी को प्राप्त होते हैं वैसे (भवीयसा) अत्यन्त उत्तम (वसुना) धन से तू प्रजा को (पृणक्षि) युक्त करता है वैसे ही सब प्रजा और राजपुरुष पुरुषार्थ करके ऐश्वर्य से संयुक्त हो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । सेनापति आदि राजपुरुषो को योग्य है कि भृत्य अपने-अपने अधिकार के कर्मों में यथायोग्य न वर्त्ते, उन-उनको अच्छे प्रकार दण्ड और जो न्याय के अनुकूल वर्त्ते उनका सत्कार कर शत्रुओं को जीत,

प्रजा की रक्षा कर, पुरुषों को प्रसन्न रखके राजकार्यों को सिद्ध करना चाहिए। जो ऐसी पुरुष अपराधीके योग्य दण्ड और अच्छे कर्मकर्त्ता के योग्य प्रतिष्ठा किये विना यथावत् राज्य की व्यवस्था को स्थिर करने को समर्थ नहीं हो सकता इससे इस कर्म का अनुष्ठान सदा करना चाहिए ॥१॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः ।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव ॥२॥

पदार्थ—जो (देवासः) विद्वान् लोग मेघ को (आपो न) जैसे जल प्राप्त होते हैं वैसे (देवीः) विदुषी स्त्रियों को (उपयन्ति) प्राप्त होते हैं और (यथा) जैसे (प्राचैः) प्राचीन विद्वानों के साथ (विततम्) विशाल और जैसे (रजः) परमाणु आदि जगत् का कारण (होत्रियम्) देने-लेने के योग्य (अवः) रक्षण को (पश्यन्ति) देखते हैं (वरा इव) उत्तम पतिव्रता विदुषी स्त्रियों के समान (ब्रह्मप्रियम्) वेद और ईश्वर की आज्ञा मे प्रसन्न (देवयुम्) अपने आत्मा को विद्वान् होने की चाहनायुक्त (प्रणयन्ति) नीतिपूर्वक करते और (जोषयन्ते) इसका सेवन करते औरों को ऐसा कराते हैं वे निरन्तर सुखी क्यों न हों ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है। किस हेतु से विद्वान् और अविद्वान् भिन्न-भिन्न कहाते हैं इस का उत्तर—जो धर्मयुक्त शुद्ध क्रियाओ को करे, सब के शरीर और आत्मा का यथावत् रक्षण करना जानें और भूगर्भादि विद्याओं से प्राचीन आप्त विद्वानों के तुल्य वेदद्वारा ईश्वरप्रणीत सत्यधर्म मार्ग का प्रचार करें वे विद्वान् हैं और जो इन से विपरीत हों वे अविद्वान् हैं इस प्रकार निश्चय से जानें ॥ २ ॥

फिर वे कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—

अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं१वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! जैसे (या) जो (यतस्रुचा) साधनोपासधनयुक्त पढाने और उपदेश करनेहारे (मिथुना) दोनों मिलके (द्वयोः) अपना और पराया कल्याण करके जो (उक्थ्यम्) प्रशसा के योग्य (वचः) वचन को (सपर्यतः) सेवन करते हैं वैसे इस का तू (अदधा) धारण कर जो (असंयत्त) अजितेन्द्रिय भी (ते) तेरे (व्रते) सत्यभाषणादि नियम पालने मे (क्षेति) निवास करता है उस मे (भद्रा) कल्याण करनेहारी (शक्तिः) सामर्थ्य (क्षेति) वसती है और वह (पुष्यति) पुष्ट होता है तब (सुन्वते) ऐश्वर्य प्राप्ति होनेवाले (यजमानाय) सब को सुख के दाता के लिए निरन्तर सुख कैसे न बढे ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य परोपकारबुद्धि से सब के शरीर और आत्मा के मध्य पुष्टि और विद्याबल को उत्पन्न कर विरोध छोडके धर्मयुक्त व्यवहार का सेवन करके निरन्तर सब मनुष्यो को सत्य व्यवहार मे प्रवृत्त करते हैं वे मोक्ष को प्राप्त होते है ॥ ३ ॥

आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥४॥

पदार्थ—हे (इद्धाग्नय) अग्नि विद्या को प्रदीप्त करनेहारे (ये, नरः) नायक मनुष्यो ! आप जैसे (सुकृत्यया) सुकृतयुक्त (शम्या) कर्म और (पणेः) प्रशसनीय व्यवहार करनेवाले के उपदेश से (प्रथमम्) पहले (वय) उमर को ब्रह्मचर्य के लिए (आदधिरे) सब प्रकार से धारण करते हैं वे (सर्वम्) सब (भोजनम्) आनन्द को भोग और पालन को (समविन्दन्त) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं (आत्) इस के अनन्तर जैसे (अङ्गिरा.) प्राणवत् प्रिय बछडा (पशुम्) अपनी माता को प्राप्त होके आनन्दित होता है वैसे आप (अश्वावन्तम्) उत्तम घोडो से युक्त (गोमन्तम्) श्रेष्ठ गाय और भूमि आदि के सहित राज्य को प्राप्त होके आनन्दित हूजिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। कोई भी मनुष्य ब्रह्मचर्य से विद्या पढे विना साङ्गोपाङ्ग विद्याओ को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकते और विद्या सत्कर्म के विना राज्याधिकार को प्राप्त होने योग्य नही होते उक्त प्रकार से रहित मनुष्य सत्य सुख को प्राप्त नही हो सकते ॥ ४ ॥

फिर वे किससे किसको प्राप्त होते हैं यह विषय कहा है—

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥५॥

पदार्थ—जैसे (प्रथमः) प्रसिद्ध विद्वान् (अथर्वा) हिंसारहित (पथ.) सन्मार्गों को (तते) विस्तृत करता है जैसे (वेन) बुद्धिमान् (व्रतपाः) सत्य का पालन करनेहारा सब प्रकार (आजनि) प्रसिद्ध होता है जैसे (तत.) विस्तृत (सूर्यः) सूर्यलोक (गाः) पृथिवी में देशो को (आजत्) धारण करके घुमाता है जैसे (काव्य.) कवियो में शिक्षा को प्राप्त (उशना) विद्या की कामना करने वाला विद्वान् विद्याओं को प्राप्त होता है वैसे हम लोग (यज्ञैः) विद्या के पढने-पढाने सत्संगयोगादि क्रियाओ से (यमस्य) सब जगत् के नियन्ता परमेश्वर के (सचा) साथ (जातम्) प्राप्त हुए (अमृतम्) मोक्ष को (आयजामहे) प्राप्त होवें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि सत्य मार्ग मे स्थित होके सत्यक्रिया और विज्ञान से परमेश्वर को जानके मोक्ष की इच्छा करें वे विद्वान् मुक्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

फिर वह किस प्रकार से क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि ।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य१स्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ॥६॥

पदार्थ—(यत्र) जिस (दिवि) प्रकाशयुक्त व्यवहार मे (उक्थ्य) कथनीय व्यवहारों मे निपुण प्रशंसनीय शिल्प कामों का कर्त्ता (इन्द्र.) परमैश्वर्य को प्राप्त करानेहारा विद्वान् (अभिपित्वेषु) प्राप्त होने के योग्य व्यवहारो मे (यत्) जिस (स्वपत्याय) सुन्दर सन्तान के अर्थ (बर्हि) विज्ञान को (वृज्यते) छोडता है (अर्कः) पूजनीय विद्वान् (श्लोकम्) सत्यवाणी को (वा) विचारपूर्वक (आघोषते) सब प्रकार सुनाता है (ग्रावा) मेघ के समान गम्भीरता से (वदति) बोलता है (वा) अथवा (रण्यति) उत्तम उपदेशो को करता है वहाँ (तस्येत्) उसी सन्तान को विद्या प्राप्त होती है ॥ ६ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोगो को योग्य है कि जैसे जल छिन्न-भिन्न होकर आकाश मे जा वहाँ से वर्षके सुख करता है वैसे कुव्यसनो को छिन्न-भिन्न कर विद्या को ग्रहण करके सब मनुष्यो को सुखी करे। जैसे सूर्य अन्धकार का नाश और प्रकाश करके सब प्राणियो को सुखी और दुष्ट चोरों को दुःखी करता है वैसे मनुष्यो के अज्ञान का नाश विज्ञान की प्राप्ति कराके सब को सुखी करें। जैसे मेघ गर्जना कर और वर्षके दुर्भिक्ष को छुडा सुभिक्ष करता है वैसे ही सत्योपदेश की वृष्टि से अधर्म का नाश धर्म के प्रकाश से सब मनुष्यो को आनन्दित किया करें ॥६॥

इस सूक्त मे सेनापति और उपदेशक के कर्त्तव्य-गुणों का वर्णन करने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह त्रयासीवाँ सूक्त और चौथा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ विंशत्यृचस्य चतुरशीतितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषि. । इन्द्रो देवता ।
१,३—५ निचृदनुष्टुप्, २ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धार. स्वरः
६ भुरिगुष्णिक्, ७—९ उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । १०,१२
विराडास्तारपङ्क्तिः ११ आस्तारपङ्क्तिः २० पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वर । १३-१५ निचृद्गायत्रीछन्द । षड्जः स्वरः ।
१६ निचृत्त्रिष्टुप्, १७ विराट् त्रिष्टुप्, १८ त्रिष्टुप्,
१९ आर्ची त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत स्वरः ॥

अब चौरासीवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है। इसके पहले मन्त्र में सेनापति के गुणों का उपदेश किया है—

असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥१॥

पदार्थ—हे (धृष्णो) प्रगल्भ (शविष्ठ) प्रशसित बलयुक्त (इन्द्र) परमैश्वर्य देनेहारे सत्पुरुष (ते) तेरे लिए जो (सोमः) अनेक प्रकार के रोगों को विनाश करनेहारी ओषधियों का सार हम ने (असावि) सिद्ध किया है जो तेरी (इन्द्रियम्) इन्द्रियो को (सूर्य) सविता (रश्मिभिः) किरणो से (रज.) लोको का प्रकाश करने के (न) तुल्य प्रकाश करे उस को तू (आगहि) प्राप्त हो वह (त्वा) तुझे (आपृणक्तु) बल और आरोग्यता से युक्त करे ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। प्रजा सेना और पाठ-शालाओ की सभाओ मे स्थित पुरुषों को योग्य है कि अच्छे प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को प्रजा सेना और पाठशालाओ मे अध्यक्ष करके सब प्रकार से उसका सत्कार करना चाहिए वैसे सभ्यजनो की भी प्रतिष्ठा करनी चाहिए ॥१॥

फिर उसका सत्कार किस प्रकार करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् ।
ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जिस (अप्रतिधृष्टशवसम्) अहिंसित अत्यन्त बलयुक्त (ऋषीणाम्) वेदो के अर्थ जाननेहारो की (स्तुती) प्रशसा को प्राप्त (च) महागुणसम्पन्न (मानुषाणाम्) मनुष्यो (च) और प्राणियों के विद्या-दान सरक्षणनाम (यज्ञम्) यज्ञ को पालन करनेहारे (इन्द्रम्) प्रजा सेना और सभा आदि ऐश्वर्य को प्राप्त करानेवाले को (हरी) दुःखहरण स्वभाव श्री, बल, वीर्य, नाम, गुणरूप अश्व (उपवहतः) प्राप्त होते हैं उसको (इत्) ही सदा प्राप्त हूजिए ॥२॥

भावार्थ—जो प्रशसा, सत्कार, अधिकार को प्राप्त हैं उनके विना प्राणियों को सुख नहीं हो सकता तथा सत्क्रिया के विना चक्रवर्त्ति राज्य आदि की प्राप्ति और रक्षण नहीं हो सकते इस हेतु से सब मनुष्यों को यह अनुष्ठान करना उचित है ॥ २ ॥

फिर सेनापति अपनी सेना के भृत्यों को क्या आज्ञा देवे इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

आ तिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।
अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥३॥

पदार्थ—हे (**वृत्रहन्**) मेघ को सविता के समान शत्रुओं के मारनेहारे शूरवीर (**ते**) तेरे जिन (**ब्रह्मणा**) अन्नादिसामग्री से युक्त शिल्पि वा सारथियों ने बनाये हुए (**हरी**) पदार्थ को पहुँचानेवाले जलाग्नि वा घोड़े (**युक्ता**) युक्त हैं उस (**अर्वाचीनम्**) भूमि, जल में नीचे ऊपर आदि को जानेवाले (**रथम्**) रथ में तू (**आतिष्ठ**) बैठ (**ग्रावा**) मेघ के समान (**वग्नुना**) सुन्दर मधुर वाणी में वक्तृत्व को (**सुकृणोतु**) अच्छे प्रकार कर उससे (**ते**) तेरा (**मन**) विज्ञान वीरों को अच्छे प्रकार उत्साहित किया करे ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सभापतियों को योग्य है कि सेना में दो प्रकार के अधिकारी रक्खें उनमें एक सेना को लड़ावे और दूसरा अच्छे भाषणों से योद्धाओं को उत्साहित करे जब युद्ध हो तब सेनापति अच्छी प्रकार परीक्षा और उत्साह से शत्रुओं के साथ ऐसा युद्ध करावे कि जिससे निश्चित विजय हो और जब युद्ध बन्द हो जाए तब उपदेशक योद्धा और सब सेवकों को धर्मयुक्त कर्म के उपदेश से अच्छे प्रकार उत्साहित करें ऐसे करनेहारे मनुष्यों का कभी पराजय नहीं हो सकता ॥३॥

इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सदने ॥४॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) शत्रुओं को विदारण करनेहारे जिस (**त्वा**) तुझे जो (**धारा:**) वाणी (**ऋतस्य**) सत्य (**शुक्रस्य**) पराक्रम के (**सदने**) स्थान में (**अभ्यक्षरन्**) प्राप्त करती है उनको प्राप्त होके (**इमम्**) इस (**सुतम्**) अच्छे प्रकार से सिद्ध किये उत्तम ओषधियों के रस को (**पिब**) पी उससे (**ज्येष्ठम्**) प्रशंसित (**अमर्त्यम्**) साधारण मनुष्य को अप्राप्त दिव्यस्वरूप (**मदम्**) आनन्द को प्राप्त होके शत्रुओं को जीत ॥४॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य विद्या और अच्छे भोजन पान के विना पराक्रम को प्राप्त होने को समर्थ नहीं और इस के विना सत्य का विज्ञान और विजय नहीं हो सकता ॥ ४ ॥

फिर किस प्रकार के सभाध्यक्ष का सत्कार करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन ।
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥५॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जिसको (**सुता:**) सिद्ध (**इन्दव**) उत्तम रसीले पदार्थ (**अमत्सु:**) आनन्दित करें जिस का (**ज्येष्ठम्**) उत्तम (**सह**) बल प्राप्त हो उस (**इन्द्राय**) सभाध्यक्ष को (**नमस्यत**) नमस्कार करो और उस को मुख्य कामों में युक्त करके (**नूनम्**) निश्चय से (**अर्चत**) सत्कार करो (**उक्थानि**) अच्छे-अच्छे वचनों में (**ब्रवीतन**) उपदेश करो उससे सत्कारों को (**च**) भी प्राप्त हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो सब का सत्कार करे, शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होके परोपकारी हो उसको छोड़के अन्य को सेनापति आदि अधिकारों में कभी स्थापन न करें ॥ ५ ॥

फिर वह कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

नकिष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।
नकिष्ट्वानु मज्मना नकिः स्वश्व आनशे ॥६॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सेना के धारण करनेहारे सेनापति ! (**यत्**) जो तू (**रथीतर**) अतिशय करके रथयुक्त योद्धा है सो (**हरी**) अग्न्यादि वा घोड़ों को (**नकि, यच्छसे**) क्या रथ में नहीं देता अर्थात् युक्त नहीं करता क्या (**त्वा**) तुझ को (**मज्मना**) बल से कोई भी (**नकि, अन्वानशे**) व्याप्त नहीं हो सकता क्या (**त्वत्**) तुझ से अधिक कोई भी (**स्वश्व:**) अच्छे घोड़ों वाला (**नकि**) नहीं है इस से तू सब अङ्गों से युक्त हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम सेनापति को इस प्रकार उपदेश करो कि क्या तू सब से बड़ा है क्या तेरे तुल्य कोई भी नहीं है क्या कोई तेरे जीतने को भी समर्थ नहीं है । इससे तू निरभिमानता से सावधान होकर वर्त्ता कर ॥ ६ ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥७॥

पदार्थ—हे (**अङ्ग**) मित्र मनुष्य ! (**य:**) जो (**इन्द्र**) सभा आदि का अध्यक्ष (**एक**) सहायरहित (**इत्**) ही (**दाशुषे**) दाता (**मर्ताय**) मनुष्य के लिए (**वसु**) द्रव्य को (**विदयते**) बहुत प्रकार देता है और (**ईशान:**) समर्थ (**अप्रतिष्कुतः**) निश्चल है उसी को सेना आदि में अध्यक्ष कीजिए ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो सहायरहित भी निर्भय होके युद्ध से नहीं हटता तथा अत्यन्त शूर है उसी को सेना का स्वामी करो ॥ ७ ॥

कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।
कदा नः शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥८॥

पदार्थ—(**अङ्ग**) शीघ्रकर्त्ता (**इन्द्र:**) सभा आदि का अध्यक्ष (**पदा**) विज्ञान वा धन की प्राप्ति से (**क्षुम्पमिव**) जैसे सर्प फण को (**स्फुरत्**) चलाता है वैसे (**अराधसम्**) धनरहित (**मर्तम्**) मनुष्य को चलाओगे (**कदा**) किस काल में (**न:**) हम को उक्त प्रकार से अर्थात् विज्ञान वा धन की प्राप्ति से जैसे सर्प फण को चलाता है वैसे (**गिर:**) वाणियों को (**शुश्रवत्**) सुन कर सुनाओगे ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो दरिद्रों को भी धनयुक्त, आलसियों को पुरुषार्थी और श्रवणरहितों को श्रवणयुक्त करे उस पुरुष ही को सभा आदि का अध्यक्ष करो । कब यहाँ हमारी बात को सुनोगे और हम कब आप की बात को सुनेंगे ऐसी आशा हम करते हैं ॥ ८ ॥

यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।
उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥९॥

पदार्थ—हे (**अङ्ग**) मित्र ! तू जो (**सुतावान्**) अन्नादि पदार्थों से युक्त (**इन्द्र**) परमैश्वर्य का प्रापक (**बहुभ्य**) मनुष्यों से (**त्वा**) तुझ को (**आविवासति**) सेवा करता है जो शत्रुओं का (**उग्रम्**) अत्यन्त (**शव**) बल (**तत्**) उस को (**चित्**) भी (**आपत्यते**) प्राप्त होता है (**तम्, हि**) उसी को राजा मानो ॥९॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो शत्रुओं के बल का हनन करके तुम को दुःखों से हटाकर सुखयुक्त करने को समर्थ हो तथा जिसके भय और पराक्रम से शत्रु नष्ट होते हैं उसे सेनापति करके आनन्द को प्राप्त होओ ॥ ९ ॥

स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१०॥६॥

पदार्थ—जैसे (**वृष्णा**) सुख के वर्षाने (**इन्द्रेण**) सूर्य के साथ (**सयावरी**) तुल्य गमन करनेवाली (**वस्वी**) पृथिवी (**गौर्य**) किरणों से (**स्वराज्यम्**) अपने प्रकाशरूप राज्य के (**शोभसे**) शोभा के लिए (**अनुमदन्ति**) हर्ष का हेतु होती हैं वे (**इत्था**) इस प्रकार से (**स्वादो**) स्वादयुक्त (**विषूवत**) व्याप्ति वाले (**मध्व:**) मधुर आदि गुण को (**पिबन्ति**) पीती हैं वैसे तुम भी वर्त्ता करो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । अपनी सेना के पति और वीर पुरुषों की सेना के विना निज राज्य की शोभा तथा रक्षा नहीं हो सकती । जैसे सूर्य की किरणें सूर्य के विना स्थित और वायु के विना जल का आकर्षण करके वर्षाने के लिए समर्थ नहीं हो सकतीं वैसे सेनाध्यक्ष के विना और राजा के विना प्रजा आनन्द करने को समर्थ नहीं हो सकती ॥१०॥

फिर उसके सम्बन्धि-गुणों का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (**अस्य**) इस (**इन्द्रस्य**) सूर्य वा सेना के अध्यक्ष की (**पृशनायुव**) अपने को स्पर्श करनेवाली अर्थात् उलट-पलट अपना स्पर्श करना चाहती (**पृश्नय**) स्पर्श करती और (**प्रिया**) प्रसन्न करनेहारी (**धेनव:**) किरणें वा गौ वा वाणी (**सोमम्**) ओषधि रस वा ऐश्वर्य को (**श्रीणन्ति**) सिद्ध करती और (**सायकम्**) दुर्गुणों को क्षय करनेहारे ताप वा शस्त्रसमूह को (**हिन्वन्ति**) प्रेरणा देती हैं (**वस्वी**) और वे पृथिवी से सम्बन्ध करनेवाली (**स्वराज्यम्**) अपने राज्य के (**अनु**) अनुकूल होती हैं उनको प्राप्त होओ ॥११॥

भावार्थ—जैसे गोपाल की गौ जल, रस को पी निज सुख को बढ़ाकर आनन्द को बढ़ाती है वैसे ही सेनाध्यक्ष की सेना और सूर्य की किरणें ओषधियों में वैद्यकशास्त्र के अनुकूल वा उत्पन्न हुए परिपक्व रस को पीकर विजय और प्रकाश को करके आनन्द कराती है ॥११॥

फिर वे क्या करती हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे (**स्वराज्यम्**) अपने राज्य का सत्कार करता हुआ न्यायाधीश सबका पालन करता है वैसे (**अस्य**) इस अध्यक्ष के (**नमसा**) अन्न वा वज्र के साथ वर्त्तमान (**प्रचेतस:**) उत्तम ज्ञानयुक्त सेना (**सह**) बल को (**सपर्यन्ति**) सेवन करती हैं (**ता:**) जो (**अस्य**) सेनाध्यक्ष के (**पूर्वचित्तये**) पूर्वज्ञान के लिए (**पुरूणि**) बहुत (**व्रतानि**) सत्यभाषण नियम आदि को (**सश्चिरे**) प्राप्त होती हैं (**ता:**) उन (**वस्वी:**) पृथिवी सम्बन्धियों को देशों के आनन्द भोगने के लिए सेवन करो ॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि सामग्री, बल और अच्छे नियमों के विना बहुत राज्य आदि के सुख नहीं प्राप्त होते इस हेतु से यम-नियमों के अनुकूल जैसा चाहिए वैसा इसका विचार करके विजय आदि धर्मयुक्त कर्मों को सिद्ध करें ॥१२॥

फिर उस राजा के कृत्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥१३॥

पदार्थ—हे सेनापते ! जैसे (**अप्रतिष्कुत**) सब ओर से स्थिर (**इन्द्र**) सूर्यलोक (**अस्थभि:**) अस्थिर किरणों से (**नवनवती:**) निन्नानवे प्रकार के दिशाओं के अवयवों को प्राप्त हुए (**दधीच:**) जो धारण करनेहारे वायु आदि को

प्राप्त होते हैं उन (वृत्राणि) मेघ के सूक्ष्म अवयव रूप जलों को (जघान) हनन करता है वैसे तू अनेक अधर्मी शत्रुओं का हनन कर ॥१३॥

भावार्थ—यहाँ वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। वही सेनापति होने के योग्य होता है जो सूर्य के समान दुष्ट शत्रुओं का हन्ता और अपनी सेना का रक्षक है ॥१३॥

फिर वह कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम्। तद्विदच्छर्यणावति ॥१४॥

पदार्थ—जैसे (इन्द्र) सूर्य (अश्वस्य) शीघ्रगामी मेघ का (यत्) जो (शर्यणावति) आकाश में (पर्वतेषु) पहाड़ वा मेघों में (अपश्रितम्) आश्रित (शिरः) उत्तमाङ्ग के समान अवयव है उस को छेदन करता है वैसे शत्रु की सेना के उत्तमांग के नाश की (इच्छन्) इच्छा करता हुआ सेनापति सुखों को (विदत्) प्राप्त होवे ॥१४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे सूर्य आकाश में रहनेहारे मेघ का छेदनकर भूमि में गिराता है वैसे पर्वत और किलों में भी रहनेहारे दुष्ट शत्रुओं का हनन करके भूमि में गिरा देवे इस प्रकार किये बिना राज्य की व्यवस्था स्थिर नहीं हो सकती ॥१४॥

अब राजा का सूर्य के समान करने योग्य कर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्। इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥१५॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! तुम लोग जैसे (अत्र) इस जगत् में (नाम) प्रसिद्ध (गोः) पृथिवी और (चन्द्रमसः) चन्द्रलोक के मध्य में (त्वष्टुः) छेदन करनेहारे सूर्य का (अपीच्यम्) प्राप्त होनेवालों में योग्य प्रकाशरूप व्यवहार है (इत्था) इस प्रकार (अमन्वत) मानते हैं वैसे (अह) निश्चय से जाके (गृहे) घरों में न्यायप्रकाशार्थ वर्त्तों ॥१५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को जानना चाहिए कि ईश्वर की विद्यावृद्धि की हानि और विपरीतता नहीं हो सकती सब काल सब क्रियाओं में एकरस सृष्टि के नियम होते हैं जैसे सूर्य का पृथिवी के साथ आकर्षण और प्रकाश आदि सम्बन्ध है वैसे ही अन्य भूगोलों के साथ। क्योंकि ईश्वर के स्थिर किये नियम का व्यभिचार अर्थात् भूल कभी नहीं होती ॥१५॥

फिर सेनापति के योग्य कर्म का उपदेश करते हैं—

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्।

आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥१६॥

पदार्थ—(कः) कौन (अद्य) इस समय (ऋतस्य) सत्य आचरण सम्बन्धी (शिमीवतः) उत्तम क्रियायुक्त (भामिनः) शत्रुओं के ऊपर क्रोध करने (दुर्हृणायून्) शत्रुओं को जिनका दुर्लभ साहस कर्म उनके समान आचरण करने (आसन्निषून्) अच्छे स्थान में बाण पहुँचाने (हृत्स्वसः) शत्रुओं के हृदय में शस्त्रप्रहार करने और (मयोभून्) स्वराज्य के लिए सुख करनेहारे श्रेष्ठ वीरों को (धुरि) संग्राम में (युङ्क्ते) युक्त करता है वा (यः) जो (एषाम्) इनकी जीविका के निमित्त (गाः) भूमियों को (ऋणधत्) समृद्धियुक्त करे (सः) वह (जीवात्) बहुत समय पर्यन्त जीवे ॥१६॥

भावार्थ—सबका अध्यक्ष राजा सबको प्रकट आज्ञा देवे सब सेना वा प्रजास्थ पुरुषों को सत्य आचरणों में नियुक्त करे सर्वदा उनकी जीविका बढ़ाके आप बहुत काल पर्यन्त जीवे ॥१६॥

अब अगले मन्त्रों में प्रश्नोत्तर से राजधर्म का उपदेश किया है—

क ईषते तुज्यते को बिभाय को मंसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति।

कस्तोकाय क इभायोत रायेऽधि ब्रवत्तन्वे३ को जनाय ॥१७॥

पदार्थ—हे सेनापते! सेनाओं में स्थित भृत्यों में (कः) कौन शत्रुओं को (ईषते) मारता है (कः) कौन शत्रुओं से (तुज्यते) मारा जाता है (कः) कौन युद्ध में (बिभाय) भय को प्राप्त होता है (कः) कौन (सन्तम्) राजधर्म में वर्त्तमान (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य के दाता को (मंसते) जानता है (कः) कौन (तोकाय) सन्तानों के (अन्ति) समीप में रहता है (कः) कौन (इभाय) हाथी के उत्तम होने के लिए शिक्षा करता है (उत) और (कः) कौन (राये) बहुत धन करने के लिए वर्त्तता और (तन्वे) शरीर और (जनाय) मनुष्यों के लिए (अधिब्रवत्) आज्ञा देवे इसका उत्तर आप कहिए ॥१७॥

भावार्थ—जो अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और अन्य शुभ गुणों से युक्त होते हैं वे विजयादि कर्मों को कर सकते हैं जैसे राजा सेनापति को अपनी सेना के सब नौकरों की व्यवस्था को पूछे वैसे सेनापति भी अपने अधीन छोटे सेनापतियों को स्वयं सब वार्त्ता पूछे जैसे राजा सेनापति को आज्ञा देवे वैसे स्वयं सेना के प्रधान पुरुषों को करने योग्य कर्म की आज्ञा देवे ॥१७॥

को अग्निमीट्टे हविषा घृतेन स्रुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिः।

कस्मै देवा आ वहानाशु होम को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः ॥१८॥

पदार्थ—हे विद्वन्! (कः) कौन (वीतिहोत्रः) विज्ञान और श्रेष्ठ क्रियायुक्त पुरुष (हविषा) विचार और (घृतेन) घी से (अग्निम्) अग्नि को (ईट्टे) ऐश्वर्य प्राप्ति का हेतु करता है (कः) कौन (स्रुचा) धर्म से (ध्रुवेभिः) निश्चल (ऋतुभिः) वसन्तादि ऋतुओं में (यजाते) ज्ञान और क्रियायज्ञ को करे (देवाः) विद्वान् लोग (कस्मै) किसके लिए (होम) ग्रहण वा दान को (आशु) शीघ्र (आवहान्) प्राप्त करावें कौन (सुदेवः) उत्तम विद्वान् इस सबको (मंसते) जानता है इस का उत्तर कहिए ॥१८॥

भावार्थ—हे विद्वन्! किस साधन वा कर्म से अग्निविद्या को प्राप्त हो और किससे ज्ञान और क्रियारूप यज्ञ सिद्ध होवे किस प्रयोजन के लिए विद्वान् लोग यज्ञ का विस्तार करते हैं ॥१८॥

फिर ईश्वर और सभा आदि के अध्यक्षों को कैसे जानें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम्।

न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥१९॥

पदार्थ—हे (अंग) मित्र (शविष्ठ) परमबलयुक्त! जिससे (त्वम्) तू (देवः) विद्वान् है इससे (मर्त्यम्) मनुष्य को (प्रशंसिषः) प्रशंसित कर। हे (मघवन्) उत्तम धन के दाता (इन्द्र) दुःखों के नाशक! जिससे (त्वत्) तुझसे (अन्यः) भिन्न कोई भी (मर्डिता) सुखदायक (नास्ति) नहीं है इससे (ते) तुझे (वचः) धर्म्मयुक्त वचनों का (ब्रवीमि) उपदेश करता हूँ ॥१९॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि असाधारण उत्तम कर्म करने सदा सुख देनेहारे धार्मिक मनुष्य के साथ ही मित्रता करके एक दूसरे को सुख देने का उपदेश किया करें ॥१९॥

फिर वह सभाध्यक्ष कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान् कदा चना दभन्।

विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥२०॥८॥१३॥

पदार्थ—हे (वसो) सुख में वास करानेहारे (ते) आपके (राधांसि) धन (अस्मान्) हमको (कदाचन) कभी भी (मा दभन्) दुःखदायक न हों (ते) तेरी (ऊतयः) रक्षा (अस्मान्) हमको (मा) मत दुःखदायी होवे। हे (मानुष) जैसे तू (चर्षणिभ्यः) उत्तम मनुष्यों को (विश्वा) विज्ञान आदि सब प्रकार के (वसूनि) धनों को देता है वैसे हम को भी दे (च) और (नः) हमको विद्वान् धार्मिकों की (आ) सब ओर से (उपमिमीहि) उपमा को प्राप्त कर ॥२०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। वे ही धार्मिक मनुष्य हैं जिन का शरीर, मन और धन सब को सुखी करे, वे ही प्रशंसा के योग्य हैं जो जगत् के लिए प्रयत्न करते हैं ॥२०॥

इस सूक्त में सेनापति के गुण वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की संगति पूर्व सूक्तार्थ के संग जाननी चाहिए ॥

यह चौरासीवाँ सूक्त और आठवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ द्वादशर्चस्य पञ्चाशीतितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषिः। मरुतो देवताः। १,२,६,११ जगती, ३,७,८ निचृज्जगती; ४,९,१० विराड्जगती छन्दः। निषादः स्वरः। ५ विराट् त्रिष्टुप्, १२ त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः।

फिर वे सेनाध्यक्ष आदि कैसे हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो यामन्रुद्रस्य सूनवः सुदंससः।

रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः ॥१॥

पदार्थ—(ये) जो (रुद्रस्य) दुष्टों के रुलानेवाले के (सूनवः) पुत्र (सुदंससः) उत्तम कर्म करनेहारे (घृष्वयः) आनन्दयुक्त (वीराः) वीरपुरुष (हि) निश्चय (यामन्) मार्ग में जैसे अलकारों से सुशोभित (जनयः) सुशील स्त्रियों के (न) तुल्य और (सप्तयः) अश्व के समान शीघ्र जाने-आनेहारे (मरुतः) वायु (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी के धारण के समान (वृधे) बढ़ाने के अर्थ राज्य का धारण करते (विदथेषु) संग्रामों में विजय को (चक्रिरे) करते हैं वे (प्रशुम्भन्ते) अच्छे प्रकार शोभायुक्त और (मदन्ति) आनन्द को प्राप्त होते हैं उनसे तू प्रजा का पालन कर ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे अच्छी शिक्षा और विद्या को प्राप्त हुई पतिव्रता स्त्रियाँ अपने पतियों का अथवा स्त्रीव्रत सदा अपनी स्त्रियों ही से प्रसन्न ऋतुगामी पति लोग अपनी स्त्रियों का सेवन करके सुखी और जैसे सुन्दर बलवान् घोड़े मार्ग में शीघ्र पहुँचाके आनन्दित करते हैं वैसे धार्मिक राजपुरुष सब प्रजा को आनन्दित किया करें ॥१॥

त उक्षितासो महिमानमाशत दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः।

अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! जैसे (उक्षितासः) वृष्टि से पृथिवी का सेचन करनेहारे (पृश्निमातरः) जिनकी आकाश माता है (ते) वे (रुद्रासः) वायु (दिवि) आकाश में (सदः) स्थिर (महिमानम्) प्रतिष्ठा को (अध्याशत) अधिक प्राप्त होते और उसीको (अधिचक्रिरे) अधिक करते और (इन्द्रियम्) धन को (दधिरे) धारण करते हैं वैसे (अर्कम्) पूजनीय का (अर्चन्तः) पूजन करते हुए आप लोग (श्रियः) लक्ष्मी को (जनयन्तः) बढ़ाके आनन्दित रहो ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे वायु वृष्टि का निमित्त होके उत्तम सुखों को प्राप्त करते हैं वैसे सभाध्यक्ष लोग विद्या से सुशिक्षित होके परस्पर उपकारी और प्रीतियुक्त होवें ॥२॥

गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभिस्तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः ।
बाधन्ते विश्वमभिमातिनमप वर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (गोमातरः) पृथिवी के समान माता वाले (विरुक्मतः) विशेष अलंकृत (शुभ्राः) शुद्ध स्वभावयुक्त शूरवीर लोग जैसे प्राण (तनूषु) शरीरो मे (अञ्जिभिः) प्रसिद्ध विज्ञानादि गुणनिमित्तो से (शुभयन्ते) शुभ कर्मों का आचरण कराके शोभायमान करते है (विश्वम्) जगत् के सब पदार्थों का (अनुदधिरे) अनुकूलता से धारण करते हैं (एषाम्) इनके सम्बन्ध से (घृतम्) जल (रीयते) प्राप्त और (वर्त्मानि) मार्गों को जाते है वैसे (अभिमातिनम्) अभिमान युक्त शत्रुगण का (अपबाधन्ते) बाध करते हैं उनके साथ तुम लोग विजय को प्राप्त होओ ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे वायुओं से अनेक सुख और प्राण के बल से पुष्टि होती है वैसे ही शुभगुणयुक्त विद्या, शरीर और आत्मा के बलयुक्त सभाध्यक्षो से प्राजाजन अनेक प्रकार के रक्षणों को प्राप्त होते हैं ॥३॥

फिर वे क्या क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा।
मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा वृषव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥४॥

पदार्थ—हे प्रजा और सभा के मनुष्यो ! (ये) जो (मनोजुवः) मन के समान वेगवाले (मरुतः) वायुओ के (चित्) समान (वृषव्रातासः) शस्त्र और अस्त्रो के ऊपर वर्षाने वाले मनुष्यो से युक्त (सुमखासः) उत्तम शिल्पविद्या सम्बन्धी वा संग्रामरूप क्रियाओ के करनेहारे (ऋष्टिभिः) यन्त्र कलाओ को चलानेवाले दण्डो और (अच्युता) अक्षय (ओजसा) बल, पराक्रमयुक्त सेना से शत्रु की सेनाओ को (प्रच्यावयन्तः) नष्ट-भ्रष्ट करते हुए (व्याभ्राजन्ते) अच्छे प्रकार शोभायमान होते हैं उनके साथ (यत्) जिन (रथेषु) रथो मे (पृषतीः) वायु से युक्त जलो को (अयुग्ध्वम्) संयुक्त करो उनसे शत्रुओ को जीतो ॥४॥

भावार्थ—मनुष्यो को उचित है कि मन के समान वेगयुक्त विमानादि यानो में जल, अग्नि और वायु को संयुक्त कर उसमे बैठके सर्वत्र भूगोल मे जा-आके शत्रुओ को जीतकर प्रजा को उत्तम रीति से पालके शिल्पविद्या से कर्मों को बढ़ाके सबका उपकार किया करें ॥४॥

प्र यद्रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः ।
उतारुषस्य वि ष्यन्ति धाराश्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जैसे विद्वान् शिल्पी लोग (यत्) जिन (रथेषु) विमानादि यानो मे (पृषतीः) अग्नि और पवनयुक्त जलो को (अयुग्ध्वम्) संयुक्त करें (उत) और (अद्रिम्) मेघ को (रंहयन्तः) अपने वेग से चलाते हुए (मरुतः) पवन जैसे (अरुषस्य) घोड़े के समान (वाजे) युद्ध में (चर्मेव) चमड़े के तुल्य काष्ठ धातु और चमड़े से भी मढ़े कलाघरो मे (उदभिः) जलो मे (धाराः) उनके प्रवाहों को (विष्यन्ति) काम की समाप्ति करने के लिए समर्थ करते और (भूम) भूमि को (व्युन्दन्ति) गीली करते अर्थात् रथ को चलाते हुए जल टपकाते जाते हैं वैसे उन यानो से अन्तरिक्ष मार्ग से देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर मे जा-आके लक्ष्मी को बढ़ाओ ॥५॥

पदार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । हे मनुष्य ! जैसे वायु बादलो को संयुक्त करता है वैसे शिल्पिलोग उत्तम शिक्षा और हस्तक्रिया अग्नि आदि अच्छे प्रकार जाने हुए वेगकर्त्ता पदार्थों के योग से स्थानान्तर को प्राप्त होके कार्यों को सिद्ध करते हैं ॥५॥

फिर वे क्या करते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—

आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥६॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (रघुष्यदः) गमन करने-करानेहारे (रघुपत्वानः) थोड़े वा बहुत गमन करनेवाले (मरुतः) वायुओ के समान (सप्तयः) शीघ्र चलनेहारे अश्व (वः) तुम को (वहन्तु) देश-देशान्तर मे प्राप्त करें उनको (बाहुभिः) बल, पराक्रमयुक्त हाथो से (प्रजिगात) उत्तम गतिमान् करो उनसे (उरु) बहुत (बर्हिः) उत्तम आसन पर (आसीदत) बैठके आकाशादि मे गमनागमन करो जिनसे तुम्हार (सदः) स्थान (कृतम्) सिद्ध (भवेत्) होवें उनसे (मध्वः) मधुर (अन्धसः) अन्नो को प्राप्त होके हमको (मादयध्वम्) आनन्दित करो ॥६॥

भावार्थ—सभाध्यक्षादि मनुष्य लोग क्रियाकौशल से शिल्पविद्या से सिद्ध करने योग्य कार्यों को करके अच्छे भोगो को प्राप्त हो कोई भी मनुष्य इस जगत् मे पदार्थविज्ञान क्रिया के विना उत्तम भोगो को प्राप्त होने मे समर्थ नहीं होता इससे इस काम का नित्य अनुष्ठान करना चाहिए ॥६॥

फिर वे क्या करें यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—

तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः ।
विष्णुर्यद्धावद्वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (विष्णुः) सूर्यवत् शिल्पविद्या मे निपुण मनुष्य (प्रिये) अत्यन्त सुन्दर (बर्हिषि) आकाश मे (वृषणम्) अग्नि जल की वर्षायुक्त विमान के (अधिसीदन्) ऊपर बैठके (वयो न) जैसे पक्षी आकाश मे उड़ते और भूमि मे आते हैं वैसे (यत्) जिस (मदच्युतम्) हर्ष को प्राप्त दुष्टो को रोकनेहारे मनुष्यो की (आवत्) रक्षा करता है उसको जो (स्वतवसः) स्वकीय बलयुक्त मनुष्य प्राप्त होते हैं (ते ह) वे ही (महित्वना) महिमा से (अवर्धन्त) बढ़ते हैं और जो विमानादि यानो मे (आतस्थुः) बैठके (उरु) बहुत सुखसाधक (सदः) स्थान को जाते-आते हैं वे (नाकम्) विशेष सुख (चक्रिरे) करते हैं ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जैसे पक्षी आकाश मे सुखपूर्वक जाते-आते हैं वैसे ही साङ्गोपाङ्ग शिल्पविद्या को साक्षात् करके उससे उत्तम यानादि सिद्ध करके अच्छी सामग्री को रखके बढ़ाते हैं वे ही उत्तम प्रतिष्ठा और धनो को प्राप्त होकर नित्य बढ़ा करते हैं ॥७॥

फिर वे वायु कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

शूरा इवेद्युयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे ।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो राजान इव त्वेषसंदृशो नरः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो वायु (शूराइव) शूरवीरो के समान (इत्) ही मेघ के साथ (युयुधयो न) युद्ध करनेवाले के समान (जग्मयः) जाने-आनेहारे (पृतनासु) सेनाओ मे (श्रवस्यवः) अन्नादि पदार्थों को अपने लिए बढ़ानेहारे के समान (येतिरे) यत्न करते हैं (राजान इव) राजाओ के समान (त्वेषसंदृशः) प्रकाश को दिखानेहारे (नरः) नायक के समान हैं जिन (मरुद्भ्यः) वायुओ से (विश्वा) सब (भुवना) संसारस्थ प्राणी (भयन्ते) डरते हैं उन वायुओ का अच्छी युक्ति से उपयोग करो ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है । जैसे भयरहित पुरुष युद्ध से निवृत्त नहीं होते जैसे युद्ध करनेहारे लड़ने के लिए शीघ्र दौड़ते हैं जैसे क्षुधातुर मनुष्य अन्न की इच्छा और जैसे सेनाओ में युद्ध की इच्छा करते हैं जैसे दण्ड देनेहारे न्यायाधीशो से अन्यायकारी मनुष्य उद्विग्न होते हैं वैसे ही कुपथ्यकारी अच्छे प्रकार उपयोग न करनेहारे मनुष्य वायुओ से भय को प्राप्त होते और अपनी मर्यादा में रहते हैं ॥८॥

फिर वे सभाध्यक्ष आदि कैसे हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वष्टा यद्वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्त्तयत् ।
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्त्तवेऽहन्वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम् ॥९॥

पदार्थ—प्रजा और सेना मे स्थित पुरुष जैसे (स्वपाः) उत्तम कर्म करता (त्वष्टा) छेदन करनेहारा (इन्द्रः) सूर्य (कर्त्तवे) करने योग्य (अपांसि) कर्मों को और (यत्) जिस (सुकृतम्) अच्छे प्रकार सिद्ध किये (हिरण्ययम्) प्रकाशयुक्त (सहस्रभृष्टिम्) जिससे हजारह पदार्थ पकते हैं उस (वज्रम्) वज्र का प्रहार करके (वृत्रम्) मेघ का (अहन्) हनन करता है (अपाम्) जलो के (अर्णवम्) समुद्र को (निरौब्जत्) निरन्तर सरल करता है वैसे दुष्टो को (पर्यवर्त्तयत्) छिन्न-भिन्न करता हुआ शत्रुओ का हनन करके (नरि) मनुष्यो में श्रेष्ठों का (धत्ते) धारण करता है वह राजा होने को योग्य होता है ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे सूर्य मेघ का धारण, हनन और वर्षा के समुद्र को भरता है वैसे सभापति लोग विद्या, न्याययुक्त प्रजा के पालन का धारण करके अविद्या अन्याययुक्त दुष्टो का ताडन करके सबके हित के लिए सुखसागर को पूर्ण भरें ॥९॥

फिर वे कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा दादृहाणं चिद्बिभिदुर्वि पर्वतम् ।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे ॥१०॥

पदार्थ—जैसे (मरुतः) वायु (ओजसा) बल से (अवतम्) रक्षणादि का निमित्त (दादृहाणम्) बढ़ाने के योग्य (पर्वतम्) मेघ को (बिभिदुः) विदीर्ण करते और (ऊर्ध्वम्) ऊँचे को (नुनुद्रे) ले जाते हैं वैसे जो (वाणम्) वाण से लेके शस्त्रास्त्र समूह को (धमन्तः) कँपाते हुए (सुदानवः) उत्तम पदार्थ के दान करनेहारे (सोमस्य) उत्पन्न हुए जगत् के मध्य मे (मदे) हर्ष मे (रण्यानि) संग्रामो मे उत्तम साधनो को (विचक्रिरे) करते हैं (ते) वे राजाओ के (चित्) समान होते है ॥१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । मनुष्य लोग इस जगत् मे जन्म पा विद्या, शिक्षा का ग्रहण और वायु के समान कर्म्म करके सुखो को भोगें ॥ १० ॥

फिर वे किसके लिए क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशासिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे ।
आ गच्छन्तीमवसा चित्रभानवः कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः ॥११॥

पदार्थ—जैसे दाता लोग (अवतम्) निम्नदेशस्थ (जिह्मम्) कुटिल (उत्सम्) कूप को खोदके (तृष्णजे) तृषायुक्त (गोतमाय) बुद्धिमान् पुरुष को (ईम्) जल से (असिञ्चन्) तृप्त करके (तया, दिशा) उस अभीष्ट दिशा से (नुनुद्रे) उसकी तृषा को दूर कर देते हैं जैसे (चित्रभानवः) विविध प्रकाश के आधार प्राणों के समान (धामभिः) जन्म, नाम और स्थानों से (विप्रस्य) विद्वान् के (अवसा) रक्षण से (कामम्) कामना को (तर्पयन्त) पूर्ण करते और सब ओर से सुख को (आगच्छन्ति) प्राप्त होते हैं वैसे उत्तम मनुष्यो को होना चाहिए ॥ ११ ॥

भावार्थ—जैसे मनुष्य कूप को खोद खेत वा बगीचे आदि को सींचके उसमें उत्पन्न हुए अन्न और फलादि से प्राणियो को तृप्त करके सुखी करते हैं वैसे ही सभाध्यक्ष आदि लोग वेदशास्त्रो मे विशारद विद्वानों को कामो से पूर्ण करके

इनसे विद्या, उत्तम शिक्षा और धर्म का प्रचार कराके सब प्राणियों को आनन्दित करें ॥ ११ ॥

फिर उनसे मनुष्यों को क्या-क्या आशा करनी चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि ।
अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम् ॥१२॥१०॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष आदि मनुष्यो ! तुम लोग (मरुतः) वायु के समान (वः) तुम्हारे (या) जो (त्रिधातूनि) वात, पित्त, कफयुक्त शरीर अथवा लोहा, सोना, चाँदी आदि धातुयुक्त (शर्म) घर (सन्ति) हैं (तानि) उन्हें (शशमानाय) विज्ञानयुक्त (दाशुषे) दाता के लिए (अधियच्छत) देओ और (अस्मभ्यम्) हमारे लिए भी वैसे घर (वियन्त) प्राप्त करो। हे (वृषणः) सुख की वृष्टि करनेहारे (नः) हमारे लिए (सुवीरम्) उत्तम वीर की प्राप्ति करनेहारे (रयिम्) धन को (अधित्त) धारण करो ॥ १२ ॥

भावार्थ—समाध्यक्षादि लोगों को योग्य है कि सुख दुःख की अवस्था में सब प्राणियों को अपने आत्मा के समान मानके सुख, धनादि से युक्त करके पुत्रवत् पालें और प्रजा सेना के मनुष्यों को योग्य है कि उनका सत्कार पिता के समान करें ॥ १२ ॥

इस सूक्त मे वायु के समान सभाध्यक्ष राजा और प्रजा के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की सगति पूर्व सूक्तार्थ के साथ समझनी चाहिए ॥

यह पिचासीवां सूक्त और दसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ दशर्चस्य षडशीतितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषिः । मरुतो देवता । १, ४, ८, ६ गायत्री; २, ३, ७ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री । ५, ६, १० निचृद्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह गृहस्थ कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः ।
स सुगोपातमो जनः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (विमहसः) नाना प्रकार के पूजनीय कर्मों के कर्त्ता (दिवः) विद्यान्यायप्रकाशक तुम लोग (मरुतः) वायु के समान विद्वान् जन (यस्य) जिसके घर मे (पाथ) रक्षक हो (स हि) वही (सुगोपातमः) अच्छे प्रकार (जनः) मनुष्य होवे ॥ १ ॥

भावार्थ—जैसे प्राण के विना शरीरादि का रक्षण नहीं हो सकता वैसे सत्योपदेशकर्त्ता के विना प्रजा की रक्षा नहीं होती ॥ १ ॥

यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम् । मरुतः शृणुता हवम् ॥२॥

पदार्थ—हे (यज्ञवाहसः) सत्सङ्गरूप प्रिय यज्ञो को प्राप्त करनेवाले विद्वानो ! तुम लोग (मरुतः) वायु के समान (यज्ञैः) अपने (वा) पराये पढ़ने-पढ़ाने और उपदेशरूप यज्ञो से (विप्रस्य) विद्वान् (वा) वा (मतीनाम्) बुद्धिमानो के (हवम्) परीक्षा के योग्य पठन-पाठनरूप व्यवहार को (शृणुत) सुना कीजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यो को योग्य है कि जानने-जनाने वा क्रियाओ से सिद्ध यज्ञो से युक्त होकर अन्य मनुष्यो को युक्त करा यथावत् परीक्षा करके विद्वान् करना चाहिए ॥ २ ॥

उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत । स गन्ता गोमति व्रजे ॥३॥

पदार्थ—(वाजिनः) उत्तम विज्ञानयुक्त विद्वानो ! तुम (यस्य) जिस क्रियाकुशल विद्वान् (वा) पढ़ानेहारे के समीप से विद्या को प्राप्त हुए (विप्रम्) विद्वान् को (अन्वतक्षत) सूक्ष्म प्रज्ञायुक्त करते हो (सः) वह (गोमति) उत्तम इन्द्रिय विद्या प्रकाशयुक्त (व्रजे) प्राप्त होने के योग्य मार्ग में (उत) भी (गन्ता) प्राप्त होवे ॥ ३ ॥

भावार्थ—तीव्र बुद्धि और शिल्प विद्या सिद्ध विमानादि यानो के विना मनुष्य देशदेशान्तर मे सुख से जाने-आने को समर्थ नहीं हो सकते उस कारण अति पुरुषार्थ से विमानादि यानो को यथावत् सिद्ध करें ॥ ३ ॥

फिर उन शिक्षित मनुष्यों से क्या होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अस्य वीरस्य बर्हिषि सुतः सोमो दिविष्टिषु । उक्थं मदश्च शस्यते ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! आपके सुशिक्षित (अस्य) इस (वीरस्य) वीर का (सुतः) सिद्ध किया हुआ (सोम) ऐश्वर्य (दिविष्टिषु) उत्तम इष्टिरूप कर्मों से सुखयुक्त व्यवहारो में (उक्थम्) प्रशंसित वचन (बर्हिषि) उत्तम व्यवहार के करने में (मदः) आनन्द (च) और सद्विद्यादि गुणों का समूह (शस्यते) प्रशंसित होता है अन्य का नहीं ॥ ४ ॥

भावार्थ—विद्वानों की शिक्षा के विना मनुष्यो में उत्तम गुण उत्पन्न नहीं होते इससे इसका अनुष्ठान नित्य करना चाहिए ॥ ४ ॥

फिर वे क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अस्य श्रोषन्त्वा भुवो विश्वा यश्चर्षणीरभि । सूरं चित्सस्रुषीरिषः ॥५॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग (अस्य) इस सुशिक्षित विद्वान् के (इव, चित्) समान (विश्वाः) सब (सस्रुषीः) प्राप्त होने के योग्य (आभुवः) सब ओर से सुखयुक्त (चर्षणीः) मनुष्यरूप प्रजा को जैसे किरणें (सूरम्) सूर्य को प्राप्त होती हैं वैसे (अभिश्रोषन्तु) सब ओर से सुनो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अच्छी शिक्षा से युक्त अच्छे प्रकार परीक्षित शुभ लक्षण युक्त सम्पूर्ण विद्याओं का वेत्ता, दृढाङ्ग, अतिबली, पढ़ानेहारा, श्रेष्ठ सहाय से सहित, पुरुषार्थी, धार्मिक विद्वान् है वही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त होता है इससे विरुद्ध मनुष्य नहीं ॥ ५ ॥

हम सब मिलके क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

पूर्वीभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम् । अवोभिश्चर्षणीनाम् ॥६॥

पदार्थ—हे (मरुतः) सभाध्यक्ष आदि सज्जनो ! जैसे तुम लोग (पूर्वीभिः) प्राचीन सनातन (शरद्भिः) सब ऋतु वा (अवोभिः) रक्षा आदि अच्छे-अच्छे व्यवहारो से (चर्षणीनाम्) सब मनुष्यों के सुख के लिए अच्छे प्रकार अपना बर्त्ताव वर्त्त रहे हो वैसे (हि) निश्चय से (वयम्) हम प्रजा, सभा और पाठशालास्थ आदि प्रत्येक शाला के पुरुष आप लोगो को सुख (ददाशिम) देवें ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सब ऋतु मे ठहरने वाले वायु प्राणियो की रक्षा कर उनको सुख पहुँचाते हैं वैसे ही विद्वान् लोग सबके सुख के लिए प्रवृत्त हो, न कि किसी के दुःख के लिए ॥ ६ ॥

उनकी रक्षा और शिक्षा पाया हुआ मनुष्य कैसा होता है इस विषय को कहा है—

सुभगः स प्रयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यः । यस्य प्रयांसि पर्षथ ॥७॥

पदार्थ—हे (प्रयज्यवः) अच्छे-अच्छे यज्ञादि कर्म करनेवाले (मरुतः) सभाध्यक्ष आदि विद्वानो ! तुम (यस्य) जिसके लिए (प्रयांसि) अत्यन्त प्रीति करने योग्य मनोहर पदार्थों को (पर्षथ) परसते अर्थात् देते हो (सः) वह (मर्त्यः) मनुष्य (सुभगः) श्रेष्ठ धन और ऐश्वर्ययुक्त (अस्तु) हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जिन मनुष्यों के सभाध्यक्ष आदि विद्वान् रक्षा करनेवाले हैं वे क्योंकर सुख और ऐश्वर्य्य को न पावें ॥ ७ ॥

उनके सङ्ग से मनुष्य को क्या जानना चाहिए यह अगले मन्त्र में कहा है—

शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः । विदा कामस्य वेनतः ॥८॥

पदार्थ—हे (नरः) मनुष्यो ! तुम सभाध्यक्षादिकों के सग (वा) पुरुषार्थ से (शशमानस्य) जानने योग्य (सत्यशवसः) जिसमें नित्य पुरुषार्थ करना हो (वेनतः) जो सब शास्त्रो से सुना जाता हो तथा कामना के योग्य और (स्वेदस्य) पुरुषार्थ से सिद्ध होता है उस (कामस्य) काम को (विद) जानो अर्थात् उसको स्मरण से सिद्ध करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—कोई पुरुष विद्वानों के सग के विना सत्य काम और अच्छे बुरे को जान नहीं सकता इससे सबको विद्वानो का सग करना चाहिए ॥ ८ ॥

अब और मनुष्यों को उन सभाध्यक्ष आदि मनुष्यों से कैसे प्रार्थना करनी चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यूयं तत्सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना । विध्यता विद्युता रक्षः ॥६॥

पदार्थ—हे (सत्यशवसः) नित्य बलयुक्त सभाध्यक्ष आदि सज्जनो ! (यूयम्) तुम (महित्वना) उत्तम यश से (तत्) उस काम को (आविः) प्रकट (कर्त) करो कि जिससे (विद्युता) बिजुली के लोहे से बनाये हुए अस्त्र वा आग्नेयादि अस्त्रो के समूह से (रक्षः) खोटे काम करनेवाले दुष्ट मनुष्यों को (विध्यत) ताड़ना देते हुए मेरी सब कामना सिद्ध हों ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि परस्पर प्रीति और पुरुषार्थ के साथ विद्युत् आदि पदार्थविद्या और अच्छे-अच्छे गुणो को पाकर दुष्ट स्वभावी और दुर्गुणी मनुष्यो को दूरकर नित्य अपनी कामना सिद्ध करें ॥ ६ ॥

फिर वे क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम् ।
ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ॥ १० ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (सत्यशवसः) नित्य बलयुक्त सभाध्यक्ष आदि सज्जनो ! जैसे तुम (महित्वना) अपने उत्तम यश से (गुह्यम्) गुप्त करने योग्य व्यवहार को (गूहत) ढाँपो और (विश्वम्) समस्त (तमः) अविद्या रूपी अन्धकार को जो (अत्रिणम्) उत्तम सुख का विनाश करने वाला है उसको (वि+यात) दूर पहुँचाओ तथा हम लोग (यत्) जो (ज्योतिः) विद्या के प्रकाश को (उश्मसि) चाहते हैं उसको (कर्त्त) प्रकट करो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में 'मरुत', सत्यशवसः, महित्वना' इन तीनो पदो की अनुवृत्ति है। सभाध्यक्षादि को परमपुरुषार्थ से निरन्तर राज्य की रक्षा करनी तथा अविद्यारूपी अन्धकार और शत्रुजन दूर करने चाहिए तथा विद्या, धर्म और सज्जनों के सुखों का प्रचार करना चाहिए ॥ १० ॥

इस सूक्त मे जैसे शरीर मे ठहरनेहारे प्राण आदि पवन चाहे हुए सुखो को सिद्ध कर सबकी रक्षा करते हैं वैसे ही सभाध्यक्षादिकों को चाहिए कि समस्त राज्य की यथावत् रक्षा करें ॥

इस अर्थ के वर्णन से इस सूक्त में कहे हुए अर्थ की उस पिछले सूक्त के अर्थ के साथ एकता जाननी चाहिए ॥

यह छियासीवां सूक्त और बारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथास्य षडृचस्य सप्ताशीतितमस्य सूक्तस्य राहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः । मरुतो देवताः । १, २, ५ विराड्जगती, ३ जगती, ६ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ४ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वर ः ॥

अब सतासीवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में पूर्वोक्त सभाध्यक्ष कैसे होते हैं यह उपदेश किया है—

प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनोऽनानता अविथुरा ऋजीषिणः ।
जुष्टतमासो नृतमासो अञ्जिभिर्व्यानज्रे के चिदुस्रा इव स्तृभिः ॥१॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष आदि सज्जनो ! आप लोगों को (के, चित्) उन लोगों की प्रतिदिन रक्षा करनी चाहिए जोकि अपनी सेनाओं में (स्तृभिः) शत्रुओं को लज्जित करने के गुणों से (अञ्जिभिः) प्रकट रक्षा और उत्तम ज्ञान आदि व्यवहारों के साथ वर्त्ताव रखने और (उस्रा इव) जैसे सूर्य की किरण जल को छिन्न-भिन्न करती हैं वैसे (प्रत्वक्षसः) शत्रुओं को अच्छे प्रकार छिन्न-भिन्न करते हैं तथा (प्रतवस) प्रबल जिनके सेनाजन (विरप्शिन) समस्त पदार्थों के विज्ञान से महानुभाव (अनानता) कभी शत्रुओं के सामने न दीन हुए और (अविथुराः) न कम्पे हो (ऋजीषिण) समस्त विद्याओं को जाने और उत्कर्षयुक्त सेना के अङ्गों को इकट्ठे करें (जुष्टतमास) राजा लोगो ने जिनकी बार-बार चाहना कभी हो (नृतमास) सब कार्यों को यथायोग्य व्यवहार में अत्यन्त वर्त्तने वाले हो (व्यानज्रे) शत्रुओं के बलों को अलग करें उन का सत्कार किया करो ॥ १ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य की किरणें तीव्र प्रतापवाली हैं वैसे प्रबल प्रतापवाले मनुष्य जिन के समीप हैं क्योंकर उन की हार हो। इस से सभाध्यक्ष आदिको को उक्त लक्षणवाले पुरुष अच्छी शिक्षा, सत्कार और उत्साह देकर रखने चाहिए बिना ऐसा किये कोई राज्य नही कर सकते हैं ॥ १ ॥

सभाध्यक्ष के काम वाले मनुष्य क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं वय इव मरुतः केन चित्पथा ।
श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥२॥

पदार्थ—हे (मरुत) सभा आदि कामों में नियत किये हुए मनुष्यो ! तुम (उपह्वरेषु) प्राप्त हुए टेढ़े-सूधे भूमि आकाशादि मार्गों मे (रथेषु) विमान आदि रथों पर बैठ (वय इव) पक्षियो के समान (केनचित) किसी (पथा) मार्ग से (यत्) जिस (ययिम्) प्राप्त होने योग्य विजय को (अचिध्वम्) सम्पादन करो, जाओ-आओ उस को (अर्चते) जिस का सत्कार करते और सभा आदि कामों के अधीश जिस को प्यारे हैं उस के लिए देखो जो (वः) तुम्हारे रथ (कोशाः) मेघों के समान आकाश में (श्चोतन्ति) चलते हैं उन मे (मधुवर्णम्) मधुर और निर्मल जल (घृतम्) जल को (उप+आ+उक्षत) अच्छे प्रकार उपसिक्त करो अर्थात् उन रथों के आग और पवन के कलघरों के समीप अच्छे प्रकार छिडको ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्यो को चाहिए कि विमान आदि रथ बनाकर उन मे आग, पवन और जल के घरो मे आग, पवन, जल धरकर कलो से उनको चलाकर उन की भाप रोक रथो को ऊपर ले जाएं जैसे कि पखेरू वा मेघ जाते हैं वैसे आकाश मार्ग से अभीष्ट स्थान को जा-आकर व्यवहार से धन और युद्ध सर्वथा जीत वा राज्यधन को प्राप्त होकर उन धन आदि पदार्थो से परोपकार कर निरभिमानी होकर सब प्रकार के आनन्द पावें और उन आनन्दों को सब के लिए पहुँचावें ॥ २ ॥

फिर वे क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे ।
ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः ॥३॥

पदार्थ—(यत्) जो (क्रीळय) अपने सत्य चालचलन को वर्त्तते हुए (धुनयः) शत्रुओं को कम्पावें (भ्राजदृष्टय) ऐसे तीव्र शस्त्रों वाले (धूतयः) जो कि युद्ध की क्रियाओं मे विचरते वे वीर (शुभे) श्रेष्ठ विजय के लिए (अज्मेषु) सग्रामों में (प्र+युञ्जते) प्रयुक्त अर्थात् प्रेरणा को प्राप्त होते हैं (ते) वे (महित्वम्) बड़प्पन जैसे हो वैसे (स्वयम्) आप (ह) ही (पनयन्त) व्यवहारों को करते हैं (एषाम्) इन के (यामेषु) उन मार्गों में कि जिन मे मनुष्य आदि प्राणी जाते हैं चलते हुए रथो मे (भूमिः) धरती (विथुरा+इव+एजते) ऐसी कम्पती है कि मानो शीतज्वर से पीड़ित लड़की कम्पे ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है। जैसे शीघ्र चलने वाले वृक्ष पवन तृण ओषधि और धूलि को कम्पाते हैं वैसे ही वीरो की सेना के रथो के पहियो के प्रहार से धरती और उनके शस्त्रो की चोटो से डरनेहारे मनुष्य कम्पा करते हैं और जैसे व्यापार वाले मनुष्य व्यवहार से धन को पाकर बड़े धनाढ्य होते है वैसे ही सभा आदि कामो के अधीश शत्रुओं के जीतने से अपना बड़प्पन और प्रतिष्ठा विख्यात करते है ॥ ३ ॥

फिर सेनायुक्त सेना का अधीश वीर कैसा होता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

स हि स्वसृत्पृषदश्वो युवा गणो३ या ईशानस्तविषीभिरावृतः ।
असि सत्य ऋणयावानेद्योऽस्या धियः प्राविताथा वृषा गणः ॥४॥

पदार्थ—हे सेनापते ! (सः) (हि) वही तू (यया) जिस से सब विद्या जानी जाती हैं उस बुद्धि से युक्त (वृषा) शीतल, मन्द, सुगन्धिपन से सुखरूपी वर्षा करने मे समर्थ (गण) पवनो के समान वेग-बलयुक्त (स्वसृत्) अपने लोगों को प्राप्त होनेवाला (पृषदश्वः) वा मेघ के वेग के समान जिसके घोड़े हैं (युवा) तथा जवानी को पहुँचा हुआ (गणः) अच्छे सज्जनों मे गिनती करने के योग्य (ईशानः) परिपूर्णसामर्थ्य युक्त (सत्य) सज्जनों में सीधे स्वभाव वा (ऋणयावा) दूसरो का ऋण चुकानेवाला (अनेद्यः) प्रशंसनीय और (अस्याः) इस (धियः) बुद्धि वा कर्म की (प्राविता) रक्षा करनेहारा (तविषीभिः) परिपूर्ण बलयुक्त सेनाओ से (आवृत) युक्त (असि) है (अथ) इसके अनन्तर हम लोगो के सत्कार करने योग्य भी है ॥ ४ ॥

भावार्थ—ब्रह्मचर्य्य और विद्या परिपूर्ण शारीरिक और आत्मिक बल युक्त अपनी सेना से रक्षा को प्राप्त सेनापति सेना की निरन्तर रक्षा करके शत्रुओं को जीतके प्रजा का पालन करे ॥ ४ ॥

फिर वे क्या करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा ।
यदीमिन्द्रं शम्यृक्वाण आशतादिन्नामानि यज्ञियानि दधिरे ॥५॥

(ऋक्वाण) प्रशसित स्तुतियो वाले हम लोग (प्रत्नस्य) पुरातन अनादि (पितु) पालनेहारे जगदीश्वर की व्यवस्था से अपने कर्म्म के अनुसार पाये हुए मनुष्य देह के (जन्मना) जन्म से (सोमस्य) प्रकट ससार के (चक्षसा) दर्शन मे जिन (यज्ञियानि) शिल्प आदि कर्मों के योग्य (नामानि) जलों को (वदामसि) तुम्हारे प्रति उपदेश करे वा (यत्) जो (ईम्) प्राप्त होने योग्य (इन्द्रम्) बिजुली, अग्नि के तेज को (शमि) कर्म के निमित्त (जिह्वा) जीभ वा वाणी (प्रजिगाति) स्तुति करती है उन सब को तुम लोग (आशत) प्राप्त होओ और (आत्+इत्) उसी समय इन को (दधिरे) सब लोग धारण करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि इस मनुष्य देह को पाकर पितृभाव से परमेश्वर की आज्ञापालनरूप प्रार्थना, उपासना और परमेश्वर का उपदेश संसार के पदार्थ और उनके विशेष ज्ञान से उपकारों को लेकर अपने जन्म को सफल करें ॥५॥

फिर वे क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिः सुखादयः ।
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ॥६॥

पदार्थ—जो (भानुभिः) दिन-दिन से (कम्) सुख को (श्रियसे) सेवन करने के लिए (ते) वे (प्रियस्य) प्रेम उत्पन्न करानेवाले (मारुतस्य) कला के पवन वा प्राणवायु के (धाम्न) घर से विद्या वा जल को (सम्+मिमिक्षिरे) अच्छे प्रकार छिड़कना चाहते हैं (ते) वे शिल्पविद्या के जाननेवाले होते हैं तथा जो (रश्मिभि) अग्निकिरणों से सुख के सेवन के लिए कलाओं से यानो को चलाते हैं वे शीघ्र एक स्थान से दूसरे स्थान का (विद्रे) लाभ पाते हैं (ऋक्वभिः) जिन मे प्रशसनीय स्तुति विद्यमान है उन से जो सुख के सेवन करने के लिए (सुखादय) अच्छे-अच्छे पदार्थों के भोजन करनेवाले होते हैं (ते) वे आरोग्यपन को पाते हैं (वाशीमन्त) प्रशसित जिन की वाणी वा (इष्मिण) विशेष ज्ञान हैं वे (अभीरव) निर्भय पुरुष प्रेम उत्पन्न करनेहारे प्राणवायु वा कलाओं के पवन के घर से युद्ध मे प्रवृत्त होते हैं वे विजय को प्राप्त होते हैं ॥६॥

भावार्थ—जो मनुष्य प्रतिदिन सृष्टिपदार्थविद्या को पा अनेक उपकारों को ग्रहण कर उस विद्या के पढ़ने और पढ़ाने से वाचाल अर्थात् बात-चीत मे कुशल हो और शत्रुओ को जीतकर अच्छे आचरण मे वर्त्तमान होते हैं वे ही सदा सुखी होते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त मे राजा-प्रजाओ के कर्त्तव्य काम कहे हैं इस कारण इस सूक्त के अर्थ से पिछले सूक्त के अर्थ की सगति है यह जानना चाहिए ॥

यह सतासीवां सूक्त और तेरहवां वर्ग भी पूरा हुआ ॥

卐

अथास्य षडृचस्याष्टाशीतितमस्य सूक्तस्य राहूगणपुत्रो गोतम ऋषि । मरुतो देवताः । १ पङ्क्तिः, २ भुरिक्पङ्क्तिः, ५ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वर ॥ ३ निचृत्त्रिष्टुप्, ४ विराट्त्रिष्टुप् छन्द । धैवतः स्वर. । ६ निचृद्बृहती छन्द. । मध्यम स्वर ॥

अब छः मन्त्रों वाले अठासीवें सूक्त का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र से फिर भी सभाध्यक्ष आदि का उपदेश किया है—

आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः ।
आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः ॥१॥

पदार्थ—हे (सुमायाः) उत्तम बुद्धिवाले (मरुतः) सभाध्यक्ष वा प्रजा पुरुषो ! तुम (नः) हमारे (वर्षिष्ठया) अत्यन्त बुढ़ापे से (इषा) उत्तम अन्न आदि पदार्थों (स्वर्कै) श्रेष्ठ विचारवाले विद्वानो (ऋष्टिमद्भिः) तारविद्या मे चलाने के अर्थ दण्डे और शस्त्रास्त्र (अश्वपर्णैः) अग्नि आदि पदार्थ रूपी घोड़ों के गमन के साथ वर्त्तमान (विद्युन्मद्भि) जिन मे कि तार बिजली है उन (रथेभिः) विमान आदि रथों से (वयः) पक्षियो के (न) समान (पप्तत) उड़ जाओ (आ) उड़ आओ (यात) जाओ (आ) आओ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है। मनुष्यो को चाहिए कि जैसे पखेरू ऊपर नीचे आके चाहे हुए एक स्थान से दूसरे स्थान को सुख से जाते हैं वैसे अच्छे प्रकार सिद्ध किये हुए तारविद्यायुक्त प्रयोग से चलाये हुए विमान आदि यानों से आकाश और भूमि वा जल में अच्छे प्रकार जा-आके अभीष्ट देशों को सुख से जा-आके अपने कार्य्यों को सिद्ध करके निरन्तर सुख को प्राप्त हों ॥ १ ॥

उक्त कार्यों से वे क्या पाते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तेऽरुणेभिर्वरमा पिशङ्गैः शुभे कं यान्ति रथतूर्भिरश्वैः ।

रुक्मो न चित्रः स्वधितीवान् पव्या रथस्य जङ्घनन्त भूम ॥२॥

पदार्थ—जैसे कारीगरी को जाननेहारे विद्वान् लोग (शुभे) उत्तम व्यवहार के लिए (अरुणेभिः) अच्छे प्रकार अग्नि के ताप से लाल (पिशङ्गैः) वा अग्नि और जल के संयोग की उठी हुई भाफों से कुछेक श्वेत (रथतूर्भिः) जो कि विमान आदि रथों को चलानेवाले अर्थात् अति शीघ्र उन को पहुँचाने के कारण आग और पानी की कलों के घररूपी (अश्वैः) घोड़े हैं उन के साथ (रथस्य) विमान आदि रथ की (पव्या) वज्र के तुल्य पहियों की धार से (स्वधितिवान्) प्रशंसित वज्र से अन्तरिक्ष वायु को काटने (रुक्मः) और उत्तेजना रखनेवाले (चित्रः) शूरता, धीरता, बुद्धिमत्ता आदि गुणों से अद्भुत मनुष्य के (न) समान मार्ग को (जङ्घनन्त) हनन करते और देश-देशान्तर को जाते-आते हैं (ते) वे (वरमा) उत्तम (कम्) सुख को (यान्ति) चारों ओर से प्राप्त होते हैं वैसे हम भी (भूम) इस को करके आनन्दित होवें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्त और उपमालङ्कार हैं। जैसे शूरवीर अच्छे शस्त्र रखनेवाला पुरुष वेग से जाकर शत्रुओं को मारता है वैसे मनुष्य वेगवाले रथों पर बैठ देश-देशान्तर को जा-आके शत्रुओं को जीतते हैं ॥ २ ॥

अब सभाध्यक्षादिकों को उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

श्रिये कं वो अधि तनूषु वाशीर्मेधा वना न कृणवन्त ऊर्ध्वा ।

युष्मभ्यं कं मरुतः सुजातास्तुविद्युम्नासो धनयन्ते अद्रिम् ॥३॥

पदार्थ—हे (मरुतः) सभाध्यक्षादि सज्जनो ! जो (वः) तुम्हारे (तनूषु) शरीरों में (श्रिये) लक्ष्मी के लिए (कम्) सुख (ऊर्ध्वा) अच्छे सुख को प्राप्त करनेवाली (वाशीः) वेदवाणी (मेधा) शुद्ध बुद्धियों को (वना) ऊंचे-ऊंचे बनैले पेड़ों के (न) समान (अधि + कृणवन्ते) अधिकृत करते हैं अर्थात् उनके आचरण के लिए अधिकार देते हैं। हे (सुजाताः) विद्यादि श्रेष्ठ गुणों में प्रसिद्ध उक्त सज्जनो ! जो (तुविद्युम्नासः) बहुत विद्या प्रकाशों वाले महात्मा जन (युष्मभ्यम्) तुम लोगों के लिए (कम्) अत्यन्त सुख जैसे हो वैसे (अद्रिम्) पर्वत के समान (धनयन्ते) बहुत धन प्रकाशित कराते हैं, वे तुम लोगों को सदा सेवन करने योग्य हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे मेघ वा कूप जल से सिंचे हुए वन और उपवन, बाग-बगीचे अपने फलों से प्राणियों को सुखी करते हैं वैसे विद्वान् लोग विद्या और अच्छी शिक्षा द्वारा अपने परिश्रम के फल से सब मनुष्यों को सुख देते हैं ॥ ३ ॥

अहानि गृध्राः पर्या व आगुरिमां धियं वार्कार्यां च देवीम् ।

ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्कैरूर्ध्वं नुनुद्र उत्सधिं पिबध्यै ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (गृध्राः) सब प्रकार से अच्छी अभिकाङ्क्षा करनेवाले (गोतमासः) अत्यन्त ज्ञानवान् सज्जन (ब्रह्म) धन, अन्न और वेद का पठन (कृण्वन्तः) करते हुए (अर्कैः) वेदमन्त्रों से (अहानि) दिनों दिन (ऊर्ध्वम्) उत्कर्षता से (पिबध्यै) पीने के लिए (उत्सधिम्) जिस भूमि में कुएं नियत किये जावें उसके समान (आ+नुनुद्रे) सर्वथा उत्कर्ष होने के लिए (वः) तुम्हारे सामने होकर प्रेरणा करते हैं वे (वार्कार्याम्) जल के तुल्य निर्मल होने के योग्य (देवीम्) प्रकाश को प्राप्त होती हुई (इमाम्) इस (धियम्) धारणवती बुद्धि (च) और धन को (परि+आ+अगुः) सब कहीं से अच्छे प्रकार प्राप्त होके, अन्य को प्राप्त कराते हैं वे सदा सेवा के योग्य हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे ज्ञान गौरव चाहने वालो ! जैसे मनुष्य प्यास बुझाने आदि प्रयोजनों के लिए परिश्रम के साथ कुंआ, बावरी, तलाव आदि खुदवाकर अपने कामों का सिद्ध करते हैं वैसे आप लोग अत्यन्त पुरुषार्थ और विद्वानों के सङ्ग से विद्या के अभ्यास को जैसा चाहिए वैसा करके समस्त विद्या से प्रकाशित उत्तम बुद्धि को पाकर उसके अनुकूल क्रिया को सिद्ध करो ॥ ४ ॥

विद्वान् मनुष्यों को क्या-क्या शिक्षा दे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

एतत्त्यन्न योजनमचेति सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः ।

पश्यन् हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान्विधावतो वराहून् ॥५॥

पदार्थ—हे (मरुतः) मनुष्यो ! तुम (गोतमः) विद्वान् के (न) तुल्य (वः) विद्या का ज्ञान चाहनेवाले तुम लोगों को (यत्) जो (योजनम्) जोड़ने योग्य विमान आदि यान (हिरण्यचक्रान्) जिनके पहियों में सोने का काम वा अति चमक-दमक हो उन (अयोदंष्ट्रान्) बड़ी लोहे की कीलोंवाले (वराहून्) अच्छे शब्दों को करने (विधावतः) न्यारे-न्यारे मार्गों को चलनेवाले विमान आदि रथों को (एतत्) प्रत्यक्ष (पश्यन्) देखके (ह) ही (सस्वः) उपदेश करता है (त्यत्) वह उसका उपदेश किया हुआ तुम लोगों को (अचेति) चेत कराता है उसको तुम जानके मानो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे अगली-पिछली बातों को जाननेवाला विद्वान् अच्छे-अच्छे काम करके आनन्द भोगता है वैसे आप लोग भी विद्या से सिद्ध हुए कामों को करके सुखों को भोगो ॥ ५ ॥

अब विद्या ज्ञान चाहने वाला पुरुष उनमें कैसे वर्त्तकर क्या ग्रहण करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

एषा स्या वो मरुतोऽनुभर्त्री प्रति ष्टोभति वाघतो न वाणी ।

अस्तोभयद् वृथासामनु स्वधां गभस्त्योः ॥६॥१४॥

पदार्थ—हे (मरुतः) मनुष्यो ! तुम लोगों की जो (एषा) यह कही हुई वा (स्या) कहने को है वह (अनुभर्त्री) इष्टसुख धारण करानेहारी (वाणी) वाक् (वाघतः) ऋतु-ऋतु में यज्ञ करने-करानेहारे विद्वान् के (न) समान विद्याओं का (प्रति+ष्टोभति) प्रतिबन्ध करती अर्थात् प्रत्येक विद्या को स्थिर करती हुई (आसाम्) विद्या के कामों की (गभस्त्योः) भुजाओं में (अनु स्वधाम्) अपने साधारण सामर्थ्य के अनुकूल प्रतिबन्ध करती है तथा (वृथा) झूठ व्यवहारों को (अस्तोभयत्) रोक देती है इस वाणी को आप लोगों से हम सुनें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे ऋतु-ऋतु में यज्ञ करानेवाले की वाणी यज्ञ कामों का प्रकाश कर दोषों को निवृत्त करती है वैसे ही विद्वानों की वाणी विद्याओं का प्रकाश कर अविद्या को निवृत्त करती है। इसलिए सब मनुष्यों को विद्वानों के सङ्ग का निरन्तर सेवन करना चाहिए ॥६॥

इस सूक्त में मनुष्यों को विद्यासिद्धि के लिए पढ़ने-पढ़ाने की रीति प्रकाशित की है इससे इसके अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है ॥

卐

अथास्यैकोननवतितमस्य दशर्चस्य सूक्तस्य रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः । विश्वे देवा देवता । १, ५ निचृज्जगती, २, ३, ७ जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ४ भुरिक् त्रिष्टुप्, ८ विराट् त्रिष्टुप्, ९, १० त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ६ स्वराड् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब नवासीवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से सब विद्वान् लोग कैसे हों और सचारी मनुष्यों के साथ कैसे अपना वर्ताव करें यह उपदेश किया है—

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।

देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥१॥

पदार्थ—(यथा) जैसे जो (विश्वतः) सब ओर से (भद्राः) सुख करने और (क्रतवः) अच्छी क्रिया वा शिल्पयज्ञ में बुद्धि रखनेवाले (अदब्धासः) अहिंसक (अपरीतासः) न त्याग के योग्य (उद्भिदः) अपने उत्कर्ष से दुःखों का विनाश करनेवाले (अप्रायुवः) जिनकी उमर का वृथा नाश होना प्रतीत न हो (देवाः) ऐसे दिव्यगुणवाले विद्वान् लोग जैसे (नः) हम लोगों को (सदम्) विज्ञान घर को (आ, यन्तु) अच्छे प्रकार पहुँचावें वैसे (दिवेदिवे) प्रतिदिन (नः) हमारे (वृधे) सुख के बढ़ाने के लिए (रक्षितारः) रक्षा करनेवाले (इत्) ही (असन्) हों ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे श्रेष्ठ, सब ऋतुओं में सुख देने योग्य घर सब सुख पहुंचाता है वैसे ही विद्वान् लोग, विद्या और शिल्पयज्ञ सुख करनेवाले होते हैं, यह जानना चाहिए ॥ १ ॥

सब मनुष्यों को विद्वानों से क्या-क्या पाना चाहिए यह अगले मन्त्र में कहा है—

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो नि वर्तताम् ।

देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे ॥२॥

पदार्थ—(वयम्) हम लोग (ऋजूयताम्) अपने को कोमलता चाहते हुए (देवानाम्) विद्वान् लोगों की (भद्रा) सुख करनेवाली (सुमतिः) श्रेष्ठ बुद्धि वा अपने को निरभिमानता चाहनेवाले (देवानाम्) दिव्य गुणों की (रातिः) विद्या का दान और अपने को सरलता चाहते हुए (देवानाम्) दया से विद्या की वृद्धि करना चाहते हैं उन विद्वानों का सुख देनेवाला (सख्यम्) मित्रपन है यह सब (नः) हमारे लिए (अभि, नि, वर्त्तताम्) सम्मुख नित्य रहे। और उक्त समस्त व्यवहारों को (उप, सेदिम) प्राप्त हों और उक्त जो (देवाः) विद्वान् लोग हैं वे (नः) हम लोगों के (जीवसे) जीवन के लिए (आयुः) उमर को (प्र, तिरन्तु) अच्छी शिक्षा से बढ़ावें ॥ २ ॥

भावार्थ—उत्तम विद्वानों के सङ्ग और ब्रह्मचर्य आदि नियमों के विना किसी के शरीर और आत्मा का बल नहीं बढ़ सकता इसमें सबको चाहिए कि इन विद्वानों का सङ्ग नित्य करें और जितेन्द्रिय रहें ॥ २ ॥

मनुष्य किस से किन्हें पाकर विश्वासयुक्त पदार्थ में विश्वास करें यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् ।

अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (वयम्) हम लोग (पूर्वया) सनातन (निविदा) वेदवाणी जिससे सब प्रकार से निश्चित किये हुए पदार्थों को प्राप्त होते हैं उससे कहे हुए वा जिनको कहेंगे (तान्) उन सब विद्वानों को वा (अस्रिधम्) अहिंसक अर्थात् जो हिंसा नहीं करता उस (भगम्) ऐश्वर्य युक्त (मित्रम्) सबका मित्र (अदितिम्) समस्त विद्याओं का प्रकाश (दक्षम्) और उनकी चतुराइयों वाला विद्वान् (अर्यमणम्) न्यायकारी (वरुणम्) उत्तम गुणयुक्त दुष्टों का बन्धनकर्त्ता (सोमम्) सृष्टि के क्रम से सब पदार्थों का निचोड़ करनेवाला

तथा जो शान्तचित्त है उस (अश्विना) विद्या के पढ़ने-पढ़ाने का काम रखनेवाले वा जल और आग दो-दो पदार्थों को (हूमहे) स्तुति करते हैं और जो संग से उत्पन्न हुई (सरस्वती) विद्या और (सुभगा) श्रेष्ठ शिक्षा से युक्त वाणी (नः) हम लोगों को (मयः) सुख (करत्) करें वैसे तुम भी करो और वाणी तुम्हारे लिए भी वैसे कहें ॥ ३ ॥

भावार्थ—कोई भी वेदोक्त लक्षणों के विना विद्वान् और मूर्खों के लक्षण जान नहीं सकता और न उनके विना विद्या और श्रेष्ठ शिक्षा से सिद्ध की हुई वाणी सुख करनेवाली हो सकती है इससे सब मनुष्य वेदार्थ के विशेष ज्ञान से विद्वान् और मूर्खों के लक्षण जानकर, विद्वानों का सग कर, मूर्खों का सग छोड़के समस्त विद्या वाले हों ॥ ३ ॥

फिर वे क्या करें यह अगले मन्त्र में कहा है—

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः ।

तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥४॥

पदार्थ—हे (धिष्ण्या) शिल्पविद्या के उपदेश करने और (अश्विना) पढ़ने पढ़ाने वालो ! (युवम्) तुम दोनों जो (शृणुतम्) सुनो (तत्) उस (मयोभु) सुखदायक उत्तम (भेषजम्) सब दुःखों को दूर करनेहारी ओषधि को (नः) हम लोगों के लिए (वातः) पवन के तुल्य वैद्य (वातु) प्राप्त करे वा (पृथिवी) विस्तारयुक्त भूमि जो (माता) माता के समान मान-सम्मान देने की निदान है वह (तत्) उस मान करनेहारे जिससे कि अत्यन्त सुख होता और समस्त दुःख की निवृत्ति होती है ओषधि को प्राप्त करावे वा (द्यौः) प्रकाशमय सूर्य्य (पिता) पिता के तुल्य जो रक्षा का निदान है वह (तत्) उस रक्षा करानेहारे जिससे कि समस्त दुःख की निवृत्ति होती है ओषधि को प्राप्त करे वा (सोमसुतः) ओषधियों का रस जिनसे निकाला जाए (तत्) वह कर्म तथा (ग्रावाणः) मेघ आदि पदार्थ (तत्) जो उनसे रस का निकालना वा जो (मयोभुवः) सुख के करानेहारे उक्त पदार्थ हैं वे (तत्) उस क्रियाकुशलता और अत्यन्त दुःख की निवृत्ति कराने वाले ओषधि को प्राप्त करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—शिल्पविद्या की उन्नति करनेवाले जो उसके पढ़ने-पढ़ानेवाले विद्वान् हैं वे जितना पढ़के समझें उतना अर्थ सबके सुख के लिए नित्य प्रकाशित करें जिससे हम लोग ईश्वर की सृष्टि के पवन आदि पदार्थों से अनेक उपकार लेकर सुखी हों ॥ ४ ॥

मनुष्यों को सर्वविद्या के प्रकाश करनेवाले जगदीश्वर की आश्रयता, स्तुति, प्रार्थना और उपासना करके सब विद्या की सिद्धि के लिए अत्यन्त पुरुषार्थ करना चाहिए यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम् ।

पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥५॥१६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (यथा) जैसे (पूषा) पुष्टि करनेवाला परमेश्वर (नः) हम लोगों के (वेदसाम्) विद्या आदि धनों की (वृधे) वृद्धि के लिए (रक्षिता) रक्षा करनेवाला (स्वस्तये) सुख के लिए (अदब्धः) अहिंसक अर्थात् जो हिंसा में प्राप्त न हुआ हो (पूषा) सब प्रकार की पुष्टि का दाता और (पायुः) सब प्रकार से पालना करनेवाला (असत्) होवे वैसे तू हो जैसे (वयम्) हम (अवसे) रक्षा के लिए (तम्) उस सृष्टि का प्रकाश करने (जगतः) जङ्गम और (तस्थुषः) स्थावर-मात्र जगत् के (पतिम्) पालनेहारे (धियम्) समस्त पदार्थों का चिन्तनकर्त्ता (जिन्वम्) सुखों से तृप्त करने (ईशानम्) समस्त सृष्टि की विद्या के विधान करनेहारे ईश्वर को (हूमहे) आवाहन करते हैं वैसे तू भी कर ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि वैसा अपना व्यवहार करें जैसा ईश्वर के उपदेश के अनुकूल हो, और जैसे ईश्वर सबका अधिपति है वैसे मनुष्यों को भी सदा उत्तम विद्या और शुभ गुणों की प्राप्ति और अच्छे पुरुषार्थ से सब पर आधिपत्य सिद्ध करना चाहिए और जैसे ईश्वर विज्ञानमय पुरुषार्थयुक्त, सब सुखों को देनेवाला, संसार की उन्नति और सबकी रक्षा करनेवाला, सब के सुख के लिए प्रवृत्त हो रहा है वैसे ही मनुष्यों को भी होना चाहिए ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यों को किस प्रकार ईश्वर की प्रार्थना करके किस की इच्छा करनी चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥६॥

पदार्थ—(वृद्धश्रवाः) संसार में जिसकी कीर्त्ति वा अन्न आदि सामग्री अति उन्नति को प्राप्त है वह (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (नः) हम लोगों के लिए (स्वस्ति) शरीर के सुख को (दधातु) धारण करावे (विश्ववेदाः) जिसको संसार का विज्ञान और जिसका सब पदार्थों में स्मरण है वह (पूषा) पुष्टि करनेवाला परमेश्वर (नः) हम लोगों के लिए (स्वस्ति) धातुओं की समता के सुख को धारण करावे जो (अरिष्टनेमिः) दुःखों का वज्र के तुल्य विनाश करनेवाला (तार्क्ष्यः) और जानने के योग्य परमेश्वर है वह (नः) हम लोगों के लिए (स्वस्ति) इन्द्रियों की शान्तिरूप सुख को धारण करावे और जो (बृहस्पतिः) वेदवाणी का प्रभु परमेश्वर है वह (नः) हम लोगों को (स्वस्ति) विद्या से आत्मा के सुख को धारण करावे ॥ ६ ॥

भावार्थ—ईश्वर की प्रार्थना और अपने पुरुषार्थ के विना किसी को शरीर, इन्द्रिय और आत्मा का परिपूर्ण सुख नहीं होता इससे उसका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिए ॥ ६ ॥

फिर ईश्वर की उपासना करने वाले मनुष्यों को कैसा होना चाहिए यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।

अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ॥७॥

पदार्थ—हे (शुभंयावानः) जो श्रेष्ठ व्यवहार की प्राप्ति कराने (अग्निजिह्वाः) और अग्नि को हवनयुक्त करनेवाले (मनवः) विचारशील (सूरचक्षसः) जिनके प्राण और सूर्य में प्रसिद्ध वचन वा दर्शन हैं (पृषदश्वाः) सेना में रग-बिरग घोड़ों से युक्त पुरुष (विदथेषु) जो कि सग्राम वा यज्ञों में (जग्मयः) जाते हैं वे (विश्वे) समस्त (देवाः) विद्वान् लोग (इह) इस ससार में (नः) हम लोगों को (अवसा) रक्षा आदि व्यवहारों के साथ (पृश्निमातरः) आकाश से उत्पन्न होनेवाले (मरुतः) पवनों के तुल्य (आ+अगमन्) आवें, प्राप्त हुआ करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे बाहर और भीतर के पवन सब प्राणियों के सुख के लिए प्राप्त होते हैं वैसे विद्वान् लोग सबके सुख के लिए प्रवृत्त होवें ॥ ७ ॥

मनुष्यों को ऐसा करके क्या-क्या करना चाहिए यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (यजत्राः) सगम करनेवाले (देवाः) विद्वानो ! आप लोगों के संग से (तनूभिः) बढ़े हुए बलो वाले शरीर (स्थिरैः) दृढ़ (अङ्गैः) पुष्ट शिर आदि अङ्ग वा ब्रह्मचर्य्यादि नियमों से (तुष्टुवांसः) पदार्थों के गुणों की स्तुति करते हुए हम लोग (कर्णेभिः) कानों से (यत्) जो (भद्रम्) कल्याणकारक पढ़ना-पढ़ाना है उसको (शृणुयाम) सुनें-सुनावें (अक्षभिः) बाहरी, भीतरली आँखों से जो (भद्रम्) शरीर और आत्मा का सुख है उसको (पश्येम) देखें इस प्रकार उक्त शरीर और अङ्गों से जो (देवहितम्) विद्वानों की हित करने वाली (आयुः) अवस्था है उसको (वि, अशेम) बार-बार प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

भावार्थ—विद्वान्, आप्त और सज्जनों के सग के विना कोई सत्य-विद्या का वचन, सत्य-दर्शन और सत्य-व्यवहारमय अवस्था को नहीं पा सकता और न इनके विना किसी का शरीर और आत्मा दृढ़ हो सकता है इससे सब मनुष्यों को यह उक्त व्यवहार वर्त्तना योग्य है ॥ ८ ॥

फिर विद्वान् लोग विद्यार्थियों के साथ कैसे वर्त्तें यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।

पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥९॥

पदार्थ—हे (अन्ति) विद्या आदि सुख साधनों से जीनेवाले (देवाः) विद्वानो ! तुम जिस सत्य व्यवहार में (तनूनाम्) अपने शरीरों के (शतम्) सौ (शरदः) वर्ष (जरसम्) वृद्धापन का (चक्र) व्यतीत कर सको (यत्र) जहाँ (नः) हमारे (मध्या) मध्य में (पुत्रासः) पुत्र लोग (इत्) ही (पितरः) अवस्था और विद्या से युक्त वृद्ध (नु) शीघ्र (भवन्ति) होते हैं उस (आयुः) जीवन को (गन्तोः) प्राप्त होने को प्रवृत्त हुए (नः) हम लोगों को शीघ्र (मा रीरिषत) नष्ट मत कीजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—जिस विद्या में बालक भी वृद्ध होते वा जिस शुभ आचरण में वृद्धावस्था होती है वह सब व्यवहार विद्वानों के सग से ही हो सकता है विद्वानों को चाहिए कि यह उक्त व्यवहार सबको प्राप्त करावें ॥ ९ ॥

अब हम विद्वानों के संग से क्या-क्या सेवने और जानने योग्य है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।

विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥१०॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको चाहिए कि (द्यौः) प्रकाशयुक्त परमेश्वर वा सूर्य्य आदि प्रकाशमय पदार्थ (अदितिः) अविनाशी (अन्तरिक्षम्) आकाश (अदितिः) अविनाशी (माता) मा वा विद्या (अदितिः) अविनाशी (सः) वह (पिता) उत्पन्न करने वा पालनेहारा पिता (सः) वह (पुत्रः) औरस अर्थात् निज विवाहित पुरुष से उत्पन्न वा क्षेत्रज अर्थात् नियोग करके दूसरे से क्षेत्र में हुआ वा विद्या से उत्पन्न पुत्र (अदितिः) अविनाशी है तथा (विश्वे) समस्त (देवाः) विद्वान् वा दिव्य गुणवाले पदार्थ (अदितिः) अविनाशी हैं (पञ्च) पाँचों ज्ञानेन्द्रिय और (जनाः) जीव भी (अदितिः) अविनाशी हैं इस प्रकार जो कुछ (जातम्) उत्पन्न हुआ वा (जनित्वम्) होनेहारा है वह सब (अदितिः) अविनाशी अर्थात् नित्य है ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में कारणरूप वा प्रवाहरूप से सब पदार्थ नित्य मानकर दिव् आदि पदार्थों की अदिति संज्ञा है। जहाँ-जहाँ वेद में अदिति शब्द पढ़ा है वहाँ-वहाँ प्रकरण की अनुकूलता से दिव् आदि पदार्थों में से जिस-जिस की योग्यता हो उस-उस का ग्रहण करना चाहिए। ईश्वर, जीव और प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण इनके अविनाशी होने से इनकी भी अदिति संज्ञा है ॥ १० ॥

इस सूक्त में विद्वान्, विद्यार्थी और प्रकाशमय पदार्थों का विश्वे देव पद के अन्तर्गत होने से वर्णन किया है इससे इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है ऐसा जानना चाहिए ॥

यह नवासीवां सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त हुआ—

卐

अथास्य नवर्चस्य नवतितमस्य सूक्तस्य रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । १, ८, पिपीलिकमध्या निचृद्गायत्री, २, ७ गायत्री । ३ पिपीलिकामध्या विराड्गायत्री, ४ विराड् गायत्री, ५, ६ निचृद् गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः । ९ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब नव्वेवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में फिर वह विद्वान् मनुष्यों से कैसे वर्त्ताव करे यह उपदेश किया है—

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् । अर्यमा देवैः सजोषाः ॥१॥

पदार्थ—जैसे परमेश्वर धार्मिक मनुष्यों को धर्म प्राप्त कराता है वैसे (देवैः) दिव्य गुण, कर्म और स्वभाववाले विद्वानों से (सजोषा) समान प्रीति करनेवाला (वरुणः) श्रेष्ठ गुणों मे वर्त्तने (मित्र) सबका उपकारी और (अर्यमा) न्याय करनेवाला (विद्वान्) धर्मात्मा, सज्जन, विद्वान् (ऋजुनीति) सीधी नीति से (नः) हम लोगों को धर्मविद्यामार्ग को (नयतु) प्राप्त करावें ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । परमेश्वर वा आप्त मनुष्य सत्यविद्या के ग्राहक स्वभाववाले पुरुषार्थी मनुष्य को उत्तम धर्म और उत्तम क्रियाओं को प्राप्त कराता है, और को नहीं ॥ १ ॥

फिर वे विद्वान् कैसे बनें और क्या करें यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

ते हि वस्वो वसवानास्ते अप्रमूरा महोभिः । व्रता रक्षन्ते विश्वाहा ॥२॥

पदार्थ—(ते) वे पूर्वोक्त विद्वान (वसवानाः) अपने गुणों से सबको ढांपते हुए (हि) निश्चय से (महोभिः) प्रशंसनीय गुण और कर्मों से (विश्वाहा) सब दिनों में (वस्वः) धन आदि पदार्थों की (रक्षन्ते) रक्षा करते हैं तथा जो (अप्रमूरा) मूढत्वप्रमादरहित धार्मिक विद्वान् हैं (ते) वे प्रशंसनीय गुण, कर्मों से सब दिन (व्रता) सत्यपालन आदि नियमों को रखते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—विद्वानों के विना किसी से धन और धर्मयुक्त आचार रक्खे नहीं जा सकते । इसलिए सब मनुष्यों को नित्य विद्याप्रचार करना चाहिए जिससे सब मनुष्य विद्वान् होके धार्मिक हों ॥ २ ॥

ते अस्मभ्यं शर्म यंसन्नमृता मर्त्येभ्यः । बाधमाना अप द्विषः ॥३॥

पदार्थ—जो (द्विषः) दुष्टों को (अप, बाधमानाः) दुर्गति के साथ निवारण करते हुए (अमृताः) जीवनमुक्त विद्वान् हैं (ते) वे (मर्त्येभ्य, अस्मभ्यम्) अस्मदादि मनुष्यों के लिए (शर्म) सुख (यसन्) देवें ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों से शिक्षा को पाकर खोटे स्वभाव-वालों को दूरकर नित्य आनन्दित हों ॥ ३ ॥

फिर वे कैसे वर्त्तें यह उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

वि नः पथः सुविताय चियन्त्विन्द्रो मरुतः । पूषा भगो वन्द्यासः ॥४॥

पदार्थ—जो (इन्द्रः) विद्या और ऐश्वर्ययुक्त वा (पूषा) दूसरे का पालनपोषण करनेवाला (भग) और उत्तम भाग्यशाली (वन्द्यासः) स्तुति और सत्कार करने योग्य (मरुतः) मनुष्य हैं वे (नः) हम लोगों को (सुविताय) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए (पथः) उत्तम मार्गों को (वि, चियन्तु) नियत कर ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों से ऐश्वर्य, पुष्टि और सौभाग्य पाकर उस सौभाग्य की योग्यता को औरों को भी प्राप्त करावें ॥ ४ ॥

फिर वे क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उत नो धियो गोअग्राः पूषन् विष्णवेवयावः ।
कर्त्ता नः स्वस्तिमतः ॥ ५ ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे (पूषन्) विद्या और उत्तम शिक्षा से पोषण करने वा (विष्णो) समस्त विद्याओं में व्यापक होने (एवयावः) वा जिससे सब व्यवहार हो उस अगाध बोध को प्राप्त होनेवाले विद्वान् लोगो ! तुम (नः) हम लोगो के लिए (गोअग्राः) इन्द्रिय अग्रगामी जिनमे हों उन (धियः) उत्तम बुद्धि वा उत्तम कर्मों को (कर्त्त) प्रसिद्ध करो (उत) उसके पश्चात् (नः) हम लोगो को (स्वस्तिमतः) सुखयुक्त करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—पढ़नेवालों को चाहिए कि पढ़ानेवाले जैसी विद्या की शिक्षा करें वैसे उसका ग्रहण कर अच्छे विचार से नित्य उन्नति करें ॥ ५ ॥

विद्या से क्या उत्पन्न होता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः ।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे पूर्ण विद्यावाले विद्वानो ! जैसे तुम्हारे लिए और (ऋतायते) अपने को सत्य व्यवहार चाहनेवाले पुरुष के लिए (वाता) वायु (मधु) मधुरता और (सिन्धवः) समुद्र वा नदियां (मधु) मधुर गुण को (क्षरन्ति) वर्षा करती हैं । वैसे (नः) हमारे लिए (ओषधीः) सोमलता आदि औषधि (माध्वी) मधुर गुण के विशेष ज्ञान करानेवाली (सन्तु) हों ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे पढ़ानेवालो ! तुम और हम ऐसा अच्छा यत्न करें कि जिससे सृष्टि के पदार्थों से समग्र आनन्द के लिए विद्या से उपकारों को ग्रहण कर सकें ॥ ६ ॥

फिर हम किसके लिए किस पुरुषार्थ को करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे (नः) हम लोगों के लिए (नक्तम्) रात्रि (मधु) मधुर (उषस) दिन मधुर गुणवाले (पार्थिवम्) पृथिवी में (रजः) अणु और त्रसरेणु आदि छोटे-छोटे भूमि के कणके (मधुमत्) मधुर गुणों से युक्त, सुख करनेवाले (उत) और (पिता) पालन करनेवाली (द्यौः) सूर्य्य की कान्ति (मधु) मधुरगुण वाली (अस्तु) हो वैसे तुम लोगो के लिए भी हो ॥७॥

भावार्थ—पढ़ानेवाले लोगो से जैसे मनुष्यो के लिए पृथिवीस्थ पदार्थ आनन्ददायक हों वैसे सब मनुष्यो को गुण, ज्ञान और हस्तक्रिया से विद्या का उपयोग करना चाहिए ॥ ७ ॥

फिर हम लोगों को किस लिए विद्या का अनुष्ठान करना चाहिए—

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे (नः) हम लोगो के लिए (मधुमान्) जिस मे प्रशसित मधुर सुख है ऐसा (वनस्पति) वनों मे रक्षा के योग्य वट आदि वृक्षों का समूह वा मेघ और (सूर्य) ब्रह्माण्डों में स्थिर होनेवाला सूर्य वा शरीरों मे ठहरनेवाला प्राण (मधुमान्) जिसमें मधुर गुणों का प्रकाश है ऐसा (अस्तु) हो तथा (नः) हम लोगों के हित के लिए (गावः) सूर्य की किरणें (माध्वी) मधुर गुणवाली (भवन्तु) होवें वैसी तुम लोग हमको शिक्षा करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् लोगो ! आओ तुम और हम मिलके ऐसा पुरुषार्थ करें कि जिससे हम लोगो के सब काम सिद्ध होवें ॥ ८ ॥

फिर ईश्वर और विद्वान् लोग मनुष्यों के लिए क्या-क्या करते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्य्यमा ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥९॥१८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हमारे लिए (उरुक्रम) जिसके बहुत पराक्रम हैं वह (मित्रः) सबका सुख करनेवाला (नः) हम लोगो के लिए (शम्) सुखकारी वा जिसके बहुत पराक्रम हैं वह (वरुण) सब में अति उन्नति वाला हम लोगो के लिए (शम्) शान्ति सुख का देनेवाला वा जिसके बहुत पराक्रम हैं वह (अर्य्यमा) न्याय करनेवाला (नः) हम लोगों के लिए (शम्) आरोग्य सुख का देनेवाला जिसके बहुत पराक्रम हैं वह (बृहस्पतिः) महत् वेदविद्या का पालने वाला वा जिसके बहुत पराक्रम हैं वह (इन्द्र) परमैश्वर्य देनेवाला (नः) हम लोगो के लिए (शम्) ऐश्वर्य सुखकारी वा जिसके बहुत पराक्रम हैं वह (विष्णुः) सब गुणों मे व्याप्त होनेवाला परमेश्वर तथा उक्त गुणोंवाला विद्वान्, सज्जन पुरुष (नः) हम लोगो के लिए पूर्वोक्त सुख और (शम्) विद्या मे सुख देनेवाला (भवतु) हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—परमेश्वर के समान मित्र, उत्तम न्याय का करनेवाला ऐश्वर्य्यवान् बड़े-बड़े पदार्थों का स्वामी तथा व्यापक सुख देनेवाला और विद्वान् के समान प्रेम उत्पादन करने, धार्मिक सत्य व्यवहार वर्त्तने, विद्या आदि धनों को देने और विद्या पालनेवाला शुभ गुण और सत्कर्मों में व्याप्त महापराक्रमी कोई नहीं हो सकता । इससे सब मनुष्यो को चाहिए कि परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, निरन्तर विद्वानों की सेवा और संग करके नित्य आनन्द में रहें ॥ ९ ॥

इस सूक्त में पढ़ने-पढ़ानेवालों के और ईश्वर के कर्त्तव्य तथा उसके फल का कथन है इससे इस सूक्त के अर्थ के साथ पिछले सूक्त के अर्थ की संगति जाननी चाहिए ।

यह नव्वेवां सूक्त और अट्ठारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथास्य त्रयोविंशतिऋचस्यैकनवतितमस्य सूक्तस्य रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः । सोमो देवता । १, ३, ४ स्वराट् पङ्क्तिः, २ पङ्क्तिः, १८, २० भुरिक्पङ्क्तिः, २२ विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ५ पादनिचृद्गायत्री; ६, ८, ९, ११ निचृद्गायत्री, ७ वर्धमाना गायत्री, १०, १२ गायत्री, १३, १४ विराड्गायत्री, १५, १६ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री; च छन्दः । षड्जः स्वरः । १७ परोष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । १९, २१, २३ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब तेईस मन्त्र वाले इक्यानवें सूक्त का आरम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र मे सोम शब्द के अर्थ का उपदेश किया है—

त्वं सो॑म॒ प्र चि॑कि॒तो म॑नी॒षा त्वं रजि॑ष्ठ॒मनु॑ नेषि॒ पन्था॑म् ।

तव॒ प्रणी॑ती पि॒तरो॑ न इन्दो दे॒वेषु॒ रत्न॑मभजन्त॒ धीरा॑: ॥१॥

पदार्थ—हे (**इन्दो**) सोम के समान (**सोम**) समस्त ऐश्वर्य्ययुक्त (**त्वम्**) परमेश्वर वा अति उत्तम विद्वान् ! जिस (**मनीषा**) मन को वश मे रखनेवाली बुद्धि से (**चिकितः**) जानते हो वा (**तव**) आपकी (**प्रणीती**) उत्तम नीति से (**धीराः**) ध्यान और धैर्ययुक्त (**पितरः**) ज्ञानी लोग (**देवेषु**) विद्वान् वा दिव्य गुण, कर्म और स्वभावों मे (**रत्नम्**) अत्युत्तम धन को (**प्र, अभजन्त**) सेवते हैं उससे शान्तिगुणयुक्त आप (**नः**) हम लोगो को (**रजिष्ठम्**) अत्यन्त सीधे (**पन्थाम्**) मार्ग को (**अनु**) अनुकूलता मे (**नेषि**) पहुँचाते हो इससे (**त्वम्**) आप हमारे सत्कार के योग्य हो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालंकार है । जैसे परमेश्वर अथवा अत्यन्त उत्तम विद्वान्, अविद्या विनाश करके विद्या और धर्ममार्ग को पहुँचाता है, वैसे ही वैद्यकशास्त्र की रीति से सेवन किया हुआ सोम आदि ओषधियो का समूह सब रोगो का विनाश करके सुख पहुँचाता है ॥ १ ॥

परमेश्वर और विद्वान् कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—

त्वं सो॑म॒ क्रतु॑भिः सु॒क्रतु॑र्भू॒स्त्वं दक्षै॑: सु॒दक्षो॑ वि॒श्ववे॑दाः ।

त्वं वृषा॑ वृष॒त्वेभि॑र्महि॒त्वा द्यु॒म्नेभि॑र्द्यु॒म्न्य॑भवो नृ॒चक्षा॑: ॥२॥

पदार्थ—हे (**सोम**) शान्तिगुणयुक्त परमेश्वर वा उत्तम विद्वन् ! (**त्वम्**) आप (**क्रतुभिः**) उत्तम बुद्धि, कर्मों से (**सुक्रतुः**) श्रेष्ठ बुद्धिशाली वा श्रेष्ठ काम करनेवाले तथा (**दक्षैः**) विज्ञान आदि गुणो से (**सुदक्षः**) अति श्रेष्ठ ज्ञानी (**विश्ववेदाः**) और सब विद्या पाये हुए (**भूः**) होते हैं वा (**त्वम्**) आप (**महित्वा**) बडे-बडे गुणों वाले होने से (**वृषत्वेभिः**) विद्यारूपी सुखो की (**वृषा**) वर्षा और (**द्युम्नेभिः**) कीर्त्ति और चक्रवर्त्ति आदि राज्य धर्मों से (**द्युम्नी**) प्रशसित धनी (**नृचक्षाः**) मनुष्यो मे दर्शनीय (**अभवः**) होते हो । इससे (**त्वम्**) आप सबमे उत्तम उत्कर्षयुक्त हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालकार है । जैसे अच्छी रीति से सेवन किया हुआ सोम आदि ओषधियो का समूह बुद्धि, चतुराई, वीर्य और धनो को उत्पन्न करता है, वैसे ही अच्छी उपासना को प्राप्त हुआ ईश्वर वा अच्छी सेवा को प्राप्त हुआ विद्वान् उक्त बुद्धि आदि को उत्पन्न करता है ॥ २ ॥

राज्ञो॒ नु ते॒ वरु॑णस्य व्र॒तानि॑ बृ॒हद्ग॑भी॒रं तव॑ सोम॒ धाम॑ ।

शुचि॒ष्ट्वम॑सि प्रि॒यो न मि॒त्रो द॒क्षाय्यो॑ अर्य॒मेवा॑सि सोम ॥३॥

पदार्थ—हे (**सोम**) महा ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर वा विद्वन् ! जिससे (**त्वम्**) आप (**प्रियः**) प्रसन्न (**मित्रः**) मित्र के (**न**) तुल्य (**शुचिः**) पवित्र और पवित्रता करनेवाले (**असि**) हैं तथा (**अर्यमेव**) यथार्थन्याय करनेवाले के समान (**दक्षाय्यः**) विज्ञान करनेवाले (**असि**) हैं । हे (**सोम**) शुभ कर्म और गुणों मे प्रेरक (**वरुणस्य**) श्रेष्ठ (**राज्ञः**) सब जगत् के स्वामी वा विद्याप्रकाशयुक्त ! (**ते**) आपके (**व्रतानि**) सत्यप्रकाश करनेवाले काम हैं जिनमे (**तव**) आपका (**बृहत्**) बडा (**गभीरम्**) अत्यन्त गुणो से अथाह (**धाम**) जिसमे पदार्थ धरे जाएँ वह स्थान है इससे आप (**नु**) शीघ्र और सदा उपासना और सेवा करने योग्य है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेष और उपमालकार है । मनुष्य जैसे-जैसे इस सृष्टि मे, सृष्टि की रचना के नियमो मे ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभावो को देखके अच्छे-अच्छे यत्न करें वैसे-वैसे विद्या और सुख उत्पन्न होते है ॥ ३ ॥

या ते॒ धामा॑नि दि॒वि या पृ॑थि॒व्यां या पर्व॑ते॒ष्वोष॑धीष्व॒प्सु ।

तेभि॑र्नो॒ विश्वै॑: सु॒मना॒ अहे॑ळ॒न् राज॑न्त्सोम॒ प्रति॑ ह॒व्या गृ॑भाय ॥४॥

पदार्थ—हे (**सोम**) सबको उत्पन्न करनेवाले (**राजन्**) राजा ! (**ते**) आपके (**या**) जो (**धामानि**) नाम, जन्म और स्थान (**दिवि**) प्रकाशमय सूर्य्य आदि पदार्थ वा दिव्य व्यवहार मे वा (**या**) जो (**पृथिव्याम्**) पृथिवी मे वा (**या**) जो (**पर्वतेषु**) पर्वतो वा (**ओषधीषु**) ओषधियो वा (**अप्सु**) जलो मे हैं (**तेभिः**) उन (**विश्वैः**) सबसे (**अहेळन्**) अनादर न करते हुए (**सुमनाः**) उत्तम ज्ञानवाले आप (**हव्या**) देने-लेने योग्य कामो को (**नः**) हमको (**प्रति, गृभाय**) प्रत्यक्ष ग्रहण कराइए ॥ ४ ॥

भावार्थ—जैसे जगदीश्वर अपनी रची सृष्टि मे वेद के द्वारा इस सृष्टि के क्रमो को दिखाकर सब विद्याओ का प्रकाश करता है वैसे विद्वान् पढ़े हुए अग और उपाङ्ग सहित वेदो और हस्तक्रिया से कलाओ की चतुराई को दिखाकर सबको समस्त विद्याएँ ग्रहण करावें ॥ ४ ॥

फिर वह सोम कैसा है यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

त्वं सो॑मासि॒ सत्प॑ति॒स्त्वं राजो॒त वृ॑त्र॒हा । त्वं भ॒द्रो अ॑सि॒ क्रतु॑: ॥५॥

पदार्थ—हे (**सोम**) समस्त ससार के उत्पन्न करने वा सब विद्याओं के देनेवाले ! (**त्वम्**) परमेश्वर वा पाठशाला आदि व्यवहारो के स्वामी विद्वन् ! आप (**सत्पतिः**) अविनाशी जो जगत् कारण वा विद्यमान कार्य्य जगत् है उसके पालनेहारे (**असि**) हैं (**उत**) और (**त्वम्**) आप (**वृत्रहा**) दुःख देनेवाले दुष्टों के विनाश करनेहारे (**राजा**) सबके स्वामी, विद्या के अध्यक्ष हैं वा जिस कारण (**त्वम्**) आप (**भद्रः**) अत्यन्त सुख करनेवाले हैं वा (**क्रतुः**) समस्त बुद्धियुक्त वा बुद्धि देनेवाले (**असि**) हैं इसी से आप सब विद्वानो के सेवने योग्य हैं ॥ १ ॥ द्वितीय—(**सोम**) सब ओषधियो का गुणदाता सोम ओषधि (**त्वम्**) यह ओषधियों मे उत्तम (**सत्पतिः**) ठीक-ठीक पथ्य करनेवाले जनों की पालना करनेहारा है (**उत**) और (**त्वम्**) यह सोम (**वृत्रहा**) मेघ के समान दोषों का नाशक (**राजा**) रोगों के विनाश करने के गुणो का प्रकाश करनेवाला है वा जिस कारण (**त्वम्**) यह (**भद्रः**) सेवने के योग्य वा (**क्रतुः**) उत्तम बुद्धि का हेतु है इसीसे वह सब विद्वानो के सेवने के योग्य है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है । परमेश्वर, विद्वान्, सोमलता आदि ओषधियो का समूह ये समस्त ऐश्वर्य को प्रकाश करने, श्रेष्ठों की रक्षा करने और उनके स्वामी, दुःख का विनाश करने और विज्ञान के देनेहारे और कल्याणकारी है—ऐसा अच्छी प्रकार जानके सबको इनका सेवन करना योग्य है ॥ ५ ॥

त्वं च॑ सोम नो॒ वशो॑ जी॒वातुं॒ न म॑रामहे । प्रि॒यस्तो॑त्रो॒ वन॒स्पति॑: ॥६॥

पदार्थ—हे (**सोम**) श्रेष्ठ कामो मे प्रेरणा देनेवाले परमेश्वर वा श्रेष्ठ कामो मे प्रेरणा देता जो (**त्वम्**) सो यह (**च**) और आप (**नः**) हम लोगों के (**जीवातुम्**) जीवन को (**वशः**) वश होने के गुणों का प्रकाश करने वा (**प्रियस्तोत्रः**) जिनके गुणो का कथन प्रेम करने-कराने वाला है वा (**वनस्पतिः**) सेवनीय पदार्थों की पालना करनेहारे वा यह सोम जङ्गली ओषधियों में अत्यन्त श्रेष्ठ है इस व्यवस्था से इन दोनों को जानकर हम लोग शीघ्र (**न, मरामहे**) अकालमृत्यु और अनायास मृत्यु न पावें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालकार है । जो मनुष्य, ईश्वर की आज्ञा पालनेवाले विद्वानो और ओषधियों का सेवन करते हैं वे पूरी आयु पाते हैं ॥ ६ ॥

त्वं सो॑म म॒हे भगं॒ त्वं यून॑ ऋताय॒ते । दक्षं॑ दधासि जी॒वसे॑ ॥७॥

पदार्थ—हे (**सोम**) परमेश्वर वा सोम अर्थात् ओषधियों का समूह (**त्वम्**) विद्या और सौभाग्य के देनेहारे आप वा यह सोम (**ऋतायते**) अपने को विशेष ज्ञान की इच्छा करनेहारे (**महे**) अति उत्तम गुणयुक्त (**यूने**) ब्रह्मचर्य्य और विद्या से शरीर और आत्मा की तरुण अवस्था को प्राप्त हुए ब्रह्मचारी के लिए (**भगम्**) विद्या और धनराशि तथा (**त्वम्**) आप (**जीवसे**) जीने के अर्थ (**दक्षम्**) बल को (**दधासि**) धारण कराने से सबको चाहने योग्य हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालकार है । मनुष्यों को परमेश्वर, विद्वान् और ओषधियों के सेवन के बिना सुख सम्भव नही है, इससे यह अनुष्ठान सबको नित्य करने योग्य है ॥ ७ ॥

त्वं न॑: सोम वि॒श्वतो॒ रक्षा॑ राजन्नघाय॒तः ।

न रि॑ष्ये॒त् त्वाव॑तः॒ सखा॑ ॥८॥

पदार्थ—हे (**सोम**) सबके मित्र वा मित्रता देनेवाला (**त्वम्**) आप वा यह ओषधिसमूह (**विश्वतः**) समस्त (**अघायतः**) अपने को दोष की इच्छा करते हुए वा दोषकारी से (**नः**) हम लोगों की (**रक्ष**) रक्षा कीजिए वा यह ओषधि-राज रक्षा करता है, हे (**राजन्**) सबकी रक्षा का प्रकाश करनेवाले ! (**त्वावतः**) तुम्हारे समान पुरुष का (**सखा**) कोई मित्र (**न**) न (**रिष्येत्**) विनाश को प्राप्त होवे वा सबका रक्षक जो ओषधिगण इसके समान ओषधि का सेवनेवाला पुरुष विनाश को न प्राप्त होवे ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालकार है । मनुष्यो का इस प्रकार ईश्वर की प्रार्थना करके उत्तम यत्न करना चाहिए कि जिससे धर्म के छोडने और अधर्म के ग्रहण करने की इच्छा भी न उठे । धर्म और अधर्म की प्रवृत्ति मे मन की इच्छा ही कारण है, उसकी प्रवृत्ति और उसके रोकने से कभी धर्म का त्याग और अधर्म का ग्रहण उत्पन्न न हो ॥ ८ ॥

सोम किन से रक्षा करता है यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—

सोम॒ यास्ते॑ मयो॒भुव॑ ऊ॒तय॒: सन्ति॑ दा॒शुषे॑ । ताभि॑र्नोऽवि॒ता भ॑व ॥९॥

पदार्थ—हे (**सोम**) परमेश्वर ! (**याः**) जो (**ते**) आपकी वा सोम आदि ओषधिगण की (**मयोभुवः**) सुख को उत्पन्न करनेवाली (**ऊतयः**) रक्षा आदि क्रिया (**दाशुषे**) दानी मनुष्य के लिए (**सन्ति**) हैं (**ताभिः**) उनसे (**नः**) हम लोगो के (**अविता**) रक्षा आदि के करनेवाले (**भव**) हूजिए वा जो यह ओषधिगण होता है इनका उपयोग हम लोग सदा करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—जिन प्राणियो की परमेश्वर, विद्वान् और अच्छी सिद्ध की हुई ओषधि रक्षा करनेवाली होती हैं वे कहां से दुःख देखें ? ॥ ९ ॥

फिर सोम क्या करता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इ॒मं य॒ज्ञमि॒दं वचो॑ जुजुषा॒ण उ॒पाग॑हि ।

सोम॒ त्वं नो॑ वृ॒धे भ॑व ॥ १० ॥ २० ॥

पदार्थ—हे (**सोम**) परमेश्वर वा विद्वन् ! जिससे (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) विद्या की रक्षा करनेवाले वा शिल्प कर्मों से सिद्ध किये हुए यज्ञ को तथा (**इदम्**) इस विद्या और धर्मसयुक्त (**वचः**) वचन को (**जुजुषाणः**) प्रीति से सेवन करते हुए (**त्वम्**) आप (**उपागहि**) समीप प्राप्त होते है वा यह सोम आदि ओषधिगण समीप प्राप्त होता है (**नः**) हम लोगो की (**वृधे**) वृद्धि के लिए (**भव**) हूजिए वा उक्त ओषधिगण होवे ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालंकार है । जब विज्ञान से ईश्वर, सेवा तथा कृतज्ञता से विद्वान् और वैद्यकविद्या वा उत्तम क्रिया से ओषधियां मिलती हैं तब मनुष्यों को सब सुख प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

फिर वह सोम कैसा है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः । सुमृळीको न आ विश ॥११॥

पदार्थ—हे (सोम) जानने योग्य गुण, कर्म, स्वभावयुक्त परमेश्वर ! जिस कारण (सुमृळीकः) अच्छे सुख के करनेवाले वैद्य, आप और सोम आदि ओषधिगण (नः) हम लोगों को (आ, विश) प्राप्त हो इससे (त्वा) आपको और उस ओषधिगण को (वचोविदः) जानने योग्य पदार्थों को जानते हुए (वयम्) हम (गीर्भिः) विद्या से शुद्ध की हुई वाणियों से नित्य (वर्द्धयामः) बढ़ाते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालकार है । ईश्वर विद्वान् और ओषधिसमूह के तुल्य प्राणियों को कोई सुख देनेवाला नहीं है । इससे उत्तम शिक्षा और विद्याऽध्ययन से उक्त पदार्थों के बोध की वृद्धि करके मनुष्यों को नित्य उनका उपयोग करना चाहिए ॥ ११ ॥

गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः । सुमित्रः सोम नो भव ॥१२॥

पदार्थ—हे (सोम) परमेश्वर वा विद्वन् ! जिस कारण आप वा यह उत्तमौषध (नः) हम लोगों के (गयस्फानः) प्राणों के बढ़ाने वा (अमीवहा) अविद्या आदि दोषों तथा ज्वर आदि दुःखों के विनाश करने वा (वसुवित्) द्रव्य आदि पदार्थों के ज्ञान कराने वा (सुमित्रः) जिन से उत्तम कामों के करनेवाले मित्र होते हैं वैसे (पुष्टिवर्द्धनः) शरीर और आत्मा की पुष्टि को बढ़ानेवाले (भव) हूजिए वा यह ओषधिसमूह हम लोगों को यथायोग्य उक्त गुण देनेवाला होवे इससे आप और यह हम लोगों के सेवने योग्य हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालकार है । प्राणियों को ईश्वर और ओषधियों के सेवन और विद्वानों के सङ्ग के बिना रोगनाश बलवृद्धि, पदार्थों का ज्ञान, धन की प्राप्ति तथा मित्रमिलाप नहीं हो सकता इससे उक्त पदार्थों का यथायोग्य आश्रय और सेवा सब को करनी चाहिए ॥ १२ ॥

सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा । मर्य्य इव स्व ओक्ये ॥१३॥

पदार्थ—हे (सोम) परमेश्वर ! जिस कारण आप (नः) हम लोगों के (हृदि) हृदय में (न) जैसे (यवसेषु) खाने योग्य घास आदि पदार्थों मे (गावः) गौ रमती है वैसे वा जैसे (स्वे) अपने (ओक्ये) घर मे (मर्य्यइव) मनुष्य विरमता है वैसे (आ) अच्छे प्रकार (रारन्धि) रमिए वा ओषधिसमूह उक्त प्रकार से रमे, इससे सबके सेवन योग्य आप वा यह हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेष और दो उपमालकार हैं । हे जगदीश्वर ! जैसे प्रत्यक्षता से गौ और मनुष्य अपने भोजन करने योग्य पदार्थ वा स्थान में उत्साहपूर्वक रमण करते हैं वैसे हम लोगों के आत्मा मे प्रकाशित हूजिए, जैसे पृथिवी आदि कार्य्य पदार्थों मे प्रत्यक्ष सूर्य्य की किरणें प्रकाशमान होती हैं वैसे हम लोगों के आत्मा में प्रकाशमान हूजिए । इस मन्त्र में असम्भव होने से विद्वान् का ग्रहण नहीं किया ॥ १३ ॥

यः सोम सख्ये तव रारणद्देव मर्त्यः । तं दक्षः सचते कविः ॥१४॥

पदार्थ—हे (देव) दिव्य गुणों को प्राप्त करानेवाले वा अच्छे गुणों का हेतु (सोम) वैद्यराज विद्वान् वा यह उत्तम ओषधि ! (यः) जो (तव) आप वा इसके (सख्ये) मित्रपन वा मित्र के काम मे (दक्षः) शरीर और आत्मबलयुक्त (कविः) दर्शनीय वा अव्याहत प्रज्ञायुक्त (मर्त्यः) मनुष्य (रारणत्) सवाद करता और (सचते) सम्बन्ध रखता है (तम्) उस मनुष्य को सुख क्यों न प्राप्त होवे ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालकार है । जो मनुष्य परमेश्वर, विद्वान् वा उत्तम ओषधि के साथ मित्रता करते हैं वे विद्या को प्राप्त होके कभी दुःखभागी नहीं होते ॥ १४ ॥

उरुष्या णो अभिशस्तेः सोम नि पाह्यंहसः ।

सखा सुशेव एधि नः ॥ १५ ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे (सोम) रक्षा करने और (सुशेवः) उत्तम सुख देनेवाले (सखा) मित्र ! जो आप (अभिशस्तेः) सुखविनाश करनेवाले काम से (नः) हम लोगों को (उरुष्य) बचाओ वा (अंहसः) अविद्या तथा ज्वरादिरोग से हम लोगों की (नि) निरन्तर (पाहि) पालना करो और (नः) हम लोगों के सुख करनेवाले (एधि) होओ वह आप हम को सत्कार करने योग्य क्यों न होवें ॥ १५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों द्वारा अच्छी प्रकार सेवा किया हुआ वैद्य, उत्तम विद्वान्, समस्त अविद्या आदि राजरोगों से अलग कर उनको आनन्दित करता है । इस से यह सर्वदा संगम करने योग्य है ॥ १५ ॥

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।

भवा वाजस्य संगथे ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे (सोम) अत्यन्त पराक्रमयुक्त वैद्यक शास्त्र को जाननेहारे विद्वन् ! (ते) आप का (विश्वतः) सम्पूर्ण सृष्टि से (वृष्ण्यम्) वीर्य्यवानों में उत्पन्न पराक्रम है वह हम लोगों को (सम्+एतु) अच्छी प्रकार प्राप्त हो तथा आप (आप्यायस्व) उन्नति को प्राप्त और (वाजस्य) वेगवाली सेना के (संगथे) संग्राम मे रोगनाशक (भव) हूजिए ॥ १६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि विद्वान् और ओषधिगणों का सेवन कर बल और विद्या को प्राप्त हो समस्त सृष्टि की अत्युत्तम विद्याओं की उन्नति कर शत्रुओं को जीत और सज्जनों की रक्षा कर शरीर और आत्मा की पुष्टि निरन्तर बढ़ावें ॥ १६ ॥

आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः ।

भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे (मदिन्तम) अत्यन्त प्रशंसित आनन्दयुक्त (सोम) विद्या और ऐश्वर्य के देनेवाले ! जो (सुश्रवस्तमः) बहुश्रुत वा अच्छे अन्नादि पदार्थों से युक्त (सखा) आप मित्र हैं सो (नः) हम लोगों के (वृधे) उन्नति के लिए (भव) हूजिए और (विश्वेभिः) समस्त (अंशुभिः) सृष्टि के सिद्धान्तमार्गों से (आ) अच्छे प्रकार (प्यायस्व) वृद्धि को प्राप्त हूजिए ॥ १७ ॥

भावार्थ—जो उत्तम विद्वान् समस्त उत्तम ओषधिगण से सृष्टिक्रम की विद्याओं मे मनुष्यों का उन्नति करता है, उस का अनुगमन सब को करना चाहिए ॥१७॥

फिर वह क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।

आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥१८॥

पदार्थ—हे (सोम) ऐश्वर्य्य को पहुँचानेवाले विद्वन् ! (ते) आपके जो (वृष्ण्यानि) पराक्रमवाले (पयांसि) जल वा अन्न हम लोगों को (संयन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त हों और (अभिमातिषाहः) जिनसे शत्रुओं को सहैं वे (वाजाः) संग्राम (सम्) प्राप्त हों उनसे (दिवि) विद्याप्रकाश में (अमृताय) मोक्ष के लिए (आप्यायमानः) दृढ़ बलवाले आप वा उत्तम रस के लिए दृढ़ बलकारक ओषधिगण (उत्तमानि) अत्यन्त श्रेष्ठ (श्रवांसि) वचनों वा अन्नों को (संधिष्व) धारण कीजिए वा करता है ॥ १८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि विद्या और पुरुषार्थ से विद्वानों के संग ओषधियों के सेवन और पथ्य से जो-जो प्रशंसित कर्म, प्रशंसित गुण और श्रेष्ठ पदार्थ प्राप्त होते हैं उनका धारण और उनकी रक्षा तथा धर्म, अर्थ, कामों की सिद्धि कर मोक्ष की सिद्धि करें ॥ १८ ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम् ।

गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्य्यान् ॥१९॥

पदार्थ—हे (सोम) परमेश्वर वा विद्वन् ! (ते) आपके वा इस ओषधिसमूह के (या) जो (विश्वा) समस्त (धामानि) स्थान वा पदार्थ (हविषा) विद्यादान वा ग्रहण करने की क्रियाओं से (यज्ञम्) क्रियामय यज्ञ को (यजन्ति) संगत करते हैं (ता) वे सब (ते) आपके वा इस ओषधिसमूह के हम लोगों को प्राप्त हों जिससे आप (परिभूः) सबके ऊपर विराजमान होने (गयस्फानः) धन बढ़ाने और (प्रतरणः) दुःख से प्रत्यक्ष तारनेवाले (सुवीरः) उत्तम-उत्तम वीरों से युक्त (अवीरहा) अच्छी शिक्षा और विद्या से कायरों को भी सुख देनेवाले (अस्तु) हो इससे हम लोगों के (दुर्य्यान्) उत्तम स्थानों को (प्रचर) प्राप्त हूजिए ॥ १९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालकार है । कोई भी सृष्टि के पदार्थों के गुणों को बिन जाने उनसे उपकार नहीं ले सकता, इससे विद्वानों के संग से पृथिवी से लेकर ईश्वर पर्यन्त यथायोग्य सब पदार्थों को जानकर मनुष्यों को चाहिए कि क्रिया-सिद्धि सर्वदा करें ॥ १९ ॥

फिर वह क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति ।

सादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥२०॥२२॥

पदार्थ—(यः) जो सभाध्यक्ष आदि (अस्मै) इस धर्मात्मा पुरुष को (सादन्यम्) घर बनाने के योग्य सामग्री (विदथ्यम्) यज्ञ वा युद्धों में प्रशसनीय तथा (सभेयम्) सभा मे प्रशंसनीय सामग्री और (पितृश्रवणम्) ज्ञानी लोग जिससे सुने जाते हैं ऐसे व्यवहार को (ददाशत्) देता है वह (सोमः) सोम अर्थात् सभाध्यक्ष आदि सोमलतादि ओषधि के लिए (धेनुम्) वाणी को (आशुम्) शीघ्र गमन करनेवाले (अर्वन्तम्) अश्व को या (सोमः) उत्तम कर्मकर्त्ता सोम (कर्मण्यम्) अच्छे-अच्छे कामो से सिद्ध हुए (वीरम्) विद्या और शूरता आदि गुणों से युक्त मनुष्य को (ददाति) देता है ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालकार है । जैसे विद्वान् उत्तम शिक्षा को प्राप्त वाणी का उपदेश कर अच्छे पुरुषार्थ को प्राप्त होकर कार्यसिद्धि कराते हैं वैसे ही सोम ओषधियों का समूह श्रेष्ठ बल और पुष्टि को कराता है ॥ २० ॥

फिर वह कैसा है यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

अषाळ्हं युत्सु पृतनासु पप्रिं स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम् ।

भरेषुजां सुक्षितिं सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम ॥२१॥

पदार्थ—हे (सोम) सेना आदि कार्यों के अधिपति ! जैसे सोमलतादि ओषधिगण (युत्सु) संग्रामों में (अषाळ्हम्) शत्रुओं से तिरस्कार को न प्राप्त होने योग्य (पृतनासु) सेनाओं में (पप्रिम्) सब प्रकार की रक्षा करनेवाले (वृजनस्य)

पराक्रम के (गोपाम्) रक्षक (भरेषुजाम्) राज्यसामग्री के साधक प्राणों को बनवानेवाले (सुक्षितिम्) जिसके राज्य में उत्तम-उत्तम भूमि हैं (स्वर्षाम्) सबके सुखदाता (अप्साम्) जलों को देनेवाले (सुश्रवसम्) जिसके उत्तम यश वा वचन सुने जाते हैं (जयन्तम्) विजय के करनेवाले (त्वम्) आपको रोगरहित करके आनन्दित करता है वैसे उसको प्राप्त होकर हम लोग (अनुमदेम) अनुमोद को प्राप्त होवें ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपालंकार है । मनुष्यों को सब गुणों से युक्त सेनाध्यक्ष और समस्त गुण करनेवाले सोमलता आदि ओषधियों के विज्ञान और सेवन के विना कभी उत्तम राज्य और आरोग्यपन प्राप्त नहीं हो सकता इससे उक्त प्रबन्धो का आश्रय सबको करना चाहिए ॥ २१ ॥

त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।

त्वमा ततन्थोर्वं१न्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥२२॥

पदार्थ—हे (सोम) समस्त गुणयुक्त आरोग्यपन और बल के देनेवाले ईश्वर ! जिस कारण (त्वम्) आप (इमाः) प्रत्यक्ष (विश्वाः) समस्त (ओषधीः) रोगो का विनाश करनेवाली सोमलता आदि ओषधियो को (अजनय) उत्पन्न करते हो (त्वम्) आप (अपः) जलो (त्वम्) आप (गाः) इन्द्रियो और किरणो को प्रकाशित करते हो (त्वम्) आप (ज्योतिषा) विद्या और श्रेष्ठ शिक्षा के प्रकाश से (अन्तरिक्षम्) आकाश को (उरु) बहुत (आ) अच्छी प्रकार (ततन्थ) विस्तृत करते हो और (त्वम्) आप उक्त विद्या आदि गुणो से (तमः) अविद्या, निन्दित शिक्षा वा अन्धकार को (वि ववर्थ) स्वीकार नही करते इससे आप सब लोगो से सेवा करने योग्य हैं ॥ २२ ॥

भावार्थ—जिस ईश्वर ने नाना प्रकार की सृष्टि बनाई है वही सब मनुष्यो की उपासना के योग्य इष्टदेव है ॥ २२ ॥

देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागं सहसावन्नभि युध्य ।

मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ ॥२३॥२३॥

पदार्थ—हे (सहसावन्) अत्यन्त बलवान् (देव) दिव्यगुणसम्पन्न (सोम) सर्वविद्या और सेना के अध्यक्ष ! आप (देवेन) दिव्यगुणयुक्त (मनसा) विचार से (रायः) राज्यधन के लाभ को (अभि) शत्रुओं के सम्मुख (युध्य) युद्ध कीजिए जो आप (नः) हमारे लिए धन के (भागम्) भाग के (ईशिषे) स्वामी हो उस (त्वा) तुझको (गविष्टौ) इन्द्रिय और भूमि के राज्य के प्रकाशों की सङ्गतियो मे शत्रु (मा तनत्) पीडायुक्त न करें आप (वीर्यस्य) पराक्रम को (उभयेभ्यः) अपने और पराये योद्धाओं से (मा प्रचिकित्स) संशययुक्त मत हो ॥ २३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि परमोत्तम सेनाध्यक्ष और ओषधिगण का आश्रय और युद्ध में प्रवृत्ति कर उत्साह के साथ अपनी सेना को जोड और शत्रुओ की सेना का पराजय कर चक्रवर्त्ति राज्य के ऐश्वर्य को प्राप्त हो ॥ २३ ॥

इस सूक्त में पढ़ने-पढाने वालों आदि की विद्या के पढ़ने आदि कामो की सिद्धि करनेवाले सोम शब्द के अर्थ के कथन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह इक्यानवाँ सूक्त और तेईसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ।

卐

अथाऽष्टादशर्चस्य द्विनवतितमस्य सूक्तस्य राहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः । उषा देवता ।
१, २ निचृज्जगती, ३ जगती, ४ विराड् जगती छन्दः । निषाद स्वरः ।
५, ७, १२ विराट् त्रिष्टुप्, ६, १० निचृत्त्रिष्टुप्, ८, ९ त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः । ११ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।
१३ निचृत्परोष्णिक् , १४, १५ विराट्परोष्णिक्,
१६—१८ उष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब अठारह ऋचा वाले बानवे सूक्त का आरम्भ है । इस के प्रथम मन्त्र से उषस् शब्द के अर्थसम्बन्धी कामों का उपदेश किया है—

एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।

निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जो (एताः) देखे जाते (उ) और जो (त्याः) देखे नही जाते अर्थात् दूर देश मे वर्त्तमान हैं वे (उषसः) प्रातःकाल के सूर्य्य के प्रकाश (केतुम्) सब पदार्थों के ज्ञान को (अक्रत) कराते है जो (रजसः) भूगोल के (पूर्वे) आधे भाग मे (भानुम्) सूर्य के प्रकाश को (अञ्जते) पहुँचाती और (निष्कृण्वानाः) दिन-रात को सिद्ध करती हैं वे (आयुधानीव) जैसे वीरो की युद्ध विद्या से छोड़े हुए बाण आदि शस्त्र सूधे-तिरछे जाते-आते है वैसे (धृष्णवः) प्रगल्भता के गुणों को देने (अरुषीः) लालगुणयुक्त और (मातरः) माता के तुल्य सब प्राणियों का मान करनेवाली (प्रतिगावः) उस सूर्य के प्रकाश के प्रत्यागमन अर्थात् क्रम से घटने-बढ़ने से जगह-जगह मे (यन्ति) घटती-बढती से पहुँचती है उनको तुम लोग जानो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस सृष्टि मे सदैव सूर्य का प्रकाश भूगोल के आधे भाग को प्रकाशित करता है और आधे भाग मे अन्धकार रहता है । सूर्य के प्रकाश के विना किसी पदार्थ का विशेष ज्ञान नहीं होता । सूर्य की किरणें क्षण-क्षण भूगोल आदि लोको के घूमने से गमन करती-सी दीख पडती हैं जो प्रातःकाल के रक्त प्रकाश अपने-अपने देश में हैं वे प्रत्यक्ष और दूसरे देश मे हैं वे अप्रत्यक्ष ये सब प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रातःकाल की वेला सब लोकों में एकसी सब दिशाओं में प्रवेश करती हैं । जैसे शस्त्र आगे-पीछे जाने से सीधी-उलटी चाल को प्राप्त होते हैं वैसे अनेक प्रकार के प्रातः प्रकाश भूगोल आदि लोकों की चाल से सीधी-तिरछी चालों से युक्त होते हैं यह बात मनुष्यो को जाननी चाहिए ॥ १ ॥

फिर वे प्रातःकाल की वेला कैसी हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।

अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो (अरुणाः) रक्तगुण वाली (स्वायुजः) और अच्छे प्रकार सब पदार्थों से युक्त होती हैं वे (उषसः) प्रातःकालीन सूर्य की (भानवः) किरणें (वृथा) मिथ्या-सी (उत्) ऊपर (अपप्तन्) पडती हैं अर्थात् उन मे ताप न्यून होता है इससे शीतल-सी होती हैं और उनसे (गाः) पृथिवी आदि लोक (अरुषीः) रक्त गुणो से (अयुक्षत) युक्त होते हैं जो (अरुषीः) रक्त गुणवाली सूर्य की उक्त किरणें (वयुनानि) सब पदार्थों का विशेष ज्ञान वा सब कामों को (अक्रन्) कराती हैं, वे (पूर्वथा) पिछले-पिछले (रुशन्तम्) अन्धकार के छेदक (भानुम्) सूर्य के समान अलग-अलग दिन करनेवाले सूर्य का (अशिश्रयुः) सेवन करती है उनका सेवन युक्ति से करना चाहिए ॥ २ ॥

भावार्थ—जो सूर्य की किरणें भूगोल आदि लोको का सेवन अर्थात् उन पर पडती हुई क्रम-क्रम से चलती जाती हैं वे प्रातः और सायङ्काल के समय भूमि के संयोग से लाल होकर बादलो को लाल कर देती है । और जब ये प्रातःकाल लोको मे प्रवृत्त अर्थात् उदय को प्राप्त होती हैं तब प्राणियों को सब पदार्थों के विशेष ज्ञान होते है जो भूमि पर गिरी हुई लाल वर्ण की हैं वे सूर्य के आश्रय होकर उसको लाल कर ओषधियों का सेवन करती हैं उनका सेवन जागरितावस्था मे मनुष्यों को करना चाहिए ॥ २ ॥

फिर वे क्या करती हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।

इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥३॥

पदार्थ—सूर्य की किरणें (विष्टिभिः) अपनी व्याप्तियो से (समानेन) समान (योजनेन) योग से अर्थात् सब पदार्थों मे एकसी व्याप्त होकर (परावतः) दूर देश मे (न) जैसी (नारीः) पुरुषो के अनुकूल स्त्रियां (सुकृते) धर्मिष्ठ (सुदानवे) उत्तम दाता (सुन्वते) ओषधि आदि पदार्थों के रस निकालके सेवन कर्त्ता (यजमानाय) और पुरुषार्थी पुरुष के लिए (विश्वा) समस्त उत्तम-उत्तम (अपसः) कर्मों और (इषम्) अन्नादि पदार्थों को (आवहन्तीः) अच्छे प्रकार प्राप्त करती हुई उन के (अह) दुःखो के विनाश से (अर्चन्ति) सत्कार करती हैं वैसे उषा भी हैं उन का सेवन यथायोग्य सब को करना चाहिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे पतिव्रता स्त्रियाँ अपने-अपने पति का सेवन कर उनका सत्कार करती हैं वैसे ही सूर्य की किरणें भूमि को प्राप्त हुई वहाँ से निवृत्त हो और अन्तरिक्ष मे प्रकाश प्रकट कर समस्त वस्तुओं को पुष्ट करके सब प्राणियो को सुख देती हैं ॥ ३ ॥

फिर वे कैसी हैं इस विषय को अगले मन्त्रो में कहा है—

अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम् ।

ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्यु१षा आवर्तमः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (उषाः) सूर्य की किरण (नृतूरिव) जैसे नाटक करनेवाला वा नट वा नाचनेवाला वा बहुरूपिया अनेक रूप धारण करता है वैसे (पेशांसि) नाना प्रकार के रूपो को (अधिवपते) ठहराती है वा (वक्षः, उस्रेव) जैसे गौ अपनी छाती को वैसे (बर्जहम्) अन्धेरे को नष्ट करनेवाले प्रकाश के नाशक अन्धकार को (अप, ऊर्णुते) ढापती वा (विश्वस्मै) समस्त (भुवनाय) उत्पन्न हुए लोक के लिए (ज्योतिः) प्रकाश को (कृण्वती) करती हुई (व्रजं, गावो, न) जैसे निवासस्थान को गौ जाती है वैसे स्थानान्तर को जाती और (तमः) अन्धकार को (व्याव) अपने प्रकाश से ढाप लेती है वैसे उत्तम स्त्री अपने पति को प्रसन्न करे ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो सूर्य्य की केवल ज्योति है वह दिन कहाता और जो तिरछी हुई भूमि पर पडती है वह (उषा) प्रातःकाल की वेला कहाती है, उसके विना संसार का पालन नहीं हो सकता इससे इस विद्या की भावना मनुष्यो को अवश्य होनी चाहिए ॥ ४ ॥

प्रत्यर्ची रुशदस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वम् ।

स्वरुं न पेशो विदथेष्वञ्जञ्चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्रेत् ॥५॥२४॥

पदार्थ—जिस (अस्याः) इस प्रातः समय अन्धकार के विनाशरूप उषा की (रुशत्) अन्धकार का नाश करनेवाली (अर्चिः) दीप्ति (अभ्वम्) बड़े (कृष्णम्) काले वर्णरूप अन्धकार को (बाधते) अलग करती है जो (दिवः) प्रकाश रूप सूर्य की (दुहिता) पुत्री के तुल्य (स्वरुम्) तपनेवाले सूर्य के (न) समान (चित्रम्) अद्भुत (भानुम्) कान्ति (पेशः) रूप को (अश्रेत्)

आश्रय करती है वा जैसे ऋत्विज् लोग (विदथेषु) यज्ञ की क्रियाओं में (अञ्जन्) प्राप्त होते हैं वैसे (विशिश्रते) विविध प्रकार से स्थिर होती है वह प्रातः समय की वेला हम लोगों को (प्रत्यदर्शि) प्रतीत होती है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सूर्य की दीप्ति आप ही उजाला करती हुई सबको प्रकाशित करती है, वह प्रातःकाल की वेला सूर्य्य की पुत्री के समान है ऐसा सब मनुष्यों को मानना चाहिए ॥ ५ ॥

फिर वह कैसी है और इससे जीव क्या करता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अतारिष्म तमसस्पारमस्योषा उच्छन्ती वयुना कृणोति ।

श्रिये छन्दो न स्मयते विभाती सुप्रतीका सौमनसायाजीगः ॥६॥

पदार्थ—जो (श्रिये) विद्या और राज्य की प्राप्ति के लिए (छन्दः) वेदों के (न) समान (उच्छन्ती) अन्धकार को दूर करती और (विभाती) विविध प्रकार के मूर्तिमान् पदार्थों को प्रकाशित और (सुप्रतीका) पदार्थों की प्रतीति कराती है वह (उषाः) प्रातःकाल की वेला सबके (सौमनसाय) धार्मिक जनों के मनोरञ्जन के लिए (वयुनानि) प्रशंसनीय वा मनोहर कामों को (कृणोति) कराती (अजीगः) अन्धकार को निगल जाती और (स्मयते) आनन्द देती है उससे (अस्य) इस (तमसः) अन्धकार के (पारम्) पार को प्राप्त होते हैं वैसे दुःख के परे आनन्द को हम (अतारिष्म) प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जैसे यह उषा कर्म, ज्ञान, आनन्द, पुरुषार्थ व धन-प्राप्ति के समान दुःखरूपी अन्धकार के निवारण का निदान प्रातःकाल की वेला है वैसे इस वेला में उत्तम पुरुषार्थ से प्रयत्न करके सुख को बढ़ाती और दुःख का नाश करें ॥ ६ ॥

फिर वह कैसी है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः ।

प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्यानुषो गोअग्राँ उप मासि वाजान् ॥७॥

पदार्थ—जैसे (सूनृतानाम्) अच्छे-अच्छे काम वा अन्न आदि पदार्थों को (भास्वती) प्रकाशित (नेत्री) और मनुष्यों को व्यवहारों की प्राप्ति कराती वा (दिवः) प्रकाशमान सूर्य्य की (दुहिता) कन्या के समान (उषः) प्रातः समय की वेला (गोतमेभिः) समस्त विद्याओं को अच्छे प्रकार कहने-सुनने वाले विद्वानों से स्तुति की जाती है वैसे इसकी मैं (स्तवे) प्रशंसा करूँ। हे स्त्रि ! जैसे यह उषा (प्रजावतः) प्रशंसित प्रजायुक्त (नृवतः) वा सेना आदि कामों के बहुत नायकों से युक्त (अश्वबुध्यान्) जिनसे वेगवान् घोड़ों को बार-बार चैतन्य करें (गोअग्रान्) जिनसे राज्य भूमि आदि पदार्थ मिलें उन (वाजान्) संग्रामों को (उपमासि) समीप प्राप्त करती है अर्थात् जैसे प्रातःकाल की वेला से अन्धकार का नाश होकर सब प्रकार के पदार्थ प्रकाशित होते हैं वैसी तू भी हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सब गुणों से युक्त सुलक्षणी कन्या से पिता, माता सुखी होते हैं वैसे ही प्रातःकाल की वेला के गुण अवगुण प्रकाशित करनेवाली विद्या से विद्वान् लोग सुखी होते हैं ॥७॥

फिर उससे क्या मिलता है और वह क्या करती है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम् ।

सुदंससा श्रवसा या विभासि वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम् ॥८॥

पदार्थ—जो (वाजप्रसूता) सूर्य की गति से उत्पन्न हुई (सुभगा) जिसके साथ अच्छे-अच्छे ऐश्वर्य के पदार्थ संयुक्त होते हैं वह (उषः) प्रातः समय की वेला है वह जिस (सुदंससा) अच्छे कर्मवाले (श्रवसा) पृथ्वी आदि अन्न के साथ वर्त्तमान वा (अश्वबुध्यम्) जिसकी सहायता से घोड़े सिखाये जाते (दासप्रवर्गम्) जिससे सेवक अर्थात् दास-दासी काम करनेवाले रह सकते हैं (सुवीरम्) जिससे अच्छे सीखे हुए वीरजन हों उस (बृहन्तम्) सर्वदा अत्यन्त बढ़ते हुए और (यशसम्) सब प्रकार प्रशंसायुक्त (रयिम्) विद्या और राज्य धन को (विभासि) अच्छे प्रकार प्रकाशित करती है (तम्) उसको मैं (अश्याम्) पाऊँ ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो लोग प्रातःकाल की वेला के गुण अवगुणों को बताने वाली विद्या से अच्छे-अच्छे यत्न करते हैं वे यह सब वस्तु पाकर सुख से परिपूर्ण होते हैं, दूसरे नहीं ॥ ८ ॥

फिर वह उषा कैसी है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

विश्वानि देवी भुवनाभिचक्ष्या प्रतीची चक्षुरुर्विया वि भाति ।

विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः ॥९॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जैसे (प्रतीची) सूर्य की चाल से परे को ही जाती और (चरसे) व्यवहार करने वा सुख और दुःख भोगने के लिए (विश्वम्) सब (जीवम्) जीवों को (बोधयन्ती) चिताती हुई (देवी) प्रकाश को प्राप्त (उषाः) प्रातःसमय की वेला (मनायोः) मान के समान आचरण करने वाले (विश्वस्य) जीवमात्र की (वाचम्) वाणी को (अविदत्) प्राप्त होती (चक्षुः) और आँखों के समान सब वस्तु के दिखाई पड़ने का निदान (विश्वानि) समस्त (भुवना) लोकों को (अभिचक्ष्य) सब प्रकार से प्रकाशित करती हुई (उर्विया) पृथिवी के साथ (विभाति) अच्छे प्रकार प्रकाशित होती है वैसी तू भी हो ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे सती स्त्री सब प्रकार से अपने पति को आनन्दित करती है वैसे प्रातःकाल की वेला समस्त जगत् को आनन्द देती है ॥९॥

फिर वह उषा कैसी है और क्या करती है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

पुनः पुनर्जायमाना पुराणी समानं वर्णमभि शुम्भमाना ।

श्वघ्नीव कृत्नुर्विज आमिनाना मर्तस्य देवी जरयन्त्यायुः ॥१०॥२६॥

पदार्थ—जो (श्वघ्नीव) कुत्ते और हिरणों को मारनेहारी वृकी के समान वा जैसे (कृत्नुः) छेदन करनेवाली श्येनी (विजः) इधर-उधर चलते हुए पक्षियों का छेदन करती है वैसे (आमिनाना) हिंसिका (मर्तस्य) मरने-जीनेहारे जीवमात्र की (आयुः) आयु को (जरयन्ती) हीन करती हुई (पुनः पुनः) दिनोंदिन (जायमाना) उत्पन्न होनेवाली (समानम्) एकसे (वर्णम्) रूप को (अभि शुम्भमाना) सब ओर से प्रकाशित करती हुई वा (पुराणी) सदा से वर्त्तमान (देवी) प्रकाशमान प्रातःकाल की वेला है वह जागरित होके मनुष्यों को सेवने योग्य है ॥१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं। जैसे छिपके वा देखते-देखते भेड़िये की स्त्री वृकी वन के जीवों को तोड़ती और जैसे बाजिनी उड़ते हुए पखेरुओं को विनाश करती है वैसे ही यह प्रातःसमय की वेला सोते हुए हम लोगों की आयु को धीरे-धीरे अर्थात् दिनों दिन काटती है ऐसा जान और आलस छोड़कर हम लोगों को रात्रि के चौथे प्रहर में जागके विद्या, धर्म और परोपकार आदि व्यवहारों में नित्य उचित वर्त्ताव रखना चाहिए। जिनकी इस प्रकार की बुद्धि है वे लोग आलस्य और अधर्म्म के बीच में कैसे प्रवृत्त हों ॥१०॥

व्यूर्ण्वती दिवो अन्ताँ अबोध्यप स्वसारं सनुतर्युयोति ।

प्रमिनती मनुष्या युगानि योषा जारस्य चक्षसा वि भाति ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो प्रातःकाल की वेला जैसे (योषा) कामिनी स्त्री (जारस्य) व्यभिचारी, लम्पट, कुमार्गी पुरुष की उमर का नाश करे वैसे सब आयु को (सनुतः) निरन्तर (प्रमिनती) नाश करती (स्वसारम्) और अपनी बहिन के समान जो रात्रि है उसको (व्यूर्ण्वती) ढाँपती हुई (अपयुयोति) उसको दूर करती अर्थात् दिन से अलग करता है और आप (वि) अच्छी प्रकार (भाति) प्रकाशित होती जाती है (चक्षसा) उस प्रातःसमय की वेला के निमित्त उससे दर्शन (दिवः) प्रकाशवान् सूर्य्य के (अन्तान्) समीप के पदार्थों को और (मनुष्या) मनुष्यों के सम्बन्धी (युगानि) वर्षों को (अबोधि) जनाती है उसका सेवन तुम युक्ति से किया करो ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्यों को चाहिए कि जैसे व्यभिचारिणी स्त्री जारकर्म करनेहारे पुरुष की उमर का विनाश करती है, वैसे सूर्य्य से सम्बन्ध रखनेहारे अन्धकार की निवृत्ति से दिन को प्रसिद्ध करनेवाली प्रातःकाल की वेला है ऐसा जानकर रात और दिन के बीच युक्ति के साथ वर्त्ताव वर्त्तकर पूरी आयु को भोगें ॥११॥

पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना सिन्धुर्न क्षोद उर्विया व्यश्वैत् ।

अमिनती दैव्यानि व्रतानि सूर्यस्य चेति रश्मिभिर्दृशाना ॥१२॥

पदार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि (न) जैसे (पशून्) गाय आदि पशुओं को पाकर वैश्य बढ़ता और (न) जैसे (सुभगा) सुन्दर ऐश्वर्य्य करनेहारी (प्रथाना) तरंगों से शब्द करती हुई (सिन्धुः) अति वेगवती नदी (क्षोदः) जल को पाकर बढ़ती है वैसे सुन्दर ऐश्वर्य्य करानेहारी प्रातःसमय चूँ-चाँ करनेहारे पखेरुओं के शब्दों से शब्दवाली और कोसों फैलती हुई (चित्रा) चित्र-विचित्र प्रातःसमय की वेला (उर्विया) पृथिवी के साथ (सूर्यस्य) मार्त्तण्डमण्डल की (रश्मिभिः) किरणों से (दृशाना) जो देखी जाती है वह (अमिनती) सब प्रकार से रक्षा करती हुई (दैव्यानि) विद्वानों में प्रसिद्ध (व्रतानि) सत्य पालन आदि कामों को (व्यश्वैत्) व्याप्त हो अर्थात् जिसमें विद्वान् जन नियमों को पालते हैं वैसे प्रतिदिन अपने नियमों को पालती हुई (चेति) जानी जाती है उस प्रातःसमय की वेला की विद्या के अनुसार वर्त्ताव रखकर निरन्तर सुखी हों ॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जैसे पशुओं की प्राप्ति के बिना वैश्य लोग वा जल की प्राप्ति के बिना नदी-नद आदि अति उत्तम सुख करनेवाले नहीं होते, वैसे प्रातःसमय की वेला के गुण जतानेवाली विद्या और पुरुषार्थ के बिना मनुष्य प्रशंसित ऐश्वर्य्यवाले नहीं होते ऐसा जानना चाहिए ॥१२॥

मनुष्यों को इससे क्या जानना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।

येन तोकं च तनयं च धामहे ॥१३॥

पदार्थ—हे सौभाग्यकारिणी स्त्रि ! (वाजिनीवति) उत्तम क्रिया और अन्नादि ऐश्वर्य्ययुक्त तू (उषः) प्रभात के तुल्य (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए (चित्रम्) अद्भुत सुखकर्त्ता धन को (आभर) धारण कर (येन) जिससे हम लोग (तोकम्) पुत्र (च) और इसके पालनार्थ ऐश्वर्य्य (तनयम्) पौत्रादि (च) स्त्री, भृत्य और भूमि के राज्यादि को (धामहे) धारण करें ॥१३॥

भावार्थ—मनुष्यों से प्रातः समय से लेके समय के विभागों के योग्य अर्थात् समय-समय के अनुसार व्यवहारों को करके ही सब सुख के साधन और सुख प्राप्त किये जा सकते हैं, इससे उनको यह अनुष्ठान नित्य करना चाहिए ॥१३॥

फिर वह क्या करती है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि ।

रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जैसे (**गोमति**) जिसके सम्बन्ध मे गौ होती (**अश्वावति**) घोड़े होते तथा (**सूनृतावति**) जिसके प्रशंसनीय काम हैं वह (**विभावरि**) क्षण-क्षण बढ़ती हुई दीप्तिवाली (**उषः**) प्रातःसमय की वेला (**अस्मे**) हम लोगों के लिए (**रेवत्**) जिसमें प्रशसित धन हो उस सुख को (**वि, उच्छ**) प्राप्त कराती है उससे हम लोग (**अद्य**) आज (**इह**) इस जगत् में सुखों को (**धामहे**) धारण करते हैं ॥१४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में 'धामहे' इस पद की अनुवृत्ति आती है, मनुष्यो को चाहिए कि प्रतिदिन प्रात काल उठकर जब तक फिर न सोवें तब तक अर्थात् दिन भर निरालसता से उत्तम यत्न के साथ विद्या, धन और राज्य तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन पदार्थों को सिद्ध करें ॥१४॥

युक्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः ।

अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥१५॥२६॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जैसे (**वाजिनीवति**) जिस मे ज्ञान वा गमन करानेवाली क्रिया हैं वह (**उष**) प्रात समय की वेला (**अरुणान्**) लाल (**अश्वान्**) चमचमाती फैलती हुई किरणो का (**युक्ष्व**) सयोग करती है (**अथ**) पीछे (**न**) हम लोगो के लिए (**विश्वा**) समस्त (**सौभगानि**) सौभाग्यपन के कामो को अच्छे प्रकार प्राप्त कराती (**हि**) ही है वैसे (**अद्य**) आज तू शुभगुणो को युक्त और (**आवह**) सब ओर से प्राप्त कर ॥१५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। प्रतिदिन निरन्तर पुरुषार्थ के बिना मनुष्यो को ऐश्वर्य्य की प्राप्ति नही होती, इससे उनको चाहिए कि ऐसा पुरुषार्थ नित्य करें जिससे ऐश्वर्य बढ़े ॥१५॥

फिर उससे क्या करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—

अश्विना वर्त्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ।

अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जो (**दस्रा**) कला-कौशलादि निमित्त से दुःख आदि की निवृत्ति करनेहारे (**समनसा**) एकसे विचार के साथ वर्त्तमान के तुल्य (**अश्विना**) अग्नि, जल (**अस्मत्**) हम लोगो के (**गोमत्**) जिसमे इन्द्रियाँ प्रशसित होती वा (**हिरण्यवत्**) प्रशसित सुवर्ण आदि पदार्थ वा विद्या आदि गुणो के प्रकाश विद्यमान वा (**वर्त्ति**) आने-जाने के काम मे वर्त्तमान उस (**अर्वाक्**) नीचे अर्थात् जल, स्थलों तथा अन्तरिक्ष मे (**रथम्**) रमण करानेवाले विमान आदि रथ समूह को (**न्यायच्छतम्**) अच्छे प्रकार नियम मे रखते हैं वे उषःकाल से युक्त अग्नि, जल तथा उनसे युक्त उक्त रथ समूह को प्रतिदिन सिद्ध करते है वैसे तुम लोग भी सिद्ध करो ॥१६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यो को चाहिए कि प्रतिदिन क्रिया और चतुराई तथा अग्नि और जल आदि से विमान आदि यानो को सिद्ध करके नित्य उन्नति का प्राप्त होनेवाले धन को प्राप्त करके सुखयुक्त हों ॥१६॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

याविस्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः ।

आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥१७॥

पदार्थ—हे शिल्पविद्या के पढ़ाने और उपदेश करनेहारे विद्वानो ! (**युवम्**) तुम लोग जो (**अश्विना**) अग्नि और वायु (**जनाय**) मनुष्य समूह के लिए (**दिव.**) सूर्य्य के (**ज्योति.**) प्रकाश को (**आ, चक्रथुः**) अच्छे प्रकार सिद्ध करते हैं (**इत्था**) इसलिए (**न**) हम लोगो के लिए (**श्लोकम्**) उत्तम वाणी और (**ऊर्जम्**) पराक्रम वा अन्नादि पदार्थों को (**आ, वहतम्**) सब प्रकार से प्राप्त कराओ ॥१७॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि पवन और बिजुली के विना सूर्य का प्रकाश नही होता और न उन दोनो ही के विद्या और उपकार के विना किसी की विद्या-सिद्धि होती है—ऐसा जान ॥१७॥

फिर वे अग्नि और पवन कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्त्तनी ।

उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥१८॥२७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग जो (**देवा**) दिव्यगुणयुक्त (**मयोभुवा**) सुख की भावना करानेहारे (**हिरण्यवर्त्तनी**) प्रकाश के वर्त्ताव को रखते और (**दस्रा**) विद्या के उपयोग को प्राप्त हुए समस्त दुःख का विनाश करनेवाले अग्नि, पवन (**उषर्बुध.**) प्रात काल की वेला को जतानेहारी सूर्य्य की किरणों को प्रकट करते हैं उनसे (**सोमपीतये**) जिस व्यवहार मे पुष्टि शान्त्यादि तथा गुणवाले पदार्थों का पान किया जाता है उसके लिए सब मनुष्यो को सामर्थ्य (**इह**) इस संसार मे (**आवहन्तु**) अच्छे प्रकार प्राप्त करें ॥१८॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि उत्पन्न हुए दिनों मे भी अग्नि और पवन के बिना पदार्थ भोगना सम्भव नहीं यह जानकर अग्नि और पवन से उपयोग लेने का पुरुषार्थ नित्य करें ॥१८॥

इस सूक्त मे उषा और अश्वि पदार्थों के गुणो के वर्णन से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ इस सूक्तार्थ की सगति जाननी चाहिए ॥

यह बानवां सूक्त और सत्ताईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ द्वादशर्चस्य त्रयोनवतितमस्य सूक्तस्य रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः । अग्नीषोमौ देवते । १ अनुष्टुप्, ३ विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । २ भुरिगुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । ४ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ५, ७, निचृत्त्रिष्टुप्, ६ विराट्त्रिष्टुप्, ८ स्वराट्त्रिष्टुप्, १२ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ९—११ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब तिरानवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में पढ़ाने और परीक्षा लेने वालों के प्रति विद्यार्थी क्या-क्या कहें यह विषय कहा है—

अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणा हवम् ।

प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ॥१॥

पदार्थ—हे (**वृषणा**) विद्या और उत्तम शिक्षा देनेवाले (**अग्नीषोमौ**) अग्नि और चन्द्र के समान विशेष ज्ञान और शान्ति गुणयुक्त, पढाने और परीक्षा लेने वाले विद्वानो ! तुम दोनो (**मे**) मेरा (**प्रतिसूक्तानि**) जिनमे अच्छे-अच्छे अर्थ उच्चारण किये जाते हैं उन गायत्री आदि छन्दो स युक्त वेदस्थ सूक्तो और (**इमम्**) इस (**हवम्**) ग्रहण करने-कराने योग्य विद्या के शब्द अर्थ और सम्बन्ध युक्त वचन को (**सुशृणुतम्**) अच्छे प्रकार सुनो (**दाशुषे**) और पढ़ने मे चित्त देनेवाले मुझ विद्यार्थी के लिए (**मयः**) सुख की (**हर्य्यतम्**) कामना करो इस प्रकार विद्या के प्रकाशक (**भवतम्**) हूजिए ॥१॥

भावार्थ— किसी मनुष्य को पढ़ाने और परीक्षा के विना विद्या की सिद्धि नही होती और कोई मनुष्य पूरी विद्या के बिना किसी दूसरे को पढ़ा और उसकी परीक्षा नही कर सकता, और इस विद्या के विना समस्त सुख नही होते इससे विद्या का सम्पादन नित्य करें ॥१॥

फिर वे कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—

अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वचः सपर्यति ।

तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वश्व्यम् ॥२॥

पदार्थ—हे (**अग्निषोमौ**) पढ़ाने और परीक्षा लेनवाले विद्वानो ! (**यः**) जो पढनेवाला (**अद्य**) आज (**वाम्**) तुम्हारे (**इदम्**) इस (**वचः**) विद्या के वचन को (**सपर्यति**) सेवे (**तस्मै**) उसके लिए (**स्वश्व्यम्**) जो अच्छे-अच्छे घोडो से युक्त (**सुवीर्य्यम्**) उत्तम-उत्तम बल जिस विद्याभ्यास से हो उस (**गवाम्**) इन्द्रिय और गाय आदि पशुओ के (**पोषम्**) सर्वथा शरीर और आत्मा की पुष्टि करनेहारे सुख को (**धत्तम्**) दीजिए ॥२॥

भावार्थ—जो ब्रह्मचारी विद्या के लिए पढ़ाने और परीक्षा करनेवालो के प्रति उत्तम प्रीति करके उनकी नित्य सेवा करता है वही बड़ा विद्वान् होकर सब सुखों को पाता है ॥२॥

अब उक्त अग्नि सोम शब्दों से भौतिक सम्बन्धी कार्यों का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—

अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्धविष्कृतिम् ।

स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्नवत् ॥३॥

पदार्थ—(**य.**) सबके हित को चाहनेवाला और (**य**) जो यज्ञ का अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य (**अग्नीषोमा**) भौतिक अग्नि और पवन (**वाम्**) इन दोनो के बीच (**हविष्कृतिम्**) होम करने के योग्य पदार्थ का कारणरूप (**आहुतिम्**) घृत आदि उत्तम-उत्तम सुगन्धितादि पदार्थों से युक्त आहुति को (**दाशात्**) देवे (**सः**) वह (**प्रजया**) उत्तम-उत्तम सन्तानयुक्त प्रजा से (**सुवीर्य्यम्**) श्रेष्ठ पराक्रमयुक्त (**विश्वम्**) समग्र (**आयु**) आयु को (**व्यश्नवत्**) प्राप्त होवे ॥३॥

भावार्थ—जो विद्वान् वायु, वृष्टि, जल और ओषधियो की शुद्धि के लिए अच्छे सस्कार किये हुए हवि को अग्नि के बीच होमके श्रेष्ठ सोमलतादि ओषधियों की प्राप्ति कर उनसे प्राणियो को सुख देते है वे शरीर, आत्मा के बल से युक्त होते हुए पूर्ण सुख करनेवाली आयु को प्राप्त होते हैं अन्य नही ॥३॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पणिं गाः ।

अवातिरतं बृसयस्य शेषोऽविन्दतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः ॥४॥

पदार्थ—जो (**अग्नीषोमा**) वायु और विद्युत् (**यत्**) जिस (**अवसम्**) रक्षा आदि (**पणिम्**) व्यवहार को (**अमुष्णीतम्**) चोरते प्रसिद्धाप्रसिद्ध ग्रहण करते (**गाः**) सूर्य्य की किरणों का विस्तार कर (**अवातिरतम्**) अन्धकार का

विनाश करते (बहुभ्यः) अनेकों पदार्थों से (एकम्) एक (ज्योतिः) सूर्य के प्रकाश को (अविन्दतम्) प्राप्त कराते हैं जिनके (बृसयस्य) ढांपनेवाले सूर्य का (शेषः) अवशेष भाग लोकों को प्राप्त होता है (वाम्) इनका (तत्) वह (वीर्यम्) पराक्रम (चेति) विदित है सब कोई जानते हैं ॥४॥

भावार्थ—मनुष्यों को यह जानना चाहिए कि जितना प्रसिद्ध अन्धकार को ढांप देने और सब लोकों को प्रकाशित करनेहारा तेज होता है उतना सब कारणरूप पवन और बिजुली की उत्तेजना से होता है ॥४॥

युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम्।
युवं सिन्धूँरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान् ॥ ५ ॥

पदार्थ—(युवम्) ये (सक्रतू) एकसा काम देनेवाले दो अर्थात् (अग्नि) बिजुली (च) और (सोम) बहुत सुख को उत्पन्न करनेहारा पवन (दिवि) तारागण में जो (रोचनानि) प्रकाश हैं (एतानि) इनको (अधत्तम्) धारण करते हैं (युवम्) ये दोनो (सिन्धून्) समुद्रों को धारण करते अर्थात् उनके जल को सोखते हैं उन (गृभीतान्) सोखे हुए नदी, नद, समुद्रों को वे (अग्निषोमा) बिजुली और पवन (अवद्यात्) निन्दित (अभिशस्तेः) उनके प्रवाहरूप रमण को रोकनेहारे हेतु से (अमुञ्चतम्) छोड़ते हैं अर्थात् वर्षा के निमित्त से उनके लिये हुए जल को पृथिवी पर छोड़ते हैं ॥५॥

भावार्थ—मनुष्यों को जानना चाहिए कि पवन और बिजुली ये ही दोनो सब लोकों के सुख के धारण आदि व्यवहार के कारण हैं ॥५॥

फिर वे क्या करते हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ॥६॥२८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो (ब्रह्मणा) परमेश्वर से (वावृधाना) उन्नति को प्राप्त हुए (अग्निषोमा) अग्नि और पवन (यज्ञाय) ज्ञान और क्रियामय यज्ञ के लिए (उरुम्) बहुत प्रकार (लोकम्) जो देखा जाता है उस लोकसमूह को (चक्रथुः) प्रकट करते हैं उनमें से (मातरिश्वा) पवन जो आकाश में सोनेवाला है वह (दिवः) सूर्य्य आदि लोक से (अन्यम्) और दूसरा अप्रसिद्ध जो कारण लोक है उसको (आ, जभार) धारण करता है तथा (श्येनः) वेगवान् घोड़े के समान चलनेवाला अग्नि (अद्रेः) मेघ से (अमथ्नात्) मथा करता है उनको जानकर उपयोग मे लाओ ॥६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो पवन और बिजुली के दो रूप हैं एक कारण और दूसरा कार्य्य उनमे जो पहला है वह विशेष ज्ञान से जानने योग्य और जो दूसरा है वह प्रत्यक्ष इन्द्रियो से ग्रहण करने योग्य है जिसके गुण और उपकार जाने हैं उस पवन वा अग्नि से कारणरूप में उक्त अग्नि और पवन प्रवेश करते हैं, यही सुगम मार्ग है जो कार्य के द्वारा कारण मे प्रवेश होता है ऐसा जानो ॥६॥

अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम्।
सुशर्माणा स्ववसा हि भूतमथा धत्तं यजमानाय शं योः ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो (वृषणा) वर्षा होने के निमित्त (सुशर्माणा) श्रेष्ठ सुख करनेवाले (अग्निषोमा) प्रसिद्ध वायु और अग्नि (प्रस्थितस्य) देशान्तर मे पहुंचनेवाले (हविषः) होमे हुए घी आदि को (वीतम्) व्याप्त होते (हर्यतम्) पाते (जुषेथाम्) सेवन करते और (स्ववसा) उत्तम रक्षा करनेवाले (भूतम्) होते हैं (अथ) इसके पीछे (हि) इसी कारण (यजमानाय) जीव के लिए अनन्त (शम्) सुख को (धत्तम्) धारण करते तथा (योः) पदार्थों को अलग-अलग करते हैं उनको अच्छे प्रकार उपयोग में लाओ ॥७॥

भावार्थ—मनुष्यों को यह जानना चाहिए कि आग मे जितने सुगन्धियुक्त पदार्थ होमे जाते हैं सब पवन के साथ आकाश मे जा मेघमण्डल के जल को शोध और सब जीवों के सुख के हेतु होकर उसके अनन्तर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि करनेहारे होते हैं ॥७॥

ऐसे उत्तमता से काम में लाये हुए ये दोनों क्या करते हैं
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यो अग्नीषोमा हविषा सपर्याद्देवद्रीचा मनसा यो घृतेन।
तस्य व्रतं रक्षतं पातमंहसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ॥८॥

पदार्थ—(यः) जो विद्वान् मनुष्य (देवद्रीचा) उत्तम विद्वानो का सत्कार करते हुए (मनसा) मन से वा (घृतेन) घी और जल तथा (हविषा) अच्छे संस्कार किये हुए हवि से (अग्निषोमा) वायु और अग्नि को (सपर्यात्) सेवे और (यः) जो क्रिया करनेवाला मनुष्य इनके गुणों को जाने (तस्य) उन दोनों के (व्रतम्) सत्यभाषण आदि शील को ये दोनों (रक्षतम्) रक्षा करते (अंहसः) क्षुधा और ज्वर आदि रोग से (पातम्) नष्ट होने से बचाते (विशे) प्रजा और (जनाय) सेवक जन के लिए (महि) अत्यन्त प्रशंसा करने योग्य (शर्म्म) सुख वा घर को (यच्छतम्) देते हैं ॥८॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्निहोत्रादि कर्म से वायु और वर्षा की शुद्धि द्वारा सब वस्तुओं को पवित्र करता है वह सब प्राणियों को सुख देता है ॥८॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्नीषोमा सवेदसा सहूती वनतं गिरः। सं देवत्रा बभूवथुः ॥९॥

पदार्थ—जो (सहूती) एकसी वाणीवाले (सवेदसा) बराबर होमे हुए पदार्थ से युक्त (अग्निषोमा) यज्ञफल के सिद्ध करनेहारे अग्नि और पवन (देवत्रा) विद्वान वा दिव्य गुणो मे (सम्बभूवथुः) सम्भावित होते हैं वे (गिरः) वाणियों को (वनतम्) अच्छे प्रकार सेवते हैं ॥९॥

भावार्थ—मनुष्य लोग—यज्ञ आदि उत्तम कामो से वायु के शोधे बिना प्राणियो को सुख नहीं हो सकता इससे इसका—अनुष्ठान नित्य करें ॥९॥

इसके अनुष्ठान करनेवाले को क्या होता है इस विषय का उपदेश
अगले मन्त्र में किया है—

अग्नीषोमावनेन वां यो वां घृतेन दाशति। तस्मै दीदयतं बृहत् ॥१०॥

पदार्थ—(यः) जो मनुष्य (वाम्) इनके बीच (अनेन) इस (घृतेन) घी वा जल से आहुतियो को देता है वा (वाम्) इनकी उत्तेजना से उपकारों को ग्रहण करता है उसके लिए (अग्नीषोमा) बिजुली और पवन (बृहत्) बड़े विज्ञान और सुख को (दीदयतम्) प्रकाशित करते है ॥१०॥

भावार्थ—जो मनुष्य क्रियायज्ञो का अनुष्ठान करते हैं, वे इस ससार में अत्यन्त सौभाग्य को प्राप्त होते हैं ॥१०॥

फिर वे क्या करते हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अग्नीषोमाविमानि नो युवं हव्या जुजोषतम्।
आ यातमुप नः सचा ॥ ११ ॥

पदार्थ—(युवम्) जो (अग्निषोमौ) समस्त मूर्तिमान् पदार्थों का संयोग करनेहारे अग्नि और पवन (नः) हम लोगो के (इमानि) इन (हव्या) देने-लेने योग्य पदार्थों को (जुजोषतम्) बार-बार सेवन करते हैं वे (सचा) यज्ञ के विशेष विचार करनेवाले (नः) हम लोगो को (उप, आ यातम्) अच्छे प्रकार मिलते हैं ॥११॥

भावार्थ—जब यज्ञ से सुगन्धित द्रव्ययुक्त अग्नि, वायु सब पदार्थों को समीप से स्पर्श करते हैं तब सब की पुष्टि होती है ॥११॥

अग्नीषोमा पिपृतमर्वतो न आ प्यायन्तामुस्रिया हव्यसूदः।
अस्मे बलानि मघवत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम् ॥१२॥२९॥

पदार्थ—हे राजप्रजा के पुरुषो ! तुम (अग्नीषोमा) पालन के हेतु अग्नि और पवन के समान (नः) हम लोगो के (अर्वतः) घोड़ो को (पिपृतम्) पालो जैसे (हव्यसूदः) दूध, दही आदि पदार्थों की देनेवाली (उस्रियाः) गौ (आ, प्यायन्ताम्) पुष्ट हों वैसे (नः) हम लोगो के (श्रुष्टिमन्तम्) शीघ्र बहुत सुख के हेतु (अध्वरम्) व्यवहार रूपी यज्ञ को (मघवत्सु) प्रशंसित धनयुक्त स्थान व्यवहार वा विद्वानो मे (कृणुतम्) प्रकट करो (अस्मे) हम लोगो के लिए (बलानि) बलो को (धत्तम्) धारण करो ॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। पवन और बिजुली के बिना किसी को बल और पुष्टि नहीं होती, इससे इन को विचारपूर्वक कामो मे लाना चाहिए ॥१२॥

इस सूक्त में पवन और बिजुली के गुण वर्णन करने से इस सूक्तार्थ की
पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह छठे अध्याय का उनतीसवां वर्ग और प्रथम मण्डल का चौदहवां अनुवाक
तथा तिरानवां सूक्त समाप्त हुआ—

卐

अथास्य षोडशर्चस्य चतुर्नवतितमस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः। अग्निर्देवता।
१, ४, ५, ७, ९, १० निचृज्जगती, १२—१४ विराड् जगती छन्दः।
निषादः स्वरः। २, ३, १६ त्रिष्टुप्, ६ स्वराट् त्रिष्टुप्, ११ भुरिक्
त्रिष्टुप्, ८ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। १५ भुरिक्
पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

अब सोलह ऋचा वाले चौरानवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि
शब्द से विद्वान् और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है—

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्यादि गुणों से विदित विद्वन् ! जैसे (वयम्) हम लोग (मनीषया) विद्या, क्रिया और उत्तम शिक्षा से उत्पन्न हुई बुद्धि से (अर्हते) योग्य (जातवेदसे) जो उत्पन्न हुए जगत् के पदार्थों को जानता है वा उत्पन्न हुए कार्य्यरूप द्रव्यों में विद्यमान उस विद्वान् के लिए (रथमिव) जैसे विहार करानेहारे विमान आदि यान को वैसे (इमम्) कार्य्यों मे प्रवृत्त इस (स्तोमम्) गुणकीर्त्तन को (संमहेम) प्रशंसित करें वा (अस्य) इस (तव) आपके (सख्ये) मित्रपन के निमित्त (संसदि) जिस में विद्वान् स्थित होते हैं उस सभा मे (नः) हम लोगो को

(**भद्रा**) कल्याण करने वाली (**प्रमतिः**) प्रबल बुद्धि है उस को (**हि**) ही (**मा, रिषामा**) मत नष्ट करें वैसे आप भी नष्ट न करें ।।१।।

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो को चाहिए कि जैसे शिल्पविद्या से सिद्ध होनेवाले विमानो को सिद्धकर मित्रो का सत्कार करें वैसे ही पुरुषार्थ से विद्वानों का भी सत्कार करें । जब-जब सभासद् सभा मे बैठें तब-तब हठ और दुराग्रह को छोड़, सब के सुखकर काम को न छोड़ें । जो-जो अग्नि आदि पदार्थों मे विज्ञान हो उस-उस को सब के साथ मित्रता का आश्रय लेकर सब को बतावें क्योंकि इसके बिना मनुष्यो का हित सम्भव नहीं होता ।।१।।

फिर वह कैसा है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यस्मै त्वमायजसे स साधत्यनर्वा क्षेति दधते सुवीर्यम् ।

स तूताव नैनमश्नोत्यंहतिरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।।२।।

पदार्थ—हे (**अग्ने**) सब विद्या के विशेष जाननेवाले विद्वन् ! (**अनर्वा**) बिना घोडो के अग्न्यादिको मे चलाये हुए विमान आदि यान के समान (**त्वम्**) आप (**यस्मै**) जिस (**आयजसे**) सर्वथा सुख को देनेहारे जीव के लिए रक्षा को (**साधति**) सिद्ध करते हो (**स**) वह (**सुवीर्यम्**) जिन मित्रो के काम मे अच्छे-अच्छे पराक्रम है उनको (**दधते**) धारण करता और वह (**तूताव**) उसको बढ़ाता भी है (**एनम्**) इस उत्तम गुणयुक्त पुरुष को (**अंहतिः**) दरिद्रता (**न, अश्नोति**) नही प्राप्त होती (**स**) वह (**क्षेति**) सुख मे रहता है ऐसे (**तव**) आप के (**सख्ये**) मित्रपन में (**वयम्**) हम लोग (**मा, रिषाम**) दुःखी न हो ।।२।।

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो विद्वानों की सभा वा अग्निविद्या मे मित्रपन प्रसिद्ध करते है वे पूरे शरीर तथा आत्मा के बल को पाकर सुखयुक्त रहते हैं अन्य नही ।।२।।

शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।

त्वमादित्याँ आ वह तान्ह्युश्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।।३।।

पदार्थ—हे (**अग्ने**) सब विद्याओ मे प्रवीण सभाध्यक्ष ! (**वयम्**) हम लोग (**त्वा**) आपका आश्रय लेकर (**समिधम्**) जिसमे अच्छे प्रकार प्रकाश होता है उस क्रिया को कर (**शकेम**) सकें (**त्वम्**) आप हम लोगो की (**धियः**) बुद्धि वा कर्मों को (**साधय**) सिद्ध कीजिए (**त्वे**) आपके होते (**देवा**) विद्वान् लोग (**आहुतम्**) अच्छे प्रकार स्वीकार किये हुए (**हविः**) खाने के योग्य अन्न का (**अदन्ति**) भोजन करते है इससे आप (**आदित्यान्**) अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य को किये हुए ब्रह्मचारियो को (**आ, वह**) प्राप्त कीजिए (**तान्**) उनको (**हि**) ही हम लोग (**उश्मसि**) चाहते हैं ऐसे (**तव**) आपके (**सख्ये**) मित्रपन मे हम लोग (**मा, रिषाम**) दुखी न हो ।।३।।

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानो के सङ्ग का आश्रय लेकर विद्या और अग्नि-कार्यों को सिद्ध करने के लिए सहनशीलता धारण करते है, वे प्रबल विज्ञान और अनेक क्रियाओ से युक्त होकर सुखी होते हैं ।।३।।

भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।

जीवातवे प्रतरं साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयन्तव ।।४।।

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वन् ! (**पर्वणापर्वणा**) पूरे-पूरे साधन से (**चितयन्तः**) गुणो को चुनते हुए (**वयम**) हम लोग (**ते**) आपके लिए वा इस अग्नि के लिए (**हवींषि**) यज्ञ के योग्य जो पदार्थ हैं उनको अच्छे प्रकार (**कृणवाम**) करें और (**इध्मम्**) ईंधन (**भराम**) लावें आप (**जीवातवे**) हमारे जीने के लिए (**धियः**) उत्तम बुद्धि वा कर्मों को (**प्रतरम्**) अति उत्तमता जैसे हो वैसे (**साधय**) सिद्ध करो ऐसे (**तव**) आपके वा इस भौतिक अग्नि के (**सख्ये**) मित्रपन मे (**वयम्**) हम लोग (**मा, रिषाम**) मत दुखी हो ।।४।।

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है । सेना सभा और प्रजा के जनो मे रहनेहारे पुरुषो को चाहिए कि जिस सज्जन पुरुष से बुद्धि वा पुरुषार्थ बढ़ें, उसके लिए सब सामग्री अच्छी प्रकार जुटावें, और उस पुरुष के साथ मित्रता को कोई भी न छोड़े ।।४।।

अब ईश्वर और सभाध्यक्ष के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में करते हैं—

विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपच्च यदुत चतुष्पदक्तुभिः ।

चित्रः प्रकेत उषसो महाँ अस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।।५।।३०।।

पदार्थ—हे (**अग्ने**) उत्तम सुखो के समझानेवाले सभा आदि कामो के अध्यक्ष ! आपके राज्य मे वा उत्तम सुखो का विज्ञान करानेवाले (**अस्य**) इस जगदीश्वर की सृष्टि मे (**विशाम्**) प्रजाजनो के (**यत्**) जो (**गोपा**) पालनेहारे गुण वा (**जन्तवः**) मनुष्य (**चरन्ति**) विचरते हैं वा (**अक्तुभिः**) प्रसिद्ध कर्म, प्रसिद्ध मार्ग और प्रसिद्ध रात्रियो के साथ (**उषसः**) दिनों को प्राप्त होते हैं वा जो (**द्विपत्**) दो पगवाले जीव (**च**) वा पगहीन सर्प आदि (**उत**) और (**चतुष्पत्**) चौपाये पशु आदि विचरते हैं तथा जो (**चित्र**) अद्भुत गुणकर्मस्वभाववान् (**प्रकेतः**) सब वस्तुओ को जनाते हुए जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष आप (**महान्**) उत्तमोत्तम (**असि**) हैं उन (**तव**) आपके (**सख्ये**) मित्रपन मे (**वयम्**) हम लोग (**मा, रिषाम**) वे मन कभी न हो ।।५।।

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालंकार है । मनुष्यो को चाहिए कि जिस जगदीश्वर या सभाध्यक्ष विद्वान् के बड़प्पन से जगत् की उत्पत्ति, पालना और भङ्ग होते हैं उसके मित्रता और काम मे कभी विघ्न न करें ।। ५ ।।

फिर वे ईश्वर और सभाध्यक्ष कैसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्वमध्वर्युरुत होतासि पूर्व्यः प्रशास्ता पोता जनुषा पुरोहितः ।

विश्वा विद्वाँ आर्त्विज्या धीर पुष्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।।६।।

पदार्थ—हे (**धीर**) धारण आदि गुणयुक्त ! (**अग्ने**) उत्तम ज्ञान देनेवाले परमेश्वर वा सभाध्यक्ष ! जिस कारण (**पूर्व्यः**) पिछले महाशयो के किये और चाहे हुए (**अध्वर्युः**) यज्ञ के यथोक्त व्यवहार से युक्त करने वर्त्तने और चाहने (**होता**) देने-लेने (**प्रशास्ता**) धर्म, उत्तम शिक्षा और उपदेश का प्रचार करने (**पोता**) पवित्र और दूसरो को पवित्र करने (**पुरोहितः**) हित प्रसिद्ध करने और (**विद्वान्**) यथावत् जाननेहारे (**त्वम्**) आप (**असि**) हैं (**उत**) और (**जनुषा**) उत्पन्न हुए जगत् के साथ (**विश्वा**) समग्र (**आर्त्विज्या**) ऋत्विजों के गुणप्रकाशक कामो को (**पुष्यसि**) दृढ़ करते-कराते है इससे (**तव**) आपके (**सख्ये**) मित्रपन मे (**वयम्**) हम लोग (**मा, रिषाम**) दुखी कभी न होवें ।।६।।

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है । सबके अधिष्ठाता जगदीश्वर वा विद्वानो के बिना जगत् का पालन आदि व्यवहार सम्भव नही होते, इससे मनुष्यो को चाहिए कि दिन-रात ईश्वर की उपासना और इन विद्वानो का सङ्ग करके सुखी हो ।।६।।

फिर सभाध्यक्ष और भौतिक अग्नि कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि दूरे चित्सन्तळिदिवाति रोचसे ।

रात्र्याश्चिदन्धो अति देव पश्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।।७।।

पदार्थ—हे (**देव**) सत्य के प्रकाश करने और (**अग्ने**) समस्त ज्ञान देनेहारे सभाध्यक्ष ! जैसे (**यः**) जो (**सदृङ्**) एक से देखनेवाले (**त्वम्**) आप (**सुप्रतीकः**) उत्तम प्रतीति करानेहारे (**असि**) हैं वा मूर्त्तिमान् पदार्थों को प्रकाशित कराने (**दूरे, चित्**) दूर ही मे (**सन्**) प्रकट होते हुए सूर्य्यरूप से जैसे (**तळिदिव**) बिजुली चमके वैसे (**विश्वतः**) सब ओर से (**अति**) अत्यन्त (**रोचसे**) रुचते हैं तथा भौतिक अग्नि सूर्य्यरूप से दूर ही मे प्रकट होता हुआ अत्यन्त रुचता है कि जिसके बिना (**रात्र्या**) रात्रि के बीच (**अन्धः, चित्**) अन्धे ही के समान (**अति, पश्यसि**) अत्यन्त देखते-दिखलाते हैं उस अग्नि के वा (**तव**) आपके (**सख्ये**) मित्रपन मे (**वयम**) हम लोग (**मा, रिषाम**) प्रीति रहित कभी न हो ।।७।।

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेष और उपमालङ्कार है । दूरस्थ भी सभाध्यक्ष न्यायव्यवस्थाप्रकाश से जैसे बिजुली वा सूर्य मूर्त्तिमान् पदार्थों को प्रकाशित करता है वैसे गुणहीन प्राणियो को अपने प्रकाश से प्रकाशित करता है उसके साथ किस विद्वान् को मित्रता न करनी चाहिए किन्तु सबको करनी चाहिए ।।७।।

अब शिल्पि और भौतिक अग्नि के कामों का उपदेश किया है—

पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथोऽस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्यः ।

तदा जानीतोत पुष्यता वचोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।।८।।

पदार्थ—हे (**देवाः**) विद्वानो ! तुम जिससे (**अस्माकम्**) हम लोग जो कि शिल्पविद्या को जानने की इच्छा करनेहारे है उनका (**पूर्वः**) प्रथम सुख करने-हारा (**रथः**) विमानादि या (**दूढ्यः**) जिन को अधिकार नही है उनको दुःख-पूर्वक विचारने योग्य (**भवतु**) हो तथा उक्त गुणवाला रथ (**शंसः**) प्रशसनीय (**अभि**) आगे (**अस्तु**) हो (**तत्**) उस विद्या और उत्तम शिक्षा से युक्त (**वचः**) वचन की (**आ, जानीत**) आज्ञा देओ (**उत**) और उसी से आप (**पुष्यत**) पुष्ट होओ तथा हम लोगो को पुष्ट करो हे (**अग्ने**) उत्तम शिल्पविद्या के जानने-हारे परमप्रवीण ! (**सुन्वतः**) सुख का निचोड़ करते हुए (**तव**) आपके वा इस भौतिक अग्नि की (**सख्ये**) मित्रता मे (**वयम्**) हम लोग (**मा, रिषाम**) दुखी कभी न हों ।।८।।

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेष और वाचकलुप्तोपमा अलंकार हैं । हे विद्वानो ! जिस ढङ्ग से मनुष्यो मे आत्मज्ञान और शिल्पव्यवहार की विद्या प्रकाशित होकर सुख की उन्नति हो वैसा यत्न करो ।।८।।

अब सभा, सेना और शाला आदि के अध्यक्षों के गुणों का उपदेश किया है—

वधैर्दुःशंसाँ अप दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिदत्रिणः ।

अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।।९।।

पदार्थ—हे सभा सेना और शाला आदि के अध्यक्ष विद्वन् ! आप जैसे (**दूढ्यः**) दुष्ट बुद्धियो और (**दुःशंसान्**) जिन की दुःख देनेहारी सिखावटें हैं उन डाकू आदि (**अत्रिणः**) शत्रुजनो को (**वधैः**) ताड़नाओं से (**अप, जहि**) अपघात अर्थात् दुर्गति से दुःख देओ और शरीर (**वा**) वा आत्मभाव से (**दूरे**) दूर (**वा**) अथवा (**अन्ति**) समीप मे (**ये**) जो (**केचित्**) कोई अधर्मी मनुष्य वर्त्तमान हों उनको (**अपि**) भी अच्छी शिक्षा वा प्रबल ताड़नाओं से सीधा करो ऐसे करके (**अथ**) पीछे (**यज्ञाय**) क्रियामय यज्ञ के लिए (**गृणते**) विद्या की प्रशंसा करते हुए पुरुष के योग्य (**सुगम्**) जिस काम मे विद्या पहुँचती है उसको (**कृधि**) कीजिए इस कारण ऐसे समर्थ (**तव**) आप के (**सख्ये**) मित्रपन में (**वयम्**) हम लोग (**मा, रिषाम**) मत दुःख पावें ।।९।।

भावार्थ—सभाध्यक्षादिको को चाहिए कि यत्न के साथ प्रजा में अयोग्य उप-देशो के पठन-पाठन आदि कामों का निवारण करके दूरस्थ तथा समीपस्थ मनुष्यों

को मित्र के समान मानके सब प्रकार से प्रेमभाव उत्पन्न करें जिससे परस्पर निश्चल आनन्द बढ़े ॥९॥

अब शिल्पि और भौतिक अग्नि के गुणों का उपदेश किया है—

यदयुक्था अरुषा रोहिता रथे वातजूता वृषभस्येव ते रवः ।

आदिन्वसि वनिनो धूमकेतुनाग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१०॥

पदार्थ—(अग्ने) समस्त शिल्पव्यवहार के ज्ञान देनेवाले क्रिया चतुर विद्वन् ! जिस कारण आप (यत्) जो कि (ते) आपके वा इस अग्नि के (वृषभस्येव) पदार्थों के लेजानेहारे बलवान् बैल के समान वा (वातजूता) पवन के वेग के समान वेगयुक्त (अरुषा) सीधे स्वभाव (रोहिता) दृढ़,बल आदियुक्त घोड़े (रथे) विमान आदि यानों में जोड़ने के योग्य हैं उनको (अयुक्थाः) जुड़वाते हैं वा यह भौतिक अग्नि जुड़वाता है उस रथ से निकला जो (रवः) शब्द उस के साथ वर्त्तमान (धूमकेतुना) जिसमें धूम ही पताका है उस रथ से सब व्यवहारों को (इन्वसि) व्याप्त होते हो वा यह भौतिक अग्नि उक्त प्रकार से व्यवहारों को व्याप्त होता है इससे (आत्) पीछे (वनिनः) जिन को अच्छे विभाग वा सूर्यकिरणों का सम्बन्ध है (तव) उन आपके वा जिस भौतिक अग्नि की किरणों का सम्बन्ध है उसके (सख्ये) मित्रपन में (वयम्) हम लोग (मा, रिषाम) पीड़ित न हों ॥१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है। जिसमें शिल्पी और भौतिक अग्नि सर्वहित करनेवाले कामों को सिद्ध कर सकते हैं उससे विमान आदि यानों की सम्भावना करनी योग्य है ॥१०॥

अध स्वनादुत बिभ्युः पतत्रिणो द्रप्सा यत्ते यवसादो व्यस्थिरन् ।

सुगं तत्ते तावकेभ्यो रथेभ्योऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥११॥

पदार्थ—हे (अग्ने) समस्त विज्ञान देनेहारे शिल्पिन् ! (यत्) जब (ते) तुम्हारे (यवसादः) अन्नादि पदार्थों को खानेहारे (द्रप्साः) हर्षयुक्त भृत्य वा लपट आदि गुण (सुगम्) उस मार्ग को कि जिसमें सुख से जाते हैं (वि) अनेक प्रकारों से (अस्थिरन्) स्थिर होवें (तत्) तब (ते) आपके वा इस भौतिक अग्नि के (तावकेभ्यः) जो आपके वा इस अग्नि के सिद्ध किये हुए रथ हैं उन (रथेभ्यः) विमान आदि रथों से (पतत्रिणः) पक्षियों के तुल्य शत्रु (बिभ्युः) डरें (अध) उसके अनन्तर (उत) एक निश्चय के साथ ही उन रथों के (स्वनात्) शब्द से पक्षियों के समान डरे हुए शत्रु बिलाय जाते हैं ऐसे (तव) आपके वा इस अग्नि के (सख्ये) मित्रपन में (वयम्) हम लोग (मा, रिषाम) मत अप्रसन्न हों ॥११॥

भावार्थ—जब आग्नेय अस्त्र-शस्त्र और विमानादि यानयुक्त सेना इकट्ठी कर शत्रुओं के जीतने के लिए वेग से जाकर शस्त्रों के प्रहार वा अच्छे आनन्दित शब्दों से शत्रुओं के साथ युद्ध किया जाता है तब निश्चय ही विजय होता है, यह मनुष्यों को जानना चाहिए। यह स्थिर विजय, निश्चय ही विद्वानों के विरोधियों तथा अन्यादि विद्यारहित पुरुषों का कभी नहीं हो सकता। इससे सब दिन इसका अनुष्ठान करना चाहिए ॥११॥

अब सभापति आदि के गुणों का उपदेश करते हैं—

अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसेऽवयातां मरुतां हेळो अद्भुतः ।

मृळा सु नो भूत्वेषां मनः पुनरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१२॥

पदार्थ-हे (अग्ने) समस्त ज्ञान देनेहारे सभा आदि के अधिपति ! जिस कारण आपने (मित्रस्य) मित्र वा (वरुणस्य) श्रेष्ठ के (धायसे) धारण वा सन्तोष के लिए जो (अयम्) यह प्रत्यक्ष (अवयाताम्) धर्मविरोधी (मरुताम्) मरने-जीनेवाले मनुष्यों का (अद्भुतः) अद्भुत (हेळः) अनादर किया है उससे (एषाम्) इन (नः) हम लोगों के (मनः) मन को (पुनः) बार-बार (सुमृळ) अच्छे प्रकार आनन्दित करो ऐसे (भूतु) हो इससे (तव) तुम्हारे (सख्ये) मित्रपन में (वयम्) हम लोग (मा, रिषाम) मत बेमन हों ॥१२॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि सभाध्यक्ष के श्रेष्ठों के पालन और दुष्टों के ताड़न को जानकर सदा आचरण करें ॥१२॥

फिर ईश्वर और सभापति आदि के साथ मित्रभाव क्यों करना चाहिए

यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।

शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) जगदीश्वर वा विद्वन् ! जिस कारण आप (अध्वरे) न छोड़ने योग्य उपासनारूपी यज्ञ वा संग्राम में (देवानाम्) दिव्यगुणों से परिपूर्ण विद्वान् वा दिव्यगुणयुक्त पदार्थों में (देवः) दिव्यगुणसम्पन्न (अद्भुतः) आश्चर्य-रूप गुण, कर्म और स्वभाव से युक्त (चारुः) अत्यन्त श्रेष्ठ (मित्रः) बहुत सुख करने और सब दुःखों का विनाश करनेवाले (असि) हैं तथा (वसूनाम्) बसने और बसानेवाले मनुष्यों के बीच (वसुः) बसने और बसानेवाले (असि) हैं इस कारण (तव) आप के (सप्रथस्तमे) अच्छे प्रकार अति फैले हुए गुण कर्म स्वभावों के साथ वर्त्तमान (शर्मन्) सुख में (वयम्) हम लोग अच्छे प्रकार निश्चित (स्याम) हों और (तव) आप के (सख्ये) मित्रपन में कभी (मा, रिषाम) बेमन न हों ॥१३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। किसी मनुष्य को भी परमेश्वर और विद्वानों की सुख देनेवाली मित्रता चिरस्थायी नहीं होती इससे इसे प्राप्त करने के लिए हम मनुष्यों को स्थिर मति के साथ प्रवृत्त होना चाहिए ॥१३॥

फिर कैसों के साथ सब को प्रेमभाव करना चाहिए यह विषय

अगले मन्त्र में कहा है—

तत्ते भद्रं यत्समिद्धः स्वे दमे सोमाहुतो जरसे मृळयत्तमः ।

दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) समस्त विज्ञान देनेवाले ईश्वर वा विद्वन् ! (यत्) जिस कारण (स्वे) अपने (दमे) दमन किये हुए संसार में (समिद्धः) अच्छे प्रकार प्रकाशित (सोमाहुतः) और ऐश्वर्य करनेवाले गुण और पदार्थों से वृद्धि को प्राप्त किये हुए अग्नि के समान (मृळयत्तमः) अत्यन्त सुख देनेहारे आप सब विद्वानों से (जरसे) अर्चन पूजन को प्राप्त होते हैं वा (दाशुषे) उत्तम शील के निमित्त अपना वर्त्ताव वर्त्तते हुए मनुष्य के लिए (रत्नम्) अति रमणीय (द्रविणम्) चक्रवर्त्ति राज्य आदि कामों से सिद्ध धन (च) और विद्या आदि अच्छे गुणों को (दधासि) धारण करते हैं (तत्) इस कारण ऐसे (ते) आपके (भद्रम्) सुख करनेवाले स्वभाव को (वयम्) हम लोग कभी (मा, रिषाम) मत भूलें किन्तु (तव) आप के (सख्ये) मित्रपन में अच्छे प्रकार स्थिर हों ॥१४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि वेदप्रमाण और सृष्टिक्रम के प्रमाण तथा सत्पुरुषों, ईश्वर और विद्वान् के काम वा स्वभाव को मन में धरके सब प्राणियों के साथ मित्रता वर्त्तकर सदा विद्या-धर्म और शिक्षा की उन्नति करें ॥१४॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशोऽनागास्त्वमदिते सर्वताता ।

यं भद्रेण शवसा चोदयासि प्रजावता राधसा ते स्याम ॥१५॥

पदार्थ—हे (सुद्रविणः) अच्छे-अच्छे धनों के देने और (अदिते) विनाश को न प्राप्त होनेवाले जगदीश्वर वा विद्वन् ! जिस कारण (त्वम्) आप (सर्वताता) समस्त व्यवहार में (यस्मै) जिस मनुष्य के लिए (अनागास्त्वम्) निरपराधता को (ददाशः) देते हैं तथा (यम्) जिस मनुष्य को (भद्रेण) सुख करनेवाले (शवसा) शारीरिक, आत्मिक बल और (प्रजावता) जिस में प्रशंसित पुत्र आदि हैं उस (राधसा) विद्या, सुवर्ण आदि धन से युक्त करके अच्छे व्यवहार में (चोदयासि) लगाते हैं इससे आप की वा विद्वानों की शिक्षा में वर्त्तमान जो हम लोग अनेकों प्रकार से यत्न करें (ते) वे हम इस काल में स्थिर (स्याम) हों ॥१५॥

भावार्थ-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जिस मनुष्य में अन्तर्यामी ईश्वर धर्मशीलता को प्रकाशित करता है वह मनुष्य विद्वानों के संग प्रीति करता हुआ सब प्रकार के धन और अच्छे-अच्छे गुणों को पाकर सदा सुखी होता है, इससे इस काम को हम लोग भी नित्य करें ॥१५॥

स त्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वानस्माकमायुः प्र तिरेह देव ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१६॥

पदार्थ—हे (देव) सबसे कामना के योग्य (अग्ने) जीवन और ऐश्वर्य्य के देने-हारे जगदीश्वर ! जो (त्वम्) आप ने उत्पन्न किये वा रोग छूटने की ओषधियों को देने-हारे विद्वान् जो आप ने बतलाये (मित्र) प्राण (वरुणः) उदान (अदितिः) उत्पन्न हुए समस्त पदार्थ (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) भूमि (उत) और (द्यौः) विद्युत् का प्रकाश हैं वे (नः) हम लोगों को (मामहन्ताम्) उन्नति के निमित्त हों (तत्) और वह सब वृत्तान्त (अस्माकम्) हम लोगों को (सौभगत्वस्य) अच्छे-अच्छे ऐश्वर्य्यों के होने का (आयुः) जीवन का ज्ञान है (इह) इस कार्य्यरूप जगत् में (सः) वह (विद्वान्) समस्त विद्या की प्राप्ति करानेवाले जगदीश्वर आप वा प्रमाणपूर्वक विद्या देनेवाला विद्वान् आप दोनों (प्रतिर) अच्छे प्रकार दुःखों से तारो ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि परमेश्वर और विद्वानों के आश्रय से पदार्थविद्या को पाकर इस संसार में सौभाग्य और आयु को बढ़ावें ॥ १६ ॥

इस सूक्त में ईश्वर सभाध्यक्ष विद्वान् और अग्नि के गुणों का वर्णन है इससे इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति समझनी चाहिए ॥

इस अध्याय में सेनापति के उपदेश और उसके काम आदि का वर्णन है इससे इस छठे अध्याय के अर्थ की पञ्चमाध्याय के अर्थ के साथ एकता समझनी चाहिए ॥

यह श्रीमान् संन्यासियों में श्री आचार्य्य श्रीयुत महाविद्वान् विरजानन्द सरस्वती स्वामीजी उनके शिष्य दयानन्द सरस्वती स्वामीजी के बनाये आर्य्यभाषा से शोभित सुप्रमाणों से युक्त ऋग्वेद-भाष्य के प्रथमाष्टक में छठा अध्याय समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तमाध्यायारम्भः

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ।

अथास्य पञ्चनवतितमस्यैकादशर्चस्य सूक्तस्याङ्गिरस कुत्स ऋषिः । सत्यगुणविशिष्टोऽग्निः शुद्धोऽग्निर्वा देवता । १, ३, विराट् त्रिष्टुप्, २, ७, ८, ११, त्रिष्टुप्, ४, ५, ६, १० निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ९ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।।

अब रात्रि और दिन कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते ।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ।।१।।

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (विरूपे) उजेले और अन्धेरे से अलग-अलग रूप और (स्वर्थे) उत्तम प्रयोजनवाले (द्वे) दो अर्थात् रात और दिन परस्पर (चरतः) वर्त्ताव वर्त्तते और (अन्यान्या) परस्पर (वत्सम्) उत्पन्न हुए संसार का (उपधापयेते) खान-पान कराते हैं (अन्यस्याम्) दिन से अन्य रात्रि में (स्वधावान्) जो अपने गुण से धारण किया जाता वह ओषधि आदि पदार्थों का रस जिस में विद्यमान है ऐसा (हरिः) उष्णता आदि पदार्थों का निवारण करनेवाला चन्द्रमा (भवति) प्रकट होता है वा (अन्यस्याम्) रात्रि से अन्य दिवस होनेवाली वेला में (शुक्रः) आतपवान् (सुवर्चाः) अच्छे प्रकार उजेला करनेवाला सूर्य्य (ददृशे) देखा जाता है वे रात्रिदिन सर्वदा वर्त्तमान हैं इन को रेखागणित आदि गणितविद्या से जानकर इनके बीच उपयोग करो ।। १ ।।

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जैसे दिन रात-कभी निवृत्त नहीं होते किन्तु सर्वदा बने रहते हैं अर्थात् एक देश में नहीं तो दूसरे देश में होते हैं वैसे जो काम रात और दिन में करने योग्य हो उनको विना आलस के करके सब कामों की सिद्धि करें ।। १ ।।

अब दिन-रात का व्यवहार दिशाओं के मिष से अगले मन्त्र में कहा है—

दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भमतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम् ।
तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परि षीं नयन्ति ।।२।।

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (अतन्द्रासः) जो एक नियम के साथ रहने से निरालसता आदि गुणों से युक्त (युवतयः) जवान स्त्रियों के समान एक दूसरे के साथ मिलने वा न मिलने से सब कभी अजर-अमर रहनेवाली (दश) दश दिशा (त्वष्टुः) बिजुली वा पवन के (इमम्) इस प्रत्यक्ष अहोरात्र में प्रसिद्ध (गर्भम्) समस्त व्यवहार का कारणरूप (विभृत्रम्) जो कि अनेकों प्रकार की क्रिया को धारण किये हुए (तिग्मानीकम्) जिस में अत्यन्त तीक्ष्ण सेनाजन विद्यमान जो (जनेषु) गणित विद्या के जाननेवाले मनुष्यों में (विरोचमानम्) अनेक रीति से प्रकाशमान (स्वयशसम्) अनेक गुण कर्म्म स्वभाव और प्रशंसायुक्त (सीम्) प्राप्त होने के योग्य उस दिन-रात के व्यवहार को (जनयन्त) उत्पन्न करती और (परि) सब ओर से (नयन्ति) स्वीकार करती हैं उनको तुम लोग जानो ।।२ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि जिनके देश काल का नियम अनुमान में नहीं आता ऐसी अनन्तरूप पूर्व आदि क्रम से प्रसिद्ध सब व्यवहारों की सिद्धि करानेवाली दश दिशा हैं उनमें नियमयुक्त व्यवहारों को सिद्ध करें, इनमें किसी को विरुद्ध व्यवहार न करना चाहिए ।।२।।

फिर वह दिन और रात क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्रीणि जाना परि भूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु ।
पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानामृतून्प्रशासद्वि दधावनुष्ठु ।।३।।

पदार्थ—हे गणितविद्या को जाननेवाले मनुष्यो ! जो दिनरात (पूर्वाम्) पूर्व (प्र, दिशम्) प्रदेश जिस का कि मनुष्य उपदेश किया करते हैं उसको (अनुष्ठु) तथा उसके अनुकूल (पार्थिवानाम्) पृथिवी और अन्तरिक्ष में विदित हुए पदार्थों के बीच (ऋतून्) वसन्त आदि ऋतुओं को (प्रशासत्) प्रेरणा देता हुआ (अनु) तदनन्तर उनका ((वि, दधौ)) विधान करता है (अस्य) इस दिन रात का (एकम्) एक पाँव (दिवि) सूर्य्य में एक (समुद्रे) समुद्र में और (एकम्) एक (अप्सु) प्राण आदि पवनों में है तथा इस दिनरात के अङ्ग (त्रीणि) अर्थात् भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान के पृथग्भाव से उत्पन्न (जाना) मनुष्यों में हुए व्यवहारों को (परि, भूषन्ति) शोभित करते हैं इन सब को जानो ।।३।।

भावार्थ—दिनरात आदि समय के अङ्गों की सत्ता के विना भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान कालों की सम्भावना भी नहीं हो सकती, और न इनके विना कोई ऋतु सम्भव है । जो सूर्य्य और अन्तरिक्ष में ठहरे हुए पवन की गति से समय के अवयव अर्थात् दिनरात्रि आदि प्रसिद्ध हैं उन सब को जानके सब मनुष्यों को चाहिए कि व्यवहारसिद्धि करें ।।३।।

फिर वह दिनरात्रि के समय का समूह कैसा है यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

क इमं वो निण्यमा चिकेत वत्सो मातॄर्जनयत स्वधाभिः ।
बह्वीनां गर्भो अपसामुपस्थान्महान्कविर्निश्चरति स्वधावान् ।।४।।

पदार्थ—जो (बह्वीनाम्) अनेकों अन्तरिक्ष और भूमि तथा दिशाओं वा (अपसाम्) जलों के (उपस्थात्) समीपस्थ व्यवहार से (गर्भः) अच्छा आच्छादन करनेवाला (स्वधावान्) जिस में कि प्रशंसित अपने अङ्ग विद्यमान हैं (महान्) व्याप्ति आदि गुणों से युक्त (वत्सः) किन्तु अपनी व्याप्ति से सर्वोपरि सबको ढाँपने वा (कविः) क्रम-क्रम से दृष्टिगत होनेवाला समय (निः, चरति) निरन्तर अर्थात् एकतार चल रहा है और (स्वधाभिः) सूर्य्य वा भूमि के साथ (मातॄः) माता के तुल्य पालनेहारी रात्रियों को (जनयत) प्रकट करता है (इमम्) इस (निण्यम्) निश्चय से एक से रहनेवाले समय को (कः) कौन मनुष्य (आ, चिकेत) अच्छे प्रकार जान सके (वः) इन समय के अवयवों अर्थात् क्षण, घड़ी, प्रहर, दिन, रात, मास, वर्ष आदि के स्वरूप को भी कौन जान सके ।।४।।

भावार्थ—मनुष्यों को जानना चाहिए कि जिस का सूक्ष्म-से-सूक्ष्म बोध है, जो अपने समस्त काल विभागों को प्रकट करता, सब कामों में व्याप्त होता, जिस में सब जगत् एकरस रहता है उस समय को कोई विद्वान् जान सकता है सब कोई नहीं ।।४।।

आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु जिह्मानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे ।
उभे त्वष्टुर्बिभ्यतुर्जायमानात्प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते ।।५।।१।।

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जिस (जायमानात्) प्रसिद्ध (त्वष्टुः) छेदन करने अर्थात् सब की अवधि को पूरी करनेहारे समय से (उभे) दोनों रात्रि और दिन (बिभ्यतुः) सब को डरपाते हैं वा जिससे (प्रतीची) पछाँह की दिशा प्रकट होती है वा उक्त रात्रिदिन सब व्यवहारों का (प्रति, जोषयेते) सेवन तथा जो समय (उपस्थे) काम करनेवालों के समीप (स्वयशाः) अपनी कीर्ति अर्थात् प्रशंसा को प्राप्त होता वा (जिह्मानाम्) कुटिलों से (ऊर्ध्वः) ऊपर-ऊपर अर्थात् उन के शुभ कर्म में नहीं व्यतीत होता (आसु) इन दिशा वा प्रजाजनों में (चारुः) सुन्दर (आविष्ट्यः) प्रकट हुए व्यवहारों में प्रसिद्ध (वर्धते) और उन्नति को पाता है उस (सिंहम्) हम तुम सब को काटनेहारे समय को तुम लोग यथावत् जानो ।।५।।

भावार्थ—मनुष्यों को यह जानना चाहिए कि संसार की उत्पत्ति के समय से जो उत्पन्न हुआ अग्नि है वह छेदन गुण से ऊर्ध्वगामी अर्थात् जिस की लपट ऊपर को जाती और काष्ठ आदि पदार्थों में अपनी व्याप्ति से बढ़ता और सूर्यरूप से दिशाओं का बोध करानेवाला है वह भी काल से उत्पन्न होकर समय पाकर ही नष्ट होता है ।।५।।

उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः ।
स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूवाञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः ।।६।।

पदार्थ—(भद्रे) सुख देनेवाले (उभे) दोनों रात्रि और दिन (मेने) प्रीति करती हुई स्त्रियों के (न) समान (यम्) जिस समय को (जोषयेते) सेवन करते हैं (वाश्राः) बछड़ों को चाहती हुई (गावः) गौओं के (न) समान समय के और अङ्ग अर्थात् महिने, वर्ष आदि (एवैः) सब व्यवहार को प्राप्त करानेवाले गुणों के साथ (उपतस्थुः) समीपस्थ होते हैं वा (दक्षिणतः) दक्षिणायन काल के विभाग से (हविर्भिः) यज्ञसामग्री करके जिस समय को विद्वान् जन (अञ्जन्ति) चाहते हैं (सः) वह (दक्षाणाम्) विद्या और क्रिया की कुशलताओं में चतुर विद्वान् अत्युत्तम पदार्थों में (दक्षपतिः) विद्या तथा चतुराई का पालनेहारा (बभूव) होता है ।। ६ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्य को चाहिए कि रात-दिन आदि समय के प्रत्येक अवयव का अच्छी तरह सेवन करें, धर्मसे उनमें यज्ञ के अनुष्ठान आदि श्रेष्ठ व्यवहारों का ही आचरण करें और अधर्म व्यवहार वा अयोग्य काम कभी न करें ।। ६ ।।

उद्यंयमीति सवितेव बाहू उभे सिचौ यतते भीम ऋञ्जन् ।
उच्छुक्रमत्कमजते सिमस्मान्नवा मातृभ्यो वसना जहाति ।।७।।

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (भीमः) भयंकर (ऋञ्जन्) सब को प्राप्त होता हुआ काल (मातृभ्यः) मान करनेहारे क्षण आदि अपने अवयवों से (सवितेव) जैसे सूर्यलोक अपनी आकर्षण शक्ति से भूगोल आदि लोकों का धारण करता है वैसे (उद्यंयमीति) बार-बार नियम रखता है (बाहू) बल और पराक्रम वा (उभे) सूर्य्य और पृथ्वी (सिचौ) वा वर्षा के द्वारा सींचनेवाले पवन और अग्नि को (यतते) व्यवहार में लाता है वह काल (अत्कम्) निरन्तर (शुक्रम्) पराक्रम को (सिमस्मात्) सब जगत् से (उत्) ऊपर की श्रेणी को (अजते) पहुँचाता और (नवा) नवीन (वसना) आच्छादनों को (जहाति) छोड़ता है यह जानो ।। ७ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । हे मनुष्यो ! तुम लोगों से जिस काल से सूर्य आदि जगत् प्रकट होता है और जो क्षण आदि अंगों से सब का आच्छादन करता सब के नियम का हेतु वा सबकी प्रवृत्ति का अधिकरण है उसको जानके समय के अनुसार काम करने चाहिएँ ।। ७ ।।

फिर वह काल क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत्संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः ।
कविर्बुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव ॥८॥

पदार्थ—मनुष्यों को चाहिए (यत्) जो (संपृञ्चानः) अच्छा परिचय करता-कराता हुआ (कविः) जिस का क्रम से दर्शन होता है वह समय (सदने) भुवन में (गोभिः) सूर्य्य की किरणों वा (अद्भिः) प्राण आदि पवनों से (उत्तरम्) उत्पन्न होनेवाले (त्वेषम्) मनोहर (बुध्नम्) प्राण और बल सम्बन्धी विज्ञान और (रूपम्) स्वरूप को (कृणुते) करता है तथा जो (धीः) उत्तम बुद्धि वा क्रिया (परि, मर्मृज्यते) सब प्रकार से शुद्ध होती है (सा) वह (देवताता) ईश्वर और विद्वानों के साथ (समितिः) विशेष ज्ञान की मर्यादा (बभूव) होती है इस समस्त उक्त व्यवहार को जानकर बुद्धि को उत्पन्न करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि काल के विना कार्य्य स्वरूप उत्पन्न होकर नष्ट हो जाय यह होता ही नहीं, और न ब्रह्मचर्य्य आदि के सेवन विना शास्त्रबोध करानेवाली बुद्धि होती है । इस कारण काल के परमसूक्ष्म स्वरूप को जानकर थोड़ा भी समय व्यर्थ न खोवें, किन्तु आलस्य छोड़के समय के अनुकूल व्यवहार और परमार्थ काम का सदा अनुष्ठान करें ॥ ८ ॥

फिर उस समय के सेवन करने से क्या होता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

उरु ते ज्रयः पर्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम ।
विश्वेभिरग्ने स्वयशोभिरिद्धोऽदब्धेभिः पायुभिः पाह्यस्मान् ॥९॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (ते) आपके सम्बन्ध से जैसे सूर्य्य वैसे (इद्धः) प्रकाशमान हुआ समय (विश्वेभिः) समस्त (स्वयशोभिः) अपने प्रशंसित गुण, कर्म और स्वभावोंसे (अदब्धेभिः) वा किसी से न मिट सकें ऐसे (पायुभिः) अनेक प्रकार के रक्षा आदि व्यवहारों से युक्त (विरोचमानम्) विविध प्रकार से प्रकाशमान (बुध्नम्) प्रथम कहे हुए अन्तरिक्ष को (उरु) वा बहुत (ज्रयः) जिससे आयु व्यतीत करते हैं उस वृत्त को वा (अस्मान्) हम लोगों को और (महिषस्य) बड़े लोक के (धाम) स्थानान्तर को (पर्येति) पर्य्याय से प्राप्त होता है वैसे हमारी (पाहि) रक्षा कर और उस की सेवा कर ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को यह जानना चाहिए कि विभुकाल के विना सूर्य्य आदि कार्य्य जगत् की बार बार सत्ता नहीं होती और न उससे पृथक् हम लोगों का कुछ भी काम अच्छी प्रकार होता है ॥ ९ ॥

अब समय वा अग्नि किस प्रकार का है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

धन्वन्स्रोतः कृणुते गातुमूर्मिं शुक्रैरूर्मिभिरभि नक्षति क्षाम् ।
विश्वा सनानि जठरेषु धत्तेऽन्तर्नवासु चरति प्रसूषु ॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो समय वा बिजुलीरूप आग (धन्वन्) अन्तरिक्ष में (स्रोतः) जिससे और-और वस्तु वा जल प्राप्त होते हैं उस (गातुम्) प्राप्त होने योग्य (ऊर्मिम्) प्रात समय की बेला वा जल की तरंग को (कृणुते) प्रकट करता है वा (शुक्रैः) शुद्ध क्रम वा किरणों और (ऊर्मिभिः) पदार्थ प्राप्त करानेहारे तरंगों से (क्षाम्) भूमि को भी (अभि, नक्षति) सब ओर से व्याप्त और प्राप्त होताहै वा जो (जठरेषु) भीतरले व्यवहारों और पेट के भीतर अन्न आदि पचाने के स्थानों में (विश्वा) समस्त (सनानि) न्यारे-न्यारे पदार्थों को (धत्ते) स्थापित करता वा जो (प्रसूषु) पदार्थ उत्पन्न होते हैं उन में वा (नवासु) नवीन प्रजाजनों मे (अन्तः) भीतर (चरति) विचरता है उसको यथावत् जानो ॥१०॥

भावार्थ—आप्त विद्वान् मनुष्यों को चाहिए कि व्यापनशील काल और बिजुलीरूप अग्नि को जानकर उनके निमित्त से अनेक कामों को यथावत् सिद्ध करें ॥ १० ॥

फिर वे काल और भौतिक अग्नि कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११॥

पदार्थ—हे (पावक) पवित्र (अग्ने) विद्वन् ! समय और बिजुली रूप भौतिक अग्नि (नः) हम लोगों के (समिधा) अच्छे प्रकाश को प्राप्त किये हुए अपने भाव से वा ईंधन आदि (वृधानः) बढ़ता वा वृद्धि कराता हुआ जिस (रेवत्) परम उत्तम धनवान् (श्रवसे) सुनने तथा अन्न के लिए (एव) ही अनेक प्रकार से प्रकाशित होता है (उत) और (तत्) इससे (मित्रः) प्राण (वरुणः) उदान (अदितिः) अन्तरिक्ष आदि (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) भूमि वा (द्यौः) बिजुली का प्रकाश (नः) हम लोगों को (मामहन्ताम्) वृद्धि देते हैं वैसे आप हम लोगों को (वि, भाहि) प्रकाशित करो वा काल वा भौतिक अग्नि प्रकाशित होता है ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है । काल और भौतिक अग्नि की विद्या के विना किसी को विद्यायुक्त धन नहीं प्राप्त हो सकता, और न कोई समय के अनुकूल वर्त्ताव विना प्राणादिकों से यथावत् उपकार ले सकता है । इससे इस समस्त उक्त व्यवहार को जानके सब कार्य्य की सिद्धिकर सदा आनन्द करना चाहिए ॥११॥

इस सूक्त में काल और अग्नि के गुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति है ऐसा जानना चाहिए ॥

卐

अथ नवर्चस्य षण्णवतितमस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । द्रविणोदा अग्निः शुद्धोऽग्निर्वा देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।

अब नव ऋचावाले छियानवें सूक्त का प्रारम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में अग्नि शब्द से विद्वान् के गुणों का उपदेश किया है ॥

स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बळधत्त विश्वा ।
आपश्च मित्रं धिषणा च साधन्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥१॥

पदार्थ—जो (देवाः) विद्वान् लोग (द्रविणोदाम्) द्रव्य के देनेहारे (अग्निम्) परमेश्वर वा भौतिक अग्नि को (धारयन्) धारण करते-कराते हैं वे सब कामों को (साधन्) सिद्ध करते वा कराते हैं उनके (आपः) प्राण (च) और विद्या पढ़ाना आदि काम (मित्रम्) मित्र (धिषणा, च) और बुद्धि हस्तक्रिया से सिद्ध होती हैं जो मनुष्य (सहसा) बल से (प्रत्नथा) प्राचीनों के समान (जायमान) प्रकट होता हुआ (विश्वा) समस्त (काव्यानि) विद्वानों के किये काव्यों को (सद्यः) शीघ्र (बट्) यथावत् (अधत्त) धारण करता है (सः) वह विद्वान् और सुखी होता है ॥१॥

भावार्थ—मनुष्य ब्रह्मचर्य्य और विद्या की प्राप्ति के विना कवि नहीं हो सकता और न कविता के विना परमेश्वर वा बिजुली को जानकर कार्य्यों को कर सकता है । इससे उक्त ब्रह्मचर्य्य आदि नियम का अनुष्ठान नित्य करना चाहिए ॥१॥

फिर वह परमेश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है ॥

स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम् ।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥२॥

पदार्थ—मनुष्यों को जो (पूर्वया) प्राचीन (निविदा) वेदवाणी (कव्यता) जिससे कि कविताई आदि कामों का विस्तार करें उससे (मनूनाम्) विचारशील पुरुषों के समीप (आयोः) सनातन कारण से (इमाः) इन प्रत्यक्ष (प्रजाः) उत्पन्न होनेवाले प्रजाजनों को (अजनयत्) उत्पन्न करता है वा (विवस्वता, चक्षसा) सब पदार्थों को दिखानेवाले सूर्य्य से (द्याम्) प्रकाश (अपः) जल (च) पृथिवी वा ओषधि आदि पदार्थों तथा जिस (द्रविणोदाम्) धन देनेवाले (अग्निम्) परमेश्वर को (देवाः) आप्त विद्वान् जन (धारयन्) धारण करते हैं (सः) वह नित्य उपासना करने योग्य है ॥२॥

भावार्थ—ज्ञानवान् अर्थात् चेतना के विना उत्पन्न किये, कार्य्य करनेवाला कोई जड़ पदार्थ आप नहीं उत्पन्न हो सकता । इससे समस्त जगत् के उत्पन्न करनेहारे सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर को सब मनुष्य मानें, अर्थात् जब तृणमात्र आपसे नहीं उत्पन्न हो सकता तो यह कार्य्य जगत् कैसे उत्पन्न हो सके । इससे इसको उत्पन्न करनेवाला जो चेतनरूप है वही परमेश्वर है ॥२॥

तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम् ।
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (प्रथमम्) समस्त उत्पन्न जगत् के पहले वर्त्तमान (यज्ञसाधम्) विज्ञान, योगाभ्यासादि यज्ञों से जाना जाता (ऋञ्जसानम्) विवेक आदि साधनों से अच्छे प्रकार सिद्ध किया जाता (आहुतम्) विद्वानों से सत्कार को प्राप्त (आरीः) प्राप्त होने योग्य (विशः) प्रजाजनों और (भरतम्) धारणा वा पुष्टि करनेवाला (सृप्रदानुम्) जिससे कि ज्ञान देना बनता है उस (ऊर्जः) कारणरूप पवन से (पुत्रम्) प्रसिद्ध हुए प्राण को उत्पन्न करने और (द्रविणोदाम्) धन आदि पदार्थों के देनेवाले (अग्निम्) जगदीश्वर को (देवाः) विद्वान् जन (धारयन्) धारण करते वा कराते हैं (तम्) उस परमेश्वर की तुम नित्य (ईळत) स्तुति करो ॥३॥

भावार्थ—हे जिज्ञासु अर्थात् परमेश्वर का विज्ञान चाहनेवाले मनुष्यो ! तुम जिस ईश्वर ने सब जीवों के लिए सब सृष्टियों को उत्पन्न करके प्राप्त कराया है, वा जिसने सृष्टि को धारण करनेहारा पवन और सूर्य्य रचा है, उसको छोड़के अन्य किसी की कभी ईश्वरभाव से उपासना मत करो ॥३॥

स मातरिश्वा पुरुवारपुष्टिर्विदद्गातुं तनयाय स्वर्वित् ।
विशां गोपा जनिता रोदस्योर्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥४॥

पदार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जिस ईश्वर ने (तनयाय) अपने पुत्र के समान जीव के लिए (स्वर्वित्) सुख का पहुंचानेहारा (गातुम्) वाणी को (विदत्) प्राप्त कराया (पुरुवारपुष्टिः) जिससे अत्यन्त समस्त व्यवहार के स्वीकार करने की पुष्टि होती है वह (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में सोने और बाहर-भीतर रहनेवाला पवन बनाया है जो (विशाम्) प्रजाजनों का (गोपाः) पालने और (रोदस्योः) उजेले-अन्धेरे को वर्त्तनिहारे लोकसमूहों का (जनिता) उत्पन्न करनेवाला है जिस (द्रविणोदाम्) धन देनेवाले के तुल्य (अग्निम्) जगदीश्वर को (देवाः) उक्त विद्वान् जन (धारयन्) धारण करते वा कराते हैं (सः) वह सब दिन इष्टदेव मानने योग्य है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । पवन के निमित्त के विना किसी की वाणी प्रवृत्त नहीं हो सकती न किसी की पुष्टि हो सकती है । और ईश्वर के विना इस जगत् की उत्पत्ति और रक्षा नहीं होती, ऐसा समझना चाहिए ॥ ४ ॥

नक्तोषासा वर्णमामेम्याने धापयेते शिशुमेकं समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्वि भाति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जिसकी सृष्टि मे (**वर्णम्**) स्वरूप अर्थात् उत्पन्न मात्र को (**आमेम्याने**) बार-बार विनाश न करते हुए (**समीची**) संग को प्राप्त (**नक्तोषासा**) रात्रि-दिवस वा (**द्यावाक्षामा**) सूर्य्य और भूमिलोक (**शिशुम्**) बालक को (**धापयेते**) दुग्धपान करानेवाले माता-पिता के समान रस आदि का पान करवाते हैं जिस की उत्पन्न की बिजुली से युक्त (**रुक्मः**) आप ही प्रकाशस्वरूप प्राण (**अन्तः**) सब के बीच (**वि, भाति**) विशेष प्रकाश को प्राप्त होता है जिस (**द्रविणोदाम्**) धनादि पदार्थ देनेहारे के समान (**एकम्**) अद्वितीयमात्र स्वरूप (**अग्निम्**) परमेश्वर को (**देवाः**) आप्त विद्वान् जन (**धारयन्**) धारण करते वा कराते हैं वही सब का पिता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे दूध पिलाये जानेवाले बालक के समीप स्थित दो स्त्रिया उस बालक को दूध पिलाती हैं, वैसे ही दिन और रात्रि तथा सूर्य और पृथिवी हैं । जिसके नियम से ऐसा होता है वह सबका उत्पन्न करनेवाला कैसे न हो ॥ ५ ॥

रायो बुध्नः सङ्गमनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः ।
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**वेः**) मनोहर (**यज्ञस्य**) अच्छे प्रकार समझाने योग्य विद्याबोध को (**बुध्नः**) समझाने और (**केतुः**) सब व्यवहारों को अनेक प्रकारो से चितानेवाला (**मन्मसाधनः**) वा विचारयुक्त कामो को सिद्ध कराने तथा (**रायः**) विद्या, चक्रवर्त्ति राज्यधन और (**वसूनाम्**) तेंतीस देवताओ मे अग्नि पृथिवी आदि आठ देवताओं का (**सङ्गमनः**) अच्छे प्रकार प्राप्त करानेवाला है वा (**अमृतत्वम्**) मोक्षमार्ग को (**रक्षमाणासः**) रक्षा करनेवाले (**देवाः**) आप्त विद्वान् जन जिस (**द्रविणोदाम्**) धन आदि पदार्थ देनेवाले के समान सब जगत् को देनेहारे (**अग्निम्**) परमेश्वर को (**धारयन्**) धारण करते वा कराते हैं (**एनम्**) उसी को तुम लोग इष्टदेव मानो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जीवनमुक्त अर्थात् देहाभिमान आदि को छोडे हुए वा शरीरत्यागी मुक्तविद्वान् जन जिसका आश्रय लेकर आनन्द को प्राप्त होते हैं वही ईश्वर सब के उपासना करने योग्य है ॥ ६ ॥

नू च पुरा च सदनं रयीणां जातस्य च जायमानस्य च क्षाम् ।
सतश्च गोपां भवतश्च भूरेर्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस को (**देवाः**) विद्वान् जन (**नु**) शीघ्र और (**च**) विलम्ब से वा (**पुरा**) कार्य्य से पहले (**च**) और बीच मे (**रयीणाम्**) वर्त्तमान पृथिवी आदि कार्य द्रव्यो के (**सदनम्**) उत्पत्ति, स्थिति और विनाश के निमित्त वा (**जातस्य**) उत्पन्न कार्यजगत् के (**च**) नाश होने तथा (**जायमानस्य**) कल्प के अन्त मे फिर उत्पन्न होनेवाले कार्यरूप जगत् के (**च**) फिर इसी प्रकार जगत् के उत्पन्न और विनाश होने मे (**क्षाम्**) अपनी व्याप्ति से निवास के हेतु वा (**भूरेः**) व्यापक (**सतः**) अनादिवर्त्तमान विनाशरहित कारणरूप तथा (**च**) कार्यरूप (**भवतः**) वर्त्तमान (**च**) भूत और भविष्यत् उक्त जगत् के (**गोपाम्**) रक्षक और (**द्रविणोदाम्**) धन आदि पदार्थों को देनेवाले (**अग्निम्**) जगदीश्वर को (**धारयन्**) धारण करते वा कराते हैं उसी एक सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर को धारण करो वा कराओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान इन तीन कालों का जाननेवाला ईश्वर के अतिरिक्त प्रभु तथा कार्य कारण वा पापी और पुण्यात्मा जनों के कामों की व्यवस्था करनेवाला अन्य कोई पदार्थ नहीं है सब यह मनुष्यो को मानना चाहिए ॥ ७ ॥

द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य द्रविणोदाः सनरस्य प्र यंसत् ।
द्रविणोदा वीरवतीमिषं नो द्रविणोदा रासते दीर्घमायुः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**द्रविणोदाः**) धन आदि पदार्थों का देनेवाला (**तुरस्य**) शीघ्र सुख करनेवाले (**द्रविणसः**) द्रव्यसमूह के विज्ञान को (**प्र, यंसत्**) नियम में रक्खें वा जो (**द्रविणोदाः**) पदार्थों का विभाग जतानेवाला (**सनरस्य**) एक दूसरे से जो अलग किया जाए उस पदार्थ वा व्यवहार के विज्ञान को नियम मे रक्खें वा जो (**द्रविणोदाः**) शूरता आदि गुणो का देनेवाला (**वीरवतीम्**) जिससे प्रशसित वीर होंवे उस (**इषम्**) अन्नादि प्राप्ति की चाहना को नियम में रक्खें वा जो (**द्रविणोदाः**) जीवनविद्या का देनेवाला (**नः**) हम लोगो के लिए (**दीर्घम्**) बहुत समय तक (**आयुः**) जीवन (**रासते**) देवे उस ईश्वर की सब मनुष्य उपासना करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जिस परम गुरु परमेश्वर ने वेद के द्वारा सर्व पदार्थों का विशेष ज्ञान कराया है उसका आश्रय करके यथायोग्य व्यवहारों का अनुष्ठान कर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिए बहुत काल पर्य्यन्त जीवन की रक्षा करो ॥ ८ ॥

एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥९॥

पदार्थ—हे (**पावक**) आप पवित्र और संसार को पवित्र करने तथा (**अग्ने**) समस्त मंगल प्रकट करनेवाले परमेश्वर ! (**समिधा**) जिससे समस्त व्यवहार प्रकाशित होते हैं उस वेदविद्या से (**वृधानः**) नित्य वृद्धियुक्त जो आप (**नः**) हम लोगों को (**रेवत्**) राज्य आदि प्रशसित श्रीमान् के लिए वा (**श्रवसे**) समस्त विद्याओ के ज्ञान और अन्नो की प्राप्ति के लिए (**एव**) ही (**वि, भाहि**) अनेक प्रकार से प्रकाशमान कराते हैं (**तत्**) उन आपके बनाये हुए (**मित्रः**) ब्रह्मचर्य्य के नियम से बल को प्राप्त हुआ प्राण (**वरुणः**) ऊपर को उठानेवाला उदान वायु (**अदितिः**) अन्तरिक्ष (**सिन्धुः**) समुद्र (**पृथिवी**) भूमि (**उत**) और (**द्यौः**) प्रकाशमान सूर्य्य आदि लोक (**नः**) हम लोगों के (**मामहन्ताम्**) सत्कार के हेतु हों ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिसकी विद्या के बिना यथार्थ विज्ञान नहीं होता वा जिसने भूमि से लेके आकाशपर्यन्त सृष्टि बनाई है और हम लोग जिसकी उपासना करते हैं तुम लोग भी उसी की उपासना करो ॥ ९ ॥

इस सूक्त में अग्नि शब्द के गुणों के वर्णन से इसके अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सगति है यह जानना चाहिए ।

यह छानवां सूक्त और चौथा वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अथास्य सप्तनवतितमस्याष्टर्चस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता
१, ७, ८ पिपीलिकामध्यानिचृद् गायत्री । २, ४, ५ गायत्री,
३, ६ निचृद्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब आठ ऋचा वाले सत्तानवें सूक्त का प्रारम्भ है । उसके प्रथम तीन मन्त्रों में सभाध्यक्ष कैसा हो यह उपदेश किया है—

अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् । अप नः शोशुचदघम् ॥१॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) सभापते ! आप (**नः**) हम लोगों के (**अघम्**) रोग और आलस्यरूपी पाप का (**अप, शोशुचत्**) बार-बार निवारण कीजिए (**रयिम्**) धन को (**आ**) अच्छे प्रकार (**शुशुग्धि**) शुद्ध और प्रकाशित कराइए तथा (**नः**) हम लोगो के (**अघम्**) मन, वचन और शरीर से उत्पन्न हुए पाप की (**अप शोशुचत्**) शुद्धि के अर्थ दण्ड दीजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—सभाध्यक्ष को चाहिए कि सब मनुष्यों के लिए जो-जो उनका अहितकारक कर्म और प्रमाद है उसको दूर करके निरालस्य से धन की प्राप्ति करावे ॥ १ ॥

सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे । अप नः शोशुचदघम् ॥२॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) सभाध्यक्ष ! जिन आपको (**वसूया**) जिससे अपने को धनो की चाहना हो (**सुगातुया**) जिसमें अच्छी पृथिवी हो और (**सुक्षेत्रिया**) नाज बोने को जो कि अच्छा खेत हो वह जिस नीति से हो उससे (**च**) तथा शस्त्र और अस्त्र बाधनेवाली सेना से हम लोग (**यजामहे**) सग देते हैं वे आप (**नः**) हम लोगो के (**अघम्**) दुष्ट व्यसन को (**अपशोशुचत्**) दूर कीजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—पिछले मन्त्र से 'अग्ने' इस पद की अनुवृत्ति आती है । सभाध्यक्ष को चाहिए कि शान्तिवचन कहने, दुष्टों को दण्ड देने और शत्रुओं को परस्पर फूट कराने की क्रियाओं से नीति को अच्छे प्रकार प्राप्त होके प्रजाजनों के दुःख को नित्य दूर करने के लिए उद्यम करे प्रजाजन भी ऐसे पुरुष ही को सभाध्यक्ष करें ॥ २ ॥

प्र यद्भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः । अप नः शोशुचदघम् ॥३॥

पदार्थ—हे अग्ने सभापते ! (**यत्**) जिन आप की सभा मे (**एषाम्**) इन मनुष्य आदि प्रजाजनों के बीच (**अस्माकासः**) हम लोगो मे से (**प्र, सूरयः**) अत्यन्त बुद्धिमान् विद्वान् (**च**) और वीर पुरुष हैं वे सभासद् हों (**भन्दिष्ठः**) अति कल्याण करनेहारे (**नः**) हम लोगो के (**अघम्**) शत्रुजन्य दुःखरूप पाप को (**प्र, अप, शोशुचत्**) दूर कीजिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे भी 'अग्ने' इस पद की अनुवृत्ति आती है । जब विद्वान् सभा आदि के अधीश आप्त अर्थात् प्रामाणिक सत्य वचन को कहनेवाले सभासद् और आत्मिक, शारीरिक बल से परिपूर्ण सेवक हों, तब राज्यपालन और विजय अच्छे प्रकार होते हैं इसके विपरीत उलटा ही ढंग होता है ॥ ३ ॥

फिर उसके सभासद् कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्र यत्ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् । अप नः शोशुचदघम् ॥४॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) आप उत्तर-प्रत्युत्तर से कहनेवाले (**यत्**) जिन (**ते**) आपके जैसे (**सूरयः**) पूरी विद्या पढे हुए विद्वान् सभासद् हैं उन (**ते**) आपके वैसे ही (**वयम्**) हम लोग भी (**प्र, जायेमहि**) प्रजाजन हों और ऐसे तुम (**नः**) हम लोगों के (**अघम्**) विरोधरूप पाप को (**प्र, अप, शोशुचत्**) अच्छे प्रकार दूर कीजिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस ससार मे जैसे धर्मिष्ठ सभा आदि के अधीश मनुष्य हों वैसे ही प्रजाजनों को भी होना चाहिए ॥ ४ ॥

अब भौतिक अग्नि कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः । अप नः शोशुचदघम् ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! तुम (यत्) जिस (सहस्वतः) प्रशंसित बलवाले (अग्नेः) भौतिक अग्नि की (भानवः) उजेला करती हुई किरणें (विश्वतः) सब जगह से (प्रयन्ति) फैलाती हैं वा जो (नः) हम लोगों के (अघम्) दारिद्रपन को (अप, शोशुचत्) दूर करता है उसको कामों में अच्छे प्रकार जोड़ो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस बिजुली के बिना ऐसा कोई मूर्तिमान् पदार्थ नहीं जो अलग हो अर्थात् सब में बिजुली व्याप्त है और जो बातिक अग्नि शिल्पविद्या से कामों में लगाया हुआ धन इकट्ठा करनेवाला होता है वह मनुष्यों को अच्छे प्रकार जानना चाहिए ॥५॥

अब ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि । अप नः शोशुचदघम् ॥६॥

पदार्थ—हे (विश्वतोमुख) सब में व्याप्त होने और अन्तर्यामिपन से सब को शिक्षा देने वाले जगदीश्वर ! जिस कारण (त्वं, हि) आप ही (विश्वतः) सब ओर से (परिभूः) सब के ऊपर विराजमान (असि) हैं इससे (नः) हम लोगों के (अघम्) दुष्ट स्वभाव संगरूप पाप को (अप, शोशुचत्) दूर कराइए ॥६॥

भावार्थ—सत्य प्रेमभाव से प्रार्थना किया हुआ अन्तर्यामी जगदीश्वर मनुष्यों के आत्मा मे सत्य उपदेश से मनुष्यो को पाप से अलग कर शुभगुण, कर्म और स्वभाव में प्रवृत्त करता है । इससे यह नित्य उपासना करने योग्य है ॥६॥

द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय । अप नः शोशुचदघम् ॥७॥

पदार्थ—हे (विश्वतोमुख) सबसे उत्तम ऐश्वर्य्य से युक्त परमात्मन् ! आप (नावेव) जैसे नाव से समुद्र के पार हो वैसे (नः) हम लोगों को (द्विषः) जो धर्म से द्वेष करनेवाले अर्थात् उससे विरुद्ध चलनेवाले उन से (अति, पारय) पार पहुँचाइए और (नः) हम लोगो के (अघम्) शत्रुओ से उत्पन्न हुए दुःख को (अप, शोशुचत्) दूर कीजिए ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे न्यायाधीश नाव मे बैठाकर समुद्र के पार वा निर्जन जङ्गल मे डाकुओ को रोकके प्रजा की पालना करता है वैसे ही अच्छे प्रकार उपासना को प्राप्त हुआ ईश्वर अपने उपासको के काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक रूपी शत्रुओ को शीघ्र निवृत्त कर जितेन्द्रियता आदि गुणों को देता है ॥७॥

स नः सिन्धुमिव नावयाति पर्षा स्वस्तये । अप नः शोशुचदघम् ॥८॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! (सः) सो आप कृपा करके (नः) हम लोगो के (स्वस्तये) सुख के लिए (नावया) नाव से (सिन्धुमिव) जैसे समुद्र को पार होते हैं वैसे दुःखों के (अति, पर्ष) अत्यन्त पार कीजिए (नः) हम लोगो के (अघम्) अशान्ति और आलस्य को (अप, शोशुचत्) निरन्तर दूर कीजिए ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है । जैसे पार करनेवाला मल्लाह सुखपूर्वक मनुष्य आदि को नाव से समुद्र के पार करता है वैसे तारनेवाला परमेश्वर विशेष ज्ञान से दुःखसागर से पार करता है और वह शीघ्र सुखी करता है ॥८॥

इस सूक्त में सभाध्यक्ष अग्नि और ईश्वर के गुणो के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

यह सत्तानवां सूक्त और पांचवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथास्याष्टनवतितमस्य त्र्यृचस्य सूक्तस्याङ्गिरस. कुत्स ऋषिः । वैश्वानरो देवता । १ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः, २ त्रिष्टुप्, ३ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब अट्ठानवें सूक्त का आरम्भ है । उसके प्रथम दो मन्त्रों में ईश्वर और भौतिक अग्नि कैसे हैं यह विषय कहा है—

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥१॥

पदार्थ—जो (वैश्वानरः) समस्त जीवों को यथायोग्य व्यवहारों में वर्त्ताने वाला ईश्वर वा जाठराग्नि (इतः) कारण से (जातः) प्रसिद्ध हुए (इदम्) इस प्रत्यक्ष (कम्) सुख को (विश्वम्) वा समस्त जगत् को (विचष्टे) विशेष भाव से दिखलाता है और जो (सूर्येण) प्राण वा सूर्यलोक के साथ (यतते) यत्न करनेवाला होता है वा जो (भुवनानाम्) लोकों का (अभिश्रीः) सब प्रकार से धन है तथा जिस भौतिक अग्नि से सब प्रकार का धन होता है वा (राजा) जो न्यायाधीश सबका अधिपति है तथा प्रकाशमान बिजुलीरूप अग्नि है उस (वैश्वानरस्य) समस्त पदार्थों को देनेवाले ईश्वर वा भौतिक अग्नि की (सुमतौ) श्रेष्ठ मति मे अर्थात् जो कि अत्यन्त उत्तम अनुपम ईश्वर की प्रसिद्ध की हुई मति वा भौतिक अग्नि से अतीव प्रसिद्ध हुई मति है उस में (हि) ही (वयम्) हम लोग (स्याम) स्थिर हों ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो सबसे बड़ा व्याप्त होकर सब जगत् को प्रकाशित करता है उसी के उत्तम गुणों से प्रसिद्ध उस की आज्ञा में नित्य प्रवृत्त होओ तथा जो सूर्य आदि को प्रकाश करनेवाला अग्नि है उस की विद्या की सिद्धि में भी प्रवृत्त होओ । इसके बिना किसी मनुष्य की पूर्ण धन नहीं हो सकते ॥१॥

पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥२॥

पदार्थः—जो (अग्निः) ईश्वर वा भौतिक अग्नि (दिवि) दिव्यगुण सम्पन्न जगत् में (पृष्टः) विद्वानों के प्रति पूछा जाता वा जो (पृथिव्याम्) अन्तरिक्ष वा भूमि में (पृष्ट) पूछने योग्य है वा जो (पृष्ट.) पूछने योग्य (वैश्वानरः) सब मनुष्यमात्र को सत्य व्यवहार में प्रवृत्त करानेहारा (अग्निः) ईश्वर और भौतिक अग्नि (विश्वा) समस्त (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधियो में (आ, विवेश) प्रविष्ट हो रहा और (सहसा) बल आदि गुणों के साथ वर्त्तमान (पृष्ट) पूछने योग्य है वह (नः, सः) हम लोगों को (दिवा) दिन में (रिषः) मारनेवाले से और (नक्तम्) रात्रि में मारनेवाले से (पातु) बचावे वा भौतिक अग्नि बचाता है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है । मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों के समीप जाकर ईश्वर वा बिजुली आदि अग्नि के गुणों को पूछकर ईश्वर की उपासना और अग्नि के गुणों से उपकारो का आश्रय करके हिंसा में न ठहरें ॥ २ ॥

अब ईश्वर और विद्वान् कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वैश्वानर तव तत्सत्यमस्त्वस्मान्रायो मघवानः सचन्ताम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥३॥

पदार्थ—हे (वैश्वानर) सब मनुष्यो मे विद्या का प्रकाश करनेहारे ईश्वर वा विद्वन् ! जो (तव) आपका (सत्यम्) सत्यशील है (तत्) वह (अस्मान्) हम लोगो को प्राप्त (अस्तु) हो जो (मित्रः) मित्र (वरुणः) उत्तम गुणयुक्त स्वभाववाला मनुष्य (अदितिः) समस्त विद्वान् जन (सिन्धु.) अन्तरिक्ष में ठहरनेवाला जल (पृथिवी) भूमि और (द्यौः) बिजुली का प्रकाश (मामहन्ताम्) उन्नति देवें (तत्) वह ऐश्वर्य्य (नः) हम लोगों को प्राप्त हो वा (मघवानः) जिनके परम सत्कार करने योग्य विद्याधन है वे विद्वान् वा राजा लोग जिन (रायः) विद्या और राज्यश्री को (सचन्ताम्) निःसन्देह युक्त करें उनको हम लोग (उत) और भी प्राप्त हों ॥ ३ ॥

भावार्थ—ईश्वर और विद्वानो से सत्यशील, धर्मयुक्त धन, धार्मिक मनुष्य और क्रिया कौशलयुक्त पदार्थविद्याओं को पुरुषार्थ से पाकर समस्त सुख के लिए अच्छे प्रकार यत्न करें ॥ ३ ॥

इस सूक्त मे अग्नि और विद्वानो से सम्बन्ध रखने वाले कर्म के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ।

यह अट्ठारहवां सूक्त और छठा वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अथास्यैकर्चस्यैकोनशततमस्य सूक्तस्य मरीचिपुत्र कश्यप ऋषिः । जातवेदा अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्द. । धैवतः स्वर ॥

अब एक ऋचा वाले निन्यानवें सूक्त का आरम्भ है उसमें ईश्वर कैसा है यह वर्णन किया है—

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥१॥७॥

पदार्थ—जिस (जातवेदसे) उत्पन्न हुए चराचर जगत् को जानने और प्राप्त होनेवाले वा उत्पन्न हुए सर्व पदार्थों में विद्यमान जगदीश्वर के लिए हम लोग (सोमम्) समस्त ऐश्वर्य्ययुक्त सांसारिक पदार्थों का (सुनवाम) निचोड़ करते हैं अर्थात् यथायोग्य सबको वर्त्तते हैं और जो (अरातीयतः) अधर्मियों के समान वर्त्ताव रखनेवाले दुष्ट जन के (वेदः) धन को (नि, दहाति) निरन्तर नष्ट करता है (सः) वह (अग्निः) विज्ञानस्वरूप जगदीश्वर जैसे मल्लाह (नावेव) नौका से (सिन्धुम्) नदी वा समुद्र के पार पहुँचाता है वैसे (नः) हम लोगो को (अति) अत्यन्त (दुर्गाणि) दुर्गति और (अतिदुरिता) अतीव दुःख देनेवाले (विश्वा) समस्त पापाचरणो के (पर्षत्) पार करता है वही इस जगत् में खोजने के योग्य है ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है । जैसे मल्लाह कठिन, बड़े समुद्रों में अत्यन्त विस्तारवाली नावों से मनुष्यादिकों को सुख से पार पहुँचाते हैं वैसे ही अच्छे प्रकार उपासना किया हुआ जगदीश्वर दुःखरूपी बड़े भारी समुद्र मे स्थित मनुष्यों को विज्ञानादि दानो से उसके पार पहुँचाता है । इसलिए उसकी उपासना करनेहारा ही मनुष्य शत्रुओं को हराके उत्तम वीरता के आनन्द को प्राप्त हो सकता है और का क्या सामर्थ्य है ? ॥ १ ॥

इस सूक्त में ईश्वर के गुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिए ।

यह निन्यानवां सूक्त और सातवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथाऽस्यैकोनविंशर्चस्य शततमस्य सूक्तस्य वृषागिरो महाराजस्य पुत्रभूता वार्षागिरा ऋज्राश्वाम्बरीषसहदेवभयमानसुराधस ऋषयः । इन्द्रो देवता । १, ५ पङ्क्ति , २, १३, १७ स्वराट् पङ्क्ति , ६, १०, १६ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वरः । ३, ४, ११, १८ विराट् त्रिष्टुप्, ७—९, १२, १४, १५, १९ निचृत् त्रिष्टुप्छन्द धैवत. स्वर ॥

अब उन्नीस ऋचा वाले सौवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में सूर्य्यलोक कैसा है यह विषय कहा है—

स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट् ।
सतीनसत्वा हव्यो भरेषु मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (य) जो (वृषा) वर्षा का हेतु (समोकाः) जिसमें समीचीन निवास के स्थान हैं (सतीनसत्वा) जो जल को इकट्ठा करता (हव्य) और ग्रहण करने योग्य (मरुत्वान्) जिसके प्रशसित पवन हैं जो (महः) अत्यन्त (दिव) प्रकाश तथा (पृथिव्याः) भूमिलोक (च) और समस्त मूर्तिमान् लोको वा पदार्थों के बीच (सम्राट्) अच्छा प्रकाशमान (इन्द्र) सूर्य्यलोक है (स) वह जैसे (वृष्ण्येभि) उत्तमता मे प्रकट होनेवाली किरणो से (भरेषु) पालन और पुष्टि करानेवाले पदार्थों मे (नः) हमारे (ऊती) रक्षा आदि व्यवहारो के लिए (भवतु) होता है वैसा उत्तम-उत्तम यत्न करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है । मनुष्यो को चाहिए कि जो परिमाण से बड़ा, वायुरूप, कारण से प्रकट और प्रकाशस्वरूप सूर्य्यलोक है उससे विद्यापूर्वक अनेक उपकार लेवें ॥१॥

अब ईश्वर और विद्वान् कैसे कर्मवाले हैं इस विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—

यस्यानाप्तः सूर्य्यस्येव यामो भरेभरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति ।
वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेवैर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥२॥

पदार्थ—(यस्य) जिस परमेश्वर वा विद्वान् सभाध्यक्ष के (भरेभरे) धारण करने योग्य पदार्थ-पदार्थ वा युद्ध-युद्ध मे (सूर्य्यस्येव) प्रत्यक्ष सूर्यलोक के समान (वृत्रहा) पापियो के यथायोग्य पापफल को देने से धर्म को छिपानेवालों का विनाश करता और (शुष्म) जिस मे प्रशसित बल है वह (याम.) मर्यादा का होना (अनाप्त) मूर्ख और शत्रुओ ने नही पाया (अस्ति) है (स) वह (वृषन्तम.) अत्यन्त सुख बढ़ानेवाला तथा (मरुत्वान्) प्रशसित सेना जनयुक्त वा जिसकी सृष्टि मे प्रशसित पवन हैं वह (इन्द्र) परमैश्वर्यवान् ईश्वर वा सभाध्यक्ष सज्जन (स्वेभि) अपने सेवकों के (एवै) पाये हुए प्रशसित ज्ञानों और (सखिभि) धर्म के अनुकूल आज्ञा पालनेहारे मित्रो से उपासना और प्रशसा को प्राप्त हुआ (न) हम लोगो के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहारो के सिद्ध करने के लिए (भवतु) हो ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेष और उपमालकार हैं । मनुष्यो को यह जानना चाहिए कि यदि सूर्यलोक तथा आप्त विद्वान् के गुण और स्वभावो का पार दु ख से जानने योग्य है तो परमेश्वर का तो क्या ही कहना है ? इन दोनो के आश्रय के विना किसी की पूर्ण रक्षा नहीं होती इससे इनके साथ सदा मित्रता रक्खें ॥२॥

दिवो न यस्य रेतसो दुघानाः पन्थासो यन्ति शवसापरीताः ।
तरद्द्वेषाः सासहिः पौंस्येभिर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥३॥

पदार्थ—(यस्य) जिस ईश्वर वा सभाध्यक्ष वा उपदेश करनेवाले विद्वान् के (दिव) सूर्य्यलोक के (न) समान (रेतस) पराक्रम की (शवसा) प्रबलता से (अपरीता) न छोड़े हुए (दुघाना) व्यवहारो के पूर्ण करनेवाला (तरद्द्वेषा) जिनमे विरोधो के पार हो वे (पन्थासः) मार्ग (यन्ति) प्राप्त होते और जाते हैं वा जो (पौंस्येभिः) बलो के साथ वर्त्तमान (सासहि) अत्यन्त सहन करनेवाला (मरुत्वान्) जिसकी सृष्टि मे प्रशसित प्रजा है वह (इन्द्रः) परमैश्वर्य्यवान् परमेश्वर वा सभाध्यक्ष (नः) हम लोगो के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहार के लिए (भवतु) हो ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेष और उपमालकार हैं । जैसे सूर्य्य के प्रकाश से समस्त मार्ग अच्छी प्रकार देखने और गमन करने योग्य तथा डाकू चोर और कांटों से रहित प्रतीत होते हैं, वैसे वेदद्वारा परमेश्वर वा विद्वान् के मार्ग अच्छे प्रकार प्रकाशित होते हैं । निश्चय ही उनमे चले विना कोई मनुष्य वैर आदि दोषों से अलग नही हो सकता इससे सबको चाहिए कि इन मार्गो से नित्य चलें ॥३॥

सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूद्वृषा वृषभिः सखिभिः सखा सन् ।
ऋग्मिभिर्ऋग्मी गातुभिर्ज्येष्ठो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥४॥

पदार्थ—जो (अङ्गिरोभि) अगो में रसरूप प्राणो के साथ (अङ्गिरस्तमः) अत्यन्त प्राण के समान वा (वृषभि) सुख की वर्षा के कारणो से (वृषा) सुख सींचनेवाला वा (सखिभि) मित्रो के साथ (सखा) मित्र वा (ऋग्मिभि.) ऋग्वेद के पढे हुओं के साथ (ऋग्मी) ऋग्वेदी वा (गातुभि) विद्या से अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई वाणियो से (ज्येष्ठ.) प्रशसा करने योग्य (सन्) हुआ (भूत्) है (सः) वह (मरुत्वान्) अपनी सृष्टि मे प्रजा को उत्पन्न करनेवाला वा अपनी सेना में प्रशसित वीरपुरुष रखनेवाला (इन्द्र) ईश्वर और सभापति (न.) हम लोगो के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहार के लिए (भवतु) हो ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो यथावत् उपकार करनेवाला सब से उत्कृष्ट परमेश्वर वा सभा आदि का अध्यक्ष विद्वान् है उसको नित्य सेवन करो ॥४॥

फिर वह सेना आदि का अधिपति कैसा है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

स सूनुभिर्न रुद्रेभिर्ऋभ्वा नृषाह्ये सासह्वाँ अमित्रान् ।
सनीळेभिः श्रवस्यानि तूर्वन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥५॥८॥

पदार्थ—(मरुत्वान्) जिसकी सेना मे प्रशसित वीरपुरुष हैं वा (सासह्वान्) जो शत्रुओ का तिरस्कार करता है वह (इन्द्र) परम ऐश्वर्य्यवान् सभापति (सूनुभि) पुत्र वा पुत्रों के तुल्य सेवको के (न) समान (सनीळेभिः) अपने समीप रहनेवाले (रुद्रेभि.) जो कि शत्रुओ को रुलाते हैं उनके और (ऋभ्वा) बड़े बुद्धिमान् मन्त्री के साथ वर्त्तमान (श्रवस्यानि) धनादि पदार्थों में उत्तम वीरजनो को इकट्ठा कर (नृषाह्ये) जो कि शूरवीरो के सहने योग्य है उस सग्राम मे (अमित्रान्) शत्रुजनो को (तूर्वन्) मारता हुआ उत्तम यत्न करता है (स.) वह (न) हम लोगो के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहार के लिए (भवतु) हो ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है । जो सेना आदि का अधिपति पुत्र के तुल्य सत्कार किये हुए और शस्त्र-अस्त्रो से सिद्ध होनेवाली युद्धविद्या से शिक्षा दिये हुए सेवकों के साथ वर्त्तमान बलसम्पन्न सेना को अच्छे प्रकार संगठित कर अति कठिन सग्राम मे भी दुष्ट शत्रुओ को हराता हुआ और धार्मिक मनुष्यो की पालना करता हुआ चक्रवर्त्ति राज्य कर सकता । है वही सारी सेना तथा प्रजा के जनों द्वारा सदा सत्कार करने योग्य है ॥५॥

स मन्युमीः समदनस्य कर्तास्माकेभिर्नृभिः सूर्यं सनत् ।
अस्मिन्नहन्त्सत्पतिः पुरुहूतो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥६॥

पदार्थ—जो (मन्युमीः) क्रोध का मारने वा (समदनस्य) जिसमे आनन्द है उसका (कर्त्ता) करने और (सत्पतिः) सज्जन तथा उत्तम कामों को पालने हारा (पुरुहूत.) वा बहुत विद्वान् और शूरवीरों ने जिसकी स्तुति और प्रशसा की है (मरुत्वान्) जिसकी सेना में अच्छे-अच्छे वीरजन हैं (इन्द्रः) वह परमैश्वर्यवान् सेनापति (अस्माकेभि) हमारे शरीर, आत्मा और बल के तुल्य बलो से युक्त वीर (नृभि) मनुष्यो के साथ वर्त्तमान होता हुआ (सूर्य्यम्) सूर्य के प्रकाश तुल्य युद्ध न्याय को (सनत्) अच्छे प्रकार सेवन करे (स) वह (अस्मिन्) आज के दिन (न) हम लोगो के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहार के लिए निरन्तर (भवतु) हो ॥ ६ ॥

पदार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य को प्राप्त होकर सब पदार्थ अलग-अलग प्रकाशित हुए आनन्द के करनेवाले होते हैं, वैसे ही धार्मिक न्यायाधीशो को प्राप्त होकर पुत्र, पौत्र, स्त्री तथा सेवको के साथ वर्त्तमान विद्या, धर्म और न्याय मे प्रसिद्ध आचरणवाले होकर मनुष्य कल्याण करनेवाले होते हैं । जो सर्वथा क्रोध का अपने वश मे करने और सब प्रकार से नित्य प्रसन्नता व आनन्द देनेवाला होता है, वही सेनाधीश नियत करने योग्य होता है । जो भूतकाल के इतिहास को जाननेवाला तथा वर्तमान काल मे विचारशील तथा शीघ्र निर्णय करने वाला है वही सर्वदा विजय प्राप्त करता है दूसरा नही ॥ ६ ॥

तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम् ।
स विश्वस्य करुणस्येश एको मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥७॥

पदार्थ—जिसको (ऊतय) रक्षा आदि व्यवहार सेवन करें (तम्) उस सेना आदि के अधिपति को (शूरसातौ) जिसमे शूरो का सेवन होता है उस संग्राम मे (क्षितय) मनुष्य (त्राम्) अपनी रक्षा करनेवाला (कृण्वत) करें जो (क्षेमस्य) अत्यन्त कुशलता का करनेवाला है (तम्) उसको अपनी पालना करनेहारा किये हुए उक्त सग्राम मे (रणयन्) रटें अर्थात् बार-बार उसी की विनती करें जो (एकः) अकेला सभाध्यक्ष (विश्वस्य) समस्त (करुणस्य) करुणारूपी काम को करने मे (ईशे) समर्थ है (सः) वह (मरुत्वान्) अपनी सेना मे प्रशसित वीरो को रखने वा (इन्द्र) सेना आदि की रक्षा करनेहारा (न) हम लोगो के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहार के लिए (भवतु) हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जो अकेला भी अनेक योद्धाओ को जीतता है उसका उत्साह सग्राम और व्यवहारों मे अच्छे प्रकार बढ़ावें । प्रोत्साहन से वीरों मे जैसी शूरता होती है वैसी निश्चय ही किसी और प्रकार से नहीं होती ॥ ७ ॥

फिर वह किस प्रकार का हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

तमप्सन्त शवस उत्सवेषु नरो नरमवसे तं धनाय ।
सो अन्धे चित्तमसि ज्योतिर्विदन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (नरम्) सब काम को यथायोग्य चलानेहारे जिस मनुष्य को (शवसः) विद्या-बल तथा धन आदि अनेक बल (अप्सन्त) प्राप्त हुए (तम्) उस अत्यन्त प्रबल युद्ध करने मे भी युद्ध करनेवाले सेना आदि के अधिपति को (उत्सवेषु) उत्सव अर्थात् आनन्द के कामो में सत्कार देवो तथा (तम्) उस को (नरः) श्रेष्ठाधिकार पानेवाले मनुष्य (अवसे) रक्षा आदि व्यवहार और (धनाय) उत्तम धन पाने के लिए प्राप्त होवें जो (अन्धे) अन्धे के तुल्य करनेहारे (तमसि) अन्धेरे मे (ज्योतिः) सूर्य्य आदि के उजेले रूप प्रकाश (चित्) ही को (विदत्) प्राप्त होता है (स) वह (मरुत्वान्) अपनी सेना में उत्तम

वीरों को राखनेहारा (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सेनापति वा सभापति (नः) हम लोगों के (ऊती) अच्छे आनन्दों के लिए (भवतु) हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो शत्रुओं को जीत और धार्मिकों की पालना कर विद्या और धन की उन्नति करता है, जिसको पाकर सूर्य्य प्रकाश के समान विद्या के प्रकाश को प्राप्त होते हैं उस मनुष्य को आनन्द मंगल के दिनों में आदर सत्कार देवें क्योंकि ऐसा किये विना किसी को अच्छे कामों में उत्साह नहीं हो सकता ॥ ८ ॥

स स॒व्येन॑ यमति॒ व्राध॑तश्चि॒त्स द॑क्षि॒णे संगृ॑भीता कृ॒तानि॑ ।

स की॒रिणा॑ चि॒त्सनि॑ता॒ धना॑नि म॒रुत्वा॑न्नो भवत्वि॒न्द्र ऊ॒ती ॥९॥

पदार्थ—जो (सव्येन) सेना के दाहिनी ओर खड़ी हुई अपनी सेना से (व्राधतः) अत्यन्त बल बढ़े हुए शत्रुओं को (चित्) भी (यमति) ढंग से चलाता है वह उन शत्रुओं का जीतनेहारा होता है जो (दक्षिणे) दाहिनी ओर में खड़ी हुई उस सेना से (संगृभीता) ग्रहण किये हुए सेना के अंगों तथा (कृतानि) किये हुए कामों को यथोचित नियम में लाता है (सः) वह अपनी सेना की रक्षा कर सकता है जो (कीरिणा) शत्रुओं के गिराने के प्रबन्ध से (चित्) भी उनके (सनिता) अच्छी प्रकार इकट्ठे किये हुए (धनानि) धनों को ले लेता है (सः) वह (मरुत्वान्) अपनी सेना में उत्तम-उत्तम वीरों को राखनेहारा (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सेनापति (नः) हम लोगों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहारों के लिए (भवतु) हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो सेना की रचनाओं और सेना के अंगों की शिक्षा वा रक्षा के विशेष ज्ञान को तथा पूर्ण युद्ध की सामग्री को इकट्ठा कर सकता है वही शत्रुओं को जीतने और प्रजा की रक्षा करने के योग्य है ॥९॥

स ग्रामे॑भिः॒ सनि॑ता॒ स रथे॑भि॒र्विदे॒ विश्वा॑भिः कृ॒ष्टिभि॒र्न्व१॒॑द्य ।

स पौंस्ये॑भिरभि॒भूरश॑स्तीर्म॒रुत्वा॑न्नो भवत्वि॒न्द्र ऊ॒ती ॥१०॥९॥

पदार्थ—जो (मरुत्वान्) अपनी सेना में उत्तम वीरों को राखनेहारा (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सेना आदि का अधीश (ग्रामेभिः) ग्रामों में रहनेवाले प्रजाजनों के साथ (सनिता) अच्छे प्रकार अलग-अलग किये हुए धनों को भोगता है (सः) वह आनन्दित होता है जो (विदे) युद्धविद्या तथा विजयों को जिस से जाने उस क्रिया के लिए (रथेभिः) सेना के विमान आदि अङ्गों और (विश्वाभिः) समस्त (कृष्टिभिः) शिल्प कामों की अति कुशलताओं से प्रकाशमान हो (सः) वह और जो (अशस्तीः) शत्रुओं की बड़ाई करने योग्य क्रियाओं को जानकर उनका (अभिभूः) तिरस्कार करनेवाला है (सः) वह (पौंस्येभिः) उत्तम शरीर और आत्मा के बल के साथ वर्त्तमान (नु) शीघ्र (अद्य) आज (नः) हम लोगों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहारों के लिए (भवतु) होवे ॥१०॥

भावार्थ— मनुष्यों को चाहिए कि जो पुर, नगर और ग्रामों का अच्छे प्रकार रक्षा करनेवाला, वा पूर्ण सेनाङ्गों की सामग्री सहित, जिसने कलाकौशल तथा शस्त्र-अस्त्रों से युद्ध क्रिया को जाना हो और परिपूर्ण विद्या तथा बल से पुष्ट, शत्रुओं के पराजय से प्रजा की पालना करने में प्रसन्न होता है वही सेना आदि का अधिपति करने योग्य है अन्य नहीं ॥१०॥

फिर वह कैसा है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

स जा॒मिभि॒र्यत्स॒मजा॑ति मी॒ळ्हेऽजा॑मिभिर्वा पुरुहूत॒ एवैः॑ ।

अ॒पां तो॒कस्य॒ तन॑यस्य जे॒षे म॒रुत्वा॑न्नो भवत्वि॒न्द्र ऊ॒ती ॥११॥

पदार्थ—जो (अपाम्) प्राप्त हुए मित्र, शत्रु और उदासीनों वा (तोकस्य) बालकों के वा (तनयस्य) पौत्र आदि के बीच वर्त्ताव रखता हुआ (यत्) जब (मीळ्हे) संग्रामों में (एवैः) प्राप्त हुए (जामिभिः) शत्रुजनों के सहित (अजामिभिः) बन्धुवर्गों से अन्य शत्रुओं के सहित (वा) अथवा उदासीन मनुष्यों के साथ विरोधभाव प्रकट करता हुआ (पुरुहूतः) बहुतों से प्रशंसा को प्राप्त वा युद्ध में बुलाया हुआ (मरुत्वान्) अपनी सेना में उत्तम वीरों को रखने वाला (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सेना आदि का अधीश (जेषे) उक्त अपने बन्धु भाइयों को उत्साह और उत्कर्ष देने वा शत्रुओं के जीत लेने का (समजाति) अच्छा उद्यम जानता है तब (सः) वह (नः) हम लोगों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहार के लिए समर्थ (भवतु) हो ॥११॥

भावार्थ—इस राज्यव्यवहार में गृहस्थ को छोड़ किसी ब्रह्मचारी, वनस्थ वा यति की प्रवृत्ति होने योग्य नहीं है । और न कोई अच्छे मित्र और बन्धुजनों के विना युद्ध में शत्रुओं को परास्त कर सकता है । ऐसे धार्मिक विद्वान् के अतिरिक्त कोई सेना आदि का अधिपति होने योग्य नहीं है यह जानना चाहिए ॥११॥

स व॑ज्र॒भृद्द॑स्यु॒हा भी॒म उ॒ग्रः स॒हस्र॑चेताः श॒तनी॑थ॒ ऋभ्वा॑ ।

च॒म्री॒षो न शव॑सा॒ पाञ्च॑जन्यो म॒रुत्वा॑न्नो भवत्वि॒न्द्र ऊ॒ती ॥१२॥

पदार्थ—(चम्रीषः) जो अपनी सेना से शत्रुओं की सेनाओं के मारनेहारों के (न) समान (वज्रभृत्) अति कराल शस्त्रों को बांधने (दस्युहा) डाकू, चोर, लम्पट, लबाड़ आदि दुष्टों को मारने (भीमः) उन को डर और (उग्रः) अति कठिन दण्ड देने (सहस्रचेताः) हजारहों अच्छे प्रकार के ज्ञान प्रकट करने वाला (शतनीथः) जिस के सैकड़ों यथायोग्य व्यवहारों के वर्त्ताव हैं (पाञ्चजन्यः) जो सब विद्याओं से युक्त पढ़ाने, उपदेश करने, राज्यसम्बन्धी सभा सेना और सब अधिकारियों के अधिष्ठाताओं में उत्तमता से हुआ (मरुत्वान्) और अपनी सेना में उत्तम वीरों को राखनेवाला (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सेना आदि का अधीश (ऋभ्वा) अतीव (शवसा) बलवान् सेना से शत्रुओं को अच्छे प्रकार प्राप्त होता है (सः) वह (नः) हम लोगों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहारों के लिए (भवतु) होवे ॥१२॥

भावार्थ— इस मन्त्र में उपमालंकार है । मनुष्यों को जानना चाहिए कि कोई मनुष्य धनुर्वेद के विशेष ज्ञान और उसके यथायोग्य प्रयोग तथा शत्रुओं के मारने में भय देने वाले तीव्र अगाध सामर्थ्य और प्रबल बढ़ी हुई सेना के विना सेनापति नहीं हो सकता । और ऐसे हुए विना शत्रुओं का पराजय और प्रजा का पालन हो सके यह भी सम्भव नहीं, ऐसा जानें ॥१२॥

तस्य॒ वज्रः॑ क्रन्दति॒ स्मत्स्व॒र्षा दि॒वो न त्वे॒षो र॒वथः॒ शिमी॑वान् ।

तं स॑चन्ते स॒नय॒स्तं धना॑नि म॒रुत्वा॑न्नो भवत्वि॒न्द्र ऊ॒ती ॥१३॥

पदार्थ—जिस सभाध्यक्ष का (स्मत्) काम के वर्त्ताव की अनुकूलता का (स्वर्षाः) सुख से सेवन और (रवथः) भारी कोलाहल शब्द करनेवाला (शिमीवान्) जिस से प्रशंसित काम होते हैं वह (वज्रः) शस्त्र और अस्त्रों का समूह (क्रन्दति) अच्छे जनों को बुलाता और दुष्टों को रुलाता है (तस्य) उस के (दिवः) सूर्य्य के (त्वेषः) उजेले के (न) समान गुण, कर्म और स्वभाव प्रकाशित होते हैं जो ऐसा है (तम्) उसको (सनयः) उत्तम सेवा अर्थात् सज्जनों के किये हुए उत्साह (सचन्ते) सेवन करते और (तम्) उसको (धनानि) समस्त धन सेवन करते हैं इस प्रकार (मरुत्वान्) जो सभाध्यक्ष अपनी सेना में उत्तम वीरों को रखनेवाला (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् तथा (नः) हम लोगों के (ऊती) रक्षादि व्यवहारों के लिए यत्न करता है वह हम लोगों का राजा (भवतु) होवे ॥१३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । सभासद्, भृत्य, सेना और प्रजाजनों को चाहिए कि ऐसे उत्तम कामों का सेवन करें जिनसे बढ़े हुए विद्या, न्याय, धर्म वा पुरुषार्थ सूर्य के समान प्रकाशित हों । क्योंकि ऐसे कामों के विना उत्तम सुखों का सेवन, धन और रक्षा हो नहीं सकती । इस से ऐसे काम सभाध्यक्ष आदि को करने योग्य हैं ॥१३॥

यस्याज॑स्रं॒ शव॑सा॒ मान॑मु॒क्थं प॑रिभु॒जद्रोद॑सी वि॒श्वतः॒ सीम् ।

स पा॑रिष॒त्क्रतु॑भिर्मन्दसा॒नो म॒रुत्वा॑न्नो भवत्वि॒न्द्र ऊ॒ती ॥१४॥

पदार्थ—(यस्य) जिस सभा आदि के अधीश के (शवसा) शारीरिक तथा आत्मिक बल से युक्त प्रजाजन (मानम्) सत्कार (उक्थम्) वेदविद्या तथा (सीम्) धर्म, न्याय की मर्यादा को (विश्वतः) सब ओर से (अजस्रम्) निरन्तर पालन और जो (रोदसी) विद्या के प्रकाश और पृथिवी के राज्य को भी (परिभुजत्) अच्छे प्रकार पालन करे जो (क्रतुभिः) उत्तम बुद्धमानी के कामों के साथ (मन्दसानः) प्रशंसा आदि से परिपूर्ण हुआ सुखों से प्रजाओं को (पारिषत्) पालता है (सः) वह (मरुत्वान्) अपनी सेना में उत्तम वीरों का रखनेवाला (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सभापति (नः) हम लोगों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहार को सिद्ध करनेवाला निरन्तर (भवतु) होवे ॥ १४ ॥

भावार्थ— जो सत्पुरुषों का मान, दुष्टों का तिरस्कार, पूरी विद्या, धर्म की मर्यादा, पुरुषार्थ और आनन्द कर सके वही सभाध्यक्षादि अधिकार के योग्य हो ॥ १४ ॥

अब इस समस्त प्रजा का कर्त्ता ईश्वर कैसा है
इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

न यस्य॑ दे॒वा दे॒वता॒ न मर्ता॒ आप॑श्च॒न शव॑सो॒ अन्त॑मा॒पुः ।

स प्र॒रिक्वा॒ त्वक्ष॑सा॒ क्ष्मो दि॒वश्च॑ म॒रुत्वा॑न्नो भवत्वि॒न्द्र ऊ॒ती ॥१५॥

पदार्थ— (यस्य) जिस परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर के (शवसः) बल की (अन्तम्) अवधि को (देवता) दिव्य उत्तमजनों में (देवाः) विद्वान् लोग (न) नहीं (मर्त्ताः) साधारण मनुष्य (न) नहीं (चन) तथा (आपः) अन्तरिक्ष वा प्राण भी (आपुः) नहीं पाते जो (त्वक्षसा) अपने बलरूप सामर्थ्य से (क्ष्मः) पृथिवी (दिवः) सूर्य्यलोक तथा (च) और लोकों को (प्ररिक्वा) रच के व्याप्त हो रहा है (सः) वह (मरुत्वान्) अपनी प्रजा को प्रशंसित करनेवाला (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (नः) हम लोगों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहार के लिए निरन्तर उद्यत (भवतु) होवे ॥ १५ ॥

भावार्थ—क्या अनन्त गुण, कर्म, स्वभाववाले उस परमेश्वर का पार कोई ले सकता है जो अपने सामर्थ्य से ही प्रकृतिरूप, अति सूक्ष्म, सनातन कारण से सब पदार्थों को स्थूलरूप में उत्पन्न कर उनकी पालना और प्रलय के समय उनका विनाश करता है ? वह सबके उपासना करने के योग्य क्यों न होवे ? ॥ १५ ॥

अब शिल्पिजनों द्वारा सेनादिकों में प्रयुक्त किया हुआ अग्नि कैसा होता है
और क्या करता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

रो॒हिच्छ्या॒वा सु॒मदं॑शुर्लला॒मीर्द्यु॒क्षा रा॒य ऋ॒ज्राश्व॑स्य ।

वृष॑ण्वन्तं॒ बिभ्र॑ती धू॒र्षु रथं॑ म॒न्द्रा चि॑केत॒ नाहु॑षीषु वि॒क्षु ॥१६॥

पदार्थ—जो (ऋज्राश्वस्य) सीधी चाल से चले हुए जिसके घोड़े वेग वाले उस सभा आदि के अधीश का सम्बन्ध करनेवाले शिल्पियों को (सुमदंशुः) जिसका उत्तम जलाना (ललामीः) प्रशंसित जिसमें सौन्दर्य्य (द्युक्षा) और जिस का प्रकाश ही निवास है वह (रोहित्) नीचे से लाल (श्यावा) ऊपर से काली

अग्नि की ज्वाला (कृष्णं) लोहे की अच्छी-अच्छी बनी हुई कलाओं में प्रयुक्त की गई (वृषण्वन्तम्) वेगवाले (रथम्) विमान आदि यान समूह को (बिभ्रती) धारण करती हुई (मन्द्रा) आनन्द की देनेहारी (नाहुषीषु) मनुष्यों के इन (विक्षु) सन्तानों के निमित्त (राये) धन की प्राप्ति के लिए वर्त्तमान है उसको जो (चिकेत) अच्छे प्रकार जाने वह धनी होता है ॥ १६ ॥

भावार्थ—जब विमानों के चलाने आदि कार्यों में ईंधनों से अच्छे प्रकार प्रयुक्त किया अग्नि जलता है तब उसके दो प्रकार के रूप देख पड़ते हैं—एक चमकदार दूसरा काला इसीमें अग्नि को श्यामकर्णाश्व कहते हैं जैसे घोड़े के शिर पर कान दीखते हैं वैसे अग्नि के शिर पर श्याम कज्जल की शिखा होती है। यह अग्नि कामों में अच्छे प्रकार प्रयुक्त किया हुआ बहुत प्रकार के धन को प्राप्त कराकर प्रजाजनों को आनन्दित करता है ॥ १६ ॥

फिर वह कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

एतत्त्यत्त इ॑न्द्र॒ वृष्ण॑ उ॒क्थं वा॑र्षागि॒रा अ॒भि गृ॑णन्ति॒ राधः॑ ।

ऋ॒ज्राश्वः॒ प्रष्टि॑भिरम्ब॒रीषः॑ स॒हदे॑वो॒ भय॑मानः सु॒राधाः॑ ॥१७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमविद्या ऐश्वर्य से युक्त सभाध्यक्ष ! जो (वार्षागिरा) उत्तम प्रशंसित विद्वान् की वाणियों से प्रशंसित पुरुष (एतत्) इस प्रत्यक्ष (ते) आपके (उक्थम्) प्रशंसा करने योग्य वचन वा काम को सब लोग (अभिगृणन्ति) आप के मुख पर कहते हैं वह और (त्यत्) अगला वा अनुमान करने योग्य आप का (राधः) धन (वृष्णे) शरीर और आत्मा की प्रसन्नता के लिए होता है तथा जो (अम्बरीषः) शब्दशास्त्र के जानने (सहदेवः) विद्वानों के साथ रहने (भयमानः) अधर्माचरण से डरकर उससे अलग वर्त्ताव वर्त्तने और दुष्टों को भय करनेवाले (सुराधाः) जो कि उत्तम-उत्तम धनों से युक्त (ऋज्राश्वः) जिन की सीधी, बड़ी-बड़ी राजनीति हैं और (प्रष्टिभिः) प्रश्नों से पूछे हुए समाधानों को देते हैं वे हम लोगों को सेवने योग्य कैसे न हों ? ॥ १७ ॥

भावार्थ—जब विद्वान् उत्तम प्रीति के साथ उपदेशों को करते हैं तब अज्ञानी जन विश्वस्त होकर उन उपदेशों को सुन, अच्छी विद्याओं को धारण कर धनाढ्य होके आनन्दित होते हैं ॥ १७ ॥

फिर वह क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

दस्यू॒ञ्छिम्यूँ॑श्च पुरुहू॒त एवै॑र्ह॒त्वा पृ॑थि॒व्यां शर्वा॒ नि ब॑र्हीत् ।

सन॒त्क्षेत्रं॒ सखि॑भिः श्वि॒त्न्येभिः॒ सन॒त्सूर्यं॒ सन॑द॒पः सु॒वज्रः॑ ॥१८॥

पदार्थ—(सुवज्रः) श्रेष्ठ अस्त्र और शस्त्रों के समूहवाला (पुरुहूतः) बहुतों से सत्कार किया हो वह (शर्वा) समस्त दुःखों का विनाश करनेवाला, सभा आदि का अधीश (श्वित्न्येभिः) श्वेत अर्थात् स्वच्छ तेजस्वी (सखिभिः) मित्रों के साथ और (एवैः) प्रशंसित ज्ञान वा कर्मों के साथ (दस्यून्) डाकुओं को (हत्वा) अच्छे प्रकार मार (शिम्यून्) शान्त, धार्मिक सज्जनों (च) और भृत्य आदि को (सनत्) पाले, दुःखों को (नि, बर्हीत्) दूर करे जो (पृथिव्याम्) अपने राज्य से युक्त भूमि में (क्षेत्रम्) अपने निवासस्थान (सूर्यम्) सूर्यलोक, (अपः) प्राण और जलों को (सनत्) सदा (सनत्) सेवन करे ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो सज्जनों सहित सभापति अधर्मयुक्त व्यवहार को निवृत्त और धर्म्य व्यवहार का प्रचार करके विद्या-युक्ति से सिद्ध व्यवहार का सेवनकर प्रजा के दुःखों को नष्ट करे वह सभा आदि का अध्यक्ष सबको मानने योग्य होवे, अन्य नहीं ॥१८॥

फिर वह कैसा है और उसके सहाय से हम लोग क्या पावें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वि॒श्वाहेन्द्रो॑ अधिव॒क्ता नो॑ अस्त्वप॑रिह्वृताः सनुयाम॒ वाज॑म् ।

तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः ॥१९॥

पदार्थ—जो (इन्द्र) प्रशंसित विद्या और ऐश्वर्य्ययुक्त विद्वान् (नः) हम लोगों के लिए (विश्वाहा) सब दिनों (अधिवक्ता) अधिक-अधिक उपदेश करनेवाला (अस्तु) हो उससे (अपरिह्वृताः) सब प्रकार कुटिलता को छोड़े हुए हम लोग जिस (वाजम्) विशेष ज्ञान को (सनुयाम) दूसरे को देवें और सेवन करें (नः) हमारे (तत्) उस विज्ञान को (मित्रः) मित्र (वरुणः) श्रेष्ठ सज्जन (अदितिः) अन्तरिक्ष (सिन्धुः) समुद्र, नदी (पृथिवी) भूमि (उत) और (द्यौः) सूर्य्य आदि प्रकाशयुक्त लोकों का प्रकाश (मामहन्ताम्) मान से बढ़ावें ॥१९॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जो नित्य विद्या का देनेवाला है उसकी सीधेपन से सेवा करके विद्याओं को पाकर मित्र, श्रेष्ठ आकाश, नदियों, भूमि और सूर्य्य आदि लोकों से उपकार ग्रहण करके सब मनुष्यों में सत्कार के साथ रहना चाहिए। कभी विद्या छिपानी नहीं चाहिए किन्तु सबको यह प्रकट करनी चाहिए ॥१९॥

इस सूक्त में सभा आदि के अधिपति, ईश्वर और पढ़नेवालों के गुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ एकता समझनी चाहिए ॥

यह सौवां सूक्त और ग्यारहवां वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अथास्यैकशततमस्यैकादशर्चस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ४ निचृज्जगती, २, ५, ७ विराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ३ भुरिक् त्रिष्टुप्, ६ स्वराट् त्रिष्टुप् ८, १० निचृत् त्रिष्टुप्, ९, ११ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब एकसौ एकवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में शाला का अधीश कैसा होवे यह विषय कहा है—

प्र म॒न्दिने॑ पितु॒मद॑र्चता॒ वचो॒ यः कृ॒ष्णग॑र्भा नि॒रह॑न्नृ॒जिश्व॑ना ।

अ॒व॒स्यवो॒ वृष॑णं॒ वज्र॑दक्षिणं म॒रुत्व॑न्तं स॒ख्याय॑ हवामहे ॥१॥

पदार्थ—तुम लोग (यः) जो उपदेश करने वा पढ़ानेवाला (ऋजिश्वना) ऐसे पाठ से कि जिसमें उत्तम वाणियों की धारणा शक्ति की अनेक प्रकार से वृद्धि हो उससे मूर्खपन को (निः, अहन्) निरन्तर हने उस (मन्दिने) आनन्दी पुरुष और आनन्द देनेवाले के लिए (पितुमत्) अच्छा बनाया हुआ अन्न अर्थात् पूरी, कचौरी, लड्डू, बालूशाही, जलेबी, इमरती आदि अच्छे-अच्छे पदार्थों वाले भोजन और (वचः) प्यारी वाणी को (प्रार्चत) अच्छे प्रकार निवेदन कर उसका सत्कार करो। और (अवस्यवः) अपने को रक्षा आदि व्यवहारों को चाहते हुए (कृष्णगर्भाः) जिन्होंने रेखागणित आदि विद्याओं के मर्म खोले हैं वे हम लोग (सख्याय) मित्र के काम वा मित्रपन के लिए (वृषणम्) विद्या की वृद्धि करनेवाले (वज्रदक्षिणम्) जिससे अविद्या का विनाश करनेवाली वा विद्यादि धन देनेवाली दक्षिणा मिले (मरुत्वन्तम्) जिसके समीप प्रशंसित विद्यावाले ऋत्विज् अर्थात् आप यज्ञ करें, दूसरे को करावें, ऐसे पढ़ानेवाले हों, उस अध्यापक अर्थात् उत्तम पढ़ानेवाले को (हवामहे) स्वीकार करते हैं उसको तुम लोग भी अच्छे प्रकार सत्कार के साथ स्वीकार करो ॥१॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जिससे विद्या लेवें उसका सत्कार मन, वचन, कर्म और धन से सदा करें। और पढ़ानेवालों को चाहिए कि जो पढ़ाने योग्य हों उन्हें अच्छे यत्न के साथ उत्तम-उत्तम शिक्षा देकर विद्वान् करें। सर्वदा श्रेष्ठों के साथ मित्रभाव रख उत्तम-उत्तम काम में चित्तवृत्ति की स्थिरता रक्खें ॥१॥

अब सभा और सेना का अध्यक्ष क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यो व्यं॑सं जाहृषा॒णेन॑ म॒न्युना॒ यः शम्ब॑रं॒ यो अह॒न् पिप्रु॑मव्र॒तम् ।

इन्द्रो॒ यः शुष्ण॑म॒शुषं॒ न्यावृ॑णङ्म॒रुत्व॑न्तं स॒ख्याय॑ हवामहे ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो सभा सेना आदि का अधिपति (इन्द्रः) समस्त ऐश्वर्य को प्राप्त (जाहृषाणेन) सज्जनों को सन्तोष देनेवाले (मन्युना) अपने क्रोधों से दुष्ट और शत्रुजनों का (व्यंसम् नि, अहन्) ऐसा मारे कि जिससे कन्धा अलग हो जाए वा (यः) जो शूरता आदि गुणों से युक्त वीर (शम्बरम्) अधर्म से सम्बन्ध करनेवाले को अत्यन्त मारे वा (यः) धर्मात्मा सज्जन पुरुष (पिप्रुम्) जो कि अधर्मी अपना पेट भरता उसको निरन्तर मारे और (यः) जो अति बलवान् (अव्रतम्) जिसके कोई नियम नहीं अर्थात् ब्रह्मचर्य सत्यपालन आदि व्रतों को नहीं करता उसको (अवृणक्) अपने से अलग करे उस (शुष्णम्) बलवान् (अशुषम्) शोकरहित, हर्षयुक्त (मरुत्वन्तम्) अच्छे प्रशंसित पढ़नेवालों को रखनेहारे सकल ऐश्वर्ययुक्त सभापति को (सख्याय) मित्रों के काम वा मित्रपन के लिए हम लोग (हवामहे) स्वीकार करते हैं ॥२॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जो प्रचण्ड क्रोध से दुष्टों को मारकर विद्या की उन्नति के लिए ब्रह्मचर्यादि नियमों को प्रचारित, मूर्खपन और खोटी सिखावटों को रोकके सबके सुखके लिए निरन्तर अच्छा यत्न करे उसीको मित्र मानें ॥२॥

अब ईश्वर और सभाध्यक्ष कैसे-कैसे गुणवाले होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यस्य॒ द्यावा॑पृथि॒वी पौंस्यं॑ म॒हद्यस्य॑ व्र॒ते वरु॑णो॒ यस्य॒ सूर्यः॑ ।

यस्येन्द्र॑स्य॒ सिन्ध॑वः॒ सश्च॑ति व्र॒तं म॒रुत्व॑न्तं स॒ख्याय॑ हवामहे ॥३॥

पदार्थ—हम लोग (यस्य) जिस (इन्द्रस्य) परमैश्वर्यवान् जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष राजा के (व्रते) सामर्थ्य वा शील में (महत्) अत्यन्त उत्तम गुण और (पौंस्यम्) पुरुषार्थयुक्त बल है (यस्य) जिसका (द्यावापृथिवी) सूर्य्य और भूमि के सदृश सहनशीलता और नीति का प्रकाश वर्त्तमान है (यस्य) जिसके (व्रतम्) सामर्थ्य वा शील को (वरुणः) चन्द्रमा वा चन्द्रमा का शान्ति आदि गुण (यस्य) जिसके सामर्थ्य और शील को (सूर्यः) सूर्यमण्डल वा उसका गुण (सश्चति) प्राप्त होता और (सिन्धवः) समुद्र प्राप्त होते हैं उस (मरुत्वन्तम्) समस्त प्राणियों से और समय-समय पर यज्ञादि करनेहारों से युक्त सभाध्यक्ष को (सख्याय) मित्र के काम वा मित्रपन के लिए (हवामहे) स्वीकार करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि जिस परमेश्वर के सामर्थ्य के बिना पृथिवी आदि लोकों की स्थिति अच्छे प्रकार नहीं होती तथा जिस सभाध्यक्ष के स्वभाव और वर्त्ताव की प्रकाश के समान विद्या, पृथिवी के समान सहनशीलता, चन्द्रमा के तुल्य शान्ति, सूर्य के तुल्य नीति का प्रकाश और समुद्र के समान गम्भीरता है उसको छोड़के और को अपना मित्र न बनावें ॥ ३ ॥

अब सभाध्यक्ष कैसा होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यो अश्वा॑नां॒ यो गवां॒ गोप॑तिर्व॒शी य आ॑रि॒तः कर्म॑णिकर्मणि स्थि॒रः ।

वी॒ळोश्चि॒दिन्द्रो॒ यो असु॑न्वतो व॒धो म॒रुत्व॑न्तं स॒ख्याय॑ हवामहे ॥४॥

पदार्थ—(यः) जो (इन्द्रः) दुष्टों का विनाश करनेवाला सभा आदि का अधिपति (अश्वानाम्) घोड़ों का अध्यक्ष (यः) जो (गवाम्) गौ आदि पशु वा पृथिवी आदि की रक्षा करनेवाला (यः) जो (गोपतिः) अपनी इन्द्रियों का स्वामी अर्थात् जितेन्द्रिय होकर अपनी इच्छा के अनुकूल उन इन्द्रियों को चलाने (वशी) और मन बुद्धि चित्त अहङ्कार को यथायोग्य वश में रखनेवाला (आरितः) सभा से आज्ञा को प्राप्त हुआ (कर्मणिकर्मणि) कर्म-कर्म में (स्थिरः) निश्चित (यः) जो (असुन्वतः) यज्ञकर्त्ताओं से विरोध करनेवाले (वीळोः) बलवान् को (वधः, चित्) वध के तुल्य मारनेवाला हो उस (मरुत्वन्तम्) अच्छे प्रशसित पढ़ानेवालों को राखनेहारे सभापति को (सख्याय) मित्रता वा मित्र के काम के लिए (हवामहे) हम स्वीकार करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—यहां वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि जो सबकी पालना करनेवाला जितेन्द्रिय, शान्त और जिस-जिस कर्म में सभा की आज्ञा को पावे उसी-उसी कर्म में स्थिरबुद्धि से प्रवर्त्तमान बलवान्, दुष्ट शत्रुओं को जीतनेवाला हो उसके साथ निरन्तर मित्रता की सम्भावना करके सुखों को सदा भोगें ॥ ४ ॥

अब सेनाध्यक्ष कैसा होता है यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत् ।

इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥५॥

पदार्थ—(यः) जो उत्तम दानशील (प्रथम) सबका विख्यात करनेवाला (इन्द्रः) इन्द्रियो से युक्त जीव (ब्रह्मणे) चारो वेदों के जाननेवाले के लिए (गाः) पृथिवी, इन्द्रियो और प्रकाशकयुक्त लोकों को (अविन्दत्) प्राप्त होता वा (यः) जो शूरता आदि गुणवाला वीर (दस्यून्) हठ से औरों का धन हरनेवालों को (अधरान्) नीचता को प्राप्त कराता हुआ (अवातिरत्) अधोगति को पहुँचाता वा (यः) जो सेनाधिपति (विश्वस्य) समग्र (जगतः) जगमरूप (प्राणतः) जीवते जीव समूह का (पतिः) अधिपति अर्थात् स्वामी हो उस (मरुत्वन्तम्) अपने समीप पढ़ानेवालो को रखनेवाले सभाध्यक्ष को हम लोग (सख्याय) मित्रपन के लिए (हवामहे) स्वीकार करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—पुरुषार्थ के विना विद्या, अन्न और धन की प्राप्ति तथा शत्रुओ का पराजय नहीं हो सकता, जो धार्मिक सेनाध्यक्ष सुहृद्भाव से अपने प्राण के समान सबको प्रसन्न करता है उस पुरुष को निश्चय है कि कभी दुःख नही होता इससे उक्त विषय का आचरण सदा करना चाहिए ॥ ५ ॥

यः शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभिर्यो धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः ।

इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि संदधुर्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥६॥१२॥

पदार्थ—(यः) जो परमैश्वर्यवान् सेना आदि का अधिपति (शूरेभिः) शूरवीरों से (हव्यः) आह्वान करने अर्थात् चाहने योग्य (यः) जो (भीरुभिः) डरनेवालों (च) और निर्भयों से तथा (यः) जो (धावद्भिः) दौड़ते हुए मनुष्यों से वा (यः) जो (च) बैठे और चलते हुए उन से (जिग्युभिः) वा जीतनेवाले लोगों से (हूयते) बुलाया जाता वा (यम्) जिस (इन्द्रम्) उक्त सेनाध्यक्ष को (विश्वा) समस्त (भुवना) लोकस्थ प्राणी (अभि) सम्मुखता से (संदधुः) अच्छे प्रकार धारण करते हैं उस (मरुत्वन्तम्) अच्छे पढ़ानेवालों को रखनेहारे सेनाधीश को (सख्याय) मित्रपन के लिए हम लोग (हवामहे) स्वीकार करते हैं उसको तुम भी स्वीकार करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो परमात्मा और सेना का अधीश सब लोकों का सब प्रकार से मेल करता है वह सबको सेवन करने और मित्रभाव से मानने के योग्य है ॥ ६ ॥

रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथु ज्रयः ।

इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥७॥

पदार्थ—(विचक्षणः) प्रशसित चतुराई आदि गुणों से युक्त विद्वान् (रुद्राणाम्) प्राणो के समान बुरे भलों को रुलाते हुए विद्वानो के (प्रदिशा) ज्ञानमार्ग से (पृथु) विस्तृत (ज्रयः) प्रताप को (एति) प्राप्त होता है और (रुद्रेभिः) प्राण वा छोटे-छोटे विद्यार्थियो के साथ (योषा) विद्या से मिली और मूर्खपन से अलग हुई स्त्री उसको (तनुते) विस्तारती है इससे जो विचक्षण विद्वान् (मनीषा) प्रशसित बुद्धि से (श्रुतम्) प्रख्यात (इन्द्रम्) शाला आदि के अध्यक्ष का (अभ्यर्चति) सब ओर से सत्कार करता उस (मरुत्वन्तम्) अपने समीप पढ़ानेवालों को रखनेवाले को (सख्याय) मित्रपन के लिए हम लोग (हवामहे) स्वीकार करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—जिन मनुष्यों द्वारा प्राणायामो से प्राणो को सत्कार से श्रेष्ठों और तिरस्कार से दुष्टों को वश मे कर समस्त विद्याओ को फैलाकर परमेश्वर वा अध्यापक का अच्छे प्रकार मान सत्कार करके उपकार के साथ सब प्राणी सत्कार युक्त किये जाते हैं वे सुखी होते हैं ॥ ७ ॥

अब शाला आदि का अधिपति कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है —

यद्वा मरुत्वः परमे सधस्थे यद्वावमे वृजने मादयासे ।

अत आ याह्यध्वरं नो अच्छा त्वाया हविश्चकृमा सत्यराधः ॥८॥

पदार्थ—हे (मरुत्वः) प्रशंसित विद्यायुक्त (सत्यराधः) विद्या और सत्य-धर्मों वाले विद्वन् ! (यत्) जिस कारण आप (परमे) अत्यन्त उत्कृष्ट (सधस्थे) स्थान में और (यत्) जिस कारण (वा) उत्तम (अवमे) अधम (वा) वा मध्यम व्यवहार में (वृजने) कि जिस में मनुष्य दुःखों को छोड़ें (मादयासे) आनन्द देते हैं (अतः) इस कारण (नः) हम लोगो के (अध्वरम्) पढ़ने-पढ़ाने के अहिंसनीय अर्थात् न छोड़ने योग्य यज्ञ को (अच्छ) अच्छे प्रकार (आ, याहि) आओ प्राप्त होओ (त्वाया) आप के साथ हम लोग (हविः) ग्रहण करने योग्य विशेष ज्ञान को (चकृम) करें अर्थात् उस विद्या को प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि जो विद्वान् सर्वत्र आनन्दित कराने और विद्या का देनेहारा सत्य गुण, कर्म और स्वभावयुक्त है, उसके संग से निरन्तर समस्त विद्या और उत्तम शिक्षा को पाकर सर्वदा आनन्दित होवें ॥ ८ ॥

फिर उसके संग से क्या करना चाहिए और वह हम लोगों के यज्ञ मे क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है —

त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष त्वाया हविश्चकृमा ब्रह्मवाहः ।

अधा नियुत्वः सगणो मरुद्भिरस्मिन् यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ॥९॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परम विद्यारूपी ऐश्वर्य से युक्त विद्वन् ! (त्वाया) आप के साथ हुए हम लोग (सोमम्) ऐश्वर्य करनेवाले वेदशास्त्र के बोध को (सुषुम) प्राप्त हों । हे (सुदक्ष) उत्तम चतुराई युक्त बल और (ब्रह्मवाहः) अनन्त धन तथा वेदविद्या की प्राप्ति करानेहारे विद्वान् ! (त्वाया) आप के सहित हम लोग (हविः) क्रियाकौशलयुक्त काम का (चकृम) विधान करें । हे (नियुत्वः) समर्थ ! (अध) इस के अनन्तर (मरुद्भिः) ऋत्विज् अर्थात् पढ़ाने वालों और (सगणः) अपने विद्यार्थियो के गोलो के साथ वर्त्तमान आप (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) अत्यन्त उत्तम (यज्ञे) पढ़ने-पढ़ाने के सत्कार से पाये हुए व्यवहार में (मादयस्व) आनन्दित होओ और हम लोगों को आनन्दित करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—विद्वानो के सग के विना निश्चय ही कोई ऐश्वर्य्य और आनन्द को नहीं पा सकता है । इससे सब मनुष्य विद्वानों का सदा सत्कार कर इनसे विद्या और अच्छी-अच्छी शिक्षाओं को प्राप्त करके सब प्रकार से सत्कारयुक्त होवें ॥ ९ ॥

फिर सेना आदि का अध्यक्ष क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने ।

आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तूशन्हव्यानि प्रति नो जुषस्व ॥१०॥

पदार्थ—हे (सुशिप्र) अच्छा सुख पहुचाने वाले (इन्द्र) परमैश्वर्य्ययुक्त सेना के अधीश ! (ये) जो (ते) आपके प्रशसित युद्ध मे अति प्रवीण और उत्तमता से चालें सिखाये हुए घोड़े हैं उन (हरिभिः) घोड़ो से (नः) हम लोगों को (मादयस्व) आनन्दित कीजिए (शिप्रे) और सर्व सुख प्राप्ति कराने तथा (धेने) वाणी के समान समस्त आनन्द रस को देनेहारे आकाश और भूमिलोक को (विष्यस्व) अपने राज्य से निरन्तर प्राप्त हो (विसृजस्व) और छोड़ अर्थात् वृद्धावस्था मे तप करने के लिए उस राज्य को छोड़दे जो (हरयः) घोड़े (त्वाम) आप को (आ, वहन्तु) ले चलते हैं वा जिन से (उशन्) आप अनेक प्रकार की कामनाओं को करते हुए (हव्यानि) ग्रहण करने योग्य युद्ध आदि के कामो को सेवन करते हैं उन कामो के प्रति (नः) हम लोगो को (जुषस्व) प्रसन्न कीजिए ॥ १० ॥

भावार्थ—सेनापति को चाहिए कि सेना के समस्त अङ्गों को पूर्ण बलयुक्त और अच्छी-अच्छी शिक्षा दे उनको युद्ध के योग्य सिद्ध कर समस्त विघ्नों की निवृत्ति कर और अपने राज्य की उत्तम रक्षा करके सब प्रजा को निरन्तर आनन्दित करे ॥ १० ॥

फिर वह कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है —

मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११॥

पदार्थ—जो (मरुत्स्तोत्रस्य) पवन आदि के वेगादि गुणो से प्रशंसा को प्राप्त (वृजनस्य) और दुःखविजत अर्थात् जिसमें दुःख नही होता उस व्यवहार का (गोपाः) रखनेवाला सेनाधिपति है उस (इन्द्रेण) ऐश्वर्य के देनेवाले सेनापति के साथ वर्त्तमान (वयम्) हम लोग जिस कारण (वाजम्) संग्राम का (सनुयाम) सेवन करें (तत्) इस कारण (मित्रः) मित्र (वरुणः) उत्तम गुणयुक्त जन (अदितिः) समस्त विद्वान् मण्डली (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौः) सूर्यलोक (नः) हम लोगो के (मामहन्ताम) सत्कार करने के हेतु हों ॥ ११ ॥

भावार्थ—निश्चय ही सग्राम में किन्हीं के पूर्ण बली सेनाधिपति के बिना शत्रुओं का पराजय नही हो सकता । और न कोई सेनाधिपति अच्छी शिक्षाकी हुई पूर्ण बल, अङ्ग और उपाङ्ग सहित आनन्दित और पुष्ट सेना के बिना शत्रुओं को जीतने वा राज्य की पालना करने मे समर्थ हो सकता है । न उक्त व्यवहारों के बिना मित्र आदि सुख करने के योग्य होते हैं । इस से उक्त समस्त व्यवहार सब मनुष्यों को यथावत् मानना चाहिए ॥११॥

इस सूक्त में ईश्वर, सभा, सेना और शाला आदि के अधिपतियो के गुणों का वर्णन है इससे इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ।

यह एकसौ एकवां सूक्त और तेरहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ इमामित्येकादशर्चस्य सूक्तस्याङ्गिरस कुत्स ऋषि । इन्द्रो देवता ।
१ जगती, ३, ५—८ निचृज्जगती छन्द । निषाद स्वर । २, ४, ६ स्वराट् त्रिष्टुप्; १०, ११ निचृत् त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥
अब शाला आदि के अध्यक्ष को क्या-क्या स्वीकार कर कैसा होना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है —

इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्त आनजे ।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥१॥

पदार्थ—हे सर्वविद्या देनेवाले शाला आदि के अधिपति ! (यत्) जो (ते, अस्य) इन आप की (धिषणा) विद्या और उत्तम शिक्षा की हुई वाणी (आनजे) सब लोगो ने चाही, प्रकट की और समझी है जिन (ते) आपके (इमाम्) इस (मह) बडी (महीम्) सत्कार करने योग्य (धियम्) बुद्धि को (स्तोत्रे) प्रशसनीय व्यवहार मे (प्रभरे) अतीव धरे अर्थात् स्वीकार करे वा (उत्सवे) उत्सव (च) और साधारण काम में वा (प्रसवे) पुत्र आदि के उत्पन्न होने और (च) गर्मी होने मे जिन (सासहिम्) अति क्षमा न करने (इन्द्रम्) विद्या और ऐश्वर्य्य की प्राप्ति करानेवाले आप को (देवासः) विद्वान् जन (शवसा) बल से (अनु, अमदन्) आनन्द दिलाते वा आनन्दित होते हैं (तम्) उन आप को मैं भी अनुमोदित करूँ ॥१॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिए कि सब धार्मिक विद्वानो की विद्या, बुद्धियो और कामो को धारण और उन की स्तुति कर उत्तम-उत्तम व्यवहारों का सेवन करें। जिन से विद्या और सुख मिलते हैं वे विद्वान् जन सब को सुख और दु:ख के व्यवहारों में सत्कारयुक्त करके ही सदा आनन्दित करे ॥१॥

अब ईश्वर और अध्यापक के काम से क्या होता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः ।
अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम् ॥२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य के देनेवाले ! (अस्य) नि शेष विद्यायुक्त जगदीश्वर का वा समस्त विद्या पढानेहारे आप लोगों का (श्रव) सामर्थ्य वा अन्न और (सप्त) सात प्रकार की स्वादयुक्त जलवाली (नद्य) नदी (दर्शतम्) देखने और (वितर्तुरम्) अनेक प्रकार के नौका आदि पदार्थों से तरने योग्य महानद मे तरने के अर्थ (कम्) सुखकरनेहारे (वपु) रूप को (बिभ्रति) धारण करती वा पोषण कराती तथा (द्यावाक्षामा) प्रकाश और भूमि मिलकर वा (पृथिवी) अन्तरिक्ष (सूर्याचन्द्रमसा) सूर्य और चन्द्रमा आदि लोक धरते पुष्ट कराते हैं ये सब (अस्मे) हम लोगो के (अभिचक्षे) मुख के सम्मुख देखने (श्रद्धे) और श्रद्धा कराने के लिए प्रकाश और भूमि वा सूर्य चन्द्रमा दो-दो (चरतः) प्राप्त होने तथा अन्तरिक्ष प्राप्त होता और भी उक्त पदार्थ प्राप्त होते हैं ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है। परमेश्वर की रचना से पृथिवी आदि लोक और उनमें रहने वाले पदार्थ अपने-अपने रूप को धारण करके सब प्राणियो के देखने और श्रद्धा के लिए हो और सुख को उत्पन्न कर गमनागमन के निमित्त होते हैं। किसी प्रकार विद्या के विना इन सासारिक पदार्थों से सुख नही होता, इस से सब को चाहिए कि ईश्वर की उपासना और विद्वानो के सग से लोकसम्बन्धी विद्या को पाकर सदा सुखी होवें ॥२॥

फिर सेना का अधिपति क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है —

तं स्मा रथं मघवन्प्राव सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम सङ्गमे ।
आजा न इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्म यच्छ नः ॥३॥

पदार्थ—हे (मघवन्) प्रशसित और मान करने योग्य धनयुक्त (इन्द्र) परमैश्वर्य्य के देनेवाले सेना के अधिपति ! आप (न) हम लोगो के (सातये) बहुत से धन की प्राप्ति होने के लिए (जैत्रम्) जिससे सग्रामो में जीते (तम्) उस (स्म) अद्भुत अद्भुत गुणो को प्रकाशित करनेवाले (रथम्) विमान आदि रथसमूह को जुना के (आजा) जहाँ शत्रुओ से वीर आ-आ मिलें उस (संगमे) सग्राम मे (प्र, अव) पहुँचाओ अर्थात् अपने रथ को वहा ले जाओ, कौन रथ को ? कि (यम्) जिस (ते) आपके रथ को हम लोग (अनु, मदाम) पीछे से सराहें। हे (पुरुष्टुत) बहुत शूरवीर जनो से प्रशसा को प्राप्त (मघवन्) प्रशसित धनयुक्त ! आप (मनसा) विशेष ज्ञान से (त्वायद्भ्य·) अपने को आप की चाहना करते हुए (न.) हम लोगो के लिए अद्भुत (शर्म) सुख को (यच्छ) देओ ॥३॥

भावार्थ—जब शूरवीर सेवको के साथ सेनापति को सग्राम करने को जाना होता है तब परस्पर अर्थात् एक दूसरे का उत्साह बढाकर, अच्छे प्रकार रक्षा शत्रुओ के साथ अच्छा युद्ध और उनकी हार द्वारा अपने जनो को आनन्द देकर शत्रुओ को भी किसी प्रकार सन्तोष देकर सदा अपना वर्त्ताव रखना चाहिए ॥३॥

फिर उसके साथ क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) शत्रुओ के दल को विदीर्ण करनेवाले सेना आदि के अधीश ! तुम (भरेभरे) प्रत्येक सग्राम मे (अस्माकम्) हम लोगो के (वृतम्) स्वीकार करने योग्य (अंशम्) सेवाविभाग का (अव) रक्खो, चाहो, जानो, प्राप्त होओ अपने में रमाओ, मांगो प्रकाशित करो उससे आनन्दित होने आदि क्रियाओं से स्वीकार करो वा भोजन, वस्त्र, धन, यान कोश को बांटो तथा (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए (वरिव.) अपना सेवन (सुगम्) सुगम (कृधि) करो। हे (मघवन्) प्रशसित बलवाले ! तुम (वृष्ण्या) शस्त्र वर्षाने वालों की शस्त्रवृष्टि के लिए हितरूप अपनी सेना से (शत्रूणाम्) शत्रुओ की सेनाओं को (प्र, रुज) अच्छी प्रकार काटो और ऐसे साथी (त्वया, युजा) जो आप उनके साथ (वयम्) युद्ध करनेवाले हम लोग शत्रुओं के बलो को (उत् जयेम) उत्तम प्रकार से जीतें ॥४॥

भावार्थ—राजपुरुष जब-जब युद्ध करने को प्रवृत्त होवें तब-तब धन, शस्त्र, यान, कोश, सेना आदि सामग्री को पूरी कर और प्रशसित सेना के अधीश से रक्षा को प्राप्त करके प्रशंसित विचार और युक्ति से शत्रुओं के साथ युद्धकर उनकी सेनाओं को सदा जीतें। ऐसे पुरुषार्थ के बिना किये किसी की जीत नहीं हो सकती। इससे इस वर्त्ताव को सदा वर्त्तें ॥४॥

फिर उनको परस्पर युद्ध में कैसे वर्त्तना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्त्तरवसा विपन्यवः ।
अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ॥५॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) यथायोग्य वीरो के रखनेवाले ! तुम (धनानाम्) राज्य की विभूतियो के (सातये) अलग-अलग बाँटने के लिए (स्म) आनन्द ही के साथ जिसमे (तव) तुम्हारी (मनः) विचार करनेवाली चित्त की वृत्ति (निभृतम्) निरन्तर धरी हो उस (अस्माकम्) हमारे (जैत्रम्) जो बड़ा दृढ जिससे शत्रु जीते जाएँ (रथम्) ऐसे विजय करानेवाले विमानादि यान (हि) ही को (आतिष्ठ) अच्छे प्रकार स्वीकार कर स्थित हो। हे (धर्त्त) धारण करनेवाले ! तुम्हारी आज्ञा मे अपना वर्त्ताव रखते हुए (अवसा) रक्षा आदि आपके गुणो के साथ वर्त्तमान (नाना) अनेक प्रकार (हवमाना·) चाहे हुए (विपन्यव:) विविध व्यवहारों मे चतुर बुद्धिमान् (जना.) जन (इमे) ये प्रत्यक्षता से परीक्षा किये हम लोग (त्वाम्) तुम्हारे अनुकूल (हि) ही वर्त्ताव रक्खें ॥५॥

भावार्थ—जब मनुष्य युद्ध आदि व्यवहारो मे प्रवृत्त होवें तब विरोध, ईर्ष्या डर और आलस्य को छोड एक दूसरे की रक्षा में तत्पर हो शत्रुओ को जीत, और जीते हुए धनो को बाँटकर सेनापति आदि लडने वालो की योग्यता के अनुकूल उनके सत्कार के लिए देवें, जिससे लडने का उत्साह आगे भी बढे। सर्वथा न देना अप्रिय-कर, और देना प्रसन्नता करनेवाला होता है यह विचार कर सदा उक्त व्यवहार को वर्त्तें ॥५॥

फिर वह सेनापति कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है

गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः खजङ्करः ।
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसाथा जना वि ह्वयन्ते सिषासवः ॥६॥

पदार्थ—हे सभापति ! जिन आपकी (गोजिता) पृथिवी की जितानेवाली (बाहू) अत्यन्त बल पराक्रमयुक्त भुजा (अथ) इसके अनन्तर जो आप (इन्द्र) अनेक ऐश्वर्य्ययुक्त (ओजसा) बल स (कर्मन्-कर्मन्) प्रत्येक को काम मे (अमितक्रतु.) अतुल बुद्धिवाले (अकल्प) और बडे बडे समर्थजनो से अधिक (सिम) व्यवस्था से शत्रुओ के बाँधने और (खजकर.) सग्राम करनेवाले (शतमूति) जिनकी सैकड़ो रक्षा आदि क्रिया हैं (प्रतिमानम्) जिनको अत्यन्त सामर्थ्यवालो की उपमा दी जाती है उन आपको (सिषासव) सेवन करने की इच्छा करनेवाले (जना) विद्वान्जन (वि, ह्वयन्ते) चाहते है ॥६॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि जो सर्वथा समर्थ, प्रत्येक काम के करने को जानता औरों से न जीतने योग्य आप सबको जीतनवाला, सबके चाहने योग्य और अनुपम मनुष्य हो उसको सेनाधिपति करके विजय आदि कामो को साधें ॥६॥

फिर वह कैसा और क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

उत्ते शतान्मघवन्नुच्च भूयस उत्सहस्राद्रिरिचे कृष्टिषु श्रवः ।
अमात्रं त्वा धिषणा तित्विषे मह्यधा वृत्राणि जिघ्नसे पुरन्दर ॥७॥

पदार्थ—हे (मघवन्) असङ्ख्यात ऐश्वर्य से युक्त सेनापति ! (ते) आपका (कृष्टिषु) मनुष्यो मे (श्रव.) कीर्त्तन श्रवण वा धन (शतात्) सैकड़ो से (उत्) ऊपर (रिरिचे) निकल गया (सहस्रात्) हजारो से (उत्) ऊपर (च) और (भूयस.) अधिक से भी (उत्) ऊपर अर्थात् अधिक निकल गया (अध) इसके अनन्तर (अमात्रम्) परिमाणरहित (त्वा) आपकी (मही) महा गुणयुक्त (धिषणा) विद्या और अच्छी शिक्षा को पाये हुई वाणी वा बुद्धि (तित्विषे) प्रकाशित करती है। हे (पुरन्दर) शत्रुओ के पुरो के विदारनेवाले (वृत्राणि) जैसे मेघ के अग अर्थात् बद्दलो का सूर्य्य हनन करता है वैसे आप शत्रुओ को (जिघ्नसे) मारते हो ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यो को चाहिए कि जैसे सूर्य्य अन्धकार और मेघ आदि का हनन करके अपरिमित अर्थात् जिसका परिमाण न हो सके उस अपने तेज को प्रकाशित करके सब तेज वाले पदार्थों में बढ़के वर्त्तमान है वैसे विद्वान् को सभा का अधीश मानके शत्रुओं को जीतें ॥७॥

अब ईश्वर और सभापति कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजसस्तिस्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना ।
अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथाशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ॥८॥

पदार्थ—हे (नृपते) मनुष्यों के स्वामी ईश्वर वा राजन् ! (इन्द्र) बहुत ऐश्वर्य से युक्त (अशत्रुः) शत्रुरहित आप (त्रिविष्टिधातु) जिस में तीन प्रकार की पृथिवी जल, तेज, पवन आकाश की व्याप्ति अर्थात् परिपूर्णता है उस संसार को (प्रतिमानम्) परिमाण वा उपमान जैसे हो वैसे (सनात्) सनातन कारण वा (ओजसः) बल वा (जनुषा) उत्पन्न किये हुए काम से (तिस्रः) तीन प्रकार (भूमीः) अर्थात् नीचली ऊपरली और बीचली उत्तम, अधम और मध्यम भूमि तथा (त्रीणि) तीन प्रकार के (रोचना) प्रकाशयुक्त विद्या शब्द और सूर्य्य और न्याय करते बल और राज्यपालन आदि काम के तुम दोनों यथायोग्य निर्वाह करनेवाले (असि) हो और उक्त पञ्चभूतमय (इदम्) इस (विश्वम्) समस्त (भुवनम्) जिसमें कि प्राणी होते हैं उस जगत् के (अति ववक्षिथ) अतीव निर्वाह करने की इच्छा करते हो इससे ईश्वर उपासना करने योग्य और विद्वान् आप सत्कार करने योग्य हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि जिसकी उपमा नहीं है जो ईश्वर कारण से सब कार्य्यरूप जगत् को रच और उस की रक्षाकर उस का संहार किया करता है वही इष्टदेव मानने योग्य है, तथा जो अतुल सामर्थ्ययुक्त सभापति प्रसिद्ध न्याय आदि गुणों से समस्त राज्य को सन्तुष्ट करता है वह भी सदा सत्कार करने योग्य है ॥ ८ ॥

अब सेना का अध्यक्ष कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं बभूथ पृतनासु सासहिः ।
सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिदमिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ॥९॥

पदार्थ—हे सेनापते ! जिस कारण (त्वम्) आप (पृतनासु) अपनी वा शत्रुओं की सेनाओं में (सासहिः) अतीव सहनशील (बभूथ) होते हैं इससे (देवेषु) विद्वानों में (प्रथमम्) पहले (त्वाम्) समग्र सेना के अधिपति तुमको (हवामहे) हम लोग स्वीकार करते हैं जो (इन्द्रः) समस्त ऐश्वर्य्य के प्रकट करनेहारे आप (प्रसवे) जिस में वीरजन चिताये जाते हैं उस राज्य में (उद्भिदम्) पृथिवी का विदारण करके उत्पन्न होनेवाले काष्ठ विशेष से बनाये हुए (रथम्) विमान आदि रथ को (पुरः) आगे करते हैं (सः) वह आप (नः) हम लोगों के लिए (इमम्) इस (उपमन्युम्) समीप में मानने योग्य (कारुम्) क्रिया कौशल काम के करनेवाले जन को (कृणोतु) प्रसिद्ध करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जो उत्तम विद्वान् अपनी सेना के पालन और शत्रुओं के बल को विदारने में चतुर, शिल्पकार्य्यों को जाननेवाला, सर्वप्रिय तथा युद्ध में आगे रहकर अत्यन्त युद्ध करता है उसी को सेना का अधीश बनावें ॥ ९ ॥

फिर वह क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

त्वं जिगेथ न धना रुरोधिथार्भेष्वाजा मघवन्महत्सु च ।
त्वामुग्रमवसे सं शिशीमस्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय ॥१०॥

पदार्थ—हे (मघवन्) परम सराहने योग्य धन आदि सामग्री लिये हुए (इन्द्र) शत्रुओं के विदारनेवाले सेनापति ! जो (त्वम्) आप चतुरङ्ग अर्थात् चौतरफी नाकेबन्दी की सेना सहित (अर्भेषु) थोड़े (महत्सु) बड़े (च) और मध्यम (आजा) संग्रामों में शत्रुओं को (जिगेथ) जीते हुए हो और उक्त संग्रामों में (धना) धन आदि पदार्थों को (न) न (रुरोधिथ) रोकते हो उन (उग्रम्) शत्रुओं के बल को विदीर्ण करने में अत्यन्त बली (त्वाम्) आप को (अवसे) रक्षा आदि के लिए स्वीकार करके हम लोग शत्रुओं को (संशिशीमसि) अच्छे प्रकार निर्मूल नष्ट करते हैं (अथ) इस के अनन्तर आप भी ऐसा कीजिए कि (हवनेषु) ग्रहण करने योग्य कामों में (नः) हम लोगों को (चोदय) प्रवृत्त कराइए ॥ १० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य शत्रुओं और समय को पाकर धनों को जीतनेवाला, श्रेष्ठ कामों में प्रेरणा करनेवाला और दुष्टों को छिन्न-भिन्न करनेवाला हो, वही सब की सेनाओं का अधीश मानना चाहिए ॥ १० ॥

फिर वह कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११॥

पदार्थ—(अपरिह्वृताः) आज्ञा को पाये हुए हम लोग जो (विश्वाहा) सब शत्रुओं को मारनेवाला (इन्द्रः) परमैश्वर्य्ययुक्त सभाध्यक्ष (नः) हम लोगों को (अधिवक्ता) यथावत् शिक्षा देनेवाला (अस्तु) हो उस के लिए (वाजम्) अच्छे संस्कार किये हुए अन्न को (सनुयाम) देवें जिससे (तत्) उसको (नः) हम लोगों के (मित्रः) मित्रजन (वरुणः) उत्तम गुणयुक्त (अदितिः) समस्त विद्वान्, अन्तरिक्ष (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौः) सूर्य्यलोक (मामहन्ताम्) बढ़ावें ॥ ११ ॥

भावार्थ—सब सेवकों की यह रीति हो कि जब उनका स्वामी जैसी आज्ञा करे उसी समय उस को वैसे ही करें और जो समग्र विद्या पढ़ा हो उसीसे उपदेश सुनने चाहिएं ॥ ११ ॥

इस सूक्त में आज्ञा आदि के अधिपति ईश्वर पढ़ानेवाले और सेनापति के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ से एकता है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ दोवां सूक्त और पन्द्रहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ त्र्युत्तरशततमस्याष्टर्चस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिरिन्द्रो देवता ।
१, ३, ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ४ विराट् त्रिष्टुप्;
७, ८ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब एकसौ तीनवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र से यह उपदेश है कि ईश्वर का कार्य्य जगत् में कैसा प्रसिद्ध चिह्न है—

तत्त इन्द्रियं परमं पराचैरधारयन्त कवयः पुरेदम् ।
क्षमेदमन्यद्दिव्य१न्यदस्य समी पृच्यते समनेव केतुः ॥१॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! जो (ते) आप वा जीव की सृष्टि में (इदम्) यह प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष सामर्थ्य (परमम्) प्रबल, अति उत्तम (इन्द्रियम्) परम ऐश्वर्य्ययुक्त आप और जीव का एक चिह्न जिस को (कवयः) बुद्धिमान् विद्वान् जन (पराचैः) ऊपर के चिह्नों से सहित (पुरा) प्रथम (अधारयन्त) धारण करते हुए (क्षमा) सब को सहने वाली पृथिवी (इदम्) इस वर्त्तमान चिह्न को धारण करती जो (दिवि) प्रकाशमान सूर्य्य आदि लोक में वर्त्तमान वा जो (अन्यत्) उस से भिन्न कारण में वा (अस्य) इस संसार के बीच में है इसको (ईम्) जल धारण करता वा जो (अन्यत्) और विलक्षण न देखे हुए कार्य्य में होता है (तत्) उस सब को (समनेव) जैसे युद्ध में सेना जुटे ऐसे (केतुः) विज्ञान देनेवाले होते हुए आप वा जीव प्रकाशित करता यह सब इस जगत् में (संपृच्यते) सम्बद्ध होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! इस जगत् में जो-जो रचना विशेष युक्त अच्छी-अच्छी वस्तु वर्त्तमान है वह सब परमेश्वर की रचना से ही प्रसिद्ध है यह तुम जानो, क्योंकि ऐसा विचित्र जगत् विधाता के बिना कभी बनना सम्भव नहीं इससे निश्चय है कि इस जगत् का रचनेवाला परमेश्वर है और जीव सम्बन्धी सृष्टि का रचनेवाला जीव है ॥ १ ॥

अब इस जगत् में परमेश्वर से बनाया हुआ यह सूर्य क्या काम करता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

स धारयत् पृथिवीं पप्रथच्च वज्रेण हत्वा निरपः ससर्ज ।
अहन्नहिमभिनद्रौहिणं व्यहन् व्यंसं मघवा शचीभिः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (मघवा) सूर्य्यलोक (शचीभिः) कामों से (पृथिवीम्) पृथिवी को (धारयत्) धारण करता अपने तेज (च) और बिजुली आदि को (पप्रथत्) फैलाता उस अपने तेज से सब जगत् को प्रकाशित करता (वज्रेण) अपने किरणसमूह से मेघ को (हत्वा) मारके (अपः) जलों को (निः, ससर्ज) निरन्तर उत्पन्न करता फिर (अहिम्) मेघ को (अहन्) हनता (रौहिणम्) रोहिणी नक्षत्र में उत्पन्न हुए मेघ को (अभिनत्) विदारण करता (व्यंसम्, वि, अहन्) केवल साधारण ही विदारता हो सो नहीं किन्तु कट जाय भुजा आदि जिसकी ऐसे रुण्ड मुण्ड मुचण्ड उद्दण्ड वीर के समान विशेष करके मेघों को हनता है (सः) वह सूर्य्यलोक ईश्वर ने रचा है यह जानो ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को यह देखना चाहिए कि प्रसिद्ध जो सूर्य्यलोक है वह मेघों के विदारण, लोकों के आकर्षण और प्रकाश आदि कामों से जल वर्षा द्वारा पृथिवी को धारण और अप्रकट अर्थात् अन्धकार से ढँपे हुए जो पदार्थों को प्रकाशित कर सब प्राणियों को व्यवहार में चलाता है वह परमात्मा के बनाये बिना कभी भी उत्पन्न नहीं हो सकता ॥ २ ॥

अब सेना आदि का अध्यक्ष कैसा हो यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद्वि दासीः ।
विद्वान् वज्रिन्दस्यवे हेतिमस्यार्य्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ॥३॥

पदार्थ - हे (वज्रिन्) प्रशंसित शस्त्रसमूह युक्त (इन्द्र) अच्छे-अच्छे पदार्थों के देनेवाले सेना आदि के स्वामी ! जो (जातूभर्मा) उत्पन्न हुए सांसारिक पदार्थों को धारण (श्रद्दधानः) और अच्छे कामों में प्रीति करनेवाले (विद्वान्) विद्वान् आप (अस्य) इस दुष्ट जन की (दासीः) नष्ट होनेहारीसी दासी प्रधान (पुरः) नगरियों को (दस्यवे) दुष्ट काम करते हुए जन के लिए (विभिन्दन्) विनाश करते हुए (व्यचरत्) विचरते हो (सः) वह आप श्रेष्ठ सज्जनों के लिए (हेतिम्) सुख के बढ़ाने वाले वज्र को (आर्य्यम्) श्रेष्ठ वा अति श्रेष्ठों के इस (सहः) बल (द्युम्नम्) धन (ओजः) और पराक्रम को (वर्धय) बढ़ाया करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य समस्त डाकू, चोर, लबाड़, लम्पट लड़ाई करनेवालों का विनाश और श्रेष्ठों को हर्षित कर शारीरिक तथा आत्मिक बल का सम्पादन कर धन आदि पदार्थों से सुख को बढ़ाता है वही सब का श्रद्धा करने योग्य है ॥ ३ ॥

तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत् ।
उपप्रयन्दस्युहत्याय वज्री यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे ॥४॥

पदार्थ—जो (मघवा) बहुत धनोंवाला (सूनुः) वीर का पुत्र (वज्री) प्रशंसित शस्त्र-अस्त्र बांधे हुए सेनापति जैसे सूर्य प्रकाशयुक्त है वैसे प्रकाशित होकर (ऊचुषे) कहने की योग्यता के लिए वा (दस्युहत्याय) जिसके लिए डाकुओं को हनन किया जाय उस (श्रवसे) धन के लिए (इमा) इन (मानुषा) मनुष्यों में होनेवाले (युगानि) वर्षों को तथा (कीर्तेन्यम्) कीर्त्तनीय (नाम) प्रसिद्धि और जल को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (उपप्रयन्) उत्तम महात्मा के समीप जाता हुआ (यत्) जिस (नाम) प्रसिद्ध काम को (दधे) धारण

करता है (तत्) उस उत्तम काम को (ह) निश्चय से हम लोग भी धारण करें ॥ ४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे सूर्य काल के अवयव अर्थात् संवत्सर, महीना, दिन, घड़ी आदि और जल को धारण कर सब प्राणियों के सुख के लिए अन्धकार का विनाश करके सब को सुख देता है वैसे ही सेनापति सुखपूर्वक संवत्सर और कीर्ति को धारण करके शत्रुओं के विनाश द्वारा सब के लिए धन उत्पन्न करे ॥ ४॥

मनुष्यों को उससे कौन-कौन काम धारण करना चाहिए
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है

तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय ।

स गा अविन्दत्सो अविन्ददश्वान् स ओषधीः सो अपः स वनानि ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (सः) वह सेनापति सूर्य के तुल्य (गाः) भूमियों को (अविन्दत्) प्राप्त होता (सः) वह (अश्वान्) बड़े पदार्थों को (अविन्दत्) प्राप्त होता (सः) वह (ओषधीः) ओषधियों अर्थात् गेहूँ, उड़द, मूंग, चना आदि को प्राप्त होता (सः) वह (अपः) सूर्य्य जलों को जैसे वैसे कर्मों को प्राप्त होता (सः) तथा वह सूर्य (वनानि) किरणों को जैसे वैसे जगलों को प्राप्त होता है (अस्य) इस (इन्द्रस्य) सेना बल युक्त सेनापति के (तत्) उस कर्म को वा (इदम्) इस (भूरि) बहुत (पुष्टम्) दृढ (श्रत्) सत्य के आचरण को तुम (पश्यत) देखो और (वीर्य्याय) बल होने के लिए (धत्तन) धारण करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है । मनुष्यों को चाहिए कि जो श्रेष्ठ जनो के सत्य आचरण से प्राप्ति है उसी को धारण करें । उसके बिना सत्य और सब पदार्थों का लाभ नहीं होता ॥ ५ ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम् ।

य आदृत्या परिपन्थीव शूरोऽयज्वनो विभजन्नेति वेदः ॥६॥

पदार्थ—हम लोग (यः) जो (शूरः) निडर शूरवीर पुरुष (आदृत्य) आदर-सत्कार कर (परिपन्थीव) जैसे सब प्रकार से मार्ग मे चले हुए डाकू दूसरे का धन आदि सर्वस्व हर लेते हैं वैसे चोरो के प्राण और उनके पदार्थों को छीन-छान हर लेवे वह (विभजन्) विभाग अर्थात् श्रेष्ठ और दुष्ट पुरुषो को अलग-अलग करता हुआ उनमे से (अयज्वनः) जो यज्ञ नहीं करते उनके (वेदः) धन को (एति) छीन लेता उस (भूरिकर्मणे) भारी काम के करनेवाले (वृषभाय) श्रेष्ठ (वृष्णे) सुख पहुँचानेवाले (सत्यशुष्माय) नित्य बली सेनापति के लिए जैसे (सोमम्) ऐश्वर्य्य समूह को (सुनवाम) उत्पन्न करें वैसे तुम भी करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यो का चाहिए कि जो डाकू के समान ढीठ व साहसी चोरो के धन आदि पदार्थों को हर, सज्जनो का आदर कर पुरुषार्थी बलवान् उत्तम-से-उत्तम हो उसी को सेनापति करें ॥ ६ ॥

फिर वह कैसा है यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

तदिन्द्र प्रेव वीर्यं चकर्थ यत्ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम् ।

अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ॥७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सेनाध्यक्ष ! आप (ससन्तम्) सोते हुए वा चिन्ता-रहित (अहिम्) सर्प वा शत्रु को (यत्) जो (वज्रेण) तीक्ष्ण शस्त्र से (अबोधयः) सचेत कराते हो (तत्) सो (वीर्य्यम्) अपने को (प्रेव) प्रकट-सा (चकर्थ) करते हो (अनु) उसके पीछे (हृषितम्) उत्पन्न हुआ है आनन्द जिन को उन (त्वा) आपको (पत्नी) आपके स्त्रीजन और (वयः) ज्ञानवान् (विश्वे) समस्त (देवासश्च) विद्वान् जन भी (त्वा) आपको (अन्वमदन्) अनुकूलता से प्रसन्न करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । बलवान् सेनापति द्वारा दुष्ट जीव तथा दुष्ट शत्रुजन मारे जाते हैं ॥ ७ ॥

शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शम्बरस्य ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥८॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सेनापति (यदा) जब सूर्य (शुष्णम्) बलवान् (कुयवम्) जिससे कि यवादि होते और (पिप्रुम्) जल आदि पदार्थों को परिपूर्ण करता उस (वृत्रम्) मेघ वा (शम्बरस्य) अत्यन्त वर्षनेवाले बलवान् मेघ की (पुरः) पूरी-पूरी घटा और घुमड़ी हुई मण्डलियो को हनता है वैसे शत्रुओ की नगरियों को (वि, अवधीः) मारते हो (तत्) तब (मित्र) मित्र (वरुणः) उत्तम गुणयुक्त (अदितिः) अन्तरिक्ष (सिन्धु) समुद्र (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौः) सूर्यलोक (नः) हम लोगो के (मामहन्ताम्) सरकार कराने के हेतु होते हैं ।

भावार्थ - इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । मनुष्यों को चाहिए कि सूर्य्य के गुणों की उपमा के अनुसार अपने अपने गुणों द्वारा सेवकादिकों और पृथिवी आदि लोकों से उपकारो को ले और शत्रुओ को मारकर निरन्तर सुखी हो ॥ ८ ॥-

इस सूक्त मे ईश्वर, सूर्य और सेनाधिपति के गुणो के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥
यह एकसौ तीनवां सूक्त और सत्तरहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथास्य नवर्चस्य चतुरधिकशततमस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
१ पङ्क्तिः, २, ४, ५ स्वराट् पङ्क्तिः, ३ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः, पंचमः स्वरः ।
६, ७ त्रिष्टुप्; ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

अब नव ऋचा वाले एकसौ चार सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में
फिर सभापति क्या करे यह उपदेश कहा है—

योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा नि षीद स्वानो नार्वा ।

विमुच्या वयोऽवसायाश्वान्दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) न्यायाधीश ! (ते) आपके (निषदे) बैठने के लिए (योनिः) जो राज्य सिंहासन हम लोगों ने (अकारि) किया है (तम्) उस पर आप (आ निषीद) बैठो और (स्वानः) हिनहिनाते हुए (अर्वा) घोड़े के (न) समान (प्रपित्वे) पहुँचने योग्य स्थान मे किसी समय पर जाना चाहते हुए आप (वयः) पक्षी वा अवस्था की (अवसाय) रक्षा आदि व्यवहार के लिए (अश्वान्) दौड़ते हुए घोड़ों को (विमुच्य) छोड़के (दोषा) रात्रि वा (वस्तो) दिन मे (वहीयसः) आकाश मार्ग से बहुत शीघ्र पहुँचानेवाले अग्नि आदि पदार्थों को जोड़ो अर्थात् विमानादि रथो को अग्नि, जल आदि की कलाओं से युक्त करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । न्यायाधीशों को चाहिए कि न्यायासन पर बैठके चालू प्रसिद्ध शब्दो से अर्थी, प्रत्यर्थी अर्थात् वादी और प्रतिवादी को अच्छी प्रकार समझाकर प्रतिदिन यथोचित न्याय करके उन सबको प्रसन्न कर सुखी करें । अत्यन्त परिश्रम से आयु की अवश्य हानि होती है, इस को विचार कर बहुत शीघ्र जाने-आने के लिए क्रियाकौशल से अग्नि आदि के प्रयोग द्वारा विमान आदि यानों को अवश्य रचें ॥ १ ॥

फिर वह कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

ओ त्ये नर इन्द्रमूतये गुर्नू चित्तान्त्सद्यो अध्वनो जगम्यात् ।

देवासो मन्युं दासस्य श्चम्नन्ते न आ वक्षन्त्सुविताय वर्णम् ॥२॥

पदार्थ—(त्ये) जो (नरः) सज्जन (ऊतये) रक्षा के लिए (इन्द्रम्) सभा सेना आदि के अधीश के (सद्यः) शीघ्र (ओ, गुः) सम्मुख प्राप्त होते हैं (तान्) उन को (चित्) भी यह सभापति (अध्वनः) श्रेष्ठ मार्गों को (जगम्यात्) निरन्तर पहुँचावे । तथा जो (देवास) विद्वान् जन (दासस्य) अपने सेवक के (मन्युम्) क्रोध को (श्चम्नन्) निवृत्त करें (ते) वे (नः) हम लोगो की (सुविताय) प्रेरणा को प्राप्त हुए दास के लिए (वर्णम्) आज्ञा पालन करने को (नु) शीघ्र (आ, वक्षन्) पहुँचावें ॥२॥

भावार्थ—जो प्रजा वा सेना के जन सत्य की रक्षा के लिए सभा आदि के अधीशों की शरण को प्राप्त हों उन की वे यथावत् रक्षा करें । जो विद्वान् लोग वेद और उत्तम शिक्षाओं से मनुष्यों के क्रोध आदि दोषो को निवृत्त कर शान्ति आदि गुणो का सेवन करावें वे सब को सेवन करने के योग्य हैं ॥२॥

अब राजा और प्रजा परस्पर कैसे वर्ते यह अगले मन्त्र मे उपदेश किया है—

अव त्मना भरते केतवेदा अव त्मना भरते फेनमुदन् ।

क्षीरेण स्नातः कुयवस्य योषे हते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः ॥३॥

पदार्थ—(केतवेदा) जिसने धन जान लिया है वह राजपुरुष (त्मना) अपने से प्रजा के धन को (अव, भरते) अपना कर धर लेता है अर्थात् अन्याय से ले लेता है और जो प्रजापुरुष (त्मना) अपने से (फेनम्) ब्याज पर ब्याज ले लेकर बढ़ाये हुए वा और प्रकार अन्याय से बढ़ाये हुए राजधन को (अव भरते) अधर्म से लेता है वे दोनों (क्षीरेण) जल से पूरे भरे हुए (उदन्) जलाशय अर्थात् नद-नदियो में (स्नातः) नहाते हैं उससे ऊपर से शुद्ध होते भी जैसे (कुयवस्य) धर्म और अधर्म से मिले जिसके व्यवहार हैं उस पुरुष की (योषे) अगले-पिछले विवाह की परस्पर विरोध करती हुई स्त्रियां (शिफायाः) अति काट करती हुई नदी के (प्रवणे) प्रबल बहाव में गिर कर (हते) नष्ट (स्याताम्) हों वैसे नष्ट हो जाते हैं ॥३॥

भावार्थ—जो प्रजा का विरोधी राजपुरुष वा राजा के विरोधी प्रजापुरुष हैं ये दोनों निश्चय ही सुखोन्नति नहीं कर सकते हैं और जो राजपुरुष पक्षपात से अपने प्रयोजन के लिए प्रजापुरुषों को पीड़ा देके धन इकट्ठा करता तथा जो प्रजापुरुष चोरी वा कपट आदि से राजधन का नाश करता है, वे दोनों जैसे एक पुरुष की दो पत्नी परस्पर कलह करके क्रोध से नदी के बीच गिर के मर जाती हैं वैसे ही—शीघ्र नष्ट हो जाते हैं । इससे राजपुरुष प्रजा के साथ और प्रजापुरुष राजा के साथ विरोध छोड़के परस्पर सहायकारी होकर सदा अपना वर्त्ताव रक्खें ॥३॥

फिर वे कैसे वर्त्ताव वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

युयोप नाभिरुपरस्यायोः प्र पूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः ।
अञ्जसी कुलिशी वीरपत्नी पयो हिन्वाना उदभिर्भरन्ते ॥४॥

पदार्थ—जब (शूरः) निडर शत्रुओं का मारनेवाला शूरवीर (प्र, पूर्वाभिः) प्रजाजनों के साथ (तिरते) राज्य का यथावत् न्याय कर पार होता और (राष्टि) उस राज्य मे प्रकाशित होता है तब (आयोः) प्राप्त होने योग्य (उपरस्य) मेघ की (नाभिः) बन्धन चारों ओर से घुमड़ी हुई बादलो की बधन (युयोप) सब को मोहित करती है अर्थात् राजधर्म से प्रजासुख के लिए जलवर्षा भी होती है वह थोड़ी नहीं किन्तु (अञ्जसी) प्रसिद्ध (कुलिशी) जो सूर्य के किरण-रूपी वज्र से सब प्रकार रही हुई अर्थात् सूर्य के विकट आतप से सूखने से बची हुई (वीरपत्नी) बड़ी-बड़ी नदी जिन से बड़ा वीर समुद्र ही है वे (पयः) जल को (हिन्वानाः) हिडोलती हुई (उदभिः) जलो से (भरन्ते) भर जाती हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—अच्छे राज्य से प्रजा मे सब सुख होते हैं और बिना अच्छे राज्य के दुःख और दुर्भिक्ष आदि उपद्रव होते हैं । इससे वीर पुरुषों को चाहिए कि रीति से राज्य पालन करें ॥४॥

प्रति यत्स्या नीथादर्शि दस्योरोको नाच्छा सदनं जानती गात् ।
अध स्मा नो मघवञ्चर्कृतादिन्मा नो मघेव निष्षपी परा दाः ॥५॥

पदार्थ—सभा आदि के स्वामी ने (यत्) जो (नीथा) न्याय रक्षा को पहुँचाई हुई प्रजा (दस्योः) पराया धन हरनेवाले डाकू के (ओकः) घर के (न) समान पाली-सी (अदर्शि) देख पड़ती है (स्या) वह (अच्छ) अच्छा (जानती) जानती हुई (सदनम्) घर को (प्रति, गात्) प्राप्त होती अर्थात् घर को लौट जाती है । हे (मघवन्) सभा आदि के स्वामी ! (निष्षपी) स्त्री के साथ निरन्तर लगे रहनेवाले तू (न) हम लोगों को (मघेव) जैसे धनो को वैसे (मा, परा, दाः) मत बिगाड़ (अध) इस के अनन्तर (नः) हम लोगों के (चर्कृतात्) निरन्तर करने योग्य काम से (इत्) ही विरुद्ध व्यवहार मत (स्म) दिखावे ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे अच्छा, दृढ़, सुरक्षित घर चोरो वा शीत, गर्मी और वर्षा से मनुष्य और धन आदि पदार्थों की रक्षा करता है वैसे ही सभापति राजाओ द्वारा अच्छी पाली हुई प्रजा इन को पालती है । जैसे कामीजन अपने शरीर, धर्म, विद्या और अच्छे आचरण को बिगाड़ता, और जैसे पाये हुए बहुत धनो को मनुष्य ईर्ष्या और अभिमान से अन्यायो मे फँस कर बहाते है वैसे उक्त राजाजन प्रजा का विनाश न करे किन्तु प्रजा के किये हुए निरन्तर उपकारो को जानकर अभिमान छोड़ और प्रेम बढ़ाकर इन्हे सदा पालें, और दुष्ट शत्रुजनो से डर के पलायन न करें ॥५॥

स त्वं न इन्द्र सूर्ये सोऽअप्स्वनागास्त्व आ भज जीवशंसे ।
मान्तरां भुजमा रीरिषो नः श्रद्धितं ते महतऽइन्द्रियाय ॥६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभा के स्वामी जिन (ते) आपके (महते) बहुत और प्रशंसा करने योग्य (इन्द्रियाय) धन के लिए (नः) हम लोगो का (श्रद्धितम्) श्रद्धाभाव है (सः) वह (त्वम्) आप (नः) हम लोगो के (भुजम्) भोग करने योग्य प्रजा को (अन्तराम्) बीच मे (मा) मत (आरीरिषः) रिषाइए मत मारिए और (सः) सो आप (सूर्ये) सूर्य, प्राण (अप्सु) जल (अनागास्त्वे) और निष्पाप मे तथा (जीवशंसे) जिस मे जीवों की प्रशंसा स्तुति हो उस व्यवहार मे उपमा को (आ, भज) अच्छे प्रकार भजिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—सभापतियों द्वारा जो प्रजाजन श्रद्धा से राज्य व्यवहार की सिद्धि के लिए बहुत धन देवें वे कभी मारने योग्य नहीं, और जो डाकू वा चोर हैं वे सदैव ताड़ना देने योग्य हैं । जो सेनापति के अधिकार को पावे वह सूर्य्य के तुल्य न्यायविद्या का प्रकाश, जल के समान शान्ति और तृप्ति कर, अन्याय और अपराध का त्याग और प्रजा के प्रशंसा करने योग्य व्यवहार का सेवन कर राज्य को प्रसन्न करे ॥ ६ ॥

फिर इन दोनों को परस्पर कैसी प्रतिज्ञा करनी चाहिए
यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

अधा मन्ये श्रत्ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महते धनाय ।
मा नो अकृते पुरुहूत योनाविन्द्र क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दाः ॥७॥

पदार्थ—हे (पुरुहूत) अनेकों से सत्कार पाये हुए (इन्द्र) परमैश्वर्य्य देने और शत्रुओं का नाश करनेहारे सभापति ! (वृषा) अति सुख बर्षानेवाले आप (अकृते) बिना किये बिचारे (योनौ) निमित्त मे (नः) हम लोगो के (वयः) अभीष्ट अन्न और (आसुतिम्) सन्तान को (मा, दाः) मत छिन्न भिन्न करो और (क्षुध्यद्भ्यः) भूखों के लिए अन्न-जल आदि (अधायि) धरो हम लोगों को (महते) बहुत प्रकार के (धनाय) धन के लिए (चोदस्व) प्रेरणा कर (अध) इस के अनन्तर (अस्मै) इस उक्त काम के लिए (ते) तेरी (श्रत्) यह श्रद्धा वा सत्य आचरण मैं (मन्ये) मानता हूँ ॥ ७ ॥

भावार्थ—न्यायाधीश आदि राजपुरुषों को चाहिए कि जिन्होंने अपराध न किया हो उन प्रजाजनों को कभी ताड़ना न करें । सदा इनसे राज्य कर लेवें, तथा इन को अच्छी प्रकार पाल और उन्नत कर विद्या और पुरुषार्थ के बीच प्रवृत्त कराकर आनन्दित करावें । सभापति आदि के इस सत्य काम को प्रजाजनों को सदैव मानना चाहिए ॥ ७ ॥

मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः ।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि ॥८॥

पदार्थ—हे (मघवन्) प्रशंसित धनयुक्त (शक्र) सब व्यवहार के करने को समर्थ (इन्द्र) शत्रुओं को विनाश करने वाले सभा के स्वामी आप (नः) हम प्रजास्थ मनुष्यों को (मा, वधीः) मत मारिए (मा, परा, दाः) अन्याय से दण्ड मत दीजिए स्वाभाविक काम और (नः) हम लोगों के (सहजानुषाणि) जो जन्म से सिद्ध उन के वर्त्तमान (प्रिया) प्यारे (भोजनानि) भोजन पदार्थों को (मा, प्र, मोषीः) मत चोरिए (नः) हमारे (आण्डा) अण्डे के समान जो गर्भ में स्थित हैं उन प्राणियों को (मा, निर्भेत्) विदीर्ण मत कीजिए (नः) हम लोगो के (पात्रा) सोने-चांदी के पात्रो को (मा, भेत्) मत बिगाड़िए ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे सभापति ! तू अन्याय से किसी को न मारके किसी भी धार्मिक सज्जन से विमुख न होकर चोरी-चकारी आदि दोषरहित होकर-जैसे परमेश्वर दया का प्रकाश करता है वैसे ही अपने राज्य के काम करने में प्रवृत्त हो । ऐसे वर्त्ताव के बिना प्रजा राजा से सन्तुष्ट नहीं हो पाती ॥ ८ ॥

फिर प्रजा को इस सभापति के साथ क्या प्रतिज्ञा करनी चाहिए—

अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥९॥१९॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष ! (त्वा) आप को (सोमकामम्) कूटे हुए पदार्थों के रस की कामना करनेवाला (आहुः) बतलाते हैं, इससे आप (अर्वाङ्) अन्तरङ्ग व्यवहार मे (आ, इहि) आओ (अयम्) यह जो (सुत) निकाला हुआ पदार्थों का रस है (तस्य) उस को (मदाय) हर्ष के लिए (पिब) पिओ (उरुव्यचाः) जिसका बहुत और अनेक प्रकार का पूजन सत्कार है वह आप (जठरे) जिस से सब व्यवहार होते हैं उस पेट में (आ, वृषस्व) आसेचन कर अर्थात उक्त पदार्थ को अच्छी प्रकार पीओ तथा हम लोगो से (हूयमान) प्रार्थना किये जाने पर (पितेव) जैसे प्रेम करता हुआ पिता पुत्र की सुनता है वैसे (नः) हमारी (शृणुहि) सुनिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—प्रजाजनो को चाहिए कि सभापति आदि राजपुरुषो को खान-पान-वस्त्र, धन, यान और मीठी-मीठी बातो से सदा आनन्दित बनाएँ और राजपुरुषों को चाहिए कि प्रजाजनो को पुत्र के समान निरन्तर पालें ॥ ९ ॥

इस सूक्त मे सभापति राजा और प्रजा के करने योग्य व्यवहार के वर्णन से इस सूक्त के
अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥
यह एकसौ चार सूक्त और उन्नीसवां वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अथैकोनविंशत्यृचस्य पञ्चाधिकशततमस्य सूक्तस्याप्त्यस्त्रित ऋषिराङ्गिरसः कुत्सो वा । विश्वेदेवा देवताः । १, २, १२, १६, १७, निचृत्पङ्क्तिः, ३, ४, ६, ९, १५, १८, विराट्पङ्क्तिः, ८, १०, स्वराट् पङ्क्तिः, ११, १४, पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ५ निचृद् बृहती, ७ भुरिग्बृहती, १३ महाबृहती छन्दः । मध्यम, स्वरः । १९ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब एकसौ पांचवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से
चन्द्रलोक कैसा है इस विषय को कहा है—

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१॥

पदार्थ—हे (रोदसी) सूर्य वा भूमि के तुल्य राजा और प्रजा जनसमूह (मे) मुझ पदार्थ विद्या जाननेवाले की उत्तेजना से जो (अप्सु) प्राणरूपी पवनों के (अन्तः) बीच (सुपर्णः) अच्छा गमन करते वा (चन्द्रमा) आनन्द देनेवाला चन्द्रलोक (दिवि) सूर्य के प्रकाश में (आ, धावते) अति शीघ्र घूमता है और (हिरण्यनेमयः) जिनको सुवर्णरूपी चमक-दमक है वे (विद्युतः) बिजुली (वः) तुम लोगों की (पदम्) विचारवाली शिल्प चतुराई को (न) नहीं (विन्दन्ति) पाती हैं अर्थात् तुम उनको यथोचित काम में नहीं लाते हो (अस्य) इस पूर्वोक्त विषय को तुम (वित्तम्) जानो ॥१॥

भावार्थ—हे राजा और प्रजा के पुरुषो, चन्द्रमा की छाया और अन्तरिक्ष के जल के संयोग से शीतलता का जो प्रकाश है उसको जानो, तथा जो बिजुली दमकती हैं वे आखों से देखने योग्य हैं और जो विलाय जाती हैं उनका चिह्न भी आँख से देखा नहीं जा सकता । इस सब को जानकर सुख का सम्पादन करो ॥१॥

फिर वे राजा और प्रजा कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अर्थमिद्वा उ अर्थिन आ जाया युवते पतिम् ।
तुञ्जाते वृष्ण्यं पयः परिदाय रसं दुहे वित्तं मे अस्य रोदसी ॥२॥

पदार्थ—जैसे (अर्थिन) प्रशंसित प्रयोजनवाले जन (अर्थम्) जो प्राप्त होता है उसको (वै) ही (पतिम्) पति का (जाया) सम्बन्ध करनेवाली स्त्री के समान (आ, युवते) अच्छे प्रकार सम्बन्ध करते हैं (उ) या तो जैसे राजा

प्रजा जिस (वृष्ण्यम्) श्रेष्ठों में उत्तम (पयः) अन्न (इत्) और (रसम्) स्वादिष्ठ ओषधियों से निकाले रस को (परिदाय) सब ओर से लेके दु:खों को (दुच्छुनाते) दूर करते हैं वैसे उस-उसको मैं भी (दुहे) बढ़ाऊं । शेष अर्थ प्रथम मन्त्र के समान जानना चाहिए ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे स्त्री अपनी इच्छा के अनुकूल पति को वा पति अपनी इच्छा के अनुकूल स्त्री को पाकर परस्पर आनन्दित करते हैं वैसे प्रयोजन सिद्ध कराने में तत्पर बिजुली, पृथिवी और सूर्य प्रकाश की विद्या के ग्रहण से पदार्थों को प्राप्त होकर सदा सुख देती है । इस विद्या को जाननेवालों के संग के विना, इस विद्या का ज्ञान कठिन है, और दु:ख का विनाश भी अच्छी प्रकार नहीं हो सकता । इससे सबको चाहिए कि इस विद्या को यत्न से लेवें ॥२॥

इस जगत् में विद्वान् जन कैसे पूछने के योग्य हैं यह अगले मन्त्र से उपदेश किया है—

मो षु देवा अदः स्व१रव पादि दिवस्परि ।

मा सोम्यस्य शंभुवः शूने भूम कदा चन वित्तं मे अस्य रोदसी ॥३॥

पदार्थ—हे (देवाः) विद्वानो ! तुम लोगों से (दिवः) सूर्य के प्रकाश से (परि) ऊपर (अदः) वह प्राप्त होनेहारा (स्वः) सुख (कदा, चन) कभी (मो, अव, पादि) उत्पन्न नहीं हुआ है । हम लोग (सोम्यस्य) ऐश्वर्य के योग्य (शंभुवः) सुखकारक व्यवहार की (सु, शूने) सुन्दर उन्नति मे विरुद्ध भाव से चलनेहारे कभी (मा, भूम) मत होवें, शेष अर्थ प्रथम मन्त्र के समान जानना चाहिए ॥३॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि इस संसार मे धर्म और सुख से विरुद्ध काम न करें और पुरुषार्थ से निरन्तर सुख की उन्नति करें ॥३॥

फिर पूछने और समाधान देनेवालों को परस्पर कैसे वर्त्ताव रखकर विद्या की वृद्धि करनी चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यज्ञं पृच्छाम्यवमं स तद्दूतो वि वोचति ।

क्व ऋतं पूर्व्यं गतं कस्तद्बिभर्त्ति नूतनो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! मैं आपके प्रति जिस (अवमम्) रक्षा आदि करने वाले उत्तम वा निकृष्ट (यज्ञम्) समस्त विद्या से परिपूर्ण (पूर्व्यम्) पूर्वजों द्वारा सिद्ध किया (ऋतम्) सत्य मार्ग वा उत्तम जल स्थान (क्व) कहा (गतम्) गया (कः) और कौन (नूतन) नवीनजन (तत्) उसको (बिभर्त्ति) धारण करता है इसको (पृच्छामि) पूछता हूं (स) सो (दूत) इधर-उधर से बात-चीत वा पदार्थों को जानते हुए आप (तत्) उस सब विषय को (विवोचति) विवेक कर कहो । शेष अर्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जानना ॥४॥

भावार्थ—विद्या को चाहनेवाले ब्रह्मचारियों को चाहिए कि विद्वानो के समीप जाकर अनेक प्रकार के प्रश्नो को करके और उनसे उत्तर पाकर विद्या को बढ़ावें । और हे पढ़ानेवाले विद्वानो ! तुम कहो 'स्वागतम्' आओ और हम से इस ससार के पदार्थों की विद्या को सब प्रकार से जानकर औरों को पढ़ाकर सत्य और असत्य को यथार्थभाव से समझाओ ॥४॥

फिर ये परस्पर कैसे क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अमी ये देवाः स्थन त्रिष्वा रोचने दिवः ।

कद्व ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना व आहुतिर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! तुम (दिव) प्रकाश करनेवाले सूर्य्य के (रोचने) प्रकाश मे (त्रिषु) तीन अर्थात् नाम, स्थान और जन्म में (अमी) प्रकट और अप्रकट (ये) जो (देवा:) दिव्य गुणवाले पृथिवी आदि लोक (आ) चारो ओर (स्थन) हैं (व) इनके बीच (ऋतम्) सत्य कारण (कत्) कहा और (अनृतम्) कार्यरूप (कत्) कहां और (व) उनके (प्रत्ना) पुराने पदार्थ तथा उनका (आहुतिः) होम अर्थात् विनाश (क्व) कहां होता है इन सब प्रश्नों के उत्तर कहो । शेष मन्त्र का अर्थ पूर्व के तुल्य जानना चाहिए ॥५॥

भावार्थ—प्रश्न—जब सब लोको की आहुति अर्थात् प्रलय होता है तब कार्य्यकारण और जीव कहां ठहरते हैं ? इस का उत्तर—सर्वव्यापी ईश्वर और आकाश मे कारणरूप से सब जगत् और अच्छी गाढ़ी नींद मे सोते हुए के समान जीव रहते हैं । एक-एक सूर्य्य के प्रकाश और आकर्षण के विषय मे जितने-जितने लोक हैं उतने-उतने सब ईश्वर ने बनाये, धारण किये तथा इनकी व्यवस्था की है यह जानना चाहिए ॥५॥

फिर इनको परस्पर क्या-क्या पूछना और समाधान करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

कद्व ऋतस्य धर्णसि कद्वरुणस्य चक्षणम् ।

कदर्यम्णो महस्पथाति क्रामेम दूढ्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (व) इन स्थूल पदार्थों के (ऋतस्य) सत्य कारण का (धर्णसि) धारण करनेवाला (कत्) कहां है (वरुणस्य) जल आदि कार्यरूप पदार्थों का (चक्षणम्) देखना (कत्) कहां है तथा (मह) महान् (अर्यम्ण) सूर्य्यलोक का जो (दूढ्य) अति गम्भीर दु:ख से ध्यान मे आने योग्य व्यवहार है उस को (कत्) किस (पथा) मार्ग से हम (अति, क्रामेम) पार हों अर्थात् उस विद्या से परिपूर्ण हों । शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जानना चाहिए ॥६॥

भावार्थ—विद्या की चाहनावाले पुरुषों को चाहिए कि विद्वानो के समीप जाकर कार्य्य और कारण की विद्या के मार्ग विषयक प्रश्नों को कर, उनसे उत्तर पाकर, क्रियाकुशलता से कामो को सिद्ध करके, दु:ख का नाश कर, सुख पावें ॥६॥

अब विद्वान् जन इनके उत्तर ऐसे देवें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अहं सो अस्मि यः पुरा सुते वदामि कानि चित् ।

तं मा व्यन्त्याध्यो३ वृको न तृष्णजं मृगं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (अहम्) संसार का उत्पन्न करनेवाला (सुते) उत्पन्न हुए इस जगत् मे (कानि, चित्) किन्हीं व्यवहारों को (पुरा) सृष्टि के पूर्व वा विद्वान् मैं उत्पन्न हुए ससार मे किन्हीं व्यवहारों को विद्या की उत्पत्ति से पहले (वदामि) कहता हूं (सः) वह मैं सेवन करने योग्य (अस्मि) हूं (तम्) उस (मा) मुझको (आध्य) अच्छी प्रकार चिन्तन करनेवाले आप लोग जैसे (वृक) चार वा व्याध (तृष्णजम्) प्यासे (मृगम्) हिरन को (न) वैसे (व्यन्ति) चाहो । शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जानना चाहिए ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे श्लेष और उपमालङ्कार हैं । सब मनुष्यो के प्रति ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे मैंने सृष्टि को रचके वेद द्वारा जैसे-जैसे उपदेश किये हैं उनको वैसे ही ग्रहण करो और उपासना करने योग्य मुझे छोड़के अन्य किसी की उपासना कभी मत करो । जैसे कोई मृगया रसिक चोर वा व्याध हिरन को प्राप्त करना चाहता है वैसे ही सब दोषो को निर्मूल कर मेरी चाहना करो, और ऐसे विद्वान् को भी चाहो ॥७॥

अब न्यायाधीश के समीप वाद-विवाद करनेवाले वादी प्रतिवादी जन अपने दु:ख क्लेश का निवेदन करें और वह उन का न्याय यथावत् करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।

मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं

ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥८॥

पदार्थ—हे (शतक्रतो) असंख्य उत्तम विचारयुक्त वा अनेको उत्तम-उत्तम कर्म करनेवाले न्यायाधीश ! (ते) आप की प्रजा वा सेना मे रहने और (स्तोतारम्) धर्म को गानेवाले (मा) मुझे (पर्शव) औरों को मारने और तीर के रहनेवाले मनुष्य आदि प्राणी (सपत्नीरिव, अभित, सम्, तपन्ति) जैसे एक पति को बहुत स्त्रियां दु:खी करती है ऐसे दु:ख देते हैं । जो (आध्यः) दूसरे के मन मे व्यथा उत्पन्न करनेहारे (मूषः) मूषे जैसे (शिश्ना) अशुद्ध सूतों को (वि, अदन्ति) विदार-विदार अर्थात् काट-काट खाते हैं (न) वैसे (मा) मुझ को सताप देते हैं उन अन्याय करनेवाले जनो को तुम यथावत् शिक्षा करो । शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के समान जानिए ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे न्यायाध्यक्ष आदि मनुष्यो ! तुम जैसे सौतेली स्त्री अपने पति को कष्ट देती है वा जैसे अपने प्रयोजन मात्र का बनाव-बिगाड़ देखनेवाले चूहे पराये पदार्थों का नाश करते हैं, और जैसे व्यभिचारिणी वेश्या आदि कामिनी स्त्री दामिनी की तरह दमकती हुई कामीजन के लिङ्ग आदि रोग के द्वारा उस के धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष के अनुष्ठान मे रुकावट डालकर उस कामीजन को पीड़ा देती हैं, वैसे ही जो डाकू, चोर, झूठ की प्रतीति और झूठे कामो की बातो से हम लोगो को क्लेश देते हैं, उन को अच्छी प्रकार दण्ड देकर हम लोगो को तथा उनको भी निरन्तर पालो । ऐसा किये विना राज्य का ऐश्वर्य निरन्तर नहीं बढ़ सकता ॥८॥

अब न्यायाधीशों के साथ प्रजाजन कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अमी ये सप्त रश्मयस्तत्रा मे नाभिरातता ।

त्रितस्तद्वेदाप्त्यः स जामित्वाय रेभति वित्तं मे अस्य रोदसी ॥९॥

पदार्थ—जहां (अमी) (ये) ये (सप्त) सात (रश्मय) किरणों के समान नीति प्रकाश हैं (तत्र) वहां (मे) मेरी (नाभिः) सब नसों को बांधने वाली नाभि (आतता) फैली है जिस मे निरन्तर मेरी स्थिति है (तत्) उस को जो (आप्त्यः) सज्जनों मे उत्तम जन (त्रित) तीनो अर्थात् भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान काल से (वेद) जाने अर्थात् रात-दिन विचारे (सः) वह पुरुष (जामित्वाय) राज्य भोगने के लिए कन्या के तुल्य (रेभति) प्रजाजनो की रक्षा तथा प्रशसा और चाहना करता है । शेष अर्थ प्रथम मन्त्रार्थ के समान जानो ॥९॥

भावार्थ—जैसे सूर्य्य के साथ किरणो की शोभा और सङ्ग है वैसे राजपुरुषों के साथ प्रजाजनो की शोभा और सङ्ग हो । तथा जो मनुष्य कर्म, उपासना और ज्ञान को यथावत् जानता है वह प्रजा के पालने मे पितृवत् होकर समस्त प्रजाजनों का मनोरञ्जन कर सकता है, अन्य नहीं ॥९॥

फिर ये परस्पर कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः ।

देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतुर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१०॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष आदि सज्जनो ! तुमको जैसे (अमी) प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष (उक्षण) जल सींचने वा सुख सींचनेहारे बड़े (पञ्च) अग्नि, पवन, बिजुली, मेघ और सूर्य्यमण्डल का प्रकाश (महः) अपार (दिवः) दिव्यगुण और

पदार्थयुक्त आकाश के (मध्ये) बीच (तस्थुः) स्थिर हैं और जैसे (सध्रीचीनाः) एक साथ रहनेवाले गुण(देवत्रा) विद्वानों में (नि, वावृतुः) निरन्तर वर्त्तमान हैं वैसे (ये) जो निरन्तर वर्त्तमान हैं उन प्रजा तथा राजाओं के संगियों के प्रति विद्या और न्याय प्रकाश की बात (नु) शीघ्र (प्रवाच्यम्) कहनी चाहिए। शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के समान जानना चाहिए ॥१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य आदि घटपटादि पदार्थों में संयुक्त होकर वृष्टि आदि के द्वारा अत्यन्त सुख को उत्पन्न करते हैं और समस्त पृथिवी आदि पदार्थों मे आकर्षणशक्ति से वर्त्तमान हैं वैसे ही सभाध्यक्ष आदि बड़े-बड़े उत्तम गुणों से युक्त मनुष्यों को सिद्ध करके, न्याय और प्रीति के साथ वर्त्तकर इन्हें निरन्तर सुखी करें ॥१०॥

फिर इन राजपुरुषों के साथ प्रजापुरुष कैसे वर्त्ताव रक्खें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सुपर्णा एत आसते मध्य आरोधने दिवः ।

ते सेधन्ति पथो वृकं तरन्तं यह्वतीरपो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥११॥

पदार्थ—हे प्रजाजनो ! आप लोग जैसे (एते) ये (सुपर्णाः) सूर्य्य की किरणें (दिवः) सूर्य्य के प्रकाश से युक्त आकाश के (मध्ये) बीच (आरोधने) रुकावट मे (आसते) स्थिर हैं और जैसे (ते) वे (तरन्तम्) पार कर देनेवाली (वृकम्) बिजुली को गिराके (यह्वतीः) बड़ों के वर्त्ताव रखते हुए (अपः) जलों और (पथः) मार्गों को (सेधन्ति) सिद्ध करते हैं वैसे ही आप लोग राज कामों को सिद्ध करो। शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जानना चाहिए ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ईश्वर के नियमों मे सूर्य की किरणें आदि पदार्थ यथावत् वर्तमान है वैसे ही तुम प्रजापुरुषों को भी राजनीति के नियमों मे वर्त्तना चाहिए। जैसे ये सभाध्यक्ष आदि जन दुष्ट मनुष्यों की निवृत्ति करके प्रजाजनो की रक्षा करते है, वैसे तुम लोगो द्वारा भी ये ईर्ष्या, अभिमान आदि दोषो को निवृत्त करके, रक्षा करने योग्य है ॥११॥

फिर विद्वान्जन इनके प्रति क्या-क्या उपदेश करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम् ।

ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१२॥

पदार्थ हे (देवासः) विद्वानो ! आप जैसे (सिन्धवः) समुद्र (सत्यम्) जल की (अर्षन्ति) प्राप्ति करावे और (सूर्यः) सूर्य्यमण्डल (तातान) उसका विस्तार कराता अर्थात् वर्षा कराता है वैसे जो (ऋतम्) वेद सृष्टिक्रम, प्रत्यक्षादि प्रमाण, विद्वानों के आचरण अनुभव अर्थात् आप ही आप कोई बात मन से उत्पन्न होना और आत्मा की शुद्धता के अनुकूल (नव्यम्) उत्तम नवीन-नवीन व्यवहारों और (उक्थ्यम्) प्रशसनीय वचनो में होनेवाला (हितम्) सबका प्रेमयुक्त पदार्थ (तत्) उसको (सुप्रवाचनम्) अच्छी प्रकार पढाना, उपदेश करना, जैसे बने वैसे प्राप्त कीजिए। शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के समान जानना चाहिए ॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे समुद्रो से जल उठकर ऊपर को जाकर सूर्य्य के ताप से फैलकर बरसके सब प्रजाजनो को सुख देता है, वैसे विद्वान्जनों को नित्य नवीन नवीन विचार से गूढ विद्याओ को जान और प्रकाशित कर सबके हित का सम्पादन और सत्य धर्म्म के प्रचार से प्रजा को निरन्तर सुख देना चाहिए ॥१२॥

फिर विद्वान् प्रजाजनों में क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अग्ने तव त्यदुक्थ्यं देवेष्वस्त्याप्यम् ।

स नः सत्तो मनुष्वदा देवान्

यक्षि विदुष्टरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) समस्त विद्याओ को जाने हुए विद्वन् ! (तव) आपका (त्यत्) वह जो (आप्यम्) पाने योग्य (मनुष्वत्) मनुष्यो मे जैसा हो वैसा (उक्थ्यम्) अति उत्तम विद्यावचन (देवेषु) विद्वानों मे (अस्ति) है (सः) वह (सत्तः) अविद्या आदि दोषो को नाश करनेवाले (विदुष्टरः) अति विद्वान् आप (नः) हम लोगो को (देवान्) विद्वानो से (आयक्षि) संगति को कराइए अर्थात् विद्वानों की पदवी को पहुँचाइए। शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के समान है ॥१३॥

भावार्थ—जो समस्त विद्याओ को पढ़ाकर वा विद्वान् बनाने मे कुशल है उससे समस्त विद्या और धर्म के उपदेशो को सब मनुष्य ग्रहण करें, और से नहीं ॥१३॥

फिर वह विद्वान् वहाँ क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सत्तो होता मनुष्वदा देवाँ अच्छा विदुष्टरः ।

अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (सत्तः) विज्ञानवान् दुःख हरनेवाला (देवान्) विद्वान् वा दिव्य-दिव्य क्रिया योगों का (होता) ग्रहण करनेवाला (विदुष्टरः) अत्यन्त ज्ञानी (अग्निः) श्रेष्ठ विद्या का जानने वा समझाने वाला (मेधिरः) बुद्धिमान् (देवेषु) विद्वानों में (देवः) प्रशंसनीय विद्वान् मनुष्य (मनुष्वत्) जैसे उत्तम मनुष्य श्रेष्ठ कर्मों का अनुष्ठान कर पापों को छोड़ सुखी होते हैं वैसे (हव्या) देने लेने योग्य पदार्थों को (अच्छ, आ, सुषूदति) अच्छी रीति से अत्यन्त देता है उस उत्तम विद्वान् से विद्या और शिक्षा को ग्रहण करना चाहिए ॥ १४ ॥

भावार्थ—ऐसा भाग्यहीन कौन होवे जो विद्वानों से विद्या और शिक्षा न लेके इनका विरोधी हो ॥ १४ ॥

फिर कैसे इस को पावे यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ब्रह्मा कृणोति वरुणो गातुविदं तमीमहे ।

व्यूर्णोति हृदा मतिं नव्यो जायतामृतं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१५॥

पदार्थ—हम लोग जो (ऋतम्) सत्यस्वरूप (ब्रह्म) परमेश्वर वा (वरुणः) सब से उत्तम विद्वान् (गातुविदम्) वेदवाणी के जाननेवाले को (कृणोति) करता है (तम् ईमहे) उससे मांगते हैं उसकी कृपा से जो (नव्यः) नवीन विद्वान् (हृदा) हृदय से (मतिम्) विशेषज्ञान को (व्यूर्णोति) उत्पन्न करता है अर्थात् उत्तम-उत्तम रीतियों को विचारता है वह हम लोगो के बीच (जायताम्) उत्पन्न हो। शेष अर्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जानना चाहिए ॥ १५ ॥

भावार्थ—किसी मनुष्य पर पिछले पुण्य इकट्ठे होने और विशेष शुद्ध क्रियमाण कर्म करने के विना परमेश्वर की दया नहीं होती और उक्त व्यवहार के विना कोई पूरी विद्या नहीं पा सकता। इससे सब मनुष्यो को परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए कि हम लोगो मे परिपूर्ण विद्यावान् अच्छे-अच्छे गुण, कर्म, स्वभावयुक्त मनुष्य सदा हो। ऐसी प्रार्थना को नित्य प्राप्त हुआ परमात्मा सर्वव्यापकता से उनके आत्मा का प्रकाश करता है यह निश्चय है ॥ १५ ॥

अब यह मार्ग कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

असौ यः पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः ।

न स देवा अतिक्रमे तं मर्तासो न पश्यथ वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१६॥

पदार्थ—हे (देवाः) विद्वान् लोगो ! (असौ) यह (आदित्यः) अविनाशी सूर्य्य के तुल्य प्रकाश करने वाला (यः) जो (पन्थाः) वेद से प्रतिपादित मार्ग (दिवि) समस्त विद्या के प्रकाश मे (प्रवाच्यम्) अच्छे प्रकार से कहने योग्य जैसे हो वैसे (कृतः) ईश्वर ने स्थापित किया (सः) वह तुम लोगो को (अतिक्रमे) उल्लघन करने योग्य (न) नही है। हे (मर्तासः) केवल मरने-जीनेवाले विचार रहित मनुष्यो ! (तम्) उस पूर्वोक्त मार्ग को तुम (न) नहीं (पश्यथ) देखते हो। शेष मन्त्रार्थ पूर्व के तुल्य जानना चाहिए ॥ १६ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि जो वेदोक्त मार्ग है वही सत्य है ऐसा जान और समस्त सत्यविद्याओं का प्राप्त होकर सदा आनन्दित हो। यह वेदोक्त मार्ग विद्वानों को कभी खण्डन करने योग्य नही, और यह मार्ग विद्या के विना विशेष जाना भी नहीं जाता ॥ १६ ॥

फिर वह कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

त्रितः कूपेऽवहितो देवान्हवत ऊतये ।

तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१७॥

पदार्थ—जो (उरु) बहुत (तत्) उस विद्या के पाठ को (शुश्राव) सुनता है वह विज्ञान को (कृण्वन्) प्रकट करता हुआ (त्रितः) विद्या, शिक्षा ब्रह्मचर्य्य इन तीन विषयो का विस्तार करने अर्थात् इनको बढ़ाने (कूपे) कूआ के आकार अपने हृदय मे (अवहितः) स्थिरता रखने और (बृहस्पतिः) बड़ी वेदवाणी का पालनेहारा (अंहूरणात्) जिस व्यवहार मे अधर्म है उससे अलग होकर (ऊतये) रक्षा, आनन्द, कान्ति, प्रेम, तृप्ति आदि अनेको सुखो के लिए (देवान्) दिव्य गुणयुक्त विद्वानो वा दिव्य गुणो को (हवते) ग्रहण करता है। शेष मन्त्रार्थ प्रथम के तुल्य जानना चाहिए ॥ १७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य वा देहधारी जीव अपनी बुद्धि से प्रयत्न के साथ पण्डितों से समस्त विद्याओं को सुन, मान, विचार और प्रकट कर खोटे गुण, स्वभाव वा खोटे कामो को छोड़कर विद्वान् होता है वह आत्मा और शरीर की रक्षा आदि को पाकर बहुत सुख पाता है ॥ १७ ॥

अरुणो मा सकृद्वृकः पथा यन्तं ददर्श हि ।

उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ट्यामयी वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१८॥

पदार्थ—जो (अरुणः) समस्त विद्याओ को प्राप्त होता वा प्रकाशित करता (वृकः) शान्ति आदि गुणयुक्त, चन्द्रमा के समान विद्वान् (मा, सकृत्) मुझको एक बार (पथा, यन्तम्) अच्छे मार्ग से चलते हुए को (ददर्श) देखता वा युक्त गुणयुक्त महीना आदि काल विभागो को करनेवाले चन्द्रमा के तुल्य विद्वान् अच्छे मार्ग से चलते हुए को देखता है वह (निचाय्य) यथायोग्य समाधान देकर (पृष्ट्यामयी) पीठ मे क्लेशरूप रोगवान् (तष्टेव) शिल्पी विद्वान् जैसे शिल्प व्यवहारो को समझाता वैसे (उज्जिहीते) उत्तमता से समझाता (हि) ही है। शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जानना चाहिए ॥ १८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो विद्वान् चन्द्रमा के तुल्य शान्तस्वभाव और सूर्य्य के तुल्य विद्या के प्रकाश को कर संसार मे समस्त विद्याओं को फैलाता है वही आप्त अर्थात अति उत्तम विद्वान् है ॥ १८ ॥

फिर उससे युक्त हम लोग कैसे होवें यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—

एनाङ्गूषेर्ण वयमिन्द्रवन्तोऽभि ष्याम वृजने सर्ववीराः ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१९॥

पदार्थ- जिस (एना) इस (आङ्गूषेण) परम विद्वान् से (सर्ववीरा) समस्त वीरजन (इन्द्रवन्त) जिनका परमैश्वर्य्ययुक्त सभापति है वे (वयम्) हम लोग (वृजने) विद्याधर्मयुक्त बल मे (अभि, स्याम) अभिमुख हों, अर्थात् सब प्रकार से उसमें प्रवृत्त हो (न) हम लोगो के (तत्) उस विज्ञान को (मित्र) प्राण (वरुण.) उदान (अदिति) अन्तरिक्ष (सिन्धु) समुद्र (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौ) सूर्य्य प्रकाश वा विद्या का प्रकाश ये सब (मामहन्ताम्) बढ़ावें ॥ १९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जिसके पढ़ाने से विद्या और अच्छी शिक्षा बढ़े उसके सग से समस्त विद्याओ का सर्वथा निश्चय करें ॥ १९ ॥

इस सूक्त मे समस्त विद्वानो के गुण और कर्म के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

यह एकसौ पाँचवाँ सूक्त पन्द्रहवाँ अनुवाक और तेईसवाँ वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अथ सप्तर्चस्य षडुत्तरशततमस्य सूक्तस्याङ्गिरस कुत्सऋषिः । विश्वे देवा देवताः । १-६ जगतीच्छन्दः । निषाद स्वरः । ७ निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।

अब एकसौ छःवाँ सूक्त प्रारम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में ससार में स्थित विद्वानों के गुण और कामों का वर्णन किया है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतये मारुतं शर्धो अदितिं हवामहे ।

रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्त्तन ॥१॥

पदार्थ—(सुदानव) उत्तम-उत्तम दान आदि कामवाले (वसव) विद्यादि शुभ गुणो म बसनेवाले विद्वानो ! तुम लोग (रथम्) विमान आदि यान को (न) जैसे (दुर्गात्) भूमि जल वा अन्तरिक्ष के कठिन मार्ग से बचा लाते हो वैसे (न) हम लोगो को (विश्वस्मात्) समस्त (अहसः) पाप के आचरण से (निष्पिपर्त्तन) बचाओ, हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि प्रयोजन के लिए (इन्द्रम्) बिजुली वा परम ऐश्वर्य्यवाले सभाध्यक्ष (मित्रम्) सबके प्राणरूपी पवन वा सर्व मित्र (वरुणम्) काम करानेवाले उदान वायु वा श्रेष्ठ गुणयुक्त विद्वान् (अग्निम्) सूर्य्य आदि रूप अग्नि वा ज्ञानवान् जन (अदितिम्) माता, पिता, पुत्र उत्पन्न हुए समस्त जगत् वा उसके कारण वा जगत् की उत्पत्ति (मारुतम्) पवनो वा मनुष्यों से सम्बद्ध (शर्धः) बल को (हवामहे) अपने कार्य की सिद्धि के लिए स्वीकार करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र म उपमालकार है । जैसे मनुष्य अच्छी प्रकार बनाए हुए विमान आदि यान से अति कठिन मार्गों से भी सुख से गमनागमन करके कामो को सिद्ध कर समस्त दरिद्रता आदि दुःख से छटते हैं वैसे ही ईश्वर की सृष्टि के पृथिवी आदि पदार्थों वा विद्वानो को जान, उपकृत होकर उनका अच्छे प्रकार सेवन कर बहुत सुख प्राप्त कर सकते है ॥ १ ॥

फिर वे कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्रो मे कहा है—

त आदित्या आ गता सर्वतातये भूत देवा वृत्रतूर्येषु शम्भुवः ।

रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्त्तन ॥२॥

पदार्थ—हे (देवा) दिव्य गुणवाले विद्वान् जनो ! जैसे (आदित्या) कारणरूप से नित्य दिव्य गुणवाले जो सूर्य्य आदि पदार्थ है (ते) वे (वृत्रतूर्येषु) मेघावयवो अर्थात् बद्दलो का हिंसन विनाश करना जिसमे होता है उन सग्रामो मे (शम्भुव) सुख की भावना करानेवाले होते हैं वैसे ही आप लोग हमारे समीप को (आ, गत) आओ और आकर शत्रुओ का हिंसन जिनमे हो उन सग्रामो मे (सर्वतातये) समस्त सुख के लिए (शम्भुवः) सुख की भावना करानेवाले (भूत) होओ । शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के समान जानना चाहिए ॥ २ ॥

भावार्थ - इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे ईश्वर के बनाये हुए पृथिवी आदि पदार्थ सब प्राणियो के उपकार के लिए हैं वैसे ही सबके उपकार के लिए विद्वानो को नित्य अपना वर्त्ताव रखना चाहिए । जैसे अच्छे दृढ़ विमान आदि यान पर बैठ देश-देशान्तर को जा-आकर व्यापार वा विजय से धन और प्रतिष्ठा को प्राप्त हो दरिद्रता और अपयश से छूटकर सुखी होते हैं वैसे ही विद्वान् जन अपने उपदेश से विद्या को प्राप्त कराकर सब को सुखी करें ॥ २ ॥

अवन्तु नः पितरः सुप्रवाचना उत देवी देवपुत्रे ऋतावृधा ।

रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्त्तन ॥३॥

पदार्थ—(देवपुत्रे) जिनके दिव्य गुण अर्थात् अच्छे-अच्छे विद्वान् जन वा अच्छे रत्नो से युक्त पर्वत आदि पदार्थ पालनेवाले हैं वा जो (ऋतावृधा) सत्य कारण से बढ़ते हैं वे (देवी) अच्छे गुणोवाले भूमि और सूर्य्य का प्रकाश जैसे (न) हम लोगों की रक्षा करते हैं वैसे ही (सुप्रवाचना) जिनका अच्छा पढ़ाना और अच्छा उपदेश है वे (पितर) विशेष ज्ञानवाले मनुष्य हम लोगों को (उत) निश्चय से (अवन्तु) रक्षादि व्यवहारो से पालें । शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्रार्थ के तुल्य समझना चाहिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे दिव्य ओषधियों और प्रकाश आदि गुणो से भूमि और सूर्य्यमण्डल सबको सुख से बढ़ाते हैं वैसे ही आप्त विद्वान् जन सब मनुष्यो को अच्छी शिक्षा और पढ़ाई से विद्या आदि अच्छे गुणों मे वृद्धि करके सुखी करते है । और जैसे उत्तम रथ पर बैठके दुःख से जाने योग्य मार्ग के पार सुखपूर्वक जाकर समग्र क्लेश से छूटके सुखी होते हैं वैसे ही वे उक्त विद्वान् दुष्ट गुण कर्म और स्वभाव से अलग कर हम लोगो को धर्म के आचरण में बढ़ावें ॥ ३ ॥

फिर कैसे देवो को उपयोग में लावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैरीमहे ।

रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्त्तन ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (वाजयन्) उत्तमोत्तम पदार्थों के विशेष ज्ञान कराने वा युद्ध करानेहारे हम लोग (इह) इस सृष्टि मे (सुम्नै) सुखों से युक्त (नराशंसम्) मनुष्यो के प्रार्थना करने योग्य विद्वान् को तथा (वाजिनम्) विशेष ज्ञान और युद्धविद्या मे कुशल (क्षयद्वीरम्) जिस के शत्रुओं को काट करनेहारे वीर और जो (पूषणम्) शरीर वा आत्मा की पुष्टि करानेहारा है उस सभाध्यक्ष को (ईमहे) प्राप्त होवें वैसे तू शुभ गुणो की याचना कर । शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जानना चाहिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—हम लोग शुभ गुणो से युक्त सुखी मनुष्यो की मित्रता से प्राप्त होकर, श्रेष्ठ यानयुक्त शिल्पियो के समान दुःख से पार हो ॥ ४ ॥

फिर वे कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

बृहस्पते सदमिन्नः सुगं कृधि शं योर्यत्ते मनुर्हितं तदीमहे ।

रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्त्तन ॥५॥

पदार्थ—हे (बृहस्पते) परम अध्यापक अर्थात् उत्तम रीति से पढ़ानेवाले (ते) आप का जो (मनुर्हितम्) मन का हित करनेवाला (शम्) सुख वा (यो) धर्म, अर्थ और मोक्ष की प्राप्ति कराना है तथा (यत्) जो (सदम् इत्) सदैव तुम (न) हमारे लिए (सुगम्) सुखकर (कृधि) करो अर्थात् सिद्ध करो (तत्) उस उक्त समस्त सुख को हम लोग (ईमहे) माँगते हैं । शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य समझना चाहिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि जैसे गुरुजन से विद्या ली जाती है, वैसे ही सब विद्वानो से विद्या लेकर दुःखों का विनाश करें ॥ ५ ॥

फिर पढ़ाने और पढ़नेवाले क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं काटे निबाळ्ह ऋषिरह्वदूतये ।

रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्त्तन ॥६॥

पदार्थ—(कुत्स) विद्यारूपी वज्र लिये वा पदार्थों को छिन्न-भिन्न करने (निबाळ्हः) निरन्तर सुखो को प्राप्त करानेवाला (ऋषि) गुरु और विद्यार्थी (काटे) जिस मे समस्त विद्याओ की वर्षा होती है उस अध्यापन व्यवहार में (ऊतये) रक्षा आदि के लिए जिस (वृत्रहणम्) शत्रुओ को विनाश करने वा (शचीपतिम्) वेदवाणी के पालनेहारे (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्यवान् शाला आदि के अधीश को (अह्वत्) बुलावे हम लोग भी उसी को बुलावें । शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जानना चाहिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—विद्यार्थी को कपटी पढ़ानेवाले के समीप नही ठहरना चाहिए किन्तु आप्त विद्वानो के समीप ठहर और विद्वान् होकर ऋषिजनो के स्वभाव से युक्त होना चाहिए और अपने आत्मा की रक्षा के लिए अधर्म से डरकर धर्म मे सदा स्थिर रहना चाहिए ॥ ६ ॥

फिर वे कैसे हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥७॥

पदार्थ - जो (देवै) विद्वानो वा दिव्य गुणो के साथ वर्त्तमान (अप्रयुच्छन्) प्रमाद न करता हुआ (त्राता) सब की रक्षा करनेवाला (देव.) विद्वान् है वह (नः) हम लोगो की (नि, पातु) निरन्तर रक्षा करे तथा (देवी) दिव्य गुण भरी सब गुण आगरी (अदिति) प्रकाशयुक्त विद्या सब की (त्रायताम्) रक्षा करे (तत्) उस पूर्वोक्त समस्त कर्म को (न) और हम लोगो का (मित्र) मित्रजन (वरुणः) श्रेष्ठ विद्वान् (अदिति) अखण्डित नीति (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) भूमि (उत) और (द्यौ) सूर्य्य का प्रकाश (मामहन्ताम्) बढ़ावें अर्थात् उन्नति देवें ॥ ७ ॥

भावार्थ— मनुष्यो को चाहिए कि जो अप्रमादी, विद्वानों में विद्वान्, विद्या की रक्षा करनेवाला विद्यादान से सब के सुख को बढ़ाता है उस का सत्कार करके विद्या और धर्म का प्रचार ससार मे करें ॥ ७ ॥

इस सूक्त में समस्त विद्वानों के गुणों का वर्णन है इससे इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ छ:वां सूक्त और चौबीसवां वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अथ त्र्यृचस्य सप्तोत्तरशततमस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । १ विराट् त्रिष्टुप्; २ निचृत् त्रिष्टुप्; ३ त्रिष्टुप् च छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब तीन ऋचावाले एकसौ सातवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र से समस्त विद्वान् जन कैसे हों यह उपदेश किया है—

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृळयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥१॥

पदार्थ—हे (मृळयन्तः) हे आनन्दित करते हुए (आदित्यासः) सूर्य्य के तुल्य विद्यायोग से प्रकाश को प्राप्त विद्वानो ! तुम जो (देवानाम्) विद्वानों की (यज्ञः) संगति से सिद्ध हुआ शिल्प काम (सुम्नम्) सुख की (प्रति, एति) प्रतीति कराता है उसको प्रकट करनेहारे (भवत) होओ (या) जो (वः) तुम लोगों को (अंहो) विशेष ज्ञान जैसे हो वैसे (अर्वाची) इस समय की (सुमतिः) उत्तम बुद्धि (ववृत्यात्) वर्त्त रही है वह (चित्) भी हम लोगों के लिए (वरिवोवित्तरा) ऐसी हो कि जिससे उत्तम जनों की अच्छी प्रकार शुश्रूषा (आ, असत्) सब ओर से होवे ॥ १ ॥

भावार्थ—इस संसार में विद्वानों को चाहिए कि उन्होंने अपने पुरुषार्थ से जो शिल्पक्रिया प्रत्यक्ष कर रक्खी है, उन्हें सब मनुष्यों के लिए प्रकाशित करें, जिससे बहुत मनुष्य शिल्पक्रियाओं को करके सुखी हों ॥१॥

फिर वे कैसे हों यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

उप नो देवा अवसा गमन्त्वङ्गिरसां सामभिः स्तूयमानाः ।
इन्द्र इन्द्रियैर्मरुतो मरुद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥२॥

पदार्थ—(सामभि) सामवेद के गानों से (स्तूयमानाः) स्तुति को प्राप्त होते हुए (आदित्यै) पूर्ण विद्यायुक्त मनुष्य वा बारह महीनों (मरुद्भिः) विद्वानों वा पवनों और (इन्द्रियैः) धनों के सहित (इन्द्रः) सभाध्यक्ष (मरुत) वा पवन (अदिति) विद्वानों का पिता वा सूर्य्य प्रकाश और (देवाः) विद्वान् जन (अङ्गिरसाम्) प्राणविद्या के जाननेवालों (न) हम लोगों के (अवसा) रक्षा आदि व्यवहार से (उप, आ, गमन्तु) समीप में सब प्रकार से आवें और (न) हम लोगों के लिए (शर्म) सुख (यंसत्) देवें ॥२॥

भावार्थ—ज्ञान सीखनेवाले जिन विद्वानों के समीप वा विद्वान् जिन विद्यार्थियों के समीप जावें वे विद्या, धर्म और अच्छी शिक्षा के व्यवहार को छोड़कर और कर्म कभी न करें, जिससे दुःख की हानि होके निरन्तर सुख की सिद्धि हो ॥२॥

तन्न इन्द्रस्तद्वरुणस्तदग्निस्तदर्यमा तत्सविता चनो धात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥३॥

पदार्थ—जैसे (मित्रः) मित्रजन (वरुणः) श्रेष्ठ विद्वान् (अदितिः) अखण्डित आकाश (सिन्धु) समुद्र (पृथिवी) भूमि (उत) और (द्यौ) सूर्य आदि का प्रकाश (नः) हम को (मामहन्ताम्) आनन्दित करते हैं (तत्) वैसे (इन्द्रः) बिजुली वा धनाढ्य जन (न) हमारे लिए (तत्) उस धन वा अन्न को अर्थात् उन के दिये हुए धनादि पदार्थ को (वरुण.) जल वा गुणों से उत्कृष्ट (तत्) उस शरीरसुख को (अग्निः) पावक अग्नि वा न्यायमार्ग में चलानेवाला विद्वान् (तत्) उस आत्मसुख को (अर्यमा) नियमकर्त्ता पवन वा न्यायकर्त्ता सभाध्यक्ष (तत्) इन्द्रियों के सुख को (सविता) सूर्य वा धर्म कार्य्यों में प्रेरणा करनेवाला धर्मज्ञ जन (तत्) उस सामाजिक सुख और (चनः) अन्न को (धात्) धारण करता वा धारण करे ॥३॥

भावार्थ—जैसे संसारस्थ पृथिवी आदि पदार्थ सुख देनेवाले हैं वैसे ही विद्वानों को सुख देनेवाला होना चाहिए ॥३॥

इस सूक्त में समस्त विद्वानों के गुणों का वर्णन है इससे इस सूक्त की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिए ॥

यह एक सौ सातवां सूक्त और पच्चीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथाष्टोत्तरस्य शततमस्य त्रयोदशर्चस्य सूक्तस्याङ्गिरस कुत्स ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । १, ८, १२ निचृत् त्रिष्टुप्; २, ३, ६, ११ विराट् त्रिष्टुप्; ७, ९, १०, १३ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ भुरिक् पङ्क्तिः, ५ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब एकसौ आठवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र से दो-दो इकट्ठे पदार्थों वा गुणों का उपदेश किया है—

य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वामभि विश्वानि भुवनानि चष्टे ।
तेना यातं सरथं तस्थिवांसाथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥१॥

पदार्थ (यः) जो (चित्रतमः) एकी एका अद्भुत गुण और क्रिया को लिये हुए (रथः) विमान आदि यानसमूह (वाम्) इन (तस्थिवांसा) ठहरे हुए (इन्द्राग्नी) पवन और अग्नि को प्राप्त होकर (विश्वानि) सब (भुवनानि) भूगोल के स्थानों को (अभि, चष्टे) सब प्रकार से दिखाता है (अथ) इस के अनन्तर जिससे ये दोनों अर्थात् पवन और अग्नि (सरथम्) रथ आदि सामग्री सहित सेना वा उत्तम सामग्री को (आ, यातम्) प्राप्त हुए अच्छी प्रकार अभीष्ट स्थान को पहुँचाते हैं तथा (सुतस्य) ईश्वर के उत्पन्न किये हुए (सोमस्य) सोम आदि के रस को (पिबतम्) पीते हैं (तेन) उससे समस्त शिल्पी मनुष्यों को सब जगह आना-जाना चाहिए ॥१॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि कलाओं में अच्छी प्रकार प्रयुक्त करके चलाये हुए वायु और अग्नि आदि पदार्थों से युक्त विमान आदि रथों से आकाश समुद्र और भूमि मार्गों में एक देश से दूसरे देशों को जा-आकर सर्वदा अपने अभिप्राय की सिद्धि से आनन्दरस भोगें ॥१॥

फिर वे कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

यावदिदं भुवनं विश्वमस्त्युरुव्यचा वरिमता गभीरम् ।
तावाँ अयं पातवे सोमो अस्त्वरमिन्द्राग्नी मनसे युवभ्याम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (यावत्) जितना (उरुव्यचा) बहुत व्याप्ति अर्थात् पूरेपन और (वरिमता) बहुत स्थूलता के साथ वर्त्तमान (गभीरम्) गहिरा (भुवनम्) सब वस्तुओं के ठहरने का स्थान (इदम्) यह प्रकट-अप्रकट (विश्वम्) जगत् (अस्ति) है (तावान्) उतना (अयम्) यह (सोम) उत्पन्न हुआ पदार्थों का समूह है उसका (मनसे) विज्ञान कराने को (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि (अरम्) परिपूर्ण हैं इससे (युवभ्याम्) उन दोनों से (पातवे) रक्षा आदि के लिए उतने बोध और पदार्थ को स्वीकार करो ॥२॥

भावार्थ—विचारशील पुरुषों को यह अवश्य जानना चाहिए कि जहाँ-जहाँ मूर्तिमान् लोक हैं वहाँ-वहाँ पवन और बिजुली अपनी व्याप्ति से वर्त्तमान हैं। जितना मनुष्यों का सामर्थ्य है वहाँ तक इन के गुणों को जान कर और पुरुषार्थ से उपयोग लेकर परिपूर्ण सुखी होवें ॥२॥

चक्राथे हि सध्र्यङ्नाम भद्रं सध्रीचीना वृत्रहणा उत स्थः ।
ताविन्द्राग्नी सध्र्यञ्चा निषद्या वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (सध्रीचीना) एक साथ मिलने और (वृत्रहणौ) मेघ के हननेहारे (सध्र्यञ्चा) और एक साथ बड़ाई करने योग्य (निषद्य) नित्य स्थिर होकर (वृष्णः) पुष्टि करते हुए (सोमस्य) रसवान् पदार्थसमूह की (वृषणा) पुष्टि करनेहारे (इन्द्राग्नी) पूर्व कहे हुए अर्थात् पवन और सूर्य्यमण्डल (नाम) वृष्टि आदि काम से परम सुख करनेवाले (सध्र्यक्) एक संग प्रकट होते हुए (नाम) जल को (चक्राथे) करते हैं (उत) और कार्य्यसिद्धि करनेहारे (स्थः) होते (वृषेथाम्) और सुखरूपी वर्षा करते हैं (तौ) उनको (हि) ही (आ) अच्छी प्रकार जानो ॥३॥

भावार्थ—मनुष्यों को अत्यन्त उपयोग करनेहारे वायु और सूर्य्यमण्डल को जानके कैसे उपयोग में न लाना चाहिए ॥३॥

समिद्धेष्वग्निष्वानजाना यतस्रुचा बर्हिरु तिस्तिराणा ।
तीव्रैः सोमैः परिषिक्तेभिरर्वागेन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो तुम (यतस्रुचा) जिनमें स्रुच् अर्थात् होम करने के काम में जो स्रुचा होती है उनके समान कलाधर विद्यमान (तिस्तिराणा) वा जो यन्त्रकलादिकों से ढाँपे हुए होते हैं (आनजाना) वे आप प्रसिद्ध और प्रसिद्धि करनेवाले (इन्द्राग्नी) वायु और विद्युत् अर्थात् पवन और बिजली (तीव्रैः) तीक्ष्ण और वेगादिगुणयुक्त (सोमैः) रसरूप जलों से (परिषिक्तेभिः) सब प्रकार की की हुई सिंचाइयों के सहित (समिद्धेषु) अच्छी प्रकार जलते हुए (अग्निषु) कलाघरों की अग्नियों के होते (अर्वाक्) पीछे (बर्हि.) अन्तरिक्ष में (यातम्) पहुँचाते हैं (उ) और (सौमनसाय) उत्तम से उत्तम सुख के लिए (आ) अच्छे प्रकार आते भी हैं उनकी अच्छी शिक्षा कर कार्यसिद्धि के लिए कलाओं में लगाने चाहिएँ ॥४॥

भावार्थ—जब शिल्पियों से पवन और बिजुली कार्यसिद्धि के अर्थ कलायन्त्रों की क्रियाओं से युक्त किये जाते हैं तब ये सर्वसुखों के लाभ के लाभ के लिए समर्थ होते हैं ॥४॥

अब ऐश्वर्य्ययुक्त स्वामी और शिल्पविद्या की क्रियाओं में कुशल शिल्पीजन के कार्मों को अगले मन्त्र में कहा है—

यानीन्द्राग्नी चक्रथुर्वीर्याणि यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि ।
या वां प्रत्नानि सख्या शिवानि तेभिः सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥५॥

पदार्थ—हे (**इन्द्राग्नी**) स्वामी और सेवक (**वाम्**) तुम्हारे (**यानि**) जो (**वीर्याणि**) पराक्रमयुक्त काम (**यानि**) जो (**रूपाणि**) शिल्पविद्या से सिद्ध चित्र-विचित्र, अद्भुत जिनका रूप वे विमान आदि यान और (**वृष्ण्यानि**) पुरुषार्थयुक्त काम (**वा**) वा जो तुम दोनों के (**प्रत्नानि**) प्राचीन (**शिवानि**) मङ्गलयुक्त (**सख्या**) मित्रों के काम हैं (**तेभिः**) उनसे (**सुतस्य**) निकाले हुए (**सोमस्य**) संसारी वस्तुओं के रस को (**पिबतम्**) पिओ (**उत**) और हम लोगों के लिए (**बभ्रूः**) उनसे सुख करो ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में इन्द्र शब्द से धनाढ्य और अग्नि शब्द से विद्यावान् शिल्पी का ग्रहण किया जाता है, विद्या और पुरुषार्थ के बिना कामों की सिद्धि कभी नहीं होती और न मित्रभाव के बिना सर्वदा व्यवहार सिद्ध हो सकता है इससे उक्त काम सर्वदा करने योग्य हैं ॥५॥

फिर वे दोनों कैसे हैं यह अगले मन्त्रों में कहा है—

यदब्रवं प्रथमं वां वृणानो॒३ऽयं सोमो॒ असु॑रैर्नो वि॒हव्यः॑ ।

तां स॒त्यां श्र॒द्धाम॒भ्या हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥६॥

पदार्थ—हे स्वामी और शिल्पीजनो ! (**वाम्**) तुम्हारे लिए (**प्रथमम्**) पहले (**यत्**) जो मैंने (**अब्रवम्**) कहा वा (**असुरैः**) विद्याहीन मनुष्यों की (**वृणानः**) बड़ाई की हुई (**विहव्यः**) अनेकों प्रकार से ग्रहण करने योग्य (**अयम्**) यह प्रत्यक्ष (**सोमः**) उत्पन्न हुआ पदार्थों का समूह तुम्हारा है उससे (**नः**) हम लोगों की (**ताम्**) उस (**सत्याम्**) सत्य (**श्रद्धाम्**) प्रीति को (**अभि, आ, यातम्**) अच्छी प्रकार प्राप्त होओ (**अथ**) इसके पीछे (**हि**) एक निश्चय के साथ (**सुतस्य**) निकाले हुए (**सोमस्य**) संसारी वस्तुओं के रस को (**पिबतम्**) पिओ ॥६॥

भावार्थ—जन्म के समय में सब मूर्ख होते हैं और फिर विद्या का अभ्यास करके विद्वान् भी हो जाते हैं इससे विद्याहीन मूर्खजन ज्येष्ठ और विद्वान्जन कनिष्ठ गिने जाते हैं। सबको यही चाहिए कि कोई हो परन्तु उसके प्रति सांची ही कहैं किन्तु किसी के प्रति असत्य न कहे ॥६॥

यदि॑न्द्राग्नी॒ मद॑थः॒ स्वे दु॑रो॒णे यद्ब्र॒ह्मणि॒ राज॑नि वा यजत्रा ।

अतः॒ परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥७॥

पदार्थ—हे (**वृषणौ**) सुखरूपी वर्षा के करनेहारे (**यजत्रा**) अच्छी प्रकार मिलकर सत्कार करने के योग्य (**इन्द्राग्नी**) स्वामी सेवको ! तुम दोनों (**यत्**) जिस कारण (**स्वे**) अपने (**दुरोणे**) घर में वा (**यत्**) जिस कारण (**ब्रह्मणि**) ब्राह्मणों की सभा और (**राजनि**) राजजनों की सभा (**वा**) वा और सभा में (**मदथः**) आनन्दित होते हो (**अतः**) इस कारण से (**परि, आ, यातम्**) सब प्रकार से आओ (**अथ, हि**) इसके अनन्तर एक निश्चय के साथ (**सुतस्य**) उत्पन्न हुए (**सोमस्य**) संसारी पदार्थों के रस को (**पिबतम्**) पिओ ॥७॥

भावार्थ—जहां-जहां स्वामी और शिल्पी वा पढ़ाने और पढ़नेवाले वा राजा और प्रजाजन जावें वा आवें वहां-वहां सभ्यता से स्थित हो, विद्या और शान्तियुक्त वचन को कह और अच्छे शील का ग्रहण कर सत्य कहें और सुनें ॥७॥

यदि॑न्द्राग्नी॒ यदु॑षु तु॒र्वशे॑षु यद्द्रु॒ह्युष्वनु॑षु पू॒रुषु॒ स्थः ।

अतः॒ परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥८॥

पदार्थ—हे (**इन्द्राग्नी**) स्वामि-शिल्पिजनो ! तुम दोनों (**यत्**) जिस कारण (**यदुषु**) उत्तम यत्न करनेवाले मनुष्यों में वा (**तुर्वशेषु**) जो हिंसक मनुष्यों को वश में करें उन में वा (**यत्**) जिस कारण (**द्रुह्युषु**) द्रोहिजनों में वा (**अनुषु**) प्राण अर्थात् जीवन सुख देनेवालों में तथा (**पूरुषु**) जो अच्छे गुण विद्या वा कामों में परिपूर्ण हैं उन में यथोचित अर्थात् जिस से जैसा चाहिए वैसा व्यवहार वर्तनेवाले (**स्थः**) हो (**अतः**) इस कारण से सब मनुष्यों में (**वृषणौ**) सुखरूपी वर्षा करते हुए (**आ, यातम्**) अच्छे प्रकार आओ (**हि**) एक निश्चय के साथ (**अथ**) इस के अनन्तर (**सुतस्य**) निकाले हुए (**सोमस्य**) जगत् के पदार्थों के रस को (**परि, पिबतम्**) अच्छी प्रकार पिओ ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो न्याय और सेना के अधिकार को प्राप्त हुए मनुष्यों में यथा-योग्य वर्त्तमान हैं सब मनुष्यों को चाहिए कि उनको ही उन कामों में स्थापन अर्थात् मानकर कामों को सिद्धि करें ॥ ८ ॥

फिर वे, भौतिक इन्द्र और अग्नि कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यदि॑न्द्राग्नी अव॒मस्यां॑ पृथि॒व्यां म॑ध्य॒मस्यां॑ पर॒मस्या॑मु॒त स्थः ।

अतः॒ परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥९॥

पदार्थ—हे (**इन्द्राग्नी**) न्यायाधीश और सेनाधीश ! (**यत्**) जो तुम दोनों (**अवमस्याम्**) निकृष्ट (**मध्यमस्याम्**) मध्यम (**उत**) और (**परमस्याम्**) उत्तम गुणवाली (**पृथिव्याम्**) अपनी राज्यभूमि में अधिकार पाये हुए (**स्थः**) हो वे सब कभी सब की रक्षा करने योग्य हो (**अतः**) इस कारण इस उक्त राज्य में (**परि, वृषणौ**) सब प्रकार सुखरूपी वर्षा करनेहारे होकर (**आ, यातम्**) आओ (**हि**) एक निश्चय के साथ (**अथ**) इस के उपरान्त उस राज्यभूमि में (**सुतस्य**) उत्पन्न हुए (**सोमस्य**) संसारी पदार्थों के रस को (**पिबतम्**) पिओ यह एक अर्थ हुआ ॥ १ ॥ (**यत्**) जो ये (**इन्द्राग्नी**) पवन और बिजुली (**अवमस्याम्**) निकृष्ट (**मध्यमस्याम्**) मध्यम (**उत**) वा (**परमस्याम्**) उत्तम गुणवाली (**पृथिव्याम्**) पृथिवी में (**स्थः**) हैं (**अतः**) इस से वहां (**परि, वृषणौ**) सब प्रकार से सुखरूपी वर्षा करनेवाले होकर (**आ, यातम्**) आते और (**अथ**) इस के उपरान्त (**हि**) एक निश्चय के साथ जो (**सुतस्य**) निकाले हुए (**सोमस्य**) पदार्थों के रस को (**पिबतम्**) पीते हैं उन को कामसिद्धि के लिए कलाओं में संयुक्त करके महान् लाभ सिद्ध करना चाहिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। उत्तम, मध्यम और निकृष्ट गुण, कर्म और स्वभाव के भेद से जो-जो राज्य है वहां-वहां वैसे ही उत्तम, मध्यम, निकृष्ट गुण, कर्म और स्वभाव के मनुष्यों को स्थापन कर और चक्रवर्ती राज्य करके सब को आनन्द भोगना-भोगवाना चाहिए ऐसे ही इस सृष्टि में ठहरे और सब लोकों में प्राप्त होते हुए पवन और बिजुली को जान और उनका अच्छे प्रकार प्रयोग कर तथा कार्य्यों की सिद्धि करके दारिद्र्य दोष सब का नाश करना चाहिए ॥ ९ ॥

फिर वे कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यदि॑न्द्राग्नी पर॒मस्यां॑ पृथि॒व्यां म॑ध्य॒मस्या॑मव॒मस्या॑मु॒त स्थः ।

अतः॒ परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥१०॥

पदार्थ—इस मन्त्र का अर्थ पिछले मन्त्र के समान जानना चाहिए ॥ १० ॥

भावार्थ—इन्द्र और अग्नि दो प्रकार के हैं एक तो वे कि जो उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव में स्थिर वा पवित्र भूमि में स्थित हैं वे उत्तम और जो अपवित्र गुण, कर्म, स्वभाव में वा अपवित्र भूमि आदि पदार्थों में स्थिर होते हैं वे निकृष्ट ये दोनों प्रकार के पवन और अग्नि ऊपर-नीचे सर्वत्र चलते हैं इससे दोनों मन्त्रों से (अवम) और (परम) शब्द जो पहले प्रयोग किये हुए है उन से दो प्रकार के (इन्द्र) और (अग्नि) के अर्थ को समझाया है ऐसा जानना चाहिए ॥ १० ॥

अब भौतिक इन्द्र और अग्नि कहां-कहां रहते हैं यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यदि॑न्द्राग्नी दि॒वि ष्ठो यत्पृ॑थि॒व्यां यत्पर्व॑ते॒ष्वोष॑धीष्व॒प्सु ।

अतः॒ परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥११॥

पदार्थ—(**यत्**) जिस कारण (**इन्द्राग्नी**) पवन और बिजुली (**दिवि**) प्रकाशमान आकाश में (**यत्**) जिस कारण (**पृथिव्याम्**) पृथिवी में (**यत्**) वा जिस कारण (**पर्वतेषु**) पर्वतों (**अप्सु**) जलों में और (**ओषधीषु**) ओषधियों में (**स्थः**) वर्त्तमान हैं (**अतः**) इस कारण (**परि, वृषणौ**) सब प्रकार से सुख की वर्षा करनेवाले वे (**हि**) निश्चय से (**आ, यातम्**) प्राप्त होते (**अथ**) इस के अनन्तर (**सुतस्य**) निकाले हुए (**सोमस्य**) जगत् के पदार्थों के रस को (**पिबतम्**) पीते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो धनञ्जय पवन और कारणरूप अग्नि सब पदार्थों में विद्यमान हैं वे जैसे के वैसे जाने और क्रियाओं में जोड़े हुए बहुत कामों को सिद्ध करते हैं ॥ ११ ॥

फिर वे कैसे हैं यह अगले मन्त्र में कहा है

यदि॑न्द्राग्नी॒ उदि॑ता॒ सूर्य॑स्य॒ मध्ये॑ दि॒वः स्व॒धया॑ मा॒दये॑थे ।

अतः॒ परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥१२॥

पदार्थ—(**यत्**) जिस कारण (**इन्द्राग्नी**) पवन और बिजुली (**उदिता**) उदय को प्राप्त हुए (**सूर्यस्य**) सूर्यमण्डल के वा (**दिवः**) अन्तरिक्ष के (**मध्ये**) बीच में (**स्वधया**) अन्न और जल से सबको (**मादयेथे**) हर्ष देते हैं (**अतः**) इससे (**वृषणा**) सुख की वर्षा करनेवाले (**परि**) सब प्रकार से (**आ, यातम्**) आते अर्थात् बाहर और भीतर से प्राप्त होते और (**हि**) निश्चय है कि (**अथ**) इसके अनन्तर (**सुतस्य**) निकाले हुए (**सोमस्य**) जगत् के पदार्थों के रस को (**पिबतम्**) पीते हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ—पवन और बिजुली के बिना किसी लोक वा प्राणी की रक्षा और जीवन नहीं होते हैं। इस में संसार की पालना में ये ही मुख्य हैं ॥ १२ ॥

अब धनपति और सेनापति कैसे हैं यह अगले मन्त्र में कहा है—

ए॒वेन्द्रा॑ग्नी पपि॒वांसा॑ सु॒तस्य॒ विश्वा॒स्मभ्यं॒ सं ज॑यतं॒ धना॑नि ।

तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः ॥१३॥

पदार्थ—(**मित्र**) मित्र (**वरुणः**) श्रेष्ठ गुणयुक्त (**अदितिः**) उत्तम विद्वान् (**सिन्धुः**) समुद्र (**पृथिवी**) पृथिवी (**उत**) और (**द्यौः**) सूर्य का प्रकाश जिनको (**नः**) हम लोगों के लिए (**मामहन्ताम्**) बढ़ावें (**तत्, एव**) उन्हीं (**विश्वा**) समस्त (**धनानि**) धनों को (**सुतस्य**) पदार्थों के निकाले हुए रस को (**पपिवांसा**) पिये हुए (**इन्द्राग्नी**) अति धनी वा युद्धविद्या में कुशल वीरजन (**अस्मभ्यम्**) हम लोगों के लिए (**संजयतम्**) अच्छी प्रकार जीतें अर्थात् सिद्ध कर ॥ १३ ॥

भावार्थ—विद्वान् बलिष्ठ धार्मिक कोशस्वामी और सेनाध्यक्ष और उत्तम पुरुषार्थ करनेवालों के बिना विद्या आदि धन नहीं बढ़ सकते हैं जैसे मित्र आदि अपने मित्रों के लिए सुख देते हैं वैसे ही कोशस्वामी और सेनाध्यक्ष आदि प्रजाजनों के लिए सुख देते हैं इससे सबको चाहिए कि इनकी सदा पालना करें ॥ १३ ॥

इस सूक्त में पवन और बिजुली आदि के गुणों के वर्णन से उसके अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

यह एकसौ आठवां सूक्त और सत्ताईसवां वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अथ नवोत्तरशततमस्याष्टर्चस्य सूक्तस्याङ्गिरस कुत्स ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । १, ३, ४, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप्, २, ५ त्रिष्टुप्, ७ विराट् त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

अब एकसौ नववें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से फिर वे भौतिक अग्नि और बिजुली कैसे हैं यह उपदेश किया है—

वि ह्यख्यं मनसा वस्य इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान् ।
नान्या युवत्प्रमतिरस्ति मह्यं स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् ॥१॥

पदार्थ—जैसे (इन्द्राग्नी) बिजुली और जो दृष्टिगोचर अग्नि है उनको (इच्छन्) चाहता हुआ (वस्य) जिन्होंने चौबीस वर्ष पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य किया है उनमें प्रशसनीय मैं तथा (ज्ञास) जो ज्ञाताजन हैं उनको वा जानने योग्य पदार्थों को (सजातान्) वा एक सग हुए पदार्थों को (उत) और (वा) विद्यार्थी वा समझाने वालो को (मनसा) विशेष ज्ञान से जानने की इच्छा करता हुआ (युवत्) सब वस्तुओं को यथायोग्य काय्यें मे लगवानेहारा मैं इनको (हि) निश्चय से (वि, अख्यम्) औरो के प्रति उत्तमता के साथ कहूँ वैसे तुम लोग भी कहो जो मेरी (प्रमतिः) प्रबल मति (अस्ति) है वह तुम लोगों को भी हो (न, अन्या) और न हो जैसे मैं (वाम्) तुम दोनों पढ़ाने-पढ़नेवालों से (वाजयन्तीम्) समस्त विद्याओ को जतानेवाली (धियम्) उत्तम बुद्धि को (अतक्षम्) सूक्ष्म करूँ अर्थात् बहुत कठिन विषयो को सुगमता से जानूँ वैसे (स) वह पढ़ाने और पढ़नेवाला इसको (मह्यम्) मेरे लिए सूक्ष्म करे ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे दो लुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो की योग्यता यह है कि अच्छी प्रीति और पुरुषार्थ से श्रेष्ठ विद्या आदि का बोध कराते हुए अति उत्तम बुद्धि उत्पन्न कराकर व्यवहार और परमार्थ की सिद्धि करानेवाले कामो को अवश्य सिद्ध करें ॥ १ ॥

फिर वे कैसे है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात् ।
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम् ॥२॥

पदार्थ—जो (वाम्) ये (भूरिदावत्तरा) अतीव बहुत से धन की प्राप्ति करानहारे (इन्द्राग्नी) बिजुली और भौतिक अग्नि हैं वा जो उक्त इन्द्राग्नी (विजामातु) विरोधी जमाई (स्यालात्) साले से (उत, वा) अथवा और (घ) अन्य जनो से धनों को दिलाते हैं यह मैं (अश्रवम्) सुन चुका हूँ (अथ, हि) अभी (युवभ्याम्) इनसे (सोमस्य) ऐश्वर्य अर्थात् धनादि पदार्थों की प्राप्ति करनेवाले व्यवहार के (प्रयती) अच्छे प्रकार देने के लिए (नव्यम्) नवीन (स्तोमम्) गुण के प्रकाश को मैं (जनयामि) प्रकट करता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यो को बिजुली आदि पदार्थों के गुणो का ज्ञान और उनके अच्छे प्रकार कार्य मे युक्त करने से नवीन-नवीन कार्य्य की सिद्धि करनेवाले कलायन्त्र आदि का विधान कर अनेक कामों को बनाकर धर्म, अर्थ और अपनी कामना की सिद्धि करनी चाहिए ॥ २ ॥

फिर उनको क्या करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—

मा च्छेद्म रश्मीँरिति नाधमानाः पितॄणां शक्तीरनुयच्छमानाः ।
इन्द्राग्निभ्यां कं वृषणो मदन्ति ता ह्यद्री धिषणाया उपस्थे ॥३॥

पदार्थ—जैसे (वृषण) बलवान् जन जो (अद्री) कभी विनाश को न प्राप्त होनेवाले हैं (ता) उन इन्द्र और अग्नियों को अच्छी प्रकार जान (इन्द्राग्निभ्याम्) इनसे (धिषणायाः) अति विचारयुक्त बुद्धि के (उपस्थे) समीप मे स्थिर करने योग्य अर्थात् उस बुद्धि के साथ मे लाने योग्य व्यवहार मे (कम्) सुख को पाकर (मदन्ति) आनन्दित होते हैं वा उस सुख की चाहना करते हैं वैसे (पितॄणाम्) रक्षा करनेवाले ज्ञानी विद्वानो वा रक्षा से अनुयोग को प्राप्त हुए वसन्त आदि ऋतुओं के (रश्मीन्) विद्यायुक्त ज्ञानप्रकाशो को (नाधमाना) ऐश्वर्य के साथ चाहते (शक्तीः) वा सामर्थ्यों को (अनु यच्छमाना) अनुकूलता के साथ नियम में लाते हुए हम लोग आनन्दित होते (हि) ही हैं और (इति) ऐसा जानके इन विद्याओं की जड को हम लोग (मा, छेद्म) न काटें ॥ ३ ॥

भावार्थ—ऐश्वर्य की कामना करते हुए लोगों को कभी विद्वानो का सग और उनकी सेवा को छोड तथा वसन्त आदि ऋतुओ का यथायोग्य अच्छी प्रकार ज्ञान और सेवन का त्याग न कर अपना वर्ताव रखना चाहिए और विद्या तथा बुद्धि की उन्नति और व्यवहारसिद्धि उत्तम प्रयत्न के साथ करनी चाहिए ॥ ३ ॥

फिर वे कैसे हों यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

युवाभ्यां देवी धिषणा मदायेन्द्राग्नी सोममुशती सुनोति ।
तावश्विना भद्रहस्ता सुपाणी आ धावतं मधुना पृङ्क्तमप्सु ॥४॥

पदार्थ—जो (सोमम्) ऐश्वर्य्य की (उशती) कान्ति करानेवाली (देवी) अच्छी-अच्छी शिक्षा और शास्त्रविद्या आदि से प्रकाशमान (धिषणा) बुद्धि (मदाय) आनन्द के लिए (युवाभ्याम्) जिन से कामो को (सुनोति) सिद्ध करती है उस बुद्धि से जो (इन्द्राग्नी) बिजुली और भौतिक अग्नि (अप्सु) कलाघरो के जल के स्थानो में (मधुना) जल से (पृङ्क्तम्) सम्पर्क अर्थात् सम्बन्ध करते हैं वा (भद्रहस्ता) जिनके उत्तम सुख के करनेवाले हाथो के तुल्य गुण (सुपाणी) और अच्छे-अच्छे व्यवहार वा (अश्विना) जो सब मे व्याप्त होनेवाले हैं (तौ) वे बिजुली और भौतिक अग्नि रथों मे अच्छी प्रकार लगाये हुए उनको (आ, धावतम्) चलाते हैं ॥४॥

भावार्थ—मनुष्य जब तक अच्छी शिक्षा, उत्तम विद्या और क्रियाकौशलयुक्त बुद्धियों को सिद्ध नहीं करते हैं तब तक बिजुली आदि पदार्थों से उपकार को नहीं ले सकते इससे इस काम को अच्छे यत्न से सिद्ध करना चाहिए ॥४॥

युवामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये ।
तावासद्या बर्हिषि यज्ञे अस्मिन् प्र चर्षणी मादयेथां सुतस्य ॥५॥

पदार्थ—मैं (वसुन) धन के (विभागे) सेवन व्यवहार मे (वृत्रहत्ये) वा जिस मे शत्रुओं और मेघो का हनन हो उस संग्राम मे (युवाम्) ये दोनों (इन्द्राग्नी) बिजुली और साधारण अग्नि (तवस्तमा) अतीव बलवान् और बल के देनेहारे हैं यह (शुश्रव) सुनता हूँ इस से (तौ) वे दोनों (प्रचर्षणी) अच्छे सुख को प्राप्त करानेहारे (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) समीप मे बढ़नेहारे (यज्ञे) शिल्पव्यवहार के निमित्त (सुतस्य) उत्पन्न किये विमान आदि रथ को (आसद्य) प्राप्त होकर (मादयेथाम्) आनन्द देते हैं ॥५॥

भावार्थ—मनुष्य जिन से धनो का विभाग करते हैं वा शत्रुओं को जीतके समस्त पृथिवी पर राज्य कर सकते हैं उनको कार्य की सिद्धि के लिए कैसे न यथायोग्य कामो मे युक्त करें ॥५॥

अब पवन और बिजुली कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—

प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।
प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ॥६॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली (अन्या, विश्वा, भुवना) और समस्त लोको को (महित्वा) प्रशसित कराके (पृतनाहवेषु) सेनाओ से प्रवृत्त होते हुए युद्धो मे (चर्षणिभ्य) मनुष्यों से (प्र, पृथिव्या) अच्छे प्रकार पृथिवी वा (प्र, सिन्धुभ्य) अच्छे प्रकार समुद्रो वा (प्र, गिरिभ्य) अच्छे प्रकार पर्वतों वा (प्र, दिवश्च) और अच्छे प्रकार सूर्य्य से (प्र, अति रिरिचाथे) अत्यन्त बढ़ कर प्रतीत होते अर्थात् कलायन्त्रो के सहाय से बढकर काम देते हैं ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । पवन और बिजुली के समान बडा कोई लोक नहीं है क्योकि ये दोनो सब लोको को व्याप्त होकर ठहरे हुए हैं ॥६॥

अब पढ़ाने और पढ़नेवाले कैसे होते हैं यह उपदेश अगले मन्त्र में इन्द्र और अग्नि नाम से किया है—

आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः ।
इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसन् ॥७॥

पदार्थ—(वज्रबाहू) जिनके वज्र के तुल्य बल और वीर्य्य हैं वे (इन्द्राग्नी) हे पढ़ने और पढ़ानेवालो ! तुम दोनों जैसे (इमे) ये (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मयः) किरणें हैं और (ते) रक्षा आदि करते है और जैसे (पितर) पितृजन (येभि) जिन कर्मो से (न) हम लोगो के लिए (सपित्वम्) समान व्यवहारों की प्राप्ति करने वा विज्ञान को देकर उपकार के करनेवाले (आसन्) होते हैं वैसे (शचीभि) अच्छे काम वा उत्तम बुद्धियों से (अस्मान्) हम लोगों को (आ, भरतम्) स्वीकार करो (शिक्षतम्) शिक्षा देओ और (नु) शीघ्र (अवतम्) पालो ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो अच्छी शिक्षा से मनुष्यों मे सूर्य के समान विद्या का प्रकाशकर्ता और माता-पिता के तुल्य कृपा से रक्षा करने वा पढ़ानेवाला तथा सूर्य के तुल्य प्रकाशित बुद्धि को प्राप्त और दूसरा पढनेवाला है उन दोनो का नित्य सत्कार करो इस काम के विना कभी विद्या की उन्नति होने का सम्भव नहीं है ॥७॥

फिर वे दोनों कैसे हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

पुरन्दरा शिक्षतं वज्रहस्तास्माँ इन्द्राग्नी अवतं भरेषु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥८॥

पदार्थ—जो (पुरन्दरा) शत्रुओ के पुरो को विध्वस करनेवाले वा (वज्रहस्ता) जिन का विद्यारूपी वज्र हाथ के समान है वे (इन्द्राग्नी) उपदेश के सुनने वा करनेवाले तुम जैसे (मित्र) सुहृज्जन (वरुण) उत्तम गुणयुक्त (अदिति) अन्तरिक्ष (सिन्धु) समुद्र (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौ) सूर्य का प्रकाश (न) हम लोगो को (मामहन्ताम्) उन्नति देता है वैसे

(अस्मान्) हम लोगों को (तत्) उन उक्त पदार्थों के विशेष ज्ञान की (शिक्षतम्) शिक्षा देश्रो और (भरेषु) संग्राम आदि व्यवहारों मे (अवतम्) रक्षा आदि करो ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मित्र आदि जन अपने मित्रादिकों की रक्षा कर और उन्नति करते वा एक दूसरे की अनुकूलता में रहते हैं वैसे उपदेश के सुनने और सुनानेवाले परस्पर विद्या की वृद्धि कर प्रीति के साथ मित्रपन मे वर्त्ताव रक्खें ॥८॥

इस सूक्त में इन्द्र और अग्नि शब्द के अर्थ का वर्णन है इस से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सगति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ नववां सूक्त और उनतीसवां वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अथ दशोत्तरशततमस्य नवर्चस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । ऋभवो देवता । १, ४ जगती, २, ३, ७ विराड्जगती, ६, ८ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ५ निचृत् त्रिष्टुप्, ६ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवत स्वर ॥

अब एकसौ दशवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से विद्वान् मनुष्य कैसे अपना वर्त्ताव रक्खें यह उपदेश किया है—

तृतं मे अपस्तदु तायते पुनः स्वादिष्ठा धीतिरुचथाय शस्यते ।
अयं समुद्र इह विश्वदेव्यः स्वाहाकृतस्य समु तृप्णुत ऋभवः ॥१॥

पदार्थ—(ऋभवः) हे बुद्धिमान् विद्वानो ! तुम लोग जैसे (इह) इस लोक मे (अयम्) यह (विश्वदेव्य) समस्त अच्छे गुणो के योग्य (समुद्रः) समुद्र है और जैसे तुम लोगों मे (स्वाहाकृतस्य) सत्य वाणी से उत्पन्न हुए धर्म के (उचथाय) कहने के लिए (स्वादिष्ठा) अतीव मधुर गुणवाली (धीतिः) बुद्धि (शस्यते) प्रसंनीय होती है (उ) वा जैसे (मे) मेरा (ततम्) बहुत फैला हुआ अर्थात् सबको विदित (अपः) काम (तायते) पालना करता है (तत् उ, पुनः) वैसे फिर तो हम लोगो को (सम्, तृप्णुत) अच्छा तृप्त करो ॥ १॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालंकार है । जैसे समस्त रत्नों से भरा हुआ समुद्र दिव्य गुणयुक्त है वैसे ही धार्मिक पढ़ानेवालो को चाहिए कि मनुष्यों में सत्य काम और अच्छी बुद्धि का प्रचार कर दिव्य गुणो की प्रसिद्धि करें ॥ १ ॥

फिर वे कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतनापाकाः प्राञ्चो मम के चिदापयः ।
सौधन्वनासश्चरितस्य भूमनागच्छत सवितुर्दाशुषो गृहम् ॥२॥

पदार्थ—हे (प्राञ्चः) प्राचीन (अपाकाः) रोटी आदि का स्वयं पाक तथा यज्ञादि कर्म न करनेहारे सन्यासी जनो ! आप जो (के, चित्) कोई जन (मम) मेरे (आपयः) विद्या मे अच्छी प्रकार व्याप्त होने की कामना किये (यत्) जिस (आ भोगयम्) अच्छी प्रकार भोगने के पदार्थों मे प्रशंसित भोग की (इच्छन्त) चाह रहे हैं उनको उसी भोग को (प्र, ऐतन) प्राप्त करो । हे (सौधन्वनासः) धनुष बाण के बांधने वालों मे अतीव चतुरो ! जब तुम (भूमना) बहुत (चरितस्य) किये हुए काम के (सवितुः) ऐश्वर्य से युक्त (दाशुषः) दान करनेवाले के (गृहम्) घर को (आगच्छत) आओ तब जिज्ञासुओ अर्थात् उपदेश सुननेवालों के प्रति सांचे धर्म के ग्रहण करने का उपदेश करो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे गृहस्थ आदि मनुष्यो ! तुम सन्यासियो से सत्य विद्या को पाकर कहीं दान करनेवालों की सभा में जाकर वहां युक्ति से बैठ और निरभिमानता से वर्त्तकर विद्या और विनय का प्रचार करो ॥ २॥

फिर वे कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

तत्सविता वोऽमृतत्वमासुवदगोह्यं यच्छ्रवयन्त ऐतन ।
त्यं चिच्चमसमसुरस्य भक्षणमेकं सन्तमकृणुता चतुर्वयम् ॥३॥

पदार्थ—हे बुद्धिमानो ! तुम जो (सविता) ऐश्वर्य्य का देनेवाला विद्वान् (वः) तुम्हारे लिए (यत्) जिस (अमृतत्वम्) मोक्षभाव के (आ, असुवत्) अच्छे प्रकार ऐश्वर्य्य का योग करे (तत्) उसका (अगोह्यम्) प्रकट (श्रवयन्त) सुनाते हुए सब विद्याओं को (ऐतन) समझाओ (असुरस्य) जो प्राणो मे रम रहा है उस मेघ के (चमसम्) जिस मे सब भोजन करते हैं अर्थात् जिससे उत्पन्न हुए अन्न को सब खाते हैं (त्यम्) उस (भक्षणम्) सूर्य के प्रकाश को निगल जाने के (चित्) समान (चतुर्वयम्) जिसमे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष हैं ऐसे (एकम्) एक (सन्तम्) अपने वर्त्ताव को (अकृणुत) करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जैसे मेघ प्राण की पुष्टि करनेवाले अन्न आदि पदार्थों को देनेवाला होकर सुखी करता है वैसे ही आप लोग विद्या के दान करने वाले होकर विद्यार्थियों को विद्वान् कर सुन्दर उपकार करो ॥ ३ ॥

फिर वे कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः ।
सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः ॥४॥

पदार्थ—जो (सौधन्वना) अच्छे ज्ञानवाले (सूरचक्षसः) अर्थात् जिन का प्रबल ज्ञान है (वाघतः) वा वाणी को अच्छे कहने, सुनने (मर्तासः) मरने और जीनेहारे (ऋभवः) बुद्धिमान् जन (संवत्सरे) वर्ष में (धीतिभिः) निरन्तर पुरुषार्थयुक्त कामों से कार्यसिद्धि का (समपृच्यन्त) सम्बन्ध रखते अर्थात् काम का ढङ्ग रखते हैं वे (तरणित्वेन) शीघ्रता से (विष्ट्वी) व्याप्त होनेवाले (शमी) कामो को करते (सन्तः) हुए (अमृतत्वम्) मोक्षभाव को (आनशुः) प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— जो मनुष्य प्रत्येक क्षण अच्छे-अच्छे पुरुषार्थ करते हैं वे संसार से लेके मोक्ष पर्यन्त पदार्थों को प्राप्त होकर सुखी होते हैं किन्तु आलसी मनुष्य कभी सुखों को नहीं प्राप्त हो सकते ॥ ४ ॥

क्षेत्रमिव वि ममुस्तेजनेनँ एकं पात्रमृभवो जेहमानम् ।
उपस्तुता उपमं नाधमाना अमर्त्येषु श्रव इच्छमानाः ॥५॥३०॥

पदार्थ—जो (उपस्तुताः) तीर आनेवालो से प्रशसा को प्राप्त हुए (नाधमानाः) और लोगो से अपने प्रयोजन से याचे हुए (अमर्त्येषु) अविनाशी पदार्थों मे (श्रवः) अन्न को (इच्छमानाः) चाहते हुए (ऋभवः) बुद्धिमान् जन (तेजनेन) अपनी उत्तेजना से (क्षेत्रमिव) खेत के समान (जेहमानम्) प्रयत्नों को सिद्ध करानेहारे (एकम्) एक (उपमम्) उपमा रूप अर्थात् अति श्रेष्ठ (पात्रम्) ज्ञानो के समूह का (वि, ममुः) विशेष मान करते हैं वे सुख पाते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है । जैसे मनुष्य खेत को जोत, बोय और सम्यक् रक्षा कर उससे अन्न आदि को पाके उसका भोजन कर आनन्दित होते हैं वैसे वेद मे कहे हुए कलाकौशल से प्रशसित यानो को रचकर उनमे बैठ और उन्हें चला और एक देश से दूसरे देश मे जाकर व्यवहार वा राज्य से धन को पाकर सुखी होते हैं ॥५॥

अब सूर्य्य की किरणें कैसी हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

आ मनीषामन्तरिक्षस्य नृभ्यः स्रुचेव घृतं जुहवाम विद्मना ।
तरणित्वा ये पितुरस्य सश्चिर ऋभवो वाजमरुहन्दिवो रजः ॥६॥

पदार्थ—(ये) जो (ऋभवः) सूर्य्य की किरणें (तरणित्वा) शीघ्रता से (वाजम्) पृथिवी आदि अन्न पर (अरुहन्) चढ़तीं और (दिवः) प्रकाशयुक्त आकाश के बीच (रजः) लोकसमूह को (सश्चिरे) प्राप्त होती हैं और (अस्य) इस (अन्तरिक्षस्य) आकाश के बीच वर्त्तमान हुई (नृभ्यः) मनुष्यो के लिए (स्रुचेव) जैसे होम करने के पात्र से घृत को छोड़ें वैसे (घृतम्) जल तथा (पितुः) अन्न को प्राप्त कराती हैं उनके सकाश से हम लोग (विद्मना) जिससे विद्वान् सत् असत् का विचार करता है उस ज्ञान से (मनीषाम्) विचार वाली बुद्धि को (आ, जुहवाम) ग्रहण करें ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है । जैसे ये सूर्य की किरणें लोक लोकान्तरों को चढ़कर जल वर्षा और उससे ओषधियो का उत्पन्न कर सब प्राणियों को सुखी करती हैं वैसे राजादि जन प्रजाओ को सुखी करें ॥६॥

फिर श्रेष्ठ विद्वान् हमारे लिए किस से क्या करें यह विषय अगले मन्त्र मे कहा है—

ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीयानृभुर्वाजेभिर्वसुभिर्वसुर्ददिः ।
युष्माकं देवा अवसाहनि प्रियेऽभि तिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम् ॥७॥

पदार्थ—जो (नवीयान्) अतीव नवीन (ऋभुः) बहुत विद्याओ का प्रकाश करनेवाला विद्वान् जैसे (इन्द्रः) सूर्य्य अपने प्रकाश और आकर्षण से सबको आनन्द देता है वैसे (शवसा) विद्या और उत्तम शिक्षा के बल से (नः) हमको सुख देवे वा जो (ऋभुः) धीरबुद्धि आयुर्दा और सभ्यता का प्रकाश करनेवाला (वाजेभिः) विज्ञान, अन्न और संग्रामो से वा (वसुभिः) चक्रवर्त्ती राज्य आदि के धनो से (वसुः) आप सुख मे वसने और (ददिः) दूसरो को सुखो का देनेवाला होता है उससे अपने राज्य के और सेनाजनो के (अवसा) रक्षा आदि व्यवहार के साथ वर्त्तमान (देवाः) विद्या और अच्छी शिक्षा को चाहते हुए हम विद्वान् लोग (प्रिये) प्रीति उत्पन्न करनेवाले (अहनि) दिन मे (असुन्वताम्) अच्छे ऐश्वर्य के विरोधी (युष्माकम्) तुम शत्रुजनो की (पृत्सुतीः) उन सेनाओ के जो कि सम्बन्ध करानेवालो को ऐश्वर्य पहुँचानेवाली हैं (अभि) सम्मुख (तिष्ठेम) स्थिर होवें अर्थात् उनका तिरस्कार करें ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे सूर्य अपने प्रकाश से तेजस्वी समस्त चर और अचर जीवो और समस्त पदार्थों के जीवन कराने से आनन्दित करता है वैसे विद्वान् शूरवीर और विद्वानो में अच्छे विद्वान् के सहायों से युक्त हम लोग अच्छी शिक्षा की हुई, प्रसन्न और पुष्ट अपनी सेनाओ से जो सेना को लिये हुए हैं उन शत्रुओ का तिरस्कार कर धार्मिक प्रजाजनो को पाल चक्रवर्त्ति राज्य को निरन्तर सेवें ॥७॥

फिर वे विद्वान् क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

निश्चर्मण ऋभवो गामपिंशत सं वत्सेनासृजता मातरं पुनः ।
सौधन्वनासः स्वपस्यया नरो जिव्री युवाना पितराकृणोतन ॥८॥

पदार्थ—हे (ऋभवः) बुद्धिमान् मनुष्यो ! तुम (चर्मणः) चाम से (गाम्) गौ को (निरपिंशत) निरन्तर अवयवी करो अर्थात् उसके चाम आदि को खिलाने-पिलाने से पुष्ट करो (पुनः) फिर (वत्सेन) उसके बछड़े के साथ

(मातरम्) उस माता गौ को (सचाभुवम्) युक्त करो। हे (सौधन्वनाः) धनुर्वेदविद्याकुशल (नरः) और व्यवहारों को यथायोग्य वर्त्तनेवाले विद्वानो ! तुम (स्वपस्यया) सुन्दर जिसमें काम बने उस चतुराई से (जिव्री) अच्छे जीवनयुक्त बुड्ढे (पितरा) अपने माँ-बाप को (युवाना) युवावस्थावालों के सदृश (अकृणोतन) निरन्तर करो ॥८॥

भावार्थ—पिछले कहे हुए काम के विना कोई भी राज्य नहीं कर सकते इससे मनुष्यों को चाहिए कि उन कामों का सदा अनुष्ठान किया करें ॥८॥

अब सेनाध्यक्ष कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

वाजेभिर्नो वाजसातावविड्ढ्यृभुमाँ इन्द्र चित्रमा दर्षि राधः ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥९॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य्ययुक्त सेनाध्यक्ष ! (ऋभुमान्) जिनके प्रशंसित बुद्धिमान्जन विद्यमान हैं वे आप (नः) हमारे लिए जिस (राधः) धन को (मित्रः) सुहृज्जन (वरुणः) श्रेष्ठ गुणयुक्त (अदितिः) अन्तरिक्ष (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौः) सूर्य्य का प्रकाश (मामहन्ताम्) बढ़ावें (तत्) उस (चित्रम्) अद्भुत धन को (आदर्षि) व्याप्त हूजिए अर्थात् सब प्रकार समझिए और (नः) हम लोगों को (वाजेभिः) अन्नादि सामग्रियों से (वाजसातौ) संग्राम में (अविड्ढि) आदरयुक्त कीजिए ॥९॥

भावार्थ—कोई सेनाध्यक्ष बुद्धिमानों के सहाय के विना शत्रुओं को जीत नहीं सकता ॥९॥

इस सूक्त में बुद्धिमानों के काम और गुणों का वर्णन है इससे इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह इकतीसवाँ वर्ग और एकसौ दशवाँ सूक्त पूरा हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्यैकादशोत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः ।
ऋभवो देवता. । १-४ जगती छन्दः । निषादः स्वरः ।
५ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

अब एकसौ ग्यारहवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में शिल्पविद्या में चतुर बुद्धिमान् क्या करें यह उपदेश किया है—

तक्षन्रथं सुवृतं विद्मनापसस्तक्षन्हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू ।

तक्षन्पितृभ्यामृभवो युवद्वयस्तक्षन्वत्साय मातरं सचाभुवम् ॥१॥

पदार्थ—जो (पितृभ्याम्) स्वामी और शिक्षा करनेवालों से युक्त (विद्मनापसः) जिनके अति विचारयुक्त कर्म हों वे (ऋभवः) क्रिया में चतुर मेधावीजन (वृषण्वसू) जिनमें विद्या और शिल्पक्रिया के बल से युक्त मनुष्य निवास करते-कराते हैं (हरी) उन एक स्थान से दूसरे स्थान को शीघ्र पहुँचाने तथा (इन्द्रवाहा) परमैश्वर्य को प्राप्त करानेवाले जल और अग्नि को (तक्षन्) अति सूक्ष्मता के साथ सिद्ध करें वा (सुवृतम्) अच्छे-अच्छे कोठे पर कोठे युक्त (रथम्) विमान आदि रथ को (तक्षन्) अति सूक्ष्म क्रिया से बनावें वा (वयः) अवस्था को (तक्षन्) विस्तृत करें तथा (वत्साय) सन्तान के लिए (सचाभुवम्) विशेष ज्ञान की भावना कराती हुई (मातरम्) माता का (युवत्) मेल जैसे हो वैसे (तक्षन्) उसे उन्नति देवें वे अधिक ऐश्वर्य को प्राप्त होवें ॥ १ ॥

भावार्थ—विद्वान् जन जब तक इस संसार में कार्य्य के दर्शन और गुणों की परीक्षा से कारण को नहीं पहुँचते हैं तब तक शिल्पविद्या को नहीं सिद्ध कर सकते हैं ॥ १ ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आ नो यज्ञाय तक्षत ऋभुमद्वयः क्रत्वे दक्षाय सुप्रजावतीमिषम् ।

यथा क्षयाम सर्ववीरया विशा तन्नः शर्धाय धासथा स्विन्द्रियम् ॥२॥

पदार्थ—हे बुद्धिमानो ! तुम (नः) हमारी (यज्ञाय) जिससे एक दूसरे से पदार्थ मिलाया जाता है उस शिल्पक्रिया की सिद्धि के लिए वा (क्रत्वे) उत्तम ज्ञान और न्याय के काम और (दक्षाय) बल के लिए (ऋभुमत्) जिसमें प्रशंसित मेधावी अर्थात् बुद्धिमान् जन विद्यमान हैं उस (वयः) जीवन को तथा (सुप्रजावतीम्) जिसमें अच्छी प्रजा विद्यमान हो अर्थात् प्रजाजन प्रसन्न होते हों (इषम्) उस चाहे हुए अन्न को (आतक्षत) अच्छे प्रकार उत्पन्न करो (यथा) जैसे हम लोग (सर्ववीरया) समस्त वीरों से युक्त (विशा) प्रजा के साथ (क्षयाम) निवास करें तुम भी प्रजा के साथ निवास करो वा जैसे हम लोग (शर्धाय) बल के लिए (तत्) उस (सु, इन्द्रियम्) उत्तम विज्ञान और धन को धारण करें वैसे तुम भी (नः) हमारे बल होने के लिए उत्तम ज्ञान और धन को (धासथ) धारण करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस संसार में विद्वानों के साथ अविद्वान् और अविद्वानों के साथ विद्वान् जन प्रीति से नित्य अपना वर्त्ताव रक्खें इस काम के विना शिल्पविद्यासिद्धि, उत्तम बुद्धि-बल और श्रेष्ठ प्रजाजन कभी नहीं हो सकते ॥ २ ॥

फिर वे क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आ तक्षत सातिमस्मभ्यमृभवः सातिं रथाय सातिमर्वते नरः ।

सातिं नो जैत्रीं सं महेत विश्वहा जामिमजामिं पृतनासु सक्षणिम् ॥३॥

पदार्थ—हे (ऋभवः) शिल्पक्रिया में अति चतुर (नरः) मनुष्यो ! तुम (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए (विश्वहा) सब दिन (रथाय) विमान आदि यानसमूह की सिद्धि के लिए (सातिम्) अलग विभाग करना और (अर्वते) उत्तम अश्व के लिए (सातिम्) अलग-अलग घोड़ों की सिखावट को (आ, तक्षत) सब प्रकार से सिद्ध करो और (पृतनासु) सेनाओं में (सातिम्) विभागादि उत्तम-उत्तम पदार्थ वा (जामिम्) प्रसिद्ध और (अजामिम्) अप्रसिद्ध (सक्षणिम्) सहन करनेवाले शत्रु को जीतके (नः) हमारे लिए (जैत्रीम्) जीत देनेहारी (सातिम्) उत्तम भक्ति को (सम्, महेत) अच्छे प्रकार प्रशंसित करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन हमारी रक्षा करने और शत्रुओं को जीतनेहारे हैं उनका सत्कार हम लोग निरन्तर करें ॥ ३ ॥

इनका किस लिए हम सत्कार करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

ऋभुक्षणमिन्द्रमा हुव ऊतय ऋभून्वाजान्मरुतः सोमपीतये ।

उभा मित्रावरुणा नूनमश्विना ते नो हिन्वन्तु सातये धिये जिषे ॥४॥

पदार्थ—मैं (ऊतये) रक्षा आदि व्यवहार के लिए (ऋभुक्षणम्) जो बुद्धिमानों को बसाता वा समझाता है उस (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्त उत्तम बुद्धिमान् को (आहुवे) अच्छी प्रकार स्वीकार करता हूँ । मैं (सोमपीतये) पदार्थों के निकाले हुए रस के पिलानेहारे यज्ञ के लिए (वाजान्) जो कि अतीव ज्ञानवान् (मरुतः) और ऋतु-ऋतु में अर्थात् समय-समय पर यज्ञ करने वा करानेहारे (ऋभून्) ऋत्विज् हैं उन बुद्धिमानों को स्वीकार करता हूँ मैं (उभा) दोनों (मित्रावरुणा) सबके मित्र, सबसे श्रेष्ठ (अश्विना) समस्त अच्छे-अच्छे गुणों में रहनेहारे पढ़ने और पढ़ानेहारों को स्वीकार करता हूँ जो (धिये) उत्तम बुद्धि पाने के के लिए (सातये) या बाँट-चूँट के लिए वा (जिषे) शत्रुओं के जीतने को (नः) हम लोगों के समझाने वा बढ़ाने को समर्थ हैं (ते) विद्वान् जन हम लोगों को (नूनम्) एक निश्चय से (हिन्वन्तु) बढ़ावें और समझावें ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो शास्त्र में दक्ष, सत्यवादी, क्रियाओं में अति चतुर और विद्वानों का सेवन करते हैं वे अच्छी शिक्षायुक्त उत्तम बुद्धि को प्राप्त हो और शत्रुओं को जीतकर कैसे न उन्नति को प्राप्त हों ॥ ४ ॥

फिर वह मेधावी श्रेष्ठ विद्वान् क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

ऋभुर्भराय सं शिशातु सातिं समर्यजिद्वाजो अस्माँ अविष्टु ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥५॥

पदार्थ—हे मेधावी (समर्यजित्) संग्रामों के जीतनेवाले (ऋभुः) प्रशंसित विद्वन् ! (वाजः) वेगादि गुणयुक्त आप (भराय) संग्राम के अर्थ आये शत्रुओं का (संशिशातु) अच्छी प्रकार नाश कीजिए (अस्मान्) हम लोगों की (अविष्टु) रक्षा आदि कीजिए जैसे (नः) हम लोगों के लिए जो (मित्रः) मित्र (वरुणः) उत्तम गुणवाला (अदितिः) विद्वान् (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौः) सूर्य्य का प्रकाश (मामहन्ताम्) सिद्ध करें उन्नति देवें वैसे ही आप (तत्) उस (सातिम्) पदार्थों के अलग-अलग करने को हम लोगों के लिए सिद्ध कीजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—विद्वानों का यही मुख्य कार्य्य है कि जो जिज्ञासु अर्थात् ज्ञान चाहने वाले विद्या के न पढ़े हुए विद्यार्थियों को अच्छी शिक्षा और विद्यादान से बढ़ावें जैसे मित्र आदि सज्जन वा प्राण आदि पवन सब की वृद्धि करके उन को सुखी करते हैं वैसे ही विद्वान् जन भी अपना वर्त्ताव रक्खें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में बुद्धिमानों के गुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह बत्तीसवाँ वर्ग और एकसौ ग्यारहवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चविंशत्यर्चस्य द्वादशोत्तरशततमस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । आदिमे मन्त्रे प्रथमपादस्य द्यावापृथिव्यौ, द्वितीयस्याग्निः, शिष्टस्य सूक्तस्याश्विनौ देवते ।
१, २, ६, ७, १३, १५, १७, १८, २०—२२ निचृज्जगती;
४, ८, ९, ११, १२, १४, १६, २३ जगती ; १९ विराड्
जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ३, ५, २४, विराट् त्रिष्टुप्;
१० भुरिक्त्रिष्टुप्; २५ त्रिष्टुप् च छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब एकसौ बारहवें सूक्त का आरम्भ है । इसके प्रथम मन्त्र में सूर्य्य और भूमि के गुणों का कथन किया है—

ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तयेऽग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये ।

याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) विद्याओं मे व्याप्त होनेवाले अध्यापक और उपदेशक ! आप जैसे (**यामन्**) मार्ग मे (**पूर्वचित्तये**) पूर्व विद्वानो मे संचित किये हुए (**इष्टये**) अभीष्ट सुख के लिए (**द्यावापृथिवी**) सूर्य्य का प्रकाश और भूमि (**याभिः**) जिन (**ऊतिभिः**) रक्षाओ से युक्त (**भरे**) संग्राम मे (**घर्मम्**) प्रतापयुक्त (**शुचम्**) अच्छे प्रकार प्रदीप्त और रुचिकारक (**अत्रिम्**) विद्युत्रूप अग्नि को प्राप्त होते हैं वैसे (**ताभिः**) उन रक्षाओ से (**अंशाय**) भाग के लिए (**कारम्**) जिस में क्रिया करते हैं उस विषय को (**सु, जिन्वथ**) उत्तमता से प्राप्त होते हैं (**उ**) तो कार्य्यसिद्धि करने के लिए (**आ, गतम्**) सदा आवें इस हेतु से मैं (**ईळे**) आप की स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । हे मनुष्यो ! जैसे प्रकाशयुक्त सूर्य्यादि और अन्धकारयुक्त भूमि आदि लोक सब घर आदिकों के चिनने और आधार के लिए होते और बिजुली के साथ सम्बन्ध करके सब के धारण करनेवाले होते हैं वैसे तुम भी प्रजा मे वर्त्ता करो ॥ १ ॥

अब पढ़ाने और उपदेश करनेवालों के विषय में अगले मन्त्रों में कहा है—

युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे ।
याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) पढ़ाने और उपदेश करानेहारे विद्वानो ! (**सुभरा**) जो अच्छे प्रकार धारण वा पोषण करते कि जो अति आनन्द के सिद्ध करानेहारे हैं वा (**असश्चतः**) जो किसी बुरे कर्म और कुसंग मे नहीं मिलते वे सज्जन (**मन्तवे**) विशेष जानने के लिए जैसे (**वचसं, न**) सब ने प्रशंसा के साथ विख्यात किये हुए अत्यन्त बुद्धिमान् जन को प्राप्त होवे वैसे (**युवोः**) आप लोगो के (**रथम्**) जिस विमान आदि यान को (**आ, तस्थुः**) अच्छे प्रकार प्राप्त होकर स्थिर होते हैं उसके साथ (**उ**) और (**याभिः**) जिन से (**धियः**) उत्तम बुद्धियो को (**कर्मन्**) काम के बीच (**इष्टये**) चाहे हुए सुख के लिए (**अवथ**) राखते हैं (**ताभिः**) उन (**ऊतिभिः**) रक्षाओ के साथ तुम (**दानाय**) सुख देने के लिए हम लोगो के प्रति (**सु, आ, गतम्**) अच्छे प्रकार आओ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है । हे मनुष्यो ! जो तुम को उत्तम बुद्धि की प्राप्ति करावें उनकी सब प्रकार से रक्षा करो जैसे आप लोग उन का सेवन करें वैसे ही वे लोग भी तुम को शुभ विद्या का बोध कराया करें ॥ २ ॥

युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना ।
याभिर्धेनुमस्वं पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥३॥

पदार्थ—हे (**नरा**) विद्या व्यवहार मे प्रधान (**अश्विना**) अध्यापक और उपदेशक लोगो ! (**युवम्**) तुम दोनो (**दिव्यस्य**) अतीव शुद्ध (**अमृतस्य**) नाशरहित परमात्मा के (**मज्मना**) अनन्त बल के साथ जो परमात्मा के सम्बन्ध मे प्रजाजन हैं (**तासाम्**) उन (**विशाम्**) प्रजाओ (**प्रशासने**) शिक्षा करने मे (**क्षयथ**) निवास करते हो (**उ**) और (**याभिः**) जिन (**ऊतिभिः**) रक्षाओं (**अस्वम्**) जो दुष्ट काम को न उत्पन्न करती है उस (**धेनुम्**) सब सुख वर्षानेवाली वाणी का (**पिन्वथः**) सेवन करते हो (**ताभिः**) उन रक्षाओं के साथ (**सु, आ, गतम्**) अच्छे प्रकार हम लोगो को प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—वे ही धन्य विद्वान् है जो प्रजाजनो को विद्या, अच्छी शिक्षा और सुख की वृद्धि होने के लिए प्रसन्न करते और उनके शरीर तथा आत्मा के बल को नित्य बढ़ाया करते हैं ॥३॥

फिर वे दोनों कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति ।
याभिस्त्रिमन्तुरभवद्विचक्षणस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥४॥

पदार्थ हे (**अश्विना**) विद्या और उपदेश की प्राप्ति करानेहारे विद्वान् लोगो ! (**याभिः**) जिन से (**द्विमाता**) दोनो अग्नि और जल का प्रमाण करनेवाला (**तूर्षु**) शीघ्र करनेवालो मे (**तरणि**) उछलता-सा अतीव वेगवाला (**परिज्मा**) सर्वत्र गमन करता वायु (**तनयस्य**) अपने से उत्पन्न अग्नि के (**मज्मना**) बल से (**सु, विभूषति**) अच्छे प्रकार सुशोभित होता (**उ**) और (**याभिः**) जिन से (**त्रिमन्तु**) कर्म, उपासना और ज्ञान विद्या को माननेहारा (**विचक्षण**) विविध प्रकार से सब विद्याओ को प्रत्यक्ष करानेहारा (**अभवत्**) होवे (**ताभिः**) उन (**ऊतिभिः**) रक्षाओ से सहित हम सब लोगो को विद्या देने के लिए (**आ, गतम्**) प्राप्त हूजिए ॥४॥

भावार्थ— इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो को योग्य है कि प्राण के समान प्रीति और सन्यासियो के समान उपकार करने से सबके लिए विद्या की उन्नति किया करें ॥४॥

याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्य उद्वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे ।
याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥५॥

पदार्थ—(**अश्विना**) पढ़ाने और उपदेश करनेवालो ! तुम (**याभिः**) जिन (**ऊतिभिः**) रक्षाओ से (**सितम्**) शुद्ध धर्मयुक्त (**निवृतम्**) निरन्तर स्वीकार किये हुए शास्त्रबोध की (**रेभम्**) स्तुति और (**वन्दनम्**) गुणो की प्रशंसा करनेहारे को (**स्वः**) सुख के (**दृशे**) देखने के अर्थ (**अद्भ्यः**) जलो से (**उत्, ऐरयतम्**) प्रेरणा करो और (**याभिः**) जिन से (**सिषासन्तम्**) विभाग कराने की इच्छा करनेहारे (**कण्वम्**) बुद्धिमान् विद्वान् की (**प्र, आवतम्**) रक्षा करो (**ताभिः, उ**) उन्हीं रक्षाओ से हम लोगों के प्रति (**सु, आ, गतम्**) उत्तमता से आइए ॥५॥

भावार्थ— जो मनुष्य विद्वानो की अच्छे प्रकार रक्षाकर उनसे विद्याओ को प्राप्त हो जलादि पदार्थों से शिल्पविद्या को सिद्ध करके बढ़ते हैं वे सब सुखों को प्राप्त होते हैं ॥५॥

याभिरन्तकं जसमानमारणे भुज्युं याभिरव्यथिभिर्जिजिन्वथुः ।
याभिः कर्कन्धुं वय्यं च जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥६॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) सभा सेना के स्वामी विद्वान लोगो ! आप (**याभिः**) जिन (**ऊतिभिः**) रक्षाओं से (**आरणे**) सब ओर से युद्ध होने में (**अन्तकम्**) दु:खों के नाशक और (**जसमानम्**) शत्रुओं को मारते हुए पुरुष और (**याभिः**) जिन (**अव्यथिभिः**) पीड़ा रहित आनन्दकारक रक्षाओं से (**भुज्युम्**) पालनेहारे पुरुष को (**जिजिन्वथुः**) प्रसन्न करते (**च**) और (**याभिः**) जिन रक्षाओं से (**कर्कन्धुम्**) कारीगरी करनेहारे (**वय्यम्**) ज्ञाता पुरुष को (**जिन्वथ**) प्रसन्नता करते हो (**ताभिः, उ**) उन्ही रक्षाओ के साथ हम लोगों के प्रति (**सु, आ, गतम्**) अच्छे प्रकार आइए ॥६॥

भावार्थ—रक्षा करनेवाले और अधिष्ठाताओ के बिना योद्धा लोग शत्रुओं के साथ संग्राम मे युद्ध करने और प्रजाओ के पालने को समर्थ नहीं हो सकते जो प्रबन्ध से विद्वानो की रक्षा नही करते वे पराजय को प्राप्त होकर राज्य करने को समर्थ नही होते ॥६॥

याभिः शुचन्तिं धनसां सुषंसदं तप्तं घर्ममोम्यावन्तमत्रये ।
याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥७॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) उपदेश करने और पढ़ानेवाला ! तुम दोनों (**याभिः**) जिन (**ऊतिभिः**) रक्षाओ से (**अत्रये**) जिसमे आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दु:ख नहीं हैं उस व्यवहार के लिए (**शुचन्तिम्**) पवित्रकारक (**धनसाम्**) धन के विभागकर्त्ता (**सुषंसदम्**) अच्छी सभावाले (**तप्तम्**) ऐश्वर्ययुक्त (**घर्मम्**) उत्तम यज्ञवान् (**ओम्यावन्तम्**) रक्षको को प्राप्त होनेहारे पुरुष प्रशंसित जिसके हैं उस की और (**याभिः**) जिन रक्षाओं से (**पृश्निगुम्**) विमानादि से अन्तरिक्ष मे जानेहारे (**पुरुकुत्सम्**) बहुत शस्त्राऽस्त्रयुक्त पुरुष की (**आवतम्**) रक्षा करें (**ताभिः, उ**) उन्ही रक्षाओ से हम लोगों को (**सु, आ, गतम्**) उत्तमता से प्राप्त हूजिए ॥७॥

भावार्थ – विद्वानो को योग्य है कि धर्मात्माओ की रक्षा और दुष्टो की ताडना से सत्यविद्याओ का प्रकाश करें ॥७॥

अब सभा और सेना के अध्यक्ष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः ।
याभिर्वर्तिकां ग्रसिताममुञ्चतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥८॥

पदार्थ—हे (**वृषणा**) सुख के वर्षानेहारे (**अश्विना**) सभा और सेना के अधीशो ! तुम (**याभिः**) जिन (**शचीभिः**) रक्षा सम्बन्धी कामो और प्रजाओं से (**परावृजम्**) विरोध करनेहारे (**अन्धम्**) अविद्यान्धकारयुक्त (**श्रोणम्**) बधिर के तुल्य वर्त्तमान पुरुष को (**चक्षसे**) विद्यायुक्त वाणी के प्रकाश के लिए (**एतवे**) शुभ विद्या प्राप्त होने को (**प्र, कृथ**) अच्छे प्रकार योग्य करो और (**याभिः**) जिन रक्षाओ से (**ग्रसिताम्**) निगली हुई (**वर्तिकाम्**) छोटी चिड़िया के समान प्रजा को दु:खो से (**अमुञ्चतम्**) छुड़ाओ (**ताभिः**) उन्हीं (**ऊतिभिः**) रक्षाओं से हम लोगो को (**सु, आ, गतम्**) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिए ॥८॥

भावार्थ—सभा और सेना के पति को योग्य है कि अपनी विद्या और धर्म के आश्रय से प्रजाओ मे विद्या और विनय का प्रचार करके अविद्या और अधर्म के निवारण से सब प्राणियो को अभयदान निरन्तर किया करें ॥८॥

फिर वे दोनों क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम् ।
याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥९॥

पदार्थ – हे (**अश्विना**) विद्या पढ़ाने और उपदेश करनेवाले (**अजरौ**) जरावस्था रहित विद्वानो ! तुम (**याभिः**) जिन (**ऊतिभिः**) रक्षाओं से (**मधुमन्तम्**) मधुर गुणयुक्त (**सिन्धुम्**) समुद्र को (**असश्चतम्**) जानो वा (**याभिः**) जिन रक्षाओ से (**वसिष्ठम्**) जो अत्यन्त धर्मादि कर्मों मे बसनेवाला उसकी (**अजिन्वतम्**) प्रसन्नता करो वा (**याभिः**) जिनसे (**कुत्सम्**) वज्र लिये हुए (**श्रुतर्यम्**) श्रवण से अतिश्रेष्ठ (**नर्यम्**) मनुष्यों में अत्युत्तम पुरुष को (**आवतम्**) रक्षा करो (**ताभिः**) उन्ही रक्षाओ के साथ हमारी रक्षा के लिए (**स्वागतम्**) अच्छे प्रकार आया कीजिए ॥९॥

भावार्थ—मनुष्यो को योग्य है कि यज्ञविधि से सब पदार्थों को अच्छे प्रकार शोधन कर सबका सेवन और रोगो का निवारण करके सदैव सुखी रहें ॥९॥

फिर वे दोनों कैसे हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं सहस्रमीळ्ह आजावजिन्वतम् ।
याभिर्वशमश्व्यं प्रेणिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१०॥

पदार्थ—हे (अश्विना) सेना और युद्ध के अधिकारी लोगो ! (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (सहस्रमीळ्हे) असंख्य पराक्रमादि धन जिसमें हैं उस (आजौ) संग्राम में (विश्पलाम्) प्रजा के पालन करनेहारों को ग्रहण करने (धनसाम्) और पुष्कल धन देनेहारी (अथर्व्यम्) न नष्ट करने योग्य अपनी सेना को (अजिन्वतम्) प्रसन्न करो वा (याभिः) जिन रक्षाओं से (वशम्) मनोहर (प्रेणिम्) और शत्रुओं के नाश के लिए प्रेरणा करने योग्य (अश्व्यम्) घोड़ों वा अग्न्यादि पदार्थों के वेगों में उत्तम की (आवतम्) रक्षा करो (ताभिः) उन्हीं रक्षाओं के साथ प्रजापालन के लिए (स्वागतम्) अच्छे प्रकार आया कीजिए ॥१०॥

भावार्थ—मनुष्यों को यह अवश्य जानना चाहिए कि शरीर, आत्मा की पुष्टि और अच्छे प्रकार शिक्षा की हुई सेना के विना युद्ध में विजय और विजय के विना प्रजापालन, धन का संचय और राज्य की वृद्धि होने को योग्य नहीं है ॥१०॥

फिर वे दोनों किसके लिए क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत् ।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥११॥

पदार्थ—हे (सुदानू) अच्छे प्रकार दान करनेवाले (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक विद्वानो ! (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (दीर्घश्रवसे) जिसके बड़े-बड़े विद्यादि पदार्थ, अन्न और धन विद्यमान उस (वणिजे) व्यवहार करनेवाले (औशिजाय) उत्तम बुद्धिमान् के पुत्र के लिए (कोशः) मेघ (मधु) मधुर गुणयुक्त जल को (अक्षरत्) वर्षता वा तुम (याभिः) जिन रक्षाओं से (कक्षीवन्तम्) उत्तम सहाय से युक्त (स्तोतारम्) विद्या के गुणों की प्रशंसा करनेवाले जन की (आवतम्) रक्षा करो (ताभिः) उन्हीं रक्षाओं से सहित हमारी रक्षा करने को (स्वागतम्) अच्छे प्रकार शीघ्र आया कीजिए ॥११॥

भावार्थ—राजपुरुषों को योग्य है कि जो द्वीप-द्वीपान्तर और देशदेशान्तर में व्यापार करने के लिए जावें-आवें उनकी रक्षा का प्रयत्न करें ॥११॥

अब शिल्प-दृष्टान्त से सभापति और सेनापति के काम का उपदेश किया है—

याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथुरनश्वं याभी रथमावतं जिषे ।
याभिस्त्रिशोक उस्रिया उदाजत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१२॥

पदार्थ—हे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशको ! आप दोनों (याभिः) जिन शिल्पक्रियाओं से (उद्नः) जल के (क्षोदसा) प्रवाह के साथ (रसाम्) जिसमें प्रशंसित जल विद्यमान हो उस नदी को (पिपिन्वथुः) पूरी करो अर्थात् नहर आदि के प्रबन्ध से उसमें जल पहुँचाओ वा (याभिः) जिन आने-जाने की चालों से (जिषे) शत्रुओं को जीतने के लिए (अनश्वम्) विन घोड़ों के (रथम्) विमान आदि रथसमूह को (आवतम्) राखो वा (याभिः) जिन सेनाओं से (त्रिशोक) जिनको दुष्टगुण, कर्म, स्वभावों में शोक है वह विद्वान् (उस्रियाः) किरणों में हुए विद्युत् अग्नि की चिलकों को (उदाजत) ऊपर को पहुँचावे (ताभिः) उन्हीं (ऊतिभिः) सब रक्षारूप उक्त वस्तुओं से (स्वागतम्) हम लोगों के प्रति अच्छे प्रकार आइए ॥१२॥

भावार्थ—जैसे सब शिल्पशास्त्रों में चतुर विद्वान् विमानादि यानों में कलायन्त्रों को रचके उनमें जल, विद्युत आदि का प्रयोग कर यन्त्र से कलाओं को चला अपने अभीष्ट स्थान में जाना-आना करता है वैसे ही सभा सेना के पति किया करें ॥१२॥

फिर वे किसके समान क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

याभिः सूर्यं परियाथः परावति मन्धातारं क्षैत्रपत्येष्वावतम् ।
याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१३॥

पदार्थ—हे (अश्विना) शिल्पविद्या के स्वामी और भृत्यो ! तुम दोनों (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रथादि से (परावति) दूर देश में (सूर्यम्) प्रकाशमान सूर्य के समान (मन्धातारम्) विमानादि यान से शीघ्र दूर देश को पहुँचानेवाले बुद्धिमान् को (परियाथः) सब ओर से पर्याप्त होओ (याभिः) जिन रक्षाओं से (क्षैत्रपत्येषु) माण्डलिक राजाओं के काम में उसकी (आवतम्) रक्षा करो और (भरद्वाजम्) विद्या सद्गुणों के धारण करनेवालों को समझानेवाले (विप्रम्) मेधावी पुरुष की (प्रावतम्) अच्छे प्रकार रक्षा करो (ताभिः, उ) उन्हीं रक्षाओं से हम लोगों के प्रति (सु, आ, गतम्) प्राप्त हूजिए ॥१३॥

भावार्थ—व्यवहार करनेवाले मनुष्यों से विमानादि यानों के विना दूसरे देशों में जाना-आना नहीं हो सकता इससे बड़ा लाभ नहीं हो सकता इस कारण नाव विमानादि की रचना अवश्य सदा करनी चाहिए ॥ १३ ॥

अब प्रजा सेनाजन और सभाध्यक्ष को परस्पर क्या-क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रमें कहा है—

याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शम्बरहत्य आवतम् ।
याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१४॥

पदार्थ—हे (अश्विना) राजा और प्रजा में शूरवीर पुरुषो ! तुम दोनों (शम्बरहत्ये) सेना वा दूसरे के बल पराक्रम का मारना जिसमें हो उस युद्धादि व्यवहार में (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (महाम्) बड़े प्रशंसनीय (तिथिग्वम्) अतिथियों को प्राप्त होने (कशोजुवम्) जलों को चलाने और (दिवोदासम्) दिव्य विद्यारूप क्रियाओं के देनेवाले सेनापति की (आवतम्) रक्षा करो वा जिन रक्षाओं से (पूर्भिद्ये) शत्रुओं के नगर विदीर्ण हों जिससे उस संग्राम में (त्रसदस्युम्) डाकुओं से डरे हुए श्रेष्ठ जन की (आवतम्) रक्षा करो । (ताभिः) उन्हीं रक्षाओं से हमारी रक्षा के लिए (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार आइए ॥ १४ ॥

भावार्थ—प्रजा और सेना के मनुष्यों को योग्य है कि सब विद्या में निपुण, धार्मिक पुरुष को सभापति कर उसकी सब प्रकार रक्षा करके सबको भय देनेवाले दुष्ट डाकू को मारके आप सुखों को प्राप्त हों और सबको सुखी करें ॥ १४ ॥

मनुष्यों को वैद्य और शिल्पविद्या में पुरुषार्थ रखनेवाले जन किस लिए सेवन करने योग्य हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

याभिर्वम्रं विपिपानमुपस्तुतं कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः ।
याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१५॥

पदार्थ—हे (अश्विना) राज-प्रजाजनो ! तुम (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (विपिपानम्) विशेषकर ओषधियों के रसों को जो पीने के स्वभाववाला (उपस्तुतम्) आगे प्रतीत हुए गुणों से प्रशंसा को प्राप्त (कलिम्) जो सब दुःखों से दूर करने वा ज्योतिष शास्त्रोक्त गणितविद्या को जाननेवाला (वित्तजानिम्) और जिसने हृदय को प्रिय, सुन्दर स्त्री पाई हो उस (वम्रम्) रोग निवृत्ति करने के लिए वमन करते हुए पुरुष की (दुवस्यथः) सेवा करो (याभिः) वा जिन रक्षाओं से (व्यश्वम्) विविध घोड़े वा अग्न्यादि पदार्थों से युक्त सेना वा यान की सेवा करो (उत) और (याभिः) जिन रक्षाओं से (पृथिम्) विशाल बुद्धिवाले पुरुष की (आवतम्) रक्षा करो (ताभिः, उ) उन्हीं से आरोग्य को (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार सब ओर से प्राप्त हूजिए ॥ १५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि सद्वैद्यों के द्वारा उत्तम ओषधियों के सेवन से रोगों का निवारण, बल और बुद्धि को बढ़ा, सेना के अध्यक्ष और विस्तृत पुरुषार्थयुक्त शिल्पिजन की सम्यक् सेवा कर शरीर और आत्मा के सुखों को प्राप्त होवें ॥ १५ ॥

अब अध्यापक और उपदेशकों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

याभिर्नरा शयवे याभिरत्रये याभिः पुरा मनवे गातुमीषथुः ।
याभिः शारीराजतं स्यूमरश्मये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१६॥

पदार्थ—हे (नरा) उत्तम कार्य्य में प्रवृत्ति करानेवाले (अश्विना) सब विद्याओं के पढ़ाने और उपदेश करनेवाले विद्वान् लोगो ! तुम दोनों (पुरा) प्रथम (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (शयवे) सुख से शयन करनेवाले को शान्ति वा (याभिः) जिन रक्षाओं से (अत्रये) शरीर, मन, वाणी के दोषों से रहित पुरुष के लिए सब सुख और (याभिः) जिन रक्षाओं से (मनवे) मननशील पुरुष के लिए (गातुम्) पृथिवी वा उत्तम वाणी को (ईषथुः) प्राप्त कराने की इच्छा करो वा (याभिः) जिन रक्षाओं से (स्यूमरश्मये) सूर्यवत् संयुक्त न्याय प्रकाश करनेवाले पुरुष के लिए सुख की इच्छा करो वा जिनमें शत्रुओं को (शारीः) बाणों की गतियों को (आजतम्) प्राप्त कराओ (ताभिः) उन्हीं रक्षाओं से अपनी सेनाओं की रक्षाओं के लिए (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार उत्साह को प्राप्त हूजिए ॥ १६ ॥

भावार्थ—अध्यापक और उपदेष्टाओं को यह योग्य है कि विद्या और धर्म के उपदेश से सब जनों को विद्वान्, धार्मिक करके पुरुषार्थयुक्त निरन्तर किया करें ॥ १६ ॥

अब सभापति और सेनापति को कैसा अनुष्ठान करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मनाग्निर्नादीदेच्चित इद्धो अज्मन्ना ।
याभिः शर्यातमवथो महाधने ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१७॥

पदार्थ—हे (अश्विना) सभा और सेना के अधीश ! तुम दोनों (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (पठर्वा) पढ़नेवाले विद्यार्थियों को जो प्राप्त होता वा (मज्मना) बल से (जठरस्य) उदर के मध्य (चितः) सञ्चित किये (इद्धः) प्रदीप्त (अग्निः) अग्नि के (न) समान (अज्मन्) जिसमें शत्रुओं को गिराते हैं उस बड़े-बड़े धन की प्राप्ति करानेहारे युद्ध में (आ, अदीदेत्) अच्छे प्रदीप्त होवें वा (याभिः) जिन रक्षाओं के (शर्यातम्) हिंसा करनेहारे प्राप्त पुरुष की (अवथः) रक्षा करो (ताभिः) उन्हीं रक्षाओं से प्रजा सेना की रक्षा के लिए (सु, आ, गतम्) आया-जाया कीजिए ॥ १७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जैसे कोई शौर्यादि गुणों से शोभायमान राजा रक्षणीय की रक्षा करे और मारने योग्यों को मारे और जैसे अग्नि वन का दाह करे वैसे शत्रु की सेना को भस्म करे और शत्रुओं के बड़े-बड़े धनों को प्राप्त कराकर आनन्दित करावे वैसे ही सभा और सेना के पति काम किया करें ॥ १७ ॥

अब सब राजजनों को किस के तुल्य सुख भोगने चाहिएं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथोऽग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः ।
याभिर्मनुं शूरमिषा समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१८॥

पदार्थ—हे (**अङ्गिर**) जाननहारे विद्वन् ! तू (**मनसा**) विज्ञान से विद्या और धर्म्म का सब को बोध करा। हे (**अश्विना**) सेना के पालन और युद्ध करानहारे जन ! तुम (**याभिः**) जिन (**ऊतिभिः**) रक्षाओं के साथ (**गोअर्णसः**) पृथिवी जल के (**विवरे**) अवकाश में (**निरण्यथः**) संग्राम करते और (**अग्रम्**) उत्तम विजय को (**गच्छथः**) प्राप्त होते वा (**याभिः**) जिन रक्षाओं से (**शूरम्**) शूरवीर (**मनुम्**) मननशील मनुष्य को (**समावतम्**) सम्यक् रक्षा करो (**ताभिः**) उन्हीं रक्षा और (**इषा**) इच्छा से हमारी रक्षा के लिए (**सु, आ, गतम्**) उचित समय पर आया कीजिए ॥ १८ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् विज्ञान से सब सुखों को सिद्ध करता है वैसे सब राजपुरुषों को अनेक साधनों से पृथिवी, नदी और समुद्र से आकाश के मध्य में शत्रुओं को जीतके सुखों को अच्छे प्रकार प्राप्त होना चाहिए ॥ १८ ॥

अब स्त्री-पुरुष को कैसे और कब विवाह करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा घ वा याभिररुणीरशिक्षतम् ।
याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्यं१ ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१९॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) पढ़ने-पढ़ानहारे ब्रह्मचारी लोगो ! तुम (**याभिः**) जिन (**ऊतिभिः**) रक्षाओं से (**विमदाय**) विविध आनन्द के लिए (**पत्नीः**) पति के साथ यज्ञसम्बन्ध करनेवाली विदुषी स्त्रियों को (**न्यूहथुः**) निश्चय से ग्रहण करो (**वा**) वा (**याभिः**) जिन रक्षाओं से (**अरुणीः**) ब्रह्मचारिणी कन्याओं को (**घ**) ही (**आ, अशिक्षतम्**) अच्छे प्रकार शिक्षा करो और (**याभिः**) जिन रक्षादि क्रियाओं से (**सुदासे**) अच्छे प्रकार दान करने में (**सुदेव्यम्**) उत्तम विद्वानों में उत्पन्न हुए विज्ञान को (**ऊहथुः**) प्राप्त कराओ (**ताभिः**) उन रक्षाओं से विद्या (**उ**) और विनय को (**सु, आ, गतम्**) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिए ॥ १९ ॥

भावार्थ—सुख पाने की इच्छा करनेवाले पुरुष और स्त्रियों को धर्म से सेवित, ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या और युवावस्था को प्राप्त होकर अपनी तुल्यता से ही विवाह करना योग्य है अथवा ब्रह्मचर्य ही में ठहरके सर्वदा स्त्री पुरुषों को अच्छी शिक्षा करना योग्य है क्योंकि तुल्य गुणकर्मस्वभाव वाले स्त्री-पुरुषों के बिना गृहाश्रम को धारण करके कोई किञ्चित् भी सुख वा उत्तम सन्तान को प्राप्त होने में समर्थ नहीं होते इससे इसी प्रकार विवाह करना चाहिए ॥ १९ ॥

अब सभाध्यक्ष आदि राजपुरुषों को कैसा होना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

याभिः शन्ताती भवथो ददाशुषे भुज्युं याभिरवथो याभिरध्रिगुम् ।
ओम्यावतीं सुभरामृतस्तुभं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२०॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) सभा और सेना के अधीशो ! तुम दोनों (**ददाशुषे**) विद्या और सुख देनेवाले के लिए (**याभिः**) जिन (**ऊतिभिः**) रक्षा आदि क्रियाओं से (**शन्ताती**) सुख के कर्त्ता (**भवथः**) होते वा (**याभिः**) जिन रक्षाओं में (**भुज्युम्**) सुख के भोक्ता वा पालन करनेहारे की (**अवथः**) रक्षा करते वा (**याभिः**) जिन रक्षाओं से (**अध्रिगुम्**) परमैश्वर्यवाले इन्द्र और (**ओम्यावतीम्**) रक्षा करनेहारे विद्वानों में उत्पन्न जो उत्तम क्रिया उससे युक्त (**सुभराम्**) जिस से कि अच्छे प्रकार सुखों का (**ऋतस्तुभम्**) और सत्य का धारण होता है उस नीति की रक्षा करते हो (**ताभिः**) उन्हीं रक्षाओं से सत्य को (**सु, आ, गतम्**) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥ २० ॥

भावार्थ—राजादि राजपुरुषों को योग्य है कि सब को सुख देवें और आप्त पुरुषों की विद्या और नीति को धारण कर कल्याण को प्राप्त होवें ॥ २० ॥

फिर उन लोगों को क्या-क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

याभिः कृशानुमसने दुवस्यथो जवे याभिर्यूनो अर्वन्तमावतम् ।
मधु प्रियं भरथो यत्सरड्भ्यस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२१॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) सभा और सेना के अधीशो ! तुम दोनों (**याभिः**) जिन (**ऊतिभिः**) रक्षादि क्रियाओं से (**असने**) फेंकने में (**कृशानुम्**) दुर्बल की (**दुवस्यथः**) सेवा करो वा (**याभिः**) जिन रक्षाओं से (**जवे**) वेग में (**यूनः**) युवावस्था युक्त वीरों (**अर्वन्तम्**) और घोड़े की (**आवतम्**) रक्षा करो (**उ**) और (**सरड्भ्यः**) युद्ध में विजय करनेवाले सेनादि जनों से (**यत्**) जो (**प्रियम्**) कामना के योग्य है उस मधु मीठे अन्न आदि पदार्थ को (**भरथः**) धारण करो (**ताभिः**) उन रक्षाओं से युक्त होकर राज्यपालन के लिए (**सु, आ, गतम्**) अच्छे प्रकार आया कीजिए ॥ २१ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को योग्य है कि दुःखों से पीड़ित प्राणियों और युवावस्था वाले स्त्री पुरुषों की व्यभिचार से रक्षा करें और घोड़े आदि सेना के अङ्गों की रक्षा के लिए सब प्रिय वस्तु को धारण करें प्रतिक्षण सम्हाल से सब को बढ़ाया करें ॥ २१ ॥

फिर उनको युद्ध में कैसा आचरण करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

याभिर्नरं गोषुयुधं नृषाह्ये क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वथः ।
याभी रथाँ अवथो याभिरर्वतस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२२॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) सभासेना के अध्यक्ष ! तुम दोनों (**नृषाह्ये**) वीरों को सहन और (**साता**) सेवन करने योग्य संग्राम में (**याभिः**) जिन (**ऊतिभिः**) रक्षाओं से (**गोषुयुधम्**) पृथिवी पर युद्ध करनेहारे (**नरम्**) नायक को (**जिन्वथः**) प्रसन्न करो (**याभिः**) वा जिन रक्षाओं से (**क्षेत्रस्य**) स्त्री और (**तनयस्य**) सन्तान को प्रसन्न रक्खो (**उ**) और (**याभिः**) जिन रक्षाओं से (**रथान्**) रथों (**अर्वतः**) और घोड़ों की (**अवथः**) रक्षा करो (**ताभिः**) उन रक्षाओं से सब प्रजाओं की रक्षा करने को (**सु, आ, गतम्**) अच्छे प्रकार प्रवृत्त हूजिए ॥ २२ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि युद्ध में शत्रुओं को मार अपने भृत्य आदि की रक्षा करके सेना के अङ्गों को बढ़ावें और स्त्री, बालकों, युद्ध के देखनेवाले और दूतों को कभी न मारें ॥ २२ ॥

अब वे राजजन दुष्टों की निवृत्ति और श्रेष्ठों की रक्षा कैसे करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिमावतम् ।
याभिर्ध्वसन्तिं पुरुषन्तिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२३॥

पदार्थ—हे (**शतक्रतू**) असंख्योत्तम बुद्धिकर्मयुक्त (**अश्विना**) सभा सेना के पति ! आप दोनों (**याभिः**) जिन (**ऊतिभिः**) रक्षा आदि से सूर्य-चन्द्रमा के समान प्रकाशमान होकर (**आर्जुनेयम्**) सुन्दर रूप के साथ सिद्ध किये हुए (**कुत्सम्**) वज्र का ग्रहण करके (**तुर्वीतिम्**) हिंसक (**दभीतिम्**) दम्भी (**ध्वसन्तिम्**) नीच गति को जानेवाले पापी को (**प्र, आवतम्**) अच्छे प्रकार मारो (**च**) और (**याभिः**) जिन रक्षाओं से (**पुरुषन्तिम्**) बहुतों को अलग बाँटनेवाले की (**प्र, आवतम्**) रक्षा करो (**ताभिः, उ**) उन्हीं रक्षाओं से धर्म की रक्षा करने को (**सु, आ, गतम्**) अच्छे प्रकार तत्पर हूजिए ॥ २३ ॥

भावार्थ—राजादि मनुष्यों को योग्य है कि शस्त्रास्त्र के प्रयोगों को जान, दुष्ट शत्रुओं का निवारण करके जितने इस संसार में अधर्मयुक्त कर्म हैं उतनों का धर्म्मोपदेश से निवारण कर नाना प्रकार की रक्षा का विधान कर प्रजा का अच्छे प्रकार पालन करके परम आनन्द का भोग किया करें ॥ २३ ॥

अध्यापक और उपदेशकों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम् ।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥२४॥

पदार्थ—हे (**दस्रा**) सबके दुःखनिवारक (**वृषणा**) सुख को वर्षानेहारे (**अश्विना**) अध्यापक उपदेशक लोगो ! तुम दोनों (**अस्मे**) हम में (**अप्नस्वतीम्**) बहुत पुत्र-पौत्र करनेहारी (**वाचम्**) वाणी को (**कृतम्**) कीजिए (**अद्यूत्ये**) छलादि दोषरहित व्यवहार में (**नः**) हमारी (**अवसे**) रक्षादि के लिए (**मनीषाम्**) योग विज्ञानवाली बुद्धि को कीजिए (**वाजसातौ**) युद्धादि व्यवहार में (**नः**) हमारी (**च**) और अन्य लोगों की (**वृधे**) वृद्धि के लिए निरन्तर (**भवतम्**) उद्यत हूजिए इसी के लिए (**वाम्**) तुम दोनों को मैं (**निह्वये**) नित्य बुलाता हूँ ॥ २४ ॥

भावार्थ—कोई भी पुरुष आप्त विद्वानों के समागम के विना पूर्ण विद्यायुक्त, वाणी और बुद्धि को प्राप्त नहीं हो सकता, न इन दोनों के विना शत्रुओं का जय और सब ओर से बढ़ती को प्राप्त हो सकता है ॥ २४ ॥

द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥२५॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) पूर्वोक्त अध्यापक और उपदेशक लोगो ! तुम दोनों (**द्युभिः**) दिन और (**अक्तुभिः**) रात्रि (**अरिष्टेभिः**) हिंसा के अयोग्य (**सौभगेभिः**) सुन्दर ऐश्वर्यों के साथ वर्त्तमान (**अस्मान्**) हम लोगों की सर्वदा (**परि, पातम्**) सब प्रकार रक्षा कीजिए (**तत्**) तुम्हारे उस काम को (**मित्रः**) सबका सुहृद (**वरुणः**) धर्मादि कार्यों में उत्तम (**अदितिः**) माता (**सिन्धुः**) समुद्र वा नदी (**पृथिवी**) भूमि वा आकाशस्थ वायु (**उत**) और (**द्यौः**) विद्युत् वा सूर्य का प्रकाश (**नः**) हमारे लिए (**मामहन्ताम्**) बार-बार बढ़ावें ॥ २५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे माता और पिता अपने अपने सन्तानों, सखा, मित्रों और प्राण शरीर को प्रसन्न करते हैं और समुद्र गम्भीरत्वादि, पृथिवी वृक्षादि और सूर्य प्रकाश को धारण कर और सब प्राणियों को

सुखी करके उपकार को उत्पन्न करते हैं वैसे पढ़ाने और उपदेश करनेहारे सब सत्य विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त कराके सबको इष्ट सुख से युक्त किया करें ॥ २५ ॥

इस सूक्त मे सूर्य पृथिवी आदि के गुणो और सभा सेना के अध्यक्षों के कर्त्तव्यो तथा उनके किये परोपकारादि कर्मों का वर्णन किया है इससे इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए।

यह सैंतीसवां वर्ग और एकसौ बारहवां सूक्त पूरा हुआ ॥

इस अध्याय मे दिन-रात्रि अग्नि और विद्वान् आदि के गुणों के वर्णन से इस सप्तमाध्याय में कहे अर्थों की षष्ठाध्याय मे कहे अर्थों के साथ संगति जाननी चाहिए ।

इति श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्याणां महाविदुषां श्रीयुतविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते आर्यभाषाविभूषिते सुप्रमाणयुक्ते ऋग्वेदभाष्ये प्रथमाष्टके सप्तमोऽध्याय समाप्त ॥

卐

अथाष्टमोऽध्यायः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ।

अथास्य विंशत्यृचस्य त्रयोदशोत्तरशततमस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषि । उषा देवता । द्वितीयस्यार्धर्चस्य रात्रिरपि । १, ३, ६, १२, १७ निचृत्त्रिष्टुप्, ६ त्रिष्टुप्, ७, १८-२० विराट् त्रिष्टुप्, छन्दः । धैवतः स्वरः । २, ५ स्वराट् पङ्क्ति, ४, ८, १०, ११, १५, १६ भुरिक् पङ्क्ति, १३, १४ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चम स्वर ।

अब आठवें अध्याय का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुणों का उपदेश किया है—

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा ।
यथा प्रसूता सवितुः सवायँ एवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥१॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (प्रसूता) उत्पन्न हुई (रात्री) निशा (सवितु) सूर्य्य के सम्बन्ध से (सवाय) ऐश्वर्य्य के हेतु (उषसे) प्रातःकाल के लिए (योनिम्) घर-घर को (आरैक्) अलग-अलग प्राप्त होती है वैसे ही (चित्रः) अद्भुत गुण, कर्म, स्वभाववाला (प्रकेत) बुद्धिमान् विद्वान् जिस (इदम्) इस (ज्योतिषाम्) प्रकाशको के बीच (श्रेष्ठम्) अतीवोत्तम (ज्योतिः) प्रकाश-स्वरूप ब्रह्म को (आ, अगात्) प्राप्त होता है (एव) उसी (विभ्वा) व्यापक परमात्मा के साथ सुखैश्वर्य के लिए (अजनिष्ट) उत्पन्न होता और दुःखस्थान से पृथक् होता है ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। जैसे सूर्योदय को प्राप्त होकर अन्धकार नष्ट हो जाता है वैसे ही ब्रह्मज्ञान को प्राप्त होकर दुःख दूर हो जाता है इस से सब मनुष्यो को योग्य है कि परमेश्वर को जानने के लिए प्रयत्न किया करें ॥१॥

अब रात्रि और प्रभातवेला के व्यवहार को अगले मन्त्रो मे कहा है—

रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो यह (रुशद्वत्सा) प्रकाशित सूर्यरूप बछड़े की कामना करनेहारी वा (रुशती) लाल-लालसी (श्वेत्या) शुक्लवर्णयुक्त अर्थात् गुलाबी रङ्ग की प्रभातवेला (आ, अगात्) प्राप्त होती है (अस्याः, उ) इस अद्भुत उषा के (सदनानि) स्थानो को प्राप्त हुई (कृष्णा) काले वर्णवाली रात (आरैक्) अच्छे प्रकार अलग-अलग वसती है वे दोनो (अमृते) प्रवाह रूप से नित्य (आमिनाने) परस्पर एक दूसरे को फेंकती हुई सी (अनूची) वर्त्तमान (द्यावा) अपने-अपने प्रकाश से प्रकाशमान (समानबन्धू) दो सहोदर वा दो मित्रो के तुल्य (वर्णम्) अपने-अपने रूप को (चरत) प्राप्त होती हैं उन दोनों का युक्ति से सेवन किया करो ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जिस स्थान मे रात्रि वसती है उसी स्थान मे कालान्तर में उषा भी वसती है इन दोनो से उत्पन्न हुआ सूर्य्य जानो दोनो माताओ से उत्पन्न हुए लड़के के समान है और ये दोनों सदा बन्धु के समान जाने-आनेवाली उषा और रात्रि हैं ऐसा तुम लोग जानो ॥२॥

समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिन (स्वस्रो) बहिनो के समान वर्त्ताव रखने वाली रात्रि और प्रभातवेलाओं का (अनन्तः) अर्थात् सीमारहित आकाश (समानः) तुल्य (अध्वा) मार्ग है जो (देवशिष्टे) परमेश्वर के शासन अर्थात् यथावत् नियम को प्राप्त (विरूपे) विरुद्धरूप (समनसा) तथा समान चित्तवाले मित्रों के तुल्य वर्त्तमान (सुमेके) और नियम में छोड़ी हुई (नक्तोषासा) रात्रि और प्रभातवेला (तम्) उस अपने नियम को (अन्यान्या) अलग-अलग (चरत) प्राप्त होती और वे कदाचित् (न) नही (मेथेते) नष्ट होती और (न, तस्थतु) न ठहरती है उनको तुम लोग यथावत् जानो ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विरुद्ध स्वरूपवाले मित्र लोग इस निःसीम, अनन्त आकाश मे न्यायाधीश के नियम के साथ ही नित्य वर्त्तते हैं वैसे रात्रि-दिन परमेश्वर के नियम मे नियत होकर वर्त्तते हैं ॥३॥

फिर उषा का विषय अगले मन्त्रों मे कहा है—

भास्वती नेत्री सूनृतानामचेति चित्रा वि दुरो न आवः ।
प्रार्प्या जगद्व्यु नो रायो अख्यदुषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् मनुष्यो ! तुम लोगो को जो (भास्वती) अतीवोत्तम प्रकाशवाले (सूनृतानाम्) वाणी और जागृत के व्यवहारो को (नेत्री) प्राप्त करने और (चित्रा) अद्भुत गुण, कर्म, स्वभाववाली (उषाः) प्रभातवेला (नः) हमारे लिए (दुरः) द्वारो (वि, आवः) को प्रकट करती हुई-सी वा जो (नः) हमारे लिए (जगत्) ससार का (प्रार्प्य) अच्छे प्रकार अर्पण करके (रायः) धनो को (वि, अख्यत्) प्रसिद्ध करती है (उ) और (विश्वा) सब (भुवनानि) लोको का (अजीगः) अपनी व्याप्ति से निगलती-सी है वह (अचेति) अवश्य जाननी है ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो उषा सब जगत् को प्रकाशित करके सब प्राणियो को जगा, सब संसार में व्याप्त होकर सब पदार्थों को दृष्टि द्वारा समर्थ करके पुरुषार्थ मे प्रवृत्त करा धनादि की प्राप्ति करा माता के समान सब प्राणियो का पालती है इससे आलस्य मे उत्तम प्रातः समय की वेला व्यर्थ न गवानी चाहिए ॥ ४ ॥

जिह्मश्ये३ चरितवे मघोन्याभोगय इष्टये राय उ त्वम् ।
दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (त्वम्) तू जो (उर्विया) अनेकरूपयुक्त (मघोनि) अधिक धन प्राप्त करानेहारी (उषा) प्रातर्वेला (विश्वा) सब (भुवनानि) लोको को (अजीगः) निगलती (जिह्मश्ये) वा जो टेढ़े सोने अर्थात् सोने मे टेढ़ापन को प्राप्त हुए जन के लिए वा (चरितवे) विचरने को (विचक्षे) विविध प्रकटता के लिए (आभोगये) सब ओर से सुख के भोग जिसमे हो उस पुरुषार्थ से युक्त क्रिया के लिए (इष्टये) वा जिसमे मिलते हैं। उस यज्ञ के लिए वा (राये) धनो के लिए वा (पश्यद्भ्य) देखते हुए मनुष्यो के लिए (दभ्रम्) छोटे-से (उ) भी वस्तु को प्रकाश करती है उस उषा को जान ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य रात्रि के चौथे प्रहर मे जागकर शयन पर्य्यन्त व्यर्थ समय को नहीं जाने देते वे ही सुखी होते हैं अन्य नहीं ॥ ५ ॥

क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया इष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै ।
विसदृशा जीविताभिप्रचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् सभाध्यक्ष राजन् ! जैसे (उषा) प्रातर्वेला अपने प्रकाश से (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (अजीगः) ढाक लेती है वैसे (त्वम्) तू (अभिप्रचक्षे) अच्छे प्रकार शास्त्रबोध से सिद्ध वाणी आदि व्यवहाररूप (क्षत्राय) राज्य के लिए और (त्वम्) तू (श्रवसे) श्रवण और अन्न के लिए (त्वम्) तू (इष्टये) इष्ट सुख और (महीयै) सत्कार के लिए और (त्वम्) तू (इत्यै) सङ्गति प्राप्ति के लिए (विसदृशा) विविध धर्मयुक्त व्यवहारों के अनुकूल (अर्थमिव) द्रव्यो के समान (जीविता) जीवनादि को सदा सिद्ध किया कर ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे विद्या विनय से प्रकाशमान सत्पुरुष सब समीपस्थ पदार्थों को व्याप्त होकर उनके गुणों के प्रकाश से

समस्त अर्थों को सिद्ध करनेवाले होते हैं वैसे राजादि पुरुष विद्या, न्याय और धर्मादि को सब ओर से व्याप्त होकर चक्रवर्ती राज्य की यथावत् रक्षा से सब आनन्द को सिद्ध करें॥ ६॥

अब उषा के दृष्टान्त से विदुषी स्त्री के व्यवहार को अगले मन्त्रों में कहा है—

एषा दि॒वो दु॑हि॒ता प्रत्य॑दर्शि व्यु॒च्छन्ती॑ युव॒तिः शु॒क्रवा॑साः।
विश्व॒स्येशा॑ना॒ पार्थि॑वस्य॒ वस्व॒ उषो॑ अ॒द्येह सु॑भगे॒ व्यु॑च्छ॥७॥

पदार्थ—जैसे (शुक्रवासाः) शुद्ध पराक्रमयुक्त (विश्वस्य) समस्त (पार्थिवस्य) पृथिवी में प्रसिद्ध हुए (वस्वः) धन की (ईशाना) अच्छे प्रकार सिद्ध करानेवाली (व्युच्छन्ती) और नाना प्रकार के अन्धकारों को दूर करती हुई (एषा) यह (दिवः) सूर्य्य की (युवती) जवान अर्थात् अति पराक्रमवाली (दुहिता) पुत्री प्रभातवेला (प्रत्यदर्शि) बार-बार देख पड़ती है वैसे हे (सुभगे) उत्तम भाग्यवती (उषः) सुख में निवास करनेहारी विदुषी ! (अद्य) आज तू (इह) यहां (व्युच्छ) दुःखों को दूर कर॥ ७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जब ब्रह्मचर्य किया हुआ सन्मार्गस्थ जवान विद्वान् पुरुष अपने तुल्य अपने विद्यायुक्त ब्रह्मचारिणी, सुन्दर रूप, बल, पराक्रमवाली, साध्वी, अच्छे स्वभावयुक्त, सुख देनेहारी युवती अर्थात् बीसवें वर्ष से चौबीसवें वर्ष की आयु युक्त कन्या से विवाह करे तभी विवाहित स्त्री-पुरुष उषा के समान सुप्रकाशित होकर सब सुखों को प्राप्त होवें॥ ७॥

प॒रा॒य॒ती॒नामन्वे॑ति॒ पाथ॑ आयती॒नां प्र॑थ॒मा शश्व॑तीनाम्।
व्यु॒च्छन्ती॑ जी॒वमु॑दी॒रय॑न्त्यु॒षा मृ॒तं कं च॒न बो॒धय॑न्ती॥८॥

पदार्थ—हे उत्तम सौभाग्य बढ़ानेहारी स्त्रि ! जैसे यह (उषाः) प्रभात वेला (शश्वतीनाम्) प्रवाहरूप से अनादिस्वरूप (परायतीनाम्) पूर्व व्यतीत हुई प्रभातवेलाओं के पीछे (आयतीनाम्) आनेवाली वेलाओं में (प्रथमा) पहली (व्युच्छन्ती) अन्धकार का विनाश करती और (जीवम्) जीव को (उदीरयन्ती) कामों में प्रवृत्त कराती हुई (कम्) किसी (चन, मृतम्) मृतक के समान सोये हुए जन को (बोधयन्ती) जगाती हुई (पाथ) आकाश मार्ग को (अन्वेति) अनुकूलता से जाती है वैसे ही तू पतिव्रता हो॥ ८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सौभाग्य की इच्छा करने वाली स्त्रियां उषा के तुल्य भूत, भविष्यत् वर्त्तमान समयों में हुई उत्तमशील पतिव्रता स्त्रियों के सनातन वेदोक्त धर्म का आश्रय कर अपने-अपने पति को सुखी करती और उत्तम शोभावाली होती हुई सन्तानों को उत्पन्न कर और सब ओर से पालन करके उन्हें सत्य विद्या और उत्तम शिक्षाओं का बोध कराती हुई सदा आनन्द को प्राप्त करावें॥ ८॥

उषो॒ यद॒ग्निं स॒मिधे॑ च॒कर्थ॒ वि यदाव॒श्चक्ष॑सा॒ सूर्य॑स्य।
यन्मानु॑षान्य॒क्ष्यमा॑णाँ॒ अजी॑ग॒स्तद्दे॒वेषु॑ चकृषे भ॒द्रमप्नः॑॥९॥

पदार्थ—हे (उषः) प्रभात वेला के समान वर्त्तमान विदुषी स्त्रि ! (यत्) जो तू (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (चक्षसा) प्रकाश से (समिधे) अच्छे प्रकार प्रकाश के लिए (अग्निम्) विद्युत् अग्नि को प्रदीप्त (चकर्थ) करती है वा (यत्) जो तू दुःखों को (वि, आवः) दूर करती वा (यत्) जो तू (यक्ष्यमाणान्) यज्ञ के करनेवाले (मानुषान्) मनुष्यों को (अजीगः) प्राप्त होकर प्रसन्न करती है (तत्) सो तू (देवेषु) विद्वान् पतियों में बसकर (भद्रम्) कल्याण करनेहारे (अप्नः) सन्तानों को उत्पन्न (चकृषे) किया कर॥ ९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य की सम्बन्धिनी प्रातःकाल की वेला सब प्राणियों के साथ संयुक्त होकर सब जीवों को सुखी करती है वैसे साध्वी विदुषी स्त्री अपने पतियों को प्रसन्न करती हुई उत्तम सन्तानों के उत्पन्न करने को समर्थ होती हैं इतर दुष्ट भार्य्या वैसा काम नहीं कर सकती॥ ९॥

किया॒त्या यत्स॒मया॒ भवा॑ति॒ या व्यू॒षुर्याश्च॑ नू॒नं व्यु॒च्छान्।
अनु॒ पूर्वाः॑ कृपते वावशा॒ना प्र॒दीध्या॑ना॒ जोष॑म॒न्याभि॑रेति॥१०॥

पदार्थ—हे स्त्रि (यत्) जैसे (याः) जो (पूर्वाः) प्रथम गत हुई प्रभात वेला सब पदार्थों को (कियति) कितने (समया) समय (व्यूषुः) प्रकाश करती रहीं (याः, च) और जो (व्युच्छान्) स्थिर पदार्थों की (वावशाना) कामना-सी करती (प्रदीध्याना) और प्रकाश करती हुई (कृपते) अनुग्रह करती (नूनम्) निश्चय से (आ, भवाति) अच्छे प्रकार होती अर्थात् प्रकाश करती उसके तुल्य यह दूसरी विद्यावती विदुषी (अन्याभिः) और स्त्रियों के साथ (जोषमन्वेति) प्रीति को अनुकूलता से प्राप्त होती है वैसे तू मुझ पति के साथ सदा वर्त्ता कर॥ १०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। (प्रश्न) कितने समय तक उषःकाल होता है, (उत्तर) सूर्य्योदय से पूर्व पांच घड़ी उषःकाल होता है (प्रश्न) कौन स्त्री सुख को प्राप्त होती है, (उत्तर) जो अन्य विदुषी स्त्रियों और अपने पतियों के साथ सदा अनुकूल रहती हैं और वे स्त्री प्रशंसा को भी प्राप्त होती हैं जो कृपालु होती हैं वे स्त्री पतियों को प्रसन्न करती हैं। जो पतियों के अनुकूल वर्त्तती हैं वे सदा सुखी रहती हैं॥ १०॥

फिर प्रभात विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ई॒युष्टे ये पूर्व॑तराम॒पश्य॑न्व्यु॒च्छन्ती॑मु॒षसं॒ मर्त्या॑सः।
अ॒स्माभि॑रू॒ नु प्र॑ति॒चक्ष्या॑भू॒दो ते य॑न्ति॒ ये अ॑प॒रीषु॒ पश्या॑न्॥११॥

पदार्थ—(ये) जो (मर्त्यासः) मनुष्य लोग (व्युच्छन्तीम्) जगाती हुई (पूर्वतराम्) अति प्राचीन (उषसम्) प्रभातवेला को (ईयुः) प्राप्त होवें (ते) वे (अस्माभिः) हम लोगों के साथ सुख को (अपश्यन्) देखते हैं जो प्रभातवेला हमारे साथ (प्रतिचक्ष्या) प्रत्यक्ष से देखने योग्य (अभूत्) होती है वह (नु) शीघ्र सुख देनेवाली होती है (उ) और (ये) जो (अपरीषु) आनेवाली उषाओं में व्यतीत हुई उषा को (पश्यान्) देखें (ते) वे (ओ) हि सुख को (यन्ति) प्राप्त होते हैं॥ ११॥

भावार्थ—जो मनुष्य उषा के पहले शयन से उठ आवश्यक कर्म करके परमेश्वर का ध्यान करते हैं वे बुद्धिमान् और धार्मिक होते हैं जो स्त्री-पुरुष परमेश्वर का ध्यान करके प्रीति से आपस में बोलते चालते हैं वे अनेकविध सुखों को प्राप्त होते हैं॥ ११॥

फिर उषा के प्रसंग से स्त्रीविषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

या॒व॒यद्द्वे॑षा ऋत॒पा ऋ॑ते॒जाः सु॑म्ना॒वरी॑ सू॒नृता॑ ई॒रय॑न्ती।
सु॒म॒ङ्ग॒लीर्बिभ्र॑ती दे॒ववी॑तिमि॒हाद्यो॑षः॒ श्रेष्ठ॑तमा॒ व्यु॑च्छ॥१२॥

पदार्थ—हे (उषः) उषा के समान वर्त्तमान विदुषी स्त्रि ! (यावयद्द्वेषाः) जिसने द्वेषयुक्त कर्म दूर किये (ऋतपाः) सत्य की रक्षक (ऋतेजाः) सत्य व्यवहार में प्रसिद्ध (सुम्नावरी) जिसमें प्रशंसित सुख विद्यमान वा (सुमङ्गलीः) जिनमें सुन्दर मङ्गल होते उन (सूनृताः) वेदादि सत्यशास्त्रों की सिद्धान्तवाणियों को (ईरयन्ती) शीघ्र प्रेरणा करती हुई (श्रेष्ठतमा) अतिशय उत्तम गुण, कर्म और स्वभाव से युक्त (देववीतिम्) विद्वानों की विशेष नीति को (बिभ्रती) धारण करती हुई तू (इह) यहां (अद्य) आज (व्युच्छ) दुःख को दूर कर॥ १२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रभात वेला अन्धकार का निवारण, प्रकाश का प्रादुर्भाव करा धार्मिकों को सुखी और चोरादि को पीड़ित करके सब प्राणियों को आनन्दित करती है वैसे ही विद्या, धर्म, प्रकाशवती शमादि गुणों से युक्त विदुषी उत्तम स्त्री अपने पतियों से सन्तानोत्पत्ति करके अच्छी शिक्षा से अविद्यान्धकार को छुड़ा विद्यारूप सूर्य को प्राप्त करा कुल को सुभूषित करें॥ १२॥

शश्व॑त्पु॒रोषा व्यु॑वास दे॒व्यथो॑ अ॒द्येदं व्या॑वो म॒घोनी॑।
अथो॒ व्यु॑च्छा॒दुत्त॑राँ॒ अनु॒ द्यून॒जरा॒मृता॑ चरति स्व॒धाभिः॑॥१३॥

पदार्थ—हे ! स्त्रि (पुरा) प्रथम (देवी) अत्यन्त प्रकाशमान (मघोनी) प्रशंसित धन प्राप्ति करनेवाली (अजरा) पूर्ण युवावस्थायुक्त (अमृता) रोगरहित (उषाः) प्रभातवेला के समान (उवास) वास कर और (अथो) इसके अनन्तर जैसे प्रभातवेला (उत्तरान्) आगे आनेवाले (अनु, द्यून्) दिनों के अनुकूल (स्वधाभिः) अपने आप धारण किये हुए पदार्थों के साथ (शश्वत्) निरन्तर (वि, चरति) विचरती और अन्धकार को (वि, उच्छात्) दूर करती तथा (अद्य) वर्त्तमान दिन में (इदम्) इस जगत् की (व्यावः) विविध प्रकार से रक्षा करती है वैसे तू हो॥ १३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे स्त्रि ! जैसे प्रभात वेला कारण और प्रवाहरूप से नित्य हुई तीनों कालों में प्रकाश करने योग्य पदार्थों का प्रकाश करके वर्त्तमान रहती है वैसे आत्मपन से नित्यस्वरूप तू तीनों कालों में स्थित सत्य व्यवहारों को विद्या और सुशिक्षा से प्रकाश करके पुत्र-पौत्र, ऐश्वर्यादि सौभाग्ययुक्त होके सदा सुखी हो॥ १३॥

व्य१ञ्जिभि॑र्दि॒व आता॑स्वद्यौदप॑ कृ॒ष्णां नि॒र्णिजं॑ दे॒व्या॑वः।
प्र॒बो॒धय॑न्त्यरु॒णेभि॒रश्वै॒रोषा या॑ति सु॒युजा॒ रथे॑न॥१४॥

पदार्थ—हे स्त्रियो ! तुम जैसे (प्रबोधयन्ती) सोतों को जगाती हुई (देवी) दिव्यगुणयुक्त (उषाः) प्रातः समय की वेला (अञ्जिभिः) प्रकट करनेहारे गुणों के साथ (दिवः) आकाश से (आतासु) सर्वत्र व्याप्त दिशाओं में सब पदार्थों को (व्यद्यौत्) विशेष कर प्रकाशित करती (निर्णिजम्) वा निश्चितरूप (कृष्णाम्) कृष्णवर्ण रात्रि को (अपावः) दूर करती वा (अरुणेभिः) रक्तादि गुणयुक्त (अश्वैः) व्यापनशील किरणों के साथ वर्त्तमान (सुयुजा) अच्छे युक्त (रथेन) रमणीय स्वरूप से (आ, याति) आती है उसके समान तुम लोग वर्त्ता करो॥१४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रातः समय की वेला दिशाओं में व्याप्त है वैसे कन्या लोग विद्याओं में व्याप्त होवें वा जैसे यह उषा अपनी कान्तियों से शोभायमान होकर रमणीय स्वरूप से प्रकाशमान रहती है वैसे यह कन्याजन अपने शील आदि गुण और सुन्दर रूप से प्रकाशमान हों जैसे यह उषा अन्धकार का निवारण, रूप प्रकाश को उत्पन्न करती है वैसे ये कन्याएँ मूर्खता आदि का निवारण कर सुसभ्यतादि शुभ गुणों से सदा प्रकाशित रहें॥१४॥

आ॒वह॑न्ती॒ पोष्या॒ वार्या॑णि चि॒त्रं के॒तुं कृ॑णुते॒ चेकि॑ताना।
ई॒युषी॑णामुप॒मा शश्व॑तीनां विभाती॒नां प्र॑थ॒मोषा व्य॑श्वैत्॥१५॥

पदार्थ—हे स्त्रियो ! तुम जैसे (उषाः) प्रातर्वेला (पोष्या) पुष्टि कराने और (वार्याणि) स्वीकार करने योग्य धनादि पदार्थों को (आवहन्ती) प्राप्त कराती और (चेकिताना) अत्यन्त चिताती हुई (चित्रम्) अद्भुत (केतुम्) किरण को (कृणुते) करती अर्थात् प्रकाशित करती है (विभातीनाम्) विशेष कर प्रकाशित करती हुई सूर्य्यकान्तियों और (ईयुषीणाम्) चलती हुई (शश्वतीनाम्) अनादि रूप घड़ियों की (प्रथमा) पहली (उपमा) दृष्टान्तस्वरूप (व्यश्वैत्) व्याप्त होती है वैसे ही शुभ गुण कर्मों में (चरत) विचरा करो ॥१५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग यह निश्चित जानो कि जैसे प्रातःकाल से आरम्भ करके कर्म उत्पन्न होते हैं वैसे स्त्रियों के आरम्भ से घर के कर्म हुआ करते हैं ॥१५॥

उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगादप प्रागात्तम आ ज्योतिरेति ।
आरैक्पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस उषा की उत्तेजना से (नः) हम लोगों का (जीवः) जीवन का धर्त्ता इच्छादिगुणयुक्त (असुः) प्राण (आ, अगात्) सब ओर से प्राप्त होता (ज्योतिः) प्रकाश (प्र, अगात्) प्राप्त होता (तमः) रात्रि (अप, एति) दूर हो जाती और (यातवे) जाने-आने को (पन्थाम्) मार्ग (अरैक्) अलग प्रकट होता जिससे हम लोग (सूर्याय) सूर्य को (आ, अगन्म) अच्छे प्रकार प्राप्त होते तथा (यत्र) जिसमें प्राणी (आयुः) जीवन को (प्रतिरन्ते) प्राप्त होकर आनन्द से बिताते हैं उसको जानकर (उदीर्ध्वम्) पुरुषार्थ करने में चेष्टा किया करो ॥१६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे यह प्रातःकाल की उषा सब प्राणियों को जगाती अन्धकार को निवृत्त करती है और जैसे सायंकाल की उषा सबको कार्य्यों से निवृत्त करके सुलाती है अर्थात् माता के समान सब जीवों को अच्छे प्रकार पालन कर व्यवहार में नियुक्त कर देती है वैसे ही सज्जन विदुषी स्त्री होती है ॥१६॥

स्यूमना वाच उदियर्ति वह्निः स्तवानो रेभ उषसो विभातीः ।
अद्या तदुच्छ गृणते मघोन्यस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत् ॥१७॥

पदार्थ—हे (मघोनि) प्रशंसित धनयुक्त स्त्रि ! तू (अस्मे) हमारे और (गृणते) प्रशंसा करते हुए (पत्ये) पति के अर्थ जो (प्रजावत्) बहुत प्रजायुक्त (आयुः) जीवन का हेतु अन्न है (तत्) वह (अद्य) आज (नि, दिदीहि) निरन्तर प्रकाशित कर जो तेरा (रेभः) बहुश्रुत (स्तवानः) गुण प्रशंसाकर्त्ता (वह्निः) अग्नि के समान निर्वाह करनेहारा पति तेरे लिए (विभातीः) प्रकाशवती (उषसः) प्रभातवेलाओं को जैसे सूर्य वैसे (स्यूमना) सकल विद्याओं से युक्त प्रिय (वाचः) वेदवाणियों को (उत्, इयर्ति) उत्तमता से जानता है उसको तू (उच्छ) अच्छा निवास कराया कर ॥१७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जब स्त्री-पुरुष सुहृद्भाव से परस्पर विद्या और अच्छी शिक्षाओं को ग्रहण कर उत्तम अन्न, धनादि वस्तुओं का संचय करके सूर्य के समान धर्म-न्याय का प्रकाश कर सुख में निवास करते हैं तभी गृहाश्रम के पूर्ण सुख को प्राप्त होते हैं ॥१७॥

फिर उषःकाल के प्रसंग से स्त्री-पुरुष के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

या गोमतीरुषसः सर्ववीरा व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्याय ।
वायोरिव सूनृतानामुदर्के ता अश्वदा अश्नवत्सोमसुत्वा ॥१८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (याः) जो (सूनृतानाम्) श्रेष्ठ वाणी और अन्नादि की (उदर्के) उत्कृष्टता से प्राप्ति में (वायोरिव) जैसे वायु से (गोमतीः) बहुत गौ वा किरणों वाली (उषसः) प्रभातवेला वर्त्तमान है वैसे विदुषी स्त्री (दाशुषे) सुख देनेवाले (मर्त्याय) मनुष्य के लिए (व्युच्छन्ति) दुःख दूर करतीं और (अश्वदाः) अश्व आदि पशुओं को देनेवाली (सर्ववीराः) जिनके होते समस्त वीरजन होते हैं (ताः) उन विदुषी स्त्रियों को (सोमसुत्वा) ऐश्वर्य की सिद्धि करनेहारा जन (अश्नवत्) प्राप्त होता है वैसे ही इनको प्राप्त होओ ॥१८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । ब्रह्मचारी लोगों को योग्य है कि समावर्त्तन के पश्चात् अपने सदृश विद्या, उत्तम शीलता, रूप और सुन्दरता से सम्पन्न हृदय को प्रिय, प्रभातवेला के समान प्रशंसित ब्रह्मचारिणी कन्याओं से विवाह करके गृहाश्रम में पूर्ण सुख करें ॥१८॥

माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती वि भाहि ।
प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्युच्छा नो जने जनय विश्ववारे ॥१९॥

पदार्थ—हे (विश्ववारे) समस्त कल्याण को स्वीकार करनेहारी कुमारी ! (यज्ञस्य) गृहाश्रम व्यवहार में विद्वानों के सत्कारादि कर्म की (केतुः) जतानेहारी पताका के समान प्रसिद्ध (अदितेः) उत्पन्न हुए सन्तान की रक्षा के लिए (अनीकम्) सेना के समान (प्रशस्तिकृत्) प्रशंसा करने और (बृहती) अत्यन्त सुख की बढ़ानेहारी (देवानाम्) विद्वानों की (माता) जननी हुई (ब्रह्मणे) वेदविद्या वा परमेश्वर के ज्ञान के लिए प्रभातवेला के समान (विभाहि) विशेष प्रकाशित हो (नः) हमारे (जने) कुटुम्बीजन में प्रीति को (आ, जनय) अच्छे प्रकार उत्पन्न किया कर और (नः) हम को सुख में (व्युच्छ) स्थिर कर ॥१९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सत्पुरुष को योग्य है कि उत्तम विदुषी स्त्री के साथ विवाह करे जिससे अच्छे सन्तान हों और ऐश्वर्य नित्य बढ़ा करे । क्योंकि स्त्री सम्बन्ध से उत्पन्न हुए दुःख के तुल्य इस संसार में कुछ भी बड़ा कष्ट नहीं है उससे पुरुष सुलक्षणा स्त्री की परीक्षा करके पाणिग्रहण करे और स्त्री को भी योग्य है कि हृदय के प्रिय अतीव प्रशंसित रूप गुणवाले पुरुष ही का पाणिग्रहण करे ॥१९॥

यच्चित्रमप्न उषसो वहन्तीजानाय शशमानाय भद्रम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥२०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (उषसः) उषा के समान स्त्री (शशमानाय) प्रशंसित गुणयुक्त (ईजानाय) संगशील पुरुष के लिए और (नः) हमारे लिए (यत्) जो (चित्रम्) अद्भुत (भद्रम्) कल्याणकारी (अप्नः) सन्तान को (वहन्ति) प्राप्ति कराती वा जिन स्त्रियों से (मित्रः) सखा (वरुणः) उत्तम पिता (अदितिः) श्रेष्ठ माता (सिन्धुः) समुद्र वा नदी (पृथिवी) भूमि (उत) और (द्यौः) विद्युत् वा सूर्यादि प्रकाशमान पदार्थ पालन करने योग्य हैं उन स्त्रियों वा (तत्) उस सन्तान को निरन्तर (मामहन्ताम्) उपकार में लगाया करो ॥२०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । श्रेष्ठ विद्वान् ही सन्तानों को उत्पन्न अच्छे प्रकार रक्षित और उनकी अच्छी शिक्षा करके उनके बढ़ाने को समर्थ होते हैं जो पुरुष स्त्रियों और जो स्त्री पुरुषों का सत्कार करती हैं उनके कुल में सब सुख निवास करते हैं और दुःख भाग जाते हैं ॥२०॥

इस सूक्त में रात्रि और प्रभात समय के गुणों का वर्णन और इनके दृष्टान्त से स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य कर्म का उपदेश किया है इससे इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ तेरहवां सूक्त और चौथ वर्ग समाप्त हुआ—

卐

अथैकादशर्चस्य चतुर्दशोत्तरशततमस्यास्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः ।
रुद्रो देवता । १ जगती, २, ७ निचृज्जगती, ३, ६, ८, ९
विराड् जगती च छन्दः । निषादः स्वरः । ४, ५, ११
भुरिक् त्रिष्टुप्, १० निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचावाले एकसौ चौदहवें सूक्त का प्रारम्भ है
उसके प्रथम मन्त्र में विद्वद्विषय को कहते हैं—

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः ।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥१॥

पदार्थ—हम अध्यापक वा उपदेशक लोग (यथा) जैसे (द्विपदे) मनुष्यादि (चतुष्पदे) और गौ आदि के लिए (शम्) सुख (असत्) होवे (अस्मिन्) इस (ग्रामे) बहुत घरोंवाले नगर आदि ग्राम में (विश्वम्) समस्त चराचर जीवादि (अनातुरम्) पीड़ारहित (पुष्टम्) पुष्टि को प्राप्त (असत्) हो तथा (तवसे) बलयुक्त (क्षयद्वीराय) जिसके दोषों के नाश करनेहारे वीर पुरुष विद्यमान (रुद्राय) उस चवालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करनेहारे (कपर्दिने) ब्रह्मचारी पुरुष के लिए (इमाः) प्रत्यक्ष आप्तों के उपदेश और वेदादि शास्त्रों के बोध से संयुक्त (मतीः) उत्तम प्रज्ञाओं को (प्र, भरामहे) धारण करते हैं ॥१॥

भावार्थ—अत्रोपमालङ्कार । जब आप्त, सत्यवादी, धर्मात्मा, वेदों के ज्ञाता पढ़ाने और उपदेश करनेहारे विद्वान् तथा पढ़ाने और उपदेश करनेहारी स्त्री उत्तम शिक्षा से ब्रह्मचारी और श्रोता पुरुषों तथा ब्रह्मचारिणी और सुननेहारी स्त्रियों को विद्यायुक्त करते हैं तभी ये लोग शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होकर सब संसार को सुखी कर देते हैं ॥१॥

अब राजविषय को अगले मन्त्रों में कहा जाता है—

मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते ।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥२॥

पदार्थ—हे (रुद्र) दुष्ट शत्रुओं को रुलानेहारे राजन् ! जो हम (क्षयद्वीराय) विनाश किये शत्रु सेनास्थ वीर जिसने उस (ते) आप के लिए (नमसा) अन्न वा सत्कार से (विधेम) विधान करें अर्थात् सेवा करें उन (नः) हम लोगों को तुम (मृळ) सुखी कर और (नः) हम लोगों के लिए (मयः) सुख (कृधि) कीजिए हे (रुद्र) न्यायाधीश (मनुः) मननशील (पिता) पिता के समान आप (यत्) जो रोगों का (शम्) निवारण (च) शान्त (योः) दुःखों का अलग करना (च) और गुणों की प्राप्ति का (आयेजे) सब प्रकार संग कराते हो (तत्) उसको (अश्याम) प्राप्त होवें (उत) वे ही हम लोग (तव) तुम्हारी (प्रणीतिषु) उत्तम नीतियों में प्रवृत्त होकर निरन्तर सुखी होवें ॥२॥

भावार्थ—राजपुरुषों को योग्य है कि स्वयं सुखी होकर सब प्रजाओं को सुखी करें इस काम में आलस्य कभी न करें और प्रजाजन राजनीति के नियम में वर्त्तके राजपुरुषों को सदा प्रसन्न रक्खें ॥ २ ॥

अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः ।

सुम्नायन्निद्विशो अस्माकमा चरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ॥३॥

पदार्थ— हे (मीढ्व) प्रजा को सुख से सींचने और (रुद्र) सत्योपदेश करनेवाले सभाध्यक्ष राजन् ! हम लोग (देवयज्यया) विद्वानों की संगति और सत्कार से (क्षयद्वीरस्य) वीरों का निवास करानेहारे (तव) तेरी (सुमतिम्) श्रेष्ठ प्रज्ञा को (अश्याम) प्राप्त होवें जो (सुम्नयन्) सुख कराता हुआ तू (अस्माकम्) हमारी (अरिष्टवीरा) हिंसारहित वीरोंवाली (विश) प्रजाओं को (आ, चर) सब ओर से प्राप्त हो उस (ते) तेरी प्रजाओं को हम लोग (इत्) भी प्राप्त हों और (ते) तेरे लिए (हवि) देने योग्य पदार्थ को (जुहवाम्) दिया करें ॥ ३ ॥

भावार्थ - राजा को योग्य है कि प्रजाओं को निरन्तर प्रसन्न रक्खें और प्रजाओं को उचित है कि राजा को आनन्दित करें जो राजा प्रजा से कर लेकर पालन न करे तो वह राजा डाकुओं के समान जानना चाहिए जो पालन की हुई प्रजा राजभक्त न हो वे भी चोर के तुल्य जाननी चाहिए इसीलिए प्रजा राजा को कर देती है कि जिससे यह हमारा पालन करे और राजा इसलिए पालन करता है कि जिससे प्रजा मुझको कर देवें ॥ ३ ॥

त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वङ्कुं कविमवसे नि ह्वयामहे ।

आरे अस्मद्दैव्यं हेळो अस्यतु सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे ॥४॥

पदार्थ—(वयम्) हम लोग (अवसे) रक्षा आदि के लिए जिस (त्वेषम्) विद्या, न्याय प्रकाशवान् (वङ्कुम्) दुष्ट शत्रुओं के प्रति कुटिल (कविम्) समस्त शास्त्रों को क्रम-क्रम से देखने और (यज्ञसाधम्) प्रजापालनरूप यज्ञ को सिद्ध करनेहारे (दैव्यम्) विद्वानों में कुशल (रुद्रम्) शत्रुओं को रोकनेहारे को (नि, ह्वयामहे) अपना सुख-दुःख का निवेदन करें तथा (वयम्) हम लोग जिस (अस्य) इस रुद्र की (सुमतिम्) धर्मानुकूल उत्तम प्रज्ञा को (आ, वृणीमहे) सब ओर से स्वीकार करें । (इत्) वही सभाध्यक्ष (हेळ) धार्मिक जनों का अनादर करनेहारे अधार्मिक जनों को (अस्मत्) हम से (आरे) दूर (अस्यतु) निकाल देवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—जैसे प्रजाजन राजा को स्वीकार करते हैं वैसे राजपुरुष भी प्रजा की आज्ञा को माना करें ।

अब वैद्यजन के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे ।

हस्ते बिभ्रद्भेषजा वार्याणि शर्म वर्म छर्दिरस्मभ्यं यंसत् ॥५॥५॥

पदार्थ—हम लोग (नमसा) अन्न और सेवा से जो (हस्ते) हाथ में (भेषजा) रोगनिवारक औषध (वार्याणि) और ग्रहण करने योग्य साधनों को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (शर्म्म) घर, सुख (वर्म्म) कवच (छर्दि) प्रकाशयुक्त शस्त्र और अस्त्रादि को (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (यंसत्) नियम से रक्खे उस (कपर्दिनम्) जटाजूट ब्रह्मचारी, वैद्य, विद्वान् वा (दिव) विद्यान्याय-प्रकाशित व्यवहारों वा (वराहम्) मेघ के तुल्य (अरुषम्) घोड़े आदि की (त्वेषम्) वा प्रकाशमान (रूपम्) सुन्दर रूप की (निह्वयामहे) नित्य स्पर्द्धा करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य वैद्य के मित्र पथ्यकारी, जितेन्द्रिय उत्तम शीलवाले होते हैं वे ही इस जगत् में रोगरहित और राज्यादि को प्राप्त होकर सुख को बढ़ाते हैं ॥ ५ ॥

फिर वैद्य और उपदेश करनेवाले कैसे अपना वर्त्ताव वर्तें
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम् ।

रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनं त्मने तोकाय तनयाय मृळ ॥६॥

पदार्थ —हे (अमृत) मरण दुःख दूर कराने तथा आयु बढ़ानेहारे वैद्यराज वा उपदेशक विद्वन् ! आप (न) हमारे (त्मने) शरीर (तोकाय) छोटे-छोटे बाल-बच्चे (तनयाय) जवान बेटे (च) और सेवक, वैतनिक वा आयुधिक भृत्य अर्थात् चाकरों के लिए (स्वादोः) स्वादिष्ठ से (स्वादीयः) स्वादिष्ठ अर्थात् सब प्रकार स्वादवाला जो खाने में बहुत अच्छा लगे उस (मर्त्यभोजनम्) मनुष्यों के भोजन करने के पदार्थ को (रास्व) देओ जो (इदम्) यह (मरुताम्) ऋतु-ऋतु में यज्ञ करनेहारे विद्वानों को (वर्द्धनम्) बढ़ानेवाला (वच) वचन (पित्रे) पालना करने (रुद्राय) और दुष्टों को रुलानेहारे सभाध्यक्ष के लिए (उच्यते) कहा जाता है उससे हम लोगों को (मृळ) सुखी कीजिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—वैद्य और उपदेश करनेवाले को यह योग्य है कि आप नीरोग और सत्याचारी होकर सब मनुष्यों के लिए औषध देने और उपदेश करने से उपकार कर सब की निरन्तर रक्षा करें ॥ ६ ॥

अब न्यायाधीश कैसे वर्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।

मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥७॥

पदार्थ—(रुद्र) न्यायाधीश दुष्टों को रुलानेहारे सभापति (नः) हम लोगों में से (महान्तम्) बुड्ढे वा पढ़े-लिखे मनुष्य को (मा) मत (वधीः) मारो (उत) और (नः) हमारे (अर्भकम्) बालक को (मा) मत मारो (न.) हमारे (उक्षन्तम्) स्त्रीसंग करने में समर्थ युवावस्था से परिपूर्ण मनुष्य को (मा) मत मारो (उत) और (न) हमारे (उक्षितम्) वीर्यसेचन से स्थित हुए गर्भ को (मा) मत मारो (न) हम लोगों के (पितरम्) पालने और उत्पन्न करनेहारे पिता वा उपदेश करनेवाले को (मा) मत मारो (उत) और (मातरम्) मान सम्मान और उत्पन्न करनेहारी माता वा विदुषी स्त्री को (मा) मत मारो (न.) हम लोगों की (प्रियाः) स्त्री आदि के प्यारे (तन्वः) शरीरों को (मा) मत मारो और अन्यायकारी दुष्टों को (रीरिषः) मारो ॥ ७ ॥

भावार्थ —हे मनुष्यो ! जैसे ईश्वर पक्षपात को छोड़के धार्मिक सज्जनों को उत्तम कर्मों के फल देने से सुख देता और पापियों को पाप का फल देने से पीड़ा देता है वैसे तुम लोग भी अच्छा यत्न करो ॥ ७ ॥

फिर राजजन कैसे वर्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है –

मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।

वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥८॥

पदार्थ —हे (रुद्र) दुष्टों को रुलानेहार सभापति ! (हविष्मन्त) जिनके प्रशंसायुक्त संसार के उपकार करने के काम हैं वे हम लोग जिस कारण (सदम्) स्थिर वर्त्तमान ज्ञान को प्राप्त (त्वाम्, इत्) आप ही को (हवामहे) अपना करते हैं इससे (भामित) क्रोध को प्राप्त हुए आप (न.) हम लोगों के (तोके) शीघ्र उत्पन्न हुए बालक वा (तनये) बालिकाओं से जो ऊपर है उस बालक में (मा, रीरिषः) घात मत करो (न) हम लोगों के (आयौ) जीवन विषय में (मा) मत हिंसा करो (नः) हम लोगों के (गोषु) गौ आदि पशुसंघात में (मा) मत घात करो (न.) हम लोगों के (अश्वेषु) घोड़ों में (मा) घात मत करो (न) हमारे (वीरान्) वीरों को (मा) मत (वधीः) मारो ॥ ८ ॥

भावार्थ—क्रोध को प्राप्त हुए सज्जन राजपुरुषों को किसी का अन्याय से हनन न करना चाहिए और गौ आदि पशुओं की सदा रक्षा करनी चाहिए । प्रजा-जनों को भी राजा के आश्रय से ही निरन्तर आनन्द करना चाहिए और सबों को मिलकर ईश्वर की ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए कि हे परमेश्वर आपकी कृपा से हम लोग बाल्यावस्था में विवाह आदि बुरे काम करके पुत्रादिकों का विनाश कभी न करें और वे पुत्र आदि भी हम लोगों के विरुद्ध काम को न करें तथा संसार का उपकार करनेहारे गो आदि पशुओं का कभी विनाश न करें ॥ ८ ॥

फिर राज प्रजाजन परस्पर कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

उप ते स्तोमान्पशुपाइवाकरं रास्वा पितर्मरुतां सुम्नमस्मे ।

भद्रा हि ते सुमतिर्मृळयत्तमाथा वयमव इत्ते वृणीमहे ॥९॥

पदार्थ– हे (मरुताम्) ऋतु-ऋतु में यज्ञ करानेहारे की (पित) पालन करते हुए दुष्टों को रुलानेहारे सभापति ! (हि) जिस कारण मैं (पशुपाइव) जैसे पशुओं का पालनेहारा चरवाहा अहीर गौ आदि पशुओं से दूध, दही, घी, मट्ठा आदि लेके पशुओं के स्वामी को देता है वैसे (स्तोमान्) प्रशंसनीय रत्न आदि पदार्थों को (ते) आपके लिए (उप, आ, अकरम्) आगे करता हूँ इस कारण आप (अस्मे) मेरे लिए (सुम्नम्) सुख (रास्व) देओ (अथ) इसके अनन्तर जो (ते) आपकी (मृळयत्तमा) सब प्रकार से सुख करनेवाली (भद्रा) सुखरूप (सुमति) श्रेष्ठ मति और जो (ते) आपका (अव) रक्षा करना है उस मति और रक्षा करने को (वयम्) हम लोग जैसे (वृणीमहे) स्वीकार करते हैं (इत्) वैसे आप भी हम लोगों का स्वीकार करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । प्रजापुरुष राजपुरुषों से राजनीति और राजपुरुष प्रजापुरुषों से प्रजाव्यवहार को जान जानने योग्य को जाने हुए सनातन धर्म का आश्रय करें ॥ ९ ॥

फिर राजा-प्रजा के धर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु ।

मृळा च नो अधि च ब्रूहि देवाधा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः ॥१०॥

पदार्थ—हे (क्षयद्वीर) शूरवीर जनों का निवास कराने और (देव) दिव्य अच्छे-अच्छे कर्म करनेहारे विद्वान् सभापति ! (पुरुषघ्नम्) पुरुषों को मारने (च) और (गोघ्नम्) गो आदि उपकार करनेहारे पशुओं के विनाश करनेवाले प्राणी को निवारके (ते) आप के (च) और (अस्मे) हम लोगों के लिए (सुम्नम्) सुख (अस्तु) हो (अथ) इसके अनन्तर (नः) हम लोगों को (मृळ) सुखी कीजिए (च) और मैं आप को सुख देऊं आप लोगों को (अधि ब्रूहि) अधिक उपदेश देओ (च) और मैं आपको अधिक उपदेश करूँ (द्विबर्हाः) व्यवहार और परमार्थ के बढ़ानेवाले आप (नः) हम लोगों के लिए (शर्म्म) घर का सुख (यच्छ) दीजिए (च) और आपके लिए मैं सुख देऊं सब हम लोग धर्मात्माओं के (आरे) निकट और दुराचारियों से दूर रहें ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि शस्त्र के साथ पशु और मनुष्यों के विनाश करनेहारे दुराचारियों से दूर रहें और अपने से उनका दूर निवास करावें । राजा और प्रजाजनों को परस्पर एक दूसरे से उपदेश कर सभा बना और सब की रक्षा व्यवहार और परमार्थ का सुख सिद्ध करना चाहिए ॥ १० ॥

फिर अध्यापक और उपदेशकों के व्यवहारों को अगले मन्त्र में कहा है—

अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ११॥

पदार्थ—(**अवस्यव.**) अपनी रक्षा चाहते हुए हम लोग (**अस्मै**) इस मान करने योग्य सभाध्यक्ष के लिए (**नमः**) "नमस्ते" ऐसे वाक्य को (**अवोचाम**) कहें और वह (**मरुत्वान**) बलवान् (**रुद्र**) विद्या पढा हुआ सभापति (**तत्**) उस (**न**) हमारे (**हवम्**) बुलानेरूप प्रशंसावाक्य का (**शृणोतु**) सुने हे मनुष्यो ! जो (**नः**) हमारे "नमस्ते" शब्द को (**मित्र**) प्राण (**वरुणः**) श्रेष्ठ विद्वान् (**अदितिः**) अन्तरिक्ष (**सिन्धु**) समुद्र (**पृथिवी**) पृथिवी (**उत**) और (**द्यौ.**) प्रकाश बढ़ाते हैं अर्थात् उक्त पदार्थों को जाननेहारे सभापति को बार-बार "नमस्ते" शब्द कहा जाता उसको आप (**मामहन्ताम्**) बार-बार प्रशंसायुक्त करें ॥ ११ ॥

भावार्थ—प्रजापुरुषों को राजा लोगो के प्रिय आचरण नित्य करने चाहिएँ और राजा लोगों को प्रजाजनों के कहे वाक्य सुनने योग्य हैं ऐसे सब राजा प्रजा मिलकर न्याय की उन्नति और अन्याय को दूर करें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में ब्रह्मचारी, विद्वान, सभाध्यक्ष और सभासद् आदि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त में कहे अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ एकता जानने योग्य है ॥

यह एकसौ चौदहवां सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षड्चस्य पञ्चदशोत्तरशततमस्यास्य सूक्तस्याङ्गिरस कुत्स ऋषि । सूर्यो देवता । १, २, ६, निचृत् त्रिष्टुप्, ३ विराट् त्रिष्टुप्, ४, ५, त्रिष्टुप्छन्दः । धैवत स्वर' ॥

अब ६ छ ऋचावाले एकसौ पन्द्रहवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है-

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।

आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**अनीकम्**) नेत्र से नहीं देखने में आता तथा (**देवानाम्**) विद्वान् और अच्छे-अच्छे पदार्थों वा (**मित्रस्य**) मित्र के समान वर्त्तमान सूर्य वा (**वरुणस्य**) आनन्द देनेवाले जल चन्द्रलोक और अपनी व्याप्ति आदि पदार्थों वा (**अग्ने**) बिजुली आदि अग्नि वा और सब पदार्थों का (**चित्रम्**) अद्भुत (**चक्षु.**) दिखानेवाला है वह ब्रह्म (**उदगात्**) उत्कर्षता से प्राप्त है । जो जगदीश्वर (**सूर्य्य.**) सूर्य्य के समान ज्ञान का प्रकाश करनेवाला विज्ञान से परिपूर्ण (**जगत**) जङ्गम (**च**) और (**तस्थुषः**) स्थावर अर्थात् चराचर जगत् का (**आत्मा**) अन्तर्यामी अर्थात् जिसने (**अन्तरिक्षम्**) आकाश (**द्यावापृथिवी**) प्रकाश और भूमिलोक को (**आ, अप्रा'**) अच्छे प्रकार परिपूर्ण किया अर्थात् उनमें व्याप भर रहा है उसी परमात्मा की तुम लोग उपासना करो ॥१॥

भावार्थ—जो देखने योग्य परिमाणवाला पदार्थ है वह परमात्मा होने को योग्य नहीं । न कोई भी उस अव्यक्त सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर के विना समस्त जगत् को उत्पन्न कर सकता है और न कोई सर्वव्यापक सच्चिदानन्दस्वरूप अनन्त अन्तर्यामी चराचर जगत् के आत्मा परमेश्वर के विना संसार के धारण करने, जीवो को पाप और पुण्यो को साक्षीपन और उनके अनुसार जीवो को सुख-दुःखरूप फल देने को योग्य है न इस परमेश्वर की उपासना के विना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के पाने को कोई जीव समर्थ होता है इससे यही परमेश्वर उपासना करने योग्य इष्टदेव सबको मानना चाहिए ॥१॥

फिर ईश्वर का कृत्य अगले मन्त्र में कहा है—

सूर्यो देवीमुषसं रोचमाना मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।

यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस ईश्वर ने उत्पन्न करके (**कक्षा**) नियम में स्थापन किया वह (**सूर्य्यः**) सूर्य्यमण्डल (**रोचमानाम्**) रुचि कराने (**देवीम्**) और सब पदार्थों को प्रकाशित करनेहारी (**उषसम्**) प्रातःकाल की वेला को उसके होने के (**पश्चात्**) पीछे जैसे (**मर्य्यः**) पति (**योषाम्**) अपनी स्त्री को प्राप्त हो (**न**) वैसे (**अभ्येति**) सब ओर से दौड़ा जाता है (**यत्र**) जिस विद्यमान सूर्य्य में (**देवयन्तः**) मनोहर चाल-चलन से सुन्दर गणितविद्या को जानते-जनाते हुए (**नरः**) ज्योतिषविद्या के भावों को दूसरों की समझ में पहुँचानेहारे ज्योतिषीजन (**युगानि**) पाँच-पाँच संवत्सरो की गणना से ज्योतिष में युग वा सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग को जान (**भद्राय**) उत्तम सुख के लिए (**भद्रम्**) उस उत्तम सुख के (**प्रति, वितन्वते**) प्रति विस्तार करते हैं उसी परमेश्वर को सबका उत्पन्न करनेहारा तुम लोग जानो ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । हे विद्वानो ! तुम लोगो से जिस ईश्वर ने सूर्य्य को बनाकर प्रत्येक ब्रह्माण्ड में स्थापन किया उसके आश्रय से गणित आदि समस्त व्यवहार सिद्ध होते हैं वह ईश्वर क्यों न सेवन किया जाए ॥२॥

फिर सूर्य्य के काम का अगले मन्त्रों में वर्णन किया है—

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः ।

नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः ॥३॥

पदार्थ—(**भद्रा**) सुख करानेहारे (**अनुमाद्यास.**) आनन्द करने के गुण से प्रशंसा के योग्य (**नमस्यन्त**) सत्कार करते हुए विद्वान्जन जो (**सूर्य्यस्य**) सूर्य्यलोक को (**चित्रा**) चित्र-विचित्र (**एतग्वा**) इन प्रत्यक्ष पदार्थों को प्राप्त होती हुई (**अश्वा.**) बहुत व्याप्त होनेवाली किरणें (**हरित**) दिशा और (**द्यावापृथिवी**) आकाश-भूमि को (**सद्य**) शीघ्र (**परि, यन्ति**) सब ओर से प्राप्त होती (**दिव**) तथा प्रकाशित करने योग्य पदार्थ के (**पृष्ठम्**) पिछले भाग पर (**आ, अस्थु**) अच्छे प्रकार ठहरती हैं उनको विद्या से उपकार में लाओ ॥३॥

भावार्थ—मनुष्यो को योग्य है कि श्रेष्ठ, पढ़ानेवाले शास्त्रवेत्ता विद्वानो को प्राप्त हो उनका सत्कार कर उनसे विद्या पढ़ गणित आदि क्रियाओं की चतुराई को ग्रहण कर सूर्यसम्बन्धि व्यवहारो का अनुष्ठान कर कार्यसिद्धि करें ॥३॥

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।

यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यदा**) जब (**तत्**) वह पहले मन्त्र में कहा हुआ (**सूर्य्यस्य**) सूर्यमण्डल के (**मध्या**) बीच में (**विततम्**) व्याप्त ब्रह्म इस सूर्य के (**देवत्वम्**) प्रकाश (**महित्वम्**) बड़प्पन (**कर्तो.**) और काम का (**सञ्जभार**) संहार करता अर्थात् प्रलय समय सूर्य्य के समस्त व्यवहार को हर लेता (**आत्**) और फिर जब सृष्टि को उत्पन्न करता है तब सूर्य्य को (**अयुक्त**) युक्त अर्थात् उत्पन्न करता और नियत कक्षा में स्थापन करता है सूर्य्य (**सधस्थात्**) एक स्थान से (**हरित**) दिशाओं को अपनी किरणों से व्याप्त होकर (**सिमस्मै**) समस्त लोक के लिए (**वास**) अपने निवास का (**तनुते**) विस्तार करता तथा जिस ब्रह्म के तत्त्व से (**रात्री**) रात्रि होती है (**तत्, इत्**) उसी ब्रह्म की उपासना तुम लोग करो तथा उसी को जगत् का कर्त्ता जानो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे सज्जनो ! यद्यपि सूर्य्य आकर्षण से पृथिवी आदि पदार्थों का धारण करता है पृथिवी आदि लोको से बड़ा भी वर्त्तमान है संसार का प्रकाश कर व्यवहार भी कराता है तो भी यह सूर्य्य परमेश्वर के उत्पादन धारण और आकर्षण आदि गुणों के विना उत्पन्न होने, स्थिर रहने और पदार्थों का आकर्षण करने को समर्थ नहीं हो सकता न इस ईश्वर के विना ऐसे-ऐसे लोक-लोकान्तरो की रचना, धारण और इन के प्रलय करने को कोई समर्थ होता है ॥ ४ ॥

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।

अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जिस के सामर्थ्य से (**मित्रस्य**) प्राण और (**वरुणस्य**) उदान का (**अभिचक्षे**) सम्मुख दर्शन होने के लिए (**द्यो'**) प्रकाश के (**उपस्थे**) समीप में ठहराया हुआ (**सूर्य्य**) सूर्य्यलोक अनेक प्रकार (**रूपम्**) प्रत्यक्ष देखने योग्य रूप को (**कृणुते**) प्रकट करता है (**अस्य**) इस सूर्य के (**अन्यत्**) सब से अलग (**रुशत्**) लाल आग के समान जलते हुए (**पाजः**) बल तथा रात्रि के (**अन्यत्**) अलग (**कृष्णम्**) काले-काले अन्धकार रूप को (**हरितः**) दिशा-विदिशा (**सं, भरन्ति**) धारण करती हैं (**तत्**) उस (**अनन्तम्**) देश काल और वस्तु के विभाग से शून्य परब्रह्म का सेवन करो ॥ ५ ॥

भावार्थ - जिस के सामर्थ्य से रूप दिन और रात्रि की प्राप्ति का निमित्त सूर्य श्वेत कृष्ण रूप के विभाग से दिन-रात्रि को उत्पन्न करता है उस अनन्त परमेश्वर को छोड़कर किसी और की उपासना मनुष्य नहीं करें यह विद्वानो को निरन्तर उपदेश करना चाहिए ॥ ५ ॥

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥६॥

पदार्थ—हे (**देवा**) विद्वानो ! (**सूर्य्यस्य**) समस्त जगत् को उत्पन्न करनेवाले जगदीश्वर की उपासना से (**उदिता**) उदय अर्थात् सब प्रकार से उत्कर्ष की प्राप्ति में प्रकाशमान हुए तुम लोग (**निः**) निरन्तर (**अवद्यात्**) निन्दित (**अंहसः**) पाप आदि कर्म से (**निष्पिपृत**) निर्गत होओ अर्थात् अपने आत्मा, मन और शरीर आदि को दूर रक्खो तथा जिस को (**मित्रः**) प्राण (**वरुणः**) उदान (**अदितिः**) अन्तरिक्ष (**सिन्धुः**) समुद्र (**पृथिवी**) पृथिवी (**उत**) और (**द्यौः**) प्रकाश आदि पदार्थ सिद्ध करते हैं (**तत्**) वह वस्तु वा कर्म (**न'**) हम लोगों को सुख देता है उस को तुम लोग (**अद्य**) आज (**मामहन्ताम्**) बार-बार प्रशंसित करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि पाप से दूर रह धर्म का आचरण और जगदीश्वर की उपासना कर शान्ति के साथ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की परिपूर्ण सिद्धि करें ॥ ६ ॥

इस सूक्त मे सूर्य्य शब्द से ईश्वर और सूर्य्यलोक के अर्थ का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ एकता है यह जानना चाहिए ।

यह प्रथम मण्डल में सोलहवां अनुवाक एकसौ पन्द्रहवां सूक्त और सातवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथास्य पञ्चविंशत्यृचस्य षोडशोत्तरशततमस्य सूक्तस्य कक्षीवानृषि । अश्विनौ देवते । १, १०, २२, २३ विराट्त्रिष्टुप्, २, ८, ९, १२—१५, १८, २०, २४, २५, निचृत्त्रिष्टुप, ३—५, ७, २१ त्रिष्टुप्छन्द. । धैवत. स्वरः । ६, १६, १९ भुरिक्पङ्क्ति, ११ पङ्क्ति., १७ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम· स्वर. ॥

अब पच्चीस ऋचावाले एकसौ सोलहवें सूक्त का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र से शिल्पविद्या के विषय का वर्णन किया है—

नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्र वृञ्जे स्तोमाँ इयर्म्यभ्रियेव वातः ।
यावर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतू रथेन ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (नासत्याभ्याम्) सच्चे पुण्यात्मा शिल्पी अर्थात् कारीगरो ने जोडे हुए (रथेन) विमानादि रथ से (यौ) जो (सेनाजुवा) वेग के साथ सेना को चलानेहारे दो सेनापति (अर्भगाय) छोटे बालक वा (विमदाय) विशेष जिससे आनन्द होवे उस जवान के लिए (जायाम्) स्त्री के समान पदार्थों को (न्यूहतु) निरन्तर एक देश से दूसरे देश को पहुंचाते हैं वैसे अच्छा यत्न करता हुआ मैं (स्तोमान्) मार्ग के सूधे होने के लिए बडे-बडे पृथिवी पर्वत आदि को (बर्हिरिव) बढे हुए जल को जैसे वैसे (प्र, वृञ्जे) छिन्न-भिन्न करता तथा (वातः) पवन जैसे (अभ्रियेव) बद्दलो को प्राप्त हो वैसे एक देश को (इयर्मि) जाता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । रथ आदि यानों में उपकारी किये पृथिवी विकार जल और अग्नि आदि पदार्थ क्या-क्या अद्भुत कार्यों को सिद्ध नही करते हैं ? ॥ १ ॥

अब युद्ध के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना ।
तद्रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय ॥२॥

पदार्थ—हे (शाशदाना) पदार्थों को यथायोग्य छिन्न-छिन्न करनेहारे (नासत्या) सत्यस्वभावी सभापति और सेनापति ! आप जैसे (वीळुपत्मभिः) बल से गिरते और (आशुहेमभिः) शीघ्र पहुँचाते हुए पदार्थों से (वा) अथवा (देवानाम्) विद्वानों की (जूतिभिः) जिन से अपना चाहा हुआ काम मिले, सिद्ध हो उन युद्ध की क्रियाओ से (वा) निश्चय कर अपने कामो को निरन्तर तर्क-वितर्क से सिद्ध करते हो वैसे (तत्) उस आचरण को करता हुआ (रासभः) कहे हुए उपयोग को जो प्राप्त उस पृथिवी आदि पदार्थसमूह के समान पुरुष (प्रधने) उत्तम-उत्तम गुण जिस मे प्राप्त होते उस (आजा) सग्राम मे (यमस्य) समीप आये हुए मृत्यु के समान शत्रुओ के (सहस्रम्) असख्यात वीरो को (जिगाय) जीते ॥ २ ॥

भावार्थ—जैसे अग्नि वा जल वन वा पृथिवी को प्रवेश कर उस को जलाता वा छिन्न-भिन्न करता है वैसे अत्यन्त वेग करनेहारे बिजुली आदि पदार्थों से किये हुए शस्त्र और अस्त्रो से शत्रुजन जीतने चाहिएँ ॥ २ ॥

अब नाव आदि के बनाने की विद्या का उपदेश अगले मन्त्रों मे किया है—

तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः ।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ॥३॥

पदार्थ—हे (अश्विना) पवन और बिजुली के समान बलवान् सेनाधीशो ! तुम (तुग्र) शत्रुओं को मारनेवाला सेनापति शत्रुजन के मारने के लिए जिस (भुज्युम्) राज्य की पालना करने वा सुख भोगनेहारे पुरुष को (उदमेघे) जिस के जलो से ससार सींचा जाता है उस समुद्र मे जैसे (कश्चित्) कोई (ममृवान्) मरता हुआ (रयिम्) धन को छोडे (न) वैसे (अवाहा) छोडता है (तम्, ह) उसी को (अपोदकाभि) जल जिन मे आते-जाते (अन्तरिक्षप्रुद्भि) अवकाश में चलती हुई (आत्मन्वतीभि) और प्रशसायुक्त विचारवाले क्रिया करने में चतुर पुरुष जिन मे विद्यमान उन (नौभि) नावो से (ऊहथु) एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचाओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—जैसे कोई मरण चाहता हुआ मनुष्य धन पुत्र आदि के मोह से छूट के शरीर से निकल जाता है वैसे युद्ध चाहते हुए शूरो को अनुभव करना चाहिए । जब मनुष्य पृथिवी के किसी भाग से किसी भाग को समुद्र उतर कर शत्रुओं के जीतने को जाया चाहें तब पुष्ट बडी-बडी कि जिनमें भीतर जल न जाता हो और जिन में आत्मज्ञानी विचार वाले पुरुष बैठे हो और जो शस्त्र-अस्त्र आदि युद्ध की सामग्री से शोभित हों उन नावो के साथ जावें ॥ ३ ॥

तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भिर्नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः ।
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षळश्वैः ॥४॥

पदार्थ—(नासत्या) सत्य से परिपूर्ण सभापति और सेनापति ! तुम दोनों (तिस्र.) तीन (क्षप·) रात्रि (अहा) तीन दिन (अतिव्रजद्भि) अतीव चलते हुए पदार्थ (पतङ्गै) जो घोडे के समान वेगवाले हैं उन के साथ वर्त्तमान (षळश्वै) जिन मे जल्दी ले जानेहारे छः कलों के घर विद्यमान उन (शतपद्भिः) सैकडो पग के समान वेगयुक्त (त्रिभि) भूमि, अन्तरिक्ष और जल में चलनेहारे (रथै) रमणीय सुन्दर मनोहर विमान आदि रथो से (भुज्युम्) राज्य की पालना करनेवाले को (समुद्रस्य) जिस मे अच्छे प्रकार परमाणुरूप जल जाते हैं उस अन्तरिक्ष वा (धन्वन्) जिस मे बहुत बालू है उस भूमि वा (आर्द्रस्य) कीच के सहित जो समुद्र उस के (पारे) पार मे (त्रि:) तीन बार (ऊहथु) पहुचाओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—आश्चर्य इस बात का है कि मनुष्य जो तीन दिन रात्रि में समुद्र आदि स्थानो के अवार-पार जावें-आवेंगे तो कुछ भी सुख दुर्लभ रहेगा किन्तु कुछ भी नहीं ॥ ४ ॥

अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ॥५॥८॥

पदार्थ—हे (अश्विनौ) विद्या मे व्याप्त होनेवाले सभा सेनापति ! (यत्) जो तुम दोनो (अनारम्भणे) जिस में आने-जाने का आरम्भ (अनास्थाने) ठहरने की जगह और (अग्रभणे) पकड नहीं है उस (समुद्रे) अन्तरिक्ष वा सागर मे (शतारित्राम्) जिस मे जल की थाह लेने को सौ बल्ली वा सौ खम्भे लगे रहते और (नावम) जिस को चलाते वा पठाते उस नाव को बिजुली और पवन के वेग के समान (ऊहथु) बहाओ और (अस्तम्) जिस मे दुःखो को दूर करें उस घर मे (आतस्थिवांसम्) धरे हुए (भुज्युम्) खाने-पीने के पदार्थ समूह को (अवीरयेथाम्) एक देश से दूसरे देश को ले जाओ (तत) उन तुम लोगों का हम सदा सत्कार करें ॥ ५ ॥

भावार्थ – राजपुरुषो को चाहिए कि निरालम्ब मार्ग में अर्थात् जिस मे कुछ ठहरने का स्थान नही है वहाँ विमान आदि यानो से ही जावें जबतक युद्ध मे लडने वाले वीरो की जैसी चाहिए वैसी रक्षा न की जाय तबतक शत्रु जीते नहीं जा सकते, जिसमे सौ बल्ली विद्यमान हैं वह बडे फैलाव की नाव बनाई जा सकती है । इस मन्त्र मे शत शब्द असख्यातवाची भी लिया जा सकता है इससे अतिदीर्घ नौका का बनाना इस मन्त्र मे जाना जाता है, मनुष्य जितनी बडी नौका बना सकते हैं उतनी बडी बनानी चाहिए । इस प्रकार शीघ्र जानेवाला पुरुष भूमि और अन्तरिक्ष मे जाने-आने के लिए भी यानों को बनावे ॥ ५ ॥

यमश्विना ददथुः श्वेतमश्वमघाश्वाय शश्वदित्स्वस्ति ।
तद्वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत्पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो अर्यः ॥६॥

पदार्थ—हे (अश्विना) जल और पृथिवी के समान शीघ्र सुख के देनेहारो सभासेनापति ! तुम दोनों (अघाश्वाय) जो मारने के न योग्य और शीघ्र पहुँचाने वाला है उस वैश्य के लिए (यम्) जिस (श्वेतम्) अच्छे बढे हुए (अश्वम्) मार्ग मे व्याप्त प्रकाशमान बिजुलीरूप अग्नि को (ददथु) देते हो तथा जिससे (शश्वत्) निरन्तर (स्वस्ति) सुख को पाकर (वाम्) तुम दोनों की (कीर्तेन्यम्) कीर्ति होने के लिए (महि) बडे राज्यपद (दात्रम्) और देने योग्य (इत्) ही पदार्थ को ग्रहण कर (पैद्व) सुख से ले जानेहारा (वाजी) अच्छा ज्ञानवान् पुरुष उस (सदम्) रथ को कि जिस मे बैठते हैं रचके (अर्य) वणिया (हव्य) पदार्थों के देने योग्य (भूत्) होता है (तत्, इत्) उसी पूर्वोक्त विमानादि को बनाओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो सभा और सेना के अधिपति वणियों की भली भाँति रक्षा कर रथ आदि यानो मे बैठाकर द्वीप-द्वीपान्तर मे पहुँचावें वे बहुत धनयुक्त होकर निरन्तर सुखी होते हैं ॥६॥

युवं नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरन्धिम् ।
कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शतं कुम्भाँ असिञ्चतं सुरायाः ॥७॥

पदार्थ—हे (नरा) विनय को पाये हुए सभा सेनापति ! (युवम्) तुम दोनो (पज्रियाय) पदो मे प्रसिद्ध होनेवाले (कक्षीवते) अच्छी सिखावट को सीखे और (स्तुवते) स्तुति करते हुए विद्यार्थी के लिए (पुरन्धिम्) बहुत प्रकार की बुद्धि और अच्छे मार्ग को (अरदतम्) विस्ताओ तथा (वृष्णः) बलवान् (अश्वस्य) घोडे के समान अग्नि सम्बन्धी (कारोतरात्) जिससे व्यवहारों को करते हुए शिल्पी लोग तर्क के साथ पार होते हैं उस (शफात्) खुर के समान जल सींचने के स्थान से (सुरायाः) खींचे हुए रस से भरे (शतम्) सौ (कुम्भान्) घडो को ले (असिञ्चतम्) सींचा करो ॥७॥

भावार्थ—जो शास्त्रवेत्ता अध्यापक, विद्वान् जिस शान्तिपूर्वक इन्द्रियो को विषयो से रोकने आदि गुणों से युक्त सज्जन विद्यार्थी के लिए शिल्पकार्य्य अर्थात् कारीगरी सिखाने को हाथ की चतुराईयुक्त बुद्धि उत्पन्न कराते अर्थात् सिखाते हैं वह प्रशसायुक्त शिल्पी अर्थात् कारीगर होकर रथ आदि को बना सकता है । शिल्पी-

जन जिस यान अर्थात् उत्तम विमान आदि रथ में जलघर से जल सींच और नीचे आग जलाकर भाफों से उसे चलाते हैं उससे वे घोड़ों से जैसे वैसे बिजुली आदि पदार्थों से शीघ्र एक देश से दूसरे देश को जा सकते हैं ॥७॥

हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां पितुमतीमूर्जमस्मा अधत्तम् ।
ऋबीसे अत्रिमश्विनावनीतमुन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति ॥८॥

पदार्थ—हे (अश्विना) यज्ञानुष्ठान करनेवाले पुरुषो ! तुम दोनो (हिमेन) शीतल जल से (अग्निम्) आग और (घ्रंसम्) रात्रि के साथ दिन को (अवारयेथाम्) निवारो अर्थात् बिताओ (अस्मै) इसके लिए (पितुमतीम्) प्रशंसित अन्नयुक्त (ऊर्जम्) बलरूपी नीति को (अधत्तम्) पुष्ट करो और (ऋबीसे) दुःख से जिस की आभा जाती रही उस व्यवहार के (अत्रिम्) भोगने-हारे (अवनीतम्) पीछे प्राप्त कराये हुए (सर्वगणम्) जिसमें समस्त उत्तम पदार्थों का समूह है उस (स्वस्ति) सुख को (उन्निन्यथुः) उन्नति देओ ॥८॥

भावार्थ—विद्वानों को चाहिए कि इस संसार के सुख के लिए यज्ञ से शोधे हुए जल से और वनों के रखने से अति उष्णता (खुश्की) दूर करें। अच्छे बनाये हुए अन्न से बल उत्पन्न करें और यज्ञ के आचरण से तीन प्रकार के दुःख को निवार के सुख को उन्नति देवें ॥८॥

परावतं नासत्यानुदेथामुच्चाबुध्नं चक्रथुर्जिह्मबारम् ।
क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य ॥९॥

पदार्थ—हे (नासत्या) आग-पवन के समान वर्त्तमान सभापति और सेनाधिपति ! तुम दोनो (जिह्मबारम्) जिस को टेढ़ी लगन और (उच्चाबुध्नम्) उससे जिसमें ऊंचा अन्तरिक्ष अर्थात् अवकाश उस रथ आदि को (चक्रथुः) रक्खो और अनेक कामो की सिद्धि (चक्रथुः) करो और उसको यथायोग्य व्यवहार में (परा, अनुदेथाम्) लगाओ जो (गोतमस्य) अतीव स्तुति करनेवाले के रथ आदि पर (तृष्यते) प्यासे के लिए (पायनाय) पीने को (आपः) भाफरूप जल जैसे (क्षरन्) गिरते हैं (न) वैसे (सहस्राय) असंख्यात (राये) धन के लिए अर्थात् धन देने के लिए प्रसिद्ध होता है वैसे रथ आदि को बनाओ ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। शिल्पी लोगो को विमानादि यानो में जिसमें बहुत मीठे जल की धार आवे ऐसे कुण्ड को बना आग से उस विमान आदि यान को चला उसमें सामग्री को धर एक देश से दूसरे देश को जा और असंख्यात धन पाके परोपकार का सेवन करना चाहिए ॥९॥

अब सामान्य से विधि का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात् ।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित्पतिमकृणुतं कनीनाम् ॥१०॥९॥

पदार्थ—हे (नासत्या) राजधर्म की सभा के पति ! तुम दोनो (च्यवानात्) भागे हुए-से (द्रापिमिव) कवच के समान (वव्रिम्) अच्छे विभाग करने-वाले को (प्रामुञ्चतम्) भली भाँति दुःख से पृथक् करो (उत) और (जुजुरुषः) बुड्ढे, विद्यावान्, शास्त्रज्ञ पढ़ानेवाले से (कनीनाम्) यौवनपन से तेजधारिणी ब्रह्मचारिणी कन्याओं को शिक्षा (अकृणुतम्) करो (आत्) इसके अनन्तर नियत समय की प्राप्ति में उन में से एक-एक (इत्) ही का एक-एक (पतिम्) रक्षक पति करो। हे (दस्रा) वैद्यों के समान प्राण के देनेहारो ! (जहितस्य) त्यागी की (आयुः) आयु को (प्रातिरतम्) अच्छे प्रकार पार लो पहुँचाओ ॥१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। राजपुरुष और उपदेश करनेवालो को देनेवालों का दुःख दूर करना चाहिए। विद्याओं में प्रवृत्ति करते हुए कुमार और कुमारियो की रक्षा कर विद्या और अच्छी शिक्षा उनको दिलवाना चाहिए, बालकपन में अर्थात् पच्चीस वर्ष के भीतर पुरुष और सोलह वर्ष के भीतर स्त्री के विवाह का रोक इसके उपरान्त अड़तालीस वर्ष पर्य्यन्त पुरुष और चौबीस वर्ष पर्य्यन्त स्त्री का स्वयंवर विवाह कराकर सबके आत्मा और शरीर के बल को पूर्ण करना चाहिए ॥१०॥

तद्वां नरा शंस्यं राध्यं चाभिष्टिमन्नासत्या वरूथम् ।
यद्विद्वांसा निधिमिवापगूळ्हमुद्दर्शतादूपथुर्वन्दनाय ॥११॥

पदार्थ—हे (नरा) धर्म की प्राप्ति (नासत्या) और सदा सत्य की पालना करने और (विद्वांसा) समस्त विद्या जाननेवाले धर्मराज, सभापति विद्वानो ! (वाम्) तुम दोनों का (यत्) जो (शंस्यम्) प्रशंसनीय (च) और (राध्यम्) सिद्ध करने योग्य (अभिष्टिमत्) जिसमें चाहे हुए प्रशंसित सुख हैं (वरूथम्) जो स्वीकार करने योग्य (अपगूळ्हम्) जिसमें गुप्तपन अलग हो गया ऐसा जो प्रथम कहा हुआ गृहाश्रम सम्बन्धि कर्म है (तत्) उसको (निधिमिव) धन के कोष के समान (दर्शतात्) सुन्दर रूप से (वन्दनाय) सब ओर से सत्कार करने योग्य सन्तान और प्रशंसा के लिए (उत्, ऊपथुः) उच्च श्रेणी को पहुँचाओ अर्थात् उन्नति देओ ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। हे मनुष्यो ! विद्यानिधि के परे सुख देनेवाला धन कोई भी तुम मत जानो। न इस कर्म के बिना चाहे हुए सन्तान और सुख मिल सकते हैं और न सत्यासत्य के विचार से निर्णीत ज्ञान के बिना विद्या की वृद्धि होती है यह जानो ॥ ११ ॥

तद्वां नरा सनये दंस उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम् ।
दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच ॥१२॥

पदार्थ—हे (नरा) अच्छी नीतियुक्त सभा सेना के पतिजनो ! (वाम्) तुम दोनो से (दध्यङ्) विद्या धर्म का धारण करनेवालो का आदर करनेवाला (आथर्वणः) रक्षा करते हुए का संतान मैं (सनये) सुख के भली भाँति सेवन करने के लिए जैसे (तन्यतुः) बिजुली (वृष्टिम्) वर्षा को (न) वैसे (यत्) जिस (उग्रम्) उत्कृष्ट (दंसः) कर्म को (आविष्कृणोमि) प्रकट करता हूँ जो (यत्) विद्वान् (वाम्) तुम दोनों के लिए और मेरे लिए (अश्वस्य) शीघ्र गमन करानेहारे पदार्थ के (शीर्ष्णा) शिर के समान उत्तम काम से (मधु) मधुर (ईम्) शास्त्र के बोध को (ह, प्रोवाच) कहे (तत्) उसे तुम दोनो लोक में निरन्तर प्रकट करो ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जैसे वृष्टि के बिना किसी को भी सुख नहीं होता है वैसे विद्वानो और विद्या के बिना सुख और बुद्धि बढ़ना और इसके बिना अन्न आदि पदार्थ नहीं सिद्ध होते हैं इससे इस कर्म का अनुष्ठान मनुष्यो को सदा करना चाहिए ॥ १२ ॥

अजोहवीन्नासत्या करा वां महे यामन्पुरुभुजा पुरन्धिः ।
श्रुतं तच्छासुरिव वध्रिमत्या हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तम् ॥१३॥

पदार्थ—हे (नासत्या) असत्य अज्ञान के विनाश से सत्य का प्रकाश करने (पुरुभुजा) बहुत आनन्दो के भोगने तथा (अश्विनौ) शुभगुण और विद्या में व्याप्त होनेवाले अध्यापको ! जो (पुरन्धिः) बहुत विद्या युक्त विद्वान् (वध्रिमत्याः) प्रशंसित जिसकी वृद्धि है उस उत्तम स्त्री के (करा) कर्म करते हुए दो पुत्रो का (महे) अत्यन्त (यामन्) सुख भोगने के लिए (अजोहवीत्) निरन्तर ग्रहण करे और (वाम्) तुम दोनो का जो (श्रुतम्) सुना पढ़ा है (तत्) उसको (शासुरिव) जैसे पूर्ण विद्यायुक्त पढ़ानेवाले से शिष्य ग्रहण करे वैसे निरन्तर ग्रहण करे वे तुम दोनो विद्या चाहनेवाले सब जनों के लिए जो ऐसा है कि (हिरण्यहस्तम्) जिससे हाथ में सुवर्ण आता है उस पढ़े-सीखे बोध को (अदत्तम्) निरन्तर देओ ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। हे विद्वानो ! जैसे विद्वान् जन विदुषी स्त्री का पाणिग्रहण कर गृहाश्रम के व्यवहार को सिद्ध करे वैसे बुद्धिमान् विद्यार्थियो का संग्रह कर पूर्ण विद्याप्रचार को करो और जैसे पढ़ानेवाले से पढ़ने वाले विद्या का संग्रह कर आनन्दित होते हैं वैसे विदुषी स्त्री और विद्वान पुरुष अपने तथा औरो के सन्तानो को उत्तम शिक्षा से विद्या देकर सदा प्रमुदित होवें ॥ १३ ॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्तना चाहिए यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

आस्नो वृकस्य वर्तिकामभीके युवं नरा नासत्यामुमुक्तम् ।
उतो कविं पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृणुतं विचक्षे ॥१४॥

पदार्थ—(पुरुभुजा) बहुत जनो को सुख का भोग कराने (नासत्या) झूठ से अलग रहने (नरा) और सुखों को पहुँचानेहारे सभा सेनापतियो ! (युवम्) तुम दोनो (अभीके) चाहे हुए व्यवहार में (वृकस्य) भेड़िया के (आस्नः) मुख से (वर्तिकाम्) चिड़िया के समान सब मनुष्यो को अविद्याजन्य दुःख से (अमुमुक्तम्) छुड़ाओ (उतो) और (ह) भी (युवम्) तुम दोनों सब विद्याओं को (विचक्षे) विख्यात करने को (कृपमाणम्) कृपा करनेवाले (कविम्) विद्या के पारगन्ता पुरुष को (अकृणुतम्) सिद्ध करो ॥ १४ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि सुखरूप सबके चाहे हुए विद्या ग्रहण करने के व्यवहार में सब मनुष्यों को प्रवृत्त करके जिसका दुःख फल है उस अन्यायरूप काम से निवृत्त करके उन सब प्राणियो पर कृपाकर सुख देवें ॥ १४ ॥

चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम् ।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ॥१५॥

पदार्थ—हे सभा सेनाधिपति ! तुम दोनों से (आजा) संग्राम में (परि-तक्म्यायाम्) रात्रि में (खेलस्य) शत्रु के खण्ड का (चरित्रम्) स्वाभाविक चरित्र अर्थात् शत्रुजनों की अलग-अलग बनी हुई टोली-टोली की चालाकियां (वेरिव) उड़ते हुए पक्षी का जैसे (पर्णम्) पंख काटा जाय वैसे (सद्यः) शीघ्र (अच्छेदि) छिन्न-भिन्न की जाएँ तथा तुम (हिते) सुख बढ़ानेवाले (धने) सुवर्ण आदि धन के निमित्त (विश्पलायै) प्रजाजनों को सुख पहुँचानेवाली नीति के लिए (आयसीम्) लोहे के विकार से बनी हुई (जङ्घाम्) जिससे कि मारते हैं उसकी चाल को (सर्तवे) शत्रुओं पर जाने अर्थात् चढ़ाई करने के लिए (हि) ही (प्रत्यधत्तम्) प्रत्यक्ष धारण करो ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। प्रजाजनों की पालना करने में अत्यन्त चित्त दिये हुए भद्र राजा आदि जनों को चाहिए कि पखेरू के पंखों के समान दुष्टों के चरित्र को युद्ध में छिन्न-भिन्न करें। शस्त्र और अस्त्रों को धारण कर प्रजाजनों की पालना करें। क्योंकि जो प्रजाजनों से कर लिया जाता है उसका बदला देना उन प्रजाजनों की रक्षा करना ही समझना चाहिए ॥ १५ ॥

शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं तं पितान्धं चकार ।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन् ॥१६॥

पदार्थ—जो (वृक्ये) वृकी अर्थात् चोर की स्त्री के लिए (शतम्) सैकड़ों (मेषान्) ईर्ष्या करनेवालों को देवे वा जो ऐसा उपदेश करे और जो चोरों में सूधे घोड़ों वाला हो (तम्) उस (चक्षदानम्) स्पष्ट उपदेश करने वा (ऋज्राश्वम्) सूधे घोड़ेवाले को (पिता) प्रजाजनों की पालना करनेहारा राजा जैसे (अन्धम्) अन्धा दुखी होवे वैसा दुखी (चकार) करे । हे (नासत्या) सत्य के साथ वर्त्ताव रखने और (दस्रा) रोगों का विनाश करनेवाले धर्मराज सभापति (भिषजौ) वैद्यजनों के तुल्य वर्त्ताव रखनेवालो ! तुम दोनों जो अज्ञानी कुमार्ग से चलनेवाला व्यभिचारी और रोगी है (तस्मै) उस (अनर्वन्) अज्ञानी के लिए (विचक्षे) अनेकविध देखने को (अक्षी) व्यवहार और परमार्थ विद्यारूपी आँखों को (आ, अधत्तम्) अच्छे प्रकार पुष्ट करो ॥ १६ ॥

भावार्थ—सभा के सहित राजा हिंसा करनेवाले चोर, कपटी, छली मनुष्यों को कारागार में अन्धों के समान रखकर और अपने उपदेश अर्थात् आज्ञारूप शिक्षा और व्यवहार की शिक्षा से धर्मात्मा कर धर्म और विद्या में प्रीति रखनेवालों को उनकी प्रकृति के अनुकूल ओषधि देकर उनको आरोग्य करे ॥ १६ ॥

आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्ष्मेवातिष्ठदर्वता जयन्ती ।
विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः समु श्रिया नासत्या सचेथे ॥१७॥

पदार्थ—हे (नासत्या) अच्छे विज्ञान का प्रकाश करनेवाले सभा सेनापति जनो ! (सूर्य्यस्य) सूर्य की (दुहिता) जो दूरदेश में हित करनेवाली कन्या जैसी कान्ति प्रात समय की वेला और (कार्ष्मेव) काठ आदि पदार्थों के समान (वाम्) तुम लोगों की (जयन्ती) शत्रुओं को जीतनेवाली सेना (अर्वता) घोड़े से जुड़े हुए (रथम्) रथ को (आ, अतिष्ठत्) स्थित हो अर्थात् रथ पर स्थित होवे वा जिसको (विश्वे) समस्त (देवा) विद्वान् जन (हृद्भिः) अपने चित्तों से (अनु, अमन्यन्त) अनुमान करें उसको (उ) तो (श्रिया) शुभ लक्षणों वाली लक्ष्मी अर्थात् अच्छे धन से युक्त सेना को तुम लोग (सं, सचेथे) अच्छे प्रकार इकट्ठा करो ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । हे मनुष्यो ! समस्त विद्वानों ने प्रशंसा की हुई शस्त्र-अस्त्र, वाहन तथा अन्य सामग्री आदि सहित धनवती सेना को सिद्ध कर जैसे सूर्य्य अपना प्रकाश करे वैसे तुम लोग धर्म और न्याय का प्रकाश कराओ ॥ १७ ॥

यदयातं दिवोदासाय वर्तिर्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता ।
रेवदुवाह सचनो रथो वां वृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता ॥१८॥

पदार्थ—हे (हयन्ता) चलने (युक्ता) योगाभ्यास करने और (अश्विना) शत्रु सेना में व्याप्त होनेवाले सभा सेना के पतियो ! तुम दोनों (दिवोदासाय) न्याय और विद्या प्रकाश के देनेवाले (भरद्वाजाय) जिसके पुष्ट होते हुए पुष्टिमान् वेगवाले योद्धा हैं उसके लिए (यत्) जिस (वर्त्तिः) वर्त्तमान (रेवत्) अत्यन्त धनयुक्त गृह आदि वस्तु को (अयातम्) प्राप्त होओ (च) और जो (वाम्) तुम दोनों का (वृषभः) विजय की वर्षा करानेहारा (शिंशुमार) जिससे धर्म को उल्लङ्घके चलानेहारों का विनाश करता है जो कि (सचन) समस्त अपने सेनाङ्गों से युक्त (रथ) मनोहर विमानादि रथ तुम लोगों को चाहे हुए स्थान में (उवाह) पहुँचाता है उसकी (च) तथा उक्त गृह आदि की रक्षा करो ॥१८॥

भावार्थ—राजा आदि राजपुरुषों को अपनी समस्त सामग्री न्याय से राज्य की पालना करने ही के लिए बनानी चाहिए ॥ १८ ॥

रयिं सुक्षत्रं स्वपत्यमायुः सुवीर्यं नासत्या वहन्ता ।
आ जह्नावीं समनसोप वाजैस्त्रिरह्नो भागं दधतीमयातम् ॥१९॥

पदार्थ—हे (समनसा) समान विज्ञानवाले (वहन्ता) उत्तम सुख को प्राप्त हुए (नासत्या) सत्यधर्म-पालक सभा सेना के अधिपतियो ! तुम दोनों सनातन न्याय के सेवन से (रयिम्) धनसमूह (सुक्षत्रम्) अच्छे राज्य (स्वपत्यम्) अच्छे सन्तान (आयुः) चिरकाल जीवन (सुवीर्य्यम्) उत्तम पराक्रम को और (वाजैः) ज्ञान वा वेगयुक्त भृत्यादिकों के साथ वर्त्तमान (जह्नावीम्) छोड़ने योग्य शत्रुओं की सेना की विरोधिनी इस सेना को तथा (अह्नः) दिन के (भागम्) सेवने योग्य विभाग अर्थात् समय को और (त्रिः) तीन बार (दधतीम्) धारण करती हुई सेना के (उप, आ, अयातम्) समीप अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥१९॥

भावार्थ—कोई विद्या और सत्यन्याय के सेवन के बिना धन आदि पदार्थों को प्राप्त हो और इनकी रक्षा कर सुख नहीं कर सकता है इससे धर्म के सेवन से ही राज्य आदि प्राप्त हो सकता है ॥१९॥

परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीं सुगेभिर्नक्तमूहथू रजोभिः ।
विभिन्दुना नासत्या रथेन वि पर्वताँ अजरयू अयातम् ॥२०॥११॥

पदार्थ—हे (नासत्या) सत्य धर्म के पालनेहारे सभासेनाधीशो ! तुम दोनों जैसे (अजरयू) जीर्णता आदि दोषों से रहित सूर्य और चन्द्रमा (सुगेभिः) जिनमें कि सुख से गमन हो उन मार्ग और (रजोभिः) लोकों के साथ (नक्तम्) रात्रि और (पर्वतान्) मेघ वा पहाड़ों को यथायोग्य व्यवहारों में लाते हैं (विभिन्दुना) विविध प्रकार से छिन्न-भिन्न करनेवाले (रथेन) रथ से सेना को यथायोग्य कार्य में (ऊहथुः) पहुँचाओ (विश्वतः) सब ओर से (सीम्) मर्यादा को (परिविष्टम्) व्याप्त होओ (जाहुषम्) प्राप्त होने योग्य नगरादि के राज्य को पाकर पर्वत के तुल्य शत्रुओं को (वि, अयातम्) विभेद कर प्राप्त होओ ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्रमें वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे राजा के सभासद् जन धर्म के अनुकूल मार्गों से राज्य पाकर किले में वा पर्वत आदि स्थानों में ठहरे हुए शत्रुओं को वश में करके अपने प्रभाव को प्रकाशित करते हैं वैसे सूर्य और चन्द्रमा पृथिवी के पदार्थों को प्रकाशित करते हैं । जैसे इन सूर्य्य और चन्द्रमा के निकट न होने से अन्धकार उत्पन्न होता है वैसे राजपुरुषों के अभाव में अन्यायरूपी अन्धकार प्रवृत्त हो जाता है ॥ २० ॥

एकस्या वस्तोरावतं रणाय वशमश्विना सनये सहस्रा ।
निरहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता पृथुश्रवसो वृषणावरातीः ॥२१॥

पदार्थ—हे (वृषणौ) शस्त्र-अस्त्र की वर्षा करनेवाले (इन्द्रवन्ता) बहुत ऐश्वर्ययुक्त (अश्विना) सूर्य्य और चन्द्रमा के तुल्य सभा और सेना के अधीशो ! (दुच्छुना) जिससे सुख निकल गया उन शत्रु सेनाओं को जैसे अन्धकार और मेघों को सूर्य्य जीतता है वैसे (एकस्याः) एक सेना के (रणाय) संग्राम के लिए जो पठाना है उससे (वस्तोः) एक दिन के बीच (आवतम्) अपनी सेना के विजय को चाहो और उन सेनाओं को अपने (वशम) वश में लाकर (सहस्रा, सनये) हजारों धनादि पदार्थों को भोगने के लिए (पृथुश्रवसः) जिनके बहुत अन्न आदि पदार्थ हैं और (अरातीः) जो किसी को सुख नहीं देती उन शत्रु सेनाओं को (निरहतम्) निरन्तर मारो ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे सूर्य्य और चन्द्रमा के उदय से अन्धकार की निवृत्ति होकर सब प्राणी सुखी होते हैं वैसे धर्मरूपी व्यवहार से शत्रुओं और अधर्म की निवृत्ति होने से धर्मात्मा जन अच्छे राज्य में सुखी होते हैं ॥ २१ ॥

शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा नीचादुच्चा चक्रथुः पातवे वाः ।
शयवे चिन्नासत्या शचीभिर्जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम् ॥२२॥

पदार्थ—हे (नासत्या) सत्य विज्ञानयुक्त सभासेनाधीशो ! तुम दोनों (शचीभिः) अपनी बुद्धियों से (शरस्य) मारनेवाले की ओर से आये (नीचात्) नीच कामों का सेवन करते हुए (अवतात्) हिंसा करनेवाले से (चित्) और (आर्चत्कस्य) दूसरों की प्रशंसा करने वा सत्कार करते हुए शिष्टजन की ओर से आये (उच्चा) उत्तम कर्म को सेवते हुए रक्षा करनेवाले से प्रजाजनों को (पातवे) पालने के लिए बल को (आ, चक्रथुः) अच्छे प्रकार करो (चित्) और (शयवे) सोते हुए और (जसुरये) हिंसक जनों के लिए (स्तर्य्यम्) जो नौका आदि यानों में अच्छा है उस (वाः) जल और (गाम्) पृथिवी को (पिप्यथु) बढ़ाओ ॥ २२ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम शत्रुओं के नाशक और मित्रजनों की प्रशंसा करनेवाले जन का सत्कार करो और उसके लिए पृथिवी देओ । जैसे पवन और सूर्य भूमि और वृक्षों से जल को खेंच और वर्षाकर सबको बढ़ाते हैं वैसे ही उत्तम कामों से संसार को बढ़ाओ ॥ २२ ॥

अब पढ़ाने और उपदेश करनेवाले क्या करें यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्या शचीभिः ।
पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ॥२३॥

पदार्थ—हे (नासत्या) असत्य के छोड़ने से सत्य के ग्रहण करने, पढ़ने और उपदेश करनेवालो ! तुम दोनों (शचीभिः) अच्छी शिक्षा देनेवाली वाणियों से (अवस्यते) अपनी रक्षा और (स्तुवते) धर्म को चाहते हुए (ऋजूयते) सीधे स्वभाववाले के समान वर्त्तनेवाले (कृष्णियाय) आकर्षण के योग्य अर्थात् बुद्धि जिसको चाहती उस (विश्वकाय) संसार पर दया करनेवाले (दर्शनाय) धर्म-अधर्म को देखते हुए मनुष्य के लिए (पशुम्, न) जैसे पशु को प्रत्यक्ष दिखावे वैसे और जैसे (नष्टमिव) खोये हुए वस्तु को ढूंढ के बतावें वैसे (विष्णाप्वम्) विद्या में रमे हुए विद्वानों को जो बोध प्राप्त होता है उसको (ददथुः) देओ ॥ २३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालंकार हैं । शास्त्र के वक्ता उपदेश करने और विद्या पढ़ानेवाले विद्वान् जन जैसे प्रत्यक्ष गौ आदि पशु को वा छिपे हुए वस्तु को दिखाकर प्रत्यक्ष कराते हैं वैसे शम, दम आदि गुणों से युक्त बुद्धिमान् श्रोता वा अध्येताओं को पृथिवी से लेके ईश्वर पर्य्यन्त पदार्थों का विज्ञान देनेवाली साङ्गोपाङ्ग विद्याओं को प्रत्यक्ष करावें और इस विषय में कपट और आलस्य आदि निन्दित कर्म कभी न करें ॥ २३ ॥

दश रात्रीरशिवेना नव द्यूनवनद्धं श्नथितमप्स्वन्तः ।
विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्तमुन्निन्यथुः सोममिव स्रुवेण ॥२४॥

पदार्थ—हे (नासत्या) असत्य को छोड़कर सत्य का ग्रहण करने पढ़ाने और उपदेश करनेवालो ! तुम दोनों जैसे (शचीभिः) अच्छी शिक्षा देनेवाली वाणियों से (अशिवेन) अमङ्गल करनेवाले युद्ध के साथ वर्त्तमान शिल्पिजन (अवनद्धम्)

नीचे से बँधी (श्नथितम्) ढीली की (अवसि) जल में (विमुतम्) चलाई (अप्रवृतम्) और इधर-उधर जाने से रोकी हुई नौका आदि को (दश) दश (रात्रीः) रात्रि (नव) नौ (द्यून्) दिनों तक (अप्सु) जलों में (अन्तः) भीतर स्थिर कर फिर ऊपर को पहुँचावें उस ढंग से और जैसे (स्रुवेण) घी आदि के उठाने के साधन स्रुवा से (सोममिव) सोमलतादि ओषधियों को उठाते हैं वैसे (रेभम्) सबकी प्रशंसा करनेहारे अच्छे सज्जन को (उन्निन्यथुः) उन्नति को पहुँचाओ ॥ २४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। पिछले मन्त्र से 'नासत्या, शचीभिः' पदों की अनुवृत्ति आती है। हे मनुष्यो! जैसे जल के भीतर नौका आदि मे स्थित हुई सेना शत्रुओं से मारी नहीं जा सकती वैसे विद्या और सत्यधर्म के उपदेशों में स्थापित किये हुए जन अविद्याजन्य दुःख से पीडा नहीं पाते जैसे नियत समय पर कारीगर लोग नौकादि यानों को जल मे इधर-उधर लेजाके शत्रुओं को जीतते हैं वैसे विद्यादान से अविद्याओं को आप जीतो। जैसे यज्ञकर्म मे होमा हुआ द्रव्य वायु और जल आदि की शुद्धि करनेवाला होता है वैसे सज्जनों का उपदेश आत्मा की शुद्धि करनेवाला होता है ॥ २४ ॥

प्र वां दंसांस्यश्विनाववोचमस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः।

उत पश्यन्नश्नुवन्दीर्घमायुरस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम् ॥२५॥१२॥

पदार्थ—हे (अश्विनौ) समस्त शुभ कर्म और विद्या मे रमे हुए सज्जनो! मैं (वाम्) तुम दोनों उपदेश करने और पढानेवालों के (दंसांसि) उपदेश और विद्या पढाने आदि कामों को (प्र, अवोचम्) कहूँ उससे (सुगवः) अच्छी-अच्छी गौ और उत्तम-उत्तम वाणी आदि पदार्थोंवाला (सुवीरः) पुत्र-पौत्र आदि भृत्ययुक्त (पश्यन्) सत्य-असत्य को देखता (उत) और (दीर्घम्) बडी (आयुः) आयु को (अश्नुवन्) सुख से व्याप्त हुआ (अस्य) इस राज्य वा व्यवहार का (पतिः) पालनेवाला (स्याम्) होऊँ तथा संन्यासी महात्मा जैसे (अस्तमिव) घर को पाकर निर्लोभ से छोड दे वैसे (जरिमाणम्) बुड्ढे हुए शरीर को छोड़ सुख से (इत्) ही (जगम्याम्) शीघ्र चला जाऊँ ॥ २५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्य सदा धार्मिक शास्त्रवक्ताओं के कर्मों को सेवन कर धर्म और जितेन्द्रियपन से विद्याओं को पाकर आयु को बढ़ाके अच्छे सहायुक्त हुए संसार की पालना करें और योगाभ्यास से जीर्ण अर्थात् बुड्ढे शरीरों को छोड़ विज्ञान से मुक्ति को प्राप्त होवें ॥ २५ ॥

इस सूक्त मे पृथिवी आदि पदार्थों के गुणों के दृष्टान्त तथा अनुकूलता से सभासेनापति आदि के गुण-कर्मों के वर्णन से इस सूक्त में कहे अर्थ की पिछले सूक्त में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह बारहवाँ वर्ग और एकसौ सोलहवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

卐

अथास्य पञ्चविंशत्यृचस्य सप्तदशोत्तरशततमस्य सूक्तस्य कक्षीवानृषिः। अश्विनौ देवते। १ निचृत् पङ्क्तिः, ६, २२ विराट् पङ्क्तिः, ११, २१, २५ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। २, ४, ७, १२, १६-१९ निचृत् त्रिष्टुप्; ८-१०, १३-१५, २०, २३ विराट् त्रिष्टुप्, ३, ५, २४ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब एकसौ सत्रहवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है—

मध्वः सोमस्याश्विना मदाय प्रत्नो होता विवासते वाम्।

बर्हिष्मती रातिर्विश्रिता गीरिषा यातं नासत्योप वाजैः ॥१॥

पदार्थ—हे (अश्विना) विद्या में रमे हुए (नासत्या) झूठ से अलग रहनेवाले सभा सेनाधीशो! तुम दोनों (इषा) अपनी इच्छा से (प्रत्नः) पुरानी विद्या पढ़नेहारा (होता) सुखदाता जैसे (वाजैः) विज्ञान आदि गुणों के साथ (मदाय) रोग दूर होने के आनन्द के लिए (वाम्) तुम दोनों की (मध्वः) मीठी (सोमस्य) सोमवल्ली आदि ओषध की जो (बर्हिष्मती) प्रशंसित बढ़ी हुई (रातिः) दानक्रिया और (विश्रिता) विविध प्रकार के शास्त्रवक्ता विद्वानों से सेवन की हुई (गीः) वाणी है उसका जो (आ, विवासते) अच्छे प्रकार सेवन करता है उसके समान (उप, यातम्) समीप आ रहो अर्थात् उक्त अपनी क्रिया और वाणी का ज्यों का त्यों प्रचार करते रहो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे सभा और सेना के अधीशो! तुम उत्तम शास्त्रवेत्ता विद्वानों के गुण और कर्मों की सेवा से विशेष ज्ञान आदि को पाकर शरीर के रोग दूर करने के लिए सोमवल्ली आदि ओषधियों की विद्या और अविद्या-अज्ञान के दूर करने को विद्या का सेवन कर चाहे सुख की सिद्धि करो ॥ १ ॥

फिर राजधर्म को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यो वामश्विना मनसो जवीयान्रथः स्वश्वो विश आजिगाति।

येन गच्छथः सुकृतो दुरोणं तेन नरा वर्तिरस्मभ्यं यातम् ॥२॥

पदार्थ—हे (नरा) न्याय की प्राप्ति करानेवाले (अश्विना) विचारशील सभा सेनाधीशो! (यः) जो (सुकृतः) अच्छे साधनों से बनाया हुआ (स्वश्वः) जिसमें अच्छे वेगवान् बिजुली आदि पदार्थ वा घोडे लगे हैं वह (मनसः) विचारशील अत्यन्त वेगवान् मन से भी (जवीयान्) अधिक वेगवाला और (रथः) युद्ध की अत्यन्त क्रीडा करानेवाला रथ है वह (विशः) प्रजाजनों की (आजिगाति) अच्छे प्रकार प्रशंसा कराता और (वाम्) तुम दोनों (येन) जिस रथ से (वर्तिः) वर्त्तमान (दुरोणम्) घर को (गच्छथः) जाते हो (तेन) उससे (अस्मभ्यम्) हम लोगों को (यातम्) प्राप्त हूजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिए कि मनके समान वेगवाले बिजुली आदि पदार्थों से युक्त अनेक प्रकार के रथ आदि यानों को निश्चित कर प्रजाजनों को सन्ताप देवें। और जिस-जिस कर्म से प्रशंसा हो उसी-उसी का निरन्तर सेवन करें उससे और कर्म का सेवन न करें ॥ २ ॥

अब पढ़ने और पढ़ाने रूप राजधर्म का उपदेश अगले मन्त्रों में कहा है—

ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्यमृबीसादत्रिं मुञ्चथो गणेन।

मिनन्ता दस्योरशिवस्य माया अनुपूर्वं वृषणा चोदयन्ता ॥३॥

पदार्थ—हे (नरा) विद्या प्राप्ति कराने (वृषणा) सुख के वर्षाने (चोदयन्ता) और विद्या आदि शुभ गुणों में प्रेरणा करनेवाले तथा (अशिवस्य) सबको दुःख देनेहारे (दस्योः) उचक्के की (मायाः) कपटक्रियाओं का (मिनन्ता) काटनेवाले सभासेनाधीशो! तुम दोनों (अनुपूर्वम्) अनुकूल वेद में कहे और उत्तम विद्वानों मे माने हुए सिद्धान्त जिसके इस (पाञ्चजन्यम्) प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान में सिद्ध हुई योगसिद्धि को और जिसके सम्बन्ध से (अत्रिम्) आत्मा, मन और शरीर के दुःख नष्ट हो जाते हैं उस (गणेन) पढ़ने-पढ़ानेवालों के साथ वर्त्तमान (ऋषिम्) वेदपारगन्ता अध्यापक को (ऋबीसात्) नष्ट हुआ है विद्या का प्रकाश जिससे उस अविद्यारूप अन्धकार (अंहसः) और विद्या पढ़ाने को रोक देने रूप अत्यन्त पाप से (मुञ्चथः) अलग रखते हो ॥३॥

भावार्थ—राजपुरुषो का यह अत्यन्त उत्तम काम है जो विद्याप्रचार करनेहारों को दुःख से बचाना उनको सुख मे रखना और डाकू उचक्के आदि दुष्टजनों को दूर करना और वे राजपुरुष आप विद्या और धर्मयुक्त हो विद्वानों को विद्या और धर्म्म के प्रचार मे लगाकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि करें ॥३॥

अश्वं न गूळ्हमश्विना दुरेवैर्ऋषिं नरा वृषणा रेभमप्सु।

सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिर्न वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि ॥४॥

पदार्थ—हे (नरा) सुख की प्राप्ति (वृषणा) और विद्या की वर्षा करानेवाले (अश्विना) सभा सेनापतियो! तुम दोनों (दुरेवैः) दुःख पहुंचानेवाले दुष्ट मनुष्य आदि प्राणियों (दंसोभिः) और श्रेष्ठ विद्वानों से आचरण किये हुए कर्मों से ताड़ना को प्राप्त (अश्वम्) अति चलनेवाली बिजुली के समान (विप्रुतम्) विविध प्रकार अच्छे व्यवहारों को जानने (रेभम्) समस्त विद्या गुणों की प्रशंसा करने (अप्सु) विद्या मे व्याप्त होने और वेदादि शास्त्रों में निश्चय रखनेवाले (तम्) उस पूर्व मन्त्र में कहे हुए (ऋषिम्) वेदपारगन्ता विद्वान् के (न) समान (गूळ्हम्) अपने आशय को गुप्त रखनेवाले सज्जन पुरुष को सुख से (सं, रिणीथः) अच्छे प्रकार युक्त करो जिससे (वाम्, पूर्व्या कृतानि) तुम लोगों के जो पूर्वजों ने किये हुए विद्याप्रचाररूप काम वे (न) नहीं (जूर्यन्ति) जीर्ण होते अर्थात् नाश को नहीं प्राप्त होते ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है। राजपुरुषो से जैसे डाकुओं ने हरे छिपे हुए स्थान मे ठहराये और पीड़ा दिये हुए घोड़े को लेकर वह सुख के साथ अच्छी प्रकार रक्षा किया जाता है वैसे मूढ़, दुराचारी मनुष्यो ने निरस्कार किये हुए विद्याप्रचार करनेवाले मनुष्यों को समस्त पीड़ाओं से अलग कर सत्कार के साथ संग कर ये सेवा को प्राप्त किये जाते हैं और जो उनके बिजुली की विद्या के प्रचार के काम हैं वे अजर-अमर हैं यह जानना चाहिए ॥४॥

अब अगले मन्त्रों में राजधर्म विषय को कहते हैं—

सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम्।

शुभे रुक्मं न दर्शतं निखातमुदूपथुरश्विना वन्दनाय ॥५॥१३॥

पदार्थ—हे (दस्रा) दुःख का विनाश करनेवाले (अश्विना) कृषिकर्म की विद्या में परिपूर्ण सभा सेनाधीशो! तुम दोनों (वन्दनाय) प्रशंसा करने के लिए (निर्ऋतेः) भूमि के (उपस्थे) ऊपर (तमसि) रात्रि में (क्षियन्तम्) निवास करते और (सुषुप्वांसम्) सुख से सोते हुए के (न) समान वा (सूर्यम्) सूर्य के (न) समान और (शुभे) शोभा के लिए (रुक्मम्) सुवर्ण के (न) समान (दर्शतम्) देखने योग्य रूप (निखातम्) फारे से जोते हुए खेत को (उदूपथुः) ऊपर से बोओ ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे तीन उपमालंकार हैं। जैसे प्रजास्थजन अच्छे राज्य को पाकर रात्रि में सुख से सोके दिन मे चाहे हुए कामो मे मन लगाते हैं वा अच्छी शोभा होने के लिए सुवर्ण आदि वस्तुओं को पाते वा खेती आदि कामो को करते हैं वैसे अच्छी प्रजा को प्राप्त होकर राजपुरुष प्रशंसा पाते हैं ॥५॥

तद्वां नरा शंस्यं पज्रियेण कक्षीवता नासत्या परिज्मन्।

शफादश्वस्य वाजिनो जनाय शतं कुम्भाँ असिञ्चतं मधूनाम् ॥६॥

पदार्थ—हे (**पज्रियेण**) प्राप्त होने योग्यों में प्रसिद्ध हुए (**कक्षीवता**) शिक्षा करनेहारे विद्वान् के साथ वर्त्तमान (**नासत्या**) सत्य व्यवहार वर्त्तनेवाले (**नरा**) मनुष्यों में उत्तम सबको अपने-अपने काम में लगानेहारे सभासेनाधीशो ! तुम दोनों जो (**परिज्मन्**) सब प्रकार से जिसमें जाते हैं उस मार्ग को (**वाजिनः**) वेगवान् (**अश्वस्य**) घोड़े की (**शफात्**) टाप के समान बिजुली के वेग से (**कारोतराय**) अच्छे गुणों और उत्तम विद्याओं में प्रसिद्ध हुए विद्वान् के लिए (**मधूनाम्**) जलों के (**शतम्**) सैकड़ों (**कुम्भान्**) घड़ों को (**असिञ्चतम्**) सुख से सींचो अर्थात् भरो (**तत्**) उस (**वाम्**) तुम लोगों के (**शस्यम्**) प्रशंसा करने योग्य काम को हम जानते हैं ॥६॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिए कि मनुष्य आदि प्राणियों के सुख के लिए मार्ग में अनेक घड़ों के जल से नित्य सींचाव कराया करें जिससे घोड़े, बैल आदि के पैरों की खूंदन में धूल न उड़े। और जिसमें मार्ग में अपनी सेना के जन सुख से आवें-जावें इस प्रकार ऐसे प्रशंसित कामों को करके प्रजाजनों को निरन्तर आनन्द देवें ॥६॥

फिर अध्यापक और उपदेश करनेवालों के गुण अगले मन्त्र में कहते हैं—

युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ।
घोषायै चित्पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम् ॥७॥

पदार्थ—हे (**नरा**) सब कामों में प्रधान और (**अश्विनौ**) सब विद्याओं में व्याप्त सभासेनाधीशो ! (**युवम्**) तुम दोनों (**कृष्णियाय**) खेती के काम की योग्यता रखने और (**स्तुवते**) सत्य बोलनेवाले (**पितृषदे**) जिसके समीप विद्या विज्ञान देनेवाले स्थित होते (**विश्वकाय**) और जो सभा पर दया करता है उस राजा के लिए (**दुरोणे**) घर में (**विष्णाप्वम्**) जिस पुरुष से खेती के भरे हुए कामों को प्राप्त होता उस खेती रखनेवाले पुरुष को (**ददथुः**) देओ (**चित्**) और (**जूर्यन्त्यै**) बुड्ढेपन को प्राप्त करनेवाली (**घोषायै**) जिसमें प्रशंसित शब्द वा गौ आदि के रहने के विशेष स्थान हैं उस खेती के लिए (**पतिम्**) स्वामी अर्थात् उस की रक्षा करनेवाले को (**अदत्तम्**) देओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—राजा आदि न्यायाधीश खेती आदि कामों के करनेवाले पुरुषों से सब उपकार पालना करनेवाले पुरुष और सत्य न्याय को प्रजाजनों को देकर उन्हें पुरुषार्थ में प्रवृत्त करें। इन कार्यों की सिद्धि को प्राप्त हुए प्रजाजनों से धर्म के अनुकूल अपने भाग को यथायोग्य ग्रहण करें ॥ ७ ॥

फिर यहां राजधर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय ।
प्रवाच्यं तद्वृषणा कृतं वां यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम् ॥८॥

पदार्थ—हे (**वृषणा**) बलवान् (**अश्विना**) बहुत ज्ञान-विज्ञान की बातें सुने जाने हुए सभा सेनाधीशो ! (**युवम्**) तुम दोनों (**महः**) बड़े (**क्षोणस्य**) पढ़ानेवाले के तीर से (**श्यावाय**) ज्ञानी (**कण्वाय**) बुद्धिमान् के लिए (**रुशतीम्**) प्रकाश करनेवाली विद्या को (**अदत्तम्**) देओ तथा (**यत्**) जो (**वाम्**) तुम दोनों का (**प्रवाच्यम्**) अच्छी भांति कहने योग्य शास्त्र (**कृतम्**) करने योग्य काम और (**श्रवः**) सुनना है (**तत्**) उस को तथा (**नार्षदाय**) उत्तम उत्तम व्यवहारों में मनुष्य आदि को पहुंचानेहारे जनों में स्थित होते हुए के लड़के को (**अध्यधत्तम्**) अपने पर धारण करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—सभाध्यक्ष पुरुष से जिस प्रकार का उपदेश अच्छे बुद्धिमानों के प्रति किया जाता हो वैसा ही सब लोगों के स्वामी के लिए उपदेश करें ऐसे ही सब मनुष्यों के प्रति वर्त्ताव करना चाहिए ॥ ८ ॥

अब यहां तारविद्या के मूल का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

पुरू वर्पांस्यश्विना दधाना नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
सहस्रसां वाजिनमप्रतीतमहिहनं श्रवस्यं तरुत्रम् ॥९॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) शिल्पि जनो ! (**पुरु**) बहुत (**वर्पांसि**) रूपों को (**दधाना**) धारण किये हुए तुम दोनों (**पेदवे**) शीघ्र जाने के लिए (**श्रवस्यम्**) पृथिवी आदि पदार्थों में हुए (**अप्रतीतम्**) गुप्त (**वाजिनम्**) वेगवान् (**अहिहनम्**) मेघ के मारनेवाले (**सहस्रसाम्**) हजारों कर्मों का सेवन करने (**आशुम्**) शीघ्र पहुँचानेवाले (**तरुत्रम्**) और समुद्र आदि से पार उतारनेवाले (**अश्वम्**) बिजुली रूप अग्नि को (**न्यूहथुः**) चलाओ ॥ ९ ॥

भावार्थ—ऐसे शीघ्र पहुँचानेवाले बिजुली आदि अग्नि के बिना एक देश से दूसरे देश को सुख से जाने-आने तथा शीघ्र समाचार लेने को कोई समर्थ नहीं हो सकता है ॥ ९ ॥

अब बिजुली आदि पदार्थरूप संसार का बनाने वाला परमेश्वर ही उपासनीय है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

एतानि वां श्रवस्या सुदानू ब्रह्माङ्गूषं सदनं रोदस्योः ।
यद्वां पज्रासो अश्विना हवन्ते यातमिषा च विदुषे च वाजम् ॥१०॥

पदार्थ—हे (**सुदानू**) अच्छे दान देनेवाले (**अश्विनौ**) सभा सेनाधीशो ! (**वाम्**) तुम दोनों के (**एतानि**) ये (**श्रवस्या**) अन्न आदि पदार्थों में उत्तम प्रशंसा योग्य कर्म हैं इस कारण (**वाम्**) तुम दोनों (**पज्रासः**) विशेष ज्ञान देनेवाले मित्र जन (**यत्**) जिस (**रोदस्योः**) पृथिवी और सूर्य के (**सदनम्**) आधाररूप (**आङ्गूषम्**) विद्याओं के ज्ञान देनेवाले (**ब्रह्म**) सर्वज्ञ परमेश्वर को (**हवन्ते**) ध्यान मार्ग से ग्रहण करते (**च**) और जिस को तुम लोग (**यातम्**) प्राप्त होते हो उस के (**वाजम्**) विज्ञान को (**इषा**) इच्छा और (**च**) अच्छे यत्न तथा योगाभ्यास से (**विदुषे**) विद्वान् के लिए भली भांति पहुंचाओ ॥ १० ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिए कि सब का आधार, सब की उपासना के योग्य, सब का रचनेहारा ब्रह्म जिन उपायों से जाना जाता है उन से आप औरों के लिए भी ऐसे ही जनाकर पूर्ण आनन्द को प्राप्त होवें ॥ १० ॥

फिर बिजुली की विद्या का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

सूनोर्मानेनाश्विना गृणाना वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता ।
अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना सं विश्पलां नासत्यारिणीतम् ॥११॥

पदार्थ—हे (**रदन्ता**) अच्छे लिखनेवाले ! (**सूनोः**) अपने लड़के के समान (**मानेन**) सत्कार से (**विप्राय**) अच्छी सुध रखनेवाले बुद्धिमान् जन के लिए (**वाजम्**) सच्चे बोध को (**गृणाना**) उपदेश और (**भुरणा**) सुख धारण करते हुए (**नासत्या**) सत्य से भरे पूरे (**वावृधाना**) वृद्धि को प्राप्त और (**ब्रह्मणा**) वेद से (**अगस्त्ये**) जानने योग्य व्यवहारों में उत्तम काम के निमित्त (**विश्पलाम्**) प्रजाजनों के पालनेवाली विद्या को (**अश्विना**) प्राप्त होते हुए सभासेनाधीशो ! तुम दोनों मित्रपने से प्रजा के साथ (**समरिणीतम्**) मिलो ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जैसे माता-पिता सन्तानों और सन्तान माता पिताओं, पढ़ानेवाले पढ़नेवालों और पढ़नेवाले पढ़ानेवालों, पति स्त्रियों और स्त्री पतियों को तथा मित्र मित्रों को परस्पर प्रसन्न करते हैं वैसे ही राजा प्रजाजनों और प्रजा राजजनों को निरन्तर प्रसन्न करें ॥ ११ ॥

कुह यान्ता सुष्टुतिं काव्यस्य दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा ।
हिरण्यस्येव कलशं निखातमुदूपथुर्दशमे अश्विनाहन् ॥१२॥

पदार्थ—हे (**यान्ता**) गमन करते (**नपाता**) न गिरते (**वृषणा**) श्रेष्ठ कामनाओं की वर्षा कराते और (**शयुत्रा**) सोते हुए प्राणियों की रक्षा करनेवाले (**अश्विना**) सभा सेनाधीशो ! तुम दोनों (**दशमे**) दशवें (**अहन्**) दिन (**हिरण्यस्येव**) सुवर्ण के (**निखातम्**) बीच में पाले (**कलशम्**) घड़े के समान (**दिवः**) विज्ञानयुक्त (**काव्यस्य**) कविताई की (**सुष्टुतिम्**) अच्छी बड़ाई को (**कुह**) कहां (**उदूपथुः**) उत्कर्ष से बोते हो ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे धनाढ्यजन सुवर्ण आदि धातुओं के बासनों में दूध, घी दही, आदि पदार्थों को धर और उन को पका कर खाते हुए प्रशंसा पाते हैं वैसे दो शिल्पिजन इस विद्या और न्यायमार्गों में प्रजाजनों का प्रवेश कराकर धर्म और न्याय के उपदेशों से उन को पक्का कर राज्य और धन के सुख को भोगते हुए प्रशंसित कहां होवें ? इस का यह उत्तर है कि धार्मिक विद्वान् जनों में होवें ॥ १२ ॥

फिर जवान अवस्था ही में विवाह करना अवश्य है यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः ।
युवो रथं दुहिता सूर्यस्य सह श्रिया नासत्यावृणीत ॥१३॥

पदार्थ—हे (**नासत्या**) सत्य वर्त्ताव वर्त्तनेवाले (**अश्विना**) शरीर और आत्मा के बल से युक्त सभासेनाधीशो ! (**युवम्**) तुम दोनों (**शचीभिः**) अच्छी बुद्धियों वा कर्मों के साथ वर्त्तमान अपने सन्तानों को भली-भांति सेवा कर जवान (**चक्रथुः**) करो (**पुनः**) फिर (**युवोः**) तुम दोनों की युवती अर्थात् यौवन अवस्था को प्राप्त (**सूर्यस्य**) सूर्य की दी हुई प्रातःकाल की वेला के समान (**दुहिता**) कन्या (**श्रिया**) धन, शोभा, विद्या वा सेवा के (**सह**) साथ वर्त्तमान (**च्यवानम्**) गमन और (**जरन्तम्**) प्रशंसा करनेवाले (**युवानम्**) जवानी से परिपूर्ण (**रथम्**) रमण करने योग्य मनोहर पति को (**अवृणीत**) वरे और पुत्र भी ऐसा जवान होता हुआ युवती स्त्री को वरे ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। माता-पिता आदि को अतीव योग्य है कि जब अपने सन्तान पूर्ण अच्छी सिखावट, विद्या, शरीर और आत्मा के बल, रूप, लावण्य, स्वभाव, आरोग्यपन धर्म और ईश्वर को जानने आदि उत्तम गुणों के साथ वर्त्ताव रखने को समर्थ हों तब अपनी इच्छा और परीक्षा के साथ आप ही स्वयंवर विधि से दोनों सुन्दर, समान गुण, कर्म, स्वभाव युक्त पूरे जवान बली लड़की-लड़के विवाह कर ऋतु समय में साथ का संयोग करनेवाले होकर धर्म के साथ अपना वर्त्ताव वर्त्तकर प्रजा अर्थात् अच्छे सन्तानों को उत्पन्न करें यह उपदेश देना चाहिए बिना इसके कभी कुल की उन्नति होने के योग्य नहीं है इससे सज्जन पुरुषों को ऐसा ही सदा करना चाहिए ॥ १३ ॥

युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः पुनर्मन्यावभवतं युवाना ।
युवं भुज्युमर्णसो निः समुद्राद्विभिरूहथुर्ऋज्रेभिरश्वैः ॥१४॥

पदार्थ—हे (पुनर्मन्यौ) बार-बार जाननेवाले (युवाना) युवावस्था को प्राप्त विद्या पढ़े हुए स्त्री-पुरुषो ! (युवम्) तुम दोनों (तुग्राय) बल के लिए (पूर्व्येभिः) अगले सज्जनों से किये हुए (एवैः) विज्ञान आदि उत्तम व्यवहारों से सुखी (अभवतम्) होओ (युवम्) तुम दोनों (विभिः) आकाश मे उड़नेवाले पक्षियों के समान (ऋज्रेभिः) जिन से हाल न लगे उन जोड़े हुए सरल चाल से चलाने और (अश्वैः) शीघ्र जानेवाले बिजुली आदि पदार्थों से बने हुए विमानादि यानों से (अर्णसः) अगाध जल से भरे हुए (समुद्रात्) समुद्र से पार (भुज्युम्) शरीर और आत्मा की पालना करनेवाले पदार्थों को (निरूहथुः) निर्वाहो अर्थात् निरन्तर पहुँचाओ ॥ १४ ॥

भावार्थ—स्त्री-पुरुष अगले महात्मा, ऋषि-महर्षियों ने किये जो काम हैं उन का आचरण कर धर्मयुक्त ब्रह्मचर्य्य से शीघ्रपूर्ण विद्याओं को पाकर क्रिया की कुशलता से विमान आदि यानों को बनाकर भूगोल के सब ओर विहार कर नित्य आनन्दयुक्त हों ॥ १४ ॥

अजोहवीदश्विना तौग्र्यो वां प्रोळ्हः समुद्रमव्यथिर्जगन्वान् ।

निष्टमूहथुः सुयुजा रथेन मनोजवसा वृषणा स्वस्ति ॥१५॥१४॥

पदार्थ—हे (वृषणा) उत्तम बलवाले (अश्विना) विद्या और उत्तम शीलों में व्याप्त स्त्री-पुरुषो ! तुम दोनों जो (वाम्) तुम्हारा (तौग्र्यः) बल से सिद्ध हुआ (प्रोळ्हः) उत्तमता से प्राप्त (अव्यथिः) जिस को व्यथा वा कष्ट नहीं है (जगन्वान्) जो निरन्तर गमन करनेवाला सेना का समुदाय है वह (समुद्रम्) समुद्र का (अजोहवीत्) बार-बार तिरस्कार करे अर्थात् उससे उत्तीर्ण हो उसकी गम्भीरता न गिने (तम्) उस उक्त सेना समुदाय को (सुयुजा) सुन्दरता से जुड़े (मनोजवसा) मन के समान वेग से जाते हुए (रथेन) रमणीय विमान आदि यानसमुदाय से (स्वस्ति) सुखपूर्वक (निरूहथुः) निर्वाहो अर्थात् एक देश से दूसरे देश को पहुँचाओ ॥ १५ ॥

भावार्थ—जब ब्रह्मचर्य किये पुरुष शत्रुओं के विजय के लिए समुद्र के पार जाना चाहें तब स्त्री और सेना के साथ ही वेगवान् यानों से जावें-आवें ॥ १५ ॥

फिर राजधर्म विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अजोहवीदश्विना वर्तिका वामास्नो यत्सीममुञ्चतं वृकस्य ।

वि जयुषा ययथुः सान्वद्रेर्जातं विष्वाचो अहतं विषेण ॥१६॥

पदार्थ—हे (अश्विना) शीघ्र जानेहारे सभासेनाधीशो ! (वर्तिका) संग्राम मे वर्त्तमान सेना (यत्सीम्) जिस समय (वाम्) तुम दोनों को (अजोहवीत्) निरन्तर बुलावे तब उस को (वृकस्य) भेड़िया के (आस्नः) मुख मे जैसे वैसे शत्रुमण्डल से (अमुञ्चतम्) छुड़ाओ अर्थात् उसको जीतो और अपनी सेना को बचाओ तुम दोनों (जयुषा) जय देनेवाले अपने रथ से (अद्रेः) पर्वत के (सानु) शिखर को (वि, ययथुः) विविध प्रकार जाओ और (विष्वाचः) विविध गतिवाले शत्रुमण्डल के (जातम्) उत्पन्न हुए बल को (विषेण) उस का विपर्य्यय करनेवाले विषरूप अपने बल से (अहतम्) विनाशो, नष्ट करो ॥ १६ ॥

भावार्थ—राजपुरुष जैसे बलवान्, दयालु शूरवीर बघेले के मुख से छेरी को छुड़ाता है वैसे डाकुओं के भय से प्रजाजनों को अलग रक्खें । जब शत्रुजन पर्वतों मे वर्त्तमान मारे नहीं जा सकते हों तब उन के अन्न-पान आदि को विदूषित कर उन को वश मे लावें ॥ १६ ॥

शतं मेषान् वृक्ये मामहानं तमः प्रणीतमशिवेन पित्रा ।

आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनावधत्तं ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे ॥१७॥

पदार्थ—हे (अश्विनौ) सभा सेनाधीशो ! तुम दोनों जिस (अशिवेन) अमंगलकारी (पित्रा) प्रजा पालनेहारे न्यायधीश न (तमः) दुःखरूप अन्धकार (प्रणीतम्) भली-भाँति पहुँचाया उस (वृक्ये) भेड़िनी के लिए (शतम्) सैकड़ों (मेषान्) मेढ़ों को (मामहानम्) देने हुए के समान प्रजाजनों को पीड़ा देते हुए राज्याधिकारी को छुड़ाओ, अलग करो (ऋज्राश्वे) अच्छे सीखे हुए घोड़े आदि पदार्थों से युक्त सेना मे (अक्षी) आँखों का (आ, अधत्तम्) आधान करो अर्थात् दृष्टि देओ वहाँ के बने-बिगड़े व्यवहार को विचारो और (अन्धाय) अन्धे के समान अज्ञानी के लिए (विचक्षे) विज्ञानपूर्वक देखने के लिए (ज्योतिः) विद्याप्रकाश को (चक्रथुः) प्रकाशित करो ॥ १७ ॥

भावार्थ—हे सभासेना आदि के पुरुषो ! तुम लोग प्रजाजनों मे अन्याय से भेड़िनी अपने प्रयोजन के लिए भेड़ बकरों मे जैसे प्रवृत्त होती है वैसे वर्त्ताव रखनेवाले अपने भृत्यों को अच्छे दण्ड देकर अन्य धर्मात्मा भृत्यों मे प्रजाजनों मे सूर्य्य के समान रक्षा आदि व्यवहारों को निरन्तर प्रकाशित करो जैसे आँखवाला कुएँ से अन्धे को बचाकर सुख देता है वैसे अन्याय करनेवाले भृत्यों से पीड़ा को प्राप्त हुए प्रजाजनों को अलग रक्खो ॥ १७ ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

शुनमन्धाय भरमह्वयत्सा वृकीरश्विना वृषणा नरेति ।

जारः कनीनइव चक्षदान ऋज्राश्वः शतमेकं च मेषान् ॥१८॥

पदार्थ—हे (वृषणा) सुख वर्षाने और (नरा) धर्म-अधर्म का विवेक करनेहारे (अश्विना) सभा-सेनाधीशो ! (सा) वह (वृकीः) चोर की स्त्री (शतम्) सौ (च) और (एकम्) एक (मेषान्) भेड़-मेढ़ों को (अह्वयत्) हाँक देकर जैसे बुलावे (इति) इस प्रकार वा (ऋज्राश्वः) सीधी चाल चलनेहारे घोड़ोंवाला (चक्षदानः) जिससे कि विद्या वचन दिया जाता है उस (जारः) बुड्ढे वा जारकर्म करनेहारे चालाक (कनीनइव) प्रकाशमान मनुष्य के समान तुम (अन्धाय) अन्धे के लिए (भरम्) पोषण अर्थात् उसकी पालना और (शुनम्) सुख धारण करो ॥ १८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । राजपुरुष अविद्या से अन्धे हो रहे जनों को अन्यायकारियों से उत्तम सती स्त्रियों को लंपट वेश्याबाजों से जैसे भेड़ियों से भेड़ बकरों को बचावें वैसे निरन्तर बचा कर पालें ॥ १८ ॥

मही वामूतिरश्विना मयोभूरुत स्रामं धिष्ण्या सं रिणीथः ।

अथा युवामिदह्वयत् पुरंधिरागच्छतं सीं वृषणाववोभिः ॥१९॥

पदार्थ—हे (वृषणौ) सुख वर्षानेवाले (धिष्ण्या) बुद्धिमान् (अश्विना) सभा और सेना मे अधिकार पाये हुए जनो ! (वाम्) तुम दोनों की जो (मही) बड़ी (उत) और (मयोभूः) सुख को उत्पन्न करानेवाली (ऊतिः) रक्षा आदि युक्त नीति है उससे (स्रामम्) दुःख देनेवाले अन्याय को (युवाम्) तुम (सं, रिणीथः) भली भाँति दूर करो (अथ) इसके पीछे जो (पुरन्धिः) अति बुद्धिमान् जवान यौवन से पूर्ण स्त्री को (अह्वयत्) बुलावे (इत्) उसीके समान (अवोभिः) रक्षा आदि के साथ (सीम्) ही (आ, अगच्छतम्) आओ ॥१९॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिए कि न्याय से अन्याय को अलग कर धर्म में प्रवृत्त, शरण आये हुए जनों को अच्छे प्रकार पालके सब ओर से कृतकृत्य हों ॥ १९ ॥

अब स्त्री-पुरुष विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

अधेनुं दस्रा स्तर्यं१ विषक्तामपिन्वतं शयवे अश्विना गाम् ।

युवं शचीभिर्विमदाय जायां न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम् ॥२०॥

पदार्थ—हे (दस्रा) दुःख दूर करनेहारे (अश्विना) भूगर्भ विद्या को जानते हुए स्त्री पुरुषो ! (युवम्) तुम दोनों (शचीभिः) कर्मों के साथ (विषक्ताम्) विविध प्रकार के पदार्थों से युक्त (स्तर्यम्) सुखों से ढाँपनेवाली नाव वा (अधेनुम्) नहीं दुहानेहारी (गाम्) गौ को (अपिन्वतम्) जलों से सींचो (विमदाय) विशेष मदयुक्त अर्थात् पूर्ण युवावस्थावाले (शयवे) सोते हुए पुरुष के लिए (पुरुमित्रस्य) बहुत मित्रवाले की (योषाम्) युवती कन्या को (जायाम्) पत्नीपन को (न्यूहथुः) निरन्तर प्राप्त कराओ ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । हे राजपुरुषो ! तुम जैसे सबके मित्र की सुलक्षणा, मन लगती ब्रह्मचारिणी, पण्डिता, अच्छे शील-स्वभाव की, निरन्तर सुख देनेवाली धर्मशील कुमारी को भार्य्या करने के लिए स्वीकार कर उसकी रक्षा करते हो वैसे ही साम, दाम, दण्ड, भेद अर्थात् शान्ति किसी प्रकार का दबाव, दण्ड देना और एक से दूसरे को तोड़-फोड़ उसको बेमन करना आदि राज कामों से भूमि के राज्य को पाकर धर्म से सदैव उसकी रक्षा करो ॥ २० ॥

फिर राजधर्म विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा ।

अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ॥२१॥

पदार्थ—हे (दस्रा) दुःख दूर करनेहारे (अश्विना) सुख में रमे हुए सभासेनाधीशो ! तुम दोनों (मनुषाय) विचारवान् मनुष्य के लिए (वृकेण) छिन्न-भिन्न करनेवाले हल आदि शस्त्र-अस्त्र से (यवम्) यव आदि अन्न के समान (वपन्ता) बोते और (इषम्) अन्न को (दुहन्ता) पूर्ण करते हुए तथा (आर्य्याय) ईश्वर के पुत्र के तुल्य वर्त्तमान धार्मिक मनुष्य के लिए (बकुरेण) प्रकाशमान सूर्य्य ने किया (ज्योतिः) प्रकाश जैसे अन्धकार को वैसे (दस्युम्) डाकू दुष्ट प्राणी को (अभि, धमन्ता) अग्नि से जलाते हुए (उरु) अत्यन्त बड़े राज्य को (चक्रथुः) करो ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे लुप्तोपमालङ्कार है । राजपुरुषों को चाहिए कि प्रजाजनों मे जो कण्टक, लम्पट, चोर, झूठा और खरे बोलनेवाले दुष्ट मनुष्य हैं उनको रोक खेती आदि कामों से युक्त वैश्य प्रजाजनों की रक्षा और खेती आदि कामों की उन्नति कर अत्यन्त विस्तीर्ण राज्य का सेवन करें ॥ २१ ॥

आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम् ।

स वां मधु प्र वोचदृतायन्त्वाष्ट्रं यद्दस्रावपिकक्ष्यं वाम् ॥२२॥

पदार्थ—हे (दस्रौ) दुःख की निवृत्ति करने और (अश्विना) अच्छे कर्मों में प्रवृत्त करानेहारे सभासेनाधीशो ! (वाम्) तुम दोनों (यत्) जिस (आथर्वणाय) जिसके संशय कट गए उसके पुत्र के लिए तथा (दधीचे) विद्या और धर्मों को धारण किये हुए मनुष्यों की प्रशंसा करनेवाले के लिए (अश्व्यम्) घोड़ों मे हुए (शिरः) उत्तम अङ्ग को (प्रत्यैरयतम्) प्राप्त करो (सः) वह (ऋतायन्) अपने को सत्य व्यवहार चाहता हुआ (वाम्) तुम दोनों के लिए (अपिकक्ष्यम्) विद्या की कक्षाओं में हुए बोधों के प्रति जो वर्त्तमान उस (त्वाष्ट्रम्) शीघ्र समस्त विद्याओं में व्याप्त होनेवाले विद्वान् के (मधु) मधुर विज्ञान का (प्र, वोचत्) उपदेश करे ॥ २२ ॥

भावार्थ—सभासेनाधीश आदि राजजन विद्वानों में श्रद्धा करें और अच्छे कामों में प्रेरणा दें और वे तुम लोगों के लिए सत्य का उपदेश देकर प्रमाद और अधर्म से निवृत्त करें ॥ २२ ॥

सदा कवी सुमतिमा चके वां विश्वा धियो अश्विना प्रावतं मे ।

अस्मे रयिं नासत्या बृहन्तमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथाम् ॥२३॥

पदार्थ—हे (नासत्या) सत्य व्यवहार युक्त (कवी) सब पदार्थों में बुद्धि को चलाने और (अश्विना) विद्या की प्राप्ति करानेवाले सभासेनाधीशो ! (वाम्) तुम लोगों की (सुमतिम्) धर्मयुक्त उत्तम बुद्धि को मैं (आ, चके) अच्छे प्रकार चहूं तुम दोनो (मे) मेरे लिए (विश्वा.) समस्त (धियः) धारणावती बुद्धियों को (सदा) सब दिन (प्र, अवतम्) प्रवेश कराओ तथा (अस्मे) हम लोगों के लिए (बृहन्तम्) अति बढ़े हुए (अपत्यसाचम्) पुत्र-पौत्र आदि युक्त (श्रुत्यम्) सुनने योग्य (रयिम्) धन को (रराथाम्) दिया करो ॥ २३ ॥

भावार्थ—विद्यार्थी और राजा आदि गृहस्थों को चाहिए कि शास्त्रवेत्ता विद्वानों के निकट से उत्तम बुद्धियो को लेवें और वे विद्वान् भी उनके लिए विद्या आदि धन को दे निरन्तर उन्हें अच्छी सिखावट सिखाके धर्मात्मा विद्वान् करें ॥२३॥

अब अध्यापक का कृत्य अगले मन्त्र में कहते हैं—

हिरण्यहस्तमश्विना रराणा पुत्रं नरा वध्रिमत्या अदत्तम् ।

त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्तमुज्जीवस ऐरयतं सुदानू ॥२४॥

पदार्थ—हे (रराणा) उत्तम गुणो के देने (नरा) श्रेष्ठ पदार्थों की प्राप्ति कराने और (अश्विना) रक्षा आदि कर्मों मे व्याप्त होनेवाले अध्यापको ! तुम दोनों (हिरण्यहस्तम्) जिसके हाथ में सुवर्ण आदि धन वा हाथ के समान विद्या और तेज आदि पदार्थ हैं उस (वध्रिमत्या) वृद्धि देनेवाली विद्या की (पुत्रम्) रक्षा करनेवाले जन को मेरे लिए (अदत्तम्) देओ । हे (सुदानू) अच्छे दानशील सज्जनों के समान वर्त्तमान (अश्विना) ऐश्वर्य्ययुक्त पढ़ानेवालो ! तुम दोनों उस (श्यावम्) विद्या पाये हुए (विकस्तम्) अनेको प्रकार शिक्षा देनेहारे मनुष्य को (जीवसे) जीवने के लिए (ह) ही (त्रिधा) तीन प्रकार अर्थात् मन, वाणी और शरीर की शिक्षा आदि के साथ (उत्, ऐरयतम्) प्रेरणा देओ अर्थात् समझाओ ॥ २४ ॥

भावार्थ—पढ़ानेवाले सज्जन पुत्रो और पढ़ानेवाली स्त्रियाँ पुत्रियों को ब्रह्मचर्य नियम में लगाकर इनके दूसरे विद्याजन्म को सिद्ध कर जीवन के उपाय अच्छे प्रकार सिखाके समय पर उनके माता पिता को देवें और वे घर को पाकर भी उन गुरुजनों की शिक्षाओं को न भूलें ॥ २४ ॥

फिर स्त्री-पुरुष कब विवाह करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

एतानि वामश्विना वीर्याणि प्र पूर्व्याण्यायवोऽवोचन् ।

ब्रह्म कृण्वन्तो वृषणा युवभ्यां सुवीरासो विदथमा वदेम ॥२५॥

पदार्थ—हे (वृषणा) विद्या के वर्षाने और (अश्विनौ) प्रशंसित कर्मों में व्याप्त स्त्रीपुरुषो ! (वाम्) तुम दोनो के जो (एतानि) ये प्रशंसित (पूर्व्याणि) अगले विद्वानो से नियत किये हुए (वीर्याणि) पराक्रमयुक्त काम हैं उनको (आयवः) मनुष्य (प्रावोचन्) भली-भाँति कहें (युवभ्याम्) तरुण अवस्थावाले तुम दोनों के लिए (ब्रह्म) अन्न और धन को (कृण्वन्तः) सिद्ध करते हुए (सुवीरासः) जिनके अच्छी सिखावट और उत्तम विद्यायुक्त वीर पुत्र, पौत्र और सेवक हैं वे हम लोग (विदथम्) विज्ञान करानेवाले, पढ़ने-पढ़ानेरूप यज्ञ का (आ, वदेम) उपदेश करें ॥ २५ ॥

भावार्थ—मनुष्य, जिन विद्वानो ने लोक के उपकारक विद्या और धर्मोपदेश के प्रचार करनेवाले काम किये वा जिनसे किये जाते हैं उनकी प्रशंसा और अन्न वा धन आदि से सेवा करें क्योंकि कोई विद्वानों के संग के बिना विद्या आदि उत्तम-उत्तम रत्नों को नहीं पा सकते । न कोई कपट आदि दोषों से रहित शास्त्र जाननेवाले विद्वानों के संग और उनसे विद्या पढ़ने के बिना अच्छी शीलता और विद्या की वृद्धि करने को समर्थ होते हैं ॥ २५ ॥

इस सूक्त में राजा-प्रजा और पढ़ने-पढ़ाने आदि कामों के वर्णन से पूर्व सूक्तार्थ के साथ इस सूक्त के अर्थ की संगति है यह समझना चाहिए ॥

यह प्रथम अष्टक के आठवें अध्याय में सत्रहवाँ वर्ग और एकसौ सत्रहवाँ सूक्त पूरा हुआ ॥

卐

अथास्यैकादशर्चस्याष्टादशोत्तरशततमस्य सूक्तस्य कक्षीवानृषिः । अश्विनौ देवते ।
१, ११ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २, ५, ७
त्रिष्टुप्, ३, ६, ९, १० निचृत्त्रिष्टुप् ४, ८ विराट्
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचावाले एकसौ अठारहवें सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुष क्या करें यह विषय कहा है—

आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।

यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा वातरंहाः ॥१॥

पदार्थ—हे (वृषणा) बलवान् (अश्विना) शिल्प कामों के जाननेवाले स्त्री-पुरुषो ! (वाम्) तुम दोनों को (यः) जो (त्रिवन्धुरः) जिसमें नीचे, बीच में और ऊपर बन्धन हों (श्येनपत्वा) बाज पखेरू के समान जानेवाला (वातरंहाः) जिसका पवन के समान वेग (मर्त्यस्य) मनुष्य के (मनसः) मन से भी (जवीयान्) अत्यन्त धावने और (सुमृळीकः) उत्तम सुख देनेवाला (स्ववान्) जिसमें प्रशंसित भृत्य वा अपने पदार्थ विद्यमान हैं ऐसा (रथः) रथ है वह (अर्वाङ्) नीचे (आ, यातु) आवे ॥१॥

भावार्थ—स्त्री-पुरुष जब ऐसे ज्ञान को उत्पन्न कर उपयोग में लावें तब ऐसा कौन सुख है जिसको वे सिद्ध नहीं कर सकें ॥१॥

फिर राज्य के सहाय से स्त्री-पुरुष के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् ।

पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्विना वीरमस्मे ॥२॥

पदार्थ—हे (अश्विना) सभासेनाधीशो ! तुम दोनों (त्रिवन्धुरेण) जो तीन प्रकार के बन्धनो से युक्त (त्रिचक्रेण) जिसमें कलों के तीन चक्कर लगे (त्रिवृता) और तीन ओढ़ने के वस्त्रों से युक्त जो (सुवृता) अच्छे-अच्छे मनुष्य वा उत्तम शृङ्गारों के साथ वर्त्तमान (रथेन) रथ है उससे (अर्वाक्) भूमि के नीचे (आ, यातम्) आओ (नः) हम लोगों की (गाः) पृथिवी में जो भूमि हैं उनका (पिन्वतम्) सेवन करो (अर्वतः) राज्य पाये हुए मनुष्य वा घोड़ों को (जिन्वतम्) जिवाओ, सुख देओ (अस्मे) हम लोगों को और हम लोगों के (वीरम्) शूरवीर पुरुष को (वर्धयतम्) बढ़ाओ, वृद्धि देओ ॥२॥

भावार्थ—राजपुरुष अच्छी सामग्री और उत्तम शास्त्रवेत्ता विद्वानों का सहाय ले और सब स्त्री पुरुषों को समृद्धि और सिद्धियुक्त करके प्रशंसित हों ॥२॥

प्रवद्यामना सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।

किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥३॥

पदार्थ—(प्रवद्यामना) भली-भाँति चलनेवाले (सुवृता) अच्छे-अच्छे साधनों से युक्त (रथेन) विमान आदि रथ से (अद्रेः) पर्वत के ऊपर जाने और (दस्रौ) दान आदि उत्तम कामों के करनेवाले (अश्विना) सभासेनाधीशो वा हे स्त्री पुरुषो ! (वाम्) तुम दोनो (इमम्) इस (श्लोकम्) वाणी को (शृणुतम्) सुनो कि (अङ्ग) हे उक्त सज्जनो ! (पुराजाः) अगले वृद्ध (विप्रासः) उत्तम बुद्धिवाले विद्वान् जन (गमिष्ठा) अति चलते हुए तुम दोनों के (प्रति) प्रति (किम्) किस (अवर्तिम्) न वर्त्तने, न कहने योग्य निन्दित व्यवहार का (आहुः) उपदेश करते हैं अर्थात् कुछ भी नहीं ॥३॥

भावार्थ—हे राजा आदि स्त्री-पुरुषो ! तुम जो-जो उत्तम विद्वानों ने उपदेश किया उसी-उसी को स्वीकार करो क्योंकि सत्पुरुषो के उपदेश के बिना संसार में मनुष्यों की उन्नति नहीं होती । जहाँ उत्तम विद्वानों के उपदेश नहीं प्रवृत्त होते हैं वहाँ सब अज्ञानरूपी अन्धेरे से ढँपे होकर पशुओं के समान वर्त्ताव कर दुःख को ही सब हठा करते हैं ॥३॥

फिर वे स्त्री-पुरुष क्या करें यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु रथे युक्तास आशवः पतङ्गाः ।

ये अप्तुरो दिव्यासो न गृध्रा अभि प्रयो नासत्या वहन्ति ॥४॥

पदार्थ—हे (नासत्या) सत्य के साथ वर्त्तमान (अश्विना) सब विद्याओं में व्याप्त स्त्री-पुरुषो ! (ये) जो (अप्तुरः) अन्तरिक्ष में शीघ्रता करने (दिव्यासः) और अच्छे खेलनेवाले (गृध्राः) गृध्र पखेरुओं के (न) समान (प्रयः) प्रीति किये अर्थात् चाहे हुए स्थान को (अभि, वहन्ति) सब ओर से पहुँचाते हैं वे (श्येनासः) बाज पखेरू के समान चलने (पतङ्गाः) सूर्य के समान निरन्तर प्रकाशमान (आशवः) और शीघ्रतायुक्त घोड़ो के समान अग्नि आदि पदार्थ (रथे) विमानादि रथ में (युक्तासः) युक्त किये हुए (वाम्) तुम दोनो को (आ, वहन्तु) पहुँचाते हैं ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे स्त्री-पुरुषो ! जैसे आकाश में अपने पङ्खों से उड़ते हुए गृध्र आदि पखेरू सुख से आते-जाते हैं वैसे ही तुम अच्छे सिद्ध किये विमान आदि यानों से अन्तरिक्ष में आओ-जाओ ॥४॥

आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र जुष्ट्वी नरा दुहिता सूर्यस्य ।

परि वामश्वा वपुषः पतङ्गा वयो वहन्त्वरुषा अभीके ॥५॥

पदार्थ—हे (नरा) सब के नायक सभासेनाधीशो ! (वपुषः) सुन्दर रूप की (जुष्ट्वी) प्रीति को पाये हुए वा सुन्दर रूप की सेवा करती सुन्दरी (युवतिः) नवयौवना (दुहिता) कन्या (सूर्यस्य) सूर्य की किरण जो प्रातःसमय की वेला जैसे पृथिवी पर ठहरे वैसे (वाम्) तुम दोनों के (रथम्) रथ पर (आ, तिष्ठत्) आ बैठे (अत्र) इस (अभीके) संग्राम में (पतङ्गाः) गमन करते हुए (अरुषाः) लाल रङ्गवाले (वयः) पखेरुओं के समान (अश्वाः) शीघ्रगामी अग्नि आदि पदार्थ (वाम्) तुम दोनों को (परि, वहन्तु) सब ओर से पहुँचाएँ ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालंकार है । जैसे सूर्य की किरणें सब ओर से आती-जाती हैं वा जैसे पतिव्रता उत्तम स्त्री पति को सुख पहुँचाती है वा जैसे पखेरू ऊपर नीचे जाते हैं वैसे युद्ध में उत्तम यान और उत्तम वीर जन चाहे हुए सुख को सिद्ध करते हैं ॥५॥

उद्वन्दनमैरतं दंसनाभिरुद्रेभं दस्रा वृषणा शचीभिः ।
निष्टौग्र्यं पारयथः समुद्रात्पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम् ॥६॥

पदार्थ—हे (दस्रा) दुःखों के दूर करने और (वृषणा) सुख वर्षानेवाले सभासेनाधीशो ! तुम दोनों (शचीभिः) कर्म और बुद्धियों वा (दंसनाभिः) वचनों के साथ जैसे (तौग्र्यम्) बलवान् मारनेवाला राजा का पुत्र (च्यवानम्) जो गमनकर्त्ता बली (युवानम्) जवान है उस को (समुद्रात्) सागर से (निः, पारयथः) निरन्तर पार पहुँचाते (पुनः) फिर इस ओर आये हुए (उत्, चक्रथुः) उधर पहुँचाते हो वैसे ही (वन्दनम्) प्रशंसा करने योग्य यान और (रेभम्) प्रशंसा करनेवाले मनुष्य को (उदैरतम्) इधर-उधर पहुँचाओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—जैसे नाव के चलानेवाले मल्लाह आदि मनुष्यों को समुद्र के पार पहुँचा कर सुखी करते हैं वैसे राजसभा शिल्पीजनों और उपदेश करनेवालों को दुःख से पार पहुँचा कर निरन्तर आनन्द देवें ॥ ६ ॥

युवमत्रयेऽवनीताय तप्तमूर्जमोमानमश्विनावधत्तम् ।
युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा ॥७॥

पदार्थ—हे (जुजुषाणा) सेवा वा प्रीति को प्राप्त (अश्विनौ) समस्त गुणों में व्याप्त स्त्री-पुरुषो ! (युवम्) तुम दोनों (अवनीताय) अविद्या-अज्ञान के दूर होने (अपिरिप्ताय) और समस्त विद्याओं के बढ़ने के लिए (अत्रये) जिस को तीन प्रकार का दुःख नहीं है उस (कण्वाय) बुद्धिमान् के लिए (तप्तम्) तपस्या से उत्पन्न हुए (ओमानम्) रक्षा आदि अच्छे कामों की पालना करनेवाले (ऊर्जम्) पराक्रम को (अधत्तम्) धारण करो और (युवम्) तुम दोनों उस से (चक्षुः) सकल व्यवहारों के दिखलानेहारे उत्तम ज्ञान और (सुष्टुतिम्) सुन्दर प्रशंसा को (प्रति, अधत्तम्) प्रतीति के साथ धारण करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—सभासेनाधीश आदि राजपुरुषों को चाहिए कि धर्मात्मा जो कि वेद आदि विद्या के प्रचार के लिए अच्छा यत्न करते हैं उन विद्वानों की रक्षा का विधान कर उनसे विनय को पाकर प्रजाजनों की पालना करें ॥ ७ ॥

युवं धेनुं शयवे नाधितायापिन्वतमश्विना पूर्व्याय ।
अमुञ्चतं वर्तिकामंहसो निः प्रति जङ्घां विश्पलाया अधत्तम् ॥८॥

पदार्थ—हे (अश्विना) अच्छी सीख पाये हुए समस्त विद्याओं में रमते हुए स्त्री-पुरुषो ! (युवम्) तुम दोनों (नाधिताय) ऐश्वर्ययुक्त (पूर्व्याय) अगले विद्वानों से किये हुए (शयवे) जो कि सुख से सोता है उस विद्वान् के लिए (धेनुम्) अच्छी सीख दी हुई वाणी को (अपिन्वतम्) सेवन करो जिस को (अंहसः) अधर्म के आचरण से (निरमुञ्चतम्) निरन्तर छुड़ाओ उस से (विश्पलायाः) प्रजाजनों की पालना के लिए (जङ्घाम्) सब सुखों की उत्पन्न करनेवाली (वर्तिकाम्) विनय, नम्रता आदि गुणों के सहित उत्तम नीति को (प्रत्यधत्तम्) प्रतीति से धारण करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—राजपुरुष सब ऐश्वर्ययुक्त परस्पर धनीजनों के कुल में हुए प्रजाजनों को सत्य-न्याय से सन्तोष दे उनको ब्रह्मचर्य के नियम से विद्या ग्रहण करने के लिए प्रवृत्त करावें जिस से किसी का लड़का और लड़की विद्या और उत्तम शिक्षा के विना न रह जाए ॥ ८ ॥

अब बिजुली की विद्या को स्त्रीपुरुष ग्रहण करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

युवं श्वेतं पेदव इन्द्रजूतमहिहनमश्विनादत्तमश्वम् ।
जोहूत्रमर्यो अभिभूतिमुग्रं सहस्रसां वृषणं वीड्वङ्गम् ॥९॥

पदार्थ—हे (अश्विना) यज्ञादि कर्म करानेवाली स्त्री और समस्त लोकों के अधिपति पुरुष ! (युवम्) तुम दोनों (पेदवे) आने-जाने के लिए जो (अर्यः) सब का स्वामी सब सभाओं का प्रधान राजा (इन्द्रजूतम्) सभाध्यक्ष राजा ने प्रेरणा किये (जोहूत्रम्) अत्यन्त ईर्ष्या करते वा शत्रुओं को घिसते हुए (वृषणम्) शत्रुओं की सेना पर शस्त्र और अस्त्रों की वर्षा करानेवाले (वीड्वङ्गम्) बली पोढ़े अंगों से युक्त (उग्रम्) दुष्ट शत्रुजनों से नहीं सहे जाते (अभिभूतिम्) और शत्रुओं का तिरस्कार करने (सहस्रसाम्) वा हजारों कामों को सेवनेवाले (श्वेतम्) सुपेद (अश्वम्) सबों में व्याप्त बिजुली रूप आग को (अहिहनम्) मेघ के छिन्न-भिन्न करनेवाले सूर्य्य के समान तुम दोनों के लिए देता है उस के लिए निरन्तर सुख (अदत्तम्) देओ ॥ ९ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य्य मेघ को वर्षा के सब प्रजा के लिए सुख देता है वैसे शिल्पविद्या के जाननेवाले स्त्री-पुरुष समस्त प्रजा के लिए सुख देवें और अपने बीच में जो प्रतिष्ठित स्त्री-पुरुष हैं उन का सदा सत्कार करें ॥ ९ ॥

ता वां नरा स्ववसे सुजाता हवामहे अश्विना नाधमानाः ।
आ न उप वसुमता रथेन गिरो जुषाणा सुविताय यातम् ॥१०॥

पदार्थ—हे (सुजाता) श्रेष्ठ विद्याग्रहण करने आदि उत्तम कामों में प्रसिद्ध हुए (गिरः) शुभ वाणियों का (जुषाणा) सेवन और (अश्विना) प्रजा के अङ्गों की पालना करनेवाले (नरा) न्याय में प्रवृत्त करते हुए स्त्री-पुरुषो ! (नाधमानाः) जिन को कि बहुत ऐश्वर्य मिला है हम जिन (वाम्) तुम दोनों को (स्ववसे) रक्षा आदि के लिए (सु, हवामहे) सुन्दरता से बुलावें (ता) वे तुम (वसुमता) जिसमें प्रशंसित सुवर्ण आदि धन विद्यमान है उस (रथेन) मनोहर विमान आदि यान से (नः) हम लोगों को (सुविताय) ऐश्वर्य्य के लिए (उप, आ, यातम्) आ मिलो ॥ १० ॥

भावार्थ—प्रजाजनों के स्त्री-पुरुषों से जो राजपुरुष प्रीति को पावें, प्रसन्न हों वे प्रजाजनों को प्रसन्न करें जिससे एक-दूसरे की रक्षा से ऐश्वर्यसमूह नित्य बढ़े ॥ १० ॥

आ श्येनस्य जवसा नूतनेनास्मे यातं नासत्या सजोषाः ।
हवे हि वामश्विना रातहव्यः शश्वत्तमाया उषसो व्युष्टौ ॥११॥

पदार्थ—हे (नासत्या) सत्ययुक्त (अश्विना) समस्त गुणों में रमे हुए स्त्रीपुरुषो वा सभासेनाधीशो ! (सजोषाः) जिसका एकसा प्रेम (रातहव्यः) वा जिसने भली-भाँति होम की (सामग्री) दी वह मैं (शश्वत्तमायाः) अतीव अनादि रूप (उषसः) प्रातःकाल की वेला के (व्युष्टौ) विशेष करके चाहे हुए समय में जिन (वाम्) तुम को (हवे) स्तुति से बुलाऊं वे तुम (हि) निश्चय के साथ (श्येनस्य) बाज पखेरू के (जवसा) वेग के समान (नूतनेन) नये रथ से (अस्मे) हम लोगों को (आ, यातम्) आ मिलो ॥ ११ ॥

भावार्थ—स्त्री-पुरुष रात्रि के चौथे प्रहर में उठ अपना आवश्यक अर्थात् शरीर शुद्धि आदि काम कर फिर जगदीश्वर की उपासना और योगाभ्यास को करके राजा और प्रजा के कामों का आचरण करने को प्रवृत्त हों । राजा आदि सज्जनों को चाहिए कि प्रशंसा के योग्य प्रजाजनों का सत्कार करें और प्रजाजनों को चाहिए कि स्तुति के योग्य राजजनों की स्तुति करें । क्योंकि किसी को अधर्म सेवनेवाले दुष्ट जन की स्तुति और धर्म का सेवन करनेवाले धर्मात्माजन की निन्दा करने योग्य नहीं है इससे सब जन धर्म की व्यवस्था का आचरण करें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में स्त्री-पुरुष और राजा-प्रजा के धर्म का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति समझनी चाहिए ॥

यह एकसौ अठारहवां सूक्त और उन्नीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथास्य दशर्चस्यैकोनविंशतिशततमस्य सूक्तस्य दैर्घतमसः कक्षीवानृषिः ।
अश्विनौ देवते । १, ४, ६ निचृज्जगती, ३, ७, १० जगती,
८ विराड्जगतीछन्दः । निषादः स्वरः । २, ५, ९
भुरिक्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब एकसौ उन्नीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में फिर स्त्री-पुरुष कैसे अपना वर्त्ताव वर्तें यह उपदेश किया है—

आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं जीराश्वं यज्ञियं जीवसे हुवे ।
सहस्रकेतुं वनिनं शतद्वसुं श्रुष्टीवानं वरिवोधामभि प्रयः ॥१॥

पदार्थ—हे समस्त गुणों में व्याप्त स्त्रीपुरुषो ! (प्रयः) प्रीति करनेवाला मैं (जीवसे) जीवन के लिए (वाम्) तुम दोनों का (पुरुमायम्) बहुत बुद्धि से बनाया हुआ (जीराश्वम्) जिससे प्राणधारी जीवों को प्राप्त होता वा उनको इकट्ठा करता (यज्ञियम्) जो यज्ञ के देश को जाने योग्य (सहस्रकेतुम्) जिसमें सहस्रों झंडी लगी हों (शतद्वसुम्) सैकड़ों प्रकार के धन (वनिनम्) और बहुत जल विद्यमान हो (श्रुष्टीवानम्) जो शीघ्र चालियों को चलता हुआ (मनोजुवम्) मन के समान वेगवाला (वरिवोधाम्) जिससे मनुष्य सुख सेवन को धारण करता (रथम्) उस मनोहर विमान आदि यान की (अभ्याहुवे) सब प्रकार प्रशंसा करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पिछले सूक्त के अन्तिम मन्त्र से 'अश्विना' इस पद की अनुवृत्ति आती है । अच्छा यत्न करते हुए विद्वान् शिल्पिजनों से जो चाहा हो तो जैसा कि सब गुणों से युक्त विमान आदि रथ इस मन्त्र में वर्णन किया वैसा बन सके ॥ १ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयामन्यधायि शस्मन्त्समयन्त आ दिशः ।
स्वदामि घर्मं प्रति यन्त्यूतय आ वामूर्जानी रथमश्विनारुहत् ॥२॥

पदार्थ—हे (अश्विना) सभासेनाधीशो ! (वाम्) तुम दोनों की (शस्मन्) प्रशंसा के योग्य (प्रयामनि) अति उत्तम यात्रा में जो (ऊर्जानी) पराक्रमयुक्त नीति और (ऊर्ध्वा, धीतिः) उन्नतियुक्त धारणा वा ऊंची धारणा जिन मनुष्यों ने (अधायि) धारण की वे (दिशः) दान आदि उत्तम कर्म करनेहारे मनुष्य (सम्, आ, अयन्त) भली-भाँति आते हैं । जिस (रथम्) मनोहर विमान आदि यान का शिल्पी, कारक जन (आ, अरुहत्) आरोहण करता अर्थात् उस पर चढ़ता है उस पर तुम लोग चढ़ो । जिस (घर्मम्) उज्ज्वल सुगन्धियुक्त भोजन करने योग्य पदार्थ को (ऊतयः) मनोहर रक्षा आदि व्यवहार हम लोगों के लिए (यन्ति) प्राप्त करते हैं उसको (प्रति) तुम प्राप्त होओ और जिस उज्ज्वल सुगन्धियुक्त भोजन करने योग्य पदार्थ का मैं (स्वदामि) स्वाद लूं (अस्य) इसके स्वाद को तुम (प्रति) प्रतीति से प्राप्त होओ ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम अच्छे बने हुए, रोगों का विनाश करने और बल के देनेहारे अन्नों को भोगो । यात्रा मे सब सामग्री को लेकर एक-दूसरे से प्रीति और रक्षा कर-करा देश-परदेश को जाम्रो पर कही नीति को न छोडो ।। २ ।।

फिर अगले मन्त्रों में स्त्री-पुरुष के करने योग्य काम का उपदेश किया है—

सं यन्मिथः पस्पृधानासो अग्मत शुभे मखा अमिता जायवो रणे ।
युवोरह प्रवणे चेकिते रथो यदश्विना वहथः सूरिमा वरम् ॥३॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) स्त्री-पुरुषो ! (**यत्**) जो विद्वान् (**चेकिते**) युद्ध करना जानता है वा जो (**युवो**) तुम दोनों का (**रथ**) अति सुन्दर रथ (**मिथ.**) परस्पर युद्ध के बीच लड़ाई करनेहारा है वा जिस (**वरम्**) अति श्रेष्ठ (**सूरिम्**) युद्ध विद्या के जाननेवाले धार्मिक विद्वान् को तुम (**वहथ.**) प्राप्त होते उसके साथ वर्त्तमान (**अह**) शत्रुओ के बांधन वा उनको हरा देने मे (**यत्**) जिस (**शुभे**) अच्छे गुण के पाने के लिए (**प्रवरणे**) जिसमे वीर जाते हैं उस (**रणे**) सग्राम मे (**पस्पृधानास:**) ईर्ष्या से एक-दूसरे को बुलाते हुए (**मखा:**) यज्ञ के समान उपकार करनेवाले (**अमिता**) न गिराये हुए (**जायव.**) शत्रुओं को जीतनेहारे वीर पुरुष (**समग्मत**) अच्छे प्रकार जाएँ उसके लिए (**आ**) उत्तम यत्न भी करें ।। ३ ।।

भावार्थ—राजपुरुष जब शत्रुओ को जीतने को अपनी सेना पठावें तब जिन्होंने बल पाया, जो करे को जाननेवाले, युद्ध मे चतुर शूरो से युद्ध करानेवाले विद्वान् जन वे सेनाओ के साथ अवश्य जावें और सब सेना उन विद्वानो की अनुकूलता से युद्ध करे जिससे निश्चल विजय हो । जब युद्ध निवृत्त हो रुक जाय और अपने-अपने स्थान पर वीर बैठें तब उन सबको इकट्ठा कर आनन्द देकर जीतने के ढग की बातचीत करें जिससे वे सब युद्ध करने के लिए उत्साह बांधके शत्रुओ को अवश्य जीतें ।।३।।

युवं भुज्यु भुरमाणं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ ।
यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्यं१दिवोदासाय महि चेति वामवः ॥४॥

पदार्थ—(**वृषणा**) सुख वर्षाने और सब गुणो मे रमनेहारे सभासेनाधीशो ! (**युवम्**) तुम दोनों (**वाम्**) अपनी (**भुरमाणम्**) पुष्टि करनेवाले (**भुज्युम्**) भोजन करने के योग्य पदार्थ को (**विभिः**) पक्षियो ने (**गतम्**) पाये हुए के समान (**स्वयुक्तिभिः**) अपनी रीतियो से (**पितृभ्य**) राज्य की पालना करनेहारे वीरो के लिए (**निवहन्ता**) निरन्तर पहुँचाते हुए (**महि**) अतीव (**अव**) रक्षा करनेवाले पदार्थ और (**वर्त्ति**) जो सेनासमूह (**चेति**) जाना जाए उसको भी लेकर (**दिवोदासाय**) विद्या का प्रकाश देनेवाले सेनाध्यक्ष के लिए (**विजेन्यम्**) जीतने योग्य शत्रुसेनासमूह को (**आ, यासिष्टम्**) प्राप्त होओ ।।४।।

भावार्थ—सेनापतियों से जो सेनासमूह हृष्टपुष्ट अर्थात् चैनचान से भरा-पूरा, खाने-पीने से पुष्ट, अपने को चाहता हुआ जान पडे उसको अनेक प्रकार के भोग और अच्छी मिलावट से युक्तकर अर्थात् उक्त पदार्थ उसको देकर आगे होनेवाले लाभ के लिए प्रवृत्त करा ऐसे सेनासमूह से युद्ध कर शत्रुजन जीते जा सकते हैं ।।४।।

युवोरश्विना वपुषे युवायुजं रथं वाणी येमतुरस्य शर्ध्यम् ।
आ वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी योषावृणीत जेन्या युवां पती ॥५॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) सभासेनाधीशो ! (**युवो**) तुम अपने (**शर्ध्यम्**) बलो से युक्त (**युवायुजम्**) तुमने जोड़े (**रथम्**) मनोहर सेना आदि युक्त यान को (**अस्य**) इस राजकार्य के बीच मे स्थिर हुए (**वाणी**) उपदेश करनेवालो के समान (**वपुषे**) अच्छे रूप के होने के लिए (**येमतु**) नियम मे रखते हो (**वाम्**) तुम दोनो के (**सख्याय**) मित्रपन अर्थात् अतीव प्रीति के लिए (**जेन्या**) नियम करते हुओं मे श्रेष्ठ (**पती**) पालना करनेहारे (**युवाम्**) तुम्हारे साथ (**पतित्वम्**) पतिभाव को (**जग्मुषी**) प्राप्त होनेवाली (**योषा**) यौवन अवस्था से परिपूर्ण ब्रह्मचारिणी युवती स्त्री तुम मे से अपने मन से चाहे हुए एक पति को (**आ, अवृणीत**) अच्छे प्रकार वरे ।।५।।

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ब्रह्मचर्य्य करके यौवन अवस्था को पाये हुए विदुषी कुमारी कन्या अपने को प्यारे पति को पा निरन्तर उसकी सेवा करती है और जैसे ब्रह्मचर्य को किये हुए जवान पुरुष अपनी प्रीति के अनुकूल चाही हुई स्त्री को पाकर आनन्दित होता है वैसे ही सभा और सेनापति सदा होवें ।।५।।

युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथो हिमेन घर्मं परितप्तमत्रये ।
युवं शयोरवसं पिप्यथुर्गवि प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा ॥६॥

पदार्थ—हे सब विद्याओं में व्याप्त स्त्री-पुरुषो ! जैसे (**युवम्**) तुम दोनों (**अत्रये**) आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक ये तीन दुःख जिसमे नहीं हैं उस उत्तम के लिए (**परिषूते**) सब ओर से दूसरे, विद्या-जन्म में प्रसिद्ध हुए विद्वान् से विद्या को पाये हुए (**परितप्तम्**) सब प्रकार क्लेश को प्राप्त (**रेभम्**) समस्त विद्या की प्रशंसा करनेवाले विद्वान् मनुष्य को (**हिमेन**) शीत से (**घर्मम्**) घाम के समान (**उरुष्यथ**) पालो अर्थात् शीत से घाम जैसे बचाया जावे वैसे पालो (**युवम्**) तुम दोनों (**गवि**) पृथिवी में (**शयो:**) सोते हुए की (**अवसम्**) रक्षा आदि की (**पिप्यथु:**) बढ़ाओ (**वन्दन:**) प्रशंसा करने योग्य व्यवहार (**दीर्घेण**) लम्बी बहुत दिनों की (**आयुषा**) आयु से तुम दोनों ने (**तारि**) पार किया वैसा हम लोग भी (**प्र**) प्रयत्न करें ।।६।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विवाह किये हुए स्त्री पुरुषो ! जैसे शीत से गरमी मारी जाती है वैसे अविद्या को विद्या से मारो जिससे आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक ये तीन प्रकार के दुःख नष्ट हों । जैसे धार्मिक राजपुरुष चोर आदि को दूर कर सोते हुए प्रजाजनो की रक्षा करते हैं और जैसे सूर्य-चन्द्रमा सब जगत् को पुष्टि देकर जीवने के आनन्द को देनेवाले हैं वैसे इस जगत् मे प्रवृत्त होओ ।।६।।

युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया रथ न दस्रा करणा समिन्वथः ।
क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया प्र वामत्र विधते दंसना भुवत् ॥७॥

पदार्थ—हे (**करणा**) उत्तम कर्मों के करने वा (**दस्रा**) दुःख दूर करनेवाले स्त्री-पुरुषो ! (**युवम्**) तुम दोनों (**जरण्यया**) विद्यावृद्ध अर्थात् अतीव विद्या पढ़े हुए विद्वानो के योग्य विद्या से युक्त (**निर्ऋतम्**) जिसमें निरन्तर सत्य विद्यमान (**वन्दनम्**) प्रशसा करने योग्य (**विप्रम्**) विद्या और अच्छी शिक्षा के योग से उत्तम बुद्धिवाले विद्वान् को (**रथम्**) विमान आदि यान के (**न**) समान (**समिन्वथ:**) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ और (**क्षेत्रात्**) गर्भ के ठहरने की जगह से उत्पन्न हुए सन्तान के समान अपने निवास से उत्तम काम को (**आ, जनथ:**) अच्छे प्रकार प्रकट करो जो (**अत्र**) इस संसार मे (**वाम्**) तुम दोनों का गृहाश्रम के बीच सम्बन्ध (**प्र, भुवत्**) प्रबल हो उसमें (**विपन्यया**) प्रशसा करने योग्य धर्म की नीति से युक्त (**दंसना**) कामो को (**विधते**) विधान करने को प्रवृत्त हुए मनुष्यो के लिए उत्तम राज्य के अधिकारो को देओ ।।७।।

भावार्थ—विचार करनेवाले स्त्रीपुरुष जन्म से लेके जब तक ब्रह्मचर्य्य से समस्त विद्या ग्रहण करें तब तक उत्तम शिक्षा देकर सन्तानो को यथायोग्य व्यवहारो मे निरन्तर युक्त करें ।। ७ ।।

अगच्छतं कृपमाणं परावति पितुः स्वस्य त्यजसा निबाधितम् ।
स्वर्वतीरित ऊतीर्युवोरह चित्रा अभीके अभवन्नभिष्टयः ॥८॥

पदार्थ—हे विद्या के विचार मे रमे हुए स्त्री-पुरुषो ! आप (**स्वस्य**) अपने (**पितु**) पिता के समान वर्त्तमान पढानेवाले से (**परावति**) दूर देश मे भी ठहरे और (**त्यजसा**) ससार के सुख का छोडने से (**निबाधितम्**) कष्ट पाते हुए (**कृपमाणम्**) कृपा करने के शीलवाले सन्यासी को नित्य (**अगच्छतम्**) प्राप्त होओ (**इत**) इसी यति से (**युवो.**) तुम दोनो के (**अभीके**) समीप मे (**अह**) निश्चय से (**चित्रा.**) अद्भुत (**अभिष्टय**) चाही हुई (**स्वर्वती:**) जिनमे प्रशंसित सुख विद्यमान हैं (**ऊती**) वे रक्षा आदि कामना (**अभवन्**) सिद्ध हों ।। ८ ।।

भावार्थ—सब मनुष्य पूरी विद्या जानने और शास्त्रसिद्धान्त मे रमनेवाले राग-द्वेष और पक्षपात रहित सबके ऊपर कृपा करते, सर्वथा सत्ययुक्त असत्य को छोडे, इन्द्रियो को जीते और योग के सिद्धान्त को पाये हुए अगले-पिछले व्यवहार को जाननेवाले जीवन्मुक्त सन्यास के आश्रम मे स्थित ससार मे उपदेश करने के लिए नित्य भ्रमते हुए वेदविद्या के जाननेवाले सन्यासिजन को पाकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्षो की सिद्धियो को विधान के साथ पावें । ऐसे सन्यासी आदि उत्तम विद्वान् के सङ्ग और उपदेश के सुने विना कोई भी मनुष्य यथार्थ बोध को नही पा सकता ।।८।।

उत स्या वां मधुमन्मक्षिकारपन्मदे सोमस्यौशिजो हुवन्यति ।
युवं दधीचो मन आ विवासथोऽथा शिरः प्रति वामश्व्यं वदत् ॥९॥

पदार्थ—हे मगलयुक्त राजा और प्रजाजनो ! (**युवम्**) तुम दोनो जो (**औशिज**) मनोहर उत्तम पुरुष का पुत्र सन्यासी (**मदे**) मद मे निमित्त प्रवर्त्तमान (**स्या**) वह (**मक्षिका**) शब्द करनेवाली माखी जैसे (**अरपत्**) गूजती है वैसे (**वाम्**) तुम दोनों को (**मधुमत्**) जिसमे प्रशंसित गुण हैं उस व्यवहार के तुल्य (**हुवन्यति**) अपने को देते-लेते चाहता है उस (**सोमस्य**) धर्म की प्रेरणा करने और (**दधीच**) विद्या धर्म की धारणा करनेहारे के तीर से (**मन:**) विज्ञान को (**आ, विवासथ.**) अच्छे प्रकार सेवो (**अथ**) इसके अनन्तर (**उत**) तर्क-वितर्क से वह (**वाम्**) तुम दोनों के प्रति प्रीति से इस ज्ञान को और (**अश्व्यम्**) विद्या में व्याप्त हुए विद्वानो मे उत्तम (**शिर**) शिर के समान प्रशंसित व्याख्यान को (**प्रति, वदत्**) कहे ।। ९ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र मे लुप्तोपमालकार है । हे मनुष्यो ! जैसे माखी पृथिवी मे उत्पन्न हुए वृक्ष वनस्पतियों से रस, जिसको सहत कहते है उसको, लेकर अपने निवासस्थान मे इकट्ठा कर आनन्द करती है वैसे ही योगविद्या के ऐश्वर्य्य को प्राप्त सत्य उपदेश से सुख का विधान करनेवाले ब्रह्म विचार मे स्थिर विद्वान् सन्यासी के समीप से सत्यशिक्षा को सुनकर और विचारके सर्वदा तुम लोग सुखी होओ ।। ९ ।।

अब विद्युलीरूप अग्नि से जो तारविद्या प्रकट होती है उसका उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः ।
शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम् ॥१०॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) सब विद्याओं में व्याप्त सभासेनापतियो ! (**युवम्**) तुम दोनों (**पेदवे**) पहुँचने वा जाने को (**स्पृधाम्**) शत्रुओं की ईर्ष्या से बुलाने वालों की (**पृतनासु**) सेनाओं में (**चर्कृत्यम्**) निरन्तर करने के योग्य (**श्वेतम्**) अतीव गमन करने को बढ़े हुए (**पुरुवारम्**) जिससे कि बहुत लेने योग्य काम होते हैं

(दुस्तरम्) जो शत्रुओं से दुःख के साथ उलांघा जा सकता (चर्षणीसहम्) जिससे मनुष्य शत्रुओं को सहते जो (अर्व्यः) तोड़ने-फोड़ने योग्य पेचों से बांधा वा (अभिद्युम्) जिसमें सब ओर बिजुली की आग चमकती उस (इन्द्रमिव) सूर्य के प्रकाश के समान वर्त्तमान (तरुतारम्) संदेशों को तारने अर्थात् इधर-उधर पहुँचानेवाले तारयन्त्र को (दुवस्यथः) देवो ॥ १० ॥

भावार्थ- इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे मनुष्यों से बिजुली से सिद्ध की हुई तारविद्या से चाहे हुए काम सिद्ध किये जाते हैं वैसे ही सन्यासी के सङ्ग से समस्त विद्याओं को पाकर धर्म आदि काम करने को समर्थ होते हैं । इन्हीं दोनों से व्यवहार और परमार्थसिद्धि की जा सकती है इससे यत्न के साथ तडित्—तारविद्या अवश्य सिद्ध करनी चाहिए ॥ १० ॥

इस सूक्त में राजा, प्रजा, संन्यासी, महात्माओं की विद्या के विचार का आचरण कहने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह इक्कीसवां वर्ग और एकसौ उन्नीसवां सूक्त पूरा हुआ ॥

卐

अथास्य द्वादशर्चस्य विंशत्युत्तरशततमस्य सूक्तस्यौशिजः कक्षीवानृषिः । अश्विनौ देवते । १, १२ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री, २ भुरिग्गायत्री, १० गायत्री; ११ पिपीलिकामध्याविराड्गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः । ३ स्वराट् ककुबुष्णिक्, ५ आर्च्युष्णिक्; ६ विराडार्च्युष्णिक्, ८ भुरिगुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । ४ आर्च्यनुष्टुप्, ७ स्वराडार्च्यनुष्टुप्, ९ भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब एकसौ बीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम-द्वितीय मन्त्र में प्रश्नोत्तरविधि का उपदेश करते हैं—

का राधद्धोत्राश्विना वां को वां जोष उभयोः ।
कथा विधात्यप्रचेताः ॥१॥

पदार्थ—हे (अश्विना) गृहाश्रम धर्म मे व्याप्त स्त्री-पुरुषो ! (वाम्) तुम (उभयोः) दोनो की (का) कौन (होत्रा) सेना शत्रुओं के बल को लेने और उत्तम जीत देने की (राधत्) सिद्धि करे (वाम्) तुम दोनो के (जोषे) प्रीति उत्पन्न करनेहारे व्यवहार मे (कथा) कैसे (कः) कौन (अप्रचेताः) विद्या विज्ञान रहित अर्थात् मूढ शत्रुहार को (विधाति) विधान करे ॥ १ ॥

भावार्थ—सभासेनाधीश शूर और विद्वान् के व्यवहारों को जाननेहारों के साथ अपना व्यवहार करें फिर शूर और विद्वान् के हार देने और उनकी जीत को रोकने को समर्थ हो कभी किसी को मूढ के सहाय से प्रयोजन नहीं सिद्ध होता इससे सब दिन विद्वानों से मित्रता रक्खें ॥ १ ॥

विद्वांसाविद्दुरः पृच्छेदविद्वानित्थापरो अचेताः ।
नू चिन्नु मर्ते अक्रौ ॥२॥

पदार्थ—जैसे (अचेताः) अज्ञान (अविद्वान्) मूर्ख (विद्वांसौ) दो विद्यावान् पण्डितजनों को (दुरः) शत्रुओं के मारने वा मन को अत्यन्त क्लेश देनेहारी बातों को (पृच्छेत्) पूछे (इत्था) ऐसे (अपरः) और विद्वान् महात्मा अपने ढङ्ग से (इत्) ही (नु) शीघ्र पूछे (अक्रौ) नहीं करनेवाले (मर्ते) मनुष्य के निमित्त (चित्) भी (नु) शीघ्र पूछे जिससे यह आलस्य को छोड़के पुरुषार्थ में प्रवृत्त हो ॥ २ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् विद्वानो की सम्मति से वर्त्ताव वर्त्तें वैसे और भी वर्त्तें । सदैव विद्वानों को पूछकर सत्य और असत्य का निर्णय कर आचरण करें और झूठ को त्याग करें इस बात मे किसी को कभी आलस्य न करना चाहिए क्योंकि बिना पूछे कोई नहीं जानता है इससे किसी को मूर्खों के उपदेश पर विश्वास न लाना चाहिए ॥ २ ॥

अब अध्यापक और उपदेशक विद्वान् क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

ता विद्वांसा हवामहे वां ता नो विद्वांसा मन्म वोचेतमद्य ।
प्रार्चद्दयमानो युवाकुः ॥३॥

पदार्थ—जो (विद्वांसा) पूरी विद्या पढ़े उत्तम आप्त अध्यापक तथा उपदेशक विद्वान् (अद्य) इस समय मे (नः) हम लोगो के लिए (मन्म) मानने योग्य उत्तम वेदों मे कहे हुए ज्ञान का (वोचेतम्) उपदेश करें (ता) उन समस्त विद्या से उत्पन्न हुए प्रश्नों के उत्तर देने और (विद्वांसा) सब उत्तम विद्याओं के जतानेहारे (वाम्) तुम दोनो विद्वानोंको हम लोग (हवामहे) स्वीकार करते हैं जो (दयमानः) सबके ऊपर दया करता हुआ (युवाकुः) मनुष्यों को समस्त विद्याओं के साथ संयोग करानेहारा मनुष्य (ता) उन तुम दोनों विद्वानो का (प्र, आर्चत्) सत्कार करे उसका तुम सत्कार करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस संसार मे जो जिसके लिए सत्य विद्याओं को देवे वह उसको मन, वाणी और शरीर से सेवे और कपट से विद्या को छिपावे उसको निरन्तर तिरस्कार करें ऐसे सब लोग मिल-मिलाके विद्वानों का मान और मूर्खों का अपमान निरन्तर करें जिससे सत्कार को पाये हुए विद्वान् विद्या के प्रचार करने में अच्छे-अच्छे यत्न करें और अपमान को पाये हुए मूर्ख भी करें ॥ ३ ॥

वि पृच्छामि पाक्या३ न देवान्वषट्कृतस्याद्भुतस्य दस्रा ।
पातं च सह्यसो युवं च रभ्यसो नः ॥४॥

पदार्थ—हे (दस्रा) दुःखों को दूर करने, पढ़ाने और उपदेश करनेहारे विद्वानो ! मैं (युवम्) तुम दोनों को (सह्यसः) अतीव विद्याबल से भरे हुए (रभ्यसः) अत्यन्त उत्तम पुरुषार्थ युक्त (पाक्या) विद्या और योग के अभ्यास से जिनकी बुद्धि पक गई उन (देवान्) विद्वानो के (न) समान (वषट्कृतस्य) क्रिया से सिद्ध किये हुए शिल्पविद्या से उत्पन्न होनेवाले (अद्भुतस्य) आश्चर्य रूप काम के विज्ञान के लिए प्रश्नों को (वि, पृच्छामि) पूछता हूँ (च) और तुम दोनों उनके उत्तर देवो जिससे मैं तुम्हारी सेवा करता हूँ (च) और तुम (नः) हमारी (पातम्) रक्षा करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—विद्वान् जन बालक आदि वृद्ध पर्य्यन्त मनुष्यों को सिद्धान्त विद्याओं का उपदेश करें जिससे उनकी रक्षा और उन्नति होवे और वे भी उनकी सेवा कर अच्छे स्वभाव से पूछ कर विद्वानो के दिये हुए समाधानों को धारण करें ऐसे हिलमिलके एक-दूसरे के उपकार से सब सुखी हों ॥ ४ ॥

प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे यया वाचा यजति पज्रियो वाम् ।
प्रैषयुर्न विद्वान् ॥५॥२२॥

पदार्थ—हे समस्त विद्याओं मे रमे हुए पढ़ाने और उपदेश करनेहारे विद्वानो ! (पज्रियः) पाने योग्य बोधों को प्राप्त (इषयुः) सब जनो के अभीष्ट सुख को प्राप्त होनेवाला मनुष्य (विद्वान्) विद्यावान् सज्जन के (न) समान (यया) जिस (वाचा) वाणी से (वाम्) तुम्हारा (प्र, यजति) अच्छा सत्कार करता है उस वाणी से मैं (शोभे) शोभा पाऊँ (प्र) जो विदुषी स्त्री (भृगवाणे) अच्छे गुणों से पक्की बुद्धिवाले विद्वान् के समान आचरण करनेवाला (घोषे) उत्तम वाणी के निमित्त सत्कार करती सी (न) दीखती है उस वाणी से मैं उक्त स्त्री का (प्र) सत्कार करूँ ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे पढ़ाने और उपदेश करनेहारे विद्वानो ! आप उत्तम शास्त्र जाननेहारे श्रेष्ठ सज्जन के समान सबके सुख के लिए नित्य प्रवृत्त रहो ऐसे विदुषी स्त्री भी हो । सब मनुष्य विद्याधर्म और अच्छे शील-युक्त होते हुए निरन्तर शोभायुक्त हों । कोई विद्वान् मूर्ख स्त्री के साथ विवाह न करे और न कोई पढ़ी स्त्री मूर्ख के साथ विवाह करे किन्तु मूर्ख मूर्खा से और विद्वान् मनुष्य विदुषी स्त्री से सम्बन्ध करें ॥ ५ ॥

फिर पढ़ने-पढ़ाने की विधि का उपदेश अगले मन्त्रों मे कहा है—

श्रुतं गायत्रं तकवानस्याहं चिद्धि रिरेभाश्विना वाम् ।
आक्षी शुभस्पती दन् ॥६॥

पदार्थ—हे (अक्षी) रूपों के दिखानेहारी आंखों के समान वर्त्तमान (शुभस्पती) धर्म के पालने और (अश्विना) विद्या की प्राप्ति कराने वा उपदेश करनेहारे विद्वानो ! (वाम्) तुम्हारे तीर से (तकवानस्य) विद्या पाये विद्वान् के (चित्) भी (गायत्रम्) उस ज्ञान को जो गानेवाले की रक्षा करता है वा (श्रुतम्) सुने हुए उत्तम व्यवहार को (आ, दन्) ग्रहण करता हुआ (अहम्) मैं (हि) ही (रिरेभ) उपदेश करूँ ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि जो-जो उत्तम विद्वानो से पढ़ा वा सुना है उस उस को औरों को नित्य पढ़ाया और उपदेश किया करें । मनुष्य जैसे औरों से विद्या पावें वैसे ही देवें क्योंकि विद्यादान के समान कोई और धर्म बड़ा नहीं है ॥ ६ ॥

युवं ह्यास्तं महो रन्युवं वा यन्निरततंसतम् ।
ता नो वसू सुगोपा स्यातं पातं नो वृकादघायोः ॥७॥

पदार्थ—हे (वसू) निवास करानेहारे अध्यापक-उपदेशको ! (रन्) औरों को सुख देने हुए जो (युवम्) तुम (यत्) जिस पर (आस्तम्) बैठो (वा) अथवा (युवम्) तुम दोनों (नः) हम लोगो के (सुगोपा) भली-भांति रक्षा करनेहारे (स्यातम्) होओ वे (महः) बड़ा (अघायोः) जो कि अपने को अन्याय करने से पाप चाहता (वृकात्) उस चोर-डाकू से (नः) हम लोगों को (पातम्) पालो और (ता) वे (हि) ही आप दोनो (निरततंसतम्) विद्या आदि उत्तम भूषणों से परिपूर्ण शोभायमान करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे सभा सेनाधीश चोर आदि के भय से प्रजाजनों की रक्षा करें वैसे ये भी सब प्रजाजनो के पालना करने योग्य होवें । सब अध्यापक-उपदेशक तथा शिक्षक आदि मनुष्य धर्म में स्थिर हुए अधर्म का विनाश करें ॥ ७ ॥

अब राजधर्म का उपदेश अगले मन्त्रों में करते हैं—

मा कस्मै धातमभ्यमित्रिणे नो माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो गुः ।
स्तनाभुजो अशिश्वीः ॥८॥

पदार्थ—हे रक्षा करनेहारे सभासेनाधीशो ! तुम लोग (कस्मै) किसी (अमित्रिणे) ऐसे मनुष्य के लिए कि जिस के मित्र नहीं अर्थात् सब का शत्रु (नः) हम लोगों को (मा) मत (अभिधातम्) कहो । आप की रक्षा से (नः) हम

लोगों की (स्तनाभुज) दूध भरे हुए थनो से अपने बछड़ों समेत मनुष्य आदि प्राणियों को पालती हुई (धेनवः) गौएँ (अशिश्वी) बछडो से रहित अर्थात् बन्ध्या (मा) मत हों और वे हमारे (गृहेभ्यः) घरो से (अमुत्र) विदेश मे मत (गुः) पहुँचें ॥ ८ ॥

भावार्थ—प्रजाजन राजजनो को ऐसी शिक्षा देवें कि हम लोगो को शत्रुजन मत पीड़ा दें और हमारे गौ, बैल, घोड़े आदि पशुओं को न चोर लें ऐसा आप यत्न करो ॥ ८ ॥

दुहीयन् मित्रधितये युवाकु राये च नो मिमीतं वाजवत्यै ।
इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै ॥९॥

पदार्थ—हे सब विद्याओ मे व्याप्त सभासेनाधीशो ! तुम दोनो जो गौएँ (दुहीयन्) दूध आदि से पूर्ण करती हैं उन को (नः) हमारे (मित्रधितये) जिससे मित्रो की धारणा हो तथा (युवाकु) सुख से मेल वा दुःख से अलग होना हो उस (राये) धन के (च) और जीवन के लिए (मिमीतम्) मानो तथा (वाजवत्यै) जिस मे प्रशसित ज्ञान वा (धेनुमत्यै) गौ का सम्बन्ध विद्यमान है उस के (च) और (इषे) इच्छा के लिए (नः) हम को (मिमीतम्) प्रेरणा देओ अर्थात् पहुँचाओ ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो गौ आदि पशु, मित्रों की पालना, ज्ञान और धन के कारण हों उन को मनुष्य निरन्तर राखे और सब को पुरुषार्थ के लिए प्रवृत्त करें जिससे सुख का मेल और दुःख से अलग रहे ॥ ९ ॥

अश्विनोरसनं रथमनश्वं वाजिनीवतोः । तेनाहं भूरि चाकन ॥१०॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (वाजिनीवतोः) जिन के प्रशसित विज्ञानयुक्त सभा और सेना विद्यमान हैं उन (अश्विनोः) सभासेनाधीशो के (अनश्वम्) अनश्व अर्थात् जिस मे घोड़ा आदि नहीं लगते (रथम्) उस रमण करने योग्य विमानादि यान का (असनम्) सेवन करूँ और (तेन) उस से (भूरि) बहुत (चाकन) प्रकाशित होऊँ ॥ १० ॥

भावार्थ—जो भूमि, जल और अन्तरिक्ष मे चलने के लिए विमान आदि यान बनाये जाते हैं उनमें पशु नहीं जोड़े जाते किन्तु वे पानी और अग्नि के कलायन्त्रों से चलते हैं ॥ १० ॥

अयं समह मा तनूह्याते जनाँ अनु । सोमपेयं सुखो रथः ॥११॥

पदार्थ—हे (समह) सत्कार के साथ वर्त्तमान विद्वन् ! आप जो (अयम्) यह (सुखः) सुख अर्थात् जिस में अच्छे अच्छे अवकाश तथा (रथः) रमण विहार करने के लिए जिस में स्थित होते वह विमान आदि यान है जिससे पढ़ाने और उपदेश करनेहारे (अनूह्याते) अनुकूल एकदेश से दूसरे देश को पहुँचाए जाते हैं उससे (मा) मुझे (जनान्) वा मनुष्यो अथवा (सोमपेयम्) ऐश्वर्य्ययुक्त मनुष्यो के पीने योग्य उत्तम रस को (तनु) विस्तारो अर्थात् उन्नति देओ ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो अत्यन्त उत्तम अर्थात जिस से उत्तम और न बन सके उस यान का बनाने वाला शिल्पी हो वह सब को सत्कार करने योग्य है ॥ ११ ॥

अध स्वप्नस्य निर्विदेऽभुञ्जतश्च रेवतः ।
उभा ता बस्रि नश्यतः ॥१२॥२३॥१७॥

पदार्थ—मैं (स्वप्नस्य) नींद (अभुञ्जतः) आप भी जो नहीं भोगता उस (च) और (रेवतः) धनवान् पुरुष के निकट से (निर्विदे) उदासीन भाव को प्राप्त होऊं (अध) इसके अनन्तर जो (उभा) दो पुरुषार्थहीन हैं (ता) वे दोनो (बस्रि) सुख के रुकने से (नश्यतः) नष्ट होते हैं ॥१२॥

भावार्थ—जो ऐश्वर्यवान् न देने वाला वा जो दरिद्री उदारचित्त है वे दोनो आलसी होते हुए दुःख भोगनेवाले निरन्तर होते हैं इससे सब को पुरुषार्थ के निमित्त अवश्य यत्न करना चाहिए ॥१२॥

इस सूक्त मे प्रश्नोत्तर पढ़ने-पढ़ाने और राजधर्म के विषय का वर्णन होने से इसके अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह एकसौ बीसवां सूक्त सत्रहवां अनुवाक और तेईसवां वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अथास्य पञ्चदशर्चस्यैकविंशत्युत्तरशततमस्य सूक्तस्यौशिजः कक्षीवान् ऋषिः । विश्वेदेवा इन्द्रश्च देवता । १,७,१३ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २,८,१० त्रिष्टुप्. ३,४,६,१२,१४,१५ विराट् त्रिष्टुप्, ५,९,११ निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब १५ ऋचावाले एकसौ इक्कीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके पहले दो मन्त्रों में स्त्रीपुरुष कैसे बर्त्ताव वर्त्तें यह उपदेश किया है—

कदित्था नॄँः पात्रं देवयतां श्रवद्गिरो अङ्गिरसां तुरण्यन् ।
प्र यदानड्विश आ हर्म्यस्योरु क्रंसते अध्वरे यजत्रः ॥१॥

पदार्थ—हे पुरुष ! तू (अध्वरे) न विनाश करने योग्य प्रजापालन रूप व्यवहार मे (यजत्रः) सग करनेवाला (तुरण्यन्) शीघ्रता करता हुआ जैसे काम चाहनेहारा (नॄन्) सिखाने योग्य बालक वा मनुष्यो का (पात्रम्) पालन करे तथा (देवयताम्) चाहते (अङ्गिरसाम्) और विद्या के सिद्धान्त रस को पाये हुए विद्वानो की (यत्) जिन (गिरः) वेदविद्या की शिक्षारूप वाणियों को (श्रवत्) सुने उनको (इत्था) इस प्रकार से (कत्) कब सुनेगा और जैसे धर्मात्मा राजा (हर्म्यस्य) न्याय घर के बीच वर्त्तमान हुआ विनय से (विशः) प्रजाजनो को (आनट्) प्राप्त होवे (उरु) और बहुत (आ, क्रंसते) आक्रमण करे अर्थात् उनके व्यवहारों मे बुद्धि को दौड़ावे इस प्रकार का कब होगा ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे लुप्तोपमालङ्कार है । हे स्त्री-पुरुषो ! जैसे शास्त्रवेत्ता विद्वान् सब मनुष्यादि को सत्य बोध कराते और झूठ से रोकते हुए उत्तम शिक्षा देते हैं वैसे अपने सन्तान आदि को आप निरन्तर अच्छी शिक्षा देओ जिससे तुम्हारे कुल मे अयोग्य सन्तान कभी न उत्पन्न हों ॥१॥

स्तम्भीद्ध द्यां स धरुणं प्रुषायदृभुर्वाजाय द्रविणं नरो गोः ।
अनु स्वजां महिषश्चक्षत व्रां मेनामश्वस्य परि मातरं गोः ॥२॥

पदार्थ—जैसे (महिषः) बड़ा सूर्य्य (गौ) भूमि का धारण करनेवाला है वैसे (ऋभुः) सकल विद्याओ से युक्त आप्तबुद्धि मेधावी (नरः) धर्म और विद्या की प्राप्ति करानेवाला सज्जन (वाजाय) विज्ञान वा अन्न के लिए (अश्वस्य) व्याप्त होने योग्य राज्य की (स्वजाम्) आप से उत्पन्न की गई (व्राम्) स्वीकार करने के योग्य (मातरम्) माता के समान पालनेवाली (मेनाम्) विद्या और अच्छी शिक्षा से पाई हुई वाणी को (परि, चक्षत) सब ओर से कहे वा जैसे सूर्य्य (द्याम्) प्रकाश को (स्तम्भीत्) धारण करे वैसे (स, ह) वही (गोः) पृथिवी पर (द्रविणम्) धन को बढ़ा खेत को (धरुणम्) जल के समान (अनु, प्रुषायत्) सींचा करें ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो आप्त अर्थात् उत्तम शास्त्री विद्वान् के सग से विद्या-विनय और न्याय आदि का धारण करे वह सुख से बढ़े और बड़ा सत्कार करने योग्य हो ॥२॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—

नक्षद्धवमरुणीः पूर्व्यं राट् तुरो विशामङ्गिरसामनु द्यून् ।
तक्षद्वज्रं नियुतं तस्तम्भद् द्यां चतुष्पदे नर्याय द्विपादे ॥३॥

पदार्थ—जो (तुरः) तुरन्त आलस्य छोड़े हुए विद्वान् मनुष्य (चतुष्पदे) गोआदि पशु वा (द्विपादे) मनुष्य आदि प्राणियों वा (नर्याय) मनुष्यो मे अति उत्तम महात्माजन के लिए (अनु, द्यून्) प्रतिदिन (पूर्व्यम्) अगले विद्वानो से अनुष्ठान किये हुए (हवम्) देने-लेने योग्य और (अरुणीः) प्रातः समय की बेला लाल रगवाली उजेली के समान राजनीतियो को (नक्षत्) प्राप्त हो (नियुतम्) नित्य कार्य मे युक्त किये हुए (वज्रम्) शस्त्र अस्त्रो को (तक्षत्) तीक्ष्ण करके शत्रुओ को मारे तथा उनके (द्याम्) विद्या और न्याय के प्रकाश का (तस्तम्भत्) निबन्ध करे वह (अङ्गिरसाम्) अगो के रस अथवा प्राण के समान प्यारे (विशाम्) प्रजाजनो के बीच (राट्) प्रकाशमान राजा होता है ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य विनय आदि से मनुष्य आदि प्राणी और गो आदि पशुओ को व्यतीत हुए आप्त, निष्कपट, सत्य-वादी राजाओ के समान पालते और अन्याय से किसी को नहीं मारते हैं वे ही सुखों को पाते हैं और नहीं ॥३॥

अस्य मदे स्वर्यं दा ऋतायापीवृतमुस्रियाणामनीकम् ।
यद्ध प्रसर्गे त्रिककुम्निवर्त्तदप द्रुहो मानुषस्य दुरो वः ॥४॥

पदार्थ—(यत्) जो (त्रिककुप्) मनुष्य ऐसा है कि जिसकी पूर्व आदि दिशा सेना वा पढ़ाने और उपदेश करनेवालो से युक्त हैं (अस्य) इस प्रत्यक्ष (मानुषस्य) मनुष्य के (उस्रियाणाम्) गौओ के (प्रसर्गे) उत्तमता से उत्पन्न कराने रूप (मदे) आनन्द के निमित्त (ऋताय) सत्य व्यवहार व जल के लिए (अपीवृतम्) सुख और बलो से युक्त (स्वर्यम्) विद्या और अच्छी शिक्षा रूप वचनो मे श्रेष्ठ (अनीकम्) सेना को (दाः) देवे तथा इन (द्रुहः) गो आदि पशुओं के द्रोही अर्थात् मारनेहारे पशुहिंसक मनुष्यों को (निवर्त्तत्) रोके, हिंसा न होने दे (दुरः) उक्त दुष्टो के द्वार (अप, वः) बन्द कर देवे (ह) वही चक्रवर्त्ती राजा होने को योग्य है ॥४॥

भावार्थ—वे ही राजपुरुष उत्तम होते हैं जो प्रजास्थ मनुष्य और गो आदि प्राणियो के सुख के लिए हिंसक दुष्ट पुरुषो की निवृत्ति कर धर्म में प्रकाशमान होते और जो परोपकारी होते हैं । जो अधर्म मार्गों को रोक धर्म मार्गों को प्रकाशित करते हैं वे ही राजकामो के योग्य होते हैं ॥४॥

तुभ्यं पयो यत् पितरावनीतां राधः सुरेतस्तुरणे भुरण्यू ।
शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ॥५॥२४॥

पदार्थ—हे सज्जन ! (यत्) जिस (तुरणे) दूध आदि पदार्थ के पीने को जल्दी करते हुए (तुभ्यम्) तेरे लिए (भुरण्यू) धारण और पुष्टि करनेवाले (पितरौ) माता-पिता (सुरेतः) जिससे उत्तम वीर्य उत्पन्न होता उस (पयः) दूध और (राधः) उत्तम सिद्धि करनेवाले धन की (अनीताम्) प्राप्ति करावें

और जैसे (मत्) दूध आदि के पीने की जल्दी करते हुए जिस (ते) तेरे लिए दयालु गौ आदि पशुओं को रखनेवाले मनुष्य (सबर्दुघायाः) जिससे एकसा सुख धारण करता होता है उस दूध को पूरा करनेहारी (उस्रियायाः) उत्तम पुष्टि देती हुई गौ के (शुचि) शुद्ध पवित्र (पयः) पीने योग्य दूध को (रेक्णः) प्रशंसित धन के समान (आ, अधुक्षन्) भली-भाँति देवें वैसे उन मनुष्यों की तू निरन्तर सेवा कर और उनके उपकार को कभी मत तोड़ ॥५॥

भावार्थ—मनुष्य लोग जैसे माता-पिता और विद्वानों की सेवा से धर्म के साथ सुखों को प्राप्त होवें वैसे ही गौ आदि पशुओं की रक्षा से धर्म के साथ सुख पावें इनके मन के विरुद्ध आचरण को कभी न करें क्योंकि ये सब का उपकार करने वाले प्राणी हैं ॥५॥

फिर मनुष्य कैसे वर्त्ते यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

अध प्र जज्ञे तरणिर्ममत्तु प्र रोच्यस्या उषसो न सूरः ।
इन्दुर्येभिराष्ट स्वेदुहव्यैः स्रुवेण सिञ्चञ्जरणाभि धाम ॥६॥

पदार्थ—हे अच्छे कामों के अनुष्ठान करनेवाले मनुष्य ! आप (उषसः) प्रभात समय से (सूरः) सूर्य के (न) समान (येभिः) जिनसे (स्वेदुहव्यैः) अपने देने लेने के योग्य दूध आदि पदार्थों से ऐश्वर्य्य अर्थात् उत्तम पदार्थ सिद्ध होते हैं उनसे और (स्रुवेण) स्रुवा आदि के योग से (धाम) यज्ञभूमि को (अभिसिञ्चन्) सब ओर से सींचते हुए सज्जनों के समान (अस्याः) इस गौ के दूध आदि पदार्थों से (प्र, रोचि) संसार में भली-भाँति प्रकाशमान हो और (इन्दुः) ऐश्वर्य्ययुक्त (जरणा) प्रशंसित कामों को (आष्ट) प्राप्त हो (तरणिः) दुःख से पार पहुँचे हुए सुख का विस्तार करने अर्थात् बढ़ानेवाले आप (ममत्तु) आनन्द भोगो (अध) इसके अनन्तर (प्र, जज्ञे) प्रसिद्ध होओ ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । मनुष्य गौ आदि पशुओं को राख और उनकी वृद्धि कर वैद्यकशास्त्र के अनुसार इन पशुओं के दूध आदि को सेवते हुए बलिष्ठ और अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त निरन्तर हों, जैसे कोई हल, पटेला आदि साधनों से युक्ति के साथ खेत को सिद्ध कर जल से सींचता हुआ अन्न आदि पदार्थों से युक्त होकर बल और ऐश्वर्य्य से सूर्य्य के समान प्रकाशमान होता है वैसे इन प्रशंसा योग्य कामों को करते हुए प्रकाशित हो ॥६॥

स्विध्मा यद्वनधितिरपस्यात् सूरो अध्वरे परि रोधना गोः ।
यद्ध प्रभासि कृत्व्याँ अनु द्यूननर्विशे पश्विषे तुराय ॥७॥

पदार्थ—हे सज्जन मनुष्य ! तू ने (यत्) जो ऐसी उत्तम क्रिया कि (स्विध्मा) जिससे सुन्दर सुख का प्रकाश होता वह (वनधितिः) वनों की धारणा अर्थात् रक्षा की और जो (गोः) गौ की (रोधना) रक्षा होने के अर्थ काम किये हैं उनसे तू (अध्वरे) जिसमें हिंसा आदि दुःख नहीं है उस रक्षा के निमित्त (कृत्व्यान्) उत्तम कामों का (अनु, द्यून्) प्रतिदिन (सूरः) प्रेरणा देनेवाले सूर्यलोक के समान (अनर्विशे) लढ़ा आदि गाड़ियों में जो बैठना होता उसके लिए और (पश्विषे) पशुओं के बढ़ने की इच्छा के लिए और (तुराय) शीघ्र जाने के लिए (यत्) जो (ह) निश्चय से (प्रभासि) प्रकाशित होता है सो आप (परि अपस्यात्) अपने को उत्तम-उत्तम कामों की इच्छा करो ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो मनुष्य पशुओं की रक्षा और बढ़ने आदि के लिए वनों को राख उन्हीं में उन पशुओं को चरा दूध आदि का सेवन कर खेती आदि कामों को यथावत् करें वे राज्य के ऐश्वर्य से सूर्य के समान प्रकाशमान होते हैं और गौ आदि पशुओं के मारने वाले नहीं ॥७॥

अष्टा महो दिव आदो हरी इह द्युम्नासाहमभि योधान उत्सम् ।
हरिं यत्ते मन्दिनं दुक्षन् वृधे गोरभसमद्रिभिर्वाताप्यम् ॥८॥

पदार्थ—हे राजन् ! (ते) तुम्हारे (यत्) जो (योधान) युद्ध करनेवाले (वृधे) सुखों के बढ़ाने के लिए जैसे (आदः) रस आदि पदार्थ का भक्षण करने और (अष्टा) सब जगह व्याप्त होनेवाला सूर्यलोक (महः) बड़ी (दिवः) दीप्ति से अपने (हरी) प्रकाश और आकर्षण को (अद्रिभिः) मेघ वा पर्वतों के साथ प्रवर्त्त करता है वैसे (इह) इस संसार में (उत्सम्) कुएँ को बनाय (द्युम्नासाहम्) जिससे धन सहे जाते अर्थात् मिलते उस (हरिम्) घोड़ा और (मन्दिनम्) मनोहर (वाताप्यम्) शुद्ध वायु से पाने योग्य (गोरभसम्) गौओं के बड़प्पन को (अभि, दुक्षन्) सब प्रकार से पूर्ण करें वे आपको सत्कार करने योग्य हैं ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम जैसे सूर्य्य अपने प्रकाश से सब जगत् को आनन्द देकर अपनी आकर्षण-शक्ति से भूगोल का धारण करता है वैसे ही नदी, सोता, कुआँ, बावरी, तालाब आदि को बनाकर वन वा पर्वतों में घास आदि को बढ़ा गौ और घोड़े आदि पशुओं की रक्षा और वृद्धि कर दूध आदि के सेवन से निरन्तर आनन्द को प्राप्त होओ ॥८॥

त्वमायसं प्रति वर्तयो गोर्दिवो अश्मानमुपनीतमृभ्वा ।
कुत्साय यत्र पुरुहूत वन्वञ्छुष्णमनन्तैः परियासि वधैः ॥९॥

पदार्थ—हे (वन्वन्) अच्छे प्रकार सेवन करते और (पुरुहूत) बहुत मनुष्यों से ईर्ष्या के साथ बुलाये हुए मनुष्य ! (त्वम्) तू जैसे सूर्य (दिवः) दिव्य सुख देनेहारे प्रकाश से अन्धकार को दूर करके (अश्मानम्) व्याप्त होनेवाले (उपनीतम्) अपने समीप आये हुए मेघ को छिन्न-भिन्न कर संसार में पहुँचाता है वैसे (ऋभ्वा) मेधावी अर्थात् धीरबुद्धिवाले पुरुष के साथ (आयसम्) लोहे से बनाये हुए शस्त्र-अस्त्रों को लेके (कुत्साय) वज्र के लिए (शुष्णम्) शत्रुओं के पराक्रम को सुखानेहारे बल को धारण करता हुआ (यत्र) जहाँ गौओं के मारनेवाले हैं वहाँ उनको (अनन्तैः) जिनकी संख्या नहीं उन (वधैः) गोहिंसकों को मारने के उपायों से (परियासि) सब ओर से प्राप्त होते हो उनको (गोः) गौ आदि पशुओं के समीप से (प्रति, वर्तय) लौटाओ भी ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे सूर्य मेघ को वर्षा और अन्धकार को दूर कर सबको हर्ष, आनन्दयुक्त करता है वैसे गौ आदि पशुओं की रक्षा कर उनके मारनेवालों को रोक निरन्तर सुखी होओ । यह काम बुद्धिमानों के सहाय के विना होने को सम्भव नहीं है इससे बुद्धिमानों के सहाय से ही उक्त काम का आचरण करो ॥९॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

पुरा यत् सूरस्तमसो अपीतेस्तमद्रिवः फलिगं हेतिमस्य ।
शुष्णस्य चित् परिहितं यदोजो दिवस्परि सुग्रथितं तदादः ॥१०॥

पदार्थ—(अद्रिवः) जिनके राज्य में प्रशंसित पर्वत विद्यमान हैं वैसे विख्यात हे राजन् ! आप जैसे (सूरः) सूर्य (फलिगम्) मेघ को छिन्न-भिन्न कर (तमसः) अन्धकार के (अपीतेः) विनाश करनेहारे (दिवः) प्रकाश से प्रकाशित होता है वैसे अपनी सेना से (तम्) उस शत्रुबल को (आ, अदः) विदारो अर्थात् उसका विनाश करो (यत्) जिसको (पुरा) पहले निवृत्त करते रहे हो उसकी (सुग्रथितम्) अच्छा बाँधकर ठहराओ (यत्) जो (अस्य) इसका (परिहितम्) सब ओर से सुख देनेवाला (ओजः) बल है (तत्) उसको निवृत्त कर (शुष्णस्य) सुखानेवाले शत्रु के (परि) सब ओर से (चित्) भी (हेतिम्) वज्र को उसके हाथ से गिरा देओ जिससे यह गौओं का मारनेवाला न हो ॥१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालंकार है । हे राजपुरुषो ! जैसे सूर्य मेघ को मार और उसको भूमि में गिरा सब प्राणियों को प्रसन्न करता है वैसे ही गौओं के मारनेवाले को मार गौ आदि पशुओं को निरन्तर सुखी करो ॥१०॥

फिर राजा और प्रजा का काम अगले मन्त्रों में कहा है—

अनु त्वा मही पाजसी अचक्रे द्यावाक्षामा मदतामिन्द्र कर्मन् ।
त्वं वृत्रमाशयानं सिरासु महो वज्रेण सिष्वपो वराहुम् ॥११॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्य को पाये हुए सभाध्यक्ष आदि सज्जन पुरुष ! (त्वम्) आप सूर्य जैसे (वृत्रम्) मेघ को छिन्न-भिन्न करे वैसे (सिरासु) बन्धनरूप नाड़ियों में (महः) बड़े (वज्रेण) शस्त्र और अस्त्रों के समूह से (वराहुम्) धर्मयुक्त उत्तम व्यवहार वा धार्मिकजनों के मारनेवाले दुष्ट शत्रु को मारके (आशयानम्) जिसने सब ओर से गाढ़ी नींद पाई उसके समान (सिष्वपः) सुलाओ जिससे (मही) बड़े (पाजसी) रक्षा करनेहारा और अपने प्रकाश करने में (अचक्रे) न रुके हुए (द्यावाक्षामा) सूर्य और पृथिवी (त्वा) आपको प्राप्त होकर उनमें से प्रत्येक (कर्मन्) राज्य के काम में तुमको अनुकूलता से आनन्द देवें ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । राजपुरुषों को चाहिए कि विनय और पराक्रम से दुष्ट शत्रुओं को बाँध, मार और निवार अर्थात् उनको धार्मिक मित्र बनाकर समस्त प्रजाजनों को अच्छे कामों में प्रवृत्त करा आनन्दित करें ॥११

त्वमिन्द्र नर्यो याँ अवो नॄन् तिष्ठा वातस्य सुयुजो वहिष्ठान् ।
यं ते काव्य उशना मन्दिनं दाद्वृत्रहणं पार्यं ततक्ष वज्रम् ॥१२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) प्रजा पालनेहारे (काव्यः) धीर उत्तम बुद्धिमान् के पुत्र (उशना) धर्म की कामना करनेहारे (नर्य्यः) मनुष्यों में साधु श्रेष्ठ हुए जन ! (त्वम्) आप (यान्) जिन (वहिष्ठान्) अतीव विद्या धर्म की प्राप्ति करानेहारे (वातस्य) प्राण के बीच योगाभ्यास से (सुयुजः) अच्छे युक्त योगी (नॄन्) धार्मिकजनों की (अवः) रक्षा करते हो उनके साथ धर्म के बीच (तिष्ठ) स्थिर होओ जो (ते) आपके लिए (यम्) जिस (वृत्रहणम्) शत्रुओं के मारनेवाले वीर (मन्दिनम्) प्रशंसा के योग्य (पार्य्यम्) जिससे पूर्ण काम बने उस मनुष्य को (दात्) देवे वा जो शत्रुओं पर (वज्रम्) अति तेज शस्त्र और अस्त्रों को (ततक्ष) फेंके उस-उसके साथ भी धर्म से वर्त्तो ॥१२॥

भावार्थ—जैसे राजपुरुष परमेश्वर की उपासना करने, पढ़ने और उपदेश करनेवाले तथा और उत्तम व्यवहारों में स्थिर प्रजा और सेनाजनों की रक्षा करें वैसे वे भी उनकी निरन्तर रक्षा किया करें ॥१२॥

त्वं सूरो हरितो रामयो नॄन् भरच्चक्रमेतशो नायमिन्द्र ।
प्रास्य पारं नवतिं नाव्यानामपि कर्तमवर्तयोऽयज्यून् ॥१३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य के देनेवाले सभाध्यक्ष ! (त्वम्) आप (अयम्) यह (सूरः) सूर्य्यलोक जैसे (हरितः) किरणों को वा जैसे (एतशः) उत्तम घोड़ा (चक्रम्) जिससे रथ ढुरकता है उस पहिये को यथायोग्य काम में लगाता है (न) वैसे (अयज्यून्) विषयों में न संग करने और (नॄन्) प्रजाजनों

को धर्म की प्राप्ति करानेहारे मनुष्यों की (भरत) पुष्टि और पालना करो तथा (नाव्यानाम्) नौकाओं से पार करने योग्य जो (नवतिम्) जल में चलने के लिए नव्वे रथ हैं उनको (पारम्) समुद्र के पार (प्रास्य) उत्तमता से पहुँचाओ। तथा उन उक्त पुरुषार्थी पुरुषों को (अपि) भी (कर्त्तम्) कुआँ खुदाने और कर्म करने को (अवर्त्तय) प्रवृत्त कराओ और आप यहाँ हम लोगों को सदा (रमय) आनन्द से रमाओ ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमा और श्लेषालंकार है। जैसे सूर्य्य सबको अपने-अपने कामों में लगाता है वैसे उत्तम शास्त्र जाननेवाले विद्वान् जन मूर्खजनों को शास्त्र और शरीर कर्म में प्रवृत्त करा सब सुखों को सिद्ध करावें ॥ १३ ॥

त्वं नो अस्या इन्द्र दुर्हणायाः पाहि वज्रिवो दुरितादभीके।
प्र नो वाजान् रथ्यो३ अश्वबुध्यानिषे यन्धि श्रवसे सूनृतायै ॥१४॥

पदार्थ—(वज्रिवः) जिसकी प्रशंसित विशेष ज्ञानयुक्त नीति विद्यमान है सो (इन्द्र) अधर्म का विनाश करनेहारे हे सेनाध्यक्ष ! (रथ्य) रथ को ले जाने वाला होता हुआ (त्वम्) तू (अभीके) संग्राम में (अस्याः) इस प्रत्यक्ष (दुर्हणायाः) दुःख से मारने योग्य शत्रुओं की सेना और (दुरितात्) दुष्ट आचरण से (नः) हम लोगों की (पाहि) रक्षा कर तथा (इषे) इच्छा (श्रवसे) सुनना वा अन्न और (सूनृतायै) उत्तम सत्य तथा प्रिय वाणी के लिए (नः) हम लोगों के (अश्वबुध्यान्) अन्तरिक्ष में हुए अग्नि आदि पदार्थों को चलाने वा बढ़ाने को जो जानते उन्हें और (वाजान्) विशेष ज्ञान वा वेगयुक्त सम्बन्धियों को (प्र, यन्धि) भली-भाँति दे ॥ १४ ॥

भावार्थ—सेनाधीश को चाहिए कि अपनी सेना को शत्रु के मारने से और दुष्ट आचरण से अलग रक्खे तथा वीरों के लिए बल तथा उनकी इच्छा के अनुकूल बल के बढ़ानेवाले पीने योग्य पदार्थ तथा पुष्कल अन्न दे उनको प्रसन्न और शत्रुओं को अच्छे प्रकार जीतकर प्रजा की निरन्तर रक्षा करें ॥ १४ ॥

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

मा सा ते अस्मत्सुमतिर्वि दसद्वाजप्रमहः समिषो वरन्त।
आ नो भज मघवन् गोष्वर्यो मंहिष्ठास्ते सधमादः स्याम ॥१५॥

पदार्थ—हे (वाजप्रमहः) विशेष ज्ञान वा विद्वानों से अच्छे प्रकार सत्कार को प्राप्त किये (मघवन्) और प्रशंसित सत्कार करने योग्य धन से युक्त जगदीश्वर ! (ते) आप की कृपा से जो (सुमतिः) उत्तम बुद्धि है (सा) सो (अस्मत्) हमारे निकट से (मा) मत (वि, दसत्) विनाश को प्राप्त होवे सब मनुष्य (इषः) इच्छा और अन्न आदि पदार्थों को (सं, वरन्त) अच्छे प्रकार स्वीकार करें (अर्यः) स्वामी ईश्वर आप (नः) हम लोगों को (गोषु) पृथिवी, वाणी, धेनु और धर्म के प्रकाशों में (आ, भज) चाहो जिससे (मंहिष्ठाः) अत्यन्त सुख और विद्या आदि पदार्थों से वृद्धि को प्राप्त हुए हम लोग (ते) आपके (सधमादः) प्रति आनन्द सहित (स्याम) आपके विचार में मग्न हों ॥ १५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि उत्तम बुद्धि आदि की प्राप्ति के लिए परमेश्वर को स्वामी मानें और उसकी प्रार्थना करें। जिससे ईश्वर के जैसे गुण, कर्म और स्वभाव है वैसे अपने सिद्ध करके परमात्मा के साथ आनन्द में निरन्तर स्थित हों ॥ १५ ॥

इस सूक्त में स्त्री-पुरुष और राजा प्रजा आदि के धर्म का वर्णन होने से
पूर्व सूक्तार्थ के साथ इस अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिए ॥

हे जगदीश्वर ! जैसे आपकी कृपाकटाक्ष का सहाय जिसको प्राप्त हुआ
उस मैंने ऋग्वेद के प्रथम अष्टक का भाष्य सुख से बनाया
वैसे आगे भी यह ऋग्वेदभाष्य मुझ से बन सके ॥

यह प्रथम अष्टक के आठवें अध्याय में छब्बीसवाँ वर्ग, प्रथम अष्टक, आठवाँ अध्याय और एकसौ इक्कीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीपरमविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण परमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते आर्यभाषासमन्विते सुप्रमाणयुक्ते ऋग्वेदभाष्ये प्रथमाष्टकेऽष्टमोऽध्यायोऽलमगात् ॥

卐

अथ द्वितीयाष्टकारम्भः

तत्र प्रथमोऽध्यायः

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव।

प्र वहृयस्य पञ्चदशर्चस्य द्वाविंशत्युत्तरशततमस्य सूक्तस्य कक्षीवान् ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। १, ५, १४ भुरिक् पङ्क्तिः, ४ निचृत्पङ्क्तिः, ३, १५ स्वराट्पङ्क्तिः, ६ विराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। २, ९, १०, १३ विराट् त्रिष्टुप्, ८, १२ निचृत् त्रिष्टुप्, ७, ११ त्रिष्टुप् च छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब द्वितीय अष्टक के प्रथम अध्याय का आरम्भ है उसमें एकसौ बाईसवें सूक्त के प्रथम मन्त्र में सभापति के कार्य्य का उपदेश किया जाता है—

प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धो यज्ञं रुद्राय मीळ्हुषे भरध्वम्।
दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरैरिषुध्येव मरुतो रोदस्योः ॥१॥

पदार्थ—(रघुमन्यवः) थोड़े क्रोधवाले मनुष्यो ! (रोदस्योः) भूमि और सूर्य्यमण्डल में जैसे (मरुतः) पवन विद्यमान वैसे (इषुध्येव) जिसमें बाण धरे जाते उस धनुष में जैसे वैसे (वीरैः) वीर मनुष्यों के साथ वर्त्तमान तुम (मीळ्हुषे) सज्जनों के प्रति सुखरूपी वृष्टि करने और (रुद्राय) दुष्टों को रुलानहारे सभाध्यक्षादि के लिए (वः) तुम लोगों की (पान्तम्) रक्षा करते हुए (यज्ञम्) सङ्गम करने योग्य उत्तम व्यवहार और (अन्धः) अन्न तथा (दिवः) विद्या प्रकाशों जो कि (असुरस्य) अविद्वानों के सम्बन्ध में वर्त्तमान उपदेश आदि उनको जैसे (प्र, भरध्वम्) धारण वा पुष्ट करो वैसे मैं इस तुम्हारे व्यवहार की (अस्तोषि) स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्णोपमा और वाचकलुप्तोपमा दो अलङ्कार हैं। जब मनुष्यों का योग्य पुरुषों के साथ अच्छा यत्न बनता है तब कठिन काम भी सहज से सिद्ध कर सकते हैं ॥ १ ॥

अब स्त्री-पुरुषों के व्यवहार को अगले मन्त्र में कहा है—

पत्नीव पूर्वहूतिं वावृधध्या उषासानक्ता पुरुधा विदाने।
स्तरीर्नात्कं व्युतं वसाना सूर्यस्य श्रिया सुदृशी हिरण्यैः ॥२॥

पदार्थ—हे सरल स्वभावयुक्त उत्तम स्त्रि ! तू (पत्नीव) जैसे यज्ञादि कर्म में साथ रहनेवाली विद्वान् की स्त्री (वावृधध्यै) वृद्धि करने को अर्थात् गृहस्थाश्रम आदि व्यवहारों के बढ़ाने को (पूर्वहूतिम्) जिसका पहले बुलाना होता अर्थात् सब कामों से जिसकी प्रथम सेवा करनी होती उस अपने पति को स्वीकार कर (पुरुधा) जो बहुत व्यवहार वा पदार्थों की धारणा करनेहारे (विदाने) जाने आते उन (उषासानक्ता) रात्रिदिन के समान वर्त्ते वैसी वर्त्ता कर तथा (सूर्यस्य) सूर्य्यमण्डल की (हिरण्यैः) सुवर्ण-सी चमकती हुई ज्योतियों और (श्रिया) उत्तम शोभा से (सुदृशी) जिस तेरा अच्छा दर्शन वह (अत्कम्) कुएँ के समान (व्युतम्) अनेक प्रकार बुने हुए विस्तारयुक्त वस्त्र को (वसाना) पहनती हुई (स्तरीः) जैसे कलायन्त्रादिकों के संयोग से ढाँपी हुई नाव हो (न) वैसी निरन्तर हो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। पतिव्रता स्त्री विद्यमान अपने पति को प्रसन्न करती और स्त्रीव्रत अर्थात् नियम से अपनी स्त्री में रमनेहारा पति जैसे दिनरात्रि सम्बन्ध से मिला हुआ वर्त्तमान है वैसे सम्बन्ध से वर्त्तमान कपड़े और गहने पहने हुए सुशोभित धर्मयुक्त व्यवहार में यथावत् प्रयत्न करें ॥ २ ॥

अब अगले मन्त्रों में अच्छे गुणों के विचार और व्यवहार का उपदेश करते हैं—

ममत्तु नः परिज्मा वसर्हा ममत्तु वातो अपां वृषण्वान्।
शिशीतमिन्द्रापर्वता युवं नस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ॥३॥

पदार्थ—जैसे (वसर्हा) निवास कराने की योग्यता को प्राप्त होता और (परिज्मा) पाये हुए पदार्थों को सब ओर से जाता, जाता हुआ अग्नि (नः) हम लोगों को (मन्दतु) आनन्दित करावे वा (अपाम्) जलों की (वृषण्वान्) वर्षा करानेहारा (वातः) पवन हम लोगों को (मन्दतु) आनन्दयुक्त करावे । हे (इन्द्रापर्वता) सूर्य्य और मेघ के समान वर्त्तमान पढ़ाने और उपदेश करनेवालो ! (युवम्) तुम दोनों (नः) हम लोगों को (शिशीतम्) अतितीक्ष्ण बुद्धि से युक्त करो वा (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (नः) हम लोगों के लिए (वरिवस्यन्तु) सेवन अर्थात् आश्रय करें वैसे (तत्) उन सबको सत्कार युक्त हम लोग निरन्तर करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य जैसे हम लोगों को प्रसन्न करें वैसे हम लोग भी उन मनुष्यों को प्रसन्न करें ॥ ३ ॥

उत त्या मे यशसा श्वेतनायै व्यन्ता पान्तौशिजो हुवध्यै ।
प्र वो नपातमपां कृणुध्वं प्र मातरा रास्पिनस्यायोः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (मे) मेरे (यशसा) उत्तम यश से (श्वेतनायै) प्रकाश के लिए (व्यन्ता) अनेक प्रकार के बल से युक्त (पान्ता) रक्षा करनेवाले (त्या) वे पूर्वोक्त पढ़ाने और उपदेश करनेहारे (हुवध्यै) हम लोगों के ग्रहण करने को (मातरा) मान करनेहारे (रास्पिनस्य) ग्रहण करने योग्य (आयोः) जीवन अर्थात् आयु के बढ़ाने को (प्र) प्रवृत्त होते हैं तथा जैसे तुम लोग (अपाम्) जलों के (नपातम्) विनाशरहित मार्ग को वा जलों के न गिरने को (प्र, कृणुध्वम्) सिद्ध करो वैसे (उत) निश्चय से (औशिजः) कामना करते हुए का सन्तान मैं (वः) तुम लोगों की आयु को निरन्तर बढ़ाऊँ ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे सुन्दर शिक्षा से हम लोगों की आयु को तुम बढ़ाओ वैसे हम भी तुम्हारी आयु की उन्नति किया करें ॥ ४ ॥

आ वो रुवण्युमौशिजो हुवध्यै घोषेव शंसमर्जुनस्य नंशे ।
प्र वः पूष्णे दावन आँ अच्छा वोचेय वसुतातिमग्नेः ॥५॥१॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (औशिजः) विद्या की कामना करनेवाले का पुत्र मैं (वः) तुम लोगों के (रुवण्युम्) अच्छे कहे हुए उत्तम उपदेश के (आ, हुवध्यै) ग्रहण करने के लिए (अर्जुनस्य) रूप के (शंसम्) प्रशंसित व्यवहार को वा (घोषेव) विद्वानों की वाणी के समान दुःख के (नंशे) नाश और (वः) तुम लोगों की (पूष्णे) पुष्टि करने तथा (दावने) दूसरों को देने के लिए (अग्नेः) अग्नि के सकाश से जो (वसुतातिम्) धन उसको ही (प्र, आ, अच्छा, वोचेय,) उत्तमता से भली-भाँति अच्छा कहूँ ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे वैद्यजन सब के लिए आरोग्यपन देके रोगों को जल्दी दूर कराते वैसे सब विद्यावान् सब को सुखी कर अच्छी प्रतिष्ठावाले करें ॥ ५ ॥

श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमोत श्रुतं सदने विश्वतः सीम् ।
श्रोतु नः श्रोतुरातिः सुश्रोतुः सुक्षेत्रा सिन्धुरद्भिः ॥६॥

पदार्थ—हे (मित्रावरुणा) मित्र और उत्तम जन (सुश्रोतुः, मे) मुझ अच्छे सुननेवाले के (इमा) इन (हवा) देने-लेने योग्य वचनों को (श्रुतम्) सुनो (उत) और (सदने) सभा वा (विश्वतः) सब ओर से (सीम्) मर्य्यादा में (श्रुतम्) सुनो अर्थात् वहाँ की चर्चा को समझो तथा (अद्भिः) जलों से जैसे (सिन्धुः) नदी (सुक्षेत्रा) उत्तम खेतों को प्राप्त हो वैसे (श्रोतुरातिः) जिसका सुनना दूसरे को देना है वह (नः) हम लोगों के वचनों को (श्रोतु) सुने ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वानों को चाहिए कि सब के प्रश्नों को सुनके यथावत् उनका समाधान करें ॥ ६ ॥

स्तुषे सा वां वरुण मित्र रातिर्गवां शता पृक्षयामेषु पज्रे ।
श्रुतरथे प्रियरथे दधानाः सद्यः पुष्टिं निरुन्धानासो अग्मन् ॥७॥

पदार्थ—जैसे विद्वान् जन ! (पज्रे) पदार्थों के पहुँचानेवाले (श्रुतरथे) सुने हुए रमण करने योग्य रथ वा (प्रियरथे) अति मनोहर रथ में (सद्यः) शीघ्र (पुष्टिम्) पुष्टि को (दधानाः) धारण करते और दुःख को (निरुन्धानासः) रोकते हुए (अग्मन्) जावें वैसे हे (वरुण) गुणों से उत्तमता को प्राप्त और (मित्र) मित्र तुम (पृक्षयामेषु) जो पूछे जाते उनके यम-नियमों में (गवाम्, शता) सैकड़ों वचनों को प्राप्त होओ । और जो तुम्हारी (रातिः) दान देनेवाली स्त्री है (सा) वह (वाम्) तुम दोनों की (स्तुषे) स्तुति करती है वैसे मैं भी स्तुति करूँ ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे इस संसार में विद्वान् जन पुरुषार्थ से अनेको अद्भुत यानों को बनाते हैं वैसे औरों को भी बनाने चाहिएँ ॥ ७ ॥

अस्य स्तुषे महिमघस्य राधः सचा सनेम नहुषः सुवीराः ।
जनो यः पज्रेभ्यो वाजिनीवानश्वावतो रथिनो मह्यं सूरिः ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप (अस्य) इस (अश्वावतः) बहुत घोड़ों से युक्त (रथिनः) प्रशंसित रथ और (महिमघस्य) प्रशंसा करने योग्य उत्तम धनवाले जन के (राधः) धन की (स्तुषे) स्तुति अर्थात् प्रशंसा करते हो उन आपके उस काम को (सुवीराः) सुन्दर शूरवीर मनुष्योंवाले हम लोग (सचा) सम्बन्ध से (सनेम) अच्छे प्रकार सेवें (यः) जो (नहुषः) शुभ-अशुभ कामों से बँधा हुआ (जनः) मनुष्य (पज्रेभ्यः) एक स्थान को पहुँचानेहारे यानों से (वाजिनीवान्) प्रशंसित वेदोक्त क्रिया युक्त होता है वह (सूरिः) विद्वान् (मह्यम्) मेरे लिए इस वेदोक्त शिल्पविद्या को देवे ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे पुरुषार्थी मनुष्य समृद्धिमान् होता है वैसे सब लोगों को होना चाहिए ॥ ८ ॥

जनो यो मित्रावरुणावभिध्रुगपो न वां सुनोत्यक्ष्णयाध्रुक् ।
स्वयं स यक्ष्मं हृदये नि धत्त आप यदीं होत्राभिर्ऋतावा ॥९॥

पदार्थ—हे सत्य उपदेश और यज्ञ करानेवालो ! (यः) जो (जनः) विद्वान् (वाम्) तुम दोनों के (अपः) प्राण अर्थात् बलों को (मित्रावरुणा) प्राण तथा उदान जैसे वैसे (अभिध्रुक्) आगे से द्रोह करता वा (अक्ष्णयाध्रुक्) कुटिलरीति से द्रोह करता हुआ (न) नहीं (सुनोति) उत्पन्न करता (सः) वह (स्वयम्) आप (हृदये) अपने हृदय में (यक्ष्मम्) राजरोग को (नि, धत्ते) निरन्तर धारण करता वा (यत्) जो (ऋतावा) सत्य भाव से सेवन करनेवाला (होत्राभिः) ग्रहण करने योग्य क्रियाओं से (ईम्) सब ओर से आपके व्यवहारों को प्राप्त होता है वह (आप) अपने हृदय में सुख को निरन्तर धारण करता है ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परोपकार करनेवाले विद्वानों से द्रोह करता वह सदा दुःखी और जो प्रीति करता है वह सुखी होता है ॥ ९ ॥

अब युद्ध के विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

स व्राधतो नहुषो दंसुजूतः शर्धस्तरो नरां गूर्तश्रवाः ।
विसृष्टरातिर्याति बाळ्हसृत्वा विश्वासु पृत्सु सदमिच्छूरः ॥१०॥२॥

पदार्थ—जो (दंसुजूतः) विनाश करनेहारे वीरों से प्रेरणा किया (शर्धस्तरः) अत्यन्त बलवान् (गूर्तश्रवाः) जिसका उद्यम के साथ सुनना और अन्न आदि पदार्थ (विसृष्टरातिः) जिसने अनेक प्रकार के दान आदि उत्तम-उत्तम काम सिद्ध किये (बाळ्हसृत्वा) जो प्रशंसित बल से चलने (शूरः) और शत्रुओं को मारनेवाला (नहुषः) मनुष्य (नराम्) नायक वीरों की (विश्वासु) समस्त (पृत्सु) सेनाओं में (सदम्) शत्रुओं के मारनेवाले वीर सेनाजन को (इत्) ही ग्रहण कर (व्राधतः) विरोध करनेवालों को युद्ध के लिए (याति) प्राप्त होता है (सः) वह विजय को पाता है ॥१०॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि अपने शत्रु से अधिक युद्ध की सामग्री को इकट्ठी कर अच्छे पुरुषों के सहाय से उस शत्रु को जीतें ॥१०॥

फिर उपदेश करनेवाले का कर्त्तव्य अगले मन्त्रों में कहा है—

अध ग्मन्ता नहुषो हवं सूरेः श्रोता राजानो अमृतस्य मन्द्राः ।
नभोजुवो यन्निरवस्य राधः प्रशस्तये महिना रथवते ॥११॥

पदार्थ—हे (मन्द्राः) आनन्द करानेवाले (राजानः) प्रकाशमान सज्जनो ! तुम (अमृतस्य) आत्मरूप से मरणधर्म रहित (सूरेः) समस्त विद्याओं को जाननेवाले (नहुषः) विद्वान् जन के (हवम्) उपदेश को (श्रोत) सुनो (नभोजुवः) विमान आदि से आकाश में गमन करते हुए तुम (यत्) जो (निरवस्य) रक्षाहीन का (राधः) धन है उसको (ग्मन्त) प्राप्त होओ (अध) इसके अनन्तर (महिना) बड़प्पन से (प्रशस्तये) प्रशंसित (रथवते) बहुत रथ वाले को धन देओ ॥११॥

भावार्थ—जो परमेश्वर, परम विद्वान् और अपने आत्मा के सकाश से विरोधी नहीं होते और उनके उपदेशों का ग्रहण करें वे विद्याओं को प्राप्त हुए महाशय होते हैं ॥११॥

एतं शर्धं धाम यस्य सूरेरित्यवोचन् दशतयस्य नंशे ।
द्युम्नानि येषु वसुताती रारन् विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजम् ॥१२॥

पदार्थ—(वसुतातिः) धन आदि ऐश्वर्य्ययुक्त मैं जैसे विद्वान् जन (यस्य) जिस (दशतयस्य) दश प्रकार की विद्याओं से युक्त (सूरेः) विद्वान् के सकाश से जिस (शर्धम्) बलयुक्त (धाम) स्थान को (अवोचन्) कहें वा जो (विश्वे) सब विद्वान् (वाजम्) ज्ञान वा अन्न को (रारन्) देवें (येषु) जिन (प्रभृथेषु) अच्छे धारण किये हुए पदार्थों में (द्युम्नानि) यश वा धनों का (सन्वन्तु) सेवन करें (इति) इस प्रकार उस ज्ञान और (एतम्) इन पूर्वोक्त सब पदार्थों का सेवन कर दुःखों का (नंशे) नाश करूँ ॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् मनुष्य पूर्ण विद्याओं को जाननेहारे समस्त विद्वानों को पाकर औरों को उपदेश देते हैं वे यशस्वी होते हैं ॥१२॥

मन्दामहे दशतयस्य धासेर्द्विर्यत्पञ्च बिभ्रतो यन्त्यन्ना ।

किमिष्टाश्व इष्टरश्मिरेत ईशानासस्तरुष ऋञ्जते नॄन् ॥१३॥

पदार्थ—(यत्) जो (पञ्च) पढ़ाने, उपदेश करने, पढ़ने और उपदेश सुननेवाले तथा सामान्य मनुष्य (दशतयस्य) दश प्रकार के (धासेः) विद्या सुख का धारण करनेवाले विद्वान् की विद्या को और (अन्ना) अच्छे संस्कार से सिद्ध किये हुए अन्नों को (द्विः) दो वार (यन्ति) प्राप्त होते हैं वा जो (एते) ये (ईशानासः) समर्थ (तरुषः) अविद्या, अज्ञान मे डुबाने वालों को (ऋञ्जते) प्रसिद्ध करते हैं उन (बिभ्रतः) विद्या सुख से सब की पुष्टि (नॄन्) और विद्याओं की प्राप्ति करानेहारे मनुष्यों की हम लोग (मन्दामहे) स्तुति करते हैं उनकी शिक्षा को पाकर मनुष्य (इष्टाश्वः) जिस को घोड़े प्राप्त हुए वा (इष्टरश्मिः) जिसने कला यन्त्रादिको की किरणें जोड़ी ऐसा (किम्) क्या नहीं होता है ? ॥१३॥

भावार्थ—जो अच्छी शिक्षा से सब को विद्वान् करते हुए साधनों से चाहे हुए को सिद्ध करनेवाले समर्थ विद्वानों का सेवन नहीं करते वे अभीष्ट सुख को भी नहीं प्राप्त होते हैं ॥१३॥

हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्णस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ।

अर्यो गिरः सद्य आ जग्मुषीरोस्राश्चाकन्तूभयेष्वस्मे ॥१४॥

पदार्थ—जो (विश्वे, देवाः) समस्त विद्वान् (नः) हम लोगों के लिए (जग्मुषीः) प्राप्त होने योग्य (गिरः) वाणियों की (सद्यः) शीघ्र (आ, चाकन्तु) अच्छे प्रकार कामना करें वा (उभयेषु) अपने और दूसरों के निमित्त तथा (अस्मे) हम लोगों मे जो (अर्णः) अच्छा बना हुआ जल है उस की कामना करें और जो (अर्यः) वैश्य प्राप्त होने योग्य सब देश, भाषाओं और (उस्राः) गौओं की कामना करे उस (हिरण्यकर्णम्) कानों मे कुण्डल और (मणिग्रीवम्) गले में मणियों को पहिने हुए वैश्य को (तत्) तथा उस उक्त व्यवहार और हम लोगों की (आ, वरिवस्यन्तु) अच्छे प्रकार सेवा करें उन सब की हम लोग प्रतिष्ठा करावें ॥१४॥

भावार्थ—जो विद्वान् मनुष्य वा विदुषी पण्डिता स्त्री लड़के-लड़कियों को शीघ्र विद्वान् और विदुषी करते वा जो वणिक् सब देशों की भाषाओं को जानके देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर से धन को ला ऐश्वर्ययुक्त होते हैं वे सब को सब प्रकारों से सत्कार करने योग्य हैं ॥१४॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

चत्वारो मा मशर्शारस्य शिश्वस्त्रयो राज्ञ आयवसस्य जिष्णोः ।

रथो वां मित्रावरुणा दीर्घाप्साः स्यूमगभस्तिः सूरो नाद्यौत् ॥१५॥

पदार्थ—हे (मित्रावरुणा) मित्र और उत्तम जन ! जो (वाम्) तुम लोगों का (रथः) रथ है वह (मा) मुझको प्राप्त होवे जिस (मशर्शारस्य) दुष्ट शब्दों का विनाश करते हुए (आयवसस्य) पूर्ण सामग्री युक्त (जिष्णोः) शत्रुओं को जीतनेहारे (राज्ञः) न्याय और विनय से प्रकाशमान राजा का (स्यूमगभस्तिः) बहुत किरणों से युक्त (सूरः) सूर्य के (न) समान रथ (अद्यौत्) प्रकाश करता तथा जिसके (दीर्घाप्साः) जिनको अच्छे गुणों मे बहुत व्याप्ति वे (चत्वारः) ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्ण और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास ये चार आश्रम तथा (त्रयः) सेना आदि कामों के अधिपति, प्रजाजन तथा भृत्यजन ये तीन (शिश्वः) सिखाने योग्य हों वह राज्य करने को योग्य हो ॥१५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है। जिस राजा के राज्य में विद्या और अच्छी शिक्षा युक्त गुण, कर्म, स्वभाव से नियमयुक्त धर्मात्मा जन चारो वर्ण और आश्रम तथा सेना, प्रजा और न्यायाधीश हैं वह सूर्य्य के तुल्य कीर्ति से अच्छी शोभायुक्त होता है ॥१५॥

इस सूक्त में राजा-प्रजा और साधारण मनुष्यों के धर्म के वर्णन से इस सूक्त में कहे हुए अर्थ की पिछले सूक्त के साथ एकता है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ बाईसवां सूक्त और तीसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

पृथुरित्यस्य त्रयोदशर्चस्य त्रयोविंशत्युत्तरशततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमसः पुत्रः कक्षीवानृषिः । उषा देवता, १, ३, ६, ७, ९, १०, १३ विराट् त्रिष्टुप्, २, ४, ८, १२ निचृत् त्रिष्टुप्, ५ त्रिष्टुप् च छन्दः । धैवतः स्वरः । ११ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

अब एकसौ तेईसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में स्त्री-पुरुष के विषय को कहते हैं—

पृथू रथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासो अस्थुः ।

कृष्णादुदस्थादर्या३ विहाया श्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय ॥१॥

पदार्थ—जो (मानुषाय) मनुष्यों के इस (क्षयाय) घर के लिए (चिकित्सन्ती) रोगों को दूर करती हुई (विहायाः) बड़ी प्रशंसित (अर्या) वैश्य की कन्या जैसे प्रातःकाल की वेला (कृष्णात्) अँधेरे से (उदस्थात्) ऊपर को उठती, उदय करती है वैसे विद्वान् ने (अयोजि) संयुक्त की अर्थात् अपने सङ्ग ली और वह (एनम्) इस विद्वान् को पतिभाव से युक्त करती अपना पति मानती तथा जिन स्त्री पुरुषों का (दक्षिणायाः) दक्षिण दिशा से (पृथुः) विस्तारयुक्त (रथः) रथ चलता है उनको (अमृतासः) विनाश रहित (देवासः) अच्छे-अच्छे गुण (आ, अस्थुः) उपस्थित होते हैं ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो प्रातःसमय की वेला के गुणयुक्त अर्थात् शीतल स्वभाववाली स्त्री और चन्द्रमा के समान शीतल गुणवाला पुरुष हो उनका परस्पर विवाह हो तो निरन्तर सुख होता है ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

पूर्वा विश्वस्माद् भुवनादबोधि जयन्ती वाजं बृहती सनुत्री ।

उच्चा व्यख्यद्युवतिः पुनर्भूरोषा अगन्प्रथमा पूर्वहूतौ ॥२॥

पदार्थ—(पूर्वहूतौ) जिसमें वृद्धजनों का बुलाना होता उस गृहस्थाश्रम में जो (पुनर्भूः) विवाहे हुए पति के मरजाने पीछे नियोग से फिर सन्तान उत्पन्न करनेवाली होती वह (वाजम्) उत्तम ज्ञान को (जयन्ती) जीतती हुई (बृहती) बड़ी (सनुत्री) सब व्यवहारों को अलग-अलग करने और (प्रथमा) प्रथम (युवतिः) युवा अवस्था को प्राप्त होनेवाली नवोढ़ा स्त्री जैसे (उषाः) प्रातःकाल की वेला (विश्वस्मात्) समस्त (भुवनात्) जगत् के पदार्थों से (पूर्वा) प्रथम (अबोधि) जानी जाती और (उच्चा) ऊंची-ऊंची वस्तुओं को (वि, अख्यत्) अच्छे प्रकार प्रकट करती वैसे (आ, अगन्) आती है वह विवाह में योग्य होती है ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। सब कन्या पच्चीस वर्ष अपनी आयु को विद्या के अभ्यास करने में व्यतीत कर पूरी विद्यावाली होकर अपने समान पति से विवाह कर प्रातःकाल की वेला के समान अच्छे रूपवाली हों ॥ २ ॥

यदद्य भागं विभजासि नृभ्य उषो देवि मर्त्यत्रा सुजाते ।

देवो नो अत्र सविता दमूना अनागसो वोचति सूर्याय ॥३॥

पदार्थ—हे (सुजाते) उत्तम कीर्त्ति से प्रकाशित और (देवि) अच्छे लक्षणों से शोभा को प्राप्त सुलक्षणी कन्या ! तू (अद्य) आज (नृभ्यः) व्यवहारों की प्राप्ति करानेहारे मनुष्यों के लिए (उषः) प्रातःसमय की वेला के समान (यत्) जिस (भागम्) सेवने योग्य व्यवहार का (विभजासि) अच्छे प्रकार सेवन करती और जो (अत्र) इस गृहाश्रम मे (दमूनाः) मित्रों मे उत्तम (मर्त्यत्रा) मनुष्यों मे (सविता) सूर्य के समान (देवः) प्रकाशमान तेरा पति (सूर्याय) परमात्मा के विज्ञान के लिए (नः) हम लोगों को (अनागसः) विना अपराध के व्यवहारों को (वोचति) कहे उन तुम दोनों का सत्कार हम लोग निरन्तर करें ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है। जब दो स्त्री-पुरुष विद्यावान्, धर्म का आचरण और विद्या का प्रचार करनेहारे सदा परस्पर प्रसन्न हों तब गृहाश्रम मे अत्यन्त सुख का सेवन करनेहारे होवें ॥३॥

गृहंगृहमहना यात्यच्छा दिवेदिवे अधि नामा दधाना ।

सिषासन्ती द्योतना शश्वदागादग्रमग्रमिद्भजते वसूनाम् ॥४॥

पदार्थ—जो स्त्री जैसे प्रातःकाल की वेला (अहना) दिन वा व्याप्ति से (गृहंगृहम्) घर-घर को (अच्छायाति) उत्तम रीति के साथ अच्छी ऊपर से आती (दिवेदिवे) और प्रतिदिन (नाम) नाम (दधाना) धरती अर्थात् दिन-दिन का नाम आदित्यवार, सोमवार आदि धरती (द्योतना) प्रकाशमान (वसूनाम्) पृथिवी आदि लोकों के (अग्रमग्रम्) प्रथम-प्रथम स्थान को (भजते) भजती और (शश्वत्) निरन्तर (इत्) ही (आ, आगात्) आती है वैसे (सिषासन्ती) उत्तम पदार्थ पति आदि को दिया चाहती हो वह घर के काम को सुशोभित करनेहारी हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य की कान्ति—घाम सब पदार्थों के अगले-अगले भाग को सेवन करती और नियम से प्रत्येक समय प्राप्त होती है वैसे स्त्री को भी होना चाहिए ॥ ४ ॥

भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिरुषः सूनृते प्रथमा जरस्व ।

पश्चा स दध्या यो अघस्य धाता जयेम तं दक्षिणया रथेन ॥५॥

पदार्थ—हे (सूनृते) सत्य आचरणयुक्त स्त्रि ! तू (उषः) प्रातः समय की वेला के समान वा (भगस्य) ऐश्वर्य की (स्वसा) बहिन के समान वा (वरुणस्य) उत्तम पुरुष की (जामिः) कन्या के समान (प्रथमा) प्रख्यात प्रशंसा को प्राप्त हुई विद्याओं की (जरस्व) स्तुति कर (यः) जो (अघस्य) अपराध का (धाता) धारण करनेवाला हो (तम्) उसको (दक्षिणया) अच्छी सिखाई हुई सेना और (रथेन) विमान आदि यान से जैसे हम लोग (जयेम)

ग्रीवें वैसे तू (वध्याः) उसका तिरस्कार कर जो मनुष्य पापी हो (सः) वह (वध्या) पीड़ा करने अर्थात् तिरस्कार करने योग्य है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । स्त्रियो को चाहिए कि अपने-अपने घर में ऐश्वर्य की उन्नति श्रेष्ठ रीति और दुष्टों का ताड़न निरन्तर किया करें ॥ ५ ॥

उदीरतां सूनृता उत्पुरन्धीरुदग्नयः शुशुचानासो अस्थुः ।
स्पार्हा वसूनि तमसापगूळ्हाविष्कृण्वन्त्युषसो विभातीः ॥६॥

पदार्थ—हे सत्पुरुषो ! (सूनृता.) सत्यभाषणादि क्रियावान् होते हुए तुम लोग जैसे (पुरन्धीः) शरीर के आश्रित क्रिया को धारण करती और (शुशुचानास.) निरन्तर पवित्र करानेवाले (अग्नयः) अग्नियो के समान चमकती-दमकती हुई स्त्रियाँ (उदीरताम्) उत्तमता से प्रेरणा देवें वा (स्पार्हा) चाहने योग्य (वसूनि) धन आदि पदार्थों को (उदस्थुः) उन्नति से प्राप्त हों वा जैसे (उषसः) प्रभातसमय (तमसा) अन्धकार से (अपगूळ्हा) ढँपे हुए पदार्थों और (विभातीः) अच्छे प्रकाशों को (उदाविष्कृण्वन्ति) ऊपर से प्रकट करते हैं वैसे होओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जब स्त्रियाँ प्रभात समय की वेलाओं के समान वर्त्तमान अविद्या, मैलापन आदि दोषों को निराले कर विद्या और पाकपन आदि गुणों को प्रकाश कर ऐश्वर्य की उन्नति करती हैं तब वे निरन्तर सुखयुक्त होती हैं ॥ ६ ॥

अपान्यदेत्यभ्य१न्यदेति विषुरूपे अहनी सं चरेते ।
परिक्षितोस्तमो अन्या गुहाकरद्यौदुषाः शोशुचता रथेन ॥७॥

पदार्थ—जो (विषुरूपे) संसार में व्याप्त (अहनी) रात्रि और दिन एक साथ (सं, चरेते) सञ्चार करते अर्थात् आते-जाते हैं उनमें (परिक्षितो.) सब ओर से बसनेहारे अन्धकार और उजाले के बीच से (गुहा) अन्धकार से संसार को ढाँपनेवाली (तम) रात्रि (अन्या) और कामों को (अकः) करती तथा (उषाः) सूर्य के प्रकाश से पदार्थों को तपानेवाला दिन (शोशुचता) अत्यन्त प्रकाश और (रथेन) रमण करने योग्य रूप से (अद्यौत्) उजाला करता (अन्यत्) अपने से भिन्न प्रकाश को (अप, एति) दूर करता तथा (अन्यत्) अन्य प्रकाश को (अभ्येति) सब ओर से प्राप्त होता इस व्यवहार के समान स्त्री-पुरुष अपना वर्त्ताव वर्त्तें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । इस जगत् में अन्धेरा, उजाला दो पदार्थ हैं जिनसे सदैव पृथिवी आदि लोकों के आधे भाग में दिन और आधे में रात्रि रहती है । जो वस्तु अन्धकार को छोड़ता वह उजाले का ग्रहण करता और जितना प्रकाश अन्धकार को छोड़ता उतना रात्रि लेती दोनों पारी से सदैव अपनी व्याप्ति के साथ पाय-पाये हुए पदार्थ को ढाँपते और दोनों एक साथ वर्त्तमान हैं उनका जहाँ-जहाँ संयोग है वहाँ-वहाँ संध्या और जहाँ-जहाँ वियोग होता अर्थात् अलग होते वहाँ-वहाँ रात्रि और दिन होता जो स्त्री-पुरुष ऐसे मिल और अलग होकर दुःख के कारणों को छोड़ते और सुख के कारणों को ग्रहण करते वे सदैव आनन्दित होते हैं ॥ ७ ॥

सदृशीरद्य सदृशीरिदु श्वो दीर्घं सचन्ते वरुणस्य धाम ।
अनवद्यास्त्रिंशतं योजनान्येकैका क्रतुं परि यन्ति सद्यः ॥८॥

पदार्थ—जो (अद्य) आज के दिन (अनवद्याः) प्रशंसित (सदृशीः) एकसी (उ) अथवा तो (श्वः) अगले दिन (सदृशीः) एकसी रात्रि और प्रभात वेला (वरुणस्य) पवन के (दीर्घम्) बड़े समय वा (धाम) स्थान को (सचन्ते) संयोग को प्राप्त होती और (एकैका) उनमें से प्रत्येक (त्रिंशतम्, योजनानि) एकसौ बीस कोश और (क्रतुम्) कर्म को (सद्य) शीघ्र (परि, यन्ति) पर्य्याय से प्राप्त होती हैं वे (इत्) व्यर्थ किसी को न खोना चाहिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे ईश्वर के नियम को प्राप्त हो गये, होते और होनेवाले रात्रि, दिन हैं उनका अन्यथापन नहीं होता वैसे ही इस सब संसार के क्रम का विपरीत भाव नहीं होता तथा जो मनुष्य आलस को छोड़, सृष्टिक्रम की अनुकूलता से अच्छा यत्न किया करते हैं वे प्रशंसित विद्या और ऐश्वर्यवाले होते हैं और जैसे यह रात्रि दिन नियत समय आता और जाता वैसे ही मनुष्यों को व्यवहारों में सदा अपना वर्त्ताव रखना चाहिए ॥ ८ ॥

जानत्यह्नः प्रथमस्य नाम शुक्रा कृष्णादजनिष्ट श्वितीची ।
ऋतस्य योषा न मिनाति धामाहरहर्निष्कृतमाचरन्ती ॥९॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जैसे (प्रथमस्य) विस्तरित पहले (अह्न.) दिन वा दिन के आदिम भाग का (नाम) नाम (जानती) जानती हुई (शुक्रा) शुद्धि करनेहारी (श्वितीची) सुपेदी को प्राप्त होती हुई प्रातःसमय की वेला (कृष्णात्) काले रङ्गवाले अन्धेरे से (अजनिष्ट) प्रसिद्ध होती है वा (ऋतस्य) सत्य आचरणयुक्त मनुष्य की (योषा) स्त्री के समान (अहरहः) दिन-दिन (आचरन्ती) आचरण करती हुई (निष्कृतम्) उत्पन्न हुए वा निश्चय को प्राप्त (धाम) स्थान को (न) नहीं (मिनाति) नष्ट करती वैसी तू हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे प्रातः समय की वेला अन्धकार से उत्पन्न होकर दिन को प्रसिद्ध करती है दिन से विरोध करनेहारी नहीं होती वैसे स्त्री सत्य-आचरण से अपने माता-पिता और पति के कुल को उत्तम कीर्ति से प्रशस्त कर अपने श्वशुर और पति के प्रति उनके अप्रसन्न होने का व्यवहार कुछ न करे ॥ ९ ॥

कन्येव तन्वा३ शाशदानाँ एषि देवि देवमियक्षमाणम् ।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती ॥१०॥४॥

पदार्थ—हे (देवि) कामना करनेहारी कुमारी ! जो तू (तन्वा) शरीर से (कन्येव) कन्या के समान वर्त्तमान (शाशदाना) व्यवहारों में अति तेजी दिखाती हुई (इयक्षमाणम्) अत्यन्त सङ्ग करते हुए (देवम्) विद्वान् पति को (एषि) प्राप्त होती (पुरस्तात्) और सम्मुख (विभाती) अनेक प्रकार सद्गुणों से प्रकाशमान (युवतिः) जवानी को प्राप्त हुई (संस्मयमाना) मन्द-मन्द हँसती हुई (वक्षांसि) छाती आदि अङ्गों को (आविः, कृणुषे) प्रसिद्ध करती है सो तू प्रभात की वेला की उपमा को प्राप्त होती है ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे विदुषी ब्रह्मचारिणी स्त्री पूरी विद्या, शिक्षा और अपने समान मनमाने पति को पाकर सुखी होती है वैसे ही और स्त्रियों को भी आचरण करना चाहिए ॥ १० ॥

सुसंकाशा मातृमृष्टेव योषाविस्तन्वं कृणुषे दृशे कम् ।
भद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ न तत्ते अन्या उषसो नशन्त ॥११॥

पदार्थ—हे कन्या ! (सुसंकाशा) अच्छी सिखावट से सिखाई हुई (योषा) युवति (मातृमृष्टेव) पढ़ी हुई पण्डिता माता ने सत्यशिक्षा देकर शुद्ध की-सी जो (दृशे) देखने को (तन्वम्) अपने शरीर को (आविः) प्रकट (कृणुषे) करती (भद्रा) और मङ्गलरूप आचरण करती हुई (कम्) सुखस्वरूप पति को प्राप्त होती है सो (त्वम्) तू (वितरम्) सुख देनेवाले पदार्थ और सुख को (व्युच्छ) स्वीकार कर, हे (उष) प्रभातवेला के समान वर्त्तमान स्त्रि ! जैसे (अन्या) और (उषस) प्रभात समय (न) नहीं (नशन्त) विनाश को प्राप्त होते वैसे (ते) तेरा (तत्) उक्त सुख न विनाश को प्राप्त हो ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे प्रातःकाल की वेला नियम से अपने-अपने समय और देश को प्राप्त होती हैं वैसे स्त्री अपने-अपने पति को पाकर ऋतुधर्म को प्राप्त होवें ॥ ११ ॥

अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववारा यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य ।
परा च यन्ति पुनरा च यन्ति भद्रा नाम वहमाना उषासः ॥१२॥

पदार्थ—हे स्त्रियो ! जैसे (सूर्यस्य) सूर्य्यमण्डल की (रश्मिभिः) किरणों के साथ उत्पन्न (यतमाना.) उत्तम यत्न करती हुई (अश्वावती) जिनकी प्रशंसित व्याप्तियाँ (गोमती) जो बहुत पृथिवी आदि लोक और किरणों से युक्त (विश्ववारा.) समस्त जगत् को अपने मे लेती और (भद्रा) अच्छे (नाम) नामों को (वहमाना·) सबकी बुद्धियो मे पहुँचाती हुई (उषसः) प्रभातवेला नियम के साथ (परा, यन्ति) पीछे को जाती (च) और (पुनः) फिर (च) भी (आ, यन्ति) आती हैं वैसे नियम से तुम अपना वर्त्ताव वर्त्तो ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रभातवेला सूर्य के संयोग से नियम को प्राप्त हैं वैसे विवाहित स्त्रीपुरुष परस्पर प्रेम के स्थिर करनेहारे हों ॥ १२ ॥

ऋतस्य रश्मिमनुयच्छमाना भद्रंभद्रं क्रतुमस्मासु धेहि ।
उषो नो अद्य सुहवा व्युच्छास्मासु रायो मघवत्सु च स्युः ॥१३॥६॥

पदार्थ—हे (उषः) प्रातःसमय की वेला-सी अलबेली स्त्रि ! तू (अद्य) आज जैसे (ऋतस्य) जल की (रश्मिम्) किरण को प्रभात समय की वेला स्वीकार करती वैसे मन से प्यारे पति को (अनुयच्छमाना) अनुकूलता से प्राप्त हुई (अस्मासु) हम लोगों मे (भद्रंभद्रम्, क्रतुम्) अच्छी-अच्छी बुद्धि वा अच्छे-अच्छे काम को (धेहि) धर (सुहवा) और उत्तम सुख देनेवाली होती हुई (नः) हम लोगो को (व्युच्छ) ठहरा जिससे (मघवत्सु) प्रशंसित धनवाले (अस्मासु) हम लोगों में (रायः) शोभा (च) भी (स्युः) हों ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे श्रेष्ठ स्त्री अपने-अपने पति आदि की यथावत् सेवा कर बुद्धि और ऐश्वर्य्य को नित्य बढ़ाती हैं वैसे प्रभात समय की वेला भी है ॥ १३ ॥

इस सूक्त मे प्रभात समय की वेला के दृष्टान्त से स्त्रियों के धर्म का वर्णन करने से इस सूक्त मे कहे हुए अर्थ की पिछले सूक्त मे कहे अर्थ के साथ एकता है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ तेईसवां सूक्त और छठा वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अथ चतुर्विंशत्युत्तरशततमस्य त्रयोदशर्चस्य सूक्तस्य दैर्घतमसः कक्षीवान् ऋषिः ।
उषा देवता । १, ३, ६, ९—१० निचृत् त्रिष्टुप्, ४, ७,
११ त्रिष्टुप्; १२ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।२।
१३ भुरिक् पङ्क्तिः, ५ पङ्क्तिः, ८ विराट्
पङ्क्तिश्च छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब तेरह ऋचावाले एकसौ चौबीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के
प्रथम मन्त्र में सूर्यलोक के विषय का वर्णन किया है—

उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्त्सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत् ।
देवो नो अत्र सविता न्वर्थं प्रासावीद् द्विपत्प्र चतुष्पदित्यै ॥१॥

पदार्थ—जब (समिधाने) जलते हुए (अग्नौ) अग्नि का निमित्त (सूर्यः) सूर्यमण्डल (उद्यन्) उदय होता हुआ (उर्विया) पृथिवी के साथ (ज्योतिः) प्रकाश को (अश्रेत्) मिलाता तब (उच्छन्ती) अन्धकार को निकालती हुई (उषाः) प्रातःकाल की वेला उत्पन्न होती है ऐसे (अत्र) इस संसार मे (सविता) कामो मे प्रेरणा देनेवाला (देवः) उत्तम प्रकाशयुक्त सूर्यमण्डल (नः) हम लोगो को (अर्थम्) प्रयोजन को (इत्यै) प्राप्त कराने के लिए (प्रासावीत्) सारांश को उत्पन्न करता तथा (द्विपत्) दो पगवाले मनुष्य आदि वा (चतुष्पत्) चार पगवाले चौपाये, पशु आदि प्राणियों को (नु) शीघ्र (प्र) उत्तमता से उत्पन्न करता है ॥ १ ॥

भावार्थ—पृथिवी का सूर्य की किरणों के साथ संयोग होता है वही संयोग तिरछा जाता हुआ प्रभात समय के होने का कारण होता है, जो सूर्य न हो तो अनेक प्रकार के पदार्थ अलग-अलग नहीं देखे जा सकते ॥ १ ॥

अब उषा के दृष्टान्त से स्त्री के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अमिनती दैव्यानि व्रतानि प्रमिनती मनुष्या युगानि ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनामायतीनां प्रथमोषा व्यद्यौत् ॥२॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जैसे (उषा) प्रातःसमय की वेला (दैव्यानि) दिव्य गुणवाले (व्रतानि) सत्य पदार्थ वा सत्य कर्मों को (अमिनती) न छोड़ती और (मनुष्या) मनुष्यों के सम्बन्धी (युगानि) वर्षों को (प्रमिनती) अच्छे प्रकार व्यतीत करती हुई (शश्वतीनाम्) सनातन प्रभातवेलाओं वा प्रकृतियों और (ईयुषीणाम्) हो गईं प्रभातवेलाओं की (उपमा) उपमा दृष्टान्त और (आयतीनाम्) आनेवाली प्रभातवेलाओं मे (प्रथमा) पहली संसार को (व्यद्यौत्) अनेक प्रकार से प्रकाशित कराती और जागते अर्थात् व्यवहारों को करते हुए मनुष्यों को युक्ति के साथ सदा सेवन करने योग्य है वैसे तू अपना वर्त्ताव रख ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे यह प्रातःसमय की वेला विस्तारयुक्त पृथिवी और सूर्य के साथ चलनेहारी जितने पूर्व देश को छोड़ती उतने उत्तर देश को ग्रहण करती है तथा वर्त्तमान और व्यतीत हुई प्रातःसमय की वेलाओं की उपमा और आनेवालियों की पहली हुई कार्यरूप जगत् का और जगत् के कारण का अच्छे प्रकार ज्ञान कराती और सत्य धर्म के आचरण निमित्तक समय का अङ्ग होने से उमर को घटाती हुई वर्त्तमान है वह सेवन की हुई बुद्धि और आरोग्य आदि अच्छे गुणों को देती है वैसे पण्डिता स्त्री हो ॥ २ ॥

एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥३॥

पदार्थ—जैसे ही (एषा) यह प्रातःसमय की वेला (ज्योतिः) प्रकाश को (वसाना) ग्रहण करती हुई (समना) संग्राम मे (दिवः) सूर्य के प्रकाश की (दुहिता) लड़की-सी हम लोगो ने (पुरस्तात्) दिन के पहले (प्रत्यदर्शि) प्रतीति से देखी वा जैसे समस्त विद्या पढ़ा हुआ वीर जन (ऋतस्य) सत्य कारण के (पन्थाम्) मार्ग को (अन्वेति) अनुकूलता से प्राप्त होता वा (साधु) अच्छे प्रकार जैसे हो वैसे (प्रजानतीव) विशेष ज्ञानवाली विदुषी पढ़ी हुई पण्डिता स्त्री के समान प्रभातवेला (दिशः) दिशाओं को (न) नहीं (मिनाति) छोड़ती वैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तती हुई स्त्री उत्तम हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अच्छे नियम से वर्त्तमान हुई प्रातःसमय की वेला सब को आनन्दित कराती और वह उत्तम अपने भाव को नहीं नष्ट करती वैसे स्त्रियाँ गृहस्थ धर्म मे वर्त्ते ॥ ३ ॥

उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो नोधाइवाविरकृत प्रियाणि ।
अद्मसन्न ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात्पुनरेयुषीणाम् ॥४॥

पदार्थ—जैसे प्रभातवेला (वक्षः) पाये पदार्थ को (शुन्ध्युवः) सूर्य की किरणों के (न) समान वा (प्रियाणि) प्रिय वचनों की (नोधाइव) सब शास्त्रों की स्तुति, प्रशंसा करनेवाले विद्वान् के समान वा (अद्मसत्) भोजन के पदार्थों को पकानेवाले के (न) समान (ससतः) सोते हुए प्राणियों को (बोधयन्ती) निरन्तर जगाती हुई और (एयुषीणाम्) सब ओर से व्यतीत हो गई प्रभात वेलाओं की (शश्वत्तमा) अतीव सनातन होती हुई (पुनः) फिर (आ, अगात्) आती और (आविरकृत) संसार को प्रकाशित करती वह हम लोगो ने (उपो) समीप में (अदर्शि) देखी वैसी स्त्री उत्तम होती है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो स्त्री प्रभातवेला वा सूर्य वा विद्वान् के समान अपने सन्तानों को उत्तम शिक्षा से विद्वान् करती है वह सब का सत्कार करने योग्य है ॥ ४ ॥

पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य गवां जनित्र्यकृत प्र केतुम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीय ओभा पृणन्ती पित्रोरुपस्था ॥५॥७॥

पदार्थ—जैसे प्रातःसमय की वेला कन्या के तुल्य (उभा) दोनों लोकों को (पृणन्ती) सुख से पूरती और (पित्रोः) अपने माता-पिता के समान भूमि और सूर्यमण्डल की (उपस्था) गोद मे ठहरी हुई (वितरम्) जिससे विविध प्रकार के दुःखों से पार होते हैं उस (वरीयः) अत्यन्त उत्तम काम को (वि, उ, प्रथते) विशेष करके तो विस्तारती तथा (गवाम्) सूर्य की किरणों को (जनित्री) उत्पन्न करनेवाली (अप्त्यस्य) विस्तारयुक्त संसार मे हुए (रजसः) लोकसमूह के (पूर्वे) प्रथम आगे वर्त्तमान (अर्धे) आधे भाग में (केतुम्) किरणों को (प्र,आ, अकृत) प्रसिद्ध करती है वैसा वर्त्तमान करती हुई स्त्री उत्तम होती है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । प्रभातवेला से प्रसिद्ध हुआ सूर्यमण्डल का प्रकाश भूगोल के आधे भाग में सदा उजाला करता है और दूसरे आधे भाग मे रात्रि होती है उन दिन-रात्रि के बीच में प्रातःसमय की वेला विराजमान है ऐसे निरन्तर रात्रि प्रभातवेला और दिन क्रम से वर्त्तमान हैं इस से क्या आया कि जितना पृथिवी का प्रदेश सूर्यमण्डल के आगे होता उतने मे दिन और जितना पीछे होता जाता उतने मे रात्रि होती तथा सायं और प्रातःकाल की सन्धि मे उषा होती है इसी उक्त प्रकार से लोकों के घूमने के द्वारा ये सायं प्रातःकाल भी घूमते-से दिखाई देते हैं ॥ ५ ॥

एवेदेषा पुरुतमा दृशे कं नाजामिं न परि वृणक्ति जामिम् ।
अरेपसा तन्वा३ शाशदाना नार्भादीषते न महो विभाती ॥६॥

पदार्थ—जैसे (अरेपसा) न कम्पते हुए निर्भय (तन्वा) शरीर से (शाशदाना) अति सुन्दरी (पुरुतमा) बहुत पदार्थों को चाहनेवाली स्त्री (दृशे) देखने के लिए (कम्) सुख को पति के (न) समान (परि, वृणक्ति) सब ओर से (न) नहीं छोड़ती पति भी (जामिम्) अपनी स्त्री के (न) समान सुख को (न) नहीं छोड़ता और (अजामिम्) जो अपनी स्त्री नहीं उसको सब प्रकार से छोड़ता है वैसे (एव) ही (एषा) यह प्रातःसमय की वेला (अर्भात्) थोड़े से (इत) भी (महः) बहुत सूर्य के तेज का (विभाती) प्रकाश कराती हुई बड़े फैलते हुए सूर्य के प्रकाश को नहीं छोड़ती किन्तु समस्त को (ईषते) प्राप्त होती है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पति को छोड़ और के पति का सङ्ग नहीं करती वा जैसे स्त्रीव्रत पुरुष अपनी स्त्री से भिन्न दूसरी स्त्री का सम्बन्ध नहीं करता और विवाह किये हुए स्त्रीपुरुष नियम और समय के अनुकूल सङ्ग करते हैं वैसे ही प्रातःसमय की वेला नियम युक्त देश और समय को छोड़ अन्यत्र युक्त नहीं होती ॥ ६ ॥

अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः ॥७॥

पदार्थ—यह (उषाः) प्रातःसमय की वेला (प्रतीची) प्रत्येक स्थान को पहुँचती हुई (अभ्रातेव) बिना भाई की कन्या जैसे (पुंसः) पुरुष को प्राप्त हो उसके समान वा जैसे (गर्तारुगिव) दुःखरूपी गढ़े मे पड़ा हुआ जन (धनानाम्) धन आदि पदार्थों के (सनये) विभाग करने के लिए राजगृह को प्राप्त हो वैसे सब ऊँचे-नीचे पदार्थों को (एति) पहुँचती तथा (पत्ये) अपने पति के लिए (उशती) कामना करती हुई (सुवासाः) और सुन्दर वस्त्रोंवाली (जायेव) विवाहिता स्त्री के समान पदार्थों का सेवन करती और (हस्रेव) हँसती हुई स्त्री के तुल्य (अप्सः) रूप को (नि रिणीते) निरन्तर प्राप्त होती है ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे चार उपमालङ्कार हैं । जैसे बिना भाई की कन्या अपनी प्रीति से चाहे हुए पति को आप प्राप्त होती वा जैसे न्यायाधीश राजा राजपत्नी और धन आदि पदार्थों के विभाग करने के लिए न्यायासन अर्थात् राजगद्दी को वैसे हँसमुखी स्त्री आनन्दयुक्त पति को प्राप्त होती और अच्छे रूप से अपने हावभाव को प्रकाशित करती वैसे ही यह प्रातःसमय की वेला है यह समझना चाहिए ॥ ७ ॥

स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै योनिमारैगपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव ।
व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याञ्ज्यङ्क्ते समनगा इव व्राः ॥८॥

पदार्थ—हे कन्या ! जैसे (व्युच्छन्ती) अन्धकार का निवारण करती हुई (व्राः) पदार्थों को स्वीकार करनेवाली प्रातःसमय की वेला (सूर्यस्य) सूर्यमण्डल की (रश्मिभिः) किरणों के साथ (अञ्जि) प्रसिद्ध रूप को (समनगाइव) निश्चय किये स्थान को जानेवाली स्त्री के समान (अङ्क्ते) प्रकाश करती है वा जैसे (स्वसा) बहन (ज्यायस्यै) जेठी (स्वस्रे) बहन के लिए (योनिम्) अपने स्थान को (आरैक्) छोड़ती अर्थात् उत्थान देती तथा (अस्याः) इस अपनी बहन के वर्त्तमान हाल को (प्रतिचक्ष्येव) प्रत्यक्ष देखके जैसे वैसे विवाह के लिए (अपैति) दूर जाती है वैसी तू हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । छोटी बहिन जेठी बहिन के वर्त्तमान हाल को जान आप स्वयंवर विवाह के लिए दूर भी ठहरे हुए अपने अनुकूल पति का ग्रहण करे । जैसे शान्त पतिव्रता स्त्री अपने-अपने पति को सेवन करती है वैसे अपने पति का सेवन करे, जैसे सूर्य अपनी कान्ति के साथ और कान्ति सूर्य के साथ नित्य अनुकूलता से वर्त्ते वैसे ही स्त्री पुरुष हो ॥ ८ ॥

आसां पूर्वासामहंसु स्वसृणामपरा पूर्वामभ्येति पश्चात् ।

ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः ॥९॥

पदार्थ—जैसे (आसाम्) इन (पूर्वासाम्) प्रथम उत्पन्न जेठी (स्वसृणाम्) बहिनों में (अपरा) अन्य कोई पीछे उत्पन्न हुई छोटी बहिन (अहसु) किन्हीं दिनों में अपनी (पूर्वाम्) जेठी बहिन के (अभ्येति) आगे जावे और (पश्चात्) पीछे अपने घर को चली आवे वैसे (सुदिनाः) जिनसे अच्छे-अच्छे दिन होते वे (उषासः) प्रातः समय की वेला (अस्मे) हम लोगों के लिए (नूनम्) निश्चय युक्त (प्रत्नवत्) जिसमें पुरानी सी धरोहर है उस (रेवत्) प्रशंसित पदार्थ युक्त धन को (नव्यसीः) प्रतिदिन अत्यन्त नवीन होती हुई प्रकाश करे (ताः) वे (उच्छन्तु) अन्धकार को निराला करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—जैसे बहुत बहिनें दूर-दूर देश में विवाही हुई होती उनमें कभी किसी के साथ कोई मिलती और अपने व्यवहार को कहती है वैसे पिछली प्रातः समय की वेला वर्त्तमान वेला के साथ सयुक्त होकर अपने व्यवहार को प्रसिद्ध करती हैं ॥ ९ ॥

प्र बोधयोषः पृणतो मघोन्यबुध्यमानाः पणयः ससन्तु ।

रेवदुच्छ मघवद्भ्यो मघोनि रेवत् स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती ॥१०॥८॥

पदार्थ—हे (मघोनि) उत्तम धनयुक्त (उषः) प्रभातवेला के तुल्य वर्त्तमान स्त्री तू जो (अबुध्यमानाः) अचेत नींद में डूबे हुए वा (पणयः) व्यवहार युक्त प्राणी प्रभात समय वा दिन में (ससन्तु) सोवें उनको (पृणतः) पालना करनेवाले पुष्ट प्राणियों को प्रातःसमय की वेला के प्रकाश के समान (प्र, बोधय) बोध करा । हे (मघोनि) अतीव धन इकट्ठा करनेवाली (सूनृते) उत्तम सत्यस्वभावयुक्त युवति ! तू प्रभातवेला के समान (जारयन्ती) अवस्था व्यतीत कराती हुई (मघवद्भ्यः) प्रशंसित धनवानों के लिए (रेवत्) उत्तम धन-युक्त व्यवहार जैसे हो वैसे (स्तोत्रे) स्तुति प्रशंसा करनेवाले के लिए (रेवत्) स्थिर धन की (उच्छ) प्राप्ति करा ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । किसी को रात्रि के पिछले प्रहर में वा दिन में न सोना चाहिए क्योंकि नींद और दिन के घाम आदि की अधिक गरमी के योग से रोगों की उत्पत्ति होने से तथा काम और अवस्था की हानि से । जैसे पुरुषार्थ की युक्ति से बहुत धन को प्राप्त होता वैसे सूर्योदय से पहले उठकर यत्नवान् पुरुष दरिद्रता का त्याग करता है ॥ १० ॥

अवेयमश्वैद्युवतिः पुरस्ताद्युङ्क्ते गवामरुणानामनीकम् ।

वि नूनमुच्छादसति प्र केतुर्गृहंगृहमुप तिष्ठाते अग्निः ॥११॥

पदार्थ—जैसे (इयम्) यह प्रभातवेला (अरुणानाम्) लाली लिये हुए (गवाम्) सूर्य की किरणों के (अनीकम्) सेना के समान समूह को (युङ्क्ते) जोड़ती और (पुरस्तादवाश्वैत्) पहले से बढ़ती है वैसे (युवतिः) पूरी चौबीस वर्ष की जवान स्त्री लाल रंग के गौ आदि पशुओं के समूह को जोड़ती, पीछे उन्नति को प्राप्त होती इससे (प्र, केतु) उठी है शिखा जिसकी वह बढ़ती हुई प्रभात वेला (असति) हो और (नूनम्) निश्चय से (व्युच्छात्) सबको प्राप्त हो (अग्निः) तथा सूर्यमण्डल का तरुण ताप उत्कट घाम (गृहंगृहम्) घर-घर (उप, तिष्ठाते) उपस्थित हो । युवति भी उत्तम बुद्धिवाली होती निश्चय से सब पदार्थों को प्राप्त होती और इसका उत्कट प्रताप घर-घर उपस्थित होता अर्थात् सब स्त्री-पुरुष जानते और मानते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रभातवेला और दिन सदैव मिले हुए वर्त्तमान हैं वैसे ही विवाहित स्त्री-पुरुष मेल से अपना वर्त्ताव रक्खें और जिस नियम के जो पदार्थ हों उस नियम से उनको पावें तब इनका प्रताप बढ़ता है ॥ ११ ॥

उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।

अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥१२॥

पदार्थ—हे (नरः) मनुष्यो ! (ये) जो (पितुभाजः) अन्न का विभाग करनेवाले तुम लोग (चित्) भी जैसे (वयः) अवस्था को (वसतेः) वसीति से (उत् अपप्तन) उत्तमता के साथ प्राप्त होते वैसे ही (व्युष्टौ) विशेष निवास में (अमा) समीप के घर वा (सते) वर्त्तमान व्यवहार के लिए होओ और हे (उषः) प्रातःसमय के प्रकाश के समान विद्याप्रकाशयुक्त (देवि) उत्तम व्यवहार की देनेवाली स्त्रि ! जो तू (च) भी (दाशुषे) देनेवाले (मर्त्याय) अपने पति के लिए तथा समीप के घर और वर्त्तमान व्यवहार के लिए (भूरि) बहुत (वामम्) प्रशंसनीय व्यवहार की (वहसि) प्राप्ति करती उस (ते) तेरे लिए उक्त व्यवहार की प्राप्ति तेरा पति भी करे ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे पखेरू ऊपर और नीचे जाते हैं वैसे प्रातःसमय की वेला रात्रि और दिन के ऊपर और नीचे जाती है तथा जैसे स्त्री पति के प्रियाचरण को करे वैसे ही पति भी स्त्री के प्यारे आचरण को करे ॥ १२ ॥

फिर कैसी स्त्री श्रेष्ठ हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मेऽवीवृधध्वमुशतीरुषासः ।

युष्माकं देवीरवसा सनेम सहस्रिणं च शतिनं च वाजम् ॥१३॥९॥

पदार्थ—हे (उषासः) प्रभात वेलाओं के तुल्य (स्तोम्याः) स्तुति करने के योग्य (देवीः) दिव्य विद्या, गुणवाली पण्डिताओ ! (ब्रह्मणा) वेद से (उशतीः) कामना और कान्ति को प्राप्त होती हुई तुम (मे) मेरे लिए विद्याओं की (अस्तोढ्वम्) स्तुति प्रशंसा करो और (अवीवृधध्वम्) हम लोगों की उन्नति कराओ तथा (युष्माकम्) तुम्हारी (अवसा) रक्षा आदि से (सहस्रिणम्) जिसमें सहस्रों गुण विद्यमान (च) और जो (शतिनम्) सैकड़ों प्रकार की विद्याओं से युक्त (च) और (वाजम्) अङ्ग उपाङ्ग, उपनिषदों सहित वेदादि शास्त्रों का बोध उसको दूसरों के लिए हम लोग (सनेम) देवें ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रातर्वेला अच्छे गुण, कर्म और स्वभाव वाली हैं वैसी स्त्री हो और वैसे उत्तम गुण, कर्मवाले मनुष्य हों जैसे और विद्वान् से अपने प्रयोजन के लिए विद्या लेवें वैसे ही प्रीति से औरों के लिए भी विद्या देवें ॥ १३ ॥

इस सूक्त में प्रभातवेला के दृष्टान्त से स्त्रियों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ चौबीसवां सूक्त और नवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

प्रातारत्नमिति पञ्चर्चस्यैकविंशत्युत्तरशततमस्य सप्तर्चस्य सूक्तस्य दैर्घतमसः कक्षीवान् ऋषिः । दम्पती देवते । १, ३, ७ त्रिष्टुप् छन्दः, २, ६ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४, ५ जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले एकसौ पच्चीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में इस संसार में कौन धन्यवाद के योग्य होकर सब सुखों को प्राप्त हो, इस विषय को कहते हैं—

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान् प्रतिगृह्या नि धत्ते ।

तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः ॥१॥

पदार्थ—जो (चिकित्वान्) विशेष ज्ञानवान् (प्रातरित्वा) प्रातःकाल में जागनेवाला (सुवीरः) सुन्दर वीर मनुष्य (प्रातः रत्नम्) प्रभातसमय में रमण करने योग्य आनन्दमय पदार्थ को (दधाति) धारण करता और (प्रतिगृह्य) दे, लेकर फिर (तम्) उसको (नि, धत्ते) नित्य धारण वा (तेन) उस (रायस्पोषेण) धन की पुष्टि से (प्रजाम्) पुत्र, पौत्र आदि सन्तान और (आयुः) आयु को (वर्धयमानः) विद्या और उत्तम शिक्षा से बढ़ाता हुआ (सचते) उसका सम्बन्ध करता है वह निरन्तर सुखी होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—जो आलस्य को छोड़, धर्म सम्बन्धी व्यवहार से धन को पा, उसकी रक्षा, उसका स्वयं भोग कर दूसरों को भोग करा और दे-लेकर निरन्तर उत्तम यत्न करे वह सब सुखों को प्राप्त होवे ॥ १ ॥

इस संसार में कौन धर्मात्मा और यशस्वी कीर्त्तिमान् होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सुगुरसत्सुहिरण्यः स्वश्वो बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति ।

यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति ॥२॥

पदार्थ—हे (प्रातरित्वः) प्रातः समय से लेकर अच्छा यत्न करनेहारे (यः) जो (इन्द्रः) ऐश्वर्य्यवान् पुरुष (वसुना) उत्तम धन के साथ (आयन्तम्) आते हुए (त्वा) तुझको (दधाति) धारण करता (अस्मै) इस कार्य के लिए (बृहत्) बहुत (वयः) चिरकाल तक जीवन और (मुक्षीजयेव) जो मूंज से उत्पन्न होती उससे जैसे बांधना बने वैसे साधन से (पदिम्) प्राप्त होते हुए धन को (उत्सिनाति) अत्यन्त बांधता अर्थात् सम्बन्ध करता वह (सुगुः) सुन्दर गौओं (सुहिरण्यः) अच्छे-अच्छे सुवर्ण आदि धनों और (स्वश्वः) उत्तम-उत्तम घोड़ों वाला (असत्) होवे ॥ २ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् पाये हुए शिष्यों को उत्तम शिक्षा अर्थात् अधर्म और विषय भोग की चञ्चलता के त्याग आदि के उपदेश से दीर्घ आयु युक्त विद्या और धनवाले करता है वह इस संसार में उत्तम कीर्तिमान् होता है ॥ २ ॥

फिर इस संसार में स्त्री और पुरुष कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आयमद्य सुकृतं प्रातरिच्छन्निष्टेः पुत्रं वसुमता रथेन ।

अंशोः सुतं पायय मत्सरस्य क्षयद्वीरं वर्धय सूनृताभिः ॥३॥

पदार्थ—हे धनि ! मैं (अद्य) आज (वसुमता) प्रशंसित धनयुक्त (रथेन) मनोहर रमण करने योग्य रथ आदि यान से (प्रातः) प्रभात समय (इष्टेः) चाहे हुए गृहाश्रम के स्थान से (सुकृतम्) धर्मयुक्त काम की (इच्छन्) इच्छा करता हुआ जिस (पुत्रम्) पवित्र बालक को (आयम्) पाऊं उस

(**सुतम्**) उत्पन्न हुए पुत्र को (**मत्सरस्य**) आनन्द करानेवाला जो (**अंशो**) स्त्री का शरीर उसके भाग से जो रस अर्थात् दूध उत्पन्न होता उस दूध को (**पायय**) पिला । हे वीर ! (**सूनृताभि.**) विद्या, सत्यभाषण आदि शुभगुणयुक्त वाणियों से (**क्षयद्वीरम्**) शत्रुओं का क्षय करनेवालो मे प्रशसित वीर पुरुष की (**वर्धय**) उन्नति कर ।। ३ ।।

भावार्थ—स्त्री-पुरुष पूरे ब्रह्मचर्य से विद्या का सग्रह और एक दूसरे की प्रसन्नता से विवाह कर धर्मयुक्त व्यवहार मे पुत्र आदि सन्तानो को उत्पन्न करें और उनकी रक्षा करान के लिए धर्मवती धायी को देवे और वह इस सन्तान को उत्तम शिक्षा से युक्त करे ।। ३ ।।

फिर स्त्री-पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उप क्षरन्ति सिन्धवो मयोभुवं ईजानं च यक्ष्यमाणं च धेनवः ।

पृणन्तं च पपुरिं च श्रवस्यवो घृतस्य धारा उप यन्ति विश्वतः ।।४।।

पदार्थ—जो (**सिन्धव**) बड़े नदो के समान (**मयोभुव.**) सुख की भावना करानेवाले मनुष्य और (**धेनव.**) दूध देनेहारी गौओ के समान विवाही हुई स्त्री वा धायी (**ईजानम्**) यज्ञ करते (**च**) और (**यक्ष्यमाणम्**) यज्ञ करनेवाले पुरुष के (**उप, क्षरन्ति**) समीप आनन्द वर्षावें वा जो (**श्रवस्यवः**) आप सुनने की इच्छा करते हुए विद्वान् (**च**) और विदुषी स्त्री (**पृणन्तम्**) पुष्ट होते (**च**) और (**पपुरिम्**) पुष्ट हुए (**च**) भी पुरुष को शिक्षा देते हैं वे (**विश्वत**) सब ओर से (**घृतस्य**) जल की (**धारा**) धाराओ के समान सुखो को (**उप, यन्ति**) प्राप्त होते हैं ।। ४ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो पुरुष और स्त्री गृहाश्रम मे एक दूसरे के प्रिय आचरण और विद्याओ का अभ्यास करके सन्तानो को अभ्यास करात हैं वे निरन्तर सुखो को प्राप्त होते है ।। ४ ।।

इस ससार मे मनुष्यो को किन कामो से मोक्ष प्राप्त हो सकता है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति श्रितो यः पृणाति स ह देवेषु गच्छति ।

तस्मा आपो घृतमर्षन्ति सिन्धवस्तस्मा इयं दक्षिणा पिन्वते सदा ।।५।।

पदार्थ—(**य**) जो मनुष्य (**देवेषु**) दिव्यगुण वा उत्तम विद्वानो मे (**गच्छति**) जाता है (**स, ह**) वही विद्या के (**श्रित**) आश्रय को प्राप्त हुआ (**नाकस्य**) जिसमें किञ्चित् दुःख नहीं उस उत्तम सुख के (**पृष्ठे**) आधार (**अधि, तिष्ठति**) पर स्थिर होता वा (**पृणाति**) विद्या, उत्तम शिक्षा और अच्छे बनाये हुए अन्न आदि पदार्थों से आप पुष्ट होता और सन्तान को पुष्ट करता है (**तस्मै**) उसके लिए (**आप**) प्राण वा जल (**सदा**) सदा (**घृतम्**) घी (**अर्षन्ति**) वर्षाते तथा (**तस्मै**) उसके लिए (**इयम्**) यह पढ़ाने से मिली हुई (**दक्षिणा**) दक्षिणा और (**सिन्धव**) नदी-नद (**सदा**) सदा (**पिन्वते**) प्रसन्नता करते हैं ।।५।।

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य इस मनुष्य देह का आश्रय कर सत्पुरुषो का सग और धर्म के अनुकूल आचरण को सदा करते वे सदैव सुखी होते है जो विद्वान् वा जो विदुषी पण्डिता स्त्री बालक जवान और बुड्ढे मनुष्यो तथा कन्या युवति और बुड्ढी स्त्रियो को निष्कपटता से विद्या और उत्तम शिक्षा को निरन्तर प्राप्त करात वे इस ससार मे समग्र सुख को प्राप्त होकर अन्तकाल मे मोक्ष को प्राप्त होते है ।।५।।

फिर चारों वर्णों में स्थिर होनेवाले मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः ।

दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्र तिरन्त आयुः ।।६।।

पदार्थ—(**दक्षिणावताम्**) जिनके धर्म मे इकट्ठे किये धन, विद्या आदि बहुत पदार्थ विद्यमान है उन मनुष्यो के (**इमानि**) ये प्रत्यक्ष (**चित्रा**) चित्र-विचित्र अद्भुत सुख (**दक्षिणावताम्**) जिनके प्रशसित धर्म के अनुकूल धन और विद्या की दक्षिणा का दान होता उन सज्जनो को (**दिवि**) उत्तम प्रकाश मे (**सूर्यास**) सूर्य के समान तेजस्वीजन प्राप्त होते हैं (**दक्षिणावन्त**) बहुत विद्यादानयुक्त सत्पुरुष (**इत्**) ही (**अमृतम्**) मोक्ष को (**भजन्ते**) सेवन करते और (**दक्षिणावन्त**) बहुत प्रकार का अभय देनहारे जन (**आयु**) आयु के (**प्रतिरन्ते**) अच्छे प्रकार पार पहुँच अर्थात् पूरी आयु भोगते हैं ।।६।।

भावार्थ—जो ब्राह्मण सब मनुष्यो के सुख के लिए विद्या और उत्तम शिक्षा का दान वा जो क्षत्रिय न्याय के अनुकूल व्यवहार से प्रजाजनो को अभयदान वा जो वैश्यधर्म से इकट्ठे किये हुए धन का दान और जो शूद्र सेवा दान करते हैं वे पूर्ण आयुवाले होकर इस जन्म और दूसरे जन्म मे निरन्तर आनन्द को भोगते हैं ।।६।।

इस ससार मे कै प्रकार के पुरुष होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

मा पृणन्तो दुरितमेन आरन्मा जारिषुः सूरयः सुव्रतासः ।

अन्यस्तेषां परिधिरस्तु कश्चिदपृणन्तमभि सं यन्तु शोकाः ।।७।।१०।।

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग (**पृणन्त**) स्वय वा अपने सन्तान आदि को पुष्ट करते हुए (**दुरितम्**) दुःख के लिए जो प्राप्त होता अर्थात् (**एनः**) पाप का आचरण (**मा, आ, अरन्**) मत करो और दुःख के लिए प्राप्त होनेवाला पापाचरण जैसे हो वैसे (**मा, जारिषु**) खोटे कामो को मत करो किन्तु (**सुव्रतास.**) उत्तम सत्य आचरणवाले (**सूरयः**) विद्वान् होते हुए धर्म ही का आचरण करो और जो तुम्हारे अध्यापक हो (**तेषाम्**) उन धार्मिक विद्वानों तथा तुम लोगो के बीच (**कश्चित्**) कोई (**अन्यः**) भिन्न परिधि, मर्यादा अर्थात् तुम सभो को ढाँपने, गुप्त रखने, मूर्खपन से बचानेवाला प्रकार (**अस्तु**) हो और (**अपृणन्तम्**) धर्म से न पुष्ट होने, न दूसरो को पुष्ट करनेवाले किन्तु अधर्म से पुष्ट होने तथा अधर्म ही से औरो को पुष्ट करनेवाले मनुष्य को (**शोकाः**) शोक, विलाप (**अभि, सम, यन्तु**) सब ओर से प्राप्त हो ।।७।।

भावार्थ—इस ससार मे दो प्रकार के मनुष्य होते हैं एक धार्मिक और दूसरे पापी । ये दोनो अच्छे प्रकार अलग-अलग स्थान और आचरण वाले हैं अर्थात् जो धार्मिक है वे धर्मात्माओ के अनुकरण ही से धर्म-मार्ग मे चलते और जो दुष्ट आचरण करनेवाले पापी है वे अधर्मी दुष्टजनो के आचरण ही से अधर्म मे चलते हैं कभी किन्हीं धर्मात्माओ को अधर्मी दुष्टजनों के मार्ग मे नहीं चलना चाहिए और अधर्मी दुष्टो को अपनी दुष्टता छोड धार्मिको के मार्ग मे चलना योग्य है इस प्रकार प्रत्येक जाति के पीछे धार्मिक और अधार्मिको के दो मार्ग हैं उनमे धर्म करनेवालों को सुख और अधर्मी दुष्टों को दुःख सदा प्राप्त होते हैं ।।७।।

इस सूक्त मे धर्म के अनुकूल आचरण का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सगति है यह जानना चाहिए ।।

यह एकसौ पच्चीसवाँ सूक्त और दशवा वर्ग समाप्त हुआ ।।

卐

अमन्दानित्यस्य सप्तर्चस्य षड्विंशत्युत्तरशततमस्य सूक्तस्य १—५ कक्षीवान्, ६ भावयव्य, ७ रोमशा ब्रह्मवादिनी ऋषि. । विद्वांसो देवताः । १—२, ४—५ निचृत् त्रिष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर. । ६ ७ अनुष्टुप्छन्द । गान्धार. स्वर ।।

अब सात ऋचावाले एकसौ छब्बीसवें सूक्त का आरम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में इस ससार के राज्य के अधिकार मे कौन न स्थापन करने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

अमन्दान् स्तोमान् प्र भरे मनीषा सिन्धावधि क्षियतो भाव्यस्य ।

यो मे सहस्रममिमीत सवानतूर्तो राजा श्रव इच्छमानः ।।१।।

पदार्थ—(**य**) जो (**अतूर्त**) हिंसा आदि के दुःख को न प्राप्त और (**श्रव**) उत्तम उपदेश सुनने की (**इच्छमान**) इच्छा करता हुआ (**राजा**) प्रकाशमान सभाध्यक्ष (**सिन्धौ**) नदी के समीप (**क्षियतः**) निरन्तर बसते हुए (**भाव्यस्य**) प्रसिद्ध होने योग्य (**मे**) मेरे निकट (**सहस्रम्**) हजारो (**सवान्**) ऐश्वर्य योग्य (**अमन्दान्**) मन्दपनरहित तीव्र और (**स्तोमान्**) प्रशसा करने योग्य विद्यासम्बन्धी विशेष ज्ञानो को (**मनीषा**) बुद्धि से (**अमिमीत**) निरन्तर मान करता उसको मै (**अधि**) अपने मन के बीच (**प्र, भरे**) अच्छे प्रकार धारण करूँ ।।१।।

भावार्थ—जब तक सकल शास्त्र जाननेहारे विद्वान् की आज्ञा से पुरुषार्थी विद्वान् न हो तब तक उसको राज्य के अधिकार मे स्थापन न करे ।।१।।

कौन इस ससार मे यश का विस्तार करते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्कान्छतमश्वान् प्रयतान् सद्य आदम् ।

शतं कक्षीवाँ असुरस्य गोनां दिवि श्रवोऽजरमा ततान ।।२।।

पदार्थ—जो (**कक्षीवान्**) विद्या के बहुत व्यवहारों को जानता हुआ विद्वान् (**असुरस्य**) मेघ के समान उत्तम गुणी (**नाधमानस्य**) ऐश्वर्यवान् (**राज्ञ**) राजा के (**शतम्**) सौ (**निष्कान्**) निष्क, सुवर्णों (**प्रयतान्**) अच्छे सिखाये हुए (**शतम्**) सौ (**अश्वान्**) घोड़ो और (**दिवि**) आकाश में (**अजरम्**) अविनाशी (**गोनाम्, शतम्**) सूर्यमण्डल की सैकडो किरणो के समान (**श्रव**) श्रूयमाण यश को (**आ, ततान**) विस्तारता है उसको मैं (**सद्य**) शीघ्र (**आदम्**) स्वीकार करता हूँ ।।२।।

भावार्थ—जो न्यायकारी विद्वान् राजा के समीप से सत्कार को प्राप्त होते वे यश का विस्तार करते हैं ।।२।।

फिर राजा को क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मे किया है—

उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ता वधूमन्तो दश रथासो अस्थुः ।

षष्टिः सहस्रमनु गव्यमागात् सनत्कक्षीवाँ अभिपित्वे अह्नाम् ।।३।।

पदार्थ—जिस (**स्वनयेन**) अपने धन आदि पदार्थ के पहुँचाने अर्थात् देनेवाले ने (**श्यावा**) सूर्य की किरणो के समान (**दत्ताः**) दिये हुए (**दश**) दस (**रथासः**) रथ (**वधूमन्त**) जिनमे प्रशंसित बहुएँ विद्यमान वे (**मा**) मुझ सेनापति के (**उपास्थु.**) समीप स्थित होते तथा जो (**कक्षीवान्**) युद्ध में प्रशंसित

कक्षावाला अर्थात् जिसकी ओर अच्छे वीर योद्धा हैं वह (अभितिष्ठे) सब ओर से प्राप्ति के निमित्त (अयुतम्, सहस्रम्) हजार दिन (गव्यम्) गौओं के दुग्ध आदि पदार्थ को (कक्ष्यावान्) प्राप्त होता और जिसके (षष्टिः) साठ पुरुष पीछे चलते वह (सनत्) सदा सुख का बढ़ानेवाला है ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिस कारण सब योद्धा राजा के समीप से धन आदि पदार्थ की प्राप्ति चाहते हैं इससे राजा को उनके लिए यथायोग्य धन आदि पदार्थ देना योग्य है ऐसे किये बिना उत्साह नहीं होता ॥३॥

इस संसार में कौन चक्रवर्त्ति राज्य करने को योग्य होते हैं
इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति ।
मदच्युतः कृशनावतो अत्यान् कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्राः ॥४॥

पदार्थ—जिस (दशरथस्य) दशरथों से युक्त सेनापति के (चत्वारिंशत्) चालीस (शोणाः) लाल घोड़े (सहस्रस्य) सहस्र योद्धा वा सहस्र रथों के (अग्रे) आगे (श्रेणिम्) अपनी पंक्ति को (नयन्ति) पहुंचाते अर्थात् एक साथ होकर आगे चलते वा जिस सेनापति के भृत्य ऐसे हैं (पज्राः) कि जिनके साथ मार्गों को जाते और (कक्षीवन्तः) जिनकी प्रशंसित कक्षा विद्यमान अर्थात् जिनके साथी डटे हुए वीर लड़नेवाले हैं वे (मदच्युतः) जो मद को चुआते उन (कृशनावतः) सुवर्ण आदि के गहने पहिने हुए तथा (अत्यान्) जिनसे मार्गों को रमते पहुंचते उन घोड़ा हाथी रथ आदि को (उदमृक्षन्त) उत्कर्षता से सहते हैं वह शत्रुओं के जीतने को योग्य होता है ॥४॥

भावार्थ—जिनके चार घोड़ायुक्त दशों दिशाओं में रथ, सहस्रों अश्वसवार, लाखों पैदल जानेवाले अत्यन्त पूर्ण कोश, धन और पूर्ण विद्या, विनय, नम्रता आदि गुण हैं वे ही चक्रवर्त्ति राज्य करने को योग्य हैं ॥४॥

कौन मनुष्य इस जगत् में उत्तम होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

पूर्वामनु प्रयतिमा ददे वस्त्रीन् युक्ताँ अष्टावरिधायसो गाः ।
सुबन्धवो ये विश्या इव व्रा अनस्वन्तः श्रव ऐषन्त पज्राः ॥५॥

पदार्थ—(ये) जो ऐसे हैं कि (सुबन्धवः) जिनके उत्तम बन्धुजन (अनस्वन्तः) और बहुत लढ़ा छकड़ा विद्यमान (व्राः) तथा जो गमन करनेवाले और (पज्राः) दूसरों को प्राप्त वे (विश्याइव) प्रजाजनों में उत्तम वणिक्जनों के समान (श्रव) अन्न को (ऐषन्त) चाहें उन (वः) तुम्हारे (त्रीन्) तीन (युक्तान्) आज्ञा दिये और अधिकार पाये भृत्यों (अष्टौ) आठ सभासदों (अरिधायसः) जिनसे शत्रुओं को धारण करते समझते उन वीरों और (गाः) बैल आदि पशुओं को तथा इन सभों की (पूर्वाम्) पहली (प्रयतिम्) उत्तम यत्न की रीति को मैं (अनु, आ, ददे) अनुकूलता से ग्रहण करता हूं ॥५॥

भावार्थ—जो जन सभा, सेना और शाला के अधिकारी कुशल, चतुर आठ सभासदों शत्रुओं का विनाश करनेवाले वीरों, गौ, बैल आदि पशुओं, मित्र, धनी वणिक्जनों और खेती करनेवालों की अच्छे प्रकार रक्षा करके अन्न आदि ऐश्वर्य की उन्नति करते हैं वे मनुष्यों में शिरोमणि अर्थात् अत्यन्त उत्तम होते हैं ॥५॥

किनसे इस राज्य में क्या अवश्य पाना चाहिए इस विषय को
अगले मन्त्र में कहा है—

आगधिता परिगधिता या कशीकेव जङ्गहे ।
ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता ॥६॥

पदार्थ—(या) जो (आगधिता) अच्छे प्रकार ग्रहण की हुई (परिगधिता) सब ओर से उत्तम-उत्तम गुणों से युक्त (जङ्गहे) अत्यन्त ग्रहण करने योग्य व्यवहार में (कशीकेव) पशुओं के ताड़ना देने के लिए जो चाबुक होती उसके समान (याशूनाम्) अच्छा यत्न करनेवालों की (यादुरी) उत्तम यत्नवाली नीति (भोज्या) भोगने योग्य (शता) सैकड़ों वस्तु (मह्यम्) मुझे (ददाति) देती है वह सबको स्वीकार करने योग्य है ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जिस नीति अर्थात् धर्म की चाल से अगणित सुख हों वह सबको सिद्ध करनी चाहिए ॥६॥

फिर रानी क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उपोप मे परा मृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः ।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥७॥११॥१८॥

पदार्थ—हे पति राजन्! जो (अहम्) मैं (गन्धारीणाम् इव) पृथिवी के राज्यधारण करनेवालियों में जैसे (अविका) रक्षा करनेवाली होती वैसे (रोमशा) प्रशंसित रोमोंवाली (सर्वा) सब प्रकार की (अस्मि) हूं उस (मे) मेरे गुणों को (परा, मृश) विचारो (मे) मेरे (दभ्राणि) कामों को छोटे (मा, उपोप) अपने पास में मत (मन्यथाः) मानो ॥७॥

भावार्थ—रानी राजा के प्रति कहे कि मैं आपसे न्यून नहीं हूं जैसे आप पुरुषों के न्यायाधीश हो वैसे मैं स्त्रियों का न्याय करनेवाली होती हूं और जैसे पहले राजा-महाराजाओं की स्त्री प्रजास्थ स्त्रियों की न्याय करनेवाली हुई वैसी मैं भी होऊं ॥७॥

इस सूक्त में राजाओं के धर्म का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ एकता है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ छब्बीसवां सूक्त ग्यारहवां वर्ग और अठारहवां अनुवाक समाप्त हुआ ॥

卐

अथाग्निमित्यस्यैकादशर्चस्य सप्तविंशत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः । अग्निर्देवता १—३, ८—६ अष्टिश्छन्दः ४, ७, ११ भुरिगष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः । ५—६ अत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः । १० भुरिगति शक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचावाले एकसौ सत्ताईसवें सूक्त का आरम्भ है
उसके प्रथम मन्त्र में कैसे स्त्री-पुरुषों का विवाह होना
चाहिए इस विषय का वर्णन किया है—

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं
सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाऽऽजुह्वानस्य सर्पिषः ॥१॥

पदार्थ—हे कन्या! जैसे मैं (यः) जो (ऊर्ध्वया) उत्तम विद्या से (स्वध्वरः) सुन्दर यज्ञ का अनुष्ठान अर्थात् आरम्भ करनेवाली वह (देवाच्या) जो कि विद्वानों को प्राप्त होती और जिससे व्यवहार को समर्थ करते उस (कृपा) कृपा से (देवः) जो मनोहर अतिसुन्दर है उस जन को (आजुह्वानस्य) अच्छे प्रकार होमते और (सर्पिषः) प्राप्त होने योग्य (घृतस्य) घी के (शोचिषा) प्रकाश के साथ (विभ्राष्टिम्) जिससे अनेक प्रकार पदार्थ को पकाते उस अग्नि के समान (अनुवष्टि) अनुकूलता से चाहता है वा जिस (अग्निम्) अग्नि के समान (होतारम्) ग्रहण करने (दास्वन्तम्) देनेवाले (वसुम्) तथा ब्रह्मचर्य से विद्या के बीच में निवास किये हुए (सहसः) बलवान् पुरुष के (सूनुम्) पुत्र को (जातवेदसम्) जिसकी प्रसिद्ध वेदविद्या उस (विप्रम्) मेधावी के (न) समान (जातवेदसम्) प्रकट विद्यावाले विद्वान् को पति (मन्ये) मानती हूं वैसे ऐसे पति को तू भी स्वीकार कर ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिसकी उत्तम गुणवालों में बहुत प्रशंसा, जिसका अति उत्तम शरीर और आत्मा का बल हो उस पुरुष को स्त्री पतिपने के लिए स्वीकार करे। ऐसा पुरुष भी इसी प्रकार की स्त्री को भार्यापन के लिए स्वीकार करे ॥१॥

फिर प्रजाजन राज्य के लिए कैसे जन का आश्रय करें इस विषय को
अगले मन्त्रों में कहा है—

यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां
विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ।
परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् ।
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥२॥

पदार्थ—हे (विप्र) उत्तम बुद्धिवाले विद्वन्! (यजमानाः) व्यवहारों का सङ्ग करनेहारे लोग (मन्मभिः) मान करनेवाले (विप्रेभिः) विचक्षण विद्वानों के साथ (अङ्गिरसाम्) प्राणियों के बीच (ज्येष्ठम्) अति प्रशंसित (यजिष्ठम्) अत्यन्त यज्ञ करनेवाले (त्वा, हुवेम) तुझको प्रशंसित करते हैं (शुक्र) शुद्ध आत्मा-वाले धर्मात्माजन (यम्) जिस (मन्मभिः) विद्वानों के साथ (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के बीच (होतारम्) दान करनेवाले (परिज्मानमिव) सब ओर से भोगने-हारे के समान (द्याम्) प्रकाशरूप (शोचिष्केशम्) जिसके लपट जैसे चिलकते हुए केश हैं उस (वृषणम्) बलवान् तुझको (विशः) ये (विशः) प्रजाजन (प्रावन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त होवें वह तू (जूतये) रक्षा आदि के लिए (विशः) प्रजाजनों को अच्छे प्रकार प्राप्त हो और पाल ॥२॥

भावार्थ—विद्वान् और प्रजाजन जिसकी प्रशंसा करें उसी आप्त सर्वशास्त्रवेत्ता विद्वान् का आश्रय सब मनुष्य करें ॥२॥

इस संसार में कौन प्रजा की पालना करने के लिए उत्तम होता है
इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता
दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः ।
वीळु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम् ।
निःषहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यस्य**) जिसकी (**समृती**) अच्छे प्रकार प्राप्ति करानेवाली क्रिया के निमित्त (**चित्**) ही (**वनेव**) वनों के समान (**वीळु**) दृढ (**स्थिरम्**) निश्चल बल को (**नि सहमान**) निरन्तर सहनशील वीरोंवाला (**श्रुवत्**) सुनता हुआ शत्रुओं को (**यमते**) नियम में लाता अर्थात् उनके सुने हुए उस बल को छिन्न भिन्न कर उनको शत्रुता करने से रोकता वा जिस को शत्रुजन (**नावते**) नहीं प्राप्त होता वा (**धन्वासह**) जो अपने धनुष से शत्रुओं को सहनेवाला शत्रुजनों को अच्छे प्रकार जीतता वा (**यत्**) जिसके विजय को शत्रुजन (**नावते**) नहीं प्राप्त होता वा जो (**द्रुहन्तर**) द्रोह करनेवालों को तरता वह (**परशु**·) फरसा वा कुल्हाड़ा के (**न**) समान (**पुरु**) तीव्र बहुत प्रकार से ज्यों हो त्यों (**विवक्मता**) जिससे अनेक प्रकार की प्रीतियां हो उस (**ओजसा**) बल के साथ (**दीद्यान.**) प्रकाशमान (**द्रुहन्तरः**) द्रुहन्तर (**भवति**) होता अर्थात् जिस के सहाय से अति द्रोह करनेवाले शत्रु को जीतता (**स, हि, चित्**) वही कभी विजयी होते हैं ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को जानना चाहिए कि जो शत्रुओं से नहीं पराजित होता और अपने प्रशंसित बल से उनको जीत सकता है वही प्रजा पालने वालों में शिरोमणि होता है ॥३॥

फिर न्यायाधीशों को कैसे वर्त्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

दृळ्हा चिदस्मा अनु दुर्यथा विदे
तेजिष्ठाभिररणिभिर्दाष्ट्यवसेऽग्नये दाष्ट्यवसे ।
प्र यः पुरूणि गाहते तक्षद्वनेव शोचिषा ।
स्थिरा चिदन्ना निरिणात्योजसा नि स्थिराणि चिदोजसा ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यथा**) जैसे विद्वान् (**तेजिष्ठाभि**) अत्यन्त तेजवाली (**अरणिभि**) अरणियों से (**अस्मै**) इस (**विदे**) शास्त्रवेत्ता (**अवसे**) रक्षा करनेवाले (**अग्नये**) अग्नि के समान वर्त्तमान सभाध्यक्ष के लिए (**दाष्टि**) अरणियों को घिसने में काटता वा विद्वान् जन (**दृळ्ह, स्थिरा**) निश्चल (**चित्**) भी विज्ञानों के (**अनु, दु**) अनुक्रम से देवें वैसे (**य**) जो (**अवसे**) रक्षा आदि करने के लिए (**दाष्टि**) काटता अर्थात् उक्त क्रिया को करता वा (**तक्षत्**) अपने तेज से जल आदि को छिन्न-भिन्न करता सूर्यमण्डल (**वनेव**) किरणों को जैसे वैसे (**शोचिषा**) न्याय और सेना के प्रकाश से (**पुरूणि**) बहुत शत्रुदलों को (**प्र, गाहते**) अच्छे प्रकार बिलोडता वा (**ओजसा**) पराक्रम से (**स्थिराणि**) स्थिर कर्मों को (**नि**) निरन्तर प्राप्त होता (**चित्**) और (**ओजसा**) कोमल काम से (**अन्ना**) खाने योग्य अन्नों को (**चित्**) भी (**नि, रिणाति**) निरन्तर प्राप्त होता है वह सुख को प्राप्त होता है ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं । जैसे विद्वान्जन विद्या के प्रचार से मनुष्यों के आत्माओं को प्रकाशित कर सबको पुरुषार्थी बनाते हैं वैसे न्यायाधीश विद्वान् प्रजाजनों को उद्यमी करते हैं ॥४॥

फिर न्यायाधीशों को क्या अनुष्ठान वा आचरण करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि नक्तं
यः सुदर्शतरो दिवातरादप्रायुषे दिवातरात् ।
आदस्यायुर्ग्रभणवद्वीळु शर्म्म न सूनवे
भक्तमभक्तमवो व्यन्तो अजरा अग्नयो व्यन्तो अजराः ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**य**) जो (**सुदर्शतर**) अतीव सुन्दर देखने योग्य पूरी कलाओं से युक्त चन्द्रमा के समान राजा (**अस्य**) इस संसार का (**दिवातरात्**) अत्यन्त प्रकाशवान् सूर्य से (**अप्रायुषे**) जो व्यवहार नहीं प्राप्त होता उसके लिए (**नक्तम्**) रात्रि में सब पदार्थों का दिखलाना-सा है (**तम्**) उस (**पृक्षम**) उत्तम कामों का सम्बन्ध करनेवाले को (**दिवातरात्**) अतीव प्रकाशवान् सूर्य के तुल्य उससे (**उपरासु**) दिशाओं में हम लोग (**धीमहि**) धारण करें अर्थात् सुनें (**आत्**) इसके अनन्तर (**अस्य**) इस मनुष्य का (**ग्रभणवत्**) जिसमें प्रशंसित सब व्यवहारों का ग्रहण उस (**वीळु**) दृढ (**भक्तम्**) भजन किये वा (**अभक्तम्**) न सेवन किये हुए (**अव**) रक्षा आदि युक्त कर्म और (**आयु**) जीवन को (**सूनवे**) पुत्र के लिए (**न**) जैसे वैसे (**शर्म**) घर को (**व्यन्त**) विविध प्रकार से प्राप्त होते हुए (**अजरा**) पूरी अवस्थावाले वा (**अग्नय**) बिजुली रूप अग्नि के समान (**व्यन्तः**) सब पदार्थों की कामना करते हुए (**अजरा**) वृद्धावस्था होने से रहित हम लोग धारण करें ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे चन्द्रमा तारागण और ओषधियों को पुष्ट करता है वैसे सज्जनों को प्रजाजनों का पालन-पोषण करना चाहिए जैसे सन्तानों को पिता-माता तृप्त करते हैं वैसे सब प्राणियों को हम लोग तृप्त करें ॥५॥

अब राजा आदि क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स हि शर्धो न मारुतं तुविष्वणिरप्नस्वतीषूर्वरास्विष्टनिरार्तनास्विष्टनिः ।
आदद्धव्यान्याददिर्यज्ञस्य केतुरर्हणा ।
अध स्मास्य हर्षतो हृषीवतो विश्वे जुषन्त पन्थां नरः शुभे न पन्थाम् ॥६॥

पदार्थ—हे (**विश्व**) सब (**नरः**) व्यवहारों की प्राप्ति करानेवाले मनुष्यो ! तुम (**हृषीवतः**) जो बहुत आनन्द से भरा (**हर्षतः**) और जिससे सब प्रकार का आनन्द प्राप्त हुआ (**अस्य**) इस (**यज्ञस्य**) सङ्ग करने अर्थात् पाने योग्य व्यवहार की (**शुभे**) उत्तमता के लिए (**न**) जैसे हो वैसे (**पन्थाम्**) धर्मयुक्त मार्ग का (**जुषन्त**) सेवन करो (**अध**) इसके अनन्तर जो (**केतु·**) ज्ञानवान् (**आददिः**) ग्रहण करनेहारा (**अर्हणा**) सत्कार किये अर्थात् नम्रता के साथ हुए (**हव्यानि**) भोजन के योग्य पदार्थों को (**आदत्**) खावे वा (**मारुतम्**) पवनों के (**शर्धः**) बल के (**न**) समान (**अप्नस्वतीषु**) जिनके प्रशंसित सन्तान विद्यमान उन (**उर्वरासु**) सुन्दरी (**आर्त्तनासु**) सत्य आचरण करनेवाली स्त्रियों के समीप (**तुविष्वणि.**) जिसकी बहुत उत्तम निरन्तर बोल-चाल (**इष्टनि**) और जो सत्कार करने योग्य है (**स, स्म**) वही विद्वान् (**इष्टनिः**) इच्छा करनेवाला (**हि**) निश्चय के साथ (**पन्थाम**) न्याय मार्ग को प्राप्त होने योग्य होता है ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं । जो मनुष्य धर्म से इकट्ठे किये हुए पदार्थों का भोग करते हुए प्रजाजनों में धर्म और विद्या आदि गुणों का प्रचार करते हैं वे दूसरों से धर्म मार्ग का प्रचार करा सकते हैं ॥ ६ ॥

अब पढ़ाने-पढ़नेवाले कैसे वर्त्ते इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

द्विता यदीं कीस्तासो अभिद्यवो नमस्यन्त
उपवोचन्त भृगवो मथ्नन्तो दाशा भृगवः ।
अग्निरीशे वसूनां शुचिर्यो धर्णिरेषाम् ।
प्रियाँ अपिधीँर्वनिषीष्ट मेधिर आ वनिषीष्ट मेधिरः ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यत्**) जो (**कीस्तास**) उत्तम बुद्धिवाले विद्वान् (**अभिद्यव**) जिनके आगे विद्या आदि गुणों के प्रकाश (**नमस्यन्त.**) जो धर्म का सेवन (**भृगव**) तथा अविद्या और अधर्म को नाश करते ज्ञान को (**मथ्नन्त.**) मथते हुए (**भृगव**) और दुःखों को मिटाते हैं वे (**दाशा**) विद्या दान के लिए विद्यार्थियों को (**द्विता**) जैसे दो का होना हो वैसे अर्थात् एक पर एक (**ईम्**) सम्मुख प्राप्त हुई विद्या (**उपवोचन्त**) और गुण का उपदेश करें वा जैसे (**एषाम्**) इन (**वसूनाम**) पृथिवी आदि लोकों के बीच (**यः**) जो (**धर्णि.**) शिल्पविद्या विषयक कामों का धारण करनेहारा (**शुचि·**) पवित्र और दूसरों को शुद्ध करनेहारा (**अग्निः**) अग्नि है वा जैसे (**मेधिर.**) उत्तम बुद्धिवाला (**प्रियान्**) प्रसन्न चित्त और (**अपिधीन्**) श्रेष्ठ गुणों का धारण करने और दुःखों को ढांपने वाले विद्वानों को (**वनिषीष्ट**) याचे अर्थात् उनसे किसी पदार्थ को मांगे वा (**मेधिरः**) सङ्ग करनेवाला पुरुष देनेवालों को (**आ, वनिषीष्ट**) अच्छे प्रकार याचे वा विद्या की (**ईशे**) ईश्वरता प्रकट करे अर्थात् विद्या के अधिकार को प्रकाशित करे वैसे ही तुम उक्त विद्वान् और अग्नि आदि पदार्थों का सेवन करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो विद्यार्थी विद्वानों से नित्य विद्या मांगे उनके लिए विद्वान् भी नित्य ही विद्या को अच्छे प्रकार देवें क्योंकि इस देने-लेने के तुल्य कुछ भी उत्तम काम नहीं है ॥ ७ ॥

अब कैसे राजा और प्रजाजनों की उन्नति हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विश्वासां त्वा विशां पतिं हवामहे
सर्वासां समानं दम्पतिं भुजे सत्यगिर्वाहसं भुजे ।
अतिथिं मानुषाणां पितुर्न यस्यासया ।
अमी च विश्वे अमृतास आ वयो हव्या देवेष्वा वयः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! जैसे हम लोग (**भुजे**) शरीर में विद्या का आनन्द भोगने के लिए (**विश्वासाम्**) सब (**विशाम**) प्रजाजनों के वा (**सर्वासाम्**) समस्त क्रियाओं के (**पतिम**) पालनहारे अधिपति (**त्वा**) तुझको (**हवामहे**) स्वीकार करते हैं (**च**) और जैसे (**अमी**) वे (**देवेषु**) (**आ**) अच्छे प्रकार (**वय**) विद्यादि गुणों को चाहनेवाले (**हव्या**) ग्रहण करने योग्य ज्ञानों का ग्रहण किये और (**आ, वय·**) अच्छे प्रकार विद्या आदि गुणों को पाये हुए (**विश्वे**) सब (**अमृतास**) अमर अर्थात् विद्या प्रकाश से मृत्युदुःख से रहित हुए हम लोग (**यस्य**) जिसकी (**आसया**) बैठक के (**पितु.**) अन्न के (**न**) समान (**भुजे**) विद्यानन्द भोगने के लिए (**मानुषाणाम्**) मनुष्यों के (**समानम्**) पक्षपात रहित (**अतिथिम्**) अतिथि के तुल्य सत्कार करने योग्य (**सत्यगिर्वाहसम्**) सत्यवाणी की प्राप्ति करानेवाले तुझ पालनेहारे को स्वीकार करते वैसे (**दम्पतिम्**) स्त्री-पुरुष का सेवन करते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जब तक पक्षपात रहित समग्र विद्या को जाने हुए धर्मात्मा विद्वान् राज्य के अधिकारी नहीं होते हैं तब तक राजा और प्रजाजनों की उन्नति भी नहीं होती है ॥ ८ ॥

फिर राजा आदि कैसे होवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्वमग्ने सहसा सहन्तमः शुष्मिन्तमो जायसे
देवतातये रयिर्न देवतातये ।
शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
अध स्मा ते परि चरन्त्यजर श्रुष्टीवानो नाजर ॥९॥

पदार्थ—हे (अजर) तरुण अवस्थावाले के (न) समान (अजर) अजन्मा परमेश्वर में रमते हुए (अग्ने) शूरवीर विद्वन् ! (देवतातये) विद्वान् के लिए (रयिः) धन जैसे (न) वैसे प्रशंसित (देवतातये) विद्वानों के सत्कार के लिए (सहस्तमः) अतीव सहनशील (शुष्मिन्तमः) अत्यन्त प्रशंसित बलवान् (त्वम्) आप (सहसा) बल से (जायसे) प्रकट होते हो जिन (ते) आपका (शुष्मिन्तम) अत्यन्त बलयुक्त (शुष्मिन्तमः) जिनके सम्बन्ध में बहुत धन विद्यमान वह अत्यन्त धनी (मदः) हर्ष (उत) और (क्रतुः) यज्ञ (हि) ही है (अध) अनन्तर (ते) आपके (श्रुष्टीवान) शीघ्र क्रियावाले (हम) ही (परि, चरन्ति) सब ओर से चलते वा आपकी परिचर्या करते उन आपका हम लोग आश्रय करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य शरीर और आत्मा के बल से युक्त अच्छे प्रकार माता विद्या आदि धन प्रकाशयुक्त सन्तानोंवाले होते हैं वे सुख करनेवाले होते हैं ॥ ९ ॥

फिर समस्त मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्र वो महे सहसा सहस्वत उषर्बुधे पशुषे नाग्नये स्तोमो बभूत्वग्नये ।
प्रति यदीं हविष्मान् विश्वासु क्षासु जोगुवे ।
अग्रे रेभो न जरत ऋषूणां जूर्णिर्होत ऋषूणाम् ॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (वः) तुम लोगों के (सहस्वते) बहुत बलयुक्त (उषर्बुधे) प्रत्येक प्रभात समय में जागने और (पशुषे) प्रबन्ध बाँधनेहारे (महे) बड़े (जोगुवे) निरन्तर उपदेशक (अग्नये) बिजुली के (न) समान (अग्नये) प्रकाशमान के लिए (विश्वासु) सब (क्षासु) भूमियों में (हविष्मान्) प्रशंसित ग्रहण किये हुए व्यवहार जिसमें विद्यमान वह (स्तोम) प्रशंसा (सहसा) बल के साथ (प्र, बभूतु) समर्थ हो (रेभः) उपदेश करनेवाले के (न) समान (अग्रे) आगे (ऋषूणाम्) जिन्होंने विद्या पाई वा जो विद्या को जानना चाहते उनकी विद्याओं की (ईम्) सब ओर से (प्रति, जरते) प्रत्यक्ष में स्तुति करता (यत्) जो (होता) भोजन करनेवाला (जूर्णि) जूड़ी आदि रोग से रोगी हो वह (ऋषूणाम्) जिन्होंने वैद्यविद्या पाई अर्थात् उत्तम वैद्य हैं उनके समीप जाकर रोगरहित हो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् जन विद्याप्राप्ति के लिए अच्छा यत्न करते हैं वैसे इस संसार में मनुष्यों को प्रयत्न करना चाहिए ॥ १० ॥

फिर विद्यार्थियों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स नो नेदिष्ठं ददृशान आ भराग्ने देवेभिः
सचनाः सुचेतुना महो रायः सुचेतुना ।
महि शविष्ठ नस्कृधि संचक्षे भुजे अस्यै ।
महि स्तोतृभ्यो मघवन्त्सुवीर्यं मथीरुग्रो न शवसा ॥११॥१३॥

पदार्थ—हे (मघवन्) प्रशंसित धनयुक्त (शविष्ठ) अतीव बलवान् विद्यादि गुणों को पाये हुए (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान (सः) वह (ददृशानः) देखे हुए विद्वान् ! आप (सुचेतुना) सुन्दर समझनेवाले और (देवेभिः) विद्वानों के साथ (नः) हम लोगों के लिए (महः) बहुत (सचनाः) सम्बन्ध करने योग्य (रायः) धनों को (आ, भर) अच्छे प्रकार धारण करें (अस्यै) इस प्रजा के लिए (संचक्षे) उत्तमता से कहने उपदेश देने और (भुजे) इसको पालना करने के लिए (शवसा) अपने पराक्रम से (उग्रः) प्रचण्ड प्रतापवान् (न) के समान (मथीः) दुष्टों को मथनेवाले आप (नेदिष्ठम्) अत्यन्त समीप (महि) बहुत (सुवीर्यम्) उत्तम पराक्रम को अच्छे प्रकार धारण करो और इस (सुचेतुना) सुन्दर ज्ञान देनेवाले गुण से (महि) अधिकता से जैसे हो वैसे (स्तोतृभ्यः) स्तुति प्रशंसा करनेवालों से (नः) हम लोगों को विद्यावान् (कृधि) करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्यार्थियों को चाहिए कि सकल शास्त्र पढ़े हुए धार्मिक विद्वानों की प्रार्थना और सेवा कर पूरी विद्याओं को पावें जिससे राजा और प्रजाजन विद्यावान् होकर निरन्तर धर्म का आचरण करें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और राजधर्म का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ एकता जाननी चाहिए ॥

यह एकसौ सत्ताईसवाँ सूक्त और तेरहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अयमित्यस्याऽष्टर्चस्याऽष्टाविंशत्युत्तरशततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः । अग्निर्देवता ।
१ निचृदत्यष्टिः, ३, ४, ६, ८ विराडत्यष्टिश्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः । २ भुरिगष्टिः, ५, ७ निचृदष्टिश्छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर विद्यार्थी लोग कैसे होवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अयं जायत मनुषो धरीमणि होता यजिष्ठ
उशिजामनु व्रतमग्निः स्वमनु व्रतम् ।
विश्वश्रुष्टिः सखीयते रयिरिव श्रवस्यते ।
अदब्धो होता नि षददिळस्पदे परिवीत इळस्पदे ॥१॥

पदार्थ—जो (अयम्) यह मनुष्य (इळः) स्तुति के योग्य जगदीश्वर के (पदे) प्राप्त होने योग्य विशेष ज्ञान में जैसे वैसे (इळः) प्रशंसित धर्म के (पदे) पाने योग्य व्यवहार में (अदब्ध) हिंसा आदि दोषरहित (होता) उत्तम गुणों का ग्रहण करनेहारा (परिवीतः) जिसने सब ओर से ज्ञान पाया ऐसा हुआ (नि, षदत्) स्थिर होता (रयिरिव) वा धन के समान (विश्वश्रुष्टिः) जिसकी समस्त शीघ्र चालें ऐसा हुआ (श्रवस्यते) सुननेवाले के लिए (अग्निः) आग के समान वा (उशिजाम्) कामना करनेवाले मनुष्यों के (अनु) अनुकूल (व्रतम्) स्वभाव के तुल्य (अनु, व्रतं, स्वम्) अनुकूल ही अपने आचरण को प्राप्त वा (धरीमणि) जिसमें सुखों का धारण करते उस व्यवहार में (होता) देनेहारा (यजिष्ठः) और अत्यन्त सङ्ग करता हुआ (जायत) प्रकट होता वह (मनुषः) मननशील विद्वान् सबके साथ (सखीयते) मित्र के समान आचरण करनेवाला और सबको सत्कार करने योग्य होवे ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्या की इच्छा करनेवालों के अनुकूल चालचलन चलनेवाला सुशील धर्मयुक्त व्यवहार में अच्छी निष्ठा रखनेवाला सबका मित्र शुभ गुणों का ग्रहण करनेवाला हो वही मनुष्यों का मुकुटमणि अर्थात् अति श्रेष्ठ होवे ॥ १ ॥

फिर विद्वान् क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

तं यज्ञसाधमपि वातयामस्यृतस्य पथा
नमसा हविष्मता देवताता हविष्मता ।
स न ऊर्जामुपाभृत्यया कृपा न जूर्यति ।
यं मातरिश्वा मनवे परावतो देवं भाः परावतः ॥२॥

पदार्थ—जैसे (यम्) जिस (देवम्) गुण, देनेवाले को (परावतः) दूर से वा (भाः) सूर्य की कान्ति उसके समान (मनवे) मनुष्य के लिए (मातरिश्वा) पवन (परावतः) दूर से धारण करता (सः) वह देनेवाला विद्वान् (अया) इस (कृपा) कल्पना से (नः) हम लोगों को (ऊर्जाम्) पराक्रमवाले पदार्थों का (उपाभृति) समीप आया हुआ आभूषण अर्थात् सुन्दरपन जैसे हो वैसे (न) नहीं (जूर्यति) रोगी करता और जैसे वह (देवताता) विद्वान् के समान (हविष्मता) बहुत देनेवाले (ऋतस्य) सत्य के (पथा) मार्ग से चलता है वैसे (हविष्मता) बहुत ग्रहण करनेवाले (नमसा) सत्कार के साथ (तम्) उस अग्नि के समान प्रतापी (यज्ञसाधम्) यज्ञ साधनेवाले विद्वान को (अपि) निश्चय के साथ हम लोग (वातयामसि) पवन के समान सब कार्यों में प्रेरणा देवें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वान् मनुष्य जैसे पवन सब मूर्तिमान् पदार्थों को धारण करके प्राणियों को सुखी करता वैसे ही विद्या और धर्म को धारण कर सब मनुष्यों को सुख देवे ॥ २ ॥

एवेन सद्यः पर्येति पार्थिवं मुहुर्गी रेतो
वृषभः कनिक्रदद्दधद्रेतः कनिक्रदत् ।
शतं चक्षाणो अक्षभिर्देवो वनेषु तुर्वणिः ।
सदो दधान उपरेषु सानुष्वग्निः परेषु सानुषु ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जैसे (मुहुर्गीः) बार-बार वाणी को प्राप्त (रेतः) जल को (कनिक्रदत्) निरन्तर गर्जता-सा (रेतः) पराक्रम को (कनिक्रदत) अतीव शब्दायमान करता और (दधत्) धारण करता हुआ (वृषभः) वर्षा करने और (वनेषु) किरणों में (तुर्वणिः) अन्धकार और शीत का विनाश करता हुआ (देवः) निरन्तर प्रकाशमान (उपरेषु) मेघों और (सानुषु) अलग-अलग पर्वत के शिखरों वा (परेषु) उत्तम (सानुषु) पर्वतों के शिखरों में (सदः) जिनमें जन बैठते हैं उन स्थानों को (दधानः) धारण करता हुआ (अग्निः) बिजुली तथा सूर्यरूप अग्नि (एवेन) अपनी लपट-झपट चाल से (पार्थिवम्) पृथिवी में जाने हुए पदार्थ को (सद्यः) शीघ्र (पर्येति) सब ओर से प्राप्त होता वैसे (अक्षभिः) इन्द्रियों से (शतम्) सैकड़ों उपदेशों को (चक्षाणः) करनेवाले होते हुए प्रसिद्ध हूजिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे सूर्य और वायु सबको धारण और मेघ को वर्षाकर सब जगत् को आनन्द करते वैसे विद्वान् जन वेद विद्या को धारण कर औरों के आत्माओं में अपने उपदेशों को वर्षा कर सब मनुष्यों को सुख देते हैं ॥ ३ ॥

फिर कौन विद्वान् सत्कार के योग्य होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमेऽग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य
चेतति क्रत्वा यज्ञस्य चेतति।
क्रत्वा वेधा इषूयते विश्वा जातानि पस्पशे।
यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निर्वेधा अजायत ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (सुक्रतु) उत्तम बुद्धि और कर्मवाला (पुरोहितः) प्रथम जिसने सिद्ध किया और (अग्निः) आग के समान प्रतापी वर्त्तमान (दमे, दमे) घर-घर मे (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि वा कर्म से (यज्ञस्य) विद्वानो के सत्काररूप कर्म को (चेतति) अच्छी चितौनी देते हुए के समान (अध्वरस्य) न छोड़ने (यज्ञस्य) किन्तु सङ्ग करने योग्य उत्तम यज्ञ आदि काम का (चेतति) विज्ञान कराता वा जो (क्रत्वा) श्रेष्ठ बुद्धि वा कर्म से (वेधा) धीर बुद्धिवाला (इषूयते) बाण के समान विषयो मे प्रवेश करता और (विश्वा) समस्त (जातानि) उत्पन्न हुए पदार्थों का (पस्पशे) प्रबन्ध करता वा (यतः) जिससे (घृतश्री.) घी का सेवन करता हुआ (अतिथि) जिसकी कोई कहीं ठहरने की तिथि निश्चित नहीं वह सत्कार के योग्य विद्वान् (अजायत) प्रसिद्ध होवे और (वह्निः) वस्तु के गुणादिको की प्राप्ति करानेवाले अग्नि के समान (वेधा.) धीर बुद्धि पुरुष (अजायत) प्रसिद्ध होवें (स.) वही विद्वान् विद्या के उपदेश के लिए सबको अच्छे प्रकार आश्रय करने योग्य है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्वान् देश-देश, नगर-नगर, द्वीप-द्वीप, गाँव-गाँव और घर-घर मे सत्य का उपदेश करते वे सबको सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ ४ ॥

इस संसार में उत्तम सुख का विधान करनेवाले कौन होते हैं
इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

क्रत्वा यदस्य तविषीषु पृञ्चतेऽग्नेरवेण मरुतां न भोज्येषिराय न भोज्या।
स हि ष्मा दानमिन्वति वसूनां च मज्मना।
स नस्त्रासते दुरितादभिह्रुतः शंसादघादभिह्रुतः ॥५॥१४॥

पदार्थ—(यत्) जो (अस्य) इस सेनापति की (क्रत्वा) बुद्धि और (अवेन) रक्षा आदि काम से (मरुताम्) पवनो और (अग्ने) बिजुली, आग की (इषिराय) विद्या को प्राप्त हुए पुरुष के लिए (भोज्या) भोजन करने योग्य पदार्थों के (न) समान वा (भोज्या) पालने योग्य पदार्थों के (न) समान पदार्थों का (तविषीषु) प्रशंसित बलयुक्त सेनाओ मे (पृञ्चते) सम्बन्ध करता वा जो (हि) ठीक-ठीक (मज्मना) बल से (वसूनाम्) प्रथम कक्षावाले विद्वानो तथा (च) पृथिव्यादि लोको का (दानम) जो दिया जाता पदार्थ उसको (इन्वति) प्राप्त होता वा जो (न) हम लोगो को (अभिह्रुत) आगे आये हुए कुटिल (दुरितात्) दु:खदायी (अभिह्रुत) सब ओर से टेढ़े, मेढ़े छोटे बड़े (अघात्) पाप से (त्रासते) उद्वेग करता अर्थात् उठाता वा (शंसात्) प्रशसा से सयोग कराता (स स्म) वही सुख को प्राप्त होता और (स) वह सुख करनेवाला होता तथा वही विद्वान् सब के सत्कार करने योग्य और वह सभो की ओर से रक्षा करनेहारा होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। जो उत्तम शिक्षा और विद्या के दान से दुष्टस्वभावी प्राणियो और अधर्म के आचरणो से निवृत्त कराके अच्छे गुणो मे प्रवृत्त कराते वे इस ससार मे कल्याण करनेवाले धर्मात्मा विद्वान् होते हैं ॥ ५ ॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विश्वो विहाया अरतिर्वसुर्दधे हस्ते दक्षिणे
तरणिर्न शिश्रथच्छ्रवस्यया न शिश्रथत्।
विश्वस्मा इदिषुध्यते देवत्रा हव्यमोहिषे।
विश्वस्मा इत्सुकृते वारमृण्वत्यग्निर्द्वारा व्यृण्वति ॥६॥

पदार्थ—(विश्व) समग्र (विहायाः) विद्या आदि शुभगुणो मे व्याप्त (अरतिः) उत्तम व्यवहारो की प्राप्ति कराता और (तरणि) तारनेहारा (वसुः) प्रथम श्रेणी का ब्रह्मचारी विद्वान् (श्रवस्यया) अपनी उत्तम उपदेश सुनने की इच्छा से जैसे (अग्नि) बिजुली न (शिश्रथत) शिथिल हो वैसे (न) नहीं (शिश्रथत्) शिथिल हो वा (दक्षिणे) दाहिने (हस्ते) हाथ मे जैसे आमलक धरे वैसे (देवत्रा) विद्वानो मे मैं विद्या को (दधे) धारण करूँ वा (विश्वस्मै) सब (इषुध्यते) धनुष के समान आचरण करते हुए जनसमूह के लिए तू (हव्यम्) देने योग्य पदार्थ का (आ, ऊहिषे) तर्क-वितर्क करता (इत्) वैसे ही जो (विश्वस्मै) सब (सुकृते) सुकर्म करनेवाले जनसमूह के लिए (द्वारा) उत्तम व्यवहारों के द्वारो को (ऋण्वति) प्राप्त होता वह सुख (इत्) ही के (वारम्) स्वीकार करने को (वि-ऋण्वति) विशेषता से प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य सब व्यक्त पदार्थों को प्रकाशित कर सब के लिए सब सुखों को उत्पन्न करता वैसे हिंसा आदि दोषों से रहित विद्वान् जन विद्या का प्रकाश कर सब को आनन्दित करते हैं ॥ ६ ॥

फिर वे क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स मानुषे वृजने शंतमो हितो३ऽग्निर्यज्ञेषु
जेन्यो न विश्पतिः प्रियो यज्ञेषु विश्पतिः।
स हव्या मानुषाणामिळा कृतानि पत्यते।
स नस्त्रासते वरुणस्य धूर्तेर्महो देवस्य धूर्तेः ॥७॥

पदार्थ—जो (प्रियः) तृप्ति करनेवाला है वह (विश्पति.) प्रजाओं का पालक राजा (न.) हम लोगो को (धूर्त्तेः) हिंसक से (त्रासते) दमन कराता और (स) वह (धूर्त्ते.) अविद्या को नाशने और (महः) बड़े (देवस्य) विद्या देनेवाले (वरुणस्य) उत्तम विद्वान् के पास से जो (यज्ञेषु) सङ्ग करने योग्य व्यवहारो मे (मानुषाणाम्) मनुष्यों के (इळा) अच्छे सस्कारो से युक्त (कृतानि) सिद्ध किये शुद्ध वचन (हव्या) जो कि ग्रहण करने योग्य हों उनको स्थिर करता तथा (स) वह सब को (पत्यते) प्राप्त होता वा (यज्ञेषु) अग्निहोत्र आदि यज्ञो मे (अग्नि) अग्नि के समान वा (जेन्यः) विजयशील के (न) समान (विश्पतिः) प्रजाजनो का पालनेवाला (मानुषे) मनुष्यों के (वृजने) उस मार्ग में कि जिसमें गमन करते (हितः) हित सिद्ध करनेवाला (शन्तम.) अतीव सुखकारी होता (स) वह विद्वान् सब को सत्कार करने योग्य होता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। जो धर्म-मार्ग में मनुष्यो को उपदेश से प्रवृत्त कराते, न्यायाधीश राजा के समान प्रजाजनो को पालने, डाकू आदि दुष्ट प्राणियो से जो डर उसको निवृत्त करानेवाले, विद्वानो के मित्रजन हैं वे ही अन्ध-परम्परा अर्थात् कुमार्ग के रोकनेवाले होने को योग्य होते हैं ॥ ७ ॥

किसके मिलाप से क्या पाने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्निं होतारमीळते वसुधितिं
प्रियं चेतिष्ठमरतिं न्येरिरे हव्यवाहं न्येरिरे।
विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविम्।
देवासो रण्वमवसे वसूयवो गीर्भी रण्वं वसूयवः ॥८॥१५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (देवास.) विद्वान् जन जिस (अग्निम्) अग्नि के समान वर्त्तमान (होतारम्) देनेवाले (वसुधितिम्) जिसके कि धनों की धारणा है (अरतिम्) और जो विद्या पाये हुए हैं उस (हव्यवाहम्) देने-लेने योग्य व्यवहार की प्राप्ति कराने (चेतिष्ठम्) चिताने और (प्रियम्) प्रीति उत्पन्न करानेहारे विद्वान् के जानने की इच्छा किये हुए (न्येरिरे) निरन्तर प्रेरणा देते वा (विश्वायुम्) जो सब विद्यादि गुणो के बोध को प्राप्त होता (विश्ववेदसम्) जिसका समग्र वेद, धन उस (होतारम्) ग्रहण करनेवाले (यजतम्) सत्कार करने योग्य (कविम्) पूर्णविद्यायुक्त और (रण्वम्) सत्योपदेशक सत्यवादी पुरुष को (वसूयव.) जो धन आदि पदार्थों की इच्छा करते हैं उन के समान (न्येरिरे) निरन्तर प्राप्त होते हैं वा जो (वसूयवः) धन आदि पदार्थों को चाहनेवाले (अवसे) रक्षा आदि के लिए (गीर्भि) अच्छी सत्कार की हुई वाणियो से (रण्वम्) सत्य बोलनेवाले की (ईळते) स्तुति करते हैं उन सबो की तुम भी स्तुति करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! विद्वान् लोग जिसकी सेवा और सङ्ग से विद्यादि गुणों को पाते हैं उसी की सेवा और सङ्ग से तुम लोगों को चाहिए कि इनको पाओ ॥ ८ ॥

इस सूक्त में विद्वानो के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ
की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ एकता है यह जानना चाहिए ॥
यह एक सौ अट्ठाईसवाँ सूक्त और पन्द्रहवाँ वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अथ य त्वमित्यस्यैकादशर्चस्यैकोनत्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप
ऋषिः। इन्द्रो देवता। १, २ निचृदत्यष्टि., ३ विराडत्यष्टिश्छन्द.।
गान्धार स्वरः। ४ अष्टि.; ६, ११ भुरिगष्टिः, १० निचृदष्टिः
छन्द। मध्यमः स्वर.। ५ भुरिगतिशक्वरी ; ७ स्वराडति-
शक्वरी। पञ्चम. स्वर। ८, ९ स्वराट् शक्वरी।
धैवतः स्वरः॥

अब ग्यारह ऋचा वाले एकसौ उनतीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में
विद्वान् जन क्या करें उस विषय को कहते हैं—

यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातयेऽपाका सन्तमिषिर प्रणयसि प्रानवद्य नयसि।
सद्यश्चित्तमभिष्टये करो वशश्च वाजिनम्।
सास्माकमनवद्य तूतुजान वेधसामिमां वाचं न वेधसाम् ॥१॥

पदार्थ—हे (इषिर) इच्छा करनेवाले (इन्द्र) विद्वन् सभापति ! (त्वम्) आप (मेधसातये) पवित्र पदार्थों के अच्छे प्रकार विभाग करने के लिए (यम्) जिस (अपाका) पूर्ण ज्ञानवाले (सन्तम्) विद्यमान (रथम्) विद्वान् को रमण करने योग्य रथ को (प्रणयसि) प्राप्त कराने के समान विद्या को (प्रणयसि) प्राप्त करते हो (च) और हे (अनवद्य) प्रशंसायुक्त (वश:) कामना करते हुए (अभिष्टये) चाहे हुए पदार्थ की प्राप्ति के लिए (वाजिनम्) प्रशंसित ज्ञानवान् के (चित्) समान (तम्) उसको (सद्य:) शीघ्र (कर:) सिद्ध करें वा हे (तुतुजान) शीघ्र कार्यों के कर्ता (अनवद्य) प्रशंसित गुणों से युक्त (स:) सो आप (अस्माकम्) हम (वेधसाम्) और बुद्धिवालों के (न) समान (मेधसाम्) बुद्धिमानों की (इमाम्) इस (वाचम्) उत्तम शिक्षायुक्त वाणी को सिद्ध करें अर्थात् उसका उपदेश करें ॥ १ ॥

भावार्थ —इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो विद्वान् जन सब मनुष्यों को विद्या और विनय आदि गुणों में प्रवृत्त कराते हैं वे सब ओर से चाहे हुए पदार्थों की सिद्धि कर सकते हैं ॥ १ ॥

फिर विद्वान् कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स श्रुधि यः स्मा पृतनासु कासु चिद्दक्षाय्य

इन्द्र भरहूतये नृभिरसि प्रतूर्तये नृभिः ।

यः शूरैः स्वः सनिता यो विप्रैर्वाजं तरुता ।

तमीशानास इरधन्त वाजिनं पृक्षमत्यं न वाजिनम् ॥२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्ययुक्त सेनापति ! (य:) जो आप (प्रतूर्तये) शीघ्र आरम्भ करने के लिए (नृभि) मुख्य अग्रगन्ता मनुष्यों के समान (नृभि) अपने अधिकारी कामचारी मनुष्यो से (भरहूतये) दूसरो की पालना करनेवाले राजजनो की स्पर्द्धा अर्थात् उनकी हार करने के लिए (कासु-चित्) किन्ही (पृतनासु) सेनाओ मे और (दक्षाय्य) राजकामो में अति चतुर (असि) हो वा (य) जो आप (शूरै) निडर शूरवीरो के साथ (स्व) सुख को (सनिता) अच्छे बांटनेवाले वा (य:) जो (विप्रै:) धीर बुद्धिवालो के साथ (वाजम्) विशेष ज्ञान को (तरुता) पार होनेवाले (वाजिनम्) विशेष ज्ञानवान् (अत्यम्) व्याप्त होनेवाले के (न) समान (पृक्षम्) सुखो से सींचने वाले (वाजिनम्) घोडे को धारण करते हो (तम्) उन आप को (ईशानास:) समर्थ जन (इरधन्त) जो प्रेरणा करनेवालो को धारण करते उनके जैसा आचरण करें अर्थात् प्रेरणा दें और (स: स्म) वही आप सब के न्याय को (श्रुधि) सुनें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। जो विद्वान् और न्यायाधीशो के साथ राजधर्म को प्राप्त करते वे प्रजाजनो मे आनन्द को अच्छे प्रकार देनेवाले होते हैं ॥ २ ॥

फिर कौन ससार का उपकार करनेवाले होते हैं इस विषय को
अगले मन्त्र में कहा है—

दस्मो हि ष्मा वृषणं पिन्वसि

त्वचं कं चिद्यावीररुं शूर मर्त्यं परिवृणक्षि मर्त्यम् ।

इन्द्रोत तुभ्यं तद्दिवे तद्रुद्राय स्वयशसे ।

मित्राय वोचं वरुणाय सप्रथः सुमृळीकाय सप्रथः ॥३॥

पदार्थ—हे (शूर) शत्रुओ को मारनेवाले (इन्द्र) सभापति (हि) जिस कारण (दस्म:) शत्रुओ को विनाशनेहारे आप जिस (कञ्चित्) किसी (त्वचम्) धर्म के ढापनेवाले को (यावी) पृथक् करते और (वृषणम्) विद्यादि गुणो के वर्षाने (अररुम्) वा दूसरे को उनकी प्राप्ति करानेवाले (मर्त्यम्) मनुष्य के समान (मर्त्यम्) मनुष्य को (परिवृणक्षि) सब ओर से छोडते स्वतन्त्रता देते वा (पिन्वसि) उस का सेवन करते हे इस कारण उस (स्वयशसे) स्वकीर्ति से युक्त (मित्राय) सब के मित्र के लिए वा (तुभ्यम्) आप के लिए (तत्) उस व्यवहार को (वोचम्) मैं कहूँ वा (दिवे) कामना करने (रुद्राय) दुष्टो को रुलाने (वरुणाय) श्रेष्ठ धर्म आचरण करने (सुमृळीकाय) और उत्तम सुख करनेवाले के लिए (सप्रथ:) सब प्रकार के विस्तार से युक्त मनुष्य के समान (सप्रथ:) प्रसिद्धि अर्थात् उत्तम कीर्तियुक्त (तत्) उस उक्त आप के उत्तम व्यवहार को (उत) तर्क-वितर्क से (स्म) ही कहूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है। जो मनुष्य सब मनुष्यो के लिए मित्रभाव से सत्य का उपदेश करते वा धर्म का सेवन करते वे परम सुख के देने वाले होते हैं ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को किन के साथ क्या करना चाहिए
इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अस्माकं व इन्द्रमुश्मसीष्टये

सखायं विश्वायुं प्रासहं युजं वाजेषु प्रासहं युजम् ।

अस्माकं ब्रह्मोतयेऽवा पृत्सुषु कासु चित् ।

नहि त्वा शत्रुः स्तरते स्तृणोषि यं विश्वं शत्रुं स्तृणोषि यम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (अस्माकम्) हमारे और (व:) तुम्हारे (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य्य युक्त वा (वाजेषु) राजजनों को प्राप्त होने योग्य (पृत्सुषु, कासु, चित्) किन्हीं सेनाओं में (प्रासहम्) उत्तमता से सहनशील (युजम्) और योगाभ्यासयुक्त धर्मात्मा पुरुष के समान (प्रासहम्) अतीव सहने (युजम्) और योग करनेवाले (विश्वायुम्) समग्र शुभ गुणों को पाये हुए (सखायम्) मित्रजन की (इष्टये) चाहे हुए पदार्थ की प्राप्ति के लिए (उश्मसि) कामना करते हैं वैसे तुम भी कामना करो। हे विद्वन् ! (अस्माकम्) हमारी (ऊतये) रक्षा आदि होने के लिए आप (ब्रह्म) वेद की (अव) रक्षा करो ऐसे हुए पर (यम्) जिस (विश्वम्) समग्र (शत्रुम्) शत्रुगण को (स्तृणोषि) आच्छादन करते अर्थात् अपने प्रताप से ढांपते और (यम्) जिस विरोध करनेवाले को (स्तृणोषि) ढांपते अर्थात् अपने प्रचण्ड प्रताप से रोकते वह (शत्रु:) शत्रु (त्वा) आप को (नहि) नहीं (स्तरते) ढांपता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्यों को चाहिए कि जितना सामर्थ्य हो सके उतने से बहुत मित्र करने को उत्तम यत्न करे परन्तु अधर्मी दुष्ट जन मित्र न करने चाहिएँ और न दुष्टो में मित्रपन का आचरण करना चाहिए ऐसा होने पर शत्रुओ का बल नहीं बढ़ता है ॥ ४ ॥

इस संसार में कौन सुख का देनेवाला होता है इस विषय को
अगले मन्त्र में कहा है—

नि षू नमातिमतिं कयस्य

चित्तेजिष्ठाभिररणिभिर्नोतिभिरुग्राभिरुग्रोतिभिः ।

नेषि णो यथा पुरानेनाः शूर मन्यसे ।

विश्वानि पूरोरप पर्षि वह्निरासा वह्निर्नो अच्छ ॥५॥१६॥

पदार्थ—हे (उग्र) तेजस्वी (शूर) दुष्टो को मारनेवाले विद्वन् ! (तेजिष्ठाभि) अतीव प्रतापयुक्त (अरणिभि:) सुख देनेवाली (उग्राभि:) तीव्र (ऊतिभि:) रक्षा आदि क्रियाओ (न) के समान (ऊतिभि) रक्षाओ से (अतिमतिम्) अत्यन्त विचारवाली बुद्धि को (नि, नम) नमो अर्थात् नम्रता के साथ वर्तो वा (यथा) जैसे (अनेना:) पापरहित मनुष्य (पुरा) पहले उत्तम कामो की प्राप्ति करता वैसे (न:) हम लोगो को आप (मन्यसे) जानते और (सु, नेषि) सुन्दरता से अच्छे कामों को प्राप्त कराते वा (आसा) अपने पास (वह्नि:) पहुँचानेवाले के समान (न) हम को (अच्छ, पर्षि) अच्छे सींचते वा (कयस्य) विशेष ज्ञान देने और (पूरो) पूरे विद्वान् मनुष्य के (चित्) भी (वह्नि:) पहुँचानेवाले आप (विश्वानि) समग्र दु:खों को (अप) दूर करते हो सो आप हम लोगो के सेवन करने योग्य हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है। जो मनुष्यो की बुद्धि को उत्तम रक्षा से बढा कर पाप कर्मों मे अश्रद्धा उत्पन्न करता वही सभो को सुखों को पहुँचा सकता है ॥ ५ ॥

किनके लिए विद्या देनी चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्र तद्वोचेयं भव्यायेन्दवे हव्यो न

य इषवान्मन्म रेजति रक्षोहा मन्म रेजति ।

स्वयं सो अस्मदा निदो वधैरजेत दुर्मतिम् ।

अव स्रवेदघशंसोऽवतरमव क्षुद्रमिव स्रवेत् ॥६॥

पदार्थ—मैं (स्वयम्) आप जैसे (हव्य) स्वीकार करने योग्य (रक्षोहा) दुष्ट गुण कर्म स्वभाववालों को मारनेवाला (मन्म) विचार करने योग्य ज्ञान का (रेजति) संग्रह करते हुए के (न) समान (य:) जो (इषवान्) ज्ञानवान (मन्म) जानने योग्य व्यवहार को (रेजति) संग्रह करता है (तत्) उस उपदेश करने योग्य ज्ञान को (भव्याय) जो विद्याग्रहण की इच्छा करनेवाला होता है उस (इन्दवे) आर्द्र अर्थात् कोमल हृदयवाले के लिए (प्र, वोचेयम्) उत्तमता से कहूँ जो (अस्मत्) हम से शिक्षा पाकर (वधै:) मारने के उपायो से (निद:) निन्दा करनेहारो और (दुर्मतिम) दुष्टमतिवाले जन को (अजेत) दूर करे (स:) वह (अवतरम्) अधोमुखी लज्जित मुखवाले पुरुष को (क्षुद्रमिव) तुच्छ आशयवाले के समान (अव, स्रवेत्) उस के स्वभाव से विपरीत दण्ड देवे और (अघशंस:) जो पाप की प्रशंसा करता वह चोर, डाकू, लम्पट, लबाड आदि जन (अव, आ, स्रवेत्) अपने स्वभाव से अच्छे प्रकार उलटी चाल चलें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। अध्यापक विद्वान् जो शुभ गुण कर्म स्वभाववाले विद्यार्थी हैं उनके लिए प्रीति से विद्याओ को देवे, निन्दा करनेहारे चोरो को निकाल देवे और आप भी सदैव धर्मात्मा हो ॥ ६ ॥

फिर माता आदि को सन्तान कैसे उपदेशों से समझाने चाहिए
इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या वनेम

रयिं रयिवः सुवीर्यं रण्वं सन्तं सुवीर्यम् ।

दुर्मन्मानं सुमन्तुभिरेमिषा पृचीमहि ।

आ सत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहूतिभिर्यजत्रं द्युम्नहूतिभिः ॥७॥

पदार्थ—हे (रयिवः) धनवान् ! जैसे हम लोग (होत्रया) ग्रहण करने योग्य (चिकित्वा) चेतानेवाली बुद्धिमती से जिस ज्ञान का (वनेम) अच्छे प्रकार सेवन करें वा (सुवीर्यम्) श्रेष्ठ पराक्रमयुक्त (रयिम्) धन तथा (सन्तम्) वर्त्तमान (रण्वम्) उपदेश करनेवाले (सुवीर्यम्) विद्या और धर्म से उत्तम आत्मा के बल का (वनेम) सेवन करें वा (सुमन्तुभिः) उत्तम विद्यायुक्त पुरुषों और (ईम्) पाने योग्य (इषा) इच्छा से (दुर्मन्मानम्) दुष्टजन मान करनेहारे को जो मारनेवाला उसका (आ, पृक्षीमहि) अच्छे प्रकार सम्बन्ध करें तथा (सुम्नहूतिभिः) धन वा यश की बातचीतों से (यजत्रम्) अच्छे प्रकार सङ्ग करने योग्य व्यवहार के समान (सत्याभिः) सत्य आचरण युक्त (द्युम्नहूतिभिः) धनविषयक बातों से (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य का (आ) अच्छे प्रकार सम्बन्ध करें वैसे (तत्) उक्त समस्त व्यवहार को आप भजो और उस से सम्बन्ध करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । माता और पिता आदि को वा विद्वानों को चाहिए कि अपने सन्तानों को इस प्रकार उपदेश करें कि जो हमारे धर्म के अनुकूल काम हैं वे आचरण करने योग्य किन्तु और काम आचरण करने योग्य नहीं, ऐसे सत्याचरणों और परोपकार से निरन्तर ऐश्वर्य की उन्नति करनी चाहिए ॥ ७ ॥

फिर मनुष्य क्या करके कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्रप्रा वो अस्मे स्वयंशोभिरूती परिवर्ग

इन्द्रो दुर्मतीनां दरीमन दुर्मतीनाम् ।

स्वयं सा रिषयध्यै या न उपेषे अत्रैः ।

हतेमसन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति ॥८॥

पदार्थ—हे मित्रो ! (वः) तुम लोगों के लिए (अस्मे) और हमारे लिए (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् विद्वान् (दुर्मतीनाम्) दुष्ट बुद्धिवाले दुष्ट मनुष्यों के (परिवर्गे) सब ओर से सम्बन्ध में और (दुर्मतीनाम्) दुष्ट बुद्धिवाले दुराचारी मनुष्यों के (दरीमन्) अतिशय कर विदारने में (स्वयशोभिः) अपनी प्रशंसाओं और (ऊती) रक्षा से (प्रप्र, वक्षति) उत्तमता से उपदेश करे (या) जो सेना (नः) हम लोगों के (उपेषे) समीप आने के लिए (अत्रैः) आततायी शत्रुजनों ने (क्षिप्ता) प्रेरित की अर्थात् पठाई हो (सा) वह (रिषयध्यै) दूसरों को हनन कराने के लिए प्रवृत्त हुई (स्वयम्) आप (ईम्) सब ओर से (हता) नष्ट (असत्) हो किन्तु वह (जूर्णिः) शीघ्रता करनेवाली के (न) समान (न) न (वक्षति) प्राप्त हो अर्थात् शीघ्रता करने ही न पावे किन्तु तावत् नष्ट हो जावे ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो दुष्टों के सङ्ग को छोड़ सत्सङ्ग से कीर्तिमान् हो कर अतीव प्रशंसित सेना से प्रजा की रक्षा करते हैं वे उत्तम ऐश्वर्य-वाले होते हैं ॥ ८ ॥

फिर उपदेश करनेवालों को कैसे वर्त्ताव रखना चाहिए
इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

त्वं न इन्द्र राया परीणसा याहि पथाँ अनेहसा पुरो याह्यरक्षसा ।

सचस्व नः पराक आ सचस्वास्तमीक आ ।

पाहि नो दूरादारादभिष्टिभिः सदा पाह्यभिष्टिभिः ॥९॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्या वा ऐश्वर्ययुक्त विद्वन् ! (त्वम्) आप (परीणसा) बहुत (राया) धन से (नः) हम लोगों को (याहि) प्राप्त हो और (अनेहसा) रक्षामय जो धर्म उससे (अरक्षसा) और जिसमें दुष्ट प्राणी विद्यमान नहीं उस (पथा) मार्ग से (पुरः) प्रथम जो वर्त्तमान उनको (याहि) प्राप्त हो और (नः) हमको (पराके) दूर देश में (आ, सचस्व) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ मिलो और (अस्तमीके) समीप में हम लोगों को (आ, सचस्व) अच्छे प्रकार मिलो और जो (अभिष्टिभिः) सब ओर से क्रियाओं से सङ्ग करते उन (दूरात्) दूर और (आरात्) समीप से (नः) हम लोगों की (पाहि) रक्षा करो और (सदा) सब कभी (अभिष्टिभिः) सब ओर से चाही हुई क्रियाओं से हम लोगों की (पाहि) रक्षा करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—उपदेशकों को चाहिए कि धर्म के अनुकूल मार्ग से आप प्रवृत्त हों और सब को प्रवृत्त कराकर अपने उपदेश के द्वारा समीपस्थ और दूरस्थ पदार्थों का संगकर भ्रम मिटाने और सत्यविज्ञान की प्राप्ति कराने से सब की निरन्तर अच्छी रक्षा करें ॥ ९ ॥

फिर मनुष्य कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्वं न इन्द्र राया तरूषसोग्रं चित्

त्वा महिमा सक्षदवसे महे मित्रं नावसे ।

ओजिष्ठ त्रातरविता रथं कं चिदमर्त्य ।

अन्यमस्मद्रिरिषेः कं चिदद्रिवो रिरिक्षन्तं चिदद्रिवः ॥१०॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त राजन् (त्वम्) आप (तरूषसा) जिससे शत्रुओं के बलों को पार होते उस काल और (राया) उत्तम लक्ष्मी से (महे) अत्यन्त (अवसे) रक्षा आदि सुख के लिए वा (मित्रम्) मित्र के (न) समान (अवसे) रक्षा आदि व्यवहार के लिए जिन (त्वा) आपको (महिमा) बड़प्पन, प्रताप (सक्षत्) मिले सो आप (चित्) भी (नः) हम लोगों की रक्षा करो । हे (ओजिष्ठ) अतीव प्रतापी (अवित) रक्षा करनेवाले (अमर्त्य) अपनी कीर्ति-कलाप से मरण-धर्मरहित (त्रातः) राज्य पालनेहारे आप (कं, चित्) किसी (रथम्) रमण करने योग्य रथ को प्राप्त होओ । हे (अद्रिवः) बहुत मेघों वाले सूर्य के समान तेजस्वी आप (अस्मत्) हम लोगों से (कं, चित्) किसी (अन्यम्) और ही को (रिरिषेः) मारो । हे (अद्रिवः) पर्वत भूमियों के राज्य से युक्त आप (रिरिक्षन्तम्) हिंसा करने की इच्छा करते हुए (उग्रम्) तीव्र प्राणी को (चित्) भी मारो, ताड़ना देओ ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्यों की यही महिमा है कि श्रेष्ठों की पालना और दुष्टों की हिंसा करना ॥ १० ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

पाहि न इन्द्र सुष्टुत स्रिधोऽवयाता

सदमिद्दुर्मतीनां देवः सन्दुर्मतीनाम् ।

हन्ता पापस्य रक्षसस्त्राता विप्रस्य मावतः ।

अधा हि त्वा जनिता जीजनद्वसो रक्षोहणं त्वा जीजनद्वसो ॥११॥

पदार्थ—हे (सुष्टुत) उत्तम प्रशंसा को प्राप्त (इन्द्र) सभापति ! (अवयाता) विरुद्ध मार्ग को जाते और (देवः) सत्य न्याय की कामना अर्थात् खोज करते (सन्) हुए (दुर्मतीनाम्) दुष्ट मनुष्यों के (सदम्) स्थान के (इत्) समान (दुर्मतीनाम्) दुष्ट बुद्धिवाले मनुष्यों के प्रचार का विनाश कर (स्रिधः) दुःख के हेतु पाप से (नः) हम लोगों की (पाहि) रक्षा करो । हे (वसो) सज्जनों में बसनेहारे (जनिता) उत्पन्न करनेहारा पिता गुरु जिस (रक्षोहणम्) दुष्टों के नाश करनेहारे (त्वा) आपको (जीजनत्) उत्पन्न करे । वा हे (वसो) विद्याओं में वास अर्थात् प्रवेश करानेहारे ! जिन रक्षा करनेवाले (त्वा) आप को (जीजनत्) उत्पन्न करे सो (हि) ही आप (अध) इसके अनन्तर (पापस्य) पाप आचरण करनेवाले (रक्षसः) राक्षस अर्थात् औरों को पीड़ा देनेहारे के (हन्ता) मारनेवाले तथा (मावतः) मेरे समान (विप्रस्य) बुद्धिमान् धर्मात्मा पुरुष की (त्राता) रक्षा करनेवाले हूजिए ॥ ११ ॥

इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यही विद्वानों का प्रशंसा करने योग्य काम है जो पाप का खण्डन और धर्म का मण्डन करना, किसी को दुष्ट का संग और श्रेष्ठजन का त्याग न करना चाहिए ॥ ११ ॥

इस सूक्त में विद्वानों और राजजनों के धर्म का वर्णन होने से इस सूक्त में कहे हुए अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह एकसौ उनतीसवां सूक्त और सत्रहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

एन्द्रेत्यस्य दशर्चस्य त्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ५ भुरिगष्टि., २, ३, ६, ९, स्वराडष्टि , ४, ८ अष्टिश्छन्द । मध्यम स्वर । ७ निचृदत्यष्टिश्छन्द । गान्धार स्वर । १० विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवत. स्वर ॥

अब दश ऋचावाले एकसौ तीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम दो मन्त्रों में राजा और प्रजाजन आपस में प्रीति के साथ वर्त्तें
इस विषय को कहा है—

एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव

सत्पतिरस्तं राजेव सत्पतिः ।

हवामहे त्वा वयं प्रयस्वन्तः सुते सचा ।

पुत्रासो न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्यवान् राजन् ! (अयम्) यह शत्रुजन (विदथानीव) संग्रामों को जैसे वैसे आकर प्राप्त होता इससे आप (नः) हम लोगों के समीप (परावतः) दूर देश से (न) मत (उपायाहि) आइए किन्तु निकट से आइए (सत्पतिः) धार्मिक सज्जनों का पति (राजेव) जो प्रकाशमान उसके समान (सत्पतिः) सत्याचरण की रक्षा करनेवाले आप हमारे (अस्तम्) घर को प्राप्त हो (प्रयस्वन्तः) अत्यन्त प्रयत्नशील (वयम्) हम लोग (सचा) सम्बन्ध से (सुते) उत्पन्न हुए संसार में (वाजसातये) युद्ध के विभाग के लिए और (वाजसातये) पदार्थों के विभाग के लिए (पुत्रासः) पुत्रजन जैसे (पितरम्) पिता को (न) वैसे (मंहिष्ठम्) अति सत्कारयुक्त (त्वा) आपकी (अच्छ) अच्छे प्रकार (हवामहे) स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । समस्त राजप्रजाजन पिता और पुत्र के समान इस संसार में वर्त्तकर पुरुषार्थी हों ॥ १ ॥

पिबा सोममिन्द्र सुवानमद्रिभिः
कोशेन सिक्तमवतं न वंसगस्तातृषाणो न वंसगः ।
मदाय हर्यताय ते तुविष्टमाय धायसे ।
आ त्वा यच्छन्तु हरितो न सूर्यमहा विश्वेव सूर्यम् ॥२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभापति ! (तातृषाणः) अतीव प्यासे (वंसगः) बैल के (न) समान बलिष्ठ (वंसगः) अच्छे विभाग करनेवाले आप (अद्रिभिः) शिलाखण्डों से (सुवानम्) निकालने के योग्य (कोशेन) मेघ से (अवतम्) बढ़े (सिक्तम्) और संयुक्त किये हुए के (न) समान (सोमम्) सुन्दर ओषधियों के रस को (पिब) अच्छे प्रकार पिओ (तुविष्टमाय) अतीव बहुत प्रकार (धायसे) धारणा करनेवाले (मदाय) आनन्द के लिए (हर्यताय) और कामना किये हुए (ते) आप के लिए यह दिव्य ओषधियों का रस प्राप्त होवे अर्थात् चाहे हुए (सूर्यम्) सूर्य को (अहा, विश्वेव) सब दिन जैसे वा (सूर्यम्) सूर्यमण्डल को (हरितः) दिशा विदिशा (न) जैसे वैसे (त्वा) आप को जो लोग (आ, यच्छन्तु) अच्छे प्रकार निरन्तर ग्रहण करें वे सुख को प्राप्त होवें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो बड़े साधन और छोटे साधनों और आयुर्वेद अर्थात् वैद्यकविद्या की रीति से बड़ी-बड़ी ओषधियों के रसों को बनाकर उनका सेवन करते वे आरोग्यवान् होकर प्रयत्न कर सकते हैं ॥ २ ॥

फिर कौन परमात्मा को जान सकते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अविन्दद्दिवो निहितं गुहा निधिं
वेर्न गर्भं परिवीतमश्मन्यनन्ते अन्तरश्मनि ।
व्रजं वज्री गवामिव सिषासन्नङ्गिरस्तमः ।
अपावृणोदिष इन्द्रः परीवृता द्वार इषः परीवृताः ॥३॥

पदार्थ—जो (वज्री) शासन के लिए दण्ड धारण किये हुए (व्रज, गवामिव) जैसे गौओं के समूह गोशाला में गमन करते, जाते-आते वैसे (सिषासन्) जनों को ताड़ना देने अर्थात् दण्ड देने की इच्छा करता हुआ अथवा जैसे (अङ्गिरस्तमः) अति श्रेष्ठ (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सूर्य (इषः) इच्छा करने योग्य (परीवृताः) अन्धकार से ढँपी हुई वीथियों को खोले वैसे (परीवृता) ढँपी हुई (इषः) इच्छाओं और (द्वारः) द्वारों को (अपावृणोत्) खोले तथा (अनन्ते) देश काल वस्तु भेद से न प्रतीत होते हुए (अश्मनि) आकाश में (अश्मनि) वर्त्तमान मेघ के (अन्तः) बीच (परिवीतम्) सब ओर से व्याप्त और अति मनोहर जल वा (वेः) पक्षी के (गर्भम्) गर्भ के (न) समान (गुहा) बुद्धि में (निहितम्) स्थित (निधिम्) जिस में निरन्तर पदार्थ धरे जायें उस निधिरूप परमात्मा को (दिवः) विज्ञान के प्रकाश से (अविन्दत्) प्राप्त होता है वह अतुल सुख को प्राप्त होता है ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो योग के अंग धर्म विद्या और सत्सङ्ग के अनुष्ठान से अपनी आत्मा में स्थित परमात्मा को जानें वे सूर्य जैसे अन्धकार को वैसे अपने संगियों की अविद्या छुड़ा विद्या के प्रकाश को उत्पन्न कर सब को मोक्षमार्ग में प्रवृत्त कराके उन्हें आनन्दित कर सकते हैं ॥ ३ ॥

इस संसार में कौन अच्छी शोभा को प्राप्त होते हैं
इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

दादृहाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः क्षद्मेव
तिग्ममसनाय सं श्यदहिहत्याय सं श्यत् ।
संविव्यान ओजसा शवोभिरिन्द्र मज्मना ।
तष्टेव वृक्षं वनिनो नि वृश्चसि परश्वेव नि वृश्चसि ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जैसे सूर्य (अहिहत्याय) मेघ के मारने को (तिग्मम्) तीव्र अपने किरणरूपी वज्र को (सं, श्यत्) तीक्ष्ण करता वैसे (गभस्त्योः) अपनी भुजाओं के (क्षद्मेव) जल के समान (असनाय) फेंकने के लिए तीव्र (वज्रम्) शस्त्र को निरन्तर धारण करके (दादृहाणः) दोषों का विनाश करते (इन्द्र) और विद्वान् होते हुए शत्रुओं को (सं, श्यत्) अति सूक्ष्म करते अर्थात् उनका विनाश करते वा हे (इन्द्र) दुष्टों का दोष नाशनेवाले आप (वृक्षम्) वृक्ष को (मज्मना) बल से (तष्टेव) जैसे बढ़ई आदि काटनेहारा वैसे (ओजसा) पराक्रम और (शवोभिः) सेना आदि बलों के साथ (संविव्यानः) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हुए (वनिनः) वन वा बहुत किरणें जिनके विद्यमान उनके समान दोषों को (नि, वृश्चसि) निरन्तर काटते वा (परश्वेव) जैसे फरसा से कोई पदार्थ काटता वैसे अविद्या अर्थात् मूर्खपन को अपने ज्ञान से (नि वृश्चसि) काटते हो वैसे हम लोग भी करें ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य प्रमाद और आलस्य आदि दोषों को अलग कर संसार में गुणों को निरन्तर धारण करते हैं वे सूर्य की किरणों के समान यहां अच्छी शोभा को प्राप्त होते हैं ॥४॥

फिर इस संसार में कौन प्रकाशित होते हैं इस विषय को
अगले मन्त्र में कहा है—

त्वं वृथा नद्य इन्द्र सर्तवेऽच्छा समुद्रमसृजो
रथाँ इव वाजयतो रथाँ इव ।
इत ऊतीरयुञ्जत समानमर्थमक्षितम् ।
धेनूरिव मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहसः ॥५॥१८॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्या के अधिपति ! (त्वम्) आप जैसे (नद्यः) नदी (समुद्रम्) समुद्र को (वृथा) निष्प्रयोजन भर देती वैसे (रथानिव) रथों पर बैठनेहारों के समान (वाजयतः) संग्राम करते हुओं को (रथानिव) रथों के समान ही (सर्तवे) जाने को (अच्छा, असृजः) उत्तम रीति से कलायन्त्रों से युक्त मार्गों को बनावें वा (जनाय) धर्मयुक्त व्यवहार में प्रसिद्ध मनुष्य के लिए जो (विश्वदोहसः) समस्त जगत् को अपने गुणों से परिपूर्ण करते उनके समान (मनवे) विचारशील पुरुष के लिए (विश्वदोहसः) संसार सुख को परिपूर्ण करनेवाले होते हुए आप (धेनूरिव) दूध देनेवाली गौओं के समान (इतः) प्राप्त हुई (ऊतीः) रक्षादि क्रियाओं और (अक्षितम्) अक्षय (समानम्) समान अर्थात् काम के तुल्य (अर्थम्) पदार्थ का (अयुञ्जत) योग करते हैं वे अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो पुरुष गौओं के समान सुख, रथ के समान धर्म के अनुकूल मार्ग का अवलम्ब कर धार्मिक न्यायाधीश के समान होकर सबको अपने समान करते हैं वे इस संसार में प्रशंसित होते हैं ॥५॥

फिर मनुष्य किससे क्या पाकर कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इमां ते वाचं वसूयन्त आयवो रथं न धीरः
स्वपा अतक्षिषुः सुम्नाय त्वामतक्षिषुः ।
शुम्भन्तो जेन्यं यथा वाजेषु विप्र वाजिनम् ।
अत्यमिव शवसे सातये धना विश्वा धनानि सातये ॥६॥

पदार्थ—हे (विप्र) मेधावी धीर बुद्धिवाले जन ! जिन (ते) आपके निकट से (इमाम्) इस (वाचम्) विद्या धर्म और सत्ययुक्त वाणी को प्राप्त (आयवः) विद्वान्-जन (वसूयन्तः) अपने को विज्ञान आदि धन चाहते हुए (स्वपाः) जिसके उत्तम धर्म के अनुकूल काम वह (धीरः) धीरपुरुष (रथम्) प्रशंसित रमण करने योग्य रथ को (न) जैसे वैसे (अतक्षिषुः) सूक्ष्मबुद्धि को स्वीकार करें वा (शुम्भन्तः) शोभा को प्राप्त हुए (यथा) जैसे (वाजेषु) संग्रामों में (जेन्यम्) जिससे शत्रुओं को जीतते उस (वाजिनम्) अति चतुर वा संग्रामयुक्त पुरुष को (अत्यमिव) घोड़ा के समान (शवसे) बल के लिए और (सातये) अच्छे प्रकार विभाग करने के लिए (धनानि) द्रव्य आदि पदार्थों के समान (विश्वा) समस्त (धना) विद्या आदि पदार्थों को प्राप्त होकर (सुम्नाय) सुख और (सातये) संभोग के लिए (त्वाम्) आप को (अतक्षिषुः) उत्तमता से स्वीकार करें वा अपने गुणों से ढांपें वे सुखी होते हैं ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो उपदेश करनेवाले धर्मात्मा विद्वान्जन से समस्त विद्याओं को पाकर विस्तारयुक्त बुद्धि अर्थात् सब विषयों में बुद्धि फैलानेहारे होते हैं वे समग्र ऐश्वर्य को पाकर, रथ घोड़ा और धीरपुरुष के समान धर्म के अनुकूल मार्ग को प्राप्त होकर कृतकृत्य होते हैं ॥६॥

इस संसार में कौन ऐश्वर्य की उन्नति करते हैं इस विषय को
अगले मन्त्र में कहा है—

भिनत्पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि
दाशुषे नृतो वज्रेण दाशुषे नृतो ।
अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभरत् ।
महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ॥७॥

पदार्थ—हे (नृतो) अपने अङ्गों को युद्ध आदि में चलाने वा (नृतो) विद्या की प्राप्ति के लिए अपने शरीर की चेष्टा करने (इन्द्र) और दुष्टों का विनाश करनेवाले ! जो आप (वज्रेण) शस्त्र वा उपदेश से शत्रुओं की (नवतिम्) नब्बे (पुरः) नगरियों को (भिनत्) विदारते, नष्ट-भ्रष्ट करते वा (महि) बड़प्पन पाये हुए सत्कारयुक्त (दिवोदासाय) इच्छित पदार्थ को अच्छे प्रकार देनेवाले और (दाशुषे) विद्यादान किये हुए (पूरवे) पूरे साधनों से युक्त मनुष्य के लिए सुख को धारण करते तथा (अतिथिग्वाय) अतिथियों को प्राप्त होने और (दाशुषे) दान करनेवाले के लिए (उग्रः) तीक्ष्ण स्वभाव अर्थात् प्रचण्ड प्रतापवान् सूर्य (गिरेः) पर्वत के आगे (शम्बरम्) मेघ को जैसे वैसे (ओजसा) अपने पराक्रम से (महः) बड़े-बड़े (धनानि) धन आदि पदार्थों के (दयमान)

देनेवाले (ओजसा) अपने पराक्रम से (विश्वा) समस्त (धनानि) धनों को (अवाभरत्) धारण करते सो आप किञ्चित् भी दुःख को कैसे प्राप्त होवें ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। इस मन्त्र में "अवतिम्" यह पद बहुतों का बोध कराने के लिए है जो शत्रुओं को जीतते, अतिथियों का सत्कार करते और धार्मिकों को विद्या आदि गुण देते हुए वर्त्तमान हैं वे सूर्य्य जैसे मेघ को वैसे समस्त ऐश्वर्यों को धारण करते हैं ॥७॥

फिर मनुष्यों को कैसा होना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं प्रावद्विश्वेषु शतमूतिराजिषु स्वर्मीळ्हेष्वाजिषु ।
मनवे शासदव्रतान् त्वचं कृष्णामरन्धयत् ।
दक्षन्न विश्वं ततृषाणमोषति न्यर्शसानमोषति ॥८॥

पदार्थ—जो (शतमूतिः) अर्थात् जिसमे असंख्यात रक्षा होती वह (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् राजा (स्वर्मीळ्हेषु) जिनमें सुख सिञ्चन किया जाता उन (आजिषु) प्राप्त हुए (आजिषु) संग्रामों में धार्मिक शूरवीरों के समान (विश्वेषु) समग्र (समत्सु) संग्राम में (यजमानम्) अभय के देनेवाले (आर्यम्) उत्तम गुण कर्म स्वभाववाले पुरुष को (प्रावत्) अच्छे प्रकार पाले वा (मनवे) विचारशील धार्मिक मनुष्य की रक्षा के लिए (अव्रतान्) दुष्ट आचरण करनेवाले डाकुओं को (शासत्) शिक्षा देवे और इनकी (त्वचम्) सम्बन्ध करनेवाली खाल को (कृष्णाम्) खैंचता हुआ (अरन्धयत्) नष्ट करे वा अग्नि जैसे (विश्वम्) सब पदार्थ मात्र को (दक्षन्) जलावे और (ततृषाणम्) पियासे प्राणी को (ओषति) दाहे, अति जलन देवे (न) वैसे (अर्शसानम्) प्राप्त हुए शत्रुगण को (न्योषति) निरन्तर जलावे वही चक्रवर्त्ति राज्य करने योग्य होता है ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को चाहिए कि श्रेष्ठों के गुण कर्म स्वभावों को स्वीकार और दुष्टों के गुण कर्म स्वभावों का त्याग कर श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों को ताड़ना देकर धर्म में राज्य की शासना करें ॥८॥

फिर इस संसार में विद्वानों को कैसा होना चाहिए
इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सूरश्चक्रं प्र वृहज्जात ओजसा प्रपित्वे
वाचमरुणो मुषायतीशान आ मुषायति ।
उशना यत्परावतोऽजगन्नूतये कवे ।
सुम्नानि विश्वा मनुषेव तुर्वणिरहा विश्वेव तुर्वणिः ॥९॥

पदार्थ—हे (कवे) विद्वन् ! (यत्) जो (ओजसा) अपने बल से (अरुणः) लालरंगयुक्त (तुर्वणिः) मेघ को छिन्न-भिन्न करता और (जातः) प्रकट होता हुआ (सूरः) सूर्य्यमण्डल जैसे (विश्वेवाहा) सब दिनों को वा (प्रपित्वे) उत्तरायण में (बृहत्) महान् (चक्रम्) चाक के समान वर्त्तमान जगत् को (प्र) प्रकट करता वैसे और (तुर्वणिः) दुष्टों की हिंसा करनेवाले उत्तमोत्तम (मनुषेव) मनुष्य के समान (विश्वा) समस्त (सुम्नानि) सुखों और (वाचम्) वाणी को (आ) अच्छे प्रकार प्रकट करें वा सूर्य जैसे (मुषायति) खण्डन करनेवाले के समान आचरण करता वैसे (ईशानः) समर्थ होते हुए (उशना) विद्यादि गुणों से कान्तियुक्त आप (ऊतये) रक्षा आदि व्यवहार के लिए (परावतः) पर अर्थात् दूर से (अजगन्) प्राप्त हो और दुष्टों को (मुषायति) खण्ड-खण्ड करें सो सबका सत्कार करने योग्य है ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो सूर्य के तुल्य विद्या, विनय और धर्म का प्रकाश करनेवाले सबकी उन्नति के लिए अच्छा यत्न करते हैं वे आप भी उन्नतियुक्त होते हैं ॥९॥

फिर राजा और प्रजाजनों को परस्पर कैसे वर्त्तना चाहिए
इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः पुरां दर्त्तः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
दिवोदासेभिरिन्द्र स्तवानो वावृधीथा अहोभिरिव द्यौः ॥१०॥

पदार्थ—(वृषकर्मन्) जिसके वर्षनेवाले मेघ के कामों के समान काम वह (पुराम्) शत्रुनगरों को (दर्त्तः) दरने, विदारने, विनाशने (इन्द्र) और सबकी रक्षा करनेवाले हे सभापति (दिवोदासेभिः) जो प्रकाश देनेवाली (स्तवानः) स्तुति प्रशंसा को प्राप्त हुए हैं (सः) वह आप (नव्येभिः) नवीन (उक्थैः) प्रशंसा करने योग्य (शग्मैः) सुखों और (पायुभिः) रक्षाओं से (द्यौः) जैसे सूर्य (अहोभिरिव) दिनों से वैसे (नः) हम लोगों की (पाहि) रक्षा करें और (वावृधीथाः) वृद्धि को प्राप्त होवें ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। राजपुरुषों को सूर्य के समान विद्या, उत्तम शिक्षा और धर्म के उपदेश से प्रजाजनों को उत्साह देना और उनकी प्रशंसा करनी चाहिए और वैसी ही प्रजाजनों को राजजन वर्त्तने चाहिएँ ॥ १० ॥

इस सूक्त में राजा और प्रजाजन के काम का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ एकता है यह जानना चाहिए ॥

यह एक सौ तीसवाँ सूक्त और १९ उन्नीसवाँ वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

इन्द्रायेत्यस्य सप्तर्चस्य एकत्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः। इन्द्रो देवता। १, २ निचृदत्यष्टिः, ४ विराडत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः। ३, ५, ६, ७ भुरिगष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

अब सात ऋचावाले एकसौ इकतीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में यह किस का राज्य है। इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्राय हि द्यौरसुरो अनम्नतेन्द्राय
मही पृथिवी वरीमभिर्द्युम्नसाता वरीमभिः ।
इन्द्रं विश्वे सजोषसो देवासो दधिरे पुरः ।
इन्द्राय विश्वा सवनानि मानुषा रातानि सन्तु मानुषा ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस (इन्द्राय) परमैश्वर्ययुक्त ईश्वर के लिए (द्यौः) सूर्य (असुरः) और मेघ वा जिस (इन्द्राय) परमैश्वर्ययुक्त ईश्वर के लिए (मही) बड़ी प्रकृति और (पृथिवी) भूमि (वरीमभिः) स्वीकार करने योग्य व्यवहारों से (द्युम्नसाता) प्रशंसा के विभाग अर्थात् अलग-अलग प्रतीति होने के निमित्त (अनम्नत) नमे, नम्रता को धारण करे वा जिस (इन्द्रम्) सर्वदुःख विनाशनेवाले परमेश्वर को (सजोषसः) एक-सी प्रीति करनेहारे (विश्वे) समस्त (देवासः) विद्वान्‌जन (पुरः) सत्कारपूर्वक (दधिरे) धारण करें उस (इन्द्राय) परमेश्वर के लिए (हि) ही (मानुषा) मनुष्यों के इन व्यवहारों के समान (वरीमभिः) स्वीकार करने योग्य धर्मों से (विश्वा) समस्त (सवनानि) ऐश्वर्य जो (मनुषा) मनुष्य सम्बन्धी हैं वे (रातानि) दिए हुये (सन्तु) होवें इसको जानो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को जानना चाहिए कि जितना कुछ यहाँ कार्यकारणात्मक जगत् और जितने जीव वर्त्तमान हैं यह सब परमेश्वर का राज्य है ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को परमात्मा की ही उपासना करनी चाहिए
इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं
वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् ।
तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि ।
इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥२॥

पदार्थ—हे परमेश्वर ! (पृथक्, पृथक्) अलग-अलग (सनिष्यवः) उत्तमता से सेवनेवाले (वृषमण्यवः) जिनका बैल के क्रोध के समान क्रोध वे हम लोग जिन (समानम्) सर्वत्र एक रस व्याप्त (एकम्) जिनका दूसरा कोई सहायक नहीं उन (स्वः) सुखस्वरूप (त्वा) आपको (विश्वेषु) समग्र (सवनेषु) ऐश्वर्य आदि पदार्थों में विद्वान् लोग जैसे (तुञ्जते) राखते अर्थात् मानते-जानते हैं वैसे (हि) ही (तम्) उन (त्वा) आपको (शूषस्य) बलवान् पुरुष के (धुरि) धारण करनेवाले काठ पर (पर्षणिम्) सींचने योग्य (नावम्) नाव के (न) समान (धीमहि) धारण करें वा (इन्द्रम्) परमैश्वर्य करानेवाले सूर्यमण्डल को जैसे उसके (आयवः) चारों ओर घूमते हुए लोक वैसे वा जैसे (यज्ञैः) विद्वानों के सङ्ग और सेवनों से (इन्द्रम्) परमैश्वर्य को (न) वैसे (चितयन्तः) अच्छे प्रकार चिन्तवन करते हुए (आयवः) पुरुषार्थ को प्राप्त होनेवाले हम लोग (स्तोमेभिः) स्तुतियों से आपकी प्रशंसा करें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं। मनुष्यों को चाहिए कि विद्वान् जन जिस सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य शुद्ध, बुद्ध और मुक्तस्वभाव, सर्वत्र एकरस, व्यापी, सबका आधार, सब ऐश्वर्य देनेवाले, एक अद्वैत कि जिसकी तुल्यता का दूसरा नहीं उस परमात्मा की उपासना करते वही निरन्तर सबको उपासना करने योग्य है ॥ २ ॥

फिर सब को किसकी उपासना करनी चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो
व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।
यद्‌ गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि ।
आविष्करिक्रद्वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य्य के देनेहारे जगदीश्वर ! (सक्षन्तः) सहते हुए (निःसृजः) निरन्तर अनेकानेक व्यवहारों को उत्पन्न करने (अवस्यवः) और अपनी रक्षा चाहनेवाले (निःसृजः) अतीव सम्पन्न (मिथुना) स्त्री और पुरुष दो-दो जने (त्वा) आपको प्राप्त होके (गव्यस्य) जाने योग्य (गव्यस्य) गौओं के लिए हित करनेवाले अर्थात् जिसमे आराम पाने को गौएँ जातीं उस गोठा आदि स्थान के (सातौ) सेवन मे जैसे दुःख छूटें वैसे दुःखों को (वितसते) छोड़ते हैं। हे (इन्द्र) दुःखों का विनाश करनेवाले (यत्) जो (गव्यन्ता) गौओं के समान आचरण करते (द्वा) दो (स्वः) सुखस्वरूप आपको (यन्ता) प्राप्त होते हुए (जना) स्त्री-पुरुषों को (आविष्करिक्रत्) प्रकट करते हुए आप (समूहसि) उनको अच्छे प्रकार चेतना देते हो उन (सचाभुवम्) समवाय सम्बन्ध मे प्रसिद्ध होते हुए (वज्रम्) दुष्टों को वज्र के समान दण्ड देने (वृषणम्) सबको सींचने (सचाभुवम्) और सत्य की भावना करानेवाले आपकी वे दोनों नित्य उपासना करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो पुरुष और स्त्री सब जगत् को प्रकाशित करने, उत्पन्न करने, धारण करने और देनेवाले सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर ही का सेवन करते हैं वे निरन्तर सुखी होते हैं ॥ ३ ॥

फिर कौन क्या करके क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र
शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः ।
शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते ।
महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सबके धारण करनहारे ! जैसे (पूरवः) मनुष्य (ते) आपके (अस्य) इस (वीर्यस्य) पराक्रम के (पुरः) प्रथम प्रभाव को (विदुः) जानें वैसे और भी जानें और (यत्) जो (सासहानः) सहन करता हुआ जन (इमाः) इन प्रजा और (शारदीः) शरद् ऋतुसम्बन्धी (अपः) जलों को (अवातिरः) प्रकट करे वैसे आप भी जानो और (अवातिरः) प्रकट करो। हे (शवसः) बल के (पते) स्वामी (इन्द्र) सबकी रक्षा करनेहारे ! जैसे आप जिस (अयज्युम्) यज्ञ न करनेहारे (मर्त्यम्) मनुष्य को (शासः) सिखाओ वा जो (मन्दसानः) कामना करता हुआ (महीम्) बड़ी (पृथिवीम्) पृथिवी को पाकर (इमाः) इन (अपः) प्राणों के समान वर्त्तमान प्रजाजनों को पीड़ा देवे (तम्) उसको आप (अमुष्णाः) चुराओ, छिपाओ और हम भी सिखावें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो धर्मात्मा सज्जनों के प्रभाव को जान कर धर्माचरण करते हैं वे दुष्टों को सिखला सकते हैं अर्थात् उनकी दुष्टता दूर होने को अच्छी शिक्षा दे सकते हैं ॥ ४ ॥

फिर प्रजा की रक्षा करनेहारे क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

आदित्ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु
वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ ।
चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे ।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥५॥

पदार्थ—हे (वृषन्) आनन्द को वर्षाते हुए विद्वन् ! (यत्) जो धर्मात्मा जन (ते) आपके (अस्य) इस (वीर्यस्य) पराक्रम के प्रभाव से (मदेषु) आनन्दों में वर्त्तमान (उशिजः) धर्म की कामना करते हुए जन (चर्किरन्) दुष्टों को निरन्तर दूर करें वा (श्रवस्यन्तः) अपने को अन्न की इच्छा करते हुए (प्रवन्तवे) अच्छे विभाग करने को (पृतनासु) मनुष्यों मे (सनिष्णत) सेवन करें अर्थात् (अन्यामन्याम्) अलग-अलग (नद्यम्) नदी को जैसे मेघ वैसे (कारम्) जो किया जाता उस कार का (सनिष्णत) सेवन करें उन (सखीयतः) मित्र के समान आचरण करते हुए जनों को आप (आविथ) पालो (यत्) जिस कारण जिनको (आविथ) पालो इससे उनको पुरुषार्थवाले (चकर्थ) करो (एभ्यः) इन धार्मिक सज्जनों से सब राज्य की पालना करो और जो आपके कर्मचारी पुरुष हों (ते) वे भी धर्म से (आदित्) ही प्रजाजनों की पालना करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो मनुष्य प्रजा की रक्षा करने मे अधिकार पाये हुए हैं वे धर्म के साथ प्रजा पालने की इच्छा करते हुए उत्तम यत्नवान् हों ॥ ५ ॥

फिर मनुष्य किस से क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्यर्कस्य बोधि
हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः ।
यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिन् चिकेतसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥६॥

पदार्थ—हे (वज्रिन्) प्रशंसित शस्त्रयुक्त विद्वान् ! (इन्द्र) दुष्टों का संहार करनेवाले आप जैसे (अर्कस्य) सूर्य और (अस्याः) इस (उषसः) प्रभात-वेला के प्रभाव से जन सचेत होते, जागते हैं वैसे (नः) हम लोगों को (बोधि) सचेत करो (हि, उतो) और निश्चय से (स्वर्षाता) सुखों के अलग-अलग करने मे (हवीमभिः) स्पर्द्धा करने योग्य कामों के समान (हवीमभिः) प्रशंसा के योग्य कामों से (हविषः) देने योग्य पदार्थ का (जुषेत) सेवन करो (यत्) जो (वृषा) बैल के समान बलवान् आप (मृधः) संग्रामों मे स्थित शत्रुओं को (हन्तवे) मारने को (चिकेतसि) जानो (नवीयसः) अतीव नवीन विद्या पढ़ने वाले (वेधसः) बुद्धिमान् (मे) मुझ विद्यार्थी और (अस्य) इस (नवीयसः) अत्यन्त नवीन पढ़ानेवाले विद्वान् के (मन्म) विज्ञान उत्पन्न करनेवाले शास्त्र को (आश्रुधि) अच्छे प्रकार सुनो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे सूर्य से प्रकट हुई प्रभातवेला से जागे हुए जन सूर्य के प्रकाश मे अपने-अपने व्यवहारों का आरम्भ करते हैं वैसे विद्वानों से सुबोध किये मनुष्य विशेष ज्ञान के प्रकाश में अपने-अपने कामों को करते हैं। जो दुष्टों की निवृत्ति और श्रेष्ठों की उत्तम सेवा वा नवीन पढ़े हुए विद्वानों के निकट से विद्या का ग्रहण करते हैं वे चाहे हुए पदार्थ की प्राप्ति में सिद्ध होते हैं ॥ ६ ॥

फिर राजा और प्रजाजनों को किस को छोड़ क्या करना चाहिए,
इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयुरमित्रयन्तं
तुविजात मर्त्यं वज्रेण शूर मर्त्यम् ।
जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तमः ।
रिष्टं न यामन्नप भूतु दुर्मतिर्विश्वाप भूतु दुर्मतिः ॥७॥२०॥

पदार्थ—हे (तुविजात) बहुतों मे प्रसिद्ध (शूर) शत्रुओं को मारनेवाले (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त (सुश्रवस्तमः) अतीव सुन्दरता से सुननेहारे और (वावृधानः) बढ़ते हुए (अस्मयुः) हम लोगों मे अपनी इच्छा करनेवाले (त्वम्) आप (वज्रेण) शस्त्र से (अमित्रयन्तम्) शत्रुता करते हुए (मर्त्यम्) मनुष्य को (जहि) मारो (यः) जो (नः) हम लोगों के लिए (अघायति) अपना दुष्कर्म चाहता है (तम्) उस (मर्त्यम्) मनुष्य को मारो और जो (यामन्) रात्रि मे (दुर्मतिः) दुष्टमतिवाला मनुष्य (अप, भूतु) अप्रसिद्ध हो, छिपे उसको (रिष्टम्) दो मारनेवाले (न) जैसे मारें वैसे (जहि) मारो अर्थात् अत्यन्त दण्ड देओ जो (दुर्मतिः) दुष्टमति हो वह (विश्वा) समस्त हम लोगों से (अप, भूतु) छिपे, दूर हो, यह आप (शृणुष्व) सुनो ॥ ७ ॥

भावार्थ— इस मन्त्र मे उपमालंकार है। जो धार्मिक राजा और प्रजाजन हों वे सब चतुराइयों से द्वेष, वैर करने और पराया माल हरनेवाले दुष्टों को मार धर्म के अनुकूल राज्य की शिक्षा और बेखटक मार्ग कर विद्या की वृद्धि करें ॥ ७ ॥

इस सूक्त मे श्रेष्ठ और दुष्ट मनुष्यों का सत्कार और ताड़ना के वर्णन से
इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है
यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ इकतीसवां सूक्त और बीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ त्वयेत्यस्य षडृचस्य द्वात्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः ।
इन्द्रो देवताः । १, ३, ५, ६ विराडत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ।
२ भुरिगतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ४ निचृदष्टि-
श्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर युद्ध समय मे सेनापति क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्वया वयं मघवन् पूर्व्ये धन इन्द्रत्वोताः
सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतः ।
नेदिष्ठे अस्मिन्नहन्यधि वोचा नु सुन्वते ।
अस्मिन् यज्ञे वि चयेमा भरे कृतं वाजयन्तो भरे कृतम् ॥१॥

पदार्थ—हे (मघवन्) परम प्रशंसित बहुत धनवाले (इन्द्रत्वोताः) अत्युत्तम ऐश्वर्ययुक्त जो आप उन्होंने पाले हुए (वयम्) हम लोग (त्वया) आपके साथ (पूर्व्ये) अगले महाशयों ने किये (धने) धन के निमित्त (पृतन्यतः) मनुष्यों के समान आचरण करते हुए मनुष्यों को (सासह्याम) निरन्तर सहैं (वनुष्यतः) और सेवन करनेवालों का (वनुयाम) सेवन करें तथा (भरे) रक्षा में (कृतम्) प्रसिद्ध हुए को (वाजयन्तः) समझाते हुए हम लोग (अस्मिन्) इस (यज्ञे) यज्ञ में तथा (भरे) संग्राम मे (कृतम्) उत्पन्न हुए व्यवहार को (विचयेम) विशेष कर खोजें और (नेदिष्ठे) अति निकट (अस्मिन्) इस

(अहनि) आज के दिन (सुन्वते) व्यवहारों की सिद्धि करते हुए आप सत्य उपदेश (नु) शीघ्र (अविबोध) सबके उपगन्त करो ॥ १ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिए कि धार्मिक सेनापति के साथ प्रीति और उत्साह कर शत्रुओं को जीतके अति उत्तम धन का समूह सिद्ध करें और सेनापति समय-समय पर अपनी वक्तृता से शूरता आदि गुणों का उपदेश कर शत्रुओं के साथ अपने सैनिकजनों का युद्ध करावे ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स्वर्जेषे भरं आप्रस्य वक्मन्युषर्बुधः
स्वस्मिन्नञ्जसि क्राणस्य स्वस्मिन्नञ्जसि ।
अहन्निन्द्रो यथा विदे शीर्ष्णाशीर्ष्णोपवाच्यः ।
अस्मत्रा ते सध्र्यक् सन्तु रातयो भद्रा भद्रस्य रातयः ॥२॥

पदार्थ- हे मनुष्यो ! (**यथ**) जैसे (**सध्र्यक्**) साथ जानेवाला (**इन्द्र**) सूर्य्यमण्डल (**स्वर्जषे**) सुख से जीतनेवाले (**विदे**) ज्ञानवान् पुरुष के लिए (**शीर्ष्णाशीर्ष्णा**) शिर माथे (**उपवाच्य**) समीप कहने योग्य है वैसे (**भरे**) संग्राम में (**आप्रस्य**) पूर्ण बल (**क्राणस्य**) करते हुए समय के विभाग (**उषर्बुध**) उष काल अर्थात् रात्रि के चौथे प्रहर में जागे हुए तुम लोग (**वक्मनि**) उपदेश में जैसे (**स्वस्मिन्**) अपने (**अञ्जसि**) व्यवहार के निमित्त वैसे (**स्वस्मिन्**) अपने (**अञ्जसि**) चाहे हुए व्यवहार में जैसे मेघ को सूर्य्य (**अहन्**) मारता वैसे शत्रुओं को मारो जो (**अस्मत्रा**) हम लोगों के बीच (**भद्रा**) कल्याण करनेवाले (**रातय**) दान आदि काम (**ते**) तुम (**भद्रस्य**) कल्याण करनेवाले के (**रातय.**) दानों के समान हो वे (**ते**) तेरे (**सन्तु**) हों ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सभापति सब शूरवीरों का अपने समान सत्कार करता है वह शत्रुओं को जीतकर सबके लिए सुख दे सकता है, संग्राम में अपने पदार्थ औरों के लिए और औरों के अपने लिए करने चाहिए ऐसे एक-दूसरे में प्रीति के साथ विरोध छोड़ उत्तम जय प्राप्त करनी चाहिए ॥ २ ॥

फिर मनुष्य क्या करके कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तत्तु प्रयः प्रत्नथा ते शुशुक्वनं यस्मिन्
यज्ञे वारमकृण्वत क्षयमृतस्य वारसि क्षयम् ।
वि तद्वोचेरध द्वितान्तः पश्यन्ति रश्मिभिः ।
स घा विदे अन्विन्द्रो गवेषणो बन्धुक्षिद्भ्यो गवेषणः ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (**गवेषण**) जो वाणी की इच्छा करता है उस (**इन्द्र**) ऐश्वर्यवान् के समान (**ते**) आपका (**प्रत्नथा**) प्राचीन (**यस्मिन्**) जिस (**यज्ञे**) व्यवहार में (**ऋतस्य**) सत्य का (**शुशुक्वनम्**) अतिप्रकाशित (**क्षयम्**) निवास का (**वारम्**) स्वीकार करने का (**वा**) जल और (**क्षयम्**) प्राप्त होने योग्य पदार्थ के समान जो (**प्रय**) प्रीति करनेवाले वचन को (**अकृण्वत**) उच्चारण करें उनके (**तत्**) उस पूर्वोक्त वचन को (**तु**) तो आप प्राप्त (**असि**) हैं (**अध**) इसके अनन्तर (**द्विता**) दो का होना जैसे हो वैसे (**रश्मिभि**) किरणों के साथ (**अन्त**) भीतर जिसको (**पश्यन्ति**) देखते हैं (**तत्**) उसको तू (**वि, वोचे:**) अच्छे प्रकार कह और (**स**) वह (**बन्धुक्षिद्भ्य**) बन्धुओं को निवास कराते हुए पुरुषों के लिए (**गवेषण**) किरणों को इष्ट सूर्य के समान ऐश्वर्यवान् मैं (**अनु, विदे**) अनुकूलता से जानता हूँ (**घ**) उसी को आप भी जानो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सत्य गुणों में प्रीति करते हैं वे विद्वान् होते और जो विद्वान् हों वे सूर्य के प्रकाश से सब पदार्थों को हाथ में आमले के समान देख सकते हैं ॥ ३ ॥

फिर कौन चक्रवर्त्ति राज्य करने को योग्य होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

नू इत्था ते पूर्वथा प्रवाच्यं
यदङ्गिरोभ्योऽवृणोरप व्रजमिन्द्र शिक्षन्नप व्रजम् ।
ऐभ्यः समान्या दिशाऽस्मभ्यं जेषि योत्सि च ।
सुन्वद्भ्यो रन्धया कं चिदव्रतं हृणायन्तं चिदव्रतम् ॥४॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) पढ़ाने से अज्ञान का विनाश करनेवाले ! (**शिक्षन्**) विद्या का ग्रहण कराते हुए आप (**अप, व्रजम्**) न जानने योग्य कुटिलगामी के समान (**व्रजम्**) अधर्ममार्गी जन को (**अपावृणो**) मत स्वीकार करो (**अङ्गिरोभ्य:**) प्राणों के समान विद्वान् जनों ने (**यत्**) जो (**पूर्वथा**) प्राचीन ढङ्गों से (**प्रवाच्यम्**) अच्छे प्रकार कहने योग्य उसको (**च**) भी (**नु**) शीघ्र ग्रहण करो जो आप (**एभ्य**) इन विद्वान् और (**सुन्वद्भ्य**) पदार्थों के सार को खींचते हुए (**अस्मभ्यम्**) हम लोगों के लिए (**समान्या**) एक-सी वर्त्तमान (**दिशा**) दिशा से शत्रुओं को (**आ, योत्सि**) अच्छे प्रकार लड़ते-लड़ते (**च**) और (**जेषि**) जीतते वा (**हृणायन्तम्**) हिरण के समान कूदते-फादते हुए (**अव्रतम्**) सत्यभाषणादि व्यवहार रहित पुरुष के (**चित्**) समान (**अव्रतम्**) झूठे आचार से युक्त जन को (**रन्धय**) मारो (**च**) और वैसे (**कं, चित्**) किसी दुष्ट को दण्ड देने के विना मत छोड़ो (**इत्था**) ऐसे वर्त्तते हुए (**ते**) आपको इस जन्म और परजन्म में आनन्द की सिद्धि होगी इसको जानो ॥ ४ ॥

भावार्थ - जिनके राज्य में दुष्ट वचन कहनेवाले चोर और व्यभिचारी नहीं हैं वे चक्रवर्त्ति राज्य करने को समर्थ होते हैं ॥ ४ ॥

फिर मनुष्य क्या करके क्या कर सकते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स यज्जनान् क्रतुभिः शूर ईक्षयद्धने हिते
तरुषन्त श्रवस्यवः प्र यक्षन्त श्रवस्यवः ।
तस्मा आयुः प्रजावदिद्बाधे अर्चन्त्योजसा ।
इन्द्र ओक्यं दिधिषन्त धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (**श्रवस्यव**) अपने को सुनने में चाहना करनेवालों के समान वर्त्तमान (**श्रवस्यव**) अपने को सुनने की इच्छा करनेवाले तुम जैसे (**क्रतुभि**) बुद्धि वा कर्मों से (**यत्**) जिन (**जनान्**) धार्मिक जनों को (**हिते**) सुख करनेहारे (**धने**) धन के निमित्त (**तरुषन्त**) पार करो उद्धार करो और (**प्रयक्षन्त**) दुष्टों को दण्ड देओ और जो (**शूर**) निर्भय शूरवीर पुरुष (**समीक्षयत्**) ज्ञान करावे व्यवहार को दर्शावे (**तस्मै**) उसके लिए (**प्रजावत्**) जिसमें बहुत सन्तान विद्यमान वह (**आयु**) आयु हो। हे उत्तम विचारशील पुरुषो ! तुम (**धीतय**) धारणा करते हुओं के (**न**) समान (**धीतय**) धारणा करनेवाले होते हुए परम ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर में (**ओक्यम्**) घरों में जो श्रेष्ठ व्यवहार उसको सिद्ध कर (**देवान्**) विद्वानों को (**अच्छ**) अच्छा (**दिधिषन्त**) उपदेश करते, समझाते हो वे आप (**बाधे**) दुष्ट व्यवहारों की बाधा के लिए (**ओजसा**) पराक्रम से (**अर्चन्ति**) सत्कार करते हुओं के समान कष्ट में (**इत्**) ही रक्षा करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो विद्वानों के सङ्ग और सेवा में विद्याओं को पाकर पुरुषार्थ से परम ऐश्वर्य की उन्नति करते हैं वे सब ज्ञानवान् पुरुषों को सुखयुक्त कर सकते हैं ॥ ५ ॥

फिर सेना जन परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा
यो नः पृतन्यादप तंतमिद्धतं वज्रेण तंतमिद्धतम् ।
दूरे चत्ताय छन्त्सद् गहनं यदिनक्षत् ।
अस्माकं शत्रून्परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः ॥६॥

पदार्थ—हे (**पुरोयुधा**) पहले युद्ध करनेवाले (**इन्द्रापर्वता**) सूर्य और मेघ के समान वर्त्तमान सेनाधीशो ! (**युवम्**) तुम (**य**) जो (**न**) हम लोगों की (**पृतन्यात्**) सेना को चाहे (**तम्**) उसको (**वज्रेण**) पैने तीक्ष्ण शस्त्र वा अस्त्र अर्थात् कलाकौशल से बने हुए शस्त्र से (**अप, हतम्**) अत्यन्त मारो जैसे तुम दोनों जिस-जिसको (**हतम्**) मारो (**त, तम्**) उस-उसको (**इत्**) ही हम लोग भी मारें और जिस-जिसको हम लोग मारें (**तं, तम्**) उस-उसको (**इत्**) ही तुम मारो। हे (**शूर**) शूरवीर ! (**दर्मा**) शत्रुओं को विदीर्ण करते हुए आप जिन (**अस्माकम्**) हमारे (**शत्रून्**) शत्रुओं को (**विश्वत.**) सब ओर से (**दर्षीष्ट**) दरो विदीर्ण करो इनको हम लोग भी (**विश्वतः**) सब ओर से (**परि**) सब प्रकार दरें, विदीर्ण दरें (**यत्**) जो (**चत्ताय**) भागे हुए के लिए (**गहनम्**) कठिन व्यवहार को (**दूरे**) दूर में (**छन्त्सत्**) स्वीकार करे और शत्रुओं की सेना को (**इनक्षत्**) व्याप्त हो उसकी तुम निरन्तर रक्षा करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सेना पुरुषों को जो सेनापति आदि पुरुषों के शत्रु हैं वे अपने भी शत्रु जानने चाहिएँ शत्रुओं से परस्पर फूट को न प्राप्त हुए धार्मिक जन उन शत्रुओं को विदीर्ण कर प्रजाजनों की रक्षा करें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में राजधर्म का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ बत्तीसवाँ सूक्त और इक्कीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

उभे इत्यस्य सप्तर्चस्य त्रयस्त्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः ।
इन्द्रो देवता । १ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवत स्वरः । २, ३, निचृदनुष्टुप्;
४ स्वराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । ५ आर्षी गायत्रीछन्द । ।
गान्धारः स्वरः । ६ स्वराड् ब्राह्मीजगती छन्दः । निषादः
स्वरः । ७ विराडष्टिश्छन्दः । मध्यम. स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले एकसौ तेंतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र
में कैसे स्थिर राज्य हो इस विषय का उपदेश किया है—

उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुहो दहामि सं महीरनिन्द्राः ।
अभिव्लग्य यत्र हता अमित्रा वैलस्थानं परि तृळ्हा अशेरन् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (अनिन्द्राः) जिनमे अविद्यमान राजजन हैं उन (महीः) पृथिवी भूमियों का (अभिव्लग्य) सब ओर से संग कर अर्थात् उनको प्राप्त होकर (ऋतेन) सत्य से (उभे) दोनों (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी को (पुनामि) पवित्र करता हूँ और (द्रुहः) द्रोह करनेवालों को (सं दहामि) अच्छी प्रकार जलाता हूँ (यत्र) जहाँ (वैलस्थानम्) बिलरूप स्थान को प्राप्त (परि, तृळ्हाः) सब ओर से मारे (हताः) मरे हुए (अमित्राः) मित्रभाव रहित शत्रुजन (अशेरन्) सोवें वहाँ मैं यत्न करता हूँ वैसा तुम भी आचरण करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । सब मनुष्यो को यह निरन्तर इच्छा करनी चाहिए कि सत्यव्यवहार से राज्य की उन्नति पवित्रता शत्रुओं की निवृत्ति और निर्वैर निष्शत्रु राज्य हो ॥ १ ॥

फिर शत्रुजन कैसे मारने चाहिएँ इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अभिऽव्लग्या चिदद्रिवः शीर्षा यातुमतीनाम् ।
छिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा ॥२॥

पदार्थ—हे (अद्रिवः) मेघ के समान वर्त्तमान शूरवीर तू प्रशंसित बल को (अभिव्लग्य) सब ओर से पाकर (यातुमतीनाम्) जिसमे बहुत हिंसक मार-धाड़ करनेहारे विद्यमान उन सेनाओं के (महावटूरिणा) बड़े-बड़े रंग से युक्त (पदा) चौथे भाग से जैसे (चित्) वैसे (वटूरिणा) लपटे हुए (पदा) शस्त्रों के चौथे भाग से वा अपने पैर से दबाके (शीर्षा) शत्रुओ के शिरों को (छिन्धि) छिन्न-भिन्न कर ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो अपने बल की उन्नति कर शत्रुओ के बलो को छिन्न-भिन्न कर उनको पैर से दबाता है वह राज्य करने के योग्य होता है ॥ २ ॥

फिर शत्रुओं की सेना कैसे मारनी चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अवासां मघवञ्जहि शर्धो यातुमतीनाम् ।
वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके ॥३॥

पदार्थ—हे (मघवन्) परम धन युक्त राजन् ! (अर्मके) जो दुःख पहुँचानेहारा और (वैलस्थानके) जिसमें बिलयुक्त स्थान हैं उनके समान (अर्मके) दुःख पहुँचानेहारे (महावैलस्थे) बड़े-बड़े गढ़ों से युक्त स्थान मे (आसाम्) इन (यातुमतीनाम्) हिंसक सेनाओं के (शर्धः) बल को (अव, जहि) छिन्न-भिन्न करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—सेनावीरो को चाहिए कि शत्रुओं की सेनाओ को अतीव दुःख से जाने योग्य गढ़ों आदि से युक्त स्थान में गिराकर मारें ॥ ३ ॥

यासां तिस्रः पञ्चाशतोऽभिव्लङ्गैरपावपः ।
तत्सु ते मनायति तकत्सु ते मनायति ॥४॥

पदार्थ—हे परम उत्तम धनयुक्त राजन् ! (यासाम्) जिन शत्रुसेनाओ के बीच (तिस्रः) तीन वा (पञ्चाशतः) पचास सेनाओं की (अभिव्लङ्गैः) चारों ओर से जाने-आने आदि व्यवहारों से (अपावपः) दूर पहुंचाओ उन सेनाओं का (तत्) वह पहुँचाना (ते) तेरे लिए (सुमनायति) अपने अच्छे मन के समान आचरण करता फिर भी (तकत्) वह (ते) तेरे लिए (सुमनायति) अपने अच्छे मन के समान आचरण करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि ऐसा बल बढ़ावें जिससे एक ही वीर पचास दुष्ट शत्रुओं को जीते और अपने बल की रक्षा करे ॥ ४ ॥

फिर राजजनों को क्या करके क्या बढ़ाना चाहिए इस विषय को
अगले मन्त्र मे कहा है—

पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं पिशाचिमिन्द्र सं मृण । सर्वं रक्षो नि बर्हय ॥५॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दुष्टों को विदीर्ण करनेहारे राजजन ! आप (पिशङ्गभृष्टिम्) अच्छे प्रकार पीला वर्ण होने से जिस पाक होता (अम्भृणम्) उस निरन्तर भयंकर (पिशाचिम्) पीसने दुःख देनेहारे जन को (सम्मृण) अच्छे प्रकार मारो और (सर्वम्) समस्त (रक्षः) दुष्टजन को (निबर्हय) निकालो ॥५॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिए कि दुष्ट शत्रुओं को निर्मूल कर सब सज्जनों को निरन्तर बढ़ावें ॥ ५ ॥

फिर उत्तम मनुष्यों को किसकी निवृत्ति कर क्या प्रचार करना चाहिए
इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः शुशोच हि द्यौः क्षा
न भीषाँ अद्रिवो घृणान्न भीषाँ अद्रिवः ।
शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिर्वधैरुग्रेभिरीयसे ।
अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभिस्त्रिसप्तैः शूर सत्वभिः ॥६॥

पदार्थ—हे (अद्रिवः) प्रशंसित मेघ युक्त सूर्य के समान वर्त्तमान (इन्द्र) उत्तम गुणों से प्रकाशित पुरुष ! आप (अवः) नीचे को मुख राखनेवाले कुटिल को (दादृहि) विदारो, मारो (नः) हम लोगों को (शुशोच) शोचो, हमारे न्याय को (श्रुधि) सुनो और (द्यौः) प्रकाश जैसे (क्षाः) भूमियों को (न) वैसे (महः) अत्यन्त रक्षा करो । हे (अद्रिवः) प्रशंसित पर्वतोंवाले ! आप (हि) ही (भीषा) भय से (घृणात्) प्रकाशित के समान न्याय को प्रकाश करो और (भीषा) भय से दुष्टों को दण्ड देओ । हे (शूर) निर्भय निडर शूरवीर पुरुष ! (शुष्मिन्तमः) जिनके अतीव बल विद्यमान (अपूरुषघ्नः) जो पुरुषों को न मारने-वाले आप (उग्रेभिः) तीक्ष्ण स्वभाववाले (शुष्मिभिः) बली पुरुषों के साथ तीक्ष्ण शत्रुओं के (वधैः) मारने के उपायों से (ईयसे) जाते हो सो आप (त्रिसप्तैः) इक्कीस (सत्वभिः) विद्वानों के साथ ही वर्त्ताव रक्खो । हे (अप्रतीत) न प्रतीत होनेवाले गूढ़ विचारयुक्त (शूर) दुष्टों को मारनेवाले आप (हि) ही (सत्वभिः) पदार्थों से युक्त होओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । धार्मिक पुरुष को नीचपन की निवृत्ति और उत्तमता का प्रचार कर प्रशंसित बल की उन्नति के लिए शूरवीर पुरुषों से प्रजाजनों की अच्छे प्रकार रक्षा कर दश प्राण और एक जीव से दश इन्द्रियों के समान पुरुषार्थ कर यथायोग्य पदार्थों की वृद्धि प्राप्त करने योग्य है ॥ ६ ॥

फिर क्या करके और किसकी निवृत्ति कर मनुष्य समर्थ होते हैं
इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

वनोति हि सुन्वन्क्षयं परीणसः
सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः ।
सुन्वान इत्सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः ।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥७॥२२॥१९॥

पदार्थ—जो (इन्द्र) सुख देनेवाला (सुन्वानाय) पदार्थों का सार निकालते हुए पुरुष को (आभुवम्) जिसमे अच्छे प्रकार सुख होता उस (रयिम्) धन को (ददाति) देता है वह (सुन्वान) पदार्थों के सारों को प्रकट करता हुआ (अवृतः) प्रकट (वाजी) प्रशस्त ज्ञानवान् पुरुष (सहस्रा) हजारों (देवानाम्) विद्वानों के (अव, द्विषः) प्रति शत्रुओं को (इत्) ही (सिषासति) अलग करने को चाहता है जो (अव, द्विषः) अत्यन्त वैर करनेवालों को अलग करना चाहता है वह सब के लिए (आभुवम्) जिसमे उत्तम सुख हो उस धन को (ददाति) देता है और जो (हि) निश्चय से (सुन्वान) पदार्थों के सार को सिद्ध करता हुआ (यजति) संग करता है (स्म) वही (परीणसः) बहुत पदार्थों और (क्षयम्) घर को (सुन्वन्) सिद्ध करता हुआ (हि) ही सुख (वनोति) माँगता है ॥७॥

भावार्थ—जो सब मे मित्रता की भावना कराकर सब के शत्रुओं की निवृत्ति कराते हैं वे सब के सुख करानेवाले होकर सब के लिए बहुत सुख दे सकते हैं ॥७॥

इस सूक्त मे श्रेष्ठों की पालना और दुष्टों की निवृत्ति से राज्य की स्थिरता का वर्णन है इससे इस सूक्त मे कहे हुए अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ तेंतीसवां सूक्त, बाईसवां वर्ग और उन्नीसवां अनुवाक पूरा हुआ ॥

卐

आ त्वेत्यस्य षडृचस्य चतुस्त्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः ।
वायुर्देवता । १, ३ निचृदत्यष्टिः, २, ४ विराडत्यष्टिश्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः । ५ अष्टिः, ६ विराडष्टिश्छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले एकसौ चौंतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में
विद्वान् कैसे हों इस विषय को कहा है—

आ त्वा जुवो रारहाणा
अभि प्रयो वायो वहन्त्विह पूर्वपीतये सोमस्य पूर्वपीतये ।
ऊर्ध्वा ते अनु सूनृता मनस्तिष्ठतु जानती ।
नियुत्वता रथेना याहि दावने वायो मखस्य दावने ॥१॥

पदार्थ—हे (वायो) पवन के समान वर्त्तमान विद्वन् ! (इह) इस संसार में (सोमस्य) ओषधि आदि पदार्थों के रस को (पूर्वपीतये) अगले सज्जनों के पीने के समान (पूर्वपीतये) जो पीना है उसके लिए (ध्रुवः) वेगवान् (रारहाणाः) छोड़नेवाले पवन (त्वा) आपको (प्रयः) प्रीतिपूर्वक (अभि, आ, वहन्तु) चारों ओर से पहुँचावें । हे (वायो) ज्ञानवान् पुरुष ! जिस (ते) आप के (ऊर्ध्वा) उन्नतियुक्त अति उत्तम (सूनृता) प्रिय वाणी (जानती) और ज्ञानवती हुई स्त्री (मन) मन के (अनु, तिष्ठतु) अनुकूल स्थित हो सो आप (मखस्य) यज्ञ के सम्बन्ध में (दावने) दान करने वाले के लिए जैसे वैसे (दावने) देनेवाले के लिए (नियुत्वता) जिसमें बहुत घोड़े विद्यमान हैं उस (रथेन) रमण करने योग्य यान से (आ, याहि) आओ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वान् लोग सब प्राणियों में प्राण के समान प्रिय होकर अनेक घोड़ों से जुते हुए रथों से आवें-जावें ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को किसका सेवन कर क्या प्राप्त करना चाहिए
इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायविन्दवोऽस्मत्क्राणासः सुकृता

अभिद्यवो गोभिः क्राणा अभिद्यवः ।

यद्ध क्राणा इरध्यै दक्षं सचन्त ऊतयः ।

सध्रीचीना नियुतो दावने धिय उप ब्रुवत ईं धियः ॥२॥

पदार्थ—हे (वायो) पवन के समान मनोहर विद्वन् ! (यत्) जो (अस्मत्) हम लोगों से (क्राणासः) उत्तम कर्म करते हुए (अभिद्यवः) जिनके चारों ओर से विद्या के प्रकाश विद्यमान (सुकृताः) जो सुन्दर उत्तम कर्मवाले (अभिद्यवः) और सब ओर से सूर्य की किरणों के समान अत्यन्त प्रकाशमान (इन्दवः) आर्द्रचित्त (क्राणाः) पुरुषार्थ करते हुए सज्जनों के समान (मन्दिनः) और सुख की कामना करते हुए (त्वा) आपको (मन्दन्तु) चाहें वे (ह) ही (ऊतयः) रक्षा आदि क्रियावान् (क्राणा) कर्म करनेवाले (दक्षम्) बल को (गोभिः) भूमियों के साथ (इरध्यै) प्राप्त होने को (सचन्त) युक्त होते अर्थात् सम्बन्ध करते हैं । जो (दावने) दान के लिए (सध्रीचीनाः) साथ सत्कार पाने वा आने-जानेवाले (नियुत) नियुक्त की अर्थात् किसी विषय में लगायी हुई (धियः) बुद्धियों का (उप, ब्रुवते) उपदेश करते हैं वे (ईम्) सब ओर से (धियः) कर्मों को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य विद्वानों का सेवन करते और सत्य का उपदेश करते हैं वे शरीर और आत्मा के बल को कैसे न प्राप्त हों ॥ २ ॥

फिर विद्वानों को कैसे वर्त्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वायुर्युङ्क्ते रोहिता वायुररुणा

वायू रथे अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ।

प्र बोधया पुरन्धिं जार आ ससतीमिव ।

प्र चक्षय रोदसी वासयोषसः श्रवसे वासयोषसः ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (धुरि) सब के आधारभूत जगत् में (वोळ्हवे) पदार्थों के पहुँचाने को (वहिष्ठा) अतीव पहुँचानेवाला (वायुः) पवन (वोळ्हवे) देशान्तर में पहुँचाने के लिए (धुरि) यान के मुख्य भाग में (रोहिता) लाल-लाल रंग के अग्नि आदि पदार्थों को वा (वायुः) पवन (अरुणा) पदार्थों को पहुँचाने में समर्थ जल धुँआ आदि पदार्थों को (वायुः) पवन (अजिरा) फेंकने योग्य पदार्थों को (रथे) रथ में (युङ्क्ते) जोड़ता है अर्थात् कलाकौशल से प्रेरणा को प्राप्त हुआ उन पदार्थों का सम्बन्ध करता है इस से आप (जारः) क्रूर पुरुष जैसे (ससतीमिव) सोती हुई स्त्री को जगावे वैसे (पुरन्धिम्) बहुत उत्तम बुद्धिमती स्त्री को (प्रबोधय) भली-भाँति बोध कराओ (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी का (प्र, चक्षय) उत्तम व्याख्यान करो अर्थात् उनके गुणों को कहो (उषस) दाह आदि के करनेवाले पदार्थों अर्थात् अग्नि आदि को कलायन्त्रादिकों में (वासय) बसाओ, स्थापन करो और (श्रवसे) सन्देशादि सुनने के लिए (उषस) दिनों को (वासय) तार बिजुली की विद्या से स्थिर करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो पवन के समान अच्छा यत्न करते और उत्तम धर्मात्मा के समान मनुष्यों को बोध कराते हैं वे सूर्य और पृथिवी के समान प्रकाश और सहनशीलता से युक्त होते हैं ॥ ३ ॥

फिर कौन मनुष्य कल्याण करने वाले होते हैं इस विषय को
अगले मन्त्र में कहा है—

तुभ्यमुषासः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते

दंसु रश्मिषु चित्रा नव्येषु रश्मिषु ।

तुभ्यं धेनुः सबर्दुघा विश्वा वसूनि दोहते ।

अजनयो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आ वक्षणाभ्यः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! जैसे (शुचयः) शुद्ध (उषासः) प्रातः समय के पवन (परावति) दूर देश में (दंसु) जिनमें मनुष्य मन का दमन करते उन (रश्मिषु) किरणों में और (नव्येषु) नवीन (रश्मिषु) किरणों में वैसे (तुभ्यम्) तेरे लिए (चित्रा) चित्र-विचित्र अद्भुत (भद्रा) सुख करनेवाले (वस्त्रा) वस्त्र वा ढाँपने के अन्य पदार्थों का (तन्वते) विस्तार करते वा जैसे (सबर्दुघा) सब कामों को पूर्ण करती हुई (धेनुः) वाणी (तुभ्यम्) तेरे लिए (विश्वा) समस्त (वसूनि) धनों को (दोहते) पूरा करती वा जैसे (अजनयः) न उत्पन्न होनेवाले (मरुतः) पवन (वक्षणाभ्यः) जो जलादि पदार्थों को बहानेवाली नदियों में (दिवः) प्रकाश के बीच (वक्षणाभ्यः) बहानेवाली किरणों से जल का (आ) अच्छे प्रकार विस्तार करते वैसा तू हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य किरणों के समान न्याय के प्रकाश और अच्छी शिक्षायुक्त वाणी के समान सत्यता बोलचाल और नदी के समान अच्छे गुणों की प्राप्ति करते वे समग्र सुख को प्राप्त होते हैं ॥४॥

फिर मनुष्य कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो मदेषूग्रा इषणन्त

भुर्वण्यपामिषन्त भुर्वणि ।

त्वां त्सारी दसमानो भगमीट्टे तक्ववीये ।

त्वं विश्वस्माद्भुवनात्पासि धर्मणासुर्यात्पासि धर्मणा ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो (त्वम्) आप (धर्मणा) धर्म से (असुर्यात्) दुष्टों के निज व्यवहार से (पासि) रक्षा करते हो वा (धर्मणा) धर्म के साथ (विश्वस्मात्) समग्र (भुवनात्) संसार से (पासि) रक्षा करते हो तथा (त्सारी) तिरछे-बाँके चलते और (दसमानः) शत्रुओं का संहार करते हुए आप (तक्ववीये) जिसमें चोरों का सम्बन्ध नहीं उस मार्ग में (भगम्) ऐश्वर्य्य की (ईट्टे) प्रशंसा करते उन (त्वाम्) आप को जो (अपाम्) जल वा कर्मों की (भुर्वणि) धारणवाले व्यवहार में (इषन्त) चाहते हैं वे (तुभ्यम्) पालना और (शुचयः) पवित्रता करनेवाले (शुक्रासः) शुद्ध वीर्य (उग्राः) तीव्र जन (मदेषु) आनन्दों में (भुर्वणि) और पालन-पोषण करनेवाले व्यवहार में (तुभ्यम्) तुम्हारे लिए (इषणन्तः) इच्छा करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों की योग्यता है कि जो जिनकी रक्षा करें उनकी वे भी रक्षा करें, दुष्टों की निवृत्ति से ऐश्वर्य को चाहें और कभी दुष्टों में विश्वास न करें ॥५॥

त्वं नो वायवेषामपूर्व्यः सोमानां प्रथमः

पीतिमर्हसि सुतानां पीतिमर्हसि ।

उतो विहुत्मतीनां विशां ववर्जुषीणाम् ।

विश्वा इत्ते धेनवो दुह्र आशिरं घृतं दुह्रत आशिरम् ॥६॥२३॥

पदार्थ—हे (वायो) प्राण के समान वर्त्तमान परम बलवान् (अपूर्व्यः) जो अगलों में नहीं प्रसिद्ध किये वे अपूर्व गुणी (त्वम्) आप (नः) हमारे (सुतानाम्) उत्तम क्रिया से निकाले हुए (सोमानाम्) ऐश्वर्य्य करनेवाले बड़ी-बड़ी ओषधियों के रसों के (पीतिम्) पीने को (अर्हसि) योग्य हो और (प्रथमः) विख्यात आप (एषाम्) इन उक्त पदार्थों के रसों के (पीतिमर्हसि) पीने को योग्य हो जो (ते) आपकी (विश्वाः) समस्त (धेनवः) गौएँ (इत्) ही (आशिरम्) भोगने के (घृतम्) कान्तियुक्त घृत को (दुह्रते) पूर्ण करती और (आशिरम्) अच्छे प्रकार भोजन करने योग्य दुग्ध आदि पदार्थ को (दुह्रे) पूरा करती उनकी और (ववर्जुषीणाम्) निरन्तर दोषों का त्याग करती हुई (विहुत्मतीनाम्) जिन में विशेषता से होम करनेवाला विचारशील मनुष्य विद्यमान उन (विशाम्) प्रजाओं की (उतो) निश्चय से पालना कीजिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । राजपुरुषों को चाहिए कि ब्रह्मचर्य्य और उत्तम ओषध के सेवन और योग्य आहार-विहारों से शरीर आत्मा के बल की उन्नति कर धर्म से प्रजा की पालना करने में स्थिर हों ॥६॥

इस सूक्त में पवन के दृष्टान्त से शूरवीरों के न्यायविषयकों में प्रजा कर्म के
वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के
साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ चौंतीसवां सूक्त और तेईसवां वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

स्तीर्णमित्यस्य नवर्चस्य पञ्चत्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः ।
वायुर्देवता १, ३, निचृदत्यष्टिः । २, ४, विराडत्यष्टिश्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः । ५, ९ भुरिगष्टिः । ६, ८
निचृदष्टिः । ७ अष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब नव ऋचावाले एकसौ पैंतीसवें सूक्त का आरम्भ है इस के प्रथम

अब मैं कौन किनके किस से किस को प्राप्त हो
इस विषय को कहा है—

स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि वीतये

सहस्रेण नियुता नियुत्वते शतिनीभिर्नियुत्वते ।

तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे ।

प्र ते सुतासो मधुमन्तो अस्थिरन्मदाय क्रत्वे अस्थिरन् ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जिस (देवाय) दिव्यगुण के लिए (तुभ्यम्) (हि) आपको ही (पूर्वपीतये) प्रथम रस आदि पीने को (देवाः) विद्वान् जन (येमिरे) नियम करें उन (ते) आप के (मदाय) आनन्द और (क्रत्वे) उत्तम बुद्धि के लिए (मधुमन्तः) प्रशंसित मधुरगुणयुक्त (सुतासः) उत्पन्न किये हुए पदार्थ (प्रास्थिरन्) अच्छे प्रकार स्थिर हों और सुखरूप (अस्थिरन्) स्थिर हों वैसे सो आप (नः) हमारे (स्तीर्णम्) ढँपे हुए (बर्हिः) उत्तम विशाल घर को (वीतये) सुख पाने के लिए (उप, याहि) पास पहुँचो (नियुत्वते) जिसके बहुत घोड़े विद्यमान उसके लिए (सहस्रेण) हजारों (नियुता) निश्चित व्यवहार से पास पहुँचो और (शतिनीभिः) जिन मे सैकड़ों वीर विद्यमान उन सेनाओं के साथ (नियुत्वते) बहुत बल से मिले हुए के लिए अर्थात् अत्यन्त बलवान् के लिए पास पहुँचो ॥ १ ॥

भावार्थ—विद्या और धर्म को जानने की इच्छा करनेवाले मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानो को सदा बुलाया करें उनकी सेवा और सङ्ग से विशेष ज्ञान की उन्नति कर नित्य आनन्दयुक्त हों ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करके क्या करना चाहिए इस विषय को
अगले मन्त्र में कहा है—

तुभ्यायं सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्पार्हा वसानः

परि कोशमर्षति शुक्रा वसानो अर्षति ।

तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु हूयते ।

वह वायो नियुतो याह्यस्मयुर्जुषाणो याह्यस्मयुः ॥२॥

पदार्थ—हे (वायो) विद्वन् ! आप (नियुतः) कला-कौशल से नियत किये हुए घोड़ो को जैसे पवन वैसे अपने यानो को एक देश से दूसरे देश को (वह) पहुँचाओ और (जुषाणः) प्रसन्नचित्त (अस्मयुः) मेरे समान आचरण करते हुए (याहि) पहुँचो (अस्मयुः) मेरे समान आचरण करते हुए आओ जिस (तव) आप का (अयम्) यह (आयुषु) जीवनो और (देवेषु) विद्वानो मे (सोमः) ओषधिगण के समान (भागः) सेवन करने योग्य भाग है वा जो आप (हूयते) स्तुति किये जाते हैं सो (वसानः) वस्त्र आदि ओढ़े हुए (शुक्रा) शुद्ध व्यवहारो का (अर्षति) प्राप्त होते हैं जो (अयम्) यह (अद्रिभिः) मेघो से (परिपूतः) सब ओर से पवित्र हुआ (सोमः) चन्द्रमा के समान प्रशंसा किया जाता वा (कोशम्) मेघ को (पर्यर्षति) सब ओर से प्राप्त होता उसके समान (स्पार्हा) चाहे हुए वस्त्रो का (वसानः) धारण किये हुए आप प्राप्त होवें उन (तुभ्यम्) आप के लिए उक्त सब वस्तु प्राप्त हों ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो मनुष्य प्रशंसित कपड़े गहने पहिने हुए सुन्दर रूपवान् अच्छे आचरण करते है वे सर्वत्र प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

फिर राजा को प्रजाजनों से क्या लेना चाहिए इस विषय को
अगले मन्त्र मे कहा है—

आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि

वीतये वायो हव्यानि वीतये ।

तवायं भाग ऋत्वियः सरश्मिः सूर्ये सचा ।

अध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ॥३॥

पदार्थ—हे (वायो) विद्वन् ! (तव) आपके जो (अध्वर्युभिः) अपने को यज्ञ की इच्छा करनेवालो ने (भरमाणा) धारण किये मनुष्य (अयंसत) निवृत्त होवें सुख जैसे हो वैसे (अयंसत) निवृत्त हों अर्थात् सांसारिक सुख को छोड़ें जिन आप का (सूर्ये) सूर्य्य के बीच (सचा) अच्छे प्रकार संयोग की हुई (शुक्राः) शुद्ध किरणों के समान (सरश्मिः) प्रकाशो के साथ वर्त्तमान (ऋत्वियः) जिस का ऋतु समय प्राप्त हुआ वह (अयम्) यह (भागः) भाग है सो आप (वीतये) व्याप्त होने के लिए (हव्यानि) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को (उपयाहि) समीप पहुँचें, प्राप्त हो। हे (वायो) प्रशंसित बलयुक्त जो (शतिनीभिः) प्रशंसित सैकड़ों अङ्गों से युक्त सेनाओं के साथ वा (सहस्रिणीभिः) जिन में बहुत हजार शूरवीरों के समूह उन सेनाओं के साथ वा (नियुद्भिः) पवन के गुण के समान घोड़ो से (वीतये) कामना के लिए (नः) हम लोगो के (अध्वरम्) राज्यपालनरूप यज्ञ को प्राप्त होते उनको आप (आ) आकर प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। राजपुरुषों को चाहिए कि शत्रुओं के बल से चौगुना वा अधिक बल कर दुष्ट शत्रुओं के साथ युद्ध करें और वे प्रति वर्ष प्रजाजनों से जितना कर लेना योग्य हो उतना ही लेवें तथा सदैव धर्मात्मा विद्वानों की सेवा करें ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को किस के समान होना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आ वां रथो नियुत्वान्वक्षदवसेऽभि प्रयांसि

सुधितानि वीतये वायो हव्यानि वीतये ।

पिबतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि वां हितम् ।

वायवा चन्द्रेण राधसा गतमिन्द्रश्च राधसा गतम् ॥४॥

पदार्थ—हे सभासेनाधीशो ! जो (वाम्) तुम्हारा (नियुत्वान्) पवन के समान वेगवान् (रथः) रथ (वीतये) आनन्द की प्राप्ति के लिए (सुधितानि) अच्छे प्रकार धारण किये हुए (प्रयांसि) प्रीति के अनुकूल पदार्थों को (अभ्यावक्षत्) चारो ओर से अच्छे प्रकार पहुँचे और (अवसे) विजय की प्राप्ति वा (वीतये) धर्म की प्रवृत्ति के लिए (हव्यानि) देने योग्य पदार्थों को चारों ओर भली-भाँति पहुँचावे वे तुम जैसे (इन्द्र) बिजुली रूप आग (च) और पवन आवें वैसे (राधसा) जिससे सिद्धि को प्राप्त होते उस पदार्थ के साथ (आ, गतम्) आओ जो (मध्वः) मीठे (अन्धसः) अन्न का (पूर्वपेयम्) अगले मनुष्यो के पीने योग्य (वाम्) और तुम दोनों के लिए (हितम्) सुखरूप भाग है उस को (पिबतम्) पिओ और (चन्द्रेण) सुवर्णरूप (राधसा) उत्तम सिद्धि करनेवाले धन के साथ (आगतम्) आओ। हे (वायो) पवन के समान प्रिय ! आप उत्तम सिद्धि करने वाले सुवर्ण के साथ सुखभोग को (आ) प्राप्त होओ और हे (वायो) दुष्टों की हिंसा करनेवाले ! लेने-देने योग्य पदार्थों को भी (आ) प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे पवन और बिजुली सब में अभिव्याप्त होकर सब वस्तुओं का सेवन करते वैसे सज्जनो को चाहिए कि ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिए सब साधनों का सेवन करें ॥ ४ ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आ वां धियो ववृत्युरध्वराँ उपेममिन्दुं मर्मृजन्त

वाजिनमाशुमत्यं न वाजिनम् ।

तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या ।

इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं मदाय वाजदा युवम् ॥५॥२४॥

पदार्थ—हे (इन्द्रवायू) सूर्य्य और पवन के समान सभासेनाधीशो ! जो उपदेश करने वा पढ़ानेवाले विद्वान जन (वाम्) तुम्हारे (धियः) बुद्धि और कर्मों वा (अध्वरान्) हिंसा न करनेवाले जनो (इमम्) इस (इन्दुम्) परमैश्वर्य्य और (वाजिनम्) प्रशंसित वेगयुक्त (आशुम्) काम मे शीघ्रता करनेवाले (वाजिनम्) अनेक शुभ लक्षणो से युक्त (अत्यम्) निरन्तर गमन करते हुए घोड़े के (न) समान (आ, ववृत्युः) अच्छे प्रकार वर्त्तें कार्य्य मे लावें और इस परमैश्वर्य्य को (उप, मर्मृजन्त) समीप मे अत्यन्त शुद्ध करें (तेषाम्) उनके (अद्रिभिः) अच्छे प्रकार पत्थर या उखली-मूशलो से (सुतानाम्) सिद्ध किये अर्थात् कूट-पीट कर बनाये हुए पदार्थों के रस को (मदाय) आनन्द के लिए (युवम्) तुम (पिबतम्) पीओ तथा (अस्मयू) हम लोगो के समान आचरण करते हुए (वाजदा) विशेष ज्ञान देनेवाले (युवम्) तुम दोनो इस संसार मे (ऊत्या) रक्षा आदि उत्तम क्रिया से (नः) हम लोगो को (आगन्तम्) प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

भावार्थ - इस मन्त्र मे उपमालंकार है। जो उपदेश करने और पढ़ानेवाले मनुष्यो की बुद्धियों को शुद्ध कर अच्छे सिखाये हुए घोड़े के समान पराक्रम युक्त कराते वे आनन्द सेवनवाले होते हैं ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इमे वां सोमा अप्स्वा सुता

इहाध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ।

एते वामभ्यसृक्षत तिरः पवित्रमाशवः ।

युवायवोऽति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे परम ऐश्वर्य्ययुक्त और (वायो) पवन के समान बलवान् पुरुष!

जो (इमे) ये (इह) इस संसार में (अध्वर्युभिः) यज्ञ की चाहना करनेवालों ने (अप्सु) जलो मे (सुताः) उत्पन्न की (सोमाः) बड़ी-बड़ी ओषधि (भरमाणाः) पुष्टि करती हुई तुम दोनों को (अयंसत) देवें और (शुक्राः) शुद्ध वे (अयंसत) लेवें वा जो (एते) ये (आशवः) इकट्ठे होते और (युवायवः) तुम दोनो की इच्छा करते हुए (सोमासः) ऐश्वर्य्ययुक्त (अव्यया) नाशरहित (अति, रोमाणि) अतीव रोमा अर्थात् नारियल की जटाओं के आकार (अति, अव्यया) सनातन सुखों के समान (तिरः) औरों से तिरछे (पवित्रम्) शुद्धि करनेवाले पदार्थों और (वाम्) तुम दोनों को (अभि, असृक्षत) चारों ओर से सिद्ध करें उनको तुम पीओ और अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिनके सेवन से दृढ़ और आरोग्य युक्त देह और आत्मा होते हैं तथा जो अन्तःकरण को शुद्ध करते उनका तुम नित्य सेवन करो ॥ ६ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अति वायो ससतो याहि शश्वतो
यत्र ग्रावा वदति तत्र गच्छतं गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् ।
वि सूनृता ददृशे रीयते घृतमा पूर्णया नियुता
याथो अध्वरमिन्द्रश्च याथो अध्वरम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (वायो) पवन के समान बलवान् विद्वन् ! आप (ससतः) अविद्या को उल्लंघन किये और (शश्वतः) सनातन विद्या से युक्त पुरुषों को (याहि) प्राप्त होओ (यत्र) जहाँ (ग्रावा) धीरबुद्धि पुरुष (अति, वदति) अत्यन्त उपदेश करता (तत्र) वहाँ आप (च) और (इन्द्रः) ऐश्वर्ययुक्त मनुष्य (गच्छतम्) जाओ और (गृहम्) घर (गच्छतम्) जाओ जहाँ (सूनृता) उत्तम-शिक्षा युक्त सत्यप्रिय वाणी (वि, ददृशे) विशेषता से देखी जाती और (घृतम्) प्रकाशित विज्ञान (आ, रीयते) अच्छे प्रकार सम्बद्ध होता अर्थात् मिलता वहाँ (पूर्णया) पूरी (नियुता) पवन की चाल के समान चाल से जो आप (इन्द्रः, च) और ऐश्वर्य्ययुक्त जन (अध्वरम्) अहिंसादि लक्षण धर्म को (याथ) प्राप्त होते हो वे तुम दोनों (अध्वरम्) यज्ञ को (याथः) प्राप्त होते हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग जिस देश वा स्थान में शास्त्रवेत्ता आप्त विद्वान् सत्य का उपदेश करें उनके स्थान पर जाके उनके उपदेश को नित्य सुना करें, जिससे विद्यायुक्त वाणी और सत्य विज्ञान और धर्मज्ञान को प्राप्त होवें ॥ ७ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अत्राह तद्वहेथे मध्व आहुतिं यमश्वत्थमुपतिष्ठन्त
जायवोऽस्मे ते सन्तु जायवः ।
साकं गावः सुवते पच्यते यवो न ते वाय
उप दस्यन्ति धेनवो नाप दस्यन्ति धेनवः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (वायो) पवन के समान विद्वन् ! जो पढ़ाने और उपदेश करनेवाले (अत्राह) यहीं निश्चय से (तत्) उस विषय को (वहेथे) प्राप्त कराते वा (अश्वत्थम्) जैसे पीपलवृक्ष को पखेरू वैसे (जायवः) जीतनेहारे (यम्) जिन आपके (उपतिष्ठन्त) समीप स्थित हों और (मध्वः) मधुर विज्ञान के (आहुतिम्) सब प्रकार ग्रहण करने को उपस्थित हों (ते) वे (अस्मे) हम लोगों के बीच (जायवः) जीतनेहारे शूर (सन्तु) हों ऐसे अच्छे प्रकार आचरण करते हुए (ते) आपकी (गावः) गौएं (साकम्) साथ (सुवते) ब्याती (यवः) मिला वा पृथक् पृथक् व्यवहार साथ (पच्यते) सिद्ध होता तथा (धेनवः) गौएं जैसे (अप, दस्यन्ति) नष्ट नहीं होतीं (न) वैसे (धेनवः) वाणी (न, उप, दस्यन्ति) नहीं नष्ट होतीं ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो सब मनुष्यों से श्रेष्ठ मनुष्यों के सङ्ग की कामना और आपस में प्रीति की जाए तो उनकी विद्या बल की हानि और भेद बुद्धि न उत्पन्न हो ॥ ८ ॥

फिर राजा को युद्ध के लिए कौन पठाने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

इमे ये ते सु वायो बाह्वोजसोऽन्तर्नदी ते
पतयन्त्युक्षणो महि व्राधन्त उक्षणः ।
धन्वन् चिद्ये अनाशवो जीराश्चिदगिरौकसः ।
सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तवो हस्तयोर्दुर्नियन्तवः ॥ ९ ॥ २५ ॥

पदार्थ—हे (वायो) विद्वन् ! (ये) जो (इमे) ये योद्धा लोग (ते) आपके सहाय से (बाह्वोजसः) भुजाओं के बल के (अन्तः) बीच (सु, पतयन्ति) पालनेवाले के समान आचरण करते उनको (उक्षणः) सींचने में समर्थ कीजिए (ये) जो (ते) आपके उपदेश से (महि) बहुत (व्राधन्त) बढ़ते हुए अच्छे प्रकार पालनेवाले के समान आचरण करते हैं उनको (उक्षणः) बल देनेवाले कीजिए जो (धन्वन्) अन्तरिक्ष में (नदी) नदी के (चित्) समान वर्त्तमान (अनाशवः) किसी में व्याप्त नहीं (जीराः) वेगवान् (अगिरौकसः) जिनका अविद्यमान वाणी के साथ ठहरने का स्थान (दुर्नियन्तवः) जो दुःख से ग्रहण करने के योग्य वे (रश्मयः) किरण जैसे (सूर्यस्येव) सूर्य को वैसे (चित्) और (हस्तयोः) अपनी भुजाओं के प्रताप से शत्रुओं ने (दुर्नियन्तवः) दुःख से ग्रहण करने योग्य अच्छी पालना करनेवाले के समान आचरण करें उन वीरों का निरन्तर सत्कार करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । राजपुरुषों को चाहिए कि बाहुबलयुक्त शत्रुओं से न डरनेवाले वीर पुरुषों को सेना में सदैव रक्खें जिससे राज्य का प्रताप सदा बढ़े ॥ ९ ॥

इस सूक्त में मनुष्यों का परस्पर वर्त्ताव कहने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ एकता है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ पैंतीसवां सूक्त और पच्चीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तर्चस्य षट्त्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । षष्ठसप्तमयोर्मन्त्रोक्ता देवताः । १, ३, ५, ६ स्वराडत्यष्टिः । गान्धारः स्वरः । २ निचृदष्टिश्छन्दः । ४ भुरिगष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः । ७ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सात ऋचावाले एकसौ छत्तीसवें सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में कौन किन से क्या लेकर कैसे हों इस विषय को कहा है—

प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो
हव्यं मतिं भरता मृळयद्भ्यां स्वादिष्ठं मृळयद्भ्याम् ।
ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता ।
अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (मृळयद्भ्याम्) सुख देते हुओं के समान (निचिराभ्याम्) निरन्तर सनातन (मृळयद्भ्याम्) सुख करनेवाले अध्यापक उपदेशक के साथ (ज्येष्ठम्) अतीव प्रशंसा करने योग्य (स्वादिष्ठम्) अत्यन्त स्वादु (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य पदार्थ (बृहत्) बहुत-सा (नमः) अन्न और (मतिम्) बुद्धि को (सु) शीघ्र (प्र, सु, भरत) अच्छे प्रकार सुन्दरता से स्वीकार करो और (यज्ञेयज्ञे) प्रत्येक यज्ञ में (उपस्तुता) प्राप्त हुए गुणों से प्रशंसा को प्राप्त (घृतासुती) जिनका घी के साथ पदार्थों का सार निकालना (सम्राजा) जो अच्छी प्रकाशमान (ता) उन उक्त महाशयों को भली-भाँति ग्रहण करो (अथ) इसके अनन्तर (एनोः) इन दोनों का (क्षत्रम्) राज्य (आधृषे) ढिठाई देने को (चित्) और (देवत्वम्) विद्वत्ता (आधृषे) ढिठाई देने को (कुतश्चन) कहीं से (न) न नष्ट हो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो बहुत काल से प्रवृत्त पढ़ाने और उपदेश करनेवालों के समीप से विद्या और अच्छे उपदेशों को शीघ्र ग्रहण करते वे चक्रवर्त्ति राजा होने के योग्य होते हैं और न इनका ऐश्वर्य्य कभी नष्ट होता है ॥ १ ॥

फिर मनुष्य क्या पाकर कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी पन्था
ऋतस्य समयंस्त रश्मिभिश्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः ।
द्युक्षं मित्रस्य सादनमर्यम्णो वरुणस्य च ।
अथा दधाते बृहदुक्थ्यं वयं उपस्तुत्यं बृहद्वयः ॥ २ ॥

पदार्थ—जिससे (उरवे) बहुत बड़े के लिए (वरीयसी) अतीव श्रेष्ठ (गातुः) भूमि (अदर्शि) दीखती वा जहाँ सूर्य के (रश्मिभिः) किरणों के समान (रश्मिभिः) किरणों के साथ (चक्षुः) नेत्र (ऋतस्य) जल और (भगस्य) सूर्य के समान धन का (पन्था) मार्ग (समयंस्त) मिलता वा (मित्रस्य) मित्र (अर्यम्णः) न्यायाधीश और (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष का (द्युक्षम्) प्रकाश लोकस्थ (सादनम्) जिसमें स्थिर होते वह घर प्राप्त होता (अथ) अथवा जैसे (वयः) बहुत पखेरू (बृहत्) एक बड़े काम को वैसे जो (वयः) मनोहर जन (उपस्तुत्यम्) समीप में प्रशंसनीय (बृहत्) बड़े (उक्थ्यम्) और कहने योग्य काम को धारण करते (च) और दो मिलकर किसी काम को (दधाते) धारण करते वे सब सुख पाते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य के प्रकाश से भूमि पर मार्ग दीखता है वैसे ही उत्तम विद्वानों के सङ्ग में सत्य विद्याओं का प्रकाश होता है वा जैसे पखेरू उत्तम आश्रय स्थान पाकर आनन्द पाते हैं वैसे उत्तम विद्याओं को पाकर मनुष्य सदा सुख पाते हैं ॥ २ ॥

फिर विद्वानों को किसके समान क्या पाना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्क्षितिं
स्वर्वतीमा सचेते दिवेदिवे जागृवांसा दिवेदिवे ।
ज्योतिष्मत् क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती ।
मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनोऽर्यमा यातयज्जनः ॥ ३ ॥

पदार्थ—जैसे (आदित्या) सूर्य और प्राण (दिवेदिवे) प्रतिदिन (स्वर्वतीम्) बहुत सुख करनेवाले (धारयत्क्षितिम्) और भूमि को धारण

करते हुए (ज्योतिष्मतीम्) प्रकाशवान् (अदितिम्) द्युलोक का (आसचेते) सब ओर से सम्बन्ध करते है वैसे (यातयज्जन) जिसके अच्छे प्रयत्न करानेवाले मनुष्य हैं वह (अर्यमा) न्यायाधीश (वरुण) श्रेष्ठ प्राण तथा (यातयज्जन.) पुरुषार्थवान् पुरुष (मित्र) सबका प्राण और (दानुन.) दान की (पती) पालना करनेवाले (जागृवांसा) सब काम मे लगे हुए सभासेनाधीश (दिवेदिवे) प्रतिदिन (ज्योतिष्मत्) बहुत न्याययुक्त (क्षत्रम्) राज्य को (आशाते) प्राप्त होते (तयो) उनके प्रभाव से समस्त प्रजा और सेनाजन अत्यन्त सुख को प्राप्त होते है ॥ ३ ॥

भावार्थ – इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है । जो सूर्य प्राण और योगिजन के समान सचेत होकर विद्या विनय और धर्म से सेना और प्रजाजनो को प्रसन्न करते हैं वे अत्यन्त यश पाते हैं ॥३॥

फिर इस संसार में मनुष्यो को कैसे वर्त्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

अयं मित्राय वरुणाय शंतमः ।
सोमो भूत्ववपानेष्वाभगो देवो देवेष्वाभगः ।
तं देवासो जुषेरत विश्वे अद्य सजोषसः
तथा राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे ॥४॥

पदार्थ—जैसे (अयम्) यह (अवपानेषु) अत्यन्त रक्षा आदि व्यवहारों मे (मित्राय) सबके मित्र और (वरुणाय) सबमे उत्तम के लिए (आभग) समस्त ऐश्वर्य (शन्तम) अतीव सुख (सोम) और सुखयुक्त ऐश्वर्य करनेवाला न्याय (भूतु) हो वैसे जो (देव) सुख अच्छे प्रकार देनेवाला (देवेषु) दिव्य विद्वानो और दिव्य गुणों मे (आभग) समस्त सौभाग्य हो (तम्) उसको (अद्य) आज (सजोषसः) समान धर्म का सेवन करनेवाले (विश्वे) समस्त (देवास.) विद्वान् जन (जुषेरत) सेवन कर वा उससे प्रीति करें और जैसे (यत्) जिस व्यवहार को (राजाना) प्रकाशमान सभासेनापति (करथ) करें (तथा) वैसे उस व्यवहार को हम लोग (ईमहे) मागते और जैसे (ऋतावाना) सत्य का सम्बन्ध करनेवाले (यत्) जिस काम को करें वैसे उसको हम लोग भी (ईमहे) यार्चे, मांगें ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार हैं । इस संसार मे जैसे शास्त्रवेत्ता विद्वान् धर्म के अनुकूल व्यवहार से ऐश्वर्य्य की उन्नति कर सबके उपकार करनेहारे काम मे खर्च करते वा जैसे सत्य को जानने की इच्छा करनेवाले धार्मिक विद्वानो को याचते अर्थात् उनसे अपने प्रिय पदार्थ को मांगते वैसे सब मनुष्य अपने ऐश्वर्य को अच्छे काम मे खर्च करें और विद्वान् महाशयो से विद्याओ की याचना करें ॥४॥

फिर विद्वान किसके लिए क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यो मित्राय वरुणायाविधज्जनोऽनर्वाणं
तं परि पातो अंहसो दाश्वांसं मर्त्तमंहसः ।
तमर्यमाभि रक्षत्यृजूयन्तमनु व्रतम् ।
उक्थैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम् ॥५॥

पदार्थ—हे सभासेनाधीशो ! (यः) जो (जन) यश से प्रसिद्ध हुआ (मित्राय) सर्वोपकार करने (वरुणाय) और सबमे उत्तम स्वभाववाले मनुष्य के लिए तुम दोनों से (अविधत्) सेवा करे (तम्) उस (अनर्वाणम्) वैर आदि दोषो से रहित (मर्त्तम्) मनुष्य को (अहस:) दुष्ट आचरण से तुम दोनो (परिपातः) सब ओर से बचाओ तथा (तम्) उस (दाश्वांसम्) विद्या देनेवाले मनुष्य को (अंहस) पाप से बचाओ (य) जो (अर्यमा) न्याय करनेवाला सज्जन (व्रतम्) सत्य आचरण करने और (ऋजूयन्तम्) अपने को कोमलपन चाहते हुए मनुष्य की (अभिरक्षति) सब ओर से रक्षा करता उसकी तुम दोनो (अनु) पीछे रक्षा करो जो (एनो) इन दोनो के (उक्थै) कहने योग्य उपदेशो से (व्रतम्) सुन्दर शील को (परिभूषत) सब ओर से सुशोभित करता वा (स्तोमैः) प्रशसा करने योग्य व्यवहारों से (व्रतम) सुन्दर शील को (आभूषति) अच्छे प्रकार शोभित करता उसको सब विद्वान् निरन्तर पालें ॥५॥

भावार्थ—विद्वान् जन जो लोग धर्म और अधर्म को जानना चाहे तथा धर्म का ग्रहण और अधर्म का त्याग करना चाहे उनको पढ़ा और उपदेश कर विद्या और धर्म आदि शुभ गुण, कर्म और स्वभाव से सब ओर से सुशोभित करें ॥५॥

फिर मनुष्यों को किसके समान क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां
मित्राय वोचं वरुणाय मीळ्हुषे सुमृळीकाय मीळ्हुषे ।
इन्द्रमग्निमुप स्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम् ।
ज्योग्जीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन ! जैसे मैं (बृहते) बहुत (दिवे) प्रकाश करनेवाले के लिए वा (रोदसीभ्याम्) प्रकाश और पृथिवी से (मित्राय) सबके मित्र (वरुणाय) श्रेष्ठ (मीळ्हुषे) शुभ गुणों से सींचने (सुमृळीकाय) सुख करने और (मीळ्हुषे) अच्छे प्रकार सुख देनेवाले जन के लिए (नम) सत्कार वचन (वोचम्) कहूँ वैसे आप कहो । वा जैसे मैं (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवाले (अग्निम्) अग्नि के समान वर्त्तमान (द्युक्षम्) प्रकाशयुक्त (अर्य्यमणम्) न्यायाधीश और (भगम्) धर्म सेवनेवाले को कहूँ वैसे आप (उप, स्तुहि) उसके समीप प्रशंसा करो वा जैसे (जीवन्त) प्राण धारण किय जीवते हुए हम लोग (प्रजया) अच्छे सन्तान आदि सहित प्रजा के साथ (ज्योक्) निरन्तर (सचेमहि) सम्बद्ध हो और (सोमस्य) ऐश्वर्य की (ऊती) रक्षा आदि क्रिया के साथ (सचेमहि) सम्बद्ध हो वैसे आप भी सम्बद्ध होओ ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे अनेक वाचकलुप्तोपमालकार है । मनुष्यो को विद्वानों के समान चाल-चलन कर पदार्थविद्या के लिए प्रवृत्त हो तथा प्रजा और ऐश्वर्य को पाकर निरन्तर आनन्दयुक्त होना चाहिए ॥६॥

फिर विद्वान् जन इस संसार में किसके समान वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयशसो मरुद्भिः ।
अग्निर्मित्रो वरुणः शर्म यंसन् तदश्याम मघवानो वयं च ॥७॥

पदार्थ—जैसे (मरुद्भिः) प्राणो के समान श्रेष्ठ जनो के साथ (अग्नि) बिजुली आदि रूपवाला अग्नि (मित्र) सूर्य (वरुण) चन्द्रमा (शर्म) सुख को (यसन्) देते हैं वैसे (तत्) उस सुख को (इन्द्रवन्त.) बहुत ऐश्वर्ययुक्त (स्वयशस) जिनके अपना यश विद्यमान वे (वयम्) हम लोग (देवानाम्) सत्य की कामना करनेवाले विद्वानो की (ऊती) रक्षा आदि क्रिया से (मंसीमहि) जानें (च) और इससे (वयम्) हम लोग (मघवान) परम ऐश्वर्ययुक्त हुए कल्याण को (अश्याम) भोगें ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे इस संसार में पृथिवी आदि पदार्थ सुख और ऐश्वर्य करनेवाले है वैसे ही विद्वानों की सिखावट और उनके सङ्ग हैं । इनसे हम लोग सुख और ऐश्वर्यवाले होकर निरन्तर आनन्दयुक्त हो ॥७॥

इस सूक्त मे वायु और इन्द्र आदि पदार्थों के दृष्टान्तो से मनुष्यो के लिए विद्या और उत्तम शिक्षा का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ एकता है यह जानना चाहिए ॥

इस अध्याय मे क्रोध आदि का निवारण, अन्न आदि की रक्षा और परमैश्वर्य की प्राप्ति पर्यन्त अर्थ कहे हैं । इससे इस अध्याय मे कहे हुए अर्थों की पिछले अध्याय में कहे हुए अर्थों के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह ऋग्वेद मे दूसरे अष्टक में पहला अध्याय और छब्बीसवां वर्ग तथा प्रथम मण्डल में एकसौ छत्तीसवां सूक्त पूरा हुआ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां परमविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते आर्यभाषासमन्विते सुप्रमाणयुक्त ऋग्वेदभाष्ये द्वितीयाष्टके प्रथमोऽध्याय समाप्त ॥

卐

अथ द्वितीयाष्टके द्वितीयाध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ।

सुषुमेत्यस्य त्रिऋचस्य सप्तत्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १ निचृच्छक्वरीछन्दः । २ विराट्शक्वरी छन्दः । गान्धारः स्वरः । ३ भुरिगतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब दूसरे अष्टक में द्वितीय अध्याय का आरम्भ और तीन ऋचावाले एकसौ सैंतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य इस संसार में किसके समान वर्त्ते इस विषय को कहा है—

सुषुमा यातमद्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे ।
आ राजाना दिविस्पृशास्मत्रा गन्तमुप नः ।
इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान वर्त्तमान (दिविस्पृशा) शुद्ध व्यवहार में स्पर्श करनेवाले (राजाना) प्रकाशमान सभा-सेनाधीशो ! जो (इमे) ये (अद्रिभिः) मेघो से (गोश्रीता) किरणो को प्राप्त (मत्सराः) आनन्दप्रापक हम लोग (सुषुम) किसी व्यवहार को सिद्ध करें उनको (वाम्) तुम दोनों (आयातम्) आओ अच्छे प्रकार प्राप्त होओ जो (इमे) ये (मत्सराः) आनन्द पहुँचानेहारी (सोमासः) सोमवल्ली आदि ओषधि हैं उनको (अस्मत्रा) हम लोगो मे अच्छी प्रकार पहुँचाओ जो (इमे) ये (गवाशिरः) गौएँ वा इन्द्रियो से व्याप्त होते उनके समान (शुक्रा) शुद्ध (सोमाः) ऐश्वर्य्ययुक्त पदार्थ और (गवाशिरः) गौएँ वा किरणो से व्याप्त होते उनको और (नः) हम लोगो के (उपागन्तम्) समीप पहुँचो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । इस जगत् मे जैसे पृथिवी आदि पदार्थ जीवन के हेतु हैं वैसे मेघ अतीव जीवन देनेवाले हैं जैसे ये सब वर्त्त रहे हैं वैसे मनुष्य वर्त्तें ॥१॥

अब ओषधि आदि पदार्थों के रस के पीने आदि के विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—

इम आ यातमिन्दवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः ।
उत वामुषसो बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ।
सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये ॥ २ ॥

पदार्थ—हे पढ़ाने वा पढ़नेवाले ! जो (चारुः) सुन्दर (मित्राय) मित्र के लिए (पीतये) पीने को और (वरुणाय) उत्तम जन के लिए (ऋताय) सत्याचरण और (पीतये) पीने को (उषसः) प्रभातवेला के (बुधि) प्रबोध मे सूर्यमण्डल की (रश्मिभिः) किरणो के (साकम्) साथ ओषधियो का रस (सुतः) सब ओर से सिद्ध किया गया है उसको तुम (आयातम्) प्राप्त होओ तथा (वाम्) तुम्हारे लिए (इमे) ये (इन्दवः) गीले वा टपकते हुए (सोमासः) दिव्य ओषधियो के रस और (दध्याशिरः) जो पदार्थ दही के साथ भोजन किये जाते उनके समान (दध्याशिरः) दही से मिले हुए भोजन (सुतासः) सिद्ध किये गये हैं (उत) उन्हे भी प्राप्त होओ ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि इस संसार मे जितने रस वा ओषधियो को सिद्ध करें उन सबको मित्रपन और उत्तम कर्म सेवने को तथा आलस्यादि दोषो के नाश करने को समर्पण करें ॥ २ ॥

तां वां धेनुं न वासरीमंशुं दुहन्त्यद्रिभिः सोमं दुहन्त्यद्रिभिः ।
अस्मत्रा गन्तमुप नोऽर्वाञ्चा सोमपीतये ।
अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ॥३॥१॥

पदार्थ—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान सर्वमित्र और सर्वोत्तम सज्जनो ! (नः) हमारे (अर्वाञ्चा) अभिमुख होते हुए तुम (वाम्) तुम्हारी जिस (वासरीम्) निवास करानेवाली (धेनुम्) धेनु (न) समान (अद्रिभिः) पत्थरो से (अंशुम्) बढ़ी हुई सोमवल्ली को (दुहन्ति) दुहते जलादि से पूर्ण करते वा (अद्रिभिः) मेघो से (सोमपीतये) उत्तम ओषधि रस जिसमे पीये जाते उसके लिए (सोमम्) ऐश्वर्य को (दुहन्ति) परिपूर्ण करते (ताम्) उसको (अस्मत्रा) हमारे (उपागन्तम्) समीप पहुँचाओ जो (अयम्) यह (नृभिः) मनुष्यो ने (सोमः) सोमवल्ली आदि लताओ का रस (सुतः) सिद्ध किया है वह (वाम्) तुम्हारे लिए (आपीतये) अच्छे प्रकार पीने को (सुतः) सिद्ध किया गया है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जैसे दूध देनेवाली गौएँ सुखो को पूरा करती हैं वैसे युक्ति से सिद्ध किया हुआ सोमवल्ली आदि का रस सब रोगो का नाश करता है ॥ ३ ॥

इस सूक्त मे सोमलता के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह एकसौ सैंतीसवां सूक्त और पहला वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

प्रप्रेत्यस्य चतुर्ऋचस्याष्टात्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः । पूषा देवता । १, ३ निचृदत्यष्टिः । २ विराडत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः । ४ भुरिगष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब चार ऋचावाले एकसौ अड़तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र मे पुष्टि करनेहारे की प्रशंसा विषय को कहा है—

प्रप्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते
महित्वमस्य तवसो न तन्दते स्तोत्रमस्य न तन्दते ।
अर्चामि सुम्नयन्नहमन्त्यूतिं मयोभुवम् ।
विश्वस्य यो मन आयुयुवे मखो देव आयुयुवे मखः ॥ १ ॥

पदार्थ—जिस (अस्य) इस (तुविजातस्य) बहुतो में प्रसिद्ध (पूष्णः) प्रजा की रक्षा करनेवाले राजपुरुष का (महित्वम्) बड़प्पन (प्रप्र, शस्यते) अतीव प्रशंसित किया जाता वा जिस (अस्य) इसके (तवसः) बल की (स्तोत्रम्) स्तुति (न, तन्दते) प्रणमक जन न नष्ट करते अर्थात् न छोड़ते और विद्या को (न, तन्दते) न नष्ट करते हैं वा (यः) जो (मखः) विद्या पाये हुए (देवः) विद्वान् (विश्वस्य) संसार के (मनः) अन्तःकरण को (आयुयुवे) सब ओर से बाँधता अर्थात् अपनी ओर खींचता वा जो (मखः) यज्ञ के समान वर्त्तमान सुख का (आयुयुवे) प्रबन्ध बाँधता है इस (अन्त्यूतिम्) अपने निकट रक्षा आदि क्रिया रखने और (मयोभुवम्) सुख की भावना करानेवाले प्रजापोषक का (सुम्नयन्) सुख चाहता हुआ (अहम्) मैं (अर्चामि) सत्कार करता हूँ ॥१॥

भावार्थ—जो शुभ, अच्छे कर्मों का आचरण करते हैं वे अत्यन्त प्रशंसित होते हैं । जो सुशीलता और नम्रता से सबके चित्त को धर्मयुक्त व्यवहारो मे बाँधते हैं वे ही सबका सत्कार करने योग्य हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—

प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि
स्तोमेभिः कृण्व ऋणवो यथा मृध उष्ट्रो न पीपरो मृधः ।
हुवे यत्त्वा मयोभुवं देवं सख्याय मर्त्यः ।
अस्माकमाङ्गूषान्द्युम्निनस्कृधि वाजेषु द्युम्निनस्कृधि ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (पूषन्) पुष्टि करनेवाले ! (यथा) जैसे आप (मृधः) संग्रामो को (ऋणवः) प्राप्त करो अर्थात् हम लोगो को पहुँचाओ वा (उष्ट्रः) उष्ट्र के (न) समान (मृधः) संग्रामो को (पीपरः) पार कराओ अर्थात् उनसे उद्धार करो वैसे (स्तोमेभिः) स्तुतियो से (यामनि) पहुँचानेवाले व्यवहार में (अजिरम्) ज्ञानवान् अर्थात् अति प्रवीण के (न) समान (त्वा) आपको (प्र, कृण्वे) प्रशंसित करता हूँ और आपको मैं (हुवे) हठ से बुलाता हूँ (यत्) जिस कारण (सख्याय) मित्रपन के लिए (मयोभुवम्) सुख करनेवाले (देवम्) मनोहर (त्वा) आपको (मर्त्यः) मरण धर्म मनुष्य मैं हठ से बुलाता हूँ इस कारण (अस्माकम्) हमारे (आङ्गूषान्) विद्या पाये हुए वीरो को (द्युम्निनः) यशस्वी (कृधि) करो और (वाजेषु) संग्रामो मे (द्युम्निनः) प्रशंसित कीर्ति वाले (हि) ही (कृधि) करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है । जो मनुष्य बुद्धिमान् विद्यार्थियों को विद्यावान् करें, शत्रुओ को जीतें वे अच्छी कीर्ति के साथ माननीय हों ॥ २ ॥

यस्य ते पूषन्त्सख्ये विपन्यवः क्रत्वा
चित्सन्तोऽवसा बुभुज्रिर इति क्रत्वा बुभुज्रिरे ।
तामनु त्वा नवीयसीं नियुतं राय ईमहे ।
अहेळमान उरुशंस सरी भव वाजेवाजे सरी भव ॥३॥

पदार्थ—हे (पूषन्) पुष्टि करनेवाले विद्वन् ! (यस्य) जिस (ते) आपकी (सख्ये) मित्रता मे (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि से (अवसा) रक्षा आदि के साथ (विपन्यवः) विशेषता से अपनी प्रशंसा चाहनेवाले जन (नियुतम्) असंख्यात

(रायः) राज्यलक्ष्मियों को (बुभुजिरे) भोगते हैं (इति) इस प्रकार (चित्) ही (सन्तः) होते हुए (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि से जिस प्रसन्यात राज्यश्री को (बुभुजिरे) भोगते हैं (ताम्) उस (नवीयसीम्) अतीव नवीन उक्त श्री को और (अनु) अनुकूलता से (त्वा) आपको हम लोग (ईमहे) मांगते हैं । हे (उक्थ्यंस) बहुत प्रशंसायुक्त विद्वन् ! हम लोगों से (अहेळमानः) अनादर को न प्राप्त होते हुए आप (वाजेवाजे) प्रत्येक संग्राम में (सरी) प्रशसित ज्ञाता जन जिसके विद्यमान ऐसे (अव) हूजिए और धर्मयुक्त व्यवहार मे भी (सरी) उक्त गुणी (अव) हूजिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो बुद्धिमानो के संग और मित्रपन से नवीन-नवीन विद्या को प्राप्त होते हैं वे प्राज्ञ उत्तम ज्ञानवान् होकर विजयी होते हैं ॥ ३ ॥

अस्या ऊ षू ण उप सातये भुवोऽहेळमानो

ररिवाँ अजाश्व श्रवस्यतामजाश्व ।

ओ षू त्वा ववृतीमहि स्तोमेभिर्दस्म साधुभिः ।

नहि त्वा पूषन्नतिमन्य आघृणे न ते सख्यमपह्नुवे ॥४॥

पदार्थ—हे (पूषन्) पुष्टि करनेवाले ! (अजाश्व) जिनके छेरी और घोड़े विद्यमान हैं ऐसे (श्रवस्यताम्) अपने को अन्न चाहनेवालो मे (अजाश्व) जिनकी छेरी घोड़ो के तुल्य उनके समान हे विद्वन् ! आप (नः) हमारे लिए (अस्याः) इस उत्तम बुद्धि के (सातये) बांटने को (ररिवान्) देनेवाले और (अहेळमान) सत्कारयुक्त (सु, उप, भुवः) उत्तमता से समीप मे हूजिए । हे (आघृणे) सब ओर से प्रकाशमान पुष्टि करनेवाले पुरुष ! मैं (ते) आपके (सख्यम्) मित्रपन और मित्रता के काम को (न) न (अपह्नुवे) छिपाऊं (त्वा) आपका (नहि, अतिमन्ये) अत्यन्त मान्य न करूं किन्तु यथायोग्य आपको मानूं (उ) और (ओ) हे (दस्म) दुःख मिटानेवाले (स्तोमेभिः) स्तुतियों से युक्त (साधुभिः) सज्जनो के साथ वर्त्तमान हम लोग (त्वा) आपको (सु, ववृतीमहि) अच्छे प्रकार निरन्तर वर्त्तें अर्थात् आपके अनुकूल रहें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । धार्मिक विद्वानो के साथ प्रसिद्ध मित्रभाव को वर्त्तकर सब मनुष्यो को चाहिए कि बहुत प्रकार की उत्तम-उत्तम बुद्धियो को प्राप्त होवें और कभी किसी शिष्ट पुरुष का तिरस्कार न करें ॥ ४ ॥

इस सूक्त मे पुष्टि करनेवाले विद्वान् वा धार्मिक सामान्य जन की प्रशंसा के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिए।

यह एकसौ अड़तीसवां सूक्त और दूसरा वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अस्त्वित्यस्यैकादशर्चस्यैकोनचत्वारिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः । विश्वे देवा देवताः विभागश्च । १ विश्वेदेवाः । २ मित्रावरुणौ । ३—५ अश्विनौ । ६ इन्द्रः । ७ अग्निः । ८ मरुतः । ९ इन्द्राग्नी । १० बृहस्पतिः । ११ विश्वेदेवाः । १, १० निचृदष्टिः । २, ३ विराडष्टिः । ६ अष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः । ८ स्वराडत्यष्टिः ४, ९ भुरिगत्यष्टिः । ७ अत्यष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः । ५ निचृद्बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः ॥ ११ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब एकसौ उनतालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र मे पुरुषार्थ की प्रशंसा का वर्णन करते हैं—

अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध

आ नु तच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे ।

यद्ध क्राणा विवस्वति नाभा संदायि नव्यसी ।

अध प्र सू न उप यन्तु धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (धीतयः) अङ्गुलियों के (न) समान (धीतयः) धारणा करनेवाले आप (धिया) कर्म से (नः) हम (देवान्) विद्वान् जनों को (अच्छ) अच्छे प्रकार (उप, यन्तु) समीप मे प्राप्त होओ जिन्होने (विवस्वति) सूर्यमण्डल में (नाभा) मध्यभाग की आकर्षण विद्या अर्थात् सूर्यमण्डल के प्रकाश में बहुत से प्रकाश को यन्त्रकलाओं से खींचके एकत्र उसकी उष्णता करने में (नव्यसी) अतीव नवीन उत्तम बुद्धि वा कर्म (सदायि) सम्यक् दिया उस (क्राणा) कर्म करने के हेतु (इन्द्रवायू) बिजुली और प्राण (ह) ही को हम लोग (सु, वृणीमहे) सुन्दर प्रकार से धारण करें मैं जिस (श्रौषट्) हविष् पदार्थों को देनेवाले विद्या, बुद्धि (पुरः) पूर्ण (अग्निम्) विद्युत् और (दिव्यम्) शुद्ध प्राणी में हुए (शर्धः) बल को (आ, दधे) अच्छे प्रकार धारण करूं (यत्) जिस प्राण, विद्युत् जन्य सुख को हम लोग (प्र, वृणीमहे) अच्छे प्रकार स्वीकार करें (अध) इसके अनन्तर (तत्) वह सुख सबको (नु अस्तु) शीघ्र प्राप्त हो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे अङ्गुली सब कर्मों में उपयुक्त होती हैं वैसे तुम लोग भी पुरुषार्थ में युक्त होओ जिससे तुम में बल बढ़े ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृतादध्याददाथे

अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना ।

युवोरित्थाधि सद्मस्वपश्याम हिरण्ययम् ।

धीभिश्चन मनसा स्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः ॥२॥

पदार्थ—हे (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान के समान वर्त्तमान सभासेनाधीश पुरुषो ! (सद्मसु) घरो मे (मनसा) उत्तम बुद्धि के साथ (धीभिः) कामो से (सोमस्य) ऐश्वर्य्य के (स्वेभिः) निज उत्तमोत्तम ज्ञान वा (अक्षभिः) प्राणो के समान (स्वेभिः) अपनी (अक्षभिः) इन्द्रियों के साथ वर्त्ताव रखते हुए हम लोग (युवोः) तुम्हारे घरो में (हिरण्ययम्) सुवर्णमय धन को (अधि, अपश्याम) अधिकता से देखें (चन) और भी (यत्) जो सत्य है, (त्यत् ह) उसी को (ऋतात्) सत्य जो धर्म के अनुकूल व्यवहार उससे ग्रहण करें (स्वेन) अपने (मन्युना) क्रोध के व्यवहार से (दक्षस्य) बल के साथ (अनृतम्) मिथ्या व्यवहार को छोड़ें तुम भी (स्वेन) अपने (मन्युना) क्रोधरूपी व्यवहार से मिथ्या व्यवहार को छोड़ो जैसे आप सत्य व्यवहार से सत्य (अधि, आ ददाथे) अधिकता मे ग्रहण करो (इत्था) इस प्रकार हम लोग भी ग्रहण करें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । मनुष्यों को सत्य ग्रहण और असत्य का त्याग कर अपने पुरुषार्थ से पूरा बल और ऐश्वर्य्य सिद्ध कर अपना अन्तःकरण और अपने इन्द्रियो को सत्य काम मे प्रवृत्त करना चाहिए ॥२॥

अब विद्वानों के विषय में अगले मन्त्रों में कहा है—

युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अश्विनाश्रावयन्त इव

श्लोकमायवो युवां हव्याभ्या३ववः ।

युवोर्विश्वा अधि श्रियः पृक्षश्च विश्ववेदसा ।

प्रुषायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दस्रा हिरण्यये ॥३॥

पदार्थ—हे (अश्विना) विद्या और न्याय का प्रकाश करनेवाले विद्वानो ! (श्लोकम्) तुम्हारे यश का (आश्रावयन्तइव) सब ओर से श्रवण करते हुए से (स्तोमेभिः) स्तुतियों से (युवाम्) तुम्हारी (देवयन्तः) कामना करते हुए जन (युवाम्) तुम्हारे (अभि) सम्मुख (हव्या) लेने योग्य होम के पदार्थों को (आयवः) प्राप्त हुए फिर केवल इतना ही नहीं किन्तु हे (दस्रा) दुःख दूर करनेहारे (विश्ववेदसा) समग्र ज्ञानयुक्त उक्त विद्वानो ! जैसे (वाम्) तुम्हारे (हिरण्यये) सुवर्णमय (रथे) विहार की सिद्धि करनेवाले रथ मे (पवयः) चाक वा पहिये के समान (प्रुषायन्ते) मधुरपने आदि को धरते हैं वैसे (युवोः) तुम्हारे सहाय से (हिरण्यये) सुवर्णमय रथ मे (विश्वा) समग्र (अधि) अधिक (श्रियः) सम्पत्तियों को (च) और (पृक्षः) अन्नादि पदार्थों को (आयवः) प्राप्त हुए हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो पूर्ण विद्या की प्राप्ति के निमित्त विद्वानों का आश्रय करते हैं वे धनधान्य और ऐश्वर्य्य आदि पदार्थों से पूर्ण होते हैं ॥ ३ ॥

अचेति दस्रा व्यु१ नाकमृण्वथो युञ्जते

वां रथयुजो दिविष्टिष्वध्वस्मानो दिविष्टिषु ।

अधि वां स्थाम वन्धुरे रथे दस्रा हिरण्यये ।

पथेव यन्तावनुशासता रजोऽञ्जसा शासता रजः ॥४॥

पदार्थ—हे (दस्रा) दुःख दूर करनेहारे विद्वानो ! आप जिस (नाकम्) दुःखरहित व्यवहार को (ऋण्वथः) प्राप्त कराते हो तथा (दिविष्टिषु) आकाश मार्गों मे (वाम्) तुम्हारे (रथयुजः) रथो को युक्त करनेवाले अग्नि आदि पदार्थ वा (दिविष्टिषु) दिव्य व्यवहारो मे (अध्वस्मानः) नीच दशा में न गिरनेवाले जन (युञ्जते) रथ को युक्त करते हैं सो (अचेति) ज्ञात होता है, जाना जाता है इससे (उ) ही । हे (दस्रा) दुःख दूर करने (रजः) लोक को (अनुशासता) अनुकूल शिक्षा देने (अञ्जसा) साक्षात् (रजः) ऐश्वर्य्य की (शासता) शिक्षा देने (पथेव) जैसे मार्ग से वैसे आकाशमार्ग मे (यन्तौ) चलानेहारो (वाम्) तुम्हारे (हिरण्यये) सुवर्णमये (वन्धुरे) दृढ बन्धनों से युक्त (रथे) विमान आदि रथ में हम लोग (अधि, स्थाम) अधिष्ठित हों, बैठें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो विद्वानों को प्राप्त हो, शिल्प विद्या पढ़ और विमानादि रथ को सिद्ध कर अन्तरिक्ष मे जाते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम् ।

मा वां रातिरुप दसत्कदा चनास्मद्रातिः कदा चन ॥५॥३॥

पदार्थ—हे (शचीवसू) उत्तम बुद्धि का वास करानेहारे विद्वानो ! तुम (दिवा) दिन वा (नक्तम्) रात्रि मे (शचीभिः) कर्मों से (नः) हम लोगों को विद्या (दशस्यतम्) देओ (वाम्) तुम्हारा (रातिः) देना (कदा, चन)

कभी (मा) मत (उप, दसत्) नष्ट हो (अस्मत्) हम लोगों से (राति) देना (कदा, चन) कभी मत नष्ट हो ॥ ५ ॥

भावार्थ- इस संसार में अध्यापक और उपदेशक अच्छी शिक्षायुक्त वाणी से दिन-रात विद्या का उपदेश करें जिससे किसी की उदारता नष्ट न हो ॥ ५ ॥

वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्दंव इमे सुता

अद्रिषुतास उद्भिदस्तुभ्यं सुतासं उद्भिदः ।

ते त्वा मन्दन्तु दावने महे चित्राय राधंसे ।

गीर्भिर्गिर्वाहः स्तवंमान आ गंहि सुमृळीको न आ गंहि ॥६॥

पदार्थ- हे (वृषन्) सेचन समर्थ अति बलवान् (इन्द्र) परमैश्वर्य्ययुक्त जन ! जो (इमे) ये (तुभ्यम्) तुम्हारे लिए (वृषपाणास:) मेघ जिनसे वर्षते वे वर्षाबिन्दु जिनके पान ऐसे (अद्रिषुतास) जो मेघ से उत्पन्न (उद्भिदः) पृथिवी का विदारण करके प्रसिद्ध होते (इन्दव) और रसवान् वृक्ष (सुता) उत्पन्न हुए तथा (उद्भिद) जो विदारण भाव को प्राप्त अर्थात् कूट-पीट बनाये हुए औषध आदि पदार्थ (सुतास) उत्पन्न हुए हैं (ते) वे (दावने) सुख देनेवाले (महे) बड़े (चित्राय) अद्भुत (राधसे) धन के लिए (त्वा) आपको (मन्दन्तु) आनन्दित करें । हे (गिर्वाह) उपदेशरूपी वाणियों की प्राप्ति करानेहारे आप (गीर्भि) शास्त्रयुक्त वाणियों से (स्तवमान) गुणों का कीर्त्तन करते हुए (न) हम लोगों के प्रति (आ, गहि) आओ तथा (सुमृळीकः) उत्तम सुख देनेवाले होते हुए हम लोगों के प्रति (आ, गहि) आओ ॥ ६ ॥

भावार्थ-- मनुष्यों को चाहिए कि उन्हीं ओषधि और ओषधिरसों का सेवन करें कि जो प्रमाद न उत्पन्न करें, जिससे ऐश्वर्य की उन्नति हो ॥ ६ ॥

ओ षू णों अग्ने शृणुहि त्वमीळितो

देवेभ्यों ब्रवसि यज्ञियेभ्यो राजंभ्यो यज्ञियेभ्यः ।

यद्ध त्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन ।

वि तां दुंह्रे अर्यमा कर्तरि सचाँ एष तां वेद मे सचा ॥७॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! हम लोगों में (ईळित) स्तुति प्रशंसायुक्त किये हुए (त्वम्) आप (यज्ञियेभ्य.) यज्ञानुष्ठान करने को योग्य (देवेभ्य.) विद्वानों और (यज्ञियेभ्यः) अश्वमेधादि यज्ञ करने को योग्य (राजभ्य) राज्य करनेवाले न्यायाधीशों के लिए (ब्रवसि) कहते हो इस कारण आप (न:) हमारे वचन को (ओ, सु, शृणुहि) शोभनता जैसे हो वैसे ही सुनिए । हे (देवा) विद्वानो (यत्) (ह, त्याम्) जिस प्रसिद्ध ही (धेनुम्) गुणों की परिपूर्ण करनेवाली वाणी को तुम (अङ्गिरोभ्य) प्राण विद्या के जाननेवालों के लिए (अदत्तन) देओ (ताम्) उसको और जिसका (कर्त्तरि) कर्म करनेवाले के निमित्त (सचा) सहानुभूति करनेवाला (अर्यमा) न्यायाधीश (वि दुह्रे) पूर्ण करता है (ताम्) उस वाणी को (मे) मेरा (सचा) सहायी (एष) यह न्यायाधीश (वेद) जानता है ॥ ७ ॥

भावार्थ— अध्यापकों की योग्यता यह है कि सब विद्यार्थियों को निष्कपटता से समस्त विद्या प्रतिदिन पढ़ाके परीक्षा के लिए उनका पढ़ा हुआ सुनें जिससे पढ़े हुए को विद्यार्थिजन न भूलें ॥ ७ ॥

मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या

सना भूवन्द्युम्नानि मोत जारिषुरस्मत्पुरोत जारिषुः ।

यद्वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम् ।

अस्मासु तन्मंरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरंम् ॥८॥

पदार्थ - हे (मरुत) ऋतु-ऋतु में यज्ञ करनेवाले विद्वानो ! (व.) तुम्हारे (तानि) वे (सना) सनातन (पौंस्या) पुरुषों में उत्तम बल (अस्मत्) हम लोगों से (मो, अभि, भूवन्) मत तिरस्कृत हो जा (पुरा, उत) पहले भी (जारिषु) नष्ट हुए (उत) वे भी (द्युम्नानि) यश वा धन (अस्मत्) हम लोगों से (मा, जारिषु) फिर नष्ट न होवें (यत) जो (व) तुम्हारा (युगे-युगे) युग-युग में (चित्रम्) अद्भुत (अमर्त्यम्) अविनाशी (नव्यम्) नवीनों में हुआ यश (यत, च) और जो (दुस्तरम्) शत्रुओं को दुःख से पार होने योग्य बल (यत् च) और जो (दुस्तरम) शत्रुओं को दुःख से पार होने योग्य काम (घोषात्) वाणी से तुम (दिधृत) धारण करो (तत्) वह समस्त (अस्मासु) हम लोगों में (सु) अच्छापन जैसे हो वैसे धारण करो ॥ ८ ॥

भावार्थ —मनुष्यों को इस प्रकार आशंसा, इच्छा और प्रयत्न करना चाहिए कि जिससे बल यश, धन, आयु और राज्य नित्य बढ़े ॥ ८ ॥

दध्यङ् ह मे जनुषं पूर्वो अङ्गिराः प्रियमेधः

कण्वो अत्रिर्मनुर्विदुस्ते मे पूर्वे मनुर्विदुः ।

तेषां देवेष्वायतिरस्माकं तेषु नाभयः ।

तेषां पदेन मह्या नंमे गिरेन्द्राग्नी आ नंमे गिरा ॥९॥

पदार्थ—जो (दध्यङ्) धारण करनेवालों को प्राप्त होनेवाला (पूर्व:) शुभ गुणों से परिपूर्ण (अङ्गिरा:) प्राण विद्या का जाननेवाला (प्रियमेध:) धारणावती बुद्धि जिसको प्रिय वह (अत्रि:) सुखों का भोगनेवाला (मनु) विचारशील और (कण्व) मेधावीजन (मे) मेरे (महि) महान् (जनुषम्) विद्यारूप जन्म को (ह) प्रसिद्ध (विदु:) जानते हैं (ते) वे (मे) मेरे (पूर्वे) शुभ गुणों से परिपूर्ण पिछले जन यह (मनु) ज्ञानवान् है यह भी (विदु.) जानते हैं (तेषाम्) उनका (देवेषु) विद्वानों में (आयति:) अच्छा विस्तार है (अस्माकम्) हमारे (तेषु) उनमें (नाभय) सम्बन्ध हैं (तेषाम्) उनके (पदेन) पाने योग्य विज्ञान और (गिरा) वाणी से मैं (आ, नमे) अच्छे प्रकार नम्र होता हूँ जो (इन्द्राग्नी) प्राण और बिजुली के समान अध्यापक और उपदेशक हो उनको मैं (गिरा) वाणी से (आ, नमे) नमस्कार करता हूँ ॥ ९ ॥

भावार्थ -- इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जगत् में जो विद्वान् हैं वे ही विद्वान् के प्रभाव को जानने योग्य होते हैं किन्तु क्षुद्राशय नहीं, जो जिनसे विद्या ग्रहण करें वे उनके प्रियाचरण का सदा अनुष्ठान करें सब इतर जनों को प्राप्त विद्वानों के मार्ग ही में चलना चाहिए किन्तु और मूर्खों के मार्ग से नहीं ॥ ९ ॥

होता यक्षद्वनिनो वन्त वार्यं बृहस्पतिर्यजति

वेन उक्षभिः पुरुवारेभिरुक्षभिः ।

जगृभ्मा दूर आदिशं श्लोकमद्रेरध त्मनां ।

अधारयदररिन्दानि सुक्रतुः पुरू सद्मानि सुक्रतुः ॥१०॥

पदार्थ - (होता) सद्गुणों का ग्रहण करनेवाला जन (पुरुवारेभि) जिनके स्वीकार करने योग्य गुण हैं उन (उक्षभि:) महात्माजनों के साथ जिस (वार्यम्) स्वीकार करने योग्य जन का (यक्षत्) सङ्ग करे वा जिनके स्वीकार करने योग्य गुण उन (उक्षभि) महात्माजनों के साथ वर्त्तमान (वेन:) कामना करने और (बृहस्पति) बड़ी वाणी की पालना करनेवाला विद्वान जिस स्वीकार करने योग्य का (यजति) सङ्ग करता है (सुक्रतु.) सुन्दर बुद्धिवाला जन (त्मना) आपसे जिन (पुरु) बहुत (सद्मानि) प्राप्त होने योग्य पदार्थों को (अधारयत्) धारण करावे वा (सुक्रतु) उत्तम काम करनेवाला जन (अद्रे) मेघ से (अररिन्दानि) जलों को जैसे वैसे (दूर, आदिशम्) दूर से जो कहा जाए उस विषय और (श्लोकम्) वाणी को धारण करावे उस सबको (वनिन) प्रशंसनीय विद्या किरणें जिनके विद्यमान हैं वे सज्जन (वन्त) अच्छे प्रकार सेवें (अध) इसके अनन्तर इस उक्त समस्त विषय को हम लोग भी (जगृभ्म) ग्रहण करें ॥ १० ॥

भावार्थ -- इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मेघ से छूटे हुए जल समस्त प्राणी-अप्राणियों अर्थात जड़-चेतनों को जिलाते उनकी पालना करते हैं वैसे वेदादि विद्याओं के पढ़ने-पढ़ानेवालों से प्राप्त हुई विद्या सब मनुष्यों को वृद्धि देती है और जैसे महात्मा शास्त्रवेत्ता विद्वानों के साथ सम्बन्ध से सज्जन लोग जानने योग्य विषय को जानते हैं वैसे विद्या के उत्तम सम्बन्ध से मनुष्य चाहे हुए विषय को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ ।

अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥११॥४॥

पदार्थ-- हे (देवास) विद्वानो ! तुम (ये) जो (दिवि) सूर्यादि लोक में (एकादश) दश प्राण और ग्यारहवा जीव (स्थ) हैं वा जो (पृथिव्याम्) पृथिवी में (एकादश) उक्त एकादश गण के (अधि, स्थ) अधिष्ठित हैं वा जो (महिना) महत्त्व के साथ (अप्सुक्षित) अन्तरिक्ष वा जलों में निवास करनेहारे (एकादश) दशेन्द्रिय और एक मन (स्थ) हैं (ते) वे जैसे हैं वैसे उनको जानके हे (देवास) विद्वानो ! तुम (इमम्) इस (यज्ञम) सङ्ग करने योग्य व्यवहाररूप यज्ञ को (जुषध्वम्) प्रीतिपूर्वक सेवन करो ॥ ११ ॥

भावार्थ - ईश्वर के इस सृष्टि में जो पदार्थ सूर्यादि लोकों में हैं अर्थात् जो अन्यत्र वर्त्तमान हैं वे ही यहाँ हैं जितने यहाँ हैं उतने ही वहाँ और लोकों में हैं उनको यथावत् जानके मनुष्यों को योगक्षेम निरन्तर करना चाहिए ॥ ११ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के शील का वर्णन होने से इसके अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ उनतालीसवाँ सूक्त, चौथा वर्ग और बीसवाँ अनुवाक समाप्त हुआ ॥

卐

वेदिषद इत्यस्य त्रयोदशर्चस्य चत्वारिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । १, ५, ८ जगती । २, ७, ११ विराड्जगती । ३, ४, ९ निचृज्जगती च छन्दः । निषादः स्वरः । भुरिक्त्रिष्टुप् । १०, १२ निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवत. स्वरः । १३ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब एकसौ चालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के पुरुषार्थ और गुणों का विषय कहा है—

वेदिषदें प्रियधामाय सुद्युते धासिमिव प्र भंरा योनिमग्नयें ।

वस्त्रेणेव वासया मन्मंना शुचिं ज्योतीरंथं शुक्रवर्णं तमोहनंम् ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप (**अध्वना**) जिससे मानते-जानते उस विचार से (**वेदिषदे**) जो वेदी में स्थिर होता उस (**अग्नये**) अग्नि के लिए (**धासिमिव**) जिससे प्राणों को धारण करते उस अन्न के समान हवन करने योग्य पदार्थ का जैसे वैसे (**प्रियधामाय**) जिसको स्थान प्यारा उस (**सुद्युते**) सुन्दर कान्तिवाले विद्वान् के लिए (**योनिम्**) घर का (**प्र, भर**) अच्छे प्रकार धारण कर और (**ज्योतीरथम्**) ज्योति के समान (**तमोहनम्**) अन्धकार का विनाश करनेवाले (**शुक्रवर्णम्**) शुद्धस्वरूप (**शुचिम्**) पवित्र मनोहर यान को (**वस्त्रेणेव**) पट वस्त्र से जैसे (**वासय**) ढाँपो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे होताजन आग में समिधारूप काष्ठों को अच्छे प्रकार स्थिर कर और उसमें घृत आदि हवि का हवन कर इस आग को बढ़ाते हैं वैसे शुद्ध जन को भोजन और आच्छादन अर्थात् वस्त्र आदि से विद्वान् जन बढ़ावें ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमी पुनः ।
अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषा न्यन्येन वनिनो मृष्ट वारणः ॥२॥

पदार्थ—जिसमें (**संवत्सरे**) संवत्सर पूरे हुए पर (**त्रिवृत्**) कर्म, उपासना और ज्ञानविषय में जो साधनरूप से वर्त्तमान उस (**अन्नम्**) भोगने योग्य पदार्थ वा (**ऋज्यते**) उपार्जन किया वा (**अन्यस्य**) और के (**आसा**) मुख और (**जिह्वया**) जीभ के साथ (**ईम्**) वही अन्न (**पुनः**) बार-बार (**जग्धम्**) खाया हो वह (**द्विजन्मा**) विद्या में द्वितीय जन्मवाला ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कुल का जन (**अभि, वावृधे**) सब ओर से बढ़ता (**जेन्यः**) विजयशील और (**वृषा**) बैल के समान अत्यन्त बली होता है इससे (**अन्येन**) और मित्रवर्ग के साथ (**वारणः**) समस्त दोषों की निवृत्ति करनेवाला तू (**वनिनः**) जलों को (**नि, मृष्ट**) निरन्तर शुद्ध कर ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो मनुष्य अन्न आदि बहुत पदार्थ इकट्ठे कर उनको बना और भोजन करते वा दूसरों को कराते तथा हवन आदि उत्तम कामों से वर्षा की शुद्धि करते हैं वे अत्यन्त बली होते हैं ॥२॥

कृष्णप्रुतौ वेविजे अस्य सक्षिता उभा तरेते अभि मातरा शिशुम् ।
प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतमा साच्यं कुपयं वर्धनं पितुः ॥३॥

पदार्थ—जिस (**प्राचाजिह्वम्**) दुग्ध के देने से पहले अच्छे प्रकार जीभ निकालने (**ध्वसयन्तम्**) गोदी से नीचे गिरने (**तृषुच्युतम्**) वा शीघ्र गिरे हुए (**आ, साच्यम्**) अच्छे प्रकार सम्बन्ध करने अर्थात् उठा लेने (**कुपयम्**) गोपित रखने योग्य और (**पितुः**) पिता का (**वर्धनम्**) यश वा प्रेम बढ़ानेवाले (**शिशुम्**) बालक को (**सक्षिती**) एक साथ रहनेवाली (**मातरा**) धायी और माता (**अभि, तरेते**) दुःख से उत्तीर्ण करतीं (**अस्य**) इस बालक की वे (**उभा**) दोनों माताएँ (**कृष्णप्रुतौ**) विद्वानों के उपदेश में चित्त के आकर्षण धर्म को प्राप्त हुईं (**वेविजे**) निरन्तर कम्पती हैं अर्थात् डरती हैं कि कथंचित् बालक को दुःख न हो ॥३॥

भावार्थ—भलेबुरे का ज्ञान बढ़ाने, रोग आदि बड़े क्लेशों को दूर करने और प्रेम उत्पन्न करानेवाले विद्वानों के उपदेश को पाये हुए भी बालक की माता अर्थात् दूध पिलानेवाली धाय और उत्पन्न करनेवाली निज माता अपने प्रेम से सर्वदा डरती हैं ॥३॥

मुमुक्ष्वो मनवे मानवस्यते रघुद्रुवः कृष्णसीतास ऊ जुवः ।
असमना अजिरासो रघुष्यदो वातजूता उप युज्यन्त आशवः ॥४॥

पदार्थ—जो (**मुमुक्ष्वः**) संसार से छूटने की इच्छा करनेवाले हैं वे जैसे (**रघुद्रुवः**) स्वादिष्ठ अन्नों को प्राप्त होनेवाले (**जुवः**) वेगवान् (**असमनाः**) एकसा जिनका मन न हो (**अजिरासः**) जिनको शील प्राप्त है (**रघुष्यदः**) जो सन्मार्गों में चलनेवाले (**वातजूताः**) और पवन के समान वेगयुक्त (**आशवः**) शुभ गुणों में व्याप्त (**कृष्णसीतासः**) जिनके कि खेतों का काम निकालनेवाली हलकी यष्टि विद्यमान वे खेतीहारे खेती के कामों का (**उ**) तर्क-वितर्क के साथ (**उप, युज्यन्ते**) उपयोग करते हैं वैसे (**मानवस्यते**) अपने को मनुष्यों की इच्छा करनेवाले (**मनवे**) मननशील विद्वान्, योगी पुरुष के लिए उपयोग करें ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे खेती करनेवाले जन खेतों को अच्छे प्रकार जोतने बोने योग्य भली-भाँति करके और उसमें बीज बोकर फलवान् होते हैं वैसे मुमुक्षु पुरुष यम-नियम से इन्द्रियों को खैंच और शम अर्थात् शान्तिभाव से मन को शान्त कर अपने आत्मा को पवित्र कर ब्रह्मवेत्ता जनों की सेवा करें ॥४॥

आदस्य ते ध्वसयन्तो वृथेरते कृष्णमभ्वं महि वर्पः करिक्रतः ।
यत्सीं महीमवनिं प्राभि मर्मृशदभिश्वसन्त्स्तनयन्नेति नानदत् ॥५॥५॥

पदार्थ—(**यत्**) जो (**कृष्णम्**) काले वर्ण के (**अभ्वम्**) न होनेवाले (**महि**) बड़े (**वर्पः**) रूप को (**ध्वसयन्तः**) विनाश करते हुए से (**करिक्रतः**) अत्यन्त कार्य करनेवाले जन (**वृथा**) मिथ्या (**ईरते**) प्रेरणा करते हैं (**ते**) वे (**अस्य**) इस मोक्ष की प्राप्ति को नहीं योग्य हैं जो (**महीम्**) बड़ी (**अवनिम्**) पृथिवी को (**अभि, मर्मृशत्**) सब ओर से अत्यन्त सहता (**अभिश्वसन्**) सब ओर से श्वास लेता (**नानदत्**) अत्यन्त बोलता और (**स्तनयन्**) बिजुली के समान गर्जना करता हुआ अच्छे गुणों को (**सीम्**) सब ओर से (**एति**) प्राप्त होता है (**आत्**) इसके अनन्तर वह मुक्ति को प्राप्त होता है ॥५॥

भावार्थ—जो मनुष्य इस संसार में शरीर का आश्रय कर अधर्म करते हैं वे दृढ़ बन्धन को पाते हैं और जो शास्त्रों को पढ़ योगाभ्यास कर धर्म का अनुष्ठान करते हैं उन्हीं की मुक्ति होती है॥५॥

कौन मनुष्य इस जगत् में शोभायमान होते हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

भूषन्न योऽधि बभ्रूषु नम्नते वृषेव पत्नीरभ्येति रोरुवत् ।
ओजायमानस्तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दविधाव दुर्गृभिः ॥६॥

पदार्थ—(**यः**) जो (**भूषन्**) अलंकृत करता हुआ (**न**) सा (**बभ्रूषु**) धर्म की धारणा करनेवालियों में (**अधि, नम्नते**) अधिक नम्र होता वा (**पत्नीः**) यज्ञसम्बन्ध करनेवाली स्त्रियों को (**रोरुवत्**) अत्यन्त बातचीत कह सुनाता वा (**वृषेव**) बैल के समान बल को और (**दुर्गृभिः**) दुःख से पकड़ने योग्य (**भीमः**) भयंकर सिंह (**शृङ्गा**) सींगों को (**न**) जैसे वैसे (**ओजायमानः**) बैल के समान आचरण करता हुआ (**तन्वः**) शरीर को (**च**) भी (**शुम्भते**) सुन्दर शोभायमान करता वा (**दविधाव**) निरन्तर चलाता अर्थात् उनसे चेष्टा करता वह अत्यन्त सुख को (**अभि, एति**) प्राप्त होता है ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जो मनुष्य सिंह के तुल्य शत्रुओं से अग्राह्य, बैल के तुल्य अति बली, पुष्ट, नीरोग शरीरवाले बड़ी ओषधियों के सेवन से सब सज्जनों को शोभित करें वे इस जगत् में शोभायमान होते हैं ॥६॥

स संस्तिरो विष्टिरः सं गृभायति जानन्नेव जानतीर्नित्य आ शये ।
पुनर्वर्धन्ते अपि यन्ति देव्यमन्यद्वर्पः पित्रोः कृण्वते सचा ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**सः**) वह (**संस्तिरः**) अच्छा ढाँपने (**विष्टिरः**) वा सुख फैलानेवाला विद्वान् (**सं, गृभायति**) सुन्दरता से अच्छे पदार्थों का ग्रहण करता वैसे (**जानन्**) जानता हुआ (**नित्यः**) नित्य मैं (**जानतीः**) ज्ञानवती उत्तम स्त्रियों के (**एव**) ही (**आ, शये**) पास सोता हूँ । जो (**पित्रोः**) माता-पिता के (**अन्यत्**) और (**देव्यम्**) विद्वानों में प्रसिद्ध (**वर्पः**) रूप को (**अपि, यन्ति**) निश्चय से प्राप्त होते हैं वे (**पुनः**) बार-बार (**वर्धन्ते**) बढ़ते हैं और (**कृण्वते**) उत्तम-उत्तम कार्यों को भी करते हैं वैसे तुम भी (**सचा**) मिला हुआ काम किया करो ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जिन विद्वानों के साथ विदुषी स्त्रियों का विवाह होता है वे विद्वान् जन नित्य बढ़ते हैं, जो उत्तम गुणों का ग्रहण करते वे यहाँ पुरुषार्थी होकर जन्मान्तर में भी सुखयुक्त होते हैं ॥७॥

तमग्रुवः केशिनीः सं हि रेभिर ऊर्ध्वास्तस्थुर्मम्रुषीः प्रायवे पुनः ।
तासां जरां प्रमुञ्चन्नेति नानदद्वसुं परं जनयञ्जीवमस्तृतम् ॥८॥

पदार्थ—जो (**अग्रुवः**) अग्रगण्य (**केशिनीः**) प्रशंसनीय केशोंवाली युवावस्था को प्राप्त होती हुई कन्या (**तम्**) उस विद्वान् पति को (**सं, रेभिरे**) सुन्दरता से कहती हैं वे (**हि**) ही (**प्रायवे**) पठाने अर्थात् दूसरे देश उस पति के पहुँचाने को (**मम्रुषीः**) मरी सी हों (**पुनः**) फिर उसी के घर आते समय (**ऊर्ध्वाः**) ऊँची पदवी पायी हुई-सी (**तस्थुः**) स्थिर होती हैं जो (**अस्तृतम्**) नष्ट न किया गया (**परम्**) सबको इष्ट (**असुम्**) ऐसे प्राण को वा (**जीवम्**) जीवात्मा को (**नानदत्**) निरन्तर रटावे और (**तासाम्**) उक्त उन कन्याओं के (**जराम्**) बुढ़ापे को (**प्रमुञ्चन्**) अच्छे प्रकार छोड़ता और विद्याओं को (**जनयन्**) उत्पन्न कराता हुआ उत्तम शिक्षाओं का प्रचार कराता है वह उत्तम जन्म (**एति**) पाता है ॥८॥

भावार्थ—जो कन्याजन ब्रह्मचर्य के साथ समस्त विद्याओं का अभ्यास करती हैं वे इस संसार में प्रशंसित हो और बहुत सुख भोग जन्मान्तर में भी उत्तम सुख को प्राप्त होती हैं और जो विद्वान् लोग भी शरीर और आत्मा के बल को नष्ट नहीं करते वे वृद्धावस्था और रोगों से रहित होते हैं ॥८॥

अधीवासं परि मातू रिहन्नह तुविग्रेभिः सत्वभिर्याति वि ज्रयः ।
वयो दधत्पद्वते रेरिहत्सदानु श्येनी सचते वर्तनीरह ॥९॥

पदार्थ—हे वीर ! जैसे (**ज्रयः**) वेगयुक्त अग्नि (**मातुः**) मान देनेवाली पृथिवी के (**अधिवासम्**) ऊपर से शरीर को जिससे ढाँपते उस वस्त्र के समान घास आदि को (**परि, रिहन्**) परित्याग करता हुआ (**अह**) प्रसिद्ध में (**तुविग्रेभिः**) बहुत शब्दोंवाले (**सत्वभिः**) प्राणियों के साथ (**वि, याति**) विविध प्रकार से प्राप्त होता है और जैसे (**वर्तनिः**) वर्तमान (**श्येनी**) बाज पक्षी की स्त्री बाजिनी (**वयः**) अवस्था को (**दधत्**) धारण करती हुई (**पद्वते**) पगोंवाले द्विपद, चतुष्पद प्राणी के लिए (**सचते**) प्राप्त होती है वैसे दुष्टों को (**अनु, रेरिहत्**) अनुक्रम से बार-बार छोड़ते हुए आप (**सदा**) सदा (**अह**) ही उनको निग्रह स्थान को पहुँचाओ ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि जङ्गलादिकों को जलाता वा पर्वतों को तोड़ता वैसे अन्याय और अधर्मात्माओं की निवृत्ति कर और दुष्टों के अभिमानो को तोड़के सत्य धर्म का तुम प्रचार करो ॥९॥

अस्माकमग्ने मघवत्सु दीदिह्यध श्वसीवान्वृषभो दमूनाः ।
अवास्या शिशुमतीरदीदेर्वर्मेव युत्सु परिजर्भुराणः ॥१०॥६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) पावक के समान वर्त्तमान विद्वन् ! (वृषभः) श्रेष्ठ (दमूना·) इन्द्रियों का दमन करनेवाले (श्वसीवान्) प्राणवान् और (परिजर्भुराणः) सब ओर से पुष्ट होते हुए आप (अस्माकम्) हमारे (युत्सु) संग्राम और (मघवत्सु) बहुत हैं धन जिनमें उन घरों वा मित्रवर्गों मे (वर्मेव) कवच के समान (शिशुमती) प्रशंसित बालकोंवाली स्त्री वा प्रजाओं को (दीदिहि) प्रकाशित करो (अध) इसके अनन्तर दु.खों को (अवास्य) विरुद्धता से दूर पहुँचा सुखों को (अदीदे·) प्रकाशित करो ॥१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है । हे विद्वन् ! संग्राम में जैसे कवच से शरीर संरक्षित किया जाता है वैसे न्याय से प्रजाजनो की रक्षा कीजिए और युद्ध में स्त्रियों को न मारिए, जैसे धनी पुरुषो की स्त्रियां नित्य आनन्द भोगती हैं वैसे ही प्रजाजनो को आनन्दित कीजिए ॥१०॥

इदमग्ने सुधितं दुर्धितादधि प्रियादु चिन्मन्मनः प्रेयो अस्तु ते ।
यत्ते शुक्रं तन्वो३रोचते शुचि तेनास्मभ्यं वनसे रत्नमा त्वम् ॥११॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (दुर्धितात्) दु.ख के साथ धारण किये हुए व्यवहार (उ) या तो (प्रियात्) प्रिय व्यवहार से (सुधितम्) सुन्दर धारण किया हुआ (इदम्) यह (मन्मन) मेरा मन (ते) तुम्हारा (प्रेयः) अतीव प्यारा (अस्तु) हो और (यत्) जो (ते) तुम्हारे (चित्) निश्चय के साथ (तन्व) शरीर का (शुचि) पवित्र करनेवाला (शुक्रम्) शुद्ध पराक्रम (अधिरोचते) अधिकतर प्रकाशमान होता है (तेन) उससे (अस्मभ्यम्) हम लोगो के लिए (त्वम्) आप (रत्नम्) मनोहर धन का (आ, वनसे) अच्छे प्रकार सेवन करते हैं ॥११॥

भावार्थ—मनुष्यो को दु.ख से सोच न करना चाहिए और न सुख से हर्ष मानना चाहिए जिससे एक दूसरे के उपकार के लिए चित्त अच्छे प्रकार लगाया जाए और जो ऐश्वर्य हो वह सबके सुख के लिए बाँटा जाए ॥११॥

रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रां पद्वतीं रास्यग्ने ।
अस्माकं वीराँ उत नो मघोनो जनाँश्च या पारयाच्छर्म या च ॥१२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) शिल्पविद्या पाये हुए विद्वन् ! आप (या) जो (अस्माकम्) हमारे (वीरान्) वीरो (उत) और भी (मघोन) धनवान् (जनान्) मनुष्यों और (न.) हम लोगो को (च) भी समुद्र के (पारयात्) पार उतारे (च) और (या) जो हम को (शर्म) सुख को अच्छे प्रकार प्राप्त करे उस (नित्यारित्राम्) नित्य दृढ़ बन्धनयुक्त जल की गहराई की परीक्षा करते हुए स्तम्भो तथा (पद्वतीम्) पैरों के समान प्रशंसित पहियो से युक्त (नावम) बड़ी नाव को (न) हमारे (रथाय) समुद्र आदि मे रमण के लिए (उत) वा (गृहाय) घर के लिए (रासि) देते हो ॥ १२ ॥

भावार्थ—विद्वानों को चाहिए कि जैसे मनुष्य और घोड़े आदि पशु पैरों से चलते हैं वैसे चलनेवाली बड़ी नाव रचके और एक द्वीप से दूसरे द्वीप वा समुद्र मे युद्ध अथवा व्यवहार के लिए जा-आ कर ऐश्वर्य की उन्नति निरन्तर करें ॥ १२ ॥

अभी नो अग्न उक्थमिज्जुगुर्या द्यावाक्षामा सिन्धवश्च स्वगूर्ताः ।
गव्यं यव्यं यन्तो दीर्घाहेषं वरमरुण्यो वरन्त ॥१३॥७॥

पदार्थ—जैसे (द्यावाक्षामा) अन्तरिक्ष और भूमि (सिन्धव·) समुद्र और नदी तथा (अरुण्य) उष काल (च) और (वरम्) उत्तम रत्नादि पदार्थ (इषम्) अन्न (उक्थम्) प्रशंसनीय (गव्यम्) गौ का दूध आदि वा (यव्यम्) जौ के होनेवाले खेत को (यन्तः) प्राप्त होते हुए (स्वगूर्ता.) अपने-अपने स्वाभाविक गुणो से उद्यत (दीर्घा) बहुत (अहा) दिनो को (वरन्त) स्वीकार करें वैसे हे (अग्ने) विद्वन् ! (नः) हम लोगों को (अभि, इत्, जुगुर्या.) सब ओर से उद्यम ही मे लगाइए ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । मनुष्यों को सदा पुरुषार्थी होना चाहिए, जिन यानो से भूमि, अन्तरिक्ष, समुद्र और नदियां में सुख से शीघ्र जाना हो उन यानो पर चढ़कर प्रतिदिन रात्रि के चौथे प्रहर मे उठकर और दिन मे न सोकर सदा प्रयत्न करना चाहिए जिससे उद्यमी ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥१३॥

इस सूक्त में विद्वानो के पुरुषार्थ और गुणो का वर्णन होने से सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ चालीसवां सूक्त और सातवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

बळित्थेत्यस्य त्रयोदशर्चस्यैकचत्वारिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । १—३, ६, ११ जगती । ४, ७, ९, १० निचृज्जगती छन्द. । निषाद स्वर । ५ स्वराट् त्रिष्टुप् । ८ भुरिक् त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वरः । १२ भुरिक् पङ्क्ति. । १३ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्द. । पञ्चम स्वरः ॥

अब एकसौ इकतालीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में फिर विद्वानो के गुणों का उपदेश करते हैं—

बळित्था तद्वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहसो यतो जनि ।
यदीमुप ह्वरते साधते मतिर्ऋतस्य धेना अनयन्त सस्रुतः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्) जिस (दर्शतम्) देखने योग्य (देवस्य) विद्वान् के (भर्ग.) शुद्ध तेज के प्रति मेरी (मति.) बुद्धि (उपह्वरते) जाती कार्यसिद्धि करती और (सस्रुत) जो समान सत्य मार्ग को प्राप्त होतीं वे (ऋतस्य) सत्य व्यवहार की (धेनाः) वाणियो को (ईम्) सब ओर से (अनयन्त) सत्यता को पहुँचातीं तथा (यत.) जिस कारण (तत्) वह तेज (सहस·) विद्याबल से (जनि) उत्पन्न होता उस कारण (बळित्था) वह सत्य तेज अर्थात् विद्वानो के गुणो का प्रकाश इस प्रकार अर्थात् उक्त रीति से (वपुषे) अपने सुरूप के लिए तुम लोगो से (धायि) धारण किया जाए ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस उत्तम बुद्धि और सत्य आचरण से विद्यावानों का देखने योग्य स्वरूप धारण किया जाता और काम सिद्ध किया जाता उस वाणी और उस सत्य आचार को तुम नित्य स्वीकार करो ॥ १ ॥

पृक्षो वपुः पितुमान्नित्य आ शये द्वितीयमा सप्तशिवासु मातृषु ।
तृतीयमस्य वृषभस्य दोहसे दशप्रमतिं जनयन्त योषणः ॥२॥

पदार्थ—(नित्य) नित्य (पितुमान्) प्रशंसित अन्नयुक्त मैं पहले (पृक्ष.) पूछने कहने योग्य (वपुः) सुन्दर रूप का (आ शये) आशय लेता अर्थात् आश्रित होता हूँ (अस्य) इस (वृषभस्य) यज्ञादि कर्म द्वारा जल वर्षानेवाले का मेरा (द्वितीयम्) दूसरा सुन्दर रूप (सप्तशिवासु) सात प्रकार की कल्याण करने (मातृषु) और मान्य करनेवाली माताओं के समीप (आ) अच्छे प्रकार वर्त्तमान और (तृतीयम्) तीसरा (दशप्रमतिम्) दश प्रकार की उत्तम मति जिसमें होती उस सुन्दर रूप को (दोहसे) कामों की परिपूर्णता के लिए (योषणः) प्रत्येक व्यवहारो को मिलानेवाली स्त्री (जनयन्त) प्रकट करती हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य इस जगत् मे सात प्रकार के लोको मे ब्रह्मचर्य से प्रथम गृहाश्रम से दूसरे और वानप्रस्थ वा सन्यास से तीसरे कर्म और उपासना के विज्ञान को प्राप्त होते वे दश इन्द्रियो, दश प्राणों के विषयक मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और जीव के ज्ञान को प्राप्त होते है ॥ २ ॥

निर्यदीं बुध्नान्महिषस्य वर्पस ईशानासः शवसा क्रन्त सूरयः ।
यदीमनु प्रदिवो मध्व आधवे गुहा सन्तं मातरिश्वा मथायति ॥३॥

पदार्थ—(यत्) जो (ईशानास) ऐश्वर्ययुक्त (सूरय·) विद्वान् जन (शवसा) बल से जैसे (आधवे) सब ओर से अन्न आदि के अलग करने के निमित्त (मातरिश्वा) प्राणवायु जाठराग्नि को (मथायति) मथता है वैसे (महिषस्य) बड़े (वर्पस) रूप अर्थात् सूर्यमण्डल के सम्बन्ध मे स्थित (बुध्नात्) अन्तरिक्ष से (ईम्) इस प्रत्यक्ष व्यवहार को (अनुक्रन्त) अनुक्रम से प्राप्त हों वा (मध्वः) विशेष ज्ञानयुक्त (प्रदिव) कान्तिमान् आत्मा के (गुहा) गुहाशय मे अर्थात् बुद्धि मे (सन्तम्) वर्त्तमान (ईम्) प्रत्यक्ष (यत्) जिस ज्ञान को (निष्क्रन्त) निरन्तर क्रम से प्राप्त हो उससे वे सुखी होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । वे ही ब्रह्मवेत्ता विद्वान् होते हैं जो धर्मानुष्ठान योगाभ्यास और सत्सङ्ग करके अपने आत्मा को जान परमात्मा को जानते हैं और वे ही मुमुक्षुजनों के लिए इस ज्ञान को विदित कराने के योग्य होते हैं ॥ ३ ॥

प्र यत्पितुः परमान्नीयते पर्या पृक्षुधो वीरुधो दंसु रोहति ।
उभा यदस्य जनुषं यदिन्वत आदिद्यविष्ठो अभवद्घृणा शुचिः ॥४॥

पदार्थ—पुरुष से (परमात्) उत्कृष्ट उत्तम यत्न के साथ (यत्) जो (अस्य) प्रत्यक्ष वृक्षजाति का सम्बन्धी (पितु.) अन्न (प्रणीयते) प्राप्त किया जाता है वा जो (दंसु) दूसरों के दबाने आदि के निमित्त मे (पृक्षुधः) अत्यन्त भोगने को इष्ट (वीरुध) अत्यन्त पौढ़ी हुई लताओं पर (पर्य्यारोहति) चारों ओर से पौंढ़ता है (आत्) और (इन्वत.) प्रिय इस यजमान का (यत्) जो (जनुषम्) जन्म (अभवत्) हो तथा (यत्) जो (शुचिः) पवित्र (घृणा) चमक दमक हो उन (उभा) दोनों को (इत्) ही (यविष्ठः) अत्यन्त तरुण जन प्राप्त होवें ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि अन्न और ओषधि सबसे लेवें और संस्कार किये अर्थात् बनाये हुए उस अन्न के भोजन से समस्त सुख होता है ऐसा जानना चाहिए ॥ ४ ॥

आदिन्मातृराविंशद्यास्वा शुचिरहिंस्यमान उर्विया वि वावृधे ।
अनु यत्पूर्वा अरुहत्सनाजुवो नि नव्यसीष्ववरासु धावते ॥५॥ ८ ॥

पदार्थ—जो (यासु) जिन (नव्यसीषु) अत्यन्त नवीन और (अवरासु) पिछली ओषधियों के निमित्त (नि, धावते) निरन्तर शीघ्र जाता है वा (यत्) जो (सनाजुवः) सनातन वेगवाली (पूर्वाः) पिछली ओषधियों को (अनु, अरुहत्) बढ़ाता है वह उन ओषधियों में (आ, शुचिः) अच्छे प्रकार पवित्र और (अहिंस्यमानः) विनाश को न प्राप्त होता हुआ (उर्विया) बहुत प्रकार (विवावृधे) विशेषता से बढ़ता है (आत्) इसके पीछे (इत्) ही (मातृः) माता के समान मान करनेवाली ओषधियों को (आ, अविशत्) अच्छे प्रकार प्रवेश करता है ॥५॥

भावार्थ—जो पुरुष वैद्यक विद्या को पढ़, बड़ी-बड़ी ओषधियों का युक्ति के साथ सेवन करते हैं वे बहुत बढ़ते हैं । ओषधी दो प्रकार की होती हैं अर्थात् पुरानी और नवीन उनमें जो विचक्षण चतुर होते हैं वे ही नीरोग होते हैं ॥ ५ ॥

आदिद्धोतारं वृणते दिविष्टिषु भगमिव पपृचानास ऋञ्जते ।
देवान्यत्क्रत्वा मज्मना पुरुष्टुतो मर्तं शंसं विश्वधा वेति धायसे ॥६॥

पदार्थ—(यत्) जो (पुरुष्टुतः) बहुतों से प्रशंसा किया हुआ (विश्वधा) विश्व को धारण करनेवाला (क्रत्वा) कर्म वा विशेष बुद्धि से और (मज्मना) बल से (धायसे) धारणा के लिए (शंसम्) प्रशंसायुक्त (मर्तम्) मनुष्य को और (देवान्) दिव्य गुणों को (वेति) प्राप्त होता है उसको (आत्) और (होतारम्) देनेवाले को जो (पपृचानासः) सम्बन्ध करते हुए जन (दिविष्टिषु) सुन्दर यज्ञों में (भगमिव) धन ऐश्वर्य के समान (वृणते) सेवते हैं वे (इत्) ही दुःखों को (ऋञ्जते) भूजने हैं अर्थात् जलाते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो अच्छे वैद्य का रत्न के समान सेवन करते हैं वे शरीर और आत्मा के बलवाले होकर सुखी होते हैं ॥ ६ ॥

वि यदस्थाद्यजतो वातचोदितो ह्वारो न वक्वा जरणा अनाकृतः ।
तस्य पत्मन्दक्षुषः कृष्णजंहसः शुचिजन्मनो रज आ व्यध्वनः ॥ ७ ॥

पदार्थ—(यत्) जो (यजत) सङ्ग करने और (वक्वा) कहनेवाला (अनाकृतः) रुकावट को न प्राप्त हुआ (वातचोदितः) प्राण वा पवन से प्रेरित विद्वान् (ह्वारः) कुटिलता करते हुए अग्नि के (न) समान (व्यस्थात्) विशेषता से स्थिर है (तस्य) उस (शुचिजन्मनः) पवित्र जन्मा विद्वान् के (पत्मन्) चाल-चलन में (कृष्णजंहस) काले मारने हैं जिसके उस (दक्षुषः) जलाते हुए (आ, व्यध्वनः) अच्छे प्रकार विरुद्ध मार्गवाले अग्नि के (रजः) कण के समान (जरणा) प्रशंसा स्तुति होती हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो धर्म में अच्छी स्थिरता रखते हैं वे सूर्य के समान प्रसिद्ध होते हैं और उनकी की हुई कीर्ति सब दिशाओं में विराजमान होती है ॥ ७ ॥

रथो न यातः शिक्वभिः कृतो द्यामङ्गेभिररुषेभिरीयते ।
आदस्य ते कृष्णासो दक्षि सूरयः शूरस्येव त्वेषथादीषते वयः ॥ ८ ॥

पदार्थ—(कृष्णासः) जो खींचते हैं वे (सूरयः) विद्वान् जन जैसे (शिक्वभिः) कीलों और बन्धनों से (कृतः) सिद्ध किया (द्याम्) आकाश को (अरुषेभिः) लाल रङ्गवाले (अङ्गेभिः) अङ्गों के साथ (यातः) प्राप्त हुआ (रथः) रथ (ईयते) चलता है (न) वैसे वा (वयः) पक्षी और (शूरस्येव, त्वेषथात्) शूरवीर के प्रकाशित व्यवहार से जैसे वैसे कलाकुशलता से (ईषते) देखते हैं वे सुख पाते हैं, हे विद्वन् ! (आत्) इसके अनन्तर जो आप अग्नि के समान पापों को (धक्षि) जलाते हो (अस्य) इन (ते) आपको सुख होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । जैसे उत्तम विमान से अन्तरिक्ष में आना-जाना सुख से जन करते हैं वैसे विद्वान् जन विद्या से धर्म सम्बन्धी मार्ग में विचरने को समर्थ होते हैं ॥ ८ ॥

त्वया ह्यग्ने वरुणो धृतव्रतो मित्रः शाशद्रे अर्यमा सुदानवः ।
यत्सीमनु क्रतुना विश्वथा विभुररान्न नेमिः परिभूरजायथाः ॥९॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! जैसे (त्वया) तुम्हारे साथ (यत्) जो (वरुणः) श्रेष्ठ (धृतव्रतः) सत्य व्यवहार को धारण किये हुए (मित्रः) सब का मित्र और (अर्यमा) न्यायाधीश (सुदानवः) अच्छे दानशील (हि) ही होते हैं वैसे उनके संग से आप (नेमिः) पहिया (अरान्, न) अरों को जैसे वैसे (विश्वथा) वा जैसे सब प्रकार से (विभुः) ईश्वर व्यापक है वैसे (क्रतुना) उत्तम बुद्धि से (परिभूः) सर्वोपरि (सीम्) सब ओर से (अनु, अजायथाः) अनुक्रम से होओ जिससे दुःख को (शाशद्रे) नष्ट करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । जैसे ईश्वर न्यायकारी और सब विद्याओं में प्रवीण है वैसे विद्वानों के संग से बुद्धिमान् न्यायकारी और पूरी विद्यावाला हो ॥ ९ ॥

त्वमग्ने शशमानाय सुन्वते रत्नं यविष्ठ देवतातिमिन्वसि ।
तं त्वा नु नव्यं सहसो युवन्वयं भगं न कारे महिरत्न धीमहि ॥१०॥

पदार्थ—हे (सहसः) बलसम्बन्धी (युवन्) यौवनभाव को प्राप्त (यविष्ठ) अत्यन्त तरुण (महिरत्न) प्रशंसा करने योग्य गुणों से रमणीय (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वन् ! जो (त्वम्) आप (शशमानाय) अधर्म को उल्लंघके, धर्म को प्राप्त हुए (सुन्वते) और ऐश्वर्य को उत्पन्न करनेवाले उत्तम जन के लिए (रत्नम्) रमणीय ज्ञान वा उसके साधन को और (देवतातिम्) परमेश्वर को (इन्वसि) ध्यान-योग से व्याप्त होते हो (तम्) उन (नव्यम्) नवीन विद्वानों में प्रसिद्ध (त्वा) आपको (कारे) कर्त्तव्य व्यवहार में (भगम्) ऐश्वर्य के (न) समान (वयम्) हम लोग (नु) शीघ्र (धीमहि) धारण करें ॥ १० ॥

भावार्थ—जो अधर्म को छोड़ धर्म का अनुष्ठान कर परमात्मा को प्राप्त होते हैं वे अति रमणीय आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

अस्मे रयिं न स्वर्थं दमूनसं भगं दक्षं न पपृचासि धर्णसिम् ।
रश्मीँरिव यो यमति जन्मनी उभे देवानां शंसमृत आ च सुक्रतुः ॥११॥

पदार्थ—जो (सुक्रतुः) उत्तम बुद्धिवाला विद्वन् (अस्मे) हम लोगों के लिए (स्वर्थम्) जिससे अच्छा प्रयोजन हो वा जो अनर्थ साधनों से रहित उस (रयिम्) धन के (न) समान (दमूनसम्) इन्द्रियों को विषयों में दबा देने के समानरूप (भगम्) ऐश्वर्य का और (दक्षम्) चतुर के (न) समान (धर्णसिम्) धारण करनेवाले का (पपृचासि) सम्बन्ध करता वा (रश्मीँरिव) जैसे किरणों को वैसे (ऋते) सत्य व्यवहार में (देवानाम्) विद्वानों के (उभे) दो (जन्मनी) अगले-पिछले जन्म (च) और (शंसम्) प्रशंसा को (यः) जो (आ, यमति) बढ़ाता है वह हम लोगों को सत्कार करने योग्य है ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जो सूर्य की किरणों के समान सब को धर्म-सम्बन्धी पुरुषार्थ में संयुक्त करते हैं और आप भी वैसे ही वर्त्तते हैं वे अगले-पिछले जन्मों को पवित्र करते हैं ॥ ११ ॥

उत नः सुद्योत्मा जीराश्वो होता मन्द्रः शृणवच्चन्द्ररथः ।
स नो नेषन्नेषतमैरमूरोऽग्निर्वामं सुवितं वस्यो अच्छ ॥१२॥

पदार्थ—जो (मन्द्रः) प्रशंसायुक्त (चन्द्ररथः) जिसके रथ में चांदी-सोना विद्यमान जो (सुद्योत्मा) उत्तम प्रकाशवाला (जीराश्वः) जिसके वेगवान् बहुत घोड़े वह (होता) दानशील जन (नः) हम लोगों को (शृणवत्) सुने (उत) और जो (अमूरः) गमनशील (वस्यः) निवास करने योग्य (अग्निः) अग्नि के समान प्रकाशमान जन (सुवितम्) उत्पन्न किये हुए (वामम्) अच्छे रूप को (नेषतमैः) अतीव प्राप्ति करानेवाले गुणों से (अच्छ) अच्छा (नेषत्) प्राप्त करे (सः) वह (नः) हम लोगों के बीच प्रशंसित होता है ॥ १२ ॥

भावार्थ—जो सब के न्याय का सुननेवाला, सांगोपांग सामग्रीसहित विद्या-प्रकाश युक्त सब विद्या के उत्साहियों को विद्यायुक्त करता है वह प्रकाशात्मा होता है ॥ १२ ॥

अस्ताव्यग्निः शिमीवद्भिरर्कैः साम्राज्याय प्रतरं दधानः ।
अमी च ये मघवानो वयं च मिहं न सूरो अति निष्टतन्युः ॥१३॥

पदार्थ—जो (शिमीवद्भिः) प्रशंसित कर्मों से युक्त (अर्कैः) सत्कार करने योग्य विद्वानों के साथ (प्रतरम्) शत्रुबलों को जिससे तरें उस सेनागण को (दधानः) धारण करता हुआ (अग्निः) सूर्य के समान सुशीलता से प्रकाशित (साम्राज्याय) चक्रवर्ति राज्य के लिए (अस्तावि) स्तुति पाता है (च) और (ये) जो (अमी) वे (मघवानः) परमपूजित धनयुक्त जन (सूरः) सूर्य (मिहम्) वर्षा को (न) जैसे वैसे विद्या को (अति, निः, ततन्युः) अतीव निरन्तर विस्तारें उस पूर्वोक्त सज्जन (च) पीछे कहे हुए जनों की (वयम्) हम लोग प्रशंसा करें ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । मनुष्यों को जो धार्मिक विद्वानों से अच्छी शिक्षा को पाये हुए धर्म से राज्य का विस्तार करते हुए प्रयत्न करते हैं वे ही राज्य, विद्या और धर्म के उपदेश में अच्छे प्रकार स्थापन करने योग्य हैं ॥ १३ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति वर्त्तमान है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ इकतालीसवां सूक्त और नववां वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

समिद्ध इत्यस्य त्रयोदशर्चस्य द्विचत्वारिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । १-४ अग्निः । ५ बर्हिः । ६ देव्यो द्वारः । ७ उषासानक्ता । ८ दैव्यौ होतारौ । ९ सरस्वतीळाभारत्यः । १० त्वष्टा । ११ वनस्पतिः । १२ स्वाहाकृतिः । १३ इन्द्रश्च देवताः । १, २, ५, ६, ८, ९ निचृदनुष्टुप् । ४ स्वराडनुष्टुप् । ३, ७, १०-१२ अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । १३ भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब तेरह ऋचावाले एकसौ ब्यालीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अध्यापक और अध्येता के विषय को कहते हैं—

समिद्धो अग्न आ वह देवाँ अद्य यतस्रुचे ।
तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं सुतसोमाय दाशुषे ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) पावक के समान उत्तम प्रकाशवाले (**समिद्धः**) विद्या से प्रकाशित पढ़ानेवाले विद्वन् ! आप (**अद्य**) आज के दिन (**सुतसोमाय**) जिसने बड़ी-बड़ी ओषधियो के रस निकाले और (**यतस्रुचे**) यज्ञपात्र उठाये है उस यज्ञ करनेवाले (**दाशुषे**) दानशील जन के लिए (**देवान्**) विद्वानो की (आ, वह) प्राप्ति करो और (**पूर्व्यम्**) प्राचीनो के किये हुए (**तन्तुम्**) विस्तार को (**तनुष्व**) विस्तारो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे बालकपन और तरुण अवस्था मे माता और पिता आदि सन्तानो को सुखी करें वैसे पुत्रलोग ब्रह्मचर्य से विद्या को पढ़, युवावस्था को प्राप्त और विवाह किये हुए अपने माता-पिता आदि को आनन्द देवें ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

घृतवन्तमुप मासि मधुमन्तं तनूनपात् ।
यज्ञं विप्रस्य मावतः शशमानस्य दाशुषः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (**तनूनपात्**) शरीर को नष्ट करनेवाले विद्वन् ! आप (**मावतः**) मेरे सदृश (**दाशुषः**) दानशील (**शशमानस्य**) और दुःख उल्लङ्घन किये (**विप्रस्य**) मेधावी जन के (**घृतवन्तम्**) बहुत घृत और (**मधुमन्तम्**) प्रशंसित मधुरादि गुणों से युक्त (**यज्ञम्**) यज्ञ का (उप, मासि) परिमाण करनेवाले हो ॥ २ ॥

भावार्थ—विद्यार्थियों को विद्वानो की सङ्गति कर विद्वानों के सदृश होना चाहिए ॥ २ ॥

शुचिः पावको अद्भुतो मध्वा यज्ञं मिमिक्षति ।
नराशंसस्त्रिरा दिवो देवो देवेषु यज्ञियः ॥ ३ ॥

पदार्थ—जो (**पावकः**) पवित्र करनेवाले अग्नि के समान (**अद्भुतः**) आश्चर्य गुण, कर्म, स्वभाववाला (**शुचिः**) पवित्र (**यज्ञियः**) यज्ञ करने योग्य (**नराशंसः**) नरो से प्रशंसा को प्राप्त और (**देवः**) कामना करता हुआ जन (**देवेषु**) विद्वानों मे (**दिवः**) कामना से (**मध्वा**) मधुर शर्करा वा सहत से (**यज्ञम्**) यज्ञ का (**त्रिः**) तीन बार (आ, मिमिक्षति) अच्छे प्रकार सींचने वा पूरा करने की इच्छा करता है वह सुख पाता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य बालकपन, जवानी और बुढ़ापे मे विद्याप्रचाररूपी व्यवहार को करें वे कायिक, वाचिक और मानसिक सुखो को प्राप्त होवें ॥ ३ ॥

ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् ।
इयं हि त्वा मतिर्ममाच्छा सुजिह्व वच्यते ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (**सुजिह्व**) मधुरभाषिणी जिह्वावाले (**अग्ने**) सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप विद्वन् ! (**ईळितः**) प्रशंसा को प्राप्त हुए आप (**इह**) इस जन्म मे (**प्रियम्**) प्रीति करनेवाले (**चित्रम्**) चित्र-विचित्र नानाप्रकार के (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्य को (**आ, वह**) प्राप्त करो जो (**मम**) मेरी (**इयम्**) यह (**मतिः**) प्रज्ञा बुद्धि तुमसे (**अच्छ**) अच्छी (**वच्यते**) कही जाती है (**हि**) वही (**त्वा**) आपको प्राप्त हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—सबको पुरुषार्थ से विद्वानो की बुद्धि पाकर महान् ऐश्वर्य का अच्छा संग्रह करना चाहिए ॥ ४ ॥

स्तृणानासो यतस्रुचो बर्हिर्यज्ञे स्वध्वरे ।
वृञ्जे देवव्यचस्तममिन्द्राय शर्म सप्रथः ॥ ५ ॥

पदार्थ—जो (**स्वध्वरे**) उत्तम शोभायुक्त (**यज्ञे**) विद्यादानरूप यज्ञ में (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य के लिए (**सप्रथः**) प्रख्यात गुणो के साथ वर्त्तमान (**बर्हिः**) बड़े (**देवव्यचस्तमम्**) विद्वानो से अतीव व्याप्त (**शर्म**) घर को (**स्तृणानासः**) ढाँपते हुए (**यतस्रुचः**) उद्यम को प्राप्त होते हैं वे दुःख और दरिद्रपन का (**वृञ्जे**) त्याग कर देते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—उद्यम करनेवालो के विना लक्ष्मी और राज्यश्री प्राप्त नहीं होती तथा जो अतीव उत्तम विद्वानो के निवास से संयुक्त घर में अच्छे प्रकार बसते हैं वे अविद्या और दरिद्रता को निरन्तर नष्ट करते हैं ॥ ५ ॥

वि श्रयन्तामृतावृधः प्रयै देवेभ्यो महीः ।
पावकासः पुरुस्पृहो द्वारो देवीरसश्चतः ॥६॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिए जो (**पावकासः**) पवित्र करनेवाली (**ऋतावृधः**) सत्य आचरण और उत्तम ज्ञान से बढ़ाई हुई (**पुरुस्पृहः**) बहुतों से चाही जाती (**द्वारः**) द्वारों के समान (**देवीः**) मनोहर (**असश्चतः**) परस्पर एक दूसरे से विलक्षण (**महीः**) प्रशंसनीय वाणी वा पृथिवी जिनकी (**प्रयै**) प्रीति के लिए विद्वान् जन कामना करते उनका आप लोग (**वि श्रयन्ताम्**) विशेषता से आश्रय करें ॥६॥

भावार्थ—मनुष्यो को सबके उपकार के लिए विद्या, अच्छी शिक्षायुक्त वाणी और रत्नो को प्रसिद्ध करनेवाली भूमियो की कामना करनी चाहिए और उनके आश्रय से पवित्रता करनी चाहिए ॥६॥

आ मन्दमाने उपाके नक्तोषासा सुपेशसा ।
यह्वी ऋतस्य मातरा सीदतां बर्हिरा सुमत् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप जैसे (**ऋतस्य**) सत्य व्यवहार का (**मातरा**) मान करानेवाली (**यह्वी**) कारण से उत्पन्न हुई (**उपाके**) एक-दूसरे के साथ वर्त्तमान (**सुपेशसा**) उत्तम रूपयुक्त और (**मन्दमाने**) कल्याण करनेवाली (**नक्तोषासा**) रात्रि और प्रभातवेला (**आ, सीदताम्**) अच्छे प्रकार प्राप्त होवें वैसे (**आ, सुमत्**) जिसमे बहुत आनन्द को प्राप्त होते हैं उस (**बर्हिः**) उत्तम घर को प्राप्त होओ ॥७॥

भावार्थ—जैसे दिन-रात्रि समस्त प्राणी-अप्राणी को नियम से अपनी-अपनी क्रियाओ मे प्रवृत्त कराता है वैसे सब विद्वानो को सर्वसाधारण मनुष्य उत्तम क्रियाओं मे प्रवृत्त करने चाहिए ॥७॥

मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारा दैव्या कवी ।
यज्ञं नो यक्षतामिमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**अद्य**) आज (**मन्द्रजिह्वा**) जिनकी प्रशंसित जिह्वा है वे (**जुगुर्वणी**) अत्यन्त उद्यमी (**होतारा**) ग्रहण करनेवाले (**दैव्या**) दिव्य गुणो मे प्रसिद्ध (**कवी**) प्रबल प्रज्ञायुक्त अध्यापक और उपदेशक लोग (**नः**) हम लोगो के लिए (**दिविस्पृशम्**) प्रकाश में संलग्नता कराने तथा (**सिध्रम्**) मङ्गल करनेवाले (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) विद्यादि की प्राप्ति के साधक व्यवहार का (**यक्षताम्**) सङ्ग करते है वैसे तुम भी सङ्ग करो ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे विद्वान् जन धर्मयुक्त व्यवहार के साथ परस्पर संग करते हैं वैसे साधारण मनुष्यो को भी होना चाहिए ॥८॥

शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती ।
इळा सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः ॥९॥

पदार्थ—जो (**देवेषु**) विद्वानो मे (**अर्पिता**) समर्पण की हुई (**होत्रा**) देने-लेने योग्य क्रिया वा (**मरुत्सु**) स्तुति करनेवालो मे (**भारती**) धारण-पोषण करनेवाली (**शुचिः**) पवित्र (**इळा**) प्रशंसा के योग्य (**सरस्वती**) प्रशंसित विज्ञान का सम्बन्ध रखनेवाली (**मही**) और बड़ी (**यज्ञिया**) यज्ञ सिद्ध कराने के योग्य क्रिया (**बर्हिः**) समीप प्राप्त बढ़े हुए व्यवहार को (**सीदन्तु**) प्राप्त होवे उनको समस्त विद्यार्थी प्राप्त होवें ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । विद्यार्थियो को ऐसी इच्छा करनी चाहिए कि जो विद्वानो मे विद्या वा वाणी वर्त्तमान है वह हम को प्राप्त होवे ॥९॥

तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरु वारं पुरु त्मना ।
त्वष्टा पोषाय वि ष्यतु राये नाभा नो अस्मयुः ॥१०॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (**अस्मयुः**) हम लोगों की कामना करनेवाले (**त्वष्टा**) विद्या और धर्म से प्रकाशमान आप (**नः**) हम लोगो के (**पुरु**) बहुत (**पोषाय**) पोषण करने के लिए और (**राये**) धन होने के लिए (**नाभा**) नाभि में प्राण के समान (**वि, ष्यतु**) प्राप्त होवें और (**त्मना**) आत्मा से जो (**तुरीपम्**) तुरन्त रक्षा करनेवाला (**अद्भुतम्**) अद्भुत आश्चर्य्यरूप (**पुरु, वा, अरम्**) बहुत वा पूरा धन है (**तत्**) उसको (**नः**) हम लोगो के लिए प्राप्त कीजिए ॥१०॥

भावार्थ—जो विद्वान् हम लोगो की कामना करे उसकी हम लोग भी कामना करें । जो हम लोगो की कामना न करे उसकी हम लोग भी कामना न करें, इससे परस्पर विद्या और सुख की कामना करते हुए आचार्य्य और विद्यार्थी लोग विद्या की उन्नति करें ॥१०॥

अवसृजन्नुप त्मना देवान्यक्षि वनस्पते ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरः ॥११॥

पदार्थ—हे (**वनस्पते**) रश्मियो के पति सूर्य्य के समान वर्त्तमान ! आप जिस कारण (**त्मना**) आत्मा से (**देवान्**) विद्या की कामना करते हुओं को (**उपावसृजन्**) अपने समीप नाना प्रकार की विद्या से परिपूरित करते हुए (**देवेषु**) प्रकाशमान लोकों में (**देवः**) अत्यन्त दीपते हुए (**मेधिरः**) सङ्ग करानेवाले (**अग्निः**) जैसे अग्नि (**हव्या**) होम से देने योग्य पदार्थों को (**सुषूदति**) सुन्दरता से ग्रहण कर परमाणु रूप धारण करता है वैसे विद्या का (**यक्षि**) सङ्ग करते हो इससे सत्कार करने योग्य हो ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे सूर्यमण्डल पृथिवी आदि भिन्न पदार्थों में दिव्यरूप हुआ जल को वर्षाता है वैसे विद्वान् जन संसार के विद्यार्थियों में विद्या की वर्षा करावें ॥११॥

पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे ।

स्वाहा गायत्रवेपसे हव्यमिन्द्राय कर्तन ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (स्वाहा) सत्य क्रिया से (पूषण्वते) जिसके बहुत पुष्टि करनेवाले गुण (मरुत्वते) जिसमें प्रशंसायुक्त विद्या की स्तुति करनेवाले (विश्वदेवाय) वा समस्त विद्वान् जन विद्यमान (वायवे) प्राप्त होने योग्य (गायत्रवेपसे) गानेवाले की रक्षा करता हुआ जिनसे कर्म प्रकट होता उस (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिए (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य कर्म को (कर्तन) करो ॥१२॥

भावार्थ—जिस धन से पुष्टि, विद्या, विद्वानों का सत्कार, वेदविद्या की प्रवृत्ति और सर्वोपकार हो वही धर्म सम्बन्धी धन है और नहीं ॥१२॥

स्वाहाकृतान्या गह्युप हव्यानि वीतये ।

इन्द्रा गहि श्रुधी हवं त्वां हवन्ते अध्वरे ॥१३॥११॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य को युक्त करनेवाले विद्वन् ! आप (अध्वरे) न नष्ट करने योग्य व्यवहार में (वीतये) विद्या की प्राप्ति के लिए (स्वाहाकृतानि) सत्य क्रिया से (हव्यानि) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को (उपागहि) प्राप्त होओ जिन (त्वाम्) तुम्हारी (हवन्ते) विद्या का ज्ञान चाहते हुए विद्यार्थी जन स्तुति करते हैं सो आप (आ, गहि) आओ और (हवम्) स्तुति को (श्रुधि) सुनो ॥१३॥

भावार्थ—अध्यापक जितना शास्त्र विद्यार्थियों को पढ़ावे उसकी प्रतिदिन वा प्रतिमास परीक्षा करे और विद्यार्थियों में जो जिनको विद्या देवें वे उनकी तन, मन, धन से सेवा करें ॥१३॥

इस सूक्त में पढ़ने-पढ़ानेवालों के गुणों और विद्या की प्रशंसा होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह एकसौ ब्यालीसवां सूक्त और ग्यारहवां वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अथ प्रतव्यसीमित्यस्याष्टर्चस्य त्रिचत्वारिंशदुत्तरशततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः ।

अग्निर्देवता । १, ७ निचृज्जगती, २, ३, ५ विराड्जगती,

४, ६ जगती च छन्दः । निषादः स्वरः । ८ निचृत्

त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब विद्वानों के विषय में कहा है—

प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये वाचो मतिं सहसः सूनवे भरे ।

अपां नपाद्यो वसुभिः सह प्रियो होता पृथिव्यां न्यसीददृत्वियः ॥१॥

पदार्थ—मैं (अपां, नपात्) जलों के बीच (यः) जो न गिरता वह सूर्य (पृथिव्याम्) पृथिवी पर जैसे वैसे जो (वसुभिः) प्रथम कक्षा के विद्वानों के (सह) साथ (प्रियः) प्रीतियुक्त (होता) ग्रहण करनेवाला (ऋत्वियः) ऋतुओं की योग्यता रखता हुआ (नि, असीदत्) निरन्तर स्थिर होता है उस (सहसः) शरीर और आत्मा के बलयुक्त अध्यापक के सकाश से (अग्नये) अग्नि के समान तीक्ष्ण बुद्धि (सूनवे) पुत्र वा शिष्य के लिए (वाचः) वाणी की (तव्यसीम्) अत्यन्त बलवती (नव्यसीम्) अतीव नवीन (धीतिम्) जिससे विजय को धारण करें और उस धारणा और (मतिम्) उत्तम बुद्धि को (प्र, भरे) अच्छे प्रकार धारण करता हूं ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । विद्वानों की योग्यता है कि जैसे सूर्य जलों की धारणा करनेवाला है वैसे पवित्र बुद्धिमान् प्रिय आचरण करने और शीघ्र विद्याओं को ग्रहण करनेवाले विद्यार्थियों को लेकर विद्या का विज्ञान शीघ्र उत्पन्न करावें ॥१॥

अब ईश्वर विषय अगले मन्त्र में कहते हैं—

स जायमानः परमे व्योमन्याविरग्निरभवन्मातरिश्वने ।

अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत्

॥ २ ॥

पदार्थ—जो (मातरिश्वने) अन्तरिक्षस्थ वायु के लिए (अग्निः) अग्नि के समान (परमे) उत्तम (व्योमनि) आकाश के तुल्य सब में व्याप्त, सबकी रक्षा करने आदि गुणों से युक्त ब्रह्म में (जायमानः) उत्पन्न हुआ हम लोगों के लिए (आविः) प्रकट (अभवत्) होवे उस (अस्य) प्रत्यक्ष (समिधानस्य) उत्तमता से प्रकाशमान जन का (शोचिः) पवित्रभाव (क्रत्वा) प्रज्ञा और कर्म वा (मज्मना) बल के साथ (द्यावा, पृथिवी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (प्र, अरोचयत्) प्रकाशित करावे (सः) वह पढ़ा हुआ जन सबका कल्याणकारी होता है ॥२॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग विद्यार्थियों को प्रयत्न के साथ विद्या, अच्छी शिक्षा और धर्म नीतियुक्त करें तो वे सर्वदैव कल्याण का सेवन करनेवाले होवें ॥२॥

फिर विद्वानों के विषय में कहा है—

अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः सुसंदृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः ।

भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोऽग्ने रेजन्ते अससन्तो अजराः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (सुसंदृशः) सत्य और असत्य को ज्ञानदृष्टि से देखनेवाले (सुप्रतीकस्य) सुन्दर प्रतीति युक्त (सुद्युतः) सब ओर से प्रकाशमान (अग्नेः) सूर्य के (भानवः) किरणों के समान (अस्य) इस अध्यापक के (अजराः) विनाशरहित (त्वेषाः) विद्या और शील के प्रकाश होते हैं और वे (अस्य) इस महाशय के (अजराः) अजर-अमर (अससन्तः) जागते हुए (भात्वक्षसः) विद्या प्रकाशरूपी बलवाले (सिन्धवः) प्रवाहरूप उक्त तेज (अक्तुः) रात्रि के (न) समान अविद्यान्धकार को (अति, रेजन्ते) अतिक्रमण करते हैं ॥३॥

भावार्थ—जो मनुष्य सूर्य के समान विद्या के प्रकाश करने, अविद्यान्धकार के विनाश करने और सबको आनन्द देनेवाले होते हैं वे ही मनुष्यों के शिरोमणि होते हैं ॥ ३ ॥

फिर ईश्वर के विषय में कहा है—

यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना ।

अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे य एको वस्वो वरुणो न राजति ॥४॥

पदार्थ—हे जिज्ञासु पुरुष ! (यम्) जिस (विश्ववेदसम्) अच्छे संसार के वेत्ता परमात्मा को (भृगवः) विद्या से अविद्या को भूंजनेवाले (एरिरे) सब ओर से जाने वा (यः) जो (एकः) एक अति श्रेष्ठ, आप्त ईश्वर (मज्मना) अत्यन्त बल से (वरुणः) अति श्रेष्ठ के (न) समान (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष के वा (भुवनस्य) लोक में उत्पन्न हुए (वस्वः) धनरूप पदार्थ के (नाभा) बीच में अपनी व्याप्ति से (राजति) प्रकाशमान है (तम्) उस (अग्निम्) सूर्य के समान ईश्वर जो कि (स्वे) अपने अर्थात् तेरे (दमे) घररूप हृदयाकाश में वर्त्तमान है उसको (गीर्भिः) प्रशंसित वाणियों से (आ, हिनुहि) जानो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो विद्वानों से जानने योग्य सबमें सब प्रकार व्याप्त प्रशंसा के योग्य, सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त सर्वशक्तिमान्, अद्वितीय, अति-सूक्ष्म आप ही प्रकाशमान अन्तर्यामी परमेश्वर है उसको योग के अङ्गों के अनुष्ठान की सिद्धि से अपने हृदय में जानो ॥ ४ ॥

अब विद्वान् के विषय में अगले मन्त्रों में कहा है—

न यो वराय मरुतामिव स्वनः सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः ।

अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति योधो न शत्रून्त्स वना न्यृञ्जते ॥ ५ ॥

पदार्थ—(यः) जो (अग्निः) आग (मरुतामिव) पवन वा विद्वानों के (स्वनः) शब्द के समान (सृष्टा, सेनेव) शत्रुदल में चक्रव्यूहादि रचना से रची हुई सेना के समान वा (यथा) जैसे (दिव्या) कारण वा वायु आदि कार्य द्रव्य में उत्पन्न हुई (अशनिः) बिजुली के वैसे (वराय) स्वीकार करने के लिए (न) नहीं हो सकता अर्थात् तेजी के कारण रुक नहीं सकता (सः) वह (तिगितैः) तीक्ष्ण (जम्भैः) स्फूर्तियों से (अत्ति) भक्षण करता अर्थात् लकड़ी आदि को खाता है (योधः) योधा के (न) समान (शत्रून्) शत्रुओं को (भर्वति) नष्ट करता अर्थात् धनुर्विद्या में प्रविष्ट किया हुआ शत्रुदल को भूंजता है और (वना) वनों को (नि, ऋञ्जते) निरन्तर सिद्ध करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—प्रचण्ड वायु से प्रेरित, अति जलता हुआ अग्नि शत्रुओं को मारने के तुल्य पदार्थों को जलाता है वह सहसा नहीं रुक सकता ॥ ५ ॥

कुविन्नो अग्निरुचथस्य वीरसद्वसुष्कुविद्वसुभिः काममावरत् ।

चोदः कुवित्तुतुज्यात्सातये धियः शुचिप्रतीकं तमया धिया गृणे ॥६॥

पदार्थ—जो (कुवित्) बड़ा (अग्निः) बिजुली आदि रूपवाला अग्नि (नः) हमारे लिए (उचथस्य) उचित पदार्थ का (वीः) व्यापक (असत्) हो वा (वसुभिः) बसानेवालों के साथ (कुवित्) बड़ा (वसुः) बसानेवाला (कामम्) काम को (आवरत्) भलीभांति स्वीकार करे वा (सातये) विभाग के लिए (कुवित्) बड़ा प्रशंसित जन (चोदः) प्रेरणा दे वा (धियः) बुद्धियों को (तुतुज्यात्) बलवती करे (तम्) उस (शुचिप्रतीकम्) पवित्र प्रतीति देनेवाले जन की (अया) इस (धिया) बुद्धि वा कर्म से (गृणे) मैं स्तुति करता हूं ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो बिजुली के समान उचित काम प्राप्त कराने और अत्यन्त बुद्धि बल देनेवाले बड़े प्रशंसित विद्वान् अपनी बुद्धि से सब मनुष्यों को विद्वान् करते हैं उनकी सब लोग प्रशंसा करें ॥ ६ ॥

घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदमग्निं मित्रं न समिधान ऋञ्जते ।

इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यच्छुक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**समिधान**) अच्छे प्रकार प्रकाशमान विद्वान् (**व**) तुम्हारे लिए (**ध्रुवंदम**) जिसको मे स्थिर होते हुए (**घृतप्रतीकम्**) जो घृत का प्राप्त होता उस (**अग्निम**) आग को (**ऋतस्य**) सत्य व्यवहार के वर्त्तनेवाले (**मित्रम्**) मित्र के (**न**) समान (**ऋञ्जते**) प्रसिद्ध करता है (**उ**) और जो (**इध्यान**) प्रकाशमान होता हुआ वा (**अक**) औरो ने जिसको न दबा पाया वह (**विदथेषु**) संग्रामो मे (**दीद्यत्**) निरन्तर प्रकाशित होता हुआ (**नः**) हम लोगो की (**शुक्रवर्णाम्**) शुद्धस्वरूप (**धियम्**) प्रज्ञा को (**उद्यसते**) उत्तम रखता है उसको तुम हम पिता के समान सेवें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो बिजुली के समान समस्त शुभ गुणो की खान, मित्र के समान सुख का बन, संग्रामो मे वीर के तुल्य शत्रुओं को जीतने और दु ख का विनाश करनेवाला है उस विद्वान् का आश्रय कर सब मनुष्य विद्याओ को प्राप्त होवें ॥ ७ ॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मैः ।

अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टेऽनिमिषद्भिः परि पाहि नो जाः ॥८॥१२॥

पदार्थ—हे (**इष्टे**) सत्कार करने योग्य तथा (**अग्ने**) विद्या विज्ञान के प्रकाश से युक्त अग्नि के समान विद्वन् ! आप (**अप्रयुच्छन**) प्रमाद को न करते हुए (**अप्रयुच्छद्भिः**) प्रमादरहित विद्वानो के साथ वा (**शिवेभि**) कल्याण करनेवाले (**पायुभि**) रक्षक (**शग्मैः**) सुखप्रापक विद्वानो के साथ (**नः**) हम लोगो की (**पाहि**) रक्षा करो तथा (**जाः**) सुखो की उत्पत्ति करानेवाले आप (**अनिमिषद्भिः**) निरन्तर आलस्यरहित (**अदब्धेभि**) हिंसा और (**अदृपितेभि**) मोहादि दोषरहित विद्वानो के साथ (**न**) हम लोगो की (**परि, पाहि**) सब ओर से रक्षा करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को निरन्तर यह चाहना और ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि धार्मिक विद्वानो के साथ धार्मिक विद्वान् हमारी निरन्तर रक्षा करें ।

इस सूक्त मे विद्वान् और ईश्वर के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एकसौ तेंतालीसवां सूक्त और बारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

एतीत्यस्य सप्तर्चस्य चतुश्चत्वारिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषि । अग्निर्देवता । १, ३ – ५, ७ निचृज्जगती, २ जगती छन्द । निषाद स्वर । ६ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

अब एकसौ चवालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अध्यापक और उपदेश करनेवालों के विषय को कहते हैं –

एति प्र होता व्रतमस्य माययोर्ध्वां दधानः शुचिपेशसं धियम् ।

अभि स्रुचः क्रमते दक्षिणावृतो या अस्य धाम प्रथमं ह निंसते ॥१॥

पदार्थ—जो (**होता**) सद्गुणो का ग्रहण करनेवाला पुरुष (**मायया**) उत्तम बुद्धि से (**अस्य**) इस शिक्षा करनेवाले के (**व्रतम्**) सत्याचरण शील को (**ऊर्ध्वाम्**) और उत्तम (**शुचिपेशसम्**) पवित्र (**धियम्**) बुद्धि वा कर्म को (**दधान**) धारण करता हुआ (**प्र, क्रमते**) व्यवहारो मे चलता है वा (**या**) जो (**अस्य**) इसकी (**स्रुच**) विज्ञानयुक्त (**दक्षिणावृत**) दक्षिणा का आच्छादन करनेवाली बुद्धि है उनको और (**प्रथमम्**) प्रथम (**धाम**) धाम को (**निंसते**) जो प्रीति को पहुँचाता है (**ह**) वही अत्यन्त बुद्धिमान होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य शास्त्रवेत्ता विद्वान् के उपदेश और पढ़ाने से विद्यायुक्त बुद्धि को प्राप्त होते हैं वे सुशील होते हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रो में कहा है—

अभी मृतस्य दोहना अनूषत योनौ देवस्य सदने परीवृताः ।

अपामुपस्थे विभृतो यदावसदध स्वधा अधयद्याभिरीयते ॥ २ ॥

पदार्थ- हे मनुष्यो ! जैसे (**ऋतस्य**) सत्य विज्ञान के (**दोहना**) पूरा करनेवाली (**परिवृता**) वस्त्रादि से ढॅपी हुई अर्थात् लज्जावती पण्डिता स्त्री (**देवस्य**) विद्वान् के (**सदने**) स्थान वा (**योनौ**) घर मे (**अभ्यनूषत**) सम्मुख मे प्रशंसा करती हैं वा (**यत्**) जो वायु (**अपाम्**) जलो के (**उपस्थे**) समीप मे (**विभृत**) विशेषता से धारण किया हुआ (**आवसत्**) अच्छे प्रकार वसे (**अध**) इसके अनन्तर जैसे विद्वान (**स्वधा.**) जलों को (**अधयत्**) पिये वा (**याभि**) जिन क्रियाओ से (**ईम्**) सब ओर से उनको (**ईयते**) प्राप्त होता है वैसे उन सभों के समान तुम भी वर्त्तो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे आकाश मे जल स्थिर हो और वहाँ से वर्षकर समस्त जगत् को पुष्ट करता है वैसे विद्वान् जन चित्त मे विद्या को स्थिर कर सब मनुष्यो को पुष्ट करे ॥ २ ॥

युयूषतः सवयसा तदिद्वपुः समानमर्थं वितरित्रता मिथः ।

आदीं भगो न हव्यः समस्मदा वोळ्हुर्न रश्मीन्त्समयंस्त सारथिः ॥३॥

पदार्थ—जब (**सवयसा**) समान अवस्थावाले दो शिष्य (**समानम्**) तुल्य (**वपु**) स्वरूप को (**युयूषत.**) मिलाने अर्थात् एक-दूसरे की उन्नति करने को चाहते हैं (**तदित्**) तभी (**वितरित्रता**) अतीव अनेक प्रकार से (**मिथः**) परस्पर (**अर्थम्**) धनादि पदार्थ की सिद्धि करने की इच्छा करते हैं (**आत्**) इसके अनन्तर (**ईम्**) सब ओर से (**भग**) ऐश्वर्यवाला पुरुष जैसे (**हव्यः**) स्वीकार करने योग्य हो (**न**) वैसे उक्त विद्यार्थियो मे से प्रत्येक (**सारथिः**) सारथि जैसे (**वोळ्हु**) पदार्थ पहुँचानेवाले घोड़े आदि की (**रश्मीन्**) रस्सियों का (**न**) वैसे (**अस्मत्**) हम अध्यापक आदि जनो से पढ़ाइयों को (**समयंस्त**) भली-भाँति स्वीकार करता और उपदेशो को (**सम्**) भली-भाँति स्वीकार करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो अध्यापक और उपदेशक कपट-छल के विना औरो को अपने तुल्य करने की इच्छा से उन्हे विद्वान् करें वे उत्तम ऐश्वर्य को पाकर जितेन्द्रिय हों ॥ ३ ॥

यमी द्वा सवयसा सपर्यतः समाने योना मिथुना समोकसा ।

दिवा न नक्तं पलितो युवाजनि पुरू चरन्नजरो मानुषा युगा ॥ ४ ॥

पदार्थ—(**सवयसा**) समान अवस्थायुक्त (**द्वा**) दो (**समाना**) तुल्य (**योना**) उत्पत्ति स्थान मे (**मिथुना**) मैथुन कर्म करनेवाले स्त्री-पुरुष (**समोकसा**) समान घर के साथ वर्त्तमान (**दिवा**) दिन (**नक्तम्**) रात्रि के (**न**) समान (**यम्**) जिस (**ईम्**) प्रत्यक्ष बालक का (**सपर्यतः**) सेवन करें, उसको पालें वह (**अजर**) जरा अवस्थारूपी रोगरहित (**मानुषा**) मनुष्य सम्बन्धी (**युगा**) वर्षों को (**पुरु**) बहुत (**चरन्**) चलता, भोगता हुआ (**पलितः**) सुपेद बालोंवाला भी हो तो (**युवा**) जवान, तरुण अवस्थावाला (**अजनि**) प्रकट होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रीति के साथ वर्त्तमान स्त्री-पुरुष धर्मसम्बन्धी व्यवहार से पुत्र को उत्पन्न कर उसे अच्छी शिक्षा दे शीलवान् कर सुखी करते हैं वैसे समान पढ़ाने और उपदेश करनेवाले दो विद्वान् शिष्यो को सुशील करते हैं । वा जैसे दिन-रात्रि के साथ वर्त्तमान भी अपने स्थान मे रात्रि को निवृत्त करता वैसे अज्ञानियो के साथ वर्त्तमान पढ़ाने और उपदेश करनेवाले विद्वान् मोह मे नहीं लगते है वा जैसे किया है पूरा ब्रह्मचर्य जिन्होने वे रूपलावण्य और बलादि गुणो से युक्त सन्तान को उत्पन्न करते हैं वैसे ये सत्य पढ़ाने और उपदेश करने से सब का पूरा आत्मबल उत्पन्न करते है ॥ ४ ॥

तमीं हिन्वन्ति धीतयो दश व्रिशो देवं मर्तास ऊतये हवामहे ।

धनोरधि प्रवत आ स ऋण्वत्यभिव्रजद्भिर्वयुना नवाधित ॥ ५ ॥

पदार्थ - हे मनुष्यो ! (**मर्तास**) मरणधर्मा मनुष्य हम लोग (**ऊतये**) रक्षा आदि के लिए जिस (**देवम्**) विद्वान को (**हवामहे**) स्वीकार करते वा (**दश**) दश (**धीतय**) हाथ पैरो की अङ्गुलियो के समान (**व्रिश**) प्रजा जिसको (**हिन्वन्ति**) प्रसन्न करती हैं (**तम्, ईम्**) उसी को तुम लोग ग्रहण करो जो धनुर्विद्या का जाननेवाला (**धनो**) धनुष के (**अधि**) ऊपर आरोप कर छोड़े (**प्रवत**) जाते हुए बाणो को (**अधित**) धारण करता अर्थात् उनका सन्धान करता है (**स**) वह (**अभिव्रजद्भि**) सब ओर से जाते हुए विद्वानो के साथ (**नवा**) नवीन (**वयुना**) उत्तम-उत्तम ज्ञानो को (**आ, ऋण्वति**) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे हाथो की अङ्गुलियो से भोजन आदि की क्रिया करने से शरीरादि बढ़ते हैं वैसे विद्वानो के अध्यापन और उपदेशो की क्रिया से प्रजाजन वृद्धि पाते हैं वा जैसे धनुर्वेद का जाननेवाला शत्रुओ को जीतकर रत्नो को प्राप्त होता है वैसे विद्वानो के सङ्ग के फल को जाननेवाला जन उत्तम ज्ञानो को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

त्वं ह्यग्ने दिव्यस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य पशुपा इव त्मना ।

एनी त एते बृहती अभिश्रिया हिरण्ययी वक्वरी बर्हिराशाते ॥६॥

पदार्थ – हे (**अग्ने**) सूर्य के समान प्रकाशमान विद्वन् ! (**त्वं, हि**) आप ही (**पशुपाइव**) पशुओ की पालना करनेवाले के समान (**त्मना**) अपने से (**दिव्यस्य**) अन्तरिक्ष मे हुई वृष्टि आदि के विज्ञान को (**राजसि**) प्रकाशित करते वा (**त्वम्**) आप (**पार्थिवस्य**) पृथिवी मे जाने हुए पदार्थों के विज्ञान का प्रकाश करते हो (**एते**) ये प्रत्यक्ष (**एनी**) अपनी-अपनी कक्षा मे घूमनेवाले (**बृहती**) अतीव विस्तारयुक्त (**अभिश्रिया**) सब ओर से शोभायमान (**हिरण्ययी**) बहुत हिरण्य जिनमे विद्यमान (**वक्वरी**) प्रशंसित सूर्यमण्डल और भूमण्डल वा (**ते**) आपके ज्ञान के अनुकूल (**बर्हिः**) वृद्धि को (**आशाते**) व्याप्त होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे ऋद्धि और सिद्धि पूरी लक्ष्मी को करती हैं वैसे आत्मवान् पुरुष परमेश्वर और पृथिवी के राज्य मे अच्छे प्रकार प्रकाशित होता जैसे पशुओं का पालनेवाला प्रीति से अपने पशुओ की रक्षा करता है वैसे सभापति अपने प्रजाजनों की रक्षा करें ॥६॥

अधा जुषस्व प्रति हर्य तद्वचो मन्द्र स्वधाव ऋतजात सुक्रतो ।
यो विश्वतः प्रत्यङ्ङसि दर्शतो रण्वः संदृष्टौ पितुमाँइव क्षयः ॥७॥

पदार्थ—हे (मन्द्र) प्रशंसनीय (स्वधाव) प्रशंसित अन्नवाले (ऋतजात) सत्य व्यवहार से उत्पन्न हुए (सुक्रतो) सुन्दर कर्मों से युक्त (अग्ने) बिजुली के समान वर्त्तमान विद्वन् ! (यः) जो (विश्वतः) सबके (प्रत्यङ्) प्रति जाने वा सबसे सत्कार लेनेवाले (संदृष्टौ) अच्छे दीखने में (दर्शतः) दर्शनीय (रण्वः) शब्द शास्त्र को जाननेवाले विद्वान् आप (क्षयः) निवास के लिए घर (पितुमान् इव) अन्नयुक्त जैसे हो वैसे (असि) हैं सो आप जो मेरी अभिलाषा का (वचः) वचन है (तत्) उसको (जुषस्व) सेवो और (प्रति, हर्य) मेरे प्रति कामना करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जो प्रशंसित बुद्धिवाले यथायोग्य आहार-विहार से रहते हुए सत्य व्यवहार में प्रसिद्ध धर्म के अनुकूल कर्म और बुद्धि रखनेहारे शास्त्रज्ञ विद्वानों के समीप से विद्या और उपदेशों को चाहते और सेवन करते हैं वे सबसे उत्तम होते हैं ॥ ७ ॥

इस सूक्त में अध्यापक और उपदेशकों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ चवालीसवां सूक्त और तेरहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

तं पृच्छतेत्यस्य पञ्चर्चस्य पञ्चचत्वारिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । १ विराड्जगती, २, ५ निचृज्जगती च छन्दः । निषादः स्वरः । ३,४ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब एकसौ पैंतालीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में उपदेश करने योग्य और उपदेश करनेवालों के गुणों का वर्णन करते हैं—

तं पृच्छता स जगामा स वेद स चिकित्वाँ ईयते सा न्वीयते ।
तस्मिन्त्सन्ति प्रशिषस्तस्मिन्निष्टयः स वाजस्य शवसः शुष्मिणस्पतिः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (सः) वह विद्वान सत्य मार्ग में (जगाम) चलता है (सः) वह (वेद) ब्रह्म का जानता है (सः) वह (चिकित्वान्) विज्ञानयुक्त सुखों को (ईयते) प्राप्त होता (सः) वह (नु) शीघ्र अपने कर्त्तव्य को (ईयते) प्राप्त होता है (तस्मिन्) उसमें (प्रशिषः) उत्तम-उत्तम शिक्षा (सन्ति) विद्यमान हैं (तस्मिन्) उसमें (इष्टयः) सत्सङ्ग विद्यमान हैं (सः) वह (वाजस्य) विज्ञानमय (शवसः) बल वा (शुष्मिणः) बलयुक्त सेनासमूह वा राज्य का (पतिः) पालनेवाला स्वामी है (तम्) उसको तुम (पृच्छत) पूछो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो विद्या और अच्छी शिक्षायुक्त धार्मिक और यत्नशील सबका उपकारी सत्य की पालना करनेवाला विद्वान हो उसके आश्रय जो पढ़ाना और उपदेश है उनसे सब मनुष्य चाहे हुए काम और विनय को प्राप्त हों ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

तमित्पृच्छन्ति न सिमो वि पृच्छति स्वेनेव धीरो मनसा यदग्रभीत् ।
न मृष्यते प्रथमं नापरं वचोऽस्य क्रत्वा सचते अप्रदृपितः ॥२॥

पदार्थ—(अप्रदृपितः) जो अतीव मोह को नहीं प्राप्त हुआ वह (धीरः) ध्यानवान् विचारशील विद्वान् (स्वेनेव) अपने समान (मनसा) विज्ञान से (यत्) जिस (वचः) वचन को (अग्रभीत्) ग्रहण करता है वा जो (अस्य) इस शास्त्रज्ञ धर्मात्मा विद्वान् की (क्रत्वा) बुद्धि वा कर्म के साथ (सचते) सम्बन्ध करता है वह (प्रथमम्) प्रथम (न) नहीं (मृष्यते) संशय को प्राप्त होता और वह (अपरम्) पीछे भी (न) नहीं संशय को प्राप्त होता है जिसको (सिमः) सर्व मनुष्यमात्र (न) नहीं (वि, पृच्छति) विशेषता से पूछता है (तमित्) उसी को विद्वान् जन (पृच्छन्ति) पूछते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । आप्त जिन्होंने धर्मादि पदार्थ साक्षात्कार किये वे शास्त्रवेत्ता मोहादि दोषरहित विद्वान् योगाभ्यास से पवित्र किये हुए आत्मा से जिस-जिस को सत्य वा असत्य निश्चय करें वह-वह अच्छा निश्चय किया हुआ है यह और मनुष्य मानें । जो उनका सङ्ग न करके सत्य-असत्य के निर्णय को जाना चाहते हैं वे कभी सत्य-असत्य का निर्णय नहीं कर सकते इससे आप्त विद्वानों के उपदेश से सत्य-असत्य का निर्णय करना चाहिए ॥ २ ॥

तमिद्गच्छन्ति जुह्वस्तमर्वतीर्विश्वान्येकः शृणवद्वचांसि मे ।
पुरुप्रैषस्ततुरिर्यज्ञसाधनोऽच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त सं रभः ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप (एकः) अकेले (मे) मेरे (विश्वानि) समस्त (वचांसि) वचनों को (शृणवत्) सुनें जो (रभः) बड़ा महात्मा (पुरुप्रैषः) जिसको बहुत सज्जनों ने प्रेरणा दी हो (ततुरिः) जो दुःख से सभों को तारनेवाला (यज्ञसाधनः) विद्वानों के सत्कार जिसके साधन अर्थात् जिसकी प्राप्ति करानेवाले (अच्छिद्रोतिः) जिससे नहीं खण्डित हुई रक्षणादि क्रिया (शिशुः) और जो अविद्यादि दोषों को छिन्न भिन्न करे, सबके उपकार करने को अच्छा यत्न (समादत्त) भली-भाँति ग्रहण करे (तम्) उसको (अर्वती) बुद्धिमती कन्या (गच्छन्ति) प्राप्त होती (तमित्) और उसी को (जुह्वः) विद्या विज्ञान की ग्रहण करनेवाली कन्या प्राप्त होती हैं ॥३॥

भावार्थ—मनुष्यों ने जो जाना और जो-जो पढ़ा उस-उस की परीक्षा जैसे अपने आप पढ़ानेवाले विद्वान् को देवें वैसे कन्या भी अपनी पढ़ानेवाली को अपने पढ़े हुए की परीक्षा देवें ऐसे करने के विना सत्याऽसत्य का सम्यक् निर्णय होने के योग्य नहीं है ॥ ३ ॥

उपस्थायं चरति यत्समारत सद्यो जातस्तत्सार युज्येभिः ।
अभि श्वान्तं मृशते नान्द्ये मुदे यदीं गच्छन्त्युशतीरपिष्ठितम् ॥४॥

पदार्थ—हे जिज्ञासु जनो ! (यत्) जो (युज्येभिः) युक्त करने योग्य पदार्थों के साथ (सद्यः) शीघ्र (जातः) प्रसिद्ध हुआ (उपस्थायम्) क्षण-क्षण उपस्थान करने को (चरति) जाता है वा (तत्सार) कुटिलता से जावे वा (श्वान्तम्) परिपक्व पूरे ज्ञान को (अभिमृशते) सब ओर से विचारता है वा बुद्धिमान् जन (यत्) जिस (नान्द्ये) अति आनन्द और (मुदे) सामान्य हर्ष होने के लिए (अपिष्ठितम्) स्थिर हुए को और (उशतीः) कामना करती हुई पण्डिताओं को (ईम्) सब ओर से (गच्छन्ति) प्राप्त होते उसको तुम (समारत) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो बालक और जो कन्या शीघ्र पूर्ण विद्यायुक्त होते हैं और कुटिलतादि दोषों को छोड़ शान्ति आदि गुणों को प्राप्त होकर सबका विद्या तथा सुख होने के लिए बार-बार प्रयत्न करते हैं वे जगत् को आनन्द देनेवाले होते हैं ॥ ४ ॥

स ईं मृगो अप्यो वनर्गुरुप त्वच्युपमस्यां नि धायि ।
व्यब्रवीद्वयुना मर्त्येभ्योऽग्निर्विद्वाँ ऋतचिद्धि सत्यः ॥५॥१४॥

पदार्थ—विद्वानों से जो (अप्यः) जलों के योग्य (वनर्गुः) वनगामी (मृगः) हरिण के समान (उपमस्याम्) उपमा रूप (त्वचि) त्वगिन्द्रिय में (उप, नि, धायि) समीप निरन्तर धरा जाता है वा जो (ऋतचित्) सत्य व्यवहार को इकट्ठा करनेवाला (अग्निः) अग्नि के समान विद्या आदि गुणों से प्रकाशमान (विद्वान्) सब विद्याओं को जाननेवाला पण्डित (मर्त्येभ्यः) मनुष्यों के लिए (वयुना) उत्तम उत्तम ज्ञानों का (ईम्) ही (वि अब्रवीत्) विशेष करके उपदेश देता है (सः, हि) वही (सत्यः) सज्जनों में साधु है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे तृषातुर मृग जल पीने के लिए वन में डोलता-डोलता जलको पाकर आनन्दित होता है वैसे विद्वान् जन शुभ आचरण करनेवाले विद्यार्थियों को पाकर आनन्दित होते हैं और जो शिक्षा पाकर औरों को नहीं देते वे क्षुद्राशय और अत्यन्त पापी होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में उपदेश करने और उपदेश सुननेवालों के कर्त्तव्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ पैंतालीसवां सूक्त और चौदहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

त्रिमूर्द्धानमित्यस्य पञ्चर्चस्य षट्चत्वारिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । १, २ विराट्त्रिष्टुप्, ३, ५ त्रिष्टुप्, ४ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

अब एकसौ छयालीसवें सूक्त का आरम्भ है, इसमें अग्नि और विद्वानों के गुणों का उपदेश किया है—

त्रिमूर्द्धानं सप्तरश्मिं गृणीषेऽनूनमग्निं पित्रोरुपस्थे ।
निषत्तमस्य चरतो ध्रुवस्य विश्वा दिवो रोचनापप्रिवांसम् ॥१॥

पदार्थ—हे धारणशील उत्तम बुद्धिवाले जन ! जिससे तू (पित्रोः) पालनेवाले पवन और आकाश के (उपस्थे) समीप में (निषत्तम्) निरन्तर प्राप्त (त्रिमूर्द्धानम्) तीनों निकृष्ट, मध्यम और उत्तम पदार्थों में शिर रखनेवाले (सप्तरश्मिम्) सात गायत्री आदि छन्दों वा भूरादि सात लोकों में जिसकी प्रकाशरूप किरणें हों ऐसे (अनूनम्) हीनपने से रहित और (अस्य) इस (चरतः) अपनी गति से व्याप्त (ध्रुवस्य) निश्चल (दिवः) सूर्यमण्डल के (विश्वा) समस्त (रोचना) प्रकाशों को (आपप्रिवांसम्) जिसने सब ओर से पूर्ण किया उस (अग्निम्) बिजुली रूप आग के समान वर्त्तमान विद्वान् की (गृणीषे) स्तुति करता है सो तू विद्या पाने योग्य होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे तीन बिजुली, सूर्य और प्रसिद्ध अग्नि रूपों से अग्नि चराचर जगत् के कार्यों को सिद्ध करनेवाला है वैसे विद्वान् जन समस्त विश्व का उपकार करनेवाले होते हैं ॥ १ ॥

उक्षा महाँ अभि ववक्ष एने अजरस्तस्थावित ऊतिर्ऋष्वः ।

उर्व्याः पदो नि दधाति सानौ रिहन्त्यूधो अरुषासो अस्य ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (उर्व्याः) पृथिवी से (महान्) बड़ा (उक्षा) वर्षा जल से सींचनेवाला (अजरः) हानिरहित (ऋष्वः) गतिमान् सूर्य (एने) इन अन्तरिक्ष और भूमिमण्डल को (अभि, ववक्ष) एकत्र करता है (इत, ऊतिः) वा जिससे रक्षा आदि क्रिया प्राप्त होती ऐसा होता हुआ (पदः) अपने अंशों को (नि, दधाति) निरन्तर स्थापित करता है (अस्य) इस सूर्य की (अरुषासः) नष्ट होती हुई किरणें (सानौ) अलग-अलग विस्तृत जगत् में (ऊधः) जलस्थान को (रिहन्ति) प्राप्त होती हैं वा जो ब्रह्माण्ड के बीच में (तस्थौ) स्थिर है उसके समान तुम लोग होओ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को जैसे सूत्रात्मा वायु भूमि और सूर्यमण्डल को धारण करके संसार की रक्षा करता है वा जैसे सूर्य पृथिवी से बड़ा है वैसा वर्त्ताव वर्त्तना चाहिए ॥ २ ॥

समानं वत्समभि संचरन्ती विष्वग्धेनू वि चरतः सुमेके ।

अनपवृज्याँ अध्वनो मिमाने विश्वान् केताँ अधि महो दधाने ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे सूर्यलोक और भूमण्डल दोनों (समानम्) तुल्य (वत्सम्) बछड़े के समान वर्त्तमान दिन-रात्रि को (अभि, सं, चरन्ती) सब ओर से अच्छे प्रकार प्राप्त होते हुए (सुमेके) सुन्दर जिनका त्याग करना (अध्वनः) मार्ग से (अनपवृज्यान्) न दूर करने योग्य पदार्थों को (मिमाने) बनावट करनेवाले (महः) बड़े-बड़े (विश्वान्) समग्र (केतान्) बोधों को (अधि, दधाने) अधिकता से धारण करते हुए (धेनू) गौओं के समान (विष्वक्, वि, चरतः) सब ओर से विचर रहे हैं वैसे इन्हें जान, पक्षपात को छोड़ सब कामों को पूरा करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य के समान न्याय गुणो के आकर्षण और प्रकाश करनेवाले नानाविध मार्गों का निर्माण करते हुए धेनु के समान सबकी पुष्टि करते हुए समग्र विद्याओ को धारण करते हैं वे दुःखरहित होते हैं ॥ ३ ॥

धीरासः पदं कवयो नयन्ति नाना हृदा रक्षमाणा अजुर्यम् ।

सिषासन्तः पर्यपश्यन्त सिन्धुमाविरेभ्यो अभवत् सूर्यो नॄन् ॥४॥

पदार्थ—जो (धीरासः) ध्यानवान् (कवयः) विविध प्रकार के पदार्थों मे आक्रमण करनेवाली बुद्धियुक्त विद्वान् (हृदा) हृदय से (नाना) अनेक (नॄन्) मुखियों की (रक्षमाणाः) रक्षा करते और (सिषासन्तः) अच्छे प्रकार विभाग करने की इच्छा करते हुए (सूर्यः) सूर्य के समान अर्थात् जैसे सूर्यमण्डल (सिन्धुम्) नदी के जल को स्वीकार करता वैसे (अजुर्यम्) हानिरहित (पदम्) प्राप्त करने योग्य पद को (नयन्ति) प्राप्त होते हैं वे परमात्मा को (परि, अपश्यन्त) सब ओर से देखते अर्थात् सब पदार्थों मे विचारते हैं जो (एभ्यः) इनमें विद्या और उत्तम शिक्षा को पाके (आविः) प्रकट (अभवत्) होता है वह भी उस पद को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सब को आत्मा के समान सुख-दुःख की व्यवस्था मे जान न्याय का ही आश्रय करते हैं वे अक्षय पद को प्राप्त होते हैं जैसे सूर्य जल को वर्षाकर नदियो को भरता, पूरी करता है वैसे विद्वान् जन सत्य वचनो की वर्षाकर मनुष्यो के आत्माओ को पूर्ण करते हैं ॥ ४ ॥

दिदृक्षेण्यः परि काष्ठासु जेन्य ईळेन्यो महो अर्भाय जीवसे ।

पुरुत्रा यदभवत्सूरहैभ्यो गर्भेभ्यो मघवा विश्वदर्शतः ॥५॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (अह) ही (एभ्यः) इन (गर्भेभ्यः) स्तुति करने के योग्य उत्तम विद्वानों से (महः) बहुत और (अर्भाय) अल्प (जीवसे) जीवन के लिए (पुरुत्रा) बहुतो मे (मघवा) परम प्रतिष्ठित धनयुक्त (विश्वदर्शतः) समस्त विद्वानो से देखने के योग्य (दिदृक्षेण्यः) वा देखने की इच्छा से चाहने योग्य (काष्ठासु) दिशाओं मे (जेन्यः) जीतनेवाला अर्थात् दिग्विजयी (ईळेन्यः) और स्तुति प्रशंसा करने के योग्य (सूः) सब ओर से उत्पन्न (परि, अभवत्) हो सो सब को सत्कार करने के योग्य है ।

भावार्थ—जो दिशाओ मे व्याप्त कीर्ति अर्थात् दिग्विजयी प्रसिद्ध शत्रुओ को जीतनेवाले उत्तम विद्वानों से विद्या उत्तम शिक्षाओं को पाये हुए शुभ गुणों से दर्शनीय जन हैं वे संसार के मङ्गल के लिए समर्थ होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह एकसौ छयालीसवां सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

कथेत्यस्य पञ्चर्चस्य सप्तचत्वारिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । १, ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्; २ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब एकसौ सैंतालीसवें सूक्त का आरम्भ है इसमें मित्र और अमित्र के गुणों का वर्णन करते हैं—

कथा ते अग्ने शुचयन्त आयोर्ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः ।

उभे यत्तोके तनये दधाना ऋतस्य सामन्रणयन्त देवाः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् (ददाशुः) देनेवाले (आयोः) विद्वन् ! जो आप (ते) उन तुम्हारे (यत्) जो (वाजेभिः) विज्ञानादि गुणों के साथ (आशुषाणाः) शीघ्र विभाग करनेवाले (तनये) पुत्र और (तोके) पौत्र आदि के निमित्त (उभे) दो प्रकार के चरित्रों को (दधानाः) धारण किये हुए (शुचयन्तः) पवित्र व्यवहार अपने को चाहते हुए (देवाः) विद्वान् जन हैं वे (सामन्) सामवेद में (ऋतस्य) सत्य व्यवहार का (कथा) कैसे (रणयन्तः) वाद-विवाद करें ॥१॥

भावार्थ—सब अध्यापक, विद्वान् जन, उपदेशक, शास्त्रवेत्ता धर्मज्ञ विद्वान् को पूछें कि हम लोग कैसे पढ़ावें वह उन्हें अच्छे प्रकार सिखावे, क्या सिखावे ? कि जैसे ये विद्या तथा उत्तम शिक्षा को प्राप्त इन्द्रियों को जीतनेवाले धार्मिक पढ़नेवाले हों वैसे आप लोग पढ़ावें यह उत्तर है ॥१॥

बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।

पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुस्ते तन्वं वन्दे अग्ने ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (स्वधावः) प्रशंसित अन्नवाले (यविष्ठ) अत्यन्त तरुण ! तू (मे) मेरे (अस्य) इस (मंहिष्ठस्य) अतीव बुद्धियुक्त (प्रभृतस्य) उत्तमता से धारण किये हुए (वचसः) वचन को (बोध) जान । हे (अग्ने) विद्वानों मे उत्तम विद्वान् ! जैसे (वन्दारुः) वन्दना करनेवाला मैं (ते) तेरे (तन्वम्) शरीर को (वन्दे) अभिवादन करता हूँ वा जैसे (त्वः) दूसरा कोई जन (पीयति) जल आदि को पीता है वा जैसे (त्वः) दूसरा कोई और जन (अनुगृणाति) अनुकूलता से स्तुति प्रशंसा करता है वैसे मैं भी होऊँ ॥२॥

भावार्थ—जब आचार्य के समीप शिष्य पढ़े तब पिछले पढ़े हुए की परीक्षा देवे, पढ़ने से पहले आचार्य को नमस्कार उसकी वन्दना करे और जैसे अन्य तीव्र बुद्धिवाले पढ़ें वैसे आप भी पढ़े ॥२॥

ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।

ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (ते) आपके (ये) जो (पश्यन्तः) अच्छे देखनेवाले (पायवः) रक्षा करनेवाले (मामतेयम्) प्रजा का अपत्य जो कि (अन्धम्) अविद्यायुक्त हो उसको (दुरितात्) दुष्ट आचरण से (अरक्षन्) बचाते हैं (तान्) उन (सुकृतः) सुकृती उत्तम कर्म करनेवाले जनों को (विश्ववेदाः) समस्त विज्ञान के जाननेवाले आप (ररक्ष) पालें जिससे (दिप्सन्तः) हम लोगो को मारने की इच्छा करते हुए (इत्) भी (रिपवः) शत्रुजन (न, अह) नहीं (देभुः) मार सकें ॥३॥

भावार्थ—जो विद्याचक्षु जन अन्धे को कूप से जैसे वैसे मनुष्यो को अविद्या और अधर्म के आचरण से बचावें उनका पितरों के समान सत्कार करें और जो दुष्ट आचरणो मे गिरावें उनका दूर से त्याग करते रहें ॥३॥

यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुररातीवा मर्चयति द्वयेन ।

मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु मृक्षीष्ट तन्वं दुरुक्तैः ॥४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (यः) जो (अररिवान्) दुःखों को प्राप्त करता हुआ (अघायुः) अपने को अपराध की इच्छा करनेवाला (अरातीवा) न देनेवाले जन के समान आचरण करता (द्वयेन) दो प्रकार के कर्म से वा (दुरुक्तैः) दुष्ट उक्तियों से (नः) हम लोगों को (मर्चयति) कहता है उससे जो हमारे (तन्वम्) शरीर को (अनु, मृक्षीष्ट) पीछे शोधे (सः) वह हमारा और (अस्मै) उक्त व्यवहार के लिए (पुनः) बार-बार (मन्त्रः) विचारशील (गुरुः) उपदेश करनेवाला (अस्तु) होवे ॥४॥

भावार्थ—जो मनुष्यों के बीच दुष्ट शिक्षा देते वा दुष्टों को सिखाते हैं वे छोड़ने योग्य और जो सत्य शिक्षा देते वा सत्य वर्त्ताव वर्त्तनेवाले को सिखाते हैं मानने के योग्य होवें ॥४॥

उत वा यः सहस्य प्रविद्वान्मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन ।

अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तमग्ने माकिर्नो दुरिताय धायीः ॥५॥१७॥

पदार्थ—हे (सहस्य) बलादिक में प्रसिद्ध होने (स्तवमान) और सज्जनों की प्रशंसा करनेवाले (अग्ने) विद्वन् ! तू (यः) जो (प्रविद्वान्) उत्तमता से जाननेवाला (मर्तः) मनुष्य (द्वयेन) अध्यापन और उपदेश रूप से (मर्तम्)

मनुष्य को (अर्वाञ्चति) कहता है अर्थात् प्रशंसित करता है (अतः) इससे (स्तुवन्तम्) स्तुति अर्थात् प्रशंसा करते हुए जन को (पाहि) पालो (उत, वा) अथवा (नः) हम लोगों को (दुरिताय) दुष्ट आचरण के लिए (धायिः) मत कभी (धायीः) धारिए ॥५॥

भावार्थ—जो विद्वान् उत्तम शिक्षा और पढ़ाने से मनुष्यों के आत्मिक और शारीरिक बल को बढ़ाके और उनको अविद्या और पाप के आचरण से अलग करते हैं वे सबको शुद्ध करनेवाले होते हैं ॥५॥

इस सूक्त में मित्र और अमित्रों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एकसौ सैंतालीसवां सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

मथीद्यदित्यस्य पञ्चर्चस्याष्टचत्वारिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः ।
अग्निर्देवता, १, २ पङ्क्तिः । ५ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः । ३, ४, निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अब एकसौ अड़तालीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् और अग्नि के गुणों का उपदेश किया है—

मथीद्यदीं विष्टो मातरिश्वा होतारं विश्वाप्सुं विश्वदेव्यम् ।
नि यं दधुर्मनुष्यासु विक्षु स्वर्ण चित्रं वपुषे विभावम् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (विष्टः) प्रविष्ट (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में सोनेवाला पवन (विश्वदेव्यम्) समस्त पृथिव्यादि पदार्थों में हुए (विश्वाप्सुम्) समग्र रूप ही जिसका गुण उस (होतारम्) सब पदार्थों के ग्रहण करनेवाले अग्नि को (मथीत्) मथता है वा विद्वान् जन (मनुष्यासु) मनुष्य सम्बन्धिनी (विक्षु) प्रजाओं में (स्वः) सूर्य के (न) समान (चित्रम्) अद्भुत और (वपुषे) रूप के लिए (विभावम्) विशेषता से भावना करनेवाले (यम्) जिस अग्नि को (ईम्) सब ओर से (नि, दधुः) निरन्तर धारण करते हैं उस अग्नि को तुम लोग धारण करो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पवन के समान व्याप्त होनेवाली बिजुली रूप आग को अपने कार्यों की सिद्धि करते हैं वे अद्भुत कार्यों को कर सकते हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

ददानमिन्न ददभन्त मन्माग्निर्वरूथं मम तस्य चाकन् ।
जुषन्त विश्वान्यस्य कर्मोपस्तुतिं भरमाणस्य कारोः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप जो (अग्निः) विद्वान् (मम) मेरे और (तस्य) उसके (वरूथम्) उत्तम (मन्म) विज्ञान को (ददानम्) देते हुए उसको (चाकन्) कामना करता है उसको (नेत्) नहीं (ददभन्त) मारो (अस्य) इस (भरमाणस्य) भरण पोषण करते हुए (कारोः) शिल्पविद्या से सिद्ध होने योग्य कामों को करनेवाले उसके (विश्वानि) समस्त (कर्म) कर्मों की (उपस्तुतिम्) समीप प्राप्त हुई प्रशंसा को आप (जुषन्त) सेवो ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो जिनके लिए विद्या दें वे उसकी सेवा निरन्तर करें और अवश्य सब लोग वेद का अभ्यास करें ॥ २ ॥

नित्ये चिन्नु यं सदने जगृभ्रे प्रशस्तिभिर्दधिरे यज्ञियासः ।
प्र सू नयन्त गृभयन्त इष्टावश्वासो न रथ्यो रारहाणाः ॥३॥

पदार्थ—(यज्ञियासः) शिल्पयज्ञ के योग्य सज्जन (प्रशस्तिभिः) प्रशंसित क्रियाओं से (नित्ये) नित्य नाशरहित (सदने) बैठें जिस आकाश में और (इष्टौ) प्राप्त होने योग्य क्रिया में (यम्) जिस अग्नि का (जगृभ्रे) ग्रहण करें (चित्) और (नु) शीघ्र (दधिरे) धरें उसके आश्रय से (रारहाणाः) जाते हुए जो कि (रथ्यः) रथों में उत्तम प्रशंसावाले (अश्वासः) अच्छे शिक्षित घोड़े हैं उनके (न) समान और (गृभयन्तः) पदार्थों को ग्रहण करनेवालों के समान आचरण करते हुए रथों को (सु, प्र, नयन्त) उत्तम प्रीति से प्राप्त होवें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो नित्य आकाश में स्थित वायु और अग्नि आदि पदार्थों को उत्तम क्रियाओं से कार्यों में युक्त करते हैं वे विमान आदि यानों को बना सकते हैं ॥ ३ ॥

पुरूणि दस्मो नि रिणाति जम्भैराद्रोचते वन आ विभावा ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरस्तुर्न शर्यामसनामनु द्यून् ॥४॥

पदार्थ—जो (विभावा) विशेषता से दीप्ति करते तथा (दस्मः) दुःख का नाश करनेवाला अग्नि (जम्भैः) जलाने आदि अपने गुणों से (पुरूणि) बहुत वस्तुओं को (अनु, द्यून्) प्रतिदिन (नि, रिणाति) निरन्तर पहुँचाता है (आत्) इसके अनन्तर (वने) जङ्गल में (आ, रोचते) अच्छे प्रकार प्रकाशमान होता है (आत्) और (अस्य) इसका सम्बन्धी (वातः) पवन (अनु, वाति) इसके पीछे बहता है जिसकी (शोचिः) दीप्ति प्रकाशमान (अस्तुः) प्रेरणा देनेवाले शिल्पिजन की (असनाम्) प्रेरणा के (न) समान (शर्याम्) पवन की ताड़ना को प्राप्त होता है उससे उत्तम काम मनुष्यों को सिद्ध करने चाहिएं ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जो विद्या से उत्पन्न की हुई ताड़नादि क्रियाओं से बिजुली की विद्या को सिद्ध करते हैं वे प्रतिदिन उन्नति को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

न यं रिपवो न रिषण्यवो गर्भे सन्तं रेषणा रेषयन्ति ।
अन्धा अपश्या न दभन्नभिख्या नित्यास ईं प्रेतारो अरक्षन् ॥५॥

पदार्थ—(यम्) जिसको (रिपवः) शत्रुजन (न) नहीं (रेषयन्ति) नष्ट करा सकते वा (गर्भे, सन्तम्) मध्य में वर्त्तमान जिसको (रेषणाः) हिंसक (रिषण्यवः) अपने को नष्ट होने की इच्छा करनेवाले (न) नष्ट नहीं करा सकते वा (नित्यासः) नित्य अविनाशी (अभिख्या) सब ओर से ख्याति करने और (अपश्याः) न देखनेवालों के (न) समान (अन्धाः) अन्ध बुद्धिरहित न (दभन्) नष्ट कर सकें जो (प्रेतारः) प्रीति करनेवाले (ईम्) सब ओर से (अरक्षन्) रक्षा करें उस अग्नि को और उनको सब सत्कारयुक्त करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिसको रिपुजन नष्ट नहीं कर सकते हैं, जो गर्भ में भी नष्ट नहीं होता है वह आत्मा जानने योग्य है ॥ ५ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और अग्नि आदि पदार्थों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानने योग्य है ॥

यह एकसौ अड़तालीसवां सूक्त और सत्रहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

महरित्यस्य पञ्चर्चस्य एकोनपञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः ।
अग्निर्देवता । १ भुरिगनुष्टुप् । २, ४ निचृदनुष्टुप् ।
५ विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ।
३ उष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ।

अब एकसौ उनचासवें सूक्त का आरम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् और अग्न्यादि पदार्थों के गुणों का वर्णन करते हैं—

महः स राय एषते पतिर्दन्निन इनस्य वसुनः पद आ ।
उप ध्रजन्तमद्रयो विधन्नित् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जो (इनस्य) महान् ऐश्वर्य के स्वामी का (इनः) ईश्वर (वसुनः) सामान्य धन का और (महः) अत्यन्त (रायः) धन का (दन्) देनेवाला (पतिः) स्वामी (आ, ईषते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वा जो विद्वान् जन इसकी (पदे) प्राप्ति के निमित्त (ध्रजन्तम्) पहुँचते हुए को (अद्रयः) मेघों के (इत्) समान (उप, विधन्) निकट होकर अच्छे प्रकार विधान करे (सः) वह सबको सत्कार करने योग्य है ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । इस संसार में जैसे सुपात्र को देने से कीर्ति होती है वैसे और उपाय से नहीं । जो पुरुषार्थ का आश्रय कर अच्छा यत्न करता है वह पूर्ण धन को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

स यो वृषा नरां न रोदस्योः श्रवोभिरस्ति जीवपीतसर्गः ।
प्र यः सस्राणः शिश्रीत योनौ ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (श्रवोभिः) अन्न आदि पदार्थों के साथ (नराम्) मनुष्यों के बीच (न) जैसे वैसे (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी के बीच (जीवपीतसर्गः) जीवों के साथ पिया है सृष्टिक्रम जिसने अर्थात् विद्या-बल से प्रत्येक जीव के गुण दोषों को उत्पत्ति के साथ जाना वा (यः) जो (सस्राणः) सब पदार्थों के गुण-दोषों को प्राप्त होता हुआ (योनौ) कारण में अर्थात् सृष्टि के निमित्त में (प्र, शिश्रीत) आश्रय करे उसमें आरूढ़ हो (सः) वह (वृषा) श्रेष्ठ बलवान् (अस्ति) है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जो नायकों में नायक पृथिवी आदि पदार्थों के कार्य कारण को जाननेवालों की विद्या का आश्रय करता है वही सुखी होता है ॥ २ ॥

आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो नार्वा ।
सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो (अत्यः) व्याप्त होनेवाला (नभन्यः) आकाश में प्रसिद्ध पवन उसके (न) समान (कविः) क्रम-क्रम से पदार्थों में व्याप्त होनेवाली बुद्धिवाला वा (अर्वा) घोड़ा और (सूरः) सूर्य के (न) समान (रुरुक्वान्)

रश्मिमान् (शतात्मा) असख्यात पदार्थों में विशेष ज्ञान रखनेवाला जन (शग्मिणीम्) क्रीडाविलासी, आनन्द भोगनेवाले जनो की (पुरम्) पुरी को (आवीवेत्) अच्छे प्रकार प्रकाशित करे वह न्याय करने योग्य होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो असख्यात पदार्थों की विद्याओं को जाननेवाला अच्छी शोभा-युक्त नगरी को बसावे वह ऐश्वर्यों से सूर्य के समान प्रकाशमान हो ॥ ३ ॥

अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।
होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (द्विजन्मा) दो अर्थात् आकाश और वायु से प्रसिद्ध जिसका जन्म ऐसा (होता) आकर्षण शक्ति से पदार्थों को ग्रहण करने और (यजिष्ठ·) अतिशय करके सङ्गत होनेवाला अग्नि (अपाम्) जलो के (सधस्थे) साथ के स्थान में (त्री) तीन (रोचनानि) अर्थात् सूर्य, बिजुली और भूमि के प्रकाशो को और (विश्वा) समस्त (रजांसि) लोकों को (शुशुचान·) प्रकाशित करता हुआ (अभ्यस्थात्) सब ओर से स्थित हो रहा है वैसे तुम होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्या और धर्मसयुक्त व्यवहार में विद्वानो के सङ्ग से प्रकाशित हुए स्थान के निमित्त अनुष्ठान करते हैं वे समस्त अच्छे गुण, कर्म और स्वभावों के ग्रहण करने के योग्य होते हैं ॥ ४ ॥

अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।
मर्त्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥५॥१८॥

पदार्थ—(य·) जो (सुतुकः) सुन्दर विद्या से बढ़ा, उन्नति को प्राप्त हुआ (मर्त्त) मनुष्य (अस्मै) इस विद्यार्थी के लिए विद्या को (ददाश) देता है वा (य.) जो (द्विजन्मा) गर्भ और विद्या शिक्षा से उत्पन्न हुआ (होता) उत्तम गुणग्राही (विश्वा) समस्त (श्रवस्या) सुनने में प्रसिद्ध हुए (वार्याणि) स्वीकार करने योग्य विषयों को (दधे) धारण करता है (स· , अयम्) सो यह पुण्यवान् होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—जिसको विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त माता-पिताओ से एक जन्म और दूसरा जन्म आचार्य और विद्या से हो वह द्विज होता हुआ विद्वान् हो ॥ ५ ॥

इस सूक्त मे विद्वान् और अग्न्यादि पदार्थों के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एकसौ उनचासवां सूक्त और अठारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

पुरुवेत्यस्य त्रिऋचस्य पञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषि । अग्निर्देवता । १, ३ भुरिग्गायत्रीच्छन्द । षड्ज स्वर । २ निचृदुष्णिक् छन्द. । ऋषभ स्वर ॥

अब एकसौ पचासवें सूक्त का प्रारम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र मे विद्वानों के गुणों का उपदेश करते हैं ॥

पुरु त्वा दाश्वान् वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।
तोदस्येव शरण आ महस्य ॥१॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (दाश्वान्) दान देने और (अरि) व्यवहारो की प्राप्ति करानेवाला मैं (महस्य) महान् (तोदस्येव) व्यथा देनेवाले के जैसे वैसे (तव) आपके (स्वित्) ही (आ, शरणे) अच्छे प्रकार घर में (त्वा) आपको (पुरु, आ, वोचे) बहुत भली-भाँति से कहूँ ॥ १ ॥

भावार्थ—जो जिसका रक्खा हुआ सेवक हो वह उसकी आज्ञा का पालन करके कृतार्थ होवे ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

व्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे चिदररुषः ।
कदा चन प्रजिगतो अदेवयोः ॥२॥

पदार्थ—मैं (अदेवयो) जो नही विद्वान् है उनको (प्रजिगत) जो उत्तमता से निरन्तर प्राप्त होता हुआ (अररुष·) अहिंसक (व्यनिनस्य) विशेषता से प्रशसित प्राण का निमित्त (धनिन) बहुत धनयुक्त जन है उसके (प्रहोषे) उसको अच्छे ग्रहण करनवाले के लिए (कदा, चन) कभी प्रिय वचन न कहूँ ऐसे (चित्) तू भी मत बोल ॥ २ ॥

भावार्थ—जो अविद्वान् पढाने और उपदेश करनेवालो के सग को छोड़ विद्वानो का सङ्ग करता है वह सुखो से युक्त होता है ॥ २ ॥

स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो व्राधन्तमो दिवि ।
प्रप्रेत्ते अग्ने वनुषः स्याम ॥३॥१९॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! जैसे हम लोग (वनुष) अलग सबको बाँटनेवाले (ते) आपके उपकार करनेवाले (प्रप्र, इत , स्याम) उत्तम ही प्रकार से होवें । वा हे (विप्र) धीर बुद्धिवाले जन ! जैसे (स) वह (मर्त्य.) मनुष्य (व्राधन्तम:) अतीव उन्नति को प्राप्त जैसे (मह.) बड़ा (चन्द्रः) चन्द्रमा (दिवि) आकाश मे वर्त्तमान है वैसे तू भी अपना वर्त्ताव रख ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे पृथिव्यादि पदार्थों को जाने हुए विद्वान् जन विद्याप्रकाश मे प्रवृत्त होते हैं वैसे और जनो को भी वर्त्ताव रखना चाहिए ॥ ३ ॥

इस सूक्त मे विद्वानो के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सगति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ पचासवां सूक्त और उन्नीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ मित्रमित्यस्य नवर्चस्यैकपञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषि । मित्रावरुणौ देवते । १ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्द । धैवत. स्वर. । २—५ विराड् जगती । ६, ७ जगती, ८, ९ निचृज्जगती च छन्द· । निषाद. स्वरः ॥

अब नव ऋचावाले एकसौ इक्कावन सूक्त का आरम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में मित्रावरुण के विशेष लक्षणों को कहते हैं—

मित्रं न यं शिम्या गोषु गव्यवः स्वाध्यो विदथे अप्सु जीजनन् ।
अरेजेतां रोदसी पाजसा गिरा प्रति प्रियं यजतं जनुषामवः ॥१॥

पदार्थ—(प्रियम्) जो प्रसन्न करता वा (यजतम्) सग करने योग्य (यम्) जिस अग्नि को (जनुषाम्) मनुष्यो के (अव) रक्षा आदि के (प्रति), प्रति वा (स्वाध्य) जिनकी उत्तम धीरबुद्धि वे (गोषु) गौओ मे (गव्यव) गौओ की इच्छा करनेवाले जन (मित्र, न) मित्र के समान (विदथे) यज्ञ मे (शिम्या) कर्म से (अप्सु) प्राणियो के प्राणो म (जीजनन्) उत्पन्न कराते अर्थात् उस यज्ञ कर्म द्वारा वर्षा और वर्षा स अन्न होत और अन्नो से प्राणियो के जठराग्नि को बढ़ाते हैं उस अग्नि के (पाजसा) बल (गिरा) रूप उत्तम शिक्षित वाणी से (रोदसी) सूर्यमण्डल और पृथिवीमण्डल (अरेजेताम्) कम्पायमान होते है ॥ १ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् प्रजापालना किया चाहते हैं वे मित्रता कर समस्त जगत की रक्षा करे ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रो मे कहा है—

यद्ध त्यद्वां पुरुमीळ्हस्य सोमिनः प्र मित्रासो न दधिरे स्वाभुवः ।
अध क्रतुं विदतं गातुमर्चत उत श्रुतं वृषणा पस्त्यावतः ॥२॥

पदार्थ—हे (वृषणा) प्राण आदि की वर्षा कराते दुष्टो की शक्ति को बाँधते हुए अध्यापक और उपदेशको ! तुम दोनो (पुरुमीळ्हस्य) बहुत गुणो से सींचे हुए (पस्त्यावत) प्रशसित घरोंवाले (सोमिन) बहुत ऐश्वर्ययुक्त सज्जन की (क्रतुम) बुद्धि को (यत्, ह) जो निश्चय के साथ (स्वाभुव) उत्तमता से परोपकार मे प्रसिद्ध होनेवाले जन (मित्रास.) मित्रों के (न) समान (प्र, दधिरे) अच्छे प्रकार धारण करते (त्यत) उनकी (गातुम्) पृथिवी को (विदतम्) प्राप्त होओ (अध) इसके अनन्तर भी (वाम्) तुम दोनो का (अर्चते) सत्कार करते हुए जन की (श्रुतम्) सुनो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है । जो मित्र के समान सब जनों में उत्तम बुद्धि को स्थापन कर विद्याओ का स्थापन करते हैं वे अच्छे भाग्यशाली होते है ॥ २ ॥

आ वां भूषन् क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे ।
यदीमृताय भरथो यदर्वते प्र होत्रया शिम्या वीथो अध्वरम् ॥३॥

पदार्थ—हे (वृषणा) विद्या की वर्षा करानेवाले (यत्) जो (रोदस्यो:) अन्तरिक्ष और पृथिवी के बीच वर्त्तमान (क्षितय:) मनुष्य (महे) अत्यन्त (दक्षसे) आत्मबल के लिए (वाम्) तुम दोनो का (प्रवाच्यम्) अच्छे प्रकार कहने योग्य (जन्म) जन्म को (भूषन) सुशोभित करें उनके सग से (यत्) जिस कारण (अर्वते) प्रशसित विज्ञानवाले (ऋताय) सत्यविज्ञान-युक्त सज्जन के लिए (होत्रया) ग्रहण करने योग्य (शिम्या) अच्छे कर्मों से युक्त क्रिया से (अध्वरम्) अहिंसा धर्मयुक्त व्यवहार को तुम (आ, भरथ) अच्छे प्रकार धारण करते हो और (ईम्) सब ओर से उसको (प्र, वीथ) व्याप्त होते हो इससे आप प्रशंसा करने योग्य हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् बाल्यावस्था से लेकर पुत्र और कन्याओं को विद्या की प्राप्ति उन्नति दिलाते हैं वे सत्य के प्रचार से सबको विभूषित करते हैं ॥ ३ ॥

प्र सा क्षितिरसुर या महि प्रिय ऋतावानावृतमा घोषथो बृहत् ।
युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युप युञ्जाथे अपः ॥४॥

पदार्थ—हे (ऋतावाना) सत्य आचरण करनेवाले (असुर) प्राण के समान बलवान् मित्र-वरुण राज-प्रजा जन ! (युवम्) तुम दोनो जिस कारण (बृहतः) अति उन्नति को प्राप्त (दिव) प्रकाश (बलम्) बल और (अपः) कर्म को (धुरि) गाडी चलाने की धुरि के निमित्त (आभुवम्) अच्छे प्रकार होने वाले (गाम्) प्रबल बैल के (न) समान (उप, युञ्जाथे) उपयोग मे लाते हो और (बृहत) अत्यन्त (ऋतम्) सत्य व्यवहार को (आघोषथ) विशेषता से शब्दायमान कर प्रख्यात करते हो इससे तुम दोनो को (या) जो (महि) अत्यन्त (प्रिया) सुखकारिणी (क्षितिः) भूमि है (सा) वह (प्र) प्राप्त होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो सत्य का आचरण करते और उसका उपदेश करते हैं वे असंख्य बल को प्राप्त होकर पृथिवी के राज्य को भोगते हैं ॥ ४ ॥

मही अत्र महिना वारमृण्वथोऽरेणवस्तुज आ सद्मन्धेनवः ।
स्वरन्ति ता उपरताति सूर्यमा निम्रुच उषसस्तक्ववीरिव ॥५॥२०॥

पदार्थ—हे पढाने और उपदेश करनेवाले सज्जनो ! तुम दोनो (तक्ववीरिव) जो सेनाजनो को व्याप्त होता उसके समान (अत्र) इस (मही) पृथिवी मे (महिना) बडप्पन से (उपरताति) मेघो के आकाशवाले अर्थात् मेघ जिसमे आते-जाते उस अन्तरिक्ष मे (सूर्यम्) सूर्यमण्डल का (आ, निम्रुच) मर्यादा माने निरन्तर गमन करती हुई (उषसः) प्रभातवेलाओं के समान (अरेणव.) जो दुष्टो को नहीं प्राप्त (तुज·) सज्जनों से ग्रहण की हुई (धेनव·) जो दुग्ध पिलाती हैं वे गौएँ (सद्मन्) अपने गोठो मे (वारम्) स्वीकार करने योग्य (आ, स्वरन्ति) सब ओर से शब्द करती हैं (ता·) उनको (ऋण्वथ.) प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। जैसे दूध देनेवाली गौएँ सब प्राणियो को प्रसन्न करती है वैसे पढाने और उपदेश करनेवाले जन विद्या और उत्तम शिक्षा को अच्छे प्रकार देकर सब मनुष्यो को सुखी करें ॥ ५ ॥

आ वामृताय केशिनीरनूषत मित्र यत्र वरुण गातुमर्चथः ।
अव त्मना सृजतं पिन्वतं धियो युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः ॥६॥

पदार्थ—हे (मित्र) मित्र और (वरुण) श्रेष्ठ विद्वानो ! (यत्र) जहाँ (ऋताय) सत्याचरण के लिए (केशिनी) चमक-दमकवाली सुन्दरी स्त्री (वाम्) तुम दोनो की (अनूषत) स्तुति करे वहाँ (युवम्) तुम दोनो (गातुम्) सत्य स्तुति को (आ, अर्चथ.) अच्छे प्रकार प्रशसित करते हो (त्मना) अपने से (विप्रस्य) धीरबुद्धि-युक्त सज्जन की (धिय) उत्तम बुद्धियो को (अव, सृजतम्) निरन्तर उत्पन्न करो और (पिन्वतम्) उपदेश द्वारा सींचो (मन्मनाम्) और मान करती हुई को (इरज्यथ) ऐश्वर्ययुक्त करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो यहाँ प्रशसायुक्त स्त्रियाँ और जो पुरुष हैं वे अपने समान पुरुष स्त्रियो के साथ सयोग करें ब्रह्मचर्य से और विद्या से विशेष ज्ञान की उन्नति कर ऐश्वर्य को बढावें ॥ ६ ॥

यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः ।
उपाह तं गच्छथो वीथो अध्वरमच्छा गिरः सुमतिं गन्तमस्मयू ॥७॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको ! (य) जो (शशमान) सब विषयो को पार होता हुआ (कवि) अत्यन्त बुद्धियुक्त (होता) सब विषयो को ग्रहण करनेवाला (मन्मसाधन) जिस का विज्ञान ही साधन वह सज्जन (यज्ञै) मिल के किये हुए कर्मों से (वाम्) तुम दोनों को सुख (दाशति) देता है और (यजति) तुम्हारा सत्कार करता है (तं, ह) उसीके (अस्मयू) हमारी इच्छा करते हुए तुम (उप, गच्छथ) सग पहुँचे हो वे आप (अह) बे रोक-टोक (अध्वरम्) हिंसा रहित व्यवहार को (गन्तम्) प्राप्त होओ और (गिर.) सुन्दर शिक्षा की हुई वाणी और (सुमतिम्) सुन्दर विशेष बुद्धि को (अच्छ) उत्तम रीति से (वीथ.) चाहो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो इस संसार मे सत्यविद्या की कामना करनेवाले सबके लिए विद्या-दान से उत्तम शीलपन का सम्पादन करते हुए सुख देते हैं वे सब को सत्कार करने योग्य हैं ॥ ७ ॥

युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु ।
भरन्ति वां मन्मना संयता गिरोऽदृप्यता मनसा रेवदाशाथे ॥८॥

पदार्थ—हे अध्यापकोपदेशक सज्जनो ! जो (यज्ञैः) यज्ञों से (गोभि·) और सुन्दर शिक्षित वाणियो से (अञ्जते) कामना करते हैं (ऋतावाना) और सत्य आचरण का सम्बन्ध रखनेवाले (प्रथमा) आदि मे होनेवाले तुम दोनों को (मनसः) अन्त.करण के (प्रयुक्तिषु) प्रयोगों को उल्लासों मे जैसे (न) वैसे व्यवहारों में (भरन्ति) पुष्ट करते हैं तथा (वाम्) तुम दोनों की शिक्षाओं को पाकर (संयता) संयमयुक्त (अदृप्यता) हर्ष-मोहरहित (मन्मना) विज्ञानरूप (मनसा) मन से (गिरः) वाणियों और (रेवत्) बहुत धनों से भरे हुए ऐश्वर्य को पुष्ट करते हैं और तुमको (आशाथे) प्राप्त होते हैं उनको तुम नित्य पढाओ और सिखाओ ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। हे विद्वानो ! जो तुमको विद्या प्राप्ति के लिए श्रद्धा से प्राप्त होवें और जो जितेन्द्रिय धार्मिक हो उन सभों को अच्छे यत्न के साथ विद्यावान् और धार्मिक करो ॥ ८ ॥

रेवद्वयो दधाथे रेवदाशाथे नरा मायाभिरितऊति माहिनम् ।
न वां द्यावोऽहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वं पणयो नानशुर्मघम् ॥९॥

पदार्थ—हे (नरा) अग्रगामी जनो ! जो तुम (मायाभि·) मानने योग्य बुद्धियो से (माहिनम्) अत्यन्त पूज्य और बडा भी (इतऊति) इधर से रक्षा जिससे उस (वय) अति रम्य मनोहर (रेवत्) प्रशंसित धनयुक्त ऐश्वर्य को (दधाथे) धारण करते हो और (रेवत्) बहुत ऐश्वर्ययुक्त व्यवहार को (आशाथे) प्राप्त होते हो उन (वाम्) आपकी (देवत्वम्) विद्वत्ता को (द्याव·) प्रकाश (न) नहीं (अहभिः) दिनो के साथ दिन अर्थात् एकता रसमय (न) नहीं (उत) और (सिन्धव) बडी-बडी नदी-नद (न) नहीं (आनशुः) व्याप्त होते अर्थात् अपने-अपने गुणों से तिरस्कार नहीं कर सकते, जीत नहीं सकते, अधिक नहीं होते तथा (पणयः) व्यवहार करते हुए जन (मघम्) तुम्हारे महत् ऐश्वर्य को (न) नहीं व्याप्त होते जीत सकते ॥ ९ ॥

भावार्थ—जिस-जिस को विद्वान् प्राप्त करते हैं उस-उस को इतर सामान्य जन प्राप्त नहीं होते, विद्वानो के उपमा विद्वान् ही होते हैं और नहीं होते ॥ ९ ॥

इस सूक्त में मित्र-वरुण के लक्षण अर्थात् मित्र-वरुण शब्द से लक्षित अध्यापक और उपदेशक आदि का वर्णन किया। इससे इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सगति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ एकावनवाँ सूक्त और इक्कीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

युवमित्यस्य सप्तर्चस्य द्विपञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। १, २, ४—६ त्रिष्टुप्, ३ विराट्त्रिष्टुप्; ७ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब एकसौ बावनवें सूक्त का आरम्भ है। इसके प्रथम मन्त्र में पढाने-पढने और उपदेश करने, उपदेश सुननेवालों के विषय को कहते हैं—

युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः ।
अवातिरतमनृतानि विश्व ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ॥१॥

पदार्थ—हे (मित्रावरुणा) प्राण उदान के समान वर्त्तमान पढाने और उपदेश करनेवाले ! जो (युवम्) तुम लोग (पीवसा) स्थूल (वस्त्राणि) वस्त्रों को (वसाथे) ओढते हो वा जिन (युवो) तुम्हारे (अच्छिद्राः) छेद-भेद रहित (मन्तव·) जानने योग्य (ह) ही पदार्थ (सर्गा) रचने योग्य हैं जो तुम (विश्वा) समस्त (अनृतानि) मिथ्याभाषण आदि कामो को (अवातिरतम्) उल्लघते पार होते और (ऋतेन) सत्य से (सचेथे) सग करते हो वे तुम हम लोगों को क्यो न सत्कार करने योग्य होते हो ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को सदैव स्थूल छिद्ररहित वस्त्र पहिन कर जानने के योग्य दोषरहित वस्त्र आदि पदार्थ निर्माण करने चाहिएँ और सदैव धारण किये हुए सत्याचरण से असत्याचरणों को छोड धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष अच्छे प्रकार सिद्ध करने चाहिएँ ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

एतच्चन त्वो वि चिकेतदेषां सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋघावान् ।
त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रो देवनिदो ह प्रथमा अजूर्यन् ॥२॥

पदार्थ—(त्वः) कोई ही (एषाम्) इन विद्वानों मे जो ऐसा है कि (ऋघावान्) बहुत स्तुति और सत्य-असत्य की विवेचना करनेवाली मतियो से युक्त (कविशस्त) मेधावी कवियो से प्रशंसित किया (सत्य.) अव्यभिचारी (मन्त्रः) विचार है (एतत्) इसको (विचिकेतत्) विशेषता से जानता है और जो (चतुरश्रि.) चारो वेदो को प्राप्त होता वह (उग्र) तीव्र स्वभाववाला (देवनिद) जो विद्वानो की निन्दा करते हैं उनको (हन्ति) मारता और (त्रिरश्रिम्) जो तीनो अर्थात् वाणी, मन और शरीर से प्राप्त किया जाता है ऐसे उत्तम पदार्थ को जानता है उक्त वे सब (प्रथमाः) आदिम अर्थात् अग्रगामी अगुआ (ह) ही हैं और वे प्रथम (चन) ही (अजूर्यन्) बुड्ढे होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानो की निन्दा को छोड निन्दको को निवारके सत्य-ज्ञान को प्राप्त हो सत्यविद्याओं को पढाते हुए और सत्य का उपदेश करते हुए विस्तृत सुख को प्राप्त होते हैं वे धन्य हैं ॥ २ ॥

अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद्वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्य ऋतं पिपर्त्यनृतं नि तारीत् ॥३॥

पदार्थ—हे (मित्रावरुणा) श्रेष्ठ मित्र पढाने और उपदेश करनेवाले विद्वानो ! जो (पद्वतीनाम्) प्रशंसित विभागोंवाली क्रियाओं मे (प्रथमा) प्रथम (अपात्)

जिस विभागवाली विद्या (वृति) प्राप्त होती है (तम्) उसको (वाम्) तुम दो (कः) कौन (आ, चिकेत) जाने और जो (गर्भः) ग्रहण करनेवाला जन (भारम्) पुष्टि को (आ, भरति) सुशोभित करता वा अच्छे प्रकार धारण करता है (चित्) और भी (अस्य) इस संसार के बीच (ऋतम्) सत्य व्यवहार को (पिपर्ति) पूर्ण करता है सो (अनृतम्) मिथ्या भाषण आदि काम को (नि, तारीत्) निरन्तर उल्लंघता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो झूठ को छोड़ सत्य को धारण कर अपने सब सामान इकट्ठे करते हैं वे सत्य विद्या को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

प्रयन्तमित्परि जारं कनीनां पश्यामसि नोपनिपद्यमानम् ।
अनवपृग्णा वितता वसानं प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (कनीनाम्) कामना करती हुई प्रजाओं की (जारम्) अवस्था हरनेवाले (प्रयन्तम्) अच्छे यत्न करते (उपनिपद्यमानम्) समीप प्राप्त होते (अनवपृग्णा) सम्बन्ध रहित अर्थात् अलग के पदार्थ जो (वितता) फैले हैं उनको (वसानम्) आच्छादन करते अर्थात् अपने प्रकाश से प्रकाशित करते हुए सूर्य के समान (मित्रस्य) मित्र वा (वरुणस्य) श्रेष्ठ विद्वान् के (इत्) ही (प्रियम्) प्रिय (धाम) सुखसाधक घर को (परि, पश्यामसि) देखते हैं इससे विरुद्ध (न) न हों वैसे तुम भी इसको प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग जैसे रात्रियों के निहन्ता अपने प्रकाश का विस्तार करते हुए सूर्य को देखकर कार्यों को सिद्ध करते हैं वैसे अविद्यान्धकार का नाश और विद्या का प्रकाश करनेवाले आप्त अध्यापक और उपदेशक के संग को पाकर क्लेशों को नष्ट करें ॥ ४ ॥

अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा कनिक्रदत्पतयदूर्ध्वसानुः ।
अचित्तं ब्रह्म जुजुषुर्युवानः प्र मित्रे धाम वरुणे गृणन्तः ॥५॥

पदार्थ—जो (युवानः) युवावस्था को प्राप्त जन (अनभीशुः) नियम करनेवाली किरणों से रहित (अनश्वः) जिसके जल्दी चलनेवाले घोड़े नहीं (कनिक्रदत्) और बार-बार शब्द करता वा (पतयत्) गमन करता हुआ (जातः) प्रसिद्ध हुआ और (ऊर्ध्वसानुः) जिसके ऊपर को शिखा (अर्वा) प्राप्त होनेवाले सूर्य के समान (मित्रे) मित्र वा (वरुणे) उत्तम जन के निमित्त (धाम) स्थान की (गृणन्तः) प्रशंसा करते हुए (अचित्तम्) चित्त-रहित (ब्रह्म) वृद्धि को प्राप्त धन आदि पदार्थों से युक्त अन्न को (प्र, जुजुषुः) सेवें वे बलवान् होते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे घोड़े वा रथ आदि सवारी से रहित आकाश के बीच ऊपर को स्थित सूर्य ईश्वर के अवलम्ब से प्रकाशमान होता है वैसे विद्वानों की विद्या के आधारभूत मनुष्य बहुत धन और अन्न को पाकर धर्मयुक्त व्यवहार में विराजमान होते हैं ॥ ५ ॥

आ धेनवो मामतेयमवन्तीर्ब्रह्मप्रियं पीपयन्त्सस्मिन्नूधन् ।
पित्वो भिक्षेत वयुनानि विद्वानासाविवासन्नदितिमुरुष्येत् ॥६॥

पदार्थ—जैसे (धेनवः) धेनु, गौएँ (सस्मिन्) अपने (ऊधन्) ऐन मे हुए दूध से बछड़ों को पुष्ट करती हैं वैसे जो स्त्री (ब्रह्मप्रियम्) वेदाध्ययन जिस को प्रिय उस (मामतेयम्) ममत्व से माने हुए अपने पुत्र की (अवन्तीः) रक्षा करती हुई (आ पीपयन्) उसकी वृद्धि, उन्नति करती हैं वा जैसे (विद्वान्) विद्यावान् जन (आसा) मुख से (पित्वः) अन्न की (भिक्षेत) याचना करे और (अदितिम्) न नष्ट होनेवाली विद्या का (आविवासन्) सब ओर से सेवन करता हुआ (वयुनानि) उत्तम ज्ञानों को (उरुष्येत्) सेवे वैसे पढ़ानेवाले पुरुष औरों को विद्या और सिखावट का ग्रहण करावें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे माता जन अपने लड़कों को दूध आदि के देने से बढ़ाती हैं वैसे विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुष कुमार और कुमारियों को विद्या और अच्छी शिक्षा से बढ़ावें, उन्नतियुक्त करें ॥ ६ ॥

आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं नमसा देवाववसा ववृत्याम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सह्या अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ॥७॥२२॥

पदार्थ—हे (देवौ) दिव्य स्वभाववाले (मित्रावरुणा) मित्र और उत्तम जन ! जैसे मैं (वाम्) तुम दोनों की (नमसा) अन्न से (हव्यजुष्टिम्) ग्रहण करने योग्य सेवा को (आ, ववृत्याम्) अच्छे प्रकार वर्तूं वैसे तुम दोनों (अवसा) रक्षा आदि काम से (अस्माकम्) हमारे (पृतनासु) मनुष्यों में (ब्रह्म) धन की वृद्धि कराइए । हे विद्वन् ! जो (अस्माकम्) हमारी (दिव्या) शुद्ध (सुपारा) जिससे कि सुख के साथ सब कामों की परिपूर्णता हो ऐसी (वृष्टिः) पुष्टों की शक्ति बंधानेवाली शक्ति है उसको (सह्याः) सहो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् जन अति प्रीति से हमारे लिए विद्याओं को देवें वैसे हम लोग इनको अत्यन्त श्रद्धा से सेवें जिससे हमारी शुद्ध प्रशंसा सर्वत्र विदित हो ॥७॥

इस सूक्त में पढ़ाने और उपदेश करनेवाले तथा उनके शिष्यों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एकसौ बावनवां सूक्त और बाईसवां वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

यजामहे इत्यस्य चतुर्ऋचस्य त्रिपञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १, २ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब एकसौ त्रेपनवें सूक्त का आरम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में फिर मित्र वरुण के गुणों का वर्णन करते हैं—

यजामहे वां महः सजोषा हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः ।
घृतैर्घृतस्नू अध यद्वामस्मे अध्वर्यवो न धीतिभिर्भरन्ति ॥१॥

पदार्थ—हे (घृतस्नू) घृत फैलाने (मित्रावरुणा) मित्र और श्रेष्ठ जनो ! (वाम्) तुम दोनों का (सजोषाः) समान प्रीति किये हुए हम लोग (धीतिभिः) अंगुलियों से (अध्वर्यवः) अहिंसा धर्म की कामनावालों के (न) समान (हव्येभिः) देने योग्य (नमोभिः) अन्नादि पदार्थों से (घृतैः) और घी आदि रसों से (महः) अत्यन्त (यजामहे) सत्कार करते हैं (अध) इसके अनन्तर (यत्) जिस व्यवहार को (वाम्) तुम दोनों के लिए और (अस्मे) हमारे लिए विद्वान् जन (भरन्ति) धारण करते हैं उस व्यवहार को धारण करो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जैसे यजमान अग्निहोत्र आदि अनुष्ठानों से सबके सुख को बढ़ाते हैं वैसे समस्त विद्वान् जन अनुष्ठान करें ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

प्रस्तुतिर्वां धाम न प्रयुक्तिरयामि मित्रावरुणा सुवृक्तिः ।
अनक्ति यद्वां विदथेषु होता सुम्नं वां सूरिर्वृषणावियक्षन् ॥२॥

पदार्थ—हे (वृषणौ) सुख वृष्टि करनेहारे (मित्रावरुणा) मित्र और श्रेष्ठ जन (इयक्षन्) प्राप्त होने की इच्छा करता हुआ (सूरिः) विद्वान् (सुवृक्तिः) जिसका सुन्दर रोकना (प्रस्तुतिः) और उत्तम स्तुति (होता) वह ग्रहण करनेवाला (प्रयुक्तिः) उत्तम युक्ति में (धाम) स्थान के (न) समान (वाम्) तुम दोनों को (अयामि) प्राप्त होता है । वा (यत्) जो विद्वान् (वाम्) तुम दोनों से (विदथेषु) विज्ञानों में (अनक्ति) कामना करता है वा (वाम्) तुम दोनों के लिए (सुम्नम्) सुख देता है उसको मैं प्राप्त होता हूँ ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जो मनुष्य पाप हरने और प्रशंसित गुणों को ग्रहण करनेवाले जिनको विद्वानों का सङ्ग प्यारा है और सबके लिए सुख देनेवाले होते हैं वे कल्याण को सेवनेवाले होते हैं ॥२॥

पीपाय धेनुरदितिर्ऋताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे ।
हिनोति यद्वां विदथे सपर्यन्त्स रातहव्यो मानुषो न होता ॥३॥

पदार्थ—हे (मित्रावरुणा) सत्य उपदेश करनेवाले मित्रावरुणो ! (यत्) जो (अदितिः) अखण्डित, विनाश को नहीं प्राप्त हुई (धेनुः) दूध देनेवाली गौ के समान (हविर्दे) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को देता उस (ऋताय) सत्य व्यवहार को प्राप्त हुए (जनाय) प्रसिद्ध विद्वान् के लिए (सुम्नम्) सुख को (पीपाय) बढ़ाता और (विदथे) विज्ञान के निमित्त (वाम्) तुम दोनों की (सपर्यन्) सेवा करता हुआ (रातहव्यः) जिसने ग्रहण करने योग्य पदार्थ दिये वह (होता) लेनेवाले (मानुषः) मनुष्य के (न) समान (हिनोति) वृद्धि को प्राप्त कराता है और (सः) वह जन उत्तम होता है ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । जो विद्या देने-लेने मे कुशल पढ़ाने और उपदेश करनेवाले सबको उन्नति देते हैं वे शुभ गुणों से सबसे अधिक उन्नति को पाते हैं ॥३॥

उत वां विक्षु मद्यास्वन्धो गाव आपश्च पीपयन्त देवीः ।
उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन्वीतं पातं पयस उस्रियायाः ॥४॥

पदार्थ—हे मित्र और वरुण, श्रेष्ठजन ! जैसे (देवीः) दिव्य (गावः) वाणी (आपः, च) और जल (मद्यासु) हर्षित करने योग्य (विक्षु) प्रजाजनों में (वाम्) तुम दोनों को (पीपयन्त) उन्नति देते हैं (उत) और (अन्धः) अन्न अच्छे प्रकार देवें (उतो) और (पूर्व्यः) पूर्वजों से नियत किया हुआ (पतिः) पालना करनेवाला (नः) हमारे (अस्य) पढ़ाने के काम सम्बन्धी (उस्रियायाः) दुग्ध देनेवाली गौ के (पयसः) दूध को (दन्) देता हुआ वर्त्तमान है वैसे तुम दोनों विद्या को (वीतम्) व्याप्त होओ और दुग्ध (पातम्) पिओ ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो बड़ा गौओं के समान सुख देनेवाले और प्राण के समान प्रिय प्रजाजनों में वर्त्तमान हैं वे इस संसार में अतुल आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥४॥

इस सूक्त मे मित्र और वरुण के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एकसौ त्रेपनवां सूक्त और तेईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

विष्णोरित्यस्य षडर्चस्य चतुःपञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः ।
विष्णुर्देवता । १, २ विराट्त्रिष्टुप्, ३, ४, ६ निचृत् त्रिष्टुप्;
५ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले एक सौ चौवनवें सूक्त का प्रारम्भ है । इसमें
ईश्वर और मुक्तिपद का वर्णन करते हैं—

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (पार्थिवानि) पृथिवी मे विदित (रजांसि) लोकों को अर्थात् पृथिवी में विख्यात सब स्थलों को (नु) शीघ्र (विममे) अनेक प्रकार से रचता वा (यः) जो (उरुगायः) बहुत वेदमन्त्रों से गाया जाता वा स्तुति किया जाता (उत्तरम्) प्रलय से अनन्तर (सधस्थम्) एक साथ के स्थान को (त्रेधा) तीन प्रकार से (विचक्रमाणः) विशेषकर कँपाता हुआ (अस्कभायत्) रोकता है उस (विष्णोः) सर्वत्र व्याप्त होनेवाले परमेश्वर के (वीर्याणि) पराक्रमों को (प्र वोचम्) अच्छे प्रकार कहूं और उससे (कम्) सुख पाऊँ वैसे तुम करो ॥१॥

भावार्थ—जैसे सूर्य अपनी आकर्षण शक्ति से सब भूगोलों को धारण करता है वैसे सूर्यादि लोक कारण और जीवों को जगदीश्वर धारण कर रहा है जो इन असंख्य लोकों को शीघ्र निर्माण करता और जिसमे प्रलय को प्राप्त होते हैं वही सबको उपासना करने योग्य है ॥१॥

प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यस्य) जिस जगदीश्वर के निर्माण किये हुए (त्रिषु) जन्म, नाम और स्थान इन तीन (विक्रमणेषु) विविध प्रकार के सृष्टि कर्मों मे (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोक-लोकान्तर (अधिक्षियन्ति) आधाररूप से निवास करते हैं (तत्) वह (विष्णुः) सर्वव्यापी परमात्मा अपने (वीर्येण) पराक्रम से (कुचरः) कुटिलगामी अर्थात् ऊँचे-नीचे नाना प्रकार विषम स्थलों में चलने और (गिरिष्ठाः) पर्वत-कन्दराओ मे स्थिर होनेवाले (मृगः) हिरण के (न) समान (भीमः) भयंकर समस्त लोक-लोकान्तरो को (प्रस्तवते) प्रशंसित करता है ॥२॥

भावार्थ—कोई भी पदार्थ ईश्वर और सृष्टि के नियम को उल्लंघ नहीं सकता, जो धार्मिक जनो को मित्र के समान आनन्द देने, दुष्टो को सिंह के समान भय देने और न्यायादि गुणो का धारण करनेवाला परमात्मा है वही सबका अधिष्ठाता और न्यायाधीश है यह जानना चाहिए ॥२॥

प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे ।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (एकः) एक (इत्) ही परमात्मा (त्रिभिः) तीन अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म, अति सूक्ष्म (पदेभिः) जानने योग्य अंशो से (इदम्) इस (दीर्घम्) बड़े हुए (प्रयतम्) उत्तम यत्नसाध्य (सधस्थम्) सिद्धान्तावयवों से एक साथ के स्थान को (विममे) विशेषता से रचता है उस (वृष्णे) अनन्त पराक्रमी (गिरिक्षिते) मेघ वा पर्वतों को अपने-अपने मे स्थिर रखनेवाले (उरुगायाय) बहुत प्राणियो से वा बहुत प्रकारों से प्रशंसित (विष्णवे) व्यापक परमात्मा के लिए (मन्म) विज्ञान (शूषम्) और बल (एतु) प्राप्त होवे ॥३॥

भावार्थ—कोई भी अनन्त पराक्रमी जगदीश्वर के बिना इस विचित्र जगत् के रचने, धारण करने और प्रलय करने को समर्थ नहीं हो सकता इससे इसको छोड़ और की उपासना किसी को न करनी चाहिए ॥३॥

यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यस्य) जिस ईश्वर के बीच (मधुना) मधुरादि गुण से (पूर्णा) पूर्ण (अक्षीयमाणा) विनाशरहित (त्री) तीन (पदानि) प्राप्त होने योग्य पद अर्थात् लोक (स्वधया) अपने-अपने रूप के धारण करने रूप क्रिया से (मदन्ति) आनन्द को प्राप्त होते हैं (उ) और जो (एकः, उ) एक अर्थात् अद्वैत परमात्मा (पृथिवीम्) पृथिवीमण्डल (उत) और (द्याम्) सूर्यमण्डल तथा (त्रिधातु) जिनमें सत्त्व, रजस्, तमस् ये तीनों धातु विद्यमान उन (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोक-लोकान्तरों को (दाधार) धारण करता है वही परमात्मा सबको मानने योग्य है ॥४॥

भावार्थ—जो अनादि कारण से सूर्य आदि के तुल्य प्रकाशमान पृथिवियों को उत्पन्न कर समस्त जीवन पदार्थों के साथ उनका संयोग करा उनको आनन्दित करता है उसके गुण, कर्म की उपासना से आनन्द ही सबको बढ़ाना चाहिए ॥४॥

तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥५॥

पदार्थ—मैं (यत्र) जिसमें (देवयवः) दिव्य लोगों की कामना करनेवाले (नरः) अग्रगन्ता उत्तम जन (मदन्ति) आनन्दित होते हैं (तत्) उस (अस्य) इस (उरुक्रमस्य) अनन्त पराक्रमयुक्त (विष्णोः) व्यापक परमात्मा के (प्रियम्) प्रिय (पाथः) मार्ग को (अभ्यश्याम्) सब ओर से प्राप्त होऊं जिस परमात्मा के (परमे) अत्युत्तम (पदे) प्राप्त होने योग्य मोक्षपद मे (मध्वः) मधुरादि गुणयुक्त पदार्थ का (उत्सः) कूप-सा तृप्ति करनेवाला गुण वर्त्तमान है (सः, हि) वही (इत्था) इस प्रकार से हमारा (बन्धुः) भाई के समान दुःख विनाश करने से सुख देनेवाला है ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । जो परमेश्वर से वेद द्वारा दी हुई आज्ञा के अनुकूल चलते है वे मोक्ष सुख को प्राप्त होते हैं । जैसे जन बन्धु को प्राप्त होकर सहायता को पाते हैं वा प्यासे जन मीठे जल से पूर्ण कुए को पाकर तृप्त होते है वैसे परमेश्वर को प्राप्त होकर पूर्ण आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥५॥

ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि ॥६॥२४॥

पदार्थ—हे शास्त्रवेत्ता विद्वानो ! (यत्र) जहाँ (अयासः) प्राप्त हुए (भूरिशृङ्गाः) बहुत सींगो के समान उत्तम तेजोंवाले (गावः) किरण हैं (ता) उन (वास्तूनि) स्थानों को (वाम्) तुम अध्यापक और उपदेशक परम योगीजनों के (गमध्यै) जाने को हम लोग (उश्मसि) चाहते हैं । जो (उरुगायस्य) बहुत प्रकारो से प्रशंसित (वृष्णः) सुख वर्षानेवाले परमेश्वर को (परमम्) प्राप्त होने योग्य (पदम्) मोक्षपद (भूरिः) अत्यन्त (अव, भाति) उत्कृष्टता से प्रकाशमान है (तत्) उसको (अत्राह) यहाँ ही हम लोग चाहते हैं ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । जहाँ विद्वान् जन मुक्ति पाते हैं वहाँ कुछ भी अन्धकार नहीं है और वे मोक्ष को प्राप्त हुए प्रकाशमान होते हैं वही आप्त विद्वानों का मुक्तिपद है सो ब्रह्म सबका प्रकाश करनेवाला है ॥६॥

इस सूक्त मे परमेश्वर और मुक्ति का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह एक सौ चौवनवां सूक्त और चौबीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

प्र वः पान्तमित्यस्य षडृचस्य पञ्चपञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः ।
विष्णुर्देवता । १, ३, ६ भुरिक् त्रिष्टुप्, ४ स्वराट् त्रिष्टुप्, ५ निचृत्
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २ निचृज्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

अब एक सौ पचपनवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में पढ़ाने, उपदेश करनेवाले और ब्रह्मचर्य सेवने का फल कहते हैं—

प्र वः पान्तमन्धसो धियायते महे शूराय विष्णवे चार्चत ।
या सानुनि पर्वतानामदाभ्या महस्तस्थतुरर्वतेव साधुना ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (धियायते) प्रज्ञा और धारणा की इच्छा करनेवाले (महे) बड़े और (शूराय) शूरता आदि गुणो से युक्त (विष्णवे, च) और शुभ गुणों में व्याप्त महात्मा के लिए (वः) तुम्हारे (अन्धसः) गीले अन्न आदि पदार्थ के (पान्तम्) पान को तुम (प्र, अर्चत) उत्तमता से सत्कार के साथ देओ । तथा (या) जो (अदाभ्या) हिंसा न करने योग्य मित्र और वरुण अर्थात् अध्यापक और उपदेशक (पर्वतानाम्) पर्वतो के (सानुनि) शिखर पर (अर्वतेव) जानेवाले घोड़े के समान (साधुना) उत्तम सिखाये हुए शिष्य से (महः) बड़ा जैसे हो वैसे (तस्थतुः) स्थित होते अर्थात् जैसे घोड़े से ऊँचे स्थान पर पहुँच जावें वैसे विद्या पढ़ाकर कीर्ति के शिखर पर चढ़ जाते हैं उनका भी उत्तम सत्कार करो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है । जो विद्यादान, उत्तम शिक्षा और विज्ञान से जनों को वृद्धि देते हैं वे महात्मा होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

त्वेषमित्था समरणं शिमीवतोरिन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति ।
या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित्कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः ॥२॥

पदार्थ—जो (शिमीवतोः) प्रशस्त कर्मयुक्त अध्यापक और उपदेशक की उत्तेजना से (समरणम्) अच्छे प्रकार प्राप्ति करानेवाले (त्वेषम्) प्रकाश को प्राप्त होकर (मर्त्याय) मनुष्य के लिए (प्रतिधीयमानम्) अच्छे प्रकार धारण किये हुए व्यवहार को (उरुष्यति) बढ़ाता है वह (सुतपाः) सुन्दर तपस्यावाला

सज्जन पुरुष (वा) जो (दस्राविष्णू) बिजुली और सूर्य के समान पढ़ाने और उपदेश करनेवाले तुम दोनों (अस्तु) एक देश से दूसरे देश को पदार्थ पहुँचा देनेवाले (कृशानोः) बिजुली रूप आग की (असनाम्) पहुँचाने की क्रिया को जैसे (इत्) ही (उरुष्यथ) सेवते हो (इत्था) इसी प्रकार से (वाम्) तुम दोनों को सेवें ॥२॥

भावार्थ— इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो तपस्वी जितेन्द्रिय होते हुए विद्या का अभ्यास करते हैं वे सूर्य और बिजुली के समान प्रकाशितात्मा होते हैं ॥२॥

ता ईं वर्द्धन्ति मह्यस्य पौंस्यं नि मातरा नयति रेतसे भुजे।
दधाति पुत्रोऽवरं परं पितुर्नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥३॥

पदार्थ— जो विदुषी स्त्रियाँ (अस्य) इस लड़के के (रेतसे) वीर्य बढ़ाने और (भुजे) भोगादि पदार्थ प्राप्त होने के लिए (महि) अत्यन्त (पौंस्यम्) पुरुषार्थ को (ईम्) सब ओर से (वर्द्धन्ति) बढ़ाती हैं वह (ता.) उनको (नयति) प्राप्त होता है इसमे कारण यह है कि जिससे (पुत्र) पुत्र (पितुः) पिता और माता की उत्तेजना से शिक्षा को प्राप्त हुआ (दिव) प्रकाशमान सूर्यमण्डल के (अधि, रोचने) ऊपरी प्रकाश मे (अवरम्) निकृष्ट (परम्) उत्कृष्ट वा पिछले-अगले वा उरले और (तृतीयम्) तीसरे (नाम) नाम को तथा (नि, मातरा) निरन्तर मान करनेवाले माता-पिता को (दधाति) धारण करता है ॥३॥

भावार्थ— वे ही माता-पिता हितैषी होते हैं जो अपने सन्तानो को दीर्घ ब्रह्मचर्य से पूरी विद्या, उत्तम शिक्षा और युवावस्था को प्राप्त करा विवाह कराते हैं। वे ही प्रथम ब्रह्मचर्य दूसरी पूरी विद्या, उत्तम शिक्षा और तृतीय युवावस्था को प्राप्त होकर सूर्य के समान प्रकाशमान होते हैं ॥३॥

तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसीनस्य त्रातुरवृकस्य मीळ्हुषः।
यः पार्थिवानि त्रिभिरिद्विगामभिरुरु क्रमिष्टोरुगायाय जीवसे ॥४॥

पदार्थ— (य) जो (विगामभि) विविध प्रशंसायुक्त (त्रिभि) तीन सत्त्व, रजस, तमो गुणों के साथ (उरुगायाय) बहुत प्रशंसित (जीवसे) जीवन के लिए (पार्थिवानि) पृथिवी के किरणो से उत्पन्न हुए (इत्) ही पदार्थों को (उरु, क्रमिष्ट) क्रम से अत्यन्त प्राप्त होता है (तत्तत्) उस-उस (त्रातु) रक्षा करनेवाले (इनस्य) समर्थ ईश्वर के समान (अस्य) किये हुए ब्रह्मचर्य जितेन्द्रिय इस (अवृकस्य) चोरी आदि दोषरहित (मीळ्हुष.) वीर्य सेचन समर्थ पुरुष के (पौंस्यम्) पुरुषार्थ को (इत्) ही हम लोग (गृणीमसि) प्रशंसा करते हैं ॥४॥

भावार्थ— इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यो को चाहिए कि सुख से चिरकाल तक जीने के लिए दीर्घ ब्रह्मचर्य का अच्छे प्रकार सेवन कर आरोग्य और धातुओ की समता बढ़ाने मे शरीर के बल और विद्या, धर्म तथा योगाभ्यास के बढ़ाने से आत्मबल की उन्नति कर सर्वदा सुख मे रहे। जो लोग इस ईश्वर की आज्ञा का पालन करते हैं वे बाल्यावस्था मे स्वयंवर विवाह कभी नहीं करते इसके विना पूर्ण पुरुषार्थ की सम्भावना नही है।

द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशोऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति।
तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ॥५॥

पदार्थ— जो (मर्त्य.) मनुष्य (स्वर्दृश) सुख देनेवाले (अस्य) इस ब्रह्मचारी के (द्वे, क्रमणे) दो अनुक्रम से चलनेवाले अर्थात् वर्त्ताव वर्त्तनेवाले शरीरबल तथा आत्मबल को (अभिख्याय) सब ओर से प्रख्यात करने को (भुरण्यति) धारण करता है वह (पतयन्त.) ऊपर-नीचे आते हुए (पतत्रिण) पंखोंवाले (वय) पखेरू (चन) भी (इत्) जैसे किसी पदार्थ का विस्तार करें वैसे भी (अस्य) इस ब्रह्मचारी के (तृतीयम्) तीसरे विद्या जन्म का (नकिः, आ, दधर्षति) तिरस्कार नही करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— जो माता-पिता अपने सन्तानों की ब्रह्मचर्य के अनुक्रम से विद्याजन्म को बढ़ाते है वे अपने सन्तानो को दीर्घ आयुवाले, बलवान्, सुन्दर, शीलयुक्त करके नित्य हर्षित होते हैं ॥ ५ ॥

चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं न वृत्तं व्यतींरवीविपत्।
बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिर्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवम् ॥६॥२५॥

पदार्थ— जो (विमिमानः) विशेषता से धातुओ की वृद्धि का निर्माण करता हुआ (बृहच्छरीर) बली, स्थूल शरीरवाला (अकुमार.) पच्चीस वर्ष की अवस्था से निकल गया (युवा) किन्तु युवावस्था को प्राप्त ब्रह्मचारी (वृत्तम्) गोल (चक्रम्) चक्र के (न) समान (चतुर्भि) चार (नामभिः) नामो के (साकम्) साथ (नवतिं, च) और नब्बे अर्थात् चौरानवे नामो से (व्यतीन्) विशेषता से जिनको बल प्राप्त हुआ उन बलवान् योद्धाओ को एक भी (अवीविपत्) अत्यन्त भ्रमाता है वह (ऋक्वभि·) प्रशंसित गुण, कर्म, स्वभावों से (आहवम्) प्रतिष्ठा के साथ बुलाने को (प्रति, एति) प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

भावार्थ— इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो अड़तालीस वर्ष भर अखण्डित ब्रह्मचर्य का सेवन करता है वह अकेला भी गोलचक्र के समान चौरानवे योद्धाओ को भ्रमा सकता है। मनुष्यों में दश वर्ष तक बाल्यावस्था, पच्चीस वर्ष तक कुमारावस्था तदनन्तर छब्बीसवें वर्ष के आरम्भ से युवावस्था पुरुष की होती है और सत्रहवें वर्ष से कन्या की युवावस्था का आरम्भ है इसके उपरान्त जो स्वयंवर विवाह को करते-कराते हैं वे महाभाग्यशाली होते है ॥ ६ ॥

इस सूक्त मे अध्यापकोपदेशक और ब्रह्मचर्य के फल के वर्णन से इसके अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एक सौ पचपनवाँ सूक्त और पच्चीसवाँ वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अवेत्यस्य पञ्चर्चस्य षट्पञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषि·। विष्णुर्देवता। १ निचृत्त्रिष्टुप्, २ विराट् त्रिष्टुप्, ५ स्वराट् त्रिष्टुप् छन्द। धैवतः स्वर। ३ निचृज्जगती, ४ जगती छन्दः। निषादः स्वर ॥

अब पांच ऋचावाले एक सौ छप्पनवें सूक्त का आरम्भ है उसमें आरम्भ से विद्वान् अध्यापक अध्येताओं के गुणों को कहते हैं —

भवा मित्रो न शेव्यो घृतासुतिर्विभूतद्युम्न एवया उ सप्रथाः।
अधा ते विष्णो विदुषा चिदर्ध्यः स्तोमो यज्ञश्च राध्यो हविष्मता ॥१॥

पदार्थ—हे (विष्णो) समस्त विद्याओ मे व्याप्त ! (ते) तुम्हारा जो (अर्ध्य) बढ़ने (स्तोम) और स्तुति करने योग्य व्यवहार (यज्ञः, च) और सङ्गम करने योग्य ब्रह्मचर्य नामवाला यज्ञ (हविष्मता) प्रशस्त विद्या देने और ग्रहण करने से युक्त व्यवहार (राध्य·) अच्छे प्रकार सिद्ध करने योग्य है उसका अनुष्ठान आरम्भ कर (अध) इसके अनन्तर (शेव्य) सुखी करने योग्य (मित्र) मित्र के (न) समान (एवयाः) रक्षा करनेवालो को प्राप्त होनेवाला (उ) तर्क-वितर्क के साथ (सप्रथाः) उत्तम प्रसिद्धियुक्त (विदुषा) और आप्त, उत्तम विद्वान् के साथ (चित्) भी (घृतासुति.) जिससे घृत उत्पन्न होता (विभूतद्युम्न.) और जिससे विशेष धन वा यश हुए हो ऐसा तू (भव) हो ॥१॥

भावार्थ- विद्वान् जन जिस ब्रह्मचर्यानुष्ठानुरूप यज्ञ की वृद्धि, स्तुति और उत्तमता से सिद्धि करने की इच्छा करते हैं उसका अच्छे प्रकार सेवन कर विद्वान् होके सबका मित्र हो ॥ १ ॥

यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति।
यो जातमस्य महतो महि ब्रवत्सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत् ॥२॥

पदार्थ—(य.) जो (नवीयसे) अत्यन्त विद्या पढ़ा हुआ नवीन (सुमज्जानये) सुन्दरता से पाई हुई विद्या से प्रसिद्ध (पूर्व्याय) पूर्वज विद्वानो मे अच्छी सिखावटो से सिखाये हुए (वेधसे) मेधावी अर्थात् धीर (विष्णवे) विद्या में व्याप्त होने का स्वभाव रखनेवाले के लिए विज्ञान (ददाशति) देता है वा (यः) जो (अस्य) इस (महत) सत्कार करने योग्य जन के (महि) महान् प्रशंसित (जातम्) उत्पन्न हुए विज्ञान को (ब्रवत्) प्रकट कहे (उ) और (श्रवोभि.) श्रवण, मनन और निदिध्यासन अर्थात् अत्यन्त धारण करने, विचारने से अत्यन्त उत्पन्न हुए (युज्यम्) समाधान के योग्य विज्ञान का (अभ्यसत्) अभ्यास करे (स , चित्) वही विद्वान् हो और (इत्) वही पढ़ाने को योग्य हो ॥ २ ॥

भावार्थ - जो निष्कपटता से बुद्धिमान् विद्यार्थियो को पढ़ाते वा उनको उपदेश देते हैं और जो धर्मयुक्त व्यवहार से पढ़ते और अभ्यास करते है वे सब अतीव विद्वान् और धार्मिक होकर बड़े सुख को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन।
आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥३॥

पदार्थ- हे (स्तोतार) समस्त विद्याओ की स्तुति करनेवाले सज्जनो ! (यथा) जैसे तुम (जनुषा) विद्याजन्म से (पूर्व्यम्) पूर्व विद्वानो ने किये हुए (तम्) उस आप्त अध्यापक विद्वान् को (विद) जानो और (ऋतस्य) सत्य व्यवहार के (गर्भम्) विद्या-सम्बन्धी बोध को (उ) तर्क-वितर्क से (पिपर्तन) पालो वा विद्याओ से और सेवा से पूरा करो। तथा (अस्य) इसका (चित्) भी (नाम) नाम (आ, जानन्त) अच्छे प्रकार जानते हुए (विवक्तन) कहो, उपदेश करो वैसे हम लोग भी जानें, पालें और पूरा करें। हे (विष्णो) सकल विद्याओ मे व्याप्त विद्वन् ! हम जिन (ते) आप से (महः) महती (सुमतिम्) सुन्दर बुद्धि को (भजामहे) भजते, सेवते है सो आप हम लोगों को उत्तम शिक्षा देवें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। मनुष्य विद्या की वृद्धि के लिए शास्त्रवक्ता अध्यापक को पाकर और उसकी उत्तम सेवा कर सत्यविद्याओं को अच्छे यत्न से ग्रहण करके पूरे विद्वान् हो ॥ ३ ॥

तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः।
दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते ॥४॥

पदार्थ—जो (सखिवान्) बहुत पवनरूप मित्रोंवाला (विष्णुः) अपनी दीप्ति से व्यापक सूर्यमण्डल (उत्तमम्) प्रशंसित (दक्षम्) बल को (दाधार)

धारण करे और (अहर्विदम्) जो दिनों को प्राप्त होता अर्थात् जहाँ दिन होता उस (अर्णं, च) प्राप्त हुए देश को (अयोयुते) प्रकाशित करता उस (अस्य) इस (मरुत्वतः) पवनरूप सखाओंवाले (वेधसः) विधाता सूर्यमण्डल के (तम्) उस (क्रतुम्) कर्म को (वरुण.) श्रेष्ठ (राजा) प्रकाशमान सज्जन और (तम्) उस कर्म को (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक लोग (सचन्त) प्राप्त होवें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे और सज्जन आप्त विद्वान् से विद्या ग्रहण कर उत्तम बुद्धि की उन्नति कर पूरे बल को प्राप्त होते हैं वा जैसे जहाँ-जहाँ सविता अन्धकार को निवृत्त करता है वैसे वहाँ-वहाँ उस सवितृमण्डल के महत्त्व को देखके समस्त छोटे मोटे धनी निर्धनी जन पूर्ण विद्यावाले से विद्या और शिक्षाओं को पाकर अविद्यारूपी अन्धकार को निवृत्त करें ॥४॥

आ यो विवाय सचथाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः ।
वेधा अजिन्वत्त्रिषधस्थ आर्यमृतस्य भागे यजमानमाभजत् ॥५।२६।२१॥

पदार्थ—(यः) जो (दैव्यः) विद्वानो का सम्बन्धी (त्रिषधस्थ) कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीनो मे स्थित (सुकृत्तरः) अतीव उत्तम कर्मवाला (विष्णुः) विद्या को प्राप्त (वेधाः) मेधावी धीरबुद्धि सज्जन (सचथाय) धर्म सम्बन्ध को प्राप्त (सुकृते) धर्मात्मा (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान् जन के लिए (ऋतस्य) सत्य के (भागे) सेवने के निमित्त (आर्यम्) समस्त शुभ गुण, कर्म और स्वभावो मे वर्त्तमान (यजमानम्) विद्या देनेवाले को (आ, अभजत्) अच्छे प्रकार सेवे और जो सबको विद्या और शिक्षा देने से (अजिन्वत्) प्राण पोषण करे वह पूरे सुख को (आ, विवाय) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो विद्वानो के प्रिय किये को जानने, माननेवाले सुकृति सर्वविद्यावेत्ता जन सत्य, धर्म विद्या पहुँचाने से सब जनों को सुख देते हैं वे अखिल सुख भोगनेवाले होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त मे विद्वान् अध्यापक और अध्येताओ के गुणो का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सगति समझनी चाहिए ॥

यह एक सौ छप्पनवाँ सूक्त, छब्बीसवाँ वर्ग और इक्कीसवाँ अनुवाक पूरा हुआ ॥

卐

अबोधीत्यस्य षडृचस्य सप्तपञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । अश्विनौ देवते, १ त्रिष्टुप्, ५ निचृत् त्रिष्टुप्, ६ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २, ४ जगती, ३ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले एक सौ सत्तावनवें सूक्त का आरम्भ है उसमें अश्वि के गुणों को कहते हैं—

अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्युषाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा ।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत् पृथक् ॥१॥

पदार्थ—जैसे (अग्निः) विद्युदादि अग्नि (अबोधि) जाना जाता है (ज्मः) पृथिवी से अलग (सूर्यः) सूर्य (उदेति) उदय होता है (मही) बड़ी (चन्द्रा) आनन्द देनेवाली (उषा) प्रभातवेला (व्यावः) फैलती, उजेली देती है वा (सविता) ऐश्वर्य करनेवाला (देवः) दिव्यगुणी सूर्यमण्डल (अर्चिषा) अपने किरण समूह से (जगत्) मनुष्यादि प्राणिमात्र जगत् को (पृथक्) अलग (प्रासावीत्) अच्छे प्रकार प्रेरणा देता है वैसे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक विद्वान् (यातवे) जाने के लिए (रथम्) विमानादि यान को (आयुक्षाताम्) युक्त करते हैं ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे बिजुली, सूर्य और प्रभातवेला अपने प्रकाश से आप प्रकाशित हो समस्त जगत् को प्रकाशित कर ऐश्वर्य की प्राप्ति कराते हैं वैसे ही अध्यापक और उपदेशक लोग पदार्थ तथा ईश्वर सम्बन्धी विद्याओं को प्रकाशित कर समस्त ऐश्वर्य की उत्पत्ति करावें ॥१॥

यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥२॥

पदार्थ—हे (अश्विना) सभा और सेना के अधीशो ! तुम (यत्) जिससे (वृषणम्) शत्रुओं की शक्ति को रोकनेवाले (रथम्) विमान आदि यान को (युञ्जाथे) युक्त करते हो इससे (घृतेन) जल और (मधुना) मधुरादि गुणयुक्त रस से (नः) हम लोगों के (क्षत्रम्) क्षत्रिय कुल को (उक्षतम्) सींचो (अस्माकम्) हमारी (पृतनासु) सेनाओं मे (ब्रह्म) ब्राह्मण कुल को (जिन्वतम्) प्रसन्न करो और (वयम्) हम प्रजा-सेनाजन (शूरसाता) शूरों के सेवने योग्य संग्राम मे (धना) धनों को (भजेमहि) सेवन करें ॥२॥

भावार्थ—मनुष्यों को राजनीति के अङ्गों से राज्य की रक्षकर धनादि को बढ़ा और संग्रामों को जीतकर सबके लिए सुख की उन्नति करनी चाहिए ॥२॥

अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।
त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद्द्विपदे चतुष्पदे ॥३॥

पदार्थ—जो (अश्विनोः) विद्वानो की क्रिया में कुशल सज्जनो की उत्तम प्रज्ञा से (सुष्टुतः) सुन्दर प्रशंसित (मधुवाहनः) जल से बहाने योग्य (त्रिचक्रः) जिसमे तीन चक्कर (जीराश्वः) वेगरूप घोड़े और (त्रिवन्धुरः) तीन बन्धन विद्यमान वा (विश्वसौभगः) समस्त सुन्दर ऐश्वर्य, भोग जिसमे होते वह (अर्वाङ्) नीचले देश अर्थात् जल आदि मे चलनेवाला (मघवा) प्रशंसित धनयुक्त (रथः) रथ (नः) हमारे (द्विपदे) द्विपाद मनुष्यादि वा (चतुष्पदे) चौपाद गौ आदि प्राणी के लिए (शम्) सुख का (आ, वक्षत्) आवाहन करावे और हम लोगों को (यातु) प्राप्त हो ॥३॥

भावार्थ—मनुष्यो को इस प्रकार प्रयत्न करना चाहिए जिससे पदार्थविद्या से प्रशंसायुक्त यानो को बनाने को समर्थ हों ऐसे करने के बिना समस्त सुख होने को योग्य नहीं ॥३॥

आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवं मधुमत्या नः कशया मिमिक्षतम् ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥४॥

पदार्थ—हे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक ! (युवम्) तुम दोनों (मधुमत्या) बहुत जल वाष्पो के वेगो से युक्त (कशया) गति वा शिक्षा से (नः) हम लोगो के लिए (ऊर्जम्) पराक्रम को (आ, वहतम्) प्राप्ति करो (मिमिक्षतम्) पराक्रम की प्राप्ति कराने की इच्छा (नः) हमारी (आयुः) उमर को (प्र, तारिष्टम्) अच्छे प्रकार पार पहुँचाओ (द्वेषः) वैरभावयुक्त (रपांसि) पापो को (नि, सेधतम्) दूर करो, हम लोगो को (मृक्षतम्) शुद्ध करो और हमारे (सचाभुवा) सहकारी (भवतम्) होओ ॥४॥

भावार्थ—अध्यापक और उपदेशक लोग ऐसी शिक्षा करें कि जिससे हम लोग सब के मित्र होकर पक्षपात से उत्पन्न होनेवाले पापों को छोड़ अभीष्ट सिद्धि पानेवाले हों ॥४॥

युवं ह गर्भं जगतीषु धत्थो युवं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
युवमग्निं च वृषणावपश्च वनस्पतीँरश्विनावैरयेथाम् ॥५॥

पदार्थ—हे (वृषणा) जल वर्षा करानेवाले (अश्विनौ) सूर्य और चन्द्रमा के समान अध्यापक और उपदेशक (युवम्) तुम दोनों (जगतीषु) विविध पृथिवी आदि सृष्टियो मे (गर्भम्) गर्भ के समान विद्या के बोध को (धत्थः) धरते हो (युवं, ह) तुम्हीं (विश्वेषु) समस्त (भुवनेषु) लोक-लोकान्तरों के (अन्तः) बीच (अग्निम्) अग्नि को (च) भी (ऐरयेथाम्) चलाओ तथा (युवम्) तुम (अपः) जलो और (वनस्पतीन्) वनस्पति आदि वृक्षों को (च) चलाओ ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य जैसे यहाँ सूर्य और चन्द्रमा विराजमान हुए पृथिवी मे वर्षा से गर्भ धारण कराकर समस्त पदार्थों को उत्पन्न कराते है वैसे विद्यारूप गर्भ को धारण कराके समस्त सुखो को उत्पन्न करावें ॥ ५ ॥

युवं ह स्थो भिषजा भेषजेभिरथो ह स्थो रथ्या३ राथ्येभिः ।
अथो ह क्षत्रमधि धत्थ उग्रा यो वां हविष्मान्मनसा ददाश ॥६॥

पदार्थ—हे विद्यादि सद्गुणो मे व्याप्त सज्जनो ! (युवं, ह) तुम्हीं (भेषजेभिः) रोग दूर करनेवाले वैद्यो के साथ (भिषजा) रोग दूर करनेवाले (स्थः) हो (अथो) इसके अनन्तर (ह) निश्चय से (राथ्येभिः) रथ पहुँचानेवाले अश्वादिको के साथ (रथ्या) रथ मे प्रवीण रथवाले (स्थः) हो (अथो) इसके अनन्तर हे (उग्रा) तीव्र स्वभाववाले सज्जनो ! (यः) जो (हविष्मान्) बहुदानयुक्त जन (वाम्) तुम दोनो के लिए (मनसा) विज्ञान से (ददाश) देता है अर्थात् पदार्थों का अर्पण करता है (ह) उसी के लिए (क्षत्रम्) राज्य को (अधि, धत्थ) अधिकता से धारण करते हो ॥६॥

भावार्थ—जब मनुष्य विद्वान् वैद्यो का सग करते हैं तब वैद्यक विद्या को प्राप्त होते हैं जब शूर दाता होते हैं तब राज्य धारण कर और प्रशंसित होकर निरन्तर सुखी होते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त मे अश्वियो के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह एक सौ सत्तावनवाँ सूक्त और सत्ताईसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

इस अध्याय मे सोम आदि पदार्थों के प्रतिपादन से इस दशवें अध्याय के अर्थों की नवम अध्याय मे कहे हुए अर्थों के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

इति श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीमत्परमविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण परमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते आर्यभाषासमन्विते सुप्रमाणयुक्ते ऋग्वेदभाष्ये द्वितीयाष्टके द्वितीयोऽध्यायः समाप्तिमगमत् ॥२॥

卐

अथ द्वितीयाष्टके तृतीयाऽध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ।

वसू इति षड्चस्याष्टपञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः ।
अश्विनौ देवते १, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्, २ त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवत स्वरः । ३ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।
६ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब द्वितीयाष्टक के तृतीय अध्याय का आरम्भ है उसमे एक सौ अट्ठावनवें
सूक्त के प्रथम मन्त्र मे शिक्षा करनेवाले और शिष्य के कर्मों
का वर्णन करते हैं—

वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता दशस्यतं नो वृषणावभिष्टौ ।
दस्रा ह यद्रेक्ण औचथ्यो वां प्र यत्सस्राथे अकवाभिरूती ॥१॥

पदार्थ—हे सभा और शालाधीशो ! (यत्) जो (वाम्) तुम दोनो का (औचथ्यः) उचित अर्थात् प्रशंसितो मे हुआ (रेक्णः) धन है उस धन को (यत्) जो तुम दानो (अकवाभिः) प्रशंसित (ऊती) रक्षाओ से हम लोगों के लिए (सस्राथे) प्राप्त कराते हो वे (ह) ही (वृधन्ता) बढ़ते हुए (पुरुमन्तू) बहुतो से मानने योग्य (दस्रा) दुःख के नष्ट करनेहारे (वृषणौ) बलवान् (वसू) निवास दिलानेवाले (रुद्रा) चालीस वर्ष लो ब्रह्मचर्य से धर्मपूर्वक विद्या पढ़े हुए सज्जनो (अभिष्टौ) इष्ट सिद्धि के निमित्त (नः) हमारे लिए सुख (प्र, दशस्यतम्) उत्तमता से देओ ॥१॥

भावार्थ—जो सूर्य और पवन के समान सबका उपकार करते हैं वे धनवान् होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

को वां दाशत्सुमतये चिदस्यै वसू यद्धेथे नमसा पदे गोः ।
जिगृतमस्मे रेवतीः पुरंधीः कामप्रेणेव मनसा चरन्ता ॥२॥

पदार्थ—(यत्) जो (वसू) सुखो मे निवास करनेहारे सभाशालाधीशो तुम (अस्यै) प्रत्यक्ष (सुमतये) सुन्दर बुद्धि के लिए (नमसा) अन्न आदि से (गोः) पृथिवी के (पदे) प्राप्त होने योग्य स्थान मे (पुरन्धीः) पुर, ग्राम को धारण करती हुई (रेवतीः) प्रशंसित धनयुक्त नगरियो वा (धेथे) धारण करते हो और (कामप्रेणेव) कामना पूर्ण करनेवाले (मनसा) विज्ञानवान् अन्तःकरण से (चरन्ता) प्राप्त होते हुए तुम दोनो (अस्मे) हम लोगों के लिए (जिगृतम्) जाग्रत् हो उन (वाम्) आपके लिए इस मति को (चित्) भी (कः) कौन (दाशत्) देवे ॥२॥

भावार्थ—जो पूर्णविद्या और कामनावाले पुरुष मनुष्यों को सुन्दर बुद्धिवाले करने को प्रयत्न करते हैं वे पृथिवी में सत्कारयुक्त होते हैं ॥२॥

युक्तो ह यद्वां तौग्र्याय पेरुर्वि मध्ये अर्णसो धायि पज्रः ।
उप वामवः शरणं गमेयं शूरो नाज्म पतयद्भिरेवैः ॥३॥

पदार्थ—हे सभाशालाधीशो ! (वाम्) तुम दोनो का (यत्) जो (तौग्र्याय) बलो मे उत्तम बल, उसके लिए (युक्तः) युक्त (पेरुः) सभो की पालना करनेवाला (पज्रः) बलवान् मे (अर्णसः) जल के (मध्ये) बीच (वि, धायि) विधान किया जाता है अर्थात् जल सम्बन्धी काम के लिए युक्त किया जाता है तथा (अज्म) क्रम को (शूरः) शूर जैसे (न) वैसे (पतयद्भिः) इधर उधर दौड़ाते हुए (एवैः) पदार्थों की प्राप्ति करानेवालों के साथ (वाम्) तुम्हारे (अवः) रक्षा आदि काम को और (शरणम्) आश्रय को (उप, गमेयम्) निकट प्राप्त होऊं उस मुझको (ह) ही तुम वृद्धि देओ ॥३॥

भावार्थ—जो जिज्ञासु पुरुष साधन और उपसाधनो से अध्यापक आप्त विद्वानो के आश्रय को प्राप्त हों वे विद्वान् होते हैं और जो अच्छे प्रकार प्रीति के साथ विद्या और अच्छी शिक्षा को बढ़ाते हैं वे इस संसार में पूज्य होते हैं ॥३॥

उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येन्मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम् ।
मा मामेधो दशतयश्चितो धाक्प्र यद्वां बद्धस्त्मनि खादति क्षाम् ॥४॥

पदार्थ—हे सभाशालाधीशो ! (वाम्) तुम दोनो का (यत्) जो (दशतयः) दशगुणा (एधः) ईधन (बद्धः) निरन्तर युक्त किया और (चितः) संचित किया हुआ अग्नि (क्षाम्) भूमि को (प्र, धाक्) जलावे जैसे (त्मनि) अपने मे (माम्) मुझको (मा) मत (खादति) खावे (इमे) ये (पतत्रिणी) नष्ट कराने के लिए कुशिक्षा (औचथ्यम्) उचित-उचित कामो मे उत्तम (माम्) मुझे (मा) मत (वि, दुग्धाम्) अपूर्ण करें, मेरी परिपूर्णता को मत नष्ट करें और (उपस्तुतिः) समीप प्राप्त हुई स्तुति भी (उरुष्येत्) सेवें ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे ईधनों से निर्वात स्थान मे अच्छे प्रकार बढ़ा हुआ अग्नि पृथिवी और काष्ठ आदि पदार्थों को जलाता है वैसे मुझे शोकरूप अग्नि मत जलावे और अज्ञात वा कुशील मत प्राप्त हों किन्तु शान्ति और विद्या निरन्तर बढ़े ॥४॥

न मा गरन्नद्यो मातृतमा दासा यदीं सुसमुब्धमवाधुः ।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत्स्वयं दास उरो अंसावपि ग्ध ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (दासाः) सुख देनेवाले दासजन (सुसमुब्धम्) अति सूधे स्वभाववाले (यत्) जिस मुझे (ईम्) सब ओर से (अवाधुः) पीड़ित करें उस (मा) मुझे (मातृतमाः) माताओं के समान मान करने-कराने वाली (नद्यः) नदियाँ (न) न (गरन्) निगलें, न गलावें, (यत्) जो (त्रैतनः) तीन अर्थात् शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सुखो का विस्तार करनेवाला (दासः) सेवक (अस्य) इस मेरे (शिरः) शिर को (वितक्षत्) विविध प्रकार से पीड़ा देवे वह (स्वयम्) आप अपने (उरः) वक्षःस्थल और (अंसौ) स्कन्धों को (अपि, ग्ध) काटे ॥५॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि ऐसा प्रयत्न करें जिससे नदी और समुद्र आदि न डुबा मारें । शूद्र आदि दासजन सेवा करने पर नियत हुआ भी आलस्यवश अति सूधे स्वभाववाले स्वामी को पीड़ा दिया करता अर्थात् उनका काम मन से नहीं करता इससे उसको शिक्षा देवे और अनुचित करने मे ताड़ना भी दे तथा अपने-अपने शरीर के अङ्गो की सदा पुष्टि करें ॥५॥

दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान्दशमे युगे ।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥६॥१॥

पदार्थ—जो (दीर्घतमाः) जिससे दीर्घ अन्धकार प्रकट होता वह (मामतेयः) ममता मे कुशलजन (दशमे) दशमे (युगे) वर्ष में (जुजुर्वान्) रोगी हो जाता है जो (सारथिः) रथ हाँकनेवाले जन के समान (अपाम्) विद्या विज्ञान और योगशास्त्र मे व्याप्त (यतीनाम्) सन्यासियों के (अर्थम्) प्रयोजन को प्राप्त होता वह (ब्रह्मा) सकल वेदविद्या का जाननेवाला (भवति) होता है ॥६॥

भावार्थ—जो इस संसार मे अत्यन्त अविद्या, अज्ञानयुक्त लोभातुर हैं वे शीघ्र रोगी होते और जो पक्षपातरहित संन्यासियो के सकाश से हर्ष-शोक तथा निन्दा-स्तुति रहित, विज्ञान और आनन्द को प्राप्त होते हैं वे आप दुःख के पारगामी होकर औरों को भी उसके पार करते हैं ॥६॥

इस सूक्त मे शिष्य और शिक्षा देनेवाले के काम का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एक सौ अट्ठावनवां सूक्त और प्रथम वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

प्र द्यावेत्यस्य पञ्चर्चस्य एकोनषष्ट्युत्तरशततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ
देवते । १ विराड् जगती, २, ३, ५, निचृज्जगती, ४ जगती
च छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब एकसौ उनसठवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में
विदुषी के विषय में कहा है—

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा मही स्तुषे विदथेषु प्रचेतसा ।
देवेभिर्ये देवपुत्रे सुदंससेत्था धिया वार्याणि प्रभूषतः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (ये) जो (ऋतावृधा) कारण से बढ़े हुए (प्रचेतसा) उत्तमता से प्रबल ज्ञान करानेहारे (देवपुत्रे) दिव्य प्रकृति के अंशों से पुत्रों के समान उत्पन्न हुए (सुदंससा) प्रशंसित कर्मवाले (मही) बड़े (द्यावापृथिवी) सूर्यमण्डल और भूमिमण्डल (यज्ञैः) मिले हुए व्यवहारों से (विदथेषु) जानने योग्य पदार्थों मे (देवेभिः) दिव्य जलादि पदार्थों और (धिया) कर्म के साथ (वार्याणि) स्वीकार करने योग्य पदार्थों को (प्रभूषतः) सुभूषित करते हैं और आप उनकी (प्र, स्तुषे) प्रशंसा करते हैं (इत्था) इस प्रकार उनकी हम लोग भी प्रशंसा करें ॥१॥

भावार्थ—जो मनुष्य उत्तम यत्न के साथ पृथिवी और सूर्यमण्डल के गुण, कर्म, स्वभाव को यथावत् जानें वे अतुल सुख से भूषित हों ॥१॥

उत मन्ये पितुरद्रुहो मनो मातुर्महि स्वतवस्तद्धवीमभिः ।
सुरेतसा पितरा भूम चक्रतुरुरु प्रजाया अमृतं वरीमभिः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! मैं अकेला (हवीमभिः) स्तुति करने योग्य गुणों के साथ जिस (अद्रुहः) द्रोहरहित (मातुः) माता (उत) और (पितुः) पिता के

(स्वतवः) अपने बलवाले (महि) बड़े (मनः) मन को (उत) बहुत (मन्ये) मानूं (तत्) उसको (सुरेतसा) सुन्दर पराक्रमवाले (पितरा) माता-पिता के समान वर्त्तमान भूमि और सूर्य (वरीमभिः) स्वीकार करने योग्य गुणों से (प्रजायाः) मनुष्य आदि सृष्टि के लिए (अमृतम्) अमृत के समान वर्त्तमान (उरु) बड़ा उत्साहित (चक्रतुः) करते हैं अर्थात् शिल्पव्यवहारों से प्रोत्साहित करते, मलीन नहीं रहने देते हैं ॥२॥

भावार्थ—जैसे माता-पिता लड़कों को अच्छे प्रकार पालन कर उनको बढ़ाते हैं वैसे भूमि और सूर्य्य प्रजाजनों के लिए सुख की उन्नति करते हैं ॥२॥

ते सूनवः स्वपसः सुदंससो मही जज्ञुर्मातरा पूर्वचित्तये ।
स्थातुश्च सत्यं जगतश्च धर्म्मणि पुत्रस्य पाथः पदमद्वयाविनः ॥३॥

पदार्थ—जो (स्वपसः) सुन्दर कर्म और (सुदंससः) शोभन कर्मयुक्त व्यवहारवाले जन (पूर्वचित्तये) पूर्व पहली जो चित्ति अर्थात् किन्हीं पदार्थों का इकट्ठा करना है उसके लिए (जज्ञुः) प्रसिद्ध होते हैं (ते) वे (मही) बड़ी (मातरा) मान करनेवाली माताओं को जानें । हे माता-पिताओ ! जो तुम (स्थातुः) स्थावर धर्मवाले (च) और (जगतः) जङ्गम जगत् के (च) भी (धर्मणि) साधर्म्य में (अद्वयाविनः) इकले (पुत्रस्य) पुत्र के (सत्यम्) सत्य (पदम्) प्राप्त होने योग्य पदार्थ की (पाथः) रक्षा करते हो उनकी (सूनवः) पुत्रजन निरन्तर सेवा करें ॥३॥

भावार्थ—क्या भूमि और सूर्य सबके पालन के निमित्त नहीं हैं ? जो पिता-माता चराचर जगत् का विज्ञान पुत्रों के लिए ग्रहण कराते हैं वे कृतकृत्य क्यों न हों ? ॥३॥

ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो जामी सयोनी मिथुना समोकसा ।
नव्यंनव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि समुद्रे अन्तः कवयः सुदीतयः ॥४॥

पदार्थ—जो (सुप्रचेतसः) सुन्दर प्रसन्नचित्त (मायिनः) प्रशंसित बुद्धि वा (सुदीतयः) सुन्दर विद्या के प्रकाशवाले (कवयः) विद्वान् जन (समोकसा) समीचीन जिनका निवास (मिथुना) ऐसे दो (सयोनी) समान विद्या वा निमित्त (जामी) सुख भोगनेवालों को प्राप्त हो वा जानकर (दिवि) बिजुली और सूर्य के तथा (समुद्रे) अन्तरिक्ष वा समुद्र के (अन्तः) बीच (नव्यंनव्यम्) नवीन-नवीन (तन्तुम्) विस्तृत वस्तुविज्ञान को (ममिरे) उत्पन्न करते हैं (ते) वे सब विद्या और सुखों का (आ, तन्वते) अच्छे प्रकार विस्तार करते हैं ॥४॥

भावार्थ—जो मनुष्य आप्त अध्यापक और उपदेशकों को प्राप्त हो विद्याओं को प्राप्त हों वा भूमि और बिजुली को जान समस्त विद्या के कामों को हाथ में आंवले के समान साक्षात् कर औरों को उपदेश देते हैं वे संसार को शोभित करनेवाले होते हैं ॥४॥

तद्राधो अद्य सवितुर्वरेण्यं वयं देवस्य प्रसवे मनामहे ।
अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुना रयिं धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम् ॥५॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको ! (वयम्) हम लोग (अद्य) आज (सवितुः) जगत् के उत्पन्न करने (देवस्य) और प्रकाश करनेवाले ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए इस जगत् में जिस (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य (राधः) द्रव्य को (मनामहे) जानते हैं (तत्) उस (शतग्विनम्) सैकड़ों गौओंवाले (वसुमन्तम्) नाना प्रकार के धनों से युक्त (रयिम्) धन को (सुचेतुना) सुन्दर ज्ञान से (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए (द्यावापृथिवी) भूमिमण्डल और सूर्यमण्डल के समान तुम (धत्तम्) धारण करो ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । विद्वान् जन जैसे द्यावा-पृथिवी सब प्राणियों को सुखी करते हैं वैसे सबको विद्या और धन की उन्नति से सुखी करें ॥५॥

इस सूक्त में बिजुली और भूमि के समान विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह एक सौ उनसठवां सूक्त और दूसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

ते हीत्यस्य पञ्चर्चस्य षष्ट्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते । १ विराड् जगती, २—५ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले एक सौ साठवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में द्यावापृथिवी के दृष्टान्त से मनुष्यों के उपकार करने का वर्णन करते हैं—

ते हि द्यावापृथिवी विश्वशम्भुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी ।
सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्म्मणा सूर्यः शुचिः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो (विश्वशम्भुवा) संसार में सुख की भावना करनेहारे (ऋतावरी) सत्य कारण से युक्त (धारयत्कवी) अनेक पदार्थों की धारणा कराते और प्रबल जिन का देखना (सुजन्मनी) सुन्दर जन्मवाले (धिषणे) उत्कट सहनशील (देवी) निरन्तर दीपते हुए (द्यावापृथिवी) बिजुली और अन्तरिक्षलोक (धर्मणा) अपने धर्म्म से अर्थात् अपने भाव से (रजसः) लोकों का (अन्तः) अपने बीच में धरते हैं । जिन उक्त द्यावापृथिवियों में (शुचिः) पवित्र (देवः) दिव्य गुणवाला (सूर्यः) सूर्य्यलोक (ईयते) प्राप्त होता है (ते) उन दोनों को (हि) ही तुम अच्छे प्रकार जानो ॥ १ ॥

भावार्थ—जैसे सब लोकों के वायु बिजुली और आकाश ठहरने के स्थान हैं वैसे ईश्वर उन वायु आदि पदार्थों का आधार है । इस सृष्टि में एक-एक ब्रह्माण्ड के बीच एक-एक सूर्य्यलोक है यह सब जानें ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उरुव्यचसा महिनी असश्चता पिता माता च भुवनानि रक्षतः ।
सुधृष्टमे वपुष्ये न रोदसी पिता यत्सीमभि रूपैरवासयत् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (पिता) पालन करनेवाला विद्युदग्नि (यत्) जिन (रोदसी) सूर्य और भूमिमण्डल को (रूपैः) शुक्ल, कृष्ण, हरित, पीतादि रूपों से (सीम्) सब ओर से (अभ्यवासयत्) ढांपता है उन (असश्चता) विलक्षण रूपवाले (महिनी) बड़े (उरुव्यचसा) बहुत व्याप्त होनेवाले (सुधृष्टमे) सुन्दर अत्यन्त उत्कर्षता से सहनेवाले (वपुष्ये) रूप में प्रसिद्ध हुए सूर्यमण्डल और भूमिमण्डलों के (न) समान (माता) मान्य करनेवाली स्त्री (पिता, च) और पालना करनेवाला जन (भुवनानि) जिन में प्राणी होते हैं उन लोकों की (रक्षतः) रक्षा करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—जैसे समस्त प्राणियों को भूमि और सूर्यमण्डल पालते और धारण करते हैं वैसे माता-पिता सन्तानों की पालना और रक्षा करते हैं । जो जलों और पृथिवी वा इन के विकारों में रूप दिखाई देता है वह व्याप्त अग्नि ही का है यह समझना चाहिए ॥ २ ॥

स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान्पुनाति धीरो भुवनानि मायया ।
धेनुं च पृश्निं वृषभं सुरेतसं विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य धुक्षत ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (पवित्रवान्) जिसके बहुत शुद्ध कर्म वर्त्तमान (पित्रोः) तथा जो वायु और आकाश के (पुत्रः) सन्तान के समान वर्त्तमान है (सः) वह (वह्निः) पदार्थों की प्राप्ति करानेवाला अग्नि (भुवनानि) लोकों को (पुनाति) पवित्र करता है । जो (धेनुम्) गौ के समान वर्त्तमान वाणी (सुरेतसम्) सुन्दर जिस का बल जो (वृषभम्) सब लोकों को रोकनेवाला (पृश्निम्) सूर्य है उस (शुक्रम्) शीघ्रता करनेवाले को और (पयः) दूध को (च) और (विश्वाहा) सब दिनों को पवित्र करता है जिस को (धीरः) ध्यानवान् पुरुष (मायया) उत्तम बुद्धि से जानता है (अस्य) उस अग्नि की उत्तेजना से अभीष्ट सिद्धि को तुम (धुक्षत) पूरी करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य समस्त लोकों को धारण करता और पवित्र करता है वैसे सुपुत्र कुल को पवित्र करते हैं ॥ ३ ॥

अयं देवानामपसामपस्तमो यो जजान रोदसी विश्वशम्भुवा ।
वि यो ममे रजसी सुक्रतूययाजरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे ॥४॥

पदार्थ—जो (अयम्) यह (देवानाम्) पृथिवी आदि लोकों के (अपसाम्) कर्मों के बीच (अपस्तमः) अतीव क्रियावान् है वा (यः) जो (विश्वशम्भुवा) सब में सुख की भावना करानेवाले कर्म से (रोदसी) सूर्यलोक और भूमिलोक को (जजान) प्रकट करता है वा (यः) जो (सुक्रतूयया) उत्तम बुद्धि कर्म और (स्कम्भनेभिः) रुकावटों से और (अजरेभिः) हानिरहित प्रबन्धों के साथ (रजसी) भूमिलोक और सूर्यलोक का (वि, ममे) विविध प्रकार से मान करता उस की मैं (समानृचे) अच्छे प्रकार स्तुति करता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय करने आदि काम जिस जगदीश्वर के होते हैं जो निश्चय के साथ कारण से समस्त नाना प्रकार के कार्य को रचकर अनन्त बल से धारण करता है उसी की सब लोग सदैव प्रशंसा करें ॥ ४ ॥

ते नो गृणाने महिनी महि श्रवः क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत् ।
येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम् ॥५॥

पदार्थ—जो (गृणाने) स्तुति किये जाते हुए (महिनी) बड़े (द्यावा-पृथिवी) भूमि और सूर्य लोक हैं (ते) वे (नः) हम लोगों के लिए (बृहत्) अत्यन्त (महि) प्रशंसनीय (श्रवः) अन्न और (क्षत्रम्) राज्य को (धासथः) धारण करें (येन) जिससे हम लोग (विश्वहा) सब दिनों (कृष्टीः) मनुष्यों का (अभि, ततनाम) सब ओर से विस्तार करें और उस (पनाय्यम्) प्रशंसा करने योग्य (ओजः) पराक्रम को (अस्मे) हम लोगों के लिए (समिन्वतम्) अच्छे प्रकार बढ़ावें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो जन भूमि के गुणों को जाननेवालों की विद्या को जानके उससे उपयोग करना जानते हैं वे अत्यन्त बल को पाकर सब पृथिवी का राज्य कर सकते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में द्यावापृथिवी के दृष्टान्त से मनुष्यों को उपकार ग्रहण करना कहा । इस से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह समझना चाहिए ॥

यह एक सौ साठवां सूक्त और तीसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

किम्वित्यस्य चतुर्दशर्चस्य एकषष्ठ्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । ऋभवो देवताः । १ विराड् जगती, २, ५, ६, ८, १२ निचृज्जगती, ७, १० जगती च छन्दः । निषादः स्वरः । ३ निचृत् त्रिष्टुप्, ४, १३ भुरिक् त्रिष्टुप्, ९ स्वराट् त्रिष्टुप्, ११ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १४ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब चौदह ऋचावाले एक सौ इकसठवें सूक्त का आरम्भ है उसके आरम्भ से मेधावी अर्थात् धीरबुद्धि के कर्मों को कहते हैं—

किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्किमीयते दूत्यं१ कद्यदूचिम ।
न निन्दिम चमसं यो महाकुलोऽग्ने भ्रातर्द्रुण इद्भूतिमूदिम ॥१॥

पदार्थ—हे (भ्रातः) बन्धु (अग्ने) विद्वन् ! (यः) जो (महाकुलः) बड़े कुलवाला (द्रुणः) शीघ्रगामी पुरुष (चमसम्) मेघ को प्राप्त होता है उस की हम लोग (न) नहीं (निन्दिम) निन्दा करते (नः) हम लोगों को (किम्) क्या (श्रेष्ठः) श्रेष्ठ (किम्) क्या (उ) तो (यविष्ठः) अतीव जवान पुरुष (आजगन्) बार-बार प्राप्त होता है (यत्) जिसको हम लोग (ऊचिम) कहें सो (किम्) क्या (दूत्यम्) दूतपन वा दूत के काम को (ईयते) प्राप्त होता है उस को प्राप्त होके (इत्) ही (कत्) कब (भूतिम्) ऐश्वर्य्य को (ऊदिम) कहें उपदेश करें ॥ १ ॥

भावार्थ—जिज्ञासु जन विद्वानों को ऐसा पूछें कि हमको उत्तम विद्या कैसे प्राप्त हो और कौन इस विद्या विषय में श्रेष्ठ बलवान् दूत के समान पदार्थ है, जिस को पाकर हम लोग सुखी होवें ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

एकं चमसं चतुरः कृणोतन तद्वो देवा अब्रुवन् तद्व आगमम् ।
सौधन्वना यद्येवा करिष्यथ साकं देवैर्यज्ञियासो भविष्यथ ॥२॥

पदार्थ—हे (सौधन्वनाः) उत्तम धनुषों में कुशल ! जिस (एकम्) इकेले (चमसम्) मेघ को (देवाः) विद्वान् जन (वः) तुम लोगों के प्रति (अब्रुवन्) कहें अर्थात् उसके गुणों का उपदेश करें (तत्) उसको तुम लोग (कृणोतन) करो और जिसको (वः) तुम लोगों की उत्तेजना से मैं (आगमम्) प्राप्त होऊं (तत्) उसको करो (यदि) जो (देवैः) विद्वानों के (साकम्) साथ (चतुरः) वायु, अग्नि, जल, भूमि, इन चारों को पूछो तो अपने काम को सिद्ध (एव) ही (करिष्यथ) करो और (यज्ञियासः) यज्ञ के अनुष्ठान के योग्य (भविष्यथ) होओ ॥ २ ॥

भावार्थ—जो विद्वानों की उत्तेजना से प्रश्नोत्तरों से विद्याओं को पाकर उस में कहे हुए कामों को करते हैं वे विद्वान् होते हैं । पिछले प्रश्नों के यहां ये उत्तर हैं कि जो हम लोगों में विद्या में अधिक है वह श्रेष्ठ । जो जितेन्द्रिय है वह अत्यन्त बलवान् । जो अग्नि है वह दूत और जो पुरुषार्थसिद्धि है वह विभूति है ॥ २ ॥

अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतनाश्वः कर्त्वो रथ उतेह कर्त्वः ।
धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा तानि भ्रातरनु वः कृत्व्येमसि ॥३॥

पदार्थ—हे (भ्रातः) बन्धु, विद्वन् ! (यत्) जो (अश्वः) शीघ्रगामी (कर्त्वः) करने योग्य अर्थात् कलायन्त्रादि सिद्ध होनेवाला नानाविध शिल्पक्रिया-जन्य पदार्थ (उत) अथवा (इह) यहां (रथः) रमण करने का साधन (कर्त्वः) करने योग्य विमान आदि यान है उसको (अग्निम्) बिजुली आदि (दूतम्) दूत कर्मकारी अग्नि के (प्रति) प्रति जो (अब्रवीतन) कहे उसके उपदेश से जो (कर्त्वा) करने योग्य (धेनुः) वाणी है वा जो (कर्त्वा) करने योग्य (युवशा) मिले अनमिले व्यवहारों से विस्तृत काम हैं वा जो अग्नि और वाणी (द्वा) दो हैं (तानि) उन सबको (वः) तुम्हारी उत्तेजना से सिद्ध (कृत्वी) कर हम लोग (अनु, आ, इमसि) अनुक्रम से उक्त पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो जिसके लिए सत्य विद्या को कहे और अग्नि आदि से कर्त्तव्य का उपदेश करे वह उसको बन्धु के समान जाने और वह करने योग्य कामों को सिद्ध कर सके ॥ ३ ॥

चकृवांस ऋभवस्तदपृच्छत क्वेदभूद्यः स्य दूतो न आजगन् ।
यदावाख्यच्चमसाञ्चतुरः कृतानादित्त्वष्टा ग्नास्वन्तर्न्यानजे ॥४॥

पदार्थ—हे (चकृवांसः) कर्म करनेवाले (ऋभवः) मेधावी सज्जनो ! (यः) जो (दूतः) दूत (नः) हमारे प्रति (आ, आजगन्) बार-बार प्राप्त होवे (स्यः) वह (क्व) कहां (अभूत्) उत्पन्न हुआ है (तत्, इत्) उस ही को विद्वानों के प्रति आप लोग (अपृच्छत) पूछो । जो (त्वष्टा) सूक्ष्मता करनेवाला (यदा) जब (चमसान्) मेघों को (आवाख्यत्) विख्यात करे तब वह (चतुरः) चार पदार्थों को अर्थात् वायु, अग्नि, जल और भूमि को (कृतान्) किये हुए अर्थात् पदार्थविद्या से उपयोग में लिये हुए जाने (आत्) और (इत्) वही (ग्नासु) गमन करने योग्य भूमियों के (अन्तः) बीच यानों को (नि, आनजे) चलावे ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो विद्वानों के समीप में उत्तम शिक्षा और विद्या को पाकर समस्त सिद्धान्तों के उत्तरों को जान कार्यों में अत्युत्तम योग करते हैं वे बुद्धिमान् होते हैं ॥ ४ ॥

हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रवीच्चमसं ये देवपानमनिन्दिषुः ।
अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ अन्यैरेनान्कन्या३ नामभिः स्परत् ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (त्वष्टा) छिन्न-भिन्न करनेवाला सूर्य के समान विद्वान् (यत्) जिस (देवपानम्) किरण वा इन्द्रियों से पीने योग्य (चमसम्) मेघ जल को (अब्रवीत्) कहता है (ये) जो इसकी (अनिन्दिषुः) निन्दा करें उन (एनान्) इनको हम लोग (हनाम) मारें, नष्ट करें । जो (सचान्) संयुक्त (अन्यैः) और (नामभिः) नामों से (अन्या) और (नामानि) नामों को (सुते) उत्पन्न किये हुए व्यवहार में (कृण्वते) प्रसिद्ध करते हैं (एनान्) इन जनों को (कन्या) कुमारी कन्या (स्परत्) प्रसन्न करे (इति) इस प्रकार से उनके प्रति तुम भी वर्त्तो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो विद्वानों की निन्दा करें, विद्वानों में मूर्ख बुद्धि और मूर्खों में विद्वद्बुद्धि करें वे ही खल सबको तिरस्कार करने योग्य हैं ॥ ५ ॥

इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत ।
ऋभुर्विभ्वा वाजो देवाँ अगच्छत स्वपसो यज्ञियं भागमैतन ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (इन्द्रः) बिजुली के समान परमैश्वर्यकारक सूर्य (हरी) धारण आकर्षण कर्मों की विद्या को (युयुजे) युक्त करे (अश्विना) शिल्पविद्या वा उसकी क्रिया हथोड़ी के सिखानेवाले विद्वान् जन (रथम्) रमण करने योग्य विमान आदि यान को जोड़ें (बृहस्पतिः) बड़े-बड़े पदार्थों की पालना करनेवाले सूर्य के समान तुम लोग (विश्वरूपाम्) जिसमें समस्त अर्थात् छोटे, बड़े मोटे, पतले, टेढ़े, बकुचे, काले, पीले, रङ्गीले, चटकीले रूप विद्यमान हैं उस पृथिवी को (उप, आजत) उत्तमता से जानो (ऋभुः) धनञ्जय सूत्रात्मा वायु के समान (विभ्वा) अपने व्याप्ति बल से (वाजः) अन्न को जैसे वैसे (देवान्) विद्वानों को (अगच्छत) प्राप्त होओ और (स्वपसः) जिनके सुन्दर धर्मसम्बन्धी काम हैं ऐसे हुए तुम (यज्ञियम्) जो यज्ञ के योग्य (भागम्) सेवन करने योग्य भोग है उसको (ऐतन) जानो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो बिजुली के समान कार्य को युक्त करने, शिल्पविद्या के समान सब कार्यों को यथायोग्य व्यवहारों में लगाने, सूर्य के समान राज्य को पालनेवाले, बुद्धिमानों के समान विद्वानों का सङ्ग करने और धार्मिक के समान कर्म करनेवाले मनुष्य हैं वे सौभाग्यवान् होते हैं ॥ ६ ॥

निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिर्या जरन्ता युवशा ताकृणोतन ।
सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत युक्त्वा रथमुप देवाँ अयातन ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (धीतिभिः) अङ्गुलियों के समान धारणाओं से (चर्मणः) शरीर की त्वचा के समान शरीर के ऊपरी भाग का सम्बन्ध रखनेवाली (गाम्) पृथिवी को (अरिणीत) प्राप्त होओ (या) जो (जरन्ता) स्तुति-प्रशंसा करते हुए (युवशा) युवा विद्यार्थियों को समीप रखनेवाले शिल्पी होवें (ता) वे कारीगरी के कामों में अच्छे प्रकार प्रवृत्त हुए (निरकृणोतन) निरन्तर उन शिल्पकार्यों को करें । (सौधन्वनाः) उत्तम धनुष में कुशल होते हुए सज्जन (अश्वात्) वेगवान् पदार्थ से (अश्वम्) वेगवाले पदार्थ को (अतक्षत) छांटो और वेग देने में ठीक करो । और (रथम्) रथ को (युक्त्वा) जोड़के (देवान्) दिव्य भोग वा दिव्य गुणों को (उपायातन) उपगत होओ, प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो मनुष्य अङ्गुलियों के समान कर्म के करने और शिल्पविद्या में प्रीति रखनेवाले पदार्थ के गुणों को जानकर यान आदि कार्यों में उनका उपयोग करते हैं वे दिव्य भोगों को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतनेदं वा घा पिबता मुञ्जनेजनम् ।
सौधन्वना यदि तन्नेव हर्यथ तृतीये घा सवने मादयाध्वै ॥८॥

पदार्थ—हे (सौधन्वनाः) उत्तम धनुषवालों में कुशल अच्छे वैद्यो ! तुम पथ्य भोजन चाहनेवालों से (इदम्) इस (उदकम्) जल को (पिबत) पिओ (इदम्) इस (मुञ्जनेजनम्) मूंज के तृणों से शुद्ध किये हुए जल को पिओ (वा) अथवा (न) नहीं (पिबत) पिओ (इति) इस प्रकार से (घ) ही (अब्रवीतन) कहो औरों को उपदेश देओ (यदि) जो (तत्) उसको (हर्यथ) चाहो तो (तृतीये) तीसरे (सवने) ऐश्वर्य में (घ) ही निरन्तर (मादयाध्वै) आनन्दित होओ ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। वैद्य वा माता-पिताओं को चाहिए कि समस्त रोगी और सन्तानों के लिए प्रथम ऐसा उपदेश करे कि तुमको शारीरिक और आत्मिक सुख के लिए यह सेवन करना चाहिए, यह न सेवन करना चाहिए, यह अनुष्ठान करना चाहिए यह नहीं। जिस कारण ये पूर्ण आत्मिक और शारीरिक सुखयुक्त निरन्तर हों ॥ ८ ॥

आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत्।
वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवीदृता वदन्तश्चमसाँ अपिंशत ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जैसे (एक) एक पुरुष संयुक्त पृथिवी आदि पदार्थों में (आप.) जल (भूयिष्ठा) अधिक हैं (इति) ऐसा (अब्रवीत्) कहता है (अन्य) और दूसरा (अग्नि) अग्नि (भूयिष्ठ.) अधिक है (इति) ऐसा (प्राब्रवीत्) उत्तमता से कहता है तथा (एक) कोई (बहुभ्यः) बहुत पदार्थों में (वधर्यन्तीम्) बढ़ती हुई भूमि को अधिक (अब्रवीत्) बतलाता है इसी प्रकार (ऋता) सत्य बातों को (वदन्तः) कहते हुए सज्जन (चमसान्) मेघों के समान पदार्थों को (अपिंशत) अलग-अलग करो ॥ ९ ॥

भावार्थ – इस संसार में स्थूल पदार्थों के बीच कोई जल को अधिक, कोई अग्नि को अधिक और कोई भूमि को बड़ी-बड़ी बतलाते हैं परन्तु स्थूल पदार्थों में भूमि ही अधिक है इस प्रकार सत्य-विज्ञान से मेघ के अवयवों का जो ज्ञान उसके समान सब पदार्थों को अलग-अलग कर सिद्धान्तों की सब परीक्षा करें इस काम के बिना यथार्थ पदार्थविद्या को नहीं जान सकते ॥ ९ ॥

श्रोणामेक उदकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम्।
आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत्किं स्वित्पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः ॥१०॥

पदार्थ—जैसे (एक) विद्वान (श्रोणाम्) सुनने योग्य (गाम्) भूमि और (उदकम्) जल को (अवाजति) जानता, कलायन्त्रों से उसको प्रेरणा देता है वा जैसे (एक) हकिना (सूनया) हिंसा से (आभृतम्) अच्छे प्रकार धारणा किये हुए (मांसम्) मरे हुए के अङ्ग के टूक टेढे को (पिंशति) अलग करता है वा जैसे (एकः) एक (निम्रुच.) नित्य प्राप्त प्राणी (शकृत्) मल के समान (अप, आ, अभरत्) पदार्थ को उठाता है वैसे (पितरौ) माता-पिता (पुत्रेभ्य.) पुत्रों के लिए (किं स्वित्) क्या (उपावतुः) समीप में चाहें ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पिता-माता जैसे गौएँ बछड़े को सुख चाहती दुःख से बचाती, वा बहेलिया मास का लेके अनिष्ट को छोड़े वा वैद्य रोगी के मल को दूर करे वैसे पुत्रों को दुर्गुण से पृथक् कर शिक्षा और विद्यायुक्त करते हैं वे सन्तान के सुख को पाते हैं ॥ १० ॥

उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः।
अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे तदद्येदमृभवो नानु गच्छथ ॥११॥

पदार्थ—हे (नर.) नेता अग्रगन्ता जनो ! तुम (स्वपस्यया) अपने को उत्तम काम की इच्छा से (अस्मै) इस गवादि पशु के लिए (निवत्सु) नीचे और (उद्वत्सु) ऊँचे प्रदेशों में (तृणम्) काटने योग्य घास को और (अप) जलों का (अकृणोतन) उत्पन्न करो। हे (ऋभवः) मेधावी जनो ! तुम (यत्) जो (अगोह्यस्य) न लुकाय रखने योग्य के (गृहे) घर में वस्तु है (तत्) उस को (न) न (असस्तन) नष्ट करो (अद्य) इस उत्तम समय में (इदम्) इसके (अनु, गच्छथ) पीछे चलो ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि ऊँचे-नीचे स्थलों में पशुओं के रखने के लिए जल और घास आदि पदार्थों को रखें और अरक्षित अर्थात् गिरे पड़े वा प्रत्यक्ष में धरे हुए दूसरे के पदार्थ को भी अन्याय से ले लेने की इच्छा कभी न करें। धर्म, विद्या और बुद्धिमान् जनों का सङ्ग सदैव करें ॥ ११ ॥

संमील्य यद्भुवना पर्यसर्पत क्व स्वित्तात्या पितरा व आसतुः।
अशपत यः करस्नं व आददे यः प्राब्रवीत्प्रो तस्मा अब्रवीतन ॥१२॥

पदार्थ—हे विद्यार्थिजनो ! तुम (संमील्य) आँखें मिलमिला के (यत्) जो (भुवना) भूमि आदि लोक हैं उनको (पर्यसर्पत) सब ओर से जानो तब (वः) तुम्हारे (तात्या) उस समय होनेवाले (पितरा) माता-पिता अर्थात् विद्याऽध्ययन समय के माता-पिता (क्व, स्वित्) कहीं (आसतु) निरन्तर बसें (य) और जो (वः) तुम्हारी (करस्नम्) भुजा को (आददे) पकड़ता है वा जिसको (अशपत) अपराध हुए पर कोसो (यः) जो आचार्य तुमको (प्र, अब्रवीत्) उपदेश सुनावे (तस्मै) उसके लिए (प्रो, अब्रवीतन) प्रिय वचन बोलो ॥ १२ ॥

भावार्थ—जब पढ़ानेवालों के समीप विद्यार्थी आवें तब वे यह पूछने योग्य हैं कि तुम कहाँ के हो, तुम्हारा निवास कहाँ है, तुम्हारे माता-पिता का क्या नाम है, क्या पढ़ना चाहते हो, अखण्डित ब्रह्मचर्य करोगे वा न करोगे इत्यादि पूछके ही इनको विद्या ग्रहण करने के लिए ब्रह्मचर्य की शिक्षा देवें और शिष्यजन पढ़ानेवालों की निन्दा और उनके प्रतिकूल आचरण कभी न करें ॥ १२ ॥

सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छतागोह्य क इदं नो अबूबुधत्।
श्वानं बस्तो बोधयितारमब्रवीत्संवत्सर इदमद्या व्यख्यत ॥१३॥

पदार्थ—हे (सुषुप्वांसः) सोनेवाले (ऋभवः) बुद्धिमान् जनो ! तुम जिस काम को (अपृच्छत) पूछो और जिसको (वि, अख्यत) प्रसिद्ध कहो (तत्, इदम्) उस इस काम को (नः) हम लोगों को (कः) कौन (अबूबुधत्) जनावे। हे (अगोह्य) न गुप्त रखने योग्य (बस्त.) ढाँपने-छिपानेवाला (श्वानम्) कार्यों में प्रेरणा देने और (बोधयितारम्) शुभाशुभ विषय जनानेवाले को जैसे जिस विषय को (अब्रवीत्) कहे कैसे वैसे उस (इदम्) प्रत्यक्ष विषय को (संवत्सरे) एक वर्ष में वा (अद्य) आज तू कह ॥ १३ ॥

भावार्थ – बुद्धिमान् जन जिस-जिस विषय को विद्वानों को पूछकर निश्चय करें उस उसको मूढ़ निर्बुद्धि जन निश्चय नहीं कर सकें, जड़ मन्दमति जन जितना एक संवत्सर में पढ़ता है उतना बुद्धिमान् एक दिन में ग्रहण कर सकता है ॥ १३ ॥

दिवा यान्ति मरुतो भूम्याग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः ॥१४॥६॥

पदार्थ—हे (शवसः) बलवान् के सन्तान (नपातः) पतन नहीं होता जिन का वे विद्वानो तुम जैसे (मरुत.) पवन (दिवा) सूर्यमण्डल के साथ (यान्ति) जाते हैं (अयम्) यह (अग्निः) बिजुली रूप अग्नि (भूम्या) पृथिवी के साथ और (वातः) लोकों के बीच का वायु (अन्तरिक्षेण) अन्तरिक्ष के साथ (याति) जाता है (वरुण.) उदान वायु (अद्भिः) जल और (समुद्रैः) सागरों के साथ (याति) जाता है वैसे (युष्मान्) तुमको (इच्छन्तः) चाहते हुए जन जावें ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य, पवन, भूमि, अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष तथा वरुण और जलों का एक साथ निवास है वैसे मनुष्य विद्या और विद्वानों के साथ वास कर नित्य सुखयुक्त और बली होवें ॥ १४ ॥

इस सूक्त में मेधावी के कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ इकसठवां सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

मा नो मित्र इत्यस्य द्वाविंशत्यृचस्य द्विषष्ठ्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः। मित्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः। १, २, ९, १०, १७, २० निचृत् त्रिष्टुप्, ४, ७, ८, १८ त्रिष्टुप्; ५ विराट् त्रिष्टुप्, ६, ११, २१ भुरिक् त्रिष्टुप्, १२ स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवत स्वरः। १३, १४ भुरिक् पङ्क्ति, १५, १९, २२ स्वराट् पङ्क्ति; १६ विराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चम स्वर। ३ निचृज्जगती छन्दः। निषाद. स्वर ॥

अब एकसौ बासठवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में घोड़े और बिजुली रूप से व्याप्त जो अग्नि है उस की विद्या का वर्णन करते हैं –

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परि ख्यन्।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥१॥

पदार्थ— ऋतु-ऋतु में यज्ञ करनेहारे हम लोग (विदथे) संग्राम में (यत्) जिस (वाजिन) वेगवान् (देवजातस्य) विद्वानों के वा दिव्य गुणों से प्रकट हुए (सप्तेः) घोड़े के (वीर्याणि) पराक्रमों को (प्रवक्ष्याम) कहेंगे उस (न) हमारे घोड़ों के पराक्रमों को (मित्र) मित्र (वरुण) श्रेष्ठ (अर्यमा) न्यायाधीश (आयु) ज्ञाता (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (ऋभुक्षा) बुद्धिमान् और (मरुत.) ऋत्विज लोग (मा, परि, ख्यन्) छोड़के मत कहें और उसके अनुकूल उसकी प्रशंसा करें ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को प्रशंसित, बलवान्, अच्छे सीखे हुए घोड़े ग्रहण करने चाहिएँ जिससे सर्वत्र विजय और ऐश्वर्यों को प्राप्त हों ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है –

यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति।
सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥२॥

पदार्थ—(यत्) जो (निर्णिजा) नित्य शुद्ध (रेक्णसा) धन से (प्रावृतस्य) ढपे हुए (गृभीताम्) ग्रहण किये (रातिम्) देने को (मुखतः) मुख से (नयन्ति) प्राप्त करते अर्थात् मुख से कहते हैं और जो (मेम्यत्) प्राणियों में निरन्तर मारता-पीटता हुआ (विश्वरूप.) जिस के सब रूप विद्यमान (सुप्राङ्) सुन्दरता से पूछता और (अजः) नहीं उत्पन्न होता अर्थात् एक बार पूर्णभाव से विद्या पढ़ बार-बार विद्वत्ता से नहीं उत्पन्न होता वह विद्वान् जन (इन्द्रापूष्णोः) ऐश्वर्यवान् और पुष्टिमान् प्राणियों के (प्रियम्) मनोहर (पाथः) जल को (अप्येति) निश्चय से प्राप्त होता है वे सब सुख को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—जो न्याय से संचित किये हुए धन से मुख्य धर्म सम्बन्धी काम करते हैं वे परोपकारी होते हैं ॥ २ ॥

एष छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।
अभिप्रियं यत्पुरोळाशमर्वता त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जिस पुरुष ने (वाजिना) वेगवान् (अश्वेन) घोडे के साथ (एष) यह प्रत्यक्ष (विश्वदेव्य.) समस्त दिव्य गुणों में उत्तम (पूष्ण) पुष्टि का (भागः) भाग (छागः) छाग (पुरः) पहले (नीयते) पहुँचाया वा (यत्) जो (त्वष्टा) उत्तम रूप सिद्ध करनेवाला जन (सौश्रवसाय) सुन्दर अन्नों में प्रसिद्ध अन्न के लिए (अर्वता) विशेष ज्ञान के साथ (एनम्) इस (अभिप्रियम) सब ओर से प्रिय (पुरोडाशम्) सुन्दर बनाये हुए अन्न को (इत्) ही (जिन्वति) प्राप्त होता है वह सुखी होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य घोडो की पुष्टि के लिए छेरी का दूध उनको पिलाते और अच्छे बनाये हुए अन्न को खाते हैं वे निरन्तर सुखी होते हैं ॥ ३ ॥

यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति ।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥४॥

पदार्थ—(यत्) जो (मानुषा) मनुष्य (ऋतुशः) बहुत ऋतुओं मे (हविष्यम्) ग्रहण करने योग्य पदार्थों में उत्तम (देवयानम्) विद्वानों की यात्रा सिद्ध करानेवाले (अश्वम्) शीघ्रगामी रथ को (त्रिः) तीन बार (परिनयन्ति) सब ओर से प्राप्त होते अर्थात् स्वीकार करते हैं वा जो (अत्र) इस जगत् मे (देवेभ्य.) दिव्य गुणों के लिए (पूष्ण.) पुष्टि करनेवाले का (प्रथमः) पहला (भाग·) सेवने योग्य भाग (प्रतिवेदयन्) अपने गुण को प्रत्यक्षता से जनाता हुआ (अजः) पाने योग्य छाग (यज्ञम्) सङ्ग करने योग्य व्यवहार को (एति) प्राप्त होता है उनको और इस छाग को सब सज्जन यथायोग्य सत्कारयुक्त करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो समस्त ऋतुओं के सुख सिद्ध करनेवाले यानों को रथ, घोडे और बकरे आदि पशुओं को बढ़ाकर जगत् का हित सिद्ध करते हैं वे शारीरिक, वाचिक और मानसिक तीनो प्रकार के सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः ।
तेन यज्ञेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥५॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (होता) यज्ञ सिद्ध कराने (अध्वर्युः) अपने को नष्ट होने की इच्छा करने (आवया.) अच्छे प्रकार मिलने (अग्निमिन्धः) अग्नि को प्रकाशित करने (ग्रावग्राभ.) प्रशंसा को ग्रहण करने (उत) और (शंस्ता) प्रशसा करनेवाला (सुविप्रः) सुन्दर बुद्धिमान् विद्वान् है (तेन) उससे साथ (स्विष्टेन) उत्तम चाहे और (स्वरंकृतेन) सुन्दर पूर्ण किये हुए (यज्ञेन) यज्ञकर्म से (वक्षणा.) नदियो को तुम (आ, पृणध्वम्) अच्छे प्रकार पूर्ण करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य दुर्गन्ध के निवारने और सुख की उन्नति के लिए यज्ञ का अनुष्ठान कर सर्वत्र देशो मे सुगन्धित जलो को वर्षा कर नदियो को परिपूर्ण करें अर्थात् जल से भरें ॥ ५ ॥

यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचनं संभरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥६॥

पदार्थ—(ये) जो (यूपव्रस्का) खम्भे के लिए काष्ठ काटनेवाले (उत) और भी (ये) जो (यूपवाहा) खम्भे को प्राप्त करानेवाले जन (अश्वयूपाय) घोडो के बाँधने के लिए (चषालम्) किसी विशेष वृक्ष को (तक्षति) काटते हैं (ये, च) और जो (अर्वते) घोड़े के लिए (पचनम्) पकाने का (संभरन्ति) धारण करते और पुष्टि करते हैं जो (तेषाम्) उनके बीच (उतो) निश्चय से (अभिगूर्तिः) सब ओर से उद्यमी है वह (न) हम लोगो को (इन्वतु) प्राप्त होवे ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य घोड़े आदि पशुओ के बाँधने के लिए काठ के खम्भे वा खूँटे बनाते हैं वा जो घोडो के राखन को पदार्थ दाना, घास, चारा, घुड़साल आदि बनाते हैं वे उद्यमी होकर सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः ।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥७॥

पदार्थ—जिसने (देवानाम्) विद्वानों का और (मे) मेरे (मन्म) विज्ञान और (आशा) प्राप्ति की इच्छाओ को (उप, अधायि) समीप होकर धारण किया वा जो (सुमत्) सुन्दर मानता (वीतपृष्ठः) सिद्धान्तों में व्याप्त हुआ विद्वान् जन उक्त ज्ञान और उक्त आशाओं को (उप, प्र, अगात्) समीप होकर अच्छे प्रकार प्राप्त हो वा जो (ऋषयः) वेदार्थज्ञानवाले (विप्राः) धीर-बुद्धि जन (सुबन्धुम्) जिसके सुन्दर भाई हैं उसको (अनु, मदन्ति) अनुमोदित करते हैं (एनम्) इस सुबन्धु सज्जन को उक्त (देवानाम्) व्याप्त साक्षात् कृतात्मसिद्धान्त विद्वान् जनों को (पुष्टे) पुष्टियुक्त व्यवहार में हम लोग (चकृम) करें अर्थात् नियत करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो विद्वानों के सिद्धान्त किये हुए विज्ञान का धारण कर तदनुकूल हो विद्वान् होते हैं वे शरीर और आत्मा की पुष्टि से युक्त होते हैं ॥ ७ ॥

यद्वाजिनो दाम सन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणं सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (अस्य) इस (अर्वतः) शीघ्र दूसरे स्थान को पहुँचानेवाले (वाजिन) बलवान् घोड़े की (यत्) जो (संदानम्) अच्छे प्रकार दी जाती (दाम) और घोडो को दमन करती अर्थात् उनके बल को दाबती हुई लगाम है (या) जो (शीर्षण्या) शिर मे उत्तम (रशना) व्याप्त होनेवाली (रज्जु) रस्सी है (यत्, वा) अथवा जो (अस्य, घ) इसी के (आस्ये) मुख मे (तृणम्) तृणवीरुध घास (प्रभृतम्) अच्छे प्रकार भरी (अस्तु) हो (ता) वे (सर्वा) समस्त (ते) तुम्हारे पदार्थ (देवेषु) विद्वानो मे (अपि) भी हों ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो घोडों को सुशिक्षित, अच्छे इन्द्रिय दमन करनेवाले उत्तम गहनो से युक्त और पुष्ट कर इनसे कार्यों को सिद्ध करते हैं वे समस्त विजय आदि व्यवहारो को सिद्ध कर सकते हैं ॥ ८ ॥

यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (क्रविषः) क्रमणशील अर्थात् चाल से पैर रखनेवाले (अश्वस्य) घोड़े का (यत्) जिस (रिप्तम्) लिये हुए मल को (मक्षिका) शब्द करती अर्थात भिनभिनाती हुई माखी (आश) खाती है (वा) अथवा (यत्) जो (स्वधितौ) आप धारण किये हुए (स्वरौ) हीसना और कष्ट से चिल्लाना है (शमितु) यज्ञ का अनुष्ठान करनेवाले के (हस्तयोः) हाथो मे (यत्) जो है और (यत्) जो (नखेषु) जिनमे आकाश नहीं विद्यमान है उन नखों में (अस्ति) है (ता) वे (सर्वा) समस्त पदार्थ (ते) तुम्हारे हो तथा यह सब (देवेषु) विद्वानों मे (अपि) भी (अस्तु) हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—भृत्यों को घोड़े दुर्गन्ध लेप रहित, शुद्ध माखी और डाँश से रहित राखने चाहिएँ अपने हाथ तथा रज्जु आदि से उत्तम नियम कर अपने इच्छानुकूल चाल चलवाना चाहिए ऐसा करने से घोड़े उत्तम काम करते हैं ॥ ९ ॥

यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति ।
सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधं शृतपाकं पचन्तु ॥१०॥८॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (शमितारः) प्राप्त हुए अन्न को सिद्ध करने, बनानेवाले आप (यः) जो (उदरस्य) उदर में ठहरे हुए (आमस्य) कच्चे (क्रविषः) क्रम से निकलने योग्य अन्न का (गन्धः) गन्ध (अपवाति) अपानवायु के द्वारा जाता, निकलता है वा (यत्) जो (ऊवध्यम्) ताडने के योग्य (अस्ति) है (तत्) उसको (कृण्वन्तु) काटो (उत) और (मेधम्) प्राप्त हुए (शृतपाकम्) परिपक्व पदार्थ को (पचन्तु) पकाओ ऐसे उसे सिद्ध कर (सुकृता) सुन्दरता से बनाये हुए पदार्थों को खाओ ॥ १० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य उदररोग निवारने के लिए अच्छे बनाये अन्न और ओषधियो को खाते हैं वे सुखी होते हैं ॥ १० ॥

यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति ।
मा तद्भूम्यामा श्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥११॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (निहतस्य) निरन्तर चलायमान हुए (ते) तुम्हारे (अग्निना) क्रोधाग्नि से (पच्यमानात्) तपाये हुए (गात्रात्) [illegible] (यत्) जो शस्त्र (अभि, शूलम्) लखके शूल के समान पीडाकारक शत्रु के सम्मुख (अव, धावति) चलाया जाता है (तत्) वह (भूम्याम्) भूमि मे (मा, आ, श्रिषत्) न गिरे वा लगे और वह (तृणेषु) घासादि मे (मा) मत आश्रित हो किन्तु (उशद्भ्यः) आपके पदार्थों की चाहना करनेवाले (देवेभ्य.) दिव्य गुणी शत्रु के लिए (रातम्) दिया (अस्तु) हो ॥ ११ ॥

भावार्थ—बलिष्ठ विद्वान् मनुष्यों को चाहिए कि सग्राम में शस्त्र चलाने के समय विचारपूर्वक ही शस्त्र चलावें जिससे क्रोधपूर्वक चला शस्त्र भूमि आदि में न पड़े किन्तु शत्रुओं को मारनेवाला हो ॥ ११ ॥

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥१२॥

पदार्थ—(ये) जो लोग (वाजिनम्) जिसमें बहुत अन्नादि पदार्थ विद्यमान उस भोजन को (पक्वम्) पकाने से अच्छा बना हुआ (परिपश्यन्ति) सब ओर से देखते हैं वा (ये) जो (ईम्) जल को पका (आहुः) कहते हैं (ये, च) और जो (अर्वतः) प्राप्त हुए प्राणी के (मांसभिक्षाम्) मांस के न प्राप्त होने को (उतो) तर्क-वितर्क से (उपासते) सेवन करते हैं (तेषाम्) उनका (अभिगूर्ति.) उद्यम और (सुरभिः) सुगन्ध (नः) हम लोगों को (इन्वतु)

अप्राप्त का प्राप्त हो । हे विद्वन् ! तू (इति) इस प्रकार अर्थात् मांसादि अभक्ष्य के त्याग से रोगों को (निर्हर) निरन्तर दूर कर ॥ १२ ॥

भावार्थ—जो लोग अन्न और जल को शुद्ध करना, पकाना, उसका भोजन करना जानते और मांस को छोड़कर भोजन करते वे उद्यमी होते हैं ॥ १२ ॥

यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥१३॥

पदार्थ—(यत्) जो (मांस्पचन्याः) मांसाहारी जिसमें मांस पकाते हैं उस (उखायाः) पाक सिद्ध करनेवाली बटलोई का (नीक्षणम्) निरन्तर निरीक्षण करते, उसमें वैमनस्य कर (या) जो (यूष्ण) रस के (आसेचनानि) अच्छे प्रकार सेचन के आधार वा (पात्राणि) पात्र वा (ऊष्मण्या) गरमपन उत्तम पदार्थ (अपिधाना) बटलोइयों के मुख ढाँपने की ढकनियाँ (चरूणाम्) अन्न आदि के पकाने के आधार बटलोई कढ़ाही आदि बर्त्तनों के (अङ्काः) लक्षण हैं उनको अच्छे जानते और (अश्वम्) घोड़े को (परिभूषन्ति) सुशोभित करते हैं वे (सूनाः) प्रत्येक काम में प्रेरित होते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य मांसादि के पकाने के दोष से रहित बटलोई के धरने, जल आदि उसमें छोड़ने अग्नि को जलाने और उसको ढकनों से ढाँपने को जानते हैं वे पाकविद्या में कुशल होते हैं । जो घोड़े को अच्छा सिखा उनको सुशोभित कर चलाते हैं वे सुख से मार्ग को जाते हैं ॥ १३ ॥

निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्बीशमर्वतः ।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥१४॥

पदार्थ—हे घोड़े के सिखानेवाले ! (अर्वत) शीघ्र जानेवाले घोड़े का (यत) जो (निक्रमणम्) निश्चित चलना (निषदनम्) निश्चित बैठना (विवर्तनम्) नाना प्रकार चलाना-फिराना (पड्बीशम्, च) और पिछाड़ी बाँधना तथा उसको उठाना है और यह घोड़ा (यत्, च) जो (पपौ) पीता (यत्, घासिम्, च) और जो घास को (जघास) खाता है (ता) वे (सर्वा) समस्त उक्त काम (ते) तुम्हारे हों और समस्त (देवेषु) विद्वानों में (अपि) भी (अस्तु) हों ॥ १४ ॥

भावार्थ—जैसे सुन्दर सिखाये हुए घोड़े सुशील, अच्छी चाल चलनेवाले होते हैं वैसे विद्वानों की शिक्षा पाये हुए जन सभ्य होते हैं । जैसे घोड़े आहार भर पी, खाके पचाते हैं वैसे विचक्षणबुद्धि विद्या से तीव्र पुरुष भी हों ॥ १४ ॥

मा त्वाऽग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः ।
इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥१५॥९॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जिस (इष्टम्) इष्ट अर्थात् जिससे यज्ञ वा सङ्ग किया जाता (वषट्कृतम्) जो क्रिया से सिद्ध किये हुए (वीतम्) व्याप्त होनेवाले (अभिगूर्तम्) सब ओर से उद्यमी (अश्वम्) घोड़े के समान शीघ्र पहुँचनेवाले बिजुली रूप अग्नि को (देवासः) विद्वान् जन (त्वा) तुम्हें (प्रति, गृभ्णन्ति) प्रतीति से ग्रहण कराते हैं (तम्) उसको तुम ग्रहण करो सो (धूमगन्धिः) धूम में गन्ध रखनेवाला (अग्निः) अग्नि (मा, ध्वनयीत्) मत ध्वनि दे मत बहुत शब्द दे और (भ्राजन्ती) प्रकाशमान (उखा) अन्न पकाने की बटलोई (जघ्रिः) अन्न गन्ध लेती हुई अर्थात् जिसके भीतर से भाप उठ लौटके उसी में जाती वह (मा, अभि, विक्त) मत अन्न को अपने में से सब ओर अलग करे, उगले ॥१५॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि वा घोड़े से रथों को चलाते हैं वे लक्ष्मी से प्रकाशमान होते हैं जो अग्नि में सुगन्धि आदि पदार्थों को होमते हैं वे रोग और कष्ट के शब्दों से पीड्यमान नहीं होते हैं ॥१५॥

यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै ।
संदानमर्वन्तं पड्बीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥१६॥

पदार्थ—जो विद्वान् जन (अस्मै) इस (अश्वाय) घोड़े के लिए (यत्) जिस (वासः) ओढ़ने के वस्त्र को (उपस्तृणन्ति) उठाते वा जिस (अधीवासम्) ऐसे चारजामा आदि को कि जिसके ऊपर ढाँपने का वस्त्र पड़ता वा (संदानम्) समीचीन जिससे दान बनता उस यज्ञ आदि को (अर्वन्तम्) प्राप्त करते हुए (पड्बीशम्) प्राप्त पदार्थ को बाँटने, छिन्न-भिन्न करनेहारे अग्नि को उठाते ढाँपते, कलाघरों में लगाते हैं और उससे (या) जिन (प्रिया) प्रिय, मनोहर (हिरण्यानि) प्रकाशमान पदार्थों को (देवेषु) विद्वानों में (आ, यामयन्ति) विस्तारते हैं वे उन पदार्थों को पाकर श्रीमान् होते हैं ॥१६॥

भावार्थ—जो मनुष्य बिजुली आदि रूपवाले अग्नि के उपयोग करने और उसको बढ़ाने को जानें तो बहुत सुखों को प्राप्त हों ॥१६॥

यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद ।
स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥१७॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (यत्) जो (ते) तेरे (सादे) स्थित होने में (महसा) अत्यन्त बल से (शूकृतस्य) शीघ्र उत्पन्न किये हुए पदार्थ के (पार्ष्ण्या) छूनेवाले पदार्थ से (वा) वा (कशया) जिससे प्रेरणा दी जाती उस कोड़े से घोड़े को (तुतोद) प्रेरणा देवे (वा) वा (अध्वरेषु) न नष्ट करने योग्य यज्ञों में (हविषः) होमने योग्य वस्तु के (स्रुचेव) जैसे स्रुचा से काम बनें वैसे (ता) उन कामों को प्रेरणा देवे (ता) उन (सर्वा) सब (ते) तेरे कामों को (ब्रह्मणा) धन से मैं (सूदयामि) अलग-अलग करता हूँ ॥१७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् जन कोड़े वा बेंत से घोड़े को, पनेड़ी से बैलों को, अंकुश से हाथी को अच्छी ताड़ना दे उनको शीघ्र चलाते हैं वैसे ही कलायन्त्रों से अग्नि को अच्छे प्रकार चलाकर विमान आदि यानों को शीघ्र चलावें ॥१७॥

चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति ।
अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या वि शस्त ॥१८॥

पदार्थ—हे विद्वज्जनो ! तुम (देवबन्धोः) प्रकाशमान पृथिव्यादिकों के सम्बन्धी (वाजिनः) वेगवाले (अश्वस्य) शीघ्रगामी अग्नि की जो (स्वधितिः) बिजुली (समेति) अच्छे प्रकार जाती है उसको और (चतुस्त्रिंशत्) चौंतीस प्रकार की (वङ्क्रीः) टेढ़ी-मेढ़ी गतियों को (वि, शस्त) ताड़ना करो अर्थात् कलों को ताड़ना दे उन गतियों को निकालो तथा (परुष्परुः) प्रत्येक मर्मस्थल पर (अनुघुष्य) अनुकूलता से कलायन्त्रों का शब्द कराकर (अच्छिद्रा) दो टूक होने, छिन्न-भिन्न होने से रहित (गात्रा) अङ्ग और (वयुना) उत्तम ज्ञान, कर्मों को (कृणोत) करो ॥१८॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस कारण से बिजुली उत्पन्न होती है वह कारण सब पृथिव्यादिकों में व्याप्त है । इससे बिजुली की ताड़ना आदि से किसी का अङ्ग-भङ्ग न हो उतनी बिजुली काम में लाओ । जो अग्नि के गुणों को जानकर यथायोग्य क्रिया से उस अग्नि का प्रयोग किया जाए तो कौन काम न सिद्ध होने योग्य हो अर्थात् सभी यथेष्ट काम बनें ॥१८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतुः ।
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥१९॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (ते) तेरी विद्या और क्रिया से सिद्ध किये हुए (त्वष्टुः) बिजुलीरूप (अश्वस्य) व्याप्त अग्नि का (एकः) एक (ऋतुः) वसन्तादि ऋतु (विशस्ता) छिन्न-भिन्न करनेवाला अर्थात् भिन्न-भिन्न पदार्थों में लगानेवाला और (द्वा) दो (यन्तारा) उसको नियम में रखनेवाले (भवतः) होते हैं (तथा) उसी प्रकार से (या) जो (गात्राणाम्) शरीरों के (ऋतुथा) ऋतु-ऋतु में काम उनको और (पिण्डानाम्) अनेक पदार्थों में संघातों के जो-जो अङ्ग हैं (ताता) उन-उनका काम में प्रयोग मैं (कृणोमि) कराता हूँ और (अग्नौ) अग्नि में (प्र, जुहोमि) होमता हूँ ॥१९॥

भावार्थ—जो सब पदार्थों के छिन्न भिन्न करनेवाले ऋतु के अनुकूल पाये हुए पदार्थों में व्याप्त बिजुलीरूप अग्नि के काम और सृष्टिक्रम नियम करनेवालों और प्रशंसित गुणों को जान अभीष्ट कामों को सिद्ध करते हुए मोटे-मोटे लक्कड़ आदि पदार्थों को आग में छोड़ बहुत कामों को सिद्ध करें वे शिल्पविद्या को जाननेवाले कैसे न हों ? ॥१९॥

मा त्वा तपत्प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व १ आ तिष्ठिपत्ते ।
मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥२०॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (ते) तेरा (प्रियः) मनोहर (आत्मा) आत्मा (अपियन्तम्) मरते हुए (त्वा) तुझे (मा, तपत्) मत कष्ट देवे और (स्वधितिः) वज्र के समान बिजुली तेरे (तन्वः) शरीरों को (मा, आ, तिष्ठिपत्) मत ढेर करे तथा (गृध्नुः) अभिकाङ्क्षा करनेवाला प्राणी (असिना) तलवार से (ते) तेरे (अविशस्ता) न मारे हुए अर्थात् निर्बाधित और (छिद्रा) छिद्र इन्द्रिय सहित (गात्राणि) अंगों को (अतिहाय) अतीव छोड़ (मिथू) परस्पर एकता (मा, कः) मत करे ॥२०॥

भावार्थ—जो मनुष्य योगाभ्यास करते हैं वे मृत्यु रोग से नहीं पीड़ित होते और उनको जीवन में रोग भी दुःखी नहीं करते हैं ॥२०॥

न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ इदेषि पथिभिः सुगेभिः ।
हरी ते युञ्जा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥२१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! यदि जो (ते) तुम्हारे मन वा आत्मा यथायोग्य करने में (युञ्जा) युक्त (हरी) धारण और आकर्षण गुणवाले (पृषती) वा सींचने वाले जल का गुण रखते हुए (अभूताम्) होते हैं उनका जो (उपास्थात्) उपस्थान करे वा (रासभस्य) शब्द करते हुए रथ आदि की (धुरि) धुरी में (वाजी) वेग तुल्य हो तो (एतत्) इस उक्त रूप को पाकर (न, वै, म्रियसे) नहीं मरते

(न, उ) अथवा तो न (रिष्यसि) किसी को मारते हो और (सुगेभिः) सुख-पूर्वक जिनसे जाते हैं उन (पथिभिः) मार्गों से (इत्) ही (देवान्) विद्वानो वा दिव्य पदार्थों को (एषि) प्राप्त होते हो ॥२१॥

भावार्थ—जो योगाभ्यास से समाहित चित्त दिव्य योगी जनो को अच्छे प्रकार प्राप्त हो धर्मयुक्त मार्ग मे चलते हुए परमात्मा मे अपने आत्मा को युक्त करते हैं वे मोक्ष पाये हुए होते हैं ॥२१॥

सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्राँ उत विश्वापुषं रयिम् ।
अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनतां हविष्मान् ॥२२॥

पदार्थ—जैसे यह (वाजी) वेगवान् अग्नि (नः) हमारे (सुगव्यम्) सुन्दर गौओ मे हुए पदार्थ जिसमे है उनको (स्वश्व्यम्) सुन्दर घोडो मे उत्पन्न हुए वा (पुंसः) पुरुषत्ववाले (पुत्रान्) पुत्रो (उत) और (विश्वापुषम्) सबकी पुष्टि देनेवाले (रयिम्) धन को (कृणोतु) करे सो (अदितिः) अखण्डित न नाश को प्राप्त हुआ (नः) हमको (अनागास्त्वम्) पापपने से रहित (क्षत्रम्) राज्य को प्राप्त करे सो (हविष्मान्) मिले है होम योग्य पदार्थ जिसमें वह (अश्वः) व्याप्तिशील अग्नि (नः) हम लोगों को (वनताम्) सेवे वैसे हम लोग इसको सिद्ध करें ॥२२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है। जो पृथिवी आदि की विद्या से गौ, घोडे और पुरुष सन्तानो की पूरी पुष्टि और धन को सचित करके शीघ्रगामी अश्वरूप अग्नि की विद्या से राज्य को बढ़ाके निष्पाप होके सुखी हो वे औरों को भी ऐसे ही करें ॥२२॥

इस सूक्त मे अश्वरूप अग्नि की विद्या का प्रतिपादन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सगति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ बासठवां सूक्त और दशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

यदक्रन्द इति त्रयोदशर्चस्य त्रिषष्ट्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः ।
अश्वोऽग्निर्देवता १, ६, ७ १३ त्रिष्टुप्, २ भुरिक् त्रिष्टुप्, ३, ८
विराट् त्रिष्टुप्, ५, ९, ११ निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवत स्वरः ।
४, १०, १२ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चम स्वरः ॥

अब एकसौ तिरेसठवें सूक्त का आरम्भ है । उसके आदि से विद्वान् और बिजुली के गुणों को कहते हैं—

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥१॥

पदार्थ—हे (अर्वन्) विज्ञानवान् विद्वन् ! (यत्) जिस कारण तू (समुद्रात्) अन्तरिक्ष से (उत) अथ (वा) वा (पुरीषात्) पूर्ण कारण से (उद्यन्) उदय को प्राप्त होते हुए सूर्य के तुल्य (जायमान) उत्पन्न होता (प्रथमम्) पहले (अक्रन्दः) शब्द करता है जिस (ते) तेरा (श्येनस्य) बाज के (पक्षा) पक्षो के समान (हरिणस्य) हरिण के (बाहू) बाधा करनेवाली भुजा के तुल्य (उपस्तुत्यम्) समीप से प्रशसा के योग्य (महि, जातम्) बड़ा उत्पन्न हुआ काम साधक अग्नि है सो सबको सत्कार करने योग्य है ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है। जो धर्मयुक्त ब्रह्मचर्य से विद्याओ को पढ़ते हैं वे सूर्य के समान प्रकाशमान, बाज के समान वेगवान और हरिण के समान कूदते हुए प्रशंसित होते हैं ॥१॥

यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥२॥

पदार्थ—हे (वसवः) चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य के सेवन से विद्या को प्राप्त हुए सज्जनो ! तुम जिस (यमेन) नियमकर्त्ता वायु से (दत्तम्) दिये हुए (एनम्) इस पूर्वोक्त प्रशसित अग्नि को (त्रितः) अनेको पदार्थ वा अनकों व्यवहारो को तरनेवाला (इन्द्रः) बिजुलीरूप अग्नि (आयुनक्) शिल्प कामों में नियुक्त करे (प्रथमः) वा प्रख्यातिमान् पुरुष (एनम्) इस उक्त प्रशसित अग्नि का (अध्यतिष्ठत्) अधिष्ठाता हो वा (गन्धर्वः) पृथिवी का धारण करनेवाला वायु (अस्य) इसकी (रशनाम्) स्नेह क्रिया को और (सूरात्) सूर्य से (अश्वम्) शीघ्रगमन करानेवाले अग्नि को (अगृभ्णात्) ग्रहण करे उसको (निरतष्ट) निरन्तर काम में लाओ ॥२॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानों के उपदेश से पाई हुई विद्या को ग्रहण कर बिजुली से उत्पन्न हुए कारण से फैले, वायु से धारण किये, सूर्य से प्रकट हुए, शीघ्रगामी अग्नि को प्रयोजन मे लाते हैं वे दरिद्रपन के नाश करनेवाले होते हैं ॥२॥

असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन ।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (यम) नियम का करनेवाला (असि) है (आदित्यः) अन्तरिक्ष मे प्रसिद्ध होनेवाला सूर्यरूप (असि) है (अर्वन्) सर्वत्र प्राप्त है (गुह्येन) गुप्त करने योग्य (व्रतेन) शील से (त्रितः) अच्छे प्रकार व्यवहारो का करनेवाला (असि) है (सोमेन) चन्द्रमा वा ओषधि गण से (समया) समीप मे (विपृक्तः) अपने रूप से अलग (असि) है (ते) उस अग्नि के (दिवि) दिव्य पदार्थ में (त्रीणि) तीन (बन्धनानि) प्रयोजन अगले लोगो ने (आहुः) कहे हैं उस को तुम लोग जानो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो गूढ अग्नि पृथिव्यादि पदार्थों मे वायु और ओषधियो मे प्राप्त है जिस के पृथिवी, अन्तरिक्ष और सूर्य मे बन्धन है उस का सब मनुष्य जानें ॥ ३ ॥

त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥४॥

पदार्थ—हे (अर्वन्) विशेष ज्ञानवाले सज्जन ! (यत्र) जहाँ (ते) तेरा (परमम्) उत्तम (जनित्रम्) जन्म (आहुः) कहते है वहाँ मेरा भी उत्तम जन्म है (वरुणः) श्रेष्ठ तू जैसे (छन्त्सि) बलवान् होता है वैसे मैं बलवान् होता हूँ जैसे (ते) तेरे (त्रीणि) तीन (अन्तः) भीतर (समुद्रे) अन्तरिक्ष में (त्रीणि) तीन (अप्सु) जलो मे (त्रीणि) तीन (दिवि) प्रकाशमान अग्नि में भी (बन्धनानि) बन्धन (आहुः) अगले जनो ने कहे हैं (उतेव) उसी के समान (मे) मेरे भी हैं ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। जैसे अग्नि के कारण सूक्ष्म और स्थूल रूप है वायु, अग्नि, जल और पृथिवी के भी हैं वैसे सब उत्पन्न हुए पदार्थों के तीन स्वरूप हैं। हे विद्वन् ! जैसे तुम्हारा विद्या जन्म उत्तम है वैसे मेरा भी हो ॥ ४ ॥

इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानां सनितुर्निधाना ।
अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ॥५॥

पदार्थ—हे (वाजिन्) विज्ञानवान् सज्जन ! जो (इमा) ये (ते) आप के (शफानाम्) कल्याण को देनेवाले व्यवहारो के (अवमार्जनानि) शोधन वा जो (इमा) ये (सनितुः) अच्छे प्रकार विभाग करते हुए आपके (निधाना) पदार्थों के स्थापन करने हैं (याः) जो (ते) आप के (ऋतस्य) सत्य कारण के (भद्राः) सेवन और (रशनाः) स्वाद लेने योग्य पदार्थों को (गोपाः) रक्षा करनेवाले (अभिरक्षन्ति) सब ओर से पालते हैं उन सब पदार्थों को (अत्र) यहाँ मैं (अपश्यम्) देखूँ ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अनुक्रम अर्थात् एक के पीछे एक, एक के पीछे एक ऐसे क्रम से समस्त पदार्थ के कारण और सयोग को जानते है वे पदार्थवेत्ता होते हैं ॥५॥

आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम् ।
शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे मैं (ते) तेरे (आत्मानम्) सब के अधिष्ठाता आत्मा को (मनसा) विज्ञान से (आरात्) दूर से वा निकट से (अपश्यम्) देखूँ वैसे तू मेरे आत्मा को देख जैसे मैं तेरे (अवः) पालने को वा (पतत्रि) गिरने के स्वभाव को और (शिरः) जो सेवन किया जाता उस शिर का देखूँ वैसे तू मेरे उक्त पदार्थ को देख जैसे (अरेणुभिः) धूलि से रहित (सुगेभिः) सुख से जिनमे जाते उन (पथिभिः) मार्गों से (जेहमानम्) उत्तम यत्न करते (दिवा) अन्तरिक्ष मे (पतयन्तम्) जाते हुए (पतङ्गम्) प्रत्येक स्थान मे पहुँचनेवाले अग्नि-रूप घोड़े को (अजानाम्) देखूँ वैसे तू भी देख ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है। जो अपने वा पराये आत्मा के जाननेवाले विज्ञान से उत्पन्न कार्यों की परीक्षा द्वारा कारण गुणो को जानते हैं वे सुख से विद्वान् होते हैं जो विन ढपे, विन धूल के सयोग अन्तरिक्ष मे अग्नि आदि पदार्थों के योग से विमानादिको को चलाते हैं वे दूर देश को भी शीघ्र जाने को योग्य होते है ॥ ६ ॥

अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानळादिद्ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (यदा) जब (ग्रसिष्ठ) अतीव खानेवाला (मर्तः) मनुष्य (अनु, भोगम्) अनुकूल भोग को (आनट्) प्राप्त होता है तब (आत्, इत्) उसी समय (ओषधीः) यवादि ओषधियो को (अजीगः) निरन्तर प्राप्त हो जैसे (अत्र) इस विद्या और योगाभ्यास व्यवहार मे मैं (ते) तुम्हारे (जिगीषमाणम्) जीतने की इच्छा करनेवाले (उत्तमम्) उत्तम (रूपम्) रूप को (आ, अपश्यम्) अच्छे प्रकार देखूँ और (गोः) पृथिवी के (पदे) पाने योग्य स्थान मे (ते) आप के (इषः) अन्नादिको को प्राप्त होऊँ वैसे आप भी ऐसा विधान कर इस उक्त व्यवहारादि को प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—उद्योगी पुरुष ही को अच्छे-अच्छे पदार्थ भोग प्राप्त होते हैं किन्तु आलस्य करनेवाले को नहीं, जो मन्त्र के साथ पदार्थविद्या का ग्रहण करते हैं वे अति उत्तम प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।
अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥८॥

पदार्थ—हे (अर्वन्) घोड़े के समान वर्त्तमान ! (त्वा) तेरे (अनु) पीछे (रथः) विमानादि रथ फिर (अनु) पीछे (मर्य्यः) मरण धर्म रखनेवाला मनुष्य फिर (अनु) पीछे (गावः) गौएँ और (कनीनाम्) कामना करते हुए सज्जनों को (अनु) पीछे (भग) ऐश्वर्य तथा (व्रातास) सत्य आचरणों में प्रसिद्ध (देवाः) विद्वान् जन (ते) तेरे (वीर्यम्) पराक्रम को (अनु, ममिरे) अनुकूलता से सिद्ध करते हैं वे उक्त विद्वान् (तव) तेरी (सख्यम्) मित्रता वा मित्र के काम को (अनु, ईयुः) अनुकूलता से प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे अग्नि के अनुकूल विमानादि यानों को मनुष्य प्राप्त होते हैं वैसे अध्यापक और उपदेशक के अनुकूल विज्ञान को प्राप्त होते हैं जो विद्वानों को मित्र करते हैं वे सत्याचरणशील और पराक्रमवान् होते हैं ॥ ८ ॥

हिर॑ण्यशृ॒ङ्गोऽयो॑ अस्य॒ पादा॒ मनो॑जवा॒ अव॑र॒ इन्द्र॑ आसीत् ।

दे॒वा इद॑स्य हवि॒रद्य॑माय॒न्यो अर्व॑न्तं प्रथ॒मो अ॒ध्यति॑ष्ठत् ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ऐसा है कि (हिरण्यशृङ्गः) जिस के तेजःप्रकाश शृङ्गों के समान हैं तथा जिस (अस्य) इस बिजुलीरूप अग्नि के (मनोजवाः) मन के समान वेगवाले (अयः) प्राप्तिसाधक धातु (पादाः) जिन से चलें उन पैरों के समान हैं वह (अवरः) एक निराला (इन्द्रः) सूर्य (आसीत्) है और (यः) जो (प्रथमः) विख्यात (अर्वन्तम्) वेगवाले अश्वरूप अग्नि का (अध्यतिष्ठत्) अधिष्ठाता होता जिस (अस्य) इसके सम्बन्ध में (हविरद्यम्) खाने योग्य होमने के पदार्थ (इत्) ही को (देवाः) विद्वान् वा भूमि आदि तेंतीस देव (आयन्) प्राप्त हैं वह बहुतों में व्याप्त होनेवाला बिजुली के समान अग्नि है ऐसा जानो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस जगत् में तीन प्रकार का अग्नि है, एक अति सूक्ष्म जो कारण रूप कहाता दूसरा वह जो सूक्ष्म मूर्त्तिमान् पदार्थों में व्याप्त होनेवाला और तीसरा स्थूल सूर्यादि स्वरूपवाला जो इस को गुण, कर्म, स्वभाव से जान कर इस का अच्छे प्रकार प्रयोग करते हैं वे निरन्तर सुखी होते हैं ॥ ९ ॥

ई॒र्मान्ता॑सः॒ सिलि॑कमध्यमासः॒ सं शूर॑णासो दि॒व्यासो॒ अत्याः॑ ।

हं॒सा इ॑व श्रेणि॒शो य॑तन्ते॒ यदाक्षि॑षुर्दि॒व्यमज्म॒मश्वाः॑ ॥१०॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (यत्) जो (सिलिकमध्यमासः) स्थान में प्रसिद्ध हुए (ईर्मान्तासः) कम्पन जिन का अन्त (शूरणासः) हिंसक अर्थात् कलायन्त्र को प्रबलता से ताड़ना देते हुए प्रकाशमान (दिव्यासः) दिव्यगुण, कर्म, स्वभाववाले (अत्याः) निरन्तर जानेवाले (अश्वाः) शीघ्र जानेवाले अग्न्यादि रूप घोड़े (हंसाइव) हंसों के समान (श्रेणिशः) पङ्क्ति-सी किये हुए वर्त्तमान (सं, यतन्ते) अच्छा प्रयत्न कराते हैं और (दिव्यम्) अन्तरिक्ष में हुए (अज्मम्) मार्ग को (आक्षिषुः) व्याप्त होते हैं उन वायु, अग्नि और जलादिकों को कार्यों में अच्छे प्रकार लगाओ ॥ १० ॥

भावार्थ—जो शिलिकादि यन्त्रों से अर्थात् जिन में कोठे-दर-कोठे कलाओं के होते हैं उन यन्त्रों से बिजुली आदि उत्पन्न कर और विमान आदि यानों में उन का सम्प्रयोग कर कार्यसिद्धि को करते हैं वे मनुष्य बड़ी भारी लक्ष्मी को पाते हैं ॥१०॥

तव॒ शरी॑रं पतयि॒ष्ण्व॑र्व॒न्तव॑ चि॒त्तं वात॑ इव॒ ध्रजी॑मान् ।

तव॒ शृङ्गा॑णि॒ विष्ठि॑ता पुरु॒त्रार॑ण्येषु॒ जर्भु॑राणा चरन्ति ॥११॥

पदार्थ—हे (अर्वन्) गमनशील घोड़े के समान वर्त्ताव रखनेवाले ! जैसे (पतयिष्णु) गमनशील विमान आदि यान वा (तव) तेरा (शरीरम्) शरीर वा (ध्रजीमान्) गतिवाला (वातइव) पवन के समान तव तेरा (चित्तम्) चित्त वा (पुरुत्रा) बहुत (अरण्येषु) वनों में (विष्ठिता) विशेषता से ठहरे हुए (जर्भुराणा) अत्यन्त पुष्ट (शृङ्गाणि) सींगों के तुल्य ऊँचे वा उत्कृष्ट अत्युत्तम काम अग्नि से (चरन्ति) चलते हैं वैसे (तव) तेरे इन्द्रिय और प्राण वर्त्तमान हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—जिन्हों से चलाई हुई बिजुली मन के समान जाती वा पर्वतों के शिखरों के समान विमान आदि यान रचे हैं और जो वन की आग के समान अग्नि के घरों में अग्नि जलाकर विमान आदि रथों को चलाते हैं वे सर्वत्र भूगोल में विचरते हैं ॥ ११ ।

उप॒ प्रागा॒च्छस॑नं वा॒ज्यर्वा॑ देव॒द्रीचा॒ मन॑सा॒ दीध्या॑नः ।

अ॒जः पु॒रो नी॑यते॒ नाभि॑र॒स्यानु॑ प॒श्चात्क॒वयो॑ यन्ति रे॒भाः ॥१२॥

पदार्थ—जो (दीध्यानः) देदीप्यमान (अजः) कारणरूप से अजन्मा (वाजी) वेगवान् (अर्वा) घोड़े के समान अग्नि (देवद्रीचा) विद्वानों का सत्कार करते हुए (मनसा) मन से (अस्य) इस कलाघर के (शसनम्) ताड़न को (उप, प्रागात्) सब प्रकार से प्राप्त किया जाता है जिस से इसका (नाभिः) बन्धन (पुरः) प्रथम से और (पश्चात्) पीछे (नीयते) प्राप्त किया जाता है जिस को (रेभाः) शब्दविद्या को जाने हुए (कवयः) मेधावी बुद्धिमान् जन (अनु, यन्ति) अनुग्रह से चाहते हैं उस को सब सेवें ॥ १२ ॥

भावार्थ—खींचना वा ताड़ना आदि शिल्पविद्याओं के विना अग्नि आदि पदार्थ कार्यों के सिद्ध करनेवाले नहीं होते हैं ॥ १२ ॥

उप॒ प्रागा॑त्पर॒मं यत्स॒धस्थ॒मर्वाँ॒ अच्छा॑ पि॒तरं॑ मा॒तरं॑ च ।

अ॒द्या दे॒वाञ्जुष्ट॑तमो॒ हि ग॒म्या अथा शा॑स्ते दा॒शुषे॒ वार्या॑णि ॥१३॥

पदार्थ—(यत्) जो (देवान्) विद्वान् वा दिव्य भोग और गुणों को (जुष्टतमः) अतीव सेवता हुआ (अर्वान्) अग्नि आदि पदार्थरूपी घोड़ों को (अद्य) आज के दिन (परमम्) उत्तम (सधस्थम्) एक साथ के स्थान को (मातरम्) उत्पन्न करनेवाली माता (पितरं, च) और जन्म करानेवाले पिता वा अध्यापक को (अच्छ, उप प्रागात्) अच्छे प्रकार सब ओर से प्राप्त होता (अथ) अथवा (दाशुषे) देनेवाले के लिए (वार्य्याणि) स्वीकार करने योग्य सुख और (हि) निश्चय से (गम्याः) गमन करने योग्य प्यारी स्त्रियों वा प्राप्त होने योग्य क्रियाओं की (आ, शास्ते) आशा करता है वह अत्यन्त सुख को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

भावार्थ—जो माता-पिता और आचार्य से शिक्षा पाये प्रशंसित स्थानों के निवासी विद्वानों के सङ्ग की प्रीति रखनेवाले सब के सुख देनेवाले वर्त्तमान हैं वे वही उत्तम आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और बिजुली के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एकसौ तिरेसठवां सूक्त और तेरहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अस्येत्यस्य द्विपञ्चाशदृचस्य चतुष्षष्ट्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । अस्यस्यारम्य गौरीर्मिमायेत्येतदन्तानामेकचत्वारिंशतो मन्त्राणां विश्वेदेवाः । तस्याः समुद्रा इत्यस्याः पूर्वभागस्य वाक् । उत्तरार्द्धस्याप । शकमयमित्यस्याः पूर्वभागस्य शकधूमः । चरमभागस्य सोमः । त्रय केशिन इत्यस्या अग्निवायुसूर्याः । चत्वारिवागित्यस्या वाक् । इन्द्रमित्यस्याः कृष्णं नियानमित्यस्याश्च सूर्यः । द्वादशप्रधय इत्यस्याः संवत्सरात्मा कालः । यस्ते स्तन इत्यस्याः सरस्वती । यज्ञेनेत्यस्याः साध्याः । समानमेतदित्यस्याः सूर्यः पर्जन्यो वाऽग्नयो वा । दिव्यं सुपर्णमित्यस्याः सरस्वान् सूर्यो वा देवता ॥ १, ९, २७, ३५, ४०, ५० विराट् त्रिष्टुप्, ३—८, ११, १८, २६, ३१, ३३, ३४, ३७, ४३, ४६, ४७, ४९ निचृत् त्रिष्टुप्, २, १०, १३, १६, १७, १९, २१, २४ २८, ३२, ५२ त्रिष्टुप्, १४, ३९, ४१, ४४, ४५ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ १२, १५, २३ जगती, २९, ३६ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । २० भुरिक् पङ्क्तिः, २२, २५, ४८ स्वराट् पङ्क्तिः; ३०, ३८ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ४२ भुरिग् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । ५१ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब एकसौ चौंसठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में तीन प्रकार के अग्नि के विषय को कहते हैं—

अ॒स्य वा॒मस्य॑ पलि॒तस्य॒ होतु॒स्तस्य॒ भ्राता॑ मध्य॒मो अ॒स्त्यश्नः॑ ।

तृ॒तीयो॒ भ्राता॑ घृ॒तपृ॑ष्ठो अ॒स्यात्रा॑पश्यं वि॒श्पतिं॑ स॒प्तपु॑त्रम् ॥१॥

पदार्थ—(वामस्य) शिल्प के गुणों से प्रशंसित (पलितस्य) वृद्धावस्था को प्राप्त (अस्य) इस सज्जन का बिजुलीरूप पहला (होतुः) देने वा हवन करनेवाले (तस्य) उस के (भ्राता) बन्धु के समान (अश्नः) पदार्थों का भक्षण करनेवाला (मध्यमः) पृथिवी आदि लोकों में प्रसिद्ध हुआ दूसरा और (घृतपृष्ठः) घृत वा जल जिस के पीठ पर अर्थात् ऊपर रहता वह (अस्य) इसके (भ्राता) भ्राता के समान (तृतीयः) तीसरा (अस्ति) है (अत्र) यहाँ (सप्तपुत्रम्) सात प्रकार के तत्त्वों से उत्पन्न (विश्पतिम्) प्रजाजनों की पालना करनेवाले सूर्य को मैं (अपश्यम्) देखूं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । इस जगत् में तीन प्रकार का अग्नि है एक बिजुलीरूप, दूसरा काष्ठादि में जलता हुआ भूमिस्थ और तीसरा वह है जो कि सूर्यमण्डलस्थ होकर समस्त जगत् की पालना करता है ॥ १ ॥

अब अग्नि के प्रयोग से विमान आदि यान के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

स॒प्त यु॑ञ्जन्ति॒ रथ॒मेक॑चक्र॒मेको॒ अश्वो॑ वहति स॒प्तना॑मा ।

त्रि॒नाभि॑ च॒क्रम॒जर॑मन॒र्वं यत्रे॒मा विश्वा॒ भुव॒नाधि॑ त॒स्थुः ॥२॥

पदार्थ—(यत्र) जहाँ (एकचक्रम्) एक सब कलाओं के घूमने के लिए जिस में चक्कर है उस (रथम्) विमान आदि यान को (सप्तनामा) सप्तनामों

वाला (एकः) एक (अश्वः) शीघ्रगामी वायु वा अग्नि (वहति) पहुँचाता है वा जहाँ (सप्त) सात कलों के घर (युञ्जन्ति) युक्त होते हैं वा जहाँ (इमा) ये (विश्वा) समस्त (भुवना) लोकलोकान्तर (अधि,तस्थुः) अधिष्ठित होते हैं वहाँ (अनर्वम्) प्राकृत प्रसिद्ध घोड़ों से रहित (अजरम्) और जीर्णता से रहित (त्रिनाभि) तीन जिस में बन्धन उस (चक्रम्) एक चक्कर को शिल्पी जन स्थापन करें ॥ २ ॥

भावार्थ - जो लोग बिजुली और जलादि रूप घोड़ों से युक्त विमानादि रथ को बना सब लोकों के अधिष्ठान अर्थात् जिस में सब लोक ठहरते हैं उस आकाश में गमनाऽगमन सुख से करें वे समग्र ऐश्वर्य को प्राप्त हों ॥ २ ॥

इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।

सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥३॥

पदार्थ—(यत्र) जिस में (गवाम्) किरणों के (सप्त) सात (नाम) नाम (निहिता) निरन्तर धरे स्थापित किये हुए हैं और वहाँ (स्वसारः) बहिनों के समान वर्त्तमान (सप्त) सात कला (अभि, सं, नवन्ते) समान मिलती हैं (सप्त) सात (अश्वाः) शीघ्रगामी अग्नि पदार्थ (वहन्ति) पहुँचाते हैं उस (इमम्) इस (सप्तचक्रम्) सात चक्करवाले (रथम्) रथ को (ये) जो (सप्त) सातजन (अधि, तस्थुः) अधिष्ठित होते हैं वे इस जगत् में सुखी होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो स्वामी, अध्यापक अध्येता, रचनेवाले, नियमकर्त्ता और चलानेवाले अनेक चक्कर और तत्त्वादियुक्त विमानादि यानों को रचने को जानते हैं वे प्रशंसित होते हैं । जिन में छेदन वा आकर्षण गुणवाले किरण वर्त्तमान हैं वहाँ प्राण भी है ॥ ३ ॥

को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ।

भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित्को विद्वांसमुप गात्प्रष्टुमेतत् ॥४॥

पदार्थ—(यत्) जिस (प्रथमम्) प्रख्यात प्रथम अर्थात् सृष्टि के पहले (जायमानम्) उत्पन्न होते हुए (अस्थन्वन्तम्) हड्डियों से युक्त देह को (भूम्याः) भूमि के बीच (अनस्था) हड्डियों से रहित (असुः) प्राण (असृक्) रुधिर और (आत्मा) जीव (बिभर्त्ति) धारण करता उसको (क्व, स्वित्) कहीं भी (कः) कौन (ददर्श) देखता है (कः) और कौन (एतत्) इस उक्त विषय के (प्रष्टुम्) पूछने को (विद्वांसम्) विद्वान् के (उप, गात्) समीप जावे ॥ ४ ॥

भावार्थ - जब सृष्टि के पहले ईश्वर ने सब के शरीर बनाये तब कोई जीव इन का देखनेवाला न हुआ । जब उनमें जीवात्मा प्रवेश किये तब प्राण आदि वायु, रुधिर आदि धातु और जीव भी मिलकर देह को धारण करते हुए और चेष्टा करते हुए इत्यादि विषय की प्राप्ति के लिए विद्वान् को कोई ही पूछने को जाता है किन्तु सब नहीं ॥ ४ ॥

पाकः पृच्छामि मनसाऽविजानन्देवानामेना निहिता पदानि ।

वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून्वि तत्निरे कवय ओतवा उ ॥५॥१४॥

पदार्थ—जो (कवयः) बुद्धिमान जन (ओतवै) विस्तार के लिए (बष्कये) देखने योग्य (वत्से) सन्तान के निमित्त (सप्त) सात (तन्तून्) विस्तृत धातुओं को (अधि, वि, तत्निरे) अनेक प्रकार से अधिक-अधिक विस्तारते हैं (उ) उन्हीं (देवानाम्) दिव्य विद्वानों के (एना) इन (निहिता) स्थापित किये हुए (पदानि) प्राप्त होने वा जानने योग्य पदों को, अधिकारों को (अविजानन्) न जानता हुआ (पाकः) ब्रह्मचर्यादि तपस्या से परिपक्व होने योग्य मैं (मनसा) अन्तःकरण से (पृच्छामि) पूछता हूँ ॥ ५ ॥

भावार्थ —मनुष्यों को योग्य है कि बाल्यावस्था को लेकर अविदित शास्त्रों को विद्वानों से पढ़कर दूसरों को पढ़ाने से सब विद्याओं को फैलावें ॥ ५ ॥

अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्र कवीन्पृच्छामि विद्मने न विद्वान् ।

वि यस्तस्तम्भ षळिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥६॥

पदार्थ—(अचिकित्वान्) अविद्वान् मैं (चित्) भी (अत्र) इस विद्याव्यवहार में (चिकितुषः) अज्ञानरूपी रोग के दूर करनेवाले (कवीन्) पूरी विद्यायुक्त आप्तविद्वानों को (विद्वान्) विद्यावान् (विद्मने) विशेष जानने के लिए (न) जैसे पूछे वैसे (पृच्छामि) पूछता हूँ (यः) जो (षट्) छः (इमा) इन (रजांसि) पृथिवी आदि स्थूल तत्त्वों को (वि, तस्तम्भ) इकट्ठा करता है (अजस्य) प्रकृति अर्थात् जगत् के कारण वा जीव के (रूपे) रूप में (किम्) क्या (स्वित् अपि) ही (एकम्) एक हुआ है इस को तुम कहो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जैसे अविद्वान् विद्वानों को पूछके विद्वान् होते हैं वैसे विद्वान् भी परम विद्वानों को पूछकर विद्या की वृद्धि करें ॥ ६ ॥

इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः ।

शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥७॥

पदार्थ—हे (अङ्ग) प्यारे (यः) जो (अस्य) इस (वामस्य) प्रशंसित (वेः) पक्षी के (निहितम्) धरे हुए (पदम्) पद को (वेद) जानता है वह (इह) इस प्रश्न में (ईम्) सब ओर से उत्तर (ब्रवीतु) कह देवे जैसे (वसानाः) भूल ओढ़े हुई (गावः) गौएँ (क्षीरम्) दूध को (दुह्रते) पूरा करतीं अर्थात् दुहाती हैं वा वृक्ष (पदा) पग से (उदकम्) जल को (अपुः) पीते हैं वैसे (शीर्ष्णः, अस्य) इस के शिर के (वव्रिम्) स्वीकार करने योग्य सब व्यवहार को जानें ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे पक्षी अन्तरिक्ष में भ्रमते हैं वैसे ही सब लोक अन्तरिक्ष में भ्रमते हैं, जैसे, गौएँ बछड़ों के लिए दूध देकर बढ़ती हैं वैसे कारण कार्यों को बढ़ाते हैं वा जैसे वृक्ष जड़ से जल पीकर बढ़ते हैं वैसे कारण से कार्य बढ़ता है ॥७॥

अब सूर्यादिकों की कार्य कारण व्यवस्था को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे ।

सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥८॥

पदार्थ—(बीभत्सुः) जो भयङ्कर (गर्भरसा) जिस के गर्भ में रसरूप विद्यमान (निविद्धा) निरन्तर बँधी हुई (सा) वह (माता) पृथिवी (धीती) धारण से (अग्रे) सृष्टि के पूर्व (पितरम्) सूर्य के (ऋते) विना सब का (आ, बभाज) अच्छे प्रकार सेवन करती है जिस को (हि) निश्चय के साथ (मनसा) विज्ञान से (सं, जग्मे) सङ्गत होते, प्राप्त होते उस को प्राप्त होकर (नमस्वन्तः) प्रशंसित अन्नयुक्त होकर (इत्) ही (उपवाकम्) जिस में वचन मिलता उस भाग को (ईयुः) प्राप्त हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—यदि सूर्य के विना पृथिवी हो तो अपनी शक्ति से सब को क्यों न धारण करे जो पृथिवी न हो तो सूर्य आप ही प्रकाशमान कैसे न हो इस कारण इस सृष्टि में अपने-अपने स्वभाव से सब पदार्थ स्वतन्त्र हैं और सापेक्ष व्यवहार में परतन्त्र भी हैं ॥ ८ ॥

युक्ता मातासीद्धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद्गर्भो वृजनीष्वन्तः ।

अमीमेद्वत्सो अनु गामपश्यद्विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥९॥

पदार्थ—जो (गर्भः) ग्रहण करने के योग्य पदार्थ (वृजनीषु) वर्जनीय कक्षाओं में (अन्तः) भीतर (अतिष्ठत्) स्थिर होता है जिसके (दक्षिणायाः) दाहिनी (धुरि) धारण करनेवाली धुरी में (माता) पृथिवी (युक्ता) जुड़ी हुई (आसीत्) है और (वत्सः) बछड़ा (गाम्) गौ को जैसे वैसे (अमीमेत्) प्रक्षेप करता है तथा (त्रिषु) तीन (योजनेषु) बन्धनों में (विश्वरूप्यम्) समस्त पदार्थों में हुए भाव को (अन्वपश्यत्) अनुकूलता से देखता है वह पदार्थ विद्या के जानने को योग्य है ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे गर्भरूप मेघ चलते हुए बद्दलों में विराजमान है वैसे सबको मान्य देनेवाली भूमि आकर्षणों से युक्त है, जैसे बछड़ा गौ के पीछे जाता है वैसे यह भूमि सूर्य का अनुभ्रमण करती है जिसमें समस्त सुपेद, हरे, पीले, लाल आदि रूप हैं वही सबका पालन करनेवाली है ॥९॥

तिस्रो मातॄस्त्रीन्पितॄन्बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्ति ।

मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् ॥१०॥१५॥

पदार्थ—जो (तिस्रः) तीन (मातॄः) उत्तम, मध्यम अधम भूमियों तथा (त्रीन्) अग्नि, बिजुली और सूर्यरूप तीन (पितॄन्) पालक अग्नियों को (ईम्) सब ओर से (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (ऊर्ध्वः) ऊपर, ऊँचा (एकः) एक सूत्रात्मा वायु (तस्थौ) स्थिर होता है जो विद्वान् जन उसको (अव, ग्लापयन्ति) कहते सुनते अर्थात् उसके विषय में वार्त्तालाप करते हैं तथा (अविश्वमिन्वाम्) जो सबसे न सेवन की गई (विश्वविदम्) सब लोग उसको प्राप्त होते उस (वाचम्) वाणी को (मन्त्रयन्ते) सब ओर से विचारपूर्वक गुप्त कहते हैं वे (अमुष्य) उस दूरस्थ (दिवः) प्रकाशमान सूर्य के (पृष्ठे) परभाग में विराजमान होते हैं वे (न) नहीं दुःख को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—जो सूत्रात्मा वायु, अग्नि, जल और पृथिवी को धारण करता है उसको अभ्यास से जानके सत्य वाणी का औरों के लिए उपदेश करे ॥ १० ॥

अब विशेष कर काल की व्यवस्था को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्त्ति चक्रं परि द्यामृतस्य ।

आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥११॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! तू (अत्र) इस संसार में जो (द्वादशारम्) जिसके बारह अङ्ग हैं वह (चक्रम्) चक्र के समान वर्त्तमान संवत्सर (द्याम्) प्रकाशमान सूर्य के (परि, वर्वर्त्ति) सब ओर से निरन्तर वर्त्तमान है (तत्) वह (जराय) हानि के लिए (नहि) नहीं होता है जो इस संसार में (ऋतस्य) सत्य कारण से (सप्त) सात (शतानि) सौ (विंशतिः) बीस (च) भी (मिथुनासः) संयोग से उत्पन्न हुए (पुत्राः) पुत्रों के समान वर्त्तमान तत्त्व विषय (आ, तस्थुः) अपने-अपने विषयों में लगे हैं उनको जान ॥ ११ ॥

भावार्थ—काल अनन्त अपरिणामी और विभु वर्त्तमान है न उसकी कभी उत्पत्ति है और न नाश है इस जगत् के कारण में सात सौ बीस जो तत्त्व हैं वे मिलके

स्थूल ईश्वर के निर्माण किये हुए योग से उत्पन्न हुए हैं इनका कारण अज और नित्य है जबतक अलग-अलग इन तत्त्वों को प्रत्यक्ष में न जाने तब तक विद्या की वृद्धि के लिए मनुष्य यत्न किया करें ॥ ११ ॥

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षळर आहुरर्पितम् ॥१२॥

पदार्थ हे मनुष्यो ! तुम (पञ्चपादम्) क्षण, मुहूर्त, प्रहर, दिवस, पक्ष, ये पांच पग जिसके (पितरम्) पिता के तुल्य पालना करनेवाले (द्वादशाकृतिम्) बारह महीने जिसका आकार (पुरीषिणम्) और मिले हुए पदार्थों की प्राप्ति वा हिंसा करनेवाले अर्थात् उनकी मिलावट को अलग-अलग करनेहारे संवत्सर को (दिवः) प्रकाशमान सूर्य के (परे) परले (अर्धे) आधे भाग में विद्वान् (आहुः) कहते हैं, बताते है (अथ) इसके अनन्तर (इमे) ये (अन्ये) और विद्वान् जन (षळरे) जिसमें छः ऋतु आराकप और (सप्तचक्रे) सात चक्र घूमने की परिधि विद्यमान उस (उपरे) मेघमण्डल में (विचक्षणम्) वाणी के विषय को (अर्पितम्) स्थापित (आहुः) कहते हैं उसको जानो ॥ १२ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम इस मन्त्र में काल के अवयव कहने को अभीष्ट हैं जिस विभु, एकरस, सनातन काल में समस्त जगत् उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयान्त लब्ध होता है उसके सूक्ष्मत्व से उस काल का बोध कठिन है इससे इसको प्रयत्न से जानो ॥ १२ ॥

पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः ॥१३॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (पञ्चारे) जिसमें पांच तत्त्व अराकप हैं (परिवर्त-माने) और जो सब ओर से वर्तमान (तस्मिन्) उस (चक्रे) पहिये के समान ढुलकते हुए पञ्चतत्त्व के पञ्चीकरण में (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोक (आ, तस्थुः) अच्छे प्रकार स्थिर होते हैं (तस्य) उसका (अक्षः) अगला भाग अर्थात् जो उसमें प्रथम ईश्वर है वह (न) नहीं (तप्यते) कष्ट को प्राप्त होता अर्थात् संसार के सुख दुःख को अनुभव नहीं करता (सनाभिः) और जिसका समान बन्धन है अर्थात् क्रिया के साथ में लगा हुआ है और (भूरिभारः) जिनमें बहुत भार है, बहुत कार्य-कारण आरोपित हैं वह काल (सनात्) सनातनपन से (एव) नहीं (शीर्यते) नष्ट होता ॥ १३ ॥

भावार्थ—जैसे यह चक्ररूप कारण, काल, आकाश और दिशात्मक जगत् परमेश्वर में व्याप्य है वैसे ही काल, आकाश और दिशाओं में कार्यकारणात्मक जगत् व्याप्य है ॥ १३ ॥

सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (सनेमि) समान नेमि, नाभिवाला (अजरम्) जरा दोष से रहित (चक्रम्) चक्र के समान वर्तमान कालचक्र (उत्तानायाम्) उत्तम विस्तरे हुए जगत् में (वि, वावृते) विशेष कर बार-बार आता है और उस कालचक्र को (दश) दश प्राण (युक्ताः) युक्त (वहन्ति) बहाते है। जो (सूर्यस्य) सूर्य का (चक्षुः) व्यक्ति, प्रकटता करनेवाला भाग (रजसा) लोकों के साथ (आवृतम्) सब ओर से आवरण को (एति) प्राप्त होता है अर्थात् ढंप जाता है (तस्मिन्) उसमें (विश्वा) समस्त (भुवनानि) भूगोल (आर्पिता) स्थापित हैं ऐसा तुम जानो ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो विभु नित्य और सब लोकों का आधार, समय वर्तमान है उसी काल की गति से सूर्य आदि लोक प्रकाशित होते है ऐसा सब लोगों को जानना चाहिए ॥ १४ ॥

अब पृथिव्यादिकों की रचना विशेष की व्याख्या करते हैं—

साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षळिद्यमा ऋषयो देवजा इति ।
तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥१५॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! तुम (साकंजानाम्) एक साथ उत्पन्न हुए पदार्थों के बीच में जिस (एकजम्) एक कारण से उत्पन्न महत्त्व को (सप्तथम्) सातवाँ (आहुः) कहते हैं जहाँ (षट्) छः (देवजाः) देदीप्यमान बिजुली से उत्पन्न हुए (यमाः) नियन्ता अर्थात् सबको यथायोग्य व्यवहारों में वर्तानेवाले (ऋषयः) आप सब में मिलनेवाले ऋतु वर्तमान हैं (तेषाम्) उनके बीच जिन (धामशः) प्रत्येक स्थान में (इष्टानि) मिले हुए पदार्थों को ईश्वर ने (विहितानि) रचा है और जो (रूपशः) रूपों के साथ (विकृतानि) अवस्थान्तर को प्राप्त हुए (स्थात्रे) स्थित कारण के बीच (रेजन्ते) चलायमान होते उन सबको (इत्) ही (इति) इस प्रकार से जानो ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो इस जगत् में पदार्थ हैं वे सब ब्रह्म के निश्चित किये हुए व्यवहार से एक साथ उत्पन्न होते हैं। यहाँ रचना में क्रम की आकाङ्क्षा नहीं है क्योंकि परमेश्वर के सर्वव्यापक और अनन्त सामर्थ्यवाला होने से इससे वह आप अचलित हुआ सब भुवनों को चलाता है और वह ईश्वर विकाररहित होता हुआ सबको विकारयुक्त करता है जैसे क्रम से ऋतु वर्तमान हैं और अपने-अपने चिह्नों को समय-समय में उत्पन्न करते हैं वैसे ही उत्पन्न होते हुए पदार्थ अपने-अपने गुणों को प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥

अब विद्वान् और विदुषी स्त्रियों के विषय को कहते हैं—

स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः ।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात्स पितुष्पितासत् ॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिनको (अक्षण्वान्) विज्ञानवान् पुरुष (पश्यत्) देखे (अन्धः) और अन्ध अर्थात् अज्ञानी पुरुष (न) नहीं (वि, चेतत्) विविध प्रकार से जाने और जिनको (सतीः) विद्या तथा उत्तम शिक्षादि शुभ गुणों से युक्त (स्त्रियः) स्त्रियाँ (आहुः) कहती हैं (तान्) उन्हीं (मे) मेरे (पुंसः) पुरुषों को जानो (यः) जो (कविः) विक्रमण करने अर्थात् प्रत्येक पदार्थ में क्रम-क्रम से पहुँचानेवाली बुद्धि रखनेवाला (पुत्रः) पवित्र, वृद्धि को प्राप्त पुरुष (ता) उन इष्ट पदार्थों को (ईम्) सब ओर से (आ, विजानात्) अच्छे प्रकार जाने (सः) वह विद्वान् हो और (यः) जो विद्वान् हो (सः) वह (पितुः) पिता का (पिता) पिता (असत्) हो यह तुम (चिकेत) जानो ॥ १६ ॥

भावार्थ—जिसको विद्वान् जानते हैं उसको अविद्वान् नहीं जान सकते, जैसे विद्वान् जन पुत्रों को पढ़ाकर विद्वान् करें वैसे विदुषी स्त्रियाँ कन्याओं को विदुषी करें। जो पृथ्वी से लेके ईश्वर पर्यन्त पदार्थों के गुण, कर्म, स्वभावों को जान धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करते है वे जवान भी बुड्ढों के पिता होते है ॥ १६ ॥

फिर पृथिव्यादिकों के कार्यकारण विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात्क्व स्वित्सूते नहि यूथे अन्तः ॥१७॥

पदार्थ—जो (वत्सम्) उत्पन्न हुए मनुष्यादि संसार को (बिभ्रती) धारण करती हुई (गौः) गमन करनेवाली जिस (परेण) परले वा (अवरेण) उरले (पदा) प्राप्त करनेवाले गमनरूप चरण से (अवः) नीचे से (उदस्थात्) उठती है (एना) इससे (परः) पीछे से उठती है जो (यूथे) समूह के (अन्तः) बीच में (कम्, स्वित्) किसी को (अर्धम्) आधा (सूते) उत्पन्न करती है (सा) वह (कद्रीची) अप्रत्यक्ष गमन करनेवाली (क्व, स्वित्) किसी में (नहि) नहीं (परा, अगात्) पर को लौट जाती ॥ १७ ॥

भावार्थ—यह पृथिवी सूर्य से नीचे-ऊपर और उत्तर-दक्षिण को जाती है इसकी गति विद्वानों के बिना न देखी जाती इसके परले आधे भाग में सदा अन्धकार और उरले आधे भाग में प्रकाश वर्तमान है, बीच में सब पदार्थ वर्तमान हैं सो यह पृथिवी माता के तुल्य सबकी रक्षा करती है ॥ १७ ॥

अवः परेण पितरं यो अस्यानुवेद पर एनावरेण ।
कवीयमानः क इह प्र वोचद्देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥१८॥

पदार्थ—जो विद्वान् (अस्य) इसके (अवः) अधोभाग से और (परेण) परभाग से वर्तमान (पितरम्) पालनेवाले सूर्य को (अनुवेद) विद्या पढ़ने के अनन्तर जानता है (यः) जो (परः) पर और (एना) इस उक्त (अवरेण) नीचे के मार्ग से जानता है वह (कवीयमानः) अतीव विद्वान् है और (कुतः) कहाँ से यह (देवम्) दिव्य गुण सम्पन्न (मनः) अन्तःकरण (प्रजातम्) उत्पन्न हुआ ऐसा (इह) इस विद्या वा जगत् में (कः) कौन (अधि, प्र, वोचत्) अधिकतर कहे ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य बिजुली को लेकर सूर्यपर्यन्त अग्नि को पिता के समान पालनेवाला जानें जिसके परावर भाग में कार्यकारण स्वरूप हैं उसका उपदेश दिव्य अन्तःकरणवाले होकर इस संसार में कहें ॥१८॥

ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः ।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥१९॥

पदार्थ—हे (सोम) ऐश्वर्ययुक्त विद्वन् ! (ये) जो (अर्वाञ्चः) नीचे आनेवाले पदार्थ हैं (तान्, उ) उन्हीं को (पराचः) परे को पहुँचे हुए (आहुः) कहते हैं। और (ये) जो (पराञ्चः) परे से व्यवहार में लाये जाते अर्थात् परभाग में पहुँचनेवाले हैं (तान्, उ) उन्हें तर्क-वितर्क से (अर्वाचः) नीचे जाने-वाले (आहुः) कहते हैं उनको जानो (इन्द्रः) सूर्य (च) और वायु (या) जिन भुवनों को धारण करते है (तानि) उनको (युक्ताः) युक्त हुए अर्थात् उनमें सम्बन्ध किये हुए पदार्थ (धुरा) धारण करनेवाली धुरी में जुड़े हुए घोड़ों के (न) समान (रजसः) लोकों को (वहन्ति) बहाते, चलाते हैं उनको हे पढ़ाने और उपदेश करनेवालो ! तुम विदित (चक्रथुः) करो, जानो ॥१९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! यहाँ जो नीचे, ऊपर, परे, उरे, मोटे, सूक्ष्म, छुटाई, बड़ाई के व्यवहार हैं वे सापेक्ष हैं, एक की अपेक्षा से यह इससे ऊँचा जो कहा जाता है वही दोनों कथनों को प्राप्त होता है, जो इससे परे है वही और से नीचे है, जो इससे मोटा है वह और से सूक्ष्म, जो-जो इससे छोटा है वह और से बड़ा, गुरु है, यह तुम जानो। यहाँ कोई वस्तु अपेक्षा रहित नहीं है और न निराधार ही है ॥१९॥

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥२०॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (सुपर्णा) सुन्दर पंखोंवाले (सयुजा) समान सम्बन्ध रखनेवाले (सखाया) मित्रों के समान वर्त्तमान (द्वा) दो पखेरू (समानम्) एक (वृक्षम्) जो काटा जाता उस वृक्ष का (परि, षस्वजाते) आश्रय करते हैं (तयोः) उनमें से (अन्यः) एक (पिप्पलम्) उस वृक्ष के पके हुए फल को (स्वादु) स्वादुपन से (अत्ति) खाता है और (अन्यः) दूसरा (अनश्नन्) न खाता हुआ (अभि, चाकशीति) सब ओर से देखता है अर्थात् सुन्दर चलने-फिरने वा क्रियाजन्य काम को जाननेवाले व्याप्यव्यापकभाव से साथ ही सम्बन्ध रखते हुए मित्रों के समान वर्त्तमान जीव और ईश—जीवात्मा समान कार्य-कारणरूप ब्रह्माण्ड देह का आश्रय करते हैं। उन दोनों अनादि जीव, ब्रह्म में जो जीव है वह पाप-पुण्य से उत्पन्न सुख-दुःखात्मक भोग को स्वादुपन से भोगता है और दूसरा ब्रह्मात्मा कर्मफल को न भोगता हुआ उस भोगते हुए जीव को सब ओर से देखता अर्थात् साक्षी है, यह तुम जानो ॥२०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में रूपकालङ्कार है। जीव, परमात्मा और जगत् का कारण ये तीन पदार्थ अनादि और नित्य हैं। जीव और ईश परमात्मा या क्रम से अल्प-अनन्त, चेतन-विज्ञानवान्, सदा विलक्षण, व्याप्यव्यापकभाव से संयुक्त और मित्र के समान वर्त्तमान हैं वैसे ही जिस अव्यक्त परमाणुरूप कारण से कार्य्यरूप जगत् होता है वह भी अनादि और नित्य है समस्त जीव पापपुण्यात्मक कार्यों को करके उनके फलों को भोगते हैं और ईश्वर एक सब ओर से व्याप्त होता हुआ न्याय से पाप-पुण्य के फल को देने से न्यायाधीश के समान देखता है ॥२०॥

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।

इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ॥२१॥

पदार्थ—(यत्र) जिस (विदथा) विज्ञानमय परमेश्वर में (सुपर्णाः) शोभन कर्मवाले जीव (अमृतस्य) मोक्ष के (भागम्) सेवने योग्य अंश को (अनिमेषम्) निरन्तर (अभिस्वरन्ति) सम्मुख कहते अर्थात् प्रत्यक्ष कहते वा जिस परमेश्वर में (विश्वस्य) समग्र (भुवनस्य) लोकलोकान्तर का (गोपाः) पालनेवाला (इनः) स्वामी, सूर्यमण्डल (आ, विवेश) प्रवेश करता अर्थात् सूर्यादि लोकलोकान्तर सब लय को प्राप्त होते हैं, जो इसको जानता है (सः) वह (धीरः) ध्यानवान् पुरुष (अत्र) इस परमेश्वर में (पाकम्) परिपक्व व्यवहार वाले (मा) मुझको उपदेश देवे ॥२१॥

भावार्थ—जिस परमात्मा में सवितृमण्डल को आदि लेकर लोक-लोकान्तर और द्वीप द्वीपान्तर सब लय हो जाते हैं तद्विषयक उपदेश से ही साधकजन मोक्ष पाते हैं, और किसी तरह से मोक्ष को प्राप्त नहीं हो सकते ॥२१॥

यस्मिन्वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।

तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥२२॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (यस्मिन्) जिस (विश्वे) समस्त (वृक्षे) वृक्ष पर (मध्वदः) मधु को खानेवाले (सुपर्णाः) सुन्दर पंखों से युक्त भौंरा आदि पक्षी (नि, विशन्ते) स्थिर होते हैं (अधि, सुवते, च) और आधारभूत होकर अपने बालकों को उत्पन्न करते (तस्य, इत्) उसीके (पिप्पलम्) जल के समान निर्मल फल को (अग्रे) आगे (स्वादु) स्वादिष्ट (आहुः) कहते हैं और (तत्) वह (न) न (उत्, नशत्) नष्ट होता है अर्थात् वृक्षरूप इस जगत् में मधुर कर्मफलों को खानेवाले उत्तम कर्मयुक्त जीव स्थिर होते और उसमें सन्तानों को उत्पन्न करते हैं उसका जल के समान निर्मल कर्मफल संसार में होना इसको आगे उत्तम कहते हैं और नष्ट नहीं होता अर्थात् पीछे अशुभ कर्मों के करने से संसाररूप वृक्ष का जो फल चाहिए सो नहीं मिलता (यः) जो पुरुष (पितरम्) पालनेवाले परमात्मा को (न, वेद) नहीं जानता वह इस संसार के उत्तम फल को नहीं पाता ॥२२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में रूपकालङ्कार है। अनादि अनन्त काल से यह विश्व उत्पन्न होता और नष्ट होता है। जीव उत्पन्न होते और मरते भी जाते हैं, इस संसार में जीवों ने जैसा कर्म किया वैसा ही अवश्य ईश्वर के न्याय से भोग्य है, कर्म जीव का भी नित्यसम्बन्ध है जो परमात्मा और उसके गुण, कर्म, स्वभावों के अनुकूल आचरण को न जानकर मनमाने काम करते हैं वे निरन्तर पीड़ित होते हैं और जो उससे विपरीत हैं वे सदा आनन्द भोगते हैं ॥२२॥

यद्गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद्वा त्रैष्टुभं निरतक्षत ।

यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ॥२३॥

पदार्थ—(ये) जो लोग (यत्) जो (गायत्रे) गायत्रीछन्दोवाच्य वृत्ति में (गायत्रम्) गानेवालों की रक्षा करनेवाला (अधि, आहितम्) स्थित है (त्रैष्टुभात्, वा) अथवा त्रिष्टुप् छन्दोवाच्य वृत्त से (त्रैष्टुभम्) त्रिष्टुप् में प्रसिद्ध हुए अर्थ को (निरतक्षत) निरन्तर विस्तारते हैं (वा) वा (यत्) जो (जगति) संसार में (जगत्) प्राणि आदि जगत् (पदम्) जानने योग्य (आहितम्) स्थित है (तत्) उसको (विदुः) जानते हैं (ते) वे (इत्) ही (अमृतत्वम्) मोक्षभाव को (आनशुः) प्राप्त होते हैं ॥२३॥

भावार्थ—जो सृष्टि के पदार्थ और समस्त ईश्वरकृत रचना को जानकर परमात्मा का सब ओर ध्यान कर विद्या और धर्म की उन्नति करते हैं वे मोक्ष पाते हैं ॥२३॥

गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् ।

वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥२४॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो जगदीश्वर (गायत्रेण) गायत्री छन्द (अर्कम्) ऋक् (अर्केण) ऋचाओं के समूह से (साम) साम (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् छन्द वा तीन वेदों की विद्याओं को स्तुतियों से (वाकम्) यजुर्वेद (द्विपदा) दो पद जिसमें विद्यमान वा (चतुष्पदा) चार पदवाले (अक्षरेण) नाशरहित (वाकेन) यजुर्वेद से (वाकम्) अथर्ववेद और (सप्त) गायत्री आदि सात छन्दयुक्त (वाणी) वेदवाणी को (प्रति, मिमीते) प्रतिमान करता है और जो उसके ज्ञान को (मिमते) मान करते हैं वे कृतकृत्य होते हैं ॥२४॥

भावार्थ—जिस जगदीश्वर ने वेदस्थ अक्षर, पद, वाक्य, छन्द, अध्याय आदि बनाये हैं उसको सब मनुष्य धन्यवाद देवें ॥२४॥

जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद्रथन्तरे सूर्यं पर्यपश्यत् ।

गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ॥२५॥

पदार्थ—जो जगदीश्वर (जगता) संसार के साथ (सिन्धुम्) नदी आदि को (दिवि) प्रकाश (रथन्तरे) और अन्तरिक्ष में (सूर्यम्) सवितृलोक को (अस्तभायत्) रोकता व सबको (पर्यपश्यत्) सब ओर से देखता है वा जिन (गायत्रस्य) गायत्री छन्द से अच्छे प्रकार से साधे हुए ऋग्वेद की उत्तेजना से (तिस्र, समिधः) अच्छे प्रकार प्रज्वलित तीन पदार्थों को अर्थात् भूत, भविष्यत् वर्त्तमान तीनों काल के सुखों को (आहुः) कहते हैं (ततः) उनसे (मह्ना) बड़े (महित्वा) प्रशंसनीय भाव से (प्र, रिरिचे) अलग होता है अर्थात् अलग गिना जाता है वह सब को पूजने योग्य है ॥२५॥

भावार्थ—जब ईश्वर ने जगत् बनाया तभी नदी और समुद्र आदि बनाये। जैसे सूर्य आकर्षण से भूगोलों को धारण करता है वैसे सूर्य आदि जगत् को ईश्वर धारण करता है। जो सब जीवों के समस्त पाप-पुण्यरूपी कर्मों को जानके फलों को देता है वह ईश्वर सब पदार्थों से बड़ा है ॥२५॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।

श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचम् ॥२६॥

पदार्थ—जैसे (सुहस्तः) सुन्दर जिसके हाथ और (गोधुक्) गौ को दुहता हुआ मैं (एताम्) इस (सुदुघाम्) अच्छे दुहाती अर्थात् कामों को पूरा करती हुई (धेनुम्) दूध देनेवाली गौरूप विद्या को (उप, ह्वये) स्वीकार करूँ (उत) और (एनाम्) इस विद्या को आप भी (दोहत्) दुहते वा जिस (श्रेष्ठम्) उत्तम (सवम्) ऐश्वर्य को (सविता) ऐश्वर्य का देनेवाला (नः) हमारे लिए (साविषत्) उत्पन्न करे। वा जैसे (अभीद्धः) सब ओर से प्रदीप्त अर्थात् अति तपता हुआ (घर्मः) घाम वर्षा करता है (तदु) उसी सबको जैसे मैं (सु, प्र, वोचम्) अच्छे प्रकार कहूँ वैसे तुम भी इसको अच्छे प्रकार कहो ॥२६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में रूपकालङ्कार है। अध्यापक विद्वान् जन पूरी विद्या से भरी हुई वाणी को अच्छे प्रकार देवें। जिसमें उत्तम ऐश्वर्य को शिष्य प्राप्त हों। जैसे सविता समस्त जगत् को प्रकाशित करता है वैसे उपदेशक लोग सब विद्याओं को प्रकाशित करें ॥२६॥

अब गौ और पृथिवी के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् ।

दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥२७॥

पदार्थ—जैसे (हिङ्कृण्वती) हिंकारती और (मनसा) मन से (वत्सम्) बछड़े को (इच्छन्ती) चाहती हुई (इयम्) यह (अघ्न्या) न मारने योग्य गौ (अभि, आ, अगात्) सब ओर से आती वा जो (अश्विभ्याम्) सूर्य और वायु से (पयः) जल वा दूध (दुहाम्) दुहते हुए पदार्थों में वर्त्तमान पृथिवी है (सा) वह (वसूनाम्) अग्नि आदि वसुसंज्ञकों में (वसुपत्नी) वसुओं की पालनेवाली (महते) अत्यन्त (सौभगाय) सुन्दर ऐश्वर्य के लिए (वर्धताम्) बढ़े, उन्नति को प्राप्त हो ॥२७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे पृथिवी महान् ऐश्वर्य को बढ़ाती है वैसे गौएँ अत्यन्त सुख देती हैं इससे ये गौएँ कभी किसी को मारना न चाहिएँ ॥२७॥

गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ ।

सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥२८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (वावशाना) निरन्तर कामना करती हुई (गौः) गौ (मिषन्तम्) मिमयाते हुए (वत्सम्) बछड़े को तथा (मूर्द्धानम्) मूँड को (अनु, हिङ्, अकृणोत्) लखकर हिंकारती अर्थात् मूँड चाटती हुई हिंकारती है और (मातवै) मान करने (उ) ही के लिए उस बछड़े के दुःख को (अमीमेत्) नष्ट करती वैसे (पयोभिः) जलों के साथ वर्त्तमान पृथिवी (घर्मम्) आतप को (सृक्वाणम्) रचते हुए दिन को और (मायुम) वाणी को प्रसिद्ध करती हुई (पयते) अपने भूचक्र में जाती है और सुख का (अभि, मिमाति) सब ओर से मान करती अर्थात् तौल करती है ॥२८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे गौओं के पीछे बछड़े और बछड़ों के पीछे गौएँ जातीं वैसे पृथिवियों के पीछे पदार्थ और पदार्थों के पीछे पृथिवी जाती हैं ॥२८॥

फिर भूमि के विषय में कहा है—

अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमांति मायुं ध्वसनावधि श्रिता ।

सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यं विद्युद्भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥२९॥

पदार्थ—(सः) सो (अयम्) यह बछड़े के समान मेघ भूमि को लख (शिङ्क्ते) गर्जन का अव्यक्त शब्द करता है कौन कि (येन) जिससे (ध्वसनौ) ऊपर-नीचे और बीच में जाने को परकोटा उसमें (अधि, श्रिता) धरी हुई (अभीवृता) सब ओर पवन से आवृत (गौः) पृथिवी (मायुम्) परिमित मार्ग को (प्रति, मिमाति) प्रति जाती है (सा) वह (चित्तिभिः) परमाणुओं के समूहों से (मर्त्यम्) मरणधर्मा मनुष्य को (चकार) करती है उस पृथिवी (हि) ही में (भवन्ती) वर्त्तमान (विद्युत्) बिजुली (वव्रिम्) अपने रूप को (नि, औहत) निरन्तर तर्क-वितर्क से प्राप्त होती है ॥२९॥

भावार्थ—जैसे पृथिवी से उत्पन्न हो, उठकर अन्तरिक्ष में बढ़, फैल मेघ पृथिवी में वृक्षादि को अच्छे सींच उनको बढ़ाता है वैसे पृथिवी सबको बढ़ाती है और पृथिवी में जो बिजुली है वह रूप को प्रकाशित करती है । जैसे शिल्पिजन क्रम से किसी पदार्थ के इकट्ठा करने और विज्ञान से घर आदि बनाता है वैसे परमेश्वर ने यह सृष्टि बनाई है ॥२९॥

फिर ईश्वर के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अनच्छये तुरगातु जीवमेजद्ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम् ।

जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥३०॥

पदार्थ—जो ब्रह्म (तुरगातु) शीघ्र गमन को (अनत्) पुष्ट करता हुआ (जीवम्) जीव को (एजत्) कम्पाता और (पस्त्यानाम्) घरों के अर्थात् जीवों के शरीर के (मध्ये) बीच (ध्रुवम्) निश्चल होता हुआ (शये) सोता है जहाँ (अमर्त्यः) अनादित्व से मृत्युधर्मरहित (जीवः) जीव (स्वधाभिः) अन्नादि और (मर्त्येन) मरणधर्मा शरीर के साथ (सयोनिः) एक स्थानी होता हुआ (मृतस्य) मरण-स्वभाववाले जगत् के बीच (आ, चरति) आचरण करता है उस ब्रह्म में सब जगत् बसता है यह जानना चाहिए ॥३०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में रूपकालङ्कार है । जो चलते हुए पदार्थों में अचल, अनित्य पदार्थों में नित्य और व्याप्य पदार्थ में व्यापक परमेश्वर है उसकी व्याप्ति के बिना सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्तु भी नहीं है इससे सब जीवों को जो अन्तर्यामिरूप से स्थित हो रहा है वह नित्य उपासना करने योग्य है ॥३०॥

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।

स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥३१॥

पदार्थ—मैं (गोपाम्) सबकी रक्षा करने (अनिपद्यमानम्) मन आदि इन्द्रियों को न प्राप्त होने और (पथिभिः) मार्गों से (आ, च) आगे और (परा, च) पीछे (चरन्तम्) प्राप्त होनेवाले परमात्मा वा विचरते हुए जीव को (अपश्यम्) देखता हूँ (सः) वह जीवात्मा (सध्रीचीः) साथ प्राप्त होती हुई गतियों को (सः) वह जीव और (विषूचीः) नाना प्रकार की कर्मानुसार गतियों को (वसानः) ढाँपता हुआ (भुवनेषु) लोकलोकान्तरों के (अन्तः) बीच (आ, वरीवर्ति) निरन्तर अच्छे प्रकार वर्त्तमान है ॥३१॥

भावार्थ—सबके देखनेवाले परमेश्वर के देखने को जीव समर्थ नहीं और परमेश्वर सबको यथार्थ भाव से देखता है । जैसे वस्त्रों आदि से ढँपा हुआ पदार्थ नहीं देखा जाता वैसे जीव भी सूक्ष्म होने से नहीं देखा जाता । ये जीव कर्मगति से सब लोकों में भ्रमते हैं इनके भीतर बाहर परमात्मा स्थित हुआ पापपुण्य के फल देनेरूप न्याय से सबको सर्वत्र जन्म देता है ॥३१॥

फिर जीव विषयमात्र को कहा है—

य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।

स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश ॥३२॥

पदार्थ—(यः) जो जीव (ईम्) क्रियामात्र (चकार) करता है (सः) वह (अस्य) इस अपने रूप को (न) नहीं (वेद) जानता है (यः) जो (ईम्) समस्त क्रिया को (ददर्श) देखता और अपने रूप को जानता है (सः) वह (तस्मात्) इससे (हिरुक्) अलग होता हुआ (मातुः) माता के (योना) गर्भाशय के (अन्तः) बीच (परिवीतः) सब ओर से ढँपा हुआ (बहुप्रजाः) बहुत बार जन्म लेनेवाला (निर्ऋतिम्) भूमि को (इत्) ही (नु) शीघ्र (आ, विवेश) प्रवेश करता है ॥३२॥

भावार्थ—जो जीव कर्ममात्र करते किन्तु उपासना और ज्ञान को नहीं प्राप्त होते हैं वे अपने स्वरूप को भी नहीं जानते । और जो कर्म, उपासना और ज्ञान में निपुण हैं वे अपने स्वरूप और परमात्मा के जानने को योग्य हैं । जीवों के अगले जन्मों का आदि और पीछे अन्त नहीं है । जब शरीर को छोड़ते हैं तब आकाशस्थ हो गर्भ में प्रवेश कर और जन्म पाकर पृथिवी में चेष्टा क्रियावान् होते हैं ॥ ३२ ॥

फिर प्रकारान्तर से उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् ।

उत्तानयोश्चम्वो३र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥३३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जहाँ (पिता) पितृस्थानी सूर्य (दुहितुः) कन्यारूप उषा प्रभातवेला के (गर्भम्) किरणरूपी वीर्य को (आ, अधात्) स्थापित करता है वहाँ (चम्वोः) दो सेनाओं के समान स्थित (उत्तानयोः) उपरिस्थ ऊँचे स्थापित किये हुए पृथिवी और सूर्य के (अन्तः) बीच मेरा (योनिः) घर है (अत्र) इस जन्म में (मे) मेरा (जनिता) उत्पन्न करनेवाला (पिता) पिता (द्यौः) प्रकाशमान सूर्य, बिजुली के समान तथा (अत्र) यहाँ (मे) मेरा (नाभिः) बन्धनरूप (बन्धुः) भाई के समान प्राण और (इयम्) यह (मही) बड़ी (पृथिवी) भूमि के समान (माता) मान देनेवाली माता वर्त्तमान है यह जानना चाहिए ॥ ३३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । भूमि और सूर्य सब के माता-पिता और बन्धु के समान वर्त्तमान हैं यही हमारा निवासस्थान है जैसे सूर्य अपने से उत्पन्न हुई उषा के बीच किरणरूपी वीर्य को संस्थापन कर दिनरूपी पुत्र को उत्पन्न करता है वैसे माता-पिता प्रकाशमान पुत्र को उत्पन्न करें ॥ ३३ ॥

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।

पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥३४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (त्वा) आप को (पृथिव्याः) पृथिवी के (परम्) पर (अन्तम्) अन्त को (पृच्छामि) पूछता हूँ (यत्र) जहाँ (भुवनस्य) लोकसमूह का (नाभिः) बन्धन है उस को (पृच्छामि) पूछता हूँ (वृष्णः) वीर्यवान् वर्षानेवाले (अश्वस्य) घोड़ों के समान वीर्यवान् के (रेतः) वीर्य को (त्वा) आप को (पृच्छामि) पूछता हूँ और (वाचः) वाणी के (परमम्) परम (व्योम) व्यापक अवकाश अर्थात् आकाश को आप से (पृच्छामि) पूछता हूँ ॥ ३४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में चार प्रश्न हैं और उन के उत्तर अगले मन्त्र में वर्त्तमान हैं । ऐसे ही जिज्ञासुओं को विद्वान् जन नित्य पूछने चाहिएँ ॥ ३४ ॥

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।

अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥३५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (पृथिव्याः) भूमि का (परः) पर (अन्तः) भाग (इयम्) यह (वेदिः) जिस में शब्दों को जानें वह आकाश और वायुरूप वेदि (अयम्) यह (यज्ञः) यज्ञ (भुवनस्य) भूगोल समूह का (नाभिः) आकर्षण से बन्धन (अयम्) यह (सोमः) सोमलतादि रस वा चन्द्रमा (वृष्णः) वर्षा करने और (अश्वस्य) शीघ्रगामी सूर्य के (रेतः) वीर्य के समान और (अयम्) यह (ब्रह्मा) चारों वेदों का प्रकाश करनेवाला विद्वान् वा परमात्मा (वाचः) वाणी का (परमम्) उत्तम (व्योम) अवकाश है उनको यथावत् जानो ॥ ३५ ॥

भावार्थ—पिछले मन्त्र में कहे हुए प्रश्नों के यहां क्रम से उत्तर जानने चाहिएँ पृथिवी के चारों ओर आकाशयुक्त वायु एक-एक ब्रह्माण्ड के बीच सूर्य और जल उत्पन्न करनेवाली ओषधियां तथा पृथिवी के बीच विद्या की अवधि समस्त वेदों का पढ़ना और परमात्मा का उत्तम ज्ञान है यह निश्चय करना चाहिए ॥ ३५ ॥

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।

ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ॥३६॥

पदार्थ—जो (सप्त) सात (अर्धगर्भाः) आधे गर्भरूप अर्थात् पञ्चीकरण को प्राप्त महत्तत्त्व, अहङ्कार, पृथिवी, अप्, तेज, वायु, आकाश के सूक्ष्म अवयवरूप शरीरधारी (भुवनस्य) संसार के (रेतः) बीज को उत्पन्न कर (विष्णोः) व्यापक परमात्मा की (प्रदिशा) आज्ञा से अर्थात् उसकी आज्ञारूप वेदोक्त व्यवस्था से (विधर्मणि) अपने से विरुद्ध धर्मवाले आकाश में (तिष्ठन्ति) स्थित होते हैं (ते) (धीतिभिः) कर्म और (ते) वे (मनसा) विचार के साथ (परिभुवः) सब ओर से विद्या में कुशल (विपश्चितः) विद्वान् जन (विश्वतः) सब ओर से (परि, भवन्ति) तिरस्कृत करते अर्थात् उनके यथार्थ भाव के जानने को विद्वान् जन भी कष्ट पाते हैं ॥ ३६ ॥

भावार्थ—जो महत्तत्त्व, अहंकार, पञ्चसूक्ष्मभूत सात पदार्थ हैं वे पञ्चीकरण को प्राप्त हुए सब स्थूल जगत् के कारण हैं, चेतन से विरुद्ध धर्मवाले जड़रूप अन्तरिक्ष में सब वसते हैं । जो यथावत् सृष्टिक्रम को जानते हैं वे विद्वान् जन सब ओर से सत्कार को प्राप्त होते हैं और जो इस को नहीं जानते वे सब ओर से तिरस्कार को प्राप्त होते हैं ॥ ३६ ॥

न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि ।
यदा मागन्प्रथमजा ऋतस्यादिद्वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥३७॥

पदार्थ—(यदा) जब (प्रथमजाः) उपादान कारण प्रकृति से उत्पन्न हुए पूर्वोक्त महत्तत्त्वादि (मा) मुझ जीव को (आ, अगन्) प्राप्त हुए अर्थात् स्थूल शरीरावस्था हुई (आत्, इत्) उसके अनन्तर ही (ऋतस्य) सत्य और (अस्याः) इस (वाचः) वाणी के (भागम्) भाग को विद्या विषय को मैं (अश्नुवे) प्राप्त होता हूं । जबतक (इदम्) इस शरीर को प्राप्त नहीं (अस्मि) होता हूं तब तक उस विषय को (यदिव) जैसे का वैसा (न) नहीं (वि जानामि) विशेषता से जानता हूं । किन्तु (मनसा) विचार से (संनद्धः) अच्छा बंधा हुआ (निण्यः) अन्तर्हित अर्थात् भीतर उस विचार को स्थिर किये (चरामि) विचरता हूं ॥३७॥

भावार्थ—अल्पज्ञता और अल्पशक्तिमत्ता के कारण साधनरूप इन्द्रियों के बिना जीव सिद्ध करने योग्य वस्तु को नहीं ग्रहण कर सकता जब श्रोत्रादि इन्द्रियों को प्राप्त होता है तब जानने को योग्य होता है जबतक विद्या से सत्य पदार्थ को नहीं जानता तब तक अभिमान करता हुआ पशु के समान विचरता है ॥ ३७ ॥

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्तान्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥३८॥

पदार्थ—जो (स्वधया) जल आदि पदार्थों के साथ वर्त्तमान (अपाङ्) उल्टा (प्राङ्) सीधा (एति) प्राप्त होता है और जो (गृभीतः) ग्रहण किया हुआ (अमर्त्यः) मरणधर्मरहित जीव (मर्त्येन) मरणधर्मरहित शरीरादि के साथ (सयोनिः) एक स्थानवाला हो रहा है (ता) वे दोनों (शश्वन्ता) सनातन (विषूचीना) सर्वत्र जाने और (वियन्ता) नाना प्रकार से प्राप्त होनेवाले वर्त्तमान हैं उन में से उस (अन्यम्) एक जीव और शरीर आदि को विद्वान् जन (नि, चिक्युः) निरन्तर जानते और अविद्वान् (अन्यम्) उस एक को (न, नि, चिक्युः) वैसा नहीं जानते ॥ ३८ ॥

भावार्थ—इस जगत् में दो पदार्थ वर्त्तमान हैं, एक जड़, दूसरा चेतन, उनमें जड़ और को और अपने रूप को नहीं जानता और चेतन अपने को और दूसरे को जानता है दोनों अनुत्पन्न, अनादि और विनाशरहित वर्त्तमान हैं जड़ अर्थात् शरीरादि परमाणुओं के संयोग से स्थूलावस्था को प्राप्त हुआ चेतन जीव संयोग वा वियोग से अपने रूप को नहीं छोड़ता किन्तु स्थूल वा सूक्ष्म पदार्थ के संयोग से स्थूल वा सूक्ष्म-सा भान होता है परन्तु वह एकतार स्थित जैसा है वैसा ही ठहरता है ॥ ३८ ॥

फिर ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥३९॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिस (ऋचः) ऋग्वेदादि वेदमात्र से प्रतिपादित (अक्षरे) नाशरहित (परमे) उत्तम (व्योमन्) आकाश के बीच व्यापक परमेश्वर में (विश्वे) समस्त (देवाः) पृथिवी, सूर्यलोकादि देव (अधि, निषेदुः) आधेयरूप से स्थित होते हैं । (यः) जो (तत्) उस परब्रह्म परमेश्वर को (न, वेद) नहीं जानता वह (ऋचा) चार वेद से (किम्) क्या (करिष्यति) कर सकता है और (ये) जो (तत्) उस परब्रह्म को (विदुः) जानते हैं (ते) (इमे, इत्) वे ही ये ब्रह्म में (समासते) अच्छे प्रकार स्थिर होते हैं ॥ ३९ ॥

भावार्थ—जो सब वेदों का परमप्रमेय पदार्थरूप और वेदों से प्रतिपाद्य ब्रह्म अमर और जीव तथा कार्यकारणरूप जगत् है, इन सभों में से सबका आधार अर्थात् ठहरने का स्थान आकाशवत् परमात्मा व्यापक और जीव तथा कार्यकारणरूप जगत् व्याप्य है इसी से सब जीव आदि पदार्थ परमेश्वर में निवास करते हैं । और जो वेदों को पढ़के इस प्रमेय को नहीं जानते वे वेदों से कुछ भी फल नहीं पाते और जो वेदों को पढ़के जीव, कार्य-कारण और ब्रह्म को गुण, कर्म, स्वभाव से जानते हैं वे सब धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सिद्ध होते आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ३९ ॥

अब विदुषी स्त्री के विषय में कहा है—

सूयवसाद्भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥४०॥२१॥

पदार्थ—हे (अघ्न्ये) न हनने योग्य गौ के समान वर्त्तमान विदुषी ! तू (सूयवसात्) सुन्दर सुखों को भोगनेवाली (भगवती) बहुत ऐश्वर्यवती (भूयाः) हो कि (हि) जिस कारण (वयम्) हम लोग (भगवन्तः) बहुत ऐश्वर्ययुक्त (स्याम) हों । जैसे गौ (तृणम्) तृण को खा (शुद्धम्) शुद्ध (उदकम्) जल को पी और दूध देकर बछड़े आदि को सुखी करती है वैसे (विश्वदानीम्) समस्त जिस में दान उस क्रिया का (आचरन्ती) सत्य-आचरण करती हुई (अथो) इसके अनन्तर सुख को (अद्धि) भोग और विद्यारस को (पिब) पी ॥ ४० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जबतक माताजन वेदवित् न हों तबतक उसके सन्तान भी विद्यावान् नहीं होते हैं । जो विदुषी हो स्वयंवर विवाह कर सन्तानों को उत्पन्न कर और उनको अच्छी शिक्षा देकर उन्हें विद्वान् करती हैं वे गौओं के समान समस्त जगत् को आनन्दित करती हैं ॥ ४० ॥

फिर विदुषी के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥४१॥

पदार्थ—हे स्त्री-पुरुषो ! जो (एकपदी) एक वेद का अभ्यास करनेवाली वा (द्विपदी) दो वेद जिसने अभ्यास किये वा (चतुष्पदी) चार वेदों की पढ़ानेवाली वा (अष्टापदी) चार वेद और चार उपवेदों की विद्या से युक्त वा (नवपदी) चार वेद चार उपवेद और व्याकरणादि शिक्षायुक्त (बभूवुषी) अतिशय करके विद्याओं में प्रसिद्ध होती और (सहस्राक्षरा) असंख्यात अक्षरोंवाली होती हुई (परमे) सब से उत्तम (व्योमन्) आकाश के समान व्याप्त निश्चल परमात्मा के निमित्त प्रयत्न करती है और (गौरीः) गौरवर्णयुक्त विदुषी स्त्रियों को (मिमाय) शब्द कराती अर्थात् (सलिलानि) जल के समान निर्मल वचनों को (तक्षती) छांटती अर्थात् अविद्यादि दोषों से अलग करती हुई (सा) वह संसार के लिए अत्यन्त सुख करनेवाली होती है ॥ ४१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो स्त्री समस्त साङ्गोपाङ्ग वेदों को पढ़के पढ़ाती हैं वे सब मनुष्यों की उन्नति करती हैं ॥ ४१ ॥

अब वाणी के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ।
ततः क्षरत्यक्षरं तद्विश्वमुप जीवति ॥४२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (तस्याः) उस वाणी के (समुद्राः, अधि, वि, क्षरन्ति) शब्दरूपी अर्णव समुद्र अक्षरों की वर्षा करते हैं (तेन) उस काम से (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) दिशा और चारों उपदिशा (जीवन्ति) जीती हैं और (ततः) उससे जो (अक्षरम्) न नष्ट होनेवाला अक्षरमात्र (क्षरति) वर्षता है (तत्) उससे (विश्वम्) समस्त जगत् (उप, जीवति) उपजीविका को प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

भावार्थ—समुद्र के समान आकाश है उसके बीच रत्नों के समान शब्द, शब्दों के प्रयोग करनेवाले रत्नों का ग्रहण करनेवाले हैं उन शब्दों के उपदेश सुनने से सब की जीविका और सब का आश्रय होता है ॥ ४२ ॥

अब ब्रह्मचर्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण ।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥४३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! मैं (आरात्) समीप से (शकमयम्) शक्तिमय समर्थ (धूमम्) ब्रह्मचर्य कर्मानुष्ठान के अग्नि के धूम को (अपश्यम्) देखता हूं (एना, अवरेण) इस नीचे इधर-उधर जाते हुए (विषूवता) व्याप्तिमान् धूम से (परः) पीछे (वीराः) विद्याओं में व्याप्त पूर्ण विद्वान् (पृश्निम्) आकाश और (उक्षाणम्) सींचनेवाले मेघ को (अपचन्त) पचाते अर्थात् ब्रह्मचर्य विषयक अग्निहोत्राग्नि तपते हैं (तानि) व (धर्माणि) धर्म (प्रथमानि) प्रथम ब्रह्मचर्य संज्ञक (आसन्) हुए हैं ॥ ४३ ॥

भावार्थ—विद्वान् जन अग्निहोत्रादि यज्ञों से मेघमण्डलस्थ जल को शुद्ध कर सब वस्तुओं को शुद्ध करते हैं इससे ब्रह्मचर्य के अनुष्ठान से सब के शरीर, आत्मा और मन को शुद्ध करावें । सब मनुष्यमात्र समीपस्थ धूम और अग्नि वा और पदार्थ को प्रत्यक्षता से देखते हैं और अगले-पिछले भाव को जाननेवाला विद्वान् तो भूमि से लेके परमेश्वर पर्यन्त वस्तु समूह को साक्षात् कर सकता है ॥ ४३ ॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम् ।
विश्वमेको अभि चष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥४४॥

पदार्थ—हे पढ़ने-पढ़ानेवाले लोगो के परीक्षको ! तुम जैसे (केशिनः) प्रकाशवान् वा अपने गुण को समय पाकर जतानेवाले (त्रयः) तीन अर्थात् सूर्य, बिजुली और वायु (संवत्सरे) संवत्सर अर्थात् वर्ष में (ऋतुथा) वसन्तादि ऋतु के प्रकार से (शचीभिः) जो कर्म उनसे (वि, चक्षते) दिखाते अर्थात् समय-समय के व्यवहार को प्रकाशित कराते हैं (एषाम्) इन तीनों में (एकः) एक बिजुलीरूप अग्नि (वपते) जीवों को उत्पन्न कराता (एकः) सूर्य (विश्वम्) समग्र जगत् को (अभि, चष्टे) प्रकाशित करता और (एकस्य) वायु की (ध्राजिः) गति और (रूपम्) रूप (न) नहीं (ददृशे) दीखता वैसे तुम यहां प्रवर्त्तमान होओ ॥ ४४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम वायु, सूर्य और बिजुली के समान अध्ययन-अध्यापन आदि कर्मों से विद्याओं को बढ़ाओ । जैसे अपने आत्मा का रूप नेत्र से नहीं दीखता वैसे विद्वानों की गति नहीं जानी जाती, जैसे ऋतु संवत्सर को आरम्भ करते हुए समय को विभाग करते हैं वैसे कर्मारम्भ विद्या-अविद्या और धर्म-अधर्म को पृथक्-पृथक् करें ॥ ४४ ॥

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥४५॥

पदार्थ—(ये) जो (मनीषिणः) मन को रोकनेवाले (ब्राह्मणाः) व्याकरण, वेद और ईश्वर के जाननेवाले विद्वान् जन (वाक्) वाणी के (परिमिता) परिमाणयुक्त जो (चत्वारि) नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात चार (पदानि) जानने को योग्य पद हैं (तानि) उन को (विदुः) जानते हैं उन में से (त्रीणि) तीन (गुहा) बुद्धि में (निहिता) धरे हुए हैं (न, इङ्गयन्ति) चेष्टा नहीं करते । जो (मनुष्याः) साधारण मनुष्य हैं वे (वाचः) वाणी के (तुरीयम्) चतुर्थ भाग अर्थात् निपातमात्र को (वदन्ति) कहते हैं ॥ ४५ ॥

भावार्थ—विद्वान् और अविद्वानों में इतना ही भेद है कि जो विद्वान् हैं वे नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात इन चारों को जानते हैं उन में से तीन ज्ञान में रहते हैं चौथे सिद्ध शब्दसमूह को प्रसिद्ध व्यवहार में सब कहते हैं । और जो अविद्वान् हैं वे नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपातों को नहीं जानते किन्तु निपातरूप साधन-ज्ञान रहित प्रसिद्ध शब्द का प्रयोग करते हैं ॥ ४५ ॥

फिर विद्वद्विषयान्तर्गत ईश्वर विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥४६॥

पदार्थ—(विप्राः) बुद्धिमान् जन (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्त (मित्रम्) मित्रवत् वर्त्तमान (वरुणम्) श्रेष्ठ (अग्निम्) सर्वव्याप्त विद्युतादि लक्षणयुक्त अग्नि को (बहुधा) बहुत प्रकारों से, बहुत नामों से (आहुः) कहते हैं (अथो) इसके अनन्तर (सः) वह (दिव्यः) प्रकाश में प्रसिद्ध प्रकाशमय (सुपर्णः) सुन्दर जिसके पालना आदि कर्म (गरुत्मान्) महान् आत्मावाला है इत्यादि बहुत प्रकारों, बहुत नामों से (वदन्ति) कहते हैं तथा वे अन्य विद्वान् (एकम्) एक (सत्) विद्यमान परब्रह्म परमेश्वर को (अग्निम्) सर्वव्याप्त परमात्मारूप (यमम्) सर्व नियन्ता और (मातरिश्वानम्) वायु लक्षण लक्षित भी (आहुः) कहते हैं ॥ ४६ ॥

भावार्थ—जैसे अग्न्यादि पदार्थों के इन्द्र आदि नाम हैं वैसे एक परमात्मा के अग्नि आदि सहस्रों नाम वर्त्तमान हैं । जितने परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव हैं उतने ही इस परमात्मा के नाम हैं यह जानना चाहिए ॥ ४६ ॥

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद्घृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥४७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (अपः) प्राण वा जलों को (वसानाः) ढाँपती हुई (हरयः) हरणशील (सुपर्णाः) सूर्य की किरणें (कृष्णम्) खींचने योग्य (नियानम्) नित्य प्राप्त भूगोल वा विमान आदि यान को वा (दिवम्) प्रकाशमय सूर्य के (उत्, पतन्ति) ऊपर गिरती हैं और (ते) वे (आववृत्रन्) सूर्य के सब ओर से वर्त्तमान हैं (ऋतस्य) सत्यकारण के (सदनात्) स्थान से प्राप्त (घृतेन) जल से (पृथिवी) भूमि (वि, उद्यते) विशेषकर गीली की जाती है उसको (आत्, इत्) इसके अनन्तर ही यथावत् जानो ॥ ४७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अच्छे सीखे हुए घोड़े रथों को शीघ्र पहुँचाते हैं वैसे अग्नि आदि पदार्थ विमान, रथ को आकाश में पहुँचाते हैं जैसे सूर्य की किरणें भूमितल से जल को खींच और वर्षा समस्त वृक्ष आदि को आर्द्र करती हैं वैसे विद्वान् जन सब मनुष्यों को आनन्दित करते हैं ॥ ४७ ॥

अब विद्वद्विषय में शिल्प विषय को कहा है—

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः ॥४८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस रथ में (त्रिशता) तीन सौ (शंकवः) बाँधने वाली कीलों के (न) समान (साकम्) साथ (अर्पिताः) लगाई हुई (षष्टिः) साठ कीलें (न) जैसी कीलें जो कि (चलाचलासः) चल अचल अर्थात् चलती और न चलती और (तस्मिन्) उसमें (एकम्) एक (चक्रम्) पहिया जैसा गोल चक्कर (द्वादश) बारह (प्रधयः) पहियों की हालें अर्थात् हाल लगे हुए पहिये और (त्रीणि) तीन (नभ्यानि) पहियों की बीच की नाभियों में उत्तमता से ठहरनेवाली धुरी स्थापित की हो (तत्) उसको (कः) कौन (उ) तर्क-वितर्क से (चिकेत) जाने ॥ ४८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । कोई ही विद्वान् जैसे शरीर-रचना को जानते हैं वैसे विमान आदि यानों को बनाना जानते हैं, जब जल, स्थल और आकाश में शीघ्र जाने के लिए रथों को बनाने की इच्छा होती है तब उनमें अनेक जल, अग्नि के चक्कर, अनेक बन्धन, अनेक धारण और कीलें रचनी चाहिएँ ऐसा करने से चाही हुई सिद्धि होती है ॥ ४८ ॥

फिर यहाँ विदुषी स्त्री के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि ।
यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः ॥४९॥

पदार्थ—हे (सरस्वति) विदुषी स्त्रि ! (ते) तेरा (यः) जो (शशयः) सोता-सा शान्त और (यः) जो (मयोभूः) सुख की भावना करनेहारा (स्तनः) स्तन के समान वर्त्तमान शुद्ध व्यवहार (येन) जिससे तू (विश्वा) समस्त (वार्याणि) स्वीकार करने योग्य विद्या आदि वा धनों को (पुष्यसि) पुष्ट करती है (यः) जो (रत्नधाः) रमणीय वस्तुओं को धारण करने और (वसुवित्) धनों को प्राप्त होनेवाला और (यः) जो (सुदत्रः) सुदत्र अर्थात् जिससे अच्छे-अच्छे दान हों (तम्) उस अपने स्तन को (इह) यहाँ गृहाश्रम में (धातवे) सन्तानों को पीने को (कः) कर ॥ ४९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे माता अपने स्तन के दूध से सन्तान की रक्षा करती है वैसे विदुषी स्त्री सब कुटुम्ब की रक्षा करती है, जैसे सुन्दर धृतान्न पदार्थों के भोजन करने से शरीर बलवान् होता है वैसे माता की सुशिक्षा को पाकर आत्मा पुष्ट होता है ॥ ४९ ॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥५०॥

पदार्थ—जो (देवाः) विद्वान् जन (यज्ञेन) अग्नि आदि दिव्य पदार्थों के समूह से (यज्ञम्) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के व्यवहार को (अयजन्त) मिलते, प्राप्त होते हैं और जो ब्रह्मचर्य आदि (धर्माणि) धर्म (प्रथमानि) प्रथम (आसन्) हैं (तानि) उनका सेवन करते और कराते हैं (ते, ह) वे ही (यत्र) जहाँ (पूर्वे) पहले अर्थात् जिन्होंने विद्या पढ़ ली (साध्याः) तथा औरों को विद्या-सिद्धि के लिए सेवन करने योग्य (देवाः) विद्वान् जन (सन्ति) हैं वहाँ (महिमानः) सत्कार को प्राप्त हुए (नाकम्) दुःखरहित सुख को (सचन्त) प्राप्त होते हैं ॥ ५० ॥

भावार्थ—जो लोग प्रथमावस्था में ब्रह्मचर्य से उत्तम-उत्तम शिक्षा आदि सेवन करने योग्य कामों को प्रथम करते हैं वे आप्त अर्थात् विद्यादि गुण धर्मादि कार्यों को साक्षात् किये हुए जो विद्वान् उनके समान विद्वान् होकर विद्यानन्द को प्राप्त होकर सर्वत्र सत्कार को प्राप्त होते हैं ॥ ५० ॥

फिर विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

समानमेतदुदकमुच्चैत्यव चाहभिः ।
भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः ॥५१॥

पदार्थ—जो (उदकम्) जल (अहभिः) बहुत दिनों से (उत्, एति) ऊपर को जाता अर्थात् सूर्य के ताप से कण-कण हो और पवन के बल से उठकर अन्तरिक्ष में ठहरता (च) और (अव) नीचे को (च) भी आता अर्थात् वर्षाकाल पा भूमि पर वर्षता है उसके (एतत्) यह पूर्वोक्त विद्वानों का ब्रह्मचर्य अग्निहोत्र आदि धर्मादि व्यवहार (समानम्) तुल्य है । इसी से (पर्जन्याः) मेघ (भूमिम्) भूमि को (जिन्वन्ति) तृप्त करते और (अग्नयः) बिजुली आदि अग्नि (दिवम्) अन्तरिक्ष को (जिन्वन्ति) तृप्त करते अर्थात् वर्षा से भूमि पर उत्पन्न जीव जीते और अग्नि से अन्तरिक्ष वायु मेघ आदि शुद्ध होते हैं ॥५१॥

भावार्थ—ब्रह्मचर्य आदि अनुष्ठानों में किये हुए हवन आदि से पवन और वर्षा जल की शुद्धि होती है उससे शुद्ध जल वर्षने से भूमि पर जो उत्पन्न हुए जीव वे तृप्त होते हैं इससे विद्वानों का पूर्वोक्त ब्रह्मचर्यादि कर्म जल के समान है जैसे ऊपर जाता और नीचे आता वैसे अग्निहोत्रादि से पदार्थ का ऊपर जाना और नीचे आना है ॥ ५१ ॥

फिर सूर्य के दृष्टान्त से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम् ।
अभीपतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ॥५२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (अवसे) रक्षा आदि के लिए (दिव्यम्) दिव्य गुण स्वभावयुक्त (सुपर्णम्) जिसमें सुन्दर गमनशील रश्मि विद्यमान (वायसम्) जो अत्यन्त जानेवाले (बृहन्तम्) सबसे बड़े (अपाम्) अन्तरिक्ष के (गर्भम्) बीच गर्भ के समान स्थित (ओषधीनाम्) सोमादि ओषधियों को (दर्शतम्) दिखानेवाले (वृष्टिभिः) वर्षा से (अभीपतः) दोनों ओर आगे-पीछे जल से युक्त जो मेघादि उनसे (तर्पयन्तम्) तृप्ति करनेवाले (सरस्वन्तम्) बहुत जल जिसमें विद्यमान उस सूर्य के समान वर्त्तमान विद्वान् को (जोहवीमि) निरन्तर ग्रहण करते हैं वैसे इसको तुम भी ग्रहण करो ॥ ५२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्यलोक भूगोलों के बीच स्थित हुआ सबको प्रकाशित करता है वैसे ही विद्वान् जन सब लोकों के मध्य स्थिर होता हुआ सबके आत्माओं को प्रकाशित करता है, जैसे सूर्य वर्षा से सबको सुखी करता है वैसे ही विद्वान् विद्या, उत्तम शिक्षा और उपदेशवृष्टियों से सब जनों को आनन्दित करता है ॥ ५२ ॥

इस सूक्त में अग्नि, काल, सूर्य, विमान आदि पदार्थ तथा ईश्वर, विद्वान् और स्त्री आदि के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एक सौ चौसठवाँ सूक्त और तेईसवाँ वर्ग और बाईसवाँ अनुवाक पूरा हुआ ॥

卐

कयेति पञ्चदशर्चस्य पञ्चषष्ट्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य आगस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ३—५, ११, १२ विराट् त्रिष्टुप्, २, ८, ९ त्रिष्टुप्, १३ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ६, ७, १०, १४ भुरिक् पङ्क्तिः, १५ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचावाले एक सौ पैंसठवें सूक्त का प्रारम्भ है उसमे आदि से विद्वानो के गुणो को कहते हैं—

कया॑ शु॒भा सव॑यसः॒ सनी॑ळाः समा॒न्या म॒रुतः॒ सं मि॑मिक्षुः ।
कया॑ म॒ती कुत॒ एता॑स ए॒तेऽर्च॑न्ति॒ शुष्मं॒ वृष॑णो वसू॒या ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (सवयसः) समान अवस्थावाले (सनीळाः) समीपस्थ (मरुतः) पवनो के समान वर्त्तमान विद्वान् जन (कया) किस (समान्या) तुल्य क्रिया के साथ (शुभा) शुभ गुण, कर्म से (संमिमिक्षुः) अच्छे प्रकार सेचनादि कर्म करते हैं तथा (एतासः) अच्छे प्रकार प्राप्त हुए (वृषणः) वर्षनेवाले (एते) ये (वसूया) अपने को धनो की इच्छा के साथ (कया) किस (मती) मति से (कुतः) कहाँ से (शुष्मम्) बल का (अर्चन्ति) प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । (प्रश्न) जैसे पवन वर्षा कर सबको तृप्त करते हैं वैसे विद्वान् जन भी रागद्वेषरहित धर्मयुक्त किस क्रिया से जनो की उन्नति करावें और किस विज्ञान वा अच्छी क्रिया से सबका सत्कार करें ? इस विषय मे उत्तर यही है कि आप्त सज्जनो की रीति और वेदोक्त क्रिया से उक्त कार्य करें ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

कस्य॒ ब्रह्मा॑णि जुजुषु॒र्युवा॑नः॒ को अ॑ध्व॒रे म॒रुत॒ आ व॑वर्त ।
श्ये॒नाँ इ॑व॒ ध्रज॑तो अ॒न्तरि॑क्षे॒ केन॑ म॒हा मन॑सा रीरमाम ॥२॥

पदार्थ—जो (मरुतः) पवनो के समान वेगयुक्त (युवानः) ब्रह्मचर्य और विद्या से युवावस्था को प्राप्त विद्वान् (कस्य) किसके (ब्रह्माणि) वृद्धि को प्राप्त होते जो अन्न वा धन उनको (जुजुषुः) सेवते हैं और (कः) कौन इस (अध्वरे) न नष्ट करने योग्य धर्मयुक्त व्यवहार मे (आ, ववर्त) अच्छे प्रकार वर्त्तमान हैं हम लोग (केन) कौन (महा) बडे (मनसा) मन से (ध्रजतः) जानेवाले (श्येनानिव) पक्षियो के समान किनको लेकर (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष मे (रीरमाम) सबको रमावें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जसे वायु समारस्थ पदार्थों का सेवन करते हैं वैसे ब्रह्मचर्य और विद्या के बोध से परमर्थी को सेवें, जैसे अन्तरिक्ष में उडते हुए श्येनादि पक्षियो को देखते हैं वैसे ही भूगोल के साथ हम लोग आकाश मे रमे और सबको रमावें इसको विद्वान् ही जान सकते हैं ॥ २ ॥

कुत॒स्त्वमि॑न्द्र॒ माहि॑नः॒ सन्नेको॑ यासि सत्पते॒ किं त॑ इ॒त्था ।
सं पृ॑च्छसे समरा॒णः शु॑भा॒नैर्वो॒चेस्तन्नो॑ हरिवो॒ यत्ते॑ अ॒स्मे ॥३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य युक्त (सत्पते) सज्जनो के पालनेवाले ! (माहिनः) महिमायुक्त (एकः) इकले (सन्) होते हुए (त्वम्) आप सूर्य के समान (कुतः) कहाँ से (यासि) जाते हैं (ते) आपका (इत्था) इस प्रकार से (किम्) क्या है ? हे (हरिवः) प्रशंसित गुणोवाले ! (समराणः) अच्छे प्रकार प्राप्त हुए आप (यत्) जो (ते) आपके मन मे (अस्मे) हम लोगो के लिए वर्त्तना है (तत्) उसको (शुभानैः) उत्तम वचनो से (नः) हम लोगो के प्रति (वोचेः) कहो जिससे आप (सं पृच्छसे) सम्यक् पूछते भी हैं अर्थात् हमारी व्यवस्था आप पूछते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य एकाकी सबको खींचके आप प्रकाशमान होता है वा जैसे आप्त विद्वान् सर्वत्र भ्रमण करता हुआ सबको सत्य पालनेवाले करता है वैसे तू कहाँ जाता है कहाँ से आता है, क्या करता है यह पूछता हूँ, उत्तर कह । धर्मयुक्त मार्गों को जाता हूँ, गुरुकुल से आता हूँ पढ़ाना वा उपदेश करता हूँ यह समाधान है ॥ ३ ॥

ब्रह्मा॑णि मे म॒तयः॒ शं सु॒तासः॒ शुष्म॑ इयर्ति॒ प्रभृ॑तो मे॒ अद्रिः॑ ।
आ शा॑सते॒ प्रति॑ हर्यन्त्यु॒क्थेमा हरी॑ वहत॒स्ता नो॒ अच्छ॑ ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (प्रभृतः) शास्त्रविज्ञान से भरा हुआ (शुष्मः) बलवान् (अद्रिः) मेघ के समान (मे) मेरा उपदेश सबको (इयर्ति) प्राप्त होता वा जैसे (सुतासः) प्राप्त हुए (मतयः) मननशील मनुष्य (मे) मेरे (ब्रह्माणि) धनो वा अन्नों को और (शम्) सुख को (आशासते) चाहते हैं वा (इमा) इन (उक्था) कहने के योग्य पदार्थों की (प्रति, हर्यन्ति) प्रीति से कामना करते हैं वा जैसे (ता) वे (हरी) धारण-आकर्षण गुण (नः) हम लोगो को (अच्छ) अच्छा (वहतः) प्राप्त होते हैं वैसे तुम सब होओ ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो उदार हैं वे मेघ के समान सबके लिए समान सुखो को वर्षाते हैं, सबके लिए विद्यादान की कामना करते हैं, जैसे अपने को सुख की इच्छा करते हैं वैसे औरो को सुख करने और दुःखों का विनाश करने को सब चाहें ॥४॥

अतो॑ व॒यम॑न्त॒मेभि॑र्युजा॒नाः स्वक्ष॑त्रेभिस्त॒न्वः१॒ शुम्भ॑मानाः ।
म॒होभि॒रेताँ॒ उप॑ युज्महे॒ न्विन्द्र॑ स्व॒धामनु॒ हि नो॑ ब॒भूथ॑ ॥५॥२४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त पुरुष ! जिस कारण (हि) ही (नः) हमारे (स्वधाम्) अन्न और जल का (अनु, बभूथ) अनुभव करते हैं (अतः) इससे (वयम्) हम लोग (एतान्) इन पदार्थों को (युजानाः) युक्त और (स्वक्षत्रेभिः) अपने राज्यो से (तन्वः) शरीरो को (शुम्भमानाः) शुभ गुण-युक्त करते हुए (अन्तमेभिः) समीपस्थ (महोभिः) अत्यन्त बड़े कामों से (नु) शीघ्र (उप, युज्महे) उपयोग लेते हैं ॥५॥

भावार्थ—जो शरीर से बल और आरोग्ययुक्त धार्मिक बलिष्ठ विद्वानों से सब कामो का समाधान करते हुए सबके सुख के लिए वर्त्तमान अत्यन्त राज्य के न्याय के लिए उपयोग करते हैं वे शीघ्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥५॥

क्व१॒ स्या वो॑ मरुतः स्व॒धासी॒द्यन्मामेकं॑ स॒मध॑त्ताहि॒हत्ये॑ ।
अ॒हं ह्यु१॒ग्रस्त॑वि॒षस्तुवि॑ष्मा॒न्विश्व॑स्य॒ शत्रो॒रन॑मं वध॒स्नैः ॥६॥

पदार्थ—हे (मरुतः) प्राण के समान वर्त्तमान विद्वानो ! (यत्) जिससे (माम्) मुझ (एकम्) एक को (अहिहत्ये) मेघ के वर्षण होने मे (समधत्त) अच्छे प्रकार धारण करो (स्या) वह (वः) आपका (स्वधा) अन्न और जल (क्व) कहाँ (आसीत्) है वैसे (तुविष्मान्) बलवान् (उग्रः) तीव्र स्वभाव वाला (अहम्) मैं जो (तविषः) बलवान् (विश्वस्य) समग्र (शत्रोः) शत्रु के (वधस्नैः) वध से नहवानेवाले शस्त्र उनके साथ (अनमम्) नमता हूँ (हि) उसी मुझको तुम सुख मे धारण करो ॥६॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्याओ को धारणकर, सूर्य जैसे मेघ का वैसे शत्रुबल को निवृत्त करें वे सब विद्वान् के प्रति पूछें कि जो सबको धारण करनेवाली शक्ति है वह कहाँ है ? सर्वत्र स्थित है यह उत्तर है ॥६॥

भूरि॑ चकर्थ॒ युज्ये॑भिर॒स्मे स॑मा॒नेभि॑र्वृषभ॒ पौंस्ये॑भिः ।
भूरी॑णि॒ हि कृ॒णवा॑मा शविष्ठे॒न्द्र क्रत्वा॑ मरुतो॒ यद्वशा॑म ॥७॥

पदार्थ—हे (वृषभ) उपदेश की वर्षा करनेवाले ! जैसे आप (समानेभिः) समान तुल्य (युज्येभिः) योग्य कर्मों वा (पौंस्येभिः) पुरुषार्थों से (अस्मे) हमारे लिए (भूरि) बहुत सुख (चकर्थ) करते है उन आपके लिए हम लोग (भूरीणि) बहुत सुख (कृणवाम) करें । हे (शविष्ठ) बलवान् (इन्द्र) सब को सुख देनेवाले ! जैसे आप (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि से हम लोगो को विद्वान् करते हैं वैसे हम लोग आपकी सेवा करें । हे (मरुतः) विद्वान् मनुष्यो ! तुम (यत्) जिस की कामना करो उसकी हम भी (वशाम, हि) कामना ही करें ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे इस संसार मे विद्वान् जन पुरुषार्थ से सबको विद्या और उत्तम शिक्षा से युक्त करते हैं वैसे इनको सब सत्कारयुक्त करें । जो सब विद्याओ के पढ़ाने और सबके सुख को चाहनेवाले हो वे पढ़ाने और उपदेश करने मे प्रधान हो ॥७॥

वधीं॑ वृ॒त्रं म॑रुत इन्द्रि॒येण॒ स्वेन॒ भामे॑न तवि॒षो ब॑भू॒वान् ।
अ॒हमे॒ता मन॑वे वि॒श्वश्च॑न्द्राः सु॒गा अ॒पश्च॑कर॒ वज्र॑बाहुः ॥८॥

पदार्थ—हे (मरुतः) प्राण के समान प्रिय विद्वानो ! (वज्रबाहुः) जिस के हाथ मे वज्र है (बभूवान्) ऐसा होनेवाला (अहम्) मैं जैसे सूर्य (वृत्रम्) मेघ को मार (अपः) जलो को (सुगाः) सुन्दर जानेवाले करता है वैसे (स्वेन) अपने (भामेन) क्रोध से और (इन्द्रियेण) मन से (तविषः) बल से शत्रुओं को (वधीम्) मारता हूँ और (मनवे) विचारशील मनुष्य के लिए (विश्वश्चन्द्राः) समस्त सुवर्णादि धन जिनसे होते (एताः) उन लक्ष्मियो को (चकर) करता हूँ ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे सूर्य से प्रेरित वर्षा से समस्त जगत् जीवता है वैसे शत्रुओं से होते हुए विघ्नो को निवारने से सब प्राणी जीवते हैं ॥८॥

अनु॑त्त॒मा ते॑ मघव॒न्नकि॒र्नु न त्वावाँ॑ अस्ति दे॒वता॒ विदा॑नः ।
न जाय॑मानो॒ नश॑ते॒ न जा॒तो यानि॑ करि॒ष्या कृ॑णु॒हि प्र॑वृद्ध ॥९॥

पदार्थ—हे (मघवन्) परमधनवान् विद्वन् (ते) आपका (अनुत्तम्) न प्रेरणा किया हुआ (नकिः) नहीं कोई विद्यमान है और (त्वावान्) तुम्हारे सदृश और (देवता) दिव्य-गुणवाला (विदानः) विद्वान् (न) नहीं (अस्ति) है । तथा (जायमानः) उत्पन्न होनेवाला (नु) शीघ्र (न) नहीं (नशते) नष्ट होता (जातः) उत्पन्न हुआ भी (न) नहीं नष्ट होता । हे (प्रवृद्ध) अत्यन्त विद्या से प्रतिष्ठा को प्राप्त आप (यानि) जो (करिष्या) करने योग्य काम है उनको शीघ्र (आ कृणुहि) अच्छे प्रकार करिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—जैसे अन्तर्यामी ईश्वर से अव्याप्त कुछ भी नहीं विद्यमान है न कोई उसके सदृश उत्पन्न होता, न उत्पन्न हुआ और न होगा, न वह नष्ट होता है

किन्तु ईश्वरभाव से अपने कर्त्तव्य कामों को करता है वैसे ही विद्वानों को होना और जानना चाहिए ॥ ९ ॥

एकस्य चिन्मे विभ्व१स्त्वोजो या नु दधृष्वान् कृणवै मनीषा ।
अहं ह्यु१ग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एषाम् ॥१०॥

पदार्थ—हे (मरुतः) पवनों के समान वर्त्तमान सज्जनो ! जैसे (एकस्य) एक (चित्) ही (मे) मेरे को (विभु) व्यापक (ओजः) बल (अस्तु) हो और (या) जिन को (दधृष्वान्) अच्छे प्रकार सहनेवाला मैं होऊँ वैसे वह बल (हि) निश्चय से तुम्हारा हो और उस का सहन तुम करो जैसे (अहम्) मैं (मनीषा) बुद्धि से (नु) शीघ्र (कृणवै) क्रिया कर सकूँ और (उग्रः) तीव्र (विदानः) विद्वान् (इन्द्रः) दुःख का छिन्न-भिन्न करनेवाला होता हुआ (यानि) जिन पदार्थों को (च्यवम्) प्राप्त होऊँ और (एषाम्, इत्) इन्हीं का (ईशे) स्वामी होऊँ वैसे तुम वर्त्तो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे जगदीश्वर अनन्त पराक्रमी और व्यापक है वैसे विद्वान् जन समस्त शास्त्र और धर्मकृत्यों में व्याप्त होवें और न्यायाधीश होकर इन मनुष्यादि के सुखों का सम्पादन करें ॥ १० ॥

अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र ।
इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वे तनूभिः ॥११॥

पदार्थ—हे (मरुतः) विद्वानो ! जैसे (मे) मेरे लिए (यत्) जो (श्रुत्यम्) सुनने योग्य (ब्रह्म) वेद और (स्तोमः) स्तुतिसमूह है वह (अत्र) यहाँ (मा) मुझे (अमन्दत) आनन्दित करे वैसे तुम को भी आनन्दित करावे । हे (नरः) अग्रगामी मुखिया जनो ! जैसे तुम (सुमखाय) उत्तम यज्ञानुष्ठान करनेवाले (वृष्णे) बलवान् (इन्द्राय) विद्या से प्रकाशित (सख्ये) सबके मित्र (मह्यम्) मेरे लिए (सखायः) सब के सुहृद् होते हुए (तनूभिः) शरीरों के साथ मेरे (तन्वे) शरीर के लिए सुख (चक्र) करो वैसे मैं भी इसको करूँ ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वान् जन जैसे पढ़े और शब्दार्थ सम्बन्ध से जाने हुए वेद पढ़नेवाले के आत्मा को सुख देते हैं वैसे ही औरों को भी सुखी करेंगे ऐसा मानके वे अध्यापक शिष्य को पढ़ावें जैसे आप ब्रह्मचर्य से रोगरहित, बलवान् होकर दीर्घजीवी हों वैसे औरों को भी करें ॥११ ॥

एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव एषो दधानाः ।
संचक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥१२॥

पदार्थ—हे (मरुतः) प्राणों के समान प्रिय विद्वान् जनो ! जैसे (इषः) इच्छाओं को (आ, दधानाः) अच्छे प्रकार धारण किये हुए (मा, इत्) मेरे ही (प्रति, रोचमानाः) प्रति प्रकाशमान होते हुए (एते) ये तुम (अनेद्यः) प्रशंसनीय (श्रवः) सुनने के साधन शास्त्र को (संचक्ष्य) पढ़ा वा उसका उपदेशमात्र कर (चन्द्रवर्णाः) चन्द्रमा के समान उज्ज्वल कान्तिवाले हुए मुझे (अच्छान्त) विद्या से ढाँपते हुए वैसे (एव) ही अब (च) भी (नूनम्) निश्चय से (मे, छदयाथ) विद्याओं से आच्छादित करो । मेरी अविद्या को दूर करो और विद्या देओ ॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो स्त्री पुरुषों को विद्याओं में प्रकाशित और उन्हें प्रशंसित गुण, कर्म, स्वभाववाले कर धर्मयुक्त व्यवहारों में लगाते हैं वे सब के सुभूषित करनेवाले हों ॥ १२ ॥

को न्वत्र मरुतो मामहे वः प्र यातन सखीँरच्छा सखायः ।
मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदा म ऋतानाम् ॥१३॥

पदार्थ—हे (मरुतः) प्राणवत्प्रिय विद्वानो ! (अत्र) इस स्थान में (वः) तुम लोगों को (कः) कौन (नु) शीघ्र (मामहे) सत्कारयुक्त करता है । हे (सखायः) मित्र विद्वानो ! तुम (सखीन्) अपने मित्रों को (अच्छ) अच्छे प्रकार (प्र, यातन) प्राप्त होओ । हे (चित्राः) अद्भुत कर्म करनेवाले विद्वानो ! (मन्मानि) विज्ञानों को (अपिवातयन्तः) शीघ्र पहुँचाते हुए तुम (मे) मेरे (एषाम्) इन (ऋतानाम्) सत्य व्यवहारों के बीच (नवेदाः) नवेद अर्थात् जिनमें दुःख नहीं है ऐसे (भूत) होओ ॥१३॥

भावार्थ—मनुष्य सब के मित्र हों और उन को विद्या पहुँचाकर सब को धर्मयुक्त पुरुषार्थ में संयुक्त करें । जिससे ये सर्वत्र सत्कारयुक्त हों और आप सत्य-असत्य जान औरों को उपदेश दें ॥१३॥

आ यद्दुवस्याद्दुवसे न कारुरस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा ।
ओ षु वर्त्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् ॥१४॥

पदार्थ—हे (मरुतः) विद्वानो ! (यत्) जिस कारण (दुवस्यात्) सेवन करनेवाले से (दुवसे) सेवन करनेवाले अर्थात् एक से अधिक दूसरे के लिए जैसे (न) वैसे हम लोगों के लिए प्राप्त हुई (मान्यस्य) मानने योग्य, योग्यता को प्राप्त सज्जन की (कारुः) शिल्प कार्यों को सिद्ध करनेवाली (मेधा) बुद्धि (अस्मान्) हम लोगों को (आ, चक्रे) करती है अर्थात् शिल्पकार्यों में निपुण करती है इससे तुम (विप्रम्) मेधावी धीरबुद्धिवाले पुरुष के (ओ, सु, वर्त्त) सम्मुख वर्त्तमान होओ किस लिए (जरिता) स्तुति करनेवाला (इमा) इन (ब्रह्माणि) वेदों को संग्रह कर (अच्छ) अच्छे प्रकार (वः) तुम लोगों को (अर्चत्) सेवे ॥१४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे शिल्पिजन शिल्पविद्या से सिद्ध की हुई वस्तुओं का सेवन करते हैं वैसे वेदार्थ और वेदज्ञान सब को सेवने चाहिएँ जिस कारण वेदविद्या के बिना अतीव सत्कार करने योग्य विद्वान् नहीं होता ॥१४॥

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१५॥२६॥

पदार्थ—हे (मरुतः) उत्तम विद्वानो ! (एषः) यह (वः) तुम लोगों के लिए (स्तोमः) स्तुतियों का समूह और (मान्दार्यस्य) स्तुति के योग्य वा उत्तम गुण, कर्म स्वभाववाले (मान्यस्य) मानने योग्य (कारोः) कार करनेवाले पुरुषार्थी जन की (इयम्) यह (गीः) वाणी है इससे तुम में से प्रत्येक (तन्वे) बढ़ाने के लिए (इषा) इच्छा के साथ (आ, यासीष्ट) आओ प्राप्त होओ (वयाम्) और हम लोग (इषम्) अन्न (वृजनम्) बल (जीरदानुम्) और जीवन को (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ १५ ॥

भावार्थ- जो आप्त, शास्त्रज्ञ, धर्मात्मा, पुरुषार्थी विद्वान् पुरुषों की उत्तेजना से विद्या और शिक्षा को प्राप्त होकर धर्मयुक्त व्यवहार का आचरण करते हैं उनके जन्म की सफलता है यह जानना चाहिए ॥ १५ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एक सौ पैंसठवां सूक्त और छब्बीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

इस अध्याय में वसु, रुद्रादिकों के अर्थों का प्रतिपादन होने से इस अध्याय में कहे हुए अर्थों की पिछले अध्याय में कहे अर्थों के साथ सङ्गति वर्त्तमान है यह जानना चाहिए ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां परमविदुषां श्रीमद्विरजानन्दसरस्वती-
स्वामिनां शिष्येण श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना
निर्मिते आर्यभाषाविभूषिते सुप्रमाणयुक्त ऋग्वेदभाष्ये द्वितीयाष्टके
तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

अथ द्वितीयाष्टके चतुर्थोऽध्याय आरम्भ्यते ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ।

तविस्यस्य पञ्चदशर्चस्य षट्षष्ट्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य मैत्रावरुणिरगस्त्य ऋषिः । मरुतो देवता । १, २, ८ जगती; ३, ५, ६, १२, १३ निचृज्जगती, ४ विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ७, ६, १० भुरिक् त्रिष्टुप्, ११ विराट् त्रिष्टुप्, १४ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १५ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब द्वितीयाष्टक के चतुर्थाध्याय और एक सौ छियासठवें सूक्त का आरम्भ है उसके आरम्भ से ही मरुच्छब्दार्थ प्रतिपाद्य विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

तन्नु वोचाम रभसाय जन्मने पूर्वं महित्वं वृषभस्य केतवे ।
ऐधेव यामन्मरुतस्तुविष्वणो युधेव शक्रास्तविषाणि कर्तन ॥१॥

पदार्थ – हे (तुविष्वणः) बहुत प्रकार के शब्दोंवाले (शक्राः) शक्तिमान् (मरुतः) मनुष्यो ! तुम्हारे प्रति (वृषभस्य) श्रेष्ठ सज्जन का (रभसाय) वेगयुक्त अर्थात् प्रबल (केतवे) विज्ञान (जन्मने) जो उत्पन्न हुआ उस के लिए जो (पूर्वम्) पहला (महित्वम्) माहात्म्य (तत्) उसको हम (वोचाम) कहें उपदेश करें तुम (ऐधेव) काष्ठों के समान वा (यामन्) मार्ग में (युधेव) युद्ध के समान अपने कर्मों से (तविषाणि) बलों को (नु) शीघ्र (कर्तन) करो ॥१॥

भावार्थ — इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । विद्वान् जन जिज्ञासु जनों के प्रति वर्त्तमान जन्म और पूर्व जन्मों के सञ्चित कर्मों के निमित्त ज्ञान को उनके कार्यों को देख कर उपदेश करें । और जैसे मनुष्यों के ब्रह्मचर्य और जितेन्द्रियत्वादि गुणों से शरीर और आत्मबल पूरे हों वैसे करें ॥१॥

नित्यं न सूनुं मधु बिभ्रत उप क्रीळन्ति क्रीळा विदथेषु घृष्वयः ।
नक्षन्ति रुद्रा अवसा नमस्विनं न मर्धन्ति स्वतवसो हविष्कृतम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जो लोग (नित्यम्) नाशरहित जीव के (न) समान (मधु) मधुरादि गुणयुक्त पदार्थ को (बिभ्रत) धारण करते हुए (सूनुम्) पुत्र के समान (उप, क्रीळन्ति) समीप खेलते हैं वा (विदथेषु) संग्रामों में (घृष्वयः) शत्रु के बल को सहने और (क्रीळाः) खेलनेवाले (नक्षन्ति) प्राप्त होते हैं वा (रुद्राः) प्राणों के समान (अवसा) रक्षा आदि कर्म से (नमस्विनम्) बहुत अन्नयुक्त जन को (न) नहीं (मर्धन्ति) लड़ाते और (स्वतवसः) अपना बल पूर्ण रखते हुए (हविष्कृतम्) दानों से सिद्ध किये हुए पदार्थ को रखते हैं उस का नित्य सेवन करो ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो सब के उपकार में प्राण के समान, तृप्ति करने में जल, अन्न के समान और आनन्द में सुन्दर लक्षणों वाली विदुषी के पुत्र के समान वर्त्तमान हैं वे श्रेष्ठों को बढ़ा और दुष्टों को नमा सकते हैं अर्थात् श्रेष्ठों को उन्नति दे सकते और दुष्टों को नम्र कर सकते हैं ॥ २ ॥

यस्मा ऊमासो अमृता अरासत रायस्पोषं च हविषा ददाशुषे ।
उक्षन्त्यस्मै मरुतो हिताइव पुरू रजांसि पयसा मयोभुवः ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (अमृताः) नाशरहित (ऊमासः) रक्षणादि कर्मवाले आप जैसे (मयोभुवः) सुख की भावना करने वाले (हिताइव) हित सिद्ध करनेवालों के समान (मरुतः) पवन (अस्मै) इस प्राणी के लिए (पयसा) जल से (पुरु) बहुत (रजांसि) लोकों वा स्थलों को (उक्षन्ति) सींचते हैं वैसे (यस्मै) जिस (ददाशुषे) देनेवाले के लिए (हविषा) विद्यादि देने से (रायः) धर्मयुक्त धन की (पोषम्) पुष्टि को (च) और विद्या को (अरासत) देते हैं वह भी ऐसे ही वर्त्ते ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को वायु के समान सब के सुखों को अच्छे प्रकार विद्या और सत्योपदेश से जल से वृक्षों के समान सींचकर मनुष्यों की वृद्धि करनी चाहिए ॥३॥

आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत प्र व एवासः स्वयतासो अध्रजन् ।
भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या चित्रो वो यामः प्रयतास्वृष्टिषु ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (ये) जो (वः) तुम्हारे (एवासः) गमनशील (स्वयतासः) अपने बल से नियम को प्राप्त अर्थात् अश्वादि के विना आप ही गमन करने में सन्नद्ध रथ (तविषीभिः) बलों के साथ (रजांसि) लोकों को (आ, अव्यत) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं वे (प्र, अध्रजन्) अत्यन्त धावते हैं उनके धावन में (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोक (हर्म्या) उत्तमोत्तम घर (भयन्ते) कांपते हैं इस कारण (प्रयतासु) नियत (ऋष्टिषु) प्राप्तियों में (चित्रः) अद्भुत (वः) तुम्हारा (यामः) पहुंचना है ॥४॥

भावार्थ – विद्वान् जन निज शास्त्रीय अद्भुत बल से रथादि बनाके निवास वृत्तियों में जा आकर सत्य विद्या पढ़ाने और उनके उपदेशों से सब मनुष्यों को पालके असत्य विद्या के उपदेशों को निवृत्त करें ॥४॥

यत्त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान्दिवो वा पृष्ठं नर्या अचुच्यवुः ।
विश्वो वो अज्मन्भयते वनस्पती रथीयन्तीव प्र जिहीत ओषधिः ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (यत्) जब (त्वेषयामाः) अग्नि का प्रकाश होने से गमन करनेवाले (नर्याः) मनुष्यों के लिए अत्यन्त साधक तुम्हारे रथ (दिवः) अन्तरिक्ष के (पर्वतान्) मेघों को (नदयन्त) शब्दायमान करते अर्थात् तुम्हारे रथों के वेग से अपने स्थान से तितर-बितर हुए मेघ गर्जनादि शब्द करते हैं (वा) अथवा पृथिवी के (पृष्ठम्) पृष्ठ भाग को (अचुच्यवुः) प्राप्त होते तब (विश्वः, वनस्पतिः) समस्त वृक्ष (रथीयन्तीव) अपने रथी को चाहती हुई सेना के समान (वः) तुम्हारे (अज्मन्) मार्ग में (भयते) कम्पता है अर्थात् जो वृक्ष मार्ग में होता वह थरथरा उठता और (ओषधिः) सोमादि ओषधि (प्र, जिहीते) अच्छे प्रकार स्थान त्याग कर देती अर्थात् कम्पकपाहट में स्थान से तितर-बितर होती है ॥५॥

भावार्थ—अन्तरिक्ष के मार्गों में विद्वानों के प्रयोग किये हुए आकाशगामी यानों के अत्यन्त वेग से कभी मेघों के तितर-बितर जाने का सम्भव और पृथिवी के कम्पन से वृक्ष, वनस्पति के कम्पने का सम्भव होता है ॥५॥

यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुनारिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन ।
यत्रा वो दिद्युद्रदति क्रिविर्दती रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा ॥६॥

पदार्थ—हे (उग्राः) तीव्रगुणकर्मस्वभावयुक्त (मरुतः) पवनों के समान शीघ्रता करनेवाले विद्वानो ! (यूयम्) तुम (अरिष्टग्रामाः) जिन से ग्राम के ग्राम अहिंसक होते अर्थात् पशु आदि जीवों को जिन्होंने ताड़ना देना छोड़ दिया ऐसे होते हुए (नः) हमारी (सुमतिम्) प्रशस्त उत्तम बुद्धि को (सुचेतुना) सुन्दर विज्ञान से (पिपर्तन) पूरी करो । (यत्र) जहां (क्रिविर्दती) हिंसा करने रूप दांत हैं जिसके वह (वः) तुम्हारे सम्बन्ध से (दिद्युत्) अत्यन्त प्रकाशमान बिजुली (रदति) पदार्थों को छिन्न-भिन्न करती है वहां (सुधितेव) अच्छे प्रकार धारण की हुई वस्तु के समान (बर्हणा) बढ़ती हुई (पश्वः) पशुओं को अर्थात् पशुभावों को (रिणाति) प्राप्त होती जैसे पशु, घोड़, बैल आदि रथादिकों को जोड़ हुए उनको चलाते हैं वैसे उन रथों को अति वेग से चलाती है ॥६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । शिल्पव्यवहार से सिद्ध की बिजुलीरूप आग घोड़े आदि पशुओं के समान कार्य सिद्ध करनेवाली होती है उसकी क्रिया को जाननेवाले विद्वान् अन्य जनों को भी उस विद्युद्विद्या से कुशल करें ॥६॥

प्र स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधसोऽलातृणासो विदथेषु सुष्टुताः ।
अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये विदुर्वीरस्य प्रथमानि पौंस्या ॥७॥

पदार्थ—जो (स्कम्भदेष्णाः) स्तम्भन देनेवाले अर्थात् रोक देनेवाले (अनवभ्रराधसः) जिनका धन विनाश को नहीं प्राप्त हुआ (अलातृणासः) पूर्ण शत्रुओं को मारनेहारे (सुष्टुताः) अच्छी प्रशंसा को प्राप्त जन (विदथेषु) संग्रामों में (वीरस्य) शूरता आदि गुणयुक्त युद्ध करनेवाले के (प्रथमानि) प्रथम (पौंस्या) पुरुषार्थों, बलों को (विदुः) जानते हैं वे (मदिरस्य) आनन्ददायक रस के (पीतये) पीने को (अर्कम्) सत्कार करने योग्य विद्वान् का (प्र, अर्चन्ति) अच्छा सत्कार करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो यथायोग्य आहार-विहार करने, शूरजनों से प्रीति रखनेवाले अपनी सेना के बलों को बढ़ाते हैं वे शत्रुरहित असंख्य धनयुक्त बहुत दान देनेवाले और प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

शतभुजिभिस्तमभिह्रुतेरघात् पूर्भी रक्षता मरुतो यमावत ।
जनं यमुग्रास्तवसो विरप्शिनः पाथना शंसात्तनयस्य पुष्टिषु ॥८॥

पदार्थ—हे (तनयस्य) सन्तान की (पुष्टिषु) पुष्टि करनेवाले कामों में प्रयत्न करते हुए (उग्राः) तेजस्वी, तीव्र प्रतापयुक्त (तवसः) अत्यन्त बढ़े हुए बल से युक्त (विरप्शिनः) पूर्ण विद्या, पूर्ण शिक्षा और पूर्ण पराक्रमवाले (मरुतः) पवनों के समान वर्त्तमान विद्वानो ! तुम (शतभुजिभिः) असंख्य सुख भोगने को जिनका शील (पूर्भिः) पूर्ण, पालन और सुखयुक्त नगरों के साथ (यम्) जिसकी (अभिह्रुतेः) सब ओर से कुटिल (अघात्) पाप से (रक्षत) रक्षा करो बचाओ वा (यम्) जिस (जनम्) जन को (आवत) पालो वा जिसकी (शंसात्)

आत्मप्रकाशरूप बोध से (पायन) पालना करो (तत्) उसकी हम लोग भी सब ओर से रक्षा करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य युक्त आहार-विहार, उत्तम शिक्षा, ब्रह्मचर्य और विद्यादि गुणों से अपने सन्तानों को पुष्टियुक्त, सत्य की प्रशंसा करनेवाले और पाप से अलग रहनेवाले करते और प्राण के समान प्रजा को आनन्दित करते हैं वे अनन्त सुखभोक्ता होते हैं ॥ ८ ॥

विश्वा॑नि भ॒द्रा म॑रुतो॒ रथे॑षु वो मिथ॒स्पृध्ये॑व तवि॒षाण्याहि॑ता ।

अंसे॒ष्वा वः॒ प्रप॑थेषु खा॒दयोऽक्षो॑ व॒श्चक्रा॑ स॒मया॒ वि वा॑वृते ॥९॥

पदार्थ—हे (मरुतः) पवनों के समान बली सज्जनो ! (वः) तुम्हारे (रथेषु) रमणीय यानों में (विश्वानि) समस्त (भद्रा) कल्याण करनेवाले (मिथस्पृध्येव) सङ्ग्रामों में जैसे परस्पर सेना है वैसे (तविषाणि) बल (आहिता) सब ओर से धरे हुए हैं (वः) तुम्हारे (अंसेषु) स्कन्धों में उक्त बल है तथा (प्रपथेषु) उत्तम सीधे मार्गों में (खादयः) खाने योग्य विशेष भक्ष्य-भोज्य पदार्थ हैं (वः) तुम्हारे (अक्षः) रथ का अक्षभाग, धुरी (चक्रा) पहियों के (समया) समीप (आ, वि, ववृते) विविध प्रकार से प्रत्यक्ष वर्त्तमान है ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो आप बलवान् कल्याण के आचरण करनेवाले सुमार्गगामी परिपूर्ण धन सेनादि सहित हैं वे प्रत्यक्ष शत्रुओं को जीत सकते हैं ॥ ९ ॥

भूरी॑णि भ॒द्रा नर्ये॑षु बा॒हुषु॒ वक्षः॑सु रु॒क्मा र॑भ॒सासो॑ अ॒ञ्जयः॑ ।

अंसे॒ष्वेताः॑ प॒विषु॑ क्षु॒रा अधि॒ वयो॒ न प॒क्षान्व्यनु॒ श्रियो॑ धिरे ॥१०॥

पदार्थ—जिनके (नर्येषु) मनुष्यों के लिए हितरूप पदार्थों में (भूरीणि) बहुत (भद्रा) सेवन करने योग्य धर्मयुक्त कर्म वा (बाहुषु) प्रचण्ड भुजदण्डों और (वक्षस्सु) वक्षःस्थलों में (रुक्मा) सुवर्ण और रत्नादि युक्त अलङ्कार (अंसेषु) स्कन्धों में (एताः) विद्या की शिक्षा में प्राप्त (रभसासः) वेग जिनमें विद्यमान ऐसे (अञ्जयः) प्रसिद्ध प्रशंसायुक्त पदार्थ (पविषु, अधि) उत्तम शिक्षायुक्त वाणियों में (क्षुरा) धर्मानुकूल शब्द वर्त्तमान हैं वे (वयः) पखेरू (पक्षान्) पंखों को (न) जैसे वैसे (श्रियः) लक्ष्मियों को (वि, अनु, धिरे) विशेषता से अनुकूल धारण करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—जो ब्रह्मचर्य से विद्याओं को प्राप्त हुए गृहाश्रम में आभूषणों को धारण किये पुरुषार्थयुक्त, परोपकारी, वानप्रस्थाश्रम में वैराग्य को प्राप्त, पढ़ाने में रमे हुए और सन्यास आश्रम में प्राप्त हुआ यथार्थभाव जिनको और परोपकारी सर्वत्र विचरते, सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग कराते हुए समस्त मनुष्यों को बढ़ाते हैं वे मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

म॒हान्तो॑ म॒ह्ना वि॒भ्वो॑३ वि॒भूत॑यो दूरे॒दृशो॒ ये दि॒व्या इ॑व॒ स्तृभिः॑ ।

म॒न्द्राः सु॑जि॒ह्वाः स्वरि॑तार आ॒सभिः॒ सम्मि॑श्ला॒ इन्द्रे॑ म॒रुतः॑ परि॒ष्टुभः॑

॥११॥

पदार्थ—जो विद्वान् जन (मह्ना) अपनी महिमा से (महान्तः) बड़े (विभ्वः) समर्थ (विभूतयः) नाना प्रकार के ऐश्वर्यों को देनेवाले (दूरेदृशः) दूरदर्शी (इन्द्रे) बिजुली के विषय में (सम्मिश्लाः) अच्छे मिले हुए (स्तृभिः) आच्छादन करने, संसार पर छाया करनेहारे तारागणों के साथ वर्त्तमान (परिष्टुभः) सब ओर से धारण करनेहारे (मरुतः) पवनों के समान तथा (दिव्या इव) सूर्यस्थ किरणों के समान (मन्द्राः) कमनीय, मनोहर (सुजिह्वाः) सत्य वाणी बोलनेवाले (स्वरितारः) पढ़ाने और उपदेश करनेवाले होते हुए (आसभिः) मुखों से पढ़ाते और उपदेश करते हैं वे निर्मल विद्यावान् होते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पवन समस्त मूर्तिमान् पदार्थों को धारण करनेवाले बिजुली के संयोग से प्रकाश और सर्वत्र व्याप्त हैं वैसे विद्वान् जन मूर्तिमान् द्रव्यों की विद्या और विद्यार्थियों के संयोग के विशेष ज्ञान को देनेवाले सकल विद्या और शुभ आचरणों में व्याप्त होते हुए मनुष्यों में उत्तम होते हैं ॥ ११ ॥

तद्वः॑ सुजाता मरुतो महित्व॒नं दी॒र्घं वो॑ दा॒त्रमदि॑तेरिव व्र॒तम् ।

इन्द्र॑श्च॒न त्यज॑सा॒ वि ह्रु॑णाति॒ तज्जना॑य॒ यस्मै॑ सु॒कृते॒ अरा॑ध्वम् ॥१२॥

पदार्थ—हे (सुजाताः) सुन्दर प्रसिद्ध (मरुतः) पवनों के समान वर्त्तमान ! जो (वः) तुम्हारा (अदितेरिव) अन्तरिक्ष की जैसे वैसे (महित्वनम्) महिमा (दीर्घम्) विस्तारयुक्त (दात्रम्) दान और (वः) तुम्हारा (व्रतम्) शील है (तत्) उसको तथा जो (इन्द्रः) बिजुली (चन) भी (त्यजसा) त्याग से अर्थात् एक पदार्थ छोड़ दूसरे पर गिरने से (वि, ह्रुणाति) टेढ़ी-मेढ़ी जाती (तत्) उस वृत्त को भी (यस्मै) जिस (सुकृते) सुन्दर धर्म करनेवाले (जनाय) सज्जन के लिए (अराध्वम्) देओ वह संसार का उपकार कर सके ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जिनकी प्राण के तुल्य महिमा, विस्तारयुक्त विद्या का दान, आकाशवत् शान्तियुक्त शील और बिजुली के समान दुष्टाचरण का त्याग है वे सबको सुख देने को योग्य हैं ॥१२॥

तद्वो॑ जामि॒त्वं म॑रुतः॒ परे॑ यु॒गे पु॒रू यच्छंस॑ममृतास॒ आव॑त ।

अ॒या धि॒या मन॑वे श्रु॒ष्टिमाव्या॑ सा॒कं नरो॑ दं॒सनै॒रा चि॑कित्रिरे ॥१३॥

पदार्थ—हे (अमृतासः) मृत्युधर्मरहित (मरुतः) प्राणों के समान अत्यन्त प्रिय विद्वान् जनो ! (परे, युगे) परले वर्ष में वा परजन्म में (यत्) जो (वः) तुम लोगों का (पुरू) बहुत (जामित्वम्) सुख-दुःख का भोग वर्त्तमान है (तत्) उसको (शंसम्) प्रशंसारूप (आवत) रक्खो और (अया) इस (धिया) बुद्धि से (मनवे) मनुष्य के लिए (श्रुष्टिम्) प्राप्त होने योग्य वस्तु की (आव्य) रक्षा कर (नरः) धर्मयुक्त व्यवहारों में मनुष्यों को पहुँचानेवाले मनुष्य (साकम्) तुम्हारे साथ (दंसनैः) शुभ-अशुभ, सुख-दुःख फलों की प्राप्ति करानेवाले कर्मों से (आ, चिकित्रिरे) सबको अच्छे प्रकार जानें ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वायु इस सृष्टि में और वर्त्तमान प्रलय में वर्त्तमान है वैसे नित्य जीव हैं तथा जैसे वायु जड़ वस्तु को भी नीचे-ऊपर पहुँचाते हैं वैसे जीव भी कर्मों के साथ पिछले, बीच के और अगले समय में समय और अपने कर्मों के अनुसार चक्कर खाते फिरते हैं ॥ १३ ॥

येन॑ दी॒र्घं म॑रुतः शू॒शवा॑म यु॒ष्माके॑न॒ परी॑णसा तुरासः ।

आ यत्त॒तन॑न्वृ॒जने॒ जना॑स ए॒भिर्य॒ज्ञेभि॒स्तद॒भीष्टि॑मश्याम् ॥१४॥

पदार्थ—हे (तुरासः) शीघ्रता करनेवाले (मरुतः) पवन के समान विद्याबलयुक्त विद्वानो ! हम लोग (येन) जिस (युष्माकेन) आप लोगों के सम्बन्ध के (परीणसा) बहुत उपदेश से (दीर्घम्) दीर्घ, अत्यन्त लम्बे ब्रह्मचर्य को प्राप्त होके (शूशवाम) वृद्धि को प्राप्त हों जिससे (जनासः) विद्या से प्रसिद्ध मनुष्य (वृजने) बल के निमित्त (यत्) जिस क्रिया को (आ, ततनन्) विस्तारें (तत्) उस (अभीष्टिम्) सब प्रकार से चाही हुई क्रिया को (एभिः) इन (यज्ञेभिः) विद्वानों के सङ्गरूप यज्ञों से मैं (अश्याम्) पाऊँ ॥ १४ ॥

भावार्थ—जिनके सहाय से मनुष्य बहुत विद्या, धर्म और बलवाले हों उनकी नित्य वृद्धि करें विद्वान् जन जैसे धर्म्म का आचरण करें वैसा ही और भी जन करें ॥ १४ ॥

ए॒ष वः॒ स्तोमो॑ मरुत इ॒यं गीर्मा॑न्दा॒र्यस्य॑ मा॒न्यस्य॑ का॒रोः ।

एषा या॑सीष्ट त॒न्वे॑ व॒यां वि॒द्यामे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑नुम् ॥१५॥३॥

पदार्थ—हे (मरुतः) विद्वानो ! (वः) तुम्हारा जो (एषः) यह (स्तोमः) स्तुति और (मान्दार्यस्य) आनन्द करनेवाले धर्मात्मा (मान्यस्य) सत्कार करने योग्य (कारोः) अत्यन्त यत्न करते हुए जन की (इयम्) यह (गीः) वाणी और जिस क्रिया को (तन्वे) शरीर के लिए (इषा) इच्छा के साथ कोई (आ, यासीष्ट) अच्छे प्रकार प्राप्त हो उस क्रिया (इषम्) अन्न (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवन को (वयाम्) हम लोग (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ १५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को विद्वानों की स्तुति कर, शास्त्रज्ञ धर्मात्माओं की वाणी सुन, शरीर और आत्मा के बल को बढ़ा दीर्घ जीवन प्राप्त करना चाहिए ॥ १५ ॥

इस सूक्त में मरुच्छब्दार्थ से विद्वानों के गुण का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एक सौ छियासठवाँ सूक्त और तीसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

सहस्रमित्यस्यैकादशर्चस्य सप्तषष्ट्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्यागस्त्य ऋषिः । इन्द्रो मरुतश्च देवता । १, ४, ५ भुरिक् पङ्क्तिः, ७, ९ स्वराट् पङ्क्तिः; १० निचृत् पङ्क्तिः; ११ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २, ३, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब एक सौ सरसठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में सज्जनों के गुणों का वर्णन करते हैं—

स॒हस्रं॑ त इन्द्रो॒तयो॑ नः स॒हस्र॒मिषो॑ हरिवो गू॒र्तत॑माः ।

स॒हस्रं॒ रायो॑ माद॒यध्यै॑ सह॒स्रिण॒ उप॑ नो यन्तु॒ वाजाः॑ ॥१॥

पदार्थ—हे (हरिवः) धारणाकर्षणादि युक्त (इन्द्र) परमैश्वर्यवाले विद्वन् ! जो (ते) आपकी (सहस्रम्) सहस्रों (ऊतयः) रचनाएँ (सहस्रम्) सहस्रों (इषः) अन्न आदि पदार्थ (सहस्रम्) सहस्रों (गूर्त्ततमाः) अत्यन्त उद्यम वा (रायः) धन हैं वे (नः) हमारे हों और (सहस्रिणः) सहस्रों पदार्थ जिनमें विद्यमान वे (वाजाः) बोध (मादयध्यै) आनन्दित करने के लिए (नः) हम लोगों को (उप, यन्तु) निकट प्राप्त हों ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को जो भाग्यशालियों को सर्वोत्तम सामग्री से और यथायोग्य क्रिया से असंख्य सुख होते हैं वे हमारे हों ऐसा मानकर निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए ॥ १ ॥

अब पवन के दृष्टान्त से सज्जन के गुणों को अगले मन्त्रों में कहा है—

आ नोऽवोभिर्मरुतो यान्त्वच्छा ज्येष्ठेभिर्वा बृहद्दिवैः सुमायाः ।
अध यदेषां नियुतः परमाः समुद्रस्य चिद्धनयन्त पारे ॥२॥

पदार्थ—(यत्) जो (सुमायाः) सुन्दर बुद्धिवाले (बृहद्दिवैः) जिन की अतीव विद्या प्रसिद्ध उन (ज्येष्ठेभिः) विद्या और अवस्था से बड़े गुणों के (वा) अथवा (अवोभिः) रक्षा आदि कर्मों के साथ (मरुतः) पवनों के समान सज्जन (नः) हम लोगों को (अच्छ) अच्छे प्रकार (आ, यान्तु) प्राप्त होवें (अध) इस के अनन्तर (एषाम्, चित्) इन के भी (समुद्रस्य) सागर के (पारे) पार (परमाः) अत्यन्त उत्तम (नियुतः) पवन के समान बिजुली आदि अश्व (धनयन्त) अपने को धन की इच्छा करते हैं उनका हम लोग सत्कार करें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो अतीव बड़ी नौकाओं से पवन के समान वेग से व्यवहारसिद्धि के लिए समुद्र के वार-पार जा-आके धन की उन्नति करते हैं वे अतुल सुख को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

मिम्यक्ष येषु सुधिता घृताची हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः ।
गुहा चरन्ती मनुषो न योषा सभावती विदथ्येव सं वाक् ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप (येषु) जिन में (घृताची) जल को शीतलता से छोड़नेवाली रात्रि के समान वा (सुधिता) अच्छे प्रकार धारण की हुई (उपरा) ऊपरली दिशा के (न) समान वा (ऋष्टिः) प्रत्येक पदार्थ को प्राप्त करनेवाली (हिरण्यनिर्णिक्) जो सुवर्ण से पुष्टि होती और (गुहा, चरन्ती) गुप्त स्थलों में विचरती हुई (मनुषः) मनुष्य की (योषा) स्त्री (न) उसके समान वा (विदथ्येव) संग्राम वा विज्ञानों में हुई क्रिया आदि के समान (सभावती) सभा सम्बन्धिनी (वाक्) वाणी है उस को (सम्, मिम्यक्ष) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । जो मनुष्य सत्य-असत्य के निर्णय के लिए सब शुभ गुण, कर्म, स्वभाववाली विद्या सुशिक्षायुक्त शास्त्रज्ञ धर्मात्मा विद्वानों की वाणी को प्राप्त होते हैं वे बहुत ऐश्वर्यवान् होते हुए दिशाओं में सुन्दर कीर्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः ।
न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः ॥४॥

पदार्थ—जैसे (शुभ्राः) स्वच्छ (अयासः) शीघ्रगामी (मरुतः) पवन (यव्या) मिली न मिली हुई चाल से (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (मिमिक्षुः) सींचते और (घोराः) बिजुली के योग से भयङ्कर होते हुए (न, परा, अप, नुदन्त) उनको परावृत्त नहीं करते, उलट नहीं देते वैसे (देवाः) विद्वान् जन (वृधम्) वृद्ध को (सख्याय) मित्रता के लिए (साधारण्येव) साधारण क्रिया से जैसे वैसे (जुषन्त) सेवें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे वायु और बिजुली के योग से उत्पन्न हुई वर्षा अनेक ओषधियों को उत्पन्न कर सब प्राणियों को जीवन देकर दुःखों को दूर करती है वा जैसे उत्तम पतिव्रता स्त्री पति को आनन्दित करती है वैसे ही विद्वान् जन विद्या और उत्तम शिक्षा की वर्षा से और धर्म के सेवन से मनुष्यों को आह्लादित करें ॥ ४ ॥

जोषद्यदीमसुर्या सचध्यै विषितस्तुका रोदसी नृमणाः ।
आ सूर्येव विधतो रथं गात्त्वेषप्रतीका नभसो नेत्या ॥५॥४॥

पदार्थ—(यत्) जो (असुर्या) मेघों में प्रसिद्ध (विषितस्तुका) विविध प्रकार की जिस की स्तुति सम्बन्धी और (नृमणाः) जो अग्रगामी जनों में चित्त रखती हुई (ईम्) जल के (सचध्यै) संयोग के लिए (सूर्येव) सूर्य की दीप्ति के समान (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (जोषत्) सेवे अर्थात् उन के गुणों में रमे वा (त्वेषप्रतीका) प्रकाश की प्रतीति करानेवाली और (इत्या) प्राप्त होने के योग्य होती हुई (नभसः) जल सम्बन्धी (रथम्) रमण करने योग्य रथ के (न) समान व्यवहार को और (विधतः) ताड़ना करनेवालों को (आ, गात्) प्राप्त होती वह स्त्री प्रवर है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है जैसे अग्नि बिजुलीरूप से सब को सब प्रकार से व्याप्त होकर प्रकाशित करती है वैसे सब विद्या उत्तम शिक्षाओं को पाकर स्त्री समग्र कुल को प्रशंसित करती है ॥ ५ ॥

आस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम् ।
अर्को यद्वो मरुतो हविष्मान् गायद्गाथं सुतसोमो दुवस्यन् ॥६॥

पदार्थ—हे (मरुतः) विद्यायुक्त प्राण के समान प्रिय सज्जनो ! (युवानः) यौवनावस्था को प्राप्त आप (शुभे) शुभ, गुण, कर्म और स्वभाव ग्रहण करने के लिए (निमिश्लाम्) निरन्तर पूर्ण विद्या और सुशिक्षायुक्त और (विदथेषु) धर्मयुक्त व्यवहारों में (पज्राम्) जानेवाली (युवतिम्) युवती स्त्री को (आ, अस्थापयन्त) अच्छे प्रकार स्थापित करते और (यत्) जो (वः) तुम्हारा (अर्कः) सत्कार करने योग्य अन्न है उस को अच्छे प्रकार स्थापित करते हो तथा जो (हविष्मान्) बहुत विद्यावान् (सुतसोमः) जिसने ऐश्वर्य उत्पन्न किया और (गायत्) स्तुति करे वह (गाथम्) प्रशंसनीय उपदेश को (दुवस्यन्) सेवता हुआ निरन्तर आनन्द करे ॥ ६ ॥

भावार्थ—सब राजपुरुषादिकों को अत्यन्त योग्य है कि अपने कन्या और पुत्रों को दीर्घ ब्रह्मचर्य में संस्थापित कर विद्या और उत्तम शिक्षा उन को ग्रहण करा पूर्ण विद्यावाले, परस्पर प्रसन्न पुत्र-कन्याओं का स्वयंवर विवाह करावें जिससे जब तक जीवन रहे तब तक आनन्दित रहें ॥ ६ ॥

प्र तं विवक्मि वक्म्यो य एषां मरुतां महिमा सत्यो अस्ति ।
सचा यदीं वृषमणा अहंयुः स्थिरा चिज्जनीर्वहते सुभागाः ॥७॥

पदार्थ—(यः) जो (एषाम्) इन (मरुताम्) पवनों के समान विद्वानों का (वक्म्यः) कहने योग्य (सत्यः) सत्य (महिमा) बड़प्पन (अस्ति) है (तम्) उसको और (यत्) जो (अहंयुः) अहङ्कारवाला, अभिमानी (वृषमणाः) जिसका वीर्य सींचने में मन वह (ईम्) सब ओर से (सचा) सम्बन्ध के साथ (स्थिराः, चित्) स्थिर ही (सुभागाः) सुन्दर सेवन करने (जनीः) अपत्यों को उत्पन्न करनेवाली स्त्रियों को (वहते) प्राप्त होता उस को मैं भी (प्र, विवक्मि) अच्छे प्रकार विशेषता से कहता हूँ ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों का यही बड़प्पन है जो दीर्घ ब्रह्मचर्य से कुमार और कुमारी शरीर और आत्मा के पूर्ण बल के लिए विद्या और उत्तम शिक्षा को ग्रहण कर चिरञ्जीवी, दृढ़ जिन के शरीर और मन ऐसे भाग्यशाली सन्तानों को उत्पन्न कर उनको प्रशंसित करना ॥ ७ ॥

पान्ति मित्रावरुणाववद्याच्चयत ईमर्यमो अप्रशस्तान् ।
उत च्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि वावृध ईं मरुतो दातिवारः ॥८॥

पदार्थ—हे (मरुतः) विद्वानो ! आप लोग और (मित्रावरुणौ) मित्र और श्रेष्ठ सज्जन वा अध्यापक और उपदेशक जन (अवद्यात्) निन्द्य पापाचरण से (पान्ति) मनुष्यों की रक्षा करते हैं तथा (अर्यमो) न्याय करनेवाला राजा (अप्रशस्तान्) दुराचारी जनों को (ईम्) प्रत्यक्ष (चयते) इकट्ठा करता है (उत) और वे (अच्युता) विनाशरहित (ध्रुवाणि) ध्रुव, दृढ़ कामों को (च्यवन्ते) प्राप्त होते हैं और (दातिवारः) दान को लेनेवाला (ईम्) सब ओर से (वावृधे) बढ़ता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य विद्या धर्म और उत्तम शिक्षा के देने से अज्ञानियों को अधर्म से निवृत्त कर ध्रुव और शुभ गुण कर्मों को प्राप्त कराते हैं वे सुख से अलग नहीं होते ॥ ८ ॥

नही नु वो मरुतो अन्त्यस्मे आरात्ताच्चिच्छवसो अन्तमापुः ।
ते धृष्णुना शवसा शूशुवांसोऽर्णो न द्वेषो धृषता परि ष्ठुः ॥९॥

पदार्थ—हे (मरुतः) महा बलवान् विद्वानो ! जो (वः) तुम्हारे और (अस्मे) हमारे (अन्ति) समीप में (शवसः) बल की (अन्तम्) सीमा को (नु) शीघ्र (नहि) नहीं (आपुः) प्राप्त होते और जो (आरात्तात्) दूर से (चित्) भी (धृष्णुना) दृढ़ (शवसा) बल से (शूशुवांसः) बढ़ते हुए (अर्णः) जल के (न) समान (धृषता) प्रगल्भता से, ढिठाई से (द्वेषः) वैर आदि दोष वा धर्मविरोधी मनुष्यों को (परि, ष्ठुः) सब ओर से छोड़ने में स्थिर हों (ते) वे आप्त अर्थात् शास्त्रज्ञ धर्मात्मा हों ॥ ९ ॥

भावार्थ—यदि हम लोग पूर्ण शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होवें तो शत्रुजन हमारा और तुम्हारा पराजय न कर सकें । जो दुष्ट और लोभादि दोषों को छोड़ें वे अति बली होकर दुःख के पार पहुँचें ॥ ९ ॥

वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा वयं श्वो वोचेमहि समर्ये ।
वयं पुरा महि च नो अनु द्यून्तन्न ऋभुक्षा नरामनु ष्यात् ॥१०॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (वयम्) हम लोग (अद्य) आज (इन्द्रस्य) परमविद्या और ऐश्वर्ययुक्त धार्मिक विद्वान् के (प्रेष्ठाः) अत्यन्त प्रिय हैं (वयम्) हम लोग (श्वः) कल के आनेवाले दिन (समर्ये) संग्राम में (वोचेमहि) कहें (च) और (पुरा) प्रथम जो (नः) हम लोगों का (महि) बड़प्पन है (तत्) उसको (वयम्) हम लोग (अनु, द्यून्) प्रतिदिन कहें और (नराम्) मनुष्यों के बीच (नः) हमारे लिए (ऋभुक्षाः) मेधावी बुद्धिमान् वीर पुरुष (अनु, स्यात्) अनुकूल हों ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वानों से प्रीति, युद्ध में उत्साह और मनुष्यादिकों का प्रिय काम का पहले से आचरण करते हैं वे सब के प्यारे हैं ॥ १० ॥

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥११॥५॥

पदार्थ—हे (मरुत) विद्वानो ! (एष.) यह (वः) तुम्हारी (स्तोम) स्तुति और (मान्दार्यस्य) आनन्द के देनेवाले उत्तम (मान्यस्य) मान सत्कार करने योग्य (कारोः) सबका सुख करनेवाले सज्जन की (इयम) यह (गीः) वेदविद्या की उत्तम शिक्षा से युक्त वाणी है इसकी जो (इषा) इच्छा के साथ (आ, यासीष्ट) प्राप्ति हो (वयाम्) हम लोग (तन्वे) शरीर के लिए उस (इषम) इच्छा (जीरदानुम्) जीवन के निमित्त और (वृजनम्) बल को (विद्याम) जानें ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो सबसे प्रशंसा करने योग्य गुणों को प्राप्त होकर आप्त धर्मात्मा सज्जनों का सत्कार कर शरीर और आत्मा के बल के लिए विद्या और पराक्रम सम्पादन करते हैं वे सुख से जीते हैं ॥ ११ ॥

इस सूक्त में वायु के दृष्टान्त से सज्जनों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह समझना चाहिए ॥

यह एक सौ सरसठवां सूक्त और पांचवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

यज्ञायज्ञेत्यस्य दशर्चस्याष्टचत्वारिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः ।
मरुतो देवताः । १, ४ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । २, ५ विराट् त्रिष्टुप्, ३ स्वराट् त्रिष्टुप्, ६, ७ भुरिक् त्रिष्टुप्; ८ त्रिष्टुप्; ९ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।
१० पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब एक सौ अरसठवें सूक्त का आरम्भ है उसके आरम्भ में पवन के दृष्टान्त से सज्जनों के गुणों का वर्णन करते हैं—

यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणिर्धियंधियं वो देवया उ दधिध्वे ।
आ वोऽर्वाचः सुविताय रोदस्योर्महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे (देवया) दिव्य गुणों को जो प्राप्त होते वे प्राणवायु (वः) तुम्हारे (धियंधियम) काम-काम को धारण करते वैसे (उ) ही तुम उनको (दधिध्वे) धारण करो । जैसे उन पवनों की (यज्ञायज्ञा) यज्ञ-यज्ञ में और (समना) समान व्यवहारों में (तुतुर्वणि) शीघ्र गति है वैसे (वः) तुम्हारी गति हो जैसे हम लोग (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी सम्बन्धी (सुविताय) ऐश्वर्य के लिए और (महे) अत्यन्त (अवसे) रक्षा के लिए (वः) तुम्हारे (सुवृक्तिभिः) सुन्दर त्यागों के साथ (अर्वाचः) नीचे आने-जानेवाले पवनों को (आ, ववृत्याम्) अच्छे वर्त्ताने के लिए चाहते हैं वैसे तुम चाहो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे पवन नियम से अनेक विधि गतिमान् होकर विश्व का धारण करते हैं वैसे विद्वान जन विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त होकर विद्यार्थियों को धारण करें जिससे असंख्य ऐश्वर्य प्राप्त हो ॥१॥

वव्रासो न ये स्वजाः स्वतवस इषं स्वरभिजायन्त धूतयः ।
सहस्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (ये) जो (स्वजाः) अपने ही कारण से उत्पन्न (स्वतवसः) अपने बल से बलवान (धूतयः) जाने वा दूसरों को कम्पानेवाले मनुष्य (वव्रासः) शीघ्रगामियों के (न) समान वा (अपाम्) जलों की (सहस्रियासः) हजारों (ऊर्मयः) तरङ्गों के (न) समान (आसा) मुख में (वन्द्यासः) वन्दना और कामना के योग्य (गावः) गौएं जैसे (उक्षणः) बैलों को (न) वैसे (इषम्) ज्ञान और (स्वः) सुख को (अभिजायन्त) प्रकट करते हैं उनको तुम जानो ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो पवन के समान बलवान्, तरङ्गों के समान उत्साही, गौओं के समान उपकार करनेवाले, कारण के तुल्य सुखजनक, दुष्टों को कम्पाने, भय देनेवाले मनुष्य हों वे यहाँ धन्य होते हैं ॥२॥

सोमासो न ये सुतास्तृप्तांशवो हृत्सु पीतासो दुवसो नासते ।
ऐषामंसेषु रम्भिणीव रारभे हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सं दधे ॥३॥

पदार्थ—मैं (ये) जो पवनों के समान विद्वान् (तृप्तांशवः) जिनसे सूर्य किरण आदि पदार्थ तृप्त होते और वे (सुताः) कूट-पीट निकाले हुए (सोमासः) सोमादि ओषधि रस (हृत्सु) हृदयों में (पीतासः) पीये हुए हों उनके (न) समान वा (दुवसः) सेवन करनेवालों के (न) समान (आसते) बैठते, स्थिर होते (एषाम्) इनके (अंसेषु) भुजस्कन्धों में (रम्भिणीव) जैसे प्रत्येक काम का आरम्भ करनेवाली स्त्री संलग्न हो वैसे (आ, रारभे) संलग्न होता हूं । और जिन्होंने (हस्तेषु) हाथों में (खादिः) भोजन (च) और (कृतिः) क्रिया (च) भी धारण की है उनके साथ सब क्रियाओं को (सम्, दधे) अच्छे प्रकार धारण करता हूं ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो सज्जन ओषधियों के समान दुष्ट शिक्षा और दुष्टाचार के विनाश करने, सेवकों के समान सुख देने और पतिव्रता स्त्री के समान प्रिय आचरण करनेवाले क्रियाकुशल हैं वे इस सृष्टि में सब विद्याओं के अच्छे धारण करने यथायोग्य कामों में वर्त्तने को योग्य होते हैं ॥३॥

अव स्वयुक्ता दिव आ वृथा ययुरमर्त्याः कशया चोदत त्मना ।
अरेणवस्तुविजाता अचुच्यवुर्दृळ्हानि चिन्मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (त्मना) आत्मा से (कशया) शिक्षा वा गति से जैसे (स्वयुक्ता) अपने से गमन करनेवाले (अमर्त्याः) मरणधर्मरहित (अरेणवः) जिनमें रेणु बालू नहीं विद्यमान (तुविजाताः) बल के साथ प्रसिद्ध और (भ्राजदृष्टयः) जिनकी प्रकाशमान गति वे (मरुतः) पवन (दिवः) आकाश से (आ, ययुः) आते, प्राप्त होते हैं और (दृळ्हानि) पुष्ट (चित्) भी पदार्थों को (वृथा) वृथा निष्काम (अवः, अचुच्यवुः) प्राप्त होते हैं वैसे इनको (चोदत) प्रेरणा देओ ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे पवन आप ही आते-जाते हैं और अग्नि आदि पदार्थों को धारण कर दृढ़ता से प्रकाशित करते हैं वैसे विद्वान् जन आप ही पढ़ाने और उपदेशों में नियुक्त हो व्यर्थ कामों को छोड़ और छुड़वाके विद्या और उत्तम शिक्षा से सब जनों को प्रकाशित करते हैं ॥ ४ ॥

को वोऽन्तर्मरुत ऋष्टिविद्युतो रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया ।
धन्वच्युत इषां न यामनि पुरुप्रैषा अहन्यो३ नैतशः ॥५॥६॥

पदार्थ—हे (पुरुप्रैषा) बहुतों से प्रेरणा को प्राप्त (ऋष्टिविद्युतः) ऋष्टि—द्विधारा खड्ग को बिजुली के समान तीव्र रखनेवाले (मरुत) विद्वानो ! (वः) तुम्हारे (अन्तः) बीच में (कः) कौन (रेजति) कम्पता है और (जिह्वया) वाणी से (हन्वेव) कनपटी जैसे डुलाई जावें वैसे (त्मना) अपने से कौन तुम्हारे बीच में कम्पता है (इषाम्) और इच्छाओं के सम्बन्ध में (धन्वच्युतः) अन्तरिक्ष में प्राप्त मेघों के (न) समान वा (अहन्यः) दिन में प्रसिद्ध होनेवाले (एतशः) घोड़े के (न) समान (यामनि) मार्ग में तुम लोगों को कौन संयुक्त करता है ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जब जिज्ञासु जन विद्वानों के प्रति पूछें तब विद्वान जन इनके लिए यथार्थ उत्तर देवें ॥ ५ ॥

क्व स्विदस्य रजसो महस्परं क्वावरं मरुतो यस्मिन्नायय ।
यच्च्यावयथ विथुरेव संहितं व्यद्रिणा पतथ त्वेषमर्णवम् ॥६॥

पदार्थ—हे (मरुत) विद्वानो ! (अस्य) इस (रजसः) भूगोल का (महः) बड़ा (परम्) कारण (क्व, स्वित) निश्चय से कहाँ और (क्व) कहाँ (अवरम्) कार्य्य वर्त्तमान है इसको हम लोग पूछते हैं (यस्मिन्) जिसमें तुम (आयय) आओ (यत) जिसको (च्यावयथ) चलाओ जिसमें (विथुरेव) दबाये पदार्थों के समान (संहितम्) मेल किये हुए यह जगत् है जिससे (अद्रिणा) मेघवृन्द के पवन (त्वेषम) सूर्य के प्रकाश और (अर्णवम्) समुद्र को (वि, पतथ) नीचे प्राप्त होते हैं वही परब्रह्म सब जगत् का बड़ा कारण है यही उक्त प्रश्नों का उत्तर है ॥६॥

भावार्थ—जिसमें यह भूगोल आदि जगत् जाता, आता, कम्पता उसीको आकाश के समान कारण जानो जिसमें ये लोक उत्पन्न होते, भ्रमते और प्रलय हो जाते हैं वह परम उत्कृष्ट निमित्त कारण ब्रह्म है ॥६॥

सातिर्न वोऽमवती स्वर्वती त्वेषा विपाका मरुतः पिपिष्वती ।
भद्रा वो रातिः पृणतो न दक्षिणा पृथुज्रयी असुर्येव जञ्जती ॥७॥

पदार्थ—हे (मरुत) विद्वानो ! (वः) तुम्हारी जो (पिपिष्वती) बहुत अङ्गों वाली (अमवती) ज्ञानवती (स्वर्वती) जिसमें सुख विद्यमान (विपाका) विविध प्रकार के गुणों से परिपक्व (त्वेषा) उत्तम दीप्ति (सातिः) लोकों की विभक्ति अर्थात् विशेष भाग के (न) समान है और (वः) तुम्हारी जो (पृणतः) पालन करने वा विद्यादि गुणों से परिपूर्ण करनेवाले की (दक्षिणा) देने योग्य दक्षिणा के (न) समान (पृथुज्रयी) बहुत वेगवती (असुर्येव) प्राणों में होनेवाली बिजुली के समान वा (जञ्जती) युद्ध में प्रवृत्त झँझियाती हुई सेना के समान (भद्रा) कल्याण करनेवाली (रातिः) दान है उससे सबको बढ़ाओ ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो इन जीवों की पाप-पुण्य से उत्पन्न हुई सुखदुःख फलवाली गति है उससे समस्त जीव विचरते हैं । जो पुरुषार्थी जन, सेना जन शत्रुओं को जैसे वैसे पापों को जीत, निर्वार धर्म का आचरण करते हैं वे सदैव सुखी होते हैं ॥ ७ ॥

प्रति ष्टोभन्ति सिन्धवः पविभ्यो यदभ्रियां वाचमुदीरयन्ति ।
अव स्मयन्त विद्युतः पृथिव्यां यदी घृतं मरुतः प्रुष्णुवन्ति ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (यत्) जब (मरुतः) पवन (अभ्रियाम्) मेघों में हुई गर्जनारूप (वाचम्) वाणी को (उदीरयन्ति) प्रेरणा देते अर्थात् बद्दलों को गर्जाते हैं तब (सिन्धवः) नदियाँ (पविभ्यः) वज्र तुल्य किरणों से अर्थात् बिजुली की लपट-झपटों से (प्रति, अक्रोशन्ति) शोभित होती हैं और (यदि) जब पवन (घृतम्) मेघों के जल (अभ्युक्षन्ति) वर्षाते हैं तब (विद्युतः) बिजुलियाँ (पृथिव्याम्) भूमि पर (अव, स्मयन्त) मुसुकियाती-सी जान पड़ती हैं वैसे तुम होओ ॥८॥

भावार्थ—जो मनुष्य नदी के समान आर्द्रचित्त, बिजुली के समान तीव्र स्वभाववाले विद्या को पढ़कर पढ़ाते हैं वे सूर्य के समान सत्य और असत्य को प्रकाश करनेवाले होते हैं ॥८॥

असूत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम् ।

ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्वमादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥९॥

पदार्थ—(एषाम्) इन (अयासाम्) गमनशील (मरुताम्) मनुष्यों का (पृश्नि) आदित्य के समान प्रचण्ड प्रतापवान् (त्वेषम्) प्रदीप्त (अनीकम्) गण (महते) महान् (रणाय) संग्राम के लिए (असूत) उत्पन्न होता है (आत्) इसके अनन्तर (इत्) ही (ते) वे (इषिराम्) प्राप्त होने योग्य पदार्थों के बीच (स्वधाम्) अन्न को (अजनयन्त) उत्पन्न करते और (सप्सरासः) गमन करते हुए (अभ्वम्) अविद्यमान अर्थात् जो प्रत्यक्ष विद्यमान नहीं उसको (पर्यपश्यन्) सब ओर से देखते हैं ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विचक्षण राजपुरुष विजय के लिए प्रशंसित सेना को स्वीकार कर अन्नादि ऐश्वर्य की उन्नति करते हैं वे तृप्ति को प्राप्त होते हैं ॥९॥

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।

एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१०॥

पदार्थ—हे (मरुतः) श्रेष्ठ विद्वानो ! जो (एष) यह (वः) तुम्हारा (स्तोमः) प्रश्नोत्तररूप आलाप कथन (मान्दार्यस्य) सबके लिए आनन्द देनेवाले उत्तम (मान्यस्य) जानने योग्य (कारोः) क्रियाकुशल सज्जन की जो (इयम्) यह (गीः) सत्यप्रियावाणी और जो (इषा) इच्छा के साथ (तन्वे) शरीर सुख के लिए (आ, यासीष्ट) प्राप्त हो उससे (वयाम्) हम लोग (इषम्) अन्न (वृजनम्) शत्रुओं को दु:ख देनेवाले बल और (जीरदानुम्) जीवों की दया को (विद्याम) प्राप्त होवें ॥१०॥

भावार्थ—जो समस्त विद्या की स्तुति और प्रशंसा करने और आप्तवाक् अर्थात् धर्मात्मा विद्वानों की वाणियों में रहने तथा जीवों की दया से युक्त सज्जन पुरुष हैं वे सब के सुखों को उत्पन्न करानेवाले होते हैं ॥१०॥

इस सूक्त में पवनों के दृष्टान्त से विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इसके अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एक सौ अड़सठवाँ सूक्त और सातवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ३ भुरिक् पङ्क्तिः, २ पङ्क्तिः, ५, ६ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ४ ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ७, ८ निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब एक सौ उनहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से विद्वानों के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

महश्चित्त्वमिन्द्र यत एतान्महश्चिदसि त्यजसो वरूता ।

स नो वेधो मरुतां चिकित्वान्त्सुम्ना वनुष्व तव हि प्रेष्ठा ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दु:ख के विदारण करनेवाले ! अत्यन्त विद्यागुणसम्पन्न ! (यतः) जिस कारण (त्वम्) आप (एतान्) इन विद्वानों को (महः) अत्यन्त (चित्) भी (त्यजसः) त्याग से (वरूता) स्वीकार करनेवाले (असि) हैं इस कारण (महश्चित्) बड़े भी हैं । हे (मरुताम्) विद्वान् सज्जनों के बीच (वेधः) अत्यन्त बुद्धिमान् ! (सः) सो (चिकित्वान्) ज्ञानवान् आप जो (सुम्ना) सुख (तव) आप को (प्रेष्ठा) अत्यन्त प्रिय हैं उनको (नः) हमारे लिए (वनुष्व, हि) निश्चय से देओ ॥१॥

भावार्थ—जो विरक्त सन्यासियों के सङ्ग से बुद्धिमान् होते हैं उनको कभी अनिष्ट दु:ख नहीं उत्पन्न होता ॥ १ ॥

अयुञ्जन्त इन्द्र विश्वकृष्टीर्विदानासो निष्षिधो मर्त्यत्रा ।

मरुतां पृत्सुतिर्हासमाना स्वर्मीळ्हस्य प्रधनस्य सातौ ॥२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सुख के देनेहारे विद्वन् ! जो (निष्षिधः) अधर्म का निषेध करनेहारे (मर्त्यत्रा) मनुष्यों में (विदानासः) विद्वान् होते हुए (स्वर्मीळ्हस्य) सुखों के सींचनेहारे (प्रधनस्य) उत्तम धन के (सातौ) अच्छे प्रकार भाग में (विश्वकृष्टीः) सब मनुष्यों को (अयुञ्जन्) युक्त करते हैं (ते) वे जो (मरुताम्) मनुष्यों की (हासमाना) आनन्दमयी (पृत्सुतिः) वीरसेना है, उसको प्राप्त होवें ॥ २ ॥

भावार्थ—जो पहले ब्रह्मचर्य से विद्या को पढ़कर धर्मात्मा, आप्तज्ञ विद्वानों के संग से समस्त शिक्षा को पाकर धार्मिक होते हैं वे संसार को सुख देनेवाले होते हैं ॥ २ ॥

अम्यक्सा त इन्द्र ऋष्टिरस्मे सनेम्यभ्वं मरुतो जुनन्ति ।

अग्निश्चिद्धि ष्मातसे शुशुक्वानापो न द्वीपं दधति प्रयांसि ॥३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दुष्टों को विदारण करनेवाले ! जिससे (मरुतः) मनुष्य (सनेमि) प्राचीन और (अभ्वम्) नेत्र से प्रत्यक्ष देखने में अप्रसिद्ध उत्तम विषय को (जुनन्ति) प्राप्त होते हैं (सा) वह (ते) आपकी (ऋष्टिः) प्राप्ति (अस्मे) हमारे लिए (अम्यक्) सीधी चाल को प्राप्त होती है अर्थात् सरलता से आप हम लोगों को प्राप्त होते हैं और (शुशुक्वान्) शुद्ध करनेवाले (अग्निः) अग्नि के समान (चित्) ही आप (हि) निश्चय के साथ (स्म) जैसे आश्चर्यवत् (आपः) जल (द्वीपम्) दो प्रकार से जिसमें जल आवें-जावें उस बड़े भारी नद को प्राप्त हों (न) वैसे सब के अनादि कारण को (अतसे) निरन्तर प्राप्त होते हैं इससे सब मनुष्य (प्रयांसि) सुन्दर मनोहर चाहने योग्य वस्तुओं को (दधति) धारण करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जिस अनादि कारण को विद्वान् जानते उसको और जन नहीं जान सकते हैं ॥ ३ ॥

त्वं तू न इन्द्र तं रयिं दा ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिम् ।

स्तुतश्च यास्ते चकनन्त वायोः स्तनं न मध्वः पीपयन्त वाजैः ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) बहुत पदार्थों के देनेवाले ! (त्वम्) आप (तु) तो (नः) हमारे लिए (ओजिष्ठया) अतीव बलवती (दक्षिणयेव) दक्षिणा के साथ दान जैसे दिया जाए वैसे (रातिम्) दान को तथा (तम्) उस (रयिम्) दुग्धादि धन को (दाः) दीजिए कि जिससे (ते) आपकी और (वायोः) पवन की (च) भी (याः) जो (स्तुतः) स्तुति करनेवाली हैं वे (मध्वः) मधुर उत्तम (स्तनम्) दूध के भरे हुए स्तन के (न) समान (चकनन्त) चाहती और (वाजैः) अन्नादिकों के साथ (पीपयन्त) बछड़ों को पिलाती हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जैसे बहुत पदार्थों को देनेवाला यजमान ऋतु-ऋतु में यज्ञादि करानेवाले पुरोहित के लिए बहुत धन देकर उसको सुशोभित करता है वा जैसे पुत्र माता का दूध पीके पुष्ट हो जाते हैं वैसे सभाध्यक्ष के परितोष से भृत्यजन पूर्ण धनी और उनके दिये भोजनादि पदार्थों से बलवान् होते हैं ॥ ४ ॥

त्वे राय इन्द्र तोशतमाः प्रणेतारः कस्य चिदृतायोः ।

ते षु णो मरुतो मृळयन्तु ये स्मा पुरा गातूयन्तीव देवाः ॥५॥८॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) देनेवाले ! (ये) जो (कस्य, चित्) किसी (ऋतायोः) अपने को सत्य की चाहना करनेवाले (प्रणेतारः) उत्तम साधक (तोशतमाः) और अतीव प्रसन्न चित्त होते हुए (मरुतः) पवनविद्या को जाननेवाले (देवाः) विद्वान् जन (त्वे) तुम्हारे रक्षक होते (रायः) धनों की प्राप्ति करा (नः) हम लोगों को (सु, मृळयन्तु) अच्छे प्रकार सुखी करें वा (पुरा) पूर्व (गातूयन्तीव) अपने को पृथिवी चाहते हुए प्रयत्न करते हैं (ते, स्म) वे ही रक्षा करनेवाले हों ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो वायुविद्या के जाननेवाले परोपकार और विद्यादान देने में प्रसन्न चित्त, पृथिवी के समान सब प्राणियों को पुरुषार्थ में धारण करते हैं वे सर्वदा सुखी होते हैं ॥ ५ ॥

प्रति प्र याहीन्द्र मीळ्हुषो नॄन्महः पार्थिवे सदने यतस्व ।

अध यदेषां पृथुबुध्नास एतास्तीर्थे नार्यः पौंस्यानि तस्थुः ॥६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) प्रयत्न करनेवाले ! आप (यत्) जो (पृथुबुध्नासः) विस्तारयुक्त अन्तरिक्षवाले जन (एताः) ये स्त्रीजन और (एषाम्) इनके (पौंस्यानि) बल (तीर्थे) जिससे समुद्र रूप जल समूहों को तरें उस नौका में (अर्यः) वैश्य के (न) समान (तस्थुः) स्थिर होते हैं उन (मीळ्हुषः) सुखों से सींचनेवाले (नॄन्) अग्रगामी मनुष्यों को (प्रति) (प्र, याहि) प्राप्त होओ (अध) इसके अनन्तर (महः) बड़े (पार्थिवे) पृथिवी में विदित (सदने) घर में (यतस्व) यत्न करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो पुरुष और जो स्त्री ब्रह्मचर्य से बलों को बढ़ाकर आप्त, धर्मात्मा, शास्त्रवक्ता सज्जनों की सेवा करते हैं वे पुरुष विद्वान् और वे स्त्रियाँ विदुषी होती हैं ॥ ६ ॥

अब प्रकृत विषय में शूरवीर होने के गुणों को कहा है—

प्रति घोराणामेतानामयासां मरुतां शृण्व आयतामुपाब्दिः ।

ये मर्त्यं पृतनायन्तमूमैर्ऋणावानं न पतयन्त सर्गैः ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (घोराणाम्) मारनेवाली (एतानाम्) इन पूर्वोक्त (अयासाम्) प्राप्त हुए वा (आयताम्, अयासाम्) आते हुए पवनवत् शीघ्र-कारी स्त्री-पुरुषों की जो (उपब्दिः) वाणी है उसको (प्रति, शृण्वे) बार-बार सुनाता हूँ और (ये) जो (पृतनायन्तम्) अपने को सेना की इच्छा करते हुए (मर्त्यम्) मनुष्यों को (ऋणावानम्) ऋणयुक्त को जैसे (न) वैसे (ऊमैः) रक्षणादि (सर्गैः) संसर्गों से युक्त विषयों के साथ (पतयन्त) स्वामी के समान मानें उनका सेवन करता हूँ वैसे तुम भी आचरण करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो दुष्ट पुरुष और स्त्रियों के कठोर शब्दों को सुनकर नहीं सोच करते हैं वे शूरवीर होते हैं ॥७॥

त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या रदा मरुद्भिः शुरुधो गोअग्राः ।

स्तवानेभिः स्तवसे देव देवैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८॥

पदार्थ—हे (देव) विद्वन् (इन्द्र) सभापति ! जैसे हम लोग (मानेभ्यः) सत्कारों से (स्तवसे) स्तुति के लिए (स्तवानेभिः) समस्त विद्याओं की स्तुति प्रशंसा करनेवाले (मरुद्भिः) पवनों की विद्या जाननेवाले (देवैः) विद्वानों से (विश्वजन्या) विश्व को उत्पन्न करने और (शुरुधः) नित्य हिंसक किरणों के धारण करनेवाले (गो, अग्राः) जिनके सूर्य किरणें आगे विद्यमान उन जल और (इषम्) अन्न (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवनस्वरूप को (विद्याम) जानें वैसे इन जल और अन्नादि को (त्वम्) आप (रद) प्रत्यक्ष जानो अर्थात् उनका नाम, धामरूप सब प्रकार जानो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि विद्वानों के सत्कार से विद्याओं को अध्ययन कर पदार्थविद्या के विज्ञान को प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

इस सूक्त मे विद्वान् आदि के गुणों का वर्णन होने से इसके अर्थ की
पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह एक सौ उनहत्तरवां सूक्त और नवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

न नूनमिति पञ्चर्चस्य सप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः ।
इन्द्रो देवता । १ स्वराडनुष्टुप् , २ अनुष्टुप् , ३ विराडनुष्टुप् ,
४ निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । भुरिक्
पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब एकसौ सत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उसमे आरम्भ से प्रकारान्तर करके
विद्वानों के गुणों का वर्णन करते हैं -

न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद्वेद यदद्भुतम् ।

अन्यस्य चित्तमभि संचरेण्यमुताधीतं वि नश्यति ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (अन्यस्य) औरों को (संचरेण्यम्) अच्छे प्रकार जानने योग्य (चित्तम्) अन्तःकरण की स्मरणात्मिका वृत्ति (उत) और (आधीतम्) सब ओर से धारण किया हुआ विषय (न) न (अभि, वि, नश्यति) नहीं विनाश को प्राप्त होता न आज होकर (नूनम्) निश्चित रहता (अस्ति) है और (नो) न (श्वः) अगले दिन निश्चित रहता है (तत्) उस (अद्भुतम्) आश्चर्यस्वरूप के समान वर्त्तमान को (कः) कौन (वेद) जानता है ॥ १ ॥

भावार्थ—जो जीवरूप होकर उत्पन्न नहीं होता और न उत्पन्न होकर विनाश को प्राप्त होता है नित्य आश्चर्य गुण, कर्म, स्वभाववाला अनादि चेतन है उसका जाननेवाला भी आश्चर्यस्वरूप होता है ॥ १ ॥

किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव ।

तेभिः कल्पस्व साधुया मा नः समरणे वधीः ॥२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभापति विद्वन् ! जो हम (मरुतः) मनुष्य लोग (तव) आपके (भ्रातरः) भाई हैं उन (नः) हम लोगों को (किम्) क्या (जिघांससि) मारने की इच्छा करते हो ? (तेभिः) उन हम लोगों के साथ (साधुया) उत्तम काम से (कल्पस्व) समर्थ होओ और (समरणे) संग्राम मे (नः) हम लोगों को (मा, वधीः) मत मारिए ॥ २ ॥

भावार्थ—जो कोई बन्धुओं को पीड़ा देना चाहें वे सदा पीड़ित होते हैं और जो बन्धुओं की रक्षा किया चाहते हैं वे समर्थ होते हैं अर्थात् सब काम उनके प्रबलता से बनते हैं । जो सबका उपकार करनेवाले हैं उनको कुछ भी काम अप्रिय नहीं प्राप्त होता ॥ २ ॥

किं नो भ्रातरगस्त्य सखा सन्नति मन्यसे ।

विद्मा हि ते यथा मनोऽस्मभ्यमिन्न दित्ससि ॥३॥

पदार्थ—हे (अगस्त्य) विज्ञान में उत्तमता रखनेवाले (भ्रातः) भाई विद्वन् ! (सखा) मित्र (सन्) होते हुए आप (नः) हम लोगों को (किम्) क्या (अति, मन्यसे) अतिमान करते हो ? अर्थात् हमारे मान को छोड़कर वर्त्तते हो ? (यथा) जैसे (ते) तुम्हारा अपना (मनः) अन्तःकरण (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (हि) ही (न) न (दित्ससि) देना चाहते हो अर्थात् हमारे लिए अपने अन्तःकरण को उत्साहित क्या नहीं किया चाहते हो ? वैसे (इत्) ही तुमको हम लोग (विद्म) जानें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है । जो जिसके मित्र हों, वे मन, वचन और कर्म से उनकी प्रसन्नता का काम करें और जितना विद्या ज्ञान अपने को हो उतना मित्र के समर्पण करें ॥ ३ ॥

अरं कृण्वन्तु वेदिं समग्निमिन्धतां पुरः ।

तत्रामृतस्य चेतनं यज्ञं ते तनवावहै ॥४॥

पदार्थ—हे मित्र ! जैसे विद्वान् जन जहां (पुरः) प्रथम (वेदिम्) जिससे प्राणी विषयों को जानता है उस प्रज्ञा और (अग्निम्) अग्नि के समान देदीप्यमान विज्ञान को (समिन्धताम्) प्रदीप्त करें वा (अरम्, कृण्वन्तु) सुशोभित करें (तत्र) वहाँ (अमृतस्य) विनाशरहित जीवमात्र (ते) आपके (चेतनम्) चेतन अर्थात् जिससे अच्छे प्रकार यह जीव जानता और (यज्ञम्) विषयों को प्राप्त होता उसका वैसे हम पढ़ाने और उपदेश करनेवाले (तनवावहै) विस्तारें ॥४॥

भावार्थ—जैसे ऋतु-ऋतु मे यज्ञ करानेवाले और यजमान अग्नि मे सुगन्धादि द्रव्य का हवन कर उससे वायु और जल को अच्छे प्रकार शोध कर जगत् का सुख से युक्त करते है वैसे अध्यापक और उपदेशक औरों के अन्तःकरणों मे विद्या और उत्तम शिक्षा संस्थापन कर सबके सुख का विस्तार करें ॥ ४ ॥

त्वमीशिषे वसुपते वसूनां त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठः ।

इन्द्र त्वं मरुद्भिः सं वदस्वाध प्राशान ऋतुथा हवींषि ॥५॥१०॥

पदार्थ—(वसूनाम्) किया है चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य जिन्होंने और जो पृथिव्यादिकों के समान सहनशील हैं उन (वसुपते) हे धनों के स्वामी ! (त्वम्) तुम (ईशिषे) ऐश्वर्यवान् हो वा ऐश्वर्य बढ़ाते हो । हे (मित्राणाम्) मित्रों में (मित्रपते) मित्रों के पालनेवाले श्रेष्ठ मित्र ! (त्वम्) तुम (धेष्ठः) अतीव धारण करनेवाले होते हो । हे (इन्द्र) परमैश्वर्य्य के देनेवाले ! (त्वम्) तुम (मरुद्भिः) पवनों के समान वर्त्तमान विद्वानों के साथ (संवदस्व) संवाद करो । (अध) इसके अनन्तर (ऋतुथा) ऋतु-ऋतु के अनुकूल (हवींषि) खाने योग्य अन्नों को (प्र, आशान) अच्छे प्रकार खाओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो धनवान्, सबके मित्र बहुतों के साथ सत्कार किये हुए अन्नों को खाते और विद्या से परिपूर्ण विद्वानों के साथ संवाद करते हैं वे समर्थ और ऐश्वर्यवान् होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त मे विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले
सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एक सौ सत्तरवां सूक्त और दशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

प्रतीत्यस्य षडृचस्यैकसप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः । मरुतो
देवताः । १, ५ निचृत् त्रिष्टुप्; २ त्रिष्टुप्, ४, ६ विराट् त्रिष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ।

अब एक सौ इकहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उसमें फिर विद्वानों के
कृत्य का वर्णन करते हैं —

प्रति व एना नमसाहमेमि सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणाम् ।

रराणता मरुतो वेद्याभिर्नि हेळो धत्त वि मुचध्वमश्वान् ॥१॥

पदार्थ—हे (मरुतः) विद्वानो ! (अहम्) मैं (एना) इस (नमसा) नमस्कार, सत्कार वा अन्न से (वः) तुम्हारे (प्रति, एमि) प्रति आता हूँ और (सूक्तेन) सुन्दर कहे हुए विषय से (तुराणाम्) शीघ्रकारी जनों की (सुमतिम्) उत्तम मति को (भिक्षे) मांगता हूँ । हे विद्वानो ! तुम (रराणता) रमण करते हुए मन से (वेद्याभिः) दूसरे को बताने योग्य क्रियाओं से (हेळः) अनादर को (नि, धत्त) धारण करो अर्थात् सत्कार-असत्कार के विषयों को विचार के हर्ष शोक न करो । और (अश्वान्) अतीव उत्तम वेगवान् अपने घोड़ों को (वि, मुचध्वम्) छोड़ो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो शुद्ध अन्तःकरण के नाना प्रकार के विज्ञानों को प्राप्त होते हैं वे कहीं अनादर नहीं पाते ॥ १ ॥

एष वः स्तोमो मरुतो नमस्वान् हृदा तष्टो मनसा धायि देवाः ।

उपेमा यात मनसा जुषाणा यूयं हि ष्ठा नमस इद्वृधासः ॥२॥

पदार्थ—हे (देवा) कामना करते हुए (मरुतः) विद्वानो ! जिससे (एष) यह (वः) तुम्हारा (नमस्वान्) सत्कारात्मक (हृदा) हृदयस्थ विचार से (तष्ट) विधान किया (स्तोम) सत्कारात्मक स्तुति विषय (मनसा) मन से (धायि) धारण किया जाए (हि) उसी को (मनसा) मनसे (जुषाणाः) सेवते हुए (यूयम्) तुम लोग (उप, आ, यात) समीप आओ और (नमस) अन्नादि ऐश्वर्य की (इत्) ही (ईम्) सब ओर से (वृधासः) वृद्धि को प्राप्त वा उसको बढ़ानेवाले (स्थ) होओ ॥ २ ॥

भावार्थ जो धार्मिक विद्वानो के शील का स्वीकार करते है वे प्रशंसित होते हैं ॥ २ ॥

स्तुतासो नो मरुतो मृळयन्तूत स्तुतो मघवा शम्भविष्ठः ।
ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥३॥

पदार्थ—हे (मरुत) बलवान् विद्वानो ! हम लोगो से (स्तुतासः) स्तुति किये हुए आप (नः) हमको (मृळयन्तु) सुखी करो (उत) और (स्तुत) प्रशंसा को प्राप्त होता हुआ (मघवा) सत्कार करने योग्य पुरुष (शम्भविष्ठः) अतीव सुख की भावना करनेवाला हो । हे (मरुतः) शूरवीर जनो ! जैसे (नः) हमारे (विश्वा) समस्त (कोम्या) प्रशंसनीय (जिगीषा) जीतने और (वनानि) सेवने योग्य (अहानि) दिन (ऊर्ध्वा) उत्कृष्ट हैं वैसे तुम्हारे (सन्तु) हों ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो को चाहिए कि जिनमें जैसे गुण, कर्म, स्वभाव हो उनकी वैसी प्रशंसा करें और प्रशंसा योग्य वे ही हों जो औरो की सुखोन्नति के लिए प्रयत्न करें और वे ही सेवने योग्य हो जो पापाचरण को छोड धार्मिक हों, वे प्रतिदिन विद्या और उत्तम शिक्षा की वृद्धि के अर्थ उद्योगी हो ॥ ३ ॥

अस्मादहं तविषादीषमाण इन्द्राद्भिया मरुतो रेजमानः ।
युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन्तान्यारे चकृमा मृळता नः ॥४॥

पदार्थ—हे (मरुतः) प्राण के समान सभासदो ! (अस्मात्) इस (तविषात्) अत्यन्त बलवान् से (ईषमाण) ऐश्वर्य करता और (इन्द्रात्) परमैश्वर्यवान् सभा सेनापति से (भिया) भय के साथ (रेजमान) कम्पता हुआ (अहम्) मैं यह निवेदन करता हूँ कि जो (युष्मभ्यम्) तुम्हारे लिए (हव्या) ग्रहण करने योग्य (निशितानि) शस्त्र-अस्त्र तीव्र (आसन्) हैं (तानि) उनको हम लोग (आरे) समीप (चकृम) करें और उनसे (नः) हम लोगो को तुम जैसे (मृळत) सुखी करो वैसे हम भी तुम लोगों को सुखी करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—जब किसी राजपुरुष से अन्यायपूर्वक पीड़ा को प्राप्त होता हुआ प्रजा जन सभा के बीच अपने दुःख का निवेदन करे तब उसके मन के कांटो को उपाड देवें अर्थात् उसके मन की शुद्ध भावना करा देवें जिससे राजपुरुष न्याय में वर्त्तें और प्रजा जन भी प्रसन्न हो । जितने स्त्री पुरुष हो वे सब शस्त्र का अभ्यास करें ॥ ४ ॥

येन मानासश्चितयन्त उस्रा व्युष्टिषु शवसा शश्वतीनाम् ।
स नो मरुद्भिर्वृषभ श्रवो धा उग्र उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः ॥५॥

पदार्थ—(येन) जिस (शवसा) बल से वर्त्तमान (शश्वतीनाम्) सनातन (व्युष्टिषु) नाना प्रकार की बस्तियो मे (उस्राः) मूल राज्य मे परम्परा से निवास करते हुए (मानास) विचारवान् विद्वान् जन प्रजाजनों को (चितयन्ते) चैतन्य करते हैं । हे (वृषभ) सुखों की वर्षा करनेवाले सभापति ! (उग्रेभिः) तेजस्वी (मरुद्भि) विद्वानो के साथ (उग्र) तीव्रस्वभाव (स्थविर) कृतज्ञ वृद्ध (सहोदा) बल के देनेवाले होते हुए आप (श्रव) अन्न आदि पदार्थ को (धाः) धारण कीजिए और (स) सो आप (नः) हमारे राजा हूजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—जहाँ सभा मे मूल जड़ के अर्थात् निष्कलङ्क कुल-परम्परा से उत्पन्न हुए और शास्त्रवेत्ता धार्मिक सभासद् सत्य न्याय करें और विद्या तथा अवस्था से वृद्ध सभापति भी हो वहाँ अन्याय का प्रवेश नहीं होता है ॥ ५ ॥

त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नॄन्भवा मरुद्भिरवयातहेळाः ।
सुप्रकेतेभिः सासहिर्दधानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥११॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभापति ! (त्वम्) आप (सुप्रकेतेभि) सुन्दर उत्तम ज्ञानवान् (मरुद्भि) प्राण के समान रक्षा करनेवाले विद्वानों के साथ (सहीयस) अतीव बलयुक्त सहनेवाले (नॄन्) मनुष्यों की (पाहि) रक्षा कीजिए और (अवयातहेळा) दूर हुआ अनादर, अपकीर्त्तिभाव जिससे ऐसे (भव) हूजिए जैसे (इषम्) विद्या योग से उत्पन्न हुए बोध (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवात्मा को (दधानः) धारण करते हुए (सासहिः) अतीव सहनशील होते हुए इसको हम लोग (विद्याम) जानें ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य क्रोधादि दोषरहित, विद्या, विज्ञान, धर्म्मयुक्त, क्षमावान् जन, सज्जनो के साथ जो दण्ड देने योग्य नहीं हैं उनकी रक्षा करते और दण्ड देने योग्य को दण्ड देते हैं वे राजकर्मचारी होने के योग्य हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त मे विद्वानो के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एक सौ इकहत्तरवां सूक्त और ग्यारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

चित्र इत्यस्य त्र्यृचस्यागस्त्य ऋषि । मरुतो देवताः । १ विराड् गायत्री, २, ३ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वर ॥

अब तीन ऋचावाले एक सौ बहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है इसमें पवन के दृष्टान्त से विद्वानों के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

चित्रो वोऽस्तु यामश्चित्र ऊती सुदानवः ।
मरुतो अहिभानवः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (ऊती) रक्षा आदि के साथ वर्त्तमान (अहिभानवः) मेघ का प्रकाश करनेवाले (सुदानवः) सुन्दर दानशील और (मरुतः) प्राण के समान वर्त्तमान जनो ! जैसे पवनो का (चित्रः) अद्भुत (यामः) गमन करना वा (चित्रः) चित्र-विचित्र स्वभाव है वैसे (वः) तुम्हारा (अस्तु) हो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे जीवन का अच्छे प्रकार देना, वर्षा करना आदि पवनो के अद्भुत कर्म्म हैं वैसे तुम्हारे भी हों ॥ १ ॥

आरे सा वः सुदानवो मरुत ऋञ्जती शरुः ।
आरे अश्मा यमस्यथ ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (सुदानवः) प्रशंसित दान करनेवाले (मरुतः) वायुवत् बलवान् विद्वानो ! (वः) तुम्हारी जो (ऋञ्जती) पचाती-जलाती (शरुः) दुष्टो को विनाशती हुई द्विधारा तलवार है (सा) वह हम से (आरे) दूर रहे और (यम्) जिस विशेष शस्त्र को (अश्मा) मेघ के समान तुम (अस्यथ) छोड़ते हो वह हमारे (आरे) समीप रहे ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य मेघ के समान सुख देनेवाले, दुष्टों को छोड़नेवाले श्रेष्ठो के समीप और दुष्टों से दूर बसते हैं वे सङ्ग करने योग्य हैं ॥ २ ॥

तृणस्कन्दस्य नु विशः परि वृङ्क्त सुदानवः ।
ऊर्ध्वान्नः कर्त्त जीवसे ॥ ३ ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (सुदानव) उत्तम दान देनेवाले ! तुम (तृणस्कन्दस्य) जो तृणो को प्राप्त अर्थात् तृणमात्र का लोभ करता वा दूसरो को उस लोभ पर पहुँचाता उसकी (विशः) प्रजा को (नु) शीघ्र (परि, वृङ्क्त) सब ओर से छोड़ो और (जीवसे) जीवने के अर्थ (नः) हम लोगों को (ऊर्ध्वान्) उत्कृष्ट (कर्त्त) करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जैसे वायु समस्त प्रजा की रक्षा करता वैसे सभापति वर्त्ते । जैसे प्रजाजनो की पीड़ा नष्ट हो, मनुष्य उत्कृष्ट, अति उत्तम, बहुत जीवनेवाले उत्पन्न हों वैसा कार्य्यारम्भ सब को करना चाहिए ॥ ३ ॥

इस सूक्त मे पवन के तुल्य विद्वानों के गुणो की प्रशंसा होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एक सौ बहत्तरवां सूक्त और बारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

गायदित्यस्य त्रयोदशर्चस्य त्रिसप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ५, ११ पङ्क्तिः, ६, ९, १०, १२ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २, ८ विराट् त्रिष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्; ७, १३ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ बृहती छन्दः । मध्यमः स्वर ॥

अब तेरह ऋचावाले एक सौ तेहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उसमें आरम्भ से फिर विद्वानों के गुणो का वर्णन करते हैं—

गायत्साम नभन्यं यथा वेरर्चाम तद्वावृधानं स्वर्वत् ।
गावो धेनवो बर्हिष्यदब्धा आ यत्सद्मानं दिव्यं विवासान् ॥१॥

पदार्थ—(यत्) जो (स्वर्वत्) सुख सम्बन्धी वा सुखोत्पादक (वावृधानम्) अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त (नभन्यम्) आकाश के बीच मे साधु अर्थात् गगनमण्डल में व्याप्त (साम) साम गान को विद्वान् आप (यथा) जैसे (वेः) स्वीकार करें वैसे (गायत) गावें और (बर्हिषि) अन्तरिक्ष मे जो (गावः) किरणें उनके समान जो (अदब्धा) न हिंसा करने योग्य (धेनवः) दूध देनेवाली गौएँ

(विश्वम्) मनोहर (सधस्थम्) जिसमें स्थित होते हैं उस घर को (आ, विवासाम) अच्छे प्रकार सेवन करें (तत्) उस सामगान और उन गौओं को हम लोग (अर्चथ) सराहें उनका सत्कार करें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे किरण अन्तरिक्ष में बिखर कर सब का प्रकाश करती हैं वैसे हम लोगों को विद्या से सबके अन्तःकरण प्रकाशित करने चाहिएं जैसे निराधार पक्षी आकाश में जाते-आते हैं वैसे विद्वानों और लोकलोकान्तरों की चाल हैं ॥ १ ॥

अब चलते हुए प्रकरण में स्त्री-पुरुष के घर के काम के दृष्टान्त से औरों को उपदेश करते हैं—

अर्चद्वृषा वृषभिः स्वेदुहव्यैर्मृगो नाश्नो अति यज्जुगुर्यात् ।

प्र मन्दयुर्मनां गूर्त होता भरते मर्यो मिथुना यजत्रः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (वृषा) सत्योपदेशरूपी शब्दों की वर्षा करनेवाला (यजत्रः) शुभ गुणों में व्याप्त (मन्दयुः) अपनी प्रशंसा चाहता हुआ (होता) दानशील (यजत्र) सङ्ग करनेवाला (मर्यः) मरणधर्मा मनुष्य (स्वेदुहव्यैः) आप ही प्रकाशित किये देने-लेने के व्यवहारों और (वृषभिः) उपदेश करनेवालों के साथ (यत्) जो (मृगः) हिरण के (न) समान (अति, जुगुर्यात्) अतीव उद्यम करे, अति यत्न करे और (भरते) धारण करता (मनाम्) विचारशीलों का सङ्ग (अर्चत्) सराहे, प्रशंसित करे वा जैसे (मिथुना) स्त्री-पुरुष दो-दो मिलके सङ्ग धर्म को करें वैसे तुम (प्र, गूर्त) उत्तम उद्यम करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं। जैसे स्वयंवर किये हुए स्त्री-पुरुष परस्पर उद्योग कर हरिण के समान वेग से घर के कामों को सिद्ध कर, विद्वानों के सङ्ग से सत्य का स्वीकार कर, असत्य को छोड़कर परमेश्वर और विद्वानों का सत्कार करते हैं वैसे समस्त मनुष्य सङ्ग करनेवाले हों ॥ २ ॥

फिर प्रकारान्तर से उपदेश विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

नक्षद्धोता परि सद्म मिता यन्भरद्गर्भमा शरदः पृथिव्याः ।

क्रन्ददश्वो नयमानो रुवद्गौरन्तर्दूतो न रोदसी चरद्वाक् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (होता) ग्रहण करनेवाला (मिता) प्रमाणयुक्त (सद्म) घरों का (नक्षत्) प्राप्त होवे वा (शरदः) शरद् ऋतु सम्बन्धी (पृथिव्याः) पृथिवी के (गर्भम्) गर्भ को (आ, भरत्) पूरा करता वा (नयमानः) पदार्थों को पहुँचाता हुआ (अश्व) घोड़े के समान (क्रन्दत्) शब्द करता वा (गौ) वृषभ के समान (रुवत्) शब्द करता वा (दूत) समाचार पहुँचानेवाले दूत के (न) समान वा (वाग्) वाणी के समान (रोदसी) आकाश और पृथिवी के (अन्तः) बीच (चरत्) विचरता वैसे आप लोग (परि, यन्) पर्यटन करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे घोड़ा और गौएँ परिमित मार्ग को जाती हैं वैसे अग्नि नियत किये हुए देशस्थान को जाता है जैसे धार्मिक जन अपने पदार्थ लेते हैं वैसे ऋतु अपने चिह्नों को प्राप्त होते हैं वा जैसे द्यावापृथिवी एक साथ वर्त्तमान हैं वैसे विवाह किये हुए स्त्री पुरुष वर्त्तें ॥ ३ ॥

ता कर्माषतरास्मै प्र च्यौत्नानि देवयन्तो भरन्ते ।

जुजोषदिन्द्रो दस्मवर्चा नासत्येव सुग्म्यो रथेष्ठाः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (देवयन्तः) अपने को विद्वानों की इच्छा करनेवाले सज्जन (अस्मै) जिन (अषतरा) अतीव प्राप्त पदार्थों और (च्यौत्नानि) इस आगे कहने योग्य ऐश्वर्य चाहनेवाले सभापति आदि के लिए स्तुतियों को (प्र, भरन्ते) उत्तमता से धारण करते हैं (ता) उनको (दस्मवर्चा) शत्रुओं में जिस का पराक्रम वर्त्त रहा है वह (सुग्म्यः) सुख साधन पदार्थों में उत्तम (रथेष्ठाः) रथ में बैठनेवाला (इन्द्र) ऐश्वर्य चाहता हुआ (नासत्येव) सूर्य और चन्द्रमा के समान (जुजोषत्) सेवे वैसे हम लोग (कर्म) करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो सूर्य चन्द्रमा के समान शुभ, गुण, कर्म, स्वभावों से प्रकाशित आप्त, शास्त्रज्ञ धर्मात्माओं के तुल्य आचरण करते हैं वे क्या-क्या सुख नहीं पाते ॥ ४ ॥

अब भले-बुरे के विवेक करने पर जो विद्वानों का विषय उसका अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

तमु ष्टुहीन्द्रं यो ह सत्वा यः शूरो मघवा यो रथेष्ठाः ।

प्रतीचश्चिद्योधीयान्वृषण्वान्ववव्रुषश्चित्तमसो विहन्ता ॥५॥१३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप (यः) जो (सत्वा) बलवान् (यः, चित्) और जो (शूरः) शूर (मघवा) परमपूजित धनयुक्त (यः, चित्) और जो (रथेष्ठाः) रथ में स्थित होनेवाला (योधीयान्) अत्यन्त युद्धशील (वृषण्वान्) बलवान् (प्रतीचः) प्रति पदार्थ होनेवाले (ववव्रुषः) रूपयुक्त (तमसः) अन्धकार का (विहन्ता) विनाश करनेवाले सूर्य के समान है (तम् उ, ह) उसी (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् सेनापति की (स्तुहि) प्रशंसा करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्यों को चाहिए कि उसी की स्तुति करें जो प्रशंसित कर्म करें और उसी की निन्दा करें जो निन्दित कर्मों का आचरण करे, वही स्तुति है जो सत्य कहना और वही निन्दा है जो किसी के विषय में झूठ बकना है ॥ ५ ॥

अब इस प्रकृत विद्वद्विषय में लोकलोकान्तर विज्ञान विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्र यदित्था महिना नृभ्यो अस्त्यरं रोदसी कक्ष्ये॒ नास्मै ।

सं विव्य इन्द्रो वृजनं न भूमा भर्ति स्वधावाँ ओपशमिव द्याम् ॥६॥

पदार्थ—(यत्) जो (इन्द्र) सूर्य (वृजनम्) बल के (न) समान (भूम) बहुत पदार्थों को (सम्, विव्ये) अच्छे प्रकार स्वीकार करता और (स्वधावान्) अन्नादि पदार्थवाला वह सूर्यमण्डल (ओपशमिव) अत्यन्त एक में मिले हुए पदार्थ के समान (द्याम्) प्रकाश को (प्र, भर्ति) धारण करता (अस्मै) इसके लिए (कक्ष्ये) अपनी-अपनी कक्षाओं में प्रसिद्ध हुए (रोदसी) द्युलोक और पृथिवीलोक (न) नहीं (अरम्) परिपूर्ण होते वह (इत्था) इस प्रकार (महिना) अपनी महिमा से (नृभ्यः) अग्रगामी मनुष्यों के लिए परिपूर्ण (अरमस्ति) समर्थ है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं। जैसे प्रकाश रहित पृथिवी आदि पदार्थ सब का आच्छादन करते हैं वैसे सूर्य अपने प्रकाश से सब का आच्छादन करता है जैसे भूमिज पदार्थों को पृथिवी धारण करती है वैसे ही सूर्य भूगोलों को धारण करता है ॥ ६ ॥

अब विद्वद्विषय में राज्यप्राप्ति का साधन विषय अगले मन्त्र में कहा है—

समत्सु त्वा शूर सतामुराणं प्रपथिन्तमं परितंसयध्यै ।

सजोषस इन्द्रं मदे क्षोणीः सूरिं चिद्ये अनुमदन्ति वाजैः ॥७॥

पदार्थ—हे (शूर) दुष्टों की हिंसा करनेवाले सेनाधीश ! (ये) जो (सजोषसः) समान प्रीति सेवनेवाले (समत्सु) सङ्ग्रामों में (परितंसयध्यै) सब ओर से भूषित करने के लिए (सताम्) सत्पुरुषों में (उराणम्) अधिक बल करते हुए (प्रपथिन्तमम्) आवश्यकता से उत्तम पथगामी (इन्द्रम्) सेनापति (त्वा) तुमको (मदे) हर्ष, आनन्द के लिए (क्षोणीः) भूमियों को (सूरिम्) विद्वान् के (चित्) समान (वाजैः) वेगादि गुणयुक्त वीर वा अश्वादिकों के साथ (अनु, मदन्ति) अनुमोद, आनन्द देते हैं उनको तू भी आनन्दित कर ॥७॥

भावार्थ—वे निर्वैर हैं जो अपने समान और प्राणियों को जानते हैं उन्हीं का राज्य बढ़ता है जो सत्पुरुषों का ही प्रतिदिन सङ्ग करते हैं ॥ ७ ॥

फिर विद्वानों के उपदेश से राजविषय को अगले मन्त्र में कहा है—

एवा हि ते शं सवना समुद्र आपो यत्त आसु मदन्ति देवीः ।

विश्वा ते अनु जोष्या भूद्गौः सूरींश्चिद्यदि धिषा वेषि जनान् ॥८॥

पदार्थ—हे सभापति ! (समुद्रे) अन्तरिक्ष में (आपः) जलों के समान (ते) आपके (हि) ही (सवना) ऐश्वर्य (शम्) सुख (एव) ही करते हैं वा (ते) आपकी (देवी) दिव्यगुणसम्पन्न विदुषी (यत्) जब (आसु) इन जलों में (मदन्ति) हर्षित होती हैं और आप (यदि) जो (धिषा) उत्तम बुद्धि से (सूरीन्) विद्वान् (चित्) मात्र (जनान्) जनों को (वेषि) चाहते हो तब (ते) आपकी (विश्वा) समस्त (गौः) विद्या सुशिक्षायुक्त वाणी (अनु, जोष्या) अनुकूलता से सेवने योग्य (भूत्) होती है ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य आकाश से मेघ की उन्नति कर सबको सुखी करता है वैसे सज्जन पुरुष का बढ़ता हुआ ऐश्वर्य सबको आनन्दित करता है, जैसे पुरुष विद्वान् हों वैसे स्त्री भी हों ॥ ८ ॥

अब मित्रपरत्व से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

असाम यथा सुषखाय एन स्वभिष्टयो नरां न शंसैः ।

असद्यथा न इन्द्रो वन्दनेष्ठास्तुरो न कर्म नयमान उक्था ॥९॥

पदार्थ—हे (एन) पुरुषार्थ से सुखों को प्राप्त होते हुए विद्वन् ! (यथा) जैसे (स्वभिष्टयः) सुन्दर अभिप्राय और (सुषखाय) उत्तम मित्र जिसके वे हम लोग (नराम्) अग्रगामी प्रशंसित पुरुषों की (शंसैः) प्रशंसाओं के (न) समान उत्तम गुणों से आप को प्राप्त (असाम) होवें वा (यथा) जैसे (वन्दनेष्ठाः) स्तुति में स्थिर होता हुआ (तुरः) शीघ्रकारी (इन्द्र) परमैश्वर्य युक्त मित्र (कर्म) धर्मयुक्त कर्म के (न) समान (नः) हमारे (उक्था) प्रशंसायुक्त विद्वानों को (नयमान) प्राप्त करता वा कराता हुआ (असत्) हो वैसा आचरण हम लोग करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो सब प्राणियों में मित्रभाव से वर्त्तमान हैं वे सबको अभिवादन करने योग्य हों जो सबको उत्तम बोध को प्राप्त करते हैं वे अतीव उत्तम विद्यावाले होते हैं ॥ ९ ॥

अब राजशिक्षा पर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विष्पर्धसो नरां न शंसैरस्माकासदिन्द्रो वज्रहस्तः ।
मित्रायुवो न पूर्पतिं सुशिष्टौ मध्यायुव उप शिक्षन्ति यज्ञैः ॥१०॥१४॥

पदार्थ—(वज्रहस्त) शस्त्र और अस्त्रों की शिक्षा जिसके हाथ में है वह (इन्द्र) सभापति (अस्माक) हमारा (असत्) हो अर्थात् हमारा रक्षक हो ऐसी (नराम्) धर्म की प्राप्ति करानेवाले पुरुषों की (शंसैः) प्रशंसायुक्त विवादों के (न) समान वादानुवादों से (विष्पर्धसः) परस्पर विशेषता से स्पर्द्धा, ईर्ष्या करते और (मित्रायुवः) अपने को मित्र चाहते हुए जनों के (न) समान (मध्यायुव) मध्यस्थ चाहते हुए विद्वान् जन (सुशिष्टौ) उत्तम शिक्षा के निमित्त (यज्ञैः) पढ़ना पढ़ाना, उपदेश करना और संग, मेल-मिलाप करना इत्यादि कर्मों से (पूर्पतिम्) पुरी नगरियों के पालनेवाले सभापति राजा को (उप, शिक्षन्ति) उपशिक्षा देते हैं अर्थात् उसके समीप जाकर उसे अच्छे-बुरे का भेद सिखाते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे सत्याचरण में स्पर्द्धा करनेवाले सब के मित्र पक्षपात रहित सत्य का आचरण करते हुए जन सत्य का उपदेश करते हैं वैसे ही सभापति राजा प्रजाजनों में वर्त्ते ॥ १० ॥

पूर्वोक्त विषय को विशद करते हुए अगले मन्त्र में कहा है—

यज्ञो हि ष्मेन्द्रं कश्चिदृन्धञ्जुहुराणश्चिन्मनसा परियन् ।
तीर्थे नाच्छा तातृषाणमोको दीर्घो न सिध्रमा कृणोत्यध्वा ॥११॥

पदार्थ—(कश्चित्) कोई (यज्ञ) राजधर्म (हि, स्म) निश्चय से ही (इन्द्रम्) सभापति को (ऋन्धन्) उन्नति देता वा (मनसा) विचार के साथ (जुहुराणः) दुष्टजनों में कुटिल किया अर्थात् कुटिलता से वर्त्ता (चित्) सो (परियन्) सब ओर से प्राप्त होता हुआ (तीर्थे) जलाशय के (न) समान स्थान में (अच्छ) अच्छे (ततृषाणम्) निरन्तर प्यासे को (दीर्घः) बड़ा (ओकः) स्थान जैसे मिले (न) वैसे (अध्वा) सन्मार्गरूप हुआ (सिध्रम्) शीघ्रता को (आ, कृणोति) अच्छे प्रकार करता है ॥ ११ ॥

भावार्थ—पूर्व मन्त्र में अति शीघ्रता से रक्षा चाहते हुए विद्वान् बुद्धिमान् जन शिक्षा करना रूप आदि यज्ञों से अपनी पुरी, नगरी के पालनेवाले राजा को समीप जाकर शिक्षा देते हैं यह जो विषय कहा था वहाँ यज्ञ में शीघ्रता का उपदेश करते हुए (यज्ञो हि०) इस मन्त्र का उपदेश करते हैं, इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं—जो सुख के बढ़ाने की इच्छा करें तो सब धर्म का आचरण करें और जो परोपकार करने की इच्छा करें तो सत्य का उपदेश करें ॥ ११ ॥

अब साधारण जनों में बलादि विषय में विद्वानों का उपदेश किया है—

मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः ।
महश्चिद्यस्य मीळ्हुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥१२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य की प्राप्ति करानेवाले विद्वन् ! आप (अत्र) यहाँ (देवैः) विद्वान् वीरों के साथ (नः) हम लोगों के (पृत्सु) संग्रामों में (हि) जिस कारण (सु, अस्ति) अच्छे प्रकार सहायकारी हैं (स्म) ही और हे (शुष्मिन्) अत्यन्त बलवान् ! (अवयाः) जो विरुद्ध कर्म को नहीं प्राप्त होता ऐसे होते हुए आप (यस्य) जिन (मीळ्हुषः) सींचनेवाले (हविष्मतः) बहुत विद्यादान सम्बन्धी (महः) बड़े (ते) आप (मरुतः) विद्वान् की (यव्या) नदी के समान (गीः) सत्य गुणों से युक्त वाणी (वन्दते) स्तुति करती अर्थात् सब पदार्थों की प्रशंसा करती (चित्) सी वर्त्तमान हैं वे आप हम लोगों को (मो) मत मारिए ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो बल को प्राप्त हो वह सज्जनों में शत्रु के समान न वर्त्तें, सदा आप्त, शास्त्रज्ञ धर्मात्मा जनों के उपदेश को स्वीकार करे, इतर अधर्मात्मा के उपदेश को न स्वीकार करे ॥ १२ ॥

एष स्तोम इन्द्र तुभ्यमस्मे एतेन गातुं हरिवो विदो नः ।
आ नो ववृत्याः सुविताय देव विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१३॥१५॥

पदार्थ—हे (देव) सुख देनेवाले (इन्द्र) प्रशंसायुक्त ऐश्वर्यवान् ! जो (एषः) यह (अस्मे) हमारी (स्तोम) स्तुतिपूर्वक चाहना है वह (तुभ्यम्) तुम्हारे लिए हो । हे (हरिवः) प्रशंसित घोड़ोंवाले ! आप (एतेन) इस न्याय से (गातुम्) भूमि और (नः) हम लोगों को (विदः) प्राप्त हूजिए (नः) हमारे (सुविताय) ऐश्वर्य के लिए (आ, ववृत्याः) आ वर्त्तमान हूजिए जिससे हम लोग (इषम्) इच्छासिद्धि (वृजनम्) सन्मार्ग और (जीरदानुम्) दीर्घ जीवन को (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ १३ ॥

भावार्थ—किसी भद्रजन को अपने मुख से अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाहिए तथा और से कही हुई अपनी प्रशंसा सुनकर न आनन्दित होना चाहिए अर्थात् न हँसना चाहिए जैसे अपने से अपनी उन्नति चाही जावे वैसे औरों की उन्नति सदैव चाहनी चाहिए ॥ १३ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के विषय का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एक सौ तिहत्तरवाँ सूक्त और पन्द्रहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

त्वं राजेत्यस्य दशर्चस्य चतुःसप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ निचृत् पङ्क्तिः, २, ३, ६, ८, १० भुरिक् पङ्क्तिः; ४ स्वराट् पङ्क्तिः, ५, ७, ९ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब एक सौ चौहत्तरवें सूक्त का प्रारम्भ है उसमें आरम्भ से राजकृत्य का वर्णन करते हैं—

त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नॄन्पाह्यसुर त्वमस्मान् ।
त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्रस्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त ! (त्वम्) आप (सत्पतिः) वेद वा सज्जनों को पालनेवाले (मघवा) परमप्रशंसित धनवान् (नः) हम लोगों को (तरुत्र) दुःखरूपी समुद्र से पार उतारनेवाले हैं (त्वम्) आप (सत्य) सज्जनों में उत्तम (वसवान) धन प्राप्ति कराने और (सहोदाः) बल के देनेवाले हैं तथा (त्वम्) आप (राजा) न्याय और विनय से प्रकाशमान राजा हैं इससे हे (असुर) मेघ के समान (त्वम्) आप (अस्मान्) हम (नॄन्) मनुष्यों को (पाहि) पालो (ये, च) और जो (देवाः) श्रेष्ठ गुणोंवाले धर्मात्मा विद्वान् हैं उनकी (रक्ष) रक्षा करो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो राजा होना चाहे वह धार्मिक, सत्पुरुष, विद्वान् मन्त्री जनों को अच्छे प्रकार रखके उनसे प्रजाजनों की पालना करावे जो ही सत्याचारी बलवान् सज्जनों का सङ्ग करनेवाला होता है वह राज्य को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को सूर्य के दृष्टान्त से कहते हैं—

दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्त् ।
ऋणोरपो अनवद्यार्णा यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः ॥२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्युदग्नि के समान वर्त्तमान ! (यत्) जो आप (सप्त) सात (शारदीः) शरद् ऋतु सम्बन्धिनी (पुरः) शत्रुओं की नगरी और (शर्म) शत्रु घर को (दर्त्) विदारनेवाले होते हैं (मृध्रवाचः) अति बढ़ी हुई जिनकी वाणी उन (विशः) प्रजाओं को (दनः) शिक्षा देते राज्य के अनुकूल शासन देते हैं सो हे (अनवद्य) प्रशंसा को प्राप्त राजन् ! जैसे सूर्यमण्डल (पुरुकुत्साय) बहुत वज्ररूपी अपनी किरणें जिसमें वर्त्तमान उस (यूने) तरुण प्रबलतर वा सुख-दुःख से मिलते न मिलते हुए संसार के लिए (वृत्रम्) मेघों को प्राप्त कराके (अर्णाः) नदी सम्बन्धी (अपः) जलों को वर्षाता वैसे आप (ऋणोः) प्राप्त होओ (रन्धीः) अच्छे प्रकार कार्यसिद्धि करनेवाले होओ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । राजा को चाहिए कि शत्रुओं के पुर, नगर शरद् आदि ऋतुओं में सुख देनेवाले स्थान आदि वस्तु नष्ट कर शत्रुजन निवारणे चाहिएँ और सूर्य मेघजल से जैसे जगत् की रक्षा करता है वैसे राजा को प्रजा की रक्षा करनी चाहिए ॥ २ ॥

अब राजजन सपत्नीक परिभ्रमण करें और कलाकौशल की सिद्धि के लिए अग्निविद्या को जानें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अजा वृत इन्द्र शूरपत्नीर्द्यां च येभिः पुरुहूत नूनम् ।
रक्षो अग्निमशुषं तूर्वयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥३॥

पदार्थ—हे (पुरुहूत) बहुतों से सत्कार किये हुए (इन्द्र) शत्रुदल के नाशक (वृतः) राज्याधिकार में स्वीकार किये हुए राजन् ! आप (येभिः) जिनके साथ (शूरपत्नीः) शूरों की पत्नी और (द्याम्) प्रकाश को (नूनम्) निश्चित (अजा) जानो उनके साथ (सिंहः) सिंह के (न) समान (दमे) घर में (अपांसि) कर्मों के (वस्तोः) रोकने को (तूर्वयाणम्) शीघ्र गमन करानेवाले यान जिससे सिद्ध होते उस (अशुषम्) शोष रहित जिसमें अर्थात् लोहा, ताँबा, पीतल आदि धातु पिघला करें, गीले हुआ करें उस (अग्निम्) अग्नि को (रक्षो) अवश्य रखो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सिंह अपने भिटे में बल से सबको रोकता, ले जाता है वैसे राजा निज बल से अपने घर में लाभप्राप्ति के लिए प्रयत्न करे, जिस अच्छे प्रकार प्रयोग किये अग्नि से यान शीघ्र जाते हैं उस अग्नि से सिद्ध किये हुए यान पर स्थिर होकर स्त्री-पुरुष इधर-उधर से जावें-आवें ॥ ३ ॥

अब राजधर्म में संग्राम विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

शेषन्नु त इन्द्र सस्मिन् योनौ प्रशस्तये पवीरवस्य मह्ना ।
सृजदर्णांस्यव यद्युधा गास्तिष्ठद्धरी धृषता मृष्ट वाजान् ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सेनापते ! (प्रशस्तये) तेरी उत्कर्षता के लिए (यस्मिन्) उस (श्रोणी) स्थान में वा संग्राम में (ते) तेरे (पवीरवस्य) वज्र की ध्वनि के (मह्ना) महिमा से (नु) शीघ्र (शेवन्) शत्रुजन सोवें (यत्) जिस संग्राम में सूर्य जैसे (अर्णांसि) जलों को (अव, सृजत्) उत्पन्न करे अर्थात् मेघ से वर्षावे वैसे (युधा) युद्ध से (गाः) भूमियों और जो वाणी को ले जाते उन घोड़ों को (तिष्ठत्) अधिष्ठित होता और हे (धृष्ट) शत्रुबल को सहनेवाले ! (धृषता) दृढ़ बल से (बाणान्) शत्रुओं के वेगों का अधिष्ठित होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो अपने स्वभावानुकूल शूरवीर हों वे अपने-अपने अधिकार में न्याय से वर्त्तकर मनुजनों को विशेषकर धर्म के अनुकूल अपनी महिमा का प्रकाश करावें ॥ ४ ॥

वह कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्त्स्यूमन्यू ऋज्रा वातस्याश्वा ।

प्र सूर॑श्चक्रं वृहतादभीकेऽभि स्पृधो यासिषद्वज्रबाहुः ॥५॥१६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभापति ! आप (यस्मिन्) जिस संग्राम में (वातस्य) पवन की-सी शीघ्र और सरल गति (स्यूमन्यू) चाहने और (ऋज्रा) सरल चाल चलनेवाले (अश्वा) घोड़ों को (चाकन्) चाहते हैं उसमें (कुत्सम्) वज्र को (वह) पहुँचाओ, वज्र चलाओ अर्थात् वज्र से शत्रुओं का संहार करो (सूरः) सूर्य के समान प्रतापवान् (वज्रबाहुः) शस्त्र-अस्त्रों को भुजाओं में धारण किये हुए आप (चक्रम्) अपने राज्य को (प्र, वृहतात्) बढ़ाओ और (अभीके) संग्राम में (स्पृधः) ईर्ष्या करते हुए शत्रुओं के (अभि, यासिषत्) सन्मुख जाने की इच्छा करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य प्रतापवान् है वैसा प्रतापवान् राजा अस्त्र और शस्त्रों के प्रहारों से संग्राम में शत्रुओं को जीतकर अपने राज्य को बढ़ावे ॥ ५ ॥

जघन्वाँ इन्द्र मित्रेरूञ्चोदप्रवृद्धो हरिवो अदाशून् ।

प्र ये पश्यन्नर्यमणं सचायोस्त्वया शूर्ता वहमाना अपत्यम् ॥६॥

पदार्थ—हे (हरिवः) बहुत घोड़ोंवाले (इन्द्र) सूर्य के समान सभापति ! (चोदप्रवृद्धः) सदुपदेशों की प्रेरणा से अच्छे प्रकार बढ़े हुए आप (अदाशून्) दान न देने और (मित्रेरून्) मित्रों की हिंसा करनेवाले शत्रुओं को (जघन्वान्) मारनेवाले हो इससे (ये) जो (आयोः) दूसरे को सुख पहुँचानेवाले सज्जन के (अपत्यम्) सन्तान को (वहमाना) पहुँचाने अर्थात् अन्यत्र ले जानेवाले धूर्तजन (त्वया) आपने (शूर्ताः) छिन्न-भिन्न किये वे (सचा) उस सम्बन्ध से तुम (अर्यमणम्) न्यायाधीश को (प्र, पश्यन्) देखते हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मित्र के समान बातचीत करते हुए दुष्टप्रकृति, चतुर-शत्रुजन सज्जनों को उद्वेग कराते उनको राजा समूल जैसे वे नष्ट हों वैसे मारे और न्यायासन पर बैठकर अच्छे प्रकार देख विचार अन्याय को निवृत्त करे ॥ ६ ॥

रपत्कविरिन्द्रार्कसातौ क्षां दासायोपबर्हणीं कः ।

करत्तिस्रो मघवा दानुचित्रा नि दुर्योणे कुयवाचं मृधि श्रेत् ॥७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सूर्य के समान सभापति ! जो (कविः) सर्वशास्त्रों को जाननेवाला (अर्कसातौ) अन्नों के अच्छे प्रकार विभाग में (दासाय) शूद्र वर्ग के लिए (उपबर्हणीम्) अच्छी वृद्धि देनेवाली (क्षाम्) भूमि को (कः) नियत करता वह सत्य स्पष्ट (रपत्) कहे जो (मघवा) उत्तम धन का सम्बन्ध रखनेवाला (तिस्रः) उत्तम, मध्यम और निकृष्ट कि (दानुचित्रा) अद्भुत दान जिनमें होता उन क्रियाओं को (करत्) नियत करे वह (दुर्योणे) समरभूमि विषयक (मृधि) युद्ध में (कुयवाचम्) कुत्सित यवों की प्रशंसा करनेवाले सामान्य जन का (नि, श्रेत्) आश्रय लेवे ॥ ७ ॥

भावार्थ—शास्त्र जाननेवाले सभापति शूद्र वर्ग के लिए शास्त्र की शिक्षा के साथ उत्तमान्नादि की वृद्धि करनेवाली भूमि को सम्पादन करावें और सत्यशील तथा दान की विचित्रता सम्पादन करने के लिए उत्तम, मध्यम, निकृष्ट दानव्यवहारों को सिद्ध करे और सब काल में संग्रामादि भूमियों में शत्रुओं का संहार कर अपने राज्य को बढ़ाता रहे ॥ ७ ॥

सना ता त इन्द्र नव्या आगुः सहो नभोऽविरणाय पूर्वीः ।

भिनत्पुरो न भिदो अदेवीर्ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥८॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सूर्य के समान प्रतापवान् राजन् ! आप (अविरणाय) युद्ध की निवृत्ति के लिए (नभः) हिंसक शत्रुजनों को (सहः) सहते हो । आप जैसे (पूर्वीः) प्राचीन (पुरः) शत्रुओं की नगरियों को (भिनत्) छिन्न-भिन्न करते हुए (न) वैसे (भिदः) भिन्न अलग-अलग (अदेवीः) शत्रुवर्गों की दुष्ट नगरियों को (ननमः) नमाते, ढहाते हो उनसे (अदेवस्य, पीयोः) राक्षसपन संचारते हुए शत्रुगण का (वधः) नाश होता है यह जो (ते) आपके (सना) प्रसिद्ध शूरपने के काम हैं (ता) उनको (नव्याः) नवीन प्रजाजन (आगुः) प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । राजजन संग्रामादि भूमियों में ऐसे शूरता दिखलानेवाले कामों का आचरण करें जिनको देखके ही जिन्होंने पिछले शूरता के काम नहीं देखे वे नवीन दुष्ट प्रजाजन भयभीत हों ॥ ८ ॥

अब प्रकारान्तर से राजधर्म विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।

प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥९॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सूर्य के समान वर्त्तमान (धुनिः) शत्रुओं को कम्पाने वाले ! (त्वम्) आप बिजुलीरूप सूर्यमण्डलस्थ अग्नि जैसे (धुनिमतीः) कम्पते हुए (अपः) जलों को वा बिजुलीरूप जठराग्नि जैसे (स्रवन्तीः) चलती हुई (सीराः) नाड़ियों को (न) वैसे प्रजाजनों को (ऋणोः) प्राप्त हूजिए । हे (शूर) शत्रुओं की हिंसा करनेवाले ! (यत्) जो आप (समुद्रम्) समुद्र को (अति, पर्षि) अतिक्रमण करके, उतरके पार पहुँचते हो सो (यदुम्) यत्नशील और (तुर्वशम्) जो शीघ्र कार्यकर्त्ता अपने वश को प्राप्त हुआ उस जन को (स्वस्ति) कल्याण जैसे हो वैसे (पारय) समुद्रादि नद के एक तट से दूसरे तट को झटपट पहुँचवाइए ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे शरीरस्थ बिजुलीरूप अग्नि नाड़ियों में रुधिर को पहुँचाती है और सूर्यमण्डल जल को जगत् में पहुँचाता है वैसे प्रजाओं में सुख को प्राप्त करावें और दुष्टों को कम्पावें ॥ ९ ॥

त्वमस्माकमिन्द्र विश्वध स्या अवृकतमो नरां नृपाता ।

स नो विश्वासां स्पृधां सहोदा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१०॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सुख देनेवाले ! (त्वम्) आप (अस्माकम्) हमारे बीच (विश्वध) सब प्रकार से (नराम्) मनुष्यों में (नृपाता) मनुष्यों की रक्षा करनेवाले अर्थात् प्रजाजनों की पालना करनेवाले और (अवृकतमः) जिनके सम्बन्ध में चोरजन नहीं ऐसे (स्याः) हूजिए तथा (सः) सो आप (नः) हमारे (विश्वासाम्) समस्त (स्पृधाम्) युद्ध की क्रियाओं के (सहोदाः) बल देनेवाले हूजिए जिससे हम लोग (जीरदानुम्) जीव के रूप को (वृजनम्) धर्मयुक्त मार्ग को और (इषम्) शास्त्रविज्ञान को (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ १० ॥

भावार्थ—जो यम-नियमों से युक्त नियत इन्द्रियोंवाले प्रजाजनों के रक्षक चोरादि कर्मों को छोड़ हुए अपने राज्य में निवास करते हैं वे अत्यन्त ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

इस मन्त्र में राजजनों के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एक सौ चौहत्तरवां सूक्त और सत्रहवां वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

मत्सीत्यस्य षडृचस्य पञ्चसप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः ।
इन्द्रो देवता । १ स्वराडनुष्टुप्, २ विराडनुष्टुप्, ५ अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धार स्वरः । ३ निचृत् त्रिष्टुप्, ६ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवत स्वरः । ४ उष्णिक् छन्दः । ऋषभ स्वरः ॥

अब राजविषय को प्रकारान्तर से कहते हैं—

मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।

वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥१॥

पदार्थ—हे (हरिवः) प्रशंसित घोड़ोंवाले ! (महः) बड़े (पात्रस्येव) पात्र के बीच जैसे रक्खा हो वैसे (ते) आपका (मत्सरः) हर्ष करनेवाला (मदः) नीरोगता के साथ जिससे जन आनन्दित होते हैं वह ओषधियों का सार आपने (अपायि) पिया है उससे आप (मत्सि) आनन्दित होते हैं और वह (वाजी) वेगवान् (सहस्रसातमः) अतीव सहस्र लोगों का विभाग करनेवाला (वृष्णे) सींचनेवाले बलवान् जो (ते) आप उनके लिए (वृषा) बल और (इन्दुः) ऐश्वर्य करनेवाला होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे घोड़े दूध आदि पी घास खा बलवान् और वेगवान् होते हैं वैसे पथ्य ओषधियों के सेवन करनेवाले मनुष्य आनन्दित होते हैं ॥ १ ॥

आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।

सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाळमर्त्यः ॥२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभापति ! (ते) आपका जो (मत्सरः) सुख करनेवाला (वरेण्यः) स्वीकार करने योग्य (वृषा) वीर्यकारी (सहावान्) जिसमें बहुत सहनशीलता विद्यमान (सानसिः) जो अच्छे प्रकार रोगों का विभाग

करनेवाला (पृतनाषाट्) जिससे मनुष्यों की सेना को सहते हैं और (अमर्त्य) जो मनुष्य स्वभाव से विलक्षण (मदः) ओषधियों का रस है वह (नः) हम लोगों को (आ, गन्तु:) प्राप्त हो ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि प्राप्त धर्मात्माजनों का ओषधि रस हमको प्राप्त हो ऐसी सदा चाहना करें ॥ २ ॥

अब राजविषय में सेनापति के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।

सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥३॥

पदार्थ—हे सेनापति ! (हि) जिस कारण (शूरः) शूरवीर, निडर (सनिता) सेना को संविभाग करने अर्थात् पद्मादि व्यूह रचना से बाँटनेवाले (त्वम्) आप (मनुषः) मनुष्यो और (रथम्) युद्ध के लिए प्रवृत्त किये हुए रथ को (चोदय) प्रेरणा दें अर्थात् युद्ध समय मे आगे को बढ़ावें और (सहावान्) बलवान् आप (शोचिषा) दीपते हुए अग्नि की लपट से जैसे (पात्रम्) काष्ठ आदि के पात्र को (न) वैसे (अव्रतम्) दुश्शील, दुराचारी (दस्युम्) हठ कर पराये धन को हरनेवाले दुष्ट जन को (ओष) जलाओ, इससे मान्यभागी होओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो सेनापति युद्ध समय मे रथ आदि यान और योद्धाओं को ढङ्ग से चलाने को जानते हैं वे आग जैसे काष्ठ को वैसे डाकुओ को भस्म कर सकते हैं ॥ ३ ॥

अब राजधर्म विषय में सभापति के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा ।

वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥४॥

पदार्थ—हे (कवे) क्रम-क्रम से दृष्टि देने, समस्त विद्याओ के जाननेवाले सभापति ! (ईशान) ऐश्वर्य्यवान् समर्थ ! आप (सूर्य्यम्) सूर्यमण्डल के समान (ओजसा) बल से युक्त (चक्रम्) भूगोल के राज्य को (मुषाय) हरके (शुष्णाय) औरो के हृदय को सुखानेवाले दुष्ट के लिए (वातस्य) पवन के (अश्वैः) वेगादि गुणो के समान अपने बलो से (कुत्सम्) वज्र को घुमाके (वधम्) वध को (वह) पहुचाओ अर्थात् उक्त दुष्ट का मारो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो चक्रवर्ती राज्य करने की इच्छा करें वे डाकू और दुष्टाचारी मनुष्यो को निवारके न्याय को प्रवृत्त करावें ॥ ४ ॥

शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।

वृत्रघ्ना वरिवोविदा मंसीष्ठा अश्वसातमः ॥५॥

पदार्थ—हे सब के ईश्वर सभापति ! (हि) जिस कारण (ते) आप का (शुष्मिन्तमः) अतीव बलवाला (मदः) आनन्द (उत) और (द्युम्निन्तमः) अतीव यशयुक्त (क्रतुः) पराक्रमरूप कर्म है उससे (वृत्रघ्ना) मेघ को छिन्न-भिन्न करनेवाले सूर्य के समान प्रकाशमान (वरिवोविदा) जिस से कि सेवा को प्राप्त होता उस पराक्रम से (अश्वसातमः) अतीव अश्वादिको का अच्छे विभाग करनेवाले आप दूसरे के विषय को (मंसीष्ठाः) मानो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो सूर्य के समान तेजस्वी, बिजुली के समान पराक्रमी, यशस्वी, अत्यन्त बली जन विद्या, विनय और धर्म का सेवन करते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मयइवापो न तृष्यते बभूथ ।

तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥१८॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्यैश्वर्ययुक्त ! (यथा) जिस प्रकार नित्य विद्या से (पूर्वेभ्यः) प्रथम विद्या अध्ययन किये (जरितृभ्यः) समस्त विद्या गुणो की स्तुति करनेवाले जनों के लिए (मयइव) सुख के समान वा (तृष्यते) तृषा से पीड़ित जन के लिए (आपः) जलो के (न) समान आप (बभूथ) हूजिए (ताम्) उस (निविदम्) नित्य विद्या के (अनु) अनुकूल (त्वा) आपकी मैं (जोहवीमि) निरन्तर स्तुति करता हूँ । और इसी से हम लोग (इषम्) इच्छासिद्धि (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) आत्मस्वरूप को (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है । जो ब्रह्मचर्य के साथ शास्त्रज्ञ धर्मात्माओ से विद्या और शिक्षा पाकर औरो को देते हैं वे सुख से तृप्त होते हुए प्रशंसा को प्राप्त होते हैं और जो विरोध को छोड़ परस्पर उपदेश करते हैं वे विज्ञान बल और जीवात्मा-परमात्मा के स्वरूप को जानते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में राजव्यवहार के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एक सौ पचहत्तरवां सूक्त और अठारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

मत्सीत्यस्य षड्चस्य षट्सप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्यागस्त्य ऋषिः ।
इन्द्रो देवता । १, ४ अनुष्टुप्; २ निचृदनुष्टुप्; ३ विराडनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः । ५ भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ।
६ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब एक सौ छिहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजविषय में विद्यानुकूल पुरुषार्थयोग को कहते हैं—

मत्सि नो वस्यइष्टय इन्द्रमिन्दो वृषा विश ।

ऋघायमाण इन्वसि शत्रुमन्ति न विन्दसि ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्दो) चन्द्रमा के समान शीतल शान्तस्वरूपवाले न्यायाधीश ! जो (वृषा) बलवान् (ऋघायमाणः) वृद्धि को प्राप्त होते हुए आप (नः) हमारे (वस्यइष्टये) अत्यन्त धन की सङ्गति के लिए (इन्द्रम्) परमैश्वर्य को प्राप्त होकर (मत्सि) आनन्द को प्राप्त होते हो और (शत्रुम्) शत्रु को (इन्वसि) व्याप्त होते अर्थात् उनके किये हुए दुराचार को प्रथम ही जानते हो किन्तु (अन्ति) अपने समीप (न) नही (विन्दसि) शत्रु पाते सो आप सेना को (आ, विश) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥ १ ॥

भावार्थ—जो प्रजाजनो के चाहे हुए सुख के लिए दुष्टो की निवृत्ति करावें और सत्य आचरण को व्याप्त होते वे महान् ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

अब प्रकृत विषय में विद्यारूप बीज के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

तस्मिन्ना वेशया गिरो य एकश्चर्षणीनाम् ।

अनु स्वधा यमुप्यते यवं न चर्कृषद्वृषा ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (तस्मिन्) उस मे (गिरः) उपदेशरूप वाणियों को (आ, वेशय) अच्छे प्रकार प्रविष्ट कराइए कि (यः) जो (चर्षणीनाम्) मनुष्यो मे (एकः) एक अकेला सहायरहित दीनजन है और (यम्) जिसका (अनु) पीछा लखिकर (चर्कृषत्) निरन्तर भूमि को जोतता हुआ (वृषा) कृषिकर्म मे कुशल जन जैसे (यवम्) यव अन्न को (न) बोओ वैसे (स्वधा) अन्न (उप्यते) बोया जाता अर्थात् भोजन दिया जाता है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है । जैसे कृषीवल खेती करनेवाले उन खेतो मे बीजो को बोकर अन्नो वा धनो को पाते हैं वैसे विद्वान् जन ज्ञान विद्या चाहने वाले शिष्य जनो के आत्मा मे विद्या और उत्तम शिक्षा प्रवेश करा सुखो को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्च क्षितीनां वसु ।

स्पाशयस्व यो अस्मध्रुग्दिव्येवाशनिर्जहि ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (यस्य) जिन आपके (हस्तयोः) हाथो मे (पञ्च) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद इन जातियो के (क्षितीनाम्) मनुष्यो के (विश्वानि) समस्त (वसु) विद्याधन हैं सो आप (यः) जो (अस्मध्रुक्) हम लोगो को द्रोह करता है उसको (स्पाशयस्व) पीड़ा देओ और (अशनिः) बिजुली (दिव्येव) जो आकाश मे उत्पन्न हुई और भूमि मे गिरी हुई संहार करती है उसके समान (जहि) नष्ट करे ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है । जिसके अधिकार मे समस्त विद्या है जो उत्पन्न हुए शत्रुओं को मारता है वह दिव्य ऐश्वर्य प्राप्ति करानेवाला होता है ॥ ३ ॥

असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः ।

अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोहते ॥४॥

पदार्थ—हे राजन् ! आप उस (असुन्वन्तम्) पदार्थों के सार खींचने आदि पुरुषार्थ से रहित (दूणाशम्) और दुःख से विनाशने योग्य (समम्) समस्त आलसीगण का (जहि) मारो दण्ड देओ कि (यः) जो (सूरिः) विद्वान् के (चित्) समान (ओहते) व्यवहारो की प्राप्ति करता है और (ते) तुम्हारे (मयः) सुख को (न) नही पहुँचाता तथा आप (अस्य) इसके (वेदनम्) धन को (अस्मभ्यम्) हमारे अर्थ (दद्धि) धारण करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो आलसी जन हो उनको राजा ताड़ना दिलावे जैसे विद्वान् जन सब के लिये सुख देता है वैसे जितना अपना सामर्थ्य हो उतना सुख सब के लिए देवें ॥ ४ ॥

आवो यस्य द्विबर्हसोऽर्केषु सानुषगसत् ।

आजाविन्द्रस्येन्दो प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥५॥

पदार्थ—हे (इन्दो) अपनी प्रजाओं मे चन्द्रमा के समान वर्त्तमान ! (यस्य) जिस (द्विबर्हसः) विद्या पुरुषार्थ से बढ़ते हुए जन के (अर्केषु) अच्छे सराहे हुए अन्नादि पदार्थों में (सानुषक्) सानुकूलता ही (असत्) हो जिसकी

आप (अवः) रक्षा करें वह (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य सम्बन्धी (आजौ) संग्राम में (वाजेषु) वेगों में वर्त्तमान (वाजिनम्) बलवान् आप को (प्र, अवः) अच्छे प्रकार रक्षायुक्त करे अर्थात् निरन्तर आपकी रक्षा करे ॥५॥

भावार्थ—जैसे सेनापति सब चाकरों की रक्षा करे वैसे वे चाकर भी उसकी निरन्तर रक्षा करें ॥ ५ ॥

अब प्रकृत विषय में योग के पुरुषार्थ का वर्णन किया जाता है—

यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मयइवापो न तृष्यते बभूथ ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥१९॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) योग के ऐश्वर्य का ज्ञान चाहते हुए जन ! (यथा) जैसे योग जानने की इच्छावाले (पूर्वेभ्य) किया है योगाभ्यास जिन्होंने उन प्राचीन (जरितृभ्यः) योग गुण सिद्धियों के जाननेवाले विद्वानों से योग को पाकर और सिद्ध कर सिद्ध होते अर्थात् योग सम्पन्न होते हैं वैसे होकर (मयइव) सुख के समान और (तृष्यते) पियासे के लिए (आपः) जलों के (न) समान (बभूथ) हूजिए और (ताम्) उस विद्या के (अनु) अनुवर्त्तमान (निविदम्) और निश्चित प्रतिज्ञा जिन्होंने किये उन (त्वा) आप को (जोहवीमि) निरन्तर कहता हूं ऐसे कर हम लोग (इषम्) इच्छा सिद्धि (वृजनम्) दुःखत्याग और (जीरदानुम्) जीव दया को (विद्याम) प्राप्त हों ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो जिज्ञासु जन योगारूढ पुरुषों से योगशिक्षा को प्राप्त होकर पुरुषार्थ से योग का अभ्यास कर सिद्ध होते हैं वे पूर्ण सुख को पाते और जो उत्तम योगियों का सेवन करते वे भी सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में विद्या पुरुषार्थ और योग का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एक सौ छिहत्तरवां सूक्त और उन्नीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

आ चर्षणिप्रा इत्यस्य पञ्चर्चस्य सप्तसप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्यागस्त्य ऋषिः ।
इन्द्रो देवता । १, २ निचृत् त्रिष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्, ४ भुरिक् त्रिष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब एक सौ सतहत्तर सूक्त का आरम्भ है उसमें राजा और विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
स्तुतः श्रवस्यन्नवसोप मद्रिग्युक्त्वा हरी वृषणा याह्यर्वाङ् ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (वृषभ) अतीव बलवान् (जनानाम्) शुद्ध गुणों से प्रसिद्ध हुए जनों में (चर्षणिप्राः) मनुष्यों को विद्या से पूर्ण करनेवाला (राजा) प्रकाशमान और (कृष्टीनाम्) मनुष्यों में (पुरुहूतः) बहुतों से सत्कार को प्राप्त हुआ (स्तुतः) प्रशंसित (श्रवस्यन्) अपने को अन्न की इच्छा करता हुआ (मद्रिक्) जो काम को प्राप्त होता वह (इन्द्र) ऐश्वर्य का देनेवाला (वृषणा) अति बली (हरी) हरणशील घोड़ों को (युक्त्वा) जोड़कर (अर्वाङ्) नीचली भूमियों में आता है वैसे (अवसा) रक्षा आदि के साथ आप हम लोगों के (उप, आ, याहि) समीप आओ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे शुभ गुण, कर्म स्वभाववाले सभाध्यक्ष प्रजाजनों में चेष्टा करें वैसे प्रजाजनों को भी चेष्टा करनी चाहिए जैसे कोई विमान पर चढ़ और ऊपर को जाकर नीचे आता है वैसे विद्वान् जन अगले-पिछले विषय को जाननेवाले हों ॥१॥

अब अगले मन्त्र में राजविषय का उपदेश किया है—

ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः ।
ताँ आ तिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ् हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमे ॥२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सूर्य के समान वर्त्तमान राजन् ! (ते) आपके (ये) जो (वृषणः) प्रबल जवान (वृषभासः) वृषभ (ब्रह्मयुजः) उत्तम अन्न का योग करनेवाले (वृषरथासः) शक्तिबन्धक और रमण साधन रथ (अत्याः) और निरन्तर गमनशील घोड़े हैं (तान्) उनको (आ, तिष्ठ) यत्नवान् करो अर्थात् उन पर चढ़ो उन्हें कार्यकारी करो । हे (इन्द्र) सूर्य के समान वर्त्तमान राजन् ! हम लोग (सुते) उत्पन्न हुए (सोमे) ओषधि आदिकों के गुण के समान ऐश्वर्य के निमित्त (त्वा) आपको (हवामहे) स्वीकार करते हैं आप (तेभिः) उनके साथ (अर्वाङ्) सम्मुख (आ, याहि) आओ ॥ २ ॥

भावार्थ—जो राजजन समस्त साधनों से साध्य रथों, प्रबल घोड़ों और बैलों को कार्यों में संयुक्त कराते हैं वे प्रशस्त यान आदि पदार्थों से युक्त हुए राजजन ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

आ तिष्ठ रथं वृषणं वृषा ते सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
युक्त्वा वृषभ्यां वृषभ क्षितीनां हरिभ्यां याहि प्रवतोप मद्रिक् ॥३॥

पदार्थ—हे (वृषभ) दूसरों के सामर्थ्य रोकने से बलिष्ठ राजन् ! (मद्रिक्) हम लोगों को प्राप्त होते और (वृषा) रस आदि से परिपूर्ण होते हुए आप जो (ते) अपने लिए (सोम) सोमलता आदि का रस (सुतः) उत्पन्न किया गया है उसमें (मधूनि) मीठे-मीठे पदार्थ (परिषिक्ता) सब ओर से सींचे हुए हैं उस रस को पीकर (क्षितीनाम्) मनुष्यों के (वृषभ्याम्) प्रबल (हरिभ्याम्) हरणशील घोड़ों से (वृषणम्) दृढ़ (रथम्) रथ को (युक्त्वा) जोड़ युद्ध का (आ, तिष्ठ) यत्न करो वा युद्ध की प्रतिज्ञा पूर्ण करो और (प्रवता) नीचे मार्ग से (उप, याहि) समीप आओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो आहार-विहार से युक्त, सोमादि ओषधियों के रस का सेवन करनेवाले, दीर्घ ब्रह्मचर्य किये हुए शरीर और आत्मा के बल से युक्त राजजन बिजुली आदि पदार्थों के वेग से युक्त यानों को सिद्ध कर दण्ड से दुष्टों का निवारण कर न्याय से राज्य की रक्षा कराया करें वे ही सुखी होते हैं ॥ ३ ॥

अब राजा और विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अयं यज्ञो देवया अयं मियेध इमा ब्रह्माण्ययमिन्द्र सोमः ।
स्तीर्णं बर्हिरा तु शक्र प्र याहि पिबा निषद्य वि मुचा हरी इह ॥४॥

पदार्थ—हे (शक्र) शक्तिमान् (इन्द्र) सभापति ! (अयम्) यह (देवयाः) जिससे दिव्य गुण वा उत्तम विद्वानों को प्राप्त होना होता वह (यज्ञः) राजधर्म और शिल्प की सङ्गति से उन्नति को प्राप्त हुआ यज्ञ वा (अयम्) यह (मियेधः) जिसको पदार्थों के डालने से वृद्धि होती है वह (अयम्) यह (सोमः) बड़ी-बड़ी ओषधियों का रस वा ऐश्वर्य (तु) और यह (स्तीर्णम्) ढंपा हुआ (बर्हि) उत्तम आसन है (निषद्य) इस आसन पर बैठ (इमा) इन (ब्रह्माणि) धनों को (आयाहि) उत्तमता से प्राप्त होओ । इन उक्त ओषधि को (पिब) पी (इह) यहां (हरी) बिजुली के धारण और आकर्षणरूपी घोड़ों को स्वीकार कर और दुःख को (विमुच) छोड़ ॥ ४ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को व्यवहार में अच्छा यत्न कर जब राजा, ब्रह्मचारी तथा विद्या और अवस्था से बड़ा हुआ सज्जन आवे तब आसन आदि से उसका सत्कार कर पूछना चाहिए वह उनके प्रति यथोचित धर्म के अनुकूल विद्या की प्राप्ति करनेवाले वचन को कहे जिससे दुःख की हानि, सुख की वृद्धि और बिजुली आदि पदार्थों की भी सिद्धि हो ॥ ४ ॥

ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङुप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥५॥२०॥

पदार्थ—(ओ, इन्द्र) हे धन देनेवाले सभापति ! जैसे हम लोग (मान्यस्य) सत्कार करने योग्य (कारोः) कार करनेवाले के (ब्रह्माणि) धनों को (वस्तोः) प्रतिदिन (उप, विद्याम) समीप में जानें वा जैसे (अवसा) रक्षा आदि के साथ (गृणन्तः) स्तुति करते हुए हम लोग (इषम्) प्राप्ति (वृजनम्) उत्तम गति और (जीरदानुम्) जीवात्मा को (विद्याम) जानें वैसे आप (सुष्टुतः) अच्छे प्रकार स्तुति को प्राप्त हुए (अर्वाङ्, याहि) सम्मुख आओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो धन को प्राप्त हों वे औरों का सत्कार करें, जो क्रियाकुशल शिल्पीजन ऐश्वर्य को प्राप्त हों वे सबको सत्कार करने योग्य हों जैसे-जैसे विद्या आदि अच्छे गुण अधिक हों वैसे-वैसे अभिमान रहित हों ॥ ५ ॥

यहां राजा आदि विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एक सौ सतहत्तरवां सूक्त और बीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

यद्धेति पञ्चर्चस्याऽष्टसप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः ।
इन्द्रो देवता । १, २ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।
३, ४ निचृत् त्रिष्टुप्, ५ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अब एक सौ अठहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उसमें आरम्भ से सेनापति के गुणों का वर्णन करते हैं—

यद्ध स्या त इन्द्र श्रुष्टिरस्ति यया बभूथ जरितृभ्य ऊती ।
मा नः कामं महयन्तमा धग्विश्वा ते अश्यां पर्याप आयोः ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सेनापति ! (यत्) जो (स्या) वह (ते) आपकी (श्रुष्टिः) सुनने योग्य विद्या (अस्ति) है (यया) जिससे आप (जरितृभ्यः) समस्त विद्या की स्तुति करनेवालों के लिए उपदेश करनेवाले (बभूथ) होते हैं उस

(ऊती) रक्षा आदि कर्म से युक्त विद्या से (नः) हमारे (महयन्तम्) सत्कार प्रशंसा करने योग्य (कामम्) काम को (मा, आ, धक्) मत जलाओ (ते) आपके (ह) ही (आयोः) जीवन के जो (आपः) प्राण, बल हैं उन (विश्वा) सबको (पर्यश्याम्) सब ओर से प्राप्त होऊँ ॥ १ ॥

भावार्थ—जो सेनापति आदि राजपुरुष अपने प्रयोजन के लिए किसी के काम को न बिगाड़ें, सदैव पढ़ाने और पढ़नेवालों की रक्षा करें जिससे बहुत बलवान् आयुयुक्त जन हों ॥ १ ॥

न घा राजेन्द्र आ दभन्नो या नु स्वसारा कृणवन्त योनौ ।
आपश्चिदस्मै सुतुका अवेषन्गमन्न इन्द्रः सख्या वयश्च ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त (राजा) विद्या और विनय से प्रकाशमान राजा (नः) हम लोगों को (न) न (आ, दभत्) मारे न दण्ड देवे वैसे हम लोग (नु) भी उसको (घ) ही मत दुःख देवें जैसे (या) जो (स्वसारा) दो बहिनों के समान दो स्त्री (योनौ) घर में बन्धु को न मारें वैसे उनके समान हम किसी को न मारें जैसे विद्वान् जन हिंसा नहीं करते हैं वैसे सब लोग न (कृणवन्त) करें जैसे (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् (अस्मै) इस सज्जन के लिए (सख्या) मित्रपन के काम (वयः) जीवन (च) और (सुतुकाः) सुन्दर ग्रहण करनेवाली स्त्री (आपः) जलों को (अवेषन्) व्याप्त होती हैं (चित्) उनके समान (नः) हम लोगों को (गमत्) प्राप्त हो वैसे उनको हम भी प्राप्त होवें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे शास्त्रज्ञ, धर्मात्मा, दयालु, विद्वान् किसी को नहीं मारते वैसे सब आचरण करें ॥ २ ॥

जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः श्रोता हवं नाधमानस्य कारोः ।
प्रभर्ता रथं दाशुष उपाक उद्यन्ता गिरो यदि च त्मना भूत् ॥३॥

पदार्थ—(यदि) जो (नृभिः) नायक वीरों के साथ (शूरः) शत्रुओं की हिंसा करनेवाला (जेता) विजयशील (नाधमानस्य) माँगते हुए (कारोः) कार्यकारी पुरुष के (हवम्) ग्रहण करने योग्य विद्याबोध को (श्रोता) सुननेवाला (प्रभर्ता) उत्तम विद्याओं का धारण करनेवाला (दाशुषः) दानशील के (उपाके) समीप (गिरः) वाणियों का (उद्यन्ता) उद्यम करनेवाला (इन्द्रः) सेनाधीश तू (त्मना) अपने से (पृत्सु) संग्रामों में (रथम्) रथ को (च) भी ग्रहण करके प्रवृत्त (भूत्) होवे उसका दृढ़ विजय हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो विद्या की याचना करें उसको निरन्तर विद्या देवें, जो जितेन्द्रिय, सत्यवादी होवें हैं उन्हीं को विद्या प्राप्त होती है, जो विद्या और शरीर बलों से शत्रुओं के साथ युद्ध करते हैं उनका कैसे पराजय हो ? ॥ ३ ॥

एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या प्रखादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत् ।
समर्य इषः स्तवते विवाचि सत्राकरो यजमानस्य शंसः ॥४॥

पदार्थ—(नृभिः) वीर पुरुषों के साथ (इन्द्रः) सेनापति (सुश्रवस्या) उत्तम अन्न की इच्छा से (पृक्षः) दूसरे को बता देने को चाहा हुआ अन्न उसको (प्रखादः) अतीव खानेवाला और (मित्रिणः) मित्र जिसके वर्त्तमान उसके (अभि, भूत्) सम्मुख हो तथा (विवाचि) नाना प्रकार की विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त वीर जन के निमित्त (सत्राकरः) सत्य व्यवहार करने और (यजमानस्य) देनेवाले की (शंसः) प्रशंसा करनेवाला (समर्य्यः) उत्तम वणियों के निमित्त (इषः) अन्नों की (स्तवते) स्तुति प्रशंसा करता (एव) ही है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो उद्योगी और सत्यवादी जन सत्योपदेश करते हैं वे नायक अधिपति और अग्रगामी होते हैं ॥ ४ ॥

त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रूनभि ष्याम महतो मन्यमानान् ।
त्वं त्राता त्वमु नो वृधे भूर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥५॥२१॥

पदार्थ—हे (मघवन्) परम प्रशंसित धनयुक्त (इन्द्र) शत्रुओं को विदीर्ण करनेवाले ! (त्वया) आपके साथ वर्त्तमान (वयम्) हम लोग (महतः) प्रबल (मन्यमानान्) अभिमानी (शत्रून्) शत्रुओं को जीतनेवाले (अभि, ष्याम) सब ओर से होवें (त्वम्) आप (नः) हमारे (त्राता) रक्षक सहायक और (त्वम्, उ) आप ही तो (वृधे) वृद्धि के लिए (भूः) हो जिससे हम लोग (इषम्) प्रत्येक काम की प्रेरणा (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीव स्वभाव को (विद्याम) पावें ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो युद्ध करनेवाले भृत्यों का सर्वथा सत्कार कर और उनको उत्साह दे युद्ध कराते हैं, युद्ध करते हुओं की निरन्तर रक्षा और मरे हुओं के पुत्र, कन्या और स्त्रियों की पालना करें वे सब सर्वत्र विजय करनेवाले हों ॥ ५ ॥

इस सूक्त में सेनापति के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ अठहत्तरवाँ सूक्त और इक्कीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

पूर्वीरिति षडृचस्यैकोनाशीत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य लोपामुद्राऽगस्त्यौ ऋषी । दम्पती देवता १, ४ त्रिष्टुप्; २, ३ निचृत् त्रिष्टुप्; ६ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब एकसौ उनासी सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से विद्वान् स्त्रीपुरुष के विषय को कहते हैं—

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषा वस्तोरुषसो जरयन्तीः ।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ॥१॥

पदार्थ—जैसे (अहम्) मैं (पूर्वीः) पहले हुई (शरदः) वर्षों तथा (दोषाः) रात्रि (वस्तोः) दिन (जरयन्तीः) सब की अवस्था को जीर्ण करती हुई (उषसः) प्रभात वेलाओं भर (शश्रमाणा) श्रम करती हुई हूँ (अपि, उ) और तो जैसे (तनूनाम्) शरीरों की (जरिमा) अतीव अवस्था को नष्ट करनेवाला काल (श्रियम्) लक्ष्मी को (मिनाति) विनाशता है वैसे (वृषणः) वीर्य्य सेचनेवाले (पत्नीः) अपनी-अपनी स्त्रियों को (नु) शीघ्र (जगम्युः) प्राप्त होवें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे बाल्यावस्था को लेकर विदुषी स्त्रियों ने प्रतिदिन प्रभात समय से घर के कार्य और पति की सेवा आदि कर्म किये हैं, वैसे किया है ब्रह्मचर्य जिन्होंने, उन स्त्री पुरुषों को समस्त कार्यों का अनुष्ठान करना चाहिए ॥ १ ॥

ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन्त्साकं देवेभिरवदन्नृतानि ।
ते चिदवासुर्नह्यन्तमापुः समू नु पत्नीर्वृषभिर्जगम्युः ॥२॥

पदार्थ—(ये) जो (ऋतसापः) सत्यव्यवहार में व्यापक वा दूसरों को व्याप्त करानेवाले (पूर्वे) पूर्व विद्वान् (देवेभिः) विद्वानों के (साकम्) साथ (ऋतानि) सत्यव्यवहारों को (अवदन्) कहते हुए (ते, चित्, हि) वे भी सुखी (आसन्) हुए और जो (नु) शीघ्र (पत्नीः) स्त्रीजन (वृषभिः) वीर्य्यवान् पतियों के साथ (सम् जगम्युः) निरन्तर जावें (चित्) उनके समान (अवासुः) दोषों को दूर करें वे (उ, अन्तम्) अन्त को (नहि) नहीं (आपुः) प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । ब्रह्मचर्य्यस्थ विद्यार्थियों को उन्हीं से विद्या और अच्छी शिक्षा लेनी चाहिए कि जो पहले विद्या पढ़े हुए सत्याचारी जितेन्द्रिय हों और उन ब्रह्मचारिणियों के साथ विवाह करें जो अपने तुल्य गुण, कर्म, स्वभाववाली विदुषी हों ॥ २ ॥

अब गृहाश्रम-व्यवहार में स्त्री-पुरुष के व्यवहार को अगले मन्त्रों में कहा है—

न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवा विश्वा इत्स्पृधो अभ्यश्नवाव ।
जयावेदत्र शतनीथमाजिं यत्सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव ॥३॥

पदार्थ—(देवाः) विद्वान् जन (यत्) जिस कारण (अत्र) इस जगत में (मृषा) मिथ्या (श्रान्तम्) खेद करते हुए की (न) नहीं (अवन्ति) रक्षा करते हैं इससे हम (विश्वाः, इत्) सभी (स्पृधः) संग्रामों को (अभि, अश्नवाव) सम्मुख होकर (यत्) जिस कारण गृहाश्रम को (सम्यञ्चा) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हुए (मिथुनौ) स्त्रीपुरुष हम दोनों (अभ्यजाव) सब ओर से उसके व्यवहारों को प्राप्त होवें इससे (शतनीथम्) जो सैकड़ों से प्राप्त होने योग्य (आजिम्) संग्राम को (जयावेत्) जीतते ही हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिस कारण आप विद्वान् जन मिथ्याचारी, मूढ़ विद्यार्थी जनों को नहीं पढ़ाते हैं इससे स्त्रीपुरुष मिथ्या आचार और व्यभिचारादि दोषों को त्यागें और जैसे गृहाश्रम का उत्कर्ष हो वैसे स्त्रीपुरुष परस्पर धर्म के आचरण करनेवाले हों ॥ ३ ॥

नदस्य मा रुधतः काम आगन्नित आजातो अमुतः कुतश्चित् ।
लोपामुद्रा वृषणं नी रिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्तम् ॥४॥

पदार्थ—(इतः) इधर से वा (अमुतः) उधर से वा (कुतश्चित्) कहीं से (आजातः) सब ओर से प्रसिद्ध (रुधतः) वीर्य रोकने वा (नदस्य) अव्यक्त शब्द करनेवाले वृषभ आदि का (कामः) काम (मा) मुझ को (आगन्) प्राप्त होता अर्थात् उनके सदृश कामदेव उत्पन्न होता है । और (अधीरा) धीरज से रहित वा (लोपामुद्रा) लोप होजाना लुक जाना ही प्रतीत का चिह्न है जिसका सो यह स्त्री (वृषणम्) वीर्यवान् (धीरम्) धीरजयुक्त (श्वसन्तम्) श्वासें लेते हुए अर्थात् शयनादि दशा में निमग्न पुरुष को (नीरिणाति) निरन्तर प्राप्त होती और (धयति) उससे गमन भी करती है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो विद्या, धैर्य आदि रहित स्त्रियों को विवाहते हैं वे सुख नहीं पाते हैं, जो पुरुष कामरहित कन्या को वा कामरहित पुरुष को कुमारी विवाहे वहाँ कुछ भी सुख नहीं होता, इससे परस्पर प्रीतिवाले गुणों में समान स्त्रीपुरुष विवाह करें वहाँ ही मङ्गल समाचार है ॥ ४ ॥

अब प्रकृत विषय में महौषधियों के सारसंग्रह को कहा है—

इमं नु सोममन्तितो हृत्सु पीतमुप ब्रुवे ।

यत्सीमागश्चकृमा तत्सु मृळतु पुलुकामो हि मर्त्यः ॥५॥

पदार्थ—मैं (यत्) जिस (इमम्) इस (हृत्सु) हृदयों में (पीतम्) पिये हुए (सोमम्) ओषधियों के रस को (उप, ब्रुवे) उपदेशपूर्वक कहता हूँ उसको (पुलुकामः) बहुत कामनावाला (मर्त्यः) पुरुष (हि) ही (सुमृळतु) सुख संयुक्त करे अर्थात् अपने सुख में उसका संयोग करे। जिस (आगः) अपराध को हम लोग (चकृम) करें (तत्) उसको (नु) शीघ्र (सीम्) सब ओर से (अन्तितः) समीप में सभी जन छोड़ें अर्थात् क्षमा करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो महौषधियों के रस को पीते हैं वे रोगरहित, बलिष्ठ होते हैं, जो कुपथ्याचरण करते हैं वे रोगों से पीड्यमान होते हैं ॥ ५ ॥

अब सन्तानोत्पत्ति विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः ।

उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम ॥६॥२२॥२३॥

पदार्थ—जैसे (खनित्रैः) कुदाल, फावड़ा, कस्सी आदि खोदने के साधनों से भूमि को (खनमानः) खोदता हुआ खेती करनेवाला धान्य आदि अनाज पाके सुखी होता है वैसे ब्रह्मचर्य और विद्या से (प्रजाम्) राज्य (अपत्यम्) सन्तान और (बलम्) बल की (इच्छमानः) इच्छा करता हुआ (अगस्त्यः) निरपराधियों में उत्तम (ऋषिः) वेदार्थवेत्ता (उग्रः) तेजस्वी विद्वान् (पुपोष) पुष्ट होता है (देवेषु) और विद्वानों में वा कामों में (सत्याः) अच्छे कर्मों में उत्तम सत्य और (आशिषः) सिद्ध इच्छाओं को (जगाम) प्राप्त होता है वैसे (उभौ) दोनों (वर्णौ) परस्पर एक दूसरे का स्वीकार करते हुए स्त्री-पुरुष होवें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे कृषि करनेवाले अच्छे खेतों में उत्तम बीजों को बोकर फलवान् होते हैं और जैसे धार्मिक विद्वान् जन सत्य कामों को प्राप्त होते हैं वैसे ब्रह्मचर्य से युवावस्था को प्राप्त होकर अपनी इच्छा से विवाह करें वे अच्छे खेत में उत्तम बीज के समान फलवान् होते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुषों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एक सौ उनासीवां सूक्त, बाईसवां वर्ग और तेईसवां अनुवाक समाप्त हुआ ॥

卐

युवोरित्यस्यर्चस्य दशर्चस्य अशीत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः । अश्विनौ देवते । १, ४, ७ निचृत् त्रिष्टुप्; ३, ५, ६, ८ विराट् त्रिष्टुप्; १० त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २, ९ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब एक सौ अस्सी सूक्त का आरम्भ है उसके आरम्भ से स्त्री-पुरुषों के गुणों का वर्णन करते हैं—

युवो रजांसि सुयमासो अश्वा रथो यद्वां पर्यर्णांसि दीयत् ।

हिरण्यया वां पवयः प्रुषायन्मध्वः पिबन्ता उषसः सचेथे ॥१॥

पदार्थ—हे स्त्रीपुरुषो ! (यत्) जब (युवोः) तुम दोनों को (सुयमासः) संयम चाल के नियम को पकड़े हुए (अश्वाः) वेगवान् अग्नि आदि पदार्थ (रजांसि) लोक-लोकान्तरों को और (वाम्) तुम्हारा (रथः) रथ (अर्णांसि) जलस्थलों को (परि, दीयत्) सब ओर से जावे (वाम्) तुम दोनों के रथ के (हिरण्ययाः) बहुत सुवर्ण युक्त (पवयः) चाक, पहिये (प्रुषायन्) भूमि को छेदते-भेदते हैं तथा (मध्वः) मधुर रस को (पिबन्तौ) पीते हुए आप (उषसः) प्रभात समय का (सचेथे) सेवन करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—जो स्त्री-पुरुष लोक का विज्ञान रखते और पदार्थविद्या से साधित रथ से जानेवाले अच्छे आभूषण पहिने, दुग्धादि रस पीते हुए समय के अनुरोध से कार्य्यसिद्धि करनेवाले हैं वे ऐश्वर्य्य को प्राप्त हों ॥ १ ॥

युवमत्यस्याव नक्षथो यद्विपत्मनो नर्यस्य प्रयज्योः ।

स्वसा यद्वां विश्वगूर्ती भराति वाजायेट्टे मधुपाविषे च ॥२॥

पदार्थ—हे स्त्रीपुरुषो ! (यत्) जो (युवम्) तुम दोनों (प्रयज्योः) प्रयोग करने योग्य अर्थात् कार्य्य व्यवहार में वर्त्तने योग्य (नर्यस्य) मनुष्यों में उत्तम (विपत्मनः) विशेष चलनेवाले (अत्यस्य) घोड़े को (अव, नक्षथः) प्राप्त होते हो (यत्) जिस (विश्वगूर्ती) समस्त उद्यम के करनेवालों (वाम्) तुम दोनों को (स्वसा) बहिन तुम्हारी (भराति) पाले, पोषे (वाजाय च) और विज्ञान होने के लिए (ईट्टे) तुम दोनों की स्तुति करती अर्थात् प्रशंसा करती वे (मधुपौ) मधुर, मीठे को पीते हुए तुम दोनों (इषे) अन्नादि पदार्थों के होने के लिए उत्तम यत्न करो ॥ २ ॥

भावार्थ—जो स्त्री, पुरुष अग्नि आदि पदार्थों को शीघ्रगामी करने की विद्या को जानें तो यथेष्ट स्थान को जा सकते हैं, जिसकी बहिन पण्डिता हो उसकी प्रशंसा क्यों न हो ? ॥ २ ॥

युवं पय उस्रियायामधत्तं पक्वमामायामव पूर्व्यं गोः ।

अन्तर्यद्वनिनो वामृतप्सू ह्वारो न शुचिर्यजते हविष्मान् ॥३॥

पदार्थ—हे (ऋतप्सू) जल खानेहारे स्त्रीपुरुषो ! (युवम्) तुम दोनों (शुचिः) पवित्र (हविष्मान्) शुद्ध सामग्री युक्त (ह्वारः) क्रोध के निवारण करनेवाले सज्जन के (न) समान (वाम्) तुम दोनों की (उस्रियायाम्) गौ में (यत्) जो (पयः) दुग्ध वा (आमायाम्) जो युवास्था को नहीं प्राप्त हुई उस गौ में (पक्वम्) अवस्था से परिपक्व भाग (गोः) गौ का (पूर्व्यम्) पूर्वज लोगों ने प्रसिद्ध किया हुआ है वा (वनिनः) किरणोंवाले सूर्यमण्डल के (अन्तः) भीतर अर्थात् प्रकाश रूप (यजते) प्राप्त होता है उसको (अवाधत्तम्) अच्छे प्रकार धारण करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे सूर्यमण्डल रस को खींचता है और चन्द्रमा वर्षाता, पृथिवी की पुष्टि करता वैसे अध्यापक, उपदेश करनेवाले वर्त्ताव रक्खें, जैसे क्रोधादि दोषरहित जन शान्ति आदि गुणों में सुखों को प्राप्त होते हैं वैसे तुम भी होओ ॥ ३ ॥

युवं ह घर्मं मधुमन्तमत्रयेऽपो न क्षोदोऽवृणीतमेषे ।

तद्वां नरावश्विना पश्वइष्टी रथ्येव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः ॥४॥

पदार्थ—हे (नरौ) नायक अग्रगन्ता (अश्विना) बिजुली आदि की विद्या में व्याप्त स्त्री-पुरुषो ! (युवम्) तुम दोनों (एषे) सब ओर से इच्छा करते हुए (अत्रये) और भूत, भविष्यत् वर्त्तमान तीनों काल में जिसको दुःख नहीं ऐसे सर्वदा सुखयुक्त रहनेवाले पुरुष के लिए (मधुमन्तम्) मधुरादि गुणयुक्त (घर्मम्) दिन और (क्षोदः) जल को (अपः) प्राणों के (न) समान (अवृणीतम्) स्वीकार करो जिस कारण (वाम्) तुम दोनों की (पश्वइष्टिः) पशुकुल की सङ्गति (रथ्येव) रथों में उत्तम (चक्रा) पहियों के समान (मध्वः) मधुर फलों को (प्रति, यन्ति) प्रति प्राप्त होते हैं (तत्, ह) इस कारण प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। यदि स्त्रीपुरुष गृहाश्रम में मधुरादि रसों से युक्त पदार्थों और उत्तम पशुओं को रथ आदि यानों को प्राप्त होवें तो उनके सब दिन सुख से जावें ॥ ४ ॥

आ वां दानाय ववृतीय दस्रा गोरोहेण तौग्र्यो न जिव्रिः ।

अपः क्षोणी सचते माहिना वां जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा ॥५॥

पदार्थ—हे (दस्रा) दुःख दूर करने और (यजत्रा) सर्वव्यवहार की सङ्गति करानेवाले स्त्री-पुरुषो ! (जिव्रिः) जीर्णवृद्ध (तौग्र्यः) बलवानों में बली जन के (न) समान मैं (गोरोहेण) पृथिवी के बीज स्थापन से (वाम्) तुम दोनों को (दानाय) देने के लिए (ववृतीय) अच्छे प्रकार वर्त्तूं जैसे (माहिना) बड़ी होने से (क्षोणी) भूमि (अपः) जलों का (सचते) सम्बन्ध करती है वैसे (जूर्णः) रागवान् मैं (वाम्) तुम्हारा सम्बन्ध करूं और (अक्षुः) व्याप्त होने को शीलस्वभाववाला मैं (अंहसः) दुष्टाचार से (वाम्) तुम दोनों को अलग रक्खूं ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। विद्वान् जन स्त्री-पुरुषों के लिए ऐसा उपदेश करें कि जैसे हम लोग तुम्हारे लिए विद्याएँ देवें, दुष्ट आचारों से अलग रक्खें वैसा तुमको भी आचरण करना चाहिए और पृथिवी के समान क्षमा तथा परोपकारादि कर्म करने चाहिएँ ॥ ५ ॥

अब सन्तानशिक्षापरक गार्हस्थ्य कर्म अगले मन्त्रों में कहा है—

नि यद्युवेथे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजथः पुरन्धिम् ।

प्रेषद्वेषद्वातो न सूरिरा महे ददे सुव्रतो न वाजम् ॥६॥

पदार्थ—(यत्) जब हे (सुदानू) सुन्दर दानशील स्त्री-पुरुषो ! (नियुतः) पवन के वेगादि गुणों के समान निश्चित पदार्थों को (नियुवेथे) एक दूसरे से मिलाते हो तब (स्वधाभिः) अन्नादि पदार्थों से जिससे (पुरन्धिम्) प्राप्त होने योग्य विज्ञान को (उप, सृजथः) उत्पन्न करते हो वह (सूरिः) विद्वान् (प्रेषत्) प्रसन्न हो (वातः) पवन के (न) समान (वेषत्) सब ओर से गमन करे और (सुव्रतः) सुन्दर व्रत अर्थात् धर्म के अनुकूल नियमों से युक्त सज्जन पुरुष के (न) समान (महे) महत्त्व अर्थात् बड़प्पन के लिए (वाजम्) विशेष ज्ञान को (आददे) ग्रहण करता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। पितादिकों को चाहिए कि शिल्पक्रिया की कुशलता को पुत्रादिकों में उत्पन्न करावें शिक्षा को प्राप्त हुए पुत्रादि समस्त पदार्थों को विशेषता से जानें और कलायन्त्रों से चलाये हुए पवन के समान जिसमें वेग उस यान से जहाँ-तहाँ चाहे हुए स्थान को जावें ॥ ६ ॥

वयं चिद्धि वां जरितारः सत्या विपन्यामहे वि पणिर्हितावान् ।

अधा चिद्धि ष्माश्विनावनिन्द्या पाथो हि ष्मा वृषणावन्तिदेवम् ॥७॥

पदार्थ—हे (अनिन्द्या) निन्दा के न योग्य (वृषणौ) बलवान् (अश्विनौ) समस्त पदार्थ गुण व्यापी स्त्रीपुरुषो ! तुम जैसे (हितवान्) हित जिसके विद्यमान वह (विपश्चिः) विशेषतर व्यवहार करनेवाला जन (वाम्) तुम दोनों की प्रशंसा करता है वैसे हम लोग प्रशंसा करें । वा जैसे (चित, हि) ही (जरितार) स्तुति प्रशंसा करने और (सत्या) सत्य व्यवहार वर्त्तनेवाले (वयम्) हम लोग तुम दोनों की (विपन्यामहे) उत्तम स्तुति करते हैं वैसे (स्म,हि) ही (प्रस्तिदेवम्) विद्वानों में विद्वान् जन की सेवा करें वा जैसे (हि, स्म) ही आश्चर्यरूप (पाथः) जल (चित्) निश्चय से तृप्ति करता है वैसे (अथ) इसके अनन्तर विद्वानों का सत्कार करें ॥ ७ ॥

भावार्थ— इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि जैसे विद्वान् जन प्रशंसा करने योग्यों की प्रशंसा करते और निन्दा करने योग्यों की निन्दा करते हैं वैसे वर्त्ताव रक्खें ॥ ७ ॥

युवां चिद्धि ष्माश्विनावनु द्यून्विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ ।

अगस्त्यो नरां नृषु प्रशस्तः काराधुनीव चितयत्सहस्रैः ॥८॥

पदार्थ—हे (अश्विनौ) सूर्य और चन्द्रमा के तुल्य गुणवाले स्त्रीपुरुषो ! जैसे (युवां, चित्) तुम ही (हि, स्म) जिस कारण (विरुद्रस्य) विविध प्रकार से प्राण विद्यमान उस (प्रस्रवणस्य) उत्तमता से जानेवाले शरीर की (सातौ) सभक्ति में (अनु, द्यून्) प्रतिदिन अपने सन्तानों को उपदेश देओ वैसे उसी कारण (नराम्) मनुष्यों के बीच (नृषु) श्रेष्ठ मनुष्यों में (प्रशस्तः) उत्तम (अगस्त्यः) अपराध को दूर करनेवाला जन (सहस्रैः) हजारों प्रकार से (काराधुनीव) शब्दों को कंपाते हुए वादित्र आदि के समान सबको (चितयत्) उत्तम चितावे ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो स्त्री-पुरुष निरन्तर सूर्य और चन्द्रमा के समान अपने सन्तानों को विद्या और उत्तम उपदेशों से प्रकाशित कराते हैं वे प्रशंसावान् होते हैं ॥ ८ ॥

प्र यद्वहेथे महिना रथस्य प्र स्पन्द्रा याथो मनुषो न होता ।

धत्तं सूरिभ्य उत वा स्वश्व्यं नासत्या रयिषाचः स्याम ॥९॥

पदार्थ— हे (स्पन्द्रा) उत्तम चाल चलने और (नासत्या) सत्य स्वभावयुक्त स्त्रीपुरुषो ! (यत्) जो तुम (होता) दान करनेवाले (मनुषः) मनुष्य के (न) समान (महिना) बड़प्पन के साथ (रथस्य) रमण करने योग्य विमानादि रथ को (प्रवहेथे) प्राप्त होते और (प्रयाथ) एक देश से दूसरे देश पहुँचाते हो वे आप (सूरिभ्य) विद्वानों के लिए धन को (धत्तम्) धारण करो (उत, वा) अथवा (स्वश्व्यम्) सुन्दर घोड़ा जिसमें विराजमान उत्तम धनादि विभव को प्राप्त होओ जिससे हम लोग (रयिषाचः) धन के साथ सम्बन्ध करनेवाले (स्याम) हों ॥ ९ ॥

भावार्थ— मनुष्य जैसे अपने सुख के लिए जिन साधनों की इच्छा करें उन्हीं को औरों के आनन्द के लिए चाहें, जो सुपात्र पढ़ानेवालों को धनदान देते हैं वे श्रीमान् धनवान् होते हैं ॥ ९ ॥

तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम् ।

अरिष्टनेमिं परि द्यामियानं विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१०॥२४॥

पदार्थ—हे (अश्विना) सर्वगुणव्यापी पुरुषो ! (वयम्) हम लोग (अद्य) आज (सुविताय) ऐश्वर्य के लिए (स्तोमैः) प्रशंसाओं से (अरिष्टनेमिम्) दुःखनिवारक (नव्यम्) नवीन (द्याम्) आकाश को (परि, इयानम्) सब ओर से जाते हुए (तम्) उस पूर्व मन्त्रोक्त (वाम्) तुम दोनों के (रथम्) रथ को (हुवेम) स्वीकार करें तथा (इषम्) प्राप्तव्य सुख (वृजनम्) गमन और (जीरदानुम्) जीव को (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ १० ॥

भावार्थ— मनुष्यों को सदैव नवीन-नवीन विद्या के कार्य सिद्ध करने चाहिएँ जिससे इस संसार में प्रशंसा हो और आकाशादिकों में जाने से इच्छासिद्धि पाई जावे ॥ १० ॥

इस सूक्त में स्त्रीपुरुषों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एक सौ अस्सीवां सूक्त और चौबीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

कदित्यस्य नवर्चस्यैकाशीत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः । अश्विनौ देवते । १, ३ विराट् त्रिष्टुप्, २, ४, ६—९ निचृत् त्रिष्टुप्, ५ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब एक सौ इक्यासी सूक्त का आरम्भ है । इस सूक्त में अश्विपद वाच्यों के दृष्टान्त से अध्यापक और उपदेशक के गुणों का वर्णन करते हैं—

कदु प्रेष्ठाविषां रयीणामध्वर्यन्ता यदुन्निनीथो अपाम् ।

अयं वां यज्ञो अकृत प्रशस्तिं वसुधिती अवितारा जनानाम् ॥१॥

पदार्थ—हे (इषाम्) अन्न और (रयीणाम्) धनादि पदार्थों के विषय में (प्रेष्ठौ) अत्यन्त प्रीतिवाले (जनानाम्) मनुष्यों की (अवितारा) रक्षा और (वसुधिती) धनादि पदार्थों को धारण करनेवाले अध्यापक और उपदेशको ! तुम (कत्, उ) कभी (अध्वर्यन्ता) अपने को यज्ञ की इच्छा करते हुए (यत्) जो (अपाम्) जल वा प्राणों की (उत्, निनीथः) उन्नति को पहुँचाते अर्थात् अत्यन्त व्यवहार में लाते हैं सो (अयम्) यह (वाम्) तुम्हारा (यज्ञः) द्रव्यमय वा वाणीमय यज्ञ (प्रशस्तिम्) प्रशंसा को (अकृत) करता है ॥ १ ॥

भावार्थ—जब विद्वान् जन मनुष्यों को विद्याओं की प्राप्ति कराते हैं तब वे सबके प्यारे ऐश्वर्यवान् होते हैं, जब पढ़ने और पढ़ाने से और सुगन्धादि पदार्थों के होम से जीवात्मा और जलों की शुद्धि कराते हैं तब प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥१॥

आ वामश्वासः शुचयः पयस्पा वातरंहसो दिव्यासो अत्याः ।

मनोजुवो वृषणो वीतपृष्ठा एह स्वराजो अश्विना वहन्तु ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो (अश्वासः) शीघ्रगामी घोड़े (शुचयः) पवित्र (पयस्पाः) जल के पीनेवाले (दिव्यासः) दिव्य (वातरंहसः) पवन के समान वेग वा (मनोजुवः) मनोवद्वेगवाले (वृषणः) परशक्ति बन्धक (वीतपृष्ठाः) जिन्हों से पृथिवी तल व्याप्त (स्वराजः) जो आप प्रकाशमान (अत्याः) निरन्तर जानेवाले (आ) अच्छे प्रकार हैं वे (इह) इस स्थान में (वाम्) तुम (अश्विना) अध्यापक और उपदेशकों को (आ, वहन्तु) पहुँचावें ॥ २ ॥

भावार्थ— विद्वान् जन जिन बिजुली आदि पदार्थों को गुण, कर्म, स्वभाव से जानें और उनका औरों के लिए भी उपदेश देवें जबतक मनुष्य सृष्टि की पदार्थविद्या को नहीं जानते तबतक सम्पूर्ण सुख को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

आ वां रथोऽवनिर्न प्रवत्वान्त्सृप्रवन्धुरः सुविताय गम्याः ।

वृष्णः स्थातारा मनसो जवीयानहम्पूर्वो यजतो धिष्ण्या यः ॥३॥

पदार्थ— हे (स्थातारा) स्थित होनेवाले (धिष्ण्या) धृष्टप्रगल्भ अध्यापक और उपदेशको ! (यः) जो (वाम्) तुम्हारा (अवनिः) पृथिवी के (न) समान (प्रवत्वान्) जिसमें प्रशस्त वेगादि गुण विद्यमान (सृप्रवन्धुरः) जो मिले हुए बन्धनों से युक्त (मनसः) मन से भी (जवीयान्) अत्यन्त वेगवान् (अहम्पूर्वः) यह मैं हूँ इस प्रकार आत्मज्ञान से पूर्ण (यजतः) मिला हुआ (रथः) रथ (सुविताय) ऐश्वर्य के लिए होता है जिसमें (वृष्णः) बलवान् (आ, गम्याः) चलाने को योग्य अग्न्यादि पदार्थ अच्छे प्रकार जोड़े जाते हैं उसको मैं सिद्ध करूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों से जो ऐश्वर्य की उन्नति के लिए पृथिवी के तुल्य वा मन के वेग के तुल्य वेगवान् यान बनाये जाते हैं वे यहाँ स्थिर सुख देनेवाले होते हैं ॥३॥

इहेह जाता समवावशीतामरेपसा तन्वा३ नामभिः स्वैः ।

जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिर्दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे ॥४॥

पदार्थ—हे (अरेपसा) निष्पाप सर्वगुणव्यापी अध्यापक और उपदेशक जनो ! (इहेह) इस जगत् में (जाता) प्रसिद्ध हुए आप लोग अपने (तन्वा) शरीर से और (स्वैः) अपने (नामभिः) नामों के साथ (सम्, अवावशीताम्) निरन्तर कामना करनेवाले हूजिए (वाम्) तुम में से (जिष्णुः) जीतने के स्वभाववाला (अन्य) दूसरा (सुमखस्य) सुख के (दिवः) प्रकाश से (सूरिः) विद्वान् (अन्यः) और (सुभग) सुन्दर ऐश्वर्यवान् (पुत्रः) पवित्र करता है उसको (ऊहे) तर्कता हूँ—तर्क से कहता हूँ ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे मनुष्यो ! इस सृष्टि में भूगर्भादि विद्या को जानके जो जीतनेवाला अध्यापक बहुत ऐश्वर्यवाला सबका रक्षक पदार्थविद्या को तर्क से जाने वह प्रसिद्ध होता है ॥ ४ ॥

प्र वां निचेरुः ककुहो वशाँ अनु पिशङ्गरूपः सदनानि गम्याः ।

हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मथ्ना रजांस्यश्विना वि घोषैः ॥५॥२५॥

पदार्थ—हे (अश्विना) पवन और सूर्य के समान अध्यापक और उपदेशको ! जिन (वाम्) तुम्हारा जैसे (पिशङ्गरूप) पीला सुवर्ण आदि से मिला हुआ रूप है जिसका वह (ककुहः) सब दिशाओं को (निचेरु) विचरनेवाला (वशान्), वशवर्त्ति जनों को (अनु) अनुकूल वर्त्तता है उनमें से प्रत्येक तुम (सदनानि) लोकों को (प्र, गम्याः) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ जैसे (अन्यस्य) और अर्थात् अपने से भिन्न पदार्थ की (हरी) धारण और आकर्षण के समान बल पराक्रम (वाजैः) वेगादिगुणों और (घोषैः) शब्दों से (मथ्ना) अच्छे प्रकार मथे हुए (रजांसि) लोकों को बढ़ाते हैं वैसे मनुष्य उनको (वि, पीपयन्त) विशेष कर परिपूर्ण करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । हे मनुष्यो ! जैसे पवन सबको अपने वश में करता है तथा वायु और सूर्यलोक सबको धारण करते हैं वैसे विद्या धर्म्म को धारण कर तुम भी सुखी होओ ॥ ५ ॥

प्र वां शरद्वान्वृषभो न निष्षाट् पूर्वीरिषश्चरति मध्व इष्णन् ।

एवैरन्यस्य पीपयन्त वाजैर्वेषन्तीरूर्ध्वा नद्यो न आगुः ॥६॥

पदार्थ—हे अध्यापकोपदेशक जनो ! जैसे (वाम्) तुम्हारी (शरदान्) शरद् जो ऋतुएँ हैं जिसमें विद्यमान वह (वृषभ) वर्षा करानेवाला जो सूर्यमण्डल उसके (न) समान (निष्षाट्) निरन्तर सहनशील जन (पूर्वीः) अगले समय में प्राप्त हुई प्रजा (इषः) और जानने योग्य प्रजा जनों को (चरति) प्राप्त होता है वा (मध्वः) मधुर पदार्थों को (इच्छन्) चाहता हुआ (एवैः) प्राप्ति करनेवाले पदार्थों से (अन्यस्य) दूसरे की पिछली वा जानने योग्य अगली प्रजाओं को प्राप्त होता है वैसे (वाजैः) वेगों के साथ वर्त्तमान (ऊर्ध्वाः) ऊपर को जानेवाली लपटें वा (वेवन्तीः) इधर-उधर व्याप्त होनेवाली (नद्यः) नदियाँ (नः) हम लोगों को (प्र, पीपयन्त) वृद्धि दिलाती हैं और (आगुः) प्राप्त होती हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो आप्त अध्यापक और उपदेशकों से विद्याओं को प्राप्त होके औरों को देते हैं वे अग्नि के तुल्य तेजस्वी, शुद्ध होकर सब ओर से वर्त्तमान हैं ॥ ६ ॥

असर्जि वां स्थविरा वेधसा गीर्बाळ्हे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती ।

उपस्तुताववतं नाधमानं यामन्नयामञ्छृणुतं हवं मे ॥७॥

पदार्थ—हे (वेधसा) प्राज्ञ उत्तम बुद्धिवाले (अश्विना) सत्योपदेशव्यापी अध्यापकोपदेशको ! (वाम्) तुम्हारी जो (स्थविरा) स्थूल और विस्तार को प्राप्त (त्रेधा) तीन प्रकारों से (क्षरन्ती) प्राप्त होती हुई (गीः) वाणी (बाळ्हे) प्राप्ति करानेवाले व्यवहार में (असर्जि) रची गई उसको (उपस्तुतौ) अपने समीप दूसरे से प्रशंसा को प्राप्त होते हुए तुम दोनों (अवतम्) प्राप्त होओ तुम दोनों को (नाधमानम्) विद्या और ऐश्वर्ययुक्त सम्पादित करता हुआ अर्थात् तुम्हारे ऐश्वर्य को वर्णन करते हुए (मे) मेरे (हवम्) सुनने योग्य शब्द को (यामन्) सत्य मार्ग (अयामन्) और न जाने योग्य मार्ग में (शृणुतम्) सुनिए ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो श्रेष्ठ धर्मात्मा विद्वानों की वाणी को सुनते हैं वे कुमार्ग को छोड़ सुमार्ग को प्राप्त होते हैं, जो मन और कर्म से झूठ बोलने को नहीं चाहते वे माननीय होते हैं ॥ ७ ॥

फिर अध्यापकोपदेशक विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

उत स्या वां रुशतो वप्ससो गीस्त्रिबर्हिषि सदसि पिन्वते नॄन् ।

वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥८॥

पदार्थ—हे (वृषणा) दुष्टों की सामर्थ्य बाँधनेवाले अध्यापकोपदेशको ! (वाम्) तुम दोनों के (रुशतः) प्रकाशित (वप्ससः) रूप की जो (गीः) वाणी है (स्या) वह (त्रिबर्हिषि) तीन वेदवेत्ता वृद्ध जिसमें हैं उस (सदसि) सभा में (नॄन्) अग्रगन्ता मनुष्यों को (पिन्वते) सेवती है और (वाम्) तुम दोनों का जो (वृषा) सेचने में समर्थ (मेघः) मेघ के समान वाणी विषय (दशस्यन्) चाहे हुए फल को देता हुआ (गोः) पृथिवी के (सेके) सेचन में (न) जैसे वैसे अपने व्यवहार में (मनुषः) मनुष्यों की (पीपाय) उन्नति कराता है उसको (उत) भी हम सेवें ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । मनुष्य जब सत्य कहते हैं तब उनके मुख की आकृति मलिन नहीं होती और जब झूठ कहते हैं तब उनका मुख मलीन हो जाता है । जैसे पृथिवी पर ओषधियों को बढ़ानेवाला मेघ है वैसे जो सभासद् उपदेश करने योग्यों को सत्यभाषण से बढ़ाते हैं वे सब हितैषी होते हैं ॥ ८ ॥

युवां पूषेवाश्विना पुरंधिरग्निमुषां न जरते हविष्मान् ।

हुवे यद्वां वरिवस्या गृणानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥९॥२६॥

पदार्थ—हे (अश्विना) सत्योपदेश और रक्षा करनेवाले विद्वानो ! (अग्निम्) अग्नि और (उषाम्) प्रभातवेला को (यत्) जो (पुरन्धि) जगत् को धारण करने और (पूषेव) पुष्टि करनेवाले सूर्य के समान (हविष्मान्) प्रशस्त दान जिसके विद्यमान वह जन (युवाम्) तुम दोनों की (न) जैसे (जरते) स्तुति करता है वैसे (वाम्) तुम दोनों की (वरिवस्या) सेवा में हुए कर्मों की (गृणानः) प्रशंसा करता हुआ वह मैं तुमको (हुवे) स्वीकार करता हूँ ऐसे करते हुए हम लोग (इषम्) विज्ञान (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) दीर्घजीवन को (विद्याम) जानें ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सूर्य सबकी पुष्टि करनेवाला अग्नि और प्रभात समय को प्रकट करता है वैसे प्रशंसित दानशील पुरुष विद्वानों के गुणों को अच्छे प्रकार कहता है ॥ ९ ॥

इस सूक्त में अश्वि के दृष्टान्त से अध्यापक और उपदेशकों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की सङ्गति पिछले सूक्त के साथ समझनी चाहिए ॥

यह एक सौ इक्यासीवाँ सूक्त और छब्बीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अभूदिदमित्यस्य पञ्चर्चस्य द्व्यशीत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः । अश्विनौ देवते । १, ४, ७ निचृज्जगती ; ३ जगती ; ४ विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः । २ स्वराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ६, ८ स्वराड् बृहती छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब एक सौ बयासीवें सूक्त का आरम्भ है इसमें आरम्भ से विद्वानों के कार्य को कहते हैं—

अभूदिदं वयुनमो षु भूषता रथो वृषण्वान्मदता मनीषिणः ।

धियंजिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता ॥१॥

पदार्थ—(ओ) हो (मनीषिणः) धीमानो ! जिससे (इदम्) यह (वयुनम्) उत्तम ज्ञान (अभूत्) हुआ और (वृषण्वान्) यानों की वेगशक्ति को बाँधनेवाला (रथः) रथ हुआ उस (सुकृते) सुकर्मरूप शोभन मार्ग में (धियं-जिन्वा) बुद्धि को तृप्त रखते (दिवः) विद्यादि प्रकाश के (नपाता) पतन से रहित (धिष्ण्या) दृढ़ प्रगल्भ (शुचिव्रता) पवित्र कर्म करने के स्वभाव से युक्त (विश्पलावसू) प्रजाजनों की पालना करने और बसानेवाले अध्यापक और उप-देशकों को तुम (सु, भूषत) सुशोभित करो और उनके सङ्ग से (मदत) आनन्दित होओ ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! वे श्रेष्ठ अध्यापक और उपदेशक नहीं हैं कि जिनके सङ्ग से प्रजा पालना, सुशीलता, ईश्वरधर्म और शिल्पव्यवहार की विद्या न बढ़े ॥ १ ॥

इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा ।

पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन दाश्वांसमुप याथो अश्विना ॥२॥

पदार्थ—हे (अश्विना) अध्यापकोपदेशक जनो ! (हि) तुम्हीं (इन्द्रतमा) अतीव ऐश्वर्ययुक्त (धिष्ण्या) प्रगल्भ (मरुत्तमा) अत्यन्त विद्वानों को साथ लिये हुए (दस्रा) दुःख के दूर करनेवाले (दंसिष्ठा) अतीव पराक्रमी (रथ्या) रथ चलाने में श्रेष्ठ और (रथीतमा) प्रशंसित पराक्रमयुक्त हो और (मध्वः) मधु से (आचितम्) भरे हुए (पूर्णम्) शस्त्र और अस्त्रों से परिपूर्ण जिस (रथम्) रथ को (वहेथे) प्राप्त होते हो (तेन) और उससे (दाश्वांसम्) विद्या देनेवाले जन के (उप, याथः) समीप जाते हो वे हम लोगों को नित्य सत्कार करने योग्य हों ॥ २ ॥

भावार्थ—जो बिजुली, अग्नि, जल और वायु इनसे चलाये हुए रथ पर स्थित हो देशदेशान्तर को जाते हैं वे परिपूर्ण धन जीतनेवाले होते हैं ॥ २ ॥

किमत्र दस्रा कृणुथः किमासाथे जनो यः कश्चिदहविर्महीयते ।

अति क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे ॥३॥

पदार्थ—हे (दस्रा) दुःख के नाश करनेवाले अध्यापकोपदेशको ! तुम (यः) जो (कः, चित्) कोई ऐसा है कि (अहविः) जिसके लेना वा भोजन करना नहीं विद्यमान है वह (जनः) मनुष्य (महीयते) अपने को त्यागबुद्धि से बहुत कुछ मानता है उस (वचस्यवे) अपने को वचन की इच्छा करते हुए (विप्राय) मेधावी उत्तम धीरबुद्धि पुरुष के लिए (ज्योतिः) प्रकाश (कृणुतम्) करो अर्थात् विद्यादि सद्गुणों का आविर्भाव करो और (पणेः) सत् और असत् पदार्थों का व्यवहार करनेवाले जन की (असुम्) बुद्धि को (अति, क्रमिष्टम्) अतिक्रमण करो और (जुरतम्) नाश करो अर्थात् उसकी अच्छे काम में लगनेवाली बुद्धि का विवेचन करो और असत् काम में लगी हुई बुद्धि को विनाशो तथा (किम्) क्या (अत्र) इस व्यवहार में (आसाथे) स्थिर होते और (किम्) क्या (कृणुथः) करते हो ? ॥ ३ ॥

भावार्थ—अध्यापक और उपदेशक जैसे आप्त विद्वान् सबके सुख के लिए उत्तम यत्न करता है वैसे अपना वर्ताव वर्त्तें ॥ ३ ॥

जम्भयतमभितो रायतः शुनो हतं मृधो विदथुस्तान्यश्विना ।

वाचंवाचं जरितू रत्निनीं कृतमुभा शंसं नासत्यावतं मम ॥४॥

पदार्थ—हे (नासत्या) सत्य व्यवहार वर्त्तने और (अश्विना) विद्याबल में व्याप्त होनेवाले सज्जनो ! जो तुम (रायतः) भौंकते हुए मनुष्यभक्षी दुष्ट (शुनः) कुत्तों को (अभितः, जम्भयतम्) सब ओर से विनाशो तथा (मृधः) संग्रामों को (हतम्) विनाशो और (तानि) उन सब कामों को (विदथुः) जानते हो तथा (जरितुः) स्तुति प्रशंसा करनेवाले अध्यापक और उपदेशक से (रत्निनीम्) रमणीय (वाचंवाचम्) वाणी-वाणी को जानते हो और (शंसम्) स्तुति (कृतम्) करो वे (उभा) दोनों तुम (मम) मेरी वाणी को (अवतम्) तृप्त करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिनका दुष्टों के बाँधने, शत्रुओं के जीतने और विद्वानों के उपदेश के स्वीकार करने में सामर्थ्य है वे ही हम लोगों के रक्षक होते हैं ॥ ४ ॥

अब प्रकरणगत विषय में नौका और विमानादि बनाने के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लवमात्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम् ।

येन देवत्रा मनसा निरूहथुः सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसो महः ॥५॥२७॥

पदार्थ —हे उक्त गुणवाले अध्यापकोपदेशको ! (युवम्) तुम (अप्सु) नदी वा समुद्रो मे (तौग्र्याय) बलवानो मे प्रसिद्ध हुए जन के लिए (एतम्) इस (आत्मन्वन्तम्) प्रशस्त जनो से युक्त (पक्षिणम्) और पक्ष जिसमे विद्यमान ऐसे (कम्) सुखकारी (प्लवम्) उस नौकादि यान को जिसमे पार अवार अर्थात इस पार उस पार जाते है (चक्रथु) सिद्ध करते हो (येन) जिससे (देवत्रा) देवो में (मनसा) विज्ञान के साथ (सुपप्तनी) जिनका सुन्दर गमन है वे आप (निरूहथु) निरन्तर उस नौकादि यान को बढ़ाइए और (महः) बहुत (क्षोदस) जल के (पेतथु) पार जाओ ॥ ५ ॥

भावार्थ जो जन नम्री-चौरी अच्छी नावो का लेके समुद्र के बीच जाना-आना करते हैं वे आप सुखी होकर औरो को सुखी करते है ॥ ५ ॥

फिर नौकादि यान विषय को अगले मन्त्रो मे कहा है—

अवविद्धं तौग्र्यमप्स्वन्तरनारम्भणे तमसि प्रविद्धम् ।

चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उदश्विभ्यामिषिताः पारयन्ति ॥६॥

पदार्थ —जो (अश्विभ्याम्) वायु और अग्नि से (इषिताः) प्रेरणा दी हुई अर्थात पवन और अग्नि के बल से चली हुई एक-एक चौतरफी (चतस्रः) चार-चार (नावः) नावें (जठलस्य) उदर के समान समुद्र मे (जुष्टा) सेवन की हुई (अनारम्भणे) जिसका अविद्यमान आरम्भण उस (तमसि) अन्धकार मे (प्रविद्धम्) अच्छे प्रकार व्यथित (अप्सु) जलो के (अन्तः) भीतर (अवविद्धम्) विशेष पीडा पाये हुए (तौग्र्यम्) बल को ग्रहण करनेवालो मे प्रसिद्ध जन को (उत्पारयन्ति) उत्तमता से पार पहुँचाती है वे विद्वानो को बनानी चाहिएँ ॥ ६ ॥

भावार्थ —मनुष्य जब नौका मे बैठ समुद्र के मार्ग से जाने की इच्छा करें तब बड़ी नाव के साथ छोटी-छोटी नावें जोड़ समुद्र मे जाना-आना करें ॥६ ॥

कः स्विद्वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसो यं तौग्र्यो नाधितः पर्यषस्वजत् ।

पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभ उदश्विना ऊहथुः श्रोमताय कम् ॥७॥

पदार्थ —हे (अश्विना) जल और अग्नि के समान विमानादि यानो के रचने और पहुँचानेवाले विद्वानो ! (अर्णसः) जल के (मध्ये) बीच मे (कः, स्वित्) कौन (वृक्ष) वृक्ष (निष्ठित) निरन्तर स्थिर हो रहा है (यम्) जिसको (नाधित) कष्ट को प्राप्त (तौग्र्यः) बलवानो मे प्रसिद्ध हुआ पुरुष (पर्यषस्वजत) लगता अर्थात् जिसमे अटकता है और (मृगस्य) शुद्ध करने योग्य (पतरोरिव) जाते हुए प्राणी के (पर्णा) पंखो के समान (श्रोमताय) प्रशस्त कीर्तियुक्त व्यवहार के लिए (आरभे) आरम्भ करने को (कम्) कौन यान को (उत्, ऊहथु) ऊपर के मार्ग से पहुँचाते हो ॥ ७ ॥

भावार्थ इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । हे नौका पर जानेवालो ! समुद्र मे कोई वृक्ष है जिसमे बंधी हुई नौका स्थिर हो ? वहाँ नहीं वृक्ष और न आधार है किन्तु नौका ही आधार, बल्ली ही खम्भे है ऐसे ही जैसे पखेरू ऊपर को जा फिर नीचे आते हैं वैसे ही विमानादि यान हैं ॥ ७ ॥

फिर साधारण भाव से अध्यापक और उपदेशक के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तद्वां नरा नासत्यावनु ष्याद्यद्वां मानास उचथमवोचन् ।

अस्मादद्य सदसः सोम्यादा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८॥२८॥

पदार्थ —हे (नरा) नायक, अग्रगामी (नासत्यौ) असत्य आचरण से रहित अध्यापकोपदेशको ! (यत्) जो (वाम्) तुम दोनो का (अनु, स्यात्) चाहते हुए के अनुकूल हो (तत्) वह आप लोगो का हो अर्थात् परिपूर्ण हो और (मानास) विचारशील सज्जन पुरुष (यत्) जिस (उचथम्) कहने योग्य विषय को (अवोचन्) कहे उसको तुम दोनो ग्रहण करो जैसे (अद्य) आज (तस्मात्) इस (सोम्यात्) सोमगुण सम्पन्न (सदसः) सभास्थान से (इषम्) इच्छा सिद्धि (वृजनम्) बल (जीरदानुम्) जीवन के उपाय को हम लोग (आ) (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

भावार्थ -इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य को यह अच्छे प्रकार उचित है कि अपने प्रयोजन को चाहे तथा परोपकार भी चाहे और विद्वान् जन जिस जिस का उपदेश करें उस-उस को प्रीति से सब लोग ग्रहण करे ॥ ८ ॥

इस सूक्त मे विद्वानो के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एक सौ बयासीवाँ सूक्त और अट्ठाईसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

तमित्यस्य षडृचस्य त्र्यशीत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः । अश्विनौ देवते । १, ४, ६ त्रिष्टुप्, २, ३ निचृत् त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वरः । ५ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्द. । पञ्चम स्वरः ॥

अब एक सौ तिरासी सूक्त का आरम्भ है उसके आरम्भ से विद्वान् की शिल्पविद्या के गुणों का विषय कहा है -

तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः ।

येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः ॥१॥

पदार्थ —हे (वृषणा) बलवान् सर्वविद्यासम्पन्न शिल्पविद्या के अध्यापकोपदेशको ! तुम (यः) जो (पर्णैः) पङ्खो से (विः, न) पखेरू के समान (मनस) मन से (जवीयान्) अत्यन्त वेगवाला (त्रिवन्धुर.) और तीन बन्धन जिसमे विद्यमान (यः) तथा जो (त्रिचक्र) तीन चक्रवाला रथ है (येन) जिस (त्रिधातुना) तीन धातुओवाले रथ से (सुकृत) धर्मात्मा पुरुष के (दुरोणम्) घर को (उपयाथ) निकट जाते हो (तम्) उसको (युञ्जाथाम्) जोड़ो, जोतो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो शीघ्र ले जाने और पखेरू के समान आकाश मे चलानेवाले साङ्गोपाङ्ग अच्छे बने हुए रथ को नहीं सिद्ध करते हैं वे कैसे ऐश्वर्य को पावें ? ॥१॥

सुवृद्रथो वर्तते यन्नभि क्षां यत्तिष्ठथः क्रतुमन्तानु पृक्षे ।

वपुर्वपुष्या सचतामियं गीर्दिवो दुहित्रोषसा सचेथे ॥२॥

पदार्थ हे (क्रतुमन्ता) बहुत उत्तम बुद्धियुक्त रथो के चलाने और सिद्ध करनेवाले विद्वानो ! तुम (सुवृत्) सुन्दरता से स्वीकार करने (रथ) और रमण करने योग्य रथ (क्षाम्) पृथिवी को (यन्) जाता हुआ (अभि) सब ओर से (वर्तते) वर्त्तमान है (यत्) जिस मे (पृक्षे) दूसरो के सम्बन्ध मे तुम लोग (तिष्ठथ) स्थिर होते हो और जो (वपु) रूप है अर्थात् चित्र-सा बन रहा है उस सब से (वपुष्या) सुन्दर रूप म प्रसिद्ध हुए व्यवहारो का (अनु, सचताम्) अनुकूलता से सम्बन्ध करो । और जैसे (इयम्) यह (गी) सुशिक्षित वाणी और कहनेवाला पुरुष (दिव) सूर्य की (दुहित्रा) कन्या के समान वर्त्तमान (उषसा) प्रभातवेला से तुम दोनो को (सचेथे) संयुक्त होते हैं वैसे कैसे न तुम भाग्यशाली होते हो ? ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य जिस यान से जाने को चाहें वह सुन्दर पृथिव्यादिको मे शीघ्र चलने योग्य, प्रभातवेला के समान प्रकाशमान जैसे वैसे अच्छे विचार से बनावें ॥ २ ॥

आ तिष्ठतं सुवृतं यो रथो वामनु व्रतानि वर्त्तते हविष्मान् ।

येन नरा नासत्येषयध्यै वर्त्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥३॥

पदार्थ—हे (नरा) अग्रगामी नायक (नासत्या) सत्य विद्या क्रियायुक्त पुरुषो ! (यः) जो (हविष्मान्) बहुत खाने योग्य पदार्थोंवाला (रथः) रथ (वाम्) तुम दोनो के (अनु, वर्त्तते) अनुकूल वर्त्तमान है (येन) जिस से (इषयध्यै) से जाने को (व्रतानि) शील, उत्तम भावो को बढा कर (तनयाय) सन्तान के लिए (च) और (त्मने) अपने लिए भी (वर्त्तिः) मार्ग को (याथ) जाते हो (सुवृतम्) उस सर्वाङ्ग सुन्दर रथ को तुम दोनो (आ, तिष्ठतम्) अच्छे प्रकार स्थिर होओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्य अपने सन्तानो की सुखोन्नति के लिए अच्छा, दृढ लम्बे-चौडे, साङ्गोपाङ्ग सामग्री से पूर्ण शीघ्र चलनेवाले, भक्ष्य, भोज्य लेह्य, चोष्य अर्थात् चटपट खाने, उत्तमता से धीरज से खाने, चाटने और चूसने योग्य पदार्थों से युक्त रथ से पृथिवी, समुद्र और आकाश मार्गों में अति उत्तमता से सावधानी के साथ जावें और आवें ॥ ३ ॥

मा वां वृको मा वृकीरा दधर्षीन्मा परि वर्क्तमुत माति धक्तम् ।

अयं वां भागो निहित इयं गीर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥४॥

पदार्थ - हे (दस्रौ) दुःखनाशक शिल्पविद्याऽध्यापक उपदेशको ! (वाम्) तुम दोनो के (इमे) ये (मधूनाम्) मधुरादि गुणयुक्त पदार्थों के (निधयः) राशि, समूह (वाम्) तुम दोनो का (अयम्) यह (भाग) सेवने योग्य अधिकार (निहित) स्थापित और (इयम्) यह (गी) वाणी है तुम दोनो हम को (मा, परि, वर्क्तम्) मत छोडो (उत) और (मा अति, धक्तम्) मत विनाशो और जिससे (वाम्) तुम दोनो को (वृक) चोर, ठग, गठकटा आदि दुष्ट जन (मा) मत (वृकी.) चोरी ठगी, गठकटी आदि दुष्ट औरतें (मा, आ, दधर्षीत्) मत विनाशें, मत नष्ट करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्य जब घर मे निवास करें वा यानो मे और वन म प्रतिष्ठित होवें तब भोग करने के लिए पूर्ण भोग और उपभोग योग्य पदार्थों, शस्त्र वा अस्त्रो और वीरसेना को संस्थापन कर निवास करें वा जावें जिस से कोई विघ्न न हो ॥४॥

युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिर्दस्रा हवतेऽवसे हविष्मान् ।

दिशं न दिष्टामृजूयेव यन्ता मे हवं नासत्योप यातम् ॥५॥

पदार्थ—हे (दस्रा) दुःख दारिद्र्य विनाशनेवाले (नासत्या) सत्यप्रिय शिल्पविद्याऽध्यापकोपदेशक विद्वानो ! (युवाम्) तुम दोनों (यः) जो (हविष्मान्) प्रशंसित ग्रहण करने योग्य (पुरुमीळ्हः) बहुत पदार्थों से सींचा हुआ (अत्रिः) निरन्तर गमनशील (गोतमः) मेधावी जन (अवसे) रक्षा आदि

के लिए (हवते) उत्तम पदार्थों को ग्रहण करता है वैसे और जैसे (यन्ता) नियमकर्ता जन (ऋजूयेव) सरल मार्ग से जैसे तैसे (विष्टम्) निविष्ट की (दिशम्) पूर्वादि दिशा के (न) समान (मे) मेरे (हवम्) दान को (उप, आ, यातम्) अच्छे प्रकार समीप प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे नौकादि यान से जानेवाले जन सरल मार्ग से बताई हुई दिशा को जाते हैं वैसे सीखनेवाले विद्यार्थी जन आप्त विद्वानों के समीप जावें ॥ ५ ॥

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।

एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥२९॥

पदार्थ—हे (अश्विना) शिल्पविद्याव्यापी सज्जनो ! जैसे (इह) यहाँ (वाम्) तुम दोनों का (स्तोमः) स्तुति योग्य व्यवहार (अधायि) धारण किया गया वैसे तुम्हारे (प्रति) प्रति हम (अस्य) इस (तमसः) अन्धकार के (पारम्) पार को (अतारिष्म) तरें पहुँचें जैसे हम (इषम्) इच्छासिद्धि (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवन को (विद्याम) प्राप्त होवें वैसे तुम दोनों (देवयानैः) विद्वान् जिन मार्गों से जाते उन (पथिभिः) मार्गों से हम लोगों को (आ, यातम्) प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो अतीव शिल्पविद्यावेत्ता जन हों वे ही नौकादि यानों से भू समुद्र और अन्तरिक्ष मार्गों से पार-अवार लेजा-ला सकते हैं वे ही विद्वानों के मार्गों में अग्नि आदि पदार्थों से बने हुए विमान आदि यानों से जाने को योग्य हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में विद्वानों की शिल्पविद्या के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एकसौ तिरासीवां सूक्त और उनतीसवां वर्ग और चतुर्थोऽध्याय समाप्त हुआ ॥

इस अध्याय में अन्न, पवन, इन्द्र, अग्नि, अश्वि और विमानादि यानों के गुणों का वर्णन आदि होने से इस अध्याय के अर्थ की पिछले अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां परमविदुषां श्रीमद्विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां
शिष्येण परमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिते
आर्य्यभाषाविभूषिते सुप्रमाणयुक्ते ऋग्वेदभाष्ये
द्वितीयाऽष्टकस्य चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥

卐

अथ द्वितीयाष्टके पञ्चमाऽध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ।

ता वामिति षड्ऋचस्य चतुरशीत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः । अश्विनौ देवते । १ पङ्क्तिः, ४ भुरिक् पङ्क्तिः, ५—६ निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २, ३ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब द्वितीयाष्टक के पञ्चम अध्याय के प्रथम सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम, द्वितीय मन्त्र में अध्यापक और उपदेशक विषय को कहा है—

ता वामद्य तावपरं हुवेमोच्छन्त्यामुषसि वह्निरुक्थैः ।

नासत्या कुह चित्सन्तावर्यो दिवो नपाता सुदास्तराय ॥१॥

पदार्थ—हे (नपाता) जिनका पात विद्यमान नहीं वे (नासत्या) मिथ्या व्यवहार से अलग हुए सत्यप्रिय विद्वानो ! हम लोग (अद्य) आज (उच्छन्त्याम्) नाना प्रकार का वास देनेवाली (उषसि) प्रभातवेला में (ता) उन (वाम्) तुम दोनों महाशयों को (हुवेम) स्वीकार करें (तौ) और उन आप को (अपरम्) पीछे भी स्वीकार करें तुम (कुह चित्) किसी स्थान में (सन्तौ) हुए हो और जैसे (वह्निः) पदार्थों को एक स्थान को पहुँचानेवाला अग्नि के समान (अर्य्यः) वणिया (सुदास्तराय) अतीव सुन्दरता से उत्तम देनेवाले के लिए (उक्थैः) प्रशंसा करने के योग्य वचनों से (दिवः) व्यवहार के बीच वर्त्तमान हैं वैसे हम लोग वर्त्तें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् जन आकाश और पृथिवी से उपकार करते हैं वैसे हम लोग विद्वानों से उपकार को प्राप्त हुए वर्त्तें ॥ १ ॥

अस्मे ऊ षु वृषणा मादयेथामुत्पणींर्हतमूर्म्या मदन्ता ।

श्रुतं मे अच्छोक्तिभिर्मतीनामेष्टा नरा निचेतारा च कर्णैः ॥२॥

पदार्थ—(वृषणा) बलवान् (निचेतारा) नित्य ज्ञानवान् और ज्ञान के देनेवाले (नरा) अग्रगामी विद्वानो ! तुम (पणीन्) प्रशंसित व्यवहार करनेवाले (अस्मे) हम लोगों को (सु, मादयेथाम्) सुन्दरता से आनन्दित करो (ऊर्म्या) और रात्रि के साथ (मदन्ता) आनन्दित होते हुए तुम लोग दुष्टों का (उत्, हतम्) उद्धार करो अर्थात् उनको उस दुष्टता से बचाओ और (मतीनाम्) मनुष्यों को (अच्छोक्तिभिः) अच्छी उक्तियों अर्थात् सुन्दर वचनों से जो मैं (एष्टा) विवेक करनेवाला हूँ उस (च, मे) मेरी भी सुन्दर उक्ति को (कर्णैः) कानों से (उ, श्रुतम्) तर्क-वितर्क के साथ सुनो ॥ २ ॥

भावार्थ—जैसे अध्यापक और उपदेश करनेवाले जन पढ़ाने और उपदेश सुनाने योग्य पुरुषों को वेदवचनों से अच्छे प्रकार ज्ञान देकर विद्वान् करते हैं वैसे उन के वचन को सुनके वे सब काल में सब को आनन्दित करने योग्य हैं ॥ २ ॥

अब शिष्य को सिखावट देने के ढङ्ग पर अध्यापकोपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

श्रिये पूषन्निषुकृतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः ।

वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जूर्णेव वरुणस्य भूरेः ॥३॥

पदार्थ—हे (पूषन्) पुष्टि करनेवाले ! तू (देवा) देनेवाले (नासत्या) मिथ्या व्यवहार के विरोधी अध्यापक-उपदेशक (सूर्यायाः) सूर्य की कान्ति की (वहतुम्) प्राप्ति करनेवाले व्यवहार को (इषुकृतेव) जैसे बाणों से सिद्ध किये हुए दो पदार्थ हों वैसे (श्रिये) लक्ष्मी के लिए प्रयत्न कर। और हे अध्यापक उपदेशको ! (अप्सु) अन्तरिक्ष प्रदेशों में (जाता) प्रसिद्ध हुई (ककुहा) दिशा (वरुणस्य) उत्तम सज्जन वा जल के (भूरेः) बहुत उत्कर्ष से (युगा) वर्षों को (जूर्णेव) पुरातन व्यतीत हुई उनके समान (वाम्) तुम दोनों की (वच्यन्ते) प्रशंसा करती हैं अर्थात् दिशा दिशान्तरों में तुम्हारी प्रशंसा होती है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसी बाणकृत सेना अर्थात् बाण के समान प्रेरणा दी हुई सेना शत्रुओं को जीतती है वैसे धन के श्रेष्ठ उपाय को शीघ्र ही करे, काल के विशेष विभागों में जो दिन हैं उनमें कार्य जैसे बनते हैं वैसे रात्रि भागों में नहीं उत्पन्न होते हैं श्रेष्ठ गुणीजनों की सब जगह प्रशंसा होती है ॥ ३ ॥

अब सज्जनता का आश्रय लिये हुए अध्यापक और उपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनोतं मान्यस्य कारोः ।

अनु यद्वां श्रवस्या सुदानू सुवीर्याय चर्षणयो मदन्ति ॥४॥

पदार्थ—हे (सुदानू) अच्छे देनेवालो ! जो (वाम्) तुम दोनों की (माध्वी) मधुरादि गुणयुक्त (रातिः) दान वर्त्तमान है (सा) वह (अस्मे) हम लोगों के लिए (अस्तु) हो और तुम (मान्यस्य) प्रशंसा के योग्य (कारोः) कार करनेवाले की (स्तोमम्) प्रशंसा को (हिनोतम्) प्राप्त होओ और (श्रवस्या) अपने को सुनने की इच्छा से (यत्) जिन (वाम्) तुम को (सुवीर्याय) उत्तम पराक्रम के लिए (चर्षणयः) साधारण मनुष्य (अनु, मदन्ति) अनुमोदन देते हैं तुम्हारी कामना करते हैं उनको हम भी अनुमोदन देवें ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो आप्त, श्रेष्ठ, सद्धर्मी सज्जनों की नीति और विद्वानों की स्तुति मनोहर हो वह उत्तम पराक्रम के लिए समर्थ होती है ॥ ४ ॥

अब अध्यापक और उपदेशकों की प्रशंसा का विषय अगले मन्त्र में कहा है—

एष वां स्तोमो अश्विनावकारि मानेभिर्मघवाना सुवृक्ति ।
यातं वर्तिस्तनयाय त्मने चागस्त्ये नासत्या मदन्ता ॥५॥

पदार्थ—हे (मघवाना) परमपूजित अध्यापकोपदेशको ! (एषः) यह (वाम्) तुम दोनों की (स्तोमः) प्रशंसा (मानेभिः) जो मानते हैं उन्होंने (सुवृक्ति) सुन्दर त्याग जैसे हो वैसे (अकारि) की है अर्थात् कुछ मुखदेखी मिथ्या प्रशंसा नहीं की। और हे (नासत्या) सत्य में निरन्तर स्थिर रहनेवाले (अश्विनौ) अध्यापकोपदेशक लोगो ! (अगस्त्ये) अपराध रहित मार्ग में (मदन्ता) शुभ कामना करते हुए तुम (तनयाय) उत्तम सन्तान और (त्मने, च) अपने लिए (वर्तिः) अच्छे मार्ग को (यातम्) प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—वही स्तुति होती है जिसको विद्वान् जन मानते हैं वैसा ही परोपकार होता है जैसा अपने सन्तान और अपने लिए चाहा जाता है और वही धर्ममार्ग हो कि जिसमें श्रेष्ठ धर्मात्मा विद्वान् जन चलते हैं ॥ ५ ॥

फिर अध्यापकोपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥१॥

पदार्थ—हे (अश्विनौ) विशेष उपदेश देनेवाले ! (इह) इस आनन्दयोग्य व्यवहार में जो (स्तोमः) प्रशंसा (वाम्) तुम दोनों के (प्रति) प्रति (अधायि) धारण की गई उससे (अस्य) इस (तमसः) अविद्यान्धकार के (पारम्) पार को (अतारिष्म) पहुँचें जैसे तुम (देवयानैः) आप्त विद्वान् जिन में जाते हैं उन (पथिभिः) मार्गों से (इषम्) इष्ट सुख (वृजनम्) शारीरिक और आत्मिक बल तथा (जीरदानुम्) जीवात्मा को (आ यातम्) प्राप्त होओ वैसे इस को हम भी (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ ६ ॥

भावार्थ—वे ही विद्या के परमपार मनुष्यों को पहुँचा सकते हैं जो धर्ममार्ग से ही चलते हैं और यथार्थ के उपदेशक भी हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अध्यापक और उपदेशकों के लक्षणों को कहने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह एकसौ चौरासीवां सूक्त और प्रथम वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

कतरेत्यस्यैकादशर्चस्य पञ्चाशीत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते । १, ६—८, १०, ११ त्रिष्टुप्; २ विराट् त्रिष्टुप्, ३—५, ९ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब एक सौ पचासी सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से उत्पन्न होने योग्य और उत्पन्न करनेवाले के गुणों का वर्णन करते हैं—

कतरा पूर्वा कतरापरायोः कथा जाते कवयः को वि वेद ।
विश्वं त्मना बिभृतो यद्ध नाम वि वर्तेते अहनी चक्रियेव ॥१॥

पदार्थ—हे (कवयः) विद्वान् पुरुषो ! (अयोः) द्यावापृथिवी में वा कार्य कारणों में (कतरा) कौन (पूर्वा) पूर्व (कतरा) कौन (अपरा) पीछे है ये द्यावापृथिवी वा संसार के कारण और कार्यरूप पदार्थ (कथा) कैसे (जाते) उत्पन्न हुए इस विषय को (कः) कौन (वि, वेद) विविध प्रकार से जानता है (त्मना) आप प्रत्येक (यत्) जो (ह) निश्चित (विश्वम्) समस्त जगत् (नाम) प्रसिद्ध है उसको (बिभृतः) धारण करते वा पुष्ट करते हैं और वे (अहनि) दिन-रात्रि (चक्रियेव) चाक के समान घूमते वैसे (वि वर्तेते) विविध प्रकार से वर्त्तमान हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जो इस जगत् में द्यावापृथिवी और जो प्रथम कारण परकार्य्यरूप पदार्थ हैं तथा जो आधाराधेय सम्बन्ध से दिन रात्रि के समान वर्त्तमान हैं उन सबको तुम जानो ॥ १ ॥

भूरिं द्वे अचरन्ती चरन्तं पद्वन्तं गर्भमपदी दधाते ।
नित्यं न सूनुं पित्रोरुपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥२॥

पदार्थ—हे (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिवी के समान वर्त्तमान मातापितरो ! जैसे (अचरन्ती) इधर उधर अपनी कक्षा को छोड़ न जानेवाले (अपदी) पैरों से रहित (द्वे) दोनों द्यावापृथिवी (भूरिम्) बहुत (पद्वन्तम्) पगवाले (चरन्तम्) चलते हुए (गर्भम्) कार्य्यरूप जगत् को (पित्रोः) माता-पिता के (उपस्थे) गोद में नित्य (सूनुम्) पुत्र के (न) समान (दधाते) धारण करते हैं वैसे (अभ्वात्) मिथ्याचरण से उत्पन्न हुए दुःख से (नः) हम लोगों की (रक्षतम्) रक्षा करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे भूमि, सूर्य दृढ़ होते हुए स्थावर, जङ्गम, चर, अचर, जगत् को बहुत प्रकार से पालके बढ़ाते हैं वैसे माता, पिता, अतिथि, आचार्य्य, सन्तान और शिष्यों की अच्छे प्रकार रक्षा कर विद्या और उत्तम शिक्षा से बढ़ावें ॥ २ ॥

अनेहो दात्रमदितेरनर्वं हुवे स्वर्वदवधं नमस्वत् ।
तद्रोदसी जनयतं जरित्रे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥३॥

पदार्थ—मैं (अदितेः) पृथिवी वा सूर्य के (अनेहः) न विनाशने योग्य (अनर्वम्) जिसमें अश्व का सम्बन्ध नहीं ऐसे (स्वर्वत्) सुखयुक्त तथा (अवधम्) जिसका नाश नहीं (नमस्वत्) जिसमें प्रशंसित अन्न विद्यमान उस (दात्रम्) दानपात्रमात्र का (हुवे) स्वीकार करता हूं। हे (रोदसी) दिन रात्रि के समान वर्त्तमान माता-पिताओ ! (तत्) उस दानकर्म को (जरित्रे) स्तुति करते हुए मेरे लिए (जनयतम्) उत्पन्न करो। हे (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिवी के समान वर्त्तमान माता-पिताओ ! (नः) हम लोगों को (अभ्वात्) अधर्म्म से (रक्षतम्) बचाओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो ये भूमि, सूर्य और प्रत्यक्ष पदार्थ दीखते हैं वे अविनाशी अनादिकारण से हुए हैं ऐसा जानना चाहिए ॥ ३ ॥

फिर दृष्टान्त प्राप्त द्यावापृथिवी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अतप्यमाने अवसावन्ती अनु ष्याम रोदसी देवपुत्रे ।
उभे देवानामुभयेभिरह्नां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (अतप्यमाने) सन्तापरहित (अवसा) रक्षा आदि से (अवन्ती) रक्षा करती हुई (देवपुत्रे) देव जो परमात्मा उसके पुत्र के समान वर्त्तमान (उभे) दोनों (रोदसी) प्रकाशभूमि (अह्नाम्) दिनों के बीच (उभयेभिः) स्थावर और जङ्गमों के साथ (देवानाम्) दिव्य जलादि पदार्थों से रक्षा करते हैं वैसे हे (द्यावा, पृथिवी) आकाश और पृथिवी के समान वर्त्तमान माता-पिताओ ! तुम दोनों (अभ्वात्) अपराध से (नः) हमारी (रक्षतम्) रक्षा कीजिए जिससे हम लोग (अनु, ष्याम) पीछे सुखी होवें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पृथिवी आदि पदार्थ समस्त स्थावर जङ्गम की पालना करते हैं वैसे माता-पिता, आचार्य्य और राजा आदि प्रजा की रक्षा करें ॥ ४ ॥

संगच्छमाने युवती समन्ते स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थे ।
अभिजिघ्रन्ती भुवनस्य नाभिं द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥५॥

पदार्थ—(पित्रोः) माता पिता की (उपस्थे) गोद में (संगच्छमाने) मिलती हुई (जामी) दो कन्याओं के समान वा (युवती) तरुण दो स्त्रियों के समान वा (समन्ते) पूर्ण सिद्धान्त जिनका उन दो (स्वसारा) बहिनों के समान (भुवनस्य) संसार के (नाभिम्) मध्यस्थ आकर्षण को (अभि, जिघ्रन्ती) गन्ध के समान स्वीकार करती हुई (द्यावा, पृथिवी) आकाश और पृथिवी के समान माता-पिताओ ! तुम (नः) हम लोगों की (अभ्वात्) अपराध से (रक्षतम्) रक्षा करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे ब्रह्मचर्य से विद्यासिद्धि किये हुए तरुण जिनको परस्पर पूर्ण प्रीति है वे कन्या-वर सुखी हों वैसे द्यावापृथिवी जगत् के हित के लिए वर्त्तमान हैं ॥ ५ ॥

उर्वी सद्मनी बृहती ऋतेन हुवे देवानामवसा जनित्री ।
दधाते ये अमृतं सुप्रतीके द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥६॥

पदार्थ—हे माता-पिताओ ! (ये) जो (उर्वी) बहुत विस्तारवाली (सद्मनी) सबकी निवासस्थान (बृहती) बड़ी (ऋतेन) जल से और (अवसा) रक्षा आदि के साथ (देवानाम्) विद्वानों की (जनित्री) उत्पन्न करनेवाली (सुप्रतीके) सुन्दर प्रतीति का विषय (द्यावा, पृथिवी) आकाश और पृथिवी (अमृतम्) जल को (दधाते) धारण करती हैं और मैं उनकी (हुवे) प्रशंसा करता हूँ वैसे (अभ्वात्) अपराध से (नः) हम लोगों की तुम (रक्षतम्) रक्षा करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो माता-पिता सत्योपदेश से सूर्य के समान विद्या प्रकाश से युक्त सर्वगुण सम्भृत पृथिवी जैसे जल से वृक्षों को वैसे शारीरिक बल से बढ़ाते हैं वे सब की रक्षा करने योग्य हैं ॥ ६ ॥

उर्वी पृथ्वी बहुले दूरेअन्ते उप ब्रुवे नमसा यज्ञे अस्मिन् ।
दधाते ये सुभगे सुप्रतूर्ती द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥७॥

पदार्थ—(दूरेअन्ते) दूर में और समीप में (बहुले) बहुत वस्तुओं को ग्रहण करनेवाली (उर्वी) बहुत पदार्थयुक्त (पृथ्वी) और पृथिवी का (अस्मिन्) इस संसार के व्यवहार (यज्ञे) जो कि सङ्ग करने योग्य उसमें (नमसा) अन्न के साथ मैं (उप, ब्रुवे) उपदेश करता हूँ और (ये) जो (सुभगे) सुन्दर ऐश्वर्य की प्राप्ति करनेवाली (सुप्रतूर्ती) अतिशीघ्र गतियुक्त आकाश और पृथिवी (दधाते) समस्त पदार्थों को धारण करते हैं उन (द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी के समान वर्त्तमान माता-पिताओ ! (नः) हमको (अभ्वात्) अपराध से (रक्षतम्) बचाओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे पृथिवी के समीप में चन्द्रलोक की भूमि है वैसे सूर्य लोकस्थ भूमि दूर में है ऐसे सब जगह प्रकाश और अन्धकाररूप लोकद्वय वर्त्तमान हैं उन लोकों के जैसे उन्नति हो वैसा यत्न सबको करना चाहिए ॥ ७ ॥

देवान्वा यच्चकृमा कच्चिदागः सखायं वा सदमिज्जास्पतिं वा ।
इयं धीर्भूया अवयानमेषां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥८॥

पदार्थ—(यत्) जो (कच्चित्) कुछ (देवान्) विद्वानों (वा) वा (सखायम्) मित्र (वा) वा (सदमित्) सदैव (वा) वा (जास्पतिम्) स्त्री की पालना करनेवाले के भी प्रति (आगः) अपराध (चकृम) करें (एषाम्) इन सब अपराधों का (इयम्) यह (धीः) कर्म वा तत्त्वज्ञान (अवयानम्) दूर करनेवाला (भूयाः) हो । हे (द्यावा, पृथिवी) आकाश और पृथिवी के समान वर्त्तमान माता-पिताओ ! (नः) हम लोगों को (अभ्वात्) अपराध से (रक्षतम्) बचाओ ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो माता-पिता सन्तानों को अन्न जल के समान नहीं पालते वे अपने धर्म से गिरते हैं और जो माता-पिताओं की रक्षा नहीं करते वे सन्तान भी अधर्मी होते हैं ॥ ८ ॥

उभा शंसा नर्या मामविष्टामुभे मामूती अवसा सचेताम् ।
भूरि चिदर्यः सुदास्तरायेषा मदन्त इषयेम देवाः ॥९॥

पदार्थ—(उभा) दोनों (शंसा) प्रशंसा को प्राप्त (नर्या) मनुष्यों में उत्तम द्यावापृथिवी के समान माता-पिता (माम्) मेरी (अविष्टाम्) रक्षा करें और (माम्) मुझे (उभे) दोनों (ऊती) रक्षाएँ (अवसा) औरों की रक्षा आदि के साथ (सचेताम्) प्राप्त होवें । हे (देवाः) विद्वानो ! (अर्यः) वणिया (सुदास्तराय) अतीव देनेवाले के लिए (भूरि, चित्) बहुत जैसे देवे वैसे (मदन्तः) सुखी होते हुए हम लोग (इषा) इच्छा से (इषयेम) प्राप्त होवें ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य और चन्द्रमा सबका संयोग कर प्राणियों को सुखी करते हैं तथा जैसे धनाढ्य वैश्य बहुत अन्न आदि पदार्थ देकर भिखारियों को प्रसन्न करता है वैसे विद्वान् जन सबके प्रसन्न करने में प्रवृत्त होवें ॥ ९ ॥

चलते हुए विषय में चाहे हुए कहने योग्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ऋतं दिवे तदवोचं पृथिव्या अभिश्रावाय प्रथमं सुमेधाः ।
पातामवद्याद्दुरितादभीके पिता माता च रक्षतामवोभिः ॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (सुमेधाः) सुन्दर बुद्धिवाला मैं (अभिश्रावाय) जो सब ओर से सुनता वा सुनाता उसके लिए और (पृथिव्यै) पृथिवी के समान वर्त्तमान क्षमाशील स्त्री के लिए जो (प्रथमम्) प्रथम (ऋतम्) सत्य (अवोचम्) उपदेश करूं और कहूं (तत्) उसको (दिवे) उत्तम दिव्यवाले के लिए भी उपदेश करूं, कहूं जैसे (अभीके) कामना किये हुए व्यवहार में वर्त्तमान (अवद्यात्) निन्दा योग्य (दुरितात्) दुष्ट आचरण से उक्त दोनों (पाताम्) रक्षा करें वैसे (पिता) पिता (च) और (माता) माता (अवोभिः) रक्षा आदि व्यवहारों से मेरी (रक्षताम्) रक्षा करें ॥१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । उपदेश करनेवाले को उपदेश सुनने योग्यो के प्रति ऐसा कहना चाहिए कि जैसा प्रिय लोकहितकारी वचन मुझ से कहा जावे वैसे आप लोगों को भी कहना चाहिए जैसे माता-पिता अपने सन्तानो की सेवा करते हैं वैसे ये सन्तानों को भी सदा सेवने योग्य हैं ॥१०॥

अब चलते हुए विषय में सत्यमात्र के उपदेश विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोपब्रुवे वाम् ।
भूतं देवानामवमे अवोभिर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥११॥

पदार्थ—हे (द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी के समान वर्त्तमान (मातः, पितः) माता-पिताओ ! (देवानाम्) विद्वानों के (अवमे) रक्षादि व्यवहार में (भूतम्) उत्पन्न हुए (यत्) जिस व्यवहार से (इह) यहाँ (वाम्) तुम्हारे (उपब्रुवे) समीप कहता हूं (तत्) सो (इदम्) यह (सत्यम्) सत्य (अस्तु) हो जिससे हम तुम्हारी (अवोभिः) पालनाओं से (इषम्) इच्छासिद्धि (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवन को (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ ११ ॥

भावार्थ—माता-पिता जब सन्तानों के प्रति ऐसा उपदेश करें कि जो हमारे धर्मयुक्त कर्म हैं वे ही तुमको सेवन करने चाहिएँ और नहीं तथा सन्तान पिता-माता आदि अपने पालनेवालों से ऐसे कहें कि जो हमारे सत्य आचरण हैं वे ही तुमको आचरण करने चाहिएँ और उनसे विपरीत नहीं ॥११॥

इस सूक्त में द्यावापृथिवी के दृष्टान्त से उत्पन्न होने योग्य और उत्पादक के कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिए ॥

यह एक सौ पचासीवां सूक्त और तीसरा वर्ग समाप्त हुआ ।

卐

आ न इत्येकादशर्चस्य षडशीत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषि. । विश्वेदेवा देवता: । १, ८, ९ त्रिष्टुप्, २, ४, निचृत् त्रिष्टुप्; ११ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३, ५, ७ भुरिक् पङ्क्ति, ६ पङ्क्ति , १० स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचावाले एकसौ छयासी सूक्त का आरम्भ है इसके आरम्भ से विद्वानों का विषय कहा है—

आ न इळाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु ।
अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जैसे (विश्वानरः) सब प्राणियों को पहुँचानेवाला अर्थात् अपने-अपने शुभाऽशुभ कर्मों के परिणाम करनेवाला (देवः) देदीप्यमान अर्थात् (सविता) सूर्य के समान आप प्रकाशमान ईश्वर (सुशस्ति) सुन्दर प्रशंसाओं से (अभिपित्वे) सब ओर से पाने योग्य (विदथे) विज्ञानमय व्यवहार में (विश्वम्) समग्र (जगत्) जगत् को प्राप्त है वैसे (इळाभिः) अन्नादि पदार्थ वाणियों के साथ (नः) हम लोगों को (आ, एतु) प्राप्त होवें हे (युवानः) यौवनावस्था को प्राप्त तरुणजनो ! (यथा) जैसे तुम (मनीषा) उत्तम बुद्धि से इस व्यवहार में (मत्सथ) आनन्दित होवो वैसे (नः) हमको (अपि) भी आनन्दित कीजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे परमात्मा पक्षपात को छोड़के सबका न्याय और सभो में समान प्रीति करता है वैसे विद्वानों को भी होना चाहिए जैसा युवावस्थावाले पुरुष अपने समान मन को प्यारी युवती स्त्रियों के साथ विवाह कर सुखयुक्त होते हैं वैसे विद्वान् जन विद्यार्थियों को विद्वान् कर प्रसन्न होते हैं ॥ १ ॥

आ नो विश्व आस्क्रा गमन्तु देवा मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ।
भुवन्यथा नो विश्वे वृधासः करन्त्सुषाहा विथुरं न शवः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (मित्रः) प्राण के समान वर्त्तमान (अर्य्यमा) न्यायकारी (वरुण) अति श्रेष्ठ (सजोषाः) समान प्रीति का सेवन रखनेवाला और (आस्क्राः) शत्रुबल को पादाक्रान्त करने, पाद तले दबानेवाले (विश्वे) समस्त (देवाः) विद्वान् जन (नः) हम लोगों को (आ, गमन्तु) सब ओर से प्राप्त होवें कि (यथा) जैसे (विश्वे) समस्त वे विद्वान् (नः) हमारा (वृधासः) सुख बढ़ानेवाले (भुवन्) होवें और (सुषाहा) सुन्दर जिसका सहन, क्षमा, शान्तिपन वह जन (विथुरम्) व्यथा पीड़ा देते हुए पदार्थ के (न) समान तीव्र (शवः) बल (करन्) करें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जिस मार्ग से विद्वान् जन चलें उसी से सर्व लोग चल जैसे आप्त शास्त्रज्ञ विद्वान् जन औरो के सुख-दुःखों को अपने तुल्य जानते हैं वैसे ही सबको होना चाहिए ॥ २ ॥

प्रेष्ठं वो अतिथिं गृणीषेऽग्निं शस्तिभिस्तुर्वणिः सजोषाः ।
असद्यथा नो वरुणः सुकीर्तिरिषश्च पर्षदरिगूर्तः सूरिः ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (तुर्वणिः) शीघ्र जाने और (सजोषाः) समान प्रीति रखनेवाले आप (शस्तिभिः) प्रशंसाओ से (अग्निम्) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्या से प्रकाशित (प्रेष्ठम्) अति प्रिय (अतिथिम्) अतिथिवद्वर्त्तमान विद्वान् की (गृणीषे) प्रशंसा करते हो वा (यथा) जैसे (अरिगूर्तः) शत्रुओं में उद्यम करने और (सुकीर्त्ति) पुण्य प्रशंसावाला (वरुणः) उत्तम विद्वान् (नः) हम लोगों की (इषः) अन्नादि पदार्थ (च) और इच्छाओं को (पर्षत्) सींचे वा (सूरि) अतीव प्रवीण विद्वान् (असत्) हों वैसे (वः) तुम लोगों के प्रति वर्त्ते ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो गृहस्थजन प्रीति के साथ श्रेष्ठ, उत्तम शास्त्रज्ञ विद्वानो और अतिथि की सेवा करते तथा धर्मयुक्त व्यवहार मे उद्योगवान् होते वे यथार्थ विज्ञान को पाकर श्रीमान् होते हैं ॥ ३ ॥

अब विद्या को पाकर उद्योग करने के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

उप व एषे नमसा जिगीषोषासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
समाने अहन्विमिमानो अर्कं विषुरूपे पयसि सस्मिन्नूधन् ॥४॥

पदार्थ—(समाने) एकसे (अहन्) दिन मे (अर्कम्) सत्कार करने योग्य अन्न को (विमिमानः) विशेषता से बनानेवाला मैं (उषासानक्ता) दिन-रात्रि के समान वा (धेनुः) वाणी जो (सुदुघेव) सुन्दर कामना पूर्ण करनेवाली उसके समान (नमसा) अन्न आदि पदार्थ से (जिगीषा) जीतने की इच्छा जैसे हो वैसे (विषुरूपे) नाना प्रकार के रूपवाले (पयसि) जल और (सस्मिन्) समान (ऊधन्) दूध के निमित्त (वः) तुम लोगों के (उप, आ, ईषे) समीप सब ओर से प्राप्त होता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो रात्रि-दिवस के समान वर्त्तमान विद्या, अविद्या को जानकर सब समय में उद्योग कर धेनु के समान प्राणियों का उपकार कर दुष्टों को जीतते वे दूध में घी के तुल्य संसार में सारभूत होते हैं ॥ ४ ॥

उत नोऽहिर्बुध्न्यो॑ मर्यस्कः शिशुं न पिप्युषीव वेति सिन्धुः ।

येन नपातमपां जुनाम मनोजुवो वृषणो यं वहन्ति ॥५॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग (येन) जिससे (अपाम्) जलो के (नपातम्) पतन को न प्राप्त पदार्थ को (जुनाम) बाँधें वा (मनोजुवः) मन के तुल्य वेग जिन का वे बिजुली आदि (वृषणः) वृष्टि करानेवाले (यम्) जिसको (वहन्ति) प्राप्त होते हैं वह (बुध्न्यः) अन्तरिक्षस्थ (अहिः) व्याप्तिशील मेघ (पिप्युषीव) बढ़ाती हुई, वृद्धि देती, उन्नति करती हुई स्त्री (शिशुम्) बालक को (न) जैसे वैसे (नः) हम लोगों को (वेति) व्याप्त होता (उत) और (सिन्धुः) नदी (मयः) सुख को (कः) करती है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो मेघ न हो तो माता के तुल्य प्राणियो की पालना कौन करे ? जो सूर्य बिजुली और पवन न हो तो इस मेघ को कौन धारण करे ? ॥ ५ ॥

अब मेघ और सूर्य के दृष्टान्त से उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उत न ईं त्वष्टा गन्त्वच्छा स्मत्सूरिभिरभिपित्वे सजोषाः ।

आ वृत्रहेन्द्रश्चर्षणिप्रास्तुविष्टमो नरां न इह गम्याः ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (इह) यहाँ (वृत्रहा) मेघ का हननेवाला (चर्षणिप्राः) मनुष्यो को सुखो से पूर्ण करनेवाला (तुविष्टमः) अतीव बली (त्वष्टा) प्रकाशमान (इन्द्रः) सूर्य (ईम्) जल को वर्षाता है वैसे तुम (नराम्) सब मनुष्यों के बीच (नः) हम लोगो को (आ, गम्याः) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ (उत) और (स्मत्) प्रशसायुक्त (अभिपित्वे) सब ओर से पाने योग्य व्यवहार मे (सजोषाः) समान प्रीति रखनेवाले आप (सूरिभि) विद्वानों के साथ (नः) हम लोगों के प्रति (अच्छ, आ, गन्तु) अच्छे प्रकार आइए ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सूर्य के समान विद्या का प्रकाश कराते हैं और अपने आत्मा के तुल्य सब को मान सुखी करते हैं वे बलवान् होते है ॥ ६ ॥

फिर और दृष्टान्त से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

उत न ईं मतयोऽश्वयोगाः शिशुं न गावस्तरुणं रिहन्ति ।

तमीं गिरो जनयो न पत्नीः सुरभिष्टमं नरां नसन्त ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (अश्वयोगाः) अश्वयोग अर्थात् अश्वो का योग कराते हैं वे (मतयः) मनुष्य (तरुणम्) तरुण (शिशुम्) बछड़ों को (न) जैसे (गावः) गौएँ वैसे (नः) हम लोगो को (ईम्) सब ओर से (रिहन्ति) प्राप्त होते हैं जिस (नराम्) मनुष्यो के बीच (सुरभिष्टमम्) अतिशय करके सुगन्धित सुन्दर कीर्तिमान को (जनयः) उत्पत्ति करानेवाले जन (पत्नी) अपनी पत्नियो को जैसे (न) वैसे (नसन्त) प्राप्त होवें वह (ईम्) सब ओर से (गिरः) वाणियो को प्राप्त होता है (तम्) उसको (उत) ही हम लोग सेवें ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे घुड़चढ़ा शीघ्र एकस्थान से दूसरे स्थान को वा जैसे गौएँ बछड़ों को वा स्त्रीव्रत जन अपनी-अपनी पत्नियो को प्राप्त होते है वैसे विद्वान् जन विद्या और श्रेष्ठ विद्वानो की वाणियो को प्राप्त होते है ॥ ७ ॥

अब पवन आदि के दृष्टान्त से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

उत न ईं मरुतो वृद्धसेनाः स्मद्रोदसी समनसः सदन्तु ।

पृषदश्वासोऽवनयो न रथा रिशादसो मित्रयुजो न देवाः ॥८॥

पदार्थ—(मरुत) पवन (ईम्) जल को जैसे वैसे (वृद्धसेनाः) बढ़ी हुई प्रौढ, तरुण, प्रचण्ड बल-वेगवाली जिनकी सेना वे (नः) हम लोगो को (सदन्तु) प्राप्त होवें (उत) और (समनसः) समान जिनका मन वे परोपकारी विद्वान् (स्मत्) हो (रोदसी) आकाश और पृथिवी को प्राप्त हो (पृषदश्वासः) पुष्ट जिन के घोड़ा वे विद्वान् जन वा (अवनयः) भूमि (रथा) रमणीय यानो के (न) समान (रिशादस) रिसहा शत्रुओ को नाश कराते और (मित्रयुज) मित्रो के साथ संयोग रखते उन (देवाः) विद्वानो के (न) समान होते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—जिन की वीर सेना जो समान मति रखनेवाले बड़े-बड़े रथादि यान जिन के तीर पृथिवी के समान क्षमाशील, मित्रप्रिय विद्वान् जन सबका प्रिय आचरण करते हैं वे प्रसन्न होते हैं ॥ ८ ॥

फिर विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

प्र नु यदेषां महिना चिकित्रे प्र युञ्जते प्रयुजस्ते सुवृक्ति ।

अध यदेषां सुदिने न शरुर्विश्वमेरिणं प्रुषायन्त सेनाः ॥९॥

पदार्थ—(यत्) जो (एषाम्) इन विद्वानो के (महिम्ना) महिमा से (प्र, चिकित्रे) उत्तमता से विशेष ज्ञानवान् विद्वान् के लिए (प्रयुजः) उत्तमता से योग करते उनको (नु) शीघ्र (प्रयुञ्जते) अच्छे प्रकार युक्त करते हैं (अध) इसके अनन्तर (यत्) जो जन (एषाम्) इन अच्छे योग करनेवालों के (सुदिने) उत्तम समय में (विश्वम्) समस्त (इरिणम्) कम्पायमान जगत् को (शरुः) मारनेवाला वीरजन (सेनाः) सेनाओ को जैसे (न) वैसे (आ, प्रुषायन्त) सेवन करें (ते) वे (सुवृक्ति) सुन्दर गमन जिस में हो उस उत्तम सुख वा मार्ग को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो राजजन पूरी विद्यावाले अध्यापको को विद्या-प्रचार के लिए प्रवृत्त करते हैं वे महिमा—बड़ाई को प्राप्त होते हैं जो किये को जाननेवाले कुलीन शूरवीरो की सेनाओ को पुष्ट करते वे सदा विजय को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

अब अध्यापक और उपदेशकों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्रो अश्विनाववसे कृणुध्वं प्र पूषणं स्वतवसो हि सन्ति ।

अद्वेषो विष्णुर्वात ऋभुक्षा अच्छा सुम्नाय ववृतीय देवान् ॥१०॥

पदार्थ—हे राजा प्रजाजनो ! तुम जो (हि) ही (स्वतवसः) अपना बल रखनेवाले (अद्वेष) निर्वैर विद्वान् जन (सन्ति) हैं उन को जो (अश्विनौ) विद्याव्याप्त अध्यापक और उपदेशक मुख्य परीक्षक है वे विद्या की (अवसे) रक्षा, पढ़ाना, विचारना, उपदेश, करना इत्यादि के लिए (प्र, कृणुध्वम्) अच्छे प्रकार नियत करें और जैसे (वातः) पवन के समान (विष्णुः) गुण व्याप्तिशील (ऋभुक्षा) मेधावी मैं (सुम्नाय) सुख के लिए (देवान्) विद्वानो को (अच्छ, ववृतीय) अच्छा वर्त्ताऊँ वैसे तुम (पूषणम्) पुष्टि करनेवाले को (प्रो) उत्तमता से नियत करो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो रागद्वेषरहित विद्या-प्रचार के प्रिय पूरे शारीरिक, आत्मिक बलवाले धार्मिक विद्वान् हैं उन को सब लोग विद्याप्रचार के लिए सस्थापन करें जिस से सुख बढ़े ॥ १० ॥

इयं सा वो अस्मे दीधितिर्यजत्रा अपिप्राणी च सदनी च भूयाः ।

नि या देवेषु यतते वसूयुर्विद्यामेष वृजनं जीरदानुम् ॥११॥५॥

पदार्थ—हे (यजत्रा) विद्वानो के पूजनेवालो ! (या) जो (वसूयुः) धनो को चाहनेवाली अर्थात् जिससे धनादि उत्तम पदार्थ सिद्ध होते हैं उस विद्या की उत्तम दीप्ति, कान्ति (देवेषु) विद्वानो मे (नि, यतते) निरन्तर यत्न करती है कार्यकारिणी होती है (सा, इयम्) सो यह (वः) तुम्हारी (दीधितिः) उक्त कान्ति (अस्मे) हमारे लिए (अपिप्राणी) निश्चल प्राण बल की देनेवाली (च) और (सदनी) दुःख विनाशने से सुख देनेवाली (च) भी (भूयाः) हो जिससे हम लोग (इषम्) इच्छासिद्धि वा अन्नादि पदार्थ (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवन को (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ ११ ॥

भावार्थ—विद्या ही मनुष्यो को सुख देनेवाली है जिसने विद्या धन न पाया वह भीतर से सदा दरिद्र-सा वर्त्तमान रहता है ॥ ११ ॥

इस सूक्त मे विद्वानो के गुणो का वर्णन होने से इस के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एकसौ छयासीवां सूक्त और पांचवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

पितुमित्यस्यैकादशर्चस्य सप्ताशीत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः ।
ओषधयो देवता । १ उष्णिक्, ६, ७ भुरिगुष्णिक् छन्द । ऋषभ स्वर ।
२, ८ निचृद् गायत्री, ४ विराट् गायत्री, ९ । १० गायत्री च
छन्द । षड्ज स्वर । ३, ५ निचृदनुष्टुप्, ११ स्वराडनुष्टुप्
छन्दः । गान्धार स्वर ॥

अब ग्यारह ऋचावाले एक सौ सतासी सूक्त का आरम्भ है उस के आरम्भ मे अन्न के गुणों को कहते हैं—

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् ।

यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥१॥

पदार्थ—(यस्य) जिस का (त्रितः) मन, वचन, कर्म से (वि, ओजसा) विविध प्रकार के पराक्रम से (विपर्वम्) विविध प्रकार के अङ्ग और उपाङ्गों से पूर्ण (वृत्रम्) स्वीकार करने योग्य धन को (अर्दयत्) प्राप्त करे उस के लिए (नु) शीघ्र (पितुम्) अन्न (महः) बहुत (धर्माणम्) धर्म करनेवाले और (तविषीम्) बल की मैं (स्तोषम्) प्रशंसा करूं ॥ १ ॥

भावार्थ—जो बहुत अन्न को ले, अच्छा संस्कार कर और उसके गुणों को जान और यथायोग्य व्यञ्जनादि पदार्थों के साथ मिलाके खाते हैं वे धर्म के आचरण करनेवाले होते हुए शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होकर पुरुषार्थ से लक्ष्मी की उन्नति कर सकते हैं ॥ १ ॥

स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा ववृमहे ।

अस्माकमविता भव ॥ २ ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप के रचे (स्वादो) स्वादु (पितो) पीने योग्य जल तथा (मधो) मधुर (पितो) पालना करनेवाले (त्वा) उस अन्न को (वयम्) हम लोग (ववृमहे) स्वीकार करते हैं इससे आप उस अन्नपान के दान से (अस्माकम्) हमारी (अविता) रक्षा करनेवाले (भव) हूजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को मधुरादि रस के योग से स्वादिष्ठ अन्न और व्यञ्जन को आयुर्वेद की रीति से बनाकर सदा वह भोजन करना चाहिए जो रोग को नष्ट करने से और आयु बढ़ाने से रक्षा करनेवाला हो ॥ २ ॥

उप नः पितवा चर शिवः शिवाभिरूतिभिः ।

मयोभुरद्विषेण्यः सखा सुशेवो अद्वयाः ॥३॥

पदार्थ—हे (पितो) अन्नव्यापि परमात्मन् ! (मयोभु.) सुख की भावना करानेवाले (अद्विषेण्यः) निर्वैर (सुशेव) सुन्दर सुखयुक्त (अद्वया.) जिस मे द्वन्द्व भाव नहीं (सखा) जो मित्र आप (शिवाभिः) सुखकारिणी (ऊतिभिः) रक्षा आदि क्रियाओ के साथ (नः) हम लोगों के लिए (शिवः) सुखकारी (उप, आ, चर) समीप अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—अन्नादि पदार्थव्यापी परमेश्वर आरोग्य देनेवाली रक्षारूप क्रियाओ से सब जीवों को मित्रभाव से अच्छे प्रकार पालता हुआ सब का मित्र हुआ ही वर्त्त रहा है ॥ ३ ॥

तव त्ये पितो रसा रजांस्यनु विष्ठिताः ।

दिवि वाताइव श्रिताः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (पितो) अन्नव्यापिन् परमात्मन् (तव) उस अन्न के बीच जो (रसाः) स्वादु खट्टा, मीठा, तीखा, चरपरा आदि छः प्रकार के रस (दिवि) अन्तरिक्ष मे (वाताइव) पवनों के समान (श्रिताः) आश्रय को प्राप्त हो रहे हैं (त्ये) वे (रजांसि) लोकलोकान्तरों को (अनु, विष्ठिताः) पीछे प्रविष्ट होते हैं । ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस संसार में परमात्मा की व्यवस्था से लोकलोकान्तरों में भूमि जल और पवन के अनुकूल रसादि पदार्थ होते हैं किन्तु सब पदार्थ सब जगह प्राप्त नहीं हो सकते ॥ ४ ॥

तव त्ये पितो ददतस्तव स्वादिष्ठ ते पितो ।

प्र स्वाद्मानो रसानां तुविग्रीवाइवेरते ॥५॥६॥

पदार्थ—हे (पितो) अन्नव्यापि पालक परमात्मन् ! (ददत.) देते हुए (तव) आपके जो अन्न वा (त्ये) वे पूर्वोक्त रस हैं । हे (स्वादिष्ठ) अतीव स्वादुयुक्त (पितो) पालक अन्नव्यापक परमात्मन् (तव) आपके उस अन्न के सहित (ते) वे रस (रसानाम्) मधुरादि रसों के बीच (स्वाद्मानः) अतीव स्वादु (तुविग्रीवाइव) जिनका प्रबल गला उन जीवो के समान (प्रेरते) प्रेरणा देते अर्थात् जीवो को प्रीति उत्पन्न कराते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—सब पदार्थों मे व्याप्त परमात्मा ही सबके लिए अन्नादि पदार्थों को अच्छे प्रकार देता है और उसके किये हुए ही पदार्थ अपने गुणो के अनुकूल कोई अतीव स्वादु और कोई अतीव स्वादुतर हैं यह सबको जानना चाहिए ॥ ५ ॥

त्वे पितो महानां देवानां मनो हितम् ।

अकारि चारु केतुना तवाहिमवसावधीत् ॥६॥

पदार्थ—हे (पितो) अन्नव्यापि पालना करनेवाले ईश्वर ! (तव) जिस आपकी (अवसा) रक्षा आदि से सूर्य (अहिम्) मेघ को (अवधीत्) हन्ता है उन आपके (केतुना) विज्ञान से जो (चारु) श्रेष्ठतर (अकारि) किया जाता है वह (महानाम्) महात्मा पूज्य (देवानाम्) विद्वानों का (मनः) मन (त्वे) आप में (हितम्) धरा है वा प्रसन्न है ॥ ६ ॥

भावार्थ—यदि अन्न भोजन न किया जाए तो किसी का मन आनन्दित न हो क्योंकि मन अन्नमय है इस कारण जिसकी उत्पत्ति के लिए मेघ निमित्त है उस अन्न को सुन्दरता से बनाकर भोजन करना चाहिए ॥ ६ ॥

यददो पितो अजगन्विवस्व पर्वतानाम् ।

अत्रा चिन्नो मधो पितोऽरं भक्षाय गम्याः ॥७॥

पदार्थ—हे (पितो) अन्नव्यापिन् पालकेश्वर ! (यत्) जिस (अदः) प्रत्यक्ष अन्न को विद्वान् जन (अजगन्) प्राप्त होते हैं उसमें (विवस्व) व्याप्तिमान् हूजिए । हे (मधो) मधुर (पितो) पालकान्नदाता ईश्वर ! (अत्र, चित्) इन (पर्वतानाम्) मेघों के बीच भी जो कि अन्न के निमित्त कहे हैं (नः) हमारे (भक्षाय) भक्षण करने के लिए अन्न को (अरम्) परिपूर्ण (गम्याः) प्राप्त कराइए ॥ ७ ॥

भावार्थ—सब पदार्थों में व्याप्त परमेश्वर को भक्षण आदि समय में स्मरण करें जिस कारण जिस परमात्मा की कृपा से अन्नादि पदार्थ विविध प्रकार के पूर्वादि दिशा देश, और काल के अनुकूल वर्त्तमान हैं उस परमात्मा ही का संस्मरण कर सब पदार्थ ग्रहण करने चाहिएँ ॥ ७ ॥

यदपामोषधीनां परिंशमारिशामहे । वातापे पीव इद्भव ॥८॥

पदार्थ—हे (वातापे) पवन के समान सर्वपदार्थ व्यापक परमेश्वर ! हम लोग (अपाम्) जलों और (ओषधीनाम्) सोमादि ओषधियों के (यत्) जिस (परिंशम्) सब ओर से प्राप्त होने वाले अंश को (आरिशामहे) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं उससे आप (पीवः) उत्तम वृद्धि करनेवाले (इत्) ही (भव) हूजिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—जल, अन्न और घृत के संस्कार से प्रशंसित अन्न और व्यञ्जन इलायची, मिरच वा घृत दूध पदार्थों को उत्तम बनाकर उन पदार्थों के भोजन करने वाले जन युक्त आहार और विहार से पुष्ट होवें ॥ ८ ॥

यत्ते सोम गवाशिरो यवाशिरो भजामहे । वातापे पीव इद्भव ॥९॥

पदार्थ—हे (सोम) यवादि ओषधिरसव्यापि ईश्वर! (गवाशिरः) गौ के रस से बनाये वा (यवाशिर) यवादि ओषधियो के संयोग से बनाये हुए (ते) उस अन्न के (यत्) जिस सेवनीय अंश को हम लोग (भजामहे) सेवते हैं उससे, हे (वातापे) पवन के समान सब पदार्थों मे व्यापक परमेश्वर ! (पीवः) उत्तम वृद्धि करनेवाले (इत्) ही (भव) हूजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—जैसे मनुष्य अन्नादि पदार्थों मे उन-उन की पाकक्रिया के अनुकूल सब संस्कारो को करते हैं वैसे रसो को भी रसोचित संस्कारों से सिद्ध करें ॥ ९ ॥

करम्भ ओषधे भव पीवो वृक्क उदारथिः ।

वातापे पीव इद्भव ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (ओषधे) ओषधिव्यापि परमेश्वर ! आप (करम्भः) करने वाले (उदारथिः) जाठराग्नि के प्रदीपक (वृक्क.) रोगादिकों के वर्जन करानेवाले और (पीवः) उत्तम वृद्धि करानेवाले (भव) हूजिए । तथा हे (वातापे) पवन के समान सर्वव्यापक परमात्मन् आप (पीवः) उत्तम वृद्धि देनेवाले (इत्) ही (भव) हूजिए ॥ १० ॥

भावार्थ—जैसे संयमी पुरुष शुभाचार से शरीर और आत्मा को बलयुक्त करता है वैसे संयम से सब पदार्थों को सब वर्त्तों ॥ १० ॥

तं त्वा वयं पितो वचोभिर्गावो न हव्या सुषूदिम ।

देवेभ्यस्त्वा सधमादमस्मभ्यं त्वा सधमादम् ॥११॥७॥

पदार्थ—हे (पितो) अन्नव्यापि पालकेश्वर ! (तम्) उन पूर्वोक्त (त्वा) आपका आश्रय लेकर (वचोभिः) स्तुति वाक्यो, प्रशंसाओ से (गावः) दूध देती हुई गौएँ (न) जैसे दूध, घी, दही आदि पदार्थों को देवें वैसे उस अन्न से (वयम्) हम जैसे (हव्या) भोजन करने योग्य पदार्थों को (सुषूदिम) निकालें तथा हम (देवेभ्यः) विद्वानो के लिए (सधमादम्) साथ आनन्द देनेवाले (त्वा) आप का हम तथा (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (सधमादम्) साथ आनन्द देनेवाले (त्वा) आपका विद्वान् जन आश्रय करें ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे गौएँ तृण, घास आदि खाकर रत्न दूध देती हैं वैसे अन्नादि पदार्थों से श्रेष्ठतर भाग निकालना चाहिए । जो अपने संगियो का अन्नादि पदार्थों से सत्कार करते और परस्पर एक दूसरे के आनन्द की इच्छा से परमात्मा का आश्रय लेते हैं वे प्रशंसित होते हैं ॥ ११ ॥

इस सूक्त मे अन्न के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति समझनी चाहिए—

यह एक सौ सतासीवां सूक्त और सातवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

समिद्ध इत्येकादशर्चस्याष्टाशीत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः । अग्नियो देवता । १, ३, ५—७, १० निचृद्गायत्री, २,४, ८, ९, ११ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचावाले एक सौ अट्ठासी सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि के दृष्टान्त से राजगुणों का उपदेश करते हैं—

समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः सहस्रजित् ।

दूतो हव्या कविर्वह ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (सहस्रजित्) सहस्रों शत्रुओं को जीतनेवाले राजन् (समिद्धः) जलती हुई प्रकाशयुक्त अग्नि के समान प्रकाशमान (देवैः) विजय चाहते हुए वीरों के साथ (देवः) विजय चाहनेवाले और (दूतः) शत्रुओं के चित्तों को सन्ताप देते हुए (कविः) प्रबल प्रज्ञायुक्त आप (अद्य) आज (राजसि) अधिकतर शोभायमान हो रहे हैं सो आप (हव्या) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को (वह) प्राप्त कीजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो अग्नि के समान दुष्टों को सब ओर से कष्ट देता, सज्जनों के सङ्ग से शत्रुओं को जीतता, विद्वानों के सङ्ग से बुद्धिमान् होता हुआ प्राप्त होने योग्य वस्तुओं को प्राप्त होता वह राज्य करने को योग्य है ॥ १ ॥

अब अध्यापक के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

तनूनपादृतं यते मध्वा यज्ञः समज्यते । दधत्सहस्रिणीरिषः ॥२॥

पदार्थ—जो (सहस्रिणीः) सहस्रों (इष) अन्नादि पदार्थों को (दधत्) धारण करता हुआ (तनूनपात्) शरीरों को न गिराने न नाश करनेहारा अर्थात् पालनेवाला (यज्ञः) पदार्थों मे संयुक्त करने योग्य अग्नि, (ऋतम्) यज्ञ, सत्य व्यवहार और अन्नादि पदार्थ को (मध्वा) मधुरता आदि के साथ (यते) प्राप्त होते हुए जन के लिए (समञ्जते) अच्छे प्रकार प्रकट होता है उसका सब सिद्ध करें ॥ २ ॥

भावार्थ—जिस कर्म से अतुल धन-धान्य प्राप्त होते हैं उसका अनुष्ठान, आरम्भ मनुष्य निरन्तर करें ॥ २ ॥

आजुह्वानो न ईड्यो देवाँ आ वक्षि यज्ञियान्।

अग्ने सहस्रसा असि ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वन् ! जिस कारण हम लोगो से जिस प्रकार (आजुह्वानः) होम को प्राप्त (ईड्यः) कूदने योग्य (सहस्रसा·) सहस्रों पदार्थों का विभाग करनेवाला अग्नि हो वैसे आमन्त्रण बुलाये को प्राप्त स्तुति प्रशंसा के योग्य सहस्रो पदार्थों को देनेवाले आप (असि) है इस से (नः) हम लोगो के (यज्ञियान्) यज्ञ सिद्ध करानेवाले (देवान्) विद्वान् वा दिव्य गुणो को (आ, वक्षि) अच्छे प्रकार प्राप्त कराते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे गुण, कर्म स्वभाव से अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ अग्नि बहुत कार्यों को सिद्ध करता है वैसे सेवा किया हुआ आप्त विद्वान् समस्त शुभ गुणो और कार्यसिद्धियो को प्राप्त कराता है ॥ ३ ॥

प्राचीनं बर्हिरोजसा सहस्रवीरमस्तृणन् । यत्रादित्या विराजथ ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्र) जिस सनातन कारण मे (आदित्या·) सूर्य्यादि लोक (ओजसा) पराक्रम वा प्रताप से (सहस्रवीरम्) सहस्रों जिसमे वीर उस (प्राचीनम्) पुरातन (बर्हि) अच्छे प्रकार बढ़े हुए विज्ञान को (अस्तृणन्) ढांपते है वहां तुम लोग (विराजथ) विशेषता से प्रकाशित होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिस सनातन कारण मे सूर्य्यादि लोक लोकान्तर प्रकाशित होते है वहां तुम हम प्रकाशित होते हैं ॥ ४ ॥

विराट् सम्राड्विभ्वीः प्रभ्वीर्बह्वीश्च भूयसीश्च याः ।

दुरो घृतान्यक्षरन ॥ ५ ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (विराट्) जो विविध प्रकार के गुणो और कर्मों मे प्रकाशमान वा (सम्राट्) जो चक्रवर्ती के समान विद्याओ मे सुन्दरता से प्रकाशमान सो आप (याः) जो (विभ्वीः) व्याप्त होनेवाली (प्रभ्वी·) समर्थ (बह्वी·) बहुत अनेक (भूयसीः, च) और अधिक से अधिक सूक्ष्म मात्रा (दुर) द्वारे अर्थात् सर्व कार्यमुखो को और (घृतानि, च) जलो को (अक्षरन्) प्राप्त होती हैं उनको जानो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सब जगत् की बहुत तत्त्वयुक्त सत्त्व रजस्तमो गुण वाली सूक्ष्ममात्रा नित्यस्वरूप मे सदा वर्त्तमान हैं उनको लेकर पृथिवी पर्यन्त पदार्थों को जान सब कार्य सिद्ध करने चाहिएं ॥ ५ ॥

सुरुक्मे हि सुपेशसाधि श्रिया विराजतः । उषासावेह सीदताम् ॥६॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक लोगो ! जैसे (इह) इस कार्यकारण विद्या मे (सुरुक्मे) सुन्दर रमणीय (सुपेशसा) प्रशसित स्वरूप कार्य्यकारण (श्रिया) शोभा से (अधि, विराजत) देदीप्यमान होते हैं। (हि) उन्ही को जानकर (उषासौ) रात्रि, दिन के समान आप लोग परोपकार मे (आ, सीदताम्) अच्छे प्रकार स्थिर होओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो इस सृष्टि मे विद्या और अच्छी शिक्षा को पाकर कार्य्यज्ञान पूर्वक कारणज्ञान को प्राप्त होते हैं वे सूर्य चन्द्रमा के समान परोपकार मे रमते हैं ॥ ६ ॥

प्रथमा हि सुवाचसा होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (हि) जिस कारण (होतारा) ग्रहणकर्त्ता (दैव्या) दिव्य बोधो मे कुशल (प्रथमा) प्रथम विद्या बल को बढ़ानेवाले (सुवाचसा) सुन्दर जिनका वचन (कवी) जो सकल विद्या के वेत्ता अध्यापकोपदेशक जन हैं वे (न) हमारे (इमम्) इस प्रत्यक्षता से वर्त्तमान (यज्ञम्) धनादि पदार्थों के मेल कराने वा व्यवहार का (यक्षताम्) सङ्ग करावें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस ससार मे जो जिनका उपकार करते है वे उनको सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ ७ ॥

अब स्त्रीपुरुष के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

भारतीळे सरस्वति या वः सर्वा उपब्रुवे । ता नश्चोदयत श्रिये ॥८॥

पदार्थ—हे (भारति) समस्त विद्या के धारण करनेवाली वा (इळे) हे प्रशसावती वा (सरस्वति) हे विज्ञान और उत्तम गतिवाली ! (याः) जो (वः) तुम (सर्वाः) सबको समीप में (उपब्रुवे) उपयोग करनेवाले वचन का उपदेश करूं (ताः) वे तुम (न) हम लोगों को (श्रिये) लक्ष्मी प्राप्त होने के लिए (चोदयत) प्रेरणा देओ ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो प्रशंसित सौन्दर्य उत्तम लक्षणो से युक्त देवी व श्रेष्ठतर शास्त्रविज्ञान मे रमनेवाली कन्या हो वे अपने पाणिग्रहण करनेवाले पतियों को पाकर धर्म से धनादि पदार्थों की उन्नति करें ॥ ८ ॥

अब ईश्वर विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशून्विश्वान्त्समानजे ।

तेषां नः स्फातिमा यज ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (त्वष्टा) सब जगत् का निर्माण करनेवाला (प्रभु.) समर्थ ईश्वर (हि) ही (विश्वान्) समस्त (पशून्) गवादि पशुओं और (रूपाणि) समस्त विविध प्रकार के स्थूल वस्तुओं को (समानजे) अच्छे प्रकार प्रकट करता और (तेषाम्) उनकी (स्फातिम्) वृद्धि को प्रकट करता है वैसे आप (नः) हमारी वृद्धि को (आ, यज) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिए ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे जगदीश्वर ने इन्द्रियों से परे जो अति सूक्ष्म कारण है उससे चित्र-विचित्र, सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी, ओषधि और मनुष्य के शरीरावयवादि वस्तु बनाई हैं वैसे इस सृष्टि के गुण, कर्म और स्वभाव क्रम से अनेक व्यवहार सिद्ध करनेवाली वस्तुएं बनानी चाहिएं ॥ ९ ॥

अब देनेवाले के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

उप त्मन्या वनस्पते पाथो देवेभ्यः सृज ।

अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (वनस्पते) वनो के पालनेवाले ! (त्मन्या) अपने बीच उत्तम क्रिया से जैसे (अग्नि) अग्नि (देवेभ्य) विद्वान् वा दिव्य गुणो के लिए (हव्यानि) भोजन करने योग्य पदार्थों को (सिष्वदत्) स्वादिष्ठ करता है वैसे आप विद्वान् वा दिव्य गुणो के लिए (पाथः) अन्न को (उप, सृज) उनके लिए दओ ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है। जो वनादिकों की रक्षा से घास-फूस और ओषधियो को बढ़ाते हैं वे सबका उपकार करने योग्य होते हैं ॥ १० ॥

पुरोगा अग्निर्देवानां गायत्रेण समज्यते ।

स्वाहाकृतीषु रोचते ॥ ११ ॥ ९ ॥

पदार्थ—जो परोपकारी जन है वे जैसे (देवानाम्) दिव्य गुण वा पृथिव्यादिको के बीच (पुरोगा) अग्रगामी (अग्नि) अग्नि (गायत्रेण) गायत्री छन्द से कहे हुए बोध से (स्वाहाकृतीषु) स्वाहा शब्द से जिन व्यवहारो मे क्रियाएँ होती उनमे (समज्यते) प्रकट किया जाता और वह (रोचते) प्रदीप्त होता है वैसे अग्रगामी होकर सर्वत्र सत्कार को प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यदि मनुष्य अग्नि प्रधान दिव्य पदार्थों को व्यवहारसिद्धि के लिए सयुक्त करें तो वे ऐश्वर्ययुक्त माननीय होते हैं यह समझना चाहिए ॥ ११ ॥

इस सूक्त मे अग्नि के दृष्टान्त से राजा, अध्यापक, उपदेशक, स्त्रीपुरुष, ईश्वर और देनेवाले के गुणो का वर्णन होने से इसके अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह एक सौ अठासीवां सूक्त और नवमां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ इत्यष्टर्चस्य एकोननवत्युत्तरशततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषि । अग्निर्देवता । १, ४, ८ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत स्वरः । २ भुरिक्पङ्क्तिः, ३, ५, ६, स्वराट्पङ्क्तिः, ७ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब एक सौ नवासी सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम, द्वितीय मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश करते हैं—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥१॥

पदार्थ—हे (देव) मनोहर, आनन्द के देनेवाले (अग्ने) स्वप्रकाशस्वरूपेश्वर (विद्वान्) सकल शास्त्रवेत्ता ! आप (अस्मान्) हम मुमुक्षु अर्थात् मोक्ष चाहते हुए जनों को (राये) धनादि प्राप्ति के लिए (सुपथा) धर्मयुक्त सरल मार्ग से (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) उत्तम उत्तम ज्ञानों को (नय) प्राप्त कराइए (जुहुराणम्) खोटी चाल से उत्पन्न हुए (एन·) पाप को (अस्मत्) हम से (युयोधि) अलग करिए जिससे हम (ते) आपकी (भूयिष्ठाम्) अधिकतर (नम उक्तिम्) सत्कार के साथ स्तुति का (विधेम) विधान करें ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को धर्म तथा विज्ञानमार्ग की प्राप्ति और अधर्म की निवृत्ति के लिए परमेश्वर की अच्छे प्रकार प्रार्थना करनी चाहिए और सदा सुमार्ग से चलना चाहिए दुःखरूपी अधर्म मार्ग से अलग रहना चाहिए । जैसे विद्वान् लोग परमेश्वर में उत्तम अनुराग करते वैसे अन्य लोगों को भी करना चाहिए ॥ १ ॥

अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्त्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।

पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शं योः ॥२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) परमेश्वर ! (त्वम्) आप (स्वस्तिभिः) सुखों से (अस्मान्) हम लोगों को (विश्वा) समस्त (अति, दुर्गाणि) अत्यन्त दुर्ग व्यवहारों के (पारय) पार कीजिए जैसे (नव्यः) नवीन विद्वान् और (पूः) पुररूप (बहुला) बहुत पदार्थों को लेनेवाली (उर्वी) विस्तृत (पृथ्वी, च) भूमि भी है वैसे (नः) हमारे (तोकाय) अत्यन्त छोटे और (तनयाय) कुछ बड़े बालक के लिए (शं, योः) सुख को प्राप्त करानेवाले (भव) हूजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे परमेश्वर पुण्यात्मा जनों को दुष्ट आचार से अलग रखता और पृथिवी के समान पालना करता है वैसे विद्वान् जन सुन्दर शिक्षा से उत्तम कर्म करनेवालों को दुष्ट आचरण से अलग कर सुन्दर व्यवहार से रक्षा करता है ॥ २ ॥

अब ईश्वर के दृष्टान्त से विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमीवा अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः ।

पुनरस्मभ्यं सुवितायं देव क्षां विश्वेभिरमृतेभिर्यजत्र ॥३॥

पदार्थ—हे (यजत्र) सङ्ग करते हुए (देव) कामना करनेवाले (अग्ने) ईश्वर के समान विद्वान् वैद्यजन ! (त्वम्) आप जो (अनग्नित्राः) ऐसे हैं कि यदि उनके साथ ज्वर न विद्यमान हो तो अविद्यमान ज्वर से शरीर की रक्षा करनेवाले हैं वे (अमीवा) रोग (कृष्टीः) मनुष्यों को (अभ्यमन्त) सब ओर से रुग्ण करते, कष्ट देते हैं उनको (अस्मत्) हम लोगों से (युयोधि) अलग कर (पुनः) फिर (विश्वेभिः) समस्त (अमृतेभिः) अमृतरूप ओषधियों से (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए (सुविताय) ऐश्वर्य प्राप्त होने के लिए (क्षाम्) भूमि के राज्य को प्राप्त कीजिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ईश्वर वेदद्वारा अविद्यारूपी रोग से मनुष्यों को अलग करता है वैसे अच्छे वैद्य मनुष्यों को रोगों से निवृत्त कर अमृतरूपी ओषधियों से बढ़ाकर ऐश्वर्य की प्राप्ति कराते हैं ॥ ३ ॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

पाहि नो अग्ने पायुभिरजस्रैरुत प्रिये सदन आ शुशुक्वान् ।

मा ते भयं जरितारं यविष्ठ नूनं विदन्मापरं सहस्वः ॥४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्वन् ! (शुशुक्वान्) विद्या और विनय से प्रकाश को प्राप्त (अजस्रैः) निरन्तर (पायुभिः) रक्षा के उपायों से (प्रिये) मनोहर (सदने) स्थान (उत) वा शरीर में वा बाहर (नः) हम लोगों को (आ, पाहि) अच्छे प्रकार पालिए जिससे हे (यविष्ठ) अत्यन्त युवावस्थावाले (सहस्वः) सहनशील विद्वन् ! (ते) आपकी (जरितारम्) स्तुति करनेवाले को (भयम्) भय (मा) मत (विदत्) प्राप्त होवे (नूनम्) निश्चय कर (अपरम्) और को भय (मा) मत प्राप्त होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—वे ही प्रशंसनीय जन हैं जो निरन्तर प्राणियों की रक्षा करते हैं ॥ ४ ॥

अब शिक्षा देनेवाले के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

मा नो अग्नेऽव सृजो अघायाविष्यवे रिपवे दुच्छुनायै ।

मा दत्वते दशते मादते नो मा रीषते सहसावन्परा दाः ॥५॥१०॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! आप (नः) हम लोगों को (अघाय) पापी जन के लिए (अविष्यवे) वा जो धर्म को नहीं व्याप्त उस (रिपवे) शत्रुजन अथवा (दुच्छुनायै) दुष्ट चाल जिसकी उन के लिए (मा, अव, सृजः) मत मिलाइए । हे (सहसावन्) बहुत बल वा बहुत सहनशीलतायुक्त विद्वन् ! (दत्वते) दाँतोंवाले और (दशते) दाढ़ों से विदीर्ण करनेवाले के (मा) मत तथा (अदते) बिना दाँतोंवाले दुष्ट के लिए (मा) मत और (रिषते) हिंसा करनेवाले के लिए (नः) हम लोगों को (मा, परा, दाः) मत दूर कीजिए अर्थात् मत अलग कर उनको दीजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को विद्वान्, राजा, अध्यापक और उपदेशकों के प्रति ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए कि हम लोगों को दुष्ट स्वभाव और दुष्ट सङ्गवाले को मत पहुँचाओ किन्तु सदैव श्रेष्ठाचार, धर्ममार्ग और सत्सङ्गों में संयुक्त करो ॥ ५ ॥

वि घ त्वावाँ ऋतजात यंसद्गृणानो अग्ने तन्वे३ वरूथम् ।

विश्वाद्रिरिक्षोरुत वा निनित्सोरभिह्रुतामसि हि देव विष्पट् ॥६॥

पदार्थ—हे (ऋतजात) सत्य आचार में प्रसिद्धि पाये हुए (देव) विजय चाहनेवाले ! (अग्ने) बिजुली के तुल्य उज्ज्वल तापयुक्त (त्वावान्) तुम्हारे सदृश (गृणानः) स्तुति करता हुआ विद्वान् (तन्वे) शरीर के लिए (वरूथम्) स्वीकार करने के योग्य (घ) ही पदार्थ को (वि, यंसत्) देवे । जो (विष्पट्) व्याप्तिमानों को प्राप्त होते आप (विश्वात्) समस्त (रिरिक्षोः) हिंसा करना चाहते हुए (उत, वा) अथवा (निनित्सोः) निन्दा करना चाहते हुए से अलग देवें (हि) इसी से आप (अभिह्रुताम्) सब ओर से कुटिल आचरण करनेवालों को शिक्षा देनेवाले (असि) होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो गुण दोषों के जाननेवाले सत्याचरणवान् जन समस्त हिंसक, निन्दक और कुटिल जनों से अलग रहते हैं वे समस्त कल्याण को प्राप्त होते हैं ॥६॥

त्वं ताँ अग्न उभयान्वि विद्वान्वेषि प्रपित्वे मनुषो यजत्र ।

अभिपित्वे मनवे शास्यो भूर्मर्मृजेन्य उशिग्भिर्नाक्रः ॥७॥

पदार्थ—हे (यजत्र) सत्कार करने योग्य (अग्ने) दुष्टों को शिक्षा देनेवाले (विद्वान्) विद्वान् जन ! जो (त्वम्) आप (तान्) उन (उभयान्) दोनों प्रकार के कुटिल निन्दक वा हिंसक (मनुषः) मनुष्यों को (प्रपित्वे) उत्तमता से प्राप्त समय में (वि, वेषि) प्राप्त होते वह आप (अभिपित्वे) सब ओर से प्राप्त व्यवहार में (मनवे) विचारशील मनुष्य के लिए (शास्यः) शिक्षा करने योग्य (भूः) हूजिए और (उशिग्भिः) कामना करते हुए जनों से (मर्मृजेन्यः) अत्यन्त शोभा करने योग्य आप (नाक्रः) दुष्टों को उल्लङ्घते नहीं, छोड़ते नहीं अर्थात् उनकी दुष्टता को निवारण कर उन्हें शिक्षा देते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो विद्वान् जन जितना हो सके उतना हिंसक, क्रूर और निन्दक जनों को अपने बल से सब ओर से मीजमांज उनका बल नष्ट कर सत्य की कामना करनेवालों को हर्ष दिलाते हैं वे शिक्षा देनेवाले होकर शुद्ध होते हैं ॥ ७ ॥

अवोचाम निवचनान्यस्मिन्मानस्य सूनुः सहसाने अग्नौ ।

वयं सहस्रमृषिभिः सनेम विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (मानस्य) विज्ञानवान् जन का (सूनुः) सन्तान है उस के प्रति (अस्मिन्) इस (सहसाने) सहन करते हुए (अग्नौ) अग्नि के समान विद्वान् के निमित्त (निवचनानि) परीक्षा से निश्चित किये वचनों को जैसे (वयम्) हम लोग (अवोचाम) उपदेश करें वा (ऋषिभिः) वेदार्थ के जाननेवालों से (सहस्रम्) असङ्ख्य सुख का (सनेम) सेवन करें वा (इषम्) इच्छासिद्धि (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवन को (विद्याम) प्राप्त होवें वैसा तुम भी आचरण करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे आप्त, शान्त, उपदेश करनेवाले विद्वान् जन श्रोताजनों के लिए सत्य वस्तुओं का उपदेश दे सुखी करते हैं उन के साथ और विद्वान् होते हैं वैसे उपदेश दे दूसरे का श्रवण कर विद्यावृद्धि सब करें ॥ ८ ॥

इस सूक्त में परमेश्वर, विद्वान् और शिक्षा देनेवाले के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एक सौ नवासीवाँ सूक्त और ग्यारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अनर्वाणमित्यष्टर्चस्य नवत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः ।
बृहस्पतिर्देवता । १—३ निचृत् त्रिष्टुप्, ४, ८ त्रिष्टुप् छन्दः ।
५—७ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब एक सौ नब्बे सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से विद्वानों के गुण, कर्म, स्वभावों का वर्णन करते हैं—

अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वं बृहस्पतिं वर्धया नव्यमर्कैः ।

गाथान्यः सुरुचो यस्य देवा आशृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् गृहस्थ ! (देवाः) देनेवाले (मर्ताः) मनुष्य (यस्य) जिस (नवमानस्य) स्तुति करने योग्य (सुरुचः) सुन्दर धर्मयुक्त काम में प्रीति रखनेवाले (गाथान्यः) धर्मोपदेशों की प्राप्ति करने अर्थात् औरों के प्रति कहनेवाले सज्जन की प्रशंसा (आ, शृण्वन्ति) सब ओर से करते हैं उस (अनर्वाणम्) अनर्वा अर्थात् अश्व की सवारी न रखने किन्तु पैरों से देश-देश घूमनेवाले (वृषभम्) श्रेष्ठ (मन्द्रजिह्वम्) हर्ष करनेवाली जिह्वा जिस की उस (बृहस्पतिम्) अत्यन्त शास्त्रबोध की पालना करनेवाले (नव्यम्) नवीन विद्वानों की प्रतिष्ठा को प्राप्त अतिथि को (अर्कैः) अन्न, रोटी, दाल, भात आदि उत्तम-उत्तम पदार्थों से उस को (वर्धय) बढ़ाओ, उन्नति देओ, उसकी सेवा करो ॥१॥

भावार्थ—जो गृहस्थ प्रशंसा करनेवाले धार्मिक विद्वान् वा अतिथि, संन्यासी, अभ्यागत आदि सज्जनों की प्रशंसा सुनें उन्हें दूर से भी बुलाकर अच्छी प्रीति, अन्न, पान, वस्त्र और धनादिक पदार्थों से सत्कार कर उनसे संग कर विद्या की उन्नति से शरीर, आत्मा के बल को बढ़ा न्याय से सबको सुख के साथ संयोग करावें ॥१॥

तमृत्विया उप वाचः सचन्ते सर्गो न यो देवयतामसर्जि ।

बृहस्पतिः स ह्यञ्जो वरांसि विभ्वाभवत्समृते मातरिश्वा ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (मातरिश्वा) पवन के समान (ऋते) सत्य व्यवहार में (अञ्जः) सबको कामना करने योग्य (बृहस्पतिः) अनन्त वेदवाणी का पालनेवाला (विभ्वा) व्यापक परमात्मा से बनाया हुआ (समभवत्) अच्छे प्रकार हो और जो (वरांसि) उत्तम कर्मों का करनेवाला हो (सः, हि) (वही (देवयताम्) अपने को विद्वान् करते हुओं के बीच (असर्जि) सिद्ध किया जाता है (तम्) उसका (ऋत्विया) जो ऋतु समय के योग्य होती वे (वाचः) विद्या, सुशिक्षायुक्त वाणी (सर्गः) संसार के (न) समान ही (उप, सचन्ते) सम्बन्ध करती है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे जल नीचे मार्ग से आकर गढे मे ठहरता वैसे जिस को विद्या शिक्षा प्राप्त होती है वह अभिमान छोड के नम्र हो विद्याशय और उचित कहनेवाला प्रसिद्ध हो जैसे सर्वत्र व्याप्त ईश्वर ने यथायोग्य विविध प्रकार का जगत् बनाया वैसे विद्वानो की सेवा करनेवाला सम्पन्न काम करनेवाला हो ॥ २ ॥

उपस्तुतिं नमस उद्यतिं च श्लोकं यंसत्सवितेव प्र बाहू ।

अस्य क्रत्वाहन्यो३ यो अस्ति मृगो न भीमो अरक्षसस्तुविष्मान् ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो (नमसः) नम्रजन की (उपस्तुतिम्) प्राप्त हुई प्रशंसा (उद्यतिम्) उद्यम और (श्लोकम्) सत्य वाणी को तथा (सवितेव) सूर्य से जल जैसे भूगोलो को वैसे (बाहू, च) अपनी भुजाओं को भी (प्रयंसत्) प्रेरणा देवे (अस्य) इस (अरक्षसः) श्रेष्ठ पुरुष की (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि के साथ जो (अहन्यः) दिन में प्रसिद्ध (अस्ति) है वह (मृगः) सिंह के (न) समान वीर (भीमः) भयङ्कर (तुविष्मान्) बहुत जिस के बलवान् वीर पुरुष विद्यमान हो ऐसा होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जिस के सूर्यप्रकाश के तुल्य विद्या-कीर्ति, उद्यम, प्रशंसा और नम्र हो वह सत्य वाणीवाला सब को सत्कार करने योग्य है ॥ ३ ॥

अस्य श्लोको दिवीयते पृथिव्यामत्यो न यंसद्यक्षभृद्विचेताः ।

मृगाणां न हेतयो यन्ति चेमा बृहस्पतेरहिमायाँ अभि द्यून् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (अस्य) इस आप्त विद्वान् की (श्लोकः) वाणी और (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (अत्यः) घोड़ा (न) जैसे (दिवि) दिव्य व्यवहार मे (ईयते) जाता है तथा जो (यक्षभृत्) पूज्य विद्वानों को धारण करनेवाला (विचेताः) जिस की नाना प्रकार की बुद्धि वह विद्वान् (मृगाणाम्) मृगों की (हेतयः) गतियों के (न) समान (यंसत्) उत्तम ज्ञान देवे (च) और जो (इमाः) ये (बृहस्पतेः) परम विद्वान की वाणी (अभि, द्यून्) सब ओर से वर्त्तमान दिनों में (अहिमायान्) मेघ की माया के समान जिन की बुद्धि उन सज्जनों को (यन्ति) प्राप्त होती उन सब का मनुष्य सेवन करे ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो दिव्य विद्या और प्रज्ञाशील विद्वानों की सेवा करता है वह मेघ के डग डमालयुक्त दिनों के समान वर्त्तमान अविद्यायुक्त मनुष्यों को प्रकाश को सविता जैसे वैसे विद्या देकर पवित्र कर सकता है ॥४॥

ये त्वा देवोस्रिकं मन्यमानाः पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः ।

न दूढ्ये३ अनु ददासि वामं बृहस्पते चयस इत्पियारुम् ॥५॥१२॥

पदार्थ—हे (देव) विद्वन् ! (ये) जो (मन्यमानाः) विज्ञानवान् (पापाः) अधर्माचारी (पज्राः) प्राप्त हुए जन (उस्रिकम्) गौओं के साथ विचरते उन (भद्रम्) कल्याणरूपी (त्वा) आप के (उप, जीवन्ति) समीप जीवित हैं वे आपकी शिक्षा पाने योग्य हैं। हे (बृहस्पते) बड़े विद्वानों की पालना करनेवाले जो आप (दूढ्ये) दुष्ट—बुरा विचार करनेवाले को (न, अनु, ददासि) अनुक्रम से सुख नहीं देते (वामम्) प्रशंसित (पियारुम्) पान की इच्छा करनेवाले का (इत्) ही (चयसे) प्राप्त होते वे आप सब को उपदेश देओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन अपने निकटवर्त्ती अज्ञ, अभिमानी, पापी जनों को उपदेश दे धार्मिक करते हैं वे कल्याण को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

सुप्रैतुः सूयवसो न पन्था दुर्नियन्तुः परिप्रीतो न मित्रः ।

अनर्वाणो अभि ये चक्षते नोऽपीवृता अपोर्णुवन्तो अस्थुः ॥६॥

पदार्थ—(ये) जो (अनर्वाणः) धर्म से अन्यत्र अधर्म में अपनी चाल चलन नहीं रखते (अपीवृताः) और समस्त पदार्थों के निश्चय में वर्त्तमान (नः) हम लोगों को (अपोर्णुवन्तः) अविद्यादि दोषों से न ढाँपते हुए जन (सुयवसः) जिसके सुन्दर अन्न विद्यमान उस (सुप्रैतुः) उत्तम विद्यायुक्त विद्वान् का (पन्थाः) मार्ग (न) जैसे वैसे तथा (दुर्नियन्तुः) जो दुःख से नियम करनेवाला उसके (परिप्रीतः) सब ओर से प्रसन्न (मित्रः) मित्र के (न) समान (अभि, चक्षते) अच्छे प्रकार उपदेश करते हैं वे हम लोगों के उपदेशक (अस्थुः) ठहराये जावें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो विद्वान् जन पूर्ण साधन और उपसाधनों से युक्त उत्तम मार्ग से अविद्या युक्तों को विद्या और धर्म के साथ प्राप्त करते और जिसने इन्द्रिय नहीं जीते उसको जितेन्द्रियता देनेवाले मित्र के समान शिष्यों को उत्तम शिक्षा देते हैं वे इस जगत् में अध्यापक और उपदेशक होने चाहिएँ ॥६॥

सं यं स्तुभोऽवनयो न यन्ति समुद्रं न स्रवतो रोधचक्राः ।

स विद्वाँ उभयं चष्टे अन्तर्बृहस्पतिस्तर आपश्च गृध्रः ॥७॥

पदार्थ—बुद्धिमान् विद्यार्थीजन (स्तुभः) जलादि को रोकनेवाली (अवनयः) किनारे की भूमियों के (न) समान (समुद्रम्) सागर को (स्रवतः) जाती हुई (रोधचक्राः) भ्रमर मेढ़ा जिन के जल में पड़ते उन नदियों के (न) समान (यम्) जिस अध्यापक को (सम्, यन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं (सः) वह (तरः) सर्व विषयों के पार होने (गृध्रः) और सबके सुख को चाहनेवाला (विद्वान्) विद्वान् (बृहस्पतिः) अत्यन्त बढ़ी हुई वाणी वा वेदवाणी का पालनेवाला जन उसको (उभयम्) दोनों अर्थात् व्यावहारिक और पारमार्थिक विज्ञान का (चष्टे) उपदेश देता है तथा (अन्तः) भीतर (च) और बाहर के (आपः) जलों के समान अन्तःकरण की और बाहर की चेष्टाओं को शुद्ध करता है वह सब का सुख करनेवाला होता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है जैसे सबका आधार भूमि, सूर्य के चारों ओर जाती है वा जैसे नदी समुद्र को प्रवेश करती हैं वैसे सज्जन श्रेष्ठ विद्वानों और विद्या को प्राप्त हो धर्म में प्रवेश कर बाहरले और भीतर के व्यवहारों को शुद्ध करें ॥ ७ ॥

एवा महस्तुविजातस्तुविष्मान् बृहस्पतिर्वृषभो धायि देवः ।

स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्विद्यामेष वृजनं जीरदानुम् ॥८॥

पदार्थ—विद्वानों से जो (महः) बड़ा (तुविजातः) विद्यावृद्ध जन से प्रसिद्ध विद्यावाला (तुविष्मान्) शरीर और आत्मा के बल से युक्त (वृषभः) विद्वानों में शिरोमणि (देवः) अति मनोहर (स्तुतः) प्रशंसायुक्त (बृहस्पतिः) वेदों का अध्यापन पढ़ाने और उपदेश करने से पालनेवाला विद्वान् जन (धायि) धारण किया जाता है (सः, एव) वही (नः) हम लोगों के लिए (वीरवत्) बहुत जिसमें वीर विद्यमान वा (गोमत्) प्रशंसित वाणी विद्यमान उस विज्ञान को (धातु) धारण करे जिससे हम लोग (इषम्) विज्ञान (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवन को (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

भावार्थ—विद्वानों को चाहिए कि सकल शास्त्रों के विचार के सार से विद्यार्थी जनों को शास्त्रसम्पन्न करें जिससे वे शारीरिक और आत्मिक बल और विज्ञान को प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुण, कर्म और स्वभावों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह एक सौ नब्बेवाँ सूक्त और तेरहवाँ वर्ग समाप्त हुआ।

卐

कङ्कत इति षोडशर्चस्य एकनवत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः। अबोषधिसूर्या देवता। १ उष्णिक्, २ भुरिगुष्णिक्, ३, ७, स्वराडुष्णिक्, १३ विराडुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। ४, ६, १४ विराडनुष्टुप्, ५, ८, १५ निचृदनुष्टुप्, ९ अनुष्टुप् १०, ११ निचृत् ब्राह्म्यनुष्टुप्, १२ विराड् ब्राह्म्यनुष्टुप्; १६ भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब एक सौ एक्यानबे सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से विषौषधि और विषवैद्यों के विषय को कहते हैं—

कङ्कतो न कङ्कतोऽथो सतीनकङ्कतः ।

द्वाविति प्लुषी इति न्य१दृष्टा अलिप्सत ॥१॥

पदार्थ—जो मनुष्य (कङ्कतः) विषवाले प्राणी के (न) समान (कङ्कताः) चञ्चल (अथो) और जो (सतीनकङ्कतः) जल के समान चञ्चल हैं वे (द्वाविति) दोनों इस प्रकार के जैसे (प्लुषी, इति) जो जलानेवाले दुःखदायी दूसरे के सङ्ग लगें वैसे (अदृष्टाः) जो नहीं दीखते विषधारी जीव वे (नि, अलिप्सत) निरन्तर चिपटते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे कोई चञ्चल जन अध्यापक और उपदेशक को पाकर चञ्चलता देता है वैसे न देखे हुए छोटे-छोटे विषधारी मत्कुण, डांश आदि क्षुद्र जीव बार-बार निवारण करने पर भी ऊपर गिरते हैं ॥१॥

अदृष्टान्हन्त्यायत्यथो हन्ति परायती ।

अथो अवघ्नती हन्त्यथो पिनष्टि पिंषती ॥२॥

पदार्थ—(आयती) अच्छे प्रकार प्राप्त हुई ओषधि (अदृष्टान्) अदृष्ट विषधारी जीवों को (हन्ति) नष्ट करती (अथो) इसके अनन्तर (परायती)

पीछे प्राप्त हुई ओषधि (हन्ति) विषधारियों को दूर करती है (अथो) इसके अनन्तर (अवघ्नती) अत्यन्त दु:ख देती हुई ओषधि (हन्ति) विषधारियों को नष्ट करती (अथो) इसके अनन्तर (पिंषती) पाई जाती हुई ओषधि (पिनष्टि) विषधारियों को पीसती है ॥ २ ॥

भावार्थ—जो आये न आये वा आनेवाले विषधारियों को अगली-पिछली ओषधियों के देने से निवृत्त कराते हैं वे विषधारियों के विषों से नहीं पीड़ित होते हैं ॥ २ ॥

शरासः कुशरासो दर्भासः सैर्या उत।

मौञ्जा अदृष्टा वैरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्सत ॥३॥

पदार्थ—जो (शरासः) बाँस के तुल्य भीतर छिद्रवाले तृणों में ठहरनेवाले वा जो (कुशरासः) निन्दित उक्त तृणों में ठहरते वा (दर्भासः) कुशस्थ वा जो (सैर्याः) तालाबों के तटों में प्राय होनेवाले तृणों में ठहरते वा (मौञ्जाः) मूंज में ठहरते (उत) और (वैरिणः) गाडर में होनेवाले छोटे-छोटे (अदृष्टाः) जो नहीं देखे गये जीव हैं वे (सर्वे) समस्त (साकम्) एक साथ (न्यलिप्सत) निरन्तर मिलते हैं ॥३॥

भावार्थ—जो नाना प्रकार के तृणों में कहीं स्थानादि के लोभ से और कहीं उन तृणों की गन्ध लेने को अलग-अलग, छोटे-छोटे विषधारी छिपे हुए जीव रहते हैं वे अवसर पाकर मनुष्यादि प्राणियों को पीड़ा देते हैं ॥ ३ ॥

नि गावो गोष्ठे असदन्नि मृगासो अविक्षत।

नि केतवो जनानां न्यदृष्टा अलिप्सत ॥४॥

पदार्थ—जैसे (गोष्ठे) गोशाला वा गोहरे में (गावः) गौएँ (न्यसदन्) स्थित होती वा वन में (मृगासः) भेड़िया, हरिण आदि जीव (न्यविक्षत) निरन्तर प्रवेश करते वा (जनानाम्) मनुष्यों के (केतवः) ज्ञान, बुद्धि, स्मृति आदि (नि) प्रवेश कर जाती अर्थात् कार्यों में प्रवेश कर जाती वैसे (अदृष्टाः) जो दृष्टिगोचर नहीं होते वे छिपे हुए विषधारी जीव वा विषधारी जन्तुओं के विष (नि, अलिप्सत) प्राणियों को मिल जाते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे नाना प्रकार के जीव निज-निज सुख सम्भोग के स्थान को प्रवेश करते हैं वैसे विषधर जहाँ-तहाँ पाये हुए स्थान को प्रवेश करते हैं ॥ ४ ॥

एत उ त्ये प्रत्यदृश्रन्प्रदोषं तस्करा इव।

अदृष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥५॥१४॥

पदार्थ—(त्ये) वे (एते, उ) ही पूर्वोक्त विषधर वा विष (प्रदोषम्) रात्रि के आरम्भ में (तस्करा इव) जैसे चोर वैसे (प्रत्यदृश्रन्) प्रतीति से दिखाई देते हैं। हे (अदृष्टाः) दृष्टिपथ न आनेवालो वा (विश्वदृष्टाः) सबके देखे हुए विषधारियो ! तुम (प्रतिबुद्धाः) प्रतीत ज्ञान से अर्थात् ठीक समय से युक्त(अभूतन) होओ ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे चोरों में डाकू देखे और न देखे होते हैं वैसे मनुष्य नाना प्रकार के प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध विषधारियों वा विषों को जानें ॥ ५ ॥

द्यौर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादितिः स्वसा।

अदृष्टा विश्वदृष्टास्तिष्ठतेलयता सु कम् ॥६॥

पदार्थ—हे (अदृष्टाः) दृष्टिगोचर न होनेवाले और (विश्वदृष्टाः) सब के देखे हुए विषधारियो ! जिनका (द्यौः) सूर्य के समान सन्ताप करनेवाला (वः) तुम्हारा (पिता) पिता (पृथिवी) पृथिवी के समान (माता) माता (सोमः) चन्द्रमा के समान (भ्राता) भ्राता और (अदितिः) विद्वानों की अदीन माता के समान (स्वसा) बहन है वे तुम (सु कम्) उत्तम सुख जैसे हो (तिष्ठत) ठहरो और अपने स्थान को (इलयत) जाओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विषधारी प्राणी हैं वे शान्त्यादि उपायों और ओषध्यादिकों से विषनिवारण करने चाहिएँ ॥ ६ ॥

ये अंस्या ये अङ्ग्याः सूचीका ये प्रकङ्कताः।

अदृष्टाः किं चनेह वः सर्वे साकं नि जस्यत ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (अदृष्टाः) दृष्टिगोचर न हुए विषधारी जीवो ! (इह) इस संसार में (ये) जो (वः) तुम्हारे बीच (अंस्याः) स्कन्धों में प्रसिद्ध होनेवाले (ये) जो अङ्ग्याः) अङ्गों में प्रसिद्ध होनेवाले और (सूचीकाः) सूची के समान व्यथा देनेवाले बीछी आदि विषधारी जीव तथा (ये) जो (प्रकङ्कताः) अति पीड़ा देनेवाले कनखजूरे हैं और जो (किञ्चन) कुछ विष आदि है वे (सर्वे) सब तुम (साकम्) एक साथ अर्थात् विष समेत (नि, जस्यत) हम लोगों को छोड़ देओ वा नष्ट कर देओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उत्तम यत्न के साथ शरीर और आत्मा को दुःख देनेवाले विष दूर करने चाहिएँ जिससे यहाँ निरन्तर पुरुषार्थ बढ़े ॥ ७ ॥

उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा।

अदृष्टान्त्सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥८॥

पदार्थ—हे वैद्यजनो ! तुमको जैसे (सर्वान्) सब पदार्थ (अदृष्टान्) जो कि न देखे गये उनको (जम्भयन्) अङ्ग-अङ्ग के साथ दिखलाता हुआ (अदृष्टहा) जो नहीं देखा गया अन्धकार उसको विनाशनेवाले (विश्वदृष्टः) संसार में देखा (सूर्यः) सूर्यमण्डल (पुरस्तात्) पूर्व दिशा में (उदेति) उदय को प्राप्त होता है वैसे (सर्वाः, च, यातुधान्यः) सभी दुराचारियों को धारण करनेवाली दुर्व्यथा निवारण करनी चाहिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य अन्धकार को निवारण करके प्रकाश को उत्पन्न करता है वैसे वैद्यजनों को विषहरण ओषधियों से विषों को निर्मूल करना, विनाशना चाहिए ॥ ८ ॥

उदपप्तदसौ सूर्यः पुरु विश्वानि जूर्वन्।

आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (असौ) यह (सूर्यः) सूर्यमण्डल (विश्वानि) समस्त अन्धकारजन्य दुःखों को (पुरु) बहुत (जूर्वन्) विनाश करता हुआ (उत्, अपप्तत्) उदय होता है और जैसे (आदित्यः) आदित्य सूर्य (पर्वतेभ्यः) पर्वत व मेघों से उदय को प्राप्त होता है वैसे (अदृष्टहा) गुप्त विषों को नाश करनेवाला (विश्वदृष्टः) सबसे देखा हुआ विष हरनेवाला वैद्य विष को निवृत्त करने का प्रयत्न करे ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सविता अपने प्रकाश से सब पदार्थों को प्राप्त होता है वैसे विषहरणशील वैद्यजन विषयुक्त पवन आदि पदार्थों को हरते और प्राणियों को सुखी करते हैं ॥ ९ ॥

अब सूर्य के दृष्टान्त से उक्त विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

सूर्ये विषमा सजामि दृतिं सुरावतो गृहे।

सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा

मधु त्वा मधुला चकार ॥१०॥१५॥

पदार्थ—मैं (सुरावतः) सुरा खींचनेवाले घुष्टिया कलार के (गृहे) घर में (दृतिम्) चाम का सुरापात्र जैसे हो वैसे (सूर्ये) सूर्यमण्डल में (विषम्) विष का (आ, सजामि) आरोपण करता हूँ (सः, चित्, नु) वह भी (न, मराति) नहीं मारा जाए और (नो) न (वयम्) हम लोग (मराम) मारे जावें (अस्य) इस विष का (योजनम्) योग (आरे) दूर होता है। हे विषधारी ! (हरिष्ठाः) जो हरण में अर्थात् विषहरण में स्थिर है, विषहरण विद्या जानता है वह (त्वा) तुझे (मधु) मधुरता को प्राप्त (चकार) करता है यह (मधुला) इसकी मधुरता को ग्रहण करनेवाली विषहरण मधुविद्या है ॥ १० ॥

भावार्थ—जो रोगनिवारक सूर्य के प्रकाश के संयोग से विषहारी वैद्यजन बड़ी-बड़ी ओषधियों से विष दूर करते हैं और मधुरता को सिद्ध करते हैं सो यह सूर्य का विध्वंस करनेवाला काम नहीं होता और वे विष हरनेवाले भी दीर्घायु होते हैं ॥१०॥

अब विषहरनेवाले पक्षी के निमित्त को ले विष हरने के विषय को कहते हैं—

इयत्तिका शकुन्तिका सका जघास ते विषम्।

सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा

मधु त्वा मधुला चकार ॥११॥

पदार्थ—हे विष के भय से डरते हुए जन ! जो (इयत्तिका) इतने विशेष देश में हुई (शकुन्तिका) कपिञ्जली पक्षिणी है (सका) वह (ते) तेरे (विषम्) विष को (जघास) खा लेती है (सो चित्, नु) वह भी शीघ्र (न) नहीं (मराति) मरे और (वयम्) हम लोग (नो) न (मराम) मारे जाएँ और (अस्य) इस उक्त पक्षिणी के संयोग से विष का (योजनम्) योग (आरे) दूर होता है। हे विषधारी (हरिष्ठाः) विषहरण में स्थिर विष हरनेवाले वैद्य ! (त्वा) तुझे (मधु) मधुरता को (चकार) प्राप्त करता है इसकी (मधुला) मधुरता ग्रहण कराने और विष हरनेवाली विद्या है ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्य जो विष हरनेवाले पक्षी हैं उन्हें पालन कर उनसे विष हराया करें ॥ ११ ॥

अब और जीवों से विष हरने के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्रिः सप्त विष्पुलिङ्गका विषस्य पुष्यमक्षन्।

ताश्चिन्नु न मरन्ति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा

मधु त्वा मधुला चकार ॥१२॥

पदार्थ—जो (त्रिः, सप्त, विष्पुलिङ्गकाः) इक्कीस प्रकार की छोटी-चिड़ियाँ (विषस्य) विष के (पुष्यम्) पुष्ट होने योग्य पुष्प को (अक्षन्) खाती हैं (ताः, चित्, नु) वे भी (न) न (मरन्ति) मरती हैं और (वयम्) हम लोग (नो) न (मराम) मरें (हरिष्ठाः) विष हरनेवाला वैद्यवर (अस्य) इस विष का (योजनम्) योग (आरे) दूर करता है वह हे विषधारी ! (त्वा) तुझे (मधु) मधुरता को (चकार) प्राप्त करता है यही इसकी (मधुला) विषहरण, मधु ग्रहण करनेवाली विद्या है ॥ १२ ॥

भावार्थ—जैसे जोंक विष हरनेवाली हैं वैसे इक्कीस छोटी-छोटी पक्षिणी पंखोंवाली चिड़ियाँ विष खानेवाली हैं उनसे और ओषधियों से जो विष सम्बन्धी रोगों का नाश करते हैं वे चिरजीवी होते हैं ॥ १२ ॥

फिर विषहरण विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

नवानां नवतीनां विषस्य रोपुंषीणाम् ।
सर्वासामग्रभं नामारे अस्य योजनं
हरिष्ठा मधुं त्वा मधुला चंकार ॥१३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे मैं (**विषस्य**) विष की (**सर्वासाम्**) सब (**रोपुषीणाम्**) विमोहन करनेवाली (**नवानाम्**) नव (**नवतीनाम्**) नव्वे अर्थात् निन्यानवे विषसम्बन्धी पीडा की तरङ्गों का (**नाम**) नाम (**अग्रभम्**) लेऊं और (**अस्य**) इस विष का (**योजनम्**) योग (**आरे**) दूर करता हूं वैसे हे विषधारिन् (**हरिष्ठा**) विष हरने में स्थिर वैद्य ! (**त्वा**) तुझे (**मधु**) मधुरता को (**चकार**) प्राप्त करता है वही इसको (**मधुला**) मधुरता को ग्रहण करने वाली विषहरण विद्या है ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! हम लोग जो जहाँ निन्यानवे प्रकार का विष है उसके नाम, गुण, कर्म और स्वभावों को जान कर उस विष का प्रतिषेध करनेवाली ओषधियों का ज्ञान और उनका सेवन कर विषसम्बन्धी रोगों को दूर करें ॥ १३ ॥

फिर विषहरण को मयूरिणियों के प्रसंग से कहते हैं—

त्रिः सप्त मंयूर्यः सप्त स्वसांरो अग्रुवंः ।
तास्ते विषं वि जंभ्रिर उदकं कुम्भिनीरिव ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**सप्त**) सात (**स्वसारः**) बहिनों के समान तथा (**अग्रुवः**) आगे जानेवाली नदियों के समान (**त्रि, सप्त**) इक्कीस (**मयूर्यः**) मोरिनी हैं (**ताः**) वे (**उदकम्**) जल को (**कुम्भिनीरिव**) जल का जिनके अधिकार है वे घट ले जानेवाली कहारियों के समान (**ते**) तेरे (**विषम्**) विष को (**वि, जभ्रिरे**) विशेषता से हरें ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को जो इक्कीस प्रकार की मयूर की व्यक्ति हैं वे न मारनी चाहिएँ किन्तु सदैव उनकी वृद्धि करने योग्य है। जो नदी स्थिर जल वाली हों वे रोग के कारण होने से न सेवनी चाहिएँ जो जल चलता है सूर्यकिरण और वायु को छूता है वह रोग दूर करनेवाला उत्तम होता है ॥ १४ ॥

इयत्तकः कुंषुम्भकस्तकं भिनद्म्यश्मंना ।
ततों विषं प्र वांवृते परांचीरनुं संवतः ॥१५॥

पदार्थ—जो (**इयत्तकः**) मैला-कुचैला निन्द्य (**कुषुम्भकः**) छोटा-सा नकुल विषयुक्त है (**तकम्**) उस दुष्ट को (**अश्मना**) विष हरनेवाले पत्थर से मैं (**भिनद्मि**) अलग करता हूं (**ततः**) इस कारण (**विषम्**) उस दशा को छोड़ (**संवतः**) विभागवाली (**पराचीः**) जो परे दूर प्राप्त होती उन दशाओं को (**अनु**) पीछा लखि (**प्र, वावृते**) प्रवृत्त होता है उन से भी निकल जाता है ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो पुरुष विष हरनेवाले रत्नों से विष को निवृत्त करते हैं वे विष से उत्पन्न हुए रोगों को मार, बली होकर शत्रुभूत रोगों को जीतते हैं ॥ १५ ॥

कुषुम्भकस्तदंब्रवीद्गिरेः प्रंवर्त्तमानकः ।
वृश्चिंकस्यारसं विषमंरसं वृश्चिक ते विषम् ।.१६॥१६॥

पदार्थ—(**गिरेः**) पर्वत से (**प्रवर्त्तमानकः**) प्रवृत्त हुआ (**कुषुम्भकः**) छोटा नेउला (**वृश्चिकस्य**) बीछी के (**विषम्**) विष को (**अरसम्**) नीरस जो (**अब्रवीत्**) कहता अर्थात् चेष्टा से दूसरों को जताता है (**तत्**) इस कारण हे (**वृश्चिक**) अङ्गों को छेदन करनेवाले प्राणी ! (**ते**) तेरे (**अरसम्**) अरस (**विषम्**) विष है ॥ १६ ॥

भावार्थ—मनुष्य बीछी आदि छोटे-छोटे जीवों के विष हरनेवाले पर्वतीय निउले का संरक्षण करें जिससे विष रोगों को निवारण करने में समर्थ होवें ॥१६॥

इस सूक्त में विष हरनेवाली ओषधि, विष हरनेवाले जीव और विषहारी वैद्यों के गुण का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है यह समझना चाहिए ॥

यह एक सौ एक्यानवाँ सूक्त और सोलहवाँ वर्ग चौबीसवाँ अनुवाक और प्रथम मण्डल समाप्त हुआ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां परमविदुषां विरजानन्दसरस्वती-स्वामीनां शिष्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते आर्यभाषासमन्विते सुप्रमाणयुक्ते सुभाषाविभूषिते ऋग्वेदभाष्ये प्रथमं मण्डलं समाप्तम् ॥

अथ द्वितीयं मण्डलम्

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥१॥

त्वमग्न इत्यादिषस्य षोडशर्चस्य सूक्तस्य आङ्गिरसः शौनहोत्रो भार्गवो गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । १ पङ्क्तिः, ६ भुरिक् पङ्क्तिः, १३ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २, १५ विराट् जगती, १६ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ३, ५, ८, १० निचृत्त्रिष्टुप्; ४, ६, ११, १२, १४ भुरिक् त्रिष्टुप्, ७ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब दूसरे मण्डल का और उसमें प्रथम सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि के दृष्टान्त से विद्वान् और विद्यार्थियों के कृत्य को कहते हैं—

त्वम॑ग्ने द्यु॒भिस्त्वमा॑शुशु॒क्षणि॒स्त्वम॒द्भ्यस्त्वमश्म॑न॒स्परि॑ ।
त्वं वने॑भ्य॒स्त्वमोष॑धीभ्य॒स्त्वं नृ॒णां नृ॑पते जायसे॒ शुचिः॑ ॥१॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान (नृपते) मनुष्यों की पालना करनेवाले ! जो ((त्वम्) आप (द्युभि) विद्यादि प्रकाशों से विराजमान (त्वम्) आप (आशुशुक्षणि.) शीघ्रकारी (त्वम्) आप (अद्भ्य.) जलों से पालना करनेवाले मेघ के समान (त्वम्) आप (अश्मन , परि) पाषाण के सब ओर से निकले रत्न के समान (त्वम्) आप (वनेभ्य·) जङ्गलों मे चन्द्रमा के तुल्य (त्वम्) आप (ओषधीभ्यः) ओषधियों से वैद्य के समान और (त्वम्) आप (नृणाम्) मनुष्यों के बीच (शुचिः) पवित्र, शुद्ध (जायसे) होते हैं सो हम लोग आप लोगों को सत्कार करने योग्य हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । हे राजन् ! जैसे बिजुली अपने प्रकाश से शीघ्र जानेवाली जल, पाषाण, बन और ओषधियों के पवित्र करने से सबकी पालना करनेवाली है वैसे विद्वान् जन समग्र सामग्री से पवित्र आचरणवाला होता हुआ विद्यादि के प्रकाश से सब की उन्नति करनेवाला होता है ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

तवा॑ग्ने हो॒त्रं तव॑ पो॒त्रमृ॒त्वियं॒ तव॑ ने॒ष्ट्रं त्वम॒ग्निदृ॑ताय॒तः ।
तव॑ प्रशा॒स्त्रं त्वम॑ध्वरीयसि ब्र॒ह्मा चासि॑ गृ॒हप॑तिश्च नो॒ दमे॑ ॥२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान बलवन् वर्त्तमान विद्वन् ! (तव) विद्या, धर्म और नम्रता से प्रकाशमान जो आप उनका (होत्रम्) जिस मे पदार्थ होमा जाता वह होता का काम (तव) आप का (पोत्रम्) पवित्र काम (तव) आप का (नेष्ट्रम्) पहुँचाने का काम वह है (ऋत्वियम्) कि जो ऋत्विजों के योग्य है (त्वम्) आप (अग्नित्) अग्नि को प्रदीप्त करनेवाले और (ऋतायतः) अपने को सत्य की इच्छा करनेवाले (तव) आप का (प्रशास्त्रम्) उत्तम शिक्षा करना काम है (त्वम्) आप (अध्वरीयसि) अपने को अहिंसा कर्म की इच्छा करते (त्वम्) आप (ब्रह्मा) चारों वेदों के जाननेवाले (च, असि) हैं और (नः) हम लोगों के (दमे) जिस मे जन इन्द्रियों का दमन करते हैं इस घर में (गृहपतिः) घर के कामों की रक्षा करनेहारे (च) भी हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—जिस पुरुष का अग्निहोत्र के तुल्य उपकार, ऋत्विजों के कर्म के समान पवित्र क्रिया, आप्त विद्वानों के समान न्याय, अग्नि विद्या को जाननेवाले के समान उत्तम, न्यायाधीश के समान न्यायव्यवस्था, यज्ञ करनेवाले के समान अहिंसा, वेदपारङ्गत के समान विद्या और गृहपति के समान ऐश्वर्य्य का संग्रह हो वही प्रशंसा को प्राप्त होने योग्य होता है ॥ २ ॥

त्वम॑ग्न॒ इन्द्रो॑ वृष॒भः स॒ताम॑सि॒ त्वं विष्णु॑रुरुगा॒यो न॑म॒स्यः॑ ।
त्वं ब्र॒ह्मा र॑यि॒विद्ब्र॑ह्मणस्पते॒ त्वं वि॑धर्तः सचसे॒ पुर॑न्ध्या ॥३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सूर्य के समान वर्त्तमान ! (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (वृषभ·) दुष्टों के सामर्थ्य को विनाशनेवाले (त्वम्) आप (सताम्) सत्पुरुषों के बीच (नमस्य.) सत्कार करने योग्य (असि) हैं (विष्णु·) जगदीश्वर के समान (त्वम्) आप सज्जनों को (उरुगाय·) बहुतों से कीर्त्तन किये हुए हैं । हे (ब्रह्मणस्पते) वेदविद्या का प्रचार करनेवाले ! जो (त्वम्) आप (रयिवित्) पदार्थविद्या के जानते (ब्रह्मा) समस्त वेद के पढ़नेवाले हैं हे (विधर्त) जो नाना प्रकार के शुभगुणों को धारण करनेवाले ! (त्वम्) आप (पुरन्ध्या) पूर्ण विद्या के धारण करनेवाली स्त्री उस के साथ (सचसे) सम्बन्ध करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य से आप्त विद्वानों के समीप से विद्या, शिक्षा को प्राप्त हुआ ईश्वर के समान उपकार-दृष्टि से प्रशंसा और सत्कार को प्राप्त हुआ प्रतिदिन उत्तम बुद्धि से समस्त शुभ गुण, कर्म और स्वभावों को धारण करता है वह सम्पूर्ण विद्यावान् होता है ॥ ३ ॥

अब चलते हुए विषय में राजशिष्य के कृत्य का वर्णन करते हैं—

त्वम॑ग्ने॒ राजा॒ वरु॑णो धृ॒तव्र॑त॒स्त्वं मि॒त्रो भ॑वसि द॒स्म ईड्यः॑ ।
त्वम॑र्य॒मा सत्प॑ति॒र्यस्य॑ स॒म्भुजं॒ त्वमंशो॑ वि॒दथे॑ देव भाज॒युः ॥४॥

पदार्थ—हे (देव) अतीव मनोहर (अग्ने) सूर्य के समान समस्त अर्थों का प्रकाश करनेवाले ! जो (त्वम्) आप (धृतव्रत·) सत्य को धारण किये स्वीकार किये हुए (वरुणः) श्रेष्ठ के समान (राजा) शरीर, आत्मा और मन से प्रतापवान् (भवसि) होते हैं (दस्म·) दुःख और दुष्टों के विनाश करनेवाले (ईड्य·) प्रशंसा के योग्य (मित्र·) प्राण के मित्र होते हैं (यस्य) जिस राज्य के (सम्भुजम्) उपभोग करने को (त्वम्) आप (अर्यमा) न्यायकारी (सत्पतिः) सज्जन और सदाचारों के पालनेवाले होते हैं (अंशः) प्रेरणा करनेवाले (त्वम्) आप (विदथे) संग्राम में (भाजयुः) अर्थी प्रत्यर्थियों की व्यवस्था से पृथक्-पृथक् करनेवाले होते हैं इससे हम लोगों के राजा हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिससे सत्य को धारण कर असत्य का त्याग किया जाता और मित्र के समान सब के लिए सुख दिया जाता है वह सत्यसन्धि दुष्टाचार से अलग हुआ सत्य और असत्य का यथावद्विवेचन करनेवाला सब को मान करने योग्य होता है ॥ ४ ॥

त्वम॑ग्ने॒ त्वष्टा॑ विध॒ते सु॒वीर्यं॒ तव॒ ग्नावो॑ मित्रमहः सजा॒त्य॑म् ।
त्वमा॑शु॒हेमा॑ ररिषे॒ स्वश्व्यं॒ त्वं न॒रां शर्धो॑ असि पुरू॒वसुः॑ ॥५॥१७॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वन् (त्वष्टा) अज्ञान का विनाश करनेवाले ! (त्वम्) आप (विधते) सेवा करते हुए मनुष्य के लिए (सुवीर्यम्) उत्तम पराक्रम को देते हैं । हे (मित्रमहः) मित्रों का सत्कार करनेवाले (ग्नावः) प्रशंसित वाणी से युक्त जन ! (तव) आप का (सजात्यम्) समान जातियों मे प्रसिद्ध हुआ प्रेम है (आशुहेमा) शीघ्रकारी जनों को वृद्धि देनेवाले (त्वम्) आप (स्वश्व्यम्) सुन्दर अश्वादि पदार्थों मे प्रसिद्ध हुए बल को (ररिषे) देते हैं सो (त्वम्) आप (पुरूवसु.) बहुतों को निवास देनेवाले (नराम्) मनुष्यों के (शर्धः) बल के बढ़ानेवाले (असि) हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जिस पुरुष की सत्यवाणी और परार्थ पराक्रम है वह राजजनों मे प्रशंसायुक्त होता है ॥ ५ ॥

त्वम॑ग्ने रु॒द्रो असु॑रो म॒हो दि॒वस्त्वं शर्धो॒ मारु॑तं पृ॒क्ष ई॑शिषे ।
त्वं वातै॑ररु॒णैर्या॑सि शङ्ग॒यस्त्वं पू॒षा वि॑ध॒तः पा॑सि॒ नु त्मना॑ ॥६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान दाह करनेवाले ! (त्वम्) आप (रुद्र.) दुष्टों को रुलानेवाले (असुर) मेघ के समान (मह) बड़े (त्वम) आप (मारुतम्) मरुत् विषयक (पृक्ष) सम्बन्ध और (दिव) प्रकाशमान पदार्थ के (शर्ध) बल के (ईशिषे) ईश्वर हैं उस के व्यवहार प्रकाश करने में समर्थ हैं (त्वम्) आप (वातै) पवनों से और (अरुणैः) अग्नि आदि पदार्थों के साथ (यासि) प्राप्त होते हैं (पूषा) पुष्टि करने और (शङ्गय·) सुख प्राप्ति करानेवाले (त्वम्) आप (त्मना) अपने से (विधतः) सेवको की (नु) शीघ्र (पासि) पालना करते हैं इससे किस को सत्कार करने योग्य नहीं होते ? ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है । जो जन बल की इच्छा करते, दुष्टाचारियों को अच्छे प्रकार ताड़ना देकर धर्माचारियो को सुखी करते और सदैव सब की उन्नति को चाहते हैं वे अतुल ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

त्वम॑ग्ने द्रवि॒णो॒दा अ॑रं॒कृते॒ त्वं दे॒वः स॑वि॒ता र॑त्न॒धा अ॑सि ।
त्वं भगो॑ नृपते॒ वस्व॑ ईशिषे॒ त्वं पा॒युर्दमे॒ यस्तेऽवि॑धत् ॥७॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सूर्य के समान सुख देनेवाले ! (त्वम्) आप (अरकृते) पूरे पुरुषार्थ करनेवाले के लिए (द्रविणोदा) धन देनेवाले (त्वम्) आप (रत्नधा) रत्नों को धारण और (सविता) ऐश्वर्य के प्रति प्रेरणा करनेवाले (देव) मनोहर (असि) हैं। हे (नृपते) मनुष्यो की पालना करनेवाले और (भग.) ऐश्वर्यवान ! (त्वम्) आप (वस्व) धनो की (ईशिषे) ईश्वरता रखते हैं (य) जो (ते) आप के (दमे) निज घर मे (अविधत्) विधान करता है उस के (त्वम्) आप (पायु) पालनेवाले है ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो पुरुषार्थी मनुष्यो का सत्कार तथा आलस्य करनेवालो का तिरस्कार करनेवाले और सेवकों के लिए सुख देनेवाले ऐश्वर्यवान् हो वे इस ससार मे सब के राजा होने को योग्य होवें ॥ ७ ॥

त्वाम॑ग्ने॒ दम॒ आ वि॒श्पतिं॒ विश॒स्त्वां राजा॑नं सुवि॒दत्र॑मृञ्जते ।
त्वं विश्वा॑नि स्वनीक पत्यसे॒ त्वं स॒हस्रा॑णि श॒ता दश॒ प्रति॑ ॥८॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रतापवान् (विश्पतिम्) प्रजा की पालना करनेवाले ! (त्वाम्) आप को (विश) प्रजाजन (दमे) निज घर मे (आ, ऋञ्जते) सब ओर से प्रसिद्ध करते हैं अर्थात् प्रजापति मानते हैं और (सुविदत्रम्) सुन्दर देनेवाले (त्वाम्) आप को (राजानम्) अपना स्वामी प्रसिद्ध करते है। हे (स्वनीक) सुन्दर सेना रखनेवाले ! (त्वम्) आप (विश्वानि) समस्त पदार्थों को (पत्यसे) पतिभाव को प्राप्त होते हैं और (त्वम्) आप (सहस्राणि) सहस्रो (शता) सैकड़ो और (दश) दहाइयो के (प्रति) प्रति पतिभाव को प्राप्त होते है ॥ ८ ॥

भावार्थ—वही राजा होने योग्य है जिस को समस्त प्रजाजन स्वीकार करें । वही सेनापति होने को योग्य है जो दश वा सौ वा सहस्र वीरो के साथ युद्ध कर सकता है ॥ ८ ॥

फिर राजशिष्य विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

त्वाम॑ग्ने पि॒तर॑मि॒ष्टिभि॒र्नर॒स्त्वां भ्रा॒त्राय॒ शम्या॑ तनू॒रुच॑म् ।
त्वं पु॒त्रो भ॑वसि॒ यस्तेऽवि॑ध॒त्त्वं सखा॑ सु॒शेवः॑ पास्या॒धृषः॑ ॥९॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान राजन् ! (यः) जो (त्वाम्) आप (पुत्र) बहुत दु.ख से रक्षा करनेवाले (भवसि) होते हैं जो (ते) आप के सुख का (अविधत्) विधान करता है जो (सुशेवः) सुन्दर सुख देनेवाले (सखा) मित्र (त्वम्) आप (आधृष) सब ओर से धृष्टता करनेवाले जनों को (पासि) पालते हो उन (त्वाम्) आप (तनूरुचम्) तनूरुच् अर्थात् जिन के लिए शरीर प्रकाशित होते वा उन (त्वाम्) आप (पितरम्) पालनेवाला वा (इष्टिभि.) हवनों के समान सत्कारों से अग्नि के तुल्य वर्त्तमान को (भ्रात्राय) भाईपने के लिए (शम्या) कर्म के साथ (नर.) मनुष्य पालें ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे होम आदि से अच्छा सेवन किया हुआ अग्नि रक्षा करनेवाला होता है वैसे भ्राता मित्र, पुत्र जन अपने भ्राता, मित्र और पितरों को सेवें ॥ ९ ॥

त्वम॑ग्न ऋ॒भुरा॒के न॑म॒स्य१॒स्त्वं वाज॑स्य क्षु॒मतो॑ रा॒य ई॑शिषे ।
त्वं वि भा॑स्यनु॒ दक्षि॑ दा॒वने॒ त्वं वि॒शिक्षु॑रसि य॒ज्ञमा॒तनिः॑ ॥१०॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सर्वशास्त्र पारङ्गत प्रतापवान् राजन् ! (त्वम्) आप (ऋभुः) बुद्धिमान् हैं और (आके) समीप मे (नमस्य) नमस्कार, सत्कार करने योग्य हैं (त्वम्) आप (वाजस्य) विज्ञान निमित्तक (क्षुमत) बहुत अन्नादि पदार्थ समूह जिसके सम्बन्ध मे विद्यमान उस (राय) धन के (ईशिषे) ईश्वर होते हैं (त्वम्) आप (विभासि) विशेषता से सब पदार्थों का प्रकाश करते हैं और अग्नि के समान (अनुदक्षि) अनुकूलता से अज्ञानजन्य दु ख को दहन करते हो (दावने) दानशील (विशिक्षु:) उत्तम शिक्षा करनेवाले (त्वम्) आप (यज्ञम्) यज्ञ का (आतनि) विस्तार करनेवाले (असि) हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो अग्नि के समान प्रजाओ के पीड़ा देनेवालो को जलाते है, पुरुषार्थ से ऐश्वर्य की उन्नति करते हैं, विद्या-विनय और उत्तम शीलादि का प्रकाश करते हैं वे सब को माननीय होते हैं ॥१॥

फिर अध्यापक विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

त्वम॑ग्ने॒ अदि॑ति॒र्देव दा॒शुषे॒ त्वं होत्रा॒ भार॑ती वर्धसे गि॒रा ।
त्वमि॒ळा श॒तहि॑मासि॒ दक्ष॑से॒ त्वं वृ॑त्र॒हा व॑सुपते॒ सर॑स्वती ॥११॥

पदार्थ—हे (देव) प्रकाशमान (अग्ने) विद्या देनेवाले विद्वन् ! (त्वम्) आप (दाशुषे) दानशील शिष्य के लिए (अदिति:) अन्तरिक्ष प्रकाश के समान विद्यागुणों का प्रकाश करनेवाले हैं (त्वम्) आप (होत्रा) ग्रहण करने योग्य (भारती) विद्या धारण करनेवाली बालिका के समान होते हुए (गिरा) सुन्दर शिक्षा और विद्यायुक्त वाणी से (वर्धसे) वृद्धि को प्राप्त होते हैं (त्वम्) आप (दक्षसे) विद्या बल के देने के लिए (शतहिमा) सौ वर्ष जिस की आयु वह (इळा) स्तुति के योग्य अध्यापिका के समान (असि) हैं हे (वसुपते) धन के पालनेहारे (त्वम्) आप (वृत्रहा) मेघहन्ता सूर्य के समान तथा (सरस्वती) प्रज्ञान विज्ञानयुक्त वाणी के समान हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । अच्छी विद्या का पढ़ानेहारा शास्त्र का पारगन्ता विद्वान् जन माता के समान पालना करता है और सब विषयों से उत्तम गुणो को देता है उस से शिष्यजन शीघ्र विद्याबलयुक्त होते हैं ॥ ११ ॥

त्वम॑ग्ने सु॒भृ॑त उत्त॒मं वय॒स्तव॑ स्पा॒र्हे वर्ण॒ आ सं॒दृशि॒ श्रियः॑ ।
त्वं वाजः॑ प्र॒तर॑णो बृ॒हन्न॑सि॒ त्वं र॒यिर्ब॑हु॒लो वि॒श्वत॑स्पृ॒थुः ॥१२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) बिजुली के समान बलीजन ! जो (त्वम्) आप (रयि·) द्रव्यरूप (बहुल.) बहुत सुखो के ग्रहण करनहारे (विश्वत:) सब से (पृथुः) विस्तार को प्राप्त (सुभृत) उत्तम कर्म जिन्होने धारण किया (प्रतरण) कठिनता से दु खो को पार होने और (बृहन्) बढ़ते हुए (असि) हैं जो (त्वम्) आप (वाज) ज्ञानवान् है जिन (तव) आपके (स्पार्हे) इच्छा करने और (सदृशि) अच्छे प्रकार देखने योग्य (वर्णे) वर्ण मे (उत्तमम्) उत्तम (वयः) मनोहर जीवन (आ, श्रिय·) और सब ओर से लक्ष्मी वर्त्तमान है सो (त्वम्) आप अध्यापक हूजिए ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे विद्वान् जन गुण, कर्म, स्वभाव मे बिजुली को जान और कार्य्यों मे उस का अच्छे प्रकार प्रयोग कर श्रीमान् होते हैं और ब्रह्मचर्य से दीर्घायु होते हैं वैसे सब विद्यायुक्त मनुष्यो को होना चाहिए ॥ १२ ॥

त्वाम॑ग्न आदि॒त्यास॑ आ॒स्यं१॒ त्वां जि॒ह्वां शुच॑यश्चक्रिरे कवे ।
त्वां रा॑ति॒षाचो॑ अध्व॒रेषु॑ सश्चिरे॒ त्वे दे॒वा ह॒विर॑द॒न्त्याहु॑तम् ॥१३॥

पदार्थ—हे (कवे) समस्त साङ्गोपाङ्ग वेद के जाननेवाले (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वन् ! (आदित्यासः) बारह महीना जैसे सूर्य को वैसे विद्यार्थीजन जिन (त्वाम्) आपको (आस्यम्) मुख के समान अग्रगन्ता और (शुचय) पवित्र शुद्धात्मा जन (त्वाम्) आपको (जिह्वाम्) वाणीरूप (चक्रिरे) कर रहे, मान रहे हैं तथा (अध्वरेषु) न नष्ट करने योग्य व्यवहारों में (रातिषाच·) दान के सेवनेवाले जन (त्वाम्) आपको (सश्चिरे) सम्यक् प्रकार से मिलते हैं (त्वे) तुम्हारे होते (देवा) विद्वान् जन (आहुतम्) सब ओर से ग्रहण किये हुए (हविः) भक्षण करने योग्य पदार्थ को (अदन्ति) खाते सो आप हमारे अध्यापक हूजिए ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे संवत्सर का आश्रय लेकर महीने, मुख का आश्रय लेकर शरीर की पुष्टि, जिह्वा के आश्रय से रस का विज्ञान यश को प्राप्त हो विद्वानों के सत्कार और उत्तम अन्न को पाकर रुचि होती है वैसे आप्त शास्त्रज्ञ धर्मात्मा विद्वानो को प्राप्त होकर मनुष्य शुभ गुण लक्षणयुक्त होते हैं ॥ १३ ॥

त्वे अ॑ग्ने॒ विश्वे॑ अ॒मृता॑सो अ॒द्रुह॑ आ॒सा दे॒वा ह॒विर॑द॒न्त्याहु॑तम् ।
त्वया॒ मर्ता॑सः स्वदन्त आसु॒तिं त्वं गर्भो॑ वी॒रुधां॑ जज्ञिषे॒ शुचिः॑ ॥१४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान ! आप (त्वे) तुम्हारे होते (अद्रुह) द्रोह छोड़े हुए (विश्वे) सब (अमृतासः) अपने-अपने रूप से जन्म-मरणरहित जीवात्मा जिन के वे (देवाः) विद्वान् जन (आहुतम्) प्राप्त होने योग्य पदार्थ को (आसा) मुख से (हवि·) जो कि विद्वानो के खाने योग्य है (अदन्ति) खाते हैं तथा जिन (त्वया) आप की प्रेरणा से (स्वदन्ते) सुन्दरता से भोजन करते हुए (मर्तासः) शरीर के योग से जन्म-मरण सहित मनुष्य (आसुतिम्) जन्मयोग अर्थात् विद्याजन्म का संयोग सेवते हैं जो (त्वम्) आप (वीरुधाम्) लता वृक्षादिको के बीच (गर्भ) गर्भरूप अग्नि जैसे वैसे होकर

(शुचिः) पवित्र होते हुए (अग्निर्वे) प्रसिद्ध होते हैं उन आप का विद्या की प्राप्ति के लिए लोग आश्रय करते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे सब जीव विद्यमान अग्नि के होते जीने और भोजन करने को योग्य होते हैं वैसे आप्तजन धर्मात्मा पढ़ानेवालों के होते पवित्र रागद्वेषरहित सांसारिक और पारमार्थिक सुख को प्राप्त हुए मुक्ति के बीच आनन्द करते हुए जन्मान्तर संस्कार में पवित्र होते हैं ॥१४ ॥

त्वं तान्त्सं च प्रति चासि मज्मनाग्ने सुजात प्र च देव रिच्यसे ।

पृक्षो यदत्र महिना वि ते भुवदनु द्यावापृथिवी रोदसी उभे ॥१५॥

पदार्थ— हे (सुजात) सुन्दर प्रसिद्धिवान् (देव) विद्या देनेवाले (अग्ने) बिजुली के समान सबसे अलग विद्वन् ! जो (त्वम्) आप (मज्मना) बल से वा पुरुषार्थ से (तान्) उन मनुष्यों को कि जो मोक्षसुख और सांसारिक सुख साधने वाले हैं (प्रति, च) प्रतिनिधि और (सम्, च) मिले हुए भी (असि) हैं (च) और (प्र, रिच्यसे) अलग होते हो और (उभे) दोनों (रोदसी) सांसारिक तुच्छ सुख के कारण रोने के निमित्त जो (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिवी के समान (महिना) अपने महिमा से (यत्) जो (अत्र) यहां (पृक्षः) विद्या सम्बन्ध को भी प्राप्त हो जिन (ते) आपकी विद्या (वि, अनु, भुवत्) अनुकूल विशेषता से होती है सो आप हमारे अध्यापक और उपदेशक हूजिए ॥ १५ ॥

भावार्थ—जैसे अग्नि में अनेक गुण हैं वैसे विद्वानों की सेवा करने और धर्म में प्रवर्त्तमान होने अधर्म से निवृत्त जनों में इस संसार में बहुत शुभ गुण उत्पन्न होते हैं ॥ १५ ॥

ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।

अस्माञ्च ताँश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! आप (ये) जो (सूरयः) विद्या ज्ञान चाहते हुए जन (स्तोतृभ्यः) समस्त विद्या के अध्यापक विद्वानों के लिए (गोअग्राम्) जिसमें इन्द्रिय अग्रगन्ता हों(अश्वपेशसम्)उस शीघ्रगामी प्राणी के समान रूपवाली (रातिम्) विद्यादान क्रिया को (उप, सृजन्ति) देते हैं (तान्, च) उनको और (अस्मान् च) हम लोगों को भी (वस्य) अत्युत्तम निवासस्थान (आ, प्र, नेषि, हि) अच्छे प्रकार उत्तमता से प्राप्त करते हो इसी से (सुवीराः) उत्तम शूरतादि गुणों से युक्त हम लोग (विदथे) विवाद संग्राम में (बृहत्) बहुत (वदेम) कहें ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान सर्वोत्तम विद्यादान देके हमको तथा औरों को विद्वान् करते हैं वैसे हमको भी चाहिए कि उनको सदा प्रसन्न करें ॥ १६ ॥

इस सूक्त में अग्नि के दृष्टान्त से विद्वान् और विद्यार्थियों के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह दूसरे मण्डल में प्रथम सूक्त और उन्नीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

यज्ञेनेति त्रयोदशर्चस्य द्वितीयस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । १, ३, ७, १२ विराड् जगती; ४ जगती, ५, ६, ९, १३ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । २, ८, १०, ११ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब द्वितीय सूक्त का आरम्भ है उसमें फिर अग्नि के दृष्टान्त से विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

यज्ञेन वर्धत जातवेदसमग्निं यजध्वं हविषा तना गिरा ।

समिधानं सुप्रयसं स्वर्णरं द्युक्षं होतारं वृजनेषु धूर्षदम् ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वज्जनो ! तुम (तना) विस्तृत (गिरा) वाणी से (वृजनेषु) जिन मार्गों में जन जाते हैं उनमें (धूर्षदम्) विमानादिकों की धुरियों को लेजाने तथा (होतारम्) पदार्थों को ग्रहण करनेवाले (समिधानम्) प्रचण्ड दीप्तियुक्त (सुप्रयसम्) सुन्दर मनोहर (द्युक्षम्) प्रकाशमान (स्वर्णरम्) सुख की प्राप्ति कराने हारे (जातवेदसम्) उत्तम होता है धन जिससे उस (अग्निम्) अग्नि को (हविषा) दान से (यजध्वम्) प्राप्त होओ और उस (यज्ञेन) यज्ञ से (वर्द्धत) बढ़ो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य शिल्पक्रिया से बिजुली आदि के रूप को जान, विमान आदि के कार्य्यों में अच्छे प्रकार युक्त करें वे ऐश्वर्य को प्राप्त हों ॥ १ ॥

अभि त्वा नक्तीरुषसो ववाशिरेऽग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः ।

दिव इवेदरतिर्मानुषा युगा क्षपो भासि पुरुवार संयतः ॥२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य प्रदीप्त विद्वज्जन ! (स्वसरेषु) गोष्ठों में (वत्सम्) बछड़े को (धेनवः) गौएँ (न) जैसे रंभाती हैं वैसे (नक्तीः) रात्रि और (उषसः) दिन (त्वा) आपको (अभि, ववाशिरे) सब ओर से शब्दायमान करते हैं अर्थात् प्रत्येक काम के नियत समय में आप अपने शब्दादि व्यवहार को प्राप्त होते हो । हे (पुरुवार) बहुतों को स्वीकार करने योग्य ! आप (दिवइव) सूर्यप्रकाश के समान अपने प्रकाश से (इत्) ही (अरतिः) सर्व व्यवहारों की प्राप्ति करानेवाले (मानुषाः) मनुष्यसम्बन्धी (युगा) युगवर्षों को और (क्षपः) निवासहेतु रात्रि समयों को (संयतः) संयम किये हुए (आ, भासि) अच्छे प्रकार प्रकाशमान होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जैसे गौएँ अपने बछड़ों को प्राप्त होती वैसे काल-विभाग परिश्रमी विद्वान् जन को प्राप्त होते हैं । जिस कारण उसके सब कार्य नियमयुक्त काल से सिद्ध होते हैं । आलसी जनों के काम कभी भी नियत समय पर नहीं होते । परिश्रमी विद्वान् जन रात्रि के समय को भी अपने कार्य का समय मानकर जैसा चाहते वैसे समय पर कार्य किया करते हैं और मनुष्य सम्बन्धी पूर्णायु को प्राप्त होते हैं किन्तु परिश्रम से आयु की हानि को नहीं प्राप्त होते ॥ २ ॥

तं देवा बुध्ने रजसः सुदंससं दिवस्पृथिव्योररतिं न्येरिरे ।

रथमिव वेद्यं शुक्रशोचिषमग्निं मित्रं न क्षितिषु प्रशंस्यम् ॥३॥

पदार्थ—जो (देवाः) विद्वान् (बुध्ने) अन्तरिक्ष में वा (रजसः) लोक के बीच में वा (दिवस्पृथिव्योः) सूर्य-पृथिवी के बीच (अरतिम्) प्राप्त (सुदंससम्) जिससे सुन्दर काम बनते हैं (शुक्रशोचिषम्) और शीघ्रता करनेवाला तेज जिसमें विद्यमान (वेद्यम्) जानने योग्य (तम्) उस (अग्निम्) अग्नि को (क्षितिषु) पृथिवियों में (प्रशंस्यम्) प्रशंसनीय (मित्रम्) मित्र के (न) समान वा (रथमिव) रथ के समान (न्येरिरे) निरन्तर कम्पाते अर्थात् चलाते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त क्यों न होवें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! यदि अन्तरिक्ष में स्थित पदार्थों में वर्त्तमान अग्नि को जानकर रथ के समान कार्यों में चलावे तो वह मित्र के समान कार्य्यों को सिद्ध करे ॥ ३ ॥

तमुक्षमाणं रजसि स्व आ दमे चन्द्रमिव सुरुचं ह्वार आ दधुः ।

पृश्न्याः पतरं चितयन्तमक्षभिः पाथो न पायुं जनसी उभे अनु ॥४॥

पदार्थ—जो विद्वान् जन (जनसी) सब पदार्थों को उत्पन्न करनेवाली द्यावापृथिवी अर्थात् सूर्य पृथिवी के सम्बन्ध से मानुषी सृष्टि के अन्नादि पदार्थ उत्पन्न होते हैं (उभे) दोनों वा (पाथः) जल (पायुम्) उसके पीनेवाले को (न) वैसे वर्त्तमान तथा (रजसि) ऐश्वर्य के निमित्त (उक्षमाणम्) सींचा हुआ (स्वे) अपने (दमे) कला घर में (चन्द्रमिव) सुवर्ण के समान (आ, सुरुचम्) अच्छे प्रकार प्रकाशमान (पृश्न्याः) वा अन्तरिक्ष के बीच (ह्वारे) जिस व्यवहार में कुटिल गति को पदार्थ प्राप्त होते हैं उसमें (पतरम्) गमन को प्राप्त होता (चितयन्तम्) और पदार्थों को इकट्ठा कराता (तम्) उस अग्नि को (अक्षभिः) इन्द्रियों के साथ (अन्वादधुः) अनुकूलता से स्थापन करते हैं वे पदार्थवेत्ता होते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे जल प्यासे को तृप्त करता है वैसे कार्यों में सम्प्रयुक्त किया हुआ अग्नि ऐश्वर्य के साथ जनों को युक्त करता है ॥४॥

स होता विश्वं परि भूत्वध्वरं तमु हव्यैर्मनुष ऋञ्जते गिरा ।

हिरिशिप्रो वृधसानासु जर्भुरद्द्यौर्न स्तृभिश्चितयद्रोदसी अनु ॥५॥

पदार्थ—जो (हिरिशिप्रः) ऐसा है कि जिसके मुख्यावयव पदार्थ को हरने और (होता) ग्रहण करनेवाले हैं (तम्) उस (विश्वम्) समस्त (अध्वरम्) न नष्ट करने योग्य शिल्पसाध्य व्यवहार को (परि, भूतु) विचारे और उसको (उ) तर्क-वितर्क के साथ (हव्यैः) ग्रहण करने योग्य पदार्थों और (गिरा) वाणी से (मनुषः) मनुष्य (ऋञ्जते) प्रसिद्ध करते हैं । जो अग्नि (वृधसानासु) बढ़ी हुई प्रजाओं में (रोदसी) द्यावापृथिवी के (अनु) अनुकूल (द्यौः) सूर्य (स्तृभिः) नक्षत्र अर्थात् तारागणों के साथ (न) जैसे-वैसे पदार्थों से (चितयत्) चेतन करे वा (जर्भुरत्) निरन्तर पदार्थों को धारण करे (सः) वह सबको कार्यों में अच्छे प्रकार युक्त कराने योग्य है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सूर्य नक्षत्रों को प्रकाशित करता है वैसे यह अग्नि समस्त विश्व को प्रकाशित करता है जो पढ़ने और सुनने से अग्निविद्या का ग्रहण करते हैं वे सुभूषित होते हैं ॥ ५ ॥

फिर विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

स नो रेवत्समिधानः स्वस्तये संददस्वान्रयिमस्मासु दीदिहि ।

आ नः कृणुष्व सुविताय रोदसी अग्ने हव्या मनुषो देव वीतये ॥६॥

पदार्थ—हे (देव) व्यवहारविद्याकुशल (अग्ने) विद्वन् ! जैसे (सः) वह (समिधानः) सम्यक् प्रकाशमान (संददस्वान्) अच्छे अग्नि (नः) हम लोगों के (स्वस्तये) सुख के लिए (रेवत्) बहुत धनयुक्त व्यवहार को धारण करता है वैसे आप (अस्मासु) हम लोगों में (रयिम्) धन को (आ, दीदिहि) प्रकाश कीजिए और (नः) हम लोगों को (सुविताय) ऐश्वर्य के लिए (कृणुष्व)

संगद्ध कीजिए वा जैसे (रोदसी) द्यावापृथिवी (दुक्षा) ग्रहण करने योग्य पदार्थ (मनुषः) मनुष्यों को प्राप्त कराती हुई (वीतये) सुख प्राप्ति के लिए होती हैं वैसे आप हूजिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे संसिद्ध किया हुआ अग्नि धन-प्राप्ति का निमित्त होता है वैसे अच्छे प्रकार प्राप्त हुए विद्वान् जन मनुष्यों को विद्या प्राप्ति के हेतु होते हैं ॥ ६ ॥

दा नो॑ अग्ने बृह॒तो दाः स॑ह॒स्रिणो॑ दु॒रो न वाज॒ं श्रुत्या॒ अपा॑ वृधि।

प्राची द्यावापृथिवी ब्रह्म॑णा कृधि॒ स्व॑र्ण शु॒क्रमु॒षसो॒ वि दि॑द्युतुः॥७॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वन् ! आप (नः) हम लोगो के लिए (बृहतः) बहुत भोग करने के पदार्थों को (दाः) दीजिए (वाजम्) ज्ञान (दुरः) द्वारो के (न) समान (श्रुत्यै) श्रवण से (सहस्रिणः) असख्यात सुखरूपी अङ्गयुक्त पदार्थों को (दाः) दीजिए और (अपा, वृधि) उनको प्रकट कीजिए तथा (प्राची) जो पहले से वर्त्तमान (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिवी को (ब्रह्मणा) धन से युक्त (कृधि) कीजिए (उषसः) दिनों को (शुक्रम्) शीघ्रकारी (स्वः) सुख के (न) समान (वि, दिद्युतुः) विशेष प्रकाशित कीजिए ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं। जो अग्नि के तुल्य असंख्य सुखद्वारो के समान विद्यामार्ग और यथासमय कार्यों से दिवसों को संयुक्त करते हैं वे सूर्य और पृथिवी के समान अन्नादि के संयोग से सुखी होते हैं ॥ ७ ॥

अब विद्वानों के विषय के अन्तर्गत-राजविषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

स इ॑धा॒न उ॒षसो॒ राम्या॒ अनु॒ स्व॑र्ण दी॑देदरु॒षेण॑ भा॒नुना॑।

होत्रा॑भिर॒ग्निर्मनु॑षः स्वध्व॒रो राजा॑ वि॒शामति॑थि॒श्चारु॑राय॒वे॥८॥

पदार्थ—जैसे (इधान) प्रकाशमान (स) वह (अग्नि) अग्नि (अरुषेण) उत्तम रूपयुक्त (भानुना) प्रकाश से (होत्राभि) ग्रहण की हुई क्रियाओं से (उषस) प्रतिदिन (राम्या) रात्रियो मे (मनुष) मनुष्यो को (स्व) सुख के (न) समान (अनु, दीदेत्) अनुकूलता से प्रकाशित कराता वैसे (चारु) सुन्दर (अतिथि.) सत्कार करने के योग्य जिस के ठहरने की अविद्यमान तिथि वह (स्वध्वर) न विनाशने योग्य (राजा) प्रकाशमान सभापति (आयवे) राजकार्य्य मे चलने अर्थात् प्रवृत्त होने के लिए (विशाम्) प्रजाजनो के बीच वर्त्ते ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं। जैसे अहोरात्रों का काटनेवाला सूर्य अपने तेज से सब के अनुकूल प्रकाशित होता है वैसे राजा सत्य और झूठ कार्य्य करनेवालो के विभाग से प्रजाजनो की पालना करे ॥ ८ ॥

ए॒वा नो॑ अग्ने अ॒मृते॑षु पूर्व्य॒ धीष्पी॑पाय बृ॒हद्दि॑वेषु॒ मानु॑षा।

दुहा॑ना धे॒नुर्वृ॒जने॑षु का॒रवे॒ त्मना॑ श॒तिनं॑ पुरु॒रूप॑मि॒षणि॑॥९॥

पदार्थ—हे (पूर्व्य) पूर्वज विद्वानो ने विद्या पढ़ाकर किये (अग्ने) विद्वन् ! (त्मना) अपने मे जो (बृहद्दिवेषु) बहुत प्रकाश जिन मे विद्यमान उन (वृजनेषु) बलयुक्त (अमृतेषु) विनाश और उत्पत्ति रहित जीवो मे (मानुषा) मनुष्य सम्बन्धी सुख और (इषणि) इच्छा के निमित्त (शतिनम्) अपरिमित, असख्य (पुरुरूपम्) जिसमे बहुत रूप विद्यमान उस व्यवहार को (दुहाना) दोहती, पूरा करती हुई (धेनु) वाणी ही है उन सबकी प्राप्ति कराते हुए (एव) ही (न) हम लोगो के लिए और (कारवे) करनेवाले के लिए (धी) बुद्धि और कर्मों की (पीपाय) वृद्धि कीजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—विज्ञान चाहने वाले जनों की शिष्ट, महात्मा जनों से पाई हुई बुद्धि को प्राप्त होकर बहुत प्रकार के पदार्थविज्ञान से मनुष्य-जन्म के धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी फलों को प्राप्त होना चाहिए ॥ ९ ॥

व॒यम॑ग्ने॒ अर्व॑ता वा सु॒वीर्य॒ं ब्रह्म॑णा वा चितयेमा॒ जनाँ॒ अति॑।

अ॒स्माकं॑ द्यु॒म्नमधि॒ पञ्च॑ कृ॒ष्टिषू॒च्चा स्व॑र्ण शु॑शुचीत दु॒ष्टर॑म्॥१०॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वन् ! आप (अर्वता) अश्वादि युक्त सेना समूह (वा) अथवा (ब्रह्मणा) धन से (दुष्टरम्) दुःख के साथ उल्लघन करने योग्य (सुवीर्यम्) उत्तम पराक्रम और (जनाम्) जनो को जतलाते हो वैसे (वयम्) हम लोग (अति, चितयेम) अत्यन्त चिन्ता से स्मरण कराते हैं। हे मनुष्यो ! जैसे (अस्माकम्) हम लोगो के (वा) अथवा विद्वानों के (स्व) सुख के (न) समान (द्युम्नम्) यश को (कृष्टिषु) मनुष्यो मे विद्वान् प्रकाशित करे वैसे इस को तुम लोग (शुशुचीत) शुद्ध करो जैसे हमारे (पञ्च) पाँच (उच्च) उत्तम (अधि) अधिकार ऊपर वर्त्तमान हैं वैसे तुम्हारे भी हों ॥१०॥

भावार्थ—विद्वानों के सङ्गी, ज्ञान चाहनेवाले पुरुषों को चाहिए कि आप्त शिष्ट जनों से जैसा विज्ञान प्राप्त हो वैसे ही औरो को देवें। जैसे हम लोगो के ब्रह्मचर्य, विद्या, बल, शील, पुरुषार्थ बढ़ते हैं वैसे सब के बढ़ें ऐसी हम लोग इच्छा करें ॥१०॥

स नो॑ बोधि सहस्य प्रशं॒स्यो॒ यस्मि॑न्त्सु॒जाता॑ इ॒षय॑न्त सू॒रयः॑।

यम॑ग्ने य॒ज्ञमु॑प॒यन्ति॑ वा॒जिनो॒ नित्ये॑ तो॒के दी॑दि॒वांसं॒ स्वे दमे॑॥११॥

पदार्थ—हे (सहस्य) बल के विषय मे उत्तम (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वन् ! (वाजिनः) उत्तम विज्ञान पुरुष ! (नित्ये) नित्य (तोके) छोटे व्यवहार मे और (स्वे) अपने (दमे) घर मे (दीदिवांसम्) प्रकाशित करते हुए (यम्) जिस (यज्ञम्) विद्याप्राप्ति के व्यवहार को (उपयन्ति) प्राप्त होते हैं (यस्मिन्) जिससे (सुजाता) उत्तम पुरुषार्थ से प्रसिद्ध (सूरय) विद्वान् जन आनन्द को (इषयन्त) प्राप्त होवें (सः) वह (प्रशस्यः) प्रशंसा करने योग्य यज्ञ (नः) हम लोगो को आप (बोधि) बतलाइए ॥११॥

भावार्थ—जो विद्वानों के मार्ग से और सुशीलता से नित्य पदार्थों को प्राप्त हो वे औरो को भी प्राप्त करावें ॥ ११ ॥

उ॒भया॑सो जातवेदः स्याम ते स्तो॒तारो॑ अग्ने सू॒रय॑श्च॒ शर्म॑णि।

वस्वो॑ रा॒यः पु॑रुश्च॒न्द्रस्य॒ भूय॑सः प्र॒जाव॑तः स्वप॒त्यस्य॑ श॒ग्धि नः॑॥१२॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) विज्ञान को प्राप्त हुए (अग्ने) परम विद्वन् और उपदेशक जन ! जिस कारण आप (न) हमारे (स्वपत्यस्य) सुन्दर सन्तानयुक्त (प्रजावत) प्रजावान् (भूयस) बहुल (वस्वः) निवास का हेतु (पुरुश्चन्द्रस्य) बहुत सुवर्णादि धनयुक्त (रायः) धन के दान करने को (शग्धि) समर्थ हो इससे (ते) आप के (शर्मणि) घर मे (स्तोतार) प्रशसक (सूरयः) और विद्वान् जन (उभयास) दोनों प्रकार के हम लोग उन्नति को प्राप्त (स्याम) होवें ॥१२॥

भावार्थ—जो धर्म से धनादि पदार्थों का सञ्चय करते हैं उन का अतुल धन, उत्तम प्रजा और सुशील अपत्य होते हैं जो पाण्डित्य और प्रगल्भता को प्राप्त होकर अध्यापक और उपदेशक होते हैं वे दुःख को नहीं देखते हैं ॥ १२ ॥

ये स्तो॒तृभ्यो॒ गोअ॑ग्रा॒मश्व॑पेशस॒मग्ने॑ रा॒तिमु॑पसृ॒जन्ति॑ सू॒रयः॑।

अ॒स्माञ्च॒ तांश्च॒ प्र हि नेषि॒ वस्य॒ आ बृ॒हद्व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑॥१३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! आप (ये) जो (सूरय.) विद्वान् जन (स्तोतृभ्य) सर्व विद्याओं की प्रशसा करनेवाले विद्वानो की (गोअग्राम्) जिस में पृथिवी वा धेनु मुख्य है और (अश्वपेशसम्) अश्वादिकों के रूप विद्यमान उस (रातिम्) दान को (उप, सृजन्ति) देते हैं (तान्) उनको (च) और अन्यों को तथा उन के समान (अस्मान्) हम लोगो को (च) और हमारे सम्बन्धियो को (हि) ही आप (प्रणेषि) सब विषय प्राप्त करते हैं इससे (विदथे) विशेष कर जानने योग्य व्यवहार मे (सुवीर) सुन्दर समस्त विद्याओं मे व्याप्त हम लोग (वस्य) अतिशय कर सब में वसन और अपने मे औरो का निवास करानेवाले (बृहत्) सब से बड़े ब्रह्म को (आ, वदेम) अच्छे प्रकार कहें उसका उपदेश करें ॥ १३ ॥

भावार्थ—जो उत्तम विद्वान् जन पढ़ानेवाले विद्वानो के लिए अधिकतर विद्या को अच्छे प्रकार देकर उन को श्रीमान् करते हैं वे हमारे प्रणेता अर्थात् सर्व विषयों को प्राप्त करानेवाले हो ॥ १३ ॥

इस सूक्त मे अग्नि के विषय से विद्वानों के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह समझना चाहिए ॥

यह दूसरे मण्डल में दूसरा सूक्त और इक्कीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

समिद्ध इत्येकादशर्चस्य तृतीयसूक्तस्य गृत्समद ऋषिः। अग्निर्देवता। १, २ विराट्त्रिष्टुप्, ३, ५, ६ भुरिक् त्रिष्टुप्, ४, ९, ११ निचृत् त्रिष्टुप्, ८, १० त्रिष्टुप् छन्दः। धैवत स्वरः। ७ जगती छन्द। निषाद स्वर ॥

अब ग्यारह ऋचावाले तीसरे सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में अग्नि का वर्णन किया है—

समि॑द्धो अ॒ग्निर्निहि॑तः पृथि॒व्यां प्र॒त्यङ् विश्वा॑नि॒ भुव॑नान्यस्थात्।

होता॑ पाव॒कः प्र॒दिवः॑ सुमे॒धा दे॒वो दे॒वान्य॑जत्व॒ग्निरर्ह॑न्॥१॥

पदार्थ—जैसे (सुमेधाः) शोभना मेधा बुद्धि जिसकी वह (देव:) दिव्य विद्वान् (देवान्) विद्वानों को (यजतु) प्राप्त हो वैसे (होता) सर्व पदार्थों का ग्रहण करनेवाला (पावक.) पवित्र करनेवाला (अर्हन्) योग्यता को प्राप्त हुआ (अग्निः) अग्नि भी है जैसे (पृथिव्याम्) पृथिवी मे (निहित:) रक्खा हुआ (समिद्ध.) अच्छे प्रकार प्रदीप्त (प्रत्यङ्) प्रत्येक पदार्थ को प्राप्त होनेवाला (अग्निः) अग्नि (विश्वानि) सब (भुवनानि) भूगोलो को (अस्थात्) निरन्तर स्थिर होता है वैसा (प्रदिव.) जिस की उत्तम विद्या प्रकाशित है वह विद्वान् हो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। यदि इस संसार में ईश्वर अग्नि को न रचे तो कोई प्राणी सुख को न प्राप्त हो सके, जैसे विद्वान् विद्वानों का सत्कार करें वैसे अन्य लोग भी विद्वानों का सत्कार करें ॥ १ ॥

अब अग्नि के दृष्टान्त से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

नराशंसः प्रति धामान्यञ्जन्तिस्रो दिवः प्रति मह्ना स्वर्चिः ।
घृतप्रुषा मनसा हव्यमुन्दन्मूर्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जैसे (नराशंस) मनुष्यों को प्रशंसा करने योग्य (धामानि) स्थानों को (प्रत्यञ्जन्) प्रकट करता हुआ (स्वर्चिः) प्रशंसित दीप्तिवाला अग्नि (मह्ना) अपने बड़प्पन से (तिस्रः) गार्हपत्य, आहवनीय, दाक्षिणात्य से तीन (दिवः) दीप्तियों को तथा (हव्यम्) भक्षण करने योग्य पदार्थ (प्रत्युन्दन्) आर्द्रपन से प्रतिकूल करता हुआ (यज्ञस्य) यज्ञ के (मूर्धन्) उत्तम अङ्ग में (घृतप्रुषा) तेज से परिपूर्ण वा प्रचण्ड (मनसा) अपने गुणों का जो विज्ञान उससे (देवान्) दिव्य गुण वा विद्वानों को अच्छे प्रकार प्रकट है वैसे (समनक्तु) प्रकट कीजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे अग्नि, बिजुली प्रसिद्ध और सूर्यरूप से सब व्यवहारों को पूर्ण करता है वैसे विद्वान् जन विद्या, धर्म और सुन्दर शील आदि की प्राप्ति से समस्त आशा जो मनुष्यों की, उनको पूर्ण करें ॥२॥

ईळितो अग्ने मनसा नो अर्हन्देवान्यक्षि मानुषात्पूर्वो अद्य ।
स आ वह मरुतां शर्धो अच्युतमिन्द्रं नरो बर्हिषदं यजध्वम् ॥३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) बिजुली के समान प्रचण्ड प्रतापवाले विद्वज्जन ! (मानुषात्) और मनुष्य से (पूर्वः) प्रथम (नः) हम लोगों का (अर्हन्) सत्कार करते हुए (ईळितः) स्तुति को प्राप्त (मनसा) विज्ञान से (देवान्) दिव्य गुणों के समान विद्वानों का (यक्षि) सत्कार करते हैं (सः) सो आप (मरुताम्) पवनों के (अच्युतम्) न नष्ट होनेवाले (इन्द्रम्) बिजुलीरूप (बर्हिषदम्) बड़े-बड़े पदार्थों में स्थिर होनेवाले (शर्धः) बल को (अद्य) आज (आ, वह) प्राप्त कीजिए । हे (नरः) अग्रगामी नायकजनो ! उसको आप लोग (यजध्वम्) प्राप्त हूजिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो विद्वानों का सत्कार कर विद्या को ग्रहण करती हुई पवनों में स्थिर होनेवाली बिजुली को ग्रहण कर सकते हैं वे अक्षयबली होकर सर्वत्र सत्कार को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

देवं बर्हिर्वर्धमानं सुवीरं स्तीर्णं राये सुभरं वेद्यस्याम् ।
घृतेनाक्तं वसवः सीदतेदं विश्वे देवा आदित्या यज्ञियासः ॥४॥

पदार्थ—हे (देव) अग्नि के समान प्रकाशमान ! आप (राये) धन के लिए (स्तीर्णम्) जो ढँपा हुआ (सुवीरम्) जिससे अच्छे-अच्छे वीर होते हैं उस (वर्धमानम्) बढ़ते हुए (सुभरम्) सुख के धारण करने योग्य (बर्हिः) जल को (अस्याम्) इस (वेदी) वेदी में (घृतेन) घी से (अक्तम्) युक्त करो । हे (वसवः) पृथिव्यादिकों वा (आदित्याः) महीनों के समान विद्वानो ! तुम जैसे (यज्ञियासः) यज्ञ करने में समर्थ (विश्वे) समस्त (देवाः) दिव्यगुणयुक्त विद्वान् जन (इदम्) इस धन को प्राप्त होते हैं वैसे उसको (सीदत) प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । मनुष्यों को चाहिए कि अवश्य अन्तरिक्षस्थ जल, सुगन्ध्यादि पदार्थ युक्त करें जिससे समस्त प्राणी आरोग्य हों ॥ ४ ॥

अब स्त्री-पुरुषों के आचरण को कहते हैं—

वि श्रयन्तामुर्विया हूयमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा नमोभिः ।
व्यचस्वतीर्वि प्रथन्तामजुर्या वर्णं पुनाना यशसं सुवीरम् ॥५॥२२॥

पदार्थ—हे पुरुषो ! आप (नमोभिः) अन्नादिकों वा (उर्विया) पृथिवी के साथ वर्त्तमान (द्वारः) द्वारों के समान शोभावती हुई और (हूयमानाः) ग्रहण की हुई (सुप्रायणाः) जिनकी सुन्दर चाल (अजुर्याः) ज्वररहित मनुष्यों में उत्तमता को प्राप्त (सुवीरम्) उत्तम वीरों से युक्त (यशसम्) यश और (वर्णम्) अपने रूप को (पुनानाः) पवित्र करती हुई (व्यचस्वतीः) समस्त गुणों में व्याप्ति रखनेवाली (देवीः) देदीप्यमान अर्थात् चमकती-दमकती हुई स्त्रियों को (वि, श्रयन्ताम्) विशेषता से आश्रय करो और उनके साथ शास्त्र वा सुखों को (वि, प्रथन्ताम्) विशेषता से कहो-सुनो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे कारुकों के बनाये घरों में सुन्दर शोभायुक्त बनाये हुए द्वार होवें वैसे विदुषी धर्मपरायण पतिव्रता स्त्री कीर्तिमती और उत्तम सन्तानों की उत्पन्न करनेवाली होती है ॥ ५ ॥

साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषासानक्ता वय्येव रण्विते ।
तन्तुं ततं संवयन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती ॥६॥

पदार्थ—हे स्त्रीपुरुषो ! (तन्तुम्) सूत को (वय्येव) जैसे वस्त्र बननेवाली नली वा (रण्विते) शब्दायमान (यज्ञस्य) सराहने योग्य यज्ञकर्म के (ततम्) विस्तृत (पेशः) रूप को (संवयन्ती) उत्पन्न कराते और (समीची) अच्छे प्रकार अपनी-अपनी कक्षा में चलते हुए (पयस्वती) प्रशंसित जलयुक्त (सुदुघे) सुन्दरता से सब कामों को पूरा करनेहारे (उक्षिते) सींचे हुए (उषासानक्ता) रात्रि दिन के समान तुम दोनों (नः) हम लोगों के लिए (सनता) नम्रभाव के साथ वर्त्तमान (साधु) उत्तम (अपांसि) कर्मों को कराओ ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार है । सन्तान और भृत्यजन अपने पालनेवाले स्त्री-पुरुषों के प्रति ऐसी प्रार्थना करें कि तुम हमसे धर्मयुक्त कार्य कराओ ॥ ६ ॥

दैव्या होतारा प्रथमा विदुष्टर ऋजु यक्षतः समृचा वपुष्टरा ।
देवान्यजन्तावृतुथा समञ्जतो नाभा पृथिव्या अधि सानुषु त्रिषु ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (दैव्या) विद्वानों में कुशल (होतारा) लेने-देनेवाले (प्रथमा) प्रख्यात (विदुष्टरा) अतीव विद्वान् (वपुष्टरा) अतीव रूपलावण्ययुक्त (ऋचा) प्रशंसित (ऋतुथा) ऋतु-ऋतु में (देवान्) पृथिवी आदि लोकों के समान (यजन्ता) सत्कार करते हुए स्त्रीपुरुष (पृथिव्याः) पृथिवी के (नाभा) बीच (ऋजु) सरलता जैसे हो वैसे (संयक्षतः) सब व्यवहारों की सङ्गति करें वा (त्रिषु) तीन (सानुषु) शिखरों के (अधि) ऊपर (समञ्जतः) अच्छे प्रकार काम करें वैसे तुम भी प्रयत्न करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या और शिक्षा को प्राप्त सुन्दरता से युक्त स्वयंवर विवाह विधि से पाणिग्रहण किये हुए विद्वानों के सङ्गी, आप्त शास्त्रज्ञ, धर्मात्मा, विद्वान् अध्यापक स्त्री-पुरुष सत्कर्मों में वर्त्तते हैं वैसे सबको प्रयत्न करना चाहिए ॥ ७ ॥

सरस्वती साधयन्ती धियं न इळा देवी भारती विश्वतूर्तिः ।
तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य ॥८॥

पदार्थ—जो (साधयन्ती) विद्या और उत्तम शिक्षा से औरों को विद्वान् कराती (सरस्वती) प्रशस्त विज्ञान करानेवाली वाणी-सदृश स्त्री (देवी) देदीप्यमान (इळा) स्तुति करने योग्य (विश्वतूर्तिः) समस्त संसार को शीघ्रता करानेवाली (भारती) और शुभ गुणों को धारण करनेवाली (तिस्रः) तीन (देवीः) मनोहर देवी (इदम्) इस (अच्छिद्रम्) छिद्ररहित (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (निषद्य) निरन्तर प्राप्त होके (स्वधया) अन्न से (नः) हमारी (धियम्) बुद्धि वा कर्म को (आ, पान्तु) अच्छे प्रकार पालें उनका (शरणम्) आश्रय हम लोगों को करना चाहिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—एक माता दूसरी पढ़ानेवाली और तीसरी उपदेश करनेवाली स्त्री कन्याओं को सदा समीप में सेवनी चाहिएँ जिससे बुद्धि और विद्या नित्य बढ़े ॥ ८ ॥

अब पुरुष विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः ।
प्रजां त्वष्टा वि ष्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथः ॥९॥

पदार्थ—जैसे (पिशङ्गरूपः) सुवर्ण के रूप के समान जिसका रूप (सुभरः) भरण-पोषण करता हुआ (वयोधाः) गर्भ स्थापन करनेवाला (देवकामः) और विद्वानों की कामना करता वह (श्रुष्टी) शीघ्र (वीरः) सकल विद्याओं को प्राप्त होनेवाला पुरुष (जायते) उत्पन्न होता है जैसे (त्वष्टा) विविध रूप रचनेवाला ईश्वर (अस्मे) हम लोगों को (प्रजाम्) सन्तान (वि, ष्यतु) देवे (अथ) इसके अनन्तर हम (देवानाम्) विद्वानों की (नाभिम्) नाभि को और (पाथः) रक्षा करनेहारे अन्न को (अपि) भी (एतु) प्राप्त होवें ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो अच्छा संस्कार किये, रोग हरने और बुद्धि देनेवाले उत्तम अन्न का भोजन कर सन्तानोत्पत्ति करते हैं उनके सन्तान विद्वानों के प्रिय, दीर्घ आयुवाले और सुशील होते हैं ॥ ९ ॥

वनस्पतिरवसृजन्नुप स्थादग्निर्हविः सूदयाति प्र धीभिः ।
त्रिधा समक्तं नयतु प्रजानन्देवेभ्यो दैव्यः शमितोप हव्यम् ॥१०॥

पदार्थ—हे विद्वन् जैसे (धीभिः) कर्मों के साथ वर्त्तमान (वनस्पतिः) बरगद आदि (अवसृजन्) फलादिकों का त्याग करता हुआ (उप, स्थात्) उपस्थित होता है वा (अग्निः) अग्नि (त्रिधा) तीन प्रकार के (समक्तम्) समूह को प्राप्त हुए (हविः) होमने योग्य द्रव्य को (सूदयाति) प्राणिमात्र के सुख के लिए कण-कण करके पहुँचाता है वैसे (शमिता) शान्ति करनेवाला (दैव्यः) विद्वानों में प्राप्त हुए (प्रजानन्) उत्तम ज्ञान को प्राप्त होते हुए आप (देवेभ्यः) दिव्य गुणों के लिए (उप, हव्यम्) समीप में ग्रहण करने योग्य पदार्थ को (प्र, नयतु) प्राप्त कीजिए ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वनस्पति और अग्नि अपने कर्मों से समस्त प्राणियों का उपकार करते हैं वैसे विद्वान् जन अध्ययन-अध्यापन और उपदेश से सबका उपकार करें ॥ १० ॥

घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम ।
अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥११॥२३॥

पदार्थ —हे (**वृषभ**) श्रेष्ठ जन ! जो आप (**स्वाहाकृतम्**) उत्तम क्रिया से उत्पन्न किये हुए (**हव्यम्**) ग्रहण करने योग्य पदार्थ को (**वक्षि**) प्राप्त करते हो सो आप (**अनुष्वधम्**) अन्न के अनुकूल व्यञ्जन द्रव्य को (**आ, वह**) सब प्रकार से प्राप्त कीजिए जैसे मैं (**घृतम्**) घी को (**मिमिक्षे**) सींचने की इच्छा करता हूँ वैसे आप सींचने की इच्छा कर। जैसे (**अस्य**) इस अग्नि का (**घृतम्**) प्रदीप्त होने का मूल (**योनिः**) कारण है (**घृते**) घी मे (**श्रितः**) सेवन किया जाता (**घृतम्**) तेज (**उ**) ही (**अस्य**) इस अग्नि का (**धाम**) आधार है वैसे उससे आप (**मादयस्व**) आनन्दित हूजिए ॥ ११ ॥

भावार्थ - इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है । जो मनुष्य यज्ञ मे अग्नि जैसे वैसे उपकार करनेवाले, परोपकार का आश्रय किये हुए, औरो को सुखी करते हैं वैसे आप भी उनसे उपकार को प्राप्त और आनन्दित होते हैं ॥ ११ ॥

इस सूक्त में अग्नि, विद्वान् और स्त्रीपुरुषों के आचरण का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह दूसरे मण्डल मे तीसरा सूक्त और तेईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

हुव इति नवर्चस्य चतुर्थस्य सूक्तस्य सोमाहुतिर्भार्गव ऋषि । अग्निर्देवता । १, ८ स्वराट् पङ्क्ति , २, ३, ५ – ७ आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चम स्वर. । ४ ब्राह्म्युष्णिक् छन्द । ऋषभ स्वर । ९ निचृत्त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वरः ॥

अब नव ऋचावाले चतुर्थ सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम द्वितीय मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं –

हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिं विशामग्निमतिथिं सुप्रयसम् ।
मित्रइव यो दिधिषाय्यो भूद्देव आदेवे जने जातवेदाः ॥१॥

पदार्थ —हे मनुष्यो ! जैसे मैं (**आदेवे**) सब ओर से विद्या प्रकाशयुक्त (**जने**) विद्वान् मनुष्य के निमित्त (**य**) जो (**मित्र, इव**) मित्र के समान (**देव**) व्यवहार का हेतु (**दिधिषाय्य.**) यथावत् पदार्थों का धारण करनेवाला (**जातवेदा**) उत्पन्न हुए पदार्थों मे विद्यमान अग्नि प्रसिद्ध (**भूत्**) होता है उस को (**विशाम्**) प्रजाजनों के बीच (**सुद्योत्मानम्**) सुन्दरता से निरन्तर प्रकाशमान (**सुप्रयसम्**) अच्छे प्रकार मनोहर (**सुवृक्तिम्**) सुन्दर त्याग करनेवाले (**अतिथिम्**) अतिथि के समान वर्त्तमान (**अग्निम्**) अग्नि की (**व**) तुम लोगों के लिए (**हुवे**) प्रशसा करता हूँ वैसे हम लोगो के लिए तुम अग्नि की प्रशसा करो ॥ १ ॥

भावार्थ —इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो मनुष्य परस्पर विद्या देके जगत् के प्रकाश को धारण कर वा मित्रो के समान सुख देनेवाले विद्वानो को जानने योग्य बिजुलीरूप अग्नि की प्रशसा करते हैं वे उसके गुणों को जाननेवाले होते हैं ॥ १ ॥

इमं विधन्तो अपां सधस्थे द्वितादधुर्भृगवो विक्ष्वा३योः ।
एष विश्वान्यभ्यस्तु भूमा देवानामग्निररतिर्जीराश्वः ॥२॥

पदार्थ —जो (**एष**) यह (**अरति**) समर्थ (**जीराश्व.**) जिसके वेगवान् शीघ्रगामी गुण विद्यमान वह (**अग्नि**) अग्नि (**भूमा**) बहुताई से (**देवानाम्**) दिव्य-गुणवाले पृथिवी आदि लोक-लोकान्तरों के (**विक्षु**) प्रजागणो मे (**आयोः**) प्राप्त व्यवहार को (**विश्वानि**) समस्त वस्तुओं को सब ओर से व्याप्त होता हुआ विद्यमान है जिस (**इमम्**) इस अग्नि को (**विधन्तः**) सेवते हुए (**भृगव**) विद्वान् जन (**अपाम्**) अन्तरिक्ष के जल वा प्राणों के (**सधस्थे**) समान स्थान मे (**अदधु**) धरते, स्थापन करते हैं उस के साथ यहाँ (**द्विता**) दोनों व्यवहारो का भाव अर्थात् शराग्निभाव और पञ्चकलाग्निभाव (**अभ्यस्तु**) सब ओर से हो ॥२॥

भावार्थ – जो अग्नि अपनी व्याप्ति से प्रजाजनों मे प्रविष्ट है उससे समस्त वेगवान् यन्त्रकलाओ से प्रचलित किये हुए यान शीघ्र चलनेवाले बनाने चाहिएँ ॥२॥

फिर अग्नि कार्यों से विद्वानो के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अग्निं देवासो मानुषीषु विक्षु प्रियन्धुः क्षेष्यन्तो न मित्रम् ।
स दीदयदुशतीरूर्म्या आ दक्षाय्यो यो दास्वते दम आ ॥३॥

पदार्थ —जिस (**अग्निम्**) अग्नि को (**मानुषीषु**) मनुष्यसम्बन्धी (**विक्षु**) प्रजाजनो में (**क्षेष्यन्तः**) निवास करते हुए (**देवासः**) विद्वान् जन (**प्रियम्**) प्रिय, मनोहर (**मित्रम्**) मित्र के (**न**) समान (**धाधु**) अच्छे प्रकार स्थापन करें (**य**) जो (**दक्षाय्य.**) सब पदार्थो को छिन्न-भिन्न करनेवाला अग्नि (**दमे**) कलाघर मे (**दास्वते**) दानशील जन के लिए (**उशती.**) मनोहर (**ऊर्म्याः**) रात्रियों को (**आ दीदयत्**) प्रज्वलित करता, प्रकाशित करता है (**सः**) वह सबको सम्प्रयुक्त करना चाहिए अर्थात् वह कलाघरों मे युक्त करना चाहिए ॥ ३ ॥

भावार्थ —इस मन्त्र में उपमालंकार है । जो अग्नि मित्र के समान सुख देता और सब प्रजाजनों मे प्रदीप समान सब वस्तुओं को प्रकाशित करता है वह विद्वानों को अपने कामों मे अनुकूल उसका योग करना चाहिए ॥ ३ ॥

अस्य रण्वा स्वस्येव पुष्टिः संदृष्टिरस्य हियानस्य दक्षोः ।
वि यो भरिभ्रदोषधीषु जिह्वामत्यो न रथ्यो दोधवीति वारान् ॥४॥

पदार्थ —(**यः**) जो (**रथ्य**) रथो मे उत्तम प्रशंसित (**अत्यः**) सुशिक्षित तुरङ्ग उसके (**न**) समान (**वारान्**) बालको को जैसे वैसे स्वीकार करने योग्य लोकों को और (**जिह्वाम्**) अपनी जिह्वा को (**दोधवीति**) निरन्तर कम्पाता है और (**ओषधीषु**) सोमलतादि ओषधियों में (**वि, भरिभ्रत्**) विशेषकर निरन्तर गुणो को धारण करता हुआ विद्यमान है उस (**अस्य**) इसकी हुई (**स्वस्येव**) अपनी पुष्टि के समान दूसरे की (**रण्वा**) प्रशसनीय (**पुष्टिः**) पुष्टि अर्थात् धातुवृद्धि और (**हियानस्य**) वृद्धि को प्राप्त होते हुए (**अस्य**) इस (**दक्षोः**) दाह करनेवाले अग्नि की (**संदृष्टिः**) अच्छे प्रकार दृष्टि करनी चाहिए ॥४॥

भावार्थ —इस मन्त्र में उपमालंकार है । मनुष्यों को जैसे अपने पोषण के लिए अग्निविद्या प्राप्त की जाती है, वैसे औरो के लिए भी करनी चाहिए । जो ईंधनों से बढ़ता है और पदार्थों को जलाता है वह रथो मे युक्त किया हुआ अग्नि शीघ्र गमन कराता है । जैसे वक्ता अपनी जिह्वा को कम्पाता है वैसे अग्नि भूगोलों को कम्पाता है ॥ ४ ॥

आ यन्मे अभ्वं वनदः पनन्तोशिग्भ्यो नामिमीत वर्णम् ।
स चित्रेण चिकिते रंसु भासा जुजुर्वाँ यो मुहुरा युवा भूत् ॥५॥२४॥

पदार्थ — (**यत्**) जो (**चित्रेण**) अद्भुत (**भासा**) प्रकाश से (**मे**) मेरे (**वर्णम्**) रूप का (**चिकिते**) विज्ञान कराता (**सः**) वह (**रंसु**) रमणीय पदार्थ को (**अभ्वम्**) जल के समान (**आ**) अच्छे प्रकार जतलाता है (**यः**) जो (**जुजुर्वान्**) जीर्ण हुआ भी (**मुहु**) बार-बार (**युवा**) तरुण के समान (**आ, भूत्**) अच्छे प्रकार होता है जिसकी (**उशिग्भ्य**) कामना करते हुए जनों को (**वनद**) प्रशंसा करनेवाले विद्वान् (**पनन्त**) प्रशमारूप स्तुति करते हैं वह (**न**) नहीं (**अमिमीत**) मान करता अर्थात अपनी तीक्ष्णता के कारण सबको जलाता, सब मनुष्य उसका अच्छे प्रकार प्रयोग करें ॥ ५ ॥

भावार्थ —जो अग्नि के समस्त अविद्यमान को विद्यमान के समान करता और जैसे जीव वृद्धपन और मरण को प्राप्त होकर फिर उत्पन्न हुआ जवान होता है वैसे बार-बार वृद्धि और क्षय को प्राप्त होता है वह अग्नि व्यवहारो मे युक्त करने योग्य है ॥ ५ ॥

आ यो वना तातृषाणो न भाति वार्ण पथा रथ्येव स्वानीत् ।
कृष्णाध्वा तपू रण्वश्चिकेत द्यौरिव स्मयमानो नभोभिः ॥६॥

पदार्थ —जो (**वना**) वन और जलो के प्रति (**तातृषाणः**) निरन्तर प्यासे के (**न**) समान (**आ, भाति**) अच्छे प्रकार प्रकाशित होता है और (**पथा**) मार्ग से (**वा**) जल के (**न**) समान तथा (**रथ्येव**) रथ आदि के लिए जो हित है उस मार्ग अर्थात् सड़क के समान (**स्वानीत्**) शब्दायमान होता है जो (**कृष्णाध्वा**) काले वर्णयुक्त (**तपु**) सब ओर से तपानेवाला (**रण्व**) रमणीय (**स्मयमानः**) कुछ मुसकाता-सा हुआ (**द्यौरिव**) सूर्य के प्रकाश के समान (**नभोभि**) अन्नादि पदार्थों मे (**चिकेत**) उद्बोध को प्राप्त हो अर्थात् प्रज्वलित हो वह विद्वानो ही को जानने योग्य है ॥ ६ ॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे उपमालकार है। जैसे कोई अति तृषायुक्त कहनेवाला जन हँसता हुआ कहे कि जल मार्ग मे जाता है वैसे वनस्थ अग्नि बहुत शब्दायमान होता है ॥ ६ ॥

फिर अग्निपरता से ही विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है —

स यो व्यस्थादभि दक्षदुर्वीं पशुर्नैति स्वयुरगोपाः ।
अग्निः शोचिष्माँ अतसान्युष्णन्कृष्णव्यथिरस्वदयन्न भूम ॥७॥

पदार्थ —हे मनुष्यो ! (**य.**) जो (**भूम**) बहुताई के साथ (**व्यस्थात्**) विविध प्रकार मे स्थित होता है (**स्वयुः**) जो आप जाता अर्थात् विना चैतन्य के समान गति देता है (**अगोपाः**) पालन करनेवाले गुणो से रहित पदार्थों को अपने प्रताप से सन्ताप देनेवाला (**पशुः**) पशु के (**न**) समान (**एति**) जाता है (**उर्वीम्**) और भूमि को (**अभि, दक्षत्**) सब ओर से जलाता है (**सः**) वह (**शोचिष्मान्**) बहुत लपटोंवाला (**कृष्णव्यथि.**) पदार्थों के अणों को खींचने और उनको व्यथित करनेवाला (**अग्निः**) अग्नि (**अतसानि**) निरन्तर जानेवाले त्रसरेणु आदि पदार्थों को (**उष्णन**) जलाता और (**अस्वदयत्**) स्वादिष्ट करता हुआ (**न**) सा वर्तमान है ॥ ७ ॥

भावार्थ - इस मन्त्र में उपमालंकार है । जो पृथिवी आदि पदार्थों मे व्यवस्था को प्राप्त, मूर्त्तिमान् पदार्थों का जलानेवाला, रक्षकरहित पशु के समान आप जानेवाला, प्रकाशमय अग्नि अपने तेज से बिखरे हुए त्रसरेणुओं को भी सब ओर से तपाता है वह अग्नि बलिष्ठ है यह जानना चाहिए ॥ ७ ॥

नू ते पूर्वस्यावसो अधीतौ तृतीये विदथे मन्म शंसि ।
अस्मे अग्ने संयद्वीरं बृहन्तं क्षुमन्तं वाजं स्वपत्यं रयिं दाः ॥८॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वज्जन ! (ते) आपकी (पूर्वस्य) पिछली (अवसः) रक्षा सम्बन्ध के (अधीतौ) अध्ययन में (तृतीये) तीसरे (विदथे) संग्राम के निमित्त आप ही (मन्म) विज्ञान की (शंसि) स्तुति अर्थात् प्रशंसा करते हैं वे आप (अस्मे) हम लोगों के लिए (संयद्वीरम्) जिसमें संयमयुक्त वीरजन विद्यमान (बृहन्तम्) जो बढ़ता हुआ है (क्षुमन्तम्) उस प्रशंसित अन्न और (स्वपत्यम्) उत्तम अपत्ययुक्त (वाजम्) पदार्थ बोध और (रयिम्) धन को (धु) शीघ्र (धाः) दीजिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! जिस विद्या पढ़े हुए रक्षा करनेवाले के समीप से तृतीय सवन अर्थात् ब्रह्मचर्य के तीसरे भाग को शीघ्र पूर्ण किये पीछे अन्यादि विद्याएँ प्राप्त होकर उत्तम धन, बल और प्रजावान् हम लोग हों उसको आप बतलाइए ॥८॥

त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने गुहा वन्वन्त उपराँ अभि ष्युः ।

सुवीरासो अभिमातिषाहः स्मत्सूरिभ्यो गृणते तद्वयो धाः ॥९॥२५॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्वन् ! (यथा) जैसे (त्वया) आपके साथ वर्त्तमान (गृत्समदासः) और जिनका बुद्धिमानों के आनन्द के समान आनन्द है वे (गुहा) बुद्धि में (वन्वन्तः) सब प्रकार के पदार्थों का विभाग करते हुए (सुवीरासः) उत्तम वीरों से युक्त जन (सूरिभ्यः) विद्वानों से विद्याओं को प्राप्त होकर (उपरान्) मेघों को सूर्य के समान (अभिमातिषाहः) अभिमान करने और शत्रुजनों को सहनेवाले (अभिष्युः) सब ओर से हों वैसे जो (तत्) उस (वयः) काम को (धाः) धारण करता है उसकी जो (गृणते) स्तुति करते हैं उनके साथ (स्मत्) ही हम लोग भी ऐसे हों ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे आप विद्वानों से विद्या और शिक्षा ग्रहण कर आनन्दित, विजयमान और वीरपुरुषों से युक्त प्रशंसनीय जन होते हैं वैसे अग्निविद्या से युक्त पुरुष अन्धकार को जैसे सूर्य वैसे दुःख का विनाश करते हैं ॥ ९ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह दूसरे मण्डल में चौथा सूक्त और पच्चीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

होतेत्यष्टर्चस्य पञ्चमस्य सूक्तस्य सोमाहुतिर्भार्गव ऋषिः । अग्निर्देवता ।
१, ३, ६ निचृदनुष्टुप्; २, ४, ५ अनुष्टुप्, ८ विराडनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः । ७ भुरिगुष्णिक् छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

अब आठ ऋचावाले पाँचवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में जीव के गुणों का वर्णन करते हैं—

होताजनिष्ट चेतनः पिता पितृभ्य ऊतये ।

प्रयक्षञ्जेन्यं वसु शकेम वाजिनो यमम् ॥१॥

पदार्थ—जैसे (होता) आदाता अर्थात् गुणादि वा अन्य पदार्थों का ग्रहणकर्त्ता (चेतनः) ज्ञानादि गुणयुक्त (पिता) और पालन करनेवाला जीव (ऊतये) रक्षा आदि के लिए (पितृभ्यः) वा पालन करनेवालों के लिए (जेन्यम्) जीतने योग्य (यमम्) नियमकर्त्ता को और (वसु) धन को (अजनिष्ट) उत्पन्न करे और विद्वान् जन (प्रयक्षन्) प्रकृष्टता से सङ्ग करते हैं वैसे (वाजिनः) विज्ञानवान् हम लोग उक्त विजय की प्राप्ति कर (शकेम) सकें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर इस संसार में सबकी रक्षा के लिए अनेक द्रव्यों को रचता है वैसे विद्वान् जन भी आचरण करें ॥ १ ॥

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

आ यस्मिन्त्सप्त रश्मयस्तता यज्ञस्य नेतरि ।

मनुष्वद्दैव्यमष्टमं पोता विश्वं तदिन्वति ॥२॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिस (यज्ञस्य) सङ्ग करने के योग्य जगत् के (नेतरि) नायक सविता सूर्यमण्डल में (सप्त) सात (रश्मयः) किरणें (आतताः) विस्तृत हैं उसमें जो (मनुष्वत्) मनुष्य के तुल्य (दैव्यम्) दिव्य रश्मियों में प्रसिद्ध (अष्टमम्) आठवाँ विस्तृत है वह (पोता) शुद्ध करनेवाला (विश्वम्) समस्त जगत् को प्रकाशित करता है और (तत्) उस सूर्यमण्डल को भी (इन्वति) व्याप्त होता है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो सप्तविध रश्मियोंवाला सूर्य परिमाण से विस्तार को प्राप्त और पवित्र करनेवाला है उसमें जो चेतन ब्रह्म व्याप्त वर्त्तमान है वह समस्त सूर्यादिक को व्यवस्था प्राप्त करता है, जैसे मनुष्य शिल्पक्रिया से अनेक वस्तुओं को बनाते हैं वैसे जगदीश्वर अखिल संसार का विधान करता है ॥ २ ॥

दधन्वे वा यदीमनु वोचद्ब्रह्माणि वेरु तत् ।

परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभवत् ॥३॥

पदार्थ—सूर्य (यत्) जो (ईम्) जल को (दधन्वे) धारण करता है ब्रह्मवेत्ता (वा) वा (ब्रह्माणि) बड़े-बड़े ब्रह्मविषयों का (अनुवोचत्) बार-बार उपदेश करता है (तत्) उस सबको जिस कारण ईश्वर (वेः, उ) जानता ही है और (विश्वानि) समस्त (काव्या) उत्तम बुद्धिमानों के कर्मों को (परि) सब ओर से जानता ही है इस कारण जैसे (नेमिः) धुरी (चक्रम्) पहिये को वर्त्तानेवाली होती वैसे इस संसार के व्यवहारों को वर्त्तानेवाला विद्वान् (अभवत्) होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । सूर्य जल को धारण करता है वा विद्वान् जन ब्रह्मविषयादि का कहते हैं उस सबको व्यापक परमेश्वर साङ्गोपाङ्ग जानता है ॥ ३ ॥

अब विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

साकं हि शुचिना शुचिः प्रशास्ता क्रतुनाजनि ।

विद्वाँ अस्य व्रता ध्रुवा वया इवानु रोहते ॥४॥

पदार्थ—जो (विद्वान्) विद्वान् जन (शुचिना) पवित्र (क्रतुना) बुद्धि वा कर्म के (साकम्) साथ (शुचिः) शुद्ध (प्रशास्ता) उत्तम शासनकर्त्ता (अजनि) उत्पन्न होता है (हि) वही (अस्य) इस ईश्वर प्रकाशित चारों वेदों के (ध्रुवा) निश्चल अविनाशी (व्रता) सत्याचरणों को स्वीकार कर (वयाइव) विस्तार को प्राप्त शाखाओं के समान (अनु, रोहते) वृद्धि को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो पवित्र विद्वानों के साथ सङ्ग कर उत्तम विद्या को उत्पन्न करके अज्ञजनों के उपदेशक हो वेदविहित कर्मों का आचरण कर आप बढ़ते हैं वे औरों की उन्नति करनेवाले होते हैं ॥ ४ ॥

अब विदुषी स्त्री के विषय में कहते हैं—

ता अस्य वर्णमायुवो नेष्टुः सचन्त धेनवः ।

कुवित्तिसृभ्य आ वरं स्वसारो या इदं ययुः ॥५॥

पदार्थ—(याः) जो (स्वसारः) बहन, कन्याजन (तिसृभ्यः) कर्म, उपासना और ज्ञान विद्याओं से (कुवित्, वरम्) स्वीकार करने योग्य बन्धुसमुदाय को (आ, ययुः) प्राप्त होवें (ताः) वे (अस्य) इस (नेष्टुः) नायक सर्वविद्याओं में अग्रगामी वेद के (वर्णम्) स्वीकार करने योग्य विषय और (इदम्) जल को (आयुवः) प्राप्त हुईं (धेनवः) गौओं के समान सबको सुखों से (सचन्त) सम्बन्ध करती हैं ॥ ५

भावार्थ—जो बहन अपने प्रियबन्धु को और कन्या विद्याविषय को प्राप्त होती हैं वे गौओं के समान उत्तम सुख को उत्पन्न करती हैं ॥ ५ ॥

यदी मातुरुप स्वसा घृतं भरन्त्यस्थित ।

तासामध्वर्युरागतौ यवो वृष्टीव मोदते ॥६॥

पदार्थ—(यदि) जो (घृतम्) जल को (उप, भरन्ती) समीप होकर भरनेवाली (मातुः) माता की (स्वसा) बहिन वा (तासाम्) उन पूर्वोक्त कन्याओं की अध्यापिका (अस्थित) स्थित होती है तो ऋत्विक् और (अध्वर्युः) यज्ञ का करनेवाला यज्ञ को (आगतौ) प्राप्त होकर आनन्दित होते हैं वैसे (यवः, वृष्टीव) वृष्टि से ओषधि वैसे (मोदते) हर्ष को प्राप्त होती हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । यदि कन्याजन अध्यापिका विदुषी और माता को प्राप्त होकर विदुषी होती हैं तो जल से ओषधियों के समान सब ओर से वृद्धि को प्राप्त होती हैं ॥ ६ ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है -

स्वः स्वाय धायसे कृणुतामृत्विगृत्विजम् ।

स्तोमं यज्ञं चादरं वनेमा ररिमा वयम् ॥७॥

पदार्थ—जैसे (स्वः) आप (स्वाय) अपने (धायसे) धारण करनेवाले स्वभाव के लिए (कृणुताम्) किसी काम को करें वा (ऋत्विक्) ऋतुओं के अनुकूल सब व्यवहारों की प्राप्ति कराता हुआ (ऋत्विजम्) दूसरे को अपने अनुकूल वा (स्तोमम्) स्तुति, प्रशंसा के योग्य व्यवहार (यज्ञम्, च) और यज्ञ को करे वैसे (वयम्) हम लोग (ररिम) रमें (आत्) और (अरम्) परिपूर्ण (वनेम) अच्छे प्रकार सब पदार्थों का सेवन करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे आप अपने हित के लिए प्रवृत्त हों वा विद्वान् जन विद्वानों और यज्ञ करनेवाले विविध प्रकार के क्रियायज्ञ को सिद्ध करते हैं वैसे हम लोग भी प्रवृत्त हों ॥ ७ ॥

यथा विद्वाँ अरं करद्विश्वेभ्यो यजतेभ्यः ।

अयमग्ने त्वे अपि यं यज्ञं चकृमा वयम् ॥८॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (यथा) जैसे (अयम्) यह (विद्वान्) आप्तजन (विश्वेभ्यः) समस्त (यजतेभ्यः) विद्वानों की सेवा करनेवालों से पाई हुई विद्याओं से (अरम्) दूसरों को परिपूर्ण (करत्) करता है वैसे (त्वे) तेरे निमित्त (यम्) जिस (यज्ञम्) यज्ञ को (वयम्) हम लोग परिपूर्ण (चकृम) करें वैसे तू (अपि) भी कर ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे आप्त विद्वान् जन जगत् के लिए सत्योपदेश कर मनुष्यों को सत्य बोधवाले करते हैं वैसे सब आप्त विद्वानों को निरन्तर अनुष्ठान करना-कराना चाहिए ॥ ८ ॥

इस सूक्त में जीव, ईश्वर, विद्वान् और विदुषियों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह दूसरे मण्डल में पाँचवाँ सूक्त और छब्बीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

इमामित्यस्याष्टर्चस्य षष्ठस्य सूक्तस्य सोमाहुतिर्भार्गव ऋषिः। अग्निर्देवता। १, ३, ५, ८ गायत्री, २, ४, ६ निचृद्गायत्री, ७ विराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब आठ ऋचावाले छठे सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि के गुणों का वर्णन करते हैं—

इमां मे अग्ने समिधमिमामुपसदं वनेः। इमा उ षु श्रुधी गिरः ॥१॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान अध्यापक विद्वन् ! जैसे अग्नि (मे) मेरे (इमाम्) इस (समिधम्) ईंधन को और (इमाम्) इस (उपसदम्) वेदी को कि जिसमें स्थित होते हैं सेवन करता है वैसे आप (वनेः) सेवन करनेवाले विद्यार्थी की (इमा, उ, गिरः) वाणियों को (सु, श्रुधि) सुन्दरता से सुनो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वन् ! जैसे अग्नि समिधाओं में बढ़ता है वैसे हम लोगों की परीक्षा से और हमारे वचनों को सुनकर बढ़ाइए ॥ १ ॥

अब विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्रों में कहा है—

अया ते अग्ने विधेमोर्जो नपादश्वमिष्टे। एना सूक्तेन सुजात ॥२॥

पदार्थ—हे (सुजात) शोभन गुणों में प्रसिद्ध ! (अश्वमिष्टे) घोड़े की इच्छा करने और (ऊर्जः) बल को (नपात्) न पतन करानेवाले (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान (ते) आपके सम्बन्ध में जो (अग्निः) अग्नि है उस की (अया) इस समिधा से और (सूक्तेन) उत्तमता से कहे हुए सूक्त से हम लोग (विधेम) सेवन करें ॥ २ ॥

भावार्थ—जो विद्या और साधनों में अग्नि का युक्ति के साथ अच्छे प्रकार प्रयोग करते हैं वे अग्नि के पराक्रम से अपने कामों को सिद्ध कर सकते हैं ॥ २ ॥

तं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसं द्रविणस्युं द्रविणोदः। सपर्येम सपर्यवः ॥३॥

पदार्थ—हे (द्रविणोदाः) धन को देनेवाले विद्वान् जन ! अग्नि के समान वर्त्तमान (द्रविणस्युम्) अपने को धन की इच्छा करनेवाले (गिर्वणसम्) विद्यायुक्त वाणी को सेवते हुए (तम्) उन (त्वा) आपको (सपर्यवः) अपने को सेवने की इच्छा करनेवाले जन (गीर्भिः) सुन्दर शिक्षित वाणियों से सेवते हैं वैसे हम लोग (सपर्येम) सेवन करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो गुण, कर्म, स्वभाव से अग्नि को विशेष जानकर कार्यसिद्धि के लिए उसका अच्छे प्रकार प्रयोग करते हैं वे श्रीमान् होते हैं ॥ ३ ॥

स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन्। युयोध्य१स्मद्द्वेषांसि ॥४॥

पदार्थ—हे (वसुपते) धनों की पालना करने और (वसुदावन्) धनों को देनेवाले जो (मघवा) परमप्रशंसित धनयुक्त (सूरिः) विद्वान् ! आप (बोधि) सब व्यवहारों को जानते हैं (सः) सो आप (अस्मत्) हम लोगों के (द्वेषांसि) वैर भरे हुए कामों को (युयोधि) अलग कीजिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो राग द्वेषरहित गुणग्राही जन होते हैं वे औरों को भी अपने सदृश करके दाता हुए लक्ष्मीवान् होते हैं ॥ ४ ॥

स नो वृष्टिं दिवस्परि स नो वाजमनर्वाणम्।
स नः सहस्रिणीरिषः ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (सः) वह अग्नि (नः) हम लोगों के लिए (दिवः) सूर्य प्रकाश और मेघमण्डल से (वृष्टिम्) वर्षाओं को करता है वा (सः) वह अग्नि (नः) हम लोगों को (अनर्वाणम्) घोड़े जिसमें नहीं विद्यमान हैं उस (वाजम्) वेगवान् रथ को प्राप्त कराता है वा (सः) वह अग्नि (नः) हमारे लिए (सहस्रिणीः) असंख्यात प्रकार के (इषः) अन्नों को (परि) सब ओर से उत्पन्न कराता है वैसे आप वर्त्ताव कीजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को वैसा यत्न करना चाहिए जिससे अग्नि की उत्तेजना से बहुत उपकार हों ॥ ५ ॥

ईळानायावस्यवे यविष्ठ दूत नो गिरा। यजिष्ठ होतरा गहि ॥६॥

पदार्थ—हे (यविष्ठ) अतीव युवावस्थावाले (यजिष्ठ) अत्यन्त प्रशंसा और सत्कार के योग्य (दूत) दुष्टों को सब ओर से कष्ट देने और (होतः) दानकर्म करनेवाले ! आप जैसे (अवस्यवे) अपने को रक्षा की इच्छा करनेवाले (ईळानाय) स्तुति करते हुए जन के लिए (गिरा) वाणी से सुख देते हैं वैसे आप (नः) हम लोगों को (आगहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे मनुष्यों का दूतरूप अग्नि, पृथिवीतल के ऊपर पदार्थों को पहुँचा और जलों को वर्षाकर सबकी रक्षा का निमित्त होता है वैसे विद्वान् जन उत्तम वचन से सबका हित करनेवाला होता है ॥ ६ ॥

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अन्तर्ह्यग्न ईयसे विद्वान् जन्मोभया कवे। दूतो जन्येव मित्र्यः ॥७॥

पदार्थ—हे (कवे) क्रम-क्रम से बुद्धि को विषयों में प्रविष्ट करनेवाले सर्वज्ञ (अग्ने) बिजुली के समान आप ही प्रकाशमान जगदीश्वर वा (विद्वान्) सब विषयों को जाननेवाले विद्वान् जन ! आप (हि) ही (मित्र्यः) मित्रों में साधु (दूतः) सब से समाचार के देनेहारे (जन्येव) जनों के लिए हितकारी जैसे हों वैसे (अन्तः) हृदयाकाश के बीच (ईयसे) प्राप्त होते हो (उभया) वर्त्तमान के साथ अगले-पिछले (जन्म) जन्म और कर्मों को जानते हो इससे हम लोगों के उपासना करने योग्य हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सत्य का उपदेश और सत्य का आचरण करनेवाला पुरुष सबका प्रिय, प्यारे काम को चाहनेवाला सबका मित्र शास्त्रज्ञ, धर्मात्मा विद्वान् बाहर-भीतर विज्ञान देकर धर्म में नियत करता है वैसे भीतर बाहर परमेश्वर सबके समस्त कामों को जानकर फल देता है ॥ ७ ॥

स विद्वाँ आ च पिप्रयो यक्षि चिकित्व आनुषक्।
आ चास्मिन्त्सत्सि बर्हिषि ॥८॥

पदार्थ—हे (चिकित्वः) विज्ञानवान् ईश्वर (सः) वह (विद्वान्) विद्वन् ! आप (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) अन्तरिक्ष जगत् में (आसत्सि) आसन्न हो रहे हो, प्राप्त हो रहे हो सो आप (आनुषक्) अनुकूल जैसे हो वैसे (आ, पिप्रयः) अच्छे प्रसन्न करते (च) और (यक्षि, च) अच्छे प्रकार सब वस्तु देते हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग जो इस जगत् में व्याप्त, प्रिय पदार्थ का देनेवाला और सर्वज्ञ अन्तर्यामी ईश्वर है उसी की उपासना करें ॥ ८ ॥

इस सूक्त में वह्नि और ईश्वर के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह छठा सूक्त और सत्ताईसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

श्रेष्ठमिति षडृचस्य सप्तमस्य सूक्तस्य सोमाहुतिर्भार्गव ऋषिः। अग्निर्देवता। १—३ निचृद् गायत्री, ४ निचृद् गायत्री; ५ विराट् पिपीलिका मध्या, ६ विराट् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब छः ऋचावाले सातवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र से विद्वानों के गुणों का वर्णन करते हैं—

श्रेष्ठं यविष्ठ भारताऽग्ने द्युमन्तमा भर। वसो पुरुस्पृहं रयिम् ॥१॥

पदार्थ—हे (वसो) सुखों में वास कराने और (भारत) सब विद्या विषयों को धारण करनेवाले (यविष्ठ) अतीव युवावस्था युक्त (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान विद्वन् ! आप (श्रेष्ठम्) अत्यन्त कल्याण करनेवाली (द्युमन्तम्) बहुत प्रकाशयुक्त (पुरुस्पृहम्) बहुतों को चाहने योग्य (रयिम्) लक्ष्मी को (आ, भर) अच्छे प्रकार धारण कीजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—जो उत्तम धन-लाभ के लिए बहुत यत्न करते हैं वे धनाढ्य होते हैं ॥ १ ॥

मा नो अरातिरीशत देवस्य मर्त्यस्य च। पर्षि तस्या उत द्विषः ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (नः) हम (देवस्य) विद्वान् (मर्त्यस्य, च) और अविद्वान् का (अरातिः) शत्रु (मा, ईशत) मत समर्थ हो (उत) और हम लोगों को और (तस्याः) उस (द्विषः) अप्रीतिवाले शत्रु के (पर्षि) पार पहुँचाइए ॥ २ ॥

भावार्थ—जो द्वेष छोड़ धार्मिक विद्वानों को तथा अविद्वानों के साथ प्रीति उत्पन्न कराते हैं वे किसी से तिरस्कार को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

विश्वा उत त्वया वयं धारा उदन्याइव। अति गाहेमहि द्विषः ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (त्वया) आप्त विद्वान् जो आप उनके साथ वर्त्तमान हम लोग (धाराः, वयस्वतीः इव) जल की धाराओं को जैसे वैसे (विश्वाः) समस्त (द्विषः) वैरवृत्तियों को (अति, गाहेमहि) अवगाहें, विलोड़ें, वैसे आप (उत) भी इन को गाहो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे जल की धारा प्राप्त हुए स्थान को छोड़ दूसरे स्थान को जाती है वैसे शत्रुभाव को छोड़ मित्रभाव को सब मनुष्य प्राप्त होवें ॥ ३ ॥

शुचिः पावक वन्द्योऽग्ने बृहद्वि रोचसे । त्वं घृतेभिराहुतः ॥४॥

पदार्थ—हे (पावक) पवित्र करनेवाले (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान ! (घृतेभिः) घी आदि पदार्थों से अग्नि के समान (शुचिः) पवित्र (वन्द्यः) स्तुति के योग्य (त्वम्) आप (बृहत्) बहुत (विरोचसे) प्रकाशमान होते हैं सो सत्कार करने योग्य हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे घी आदि पदार्थों से प्रज्वलित किया हुआ पवित्र करनेवाला अग्नि बहुत प्रकाशित होता है वैसे सत्कार पाया हुआ विद्वान् जन बहुत उपकार करता है ॥ ४ ॥

त्वं नो असि भारताऽग्ने वशाभिरुक्षभिः । अष्टापदीभिराहुतः ॥५॥

पदार्थ—हे (भारत) सब विषयों को धारण करनेवाले (अग्ने) विद्वन् ! जो (वशाभिः) मनोहर गौओं से वा (उक्षभिः) बैलों से वा (अष्टापदीभिः) जिन में आठ सत्यासत्य के निर्णय करनेवाले चरण हैं उन वाणियों से (आहुतः) बुलाये हुए आप (नः) हम लोगों के लिए सुख दिये हुए (असि) हैं सो हम लोगों से सत्कार पाने योग्य हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य आठ स्थानों में उच्चारण की हुई वाणी से सत्य का उपदेश करता हुआ गवादि पशु की रक्षा से सब की पालना का विधान करता है वह सब को रखने के योग्य है ॥ ५ ॥

द्र्वन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः । सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥६॥

पदार्थ—जिन विद्वानों से (प्रत्नः) पुरातन (द्र्वन्नः) तथा जिस का काष्ठ, अन्न और (सर्पिरासुतिः) घी, दुग्धसार पान के लिए विद्यमान हैं और जो (सहसस्पुत्रः) बलवान् वायु के समान है वह (अद्भुतः) आश्चर्य गुण, कर्म स्वभावयुक्त (होता) सब पदार्थों को देनेवाला (वरेण्यः) स्वीकार करने योग्य अग्नि कार्य सिद्धि के लिए प्रयुक्त किया जाता है वे आश्चर्यरूप धनाढ्य होते हैं ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । अग्नि का भोजन स्थानी काष्ठ और पीने के अर्थ सब ओषधियों का रस विद्यमान है यह जानकर काष्ठ और ओषधिसार जल आदि के संयोग से कलाघरों में अग्नि का प्रयोग करना चाहिए ॥६॥

इस सूक्त में विद्वान् और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह दूसरे मण्डल में सप्तम सूक्त और अट्ठाईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

वाजयन्निति षड्ऋचस्याऽष्टमस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । १ गायत्री; २ निचृत् पिपीलिकामध्या गायत्री, ३, ५ निचृद्गायत्री, ४ विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । ६ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले आठवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अग्नि विषय का वर्णन करते हैं—

वाजयन्निव नू रथान्योगाँ अग्नेरुप स्तुहि । यशस्तमस्य मीळ्हुषः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (वाजयन्निव) पदार्थों को प्राप्त कराते हुए आप (मीळ्हुषः) सींचनेवाले (यशस्तमस्य) अतीव यशस्वी वा बहुत जलयुक्त (अग्नेः) अग्नि के समान प्रतापी जल के वा अग्नि के (योगान्) योगों को और (रथान्) विमानादि रथों की (नु) शीघ्र (उपस्तुहि) प्रशंसा कीजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । हे शिल्पी विद्वान् जन ! आप जैसे घोड़ों और बैल आदि से चलनेवाले रथों को चलाते हैं वैसे ही अति शीघ्र गति से जल के कलाघरों से प्रेरणा पाया अग्नि विमानादि यानों को शीघ्र चलाता है यह सब के प्रति उपदेश करो ॥ १ ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यः सुनीथो ददाशुषेऽजुर्यो जरयन्नरिम् । चारुप्रतीक आहुतः ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो अग्नि के समान (चारुप्रतीकः) सुन्दर गुण, कर्म और स्वभावों से प्रतीत (आहुतः) वा बुलाया हुआ (अजुर्यः) जो न जीर्ण होते, न नष्ट होते हैं उन में प्रसिद्ध (सुनीथः) सुन्दरता से सब की प्राप्ति करता है और (अरिम्) शत्रुजन का नाश करता हुआ (ददाशुषे) दानशील के लिए सुख देता है वह लक्ष्मीवान् होता है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे शिल्पकामों में प्रेरणा किया हुआ अग्नि उत्तम कामों को सिद्ध करता है वैसे सुन्दर शिक्षा पाये हुए बुद्धिमान् जन बहुत-सी उन्नति करते हैं ॥ २ ॥

य उ श्रिया दमेष्वा दोषोषसि प्रशस्यते । यस्य व्रतं न मीयते ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप (यः) जो (दमेषु) घरों में (दोषा) वा रात्रि और (उषसि) दिन में (श्रिया) शोभा से (आ, प्रशस्यते) अच्छे प्रकार प्रशंसा को प्राप्त किया जाता और (यस्य) जिसका (व्रतम्, उ) शील (न) न (मीयते) नष्ट होता है उस के समान हूजिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे अग्नि का शील और स्वरूप अनादि अविनाशी वर्त्तमान है वैसे ईश्वर, जीव और आकाश आदि पदार्थों का शील और स्वरूप नित्य वर्त्तमान है ॥ ३ ॥

आ यः स्व१र्ण भानुना चित्रो विभात्यर्चिषा ।

अञ्जानो अजरैरभि ॥ ४ ॥

पदार्थ—(यः) जो बिजुलीरूप (चित्रः) चित्र-विचित्र अद्भुत अग्नि (अजरैः) अविनाशी पदार्थों से (अभि, अञ्जानः) सब ओर से सब पदार्थों को प्रकट करता हुआ अग्नि (अर्चिषा) प्रशंसनीय (भानुना) प्रकाश से (स्वः) आदित्य के (न) समान (आ, विभाति) अच्छे प्रकार प्रकाशित होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—अग्नि वह सूक्ष्म परमाणुरूप पदार्थों में सर्वदा अपने रूप के साथ रहता है काष्ठ आदि पदार्थों में वृद्धि और न्यूनता आदि से कोई समय में बढ़ता और कभी कमती होता है ॥ ४ ॥

अत्रिमनु स्वराज्यमग्निमुक्थानि वावृधुः । विश्वा अधि श्रियो दधे ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (उक्थानि) कहने योग्य वचन (अत्रिम्) सब पदार्थ भक्षण करनेवाले (स्वराज्यम्) अपने प्रकाश से युक्त (अग्निम्) बिजुली रूप अग्नि को (अनु, वावृधुः) अनुकूलता से बढ़ाते हैं और जैसे उन से (विश्वाः) समस्त (श्रियः) धनों को (अधि, दधे) अधिक-अधिक मैं धारण करता हूं वैसे तुम को भी धारण करना चाहिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । विद्वानों की योग्यता है कि जिन उपदेशों से अग्न्यादि पदार्थविद्या राज्यलक्ष्मी बढ़े उनसे सब को उद्योगी करें ॥ ५ ॥

अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य देवानामूतिभिर्वयम् ।

अरिष्यन्तः सचेमह्यभि ष्याम पृतन्यतः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (अग्नेः) अग्नि (इन्द्रस्य) सूर्य (सोमस्य) चन्द्रमा और (देवानाम्) विद्वान् और पृथिवी आदि लोकों की (ऊतिभिः) रक्षा आदि व्यवहारों के साथ वर्त्तमान (अरिष्यन्तः) न नष्ट होते और (पृतन्यतः) अपने को सेना की इच्छा करते हुए (वयम्) हम लोग (सचेमहि) सङ्ग करें और मित्रपन के लिए (अभि, ष्याम) सब ओर से प्रसिद्ध होवें वैसे तुम भी होओ ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे विद्वान् जन अग्न्यादि विद्या से रक्षित सब के मित्र प्रशंसित सेनावाले होकर मित्र होते हुए धर्म और विद्या की उन्नति करें वैसे सब मनुष्य प्रयत्न करें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह दूसरे मण्डल में उनतीसवां वर्ग और आठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां परमविदुषां श्रीमद्विरजानन्दसरस्वती-
स्वामिनां शिष्येण श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वती-
स्वामिना निर्मिते आर्यभाषासुभूषिते सुप्रमाणयुक्त ऋग्वेदभाष्ये
द्वितीयाष्टके पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ॥

अथ द्वितीयाष्टके षष्ठाऽध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

नि होतेति षडृचस्य नवमस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषि । अग्निर्देवता ।
१, ३ त्रिष्टुप्, ४ विराट् त्रिष्टुप्, ५, ६ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवत. स्वर । २ पङ्क्तिश्छन्द. । पञ्चमः स्वर ॥

अथ द्वितीय अष्टक में छठे अध्याय का आरम्भ है उसके प्रथम सूक्त में
अग्निविषयक विद्वानों के कर्मों को कहते हैं—

नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ असदत्सुदक्षः ।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥१॥

पदार्थ—विद्वानों को जो (होतृषदने) ग्रहीता जनो के रथ वा वेदी मे (होता) ग्रहण करनेहारा (विदान) विद्यमान (त्वेषः) दीप्तियुक्त (दीदिवान्) बार बार प्रकाशित होता हुआ (सुदक्षः)सुन्दर जिससे बल होता (अदब्धव्रतप्रमतिः) नहीं नष्ट हुए शील से जिसका ज्ञान होता (वसिष्ठः) जो अतीव निवास करानेहारा (शुचिजिह्वः) और जिससे जिह्वा पवित्र होती वह (सहस्रम्भर) सहस्रों जगत् का धारण और पोषण करनेवाला (अग्नि) बिजुली आदि कार्य कारण स्वरूप अग्नि (नि, असदत्) निरन्तर स्थिर होता है उसका प्रयोग सदा अच्छे प्रकार करने योग्य है ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य कार्यों में प्रदीप्त नित्य गुणकर्मस्वभावयुक्त पवित्र करनेवाले सकल पदार्थों के धारणकर्त्ता अग्नि को यथावत् प्रयुक्त करते हैं वे अविनाशी सुखवाले होते हैं ॥ १ ॥

त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पास्त्वं वस्य आ वृषभ प्रणेता ।
अग्ने तोकस्य नस्तने तनूनामप्रयुच्छन्दीद्यद्बोधि गोपाः ॥२॥

पदार्थ—हे (वृषभ) बलवान् (अग्ने) अग्नि के समान विद्वन् ! (त्वम्) आप (नः) हमारे (दूत) देशान्तर पहुँचानेवाले (त्वम्) आप (उ) ही (परस्पा.) सबसे पार और रक्षा करनेवाले (त्वम्) आप (वस्यः) निवास करने योग्य (तोकस्य) सन्तान को (आ, प्रणेता) सब ओर से अच्छे प्रकार समस्त गुणों मे प्रवृत्त करानेहारे (नः) हम लोगो के (तनूनाम्) शरीरो के (तने) विस्तार में (अप्रयुच्छन्) न प्रमाद कराते हुए (गोपा) शरीर की रक्षा करनेवाले (दीद्यत्) सब विषयों को प्रकाश कराते (बोधि) और जानते हो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य, अग्नि प्रयोग से प्रेरणा दी हुई नौका समुद्र से पार जैसे पहुँचाती, वैसे दुःखरूपी समुद्र से पार करते हैं, सन्तानों की शिक्षा मे और शरीरो की रक्षा करने मे प्रवीण और प्रमाद को छोड़ धर्म के अनुष्ठान करनेवाले हैं वे यहाँ आभ्युदयिक सुख को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे ।
यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवींषि जुहुरे समिद्धे ॥३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! हम लोग (स्तोमैः) स्तुतियों से (ते) आपके (परमे) उत्तम और (अवरे) अनुत्तम जन्म के निमित्त (विधेम) विचारें (यस्मात्) जिस (योनेः) कारण से आप (उदारिथ) प्राप्त होवे हो उस (सधस्थे) साथ के स्थान में हम लोग (विधेम) उत्तम व्यवहार का विधान करें । जैसे (त्वे) उस (समिद्धे) प्रदीप्त अग्नि में (हवींषि) होने अर्थात् देने योग्य पदार्थों को विद्वान् जन (जुहुरे) होमते वैसे मैं (तम्) उसका (प्रयजे) पदार्थों से सङ्ग करूं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो शुभ कर्मों को करते हैं वे श्रेष्ठ जन्म को प्राप्त होते हैं, जो अधर्म का आचरण करते हैं वे नीच जन्म को प्राप्त होते हैं । जैसे विद्वान् जन जलते हुए अग्नि मे सुगन्ध्यादि द्रव्य का होम कर ससार का उपकार करते हैं वैसे वे सब से उपकार को वर्त्तमान जन्म में वा जन्मान्तर मे प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

अग्ने यजस्व हविषा यजीयाञ्छ्रुष्टी देष्णमभि गृणीहि राधः ।
त्वं ह्यसि रयिपती रयीणां त्वं शुक्रस्य वचसो मनोता ॥४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वन् ! जिस कारण (त्वम्) आप (रयीणाम्) धनादि पदार्थों के बीच (रयिपति) धनपति और (त्वम्) आप (शुक्रस्य) शुद्ध करनेवाले (वचसः) वचन के (मनोता) उत्तमता से जतलानेवाले (असि) हैं (हि) इसी से (यजीयान्) अत्यन्त यज्ञकर्त्ता होते हुए (हविषा) होमने योग्य वस्तु से (यजस्व) यज्ञ कीजिए और (देष्णम्) देने योग्य (राधः) धन की (श्रुष्टी) शीघ्र (अभि, गृणीहि) सब ओर से प्रशंसा करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो धनाढ्य धन से परोपकार करें वे सब के प्यारे होते हैं ॥ ४ ॥

उभयं ते न क्षीयते वसव्यं दिवेदिवे जायमानस्य दस्म ।
कृधि क्षुमन्तं जरितारमग्ने कृधि पतिं स्वपत्यस्य रायः ॥५॥

पदार्थ—हे (दस्म) परदुःख भञ्जन करनेवाले और (अग्ने) अग्नि के समान बढ़नेवाले विद्वन् (दिवेदिवे) प्रतिदिन (जायमानस्य) सिद्ध हुए जिन (ते) आपका (उभयम्) दान और यज्ञ करना दोनों (वसव्यम्) धनों में प्रसिद्ध हुए काम (न) नहीं (क्षीयते) नष्ट होते सो आप (जरितारम्) विद्यादि गुण की प्रशंसा करनेवाले (क्षुमन्तम्) बहुत अन्नवाले को (कृधि) उत्पन्न करो और (स्वपत्यस्य) जिससे उत्तम सन्तान होते उस (रायः) देने योग्य धन को (पतिम्) पालने, रखनेवाले को (कृधि) कीजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ— उसी के कुल से धन नाश नहीं होता जो और सुपात्रों के लिए ससार का उपकार करने को देता है ॥ ५ ॥

सैनानीकेन सुविदत्रो अस्मे यष्टा देवाँ आयजिष्ठः स्वस्ति ।
अदब्धो गोपा उत नः परस्पा अग्ने द्युमदुत रेवद्दिदीहि ॥६॥१॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्वन् जैसे (स) वह देनेवाला (अस्मे) हमारे (एना) इस (अनीकेन) सेना समूह के साथ (सुविदत्रः) सुन्दर विज्ञान देने (यष्टा) और सब व्यवहारो की सङ्गति करनेवाला अच्छा ज्ञानी वा दाता (आ, यजिष्ठ.) सब ओर से अतीव यज्ञकर्त्ता (अदब्ध) न नष्ट हुआ (गोपा) गोपाल (नः) हमको परस्पाः) दुःखो से पार करनेवाला (द्युमत्) विज्ञान प्रकाशयुक्त (उत) और (रेवत्) बहुत धन सहित (स्वस्ति) सुख को देता है (उत) और (देवान्) दिव्य गुण वा अपना विजय चाहनेवाले वीरो को सेवते हैं वैसे आप उक्त समस्त को (दीदिहि) दीजिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे उत्तम सेना से युक्त राजा दुष्टों को जीत विद्वानो का सत्कार कर और प्रजा को अच्छे प्रकार रक्षा कर सबका ऐश्वर्य बढ़ाता है वैसे सभो को होना चाहिए ॥ ६ ॥

इस सूक्त मे अग्नि के समान विद्वानों के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥
यह नववाँ सूक्त और पहला वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

जोहूत्र इति षडृचस्य दशमस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता ।
१,२, ६ विराट् त्रिष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्, ४ निचृत् त्रिष्टुप् छन्द ।
धैवतः स्वरः । ५ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

अब छः ऋचावाले दशवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में
अग्नि विषय का उपदेश किया है ॥

जोहूत्रो अग्निः प्रथमः पितेवेळस्पदे मनुषा यत्समिद्धः ।
श्रियं वसानो अमृतो विचेता मर्मृजेन्यः श्रवस्यः स वाजी ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यत्) जो (मनुषा) मनुष्य से (पितेव) पिता के समान (प्रथमः) पहला विस्तृत गुण, कर्मवाला (इळस्पदे) पृथिवी तल पर (जोहूत्र) अतीव सङ्ग करने अर्थात् कलाघरों में लगाने योग्य (समिद्धः) प्रज्वलित (श्रियम्) शोभा को (वसानः) ढाँपनेवाला (अमृतः) नाशरहित (विचेता) जिससे चैतन्यपन विगत है अर्थात् जो जड़ (मर्मृजेन्यः) शुद्धि करनेवाला (श्रवस्यः) अन्नादि पदार्थों में उत्तम और (वाजी) बहुत वेगादि गुणों से युक्त (अग्निः) अग्नि शिल्पकार्यों मे अच्छे प्रकार प्रयुक्त किया जाता है (सः) वह तुम को भी सयुक्त करना चाहिए ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जो अग्नि पृथिवी में प्रसिद्ध, शिल्पकार्य्यों के प्रयोग मे अच्छे प्रकार लगाया हुआ धन का देनेवाला स्वरूप से नित्य, चेतना गुणरहित और अति वेगवान् है वह अच्छे प्रकार प्रयोग किया हुआ पिता के तुल्य शिल्पिजनों को पालता है ॥ १ ॥

अब विद्वानों को अग्निविद्या-ग्रहण का उपदेश किया जाता है—

श्रूया अग्निश्चित्रभानुर्हवं मे विश्वाभिर्गीर्भिरमृतो विचेताः ।
श्यावा रथं वहतो रोहिता वोतारुषाह चक्रे विभृत्रः ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जो (चित्रभानुः) चित्र-विचित्र दीप्तिवाला (अमृतः) मृत्यु धर्मरहित (विचेताः) विविध प्रकार का ज्ञान जिससे होता है

(विभृत्रः) और जो नाना प्रकार पदार्थों से धारणकरनेवाला (अग्निः) अग्नि है जिसके सम्बन्ध के (रथम्) रथ को सवितृमण्डलस्थ (रोहिता) ललामी आदि गुण के लिए (उत) और (अरुषा) मर्मस्थलों में व्याप्त होने और (श्यावा) सब विषयों की प्राप्ति करानेवाले, धारण और आकर्षण गुण (वहतः) एक देश से दूसरे देश को पहुँचाते हैं (वा) अथवा (अह) निश्चय से उसको (चक्रे) शिल्पीजन बनाता है उसकी विद्या के उपदेश को (मे) मेरी (विश्वाभिः) समस्त (गीर्भिः) वाणियों से (शृणुत) सुनिए ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य जिससे बिजुली आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं सबका जीवन भी होता है उस अग्नि की विद्या को सब उपायों से ग्रहण करें ॥ २ ॥

उत्तानायामजनयन्त्सुषूतं भुवदग्निः पुरुपेशासु गर्भः ।

शिरिणायां चिदक्तुना महोभिरपरीवृतो वसति प्रचेताः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (अक्तुना) रात्रि और (महोभिः) बड़े-बड़े लोकों के साथ (अपरीवृतः) सब ओर से न स्वीकार किया हुआ (प्रचेताः) जो सोते प्राणियों को प्रबोधित कराता, ऋतु-ऋतु मे यज्ञ करनेवाले जन जिस (पुरुपेशासु) बहुत रूपोंवाली ओषधियों मे (सुषूतम्) सुन्दरता से उत्पन्न हुए अग्नि को (अजनयन्) प्रकट करते जो (उत्तानायाम्) उत्ताने के समान सोती-सी और (शिरिणायाम्) नष्ट हुई पृथिवी मे (गर्भः) गर्भ के समान स्थित (अग्निः) अग्नि बिजुलीरूप (भुवत्) होता और (वसति) निवास करता है अग्नि को (चित्) निश्चय करके प्रयुक्त करो अर्थात् कलाघरों मे लगाओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अग्नि विद्यमान और नष्ट हुई पृथिवी मे गर्भरूप विद्यमान है उसी की विद्या को जानो ॥ ३ ॥

जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।

पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानम् ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (विश्वा) समग्र (भुवनानि) जिन में प्राणी उत्पन्न होते हैं उन लोकों और (प्रतिक्षियन्तम्) पदार्थ पदार्थ के प्रति बसते हुए (तिरश्चा) तिरछे सब पदार्थों मे बाँकेपन से रहनेवाले (वयसा) मनोहर जीवन के साथ (पृथुम्) बड़े हुए (बृहन्तम्) वा बढ़ते हुए (व्यचिष्ठम्) अतीव सब पदार्थों मे व्याप्त और (अन्नै) पृथिव्यादिकों के साथ (रभसम्) वेगवान् (दृशानम्) देखा जाता वा अपने से अन्य पदार्थों को दिखानेवाले (अग्निम्) अग्नि को मैं (हविषा) होमने योग्य सुगन्धि आदि पदार्थ वा (घृतेन) घी से मैं (जिघर्मि) प्रदीप्त करता हूँ वैसे आप भी कीजिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो मनुष्य समस्त मूर्तिमान पदार्थों में ठहरे हुए बिजुलीरूप अग्नि को साधना से अच्छे प्रकार ग्रहण कर इस में सुगन्धि आदि पदार्थ का होम करते हैं वे अनन्त सुख को प्राप्त होते है ॥ ४ ॥

आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत ।

मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा३ जर्भुराणः ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जैसे मैं (अरक्षसा) उत्तम भाव से वा (मनसा) विज्ञान से जिस (प्रत्यञ्चम्) प्रत्येक पदार्थ को प्राप्त होते हुए अग्नि को (विश्वतः) सब ओर से (आ, जिघर्मि) अच्छे प्रकार प्रदीप्त करता हूँ और (मर्यश्रीः) जिससे मरणधर्मा प्राणियो की शोभा और जो (स्पृहयद्वर्णः) कांक्षा-सी करता हुआ जिसका वर्ण (तन्वा) विस्तृत शरीर से (जर्भुराणः) निरन्तर पदार्थों की धारणा करता हुआ (अग्निः) अग्नि विद्यमान है (तत्) उसको (न, अभिमृशे) आगे नहीं सह सकता हूँ वैसे इसका (जुषेत) सेवन करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो शुद्धान्तःकरण जन सुन्दर शोभित करने और घृतादि आहुतियों से होते हुए सब के धारण करनेवाले सब रूपों के प्रकाशक और न सहने योग्य अग्नि को सिद्ध करते हैं वे श्रीमान् होते है ॥५॥

ज्ञेया भागं सहसानो वरेण त्वादूतासो मनुवद्वदेम ।

अनूनमग्निं जुह्वा वचस्या मधुपृचं धनसा जोहवीमि ॥६॥२॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (वरेण) श्रेष्ठ व्यवहार से (भागम्) सेवने योग्य पदार्थ का (सहसानः) सहते हुए आप जैसे मैं (वचस्या) वचनों में और (जुह्वा) ग्रहण करने मे उत्तम क्रिया से (मधुपृचम्) मधुरादि पदार्थ सम्बन्धी (अनूनम्) बहुत (अग्निम्) अग्नि को (जोहवीमि) निरन्तर स्वीकार करता हूँ वैसे तुम ग्रहण करो जैसे (त्वादूतासः) तुम जिन महात्माओं के दूत हो (ज्ञेयाः) वे जानने योग्य (धनसाः) धनादि पदार्थों का विभाग करनेवाले विद्वान् जन (मनुवत्) विद्वान् के समान इस को उपदेश करें वैसे इस को हम लोग भी (वदेम) कहें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । जैसे आप्त विद्वान् जन अग्न्यादि पदार्थविद्या को जानकर औरों के हित के लिए उपदेश करते हैं वैसे हम लोग भी विद्या का उपदेश करें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह दशवां सूक्त और दूसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

एकविंशत्यृचस्यैकादशस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
१, ८, १०, १३, १९, २० पङ्क्तिः, २, ६ भुरिक् पङ्क्तिः;
३, ४, ६, ११, १२, १४, १८ निचृत् पङ्क्तिः,
७ विराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ५, १६, १७
स्वराड् बृहती । भुरिक् बृहती, १५ बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः । २१ त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवत स्वरः ॥

अब इक्कीस ऋचावाले ग्यारहवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में राजधर्म का वर्णन करते हैं—

श्रुधी हवमिन्द्र मा रिषण्यः स्याम ते दावने वसूनाम् ।

इमा हि त्वामूर्जो वर्द्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) बिजुली के समान प्रचण्ड प्रतापवाले राजन् ! जिन (त्वा) आप को (वसूनाम्) प्रथम कक्षा के विद्वान् वा पृथिवी आदि के (हि) निश्चय के साथ (इमाः) ये (ऊर्जः) पराक्रम वा अन्नादि पदार्थ और (वसूयवः) अपने को धनो की इच्छा करनेवाले (क्षरन्तः) कम्पित करते और चेष्टावान् करते हुए (सिन्धवः) समुद्रों के (न) समान (वर्द्धयन्ति) बढ़ाते हैं जिन (ते) आप के (दावने) दान के लिए हम (स्याम) हों सो आप हम लोगो को (मा, रिषण्यः) मत मारिए और (हवम्) शास्त्रबोधजन्य शब्द (श्रुधि) सुनिए ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है । जैसे समुद्र जल से सब को बढ़ाता है वैसे प्रधान पुरुषों को चाहिए कि अपने आश्रित सब जनो को दान और मान से बढ़ावें ॥ १ ॥

सृजो महीरिन्द्र या अपिन्वः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।

अमर्त्यं चिद्दासं मन्यमानमवाभिनदुक्थैर्वावृधानः ॥२॥

पदार्थ—हे (शूर) निर्भय (इन्द्र) सूर्य के समान वर्त्तमान ! जैसे सूर्य (अहिना) मेघ से (परिष्ठिताः) सब ओर से स्थित किये हुए वा (पूर्वीः) पहले सञ्चित हुए जलों को (अवाभिनत्) छिन्न-भिन्न करता है वैसे (उक्थैः) उत्तम वचनों से (वावृधानः) बढ़े हुए आप (याः) जो (महीः) बड़ी-बड़ी वाणी हैं उन को (सृज) उत्पादन कीजिए उन से (चित्) ही (अमर्त्यम्) आत्मा से मरण धर्म रहित (मन्यमानम्) माननेवाले (दासम्) सेवक को (अपिन्वः) तृप्त कीजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो सूर्य के समान उत्तम वाणियो को वर्षाते है और सेवकों को प्रसन्न करते है वे उत्तम प्रतिष्ठित होते हैं ॥ २ ॥

उक्थेष्विन्नु शूर येषु चाकन्त्स्तोमेष्विन्द्र रुद्रियेषु च ।

तुभ्येदेता यासु मन्दसानः प्र वायवे सिस्रते न शुभ्राः ॥३॥

पदार्थ—हे (शूर) अन्धकार को दूर करनेवाले सूर्य के समान शत्रुदल को नष्ट करनेवाले (इन्द्र) प्रकाशमान राजन् ! (येषु) जिन (स्तोमेषु) स्तुति विभागो वा (रुद्रियेषु) प्राणो की प्रतिपादना करनेवालो वा (उक्थेषु) कहने योग्य वाक्यो मे आप (नु) शीघ्र (चाकन्) कामना करते हो (यासु, च) और जिन क्रियाओं मे (मन्दसानः) प्रशंसित (इत्) ही हैं उन सभो मे (तुभ्य, इत्) आप ही के लिए जैसे (एताः) ये (वायवे) पवन के अर्थ (शुभ्राः) सुन्दर शोभायुक्त बिजुली (प्रसिस्रते) पसरती, फैलती हैं (न) वैसे सुशोभित हों ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है । जैसे पवन के साथ बिजुली फैलती है वैसे विद्या के साथ पुरुष सुखो के बीच विहार करता है ॥ ३ ॥

शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्द्धयन्तः शुभ्रं वज्रं बाह्वोर्दधानाः ।

शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य की प्राप्ति करानेवाले सभापति ! (वावृधानः) बढ़े हुए (शुभ्रः) शुद्ध (त्वम्) आप (अस्मे) हमारी (दासीः) सेवा करनेवाली (विशः) प्रजा (सूर्येण) सूर्यमण्डल के साथ (सह्याः) सहने योग्य दीप्तियों के समान सम्पन्न करो जिन (ते) आप का (शुभ्रम्) दीप्तिमान् (शुष्मम्) बल (नु) शीघ्र (वर्द्धयन्तः) बढ़ाते हुए अर्थात् उन्नत करते हुए (बाह्वोः) भुजाओं मे (शुभ्रम्) स्वच्छ निर्मल (वज्रम्) शस्त्रसमूह को (दधानाः) धारण किये हुए भृत्य हैं उनके सब ओर से प्रजा की वृद्धि करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो निरन्तर राज्य के बढ़ाने को समर्थ और शस्त्र तथा अस्त्र चलाने में कुशल प्रधान पुरुषों को उन्नति देते हैं वे शीघ्र प्राधान्य को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्स्वपीवृतं मायिनं क्षियन्तम् ।

उतो अपो द्यां तस्तभ्वांसमहन्नहिं शूर वीर्येण ॥५॥३॥

पदार्थ—हे (शूर) निर्भय राजन् ! जैसे (अप्सु) जलों में (अपीवृतम्) छपे हुए (गूळ्हम्) गुप्त पदार्थ को (अपः) और जलों को (उतो) तथा

(धाम्) प्रकाश को (तस्तभ्वांसम्) रोके हुए (अहिम्) मेघ को सूर्यमण्डल (अहन्) हनता है वैसे (वीर्येण) पराक्रम से (गुहा) गुप्त-गुप्त स्थान में (हितम्) धरे अर्थात् हित (गुह्यम्) गुप्त करने योग्य (क्षियन्तम्) निरन्तर बसते हुए (मायिनम्) मायावी शत्रुजन को मारो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य अन्तरिक्षस्थ जलों मे सोते हुए मेघ को हनके सब प्रजा को पुष्ट करता है वैसे राजा कपट के बीच वर्त्तमान अधर्मी शत्रुजन को छिन्न-भिन्न कर प्रजा को सुखी करे ॥ ५ ॥

स्तवा नु त इन्द्र पूर्व्या महान्युत स्तवाम नूतना कृतानि ।

स्तवा वज्रं बाह्वोरुशन्तं स्तवा हरी सूर्यस्य केतू ॥६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) प्रशसायुक्त राजन् ! हम लोग (ते) आप के (पूर्व्या) प्राचीन (महानि) प्रशसनीय बड़े बड़े कामो की (नु) शीघ्र (स्तव) स्तुति अर्थात् प्रशसा करें (उत) और (नूतना) नवीन (कृतानि) किये हुओ की (स्तवाम) प्रशंसा करें । तथा (बाह्वोः) भुजाओं मे (वज्रम्) शस्त्र और अस्त्रो की (उशन्तम्) चाहना करते हुए आप की (स्तव) स्तुति प्रशसा करें तथा (सूर्यस्य) सूर्य की (केतू) किरणो के समान जो (हरी) धारणाकर्षण गुणयुक्त कर्मों की (स्तव) प्रशसा करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । व्यतीत और वर्त्तमान आप्त धर्मात्मा सज्जनों ने जो धर्मयुक्त काम किय वा करते हैं उन्हीं का अनुष्ठान और जनो को भी करना चाहिए ॥ ६ ॥

हरी नु त इन्द्र वाजयन्ता घृतश्चुतं स्वारमस्वार्ष्टाम् ।

वि समना भूमिरप्रथिष्टारंस्त पर्वतश्चित् सरिष्यन् ॥७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सूर्य के समान प्रतापी राजन् ! जिन (ते) आप के (घृतश्चुतम्) जल से प्राप्त हुए (स्वारम्) उपताप वा शब्द को (वाजयन्ता) चलते हुए सूर्य के (हरी) हरणशील किरणो के समान विद्या और विनय को जो (अस्वार्ष्टाम्) शब्दायमान करते अर्थात् व्यवहार में लाते उन के साथ (भूमि) भूमि के समान आप (नु) शीघ्र (वि, अप्रथिष्ट) प्रख्यात हूजिए और (अरंस्त) सुख मे रमण कीजिए तथा (सरिष्यन्) गमन करनेवाले होते हुए (पर्वतः) मेघ के (चित्) समान (समना) सग्रामो को जीतो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो राजपुरुष सूर्य के समान प्रजाजनो के उपकार करने वा मेघ के समान आनन्द देने और उत्तम बलवाले है वे ही शत्रुओ को जीत सकते है ॥ ७ ॥

नि पर्वतः साद्यप्रयुच्छन्त्सं मातृभिर्वावशानो अक्रान् ।

दूरे पारे वाणीं वर्धयन्त इन्द्रेषितां धमनिं पप्रथन्नि ॥८॥

पदार्थ—जो (मातृभिः) मान करनेवाली माता आदि से (वावशान) कामना किया जाता और (अप्रयुच्छन्) प्रमाद न करता हुआ (पर्वत) मेघ के समान विद्वानो ने (सम्, सादि) अच्छे प्रकार सिद्ध किया उसके साथ जो दोषों को (दूरे) दूर करते हुए (वाणीम्) सुन्दर शिक्षायुक्त वाणी को (पारे) समुद्र की भूमियों के परिभाग मे (वर्धयन्तः) बढाते हुए औरो को विद्वान् (अक्रान्) करते हैं वे (इन्द्रेषिताम्) परमेश्वर की भेजी हुई वेदवाणी का (नि, पप्रथन्) निरन्तर विस्तार करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिन सन्तानो को माता उत्तम शिक्षा और विद्या से प्रमादरहित कर बढ़ाती है वे सुखों को प्राप्त होकर सब ओर से बढते हैं ॥ ८ ॥

इन्द्रो महां सिन्धुमाशयानं मायाविनं वृत्रमस्फुरन्निः ।

अरेजेतां रोदसी भियाने कनिक्रदतो वृष्णो अस्य वज्रात् ॥९॥

पदार्थ—हे सभापति राजन् ! जैसे (इन्द्र) सूर्यलोक (महाम्) अत्यन्त बड़े (सिन्धुम्) अन्तरिक्ष समुद्र को (आशयानम्) प्राप्त (वृत्रम्) मेघ को (नि, अस्फुरत्) निरन्तर बढ़ाता है वा जैसे (अस्य) इस (वृष्णः) वर्षनेवाले मेघ की (वज्रात्) गिरी हुई बिजली के शब्द से (भियाने) डरपे हुए से (रोदसी) आकाश और पृथिवी (अरेजेताम्) कम्प और (कनिक्रदतः) शब्द करते हैं वैसे आप (मायाविनम्) मायावी दुष्ट बुद्धि पुरुष को विदारो, दुष्टों को कम्पाओ और रुलाओ ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजपुरुषो ! जैसे सूर्य अपनी किरणो से समुद्र के जल को मेघमण्डल को पहुँचा और उसे वर्षाकर प्रजाजनों को सुखी करता है वैसे आप विद्या से अच्छे प्रकार उन्नति सयुक्त प्रजा कर उसे सुखी करें, जैसे बिजुली के श्रवण से सब डरते हैं वैसे न्यायाचरण के उपदेश से दुष्टाचरण से सब डरें ॥ ९ ॥

अरोरवीद्वृष्णो अस्य वज्रोऽमानुषं यन्मानुषो निजूर्वात् ।

नि मायिनो दानवस्य माया अपादयत्पपिवान्त्सुतस्य ॥१०॥४॥

पदार्थ—जैसे (अस्य, वृष्णः) इस वर्षा निमित्तक सूर्यमण्डल के (वज्रः) किरणो का जो निरन्तर गिरना (अरोरवीत्) वह बार-बार शब्द करता है और (अमानुषम्) मनुष्य सम्बन्धरहित पदार्थ को (मानुषः) मनुष्य जैसे-जैसे (यत्) जिसको (निजूर्वात्) छिन्न-भिन्न करे वैसे जो (मायिनः) मायावी निन्दित बुद्धियुक्त (दानवस्य) दुष्ट कर्म करनेवाले की (मायाः) छलयुक्त बुद्धियों को (नि, अपादयत्) निरन्तर नष्ट करे और (सुतस्य) बड़ी-बड़ी ओषधियों के निकले हुए रस को (पपिवान्) पीनेवाला हो वह विजय को प्राप्त होता है ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अन्तरिक्ष मे बिजुली के शब्द मेघ को जतलाते है वैसे राजजन दुष्टाचरणो से दुष्टजनो को सचेत करावें अर्थात् उनके छल कपटो को जता देवें ॥ १० ॥

अब वैद्य के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मदन्तु त्वा मन्दिनः सुतासः ।

पृणन्तस्ते कुक्षी वर्धयन्त्वित्था सुतः पौर इन्द्रमाव ॥११॥

पदार्थ—हे (शूर) रोगों को नष्ट करनेवाले (इन्द्र) आयुर्वेद विद्यायुक्त वैद्य ! जो (मन्दिनः) प्रशंसा करने योग्य (सुतासः) ओषधियों के निकाले हुए रस (सोमम्) सोमलतादि ओषधियों के सार को पीनेवाले (त्वा) आपको (पृणन्तः) सुखी करते हुए (ते) आपकी (कुक्षी) कोखों को (वर्धयन्तु) वृद्धि करें और आप को (मदन्तु) हर्षित करावें उनको आप (इत्) ही (पिबापिब) पिओ-पिओ (इत्था) इस हेतु से (सुतः) प्रसिद्ध (पौरः) पुर में उत्पन्न हुए आप (इन्द्रम्) ऐश्वर्य की (आव) रक्षा करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग यदि पुष्टि और वृद्धि देनेवाले रोगविनाशक ओषधियों के सार को सेवन करते हैं तो पुरुषार्थी होकर ऐश्वर्य को बढ़ा सकते हैं ॥ ११ ॥

अब वैद्य विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

त्वे इन्द्राप्यभूम विप्रा धियं वनेम ऋतया सपन्तः ।

अवस्यवो धीमहि प्रशस्तिं सद्यस्ते रायो दावने स्याम ॥१२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) रोग विदीर्ण करनेवाले वैद्य विद्वज्जन ! (त्वे) आप के समीप मे हम लोग भी (विप्राः) मेधावी (अभूम) हो और (ऋतया) सत्य विज्ञानयुक्त बुद्धि क्रिया से (सपन्तः) दुष्टो को अच्छे प्रकार कोशते हुए (धियम्) बुद्धि वा कर्म को (वनेम) अच्छे प्रकार सेवें तथा (अवस्यवः) अपने को रक्षा चाहते हुए हम लोग (प्रशस्तिम्) प्रशंसा को (धीमहि) धारण करें वा पुष्ट करें और (ते) आप जो (रायः) विद्याधन के (दावने) देनेवाले हैं उनके लिए (सद्यः) शीघ्र प्रसिद्ध होवें ॥ १२ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि सत्य विज्ञानयुक्त बुद्धि से ओषधिविद्या को जान इन ओषधियो का सेवन कर पुरुषार्थ बढ़ा, लक्ष्मी का सञ्चय करें ॥ १२ ॥

स्याम ते त इन्द्र ये त ऊती अवस्यव ऊर्जं वर्धयन्तः ।

शुष्मिन्तमं यं चाकनाम देवास्मे रयिं रासि वीरवन्तम् ॥१३॥

पदार्थ—हे (देव) मनोहर (इन्द्र) ऐश्वर्य के देनेवाले ! (ये) जो (अवस्यवः) अपनी रक्षा चाहते और (ते) आपकी (ऊती) रक्षा आदि क्रिया से (ऊर्जम्) पराक्रम क (वर्धयन्तः) बढ़ाते हुए आपकी रक्षा करते (ते) वे अतुल सुख को प्राप्त होते हैं जिन (ते) आपके सम्बन्ध में हम लोग (यम्) जिस (शुष्मिन्तमम्) अति बलवान् (वीरवन्तम्) वीरों के प्रसिद्ध करानेवाले (रयिम्) धन को (चाकनाम) चाहें आप (अस्मे) हम लोगों के लिए इसको (रासि) देते हो उसको प्राप्त हो हम लोग सुखी (स्याम) हों ॥ १३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परस्पर की वृद्धि करते हैं वे सब ओर से बढ़ते हैं, किसी को अच्छी कामना नहीं छोड़नी चाहिए ॥ १३ ॥

रासि क्षयं रासि मित्रमस्मे रासि शर्ध इन्द्र मारुतं नः ।

सजोषसो ये च मन्दसानाः प्र वायवः पान्त्यग्रणीतिम् ॥१४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) बल देनेवाले ! (ये) जो (नः) हम लोगों की (मन्दसानाः) कामना करते हुए (सजोषसः) समान प्रीतिवाले (वायवः) विज्ञान बलयुक्त जन (अग्रणीतिम्) आगे होनेवाली उत्तम नीति को (प्र, पान्ति) प्राप्त होते हैं उनके समान हम लोग प्राप्त होवें जिससे आप (अस्मे) हम लोगों के लिए (क्षयम्) निवास (रासि) देते हैं (मित्रम्) मित्र (रासि) देते हो और (मारुतम्) मनुष्यो को (शर्धः) बल (च) भी (रासि) देते हो इससे प्रशसनीय हो ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मित्र हो विद्या और विनय को प्राप्त होकर सत्य की कामना करते हैं वे सबको सुख दे सकते हैं ॥ १४ ॥

व्यन्त्विन्नु येषु मन्दसानस्तृपत्सोमं पाहि द्रह्यदिन्द्र ।

अस्मान्त्सु पृत्स्वा तरुत्रावर्धयो द्यां बृहद्भिरर्कैः ॥१५॥५॥

पदार्थ—हे (तरुत्र) अविद्या से तारनेवाले (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् विद्वन् ! जैसे सूर्यमण्डल (बृहद्भिः) बड़ी-बड़ी (अर्कैः) किरणों से (द्याम्) प्रकाश को (सु, आ, अवर्धय) शीघ्र अच्छे प्रकार बढ़ाता है वैसे आप (अस्मान्) हम लोगों

को (पृत्सु) संग्रामों में रक्षा कीजिए (येषु) जिनमें विद्वान् जन (सोमम्) ऐश्वर्य की (अवन्तु) कामना करें उनमें (मन्दसानः) आनन्द को प्राप्त (तृपत्) तृप्त और (दृढान्) दृढ़ होते हुए (इत्) ही आप ऐश्वर्य की (सुपाहि) अच्छे प्रकार रक्षा करें ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य जिन विद्वान् जनों में निवास करते और ऐश्वर्य को प्राप्त होकर तृप्त होते हुए औरों को तृप्त करते हैं उनमें वे सूर्य के समान प्रकाशित होते हैं ॥ १५ ॥

बृहन्त इन्नु ये ते तरुत्रोक्थेभिर्वा सुम्नमाविवासान् ।

स्तृणानासो बर्हिः पस्त्यावत्त्वोता इदिन्द्र वाजमग्मन् ॥१६॥

पदार्थ— हे (तरुत्र) दुःख से तारनेवाले (इन्द्र) अविद्या विनाशक ! (ते) आपके (उक्थेभिः) सुन्दर उपदेशों से (बृहन्तः) पूज्य प्रशंसनीय (इत्) ही (सुम्नम्) सुख को (आ, विवासान्) सब ओर से सेवते हैं वे (पस्त्यावत्) घर के तुल्य (बर्हिः) बढ़े हुए को (स्तृणानासः) ढाँपते हुए (वा) अथवा (त्वोताः) आपके रक्षा किये हुए (इत्) ही (वाजम्) विज्ञान को (नु) शीघ्र (अग्मन्) प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥

भावार्थ—वे ही सुख को प्राप्त होते हैं जो धार्मिक विद्वान् सत्पुरुषों से सुन्दर शिक्षित और रक्षित हों ॥ १६ ॥

उग्रेष्विन्नु शूर मन्दसानस्त्रिकद्रुकेषु पाहि सोममिन्द्र ।

प्रदोधुवच्छ्मश्रुषु प्रीणानो याहि हरिभ्यां सुतस्य पीतिम् ॥१७॥

पदार्थ—हे (शूर) दुष्टों की हिंसा करने और (इन्द्र) वैद्य विद्या जानने वाले ! आप (त्रिकद्रुकेषु) जिन व्यवहारों में तीन अर्थात् शरीर, आत्मा और मन की पीड़ा विद्यमान उनके निमित्त (सोमम्) महान् ओषधियों के समूह की (पाहि) रक्षा करो और (उग्रेषु) तेजस्वी प्रबल प्रतापवालों में (इत्) ही (मन्दसानः) कामना और (प्रदोधुवत्) उत्तमता से कम्पन अर्थात् नाना प्रकार की चेष्टा करते और (श्मश्रुषु) विद्युदादिक अङ्गों में (प्रीणानः) तृप्ति पाते हुए (हरिभ्याम्) अच्छे शिक्षित घोड़ों से (सुतस्य) निकले हुए ओषधियों के रस के (पीतिम्) पीने को (याहि) प्राप्त होओ ॥ १७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य प्रबल बुद्धिजनों के साथ अच्छे प्रकार कार्यों का प्रयोग करते हैं तो शत्रुओं को कम्पाते और बड़ी-बड़ी ओषधियों के रस को पीते हुए अच्छे सिखाये हुए घोड़ों से युक्त रथ से जैसे वैसे शीघ्र सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥

अब सेनापति के गुणों को अगले मन्त्रों में कहा है—

धिष्वा शवः शूर येन वृत्रमवाभिनद्दानुमौर्णवाभम् ।

अपावृणोर्ज्योतिरार्याय नि सव्यतः सादि दस्युरिन्द्र ॥१८॥

पदार्थ— हे (शूर) दुःख विनाशक (इन्द्र) सूर्य के समान वर्त्तमान सेनापति ! आप (येन) जिससे (शवः) बल को (धिष्व) धारण करो उससे जैसे सूर्य (दानुम्) जल देनेवाले (वृत्रम्) मेघ को (और्णवाभम्) ऊर्णा जिसकी नाभि में होती उसके पुत्र के समान अर्थात् जैसे वह किसी की देह का विदारण करे वैसे (अभिनत्) छिन्न-भिन्न करता है और (सव्यतः) दाहिनी ओर से (ज्योतिः) प्रकाश कर अन्धकार को (नि, अप, अवृणोः) निरन्तर दूर करता है वैसे (आर्याय) उत्तम के लिए साधारण होओ जो (दस्युः) दूसरे के पदार्थों को हरनेवाला है उसका विनाश करो ऐसे युद्ध के बीच विजय (सादि) साधना चाहिए ॥ १८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । राजपुरुषों को चाहिए कि जैसे सूर्य अन्धकार को वैसे अन्याय को निवृत्त कर सज्जनों के हृदयों में सुख की प्राप्ति करा निरन्तर बल बढ़ावें ॥ १८ ॥

सनेम ये त ऊतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून् ।

अस्मभ्यं तत्त्वाष्ट्रं विश्वरूपमरन्धयः साख्यस्य त्रिताय ॥१९॥

पदार्थ—हे सेनापते ! (ये) जो (ते) आपकी (ऊतिभिः) रक्षा आदि कामों की करनेवाली सेनाओं से (विश्वाः) समस्त (स्पृधः) स्पर्द्धा करने वालों को (तरन्तः) उल्लंघन करते हुए हम लोग (त्रिताय) त्रिविध अर्थात् शारीरिक, वाचिक और मानसिक सुख जिसको प्राप्त उसके लिए (आर्येण) उत्तम विद्या और धर्म सामर्थ्य के साथ (दस्यून्) डाकुओं को जीतें जो (साख्यस्य) मित्रपन वा मित्रकर्म करने का (विश्वरूपम्) विविध स्वरूप (त्वाष्ट्रम्) प्रकाशमान का रचा हुआ है उसको (सनेम) अलग-अलग करें (तत्) उसको आप (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए सिद्ध करो और डाकुओं को (अरन्धयः) नष्ट करो ॥ १९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य किये हुए को जाननेवाले विद्वान् को सेनापति का अधिकार कर श्रेष्ठ पुरुषों के साथ कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य कामों को अच्छे प्रकार निश्चय कर प्रजासुख की सिद्धि करें वे सब सुखों को प्राप्त होवें ॥ १९ ॥

अब सूर्य के दृष्टान्त से राजधर्म को कहते हैं—

अस्य सुवानस्य मन्दिनस्त्रितस्य न्यर्बुदं वावृधानो अस्तः ।

अवर्तयत्सूर्यो न चक्रं भिनद्वलमिन्द्रो अङ्गिरस्वान् ॥२०॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (अस्य) इस (सुवानस्य) ऐश्वर्य और (मन्दिनः) सबको आनन्द उत्पन्न करनेवाले (त्रितस्य) तीन उत्तम, मध्यम और निकृष्ट उपायों से युक्त जन की (न्यर्बुदम्) अरब सेनाओं को (वावृधानः) बढ़ाते हुए (अस्तः) युद्धक्रिया में प्रेरणा को प्राप्त (चक्रम्) भूगोलों के समूहों को (सूर्यः) सूर्य (न) जैसे (अवर्त्तयत्) वर्त्ताते हो सो आप जैसे (अङ्गिरस्वान्) पवन का सम्बन्ध जिसके विद्यमान वह (इन्द्रः) बिजुली (वलम्) मेघ को (नि, भिनत्) छिन्न-भिन्न करती है वैसे वर्त्तो ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजजन जैसे सूर्य असंख्यात लोकों और उनके बीच रहनेवाले पदार्थों की व्यवस्था करता है वा पवन की प्रेरणा की हुई बिजुली मेघ को वर्षाती है वैसे आचरण करते हैं वे सब कल्याण को प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥

फिर उसी विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।

शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥२१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्या देनेवाले ! जिन (ते) आपकी (दक्षिणा) बल करनेवाली (मघोनी) परमपूजित धनयुक्त नीति (जरित्रे) विद्या की स्तुति करनेवाले के लिए (वरम्) श्रेष्ठ को (नूनम्) निश्चय से (प्रति, दुहीयत्) पूरा करती हुई (स्तोतृभ्यः) स्तुति करनेवालों के लिए (शिक्ष) शिक्षा देती है (मा, अति, धक्) नहीं अतीव किसी को दहती, नहीं कष्ट देती (सा) वह (नः) हमारे लिए (बृहत्) विस्तृत धन को प्राप्त कराती है उस नीति को प्राप्त होकर (सुवीराः) सुन्दर वीर जन हम लोग (विदथे) संग्राम में (वदेम) कहें अर्थात् औरों को उपदेश दें ॥ २१ ॥

भावार्थ—जो सबको विद्या देने और सत्योपदेश करनेवाले के लिए बहुत श्रेष्ठ दक्षिणा देते हैं वे विद्वान् होकर शूरवीर होते हैं ॥ २१ ॥

इस सूक्त में राजधर्म, विद्वान् और सेनापति के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ।

यह दूसरे मण्डल में ग्यारहवाँ सूक्त प्रथम अनुवाक और छठा वर्ग समाप्त हुआ ।

卐

जो जात इत्यस्य पञ्चदशर्चस्य द्वादशस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । इन्द्रो देवता । १—५, १२—१५ त्रिष्टुप्; ६—८, १०, ११ निचृत् त्रिष्टुप् ; ९ भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचावाले बारहवें सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र से सूर्य के गुणों का वर्णन करते हैं—

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत्

यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥१॥

पदार्थ—हे (जनासः) विद्वज्जनो ! (यः) जो (प्रथमः) प्रथम वा विस्तारयुक्त (मनस्वान्) जिसमें विज्ञान वर्त्तमान (जातः) उत्पन्न हुआ (देवः) प्रकाशमान (क्रतुना) अपने प्रकाश कर्म से (देवान्) प्रकाशित करने योग्य दिव्यगुणवाले पृथिवी आदि लोकों को (पर्यभूषत्) सब ओर से विभूषित करता है जिसके बल से (नृम्णस्य) धन के (मह्ना) महत्त्व से (रोदसी) आकाश और पृथिवी (अभ्यसेताम्) अलग होते हैं (सः) वह (इन्द्रः) अपने प्रताप से सब पदार्थों को छिन्न-भिन्न करनेवाला सूर्य है ऐसा जानना चाहिए ॥ १ ॥

भावार्थ—जिस ईश्वर ने सबका प्रकाश करने और सबका धारण करनेवाला अपने प्रकाश से युक्त आकर्षण शक्तियुक्त लोकों की व्यवस्था करनेवाला सूर्यलोक बनाया है वह ईश्वर सूर्य का भी सूर्य है यह जानना चाहिए ॥ १ ॥

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात् ।

यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः ॥२॥

पदार्थ—हे (जनासः) विद्वानो ! (यः) जो (व्यथमानाम्) चलती हुई (पृथिवीम्) पृथिवी को (अदृंहत्) धारण करता है (यः) जो (प्रकुपितान्) अत्यन्त कोपयुक्त शत्रुओं के समान वर्त्तमान (पर्वतान्) मेघों को (अरम्णात्) छिन्न-भिन्न करता (यः) जो (वरीयः) बहुत विस्तारवाले (अन्तरिक्षम्) पृथिव्यादि दो-दो लोकों के बीच भाग का (विममे) विशेषता से मान करता है (यः) जो (द्याम्) प्रकाश को (अस्तभ्नात्) धारण करता है (सः) वह (इन्द्रः) सब पदार्थों को अपने प्रताप से छिन्न-भिन्न करनेवाला सूर्य जानने योग्य है ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो ईश्वर बिजुली वा सूर्य को न रचे तो चलते हुए बड़े-बड़े भूगोलों को कौन धारण करे, कौन मेघ को वर्षावे और कौन अन्तरिक्ष को अपने प्रकाश से पूरित करे ॥ २ ॥

यो हत्वाहिमरिणात्सप्त सिन्धून्यो गा उदाजदपधा वलस्य ।

यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः ॥३॥

पदार्थ—हे (**जनासः**) विद्वानो (**यः**) जो (**अहिम्**) मेघ को (**हत्वा**) मार (**सप्त**) सात प्रकार के (**सिन्धून्**) समुद्रों को वा नदियों को (**अरिणात्**) चलाता है (**यः**) जो (**गाः**) पृथिवियों को (**उदाजत्**) ऊपर प्रेरित करता अर्थात् एक के ऊपर एक को नियम से चला रहा (**यः**) जो (**बलस्य**) बल को (**अपधा**) धारण करनेवाला और जो (**अश्मनः**) पाषाणों वा मेघों के (**अन्तः**) बीच (**अग्निम्**) अग्नि को (**जजान**) उत्पन्न करता तथा (**समत्सु**) सङ्ग्रामों में (**संवृक्**) सब पदार्थों को अलग कराता है (**सः**) वह (**इन्द्रः**) इन्द्र नामक सूर्यलोक है यह जानना चाहिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सूर्यलोक मेघ को वर्षाकर समुद्रों को भरता है सब भूगोलों को अपने प्रति खैंचता है अपनी किरणों से मेघ और समीपस्थ पाषाण के बीच ऊष्मा को उत्पन्न करता है वह अग्निरूप है यह जानना चाहिए ॥ ३ ॥

अब ईश्वर विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।

श्वघ्नीव यो जिगीवाँल्लक्षमाददर्य्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥४॥

पदार्थ—हे (**जनास**) मनुष्यो ! (**येन**) जिस ईश्वर ने (**इमा**) ये (**विश्वा**) समस्त (**च्यवना**) प्राप्त हुए लोक (**पुष्टानि**) दृढ़ (**कृतानि**) किये (**यः**) जो (**गुहा**) हृदयाकाश में (**वर्णम्**) रूप को (**अधरम्**) उस हृदय के नीचे (**दासम्**) देने योग्य (**अकः**) करता है और (**यः**) जो (**श्वघ्नीव**) कुत्तों को दण्ड देनेवाली के समान (**जिगीवान्**) जयशील (**लक्षम्**) लक्ष को (**आदत्**) ग्रहण करता है (**सः**) वह (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् (**अर्य्यः**) ईश्वर है यह जानना चाहिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो ईश्वर कारण से विविध प्रकार के लोकों और पदार्थों को रचता है और जो सब कर्मों को लक्ष्य-सा रखता है वह सब को उपासना करने योग्य है ॥ ४ ॥

यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।

सो अर्यः पुष्टीर्विजइवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥५॥७॥

पदार्थ—हे (**जनास**) मनुष्यो ! विद्वान् (**यम् स्म**) जिसको (**कुह, सः**) वह कहाँ है (**इति**) ऐसा (**ईम्**) सबसे (**पृच्छन्ति**) पूछते हैं (**उत**) और कोई (**एनम्**) इसको (**घोरम्**) हननरूप हिंसारूप अर्थात् भयङ्कर (**आहुः**) कहते हैं अन्य कोई (**एषः**) यह (**न, अस्ति**) नहीं है (**इति**) ऐसा कहते हैं (**सः**) वह (**अर्यः**) ईश्वर (**विजइव**) भय से जैसे कोई सञ्चलित हो चेष्टा करे वैसे दोषों को (**आ, मिनाति**) अच्छे प्रकार नष्ट करता है और (**अस्मै**) इस जीव के लिए (**पुष्टीः**) पुष्टियों और (**श्रत्**) सत्य को धारण करता (**सः**) वह (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् है इसको तुम (**धत्त**) धारण करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो आश्चर्य गुणकर्मस्वभावयुक्त परमेश्वर है उसको कोई वह कहाँ है, ऐसा कहते हैं कोई उसका भयंकर, कोई शान्त और कोई यह नहीं है ऐसा बहुत प्रकार से कहते हैं वह सबका आधारभूत हुआ सत्य, धर्म और जीवन के उपायों का वेद के द्वारा उपदेश करता है वह सबको उपासना करने के योग्य है ॥५॥

यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।

युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥६॥

पदार्थ—हे (**जनास**) मनुष्यो ! (**यः**) जो (**रध्रस्य**) हिंसा करनेवाले का (**यः**) जो (**कृशस्य**) दुर्बल का (**यः**) जो (**नाधमानस्य**) समस्त ऐश्वर्य प्राप्त करानेवाले का (**यः**) जो (**ब्रह्मणः**) वेद का (**युक्तग्राव्णः**) और जिसमें मेघ वा पत्थरयुक्त हैं उस पदार्थ का (**कीरेः**) तथा सकल विद्याओं की स्तुति प्रशंसा करनेहारे का (**चोदिता**) प्रेरणा करनेवाला वा (**यः**) जो (**सुशिप्रः**) ऐसा है कि जिससे सुन्दर सेवन होते और (**सुतसोमस्य**) जिसने उत्पन्न किये सोमादि अच्छे पदार्थ उसको (**अविता**) रक्षा करनेवाला है (**सः**) वह (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर है ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! उसी परमेश्वर की उपासना तुम करो कि जो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयकर्त्ता तथा सकल विद्यायुक्त वेद का उत्तम ज्ञान करानेवाला है ॥ ६ ॥

अब बिजुलीरूप अग्नि के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।

यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥७॥

पदार्थ—हे (**जनास**) विद्वद्वर मनुष्यो ! तुम को (**प्रदिशि**) प्रति दिशा के समीप (**यस्य**) जिसके (**विश्वे**) समस्त (**अश्वासः**) व्याप्तिशील वेगादि गुणयुक्त (**यस्य**) जिसके समस्त (**गावः**) किरणें (**यस्य**) जिसके समस्त (**ग्रामाः**) मनुष्यों के निवास (**यस्य**) जिसके समस्त (**रथासः**) विहार करानेवाले रथ (**यः**) जो कारण बिजुलीरूप अग्नि (**सूर्यम्**) सूर्यमण्डल और (**यः**) जो (**उषसम्**) प्रभातकाल को (**जजान**) प्रकट करता वा (**यः**) जो (**अपाम्**) जलों की (**नेता**) प्राप्ति करानेहारा है (**सः**) वह (**इन्द्रः**) पदार्थों का छिन्न-भिन्न करनेवाला बिजुलीरूप अग्नि है यह जानना चाहिए ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! यदि आप लोग वेगादि अनेक गुणयुक्त सर्व मूर्तिमान् पदार्थों के आधाररूप शीघ्रगामी विमान आदि यान और वर्षा निमित्त बिजुलीरूप अग्नि को जान तब तो कौन-कौन उत्तम कार्य सिद्ध न कर सकें ॥ ७ ॥

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः ।

समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥८॥

पदार्थ—हे (**जनासः**) विद्याप्रिय मनुष्यो ! तुमको (**क्रन्दसी**) रोने का शब्द कराने (**संयती**) और संयम से जानेवाले प्रकाश और पृथिवी (**यम्**) जिस सूर्यमण्डल को जैसे कोई पदार्थ (**विह्वयेते**) स्पर्द्धा करें वैसे वा (**परे**) उत्तम (**अवरे**) न्यून (**उभयाः**) अर्थात् प्रकाश और अप्रकाशयुक्त दोनों कोटियों का सम्बन्ध करने को (**अमित्राः**) शत्रुजन जैसे (**समानम्**) समान (**रथम्**) रथ आदि यान को (**चित्**) वैसे (**आतस्थिवांसा**) सब ओर से स्थिर (**नाना**) अनेक प्रकार से (**हवेते**) ग्रहण करते हैं (**सः**) वह (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् है यह जानना चाहिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे दो सेना सम्मुख खड़ी होकर युद्ध करती हैं वैसे प्रकाश और अप्रकाश वर्त्तमान हैं ॥ ८ ॥

अब ईश्वर और बिजुली के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।

यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः ॥९॥

पदार्थ—हे (**जनासः**) मनुष्यो ! (**जनासः**) विद्वान् जन (**यस्मात्**) जिससे (**ऋते**) विना (**न**) नहीं (**विजयन्ते**) विजय को प्राप्त होते हैं (**यम्**) जिसको (**युध्यमानाः**) युद्ध करते हुए (**अवसे**) रक्षा आदि के लिए (**हवन्ते**) ग्रहण करते हैं (**यः**) जो (**विश्वस्य**) संसार का (**प्रतिमानम्**) परिमाणसाधक (**यः**) जो (**अच्युतच्युत्**) स्थिर पदार्थों में चलायमान् होता व उन स्थिर पदार्थों को चलानेवाला (**बभूव**) होता (**सः**) वह (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर है यह जानना चाहिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है । जो परमेश्वर की उपासना नहीं करते, बिजुली की विद्या को नहीं जानते वे विजयशील नहीं होते जो यह विश्व और जो सब पदार्थों का रूपमात्र है वह परमेश्वर और बिजुली का विज्ञान करानेवाला है ॥ ९ ॥

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।

यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥१०॥८॥

पदार्थ—हे (**जनासः**) विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोगों को (**यः**) जो परमेश्वर (**शश्वतः**) अनादिस्वरूप पदार्थों को धारण करता (**महि**) अत्यन्त (**एनः**) पाप को (**दधानान्**) धारण किये हुए (**अमन्यमानान्**) अज्ञानी, शठ, पापियों को (**शर्वा**) शासनकारी वज्र से (**जघान**) मारता (**यः**) जो (**शर्धते**) कुत्सित निन्दित पापयुक्त शब्द करने अर्थात् उच्चारण करनेवाले के लिए (**शृध्याम्**) शब्द निन्दा न (**अनुददाति**) अनुकूलता से देता है और (**यः**) जो (**दस्योः**) दूसरे के पदार्थों को हरनेवाले दुष्ट का (**हन्ता**) मारनेवाला है (**सः**) वह (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर सेवने योग्य है ॥ १० ॥

भावार्थ—जो परमेश्वर दुष्टाचारियों को न ताड़ना दे, धार्मिकों का सत्कार न करे और डाकुओं को न मारे तो न्यायव्यवस्था नष्ट हो जाए ॥ १० ॥

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।

ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥११॥

पदार्थ—हे (**जनास**) बुद्धिमान् मनुष्यो ! तुमको (**यः**) जो (**पर्वतेषु**) बद्दलों में (**चत्वारिंश्याम्**) चालीसवीं (**शरदि**) शरद् ऋतु में (**क्षियन्तम्**) निवास करते हुए (**शम्बरम्**) मेघ को (**अन्वविन्दत्**) अनुकूलता से प्राप्त होता और (**यः**) जो (**दानुम्**) देनेवाले (**शयानम्**) तथा सोते हुए के समान वर्त्तमान (**अहिम्**) मेघ को (**जघान**) मारता है (**सः**) वह (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् सूर्य जानना चाहिए ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो चालीस वर्ष पर्यन्त वर्षा न हो तो कौन प्राण धर सके । जो सूर्य जल को खींच, न धारण करे और न वर्षावे तो कौन बल पाने को योग्य हो ॥ ११ ॥

यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत्सर्तवे सप्त सिन्धून् ।

यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥१२॥

पदार्थ—हे (**जनास**) मनुष्यो ! तुमको (**यः**) जो (**सप्तरश्मिः**) सात प्रकार की किरणों से युक्त (**वृषभः**) मेघ की शक्ति को रोकनेवाला (**तुविष्मान्**) बहुत बल से खींचने की शक्ति से युक्त सूर्य्यलोक (**सप्त, सिन्धून्**) सात सिन्धुओं को (**सर्तवे**) चलने अर्थात् बहने के लिए (**अवासृजत्**) उत्पन्न करता अर्थात् जल आदि पदार्थों से परिपूर्ण करता है (**यः**) जो (**वज्रबाहुः**) भुजा के तुल्य

किरण समूहवाला (द्याम्) प्रकाश को (आरोहन्तम्) चढ़ते हुए (रौहिणम्) बढ़ने के शीलवाले मेघ को (अस्फुरत्) फुरती देता व चलाता है (सः) वह (इन्द्रः) सूर्यलोक सबको बढ़ाने के योग्य है ॥ १२ ॥

भावार्थ—जिस में रक्तादि वर्णयुक्त सात प्रकार के किरण विद्यमान हैं वही सूर्यलोक वर्षा द्वारा नदी और नदों को अच्छे प्रकार परिपूर्ण करता और फिर ऊपर को जल खींचके धारण करता फिर वर्षाता है ऐसे ही ईश्वर के आज्ञारूप नियम से यह संसारचक्र वर्त्तमान है ॥ १२ ॥

फिर सूर्य-विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥१३॥

पदार्थ—हे (जनासः) मनुष्यो ! तुम को (अस्मै) इस सूर्यमण्डल के लिए (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि के समान बृहत् पदार्थ (चित्) भी (नमेते) अति सामर्थ्ययुक्त शब्दायमान होते हैं (अस्य) इस सूर्यमण्डल के (शुष्मात्) बल से (चित्) ही (पर्वताः) मेघ (भयन्ते) भयशील होते हैं (यः) जो (सोमपाः) रस को पाता (निचितः) निरन्तर अनेक पदार्थों से इकट्ठा किया गया (वज्रबाहुः) और (यः) जो बाहुओं के तुल्य किरण बलयुक्त तथा (वज्रहस्तः) जिस की हाथों के समान किरणें हैं वह (इन्द्रः) सूर्यलोक जानने योग्य है ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस के आकर्षण से प्रकाश और क्षिति नमे हुए वर्त्तमान हैं, मेघ भ्रम रहे हैं, हाथों के समान जो रस को ऊर्ध्व पहुँचाता है, उस का यथावत् अच्छे प्रकार प्रयोग करो ॥ १३ ॥

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥१४॥

पदार्थ—हे (जनास) विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोगों को (यः) जो जगदीश्वर (ऊती) रक्षा आदि क्रिया से (सुन्वन्तम्) सबके सुख के लिए उत्तम-उत्तम पदार्थों के रस निकाले हुए को वा (यः) जो (पचन्तम्) पक्का करते हुए को वा (यः) जो (शंसन्तम्) प्रशंसा करते हुए को वा (यः) जो (शशमानम्) अधर्म का उल्लङ्घन करते हुए को (अवति) रखता है, पालता है (यस्य) जिसका (ब्रह्म) वेद (वर्द्धनम्) वृद्धिरूप (यस्य) जिस जगदीश्वर का (सोमः) चन्द्रमा और ओषधियों का समूह (यस्य) जिसका (इदम्) यह (राधः) धन है (सः) वह (इन्द्रः) सर्वैश्वर्यवान् जगदीश्वर निरन्तर उपासना करने योग्य है ॥१४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस परमात्मा ने वेदोपदेश द्वारा मनुष्यों की उन्नति की वा जिससे धर्मात्मा जन पलते वा जिससे दुष्टाचरण करनेवाले ताड़ना पाते वा जिसका यह सब जगत् ऐश्वर्यरूप है उसका ध्यान अपने-अपने आत्माओं में निरन्तर करो ॥ १४ ॥

यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद्वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१५॥९॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य के देनेवाले ईश्वर ! (यः) जो (दुध्रः) दुःख धारण करने योग्य आप (सुन्वते) उत्तम-उत्तम पदार्थों का रस निकालते वा (पचते) पदार्थों को परिपक्व करते हुए के लिए (वाजम्) सबके वेग को (आ, दर्दर्षि) सब ओर से निरन्तर विदीर्ण करते हो (सः, किल) वही आप (सत्यः) सत्य अर्थात् तीन काल में अबाध्य-निरन्तर एकता रखनेवाले हैं उन (ते) आप के (विदथम्) विज्ञानस्वरूप की (प्रियासः) प्रीति और कामना करते हुए (सुवीरासः) सुन्दर वीरोंवाले होते हुए हम लोग (विश्वह) सब दिनों में (चित्) निश्चय से (आ, वदेम) उपदेश करें ॥ १५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर मूर्ख अधर्मियों से जाना नहीं जा सकता और वह सब जगत् का यथातथ्य रचनेवाला वा विनाश करनेवाला विज्ञानस्वरूप अविनाशी है उसकी प्रशंसा और उपासना करो ॥ १५ ॥

इस सूक्त में सूर्य, ईश्वर और बिजुली के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह बारहवां सूक्त और नववां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

ऋतुरिति त्रयोदशर्चस्य त्रयोदशस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
१—३, १०—१२ भुरिक् त्रिष्टुप्, ७, ८ निचृत्त्रिष्टुप्;
९, १३ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ निचृज्जगती;
५, ६ विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब तेरह ऋचावाले सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुणों का उपदेश करते हैं—

ऋतुर्जनित्री तस्या अपस्परि मक्षू जात आविशद्यासु वर्धते ।
तदाहना अभवत्पिप्युषी पयोऽशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (ऋतुः) वसन्तादि ऋतुरूप (जातः) उत्पन्न हुआ (तत्) जल (आहनाः) सब पदार्थों में व्याप्त (अपः) जलों को (आ, अविशत्) सब प्रकार से प्रवेश करता है (यासु) जिन में (मक्षू) शीघ्र (परिवर्द्धते) सब ओर से बढ़ता है उस की जो (जनित्री) उत्पन्न करनेवाली समय, वेला है (तस्याः) उसकी जो (पयः) रस का (पिप्युषी) पान करनेवाली अन्तर्वेला (अभवत्) होती है उसके (अंशोः) अंश से जो (प्रथमम्) प्रथम (पीयूषम्) पीने योग्य उत्पन्न होता है उस प्रशंसनीय समस्त अन्न को तुम प्राप्त होओ ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को वसन्तादि ऋतुओं की उत्पन्न करनेवाली बिजुली जाननी चाहिए जिस बिजुली के प्रभाव से अमृत के समान मेघ जल वर्षाते हैं जिस से सब प्रजा बढ़ती है वह जाननी चाहिए ॥ १ ॥

फिर ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सध्रीमा यन्ति परि बिभ्रतीः पयो विश्वप्स्न्याय प्र भरन्त भोजनम् ।
समानो अध्वा प्रवतामनुष्यदे यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥२॥

पदार्थ—जो (सध्रीः) समान ठहरनेवाले (पयः) रस को (बिभ्रतीः) धारण किये हुए जल (अनुष्यदे) अनुकूलता से किञ्चित्-किञ्चित् झरने के लिए (विश्वप्स्न्याय) संसार की पालना के लिए (ईम्) जल (परि, आ, यन्ति) सब ओर से पर्याय से प्राप्त होते हैं (भोजनम्) पालना को (प्र, भरन्त) धारण करते जिन (प्रवताम्) जाते हुए जलों का (समानः) समान (अध्वा) मार्ग है (यः) जो (ता) उनका (प्रथमम्) उत्तम नियमवान् (अकृणोः) करते हैं (सः) वह आप (उक्थ्यः) प्रशंसा करने योग्य (असि) हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो जल पवन के साथ चलता है जिससे सब का पालन होता है उसको सदा शोधो जिससे आप लोग प्रशंसित हों ॥ २ ॥

फिर ईश्वर विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अन्वेको वदति यद्ददाति तद्रूपा मिनन्तदपा एक ईयते ।
विश्वा एकस्य विनुदस्तितिक्षते यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥३॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! (एकः) एकाकी आप (विश्वा) समस्त विद्याओं के (यत्) जिन (अनुवदति) अनुवादों को करते हैं (तत्) वह साथ (रूपा) नाना प्रकार के रूपों को (मिनत्) छिन्न-भिन्न करते और (तदपाः) वही कर्म जिन का ऐसे होते हुए आप (एकः) एकाकी (ईयते) प्राप्त होते (तितिक्षते) सब का सहन करते (यः) जो (ता) उन-उक्त कर्मों का (प्रथमम्) विस्तार जैसे हो वैसे (अकृणोः) करते हैं जिन (विनुदः) प्रेरणा करनेवाले (एकस्य) एक आप का यह जगत् है (सः) वह आप (उक्थ्यः) कथनीय जनों में प्रसिद्ध (असि) हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अद्वितीय जगदीश्वर हम लोगों के कल्याण के लिए सृष्टि की आदि में वेदों का उपदेश करता संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करता है जो अन्तर्यामी अपारशक्ति सब अपवादों को सहता है उसी सर्वोत्तम प्रशंसा योग्य की आप लोग प्रशंसा करें ॥ ३ ॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते रयिमिव पृष्ठं प्रभवन्तमायते ।
असिन्वन्दंष्ट्रैः पितुरत्ति भोजनं यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥४॥

पदार्थ—जो (प्रजाभ्यः) प्रजाजनों के लिए (पुष्टिम्) पुष्टि के योग्य पदार्थों को (विभजन्तः) विविध प्रकार से सेवन करते हुए जन (आयते) समीप प्राप्त हुए जिज्ञासु जन के लिए (प्रभवन्तम्) उत्पद्यमान (पृष्ठम्) आधार को (रयिमिव) धन के समान (असिन्वन्) बाँधते और (आसते) स्थिर होते हैं उनके साथ (यः) जो (दंष्ट्रैः) दन्तों से (पितु) अन्न (भोजनम्) भोजन के योग्य पदार्थ को (अत्ति) भक्षण करते हैं (सः) वह आप (उक्थ्यः) कहने योग्य जनों में प्रसिद्ध (असि) हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य दूसरे मनुष्यों की शिक्षा और धन की वृद्धि के लिए बद्धपरिकर अर्थात् कटिबद्ध होते हैं वे सुखी होते हुए प्रशंसनीय हैं ॥ ४ ॥

अधाकृणोः पृथिवीं संदृशे दिवे यो धौतीनामहिहन्नारिणक्पथः ।
तं त्वा स्तोमेभिरुदभिर्न वाजिनं देवं देवा अजनन्त्सास्युक्थ्यः ॥५॥

पदार्थ—हे (अहिहन्) मेघहन्ता सूर्य के समान शत्रुओं को हननेवाले ! (यः) जो आप (धौतीनाम्) पावन करती हुई नदियों के (पथः) मार्गों को (अरिणक्) अलग-अलग करते हैं (अध) इस के अनन्तर (दिवे) प्रकाश के लिए (पृथिवीम्) भूमि को (संदृशे) अच्छे प्रकार देखने को (अकृणोः) करते हैं अर्थात् मार्गों को शुद्ध कराते जिन (त्वा) आप को (वाजिनम्) वेगवान् और (देवम्) दिव्य गुण कर्म स्वभाववाले को (देवाः) देदीप्यमान विद्वज्जन (अजनन्) उत्पन्न करते हैं (तम्) उन आप को (उदभिः) जलों से (न) जैसे वैसे (स्तोमेभिः) स्तुतियों से हम लोग प्रशंसित करते हैं (सः) वह आप (उक्थ्यः) कथनीय जनों में प्रसिद्ध (असि) हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । हे मनुष्यो ! जैसे सविता नदियों के मार्गों को उत्पन्न करता सब मूर्तिमान् द्रव्यों को प्रकाशित करता वैसे न्याय मार्गों को अच्छे प्रकार चला कर विद्या और शिक्षा का प्रकाश तुम करो ॥ ५ ॥

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यो भोजनं च दयसे च वर्धनमार्द्रादा शुष्कं मधुमद्दुदोहिथ ।
स शेवधिं नि दधिषे विवस्वति विश्वस्यैक ईशिषे सास्युक्थ्यः ॥६॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! (यः) जो (एकः) एक असहाय अद्वितीय आप (विवस्वति) सूर्य में अभिव्याप्त होते (विश्वस्य) समस्त जगत् के (भोजनम्) पालन (च) और पुरुषार्थ और वृद्धि की (दयसे) रक्षा करते (ईशिषे) और ईश्वरता को प्राप्त हैं वा (शुष्कम्) सूखे पदार्थ को (आर्द्रात्) गीले पदार्थ से (मधुमत्) मधुर गुणयुक्त (दुदोहिथ) परिपूर्ण करते (सः) वह आप (शेवधिम्) निधिरूप पदार्थ को (निदधिषे) निरन्तर धारण करते हैं इस कारण (सः) वह आप (उक्थ्यः) प्रशंसनीयों में प्रसिद्ध (असि) हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो पालना करता हुआ ईश्वर समस्त जगत् का निर्माण कर और उसी की रक्षा कर सिद्धि करनेवाले पदार्थों को देकर समस्त विश्व को सुखों से परिपूर्ण करता है वह एक ही उपासना के योग्य है ॥ ६ ॥

यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च धर्मणाधि दाने व्यवनीरधारयः ।
यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिव उरुरूर्वाँ अभितः सास्युक्थ्यः ॥७॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! (यः) जो आप (धर्मणा) धर्म से (दाने) देने में (पुष्पिणीः) फूलोंवाली (च) वा (प्रस्वः) फल उत्पन्न करनेवाली लतादिकों (च) वा (अवनीः) भूमियों को (अधि, अधारयः) अधिकता से धारण (यः) जो (असमाः) असमान (दिद्युतः) बिजुलियों को वा (दिवः) प्रकाशमय लोकों को (अभितः) सब ओर से (वि, अजनः) विशेषता से उत्पन्न करते हैं (च) और जो (उरुः) बहुशक्तिमान् आप (ऊर्वान्) अविनाशी पदार्थों को प्रकट करते हैं (सः) वह आप हम लोगों से (उक्थ्यः) प्रशंसनीयों में प्रसिद्ध (असि) हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस ईश्वर ने बहुत पुष्प और फलयुक्त ओषधि, सबकी आधारभूत पृथिवी और बिजुली आदि पदार्थ उत्पन्न किये हैं वही आप हम लोगों को उपास्य हैं ॥ ७ ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यो नार्मरं सहवसुं निहन्तवे पृक्षाय च दासवेशाय चावहः ।
ऊर्जयन्त्या अपरिविष्टमास्यमुतैवाद्य पुरुकृत्सास्युक्थ्यः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (पुरुकृत्) बहुत वस्तुओं को करनेवाला सेनापति विद्वान् (दासवेशाय) जिसमें सेवक प्रवेश करते उसके लिए और (पृक्षाय) सेचन करने के लिए (च) भी (सहवसुम्) धनादि पदार्थों के साथ वर्त्तमान (नार्मरम्) मनुष्यों को मरवा देनेवाले पवन के सम्बन्धि अग्नि (आवहः) प्राप्त होता है जिससे (आस्यम्) मुख (अपरिविष्टम्) परिवेष परसने के कर्म से रहित हुआ हो (उत) और (ऊर्जयन्त्याः) बलवती सामग्रियों में उत्तम जल (च) भी विद्यमान है (सः, एव) वही सेनापति (अद्य) आज (उक्थ्यः) कथनीय पदार्थों में (असि) है यह तुम लोग जानो ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो राजजन भृत्यों और सेवकों को श्रेष्ठ भोजनादि देकर आनन्दित करते हैं वे स्तुति सेवनेवाले होकर बहुत भोगों को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

शतं वा यस्य दश साकमाद्य एकस्य श्रुष्टौ यद्ध चोदमाविथ ।
अरज्जौ दस्यून्त्समुनब्दभीतये सुप्राव्यो अभवः सास्युक्थ्यः ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वन् (यस्य) जिन आपके (दशशतं वा) दशसौ एक सहस्र योद्धा (साकम्) साथ में वर्त्तमान हैं वा (यत्, ह) जो ही (आद्यः) भोजन करने योग्य आप (एकस्य) जो सहाय रहित है उसके (श्रुष्टौ) पाने योग्य सुख के निमित्त (चोदम्) प्रेरणा को (आविथ) चाहते हो (अरज्जौ) बिना किसी रचना विशेष स्थान में (दभीतये) मारने के लिए (दस्यून्) दुष्टाचारी मनुष्यों को (समुनप्) अच्छे प्रकार पूर्ण करते हो और (सुप्राव्यः) सुन्दरता से प्रकाश के साथ रखने योग्य (अभवः) होते हो इस कारण (सः) वह आप (उक्थ्यः) अनेकों के बीच प्रशंसनीय (असि) हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—जिस किसी से एक सहस्र वीर योद्धा सत्कार करके रक्खे जाते हैं वह चोरादिकों को निवृत्त कर सकता है ॥ ९ ॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

विश्वेदनु रोधना अस्य पौंस्यं ददुरस्मै दधिरे कृत्नवे धनम् ।
षळस्तभ्ना विष्टिरः पञ्च संदृशः परि परो अभवः सास्युक्थ्यः ॥१०॥

पदार्थ—मनुष्य (अस्मै) इस (कृत्नवे) कर्म करनेवाले मनुष्य के लिए (षट्, विष्टिरः) छः जो विशेषता से अपने-अपने समय को पार होती हैं वे ऋतुएँ (पञ्च) और पाँच (संदृशः) अपने-अपने विषय को देखनेवाले पृथिवी, अप्, तेज, वायु, आकाश ये भूत वा पाँच कर्मेन्द्रियाँ (विश्वा) सब (रोधना) रुकावटों को (अनुददुः) अनुकूलता से देते हैं और (धनम्) धन को (इत्) ही (परि, दधिरे) सब ओर से धारण करते हैं (अस्य) इसके (पौंस्यम्) पुरुषार्थ को अनुकूलता से धारण करते अर्थात् जानते हैं वह (परः) उत्कृष्ट धन को (अस्तभ्नाः) रोकता है और (अभवः) प्रसिद्ध होता है (सः) वह (उक्थ्यः) अनेकों में प्रशंसनीय (असि) है ॥ १० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य युक्त आहार-विहार करनेवाले जितेन्द्रिय होते हैं वे सब ऋतुओं में पाँचों इन्द्रियों से सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

सुप्रवाचनं तव वीर वीर्य्यं१ यदेकेन क्रतुना विन्दसे वसु ।
जातूष्ठिरस्य प्र वयः सहस्वतो या चकर्थ सेन्द्र विश्वास्युक्थ्यः ॥११॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य की प्राप्ति करानेवाले ! जिस कारण आप (उक्थ्यः) प्रशंसा करने योग्य (असि) हो, हे (वीर) प्रशंसित बलयुक्त ! जिन (जातूष्ठिरस्य) कभी स्थिर पाये हुए (सहस्वतः) बलवान् (तव) आपका (सुप्रवाचनम्) सुन्दर, अति उत्कृष्ट पढ़ाना, श्रवण करना और (वीर्यम्) उत्तम पराक्रम है (यत्) जो आप (एकेन) एक (क्रतुना) कर्म व ज्ञान से (वयः) विज्ञान और (वसु) धन को (प्रविन्दसे) प्राप्त होते हैं (याः) जिन (विश्वाः) समस्त उक्त कामों को (चकर्थ) करते हैं (सः) वह आप उन कामों के लिए हम लोगों के राजा वा उपदेशक वा अध्यापक हूजिए ॥ ११ ॥

भावार्थ—जिनके वेद के पारङ्गत अध्यापक विद्वान् प्रेम से उत्तम ज्ञान को देते हैं वे कभी दुःखी वा निन्दित नहीं होते हैं ॥ ११ ॥

अरमयः सरपसस्तराय कं तुर्वीतये च वय्याय च स्रुतिम् ।
नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन्त्सास्युक्थ्यः ॥१२॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप (सरपसः) जिससे पाप चलाये जाते हैं (तराय) उसके उल्लंघन और (तुर्वीतये) साधनों से व्याप्त होने के लिए (च) और (वय्याय) सूत के विस्तार करने के लिए (च) भी (स्रुतिम्) नाना प्रकार की चाल को जताइए और (परावृजम्) लौट गये हैं त्याग करनेवाले जिससे उस मनुष्य को (प्रान्धम्) अत्यन्त अन्धे वा (श्रोणम्) बहिरे के समान (श्रवयन्) सुनाते हुए (नीचा) नीच व्यवहार से (सन्तम्) विद्यमान मनुष्य को उत्तम व्यवहार में (अरमयः) रमाते हैं तथा सबकी (उदनयः) उन्नति करते हो इस कारण (सः) वह आप (उक्थ्यः) प्रशंसनीय (असि) हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ—जैसे शिल्पवेत्ता विद्वान् जन औरों को शिल्पविद्या के दान से उत्कृष्ट करते हुए अन्धे को देखते हुए के समान वा बहिरे को श्रवण करनेवाले के समान बहुश्रुत करते हैं वे इस संसार में पूज्य होते हैं ॥ १२ ॥

अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१३॥१२॥

पदार्थ—हे (वसो) सुखों में बसाने और (इन्द्र) ऐश्वर्य देनेवाले विद्वन् ! (ते) आपके (वसव्यम्) धनादि पदार्थों में हुए (चित्रम्) अद्भुत (बृहत्) बड़ा बढ़ता हुआ (बहु) बहुत (राधः) सुखसाधक धन है (तत्) वह (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (दानाय) देने को (समर्थयस्व) समर्थ करो जिससे (श्रवस्याः) सुनने के व्यवहारों में उत्तम (सुवीराः) सुन्दर शूरतायुक्त मनुष्य वा गुणों से युक्त हम लोग (अनुद्यून्) प्रत्येक पराक्रमादि के प्रकाशों को (विदथे) संग्राम में (बृहत्) बहुत (वदेम) कहें ॥ १३ ॥

भावार्थ—वे ही विद्वान् हैं जो औरों को शरीर, आत्मबल के योग से समर्थ और धनाढ्य, शूरवीर पुरुषार्थी करते हैं ॥ १३ ॥

इस सूक्त में बिजुली, विद्वान् और ईश्वर के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तेरहवाँ सूक्त और बारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अध्वर्यव इति द्वादशर्चस्य चतुर्दशसूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । इन्द्रो देवता । १,३, ४, ९, १०, १२ त्रिष्टुप्, २, ६, ८ निचृत् त्रिष्टुप्; ७ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ निचृत्पङ्क्तिः, ११ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब बारह ऋचावाले चौदहवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में सोम के गुणों को कहते हैं—

अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोममामत्रेभिः सिञ्चता मद्यमन्धः ।
कामी हि वीरः सदमस्य पीतिं जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि ॥१॥

पदार्थ—हे (अध्वर्यवः) अपने को यज्ञ कर्मों की चाहना करनेवाले मनुष्यो ! तुम जो (एषः) यह (वाश्री) कामना करने के स्वभाववाला (वीरः) वीर (वृषभो) बल बढ़ाने के लिए (अस्य) इस सोमरस के (पीतिम्) पान को (वष्टि) चाहता है (तत्, इत्) उसे (सवम्) पाने योग्य सोम (हि) को निश्चय से तुम (जुहोत) ग्रहण करो (इन्द्राय) और परमैश्वर्य के लिए (अवर्त्तभिः) उत्तम कामों से (अवम्) हर्ष देनेवाले (अन्धः) अन्न को तथा (सोमम्) सोम रस को (सिञ्चत) सींचो और बल को (आ, भरत) पुष्ट करो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सर्व रोग हरने, बुद्धि और बल के देनेवाले भोजन और पान अर्थात् उत्तम वस्तु पीने की कामना करते हैं वे बलिष्ठ वीर होते हैं ॥ १ ॥

अब बिजुली के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अध्वर्यवो यो अपो वव्रिवांसं वृत्रं जघानाशन्येव वृक्षम् ।
तस्मा एतं भरत तद्वशायँ एष इन्द्रो अर्हति पीतिमस्य ॥२॥

पदार्थ—हे (अध्वर्यवः) अपने को अहिंसा की इच्छा करनेवालो ! (यः) जो सूर्य (वव्रिवांसम्) आवरण करनेवाले (वृत्रम्) मेघ को (अशन्येव) बिजुली के समान (वृक्षम्) वृक्ष को (जघान) मारता है अर्थात् दाहशक्ति से भस्म कर देता है और (अपः) जलों को वर्षाता तथा जो (एषः) यह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् जन (अस्य) सोमलतादि रस के (पीतिम्) पीने को (अर्हति) योग्य होता है इस कारण (तद्वशाय) उन-उन पदार्थों की कामना करनेवाले के लिए (एतम्) उक्त पदार्थ द्वय को धारण करो अर्थात् उनके गुणों को अपने मन से निश्चित करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो सूर्य के समान विद्या और मेघ के समान सुख की उत्पत्ति करते हैं और सदा पथ्योषधि सेवी हुए ओषधियों का सेवन करते हैं वे परोपकार करने को भी योग्य होते हैं ॥ २ ॥

अब राज विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अध्वर्यवो यो दृभीकं जघान यो गा उदाजदप हि वलं वः ।
तस्मा एतमन्तरिक्षे न वातमिन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः ॥३॥

पदार्थ—हे (अध्वर्यवः) यज्ञ सम्पादन करनेवाले जनो ! (यः) जो (दृभीकम्) भयङ्कर प्राणी को (जघान) मारता है किसको कि (यः) जो (गाः) गौओं को (उदाजत्) विविध प्रकार से फेंके अर्थात् उठाय-उठाय पटके मारे और (वलम्) बल को (अप, वः) अपवरण करे, रोकें (तस्मै) उसके लिए (हि) ही (एतम्) इस यज्ञ को (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष मे (वातम्) पवन के (न) समान वा (इन्द्रम्) मेघों की धारणा करनेवाले सूर्य को (वस्त्रैः) वस्त्रो से (जूः) बुड्ढे के (न) समान (सोमैः) ओषधियों वा ऐश्वर्यों से (आ, ऊर्णुत) आच्छादित करो अर्थात् अपने यज्ञधूम से सूर्य को ढाँपो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है। जो राजपुरुष भयानक गोहत्या करनेवालों को मारते हैं और उत्तमो की रक्षा करते हैं वे निर्भय होते हैं ॥ ३ ॥

अध्वर्यवो य उरणं जघान नव चख्वांसं नवतिं च बाहून् ।
यो अर्बुदमव नीचा बबाधे तमिन्द्रं सोमस्य भृथे हिनोत ॥४॥

पदार्थ—हे (अध्वर्यवः) सब के प्रियाचरणों को करनेवाले विद्वानो ! तुम (यः) जो जन (उरणम्) आच्छादन करनेवाले (चख्वांसम्) मारनेवाले के प्रति मारनेवाले को (जघान) मारे और (नव, नवतिम्) न्यन्यानवे (बाहून्) बाहुओं के समान सहाय करनेवालों को (च) भी मारे (यः) जो (अर्बुदम्) दश करोड़ (नीचा) नीचों को (अव, बबाधे) बिलोता है (तम्) उस (इन्द्रम्) बिजुली के समान सेनापति को (सोमस्य) ऐश्वर्य के (भृथे) धारण करने में (हिनोत) प्रेरणा देओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे सेनास्थ मनुष्यो ! तुम को जो कि अनेकों सहाययुक्त दुष्टता करने वाले दुराचारियों को मारने और राज्यैश्वर्य का पुष्ट करनेवाला हो, वह सेनापति करना चाहिए ॥ ४ ॥

अध्वर्यवो यः स्वश्नं जघान यः शुष्णमशुषं यो व्यंसम् ।
यः पिप्रुं नमुचिं यो रुधिक्रां तस्मा इन्द्रायान्धसो जुहोत ॥५॥

पदार्थ—हे (अध्वर्यवः) अपने को यज्ञकर्म की इच्छा करने वा सब के प्रियाचरण करनेवालो ! तुम (यः) जो जन सूर्य जैसे (स्वश्नम्) सुन्दर मेघ को वैसे शत्रु को (जघान) मारता है वा (यः) जो (शुष्णम्) सूखे पदार्थ को (अशुषम्) गीला वा (यः) जो (व्यंसम्) शत्रु को निर्मूल करता वा (यः) जो (नमुचिम्) अधर्मात्मा (पिप्रुम्) प्रजापालक अर्थात् राजा को वा (यः) जो (रुधिक्राम्) राज्य व्यवहारों के रोकनेवालों को निरन्तर गिराता है (तस्मै) उस (इन्द्राय) सूर्य के समान सेनापति के लिए (अन्धसः) अन्न (जुहोत) देओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य जैसे सूर्य मेघ को धारण कर वर्षाता है वैसे जो कर को लेकर फिर देता है, दुष्टों को रोकता है श्रेष्ठों को यथासमय रोकता वह सेनापति होने योग्य है ॥ ५ ॥

अध्वर्यवो यः शतं शम्बरस्य पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वीः ।
यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपावपद्भरता सोममस्मै ॥६॥१३॥

पदार्थ—हे (अध्वर्यवः) सुखरूप यज्ञ की सिद्धि करनेवालो ! तुम लोगों में से (यः) जो (शम्बरस्य) सुख जिससे स्वीकार किया जाता उस मेघ के (शतम्) सौ (पुरः) पुरों को जैसे घड़े को (अश्मनेव) पत्थर से वैसे (बिभेद) छिन्न-भिन्न करता है (यः) जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (वर्चिनः) प्रदीप्त अपने सर्व बल से देदीप्यमान राजा के (शतम्) सौ और (सहस्रम्) हजार (पूर्वीः) पहले हुई प्रजाओं को (अपावपत्) नीचा करता है (अस्मै) इस सेनेश के लिए (सोमम्) ऐश्वर्य को (भरत) धारण करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य वा बिजुली मेघ की असंख्य नगरियों को छिन्न-भिन्न करता है, पृथिवी पर अपरिमित जल वर्षाता है वैसे जो प्रजा के लिए ऐश्वर्य का धारण करता है उस का निरन्तर सत्कार करो ॥ ६ ॥

अध्वर्यवो यः शतमा सहस्रं भूम्या उपस्थेऽवपज्जघन्वान् ।
कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्य वीरान्न्यावृणग्भरता सोममस्मै ॥७॥

पदार्थ—हे (अध्वर्यवः) सुखयज्ञरूप की सिद्धि करनेवाले जनो ! तुम (यः) जो सूर्य के समान (भूम्याः) भूमि के (उपस्थे) ऊपर (शतम्) सैकड़ों वा (सहस्रम्) सहस्रों वीरों को (आ, अवपत्) बोता अर्थात् गिरा देता, दुष्टों को (जघन्वान्) मारता वा (अतिथिग्वस्य) अतिथियों को प्राप्त होनेवाले (आयोः) और प्राप्त हुए (कुत्सस्य) बाण आदि फेंकनेवाले प्रजापति के (वीरान्) शत्रुबलों को व्याप्त होते वीरों को (नि, अवृणक्) निरन्तर वर्जता है (अस्मै) इस के लिए (सोमम्) ऐश्वर्य को (भरत) पुष्ट करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य से छिन्न-भिन्न हुआ मेघ असंख्य बिन्दुओं को वर्षाता है वैसे जो शत्रुसेना पर शस्त्रों को वर्षावे वह विजय को प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

अब प्रजाविषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अध्वर्यवो यन्नरः कामयाध्वे श्रुष्टी वहन्तो नशथा तदिन्द्रे ।
गभस्तिपूतं भरत श्रुतायेन्द्राय सोमं यज्यवो जुहोत ॥८॥

पदार्थ—हे (अध्वर्यवः) सब का हित चाहनेवाले (नरः) नायक मनुष्यो ! तुम (यत्) जिस राज्य वा धन को (श्रुष्टी) शीघ्र (वहन्तः) प्राप्त करते हुए (कामयाध्वे) उस की कामना करो (नशथ) वा छिपाओ (तत्) उस (गभस्तिपूतम्) किरणो वा बाहुओं से पवित्र किये हुए को (इन्द्रे) सभापति के निमित्त (भरत) धारण करो। हे (यज्यवः) सङ्ग करनेवाले जनो ! तुम (श्रुताय) जिस का प्रशंसित श्रुतिविषय है उस (इन्द्राय) सभापति के लिए (सोमम्) ओषधियों के रस को वा ऐश्वर्य को (जुहोत) ग्रहण करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जिस प्रकार की विद्या अपने अर्थ चाहो वैसे दूसरों के लिए भी चाहो जिस से सब बहुत ऐश्वर्यवाले हों ॥ ८ ॥

अब क्रियाकौशल विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अध्वर्यवः कर्तना श्रुष्टिमस्मै वने निपूतं वन उन्नयध्वम् ।
जुषाणो हस्त्यमभि वावशे व इन्द्राय सोमं मदिरं जुहोत ॥९॥

पदार्थ—हे (अध्वर्यवः) पुरुषार्थी जनो ! तुम (अस्मै) इस सभापति के लिए (वने) किरणो में (श्रुष्टिम्) शीघ्र (निपूतम्) निरन्तर पवित्र और दुर्गन्ध वा प्रमादपन से रहित पदार्थ (कर्तन) करो (वने) और किरणों में (उन्नयध्वम्) उत्कर्ष देओ जो (हस्त्यम्) हस्तों में उत्तम हुए पदार्थ को (जुषाणः) प्रीति करता वा सेवन करता हुआ (मदिरम्) आनन्द देनेवाले (सोमम्) सोमलतादि रस को (अभि, वावशे) प्रत्यक्ष चाहता (तस्मै) उस सभापति के लिए और (वः) तुम लोगों को (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् जन के लिए उक्त पदार्थ को (जुहोत) देओ ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो वैद्यजन सूर्यकिरणो से निष्पन्न हुए ओषधि रस को क्रिया से उत्कृष्ट करके आप सेवते तथा औरों के लिए देते हैं वे शीघ्र अपने कार्य को कर सकते हैं ॥ ९ ॥

अध्वर्यवः पयसोधर्यथा गोः सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
वेदाहमस्य निभृतं म एतद्दित्सन्तं भूयो यजतश्चिकेत ॥१०॥

पदार्थ—हे (अध्वर्यवः) बड़ी-बड़ी ओषधियों के सिद्ध करनेवाले जनो ! तुम (यथा) जैसे (गोः) गौ के (पयसा) दूध से (ऊधः) ऐन भरा होता है वैसे (सोमेभिः) आई हुई सोमादि ओषधियों के साथ (ईम्) जल को पीके (पृणत) तृप्त होओ जैसे (भोजम्) भोजन करनेवाले (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् को (अहम्) मैं (वेद) जानूं (अस्य) इस की (निभृतम्) निश्चित पुष्टि को जानूं वैसे तुम जानो जिस (मे) मेरे (एतत्) इस पूर्वोक्त पदार्थ के (दित्सन्तम्)

देनेवाले का (अवसः) सङ्ग करते हुए जनों को जैसे मैं जानूँ वैसे इस विषय को (भूयः) बार बार जो (चिकेत) जाने उस को तृप्त करो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । मनुष्य जैसे गौवें घास आदि को खाकर दूध उत्पन्न करती हैं वैसे महौषधियों का संग्रह कर श्रेष्ठ ओषधियों को सिद्ध करें ॥ १० ॥

अध्वर्यवो यो दिव्यस्य वस्वो यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा ॥

तमूर्दरं न पृणता यवेनेन्द्रं सोमेभिस्तदपो वो अस्तु ॥११॥

पदार्थ—हे (अध्वर्यव) राजसम्बन्धी विद्वज्जनो ! (यः) जो (दिव्यस्य) प्रकाश में उत्पन्न हुए (वस्व) धन को वा (यः) जो (पार्थिवस्य) पृथिवी मे विदित (क्षम्यस्य) सहनशीलता मे उत्तम उस के बीच (वः) तुम्हारे लिए (राजा) राजा (अस्तु) हो (तम्) उस (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् को (यवेन) यव अन्न से जैसे (ऊर्दरम्) मटका को वा डिहरा को (न) जैसे (सोमेभिः) सोमादि ओषधियो से (पृणत) पूरो, परिपूर्ण करो (तत्) उस (अप.) कर्म को प्राप्त होओ ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है जो विद्वान् जन धान्य अन्न से मटका वा डिहरा को जसे वैसे विद्यार्थियो की बुद्धियो को विद्या और शिक्षा से तृप्त करते हैं वे राजा को सेवने योग्य हों ॥ ११ ॥

अब ईश्वर विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।

इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१२॥१४॥

पदार्थ—हे (वसो) धन देनेवाले (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त ! (सुवीराः) सुन्दर वीरोंवाले हम लोग जो (ते) तुम्हारा (बहु) बहुत (चित्रम्) अद्भुत (वसव्यम्) पृथिवी आदि वस्तुओं से सिद्ध हुए (बृहत्) बहुत (राधः) समृद्धि करनेवाले धन को (श्रवस्याः) अन्नो के हित करनेवाली पृथिवी के बीच (अनु, द्यून्) प्रतिदिन (विदथे) विज्ञानरूपी संग्राम यज्ञ में (वदेम) कहें उस को हमारे लिए देने को आप (समर्थयस्व) समर्थ करो ॥ १२ ॥

भावार्थ—सज्जनो का धन औरों के सुख के लिए और दुष्टों का धन औरो के दुःख के लिए होता है जो धन और ऐश्वर्यों की उन्नति के लिए सर्वदा प्रयत्न करते हैं वे पुष्कल वैभव पाते हैं ॥ १२ ॥

इस सूक्त मे सोम, बिजुली, राजप्रजा और क्रियाकौशल के प्रयोजनो के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह चौदहवां सूक्त और चौदहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

प्रेति दशर्चस्य पञ्चदशस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ भुरिक् पङ्क्तिः, ७ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २, ४—६, ६, १० त्रिष्टुप्; ३ निचृत् त्रिष्टुप्; ८ विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब दश ऋचावाले पन्द्रहवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से विद्वान्, सूर्य और परमेश्वर के विषय को कहते हैं—

प्र घा न्वस्य महतो महानि सत्या सत्यस्य करणानि वोचम् ।

त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्यास्य मदे अहिमिन्द्रो जघान ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (इन्द्र) सूर्य (सुतस्य) सम्पादित किये हुए (अस्य) सोमादि ओषधि के रस को (त्रिकद्रुकेषु) तीन प्रकार की विशेष गतियो से युक्त कर्मों मे (अपिबत्) पीता है और (मदे) हर्ष के निमित्त (अहिम्) मेघ को (जघान) मारता है इस कर्म को अथवा (अस्य) इस (महत.) पूज्य वा व्यापक (सत्यस्य) नाशरहित जगदीश्वर के (सत्या) सत्य अविनाशी (महानि) प्रशंसनीय (करणानि) साधन वा कर्मों को (घ) ही मैं (नु) शीघ्र (प्रवोचम्) प्रकर्षता से कहता हूँ वैसे तुम लोग भी कहो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो मनुष्य जैसे सूर्य किरणो से सब के रस को अपने प्रकाश से उन्नत करता वा शोषता है वैसे ओषधियों के रस को जो कि रोगनिवारण करने से आनन्द देनेवाला है उस को सेवते वा परमेश्वर के सत्यगुण, कर्म, स्वभाव और साधनो के अनुकूल कर्मों को करते हैं वे ही शीघ्र सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

अवंशे द्यामस्तभायद् बृहन्तमा रोदसी अपृणदन्तरिक्षम् ।

स धारयत्पृथिवीं पप्रथच्च सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (अवंशे) अविद्यमान जिसका मान उस वंश के समान वर्तमान अन्तरिक्ष मे (द्याम्) प्रकाश को (अस्तभायत्) रोकता (बृहन्तम्) बढ़ते हुए ब्रह्माण्ड को (रोदसी) सूर्यलोक, भूमिलोक और (अन्तरिक्षम्) आकाश को (अपृणत्) प्राप्त होता (पृथिवीम्) पृथिवी को धारण करता (सोमस्य) उत्पन्न हुए जगत् के बीच (मदे) आनन्द के निमित्त (ता) उक्त कर्मों को (पप्रथत्) विस्तारता है इस सबको (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर श्रम से (चकार) करता है (सः) वह तुम लोगों को उपासना करने योग्य है ॥ २ ॥

भावार्थ—कोई नास्तिकता को स्वीकार कर यदि ऐसे कहें कि जो ये लोक परस्पर के आकर्षण से स्थिर हैं इनका कोई और धारण करने वा रचनेवाला नहीं है उनके प्रति जन ऐसा समाधान देवें कि यदि सूर्यादि लोको के आकर्षण से ही सब लोक स्थिति पाते हैं तो सृष्टि के अन्त मे अर्थात् जहाँ कि सृष्टि के आगे कुछ नहीं है वहाँ के लोकों के आकर्षण के बिना आकर्षण होना कैसे सम्भव है ? इससे सर्वव्यापक परमेश्वर की आकर्षण शक्ति से ही सूर्यादि लोक अपने रूप और अपनी क्रियाओं को धारण करते हैं । ईश्वर के इन उक्त कर्मों को देख धन्यवादो से ईश्वर की प्रशंसा सर्वदा करनी चाहिए ॥ २ ॥

सद्मेव प्राचो वि मिमाय मानैर्वज्रेण खान्यतृणन्नदीनाम् ।

वृथासृजत्पथिभिर्दीर्घयाथैः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर (मानैः) परिमाणों से (सद्मेव) घर के समान (प्राचः) प्राचीन लोको को (वि, मिमाय) निर्माण करता बनाता है (नदीनाम्) अव्यक्त शब्दयुक्त नदियों के (खानि) खातों अर्थात् जलस्थानों को (वज्रेण) विज्ञान से (अतृणत्) विस्तारता (दीर्घयाथैः) जिनमे दीर्घ, बड़े-बड़े गमन, चालें उन (पथिभिः) मार्गों के साथ सब लोकों को (वृथा) वृथा (असृजत्) रचता (सोमस्य) उत्पन्न हुए जगत् के (मदे) हर्ष निमित्त (ता) उन उक्त कर्मों को (चकार) करता है वह जगत् का निर्माण करने वाला दयालु ईश्वर जानना चाहिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । हे मनुष्यो ! जिस ईश्वर से पूर्व कल्प की रीति से और परमाणुओं से लोक-लोकान्तरो का निर्माण किया जाता है जिसका अपना प्रयोजन केवल परोपकार को छोड़कर और कुछ भी नहीं है उस जगदीश्वर के उक्त काम धन्यवाद के योग्य हैं उनका तुम स्मरण करो ॥ ३ ॥

स प्रवोळ्हृन् परिगत्या दभीतेर्विश्वमधागायुधमिद्धे अग्नौ ।

सं गोभिरश्वैरसृजद्रथेभिः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (इन्द्रः) जगदीश्वर (दभीतेः) हिंसा से (परिगत्य) सब ओर से प्राप्त होकर (विश्वम्) समस्त जगत् को (प्रवोळ्हृन्) उसको प्रकृष्टता से पहुँचानेवालो को (आयुधम्) शस्त्र के समान (समिद्धे) प्रदीप्त (अग्नौ) अग्नि मे (अधाक्) भस्म करता है वा (गोभिः) गौओं (अश्वैः) तुरङ्गों और (रथेभिः) भूमि मे चलनेवाले रथादि यानों से (सोमस्य) उत्पन्न हुए जगत् के (मदे) हर्ष के निमित्त (ता) ऐश्वर्य सम्बन्धी उक्त कामों को (चकार) करता है (सः) वह प्रलय का करनेवाला ईश्वर सबको सब ओर से ध्यान करने योग्य है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सप्राप्त अग्नि सूखे और गीले पदार्थ को भस्म करता है वैसे अच्छे प्रकार प्राप्त हुए प्रलय समय में जगदीश्वर सबका प्रलय करता है ॥ ४ ॥

स ईं महीं धुनिमेतोररम्णात्सो अस्नातॄनपारयत्स्वस्ति ।

त उत्स्नाय रयिमभि प्र तस्थुः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥५॥१५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर (सोमस्य) उत्पन्न जगत् के बीच (ईम्) जल और (धुनिम्) चलती हुई (महीम्) पृथिवी को (अरम्णात्) हन्ता है (सतः) वह (अस्नातॄन्) अस्नातक अर्थात् जो यज्ञस्नान नहीं किये उनके (स्वस्ति) गमन को (एतो.) कल्याण जैसे हो वैसे (अभि, अपारयत्) सब ओर से पार पहुँचाता है जो (ता) उक्त कामो को (मदे) हर्ष के निमित्त (चकार) करता है और जो विद्वान् उन उक्त ईश्वर के निमित्त (उत्स्नाय) उत्तम समाधिस्नान कर (रयिम्) धन को (प्रतस्थुः) प्रस्थित करते फिरते (ते) वे दुःख को छोड़ते वह सबको सेवने योग्य है ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो जगदीश्वर जगत् का रचने वा पालना करने वा हरनेवाला और मुक्ति मे शुद्धाचरण करनेवालों को दुःख से पार करनेवाला है जो इस शुद्ध ईश्वर मे समाधि से न्हा के पवित्र होते हैं वे सब जगत् मे सब जगह प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

अब सूर्य के विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

सोदञ्चं सिन्धुमरिणान्महित्वा वज्रेणान उषसः सं पिपेष ।

अजवसो जविनीभिर्विवृश्चन्त्सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (इन्द्रः) सब पदार्थों को अपनी किरणों से छिन्नभिन्न करनेवाला सूर्य (महित्वा) महत्त्व से (वज्रेण) अपने किरणरूपी वज्र से (उदञ्चम्) ऊपर को प्राप्त होते हुए (सिन्धुम्) समुद्र को (अरिणात्) गमन करता वा उच्छिन्न करता (उषस.) प्रभात समय से लेकर (संपिपेष) अच्छे प्रकार पीसता अर्थात् अपने आतप से समुद्र के जल को कण-कण कर सींचता (अजवसः) वेगरहित भी (जविनीभिः) वेगवती क्रियाओं से पदार्थों को (विवृश्चन्) छिन्न-भिन्न करता हुआ (सोमस्य) ऐश्वर्ययुक्त संसार के (मदे) आनन्द

के निमित्त (ता) उन कामों को (चकार) करता है (सः) वह तुम लोगों को जानने योग्य है ॥ ६ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य महत्व से अपने प्रकाश से जल को ऊपर पहुँचाता, रात्रि को विनाशता, अति वेग और अपनी चालों से अद्भुत कामों को करता है वैसे हम लोगों को भी आरम्भ करना चाहिए ॥ ६ ॥

अब सूर्य के दृष्टान्त से विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स विद्वाँ अपगोहं कनीनामाविर्भवन्नुदतिष्ठत्परावृक् ।

प्रति श्रोणः स्थाद्व्य१नगचष्ट सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥७॥

पदार्थ—जो (श्रोणः) सुननेवाला विद्वान् जन (इन्द्रः) सर्व पदार्थ अलग-अलग करनेवाला सूर्य जैसे (सोमस्य) संसार के बीच (कनीनाम्) कान्तियों के (अपगोहम्) अपगूहन आच्छादन करने को (परावृक्) खोलता (आविर्भवन्) प्रकट होता हुआ (उदतिष्ठत्) ऊपर को स्थिर होता अर्थात् उदय होकर ऊपर को बढ़ता (प्रतिस्थात्) और प्रतिष्ठा पाता (व्यनक्) पदार्थों को प्रकट करता (अचष्ट) उपदेश करता अर्थात् अपनी गति से यथावत् समय को बतलाता वैसे (मदे) हर्ष के निमित्त (ता) उन कामों को (चकार) करता है (सः) वह सबको सत्कार करने योग्य है ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य अपने प्रकाशदान से अन्धकार को निवृत्त कर विविध संसार दिखलाता है वैसे विद्वान् जन सत्यविद्या का उपदेश देने से अविद्या को निवृत्त कर विविध पदार्थविज्ञान को प्रकट करते हैं वे विश्व के भूषित करनेवाले होते हैं ॥ ७ ॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

भिनद्वलमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दृंहितान्यैरत् ।

रिणग्रोधांसि कृत्रिमाण्येषां सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (गृणानः) प्रशंसा करते हुए आप जैसे (इन्द्रः) सर्व पदार्थ छिन्न-भिन्न करता सूर्य (अङ्गिरोभिः) अङ्गों के सदृश किरणों से (पर्वतस्य) मेघ के समान प्रजा के (बलम्) बल को (वि, भिनत्) विशेषता से छिन्न-भिन्न करता (सोमस्य) विश्व के (दृंहितानि) बढ़े हुए पदार्थों को (ऐरत्) प्राप्त होता वा (एषाम्) इन पदार्थों के (कृत्रिमाणि) कृत्रिम (रोधांसि) आवरणों को अर्थात् जिनसे यह उन्नति को नहीं प्राप्त होते उन पदार्थों को (रिणक्) मारता, नष्ट करता (ता) उक्त कामों को (मदे) हर्ष निमित्त (चकार) करता है वैसा प्रयत्न करिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । हे मनुष्यो ! जैसे वायु के सहाय से अग्नि अद्भुत कर्मों को करता है वैसे धार्मिक विद्वान् के सहाय से मनुष्य बड़े-बड़े उत्तम काम कर सकते हैं ॥ ८ ॥

अब राजविषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं धुनिं च जघन्थ दस्युं प्र दभीतिमावः ।

रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यं सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥९॥

पदार्थ—जो (इन्द्रः) सेनापति (स्वप्नेन) निद्रापन से वर्त्तमान (चुमुरिम्) मुखमुख अर्थात् चोरपन का मुख बनाये और (धुनिम्) कम्पते हुए (दस्युम्) बलात्कारी अति साहसकारी डाकू चोर का (अभ्युप्य) सब ओर से शिर मुंडवा कर (जघन्थ) मारे (दभीतिम्) हिंसक प्राणी को (प्र आवः) उत्कर्षता से रक्खे (रम्भी) कार्य्यारम्भ करनेवाला (चित्) भी (अत्र) इस राज्यव्यवहार में (सोमस्य) विश्व का (हिरण्यम्) सुवर्ण (विविदे) पावे (सः) वह (मदे) हर्ष के निमित्त (ता) उक्त कामों को (चकार) करे ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो पुरुषार्थी जन डाकू आदि दुष्टों का निवारण कर श्रेष्ठों की रक्षा के निमित्त इकट्ठे करें वे जगत् के बीच ऐश्वर्य को पाते हैं ॥ ९ ॥

अब दान देने के कर्म का विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।

शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१०॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दान करनेवाले जन ! (ते) तेरी (मघोनी) प्रशंसित धनयुक्त (दक्षिणा) दक्षिणा और (स्तोतृभ्यः) धार्मिक विद्वानों के लिए (शिक्षा) विद्या ग्रहण की सिद्धि करानेवाली शिक्षा (जरित्रे) समस्त विद्याओं की प्रशंसा करनेवाले जन के लिए (प्रतिवरम्) श्रेष्ठ कार्य के प्रति श्रेष्ठ कार्य को (दुहीयत्) पूर्ण करे (सा) वह (नः) हमारा जो (भगः) ऐश्वर्य उसको (माति धक्) मत नष्ट करे जिससे (सुवीराः) सुन्दर वीरों से युक्त हम लोग (विदथे) यज्ञ में (बृहत्) बहुत (नूनम्) निश्चित (वदेम) कहें ॥ १० ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको उत्तम विद्वानों के लिए अभीष्ट दक्षिणा और विद्यार्थियों के लिए शिक्षा देनी चाहिए जिससे देने और लेनेवाले फलयुक्त हों ॥ १० ॥

इस सूक्त में विद्वान्, सूर्य, परमेश्वर और राज्य आदि कर्तव्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति समझनी चाहिए ।

यह पन्द्रहवाँ सूक्त और सोलहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

प्र व इति नवर्चस्य षोडशस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । इन्द्रो देवता । १,७ जगती ३ विराड् जगती, ४—६, ८ निचृज्जगती च छन्दः । निषादः स्वरः । २ भुरिक् त्रिष्टुप्, ९ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब नव ऋचावाले सोलहवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में बिजुली के विषय को कहते हैं—

प्र वः सतां ज्येष्ठतमाय सुष्टुतिमग्नाविव समिधाने हविर्भरे ।

इन्द्रमजुर्यं जरयन्तमुक्षितं सनाद्युवानमवसे हवामहे ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! हम लोग (सताम्) आप सज्जनों के (ज्येष्ठतमाय) अत्यन्त बड़े हुए (अवसे) रक्षा आदि के लिए (हविः) हविष्य पदार्थ को (भरे) भरें धारण करें वा पुष्ट करें उस (समिधाने) अच्छे प्रकार प्रदीप्त (अग्नाविव) अग्नि में जैसे वैसे (सुष्टुतिम्) सुन्दर स्तुति को (हवामहे) स्वीकार करें और (सनात्) निरन्तर (युवानम्) दूसरे का भेद और (उक्षितम्) सेचन करनेवाले तथा (अजुर्यम्) पुष्ट (जरयन्तम्) औरों को (जरावस्था) प्राप्त करानेवाले (इन्द्रम्) विद्युद्रूप अग्नि को उत्तमता से स्वीकार करें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे अग्नि और विभाग आदि कर्मों का करनेवाला बिजुली रूप अग्नि युक्ति के साथ संयुक्त किया हुआ बहुत ऐश्वर्य को उत्पन्न करता है वैसे सत्पुरुषों की प्रशंसा सबकी श्रेष्ठता के लिए कल्पित की जाती है ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यस्मादिन्द्राद्बृहतः किं चनेमृते विश्वान्यस्मिन्त्संभृताधि वीर्या ।

जठरे सोमं तन्वी३ सहो महो हस्ते वज्रं भरति शीर्षणि क्रतुम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यस्मात्) जिस (बृहतः) बड़े (इन्द्रात्) विद्युदग्नि से (ऋते) विना (किंचन) कुछ भी नहीं है (अस्मिन्) इसके (जठरे) उदर में (विश्वानि) समस्त वे पदार्थ (वीर्या) जो वीर मनुष्यों को फेंकनेवाले विद्वानों में उपयोगी हैं (सम्भृता) अच्छे प्रकार भरे हुए हैं जो (तन्वि, ईम्) अपने शरीर में सब ओर से (सोमम्) ओषधि अन्न को (सहः) और बल को तथा (हस्ते) हाथ में (महः) बड़े (वज्रम्) शस्त्र को (शीर्षणि) और शिर के बीच (क्रतुम्) उत्तम बुद्धि को (अधि भरति) अधिकता से धारण करता है वह विद्युदग्नि सबको यथावत् अच्छे प्रकार काम में लाने योग्य है ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जितना स्थूल वस्तु मात्र संसार में हैं उतना समस्त बिजुली के बिना नहीं है उसको प्रयत्न से तुम लोग जानो ॥ २ ॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

न क्षोणीभ्यां परिभ्वे त इन्द्रियं न समुद्रैः पर्वतैरिन्द्र ते रथः ।

न ते वज्रमन्वश्नोति कश्चन यदाशुभिः पतसि योजना पुरु ॥३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) बिजुली के समान वर्त्तमान ! जिन (ते) आपको (इन्द्रियम्) धन (क्षोणीभ्याम्) आकाश और पृथिवी से (न) नहीं (परिभ्वे) तिरस्कार को प्राप्त होता जिन (ते) आपका (समुद्रैः) सागरों और (पर्वतैः) पर्वतों से (रथः) रथ (न) नहीं तिरस्कार को प्राप्त होता जिन (ते) आपके (वज्रम्) छिन्न-भिन्न करनेवाले शस्त्र को (कश्चन) कोई (न, अनु, अश्नोति) नहीं अनुकूलता से व्याप्त होता (यत्) जो (आशुभिः) शीघ्र गमन करानेवाली बिजुली के साथ रथ से (पुरु) बहुत (योजना) योजनों को (पतसि) जाते हैं सो आप सर्वथा विजयी होने के योग्य हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों से युक्त शस्त्र-अस्त्र आदि पदार्थों को सिद्ध करते हैं वे तिरस्कार को नहीं पहुँचते और जो लोग आकाश, समुद्र तथा पहाड़ी भूमि में भी रथों को चलाते हैं वे सुख से मार्ग के पार होते हैं ॥ ३ ॥

विश्वे ह्यस्मै यजताय धृष्णवे क्रतुं भरन्ति वृषभाय सश्चते ।

वृषा यजस्व हविषा विदुष्टरः पिबेन्द्र सोमं वृषभेण भानुना ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के इच्छुक (वृषा) शत्रु की शक्ति बांधनेहारे (विदुष्टरः) अतीव विद्वन् ! आप जो (हि) ही (विश्वे) सर्वत्र (वृषभेण) वर्षा करानेवाले (भानुना) ताप युक्त सूर्य जैसे रस को वैसे (अस्मै) इस (यजताय) सङ्गम (धृष्णवे) दृढ़ता (वृषभाय) श्रेष्ठता (सश्चते) और सम्बन्ध के लिए (क्रतुम्) प्रज्ञा को (भरन्ति) धारण करते हैं, उनके अनुसारी होते हुए (हविषा) देने-लेने योग्य वस्तु से (यजस्व) यज्ञ करो और (सोमम्) ओषध्यादि पदार्थों के रस को (पिब) पीओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो प्रथम से अपनी बुद्धि की उन्नति देकर विद्वानों का सत्कार करते हैं वे सब जगत् में सत्कार युक्त होते हैं ॥ ४ ॥

अब सूर्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वृष्णः कोशः पवते मध्व ऊर्मिर्वृषभान्नाय वृषभाय पातवे ।

वृषणाध्वर्यू वृषभासो अद्रयो वृषणं सोमं वृषभाय सुष्वति ॥५॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (मध्वः) सहत वा मधु रस की (ऊर्मिः) तरङ्ग वा (वृष्णः) जल वर्षानेवाले सूर्य के (कोशः) मेघ (वृषभान्नाय) श्रेष्ठ जिससे अन्न हो उस (वृषभाय) श्रेष्ठ के लिए (पवते) प्राप्त होता वा जैसे (पातवे) पीने के लिए (वृषभासः) वर्षनेवाले (अद्रय) मेघ (वृषभाय) दुष्टों की शक्ति को बाँधनेवाले के लिए (वृषणम्) बलकारक (सोमम्) सोमलतादि ओषधि रस को और (वृषणा) श्रेष्ठ (अध्वर्यू) अपने अहिंसा की इच्छा करनेवाले का (सुन्वन्ति) सार निकालते हैं वैसे तुम भी निकालनेवाले हूजिए ॥५॥

भावार्थ—जैसे मेघ सूर्य से उत्पन्न होकर पुष्कल अन्न का निमित्त होता और सब प्राणियों को तृप्त करता है वैसे विद्वानों को होना चाहिए ॥ ५ ॥

फिर विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

वृषा ते वज्र उत ते वृषा रथो वृषणा हरी वृषभाण्यायुधा ।

वृष्णो मदस्य वृषभ त्वमीशिष इन्द्र सोमस्य वृषभस्य तृप्णुहि ॥६॥

पदार्थ—हे (वृषभ) अत्युत्तम (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त विद्वन् ! जिन (ते) आपका (वृषा) दूसरे की शक्ति का प्रतिबन्धन करनेवाला (वज्रः) वेग (उत) और (ते) आपका (वृषा) वेगवान् (रथः) रथ (वृषणा) बलिष्ठ (हरी) हरणशील घोड़े (वृषभाणि) और शत्रुओं के बल को रोकनेवाले (आयुधा) अस्त्र-शस्त्र हैं सो जिस (वृष्णः) बल करनेवाले (मदस्य) हर्ष का और (वृषभस्य) पुष्टि करनेवाले (सोमस्य) ओषध्यादि रस के आप (ईशिषे) स्वामी होते हैं उससे (तृप्णुहि) तृप्त होओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—जिनके सब कामों की सिद्धि करानेवाले साधनोपसाधन दृढ़ वा प्रशंसित काम हैं वे कामों के साधन कराने को पीड़ित नहीं होते ॥ ६ ॥

प्र ते नावं न समने वचस्युवं ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषिः ।

कुविन्नो अस्य वचसो निबोधिषदिन्द्रमुत्सं न वसुनः सिचामहे ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वन् (सवनेषु) ऐश्वर्यों वा प्रेरणाओं में (दाधृषिः) अतीव प्रगल्भ मैं (ते) तुम्हारे (समने) संग्राम के निमित्त (नावम्) जल में नाव को जैसे (न) वैसे (प्रयामि) प्राप्त होता (ब्रह्मणा) वेद के (वचस्युवम्) अपने को वचन की इच्छा करते अर्थात् वेद शिक्षाओं को चाहते हुए जन को प्राप्त होता (कुवित्) महान् आप (अस्य) इस (वचसः) वचन के सम्बन्ध करानेवाले (नः) हम लोगों को (निबोधिषत्) निश्चित जानो हम लोग (उत्सम्) कूप के (न) समान वा (इन्द्रम्) बिजुली के समान ऐश्वर्य के (वसुनः) द्रव्य सम्बन्धि व्यवहारों से (सिचामहे) सींचते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो नौकाओं से समुद्र में, रथों से पृथिवी पर और विमानों से आकाश में युद्ध करते हैं वे सदा ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

पुरा संबाधादभ्या ववृत्स्व नो धेनुर्न वत्सं यवसस्य पिप्युषी ।

सकृत्सु ते सुमतिभिः शतक्रतो सं पत्नीभिर्न वृषणो नसीमहि ॥८॥

पदार्थ—हे (शतक्रतो) असंख्य बुद्धियोंवाले जन ! आप (यवसस्य) यवादि अन्न सम्बन्धी (वत्सम्) बछड़े को (पिप्युषी) वृद्ध (धेनु) गौ (न) जैसे वैसे वा (सुमतिभिः) जिनकी सुन्दर बुद्धियाँ उन (पत्नीभिः) पत्नियों के साथ (वृषणः) बलवान् सेचनकर्त्ता जन जैसे (न) वैसे (ते) आपके (सम्बाधात्) सम्बन्ध से (पुरा) प्रथम (नः) हम लोगों को (अभि, आ, ववृत्स्व) सब ओर से अच्छे प्रकार वर्त्तो जिससे हम लोग (सकृत्) एक बार (सुसन्नसीमहि) सुन्दरता से जावें ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो और प्राणियों को पीड़ा से निवृत्त करते हैं वे आप भी पीड़ा से निवृत्त होते हैं जैसे कियमाण पत्नी के साथ पति आनन्दित होता है वैसे सज्जन के साथ सब आनन्दित होते हैं ॥ ८ ॥

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।

शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्वन् ! जो (ते) आपकी (मघोनी) प्रशंसा करने के योग्य विद्या और प्रतिष्ठा (दक्षिणा) और दक्षिणा (जरित्रे) स्तुति करनेवाले के लिए (प्रतिवरम्) श्रेष्ठ के प्रति श्रेष्ठ पदार्थ को (दुहीयत्) पूर्ण करे (सा) वह आप का (नूनम्) निश्चित श्रेय अत्यन्त कल्याण सिद्ध करती है आप (स्तोतृभ्यः) स्तुति करनेवाले विद्वानों के लिए जो पदार्थ उनको (मा, अति, धक्) मत भस्म कर, मत नष्ट कर जो (नः) हमारे लिए (भगः) ऐश्वर्य उसको (शिक्ष) शिक्षा देओ । जिससे हम लोग (सुवीराः) सुन्दर वीरोंवाले हुए (विदथे) यज्ञ भूमि में (बृहत्) बहुत (वदेम) कहें ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो लोग किसी के उपकार को नहीं रोकते, सत्य उपदेश करते हैं वे यशस्वी होते हैं ॥ ९ ॥

इस सूक्त में बिजुली, विद्वान्, सूर्य और फिर विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ।

यह सोलहवाँ सूक्त और अठारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

तदस्मायिति नवर्चस्य सप्तदशस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
१, ५, ६ विराड् जगती; २, ४ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ।
३, ७ भुरिक् त्रिष्टुप्, ९ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।
८ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब नव ऋचावाले सत्रहवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में सूर्य के गुणों का उपदेश करते हैं—

तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदर्चत शुष्मा यदस्य प्रत्नथोदीरते ।

विश्वा यद्गोत्रा सहसा परीवृता मदे सोमस्य दृंहितान्यैरयत् ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (अस्य) इस सूर्यमण्डल सम्बन्धी (सोमस्य) ओषधि गण के (यत्) जो (प्रत्नथा) पुरातन पदार्थ के समान (शुष्मा) दूसरों को शुष्क करनेवाले (विश्वा) और समस्त (गोत्रा) गोत्र जो कि (परीवृता) सब ओर से वर्त्तमान के (सहसा) बल के साथ (दृंहितानि) धारण किये वा बढ़े हुए (उदीरते) उत्कर्षता से दूसरे पदार्थों को कम्पन दिलाते हैं (तत्) वह (नव्यम्) नवीन कर्म (अस्मै) इसके लिए (अङ्गिरस्वत्) प्राण के तुल्य तुम लोग (अर्चत) सत्कृत करो (यत्) जो (मदे) आनन्द के लिए उत्तमता से होता है उसको जो (ऐरयत्) कंपाता, कार्य में लाता है उसको तुम स्वरूप से जानो ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर ने समस्त भूगोलों के धारण करने को सूर्यमण्डल बनाया है उसका सदा ध्यान किया करो ॥ १ ॥

अब ईश्वर विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स भूतु यो ह प्रथमाय धायस ओजो मिमानो महिमानमातिरत् ।

शूरो यो युत्सु तन्वं परिव्यत शीर्षणि द्यां महिना प्रत्यमुञ्चत ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (ह) ही (प्रथमाय) प्रथम (धायसे) धारण के लिए (ओजः) बल को (मिमानः) निर्माण करता, बनाता हुआ (महिमानम्) अपने प्रभाव को (आतिरत्) सम्यक् पार पहुँचाता (सः) वह जगदीश्वर हम लोगों के लिए सुख देनेवाला (भूतु) हो (यः) जो (शूरः) निर्भय मनुष्य (युत्सु) संग्रामों में (तन्वम्) शरीर को छोड़ता है उसको (परिव्यत) सब ओर से व्याप्त होओ अर्थात् प्राप्त होओ जो जगदीश्वर (महिना) अपने महत्त्व से (शीर्षणि) शिर पर (द्याम्) प्रकाश को (प्रति अमुञ्चत) छोड़ता उसको सब ओर से व्याप्त होओ अर्थात् उस में रमो ॥ २ ॥

भावार्थ—जो जगदीश्वर धारण करनेवालों का धारणकर्त्ता, बलवानों का बलवान्, बड़ों का बड़ा और पूज्यों का पूज्य है उसकी सब उपासना करें ॥ २ ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अधाकृणोः प्रथमं वीर्यं महद्यदस्याग्रे ब्रह्मणा शुष्ममैरयः ।

रथेष्ठेन हर्यश्वेन विच्युताः प्र जीरयः सिस्रते सध्र्यक् पृथक् ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! यदि आप (अस्य) इस जगत् के (अग्रे) प्रथम में (महत्) बहुत (वीर्यम्) पराक्रम (अकृणोः) करो कि (यत्) जिससे (ब्रह्मणा) अन्न के योग से (शुष्मम्) बल को (ऐरयः) प्रेरित करो यदि विद्वान् जन (हर्यश्वेन) हर्यश्वरथ अर्थात् हरणशील शीघ्रगामी अश्व जिसमें उस (रथेष्ठेन) रथ में स्थित जन के साथ (विच्युताः) विशेषता से चलायमान (प्र, जीरयः) उत्तमता से अवस्था के हरण करनेवाले होते हुए और (सध्र्यक्) जो समान स्थान को प्राप्त होता वह मनुष्य (पृथक्) अलग-अलग (सिस्रते) प्राप्त होते हैं (अध) इसके अनन्तर वह वे पूर्वोक्त जन शत्रुओं से पराजय को नहीं प्राप्त होते ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो इस संसार में सबके बल पराक्रम को बढ़ानेवाले, साधनोपसाधनयुक्त अलग-अलग वा मिलकर प्रयत्न करते हैं वे अन्नादि ऐश्वर्ययुक्त होते हैं ॥ ३ ॥

अधा यो विश्वा भुवनाभि मज्मनेशानकृत्प्रवया अभ्यवर्धत ।

आद्रोदसी ज्योतिषा वह्निरातनोत्सीव्यन्तमांसि दुधिता समव्ययत् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (ईशानकृत्) ईश्वरता का शील रखने वाले पुरुषों को करता वा (प्रवयाः) उत्कर्षता से व्याप्त होता और (मज्मना) बल से (विश्वा) समस्त (भुवना) लोकों के (अभि, अवर्धत) अभिमुख वृद्धि को प्राप्त होता और जैसे (वह्निः) सबको एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचानेवाला अग्नि (ज्योतिषा) अपनी लपट से (तमांसि) रात्रिरूपी अन्धकारों को निवृत्त करता वैसे (रोदसी) आकाश और पृथिवियों को (आतनोत्) विस्तार तथा (सीव्यन्) सब ओर से उन लोकों को रचता हुआ (दुधिता) जो पदार्थ दूसरे देश में होते वा दुःख करनेवाले होते हैं उनको (समव्ययत्) सब ओर से आच्छादित करता है (सः) वह (अध) उक्त विषयों के अनन्तर सबको पूजनीय है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिस जगदीश्वर ने प्रकाश के लिए सूर्य, भोजनों के लिए ओषधि, पीने के लिए जलरसों को, निवास के लिए

सुखि, और कर्म करने के लिए शरीर आदि बनाये हैं वह पिता के तुल्य सबको सत्कार करने योग्य है ॥ ४ ॥

स प्राचीनान्पर्वतान्दृंहदोजसाधराचीनमकृणोदपामपः ।
अधारयत्पृथिवीं विश्वधायसमस्तभ्नान्मायया द्यामवस्रसः ॥५॥१९॥

पदार्थ—(सः) वह परमेश्वर जैसे (प्राचीनान्) प्राचीन अर्थात् पहले से वर्त्तमान (पर्वतान्) पर्वतों के समान मेघों को (ओजसा) बल के साथ (दृंहत्) धारण करता (अधराचीनम्) और जो नीचे को प्राप्त होता उसको बनाकर (अपाम्) अन्तरिक्ष के (अपः) जलों को (अकृणोत्) सिद्ध करता है (विश्वधायसम्) विश्व के धारण करने को समर्थ (पृथिवीम्) पृथिवी को (अधारयत्) धारण करता जो (मायया) प्रज्ञा से (द्याम्) प्रकाश को (अस्तभ्नात्) रोकता वा (अवस्रसः) विस्तारता है वैसे समस्त विश्व को धारण करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे सूर्य अपने निकट के लोकों को धारण करता वैसे परमेश्वर सूर्यादि समस्त जगत् को धारण करता है ॥ ५ ॥

सास्मा अरं बाहुभ्यां यं पिताकृणोद्विश्वस्मादा जनुषो वेदसस्परि ।
येना पृथिव्यां नि क्रिविं शयध्यै वज्रेण हत्व्यवृणक्तुविष्वणिः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! (पिता) सबकी पालना करनेवाला ईश्वर (विश्वस्मात्) सब (जनुषः) प्रसिद्ध (वेदसः) धन वा विज्ञान वा (बाहुभ्याम्) भुजाओं से (यम्) जिसको (अरम्) पूर्ण (अकृणोत्) करता है (सः) वह तू जैसे (तुविष्वणिः) बहुत परमाणुओं का जो कि इकट्ठे होकर एक पदार्थ हो रहे हैं उनका अच्छे प्रकार विभाग करनेवाला सूर्य (येन) जिस (वज्रेण) वज्र से (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (शयध्यै) सोने के लिए अर्थात् गिरने के लिए (क्रिविम्) कूप के समान (हत्वी) छिन्न-भिन्न कर अर्थात् खोद के कूप जल को जैसे निकालें वैसे मेघ को (पर्यवृणक्) सब ओर से छिन्न-भिन्न करता और संसार की पालना करता है वैसे (अस्मै) इस बालक आदि के लिए सुख (आ) अच्छे प्रकार सिद्ध करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे सूर्य मेघ को छिन्न-भिन्न कर जल को उत्पन्न कर सबका सुख सिद्ध करता है वैसे अध्यापक व पिता समस्त सुन्दर शिक्षाओं से सन्तानों को सुभूषित कर निरन्तर सुखी करे ॥ ६ ॥

अब विदुषी के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अमाजूरिव पित्रोः सचा सती समानादा सदसस्त्वामिये भगम् ।
कृधि प्रकेतमुप मास्या भर दद्धि भागं तन्वो३ येन मामहः ॥७॥

पदार्थ—हे कन्ये ! (सती) वर्त्तमान तू (सचा) सम्बन्ध से (अमाजूरिव) जो घर में बुड्ढा होता उसके समान (पित्रोः) माता-पिता के (समानात्) समान भाव से (सदसः) जिसमे पहुँचते हैं उस स्थान से जिस (त्वा) तुझे मैं (इये) प्राप्त होऊँ वह तू (प्रकेतम्) उत्कर्ष विज्ञान को और (भगम्) ऐश्वर्य को (कृधि) सिद्ध कर तथा (मासि) प्रति महीने में (उपाभर) उत्तम प्राप्त हुए आभूषणों को पहिनाकर (भागम्) सेवन करने योग्य पदार्थ (दद्धि) माँगो (येन) जिससे (मामहः) सत्कार करने योग्य पुजारियों को वा प्रशंसा करने योग्य पदार्थों को प्राप्त हो उस व्यवहार से (तन्वः) शरीर के भाग को माँगो ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जो कन्या विद्या को पढ़कर गृहाश्रम को प्राप्त हों वे सत्कार करने योग्यों को सत्कार कर और तिरस्कार करने योग्यों का तिरस्कार कर पुरुषार्थ से ऐश्वर्य को बढ़ावें ॥ ७ ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

भोजं त्वामिन्द्र वयं हुवेम ददिष्ट्वमिन्द्रापांसि वाजान् ।
अविड्ढीन्द्र चित्रया न ऊती कृधि वृषन्निन्द्र वस्यसो नः ॥८॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त विद्वन् ! जिन (भोजम्) भोगनेवाले (त्वाम्) आप को (वयम्) हम लोग (हुवेम) स्वीकार करें सो आप हम लोगों को स्वीकार कीजिए । हे (इन्द्र) दुःख विदीर्ण करनेवाले विद्वन् ! (ददिः) दानशील (त्वम्) आप (अपांसि) कर्मों को (वाजान्) बोधों को (अविड्ढि) सुरक्षित करो । हे (इन्द्र) शत्रु विनाशनेवाले विद्वन् ! आप (चित्रया) चित्र-विचित्र अनेकविध (ऊती) रक्षा से युक्त (नः) हम लोगों को (कृधि) करो । हे (वृषन्) सींचनेवाले (इन्द्र) सुख देनेवाले विद्वन् ! आप (नः) हम लोगों को (वस्यसः) अत्यन्त धनवान् करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे मित्र मित्रों की स्तुति करते हैं वैसे पढ़नेवाले पढ़ानेवालों की प्रशंसा करें ऐसे एक दूसरे की रक्षा से ऐश्वर्य की उन्नति करें ॥ ८ ॥

फिर विदुषी के गुणों को कहते हैं—

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९॥२०॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) देनेवाले राजन् ! (ते) आप के राज्य में जो (दक्षिणा) प्राण देनेवाली (मघोनी) बहुत धन से युक्त विदुषी (जरित्रे) स्तुति करनेवाले के लिए (प्रतिवरम्) श्रेष्ठ काम को (दुहीयत्) पूर्ण करे (सा) वह (नूनम्) निश्चय से कल्याण करनेवाली हो । हे विदुषि ! तू कन्याओं को (शिक्ष) शिक्षा दे (नः) हम लोगों के लिए (स्तोतृभ्यः) स्तुति करनेवाले विद्वानों से (मा, अति, धक्) मत किसी काम का विनाश कर जिससे (सुवीराः) सुन्दर विद्या में व्याप्त होनेवाले वीरों से युक्त हम लोग (विदथे) विद्यादानरूपी यज्ञ में (बृहत्) बहुत (भगः) ऐश्वर्य को (वदेम) कहें ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जो धर्मात्मा विदुषी वा पण्डिताणी स्त्रियाँ हों उनसे सब कन्याओं को सुन्दर शिक्षा दिलाओ जिससे कार्य विनाश न हो ॥ ९ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और विदुषियों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह सत्रहवाँ सूक्त और बीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

॥ओ३म्॥

प्रातरिति नवर्चस्याष्टादशसूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ पङ्क्तिः; ४, ८ भुरिक् पङ्क्तिः, ५, ६ स्वराट् पङ्क्तिः; ७ निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २, ३, ९ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब नव ऋचावाले अठारहवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में यान विषय को कहते हैं—

प्राता रथो नवो योजि सस्निश्चतुर्युगस्त्रिकशः सप्तरश्मिः ।
दशारित्रो मनुष्यः स्वर्षाः स इष्टिभिर्मतिभी रंह्यो भूत् ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! शिल्पियों से जो (दशारित्रः) दश अरित्रों वाला अर्थात् जिसमें दश रुकावट के साधन हैं (सस्निः) और जिसमें सोते हैं (चतुर्युगः) जो चार स्थानों मे जोड़ा जाता (त्रिकशः) तीन प्रकार के गमन वा गमन साधन जिसमें विद्यमान (सप्तरश्मिः) जिसकी सात प्रकार की किरणें (नवः) ऐसा नवीन (रथः) रथ और (स्वर्षाः) जिससे सुख उत्पन्न हो ऐसा और (मनुष्यः) विचारशील मनुष्य (प्रातः) प्रभात समय में (योजि) युक्त किया जाता (सः) वह (इष्टिभिः) सङ्गत हुई और प्राप्त हुई (मतिभिः) प्रज्ञाओं से (रंह्यः) होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य ऐसे यान से जाने-आने को चाहें वे निर्विघ्न गतिवाले हों ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—

सास्मा अरं प्रथमं स द्वितीयमुतो तृतीयं मनुषः स होता ।
अन्यस्या गर्भमन्य ऊ जनन्त सो अन्येभिः सचते जेन्यो वृषा ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्य (सः) वह रथ यान, गमन-साधन (अस्मै) इस स्वामी के लिए कि जो बनानेवाला है (प्रथमम्) पहले अर्थात् पृथिवी में गमन (सः) वह (द्वितीयम्) दूसरे जल मे गमन (उतो) और (तृतीयम्) तीसरे अन्तरिक्ष में गमन को सम्बद्ध करता, मिलाता है तथा (सः) वह (मनुषः) मनुष्यों से उत्पन्न हुए सर्व पदार्थ का (होता) सुख देनेवाला (सः) वह (जेन्यः) विजय करानेवाला और (वृषा) अत्यन्त बलयुक्त होता हुआ (अन्यस्याः) दूसरी गति का (गर्भम्) ग्रहण (अरम्) पूर्ण (सचते) सम्बद्ध करता है (ऊ) उसीको (अन्येभिः) और विद्वानों के साथ (अन्ये) और विद्वान् (जनन्त) उत्पन्न करें ॥२॥

भावार्थ—विद्वान् जन और बिजुली रूप अग्नि को रथों में अच्छे प्रकार युक्त करें तो वह समस्त यानो को सब गतियाँ चलाता और विजय का हेतु होता है ॥२॥

हरी नु कं रथ इन्द्रस्य योजमायै सूक्तेन वचसा नवेन ।
मो षु त्वामत्र बहवो हि विप्रा नि रीरमन्यजमानासो अन्ये ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो (इन्द्रस्य) बिजुली रूप अग्नि सम्बन्धी (रथे) यान में (हरी) धारण, आकर्षण और वेग आदि गुणोंवाले वायु और अग्नि (नु) शीघ्र (कम्) सुख को सिद्ध करते हैं वा जिन को मैं (अत्र) इस में (सूक्तेन) सुन्दर प्रतिपादन किये (वचसा) भाषण से (नवेन) नवीन प्रबन्ध से (आयै) गमन करने को (योजम्) युक्त करता हूँ इस रथ मे (बहवः) बहुत (विप्राः) मेधावी जन (त्वाम्) आप को (हि) ही (सु, नि, रीरमन्) अच्छे प्रकार रमा रहे हैं (अन्ये) और (यजमानासः) सम्यग् ज्ञाता भी अर्थात् उन मेधावियों से दूसरे विज्ञानवान् जन भी इस उक्त रथ में विपरीत वे (मो) नहीं रमाते हैं ॥३॥

भावार्थ—जो बिजुली-रथ को सिद्ध नहीं करते हैं वे सर्वत्र न आप रम सकते हैं और न दूसरों को रमा सकते हैं ॥३॥

आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याह्या चतुर्भिरा षड्भिर्हूयमानः ।
आष्टाभिर्दशभिः सोमपेयमयं सुतः सुमख मा मृधस्कः ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त ! (हूयमानः) बुलाये हुए आप (द्वाभ्याम्) दो (हरिभ्याम्) हरणशील पदार्थों के साथ यान से (आ, याहि) आइए (चतुर्भिः) चार हरणशील पदार्थों से युक्त यान से आओ (षड्भिः) छः पदार्थों से युक्त यान से आओ (अष्टाभिः) आठ वा (दशभिः) दश पदार्थों से

युक्त यान से आओ जो (अयम्) यह (सुतः) उत्पन्न किया हुआ पदार्थों का पीने योग्य रस है उस (सोमपेयम्) पदार्थों के रस के पीने के लिए आओ। हे (सुमख) सुन्दर यज्ञोंवाले ! आप सज्जनों के साथ (मृधः) अभीष्ट संग्रामों को (मा, क.) मत करो ॥४॥

भावार्थ—जो अनेक अग्नि आदि पदार्थों से उत्पन्न किए हुये यन्त्रों से चलाये हुए यानों में स्थित होकर जाते-आते हैं वे स्तुति के साथ प्रकट होते हैं। जो धार्मिकों के साथ विरोध नहीं करते वे विजयी होते हैं ॥४॥

आ विंशत्या त्रिंशता याह्यर्वाङा चत्वारिंशता हरिभिर्युजानः ।
आ पञ्चाशता सुरथेभिरिन्द्रा षष्ट्या सप्तत्या सोमपेयम् ॥५॥२१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) असह्य ऐश्वर्य देनेवाले ! (युजानः) युक्त होते हुए आप (विंशत्या) बीस (त्रिंशता) और तीस (हरिभिः) हरनेवाले पदार्थों से चलाये हुए यान से (अर्वाङ्) जो नीचे को जाता उस (सोमपेयम्) सोमादि ओषधियों में पीने योग्य रस को (आ, याहि) प्राप्त होओ, आओ (चत्वारिंशता) चालीस पदार्थों से युक्त रथ से (आ) आओ (पञ्चाशता) पचास हरणशील पदार्थों से युक्त (सुरथेभिः) सुन्दर रथों से (आ) आओ (षष्ट्या) साठ वा (सप्तत्या) सत्तर हरणशील पदार्थों से युक्त सुन्दर रथों से आओ ॥५॥

भावार्थ—जैसे बीस, तीस, चालीस, साठ, सत्तर बलवान् घोड़े एक साथ जोड़ कर यान को शीघ्र चलाते हैं उस से अधिक वेग से अग्नि आदि पदार्थ यान को ले जाते हैं ॥५॥

आशीत्या नवत्या याह्यर्वाङा शतेन हरिभिरुह्यमानः ।
अयं हि ते शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वाया परिषिक्तो मदाय ॥६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दुःख विदीर्ण करनेवाले ! (ते) आप के (त्वाया) आप की कामना से जो (अयम्) यह (शुनहोत्रेषु) सुख देनेवाले कलाघरों में (परिषिक्तः) सब ओर से उत्तम पदार्थों से सींचा हुआ है (हि) उसी को आप (अर्वाङ्) नीचे जाते हुए (अशीत्या) अस्सी (नवत्या) नव्वे (हरिभिः) हरणशील पदार्थों से युक्त यान से (उह्यमानः) चलाये जाते हुए (आ) आओ (शतेन) सौ पदार्थों से युक्त रथ से (मदाय) आनन्द के लिए (आ, याहि) आओ ॥६॥

भावार्थ—जो ओषधियों के सेवन और सुन्दर पथ्य से नीरोगता से आनन्दित होते हुए सौ प्रकार के यानों और यन्त्रों को बनाते हैं वे नीचे-ऊपर जा सकते हैं ॥६॥

अब पदार्थों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

मम ब्रह्मेन्द्र याह्यच्छा विश्वा हरी धुरि धिष्वा रथस्य ।
पुरुत्रा हि विहव्यो बभूथास्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) धन की इच्छा करनेवाले ! आप (मम) मेरे (ब्रह्म) धन को (याहि) प्राप्त होओ जो (रथस्य) यानसमूह के (धुरि) धारण करनेवाले अंग में अर्थात् (धुरि) में (हरी) धारण और आकर्षण खींचने का गुण जिन में है उन दोनों से यान रथादि को (धिष्व) धारण करो उस से (पुरुत्रा) बहुत (विश्वा) समस्त धनों को (अच्छ, याहि) उत्तम गति से आओ। हे (शूर) निर्भय (अस्मिन्) इस (सवने) ऐश्वर्य के निमित्त (विहव्यः) विविध प्रकार ग्रहण करने योग्य आप (बभूथ) होओ हम लोगों को (हि) ही (मादयस्व) आनन्दित कीजिए ॥७॥

भावार्थ—सब सज्जनों को सब के प्रति ऐसा करना चाहिए कि जो हमारे पदार्थ हैं वे आप के सुख के लिए हों जैसे तुम लोग हम लोगों को आनन्दित करो वैसे हम लोग तुम को आनन्दित करें ॥७॥

अब ईश्वर और विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

न म इन्द्रेण सख्यं वि योषदस्मभ्यमस्य दक्षिणा दुहीत ।
उप ज्येष्ठे वरूथे गभस्तौ प्रायेप्राये जिगीवांसः स्याम ॥८॥

पदार्थ—जिस (अस्य) इस (दक्षिणा) विद्या और सुन्दर शिक्षा का दान (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए (ज्येष्ठे) प्रशंसा योग्य (वरूथे) अतीव उत्तम (गभस्तौ) विज्ञान प्रकाश में (प्रायेप्राये) और मनोहर-मनोहर परमेश्वर वा आप्त विद्वान् में (उप दुहीत) परिपूर्ण होती हो उस (इन्द्रेण) उक्त परमेश्वर वा आप्त विद्वान् से मेरी (सख्यम्) मित्रता जैसे (न, वियोषत्) न विनष्ट हो वैसे हो, जिस से हम लोग (जिगीवांसः) विजयशील (स्याम) हों ॥८॥

भावार्थ—जो सत्य प्रेम से जगदीश्वर वा आप्त विद्वानों को प्राप्त होने और सेवन करने की कामना करते हैं और उसके विरोध की इच्छा नहीं चाहते हैं वे विद्वान् होकर ज्येष्ठ होते हैं अर्थात् अति प्रशंसित होते हैं ॥८॥

अब ईश्वर और उपदेशकों के गुणों को कहते हैं—

नू नूं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९॥२२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) जगदीश्वर वा सत्योपदेशक ! (ते) आप की (सा) वह धारणा (जरित्रे) स्तुति प्रशंसा करनेवाले के लिए और (दक्षिणा) विद्या, सुशिक्षारूपी दक्षिणा (मघोनी) जो कि बहुत ऐश्वर्ययुक्त है वह (स्तोतृभ्यः) अध्यापकों के लिए (प्रति, दुहीयत्) प्रत्येक विषय को परिपूर्ण करती है आप हम लोगों को (नूनम्) निश्चय से (शिक्ष) शिक्षा देओ हम लोगों के लिए (भगः) ऐश्वर्य को (मा अति, धक्) मत नष्ट करो जिस से (सुवीराः) श्रेष्ठ वीरोंवाले हम लोग (विदथे) विद्याप्रचार में (बृहत्) बहुत कुछ (वदेम) कहें ॥९॥

भावार्थ—जो ईश्वर और आप्त विद्वानों की शिक्षा मनुष्यों को प्राप्त होती है वह शोकरूपी समुद्र से अलग करती है और बहुत ऐश्वर्य का भी अभिमान नहीं कराती है ॥९॥

यहाँ यान, पदार्थ, ईश्वर, विद्वान् वा उपदेशकों के बोध का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अठारहवाँ सूक्त और बाईसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अपाय्यस्येत्यस्य नवर्चस्य एकोनविंशतितमस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । इन्द्रो देवता १, २, ६, ८ विराट् त्रिष्टुप्, ९ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ पङ्क्तिः; ४, ७ भुरिक् पङ्क्तिः, ५ निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब नव ऋचावाले उन्नीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के विषय का वर्णन करते हैं—

अपाय्यस्यान्धसो मदाय मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः ।
यस्मिन्निन्द्रः प्रदिवि वावृधान ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः ॥१॥

पदार्थ—हे (मनीषिणः) मनीषी ! मन जीते हुए (ब्रह्मण्यन्तः) बहुत धन की कामना करनेवाले (नरः, च) और नायक अग्रगन्ता मनुष्यो ! (यस्मिन्) जिस (प्रदिवि) प्रकृष्ट प्रकाश में (वावृधानः) बढ़ा हुआ (इन्द्रः) सूर्य (ओकः) स्थान को (दधे) धारण करता है उस में (सुवानस्य) उत्पद्यमान (प्रयसः) मनोहर (अस्य) इस (अन्धसः) अन्न को (मदाय) आनन्द के लिए तुम लोगों ने (अपायि) पान किया उस सब को हम लोग भी ग्रहण करें ॥१॥

भावार्थ—विद्वान् जन जिस में बढ़े हुए विद्या को धारण करते हैं उस में हम लोग भी बढ़ें इस विज्ञान को स्वीकार करें ॥१॥

अब सूर्य-विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अस्य मन्दानो मध्वो वज्रहस्तोऽहिमिन्द्रो अर्णोवृतं वि वृश्चत् ।
प्र यद्वयो न स्वसराण्यच्छा प्रयांसि च नदीनां चक्रमन्त ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्) जिस से (वयः) पखेरुओं के (न) समान (स्वसराणि) दिनों को (नदीनाम् प्रयांसि, च) और नदियों के मनोहर स्रोतों को (अच्छ) अच्छे प्रकार (प्रचक्रमन्त) रमते हैं जो (वज्रहस्तः) किरण रूपी हाथों वाला (अस्य) इस (मध्वः) विशेष कर जानने योग्य जगत् के बीच (मन्दानः) प्राप्त हुआ (इन्द्रः) सूर्य (अर्णोवृतम्) जिस में जल विद्यमान है उस (अहिम्) मेघ को (वि वृश्चत्) विभिन्न करता है उसको यथावत् जानो ॥२॥

भावार्थ—जैसे पक्षी जाने-आते हैं वैसे रात्रि दिन वर्त्तमान हैं जैसे सूर्य इस जगत् का आनन्द देनेवाला है वैसे सज्जनों को वर्त्तना चाहिए ॥२॥

स माहिन इन्द्रो अर्णो अपां प्रैरयदहिहाच्छा समुद्रम् ।
अजनयत्सूर्यं विदद्गा अक्तुनाह्नां वयुनानि साधत् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (सः) वह (माहिनः) बड़ा (अहिहा) मेघ का हननेवाला (इन्द्रः) बिजुली रूप अग्नि (अपाम्) अन्तरिक्ष के बीच (अर्णः) जल को (अच्छ, प्रैरयत्) यथाक्रम से प्रेरणा देता है (समुद्रम्) समुद्र को और (सूर्यम्) सूर्यमण्डल को (अजनयत्) उत्पन्न करता (अक्तुना) रात्रि के साथ (अह्नाम्) दिनों के सम्बन्ध करनेवाली (गाः) पृथिवियों को (विदत्) प्राप्त होता है और (वयुनानि) उत्तम यानों को (साधत्) सिद्ध करता वैसे तुम लोग भी आचरण करो ॥३॥

भावार्थ—जो मनुष्य बिजुली के समान वेग और आकर्षणयुक्त शत्रुओं के हनने और विद्यादि शुभ गुणों का प्रचार करनेवाले हैं, अन्याय और अन्धकार का विनाश करनेवाले संसार का सुख सिद्ध करते हैं वे सर्वत्र पूज्य होते हैं ॥३॥

अब दाता के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सो अप्रतीनि मनवे पुरूणीन्द्रो दाशद्दाशुषे हन्ति वृत्रम् ।
सद्यो यो नृभ्यो अतसाय्यो भूत्पस्पृधानेभ्यः सूर्यस्य सातौ ॥४॥

पदार्थ—(यः) जो (इन्द्रः) सूर्य के समान देनेवाला जन जैसे सूर्य (वृत्रम्) मेघ को (हन्ति) हनता है वैसे शत्रुओं को मारता हुआ (दाशुषे) दूसरे देनेवाले (मनवे) विचारशील मनुष्य के लिए (अप्रतीनि) जिन की प्रतीति नहीं है उन (पुरूणि) बहुत से धनों को (ददात्) देवें वा (सूर्यस्य) सूर्य की (सातौ) साति में अर्थात् सूर्यमण्डलकृत विभाग में (अस्तभ्यः) परोपकार में निरन्तर वर्त्तमान होता हुआ (पस्पृधानेभ्यः) स्पर्द्धा वा ईर्षा करनेवाले (नृभ्यः) मनुष्यों के लिए (सद्यः) शीघ्र आनन्द देनेवाला (भूत्) होता है (सः) वह सब स्थानों में सत्कार पाता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो अपरिमित धन को इकट्ठा करते और जगत् के उपकारी कार्यों के लिए देते हैं वे निरन्तर ईर्ष्या वा ईर्षा करने योग्य नहीं हैं ॥ ४ ॥

अब बिजुली के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स सुन्वत इन्द्रः सूर्यमा देवो रिणङ्मर्त्याय स्तवान् ।

आ यद्रयिं गुहदवद्यमस्मै भरदंशं नैतशो दशस्यन् ॥५॥२३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (देवः) देदीप्यमान (इन्द्रः) बिजुली (सुन्वते) पदार्थों का सार निकालनेवाले मनुष्य के लिए (सूर्यम्) सवितृमण्डल को और (मर्त्याय) साधारण मनुष्य के लिए (स्तवान्) स्तुतियों को (न, आ, रिणक्) नहीं छोड़ती और (गुहदवद्यम्) ढँपे हुए निन्द्य (रयिम्) धन को (अस्मै) इस मनुष्य के लिए (आ, भरत्) आभूषित कराती और (अंशम्) प्राप्त भाग को (दशस्यन्) नष्ट करती हुई (एतशः) प्राप्त नहीं होती (सः) वह बिजुली आप लोगों को उपयोग में लानी योग्य है ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य किसी की उन्नति के नाश की नहीं इच्छा करते किन्तु सब के ऐश्वर्य को बढ़वाते हैं वे सूर्य के समान उपकार करनेवाले होते हैं ॥ ५ ॥

अब सूर्य-विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स रन्धयत्सदिवः सारथये शुष्णमशुषं कुयवं कुत्साय ।

दिवोदासाय नवतिं च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य ॥६॥

पदार्थ—जो मनुष्यों को (इन्द्रः) सूर्य (कुत्साय) निन्दित (सारथये) अच्छे सीखे हुए या चलानेवाले के लिए (अशुषम्) गीले (शुष्णम्) बल (कुयवम्) कुत्सित सङ्गम और (सदिवः) प्रकाश के सहित वर्त्तमान अर्थात् अन्तरिक्षस्थ पदार्थों को (रन्धयत्) अच्छे प्रकार सिद्ध करता है (दिवोदासाय) प्रकाश देनेवाले के लिए (नव, नवतिम्, च) निन्यानवे (शम्बरस्य) मेघ के (पुरः) पुरों को (व्यैरत्) प्रेरित करता है (सः) वह उपयोग में लाना योग्य है ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य दुष्ट बल को और कुशिक्षा को निवारके बल और उत्तम शिक्षाओं से कुसंस्कारों को निवारके सैकड़ों बोधों को उत्पन्न करते हैं वे सर्वदा पूज्य होते हैं ॥ ६ ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

एवा त इन्द्रोचथमहेम श्रवस्या न त्मना वाजयन्तः ।

अश्याम तत्साप्तमाशुषाणा ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्वन् ! (ते) आप के (त्मना) आत्मा से (वाजयन्तः) ज्ञान कराते हुए हम लोग (श्रवस्या) श्रवण करने योग्य पदार्थ के (न) समान (उचथम्) और कहने योग्य प्रस्ताव (एव) ही को (अहेम) व्याप्त हों तथा (आशुषाणाः) शीघ्रता करते हुए हम लोग (तत्) उस (साप्तम्) सात प्रकार के विषय को (अश्याम) व्याप्त हों (अदेवस्य) अविद्वान् (पीयोः) पालना करनेवाले सूर्य को (वधः) वध करनेवाले शस्त्र को व्याप्त हों और परमेश्वर को (ननमः) नमस्कार करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य कहने योग्य को कहें, पाने योग्य को पावें, नमने योग्य को नमें, मारने योग्य को मारें और जानने योग्य को जानें वे ही आप्त होते हैं ॥७॥

एवा ते गृत्समदाः शूर मन्मावस्यवो न वयुनानि तक्षुः ।

ब्रह्मण्यन्त इन्द्र ते नवीय इषमूर्जं सुक्षितिं सुम्नमश्युः ॥८॥

पदार्थ—हे (शूर) शूर (इन्द्र) विद्वन् ! जो (गृत्समदाः) अभीष्ट आनन्दवाले (ब्रह्मण्यन्तः) धन की कामना करते हुए जन (ते) आप के (मन्म) मन्तव्य को और (अवस्यवः) अपने को रक्षा चाहते हुए के (न) समान (वयुनानि) उत्तम ज्ञानों को (तक्षुः) विस्तारें वे (एव) ही (ते) आप के (नवीयः) नवीन (इषम्) अन्न और (ऊर्जम्) पराक्रम की सेवा (सुक्षितिम्) सुन्दर भूमि को और (सुम्नम्) सुख को (अश्युः) प्राप्त हों ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो विद्वानों की उत्तम शिक्षा से विज्ञानवान् हों वे अनेकविध सुख को प्राप्त हों ॥ ८ ॥

अब दक्षिणा के गुणों को कहते हैं—

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।

शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्वन् ! आप (नः) हमारे लिए (भगः) प्रभाव को (मा, अति, धक्) मत नष्ट करो और जो (ते) आपकी (मघोनी) ऐश्वर्यवती (दक्षिणा) दक्षिणा (जरित्रे) दान की स्तुति करनेवाले के (वरम्) उत्तम पदार्थ को (दुहीयत्) पूर्ण करे (सा) वह जैसे (नः) हम लोगों के लिए प्राप्त हो वैसे इसको (स्तोतृभ्यः) विद्या की कामना करनेवालों के लिए (शिक्ष) सिखाइए जिससे (सुवीराः) उत्तम वीरोंवाले हम लोग (नूनम्) निश्चय से (विदथे) संग्राम में (बृहत्) बहुत (वदेम) कहें ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिसकी अक्षय दक्षिणा और शिक्षा है वह श्रेष्ठ और सर्वत्र सत्कार को पावे ॥ ९ ॥

इस सूक्त में विद्वान्, सूर्य, दाता के दक्षिणा के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह उन्नीसवां सूक्त और चौबीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

वयमिति नवर्चस्य विंशतितमस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
१, ६, ८ विराट् त्रिष्टुप्; ९ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।
२ बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । ३ पङ्क्तिः; ४, ५,
७ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब नव ऋचावाले बीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्र शब्द से विद्वान् के गुणों का उपदेश किया है—

वयन्ते वय इन्द्र विद्धि षु णः प्र भरामहे वाजयुर्न रथम् ।

विपन्यवो दीध्यतो मनीषा सुम्नमियक्षन्तस्त्वावतो नॄन् ॥१॥

पदार्थ—हे (वयः) मनोहर (इन्द्र) विद्वन् ! जो (विपन्यवः) विशेष कर स्तुति में व्यवहारों को करनेवाले (त्वावतः) आपके सदृश (नॄन्) मनुष्यों का (इयक्षन्तः) सत्कार करते हुए (दीध्यतः) देदीप्यमान (वयम्) हम लोग (मनीषा) बुद्धि से (ते) आपके (रथम्) विमानादि यान को (वाजयुः) वेग की कामना करनेवाला (न) जैसे वैसे (सुम्नम्) सुख को (सु, प्र, भरामहे) अच्छे प्रकार पुष्ट करें। उन (नः) हम लोगों को आप (विद्धि) जानें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो सत्कार करने योग्यों का सत्कार करते और सत्य व्यवहार से वर्त्ताव वर्त्तते हैं वे समस्त सुख के धारण करने को योग्य होते हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्वं न इन्द्र त्वाभिरूती त्वायतो अभिष्टिपासि जनान् ।

त्वमिनो दाशुषो वरूतेत्थाधीरभि यो नक्षति त्वा ॥२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त विद्वन् ! (यः) जो (वरूता) स्वीकार करनेवाला (इत्थाधीः) इस हेतु से धारणावाली हुई है बुद्धि जिस की वह जन (त्वा) आपको (अभि, नक्षति) सम्मुख प्राप्त होता वह (इनः) समर्थ (त्वायतः) आपकी कामना करते हुए (दाशुषः) देनेवाले (जनान्) जनों की और (नः) हम लोगों की पालें रखें (त्वम्) आप भी रक्षा करें और जिस कारण से (त्वम्) आप (अभिष्टिपा) अभिकांक्षा से पालनेवाले (असि) हैं इसी कारण (त्वाभिः) आप की (ऊती) रक्षाओं के सहित हम लोग सुख को अच्छे प्रकार धारण करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—पिछले मन्त्र से 'सुम्नम्' और 'प्रभरामहे' इन दोनों पदों की अनुवृत्ति है। जो विद्वानों को प्राप्त होकर प्राणियों के सुख की कामना करते हैं वे दाता होते हैं ॥ २ ॥

फिर विद्वान् और ईश्वर के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

स नो युवेन्द्रो जोहूत्रः सखा शिवो नरामस्तु पाता ।

यः शंसन्तं यः शशमानमूती पचन्तं च स्तुवन्तं च प्रणेषत् ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो (ऊती) रक्षा से (शंसन्तम्) प्रशंसा करते हुए को (यः) जो (शशमानम्) अन्याय को उल्लंघन करनेवालों को (पचन्तम्) पाक करते हुए को (स्तुवन्तम्, च) और स्तुति करते हुए को (प्रणेषत्) उत्तम न्याय को प्राप्ति करावे और आप न्याय को प्राप्त होवे (सः) वह (युवा) सुखों से संयुक्त और दुःखों से वियुक्त करनेवाला (जोहूत्रः) निरन्तर दाता (शिवः) मङ्गल-

कारी (सखा) सबका मित्र (इन्द्रः) और विद्या वा ऐश्वर्य का देनेवाला विद्वान् वा ईश्वर (नः) हम लोगों का और (नराम्) सब मनुष्यों का (च) भी (त्राता) रक्षक (अस्तु) हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो परमेश्वर और आप्त जन की रक्षा करनेवाले हैं वे सबके मित्र और मङ्गल करनेवाले हैं ॥ ३ ॥

तमु॑ स्तुष॒ इन्द्रं॒ तं गृ॑णीषे॒ यस्मि॑न्पु॒रा वा॑वृ॒धुः शा॑श॒दुश्च॑ ।

स वस्वः॒ काम॑ं पीपरदिया॒नो ब्र॑ह्मण्य॒तो नूत॑नस्या॒योः ॥४॥

पदार्थ—जो जन (नूतनस्य) नवीन (आयोः) पाने योग्य (ब्रह्मण्यतः) धन की इच्छावाले और (वस्वः) धन की (कामम्) कामना को (इयानः) प्राप्त होता हुआ (पीपरत्) उसको पूरी करे वा (यस्मिन्) जिसमें (पुरा) पहले (वावृधुः) शिष्टजन बढ़ें और (शाशदुः) दुष्टों को नष्ट करें (तम्) उस परमेश्वर वा विद्वान् की आप (स्तुषे) प्रशंसा करते हो और (तम्, उ) उसी की (गृणीषे) स्तुति करते हो (सः) वह हमारी रक्षा करनेवाला हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिसके साथ सब बढ़ते और दुःखों को काटते उसके साथ व्यवहार सब करें ॥ ४ ॥

अब सभेश के गुणों को अगले मन्त्रों में कहा है—

सो अङ्गि॑रसामु॒चथा॑ जुजु॒ष्वान्ब्रह्मा॑ तूतो॒दिन्द्रो॑ गा॒तुमि॒ष्णन् ।

मु॒ष्णन्नु॒षसः॒ सूर्ये॑ण स्त॒वानश्न॑स्य चिच्छिश्नथत्पू॒र्व्याणि॑ ॥५॥२५॥

पदार्थ—जो (अङ्गिरसाम्) प्राणियों के (उचथा) कहने योग्य (ब्रह्मा) धनों को (जुजुष्वान्) सेवन किये हुए (गातुम्) पृथिवी को (इष्णन्) सब ओर से देखता हुआ (सूर्येण) सूर्य के साथ (उषसः) प्रभात समयों को (अश्नस्य) मेघ की (स्तवान्) स्तुतियों को (शिश्नथत्) नष्ट करता है (चित्) उसके समान (पूर्व्याणि) पूर्वाचार्य्यों से की हुई (तूतोत्) स्तुतियों को बढ़ावे (सः) वह (इन्द्रः) पुरुषार्थी जन हमारा रक्षक हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो सूर्य के समान बढ़ाने और छिन्न भिन्न करनेवाले होकर राज्य को बढ़ाते हैं वे उचित और अगले सज्जनों की सेवन की हुई लक्ष्मी को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

स ह॑ श्रु॒त इन्द्रो॒ नाम॑ दे॒व ऊ॒र्ध्वो भु॑व॒न्मनु॑षे द॒स्मत॑मः

अव॑ प्रि॒यम॑र्शसा॒नस्य॑ सा॒ह्वाञ्छिरो॑ भरद्दा॒सस्य॑ स्व॒धावा॑न् ॥६॥

पदार्थ—जो (श्रुतः) प्रख्यात (देवः) देदीप्यमान (दस्मतमः) अतीव दुःखों को नष्ट करनेवाला (साह्वान्) सहनशील (इन्द्रः) सूर्य के समान विद्वान् (अर्शसानस्य) प्राप्त हुए (दासस्य) सेवक के (स्वधावान्) समर्थ अन्नवाले के समान (मनुषे) मनुष्य के लिए (नाम) प्रसिद्ध (ऊर्ध्वः) उत्कृष्ट (भुवत्) हो और सूर्य जैसे मेघ के (शिरः) शिर को वैसे (प्रियम्) मनोहर विषय को (अव, भरत्) पूरा करे (स, ह) वही हमारा रक्षक हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो सूर्य और मेघ के समान सबका सुख सिद्ध करनेवाले विद्वान् हैं उनकी प्रशंसा क्यों न हो ॥ ६ ॥

स वृ॑त्र॒हेन्द्रः॑ कृ॒ष्णयो॑नीः पुरन्द॒रो दासी॑रैरय॒द्वि ।

अज॑नय॒न्मन॑वे॒ क्षाम॒पश्च॑ स॒त्रा शंसं॒ यज॑मानस्य तूतोत् ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (सः) सो आप जैसे (पुरन्दरः) पुर का विदीर्ण करनेवाला (वृत्रहा) मेघहन्ता (इन्द्रः) सूर्य (कृष्णयोनीः) खींचनेवाली जिन की योनी उन (दासीः) सुख देनेवाली घटाओं को (व्यैरयत्) विशेषता से प्रेरणा दे (मनवे) मनुष्य के लिए (क्षाम्) भूमि को (अपः, च) और जलों को (अजनयत्) उत्पन्न करे (यजमानस्य) देनेवाले के (सत्रा) सत्य में (शंसम्) स्तुति को (तूतोत्) बढ़ावे वैसे वर्त्तो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सूर्य के समान सुख वर्षाने वा न्याय के प्रकाश करने और सब प्रशंसकों के प्रशंसा करनेवाले हैं वे यहाँ क्यों न बढ़ें ॥ ७ ॥

तस्मै॑ तव॒स्य१॒॑मनु॑ दायि स॒त्रेन्द्रा॑य दे॒वेभि॒रर्ण॑सातौ ।

प्रति॒ यद॑स्य॒ वज्रं॑ बा॒ह्वोर्धुर्ह॒त्वी दस्यू॒न्पुर॒ आय॑सी॒र्नि ता॑रीत् ॥८॥

पदार्थ—(यत्) जो (बाह्वोः) भुजाओं के (वज्रम्) शस्त्र और अस्त्र धारण (दस्यून्) और भयङ्कर चोरों को (हत्वी) हनन कर (आयसीः) सुवर्ण और लोहे के काम की (पुरः) नगरियों को (नि, तारीत्) उल्लङ्घता है वह और जिससे (अस्य) इस मेघ के (अर्णसातौ) जल की प्राप्ति के निमित्त (तवस्यम्) बल में उत्पन्न हुआ पदार्थ (अनुदायि) दिया जाए (तस्मै) उस प्रस्तुति प्रशंसा करने और (इन्द्राय) बहुत ऐश्वर्य के देनेवाले के लिए जो (सत्रा) सत्यता से (प्रति, धुः) प्रतीति में धारण करें वे सब (देवेभिः) विद्वानों के साथ सुख पाते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो परिधियों के सहित नगरियों को बना और भयंकर चोर आदि को निवारण कर विद्वानों के साथ राज्य की पालना करते हैं वे सब सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

अब देनेवालों के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

नू॒नं सा ते॒ प्रति॒ वरं॑ जरि॒त्रे दु॑ही॒यदि॑न्द्र॒ दक्षि॑णा म॒घोनी॑ ।

शिक्षा॑ स्तो॒तृभ्यो॒ माति॑ ध॒ग्भगो॑ नो बृ॒हद्व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑ ॥९॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) देनेवाले ! (ते) आपकी (सा) वह (मघोनी) बहुत धनादि पदार्थों से युक्त (दक्षिणा) देनी (प्रतिवरम्) अत्युत्तम सुख (जरित्रे) प्रशंसा करनेवाले के लिए (स्तोतृभ्यः) और स्तुति करनेवालों के लिए (नूनम्) निश्चय कर (दुहीयत्) पूरा करे और (नः) हम लोगों को (मातिधक्) मत नष्ट करे और आप हम लोगों को (शिक्ष) विद्या ग्रहण कराइए तथा जिससे (भगः) ऐश्वर्य बढ़ता है उससे (सुवीराः) सकल विद्याव्यापी हम लोग (विदथे) पदार्थविज्ञान में (बृहत्) बहुत (वदेम) कहें ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो निरन्तर देने और न लेनेवाले सर्वदा सत्य की शिक्षा देते और किसी के हृदय को वृथा नहीं सन्तापते हैं वे बड़े होते हैं ॥ ९ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान्, ईश्वर और सभापति आदि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह बीसवां सूक्त और छब्बीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

विश्वजिदिति पञ्चर्चस्यैकविंशतितमस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, २ स्वराट् त्रिष्टुप्; ३, ५ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ विराड् जगती; ५ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले इक्कीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

वि॒श्व॒जिते॑ धन॒जिते॑ स्व॒र्जिते॑ सत्रा॒जिते॑ नृ॒जित॑ उर्वरा॒जिते॑ ।

अ॒श्व॒जिते॑ गो॒जिते॑ अ॒ब्जिते॑ भ॒रेन्द्रा॑य॒ सोमं॑ यज॒ताय॑ हर्य॒तम् ॥१॥

पदार्थ—हे प्रजाजन ! आप (विश्वजिते) जो विश्व को जीतता वा (सत्राजिते) जो सत्य से उत्कर्षता को प्राप्त होता वा (स्वर्जिते) जो सुख से जीतता वा (नृजिते) जो मनुष्यों से जीतता वा (अश्वजिते) जो घोड़ों से जीतता वा (गोजिते) जो गौओं को जीतता वा (उर्वराजिते) जो सर्व फल, पुष्प, सस्यादि पदार्थों की प्राप्ति करानेवाली को जीतता वा (धनजिते) जो धन से जीतता (अब्जिते) वा जलों में जीतता उसके लिए (यजताय) सत्संग करनेवाले (इन्द्राय) सभा और सेनापति के लिए (हर्यतम्) मनोहर (सोमम्) ऐश्वर्य को (भर) धारण करो ॥१॥

भावार्थ—राजा प्रजाजनों को यह अच्छे प्रकार उचित है कि जो सर्वदा विजयशील, ऐश्वर्य की उन्नति करनेवाले जन न्याय से प्रजा में वर्त्तें उनका सत्कार सर्वदा सब करें ॥१॥

अ॒भि॒भुवे॑ऽभिभ॒ङ्गाय॑ वन्व॒तेऽषा॑ळ्हाय॒ सह॑मानाय वे॒धसे॑ ।

तु॒वि॒ग्रये॒ वह्न॑ये दु॒ष्टरी॑तवे सत्रा॒साहे॒ नम॒ इन्द्रा॑य वोचत ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (अभिभुवे) शत्रुओं का तिरस्कार करने (अभिभङ्गाय) दुष्टों का सब ओर से मर्दन करने (अषाळ्हाय) शत्रुओं से न सहने (सहमानाय) शत्रुओं का सहनशील रखने (वन्वते) सत्य और असत्य का विभाग करने (तुविग्रये) वृद्धि के निमित्तों का उपदेश देने (वह्नये) राज्य भार को चलाने और जो (दुष्टरीतवे) शत्रुओं से दुःख से तरनेवाला उसके लिए (सत्रासाहे) और सत्य के सहनेवाले (इन्द्राय) सर्वशुभलक्षणयुक्त (वेधसे) उत्तम ज्ञाता के लिए (नमः) नमस्कार (वोचत) कहो ॥२॥

भावार्थ—जो अन्याय से अलग दुष्टाचारियों को ताड़ना देते हैं श्रेष्ठाचार की सन्धि से सत्पुरुषों का सत्कार करते हैं वे विवेकी हैं ॥२॥

स॒त्रा॒सा॒हो ज॑नभ॒क्षो ज॑नंस॒हश्च्यव॑नो यु॒ध्मो अनु॒ जोष॑मुक्षि॒तः ।

वृ॒त॒ञ्च॒यः सहु॑रिर्वि॒क्ष्वा॑रि॒त इन्द्र॑स्य वोचं॒ प्र कृ॒तानि॑ वी॒र्या॑ ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (सत्रासाहः) जो सत्य को सहता (जनभक्षः) जनों के सेवने योग्य (जनं सहः) जनों को सहने (च्यवनः) दुष्टों को गिराने (युध्मः) दुष्टों से युद्ध करने (वृतञ्चयः) और वर्त्तमान पदार्थों को इकट्ठा करनेवाला (सहुरिः) सहनशील (आरितः) प्राप्त (जोषम्) प्रीति को (उक्षितः) सेवता हुआ मैं (विक्षु) प्रजाजनों में (कृतानि) सिद्ध हुए (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् (वीर्या) पराक्रमयुक्त कर्मों को (प्र, वोचम्) अच्छे प्रकार कहूँ वैसे तुम (अनु) पीछे कहो ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो शम, दम और यमादि शुभ कर्मों का आचरण करनेवाले जन प्रजा में विद्या बढ़ाते हैं वे जनों के सेवने योग्य होते हैं ॥३॥

अनानुदो वृषभो दोधतो वधो गम्भीर ऋष्वो असमष्टकाव्यः।
रध्रचोदः श्नथनो वीळितस्पृथुरिन्द्रः सुयज्ञ उषसः स्वर्जनत् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! जैसे (उषसः) प्रभात से (स्वर्जनत्) जिसके समान सुख का प्रकाश हो वैसे जो (अनानुदः) नहीं प्रेरित (वृषभः) सर्वोत्तम (गम्भीरः) गम्भीर आशयवाला (ऋष्वः) ज्ञाता (असमष्टकाव्यः) जिसको अच्छे प्रकार कविताई न व्याप्त हुई न जिसके मन को रमी (रध्रचोदः) जो समावटी पदार्थों को प्रेरणा देने और (श्नथनः) दुष्टों की हिंसा करनेवाला (वीळितः) विविध गुणों से स्तुति किया गया (पृथुः) विस्तृत फलयुक्त (सुयज्ञः) सुन्दर-सुन्दर जिसके विद्वानों के सत्कार आदि पदार्थ (इन्द्रः) जो सूर्य के समान अच्छी शोभा वाला विद्वान् है जिससे (दोधतः) हिंसक का (वधः) नाश किया वह सबको सुख देने के योग्य है ॥४॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपने से विविध गुण और कर्मों का आचरण, श्रेष्ठों का सत्कार और दुष्टों की हिंसा करते हुए सर्वशास्त्रवेत्ता धर्मात्मा हैं वे सूर्य के समान प्रकाश करनेवाले हों ॥४॥

यज्ञेन गातुमप्तुरो विविद्रिरे धियो हिन्वाना उशिजो मनीषिणः।
अभिस्वरा निषदा गा अवस्यव इन्द्रे हिन्वाना द्रविणान्याशत ॥५॥

पदार्थ—जो (गातुम्) पृथिवी को (अप्तुरः) प्राप्त हुए (अभिस्वरा) सब ओर की वाणियों और (निषदा) नित्य जो सभा में स्थित होते उनसे (गाः) पृथिवियों को (अवस्यवः) अपनी रक्षारूप माननेवाले (इन्द्रे) बिजुली आदि पदार्थ में (हिन्वानाः) वृद्धि को प्राप्त होते (उशिजः) मनोहर (धियः) बुद्धियों को (हिन्वानाः) बढ़ाते हुए (मनीषिणः) मनीषी जन (यज्ञेन) यज्ञ से विद्या और सुन्दर शील को (विविद्रिरे) प्राप्त होते हैं वे (द्रविणानि) धन वा यशों को (आशत) प्राप्त होते हैं ॥५॥

भावार्थ—कोई भी जन सत्सङ्ग, योगाभ्यास, विद्या और उत्तम बुद्धि के बिना पूर्ण विद्या और धन पाने को योग्य नहीं होता ॥५॥

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभों के अधिपति के समान वर्त्तमान! (अस्मे) हम लोगों के लिए (दक्षस्य) बल की (चित्तिम्) उस प्रकृति को जिससे कि विद्या को इकट्ठा करते हैं और (सुभगत्वम्) अत्युत्तम ऐश्वर्य (पोषम्) पुष्टि तथा (रयीणाम्) धन और (तनूनाम्) शरीरों की (अरिष्टिम्) रक्षा (वाचः) वाणी के बोध (स्वाद्मानम्) स्वादिष्ठ भोग (अह्नाम्) दिनों के (सुदिनत्वम्) सुदिन पन और (श्रेष्ठानि) धर्मज (द्रविणानि) धनों को (धेहि) धारण कीजिए ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। विद्वानों को जैसे परमेश्वर ने समस्त वस्तुओं को उत्पन्न कर सबके लिए हितरूप सिद्ध कराई हैं वैसे सबके कल्याण के लिए नित्य प्रयत्न करना चाहिए ॥६॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह इक्कीसवाँ सूक्त और सत्ताईसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

त्रिकद्रुकेष्वित्यस्य चतुर्ऋचस्य द्वाविंशतितमस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः। इन्द्रो देवता। १ अष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः। २ निचृदतिशक्वरी; ४ भुरिगतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ३ स्वराट् शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब चार ऋचावाले बाईसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में सूर्य का विषय कहते हैं—

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत्सोममपिबद्विष्णुना
सुतं यथावशत्। स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे
महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥१॥

पदार्थ—जो (तुविशुष्मः) बहुत बलवाला (महिषः) बड़ा (तृपत्) तृप्त करता हुआ (त्रिकद्रुकेषु) जिनमें तीन आह्वान विद्यमान उनमें (यवाशिरम्) यवों के भक्षण करनेवाले को और (विष्णुना) व्यापक परमेश्वर वा वायु से (सुतम्) उत्पादन किये हुए (सोमम्) रस को (यथा) जैसे (अपिबत्) पीता और (अवशत्) कामना करता है (सः) वह (ईम्) जल से (महि) बड़े (कर्म) कर्म के (कर्त्तवे) करने को (ममाद) हर्षित हो। तथा जो (सत्यः) नाशरहित (इन्दुः) चन्द्रमा (देवः) सब ओर से प्रकाशमान (एनम्) इस (महाम्) महात्माओं के (उरुम्) बहुत (सत्यम्) अविनाशी (देवम्) प्रकाशमान (इन्द्रम्) सर्व लोकों के आधाररूप सूर्यलोक को (सश्चत्) संयुक्त करता वह पूज्य होता है ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जो मनुष्य जगदीश्वर से निर्मित किये लोकों में विद्या और उत्तम यत्न से प्रिय मनोहर भोग कर सकता है वह अविनाशी परमात्मा को जान वा जना सकता है ॥१॥

अब बिजुली के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा रोदसी अपृणदस्य
मज्मना प्र वावृधे। अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत सैनं सश्चद्देवो देवं
सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥२॥

पदार्थ—जो (त्विषीमान्) बहुत दीप्तियुक्त (ओजसा) बल से बड़ा (अभवत्) होता है (युधा) संप्रहार से (रोदसी) द्यावापृथिवी को (क्रिविम्) कूप के समान (अपृणत्) तृप्त करता है (अध) इसके अनन्तर इस जगदीश्वर के (मज्मना) बल से (प्र, वावृधे) अच्छे प्रकार बढ़ता है (जठरे) अपने भीतर (अन्यम्) और को (अधत्त) धारण करता और जो (ईम्) जल के साथ (प्रारिच्यत) औरों से अलग है (एनम्) इस (सत्यम्) सत्य (देवम्) सुख के देनेवाले (इन्द्रम्) बिजुली रूप अग्नि को (अभि, आ सश्चत्) जो प्रत्यक्ष सम्बन्ध करता है (सः) वह (सत्यः) सत्य (इन्दुः) जल के समान आर्द्र स्वभाववाला (देवः) प्रकाशमान परमेश्वर है ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। हे मनुष्यो! जिसने यह सब लोकों का प्रकाश करने और कूप के समान सींचनेवाला बड़ा सूर्यलोक रचा और अपने में धारण किया जो सबसे अलग व्याप्त भी है वह नित्य परमेश्वर देव है उसका नित्य ध्यान करो ॥२॥

अब ईश्वर विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो
वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः। दाता राधः स्तुवते काम्यं वसु
सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! जो (क्रतुना) कर्म वा प्रज्ञा और (ओजसा) बल के (साकम्) साथ (जातः) प्रसिद्ध (वीर्यैः) पराक्रम वा विज्ञानादि पदार्थों के (साकम्) साथ (वृद्धः) बूढ़ा (सासहिः) अत्यन्त सहनेवाला (विचर्षणिः) विद्या के प्रकाश से युक्त विद्वान् (दाता) दानशील होता हुआ (मृधः) संग्रामों को (ववक्षिथ) प्राप्त करता है (काम्यम्) प्रिय (वसु) सुखों को बसानेवाले (राधः) धन की (स्तुवते) प्रशंसा करता (सः) वह (सत्यः) अविनाशी (इन्दुः) परमैश्वर्ययुक्त (देवः) सर्वत्र प्रकाशमान जीव (एनम्) इस (सत्यम्) सत्य (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्त (देवम्) देदीप्यमान परमेश्वर को (साकम्) साथ (सश्चत्) सम्बन्ध करता अर्थात् अपनी आत्मा से संयुक्त करता है ॥३॥

भावार्थ—जिसका ज्ञानादि गुणों और उत्क्षेपणादि कर्मों के साथ नित्य सम्बन्ध है, जो विद्या से ज्येष्ठ और अविद्या से कनिष्ठ है, सुख की कामना करता हुआ अनादि, अनुत्पन्न, अमृत, अल्पज्ञ जीवात्मा है उसको जो शुभाशुभ कर्मफलों के साथ युक्त करता वह परमेश्वर अखिल जगत् के बीच व्याप्त होता हुआ सबकी रक्षा करता; जीव के साथ ईश का ईश्वर के साथ जीव का व्याप्य-व्यापक सेव्य-सेवकादि लक्षण सम्बन्ध है यह जानना चाहिए ॥ ३ ॥

अब जीव विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम्।
यद्देवस्य शवसा प्रारिणा असुं रिणन्नपः।
भुवद्विश्वमभ्यादेवमोजसा विदादूर्जं शतक्रतुर्विदादिषम् ॥४॥

पदार्थ—हे (नृतो) सब के नचानेवाले (इन्द्र) इन्द्रियादि ऐश्वर्य्ययुक्त वा उस का भोक्ता! (यत्) जो तू (त्यत्) वह (प्रथमम्) प्रथम (पूर्व्यम्) पूर्वाचार्य्यों ने किया (प्रवाच्यम्) उत्तमता से कहने योग्य (कृतम्) प्रसिद्ध (नर्यम्) मनुष्यों में सिद्ध पदार्थ उसको और (दिवि) प्रकाशमय परमेश्वर में (अपः) प्राणों को (देवस्य) सब के प्रकाश करनेवाले के (शवसा) बल से (प्रारिणाः) प्राप्त होता और (असुम्) प्राण और (अपः) जलों को (रिणन्) प्राप्त होता हुआ (ओजसा) बल से (अदेवम्) जिसमें प्रकाश नहीं विद्यमान उस (विश्वम्) समस्त वस्तुमात्र को (अभि, भुवत्) प्राप्त हो (शतक्रतुः) असंख्य प्रज्ञायुक्त आप (ऊर्जम्) पराक्रम और (इषम्) अन्न को (विदात्) प्राप्त हो उस (तव) आप को सुख (भुवत्) हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे जीवो! जिस जगदीश्वर के निर्माण से तुम शरीर, इन्द्रियों और प्राणों को प्राप्त हुए उसको सर्व सामर्थ्य से दिन-रात ध्याओ ॥ ४ ॥

इस सूक्त में सूर्य, बिजुली, ईश्वर और जीवों के गुण-कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह बाईसवां सूक्त और अट्ठाईसवां वर्ग और दूसरा अनुवाक समाप्त हुआ ॥

卐

गणानामित्येकोनविंशत्यृचस्य त्रयोविंशतितमस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । १, ५, ९, ११, १७, १९ ब्रह्मणस्पति, २—४, ६—८, १०, १२—१६, १८ बृहस्पतिश्च देवता । १, ४, ५, १०—१२ जगती; २, ७—९, १३, १४ विराड् जगती, ३, ६, १६, १८ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । १५, १७ भुरिक् त्रिष्टुप्; १९ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब उन्नीस मन्त्रवाले तेईसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में परमेश्वर का वर्णन करते हैं—

गणानान्त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥१॥

पदार्थ—हे (ब्रह्मणाम्) बड़े-बड़े धनों में (ब्रह्मणस्पते) धन के स्वामी हम लोग (गणानाम्) गणनीय मुख्य पदार्थों में (गणपतिम्) मुख्य पदार्थों के स्वामी (कवीनाम्) उत्तम बुद्धिवालों में (कविम्) सर्वज्ञ और (उपमश्रवस्तमम्) उपमा जिस से दी जाती ऐसे अत्यन्त श्रवणरूप (ज्येष्ठराजम्) ज्येष्ठ अर्थात् अत्यन्त प्रशंसित पदार्थों में प्रकाशमान (त्वा) आप परमेश्वर को (आ, हवामहे) अच्छे प्रकार स्वीकार करते हैं आप (ऊतिभि.) रक्षाओं से (शृण्वन्) सुनते हुए (नः) हम लोगों के (सादनम्) उस स्थान को कि जिसमें स्थिर होते हैं (सीद) स्थिर हूजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग सब के अधिपति सर्वज्ञ सर्वराज अन्तर्यामी परमेश्वर की उपासना करते हैं वैसे तुम भी उपासना करो ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

देवाश्चित्ते असुर्य प्रचेतसो बृहस्पते यज्ञियं भागमानशुः ।
उस्राइव सूर्यो ज्योतिषा महो विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणामसि ॥२॥

पदार्थ—हे (असुर्य्य) प्रवास रहितों में साधु (बृहस्पते) बड़ी वाणी के पति ! जिस (प्रचेतसः) प्रकृष्ट ज्ञानवाले (ते) आप के (यज्ञियम्) यज्ञसम्बन्धी (भागम्) भाग को (सूर्य्य.) सूर्य्य (ज्योतिषा) प्रकाश से (उस्रा इव) किरणों के समान (देवाः) विद्वान् जन (चित्) निश्चय से (आनशुः) प्राप्त होते हैं जो आप (महः) महात्मा जन (विश्वेषाम्) समस्त लोक और (ब्रह्मणाम्) धनों के (जनिता) उत्पादन करनेवाले (इत्) ही (असि) हैं सो हम लोगों को सदा सेवन करने योग्य हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । हे मनुष्यो ! तुम जो प्राण का प्राण सूर्य्य के समान आप ही प्रकाशमान और महात्माओं में महात्मा परमेश्वर है उसी को सेवो ॥ २ ॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आ विबाध्या परिरापस्तमांसि च ज्योतिष्मन्तं रथमृतस्य तिष्ठसि ।
बृहस्पते भीममभित्रदम्भनं रक्षोहणं गोत्रभिदं स्वर्विदम् ॥३॥

पदार्थ—हे (बृहस्पते) बड़ों की रक्षा करनेवाले विद्वन् ! जैसे सूर्य्य (परिरापः) सब ओर से पाप भरे हुए कर्म्म (तमांसि, च) और रात्रियों को (विबाध्य) निकाल के प्रवृत्त होता वैसे (ऋतस्य) सत्य कारण के बीच वर्त्तमान (भीमम्) भयङ्कर (अमित्रदम्भनम्) शत्रुहिंसन और (रक्षोहणम्) दुष्टों के मारने (गोत्रभिदम्) और मेघ के छिन्न-भिन्न करनेवाले (स्वर्विदम्) जिस से उदक को प्राप्त होते (ज्योतिष्मन्तम्) जो बहुत प्रकाशमान (रथम्) रमणीय-स्वरूप उस को (आ, तिष्ठसि) अच्छे प्रकार स्थित होते हो सो आप सुख को प्राप्त होते हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो सूर्य्य के समान विद्याप्रकाश से अविद्यान्धकार को निकाल कर कारण को लेकर कार्य्यजगत् को यथावत् जानते हैं वे विद्वन् होते हैं ॥ ३ ॥

अब विद्वान् और ईश्वर विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्नवत् ।
ब्रह्मद्विषस्तपनो मन्युमीरसि बृहस्पते महि तत्ते महित्वनम् ॥४॥

पदार्थ—हे (बृहस्पते) बड़ों की पालना करनेवाले ईश्वर वा विद्वन् ! आप (सुनीतिभिः) उत्तम धर्म्मवाले न्याय मार्गों से जिस (जनम्) जन को (नयसि) पहुँचाते हो और (त्रायसे) रक्षा करते हो (यः) जो (तुभ्यम्) तुम्हारे लिए आत्मा (दाशात्) देता है (तम्) उस को (अंहः) पाप (न, अश्नवत्) नहीं प्राप्त होता जो तुम (ब्रह्मद्विषः) वेद और ईश्वर के विरोधियों पर (तपनः) ताप करनेवाले (मन्युमीः) क्रोध का मान करनेवाले (असि) हैं (ते) आप के (तत्) उस (महित्वनम्) बड़प्पन की हम लोग प्रशंसा करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सत्यभाव से जगदीश्वर वा आप्त विद्वान् के सम्बन्ध से अपने आत्मा को चलाते हैं उनको जगदीश्वर वा धार्मिक विद्वान् पापाचरण से निवृत्त कर शुभ गुण, कर्म, स्वभावों से युक्त कर पवित्र करता है । और जो वेद वा ईश्वर के विरोधी पापाचारी हैं उन को अधोगति को पहुँचाता है । यही इन दोनों की उपासना और सङ्ग से लाभ होता है ॥ ४ ॥

न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः ।
विश्वा इदस्माद्ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते ॥५॥

पदार्थ—हे (ब्रह्मणस्पते) बड़ों के पालना करनेवाले वा चक्रवर्त्ती सर्व भूमि-पति राजन् ! जो (सुगोपः) सुन्दर रक्षा करनेवाले आप (यम्) जिसकी (रक्षसि) रक्षा करते (अस्मात्) इससे (विश्वाः) सब (ध्वरसः) हिंसाओं को (वि, बाधसे) निवृत्त करते हो (इत्) उसी को (कुतश्चन) कहीं से भी (अंहः) अप-राध (न) न (दुरितम्) दुष्टाचार (न) न (अरातयः) शत्रुजन (न) न (द्वयाविन.) दोनों पक्षों में आश्रित जन (तितिरुः) तरें ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो परमेश्वर की आज्ञा वा आप्त विद्वानों के सङ्ग का वा अपनी आत्मा की पवित्रता का आचरण करते हैं वे सब पापाचरण से अलग हों और धार्मिक होकर निरन्तर सुख को व्याप्त होते हैं ॥ ५ ॥

त्वं नो गोपाः पथिकृद्विचक्षणस्तव व्रताय मतिभिर्जरामहे ।
बृहस्पते यो नो अभि ह्वरो दधे स्वा तं मर्मर्तु दुच्छुना हरस्वती ॥६॥

पदार्थ—हे (बृहस्पते) बहुत सत्य का प्रचार करनेवाले ! (यः) जो (नः) हम लोगों के ऊपर (ह्वरः) क्रोध किया जाता वह (दुच्छुना) दुष्ट कुत्ते से जैसे वैसे (तम्) उसको (मर्मर्तु) निरन्तर प्राप्त हो जो (स्वा) अपनी (हरस्वती) बहुतों को हरने का शील रखनेवाली सेना उस विषय को (अभि दधे) सब ओर से धारण करे उस सेना से जो (नः) हम लोगों के (गोपाः) रक्षा करने (पथिकृत्) सकल सुकृत मार्ग का प्रचार करने वा (विचक्षण·) विविध सत्योपदेश करनेवाले (त्वम्) आप हैं उन (तव) आपके (व्रताय) शील के लिए (मतिभि.) मेधावियों के साथ हम लोग (जरामहे) स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—जिनका मार्ग प्रकाश करने और उपदेश करनेवाला परमात्मा, विद्वान् होता है, जो सत्पुरुषों के सङ्ग के प्रति करनेवाले वर्त्तमान हैं उनको क्रोध आदि दुर्गुण नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

उत वा यो नो मर्चयादनागसोऽरातीवा मर्तः सानुको वृकः ।
बृहस्पते अप तं वर्तया पथः सुगं नो अस्यै देववीतये कृधि ॥७॥

पदार्थ—हे (बृहस्पते) बड़े पाप वियोग करनेवाले ! (यः) जो (नः) हम लोगों को (अनागसः) अनपराधी (पथः) मार्ग से (मर्चयात्) जो सुमार्गयान उसमें प्राप्त करें (उत, वा) अथवा जो (अरातीवा) शत्रुओं का अच्छे प्रकार सेवन करता (सानुकः) और अनुगामी के साथ वर्त्तमान (वृकः) चोर (मर्त्तः) मनुष्य हो (तम्) उसको उस मार्ग से (अप, वर्त्तय) दूर करो (नः) हमारी (अस्यै) इस (देववीतये) दिव्य गुणों में व्याप्ति के लिए (सुगम्) सुगम मार्ग (कृधि) करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जो हम लोगों को सुमार्ग से सुख को प्राप्त करते उनको पहुँचाइए और जो दुःख को पहुँचाते हैं उनको अलग कीजिए तथा कृपा से शुद्ध सरल, धर्मयुक्त मार्ग को प्राप्त कीजिए ॥ ७ ॥

त्रातारं त्वा तनूनां हवामहेऽवस्पर्तरधिवक्तारमस्मयुम् ।
बृहस्पते देवनिदो नि बर्हय मा दुरेवा उत्तरं सुम्नमुन्नशन् ॥८॥

पदार्थ—हे (अवस्पर्त्तः) रक्षा कर दुःख से पार करने और (बृहस्पते) बड़ों की रक्षा करनेवाले ! हम लोग जिस (तनूनाम्) विस्तृत सुखसाधक शरीरा-दिकों वा अन्य पदार्थों के (त्रातारम्) रक्षा करने वा (अस्मयुम्) हम लोगों की कामना करने वा (अधिवक्तारम्) सबके ऊपर उपदेश करनेवाले (त्वा) आप जगदीश्वर वा सभापति को (हवामहे) स्वीकार करते हैं सो आप (देवनिदः) जो विद्वान् वा दिव्य गुणों की निन्दा करते उनको (नि, बर्हय) निरन्तर छिन्न-भिन्न करो । जिससे (दुरेवाः) दुष्टाचरण करनेवाले (उत्तरम्) उसके उपरान्त (सुम्नम्) सुख को (मा, उत् नशन्) मत नष्ट करावें ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो अपना उपदेश करने और रक्षा करनेवाला परमात्मा वा आप्त विद्वान् को मानते हैं वे सब ओर से बढ़ते हैं । जो विद्वान् ईश्वर और वेद की निन्दा, भविष्यत् का आनन्द नष्ट करनेवाले हों उनको सब ओर से निवृत्त करावें ॥ ८ ॥

त्वया वयं सुवृधा ब्रह्मणस्पते स्पार्हा वसु मनुष्या ददीमहि ।
या नो दूरे तळितो या अरातयोऽभि सन्ति जम्भया ता अनप्नसः ॥९॥

पदार्थ—(ब्रह्मन्) ब्रह्माण्ड वा राज्य की (पते) पालना करनेवाले शिक्षक (स्पार्हा) अभिकांक्षा के योग्य (सुवृधा) जो सुन्दर बढ़ाता वैसे उन (त्वया) तुम्हारे साथ (वयम्) हम (मनुष्याः) मनुष्य (वसु) विज्ञान वा धन (ददीमहि) देवें (नः) हमारे (दूरे) दूर देश में (याः) जो (तळितः) बिजुली और (याः) जो (अनप्नसः) [illegible] (अरातयः) [illegible] देने की रीतियाँ (सन्ति) हैं (ताः) उनको (अभि, जम्भय) सब ओर से विनाशिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—यदि विद्वानों के उपदेश को न ग्रहण करें तो मनुष्य धार्मिक न हों, और अकर्मण्य अर्थात् कर्म नहीं करते क्रमश पुरुष और स्त्रीजन हैं वे बिजुली के समान पुरुषार्थ युक्त करने चाहिये ॥ ९ ॥

त्वया॑ व॒यमु॑त्त॒मं धी॑महे॒ वयो॒ बृह॑स्पते॒ पप्रि॑णा॒ सस्नि॑ना यु॒जा ।

मा नो॑ दुः॒शंसो॑ अभिदि॒प्सुरी॑शत॒ प्र सु॒शंसा॑ म॒तिभि॑स्तारिषीमहि ॥१०॥

पदार्थ—हे (बृहस्पते) विद्वन् (पप्रिणा) परिपूर्ण (सस्निना) शुद्ध पवित्र पदार्थ (युजा) युक्त (त्वया) तुम्हारे साथ वर्त्तमान (वयम्) हम लोग (उत्तमम्) श्रेष्ठ (वयः) जीवन को (धीमहि) धारण करें जिससे (अभिदिप्सु) सब ओर से कपट की इच्छा करनेवाला (दुःशंसः) जिसकी दुष्ट कहावत प्रसिद्ध वह चोर (नः) हम लोगों का (मा, ईशत) ईश्वर न हो और (मतिभिः) प्रज्ञाओं के साथ वर्त्तमान (सुशंसाः) जिनकी सुन्दर स्तुति ऐसे हम लोग (प्र, तारिषीमहि) उत्तमता से तरें, सब विषयों के पार पहुंचें ॥ १० ॥

भावार्थ—जो पूर्ण विद्यावाले योगी शुद्धात्मा जनों का सङ्ग करते हैं वे दीर्घजीवी होते हैं जो विद्वानों के सहचारी होते हैं उनके लिए दुःख देने को कोई भी समर्थ नहीं हो सकते हैं ॥ १० ॥

अ॒ना॒नु॒दो वृ॑ष॒भो जग्मि॑राह॒वं निष्ट॑प्ता॒ शत्रुं॒ पृत॑नासु सास॒हिः ।

असि॑ स॒त्य ऋ॑ण॒या ब्र॑ह्मणस्पत उ॒ग्रस्य॑ चिद्दमि॒ता वी॑ळुह॒र्षिणः॑ ॥११॥

पदार्थ—हे (ब्रह्मणस्पते) वेद के पालनेवाले ! आप जिससे (अनानुदः) अनानुद अर्थात् जो पीछे देते हैं वे जिसके नहीं विद्यमान वह (वृषभः) श्रेष्ठ जन (आहवम्) संग्राम को (जग्मिः) जानेवाले (पृतनासु) वैरियों की सेनाओं में (शत्रुम्) काटने, दुःख देनेवाले वैरी को (निष्टप्ता) निरन्तर सन्ताप देने (सासहिः) निरन्तर सहने (ऋणयाः) और ऋण को प्राप्त होनेवाले (सत्यः) सज्जनों में साधु (वीळुहर्षिणः) जिसको बल से बहुत हर्ष विद्यमान (उग्रस्य) तीव्र को (चित्) ही (दमिता) दमन करनेवाले (असि) हैं उससे प्रशंसनीय होते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो देने योग्य पदार्थ को शीघ्र देते, जाने योग्य स्थान को जाते, पाने योग्य पदार्थ को पाते और दण्ड देने योग्य को दण्ड देते हैं वे सत्य ग्रहण कर सकते हैं ॥ ११ ॥

अब राज विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अदे॑वेन॒ मन॑सा॒ यो रि॑ष॒ण्यति॑ शा॒सामु॒ग्रो मन्य॑मानो॒ जिघां॑सति ।

बृह॑स्पते॒ मा प्रण॒क् तस्य॑ नो व॒धो नि क॑र्म म॒न्युं दु॒रेव॑स्य॒ शर्ध॑तः ॥१२॥

पदार्थ—हे (बृहस्पते) बड़े राज्य के पालनेवाले ! (यः) जो (शासाम्) शासना करनेवालियों का (उग्रः) भयङ्कर (मन्यमानः) अभिमानी (अदेवेन) अशुद्ध (मनसा) मन से (रिषण्यति) हिंसा करने को अपने से चाहता है वा (जिघांसति) साधारण मारने की इच्छा करता है (तस्य) उसके (मन्युम्) क्रोध को (शर्धतः) बलवत्ता से सहते हुए (दुरेवस्य) दुःख से प्राप्त होने योग्य का (वधः) नाश (मा, प्रणक्) मत नष्ट हो (नः) हमारा (कर्म) कर्म (नि) मत निरन्तर नष्ट हो ॥ १२ ॥

भावार्थ—जो राज्यशासन करते हैं वे निर्बुद्धि हिंसकों को वश करें यदि वश में न आवें तो इनको बलात्कार मारें जिससे न्याय का प्रणाश न हो ॥ १२ ॥

भरे॑षु॒ हव्यो॒ नम॑सोप॒सद्यो॒ गन्ता॒ वाजे॑षु॒ सनि॑ता॒ धनं॑धनम् ।

विश्वा॒ इद॒र्यो अ॑भिदि॒प्स्वो॒३॒॑ मृधो॒ बृह॒स्पति॒र्वि व॑वर्हा॒ रथाँ॑ इव ॥१३॥

पदार्थ—जो (हव्यः) ग्रहण करने और (नमसा) सत्कार से (उपसद्यः) प्राप्त होने योग्य तथा (गन्ता) गमन करने (सनिता) विभाग करने (बृहस्पतिः) और पृथ्वी की रक्षा करनेवाला (अर्यः) स्वामी (भरेषु) पुष्टियों और (वाजेषु) संग्रामों में (धनंधनम्) धन-धन को बढ़ाता वा (रथानिव) रथों के समान (विश्वाः) समस्त (इत्) उन्हीं क्रियाओं को वि (अभिदिप्स्वः) जिनमें दम्भ की इच्छा करनेवाले विद्यमान तथा (मृधः) संग्रामों को (वि, ववर्ह) नहीं बढ़ाता है वह राज्य करने को योग्य होता है ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो गुण, कर्म और स्वभावों से विजय को प्राप्त होते हुए विमानादि यानों के तुल्य शीघ्र ऐश्वर्य को प्राप्त होकर समस्त सत्कर्मों में विभाग कर धनादि पदार्थों को देते हैं वे न्यायाधीश होने के योग्य हैं ॥ १३ ॥

तेजि॑ष्ठया तप॒नी र॒क्षस॑स्तप॒ ये त्वा॑ नि॒दे द॑धि॒रे दृ॒ष्टवी॑र्यम् ।

आ॒विस्तत्कृ॑ष्व॒ यदस॑त्त उ॒क्थ्यं१॒॑ बृह॑स्पते॒ वि प॑रि॒रापो॑ अर्दय ॥१४॥

पदार्थ—हे (बृहस्पते) बड़ों की पालना करनेवाले ! (ये) जो (दृष्टवीर्यम्) देखा है पराक्रम जिसका ऐसे (त्वा) तुमको (निदे) निन्दा के लिए (दधिरे) धारण करते उन (रक्षसः) राक्षसों को जो (तपनी) तपानेवाली है उस (तेजिष्ठया) अतीव तेजस्विनी से आप (तप) सन्ताप दिलाओ (यत्) जो (ते) आपका (उक्थ्यम्) कहने योग्य प्रस्ताव (असत्) हो (तत्) उसको (आविष्कृष्व) प्रकट कीजिए (परिरापः) और सब ओर से पाप जिनके विद्यमान उनको (वि, अर्दय) विशेषता से मारिए ॥ १४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि निन्दकों को सर्वथा निवार और स्तुति करनेवालों को बढ़ा सत्य-विद्याओं को प्रकाश करें ॥ १४ ॥

अब विद्वान् विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

बृह॑स्पते॒ अति॒ यद॒र्यो अर्हा॑द्द्यु॒मद्वि॒भाति॒ क्रतु॑म॒ज्जने॑षु ।

यद्दी॒दय॒च्छव॑स ऋतप्रजात॒ तद॒स्मासु॒ द्रवि॑णं धेहि चि॒त्रम् ॥१५॥

पदार्थ—हे (ऋतप्रजात) सत्याचरण में प्रकट (बृहस्पते) बड़ों के पालनेवाले विद्वन् ! (यत्) जो (अर्यः) ईश्वर (जनेषु) मनुष्यों में (अर्हात्) योग्य व्यवहार से (द्युमत्) प्रकाशवान् (क्रतुमत्) प्रशंसित प्रज्ञायुक्त वा (शवसा) बल से (यत्) जो (दीदयत्) प्रकाशकर्त्ता (अति, विभाति) अतीव प्रकाशित होता है (तत्) उस (चित्रम्) अद्भुत (द्रविणम्) धन को (अस्मासु) हम लोगों में (धेहि) स्थापन कीजिए ॥ १५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जो-जो ईश्वर ने वेद द्वारा सत्य का प्रकाश किया वह-वह सब प्रकाश करें और जो-जो स्वार्थ चाहे वह-वह सबके लिए चाहें ॥१५॥

मा न॑ स्ते॒नेभ्यो॒ ये अ॒भि द्रु॒हस्प॒दे नि॑रा॒मिणो॑ रि॒पवोऽन्ने॑षु जागृ॒धुः ।

आ दे॒वाना॒मोह॑ते॒ वि व्रयो॑ हृ॒दि बृह॑स्पते॒ न प॒रः साम्नो॑ विदुः ॥१६॥

पदार्थ—हे (बृहस्पते) चोर आदि के निवारनेवाले ! (ये) जो (अभिद्रुहः) सब ओर से द्रोह करनेवाले (रिपवः) शत्रुजन (पदे) पाने योग्य स्थान में (निरामिणः) नित्य रमण करनेवाले (अन्नेषु) अन्नादि पदार्थों के निमित्त (जागृधुः) सब ओर से कांक्षा करें उन (स्तेनेभ्यः) चोरों से (नः) हमको भय (मा) न हो। जो (व्रयः) वर्जने योग्य जन (देवानाम्) विद्वानों के बीच (आ, ओहते) वितर्कयुक्त के लिए (हृदि) मन में (साम्नः) सन्धि से (विविदुः) जानें उनको (परः) अत्यन्त श्रेष्ठ तू (न) न प्राप्त हो ॥ १६ ॥

भावार्थ—जो चोर द्रोह से पराये पदार्थों की चाहना करते हैं वे कुछ भी धर्म नहीं जानते हैं ॥ १६ ॥

अब ईश्वर विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

विश्वे॑भ्यो॒ हि त्वा॒ भुव॑नेभ्य॒स्परि॒ त्वष्टाज॑न॒त्साम्नः॑साम्नः क॒विः ।

स ऋ॑ण॒चिदृ॑ण॒या ब्रह्म॑ण॒स्पति॑र्द्रु॒हो ह॒न्ता म॒ह ऋ॒तस्य॑ ध॒र्तरि॑ ॥१७॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो (साम्नःसाम्नः) सामवेद-सामवेदमात्र के बीच (कविः) सर्वज्ञ (त्वष्टा) पदार्थों का निर्माण करनेवाला (विश्वेभ्यः) सभी (भुवनेभ्यः) लोकों से जिन (त्वा) आपको (पर्यजनत्) सब प्रकार प्रकट करता है (सः) वह (ब्रह्मणस्पतिः) ब्रह्माण्ड की पालना करनेवाला है उस (महः) महान् (ऋतस्य) सत्य कारण के (धर्तरि) धारण करनेवाले जगदीश्वर में स्थित (ऋणचित्) ऋण को इकट्ठा करने और (ऋणयाः) ऋण को प्राप्त होनेवाले आप (द्रुहः) द्रोह करनेवाले के (हन्ता) नाशक हूजिए ॥ १७ ॥

भावार्थ—हे जीव ! जो सर्वज्ञ, सृष्टिकर्त्ता, सकल भुवनों का एक स्वामी और सबका धारण करनेवाला जगदीश्वर है उसकी आज्ञा में स्थित द्रोहादिकों को दूर-से-दूर करें ॥ १७ ॥

तव॑ श्रि॒ये व्य॑जिहीत॒ पर्व॑तो॒ गवां॑ गो॒त्रमु॒दसृ॑जो॒ यद॑ङ्गिरः ।

इन्द्रे॑ण यु॒जा तम॑सा॒ परी॑वृतं॒ बृह॑स्पते॒ निर॒पामौ॑ब्जो अर्ण॒वम् ॥१८॥

पदार्थ—हे (अङ्गिरः) प्राणप्रिय (बृहस्पते) बड़ों की पालना करनेवाले ! (तव) आपकी (श्रिये) लक्ष्मी के लिए (पर्वतः) मेघ (गवाम्) सूर्यमण्डल की किरणों के (यत्) जो (गोत्रम्) कुल को (वि, अजिहीत) विशेषता से प्राप्त होता वा (उदसृजः) किसी पदार्थ का त्याग करना सो आप (इन्द्रेण) सूर्य (युजा) युक्त (तमसा) अन्धकार से (परीवृतम्) सब प्रकार ढपा हुआ अग्नि जैसे हो वैसे (अपाम्) जलों के बीच (औब्जः) कोमलपन से प्रसिद्ध हूजिए तथा (अर्णवम्) समुद्र को (निः) निरन्तर प्रकट कीजिए ॥ १८ ॥

भावार्थ—जिस ईश्वर ने सूर्यादिक जगत् का निर्माण कर परस्पर सम्बन्ध किया उसको प्राणप्रिय जानो ॥ १८ ॥

ब्रह्म॑णस्पते॒ त्वम॒स्य य॒न्ता सू॒क्तस्य॑ बोधि॒ तन॑यं च जिन्व ।

विश्वं॒ तद्भ॒द्रं यदव॑न्ति दे॒वा बृ॒हद्व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑ ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे (ब्रह्मणस्पते) ब्रह्माण्ड की पालना करनेहारे ! (त्वम्) आप (अस्य, सूक्तस्य) जो यह सुन्दरता से कहा जाता इसके (यन्ता) नियन्ता होते हुए (तनयम्) सन्तान के समान (बोधि) जानो (च) और इस (विश्वम्) सबको (जिन्व) प्रसन्न करो। तथा (देवाः) विद्वान् जन (यत्) जिस (भद्रम्) कल्याण करनेवाले की (अवन्ति) रक्षा करते हैं (तत्) उस (बृहत्) बहुत (विदथे) संग्राम में (सुवीराः) अच्छे वीरोंवाले हम लोग (वदेम) कहें ॥ १९ ॥

भावार्थ—ईश्वर ने जो रक्षितव्य कहा है उसकी अच्छे प्रकार रक्षा कर मनुष्यों को बहुत सुख पाना चाहिए। जैसे ईश्वर समस्त जगत् की नियमपूर्वक रक्षा करता है वैसे विद्वानों को भी सबकी रक्षा करनी चाहिए ॥ १९ ॥

इस सूक्त में ईश्वरादि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह तेईसवाँ सूक्त और तीसवाँ वर्ग तथा छठा अध्याय समाप्त हुआ ॥

卐

अथ द्वितीयाष्टके सप्तमाध्यायारम्भः ॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥१॥

सेमामिति षड्विंशतिऋचस्य षोडशर्चस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः। १—११, १३—१६ ब्रह्मणस्पतिः, १२ ब्रह्मणस्पतिरिन्द्रश्च देवते। १, ७, ६, ११ निचृज्जगती, १३ भुरिक् जगती, ४, ६, ८ जगती, १० स्वराड् जगती छन्दः। निषादः स्वरः। २, ३ त्रिष्टुप्, ४, ५ स्वराट् त्रिष्टुप्, १२, १६ निचृत् त्रिष्टुप्; १५ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब द्वितीयाष्टक के सातवें अध्याय का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र मे विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को कहा है—

सेमाम॑विड्ढि प्रभृ॑तिं॒ य ईशि॒षेऽया वि॑धेम॒ नव॑या म॒हा गि॒रा।
यथा॑ नो मी॒ढ्वान् स्तव॑ते॒ सखा॒ तव॒
बृह॑स्पते॒ सीष॑धः॒ सोत नो॑ म॒तिम् ॥१॥

पदार्थ—हे (बृहस्पते) अध्यापक, वेदरूप वाणी के शिक्षक विद्वन् ! (यः) जो आप (अया) इस (नवया) नवीन (महा, गिरा) महती उपदेश रूप वाणी से (इमाम्) इस (प्रभृतिम्) धारण वा पोषण रूप क्रिया के करने को (ईशिषे) समर्थ हो (सः) सो आप इस उक्त क्रिया को (अविड्ढि) प्राप्त हूजिये (यथा) जैसे (तव) आप का (मीढ्वान्) विद्या का प्रवर्त्तक (सखा) मित्र (नः) हमारी (स्तवते) प्रशंसा करता और जैसे (सः) वह आप (नः) हमारे लिए (मतिम्) बुद्धि को (उत) भी (सीषधः) सिद्ध करो वैसे आपका आपके मित्र को हम लोग (विधेम) प्राप्त हों ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो लोग विद्या की उन्नति करना चाहें वे प्रथम वेदादि शास्त्रों को स्वयं पढ़के दूसरों को प्रयत्न के साथ पढ़ावें और पढ़-पढ़ाके पदार्थविज्ञान में आरूढ़ बुद्धि को प्राप्त हों ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—

यो नन्त्वा॒न्यन॑म॒न्न्योज॒सोताद॑र्दर्म॒न्युना॒ शम्ब॑राणि॒ वि।
प्राच्या॑वय॒दच्यु॑ता॒ ब्रह्म॑ण॒स्पति॒रा चावि॑श॒द्वसु॑मन्तं॒ वि पर्व॑तम् ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (ब्रह्मणस्पतिः) बड़ी प्रजा का रक्षक राजसेना का अध्यक्ष (नन्त्वानि) नमन योग्य हों (नि, अनमत्) निरन्तर नमे जैसे सूर्य्य (अच्युता) नाशरहित (शम्बराणि) मेघ सम्बन्धी बादलों को (व्यदर्दः) विशेष कर बार-बार विदीर्ण करता (उत) और (पर्वतम्) मेघ को (प्राच्यावयत्) गिराता है वह वैसे (ओजसा) बल से तथा (मन्युना) क्रोध से शत्रु को गिरावे वा विदीर्ण करे (च) और (वसुमन्तम्) उत्तम धन को पहुंचानेहारे देश को (वि, आ, अविशत्) अच्छे प्रकार विशेष कर प्राप्त होवे ॥ २ ॥

भावार्थ—जो राजा और राजजन विद्वान् सत्कर्मी लोगों का सत्कार करते और दुष्ट कर्मवालों को दण्ड देते हैं वे सूर्य के तुल्य पृथिवी पर सुशोभित होते हैं ॥२॥

तद्दे॒वानां॑ दे॒वत॑माय॒ कर्त्व॒मश्र॑थ्नन्दृ॒ळ्हाव्र॑दन्त वीळि॒ता।
उद्गा आ॑ज॒दभि॑न॒द्ब्रह्म॑णा व॒लमगू॑ह॒त्तमो॒ व्य॑चक्षय॒त्स्वः॑ ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (देवानाम्) प्रकाशमान लोकों में (देवतमाय) अत्यन्त प्रकाशयुक्त सूर्य के लिए (तत्, कर्त्वम्) वह कर्त्तव्य कर्म है जैसे यह सूर्य (गाः) किरणों को (उत्, आजत्) उत्कृष्टता से फेंकता (ब्रह्मणा) बड़े बल से (वलम्) आवरणकर्त्ता मेघ को (अभिनत्) विदीर्ण करता और जो (तमः) अन्धकार (अगूहत्) प्रकाश का आवरण करता उस को जो विदीर्ण करता और (स्वः) अन्तरिक्षस्थ सब पदार्थों को (व्यचक्षयत्) विशेष कर दर्शाता है और जिस के प्रताप से उक्त सब वस्तु (दृळ्हा) दृढ़ (वीळिता) प्रशस्त (अव्रदन्त) कोमल होते तथा (अश्रथ्नन्) विमुक्त होते हैं वैसे आप बर्त्ताव कीजिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सूर्य के तुल्य विद्या-प्रकाश कर्मवाले अविद्यारूप अन्धकार के निवारक प्रमादी दुष्टों को शिथिल करते हुए श्रेष्ठ विद्वत्ता को ग्रहण करते हैं वे जगत् के उपकारक होते हैं ॥ ३ ॥

अश्मा॑स्यमव॒तं ब्रह्म॑ण॒स्पति॒र्मधु॑धारम॒भि यमोज॒सातृ॑णत्।
तमे॒व विश्वे॑ पपिरे स्व॒र्दृशो॑ ब॒हु सा॒कं सि॑सिचु॒रुत्स॑मु॒द्रिण॑म् ॥४॥

पदार्थ—जो विद्वान् (ब्रह्मणः) बड़ों का (पतिः) रक्षक सज्जन जैसे सूर्य्य (ओजसा) बल के साथ (यम्) जिस (अवतम्) नीचे को गिरनेहारे (मधुधारम्) मधुर रसों के धारक (अश्मास्यम्) मेघ के मुख्य भाग को (अभि, अतृणत्) सब ओर से काटता है (तमेव) उसी को (विश्वे) सब (स्वर्दृशः) सुख प्राप्ति के हेतु शिक्षक लोग (साकम्) साथ मिलके (उद्रिणम्) जलयुक्त (उत्सम्) कूप के तुल्य (बहु) अधिकतर (पपिरे) पिएँ और (सिसिचुः) सींचें वैसे अनुष्ठान करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य मेघ और कूप के तुल्य सब को शुभ शिक्षा से तृप्त करते और सब को एक मत करते हैं वे मिलकर सब की उन्नति कर सकते हैं ॥ ४ ॥

स॒ना ता का चि॒द्भुव॑ना॒ भवी॑त्वा मा॒द्भिः श॒रद्भि॒र्दुरो॑ वरन्त वः।
अय॑तन्ता चरतो अ॒न्यद॑न्य॒दिद्या च॒कार॑ व॒युना॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिः॑ ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य के किरण (माद्भिः) महीनों और (शरद्भिः) शरद् आदि ऋतुओं के विभाग से (या) जो (सना) सनातन (का, चित्) कोई (भवीत्वा) होनेवाले (भुवना) लोक हैं (ता) उन को और (दुरः) द्वारों को (वरन्त) विवृत्त करते, प्रकाशित करते हैं तथा जो (ब्रह्मणः, पतिः) विद्या और धन का पालक पुरुष (वः) तुम को (वयुना) विज्ञानयुक्त (चकार) करता है वह तुम को सेवने योग्य है। जो (अयतन्ता) प्रयत्न रहित, आलसी पढ़ने-पढ़ानेवाले (अन्यदन्यत्, इत्) अन्य-अन्य, विरुद्ध ही (चरतः) करते हैं उन का सत्कार कभी न करना चाहिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य महीनों और ऋतुओं को विभक्त कर मूर्त्त द्रव्यों का यथावत्स्वरूप दिखाता है वैसे जो विद्वान् पृथिवी से लेके ईश्वर पर्यन्त पदार्थों को यथावत् शिक्षा से दिखावें वे लोक में पूजनीय होवें और जो अविद्यायुक्त आलसी लोग कपट आदि से दूषित, दुष्ट उपदेश करते वा निकम्मे बैठे रहते हैं वे किसी को कभी सेवने योग्य नहीं हैं ॥ ५ ॥

अ॒भि॒नक्ष॑न्तो अ॒भि ये तमा॑न॒शुर्नि॒धिं प॑णी॒नां प॑र॒मं गुहा॑ हि॒तम्।
ते वि॒द्वांसः॑ प्रति॒चक्ष्यानृ॑ता॒ पुन॒र्यत॑ उ॒ आय॒न्तदुदी॑युरा॒विश॑म् ॥६॥

पदार्थ—(ये) जो (अभिनक्षन्तः) सब ओर से जानते हुए (विद्वांसः) विद्वान् लोग (तम्) उस (गुहा, हितम्) बुद्धि में स्थित (परमम्) उत्तम (पणीनाम्) व्यवहारवान् प्रशंसनीय मनुष्यों के (निधिम्) विद्यारूप कोश को (अभ्यानशुः) सब ओर से प्राप्त होते हैं (ते) वे औरों के (अनृता) मिथ्या-भाषणादि कर्मों को (प्रतिचक्ष्य) प्रत्यक्ष खण्डन कर (पुनः, उ) फिर भी (आविशम्) जिसमें आवेश करते उस ज्ञान को (आयन्) प्राप्त होते (तत्) उसका (उदीयुः) उदय करें अर्थात् उपदेश करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो यथार्थ विज्ञान को पाकर अधर्माचरण से पृथक् रहकर अन्यों को पापाचरण से पृथक् कर फिर-फिर धर्म, विद्या, शरीर, आत्मा की पुष्टि में प्रवेश कराते वे अत्यन्त आनन्द को पाकर औरों को आनन्दित करने को समर्थ होते हैं ॥६॥

ऋ॒तावा॑नः प्रति॒चक्ष्यानृ॑ता॒ पुन॒रात॒ आ त॑स्थुः क॒वयो॑ म॒हस्प॒थः।
ते बा॒हुभ्यां॑ धमि॒तम॒ग्निमश्म॑नि॒ नकिः॒ षो अ॒स्त्यर॑णो ज॒हुर्हि तम् ॥७॥

पदार्थ—जो (ऋतावानः) सत्य आचरणों का सेवन करनेहारे (कवयः) पण्डित लोग (महः) बड़े धर्मयुक्त (पथः) मार्गों पर (आ, तस्थुः) अच्छे प्रकार स्थित होते (ते) वे (अतः) इस कारण से (पुनः) बार-बार (अनृता) अधर्मयुक्त व्यवहारों को (प्रतिचक्ष्य) खण्डित कर इन को (आ, जहुः) सब प्रकार छोड़ते हैं। जो (अरणः) विज्ञानी (बाहुभ्याम्) हाथों से (अश्मनि) पत्थर पर (धमितम्) प्रज्वलित किये (अग्निम्) अग्नि को त्याग करता (नकिः) नहीं (अस्ति) अर्थात् ग्रहण करता है (सः, हि) वही (तम्) उस बोध को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो अविद्या और अधर्माचरण का खण्डन कर श्रेष्ठ मार्ग का सेवन करते हैं वे हाथों से धौंपने से काष्ठादिस्थ अग्नि को उत्पन्न कर कार्यों को सिद्ध करते और अभीष्ट को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

ऋ॒तज्ये॑न क्षि॒प्रेण॒ ब्रह्म॑ण॒स्पति॒र्यत्र॒ वष्टि॒ प्र तद॑श्नोति॒ धन्व॑ना।
तस्य॑ सा॒ध्वीरिष॑वो॒ याभि॒रस्य॑ति नृ॒चक्ष॑सो दृ॒शये॒ कर्ण॑योनयः ॥८॥

पदार्थ—(यत्र) जहाँ (ब्रह्मणः) धन का (पतिः) स्वामी (ऋतज्येन) ठीक-ठीक प्रत्यञ्चावाले (क्षिप्रेण) शीघ्रकारी (धन्वना) धनुष् से जिस को (प्र, वष्टि) अच्छे प्रकार चाहता (तत्) उस को (अश्नोति) प्राप्त होता (तस्य) उसके (साध्वीः) श्रेष्ठ (इषवः) बाण होवें (याभिः) जिन से शत्रुओं को (अस्यति) हटावे, दूर करे उन में (दृशये) देखने अर्थात् जानने के लिए (कर्णयोनयः) कान आदि कारणवाले (नृचक्षसः) मनुष्यों का देखने योग्य विषय है उन का वहाँ प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे वीर पुरुष धनुष आदि शस्त्र और आग्नेयादि अस्त्र से शत्रुओं को पराजित करते हैं वैसे धर्मात्मा दोषों को जीत लेता है ॥ ८ ॥

फिर राजपुरुष कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स संनयः स विनयः पुरोहितः स सुष्टुतः स युधि ब्रह्मणस्पतिः ।

चाक्ष्मो यद्वाजं भरते मती धनादित्सूर्यस्तपति तप्यतुर्वृथा ॥९॥

पदार्थ—(सः) वह (संनयः) सम्यक् नीतिवाला (सः) वह (विनयः) विविध प्रकार की नम्रतावाला (सः) वह (पुरोहितः) आगे जिस को विद्वान् लोग धारण करते (स) वह (सुष्टुत) अच्छे प्रकार प्रशंसित (चाक्ष्म) स्पष्टवक्ता (सः) वही (ब्रह्मणः) धन का (पतिः) स्वामी (वृथा) निष्प्रयोजन दूसरों को पीड़ा देनेहारे दुष्टों का (तप्यतुः) दुःख देनेवाला विद्वान् वीर पुरुष (मती) विज्ञान से (धना) धनों और (यत्) जिस कारण (वाजम्) अन्नादि सामग्रीयुक्त पदार्थों का (आत्) निरन्तर (भरते) धारण-पोषण करता है इस से (युधि) युद्ध में (सूर्यः) सूर्य के तुल्य (इत्) ही (तपति) प्रतापयुक्त होता है ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विनय आदि से युक्त प्रशंसित गुणकर्मस्वभाववाले, दुष्टता के निरोधक और सत्यता के प्रवर्त्तक हैं वे धर्म-युक्त व्यवहार से राज्य की रक्षा करने को समर्थ होते हैं ॥ ९ ॥

फिर राजा और प्रजा क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विभु प्रभु प्रथमं मेहनावतो बृहस्पतेः सुविदत्राणि राध्या ।

इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनो येन जना उभये भुञ्जते विशः ॥१०॥

पदार्थ—(येन) जिसके आश्रय से (उभये) विद्वान्-अविद्वान् दोनों (जनाः) प्रसिद्ध पुरुष (विशः) प्रजा को (भुञ्जते) प्राप्त होते वह (प्रथमम्) प्रख्यात (विभु) व्यापक (प्रभु) समर्थ उपासना किया हुआ सिद्धिकारी होता है उसके (मेहनावतः) प्रशस्त वर्षाओं के निमित्तक (वाजिनः) प्राप्त होने वा (वेन्यस्य) चाहने (बृहस्पतेः) सबके रक्षक सूर्य के तुल्य प्रकाशयुक्त परमेश्वर के (सातानि) विभाग कर देने और (राध्या) सुखों का सिद्ध करने योग्य (सुविदत्राणि) सुन्दर विज्ञानों के (इमा) ये निमित्त सब लोगों को ग्रहण करने योग्य हैं ॥१०॥

भावार्थ—राजाजन और प्रजाजनों को योग्य है कि सर्वव्यापक शक्तिमान् विस्तीर्ण सुख देनेवाले ब्रह्म की उपासना कर सब मनुष्यादि प्राणियों के सुखसाधक वस्तुओं का संग्रह करके राजप्रजा के सुखों को सिद्ध करें ॥१०॥

फिर मनुष्यों को क्या कर्त्तव्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

योऽवरे वृजने विश्वथा विभुर्महामु रण्वः शवसा ववक्षिथ ।

स देवो देवान्प्रति पप्रथे पृथु विश्वेदु ता परिभूर्ब्रह्मणस्पतिः ॥११॥

पदार्थ—(यः) जो (विश्वथा) सब (अवरे) कार्य्यरूप (वृजने) अनित्य जगत् में (रण्वः) रमण करानेहारा (विभुः) व्यापक (परिभूः) सब ओर प्रसिद्ध होनेवाला (ब्रह्मणः, पतिः) ब्रह्माण्ड का रक्षक है (स, देवः) वह दिव्यस्वरूप ईश्वर (शवसा) बल से (महाम्, उ) वितर्करूप महान् संसार को और (देवान्) विद्वानों वा वसु आदि को (प्रति, पप्रथे) प्रीति के साथ प्रख्यात करता और (पृथु) विस्तीर्ण (ता) उन (विश्वा) समस्त जङ्गम प्राणियों को विस्तृत करता (इत्, उ) उसी को तुम लोग (ववक्षिथ) प्राप्त होने की इच्छा करो ॥११॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमात्मा अगले पिछले कार्य्य कारणरूप जगत् में परिपूर्ण होके सबका विस्तार करता, सबके लिए सब सुखों के साधनों को देता वही सबको उपासना करने और मानने योग्य है ॥११॥

अब राजाप्रजा के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विश्वं सत्यं मघवाना युवोरिदापश्चन प्र मिनन्ति व्रतं वाम् ।

अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पती हविर्नोऽन्नं युजेव वाजिना जिगातम् ॥१२॥

पदार्थ—हे (मघवाना) प्रशस्त धनवाले (इन्द्राब्रह्मणस्पती) राज्य और धन के रक्षक लोगो ! जो (युवोः) तुम्हारे (आपः) प्राणों (सत्यम्) अविनाशी धर्म को (विश्वम्) सब जगत् को (प्रमिनन्ति) नष्ट-भ्रष्ट करते (वाम्) तुम्हारे नियम को तोड़ते हैं उनको नष्ट कर (वाजिना) दो वेगवाले घोड़े (युजेव) जैसे संयुक्त हों वैसे (नः) हमारे (हविः) भोजन के योग्य (अन्नम्) अन्न को (जिगातम्) प्राप्त होओ ॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सुशिक्षित युक्त किये घोड़े रथ को पहुँचा कर शत्रुओं को पराजित कराते वैसे राज्यैश्वर्य को प्राप्त हुए राज-प्रजाजन सत्याचरण के विरोधियों को निवृत्त कर प्राण के अभयरूप दान को तुम लोग देओ ॥१२॥

फिर राजपुरुष क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उताशिष्ठा अनु शृण्वन्ति वह्नयः सभेयो विप्रो भरते मती धना ।

वीळुद्वेषा अनु वश ऋणमाददिः स ह वाजी समिथे ब्रह्मणस्पतिः ॥१३॥

पदार्थ—जो (आशिष्ठाः) अति शीघ्रगामी (वह्नयः) पहुँचानेवाले घोड़ों के तुल्य (वीळुद्वेषाः) दृढ़ गुणों से दृढ़ द्वेषकारी हैं उनको (अनु, शृण्वन्ति) अनुक्रम से सुनते हैं उनके साथ (समिथे) संग्राम में (सभेयः) सभा में कुशल (विप्रः) बुद्धिमान् जन (मती) बुद्धिबल से (वशा) कामना करने योग्य सुन्दर (धना) धनों को (ह, अनु, भरते) ही अनुकूल धारण करता (उत) और (स) वह (वाजी) प्रशस्तज्ञानी (ब्रह्मणः, पतिः) राज्य के धन का रक्षक (ऋणम्) ऋण अर्थात् कर रूप धन का (आददिः) ग्रहण करनेवाला हो ॥१३॥

भावार्थ—वह्नि यह घोड़े का गौण नाम है । जैसे अग्नि पहुँचानेवाले होते हैं वैसे ही घोड़े भी होते हैं । राजपुरुष जिन दुष्टाचारियों को सुनें उनको वश में करके सबका प्रिय सिद्ध किया करें ॥१३॥

फिर अध्यापक लोग कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ब्रह्मणस्पतेरभवद्यथावशं सत्यो मन्युर्महि कर्मा करिष्यतः ।

यो गा उदाजत्स दिवे वि चाभजन्महीव रीतिः शवसासरत्पृथक् ॥१४॥

पदार्थ—(यः) जो (महि) बड़े (कर्म) काम को (करिष्यतः) करनेवाले (ब्रह्मणः, पतेः) धन के स्वामी के समीप में (यथावशम्) वश के अनुकूल विचारपूर्वक (सत्यः) श्रेष्ठ, अधम त्यागार्थ ही (मन्युः) क्रोध (अभवत्) होवे (सः) वह जैसे (दिवे) प्रकाश के लिए सूर्य (गाः) किरणों को (उत्, आजत्) ऊपर-नीचे पहुँचाता है वैसे धर्म के प्रकाश के लिए होता है । जो (महीव) जैसे श्रेष्ठ माननीय (रीतिः) उत्तम रीति-नीति (शवसा) बल के साथ (पृथक्) अलग-अलग (असरत्) प्राप्त होवे उसको (च) भी (वि, अभजत्) वह उक्त क्रोध का विभाग करे वा विशेष कर सेवे ॥१४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो पुरुषार्थी अध्यापक लोग अच्छी शिक्षा को पाकर सत्य में प्रीति और असत्य पर क्रोध का धारण करते वे बड़ी सुशीलता को प्राप्त होके यथेष्ट कार्य्य को प्राप्त होते हैं ॥१४॥

फिर मनुष्य क्या करे इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

ब्रह्मणस्पते सुयमस्य विश्वहा रायः स्याम रथ्यो३ वयस्वतः ।

वीरेषु वीराँ उप पृङ्धि नस्त्वं यदीशानो ब्रह्मणा वेषि मे हवम् ॥१५॥

पदार्थ—हे (ब्रह्मणः) धन के (पते) रक्षक (रथ्यः) रथ क्रिया में प्रवीण (विश्वहा) सबका जानने वा प्राप्त होनेवाले (त्वम्) आप (ब्रह्मणा) वेद से (मे) मेरे (यत्) जिस (हवम्) आह्वान बुलाने को (वेषि) प्राप्त होते हो उस आह्वान से (नः) हमको (सुयमस्य) सुन्दर संयम हो जिससे उस और (वयस्वतः) जिसके होने से अच्छा जीवन व्यतीत हो उस (रायः) धन के रक्षक (वीरेषु) वीर सिपाहियों में हम (वीरान्) वीर लोगों से (उप, पृङ्धि) समीप सम्बन्ध कीजिए जिससे हम लोग अभीष्ट कार्य सिद्ध करनेवाले (स्याम) हों ॥१५॥

भावार्थ—जो लोग सुन्दर संयमवाले हों वे बहुत काल जीवें, जो ब्रह्मचर्य्य का पालन करें वे आत्मा और शरीर से अच्छे वीर होते हैं ॥१५॥

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।

विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१६॥व० ३॥

पदार्थ—हे (ब्रह्मणः, पते) धन के पालक विद्वन् ! (त्वं) तू (अस्य) इस (सूक्तस्य) सूक्त अर्थात् अच्छे प्रकार कहे वाक्य के अर्थ को (बोधि) जान (तनयम्) औरस पुत्र वा विद्यार्थी जन को (जिन्व) सुखी कर (च) और राज्य का (यन्ता) नियमकर्त्ता हो जिससे (देवाः) विद्वान् लोग (यत्) जिस (विश्वम्) जगत् की (अवन्ति) रक्षा करते हैं (तत्) उसको बृहत् बड़ा (भद्रम्) कल्याणयुक्त (विदथे) जानने योग्य संग्रामादि व्यवहार में (सुवीराः) सुन्दर वीरोंवाले हम लोग (वदेम) उपदेश करें ॥१६॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को उचित है कि सुन्दर नियम से वेद के अर्थों को जान पूर्ण युवावस्था में स्वयंवर विवाह कर धर्म से सन्तानों की उत्पत्ति और रक्षा कर यथावत् ब्रह्मचर्य के साथ सुन्दर शिक्षा दे और विद्वान् करके सुख बढ़ावें ॥१६॥

इस सूक्त में विद्वान् और ईश्वर के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानो ॥

यह चौबीसवाँ सूक्त और तीसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

इन्धान इति पञ्चर्चस्य पञ्चविंशतितमस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । ब्रह्मणस्पति-र्देवता । १, २ जगती; ३ निचृज्जगती; ४, ५ विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब पाँच ऋचावाले पच्चीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके आदि में बिजुली का वर्णन करते हैं—

इन्धानो अग्निं वनवद्वनुष्यतः कृतब्रह्मा शूशुवद्रातहव्य इत् ।
जातेन जातमति स प्र सर्सृते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥१॥

पदार्थ—जो (**कृतब्रह्मा**) धनों को उत्पन्न करनेवाला (**इन्धानः**) तेजस्वी (**रातहव्यः**) होम के योग्य पदार्थों का दाता (**ब्रह्मणः**) धन का (**पतिः**) रक्षक स्वामी (**जातेन**) उत्पन्न हुए जगत् के साथ (**जातम्**) उत्पन्न पदार्थ को (**अति, सर्सृते**) अत्यन्त शीघ्र प्राप्त होता (**यंयम्**) जिस जिस को (**युजम्**) कार्यों में युक्त (**कृणुते**) करता (**सः, इत्**) वही (**वनवत्**) वन को जैसे वैसे (**वनुष्यतः**) जलाने, नष्ट करते हुए (**अग्निम्**) विद्युदग्नि को (**प्र, शूशुवत्**) अच्छी प्रकार जानता है ॥१॥

भावार्थ—इसमें उपमालङ्कार है । जैसे किरण वायु के साथ चलती हैं वैसे ही विद्युदग्नि सब पदार्थों के साथ चलता है उसको मनुष्य जहाँ-जहाँ प्रयुक्त करे वहाँ-वहाँ बड़े काम को सिद्ध करता है ॥१॥

कौन मनुष्य विद्या वृद्धि कर सकता है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

वीरेभिर्वीरान्वनवद्वनुष्यतो गोभी रयिं पप्रथद्बोधति त्मना ।
तोकं च तस्य तनयं च वर्धते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥२॥

पदार्थ—जो (**ब्रह्मणः, पतिः**) अन्न का रक्षक विद्वान् जन (**वनुष्यतः**) याचक मनुष्य के (**वीरेभिः**) वीर पुरुषों के साथ (**वीरान्**) शरीरात्मबलयुक्तों को और (**गोभिः**) इन्द्रियों से (**वनवत्**) वन जङ्गल में जैसे वैसे (**रयिम्**) शोभा को (**पप्रथत्**) प्रख्यात प्रसिद्ध करता है (**त्मना**) अन्तःकरण से पदार्थ विज्ञान को (**बोधति**) जानता है (**तस्य**) उसका (**तोकम्**) छोटा बालक (**च**) और ऐश्वर्य (**च**) तथा (**तनयम्**) पौत्र आदि (**वर्धते**) वृद्धि को प्राप्त होता वह (**यंयम्**) जिस-जिसको (**युजम्**) शुभगुण युक्त (**कृणुते**) करता है वह-वह अपने स्वरूप से प्रख्यात होता है ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे धन की याचना करता हुआ पुरुष मन को युक्त करता वैसे पुत्रादि के पालन में चित्त देता है । जिस पदार्थ के साथ जिसके योग की योग्यता होती उसको उसके साथ प्रतिदिन युक्त करता है वह बहुत उत्तम मनुष्यों को प्राप्त होके विद्या की वृद्धि कर सकता है ॥२॥

सिन्धुर्न क्षोदः शिमीवाँ ऋघायतो वृषेव वध्रीँरभि वष्ट्योजसा ।
अग्नेरिव प्रसितिर्नाह वर्तवे यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥३॥

पदार्थ—जो (**शिमीवान्**) प्रशस्त कर्मयुक्त (**ब्रह्मणः, पतिः**) वेद का रक्षक विद्वान् पुरुष (**क्षोदः**) जल का (**सिन्धुः, न**) समुद्र जैसे अपने में लय करता (**वध्रीन्**) वा साधारण बैलों वा (**अभि**) सम्मुख होके जैसे (**वृषेव**) अति बलवान् बैल मारता वैसे (**ओजसा**) बल से (**ऋघायतः**) सत्य धर्म के नाशक शत्रुओं का नाश करता, सत्य को (**वष्टि**) चाहता और (**अग्नेरिव**) अग्नि से जैसे (**प्रसितिः**) बन्धन (**वर्तवे**) वर्तने के अर्थ (**न, अह**) नहीं रहता अर्थात् स्वाधीनता होती है वैसे (**यंयम्**) जिस-जिसको (**युजम्**) शुभगुणयुक्त (**कृणुते**) करता है वह उस-उसको सुखी करता है ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य पुरुषार्थी, समुद्र के तुल्य गम्भीर, धनाढ्य, वृषभ के तुल्य बलवान्, अग्नि के तुल्य शत्रुओं के जलाने वाले, सत्य कामना युक्त होते हैं वे समस्त शिल्प विद्या को सिद्ध कर सकते हैं ॥ ३ ॥

अब कौन विजयी होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तस्मा अर्षन्ति दिव्या असश्चतः स सत्वभिः प्रथमो गोषु गच्छति ।
अनिभृष्टतविषिर्हन्त्योजसा यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥४॥

पदार्थ—जो (**प्रथमः**) मुख्य (**अनिभृष्टतविषिः**) जिसकी सेना निरन्तर भ्रष्ट नहीं होती वह (**ब्रह्मणः, पतिः**) ब्राह्मणादि वर्णव्यवस्था का रक्षक (**सत्वभिः**) पदार्थों के साथ (**गोषु**) पृथिवी में (**गच्छति**) जाता है (**ओजसा**) बल पराक्रम से शत्रुओं को (**हन्ति**) मारता (**सः**) वह (**यंयम्**) जिस जिस को (**युजम्**) कार्य में नियुक्त (**कृणुते**) करता (**तस्मै**) उसके लिए (**दिव्याः**) शुद्ध (**असश्चतः**) जो किसी व्यसन में आसक्त नहीं ऐसे कल्याणकारी वीर पुरुष (**अर्षन्ति**) प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—वे ही लोग विजयी होते हैं जो सब बलों और साधन उपसाधनों से तथा विद्या से युक्त होते हैं ॥ ४ ॥

अब कौन मनुष्य कार्यों को सिद्ध करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तस्मा इद्विश्वे धुनयन्त सिन्धवोऽच्छिद्रा शर्म दधिरे पुरूणि ।
देवानां सुम्ने सुभगः स एधते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥५॥

पदार्थ—जो (**ब्रह्मणः**) वेद विद्या का (**पतिः**) रक्षक, प्रचारक विद्वान् मनुष्य (**देवानाम्**) विद्वानों के (**सुम्ने**) सुख में (**सुभगः**) सुन्दर ऐश्वर्यवाला प्रफुल्लित होता हुआ (**यंयम्**) जिस-जिसको (**युजम्**) शुभ कर्मयुक्त (**कृणुते**) करता है (**सः**) (**एधते**) वह उन्नति को प्राप्त होता (**तस्मै, इत्**) उसी के लिए (**विश्वे**) सब (**सिन्धवः**) समुद्रादि जलाशय (**अच्छिद्रा**) छेद-भेद रहित (**पुरूणि**) बहुत (**शर्म**) सुखदायी निवास स्थानों को (**दधिरे**) धारण करते तथा (**धुनयन्त**) सर्वत्र चलाते हैं अर्थात् यानादि द्वारा सर्वत्र निवास पाता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानों के सङ्ग में प्रीति रखने, पदार्थों का यथोक्तविभाग करनेवाले रसायन विद्या में उद्योगी होवें वे सब पदार्थों से बहुत कार्य सिद्ध कर सकते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त में कहे अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ।

यह पच्चीसवाँ सूक्त और चौथा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

ऋजुरिति चतुर्ऋचस्य षड्विंशतितमस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । ब्रह्मणस्पतिर्देवता । १, ३ जगती, २, ४ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब चार ऋचावाले छब्बीसवें सूक्त का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों को क्या कर्त्तव्य है इस विषय को कहते हैं—

ऋजुरिच्छंसो वनवद्वनुष्यतो देवयन्निददेवयन्तमभ्यसत् ।
सुप्रावीरिद्वनवत्पृत्सु दुष्टरं यज्वेदयज्योर्वि भजाति भोजनम् ॥१॥

पदार्थ—जो (**यज्वा**) मिलनसार जन (**अयज्योः**) विरोधी के (**इत्**) ही (**भोजनम्**) भोग्य पदार्थ को (**वि, भजाति**) पृथक् करता है वह (**इत्**) ही (**सुप्रावीः**) सुन्दर रक्षक हुआ (**पृत्सु**) सङ्ग्रामों में (**वनवत्**) वन के तुल्य (**दुष्टरम्**) दुःख से उल्लंघन करने योग्य शत्रुदल को छिन्न-भिन्न करता है जो (**देवयन्**) अपने को विद्वान् मानता हुआ (**अदेवयन्तम्**) मूर्ख का सा आचरण करते हुए को (**इत्**) ही (**अभि, असत्**) सम्मुख प्राप्त हो वह (**वनवत्**) किरणों के तुल्य (**शंसः**) स्तुति करने योग्य (**वनुष्यतः**) हिंसा करनेवाले से (**इत्**) ही (**ऋजुः**) सरल, कोमल स्वभाव होवे ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पण्डिताई को चाहते, मूर्खता को छोड़ते और शत्रुओं को जीतते हुए भोग्य पदार्थों का विभाग कर सेवन करते हैं वे दुःखों को छोड़ देते हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यजस्व वीर प्र विहि मनायतो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये ।
हविष्कृणुष्व सुभगो यथाससि ब्रह्मणस्पतेरव आ वृणीमहे ॥२॥

पदार्थ—हे (**वीर**) शुभगुणों में व्याप्त होनेवाले विद्यार्थी जन ! तू (**मनायतः**) अपने को मनन का आचरण करते हुए (**ब्रह्मणः**) वेदादि शास्त्रों की (**पतेः**) पालना करनेवाला (**मनायतः**) अपने को मनन, विचार का आचरण करनेवाले जन विद्याओं को (**प्र, विहि**) अच्छे प्रकार प्राप्त हो धर्म का (**यजस्व**) सङ्ग कर (**मनः**) मन को (**भद्रम्**) कल्याणकारी (**कृणुष्व**) कर (**सुभगः**) सुन्दर ऐश्वर्यवाला हुआ (**वृत्रतूर्ये**) शत्रुओं का जहाँ वध होता उस संग्राम में (**हविः**) दान का (**कृणुष्व**) कर (**यथा**) जैसे तू (**अससि**) हो वैसे हम लोग (**अवः**) रक्षा को (**आ, वृणीमहे**) अच्छे प्रकार स्वीकार करें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य अपने मनों को अति कल्याणकारी मार्ग में प्रवृत्त कर सब कार्यों को सिद्ध करते हैं वे कृतकृत्य होते हैं ॥ २ ॥

स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः ।
देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वज्जन ! जैसे (**सः**) वह (**जनेन**) साधारण मनुष्य के (**सः**) वह (**विशा**) प्रजा के (**सः**) वह (**जन्मना**) जन्म के और (**सः**) वह (**पुत्रैः**) सन्तानों के साथ (**वाजम्**) विज्ञान को तथा (**नृभिः**) अधिकारी मनुष्यों के साथ (**धना**) धनों को (**भरते**) धारण करता (**यः**) जो (**श्रद्धामनाः**) मन में श्रद्धा रखनेवाला (**हविषा**) उत्तम व्यवहार ग्रहण के साथ (**देवानाम्**) विद्वानों के सम्बन्धी (**ब्रह्मणः**) वेद के (**पतिम्**) पालक अध्यापक (**पितरम्**) पिता वा अध्यापक का (**आविवासति**) अच्छे प्रकार सेवन करता (**इत्**) वही शरीर और आत्मा के बल से युक्त हुआ सुखी होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य प्रीतिपूर्वक विद्वानों के अध्यापक और उपदेशक विद्वान् का सेवन करते हैं वे सर्वत्र सब पदार्थों से निष्पन्न हुए आनन्द को भोगते हैं ॥ ३ ॥

यो अस्मै हव्यैर्घृतवद्भिरविधत्प्र तं प्राचा नयति ब्रह्मणस्पतिः ।
उरुष्यतीमंहसो रक्षती रिषोंऽहोश्चिदस्मा उरुचक्रिरद्भुतः ॥४॥

पदार्थ—जो (**उरुचक्रिः**) बहुत कर्म करता (**अद्भुतः**) आश्चर्यरूप गुणकर्मस्वभाववाला (**ब्रह्मणः, पतिः**) धन-कोष का रक्षक (**अस्मै**) इस विद्वान्

के लिए (घृतवद्भिः) बहुत घृतादि पदार्थों से युक्त (हव्यैः) देने योग्य वस्तुओं से (अविष्यत्) शुभ कार्यसाधक पदार्थ बनाता (तम्) उसको (प्रत्ना) प्राचीन विज्ञान से (प्र, नयति) अच्छे प्रकार प्राप्त होता (अंहसः) पाप से (रक्षति) बचाता (रिषः) हिंसकों को मारके (अस्मै) इस विद्वान् को (अंहोः) पापाचरणों से (उरुष्यति) पृथक् रखता वह (ईम्) सब ओर से सुख को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जैसे घृत आदि पुष्ट और सुगन्धित द्रव्यों के होम से वायु और वृष्टिजल शुद्ध होके रोगों से प्राणियों को पृथक् कर सबको सुखी करते हैं वैसे उपदेशक लोग अधर्म के निषेधपूर्वक धर्म के ग्रहण से आत्माओं को शुद्ध कर अविद्यादि रोगों को दूर करते हैं वे कृतकृत्य होते हैं ॥ ४ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ।

यह छब्बीसवां सूक्त और पांचवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

इमा इति सप्तदशर्चस्य सप्तविंशतितमस्य सूक्तस्य कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदो वा ऋषिः । आदित्यो देवता । १, ३, ६, १३—१५ निचृत्त्रिष्टुप्, २, ४, ५, ८, १२, १७ त्रिष्टुप्, ११, १६ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ७ भुरिक् पङ्क्तिः, ९, १० स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

अब सत्ताईसवें सूक्त का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में राजपुरुष कैसे हों इस विषय को कहते हैं—

इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि ।
शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे मैं (आदित्येभ्यः) महीनों के तुल्य (राजभ्यः) राजपुरुषों के लिए जिन (इमाः) इन प्रत्यक्ष (घृतस्नूः) घृत को शुद्ध करानेवाली (गिरः) शुद्ध की हुई सत्यवाणियों का (जुह्वा) जिह्वा रूप साधन से (जुहोमि) होम करता अर्थात् निवेदन करता हूँ उन (नः) हमारी वाणियों को यह (मित्रः) मित्रबुद्धि (भगः) सेवने योग्य (तुविजातः) बलादि गुणों से प्रसिद्ध (वरुणः) श्रेष्ठ (दक्षः) चतुर (अंशः) दुष्टों के सम्यक् विनाशक (अर्यमा) न्यायाधीश आप (सनात्) सदैव (शृणोतु) सुनिए ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सूर्य के तुल्य तेजस्वी राजा लोग और उनके सभासद् प्रजाजनों की सुख-दुःख युक्त निवेदन की वाणियों को सुनके न्याय करते वे राज्य बढ़ाने को समर्थ होते हैं ॥ १ ॥

अब पढ़ाने-पढ़ने वालों के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

इमं स्तोमं सक्रतवो मे अद्य मित्रो अर्यमा वरुणो जुषन्त ।
आदित्यासः शुचयो धारपूता अवृजिना अनवद्या अरिष्टाः ॥२॥

पदार्थ—(सक्रतवः) समान बुद्धिवाले (मित्रः) मित्र (अर्यमा) न्यायाधीश और (वरुणः) सब से उत्तम (शुचयः) सूर्य के तुल्य पवित्रकारक (धारपूताः) पवित्र वाणी से युक्त (अवृजिनाः) वर्जनीय पाप से रहित (अनवद्याः) प्रशंसा को प्राप्त (अरिष्टाः) अहिंसनीय वा किसी को दुःख न देनेवाले (आदित्यासः) पूर्ण विद्यायुक्त (अद्य) आज (मे) मेरे (इमम्) इस (स्तोमम्) स्तुति को (जुषन्त) सेवन करें ॥ २ ॥

भावार्थ—सब विद्याप्रिय मनुष्यों को चाहिए कि पूर्ण विद्यावालों को अपने पढ़े की परीक्षा देके अपनी विद्या को निश्चित, निर्भ्रम करें और परीक्षक लोग भी पक्षपात को छोड़के परीक्षा करें क्योंकि ऐसे किये बिना यथावत् विद्या नहीं हो सकती है ॥ २ ॥

त आदित्यास उरवो गभीरा अदब्धासो दिप्सन्तो भूर्यक्षाः ।
अन्तः पश्यन्ति वृजिनोत साधु सर्वं राजभ्यः परमा चिदन्ति ॥३॥

पदार्थ—जो (गभीराः) गम्भीर स्वभावयुक्त (उरवः) तीव्रबुद्धिवाले (अदब्धासः) अहिंसनीय (भूर्यक्षाः) बहुत प्रकार से देखने, जाननेवाले (आदित्यासः) अड़तालीस वर्ष के ब्रह्मचर्य को सेवके पूर्ण विद्यावाले विद्वान् हैं (ते) वे (परमा) उत्तम कर्मों का आचरण करते जो (वृजिना) पाप करते हुए (दिप्सन्तः) दम्भ की इच्छा करनेवाले हों उनको (चित्) ही (अन्तः) अन्तःकरण में (अन्ति) निकट से (पश्यन्ति) देख लेते हैं अर्थात् उनसे मिलते नहीं और जो (राजभ्यः) राजपुरुषों के लिए (सर्वम्) सब (साधु) श्रेष्ठ काम करते हैं वे परीक्षा कर सकते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—परीक्षा करनेवाले जन श्रेष्ठ और दुष्ट पुरुषों की उत्तम प्रकार परीक्षा करके, उत्तम स्वभाववालों के सत्कार और कुत्सित अविद्वानों के अनादर को करके विद्या की उन्नति निरन्तर करें ॥ ३ ॥

धारयन्त आदित्यासो जगत्स्था देवा विश्वस्य भुवनस्य गोपाः ।
दीर्घाधियो रक्षमाणा असुर्यमृतावानश्चयमाना ऋणानि ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (जगत्) चर और (स्थाः) अचर को (धारयन्तः) धारण करते हुए (विश्वस्य) सब (भुवनस्य) निवास के आधार स्थावर और प्राणिमात्र जङ्गम जगत् के (गोपाः) रक्षक (दीर्घाधियः) बड़ी बुद्धिवाले (असुर्यम्) मूर्खों के धन की (रक्षमाणाः) रक्षा करते हुए (ऋतावानः) सत्य के सेवी (ऋणानि) दूसरों को देने योग्य विज्ञानों को (चयमानाः) बढ़ाते हुए (आदित्यासः) पूर्ण विद्यावाले (देवाः) सूर्यादि के तुल्य तेजस्वी विद्वान् लोग बुद्धि से भीतर देखते हैं वे अध्यापक होने योग्य हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में 'अन्तः, पश्यन्ति' इन दो पदों की अनुवृत्ति पूर्व मन्त्र से आती है । यदि विद्वान् पढ़नेवाले विद्यार्थियों को विद्या न देवें तो वे ऋणी हो जावें यही ऋण चुकाना है जो स्वयं पढ़कर दूसरों को पढ़ाना चाहिए ॥ ४ ॥

विद्याम आदित्या अवसो वो अस्य यदर्यमन्भय आ चिन्मयोभु ।
युष्माकं मित्रावरुणा प्रणीतौ परि श्वभ्रेव दुरितानि वृज्याम् ॥५॥६॥

पदार्थ—हे (आदित्याः) सूर्य के तुल्य विद्या के प्रकाशक लोगो तथा हे (अर्यमन्) श्रेष्ठ मनुष्यों का सत्कार करनेहारे सज्जन ! (यत्) जो (भये) भय होने में (वः) आपको (अस्य) इस (अवसः) पालन के निमित्त (चित्) थोड़ा भी (मयोभु) सुखदायी वचन हो उसको मैं (आ, विद्याम) प्राप्त होऊँ वा जानूँ तथा हे (मित्रावरुणा) प्राणापान के तुल्य सुखदायी विद्वानो ! (युष्माकम्) तुम्हारी (प्रणीतौ) उत्तम नीति में (श्वभ्रेव) पृथिवी के गढ़े के तुल्य (दुरितानि) दुःख देनेवाले पापों को (परि, वृज्याम्) परित्याग करूँ ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि जैसे विद्वान् लोग सब प्राणियों के भय का विनाश कर सुख पहुँचाके पापों को निवृत्त करते हैं वैसा निरन्तर करें ॥ ५ ॥

फिर विद्वानों के सङ्ग में प्रीति रखनेवाले मनुष्य लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सुगो हि वो अर्यमन्मित्र पन्था अनृक्षरो वरुण साधुरस्ति ।
तेनादित्या अधि वोचता नो यच्छता नो दुष्परिहन्तु शर्म ॥६॥

पदार्थ—हे (आदित्याः) विद्वान् लोगो ! हे (अर्यमन्) श्रेष्ठ सत्कारयुक्त ! हे (मित्र) मित्र ! हे (वरुण) प्रतिष्ठित सज्जन पुरुष ! जो (वः) तुम लोगों का (अनृक्षरः) कण्टकादि रहित (सुगः) जिसमें निर्विघ्न चल सकें (साधुः) जिसमें धर्म को सिद्ध करते ऐसा (पन्थाः) मार्ग (अस्ति) है (तेन, हि) उसी मार्ग से चलने के लिए (नः) हमको (अधि, वोचत) अधिक कर उपदेश करो और जो यह (दुष्परिहन्तु) बड़ी कठिनता से टूटे-फूटे ऐसे विद्याभ्यासादि के लिए बना हुआ (शर्म) घर है वह (नः) हमारे लिए (यच्छत) देओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि धर्मात्मा विद्वानों के स्वभाव को ग्रहण कर वेदोक्त सत्य मार्ग में चलें जिससे सत्यशास्त्र के पढ़ने-पढ़ाने की वृद्धि होवे वही कर्म सदा सेवने योग्य है ॥ ६ ॥

अब न्यायाधीश का विषय अगले मन्त्र में कहा है—

पिपर्तु नो अदिती राजपुत्राति द्वेषांस्यर्यमा सुगेभिः ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य शर्मोप स्याम पुरुवीरा अरिष्टाः ॥७॥

पदार्थ—जो (राजपुत्रा) जिसका पुत्र राजा हो ऐसी (अदितिः) माता के तुल्य सुख देनेवाली राणी और जो (अर्यमा) विद्वानों से प्रीति रखनेवाला राजा (सुगेभिः) सुगम मार्गों से (द्वेषांसि, अति) वैर, द्वेषों को अच्छे प्रकार छुड़ाके (नः) हमारा (पिपर्तु) पालन करे । (मित्रस्य) मित्र तथा (वरुणस्य) प्रशंसायुक्त पुरुष के (बृहत्) बड़े ऐश्वर्यवाले (शर्म) घर की रक्षा करे उस राजा-राणी के सङ्ग सम्बन्ध से हम लोग (अरिष्टाः) किसी से न मारने योग्य (पुरुवीराः) शरीर, आत्मा के बल से युक्त बहुत पुत्र, भृत्यादि जिनके हों ऐसे (उप, स्याम) आपके निकट होवें ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे न्यायाधीश, राजा न्यायघर में बैठके पुरुषों को दण्ड देवे वैसे न्यायाधीश राणी स्त्रियों का न्याय करे, उस न्यायघर में रागद्वेष और प्रीति-अप्रीति छोड़के केवल न्याय ही किया करे अन्य कुछ न करे ॥ ७ ॥

फिर मनुष्य किसके तुल्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

तिस्रो भूमीर्धारयन्त्रीँरुत द्यून्त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम् ।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन्वरुण मित्र चारु ॥८॥

पदार्थ—हे (अर्यमन्) न्याय करनेहारे (वरुण) शान्तशील (मित्र) मित्रजन ! जैसे (ऋतेन) सत्यस्वरूप परमेश्वर से धारण किये (आदित्याः) सूर्यलोक (तिस्रः) तीन प्रकार की (भूमीः) भूमियों को (उत) और (त्रीन्) तीन प्रकार के (द्यून्) प्रकाशों को (धारयन्) धारण करते हैं वैसे आप (विदथे) जानने योग्य व्यवहार में (व्रता) शरीर, आत्मा और मन से उत्पन्न हुए धर्मयुक्त (त्रीणि) तीन प्रकार के कर्मों को धारण करो-कराओ । जो (एषाम्) इन सूर्य लोकों के (अन्तः) मध्य में (महित्वम्) महत्त्व (चारु) सुन्दर स्वरूप वा (महि) बड़ा कर्म है (तत्) वह (वः) आप लोगों का होवे ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे भूमि और सूर्यादि लोक ईश्वर के नियम से बँधे हुए यथावत् अपनी-अपनी क्रिया करते हैं

वैसे मनुष्यों को भी जानना और वर्त्ताव करना चाहिए। इस जगत् मे उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार की भूमि और अग्नि है तथा सूर्य्यलोक भूमिलोक से बड़े-बड़े हैं ॥ ८ ॥

त्री रोचना दिव्या धारयन्त हिरण्ययाः शुचयो धारपूताः ।

अस्वप्नजो अनिमिषा अदब्धा उरुशंसा ऋजवे मर्त्याय ॥९॥

पदार्थ—जो (**हिरण्यया**) तेजस्वी (**धारपूता.**) विद्या और उत्तम शिक्षा से जिनकी वाणी पवित्र हुई वे (**शुचयः**) शुद्ध, पवित्र (**उरुशंसा.**) बहुत प्रशंसावाले (**अस्वप्नजः**) अविद्यारूप निद्रा से रहित विद्या के व्यवहार मे जागते हुए (**अनिमिषा.**) आलस्य रहित और (**अदब्धा·**) न हिंसा करने योग्य अर्थात् रक्षणीय विद्वान् लोग (**ऋजवे**) सरल स्वभाव (**मर्त्याय**) मनुष्य के लिए (**त्री**) तीन प्रकार के (**दिव्या**) शुद्ध, दिव्य (**रोचना**) रुचि योग्य ज्ञान वा पदार्थों को (**धारयन्त**) धारण करते है वे जगत् के कल्याण करनेवाले हों ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य जीव, प्रकृति और परमेश्वर की तीन प्रकार की विद्या को धारण कर दूसरे को देते सबको अविद्यारूप निद्रा से उठाके विद्या मे जगाते है वे मनुष्यो के मङ्गल करानेवाले होते हैं ॥ ९ ॥

अब मनुष्य कैसे दीर्घ आयुवाले हों इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्त्ताः ।

शतं नो रास्व शरदो विचक्षेऽश्यामायूंषि सुधितानि पूर्वा ॥१०॥७॥

पदार्थ—हे (**वरुण**) अतिश्रेष्ठ (**असुर**) मद्यपान से सर्वथा रहित विद्वान् पुरुष ! जो (**त्वम्**) आप (**विश्वेषाम्**) सब मनुष्यादि जगत् के (**राजा**) राजा (**असि**) हो (**च**) और (**ये**) जो (**देवा.**) विद्वान् सभासद् (**च**) और (**ये**) जो (**मर्त्ता**) साधारण मनुष्य है उनको हमारे (**विचक्षे**) विविध प्रकार के देखने को (**शतम्**) सौ (**शरद**) वर्ष (**न**) हमको (**रास्व**) दीजिए जिससे हम लोग (**पूर्वा**) पहली (**सुधितानि**) सुन्दर प्रकार धारण की हुई अवस्थाओं को (**अश्याम**) भोगें, प्राप्त हों ॥ १० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचर्य्य का सेवन करके अति विषयासक्ति को छोड़ देते है वे सौ वर्ष से न्यून आयु को नही भोगते। इस ब्रह्मचर्य सेवन के बिना मनुष्य कदापि दीर्घ अवस्थावाले नही हो सकते ॥ १० ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

न दक्षिणा वि चिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा ।

पाक्या चिद्वसवो धीर्या चिद्युष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम् ॥११॥

पदार्थ—जो (**आदित्या.**) सूर्यलोक (**न**) नही (**दक्षिणा**) दक्षिण (**न**) न (**सव्या**) उत्तर (**न**) न (**प्राचीनम्**) पूर्व (**उत**) और (**न**) न (**पश्चा**) पश्चिम दिशा मे भ्रमते है (**चित्**) और जिनके आधार मे (**वसव**) पृथिवी आदि वसु (**चित्**) भी भ्रमते है जिनको (**पाक्या**) बुद्धिमान् (**धीर्या**) धीर विद्वानो मे श्रेष्ठजन (**विचिकिते**) विशेषकर जानता है उनका आश्रयकर (**युष्मानीत**) तुम लोगो से प्राप्त हुआ मैं (**अभयम्**) भयरहित (**ज्योति**) प्रकाशरूप ज्ञान को (**अश्याम्**) प्राप्त होऊँ ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सूर्य सब दिशाओ मे नही भ्रमते जिनके आधार से पृथिवी आदि लोक भ्रमते हैं उनके विज्ञानपूर्वक परमात्मा को जानके अभयरूप पद को प्राप्त होओ ॥ ११ ॥

फिर कौन प्रशस्त हों इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

यो राजभ्य ऋतनिभ्यो ददाश यं वर्द्धयन्ति पुष्टयश्च नित्याः ।

स रेवान्याति प्रथमो रथेन वसुदावा विदथेषु प्रशस्तः ॥१२॥

पदार्थ—(**यः**) जो राजा (**राजभ्य**) न्यायप्रकाशक सभासद् राजपुरुषों (**च**) और (**ऋतनिभ्य·**) सत्य न्याय करनेवाली रानियों के लिए उपदेश (**ददाश**) देता है (**यम्**) जिसको (**नित्या**) सनातन नीति तथा (**पुष्टय.**) शरीर, आत्मा के बल को (**वर्द्धयन्ति**) बढ़ाते है (**स**) वह (**रेवान्**) प्रशस्त ऐश्वर्यवाला (**वसुदावा**) धनो का दाता (**प्रथम·**) मुख्य कुलीन (**प्रशस्त.**) प्रशंसा को प्राप्त (**विदथेषु**) जानने योग्य संग्रामादि व्यवहारो मे (**रथेन**) रथ से विजय को (**याति**) प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

भावार्थ—जो पुरुष और जो स्त्री पूर्ण विद्यावाले हों वे न्यायाधीश होकर पुरुष और स्त्रियों की उन्नति करें वे सब प्रशंसा के योग्य विजय करनेवाले जानने चाहिएँ ॥ १२ ॥

फिर कैसा राजा हो इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

शुचिरपः सूयवसा अदब्ध उप क्षेति वृद्धवयाः सुवीरः ।

नकिष्टं घ्नन्त्यन्तितो न दूराद्य आदित्यानां भवति प्रणीतौ ॥१३॥

पदार्थ—(**यः**) जो (**शुचि**) पवित्र (**अदब्ध.**) हिंसा अर्थात् किसी से दुःख को न प्राप्त हुआ राजा (**सुयवसा**) जिनसे अच्छे जौ आदि अन्न उत्पन्न हों उन (**अप·**) जलों के (**उप, क्षेति**) निकट बसता है जो (**वृद्धवया·**) बड़े जीवनवाला (**सुवीरः**) सुन्दर वीर पुरुषों से युक्त (**आदित्यानाम्**) पूर्ण ब्रह्मचर्य और विद्यावाले पुरुषो की (**प्रणीतौ**) उत्तम नीति में वर्त्तमान (**भवति**) होता है (**तम्**) उसको (**नकिः**) नहीं कोई (**अन्तित·**) समीप से (**न**) न (**दूरात्**) दूर से कोई (**घ्नन्ति**) मार सकते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ—जो पवित्र आचरणवाला हिंसादि दोषो से रहित पूर्ण सामग्रीवाला दीर्घजीवी विद्वानो की रक्षा मे सदा रहता उसका समीपस्थ और दूरस्थ शत्रु लोग पराजय कदापि नही कर सकते ॥ १३ ॥

अदिते मित्र वरुणोत मृळ यद्वो वयं चकृमा कच्चिदागः ।

उर्वश्यामभयं ज्योतिरिन्द्र मा नो दीर्घा अभि नशन्तमिस्राः ॥१४॥

पदार्थ—हे (**अदिते**) अखण्डितस्वरूप और विज्ञानवाली न्यायकर्त्री राज्ञी तथा हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्ययुक्त (**मित्र**) सबके सखा (**उत**) और (**वरुण**) सबसे उत्तम राजन् ! आप हमको (**मृळ**) सुखी करो (**यत्**) जो (**वः**) तुम्हारा (**कच्चित्**) कुछ (**उरु**) बड़ा (**आगः**) अपराध (**वयम्**) हम (**चकृम**) करें उसको क्षमा करो जिससे (**अभयम्**) भयरहित (**ज्योतिः**) प्रकाशयुक्त दिन को (**अश्याम्**) प्राप्त होऊँ। और (**न.**) हमारी (**दीर्घाः**) बड़ी (**तमिस्रा·**) रात्रि (**मा**) न (**अभि, नशन्**) कटें अर्थात् रात्रि को सुखपूर्वक निर्भय सोवें ॥१४॥

भावार्थ—जिस देश वा नगर मे विदुषी स्त्री स्त्रियो का न्याय करनेवाली और पुरुषो का न्याय करनेवाला विद्वान् पुरुष हो उस देश वा नगर मे दिन-रात्रि निर्भय होते और विशेष कर चोर आदि के भय से रहित सुखपूर्वक रात्रि व्यतीत होती है ॥१४॥

उभे अस्मै पीपयतः समीची दिवो वृष्टिं सुभगो नाम पुष्यन् ।

उभा क्षयावाजयन्याति पृत्सूभावर्धौ भवतः साधू अस्मै ॥१५॥

पदार्थ—जैसे (**समीची**) जो दीप्ति को सम्यक् प्राप्त होती वह स्त्री और (**सुभग**) ऐश्वर्यवाला राजा (**दिव·**) दिव्य शुद्ध आकाश से (**वृष्टिम्**) यज्ञादि द्वारा वर्षा कराते (**नाम**) जल को (**पुष्यन्**) पुष्ट करते हुए वैसे (**अस्मै**) इस राज्य के लिए (**उभे**) दोनो राजा-रानी (**पीपयतः**) उन्नति करते हैं (**उभा**) दोनो (**क्षयौ**) निवास करते हुए (**अर्धौ**) राज्य को समृद्ध करनेवाले (**अस्मै**) इस राज्य के लिए (**साधू**) शुभ चरित्र मे स्थित (**भवत·**) होवें वे (**पृत्सु**) संग्रामो मे विजय करनेवाले होवें उन दोनो का साक्षी (**आ, जयन्**) विजय करता हुआ सुख को (**याति**) प्राप्त होता है ॥१५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो स्त्री-पुरुष सूर्यदीप्ति जगत् को जैसे वैसे सब राज्य को पुष्ट करें और सुन्दर चरित्रोंवाले हो वे न्यायाधीशपन को प्राप्त होते है ॥१५॥

या वो माया अभिद्रुहे यजत्राः पाशा आदित्या रिपवे विचृत्ताः ।

अश्वीव ताँ अति येषं रथेनारिष्टा उरावा शर्मन्त्स्याम ॥१६॥

पदार्थ—हे (**यजत्रा**) सत्सङ्ग करने के स्वभाववाले (**आदित्या**) सूर्य के तुल्य विद्या से प्रकाशमान विद्वानो ! (**या·**) जो (**वः**) आप लोगों की (**विचृत्ता·**) विस्तृत (**अरिष्टा**) किसी से खण्डित न होने योग्य (**मायाः**) बुद्धियाँ (**अभिद्रुहे**) सब ओर से द्रोह करनेवाले (**रिपवे**) शत्रु के लिए (**पाशाः**) फांसी के तुल्य बाँधनेवाली होती हैं (**तान्**) उन तुम लोगो के (**अति**) निकट प्राप्त होने को मैं (**अश्वीव**) घोड़ी के तुल्य (**आ, येषम्**) प्रयत्न करूं और हम लोग (**रथेन**) रमण के साधन रथ से (**उरौ**) बड़े (**शर्मन्**) घर मे सुखी (**स्याम**) होवें ॥१६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। जो पण्डित लोग द्रोह को छोड़के जिनके कोई शत्रु नही ऐसे हो वे दुष्टो को पाशो मे बाँधें और उनकी रक्षा करके सब सुखी हों ॥१६॥

माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।

मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१७॥८॥

पदार्थ—हे (**वरुण**) श्रेष्ठ सज्जन (**राजन्**) सत्य के प्रकाश करनेहारे राजन् ! (**अहम्**) मैं (**आपे·**) प्राप्त होनेवाले (**भूरिदाव्न·**) बहुत धन देनेवाले (**प्रियस्य**) कामना के योग्य (**मघोनः**) प्रशस्त धनवाले पुरुष की (**शूनम्**) वृद्धि को (**मा, आ, विदम्**) न प्राप्त होऊँ। किन्तु (**सुयमात्**) सुन्दर नियम कराने (**राय**) धन मे (**मा, अव, स्थाम्**) न अवस्थित होऊँ और उसकी प्राप्ति का यत्न अवश्य किया करूँ और अन्यथा खर्च न करूँ ऐसा (**विदथे**) विज्ञान के व्यवहार मे (**सुवीरा**) सुन्दर वीरोंवाले हुए हम लोग (**बृहत्**) बड़ा गम्भीर (**वदेम**) उपदेश करें ॥१७॥

भावार्थ—धनाढ्य लोगो को चाहिए कि राजपुरुषो के साथ विरोध कदापि न करें और न अन्याययुक्त व्यवहार मे न्याय से उपार्जन किये धन का कभी खर्च करें, सदैव सर्वव्यापक परमात्मा की आज्ञा मे वर्त्तें ॥१७॥

यह सत्ताईसवां सूक्त और आठवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

इत्येकादशर्चस्याष्टाविंशतितमस्य सूक्तस्य कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदो वा ऋषिः ।

वरुणो देवता । १, ३, ४, ६ निचृत् त्रिष्टुप्; ५, ७, ११ त्रिष्टुप्;

८ विराट् त्रिष्टुप्; ९ भुरिक्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।

२, १० भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब अट्ठाईसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र मे उपदेशक कैसा हो इस विषय को कहते हैं—

इदं कवेरादित्यस्य स्वराजो विश्वानि सान्त्यभ्यस्तु मह्ना ।

अति यो मन्द्रो यजथाय देवः सुकीर्तिं भिक्षे वरुणस्य भूरेः ॥१॥

पदार्थ—मैं (**यः**) जो (**मन्द्रः**) आनन्द देनेवाला (**देवः**) विद्वान् (**मह्ना**) महत्त्व के साथ (**अस्तु**) होवे उस (**स्वराजः**) स्वय शोभायमान (**वरुणस्य**) श्रेष्ठ (**भूरेः**) बहुत विद्यावाले (**आदित्यस्य**) सूर्य के तुल्य वर्त्तमान उपकारी (**कवेः**) विद्वान् के सम्बन्ध से जो (**विश्वानि**) सब कर्त्तव्य (**सन्ति**) हैं (**इदम्**) इस सब और (**सुकीर्तिम्**) सुन्दर कीर्त्ति को (**यजथाय**) सत्कार के लिए (**अति, अभि, भिक्षे**) अत्यन्त सब ओर से माँगता हूँ ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य की किरण घटपटादि पदार्थों को प्रकाशित करती हैं वैसे विद्वानो के उपदेश श्रोता लोगों के आत्माओ को प्रकाशित करते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तव व्रते सुभगासः स्याम स्वाध्यो वरुण तुष्टुवांसः ।

उपायन उषसां गोमतीनामग्नयो न जरमाणा अनु द्यून् ॥२॥

पदार्थ—हे (**वरुण**) श्रेष्ठ सज्जन विद्वान् पुरुष ! (**तव**) आपके (**व्रते**) सुशीलतारूप नियम मे (**स्वाध्यः**) सुन्दर विज्ञानवाले (**तुष्टुवांसः**) स्तुतिकर्त्ता (**गोमतीनाम्**) प्रशस्त गौओ वाली (**उषसाम्**) प्रात:काल की वेलाओ के (**उपायने**) समीप प्राप्त होने मे (**अग्नयः**) अग्नियो के (**न**) तुल्य तेजस्वी (**जरमाणाः**) स्तुति करते हुए हम लोग (**अनु, द्यून्**) अनुकूल विद्याप्रकाशो को प्राप्त होके (**सुभगासः**) सुन्दर ऐश्वर्यवाले (**स्याम**) होवें ॥२॥

भावार्थ—विद्यार्थी और उपदेश सुननेवाले मनुष्यो को चाहिए कि सदा विद्वानो का सङ्ग और सेवा करके प्रतिदिन विद्या का ग्रहण करें जैसे प्रात:काल के समय मे सब पदार्थ सुशोभित होते हैं वैसे वे भी होवें ॥२॥

फिर पुत्र लोग कैसे हों इस विषय का अगले मन्त्र मे कहा है—

तव स्याम पुरुवीरस्य शर्मन्नुरुशंसस्य वरुण प्रणेतः ।

यूयं नः पुत्रा अदितेरदब्धा अभि क्षमध्वं युज्याय देवाः ॥३॥

पदार्थ—हे (**वरुण**) श्रेष्ठ (**प्रणेतः**) सबके नायक सज्जन विद्वन् ! जैसे मैं (**पुरुवीरस्य**) बहुत प्रवीण शूर (**उरुशंसस्य**) बहुतो से प्रशसा किये हुए (**तव**) आपके (**शर्मन्**) घर मे हम लोग सुखी हों । हे (**अदब्धाः**) अहिंसनीय (**नः**) हमारे (**पुत्राः**) पुत्रो ! (**यूयम्**) तुम लोग (**युज्याय**) युक्त करने योग्य व्यवहार के लिए (**देवाः**) विद्वान् होकर (**अभि, क्षमध्वम्**) सब ओर से क्षमा करनेवाले होओ ॥३॥

भावार्थ—हे पुत्रो ! जैसे हम लोग उत्तम विद्वान् के सम्बन्ध मे नीतिविद्या को प्राप्त होके आनन्दित हो वैसे तुम लोग भी क्षमाशील होके अध्यापको के अनुकूल आचरण से सुशिक्षित विद्वान् होओ ॥३॥

यह जगत् कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

प्र सीमादित्यो असृजद्विधर्ताँ ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति ।

न श्राम्यन्ति न वि मुचन्त्येते वयो न पप्तू रघुया परिज्मन् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस कारण (**विधर्त्ता**) अनेक प्रकार के लोको का धारण करनेवाला (**आदित्यः**) सूर्य (**सीम्**) सब ओर से (**ऋतम्**) जल को (**असृजत्**) उत्पन्न करता है इससे (**वरुणस्य**) मेघ के सम्बन्ध से (**सिन्धवः**) नदियाँ (**यन्ति**) चलतीं प्राप्त होती (**न, श्राम्यन्ति**) स्थिर नहीं होतीं (**न, मुचन्ति**) अपने चलनरूप कार्य को नहीं छोड़तीं किन्तु (**एते**) ये नदी आदि जलाशय (**वयः**) पक्षियों के (**न**) तुल्य (**रघुया**) शीघ्रगामी (**परिज्मन्**) सब ओर से वर्त्तमान भूमि पर (**प्र, पप्तुः**) अच्छे प्रकार गिरते चलते हैं वैसे तुम लोग भी सब ओर व्यवहार-सिद्ध्यर्थ चलना-फिरना आदि व्यवहार करो ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यह सब जगत् वायु और जल के तुल्य चलायमान है । जैसे नदियाँ चलती, पृथिवी का जल ऊपर जाता, वहाँ भी चलायमान होता फिर भूमि पर गिरता; इस प्रकार जीवों की ससार मे गति है ॥४॥

फिर विद्यार्थी लोग कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वि मच्छ्रथाय रशनामिवाग ऋध्याम ते वरुण खामृतस्य ।

मा तन्तुश्छेदि वयतो धियं मे मा मात्रा शार्यपसः पुर ऋतोः ॥५॥१॥

पदार्थ—हे (**वरुण**) श्रेष्ठ पुरुष ! आप (**रशनामिव**) रस्सी के तुल्य (**मत्, आगः**) मुझसे अपराध को (**वि, श्रथय**) विशेष कर नष्ट कीजिए जिससे (**ते**) आपके समीप हम लोग (**ऋध्याम**) उन्नत हों । जैसे (**ऋतस्य**) जल की (**खाम्**) नदी को नहीं नष्ट करते वैसे आपसे (**तन्तुः**) मूल (**मा**) न (**छेदि**) नष्ट किया जाए (**वयतः**) प्राप्त होते हुए (**मे**) मेरी (**धियम्**) बुद्धि को नष्ट न कीजिए (**ऋतोः**) ऋतु समय से (**पुरा**) पहले (**अपसः**) कर्म से मत (**शारि**) नष्ट कीजिए और (**मात्रा**) माता के साथ विरोध (**मा**) मत कर ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे रस्सी से बँधे हुए घोड़े नियम से चलते हैं वैसे ही माता-पिता और आचार्य के नियम मे बँधे हुए बालक विद्यार्थी विद्या और सुशिक्षा को ग्रहण करें । कभी मादक द्रव्य के सेवन से बुद्धि को नष्ट न करें । विवाह करके सदैव ऋतुगामी हों और सन्तानो के प्रवाह को न तोड़ें ॥५॥

फिर अध्यापक और उपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अपो सु म्यक्ष वरुण भियसं मत्सम्राळृतावोऽनु मा गृभाय ।

दामेव वत्साद्वि मुमुग्ध्यंहो नहि त्वदारे निमिषश्चनेशे ॥६॥

पदार्थ—हे (**वरुण**) श्रेष्ठ जन ! आप (**मत्**) मेरे सम्बन्ध से (**भियसम्**) भय को (**अपो, म्यक्ष**) दूर कीजिए । हे (**ऋतावः**) बहुत सत्य को ग्रहण करनेवाले (**सम्राट्**) सम्यक् प्रकाशमान ! आप (**मा**) मुझ पर (**अनु, गृभाय**) अनुग्रह करो (**वत्सात्**) बछड़े से गौ को जैसे वैसे मुझसे (**अंहः**) अपराध को (**सु, वि, मुमुग्धि**) सुन्दर प्रकार विशेष कर छुड़ाइए (**त्वत्**) आपके सम्बन्ध से (**आरे**) निकट वा दूर (**निमिषः**) निरन्तर (**चन**) भी कोई (**नहि**) नहीं (**ईशे**) समर्थ होता है ॥६॥

भावार्थ—अध्यापक और उपदेशक पहले से सबके भय को निकाल विद्या का ग्रहण करावें, बुरे व्यसन छुड़ावें जिससे उनके दूर वा समीप मे कोई धर्म से रोकने-वाला न हो ॥६॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

मा नो वधैर्वरुण ये त इष्टावेनः कृण्वन्तमसुर भ्रीणन्ति ।

मा ज्योतिषः प्रवसथानि गन्म वि षू मृधः शिश्रथो जीवसे नः ॥७॥

पदार्थ—हे (**असुर**) दुर्गुणो को दूर करनेहारे (**वरुण**) वायु के तुल्य वर्त्तमान पुरुष ! (**ये**) जो लोग (**ते**) आप के (**इष्टौ**) सङ्गति करने रूप व्यवहार मे (**एनः**) पाप (**कृण्वन्तम्**) करते हुए को (**भ्रीणन्ति**) धमकाते हैं वे (**नः**) हमारे (**वधैः**) मारने मे (**मा**) न वर्त्तें (**ज्योतिषः**) प्रकाश से (**प्रवसथानि**) प्रवासों, दूर देशो को (**मा, गन्म**) न प्राप्त हों आप (**नः**) हमारे (**जीवसे**) जीवन के लिए (**मृधः**) सग्रामों को (**वि, शिश्रथः**) विशेष कर मारिए जिस से हम लोग निरन्तर सुख को (**सु**) अच्छे प्रकार प्राप्त होवें ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य धर्मात्माओं को नहीं मारते, दुष्टो को ताड़ना देते, किसी के प्रवास को न रोकते और सबके सुख के लिए शत्रुओं को जीतते हैं वे अतुल सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

नमः पुरा ते वरुणोत नूनमुतापरं तुविजात ब्रवाम ।

त्वे हि कं पर्वते न श्रितान्यप्रच्युतानि दूळभ व्रतानि ॥८॥

पदार्थ—हे (**दूळभ**) दु:ख से मारने योग्य (**तुविजात**) बहुतो में प्रसिद्ध (**वरुण**) प्रशसित पुरुष ! हम (**ते**) आप के (**पुरा**) पहले (**नूनम्**) निश्चित (**उत**) और (**अपरम्**) दूसरे (**नमः**) सत्कार के वचन को (**ब्रवाम**) कहे (**पर्वते**) मेघ मे (**न**) जैसे वैसे (**त्वे**) आप मे (**कम्**) सुख का (**श्रितानि**) आश्रय करते हुए (**अप्रच्युतानि**) नाशरहित (**हि**) ही (**उत**) और (**व्रतानि**) सत्यभाषण आदि व्रतो को कहे ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । मनुष्यो को चाहिए कि जो इस जगत् मे श्रेष्ठ विद्वान् हैं उनके प्रति सदैव प्रिय वचन कहें और अनुकूल आचरण करें और उनके गुण, कर्म, स्वभावो को अपने मे ग्रहण करें ॥ ८ ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

पर ऋणा सावीरध मत्कृतानि माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम् ।

अव्युष्टा इन्नु भूयसीरुषास आ नो जीवान्वरुण तासु शाधि ॥९॥

पदार्थ—हे (**वरुण**) सर्वोत्कृष्ट (**राजन्**) सर्वत्र प्रकाशमान जगदीश्वर ! आप (**मत्कृतानि**) मेरे किये (**परा**) उत्तम (**ऋणा**) ऋणो को (**सावीः**) सिद्ध, चुकते कीजिए जिस से (**अहम्**) मैं (**अन्यकृतेन**) अन्य ने किये से (**मा, भोजम्**) न भोगूँ (**अध**) और अनन्तर आप जो (**भूयसीः**) बहुत (**उषासः**) दिन (**अव्युष्टाः**) स्वादि में निवास को प्राप्त हैं (**तासु**) उन दिनो मे (**इत्**) ही (**नः**) हम (**जीवान्**) जीवो को (**आ, शाधि**) अच्छे प्रकार शिक्षित कीजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—जैसे ईश्वर जिसने जैसा कर्म किया है उसको वैसा फल देता है । वेद द्वारा सब को शिक्षा करता वैसे ही विद्वानों को अनुष्ठान करना चाहिए ॥ ९ ॥

फिर राजपुरुष विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यो मे राजन्युज्यो वा सखा वा स्वप्ने भयं भीरवे मह्यमाह ।

स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा त्वं तस्माद्वरुण पाह्यस्मान् ॥१०॥

पदार्थ—हे (वरुण) श्रेष्ठ (राजन्) राजपुरुष ! (यः) जो (मे) मेरा (युज्यः) मेली (सखा) मित्र जागने (वा) अथवा (स्वप्ने) सोने में (भयम्) भय को प्राप्त होता (वा) अथवा (भीरवे) डरपोक (मह्यम्) मुझ को भय प्राप्त होता है ऐसा (आह) कहे (यः) जो (स्तेनः) चोर (वा) अथवा डाकू (नः) हमको (दिप्सति) धमकाता मारना चाहता (वा) अथवा (वृकः) भेड़िया के तुल्य लुटेरा चोर हम को मारना चाहता (तस्मात्) उस से (त्वम्) आप (अस्मान्) हम लोगों की (पाहि) रक्षा कीजिए ॥ १० ॥

भावार्थ—जो राजपुरुष प्रजा में निर्भय दुष्टों का निग्रह कर सब प्रजा की रक्षा करते हैं वे सब दुःखों से रहित हो जाते हैं ॥ १० ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।

मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥११॥

पदार्थ—हे (वरुण) श्रेष्ठ (राजन्) राजपुरुष ! जैसे (अहम्) मैं अन्याय से (प्रियस्य) प्यारे (मघोनः) बहुत अच्छे धनवाले (भूरिदाव्नः) बहुत पदार्थों के दाता मनुष्य के विरोध को (आ, विदम्) प्राप्त होऊँ उससे (शूनम्) सुख को न प्राप्त होऊँ । प्राप्त धन से (सुयमात्) सुन्दर वैर आदि व्यवहार के साधक (रायः) धन से विरोध में मैं (मा, अव, स्थाम्) न अवस्थित होऊँ वैसे आप हो ऐसे करते हुए (सुवीराः) सुन्दर वीरोंवाले हम (विदथे) विज्ञान के निमित्त निरन्तर (बृहत्) बड़ा अच्छा (वदेम) कहें ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि अन्याय से बिना आज्ञा परपदार्थ के ग्रहण की इच्छा कभी न करें किन्तु धर्मयुक्त व्यवहार से यथाशक्ति धन-संचय करें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और राजा-प्रजा के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त में कहे अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अट्ठाईसवाँ सूक्त और दशवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

धृतव्रता इति सप्तर्चस्यैकोनत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदो वा ऋषिः ।

विश्वेदेवा देवताः । १, ४, ५ निचृत् त्रिष्टुप्; २, ६, ७, त्रिष्टुप्, ३ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब उनतीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं—

धृतव्रता आदित्या इषिरा आरे मत्कर्त रहसूरिवागः ।

शृण्वतो वो वरुण मित्र देवा भद्रस्य विद्वाँ अवसे हुवे वः ॥१॥

पदार्थ—हे (आदित्याः) सूर्य्य के तुल्य विद्या के प्रकाशक (इषिराः) ज्ञानयुक्त (धृतव्रताः) नियमों को धारण किये हुए (देवाः) विद्वान् लोगो ! तुम (मत्) मेरे (आरे) दूर वा समीप में सत्य को प्रवृत्त (कर्त) करो (रहसूरिव) एकान्त में जननेवाली व्यभिचारिणी के तुल्य (आगः) अपराध को मत करो । (विद्वान्) विद्वान् मैं (शृण्वतः) सुनते हुए (वः) आपको (अवसे) रक्षा आदि के लिए (हुवे) बुलाता हूँ (वः) तुम लोगों के अपराध को मैं नष्ट करूँ । हे (वरुण) सर्वोत्तम (मित्र) मित्र ! आप (भद्रस्य) कल्याण की रक्षा आदि के लिए प्रवृत्त हो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो धर्माचरण करनेवाले अधर्म से पृथक् सबको रखने में प्रवर्त्तमान हैं वे कल्याण को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यूयं देवाः प्रमतिर्यूयमोजो यूयं द्वेषांसि सनुतर्युयोत ।

अभिक्षत्तारो अभि च क्षमध्वमद्या च नो मृळयतापरं च ॥२॥

पदार्थ—हे (देवाः) विद्वानो ! (यूयम्) तुम जो (प्रमतिः) उत्तम बुद्धि है उसको (च) और (यूयम्) तुम (ओजः) पराक्रम को (सनुतः) निरन्तर (युयोत) ग्रहण करो । (यूयम्) तुम (द्वेषांसि) द्वेषयुक्त कर्मों को निरन्तर पृथक् करो (अद्य) इस समय (नः) हमको (अपरम्, च) और जीव-समूह को (मृळयत) सुखी करो । (अभिक्षत्तारः) सम्मुख योग करनेवाले तुम लोग हमारे अपराध को (अभि, क्षमध्वम्) सब प्रकार क्षमा करो ॥ २ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग द्वेष को छोड़के निरन्तर बुद्धि की उन्नति करते दूसरे के अपराधों को क्षमा करते और सबको सुखी करते हैं वे इस जगत् में सत्कार के योग्य होते हैं ॥ २ ॥

किमू नु वः कृणवामापरेण किं सनेन वसव आप्येन ।

यूयं नो मित्रावरुणादिते च स्वस्तिमिन्द्रामरुतो दधात ॥३॥

पदार्थ—हे (वसवः) पृथिव्यादि के तुल्य विद्या को निवास देनेवाले विद्वानो ! हम लोग (वः) आपके (किम्, उ) किस कार्य को (कृणवाम) करें । (अपरेण) अन्य (सनेन) विभाग को प्राप्त (आप्येन) व्याप्य वस्तु से (किम्) क्या करें । हे (मित्रावरुणा) प्राण अपान के तुल्य प्रियकारी अध्यापक और उपदेशक (च) और (अदिते) विदुषि माता (यूयम्) तुम (नः) हमारे लिए (स्वस्तिम्) कल्याण को तथा (इन्द्रामरुतः) बिजुली और वायुओं को (दधात) धारण करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो प्रथम कक्षा के विद्वान् हों उनको राजा लोग पूछें कि आपकी क्या सेवा हम करें, क्या-क्या तुमको देवें जिससे विद्या सुशिक्षा और धर्म की उन्नति करो ॥ ३ ॥

हये देवा यूयमिदापयः स्थ ते मृळत नाधमानाय मह्यम् ।

मा वो रथो मध्यमवाळृते भून्मा युष्मावत्स्वापिषु श्रमिष्म ॥४॥

पदार्थ—(हये) हे (देवाः) विद्वानो ! जो (यूयम्) तुम लोग (इत्) ही (आपयः) सकल शुभ गुणव्यापी (स्थ) होओ (ते) वे (नाधमानाय) माँगते हुए (मह्यम्) मेरे लिए (मृळत) सुखी करो जो (वः) तुम्हारा (मध्यमवाट्) पृथिवी के पदार्थों को इधर-उधर पहुँचानेवाला (रथः) विमान आदि यान (ऋते) जलरूप समुद्रादि में चलाना है वह नष्ट (मा, भूत्) न हो । ऐसे (युष्मावत्सु) तुम्हारे सदृश (आपिषु) विद्यादि गुणों से व्याप्त सज्जनों में विद्या प्राप्ति के अर्थ हम लोग (श्रमिष्म) परिश्रम करें । यह हमारा श्रम नष्ट (मा) न होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को योग्य है कि विद्याओं को प्राप्त होके सबको सुखी करें और जैसे दृढ़, पुष्ट यान बनें वैसा प्रयत्न करें । सदा विद्वानों में प्रीति रखके विद्या की उन्नति किया करें ॥ ४ ॥

प्र व एको मिमय भूर्यागो यन्मा पितेव कितवं शशास ।

आरे पाशा आरे अघानि देवा मा माधि पुत्रे विमिव ग्रभीष्ट ॥५॥

पदार्थ—हे (देवाः) विद्वानो ! (वः) तुम्हारा सङ्गी (एकः) एक असहाय मैं (यत्) जो (भूरि) बहुत (आगः) अपराध है उसको (आरे) दूर (प्र, मिमय) फेंकूँ और (पितेव) पिता के तुल्य (कितवम्) जुआ खेलनेवाले (मा) मुझको (शशास) शिक्षा कीजिए । जो (पाशाः) बन्धन और (अघानि) पाप हैं उनको (आरे) दूर (विमिव) पक्षी के तुल्य फेंकूँ । इन सबको (पुत्रे) पुत्र के निमित्त (मा) मुझको (मा) मत (अधि, ग्रभीष्ट) अधिक कर ग्रहण करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—सबको प्रशंसा करनी चाहिए कि हे विद्वान् जनो ! तुम्हारे सङ्ग से हम लोग पापों को छोड़ धर्म का आचरण करनेवाले हों । आप लोग पिता के तुल्य हमको शिक्षा देओ जिससे हम दुष्ट आचरण से दूर रहें ॥ ५ ॥

अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम् ।

त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्तादवपदो यजत्राः ॥६॥

पदार्थ—हे (अर्वाञ्चः) आत्मज्ञान सम्बन्धी आदि विद्या को प्राप्त होने वाले (यजत्राः) अच्छी सङ्गति करनेहारे (देवाः) विद्या और अच्छी शिक्षा के रक्षक विद्वान् लोगो ! तुम (अद्य) आज दिन (नः) हम लोगों की (त्राध्वम्) रक्षा करो । जो (वः) तुम्हारा (हार्दि) जिस कार्य्य में मन लगता उसको हम लोग (आ) अच्छे प्रकार ग्रहण करें, हमारे लिए आप विद्या देनेवाले (भवत) होओ (निजुरः) निरन्तर हिंसक (कर्तात्) छेदक (अवपदः) आपत्काल से (त्राध्वम्) रक्षा करो । हे (यजत्राः) विद्वानों के पूजक लोगो ! (वृकस्य) भेड़िये के तुल्य वर्त्तमान चोर के संसर्ग से रक्षा करो जिससे (भयमानः) भय को प्राप्त मैं व्यर्थ आयु को न (व्ययेयम्) नष्ट करूँ ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । विद्वानों का यही कर्त्तव्य है कि जो अज्ञान, अविद्यादि दोषों से पृथक् रखके सब दुःख से पृथक् कर मनुष्यों को बड़ी अवस्थावाले धर्मात्मा करें ॥ ६ ॥

माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।

मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥७॥११॥

पदार्थ—हे (वरुण) श्रेष्ठ विद्वन् ! जैसे (अहम्) मैं (प्रियस्य) कामना के योग्य (भूरिदाव्नः) बहुत दान के दाता (आपेः) प्राप्त होते हुए (मघोनः) प्रशंसित धनवाले पुरुष के (शूनम्) सुख को (आ, विदम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊँ जिससे दुःख को (मा) न प्राप्त हो, हे (राजन्) राजन् सभापते ! जैसे मैं (सुयमात्) सुन्दर यम-नियम के साधक (रायः) धन से (अव, स्थाम्) अवस्थित होऊँ जिससे दरिद्रता को (मा) न प्राप्त होऊँ जिससे मिलकर (सुवीराः) सुन्दर और वीर पुरुषोंवाले हम लोग (विदथे) युद्धादि में (बृहत्) बहुत बल-पूर्वक (वदेम) कहें ॥ ७ ॥

भावार्थ—विद्वान् और सभापति आदि राजपुरुषों को योग्य है कि उन धर्म-सम्बन्धी कार्यों को करें जिनसे दुःख और दरिद्रता प्राप्त न हो, और आपस में मिल के सुन्दर वीरोंवाली प्रजाओं को करें ॥ ७ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह उनतीसवां सूक्त और ग्यारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

ऋतमित्येकादशर्चस्य त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । १—५, ७, ८, १० इन्द्रः; ६ इन्द्रासोमौ, ९ बृहस्पतिः; ११ मरुतो देवताः । १, ३ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २, ८ निचृत् त्रिष्टुप्; ४—७, ९ त्रिष्टुप्; १० विराट् त्रिष्टुप्; ११ भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब तीसवें सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में वायु और सूर्य का विषय कहते हैं—

ऋतं देवाय कृण्वते सवित्र इन्द्रायाहिघ्ने न रमन्त आपः ।
अहरहर्यात्यक्तुरपां कियात्या प्रथमः सर्ग आसाम् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको (ऋतम्) जल को उत्पन्न (कृण्वते) करते हुए (सवित्रे) समस्त रसों के उत्पादक (अहिघ्ने) मेघ को काटने सूक्ष्म कर गिरानेहारे (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य के हेतु (देवाय) उत्तम गुणयुक्त सूर्य के लिए जो (अहरहः) प्रतिदिन (आपः) जल (न, रमन्ते) नहीं रमण करते अर्थात् सूर्य के आश्रय नहीं ठहरते (आसाम्) इन (अपाम्) जलों की (प्रथमः) पहली (सर्गः) उत्पत्ति (अक्तुः) प्रकटकर्त्ता सूर्य के सम्बन्ध में (कियति) कितने ही अवकाश में (आ, याति) अच्छे प्रकार प्राप्त होती है उसको तुम जानो ॥ १ ॥

भावार्थ—जैसे अन्तरिक्षस्थ वायु में जल ठहरता है वैसे सूर्य में नहीं ठहरता। सूर्यमण्डल से ही वर्षा द्वारा जल की प्रकटता होती है और यही सूर्य जल को ऊपर खींचता और वर्षाता है । जल की प्रथम सृष्टि अग्नि से ही होती है ऐसा जानना चाहिए ॥ १ ॥

फिर सूर्य्यमण्डल के कृत्य विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यो वृत्राय सिनमत्राभरिष्यत्प्र तं जनित्री विदुष उवाच ।
पथो रदन्तीरनु जोषमस्मै दिवेदिवे धुनयो यन्त्यर्थम् ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो सूर्य्य (अत्र) इस जगत् में (वृत्राय) घाम आदि के आवरणकर्त्ता मेघ के लिए (सिनम्) बन्धन को (अभरिष्यत्) धारण करता (तम्) उसको (जनित्री) माता (विदुषे) विद्यावान् सन्तान के लिए (प्र, उवाच) कहती उपदेश करती है इस सूर्य्य विषयक (रदन्तीः) भूमियों को प्राप्त होती हुई (धुनयः) किरणों की चालें (दिवेदिवे) नित्यप्रति (अर्थम्) पदार्थ मात्र को (यन्ति) प्राप्त होती (पथः) मार्ग से (अनु, जोषम्) अनुकूल प्रीति को उत्पन्न कराती हैं उनके कृत्य को विद्वान् पुत्र के लिए पिता भी उपदेश करे ॥२॥

भावार्थ—जैसे सूर्य्य मेघ का बन्धनकर्त्ता है वैसे ही पृथिवी आदि लोकों का भी है । जैसे सूर्य्यमण्डल प्रतिदिन रसों को खींचकर नियत समय पर वर्षाता है वैसे इस सूर्य्य के किरण भी प्रत्येक द्रव्य को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

ऊर्ध्वो ह्यस्थादध्यन्तरिक्षेऽधा वृत्राय प्र वधं जभार ।
मिहं वसान उप हीमदुद्रोत्तिग्मायुधो अजयच्छत्रुमिन्द्रः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (तिग्मायुधः) तीक्ष्ण आयुधों के तुल्य किरणोंवाला (ऊर्ध्वः) ऊपर स्थित (इन्द्रः) मेघ का हन्ता सूर्य्य (हि) ही (अन्तरिक्षे) आकाश में (अध्यस्थात्) अधिष्ठित है (अध) इसके अनन्तर (वृत्राय) मेघ के (हि) ही (वधम्) ताडन को (प्र, जभार) प्रहार करता है । (मिहम्) वृष्टि का (वसानः) आच्छादन करता हुआ (ईम्) सब ओर से (उप, अदुद्रोत्) समीप से द्रवित करता, पिघलाता है इस प्रकार अपने (शत्रुम्) वैरी मेघ को (अजयत्) जीतता है उसका बोध करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—सूर्य अति दूरस्थ हो भूमि को धारण करता जल को खींचता है । जैसे यह मेघ को छिन्न-भिन्नकर भूमि पर गिराता है वैसे ही राजपुरुषों को शत्रु गिराने चाहिएँ ॥ ३ ॥

अब राजपुरुषों के कर्त्तव्यों को अगले मन्त्रों में कहा है—

बृहस्पते तपुषाश्नेव विध्य वृकद्वरसो असुरस्य वीरान् ।
यथा जघन्थ धृषता पुरा चिदेवा जहि शत्रुमस्माकमिन्द्र ॥४॥

पदार्थ—हे (बृहस्पते) बड़ों के रक्षक (इन्द्र) दुष्टों को विदीर्ण करनेहारे राजपुरुष ! (यथा) जैसे सूर्य्य (वृकद्वरसः) मेघ के अग्र भागों को (असुरस्य) मेघ के शत्रु के (वीरान्) वीरों को (अश्नेव) अच्छे भोजन करनेहारे वीर के तुल्य (तपुषा) अपने ताप से वेधता है वैसे आप दुष्टों को (विध्य) ताड़ना देओ । (धृषता) प्रगल्भता के साथ (पुरा) पहले (एव) ही (अस्माकम्) हमारे (शत्रुम्) शत्रु को (जहि) मार (चित्) और दोषों को (जघन्थ) नष्ट कर ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं । जो लोग बिजुली के तुल्य वेग बलयुक्त होकर शत्रुओं को मारते हैं वे सूर्य्य के तुल्य राज्य में प्रकाशमान होते हैं ॥ ४ ॥

अव क्षिप दिवो अश्मानमुच्चा येन शत्रुं मन्दसानो निजूर्वाः ।
तोकस्य सातौ तनयस्य भूरेरस्माँ अर्धं कृणुतादिन्द्र गोनाम् ॥५॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य के देनेवाले सभापति राजन् ! (मन्दसानः) प्रशंसा को प्राप्त हुए आप (येन) जिस बल से (भूरेः) बहुत प्रकार के (तोकस्य) छोटे सन्तान (तनयस्य) युवा पुत्र के (सातौ) सम्यक् सेवन में (अस्मान्) हम को (गोनाम्) पृथिवी और गौओं की (अर्धम्) सम्पन्नता समृद्धि को (कृणुतात्) कीजिए उस बल से जैसे सूर्य (उच्चा) ऊँचे स्थित बद्दलों और (दिवः) दिव्य आकाश से प्राप्त (अश्मानम्) मेघ को भूमि पर फेंकता है वैसे (शत्रुम्) शत्रु को (अव, क्षिप) दूर पहुंचा और दुष्टों को (निजूर्वाः) निरन्तर मारिए, नष्ट कीजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । राजपुरुषों को चाहिए कि जैसे अपने सन्तानों के दुःख दूर कर, सम्यक् रक्षाकर बढ़ाते हैं वैसे ही प्रजा के कण्टकों को निर्मूल कर शिष्टों का सम्यक् पालन कर बढ़ावें ॥ ५ ॥

प्र हि क्रतुं वृहथो यं वनुथो रध्रस्य स्थो यजमानस्य चोदौ ।
इन्द्रासोमा युवमस्माँ अविष्टमस्मिन्भयस्थे कृणुतमु लोकम् ॥६॥

पदार्थ—हे (इन्द्रासोमा) सेनापति और ऐश्वर्यवान् महाशयो ! (युवम्) जो तुम दोनों (रध्रस्य) सम्यक् सिद्धि करते हुए (यजमानस्य) सुखदाता यजमान के (हि) ही (चोदौ) प्रेरक (यम्) जिसका (प्र, वृहथः) बढ़ाओ और जिस (क्रतुम्) बुद्धि को (वनुथः) माँगो, चाहो वे तुम दोनों सुखी (स्थः) होओ (अस्मिन्) इस (भयस्थे) भय में स्थित (अस्मान्) हमको (अविष्टम्) व्याप्त होओ (उ) और (लोकम्) देखने योग्य स्थान वा देश को (कृणुतम्) करो ॥६॥

भावार्थ—राजपुरुष बहुत बल और धनाढ्य लोग यथेष्ट ऐश्वर्य को पाकर किसी को भय न देवें किन्तु सदैव दरिद्री और निर्बलों को सुख में स्थापन करें, निवास करावें ॥ ६ ॥

न मा तमन्न श्रमन्नोत तन्द्रन्न वोचाम मा सुनोतेति सोमम् ।
यो मे पृणाद्यो ददद्यो निबोधाद्यो मा सुन्वन्तमुप गोभिरायत् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (मे) मुझे (पृणात्) तृप्त करे (यः) जो मुझको (ददत्) सुख देवे (यः) जो मुझको (निबोधात्) निश्चित बोध करावे (यः) जो (गोभिः) इन्द्रियों से (सुन्वन्तम्) यज्ञ करते हुए (मा) मुझको (उप, आ, अयत्) अच्छे प्रकार समीप प्राप्त होवे वह मुझको सेवने योग्य है जो (मा) मुझको (न) नहीं (तमत्) चाहता (न) नहीं (श्रमत्) श्रम कराता (उत) और (न) नहीं (तन्द्रत्) मोह करता । हम लोग जिसको (इति) ऐसा (न) नहीं (वोचाम) कहें उस (सोमम्) ओषधि रस को तुम लोग (मा) मत (सुनोत) खींचो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो राजपुरुष प्रजा में किसी को क्लेशित नहीं करते, विरुद्ध कर्म का आचरण नहीं करते, सबको सुखी करते, उपदेश से बोध कराते, वे सुख के देने से नित्य तृप्त करने योग्य हैं ॥७॥

सरस्वति त्वमस्माँ अविड्ढि मरुत्वती धृषती जेषि शत्रून् ।
त्यं चिच्छर्धन्तं तविषीयमाणमिन्द्रो हन्ति वृषभं शण्डिकानाम् ॥८॥

पदार्थ—हे (सरस्वति) विज्ञानयुक्त विदुषी रानी (मरुत्वती) प्रशंसितरूपवाली (धृषती) प्रगल्भ उत्साहिनी ! आप जैसे (इन्द्रः) सेनापति (त्यम्) उस (शर्धन्तम्) बलवान् (तविषीयमाणम्) सेना जैसे युद्ध करे वैसा आचरण करते हुए (शण्डिकानाम्) शत्रुओं की सेना के अवयव रूप योद्धाओं में वर्त्तमान (वृषभम्) अत्यन्त बली शत्रु को (हन्ति) मारता है (चित्) और वैसे (अस्मान्) हमको (त्वम्) आप (अविड्ढि) व्याप्त वा प्राप्त हो और (शत्रून्) हमारे सुख को नष्ट करनेहारे शत्रुओं को (जेषि) जीतती हो इससे सबको सत्कार करने योग्य हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे राजा शत्रुओं को मारकर पुरुषों का सत्कार वा न्याय करता है वैसे ही रानी दुष्टा स्त्रियों का निवृत्त कर सब स्त्रियों की सदा रक्षा करे अर्थात् जैसे पुरुष न्यायाधीश हों वैसे स्त्रियाँ भी हों ॥ ८ ॥

यो नः सनुत्य उत वा जिघत्नुरभिख्याय तं तिगितेन विध्य ।
बृहस्पत आयुधैर्जेषि शत्रून्द्रुहे रीषन्तं परि धेहि राजन् ॥९॥

पदार्थ—हे (राजन्) प्रकाशमान राजन् ! आप (यः) जो (नः) हमारा (सनुत्यः) नम्रादि गुणयुक्त जनों में रहनेवाला (उत, वा) अथवा (जिघत्नुः) मारने की इच्छा करनेवाला है । (तम्) उसको (अभिख्याय) सब ओर से प्रकट कर (तिगितेन) प्राप्त हुए शस्त्र से (विध्य) ताड़ना दीजिए । हे (बृहस्पते) बड़े-बड़े विषय के रक्षक ! जिस कारण आप (आयुधैः) शस्त्र-अस्त्रों से (शत्रून्) शत्रुओं को (जेषि) जीतते हो और (रीषन्तम्) मारते हुए को जीतते हो इस से उस को (द्रुहे) द्रोहकर्त्ता के लिए (परि, धेहि) सब ओर से धारण कीजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—प्रजापुरुषों को चाहिए कि अपने दुःखों को राजपुरुषों से निवेदन कर निवृत्त करावें । जो प्रजा की रक्षा मे प्रीति से वर्त्तमान हैं उन को सुख दिलावें और जो हिंसक हैं उनका निवेदन कर दण्ड दिलावें ॥ ९ ॥

अस्माकेभिः सत्वभिः शूर शूरैर्वीर्या कृधि यानि ते कर्त्वानि ।
ज्योगभूवन्ननुधूपितासो हत्वी तेषामा भरा नो वसूनि ॥१०॥

पदार्थ— हे (**शूर**) दुष्टों को मारनेहारे वीरजन ! (**यानि**) जो (**वीर्या**) वीर पुरुषों के लिए हितकारी धन (**ते**) आप के (**ज्योक्**) निरन्तर (**कर्त्वानि**) करने योग्य हैं उनको (**अस्माकेभिः**) हमारे सम्बन्धी (**सत्वभिः**) शरीरधारी प्राणी (**शूरैः**) निर्भय पुरुषों के साथ आप (**कृधि**) कीजिए । जो (**अनुधूपितासः**) अनुकूल गन्धों से सत्कार किये हुए (**अभूवन्**) होवें उनकी रक्षा कर दुष्टों को (**हत्वी**) मारके (**तेषाम्**) उनके और (**नः**) हमारे (**वसूनि**) उत्तम द्रव्यों को आप (**आ, भर**) अच्छे प्रकार धारण कीजिए ॥ १० ॥

भावार्थ—जब राजाओं मे युद्ध प्रवृत्त हो, प्रजास्थ मनुष्य उनके प्रति ऐसे कहे कि तुम डरो नहीं, जितने हम लोग हैं वे सब तुम्हारे सहायक हैं । जो ऐसे आप हम आपस मे एक दूसरे के सहायक न हों तो विजय कहाँ से होवे ? ॥ १० ॥

तं वः शर्धं मारुतं सुम्नयुर्गिरोप ब्रुवे नमसा दैव्यं जनम् ।
यथा रयिं सर्ववीरं नशामहा अपत्यसाचं श्रुत्यं दिवेदिवे ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यथा**) जैसे (**सुम्नयुः**) अपने को धन की इच्छा करनेवाला मैं (**नमसा**) सत्काररूप (**गिरा**) वाणी से (**वः**) तुम्हारे (**तम्**) उस (**मारुतम्**) वायुओं के सम्बन्धी (**शर्धम्**) बल को (**दिवेदिवे**) प्रतिदिन (**दैव्यम्**) विद्वानों मे प्रसिद्ध हुए (**जनम्**) जन के प्रति (**उप, ब्रुवे**) उपदेश करूँ वैसे तुम लोग हमारे बल को सब के प्रति कहा करो । जैसे हम लोग (**श्रुत्यम्**) सुनने मे प्रकट (**अपत्यसाचम्**) उत्तम सन्तानयुक्त (**सर्ववीरम्**) जिस से सब वीर पुरुष हों ऐसे (**रयिम्**) धन को प्राप्त होके पूर्ण अवस्था को भोगके (**नशामहै**) शरीर छोड़ें वैसे तुम लोग भी होओ ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे राजपुरुष प्रजा के गुणों को अपने लोगों के प्रति कहें वैसे प्रजापुरुष राजपुरुषों के गुणों को अपने सहयोगियों से कहें । ऐसे परस्पर गुण ज्ञानपूर्वक प्रीति को प्राप्त होके नित्य आनन्दित होवें ॥ ११ ॥

इस सूक्त मे स्त्री-पुरुष और राज-प्रजा के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ।

यह तीसवाँ सूक्त और तेरहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अस्माकमिति सप्तर्चस्य एकत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । १, २, ४ जगती, ३ विराट् जगती, ५ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ६ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ७ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ इकतीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र मे शिल्पविद्या का विषय कहते हैं—

अस्माकं मित्रावरुणावतं रथमादित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।
प्र यद्वयो न पप्तन्वस्मनस्परि श्रवस्यवो हृषीवन्तो वनर्षदः ॥१॥

पदार्थ—हे (**सचाभुवा**) गुण सम्बन्ध के साथ हुए (**मित्रावरुणा**) राज-प्रजा पुरुषो ! जैसे तुम लोग (**आदित्यैः**) महीनों के तुल्य वर्त्तमान पूर्ण विद्वान् (**रुद्रैः**) प्राण के तुल्य बलवान् (**वसुभिः**) भूमि आदि के तुल्य गुणयुक्त जनों ने बनाए (**अस्माकम्**) हमारे (**रथम्**) रथ पर चढ़के (**प्र, अवतम्**) अच्छे प्रकार चलो तथा (**यत्**) जो (**वस्मनः**) वमते हुए (**श्रवस्यवः**) अपने को अन्न चाहने वाले (**हृषीवन्तः**) बहुत आनन्दयुक्त (**वनर्षदः**) वन मे रहनेवाले (**वयः, न**) पक्षियों के तुल्य सब ओर से (**परि, पप्तन्**) उड़ें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों का अनुकरण करके विमानादि यान बनाके पक्षी के तुल्य अन्तरिक्षादि मार्गों मे सुख से गमनागमन किया करें ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अध स्मा न उदवता सजोषसो रथं देवासो अभि विक्षु वाजयुम् ।
यदाशवः पद्याभिस्तित्रतो रजः पृथिव्याः सानौ जङ्घनन्त पाणिभिः ॥२॥

पदार्थ—हे (**सजोषसः**) आपस में बराबर प्रीति के सेवन करनेवाले (**रजः**) लोकों के (**तित्रतः**) पार होते हुए (**देवासः**) विद्वान् लोगो ! तुम (**नः**) हमारे (**वाजयुम्**) वेग से चलनेवाले (**रथम्**) विमानादि यान को (**विक्षु**) प्रजाओं मे (**अभि, उत्, अवत**) सब प्रकार चाहो (**अध**) इस के अनन्तर जैसे (**यत्**) जो (**आशवः**) शीघ्रगामी घोड़े चलते हैं वैसे (**पद्याभिः**) चलने योग्य गतियों से (**पृथिव्याः**) भूमि के (**सानौ**) ऊँचे प्रदेश मे (**पाणिभिः**) हाथों से (**स्म**) ही (**जङ्घनन्त**) शीघ्र ताड़ना देओ ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य हाथों से यानों मे यन्त्रों को स्थिर कर और ताड़ना देकर इन को चलावें तो वे घोड़ों के तुल्य पृथिवी के ऊपर-ऊपर जाने-आने को समर्थ होते हैं ॥ २ ॥

फिर राज-प्रजा विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

उत स्य न इन्द्रो विश्वचर्षणिर्दिवः शर्धेन मारुतेन सुक्रतुः ।
अनु नु स्थात्यवृकाभिरूतिभी रथं महे सनये वाजसातये ॥३॥

पदार्थ—(**विश्वचर्षणिः**) सब को दिखाने चितानेवाला (**सुक्रतुः**) उत्तम बुद्धियुक्त (**इन्द्रः**) सूर्य के तुल्य तेजस्वी सभापति (**दिवः**) जैसे प्रकाश से सूर्य शोभित हो वैसे (**अवृकाभिः**) चोर आदि दुष्टों से रहित (**ऊतिभिः**) रक्षा आदि से (**मारुतेन**) मनुष्य सम्बन्धी (**शर्धेन**) बल के साथ (**महे**) बड़े (**सनये**) सुख के सम्यक् विभाग के लिए और (**वाजसातये**) संग्राम के सम्यक् सेवने के लिए (**नः**) हमारे (**रथम्**) विमानादि यान का (**अनु, स्थाति**) अनुष्ठान करता है (**स्यः**) वह (**उत**) तो (**नु**) शीघ्र ऐश्वर्य को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य अपने प्रताप से सब जगत् की पालना करता वैसे धार्मिक प्रजा और राजपुरुष अपने राज्य की रक्षा किया करें ॥ ३ ॥

उत स्य देवो भुवनस्य सक्षणिस्त्वष्टा ग्नाभिः सजोषा जूजुवद्रथम् ।
इळा भगो बृहद्दिवोत रोदसी पूषा पुरन्धिरश्विनावधा पती ॥४॥

पदार्थ—जो (**पूषा**) पुष्टिकारक (**पुरन्धिः**) पुरों का धारण करनेवाला (**सक्षणिः**) मली (**सजोषाः**) सुख-दुःख और प्रीति का बराबर रखनेवाला (**भगः**) ऐश्वर्यभागी (**देवः**) प्रकाशक (**पती**) पालन करनेहारे (**अश्विना**) सूर्यचन्द्रमा के तुल्य (**उत**) और (**दिवा**) प्रकाश के साथ (**रोदसी**) सूर्य, भूमी (**भुवनस्य**) लोकों के (**त्वष्टा**) छेदन करनेवाले सूर्य के तुल्य (**रथम्**) विमानादि यान को (**जूजुवत्**) पहुंचावे (**अध**) इस के अनन्तर (**उत**) और इसकी (**ग्नाभिः**) वाणियों के साथ (**इळा**) उत्तम वाणी है (**स्यः**) वह (**बृहत्**) बड़े सुख को प्राप्त होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो बिजुली के तुल्य और सुशिक्षित वाणी के तुल्य वर्त्तते है वे अनेक शिल्पविद्या से साध्य यानों को बनाके ऐश्वर्यवाले होते हैं ॥ ४ ॥

फिर स्त्रीपुरुष के कर्त्तव्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उत त्ये देवी सुभगे मिथूदृशोषासानक्ता जगतामपीजुवा ।
स्तुषे यद्वां पृथिवी नव्यसा वचः स्थातुश्च वयस्त्रिवया उपस्तिरे ॥५॥

पदार्थ—हे (**पृथिवि**) पृथिवी के तुल्य वर्त्तमान सहनशील स्त्रि ! (**त्रिवयाः**) तीनों अवस्था भोगनेवाली तू जैसे (**त्ये**) वे (**मिथूदृशा**) आपस में एक दूसरे को देखनेवाले (**सुभगे**) सुन्दर ऐश्वर्य के निमित्त (**देवी**) प्रकाशमान (**अपीजुवा**) प्रेरक (**उषासानक्ता**) दिन-रात (**जगताम्**) संसारस्थ मनुष्यादि (**च**) और (**स्थातुः**) स्थावर वृक्षादि के पालक होते हैं (**उत**) और जैसे मैं (**नव्यसा**) नवीन (**वचः**) वचन से (**वयः**) अभीष्ट अवस्था को (**यत्**) जिन की (**स्तुषे**) स्तुति करता हूँ और (**उपस्तिरे**) निकट आच्छादित, रक्षित करता हूँ वैसे ही (**वाम्**) उनकी स्तुति कर ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे रात-दिन परस्पर मिले हुए वर्त्तते हैं वैसे ही स्त्री-पुरुष वर्त्तें । जैसे पुरुष ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़के सब पदार्थों के गुण, कर्म, स्वभावों को जानकर विद्वान् होते हैं वैसे ही स्त्रियाँ भी हों ॥५॥

फिर हम मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

उत वः शंसमुशिजामिव श्मस्यहिर्बुध्न्योऽज एकपादुत ।
त्रित ऋभुक्षाः सविता चनो दधेऽपां नपादाशुहेमा धिया शमि ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे (**त्रितः**) ब्रह्मचर्य, अध्ययन और विचार इन तीन कर्मों से (**ऋभुक्षाः**) मेधावी (**सविता**) ऐश्वर्य करनेहारा (**नपात्**) न गिरनेवाला वा पग आदि अवयवों से रहित (**आशुहेमा**) शीघ्र बढ़नेवाला (**उत**) और (**अजः**) कभी न उत्पन्न होनेवाला (**एकपात्**) एक प्रकार की प्राप्तियुक्त (**अहिः**) व्याप्तिशील (**बुध्न्यः**) अन्तरिक्ष मे व्याप्त मेघ के तुल्य वर्त्तमान मैं (**धिया**) बुद्धि वा कर्म से (**शमि**) कर्म मे प्रवृत्त होऊँ (**अपाम्**) प्राणों के (**चनः**) अन्न को (**दधे**) धारण करता हूँ वैसे हे पति ! तू प्रवृत्त हो जैसे हम (**उशिजामिव**) कामना के योग्य (**वः**) तुम विद्वानों की (**शंसम्**) स्तुति की (**श्मसि**) चाहते हैं (**उत**) और तुम को धारण करें वैसे तुम लोग भी हमारे विषय मे वर्त्तो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे ईश्वर अजन्मा कामना के योग्य सत्य गुणकर्मस्वभाव वाला सेवने योग्य है वैसे हम सब जीव लोग हैं इस से ब्रह्मचर्यादि शुभ कर्म मे हमको सदा वर्त्तना चाहिए ॥ ६ ॥

एता वो वश्म्युद्यता यजत्रा अतक्षन्नायवो नव्यसे सम् ।

श्रवस्यवो वाजं चकानाः सप्तिर्न रथ्यो अह धीतिमश्याः ॥७॥

पदार्थ—जैसे (**वाजम्**) विज्ञान को (**चकानाः**) चाहते हुए (**श्रवस्यवः**) अपने को अन्न वा शास्त्र सुनने की इच्छा करते हुए (**यजत्राः**) मेल-मिलाप रखते हुए (**आयवः**) मनुष्य (**नव्यसे**) अति नवीन जन के लिए (**रथ्यः**) रथ के चलानेवाले (**सप्तिः**) घोड़े के (**न**) तुल्य विचारणीय विषय को (**सम् अतक्षन्**) सम्यक् सूक्ष्म करते हैं अर्थात् अच्छे प्रकार समझाते हैं वैसे (**वः**) तुम लोगो के (**एता**) इन (**उद्यता**) उत्तम प्रकार ग्रहण किये वचनो को मैं (**वश्मि**) चाहता हूँ । हे विद्वन् ! जैसे आप (**अह**) नियमपूर्वक (**धीतिम्**) धैर्य को (**अश्याः**) प्राप्त होओ वैसे मैं भी धैर्य को प्राप्त होऊँ ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । मनुष्यो को चाहिए कि जिस-जिस पदार्थ की कामना विद्वान् लोग करें उस-उस की कामना कर जैसे विद्वान् लोग उपदेश करें वैसे उस को सुन निश्चय कर स्वीकार और अनुष्ठान किया करें ॥ ७ ॥

इस सूक्त मे विद्वान् और विदुषी स्त्रियों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त मे कहे अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह इकतीसवाँ सूक्त और चौदहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अस्येत्यस्याष्टर्चस्य द्वात्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । १ द्यावापृथिव्यौ, २, ३ इन्द्रस्त्वष्टा वा, ४, ५ राका; ६, ७ सिनीवाली, ८ लिङ्गोक्ता देवताः । १ जगती; ३ निचृज्जगती; ४, ५ विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः । २ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ६ अनुष्टुप्, ७ विराडनुष्टुप्, ८ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब बत्तीसवें सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र से मनुष्यों को क्या कर्त्तव्य है इस विषय को कहते हैं—

अस्य मे द्यावापृथिवी ऋतायतो भूतमवित्री वचसः सिषासतः ।

ययोरायुः प्रतरं ते इदं पुर उपस्तुते वसूयुर्वां महो दधे ॥१॥

पदार्थ—जो (**अवित्री**) रक्षा आदि के निमित्त (**उपस्तुते**) समीप मे प्रशसा को प्राप्त (**द्यावापृथिवी**) सूर्य और भूमि (**मे**) मेरे (**अस्य**) इस प्रत्यक्ष (**वचसः**) वचन के सम्बन्ध से (**भूतम्**) उत्पन्न हुए (**ऋतायतः**) जल के समान आचरण करते (**सिषासतः**) वा अच्छे प्रकार विभाग होने के समान आचरण करते जिनसे (**प्रतरम्**) पुष्कल (**इदम्**) इस (**आयुः**) जीवन को (**वसूयुः**) धन की चाहना करता हुआ मैं (**पुरः**) आगे (**दधे**) धारण करता हूँ (**ते**) वे सब जगत् का सुख सिद्ध करते है (**वाम्**) उनकी उत्तेजना से मैं (**महः**) बहुत सुख को धारण करता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को भूमि और अग्नि का सेवन जो युक्ति के साथ किया जाता है तो पूर्ण आयु और धन की प्राप्ति हो सकती है ॥ १ ॥

अब विद्वानों की मित्रता को अगले मन्त्रों में कहा है—

मा नो गुह्या रिप आयोरहन्दभन्मा न आभ्यो रीरधो दुच्छुनाभ्यः ।

मा नो वि यौः सख्या विद्धि तस्य नः सुम्नायता मनसा तत्त्वेमहे ॥२॥

पदार्थ—जो (**नः**) हमारे (**गुह्या**) गुप्त एकान्त के (**सख्या**) मित्रपन के काम (**आयोः**) मनुष्य के सुख को (**अहन्**) किसी दिन मे (**मा, दभन्**) मत नष्ट करे (**रिपः**) और पृथिवी (**मा**) मत नष्ट करे वा जैसे मैं किसी मनुष्य के सुख को न नष्ट करूँ वैसे हे सेनापति ! आप (**आभ्यः**) इन पृथिवी वा (**दुच्छुनाभ्यः**) दुःखकारिणी शत्रु की सेनाओ से (**नः**) हम लोगो को (**मा, रीरधः**) मत नष्ट करें (**मा**) मत (**नः**) हम लोगो को (**मनसा**) अन्तःकरण से (**वि, यौः**) अलग करें वा (**सुम्नायता**) अपने को सुख की इच्छा करते हुए (**नः**) हम लोगों को (**विद्धि**) जानो (**तस्य**) उस सज्जन के सुख को (**मा**) मत नष्ट करो इस कारण हम लोग (**तत्**) उक्त कर्म और (**त्वा**) आपको (**ईमहे**) याचते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों का इस प्रकार सदा इच्छा करनी चाहिए कि किसी के सुख की हानि कभी न करनी चाहिए, मित्रता का भङ्ग न करना चाहिए, सब सज्जनों की सदा रक्षा करनी चाहिए, निरन्तर सज्जनों के लिए सुख माँगना चाहिए ॥ २ ॥

अहेळता मनसा श्रुष्टिमा वह दुहानां धेनुं पिप्युषीमसश्चतम् ।

पद्याभिराशुं वचसा च वाजिनं त्वां हिनोमि पुरुहूत विश्वहा ॥३॥

पदार्थ—हे (**पुरुहूत**) बहुतो से सत्कार पाये हुए ! आप (**अहेळता**) अनादर किये हुए (**मनसा**) विज्ञान से वा (**पद्याभिः**) प्राप्त करने योग्य क्रियाओं से (**वचसा, च**) और वचन से (**असश्चतम्**) अप्राप्त (**पिप्युषीम्**) बढ़ी हुई बढ़ाने वा बढ़ानेवाले (**दुहानाम्**) और सुख को अच्छे प्रकार पूरा करनेवाली (**धेनुम्**) गौ के समान वाणी को (**विश्वहा**) सब दिन (**श्रुष्टिम्**) शीघ्र (**आ, वह**) प्राप्त होओ वा प्राप्त कराओ मैं (**वाजिनम्**) प्रशंसित विज्ञानवाले (**त्वाम्**) आपको (**हिनोमि**) प्राप्त होता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो समाधानयुक्त अन्तःकरण से औरो के लिए उत्तम शिक्षायुक्त वाणी को शीघ्र प्राप्त करना है उसको सब सत्कार करके बढ़ावें ॥ ३ ॥

अब स्त्रियों के गुणों को अगले मन्त्रों में कहा है—

राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना ।

सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥४॥

पदार्थ—मैं (**त्मना**) आत्मा से (**राकाम्**) उस रात्रि के जो पूर्ण प्रकाशित चन्द्रमा से युक्त है समान वर्त्तमान (**सुहवाम्**) सुन्दर स्पर्द्धा करने योग्य जिस स्त्री की (**सुष्टुती**) शोभनस्तुति के साथ (**हुवे**) स्पर्द्धा करता हूँ वह (**सुभगा**) उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त करनेवाली (**नः**) हम लोगो को (**शृणोतु**) सुने और (**बोधतु**) जाने (**अच्छिद्यमानया**) न छेदन करने योग्य (**सूच्या**) सुई से (**अपः**) कर्म (**सीव्यतु**) सीने का करे (**शतदायम्**) असख्य दायभाग वाले को सीवे (**उक्थ्यम्**) और प्रशसा के योग्य असख्य दायभागी (**वीरम्**) उत्तम सन्तान को (**ददातु**) देवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । उस मनुष्य वा स्त्री का अहोभाग्य होता है जिस को अभीष्ट स्त्री वा पुरुष प्राप्त हो जैसे गुण, कर्म, स्वभाव वाला पुरुष हो वैसी पत्नी भी हो यदि दोनो विद्वान् स्त्री-पुरुष ऋतु-समय को न उल्लङ्घन कर अर्थात् ऋतु समय के अनुकूल प्रेम से सन्तानोत्पत्ति करें तो उनकी सन्तान प्रशसित क्यों न हो । जैसे छिन्नभिन्न वस्त्र सुई से सिया जाता है वैसे जिनके मन मे परस्पर प्रीति हो उनका कुल सब का मान्य होता है ॥ ४ ॥

यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।

ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥५॥

पदार्थ—हे (**राके**) रात्रि के समान सुख देनेवाली ! जो (**ते**) आप की (**सुपेशसः**) सुन्दर रूपवाली दीप्ति और (**सुमतयः**) उत्तम बुद्धि हैं जिनसे आप (**दाशुषे**) देनेवाले पति के लिए (**वसूनि**) धनो को (**ददासि**) देती हो उन से (**नः**) हम लोगो को (**अद्य**) आज (**सुमनाः**) प्रसन्नचित्त हुई (**उपागहि**) समीप आओ । हे (**सुभगे**) सौभाग्ययुक्त स्त्री (**रराणा**) उत्तम देनेवाली होती हुई हम लोगो के लिए (**सहस्रपोषम्**) असख्य प्रकार से पुष्टि को देओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—यदि सुलक्षणा विदुषी स्त्री श्रेष्ठ विद्वान् जन की पत्नी हो तो धन की और सुख की बहुत प्रकार प्राप्ति हो ॥ ५ ॥

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।

जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥६॥

पदार्थ—हे (**पृथुष्टुके**) मोटी-मोटी जङ्घाओंवाली ! (**सिनीवालि**) जो अति प्रेम से युक्त तू (**देवानाम्**) विद्वानो की (**स्वसा**) बहिन (**असि**) है सो तू मैंने जो (**आहुतम्**) सब ओर से होमा है उस (**हव्यम्**) देने योग्य द्रव्य को (**जुषस्व**) प्रीति से सेवन कर । हे (**देवि**) कामना करती हुई स्त्रि ! तू हमारे लिए (**प्रजाम्**) प्रजा को (**दिदिड्ढि**) दे ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो विद्वानो के कुल की कन्या विद्वानो की बन्धु ब्रह्मचर्य से विद्या को प्राप्त हुई प्रकाशमान हो उसे पत्नी कर विधि से इसमे सन्तानो को जो उत्पन्न करे वह पुरुष और वह स्त्री दोनो सुखी हों ॥ ६ ॥

या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी ।

तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**या**) जो (**सुबाहुः**) सुन्दर बाहु और (**स्वङ्गुरिः**) सुन्दर अगुलियोंवाली तथा (**सुषूमा**) सुन्दर पुत्रोत्पत्ति करने और (**बहुसूवरी**) बहुत सन्तानो की उत्पन्न करनेवाली स्त्री है (**तस्यै**) उस (**विश्पत्न्यै**) प्रजाजनो की पालनेवाली (**सिनीवाल्यै**) प्रेम से सम्बद्ध हुई के लिए (**हविः**) देने योग्य वीर्य का (**जुहोतन**) छोड़ो ॥ ७ ॥

भावार्थ—पुरुषो को यह जानना चाहिए कि वे ही पत्नी उत्तम होती हैं जो सर्वाङ्ग सुन्दरी, बहुत प्रजा उत्पन्न करनेवाली, शुभ गुणकर्मस्वभावयुक्त हों, उनमें से एक-एक पुरुष को चाहिए कि एक-एक स्त्री के साथ विवाह करके प्रजा उत्पन्न करें ॥ ७ ॥

या गुङ्गूर्या सिनीवाली या राका या सरस्वती ।

इन्द्राणीमह्व ऊतये वरुणानीं स्वस्तये ॥८॥१५॥३॥

पदार्थ—हे पुरुषो ! जैसे मैं (**या**) जो (**गुङ्गूः**) गुञ्ज गुञ्ज बोले वा (**या**) जो (**सिनीवाली**) प्रेमास्पद को प्राप्त हुई (**या**) जो (**राका**) पौर्णमासी के समान वर्त्तमान अर्थात् जैसे चन्द्रमा की कान्ति से युक्त पौर्णमासी होती वैसी पूर्ण कान्तिमती और (**या**) जो (**सरस्वती**) विद्या तथा सुन्दर शिक्षासहित वाणी से युक्त वर्त्तमान है उस (**इन्द्राणीम्**) परमैश्वर्ययुक्त को (**ऊतये**) रक्षा आदि के लिए (**अह्वे**) बुलाता हूँ उस (**वरुणानीम्**) श्रेष्ठ की स्त्री को (**स्वस्तये**) सुख के लिए बुलाता हूँ वैसे तुम भी अपनी-अपनी स्त्री को बुलाओ ॥ ८ ॥

भावार्थ—यदि कोई स्त्री युवती और कोई उत्तम सर्व लक्षण सम्पन्न विदुषी हो उससे ऐश्वर्य और सुख निरन्तर बढ़ाने चाहिएँ ॥ ८ ॥

इस सूक्त में विद्वान् की मित्रता और स्त्री के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ के साथ पिछले सूक्तार्थ की सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह बत्तीसवां सूक्त, पन्द्रहवां वर्ग और तीसरा अनुवाक समाप्त हुआ ॥

卐

आ त इति पंचदशर्चस्य त्रयस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । रुद्रो देवता । १, ५, ६, १३—१५ निचृत्त्रिष्टुप्, ३, ९, १०, ११ विराट् त्रिष्टुप्, ४, ८ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २, ७ पङ्क्तिः, १२ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचावाले तेंतीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में वैद्यक विषय को कहते हैं—

आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु मा नः सूर्यस्य संदृशो युयोथाः ।
अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः ॥१॥

पदार्थ—हे (**मरुताम्**) मनुष्यों के (**पितः**) पिता के समान (**रुद्र**) दुष्टों को रुलानेवाले ! (**सूर्यस्य**) सूर्य के समान वर्त्तमान और (**संदृशः**) जो अच्छे प्रकार देते हैं उन (**ते**) आप के सकाश से (**नः**) हमारे लिए (**सुम्नम्**) सुख (**आ, एतु**) आवे, आप सुख से हमें (**युयोथाः**) अलग न करें । जिससे (**अर्वति**) घोड़े पर चढ़के (**नः**) हमारा (**वीरः**) शुभ गुणों में व्याप्त जन (**अभि, क्षमेत**) सब ओर से सहन करे जिससे हम लोग (**प्रजाभिः**) सन्तानादि प्रजाजनों के साथ (**प्र, जायेमहि**) प्रसिद्ध हों ॥ १ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य परमेश्वर को परमपिता न्यायकारी मानकर सुख बढ़ावें, कभी ईश्वर को मानकर विरुद्ध न हों, सहनशील होकर वीरता सिद्ध कर प्रजा के साथ सुखी हों ॥ १ ॥

फिर वैद्य विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

त्वादत्तेभी रुद्र शन्तमेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः ।
व्य१स्मद्द्वेषो वितरं व्यंहो व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः ॥२॥

पदार्थ—हे (**रुद्र**) सर्व रोगदोषों के निवारनेवाले वैद्यराज ! आप हम लोगों को (**वि, चातयस्व**) विशेषकर जाँचें (**त्वादत्तेभिः**) आपसे दी हुई (**शन्तमेभिः**) अतीव सुख करनेवाली (**भेषजेभिः**) औषधों से (**विषूचीः**) समग्र शरीर में व्याप्त (**अमीवाः**) रोगों को दूर करो और आप (**अस्मत्**) हमसे हमारे (**द्वेषः**) वैरियों को वा ईर्ष्या आदि दोषों को और (**वितरम्**) विशेषता से उल्लङ्घन करने योग्य (**अंहः**) पाप भरे हुए कर्म वा कुपथ्यादि कर्म को दूर कर जिससे मैं (**शतम्**) सौ (**हिमाः**) संवत्सर आनन्द को (**वि, अशीय**) विशेषकर प्राप्त होऊँ ॥ २ ॥

भावार्थ—हे वैद्य लोगो ! तुम अत्युत्तम ओषधियों से सबके बड़े-बड़े रोगों को निवारण करके रागद्वेषों को और उन्माद आदि दोषों को अलग कर शत वर्ष आयु जिनकी ऐसे मनुष्यों को सिद्ध करो ॥ २ ॥

श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो ।
पर्षि णः पारमंहसः स्वस्ति विश्वा अभीती रपसो युयोधि ॥३॥

पदार्थ—हे (**वज्रबाहो**) वज्र के तुल्य औषध बाहु में रखने और (**रुद्र**) रोगों के लोप करनेवाले ! जिससे आप (**तवसाम्**) बलिष्ठों में (**तवस्तमः**) अतीव बलवान् (**जातस्य**) प्रसिद्ध जगत् के बीच (**श्रेष्ठः**) अत्यन्त प्रशंसायुक्त (**श्रिया**) शोभा वा लक्ष्मी के साथ वर्त्तमान (**असि**) हो वा (**नः**) हम लोगों को (**अंहसः**) कुपथ्य से उत्पन्न हुए (**रपसः**) कर्म से (**पारम्**) पार (**पर्षि**) पहुँचाते हो वा (**विश्वाः**) समस्त पीडाओं को (**युयोधि**) अलग करते हो वा (**स्वस्ति**) सुख उत्पन्न करते हो इससे हम लोगों से सत्कार पाने योग्य हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो आप रोगरहित शोभते हुए अतीव बलवान् हैं औरों को रोगरहित करके निरन्तर सुखी करते हैं वे सबको सर्वदा सत्कार करने योग्य हैं ॥ ३ ॥

फिर वैद्यक विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती ।
उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभिर्भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ॥४॥

पदार्थ—हे (**वृषभ**) श्रेष्ठ (**रुद्र**) कुपथ्यकारियों को रुलानेवाले ! हम लोग (**दुष्टुती**) दुष्ट स्तुति से (**त्वा**) आपके (**प्रति**) प्रति (**मा**) मत (**चुक्रुधाम**) क्रोध करें । (**सहूती**) समान स्पर्द्धा से (**मा**) मत क्रोध करें आपके साथ विरोध (**मा**) मत करें किन्तु (**नमोभिः**) सत्कार के साथ निरन्तर सत्कार करें । जिन (**त्वा**) आपको मैं (**भिषजाम्**) वैद्यों के बीच (**भिषक्तमम्**) वैद्यों के शिरोमणि (**शृणोमि**) सुनता हूँ सो आप (**भेषजेभिः**) रोग निवारनेवाली ओषधियों से (**नः**) हम लोगों के लिए (**वीरान्**) वीर, नीरोग पुत्रादिकों को (**उत्, अर्पय**) उत्तमता से सौंपें ॥ ४ ॥

भावार्थ—किसी को वैद्य के साथ विरोध कभी न करना चाहिए, न इसके साथ ईर्ष्या करनी चाहिए, किन्तु प्रीति के साथ सर्वोत्तम वैद्य की सेवा करनी चाहिए जिससे रोगों से अलग होकर सुख निरन्तर बढ़े ॥ ४ ॥

फिर वैद्य विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

हवीमभिर्हवते यो हविर्भिरव स्तोमेभी रुद्रं दिषीय ।
ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै बभ्रुः सुशिप्रो रीरधन्मनायै ॥५॥

पदार्थ—(**यः**) जो वैद्यजन (**हवीमभिः**) सुन्दर ओषधियों के देने से हम लोगों की (**हवते**) स्पर्द्धा करता है उस (**रुद्रम्**) वैद्य को मैं (**हविर्भिः**) ग्रहण करने योग्य (**स्तोमेभिः**) श्लाघाओं से (**अव, दिषीय**) न खण्डन करूँ अर्थात् न उसे क्लेश देऊँ जिससे (**सुहवः**) सुन्दर दानशील (**ऋदूदरः**) कोमल उदरवाला (**बभ्रुः**) पालनकर्त्ता (**सुशिप्रः**) सुन्दर मुखयुक्त वैद्य (**नः**) हमारी (**अस्यै**) इस (**मनायै**) माननेवाली बुद्धि के लिए (**मा, रीरधत्**) मत हिंसा करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो वैद्यजन रोग निवारण से हमारी बुद्धि को बढ़ाते हैं उनके साथ हम लोग कभी विरोध न करें ॥ ५ ॥

उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान्त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम् ।
घृणीव च्छायामरपा अशीया विवासेयं रुद्रस्य सुम्नम् ॥६॥

पदार्थ—जो (**वृषभः**) सुखों को वर्षानेवाले (**मरुत्वान्**) मनुष्य आदि बहुत प्रजाजनों से युक्त (**अरपाः**) अविद्यमान पाप—निष्पाप वैद्य (**त्वक्षीयसा**) प्रदीप्त (**वयसा**) आयु से (**नाधमानम्**) याचना किया हुआ (**मा**) मुझको (**उत्, ममन्द**) उत्तमता से चाहते हो उनकी उत्तेजना से मैं (**घृणीव**) सूर्य के समान (**छायाम्**) घर का (**विवासेयम्**) सेवन करूँ और (**रुद्रस्य**) वैद्य के सकाश से (**सुम्नम्**) सुख को (**आ, अशीय**) अच्छे प्रकार प्राप्त करूँ ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो वैद्य हमारे रोगों का निवारण कर मनुष्यों को दीर्घ आयुवाले करते हैं वे सूर्य के समान प्रकाशित कीर्त्तिवाले होते हैं ॥ ६ ॥

फिर वैद्यक विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

क्व१स्य ते रुद्र मृळयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः ।
अपभर्त्ता रपसो दैव्यस्याभी नु मा वृषभ चक्षमीथाः ॥७॥

पदार्थ—हे (**वृषभ**) श्रेष्ठ (**रुद्र**) दुःखनिवारक वैद्य ! आप (**दैव्यस्य**) जो देवों के साथ वर्त्तमान उसके बीच (**मा**) मुझे (**अभि, चक्षमीथाः**) सब ओर से सहन कीजिए (**यः**) जो (**ते**) आपको (**मृळयाकुः**) सुख देनेवाला (**हस्तः**) हर्षमुख (**भेषजः**) वैद्यजन (**जलाषः**) सुखकर्त्ता और (**रपसः**) पापों का (**अपभर्त्ता**) दूरकर्त्ता (**अस्ति**) है (**स्यः**) वह (**क्व**) कहाँ है ॥७॥

भावार्थ—जब अध्यापक वैद्य शिष्यों को पढ़ावें तब अच्छे प्रकार पढ़ाकर फिर परीक्षा करें । जो यथार्थ प्रश्नोत्तर करनेवाला हो उसको वैद्यकी करने को आज्ञा देओ ॥ ७ ॥

प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे महो महीं सुष्टुतिमीरयामि ।
नमस्या कल्मलीकिनं नमोभिर्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम ॥८॥

पदार्थ—हे वैद्य ! जिस (**वृषभाय**) श्रेष्ठ (**बभ्रवे**) धारण करनेवाले (**महः**) बड़े (**श्वितीचे**) आवरण को प्राप्त होते हुए वैद्य के लिए (**महीम्**) बड़ी (**सुष्टुतिम्**) सुन्दर स्तुति को (**प्र, ईरयामि**) प्रेरणा देता हूँ सो आप मुझे (**नमस्य**) नमिए, जिस (**रुद्रस्य**) अच्छे वैद्य का (**कल्मलीकिनम्**) देदीप्यमान (**त्वेषम्**) प्रकाशमान (**नाम**) नाम है उसकी हम लोग (**नमोभिः**) सत्कारों से (**गृणीमसि**) प्रशंसा करते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—विद्यार्थियों की योग्यता है कि जो विद्या ग्रहण करावे उसका सदा सत्कार करें । जिसकी वैद्यक शास्त्र में प्रसिद्धि है उसी से वैद्यविद्या का अध्ययन करना चाहिए ॥ ८ ॥

अब राजपुरुष के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः ।
ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्न वा उ योषद्रुद्रादसुर्यम् ॥९॥

पदार्थ—हे पुरुष (**पुरुरूपः**) बहुत रूपों से युक्त (**उग्रः**) क्रूरस्वभावी (**बभ्रुः**) उत्तम व्यवहारों को धारण करनेवाले आप (**स्थिरेभिः**) दृढ़ (**अङ्गैः**) अवयवों से (**शुक्रेभिः**) शुद्ध वीर्य (**हिरण्यैः**) और किरणों के समान तेजों से (**ईशानात्**) ईश (**रुद्रात्**) पापियों को रुलानेवाले जगदीश्वर से (**अस्य**) इस (**भुवनस्य**) सर्वाधिकरण लोक के (**भूरेः**) बहुरूपियों के (**न**) जैसे वैसे शत्रुबल को (**पिपिशे**) पीसते हुए (**उ, वै**) वही आप (**असुर्यम्**) असुर के स्वत्व का (**योषत्**) वियोग कीजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो तीव्र और मृदु स्वभाववाले हैं वे जैसे जगदीश्वर के बनाये हुए भूमि आदि पदार्थ दृढ़ और सुन्दर हैं वैसे बलिष्ठ प्रशमनीय सेनाङ्गों में दुष्टों का विजय कर असुरभाव का निवारण करें ॥ ९ ॥

अर्हन्बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम् ।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥१०॥१७॥

पदार्थ—हे (रुद्र) दुष्टों को रुलानेवाले ! जो आप (अर्हन्) योग्य होते हुए (सायकानि) शस्त्र और अस्त्रों को (धन्व) तथा धनुर्वाण आदि को (बिभर्षि) धारण करते हैं वा (अर्हन्) योग्य होते हुए (विश्वरूपम्) चित्र-विचित्र रूपवाले (यजतम्) सङ्गम करने योग्य (निष्कम्) सुवर्ण के आभूषण को धारण करते वा (अर्हन्) योग्य होते हुए (इदम्) इस (अभ्वम्) महान् (विश्वम्) समस्त जगत् की (दयसे) रक्षा करते हैं इस कारण (त्वत्) आपसे अन्य (ओजीय:) बलवाला (न) नहीं है ॥ १० ॥

भावार्थ—जो योग्यता को प्राप्त होकर आयुध, सेना, राज्य और धन को धारण करते तथा सब धर्मात्माओं पर दया करते हैं वे बलिष्ठ होते हैं ॥ १० ॥

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृळा जरित्रे रुद्र स्तवानोऽन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः ॥११॥

पदार्थ—हे (रुद्र) अन्यायकारियों को रुलानेवाले सेनापति ! आप (मृगम्) सिंह के (न) समान (भीमम्) भयङ्कर (श्रुतम्) जो सुने हैं उस (गर्तसदम्) घर में बैठकर (उपहत्नुम्) और समीप में मारते हुए (उग्रम्) क्रूर (युवानम्) पूर्ण बलवाले पुरुष की (स्तुहि) स्तुति कर और (जरित्रे) स्तुति करनेवाले के लिए (मृळ) सुखी कर (स्तवानः) स्तुति करता हुआ (अन्यम्) और धर्मात्मा की प्रशंसा कर जिससे विद्वान् (अस्मत्) मेरी उत्तेजना से (ते) तेरी (सेनाः) सेना अर्थात् बल को (नि, वपन्तु) विस्तारें ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो राज्य बढ़ाने की इच्छा करें वे सिंह के समान शत्रुओं में भयङ्कर और श्रेष्ठों में आनन्द देनेवालों का राज कार्य्य और सेना में सत्कार करें और उनको आज्ञा दे न्याय से निरन्तर राज्य की पालना करें ॥ ११ ॥

अब विद्याध्ययन विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

कुमारश्चित्पितरं वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम् ।
भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे ॥१२॥

पदार्थ—हे (रुद्र) दुष्टों को रुलानेवाले विद्वन् ! (स्तुत) प्रशंसा को प्राप्त (त्वम्) आप (पितरम्) पिता को (कुमार) ब्रह्मचारी (चित्) जैसे वैसे (वन्दमानम्) स्तुति को प्राप्त और (उपयन्तम्) समीप आते हुए (भूरेः) बहुत पदार्थ के (दातारम्) देने वा (सत्पतिम्) सज्जनों के पालनेवाले विद्वान् के प्रति (नानाम) नमस्कार करता वा (गृणीषे) उस की स्तुति करते हैं तथा (अस्मे) हम लोगों के लिए (भेषजा) ओषधों को (रासि) देता है इस से हम लोगों को सत्कार करने के योग्य हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे अच्छा पुत्र पिता का सत्कार करता वा नमता वा स्तुति करता है वैसे अच्छा विद्यार्थी पढ़ानेवाले को प्रसन्न करता है ॥ १२ ॥

अब फिर वैद्यक विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

या वो भेषजा मरुतः शुचीनि या शंतमा वृषणो या मयोभु ।
यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि ॥१३॥

पदार्थ—हे (वृषणः) वृष्टि करानेवाले विद्वानो ! जैसे (मरुतः) मनुष्यों को और (या) जिन (शुचीनि) शुद्ध वा (या) जिन (शन्तमा) अतीव सुख करने वा (या) जिन (मयोभु) सुख की भावना देने वा (यानि) जिन रोग निवारनेवाली (भेषजा) ओषधों को (वः) तुम्हारे लिए (मनुः) वैद्य विद्या जाननेवाला (पिता) पिता (अवृणीत) स्वीकार करता है वह तुम्हारे (नः) और हमारे लिए (ता) न्याय करने (रुद्रस्य) और रुलानेवाले रोग की निवृत्ति के लिए (शं, च) और कल्याण की भावना के लिए होती वैसी मैं (वश्मि) कामना करूं ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि पिता और पितामहों तथा अध्यापक वा अन्य विद्वानों से प्रति रोग के निवारण के अर्थ ओषधियों को जानकर अपने और दूसरों के रोगों को निवारण करके सब के लिए सुख की कांक्षा करें ॥ १३ ॥

परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात् ।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ ॥१४॥

पदार्थ—हे (मीढ्वः) सुखों से सींचनेवाले वैद्य ! जो (रुद्रस्य) दुःख देनेवाले रोग को (हेतिः) वज्र से पीड़ा के समान वा (वृज्याः) वर्जने योग्य पीड़ा और (त्वेषस्य) प्रदीप्त अर्थात् प्रबल की (दुर्मतिः) दुष्ट मति (नः) हम लोगों को (परि) सब ओर से प्राप्त होवे । तथा जो (मघवद्भ्यः) प्रशंसित धनवालों से (मही) प्रशंसनीय वाणी हम लोगों को सब ओर से प्राप्त हो और (स्थिरा) स्थिर पदार्थों को (गात्) प्राप्त हो उनको (तोकाय) शीघ्र उत्पन्न हुए सन्तान के लिए (तनयाय) जो कि कुमारावस्था को प्राप्त है उसके लिए विस्तारो । और उन से सब को (मृळ) सुखी करो और रोगों को (अव, तनुष्व) दूर करो ॥ १४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उत्तम शिक्षा से दुष्ट मति को तथा वैद्यक रीति से सब रोगों को निवारण कर अपने कुल को सदा सुखी करना चाहिए ॥ १४ ॥

एवा बभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि ।
हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१५॥१८॥

पदार्थ—हे (बभ्रो) धारण वा पोषण करने वा (वृषभ) रोग निवारण करने से बल के देने वा (चेकितान) विज्ञान देने वा (देव) मनोहर (रुद्र) और सर्व रोग निवारनेवाले ! जिस कारण (हवनश्रुत्) देने-लेने को सुननेवाले आप (इह) इसमें (यथा) जैसे (नः) हम लोगों के सुखों को (न) नहीं (हृणीषे) हरते हैं सब के सुख को (बोधि) जानें इससे हम लोग (सुवीराः) सुन्दर पराक्रम को प्राप्त होते हुए ही वैसे (विदथे) ओषधियों के विज्ञान व्यवहार में (बृहत्) बहुत (वदेम) कहें ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो वैद्यजन राज्य और न्याय के अधीश हों वे अन्याय से किसी का कुछ भी धन न हरें न किसी को मारें किन्तु सदा अच्छे पथ्य और ओषधों के व्यवहार सेवन से बल और पराक्रम को बढ़ावें ॥ १५ ॥

इस सूक्त में वैद्य, राजपुरुष और विद्या ग्रहण के व्यवहार वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह अठारहवां वर्ग और तेतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

卐

धारावरा इत्यस्य पञ्चदशर्चस्य चतुस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । मरुतो देवता । १, ३, ८, ९ निचृज्जगती, २, १०—१३ विराड्जगती; ४—७, १४ जगती छन्दः । निषादः स्वरः । १५ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचावाले चौंतीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम द्वितीय मन्त्र में विद्वानों के विषय का वर्णन करते हैं—

धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजसो मृगा न भीमास्तविषीभिरर्चिनः ।
अग्नयो न शुशुचाना ऋजीषिणो भृमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (धारावराः) धाराप्रवाह शिक्षित वाणियों के बीच श्रेष्ठ जिन की वाणी (मरुतः) वे मरणधर्मयुक्त (भीमाः) दुष्टों के प्रति भयङ्कर (मृगाः) सिंहों के (न) समान (धृष्ण्वोजसः) पराक्रम को धारण किये हुए (शुशुचानाः) शुद्ध वा शोधनेवाले (अग्नयः) पावक अग्नियों के (न) समान (तविषीभिः) बलयुक्त सेनाओं से (अर्चिनः) सत्कार करनेवाले (ऋजीषिणः) कोमल स्वभावी मनुष्य (भृमिम्) अनवस्था को (अप, धमन्तः) दूर करते हुए आप (गाः) सुशिक्षित वाणियों को (अवृण्वत) स्वीकार करें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य पावक के समान पवित्र जल के समान कोमल, सिंह के समान पराक्रम करनेवाले, वायु के समान बलिष्ठ होकर अन्याय को निवृत्त करें वे समस्त सुख को प्राप्त हों ॥ १ ॥

द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त खादिनो व्यभ्रिया न द्युतयन्त वृष्टयः ।
रुद्रो यद्वो मरुतो रुक्मवक्षसो वृषाजनि पृश्न्याः शुक्र ऊधनि ॥२॥

पदार्थ—हे (रुक्मवक्षसः) दीप्ति और अभिप्रीतियुक्त हृदयवाले (मरुतः) विद्वान् मनुष्यो ! (वः) तुम लोगों के लिए (यत्) जो (वृषा) सुख को सींचने और (रुद्रः) दुष्टों को रुलानेवाला मनुष्य (पृश्न्याः) अन्तरिक्ष के बीच (शुक्रे) वीर्य करनेवाली (ऊधनि) रात्रि में (अजनि) उत्पन्न करे वा (खादिनः) भक्षण करनेवाले आप लोग (स्तृभिः) नक्षत्रों से (द्यावः) प्रकाशों के (न) समान (चितयन्त) व्यवहारों को पवित्र करें और (अभ्रियाः) बद्दलों को (वृष्टयः) वर्षाओं के (न) समान (वि द्युतयन्त) विशेषता से प्रकाशित करें, वह और आप माननीय हों ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो नक्षत्रों के साथ सूर्य्य के समान बद्दलों के साथ बिजुली के समान विद्या व्यावहाररूपी प्रकाश में रमते हैं वे सोने के लिए रात्रि के समान सब के सुख के लिए होते हैं ॥ २ ॥

अब राज विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

उक्षन्ते अश्वाँ अत्याँ इवाजिषु नदस्य कर्णैस्तुरयन्त आशुभिः ।
हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः पृक्षं याथ पृषतीभिः समन्यवः ॥३॥

पदार्थ—हे (समन्यवः) क्रोध में भरे (मरुतः) मनुष्यो ! जैसे (अश्वान्) घोड़ों को (अत्यान्) निरन्तर चलनेवाले घोड़ों के समान वा (आजिषु) संग्रामों में (नदस्य) जल से पूर्ण बड़े जलाशय के बीच (कर्णैः) नौकाओं के चलानेवालों के समान (आशुभिः) शीघ्र चलनेवाले घोड़ों के साथ (तुरयन्ते) शीघ्र चलाते हैं वा (हिरण्यशिप्राः) सुवर्ण के सदृश मुखवाले (दविध्वतः) दुष्टों को कँपाते हुए (पृषतीभिः) पवन की गतियों के समान गतियों से युक्त धाराओं से (पृक्षम्) सींचने योग्य को (उक्षन्ते) सींचते हैं वैसे इस व्यवहार को तुम लोग प्राप्त होओ ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे शिक्षा करनेवाले जन घोड़ों को वा केवट नाव को उत्तम रीति पर चलाते हैं वैसे राजजन अपनी सेना को पहुंचावें ॥ ३ ॥

पृक्षे ता विश्वा भुवना ववक्षिरे मित्राय वा सदमा जीरदानवः ।

पृषदश्वासो अनवभ्रराधस ऋजिप्यासो न वयुनेषु धूर्षदः ॥४॥

पदार्थ—(**जीरदानवः**) साधारण जीव वा (**पृषदश्वासः**) स्थूल अश्व जिन्होंने सींचे वा (**अनवभ्रराधसः**) जिन का धन नीचे नहीं गिरा वा (**धूर्षदः**) जो धुर पर स्थिर होनेवाले (**ऋजिप्यासः**) वा जो कोमलपन को बढ़ाते हैं (**न**) उन के समान (**मित्राय**) मित्र के लिए (**वा**) अथवा जिस कारण इस के लिए (**पृक्षे**) जलादिकों से सींचे हुए पृथ्वीमण्डल पर जो (**विश्वा**) समस्त (**भुवना**) लोकलोकान्तर (**सदम्**) वा स्थान (**आ, ववक्षिरे**) अच्छे प्रकार रोष को प्राप्त हों (**ता**) वे (**वयुनेषु**) उत्तम ज्ञानों में बढ़ते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो दुष्टों के लिए क्रोध करते वा श्रेष्ठों को आनन्द देते हैं वे बुद्धिमान् होते हैं ॥ ४ ॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

इन्धन्वभिर्धेनुभी रप्शदूधभिरध्वस्मभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः ।

आ हंसासो न स्वसराणि गन्तन मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः ॥५॥

पदार्थ—हे (**भ्राजदृष्टयः**) प्रकाश को प्राप्त हुए (**समन्यवः**) क्रोधों के साथ वर्त्तमान (**मरुतः**) मरणधर्मा ! तुम लोग (**इन्धन्वभिः**) प्रदीप्त करनेवाली (**धेनुभिः**) वाणियों से वा (**रप्शदूधभिः**) प्रकट शब्दरूपी धनों से (**अध्वस्मभिः**) जो कि ध्वस्त नष्ट न हुए उन (**पथिभिः**) मार्गों से (**हंसासः**) हंसों के (**न**) समान (**मधोः**) मधुर सम्बन्धी (**मदाय**) हर्ष के लिए (**स्वसराणि**) दिनों को (**आ, गन्तन**) आओ, प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे आकाश मार्ग से हंस अभीष्ट स्थानों को सुख से जाते हैं वैसे सुशिक्षित वाणी से विद्यामार्गों को और धर्म पथों से सुखों को नित्य तुम लोग प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

आ नो ब्रह्माणि मरुतः समन्यवो नरां न शंसः सवनानि गन्तन ।

अश्वामिव पिप्यत धेनुमूधनि कर्ता धियं जरित्रे वाजपेशसम् ॥६॥

पदार्थ—हे (**समन्यवः**) क्रोध से युक्त (**मरुतः**) मनुष्यो ! तुम (**नः**) हम लोगों के लिए (**ब्रह्माणि**) धनों को (**कर्त्त**) सिद्ध करो (**अश्वामिव**) घोड़ी के समान (**ऊधनि**) रात्रि में (**धेनुम्**) वाणी को (**पिप्यत**) प्राप्त होओ (**नराम्**) मनुष्यों की (**न**) जैसे (**शंसः**) स्तुति वैसे (**सवनानि**) ऐश्वर्यों को (**आ, गन्तन**) प्राप्त होओ (**जरित्रे**) स्तुति करनेवाले के लिए (**वाजपेशसम्**) विज्ञान का जिस में रूप विद्यमान उस (**धियम्**) उत्तम बुद्धि को सिद्ध करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य मनुष्यस्वभाव से उत्पन्न हुई प्रशंसा को प्राप्त होके विद्या, वाणी और उत्तम बुद्धि को बढ़ाकर सब मनुष्यों को सुखों से अलंकृत करें वे सुखी होते हैं ॥ ६ ॥

तं नो दात मरुतो वाजिनं रथ आपानं ब्रह्म चितयद्दिवेदिवे ।

इषं स्तोतृभ्यो वृजनेषु कारवे सनिं मेधामरिष्टं दुष्टरं सहः ॥७॥

पदार्थ—हे (**मरुतः**) प्राणवायु के समान प्रिय ! (**नः**) हम लोगों के लिए (**तम्**) उस समस्त विद्या की स्तुति करनेवाले को (**दात**) देओ (**रथे**) रथ के निमित्त (**वाजिनम्**) सुशिक्षित घोड़े को देओ (**दिवेदिवे**) प्रतिदिन (**चितयत्**) चिताते हुए (**आपानम्**) व्यापक (**ब्रह्म**) धन वा अन्न को (**वृजनेषु**) बलों में (**स्तोतृभ्यः**) सकल विद्याओं के प्रयोजनवेत्ताओं के लिए (**इषम्**) इष्ट प्रयोजन को (**कारवे**) करनेवाले के लिए (**सनिम्**) अलग-अलग बढ़ी हुई (**मेधाम्**) उत्तम बुद्धि को और (**अरिष्टम्**) अविनष्ट (**दुष्टरम्**) दुःख से तैरने को योग्य (**सहः**) बल को देओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि सदैव सब के लिए सकल विद्या बतानेवाला, धर्म से सञ्चित किया हुआ धन विद्वानों के देने के लिए अन्न, उत्तम प्रज्ञा और पूर्ण बल को याचें अर्थात् माँगें। विद्वान् जन निश्चय से याचकों के लिए उन उक्त पदार्थों का निरन्तर देवें ॥ ७ ॥

यद्युञ्जते मरुतो रुक्मवक्षसोऽश्वान् रथेषु भग आ सुदानवः ।

धेनुर्न शिश्वे स्वसरेषु पिन्वते जनाय रातहविषे महीमिषम् ॥८॥

पदार्थ—हे (**रुक्मवक्षसः**) सुवर्ण के समान वक्षःस्थलवाले (**सुदानवः**) उत्तम पदार्थों के दानकर्त्ता (**मरुतः**) विद्वान् पुरुषो ! (**भगे**) ऐश्वर्य्य के होते (**रथेषु**) यानों में (**यत्**) जिन (**अश्वान्**) घोड़े वा अग्न्यादि पदार्थों को (**युञ्जते**) युक्त करते वा (**स्वसरेषु**) दिनों के बीच (**शिश्वे**) बालक वा जो (**रातहविषे**) देने योग्य दे चुका उस (**जनाय**) सत्पुरुष के लिए (**धेनुः**) दुग्ध देनेवाली गौ बछड़े को (**न**) जैसे वैसे (**महीम्**) अत्यन्त (**इषम्**) इच्छा को (**आ, पिन्वते**) अच्छे प्रकार सींचते हैं उन सब को सब लोग अच्छे प्रकार प्रयुक्त करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे अच्छी शिक्षा को प्राप्त विद्वान् जन घोड़े आदि पशुओं को और अग्नि आदि पदार्थों का प्रयोग कार्य्यसिद्धि के लिए करते हैं वैसे अनुष्ठान करो, ऐसे करने से जैसे गौ अपने बछड़े को तृप्त करती है वैसे ये प्रयोग करनेवालों को धनी करते हैं ॥ ८ ॥

फिर राजपुरुषों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यो नो मरुतो वृकताति मर्त्यो रिपुर्दधे वसवो रक्षता रिषः ।

वर्त्तयत तपुषा चक्रियाभि तमव रुद्रा अशसो हन्तना वधः ॥९॥

पदार्थ—हे (**वसवः**) वसु संज्ञावाले (**मरुतः**) विद्वान् मनुष्यो ! (**यः**) जो (**वृकताति**) वज्र ही (**मर्त्यः**) मरणधर्मा (**रिपुः**) चोर (**तपुषा**) सब ओर से ताप देनेवाले क्रोध आदि से (**नः**) हम लोगों को (**दधे**) धारण करता है उससे (**रिषः**) हिंसकों को अलग (**रक्षत**) रक्खो। हे (**रुद्राः**) दुष्टों को रुलानेवाले मध्यम विद्वानो ! तुम (**चक्रिया**) चक्र से (**अशसः**) अहिंसक जो दूसरों का विनाश नहीं करता उस को (**अव, हन्तन**) न मारो जो हम लोगों की रक्षा करता है उस की सब ओर से रक्षा करो। जिसने और का (**वधः**) वध किया है उस को कारागृह अर्थात् जेलखाना में (**अभि, वर्त्तयत**) सब ओर से वर्त्ताओ ॥ ९ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को हिंसकों से प्रजाजनों को अलग रख शत्रुओं का निवारण कर वा बांधके धर्म से राज्य की शिक्षा करनी चाहिए ॥ ९ ॥

फिर विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

चित्रं तद्वो मरुतो याम चेकिते पृश्न्या यदूधरप्यापयो दुहुः ।

यद्वा निदे नवमानस्य रुद्रियास्त्रितं जराय जुरतामदाभ्याः ॥१०॥२०॥

पदार्थ—हे (**अदाभ्याः**) न नष्ट करने योग्य (**रुद्रियाः**) मध्यम विद्वानों के सम्बन्धी (**मरुतः**) मनुष्यो ! (**यत्**) जिस (**वः**) तुम्हारा (**चित्रम्**) अद्भुत (**याम**) योग्य कर्म वा (**यत्**) जिस (**पृश्न्याः**) अन्तरिक्ष में सिद्ध हुए (**ऊधः**) जल वा दूध के अधिकरण को (**आपयः**) मित्र भाव को प्राप्त हुए (**दुहुः**) परिपूर्ण करते हैं (**वा**) अथवा (**यः**) जो (**नवमानस्य**) स्तुति करने की (**निदे**) निन्दा करनेवाले के लिए (**त्रितम्**) हिंसा करनेवाले को (**जुरताम्**) जीर्णों की (**जराय**) स्तुति करनेवाले के लिए (**अपि**) भी (**चेकिते**) जानता है (**तत्**) उसको तुम लेओ ॥ १० ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! तुम निन्दा करने योग्य की निन्दा तथा स्तुति करने योग्य की प्रशंसा कर अद्भुत कर्मों को करो, जिससे पूरी आयु भोग, वृद्धावस्था पाकर मरण हो उस अनुष्ठान को करो ॥ १० ॥

तान्वो महो मरुत एवयाव्नो विष्णोरेषस्य प्रभृथे हवामहे ।

हिरण्यवर्णान्ककुहान्यतस्रुचो ब्रह्मण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे ॥११॥

पदार्थ—हे (**मरुतः**) मनुष्यो ! जैसे हम लोग (**वः**) तुम्हारे लिए (**तान्**) उन को (**एषस्य**) ऐश्वर्य्यवाले (**विष्णोः**) व्यापक ईश्वर के (**प्रभृथे**) अत्युत्तम पालन में (**महः**) महान् व्यवहार के (**एवयाव्नः**) इस प्रकार विशेष ज्ञान को पाते हैं (**हिरण्यवर्णान्**) हिरण्य—सुवर्ण के समान वर्णोंवाले (**ककुहान्**) बड़े (**यतस्रुचः**) नियम से यज्ञपात्रों के रखनेवाले को (**हवामहे**) स्वीकार करते हैं और (**ब्रह्मण्यन्तः**) अपने को ईश्वर वा वेद की इच्छा करते हुए विद्वानों को (**शंस्यम्**) प्रशंसनीय (**राधः**) धन की (**ईमहे**) याचना करते हैं वैसे तुम हमारे लिए प्रयत्न करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि परस्पर एक-दूसरे से प्रीति के साथ और दुष्टों में अप्रीति के साथ वर्त्त कर व्यापक ईश्वर की भक्ति में प्रयत्न करें ॥ ११ ॥

ते दशग्वाः प्रथमा यज्ञमूहिरे ते नो हिन्वन्तूषसो व्युष्टिषु ।

उषा न रामीररुणैरपोर्णुते महो ज्योतिषा शुचता गोअर्णसा ॥१२॥

पदार्थ—जो (**दशग्वाः**) दशों इन्द्रियों से सिद्धि को प्राप्त होते हैं वे (**प्रथमाः**) बहुत विस्तारयुक्त बुद्धिवाले मुख्य विद्वान् जन (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**ऊहिरे**) प्राप्त होते हैं (**ते**) वे (**उषसः**) प्रभात काल के (**व्युष्टिषु**) प्रतापों में (**नः**) हम लोगों को (**हिन्वन्तु**) बढ़ावें। जो (**अरुणैः**) लाल वर्णों से (**महः**) बड़े (**गोअर्णसा**) जिसमें कि किरण और प्रकाश विद्यमान (**शुचता**) जो पवित्र वा पवित्रता है उस (**ज्योतिषा**) प्रकाश से (**रामीः**) आराम की देने वाली रात्रियों को (**उषा**) प्रभात समय के (**न**) समान (**अप, ऊर्णुते**) न ढाँपते अर्थात् प्रकट करते हैं (**ते**) वे हमारे शिक्षक हों ॥ १२ ॥

भावार्थ—जो क्रियाकाण्ड में कुशल जितेन्द्रिय जन प्रभातकाल के समान अविद्यान्धकार की निवृत्ति करनेवाले मनुष्यों को विद्या और उत्तम शिक्षा से बढ़ाते हैं वे सबको सत्कार करने योग्य हैं ॥ १२ ॥

ते क्षोणीभिररुणेभिर्नाञ्जिभी रुद्रा ऋतस्य सदनेषु वावृधुः ।

निमेघमाना अत्येन पाजसा सुश्चन्द्रं वर्णं दधिरे सुपेशसम् ॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको (वातः) वायु (ओषीभिः) पृथिवियों से (अभिभिः) प्रकट व्यवहारों से (अक्तुभिः) कुछ ललाई लिए प्रकाशों के समान (अह्नाम्) अह के (सवनेषु) स्थानों में (वक्षुः) बढ़ते हैं वा (निमेषमाना:) निश्चित माननेवाले जन (अत्येन) अश्व के समान वेग से और (पाजसा) बल से (सुपेशसम्) सुन्दर रूपयुक्त (सुवसनम्) सुन्दरता से वर्त्तमान सुवर्ण के समान (वर्णम्) स्वरूप को (दधिरे) धारण करते हैं (ते) वे जानने योग्य हैं ॥१३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे पवनों के साथ प्रभातवेला बढ़कर दिन होता और समस्त विविध प्रकार का रूप प्रकट करती है वैसे तुमको अच्छा अपना रूप धारण कर वायुविद्या का प्रकाश करना चाहिए ॥ १३ ॥

ताँ इयानो महि वरूथमूतय उप घेदेना नमसा गृणीमसि।
त्रितो न यान् पञ्च होतॄनभिष्टय आववर्त्तदवरां चक्रियावसे ॥१४॥

पदार्थ—हम लोग (अभिष्टये) अभीष्ट सुख की (ऊतये) रक्षा आदि के अर्थ (इयानः) प्राप्त होता हुआ कोई जन (त्रितः) जो शरीर, मन और आत्मा सम्बन्धी सुख को विस्तृत करता है उसके (न) समान (यान्) जिन (पञ्च) पाँच (अवरान्) अर्वाचीन (होतॄन्) ग्रहण करनेवालों को और पाँच अर्वाचीन (चक्रिया) चाक के समान वर्त्तमानों को अभीष्ट सुख वा (अवसे) कामना के लिए (आववर्त्तत्) सब ओर से वर्त्तता है (तान्) उनको (ऊतये) रक्षा आदि के लिए (महि) बड़े (वरूथम्) श्रेष्ठ घर को प्राप्त हो (घ, इत्) ही निश्चय कर (एना) इस (नमसा) नमस्कार से (उप, गृणीमसि) उपस्तुत करते हैं अर्थात् उनकी अति निकटस्थ ही स्तुति करते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। जैसे कर्मोपासना और ज्ञानविद्या का जाननेवाला अगले-पिछले पवनो को जानकर अपनी और दूसरो की रक्षा के लिए वर्त्तमान है वैसे हम लोग प्रवृत्त हो। जैसे उत्तम प्रासाद को प्राप्त होकर लोग सुखी हो वैसे हम भी होवे ॥ १४ ॥

यया रध्रं पारयथात्यंहो यया निदो मुञ्चथ वन्दितारम्।
अर्वाची सा मरुतो या व ऊतिरो षु वाश्रेव सुमतिर्जिगातु ॥१५॥

पदार्थ—हे (मरुतः) मरणधर्मा मनुष्यो ! (या) जो (ऊतिः) रक्षा (सुमतिः) और सुन्दर बुद्धि (ओ) प्रेरणाओं मे (वः) तुम लोगो की (वाश्रेव) मनोहर के समान (सुजिगातु) प्रशंसा करे वा (यया) जिससे (रध्रम्) अच्छे प्रकार की सिद्धि को (अतिपारयथ) अतीव पार पहुंचाओ और (अंहः) अपराध को निवृत्त करो वा (यया) जिससे (निदः) निन्दाओ को (मुञ्चथ) मोचो अर्थात् छोड़ो (सा) वह (अर्वाची) घोड़ो को प्राप्त होने वाली कोई क्रिया (वन्दितारम्) वन्दना करनेवाले को प्राप्त हो ॥१५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। मनुष्य जिस क्रिया से अधर्म और निन्दा करनेवाले का त्याग और धर्म वा प्रशंसावाले का ग्रहण रक्षा बुद्धि की वृद्धि हो उस क्रिया को निरन्तर करें अर्थात् सदा निन्दा का त्याग और स्तुति का स्वीकार करें ॥१५॥

इस सूक्त में विद्वान् और पवन के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह चौतीसवां सूक्त और इक्कीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

उपेमित्यस्य पञ्चदशर्चस्य पञ्चत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । अपान्नपाद् देवता । १, ४, ६, ७, ९, १०, १२, १३, १५ निचृत्त्रिष्टुप्; ११ विराट् त्रिष्टुप्; १४ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २, ३, ८ भुरिक् पङ्क्तिः ; ५ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचावाले पैंतीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि के विषय को कहते हैं—

उपेमसृक्षि वाजयुर्वचस्यां चनो दधीत नाद्यो गिरो मे।
अपां नपादाशुहेमा कुवित्स सुपेशसस्करति जोषिषद्धि ॥१॥

पदार्थ—जो (वाजयुः) अपने को विज्ञान और अन्नादिकों की इच्छा करनेवाला (वचस्याम्) जल में हुई क्रिया का वा (उप, ईम्) समीप मे जल को (असृक्षि) सिद्ध करता है और (चनः) चणकादि अन्न को (दधीत) धारण करे वा जो (अपान्नपात्) जलों के बीच न गिरनेवाला (नाद्यः) अव्यक्त शब्द करने को योग्य तथा (आशुहेमा) शीघ्र बढ़नेवाली (कुवित्) बहु प्रकार की क्रिया और (मे) मेरी (गिरः) वाणी का सम्बन्ध करनेवाला व्यवहार है (सः, हि) वही (सुपेशसः) सुन्दर रूपवालों को (करति) करे और (जोषिषत्) उन्हें सेवे ॥ १ ॥

भावार्थ—जो सूर्य जल को सींच और वर्षाकर नदियों को बहाता और अन्नों को उत्पन्न करता, जिसके खाने से प्राणियों को स्वरूपवान् करता है वह सबको युक्ति के साथ सेवन करने योग्य है ॥ १ ॥

अब ईश्वरस्तुति का विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इमं स्वस्मै हृद आ सुतष्टं मन्त्रं वोचेम कुविदस्य वेदत्।
अपां नपादसुर्यस्य मह्ना विश्वान्यर्यो भुवना जजान ॥२॥

पदार्थ—जो (नपात्) अविनाशी (अर्यः) सर्वस्वामी ईश्वर (मह्ना) अपने महत्त्व से (विश्वानि) समस्त (भुवना) लोकलोकान्तरों को (जजान) उत्पन्न करता है वा जो (अपाम्) जलों के बीच (कुवित्) बहुत व्यवहार को (वेदत्) जाने वा (अस्य) इस (असुर्यस्य) मेघ के बीच उत्पन्न हुए व्यवहार का प्रबन्ध करता है उस (हृदः) हृदय के समीप स्थित (अस्मै) इस ईश्वर के लिए (इमम्) इस (सुतष्टम्) सुन्दर सुख के सिद्ध करनेवाले व्यवहार वा (मन्त्रम्) विचार को हम लोग (सुवोचेम) अच्छे प्रकार कहे ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर ने समग्र जगत् बनाया उसी की स्तुति, प्रार्थना वा उपासना करो ॥ २ ॥

अब मेघ के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

समन्या यन्त्युप यन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यः पृणन्ति।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपां नपातं परि तस्थुरापः ॥३॥

पदार्थ—जो (अन्याः) और (नद्यः) नदी (समानम्) तुल्य (ऊर्वम्) दुःखो के नष्ट करनेवाले को (संयन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होतीं वा (अन्याः) और (उप, यन्ति) उसको उस के समीप से प्राप्त होती हैं (तम्, उ) उसी (अपां, नपातम्) जलो के बीच नाशरहित (दीदिवांसम्) अतीव प्रकाशमान (शुचिम्) पवित्र अग्नि का (शुचयः) पवित्र (आपः) जल (परि, तस्थुः) सब ओर से प्राप्त हो स्थिर होते है वे जल सबको (पृणन्ति) तृप्त करते हैं ॥३॥

भावार्थ—जैसे नदी आप समुद्र को प्राप्त होकर स्थिर और शुद्ध जलवाली होती है वैसे जल मेघमण्डल को प्राप्त होकर दिव्य होते हैं वैसे स्त्री अभीष्ट पति और पति अभीष्ट स्त्री को पाकर स्थिरचित्त होते हैं ॥ ३ ॥

अब विवाह विषय को अगले मन्त्रो मे कहा है—

तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः।
स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (अस्मेराः) हम लोगो को प्रेरणा देनेवाली (मर्मृज्यमानाः) निरन्तर शुद्ध (युवतयः) युवति (शिक्वभिः) सेचनाओ से (शुक्रेभिः) शुद्ध जल वा वीर्यों के साथ (आपः) नदियाँ समुद्र को जैसे वैसे (तम्) उस (युवानम्) युवा पुरुष को (परियन्ति) सब ओर से प्राप्त होतीं वैसे (सः) वह, तू (अनिध्मः) प्रकाशमान (अस्मे) हम लोगो को (रेवत्) श्रीमान् के समान (दीदाय) प्रकाशित कर वा और (अप्सु) जलो मे (घृतनिर्णिक्) जल को पुष्टि देनेवाले सूर्य्य के समान हम लोगो को श्रेष्ठ उपदेश से शुद्ध कर ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे अच्छे प्रकार युवावस्था को प्राप्त युवति स्त्री ब्रह्मचर्य से की विद्या जिन्होने ऐसे हृदय को प्रिय, पूर्ण विद्यावान् युवा पतियो को अच्छे प्रकार परीक्षा कर प्राप्त होती वैसे पुरुष भी इन को प्राप्त हो जैसे सूर्य जल को संशोधन कर वृष्टि से सब को सुखी करता है वैसे अच्छे प्रकार शुद्ध परस्पर प्रीतिमान् विद्वान् विवाह किये हुए स्त्री पुरुष अपने सन्तानो को शुद्ध करने को योग्य है ॥ ४ ॥

अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम्।
कृता इवोप हि प्रसर्स्रे अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम् ॥५॥२२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (कृताइव) निष्पन्न हुई-सी (तिस्रः) तीन (देवीः) निरन्तर प्रकाशमान (नारीः) स्त्री हम लोगो के (अव्यथ्याय) व्यथन अर्थात् नष्ट करने को नहीं योग्य (देवाय) काम के लिए (अन्नम्) अन्न (दिधिषन्ति) धारण करती है तथा जो (अप्सु) अन्तरिक्ष प्रदेशो मे जल (उप, प्रसर्स्रे) अच्छे प्रकार पास मे बहते है उन (पूर्वसूनाम्) पहले सन्तानो को उत्पन्न करनेवालियों का (सः) वह विद्वान् सन्तान (हि) ही (पीयूषम्) अमृत के समान दुग्ध को (धयति) पीता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। तीन प्रकार की निश्चय स्त्रियाँ होती हैं जो समान पतियो वाली होकर विधवा हो तो सन्तानो की उत्पत्ति के लिए अपने समान पुरुषों से वीर्य लेकर धर्म से सन्तानो को उत्पन्न करे, जो सन्तानों की विशेष इच्छा न तो ब्रह्मचर्य मे स्थिर हो ॥ ५ ॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर्द्रुहो रिषः संपृचः पाहि सूरीन्।
आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यं नारातयो वि नशन्नानृतानि ॥६॥

पदार्थ—जिससे (अत्र) इस व्यवहार में (अस्य) इस (अश्वस्य) महान् वीर्य देनेवाले का (जनिम) जन्म होता है उससे यहाँ (स्वः) सुख बढ़ता है जो (परः) परमोत्तम आप (आमासु) घर में हुई (पूर्षु) पुरियो में (द्रुहः)

ईर्ष्यक (रिपः) हिंसा और (संपृचः) सयोग करनेवालो के (मर्तान्) सम्बन्धी विद्वानो को (अप्रमृष्यम्, च) और सहने को न योग्य व्यवहारों को (पाहि) रक्षा करो और आपको (अरातयः) शत्रुजन (न) नहीं पीडा देने तथा (अनृतानि) मिथ्या कर्मों को (न) नहीं (विनशन्) विशेषता से प्राप्त होते हैं ॥६॥

भावार्थ—जिस कुल के बीच बडे महात्मा जन उत्पन्न होते हैं वहाँ सुख बढ़ता है और जहाँ शरीर और आत्मा के बलयुक्त मनुष्य हों वहाँ शत्रुजन पीडा नहीं कर सकते हैं और बलवान् पुरुष झूठ अधर्मयुक्त कामो का उत्साह नही करते हैं ॥ ६ ॥

स्व आ दमे सुदुघा यस्य धेनुः स्वधां पीपाय सुभ्वन्नमत्ति ।

सो अपां नपादूर्जयन्नप्स्व१न्तर्वसुदेयाय विधते वि भाति ॥७॥

पदार्थ—जिसके (स्वे) अपने (दमे) घर मे (सुदुघा) सुन्दरता से पूर्ण करनेवाली (धेनुः) विद्या और शिक्षायुक्त वाणी प्रवृत्त है (सः) वह (अपाम्, नपात्) प्राणो के बीच अविनाशी होता और (अप्सु) प्राणो के (अन्तः) भीतर (ऊर्जयन्) बल को प्राप्त होता हुआ (स्वधाम्) सुन्दर जल को (पीपाय) पीता और (सुभु) सुन्दर सस्कारो से भावना दी जाती उस (अन्नम्) भोजन करने योग्य अन्न को (अत्ति) खाता है तथा (विधते) सेवा करते हुए (वसुदेयाय) जिसे धन देना योग्य है उसके लिए (आ, विभाति) प्रकाश को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपने सम्बन्धियों मे कामो की परिपूर्णता के लिए सुन्दर शिक्षित वाणी, सुन्दर शुधा हुआ जल और सुन्दर संस्कार किये हुए अन्नो की सेवा करते, सुन्दर शिक्षित सेवक के लिए यथायोग्य वस्तु देते और काम पर सब व्यवहारो को सेवते हैं वे सदा सुखी रहते हैं ॥ ७ ॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

यो अप्स्वा शुचिना दैव्येन ऋतावाजस्र उर्विया विभाति ।

वया इदन्या भुवनान्यस्य प्र जायन्ते वीरुधश्च प्रजाभिः ॥८॥

पदार्थ—(यः) जो (ऋतावा) सत्य का अच्छे प्रकार सेवन करता हुआ (अजस्रः) निरन्तर (दैव्येन) विद्वानो से किये हुए (शुचिना) पवित्र व्यवहार से (उर्विया) बहुरूप (विभाति) प्रकाशित होता है वह (अन्या) और (भुवनानि) लोक-लोकान्तरो को (वयाः) शाखाओ को तथा (प्रजाभिः) प्रजा के समान (इत्) ही (अप्सु) व्यापक जलरूपी पदार्थों मे जो (प्रजायन्ते) उत्पन्न होते हैं उन्हें और (अस्य) इस ससार के बीच जो (वीरुधः च) ओषधियाँ (आ) उत्पन्न होती है उन सबको जाने ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो पवित्र बुद्धि, दिव्य-कर्म करनेवाले निरन्तर सृष्टिक्रम को जानते हैं वे सदा आनन्दित होते हैं ॥ ८ ॥

अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिह्मानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः ।

तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर्हिरण्यवर्णाः परि यन्ति यह्वीः ॥९॥

पदार्थ—जो (जिह्मानाम्) कुटिलो के (ऊर्ध्वः) ऊपर स्थित (विद्युतम्) बिजुली को (वसानः) आच्छादित करता हुआ (अपाम्, नपात्) जलो के बीच न गिरने का शीलवाला मेघ (उपस्थम्) समीपस्थ पदार्थों को प्राप्त होकर (आ, अस्थात्) स्थिर होता है (तस्य, हि) उसी की (ज्येष्ठम्) अतीव प्रशसनीय (महिमानम्) महिमा को (वहन्तीः) प्रवाहरूप से प्राप्त करती हुई (यह्वीः) बडी (हिरण्यवर्णाः) हिरण्य अर्थात् सुवर्ण के समान वर्णवाली नदियाँ (परि, यन्ति) सब ओर से जाती है वैसे प्रजागण राजा मे बर्त्ताव करे ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पवन की महिमा को नदियाँ प्राप्त होती है वैसे विद्वान् जन राजा के प्रति वर्त्ते ॥ ९ ॥

हिरण्यरूपः स हिरण्यसंदृगपां नपात्सेदु हिरण्यवर्णः ।

हिरण्ययात्परि योनेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै ॥१०॥२३॥

पदार्थ—जो (हिरण्यदाः) वायु तेज देते है वे (अस्मै) इस प्राणी के लिए (अन्नम्) अन्न को (ददति) देते हैं (सः) वह (हिरण्यरूपः) तेज-स्वरूप (हिरण्यसंदृक्) तेज को दर्शाता (स, इत्, उ) वही (हिरण्यवर्णः) सुवर्ण के समान वर्णयुक्त (अपाम्, नपात्) जलो के बीच न गिरनेवाला (हिरण्ययात्) तेज स्वरूप (योनेः) निज कारण से (परि, निषद्य) सब ओर से निरन्तर स्थिर हुआ अग्नि सबकी पालन करता है ॥ १० ॥

भावार्थ—जो अग्नि पवन से उत्पन्न हुआ समस्त पदार्थों को दिखानेवाला सर्व पदार्थों के भीतर रहता हुआ सर्वविद्याओ का निमित्त है उसको जानकर प्रयोजन सिद्ध करना चाहिए ॥ १० ॥

तदस्यानीकमुत चारु नामापीच्यं वर्धते नप्तुरपाम् ।

यमिन्धते युवतयः समित्था हिरण्यवर्णं घृतमन्नमस्य ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (अस्य) इस अग्नि का (चारु) सुन्दर (अनीकम्) सैन्य के समान तेज (उत) और (अपीच्यम्) अपने गुणों से निश्चित (नाम) आख्या अर्थात् कथन (अपाम्) प्राणो के (नप्तुः) पौत्र के समान व्यवहार से (वर्धते) बढ़ता है वा (यम्) जिसको (युवतयः) प्रबल यौवनवती स्त्री (इत्था) इस हेतु से (समिन्धते) अच्छे प्रकार प्रदीप्त करती हैं वा जो (हिरण्यवर्णम्) तेजोमय शोभन शुद्धस्वरूप (घृतम्) जल व घी और (अन्नम्) अच्छा शोधा हुआ खाने योग्य अन्न (अस्य) इस अग्नि के सम्बन्ध में वर्त्तमान है उसको तुम जानो ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे युवती युवा पुरुष को प्राप्त होकर पुत्र और पौत्रो से बढती है वैसे जो अग्निविद्या को जानते हैं वे धन-धान्यो से बढ़ते हैं ॥११॥

अस्मै बहूनामवमाय सख्ये यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।

सं सानु मार्ज्मि दिधिषामि बिल्मैर्दधाम्यन्नैः परि वन्द ऋग्भिः ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग जैसे (अस्मै) इस (अवमाय) न्यून वा रक्षा करनेवाले (बहूनाम्) बहुत पदार्थों के बीच (सख्ये) मित्र के लिए (नमसा) अन्नादि पदार्थ (हविर्भिः) खाने व देने योग्य पदार्थ और (यज्ञैः) मिली हुई क्रियाओं मे उत्तम व्यवहार को (विधेम) प्राप्त हो वा उसकी सेवा करें वा जैसे मैं जिसके (सानु) अच्छे प्रकार सेवने योग्य पदार्थ को (सं, मार्ज्मि) अच्छा शुद्ध करूँ तथा (दिधिषामि) उपदेश करूँ वा (बिल्मैः) उत्तम दीप्ति को प्राप्त साधनो से युक्त (अन्नैः) अच्छा सस्कार किये हुए अन्नादि पदार्थों से (दधामि) धारण करता हूँ (ऋग्भिः) मन्त्रो मे (परिवन्दे) सब ओर से स्तुति करता हूँ उसकी तुम लोग भी सेवा करो ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे मनुष्य बहुतो में से अपने मित्र को तृप्त करते है वा उसके लिए अन्नपानादि देते हैं। परस्पर हित का उपदेश करते है वैसे सब भी इतनी विद्याओ को प्राप्त होकर औरो के प्रति उपदेश करें तथा ऐश्वर्य को प्राप्त होके औरो के लिए दे ॥ १२ ॥

अब इस जगत् मे कौन लोग सुख पाते हैं इस विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—

स ईं वृषाजनयत्तासु गर्भं स ईं शिशुर्धयति तं रिहन्ति ।

सो अपां नपादनभिम्लातवर्णोऽन्यस्येवेह तन्वा विवेष ॥१३॥

पदार्थ—(सः) वह (वृषा) वर्षा करनेवाला अग्नि (तासु) उन जलो मे (ईम्) ही (गर्भम्) गर्भ को (अजनयत्) उत्पन्न करता है और (सः) वह (शिशुः) बालक (ईम्) ही (धयति) पीता है (तम्) उसको और (रिहन्ति) चाटते है (सः) वह (अपाम्) जलो के बीच (अनभिम्लातवर्णः) जिसका वर्ण सब ओर से क्षीण न हो (नपात्) सन्तान (अन्यस्येव) जैसे और के शरीर मे प्रविष्ट होता वैसे ही (इह) इस ससार मे (तन्वा) शरीर के साथ (विवेष) व्याप्त होता है ॥ १३ ॥

भावार्थ—जो पुरुष अपनी स्त्री मे गर्भ धारण कर सन्तान को उत्पन्न वा पालन कर और स्वादिष्ठ अन्न खा शरीर की प्रसन्नाकृति से चेष्टा करते हैं वे इस ससार मे सुखो को प्राप्त होते है ॥ १३ ॥

अस्मिन्पदे परमे तस्थिवांसमध्वस्मभिर्विश्वहा दीदिवांसम् ।

आपो नप्त्रे घृतमन्नं वहन्तीः स्वयमत्कैः परि दीयन्ति यह्वीः ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (आपः) प्राण (अत्कैः) भोगने योग्य (अध्वस्मभिः) न गिरनेवाले गुण, कर्म, स्वभावो के साथ (अस्मिन्) इस (परमे) सबो से अति उत्तम (पदे) प्राप्त होने योग्य व्यवहार मे (तस्थिवांसम्) स्थित (विश्वहा) सब दिन (दीदिवांसम्) देदीप्यमान ईश्वर को (वहन्तीः) प्राप्त करती हुई (स्वयम्) आप (यह्वीः) महान् भी (परि, दीयन्ति) न० उनके द्वारा (नप्त्रे) पौत्र के लिए (घृतम्) जल और (अन्नम्) अन्न को तुम लोग प्राप्त होओ ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य प्रतिदिन सच्चिदानन्दस्वरूप अपने मे स्थित ईश्वर का ध्यान करते है व परमपद ब्रह्म को प्राप्त होकर आनन्द को प्राप्त होते है और उत्तम सुखप्राप्ति से शीघ्र क्षीण नही होते ॥ १४ ॥

अयांसमग्ने सुक्षितिं जनायायांसमु मघवद्भ्यः सुवृक्तिम् ।

विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१५॥२४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! जिस (अयांसम्) जिससे भुजाएँ प्राप्त हुईं (सुक्षितिम्) जो सुन्दर पृथिवीयुक्त (सुवृक्तिम्) जिसकी दुष्ट कर्मों का त्याग करता वृत्ति (उ) और (जनाय) मनुष्यो के लिए वा (अयांसम्) जिससे भुजाएँ प्राप्त हुईं (मघवद्भ्यः) परम धनवान् मनुष्यो के लिए (यत्) जिस (भद्रम्) कल्याणरूपी (विश्वम्) जगत् को (सुवीराः) सुन्दर वीर अर्थात् प्राप्त हुआ शरीर बल जिनको वे (देवाः) विद्वान् जन (अवन्ति) रक्षा करते हैं (तत्) उसको (बृहत्) बहुत (विदथे) यज्ञ में हम लोग (वदेम) कहें अर्थात् उसको उपदेश दें ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो जन धर्म के अनुकूल आचरण करनेवालो की अच्छे प्रकार रक्षा और दुष्टों को दण्ड दे जगत् के कल्याण के लिए बडे-बडे उत्तम कर्मों को करें वे सबको सर्वदा सत्कार करने योग्य हैं ॥ १५ ॥

इस सूक्त में अग्नि, मेघ, अपत्य, विवाह और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह पैंतीसवां सूक्त और चौबीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

तुभ्यमिति षड्ऋचस्य षट्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । १ इन्द्रो मधुश्च, २ मरुतो माधवश्च; ३ त्वष्टा शुक्रश्च ; ४ अग्निः शुचिश्च , ५ इन्द्रो नभश्च ; ६ मित्रावरुणौ नभस्यश्च देवता । १, ४ स्वराट् त्रिष्टुप् ; ५, ६ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २, ३ जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले छत्तीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ट गा अपोऽधुक्षन्त्सीमविभिरद्रिभिर्नरः ।
पिबेन्द्र स्वाहा प्रहुतं वषट्कृतं होत्रादा सोमं प्रथमो य ईशिषे ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) यज्ञपति जो (हिन्वानः) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ (तुभ्यम्) तुम्हारे लिए (वसिष्ट) बसे वा, हे (नरः) नायक सर्वोत्तम जनो ! आप लोग (अविभिः) रक्षा करनेवाले (अद्रिभिः) मेघों के साथ (सीम्) आदित्य के समान (गाः) वाणी और (अपः) प्राणों को (अधुक्षन्) पूर्ण करो । हे (इन्द्र) यज्ञपते ! (प्रथमः) आविर्भूत आप (स्वाहा) उत्तम क्रिया के साथ (प्रहुतम्) अत्युत्तमता से गृहीत (होत्रात्) दान के कारण (वषट्कृतम्) क्रिया से सिद्ध किये हुए (सोमम्) उत्तम ओषधियों के रस को (आ, पिब) अच्छे प्रकार पियो (यः) जो आप सबके (ईशिषे) ईश्वर हो अर्थात् स्वामी अधिपति हो वह आप भी वैसे होओ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो यज्ञानुष्ठान से जल को शुद्ध कर उससे उत्पन्न हुए ओषधियों के रस को पीकर धर्म के अनुष्ठान से अपने या औरों के लिए ऐश्वर्य बढ़ाते हैं वे सब ओर से बढ़ते हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत ।
आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥२॥

पदार्थ—हे (भरतस्य) धारण करनेवाले के (सूनवः) पुत्रो (नरः) नायक मनुष्यो ! जैसे (संमिश्लाः) अच्छे प्रकार मिले हुए (शुभ्रासः) श्वेतवर्ण (प्रियाः) प्यारे जन (यज्ञैः) अच्छी क्रियाओं से युक्त (ऋष्टिभिः) प्राप्ति करानेवाली (पृषतीभिः) पवन की गतियों से (यामन्) प्राप्त हुए समय में (उत) और (अञ्जिषु) कामना करते हुओं में (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (आसद्य) पहुँचकर (पोत्रात्) पवित्र व्यवहार से उत्पन्न हुए (दिवः) प्रकाश से (सोमम्) ओषधियों के रस को पीते हैं वैसे तुम (आ, पिबत) पिओ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे पवन अन्तरिक्ष में भ्रमते हुए सब प्राणियों को जिलाते हैं और प्राणस्वरूप से प्यारे हैं तथा सबसे रस ऊपर को पहुँचा और वर्षा कर सबको आनन्दित करते हैं वैसे मनुष्यों को होना चाहिए ॥ २ ॥

अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन ।
अथा मन्दस्व जुजुषाणो अन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ॥३॥

पदार्थ—हे (त्वष्टः) छिन्न-भिन्न करनेवाले पुरुष ! (सुमद्गणः) अच्छे माने हुए गण जिसके (जुजुषाणः) ऐसे निरन्तर सेवा करते हुए आप (देवेभिः) दिव्य गुणों और (जनिभिः) जन्मों के साथ (अन्धसः) अन्न के भोगों को कीजिए (अथ) इसके अनन्तर (मन्दस्व) आनन्दित हूजिए । हे (सुहवाः) अच्छे प्रकार प्रशंसा को प्राप्त तुम लोग (बर्हिषि) अन्तरिक्ष में (नः) हमारी (अमेव) घर को जैसे वैसे अन्तरिक्ष में (नि, सदतन) निरन्तर जाओ, पहुँचो, हमें (रणिष्टन) उपदेश देओ (हि) निश्चय से हम लोगों को (आ, गन्तन) आओ, प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—जैसे अन्तरिक्ष में स्थिर पवन सबको प्राप्त होते और छोड़ते हैं वैसे विद्वान् धार्मिक जन धर्म को प्राप्त हों तथा दुष्ट जन अधर्म का त्याग करें, और सत्य का उपदेश दें ॥ ३ ॥

आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन्होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु ।
प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात्तव भागस्य तृप्णुहि ॥४॥

पदार्थ—हे (होतः) सुख देनेवाले (उशन्) कामना करते हुए (विप्र) मेधावी जन ! आप नियत अपने कर्म वा (इह) इस संसार में (देवान्) दिव्य गुणों को (आ, वक्षि) अच्छे प्रकार कहते (च) और प्राप्त हुए कर्मों को (यक्षि) प्राप्त होते तथा दूसरे प्राणियों को उनका उपदेश देते हैं इसी से (त्रिषु) कर्म, उपासना, ज्ञान इन तीनों (योनिषु) निमित्तों में (निषद) निरन्तर स्थिर हो और (प्रस्थितम्) प्रकर्षता से स्थित विषय को (प्रति, वीहि) प्राप्त होओ (सोम्यम्) शीतलगुण सम्पन्न (मधु) मीठे जल को (पिब) पीओ और (तव) तुम्हारे (भागस्य) सेवने योग्य व्यवहार के (आग्नीध्रात्) उस भाग से जिससे अग्नि को धारण करते हैं (तृप्णुहि) तृप्त हूजिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य कर्मोपासना और ज्ञानों में प्रयत्न कर सत्य की कामना करते हुए मनुष्यों को अध्यापन और उपदेश से विद्वान् करते हैं वे नित्य सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः ।
तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत्पिब ॥५॥

पदार्थ—हे (मघवन्) अति उत्तम धनवाले ! जो (ते) आपके (तन्वः) शरीर के सम्बन्धी (प्रदिवि) अतीव प्रकाश में (सहः) बल (ओजः) पराक्रम तथा (बाह्वोः) भुजाओं के बीच (हितः) धारण (सुतः) और उत्पन्न किया हुआ (तुभ्यम्) आपके लिए और (आभृतः) अच्छे प्रकार पुष्ट किया पुत्र है (स्यः) सो (एषः) यह (नृम्णवर्धनः) धन का बढ़ानेवाला होता है (त्वम्) आप (अस्य) इसके सम्बन्धी (ब्राह्मणात्) ब्राह्मण से (तृपत्) तृप्त होते हुए (आ, पिब) अच्छे प्रकार ओषधि रस को पिओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो तुम्हारे लिए शारीरिक और आत्मीय बल को बढ़ावें उनसे धन और उनकी अच्छे पदार्थों से सेवा करो ॥ ५ ॥

जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे सत्तो होता निविदः पूर्व्या अनु ।
अच्छा राजाना नम एत्यावृतं प्रशास्त्रादा पिबतं सोम्यं मधु ॥६॥२५॥

पदार्थ—हे (राजाना) राजजनो ! (मे) मेरे (हवस्य) देने-लेने योग्य व्यवहार सम्बन्धी (यज्ञम्) विद्वानों के सत्कार आदि काम को (जुषेथाम्) सेवो (पूर्व्याः) पूर्व विद्वानों ने सेवन की हुई (निविदः) जिन से निरन्तर विषयों को जानते हैं उन वाणियों को (अच्छ, अनु, बोधतम्) अच्छे प्रकार अनुकूलता से जानो । जैसे (सत्तः) प्रतिष्ठित (होता) देनेवाला (आवृतम्) अत्युत्तमता से ढपे हुए (नमः) अन्न को (एति) प्राप्त होता है वैसे तुम दानों (प्रशास्त्रात्) उत्तम शिक्षा करने वाले से (सोम्यम्) शान्ति वा शीतलता के योग्य (मधु) मधुर गुणयुक्त रस को (आ, पिबतम्) अच्छे प्रकार पिओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे पढ़ाने वा उपदेश करनेवाले आप लोगों के प्रति प्रीति से विद्यादान और सत्योपदेश के साथ वर्त्तमान हैं वैसे आप भी वर्त्तें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह छत्तीसवां सूक्त पचीसवां वर्ग और सप्तमाध्याय समाप्त हुआ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां परमविदुषां श्रीविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण परमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते आर्य्यभाषासमन्विते सुप्रमाणयुक्ते ऋग्वेदभाष्ये द्वितीयाष्टके सप्तमोऽध्याय आदितः पञ्चमश्चोऽध्यायः परिपूर्णः । इति ॥

अथाष्टमाध्यायारम्भः ॥

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥१॥

मन्दस्वेत्यस्य षडृचस्य सप्तत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । १—४ द्रविणोदा , ५ अश्विनौ, ६ अग्निश्च देवता । १, ५ निचृज्जगती, २ जगती, ३ विराड् जगती छन्दः । निषाद स्वर । ४, ६ भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवत स्वर ॥

अब छः ऋचावाले सैंतीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र मे विद्वानों के गुणों का उपदेश करते हैं—

मन्द॑स्व हो॒त्रादनु॒ जोष॒मन्ध॒सोऽध्व॑र्यवः॒ स पू॒र्णां व॑ष्ट्या॒सिच॑म् ।
तस्मा॑ ए॒तं भ॑रत त॒द्वशो॑ द॒दिर्हो॒त्रात्सोमं॑ द्रविणोदः॒ पिब॑ ऋ॒तुभिः॑ ॥१॥

पदार्थ—हे (द्रविणोद) धन देनेवाले ! आप (होत्रात्) लेने से (अन्धस) अन्न की (जोषम्) प्रीति का (अनु, मन्दस्व) अनुमोदन करो और जैसे (स) वह विद्वान् (पूर्णाम्) पूर्ण वृष्टि को (आसिचम्) अच्छे प्रकार सींचनेवाले की (वष्टि) कामना करता है, वैसे हे (अध्वर्यव) अपने को यज्ञ की इच्छा करनेवाले तुम (तस्मै) उसके लिए (एतम्) इस को (भरत) धारण करो । हे धन देनेवाले पुरुष ! (तद्वश) उस की इच्छावान् (ददि) दाता आप (ऋतुभि) वसन्तादि ऋतुओं के साथ (होत्रात्) देनेवाले से (सोमम्) ओषधियों के रस को (पिब) पिओ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों का परस्पर के लिए विद्या, धन और धान्य आदि पदार्थ देकर निरन्तर आनन्द करना चाहिए ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—

यमु॒ पूर्व॒महु॑वे॒ तमि॒दं हु॑वे॒ सेदु॒ हव्यो॑ द॒दिर्यो नाम॒ पत्य॑ते ।
अ॒ध्व॒र्युभिः॒ प्रस्थि॑तं सो॒म्यं मधु॑ पो॒त्रात्सोमं॑ द्रविणोदः॒ पिब॑ ऋ॒तुभिः॑ ॥२॥

पदार्थ—हे (द्रविणोद) धन देनेवाले ! जैसे (य) जो (ददि) देने वाला (हव्य) ग्रहण करने योग्य मैं (यम्, उ) जिसको (पूर्वम्) प्रथम (अहुवे) होमता हूँ (स) सो मैं (तम्) उस (इदम्) इसको (नाम) प्रसिद्ध (इत्) ही (उ) तर्क-वितर्क के साथ (पत्यते) पति करता अर्थात् रक्षक की इच्छा करने वाले के लिए (हुवे) ग्रहण करता हूँ । और (अध्वर्युभि) अपने को हिंसा न चाहनेवाले जनों तथा (ऋतुभि) वसन्तादि ऋतुओं के साथ वर्त्तमान जैसे मैं (प्रस्थितम्) ओषधियों से निकाले हुए (सोम्यम्) सोम के योग्य (मधु) मधुर गुणयुक्त रस को पीता हूँ वैसे (पोत्रात्) पवित्र करनेवाले से (सोमम्) महौषधियों के रस को तू (पिब) पी ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो अविद्वान् पुरुष विद्वान् के साथ सङ्गति कर अन्न-पान आदि परीक्षा करके उसको सेवते है वे सुखी होते हैं ॥ २ ॥

मेद्य॑न्तु ते॒ वह्न॑यो॒ येभि॒रीय॒सेऽरि॑षण्यन्वीळयस्वा वनस्पते ।
आ॒यूया॑ धृष्णो अभि॒गूर्या॒ त्वं ने॒ष्ट्रात्सोमं॑ द्रविणोदः॒ पिब॑ ऋ॒तुभिः॑ ॥३॥

पदार्थ—हे (द्रविणोद) धन के देने और (वनस्पते) किरण समूह की रक्षा करनेवाले ! (धृष्णो) प्रगल्भ आप जैसे (वह्नय) पदार्थ पहुँचानेवाले (ते) आपके (सोमम्) ओषध्यादि रस को (मेद्यन्तु) सचिक्कन अपने को चाहें वा (येभि) जिनके साथ आप (ईयसे) प्राप्त होते हो वैसे उनके साथ (अरिषण्यन्) धन की न कांक्षा करते हुए (वीळयस्व) स्तुति कीजिए (अभिगूर्य) और सब ओर से उद्यम कर (आयूय) और मेल कर (नेष्ट्रात्) प्राप्ति से (त्वम्) आप (ऋतुभि) वसन्तादि ऋतुओं के साथ (सोमम्) ओषध्यादि के रस को (पिब) पिओ ॥ ३ ।

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । किसी को विना उद्यम के न रहना चाहिए और ऋतुओं के प्रति अनुकूल व्यवहार करके सुख बढ़ाना चाहिए ॥ ३ ॥

अपा॑द्धो॒त्रादु॒त पो॒त्राद॑मत्तो॒त ने॒ष्ट्राद॑जुषत॒ प्रयो॑ हि॒तम् ।
तु॒रीयं॒ पात्र॒मसृ॑क्त॒मम॑र्त्यं द्रविणो॒दाः पि॑बतु द्राविणोद॒सः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (द्रविणोद) धन देनेवाला (होत्रात्) हवन मे (उत) और (पोत्रात्) पवित्र व्यवहार से (प्रय) मनोहर अन्नादि पदार्थ (हितम्) जो कि सुख करनेवाला है उसको (अपात्) पीये (अमत्त) हर्ष को प्राप्त हो (उत) और (नेष्ट्रात्) पदार्थ प्राप्ति से (अजुषत) प्रसन्न हो वैसे (द्राविणोदस) जो धन को भोगता उस ऋत्विज् का मनोहर अन्नादि पदार्थ जो सुख करनेवाला (तुरीयम्) चतुर्थ (अमर्त्यम्) नाश से रहित (असृक्तम्) अकोमल (पात्रम्) जो पीने योग्य है उसको (पिबतु) पिओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो हवन और अपवित्र को पवित्र करनेवाली प्राप्ति से हित साध सकते हैं वे प्रीतिमान् होते हैं ॥ ४ ॥

अ॒र्वाञ्च॑म॒द्य य॒य्यं॑ नृ॒वाह॑णं॒ रथं॑ युञ्जाथामि॒ह वां॑ वि॒मोच॑नम् ।
पृ॒ङ्क्तं ह॒वींषि॒ मधु॑ना॒ हि कं॑ ग॒तमथा॒ सोमं॑ पिबतं वाजिनीवसू ॥५॥

(पदार्थ—हे (वाजिनीवसू) वेगवती क्रिया को बसानेवाले शिल्पी जनो ! तुम ((अद्य) आज (यय्यम्) जो अच्छे प्रकार पहुँचता हुआ (अर्वाञ्चम्) नीचे-नीचे चलनेवाला (नृवाहणम्) और मनुष्यों को पहुँचाता है उस (रथम्) रमणीय मनोहर यान को (युञ्जाथाम्) जोड़ो और (इह) इस यान मे (मधुना) मधुर गुण के साथ वर्त्तमान जो (हवींषि) देने-लेने योग्य वस्तु हैं उनको (पृङ्क्तम्) संयुक्त कराओ (हि) और निश्चय से (कम्) किस देश को (गतम्) प्राप्त होओ (सोमम्) तथा ओषध्यादि रस को (पिबतम्) पिओ (अथ) इसके अनन्तर (वाम्) तुम दोनों का (विमोचनम्) विशेषता से छूटना हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो शिल्पविद्या के पढ़ानेवाले और पढ़नेवाले काष्ठादिकों से निर्माण किये यानों को अग्नि और जलादि से चला और देशान्तर मे जाकर धन को अच्छे प्रकार उन्नत करते हैं वे निरन्तर सुख पाते हैं ॥ ५ ॥

जोष्य॑ग्ने स॒मिधं॒ जोष्याहु॑तिं॒ जोषि॒ ब्रह्म॒ जन्यं॒ जोषि॑ सुष्टु॒तिम् ।
विश्वे॑भि॒र्विश्वाँ॑ ऋ॒तुना॑ वसो म॒ह उ॒शन्दे॒वाँ उ॑श॒तः पा॑यया ह॒विः ॥६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (वसो) निवास करनेवाले अग्नि के समान आप जिस कारण (समिधम्) प्रदीप्त करनेवाली क्रिया को (जोषि) सेवते (आहुतिम्) वेदी मे डाली हुई वस्तु (जोषि) सेवते (ब्रह्म) अन्न और (विश्वान्) सब पदार्थों का (जोषि) सेवन करते (जन्यम्) उत्पन्न करने योग्य पदार्थ वा (सुष्टुतिम्) सुन्दर प्रशंसा को (जोषि) सेवते इस कारण (विश्वेभि) सब (ऋतुना) वसन्त आदि ऋतुसमूह के साथ (मह) बड़े-बड़े (उशत) कामना करनेवाले (देवान्) विद्वानों की (उशन्) कामना करते हुए उनको (हवि) देने योग्य वस्तु (पायय) पियाओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे बिजुली अग्नि काष्ठ आदि पदार्थों का सेवन करके भी नहीं जलाता वैसे ही सबके साथ बसकर उनका नाश न करना चाहिए ऐसे होने पर कार्यसिद्धि होती है ॥ ६ ॥

इस सूक्त मे विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह सैंतीसवां सूक्त और प्रथम वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

उदित्यष्टत्रिंशत्तमस्यैकादशर्चस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । सविता देवता । १, ५ निचृत् त्रिष्टुप्; २ त्रिष्टुप्, ३, ४, ६, १०, ११ विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवत स्वर । ७, ८ स्वराट् पङ्क्ति., ९ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चम स्वर. ॥

अब अड़तीसवें सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में ईश्वर के विषय को कहते हैं—

उदु॒ ष्य दे॒वः स॑वि॒ता स॒वाय॑ शश्वत्त॒मं तद॑पा॒ वह्नि॑रस्थात् ।
नू॒नं दे॒वेभ्यो॒ वि हि धाति॒ रत्न॒मथाभ॑जद्वी॒तिहो॑त्रं स्व॒स्तौ ॥१॥

पदार्थ—जो (वह्नि) पहुँचनेवाला (तदपा) जिसका पहिचानना ही कर्म है (सविता) सकल जगत् का उत्पादनकर्ता (देव) देदीप्यमान जगदीश्वर (सवाय) उत्पन्न करने के लिए (शश्वत्तम्) अनादिस्वरूप अनुत्पन्न कारण को (देवेभ्य.) क्रीड़ा करते हुए जीवों से (नूनम्) निश्चित (अस्थात्) उपस्थित होता है (उ) और (स्य) वह (हि) ही (रत्नम्) रमणीय जगत् का (वि, धाति) विधान करता है (अथ) इसके अनन्तर (स्वस्तौ) सुख के निमित्त (वीतिहोत्रम्) ग्रहण की ईश्वर की व्याप्ति मे अपनी व्याप्ति जिसमे ऐसे जगत् को(अभजत्) सेवता है ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अनादि त्रिगुणात्मक प्रकृतिस्वरूप जगत् का कारण है उसीसे सब जगत् को उत्पन्न कर जो धारण कर रहा है उससे सब जीव निज-निज शरीर और कर्म को सेवते हैं जो इस जगत् को जगदीश्वर न उत्पादन करे तो कोई भी जीव शरीरादि न पा सके ॥ १ ॥

फिर ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विश्व॑स्य॒ हि श्रु॒ष्टये॑ दे॒व ऊ॒र्ध्वः प्र बा॒हवा॑ पृ॒थुपा॑णिः॒ सिस॑र्ति ।
आप॑श्चिदस्य व्र॒त आ निमृ॑ग्रा अ॒यं चि॒द्वातो॑ रमते॒ परि॑ज्मन् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (अयम्) यह (परिज्मन्) सब ओर से व्याप्त होता हुआ वा (वातः) पवन (रमते) क्रीडा को करता है (अस्य) इसके (व्रते) शीलस्वभाव के निमित्त (निमृग्राः) निरन्तर शुद्धि के हेतु (आपः) जल (चित्) भी (आ) अच्छे प्रकार रमण करते हैं जो (विश्वस्य) जगत् के बीच (ऊर्ध्वः) ऊपर स्थित (पृथुपाणिः) जिसके विस्तीर्ण हाथों के समान किरण वह (देवः) दिव्य सुख देनेवाला (सविता) जगत् का उत्पन्न करनेवाला (अत्क्यै) शीघ्रता के लिए (बाहुवा) भुजाओं के (चित्) समान (प्र, सिसर्त्ति) जाता है वह सब उक्त वृत्तान्त परमेश्वर के बीच में (हि) ही वर्त्तमान है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो परमेश्वर भूमि, जल, अग्नि और पवनों को न बनाता तो कुछ भी अपने आप उत्पन्न न हो सके ॥ २ ॥

आशुभिश्चिद्यान्वि मुचाति नूनमरीरमदतमानं चिदेतोः ।
अह्यर्षूणां चिन्न्ययाँ अविष्यामनु व्रतं सवितुर्मोक्यागात् ॥३॥

पदार्थ—जो (मोकी) रात्रि (आशुभिः) घोड़ों के समान शीघ्रकारी पदार्थों से (यान्) जिन (अयान्) प्राप्त वस्तुओं को (वि, मुचाति) छोड़े (एतोः) इसको (अतमानम्) निरन्तर प्राप्त (चित्) भी पदार्थ (नूनम्) निश्चय करके (अरीरमत्) रमण करता है (अह्यर्षूणाम्) और जो मेघ को प्राप्त होते हैं उन पदार्थों की (चित्) भी (अविष्याम्) रक्षा को (सवितुः) जगदीश्वर का जैसे (अनुव्रतम्) अनुकूल वा नियम वैसे (नि, आ, अगात्) प्राप्त होना है यह उक्त समस्त काम (चित्) भी जगदीश्वर के नियम से होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—यदि ईश्वर नियम से पृथिवी को न भ्रमावे तो सुख देनेवाली रात्रि न सिद्ध हो, पृथिवी में जितना देश सूर्य्य के निकट होता है उसमें दिन और दूसरे में रात्रि ये दोनों निरन्तर वर्त्तमान हैं ॥ ३ ॥

अब सूर्यलोक विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

पुनः समव्यद्विततं वयन्ती मध्या कर्तोर्न्यधाच्छक्म धीरः ।
उत्संहायास्थाद्व्यृतूँरदर्धररमतिः सविता देव आगात् ॥४॥

पदार्थ—जो (धीरः) धीर, बुद्धिमान् (मध्या) आकाश के बीच (वयन्ती) चलती हुई पृथिवी (विततम्) जो पदार्थ अपने को व्याप्त उसको (सम्, अव्यत्) सम्यक् व्याप्त होती (कर्तोः) और करने योग्य जाने-आने के काम को तथा (शक्म) शक्ति के अनुकूल जो कर्म है उसको (नि, अधात्) निरन्तर धारण करती है (पुनः) फिर पूर्व देश को (संहाय) अच्छे प्रकार छोड़ उत्तर अर्थात् दूसरे देश को प्राप्त होती हुई (उत्, अस्थात्) स्थित होती उसको जानता है । जो (अरमतिः) विना रमण विद्यमान है वह (सविता) सूर्य्यलोक (देवः) प्रकाशमान होता हुआ (ऋतून्) ऋतुओं को (व्यदर्धः) निरन्तर अलग करता तथा निकट के पदार्थों को (आ, अगात्) प्राप्त होता उसको जो जानता है वह भूगोल और खगोल विद्या जाननेवाला होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! ये सब लोक अन्तरिक्ष में ठहरे हुए भ्रमणशील ईश्वर के नियम को पहुँचाए हुए हैं, उनमें सूर्य के सन्निकट और भ्रमण से छः ऋतु होते हैं यह जानना चाहिए ॥ ४ ॥

नानौकांसि दुर्यो विश्वमायुर्वि तिष्ठते प्रभवः शोको अग्नेः ।
ज्येष्ठं माता सूनवे भागमाधादन्वस्य केतमिषितं सवित्रा ॥५॥ व० २॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जहाँ (नाना) अनेक प्रकार के (दुर्य्यः) द्वारवान् (ओकांसि) घर हैं वा जहाँ (सवित्रा) सूर्य्यलोक के साथ (अग्नेः) बिजुली आदि रूप अग्नि से (विश्वम्) समस्त (आयुः) जीवन को (वि, तिष्ठते) विशेषता से स्थिर करना है तथा (प्रभवः) उत्पत्ति और (शोकः) मरण भी होता है जहाँ (माता) जननी (सूनवे) सन्तान के लिए (ज्येष्ठम्) प्रशंसनीय (भागम्) भाग को और (अनु, अस्य) अनुकूल इस सन्तान को (इषितम्) इष्ट, अभीष्ट चाहे हुए (केतम्) विज्ञान को (आ, अधात्) अच्छे प्रकार धारण करती उसमें वा इस जगत् में यथावत् वर्त्ताव करना चाहिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो तुम्हारे जन्म हुए तो मरण भी होगा इसके बीच सब ऋतुओं में सुख देनेवाले घरों को बनाकर विद्यावृद्धि के लिए पाठशालाएँ बना अपने कन्या और पुत्रों को विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त कर पूर्ण आयु को भोगके यश का विस्तार करना चाहिए ॥ ५ ॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

समाववर्ति विष्ठितो जिगीषुर्विश्वेषां कामश्चरताममाभूत् ।
शश्वाँ अपो विकृतं हित्व्यागादनु व्रतं सवितुर्दैव्यस्य ॥६॥

पदार्थ—जो (विष्ठितः) विशेषता से स्थित दृढ़ (विश्वेषाम्) समस्त (चरताम्) प्राण धारनेवालों के सुख की (कामः) कामना करने वा (शश्वान्) शीघ्र चलने और (जिगीषुः) जीतने का शील रखनेवाला (अभूत्) होता है वा जो (अमा) घर में (समाववर्त्ति) अच्छे प्रकार वर्त्तमान है (विकृतम्) विकार को प्राप्त हुए (अपः) कर्म को (हित्वी) छोड़के (दैव्यस्य) विद्वानों से पाये हुए (सवितुः) संसार को उत्पन्न करनेवाले जगदीश्वर के (व्रतम्) नियम को (अनु, आ, अगात्) अनुकूलता से प्राप्त होता वह सुख को भी प्राप्त होता है ॥६॥

भावार्थ—जो मनुष्य सब प्राणियों में सब सुख-दुःख के व्यवहार में समदर्शी परमेश्वर के उपदेश से विरोध न करनेवाले और पापाचरण को छोड़ निश्चिन्त धर्माचरण को करते हैं वे निरन्तर सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

अब ईश्वर विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्वया हितमप्यमप्सु भागं धन्वान्वा मृगयसो वि तस्थुः ।
वनानि विभ्यो नकिरस्य तानि व्रता देवस्य सवितुर्मिनन्ति ॥७॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! जो (त्वया) आपके नियम के साथ वर्त्तमान (मृगयसः) मृग आदि वन्य प्राणी (अप्सु) जलों में (हितम्) स्थापित किये हुए वा (अप्यम्) प्राणों में प्रसिद्ध हुए (भागम्) सेवन करने योग्य अंश को (अनु, आ, तस्थुः) अनुकूलता से प्राप्त होते हैं तथा (विभ्यः) पक्षियों के लिए (धन्व) अन्तरिक्ष और (वनानि) वनों को आपने बनाया (तानि) उन (अस्य) इन आप (सवितुः) सकलैश्वर्य्य को प्राप्त करनेवाले (देवस्य) मनोहर ईश्वर के (व्रता) गुणकर्म स्वभावों को कोई भी (नकि) नहीं (विमिनन्ति) नष्ट करते हैं ॥७॥

भावार्थ—यदि ईश्वर भूमि आदि स्थान तथा भोज्य, पेय, चूष्य, लेह्य, पदार्थों को न बनाये तो कोई भी शरीर और जीवन को धारण नहीं कर सकता । ईश्वर ने जिनके अर्थ जो नियम स्थापन किये हैं उनके उल्लङ्घन करने को कोई समर्थ नहीं होता ॥ ७ ॥

याद्राध्यं वरुणो योनिमप्यमनिशितं निमिषि जर्भुराणः ।
विश्वो मार्ताण्डो व्रजमा पशुर्गात्स्थशो जन्मानि सविता व्याकः ॥८॥

पदार्थ—जो (विश्वः) समस्त (मार्त्ताण्डः) सूर्यलोक में उत्पन्न और (निमिषि) निमेषादि कालव्यवहार में (जर्भुराणः) निरन्तर धारण करता हुआ (वरुणः) श्रेष्ठ जीव (व्रजम्) गोठे को (पशुः) जैसे पशु वैसे (याद्राध्यम्) जानेवालों से अच्छे प्रकार सिद्ध होने योग्य (अप्यम्) जलों में प्रसिद्ध (अनिशितम्) अतीक्ष्ण (योनिम्) कारणरूप अग्नि को (आ, गात्) प्राप्त होवे उस जीव के (स्थशः) बहुत ठहरनेवाले (जन्मानि) जन्मों को (सविता) परमात्मा (व्याकः) विविध प्रकार से करता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जितने इस जगत् में जीव हैं वे अपने कर्मजन्य फल को विद्यमान शरीर में और पीछे भी प्राप्त होते हैं जैसे पशु गोपाल से नियम में रक्खा हुआ प्राप्तव्य स्थान को प्राप्त होता है वैसे जगदीश्वर जीवों से अनुष्ठित कर्मों के अनुसार सुख-दुःख और निकृष्ट मध्यम तथा उत्तम जन्मों को देता है ॥ ८ ॥

न यस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमा न मिनन्ति रुद्रः ।
नारातयस्तमिदं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोभिः ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यस्य) जिस जगदीश्वर के (व्रतम्) नियम को (न) न (इन्द्रः) सूर्य्य और बिजुली (न) न (वरुणः) जल (न) न (मित्रः) वायु (न) न (अर्य्यमा) द्वितीय प्रकार का नियन्ता धारक वायु (न) न (रुद्रः) जीव (न) न (अरातयः) शत्रुजन (मिनन्ति) नष्ट करते हैं (तम्) उस (इदम्) इस (स्वस्ति) सुखरूप (सवितारम्) समस्त जगत् के उत्पन्न करनेवाले (देवम्) दाता परमात्मा की (नमोभिः) सत्कर्मों से जैसे मैं (हुवे) स्तुति करूँ वैसे तुम भी प्रशंसा करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस संसार में कोई पदार्थ ईश्वर के तुल्य नहीं है तो अधिक कैसे हो और कोई भी इसके नियम को उल्लङ्घन नहीं कर सकता है इस कारण सब मनुष्यों को उसी ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए ॥ ९ ॥

भगं धियं वाजयन्तः पुरंधिं नराशंसो ग्नास्पतिर्नो अव्याः ।
आये वामस्य संगथे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ॥१०॥

पदार्थ—जो (नराशंसः) मनुष्यों से प्रशंसित किया हुआ (पतिः) पालना करनेवाला ईश्वर (नः) हम लोगों (ग्नाः) और वाणियों की (अव्याः) रक्षा करे और उस (भगम्) समस्त ऐश्वर्य की (धियम्) जो चिन्तन करने योग्य है वा (पुरन्धिम्) समस्त जगत् के धारण करनेवाले को (वाजयन्तः) जानते वा उसका विज्ञान कराते हुए हम लोग (रयीणाम्) धनों के (आये) इस व्यवहार में जो सब ओर से प्राप्त होता और (संगथे) संग्राम में (वामस्य) प्रशंसनीय (सवितुः) सकल जगत् के बनानेवाले (देवस्य) भगवान् परमात्मा के (प्रियाः) प्रीति विषय निरन्तर (स्याम) हों ॥ १० ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! सबकी रक्षा और धारण करनेवाले प्रशंसित सबके स्वामी परमेश्वर की उपासना कर उसकी आज्ञा के आचरण से उसके प्यारे तुम होओ ॥ १० ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अस्मभ्यं तद्दिवो अद्भ्यः पृथिव्यास्त्वया दत्तं काम्यं राध आ गात् ।
शं यत्स्तोतृभ्य आपये भवात्युरुशंसाय सवितर्जरित्रे ॥११॥३॥

पदार्थ—हे (**सवित**) परमात्मन् (**त्वया**) आपसे (**दत्तम्**) दिया हुआ (**दिव**) प्रकाशमान लोक (**अद्भ्य**) जलो और (**पृथिव्या**) भूमि से (**यत्**) जो (**काम्यम्**) कामना करने योग्य (**राध**) धन (**अस्मभ्यम्**) हम लोगो के लिए (**आ, गात्**) प्राप्त हो (**तत्**) वह (**उरुशंसाय**) बहुतो से प्रशसा किये हुए (**जरित्रे**) प्रशसित (**आपये**) विद्या व्यापक के लिए और (**स्तोतृभ्य**) स्तुति करनेवालों के लिए (**शम्**) कल्याणरूप (**भवति**) हो ॥ ११ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने प्रकृति से महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से अहङ्कार, अहङ्कार से पञ्चतन्मात्रा, पञ्चतन्मात्राओ से एकादश इन्द्रियाँ और स्थूल पञ्चभूत और ओषधियाँ बनाई, जिनसे सब प्राणियो का सुख होता है ॥ ११ ॥

इस सूक्त मे ईश्वर, सूर्य और विद्वानो के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह अड़तीसवाँ सूक्त और तीसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

ग्रावाणेवेत्यस्याऽष्टर्चस्यैकोनचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषि । अश्विनौ देवते । १ निचृत्त्रिष्टुप्, ३ विराट् त्रिष्टुप्, ४, ७, ८ त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर । २ भुरिक् पङ्क्ति ; ५, ६ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

अब उनतालीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र मे वायु और अग्नि के गुणों को कहते हैं—

ग्रावाणेव तदिदर्थं जरेथे गृध्रेव वृक्षं निधिमन्तमच्छ ।
ब्रह्माणेव विदथ उक्थशासा दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो वायु और अग्नि (**ग्रावाणेव**) दो मेघो के समान (**तत्**) उस (**अर्थम्, इत्**) द्रव्य को ही (**जरेथे**) नष्ट करते वा (**विदथे**) शिल्प यज्ञ मे (**गृध्रेव**) गृद्धो के समान (**निधिमन्तम**) जिसमे बहुत निधि, धनकोष विद्यमान उस (**वृक्षम्**) छेदन करने योग्य जल स्थल को (**अच्छ**) अच्छे प्रकार नष्ट करते (**ब्रह्माणेव**) और जैसे समस्त वेदवेत्ता जन हो वैसे वर्त्तमान (**उक्थशासा**) वा जिनकी शिक्षाएँ कही हुई है उन (**दूतेव**) दूतो के समान वर्त्तमान (**हव्या**) तथा ग्रहण करने योग्य (**जन्या**) अनेक पदार्थों की उत्पत्ति करनेवाले (**पुरुत्रा**) और बहुत पदार्थो मे वर्त्तमान है उन वायु और अग्नि का अच्छे प्रकार प्रयोग तुम लोग करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो अग्नि आदि पदार्थ मेघ वा पक्षियो तथा विद्वानो और दूत के समान कार्य्यसिद्धि करनेवाले है उन को जानके प्रयोजनो को सिद्ध करना चाहिए ॥ १ ॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रो मे कहा है—

प्रातर्यावाणा रथ्येव वीराजेव यमा वरमा सचेथे ।
मेनेइव तन्वा३ शुम्भमाने दम्पतीव क्रतुविदा जनेषु ॥२॥

पदार्थ—जो सूर्य और पृथिवी (**जनेषु**) मनुष्यो मे (**रथ्येव**) रथ के हित दो घोड़ो के तुल्य (**प्रातर्यावाणा**) जो प्रात काल जाते उनके समान वा (**अजेव**) दो बकरो के समान (**वीरा**) वीरता कर्मयुक्त वा (**यमा**) उपराम अर्थात् उड़ते-उड़ते निवृत्त हुए (**मेनेइव**) दो मैनाओ के समान वा (**तन्वा**) शरीर मे (**शुम्भमाने**) शोभते हुए (**दम्पतीव**) स्त्री-पुरुष के समान (**क्रतुविदा**) जिन से प्रज्ञा को प्राप्त होते है उनको जानके पढ़ाने और पढ़नेवाले (**वरम्**) उत्तम कर्म का (**आ, सचेथे**) सम्बन्ध करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । मनुष्यो को जैसे सुशिक्षित घोड़ेवाले एक यान मे स्थिर होके बकरो के समान वीरता का प्रकाश कर पक्षियो वा स्त्री-पुरुषो के समान शोभा को प्राप्त होने और अच्छे कर्मों को उत्पन्न कराते हैं वैसे सूर्य और भूमि सबका उपकार करनेवाले वर्त्तमान है यह जानना चाहिए ॥२॥

शृङ्गेव नः प्रथमा गन्तमर्वाक्छफाविव जर्भुराणा तरोभिः ।
चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रार्वाञ्चा यात रथ्येव शक्रा ॥३॥

पदार्थ—हे (**उस्रा**) किरणो के समान वर्त्तमान (**रथ्येव**) रथ के लिए हितकारी वस्तु के तुल्य (**शक्रा**) शक्तिमान् ! तुम लोग (**न**) हम लोगो के (**अर्वाक्**) पीछे (**गन्तम्**) प्राप्त हुए को (**शृङ्गेव**) शृङ्गो के समान सम्बन्ध करने तथा हिंसा करनेवाले (**शफाविव**) जैसे खुर परस्पर सम्बन्ध करे हुए है वैसे (**जर्भुराणा**) निरन्तर धारण करनेवाले (**प्रथमा**) पहले सनातन वा (**तरोभिः**) जिनसे तैरते है उन नौकाओ से जैसे (**चक्रवाकेव**) चकई-चकवा (**प्रति**) प्रति (**वस्तो.**) दिन (**अर्वाञ्चा**) पीछे जानेवाले होकर (**यातम्**) प्राप्त हूजिए ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है । यदि अग्नि वायु शिल्पकार्य्यो मे सयुक्त किये जाये तो बहुत कार्य्यो को सिद्ध करें ॥३॥

नावेव नः पारयतं युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव ।
श्वानेव नो अरिषण्या तनूना खृगलेव विस्रसः पातमस्मान् ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो वायु और बिजुली (**युगेव**) रथादि में अश्वादिको के समान जोड़े हुए (**नावेव**) वा जैसे उत्तमता से नावें वैसे (**नः**) हम लोगो को (**पारयतम्**) पार पहुचाते (**नभ्येव**) वा रथ के पहियो के बीच के अङ्ग के समान वा (**उपधीव**) रथ के बीच के भाग की धारण करनेवाली लकड़ी के समान वा (**प्रधीव**) समस्त रथ की धारण करनेवाली दो लकड़ियों के समान (**न**) हम लोगो को पहुचाते हैं वा (**श्वानेव**) चोरादिकों से रक्षा करनेवाले कुत्ता के समान (**न**) हमारे (**तनूनाम्**) शरीरो को (**अरिषण्या**) न नष्ट करनेहारे है और (**खृगलेव**) जो खोदने को गलाते हुए के समान (**विस्रस.**) जीर्णावस्था से (**अस्मान्**) हम लोगो की (**पातम्**) रक्षा करते है उनका हम लोगो को आप उपदेश देओ ॥४॥

पदार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । कोई भी सृष्टि के पदार्थों के गुण, कर्म और स्वभावो को न जानके पूर्ण विद्यावाला नहीं होता है इससे सृष्टि की विद्याओ का अच्छे प्रकार प्रचार करना चाहिए ॥४॥

वातेवाजुर्या नद्येव रीतिरक्षीइव चक्षुषा यातमर्वाक् ।
हस्ताविव तन्वे३ शम्भविष्ठा पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ ॥५॥४॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो (**वातेव**) पवन के समान (**अजुर्या**) अजीर्ण अर्थात् पुष्ट (**नद्येव**) नदी मे उत्पन्न हुए जल के समान (**रीति**) मिले हुए शीघ्र जानेवाले वा (**अक्षीइव**) नेत्रो के समान (**चक्षुषा**) दिखाने की शक्ति युक्त (**अर्वाक्**) नीचे (**आ, यातम्**) सब ओर से प्राप्त होते है (**हस्ताविव**) हाथो के समान (**तन्वे**) शरीर के लिए (**शम्भविष्ठा**) अतीव सुख की भावना करानेवाले (**पादेव**) पैरो के समान (**न**) हम लोगो को (**वस्य**) अति उत्तम धन (**अच्छ**) अच्छे प्रकार (**नयतम्**) प्राप्त करते हैं उन जल और अग्नि को हम लोगो को बतलाओ ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे शरीर के अङ्ग अपने-अपने काम मे प्रवर्त्तमान शरीर की रक्षा करते हैं वैसे वायु आदि पदार्थ सबकी रक्षा करते हैं यह जानना चाहिए ॥५॥

ओष्ठाविव मध्वास्ने वदन्ता स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः ।
नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! तुम जो (**आस्ने**) मुख के लिए (**मधु**) मधुर रस को (**ओष्ठाविव**) ओष्ठो के समान (**वदन्ता**) कहते हुए (**जीवसे**) जीवने को (**स्तनाविव**) स्तनो के समान (**न**) हमारे लिए (**पिप्यतम्**) बढ़ाते अर्थात् जैसे स्तनो मे उत्पन्न हुए दुग्ध मे जीवन बढ़ता है वैसे बढ़ाते (**नासेव**) और नासिका के समान (**न**) हमारे (**तन्व**) शरीर की (**रक्षितारा**) रक्षा करनेवाले वा (**अस्मे**) हम लोगो के लिए (**कर्णाविव**) कर्णों के समान (**सुश्रुता**) जिनसे सुन्दर श्रवण होता है ऐसे (**भूतम्**) होते है उन वायु और अग्नि को विदित कराइए ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो अध्यापक जिह्वा से रस के समान, स्तनो मे दुग्ध के समान, नासिका से गन्ध के तुल्य कान से शब्द के समान, समस्त विद्याओ को प्रत्यक्ष कराते हैं वे जगत्पूज्य होते है ॥६॥

हस्तेव शक्तिमभि संददी नः क्षामेव नः समजतं रजांसि ।
इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तीः क्ष्णोत्रेणेव स्वधितिं सं शिशीतम् ॥७॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) वायु और अग्नि के समान वर्त्तमान पढ़ाने और परीक्षा करनेवालो ! जो अग्नि और वायु (**शक्तिम्**) तीक्ष्ण अग्रभागवाली शक्ति को (**हस्तेव**) हाथो के समान (**न**) हम लोगो को (**अभि, संददी**) जिनसे अच्छे प्रकार देते वा (**क्षामेव**) पृथिवी के समान (**न**) हम लोगो को (**रजांसि**) ऐश्वर्यवालो को (**समजतम्**) अच्छे प्रकार प्राप्त कराते हैं वा (**क्ष्णोत्रेणेव**) तेजस्वी करनेवाले साधन से जैसे वैसे (**इमा**) इन (**युष्मयन्ती**) जो तुमको कहती है उन (**गिर**) सुशिक्षित वाणियो को (**स्वधितिम्**) वज्र के समान (**सम्, शिशीतम्**) तीक्ष्ण करें उनके गुण कर्म और स्वभावो को हम लोगो को बताओ ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! जो हाथ की क्रिया को करनेवाले, पृथिवी के समान ऐश्वर्य देने, अच्छी शिक्षित वाणी के समान पदार्थों को बनाने, तीक्ष्ण वज्र के समान दारिद्र्य और दुःख का विनाश करनेवाले अग्न्यादि पदार्थ हैं उनको आज हम लोगो को ग्रहण कराओ ॥७॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

एतानि वामश्विना वर्धनानि ब्रह्म स्तोमं गृत्समदासो अक्रन् ।
तानि नरा जुजुषाणोप यातं बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥८॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) सकल विद्या मे व्याप्त होनेवाले (**नरा**) मनुष्यों मे अग्रगन्ताओ के समान वर्त्तमान अध्यापक और परीक्षको ! तुम (**वाम्**) तुम दोनो के जिन (**एतानि**) इन (**वर्धनानि**) वृद्धियो (**ब्रह्म**) धन और (**स्तोमम्**) प्रशसा को (**गृत्समदास**) जिन्होने आनन्द चाहे हुए हैं वे जन (**अक्रन्**) करें । (**तानि**) उनको (**जुजुषाणा**) सेवते हुए हम लोगों के (**उप,**

असताम्) समीप प्राप्त होते जिससे (सुवीराः) उत्तम वीरोंवाले हम सब लोग (विदथे) सग्राम मे (बृहत्) बहुत विज्ञान को निरन्तर (वदेम) पदार्थों का उपदेश करें ॥८॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानों का अनुकरण करें तो वे महात्मा होवें ॥८॥

इस सूक्त में वायु और अग्नि आदि पदार्थ वा विद्वानो के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह उनतालीसवाँ सूक्त और पाँचवाँ वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

सोमापूषणेति षडृचस्य चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषि । सोमा पूषणावदितिश्च देवता. । १, ३ त्रिष्टुप्, २ विराट् त्रिष्टुप्, ५, ६ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत स्वर. । ४ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चम. स्वर. ॥

अब चालीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में पवन के गुणों का उपदेश कहते हैं—

सोमा॑पूषणा॒ जन॑ना रयी॒णां जन॑ना दि॒वो जन॑ना पृथि॒व्याः ।
जा॒तौ विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य गो॒पौ दे॒वा अ॑कृण्वन्न॒मृत॑स्य॒ नाभि॑म् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (देवा) विद्वान् जन जिन (रयीणाम्) धनो को (जनना) सुखपूर्वक उत्पन्न करनेवाले वा (दिव) प्रकाश के (जनना) उत्पन्न करनेवाले (पृथिव्या) पृथिवी के (जनना) उत्पन्न करनेवाले (जातौ) उत्पन्न हुए (विश्वस्य) समस्त (भुवनस्य) ससार की (गोपौ) रक्षा करनेवाले (सोमापूषणा) प्राण और अपान (अमृतस्य) नाशरहित पदार्थ के (नाभिम्) मध्य भाग को (अकृण्वन्) प्रकट करें उनकी विशेषता से जानो ॥१॥

भावार्थ—मनुष्य को प्रकाश पृथिवी और धनो के निमित्त होकर सबकी रक्षा करनेवाले परमात्मा का विज्ञान करानेवाले प्राण और अपान वर्त्तमान हैं यह जानना चाहिए ॥१॥

अब अग्नि के विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

इ॒मौ दे॒वौ जाय॑मानौ जुषन्ते॒मौ तमां॑सि गूहता॒मजु॑ष्टा ।
आ॒भ्यामिन्द्रः॑ प॒क्वमा॒मास्व॒न्तः सो॑मापू॒षभ्यां॑ जनदु॒स्रिया॑सु ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! सब पदार्थ (इमौ) इन प्रत्यक्ष (जायमानौ) उत्पन्न होते हुए (देवौ) मनोहरो को (जुषन्त) सेवते है जो (इमौ) यह दोनों (अजुष्टा) न सेवन किये हुए (तमांसि) रात्रियो को (गूहताम्) अच्छे प्रकार ढाँपते है (आभ्याम्) इन (सोमापूषभ्याम्) चन्द्र और ओषधि गणो के साथ (इन्द्र) बिजुली वा सूर्य्य (आमासु) अपक्व (उस्रियासु) भूमियो के (अन्त) बीच (पक्वम्) पके पदार्थ को (जनत्) उत्पन्न कराता उनका अच्छे प्रकार उपयोग करो ॥२॥

भावार्थ—जो अग्नि सबके भीतर स्थित प्रकाशकारक है वह जिन चन्द्रमा और ओषधिगणो के बिना अकिञ्चित्कर होता अर्थात् ससार का सुख करनेवाला नही होता उनको जान कार्य्यसिद्धि करनी चाहिए ॥२॥

अब अग्नि और वायु के गुणों को कहते हैं—

सोमा॑पूषणा॒ रज॑सो वि॒मानं॑ स॒प्तच॑क्रं॒ रथ॒मवि॑श्वमिन्वम् ।
वि॒षू॒वृतं॒ मन॑सा यु॒ज्यमा॑नं॒ तं जि॑न्वथो वृषणा॒ पञ्च॑रश्मिम् ॥३॥

पदार्थ—हे (वृषणा) बलिष्ठ वायु और अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वानो ! तुम (सोमापूषणा) अग्नि और वायु (रजस) लोकसमूह के (अविश्वमिन्वम्) जिससे अविद्यमान समस्त पदार्थों को अलग करते हैं जो (विषूवृतम्) व्यापक गमन से ढँपा हुआ (सप्तचक्रम्) जिसमें सात चक्र (पञ्चरश्मिम्) तथा पाँच प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान रश्मि के तुल्य विद्यमान (मनसा) जो अन्त.करणस्थ विचार से (युज्यमानम्) युक्त किया जाता उस (विमानम्) आकाश मे गमन करानेवाले (रथम्) रमणीय यान को (जिन्वथ) चलाते हैं (तम्) उसको जानो ॥३॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि अन्तरिक्ष मे गमन करानेवाले सात कला-यन्त्र घुमाने के जिसमें निमित्त ऐसे शीघ्र गमन करानेवाले रथ को बनाकर सुख पावें ॥३॥

अब अग्नि के विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

दि॒व्य१॒॑न्यः सद॑नं च॒क्र उ॒च्चा पृ॑थि॒व्याम॒न्यो अध्य॒न्तरि॑क्षे ।
ताव॒स्मभ्यं॑ पुरु॒वारं॑ पुरु॒क्षुं रा॒यस्पोषं॒ वि ष्य॑तां॒ नाभि॑म॒स्मे ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! अग्नि का भाग (अन्य) और है और वह (उच्चा) ऊपर जो स्थित (दिवि) आकाश उसमे (सदनम्) स्थान (अधि, चक्रे) किये हुए है तथा (अन्य:) और (पृथिव्याम्) पृथिवी मे और (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में स्थान को (अधि) अधिकता से किये हुए हैं (तौ) वे दोनो (अस्मभ्यम्) हम लोगो के लिए (पुरुवारम्) बहुतो से स्वीकार करने योग्य (पुरुक्षुम्) बहुतो ने शब्दित किये अर्थात् कहे सुने (रायः) धनादि पदार्थों के (पोषम्) पुष्ट करनेवाले और (अस्मे) हमारे (नाभिम्) मध्य बन्धन के (वि, स्यताम्) निकट हो उनको तुम जानो ॥४॥

भावार्थ—अग्नि के तीन स्थान हैं एक ऊपर आकाश मे, दूसरा पृथिवी में और तीसरा बीच मे, उन तीनो में सूर्य्यरूप से अन्तरिक्ष मे निकट स्थित प्रत्यक्ष पृथिवी मे और गुप्त अन्तरिक्ष में वर्त्तमान है उस अग्नि को मनुष्य जानें ॥४॥

अब विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

विश्वा॑न्य॒न्यो भुव॑ना ज॒जान॒ विश्व॑म॒न्यो अ॑भि॒चक्षा॑ण एति ।
सोमा॑पूषणा॒वव॑तं॒ धियं॑ मे यु॒वाभ्यां॒ विश्वाः॒ पृत॑ना जयेम ॥५॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको ! जो (अन्य) भिन्न भाग (विश्वानि) समस्त (भुवना) लोको मे प्रसिद्ध पदार्थों को (जजान) उत्पन्न करता जो (अन्यः) और (अभिचक्षाणः) प्रकट वाणी का विषय (विश्वम्) ससार को (एति) प्राप्त होता उन दोनो (सोमापूषणौ) शान्ति और पुष्टि गुणवाले वायु का उपदेश लेकर (मे) मेरी (धियम्) बुद्धि की तुम दोनो (अवतम्) रक्षा करो जिससे (युवाभ्याम्) तुम दोनो के साथ हम लोग (विश्वाः) समस्त (पृतनाः) मनुष्यों को (जयेम) उत्कर्ष दें ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो वायु सब लोकों को धरता और जो शब्द प्रयोग वा श्रवण का निमित्त है उसके विज्ञान कराने से सब मनुष्यों की उन्नति करनी चाहिए ॥ ५ ॥

धियं॑ पू॒षा जि॑न्वतु विश्वमि॒न्वो र॒यिं सोमो॑ रयि॒पति॑र्दधातु ।
अव॑तु दे॒व्यदि॑ति॑रन॒र्वा बृ॒हद्व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑ ॥६॥ व० ६॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जिस प्रकार से (पूषा) प्राण मेरी (धियम्) बुद्धि वा कर्म को (जिन्वतु) प्राप्त हो वा सुखी करे (विश्वमिन्वः) तथा जो विश्व को व्याप्त होता वह (रयिपतिः) धन की रक्षा करनेवाला (सोमः) पदार्थों का समूह (रयिम्) लक्ष्मी को (दधातु) धारण करे (अनर्वा) तथा जिसके अविद्यमान घोडे हैं वह (देवी) दिव्य गुणवाली (अदितिः) माता, बुद्धि वा कर्म की (अवतु) रक्षा करे जिससे (सुवीराः) शोभन वीरोंवाले हम लोग (विदथे) सग्राम मे (बृहत्) बहुत (वदेम) कहें ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे सब पदार्थ धन बुद्धि आरोग्यता और आयु के बढानेवाले हो वैसे विधान करो जिससे सब मनुष्य बहुत सुख को प्राप्त होवें ॥ ६ ॥

इस सूक्त मे प्राण, अपान, अग्नि, वायु और विद्वानो के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह चालीसवाँ सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

वायवित्येकविंशत्यृचस्यैकचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषि । १, २ वायु.; ३ इन्द्रवायू; ४—६ मित्रावरुणौ, ७—९ अश्विनौ; १०—१२ इन्द्र , १३—१५ विश्वेदेवा । १६—१८ सरस्वती, १९—२१ द्यावापृथिव्यौ हविर्धाने वा देवताः । १, ३, ४, ६, १०, ११, १३, १५, १९—२१ गायत्री; २, ५, ९, १२, १४ निचृत् गायत्री; ७ त्रिपाद्गायत्री; ८ विराट् गायत्री छन्दः । षड्ज: स्वर । १६ अनुष्टुप्छन्द. । गान्धार स्वर । १७ उष्णिक् छन्द । ऋषभः स्वरः । १८ बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥

अब इक्कीस ऋचावाले इकतालीसवें सूक्त का आरम्भ है । इसके प्रथम द्वितीय मन्त्रों में अध्यापक के विषय को कहते हैं—

वायो॒ ये ते॑ सह॒स्रिणो॒ रथा॑स॒स्तेभि॒रा ग॑हि । नि॒युत्वा॒न्त्सोम॑पीतये ॥१॥

पदार्थ—हे (वायो) पवन के समान वर्त्तमान विद्वन् ! (ये) जो (ते) आपके वायुवत् वेगवाले (सहस्रिणः) असख्यात वेगादि गुणोवाले (रथासः) रमणीय यान हैं (तेभिः) उनके साथ (नियुत्वान्) नियमयुक्त होते हुए (सोमपीतये) उत्तम ओषधियो के रस पीने को (आ, गहि) आइए ॥ १ ॥

भावार्थ—पवन के असख्य जो वेग आदि कर्म हैं उनको जानके इधर-उधर मनुष्यों को जाना-आना चाहिए ॥ १ ॥

नि॒युत्वा॑न्वायवा ग॑ह्य॒यं शु॒क्रो अ॑यामि ते ।
गन्ता॑सि सुन्व॒तो गृ॒हम् ॥२॥

पदार्थ—हे (वायो) पवन के समान वर्त्तमान विद्वन् ! जिस कारण आप (शुक्रः) अज्ञानताओं को सुखानेवाले होते हुए (सुन्वत) ओषधियो के रस निकालनेवाले के (गृहम्) घर (गन्ता) जानेवाले (असि) है इस कारण (नियुत्वान्) आत्मा से नियमयुक्त जितेन्द्रिय होते हुए (आ, गहि) आओ जैसे

(अयम्) यह वायु नियमयुक्त सर्वत्र आनेवाला है वैसे मैं (ते) आपके घर को (अयामि) प्राप्त होता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे पवन नियम से सर्वत्र जाते हैं वैसे नियमयुक्त कर्मों को कर सुखो को प्राप्त होना चाहिए ॥२॥

अब अध्यापक और अध्येताओं के विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—

शुक्रस्याद्य गवाशिर इन्द्रवायू नियुत्वतः। आ यातं पिबतं नरा ॥३॥

पदार्थ—हे (नरा) बिजुली और पवन के समान वर्त्तमान अग्रगन्ता मनुष्यो ! तुम (अद्य) आज (शुक्रस्य) अज्ञानता शोधने और (गवाशिरः) किरणो को अर्थात् विद्याओ का व्याप्त होनेवाले (नियुत्वत) नियम युक्त के समीप (आ, यातम्) आओ और जल रस (पिबतम्) पीओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—जैसे बिजुली और पवन सर्वत्र अभिव्याप्त और सब जगत् की रक्षा करते है वैसे उत्तम काम कर और शुद्ध जल पीके आरोग्यपन और सबकी उन्नति करनी चाहिए ॥ ३ ॥

अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा। ममेदिह श्रुतं हवम् ॥४॥

पदार्थ—हे (ऋतावृधा) सत्य से बढ़े हुए (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान वर्त्तमान अध्यापको ! जो (अयम्) यह (वाम्) तुम दोनो से (सोम) ओषधियो का रस (सुत.) उत्पन्न हुआ उसको पीके (इत्) ही (इह) यहाँ (मम) मेरे (हवम्) आह्वान को (श्रुतम्) सुनिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—जैसे वायु सबसे रस को ग्रहण कर वर्षाते है वैसे ही सत्य विद्याओ को सुनकर सबके लिए सुख देना चाहिए ॥ ४ ॥

राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे। सहस्रस्थूण आसाते ॥५॥७॥

पदार्थ—हे (अनभिद्रुहा) द्रोहकर्मरहित (राजानौ) प्रकाशमान जनो ! तुम (ध्रुवे) जो कि निश्चल (उत्तमे) श्रेष्ठ (सहस्रस्थूणे) जिसमे सहस्र खम्भा विद्यमान उस (सदसि) सभा मे जो प्राणोदानवद्वर्त्तमान अध्यापकोपदेशक (आसाते) बैठते हैं उनको जानो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! वे ही राजा और प्रधान पुरुष धन्यवाद के योग्य होते हैं जो गुणयुक्त उत्तम सभा मे बैठ के किसी का पक्षपात कभी न करें ॥ ५ ॥

अब सूर्य्य और चन्द्रमा के विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती। सचेते अनवह्वरम् ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (घृतासुती) शुद्ध तत्त्व जल का निकालनेवाले (सम्राजा) अच्छे प्रकार प्रकाशमान चक्रवर्त्ति राजा के समान वर्त्तमान (आदित्या) अखण्डित (दानुन॰) दान के (पती) पालन करनेवाले सूर्य, चन्द्रमा सबका (सचेते) सम्बन्ध करते है (ता) उनको (अनवह्वरम्) सरलता जैसे हो वैसे सिद्ध करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सूर्य्य चन्द्रमा सबका प्रकाश करने वा जल के देनेवाले सबके अनुसङ्गी सीधे मार्ग से जाते है वैसे शुद्ध मार्ग मे जाओ ॥ ६ ॥

अब अग्नि और वायु के गुणों को अगले मन्त्रों मे कहते हैं—

गोमदू षु नासत्याश्वावद्यातमश्विना। वर्त्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (नासत्या) असत्यरहित (रुद्रा) दुष्टो के रुलानेवाले (अश्विना) व्यापनशील अध्यापकोपदेशक (अश्वावत्) घोड़े के तुल्य (उ) वा (गोमत्) बहुत गौएँ जिसमे विद्यमान उस (नृपाय्यम्) मनुष्यो के माननेवाले (वर्त्ति॰) मार्ग को (सुयातम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होते है वैसे तुम इनको प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्य यदि वायु और अग्नि के यान से जहाँ तहाँ जावें तो परिमित सुख पावें ॥ ७ ॥

न यत्परो नान्तर आदधर्षद्वृषण्वसू। दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (पर॰) उत्कृष्ट (दुःशंस) जिसकी दुष्ट स्तुति विद्यमान वह (मर्त्य.) मरणधर्मा मनुष्य (रिपुः) शत्रु (यत्) जो (वृषण्वसू) वर्षानेवालो को बसाते हैं उनको (न, आदधर्षत्) न लचावे वा (अन्तर.) सामान्य दुष्ट स्तुतिवाला मरणधर्मा जिनको (न) न लचावे उनका कार्यो मे नियुक्त करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस जगत् मे वायु और अग्नि को कोई भी लचा नही सकता और न इनका कोई शत्रु के समान नाश करनेवाला है उस प्रकार से नही पराजित होने योग्य मनुष्यो को होना चाहिए ॥ ८ ॥

ता न आ वोळ्हमश्विना रयिं पिशङ्गसंदृशम्।

धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (धिष्ण्या) शब्दायमान हो वा स्तुति किये जावें वे (अश्विना) सर्वत्र होनेवाले अग्नि और वायु (न) हम लोगो के लिए (वरिवोविदम्) जिसमे सेवा को प्राप्त होते वा (पिशङ्गसंदृशम्) सुन्दर वर्णो को देखते है उस (रयिम्) धन को (आ, वोळ्हम्) अच्छे प्रकार प्राप्त करते हैं (ता) उनका उपदेश करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि जिस अग्नि और वायु से पुष्कल धन को प्राप्त होते हैं उनको यथावत् जानें ॥ ९ ॥

अब सूर्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत्।

स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥१०॥८॥

पदार्थ—हे (अङ्ग) विद्वान् पुरुष ! जो (स्थिरः) स्थिर अपनी परिधि मे ठहरा हुआ (विचर्षणिः) देखनेवाला (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् सूर्य (महत्) बहुत (सत्) होता हुआ (भयम्) जो भय उसको (अप, अभि, चुच्यवत्) अलग करता है (स., हि) वही सूर्यलोक जानने योग्य है ॥ १० ॥

भावार्थ—यदि ब्रह्माण्ड में सूर्य न हो तो किसी का भय न निवृत्त हो, यदि सूर्यलोक अपनी परिधि मे स्थिर और दिखानेवाला न हो तो तुल्य आकर्षण और देखना न बने ॥ १० ॥

फिर उसी विषय को तथा परमेश्वरोपासना विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत्।

भद्रं भवाति नः पुरः ॥११॥

पदार्थ—जो (इन्द्रः) परमेश्वर (च) और उसका बनाया सूर्य (नः) हमको (मृळयाति) सुखी करे इससे (नः) हमारे (पुरः) अगले (पश्चात्) और पिछले (अघम्) पाप (न) न (नशात्) प्राप्त हो किन्तु (न) हमारे लिए यथार्थ (भद्रम्) कल्याण (भवाति) होवे ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो जगदीश्वर घटपटादिको को जैसे सूर्य वैसे सबके आत्माओ को प्रकाशित करता है जो उसके भक्त हैं वे उससे भिन्न की उसके स्थान मे नहीं उपासना करते हैं वे सर्वव्यापक परमेश्वर को जान और वह हमे निरन्तर देखता है ऐसा मानकर अधर्माचरण नही करते हैं किन्तु निरन्तर धर्म ही का अनुष्ठान करते हैं उनके आगामी पापाचरण की निवृत्ति और योगज सिद्धि विज्ञान के होने से मुक्ति होवेगी ही, औरो का नही यह निश्चय है ॥११॥

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत्।

जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (विचर्षणि) सबका देखनेवाला (इन्द्र) परमेश्वर (शत्रून्) शत्रुओ को (जेता) जीतनेवाले के समान (सर्वाभ्य) सब (आशाभ्य) दिशाओ से हमको (अभयम्) अभय (परि, करत्) सब ओर से करता है वही हम लोगो को निरन्तर उपासना करने योग्य है ॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पक्षपात रहित वीर पुरुष दुष्टाचारी और औरो के लिए भय देनेवालो को निवारके प्रजाओं को सुखयुक्त करते हैं वैसे उपासना किया हुआ सर्वज्ञ ईश्वर सब ओर से दुष्टाचरण से निवृत्त कर श्रेष्ठाचार मे प्रवृत्त कर अभय मुक्तिपद को प्राप्त कराकर सब मुक्त जीवो को आनन्दित करता है इस कारण वही सबको उपासना करने योग्य है ॥१२॥

फिर पढ़ाने और पढ़नेवालो के विषय को अगले मन्त्रो मे कहा है—

विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम्। एदं बर्हिर्नि षीदत ॥१३॥

पदार्थ—हे (विश्वे) सब (देवास) विद्वानो ! तुम (आ, गत) आओ और (इदम्) इस (बर्हि) उत्तमासन पर (निषीदत) बैठो (मे) और मेरे (इमम्) इस (हवम्) ग्रहण करने योग्य शब्दार्थ सम्बन्ध को (आ, शृणुत) अच्छे प्रकार सुनो ॥१३॥

भावार्थ—विद्यार्थी जन पढ़ानेवालो से यह कहे कि आप यहाँ आइए, सर्वोत्तम आसन पर बैठके हमने पढ़े जो शास्त्र उनमे परीक्षा कीजिए ॥१३॥

तीव्रो वो मधुमाँ अयं शुनहोत्रेषु मत्सरः। एतं पिबत काम्यम् ॥१४॥

पदार्थ—हे सब विद्वानो ! जो (व) तुम्हारा (अयम्) यह (शुनहोत्रेषु) विद्वान् वृद्धो के दानो मे (तीव्र) तीक्ष्ण (मधुमान्) विज्ञान सम्बन्धी (मत्सर) आनन्द है (एतम्) इस (काम्यम्) मनोहर रस को तुम (पिबत) पिओ ॥१४॥

भावार्थ—जो विज्ञानवृद्धो की सेवा करते हैं वे तीव्रबुद्धि हुए विद्वान् होते हैं ॥ १४ ॥

इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः।

विश्वे मम श्रुता हवम् ॥१५॥९॥

पदार्थ—हे (इन्द्रज्येष्ठा) परम विद्यारूप ऐश्वर्य जिनके प्रधान है वे (विश्वे) सब (देवास) विद्वानो ! (पूषरातयः) जिनका पुष्टि के निमित्त दान है वे (मरुद्गणा) बहुत मनुष्य तुम लोग (मम) मेरे (हवम्) ग्रहण करने योग्य विद्यार्थ सम्बन्ध को (श्रुत) सुनो ॥१५॥

भावार्थ—जो विद्यादि गुणो मे प्रधान पुरुष का सत्कार करते विद्या देते और दूसरों से लेते हैं वे परीक्षक होके औरो को विद्वान् करते हैं ॥१५॥

अब विदुषी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।

अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥१६॥

पदार्थ—हे (अम्बितमे) अतीव पढ़ानेवाली (देवितमे) अतीव पण्डिता (नदीतमे) अतीव अप्रकट विद्या का उपदेश करने (सरस्वति) बहुविज्ञान रखनेवाली (अम्ब) माता अध्यापिका जो (अप्रशस्ताइव) अप्रशस्तों के समान हम लोग (स्मसि) हैं उन (नः) हम लोगों को (प्रशस्तिम्) प्रशंसा को प्राप्त (कृधि) करो ॥१६॥

भावार्थ—जितनी कुमारी हैं वे विदुषियों से विद्या अध्ययन करें और वे कुमारी ब्रह्मचारिणी विदुषियों की ऐसी प्रार्थना करें कि आप हम सबों को विद्या और सुशिक्षा से युक्त करें ॥१६॥

त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम् ।

शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥१७॥

पदार्थ—हे (देवि) प्रकाशमान (सरस्वति) परमविदुषी स्त्रि ! जैसे (विश्वा) समस्त (आयूंषि) आयुर्दा (त्वे) तुझे (देव्याम्) विदुषी में (श्रिता) आश्रित हैं सो तू (शुनहोत्रेषु) पाई है योगज विद्या जिन्होंने उनके बीच (मत्स्व) आनन्द कर (नः) हमारे (प्रजाम्) सन्तानों को (दिदिड्ढि) उपदेश दे ॥१७॥

भावार्थ—सब विद्वान् जन अपनी-अपनी विदुषी स्त्रियों के प्रति ऐसा उपदेश देवें कि तुमको सबकी कन्याएँ पढ़ानी चाहिएँ और सबकी स्त्री अच्छे प्रकार सिखानी चाहिएँ ॥१७॥

अब स्त्रीपुरुष के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति ।

या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति ॥१८॥

पदार्थ—हे (ऋतावरि) सत्याचरणयुक्त (वाजिनीवति) वा बहुत ऐश्वर्य और अन्नादि पदार्थयुक्त (सरस्वति) बहुत विज्ञानवाली ! तू जैसे (गृत्समदाः) आनन्द जिन्होंने ग्रहण किया वे (या) जिन (इमा) इन (ते) तेरे (प्रिया) मनोहर विज्ञान वा (मन्म) साधारण विज्ञानों को (देवेषु) विद्या की कामना करनेवालों में (जुह्वति) स्थापन करते हैं उन (ब्रह्म) विज्ञानों को तू (जुषस्व) सेवन कर ॥१८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् पुरुष, कुमार ब्रह्मचारियों को अच्छी शिक्षा से पढ़ावें वैसे विदुषी स्त्रियाँ, कुमारी ब्रह्मचारिणी स्त्रियों को अच्छी शिक्षा से पढ़ावें ॥१८॥

प्रेतां यज्ञस्य शंभुवा युवामिदा वृणीमहे । अग्निं च हव्यवाहनम् ॥१९॥

पदार्थ—हे स्त्री-पुरुषो ! जो (शम्भुवा) सुख की सम्भावना करानेवाले (युवाम्) दोनों स्त्री-पुरुष (यज्ञस्य) यज्ञ की विद्याओं को (प्रेताम्) प्राप्त होते (च) और (हव्यवाहनम्) हव्य द्रव्य को पहुंचानेवाले (अग्निम्) अग्नि को प्राप्त होते (इत्) उन्हीं को हम लोग (आ, वृणीमहे) अच्छे प्रकार स्वीकार करते हैं ॥१९॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को पुत्रों के अध्यापक और पुत्री की अध्यापिकाओं को निरन्तर नियुक्त करना चाहिए जिससे स्त्री-पुरुषों में पूर्ण विद्याओं का प्रचार हो ॥१९॥

द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ।

यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥२०॥

पदार्थ—हे स्त्री-पुरुषो ! आप (द्यावापृथिवी) सूर्य्य भूमि के समान (अद्य) आज (नः) हमारे (इमम्) इस (सिध्रम्) शास्त्रबोध के प्रकाश के निमित्त (दिविस्पृशम्) विज्ञान प्रकाश में जिससे स्पर्श करते हैं उस (यज्ञम्) पढ़ने-पढ़ाने की सङ्गति स्वरूप यज्ञ को (देवेषु) विद्वानों में (यच्छताम्) स्थापन करो ॥२०॥

भावार्थ—अध्यापक और उपदेशकों से जैसे सूर्य्य और भूमि सबका सर्वथा उन्नति देते हैं वैसे स्त्री-पुरुषों में विद्या अच्छे प्रकार विस्तारनी चाहिए ॥२०॥

आ वामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः ।

इहाद्य सोमपीतये ॥२१॥१०॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको ! (इह) इस संसार में (अद्य) इस समय वा आज (सोमपीतये) जिससे विद्या और ऐश्वर्य उत्पन्न होते हैं उस क्रिया के लिए (अद्रुहा) द्रोहादि दोष रहित (यज्ञियाः) विद्या वृद्धिमय यज्ञ प्रचार के योग्य (देवाः) विद्वान्जन (वाम्) तुम दोनों के (उपस्थम्) समीप रहनेवाले के (आ, सीदन्तु) समीप बैठें ॥२१॥

भावार्थ—अध्यापक और उपदेशकों के समीप और निर्दोष विदुषी स्त्री हों जिससे दोनों स्त्री-पुरुषों में विद्या और उत्तम शिक्षा तुल्य हो ॥२१॥

इस सूक्त में अध्यापक और अध्ययनकर्त्ता, सूर्य्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, परमेश्वरोपासना और स्त्री-पुरुष के कर्म वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह इकतालीसवाँ सूक्त और दशवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

कनिक्रदविति त्र्यृचस्य द्विचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । कपिञ्जल इवेन्द्रो देवता । १—३ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब तीन ऋचावाले बयालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से उपदेशक के गुणों को कहते हैं—

कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इयर्ति वाचमरितेव नावम् ।

सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा का चिदभिभा विश्व्या विदत् ॥१॥

पदार्थ—हे (शकुने) पक्षी के तुल्य वर्त्तमान शक्तिमान् पुरुष ! (कनिक्रदत्) निरन्तर शब्दायमान उपदेशक (जनुषम्) प्रसिद्ध विद्या को (प्रब्रुवाणः) प्रकृष्टता से कहता हुआ (अरितेव) पहुंचे हुए पदार्थों के समान (वाचम्) वाणी (च) और (नावम्) नाव को (इयर्ति) प्राप्त होता वैसे (सुमङ्गलः) सुमङ्गल शब्दयुक्त (भवासि) होते हो (का, चित्) कोई भी (विश्व्याः) इस संसार में हुई (अभिभा) सब ओर से जो कान्ति है वह (त्वा) तुझे (मा) मत (विदत्) प्राप्त हो अर्थात् किसी दूसरे का तेज आपके आगे प्रबल न हो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो उपदेशक जैसे बल्ली नाव को पहुंचाती है वैसे सब मनुष्यों को उपदेश के लिए प्राप्त होता वा उपदेश करता हुआ पक्षी के समान भ्रमता है उस सुमङ्गलाचरण करनेवाले के लिए कोई कान्ति भङ्ग न हो इसलिए राजा को उपदेशकों की रक्षा करनी चाहिए ॥१॥

मा त्वा श्येन उद्वधीन्मा सुपर्णो मा त्वा विदद्दिषुमान् वीरो अस्ता ।

पित्र्यामनु प्रदिशं कनिक्रदत्सुमङ्गलो भद्रवादी वदेह ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (त्वा) तुझे (श्येनः) श्येन पक्षी के समान कोई (मा, उत्, वधीत्) मत उच्चाटे (मा) मत (सुपर्णः) अच्छे पङ्खवाले अन्य पक्षी के समान उच्चाटे (त्वा) तुझे (इषुमान्) बाणों को रखने वा (अस्ता) फेंकनेवाला (वीरः) वीर (मा, विदत्) मत प्राप्त हो (इह) यहाँ (कनिक्रदत्) निरन्तर कहता हुआ (भद्रवादी) कल्याणरूप उपदेश करनेवाला (सुमङ्गलः) सुन्दर मङ्गल का उपदेशक होता हुआ (पित्र्याम्) पितृसम्बन्धी (प्रदिशम्) दिशा और उपदिशाओं से युक्त देश को (अनु, वद) अनुकूलता से उपदेश कर ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे श्येन पक्षी आदि पखेरू अन्य पक्षियों को मारते हैं वैसे कोई उपदेशक को पीड़ा मत दे जिससे वह सुख और कुशलता से सर्वत्र उपदेश कर सके ॥२॥

अव क्रन्द दक्षिणतो गृहाणां सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते ।

मा नः स्तेन ईशत माघशंसो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥३॥

पदार्थ—हे (शकुन्ते) शक्तिमान् ! (सुमङ्गलः) सुन्दर मङ्गलयुक्त (भद्रवादी) कल्याण के कहनेवाले होते हुए आप (गृहाणाम्) उत्तम घरों के (दक्षिणतः) दाहिनी ओर से (अव, क्रन्द) शब्द करो अर्थात् उपदेश करो जिससे (स्तेनः) चोर (नः) हम लोगों को कष्ट देने को (मा) मत (ईशत) समर्थ हो (अघशंसः) पाप की प्रशंसा करता वह डाकू हम लोगों को दुष्टता देने को (मा) मत समर्थ हो जिससे (सुवीराः) सुन्दर वीरोंवाले हम लोग (विदथे) संग्राम में (बृहत्) बहुत कुछ (वदेम) कहें ॥३॥

भावार्थ—शुद्धाचरणों के करनेवाले सत्यवादी महात्मा जहाँ उपदेश करते हैं वहाँ चोर आदि दुष्ट नष्ट होकर सबको बहुत सुख बढ़ता है ॥३॥

इस सूक्त में उपदेशक के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह बयालीसवाँ सूक्त और ग्यारहवाँ वर्ग पूर्ण हुआ ॥

卐

प्रदक्षिणिदिति त्र्यृचस्य त्रिचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः । कपिञ्जल इवेन्द्रो देवता । १ जगती; ३ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । २ भुरिगतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब तीन ऋचावाले तैंतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में फिर उपदेशक के गुणों को कहते हैं—

प्रदक्षिणिदभि गृणन्ति कारवो वयो वदन्त ऋतुथा शकुन्तयः ।

उभे वाचौ वदति सामगा इव गायत्रं च त्रैष्टुभं चानु राजति ॥१॥

पदार्थ—जैसे (**ऋतुथा**) ऋतुओं में (**वदन्तः**) बोलते हुए (**शकुन्तय.**) शक्तिमान् (**वय.**) पक्षी कहते हैं वैसे (**कराबे**) कारुकजन (**उभे**) ऐहिक और पारमार्थिक सुख सिद्ध करनेवाली (**वाचौ**) वाणियों का (**अभि, गृणन्ति**) सब ओर से उपदेश करते हैं जो (**प्रदक्षिणित्**) प्रदक्षिणा को प्राप्त होनेवाला (**सामगाइव**) सामगानेवाले के समान (**गायत्रम्**) गायत्री (**च**) और उष्णि-कादि (**त्रैष्टुभम्**) त्रिष्टुभ को (**च**) और जगती आदि को भी (**वदति**) कहता है वह ऐहिक पारमार्थिक दोनों वाणियों को (**अनुराजति**) अनुकूलता से प्रकाशित करता है ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पक्षी ऋतु-ऋतु में नानाप्रकार के शब्दों का उच्चारण करते हैं वैसे शिल्पिजन डर को छोड़कर अनेक विद्या के प्रकाशक शब्दों को कहें ॥१॥

उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्रइव सवनेषु शंससि ।
वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद
विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद ॥२॥

पदार्थ—हे (**शकुने**) पखेरू के समान सामर्थ्यवाले ! जो तुम (**उद्गातेव**) ऊर्ध्व स्वर से वेद को गाते हुए के समान (**साम**) सामवेद का (**गायसि**) गान करते हो (**ब्रह्मपुत्र इव**) चारों वेदों के ज्ञाता का जैसे कोई पुत्र हो वैसे (**सवनेषु**) यज्ञ सम्बन्ध में प्रातःकाल की क्रिया आदि में (**शंससि**) स्तुति करते सो तुम (**वृषेव**) महाबली बैल के समान (**वाजी**) बलवान् (**शिशुमती**) प्रशंसित बालकोंवाली स्त्रियों को (**अपीत्य**) निश्चय से प्राप्त होकर (**न**) हम लोगों के लिए (**सर्वत**) सब ओर से (**भद्रम्**) कल्याण का (**आवद**) उपदेश कर। हे (**शकुने**) कहने की शक्ति से युक्त पुरुष ! तू सब ओर से विद्या का उपदेश कर। हे (**शकुने**) सब ओर से शक्तिमान् ! (**न**) हम लोगों के लिए (**विश्वत.**) सब ओर से (**पुण्यम्**) पुण्य का (**आवद**) उपदेश कर ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे वेदवक्ता विद्वान्‌जन नियम से पाठ और वेदोक्त आचार को करते हैं वैसे उपदेश करनेवाले स्त्री-पुरुष सबकी उन्नति के लिए सर्वदा सत्योपदेश करें जिससे सबके सुख सब ओर से बढ़ें ॥२॥

आवदंस्त्वं शकुने भद्रमा वद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः ।
यदुत्पतन्वदसि कर्करिर्यथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥३॥१२॥

पदार्थ—हे (**शकुने**) शक्तिमान् पक्षी के समान वर्त्तमान ! तू (**आवदन्**) सब ओर से उपदेश करता हुआ (**भद्रम्**) कल्याण करने योग्य प्रस्ताव का (**आवद**) अच्छे प्रकार उपदेश कर (**तूष्णीम्**) मौन को आलम्बन कर (**आसीनः**) बैठे हुए योग का अभ्यास करता हुआ (**न**) हम लोगों की (**सुमतिम्**) शुभ बुद्धि (**चिकिद्धि**) समझ (**उत्पतन्**) ऊपर को उड़ते के समान जिस (**भद्रम्**) कल्याण करने योग्य काम को (**यथा**) जैसे (**कर्करि**) निरन्तर करनेवाला हो वैसे (**वदसि**) कहते हो इसी से (**सुवीरा**) सुन्दर वीरोंवाले हम लोग (**विदथे**) संग्राम में (**बृहत्**) बहुत कुछ (**वदेम**) कहें ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्याओं को सुनकर मनन करते हुए पढ़ाते और सत्य को जानकर औरों को उपदेश करते हैं वे सबके कल्याण करनेवाले होते हैं ॥३॥

इस सूक्त में उपदेशकों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तेतालीसवाँ सूक्त, बारहवाँ वर्ग और चौथा अनुवाक और दूसरा मण्डल समाप्त हुआ ॥

॥ अथ तृतीय मण्डलम् ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथ तृतीयमण्डले सोमस्येति त्र्योविंशत्यृचस्य प्रथमसूक्तस्य गाथिनो विश्वामित्र-ऋषि । अग्निर्देवता; १, ३—५, ९, ११, १२, १५, १७, १९, २० निचृत्त्रिष्टुप्; २, ६, ७, १३, १४ त्रिष्टुप्; १०, २१ विराट् त्रिष्टुप् । २२ ज्योतिष्मती त्रिष्टुप् छन्द । धैवत , स्वर । ८, १६, २३ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

अब तीसरे मण्डल का प्रारम्भ है, उस के प्रथम सूक्त के आरम्भ के प्रथम मन्त्र में विद्वानों की प्रशंसा कहते हैं—

सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्ने वह्निं चकर्थ विदथे यजध्यै ।
देवाँ अच्छा दीद्यद्युञ्जे अद्रिं शमाये अग्ने तन्वं जुषस्व ॥१॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! जो आप (सोमस्य) ऐश्वर्य की उत्तेजना से (तवसम्) बलयुक्त (मा) मुझ को (वह्निम्) पदार्थ बहाने वाले अर्थात् एक देश से दूसरे देश को ले जानेवाले अग्नि को (वक्षि) कहते है (विदथे) विद्वानो के सत्कार करनेवाले यज्ञ मे (देवान्) विद्वान् वा दिव्य गुणो के (यजध्यै) सङ्गत करने को (अच्छ) अच्छे प्रकार (चकर्थ) किया करते हो उनके साथ मैं (दीद्यत्) देदीप्यमान हुआ विद्वानो के सत्कार करनेवाले यज्ञ मे विद्वान् वा दिव्य गुणो के सङ्गत करने को (युञ्जे) युक्त होता हूँ जैसे अग्नि (अद्रिम्) मेघ को बहाता है वैसे मैं विद्वानो के समीप मे (शमाये) शान्ति के समान आचरण करता हूँ । हे (अग्ने) अग्निवद्वर्त्तमान ! शिष्य जैसे विद्वान् के शरीर का सेवन करता है वैसे आप (तन्वम्) शरीर की (जुषस्व) प्रीति करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य ऐश्वर्य के करने की इच्छा करें वे विद्वानो की सङ्गति से शरीर को नीरोग रख कर अपने को विद्वान् बना के अग्नि आदि की पदार्थविद्या से कार्य्यों को सिद्ध करे ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—

प्राञ्चं यज्ञं चकृम वर्धतां गीः समिद्भिरग्निं नमसा दुवस्यन् ।
दिवः शशासुर्विदथा कवीनां गृत्साय चित्तवसे गातुमीषुः ॥२॥

पदार्थ—हम लोग (नमसा) सत्कार से जिस जिस (प्राञ्चम्) पहिले प्राप्त होनेवाले (यज्ञम्) सज्जनो की सङ्गतिरूप यज्ञ को (चकृम) करें उसमे (समिद्भि) इन्धनादि पदार्थों से (अग्निम्) अग्नि का (दुवस्यन्) सेवन करते हुए के समान हम लोगो की (गी) अच्छी शिक्षा पाई हुई वाणी (वर्धताम्) बढ़े जो (कवीनाम्) मेधावियो के (दिव) प्रकाश से (विदथा) विद्वानो को (तवसे) विद्यावृद्ध (गृत्साय) मेधावी के लिए (शशासु) सिखावें और (गातुम्) पृथिवी की (ईषु) चाहना करे उनको हम लोग सत्कार से (चित) ही आनन्दित करें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य अवश्य विद्या से उत्तम शिक्षा पाई हुई वाणी को बढ़ाकर महान् विद्वानो के समीप से अच्छे शिक्षित होकर पृथिवी के राज्य करने की चाहना करें ॥ २ ॥

मयो दधे मेधिरः पूतदक्षो दिवः सुबन्धुर्जनुषा पृथिव्याः ।
अविन्दन्नु दर्शतमप्स्व१न्तर्देवासो अग्निमपसि स्वसॄणाम् ॥३॥

पदार्थ—हे सज्जन ! जैसे (देवास:) विद्वान् जन (अप्सु) जल वा प्राणो के (अन्त.) बीच (दर्शतम्) देखने योग्य (अग्निम्) विद्युत् रूप अग्नि को (अपसि) कर्म के निमित्त (अविन्दन्) प्राप्त होते हैं वैसे जो (दिव.) सूर्य और (पृथिव्या.) भूमि के बीच (जनुषा) जन्म से (स्वसॄणाम्) भगिनियो का (सुबन्धु:) सुन्दर भ्राता (पूतदक्ष) जिस का पवित्र बल वह (मेधिर) सज्जनों का सङ्ग करनेवाला होता हुआ (मय) सुख को (दधे) धारण करता है वह (उ) ही जलो वा प्राणो में सब सुख को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् जन योग-विद्या से अपने आत्माओ मे ज्ञान का प्रकाश देख औरो को दिखला कर ज्ञान से उन्हें बढ़ाते हैं वैसे मनुष्यों को जिस प्रकार पुत्रो को विद्या पढ़ाना चाहिए वैसे ही पुत्रियों भी विद्या सम्पन्न करनी चाहियें । जैसे भाई जन विद्याभ्यास करें वैसे भगिनी भी, ऐसे ही सम्बन्ध मिल सकता है ॥ ३ ॥

अब स्त्री पुरुष के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अवर्धयन्त्सुभगं सप्त यह्वीः श्वेतं जज्ञानमरुषं महित्वा ।
शिशुं न जातमभ्यारुरश्वा देवासो अग्निं जनिमन्वपुष्यन् ॥४॥

पदार्थ—हे (जनिमन्) प्रशंसित जन्म वा (वपुष्यन्) अपने को रूप की इच्छा करनेवाले विद्वन् ! जैसे (अश्वा) विद्या व्याप्तिशील (देवास·) विद्वान् जन (श्वेतम्) श्वेतवर्ण (अरुषम्) अश्वरूप (अग्निम्) अग्नि को (सप्तयह्वी) सात महान् स्त्री (सुभगम्) सुन्दर ऐश्वर्ययुक्त (जज्ञानम्) जन्म दिलाने वाले का (महित्वा) सत्कार (जातम्) उत्पन्न हुए (शिशुम्) बालक के (न) समान (अवर्धयन्) बढ़ावें वे निरन्तर सुख का (अभ्यारु) प्राप्त होती हैं वैसे तुम भी प्रयत्न करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे सात स्त्रियां एक पुत्र की वृद्धि करती हैं वैसे जो अग्निविद्या को जानकर ऐश्वर्य की उन्नति करते हैं वे महिमा को प्राप्त होते है ॥ ४ ॥

फिर पुरुष विषय को अगले मन्त्र मे कहा है ॥

शुक्रेभिरङ्गै रज आततन्वान् क्रतुं पुनानः कविभिः पवित्रैः ।
शोचिर्वसानः पर्यायुरपां श्रियो मिमीते बृहतीरनूनाः ॥५॥१३॥

पदार्थ—जो मनुष्य (शुक्रेभि) वीर्यवान् (अङ्गै) अवयवो से (रज) ऐश्वर्य को (आततन्वान्) सब ओर से विस्तारित किये हुए (पवित्रै) पवित्र (कविभि) विद्वानो से (क्रतुम्) विद्या वा कर्म को (पुनान) पवित्र करता हुआ (अपाम्) जलो के बीच (आयु) जीवन और प्रकाश (वसान) आच्छादित ढाँपे हुए (बृहती) बड़ी बड़ी जिनमे (अनूना) जिन मे ऊनता नही विद्यमान उन शोभाओ वा धनो को (परिमिमीते) सब ओर से सम्पन्न करता है वह विद्वान् श्रीमान् कैसे न हो ? ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जब तक तुम्हारे दृढ़ अङ्ग वाले शरीर, पवित्र बुद्धिया, धर्मात्मा आप्त विद्वानो का सङ्ग, जितेन्द्रियता से पूर्ण आयु नही होती तब तक अतुल लक्ष्मी और विद्या भी नही होती ऐसा जानना चाहिये ॥ ५ ॥

अब स्त्रीपुरुषों के विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—

वब्राजा सीमनदतीरदब्धा दिवो यह्वीरवसाना अनग्नाः ।
सना अत्र युवतयः सयोनीरेकं गर्भं दधिरे सप्त वाणीः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् (सप्त, वाणी) सात वाणियो को (सीम्) सब ओर से (वब्राज) प्राप्त होता वैसे (अत्र) यहां (अनदती·) अविद्यमान अर्थात् अतीव सूक्ष्म जिनके दन्त (अदब्धा) अहिंसनीय अर्थात् सत्कार करने योग्य (दिव) देदीप्यमान (यह्वी) बहुत विद्या और गुण स्वभाव से युक्त (अवसाना) समीप में ठहरी हुई (अनग्ना) सब ओर से वस्त्र वा आभूषण आदि से ढपी हुई (सना) भोगने वाली (सयोनी) समान जिन की योनि अर्थात् एक माता से उत्पन्न हुई सगी वे (युवतय) प्राप्तयौवना स्त्री (एकम्) एक अर्थात् असहायक (गर्भम्) गर्भ को (दधिरे) धारण करतीं वे सुखी क्यो न हों ? ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो समान रूप वाली स्त्रियां अपने अपने समान पतियो को अपनी इच्छा से प्राप्त होकर परस्पर प्रीति के साथ सन्तानो को उत्पन्न कर और उन की रक्षा कर उन को उत्तम शिक्षा दिलाती हैं वे सुखयुक्त होती हैं । जैसे परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी और कर्म्मोपासना ज्ञानप्रकाश करनेवाली तीनों मिल कर सातवाणी सब व्यवहारो को सिद्ध करती हैं वैसे विद्वान् स्त्री पुरुष धर्म अर्थ काम और मोक्ष को सिद्ध कर सकते हैं ॥ ६ ॥

स्तीर्णा अस्य संहतो विश्वरूपा घृतस्य योनौ स्रवथे मधूनाम् ।
अस्थुरत्र धेनवः पिन्वमाना मही दस्मस्य मातरा समीची ॥७॥

पदार्थ—जैसे (स्तीर्णा) शुभगुणो से आच्छादित (विश्वरूपा) नाना स्वरूपयुक्त (संहत:) एक हो रहीं (पिन्वमाना) सेवन करती हुई (धेनव) गौएँ (अत्र) यहां (अस्य) इस व्यवहार के बीच (घृतस्य) जल के (योनौ) आधार में (मधूनाम्) मधुर पदार्थों की (स्रवथे) प्राप्ति के निमित्त ([illegible])

स्थिर होती हैं वैसे (**समीची**) अच्छे प्रकार प्राप्त होने (**मही**) सत्कार करने योग्य (**मातरा**) पिता माता (**वत्सस्य**) दुःख नष्ट करनेवाले बालक के पालने वाले होते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे नदी और समुद्र मिलकर रत्नों को उत्पन्न करते हैं वैसे स्त्री पुरुष सन्तानों को उत्पन्न करें ॥ ७ ॥

अब विद्याजन्म की प्रशंसा को अगले मन्त्रों में कहा है—

बभ्राणः सूनो सहसो व्यद्यौद्दधानः शुक्रा रभसा वपूंषि ।

श्चोतन्ति धारा मधुनो घृतस्य वृषा यत्र वावृधे काव्येन ॥८॥

पदार्थ—हे (**सूनो**) सन्तान ! जैसे (**शुक्रा**) शरीर आत्मा और बल तथा (**रभसा**) रोगरहित (**वपूंषि**) रूपवान् शरीरों को (**दधान**) धारण करता हुआ जो (**मधुन**) मीठे (**घृतस्य**) जल की (**धारा**) धाराओं के समान वाणी (**श्चोतन्ति**) भरती हैं (**यत्र**) जिस व्यवहार में (**वृषा**) बलवान् जन (**काव्येन**) विद्वानों के निर्माण किये और पढ़े हुए कविताई आदि कर्म के साथ (**वावृधे**) बढ़ता है वा (**सहस**) बल से (**व्यद्यौत्**) प्रकाशित होता है वैसे ही इन उक्त पदार्थों से (**बभ्राण**) पुष्ट होते हुए बढ़ो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे उत्तम शिक्षा पाये हुए सज्जनों की वाणी जल के समान कोमल और सरस होती हैं जैसे ब्रह्मचारी बलवान् होता है वैसे सन्तानों को चाहिये कि विद्या सुशिक्षाओं का अच्छे प्रकार ग्रहण कर बलवान् और सुशील होवें ॥ ८ ॥

पितुश्चिदूधर्जनुषा विवेद व्यस्य धारा असृजद्वि धेनाः ।

गुहा चरन्तं सखिभिः शिवेभिर्दिवो यह्वीभिर्न गुहा बभूव ॥९॥

पदार्थ—जैसे (**ऊधः**) रात्री (**विबभूव**) विशेषता से होती है वा जैसे (**अस्य**) इस जल की (**धारा**) धाराओं के (**चित्**) समान प्रवाह (**गुहा**) बुद्धि में होते हैं वैसे जो (**पितु**) पिता की उत्तेजना से गर्भ में स्थिर होकर (**जनुषा**) जन्म से प्रकट होकर (**शिवेभि**) मङ्गलकारी (**सखिभि**) मित्र वर्गों के साथ (**दिव**) विद्या की दीप्ति जो (**यह्वी**) बड़ी बड़ी उनके (**न**) समान (**गुहा**) कन्दरा में (**चरन्तम्**) विचरते हुए को (**विवेद**) जानता है (**धेना**) प्रीयमाण सन्तानों के समान (**व्यसृजत्**) विशेषता से उत्पन्न करता वह सुख प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अन्धकार में स्थित वस्तु नहीं दीख पड़ती जैसे दीप से प्राप्त होती वैसे पिता के शरीर में वर्त्तमान जीव गर्भ में स्थिर हुआ नहीं दीखता और जब उसका जन्म होता है तब दीखता है इस प्रकार जो मङ्गलाचरणों में मित्रों के साथ विद्याओं का ग्रहण करता है वह आत्मा को जान बड़ा होता है ॥ ९ ॥

पितुश्च गर्भं जनितुश्च बभ्रे पूर्वीरेको अधयत्पीप्यानाः ।

वृष्णे सपत्नी शुचये सबन्धू उभे अस्मै मनुष्ये३ नि पाहि ॥१०॥

पदार्थ—जैसे (**अस्मै**) इस (**शुचये**) पवित्र (**वृष्णे**) वीर्य सेचनेवाले मनुष्य के अर्थ (**सपत्नी**) समान जिसका पति वह स्त्री (**गर्भम्**) गर्भ को (**बभ्रे**) धारण करती वह (**एक**) एक गर्भ (**पितु**) पालन करनेवाले (**च**) और सुन्दर अन्नादि और (**जनितु**) जन्म देनेवाले पिता की (**च**) और धाई की उत्तेजना से जन्म पाकर (**पूर्वी**) पहिले उत्पन्न हुई (**पीप्याना**) बढ़ती हुई प्रजा (**अधयत्**) दुग्ध पीती है वैसे (**उभे**) दोनों स्त्री पुरुष (**सबन्धू**) एक समान बन्धुओं के समान प्रीति रखनेवाले (**मनुष्ये**) मनुष्य के लिए जो हित उसके निमित्त (**गर्भम्**) गर्भ की रक्षा करते हैं वैसे हे विद्वन् ! एक होते आप (**नि, पाहि**) निरन्तर पालना करो ॥१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब माता पिता गर्भ का धारण करते हैं और उसकी रक्षा कर दुग्धपान आदि से बढ़ाते हैं वैसे स्त्री पुरुष प्रीति को बढ़ाकर गर्भ का धारण कर उसे अच्छे प्रकार पाल मनुष्यों के हित के लिए अपने सन्तानों को विद्या ग्रहण करावें ॥१०॥

उरौ महाँ अनिबाधे ववर्धापो अग्निं यशसः सं हि पूर्वीः ।

ऋतस्य योनावशयद्दमूना जामीनामग्निरपसि स्वसॄणाम् ॥११॥

पदार्थ—जैसे (**पूर्वी**) प्राचीन (**आप**) जल मेघ से बढ़ते हैं वैसे (**यशस**) कीर्ति से (**महान्**) जो बड़ा है वह (**अनिबाधे**) बाधा रहित (**उरौ**) बहुत व्यवहार में (**अग्निम्**) अग्नि को प्राप्त कर (**हि, सं, ववर्ध**) अच्छे प्रकार बढ़ता है जैसे (**अग्नि**) पावक (**ऋतस्य**) जल के (**योनौ**) कारण में (**अशयत्**) सोता है वैसे (**जामीनाम्**) भोगनेवाली (**स्वसॄणाम्**) बहिनियों के (**अपसि**) कर्म में स्थिर होकर (**दमूना**) दमनशील जन विद्या से बढ़ता है ॥११॥

भावार्थ—जो निर्विघ्न विद्यार्थी विद्या के ग्रहण करने में प्रयत्न करें तो दम और शमादि गुणयुक्त होते हुए सब सम्बन्धियों को विद्यायुक्त कर सकें ॥११॥

अक्रो न बभ्रिः समिथे महीनां दिदृक्षेयः सूनवे भाऋजीकः ।

उदुस्रिया जनिता यो जजानापां गर्भो नृतमो यह्वो अग्निः ॥१२॥

पदार्थ—(**य**) जो सूर्य (**अपाम्**) जलों के बीच (**गर्भ**) स्तुति करने के योग्य (**यह्व**) महान् (**अग्नि**) अग्निरूप (**उस्रिया**) किरणों से संयुक्त जलों का (**जनिता**) उत्पन्न करनेवाला होता है उसके (**दिदृक्षेय**) देखने को चाहता मैं उत्तम (**नृतम**) अतीव नेता सबका नायक (**उज्जजान**) उत्तमता से प्रकट होता है वह (**सूनवे**) सन्तान के लिए (**महीनाम्**) पूजनीय सेनाओं के (**समिथे**) संग्राम के बीच (**बभ्रि**) धारण करनेवाला (**अक्र**) किसी प्रकार से आक्रमण करने को अयोग्य के (**न**) समान (**भाऋजीक**) विद्यादीप्तियों से सरल होता है ॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य जलों के गर्भ को उत्पन्न कर तथा मेघ के साथ अच्छे प्रकार युद्ध कर जल वर्षा कर सबको बढ़ाता है वैसे सन्तानों को शिक्षा देनेवाले सब जगह विजयी होते हैं ॥१२॥

फिर विद्या की प्रशंसा को अगले मन्त्रों में कहा है—

अपां गर्भं दर्शतमोषधीनां वना जजान सुभगा विरूपम् ।

देवासश्चिन्मनसा सं हि जग्मुः पनिष्ठं जातं तवसं दुवस्यन् ॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**देवास**) विद्वान् जन (**मनसा**) अन्तःकरण और अभ्यास से (**चित्**) भी जिस (**अपाम्**) प्राण वा (**ओषधीनाम्**) ओषधियों के बीच (**दर्शतम्**) देखने योग्य (**विरूपम्**) जिसमें विविध रूप विद्यमान उस (**गर्भम्**) मध्यव्यापी अग्नि को (**स, जग्मु**) अच्छे प्रकार जाने वा प्राप्त हों तथा जो (**हि**) ही (**सुभगा**) सुन्दर ऐश्वर्य्य के देनेवाले (**वना**) वन वा जंगलों को (**जजान**) उत्पन्न करता है जिस (**जातम्**) प्रसिद्ध (**तवसम्**) बल करनेवाले (**पनिष्ठम्**) स्तुति करने योग्य अग्नि को (**दुवस्यन्**) सेवन करें उस विद्युद्रूप अग्नि को तुम लोग यथावत् जानो ॥१३॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जो अग्नि, वायु, जल और पृथिवी में तथा शरीर ओषधि आदि प्रत्यक्ष परोक्षभूत पदार्थों में व्याप्त उसको जान उससे सब कार्यों को सिद्ध करें ॥१३॥

बृहन्त इद्भानवो भाऋजीकमग्निं सचन्त विद्युतो न शुक्राः ।

गुहेव वृद्धं सदसि स्वे अन्तरपार ऊर्वे अमृतं दुहानाः ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**बृहन्त**) महान् (**अमृतम्**) कारणरूप से नाशरहित जल को (**दुहाना**) पूर्ण करते हुए (**भानव**) किरण वा दीप्ति (**विद्युत**) बिजुलियों के (**न**) समान (**शुक्रा**) शुद्ध (**सदसि**) सभा में (**वृद्धम्**) विद्या और अवस्था से जो अतीव प्रशंसित उसके समान आत्मा को (**गुहेव**) बुद्धिस्थ जीव के समान (**भाऋजीकम्**) दीप्तियों में सरल (**अग्निम्**) अग्नि को (**सचन्त**) सम्बद्ध वा मेल करते हैं जो (**अपारे**) अगाध द्यावापृथिवी (**स्वे**) निज सम्बन्ध करनेवाले (**ऊर्वे**) लोक सङ्कर्षण करनेवाले अभिव्याप्त होकर (**अन्त**) बीच में विराजमान है (**इत्**) उन्हीं को जानो ॥१४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो अग्नि सर्वत्र स्थित सूर्य वा भौमरूप से प्रसिद्ध बिजुलीरूप से गुप्त सबादि पदार्थों का निमित्त है उसको जानकर अभीष्ट सिद्ध करना चाहिए ॥१४॥

ईळे च त्वा यजमानो हविर्भिरीळे सखित्वं सुमतिं निकामः ।

देवैरवो मिमीहि सं जरित्रे रक्षा च नो दम्येभिरनीकैः ॥१५॥१५॥

पदार्थ—(**यजमान**) सब विद्या गुणों का सङ्ग करनेवाला मैं (**देवैः**) विद्वानों के साथ (**च**) और (**हविर्भि**) ग्रहण करने योग्य साधनों से जिन (**त्वा**) आप विद्वानों की (**सम, ईळे**) सम्यक् स्तुति करता हूँ वा (**निकाम**) निश्चित कामनावाला होता हुआ (**सखित्वम्**) मित्रपन वा (**सुमतिम्**) सुन्दर बुद्धि की (**ईळे**) प्रशंसा करता हूँ वह आप (**जरित्रे**) स्तुति करनेवाले मेरे लिये (**अव**) रक्षा आदि को (**मिमीहि**) उत्पन्न करो (**दम्येभि**) दमन करने योग्य (**अनीकै**) सेनाजनों के साथ (**न**) हम लोगों की (**च**) भी (**रक्ष**) रक्षा करो ॥ १५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को प्रथम श्रेष्ठ अध्यापक ढूँढना चाहिये और फिर उससे समस्त विद्याओं को ढूँढना चाहिये तदनन्तर विचार पीछे साक्षात्कार अर्थात् प्रत्यक्ष करना उसके परे उपयोग करना चाहिए ॥ १५ ॥

उपक्षेतारस्तव सुप्रणीतेऽग्ने विश्वानि धन्या दधानाः ।

सुरेतसा श्रवसा तुञ्जमाना अभि ष्याम पृतनायूँरदेवान् ॥१६॥

पदार्थ—हे (**सुप्रणीते**) अपने से सुन्दर उत्तमोत्तम नीति का प्रकाश करनेवाले (**अग्ने**) पूर्णविद्यायुक्त (**तव**) तुम्हारी उत्तेजना से विद्वान् होकर (**पृतनायून्**) सेनाओं में पूर्ण आयु जिनकी विद्यमान उन (**अदेवान्**) अविद्वान् (**उपक्षेतार**) समीप प्राप्त हुए जनों को छिन्न भिन्न करनेवाले (**सुरेतसा**) सुन्दर संयुक्त वीर्य्य और (**श्रवसा**) श्रवण से (**विश्वानि**) समस्त (**धन्या**) धन के योग्य पदार्थों को (**दधाना**) धारण करते और (**तुञ्जमाना**) बल करते हुए हम लोग सुखी (**अभिष्याम**) सब ओर से होवें ॥ १६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अविद्वानों की उपेक्षा करके विद्वानों का सेवन करते हैं वे सब ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥

आ देवानामभवः केतुरग्ने मन्द्रो विश्वानि काव्यानि विद्वान् ।

प्रति मर्ताँ अवासयो दमूना अनु देवान्रथिरो यासि साधन् ॥१७॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) तीव्रबुद्धिजन (**केतु**) ज्ञानवान् (**मन्द्र**) आनन्द के देनेवाले आप (**विश्वानि**) समस्त (**काव्यानि**) कवियो मे निर्म्माण किये हुए शास्त्रो को अध्ययन कर (**देवानाम्**) देवों के बीच (**विद्वान्**) ज्ञानवान् (**आ, अभव**) हो तथा (**दमूना**) जितेन्द्रिय (**रथिर**) और प्रशंसित रथवाले (**साधन्**) साधना करते हुए आप (**मर्तान्**) मनुष्य जो (**देवान्**) विद्वान् उनके (**प्रति**) प्रति (**अवासय**) निवास कराओ वा (**अनु, यासि**) उक्त मनुष्यो के प्रति अनुकूलता से प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥

भावार्थ—जो विद्वानो के बीच स्थिर हो सब शास्त्रों का अध्ययन कर औरो को अध्ययन कराता है वह सब सुखों को प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

नि दुरोणे अमृतो मर्त्यानां राजा ससाद विदथानि साधन् ।

घृतप्रतीक उर्विया व्यद्यौदग्निर्विश्वानि काव्यानि विद्वान् ॥१८॥

पदार्थ—जो (**अमृत**) आत्मरूप से मृत्यु धर्मरहित (**विद्वान्**) विद्वान् (**दुरोणे**) घर मे (**मर्त्यानाम्**) मनुष्यो के बीच (**घृतप्रतीक**) घृत जिसका प्रकाश करनेवाला (**अग्नि**) वह अग्नि (**उर्विया**) पृथिवी पर (**वि, अद्यौत्**) विशेषता से प्रकाशित होते हुए के समान (**विश्वानि**) समस्त (**विदथानि**) विज्ञानो वा (**काव्यानि**) विशेष आक्रमण करती हुई बुद्धियोवाले विद्वानों के बनाये शास्त्रो का अध्ययन कर सबका हित (**साधन्**) सिद्ध करते हुए मनुष्यो के बीच (**निषसाद**) स्थिर हो 'वह' हम लोगो को सत्कार करने योग्य है ॥ १८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अग्नि सूर्यरूप से सबको प्रकाशित करता है वैसे पूर्ण विद्यायुक्त सभापति राजा धर्म से प्रजाजनो की अच्छे प्रकार पालना कर विद्याओं का प्रकाश करता है वह सबको सत्कार करने योग्य कैसे न हो ? ॥ १८ ॥

आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान्महीभिरूतिभिः सरण्यन् ।

अस्मे रयिं बहुलं सन्तरुत्रं सुवाचं भागं यशसं कृधी नः ॥१९॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप (**शिवेभि**) मङ्गलमय (**सख्येभि**) मित्रो के किये हुए कर्म्मों के साथ (**न**) हम लोगो को (**आ, गहि**) प्राप्त हूजिये (**महीभि**) बडी बडी (**ऊतिभि**) रक्षाओ से (**अस्मे**) हम लोगो को (**सरण्यन्**) प्राप्त होते हुए (**महान्**) बड़े सज्जन आप (**सन्तरुत्रम्**) दु:ख से अच्छे प्रकार तारनेवाले (**सुवाचम्**) सुन्दर वाणी के निमित्त (**यशसम्**) कीर्त्ति करनेवाले (**भगम्**) सेवन करने योग्य (**बहुलम्**) बहुत प्रकार के (**रयिम्**) पुष्कल धन को प्राप्त (**न**) हम लोगो को (**कृधि**) कीजिए ॥ १९ ॥

भावार्थ—यदि मनुष्य सुन्दर मित्रो को प्राप्त हो तो उनको बडी लक्ष्मी कैसे न प्राप्त हो ॥ १९ ॥

एता ते अग्ने जनिमा सनानि प्र पूर्व्याय नूतनानि वोचम् ।

महान्ति वृष्णे सवना कृतेमा जन्मञ्जन्मन् निहितो जातवेदाः ॥२०॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वान् ! (**ते**) आपके (**एता**) इन (**जनिम**) जन्मो को जो कि (**सनानि**) कर्मों से ससेवित वा (**नूतनानि**) नवीन (**महान्ति**) बडे बडे (**सवना**) ऐश्वर्यसाधक कर्म्म (**जन्मन् जन्मन्**) जन्म जन्म मे (**कृता**) किये हुए तथा (**इमा**) इन ऐश्वर्यसाधक कर्म्मों को (**पूर्व्याय**) पूर्वजो से किये हुए (**वृष्णे**) बल के लिये (**प्र, वोचम्**) कहू उनको (**निहित**) अच्छे प्रकार स्थित (**जातवेदा**) जो उत्पन्न हुए पदार्थो मे विद्यमान आप सुनो ॥ २० ॥

भावार्थ— हे मनुष्यो ! जो कर्म जीवो को करने योग्य उनसे किये जाते और किये जायेंगे वे सब सुख दु:ख मिश्रित फल भोगनेवाले होते हैं ॥ २० ॥

जन्मञ्जन्मन् निहितो जातवेदा विश्वामित्रेभिरिध्यते अजस्रः ।

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥२१॥

पदार्थ—हे जीव ! परमेश्वर ने (**जन्मन् जन्मन्**) जन्म जन्म मे (**निहित**) कर्मों के अनुसार संस्थापन किया (**जातवेदा**) उत्पन्न हुए पदार्थो मे न उत्पन्न हुए के समान वर्त्तमान (**विश्वामित्रेभिः**) समस्त संसार जिनका मित्र उन सज्जनो से (**अजस्र**) निरन्तर (**इध्यते**) प्रबोधित कराया जाता (**तस्य**) उस (**यज्ञियस्य**) यज्ञ के योग्य होते हुए प्राणी की (**सुमतौ**) प्रशंसित प्रज्ञा मे और (**भद्रे**) कल्याण करनेवाले व्यवहार मे तथा (**सौमनसे**) सुन्दर मन के भाव मे (**अपि**) भी हम लोग (**स्याम**) होवें ॥ २१ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को प्रसिद्ध जगत् मे सुखदु:खादि न्यून अधिक फलों को देखकर पहिले जन्म मे सञ्चित कर्म फल का अनुमान करना चाहिये जो परमेश्वर कर्म फल का देनेवाला न हो तो व्यवस्था भी प्राप्त न हो इसलिये सबको श्रेष्ठ बुद्धि उत्पन्न कर वैर आदि छोड़ सबके साथ सत्य भाव से वर्त्तना चाहिये ॥ २१ ॥

इमं यज्ञं सहसावन् त्वं नो देवत्रा धेहि सुक्रतो रराणः ।

प्र यंसि होतर्बृहतीरिषो नोऽग्ने महि द्रविणमा यजस्व ॥२२॥

पदार्थ—हे (**सहसावन्**) प्रशस्त बल और (**सुक्रतो**) श्रेष्ठप्रज्ञायुक्त (**अग्ने**) विद्वान् (**त्वम्**) आप (**न**) हमारे (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) रागद्वेषरहित न्याय दयामय यज्ञ का (**देवत्रा**) विद्वानो मे (**धेहि**) स्थापन करें। वा हे (**होत**) ग्रहण करनवाले विद्वान् (**रराण**) दाता होते हुए आप (**बृहती**) बडी-बडी (**इष**) अन्नादि सामग्रियो को (**न**) हम लोगों के लिये (**प्र, यंसि**) देत है वह (**महि**) बहुत (**द्रविणम्**) धन को (**आ, यजस्व**) दीजिय ॥ २२ ॥

भावार्थ—ईश्वर ने विद्वान् को आज्ञा दी है कि जबतक जीवे तबतक तू विद्या यज्ञ को मनुष्यो मे अच्छे प्रकार विस्तारे और पुष्कल अन्न और उससे धनो को सबके अर्थ देके सुखी होवे ॥ २२ ॥

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।

स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥२३॥१६॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वान् (**गो**) वाणी का (**शश्वत्तमम्**) अनादि भूत शब्दार्थ सम्बन्ध (**हवमानाय**) आनन्द के लिये (**पुरुदंसम्**) जिसमे बहुत कर्म बनते है (**सनिम्**) अलग-अलग की हुई (**इळाम्**) स्तुति करनेवाली वाणी को आप (**साध**) सिद्ध कीजिय। हे (**अग्ने**) विद्वान् ! जो (**ते**) तुम्हारी (**सुमति**) उत्तम बुद्धि होती है (**सा**) वह (**अस्मे**) हम लोगो के लिये (**भूतु**) हो जिससे (**न**) हमारे (**विजावा**) विशेष करके उत्पन्न हुआ हो ऐसा (**तनय**) विस्तीर्ण बुद्धिवाला (**सूनु**) पुत्र (**स्यात्**) हो ॥ २३ ॥

भावार्थ—विद्वानो की यही योग्यता है कि सब कुमार और कुमारियो को पण्डित पण्डिता बनावें जिससे सब विद्या के फल को प्राप्त होकर सुमति हो ॥ २३ ॥

इस सूक्त मे विद्वान् स्त्री पुरुष और विद्या जन्म की प्रशंसा करने से
इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है
यह जानना चाहिये ॥

यह तीसरे मण्डल मे प्रथम सूक्त और सोलहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

वैश्वानरायेति पञ्चदशर्चस्य द्वितीयस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषि । अग्निर्वैश्वानरो देवता । १, ३, १० जगती । २, ४, ६, ८, ९, ११ विराड् जगती । ५, ७, १२—१५ निचृज्जगती च छन्द । निषाद स्वर ॥

अब पन्द्रह ऋचा वाले दूसरे सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में विद्वानो के गुणो का उपदेश किया है—

वैश्वानराय धिषणामृतावृधे घृतं न पूतमग्नये जनामसि ।

द्विता होतारं मनुषश्च वाघतो धिया रथं न कुलिशः समृण्वति ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (**ऋतावृधे**) सत्य के बढानेवाले (**वैश्वानराय**) समस्त मनुष्यो मे प्रकाशमान (**अग्नये**) अग्नि के लिये (**पूतम्**) पवित्र (**घृतम्**) घृत के (**न**) समान (**धिषणाम्**) प्रगल्भ बुद्धि को (**जनामसि**) उत्पन्न करें (**वाघत**) मेधावी जन (**धिया**) प्रज्ञा वा कर्म से (**कुलिश**) वज्र (**रथम्**) रथ को (**न**) जैसे वैसे (**समृण्वति**) अच्छे प्रकार प्राप्त होना (**द्विता**) दो के होन (**होतारम्**) होमकर्त्ता मनुष्य (**च**) और (**मनुष**) मनुष्यो को सम्यक् प्राप्त होता वैसे ही तुम भी आचरण करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ऋत्विग् जन घृत आदि हवि को अच्छे प्रकार शोधकर अग्नि मे हवन करने से अग्नि की वृद्धि करते हैं वैसे अध्यापक और उपदेशक जन शिष्या तथा श्रोताओ की बुद्धियो को बढावें, जैसे कुल्हाडी आदि साधनों से काष्ठ छील कर यान बनाये जाते हैं वैसे उत्तम शिक्षा और ताडनाओ से शिष्य लोग विद्या से सम्पन्न किये जावें, जैसे अध्यापक और अध्येता प्रीति से वर्त्तमान है वैसे सबको वर्त्तमान करना चाहिए ॥ १ ॥

अब अग्नि के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

स रोचयज्जनुषा रोदसी उभे स मात्रोरभवत् पुत्र ईड्यः ।

हव्यवाळग्निरजरश्चनोहितो दूळभो विशामतिथिर्विभावसुः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**स**) वह (**अग्नि**) अग्नि (**जनुषा**) जन्म से अर्थात् उत्तेजना से (**उभे**) दोनो (**रोदसी**) सूर्य्य और भूमि को (**रोचयत्**) प्रकाशित करे और (**स**) वह अग्नि (**मात्रो**) इन मान करनेवाली सूर्यभूमियो मे (**ईड्य**) स्तुति करने योग्य (**पुत्र**) पुत्र के समान हो तथा जो (**अग्नि**) अग्नि (**हव्यवाट्**) हव्य पदार्थ को पहुचानेवाला (**अजर**) जीर्णावस्था रहित (**चनोहितः**) अन्नादि पदार्थों का हितकारी (**दूळभ**) दु:ख से प्राप्त होने योग्य (**विभावसुः**) जो विविध प्रकार की कान्तियो का वसानेवाला (**विशाम्**) प्रजाओ के समीप (**अतिथिः**) निरन्तर पहुचनेवाला हो उसको यथावत् जानो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो ब्रह्मचर्य्य से विद्या और उत्तम शिक्षाओ को प्राप्त सत्पुत्र हो वह भूमि और आकाश के बीच विराजमान हो सूर्य के समान सबका हितकारी हो ॥ २ ॥

क्रत्वा दक्षस्य तरुषो विधर्मणि देवासो अग्निं जनयन्त चित्तिभिः ।

रुरुचानं भानुना ज्योतिषा महामत्यं न वाजं सनिष्यन्नुप ब्रुवे ॥३॥

पदार्थ—जैसे (**देवासः**) विद्या की कामना करनेवाला (**क्रत्वा**) बुद्धि वा कर्म से (**दक्षस्य**) बल (**तरुष**) जो कि दुःखों से अच्छे प्रकार तारनेवाला उसके (**विधर्मणि**) विविध कर्म में (**चित्तिभिः**) इन्धन आदि की चयन क्रियाओं से (**भानुना**) जो प्रकाश उससे (**रुरुचानम्**) अत्यन्त दीप्तिमान् (**ज्योतिषा**) तेज से (**महाम्**) महान् (**वाजम्**) वेगवान् (**अग्निम्**) अग्नि को (**अत्यम्**) अश्व के (**न**) समान (**जनयन्त**) उत्पन्न करें वैसे इस अग्नि को (**सनिष्यन्**) सेवन करता हुआ मैं औरों को (**उप, ब्रुवे**) उपदेश करता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यदि क्रिया कौशलता के साथ अग्नि से उपकार लिया चाहें तो अत्यन्त कार्य्यसिद्धि करनेवाला हो ॥ ३ ॥

आ मन्द्रस्य सनिष्यन्तो वरेण्यं वृणीमहे अह्रयं वाजमृग्मियम् ।

रातिं भृगूणामुशिजं कविक्रतुमग्निं राजन्तं दिव्येन शोचिषा ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**मन्द्रस्य**) अच्छे प्रकार आनन्द देनेवाले के लाभ के लिए (**अह्रयम्**) लज्जारहित (**वाजम्**) वेगवान् (**ऋग्मियम्**) ऋचाओं से जिसका प्रक्षेप होता अर्थात् जिसमें क्रिया होती उस (**भृगूणाम्**) अविद्या जलानेवालों के (**रातिम्**) देनेवाले (**उशिजम्**) मनोहर (**दिव्येन**) शुद्ध और (**शोचिषा**) स्वरूप से (**राजन्तम्**) प्रकाशमान (**कविक्रतुम्**) कवियों के यज्ञ के समान उपकार जिसका उस (**वरेण्यम्**) स्वीकार करने योग्य (**अग्निम्**) अग्नि को (**सनिष्यन्तः**) बाँटते हुए हम लोग (**आ, वृणीमहे**) अच्छे प्रकार स्वीकार करते हैं वैसे तुम भी उसको स्वीकार करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो युक्ति से अग्नि सेवन करें तो क्या-क्या दिव्य सुख वा वस्तु न सिद्ध करें ॥ ४ ॥

अग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जना वाजश्रवसमिह वृक्तबर्हिषः ।

यतस्रुचः सुरुचं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञानां साधदिष्टिमपसाम् ॥५॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**यतस्रुचः**) जिन्होंने यज्ञ करने की स्रुचा ग्रहण की और (**वृक्तबर्हिषः**) इस यज्ञ धूम से अन्तरिक्ष छेदन किया वे (**जनाः**) ऋत्विज् मनुष्य (**इह**) वर्त्तमान समय में (**सुम्नाय**) सुख के लिए (**सुरुचम्**) सुन्दर प्रकाशित (**विश्वदेव्यम्**) समस्त दिव्य पदार्थों में उत्पन्न हुए (**रुद्रम्**) किन्हीं को रुलानेवाले (**यज्ञानाम्**) यज्ञ कर्मों के (**साधदिष्टिम्**) हवन काम को जिससे सिद्ध करते वा अन्य (**अपसाम्**) कर्मों के बीच (**वाजश्रवसम्**) वेग और अन्न को सिद्ध करते उस (**अग्निम्**) अग्नि को (**पुरः**) प्रथम सब कर्मों से पहिले (**दधिरे**) धारण करते हैं वैसे हम लोगों को भी अनुष्ठान करना चाहिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ऋत्विग् जन यज्ञों में अग्नि से वायु और वर्षा के जल की शुद्धि आदि का काम करते हैं वैसे शिल्पि आदि जनों को भी पाचक अग्नि से कार्य सिद्ध करने चाहिए ॥ ५ ॥

पावकशोचे तव हि क्षयं परि होतर्यज्ञेषु वृक्तबर्हिषो नरः ।

अग्ने दुव इच्छमानास आप्यमुपासते द्रविणं धेहि तेभ्यः ॥६॥

पदार्थ—हे (**पावकशोचे**) अग्नि के समान कान्तिवाले (**होतः**) दानशील (**अग्ने**) विद्वान् (**तव**) आपके (**हि**) ही (**क्षयम्**) घर को (**यज्ञेषु**) यज्ञों में (**दुवः**) सेवन (**इच्छमानासः**) चाहते हुए (**वृक्तबर्हिषः**) ऋत्विग्जन (**नरः**) नायक सर्व शिरोमणि जनों के समान (**आप्यम्**) जो प्राप्त होने योग्य अग्नि की (**उपासते**) उपासना करते हैं (**तेभ्यः**) उनके लिए (**द्रविणम्**) धन वा यश (**धेहि**) धारिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वन् ! जो तुम्हारे निकट तुम्हारी सेवा करते हुए अग्नि विद्या की याचना करते हैं उनके प्रति इस विद्या का उपदेश कीजिए जिससे वे धनाढ्य होवें ॥ ६ ॥

अब अग्नि विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आ रोदसी अपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो अधारयन् ।

सो अध्वराय परि णीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! आप जैसे (**चनोहितः**) अन्न के लिए हित करानेवाला (**वाजसातये**) अन्नादि पदार्थों के विभाग करने को (**अत्यः**) जैसे व्याप्तिशील अर्थात् चालों में व्याप्ति रखनेवाला अश्व (**न**) वैसे (**कविः**) चञ्चल देखा जाय ऐसा अग्नि (**रोदसी**) आकाश और पृथिवी (**आ, अपृणत्**) अच्छे प्रकार पूर्ण करता है वा (**यत्**) जिस (**महत्**) बहुत (**जातम्**) उत्पन्न हुए (**स्वः**) सुख को (**आ**) अच्छे प्रकार परिपूर्ण करता है (**सः**) वह (**अध्वराय**) अहिंसारूप यज्ञ के लिए ([illegible]) प्राप्त किया जाता है वैसे (**एनम्**) उक्त अग्नि को (**अपसः**) कर्म [illegible] धारण करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्युत् रूप अग्नि सूर्य पृथिवी उनमें स्थित और अन्तरिक्षस्थ पदार्थों को प्रकाशित करता है यदि वह यानों में प्रयुक्त किया जाये तो सबका हितकारी हो ॥ ७ ॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

नमस्यत हव्यदातिं स्वध्वरं दुवस्यत दम्यं जातवेदसम् ।

रथीर्ऋतस्य बृहतो विचर्षणिरग्निर्देवानामभवत् पुरोहितः ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो (**रथीः**) प्रशंसित रथवान् (**ऋतस्य**) सत्य (**बृहतः**) बड़े कार्य का (**विचर्षणिः**) देखनेवाला (**देवानाम्**) विद्वानों का (**पुरोहितः**) पहले जिसका धारण करते (**अग्निः**) पवित्र करनेवाला (**अभवत्**) होता है और (**हव्यदातिम्**) होमने योग्य पदार्थों का देनेवाला (**स्वध्वरम्**) जिससे कि सुन्दर यज्ञ होता उस (**दम्यम्**) दानशील (**जातवेदसम्**) और उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान विद्वान् को (**नमस्यत**) नमस्कार करो और उसकी (**दुवस्यत**) सेवा करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो बहुत विद्यावाला अहिंसक जितेन्द्रिय विद्वानों के बीच विद्वान् हो वही तुम लोगों को नमस्कार करने और सेवने योग्य भी हो ॥ ८ ॥

अब अग्नि के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

तिस्रो यह्वस्य समिधः परिज्मनोऽग्नेरपुनन्नुशिजो अमृत्यवः ।

तासामेकामदधुर्मर्त्ये भुजमु लोकमु द्वे उप जामिमीयतुः ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यह्वस्य**) महान् (**परिज्मनः**) सर्वत्र व्याप्त (**अग्नेः**) अग्नि की जो (**उशिजः**) मनोहर (**अमृत्यवः**) मृत्यु धर्म रहित (**तिस्रः**) तीन प्रकार बिजुली भूमिगत और सूर्यरूप से स्थित ज्योति (**समिधः**) सम्यक् प्रदीप्त लपटें हैं वे सबको (**अपुनन्**) पवित्र करती हैं (**तासाम्**) उनमें से (**उ**) ही (**एकाम्**) एक को (**मर्त्ये**) मनुष्य लोक में (**अदधुः**) स्थापन करते हैं (**द्वे**) शेष दो (**भुजम्**) पालनेवाली पृथ्वी तथा (**लोकम्**) देखने योग्य लोक के समूह को (**उ**) और (**जामिम्**) जायमान वस्तु मात्र को (**उपेयतुः**) प्राप्त होती हैं उनको अच्छे प्रकार जानो ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य तीन प्रकार के अग्नि को जानके ऊपर नीचे स्थित जो प्रयोजन उनको सिद्ध करने को प्रवृत्त हों तो उनको कोई काम असाध्य न हो ॥ ९ ॥

विशां कविं विश्पतिं मानुषीरिषः सं सीमकृण्वन्त्स्वधितिं न तेजसे ।

स उद्वतो निवतो याति वेविषत्स गर्भमेषु भुवनेषु दीधरत् ॥१०॥१८॥

पदार्थ—जिस (**विशाम्**) प्रजाओं में (**कविम्**) प्रविष्ट बुद्धिवाले (**विश्पतिम्**) प्रजापालक विद्वान् को (**मानुषीः**) मनुष्यों की (**इषः**) इच्छा (**तेजसे**) तेज के लिए (**स्वधितिम्**) वज्र के (**न**) समान (**सीम्**) सब ओर से (**अकृण्वन्**) परिपूर्ण करती हैं (**सः**) वह (**उद्वतः**) ऊपर से और (**निवतः**) नीचे के मार्गों को (**सः याति**) अच्छे प्रकार जाता है और (**सः**) वह (**एषु**) इन (**भुवनेषु**) स्थिति करने के आधार रूप लोकलोकान्तरों में (**वेविषत्**) निरन्तर व्याप्त होता है और (**गर्भम्**) गर्भ को (**दीधरत्**) धारण करता है ॥ १० ॥

भावार्थ—जैसे गर्भ अदृश्य होता है वैसे अग्नि भी सब पदार्थों में वर्त्तमान है, जो मनुष्य इसको साधन करें तो इस अग्नि से युक्त यानों से भूमि और आकाश मार्गों को और नीचे ऊपरली गतियों को कर सकें और प्रजा भी पाल सकें ॥ १० ॥

स जिन्वते जठरेषु प्रजज्ञिवान् वृषा चित्रेषु नानदन्न सिंहः ।

वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यो वसु रत्ना दयमानो वि दाशुषे ॥११॥

पदार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जो (**जठरेषु**) उदरों के (**प्रजज्ञिवान्**) प्रबलता से उत्पन्न होता हुआ (**चित्रेषु**) अद्भुत स्थानों में (**वृषा**) वीर्य करनेवाला (**पृथुपाजाः**) विस्तीर्ण बलवान् (**अमर्त्यः**) मरणधर्मरहित (**वैश्वानरः**) सबका नायक (**दाशुषे**) दान करनेवाले के लिए (**रत्ना**) रमणीय हीरा आदि मणिरूप (**वसु**) धन को (**दयमानः**) देता हुआ (**सिंहः**) सिंह के समान (**न, नानदत्**) निरन्तर शब्द नहीं करता है (**सः**) वह सबको (**वि, जिन्वते**) विशेषता से तृप्त करता है ऐसा जानें ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को अग्नि के अद्भुत गुण कर्म स्वभावों को जानके अतुल लक्ष्मियों को सिद्ध कर अच्छे मार्गों में देने वालों को देनी चाहिए । जो जाठराग्नि शान्त हो तो किसी के जीवन का सम्भव न हो और न इसके बिना बल भी कोई पा सकता है ॥ ११ ॥

वैश्वानरः प्रत्नथा नाकमारुहद्दिवस्पृष्ठं भन्दमानः सुमन्मभिः ।

स पूर्ववज्जनयञ्जन्तवे धनं समानमज्मं पर्येति जागृविः ॥१२॥

पदार्थ—जो (**भन्दमानः**) कल्याण को करता हुआ (**जागृविः**) जागता सा (**वैश्वानरः**) अग्नि (**प्रत्नथा**) पुरातनों के समान (**दिवः**) दिव्य आकाश के समान (**पृष्ठम्**) पर भाग (**नाकम्**) स्वर्ग सुख भोग विशेष को (**आरुहत्**) चढ़ता है जो (**अज्मम्**) गमन होनेवाले मार्ग में (**पर्येति**) सब ओर से जाता है (**जन्तवे**) वा प्राणी के लिए (**समानम्**) तुल्य (**धनम्**) धन को (**पूर्ववत्**) पूर्व के समान (**जनयन्**) उत्पन्न करता है (**सः**) वह (**सुमन्मभिः**) समस्त उत्तम विचारवाले विद्वानों को विशेषता से जानने योग्य है ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । यह अग्नि अपूर्व नहीं है जो व्यतीत हुए कल्पों में जैसा हुआ वैसा ही अब वर्त्तमान है । भविष्यत्-

काल मे भी होगा यदि यह सबका प्रकाशक के समान रवि के योग से कार्यकारी वर्त्तमान है तो वह यथावत् जाना और प्रयोग किया हुआ मङ्गल का अच्छे प्रकार देनेवाला होता है ॥ १२ ॥

ऋतावानं यज्ञियं विप्रमुक्थ्य१मा यं दधे मातरिश्वा दिवि क्षयम् ।
तं चित्रयामं हरिकेशमीमहे सुदीतिमग्निं सुविताय नव्यसे ॥१३॥

पदार्थ—(यम्) जिस (ऋतावानम्) सत्यकारणमय (यज्ञियम्) यज्ञ-सम्पादक (उक्थ्यम्) प्रशसा करने योग्य (दिवि, क्षयम्) दिव्य आकाश मे निवास करते हुए (चित्रयामम्) चित्र विचित्र अद्भुत प्रहर जिसमें होते हैं वा चित्र विचित्र याम प्राप्ति जिसकी वा (सुदीतिम्) सुन्दर दान जिससे होता उस (हरिकेशम्) हरणशील रश्मियो वाले (अग्निम्) अग्नि को (नव्यसे) नवीन (सुविताय) ऐश्वर्य के लिए (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में सोनेवाला वायु (आ, दधे) अच्छे प्रकार धारण करता है (तम्) उसे जो जानता है उस (विप्रम्) मेधावी पुरुष को हम लोग (ईमहे) याचते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ—अग्नि के निमित्त कारण को धारण करनेवाला वायु वर्त्तमान है जिस अन्तरिक्ष मे वायु है वही अग्नि भी है जिससे प्रलय होता है वा यज्ञ सिद्ध होते हैं उस अद्भुत गुण कर्म स्वभाववाले अग्नि को नवीनता और विद्या प्राप्ति के लिए जन ढूढें ॥ १३ ॥

शुचिं न यामन्निषिरं स्वर्दृशं केतुं दिवो रोचनस्थामुषर्बुधम् ।
अग्निं मूर्द्धानं दिवो अप्रतिष्कुतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग विद्वानों की उत्तेजना से (नमसा) सत्कार से जिस (शुचिम्) पवित्र और पवित्र करनेवाले के (न) समान (यामन्) जिससे गमन करते हैं उस मार्ग मे (इषिरम्) इच्छा करने योग्य (स्वर्दृशम्) जिससे कि सुख दीखता है उस (केतुम्) रूपादि प्रापक (दिवः) प्रकाश के बीच (रोचनस्थाम्) उजाले मे स्थित होने (उषर्बुधम्) प्रातःकाल बोध दिलाने और (दिवः) दिव्य आकाश के बीच (मूर्द्धानम्) खीचने से बांधने (अप्रतिष्कुतम्) इधर-उधर से लोकान्तर के चारो ओर से भ्रमण रहित (बृहत्) महान् (वाजिनम्) बहुत वेग वाले (अग्निम्) अग्नि को (ईमहे) याचते है (तम्) उस अग्नि को हम लोगो से तुम भी चाहो वा मागो ॥ १४ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को आप्त विद्वानो से अग्न्यादि विद्या प्राप्त करनी चाहिए, जो जिससे विद्या ग्रहण की इच्छा करे वह उसका निरन्तर सत्कार करे, सूर्य किसी लोक का परिक्रमण नहीं करता और सबसे बडा भी है ॥ १४ ॥

मन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम् ।
रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सदमिद्राय ईमहे ॥१५॥१९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग जिस (होतारम्) ग्रहण करने और(मन्द्रम्) आनन्द देनेवाले (दमूनसम्) दमनशील (उक्थ्यम्) प्रशसा करने योग्य (शुचिम्) पवित्र (विश्वचर्षणिम्) सबके देखने और (मनुर्हितम्) मनुष्यो के हित करने वाले विद्वान् को प्राप्त होकर (रथम्) दृढ रमणीय यान के (न) समान (चित्रम्) अद्भुत और (वपुषाय) जिस व्यवहार मे रूप विद्यमान उस व्यवहार के लिए (दर्शतम्) देखने योग्य (सदम्) अवस्थित और (अद्वयाविनम्) जो दो से नहीं विद्यमान ऐसे सीधे चलनेवाले अग्नि को (ईमहे) जाँचते और उससे (रायः) धनो को जाँचते है उस (इत्) ही को तुम लोग भी जाँचो ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो इन्द्रियो को दमन करनेवाले विद्वानो के निकट स्थित होकर अग्निविद्या को जानें तो मनुष्य किस-किस धन को न प्राप्त हों ॥ १५ ॥

इस सूक्त मे विद्वान् और अग्नि के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह दूसरा सूक्त और उन्नीसवां वर्ग पूर्ण हुआ ॥

卐

वैश्वानरायेत्येकादशर्चस्य तृतीयस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । वैश्वानरो-ऽग्निर्देवता । १, ५, निचृज्जगती । २—४, ६, ८, ९ जगती । ७, १० विराट् जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ११ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले तीसरे सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों का विषय वर्णन करते हैं—

वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे ।
अग्निर्हि देवाँ अमृतो दुवस्यत्यथा धर्माणि सनता न दूदुषत् ॥१॥

पदार्थ—जैसे (अमृतः) मरणधर्मरहित (अग्निः) अग्नि के समान विद्वान् (हि) ही (देवान्) दिव्य गुणो वाले पृथिव्यादिकों की (दुवस्यति) सेवा करता (अथ) अनन्तर इसके (न) नहीं (दूदुषत्) दूषित काम कराता वैसे (विपः) मेधावी जन (वैश्वानराय) समस्त मनुष्यों में प्रकाशमान (पृथुपाजसे) महाबली (गातवे) और स्तुति करनेवाले के लिए (सनता) सनातन (रत्ना) रमणीय रत्नों (धर्माणि) और धर्मो को तथा (धरुणेषु) आधारो मे रत्नरूपी रमणीय धनो को (विधन्त) सेवन करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अग्नि अपने सनातन गुणकर्म स्वभावो को सेवता है कभी दोषी नहीं होता वैसे विद्वान् जन जिज्ञासुओ के हित के लिए विद्या देके अपने-अपने स्वभावों को भूषित करते है कभी अधर्मा-चरण से दूषित नहीं होते हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अन्तर्दूतो रोदसी दस्म ईयते होता निषत्तो मनुषः पुरोहितः ।
क्षयं बृहन्तं परि भूषति द्युभिर्देवेभिरग्निरिषितो धियावसुः ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! आप जैसे (होता) ग्रहण करनेवाला (निषत्तः) निश्चित स्थित (मनुषः) मनुष्यो का (पुरोहितः) पहले हित करनेवाला (धियावसुः) जो प्रबल बुद्धियों और कर्मों को वास देता (इषितः) ढूँढा हुआ (दस्मः) मूर्त्तिमान् पदार्थों का छिन्न-भिन्न करनेहारा और (अन्तः) बीच मे (दूतः) दूत के समान वर्त्तमान (अग्निः) अग्नि (द्युभिः) देदीप्यमान (देवेभिः) किरणों के साथ (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी को (ईयते) प्राप्त होता और (बृहन्तम्) महान् (क्षयम्) निवास स्थान को (परि, भूषति) सब ओर से भूषित करता है वैसे तुमको सब मनुष्य सुभूषित करने चाहिए ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो को देश के अव-यवो को प्राप्त होकर उत्तम विद्याध्ययन अध्यापन और उपदेशादि कर्मों के साथ समस्त मनुष्य सुभूषित करने चाहिए और इससे सबका हित सिद्ध करना चाहिए ॥ २ ॥

केतुं यज्ञानां विदथस्य साधनं विप्रासो अग्निं महयन्त चित्तिभिः ।
अपांसि यस्मिन्नधि सन्दधुर्गिरस्तस्मिन्त्सुम्नानि यजमान आ चके ॥३॥

पदार्थ—(विप्रासः) विद्वान् मेधावी जन (यस्मिन्) जिस अग्नि मे (गिरः) वाणी और (अपांसि) कर्मों को (चित्तिभिः) काष्ठ आदि के इकट्ठे समूहो से (अग्निम्) अग्नि के समान (अधि, सन्दधुः) अच्छे प्रकार धारण करें वा जिसमें (यज्ञानाम्) मिले हुए व्यवहारो का (केतुम्) उत्तमता से ज्ञान दिलाने और (विदथस्य) दूसरे के लिए विज्ञान के (साधनम्) सिद्ध करानेवाले का (महयन्त) सत्कार करें वा (सुम्नानि) सुखो को अच्छे प्रकार धारण करें वा जिसमे (यजमानः) विद्वानो की सेवा और सङ्गति का करनेवाला जन (सुम्नानि) सुखो की (आ चके) अच्छे प्रकार कामना करता है (तस्मिन्) उसमे सब मनुष्य सुखो का अच्छे प्रकार धारण करे ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । समस्त पदार्थविद्या के बीच अग्नि के तुल्य कोई और पदार्थ कार्यसाधक नहीं है, इससे इस अग्नि का ही परिज्ञान उत्तम यत्न के साथ सब लोगो को करना चाहिए ॥ ३ ॥

पिता यज्ञानामसुरो विपश्चितां विमानमग्निर्वयुनं च वाघताम् ।
आ विवेश रोदसी भूरिवर्पसा पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ईश्वर (यज्ञानाम्) प्राप्त हुए व्यवहारो का (पिता) पालनेवाला (असुरः) समस्त भूगोलादि पदार्थों का यथाक्रम अर्थात् यथा स्थान फेंकनेवाला (विपश्चिताम्) विद्वानो के लिये (विमानम्) विमान के समान (वाघताम्) (च) और मेधावी जनो के (वयुनम्) उत्तम ज्ञान(भूरि-वर्पसा) बहुत पराक्रम के (धामभिः) स्थानो के साथ (पुरुप्रियः) बहुतों को तृप्त करनेवाला (कविः) विशेष क्रम से जिसका दर्शन होता वह (भन्दते) प्रसन्न करता है और (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (आ, विवेश) प्रविष्ट हुआ है वैसे (अग्निः) अग्नि भी तुम लोगो को जानने योग्य है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जैसे ईश्वर सर्वत्र व्याप्त होकर सबकी व्यवस्था करता है वैसे अग्नि पृथिव्यादिको को अभिव्याप्त होकर आकर्षण से सब पदार्थों की व्यवस्था करता है । जैसे अग्नि अच्छे प्रकार युक्त किये हुए विमान को आकाश में शीघ्र चलाता है वैसे विद्वानो की सेवापूर्वक योगाभ्यास के विज्ञान से सेवा किया हुआ जगदीश्वर चिदाकाश मे मुक्त जनो को शीघ्र प्रवेश कर विहार कराता है ॥ ४ ॥

अब अग्नि विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिव्रतं वैश्वानरमप्सुषदं स्वर्विदम् ।
विगाहं तूर्णिं तविषीभिरावृतं भूर्णिं देवास इह सुश्रियं दधुः ॥५॥२०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (देवासः) विद्वान् जन (इह) इस ससार के बीच (चन्द्ररथम्) जिससे चन्द्रमा के समान रथ बनता है (हरिव्रतम्) वा जिसके घोड़े शीलरूप (अप्सुषदम्) वा प्राण और जलो मे स्थिर होता (स्वर्विदम्) वा जिससे जीव सुख को प्राप्त होता (विगाहम्) वा जिसके निमित्त से विविध प्रकार के पदार्थों को विलोडता वा (तूर्णिम्) जो शीघ्र गमन करानेवाला (तविषीभिः) बलादि गुणों के साथ (आवृतम्) सयुक्त (भूर्णिम्) और पदार्थों का धारण करने वाला (सुश्रियम्) जिससे उत्तम श्री लक्ष्मी उत्पन्न होती वा (वैश्वानरम्)

समस्त प्राप्त पदार्थों मे व्याप्त (चन्द्रम्) आनन्द करनेवाला निरन्तर प्रकाशमान (अग्निम्) अग्नि को (दधुः) धारण करें वैसे इसको तुम भी धारण करो ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब तक पदार्थ विद्या मे अग्निविद्या न हो तब तक आभूषण रहित स्त्री के समान नही शोभती है ॥ ५ ॥

फिर अग्निविद्या के उपदेश को कहते हैं—

अग्निर्देवेभिर्मनुषश्च जन्तुभिस्तन्वानो यज्ञं पुरुपेशसं धिया ।
रथीरन्तरीयते साधदिष्टिभिर्जीरो दमूना अभिशस्तिचातनः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**अभिशस्तिचातनः**) सब ओर से हिंसा की याचना करता (**दमूना**) और दमनशील (**साधदिष्टिभिः**) अच्छे प्रकार सिद्ध की हुई इच्छाओं के साथ (**जीरः**) वेगवान् (**रथीः**) जिसके बहुत रथ विद्यमान (**जन्तुभिः**) मनुष्यो के साथ (**मनुषः**) मनुष्यो को (**तन्वानः**) विस्तार अर्थात् उनको वृद्धि देता हुआ और (**देवेभिः**) दिव्य गुणो के साथ (**अग्निः**) अग्नि (**ईयते**) जाता है तथा (**धिया**) कर्म से (**पुरुपेशसम्**) बहुत रूपोंवाले (**यज्ञम्**) प्राप्त संसार को सिद्ध करता है उसको जानो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो को जो अग्नि सामान्य रूप से सब पदार्थों को पुष्ट करता वा विशेष रूप से उनको नष्ट करता वा पृथिव्यादि के भीतर व्याप्त है अर्थात् उनके प्रत्येक परमाणु के साथ है वा जिससे बहुत व्यवहार सिद्ध होते हैं वह अग्नि विशेषता से जानने योग्य है ॥ ६ ॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

अग्ने जरस्व स्वपत्य आयुन्यूर्जा पिन्वस्व समिषो दिदीहि नः ।
वयांसि जिन्व बृहतश्च जागृव उशिग्देवानामसि सुक्रतुर्विपाम् ॥७॥

पदार्थ—हे (**जागृवे**) जागते हुए के तुल्य (**अग्ने**) जाननेवाले महाशय ! आप (**स्वपत्ये**) अपने सन्तान के निमित्त (**आयुनि**) प्राप्त हुए पीछे (**ऊर्जा**) अन्न से (**पिन्वस्व**) सेवो, विद्वानो की (**जरस्व**) स्तुति करो (**नः**) हम लोगो की (**इषः**) चाहना करो और (**वयांसि**) अच्छे-अच्छे अन्नो को (**सं, दिदीहि**) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिए (**च**) और (**बृहतः**) बहुतो को (**जिन्व**) तृप्त कीजिए जिससे आप (**विपाम्**) बुद्धिमान् (**देवानाम्**) विद्वानो के बीच (**उशिक्**) मनोहर (**सुक्रतुः**) सुन्दर बुद्धिमान् (**असि**) है उससे विद्वान् हुए हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपने सन्तानो को योग्य आहार-विहार से अच्छे प्रकार पाल के उत्तम शिक्षा और विद्या के दान से विद्वान् करते है वे सदैव विद्वानो के सत्सङ्ग की कामना करनेवाले धर्म के चाहनेवाले होकर बुद्धिमान् होते है ॥ ७ ॥

फिर विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रो मे कहा है—

विश्पतिं यह्वमतिथिं नरः सदा यन्तारं धीनामुशिजं च वाघताम् ।
अध्वराणां चेतनं जातवेदसं प्र शंसन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे ॥८॥

पदार्थ—जो (**नरः**) अपने आत्मा इन्द्रियों और शरीरो का धर्म की ओर पहुचाने वाले जन (**वृधे**) वृद्धि के लिए (**जूतिभिः**) वेगादि गुणो से (**विश्पतिम्**) समस्त प्रजा के पालनेवाले (**यह्वम्**) बडे (**यन्तारम्**) नियन्ता अर्थात् सब कामो को यथानियम पहुँचाने वाले (**अतिथिम्**) अतिथि के समान सत्कार करने योग्य (**धीनाम्**) उत्तम कर्म और बुद्धियो वा (**वाघताम्**) बुद्धिमान् (**च**) और (**अध्वराणाम्**) अहिंसनीय व्यवहारो के बीच (**उशिजम्**) कामना की और (**जातवेदसम्**) उत्पन्न हुए सब पदार्थों मे अपनी व्याप्ति से विद्यमान अथवा उत्पन्न हुए समस्त पदार्थों का जाननेवाले (**चेतनम्**) अच्छे प्रकार ज्ञानस्वरूप परमात्मा की (**नमसा**) सत्कार से (**सदा**) सदैव (**प्र, शंसन्ति**) प्रशंसा करते हैं वे ब्रह्मवेत्ता होते है ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को, आप्त विद्वानो से स्तुति किया हुआ महान् प्रजापालक ज्ञानस्वरूप परमेश्वर स्तुति करने योग्य है, इसकी उपासना के विना किसी को पूरा लाभ प्राप्त नही होता ॥ ८ ॥

विभावा देवः सुरणः परि क्षितीरग्निर्बभूव शवसा सुमद्रथः ।
तस्य व्रतानि भूरिपोषिणो वयमुप भूषेम दम आ सुवृक्तिभिः ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे आप (**विभावा**) विविध दीप्तिमान् (**देवः**) मनोहर (**सुरणः**) सुन्दर रण जिससे होता वा (**सुमद्रथः**) जिससे प्रशंसित ज्ञानो का रथ के समान रथ होता (**अग्निः**) ऐसा अग्नि (**सुवृक्तिभिः**) सुन्दर वर्त्तावों से और (**शवसा**) बल से (**क्षितीः**) पृथिवियो का (**परि, बभूव**) सब ओर से व्याप्त होता अर्थात् उनका तिरस्कार करता (**तस्य**) उसके (**व्रतानि**) शीलो का (**भूरिपोषिणः**) बहुत प्रकार पोषण पुष्टि जिनके विद्यमान वे (**वयम्**) हम लोग (**दमे**) घर मे (**उपाभूषेम**) अपने समीप अच्छे प्रकार भूषित करते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् जन मनुष्य के बीच बहुत पुष्टि देने और ऐश्वर्य की प्राप्ति करानेवाले तथा परोपकार से अलङ्कृत हो वे राज्य के ऐश्वर्य को प्राप्त हों ॥ ९ ॥

वैश्वानर तव धामान्या चके येभिः स्वर्विदभवो विचक्षण ।
जात आपृणो भुवनानि रोदसी अग्ने ता विश्वा परिभूरसि त्मना ॥१०॥

पदार्थ—हे (**विचक्षण**) अति चतुर (**वैश्वानर**) प्रधान पुरुष ! (**अग्ने**) अग्नि के समान वर्त्तमान आप (**त्मना**) अपने से जिन (**विश्वा**) समस्त (**भुवनानि**) लोको को (**आ, अपृणः**) अच्छे प्रकार पुष्ट करें जैसे अग्नि समस्त लोको वा (**रोदसी**) आकाश और पृथिवी को अभिव्याप्त है वैसे आप (**परिभूः**) सब ओर से होने वाले (**असि**) है वह आप मनुष्य (**तव**) आपके (**येभिः**) जिन (**धामानि**) जन्मस्थान नामो को (**आचके**) अच्छे प्रकार कामना करे (**ता**) उनको जानकर (**जातः**) प्रसिद्ध होते हुए (**स्वर्वित्**) प्राप्त सुख (**अभवः**) हूजिए ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य अग्नि के समान धर्म और विद्याओ के प्रकाश करनेवाले सबके बीच प्राणियो के सुख दुःख की व्यवस्था से अपने समान बुद्धि रखनेवाले है वे सुखी होते हैं ॥ १० ॥

वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो बृहदरिणादेकः स्वपस्यया कविः ।
उभा पितरा महयन्नजायताग्निर्द्यावापृथिवी भूरिरेतसा ॥११॥२१॥

पदार्थ—जो (**एकः**) एकाकी (**कविः**) सर्व शास्त्रो को जाननेवाला (**स्वपस्यया**) अपने को उत्तम की इच्छा से (**वैश्वानरस्य**) सर्वत्र प्रकाशमान अग्नि की (**दंसनाभ्यः**) सुख करनेवाली क्रियाओ से (**बृहत्**) महान् कार्य को (**अरिणात्**) प्राप्त होवे वा (**अग्निः**) अग्नि (**भूरिरेतसा**) बहुत जल जिसमे विद्यमान उस अन्तरिक्ष के साथ वर्त्तमान (**द्यावापृथिवी**) सूर्य और पृथिवी को प्रकाशित करता हुआ (**अजायत**) प्रसिद्ध होता है वैसे (**उभा**) दोनो (**पितरा**) माता पिता को (**महयन्**) सत्कार करता हुआ वर्त्तमान है वह सुखी कैसे न होवे ? ॥ ११ ॥

पदार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य विद्वानो के तुल्य कर्म और माता पिताओ का सत्कार करते वे पृथिवी और सूर्य के समान उत्तम गुण वाले होते है ॥ ११ ॥

इस सूक्त मे अग्नि और विद्वानो के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह तीसरा सूक्त और इक्कीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

समित्समिदित्येकादशर्चस्य चतुर्थस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । आप्रियो देवता ।
१, ४, ७ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २, ३, ५ त्रिष्टुप् ।
६, ८, १०, ११ निचृत्त्रिष्टुप् । ९ विराट् त्रिष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले चौथे सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र मे विद्वानों के विषय को कहते है—

समित्समित्सुमना बोध्यस्मे शुचाशुचा सुमतिं रासि वस्वः ।
आ देव देवान्यजथाय वक्षि सखा सखीन्त्सुमना यक्ष्यग्ने ॥१॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के समान प्रकाशमान विद्वन् ! आप जैसे (**समित्समित्**) प्रतिसमिध (**शुचाशुचा**) शुच् शुच् प्रत्येक होम के साधन से अग्नि (**बोधि**) प्रबुद्ध होता जाता जाता है वैसे पढाने और उपदेश करने मे (**अस्मे**) हम लोगो के लिए (**सुमतिम्**) उत्तम बुद्धि और (**वस्वः**) धनो को (**रासि**) देते है । हे (**देव**) विद्वन् ! (**सुमनाः**) सुन्दर मनवाले होते हुए आप आहुतियो को अग्नि के समान (**यजथाय**) समागम के लिए (**देवान्**) विद्वानो को (**आ वक्षि**) प्राप्त करते हो (**सुमनाः**) सुन्दर हृदयवाले (**सखा**) मित्र होते हुए आप (**सखीन्**) मित्र वर्गों को (**यक्षि**) सङ्ग करते हो । उक्त कारण से सत्कार करने योग्य हो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! जैसे समिधो वा होमने योग्य घृतादि पदार्थ से अग्नि बढता है वैसे अध्यापन और उपदेश से मनुष्यो की बुद्धि बढानी चाहिए और आप लोग सदैव मित्र हो कर सबको विद्वान् और श्रीमान् कीजिए ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यं देवासस्त्रिरहन्नायजन्ते दिवेदिवे वरुणो मित्रो अग्निः ।
सेमं यज्ञं मधुमन्तं कृधी नस्तनूनपाद् घृतयोनिं विधन्तम् ॥२॥

पदार्थ—(**यम्**) जिस (**इमम्**) इस (**मधुमन्तम्**) बहुत होमने योग्य पदार्थ वा (**घृतयोनिम्**) दीप्तिकारक कारणवाले (**विधन्तम्**) सेवते हुए और (**यज्ञम्**) सङ्ग करने योग्य व्यवहार का (**वरुणः**) चन्द्रमा (**मित्रः**) वायु और (**अग्निः**) अग्नि (**अहन्**) एक दिन मे (**दिवेदिवे**) वा प्रतिदिन (**त्रिः**) तीन वार (**आयजन्ते**) अच्छे प्रकार मिलाते हैं और जिसको (**देवासः**) दिव्य विद्वान्

जन मिलाते (सः) वह पूर्वोक्त गुणों से युक्त (तनूनपात्) शरीर की रक्षा करनेवाले आप (नः) हमारे इस यज्ञ को सिद्ध (कृधि) कीजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन अन्नादि पदार्थों की विद्याप्राप्ति के लिए जैसी क्रिया करें वैसे ही तुम भी करो ॥ २ ॥

प्र दीधि॑ति॒र्वि॒श्ववा॑रा जिगाति॒ होता॑रमि॒ळः प्र॑थ॒मं यज॑ध्यै ।

अच्छा॒ नमो॑भिर्वृष॒भं व॒न्दध्यै॒ स दे॒वान्य॑क्षदिषि॒तो यजी॑यान् ॥३॥

पदार्थ—(विश्ववारा) संसार के बीच जिसका स्वीकार है वह जिसकी (दीधितिः) दीप्ति (इळः) पृथिवियों की (यजध्यै) सङ्गति करने के (होतारम्) ग्रहण करनेवाले की तथा (नमोभिः) अन्नों से (प्रथमम्) पहले (वृषभम्) प्रशंसित की (वन्दध्यै) वन्दना करने अर्थात् स्तुति करने को (प्र, जिगाति) अच्छे प्रकार स्तुति करता है (सः) वह (इषितः) इच्छा से प्रयुक्त किया हुआ (यजीयान्) अतीव यज्ञ करनेहारा होता हुआ (देवान्) विद्वानों को (अच्छ) अच्छे प्रकार (यक्षत्) सङ्गत कर मिलावे ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिसकी प्रकाशमान दीप्ति बिजुली के समान विद्या देनेवाले की प्रशंसा करती है उसका सब विद्यार्थीजन सङ्ग कर दिव्य गुणों को प्राप्त होकर धन-धान्य युक्त होवें ॥ ३ ॥

फिर विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

ऊ॒र्ध्वो वां॑ गा॒तुर॑ध्व॒रे अ॑कार्यू॒र्ध्वा शो॒चींषि॒ प्रस्थि॑ता॒ रजां॑सि ।

दि॒वो वा॒ नाभा॒ न्य॑सादि॒ होता॑ स्तृणी॒महि॑ दे॒वव्य॑चा॒ वि ब॒र्हिः ॥४॥

पदार्थ—हे यज्ञ करने और यज्ञ सिद्ध करानेवालो ! (वाम्) तुम्हारे (अध्वरे) न नष्ट करने योग्य व्यवहार में वह (ऊर्ध्वः) ऊपर जाने (गातुः) और स्तुति करनेवाला (अकारि) किया जाता (देवव्यचा) बहुत यज्ञ पृथिव्यादिकों को व्याप्त होने वा (होता) पदार्थों को ग्रहण करनेवाला (नि, असादि) सिद्ध किया जाता है जिस यज्ञ से हम लोग (ऊर्ध्वा) ऊपर जाने वाले (प्रस्थिता) आज का आरम्भ किये हुए (शोचींषि) तेजों को और (रजांसि) लोकों को तथा (दिवः) किरणों को (वा) वा (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (नाभा) नाभि के बीच (वि स्तृणीमहि) विस्तारते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो यज्ञकर्त्ता और यज्ञ करानेवाले विद्वान् हों और सुन्दर शुद्ध पदार्थों को अग्नि में छोड़ें तो क्या-क्या सुख प्राप्त न हो ? ॥ ४ ॥

स॒प्त हो॒त्राणि॒ मन॑सा वृणा॒ना इन्व॑न्तो॒ विश्वं॒ प्रति॑ यन्नृ॒तेन॑ ।

नृ॒पेश॑सो वि॒दथे॑षु॒ प्र जा॒ता अ॒भी॒३॒॑मं य॒ज्ञं वि च॑रन्त पू॒र्वीः ॥५॥२२॥

पदार्थ—जो (विदथेषु) यज्ञों में (प्रजाताः) उत्पन्न हुए (नृपेशसः) मनुष्यों के रूप के समान जिनका रूप वे पदार्थ (मनसा) विज्ञान से (सप्तहोत्राणि) सात प्रकार के हवन सम्बन्धी कामों को (वृणानाः) स्वीकार करते और (विश्वम्) समस्त जगत् का (इन्वन्तः) व्याप्त होते हुए (ऋतेन) जल के साथ (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ को (अभि) सब ओर से जिस से विश्व का (प्रति यन्) प्रतीति से प्राप्त होते हैं तथा (पूर्वीः) पूर्व सिद्ध हुई आहुतियाँ (विचरन्त) विशेषता से प्राप्त होती वह यज्ञ सब विद्वानों को करने योग्य है ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सुगन्ध्यादि युक्त पदार्थों के अग्नि में छोड़ने से वायु, वृष्टि, जल, ओषधि और अन्नों को अच्छे प्रकार शोधें तो सब आरोग्यपन को प्राप्त हों ॥ ५ ॥

आ भन्द॑माने उ॒षसा॒ उपा॑के उ॒त स्म॑येते त॒न्वा॒३॒॑ विरू॑पे ।

यथा॑ नो मि॒त्रो वरु॑णो॒ जुजो॑ष॒दिन्द्रो॑ म॒रुत्वाँ॑ उ॒त वा॒ महो॑भिः ॥६॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (भन्दमाने) सुख करनेवाले (उपाके) समीप वर्त्तमान (उत) और (तन्वा) शरीर के (विरूपे) प्रकाश और अन्धकार से विरुद्ध स्वरूप (उषसौ) रात्रि और दिन स्त्री पुरुष (आ, स्मयेते) अच्छे प्रकार मुसकियाते जैसे वैसे वर्त्तमान (नः) हम लोगों को सेवन करते हैं वैसे (महोभिः) बड़े गुण कर्म स्वभावों के साथ (मित्रः) वायु (वरुणः) जल (उत) और (मरुत्वान्) प्रशंसित रूपवाला (इन्द्रः) बिजुली आदि अग्नि (वा) अथवा हम लोगों को (जुजोषत्) निरन्तर सेवते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। यदि ईश्वर रात्रि और दिन न बनावे तो किसी का व्यवहार यथावत् सिद्ध न हो, जो भगवान् जल सूर्य और वायु को न रचे तो किसी का जीवन न हो ॥ ६ ॥

दैव्या॒ होता॑रा प्रथ॒मा न्यृ॑ञ्जे स॒प्त पृ॒क्षासः॑ स्व॒धया॑ मदन्ति ।

ऋ॒तं शंस॑न्त ऋ॒तमित्त आ॑हु॒रनु॑ व्र॒तं व्र॑त॒पा दीध्या॑नाः ॥७॥

पदार्थ—जो (प्रथमा) विस्तार करनेवाले (दैव्या) दिव्य गुणी (होतारा) अनेक पदार्थों के ग्रहण कर्त्ता (सप्त) सात प्रकार के होमने योग्य पदार्थों को अच्छे प्रकार धारण करते हैं वा जो (ऋतम्) जल का (पृक्षासः) सम्बन्ध करनेवाले (ऋतम्) सत्य की (इत्) ही (शंसन्त) स्तुति करते हुए (दीध्यानाः) देदीप्यमान (व्रतपाः) उत्तम शील की रक्षा करनेवाले (अनु, व्रतम्) अनुकूल शील को (आहुः) कहें (ते) वे (स्वधया) अन्न और जल से (मदन्ति) हर्षित होते हैं उन सब को मैं (नि, ऋञ्जे) न नष्ट करूँ ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो यज्ञ की आहुतियों से शुद्ध पवन, जल और अन्नादिकों का सेवन करते हैं, वे सुशील होते हुए प्रशंसावाले होकर आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

आ भार॑ती॒ भार॑तीभिः स॒जोषा॒ इळा॑ दे॒वैर्म॑नु॒ष्ये॑भिर॒ग्निः ।

सर॑स्वती सारस्व॒तेभि॑र॒र्वाक् ति॒स्रो दे॒वीर्ब॒र्हिरेदं स॑दन्तु ॥८॥

पदार्थ—जो (भारतीभिः) सुन्दर शिक्षित वाणियों के साथ (सजोषाः) एकसी सेवा और प्रीतिवाली (भारती) विद्या और शिक्षा से धारण की हुई वाणी वा (देवैः) दिव्य गुण और (मनुष्येभिः) विचारशील पुरुषों के साथ समान सेवा और प्रीतिवाली (इळा) पृथिवी और (अग्निः) प्रकाशमान अग्नि वा (सारस्वतेभिः) वाणी में उत्पन्न हुए भावों के साथ (सरस्वती) प्रशंसित विज्ञानयुक्त वाणी (तिस्रः) उक्त तीनों (देवीः) देदीप्यमान (अर्वाक्) नीचे से (इदम्) इस (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (आ) अच्छे प्रकार स्थिर होती हैं उन को सब मनुष्य (आ, सदन्तु) आसादन करें उन का आश्रय लें अर्थात् उन में अच्छे प्रकार स्थित हों ॥ ८ ॥

भावार्थ—जिन मनुष्यों की विद्वानों की धारणा के अनुकूल धारणा, प्रशंसा के अनुकूल स्तुति, वाणी के अनुकूल वर्त्तावाली वाणी वर्त्तमान है, वे अन्तरिक्षस्थ शुभ वाणी को प्राप्त होकर आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

तन्न॑स्तु॒रीप॒मध॑ पोषयि॒त्नु देव॑ त्वष्ट॒र्वि र॑रा॒णः स्य॑स्व ।

यतो॑ वी॒रः क॑र्म॒ण्यः॑ सु॒दक्षो॑ यु॒क्तग्रा॑वा॒ जाय॑ते दे॒वका॑मः ॥९॥

पदार्थ—हे (देव) दिव्य गुणों के देनेवाले (त्वष्टः) छिन्न भिन्न कर्त्ता (रराणः) रमण करते हुए आप (नः) हमारी जो (तुरीपम्) शीघ्र कर्त्ता यज्ञ (अध) इसके अनन्तर (पोषयित्नु) पुष्टि की करनेवाली यज्ञक्रिया (तत्) उन दोनों को (वि, स्यस्व) बीच में करो जिस से हम लोगों के कुल में (सुदक्षः) उत्तम बली (युक्तग्रावा) जिस में मेघयुक्त हैं (कर्मण्यः) जो कर्म से सिद्ध होता है (देवकामः) और दिव्य गुणों वा विद्वानों की कामना करता ऐसा (वीरः) शुभ गुणों में व्याप्त होनेवाला वीर पुरुष (जायते) उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन हमारे लिए दुःख से तारने और पुष्टि करनेवाले उपदेश को करें उन्हें शुभ गुण कर्म स्वभाव की कामना करनेवाले हम लोग सदैव सेवें, जिससे हमारा कुल उत्कर्ष उन्नति को प्राप्त हो ॥ ९ ॥

अब अग्नि के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

वन॑स्पते॒ऽव॑ सृ॒जोप॑ दे॒वान॒ग्निर्ह॒विः श॑मि॒ता सू॑दयाति ।

सेदु॒ होता॑ स॒त्यत॑रो यजाति॒ यथा॑ दे॒वानां॒ जनि॑मानि॒ वेद॑ ॥१०॥

पदार्थ—हे (वनस्पते) किरणों के पालनेवाले (यथा) जैसे (अग्निः) अग्नि (हविः) होमने योग्य पदार्थों को (सूदयाति) वर्षाता है वैसे (देवान्) दिव्य गुणों को (उप, सृज) अपने समीप उत्पन्न कराओ दोषों को (अव) न उत्पन्न करो । जो (सत्यतरः) अतीव सत्य (होता) गुणों का ग्रहण करनेवाला जैसे (देवानाम्) विद्वानों वा दिव्य पदार्थों के (जनिमानि) जन्मों को (वेद) जाने (सः, इत्) वही (उ) तक वितर्क के साथ (शमिता) शान्ति करनेवाला (यजाति) यज्ञ करे ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य की किरण दिव्य गुणों को उत्पन्न करती और दोषों को दूर करती है, वैसे विद्वान् लोग जगत् में गुणों को उत्पन्न करके दोषों को दूर करें ॥ १० ॥

आ या॑ह्यग्ने समिधा॒नो अ॒र्वाङिन्द्रे॑ण दे॒वैः स॒रथं॑ तु॒रेभिः॑ ।

ब॒र्हिर्न॒ आस्ता॒मदि॑तिः सुपु॒त्रा स्वाहा॑ दे॒वा अ॒मृता॑ मादयन्ताम् ॥११॥

पदार्थ—हे (अग्ने) वह्नि के समान प्रकाशमान विद्वान् ! जैसे (समिधानः) प्रदीप्त (अर्वाङ्) और नीचे जानेवाला (इन्द्रेण) पवन वा बिजुली और (देवैः) दिव्य (तुरेभिः) शीघ्रगामी घोड़ों के साथ (सरथम्) रथ के सहित वर्त्तमान (बर्हिः) जो अन्तरिक्ष (नः) उसके समान व्याप्त होता है वैसे आप (आ, याहि) आओ वा जैसे (सुपुत्रा) पुत्रोंवाली (अदितिः) माता सुखिनी (आस्ताम्) हो वैसे (अमृताः) आत्मस्वरूप से नित्य (देवाः) दिव्य विद्यावाले विद्वान् जन हम लोगों को (स्वाहा) उत्तम अन्न वा सुशिक्षित वाणी से (मादयन्ताम्) हर्षित करें ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे बिजुली आदि पदार्थों से चलाये हुए रथ आदि यान भू समुद्र और अन्तरिक्ष में शीघ्र जाते हैं वैसे विद्वानों की शिक्षा से विद्याओं को प्राप्त हो कर शीघ्र गुरुकुल जाकर और ब्रह्मचारियों को प्राप्त हो कर सब को आनन्द करें ॥ ११ ॥

इस सूक्त मे वह्नि, विद्वान् और वाणी के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह चौथा सूक्त और तेईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

प्रत्यग्निरुषस इत्येकादशर्चस्य पञ्चमसूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । २ । ११ भुरिक् पङ्क्तिः । ३ पङ्क्तिः । ६ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ४ त्रिष्टुप् । ५, ७, १० निचृत्त्रिष्टुप् । ८, ६ विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचावाले पांचवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र मे विद्वानो के सम्बन्ध से अग्नि के गुणों को कहते हैं—

प्रत्यग्निरुषसश्चेकितानोऽबोधि विप्रः पदवीः कवीनाम् ।
पृथुपाजा देवयद्भिः समिद्धोऽप द्वारा तमसो वह्निरावः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (अग्निः) अग्नि (उषसः) प्रभात समयो के (प्रति, अबोधि) प्रति जाना जाता है वैसे (चेकितानः) ज्ञान देनेवाला अर्थात् समझानेवाला (कवीनाम्) विद्वानो को (पदवीः) पदवियो को प्राप्त होता (पृथुपाजाः) महान् बलवाला (विप्रः) बुद्धिमान् विद्वान् जन (देवयद्भिः) विद्वानो की कामना करते हुओ के साथ जाना जाता है जैसे (समिद्धः) प्रदीप्त (वह्निः) और पदार्थों की गति करानेवाला अग्नि (तमसः) अन्धकार से ढपे हुए (द्वारा) द्वारो को (अप, आवः) खोलता है वैसे विद्वान् हो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अग्नि प्रातःकाल मे सब प्राणियो को जगाता और अन्धकार को निवृत्त करता है वैसे विद्वान् जन अविद्या मे सोते हुए मनुष्यो को जगाते हैं और इन के आत्माओ को अज्ञान के आवरण से अलग करते हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रो मे कहा है—

प्रेद्वग्निर्वावृधे स्तोमेभिर्गीर्भिः स्तोतॄणां नमस्य उक्थैः ।
पूर्वीर्ऋतस्य संदृशश्चकानः सं दूतो अद्यौदुषसो विरोके ॥२॥

पदार्थ—जैसे (दूतः) परिताप देनेवाला (अग्निः) अग्नि इन्धनो से (प्र, वावृधे) अच्छे प्रकार बढ़ता है वैसे (स्तोतॄणाम्) समस्त विद्या प्रशंसा करनेवाला के (स्तोमेभिः) उन व्यवहारो से जिनमे सब विद्याओ की स्तुति करते हैं (गीर्भिः) तथा सुशिक्षित वाणियो से (उक्थैः) और सब विद्याओ का सम्बन्ध जिन मे करते हैं उन व्यवहारो मे (नमस्यः) जो सत्कार करने योग्य है वह बढ़ता है जैसे अग्नि (विरोके) सब ओर से जिन मे प्रीति है उस व्यवहार के वा प्रकाश के निमित्त (उषसः) प्रभात समयो का (अद्यौत्) प्रकाशित करता है वैसे (संदृशः) अच्छे प्रकार देखने को (ऋतस्य) सत्य सम्बन्धी (पूर्वीः) पूर्ण बहुत विद्या की (चकानः) कामना करता हुआ (इत्, उ) ही तर्क वितर्क के साथ विद्वान् (सम्) अच्छे प्रकार प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे इन्धन और घृतादिको से अग्नि प्रवृद्ध होकर प्रकाशित होता वैसे ब्रह्मचर्य और विद्याभ्यासादिको मे मनुष्यो का आत्मज्ञान वृद्ध होकर सनातन विद्या सब को देकर पूज्यतम होते हैं ॥ २ ॥

अधाय्यग्निर्मानुषीषु विक्ष्व१पां गर्भो मित्र ऋतेन साधन् ।
आ हर्यतो यजतः सान्वस्थादभूदु विप्रो हव्यो मतीनाम् ॥३॥

पदार्थ—जैसे विद्वानो ने (अपाम्) प्राणो का (गर्भः) गर्भ के समान होकर (अग्निः) अग्नि (मानुषीषु) मनुष्य सम्बन्धी इन (विक्षु) प्रजाओ मे (अधायि) धारण किया जाता वैसे (मतीनाम्) विशेष बुद्धिमानो का (मित्रः) मित्र जो (ऋतेन) सत्य से (साधन्) कार्यसिद्ध करता हुआ (हर्यतः) मनोहर (यजतः) सङ्गम (हव्यः) और ग्रहण करने योग्य (विप्रः) बुद्धिमान् जन धारण किया हुआ है वह (उ) ही (सानु) विभाग करने योग्य पदार्थ की (आ, अस्थात्) प्रतिज्ञा करता और प्रसिद्ध (अभूत्) होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम जैसे ईश्वर ने अग्नि सकल प्रजा का प्रकाश करनेवाला स्थापित किया वैसे विद्या और धर्म के प्रकाश करनेवाले विद्वानो को जानो ॥ ३ ॥

मित्रो अग्निर्भवति यत्समिद्धो मित्रो होता वरुणो जातवेदाः ।
मित्रो अध्वर्युरिषिरो दमूना मित्रः सिन्धूनामुत पर्वतानाम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (सिन्धूनाम्) नदियो (उत) और (पर्वतानाम्) बड़ी शिलाओ के बीच (समिद्धः) प्रदीप्त (अग्निः) अग्नि के समान (मित्रः) मित्र वा (होता) ग्रहण करनेहारे के तुल्य (मित्रः) मित्र वा (जातवेदाः) उत्पन्न हुए पदार्थों के जाननेवाले जगदीश्वर के समान (वरुणः) श्रेष्ठ वा (अध्वर्युः) अपने को अहिंसा धर्म की इच्छा करनेवाले के समान (मित्रः) मित्र वा (इषिरः) इच्छा करनेवाले (दमूनाः) दमनशील के समान (मित्रः) मित्र (भवति) होता है उसका सत्कार करिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य नदी, शैल और ओषधि आदिको को किरणो के द्वारा पुष्ट करने वा उनको सुखानेवाला होता है वैसे मित्रजन धर्म मे पुष्टिकारक और अधर्म से निवर्त्तक होते हैं ॥ ४ ॥

पाति प्रियं रिपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्य्यस्य ।
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥५॥२४॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! जैसे (अग्निः) अग्नि (वेः) चलती हुई (रिपः) पृथिवी के (अग्रम्) ऊपरले (प्रियम्) प्रिय (पदम्) प्राप्त होने योग्य स्थान को (पाति) प्राप्त होता और (यह्वः) बड़ा बहुत होता हुआ (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (चरणम्) गमन को (पाति) प्राप्त होता वा (नाभा) बीच मे वर्त्तमान अन्तरिक्ष मे (सप्तशीर्षाणम्) सात प्रकार की शिरस्थ किरणे जिसमे विद्यमान उस सूर्य्यमण्डल को (पाति) प्राप्त होता वा (ऋष्वः) प्राप्ति करानेवाला होता हुआ (देवानाम्) दिव्य विद्वानो के (उपमादम्) उस व्यवहार को जो उपमा दिलाता है (पाति) प्राप्त होता है वैसे तुम होओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् ! जैसे वह्नि, चालवाले पृथिवी आदि लोको की रक्षा और प्रकाश के निमित्त से उनकी रक्षा करनेवाला वर्त्तमान होता है, वैसे आप सब की रक्षा करनेवाले होओ ॥ ५ ॥

ऋभुश्चक्र ईड्यं चारु नाम विश्वानि देवो वयुनानि विद्वान् ।
ससस्य चर्म घृतवत्पदं वेस्तदिदग्नी रक्षत्यप्रयुच्छन् ॥६॥

पदार्थ—जो (ऋभुः) बड़ा (देवः) देनेवाला (अप्रयुच्छन्) प्रमाद न करता हुआ (विद्वान्) विद्वान् (ईड्यम्) स्तुति के योग्य कर्म (चारु) सुन्दर (नाम) वाणी वा जल को और (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) उत्तम ज्ञानो को (चक्रे) करता है वह (तत्, इत्) उन्ही को प्राप्त हुआ (अग्निः) अग्नि के समान (वेः) पाये (ससस्य) और सोते हुए मनुष्य के (पदम्) पद और (चर्म) त्वचा की (घृतवत्) घी के तुल्य (रक्षति) रक्षा करता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्राणाग्नि शरीर की रक्षा करता है, सोते हुए को जगाता है, वैसे अध्यापक और उपदेशक उत्तम शिक्षा को पाये हुए वाणी के समस्त विज्ञानो की प्राप्ति कराकर मनुष्यो को जगाते हैं ॥ ६ ॥

आ योनिमग्निर्घृतवन्तमस्थात्पृथुप्रगाणमुशन्तमुशानः ।
दीद्यानः शुचिर्ऋष्वः पावकः पुनःपुनर्मातरा नव्यसी कः ॥७॥

पदार्थ—जैसे (पावकः) पवित्र करनेवाला (अग्निः) अग्नि (पुनःपुनः) बारबार (नव्यसी) अतीव नवीन (मातरा) माता पिता को (कः) प्रसिद्ध करता है वा (घृतवन्तम्) घी जिसमे विद्यमान उस (योनिम्) घर को (आ, अस्थात्) आस्था करता अर्थात् सब प्रकार उसमे स्थिर होता है वैसे (दीद्यानः) देदीप्यमान (शुचिः) पवित्र (ऋष्वः) और प्राप्त होने योग्य जन (पृथुप्रगाणम्) जिसमे विशेष गान वा स्तुति विद्यमान है वा जो (उशन्तम्) कामना किया जाता है उसका (उशानः) कामना करता हुआ विद्या और पढ़ानेवाले को माता पिता के तुल्य मान अपने स्वभाव रूपी घर को अच्छा स्थित हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्युद्रूप अग्नि पृथिवी आदि पदार्थो मे स्थिर और सब ओर से अभिव्याप्त होकर किसी से विरुद्ध नही होता, वैसे विद्वान् जन किसी से विरुद्ध आचरण न करें, जैसे अग्नि शुद्ध और दूसरो को शुद्ध करनेवाला है वैसे पवित्र होता हुआ औरो को पवित्र करे ॥ ७ ॥

सद्यो जात ओषधीभिर्ववक्षे यदी वर्धन्ति प्रस्वो घृतेन ।
आप इव प्रवता शुम्भमाना उरुष्यदग्निः पित्रोरुपस्थे ॥८॥

पदार्थ—(यदि) जो (प्रस्वः) उत्पन्न होती हैं वे ओषधि (घृतेन) जल से (शुम्भमानाः) सुन्दर शोभित (आपइव) जलो के समान (वर्धन्ति) बढ़ती हैं तो उन (ओषधीभिः) ओषधियो के साथ (प्रवता) निचला मार्ग है जिसका अर्थात् टपकता हुआ जो घृत उससे जो (सद्यः) शीघ्र (जातः) प्रकट होता हुआ (अग्निः) अग्नि (ववक्षे) रूठे के समान विरुद्ध होता है जो अग्नि (पित्रोः) माता पिता स्थानीय आकाश और पृथिवी के (उपस्थे) उस भाग में जिस में स्थित होते हैं (उरुष्यत्) अपने को बहुत के समान आचरण करता है उसको जानो ॥८॥

भावार्थ—यदि अग्नि सूर्यरूप से भूमि से जल को खींचकर वर्षा न करावे तो कोई भी ओषधि न हो । जैसे कोई रूठा हुआ किसी को मारता है वैसे जलता हुआ अग्नि पाये हुए पदार्थों को जला देता है । और जैसे प्रसन्न होता हुआ मित्र मित्र की रक्षा करता है वैसे युक्ति से सेवन किया हुआ अग्नि पदार्थों की रक्षा करता है ॥ ८ ॥

उद्दु स्तुतः समिधा यह्वो अद्यौद्वर्ष्मन्दिवो अधि नाभा पृथिव्याः ।
मित्रो अग्निरीड्यो मातरिश्वा दूतो वक्षद्यजथाय देवान् ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (ईड्य) स्तुति करने योग्य (अग्नि) अग्नि (समिधा) समिधा से (वर्ष्मन्) सेचन के विषय में (दिवः) प्रकाश और (पृथिव्याः) भूमि के (नाभा) बीच मे (उत्, अद्यौत्) उदय होता है वा जो (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में सोनेवाला (दूत) दूत के समान हुआ (यजथाय) सङ्गम करनेवाले के लिए (देवान्) दिव्य गुणो को (अधिवक्षत्) अधिकता से प्राप्त करे (उ) वैसे ही (स्तुत) प्रशंसा को प्राप्त हुआ (यह्व) महान् (ईड्य) स्तुति करने योग्य (मित्र) मित्र हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे इस ब्रह्माण्ड मे सूर्य्यरूप से अग्नि सब को तपाता है वैसे महान् मित्र अपने मित्रो को आनन्दित करता और दिव्य गुणो की प्राप्ति कराता है ॥ ९ ॥

उदस्तम्भीत्समिधा नाकमृष्वोऽग्निर्भवन्नुत्तमो रोचनानाम् ।
यदी भृगुभ्यः परि मातरिश्वा गुहा सन्तं हव्यवाहं समीधे ॥१०॥

पदार्थ—यदि (रोचनानाम्) प्रकाशमानो मे (उत्तमः) उत्तम (भवन्) होता हुआ (ऋष्व) महान् (अग्नि) अग्नि (भृगुभ्य) भु जते हुए पदार्थों से (समिधा) अच्छे प्रकार प्रकाश के साथ (नाकम्) सुख का (उदस्तम्भीत्) उत्थान करता है तो मैं (गुहा) पदार्थों के भीतर (सन्तम्) वर्त्तमान (हव्यवाहम्) और जो होम के पदार्थों को अन्तरिक्ष को पहुँचाता उस अग्नि को (परिसमीधे) सब ओर से प्रदीप्त करूँ ॥ १० ॥

भावार्थ—जैसे अग्नि बिजुली सूर्य्यरूप से सब को धारण करता है वैसे उस को मैं धारण करता हूँ ॥ १० ॥

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥११॥२५॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! आप (गो) वाणी के (शश्वत्तमम्) अनादि व्यवहार को (हवमानाय) ग्रहण करनेवाले के लिए (पुरुदंसम्) बहुत कर्मों की सिद्धि करने (सनिम्) और अच्छे प्रकार विभाग करनेवाले तथा (इळाम्) प्रशंसा करने योग्य क्रिया को (साध) सिद्ध कीजिये। हे (अग्ने) विद्वन् ! जो (ते) तुम्हारी (सुमति) उत्तम बुद्धि (सा) वह (अस्मे) हम लोगो मे (भूतु) हो जिससे (नः) हम लोगो के बीच (विजावा) विशेषता से उत्पन्न होनेवाला (सूनु) बालक और (तनय) काम का देनेवाला कुमार (स्यात्) हो ॥ ११ ॥

भावार्थ—विद्वान् जनो को सर्व विद्या मन्थने के सारयुक्त अपनी वाणी और मति का विधान कर औरो की भी वैसी ही करनी चाहिए। जैसे औरो से बुद्धि और उत्तम शिक्षा ग्रहण की जाय वैसे औरो को भी देनी चाहिए, जिससे सब के सन्तान विद्वान् होवें ॥ ११ ॥

इस सूक्त मे विद्वान् और अग्नि के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पञ्चम सूक्त और पच्चीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

प्र कारव इत्येकादशर्चस्य षष्ठस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषि । अग्निर्देवता । १, ५ विराट् त्रिष्टुप् । २, ७ त्रिष्टुप् । ३, ४, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । १० भुरिक् त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर । ६, ११ भुरिक् पङ्क्ति । ९ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले छठे सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में अग्नि के सम्बन्ध से विद्वानों के गुणों को कहते है—

प्र कारवो मनना वच्यमाना देवद्रीचीं नयत देवयन्तः ।
दक्षिणावाड्वाजिनी प्राच्येति हविर्भरन्त्यग्नये घृताची ॥१॥

पदार्थ—(देवद्रीचीम्) जिस से मनुष्य विद्वानों का सत्कार करता है उसको तथा (देवयन्त) विद्वानो की कामना करनेवाले हे (कारव) शिल्प कामो के कर्त्ता विद्वानो ! तुम जो (मनना) मानने वा जानने योग्य (वच्यमाना) वा जो कही जाती वा (दक्षिणावाट्) जो दक्षिण दिशा को प्राप्त होती हुई (वाजिनी) जो प्राप्त होनेवाली वा (प्राची) जो पहले प्राप्त होती अपूर्व दिशा वा (घृताची) जो जल को प्राप्त होती हुई (अग्नये) अग्नि के लिए (हविः) देने योग्य पदार्थ को (भरन्ती) धारण करती वा पुष्ट करती हुई (एति) प्राप्त होती है उन सब को (प्र, नयत) प्राप्त करो ॥ १ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् लोग रात्रि और रात्रि के व्यवहारो को जानते हैं वैसे औरो को भी जानना चाहिए ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—

आ रोदसी अपृणा जायमान उत प्र रिक्था अध नु प्रयज्यो ।
दिवश्चिदग्ने महिना पृथिव्या वच्यन्तां ते वह्नयः सप्तजिह्वाः ॥२॥

पदार्थ—हे (प्रयज्यो) उत्तम यज्ञ करनेवाले (अग्ने) अग्नि के समान विद्वान् ! (दिव) प्रकाश और (पृथिव्या) भूमि के (महिना) महत्त्व से (सप्तजिह्वा) काली आदि सात जिह्वा ज्वालावाले (वह्नय) पदार्थ को देशान्तर मे पहुचानेवाले अग्नि तुम्हे (वच्यन्ताम्) कहने चाहिए और सो आप (जायमान) उत्पन्न होते हुए (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (अपृणा) परिपूर्ण कीजिए (उत) और (आ, प्र, रिक्था) दोषो को सब ओर से अच्छे प्रकार दूर कीजिए (अध) इसके अनन्तर (ते) आपको (चित्, नु) शीघ्र निश्चय करके सुख हो ॥२॥

भावार्थ—जैसे सूर्य पृथिवी और अग्नि की महिमा वर्त्तमान है वैसे जो अग्निविद्या और भूगर्भविद्या का जानता है वह निरन्तर सुखी हो ॥२॥

द्यौश्च त्वा पृथिवी यज्ञियासो नि होतारं सादयन्ते दमाय ।
यदी विशो मानुषीर्देवयन्तीः प्रयस्वतीरीळते शुक्रमर्चिः ॥३॥

पदार्थ—हे राजन् ! (यदि) जो (प्रयस्वती) बहुत प्रकार का जिनमे तर्प्पण तृप्ति विद्यमान व (देवयन्ती) विद्वानो की कामना करनेवाली (मानुषी) मनुष्य सम्बन्धी (विश) प्रजा जिन (त्वा) आप (शुक्रम्) आपके पराक्रम और (अर्चि) विद्या के प्रकाश की (ईळते) स्तुति करती है उन (होतारम्) दानशील आपको (दमाय) जितेन्द्रियत्व के लिए (यज्ञियास) यज्ञ की सिद्धि करनेवाले (नि, सादयन्ते) निरन्तर स्थापन करते है (द्यौ) प्रकाश (च) और (पृथिवी) पृथिवी भी प्राप्त होती है ॥३॥

भावार्थ—जब राजा और राजपुरुष विद्या विनय और नीतियो से अपनी प्रजाओ को प्रसन्न करते और जितेन्द्रिय होकर दुष्ट व्यसनो से रहित होते हैं वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त होते है। यहाँ वीर्य और विद्या की उन्नति को उत्तम कारण जाना ॥३॥

महान्त्सधस्थे ध्रुव आ निषत्तोऽन्तर्द्यावा माहिने हर्यमाणः ।
आस्क्रे सपत्नी अजरे अमृक्ते सबर्दुघे उरुगायस्य धेनू ॥४॥

पदार्थ—जो (महान्) बड़े परिमाणवाला (सधस्थे) समानस्थान मे (ध्रुव) निश्चल (माहिने) महत्त्व के लिए (हर्यमाण) कामना करता हुआ (द्यावा) आकाश और पृथिवी के (अन्त) बीच मे (आ, निषत्त) निरन्तर स्थिर अग्नि (आस्क्रे) जिनका आक्रमण करना अर्थात् अनुक्रम से चलना स्वभाव (अजरे) जो जीर्ण अवस्था रहित (अमृक्ते) विकार अवस्था से अशुद्ध (सबर्दुघे) दूध से स्वीकार को अच्छे प्रकार पूरे करनेवाली (उरुगायस्य) बहुतो से जो स्तुति को प्राप्त हुआ उसकी (सपत्नी) सपत्नी के समान वर्त्तमान वा (धेनू) दो गौओ के समान पालन करनेवाली है उनको व्याप्त होता है वह सबका जानने योग्य है ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो यह सूर्यलोक दीख पड़ता है वह सबसे बड़ा और अपनी परिधि मे निरन्तर वसता हुआ सब भूगोलो को प्रकाशित करता है जिससे कि दिन रात्रि होते है उनको जानो ॥४॥

व्रता ते अग्ने महतो महानि तव क्रत्वा रोदसी आ ततन्थ ।
त्वं दूतो अभवो जायमानस्त्वं नेता वृषभ चर्षणीनाम् ॥५॥२६॥

पदार्थ—हे (वृषभ) वर्षा करनेवाले (अग्ने) विद्वान् जन ! जैसे सूर्य वा बिजुली (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (आ, ततन्थ) विस्तारता और (दूत) दूत होता है वैसे (त्वम्) आप (अभव) हूजिये जिन (महत) महान् (ते) आपके (महानि) बड़े बड़े (व्रता) शील (तव) आपके (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि वा कर्म से प्रसिद्ध होते है सो (त्वम्) आप (चर्षणीनाम्) मनुष्यो के दूत हूजिए तथा (जायमान) प्रसिद्ध होते हुए आप (नेता) अग्रगन्ता सभो मे श्रेष्ठ हूजिए ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अग्नि के महान् गुण कर्म स्वभाव है वैसे गुणकर्मस्वभाव वाला जो मनुष्य हो वही राजदूत और मनुष्यो का नायक भी हो ॥५॥

ऋतस्य वा केशिना योग्याभिर्घृतस्नुवा रोहिता धुरि धिष्व ।
अथा वह देवान्देव विश्वान्त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥६॥

पदार्थ—हे (जातवेद) जो उत्पन्न हुए पदार्थों को जानता है वह हे (देव) दान देनेवाले विद्वान् ! आप (धुरि) धुरे पर (ऋतस्य) जल के (योग्याभि) योग्य पृथिवियो से (केशिना) जिनमे बहुतसी किरणें विद्यमान वा (घृतस्नुवा) जो जल को चुआते (रोहिता) उन रक्त गुण वाले अश्वो को धुरे मे (धिष्व) धरो लगाओ (वा) वा (स्वध्वरा) जिनसे सुन्दर यज्ञ होता उनको (कृणुहि) अच्छे प्रकार सिद्ध करो (अथ) इसके अनन्तर (विश्वान्) समस्त (देवान्) दिव्य गुणो को (आ, वह) प्राप्त करो ॥६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ईश्वर ने सूर्य और बिजुली सबके चलानेवाले ब्रह्माण्ड में धरे स्थापन किये वैसे तुम लोग अश्वादिकों को धारण करो और इस काम से समस्त गुणों को स्वीकार करो ॥६॥

दिवश्चिदा ते रुचयन्त रोका उषो विभातीरनु भासि पूर्वीः ।
अपो यदंग्न उशधग्वनेषु होतुर्मन्द्रस्य पनयन्त देवाः ॥७॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वान् ! (**दिव**) प्रकाश से लेकर (**चित्**) ही (**ते**) आपके (**रोका**) रुचि करनेवाले प्रकाश (**आ, रुचयन्त**) अच्छे प्रकार रुचते है जैसे सूर्य (**पूर्वीः**) प्राचीन (**विभाती**) और विशेषता से प्रकाश होती हुई (**उषः**) प्रभात वेलाओं को प्रकाशित करता वा (**अपः**) जलों को वर्षाता है (**यत्**) जो आप विद्या के (**अनुभासि**) अनुकूलता से प्रकाशित होते हो उन (**मन्द्रस्य**) आनन्द देनेवाले (**होतुः**) दानशील (**तव**) आपके गुणों के जैसे (**वनेषु**) जङ्गलों में (**उशधक्**) मनोहर पदार्थों को जिससे जलाता वह अग्नि वर्त्तमान है वैसे (**देवाः**) विद्वान् जन (**पनयन्त**) प्रशंसित करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य के समान प्रकाश कराने, दुष्टों को जलाने और श्रेष्ठों की स्तुति प्रशंसा करनेवाले होते हैं वे बिजुली के समान कार्य के सिद्ध करनेवाले होते हैं ॥ ७ ॥

उरौ वा ये अन्तरिक्षे मदन्ति दिवो वा ये रोचने सन्ति देवाः ।
ऊमा वा ये सुहवासो यजत्रा आयेमिरे रथ्यो अग्ने अश्वाः ॥८॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य तेजस्वि विद्वन् ! जो (**ऊमा**) मनोहर (**वा**) वा (**ये**) जो (**सुहवासः**) सुन्दर ग्रहण करनेवाली (**वा**) वा (**ये**) जो (**यजत्रा**) सङ्गम की प्राप्ति (**रथ्यः**) रथ के लिये हितरूप (**अश्वाः**) और व्याप्ति रखनेवाली किरणें (**वा**) वा (**ये**) जो (**रोचने**) प्रकाश में (**देवाः**) दिव्य किरणें (**सन्ति**) विद्यमान हैं वे (**उरौ**) पुष्कल (**अन्तरिक्षे**) आकाश में (**दिवः**) प्रकाश से (**आयेमिरे**) विस्तरती हैं उनको जो जानते हैं वे सर्वदा (**मदन्ति**) हर्षित होते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध रूप अग्नि की जो कि किरणें और गुण सबके प्रकाश करनेवाले रथादिकों के लिए हितरूप और आकर्षणशक्तियुक्त है, उनको जानकर सब प्राणियों की रक्षा करनेवाले होओ ॥ ८ ॥

ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥९॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के समान ज्ञान से प्रकाशमय जो अग्नि की (**विभवः**) व्यापक (**अश्वाः**) किरणें (**नानारथम्**) जिनमें अनेक रथ विद्यमान उसे (**वा**) वा (**त्रीन्**) तीन (**त्रिंशतम्, च**) और तीस (**पत्नीवतः**) प्रशस्त पत्नियोंवाले (**देवान्**) पृथिवी आदि लोकों को (**अनुष्वधम्**) अन्न के अनुकूल पहुँचाती हैं (**एभिः**) इनसे आप (**अर्वाङ्**) जो नीचे को प्राप्त होता वा ऊपर को पहुँचता है उस (**सरथम्**) रथों के सहित वर्त्तमान मार्ग को (**आ, याहि**) आओ प्राप्त होओ और हम लोगों को (**आ, वह**) प्राप्त कीजिये तथा (**मादयस्व**) हर्षित कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—जैसे अग्नि, तैंतीस पृथिवी आदि दिव्य गुणी पदार्थों को धारण करता और वहाँ व्यापक होकर अपने रूप कर देता है, वैसे विद्वान् जन विज्ञान से सबको जानकर तथा औरों के प्रति उपदेश कर आनन्द देते हैं ॥ ९ ॥

स होता यस्य रोदसी चिदुर्वी यज्ञंयज्ञमभि वृधे गृणीतः ।
प्राची अध्वरेव तस्थतुः सुमेके ऋतावरी ऋतजातस्य सत्ये ॥१०॥

पदार्थ—(**यस्य**) जिस अग्नि के सम्बन्ध में (**उर्वी**) बहुस्वरूपवाले (**अध्वरेव**) न नष्ट करनेयोग्य यज्ञों के समान (**प्राची**) प्राक्तन (**सुमेके**) अच्छे प्रकार प्रक्षेप किये हुए (**ऋतावरी**) जिनमें बहुत उदक जल विद्यमान (**ऋतजातस्य**) सत्य कारण से उत्पन्न हुए संसार के बीच (**सत्ये**) विद्यमान पदार्थों में हित वा कारण रूप से नित्य (**रोदसी**) जो आकाश और पृथिवी (**वृधे**) वृद्धि के लिये (**यज्ञंयज्ञम्**) प्रति व्यवहार को (**अभिगृणीतः**) सम्मुख कहते (**चित्**) ही (**तस्थतुः**) स्थित होते हैं (**सः**) वह (**होता**) ग्रहणकर्त्ता वा सर्व पदार्थों को धारणकर्त्ता अग्नि सबको जानने योग्य है ॥ १० ॥

भावार्थ—यदि भूमि सूर्य्य उदय को न प्राप्त हो तो किसी व्यवहार के सिद्ध करने का कोई योग्य न हो और न किसी की वृद्धि हो ॥ १० ॥

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥११॥२७॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वान् ! आप (**हवमानाय**) स्पर्द्धा करते हुए के लिये (**गोः**) पृथिवी के (**शश्वत्तमम्**) अतीव अनादि स्वरूप को (**पुरुदंसम्**) जो कि बहुत कर्मों से युक्त है उस (**सनिम्**) विभागयुक्त को तथा (**इळाम्**) प्रशस्त भूमि को (**साध**) सिद्ध करो जिससे (**नः**) हमारा (**विजावा**) विशेष गतिवाला वा विशेष ज्ञानवाला वा विशेष प्रतिज्ञावाला (**सूनुः**) उत्पन्न (**तनयः**) पुत्र हो । हे (**अग्ने**) विद्वान् ! जो (**ते**) आपकी (**सुमतिः**) सुन्दर श्रेष्ठ मति है (**सा**) वह (**अस्मे**) हम लोगों में (**भूतु**) हो ॥ ११ ॥

भावार्थ—यदि मनुष्य अग्नि और पृथिवी आदि के स्वरूप को जानकर अच्छे प्रकार कार्यों में प्रयुक्त करें तो उनमें पुत्र, पौत्र, धन, धान्य, विद्या और ऐश्वर्य समर्पित हों ॥ ११ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और अग्नि का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तृतीय मण्डल में छठवां सूक्त सत्ताईसवां वर्ग, द्वितीय अष्टक में आठवां अध्याय और द्वितीय अष्टक समाप्त हुआ ॥

इति श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्याणां परमविदुषां श्रीमद्विरजानन्दसरस्वती-
स्वामिनां शिष्येण श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वती-
स्वामिना निर्मिते आर्यभाषासुभूषिते सुप्रमाणयुक्ते ऋग्वेदभाष्ये
द्वितीयाष्टकेऽष्टमोऽध्यायो द्वितीयमष्टकं च समाप्तम् ॥

अथ ऋग्वेदे तृतीयाष्टकारम्भः ॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥१॥

अथैकादशर्चस्य सप्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । १, ६, ९, १० त्रिष्टुप् । २—५; ७ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ८ स्वराट् पङ्क्तिः । ११ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब तीसरे अष्टक का आरम्भ है, उसके प्रथम अध्याय के पहले सूक्त के प्रथम मन्त्र में विद्युत् अग्नि के गुणों का वर्णन किया है—

प्र य आ॒रुः शि॑तिपृ॒ष्ठस्य॑ धा॒सेरा मा॒तरा॑ विवि॒शुः स॒प्त वाणीः॑ ।
प॒रि॒क्षिता॑ पि॒तरा॒ सं च॑रेते॒ प्र स॑र्स्राते दी॒र्घमायुः॑ प्र॒यक्षे॑ ॥१॥

पदार्थ—(ये) जो लोग (शितिपृष्ठस्य) जिसका पृच्छना सूक्ष्म है (धासे:) उस धारण करनेवाले विद्युत् अग्नि के सम्बन्धी (परिक्षिता) सब ओर से निवास करते हुए (पितरा) पालक (मातरा) जल और अग्नि को (प्र, आरु:) प्राप्त होवें । जो जल अग्नि दोनों को (सम्, चरेते) सम्यक् विचरते हैं तथा (प्र, सर्स्राते) विस्तारपूर्वक प्राप्त होते हैं वे (दीर्घम्, आयु:) बड़ी अवस्था को और (प्रयक्षे) अच्छे प्रकार यज्ञ करने के लिए (सप्त, वाणी:) सात द्वारों मे फैली वाणियों को (आ, विविशु:) प्रवेश करें सब प्रकार जानें ॥ १ ॥

भावार्थ—जो शरीर मे विद्युत् रूप अग्नि फैला न हो तो वाणी कुछ भी न चले । उस विद्युत् अग्नि का जो ब्रह्मचर्यादि उत्तम कर्मों मे यथावत् सेवन करते है वे बड़ी अवस्था को प्राप्त होते है ॥ १ ॥

मनुष्यों को कैसी वाणी का सेवन करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

दि॒वक्ष॑सो धे॒नवो॒ वृष्णो॒ अश्वा॑ दे॒वीरा त॑स्थौ॒ मधु॑म॒द्वह॑न्तीः ।
ऋ॒तस्य॑ त्वा॒ सद॑सि क्षेम॒यन्तं॒ पर्येका॑ चरति वर्त॒निं गौः ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! जो (ऋतस्य) सत्य की (सदसि) सभा में (दिवक्षस:) प्रकाश को प्राप्त हो व्याप्त हुई (वृष्ण:) बलिष्ठ पुरुष के (अश्वा:) शीघ्रगामी घोड़ों के समान (देवी:) दिव्यस्वरूप (मधुमत्) कोमल विज्ञानवाले उस सुख को (वहन्ती:) प्राप्त कराती हुई (धेनव:) वाणी (क्षेमयन्तम्) रक्षा करते हुए (त्वा) आपको (एका) एक (गौ:) अपनी कक्षा मे चलनेवाली भूमि (वर्त्तनिम्) मार्ग को (परि, चरति) सब ओर से चलती हुई सी (आ, तस्थौ) स्थित होती उन वाणियों को आप यथावत् जानो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे असहाय पृथिवी अपने कक्षा मार्ग मे नित्य चलती है वैसे ही सभ्य जनो की वाणी नियम से मिथ्या-भाषण को छोड़ सत्य मार्ग मे चलती है । जो ऐसी वाणी का सेवन करते है उनकी कुछ भी हानि नहीं होती ॥ २ ॥

फिर राजा क्या करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आ सी॑मरोहत्सु॒यमा॒ भव॑न्तीः॒ पति॑श्चिकि॒त्वान् र॑यि॒विद्र॑यी॒णाम् ।
प्र नील॑पृष्ठो अत॒सस्य॑ धा॒सेस्ता अ॑वासयत्पुरु॒धप्र॑तीकः ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (चिकित्वान्) ज्ञानी (रयिवित्) द्रव्यवेत्ता (रयीणाम्) धनों के (पति:) स्वामी ! आप जैसे (पुरुधप्रतीक:) अनको के पोषण के वा धारण के हेतु प्रतीतिकारी कर्मवाला (नीलपृष्ठ:) जिसके पिछले भाग मे नीलवर्ण है ऐसा (सीम्) सूर्य्यमण्डल (अतसस्य) व्याप्त बुद्धि (धासे:) पोषण करनेवाले राजा की जो (भवन्ती:) वर्त्तमान (सुयमा:) सुन्दर नियमवाली प्रजाओं को (प्र, आ, अवासयत्) अच्छे प्रकार वास कराता और (अरोहत्) अपने काम मे आरूढ़ होता है वैसे (ता:) उन सुन्दर नियमयुक्त प्रजाओं को अच्छे प्रकार वास कराइए ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य सब प्रजाओं को उठाके अच्छे प्रकार वास कराता है वैसे ही राजा सुशिक्षित रक्षा की हुई प्रजाओं को भूगोल के सब देशों मे बसाके धनाढ्य करे ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

महि॑ त्वा॒ष्ट्रमू॒र्जय॑न्तीरजु॒र्यं स्त॑भू॒यमा॑नं व॒हतो॑ वहन्ति ।
व्यङ्गे॑भिर्दिद्युता॒नः स॒धस्थ॒ एका॑मिव॒ रोद॑सी॒ आ वि॑वेश ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस सूर्य के (अजुर्यम्) जीर्ण अवस्था से रहित (महि) बड़े (स्तभूयमानम्) लोकों के धारक (त्वाष्ट्रम्) तेज को (ऊर्जयन्ती:) बल देती हुई शक्तियों को यथास्थान (वहत:) पहुंचानेवाले किरण (व्यङ्गेभि:) विविध प्रकार के अङ्गों से (वहन्ति) पहुँचाते हैं । जो (दिद्युतान:) देदीप्यमान हुआ अग्नि जैसे पति (सधस्थे) एक स्थान में (एकामिव) एक अपनी स्त्री का सङ्ग करता है वैसे (रोदसी) आकाश भूमि को (आ, विवेश) आवेश करता है उस विद्युत् रूप अग्नि को कार्य्यसिद्धि के लिए संप्रयुक्त करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । मनुष्यो को चाहिए कि सर्वत्र अभिव्याप्त विद्युत् स्वरूप अग्नि के गुण कर्म स्वभावों को जानके कार्य्यसिद्धि करें ॥४॥

अब कौन महात्मा होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

जा॒न॒न्ति॒ वृष्णो॑ अरु॒षस्य॒ शेव॑मु॒त ब्र॒ध्नस्य॒ शास॑ने रणन्ति ।
दि॒वो॒रुचः॑ सु॒रुचो॒ रोच॑माना॒ इळा॒ येषां॒ गण्या॒ माहि॑ना॒ गीः ॥५॥१॥

पदार्थ—(येषाम्) जिनकी (गण्या) गणना करने योग्य (इळा) स्तुति और (माहिना) सत्कार करने योग्य (गी:) वाणी है वे (रोचमाना:) रुचिवाले हुए (दिवोरुच:) विज्ञानरूप प्रकाश मे रुचि करनेवाले (सुरुच:) सुन्दर प्रीति के उत्पादक विद्वान् लोग (रणन्ति) शब्द करते है तथा (वृष्ण:) बलिष्ठ (अरुषस्य) घोड़े के तुल्य वेगयुक्त (ब्रध्नस्य) महान् राजपुरुष की (शासने) शिक्षा में (शेवम्) सुख (उत) और विज्ञान को (जानन्ति) जानते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानो की शिक्षा मे स्थिर होते है वे प्रशंसित विद्वान् होकर महात्मा होते हैं ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

उ॒तो पि॒तृभ्यां॑ प्र॒विदानु॒ घोषं॑ म॒हो म॒हद्भ्या॑मनयन्त शू॒षम् ।
उ॒क्षा ह॒ यत्र॒ परि॒ धान॑म॒क्तोरनु॒ स्वं धाम॑ जरि॒तुर्व॒वक्ष॑ ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ब्रह्मचारी लोग (महद्भ्याम्) पूज्य अध्यापक उपदेशकों से (मह:) बड़े ब्रह्मचर्य्य को (उतो) और (पितृभ्याम्) माता-पिता के साथ (प्रविदा) प्रकृष्ट ज्ञान से (घोषम्) विद्याशिक्षायुक्त वाणी और (शूषम्) बल को (अनु, अनयन्त) अनुकूल प्राप्त हों (यत्र) जहाँ (उक्षा) सेचन करनेवाला सूर्य्य (अक्तो:) रात्रि के (परि, धानम्) सब ओर से धारण को (जरितु:) स्तुतिकर्त्ता के (ह) ही (स्वम्, धाम) अपने स्थान को अर्थात् प्राप्त अवस्था को (अनु, ववक्ष) पहुँचाता है उसका सत्कार करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ब्रह्मचारी लोग पिता आचार्य्य आदि महान् पुरुषों के सेवन से विद्या तेज को पाते हैं वैसे तुम लोग प्रातःकाल ईश्वर की स्तुति आदि से धर्म से हुए सुख को प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

अब उपदेशक लोग किसके सदृश क्या करते है, इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

अ॒ध्व॒र्युभिः॑ प॒ञ्चभिः॑ स॒प्त विप्राः॑ प्रि॒यं र॑क्षन्ते॒ निहि॑तं प॒दं वेः ।
प्राञ्चो॑ मदन्त्यु॒क्षणो॑ अजु॒र्या दे॒वा दे॒वाना॒मनु॒ हि व्र॒ता गुः ॥७॥

पदार्थ—जो (प्राञ्च:) प्रकृष्ट विद्यायुक्त (उक्षण:) सुख फैलानेहारे (अजुर्या:) शरीर आत्मा की जीर्ण अवस्था से रहित (देवा:) विद्वान् लोग (हि) ही (देवानाम्) विद्वानों के (व्रता) सत्यभाषणादि उत्तम स्वभावों को (अनु, गु:) अनुकूलता पूर्वक प्राप्त हो वे (अध्वर्युभि:) यज्ञ रचनेवाले (पञ्चभि:) होता, अध्वर्यु, उद्गाता, ब्रह्मा और सभ्य इन पाँच ऋत्विजों और पत्नी यजमानों के साथ वर्त्तमान (सप्त) सात (विप्रा:) बुद्धिमान् लोग (वे:) व्यापक परमेश्वर के (प्रियम्) प्रिय (निहितम्) स्थित (पदम्) प्राप्त करने योग्य स्वरूप की (रक्षन्ते) रक्षा करते हैं वे ही (मदन्ति) आनन्दित होते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे सात ऋत्विज लोग यज्ञ करके प्रजाओं को सुखी करते है वैसे ही उपदेशक विद्वान् लोग सुशील धार्मिक होके अध्यापन और उपदेश से सब मनुष्यों को आनन्दित करते है ॥ ७ ॥

फिर भी उपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

दैव्या॒ होता॑रा प्रथ॒मा न्यृ॑ञ्जे स॒प्त पृ॒क्षासः॑ स्व॒धया॑ मदन्ति ।
ऋ॒तं शंस॑न्त ऋ॒तमित्त आ॑हु॒रनु॑ व्र॒तं व्र॑त॒पा दीध्या॑नाः ॥८॥

पदार्थ—जो (सप्त) सात (पृक्षास:) कोमल स्वभाववाले जन (स्वधया) अन्न से (मदन्ति) आनन्द करते हैं (ऋतम्) सत्य की (शंसन्त:) स्तुति करते हैं (ऋतम्) सत्य (व्रतम्) आचरण को (इत्) ही (ते) वे (व्रतपा:) सत्या-

चरण के रक्षक (**दीध्याना**) विद्यादि सद्गुणों से प्रकाशमान पुरुष (**अनु, आहु**) अनुकूल उपदेश करते हैं और (**दैव्या**) विद्वानों में कुशल (**प्रथमा**) प्रख्यात (**होतारा**) विद्या के देनेवाले दो विद्वान् अध्यापक उपदेशक भी अनुकूल उपदेश करते हैं उनको मैं (**नि**) निरन्तर (**ऋञ्जे**) प्रसिद्ध करूँ ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग धर्मयुक्त व्यवहार से धन-धान्यों को प्राप्त हो सत्य का उपदेश कर उसी का आचरण करके सब को शिक्षा करते हैं वे सत्कार करने योग्य हों ॥ ८ ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वृषायन्ते मुहे अत्याय पूर्वीर्वृष्णे चित्राय रश्मयः सुयामाः ।

देव होतर्मन्द्रतरश्चिकित्वान्महो देवान् रोदसी एह वक्षि ॥९॥

पदार्थ—हे (**देव**) प्रकाशमान (**होतः**) सबके लिए सुख देनेहारे विद्वान् (**मन्द्रतर**) अति आनन्दकारक (**चिकित्वान्**) चितानेहारे ! आप जैसे (**सुयामाः**) सुन्दर प्रहर आदि समयवाली (**रश्मयः**) किरणें (**महे**) बड़े (**अत्याय**) सब विद्याओं में व्यापनशील (**चित्राय**) आश्चर्य स्वभाववाले (**वृष्णे**) विद्या के प्रचारक विद्वान् के अर्थ (**पूर्वीः**) पहले से वर्त्तमान प्रजाजनों को (**वृषायन्ते**) बैल के समान उत्साहित करतीं (**रोदसी**) सूर्य भूमि प्रकट करती हैं वैसे (**इह**) इस जगत् में (**महः**) महान् (**देवान्**) विद्वानों को (**आ, वक्षि**) अच्छे प्रकार प्राप्त कराइए ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य की किरणें प्रकाश से वृष्टि द्वारा सब प्रजा को सुखी करती हैं वैसे ही विद्वान् लोग सब प्रजाजनों को विद्वान् सुन्दर ज्ञानयुक्त करते हैं ॥ ९ ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

पृक्षप्रयजो द्रविणः सुवाचः सुकेतव उषसो रेवदूषुः ।

उतो चिदग्ने महिना पृथिव्याः कृतं चिदेनः सं महे दशस्य ॥१०॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वान् ! (**द्रविणः**) प्रशस्त द्रव्य जिसके विद्यमान ऐसे आप (**महिना**) महिमा से (**महे**) बड़े सौभाग्य के लिए (**पृक्षप्रयजः**) शुभ गुण और कोमल भाव से यज्ञ करनेहारे (**उषसः**) प्रभात वेला के तुल्य वर्त्तमान (**सुवाचः**) सुन्दर सत्य वाणी से युक्त (**सुकेतवः**) सुन्दर बुद्धिवाले (**रेवत्**) द्रव्य के समान (**ऊषुः**) बसें (**उतो**) और अन्धकार का निवारण करते हैं वैसे (**पृथिव्याः**) भूमि के मध्य में (**कृतम्**) किया हुआ (**एनः**) पाप (**चित्**) शीघ्र आप (**सम्, दशस्य**) सम्यक् नष्ट करो (**चित्**) और सुन्दर कर्म को प्राप्त करो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! तुम लोग प्रभात वेला के तुल्य मनुष्यों के आत्माओं को प्रकाशित कर विज्ञान दे और अधर्माचरण को छुड़ाके सब मनुष्यों को सत्यवादी विद्वान् करो जिससे पृथिवी पर पापाचरण न बढ़े ॥ १० ॥

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।

स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥११॥२॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अपने शरीरात्मा के प्रकाश से युक्त विद्वन् ! आप (**पुरुदंसम्**) बहुत कर्मों वाली (**सनिम्**) सम्यक् सेवन की हुई (**इळाम्**) प्रशंसा के योग्य वाणी को (**साध**) साधो (**गोः**) पृथिवी के बीच (**हवमानाय**) ग्रहण करते हुए के अर्थ (**शश्वत्तमम्**) सदैव वर्त्तमान विज्ञान को सिद्ध करो जिससे (**नः**) हमारा (**विजावा**) विशेषकर प्रसिद्ध (**तनयः**) विद्या और सुख का प्रचार करनेहारा (**सूनुः**) सन्तान (**स्यात्**) होवे । हे (**अग्ने**) विद्वन् ! (**ते**) आपकी (**सा**) वह (**सुमतिः**) उत्तम बुद्धि (**अस्मे**) हमारे लिए (**भूतु**) हो ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि सदैव विद्यायुक्त वाणी और बुद्धि को प्राप्त हो सन्तानों को उत्तम शिक्षा देके अनादि रूप सुख को प्राप्त होवें और सदैव सत्यवादी विद्वानों की वृद्धि सर्वत्र फैलावें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में अग्नि सूर्य्य और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह सातवाँ सूक्त और दूसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथैकादशर्चस्याष्टमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । १, ८—१० निचृत्त्रिष्टुप् । २, ५, ६, ११ त्रिष्टुप् । ४ स्वराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ३, ७ स्वराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब तीसरे मण्डल के आठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य लोग किसकी कामना करें, इस विषय को कहा है—

अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन ।

यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धत्ताद्यद्वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे ॥१॥

पदार्थ—हे (**वनस्पते**) किरणों के रक्षक सूर्य्य के समान वर्त्तमान तेजस्वी विद्वन् ! (**मधुना , दैव्येन**) विद्वानों में हुए कोमल स्वभाव के साथ वर्त्तमान (**देवयन्तः**) कामना करते हुए विद्वान् (**यत्**) जिन (**त्वाम्**) आपको (**अध्वरे**) पढ़ने पढ़ाने और राज्य पालनादि व्यवहार में (**अञ्जन्ति**) चाहते हैं । सो आप जिन के बीच (**ऊर्ध्वः**) श्रेष्ठ गुणों से बढ़े हुए (**तिष्ठाः**) स्थित हूजिए (**वा**) और (**इह**) इस संसार में (**द्रविणा**) धनों को (**धत्तात्**) धारण करो (**अस्याः**) इस (**मातुः**) मान देनेवाली भूमि के (**उपस्थे**) समीप गोद में (**यत्**) जो (**क्षयः**) निवासस्थान है उसको हम लोग ग्रहण करें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सब प्राणी दिन को चाहते हैं वैसे ही उत्तम विद्वान् लोगों को सब मनुष्य चाहें । सब मिलके प्रीति से उत्तम घर और ऐश्वर्य की सिद्धि करें ॥ १ ॥

अब कौन मनुष्य कल्याण को प्राप्त होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्ताद्ब्रह्म वन्वानो अजरं सुवीरम् ।

आरे अस्मदमतिं बाधमान उच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥२॥

पदार्थ—हे रश्मिरक्षक सूर्य के समान तेजस्वी विद्वन् ! आप (**पुरस्तात्**) पहले से (**समिद्धस्य**) प्रदीप्त तेजस्वी विद्वान् का (**श्रयमाणः**) सेवन करते और (**अजरम्**) अक्षय (**सुवीरम्**) जिससे उत्तम वीर पुरुष हों ऐसे (**ब्रह्म**) बड़े धन को (**वन्वानः**) सेवन करते हुए (**अस्मत्**) हमारे (**आरे**) समीप वा दूर में (**अमतिम्**) अधर्मयुक्त विरुद्ध बुद्धि को (**बाधमानः**) नष्ट करते हुए (**महते**) बड़े (**सौभगाय**) उत्तम ऐश्वर्य्य होने के लिए निरन्तर (**उत्, श्रयस्व**) अच्छे प्रकार सेवन करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (वनस्पते) इस पद की अनुवृत्ति आती है । जो मनुष्य अच्छी शिक्षा से कुबुद्धि का निवारण करते और धनादि ऐश्वर्य के साथ सुशिक्षा विद्या और धर्म का प्रचार करते हुए सबके कल्याण की इच्छा करें वे सदैव कल्याणभागी होवें ॥ २ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए , इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन् पृथिव्या अधि ।

सुमिती मीयमानो वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥३॥

पदार्थ—हे (**वर्ष्मन्**) श्रेष्ठ गुणों के प्रचारक (**वनस्पते**) सेवने योग्य धन के रक्षक विद्वान् ! आप (**पृथिव्याः**) भूमि के (**अधि**) ऊपर स्तम्भ के तुल्य (**उत्, श्रयस्व**) ऊँचे हूजिए (**मीयमानः**) सत्कार किये हुए (**सुमिती**) सुन्दर बुद्धि से (**यज्ञवाहसे**) पढ़ने पढ़ाने आदि यज्ञ के प्राप्त करानेहारे विद्यार्थी के लिए (**वर्चः**) पढ़ने रूप तेज को (**धाः**) धारण कीजिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वट आदि वनस्पति जड़ स्कन्ध डाली आदि से बढ़ते हैं वैसे ही पुरुषार्थ के साथ विद्याओं का प्रचार कर मनुष्यों को बढ़ाना चाहिए ॥ ३ ॥

फिर कैसा विद्वान् हो, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः ।

तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः ॥४॥

पदार्थ—जो आठवें वर्ष से लेकर ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या का ग्रहण किये (**युवा**) युवावस्था को प्राप्त (**सुवासाः**) सुन्दर वस्त्रों को धारण किये (**परिवीतः**) और सब ओर से विद्या में व्याप्त हुए ब्रह्मचर्य से घर को (**आ, अगात्**) आवे (**सः, उ**) वही विद्या में (**जायमानः**) प्रसिद्ध हुआ (**श्रेयान्**) अति प्रशस्त (**भवति**) होता है (**तम्**) उसको (**देवयन्तः**) कामना करते हुए (**धीरासः**) बुद्धिमान् (**स्वाध्यः**) सुन्दर विद्या का आधान करनेवाले (**कवयः**) सर्वोत्तम विद्वान् लोग (**मनसा**) विज्ञान वा अन्तःकरण से (**उत्, नयन्ति**) उन्नत करते उत्तम मानते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य विद्या की उत्तम शिक्षा और ब्रह्मचर्य्य सेवन के विना दीर्घायु और सभा के योग्य विद्वान् नहीं हो सकता और न वह मनुष्य कहीं सत्कार पाने योग्य होता है जिस मनुष्य की धार्मिक विद्वान् प्रशंसा करते हैं वही विद्वान् है ॥ ४ ॥

जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्य आ विदथे वर्धमानः ।

पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र उदियर्ति वाचम् ॥५॥३॥

पदार्थ—जो (**समर्ये**) युद्ध में शूरवीर पुरुष के समान (**अह्नाम्**) दिनों के (**सुदिनत्वे**) सुन्दर दिनों के होने में (**विदथे**) विज्ञान सम्बन्धी व्यवहार में (**जातः**) प्रसिद्ध (**वर्धमानः**) बढ़ता हुआ (**जायते**) उत्पन्न होता है । जो (**मनीषा**) बुद्धि से (**अपसः**) कर्मों को करता हुआ (**देवया**) विद्वानों का पूजन करनेवाला नियतात्मा (**विप्रः**) समस्त विद्याओं से युक्त बुद्धिमान् जन (**वाचम्**) शुद्ध वाणी को (**उत्, इयर्त्ति**) प्राप्त होता है उसको (**धीराः**) बुद्धिमान् जन (**आ, पुनन्ति**) अच्छे प्रकार पवित्र करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । उन्हीं का सुदिन होता है जो विद्या और उत्तम शिक्षा का संग्रह कर विद्वान् होते हैं । जैसे शूरवीर पुरुष दुष्टों को जीतके धनादि ऐश्वर्य्य के साथ सब ओर से बढ़ते हैं वैसे ही विद्या से विद्वान् बढ़ते हैं ॥ ५ ॥

मनुष्यों को किसका ग्रहण वा त्याग करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यान्वो नरो॑ देवयन्तो॑ निमि॒म्युर्वन॑स्पते॒ स्वधि॑तिर्वा त॒तक्ष॑ ।

ते दे॒वासः॒ स्वर॑वस्तस्थि॒वांसः॑ प्र॒जाव॑द॒स्मे दि॑धिषन्तु॒ रत्न॑म् ॥६॥

पदार्थ—हे (**नरः**) नायक लोगो ! (**यान्, वः**) जिन तुमको (**देवयन्तः**) कामना करते हुए जन (**निमिम्युः**) निरन्तर मान करें (**ते**) वे (**स्वरवः**) अपने विद्याबोधक शब्दो से युक्त (**तस्थिवांसः**) स्थिर बुद्धिवाले (**देवासः**) आप विद्वान् लोग (**अस्मे**) हमारे (**प्रजावत्**) प्रजावान् (**रत्नम्**) धन का (**दिधिषन्तु**) उपदेश करें। (**वा**) अथवा हे (**वनस्पते**) वनो के रक्षक पुरुष ! जैसे (**स्वधितिः**) वज्र मेघ को (**ततक्ष**) काटता है वैसे आप दुष्टता को काटो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिनके सङ्ग से अन्य जन सभ्य विद्वान् हो उन्ही का सङ्ग तुम लोग भी करो । जिनके समागम से दुर्व्यसन बढ़ें उनको सब लोग त्याग देवें ॥ ६ ॥

अब विद्या से क्या होता है, इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

ये वृ॒क्णासो॒ अधि॒ क्षमि॒ निमि॑तासो य॒तस्रु॑चः ।

ते नो॑ व्यन्तु॒ वार्यं॑ देव॒त्रा क्षे॑त्र॒साध॑सः ॥७॥

पदार्थ—(**ये**) जो (**वृक्णासः**) अविद्या से पृथक् हुए (**निमितासः**) सदैव सत्य-सत्य ज्ञानवाले (**यतस्रुचः**) जिन्होने यज्ञ-साधन नियत किया और (**क्षमि, अधि**) पृथिवी पर वर्त्तमान हैं (**ते**) वे (**देवत्रा**) विद्वानो म (**क्षेत्रसाधसः**) खेतो को साधने वाले (**नः**) हमारे (**वार्य्यम्**) स्वीकार के योग्य ज्ञान को (**व्यन्तु**) प्राप्त हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे कुल्हाडे से काटे हुए वृक्ष फिर नही जमते वैसे ही विद्या से नष्ट हुई अविद्या नही बढ़ती ॥ ७ ॥

फिर उसी अहिंसाधर्म की उन्नति के विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

आ॒दि॒त्या रु॒द्रा वस॑वः सुनी॒था द्यावा॒क्षामा॑ पृथि॒वी अ॒न्तरि॑क्षम् ।

स॒जोष॑सो य॒ज्ञम॑वन्तु दे॒वा ऊ॒र्ध्वं कृ॑ण्वन्त्वध्व॒रस्य॑ के॒तुम् ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**आदित्याः**) बारह मास (**रुद्राः**) प्राण (**वसवः**) पृथिवी आदि (**पृथिवी**) विस्तारयुक्त (**द्यावाक्षामा**) सूर्य्य और भूमि तथा (**अन्तरिक्षम्**) आकाश ये सब (**सजोषसः**) सबके साथ समान प्रीति के सेवक (**सुनीथाः**) सुन्दर सङ्गति का प्राप्त (**यज्ञम्**) यज्ञ को बढाते है वैसे (**सजोषसः**) समान प्रीति वाले (**देवाः**) कामना करते हुए विद्वान् यज्ञ की (**अवन्तु**) रक्षा करें (**अध्वरस्य**) रक्षा योग्य धर्म की (**केतुम्**) बुद्धि को (**ऊर्ध्वम्**) उत्तेजित (**कृण्वन्तु**) करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! जैसे महीने प्राण और पृथिवी आदि पदार्थ अविरुद्धता के साथ वर्त्तमान रहते हैं, वैसे ही सबको सबके साथ प्रीति उत्पन्न कर विज्ञान बढाके अहिंसाधर्म की उन्नति करनी चाहिए ॥ ८ ॥

फिर कौन पूर्ण सुख को प्राप्त होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

हं॒साइ॑व श्रेणि॒शो यता॑नाः शु॒क्रा वसा॑नाः॒ स्वर॑वो न॒ आगुः॑ ।

उ॒न्नी॒यमा॑नाः क॒विभिः॑ पु॒रस्ता॑द्दे॒वा दे॒वाना॒मपि॑ यन्ति॒ पाथः॑ ॥९॥

पदार्थ—जो (**देवाः**) उत्तम गुण कर्म स्वभाववाले पण्डित लोग (**श्रेणिशः**) पङ्क्ति बांधे (**यतानाः**) यत्न करते और (**शुक्राः**) जलो को (**वसानाः**) आच्छादन करते हुए (**स्वरवः**) सुन्दर स्वरो का सेवन करनेहारे (**हंसाइव**) हंसो के तुल्य दर्शनीय (**नः**) हमको (**उन्नीयमानाः**) उत्तम गुणो को प्राप्त करते हुए (**पुरस्तात्**) पहले से (**कविभिः**) बुद्धिमानो के साथ वर्त्तमान (**देवानाम्**) विद्वानो के (**पाथः**) मार्ग को (**अपि, यन्ति**) चलते है वे भी हमको (**आ, अगुः**) अच्छे प्रकार प्राप्त होते है ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो हंसो के तुल्य मिलके प्रयत्न से सबकी उन्नति कर अपने आप उन्नति को प्राप्त हुए आप्त सत्यवादियो के मार्ग में चलके पराक्रम बढ़ाते हैं वे ही पूर्ण सुख को भोगते है ॥ ९ ॥

अब कौन विद्वान् जन सत्कार पाते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

शृङ्गा॑णीवेच्छृ॒ङ्गिणां॒ सं द॑दृश्रे च॒षाल॑वन्तः॒ स्वर॑वः पृथि॒व्याम् ।

वा॒घद्भि॑र्वा वि॒हवे॒ श्रोष॑माणा अ॒स्माँ अ॑वन्तु पृत॒नाज्ये॑षु ॥१०॥

पदार्थ—जो (**चषालवन्तः**) बहुत भोगोवाले (**स्वरवः**) प्रशंसक लोग (**विहवे**) विशेषकर जहाँ पठन पाठनादि का शब्द करते उस स्थान मे (**श्रोषमाणाः**) सुनते हुए (**वाघद्भिः**) ऋत्विजो के साथ वर्त्तमान (**पृथिव्याम्**) पृथिवी पर (**शृङ्गिणाम्**) भैंसा आदि के (**शृङ्गाणीव**) सींगो के तुल्य (**सं, ददृश्रे**) सम्यक् दीख पड़ते हैं वे (**इत्**) ही (**पृतनाज्येषु**) संग्रामों (**वा**) अथवा अन्य व्यवहारो मे (**अस्मान्**) हमको (**अवन्तु**) रक्षित करें ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो बहुश्रुत विद्वान् लोग अपने आत्मा के तुल्य सबकी रक्षा करते हैं वे कीर्ति से श्रेष्ठाङ्ग मस्तक मे वर्त्तमान सब पशुओ के सींगो के तुल्य उत्तम पद को प्राप्त होकर ससार मे स्तुति किये हुए सब के सत्कार को प्राप्त होते है ॥ १० ॥

अब ब्रह्मचर्य्य के अनुष्ठान से क्या होता है, इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

वन॑स्पते श॒तव॑ल्शो॒ वि रो॑ह स॒हस्र॑वल्शा॒ वि व॒यं रु॑हेम ।

यं त्वाम॒यं स्वधि॑ति॒स्तेज॑मानः प्रणि॒नाय॑ मह॒ते सौभ॑गाय ॥११॥४॥

पदार्थ—हे (**वनस्पते**) वनस्पति के समान वर्त्तमान परोपकारी सज्जन ! जैसे (**शतवल्शः**) सैकडो अकुर वाला बांस आदि वृक्ष विशेष बढ़ता है वैसे आप (**वि, रोह**) वृद्धि को प्राप्त हूजिए और सुख को (**प्रणिनाय**) उत्तम प्रकार मे प्राप्त कीजिए । जैसे (**सहस्रवल्शाः**) हजारो अकुरवाले वनस्पतियो के तुल्य माङ्गोपाङ्ग वर्त्तमान दूर्वा आदि बढते है वैसे ही (**वयम्**) हम लोग (**वि, रुहेम**) विशेष कर बढें । जैसे (**अयम्**) यह (**तेजमानः**) तीक्ष्ण किया (**स्वधितिः**) वज्ररूप विद्युत् अग्नि (**महते**) बड़े (**सौभगाय**) सुन्दर धन होने के लिए (**यम्**) जिस (**त्वाम्**) आपको बढ़ाता है वैसे हम लोग भी बढावें ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य ब्रह्मचर्य्य विद्या सुशिक्षा धर्म और पुरुषार्थों से युक्त हुए कार्य्यसिद्धि के अर्थ प्रयत्न करते है वे बांस आदि वृक्षो के तुल्य सब ओर से बढते है । जैसे सुन्दर तीक्ष्ण शस्त्रो से शत्रुओ को जीतके अजातशत्रु होते है उनको जैसे विद्युत् मेघ को वैसे शत्रु दलो को जलाने को समर्थ होके महान् ऐश्वर्य को उत्पन्न करें ॥ ११ ॥

इस सूक्त मे विद्वान् वेदपाठी और ब्रह्मचारी के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ।

यह आठवां सूक्त और चौथा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ नवर्चस्य नवमसूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । १, ४ बृहती । २, ५—७ निचृद्बृहती छन्दः । ३, ८ विराड् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । ९ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब नव ऋचावाले नवमे सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को अहिंसा धर्म का ग्रहण करना चाहिए इस विषय को कहा है—

सखा॑यस्त्वा ववृमहे दे॒वं मर्ता॑स ऊ॒तये॑ ।

अ॒पां नपा॑तं सु॒भगं॑ सु॒दीदि॑तिं सु॒प्रतू॑र्तिमने॒हस॑म् ॥१॥

पदार्थ—हे उपदेशक सज्जन ! (**मर्त्तासः**) मननशील (**सखायः**) मित्र हुए हम लोग (**ऊतये**) रक्षा आदि के लिए (**अपाम्**) प्राणो के बीच (**नपातम्**) आत्मभाव से नाशरहित (**अनेहसम्**) न मारनेहारे (**सुप्रतूर्त्तिम्**) सुन्दर शीघ्रतायुक्त (**सुदीदितिम्**) विद्या और विनय के प्रकाश स युक्त (**सुभगम्**) उत्तम ऐश्वर्य्य वाले (**देवम्**) विद्वान् (**त्वा**) आपको (**ववृमहे**) स्वीकार करें ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि विद्यादि सौभाग्य जानने के लिए मित्रभाव का आश्रय कर और आप्त सत्यवक्ता विद्वान् के शरण को प्राप्त हो के अहिंसाधर्म का संग्रह करें ॥ १ ॥

विद्यार्थी किसको पाकर सुखी होता है, इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

काय॑मानो व॒ना त्वं यन्मा॒तॄरज॑गन्न॒पः ।

न तत्ते॑ अग्ने प्र॒मृषे॑ नि॒वर्त॑नं॒ यद्दू॒रे सन्नि॒हाभ॑वः ॥२॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) शुभ गुणो से प्रकाशमान सज्जन (**कायमानः**) पढ़ाते वा उपदेश करते (**सन्**) हुए (**त्वम्**) आप (**यत्**) जिससे (**मातॄः**) माताओ के तुल्य रक्षक वा प्रिय (**अपः**) प्राणो को (**अजगन्**) प्राप्त होवें । और (**यत्**) जिससे (**निवर्त्तनम्**) अन्यायाचरण से पृथक् होने को (**दूरे**) दूर फेंकिए और मङ्गल के अर्थ (**इह**) यहाँ (**अभवः**) हूजिए (**तत्**) इसस (**ते**) आपसे मै (**वना**) मांगने योग्य पदार्थों को (**प्रमृषे**) सुखो म सयुक्त करूँ और मुझसे आप दूर न हूजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—जैसे प्यासा जन जल को पा के तृप्त होता वैसे ही आप्त अध्यापक और उपदेशक को विद्यार्थी जन प्राप्त होके सब ओर से सुखी होता है ॥ २ ॥

अब कौन मनुष्य जगत् मे पूज्य होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अति॑ तृ॒ष्टं व॑वक्षि॒थाथै॒व सु॒मना॑ असि ।

प्रप्रा॒न्ये यन्ति॒ पर्य॒न्य आ॑सते॒ येषां॑ स॒ख्ये असि॑ श्रि॒तः ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वान् जन ! जिस कारण आप (**तृष्टम्**) प्यासे का (**ववक्षिथ**) प्राप्त करना चाहते (**अथ**) अथवा (**सुमनाः**) प्रसन्नचित्त (**एव**) ही (**असि**) हैं तथा (**येषाम्**) जिनकी (**सख्ये**) मित्रता वा मित्र कर्म मे आप (**श्रितः**) सयुक्त (**असि**) हैं उनमे से (**अन्ये**) अन्य लोग (**प्रप्र, अति, यन्ति**) विशेषकर अत्यन्त प्राप्त होते तथा (**अन्ये**) अन्य लोग (**परि, आसते**) सब ओर से बैठते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो लोग मित्र भाव से प्यासे के लिए जल के तुल्य विद्या चाहने वाले के अर्थ विद्या देकर प्रसन्नरूप करते हैं वे ही जगत् मे पूज्य होते हैं ॥ ३ ॥

फिर पाखण्डी लोग कैसे दूर होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

ईयिवांसमति स्रिधः शश्वतीरति सश्चतः ।

अन्वींमविन्दन्निचिरासो अद्रुहो॑ऽप्सु सिंहमिव श्रितम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**अति, स्रिधः**) अतिसहनशील (**शश्वतीः**) सनातन (**अति, सश्चतः**) अत्यन्त आपस मे मिले हुए (**निचिरासः**) निश्चय से प्राचीन (**अद्रुहः**) द्रोहरहित प्रजाजन (**ईयिवांसम्**) प्राप्त होते हुए (**अप्सु**) जलो मे (**श्रितम्**) आश्रित (**सिंहमिव**) सिंह के तुल्य (**ईम्, अनु, अविन्दन्**) सब ओर से अनुकूल प्राप्त हो उनको तुम लोग सुख भोगनेवाले जानो ॥ ४ ॥

भावार्थ—जैसे सिंह को देखके हरिण आदि भाग जाते हैं वैसे ही सुशिक्षायुक्त विद्वान् प्रजाजनो को देखकर पाखण्डी लोग नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं ॥ ४ ॥

फिर आत्मज्ञान विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

ससृवांसमिव त्मनाऽग्निमित्था तिरोहितम् ।

ऐनं नयन्मातरिश्वा परावतो देवेभ्यो मथितं परि ॥५॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**मातरिश्वा**) वायु (**परावतः**) दूर देश से (**देवेभ्यः**) विद्वानो के लिए (**मथितम्**) मन्थन किये (**तिरोहितम्**) परिच्छिन्न (**अग्निम्**) अग्नि को (**ससृवांसमिव**) प्राप्त होते हुए मनुष्य के समान (**परि, आ, नयत्**) सब ओर से सब प्रकार प्राप्त कराता है (**इत्था**) इस प्रकार उस (**एनम्**) अग्नि को (**त्मना**) आत्मा से तुम लोग विशेषकर जानो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । हे मनुष्यो ! जैसे प्रयत्न के साथ मन्थन आदि से उत्पन्न हुए अग्नि को वायु बढ़ाता और दूर पहुंचाता है तथा अग्नि प्राप्त हुए पदार्थों को जलाता है और दूरस्थ पदार्थों को नहीं जलाता । इसी प्रकार ब्रह्मचर्य्य, विद्या, योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान और सत्पुरुषो के सङ्ग से साक्षात् किया आत्मा और परमात्मा सब दोषो को जला के सुन्दर प्रकाशित ज्ञान को प्रकट करता है ॥ ५ ॥

फिर उपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तन्त्वा मर्त्ता अगृभ्णत देवेभ्यो हव्यवाहन ।

विश्वान्यद्यज्ञाँ अभिपासि मानुष तव क्रत्वा यविष्ठ्य ॥६॥

पदार्थ—हे (**मानुष**) मननशील (**हव्यवाहन**) ग्रहण करने योग्य शास्त्रीय युक्ति युक्त वचनो को प्राप्त करानेहारे (**यविष्ठ्य**) अत्यन्त ब्रह्मचर्य्य और विद्या के अभ्यास से युवावस्था को प्राप्त उपदेशक विद्वन् ! (**यत्**) जो आप (**विश्वान्**) समस्त (**यज्ञान्**) विद्यादि के प्रापक व्यवहारों की (**अभि, पासि**) सब ओर से रक्षा करते है उन (**तव**) आपकी (**क्रत्वा**) बुद्धि से (**मर्त्ताः**) मरण धर्मवाले मनुष्य (**देवेभ्यः**) विद्वानो के लिए (**तम्**) उन (**त्वा**) आपका (**अगृभ्णत**) ग्रहण करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिसके उपदेश से बुद्धि को प्राप्त होकर समग्र सुखो को आप लोग प्राप्त होवें उसका सब ओर से सत्कार करो ॥ ६ ॥

फिर मनुष्य कैसे सब भय से रहित होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

तद्भद्रं तव दंसना पाकाय चिच्छदयति ।

त्वां यदग्ने पशवः समासते समिद्धमपिशर्वरे ॥७॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य तेजस्वि ! (**यत्**) जो मनुष्य (**अपिशर्वरे**) निश्चित अन्धकार रूप रात्रि मे भी (**समिद्धम्**) प्रज्वलित अग्नि के निकट जैसे (**पशवः**) गौ आदि पशु शीत निवारणार्थ वैसे (**त्वाम्**) आपके निकट (**समासते**) बठते हैं उनके (**पाकाय**) परिपक्व दृढ होने के लिए अग्नि के (**चित्**) तुल्य (**तत्**) उस (**भद्रम्**) कल्याणकारक बुद्धि से उत्पन्न ज्ञान को (**तव**) आपका (**दंसना**) दर्शन शास्त्र (**छदयति**) बढाता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे वन मे अग्नि के चारो ओर स्थित हुए पशु सिंह आदि से रक्षित होते हैं, वैसे ही विद्वानो के ज्ञान का आश्रय मनुष्यो की सब ओर के भय से रक्षा करता है ॥ ७ ॥

फिर ईश्वर का ही ध्यान करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

आ जुहोता स्वध्वरं शीरं पावकशोचिषम् ।

आशुं दूतमजिरं प्रत्नमीड्यं श्रुष्टी देवं सपर्यत ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! तुम लोग जैसे (**स्वध्वरम्**) हिंसा न करने योग्य (**शीरम्**) विद्युत् रूप से सब जगह भरे हुए (**पावकशोचिषम्**) शुद्ध प्रकाश वाले (**आशुम्**) शीघ्रगामी (**दूतम्**) दूत के तुल्य देशान्तर मे समाचार पहुँचाने वाले (**अजिरम्**) फेंकनेहारे (**प्रत्नम्**) प्राचीन (**ईड्यम्**) खोजने योग्य विद्युत् रूप अग्नि का (**आ, जुहोत**) अच्छे प्रकार ग्रहण करो, वैसे ही स्वयं प्रकाशरूप सर्वत्र व्यापक (**देवम्**) उत्तम गुणकर्मस्वभावयुक्त सब आनन्द देनेवाले परमात्मा की (**श्रुष्टी**) शीघ्र (**सपर्यत**) सेवा करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो बिजुली के तुल्य व्यापक स्वयं प्रकाशरूप अविद्यादि दोषो का नाश करनेवाला सनातन अनादि काल से प्रशंसा करने योग्य परमात्मा है उसी का नित्य ध्यान करो ॥ ८ ॥

फिर अग्नि क्या करता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।

औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥९॥६॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! जिस (**अग्निम्**) अग्नि को (**त्रीणि**) तीन (**शता**) सैकड़े (**त्री**) तीन (**सहस्राणि**) हजार तत्त्व (**च**) और (**त्रिंशत्**) पृथिवी आदि तीस तथा तीन तेंतीस (**च**) और (**नव**) नौ हिरण्यगर्भादि (**देवाः**) दिव्य गुणवाले पदार्थ (**असपर्यन्**) सेवन करते (**घृतैः**) जलों से (**औक्षन्**) सींचते (**अस्मै**) इस अग्नि के लिए (**बर्हिः**) पदार्थ वृद्धि का (**अस्तृणन्**) विस्तार करते उस (**आत्**) विद्याप्राप्ति के पश्चात् (**होतारम्**) आदर करनेवाले कार्यसाधक (**इत्**) को ही तुम लोग (**नि, असादयन्त**) कार्य्यों मे निरन्तर युक्त करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिसके आश्रय मे तेंतीस हजार तीनसौ बयालीस तत्त्व हैं, जो एक सबको विद्युत् रूप से व्याप्त है, उस अग्नि के आश्रय से आप लोग सब कार्य्य सिद्ध करो ॥ ९ ॥

इस सूक्त मे अग्नि और मनुष्यादि के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह नवमां सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ नवर्चस्य दशमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषि । अग्निर्देवता , १, ५, ८ विराडुष्णिक् । ३ उष्णिक् । ४, ६, ७, ९ निचृदुष्णिक् छन्द । ऋषभ स्वर । २ भुरिग् गायत्री छन्द । निषाद स्वरः ॥

अब नौ ऋचावाले दशमें सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में ईश्वर क्या करता है इस विषय को कहते हैं—

त्वामग्ने मनीषिणः सम्राजं चर्षणीनाम् ।

देवं मर्त्तास इन्धते समध्वरे ॥१॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) स्वयं प्रकाशरूप जगदीश्वर ! (**मनीषिणः**) मननशील (**मर्त्तासः**) मनुष्य जिन (**चर्षणीनाम्**) मनुष्यादि प्रजाओ के (**सम्राजम्**) सम्यक् न्यायाधीश राजा (**देवम्**) सब सुख देनेवाले (**त्वाम्**) आप को (**अध्वरे**) रक्षणीय धर्मयुक्त व्यवहार मे (**सम्, इन्धते**) सम्यक् प्रकाशित करते है उन्हीं आप की हम भी उपासना करें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अग्नि सूर्य्यादि रूप से सब जगत् को प्रकाशित और उपकृतकर आनन्दितकरता है वैसे ही परमात्मा अन्तर्यामी रूप से जिज्ञासु योगी लोगो के आत्माओ को विशेष और सामान्य से सबके आत्माओ को प्रकाशित कर और जगत् के असंख्य पदार्थों से उपकृत कर इस लोक परलोक के सुख देने से सदैव सुखी करता है ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

त्वां यज्ञेष्वृत्विजमग्ने होतारमीळते ।

गोपा ऋतस्य दीदिहि स्वे दमे ॥२॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अविद्यादि दोषो के नाशक जगदीश्वर ! जो (**ऋतस्य**) सत्य के (**गोपाः**) रक्षक विद्वान् लोग (**यज्ञेषु**) अच्छे व्यवहारो वा यज्ञो मे (**ऋत्विजम्**) ऋत्विज् के तुल्य सुखसाधक (**होतारम्**) सब के धारण करनेहारे (**त्वाम्**) आप की (**ईळते**) स्तुति करते है सो आप (**स्वे**) अपने (**दमे**) नियमरूप व्यवहार मे उन विद्वानो को (**दीदिहि**) विज्ञान दान दीजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग सत्यभाषणादि धर्म का अनुष्ठान कर और असत्य भाषणादि रूप अधर्म को छोड के आप का भजन करते हैं वे आप को प्राप्त होके सदा आनन्दित हुए इस संसार मे बसते हैं ॥ २ ॥

अब मनुष्य कैसे सुखों को प्राप्त हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स घा यस्ते ददाशति समिधा जातवेदसे ।

सो अग्ने धत्ते सुवीर्य्यं स पुष्यति ॥३॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) सबके प्रकाशक जन ! (**यः**) जो (**समिधा**) सम्यक् प्रकाशक इन्धन वा सुन्दर विज्ञान से (**जातवेदसे**) उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान वा बुद्धि को प्राप्त हुए (**ते**) आप के लिए आत्मा अपने स्वरूप को (**ददाशति**) देता प्राप्त कराता है (**सः, घ**) वही (**सुवीर्य्यम्**) सुन्दर विज्ञानादि धन वा पराक्रम को (**धत्ते**) धारण करता (**सः**) वह (**पुष्यति**) सब ओर से पुष्ट होता और (**सः**) वह दूसरों को पुष्ट करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जैसे प्राणी अग्नि मे घृतादि उत्तम द्रव्य का होम कर वायु आदि की शुद्धि होने से सब आनन्द को प्राप्त होते हैं वैसे ही विद्वान् लोग परमात्मा मे अपने आत्मा का समर्पण कर समस्त सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

अब उपदेशक का कर्त्तव्य कहते हैं—

स केतुरध्वराणामग्निर्देवेभिरा गमत् ।

अञ्जानः सप्त होतृभिर्हविष्मते ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष ! जैसे (**सः**) वह (**केतुः**) ध्वजा के तुल्य प्रज्ञापक (**अञ्जानः**) दिव्य गुणों को प्रकट करता हुआ प्रसिद्ध (**अग्निः**) अग्नि (**देवेभिः**) दिव्य गुणों वाले पदार्थों के तुल्य विद्वानों और (**होतृभिः**) ग्रहण करनेहारे (**सप्त**) पांच प्राण, मन और बुद्धि के साथ (**अध्वराणाम्**) अहिंसारूप यज्ञों के सम्बन्धी (**हविष्मते**) प्रशस्त देने योग्य पदार्थोंवाले जन के लिए (**आ, अगमत्**) आवे प्राप्त होवे अर्थात् अग्निविद्यायुक्त होवे वैसे तू प्राप्त हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विज्ञान कर सम्यक् सेवन किया अग्नि दिव्य गुणों को देता है, वैसे ही सेवन किये आप्त विद्वान् जन अहिंसादि रूप धर्म को जता कर श्रोताओं के लिए दिव्य सुखों को देते हैं ॥ ४ ॥

अब अध्यापक और विद्वान् के कर्त्तव्य को कहते हैं—

प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् ।

विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ॥५॥७॥

पदार्थ—हे विद्वज्जनो ! (**होत्रे**) ग्रहण करनेवाले (**अग्नये**) अग्नि के (**न**) समान (**विपाम्**) उत्तम बुद्धिवालों के (**ज्योतींषि**) विद्यारूप तेजों को (**बिभ्रते**) धारण करते हुए (**वेधसे**) बुद्धिमान् के लिए (**बृहत्**) महत् प्रयोजनवाले (**पूर्व्यम्**) प्राचीन विद्वानों से उपदेश किये हुए (**वचः**) वचन को (**प्र, भरत**) उपदेश कीजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे यज्ञ करनेवाले यज्ञ के लिए घृत आदि पदार्थों से उत्तम प्रकार पूर्वक पकाये हुए अन्नों से अग्नि की वृद्धि करते हैं वैसे ही अध्यापक पुरुष अङ्ग और उपाङ्गों के सहित सम्पूर्ण विद्याओं के प्रचार से विद्यार्थी और श्रोतृजनों को तृप्त करें ॥ ५ ॥

अग्निं वर्द्धन्तु नो गिरो यतो जायत उक्थ्यः ।

महे वाजाय द्रविणाय दर्शतः ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वज्जनो ! आप लोग जैसे समिधों से (**अग्निम्**) अग्नि बढ़ता है वैसे (**नः**) हम लोगों की (**गिरः**) उत्तम प्रकार से शिक्षित वाणियों को (**वर्धन्तु**) वृद्धि करें (**यतः**) जिससे (**महे**) श्रेष्ठ (**वाजाय**) विज्ञान और (**द्रविणाय**) ऐश्वर्य के लिए (**दर्शतः**) देखने और (**उक्थ्यः**) प्रशंसा करने योग्य विद्वान् पुरुष (**जायते**) प्रकट होता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । अध्यापक और उपदेशक पुरुषों को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए जिससे कि पढ़ने और सुननेवाले जनों की उत्तम शिक्षा विद्या और सभ्यता बढ़े और वे धनवान् होवें ॥ ६ ॥

फिर विद्वान् के कृत्य को कहते हैं—

अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान् देवयते यज ।

होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ॥७॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान (**होता**) देनेहारे (**मन्द्रः**) प्रसन्न करने तथा (**यजिष्ठः**) अतिशय यज्ञ करनेवाले ! आप (**अध्वरे**) अहिंसारूप यज्ञ में (**देवयते**) दिव्य गुण कर्म स्वभावों की कामना करनेवाले के लिए (**देवान्**) उत्तम गुणों को (**यज**) संयुक्त कीजिए जिससे (**अति, स्रिधः**) विद्या आदि उत्तम व्यवहार के विरोधी पुरुषों को उत्तम अधिकारों से पृथक् करके (**वि, राजसि**) अत्यन्त प्रकाशित होते हो इससे उत्तम सत्कार करने योग्य है ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अग्नि उत्तम प्रकार से यन्त्रों में संयुक्त किया हुआ शिल्पविद्या आदि व्यवहारों की सिद्धि करके दारिद्र्य का नाश करता है वैसे ही पूजित हुए विद्वान् पुरुष विद्या का प्रचार करके अविद्या आदि दुष्ट स्वभावों का नाश करते हैं ॥ ७ ॥

स नः पावक दीदिहि द्युमदस्मे सुवीर्य्यम् ।

भवा स्तोतृभ्यो अन्तमः स्वस्तये ॥८॥

पदार्थ—हे (**पावक**) अग्नि के तुल्य पवित्रकारक विद्वान् पुरुष ! आप (**स्तोतृभ्यः**) विद्याओं के प्रचार करनेवाले (**अस्मे**) हम लोगों को (**द्युमत्**) प्रशंसा करने योग्य सद्विद्या के विज्ञान से युक्त (**सुवीर्य्यम्**) श्रेष्ठ धन दीजिए (**सः**) वह आप (**नः**) हम लोगों को (**दीदिहि**) प्रकाशित करो (**स्वस्तये**) सुख प्राप्ति के लिए (**अन्तमः**) समीप में वर्त्तमान (**भव**) हूजिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—विद्वज्जन जो कि स्वयं पवित्र हैं उनको चाहिए कि औरों को भी विद्या और उत्तम शिक्षा से पवित्र करें, जिससे सम्पूर्ण पुरुष मित्र होकर सुख करने के लिए समर्थ हों ॥ ८ ॥

तं त्वा विप्रा विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।

हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम् ॥९॥८॥

पदार्थ—हे सत्य कहनेवाले विद्वान् पुरुष ! जो लोग (**जागृवांसः**) अविद्यारूप निद्रा से उठे विद्या में जागते हुए और (**विपन्यवः**) विशेष प्रकार से प्रशंसा किये गये (**विप्राः**) बुद्धिमान् जन (**तम्**) उन सम्पूर्ण विद्याओं के प्रकाश करनेवाले वक्ता (**हव्यवाहम्**) देने के योग्य विज्ञान के दाता (**अमर्त्यम्**) मनुष्य के स्वभाव से रहित होने से देवता स्वभाववाले (**सहोवृधम्**) बल में बढ़ने वा बल को बढ़ानेवाले (**त्वा**) आपको (**सम् इन्धते**) प्रकाशित करते हैं उनको आप सब ओर से शुभ गुणों के साथ प्रकाशित कीजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग ही विद्वानों के परिश्रम को जान सकते हैं अन्य जन नहीं, इससे विद्वज्जन विद्वान् पुरुषों ही का सत्कार करें मूर्खों का नहीं ॥ ९ ॥

इस सूक्त में अग्नि, परमात्मा और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह दशवां सूक्त और आठवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ नवर्चस्यैकादशस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । १, २, ५, ७, ८ निचृद्गायत्री । ३, ९ विराड् गायत्री । ४, ६ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब ग्यारहवें सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र से अग्न्यादि के दृष्टान्त से विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को कहा है—

अग्निर्होता पुरोहितोऽध्वरस्य विचर्षणिः । स वेद यज्ञमानुषक् ॥१॥

पदार्थ—जो मनुष्य (**अध्वरस्य**) जिसमें हिंसा न हो ऐसे कर्म का (**विचर्षणिः**) प्रकाशकर्त्ता (**होता**) दानकारक (**पुरोहितः**) सब जीवों के हित करनेवाले (**अग्निः**) अग्नि के सदृश होता है (**सः**) वह (**आनुषक्**) अनुकूलता से वर्त्तता हुआ (**यज्ञम्**) विधि यज्ञादि कर्म को (**वेद**) जानता है ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो पुरुष ब्रह्मचर्य और विद्या आदि उत्तम गुणों के ग्रहण करने में तत्पर होते हैं वे ही अग्नि आदि पदार्थों को जान कर अर्थात् शिल्पविद्या में निपुण होकर संसार में प्रशंसा होने योग्य कर्म करनेवाले होते हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स हव्यवाळमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः । अग्निर्धिया समृण्वति ॥२॥

पदार्थ—जो पुरुष (**अग्निः**) अग्नि के तुल्य तेजस्वी (**हव्यवाट्**) ग्रहण करने योग्य हवन सामग्री को प्राप्त (**अमर्त्यः**) मरणरूप धर्म से रहित (**उशिक्**) कामना करता हुआ (**दूतः**) अविद्या आदि से पृथक् दूर विद्या को प्राप्त करानेवाला (**चनोहितः**) अन्नादिकों में वृद्धिरूप हित कर्म करने वाला विद्वान् पुरुष (**धिया**) सुकर्म से वा उत्तम बुद्धि से (**सम्, ऋण्वति**) चलता वा श्रेष्ठ बुद्धियुक्त होकर उन कर्मों को जानता है (**सः**) वही पुरुष हम लोगों को शिक्षा कर सकता है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अग्नि अपने व्यापार से दूत के सदृश कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे ही विद्वान् लोग राज्य के कार्य्य आदिकों को सिद्ध कर सकते हैं ॥ २ ॥

मनुष्यों को किनका सेवन करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्निर्धिया स चेतति केतुर्यज्ञस्य पूर्व्यः । अर्थं ह्यस्य तरणि ॥३॥

पदार्थ—जो विद्वान् पुरुष (**अग्निः**) अग्नि के सदृश तेजस्वी (**केतुः**) उपदेश द्वारा बुद्धि का प्रकाश करने तथा (**तरणि**) सद्विद्या से दुःख का छुड़ानेवाला (**पूर्व्यः**) प्राचीन विद्वानों में चतुर (**धिया**) कर्म से वा बुद्धि से (**हि**) जिस कारण से (**अस्य**) इस (**यज्ञस्य**) विद्वानों के सत्काररूप व्यवहार को (**अर्थम्**) प्रयोजन को (**चेतति**) उत्तम प्रकार जानता वा अन्यों को जनाता है इससे (**सः**) वह सेवा करने योग्य है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो पुरुष विद्यारूप यज्ञ को उत्तम प्रकार से जानते हैं, उन्हीं पुरुषों की विद्या की उन्नति होने के लिए सेवा करो ॥ ३ ॥

अब सन्तानों की शिक्षा विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्निं सूनुं सनश्रुतं सहसो जातवेदसम् । वह्निं देवा अकृण्वत ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! स्वयं (**देवाः**) विद्वान् हुए आप लोग (**सहसः**) प्रशंसा करने योग्य विद्या बलवाले के (**सूनुम्**) पुत्र के सदृश सेवा करने (**वह्निम्**) अच्छे ही गुणों को धारण करने और (**सनश्रुतम्**) सनातन शास्त्रों को श्रवण करने वाले (**जातवेदसम्**) विद्या से युक्त जिज्ञासु को (**अग्निम्**) अग्नि के समान तेजस्वी (**अकृण्वत**) करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोगों को चाहिए कि अपने पुत्रों के सदृश और लोगों के पुत्रों को समझ कर स्नेह से विद्यायुक्त और बहुत शास्त्रों को सुननेवाले अर्थात् जिन्होंने बहुत शास्त्र सुने हों ऐसे करके आनन्द सहित करें ॥ ४ ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम् ।

तूर्णी रथः सदा नवः ॥५॥९॥

पदार्थ—विद्वान् पुरुष (**तूर्णि**) शीघ्र चलनेवाला और (**नव**:) नवीन (**रथः**) उत्तम सवारी और (**अग्नि**) अग्नि के सदृश प्रकाशित (**मानुषीणाम्**) मनुष्य सम्बन्धिनी (**विशाम्**) प्रजाओं की (**सदा**) सब काल में (**अद्राघ्य**:) परस्पर हिंसा का वारणकर्त्ता और (**पुरएता**) अग्रगामी होवे ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् लोग जैसे शीघ्रगामी नवीन रथ में शीघ्र अपने वाञ्छित स्थान को कोई एक मनुष्य पहुंचता है वैसे वैर को त्याग के सब लोगों को अपनी इच्छानुकूल सद्विद्याओं की शीघ्र शिक्षा देकर उनका जन्म सफल करें ॥ ५ ॥

साह्वान्विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः । अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**अमृक्तः**) जो कि औरों से न मारा जा सके (**साह्वान्**) क्रोध रहित (**क्रतु**) बुद्धिमान् और (**अग्नि**) अग्नि के सदृश शुद्ध स्वभाववाला (**तुविश्रवस्तमः**) अतिशय कर बहुत शास्त्रों को जिसने सुना हो (**देवानाम्**) पण्डितों के बीच में (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**अभियुजः**) अपने अनुकूल व्यवहार करनेवाली प्रजाओं की सब प्रकार रक्षा करता है वह सब प्रजाजनों से सत्कार पाने योग्य है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो किसी को नहीं मारता उसको मारने की कोई इच्छा नहीं करता, जो पुरुष बहुत शास्त्रों को पढ़ने और सुनने की इच्छा करता है वह अति बुद्धिमान् होता है, जो जैसी भावना से प्रजा में वर्त्ताव रखता है उसके साथ प्रजा भी उसी भावना से वर्त्ताव रखती है ॥ ६ ॥

अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः । क्षयं पावकशोचिषः ॥७॥

पदार्थ—जो (**दाश्वान्**) देनेवाला (**मर्त्यः**) मनुष्य (**पावकशोचिषः**) अग्नि की दीप्ति के सदृश दीप्ति युक्त विद्वान् पुरुष के (**क्षयम्**) विद्या स्थान को (**अश्नोति**) प्राप्त होता वह (**वाहसा**) उत्तम पदवी को प्राप्त होने से (**प्रयांसि**) कामना अभिलाषा के योग्य अन्न आदि को (**अभि**) प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—जब मनुष्य विद्वानों की विद्या पदवी को प्राप्त होते हैं तब ही उनके मनोरथ पूर्ण होते हैं ॥ ७ ॥

परि विश्वानि सुधिताग्नेरश्याम मन्मभिः । विप्रासो जातवेदसः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**जातवेदसः**) विद्वान् हुए (**विप्रासः**) बुद्धिमान् हम लोग (**मन्मभिः**) विज्ञान विशेषों के सहित (**अग्नेः**) अग्नि के सदृश (**विश्वानि**) सम्पूर्ण (**सुधिता**) उत्तम प्रकार धारण किये शास्त्रों को (**परि**) सब ओर से (**अश्याम**) प्राप्त हों वैसे ही आप लोग भी प्राप्त हूजिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—विद्वान् मनुष्यों को चाहिए कि जैसे बुद्धिमान् विद्वान् सृष्टि और आत्मा की विद्या ग्रहण के लिए प्रयत्न करते हैं वैसे ही विद्यावृद्धि के लिए प्रयत्न करें ॥ ८ ॥

अग्ने विश्वानि वार्य्या वाजेषु सनिषामहे ।
त्वे देवास एरिरे ॥९॥१०॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य विद्याओं से उत्तम प्रकार प्रकाशयुक्त विद्वन् पुरुष ! जिन (**त्वे**) आपके विषय में (**देवासः**) विद्वान् लोग हम लोगों को (**आ, ईरिरे**) प्रेरणा करते हैं फिर प्रेरित हुए हम लोग (**वाजेषु**) सङ्ग्राम आदि व्यवहारों में (**विश्वानि**) सम्पूर्ण (**वार्य्या**) अच्छे प्रकार स्वीकार करने योग्य धनादि वस्तुओं को (**सनिषामहे**) यथाभाग प्राप्त होवें ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस धर्मयुक्त पुरुषार्थ में विद्वान् लोग तुम लोगों को प्रेरणा करें तो जैसे हम लोग उनकी आज्ञानुकूल वर्त्ताव करके विद्या और धन को प्राप्त होवें वैसे ही उन पुरुषों की आज्ञानुसार वर्त्ताव करके आप लोग भी विद्या और धनयुक्त होइए ॥ ९ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् पुरुष के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह ग्यारहवां सूक्त और दशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ नवर्चस्य द्वादशसूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । १, ३, ५, ८, ९ निचृद्गायत्री । २, ४, ६ गायत्री । ७ यवमध्या विराड् गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले बारहवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में अध्यापक और उपदेशक का विषय कहते हैं—

इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् ।
अस्य पातं धियेषिता ॥१॥

पदार्थ—हे विद्या पढ़ाने और उपदेश देनेवाले पुरुषो ! आप दोनों (**इन्द्राग्नी**) वायु और बिजुली के सदृश (**अस्य**) इस संसार में वर्त्तमान होकर (**इषिता**) बोध देते हुए (**गीर्भिः**) उत्तम शिक्षाओं से पूरित वाणियों के सहित (**धिया**) श्रेष्ठ बुद्धि से (**नभः**) अन्तरिक्ष नामक अवकाश की ओर (**वरेण्यम्**) स्वीकार करने योग्य (**सुतम्**) विद्या से उपार्जित धन से युक्त पुत्र वा शिष्य की (**पातम्**) रक्षा कीजिए और (**आ, गतम्**) विद्या के प्रचार के लिए आइए ॥ १ ॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक पुरुषो ! जैसे वायु और सूर्य सम्पूर्ण जगत् के रक्षाकारक हैं वैसे ही विद्या और उत्तम शिक्षा से सम्पूर्ण जगत् के रक्षक हूजिए ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः ।
अया पातमिमं सुतम् ॥२॥

पदार्थ—हे (**इन्द्राग्नी**) धन और विद्यायुक्त पुरुषो ! जो (**चेतनः**) उत्तम रीति से जाननेवाला (**यज्ञः**) पूजा करने योग्य पुरुष आप दोनों के (**जिगाति**) शरण को प्राप्त होवे वे दोनों आप (**जरितुः**) स्तुतिकर्त्ता पुरुष के (**सचा**) सम्बन्धी हुए (**अया**) इस विद्या सुशिक्षा सहित वाणी से (**इमम्**) इस वर्त्तमान (**सुतम्**) उत्पन्न संसार को (**पातम्**) पालो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे अध्यापक और विद्योपदेशक लोगो ! जो पुरुष विद्या के उपदेश ग्रहण करने के लिए आप लोगों के शरण आवें, उनकी जैसे वायु सूर्य्य जगत् की रक्षा करते हैं वैसे निरन्तर पालना करो ॥ २ ॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे । ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥३॥

पदार्थ—मैं जिन (**जूत्या**) वेग के सहित वर्त्तमान (**कविच्छदा**) विद्वानों का सत्सङ्ग करनेवाले (**इन्द्रम्**) दुष्टों के दोषों के नाशकर्त्ता और (**अग्निम्**) अग्नि के सदृश दुष्टों के भस्मकारक जनों को (**वृणे**) स्वीकार करता हूं (**ता**) वे (**इह**) इस संसार में (**सोमस्य**) ऐश्वर्य और (**यज्ञस्य**) धर्मसम्बन्धी व्यवहार के मध्य में (**तृम्पताम्**) सुख भोगें और सबको सुखी करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि मूर्ख लोगों का सङ्ग त्याग के और विद्वानों का सङ्ग करके उत्तम आचरण करने से इस संसार में ऐश्वर्य्य का संग्रह करके सदा ही आनन्दयुक्त रहें ॥ ३ ॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता । इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥४॥

पदार्थ—हे सभासेना के अध्यक्षो ! मैं (**वृत्रहणा**) असुर स्वभाववाले दुष्ट के नाशकारक (**इन्द्राग्नी**) सूर्य्य बिजुली के सदृश वर्त्तमान (**तोशा**) बढ़ानेवाले वा विज्ञानशील (**सजित्वाना**) जीतनेवाले वीरों के साथ वर्त्तमान (**अपराजिता**) शत्रुओं से नहीं हारने योग्य (**वाजसातमा**) विज्ञान वा धनका अतिशय विभाग करनेवाले आप लोगों की (**हुवे**) प्रशंसा करता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजा लोग शत्रुओं के जीतने और शत्रुओं से नहीं हारनेवाले न्यायकर्त्ता पुरुषों का सम्मानपूर्वक स्वीकार करते हैं, उनका सर्वदा विजय होता है ॥ ४ ॥

प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः । इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥५॥

पदार्थ—हे (**इन्द्राग्नी**) बिजुली और सूर्य्यके सदृश प्रकाश सहित विद्यमान सभापति सेनापतियो ! (**नीथाविदः**) नम्रतायुक्त (**उक्थिनः**) उत्तम गुणों की प्रशंसा करने तथा (**जरितारः**) ईश्वर की स्तुति करनेवाले (**वाम्**) तुम दोनों को (**प्र, अर्चन्ति**) विशेष सत्कार करते हैं उनसे मैं (**इषः**) अन्न आदि को (**आ, वृणे**) सब ओर से प्राप्त होऊं ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पुरुष पृथिवी आदि पदार्थों के गुण कर्म स्वभावों को जानते हैं, वे ही युद्ध और न्यायाचरण कर सकते हैं ॥ ५ ॥

इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥६॥

पदार्थ—हे सभापति सेनापतियो ! जैसे (**इन्द्राग्नी**) वायु और अग्नि को (**साकम्**) एक साथ (**एकेन, कर्मणा**) एक कर्म से (**नवतिम्**) नव्वे संख्यायुक्त (**पुरः**) पालन करनेवाली (**दासपत्नीः**) शत्रुओं को युद्ध में दूर फेंकनेवाले पुरुषों की स्त्रियों के तुल्य वर्त्तमान सूर्य्य की किरणें (**अधूनुतम्**) कंपाती हैं वैसे आप दोनों सेना आदिकों से शत्रुओं को कम्पाओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—सभाध्यक्षादि मनुष्यों को चाहिए कि परस्पर एक सम्मति से दुष्ट पुरुषों को उत्तम स्थानों से दूर कर और श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार करके धर्मपूर्वक व्यवहार से राज्यप्रबन्ध करें ॥ ६ ॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या३ अनु ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**इन्द्राग्नी**) वायु और बिजुली (**ऋतस्य**) सत्य (**अपसः**) कर्म के (**परि**) सब ओर से (**पथ्याः**) मार्ग मे सुखकारक सड़को के (**अनु**) अनुकूल जाते हुए इन वायु बिजुलियों की गति (**धीतयः**) अगुलियों के समान (**उप**) समीप मे (**प्र, यन्ति**) प्राप्त होती है, वैसे ही आप लोग भी श्रेष्ठ मार्ग में नियमपूर्वक चलिए ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ईश्वर की सृष्टि मे सूर्य्य आदि पदार्थ नियम के साथ अपने अपने मार्ग पर चलते हैं, वैसे ही मनुष्य लोग भी धर्मयुक्त मार्ग मे चलें ॥ ७ ॥

फिर राजधर्म विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च ।

युवोरप्तूर्यं हितम् ॥८॥

पदार्थ—हे (**इन्द्राग्नी**) वायु बिजुली के सदृश ऐश्वमत से वर्त्तमान सेना और सेना के मुख्य अधिष्ठाता ! (**वाम्**) आप दोनों के (**सधस्थानि**) तुल्य स्थान मे विद्यमान (**प्रयांसि**) कामना करने योग्य (**तविषाणि**) बल पराक्रम (**च**) और (**युवोः**) आप दोनो के (**अप्तूर्य्यम्**) कर्म करने के लिए शीघ्रता (**हितम्**) सुखसाधक हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो वायु और बिजुली के संयोग के समान परस्पर सेना और सेना के स्वामी प्रेमभाव से विरोध छोड़ के वर्त्ताव करें तो सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हो ॥ ८ ॥

इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः ।

तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥९ ।१२॥१॥

पदार्थ—हे सेना और सेना के स्वामी ! जैसे (**इन्द्राग्नी**) वायु बिजुली (**दिवः**) प्रकाश के मध्य मे (**रोचना**) प्रीतिकारक कर्मों को (**परि**) सब ओर से (**भूषथः**) शोभित करते हैं वैसे (**वाजेषु**) सग्रामो मे विजय से सेना के पुरुष आप दोनों को शोभित करें और (**तत्**) वह कर्म (**वाम्**) आप दोनो के (**प्र**) उत्तम (**वीर्य्यम्**) पराक्रम को (**चेति**) सम्यक् जनाता है ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो राजा लोग राज्यकार्य्य मे सब प्रकार से निपुण सेना और सेना के स्वामियो को अधिकार देते है उनका सब काल मे विजय ही होता है ॥ ९ ॥

इस सूक्त मे इन्द्र अग्नि अध्यापक उपदेशक और सेना तथा सेना के स्वामी के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह तीसरे मण्डल में बारहवाँ सूक्त पहला अनुवाक और बारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तर्चस्य त्रयोदशस्य सूक्तस्य ऋषभो वैश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । १ भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । २, ३, ५—७ निचृदनुष्टुप् । ४ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले तेरहवें सूक्त का आरम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय को कहते हैं—

प्र वो देवायाग्नये बर्हिष्ठमर्चास्मै ।

गमद्देवेभिरा स नो यजिष्ठो बर्हिरा सदत् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो पुरुष (**देवेभिः**) उत्तम गुणो के साथ (**अस्मै**) इस (**देवाय**) श्रेष्ठ गुणयुक्त (**अग्नये**) अग्नि के सदृश तेजधारी के लिए (**वः**) आप लोगो को (**आ**) सब प्रकार (**गमत्**) प्राप्त होवे उस (**बर्हिष्ठम्**) यज्ञ में बैठनेवाले का (**प्र, अर्च**) विशेष सत्कार करो (**सः**) वह (**यजिष्ठः**) अतिशय यज्ञ करनेवाला (**नः**) हम लोगो को (**बर्हिः**) अन्तरिक्ष मे (**आ, सदत्**) प्राप्त होवे ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो लोग आप लोगो का सत्कार करते हैं उनका आप लोग भी सत्कार करें । जैसे विद्वज्जन विद्वान् पुरुषो से विद्यायुक्त शुभ गुणों को ग्रहण करते हैं उन विद्वज्जनो की आप लोग भी सेवा करें और हम लोगो को उत्तम गुण प्राप्त हों ऐसी इच्छा करो ॥ १ ॥

ऋतावा यस्य रोदसी दक्षं सचन्त ऊतयः ।

हविष्मन्तस्तमीळते तं सनिष्यन्तोऽवसे ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष ! (**ऋतावा**) सत्य की प्रार्थना करनेवाले आप (**यस्य**) जिसके (**दक्षम्**) पराक्रम वा चतुराई और (**ऊतयः**) रक्षा करनेवाले गुण (**रोदसी**) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (**सचन्त**) सम्बद्ध करते अर्थात् उनमें व्याप्त होते हैं (**तम्**) उसके (**हविष्मन्तः**) प्रशंसा करने योग्य दानयुक्त अन सम्बन्धी होते है (**तम्**) उसकी (**अवसे**) रक्षा आदि के लिए (**सनिष्यन्तः**) सेवन करनेवाले लोग (**ईळते**) प्रशसा करते हैं, उसी की प्रशसा करो ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिसकी कीर्ति आकाश और पृथिवी मे व्याप्त, जिसके न्याय से प्रशस्त रक्षा आदि कर्म होते है उसी विद्वान् सभापति का रक्षा आदि के लिए तुम आश्रय करो ॥ २ ॥

स यन्ता विप्र एषां स यज्ञानामथा हि षः ।

अग्निं तं वो दुवस्यत दाता यो वनिता मघम् ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! (**यः**) जो (**विप्रः**) बुद्धिमान् पुरुष (**एषाम्**) इन विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त (**यज्ञानाम्**) करने योग्य व्यवहारो को और (**वः**) आप लोगो का (**यन्ता**) कुमार्ग से निवारणकर्त्ता (**दाता**) दानशील (**वनिता**) माँगनेवाला होवे (**तम्**) उस (**अग्निम्**) अग्नि के सदृश प्रकाशमान जन को और उससे प्राप्त हुए (**मघम्**) अत्यन्त पूजने योग्य धन को (**दुवस्यत**) सेवो (**सः**) वह (**हि**) जिससे कि अपने आप ही जितेन्द्रिय इससे (**सः**) वह अपने आप ही बुद्धिमान् (**अथ**) इसके अनन्तर (**सः**) वह स्वयं दानशील यज्ञो के करने मे उत्तम गुणो का माँगनेवाला होवे ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो पुरुष अपने आप धर्मात्मा, जितेन्द्रिय, सत्य का प्रचारक, श्रेष्ठ गुणो का देने और ग्रहण करने वाले, स्वभाव का, धर्म मे प्रवर्त्तनकर्त्ता होवे, उसकी सम्पूर्ण उपायो मे सेवा करो ॥ ३ ॥

स नः शर्माणि वीतयेऽग्निर्यच्छतु शन्तमा ।

यतो नः प्रुष्णवद्वसु दिवि क्षितिभ्यो अप्स्वा ॥४॥

पदार्थ—(**सः**) वह पूर्व मन्त्र मे कहा हुआ विद्वान् (**अग्निः**) अग्नि के सदृश (**वीतये**) विज्ञान आदि धन की प्राप्ति के लिए (**नः**) हम लोगो को (**शन्तमा**) अतिशय कल्याणकारक (**शर्माणि**) उत्तम गृहों को (**क्षितिभ्यः**) पृथ्वी मे विराजमान देशो से (**दिवि**) प्रकाश मे (**अप्सु**) प्राणो जलो वा अन्तरिक्ष मे (**आ**) चारो ओर से (**यच्छतु**) देवे (**यतः**) जिससे (**नः**) हम लोगो को (**प्रुष्णवत्**) अच्छे ऐश्वर्ययुक्त जैसा (**वसु**) धन प्राप्त होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—गृहस्थ लोगो को चाहिए कि सर्वदा सुखोत्पादक गृहो को निर्मित करके और जल स्थल अन्तरिक्ष मार्ग से गमन के लिए उत्तम वाहन तथा अन्य यन्त्रादि साधनो को रचकर सम्पूर्ण समृद्धिया सञ्चित करें, फिर उन से अपना विज्ञान बढ़ावें ॥ ४ ॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—

दीदिवांसमपूर्व्यं वस्वीभिरस्य धीतिभिः ।

ऋक्वाणो अग्निमिन्धते होतारं विश्पतिं विशाम् ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो पुरुष (**ऋक्वाणः**) स्तुति करने योग्य गुणों के स्तुतिकर्त्ता (**धीतिभिः**) अगुलियों के सदृश (**वस्वीभिः**) धन प्राप्त करानेवाली क्रियाओ से (**अस्य**) इस ससार के मध्य मे (**अग्निम्**) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान (**दीदिवांसम्**) उत्तम गुणो के प्रकाश से युक्त (**अपूर्व्यम्**) अपूर्व श्रेष्ठ गुणो मे निपुण (**होतारम्**) सुखदायक (**विशाम्**) प्रजाओ के बीच (**विश्पतिम्**) विशिष्टो के पालनकर्त्ता जन को (**इन्धते**) प्रकाशित करता है, उसकी आप लोग सेवा करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! आप लोगों को इस ससार मे श्रेष्ठ पुरुषो का आश्रय करना, दुष्टोका सङ्ग त्यागना विद्या धन की वृद्धि करनी और विद्या विनय से युक्त राजाका सेवन करना योग्य है, ऐसा समझो ॥ ५ ॥

उत नो ब्रह्मन्नविष उक्थेषु देवहूतमः ।

शं नः शोचा मरुद्वृधोऽग्ने सहस्रसातमः ॥६॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य कीर्त्ति मे प्रकाशमान ! आप (**ब्रह्मन्**) धन और (**उक्थेषु**) प्रशसनीय पदार्थों के निमित्त (**नः**) हम को (**अविषः**) सयुक्त कीजिए (**उत**) और (**देवहूतमः**) विद्वानो से अति प्रशंसा को प्राप्त (**सहस्रसातमः**) असख्य उपदेश वा धनो को अत्यन्त देनेवाले आप (**मरुद्वृधः**) मनुष्यो से बढ़ते हुए (**नः**) हमारे (**शम्**) सुख का (**शोचा**) विचार कीजिये वा सुख प्राप्त कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि विद्वानो के शरण जा के प्रथम से ब्रह्मचर्य्य विद्या आदि का ग्रहण तदनन्तर धन ऐश्वर्य की वृद्धि के उपाय की प्रार्थना करें और फिर धन को प्राप्त होके उत्तम विद्यावान् पुरुषों और श्रेष्ठ मार्ग मे खर्चें ॥ ६ ॥

नू नो रास्व सहस्रवत्तोकवत्पुष्टिमद्वसु ।

द्युमदग्ने सुवीर्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ॥७॥१३॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) जगदीश्वर वा विद्वान् पुरुष ! आप (**नः**) हम लोगों के लिए (**सहस्रवत्**) असंख्यपरिमाणयुक्त (**तोकवत्**) प्रशसा करने योग्य सन्तानो से पूरित (**पुष्टिमत्**) अनेक प्रकार की पुष्टि के दाता (**सुवीर्य्यम्**) प्रचण्ड बलको

बढ़ानेवाले (द्युमत्) ज्ञान के प्रकाश से युक्त (वर्षिष्ठम्) अतिशय वृद्धि से युक्त और (अनुपक्षितम्) खर्च करने से नहीं न्यून होनेवाले (वसु) विद्या सुवर्ण आदि धन को (नु) शीघ्र (रास्व) दीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि परम ऐश्वर्य्ययुक्त ईश्वर वा किसी विद्वान् पुरुष से प्रार्थना करके प्राप्ति के योग्य विद्या ऐश्वर्य्य उत्तम सन्तान श्रेष्ठ बल, पुरुषार्थ से बढ़ावें जिससे सब जनों की शीघ्र वृद्धि कर सकें ॥ ७ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह तेरहवां सूक्त और तेरहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तर्चस्य चतुर्दशस्य सूक्तस्य ऋषभो वैश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । १, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ५ त्रिष्टुप् । ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ६ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सात ऋचावाले चौदहवें सूक्त का आरम्भ है, इस के प्रथम मन्त्र से शिल्पविद्या विषय को कहते हैं—

आ होता मन्द्रो विदथान्यस्थात्सत्यो यज्वा कवितमः स वेधाः ।
विद्युद्रथः सहसस्पुत्रो अग्निः शोचिष्केशः पृथिव्यां पाजो अश्रेत् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (मन्द्रः) अच्छे और प्रसन्न कराने (सत्यः) श्रेष्ठ पुरुषों का आदर करने (यज्वा) मेल करने और (होता) सब विद्या का देनेवाला (कवितमः) अत्यन्त विद्वान् (वेधाः) बुद्धिमान् पुरुष है (सः) वह (विदथानि) विज्ञानों को (आ, अस्थात्) प्राप्त होकर उत्पन्न करे (विद्युद्रथः) बिजुली से रथ चलानेवाला (सहसः) बलयुक्त वायु के (पुत्रः) सन्तान के सदृश (शोचिष्केशः) केशों के सदृश तेजों को धारणकर्त्ता (अग्निः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी इस (पृथिव्याम्) पृथिवी में (पाजः) बल का (अश्रेत्) आश्रय करे उससे विमानरचना और शिल्पविद्या में निपुण होइये ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पदार्थविद्या में कुशल होकर हाथ की कारीगरी से यन्त्रकला सिद्ध करके बिजुली से चलाने योग्य वाहनों को रचें तो वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होवें ॥ १ ॥

अब पढ़ने पढ़ाने रूप विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अयामि ते नमउक्तिं जुषस्व ऋतावस्तुभ्यं चेतते सहस्वः ।
विद्वाँ आ वक्षि विदुषो नि षत्सि मध्य आ बर्हिरूतये यजत्र ॥२॥

पदार्थ—हे (ऋताव) सत्यप्रकाशकशील ! मैं (ते) आपके (नमउक्तिम्) नमस्कारों के वचन को (अयामि) प्राप्त होता हूँ (जुषस्व) उसका आप आदर सहित ग्रहण कीजिये । हे (सहस्वः) अति बलयुक्त वा सम्पूर्ण विद्या जाननेवाले जो (विद्वान्) विद्वान् आप (विदुषः) विद्वानों को (आ, वक्षि) सब प्रकार उपदेश देते हो ऐसे आप के साथ विद्वानों को प्राप्त होता हूँ । हे (यजत्र) पूजन करने योग्य ! जो आप (ऊतये) रक्षा आदि के लिए (बर्हिः) अन्तरिक्ष के (मध्ये) मध्य में (आ, नि) अच्छे प्रकार निश्चित (सत्सि) विराजो उस (चेतते) बोध देनेवाले (तुभ्यम्) आप के लिए नमस्काररूप वचन करता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—जैसे विद्यार्थी लोग नमस्कार आदि सेवा से अध्यापकों का प्रसन्न करें वैसे अध्यापक लोग उत्तम शिक्षारूप विद्यादान से विद्यार्थियों को प्रसन्न सन्तुष्ट करें ॥ २ ॥

मनुष्यों को नियम का आश्रय करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

द्रवतां त उषसा वाजयन्ती अग्ने वातस्य पथ्याभिरच्छ ।
यत्सीमञ्जन्ति पूर्व्यं हविर्भिरा वन्धुरेव तस्थतुर्दुरोणे ॥३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशयुक्त विद्वान् पुरुष ! (ते) आप के लिए जैसे (वाजयन्ती) बोध कराती हुई (उषसा) प्रातःकाल सन्ध्याकाल दोनों वेला (द्रवताम्) प्रवाह से चलें वा (वातस्य) वायु के (पथ्याभिः) मार्ग में उत्तम गमनों से (दुरोणे) गृह में (अच्छ) उत्तम प्रकार (तस्थतुः) वर्त्तमान होवें (वन्धुरेव) बन्धनों के सदृश कारीगर लोग (हविर्भिः) ग्रहण करने योग्य साधनों से (यत्) जिस (पूर्व्यम्) प्राचीन लोगों से रचे गये वाहन विशेष को (सीम्, आ, अञ्जन्ति) सब प्रकार प्रकट करते हैं उन दोनों सायं प्रातः वेला की आप यथायोग्य सेवा करें और उस वाहन को सिद्ध करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ईश्वर से नियत की सन्ध्या और प्रातः समय की वेला नियम से वर्त्तमान हैं और जैसे चतुर कारीगरों से बनाये गये कलायन्त्रों से युक्त वाहन नियम सहित जाते आते हैं वैसे ही अपने आप नियम पूर्वक वर्त्ताव करके नियत यानों को रच के अपनी इच्छानुकूल व्यवहार को उत्तम प्रकार सिद्ध करें ॥ ३ ॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

मित्रश्च तुभ्यं वरुणः सहस्वोऽग्ने विश्वे मरुतः सुम्नमर्चन् ।
यच्छोचिषा सहसस्पुत्र तिष्ठा अभि क्षितीः प्रथयन्त्सूर्यो नॄन् ॥४॥

पदार्थ—हे (सहस्वः) अत्यन्त बलधारी (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रतापयुक्त जन ! (तुभ्यम्) आप के लिए जो (वरुणः) श्रेष्ठ (मित्रः) प्रेमी (च) और व्यवहारज्ञाता आदर करते हैं तो उन का आप भी आदर कर । हे (सहसः) बल के (पुत्र) पुत्र के सदृश तेज से विद्यमान ! (यत्) जिस कारण (शोचिषा) प्रकाश से (सूर्यः) सूर्य के तुल्य आप जिन (क्षितीः) मनुष्यों का (नॄन्) मुख्य पुरुषों का (प्रथयन्) प्रकट करते हुए (अभि) सम्मुख (तिष्ठाः) उपस्थित होइये जिससे आप को (विश्वे) सम्पूर्ण (मरुतः) मनुष्य (सुम्नम्) सुखपूर्वक (अर्चन्) स्तवन करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों से विद्या द्वारा उपकार ग्रहण करें तो वे परस्पर मित्रों के तुल्य सुख भोग करें ॥४॥

फिर अध्यापक और अध्येता के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वयं ते अद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य ।
यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्रेधता मन्मना विप्रो अग्ने ॥५॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! (हि) जिससे (विप्रः) बुद्धिमान् आप (यजिष्ठेन) अत्यन्त सलग्न और (अस्रेधता) नहीं खिन्न हुए (मन्मना) विज्ञान से युक्त (मनसा) चित्त से हम (देवान्) विद्वानों का (यक्षि) सङ्ग कीजिये उससे (अद्य) इस समय (उत्तानहस्ताः) हाथ उठाये हुए (वयम्) हम लोग आप को (नमसा) सत्कार से वा अन्न आदि से (उप, सद्य) समीप प्राप्त हो के (ते) आप के (कामम्) मनोरथ को (ररिम) देवें ॥ ५ ॥

भावार्थ—जैसे अध्यापक लोग शिष्यों की विद्याविषयिणी इच्छा को सन्तृप्त करते हैं, वैसे ही विद्यार्थी जन भी अध्यापकों के मनोरथों को सफल करें और सब काल में सम्पूर्ण पुरुष विद्या आदि शुभ गुणों के देनेवाले होवें ॥ ५ ॥

त्वद्धि पुत्र सहसो वि पूर्वीर्देवस्य यन्त्यूतयो वि वाजाः ।
त्वं देहि सहस्रिणं रयिं नोऽद्रोघेण वचसा सत्यमग्ने ॥६॥

पदार्थ—हे (सहसः) बल के (पुत्र) पवित्रकर्त्ता (हि) जिससे जो (देवस्य) जगदीश्वर की (पूर्वीः) अति काल से उत्पन्न (वाजाः) विज्ञान और अन्नयुक्त (ऊतयः) रक्षा आदि क्रिया हम लोगों को (त्वत्) आप से (वि, यन्ति) प्राप्त होती हैं । हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी ! उससे (त्वम्) आप (अद्रोघेण) वैर रहित (वचसा) वचन से (नः) हम लोगों के लिए (सत्यम्) उत्तम व्यवहारों में व्यय होने योग्य (सहस्रिणम्) असंख्य वस्तुओं से पूरित (रयिम्) धन को (वि, देहि) दीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—सकल शिष्य अध्यापक राजपुरुष और प्रजाजनों को चाहिए कि वैर आदि दोषों को त्याग परस्पर स्नेह उत्पन्न करके मेल कर असंख्य धन और विज्ञान परस्पर बढ़ावें ॥ ६ ॥

अब विद्वानों के तुल्य अन्य लोग आचरण करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तुभ्यं दक्ष कविक्रतो यानीमा देव मर्तासो अध्वरे अकर्म ।
त्वं विश्वस्य सुरथस्य बोधि सर्वं तदग्ने अमृत स्वदेह ॥७॥१४॥

पदार्थ—हे (दक्ष) अत्यन्त चतुर (कविक्रतो) पण्डितों के तुल्य बुद्धिमान् (देव) श्रेष्ठ गुण कर्म स्वभावों के देनेवाले (अमृत) अपने स्वरूप से नाशरहित (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! (मर्तासः) हम मनुष्य लोग (अध्वरे) अहिंसा आदि रूप धर्म में (तुभ्यम्) आपके लिए (यानि) जो (इमा) ये धर्मसम्बन्धी कर्म उनको (इह) इस संसार में (अकर्म) करें (तत्) उस (सर्वम्) सम्पूर्ण कर्म को (त्वम्) आप (विश्वस्य) सम्पूर्ण (सुरथस्य) उत्तम रथ आदि वस्तुओं से युक्त विद्या-प्रकाशकारक व्यवहार के बीच (बोधि) जानिये और उत्तम प्रकार पाक में सिद्ध किये हुए अन्नों का (स्वद) स्वादपूर्वक भोग करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—सम्पूर्ण मनुष्यों को चाहिए कि जैसे विद्वान् लोग धर्म योग्य कर्म करें वैसे वे भी करें और सम्पूर्ण जन एक सम्मति करके इस संसार में विद्या और सुख की उन्नति करें ॥ ७ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह समझनी चाहिए ॥

यह चौदहवां सूक्त और चौदहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तर्चस्य पञ्चदशस्य सूक्तस्य उत्कीलः कात्य ऋषिः । अग्निर्देवता । १, ४ त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् । ६ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ पङ्क्तिः । ३, ७ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब तृतीय मण्डल में सात ऋचा वाले पन्द्रहवें सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहा है—

वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः ।
सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहं सुहवस्य प्रणीतौ ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! (शोशुचानः) अति पवित्र हुए आप (पृथुना) विस्तारयुक्त (पाजसा) बल से जो (अमीवाः) रोग के सदृश औरों को पीड़ा देते हुए (रक्षसः) निकृष्ट स्वभाव वाले (द्विषः) वैरी लोग हैं उनको (वि, बाधस्व) त्यागो । जिससे (अहम्) मैं (सुहवस्य) उत्तम प्रकार प्रशंसित (सुशर्मणः) उत्तम गृहों से युक्त (बृहतः) विद्या आदि शुभ गुणों से वृद्धभाव को प्राप्त (अग्नेः) अग्नि के सदृश उत्तम गुणों के प्रकाशकर्त्ता आपकी (प्रणीतौ) श्रेष्ठ नीतियुक्त (शर्मणि) गृह में (स्याम्) स्थिर होऊँ ॥ १ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोगों को चाहिए कि स्वयं दोषरहित हों औरों के दोष छुड़ा और गुण देकर विद्या तथा उत्तम शिक्षा से युक्त करें जिससे कि सकल जन पक्षपातशून्य न्याययुक्त कर्म में वृद्धभाव से प्रवृत्त होवें ॥ १ ॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्वं नो अस्या उषसो व्युष्टौ त्वं सूर उदिते बोधि गोपाः ।
जन्मेव नित्यं तनयं जुषस्व स्तोमं मे अग्ने तन्वा सुजात ॥२॥

पदार्थ—हे (सुजात) उत्तम प्रकार प्रसिद्ध (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी (गोपाः) रक्षाकारक विद्वान् पुरुष ! (त्वम्) आप (अस्याः) इस (उषसः) प्रभात समय के (व्युष्टौ) अति प्रकाश होने पर (नः) हम लोगों को (बोधि) जगाइए (त्वम्) आप (सूरे) सूर्य्य के (उदिते) उदय को प्राप्त होने पर हमको जगाइये (नित्यम्) प्रतिकाल प्राणधारी (तनयम्) पुत्र को (जन्मेव) जैसे प्रारब्ध कर्म प्रकट करता है वैसे (मे) मेरे (तन्वा) शरीर से (स्तोमम्) विद्या सम्बन्धिनी प्रशंसा को (जुषस्व) आदर कीजिए वा ग्रहण कीजिए ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे गर्भाशय में वर्त्तमान पुरुष गर्भों के स्वरूप को नहीं जानते हैं वैसे ही निद्रावस्थापन्न और अविद्या में लिप्त पुरुष विज्ञान से रहित होते हैं और जैसे जन्म धारण होने के अनन्तर शरीर सहित जीवात्मा प्रकट होता है वैसे ही निद्रा को त्याग के प्रातःकाल में जागरित पुरुषों के सदृश अविद्या को त्याग के विद्या में कुशल जन प्रशंसनीय होते हैं ॥ २ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

त्वं नृचक्षा वृषभानु पूर्वीः कृष्णास्वग्ने अरुषो वि भाहि ।
वसो नेषि च पर्षि चात्यंहः कृधी नो राय उशिजो यविष्ठ ॥३॥

पदार्थ—हे (यविष्ठ) अत्यन्त युवा (वृषभ) वीरतायुक्त (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्या से प्रकाशमान (त्वम्) आप सूर्य्य के सदृश (अरुषः) रक्षक और (नृचक्षाः) मनुष्यों के सत् असत् कर्म में विवेकी होकर (कृष्णासु) अविद्यान्धकार युक्त नीच प्रजाओं में (अनु, पूर्वीः) प्रथम ईश्वर से प्रकट की गई प्रजाओं को (वि, भाहि) प्रकाशमान कीजिए ! हे (वसो) उत्तम गुणधारी ! जिससे आप (राये) धन के लिए (उशिजः) कामनाविशिष्ट पुरुषों के योग्य (नेषि) प्राप्त कराते (च) मनोरथों को पूर्ण (च) और (पर्षि) दुःखों से रहित तथा (अंहः) बुरे आचरण को (अति) दूर कीजिए इससे आप (नः) हम लोगों को श्रेष्ठ (कृधि) कीजिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोगों को चाहिए कि जैसे सूर्य्य अपने किरणों के द्वारा सब जनों का पालन करता है वैसे विद्या और उत्तम शिक्षा से सम्पूर्ण प्रजा को विद्या धन से युक्त तथा पाप से निवृत्त करके पुण्य कर्मों में प्रीतिपूर्वक प्रवृत्त करावें ॥ ३ ॥

अषाळ्हो अग्ने वृषभो दिदीहि पुरो विश्वाः सौभगा संजिगीवान् ।
यज्ञस्य नेता प्रथमस्य पायोर्जातवेदो बृहतः सुप्रणीते ॥४॥

पदार्थ—हे (सुप्रणीते) उत्कृष्टन्यायकारी (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी (अषाळ्हः) दूसरे से नहीं पराजय के योग्य विद्वान् (वृषभः) बलवान् पुरुष ! आप (विश्वा) सम्पूर्ण (सौभगा) उत्तम ऐश्वर्यवाली (पुरः) नगरियों में (दिदीहि) धर्मामिश्रित कर्मों का प्रकाश कीजिए । हे (जातवेदः) सकलविद्यापूरित विद्वन् पुरुष ! (प्रथमस्य) प्रथमाश्रम ब्रह्मचर्य्यरूप (पायोः) रक्षाकारक (बृहतः) श्रेष्ठ (यज्ञस्य) अहिंसा धर्म के (नेता) उत्तम रीति से निर्वाहक हुए और (संजिगीवान्) उत्तम प्रकार जयशाली होइये ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे राजपुरुषो ! विद्या और विनय से सम्पूर्ण प्रजाओं को प्रसन्न तथा ब्रह्मचर्य्य आदि आश्रमों के निर्वाह से उन में विद्या उत्तम शिक्षा श्रेष्ठता अति काल जीवन आदि बढ़ा के ऐश्वर्यों का आधिक्य कीजिए ॥ ४ ॥

अच्छिद्रा शर्म जरितः पुरूणि देवाँ अच्छा दीद्यानः सुमेधाः ।
रथो न सस्निरभि वक्षि वाजमग्ने त्वं रोदसी नः सुमेके ॥५॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रतापी ! (त्वम्) आप जैसे अग्नि (सुमेके) अच्छे प्रकार फैलाये गये (रोदसी) अन्तरिक्ष पृथिवी को प्रकाशित करता है उसी प्रकार (नः) हम लोगों के (दीद्यानः) प्रकाशयुक्त वा प्रकाशक (सुमेधाः) श्रेष्ठ बुद्धिमान् और (सस्निः) सुडौल (रथः) उत्तम रथ के (न) सदृश हम लोगों के लिए (अभि) सन्मुख (वाजम्) विज्ञान को (वक्षि) कहिये । हे (जरितः) सत्य गुणों की स्तुतिकर्त्ता विद्वान् पुरुष ! आप (अच्छिद्रा) अति पुष्ट (पुरूणि) बहुत (शर्म) गृह और (देवान्) विद्वान् वा उत्तम गुणों से प्रसन्नतापूर्वक (अच्छ) उत्तम प्रकार संयुक्त कीजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सुडौल बने हुए और दृढ़ रथ से अभिवाञ्छित स्थानों को शीघ्र पहुंचते हैं वैसे ही जो पुरुष आलस्य त्याग कर पुरुषार्थी हैं वे उत्तम स्थानों की कामना करते हुए विद्वानों के सङ्ग द्वारा श्रेष्ठ गुणों से संयुक्त होकर अन्य जनों के लिए भी उपदेश देते हैं वे पुरुष उत्तम प्रकार सुख भोगते हैं ॥ ५ ॥

प्र पीपय वृषभ जिन्व वाजानग्ने त्वं रोदसी नः सुदोघे ।
देवेभिर्देव सुरुचा रुचानो मा नो मर्तस्य दुर्मतिः परि ष्ठात् ॥६॥

पदार्थ—हे (वृषभ) शरीर और आत्मा के बल से युक्त (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी ! (त्वम्) आप जैसे (सुदोघे) कामनाओं के उत्तम प्रकार पूर्तिकारक (रोदसी) अन्तरिक्ष पृथिवी को सूर्य्य प्रकाशित और सुखयुक्त करता है वैसे (वाजान्) विज्ञानयुक्त (नः) हम लोगों को (पीपय) सम्पत्तियुक्त कीजिये । हे (देव) उत्तम गुणप्रदाता ! आप (देवेभिः) विद्वानों के साथ (सुरुचा) उत्तम तेज से प्रीतिसहित (रुचानः) प्रीतियुक्त हुए (नः) हम लोगों को (प्र, जिन्व) आनन्दित कीजिए जिससे कि हम लोगों के लिए (मर्तस्य) मनुष्य सम्बन्धिनी (दुर्मतिः) दुष्ट बुद्धि (मा) नहीं (परि) सब ओर से (स्थात्) स्थित हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जिस देश में विद्वान् लोग प्रीति से सब लोगों को बढ़ाने की इच्छा करते हैं और दुष्ट बुद्धि का नाश करते हैं, वहां सब लोग वृद्धि को प्राप्त विज्ञानरूप धन वाले होते हैं ॥ ६ ॥

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥७॥१५॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्याप्रकाशकारक विद्वन् ! आप (हवमानाय) प्रशंसाकर्त्ता के लिए (शश्वत्तमम्) अनादि से उत्पन्न (पुरुदंसम्) अत्यन्त धर्म सहित कर्मयुक्त (इळाम्) उत्तम शिक्षायुक्त वाणी को (गोः) पृथिवी के मध्य में (सनिम्) न्याय से सत्य और असत्य के विभागकारक ऐश्वर्य को (साध) सिद्ध करिये जिससे (नः) हम लोगों का (सूनुः) सन्तान (तनयः) धार्मिक पुत्र (विजावा) विजयशील (स्यात्) हो । हे (अग्ने) विद्वन् ! जो (ते) आप की (सुमतिः) उत्तम बुद्धि है (सा) वह (अस्मे) हम लोगों के लिए (भूतु) होवे ॥ ७ ॥

भावार्थ—विद्वानों को चाहिए कि जिज्ञासु जनों के लिए विद्या उत्तम शिक्षा धर्मानुष्ठान तथा ऐश्वर्यवृद्धि सिद्ध करें और जैसे कि सम्पूर्ण मनुष्यों के लड़के लड़कियां उत्तम कर्मयुक्त तथा सबके सन्तान विद्या बलयुक्त होवें ऐसा प्रयत्न करें अर्थात् सब स्थान से ग्रहण करके सब को देवें ॥ ७ ॥

इस सूक्त में विद्वान् अध्यापक अध्येता और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह पन्द्रहवां सूक्त और पन्द्रहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षडृचस्य षोडशस्य सूक्तस्य उत्कीलः कात्य ऋषिः । अग्निर्देवता । १, ५ भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । २, ६ निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ निचृद्बृहती । ४ भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले सोलहवें सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में अग्नि के गुणों को कहते हैं—

अयमग्निः सुवीर्यस्येशे महः सौभगस्य ।
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥१॥

पदार्थ—जैसे (वृत्रहथानाम्) मेघ के सदृश वर्त्तमान के शत्रुओं के हननकारियों के मध्य में (अयम्) यह (अग्निः) अग्नि के सदृश प्रकाशमान राजा (महः) श्रेष्ठ (सुवीर्य्यस्य) उत्तम बल का (ईशे) स्वामी तथा (सौभगस्य) श्रेष्ठ ऐश्वर्यभाव और (रायः) धन का (ईशे) स्वामी है (गोमतः) उत्तम वाणी तथा पृथिवी आदि युक्त पुरुष का स्वामी है (स्वपत्यस्य) उत्तम सन्तानयुक्त पुरुष का स्वामी है वैसे ही मैं इन पुरुषों के मध्य में दोष का (ईशे) स्वामी हूं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य लोग जैसे उत्तम प्रकार होम तथा यज्ञ आदि से सिद्ध किये हुए अग्नि से उत्तम बल श्रेष्ठ ऐश्वर्य और उत्तम सन्तानों को प्राप्त हो के शत्रु लोगों का नाश करते वैसे ही मनुष्य लोगो

को चाहिए कि उत्तम पुरुषार्थ से उत्तम सेना अतुल ऐश्वर्य्य शरीर आत्मा बल से युक्त सन्तानों को प्राप्त होकर शत्रुओं के समान क्रोध आदि दोषों को त्यागें ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इमं नंरो मरुतः सश्चता वृधं यस्मिन् रायः शेवृंधासः ।

अभि ये सन्ति पृतंनासु दूढ्यो विश्वाहा शत्रुंमादभुः ॥२॥

पदार्थ—हे (**मरुतः**) वायु के सदृश बलयुक्त मनुष्यो ! (**नरः**) विद्या और नम्रता के नायक आप लोग (**यस्मिन्**) जिस व्यवहार में (**शेवृधासः**) सुखवृद्धिकारक (**रायः**) धन (**सन्ति**) होते हैं उस (**इमम्**) इस (**वृधम्**) पुत्र आदि की वृद्धिकारक व्यवहार को (**विश्वाहा**) सबदा (**सश्चत**) प्राप्त करो (**ये**) जो (**पृतनासु**) मनुष्यों की सेनाओं में (**दूढ्यः**) कठिनता से पराजित होने योग्य पुरुष हैं ऐसे और (**शत्रुम्**) शत्रु को (**आदभुः**) सब ओर से नाश करें उन पुरुषों को (**अभि**) सब प्रकार प्राप्त होओ ॥ २ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिए कि जिस प्रकार धन राजस्थिति और प्रतिष्ठा बढ़े और जिस प्रकार सेनाओं में उत्तम वीर पुरुष होवें वैसा सत्य व्यवहार सदा करें ॥ २ ॥

स त्वं नो रायः शिंशीहि मीढ्वो अग्ने सुवीर्य्यस्य ।

तुविंद्युम्न वर्षिष्ठस्य प्रजावंतोऽनमीवस्य शुष्मिणः ॥३॥

पदार्थ—हे (**मीढ्वः**) सुखों के दाता (**तुविद्युम्न**) बहुत प्रकार के धन वा यश से युक्त (**अग्ने**) अग्नि के समान तेजोवान् (**सः**) वह (**त्वम्**) आप (**नः**) हम लोगों के लिए (**सुवीर्य्यस्य**) उत्तम वीरों में उत्पन्न (**वर्षिष्ठस्य**) अति वृद्ध और (**प्रजावतः**) अत्यन्त प्रजायुक्त (**अनमीवस्य**) रोग रहित (**शुष्मिणः**) अत्यन्त बल सहित पुरुष के (**रायः**) धनों को (**शिशीहि**) अति बढ़ाइए ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य धन से सेना श्रेष्ठता प्रजा आरोग्य और बल को बढ़ाते हैं वे लोग सर्वदा बहुत धन वाले होते हैं ॥ ३ ॥

चक्रिर्यो विश्वा भुवंनाभि सांसहिश्चक्रिर्देवेष्वा दुवंः ।

आ देवेषु यतंत आ सुवीर्य्य आ शंसं उत नृणाम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यः**) जो (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**भुवना**) लोकों का (**अभि, चक्रिः**) अभिमुख कर्त्ता (**देवेषु**) उत्तम गुणों में (**सासहिः**) अति सहनशील और (**दुवः**) सेवन का (**आ, चक्रिः**) अच्छे प्रकार करनेवाला और जो (**देवेषु**) स्तुतिकारकों में (**आ, यतते**) अच्छा यत्न करता है (**उत**) और भी (**नृणाम्**) वीर पुरुषों की (**आ, शंसे**) स्तुति में (**सुवीर्य्ये**) श्रेष्ठ बल में (**आ**) सब प्रकार प्रयत्न करता है उस की सदा (**सेवध्वम्**) सेवा करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिसने सम्पूर्ण लोक तथा मनुष्य आदि प्राणी रचे और उन प्राणियों के जीवनार्थ अन्न आदि पदार्थ रचे और जो विद्वानों में जानने योग्य उस ही परमात्मा का निरन्तर सेवन करना चाहिए ॥ ४ ॥

मा नो अग्नेऽमंतये मावीरंतायै रीरधः ।

मागोतायै सहसस्पुत्र मा निदेऽप द्वेषांस्या कृंधि ॥५॥

पदार्थ—हे (**सहसः**) बल के (**पुत्र**) पालक (**अग्ने**) विद्वन् पुरुष ! आप (**नः**) हम लोगों को (**अमतये**) विपरीत बुद्धि के लिए (**मा**) नहीं (**रीरधः**) वश में करो तथा (**अवीरतायै**) कायरता के लिए (**मा**) नहीं वशीभूत करो (**अगोतायै**) इन्द्रिय-विकारता के लिए (**मा**) नहीं वशीभूत करो (**निदे**) निन्दक पुरुष के लिए (**द्वेषांसि**) द्वेष भावों को (**मा**) नहीं (**अप**) अलग करने में (**आ, कृधि**) सब प्रकार कीजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—ज्ञान सुख की इच्छा करनेवाले पुरुषों को चाहिए कि विद्वानों के समीप प्राप्त होकर बुद्धि वीरता जितेन्द्रियता विद्या उत्तम शिक्षा धर्म और ब्रह्मज्ञान की प्रार्थना करें तथा निन्दा आदि दोष और निन्दक पुरुषों का सङ्ग त्याग के सभ्यता ग्रहण करें ॥ ५ ॥

शग्धि वाजंस्य सुभग प्रजावतोऽग्ने बृहतो अध्वरे ।

सं राया भूयंसा सृज मयोभुना तुविंद्युम्न यशंस्वता ॥६॥१६॥

पदार्थ—हे (**तुविद्युम्न**) बहुत धन और कीर्ति से युक्त (**सुभग**) उत्तम ऐश्वर्य्यधारी (**अग्ने**) विद्वान् पुरुष ! आप (**प्रजावतः**) प्रशंसा करने योग्य प्रजा-युक्त (**बृहतः**) श्रेष्ठ (**वाजस्य**) अन्न आदि वा विज्ञान के (**अध्वरे**) अहिंसा आदि स्वरूप व्यवहार में (**शग्धि**) सामर्थ्यस्वरूप हो उस (**भूयसा**) बड़े (**मयोभुना**) सुखकारक (**यशस्वता**) अधिक यश सहित (**राया**) धन से हम को (**संसृज**) संयुक्त कीजिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों के सङ्ग से यह प्रार्थना करें कि हे विद्वानो ! हम लोगों को विद्या विनय और धन सुखों से संयुक्त करो ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों के वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिए ॥

यह सोलहवां सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य सप्तदशस्य सूक्तस्य उत्कीलः कात्य ऋषिः । अग्निर्देवता । १, २, त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप् । ५ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत स्वरः । ३ निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले सत्रहवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि के गुणों को कहते हैं—

समिध्यमानः प्रथमानु धर्मा समक्तुभिरज्यते विश्ववारः ।

शोचिष्केशो घृतनिर्णिक् पावकः सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**समिध्यमानः**) उत्तम प्रकार प्रकाशमान (**विश्ववारः**) सकल जन का प्रिय (**शोचिष्केशः**) तेजरूप केशवान् (**घृतनिर्णिक्**) तेजस्वी (**पावकः**) पवित्रकर्त्ता (**सुयज्ञः**) सुन्दर यज्ञ जिससे हो वह (**अग्निः**) (**समक्तुभिः**) उत्तम रात्रियों में (**यजथाय**) सङ्ग के लिए (**प्रथमा**) प्रसिद्ध (**धर्मा**) धर्मों को (**अज्यते**) उत्तम प्रकार प्रसिद्ध करता तथा (**देवान्**) उत्तम गुण का (**अनु**) पश्चात् करना है उसको अच्छे प्रकार प्रेरणा करें ॥ १ ॥

भावार्थ—जो अग्नि गुणों से युक्त अग्नि आदि पदार्थ से कार्य्यों को सिद्ध करें तो सम्पूर्ण कार्य्य मनुष्य सिद्ध कर सकते हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यथायंजो होत्रमंग्ने पृथिव्या यथा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ।

एवानेन हविषा यक्षि देवान्मनुष्वद्यज्ञं प्र तिरेममद्य ॥२॥

पदार्थ—हे (**जातवेदः**) उत्तम बुद्धियुक्त (**अग्ने**) अग्नि के सदृश तेजस्वी ! (**यथा**) जैसे आप (**पृथिव्याः**) भूमि वा अन्तरिक्ष के मध्य में (**होत्रम्**) हवन करने के अभ्यास का (**अयजः**) करें और (**यथा**) जैसे (**दिवः**) प्रकाश के (**यथा, चिकित्वान्**) ज्ञाता पुरुष आप (**अनेन**) इस (**हविषा**) हवन सामग्री से (**एव**) ही (**देवान्**) विद्वानों वा उत्तम पदार्थों का (**यक्षि**) आदर करो (**अद्य**) इस समय (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) सम्मेलन करने का (**प्र, तिर**) विशेष सफल करो वैसे मैं भी (**मनुष्वत्**) मनुष्य के तुल्य प्रसिद्ध करूं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है जो मनुष्य इस सृष्टि से सम्पूर्ण प्राण आदिकों से भी कार्य्य होने योग्य व्यवहार को सिद्ध करते वे श्रेष्ठ विज्ञान को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

त्रीण्यायूंषि तव जातवेदस्तिस्र आजानीरुषसंस्ते अग्ने ।

ताभिर्देवानामवो यक्षि विद्वानथां भव यजमानाय शं योः ॥३॥

पदार्थ—हे (**जातवेदः**) सम्पूर्ण उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता (**अग्ने**) अग्नि के सदृश तेजस्वी और (**विद्वान्**) सत्य असत्य के ज्ञाता पुरुष ! आप जैसे (**ते**) आप का जाना अग्नि (**यजमानाय**) किसी पदार्थ में अग्नि का संयोग करनेवाले के (**शम्**) कल्याणकारक होता है वैसे (**तव**) आप के जो (**त्रीणि**) तीन प्रकार के शरीर आत्मा मन के सुखकारक (**आयूंषि**) जीवन और जैसे अग्नि के सदृश तेजस्वी (**तिस्रः**) तीन (**आजानीः**) सब ओर से प्रसिद्ध (**उषसः**) प्रकाशकारक समय वैसे हों (**योः**) संयोगकारक वा भेदक आप (**यक्षि**) सम्प्राप्त होते (**ताभिः**) उन वेलाओं से (**देवानाम्**) पदार्थों की वा विद्वानों की (**अवः**) रक्षा आदि कीजिए और कल्याण करनेवाले भी (**भव**) हूजिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य बहुत काल पर्यन्त ब्रह्मचर्य्य, नियत भोजन और विहार से आयु बढ़ाने की इच्छा करें तो त्रिगुण अर्थात् तीनसौ वर्ष तक जीवन हो सकता है ॥ ३ ॥

अग्निं सुदीतिं सुदृशं गृणन्तो नमस्यामस्त्वेड्यं जातवेदः ।

त्वां दूतमरतिं हव्यवाहं देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥४॥

पदार्थ—हे (**जातवेदः**) सम्पूर्ण उत्पन्न पदार्थों में प्रसिद्ध विद्वान् ! जिन (**त्वा**) आप (**दूतम्**) दूत के समान सन्तापकारी (**अरतिम्**) प्राप्त कारक (**हव्यवाहम्**) हवन करने योग्य पदार्थों को प्राप्त होनेवाले अग्नि के सदृश (**अमृतस्य**) मोक्ष का (**नाभिम्**) नाभि के सदृश बन्धनकर्त्ता (**देवाः**) विद्वान् लोग (**अकृण्वन्**) किया करते हैं उस (**सुदीतिम्**) उत्तम प्रकार रक्षाकारक (**सुदृशम्**) सम्यक् देखने योग्य वा दर्शक और (**ईड्यम्**) प्रशंसा करने योग्य (**अग्निम्**) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् (**त्वाम्**) आपको (**गृणन्तः**) स्तुति करते हुए हम लोग (**नमस्याम**) नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो पुरुष अग्नि के सदृश तेजस्वी विज्ञानदाता विद्वान् लोग धर्म अर्थ काम और मोक्ष के साधनों का उपदेश दें उनको नित्य नमस्कार पूर्वक सेवा करनी चाहिए ॥ ४ ॥

यस्त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्द्विता च सत्ता स्वधया च शम्भुः ।

तस्यानु धर्म प्र यंजा चिकित्वोऽथा नो धा अध्वरं देववीतौ ॥५॥१७॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वान् पुरुष जो (**त्वत्**) आपके समीप से (**होता**) दानशील (**पूर्वः**) पूर्व विद्यावान् (**यजीयान्**) अतिशय यज्ञकारक वा सम्मेलनकारी

(हिता) हित स्वरूप (च) और (सक्षा) स्थित (स्वधया) अन्न से (च) भी (शम्भुः) सुखकारक होवे (तस्य) उसके (धर्म) धारण करने योग्य को (अनु, प्र, यक्ष) सम्प्राप्त होइये (अथ) इसके अनन्तर हे (चिकित्वः) विज्ञान-शाली ! आप (देववीतौ) विद्वानों के समूह में (नः) हम लोगों के (अध्वरम्) अहिंसा आदि गुणयुक्त व्यवहार का (धाः) धारण करिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् लोग आप लोगों की अपेक्षा प्राचीन तथा अन्न आदि सामग्रियों से अहिंसारूप व्यवहार को धारण किया करें इससे वे सर्वदा सुख भोगी हों ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है ऐसा जानना चाहिए ॥

यह सत्रहवाँ सूक्त और सत्रहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्याष्टादशस्य सूक्तस्य कतो वैश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता, १, ३, ५ त्रिष्टुप् ; २, ४ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब इस तृतीय मण्डल में अठारहवें सूक्त का आरम्भ है, उसके पहले मन्त्र से विद्वानों को क्या करना योग्य है इस विषय को कहा है—

भवा नो अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः ।

पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातीः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) कृपालु विद्वान् पुरुष ! आप (उपेतौ) प्राप्ति में (पितरेव) जनकों के सदृश (सख्ये) मित्र कर्म के लिए (सखेव) मित्र के तुल्य (नः) हम लोगों के लिए (सुमनाः) उत्तम मनयुक्त (भव) होइये और (साधुः) उत्तम उपदेश से कल्याणकारी होकर (जनानाम्) मनुष्यों के बीच में जो (क्षितयः) मनुष्य (पुरुद्रुहः) बहुत लोगों से द्वेषकर्त्ता होवें उन (प्रतीचीः) प्रतिकूल वर्त्तमान (अरातीः) शत्रुओं को (प्रति, दहतात्) भस्म करिये ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! आप लोगों को चाहिए कि जो विद्वान् लोग मनुष्य आदि प्राणियों में पिता और मित्र के तुल्य वर्त्तावकारी उनका सत्कार और जो द्वेषकारी उनका निरादर करके धर्मवृद्धि करें ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

तपो ष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान्तपा शंसमररुषः परस्य ।

तपो वसो चिकितानो अचित्तान्वि ते तिष्ठन्तामजरा अयासः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (तपो) तपस्वी ! (अग्ने) दुष्टजनों के अग्नि के सदृश दाह-कर्ता आप (अन्तरान्) भेद को प्राप्त (अमित्रान्) शत्रुओं को (सु तप) सन्ताप-युक्त तथा (अररुषः) अहिंसायुक्त (परस्य) श्रेष्ठजन की (शंसम्) प्रशंसा करो । हे (तपो) दुष्ट पुरुषों के दाहकारी (वसो) उत्तम गुणों में निवासी (चिकितानः) ज्ञानवान् वा बोधकारक आप (अचित्तान्) दरिद्र दशायुक्त पुरुषों को सचेत कीजिए और ये (अजराः) वृद्धावस्था रूप रोग से रहित (अयासः) विज्ञानयुक्त पुरुष (ते) आपके समीप (वि, तिष्ठन्ताम्) वर्त्तमान हों ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य शत्रुओं को पृथक् कर धार्मिक यथार्थवक्ता सत्यवादी पुरुषों का सत्कार करके सब जनों के लिए सुखवृद्धि करते हैं वे भी सुख पाते हैं ॥ २ ॥

इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय ।

यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशित विद्यायुक्त ! जैसे (इध्मेन) समिध से तथा (घृतेन) उत्तम प्रकार के मन्त्रों से संस्कारयुक्त घृत से (इच्छमानः) इच्छाकारी मैं (तरसे) वेग तथा (बलाय) बल के लिए (हव्यम्) हवन सामग्री का (जुहोमि) होम करता हूँ (ब्रह्मणा) अतिशय धन के साथ (वन्दमानः) स्तुति से उपासनाकारक मैं (शतसेयाय) शत आदि संख्या से पूरित धन प्राप्ति के लिए (इमाम्) विद्यमान इस (देवीम्) प्रकाशमान (धियम्) धारणायोग्य बुद्धि को (यावत्) जितने परिमाण से (ईशे) इच्छाकारक हूँ उसी प्रकार आप हवन कीजिए उतनी इच्छा करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जैसे इन्धन और घृत से अग्नि बढ़ती है वैसे ही ब्रह्मचर्य्य तथा वेद के अभ्यास से बल और विद्या बढ़ती है, जितना वेद से ब्रह्मचर्य्य रखना योग्य है उतना अभ्यास करना चाहिए ॥ ३ ॥

उच्छोचिषा सहसस्पुत्र स्तुतो बृहद्वयः शशमानेषु धेहि ।

रेवदग्ने विश्वामित्रेषु शं योर्मर्मृज्मा ते तन्वं भूरि कृत्वः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (भूरि, कृत्वः) बहुत पुरुषों से रचित (सहसस्पुत्र) बल के उत्पादक (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी वैद्यराज विद्वान् ! (स्तुतः) प्रशंसायुक्त आप (शोचिषा) तेज से (शशमानेषु) भोग अभ्यास उल्लंघनों तथा (विश्वामित्रेषु) सम्पूर्ण जनों के मित्रों में (रेवत्) प्रशंसा करने योग्य धन से युक्त (बृहत्) अधिक (वयः) कामना योग्य अवस्था और बहुत (शम्) सुख को दीजिए (योः) दुःख के नाशक (मर्मृज्मा) अति पवित्र वा पवित्रकारक आप (ते) अपने (तन्वम्) शरीर को (उत्, धेहि) स्थिर कीजिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—पुरुषो ! आप लोगों को चाहिए कि ब्रह्मचर्य्य द्वारा विद्या और अवस्था बढ़ा सब लोगों के साथ मित्रता करके सकल जनों को अधिक अवस्थायुक्त तथा बहुत विद्यावान् करो ॥ ४ ॥

कृधि रत्नं सुसनितर्धनानां स घेदग्ने भवसि यत्समिद्धः ।

स्तोतुर्दुरोणे सुभगस्य रेवत्सृप्रा करस्ना दधिषे वपूंषि ॥ ५ ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे (सुसनितः) उत्तम प्रकार दानविभागकारी (अग्ने) बिजुली के समान शीघ्र धन वृद्धिकर्त्ता ! (यत्) जो आप (समिद्धः) प्रकाशमान अग्नि के सदृश प्रकाशमान होते (सः, घ) सो ही (धनानाम्) सुवर्ण आदि रूप धनों में (रत्नम्) उत्तम धन को (कृधि) संयुक्त कीजिए (सुभगस्य) उत्तम ऐश्वर्य्य और (स्तोतुः) हवनकर्त्ता वा प्रशंसाकर्त्ता के (इत्) समान (दुरोणे) गृह में जो (सृप्रा) अभीष्ट स्थान की प्राप्तिकारक (करस्ना) कर्मों की शुद्धिकारक आप के बाहुओं और (रेवत्) उत्तम धनयुक्त (वपूंषि) रूपवत् शरीरों को (दधिषे) धारण करते हो वह आप हम लोगों से आदर करने योग्य हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! आप लोगों को चाहिए कि मनुष्यों को उत्तम प्रकार शिक्षा तथा पुरुषार्थ से युक्त और विद्या धनयुक्त करके उत्तम सभ्य चिरञ्जीवी जन बनाइए ॥ ५ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अठारहवाँ सूक्त और अठारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्यैकोनविंशस्य सूक्तस्य कुशिकपुत्रो गाथी ऋषिः । अग्निर्देवता । १ त्रिष्टुप् । २, ४, ५ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब इस तृतीय मण्डल में उन्नीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में मनुष्यों का धनादि ऐश्वर्य्य कैसे बढ़े, इस विषय को कहा है—

अग्निं होतारं प्र वृणे मियेधे गृत्सं कविं विश्वविदममूरम् ।

स नो यक्षद्देवताता यजीयान्राये वाजाय वनते मघानि ॥ १ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! मैं जिस (मियेधे) घृतादि के प्रक्षेपण से होने योग्य यज्ञ में (होतारम्) हवनकर्त्ता वा दाता (विश्वविदम्) सकल शास्त्रों के वेत्ता (अमूरम्) मूढ़ता आदि दोष रहित (कविम्) तीक्ष्ण बुद्धियुक्त वा बहुत शास्त्रों के अध्यापक (गृत्सम्) शिक्षा देने में चतुर बुद्धिमान् और (अग्निम्) अग्नि के सदृश तेजस्वी पुरुष को (प्र, वृणे) स्वीकार करता हूँ (सः) वह (यजीयान्) अत्यन्त यज्ञकर्त्ता आप (वाजाय) ज्ञानदाता और (वनते) प्रसन्नता से दिये पदार्थों के स्वीकारकर्त्ता पुरुष के लिए तथा (राये) धन प्राप्ति के लिए (मघानि) आदर करने योग्य धन और (देवताता) विद्वानों को (नः) हम लोगों के लिए (यक्षत्) संयुक्त कीजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जिस अधिकार में जिस पुरुष की योग्यता हो उसी ही के लिए वह अधिकार देवें । क्योंकि ऐसा करने पर धनधान्यरूप ऐश्वर्य्य की वृद्धि हो सकती है ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्र ते अग्ने हविष्मतीमियर्म्यच्छा सुद्युम्नां रातिनीं घृताचीम् ।

प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः सं रातिभिर्वसुभिर्यज्ञमश्रेत् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजधारी विद्वान् पुरुष ! मैं (ते) आप की शिक्षा से जैसे (उराणः) विद्वानों को आदर से श्रेष्ठकर्त्ता कोई (प्रदक्षिणित्) दक्षिण अर्थात् सन्मार्गगन्ता जन (वसुभिः) निवास के कारण (रातिभिः) सुखदान आदि के साथ (हविष्मतीम्) अतिशय हवनसामग्री युक्त (सुद्युम्नाम्) श्रेष्ठ प्रकाश से युक्त (रातिनीम्) दिये हुए हवन के पदार्थों से युक्त (देवतातिम्) उत्तम स्वरूपविशिष्ट (घृताचीम्) जल को प्राप्त होनेवाली रात्रि और (यज्ञम्) शयनावस्था आदि में प्राप्त चित्त के व्यवहारों को (सम् अश्रेत्) प्राप्त करे वैसे इसको (अच्छ) उत्तम रीति से (प्र, इयर्मि) प्राप्त होता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि दिन में शयन छोड़ सांसारिक व्यवहार की सिद्धि के लिए परिश्रम कर रात्रि के समय स्वस्थतापूर्वक पञ्चदश १५ घटिका पर्यन्त निद्रालु होवें और दिन भर पुरुषार्थ से धन आदि उत्तम पदार्थों को प्राप्त हो कर सुपात्र पुरुष तथा सन्मार्ग में दान देवें ॥ २ ॥

स तेजीयसा मनसा त्वोत उत शिक्ष स्वपत्यस्य शिक्षोः ।

अग्ने रायो नृतमस्य प्रभूतौ भूयाम ते सुष्टुतयश्च वस्वः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) पूर्ण विद्या के प्रकाश से युक्त ! हम लोग जिस (**स्वपत्यस्य**) उत्तम सन्तान वा विद्यार्थियो के सहित (**सुवीरस्य**) अत्यन्त शूरवीरो से विशिष्ट (**शिक्षोः**) शिक्षक पुरुष (**ते**) आप की शिक्षा मे (**सुष्टुतयः**) उत्तम स्तुतिकर्त्ता श्रेष्ठ पुरुष (**तेजीयसा**) तेजस्वी पवित्र स्वरूपवान् (**मनसा**) अन्त -करण से (**वस्वः**) सुखपूर्वक निवास का कारण धन तथा (**राय.**) ऐश्वर्य्य के (**प्रभूतौ**) बहुत्वभाव मे (**स्याम**) वर्त्तमान होवें (**स**) वह (**स्तोत.**) आप की कामना करता हुआ जो ऐसा पुरुष उस को (**च**) और हम लोगो को (**उत**) भी आप (**शिक्ष**) विद्योपदेश दीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो पुरुष ब्रह्मचर्य्य और विद्या से धर्म सम्बन्धी कामो को करके निष्कपट अन्त करण तथा आत्मा से प्रयत्न करे उनको धनपति का अधिकार देना योग्य है ॥ ३ ॥

भूरीणि हि त्वे दधिरे अनीकाग्ने देवस्य यज्यवो जनासः ।
स आ वह देवतातिं यविष्ठ शर्धो यदद्य दिव्यं यजासि ॥४॥

पदार्थ—हे (**यविष्ठ**) अतिशय युवावस्थासम्पन्न (**अग्ने**) बिजुली के सदृश सम्पूर्ण विद्याओ मे व्यापी पुरुष ! जिस (**देवस्य**) उत्तम गुण कर्म स्वभाववान् जन के सङ्ग मे (**यज्यव**) आदर करने योग्य (**जनास**) विद्या आदि गुणोसे प्रकट जन (**हि**) जिस से (**त्वे**) आप मे (**भूरीणि**) बहुत (**अनीका**) सेनाओ को (**दधिरे**) धारण करें (**यत्, अद्य**) जो इस समय (**दिव्यम्**) पवित्र (**शर्ध**) बल को (**यजासि**) धारण करो और (**स**) वह आप (**देवतातिम्**) उत्तम स्वभाव को (**आ, वह**) सब प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानो के सङ्ग से बहुतसी उत्तम प्रकार शिक्षित सेनाओ को ग्रहण करें वे अति बल को प्राप्त होके उत्तम गुणो का आकर्षण करें ॥४॥

यत्त्वा होतारमनजन्मियेधे निषादयन्तो यजथाय देवाः ।
स त्वं नो अग्नेऽवितेह बोध्यधि श्रवांसि धेहि नस्तनूषु ॥५॥१९॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वान् पुरुष ! (**निषादयन्त.**) अत्यन्त अधिकार मे स्थित कराने वा जमानेवाले (**देवा**) विद्वान् पुरुष (**मियेधे**) प्राप्त होने योग्य यज्ञ मे (**यजथाय**) विद्या मे बोध कराने के लिए (**यत्**) जिन (**होतारम्**) विद्यादाता (**त्वा**) आप की (**अनजन्**) कामना करें (**स.**) वह (**त्वम्**) आप (**इह**) इस ससार मे (**न**) हम लोगो की (**अविता**) रक्षा आदि के कर्त्ता हुए हम लोगो को (**बोधि**) बोध कराइये और (**न.**) हम लोगो के (**तनूषु**) शरीरो मे (**श्रवांसि**) प्रिय अन्नो के सदृश सम्पदाओ को (**अधि**) उत्तम प्रकार (**धेहि**) स्थित करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! जिन अधिकारो मे आप लोग नियुक्त किये जायँ उन अधिकारो मे उत्तम प्रकार वर्त्तमान होके सब जनो को श्रेष्ठ बनाइये और जिस शिक्षा से विद्या सभ्यता आरोग्यता और अवस्था बढ़े ऐसा उपाय निरन्तर करो ॥ ५ ॥

इस सूक्त मे अग्नि और विद्वानो के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह उन्नीसवाँ सूक्त और उन्नीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य विंशतितमस्य सूक्तस्य गाथी ऋषिः विश्वे देवा देवता. ।
१ विराट् त्रिष्टुप्, २ निचृत्त्रिष्टुप्, ३ भुरिक् त्रिष्टुप्;
४, ५ त्रिष्टुप्छन्द । धैवतः स्वर ॥

अब तृतीय मण्डल के बीसवें सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् जन कैसे वर्त्तें इस विषय को कहा है

अग्निमुषसमश्विना दधिक्रां व्युष्टिषु हवते वह्निरुक्थैः ।
सुज्योतिषो नः शृण्वन्तु देवाः सजोषसो अध्वरं वावशानाः ॥१॥

पदार्थ—हे अध्यापक उपदेशक जनो ! जैसे (**वह्निः**) पदार्थों का धारण-कर्त्ता (**व्युष्टिषु**) प्रकाशकारक क्रियाओं मे (**अग्निम्**) अग्नि (**उषसम्**) प्रात -काल (**अश्विना**) सूर्य चन्द्रमा और (**दधिक्राम्**) समार के धारणकारको के उल्लङ्घनकर्त्ता को (**हवते**) ग्रहण करता है वैसे (**अध्वरम्**) हिंसा भिन्न व्यवहार की (**वावशाना**) अत्यन्त कामना करते हुए (**सजोषसः**) समान प्रीति के निर्वाहक (**सुज्योतिष.**) शोभन उत्तम बुद्धि के प्रकाशो से युक्त (**देवा.**) विद्वान् आप लोग (**उक्थै**) प्रशसा करने योग्य कर्मों मे (**न.**) हम लोगो के प्रार्थनारूप वचन (**शृण्वन्तु**) सुनिये ॥ १ ॥

भावार्थ— इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वायु सम्पूर्ण प्रकाशकारी सूर्य आदि पदार्थों के धारण द्वारा सब जीवो का उपकार करता वैसे विद्वान् पुरुष सम्पूर्णजनो के साथ वैर छोड़नारूप अहिंसा धर्म के प्रचार के लिए एक सम्मति से सब संसार का उपकार करें ॥ १ ॥

अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः ।
तिस्र उ ते तन्वो देववातास्ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन् ॥२॥

पदार्थ—हे (**ऋतजात**) सत्य आचरण करने में प्रसिद्ध (**अग्ने**) अग्नि के सदृश प्रकाशस्वरूप विद्वान् पुरुष ! (**ते**) आप के (**त्री**) तीन (**वाजिना**) ज्ञान गमन और प्राप्तिरूप (**त्री**) तीन (**षधस्था**) तुल्य स्थानवाले जन्मादि (**ते**) आप की (**तिस्र**) तीन प्रकारवाली (**जिह्वा**) वाणियाँ (**पूर्वीः**) प्राचीन (**उ**) और (**ते**) आप के (**तिस्रः**) तीन (**तन्वः**) शरीर सम्बन्धी (**देववाताः**) विद्वानो के साथ सवाद करने मे उपकारक (**गिरः**) वचन हैं उन से (**अप्रयुच्छन्**) अहङ्कार त्यागी आप (**नः**) हम लोगो की (**पाहि**) रक्षा करो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग ब्रह्मचर्य्य अध्ययन और विचार से तीन कर्म करके तीन जन्म स्थान और नामो मे कृतकृत्य अर्थात् जन्म सफल करो पढ़ाने तथा उपदेश से सब की रक्षा करो और आप स्वय प्रमाद रहित होकर अन्य लोगों को वैसा ही करो ॥ २ ॥

अग्ने भूरीणि तव जातवेदो देव स्वधावोऽमृतस्य नाम ।
याश्च माया मायिनां विश्वमिन्व त्वे पूर्वीः संदधुः पृष्टबन्धो ॥३॥

पदार्थ—हे (**स्वधाव.**) प्रशसनीय अमृतरूप अन्नयुक्त (**जातवेदः**) श्रेष्ठ विज्ञानयुक्त (**देव**) विद्वान् पुरुष ! (**अग्ने**) विद्या द्वारा प्रकाशकारक जो (**तव**) आप के (**भूरीणि**) बहुत (**अमृतस्य**) नाशरहित के (**नाम**) नाम हैं हे (**पृष्टबन्धो**) मनुष्यो के कर्मानुसार फलदायक ! (**विश्वमिन्व**) सम्पूर्ण जगत् मे व्यापक (**याः**) जो (**पूर्वी**) प्राचीन प्रजाएँ (**त्वे**) आप मे (**सन्दधु.**) स्थित की गई हैं (**मायिनाम्**) निकृष्ट बुद्धियुक्त पुरुषो की (**माया**) बुद्धि नाश हो तो (**च**) भी अन्य पुरुष विज्ञानयुक्त होवें ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग सम्पूर्ण ससार को ईश्वर मे व्याप्य अर्थात् पूरित जानो और छली पुरुषो के छल का नाश तथा परमेश्वर के अर्थ सहित सम्पूर्ण नाम जान के अर्थ के अनुकूल भाव मे अपने आचरणो को शुद्ध करो ॥ ३ ॥

फिर अग्नि के दृष्टान्त से विद्वान् का कर्त्तव्य कहते हैं—

अग्निर्नेता भग इव क्षितीनां दैवीनां देव ऋतुपा ऋतावा ।
स वृत्रहा सनयो विश्ववेदाः पर्षद्विश्वाति दुरिता गृणन्तम् ॥४॥

पदार्थ—जो (**भगइव**) सूर्य्य के तुल्य (**दैवीनाम्**) श्रेष्ठ गुणो मे उत्पन्न (**क्षितीनाम्**) भूमियो का (**नेता**) अग्रणी (**ऋतुपा**) ऋतुओ के रक्षक (**ऋतावा**) सत्यकर्म निर्वाहक (**देवः**) सुखदायक (**वृत्रहा**) मेघो के नाशक सूर्य्य के सदृश (**सनय**) अनादि सिद्ध (**विश्ववेदा**) ससार के ज्ञाता (**अग्नि**) अग्नि के सदृश तेजस्वी (**गृणन्तम्**) स्तुतिकारक को (**विश्वा**) सम्पूर्ण पुरुषो के (**दुरिता**) दुष्ट आचरणो का (**अति**) उल्लङ्घन करके (**पर्षत्**) पार पहुँचावे (**स**) वह परमात्मा हम लोगो से सेवने योग्य है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे अग्नि सूर्य्य आदि रूप धारण करके पृथिवी आदि पदार्थों को नियमपूर्वक अपने स्थान मे स्थित रखता और जैसे जगदीश्वर सर्वदा सम्पूर्ण जगत् की व्यवस्था करता है वैसे ही उपासित हुआ ईश्वर तथा सेवित हुआ विद्वान् पुरुष सम्पूर्ण पापाचरणो से पृथक् करके दु खरूप समुद्र के पार पहुँचाता है ॥ ४ ॥

फिर विद्वान् मनुष्य के कर्त्तव्य को कहते हैं—

दधिक्रामग्निमुषसं च देवीं बृहस्पतिं सवितारं च देवम् ।
अश्विना मित्रावरुणा भगं च वसून् रुद्राँ आदित्याँ इह हुवे ॥५॥२०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मै (**इह**) इस ससार मे (**दधिक्राम्**) भूमि आदि धारण करनेवाले पदार्थों को उल्लङ्घन करके वर्त्तमान (**अग्निम्**) बिजुली रूप अग्नि (**देवीम्**) प्रकाशमान तथा कामना करने योग्य (**उषसम्**) प्रात काल (**च**) और (**बृहस्पतिम्**) बड़े बड़े पदार्थों का रक्षक वायु (**सवितारम्**) सूर्य्य और सम्पूर्ण ससार की उत्पत्ति करनेवाला (**देवम्**) कामनायोग्य दानशील ईश्वर (**च**) और (**अश्विना**) अध्यापक उपदेशकर्त्ता (**मित्रावरुणा**) प्राण (**च**) और उदान वायु (**भगम्**) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य का देनेवाला व्यवहार (**वसून्**) भूमि आदि पदार्थ (**रुद्रान्**) प्राण और (**आदित्यान्**) सवत्सर के मासो की (**हुवे**) स्तुति करता हूँ वा ग्रहण करता हूँ वैसे ही तुम लोग इन की निरन्तर स्तुति वा ग्रहण करो ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्यो को चाहिए कि जैसे विद्वान् लोग इस सृष्टि के उपकारक पदार्थों से सम्पूर्ण कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वैसे ही उन पदार्थों के गुणो को जानकर सम्पूर्ण अभीष्ट कार्यों को सिद्ध करें और सर्व जनो से ईश्वर उपासना करने योग्य है ॥ ५ ॥

इस सूक्त मे अग्नि आदि और विद्वानो के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह बीसवाँ सूक्त और बीसवाँ वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्यैकाधिकविंशतितमस्य सूक्तस्य कौशिको गाथी ऋषिः । अग्निर्देवता ॥
१, ४ त्रिष्टुप्छन्द । धैवत· स्वर । २, ३ अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धार. स्वर. । ५ विराट् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले इक्कीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

इमं नो यज्ञममृतेषु धेहीमा हव्या जातवेदो जुषस्व ।
स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य होतः प्राशान प्रथमो निषद्य ॥१॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) सम्पूर्ण उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता ! (मेदसः) चिकने (घृतस्य) घृत और (स्तोकानाम्) छोटे पदार्थों के (होतः) दाता (अग्ने) विद्वान् पुरुष (प्रथमः) पूर्व काल में वर्त्तमान आप (निषद्य) स्थित होकर (प्र, अशान) सुख को भोगो (नः) हम लोगों के (इमम्) इस (यज्ञम्) विद्वानों के सत्कार सत्सङ्ग शुभ गुणों और दानरूप कर्म का (जुषस्व) सेवन कीजिए (इमा) इन (हव्या) धर्म अर्थ काम मोक्ष की सिद्धि के लिए योग्य साधनों को (अमृतेषु) नाश रहित पदार्थों में (धेहि) स्थापन करो ॥ १ ॥

भावार्थ—जैसे अन्न जल आदि का दाता पुरुष अन्य पुरुषों को प्रिय होता वैसे विद्या उत्तम शिक्षा और धर्म सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करानेवाला जन इन कर्मों को जानने की इच्छायुक्त पुरुषों का प्रिय होता है ॥ १ ॥

अब धर्मोपदेशक किसके तुल्य रक्षा करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

घृतवन्तः पावक ते स्तोकाः श्चोतन्ति मेदसः ।
स्वधर्मन्देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्य्यम् ॥२॥

पदार्थ—हे (पावक) अग्नि के सदृश पवित्रकर्त्ता ! जिन (ते) आप के (घृतवन्तः) उत्तम वा अधिक घृतवाले तथा जलयुक्त (मेदसः) चिकने (स्तोकाः) थोड़े पदार्थ (श्चोतन्ति) सिञ्चन करते हैं वह आप (देववीतये) विद्वानों की प्राप्ति के लिए (श्रेष्ठम्) अति उत्तम (वार्य्यम्) स्वीकार करने योग्य धन (स्वधर्मन्) अपने वैदिक धर्म में (नः) हम लोगों के लिए (धेहि) दीजिये ॥२॥

भावार्थ—जैसे अग्नि जल आदि पदार्थों को अपने कर्म से शुद्ध कर वर्षा आदि रूप से सम्पूर्ण पदार्थों को सींच कर सब जीवों की रक्षा करते हैं वैसे ही विद्या और धर्म के उपदेशक लोग सम्पूर्ण मनुष्यों का पालन करते हैं ॥ २ ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतोऽग्ने विप्राय सन्त्य ।
ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता भव ॥३॥

पदार्थ—हे (सन्त्य) सत्य और असत्य के विभाग करनेवालों में कुशल प्रवीण (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! जो (घृतश्चुत) घृत से सींचे गये (स्तोकाः) स्तुतिकर्त्ता लोग (विप्राय) बुद्धिमान् (तुभ्यम्) तुम्हारे लिए प्राप्त होते हैं और (श्रेष्ठः) उत्तम (ऋषिः) वेदमन्त्र और उन के अर्थ के ज्ञाता आप (समिध्यसे) प्रताप वा प्रकाशयुक्त किये जाते ऐसे आप (यज्ञस्य) सङ्गति के योग्य व्यवहार के (प्राविता) अत्यन्त रक्षाकारक (भव) होइये ॥३॥

भावार्थ—हे विद्वान् लोगो ! जो लोग आपकी स्तुति करते हैं उन पुरुषों को आप लोग वेद के ज्ञानवाले कीजिए जिससे एक सम्मति से परस्पर रक्षा होवे ॥ ३ ॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य ।
कविशस्तो बृहता भानुनागा हव्या जुषस्व मेधिर ॥४॥

पदार्थ—हे (अध्रिगो) वेदमन्त्रों के ज्ञाता (शचीव) प्रशंसनीय बुद्धियुक्त ! (मेधिर) बुद्धिमान् पुरुष (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशकारक जो पुरुष (स्तोकासः) उत्तम गुणों की स्तुतिकर्त्ता (मेदसः) चिकने (घृतस्य) घृत का (तुभ्यम्) तेरे लिये (श्चोतन्ति) सेवन करते उनके साथ (कविशस्तः) विद्वानों से प्रशंसित हुआ (बृहता) बड़े (भानुना) तेज से सूर्य के सदृश (आ, अगाः) प्राप्त हो और (हव्या) देने योग्य वस्तुओं का (जुषस्व) सेवन करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे जल से सींच कर वृक्षों को बढ़ाय फल प्राप्त होते हैं वैसे ही सत्सङ्ग से सत्पुरुषों का सेवन करके विज्ञान आदि फलों को प्राप्त करें ॥ ४ ॥

ओजिष्ठं ते मध्यतो मेद उद्भृतं प्र ते वयं ददामहे ।
श्चोतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान्देवशो विहि ॥५॥२१॥

पदार्थ—हे (वसो) निवास के कारण ! (ते) आपके (मध्यतः) मध्य से जो (ओजिष्ठम्) अति बलयुक्त (मेदः) प्रीति (उद्भृतम्) उत्तम प्रकार धारण की गयी उसको (ते) आपके लिये (वयम्) हम लोग (प्र, ददामहे) देते हैं जो (स्तोकाः) स्तुतिकारक (ते) आपके (अधि) ऊपर (त्वचि) चर्म में (श्चोतन्ति) सिञ्चन करते हैं (तान्) उन (देवशः) विद्वानों के (प्रति) समीप (विहि) प्राप्त होइए ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो पुरुष बहुत ही उत्तम वस्तु जिस पुरुष को देवे उस पुरुष को चाहिए कि उस देनेवाले पुरुष को वैसी ही वस्तु देवे और जो लोग विद्वानों के सत्सङ्ग से श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त होते हैं वे सम्पूर्ण जनों को कोमल स्वभावयुक्त कर सकते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि और मनुष्यों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह इक्कीसवां सूक्त और इक्कीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य द्वाविंशतितमस्य सूक्तस्य गाथी ऋषिः । पुरीष्या अग्नयो देवताः । १ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २, ३ भुरिक् पङ्क्तिः । ५ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ४ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब बाईसवें सूक्त का प्रारम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र से अग्नि के गुण वर्णन विषय को कहते हैं—

अयं सो अग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः ।
सहस्रिणं वाजमत्यं न सप्तिं ससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः ॥१॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) उत्तम विद्याधारी ! (यस्मिन्) जिसमें (अयम्) यह (अग्निः) बिजुली (सहस्रिणम्) असंख्य पराक्रमयुक्त (वाजम्) वेग और (अत्यम्) व्यापक शीघ्र चलनेवाले वायु के (न) तुल्य (सप्तिम्) अग्निनामक अश्व को (दधे) धारण करता है उसमें (वावशानः) अत्यन्त कामना करनेवाला (इन्द्रः) जीवात्मा आप (जठरे) पेट की अग्नि में (सुतम्) उत्पन्न (सोमम्) पदार्थों के समूह के धारणकर्त्ता आप (ससवान्) विभागकारक (सन्) होकर (स्तूयसे) स्तुति करने योग्य हो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्या से अग्नि को चलावें तो यह अग्नि हजारों घोड़ों के बल की धारणा करता है ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र ।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥२॥

पदार्थ—हे (यजत्र) प्रीति के पात्र (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी ! (ते) आपके (दिवि) प्रकाश में (यत्) जो (वर्चः) तेज (यत्) जो (पृथिव्याम्) पृथिवी में (ओषधीषु) जो ओषधियों में और जो तेज (अप्सु) जलों में (आ) अच्छा वर्त्तमान है तथा (येन) जिस तेज से (अन्तरिक्षम्) पोलरूप (उरु) वक्षस्थल (आततन्थ) सब ओर से विस्तारकर्त्ता (सः) वह आप (त्वेषः) प्रकाशमान (भानुः) दीप्तियुक्त (अर्णवः) समुद्र के सदृश (नृचक्षाः) मनुष्यों के देखनेवाले होइए ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो बिजुली नामक तेज सूर्य्य वायु भूमि और जल में तथा अन्य पदार्थों ओषधि आदि में वर्त्तमान उसको जन के सुख का विस्तार करो ॥ २ ॥

अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ ऊचिषे धिष्ण्या ये ।
या रोचने परस्तात्सूर्य्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् पुरुष ! आप जैसे अग्नि (दिवः) सूर्य्य के प्रकाश से (अर्णम्) जल को (अच्छ) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे (अच्छ) उत्तम प्रकार (जिगासि) स्तुति करो (देवान्) उत्तम गुणयुक्त मनुष्यों की (ऊचिषे) अच्छे प्रकार स्तुति करते हो (याः) जो (सूर्य्यस्य) सूर्य्यमण्डल के (रोचने) प्रकाश में (परस्तात्) ऊपर (च) और (याः) जो (धिष्ण्याः) धर्षण करने योग्य (आपः) जल (अवस्तात्) नीचे से (उपतिष्ठन्ते) प्राप्त होते हैं (ये) जो इन जलों के गुणों को जानते वे जलों से उपकार ले सकते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य्य अन्धकार का नाश कर दिन को उत्पन्न कर और जल की वृष्टि करके सम्पूर्ण संसार का सुखकारक होता है वैसे ही विद्वान् लोग अविद्या का नाश विद्या की उत्पत्ति और सुख की वृष्टि करके सब को आनन्दित करते हैं ॥ ३ ॥

पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः ।
जुषन्तां यज्ञमद्रुहोऽनमीवा इषो महीः ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! आप लोग (पुरीष्यासः) पालक पृथिवी आदि पदार्थों में व्यापकभाव से वर्त्तमान (अग्नयः) अग्नियों के सदृश तेजयुक्त (सजोषसः) तुल्य प्रीति के निर्वाहक (अद्रुहः) द्रोहरहित (अनमीवाः) रोग से रहित हुए (प्रावणेभिः) गमन आदिकों से (यज्ञम्) मेलरूप यज्ञ (इषः) अन्न और (महीः) श्रेष्ठ वाणियों का (जुषन्ताम्) सेवन करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अग्नि आदि पदार्थ परस्पर मिल कर अनेक कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वैसे ही मित्रभाव से वर्त्तमान रोग से रहित हुए विद्वान् लोग धनधान्य ऐश्वर्य और विद्या को प्राप्त होवें ॥ ४ ॥

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।

स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥५॥२२॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के सदृश विद्या के प्रकाश करनेवाले विद्वान् ! आप (**हवमानाय**) प्रशंसा करनेवाले के लिए (**इळाम्**) पृथिवी (**पुरुदंसम्**) बहुत कर्मकर्त्ता (**सनिम्**) याचनाकारक (**गोः**) वाणी (**शश्वत्तमम्**) अनादि से वर्त्तमान चिह्न को हम लोगों के लिए (**साध**) सिद्ध करिये । हे (**अग्ने**) तेजस्वी पुरुष ! जिससे (**नः**) हम लोगों का (**तनयः**) विद्याविस्तारकर्त्ता (**विजावा**) सत्य और असत्य का विभागकारक (**सूनुः**) पुत्र (**स्यात्**) हो तथा (**सा**) वह (**ते**) आपकी (**सुमतिः**) उत्तम बुद्धि (**अस्मे**) हम लोगों के लिए (**भूतु**) होवे ॥ ५ ॥

भावार्थ—विद्वान् पुरुष विद्या ग्रहण करने की इच्छा करनेवाले पुरुष के लिए विद्या को सिद्ध करे तथा सब से गुणों का ग्रहण करे ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह बाईसवां सूक्त और बाईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य त्रयोविंशतितमस्य सूक्तस्य देवश्रवा देववातश्च भारतावृषी । अग्निर्देवता, १ विराट् त्रिष्टुप्, २—५ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले तेईसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से अग्नि के द्वारा शिल्पविद्या का उपदेश किया है—

निर्मथितः सुधित आ सधस्थे युवा कविरध्वरस्य प्रणेता ।

जूर्यत्स्वग्निरजरो वनेष्वत्रा दधे अमृतं जातवेदाः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**सधस्थे**) तुल्य स्थान में (**निर्मथितः**) अत्यन्त मथा अर्थात् प्रदीप्त किया गया (**सुधितः**) उत्तम प्रकार धारित (**युवा**) विभागकर्त्ता (**कविः**) उत्तम दर्शन सहित (**प्रणेता**) प्रेरणाकारक (**अजरः**) नित्य (**जातवेदाः**) धनों की उत्पत्ति करनेवाला (**अग्निः**) अग्नि (**जूर्यत्सु**) वेगयुक्त (**वनेषु**) किरणों में (**अध्वरस्य**) अहिंसारूप शिल्पव्यवहार का (**आदधे**) धारण करता है (**अत्र**) इस शिल्पविद्या में (**अमृतम्**) जल को भी धारण करता वह अग्नि सम्पूर्ण उपायों से जानने योग्य है ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! कलायन्त्र आदिकों से युक्त वाहनों में अत्यन्त मथित होकर चलाया गया अग्नि सकल जनों के लिए वाहनों का वेगपूर्वक चलाता है यह जानना चाहिए ।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अमन्थिष्टां भारता रेवदग्निं देवश्रवा देववातः सुदक्षम् ।

अग्ने वि पश्य बृहताभि रायेषां नो नेता भवतादनु द्यून् ॥२॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के सदृश प्रकाशयुक्त ! जैसे (**भारता**) धारणकर्त्ता और पालनकर्त्ता पुरुष (**सुदक्षम्**) श्रेष्ठ बल (**अग्निम्**) अग्नि का (**अमन्थिष्टाम्**) मन्थन करें वैसे (**देवश्रवा**) विद्वानों के वचन श्रोता (**देववातः**) श्रेष्ठ प्रेरणाकारक से प्रेरित (**अनु, द्यून्**) अनुकूल दिवस (**रेवत्**) धन के तुल्य अग्नि का मन्थन करें जो (**नः**) हम लोगों के लिए (**नेता**) सुमार्ग में अग्रणी (**भवतात्**) होवे वह आप (**बृहता**) बड़े (**राया**) धन से (**इषाम्**) अन्न आदिकों के मध्य में (**अभि, वि, पश्य**) सब प्रकार कृपादृष्टि से देखिए ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे शिल्पविद्या के पढ़ने पढ़ानेवाले लोग पदार्थों के क्रयविक्रय से धनवान् होते हैं वैसे ही आप लोग भी होइये ॥ २ ॥

दश क्षिपः पूर्व्यं सीमजीजनन्त्सुजातं मातृषु प्रियम् ।

अग्निं स्तुहि दैववातं देवश्रवो यो जनानामसद्वशी ॥३॥

पदार्थ—हे (**देवश्रवः**) विद्वानों के लिए उपकार-श्रोता ! आप जैसे (**दश**) दश संख्यायुक्त (**क्षिपः**) फैलनेवाली अंगुलियां (**मातृषु**) नदियों में (**प्रियम्**) कामना करने योग्य (**सुजातम्**) उत्तम प्रकार सिद्ध (**दैववातम्**) विद्वानों से जाने हुओं का सम्बन्धी (**पूर्व्यम्**) प्राचीन जनों से उत्पन्न (**अग्निम्**) अग्नि को (**सीम्**) सब प्रकार (**अजीजनन्**) उत्पन्न करते हैं वैसे आप (**स्तुहि**) स्तुति करो और (**यः**) जो (**जनानाम्**) मनुष्यों के मध्य में (**वशी**) इन्द्रियजित् (**असत्**) होवे उसकी प्रशंसा करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे हाथों की अंगुलियों से बहुत कार्य्य सिद्ध होते हैं वैसे ही अग्नि आदिकों से बहुत कार्यों को आप लोग सिद्ध करो ॥ ३ ॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

नि त्वा दधे वर आ पृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम् ।

दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥४॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् पुरुष ! मैं जैसे (**त्वा**) आपको (**पृथिव्याः**) भूमि वा अन्तरिक्ष (**वरे**) उत्तम व्यवहार और (**इळायाः**) वाणी के (**पदे**) प्राप्त होने योग्य स्थान में (**अह्नाम्**) दिवसों के (**सुदिनत्वे**) उत्तम दिनों में (**दृषद्वत्याम्**) प्रस्तरयुक्त (**आपयायाम्**) प्राणों में व्यापक (**सरस्वत्याम्**) विज्ञान् वाली वाणी और (**मानुषे**) मननशील में (**रेवत्**) श्रेष्ठ धन के तुल्य (**नि, दधे**) धारण किया वैसे मननकर्त्ता आप मुझको (**आ, दिदीहि**) प्रकाशित करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि परस्पर मित्रभाव से वर्त्तमान करके विद्या धर्म सज्जनता और सुखों को बढ़ावें ॥४॥

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।

स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥५॥२३॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के सदृश विद्या के प्रकाशकारी ! आप (**हवमानाय**) ग्रहण करने के लिए (**इळाम्**) प्रशंसायुक्त वाणी को और (**गोः**) उत्तम वाणी के (**शश्वत्तमम्**) अनादि विज्ञान तथा (**पुरुदंसम्**) बहुत शुभ कर्मों के (**सनिम्**) विद्या आदि उत्तम गुणों के दान को (**साध**) सिद्ध करो जिससे (**नः**) हम लोगों का (**विजावा**) विशेष करके सम्पूर्ण जनों का सुखोत्पादक (**सूनुः**) पुत्र के सदृश शिष्य (**तनयः**) सुख का विस्तारकारक (**स्यात्**) होवे । हे (**अग्ने**) उत्तम प्रकार परीक्षा लेने में निपुण विद्वन् ! जो (**ते**) आपकी (**सुमतिः**) उत्तम बुद्धि (**भूतु**) होवे (**सा**) वह (**अस्मे**) हम लोगों में होवे ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि परस्पर जनों के प्रति शुभ गुणों के ग्रहण और दान का उपदेश दें और अपने सन्तानों को विद्या, सुशिक्षा और विज्ञानों को निरन्तर बढ़ावें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् मनुष्यों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तेईसवां सूक्त और तेईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य चतुर्विंशतितमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । १ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । २ निचृद्गायत्री, ३—५ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले चौबीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से राजधर्मविषय का उपदेश करते हैं—

अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य ।

दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥१॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य दुष्टजनों के दाहकर्त्ता वीर पुरुष ! आप (**पृतनाः**) शत्रुओं की सेनाओं का (**सहस्व**) तिरस्कार करो (**अभिमातीः**) अभिमानयुक्त विघ्नकारी दुष्टों को (**अपास्य**) दूर करो (**दुष्टरः**) कठिनता से उल्लङ्घन करने योग्य आप और (**अरातीः**) शत्रुओं को (**तरन्**) उल्लङ्घन करते हुए (**यज्ञवाहसे**) यज्ञ के प्राप्त करानेवाले के लिए (**वर्चः**) अन्न को (**धाः**) धारण कीजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिए कि अपनी प्रजा और सेनाओं को बलयुक्त कर और दुष्ट शत्रुओं को राज्य से पृथक् करके प्रजा की वृद्धि के लिए धन और विद्या की निरन्तर उन्नति करें ॥ १ ॥

अब विद्वानों को कैसे दूसरों की उन्नति करनी चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्न इळा समिध्यसे वीतिहोत्रो अमर्त्यः

जुषस्व सू नो अध्वरम् ॥२॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य विद्या के प्रकाश से युक्त पुरुष ! (**अमर्त्यः**) आत्मरूप से मरणधर्मरहित (**वीतिहोत्रः**) उत्तम गुणों से पूरित विद्याओं के स्वीकारकारी आप जो (**इळा**) उत्तम प्रकार शिक्षित स्तुति करने योग्य वाणी है और जिससे आप (**सम्, इध्यसे**) उत्तम प्रकार प्रकाशित हो उसके साथ (**नः**) हम लोगों के (**अध्वरम्**) अहिंसा आदि व्यवहार से युक्त यज्ञ का (**सु, जुषस्व**) अच्छे प्रकार सेवन करो ॥ २ ॥

भावार्थ—विद्वानों को चाहिये कि जिससे अपनी वृद्धि हो उसी से अन्य जनों की उन्नति करें ॥ २ ॥

फिर राजधर्म विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अग्ने द्युम्नेन जागृवे सहसः सूनवाहुत । एदं बर्हिः सदो मम ॥३॥

पदार्थ—हे (**जागृवे**) राजधर्म के उत्तम प्रकार निर्वाहक (**सहसः**) बलवान् के (**सूनो**) पुत्र दुष्टों के नाशकर्त्ता (**आहुत**) चारों ओर से पुकारे गये (**अग्ने**) प्रतापयुक्त राजन् ! (**द्युम्नेन**) यशकारक धन के सहित विराजमान आप (**मम**) मेरे (**इदम्**) इस वर्त्तमान (**बर्हिः**) अत्यन्त श्रेष्ठ (**सदः**) बैठने योग्य आसन का (**आ, जुषस्व**) अच्छे प्रकार सेवन करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो राजपुरुष सब न्याययुक्त राजधर्म में कुशल न्यायाधीश हों वे अखण्डित राज्य की पालना कर सकें ॥ ३ ॥

अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्देवेभिर्महया गिरः । यज्ञेषु य उ चायवः ॥४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् पुरुष ! (ये) जो पुरुष (यज्ञेषु) सङ्गति के योग्य व्यवहारों में (चायवः) सत्कार योग्य हों उनका ही (अग्निभिः) अग्नियों के सदृश तेजयुक्त (विश्वेभिः) सम्पूर्ण (देवेभिः) श्रेष्ठ गुण कर्म स्वभावयुक्त विद्वानों के साथ (महय) सत्कार करो (उ) और उन्हीं लोगों की (गिरः) उत्तम प्रकार शिक्षायुक्त वाणियों का प्रमाण मानो ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो राजपुरुष इस संसार में उत्तम कार्य्यों के कर्त्ता हों उनका सब लोग सत्कार करें और जो दुष्ट कर्म करते हों उनका अपमान करें ॥ ४ ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्ने दा दाशुषे रयिं वीरवन्तं परीणसम् ।
शिशीहि नः सूनुमतः ॥५॥२४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजयुक्त विद्वान् पुरुष ! जैसे आप (दाशुषे) सबके सुखदाता जन के लिए (परीणसम्) बहुत प्रकार युक्त (वीरवन्तम्) बहुत वीरों से विशिष्ट (रयिम्) धन को (दा) दीजिए और वैसे ही (सूनुमतः) पुत्रयुक्त (नः) हम लोगों को (शिशीहि) प्रबल कीजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो विद्या और धन के दाता विद्वान् हों उनके प्रति ऐसा कहना चाहिए कि आप लोग हम लोगों की सब प्रकार वृद्धि करो ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि, राजा और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह चौबीसवां सूक्त और चौबीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चविंशतितमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । १—४ अग्निर्देवता । ५ इन्द्राग्नी देवते । १ निचृदनुष्टुप् । २ अनुष्टुप् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ३—५ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

अब पांच ऋचावाले पच्चीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र से सूर्यरूप अग्नि के दृष्टान्त से विद्वानों का कर्त्तव्य कहते हैं—

अग्ने दिवः सूनुरसि प्रचेतास्तना पृथिव्या उत विश्ववेदाः ।
ऋधग्देवाँ इह यजा चिकित्वः ॥१॥

पदार्थ—हे (चिकित्वः) विज्ञानवान् (अग्ने) विद्वन् पुरुष ! जैसे (दिवः) बिजुली से (सूनुः) सूर्य्य के समान तेजस्वी (प्रचेताः) उत्तम विज्ञानयुक्त वा विज्ञानदाता (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष के (तना) विस्तारक (उत) और भी (विश्ववेदाः) धनदाता (असि) हो वह आप (इह) इस संसार में (देवान्) विद्वान् वा उत्तम गुणों को (ऋधक्) स्वीकार करने में (यज) संयुक्त कीजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य सम्पूर्ण स्वरूप वाले द्रव्यों का प्रकाशक है वैसे विद्वान् और विद्वानों से प्रेमकारी पुरुष इस संसार में सब जनों के आत्माओं के प्रकाशक होते हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अग्निः सनोति वीर्याणि विद्वान्त्सनोति वाजममृताय भूषन् ।
स नो देवाँ एह वहा पुरुक्षो ॥२॥

पदार्थ—हे (पुरुक्षो) अतिशय अन्न आदि से युक्त जो (विद्वान्) विद्यावान् पुरुष ! आप जैसे (अग्निः) अग्नि के सदृश (वीर्याणि) पराक्रमों का (सनोति) धारण करनेवाले वैसे (सः) वह (अमृताय) नाशरहित मोक्षसुख की प्राप्ति के लिए (नः) हम (देवान्) विद्वानों को (इह) इस संसार में (भूषन्) शोभित करते हुए (वाजम्) विज्ञान को (सनोति) देता है उस प्रकाशित करने वाले पुरुष को हम लोगों के लिए (आ, वह) अच्छे प्रकार प्राप्त करो ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य आकारवाले पदार्थों को उत्तम प्रकार शोभित करता है वैसे ही विद्वान् लोग विद्या उत्तम शिक्षा और सभ्यता से सम्पूर्ण मनुष्यों को शोभित करें ॥ २ ॥

अग्निर्द्यावापृथिवी विश्वजन्ये आ भाति देवी अमृते अमूरः ।
क्षयन्वाजैः पुरुश्चन्द्रो नमोभिः ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वान् जन ! जैसे (पुरुश्चन्द्रः) बहुत आनन्दकारक (वाजैः) विज्ञान वेग आदिकों से (नमोभिः) अन्न वा सत्कारों के साथ (क्षयन्) निवास करनेवाला (अग्निः) सूर्य्य वा बिजुलीरूप अग्नि (विश्वजन्ये) सबके उत्पादक (देवी) उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त (अमृते) कारणरूप से नाशरहित (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि को (आ) सब ओर से (भाति) प्रकाशित करता है वैसे (अमूरः) मूढ़ता आदि दोषों से रहित होकर सम्पूर्ण सज्जनों को अपनी विद्या और विनय से सब प्रकार प्रकाशित करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग पृथिवी के सदृश क्षमाशील, सूर्य्य के सदृश सत्य असत्य के प्रकाशकर्त्ता, मूढ़ लोगों को उपदेशदाता और सब लोगों को धार्मिक करते हैं उन लोगों का ही सत्कार करना चाहिए ॥ ३ ॥

अग्न इन्द्रश्च दाशुषो दुरोणे सुतावतो यज्ञमिहोप यातम् ।
अमर्धन्ता सोमपेयाय देवा ॥४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य विद्या से प्रकाशित विद्वान् पुरुष ! जैसे (अमर्धन्ता) सब को सुखाते हुए (देवा) श्रेष्ठ गुणों से युक्त पुरुष (इन्द्रः) अत्यन्त परमैश्वर्यकारक बिजुली सम्बन्धी अग्नि (च) और पवन तथा (सोमपेयाय) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए (सुतावतः) ऐश्वर्य से युक्त (दाशुषः) विद्यासम्बन्धी सुख के दाता (दुरोणे) गृह में (यज्ञम्) विद्वान् सत्कार आदि स्वरूप व्यवहार को (इह) इस संसार में (उप, यातम्) प्राप्त हों और वैसे आप भी प्राप्त हूजिए और अध्यापक तथा उपदेशक भी प्राप्त हों ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जहां वायु और बिजुली के तुल्य वर्त्तमान अविद्या के विनाश और विद्या के प्रकाशकर्त्ता धर्म के उपदेशकर्त्ता अध्यापक और उपदेशक होवें वहां सम्पूर्ण सुख बढ़ें ॥ ४ ॥

विद्वानों को परमात्मा के तुल्य जगत् को आनन्दित करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्ने अपां समिध्यसे दुरोणे नित्यः सूनो सहसो जातवेदः ।
सधस्थानि महयमान ऊती ॥५॥२५॥

पदार्थ—हे (सहसः) बलवान् के (सूनो) पुत्र के तुल्य वर्त्तमान वा अविद्या के नाशकारक (जातवेदः) सम्पूर्ण उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी (नित्यः) अपने स्वरूप से नाशरहित (महयमानः) पूजने अर्थात् आदर करने योग्य जो आप (ऊती) रक्षण आदि क्रिया से (अपाम्) प्राणों के मध्य में सूर्य के सदृश (दुरोणे) रहने के स्थान गृह में (सम्, इध्यसे) प्रकाशित होते उन आपको चाहिए कि सम्पूर्ण मनुष्यों के (सधस्थानि) तुल्य स्थानों और आत्माओं को विद्या धर्म्म विनय से प्रकाशित करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभावयुक्त और सच्चित् आनन्द आदि लक्षण विशिष्ट परमात्मा सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न और रक्षित कर आनन्दित करता है वैसे ही सत्यवक्ता विद्वान् पुरुषों को चाहिए कि सम्पूर्ण इस संसार को आनन्दयुक्त करें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह पच्चीसवां सूक्त और पच्चीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ नवर्चस्य षड्विंशतितमस्य सूक्तस्य । १, ६, ८, ९, विश्वामित्रः । ७ आत्मा ऋषिः । १, ३ वैश्वानरः । ४, ६ मरुतः, ७, ८ अग्निरात्मा वा । ९ विश्वामित्रोपाध्यायो देवता । १—६ जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ७—९ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब नव ऋचावाले छब्बीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि आदि से विद्वान् क्या सिद्ध करें इस विषय को कहते हैं—

वैश्वानरं मनसाग्निं निचाय्या हविष्मन्तो अनुषत्यं स्वर्विदम् ।
सुदानुं देवं रथिरं वसूयवो गीर्भी रण्वं कुशिकासो हवामहे ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (कुशिकासः) उपदेशक जन (हविष्मन्तः) देने योग्य वस्तुओं से युक्त (वसूयवः) धन इकट्ठा करने में तत्पर हम लोग (मनसा) विज्ञान से (निचाय्य) निश्चय कराकर (स्वर्विदम्) धन की प्राप्ति करानेवाले (रण्वम्) शब्द करते हुए (रथिरम्) सुन्दर वाहनों से युक्त (अनुषत्यम्) सत्य के अनुकूल (सुदानुम्) उत्तम पदार्थों के देनेवाले (देवम्) प्रकाशकारक (वैश्वानरम्) सम्पूर्ण मनुष्यों के प्रकाशकर्त्ता (अग्निम्) अग्नि को (हवामहे) ग्रहण करते हैं वैसे आप लोग भी इस अग्नि का (गीर्भिः) वाणियों से स्वीकार करें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मनुष्य अग्नि के गुणकर्मस्वभावों का निश्चय करके कार्यों को सिद्ध करते हैं वैसे ही पृथिवी आदि पदार्थों के गुणकर्मस्वभावों के निश्चय और उपकार से कार्य्यों को सिद्ध करो ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

तं शुभ्रमग्निमवसे हवामहे वैश्वानरं मातरिश्वानमुक्थ्यम् ।
बृहस्पतिं मनुषो देवतातये विप्रं श्रोतारमतिथिं रघुष्यदम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (मनुषः) मननकर्त्ता (देवतातये) उत्तम गुणों प्राप्ति के लिए (रघुष्यदम्) शीघ्रगामी (विप्रम्) बुद्धिमान् (श्रोतारम्) शास्त्र आदि सुननेवाले को (अतिथिम्) अतिथि के तुल्य जिसकी (अव

आदि के लिए (मातरिश्वानम्) वायु मे श्वासकारी (उक्थ्यम्) प्रशंसा करने योग्य (बृहस्पतिम्) पृथिवी आदि पदार्थों के धारक (वैश्वानरम्) राजा आदि मे विराजमान (शुभ्रम्) प्रकाशमान (अग्निम्) बिजुली आदि स्वरूप अग्नि का (हवामहे) स्वीकार करते हैं (तम्) उसको आप लोग भी जानो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पूर्ण विद्वान् अतिथि जन श्रोता जनो को ज्ञानयुक्त करता है उसी प्रकार अग्नि शिल्पी जनो के लिए अत्यन्त धनों को उत्पन्न करता है ॥ २ ॥

अश्वो न क्रन्दञ्जनिभिः समिध्यते वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगेयुगे ।

स नो अग्निः सुवीर्यं स्वश्व्यं दधातु रत्नममृतेषु जागृविः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (वैश्वानरः) सम्पूर्ण मनुष्यो का प्रकाशकर्त्ता (जागृविः) जागरणशील (अग्निः) अग्नि (जनिभिः) उत्पन्न करनेवाली घोड़ियों के साथ (क्रन्दन्) शब्द करते हुए (अश्वः) घोडे के (न) तुल्य (कुशिकेभिः) शब्द करनेवालो से (युगेयुगे) प्रत्येक वर्ष मे (सम्, इध्यते) प्रदीप्त होता है (सः) वह (नः) हम लोगो के लिए (सुवीर्यम्) उत्तम बल करनेवाले (स्वश्व्यम्) उत्तमघोडो से युक्त (अमृतेषु) सुवर्ण आदि धनो मे (रत्नम्) धन को (दधातु) धारण करता है उसका आप लोग भी सम्प्रयोग करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य लोग अग्नि को वाहन के चालन आदि कार्यों मे सम्प्रयुक्त करते है तो यह अग्नि किस किस धन आदि वस्तु की वृद्धि न करे अर्थात् सब वस्तुओ की वृद्धि कर सकता है ॥३॥

प्र यन्तु वाजास्तविषीभिरग्नयः शुभे संमिश्लाः पृषतीरयुक्षत ।

बृहदुक्षो मरुतो विश्ववेदसः प्र वेपयन्ति पर्वताँ अदाभ्याः ॥४॥

पदार्थ—हे वीरो ! आप लोग (तविषीभिः) पराक्रम आदिको के साथ जैसे (वाजाः) वेगवाले (अग्नयः) अग्नि (विश्ववेदसः) सम्पूर्ण धनो मे युक्त (बृहदुक्षः) अतिशय सेचनकारक (मरुतः) वायु (शुभे) जल मे (संमिश्लाः) अच्छे प्रकार मिली हुई वा सुन्दर प्रयुक्त (पृषती) सेचन मे कारण (प्र, यन्तु) प्राप्त होवे और (अदाभ्याः) नही मारने योग्य होकर (पर्वतान्) पर्वतो के सदृश ऊँचे मेघो को (प्र, वेपयन्ति) कपाते हैं वैसे आप लोग भी परस्पर मित्र होकर शत्रुओ को कपाओ और बलयुक्त सेना का सञ्चय करो ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे जल मे मिले हुए पृथिवी अग्नि वायु वर्त्तमान है वैसे ही जो लोग सेना मे मित्र होकर वर्त्तमान उनका निश्चय विजय होता है ॥४॥

फिर वायु आदि से क्या सिद्ध करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्रो मे कहा है—

अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्टय आ त्वेषमुग्रमव ईमहे वयम् ।

ते स्वानिनो रुद्रिया वर्षनिर्णिजः सिंहा न हेषक्रतवः सुदानवः ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (वयम्) हम लोग जो (विश्वकृष्टयः) सम्पूर्ण सृष्टि के उत्पन्नकर्त्ता (अग्निश्रियः) अग्नि से धनयुक्त (स्वानिनः) अतिशय शब्दो मे विशिष्ट (रुद्रियाः) अग्नि मे उत्पन्न होनेवाले (वर्षनिर्णिजः) वृष्टि के पवित्र करने वा पुष्ट करनेवाले (मरुतः) वायुदल (सिंहाः) व्याघ्रो के (न) सदृश शब्द करने जिनको (हेषक्रतवः) शब्दरूप बुद्धि वा क्रियावाले (सुदानवः) उत्तम दानकारक हम लोग (आ, ईमहे) अच्छे प्रकार याचना करते हैं (ते) वे सब प्रकार मांगने योग्य है उनसे हम लोग (उग्रम्) कठिन (त्वेषम्) प्रकाश और कठिन (अवः) रक्षण आदि की याचना करते हैं ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। मनुष्यो को चाहिए कि विद्वान् लोगो के सङ्ग मे बुद्धिमान् होकर वायु आदि की सम्बन्धिनी पदार्थविद्या की प्रार्थना करें और सिंह के समान पराक्रम को धारण करे ॥५॥

व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिरग्नेर्भामं मरुतामोज ईमहे ।

पृषदश्वासो अनवभ्रराधसो गन्तारो यज्ञं विदथेषु धीराः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (पृषदश्वासः) सेचनकर्त्ता और वेग आदि गुणयुक्त (अनवभ्रराधसः) अविनाशी धनो के दाता (गन्तारः) प्राप्त होनेवाले पवनो के तुल्य (सुशस्तिभिः) सुन्दर स्तुतियो के साथ वर्त्तमान (धीराः) ध्यानवाले विद्वान् पुरुष (विदथेषु) विज्ञान आदिको मे (यज्ञम्) मेल करने और (अग्नेः) अग्नि से उत्पन्न (भामम्) तेज को (मरुताम्) पवनो के समीप से (ओजः) बल और अन्य पदार्थों के (व्रातंव्रातम्) वर्त्तमान वर्त्तमान (गणंगणम्) समूह समूह की याचना करते है वैसे ही हम लोग इन सबकी (ईमहे) याचना करते हैं ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य अग्नि वायु आदि पदार्थों से कार्य्यों के समूह को साधते हैं वे विद्वान् कहाते हैं ॥६॥

फिर मनुष्यो को विद्युत् के तुल्य वर्त्तना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।

अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (अग्निः) अग्नि के सदृश (जन्मना) जन्म से (जातवेदाः) ज्ञानयुक्त मैं (अस्मि) वर्त्तमान हूँ (मे) मेरा (चक्षुः) नेत्र इन्द्रिय (घृतम्) प्रकाशमान (मे) मेरे (आसन्) मुख में (अमृतम्) अमृतस्वरूप रस हो जैसे (रजसः) लोक समूह का (विमानः) अनेक प्रकार के मानसहित (त्रिधातुः) तीन धातुओ से युक्त (अर्कः) वज्र वा बिजुली (अजस्रः) निरन्तर चलनेवाला (घर्मः) प्रदीप्त सूर्य्य (हविः) हवन सामग्री है वैसे ही (नाम) प्रसिद्ध मै (अस्मि) हूँ ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यो को चाहिये कि बिजुली के सदृश कार्य्यसिद्धि का धारण रोग का नाशकारक भोजन करना और शत्रुओ का निवारण करें तो बिजुली का फल प्राप्त होवे ॥७॥

अब शुद्ध मनुष्य कौन हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

त्रिभिः पवित्रैरपुपोद्ध्यर्कं हृदा मतिं ज्योतिरनु प्रजानन् ।

वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिरादिद् द्यावापृथिवी पर्यपश्यत् ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (त्रिभिः) शरीर वाणी और मन से (पवित्रैः) पवित्र करने मे कारण तेजो और (हृदा) हृदय से (अर्कम्) उत्तम प्रकार सत्कार किये अन्न को (अपुपोत्) पवित्र करे (हि) जिससे (ज्योतिः) प्रकाश तथा (मतिम्) बुद्धि को (अनु, प्रजानन्) अनुकूल जानता हुआ (स्वधाभिः) अन्न आदिको से (वर्षिष्ठम्) अतिशय वृद्धियुक्त (रत्नम्) सुन्दर धन को (अकृत) करे वह (आत्, इत्) अनन्तर ही (द्यावापृथिवी) प्रकाश और अन्तरिक्ष को (परि) सब प्रकार (अपश्यत्) देखे ॥८॥

भावार्थ—वे ही शुद्ध मनुष्य है जो कि उत्तम बुद्धि को प्राप्त होकर अन्य मनुष्यो को विद्या और विनयो मे सन्तुष्ट करके लक्ष्मी आदि की उन्नति सिद्ध करे ॥८॥

शतधारमुत्समक्षीयमाणं विपश्चितं पितरं वक्त्वानाम् ।

मेळिं मदन्तं पित्रोरुपस्थे तं रोदसी पिपृतं सत्यवाचम् ॥९॥२७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (उत्सम्) कूप के सदृश (अक्षीयमाणम्) विद्या के विज्ञान मे थाहरहित पूर्ण विद्यायुक्त (शतधारम्) सैकडा प्रकार की उत्तम शिक्षा सहित वाणीवाले (पितरम्) पिता के तुल्य वर्त्तमान (वक्त्वानाम्) कहने को इकट्ठे किये गये वाक्यो के वक्ता (मेळिम्) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी और (मदन्तम्) स्तुतिकारक (सत्यवाचम्) सत्य वाणीयुक्त जिस (विपश्चितम्) विद्वान् पुरुष को (पित्रोः) पिता माता के (उपस्थे) समीप मे (रोदसी) भूमि सूर्य्य (पिपृतम्) पालते है उस ही की सब लोग अपने आत्मा के तुल्य सेवा करो ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पूर्ण विद्वान् अति सूक्ष्म बुद्धियुक्त पृथिवी के सदृश क्षमाशील सूर्य्य के सदृश अन्तःकरण से शुद्ध विद्वान् मनुष्यो मे पिता के सदृश वर्त्ताव रक्खे उसी की सब लोग अपने आत्मा के तुल्य सेवा करें ॥९॥

इस सूक्त मे विद्वान् अग्नि और वायु के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त मे कहे अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह छब्बीसवां सूक्त और सत्ताईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चदशर्चस्य सप्तविंशतितमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । १ ऋतवोऽग्निर्वा; २, १५ अग्निर्देवता । १, ७—१०, १४, १५ निचृद्गायत्री । २, ३, ६, ११, १२ गायत्री । ४, ५, १३ विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचावाले सत्ताईसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से, विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

प्र वो वाजा अभिद्यवो हविष्मन्तो घृताच्या ।

देवाञ्जिगाति सुम्नयुः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (वः) आप लोगो के (अभिद्यवः) चारों ओर से प्रकाशमान (हविष्मन्तः) बहुत सी देने योग्य वस्तुओ से युक्त (वाजाः) विज्ञान आदि पदार्थ (घृताच्या) जल को प्राप्त होनेवाली रात्रि के सहित वर्त्तमान हैं उनसे युक्त जो (सुम्नयुः) अपने सुख का अभिलाषी (देवान्) विद्वानों की (प्र, जिगाति) उत्तम प्रकार स्तुति करता है उन विद्वानो और स्तुतिकारक उस पुरुष को आप लोग प्राप्त होओ ॥१॥

भावार्थ—जैसे दिन मे पदार्थ सूखते और रात्रि मे गीले होते हैं उसी प्रकार जो अपने पदार्थ हैं वे औरो के और जो औरों के हैं वे अपने हैं इस प्रकार सुख की इच्छा से विद्वानो का सङ्ग करना चाहिए ॥१॥

फिर अग्नि से क्या सिद्ध होता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ईळे अग्निं विपश्चितं गिरा यज्ञस्य साधनम् ।

श्रुष्टीवानं धितावानम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (**गिरः**) वाणी से (**यज्ञस्य**) अहिंसारूप यज्ञ की (**साधनम्**) सिद्धि करने (**श्रुष्टीवानम्**) शीघ्र चलने वा चलानेवाले (**धितावानम्**) पदार्थों के धारणकर्त्ता (**अग्निम्**) अग्नि के सदृश तेजस्वी (**विपश्चितम्**) पण्डित विद्वान् की (**ईळे**) स्तुति करता हूं वैसे आप लोग भी स्तुति करें ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे किसी पदार्थ के जोड़ने आदि व्यवहार की सिद्धि के लिए अग्नि मुख्योपकारी है वैसे ही धर्म अर्थ काम और विद्या की प्राप्ति के लिए विद्वान् जन मुख्य है ऐसा जानना चाहिए ॥२॥

विद्वानों का सङ्ग सब को करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अग्ने शकेम ते वयं यमं देवस्य वाजिनः ।

अति द्वेषांसि तरेम ॥३॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के सदृश पवित्र पुरुषार्थी पुरुष ! आप जैसे (**वयम्**) हम लोग (**वाजिन**) विज्ञानयुक्त (**देवस्य**) विद्वान् (**ते**) आपके (**यमम्**) उत्तम नियम को प्राप्त होने के लिए (**शकेम**) समर्थ हों और (**द्वेषांसि**) द्वेषयुक्त कर्मों के (**अति, तरेम**) पार पहुँचें ऐसा यत्न करो ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मोक्ष आदि की जिज्ञासाकारक पुरुषों को चाहिए कि विद्वान् पुरुषों की ऐसे प्रार्थना करें कि जिस प्रकार हम लोग उत्तम नियमों को प्राप्त होकर द्वेष आदि दुष्ट व्यसनों के पार जायें ऐसी हम लोगों के ऊपर कृपा करिये ॥३॥

समिध्यमानो अध्वरे३ऽग्निः पावक ईड्यः । शोचिष्केशस्तमीमहे ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**अध्वरे**) अहिंसा रूप यज्ञ मे (**समिध्यमान**) उत्तम रीति से प्रकाशमान (**शोचिष्केश**) केशों के सदृश तेजों से युक्त (**पावक**) पवित्र करनेवाला (**अग्नि**) बिजुली के सदृश (**ईड्य**) स्तुति करने योग्य होवे (**तम्**) उसकी हम लोग (**ईमहे**) याचना करते हैं आप लोग भी इसका सेवन करिये ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे इस संसार मे अग्निरूप पदार्थ ही सम्पूर्ण पदार्थों से श्रेष्ठ है इसलिए इस अग्नि विषयिणी विद्या की प्रार्थना करनी योग्य है, वैसे ही विद्वान् लोग सम्पूर्ण मनुष्यो मे श्रेष्ठ और उनकी विद्याप्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए ॥४॥

विद्वान् लोग अग्नि के तुल्य कार्यसाधक होते है, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है ॥

पृथुपाजा अमर्त्यो घृतनिर्णिक् स्वाहुतः ।

अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट् ॥५॥२८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग जो (**पृथुपाजा**) विस्तार सहित बलयुक्त (**अमर्त्य**) अपने स्वरूप मे नाशरहित (**यज्ञस्य**) राज्यपालन आदि व्यवहार के (**हव्यवाट्**) प्राप्त होने योग्य वस्तुओं को धारण करनेवाले (**घृतनिर्णिक्**) जल और घी के शोधनेवाले (**अग्नि**) अग्नि के सदृश (**स्वाहुत**) अच्छे प्रकार आदरपूर्वक पुकारे गये उस विद्वान् पुरुष की निरन्तर सेवा करो ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे साधन और उपसाधनों से उपकार मे लाया गया अग्नि कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे ही सेवा से संतुष्टता को प्राप्त किये विद्वान् लोग विद्या आदि की सिद्धि को सम्पादन करते हैं ॥५॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

तं सबाधो यतस्रुच इत्था धिया यज्ञवन्तः । आ चक्रुरग्निमूतये ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**सबाधः**) दुष्ट व्यसनों के नाशकर्त्ता (**यतस्रुचः**) उद्योगयुक्त कर्मसाधनों के सहित (**यज्ञवन्तः**) प्रशंसा करने योग्य प्रयत्न करनेवाले जन (**धिया**) बुद्धि वा कर्म से (**ऊतये**) रक्षण आदि के लिए (**अग्निम्**) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् पुरुष को (**आ, चक्रुः**) आदर करते हैं वैसे (**तम्**) उस विद्वान् पुरुष की (**इत्था**) इसी प्रकार आप लोग भी सेवा करें ॥६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे बुद्धि और कर्म मे चतुर पुरुष उत्तम व्यवहारों को सिद्ध करते हैं वैसे ही धर्म आदि को जानने की इच्छायुक्त पुरुष, विद्वान् जन को प्रसन्न करके उत्तम गुणों को ग्रहण करें ॥६॥

फिर विद्यार्थी क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया । विदथानि प्रचोदयन् ॥७॥

पदार्थ—हे धर्म आदि को जानने की इच्छा करनेवाले पुरुषो ! जैसे (**अमर्त्यः**) मरणधर्म से रहित (**होता**) देनेवाला (**देवः**) उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त पुरुष (**पुरस्तात्**) पहले से (**मायया**) उत्तम बुद्धि के साथ (**विदथानि**) विज्ञानों का (**प्रचोदयन्**) प्रचार करता हुआ आप लोगों को (**एति**) प्राप्त होता है वैसे उसको आप लोग भी प्राप्त होइये ॥७॥

भावार्थ—हे विद्यार्थी जनो ! जो अध्यापक पुरुष आप लोगों के लिए कपट त्याग के विद्या आदि उत्तम गुणों को देकर उत्तम शिक्षा देवे उसकी आप लोग भी अपने आत्मा के तुल्य सेवा करो ॥७॥

फिर विद्वानों से भिन्न जन क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते ।

विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥८॥

पदार्थ—हे धर्म आदि की जिज्ञासा करनेवाले पुरुषो ! जैसे ऋत्विजों से (**वाजेषु**) विज्ञान और क्रियास्वरूप (**अध्वरेषु**) मित्रता आदि गुणयुक्त व्यवहारों वा यज्ञों मे (**यज्ञस्य**) उत्तम व्यवहार का (**साधनः**) सिद्धिकर्त्ता (**वाजी**) वेगयुक्त अग्नि (**धीयते**) धारण किया जाता है वैसे (**विप्र**) बुद्धिमान् (**प्र, णीयते**) प्राप्त किया जाता है ॥८॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे अग्निहोत्र आदि क्रियास्वरूप यज्ञों मे मुख्यभाव से अग्नि का आश्रय किया जाता है वैसे ही विद्या विनय और उत्तम शिक्षा के व्यवहारों मे विद्वान् का आश्रय करना चाहिए ॥८॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्रो मे कहा है—

धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे ।

दक्षस्य पितरं तना ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**वरेण्य**) आदर करने योग्य अति श्रेष्ठ पुरुष (**तना**) विस्तारयुक्त (**धिया**) श्रेष्ठ बुद्धि वा शिक्षा से (**दक्षस्य**) चतुर विद्यार्थीपुरुष के (**पितरम्**) पिता के सदृश पालनकर्त्ता (**भूतानाम्**) प्राणियों के (**गर्भम्**) विद्या आदि उत्तम गुणों की स्थिति करने रूप गर्भ को (**आ, दधे**) सब प्रकार धारण कर और विद्या सम्बन्धी वृद्धि को (**चक्रे**) करता उसकी अपने आत्मा के सदृश सेवा करो ॥९॥

भावार्थ—जैसे पति अपनी स्त्री मे गर्भ को धारण करके श्रेष्ठ सन्तानों को उत्पन्न करता है वैसे ही विद्वान् लोग मनुष्यों की बुद्धि मे विद्या सम्बन्धी गर्भ की स्थिति करके उत्तम व्यवहारों को उत्पन्न करें ॥९॥

नि त्वा दधे वरेण्यं दक्षस्येळा सहस्कृत ।

अग्ने सुदीतिमुशिजम् ॥१०॥

पदार्थ—हे (**सहस्कृत**) बलकारक (**अग्ने**) अग्नि के सदृश तेजयुक्त पुरुष ! जैसे मैं (**इळा**) उत्तम उपदेश वा उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्न आदि से (**दक्षस्य**) पराक्रम के (**वरेण्यम्**) स्वीकार करने योग्य (**सुदीतिम्**) उत्तम विज्ञान के प्रकाश से युक्त (**उशिजम्**) उत्तम गुणों के प्रचार की कामना करनेवाले (**त्वा**) आपको (**नि**) निश्चय से (**दधे**) धारण करूं वैसे ही आप मुझको विद्या का पात्र करो ॥१०॥

भावार्थ—जैसे विद्यार्थी जन अध्यापक लोगों की इच्छा के अनुसार कार्य्यों को कर प्रसन्न रखते हैं वैसे ही अध्यापक लोग विद्यार्थियों की इच्छा के अनुकूल उत्तम गुणों को देकर प्रसन्न करें ॥१०॥

अग्निं यन्तुरमप्तुरमृतस्य योगे वनुषः । विप्रा वाजैः समिन्धते ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**वनुष**) याचना करनेवाले (**विप्रा**) बुद्धिमान् जन (**ऋतस्य**) सत्य के (**योगे**) योग में (**वाजैः**) विज्ञान आदिकों से (**यन्तुरम्**) प्राप्तिकारक (**अप्तुरम्**) प्राण वा जलों की प्रेरणाकर्त्ता (**अग्निम्**) अग्नि के सदृश तेजस्वी को (**सम्, इन्धते**) उत्तम प्रकार प्रदीप्त करें वैसे ही सम्पूर्ण जनों से विद्या-प्रकाश करने योग्य हैं ॥११॥

भावार्थ—जिस समय विद्वान् पुरुषों का सङ्ग होवे उस समय उत्तम विज्ञान ही की प्रश्न उत्तरों से याचना करनी चाहिए इससे अधिक लाभ और न समझना चाहिए ॥ ११ ॥

ऊर्जो नपातमध्वरे दीदिवांसमुप द्यवि । अग्निमीळे कविक्रतुम् ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिसको (**द्यवि**) प्रकाश तथा (**अध्वरे**) मेल को प्राप्त संसार मे (**अग्निम्**) अग्नि के सदृश तेजयुक्त (**ऊर्जः**) बल से (**नपातम्**) विनाशरहित (**कविक्रतुम्**) विद्वानों की बुद्धि वा कर्म को यज्ञ समझनेवाला (**दीदिवांसम्**) प्रकाशमान विद्वान् पुरुष के (**उप**) समीप (**ईळे**) स्तुति करता हूं वैसे इसकी आप लोग भी प्रशंसा करो ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे यज्ञ में अग्नि प्रकाशमान होकर शोभित होता है वैसे ही विद्या के प्रकाशकर्त्ता व्यवहार मे विद्वान् जन प्रकाशित होते हैं ॥ १२ ॥

ईळेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः । समग्निरिध्यते वृषा ॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**तमांसि**) रात्रियों के (**तिरः**) तिरस्कार करनेवाले (**अग्निः**) अग्नि के सदृश प्रकाशमान (**वृषा**) वृष्टिकर्त्ता (**दर्शतः**) देखने (**ईळेन्यः**) स्तुति करने और (**नमस्यः**) सत्कार करने योग्य पुरुष (**सम्**) उत्तम प्रकार (**इध्यते**) प्रकाशित किया जाता है उसका आप निरन्तर आदर करो ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य अन्धकार को दूर कर प्रकाश उत्पन्न करता है वैसे ही यथार्थवक्ता विद्वान् लोग अविद्या का नाश और विद्या का प्रकाश करते हैं ॥ १३ ॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः । तं हविष्मन्त ईळते ॥१४॥

पदार्थ—जो (**वृष**) वृष्टिकर्त्ता (**देववाहनः**) उत्तम वेग आदि गुणो को प्राप्त करानेवाला (**अग्निः**) अग्नि (**अश्व**) शीघ्र चलनेवाले घोडे के (**न**) सदृश (**सम्, इध्यते**) प्रकाशित किया जाता है (**तम्**) उसकी (**हविष्मन्तः**) बहुत शीघ्र ग्रहण करने योग्य वस्तुओ से युक्त पुरुष (**ईळते**) स्तुति करते हैं ॥ १४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे बल और वेग से युक्त घोडे वाहन को शीघ्र ले चलते है वैसे ही अग्नि का भी समझना चाहिए और जैसे इस अग्नि के गुणो को विद्वान् लोग जानते है वैसे आप लोग भी जानिए ॥ १४ ॥

फिर पढ़ने पढ़ाने के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥१५॥

पदार्थ—हे (**वृषन्**) बलयुक्त (**अग्ने**) अग्नि के सदृश प्रकाशकर्त्ता जन ! जैसे आप (**बृहत्**) बडे (**दीद्यतम्**) प्रकाशकर्त्ता विज्ञान को प्रकाशित करते हैं वैसे ही (**वयम्**) हम लोग (**वृषणम्**) सुखवृष्टिकारक (**त्वा**) आप और अन्य जनो को (**वृषण**) बलयुक्त (**सम्**) उत्तम प्रकार (**इधीमहि**) प्रकाशित करें ॥ १५ ॥

भावार्थ—हे पढाने और पढ़ने वाले पुरुषो ! आप लोगो को चाहिए कि विरोध को त्याग और प्रीति का उत्पन्न करके परस्पर की वृद्धि करो जिससे विद्या आदि उत्तम गुणो के प्रकाश मे सम्पूर्ण मनुष्य बलयुक्त और न्यायकारी होवें ॥ १५॥

इस सूक्त मे अग्नि और विद्वानो के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त मे कहे अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह सत्ताईसवां सूक्त और तीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षडृचस्याष्टाविंशतितमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषि । अग्निर्देवता । १ गायत्री । २, ६ निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर । ३ स्वराडुष्णिक् छन्द । ऋषभ स्वर । ४ त्रिष्टुप छन्द । धैवत स्वर । ५ निचृज्जगती छन्दः । निषाद स्वर ॥

अब छः ऋचावाले अट्ठाईसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र मे अग्नि और विद्वानों का वर्णन करते हैं—

अग्ने जुषस्व नो हविः पुरोळाशं जातवेदः । प्रातःसावे धियावसो ॥१॥

पदार्थ—हे (**धियावसो**) उत्तम बुद्धि वा उत्तम गुणों के प्रचारकर्त्ता (**जातवेद**) सकल उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता (**अग्ने**) अग्नि के सदृश तेजस्वी पुरुष ! जैसे अग्नि (**प्रातःसावे**) प्रातःकाल के अग्निहोत्र आदि कर्म मे (**नः**) हमारे (**हविः**) भक्षण करने योग्य (**पुरोळाशम्**) मन्त्रो से संस्कारयुक्त अन्न विशेष का सेवन करते हैं वैसे इसका आप (**जुषस्व**) सेवन करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे प्रातःकाल अग्निहोत्र आदि कर्मों मे वेदी मे स्थापित किया गया अग्नि घृत आदि का सेवन तथा उसको अन्तरिक्ष मे फैलाके जनो को सुख देता है वैसे ही ब्रह्मचर्य्यधर्म्म मे वर्तमान विद्यार्थी जन विद्या और विनय का ग्रहण कर संसार मे उनका प्रचार करके सकल जनो को सुख देवें ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों मे कहा है—

पुरोळा अग्ने पचतस्तुभ्यं वा घा परिष्कृतः । तं जुषस्व यविष्ठ्य ॥२॥

पदार्थ—हे (**यविष्ठ्य**) अतिशय युवा पुरुषो मे चतुर (**अग्ने**) अग्नि के सदृश तेजस्वी जन ! जो (**तुभ्यम्**) आपके लिए (**पुरोळा**) वेदविधि से संस्कारयुक्त (**पचत**) पाककर्त्ता हुआ (**वा**) अथवा (**परिष्कृत**) सब प्रकार शुद्ध किया गया है (**तम्**) उसकी (**घ**) ही (**जुषस्व**) सेवा करो ॥ २ ॥

भावार्थ—जैसे भोजन मे प्रीतिकर्त्ता पुरुष अपने लिए उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्न आदि पदार्थों को सिद्ध और उनका भोजन करके आनन्दयुक्त होता है वैसे ही उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त हवन की सामग्री को प्राप्त होकर अग्नि सम्पूर्ण जनो को आनन्द देता है ॥ २ ॥

अग्ने वीहि पुरोळाशमाहुतं तिरोअह्न्यम् ।
सहसः सूनुरस्यध्वरे हितः ॥३॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के सदृश तेजस्वी पुरुष ! आप अग्नि के तुल्य (**तिरोअह्न्यम्**) दिन के प्रथम भाग मे उत्पन्न वा उत्तम (**आहुतम्**) चारो ओर से दिये गये (**पुरोळाशम्**) अनेक प्रकारो के संस्कारो से युक्त अन्न को (**वीहि**) प्राप्त होइए जिससे आप (**सहसः**) बल वा बलवान् वायु के (**सूनुः**) पुत्र के तुल्य (**अध्वरे**) दयारूप व्यवहार मे सबके हित (**हितः**) हितकारी (**असि**) वर्त्तमान है इस कारण से सत्कार करने योग्य है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अग्नि वायु से उत्पन्न होकर स्वरूपवान् द्रव्य को भस्म करके विभाग करता है । वैसे ही विद्या से पवित्रात्मा पुरुष अविद्या के व्यवहार को भस्म अर्थात् दूर करके सत्य और असत्य का विभाग करता है ॥ ३ ॥

अब कौन मनुष्य सुखी होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

माध्यन्दिने सवने जातवेदः पुरोळाशमिह कवे जुषस्व ।
अग्ने यह्वस्य तव भागधेयं न प्र मिनन्ति विदथेषु धीराः ॥४॥

पदार्थ—हे (**जातवेदः**) विज्ञान से युक्त (**कवे**) उत्तम बुद्धिमान् (**अग्ने**) अग्नि के सदृश तेजयुक्त ! आप (**इह**) इस संसार मे जो (**धीराः**) योगी जन (**यह्वस्य**) श्रेष्ठ (**तव**) आपके (**विदथेषु**) विज्ञान वा संग्रामो में (**भागधेयम्**) भाग्य को (**न**) नहीं (**प्र, मिनन्ति**) नाश करते हैं उस शिक्षा से सहित होकर (**माध्यन्दिने**) दिन के मध्य समय के (**सवने**) होम आदि कर्म मे अग्नि के सदृश (**पुरोळाशम्**) उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्न आदि का (**जुषस्व**) सेवन करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य प्रातःकाल तथा दिन के मध्यभाग समय के होमों को करके उत्तम प्रकार छौंकने आदि से संस्कारयुक्त नित्य नियमित अन्न का भोजन करते हैं वे ही भाग्यशाली होकर बड़े सुख और निश्चित विजय को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

अग्ने तृतीये सवने हि कानिषः पुरोळाशं सहसः सूनवाहुतम् ।
अथा देवेष्वध्वरं विपन्यया धा रत्नवन्तममृतेषु जागृविम् ॥५॥

पदार्थ—हे (**कानिष**) कामना करने योग्य (**सहसः**) बलयुक्त के (**सूनो**) पुत्र (**अग्ने**) बिजुली के सदृश बलयुक्त ! आप (**हि**) जैसे (**विपन्यया**) विशेष करके स्तुतियुक्त प्रशंसा सहित बुद्धि वा क्रिया से (**तृतीये**) तीसरे समय के (**सवने**) होम आदि कर्म मे (**अथ**) और (**देवेषु**) विद्वान् वा उत्तम गुणो मे (**अमृतेषु**) नाशरहित जगदीश्वर आदि पदार्थों मे (**जागृविम्**) जागनेवाले (**रत्नवन्तम्**) बहुत रत्नो से विशिष्ट (**आहुतम्**) सब प्रकार स्वीकार किये गये (**अध्वरम्**) अहिंसा आदि स्वरूप धर्मयुक्त व्यवहार और (**पुरोळाशम्**) रोग के दूर करनेवाले अन्न को (**धा**) धारण करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो लोग परमेश्वर आदि पदार्थों के विज्ञान से अहिंसा आदि व्यवहार मे वर्त्तमान नियमपूर्वक भोजन विहारयुक्त होकर ऐश्वर्य्य की वृद्धि करने की इच्छा करते है वे सब प्रकार सुखी होते है ॥ ५ ॥

फिर विद्वान् लोग कैसा वर्त्ताव करते, इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है—

अग्ने वृधान आहुतिं पुरोळाशं जातवेदः ।
जुषस्व तिरोअह्न्यम् ॥६॥३१॥

पदार्थ—हे (**जातवेद**) सम्पूर्ण उत्पन्न हुए पदार्थों मे व्यापक (**अग्ने**) अग्नि के सदृश तेजस्वी ! जैसे (**वृधान**) बढ़ा हुआ अग्नि (**आहुतिम्**) चारो ओर अग्नि मे छोड़े गये (**तिरोअह्न्यम्**) प्रातःकाल किये गये (**पुरोळाशम्**) उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्न आदि का सेवन करता है वैसे उसकी आप (**जुषस्व**) सेवा करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जैसे बिजुली सब स्थानो मे व्याप्त होकर सम्पूर्ण मूर्तिमान् पदार्थों का सेवन करती है वा प्रसिद्ध हुई बढ़ती है वैसे ही विद्याओ मे व्यापक विद्वान् जन धर्म की सेवा करते हुए वृद्धि को प्राप्त होते है ॥६॥

इस सूक्त मे अग्नि और विद्वानो के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अट्ठाईसवां सूक्त और इकत्तीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथकोनत्रिंशत्तमस्य षोडशर्चस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषि । १ - ४, ६ - १६ अग्नि । ५ ऋत्विज अग्निर्वा देवता , १ निचृदनुष्टुप्; ४ विराडनुष्टुप्, १०, १२ भुरिगनुष्टुप् छन्द ; गान्धारः स्वर । २ भुरिक् पङ्क्ति , १३ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चम स्वर । ३, ५, ६ त्रिष्टुप् । ७—९, १६ निचृत् त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर । ११, १४, १५ जगती छन्द । निषाद स्वर ॥

अब तृतीय मण्डल में सोलह ऋचावाले उनतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र से विद्युत् अग्नि और वायु से विद्वान् लोग किस-किस कार्य को सिद्ध करते है, इस विषय को कहा है—

अस्तीदमधिमन्थनमस्ति प्रजननं कृतम् ।
एतां विश्पत्नीमा भराग्निं मन्थाम पूर्वथा ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! जो (**इदम्**) यह (**अधिमन्थनम्**) ऊपर के भाग मे वर्त्तमान मथने का वस्तु (**अस्ति**) विद्यमान है और जो (**प्रजननम्**) प्रकट होना (**कृतम्**) किया (**अस्ति**) है उन दोनो से (**एताम्**) इस (**विश्पत्नीम्**) प्रजाजनो के पालन करनेवाली को हम लोग (**पूर्वथा**) प्राचीन जनों के तुल्य (**अग्निम्**) विद्युत् को (**मन्थाम**) मन्थन करें और (**आ, भर**) सब ओर से आप लोग ग्रहण करो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य ऊपर और नीचे के काष्ठ में स्थित मथने की वस्तुओं के द्वारा घिसने से बिजुलीरूप अग्नि को उत्पन्न करें वे प्रजाओं के पालन करनेवाले सामर्थ्य को प्राप्त होते हैं । जैसे पूर्व काल के कारीगरों ने शिल्पक्रिया से अग्नि आदि सम्बन्धिनी विद्या की सिद्धि की हो उसी प्रकार से सम्पूर्ण जन इस अग्नि विद्या को ग्रहण करें ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भइव सुधितो गर्भिणीषु ।

दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥२॥

पदार्थ—जिन (हविष्मद्भिः) बहुत साधनों के ग्रहण करने तथा (जागृवद्भिः) अविद्या आलस्य और निद्रा त्याग विद्या और पुरुषार्थ आदि को प्राप्त होने और (मनुष्येभिः) मनन करनेवाले पुरुषों ने (अरण्योः) ऊपर और नीचे के भाग में वर्त्तमान साधनों के मध्य में (निहितः) स्थित (गर्भिणीषु) गर्भवती स्त्रियों में (गर्भइव) जैसे गर्भ रहता है वैसे वर्त्तमान (दिवेदिवे) प्रतिदिन (ईड्यः) खोजने योग्य (जातवेदाः) उत्पन्न हुए सम्पूर्ण पदार्थों में वर्त्तमान (अग्निः) अग्नि (सुधितः) उत्तम प्रकार धारण किया उन पुरुषों को भाग्यशाली जानना चाहिए ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य सृष्टि के क्रम से वर्त्तमान अग्नि आदि पदार्थों की प्रतिदिन परीक्षा कर करावें तो वे क्यों दरिद्र होवें ॥ २ ॥

उत्तानायामव भरा चिकित्वान्त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान ।

अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज इळायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष (चिकित्वान्) बुद्धिमान् ! आप (उत्तानायाम्) सीधेपन से सोते हुए मनुष्य के तुल्य वर्त्तमान भूमि में जो (प्रवीता) बहुत व्याप्त बिजुली (वृषणम्) वृष्टिकर्त्ता सूर्य को (जजान) उत्पन्न करती है उसको (अव, भर) धारण करो और जो (अरुषस्तूपः) मर्मस्थलों में क्लेशदायकों में प्रशंसायुक्त (अस्य) इस संसार के (पाजः) बल के (रुशत्) नाशकारक (इळायाः) वाणी के (पुत्रः) पुत्र के सदृश स्थित (वयुने) विज्ञान में (अजनिष्ट) उत्पन्न होता है उसको (सद्यः) शीघ्र धारण करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य पुत्र को माता के तुल्य अग्निविद्या को धारण करते हैं वे अपना बल बढ़ाकर विज्ञान को उत्पन्न करते हैं और जब नीचे के भाग में अग्नि ऊपर जल स्थित करके वायु से प्रज्वलित करते हैं तब अग्नि और जल द्वारा बहुत से कार्य सिद्ध कर सकते हैं ॥ ३ ॥

इळायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि ।

जातवेदो नि धीमह्यग्ने हव्याय वोळ्हवे ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो ! जैसे (वयम्) हम लोग (इळायाः) पृथिवी के (अधि) ऊपर (पदे) प्राप्त होने पर (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष के (नाभा) मध्य में (हव्याय) प्रशंसा करने योग्य (वोळ्हवे) वाहन के लिए (त्वा) उस (जातवेदः) धनों के उत्पन्नकर्त्ता (अग्ने) अग्नि को (नि, धीमहि) उत्तम प्रकार धारण करें वैसे ही आप लोग भी धारण करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग इस अग्नि को पृथिवी के ऊपर और अन्तरिक्ष के मध्य में उत्तम प्रकार परीक्षा ले के वाहन आदि चलाने के लिए अग्नि को धारण करते हैं वे धनयुक्त होते हैं ॥ ४ ॥

मन्थता नरः कविमद्वयन्तं प्रचेतसममृतं सुप्रतीकम् ।

यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरस्तादग्निं नरो जनयता सुशेवम् ॥५॥३२॥

पदार्थ—हे (नरः) नायको ! आप लोग (कविम्) तेजस्वी स्वरूपयुक्त (अद्वयन्तम्) अपने केवल रूप से रहित के सदृश आचरण करते हुए (प्रचेतसम्) अतिशय प्रकटकर्त्ता (अमृतम्) अपने स्वरूप से नाशरहित (सुप्रतीकम्) उत्तम प्रकार विश्वासकर्त्ता (अग्निम्) अग्नि का (मन्थत) मन्थन करो । हे (नरः) प्रधान पुरुषो ! (यज्ञस्य) अहिंसारूप यज्ञ के (केतुम्) पताका के सदृश जाननेवाले (प्रथमम्) प्रसिद्ध (सुशेवम्) सुन्दर द्रव्यपात्र के सदृश अग्नि को (पुरस्तात्) प्रथम से उत्पन्न करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य मथकर अग्नि को उत्पन्न करके कार्य्यों को सिद्ध करने की इच्छा करते हैं वे सम्पूर्ण ऐश्वर्य्ययुक्त होते हैं ॥ ५ ॥

यदी मन्थन्ति बाहुभिर्वि रोचतेऽश्वो न वाज्यरुषो वनेष्वा ।

चित्रो न यामन्नश्विनोरनिवृतः परि वृणक्त्यश्मनस्तृणा दहन् ॥६॥

पदार्थ—जो मनुष्य (बाहुभिः) बाहुओं से (यदि) यदि अग्नि को (मन्थन्ति) मथते हैं तो वह (वनेषु) किरणों में (अरुषः) मर्मस्थलों में वर्त्तमान (वाजी) वेगयुक्त (अश्वः) उत्तम घोड़े के (न) सदृश (वि आ, रोचते) विशेष भाव से प्रकाशित होता है (अश्विनोः) सूर्य्य चन्द्रमा के मध्य में (अनिवृतः) निरन्तर प्राप्त (यामन्) रात्रि में (चित्रः) अद्भुत के (न) तुल्य (तृणा) घास विशेषों को (दहन्) भस्म करता हुआ (अश्मनः) पत्थर वा मेघ का (परि) सब प्रकार (वृणक्ति) छेदन करता है उसको इस प्रकार सब लोग प्रकट करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जिसने से बलयुक्त हुआ अग्नि काष्ठ आदि को जलाता और घोड़े के तुल्य वेगवान् होता हुआ अद्भुत कार्य्यों को सिद्ध करता है, यह जानना चाहिए ॥ ६ ॥

जातो अग्नी रोचते चेकितानो वाजी विप्रः कविशस्तः सुदानुः ।

यं देवास ईड्यं विश्वविदं हव्यवाहमदधुरध्वरेषु ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (देवासः) विद्वान् लोग (अध्वरेषु) मेल करने रूप व्यवहारों में (यम्) जिस (ईड्यम्) स्तुति करने योग्य (विश्वविदम्) सम्पूर्ण वस्तुओं के ज्ञाता (हव्यवाहम्) हवन करने योग्य पदार्थों के धारणकर्त्ता अग्नि को (अदधुः) धारण करें वह (चेकितानः) उत्तम कार्य्यों का जताने (सुदानुः) उत्तम प्रकार देनेवाला और (कविशस्तः) उत्तम पुरुषों से प्रशंसित हुए (विप्रः) बुद्धिमान् के सदृश (जातः) प्रकटता को प्राप्त (वाजी) वेगयुक्त (अग्निः) अग्नि (रोचते) प्रकाशित होता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो बिजुली सम्बन्धी विद्या को सिद्ध करें तो यह विद्या यथार्थवक्ता विद्वान् पुरुष के तुल्य सत्य और योग्य कार्य्यों को सिद्ध करें ॥ ७ ॥

सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञं सुकृतस्य योनौ ।

देवावीर्देवान्हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः ॥८॥

पदार्थ—हे (होतः) सुख देनेवाले (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी पुरुष ! आप (स्वे) अपने (लोके) दर्शन में (सीद) वर्त्तमान हो (चिकित्वान्) ज्ञानयुक्त होकर (सुकृतस्य) पुण्य कर्म के (योनौ) कारण वा स्थान में (यज्ञम्) धर्मसम्बन्धी व्यवहार को (सादय) स्थित करो (देवावीः) विद्वानों की रक्षाकर्त्ता (हविषा) दान से (देवान्) उत्तम गुण वा विद्वान् पुरुषों को (यजासि) यज्ञ करे वा स्वीकार करे (उ) यह तर्क है कि (यजमाने) योग्य धर्मसम्बन्धी व्यवहार के कर्त्ता पुरुष में (बृहत्) बड़े (वयः) जीवन वा धर्म आदि को (धाः) धारण करे ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे अग्निहोत्र आदि वा शिल्प आदि सङ्गति के योग्य व्यवहार में संयुक्त किया गया अग्नि उत्तम गुणों को प्रकट करता है वैसे ही विद्वान् पुरुष को चाहिए कि धर्मसम्बन्धी कर्मों से युक्त करके उत्तम सुखों को संसार में फैलावे ॥ ८ ॥

कृणोत धूमं वृषणं सखायोऽस्रेधन्त इतन वाजमच्छ ।

अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवासो असहन्त दस्यून् ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो ! आप लोग (अस्रेधन्तः) उत्साह से पूरित (सखायः) मित्र हुए (वृषणम्) जल से अच्छे प्रकार सींचे गये (धूमम्) भाफ को (कृणोत) करो (वाजम्) अन्न वेग और विज्ञान आदि को (अच्छ) उत्तम प्रकार (इतन) प्राप्त होओ तो (अयम्) यह (अग्निः) बिजुली के सदृश तेजस्वी (पृतनाषाट्) सेनाओं के सहित वर्त्तमान (सुवीरः) श्रेष्ठ वीरों से युक्त और (येन) जिस पुरुष के साथ (देवासः) विद्वान् वा शूर लोग (दस्यून्) अति दुष्ट कर्म करनेवाले जनों को (असहन्त) सहते हैं उसको प्राप्त होइये ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् जनो ! काष्ठ अग्नि और जल के संयोग से उत्पन्न हुए धूम से अनेक कार्य्यों को परस्पर मित्रभाव के साथ सिद्ध करो जैसे धर्मपूर्वक वर्त्ताव रखने वाले विद्यायुक्त शूरवीर पुरुष दुष्टकर्मकारियों का नाश करके राजा होते हैं वैसे ही यह अग्नि उत्तम प्रकार यन्त्र आदि से युक्त किया गया दारिद्र्य आदि को नाश करके अनगिनती धन को उत्पन्न करता है ॥ ९ ॥

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।

तं जानन्नग्न आ सीदाथा नो वर्धया गिरः ॥१०॥३३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् पुरुष ! जो (ते) आपका (अयम्) यह अग्नि आदि पदार्थ विद्या के ज्ञान का आधार (ऋत्वियः) समयों के योग्य (योनिः) सुख का घर है (यतः) जहाँ से (जातः) प्रकट हुआ (अरोचथाः) प्रकाशित हो (तम्) उसको (जानन्) जानते हुए यहाँ (आ, सीद) स्थिर होइये और (अथ) इसके अनन्तर (नः) हम लोगों की (गिरः) विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त वाणियों की (वर्धय) उन्नति कीजिए ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जिस जिस कर्म से शरीर आत्मा और ऐश्वर्य्यों की वृद्धि हो, वह वह कर्म सब काल में करें ॥ १० ॥

तनूनपादुच्यते गर्भ आसुरो नराशंसो भवति यद्विजायते ।

मातरिश्वा यदमिमीत मातरि वातस्य सर्गो अभवत्सरीमणि ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (तनूनपात्) सर्वत्र व्यापक (उच्यते) कहा जाता है (आसुरः) प्रकटरूप से रहित वायु से उत्पन्न (गर्भः) मध्य में वर्त्तमान (नराशंसः) मनुष्यों से प्रशंसित (भवति) होता है (मातरिश्वा) वायु में श्वास लेनेवाला (विजायते) विशेषभाव से उत्पन्न होता है और (यत्) जो (वातस्य) वायु सम्बन्धी (मातरि) आकाश में (सर्गः) उत्पत्ति (अमिमीत) रची जाती है (सरीमणि) गमनरूप व्यवहार में (अभवत्) होवे वह अग्नि सम्पूर्ण जनों से जानने योग्य है ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य वायु और अग्नि से कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वे सुखों से संयुक्त होते हैं ॥ ११ ॥

सुनिर्मथा निर्मथितः सुनिधा निहितः कविः ।
अग्ने स्वध्वरा कृणु देवान्देवयते यज ॥१२॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् पुरुष ! जैसे (**सुनिर्मथा**) सुन्दर मथने के वस्तु से (**निर्मथितः**) अत्यन्त मथा (**सुनिधाः**) उत्तम आधार वस्तु में (**निहितः**) धरा गया (**कवि**) और सर्वत्र दीख पड़नेवाला अग्नि बहुत से कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे ही (**स्वध्वरा**) उत्तम अहिंसा आदि कर्मों से युक्त (**देवान्**) उत्तम गुणों को (**कृणु**) धारण करो और इन (**देवयते**) उत्तम गुणों की कामना करते हुए पुरुष के लिए उन गुणों को (**यज**) दीजिए ॥१२॥

भावार्थ—जैसे विद्या से रचे हुए कलायन्त्रोंमे रक्खा गया अग्नि अत्यन्त मथने और घिसने से वेग आदि गुणों को उत्पन्न कर बहुत से कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे ही उत्तम कर्म्मों को करके श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त होओ ॥ १२ ॥

अजीजनन्नमृतं मर्त्यासोऽस्रेमाणं तरणिं वीळुजम्भम् ।
दश स्वसारो अग्रुवः समीचीः पुमांसं जातमभि सं रभन्ते ॥१३॥

पदार्थ—जैसे (**अग्रुवः**) आगे चलनेवाली (**समीचीः**) उत्तम प्रकार मिली हुई (**दश**) दश सङ्ख्या परिमित (**स्वसारः**) बहिनों के समान वर्त्तमान अंगुलियां (**जातम्**) प्रसिद्ध (**पुमांसम्**) पुरुषार्थ से युक्त मनुष्य को (**अभि**) सम्मुख (**सम्**) उत्तम प्रकार (**रभन्ते**) प्रवृत्त करती हैं वैसे (**मर्त्यासः**) मनुष्य (**वीळुजम्भम्**) मुख के सदृश ज्वाला से शोभित (**तरणिम्**) भोगों से यत्न द्वारा इष्ट स्थान में पहुँचाने वाला (**अस्रेमाणम्**) नाश रहित (**अमृतम्**) नित्य अग्नि को (**अजीजनन्**) उत्पन्न करते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे हाथों की अंगुलियां परस्पर मिली हुई शरीरधारी मनुष्य को कार्य्यों में प्रवृत्त करती हैं वैसे ही विद्वान् पुरुष अग्नि को क्रिया में लगाने अर्थात् उसके द्वारा कार्य्य सिद्ध करते हैं ॥१३॥

प्र सप्तहोता सनकादरोचत मातुरुपस्थे यदशोचदूधनि ।
न नि मिषति सुरणो दिवेदिवे यदसुरस्य जठरादजायत ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**सप्तहोता**) सात प्राणों से ग्रहण करने योग्य अग्नि (**सनकात्**) अनादि परम्परा से सिद्ध कारण से उत्पन्न हुआ (**मातुः**) वायु के (**उपस्थे**) समीप में (**प्रारोचत**) प्रकाशित होता है (**यत्**) जो (**ऊधनि**) रात्रि में (**अशोचत्**) प्रकाशित होता है और जो (**सुरणः**) श्रेष्ठ युद्ध का साधन (**दिवेदिवे**) प्रतिदिन (**न, नि**) अत्यन्त (**मिषति**) नहीं मीचता है (**यत्**) जो (**असुरस्य**) रूप से रहित वायु के (**जठरात्**) मध्य से (**अजायत**) उत्पन्न होता है उसको अच्छे प्रकार जानो ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो अग्नि अन्न आदि को शुष्क करनेवाला वायु रूप कारण से प्रसिद्ध प्रकृति नामक कारण से उत्पन्न हुआ है उस को जानकर बहुत से व्यवहारों को सकल जन प्रसिद्ध करें ॥ १४ ॥

अमित्रायुधो मरुतामिव प्रयाः प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद्विदुः ।
द्युम्नवद्ब्रह्म कुशिकास एरिर एकएको दमे अग्निं समीधिरे ॥१५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**मरुतामिव**) मनुष्यों के सदृश (**अमित्रायुधः**) शत्रुओं के ऊपर शस्त्र चलाने (**प्रयाः**) शीघ्र चलनेवाले (**प्रथमजाः**) प्रथम कारण से उत्पन्न (**कुशिकासः**) उच्च पदवी को प्राप्त (**एकएक**) प्रत्येक जन (**दमे**) गृह में (**अग्निम्**) अग्नि को (**सम्**) (**ईधिरे**) प्रज्वलित करें और जो (**ब्रह्मणः**) परमात्मा के (**विश्वम्**) सम्पूर्ण जगत् को (**विदुः**) जानते हैं वे (**इत्**) ही (**द्युम्नवत्**) उत्तम यशयुक्त (**ब्रह्म**) बहुत धन को (**आ, ईरिरे**) प्राप्त होते हैं ॥१५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे पवन सम्पूर्ण स्थानों में प्रबलता से प्राप्त होने अग्नि आदि पदार्थों को प्रज्वलित करने और संसार में व्यापक होने वाले सम्पूर्ण जीवों के प्राणों की रक्षा करके आनन्द देते हैं वैसे ही अग्नि आदि पदार्थों की विद्यायुक्त पुरुष सम्पूर्ण जनों के लिए आनन्द देते हैं ॥ १५ ॥

अब किन पुरुषों को निश्चल ऐश्वर्य प्राप्त होता, इस विषयों को अगले मन्त्र में कहा है—

यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन् होतश्चिकित्वोऽवृणीमहीह ।
ध्रुवमया ध्रुवमुताशमिष्ठाः प्रजानन्विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥१६॥३४॥

पदार्थ—हे (**चिकित्वः**) विज्ञानयुक्त (**होतः**) साधन जो मुख्य कारण उप-साधन अर्थात् सहायि कारणों के ग्रहणकर्त्ता ! (**यत्**) जो हम लोग (**अद्य**) इस समय (**अस्मिन्**) इस (**प्रयति**) प्रयत्न से सिद्ध और (**यज्ञे**) एकमत्य होने योग्य व्यवहार में जिन (**त्वा**) आपको (**अवृणीमहि**) स्वीकार करें वह आप (**इह**) इस संसार में (**ध्रुवम्**) दृढ़ स्थिर (**अशमिष्ठाः**) शान्ति करो (**उत**) और भी (**प्रजानन्**) विज्ञानयुक्त हुए (**ध्रुवम्**) निश्चल धर्म को (**अयाः**) सङ्गत कीजिये (**विद्वान्**) विद्वान् पुरुष आप (**सोमम्**) ऐश्वर्य को (**उप, याहि**) प्राप्त होइये ॥ १६ ॥

भावार्थ—जो लोग इस संसार में प्रयत्न से सृष्टि के पदार्थों के विद्या-क्रम को जानते हैं वे निरन्तर उन पदार्थों से उपकार ग्रहण कर सकते हैं, उनके निश्चय से ऐश्वर्य होता है ॥१६॥

इस सूक्त में अग्नि वायु और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त में कहे अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह उनतीसवां सूक्त द्वितीय अनुवाक और चौतीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीपरमविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां
शिष्येण परमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिते
आर्य्यभाषाविभूषिते सुप्रमाणयुक्त ऋग्वेदभाष्ये
तृतीयाष्टकस्य प्रथमाध्यायः समाप्तः ॥
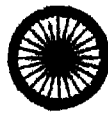
अथ तृतीयाष्टके द्वितीयाऽध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथ द्वाविंशत्यृचस्य त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, २, ९—११, १४, १७, २० निचृत्त्रिष्टुप् । ५, ६, ८, १३, १९, २१, २२ त्रिष्टुप् । १२, १५ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३, ४, ७, १६, १८ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब तृतीयाष्टक के द्वितीय अध्याय और तीसरे मण्डल में बाईस ऋचा वाले तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके पहले मन्त्र से विद्वान् के कर्त्तव्य का उपदेश करते हैं—

इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि ।
तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥१॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) परम ऐश्वर्य के दाता ! जो (**सोम्यासः**) परस्पर स्नेह रस के वर्द्धक (**सखायः**) मित्रभाव से वर्त्तमान (**त्वा**) आपकी (**इच्छन्ति**) इच्छा करते हैं वे (**सोमम्**) परम ऐश्वर्य को (**सुन्वन्ति**) सिद्ध करते (**प्रयांसि**) कामना करने योग्य वस्तुओं को (**दधति**) धारण करते और (**जनानाम्**) मनुष्य लोगों की (**अभिशस्तिम्**) चारों ओर से हिंसा को (**आ**) (**तितिक्षन्ते**) सहते हैं (**हि**) जिससे (**त्वत्**) आप से अन्य (**कः**) (**चन**) कोई भी पुरुष (**प्रकेतः**) उत्तम बुद्धिवाला नहीं है इससे इन मनुष्यों की सर्वदा रक्षा कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—जो लोग परस्पर मित्रभाव से वर्त्ताव करते हुए प्रयत्न के साथ ऐश्वर्य की इच्छा करते हैं वे सुख दुःख निन्दा आदि को सह और विद्वानों का सङ्ग करके आनन्द को बढ़ावें ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

न ते दूरे परमा चिद्रजांस्या तु प्र याहि हरिवो हरिभ्याम् ।
स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधाने अग्नौ ॥२॥

पदार्थ—हे (हरिवः) उत्तम घोड़ों के वाहनों से युक्त ! आप (हरिभ्याम्) घोड़ों से (प्र) (आ, याहि) आइये ऐसा करने से (परस्मा) उत्तम (रजांसि) लोकों के स्थान (ते) आपके (दूरे) दूर (न) नहीं होंगे जो (समिधाने) हवन करने योग्य प्रदीप्त किये जाते हुए (अग्नौ) अग्नि में (स्थिराय) दृढ़ (वृष्णे) बलवान् के लिए (हुता) किये गए (इमा) इन (सवना) ऐश्वर्य-वृद्धि के साधक कर्मों को करो (सु) तो (युक्ता.) उद्यत (ग्रावाणः) मेघ (चित्) भी बहुत से होवें ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य यदि शीघ्र चलने वाले घोड़ों से देशान्तर जाने की इच्छा करें तो सब समीप ही है । यदि नियम से अग्नि को प्रज्वलित कर उस में होम करें तो वर्षा होना सुगम ही जानो ॥ २ ॥

इन्द्रः सुशिप्रो मघवा तरुत्रो महाव्रातस्तुविकूर्मिर्ऋघावान् ।

यदुग्रो धा बाधितो मर्त्येषु क्व त्या ते वृषभ वीर्याणि ॥३॥

पदार्थ—हे (वृषभ) बलिष्ठ ! (मर्त्येषु) मनुष्यों में (बाधितः) पीड़ित (उग्रः) तेजस्वी स्वभाव से युक्त (यत्) जो दुःख दूर करनेवाले हैं उनको (धाः) धारण करो (ते) आपके (त्या) वे (वीर्याणि) वीर पुरुषों में हुए योग्य बल (क्व) किसमें हैं इस प्रकार (सुशिप्रः) सुन्दर ठोढ़ी और नासिकायुक्त (मघवा) अत्यन्त श्रेष्ठ धनसे युक्त (तरुत्रः) दुःखों से छुड़ाने वाला (महाव्रातः) सत्य आदि व्रतों में श्रद्धालु पुरुषों का मित्र (तुविकूर्मिः) बहुत प्रकार के कर्मों के आरम्भ में उत्साही (ऋघावान्) शत्रुओं के नाशकर्त्ता बहुत से शूरवीरों के सहित वर्त्तमान (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त आप होवें ॥ ३ ॥

भावार्थ—जब मनुष्य के अनेक प्रकार की पीडाएँ प्रकट हों तब बहुत से उपायों को युक्त करे, इस प्रकार पुरुषार्थ से विघ्नों को दूर करके शोभा और बल निरन्तर बढ़ाने योग्य हैं ॥ ३ ॥

त्वं हि ष्मा च्यावयन्नच्युतान्येको वृत्रा चरसि जिघ्नमानः ।

तव द्यावापृथिवी पर्वतासोऽनु व्रताय निमितेव तस्थुः ॥४॥

पदार्थ—हे राजन् ! (त्वम्) आप (एकः) सहाय के बिना स्वयं बलवान् (हि) जिससे (अच्युतानि) प्रबल शत्रुओं की सेनाओं को (च्यावयन्) भय से गिराते हुए (स्म) ही वर्त्तमान हैं जैसे सूर्य के सम्बन्ध में (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि (पर्वतासः) पर्वत के सदृश बड़े बड़े मेघ और (वृत्रा) मेघों के टुकड़े रूप बद्दल (निमितेव) जैसे निरन्तर प्रमाण किये हुए पदार्थ वैसे (तस्थुः) स्थिर होते हैं वैसे ही (अनु) (व्रताय) सत्यभाषण आदि कर्म वा उत्तम स्वभाव के लिए शत्रुओं का (जिघ्नमानः) नाशकर्त्ता होओ तो (ते) आपका निश्चय से विजय होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सूर्य नियमपूर्वक वर्त्तमान होके निवारण करने योग्य पदार्थों का निवारण करके रक्षा करने योग्य पदार्थों की रक्षा करता है वैसे ही आप वर्जने योग्य शत्रुओं का वर्जन करके प्रजाओं की निरन्तर रक्षा कीजिए ॥४॥

उताभये पुरुहूत श्रवोभिरेको दृळ्हमवदो वृत्रहा सन् ।

इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे यत्संगृभ्णा मघवन्काशिरित्ते ॥५॥१॥

पदार्थ—हे (पुरुहूत) बहुत जनों से प्रशंसित (मघवन्) बहुत धन से युक्त (इन्द्र) सूर्य्य के तुल्य प्रकाशमान ! आप (एकः) बिना सहाय स्वयं बलवान् (सन्) हुए (अभये) भय से रहित व्यवहार में (श्रवोभिः) अनेक प्रकार के सुनने योग्य वचनों के सहित (दृळ्हम्) निश्चय (अवदः) बोलें (उत) और भी जैसे (वृत्रहा) सूर्य्य (चित्) भी (इमे) इन (अपारे) अवधि रहित (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को प्राप्त होता है वैसे होकर (यत्) जो (ते) आपके (काशिः) न्याय विनय आदि उत्तम गुणों का प्रकाश है उसको (इत्) ही (संगृभ्णाः) ग्रहण करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । राजा के पुरुषों को चाहिए कि अनेक प्रकार के उपायों से प्रजाओं में उपद्रवों से भय का नाश और सूर्य के तुल्य न्यायविद्या का प्रकाश करें ॥ ५ ॥

प्र सू त इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून् ।

जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विश्वं सत्यं कृणुहि विष्टमस्तु ॥६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सूर्य के सदृश प्रकाशमान ! (हरिभ्याम्) उत्तम प्रकार शिक्षायुक्त घोड़ों से युक्त रथ में (प्रवता) उत्तम मार्ग से आप जैसे (वज्रः) किरणों के सदृश शस्त्रों का समूह और (शत्रून्) दुष्ट कर्म करने वालों को (प्रमृणन्) अत्यन्त नाश करते हुए (प्र, एतु) प्राप्त हूजिये इस प्रकार (ते) आपका विजय होता है आप (प्रतीचः) पीछे वर्त्तमान (अनूचः) और कपट से अनुकूल अर्थात् (पराचः) दूर स्थल में विराजमान शत्रुओं की (प्र, जहि) हिंसा करो तथा (विश्वम्) सम्पूर्ण (सत्यम्) सत्य को (कृणुहि) अच्छे प्रकार बढ़ाओ जिससे वह (विष्टम्) व्याप्त (अस्तु) हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य दुष्ट आचरण करनेवाले मनुष्य आदि प्राणियों का निवारण करके सत्य का प्रचार करें वे सुख से आनन्द भोगते हैं ॥ ६ ॥

यस्मै धायुरदधा मर्त्यायाभक्तं चिद्भजते गेह्यं सः ।

भद्रा त इन्द्र सुमतिर्घृताची सहस्रदाना पुरुहूत रातिः ॥७॥

पदार्थ—(पुरुहूत, इन्द्र) सुख के दाता आप (यस्मै) जिस (मर्त्याय) मनुष्य के लिए (अभक्तम्) विभाग से रहित (गेह्यम्) गृह गृह में उत्पन्न हुए धन की (भजते) सेवा करते हैं जिसके लिए (धायुः) उत्तम पदार्थों के धारण-कर्त्ता (चित्) भी आप सुख को (अदधाः) धारण करें उन (ते) आपकी जो (घृताची) सुख देनेवाली रात्रि के सदृश (भद्रा) कल्याण करनेवाली (सुमतिः) उत्तम बुद्धि और (सहस्रदाना) अनगिनती दान जिसमें दिये जाते हों ऐसी (रातिः) दान सम्बन्धिनी क्रिया है उसको (सः) वह स्वीकार करे ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पिता और पितामह का धन आदि जो कि नहीं बटा हुआ उसकी रक्षा वा सेवा करें और परस्पर दोषों को त्याग के गुणों का ग्रहण कर वे कल्याण के भागी होवें ॥ ७ ॥

सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र सं पिणक्कुणारुम् ।

अभि वृत्रं वर्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥८॥

पदार्थ—हे (पुरुहूत) बहुत जनों से प्रशंसित अर्थात् यश को प्राप्त (इन्द्र) सूर्य्य के सदृश तेजस्वी ! जैसे (सहदानुम्) दान से युक्त (क्षियन्तम्) रहते हुए (अहस्तम्) अविद्यमान (कुणारुम्) शब्द करते और (वर्धमानम्) बढ़ते हुए (पियारुम्) पिये गये (अपादम्) पादों से हीन (वृत्रम्) मेघको (अभि) सम्मुख पीसता है वैसे शत्रुओं का आप (सम्, पिणक्) नाश करो और (इन्द्र) हे दुष्टों को विदीर्ण करनेवाले ! आप (तवसा) बल से दुष्ट पुरुषों का (जघन्थ) नाश करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य मेघों के आकर्षण और वर्षाने से सम्पूर्ण जगत् को पालता है वैसे ही दुष्टों के नाश करने और श्रेष्ठ पुरुषों के धारण करने से राजा को सम्पूर्ण प्रजाओं की पालना करनी चाहिए ॥८॥

नि सामनामिषिरामिन्द्र भूमिं महीमपारां सदने ससत्थ ।

अस्तभ्नाद् द्यां वृषभो अन्तरिक्षमर्षन्त्वापस्त्वयेह प्रसूताः ॥९॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सूर्य्य के तुल्य प्रकाश से युक्त राजन् ! आप जैसे (वृषभ) वृष्टिकर्त्ता सूर्य (द्याम्) अन्तरिक्ष का (अस्तभ्नात्) पुष्टता से धारण करता है वैसे (सामनाम्) उत्तम उपमाओं से युक्त (इषिराम्) बहुत पदार्थों की प्राप्ति करानेवाली (महीम्) बड़े परिमाण से युक्त (अपाराम्) जिसका पार नहीं (भूमिम्) जिसमें बहुत पदार्थ होते हैं उस भूमि को प्राप्त होकर (इह) इस (सदने) स्थान में (नि, ससत्थ) बैठो (त्वया) आपसे (प्रसूताः) प्रेरित हुए (आपः) जल (अन्तरिक्षम्) आकाश को (अर्षन्तु) प्राप्त होवें ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य नियमपूर्वक प्रकाश और भूमि को धारण करता है वैसे ही न्याय से राजा राज्य को धारण करे और सब काल में प्रजाओं में ही बल बढ़ाया करे ॥ ९ ॥

अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार ।

सुगान्पथो अकृणोन्निरजे गाः प्रावन्वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः ॥१०॥२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) श्रेष्ठ ऐश्वर्य के दाता ! (अलातृणः) सम्पूर्ण संसार के प्रलयकर्त्ता (वलः) बलयुक्त (व्रजः) चलनेवाले (भयमानः) भय को प्राप्त होते हुए आप (सुगान्) सुख से जिनमें मनुष्य आदि चलें ऐसे (पथः) मार्गों को (वि, आर) विशेष कर के प्राप्त होइये । जो (पुरा) प्रथम (गोः) पृथिवी का (हन्तोः) नाश करने को (अकृणोत्) क्रिया करे वा जो (पुरुहूतम्) बहुतों से प्रशंसायुक्त (धमन्तीः) शब्द करती हुई (वाणीः) उत्तम प्रकार शिक्षायुक्त (गाः) चलनेवाली वाणी (प्र, आवन्) अतिशय रक्षा करती हैं उसको और उनको (निरजे) अत्यन्त चलने के लिए विशेष करके प्राप्त होइये ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि सदा ही अधर्म के आचरण से डरके धर्म में प्रवृत्त हों और बुरे व्यसनों को त्याग के धर्मयुक्त मार्ग से चलें ॥ १० ॥

एको द्वे वसुमती समीची इन्द्र आ पप्रौ पृथिवीमुत द्याम् ।

उतान्तरिक्षादभि नः समीक इषो रथीः सयुजः शूर वाजान् ॥११॥

पदार्थ—हे (शूर) दुष्टजनों के नाशकारक ! जैसे (एकः) सहाय रहित अकेली (रथीः) प्रशंसनीय रथरूप वाहनके सहित (इन्द्रः) बिजुली (द्वे) दो (समीची) समानता को प्राप्त (वसुमती) बहुत धनों से युक्त (पृथिवीम्) अन्तरिक्ष वा भूमि को (उत) और भी (द्याम्) प्रकाश को (आ) (पप्रौ) पूर्ण करती (समीके) समीप में (अन्तरिक्षात्) मध्य में वर्त्तमान अवकाश से (सयुजः) तुल्यता के साथ परस्पर मिले हुए मित्र जन (नः) हम लोगों के लिए (इषः) इच्छाओं को (उत) और (वाजान्) अन्न आदि वस्तुओं को (अभि) सब ओर से पूर्ण करने वे सम्पूर्ण जनों में सत्कार करने योग्य हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो भूमि के सदृश प्रजाओं के धारण करने और बिजुली के सदृश अति उत्तम ऐश्वर्य के देनेवाले प्रजाजन हों वे सम्पूर्ण राज्य की रक्षा कर सकें ॥ ११ ॥

दिशः सूर्यो न मिनाति प्रदिष्टा दिवेदिवे हर्यश्वप्रसूताः ।

सं यदानळध्वन आदिदश्वैर्विमोचनं कृणुते तत्त्वस्य ॥१२॥

पदार्थ—जो (**सूर्यः**) सूर्य्य के (**न**) तुल्य (**दिवेदिवे**) प्रतिदिन (**हर्यश्वप्रसूताः**) हरणशील किरणो वाले से उत्पन्न (**प्रविष्टाः**) सूचना से दिखाई गई (**दिशः**) दिशाओं को (**मिनाति**) अलग अलग करता है (**आत्**) अनन्तर (**यत्**) जो (**अश्वैः**) घोडो से (**अध्वन**) मार्गों का (**सम्**) (**आनट्**) व्याप्त होता तथा (**विमोचनम्**) त्याग (**कृणुते**) करता है (**तत्, इत्**) वही (**उ**) तो (**अस्य**) इसका भूषण है ऐसा जानना चाहिए ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो पुरुष अविद्या दुष्ट संस्कार और दुःखो को त्याग के जैसे सूर्य्य अन्धकार को दूर करता है वैसे अन्याय को दूर करके सम्पूर्ण दिशाओ मे यश को फैलाते हैं यही इनका कर्त्तव्य कर्म है ॥ १२ ॥

दिदृक्षन्त उषसो यामन्नक्तोर्विवस्वत्या महि चित्रमनीकम् ।

विश्वे जानन्ति महिना यदागादिन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ॥१३॥

पदार्थ—(**यत्**) जो (**विश्वे**) सम्पूर्ण मनुष्य (**विवस्वत्याः**) सूर्य मण्डल के निमित्त व्यवहारवाली (**उषसः**) प्रभात वेलाओं का (**अक्तोः**) रात्रि के (**यामन्**) मार्ग मे (**दिदृक्षन्त**) देखने की इच्छा करते हैं (**महिना**) महिमा से (**महि**) बडी (**चित्रम्**) अद्भुत (**अनीकम्**) सेना को (**जानन्ति**) जानते हैं (**इन्द्रस्य**) बिजुली के (**पुरूणि**) बहुत (**सुकृता**) उत्तम प्रकार किये गये (**कर्म**) कर्मों को देखने की इच्छा करते हैं उनका जो (**आ, अगात्**) प्राप्त हो वह सुखी होवे ॥ १३ ॥

भावार्थ—जो परीक्षक लोग प्रातःकाल उठके प्रयत्न से व्यवहारो को सिद्ध करते हैं वे इस संसार में ज्ञान विशेष से प्रतिष्ठा को प्राप्त और बल से युक्त होते हैं ॥ १३ ॥

महि ज्योतिर्निहितं वक्षणास्वामा पक्वं चरति बिभ्रती गौः ।

विश्वं स्वाद्म सम्भृतमुस्रियायां यत्सीमिन्द्रो अदधाद्भोजनाय ॥१४॥

पदार्थ—(**यत्**) जो (**गौः**) चलनेवाली (**वक्षणासु**) बहती हुई नदियो मे (**आमा**) कच्चे वा (**पक्वम्**) पके हुए को (**बिभ्रती**) धारण करती हुई (**चरति**) चलती है जो इस संसार मे (**महि**) बडा (**निहितम्**) स्थित (**ज्योतिः**) तेज वा (**उस्रियायाम्**) पृथिवी मे (**विश्वम्**) सम्पूर्ण (**स्वाद्म**) अतिस्वादु वाले (**सम्भृतम्**) उत्तम प्रकार, धारण वा पोषण किये हुए पदार्थ को प्राप्त होती है वह (**इन्द्र**) बिजुली (**भोजनाय**) पालन वा भोजन के लिए सबको (**सीम्**) सब ओर से (**अदधात्**) धारण करती है यह सब जनो को जानना चाहिए ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो बिजुली भूमि जल वायु और अन्तरिक्ष तथा उनके विकारो और पदार्थों मे व्यापक हो और सबको धारण कर पालन करती है उसकी शिक्षा को सब लोग धारण वा स्वीकार करे ॥ १४ ॥

इन्द्र दृह्य यामकोशा अभूवन्यज्ञाय शिक्ष गृणते सखिभ्यः ।

दुर्मायवो दुरेवा मर्त्यासो निषङ्गिणो रिपवो हन्त्वासः ॥१५॥३॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) विद्या और ऐश्वर्य के दाता ! जो (**यामकोशाः**) मार्गों के रोकने वाले (**अभूवन्**) होते हैं उन (**सखिभ्यः**) मित्रो तथा (**यज्ञाय**) सङ्गति जन्य विशेष ज्ञान और (**गृणते**) स्तुति करनेवाले के अर्थ आप (**शिक्ष**) विद्या दान कीजिए जो (**दुर्मायवः**) बुरे प्रकार फेंकने वा (**दुरेवाः**) दुष्ट कर्म को पहुँचाने वाले (**हन्त्वासः**) मारने के योग्य (**निषङ्गिणः**) बहुत विशेष शस्त्रो वाले (**रिपवः**) शत्रु (**मर्त्यासः**) मनुष्य हो उनका नाश करके (**दृह्य**) बढिए ॥१५॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि सर्वदा सब प्रकार श्रेष्ठ पुरुषो की रक्षा विद्या और शिक्षाका दान और दुष्ट आचरणवालो का नाश करके सदैव बढ़ें ॥१५॥

सं घोषः शृण्वेऽवमैरमित्रैर्जही न्येष्वशनिं तपिष्ठाम् ।

वृश्चेमधस्ताद्वि रुजा सहस्व जहि रक्षो मघवन्रन्धयस्व ॥१६॥

पदार्थ—हे (**मघवन्**) बहुत धनो से युक्त ! मैं (**अवमैः**) नीच (**अमित्रैः**) शत्रुओ जो (**घोषः**) घोर वाणी उसको (**सम्**) बहुत (**शृण्वे**) सुनता हू इससे उनको आप (**जहि**) मारिये और (**एषु**) इन शत्रुओ मे (**तपिष्ठाम्**) अतिशय तपते हुए (**अशनिम्**) वज्र का फेंक के इनको (**नि, वृश्च**) उत्तम प्रकार विनाश कीजिए और इनको (**अधस्तात्**) नीचे गिराके (**ईम्**) निरन्तर (**वि**) (**रुज**) रोगग्रस्त कीजिए और दुःख को (**सहस्व**) सहिये (**रक्षः**) दुष्ट स्वभाववाले प्राणी का (**जहि**) नाश कीजिए और पापी लोगो का (**रन्धयस्व**) ताडिये ॥ १६ ॥

भावार्थ—हे वीर पुरुषो ! जो वाणी शत्रुओ से उच्चारण की जाय उसको सुन उनके सम्मुख जा और उनके ऊपर शस्त्रो का प्रहार करके उन्हे छिन्न भिन्न करो, इससे ऐश्वर्य वाले होओ ॥ १६ ॥

उद्वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र वृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि ।

आ कीवतः सललूकं चकर्थ ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥१७॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) दुष्ट पुरुषो के नाशकर्त्ता ! आप (**उत्**) उत्तमता के साथ (**वृह**) सुख वृद्धि करो (**सहमूलम्**) जडसहित (**रक्षः**) बुरे आचार को (**वृश्च**) तोडो (**अस्य**) इसके ऊपर (**तपुषिम्**) प्रतापयुक्त (**हेतिम्**) वज्र को फेंक के इसके (**मध्यम्**) मध्य मे उत्पन्न हुए और (**अग्रम्**) अग्रभाग के (**प्रति**) प्रति (**शृणीहि**) नाश करो तथा (**ब्रह्मद्विषे**) ब्रह्म परमात्मा वा वेद के लिए वर्त्तमान (**सललूकम्**) अच्छी तरह लोभी (**कीवतः**) कितनो को (**आ**) (**चकर्थ**) सब प्रकार काटो ॥ १७ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि कभी भी धार्मिक पुरुषों के ऊपर शस्त्रों का प्रहार न करें और दुष्ट पुरुषो को शस्त्रो से मारे बिना न छोड़ें, ऐसा करने से सब प्रकार सुख की वृद्धि होवे ॥ १७ ॥

स्वस्तये वाजिभिश्च प्रणेतः सं यन्महीरिष आसत्सि पूर्वीः ।

रायो वन्तारो बृहतः स्यामास्मे अस्तु भग इन्द्र प्रजावान् ॥१८॥

पदार्थ—हे (**प्रणेतः**) सत्य और असत्य के निश्चयकारक (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त ! (**यत्**) जो आप (**वाजिभिः**) घोडो के सदृश वेगयुक्त अग्नि आदि पदार्थों तथा और साधनो से (**पूर्वीः**) पूर्व जनो से प्राप्त (**महीः**) बडी (**इषः**) इच्छाओ से (**सम्**) (**आसत्सि**) सब प्रकार वर्त्तमान हैं (**जो**) (**बृहतः**) बडे (**वन्तारः**) विभाग करनेवाले (**रायः**) धन हैं वे (**अस्मे**) हम लोगो के (**स्वस्तये**) सुख के लिए (**अस्तु**) होवें (**प्रजावान्**) बहुत प्रजाओ से युक्त (**भगः**) ऐश्वर्य और उनको प्राप्त होकर हम लोग सुखी (**स्याम**) होवें ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य लोग सुख के लिए बहुत से साधनो का एकत्र करते वे ऐश्वर्य को प्राप्त होके आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥

आ नो भर भगमिन्द्र द्युमन्तं नि ते देष्णस्य धीमहि प्ररेके ।

ऊर्व इव पप्रथे कामो अस्मे तमा पृण वसुपते वसूनाम् ॥१९॥

पदार्थ—हे (**वसूनाम्**) जनो के (**वसुपते**) धनपालक (**इन्द्र**) सुख के दाता ! जिस (**देष्णस्य**) देनेवाले (**ते**) आपके (**प्ररेके**) उत्तम शङ्कायुक्त व्यवहार मे हम लोग (**नि**) (**धीमहि**) धारण करें वह आप (**नः**) हम लोगो के लिए (**द्युमन्तम्**) उत्तम प्रकाशयुक्त (**भगम्**) सेवन करने योग्य ऐश्वर्य को (**आ**) सब प्रकार (**भर**) धारण करो और जो (**अस्मे**) हम लोगो के लिए (**कामः**) इच्छा (**ऊर्वइव**) इन्धन युक्त अग्नि के सदृश (**पप्रथे**) वृद्धि को प्राप्त होवे (**तम्**) उसको (**आ**) (**पृण**) पूर्ण करो ॥ १९ ॥

भावार्थ—वही मनुष्य यथार्थवक्ता है जिसका सर्वस्व दूसरे पुरुषादि के उपकार के लिए होता है, इस विषय मे कोई शङ्का नही है ॥ १९ ॥

इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च ।

स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥२०॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! आप (**गोभिः**) गौओ (**अश्वैः**) घोडो (**च**) और (**चन्द्रवता**) बहुत सुवर्ण आदि धन जिसमे हैं ऐसे (**राधसा**) धन से (**पप्रथः**) प्रसिद्ध करो (**इमम्**) प्रत्यक्ष भाव से वर्त्तमान इस (**कामम्**) अभिलाषा को पूर्ण करो जैसे (**स्वर्यवः**) अपने सुख की कामना करनेवाले (**वाहः**) स्तुतियो के धारणकर्त्ता (**कुशिकासः**) शब्द करते हुए (**विप्राः**) बुद्धिमान् लोग (**मतिभिः**) विचारशील मनुष्यो के साथ (**तुभ्यम्**) आपके तथा (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य के लिए उक्त अभिलाषा को (**अक्रन्**) करें उनको आप (**मन्दय**) आनन्दित कीजिए ॥२०॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो लोग आप लोगो को अभिलाषा पूर्ण करने से आनन्द देवें उनको आप लोग भी आनन्द देवें ॥ २० ॥

आ नो गोत्रा दर्दृहि गोपते गाः समस्मभ्यं सनयो यन्तु वाजाः ।

दिवक्षा असि वृषभ सत्यशुष्मोऽस्मभ्यं सु मघवन्बोधि गोदाः ॥२१॥

पदार्थ—हे (**वृषभ**) बलवान् (**मघवन्**) बहुत श्रेष्ठ धन से युक्त ! जिस से आप (**गोदाः**) वाणी आदि के दाता (**सत्यशुष्मः**) सत्य बल वाले (**असि**) हैं इससे (**अस्मभ्यम्**) हम लोगो के लिए (**सु**) (**बोधि**) आनन्ददायक हूजिये । हे (**गोपते**) भूमि के स्वामी ! जैसे (**अस्मभ्यम्**) हम लोगो के लिए (**सनयः**) संविभाग करने के योग्य (**दिवक्षाः**) विज्ञानरूप प्रकाश आदि से पूरित (**वाजाः**) विज्ञान और अन्न आदि के प्राप्त कराने वाले व्यवहार (**सम्**) (**यन्तु**) प्राप्त होवें वैसे ही आप (**नः**) हम लोगो के (**गोत्रा**) कुलो और (**गाः**) पृथिवियों को (**आ**) सब प्रकार (**दर्दृहि**) अत्यन्त वृद्धि कीजिए ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सत्य आचरण करने वाले विद्वान् लोग मनुष्यों के उपदेशकारक होवें तो उन जनो को कुछ भी सुख अप्राप्त और अरक्ष्य न होवे ॥ २१ ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।

शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥२२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिसको (**अस्मिन्**) इस संग्राम मे कि (**भरे**) जिस मे धनो का धारण करते और (**वाजसातौ**) धन आदि पदार्थों का विभाग करते हैं (**शुनम्**) ज्ञान से वृद्ध (**मघवानम्**) बहुत धन से युक्त (**नृतमम्**) अत्यन्त ही मनुष्यो मे उत्तम (**शृण्वन्तम्**) सम्पूर्ण अर्थी अर्थात् मुद्दई और प्रत्यर्थी अर्थात् मुद्दाले के न्याय करने के लिए वचनो के श्रोता (**उग्रम्**) तेजःस्वभाव वाले पुरुष को (**समत्सु**)

सखाओं में (वृधन्ति) घेरने वाली मेघों के सदृश शत्रुओं की सेनाओं के (घ्नन्तम्) नाशकर्त्ता और (धनानाम्) लक्ष्मियों के (सञ्जितम्) उत्तम प्रकार जीतने वा (इवम्) देनेवाले की हम लोग (हुवेम) प्रशंसा करें उसका आप लोग भी (ऊतये) रक्षा आदि के लिए आह्वान करें ॥ २२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! आप लोग शरीर और आत्मबल से बड़े असंख्य धन के देने और मनुष्यों में उत्तम शत्रुओं के जीतनेवाले धर्मिष्ठ पुरुष में नम्रस्वभाव और दुष्ट पुरुषों में तीव्रस्वभावयुक्त पालनकर्त्ता स्वामी को अपने ऊपर नियत करके निरन्तर सुख को प्राप्त हूजिए ॥ २२ ॥

इस सूक्त में इन्द्र और विद्वान् के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त में कहे अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तीसवाँ सूक्त और चौथा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ द्वाविंशत्यृचस्यैकत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्रः कुशिको वा ऋषिः। इन्द्रो देवता। १, १४, १६ विराट् पङ्क्तिः। ३, ६ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। २, ५, ९, १५, १७—२० निचृत्त्रिष्टुप्; ४, ७, ८, १०, १३, २१, २२ त्रिष्टुप्; ११, १२ स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब तृतीय मण्डल में बाईस ऋचावाले ३१ वें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके पहले मन्त्र में अग्नि के गुणों का विषय कहा है—

शासद्वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद्विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन्।

पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्त्सं शग्म्येन मनसा दधन्वे ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! (यत्र) जिस व्यवहार में (पिता) उत्पन्नकर्त्ता (वह्निः) वाहन करने अर्थात् व्यवहार में चलानेवाला (दुहितुः) कन्या के (सेकम्) सेचन को (ऋञ्जन्) सिद्ध करता हुआ (गात्) प्राप्त होवे उस व्यवहार में (विद्वान्) जानने योग्य व्यवहार का ज्ञाता (ऋतस्य) सत्य के (दीधितिम्) धारणकर्त्ता की (सपर्यन्) सेवा करता हुआ (दुहितुः) दूर में हितकारिणी कन्या के (नप्त्यम्) नाती में उत्पन्न हुए को (शासत्) शिक्षा देवे इससे (शग्म्येन) सुखों में वर्त्तमान (मनसा) अन्तःकरण से (सम्, दधन्वे) सम्यक् प्रसन्न होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे पिता के समीप में कन्या उत्पन्न होती है वैसे ही सूर्य्य से प्रातःकाल की वेला प्रकट होती है और जैसे पति अपनी स्त्री में गर्भ को धारण करता है वैसे कन्या के सदृश वर्त्तमान प्रातःकाल की वेला में सूर्य्य किरणरूप वीर्य्य को धारण करता है उससे दिवसरूप पुत्र उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

न जामये तान्वो रिक्थमारैक्चकार गर्भं सनितुर्निधानम्।

यदी मातरो जनयन्त वह्निमन्यः कर्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (जामये) जामाता के लिए (तान्वः) सूक्ष्म (रिक्थम्) धन को (न, आरैक्) नहीं देता जिसने (सनितुः) विभागकर्त्ता के (निधानम्) निरन्तर धारण करता है उस (गर्भम्) गर्भ को (चकार) किया (अन्यः) अन्य जन (वह्निम्) पहुँचानेवाले को जैसे वैसे (यदि) जो (अन्यः) अन्य (ऋन्धन्) सिद्ध करता हुआ (सुकृतोः) उत्तम कर्मकारियों का (कर्त्ता) कर्त्ता पुरुष है उसको (मातरः) आदर की करनेवाली (जनयन्त) उत्पन्न करती हैं ॥२॥

भावार्थ—जैसे माता सन्तानों को उत्पन्न कर उनकी वृद्धि करती है वैसे ही अग्नि को उत्पन्न करके उसकी वृद्धि करे और वैसे ही प्रत्येक स्त्री सन्तानों की वृद्धि करे ॥ २ ॥

अग्निर्जज्ञे जुह्वा रेजमानो महस्पुत्राँ अरुषस्य प्रयक्षे।

महान्गर्भो मह्या जातमेषां मही प्रवृद्धर्यश्वस्य यज्ञैः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे इन्धन और (जुह्वा) साधन और उपसाधनों से युक्त क्रिया से (अग्निः) अग्नि (जज्ञे) उत्पन्न होता है वैसे (रेजमानः) कम्पता हुआ (महान्) बड़े उत्तम गुणों से युक्त (गर्भः) स्तुति करने योग्य पदार्थ उत्पन्न होता है और (अरुषस्य) नहीं हिंसा करनेवाले के (महः) श्रेष्ठ (पुत्रान्) सन्तानों के (प्रयक्षे) अत्यन्त यजन अर्थात् सङ्गम करने को उत्पन्न होता है (प्रवृत्) प्रवृत्त होनेवाला (हर्यश्वस्य) जिसके हरणशील घोड़े उसके (यज्ञैः) योग्य कर्मों से (मही) श्रेष्ठ वाणी उत्पन्न होती है (एषाम्) इन सबों के (मह्या) बड़े (आ, जातम्) अच्छे प्रकार उत्पन्न कर्म को तुम जानो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जैसे शमीनामक काष्ठ के मध्य से अग्नि प्रकट होकर बड़े-बड़े कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे ही सुपात्र पुत्र सम्पूर्ण उत्तम कर्मों को करते हैं, इससे ब्रह्मचर्य्य आदि संस्कारों के ही द्वारा सन्तानों को श्रेष्ठ बनाना चाहिए ॥३॥

फिर सूर्यरूप अग्नि कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अभि जैत्रीरसचन्त स्पृधानं महि ज्योतिस्तमसो निरजानन्।

तं जानतीः प्रत्युदायन्नुषासः पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः ॥४॥

पदार्थ—जो (जैत्रीः) जीतनेवाले (अभि) सम्मुख (असचन्त) अनुसार चलते हैं (तमसः) अन्धकार के (महि) बड़े (ज्योतिः) प्रकाशरूप (स्पृधानम्) पदार्थों के साथ किरणों के सङ्घर्ष करनेवाले सूर्य को (निः) निरन्तर (अजानन्) जानें (तम्) उसको (जानतीः) जाननेवाली (उषासः) प्रातःकाल की वेलाओं के तुल्य (प्रति, उत्, आयन्) उद्योग कर वा प्राप्त हों जो (एकः) सहाय रहित (इन्द्रः) सूर्य्य (गवाम्) किरणों का (पतिः) स्वामी (अभवत्) होवे उसके अनुसार चलते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जैसे अन्धकार से ज्योति पृथक् होकर अन्धकार को दूर करती है वैसे ही अविद्या से पृथक् हुई विद्या अविद्या का नाश करती है और जैसे एक सूर्य्य सम्पूर्ण किरणों का एक साथ ही पालन करता है वैसे ही समभाव का आश्रय करके राजा प्रजाओं का पालन करे ॥ ४ ॥

अब विद्वान् के सङ्ग से क्या होता है, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

वीळौ सतीरभि धीरा अतृन्दन्प्राचाहिन्वन्मनसा सप्त विप्राः।

विश्वामविन्दन्पथ्यामृतस्य प्रजानन्नित्ता नमसा विवेश ॥५॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (धीराः) उत्तम विचारयुक्त (विप्राः) बुद्धिमान् लोग (प्राचा) प्राचीन (मनसा) अन्तःकरण से (सप्त) पाँच प्राण, बुद्धि और मन तथा (सतीः) वर्त्तमान प्रकृतियों को (अभि, अहिन्वन्) बढ़ाते हैं और मिथ्या का (अतृन्दन्) नाश करें तथा (ऋतस्य) सत्य के (वीळौ) प्रशंसनीय बल में (विश्वाम्) सम्पूर्ण (पथ्याम्) मर्य्यादा के योग्य क्रिया को (अविन्दन्) प्राप्त होते हैं वैसे आप (ता) उनको (नमसा) स्तुति से (प्रजानन्) जानते हुए (इत्) ही (आ, विवेश) शुभ कर्म में प्रवेश कीजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे युक्ति से सेवन किये हुए प्राण और अन्तःकरण दुःख के त्याग और सुख के लाभ के लिए समर्थ होते हैं वैसे ही विद्वानों के सङ्ग आदि कर्म दुःखों को निवृत्त कराके सुखों को उत्पन्न कराते हैं ॥५॥

कौन स्त्री सुख देनेवाली होती है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः।

अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥६॥

पदार्थ—हे बुद्धिमती स्त्रि ! (यदि) जो (सुपदी) उत्तम पादोंवाली आप (सरमा) चलनेवाले पदार्थों के नापने वाली हुई (अद्रेः) मेघ के (सध्र्यक्) एक साथ प्रकट (पूर्व्यम्) प्राचीन जनों से किये गये (महि) बड़े (पाथः) अन्न वा जल को (विदत्) प्राप्त होवें (रुग्णम्) रोगों से घिरे हुए को औषध से रोगरहित (कः) करती (अक्षराणाम्) अक्षरों के (अग्रम्) श्रेष्ठ (रवम्) शब्द को (अच्छ) उत्तम प्रकार (नयत्) प्राप्त करती है (प्रथमा) पहली (जानती) जानती हुई (गात्) प्राप्त होवे तो सम्पूर्ण सुख को प्राप्त होवे ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो स्त्री बिजुली के सदृश विद्याओं में व्याप्त संस्कार और उपस्कार अर्थात् उद्योग आदि कर्म्मों में चतुर उत्तम रीति से बोलने तथा नम्र स्वभाव रखनेवाली होवे वह वृष्टि के सदृश सुख देनेवाली होती है ॥ ६

फिर कौन पुरुष सुख देनेवाला होता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अगच्छदु विप्रतमः सखीयन्नसूदयत्सुकृते गर्भमद्रिः।

ससान मर्यो युवभिर्मखस्यन्नथाभवदङ्गिराः सद्यो अर्चन् ॥७॥

पदार्थ—जो (मर्यः) मनुष्य (युवभिः) युवावस्थापन्न पुरुषों के सहित वर्त्तमान (सखीयन्) मित्र को चाहता वा (मखस्यन्) आत्मसम्बन्धी यज्ञ करने की इच्छा करता हुआ (अथ) उसके अनन्तर (अङ्गिराः) शरीरों में रस के सदृश वर्त्तमान (सद्यः) शीघ्र (अर्चन्) सत्कार करता हुआ (विप्रतमः) अत्यन्त बुद्धिमान् पुरुष उस स्त्री के समीप (अगच्छत्) प्राप्त होवे वह पुरुष (अद्रिः) मेघ जैसे (गर्भम्) गर्भ को वैसे (सुकृते) उत्तम कर्म के करने में उद्यत (अभवत्) होवे तथा सत्यासत्य का (ससान) विभाग करता है (उ) और भी निकृष्ट कर्म का (असूदयत्) नाश करे ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो ब्रह्मचर्य्य से विद्या और उत्तम शिक्षा को ग्रहण करके युवा पुरुष अपने तुल्य कन्या के साथ सुहृद्भाव और प्रीति को प्राप्त होके उसको सत्कार करता हुआ विवाहे वह पुरुष जैसे मेघ से संसार सुख को प्राप्त होता है वैसे सुख को प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

फिर कौन सुखी होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सतःसतः प्रतिमानं पुरोभूर्विश्वा वेद जनिमा हन्ति शुष्णम्।

प्र णो दिवः पदवीर्गव्युरर्चन्सखा सखीँरमुञ्चन्निरवद्यात् ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो पुरुष (पुरोभूः) पहले से विद्यमान (सतःसतः) विद्यमान विद्यमान के (प्रतिमानम्) परिमाण के साधक को वा (विश्वा) सम्पूर्ण (जनिमा) उत्पन्न हुए पदार्थों को (वेद) जानता और (शुष्णम्) शोककारक दुःख को (हन्ति) नाश करता है वह (गव्युः) अपने को विद्या चाहनेवाला (नः) हम लोगों के (दिवः) प्रकाश की (पदवीः) प्रतिष्ठाओं को (प्र) प्राप्त करे (सखीन्) मित्रों का (अर्चन्) सत्कार करता हुआ (सखा) मित्र होकर (अवद्यात्) धर्मरहित आचरण से (निः) निरन्तर (अमुञ्चत्) पृथक् करे वह अत्यन्त सुख को प्राप्त हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—वे ही मनुष्य सुखी होते हैं जो कार्य्यकारणरूप सृष्टि को जान और सम्पूर्ण जनों के मित्र हो सम्पूर्ण जनों को पाप के आचरण से पृथक् करके धर्म के आचरण में प्रवृत्त करें, वे ही सत्य मित्र हैं ॥ ८ ॥

अब मोक्ष की इच्छा करनेवालों को क्या करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

नि गव्यता मनसा सेदुरर्कैः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।
इदं चिन्नु सदनं भूर्येषां येन मासाँ असिषासन्नृतेन ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**कृण्वानासः**) करते हुए जन (**गव्यता**) अपनी वाणी के सदृश (**मनसा**) अन्तःकरण से (**अर्कैः**) सत्कार करने योग्य विद्वानों के साथ (**अमृतत्वाय**) मोक्ष के होने के लिए (**गातुम्**) प्रशंसायुक्त भूमि को (**नि, सेदुः**) प्राप्त होवें तथा (**इदम्**) इस (**चित्**) भी (**भूरि**) बहुत (**सदनम्**) प्राप्त होने योग्य स्थान को प्राप्त होवें (**येन**) जिस (**ऋतेन**) सत्य आचरण से (**मासान्**) चैत्र आदि महीनों के (**असिषासन्**) विभाग करने की इच्छा करें उससे (**एषाम्**) इन पुरुषों का कल्याण (**नु**) शीघ्र होता है ॥९॥

भावार्थ—जो मनुष्य लोग मोक्ष की इच्छा करें तो विद्वानों का सङ्ग धर्म का अनुष्ठान और अधर्म का त्याग करके शीघ्र ही अन्तःकरण और आत्मा की शुद्धि करें ॥ ९ ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

संपश्यमाना अमदन्नभि स्वं पयः प्रत्नस्य रेतसो दुघानाः ।
वि रोदसी अतपद्घोष एषां जाते निःष्ठामदधुर्गोषु वीरान् ॥१०॥६॥

पदार्थ—जो लोग (**स्वम्**) अपने को (**संपश्यमानाः**) उत्तम प्रकार देखते और (**प्रत्नस्य**) प्राचीन (**रेतसः**) वीर्य के (**पयः**) दुग्ध को (**दुघानाः**) पूर्ण करते हुए (**अभि**) सम्मुख (**अमदन्**) आनन्द करते हैं (**एषाम्**) इन (**निःष्ठाम्**) उत्तम प्रकार स्थित विद्वानों की (**घोषः**) वाणी सूर्य्य जैसे (**रोदसी**) अन्तरिक्ष पृथिवी को वैसे दुष्ट पुरुषों को (**वि, अतपत्**) तपाती है वे पुरुष (**जाते**) उत्पन्न हुए इस संसार में (**गोषु**) पृथिवी आदिकों में (**वीरान्**) उत्तम गुणों से युक्त पुरुषों को (**अदधुः**) धारण किया करें ॥ १० ॥

भावार्थ—जो उत्तम विचार करनेवाले धार्मिक विद्वान् पुरुष अपने अनादि काल सिद्ध सामर्थ्य को बढ़ावें, सब लोगों के लिए सत्य और असत्य का उपदेश कर दुष्टता को दूर कर और श्रेष्ठता का धारण करें वे ही शूरवीर होते हैं यह जानना चाहिए ॥ १० ॥

स जातेभिर्वृत्रहा सेदु हव्यैरुदुस्रिया असृजदिन्द्रो अर्कैः ।
उरूच्यस्मै घृतवद्भरन्ती मधु स्वाद्म दुदुहे जेन्या गौः ॥११॥

पदार्थ—जो (**वृत्रहा**) मेघ के नाशकर्त्ता सूर्य्य के सदृश (**इन्द्रः**) अति श्रेष्ठ ऐश्वर्य का कारण (**उस्रियाः**) वाणियों को किरणों के सदृश (**उत्, असृजत्**) उत्पन्न करता है (**अर्कैः**) आदर करने योग्य मनुष्यों (**हव्यैः**) ग्रहण करने के योग्य पदार्थों और (**जातेभिः**) उत्पन्न हुए व्यवहारों के साथ पदार्थों को (**असृजत्**) उत्पन्न करता है (**स इत्**) वही सुख को प्राप्त होता है जो (**उरूची**) बहुतों का सत्कार करती (**घृतवत्**) घृत वा जल उत्तमता युक्त (**स्वाद्म**) स्वादिष्ठ (**मधु**) मीठे गुण से युक्त पदार्थ का (**भरन्ती**) धारण करती हुई (**जेन्या**) जीतने योग्य (**गौः**) पृथिवी (**अस्मै**) उस ऐश्वर्य के लिए (**दुदुहे**) दुही जाती है उसको वह पुरुष (**उ**) ही जाने ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य अपने प्रकाश से सम्पूर्ण उत्पन्न हुए सृष्टि के पदार्थों का प्रकाश करता है वैसे ही विद्वान् पुरुष विज्ञान से सम्पूर्ण पदार्थों को जानकर उसका सर्वत्र प्रकाश करें ॥ ११ ॥

पित्रे चिच्चक्रुः सदनं समस्मै महि त्विषीमत्सुकृतो वि हि ख्यन् ।
विष्कभ्नन्तः स्कम्भनेना जनित्री आसीना ऊर्ध्वं रभसं वि मिन्वन् ॥ १२ ॥

पदार्थ—जो (**सुकृतः**) उत्तम धर्म सम्बन्धी कर्म करने और (**विष्कभ्नन्तः**) विशेष करके धारण करनेवाले महत्तत्त्व अर्थात् बुद्धि आदि की (**जनित्री**) उत्पन्न करनेवाली प्रकृति के सदृश (**आसीनाः**) स्थिर (**स्कम्भनेन**) धारण करने से (**ऊर्ध्वम्**) ऊँचे (**रभसम्**) वेग को (**वि, मिन्वन्**) विशेष करके फेंकते और विद्या को (**वि, ख्यन्**) प्रकाश करते वा (**हि**) जिस कारण (**चित्**) ही (**अस्मै**) इस (**पित्रे**) पालन करने वाले के लिए (**त्विषीमत्**) बहुत कान्तियों से युक्त (**महि**) बड़े (**सदनम्**) स्थान को (**सम्, चक्रुः**) सम्पन्न करें वे कृतकृत्य विद्वान् होवें ॥ १२ ॥

भावार्थ—जैसे व्यापक प्रकृति के द्वारा महत्तत्त्व आदि का स्वरूप सम्पूर्ण जगत् को ईश्वर रचता है वैसे ही विद्वान् जन पिता के सदृश वर्त्तमान होकर सम्पूर्ण जनों के लिए सुख धारण करते और पदार्थविद्या का प्रत्यक्ष अभ्यास करके शिक्षा देते हैं ॥ १२ ॥

मही यदि धिषणा शिश्नथे धात्सद्योवृधं विभ्वं रोदस्योः ।
गिरो यस्मिन्ननवद्याः समीचीर्विश्वा इन्द्राय तविषीरनुत्ताः ॥१३॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो ! आप लोगों से (**यदि**) जो (**मही**) अत्यन्त सत्कार करने योग्य (**धिषणा**) प्रगल्भ अर्थात् नहीं रुकनेवाली वाणी (**रोदस्योः**) अन्तरिक्ष और पृथिवी के मध्य में (**सद्योवृधम्**) शीघ्र वृद्धिकारक (**विभ्वम्**) व्यापक को (**धात्**) धारण करती है तो इस अविद्या का (**शिश्नथे**) नाश करती है (**यस्मिन्**) जिसमें (**अनवद्याः**) निन्दारहित (**समीचीः**) सत्य को धारण करने वाली (**तविषीः**) बलयुक्त (**अनुत्ताः**) अनुकूलता से धारण की गई (**विश्वाः**) सम्पूर्ण (**गिरः**) वाणियां (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य के लिए समर्थ होवें वह व्यवहार सदा सेवन करने योग्य है ॥ १३ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग अनेक प्रकार की विद्याओं से युक्त वाणियों को धारण करके व्यापक परमात्मा के जानने की इच्छा करें वे बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होवें ॥१३॥

मह्या ते सख्यं वश्मि शक्तीरा वृत्रघ्ने नियुतो यन्ति पूर्वीः ।
महि स्तोत्रमव आगन्म सूरेरस्माकं सु मघवन्बोधि गोपाः ॥१४॥

पदार्थ—हे (**मघवन्**) अत्यन्त श्रेष्ठ धनयुक्त पुरुष ! मैं (**ते**) आप के (**महि**) अति आदर करने योग्य (**सख्यम्**) मित्रभाव की (**आ, वश्मि**) अच्छी कामना करता हूँ विद्वान् जन जिस (**वृत्रघ्ने**) मेघ के नाशकर्त्ता सूर्य्य के तुल्य वर्त्तमान आपके लिए (**पूर्वीः**) अनादि काल से सिद्ध (**नियुतः**) निश्चित (**शक्तीः**) सामर्थ्यों को (**आ, यन्ति**) प्राप्त होते हैं उस (**अस्माकम्**) हम लोगों के मध्य में वर्त्तमान (**सूरेः**) परमोत्तम विद्वान् आपके समीप से (**महि**) बड़े (**स्तोत्रम्**) स्तुति करने के योग्य (**अवः**) रक्षा आदि को हम लोग (**आ, अगन्म**) प्राप्त होवें । आप हम लोगों की (**गोपाः**) रक्षा करते हुए (**सु, बोधि**) जानिये ॥१४॥

भावार्थ—मनुष्य लोगों को चाहिए कि विद्वान् जनों के साथ मित्रता कर सामर्थ्य पूर्ण कर और न्याय से सम्पूर्ण जनों की रक्षा करके सूर्य के प्रकाश के सदृश संसार में विद्या के बोध का प्रकाश करें ॥१४॥

महि क्षेत्रं पुरु श्चन्द्रं विविद्वानादित्सखिभ्यश्चरथं समैरत् ।
इन्द्रो नृभिरजनद्दीद्यानः साकं सूर्य्यमुषसं गातुमग्निम् ॥१५॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**विविद्वान्**) ज्ञाता और (**दीद्यानः**) प्रकाशमान (**इन्द्रः**) बिजुली के सदृश सुख का वर्द्धक और दुःख का नाशक (**सखिभ्यः**) मित्रों के लिए (**इत्**) ही (**महि**) बड़ा (**पुरु**) बहुत (**चन्द्रम्**) सुवर्ण (**क्षेत्रम्**) पदार्थों का आधार (**चरथम्**) गमन वा विज्ञान को (**सम्, ऐरत्**) प्रेरणा करे (**आत्**) उसके अनन्तर (**नृभिः**) प्रधान जनों के (**साकम्**) साथ (**सूर्य्यम्**) सूर्य्य (**उषसम्**) प्रातःकाल (**गातुम्**) वाणी वा भूमि और (**अग्निम्**) अग्नि को (**अजनत्**) उत्पन्न करे उसका सदा सत्कार करो ॥१५॥

भावार्थ—जैसे विद्या से युक्त बिजुली सूर्य्य भूमि और अग्नि प्रातःकालादि समय में ऐश्वर्य को उत्पन्न कर मित्रों को सुख देते हैं वैसे ही विद्वान् लोग मनुष्य आदि प्राणियों को सुख देवें ॥१५॥

अपश्चिदेष विभ्वो३ दमूनाः प्र सध्रीचीरसृजद्विश्वश्चन्द्राः ।
मध्वः पुनानाः कविभिः पवित्रैर्द्युभिर्हिन्वन्त्यक्तुभिर्धनुत्रीः ॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो लोग (**कविभिः**) विद्वान् जनों के सहित (**पवित्रैः**) उत्तम व्यवहारों तथा (**द्युभिः**) दिनों और (**अक्तुभिः**) रात्रियों से (**मध्वः**) कोमल स्वभाववाले मनुष्यों को (**पुनानाः**) पवित्र करते हुए जन (**धनुत्रीः**) धन और धान्य आदिकों से युक्त (**हिन्वन्ति**) बढ़ाते वा बढ़ते हैं जो (**चित्**) भी (**एषः**) यह (**विभ्वः**) व्यापक (**दमूनाः**) जितेन्द्रिय मनयुक्त (**सध्रीचीः**) एक साथ मिले हुए (**विश्वश्चन्द्राः**) सम्पूर्ण सुवर्ण आदिकों से युक्त (**अपः**) जलों के सदृश व्याप्त विद्याओं को (**प्र, असृजत्**) उत्पन्न करता है उन और उसका सर्व जन सङ्गम करें ॥१६॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग बहुत ऐश्वर्यों के जनक पदार्थों को कार्यसिद्धि के लिए उपयोग में लाते तथा विद्वान् जनों के साथ शुद्ध आचरणों को करके सुख और ऐश्वर्य दिन रात्रि बढ़ाते वे भाग्यशाली हैं ॥१६॥

अनु कृष्णे वसुधिती जिहाते उभे सूर्यस्य मंहना यजत्रे ।
परि यत्ते महिमानं वृजध्यै सखाय इन्द्र काम्या ऋजिप्याः ॥१७॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त राजन् ! (**यत्**) जो (**ते**) आपके (**काम्याः**) कामना करने योग्य (**ऋजिप्याः**) सरल व्यवहारों के बढ़ाने (**सखायः**) मित्र हुए (**महिमानम्**) महिमा को (**अनु, कृष्णे**) खींची गयीं (**उभे**) दोनों (**यजत्रे**) परस्पर मिली हुई (**वसुधिती**) अन्तरिक्ष और पृथिवी (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**मंहना**) महत्त्व से (**वृजध्यै**) रोकने को (**परि, जिहाते**) प्राप्त होते हैं उनको बढ़ाते हैं वे आपसे सत्कार पाने योग्य हैं ॥१७॥

भावार्थ—जैसे सूर्य अपने प्रताप से भूमि और प्रकाश का आकर्षण करके धारण करता है और जैसे भूमि तथा प्रकाश सम्पूर्ण पदार्थों को धारण करते हैं वैसे उत्तम पुरुष को चाहिए कि महिमा को धारण और दुर्व्यसनों को त्याग करके मित्रों का सत्कार करें ॥१७॥

पतिर्भव वृत्रहन्त्सूनृतानां गिरां विश्वायुर्वृषभो वयोधाः ।

आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान्महीभिरूतिभिः सरण्यन् ॥१८॥

पदार्थ—हे (**वृत्रहन्**) मेघ के नाशकारक सूर्य्य के सदृश तेजधारी राजन् ! आप (**महान्**) प्रतिष्ठित (**विश्वायुः**) पूर्ण आयु से युक्त (**वृषभः**) सुखों की वृष्टि और (**वयोधाः**) जीवन के धारण करनेवाले (**शिवेभिः**) मङ्गलकारक (**सख्येभिः**) मित्रों के कर्मों से (**महीभिः**) बड़ी (**ऊतिभिः**) रक्षाओं आदि से युक्त (**सरण्यन्**) अपने चलन वा विज्ञान की इच्छा करते हुए (**सूनृतानाम्**) उत्तम सत्य से युक्त (**गिराम्**) वाणियों के (**पतिः**) पालनकर्त्ता (**भव**) हूजिये और (**नः**) हम लोगों को (**आ, गहि**) प्राप्त हूजिये ॥१८॥

भावार्थ—जो मनुष्य सत्य बोलने शत्रुता को त्यागने अपने प्राण के तुल्य सम्पूर्ण जनों के पालन करने और सूर्य के सदृश विद्या धर्म और नम्रता के प्रकाश करनेवाले विद्वान् स्वामी हों वे श्रेष्ठ होवें ॥१८॥

फिर राजा और प्रजा के विषय को कहते हैं—

तमङ्गिरस्वन्नमसा सपर्यन्नव्यं कृणोमि सन्यसे पुराजाम् ।

द्रुहो वि याहि बहुला अदेवीः स्वश्च नो मघवन्त्सातये धाः ॥१९॥

पदार्थ—हे (**अङ्गिरस्वत्**) विद्वानों के सहित विराजमान (**मघवन्**) श्रेष्ठ धनयुक्त राजन् ! (**पुराजाम्**) पहले उत्पन्न और (**नव्यम्**) नवीन के सदृश वर्तमान (**तम्**) प्रथम कहे हुए आपको मैं (**सन्यसे**) अलग अलग बटे हुए पदार्थों में प्रयत्न करते हुए के लिए (**नमसा**) सत्कारपूर्वक (**सपर्यन्**) सेवा करता हुआ (**कृणोमि**) प्रसिद्ध करता हूँ आप (**बहुलाः**) बहुत (**द्रुहः**) शत्रुतायुक्त (**अदेवीः**) विद्यारहित स्त्रियों को (**वि, याहि**) दूर कीजिये (**नः**) हम लोगों के (**सातये**) संविभाग के लिए (**स्वः, च**) सुख को भी (**धाः**) धारण कीजिये ॥१९॥

भावार्थ—प्रजारूप जनों को चाहिए कि न्याय विनय आदि शुभ गुणों से युक्त राजा आदि जनों का सदा ही सत्कार करें और राजा आदि पुरुषों को चाहिए कि प्रजाजनों का सदा पिता के तुल्य पालन करें और स्त्रियों को विद्यायुक्त करें इससे अनेक प्रकार की वृद्धि करें ॥१९॥

मिहः पावकाः प्रतता अभूवन्त्स्वस्ति नः पिपृहि पारमासाम् ।

इन्द्र त्वं रथिरः पाहि नो रिषो मक्षूमक्षू कृणुहि गोजितो नः ॥२०॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सूर्य्य के सदृश तेजस्वी राजन् ! (**रथिरः**) रथ आदि वस्तुओं से युक्त (**त्वम्**) आप (**नः**) हम लोगों की (**रिषः**) हिंसाकारक जन से (**पाहि**) रक्षा कीजिये (**नः**) हम लोगों को (**गोजितः**) पृथिवी के जीतनेवाले (**मक्षूमक्षू**) शीघ्र शीघ्र (**कृणुहि**) करिये (**आसाम्**) इन शत्रुओं की सेनाओं के (**पारम्**) पार पहुँचाइये जो (**मिहः**) सींचनेवाले (**प्रतताः**) विस्तारस्वरूप और गुणों से युक्त (**पावकाः**) पवित्र और दूसरों को पवित्र करनेवाले (**अभूवन्**) होते हैं उन लोगों से (**नः**) हम लोगों के (**स्वस्ति**) सुख को (**पिपृहि**) पूरा कीजिए ॥२०॥

भावार्थ—प्रजा और सेना के पुरुषों को चाहिए कि अपने प्रधान पुरुषों से इस प्रकार की याचना करें कि आप लोग हम लोगों से शत्रुओं को जीत जीतकर सुख उत्पन्न करो जैसे बिजुली आदि पदार्थ वृष्टि के द्वारा क्षुधा आदि दोष से दूर करके आनन्द देते हैं वैसे ही हिंसा करनेवाले प्राणियों से शीघ्र दूर कर और रक्षा करके निरन्तर आनन्द दीजिये ॥२०॥

अब कौन गुरु होने के योग्य हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अदेदिष्ट वृत्रहा गोपतिर्गा अन्तः कृष्णाँ अरुषैर्धामभिर्गात् ।

प्र सूनृता दिशमान ऋतेन दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ॥२१॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! जैसे (**वृत्रहा**) मेघ का नाशक सूर्य्य अपनी किरणों से संसार की रक्षा करता है और जैसे (**गोपतिः**) गौओं का पालनकर्त्ता (**गाः**) गौओं की रक्षा करता तथा (**अरुषैः**) लाल गुण विशिष्ट घोड़ों और (**धामभिः**) स्थान विशेषों के साथ (**कृष्णान्**) काले वर्णों को (**अन्तः**) मध्य में (**गात्**) प्राप्त होवे (**दुरः, च**) और द्वारों को (**अप, अवृणोत्**) खोले वैसे (**ऋतेन**) सत्य के सदृश जल के सहित (**विश्वाः**) सम्पूर्ण (**स्वाः**) अपनी (**सूनृताः**) सत्य आदि लक्षणों से युक्त वाणियों के (**प्र, दिशमानः**) अच्छे प्रकार उपदेशक (**अदेदिष्ट**) आप अत्यन्त उपदेश कीजिए ॥२१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग सूर्य्य, गौओं के पालक और पिता के सदृश सब की रक्षा करते हैं वे ही गुरुजन होने योग्य हैं ॥२१॥

अब कौन विजयी होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।

शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥२२॥८॥

पदार्थ—हे वीर पुरुषो ! जैसे हम लोग (**ऊतये**) रक्षा आदि के लिए (**वृत्राणि**) मेघों के अवयवों को सूर्य्य के समान (**अस्मिन्**) इस वर्त्तमान (**भरे**) पुष्ट करने के योग्य (**वाजसातौ**) अन्न आदि के विभागकारक संग्राम में (**धनानाम्**) धनों के (**संजितम्**) उत्तम प्रकार जीतनेवाले (**नृतमम्**) अति प्रधान (**समत्सु**) संग्रामों में (**घ्नन्तम्**) नाश करते और (**शृण्वन्तम्**) सुनते हुए (**उग्रम्**) तेजस्वी (**शुनम्**) वृद्धिकर्त्ता (**मघवानम्**) अत्यन्त धन से युक्त (**इन्द्रम्**) शत्रुओं के विदारनेवाले का (**हुवेम**) स्वीकार वा प्रशंसा करें वैसे इस पुरुष का आप लोग भी आह्वान करें ॥२२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । उन्हीं लोगों का निश्चय विजय होता है कि जिनके अत्यन्त धन बलयुक्त और सब वचनों के सुननेवाले श्रेष्ठ पुरुष जो कि संग्रामों में शत्रुओं के मारने जीतनेवाले हों ॥२२॥

इस मन्त्र में अग्नि, विद्वान्, राजा की सेना, मित्र, वाणी, उपदेशकर्त्ता और प्रजा के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह इकतीसवाँ सूक्त और आठवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तदशर्चस्य द्वात्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १—३, ७—१०, १७ त्रिष्टुप्; ११—१५ निचृत्त्रिष्टुप्; १६ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४, १० भुरिक् पङ्क्तिः । ५ निचृत् पङ्क्तिः । ६ विराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सत्रह ऋचावाले बत्तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके पहले मन्त्र में नित्य कर्म का विधान कहते हैं—

इन्द्र सोमं सोमपते पिबेमं माध्यन्दिनं सवनं चारु यत्ते ।

प्रप्रुथ्या शिप्रे मघवन्नृजीषिन्विमुच्या हरी इह मादयस्व ॥१॥

पदार्थ—हे (**मघवन्**) अत्यन्त श्रेष्ठ धनयुक्त (**सोमपते**) ऐश्वर्य्य के पालने और (**इन्द्र**) ऐश्वर्य्य की उत्पत्ति करनेवाले ! आप (**इमम्**) इस (**सोमम्**) ऐश्वर्यकारक सोम आदि ओषधि स्वरूप को (**पिब**) पीओ (**चारु**) सुन्दर भोजन करने के योग्य (**माध्यन्दिनम्**) बीच में होनेवाले (**सवनम्**) भोजन वा होम आदि को सिद्ध करो । हे (**ऋजीषिन्**) शुद्धिकर्त्ता ! (**ते**) आपके (**यत्**) जो (**शिप्रे**) मुख के अवयवों के सदृश ऐहिक और पारलौकिक व्यवहार हैं उनको (**प्रप्रुथ्या**) पूर्ण कर और दुर्व्यसनों को (**विमुच्य**) त्याग के (**हरी**) घोड़ों के सदृश धारण और खींचने का प्रयोग करके आप (**इह**) इस संसार में (**मादयस्व**) आनन्द दीजिये ॥१॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए प्रथम भोजन मध्य दिन के समीप में करें और अग्निहोत्र आदि व्यवहारों में भोजन के समय बलिवैश्वदेव को कर और दूषित वायु को निकाल के आनन्दित हों ॥१॥

कौन लोग श्रीमान् होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

गवाशिरं मन्थिनमिन्द्र शुक्रं पिबा सोमं ररिमा ते मदाय ।

ब्रह्मकृता मारुतेना गणेन सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व ॥२॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) दुःख के नाश करनेवाले ! हम लोग (**ते**) आपके (**मदाय**) आनन्द के अर्थ जिस (**गवाशिरम्**) किरणों वा इन्द्रियों से मिले हुए (**शुक्रम्**) शीघ्र सुख पवित्र करने वा (**मन्थिनम्**) मथने का स्वभाव रखने और (**सोमम्**) ऐश्वर्य्य के करनेवाले पान करने योग्य वस्तु को (**ररिम**) देवें उसका आप (**पिब**) पान करिये और (**ब्रह्मकृता**) धन वा अन्न को करनेवाले (**मारुतेन**) सुवर्ण आदि के सम्बन्धी (**गणेन**) गणना करने योग्य गिने हुए समूह से (**रुद्रैः**) प्राणों के सदृश मध्यम विद्वानों के साथ (**सजोषाः**) अपने तुल्य प्रीति वा सेवन करनेवाले (**तृपत्**) तृप्त होते हुए (**आ**) सब प्रकार (**वृषस्व**) वृषभ के तुल्य बलिष्ठ हूजिये ॥२॥

भावार्थ—जो मनुष्य अन्य जनों में अपने तुल्य वर्त्तमान होकर उन लोगों के साथ सुख का ग्रहण और सुवर्ण आदि धन की वृद्धि करके तृप्त हुए बलिष्ठ होते वे ही श्रीमान् होते हैं ॥२॥

फिर राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ये ते शुष्मं ये तविषीमवर्धन्नर्चन्त इन्द्र मरुतस्त ओजः ।

माध्यन्दिने सवने वज्रहस्त पिबा रुद्रेभिः सगणः सुशिप्र ॥३॥

पदार्थ—(**सुशिप्र**) सुन्दर ठोढ़ी और नासिका जिनकी (**वज्रहस्त**) वा वज्र आदि शस्त्र हाथों में जिनके वह हे (**इन्द्र**) दुष्ट पुरुषों के समूह नाशक ! (**ये**) जो आपका (**अर्चन्तः**) सत्कार करनेवाले (**मरुतः**) वायु के सदृश वीर पुरुष (**ते**) आपके समीप से (**शुष्मम्**) बल को (**अवर्धन्**) बढ़ावें (**ये**) वा जो लोग (**ते**) आपकी (**तविषीम्**) सेना और (**ओजः**) पराक्रम को बढ़ावें उन (**रुद्रेभिः**) दुष्टों को रुलानेवाले वीर पुरुषों के साथ (**सगणः**) समूह के सहित

वर्त्तमान आप (**माध्यन्दिने**) मध्य दिन में होनेवाले (**सवने**) प्रेरणा करने में सूर्य्य के सदृश सोमलतादि ओषधि का पान करो ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जो आपके मन्त्री लोग सेना, विजय, धन, राज्य, उत्तम शिक्षा, विद्या और धर्म को बढ़ावें उनका आप निरन्तर सत्कार कर उनके साथ राज्य के सुख का सदा भोग करो ॥३॥

फिर कौन लोग विद्वान् होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ते इन्न्वस्य मधुमद्विविप्र इन्द्रस्य शर्धो मरुतो य आसन् ।

येभिर्वृत्रस्येषितो विवेदामर्मणो मन्यमानस्य मर्म ॥४॥

पदार्थ—(**ये**) जो (**मरुतः**) पवनों के सदृश वेग और बल से युक्त पुरुष (**अस्य**) इस वर्त्तमान (**इन्द्रस्य**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त पुरुष के (**शर्धः**) बल को (**विविप्रे**) फेंकते हैं (**आसन्**) मुख में (**मधुमत्**) बहुत मधुर आदि गुणों से युक्त वस्तुओं से पूर्ण पदार्थ को (**इत्**) ही रखते हैं जो (**येभिः**) जिन्हों से (**इषितः**) प्रेरित हुआ (**वृत्रस्य**) मेघ के सदृश शत्रु वा (**अमर्मणः**) मर्म से रहित (**मर्म**) प्रहार करने में नाश होनेवाले स्थान को (**मन्यमानस्य**) जाननेवाले को (**विवेद**) जाने (**ते**) वे पूर्व कहे हुए और वह पुरुष (**नु**) निश्चय अपने वाञ्छित फल को प्राप्त होते हैं ॥४॥

भावार्थ—जो लोग धन आदि ऐश्वर्य्य से सबके सुख की वृद्धि और दुःखों का निवारण करके सब लोगों को प्रसन्न करते हैं उनको ही धार्मिक विद्वान् मानना चाहिए ॥४॥

फिर विद्वान् जन क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

मनुष्वदिन्द्र सवनं जुषाणः पिबा सोमं शश्वते वीर्याय ।

स आ ववृत्स्व हर्यश्व यज्ञैः सरण्युभिरपो अर्णा सिसर्षि ॥५॥९॥

पदार्थ—(**हर्यश्व**) हरणकर्त्ता वा हरे रङ्ग और व्यापन स्वभाववाले घोड़ों के समान अग्नि आदि पदार्थ जिन्हों ने जाने वह हे (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के दाता ! जिससे आप (**सरण्युभिः**) अपने शरण प्राप्त होने की इच्छायुक्त पुरुषों और (**यज्ञैः**) विद्वानों का सत्कार शिल्पक्रिया और विद्या आदि के दानरूप व्यवहारों से (**अर्णाः**) जलों को (**अपः**) अन्तरिक्ष के प्रति (**सिसर्षि**) पहुँचाते हैं इससे (**सः**) वह आप (**सवनम्**) ऐश्वर्य्य के (**जुषाणः**) सेवनेवाले (**शश्वते**) निरन्तर अनादि सिद्ध (**वीर्याय**) बल के लिए (**सोमम्**) शरीर और आत्मा के बल तथा विज्ञान के बढ़ानेवाले महौषधि आदि के रस को (**पिब**) पीओ और (**मनुष्वत्**) विचार करनेवाले विद्वान् पुरुष के तुल्य ऐश्वर्य्य का सेवनेवाले शरीर और आत्मा के बल और विज्ञान के बढ़ानेवाले महौषधि आदि के रस का पीजिये तथा (**आ, ववृत्स्व**) अच्छे प्रकार वर्त्ताव कीजिए ॥५॥

भावार्थ—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य विद्या उत्तम शिक्षायुक्त भोजन विहार सत्पुरुषों का सङ्ग और धर्म के सेवन करने से उत्तम आत्मा और परमात्मा के योग से उत्पन्न हुए बल को बढ़ाते हैं वे लोग सब प्रकार उन्नत होते हैं । जैसे सूर्य जल को अन्तरिक्ष के प्रति वायु के साथ ऊपर ले जाता है वैसे ही विद्वान् लोग सम्पूर्ण जनों को प्रतिष्ठा के साथ उन्नति पर पहुँचाते हैं ॥५॥

फिर राजपुरुष क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्वमपो यद्ध वृत्रं जघन्वाँ अत्याँइव प्रासृजः सर्तवाजौ ।

शयानमिन्द्र चरता वधेन वव्रिवांसं परि देवीरदेवम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) शत्रुओं के नाशक ! (**यत्**) जो (**त्वम्**) आपने जैसे (**अत्यानिव**) घोड़ों को सूर्य के समान (**अदेवम्**) विद्या प्रकाश से रहित अविद्वान् वा (**वृत्रम्**) दुष्ट को (**जघन्वान्**) नाश किया वा सूर्य (**चरता**) प्राप्त (**वधेन**) नाश से (**शयानम्**) सोते हुए से वर्त्तमान (**वव्रिवांसम्**) ढपे हुए को (**देवीः**) उत्तम किरणों और (**अपः**) जलों को (**ह**) निश्चय से उत्पन्न करता है उसी प्रकार से (**सर्त्तवै**) जानने योग्य (**आजौ**) युद्ध में (**परि**) चारों ओर से (**प्र, असृजः**) उत्पन्न करते हो वे आप हम लोगों में सत्कार पाने योग्य हैं ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा आदि वीर पुरुष जैसे सूर्य मेघ को वैसे संग्राम में सहाय शस्त्र अस्त्रों से शत्रुओं को जीतते हैं वे ही प्रतापयुक्त होते हैं ॥ ६ ॥

फिर कैसे ईश्वर की उपासना करनी चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यजाम इन्नमसा वृद्धमिन्द्रं बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।

यस्य प्रिये ममतुर्यज्ञियस्य न रोदसी महिमानं ममाते ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग (**यस्य**) जिस (**यज्ञियस्य**) पूजा अर्थात् प्रीति करने योग्य परमेश्वर के (**महिमानम्**) महत्तत्व को (**रोदसी**) अन्तरिक्ष और पृथिवी (**न**) नहीं (**ममाते**) नाप सकते और (**प्रिये**) प्रीति करानेवाले इस लोक और परलोक के सुखों से नहीं (**ममतुः**) नापे हैं (**इत्**) उसी (**युवानम्**) सम्पूर्ण संसार के संयोग और विभाग के करनेवाले (**अजरम्**) बुढ़ापे से रहित (**ऋष्वम्**) श्रेष्ठ (**बृहन्तम्**) बड़े (**वृद्धम्**) आयु को भोगे हुए वा विद्या से श्रेष्ठ (**इन्द्रम्**) परम ऐश्वर्य करनेवाले परमेश्वर की (**नमसा**) सत्कार से (**यजाम**) पूजा करते हैं उसकी तुम लोग भी पूजा करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जिस परमेश्वर की अपेक्षा कोई पदार्थ तुल्य वा अधिक नहीं जो सब से श्रेष्ठ व्यापक विनाशरहित और पूज्य है उसी परमात्मा की हम लोग निरन्तर उपासना करें ॥ ७ ॥

इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि व्रतानि देवा न मिनन्ति विश्वे ।

दाधार यः पृथिवीं द्यामुतेमां जजान सूर्यमुषसं सुदंसाः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यः**) जो (**सुदंसाः**) सुन्दर धर्म सम्बन्धी कर्मों से युक्त परमेश्वर (**इमाम्**) इस (**पृथिवीम्**) भूमि और (**द्याम्**) प्रकाशस्वरूप आदि लोक को तथा (**सूर्यम्**) सूर्य लोक को (**उत**) और भी (**उषसम्**) दिन को (**जजान**) उत्पन्न करता (**दाधार**) धारण करता वा पुष्ट करता है जिस (**इन्द्रस्य**) परमात्मा के (**विश्वे**) सम्पूर्ण (**देवाः**) पृथिवी आदि वा विद्वान् लोग (**व्रतानि**) सत्य विचारों को (**सुकृता**) उत्तम (**पुरूणि**) बहुत (**कर्म**) कामों को (**न**) नहीं (**मिनन्ति**) नाश करते हैं उसकी आप और हम लोग उपासना करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—परमेश्वर के पवित्र होने से सम्पूर्ण सामर्थ्ययुक्त सब के उत्पन्न वा धारणकर्त्ता परमेश्वर के स्वरूप परिमित सामर्थ्य वा कर्म को कोई भी नाश नहीं कर सकता है और जो लोग इस परमेश्वर की सत्य भावना से उपासना करते हैं वे भी पवित्र होकर सामर्थ्ययुक्त होते हैं ॥ ८ ॥

अद्रोघ सत्यं तव तन्महित्वं सद्यो यज्जातो अपिबो ह सोमम् ।

न द्याव इन्द्र तवसस्त ओजो नाहा न मासाः शरदो वरन्त ॥९॥

पदार्थ—हे (**अद्रोघ**) द्रोह से रहित (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य के दाता जगदीश्वर ! (**यत्**) जो (**सद्यः**) तत्काल (**जातः**) प्रकट हुआ सूर्य (**सोमम्**) सब जगत् से रस को (**अपिबः**) पीता खींचता है (**तत्**) वह जिन (**तव**) आपके (**सत्यम्**) सत्य (**महित्वम्**) महिमा का (**न**) नहीं उल्लङ्घन कर सकता है (**ते**) आपके (**तवसः**) बल के (**ओजः**) प्रभाव को न (**द्यावः**) प्रकाशस्वरूप लोक (**न**) न (**अहा**) दिन (**न**) न (**मासाः**) चैत्र आदि महीने और न (**शरदः**) वसन्त आदि ऋतुएँ (**वरन्त**) वारण करती हैं (**भवन्त ह**) उन्हीं आपकी हम लोग निरन्तर सेवा करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे परमेश्वर किसी से द्रोह नहीं करता है वैसे आप लोग भी हूजिये जिस परमेश्वर की सृष्टि में सूर्य्य आदि बड़े बड़े पदार्थ विद्यमान हैं और जिसके स्वरूप वा प्रभाव के अन्त को कोई भी नहीं प्राप्त होता है वही हम लोगों का इष्टदेव है ॥ ९ ॥

जिस प्रकार जन्म की सफलता हो, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्वं सद्यो अपिबो जात इन्द्र मदाय सोमं परमे व्योमन् ।

यद्ध द्यावापृथिवी आविवेशीरथाभवः पूर्व्यः कारुधायाः ॥१०॥१०॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव ! (**त्वम्**) आप (**परमे**) उत्तम (**व्योमन्**) आकाशवत् व्यापक आत्मज्ञान में (**सद्यः**) शीघ्र (**जातः**) प्रकट वा प्रसिद्ध हुए (**मदाय**) आनन्द के लिए (**सोमम्**) बल और बुद्धि के बढ़ाने वाले रस को (**अपिबः**) पीते हैं (**अथ**) इसके अनन्तर (**यत्**) जो (**पूर्व्यः**) पूर्व लोगों में श्रेष्ठ (**कारुधायाः**) शिल्पी जनों का धारणकर्त्ता (**अभवः**) हो वह आप (**ह**) निश्चय से (**द्यावापृथिवी**) प्रकाश और भूमि में (**आ**) सब ओर से (**आविवेशीः**) बारम्बार प्रवेश कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! ब्रह्मचर्य्य से शीघ्र विद्वान् और नियमित आहार विहार से रोगरहित होके परमात्मा की आराधना करते हुए सृष्टि और पदार्थविद्याओं में आप सब प्रवेश करें जिससे जन्म की सफलता हो ॥ १० ॥

फिर राजपुरुष क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अहन्नहिं परिशयानमर्ण ओजायमानं तुविजात तव्यान् ।

न ते महित्वमनु भूदध द्यौर्यदन्यया स्फिग्या३ क्षामवस्थाः ॥११॥

पदार्थ—हे (**तुविजात**) बहुत लोगों में प्रसिद्ध (**तव्यान्**) अत्यन्त बलयुक्त ! (**यत्**) जो आप जैसे (**द्यौः**) सूर्यप्रकाश (**ओजायमानम्**) बल को प्राप्त होते हुए (**परिशयानम्**) सब ओर से आकाश में सोते जैसे वर्त्तमान (**अहिम्**) मेघ को (**अहन्**) नाश करता है (**अर्णः**) जल को गिराता है और जैसे सूर्य्य का (**महित्वम्**) बड़ापन (**अनु, भूत्**) हो वा जैसे यह मेघ (**अध**) तदनन्तर (**अन्यया**) दूसरी (**स्फिग्या**) मध्य के अवयवरूप से (**क्षाम्**) पृथिवी को ढांपता है वैसे आप शत्रुओं को (**अवस्थाः**) घेर के वर्त्तमान हूजिये जिससे (**ते**) वे आप की महिमा को (**न**) नहीं काटें ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे राजपुरुषो ! जैसे सूर्य्य अन्तरिक्ष में वर्त्तमान बलवान् मेघ का नाश और भूमि में गिराकर उसके जल से प्राणियों का पोषण करता है वैसे ही धर्म्म में वर्त्तमान शत्रु का नाश करके उसके ऐश्वर्य से राज्य का पालन करो ॥११॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यज्ञो हि त इन्द्र वर्धनो भूदुत प्रियः सुतसोमो मियेधः ।

यज्ञेन यज्ञमव यज्ञियः सन्यज्ञस्ते वज्रमहिहत्य आवत् ॥१२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के प्राप्त करानेवाले (हि) जिससे कि (ते) आप का (अहिहत्ये) वर्षा का निमित्त (यज्ञः) पदार्थों का संयोग करना रूप व्यवहार (वर्द्धनः) उन्नतिकर्त्ता (सुतसोमः) ऐश्वर्य की उत्पत्तिकर्त्ता (मियेधः) दुःख का नाशकर्त्ता (उत) और भी (प्रियः) प्रीति की उत्पत्ति करनेवाला (भूत्) होता है जिन (ते) आपका (यज्ञः) पदार्थों का मेल करना रूप व्यवहार (वज्रम्) शस्त्र विशेष की (आवत्) रक्षा करे वह (यज्ञियः) यज्ञों में चतुर (सन्) हुए आप (यज्ञेन) सङ्गत कर्म से (यज्ञम्) सङ्गत व्यवहार की (अव) रक्षा करो ॥१२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग जो उत्तम क्रियाओं को बढ़ावें तो आप लोग रक्षित हुए अन्य जनों की भी रक्षा करने के योग्य होवें ॥ १२ ॥

अब कैसे मनुष्य सुख को प्राप्त हो सकते, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यज्ञेनेन्द्रमवसा चक्रे अर्वागैनं सुम्नाय नव्यसे ववृत्याम् ।

यः स्तोमेभिर्वावृधे पूर्व्येभिर्यो मध्यमेभिरुत नूतनेभिः ॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (यः) जो (पूर्व्येभिः) प्राचीनों में कुशल (मध्यमेभिः) बीच में हुए (उत) और भी (नूतनेभिः) नवीन (स्तोमेभिः) प्रशंसायुक्त कर्मों से (वावृधे) बढ़ता है (यः) जो (नव्यसे) नवीन (सुम्नाय) सुख के लिए (यज्ञेन) युक्त व्यवहार (अवसा) रक्षा आदि से (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य का (आचक्रे) अच्छा करता है (अर्वाक्) पीछे (एनम्) इसकी रक्षा करता है उसके समीप (आ) (ववृत्याम्) प्राप्त होऊँ वैसे आप लोग भी इस कर्म को करें ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य व्यतीत हुए व्यवहार के शेष मर्म को जानके मध्यम पुरुषों की रक्षा करने और नवीन प्रयत्न से वृद्धि को प्राप्त होते हैं वे लोग उससे अनन्तर नवीन नवीन सुख को प्राप्त होने योग्य होते हैं न कि अन्य आलस्य युक्त और मूर्ख पुरुष ॥ १३ ॥

विवेष यन्मा धिषणा जजान स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमह्नः ।

अंहसो यत्र पीपरद्यथा नो नावेव यान्तमुभये हवन्ते ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (धिषणा) वाणी (मा) मुझको (विवेष) व्याप्त होती और (जजान) उत्पन्न करती है उसकी मैं (स्तवै) प्रशंसा करूँ (अह्नः) दिन से (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (पुरा) प्रथम (पार्य्यात्) पार पहुँचावे वा (यत्र) जिस व्यवहार में (अंहसः) अपराध से मुझको (पीपरत्) पार लगावे वा (यथा) जिस प्रकार से (नः) हम लोगों के अर्थ (यान्तम्) जाते हुए को (उभये) दूर और समीप में वर्त्तमान लोग (नावेव) नौका के सदृश (हवन्ते) पुकारते हैं वैसे हम लोगों को सब लोग पुकारें ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि उस वाणी और बुद्धि को ग्रहण करें जो सब समय में दुष्ट आचरण से पृथक् रख के दुःख से नौका के सदृश पार उतारे ॥ १४ ॥

आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै ।

समु प्रिया आववृत्रन्मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥१५॥

पदार्थ—जो (सोमासः) ऐश्वर्य से युक्त (प्रियाः) कामना करने योग्य (मदाय) आनन्द के लिए (इन्द्रम्) सूर्य्य को (अभि) सम्मुख (आ) चारों ओर से (आववृत्रन्) घेरते हैं वे (उ, अस्य) इस संसार के मध्य में (पिबध्यै) पान करने के लिए (सेक्तेव) पूर्ण करने वाले के तुल्य (कोशम्) मेघ का (सम्, सिसिचे) सींचते हैं (स्वाहा) सत्य क्रिया से (आपूर्णः) चारों ओर से भरा हुआ (कलशः) घड़ा (प्रदक्षिणित्) दाहिनी ओर चलने वाला पूर्ण घड़े के तुल्य सुखकारक होता है ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो लोग धन आदि को प्राप्त होके औरों के लिए सुपात्र और उत्तम व्यवहार करनेवाले को जान के देते हैं वे लोग सींचने वाला घड़े को जैसे वैसे सम्पूर्ण जनों का पूर्ण सुखयुक्त करते हैं ॥ १५ ॥

न त्वा गभीरः पुरुहूत सिन्धुर्नाद्रयः परि षन्तो वरन्त ।

इत्था सखिभ्य इषितो यदिन्द्रा दृळ्हं चिदरुजो गव्यमूर्वम् ॥१६॥

पदार्थ—हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसा किये गये (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के दाता राजन् ! जिन (त्वा) आपको (गभीरः) गाम्भीर्य गुणों से युक्त (सिन्धुः) समुद्र (न) नहीं (परि) सब ओर से (वरन्त) वारण करते हैं (अद्रयः) मेघ वा पर्वत (सन्तः) वर्त्तमान होते हुए (न) नहीं सब ओर से वारण करते हैं (यत्) जो (दृळ्हम्) स्थिर (चित्) भी (गव्यम्) गौओं का (ऊर्वम्) शिरोस्थान का (आ, अरुजः) भङ्ग करते हो वह (सखिभ्यः) मित्रों के लिए (इषितः) प्रेरित हुए आप (इत्था) इस प्रकार किस जन से सत्कार नहीं करने योग्य होंवें ॥ १६ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् लोगो ! जैसे समुद्र और पर्वत सूर्य्य को निवारण नहीं कर सकते वैसे ही बहुत मित्रों वाले जन शत्रुओं से निवारण करने के शक्य नहीं होते हैं ॥ १६ ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।

शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥१७॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिए (समत्सु) संग्रामों में (घ्नन्तम्) नाश करनेवाले (उग्रम्) तेजस्वभावयुक्त (धनानाम्) द्रव्यों के (संजितम्) और उत्तम प्रकार शत्रुओं को जीतनेवाले (वृत्राणि) सुवर्ण आदि धनों को (शृण्वन्तम्) सुनते हुए को (अस्मिन्) इस (वाजसातौ) धन और अन्न आदि के विभाग करनेवाले (भरे) संग्राम में (नृतमम्) उत्तम गुणों से सर्वोत्तम (मघवानम्) परम धनवान् और (इन्द्रम्) दुष्ट जनों के नाशकर्त्ता को (हुवेम) पुकारें और उसके सङ्ग से (शुनम्) सुख को प्राप्त होवें वैसे इसकी स्तुति करके आप लोग भी इसको प्राप्त हों ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा आदि प्रधान पुरुष, राजविद्या में चतुर, योद्धा, न्यायाधीश पुरुषों, प्राड्विवाकों (वकीलों) और सेवक पुरुषों का सत्कार करके ग्रहण करें तो उन राजाओं का सर्वदा विजय यश कीर्त्ति और ऐश्वर्य होता है ॥ १७ ॥

इस मन्त्र में सोम मनुष्य ईश्वर और बिजुली के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह बत्तीसवाँ सूक्त और ग्यारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ त्रयोदशर्चस्य त्रयस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । नद्यो देवताः ।

१ भुरिक् पङ्क्तिः, ५ स्वराट् पङ्क्तिः, ७ पङ्क्तिश्छन्दः, पञ्चमः स्वरः ।

२, १० विराट् त्रिष्टुप् । ३, ८, ११, १२ त्रिष्टुप् । ४, ६,

९ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १३ उष्णिक् छन्दः ।

ऋषभः स्वरः ॥

अब तेरह ऋचा वाले तेंतीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके पहले मन्त्र में नदी के दृष्टान्त से स्त्री का वर्णन करते हैं—

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विषिते हासमाने ।

गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो पढ़ाने और उपदेश देनेवाली (मातरा) मान्य देनेवालियों सी कन्याओं की शिक्षा को (उशती) कामना करनेवाली (पर्वतानाम्) मेघों के (उपस्थात्) समीप से (अश्वेइव) घोड़े और घोड़ी के सदृश (विषिते) विद्या और शुभ गुणयुक्त कर्मों से व्याप्त वा घोड़े और घोड़ी के सदृश (हासमाने) परस्पर प्रेम करती (रिहाणे) प्रीति से एक दूसरे को सूँघती हुईं (शुभ्रे) उत्तम गुणों से युक्त (गावेव) गौ और बैल के सदृश (पयसा) जल से (विपाट्) कई प्रकार चलते वा काँपने वाली (शुतुद्री) शीघ्र दुःखदायक (प्र, जवेते) चलती हैं वैसे वर्त्तमान होवें उन अध्यापिका और उपदेशिका को कन्या और स्त्रियों के पढ़ाने और उपदेश करने में नियुक्त करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे पर्वतों के मध्य में वर्त्तमान नदियाँ घोड़ों के सदृश दौड़ती और गौओं के सदृश शब्द करती हैं वैसे ही प्रसन्न और उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त विद्या की उन्नति की कामना करने वाली स्त्रियाँ कन्याओं और स्त्रियों को निरन्तर शिक्षा देवें ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः ।

समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (इन्द्रेषिते) सूर्य्य से वृष्टि के द्वारा प्रेरित की गई (पिन्वमाने) सींचनेवाली (ऊर्मिभिः) तरङ्गों से (समुद्रम्) बहनेवाले जलों से युक्त मेघ वा सागर को (रथ्येव) रथों से चलने योग्य घोड़ों वा नदियों के सदृश (प्रसवम्) उत्तम ऐश्वर्य को (भिक्षमाणे) याचना करती हुईं (समाराणे) उत्तम प्रकार सब तरह दान देनेवाली (शुभ्रे) शोभायुक्त होकर पढ़ाने और उपदेश करने वाली स्त्रियाँ (अच्छ, याथ) अच्छे प्रकार जावें (अन्या) कोई एक स्त्री (अन्याम्) दूसरी स्त्री को (अपि, एति) प्रीति से मिलाती है वा हे पढ़ाने और उपदेश देने वालियो ! (वाम्) तुम दोनों के सम्बन्ध से जो स्त्रियाँ पढ़ने वा सुनने को प्राप्त हों वे स्त्रियाँ तुमको विद्या सम्बन्धी व्यवहार में नियुक्त करनी तथा पढ़ानी चाहिएँ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे जवान स्त्रियाँ जवान पतियों को प्राप्त होके गर्भोत्पत्ति की इच्छा करती हैं और नदियाँ समुद्र के प्रति जाती हैं और घोड़े मार्ग में रथ को ले चलते हैं वैसे ही पढ़ने और उपदेश देनेवालियों को चाहिए कि विद्या और उत्तम शिक्षा के दान से सम्पूर्ण स्त्रियों को उत्तम गुणकर्म स्वभावयुक्त करें ॥ २ ॥

अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म ।

वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु संचरन्ती ॥३॥

पदार्थ—जैसे (मातृतमाम्) अत्यन्त माता के सदृश पालन करने वाली

नदियां (सिन्धुम्) समुद्र के प्रति प्राप्त होती है वैसे ही हम (विपाशम्) बन्धन रहित (उर्वीम्) बड़ी (सुभगाम्) सौभाग्य से युक्त पढाने और उपदेश देनेवाली स्त्री को (अयाम) प्राप्त हों और जैसे (संरिहाणे) उत्तम प्रकार आस्वाद करने वाली स्त्रियां (समानम्) तुल्य (योनिम्) गृह को (अनु, सञ्चरन्ती) अनुकूलता से उत्तम प्रकार चलती और जानती हुई (मातरा) माता के सदृश वर्त्तमान (वत्समिव) जैसे गौ बछड़े को वैसे मुझको पढाने और शिक्षा देने के लिए प्राप्त होवें उनको मैं (अच्छ, अयासम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे समुद्र को नदियां और बछड़ो को गौवें और स्त्री पुरुष एक गृह को प्राप्त होते हैं वैसे ही पढाने और उपदेश देने वाली स्त्रियां हम लोगो को प्राप्त हों और हम लोग जो कन्या और सौभाग्य वाली स्त्रियां हो उनको प्राप्त हों ॥ ३ ॥

एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः ।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ॥४॥

पदार्थ—जो (एना) इस (पयसा) जल से (पिन्वमाना) सींचती हुई (देवकृतम्) विद्वानो से किये शास्त्र और (योनिम्) जल को (अनु, चरन्ती) अनुकूल प्राप्त होने वाली (नद्य) नदियां (वर्तवे) स्वीकार करने को (न) नहीं निवृत्त होती हैं उनको (वयम्) हम लोग प्राप्त होवें जो (सर्गतक्तः) उत्पत्ति मे प्रसन्न (प्रसवः) सन्तान (किंयुः) अपने को क्या इच्छा करने वाला (विप्रः) बुद्धिमान् पुरुष (जोहवीति) बारम्बार शब्द करता है वह हम लोगो को प्राप्त होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—जैसे जल सहित नदियां सब की उपकार करनेवाली होती और कभी जल से हीन नहीं होती हैं वैसे जो ब्रह्मचर्य से युक्त स्त्री और पुरुष का सन्तान उत्पन्न हो और धर्मसम्बन्धी ब्रह्मचर्य से सम्पूर्ण विद्याओ को प्राप्त होकर विद्वान् होता है वही सबका उपकार कर सकता है ॥ ४ ॥

रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः ।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः ॥५॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग जैसे (ऋतावरी.) बहुत जलो से युक्त नदी (सिन्धुम्) समुद्र को (उप) प्राप्त और स्थिर होती हैं वैसे ही (एवैः) प्राप्त करानेवाले गुणो से (मुहूर्तम्) दो दो घड़ी (मे) मेरे (सोम्याय) चन्द्रमा के तुल्य शान्ति गुणयुक्त (वचसे) वचन के लिए (रमध्वम्) क्रीडा करो वैसे ही (कुशिकस्य) विद्या के निचोड़ को प्राप्त हुए सज्जन के (सूनु) पुत्र के सदृश वर्त्तमान (अवस्यु.) अपने को रक्षा चाहने वाला मैं जो (बृहती) बड़ी (मनीषा) बुद्धि उसकी (अच्छ) उत्तम प्रकार (प्र, अह्वे) प्रशंसा करता हूं ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे नदियां समुद्र के सम्मुख जाती है वैसे ही मनुष्य लोग विद्या और धर्मसम्बन्धी व्यवहार को प्राप्त हो जिससे सुखपूर्वक समय व्यतीत होवे ॥ ५ ॥

अब सूर्य के दृष्टान्त से मनुष्य के कर्त्तव्य को कहते हैं—

इन्द्रो अस्माँ अरदद्वज्रबाहुरपाहन्वृत्रं परिधिं नदीनाम् ।
देवोऽनयत्सविता सुपाणिस्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः ॥६॥

पदार्थ—हे राजन् ! (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् ! आप जैसे (सविता) सूर्य (देव.) उत्तम गुण कर्म और स्वभावयुक्त (नदीनाम्) नदियो के (परिधिम्) चारों ओर वर्त्तमान (वृत्रम्) ढांपने वाले मेघ को (अप, अहन्) नाश करता है उसके अवयवो का (अरदत्) खादे और जल, भूमि को (अनयत्) प्राप्त करता वैसे (वज्रबाहु) शस्त्रधारी हो (अस्मान्) हम लोगो की रक्षा करके सेवको के सहित शत्रुओ का नाश करें जो (सुपाणिः) उत्तम हाथो से और उत्तम गुण कर्म स्वभाव से युक्त आप (उर्वीः) बहुत सुख की देनवाली प्रजाओ की रक्षा करें (तस्य) उसके (प्रसवे) ऐश्वर्य मे (वयम्) हम लोग आनन्द को (याम) प्राप्त होवें ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य भूमि आदि पदार्थों को आकर्षण से यथास्थान ठहरा और वृष्टि करके ऐश्वर्य को उत्पन्न करता है वैसे ही हम लोग उत्तम गुणो का आकर्षण और शत्रुओ को जीत करके राज्य की शोभा को प्राप्त करें ॥ ६ ॥

फिर मनुष्य क्या करे, इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं१ तदिन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत् ।
वि वज्रेण परिषदो जघानायन्नापोऽयनमिच्छमानाः ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो सूर्य्य (अहिम्) मेघ को (विवृश्चत्) काटता है (यत्) जो (इन्द्रस्य) सूर्य्य का (वीर्य्यम्) बलरूप (कर्म) कर्म है (तत्) वह (शश्वधा) निरन्तर हो (प्रवाच्यम्) कहने योग्य और जैसे (वज्रेण) किरण से विदीर्ण किये गये मेघ के (आपः) जल (अयनम्) भूमि स्थान को (आयन्) प्राप्त हुए मेघ को (जघान) नाश करता है वैसे ही (इच्छमानाः) इच्छा करते हुए जन (परिषद) जिनमे बैठें उन सभा को करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो धर्मसम्बन्धी काम करके दुष्ट पुरुषो के निवारण के लिए अपना पराक्रम दिखावे उसके उस कर्म की प्रशंसा सब काल मे करनी चाहिए। जो लोग सभा मे श्रेष्ठ होवें वे न्याय से सब लोगो की उन्नति करने की इच्छा करें ॥ ७ ॥

एतद्वचो जरितर्मापि मृष्ठा आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि ।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते ॥८॥

पदार्थ—हे (जरित) प्रशंसा करनेवाले ! आप (एतत्) इस (वचः) वचन को (मा) नहीं (अपि मृष्ठाः) सहो (ते) आपके (यत्) जो (उत्तरा) आगे के (युगानि) वर्ष (घोषान्) वाणी के प्रयोगों को प्राप्त होवें वह (उक्थेषु) प्रशंसा करने योग्य व्यवहारो मे (नः) हम लोगों को प्राप्त होवें। हे (कारो) हे कर्त्ता पुरुष ! उनसे (नः) हम लोगो की (प्रति, आ, जुषस्व) सेवा करो हम (पुरुषत्रा) पुरुषो का (मा, नि, कः) अपकार मत करो इससे (ते) आपके लिए (नमः) नमस्कार हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जितना भूतकाल गया उसमे व्यतीत हुए कर्मों के शेष करने योग्य कार्य्य को जान के वर्त्तमान और भविष्यत् काल मे जिस प्रकार उन्नति होके विघ्न निवृत्त होवें वैसे ही करो ॥ ८ ॥

ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन ।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधोअक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः ॥९॥

पदार्थ—(ओ) हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (कारवे) शिल्पीजन के लिए (स्वसार.) भगिनी के तुल्य वर्त्तमान अङ्गुलियो (स्रोत्याभिः) वा स्रोतों मे होनेवाली गतियो से (सिन्धवः) नदियो के समान (अधोअक्षा.) नीचे को प्राप्त होती हुई इन्द्रियो से युक्त (सुपारा) सुन्दर पालन आदि कर्म करनेवाले (सु, भवत) उत्तम प्रकार से हूजिए जो (अनसा) शकट और (रथेन) रथ से (दूरात्) दूर (वः) आप लोगो को (ययौ) प्राप्त होता है उसको (सु, शृणोत) उत्तम प्रकार सुनिये उसमे (नि) अत्यन्त (नमध्वम्) नम्र हूजिये ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग दूसरे-दूसरे मे प्रसन्न बहुत बातो को सुने हुए पुरुष, औरो से बनाये हुए शीघ्र चलनेवाले वाहनो को देख और वैसे ही बनाके जलाशयो के आर-पार जाते हुए नम्र होवें उनको जैसे स्रोता नदियो को वैसे ऐश्वर्य्य गुण प्राप्त होते हैं ॥९॥

आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन ।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते ॥१०॥१३॥

पदार्थ—हे (कारो) शिल्पविद्याओं मे चतुर ! (ते) आपके (वचांसि) विद्या के प्राप्त करानेवाले वचनो को (अनसा) शकट और (रथेन) रथ से (दूरात्) दूर से आके हम लोग (आ) सब प्रकार (शृणवाम) सुनें और जैसे आप हम लोगो को (ययाथ) प्राप्त होवे वैसे हम लोग आपको प्राप्त होवें जो आप (पीप्यानेव) विद्या से वृद्ध दो पुरुषो के सदृश (नि, नंसै) नमस्कार करें (ते) आपके लिए हम लोग भी नम्र होवें (योषा) स्त्री (मर्यायेव) जैसे पुरुष के लिए और (कन्या) कन्या (शश्वचै) प्रीति से मिलने के लिए वैसे (ते) आपके लिए हम लोग अभिलाषा करें ॥१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग दूर से आके विद्वानो के समीप मे अनेक प्रकार की विद्याओ को प्राप्त करके नम्र होते है वे विद्यावृद्ध होकर जैसे पतिव्रता स्त्री पति और कन्या अभीष्ट वर को वैसे विद्या को प्राप्त होके आनन्दित होते है ॥ १० ॥

यदङ्ग त्वा भरताः सन्तरेयुर्गव्यन्ग्राम इषित इन्द्रजूतः ।
अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम् ॥११॥

पदार्थ—हे (अङ्ग) मित्र ! (यत) जिस (त्वा) आपको (भरताः) सबको धारण वा पोषण करनेवाले (सन्तरेयुः) सतरें अर्थात् आपके स्वभाव से पार हो वह (ग्राम.) मनुष्यो के समूह के समान (इषितः) प्रेरणा को प्राप्त (इन्द्रजूत) बिजुली के सदृश प्रताप और (प्रसव.) अत्यन्त ऐश्वर्य्य युक्त (सर्गतक्त) जल के सकोच करनेवाले (गव्यन्) गौ के तुल्य आचरण करते हुए आप (अह) ग्रहण करने मे (अर्षात्) प्राप्त होवें वा हे विद्वानो ! जैसे मैं (यज्ञियानाम्) यज्ञ के सिद्ध करनेवाले (वः) आप लोगो की (सुमतिम्) उत्तम बुद्धि को (आ) सब प्रकार (वृणे) स्वीकार करता हूं वैसे आप लोग मेरी बुद्धि को स्वीकार करिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् लोग विद्या के पार जा अर्थात् सम्पूर्ण विद्याओ को पढ के बुद्धिमान् होते है वैसे और लोग भी हों। ऐसा करने पर सम्पूर्ण जन दुःख के पार जा अर्थात् दुःख को उल्लंघन करके सुखी होवें ॥ ११ ॥

अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम् ।
प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम् ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (गव्यवः) अपनी उत्तम शिक्षायुक्त वाणी की इच्छा करने तथा (भरताः) धारण और पोषण करनेवाले नौका आदि से (नदीनाम्) नदियो के सदृश वर्त्तमान पढी हुई स्त्रियो के ज्ञानप्रवाहों को (अतारिषुः) तरें, जैसे (सुराधाः) उत्तम धनयुक्त (विप्रः) बुद्धिमान् पुरुष (सुमतिम्) उत्तम बुद्धि को (सम्, अभक्त) अच्छे प्रकार सेवन करे और जैसे (वक्षणाः) बहती हुई नदियां और बहती हैं वैसे (इषयन्तीः) अन्न को सिद्ध करनेवाली स्त्रियों को (प्र, पिन्वध्वम्) सेवन करो, सबका (आ, पृणध्वम्) पालन करो और उत्तम गुणो को (शीभम्) शीघ्र (यात) प्राप्त होओ ॥ १२ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि नदी और समुद्र आदि जलाशयों को विद्वानों के सदृश पार होके शीघ्र सेवन करें ॥ १२ ॥

उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।

मादुष्कृतौ व्येनसाघ्न्यौ शूनमारताम् ॥१३॥१४॥

पदार्थ—हे स्त्रियो ! आप (**शम्याः**) कर्म मे उत्पन्न (**आपः**) जलो के सदृश दुःख को (**हन्तु**) दूर करें और (**वः**) आपका जो (**ऊर्मिः**) तरङ्ग के सदृश उत्साह उससे (**योक्त्राणि**) जोडनों को तुम (**मुञ्चत**) त्याग करो हे स्त्री और पुरुष ! तुम दोनों (**अदुष्कृतौ**) दुष्टाचरण से रहित हुए दुष्ट कर्म को (**मा**) नहीं प्राप्त होओ (**व्येनसा**) पाप का आचरण नष्ट होने से (**अघ्न्यौ**) नहीं मारने योग्य होते हुए पति और स्त्री दोनों (**शूनम्**) सुख को (**उत्**) उत्तम प्रकार (**आ, अरताम्**) प्राप्त होवें ॥ १३ ॥

भावार्थ—जो स्त्री और पुरुष दुःख के बन्धनों को काट और दुष्ट आचरण को त्याग के विद्या की उन्नति करें तो वे निरन्तर सुख को प्राप्त होवें ॥ १३ ॥

इस सूक्त में मेघ, नदी, विद्वान्, मित्र, शिल्पी, नौका आदि और स्त्री पुरुष का कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तेतीसवाँ सूक्त और चौदहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथैकादशर्चस्य चतुस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

१, २, ११ त्रिष्टुप्, ४, ५, ७, १० निचृत्त्रिष्टुप्; ९ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः ।

धैवतः स्वरः । ३, ६, ८ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः, पञ्चमः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचावाले चौतीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से सूर्य के गुणों का उपदेश करते है—

इन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् ।

ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद्रोदसी उभे ॥१॥

पदार्थ—हे राजपुरुष ! जैसे सूर्य (**उभे**) दोनो (**रोदसी**) अन्तरिक्ष और पृथिवी के तुल्य विद्या और विनय को (**आ, अपृणत्**) पूर्ण करे वैसे (**विदद्वसुः**) धनो से सम्पन्न (**ब्रह्मजूतः**) धनो को प्राप्त (**दासम्**) देने योग्य पर (**दयमानः**) कृपालु (**तन्वा**) शरीर से (**वावृधानः**) वृद्धि को प्राप्त होते हुए (**भूरिदात्रः**) अनेक प्रकार के दान देने (**पूर्भित्**) शत्रुओ के नगरो को ताडन और (**इन्द्रः**) अत्यन्त ऐश्वर्य के रखनेवाले आप (**अर्कैः**) आदर करने योग्य विचारो से (**शत्रून्**) शत्रुओ का (**वि, आ, अतिरत्**) उल्लङ्घन करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य अपने किरणों से भूमि और अन्तरिक्ष को पूर्ण करके अन्धकार को जीतता है वैसे ही श्रेष्ठ और ऐक्यमत युक्त विचारो से शत्रुओ को जीते तथा सब काल मे शरीर और आत्मा के बल को बढा और श्रेष्ठ पुरुषो का सत्कार करके दुष्ट जनो का अपमान करे ॥१॥

अब राजा प्रजा सम्बन्धी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन् ।

इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा ॥२॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले ! (**ते**) आपके (**मखस्य**) मल करने रूप व्यवहार और (**तविषस्य**) बल के (**जूतिम्**) वेग और (**अमृताय**) अविनाशी सुख के लिए (**वाचम्**) कही हुई सत्य वाणी को (**भूषन्**) शोभित करता हुआ मैं (**प्र, इयर्मि**) प्राप्त होता हूँ जिससे आप (**दैवीनाम्**) उत्तम गुणो से युक्त (**क्षितीनाम्**) अपने राज्य मे बसनेवाली (**मानुषीणाम्**) मनुष्यरूप (**विशाम्**) प्रजाओ को (**पूर्वयावा**) प्राचीन राजनीति को प्राप्त (**उत**) अथवा अपने ही से विद्या और विनय से युक्त हो इससे श्रेष्ठ पुरुषो से सत्कार करने योग्य (**असि**) हो ॥ २ ॥

भावार्थ—सम्पूर्ण प्रजा और राजजनों को चाहिए कि सब लोगो के स्वामी की आज्ञा का उल्लङ्घन न करें और सब लोगों के स्वामी को चाहिए कि धर्मयुक्त कर्मों से निरन्तर प्रजाओ का पालन करे ॥ २ ॥

फिर सूर्य के दृष्टान्त से राजधर्म विषय को अगले मन्त्रों मे कहते हैं—

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः ।

अहन्व्यंसमुशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम् ॥३॥

पदार्थ—हे राजन् ! जैसे सूर्य्य (**वृत्रम्**) मेघ को (**व्यंसम्**) कटे बाहु जिसके उस पुरुष के समान (**अहन्**) नाश करता है वैसे (**शर्धनीतिः**) सेना का नायक (**वर्पणीतिः**) रूप को प्राप्त करानेवाले (**इन्द्रः**) सूर्यवत् प्रतापी राजा आप (**मायिनाम्**) बुरी बुद्धि से युक्त पुरुषों की माया का (**प्र, अमिनात्**) नाश करें (**अवृणोत्**) और युद्ध करनेवालों का नाशकर्त्ता पुरुष (**वनेषु**) जङ्गलों में (**धेनाः**) वाणियों को (**उशधक्**) घेरे (**राम्याणाम्**) सुन्दरों की वाणियों को (**आविः**) प्रकट (**अकृणोत्**) करे ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य मेघ का नाश करता है वैसे ही दुष्ट आचरणवाले जनो का नाश और विद्या सम्बन्धी वाणियो का प्रचार करके सब लोगों को सेना और शिक्षा की वृद्धि करनी चाहिए ॥ ३ ॥

इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः ।

प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥४॥

पदार्थ—जो (**स्वर्षाः**) सुख के विभाग करने (**अभिष्टिः**) सम्मुख मेल करनेवाले (**इन्द्रः**) सूर्य्य के सदृश तेजस्वी (**पृतनाः**) वीर पुरुषो को सेनाओं और (**अहानि**) दिनो को सूर्य्य के सदृश (**जनयन्**) प्रकट करनेवाला पुरुष (**उशिग्भिः**) युद्ध की इच्छा रखते हुए वीरों के साथ शत्रुओं को (**जिगाय**) जीते (**बृहते**) बडे (**रणाय**) संग्राम के लिए (**अह्नाम्**) दिनों के (**ज्योतिः**) युद्ध की विद्या के प्रकाश को (**मनवे**) और मनन करनेवाले मनुष्य के लिए (**केतुम्**) बुद्धि को (**अविन्दत्**) प्राप्त होवे और संग्राम का (**प्र, अरोचयत्**) उत्तम प्रकार प्रकाश करे वही पुरुष विजय रूप आभूषण से शोभित होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा लोग सम्पूर्ण जनों से अधिक प्रयत्न युद्धविद्या मे करें वे उत्तम प्रकार प्रसन्नतायुक्त जो कि युद्ध के लिए पारितोषिक आदि से रुचि दिखाये गये वीर लोग उनके साथ शत्रुओ को जीत कर सूर्य्य के सदृश विजय के प्रकाश को प्रकट करें ॥ ४ ॥

कैसा मनुष्य राज्य में अधिकारी हो, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद्दधानो नर्या पुरूणि ।

अचेतयद्धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥५॥१५॥

पदार्थ—जो (**इन्द्र**) राजा (**आसाम्**) इन प्रजाओ की (**पुरूणि**) बहुत (**नर्या**) मनुष्यो के लिये हितकारिणी सेनाओ को (**नृवत्**) प्रधान पुरुष के सदृश (**दधानः**) धारण करनेवाला (**बर्हणाः**) वृद्धि को प्राप्त (**तुजः**) शत्रुओ के नाश करनेवाले बल आदि से युक्त सेनाओ को (**आ, विवेश**) प्राप्त होवें (**जरित्रे**) स्तुति करनेवाले के लिये (**इमाः**) इन वर्त्तमान मे पाई हुई (**धियः**) बुद्धियो को (**प्र, अचेतयत्**) बोध सहित करे वह पुरुष (**इमम्**) इस (**शुक्रम्**) शीघ्र कार्य्य करनेवाले (**वर्णम्**) स्वीकार के (**अतिरत्**) पार उतरे ॥ ५ ॥

भावार्थ—वही पुरुष राज्य मे प्रविष्ट हो सकता है कि जो बुद्धियुक्त धार्मिक पुरुषो को सब अधिकारो मे नियुक्त कर और सेना की उन्नति करके पिता के सदृश प्रजाओ का पालन कर सके ॥ ५ ॥

फिर राजा तथा प्रजाजनों के कर्त्तव्य विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।

वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥६॥

पदार्थ—जो (**अभिभूत्योजाः**) शत्रुपराजय करनेवाले बल से युक्त राजपुरुष (**वृजनेन**) बल और (**मायाभिः**) बुद्धियो से (**वृजिनान्**) पापी (**दस्यून्**) साहसी चोरो को (**सम्, पिपेष**) पीसे और जो (**अस्य**) इस (**महः**) श्रेष्ठ (**इन्द्रस्य**) सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त पुरुष के (**पुरूणि**) बहुत (**महानि**) बडे (**सुकृता**) उत्तम धर्म के योग से किये गये (**कर्म**) कार्य्यों की (**पनयन्ति**) प्रशसा करते हैं उनका ग्रहण करे वही पुरुष राजा का मन्त्री होने योग्य होवे ॥ ६ ॥

भावार्थ—जैसे राजा और प्रजाजनो को सब लोगो के स्वामी के धर्मयुक्त कर्म स्वीकार करने योग्य हैं वैसे ही सबके स्वामी राजा को चाहिये कि सब लोगो के उत्तम आचरणो का स्वीकार करे और अनिष्ट आचरणो का स्वीकार कोई न करे ॥ ६ ॥

फिर विद्वान् तथा राजपुरुष के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।

विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥७॥

पदार्थ—जो (**देवेभ्यः**) विद्वानो से शिक्षा पाके (**सत्पतिः**) श्रेष्ठ पुरुषों का पालन करने (**चर्षणिप्राः**) मनुष्यो को सत्य विद्या शिक्षा और उत्तम स्वभाव से पूर्ण करनेवाला (**इन्द्रः**) राज्य के ऐश्वर्य से युक्त (**मह्ना**) बडे (**युधा**) संग्राम से जिन कर्मों का (**वरिवः**) सेवन (**चकार**) करे उस (**अस्य**) इस राजपुरुष के (**तानि**) उन कर्मों को (**विवस्वतः**) सूर्य्य के (**सदने**) मण्डल में (**कवयः**) विद्यायुक्त (**विप्राः**) बुद्धिमान् लोग (**उक्थेभिः**) प्रशंसा के वचनो से (**गृणन्ति**) स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—उन्ही लोगो को विद्वान् और धार्मिक जानना चाहिए कि जो राजा आदिको की झूठी स्तुति को त्याग के धर्मसम्बन्धी कर्मों की प्रशंसा करते हैं और वे ही राजा होने के योग्य हैं कि जो धर्मयुक्त आचरणो को करते है ॥ ७ ॥

सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।

ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥८॥

पदार्थ—(**यः**) जो (**सत्रासाहम्**) सत्यो के सहनेवाले (**वरेण्यम्**) स्वीकार करने योग्य (**सहोदाम्**) बल के देने तथा (**ससवांसम्**) पाप और पुण्य का

विभाग करनेवाले (स्व.) सुख (च) और (दैवी.) उत्तम (अप) प्राणो को (इमाम्) प्रत्यक्ष वर्त्तमान इम (पृथिवीम्) अन्तरिक्ष वा पृथिवी (उत) और इम (धासुम्) बिजुली को (ससान) अलग-अलग करे उम (इन्द्रम्) तेजस्वी पुरुष को (धीरणासः) उत्तम बुद्धि और संग्राम से युक्त लोग (मदन्ति) आनन्दित करते हैं वह उनके (अनु) पीछे आनन्द को प्राप्त होवे ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो असत्य का त्याग और सत्य का ग्रहण करने बल को बढ़ाने और प्रजा के सुख की इच्छा करनेवाला पुरुष बिजुली और पृथिवी आदि के गुणो का विद्या से विभागकर्त्ता हो उसी परीक्षा करनेवाले जन को बुद्धिमान् वीर लोग प्राप्त होके आनन्द करते है और वे भी ऐसे ही पुरुष से आनन्द को प्राप्त हो सकते है ॥८॥

ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।

हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून्प्रार्यं वर्णमावत् ॥९॥

पदार्थ— वह (इन्द्र·) सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त राजा वा मन्त्रियो का समूह (अत्यान्) उत्तम शिक्षा से घोड़ो के (ससान) विभाग को और (सूर्यम्) सूर्य के सदृश प्रतापयुक्त वीर पुरुष को (ससान्) अलग करे (पुरुभोजसम्) बहुतो का पालन वा बहुतो का सही भोजन देनेवाले पुरुष की (गाम्) वाणी वा भूमि का (उत) और (हिरण्ययम्) सुवर्ण आदि पदार्थों का (ससान) विभाग करे (उत) और (भोगम्) उत्तम भोजन आदि के पदार्थों का (ससान) विभाग करे वह पुरुष (दस्यून्) साहस कर्म करनेवाले चार आदि का (हत्वी) नाश करके (आर्य्यम्) उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त धार्मिक (वर्णम्) स्वीकार करने योग्य पुरुष की (प्र, आवत्) रक्षा करे ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो लोग उत्तम प्रकार परीक्षा करके भले और बुरे घोड़े, वीर पुरुष, न्यायाधीश, लक्ष्मी और उत्तम भोग का विभाग कर सकें वे ही पुरुष दुष्ट पुरुषो का नाश कर श्रेष्ठ पुरुषो की रक्षा कर सकें ॥ ९ ॥

फिर राजादि जनों को क्या करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतींरसनोदन्तरिक्षम् ।

बिभेद वलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद्दमिताभिक्रतूनाम् ॥१०॥

पदार्थ—वह (इन्द्रः) ऐश्वर्य देनेवाला राजा (अहानि) दिनो दिन (ओषधी) सोम आदि ओषधियो को (असनोत्) देवे (वनस्पतीन्) पीपल आदि वनस्पतियों को (असनोत्) देवे (अन्तरिक्षम्) जल और (वलम्) बल का (बिभेद) भेदन करे (विवाच) अनेक प्रकार की वाणियो की (नुनुदे) प्रेरणा करे (अथ) और भी (अभिक्रतूनाम्) सहसा शीघ्र कर्म करनेवाले शत्रुओ का (दमिता) दमन करनेवाला (अभवत्) होवे ॥ १० ॥

भावार्थ—राजा आदि श्रेष्ठ जनो को चाहिये कि प्रतिदिन ओषधियो के रसादि उत्पन्न कर उनके रस का पान विद्या सम्बन्धी वाणी का प्रचार और सब जनो की बुद्धियो का अपनी बुद्धि से भी अधिकता के सहित दमन अर्थात विषयो से निवृत्ति करें जिससे आरोग्य और विद्याओ के प्रभाव प्रतिदिन बढ़ें ॥ १० ॥

मनुष्यों को कैसे राजा का सेवन करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।

शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥११॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस (शुनम्) सुख देने वाले (मघवानम्) बहुत धन से युक्त (अस्मिन्) इस वर्त्तमान (वाजसातौ) विज्ञान अविज्ञान सत्य और असत्य के विभागकारक (भरे) मूर्ख और विद्वान् के अज्ञान और ज्ञान के विषय के विरोध रूप युद्ध मे (नृतमम्) अत्यन्त सत्य और असत्य के निर्णय करने (इन्द्रम्) और दुष्ट जनो के नाश करनेवाले पुरुष की (ऊतये) रक्षा आदि के लिए (शृण्वन्तम्) अर्थी प्रत्यर्थी अर्थात् मुद्दई मुद्दाले के वचन सुनने के पीछे न्याय करने (उग्रम्) दुष्ट पुरुषो पर कठोर स्वभाव और श्रेष्ठ पुरुषो मे शान्त स्वभाव रखने (समत्सु) संग्रामो म (वृत्राणि) मेघो के अवयवो के सदृश शत्रुओ के सेनाओ के (घ्नन्तम) नाश करने और (धनानाम्) विज्ञान आदि पदार्थों के मध्य म (सञ्जितम्) उत्तम प्रकार श्रेष्ठता को प्राप्त होनेवाले राजा की (हुवेम) प्रशसा करे उसकी आप लोग भी प्रशसा करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग दुष्ट और श्रेष्ठ पुरुषो की परीक्षा करने, वादी और प्रतिवादी के वचनो को सुनके न्याय करने, पण्डित और मूर्ख जन का आदर और निरादर करने, पक्षपात स अलग रहने और सम्पूर्ण जनो के सुख देने वाले पुरुष को राजा मानके आनन्द करे ॥ ११ ॥

इस सूक्त मे सूर्य्य बिजुली वीर राज्य राजा की सेना और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चौतीसवां सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथैकादशर्चस्य पञ्चत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषि । इन्द्रो देवता । १, ७, १०, ११ त्रिष्टुप् । २, ३, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । ९ विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवत· स्वर. । ४ भुरिक् पङ्क्ति· । ५ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चम स्वर ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले पैंतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को कहते हैं—

तिष्ठा हरी रथ आ युज्यमाना याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छ ।

पिबास्यन्धो अभिसृष्टो अस्मे इन्द्र स्वाहा ररिमा ते मदाय ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त राजन् ! आप जिस (रथे) रथ मे (युज्यमाना) जुड़े हुए (हरी) घोड़ो के सदृश जल और अग्नि वर्त्तमान हैं उस रथ मे (आ) सब प्रकार (तिष्ठ) वर्त्तमान हूजिये इससे (वायुः) पवन के (न) तुल्य (नियुत) श्रेष्ठ पुरुषो के साथ मिले और दुष्ट पुरुषों से अमिले (न) हम लोगो को (अच्छ) अच्छे प्रकार (याहि) प्राप्त हूजिये और (अभिसृष्ट.) सम्मुख प्रेरित होता हुआ जन (ते) आप के लिये (अस्मे) हमारे निकट से (अन्धः) उत्तम प्रकार संस्कार किये हुए अन्न को (मदाय) आनन्द के अर्थ (ररिम) देवे उस का (स्वाहा) सत्य वाणी से (पिबसि) पान कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों से चलनेवाले रथ पर चढ़के अन्य अन्य देशो को वायु के सदृश जाते हैं वे बहुत भक्षण भोजन करने पीने और चूषने योग्य पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

उपाजिरा पुरुहूताय सप्ती हरी रथस्य धूर्ष्वा युनज्मि ।

द्रवद्यथा सम्भृतं विश्वतश्चिदुपेमं यज्ञमा वहात इन्द्रम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यथा) जैसे मैं जो (इमम्) इस प्रत्यक्ष (यज्ञम्) शिल्पविद्या से होने योग्य (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्यवान् काम को सब प्रकार चलाते (विश्वत) वा सब ओर से (द्रवत्) पिघलने को प्राप्त होते हुए (सम्भृतम्) उत्तम प्रकार धारण किये गये पदार्थ को (चित्) भी (उप) समीप मे (आ, वहात) वहाते उन (पुरुहूताय) बहुतो से बुलाये गये के लिये वर्त्तमान (अजिरा) वाहनो के फेंकने (सप्ती) शीघ्र चलने (हरी) और यान को ले जानेवाले का (रथस्य) वाहन की (धूर्षु) धुरियो मे जिन का (उप, आ, युनज्मि) जोड़ता हूँ उनको आप लोग भी जोड़िये ॥ २ ॥

भावार्थ—जो लोग वाहनो मे बिजुली आदि पदार्थों को संयुक्त करके चलाते है वे किस किस देश को न जा सकें ? और उनको कौनसा ऐश्वर्य्य है जो न प्राप्त होवे ? ॥ २ ॥

उपो नयस्व वृषणा तपुष्पोतेमव त्वं वृषभ स्वधावः ।

ग्रसेतामश्वा वि मुचेह शोणा दिवेदिवे सदृशीरद्धि धानाः ॥३॥

पदार्थ—हे (वृषभ) बलवान् ! (स्वधाव.) अत्यन्त अन्नयुक्त (त्वम्) आप (इह) इस वाहन म जो (तपुष्पा) तपते हुए पदार्थों को रखनेवाले (वृषणा) बल और (शोणा) लालरङ्ग युक्त (अश्वा) शीघ्रगामी अग्नि आदि इन्धनो का (ग्रसेताम्) भक्षण कर उनम कलाओ को (वि, मुच) छोड़ो (ईम्) जल को (उपो) उन के समीप म (नयस्व) पहुँचाओ (उत) और (दिवेदिवे) नित्य (सदृशी) तुल्य परिणाम वाले (धाना) अग्नि से संस्कार किये अन्न विशेषो को (अद्धि) भक्षण करो उनमे शोभा को (अव) पेश करो ॥ ३ ॥

भावार्थ— जो शिल्पी जन अग्नि जल आदि पदार्थों को उत्तम कलाओ से युक्त वाहनो मे संयुक्त करके चलाते हैं वे दारिद्र्य को छोड़ के धन और धान्य को प्राप्त होते है ॥ ३ ॥

ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू ।

स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन्प्रजानन्विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) शिल्पविद्यारूप ऐश्वर्य्य से युक्त पुरुष ! मैं (ते) आप के जिस वाहन म (ब्रह्मणा) अन्न आदि के सहित विद्यमान (ब्रह्मयुजा) धन के संग्रह कराने और (आशू) शीघ्र ले चलनेवाले (हरी) जल और अग्नि को (सखाया) मित्रो के तुल्य (सधमादे) बराबर के स्थान मे (युनज्मि) संयुक्त करता हूँ उस (सुखम) आकाशमार्गियो के लिये हित करनेवाले (स्थिरम्) दृढ़ (रथम्) वाहन (अधि, तिष्ठन्) पर स्थिर हो तो (विद्वान्) इस विद्या को अङ्ग और उपाङ्गो के सहित जानते और (प्रजानन्) उत्तम प्रकार ज्ञान को प्राप्त होते हुए आप (सोमम्) ऐश्वर्य्य को (उप, याहि) प्राप्त हूजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग अग्नि जल आदि पदार्थो से चलाये गये वाहन पर बैठ अच्छे प्रकार विद्या द्वारा उसको चलाते हुए देश-देशान्तरो मे जा-आ और ऐश्वर्य्य को पा मित्रो का सत्कार करें वे ही विद्या धर्म की वृद्धि कर सकें ॥ ४ ॥

मा ते हरी वृषणा वीतपृष्ठा नि रीरमन्यजमानासो अन्ये ।

अत्यायाहि शश्वतो वयन्तेऽरं सुतेभिः कृणवाम सोमैः ॥५॥१७॥

पदार्थ—हे प्रतापयुक्त पुरुष ! जो (अन्ये) इस मे और (यजमानासः) विद्या की सङ्गति जाननेवाले (ते) आप के (वीतपृष्ठा) चौड़ी पीठों से युक्त

(वृषभा) बलिष्ठ (हरी) वाहनों के ले चलने वालों को (मा) नहीं (नि, रीरमन्) रमावें उनको आप (अत्यायाहि) बड़े वेग से प्राप्त हूजिये वा छोड़िये और (शश्वतः) अनादि काल से सिद्ध विद्यायुक्त पुरुषों को प्राप्त हूजिये जिस (ते) आप के (सुतेभिः) उत्पन्न (सोमैः) ऐश्वर्यों से (अरम्) पूरे काम को (वयम्) हम लोग (कृणवाम) करें वह आप हमारे पूरे काम को करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो लोग अग्नि आदि पदार्थों की विद्या को जाने विना इस विद्या के जाननेवाले जनों का उत्साह नहीं बढ़ाते उनका उल्लङ्घन कर अनादि काल से सिद्ध विद्या के जाननेवाले विद्वानों के शरण जाके शिल्पविद्या से उत्पन्न कार्यों से पूर्ण मनोरथ वाले हम लोग होवें इस प्रकार इच्छा करके नित्य प्रयत्न करें ॥ ५ ॥

तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमं सुमना अस्य पाहि ।

अस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र ॥६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के इच्छा करनेवाले ! (तव) आप का जो (अयम्) यह (अर्वाङ्) अधोभाग में विद्यमान (सोमः) ऐश्वर्य्य का संयोग उस (शश्वत्तमम्) अत्यन्त अनादि काल से सिद्ध ऐश्वर्य्य संयोग को (त्वम्) आप (आ, इहि) प्राप्त हूजिये (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) अति उत्तम (यज्ञे) शिल्पविद्या से होने योग्य व्यवहार में (निषद्य) निरन्तर स्थिर होकर (सुमनाः) प्रसन्नचित्त हुए (इमम्) इस की (पाहि) रक्षा करो और (अस्य) इस ज्ञान की उत्तेजना से प्राप्त (इन्दुम्) गीले पदार्थ को (जठरे) उदर में (आ) सब प्रकार (दधिष्व) धारण कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! इस सब से उत्तम शिल्प विद्या से साध्य व्यवहार में चतुर होके अनादि काल से उत्पन्न और प्राचीन विद्वानों से प्राप्त ऐश्वर्य्य को सिद्ध कर इस संसार की रक्षा के लिये स्थित करके योग्य आहार और विहार से आनन्द भोगो ॥ ६ ॥

स्तीर्णं ते बर्हिः सुत इन्द्र सोमः कृता धाना अत्तवे ते हरिभ्याम् ।

तदोकसे पुरुशाकाय वृष्णे मरुत्वते तुभ्यं राता हवींषि ॥७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दरिद्रता के नाश करनेवाले ! (ते) आप का (स्तीर्णम्) ढपा और (बर्हिः) बढ़ा हुआ जल वा (सुतः) उत्पन्न किया गया (सोमः) ऐश्वर्य्य का संयोग वा (कृताः) सिद्ध किये गये (धानाः) पके हुए अन्न विशेष वा (हरिभ्याम्) घोड़ों से संयुक्त वाहन पर बैठे हुए जो (ते) आपके जन और (तदोकसे) वाहनरूप स्थानवाले (पुरुशाकाय) अनेक प्रकार की शक्ति से (वृष्णे) वृष्टि करानेवाले (मरुत्वते) कार्य्य करानेवाले बहुत मनुष्यों के सहित विराजमान (तुभ्यम्) आप के लिए (अत्तवे) भोजन करने को जो (हवींषि) भोजन करने के योग्य अन्न आदि (राता) वर्त्तमान उन को भोगो ॥ ७ ॥

भावार्थ—सम्पूर्ण जन उत्तम पदार्थों के भोजन करनेवाले हों और अन्याय से इकट्ठे किये हुए किसी भी पदार्थ का भोग न करें इस प्रकार वर्त्ताव करने पर धन, सामर्थ्य, विद्या और आयु बढ़ते हैं ॥ ७ ॥

इमं नरः पर्वतास्तुभ्यमापः समिन्द्र गोभिर्मधुमन्तमक्रन् ।

तस्यागत्या सुमना ऋष्व पाहि प्रजानन् विद्वान् पथ्या३ अनु स्वाः ॥८॥

पदार्थ—हे (ऋष्व) विद्या से पूर्ण (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य की प्राप्ति करानेवाले जो (नरः) प्रधान पुरुष (तुभ्यम्) आप के लिए (पर्वताः) मेघ और (आपः) जल के समान (गोभिः) पृथिवी आदि पदार्थों के सहित (इमम्) इस वर्त्तमान (मधुमन्तम्) मधुर आदि बहुत रसों से युक्त पदार्थ को (सम्, अक्रन्) अच्छे प्रकार करें उन का (पाहि) पालन करो (सुमनाः) और ईर्ष्या रहित मन वाले आप (प्रजानन्, विद्वान्) जानते और विद्वान् होते हुए (तस्य) उस काम की (स्वाः, पथ्याः) मार्ग से निज चालियों को (आगत्य) प्राप्त होकर सब का (अनु) पालन करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वृष्टियों से सब का पालन होता है वैसे ही विमान आदि वाहन बनानेवाले जन संसार में सब के रक्षा करने वाले होते हैं ॥ ८ ॥

याँ आभजो मरुत इन्द्र सोमे ये त्वामवर्धन्नभवन् गणस्ते ।

तेभिरेतं सजोषा वावशानो३ऽग्नेः पिब जिह्वया सोममिन्द्र ॥९॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य के देनेवाले ! आप ऐश्वर्य्य में (यान्) जिन विद्वानों को (मरुतः) प्राणों के सदृश प्रिय और श्रेष्ठ जान के (आ, अभजः) सेवन करो (ये) जो लोग (सोमे) ऐश्वर्य में (त्वाम्) आप की (अवर्धन्) वृद्धि करें जो (ते) आप का (गणः) समूह उस को प्राप्त होके आनन्दित (अभवन्) होवें (तेभिः) उन लोगों के साथ हे (इन्द्र) दुःख के नाश करनेवाले ! (सजोषाः) तुल्य प्रीति के सेवनकर्त्ता (वावशानः) अत्यन्त कामना करते हुए आप (अग्नेः) अग्नि की (जिह्वया) ज्वाला के सदृश वर्त्तमान गुण से (एतम्) इस (सोमम्) सोम रस का (पिब) पान करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो प्राण के सदृश प्रिय और श्रेष्ठ विद्वान् जनों की मनुष्य लोग सेवा करें तो इन मनुष्यों की वे विद्वान् लोग सब प्रकार वृद्धि करें और जैसे अग्नि ज्वाला से सम्पूर्ण रसों का पान करता है वैसे ही तीक्ष्ण क्षुधा के सहित वर्त्तमान पुरुष अन्न का भोजन करे और पान करने योग्य वस्तु का पान करे ॥ ९ ॥

इन्द्र पिब स्वधया चित्सुतस्याग्नेर्वा पाहि जिह्वया यजत्र ।

अध्वर्योर्वा प्रयतं शक्र हस्ताद्धोतुर्वा यज्ञं हविषो जुषस्व ॥१०॥

पदार्थ—हे (यजत्र) आदर करने योग्य (शक्र) शक्तिमान् (इन्द्र) ऐश्वर्य वाले ! आप (अग्नेः) अग्नि की (जिह्वया) ज्वाला के सदृश वर्त्तमान लपट से (वा) वा (स्वधया) अन्न से (चित्) भी (सुतस्य) सिद्ध हुए रस का (पिब) पान करिये (अध्वर्योः) आत्मसम्बन्धी यज्ञ की इच्छा करते हुए पुरुष के (वा) अथवा (प्रयतम्) प्रयत्न से सिद्ध (यज्ञम्) यज्ञ का (पाहि) पालन करो (होतुः) देनेवाले के (हस्तात्) हाथ और (हविषः) हवन की सामग्री से (वा) अथवा यज्ञ का (जुषस्व) सेवन करो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिन मनुष्यों से उत्तम प्रकार सिद्ध किये हुए अन्न का भोजन और रस का पान कर रोग रहित हों और विद्वानों के साथ मेल करके यज्ञ का सेवन किया जाय वे सदा सुखी होवें ॥ १० ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।

शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिए (समत्सु) संग्रामों में (वृत्राणि) हम लोगों के बल को घेरनेवाली शत्रु की सेनाओं को सूर्य्य के सदृश शत्रुओं के (घ्नन्तम्) नाशकारक (उग्रम्) तेजस्वी (शृण्वन्तम्) सत्पुरुष के वचनों के सुनने (धनानाम्) विद्या और सुवर्ण आदिकों के (संजितम्) उत्तम प्रकार जीतनेवाले (अस्मिन्) इस शिल्प व्यवहार (वाजसातौ) अन्नों के विभाग और (भरे) युद्ध में (नृतमम्) पुरुषोत्तम (शुनम्) सुखकारक (मघवानम्) बहुत धनयुक्त (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्यवाले जन को (हुवेम) प्रशंसा से पुकारें वैसे इस की आप लोग भी प्रशंसा करें ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिन लोगों का निष्फल कर्म नहीं है उनको सब की रक्षा के लिए आप लोग स्वीकार करें ॥११॥

इस सूक्त में अग्नि, आदि पदार्थों और घोड़े के दृष्टान्त से उपदेश करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह पैंतीसवां सूक्त और अठारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथैकादशर्चस्य षट्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—९, ११ विश्वामित्रः; १० घोर आङ्गिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ७, १०, ११ त्रिष्टुप्; २, ३, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप्; ९ विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ भुरिक् पङ्क्तिः; ५ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचावाले छत्तीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके पहले मन्त्र से मनुष्य किस प्रकार के आचरण से सुख को प्राप्त हों,

इस विषय को कहते हैं—

इमामू षु प्रभृतिं सातये धाः शश्वच्छश्वदूतिभिर्यादमानः ।

सुतेसुते वावृधे वर्धनेभिर्यः कर्मभिर्महद्भिः सुश्रुतो भूत् ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष ! (यः) जो विद्या की (यादमानः) याचना करते हुए आप (ऊतिभिः) रक्षण आदिकों से (सातये) संविभाग के लिए (इमाम्) इस (प्रभृतिम्) उत्तम धारणा और (शश्वच्छश्वत्) व्यापक व्यापक वस्तु को (सु) उत्तम प्रकार (धाः) धारण करें (वर्धनेभिः) वृद्धि के साधनों और (महद्भिः) बड़े (कर्मभिः) करनेवाले के अतीव चाहे हुए व्यवहारों से (सुतेसुते) उत्पन्न हुए पदार्थ में (वावृधे) बढ़ें (उ) वही (सुश्रुतः) उत्तम प्रकार श्रोता (भूत्) होवें ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य कार्य्य के विज्ञान का प्रारम्भ करके पर पर अर्थात् बड़े से छोटे उससे और छोटे उससे भी छोटे इत्यादि सूक्ष्म कारण पर्य्यन्त व्यापक परमाणु रूप पदार्थ को जानकर उपयोग करें कार्य में लावें वे इस संसार में अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होवें और जो लोग विद्वान् जनों से केवल विद्या की ही याचना करते हैं वे बहुश्रुत होते हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

इन्द्राय सोमाः प्रदिवो विदाना ऋभुर्येभिर्वृषपर्वा विहायाः ।

प्रयम्यमानान्प्रति षू गृभायेन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्णः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (वृषपर्वा) समर्थ पालनोंवाला (विहायाः) अनर्थों का नाशकारी (ऋभुः) बुद्धिमान् जन (येभिः) जिन लोगों से (प्रयम्यमानान्) अत्यन्त नियमयुक्तों को जानता है वैसे (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य के लिए (सोमाः) उत्पन्न करनेवाले वा उत्पन्न किये गये पदार्थ (प्रदिवः) प्रकाशित विद्यायुक्त

(विद्वासः) प्राप्त हुए हों इन को आप लोग जानिये हे (इन्द्र) ऐश्वर्य्य से युक्त पुरुष ! आप इन लोगों को (प्रति, सु, गृभाय) अच्छे प्रकार ग्रहण कीजिए और (वृषधूतस्य) सेचनों से मथे हुए (वृष्णः) बढ़ानेवाले रस का (पिब) पान कीजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! इस संसार में जैसे श्रेष्ठ यथार्थवक्ता पुरुष दुष्ट व्यवहार का त्याग और श्रेष्ठ आचरण का ग्रहण करके नियमित आहार विहार से रोगरहित और अधिक अवस्थावाले होते हैं वैसे ही आप लोग भी हूजिए ॥ २ ॥

पिबा वर्धस्व तव घा सुतास इन्द्र सोमासः प्रथमा उतेमे ।

यथापिबः पूर्व्याँ इन्द्र सोमाँ एवा पाहि पन्यो अद्या नवीयान् ॥३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाले ! (यथा) जैसे (पन्यः) स्तुति करने योग्य (नवीयान्) नवीन आप (अद्य) इस समय (पूर्व्यान्) पूर्व हुए जनों से उत्पन्न (सोमान्) श्रेष्ठ सोमलता रसरूप ऐश्वर्य आदि से युक्त पदार्थों का (अपिबः) पान करते हैं वैसे ही उन का (पाहि) पालन करो । हे (इन्द्र) तेजस्वी जन (तव) आप के जो (इमे) ये (प्रथमाः) पहले (सुतासः) उत्पन्न हुए (सोमासः) ऐश्वर्य करनेवाले पदार्थ (घ) ही हैं उनका पालन करो (उत) और उत्तम रसों का (पिब) पान करो उन से (एव) ही (वर्धस्व) वृद्धि को प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य उत्तम प्रकार संस्कार युक्त रसों का पान करें उनकी वृद्धि होवे और जो वृद्धि को प्राप्त होकर धर्म का आचरण करें वे सम्पूर्ण ऐश्वर्य को प्राप्त होवें ॥ ३ ॥

महाँ अमत्रो वृजने विरप्श्युग्रं शवः पत्यते धृष्ण्वोजः ।

नाह विव्याच पृथिवी चनैनं यत्सोमासो हर्यश्वममन्दन् ॥४॥

पदार्थ—जो (अमत्रः) ज्ञानी (विरप्शी) अनेक प्रकार के प्रसिद्ध उपदेशों से पूर्ण (महान्) श्रेष्ठ (वृजने) बल में (उग्रम्) कठिन दृढ़ (शवः) बल और (धृष्णु) प्रचण्ड (ओजः) पराक्रम (पत्यते) प्राप्त होता है (एनम्) इस को कोई पुरुष (चन) कुछ (न) नहीं (विव्याच) छलता है (अह) हा ! इसको (पृथिवी) भूमि प्राप्त होवे (यत्) जिस (हर्यश्वम्) ले चलनेवाले घोड़ों से युक्त जन को (सोमासः) ऐश्वर्य से युक्त पुरुष (अमन्दन्) प्रसन्न करें वह उन को निरन्तर प्रसन्न करे ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों में वही पुरुष श्रेष्ठ होता है जो शरीर आत्मा सेना मित्र बल आरोग्य धर्म और विद्या की वृद्धि करता है वह छल आदि दोषों का त्याग करके सब का उपकार करता है ॥ ४ ॥

महाँ उग्रो वावृधे वीर्याय समाचक्रे वृषभः काव्येन ।

इन्द्रो भगो वाजदा अस्य गावः प्र जायन्ते दक्षिणा अस्य पूर्वीः ॥५॥

पदार्थ—जो (वाजदाः) अन्न आदि का देनेवाला (भगः) सेवा करने योग्य (वृषभः) बलयुक्त (उग्रः) उत्तम भाग्योदय विशिष्ट (महान्) अति आदर करने योग्य महाशय (इन्द्रः) ऐश्वर्य्यवाला (काव्येन) बुद्धिमान् पुरुष के बनाये हुए शास्त्र से (वीर्याय) बल के लिए (वावृधे) बढ़ता और (समाचक्रे) संयुक्त करता है (अस्य) इस पुरुष की (गावः) गौवें और (अस्य) इस की (दक्षिणाः) दान कर्म (पूर्वीः) पूर्ण रूप से सिद्ध (प्र, जायन्ते) होते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो विद्यावान् पुरुष श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ सुपात्र कुपात्रों की उत्तम प्रकार परीक्षा करके सत्कार और अपकार यथायोग्य करता है उसी पुरुष के सम्पूर्ण पशु और आनन्द उपकार युक्त होते हैं ॥ ५ ॥

अब विद्वान् के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

प्र यत्सिन्धवः प्रसवं यथायन्नापः समुद्रं रथ्येव जग्मुः ।

अतश्चिदिन्द्रः सदसो वरीयान्यदीं सोमः पृणति दुग्धो अंशुः ॥६॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (सिन्धवः) नदियाँ (प्रसवम्) मेघ को वा (आपः) जल (समुद्रम्) अन्तरिक्ष को (आयन्) प्राप्त होते हैं वैसे (यत्) जो उत्तम गुणों को प्राप्त होवें वा (रथ्येव) रथों में जो उत्तम चाल उसके सदृश सब स्थानों में (प्र, जग्मुः) प्राप्त हुए उनके साथ (चित्) भी (यत्) जो (इन्द्रः) राजा (वरीयान्) श्रेष्ठ पुरुष होता हुआ (सदसः) सभाओं को प्राप्त होवे (अतः) इससे वह (दुग्धः) गुणों से पूर्ण (अंशुः) ओषधियों का सार भाग और (सोमः) ओषधियों का समूह (ईम्) जल को जैसे प्राप्त हो वैसे सम्पूर्ण प्राणियों को (पृणति) सुख देता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो मनुष्य वैर को त्याग के सम्पूर्ण प्राणियों के उपकार करने की इच्छा करें उनके प्रति जैसे नदियाँ समुद्र को और जल अन्तरिक्ष के सम्मुख को प्राप्त होते हैं वैसे सम्मुख जाते हैं, उनसे उत्तम शिक्षा को प्राप्त उत्तम प्रकार से सींचे गये ओषधियों के समूह के सदृश सम्पूर्ण प्राणियों के सुख देने को समर्थ होते हैं ॥ ६ ॥

अब राजा और प्रजा के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

समुद्रेण सिन्धवो यादमाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तः ।

अंशुं दुहन्ति हस्तिनो भरित्रैर्मध्वः पुनन्ति धारया पवित्रैः ॥७॥

पदार्थ—जो (समुद्रेण) सागर के साथ (सिन्धवः) नदियों जैसे वैसे विद्वानों के साथ मेल करके (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के लिए विद्या की (यादमानाः) याचना करने हुए (सुषुतम्) उत्तम प्रकार उत्पन्न (अंशुम्, सोमम्) पदार्थों के समूह को (भरन्तः) धारण और पुष्ट करते हुए (हस्तिनः) उत्तम हाथों से युक्त पुरुष (मध्वः) मधुर गुण सम्बन्धी (भरित्रैः) उत्तम शुद्ध (पवित्रैः) धारण और पोषण किये गए धनों के साथ (धारया) तीक्ष्ण धार से (पुनन्ति) पवित्र करते हैं वे काम को (दुहन्ति) पूर्ण करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सब ओर से जल आदि का ग्रहण कर नदियाँ वेग से समुद्र को प्राप्त हो रत्नवाली और शुद्ध जलयुक्त होती हैं वैसे ही ब्रह्मचर्य्य से विद्याओं को धारण करके तीक्ष्ण बुद्धि से पूर्ण ज्ञान वाले हो पवित्र हुए और परमेश्वर को प्राप्त होकर सिद्धियों से परिपूर्ण शुद्ध आनन्दी मनुष्य होते हैं ॥ ७ ॥

ह्रदाइव कुक्षयः सोमधानाः समी विव्याच सवना पुरूणि ।

अन्ना यदिन्द्रः प्रथमा व्याश वृत्रं जघन्वाँ अवृणीत सोमम् ॥८॥

पदार्थ—जिस पुरुष के (कुक्षयः) दोनों ओर के उदर के अवयव (सोमधानाः) सोमरूप ओषधियों के बीजों से युक्त (ह्रदाइव) गम्भीर जलाशयों के सदृश वर्त्तमान हैं (यत्) तथा जो (पुरूणि) बहुत (सवना) ओषधियों के उत्पन्न रसों से युक्त (प्रथमा) प्रसिद्ध (अन्ना) अन्न और (ईम्) जल को (सम्, विव्याच) छलता है वह (इन्द्रः) सूर्य्य के समान महाप्रकाशमान (वृत्रम्) मेघ के (जघन्वान्) नाश करनेवाले सूर्य्य के समान (सोमम्) ओषधियों के समूह का (अवृणीत) स्वीकार करता तथा स्वादयुक्त पदार्थों का (वि, आश) स्वीकार करता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो पुरुष गम्भीर अभिप्राय से युक्त सूर्य्य के सदृश प्रतापी ऐश्वर्य्य के धारण करनेवाले अपने और दूसरों के दोषों को नाश करके ऐश्वर्य्य को स्वीकार करते हैं वे ही प्रसन्नात्मा होते हैं ॥ ८ ॥

आ तू भर माकिरेतत्परि ष्ठाद्विद्मा हि त्वा वसुपतिं वसूनाम् ।

इन्द्र यत्ते माहिनं दत्रमस्त्यस्मभ्यं तद्धर्यश्व प्र यन्धि ॥९॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के देनेवाले (यत्) जो (ते) आपका (माहिनम्) अति श्रेष्ठ (दत्रम्) दान (अस्ति) है (तत्) उसे (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए आप (प्र, यन्धि) अच्छे प्रकार दीजिए और हे (हर्यश्व) वेगयुक्त घोड़ोंवाले ! आप (एतत्) इसको (माकिः) न (परि, ष्ठात्) सब ओर से रोकिए (हि) जिससे कि (वसूनाम्) धनों के (वसुपतिम्) स्वामी (त्वा) आपको हम लोग (विद्म) जानें इससे (तु) शीघ्र फिर आप इस सबको (आ) सब ओर से (भर) धारण करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—विद्वान् जनों को चाहिए कि सम्पूर्ण जनों के प्रति ऐसा उपदेश देवें कि आप लोग दोषों को त्याग गुणों को धारण और धन और ऐश्वर्य्य को प्राप्त होके अन्य सुपात्र पुरुषों के लिए देवें ॥ ९ ॥

अस्मे प्र यन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः ।

अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥१०॥

पदार्थ—हे (शिप्रिन्) सुन्दर नासिका और ठोढ़ीवाले (इन्द्र) सुख के दाता ! आप (अस्मे) हम लोगों के लिए (शश्वतः) निरन्तर वर्त्तमान (वीरान्) पराक्रमी मनुष्यों को धारण करो हे (मघवन्) बहुत सत्कारयुक्त धन से परिपूर्ण (ऋजीषिन्) सरल स्वभाववाले (इन्द्र) सूर्य के सदृश प्रतापी ! आप (अस्मे) हम लोगों का (विश्ववारस्य) सम्पूर्ण सुख स्वीकार किया जाता है जिससे उस (भूरेः) अनेक प्रकार (रायः) धन के भाग को (प्र, यन्धि) दीजिए (अस्मे) हम लोगों को (जीवसे) जीवने के लिए (शतम्, शरदः) सौ वर्षों को (धाः) धारण कीजिए ॥ १० ॥

भावार्थ—वे ही उत्तम स्वभाववाले यथार्थवक्ता विद्वान् लोग हैं कि लक्ष्मी का विभाग करके अर्थात् अन्य जनों को बाँट के फिर आप भोजन करते हैं और मनुष्यों को ब्रह्मचर्य्य के उपदेश से सौ वर्ष की अवस्थावाले करके सम्पूर्ण कर्मों में उत्साही भयरहित और पुरुषार्थी करते हैं ॥ १० ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।

शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥११॥२०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (अस्मिन्) इस (वाजसातौ) अन्न आदि का विभाग जिसमें ऐसे (भरे) पालन में (शुनम्) सब प्राणियों के सुखकारक (मघवानम्) बहुत विद्या और धनयुक्त (नृतमम्) अतिशय पुरुषों में अग्रणी (ऊतये) रक्षा आदि के लिए (शृण्वन्तम्) सकल शास्त्र सुनने वाले (उग्रम्) तेजधारी (समत्सु) संग्रामों में (वृत्राणि) मेघों के अवयवों को जैसे सूर्य वैसे शत्रुओं को (सञ्जितम्) उत्तम प्रकार जीतनेवाले (इन्द्रम्) दुष्टजनों के नाशकर्त्ता राजा को (हुवेम) स्वीकार करें वैसे इसका आप लोग भी स्वीकार करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सम्पूर्ण विद्याविशिष्ट शुभ गुणी सब को सुख देने वाला प्रजाओं के पालन में तत्पर शत्रुओं के नाश करने में उद्यत धर्मी और पुरुषों में श्रेष्ठ पुरुष हो उसके लिए राज्य में अधिकार है और उसकी आज्ञा में वर्त्तमान होकर सब लोग अखण्ड सुख भोग करो ॥ ११ ॥

इस सूक्त में इन्द्र विद्वान् राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह छत्तीसवां सूक्त और बीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथैकादशर्चस्य सप्तत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ३, ७ निचृद्गायत्री । २, ४—६, ८—१० गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । ११ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले सैंतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में राजा के गुणों को कहते हैं—

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सेना के अधीश ! जैसे हम लोग (वार्त्रहत्याय) मेघ के नाश करने के लिए जो बल उसके लिए सूर्य के समान (पृतनाषाह्याय) संग्राम के सहने वाले (शवसे) बल के लिए (त्वा) आपका (वर्तयामसि) आश्रय करते हैं वैसे आप (च) भी हम लोगों को इस बल के लिये वर्तो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । युद्ध करने की विद्या के शिक्षकों को चाहिए कि सेनाओ के अध्यक्ष और नौकरों को उत्तम प्रकार शिक्षा देवें जिससे निश्चय विजय होवे ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो । इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥२॥

पदार्थ—हे (शतक्रतो) असंख्य बुद्धि युक्त (इन्द्र) दुष्ट पुरुषो के नाश करनेवाले ! जैसे (वाघतः) वाणी से दोषों के नाश करनेवाले बुद्धिमान् लोग (ते) आप के (अर्वाचीनम्) इस समय उत्तम शिक्षायुक्त (मनः) अन्तःकरण (उत) और (चक्षुः) नेत्र आदि इन्द्रिय को उत्तम गुणो से युक्त (सु, कृण्वन्तु) सिद्ध करें वैसे ही आप आचरण करें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । राजा आदि जन सदा यथार्थवक्ता पुरुष की शिक्षा मे वर्त्तमान होके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करें ॥ २ ॥

नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे । इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥३॥

पदार्थ—हे (शतक्रतो) बहुत बुद्धिमान् (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के कारण से राजन् ! जैसे हम लोग (विश्वाभिः) सम्पूर्ण (गीर्भिः) विद्या उत्तम शिक्षा और धर्म से युक्त वाणियो से जिन (ते) आप के (नामानि) संज्ञाओ को अर्थयुक्त होने की (ईमहे) याचना करते हैं वह आप हम लोगो के लिये (अभिमातिषाह्ये) अभिमान युक्त शत्रु लोग सहने योग्य हैं जिसमे ऐसे संग्राम में सहायता दीजिये ॥३॥

भावार्थ—राजमान, विद्या और विनयो से प्रकाशमान, वह राजा, मनुष्यो की पालना करता वह नृप, और भूमि का पालन करता वह भूमिप इत्यादि सब राजा के नाम सार्थक हो और जब शत्रुओं के साथ संग्राम होवे तो सब प्रकार से रक्षा करनेवाला होवे । ऐसा होने से निश्चित विजय होता, नही तो नहीं होता है ॥ ३ ॥

अब प्रजा के गुणों को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि । इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (पुरुष्टुतस्य) बहुतो से प्रशंसा पाये हुए और (चर्षणीधृतः) मनुष्यों को धारण करनेवाले (इन्द्रस्य) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त राजा का (शतेन) असंख्य (धामभिः) जन्म स्थान और नामो से (महयामसि) पूजन करें वैसे उस प्रशंसित का सत्कार आप लोग भी करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि राजा आदि न्यायकारी जनो का सब प्रकार सत्कार करें और राजा आदि भी प्रजाजनो का सत्कार करें ऐसा करने पर राजा और प्रजा इन दोनों के मङ्गल की उन्नति होती है ॥ ४ ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे । भरेषु वाजसातये ॥५॥२१॥

पदार्थ—हे सेना में वर्त्तमान वीर पुरुषो ! जिस प्रकार सेना का अधीश मैं (वृत्राय) न्याय के आवरण करनेवाले शत्रु के (हन्तवे) नाश के लिए तथा (भरेषु) संग्रामों में (वाजसातये) धन आदि को बांटने के लिए (पुरुहूतम्) बहुतों से पुकारे वा प्रशंसा किये गये (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देनेवाले राजा को (उप) समीप मे (ब्रुवे) कहता हूँ वैसे आप लोग भी इसके समीप कहो ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब संग्राम प्रवृत्त होवे तो योद्धाओं के प्रति अध्यक्ष पुरुषों को चाहिये कि जिस प्रकार विजय हो वैसा उपदेश दें और योद्धा लोग अधिष्ठाता पुरुषों की आज्ञा मे सब प्रकार वर्त्तमान होवें ऐसा करने से कैसे पराजय हो ? ॥५॥

वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो । इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥६॥

पदार्थ—हे (शतक्रतो) अति सूक्ष्म बुद्धियुक्त (इन्द्र) दुष्ट पुरुषो के दल के नाश करनेवाले ! हम लोग जिन (त्वाम्) आप को (वृत्राय) मेघ के सदृश शत्रु के (हन्तवे) नाश करने को (ईमहे) युद्ध के उपकारक वस्तुओ के साथ याचना करते हैं वह आप (वाजेषु) जिन में बहुत अन्न और विज्ञान आदि सामग्री अपेक्षित हैं ऐसे संग्रामों मे (सासहिः) अत्यन्त सहने वाले (भव) हूजिये ॥६॥

भावार्थ—जिस कर्म में जिस का स्थापन सभा करे वह पुरुष उस अधिकार की यथायोग्य उन्नति करे और जिस अधिकार में जिस का नियोग होवे वहां जो आज्ञा उस का वह कदाचित् उल्लङ्घन न करे ॥६॥

द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च । इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) तेजस्वी पुरुष ! आप (पृत्सुतूर्षु) सेनाओ मे शीघ्रता से नाश करनेवाले जनो वा (श्रवःसु) श्रवण वा अन्न आदि पदार्थों (द्युम्नेषु) वा यशस्वी वा धन की प्राप्ति करानेवाले विषयो में वा (पृतनाज्ये) सेना सम्बन्धी संग्राम मे (साक्ष्व) सहन करो ॥७॥

भावार्थ—जो विद्यमान धन आदि पदार्थ वीर सेना व्याख्यान देनेवाले और युद्ध के अभिमानी अपने प्रिय आनन्दित और पुष्ट पुरुषो के होने पर शत्रुओ के साथ संग्राम करते है वे ही पुरुष निश्चित विजय को प्राप्त होते हैं ॥७॥

शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् । इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥८॥

पदार्थ—हे (शतक्रतो) बहुत बुद्धि वा बहुत कर्मयुक्त (इन्द्र) सब के रक्षक राजन् ! आप (नः) हम लोगो की (ऊतये) रक्षा आदि के लिए (शुष्मिन्तमम्) प्रशंसित वा बहुत प्रकार का बल जिसके उस धनीव (द्युम्निनम्) यशस्वी लक्ष्मीवान् और (जागृविम्) जागनेवाले जन और (सोमम्) ऐश्वर्य्य की (पाहि) रक्षा करो ॥८॥

भावार्थ—सब प्रजा और राजजनो को चाहिए कि सब के अधीश राजा और अन्य अध्यक्षों के प्रति ऐसा कहें कि आप लोग हम लोगो के रक्षक पुरुषो की और ऐश्वर्य्य की रक्षा मे निरालस और उद्यत होवें ॥८॥

इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु । इन्द्र तानि त आ वृणे ॥९॥

पदार्थ—हे (शतक्रतो) अपार बुद्धियुक्त (इन्द्र) ऐश्वर्य्य को योग करने वाले ! (पञ्चसु) पांच राज्य, सेना, कोश, दूतत्व, प्राड्विवाकत्व आदि पदवियो से युक्त अधिकारी और (जनेषु) प्रत्यक्ष अध्यक्षों मे (या) जो (ते) आप के (इन्द्रियाणि) जीने के चिह्न हैं (तानि) उन (ते) आप के चिह्नों को मैं (आ, वृणे) उत्तम गुणो से आच्छादन करता हूँ ॥९॥

भावार्थ—वही पुरुष राज्य करने के योग्य है जो मन्त्रियो के चरित्रो को नेत्र से रूप के सदृश प्रत्यक्ष करता है । जैसे शरीर के इन्द्रिय के गोलक अर्थात् काले तारे वाले नेत्र के सम्बन्ध से जीव के सम्पूर्ण कार्य्य सिद्ध होते है वैसे राजा मन्त्री और सेना के योग से राजकार्यों को सिद्ध कर सकता है ॥९॥

अगन्निन्द्र श्रवो बृहद्द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् । उत्ते शुष्मं तिरामसि ॥१०॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त ! जिस (बृहत्) बड़े (दुष्टरम्) शत्रुओ से दुःख से उल्लङ्घन करने योग्य (श्रवः) अन्न वा श्रवण (द्युम्नम्) यश वा धन और (शुष्मम्) बल को विद्वान् लोग (अगन्) प्राप्त होते हैं वा जिस (ते) आप के पूर्वोक्त अन्न श्रवण यश धन और बल को हम लोग (उत्) उत्तम प्रकार (तिरामसि) तरें उल्लङ्घें अर्थात् उससे अधिक सम्पादन करें उस सब को आप (दधिष्व) धारण करो ॥१०॥

भावार्थ—उतना ही ऐश्वर्य राजा को धारण करना चाहिए कि जितना सेना और प्रजा के पालन के और मन्त्रियो की रक्षा के लिए पूरा होवे ऐसा करने से बड़ा यश बढ़े ॥१०॥

अब राजा और प्रजा विषय को परस्पर सम्बन्ध से कहते हैं—

अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः ।

उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥११॥२२॥

पदार्थ—हे (अद्रिवः) बहुत मेघो से युक्त सूर्य के सदृश वर्त्तमान (शक्र) सामर्थ्यवान् (इन्द्र) ऐश्वर्य से सुख के दाता ! (इह) इस संसार मे (यः) जो (ते) आप का (लोकः) निवासस्थान है इस स्थान से (नः) हम लोगो को (आ, गहि) प्राप्त हूजिये (अथो) इसके अनन्तर (परावतः) दूर से भी हम लोगो को प्राप्त हूजिये (ततः) और उस से (आ गहि) उत्तम प्रकार अन्य स्थान मे जाइये ॥११॥

भावार्थ—जैसे मनुष्य लोग प्रीति से राजा को बुलावें और वह राजा उन प्रजाजनो के समीप अपने देश को प्राप्त हो और उस देश से अन्य देश मे भी जाय इस प्रकार राजा और प्रजा जन परस्पर स्नेह की वृद्धि के लिए कर्मों को निरन्तर करें ॥११॥

इस सूक्त में राजा और प्रजा के कामों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह सैंतीसवां सूक्त और बाईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ दशर्चस्याष्टात्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ६, १० त्रिष्टुप् । २—५, ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ७ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब दश ऋचा वाले अड़तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र मे विद्वान् के विषय को कहते हैं—

अभि तष्टेव दीधया मनीषामत्यो न वाजी सुधुरो जिहानः ।

अभि प्रियाणि मर्मृशत्पराणि कवीँरिच्छामि संदृशे सुमेधाः ॥१॥

पदार्थ— हे विद्वान् पुरुष ! जैसे मैं (**संदृशे**) उत्तम प्रकार दर्शन के लिए (**कवीन्**) धार्मिक विद्वानों की (**इच्छामि**) इच्छा करता हूँ वैसे (**सुमेधाः**) उत्तम बुद्धि वाले (**जिहानः**) प्राप्त होने और (**पराणि**) परम उत्तम (**प्रियाणि**) कामना और आदर करने योग्य सुखों को (**अभि, मर्मृशत्**) अत्यन्त विचारते हुए (**सुधुरः**) सुन्दर धुरा को धारण किये हुए (**अत्यः**) निरन्तर चलने वाले (**वाजी**) वेगयुक्त घोड़े के (**न**) समान (**मनीषाम्**) बुद्धि को (**तष्टेव**) काष्ठों के सूक्ष्मत्व अर्थात् छीलने से पतले करनेवाले बढ़ई के सदृश आप (**अभि**) सम्मुख (**दीधय**) प्रकाश करो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे धुरियों से धारण करने वाले उत्तम प्रकार शिक्षित घोड़े वाञ्छित कर्मों को सिद्ध करते हैं वैसे ही साधारण जन विद्वानों की उत्तम बुद्धि को ग्रहण कर के बढ़ई के सदृश व्यसनों का छेदन करें ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहते है—

इनोत पृच्छ जनिमा कवीनां मनोधृतः सुकृतस्तक्षत द्याम् ।

इमा उ ते प्रण्यो३ वर्धमाना मनोवाता अध नु धर्मणि ग्मन् ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वान वा साधारण मनुष्यो ! जो (**कवीनाम्**) बुद्धिमान् लोगो के (**मनोधृत**) विज्ञान के धारण करने और (**सुकृत**) उत्तम काम करनेवाले पुरुष (**उ**) और (**इमाः**) ये वर्त्तमान (**प्रण्य**) उत्तम नीतियुक्त (**वर्द्धमाना**) बढ़ती हुई (**मनोवाता**) मन के सदृश वेगवाली स्त्रियाँ (**धर्मणि**) धर्म व्यवहार मे (**नु**) शीघ्र (**ग्मन्**) प्राप्त हों (**अध**) इस के अनन्तर जो (**द्याम्**) बिजुली को प्राप्त हों और जो लोग (**ते**) तुम्हारे (**जनिमा**) जन्मों को प्राप्त हों उन स्त्रियों (**उत**) वा उन (**इना**) समर्थ पुरुषों को आप (**पृच्छ**) पूछिये और आप लोग भी अविद्या को (**तक्षत**) काटिये ॥२॥

भावार्थ—जो पुरुष और स्त्रिया धर्म के अनुष्ठान पूर्वक बुद्धिमान लोगो के लक्षणो को धारण कर प्रश्नोत्तर और अन्तःकरण को शुद्ध करके समर्थ होते हैं वे पुरुष और वैसी स्त्रिया सब प्रकार वृद्धि को प्राप्त होती है ॥२॥

अब भूमि विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

नि षीमिदत्र गुह्या दधाना उत क्षत्राय रोदसी समञ्जन् ।

सं मात्राभिर्ममिरे येमुरुर्वी अन्तर्मही समृते धायसे धुः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो स्त्रियां (**अत्र**) इस संसार में (**गुह्या**) गूढ विज्ञानों को (**दधाना**) धारण किये हुए (**क्षत्राय**) राज्य के लिए (**रोदसी**) भूमि और विद्या के प्रकाश को (**सीम्**) सब प्रकार (**सम्, अञ्जन्**) प्रकट करें (**उत**) और (**मात्राभिः**) सूक्ष्म अवयवों से (**नि**) निरन्तर पदार्थों को (**ममिरे**) माप और (**उर्वी**) बड़ी (**मही**) पृथ्वी को (**समृते**) अच्छे प्रकार सत्य व्यवहार मे (**धायसे**) धारण करने को अपने अन्तःकरण के (**अन्तः**) मध्य मे (**सम्, येमुः**) संयुक्त करें वे (**इत्**) ही सुख को (**धुः**) धारण करें ॥३॥

भावार्थ—जो स्त्रियाँ ब्रह्मचर्य से विद्या के विज्ञानों को प्राप्त होकर पृथिवी आदि पदार्थों से उपकार का ग्रहण कर सकें वे रानी के योग्य होती है ॥३॥

अब सूर्य्य के विषय को अगले मन्त्र मे कहते है—

आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः ।

महत्तद्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**विश्वरूपः**) सम्पूर्ण रूप है जिसमें वा जो (**श्रियः**) धनों वा पदार्थों की शोभाओं को (**वसानः**) ढांपता वा ग्रहण करता हुआ और (**स्वरोचिः**) अपना प्रकाश जिसमे विद्यमान वह सूर्य्य (**वृष्णः**) वृष्टिकारक (**असुरस्य**) दोषों का दूर करने वा प्राणो मे रमने वाले वायु सम्बन्धी (**अमृतानि**) अमृतस्वरूप (**नामा**) जलों को व्याप्त होकर (**आ, तस्थौ**) स्थित होता वा उस के समान जो (**महत्**) बड़ा है (**तत्**) उस को (**चरति**) प्राप्त होता है उस (**आतिष्ठन्तम्**) चारों ओर से स्थिर हुए को (**विश्वे**) सम्पूर्ण विद्वान् लोग (**परि**) सब प्रकार (**अभूषन्**) शोभित करें ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! वायुरूप आधार मे वर्त्तमान सूर्य्य आदि लोक जल वृष्टि आदि के द्वारा सब लोको को आनन्द देते हैं वैसे ही लक्ष्मी उत्पादन करने वाला पुरुष सब को शोभित करता है ॥४॥

अब राजा के विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

असूत पूर्वो वृषभो ज्यायानिमा अस्य शुरुधः सन्ति पूर्वीः ।

दिवो नपाता विदथस्य धीभिः क्षत्रं राजाना प्रदिवो दधाथे ॥५॥२३॥

पदार्थ—हे (**नपाता**) नाशरहित (**राजाना**) सूर्य्य और बिजुली के सदृश प्रकाशयुक्त राजा और न्यायाधीश ! आप दोनों जैसे (**पूर्वः**) पालन करनेवाला प्रथम (**वृषभः**) वृष्टिकर्त्ता (**ज्यायान्**) बड़ा वृद्ध (**इमाः**) इन (**पूर्वीः**) प्राचीन (**शुरुधः**) शीघ्र रुचिकारकों को (**असूत**) उत्पन्न करता है और (**अस्य**) इसके समीप से वृष्टि को वर्षाते हैं वैसे ही (**दिवः**) अन्तरिक्ष से (**विदथस्य**) विज्ञान करने वाले के (**प्रदिवः**) विद्या और विनय के प्रकाशों को तथा (**धीभिः**) बुद्धि वा कर्मों से (**क्षत्रम्**) रक्षा करने योग्य राज्य को (**दधाथे**) धारण करते हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे क्रम से सूर्य जल के धारण और वृष्टि से इस संसार का हित करता है वैसे ही उत्तम गुण और न्यायों के सहित वर्त्तमान हुए राजा आदि लोग उत्तम प्रकार रक्षित राज्य का पालन करें ॥५॥

अब सभा के कार्य्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ।

अपश्यमत्र मनसा जगन्वान्व्रते गन्धर्वाँ अपि वायुकेशान् ॥६॥

पदार्थ—हे (**राजाना**) राजा और प्रजाजनो ! मैं इस संसार मे वर्त्तमान जिन (**व्रते**) सत्यभाषणादि व्यवहार मे (**गन्धर्वान्**) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी वा पृथिवी को धारण करने और (**वायुकेशान्**) वायु के सदृश प्रकाश वाले तथा अन्य भी शिष्ट अर्थात् उत्तम पुरुषों को (**मनसा**) विज्ञान से (**जगन्वान्**) प्राप्त हुआ (**अपश्यम्**) देखता हूँ उन लोगों से (**त्रीणि**) तीन (**सदांसि**) सभाएँ नियत कराके (**विदथे**) विज्ञान को प्राप्त करानेवाले व्यवहार मे (**पुरूणि**) बहुत (**विश्वानि**) सम्पूर्ण व्यवहारों को (**परि**) सब प्रकार (**भूषथः**) शोभित करते हो इससे सम्पूर्ण कार्यों के सिद्ध करने वाले होते हो ॥६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! लोग उत्तम गुण कर्म और स्वभाव वाले यथार्थवक्ता विद्वान् पुरुषों की राजसभा विद्यासभा और धर्मसभा नियत कर और सम्पूर्ण राज्य-सम्बन्धी कर्मों को यथायोग्य सिद्ध कर सकल प्रजा को निरन्तर सुख दीजिये ॥६॥

अब राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

तदिन्न्वस्य वृषभस्य धेनोरा नामभिर्ममिरे सक्म्यं गोः ।

अन्यदन्यदसुर्यं१ वसाना नि मायिनो ममिरे रूपमस्मिन् ॥७॥

पदार्थ—जो मनुष्य (**अस्य**) इस (**वृषभस्य**) बलिष्ठ की (**धेनोः**) वाणी के (**नामभिः**) नामों से (**नु**) शीघ्र जिस को (**आ, ममिरे**) सब ओर से नापते हैं (**तत्**) उस (**सक्म्यम्**) संयोग जिस पदार्थ में करता है उस मे उत्पन्न (**गोः**) वाणी से (**अन्यदन्यत्**) पृथक् पृथक् वर्त्तमान (**असुर्यम्**) मेघपन को (**वसानाः**) ढांपते हुए (**मायिनः**) उत्तम बुद्धि वाले (**अस्मिन्**) इस राज्य मे (**रूपम्**) रूप को (**नि, ममिरे**) उत्पन्न करते हैं वे (**इत्**) ही राज्य कर सकते हैं ॥७॥

भावार्थ—जो मनुष्य इस राज्य का कोमल वचनों से पालन करते है वे मेघ से जल के सदृश अनेक प्रकार के ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

तदिन्न्वस्य सवितुर्नकिर्मे हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।

आ सुष्टुती रोदसी विश्वमिन्वे अपीव योषा जनिमानि वव्रे ॥८॥

पदार्थ—जो (**अस्य**) इस (**सवितुः**) सूर्य्य की प्रकटता से उत्पन्न हुए प्रकाश के सदृश (**याम्**) जिस (**हिरण्ययीम्**) सुवर्ण आदि बहुत रत्नों से युक्त (**अमतिम्**) उत्तम शोभायुक्त लक्ष्मी को (**योषा**) स्त्री (**अपीव**) इकट्ठा की गई सी (**जनिमानि**) जन्मों को (**वव्रे**) स्वीकार करती और (**सुष्टुती**) उत्तम प्रशंसा से (**विश्वमिन्वे**) सर्वत्र व्यापक (**रोदसी**) प्रकाश और पृथिवी के सदृश राजा और प्रजा के व्यवहारों का (**नु**) निश्चय (**आ, अशिश्रेत्**) आश्रय करे (**तत्**) (**इत्**) ही (**मे**) मेरे (**नकिः**) नहीं हुई ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे चन्द्र आदि लोक सूर्य के प्रकाश का आश्रय करके उत्तम शोभित देख पड़ते हैं और जैसे स्त्री स्नेहपात्र अपने प्रिय और उत्तम लक्षणों से युक्त पति को प्राप्त होकर सन्तानों को उत्पन्न करके आनन्द करती है वैसे ही पृथिवी के राज्य को प्राप्त होकर दुःखों से रहित हुए राजजन निरन्तर आनन्द करें ॥८॥

अब परस्परभाव से राजप्रजा विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

युवं प्रत्नस्य साधथो महो यद्दैवी स्वस्तिः परि णः स्यातम् ।

गोपाजिह्वस्य तस्थुषो विरूपा विश्वे पश्यन्ति मायिनः कृतानि ॥९॥

पदार्थ—हे राजा और प्रजा जनो ! (**युवम्**) आप दोनों जैसे (**विश्वे**) सम्पूर्ण (**मायिनः**) उत्तम बुद्धिवाले (**तस्थुषः**) स्थिर पुरुष के (**कृतानि**) उत्पन्न किये हुए (**विरूपा**) अनेक प्रकार के रूपों से युक्त पदार्थों को (**पश्यन्ति**) देखते हैं वैसे (**प्रत्नस्य**) प्राचीन (**गोपाजिह्वस्य**) रक्षा करने वाली जिह्वा वाले पुरुष का (**यत्**) जो (**महः**) बड़ी (**दैवी**) देवताओं की (**स्वस्तिः**) स्वस्थता अर्थात् शान्ति है उस को (**नः**) हम लोगों के लिए (**परि, साधथः**) सब प्रकार सिद्ध करते हैं वैसे सब के सुखकारक हूजिये ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे बुद्धिमान् शिल्पीजन अनेक प्रकार की वस्तुओं को रच के सब को शोभित करते हैं वैसे ही राजा आदि जन प्रजा में स्वस्थता को स्थिर करके सब के कार्यों को सिद्ध करें ॥९॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥१०॥२४॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (**ऊतये**) रक्षा आदि के लिए (**अस्मिन्**) इस (**वाजसातौ**) सत्य और असत्य के विभाग और (**भरे**) पालन करने योग्य राज्य में (**शुनम्**) राजप्रजाजनित अर्थात् राजा प्रजा से उत्पन्न हुए सुख (**मघवानम्**) बहुत धन से युक्त वैश्य (**शृण्वन्तम्**) सुनते हुए (**नृतमम्**) उत्तम नायक (**उग्रम्**) पाप के नाश के लिए प्रतापी (**समत्सु**) संग्रामों में (**घ्नन्तम्**) शत्रुओं के नाश करने (**वृत्राणि**) धनों को देने और (**धनानाम्**) धनों को (**संजितम्**) उत्तम प्रकार जीतने वाले (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यवान् राजा को (**हुवेम**) ग्रहण करें वैसे इस को आप लोग भी ग्रहण करो ॥१०॥

भावार्थ—जो राजा और प्रजाजन परस्पर प्रसन्न परस्पर के सुख और दुःख की वार्त्ताओं को सुनते दुष्ट पुरुषों का ताडन करते और सत्पुरुषों का सत्कार करते हुए परस्पर के उत्तम कर्मों की प्रशंसा करें वे अत्यन्त ऐश्वर्य को प्राप्त होकर सुखी होवें ॥१०॥

इस सूक्त में विद्वान् शिल्पी सभा राजा प्रजा सूर्य और भूमि आदि के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह ३८ वां सूक्त, २४ वां वर्ग और ३ मण्डल में ३ अनुवाक समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तर्चस्यैकोनचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
१, ६ विराट् त्रिष्टुप् । ३—७ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।
२, ८ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले तीसरे मण्डल में उनतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं—

इन्द्रं मतिर्हृद आ वच्यमानाच्छा पतिं स्तोमतष्टा जिगाति ।
या जागृविर्विदथे शस्यमानेन्द्र यत्ते जायते विद्धि तस्य ॥१॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त विद्वान् पुरुष ! (**या**) जो (**वच्यमाना**) कही गई (**विदथे**) विज्ञान में (**जागृविः**) जागने वाली और विज्ञान में (**शस्यमाना**) स्तुति से युक्त हुई (**स्तोमतष्टा**) स्तुतियों से विस्तारयुक्त (**मतिः**) बुद्धि (**हृदः**) हृदय से (**इन्द्रम्**) अत्यन्त सुख देने (**पतिम्**) और पालनेवाले स्वामी को (**अच्छ**) उत्तम प्रकार (**आ**) सब ओर से (**जिगाति**) स्तुति करती है (**यत्**) जो बुद्धि (**ते**) आप की (**जायते**) उत्पन्न होती है उस बुद्धि से (**तस्य**) उस पालनेवाले के उत्तम गुण कर्म और स्वभावों को (**विद्धि**) जानो ॥१॥

भावार्थ—जिन के हृदय में यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है वे सब लोगों के गुण और दोषों को जान गुणों को ग्रहण दोषों का त्याग गुणों की प्रशंसा और दोषों की निन्दा करके उत्तम कर्मों को करें ऐसा होने से वे इस संसार में प्रशंसायुक्त होवें ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

दिवश्चिदा पूर्व्या जायमाना वि जागृविर्विदथे शस्यमाना ।
भद्रा वस्त्राण्यर्जुना वसाना सेयमस्मे सनजा पित्र्या धीः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**अस्मे**) हम लोगों में (**दिवः**) विज्ञान के प्रकाश से (**जायमाना**) उत्पन्न हुई (**पूर्व्या**) प्राचीन विद्वानों में सिद्ध की गई (**विदथे**) विज्ञान के बढ़ानेवाले व्यवहार में (**जागृविः**) जागनेवाली (**शस्यमाना**) स्तुति की जाती और (**भद्रा**) धारण करने योग्य और कल्याणकारक (**अर्जुना**) सुन्दररूपयुक्त (**वस्त्राणि**) वस्त्रों को (**वसाना**) ओढ़ती हुई सुन्दर स्त्री के तुल्य (**सनजा**) विभाग से प्रसिद्ध (**पित्र्या**) वा पितरों में प्रकट हुई (**धीः**) उत्तम बुद्धि (**वि**) विशेषता से उत्पन्न होती (**सा, इयम्**) सो यह आप लोगों में (**चित्, आ**) भी सब ओर से उत्पन्न होवे ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वे ही श्रेष्ठ पुरुष हैं जो कि अपने आत्मा के तुल्य सम्पूर्ण जनों में बुद्धि आदि पदार्थों को उत्पन्न कराने को उद्यत होवें ॥२॥

यमा चिदत्र यमसूरसूत जिह्वाया अग्रं पतदा ह्यस्थात् ।
वपूंषि जाता मिथुना सचेते तमोहना तपुषो बुध्न एता ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यमसूः**) सूर्य्य को उत्पन्न करनेवाली बिजुली (**चित्**) अथवा (**अत्र**) इस संसार में (**यमा**) सहचारी (**मिथुना**) परस्पर मिले हुए (**तमोहना**) अन्धकार का नाश करनेवाले (**तपुषः**) जिस में सूर्य्य तपता है उस दिन के बीच वा (**बुध्ने**) बंधते अर्थात् इकट्ठे होते जल जिसमें उस अन्तरिक्ष में (**एता**) वर्त्तमान इन सूर्य्य और चन्द्रमा को (**असूत**) उत्पन्न करती है (**जिह्वायाः**) तथा जिह्वा के (**अग्रम्**) अग्रभाग को (**हि**) जिस कारण (**पतत्**) जाती वा प्राप्त होती है और (**जाता**) उत्पन्न हुए (**वपूंषि**) रूपों को प्राप्त हो (**आ, अस्थात्**) स्थिर होती है जो अन्धकार के नाश करनेवाले परस्पर मिले हुए सूर्य्य और चन्द्रमा सूर्य्यमण्डल जिस में तपता है उस दिन के बीच और जल जिस में इकट्ठे हों उस अन्तरिक्ष में (**सचेते**) सम्बन्ध करते हैं उन को (**विद्धि**) जानिये ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप जैसे बिजुली सूर्य का और सूर्य चन्द्रादिक का प्रकाश और अन्धकार का नाश करता है वैसे ही परस्पर अनुकूल होकर उत्तम व्यवहार में तत्पर होओ ॥३॥

नकिरेषां निन्दिता मर्त्येषु ये अस्माकं पितरो गोषु योधाः ।
इन्द्र एषां दृंहिता माहिनावानुद्गोत्राणि ससृजे दंसनावान् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**इन्द्रः**) सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान (**ये**) वा जो (**अस्माकम्**) हम लोगों के (**गोषु**) पृथिवियों और (**मर्त्येषु**) मनुष्यों में (**योधाः**) योद्धा लोग और (**पितरः**) पालन करनेवाले हैं (**एषाम्**) इन लोगों का (**दृंहिता**) बढ़ाने वाला (**माहिनावान्**) प्रशंसित पूजन है जिस के वह और (**दंसनावान्**) जो उत्तम कर्मों से युक्त है वह (**गोत्राणि**) वंशों को (**उत्, ससृजे**) उत्पन्न करता है उस की सेवा करो । जिस से (**एषाम्**) इन लोगों का (**निन्दिता**) गुणों में दोषों का आरोपक और दोषों में गुणों का आरोपक (**नकिः**) नहीं होवे ॥४॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि ऐसा प्रयत्न करें कि जिस से निन्दित न हों और आप दूसरों की स्तुति करनेवाले हों और जैसे सूर्य्य सम्पूर्ण जगत् का पालन करता है वैसे रक्षा करनेवाले पितरों की सेवा करनी चाहिए ॥४॥

सखा ह यत्र सखिभिर्नवग्वैरभिज्ञ्वा सत्वभिर्गा अनुग्मन् ।
सत्यं तदिन्द्रो दशभिर्दशग्वैः सूर्यं विवेद तमसि क्षियन्तम् ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यत्र**) जिस स्थल में (**नवग्वैः**) नवीन गतियों और (**सखिभिः**) मित्रों के साथ (**अभिज्ञु**) सम्मुख जानुओं से युक्त (**सखा**) मित्र (**सत्वभिः**) पदार्थों के साथ (**ह**) निश्चय (**गाः**) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी वा भूमियों के (**आ, अनुग्मन्**) अनुकूल प्राप्त होता हुआ जो (**सत्यम्**) श्रेष्ठ व्यवहारों में उत्तम अर्थात् सच्चापन जैसे हो वैसे (**दशग्वैः**) दश प्रकार की गतियों से युक्त (**दशभिः**) दश प्रकार के पवनों के साथ (**इन्द्रः**) बिजुली (**तमसि**) रात्रि में (**क्षियन्तम्**) निवास करते अर्थात् अपना काम प्रकाश न करते हुए (**सूर्यम्**) सूर्य का (**विवेद**) प्राप्त होती है (**तत्**) उस को जो जानता है उस का अनुकरण सब लोग करो ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मित्र के तुल्य वर्त्तमान वायु में बिजुली नामक अग्नि अन्धकार में सूर्य के परिणाम को प्राप्त हो और सब को प्रकाशित कर आनन्द देती है वैसे ही धार्मिक मित्रों के सहित मित्र विद्वान् शुद्धान्तःकरणता तथा विद्या में प्रकट होकर सब के आत्माओं का प्रकाश करके आनन्द देता है ॥५॥

इन्द्रो मधु सम्भृतमुस्रियायां पद्वद्विवेद शफवन्नमे गोः ।
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु हस्ते दधे दक्षिणे दक्षिणावान् ॥६॥

पदार्थ—जो (**इन्द्रः**) बिजुली के समान मनुष्य (**उस्रियायाम्**) भूमि में (**पद्वत्**) पैरों के और (**शफवत्**) खुरों के सदृश (**मधु**) मधुर आदि रस (**सम्भृतम्**) जो कि उत्तम धारण किया गया उसे (**नमे**) नमें स्वीकार करे (**विवेद**) जाने (**गोः**) वाणी और (**गुहा**) बुद्धि में (**हितम्**) स्थित (**अप्सु**) प्राणों वा जलों में (**गुह्यम्**) गुप्त और (**गूळ्हम्**) ढपे हुए व्यवहार को (**दक्षिणावान्**) दक्षिणा को धारण किये हुए के समान (**दक्षिणे**) दहिने (**हस्ते**) हाथ में (**दधे**) धारण करे उस को सब लोग जानो ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे मनुष्य पैरों और पशु खुरों से गमन करके दूसरे स्थान को प्रत्यक्ष करते हैं, वैसे ही बाहर भीतर वर्त्तमान बिजुली को विद्वान् पुरुष हस्त प्राप्त दक्षिणा के सदृश जानकर और हृदय में वर्त्तमान अपने आत्मा और परमात्मा तथा बाह्य सूर्य आदि को जानता है, इस के सहाय से धर्म अर्थ काम और मोक्ष को सब सिद्ध करें ॥६॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

ज्योतिर्वृणीत तमसो विजानन्नारे स्याम दुरितादभीके ।
इमा गिरः सोमपाः सोमवृद्ध जुषस्वेन्द्र पुरुतमस्य कारोः ॥७॥

पदार्थ—हे (**सोमवृद्ध**) विद्यारूप ऐश्वर्य में वृद्ध और (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त (**सोमपाः**) ऐश्वर्य्य की रक्षा करनेवाले ! आप (**पुरुतमस्य**) अत्यन्त बहुत विद्या से युक्त (**कारोः**) शिल्पिजन की जो (**इमाः**) उन (**गिरः**) वाणियों का (**जुषस्व**) सेवन करो और जैसे (**विजानन्**) विशेष प्रकार से जानते हुए आप हम लोगों से (**आरे**) दूरस्थल और (**अभीके**) समीप स्थल में (**दुरितात्**) दुष्ट आचरण से पृथक् होकर श्रेष्ठ आचरण और (**तमसः**) अविद्या से पृथक् होकर

विद्या और (ज्योतिः) प्रकाश के समान विद्या का (वृणीत) स्वीकार करें वैसे इन आपकी उन वाणियों का सेवन करके हम लोग विद्वान् होवें ॥७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग पाप के आचरण से पृथक् होकर धर्म के आचरण और अविद्या से पृथक् होकर विद्या का ग्रहण करके आत्मसम्बन्धी ज्ञान और शिल्प-क्रिया-कौशल का सेवन करते हैं वैसे ही आप लोग भी सेवन करनेवाले हूजिए और सब हम लोग दूर और समीप मे वर्त्तमान हुए भी मित्रता का त्याग नही करें ॥७॥

ज्योतिर्यज्ञाय रोदसी अनु ष्यादारे स्याम दुरितस्य भूरेः ।

भूरि चिद्धि तुजतो मर्त्यस्य सुपारासो वसवो बर्हणावत् ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (सुपारासः) सुन्दर विद्या का पार है जिनका और (वसवः) विद्याओं मे स्वयं वसने वा अन्य जनो को वसाते वह हम लोग (यज्ञाय) विद्वानो के सत्कार आदि अनुष्ठान के लिए (रोदसी) भूमि और प्रकाश के सदृश विद्या और नीति को (आरे) दूर वा समीप मे (दुरितस्य) दु.ख से प्राप्त हुए (भूरेः) बहुत का (भूरि) बहुत (चित्) भी (तुजतः) बलवान् (मर्त्यस्य) मनुष्य का (बर्हणावत्) वृद्धिकारक विज्ञान वा धन जिसमें विद्यमान ऐसा (ज्योतिः) सूर्य के प्रकाश के सदृश विज्ञान का प्रकाश (स्यात्) होवे ऐसी कामना करते हुए (अनु) पीछे (स्याम) होवें वैसे (हि) ही आप हूजिये ॥८॥

भावार्थ—वे ही श्रेष्ठ पुरुष हैं जो लोग दूर और समीप मे वर्त्तमान पुरुषो में कृपा का अनुसन्धान विद्या और उपदेश का प्रचार करके बड़े कठिन बोध की सरलता को उत्पन्न करें, वे ही सब लोगो को सत्कार करने योग्य होवें ॥८॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।

शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस को हम लोग (ऊतये) व्यवहार-सिद्धि-प्रवेश के लिए (अस्मिन्) इस (भरे) पालन करने योग्य संसार मे (नृतमम्) अत्यन्त नायक (मघवानम्) बहुत धन के दान करने और (वाजसातौ) पदार्थों की विभाग विद्या मे (शृण्वन्तम्) सुननेवाले न्यायाधीश दण्ड देनेवाले के सदृश (उग्रम्) तेजस्वीरूप और (समत्सु) संग्रामो मे (घ्नन्तम्) विद्यावान् शूरवीर के सदृश (धनानाम्) लक्ष्मियो को (संजितम्) शीघ्र जीतता है जिस से उस (इन्द्रम्) बिजुली रूप अग्नि को जान कर (वृत्राणि) धनों को और (शुनम्) सुखकारक विज्ञान को (हुवेम) स्वीकार करें वैसे इस को जानकर आप लोग प्राप्त हूजिये ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यथार्थवक्ता विद्वान् लोग भूगर्भ बिजुली भूगोल खगोल और सृष्टिस्थ पदार्थों की विद्या के उपदेश से पदार्थ विद्याओ को प्राप्त करा के सब की निरन्तर वृद्धि करें ॥९॥

इस सूक्त मे विद्वानो के गुणो का वर्णन, निन्दित जनो का निवारण, मित्रता करना, अज्ञान का त्याग कर, विद्या की प्राप्ति की इच्छा करना इत्यादि विषय वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह समझना चाहिए ॥

यह ऋग्वेद संहिता मे तृतीय अष्टक मे दूसरा अध्याय, छब्बीसवां वर्ग और तृतीय मण्डल में उनतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ तृतीयाष्टके तृतीयाऽध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथ नवर्चस्य चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
१—४, ६—९ गायत्री । ५ निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
अब तृतीयाष्टक के तृतीयाध्याय का आरम्भ तथा तृतीयमण्डल में नव ऋचा वाले चालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र मे राजा प्रजा के विषय को कहते हैं—

इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे ।

स पाहि मध्वो अन्धसः ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देनेवाले ! (वयम्) हम लोग (मध्वः) मधुर आदि गुणो से युक्त (अन्धसः) अन्न आदि के (सुते) उत्पन्न (सोमे) ऐश्वर्य्य वा ओषधियो के समूह मे जिस (वृषभम्) बलिष्ठ (त्वा) आप को (हवामहे) पुकारें (सः) वह आप हम लोगो की (पाहि) रक्षा कीजिये ॥१॥

भावार्थ—जो प्रजाजन राजा का हृदय से सत्कार करके इस राजा के लिए ऐश्वर्य्य देवें उनकी राजा अपने आत्मा के सदृश वा जैसे वैद्यजन ओषधियो से रोगी की रक्षा करता है वैसे रक्षा करे ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य्य पुरुष्टुत । पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥२॥

पदार्थ—हे (पुरुष्टुत) बहुतो से प्रशंसित (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य्य की इच्छा करनेवाले ! आप (तातृपिम्) अत्यन्त तृप्ति करने और (क्रतुविदम्) यज्ञ के सिद्ध करनेवाले और (सुतम्) उत्तम संस्कारो से उत्पन्न (सोमम्) ओषधियो के समूह की (हर्य्य) कामना और (पिब) पान करो उन से (आ, वृषस्व) बल के सदृश बलिष्ठ होओ ॥२॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप बुद्धि के बढ़ाने वाले खाने तथा पीने योग्य वस्तु का भोजन और पान कर तृप्त होकर बल आरोग्य बुद्धि और नम्रता को बढ़ाइये ॥२॥

इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः ।

तिर स्तवान विश्पते ॥३॥

पदार्थ—हे (विश्पते) प्रजा का पालन (स्तवान) सत्य की स्तुति और (इन्द्र) दुष्टो का नाश करनेवाले ! आप (विश्वेभिः) सम्पूर्ण (देवेभिः) धार्मिक श्रेष्ठ विद्वानो के साथ (नः) हम लोगो के (धितावानम्) धारण किया है विभाग जिससे उस (यज्ञम्) विद्या और विनय से सङ्गत पालन करने रूप कर्म को (प्र, तिरः) पार हो समाप्त करो अर्थात् उक्त कर्म से दु.ख से पार पहुँचो ॥३॥

भावार्थ—प्रजाजनो को चाहिए कि राजा को इस प्रकार का उपदेश देवें कि आप हम लोगो के रक्षक हूजिए और ऐसी आज्ञा दीजिये कि आप के सब श्रेष्ठ मध्यम, कनिष्ठ कर्मचारी लोग धर्मपूर्वक हम लोगो की निरन्तर रक्षा करें ॥३॥

इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते ।

क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥४॥

पदार्थ—हे (सत्पते) सत्पुरुषो के रक्षा करने और (इन्द्र) सम्पूर्ण ओषधियो की विद्या के जाननेवाले राजन् ! जो (इमे) ये (चन्द्रासः) आनन्दकारक (इन्दवः) गीले (सुताः) उत्तम प्रकार से पाक आदि संस्कार से युक्त (सोमाः) ओषधि आदि पदार्थ (तव) आप के (क्षयम्) रहने के स्थान को (प्र, यन्ति) प्राप्त होते हैं उनका आप सेवन करो ॥४॥

भावार्थ—हे राजन् ! जितना आप को राज्य का भाग लेना चाहिए उतना ही ग्रहण कर भोग करिये, न अधिक न न्यून, ऐसा करने से आपकी हानि कभी नहीं होगी ॥४॥

दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् । तव द्युक्षास इन्दवः ॥५॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) पूर्ण अवस्था की कामना करनेवाले ! जो (तव) आपके (द्युक्षासः) प्रकाश मे रहने (इन्दवः) और स्नेह करनेवाले होवें उन के समीप से (वरेण्यम्) भोग करने योग्य (सुतम्) उत्तम प्रकार बनाया (सोमम्) श्रेष्ठ ओषधियो से युक्त अन्न को (जठरे) उत्पन्न हो सुख जिसमें उस पेट मे आप (दधिष्व) धरो ॥५॥

भावार्थ—राजा आदि मनुष्यो को सम्पूर्ण पदार्थों के मध्य से उन्हीं पदार्थों का खान और पान करना चाहिए कि जो बुद्धि अवस्था और बल को निरन्तर बढ़ावें ॥५॥

गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे ।

इन्द्र त्वादातमिद्यशः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (गिर्वणः) वाणियों से याचना किये जाते (इन्द्र) तेजस्विन् ! जो (त्वादातम्, इत्) आप से ग्रहण किया हुआ ही (यशः) रोगनाशक जल अन्न वा धन है उस से और (मधोः) मधुर आदि गुणों से युक्त वस्तु के (धाराभिः) प्रवाहों के साथ (सुतम्) उत्पन्न हुए (सोमम्) ओषधि आदि पदार्थों को पाहि

हुए हम लोगों से आने जाते हो वह आप (नः) हमारी (पाहि) रक्षा कीजिये ॥६॥

भावार्थ—हे राजन् ! जितना पीने योग्य वस्तु अन्न और धन हम लोगो का आपने स्वीकार किया है उससे अपनी और हम लोगों की रक्षा कीजिये ॥६॥

अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता ।
पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! जैसे (वनिनः) मांगने वाले जन (अक्षिता) नाश से रहित (द्युम्नानि) यशो के (अभि) सम्मुख (इन्द्रं) ऐश्वर्य करनेवाले का (सचन्ते) सम्बन्ध करते हैं और जैसे मैं (सोमस्य) ओषधिरूप ऐश्वर्य्य के योग से (पीत्वी) पान करके (वावृधे) वृद्धि करूं वैसे आप करो ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्यों को चाहिये कि धर्मयुक्त अत्यन्त पुरुषार्थ से नहीं नाश होने योग्य ऐश्वर्य्य को प्राप्त होकर नियमित भोजन और विहार से आरोग्य को उत्पन्न करके ससार मे उत्तम कीर्ति का विस्तार करें ॥७॥

अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः ॥८॥

पदार्थ—हे (वृत्रहन्) धन को प्राप्त होनेवाले ! आप (अर्वावतः) प्रशंसा करने योग्य घोडो से युक्त (नः) हम लोगो को (परावतः) दूर देश से (च) और समीप से (आ) सब ओर से (गहि) प्राप्ति हूजिए और (नः) हम लोगो की (इमाः) इन (गिरः) वाणियों का (जुषस्व) सेवन करो ॥८॥

भावार्थ—हे राजन् ! दूर वा समीप मे स्थित सेना के अङ्ग शस्त्र आदि से युक्त और हम लोग जब आप को पुकारें उसी समय आप को आना चाहिए तथा हम लोगों के वचन सुनना और यथार्थ न्याय करना चाहिए ॥८॥

यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तत आ गहि ॥९॥२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के दाता ! आप (इह) इस राज्य में (यत्) जो (अन्तरा) व्यवधान अर्थात् मध्य मे (परावतम्) दूर देश और (अर्वावतम्) समीप में वर्त्तमान को (च) और पुकारते हैं उन लोगों से (हूयसे) पुकारे जाते हो (ततः) इस से हम लोगो को (आ, गहि) प्राप्त हूजिए ॥९॥

भावार्थ—राजा दूर देश में हो और प्रजा सेना और मन्त्री जन अन्यत्र भी वर्त्तमान हों तथापि दूतों के द्वारा सब लोगो के साथ में समीप वर्त्तमान हो सके ॥९॥

इस सूक्त मे राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की
पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह चालीसवां सूक्त और दूसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ नवर्चस्यैकाधिकचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
१ यवमध्या गायत्री, २, ३, ५, ६ गायत्री, ४, ७, ८ निचृद्
गायत्री । ९ विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
अब नव ऋचा वाले एकतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के
प्रथम मन्त्र में अग्नि के विषय को कहते हैं—

आ तू न इन्द्र मद्र्यग्घुवानः सोमपीतये । हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥१॥

पदार्थ—हे (अद्रिवः) मेघो से युक्त सूर्य्य के तुल्य वर्त्तमान (इन्द्र) ऐश्वर्य्य के करनेवाले ! आप (सोमपीतये) सोमलतारूप ओषध का रस पीया जाय जिस कर्म में उस के लिए (मद्र्यक्) मेरी पूजा अर्थात् उपासना करने वाला (हुवानः) पुकारा गया जन (हरिभ्याम्) घोडो से (नः) हम लोगों को (आ) सब प्रकार (याहि) प्राप्त हो और हम लोग (तु) शीघ्र आप को प्राप्त होवें ॥१॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि शुभ कार्य्य आदि के उत्सवों में परस्पर एक दूसरे का आह्वान करके अन्न और जल आदिकों से सत्कार करें ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् । अयुज्रन् प्रातरद्रयः ॥२॥

पदार्थ—जो (सत्तः) बैठा हुआ (होता) ग्रहण करने वाला और (ऋत्वियः) जो ऋतु को योग्य होता वा (आनुषक्) अनुकूलता के साथ मिलता वे (नः) हम लोगों के लिए (बर्हिः) उत्तम आसन वा वस्तु को (अद्रयः) मेघो के सदृश (प्रातः) प्रातःकाल में (अयुज्रन्) युक्त करते हैं और (तिस्तिरे) वस्त्रों से आच्छादन करते हैं वे क्रियारूप यज्ञ करने को योग्य हैं ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रभातकाल के मेघ सूर्य्य के प्रकाश का आच्छादन करके छाया को उत्पन्न करते हैं वैसे ही क्रियाओ को जाननेवाले लोग वस्त्र आदि पदार्थों से शरीरों की ताप के अनुकूलता से सुख को उत्पन्न करते हैं ॥२॥

इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद ।
वीहि शूर पुरोळाशम् ॥३॥

पदार्थ—हे (शूर) दुष्टो के नाश करनेवाले ! जो (इमाः) ये (ब्रह्मवाहः) धनों को प्राप्त करानेवाली क्रियाएँ (क्रियन्ते) की जाती हैं उन से (ब्रह्म) धन को (वीहि) प्राप्त (बर्हिः) अन्तरिक्ष में (आ, सीद) वर्त्तमान और (पुरोळाशम्) उत्तम प्रकार सस्कारयुक्त अन्न को प्राप्त हो ॥३॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि निष्फल क्रियाओ को कभी न करें । जिस जिस क्रिया से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि हो उस उस को प्रयत्न से करो ॥ ३ ॥

रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् । उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥४॥

पदार्थ—हे (गिर्वणः) वाणियो से जिस से याचना करें वह (वृत्रहन्) धनों से युक्त (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले ! आप (स्तोमेषु) प्रशसा करने और (उक्थेषु) कहने के योग्य (सवनेषु) ऐश्वर्य्यों मे (नः) हम लोगों को (रारन्धि) रमाओ ॥४॥

भावार्थ—दरिद्र लोगों को चाहिए कि धनयुक्त पुरुषो से सदा याचना करें जिससे कि वे दरिद्र लोग सुख को प्राप्त होवें ॥४॥

मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् ।
इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥५॥३॥

पदार्थ—जो (मतयः) उत्तम बुद्धि से युक्त मनुष्य लोग (शवसः) बल के (पतिम्) पालन करनेवाले (उरुम्) बहुत ऐश्वर्य्य से पूर्ण (सोमपाम्) ऐश्वर्य्य के रक्षक (इन्द्रम्) ऐश्वर्य्य से युक्त पुरुष (मातरः) गौएँ (वत्सम्) बछड़े को (न) जैसे (रिहन्ति) चाटती वैसे मिलते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं ॥५॥

भावार्थ—जैसे गौएँ प्रेमभाव का आश्रयण करके बछड़ों में प्रेम धारण करती हैं वैसे ही राजा आदि अध्यक्ष पुरुष सेनाओं की प्रजाओ के प्रेमभाव से रक्षा करें ॥५॥

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! (हि) जिस से आप (स्तोतारम्) विद्वान् पुरुष की (निदे) निन्दा करने के लिए (न) नहीं (करः) करें इससे (सः) वह आप (तन्वा) शरीर से (अन्धसः) अन्न आदि की (महे) बडी (राधसे) सिद्धि करने वाले धन के लिए (मन्दस्व) आनन्द करो ॥६॥

भावार्थ—जो मनुष्य स्तुति करने योग्य पुरुषो की निन्दा नहीं करते वे बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होकर शरीर और आत्मा से सदा ही सुखी होते हैं ॥६॥

वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे । उत त्वमस्मयुर्वसो ॥७॥

पदार्थ—हे (वसो) निवास के कारण (इन्द्र) ऐश्वर्य से और (हविष्मन्तः) बहुत देने योग्य वस्तुओ से युक्त ! (त्वायवः) आप की कामना करते हुए (वयम्) हम लोग आप की (जरामहे) प्रशसा करें (उत) और भी (त्वम्) आप (अस्मयुः) हम लोगो की कामना करते हुए हम लोगों की प्रशसा करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सब लोगो के गुणो की प्रशसा और दोषो की निन्दा करें वे विवेकी अर्थात् विचारशील होके गुणो के ग्रहण करने और दोषों के त्याग करने को समर्थ होते हैं ॥ ७ ॥

मारे अस्मद्वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि । इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥८॥

पदार्थ—हे (हरिप्रिय) हरनेवालो को प्रसन्न करनेवाले ! (इन्द्र) ऐश्वर्य्य मे युक्त (स्वधावः) बहुत अन्नादि वस्तुओं से पूर्ण आप (अस्मत्) हम लोगों से (आरे) समीप वा दूर देश मे (मा) मत (वि, मुमुचः) त्याग करिये (अर्वाङ्) नीचे के स्थान को जाते हुए (याहि) जाइये और (इह) इस ससार मे (मत्स्व) आनन्द करिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मित्र जनो ! आप लोग हम लोगो से दूर वा समीप स्थान में वर्त्तमान हुए हम लोगो का कल्याण करो और प्रीति का त्याग मत करो और हम लोग भी आप लोगों में ऐसा ही वर्त्ताव करें, इस प्रकार परस्पर वर्त्ताव करके इस ससार मे सुखी होवें ॥ ८ ॥

अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना । घृतस्नू बर्हिरासदे ॥९॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य्य से युक्त ! जो (घृतस्नू) घृत अर्थात् जल को पवित्र करनेवाले (केशिना) बहुत केशों से युक्त (अर्वाञ्चम्) नीचे जानेवाले (त्वा) आप को (सुखे) सुख करानेवाले (रथे) सुन्दर वाहन और (बर्हिः) अन्तरिक्ष में (आसदे) वर्त्तमान होने के लिए (वहताम्) पहुंचावें उनको आप जानिये ॥९॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! दो अग्नियों से चलाये हुए वाहनों पर स्थित होकर नीचे ऊपर और तिरछे देश में आकर जाइये ॥ ९ ॥

इस सूक्त मे विद्वान् मनुष्यो के गुण वर्णन करने मे इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के माथ सङ्गति है ऐसा जानना चाहिए ॥

यह इकतालीसवां सूक्त और चौथा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ उप नः सुतमित्यस्य नवर्चस्य द्विचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषि. । इन्द्रो देवता । १, ४—७ गायत्री, २, ३, ८, ९ निचृद्गायत्रीच्छन्द । षड्ज स्वरः ॥

अब नव ऋचावाले बयालीसवें सूक्त का आरम्भ है, इस के प्रथम मन्त्र में विद्वान् के गुणों को कहते हैं—

उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् । हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥१॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य्ययुक्त ! आप (**हरिभ्याम्**) घोडो से युक्त रथ से (**य**) जो (**ते**) आप का वाहन (**अस्मयु**) अपने को हम लोगो की इच्छा करता हुआ सा वर्त्तमान है घोडो मे युक्त उस रथ से (**न**) हम लोगो के (**सुतम्**) उत्तम प्रकार सिद्ध (**गवाशिरम्**) सेवन करने योग्य (**सोमम्**) ओषधिगणो के सदृश ऐश्वर्य्य को (**उप, आ, गहि**) समीप मे सब प्रकार प्राप्त हूजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—वे लोग ही सब लोगो के मित्र हैं कि जो लोग अपने ऐश्वर्य्य मे सब लोगो को बुला कर सत्कार करते हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिःष्ठां ग्रावभिः सुतम् । कुविन्न्वस्य तृष्णवः ॥२॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्य्य की इच्छा करनेवाले ! जो (**अस्य**) इस सोमलता की (**तृष्णव**) तृप्ति करनेवाले है उनमे (**कुवित्**) श्रेष्ठ होकर (**तम्**) उस पूर्वोक्त को (**ग्रावभि**) मेघो से (**सुतम्**) उत्पन्न (**मदम्**) आनन्दकारक (**बर्हिष्ठाम्**) अन्तरिक्ष मे वर्त्तमान होनेवाले ओषधिगणो के सदृश वर्त्तमान ऐश्वर्य को (**नु**) शीघ्र (**आ, गहि**) सब प्रकार प्राप्त हूजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—जो सोमलता आदि ओषधिया वृष्टियो से उत्पन्न होती रोगविनाशक होने से तृप्तिकारक होती और सूक्ष्म अवयवो के द्वारा अन्तरिक्ष को प्राप्त होके सब स्थानो मे फैलती है उन का युक्ति से सेवन करके सदा आनन्द का भोग करना चाहिए ॥ २ ॥

अब विद्वानों के सत्कार विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं —

इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः । आवृते सोमपीतये ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**आवृते**) सब ओर से ढाप हुए स्थान विशेष मे (**सोमपीतये**) सोमलता के रस के पान करने के लिये (**मम**) मेरी (**इषिता**) प्रेरणा की गई (**गिर**) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियाँ (**इत**) इससे (**इन्द्रम्**) अत्यन्त ऐश्वर्यवाले को (**अच्छ, अगु**) अच्छे प्रकार प्राप्त हो (**इत्था**) इस प्रकार से आप लोगो की भी वाणिया हम को प्राप्त हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वान् लोग अन्य जनो के प्रति इस प्रकार से उपदेश देवें कि हम लोग जिन को बुला कर सत्कार करें आप लोग भी उन्हीं का सत्कार करे ॥ ३ ॥

इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे । उक्थेभिः कुविदागमत् ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वज्जन ! हम लोग (**स्तोमैः**) प्रशसा के वचन जो (**उक्थेभिः**) कहने के योग्य उन से (**सोमस्य**) उत्तम प्रकार निकाले हुए बडी ओषधि के रस के (**पीतये**) पान करने के लिए जिस (**इन्द्रम्**) अत्यन्त विद्या और ऐश्वर्य्यवाले को (**इह**) इस ससार मे (**हवामहे**) पुकारे वह हम लोगो के समीप (**कुवित्**) बहुत बार (**आगमत्**) आवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो अविद्वान् लोग प्रीति से विद्वान् लोगो को बुलावें तो वे उनके समीप बहुत बार जावें ॥ ४ ॥

इन्द्र सोमाः सुता इमे तान्दधिष्व शतक्रतो । जठरे वाजिनीवसो ॥५॥५॥

पदार्थ—हे (**वाजिनीवसो**) रात्रि को बसानेवाले (**शतक्रतो**) बहुत कर्मों मे कुशल (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य के भोक्ता ! जो (**इमे**) ये (**जठरे**) प्रसिद्ध हुए इस ससार मे (**सोमा**) पदार्थ (**सुता**) उत्पन्न हुए हैं उनका (**दधिष्व**) धारण करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—सभी मनुष्य पूर्ण विद्या और ऐश्वर्य्यवाले होवे कि जब सृष्टि मे वर्त्तमान पदार्थों की विद्या को जाने ॥ ५ ॥

विद्मा हि त्वा धनञ्जयं वाजेषु दधृषं कवे । अधा ते सुम्नमीमहे ॥६॥

पदार्थ—हे (**कवे**) विद्वान् पुरुष ! हम लोग (**वाजेषु**) सग्रामो मे (**दधृषम्**) प्रचण्ड (**धनञ्जयम्**) धनो के जीतनेवाले (**त्वा**) आप को (**विद्म**) जानें (**अध**) इस के अनन्तर (**हि**) जिससे (**ते**) आप के समीप से (**सुम्नम्**) सुख की (**ईमहे**) याचना करते है ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य जिस को सुखो के प्रदानो में योग्य शूरवीर न्यायाधीश जाने उसी मे सुखो की पूर्त्ति करनी चाहिए ॥ ६ ॥

इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब । आगत्या वृषभिः सुतम् ॥७॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्य्य के देनेवाले ! आप (**आगत्य**) आके (**नः**) हम लोगो के (**वृषभि**) वृष्टिकर्त्ता मेघो से (**सुतम्**) उत्पन्न किये गये (**गवाशिरम्**) किरणें जिस को पीती हैं उस और (**यवाशिरम्**) यव अन्न का भोजन किया जाय जिसमे उस (**च**) और (**इमम्**) इस पदार्थ को (**पिब**) पान करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस को सूर्य का किरणें और पवनें पीती हैं उसी रस का आप लोग पान करके बलिष्ठ होइये ॥ ७ ॥

तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये३ सोमं चोदामि पीतये । एष रारन्तु ते हृदि ॥८॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्ययुक्त जन ! जो (**एष**) यह (**ते**) आप के (**हृदि**) हृदय मे (**रारन्तु**) अत्यन्त रमे उस (**सोमम्**) रस को (**स्वे**) अपने (**ओक्ये**) गृह मे (**पीतये**) पीने को (**तुभ्य**) आप के लिए (**इत्**) ही (**चोदामि**) प्रेरणा करता हूँ ॥ ८ ॥

भावार्थ—प्राणी लोग जो खाते और पीते हैं यह सब पदार्थ रुधिर आदि हो और हृदय मे फैल कर मस्तक के द्वारा सर्वत्र फैलता है ॥ ८ ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे । कुशिकासो अवस्यवः ॥९॥६॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सुख के दाता ! (**कुशिकास**) विद्या और विनय आदिको से श्रेष्ठ हुए (**अवस्यव**) आप लोगो के आत्माओ की रक्षा की इच्छा करनेवाले हम लोग (**सुतस्य**) उत्तम प्रकार सस्कारयुक्त रस के (**पीतये**) पान करने के लिए जिस (**प्रत्नम**) प्राचीन काल से सिद्ध (**त्वाम्**) आप को (**हवामहे**) देवें वह आप हम लोगो को बुलाइये ॥ ९ ॥

भावार्थ—नवीन विद्वानो मे प्राचीन विद्वान् श्रेष्ठ है, ऐसा निश्चय करना चाहिए ॥ ९ ॥

इस मन्त्र मे इन्द्र विद्वान् और सोम के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह बयालीसवां सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथाष्टर्चस्य त्रिचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषि । इन्द्रो देवता । १, ३ विराट् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर । २, ४, ६ निचृत् त्रिष्टुप्; ५ भुरिक् त्रिष्टुप्, ७, ८ त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

अब आठ ऋचावाले तेतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों के विषय को कहते हैं—

आ याह्यर्वाङुप वन्धुरेष्ठास्तवेदनु प्रदिवः सोमपेयम् ।
प्रिया सखाया वि मुचोप बर्हिस्त्वामिमे हव्यवाहो हवन्ते ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वज्जन ! आप (**अर्वाङ्**) नीचे के स्थल मे वर्त्तमान होकर जो (**तव**) आप के (**वन्धुरेष्ठा**) बन्धन मे वर्त्तमान रथ है उस से (**प्रदिव**) उत्तम प्रकाशवाले (**सोमपेयम्**) पीने योग्य सोमलता के रस के (**उप,आ,याहि**) समीप आइये और जो (**प्रिया**) प्रसन्नता के करनेवाले (**सखाया**) मित्र अध्यापक और उपदेशक हैं उन के समीप हूजिए । जो (**बर्हि**) अन्तरिक्ष मे (**त्वाम्**) आप के (**अनु**) पीछे (**इमे**) ये है उन का (**वि, मुच**) त्याग कीजिये जिनको (**हव्यवाह**) हवन सामग्री धारण करनेवाले (**उप, हवन्ते**) ग्रहण करते हैं उन के साथ (**इत्**) ही दुःख का त्याग कीजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—जो लोग विद्या के प्रकाश को प्राप्त हो विमानादि वाहनो का निर्माण और उस मे अग्नि आदि का प्रयोग करके अन्तरिक्ष मे जाते हैं वे प्रिय आचरण करने वाले मित्रो को प्राप्त होकर दारिद्र्य का नाश करते हैं ॥ १ ॥

अब मित्रता के गुण के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

आ याहि पूर्वीरति चर्षणीराँ अर्य आशिष उप नो हरिभ्याम् ।
इमा हि त्वा मतयः स्तोमतष्टा इन्द्र हवन्ते सख्यं जुषाणाः ॥२॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) बहुत ऐश्वर्यों के देनेवाले ! जो (**इमाः**) इन वर्त्तमान (**स्तोमतष्टा**) विस्तारयुक्त स्तुतियो मे विशिष्ट और (**सख्यम्**) मित्रता का (**जुषाणा**) सेवन करती हुई (**मतय**) बुद्धिया (**त्वा**) आप को (**आ, हवन्ते**) ग्रहण करती है उनके साथ (**न**) हम लोगो को (**आ**) सब प्रकार (**याहि**) प्राप्त हूजिये जिस प्रकार (**अर्य**) स्वामी (**चर्षणी**) मनुष्य आदि प्रजाओं को प्राप्त होकर (**आशिष**) आशीर्वादो को प्राप्त होता है वैसे उन (**पूर्वीः**) प्राचीन काल में उत्पन्न हुई आशिषो को (**हि**) ही (**हरिभ्याम्**) वायु और अग्नि से (**अति, आ**) सब ओर से अत्यन्त प्राप्त हूजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिस बुद्धि से सब लोगों के साथ मित्रता हो उससे युक्त हुए सब के आशीर्वादो को प्राप्त होकर सुख को निरन्तर प्राप्त होइये ॥ २ ॥

आ नो यज्ञं नमोवृधं सजोषा इन्द्र देव हरिभिर्याहि तूयम् ।
अहं हि त्वा मतिभिर्जोहवीमि घृतप्रयाः सधमादे मधूनाम् ॥३॥

पदार्थ—हे (**देव**) विद्वन् ! (**इन्द्र**) ऐश्वर्य्य से युक्त करनेवाले (**घृतप्रयाः**) घृत से प्रसन्न होनेवाला (**अहम्**) मैं (**मतिभिः**) बुद्धियों से (**मधूनाम्**) और मधुर आदि गुणो से युक्त पदार्थों के (**सधमादे**) तुल्य स्थान मे (**हि**) जिससे कि (**त्वा**) आप की (**जोहवीमि**) प्रशसा करता वा बुलाता हूँ इस से (**सजोषाः**) तुल्य प्रीति के सेवने वाले आप (**हरिभिः**) घोडो के सदृश अग्नि आदिको से (**नः**) हम लोगों के (**नमोवृधम्**) अन्न आदि ऐश्वर्य के बढ़ाने वाले (**यज्ञम्**) प्रयत्न से सिद्ध होने योग्य सङ्गत व्यवहार के प्रति (**तूयम्**) शीघ्र (**आ**) सब प्रकार (**याहि**) प्राप्त हूजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को उन लोगो की ही प्रशसा करनी चाहिए कि जो सब के सुखो की वृद्धि करें ॥ ३ ॥

आ च त्वामेता वृषणा वहातो हरी सखाया सुधुरा स्वङ्गा ।
धानावदिन्द्रः सवनं जुषाणः सखा सख्युः शृणवद्वन्दनानि ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष ! जैसे (**धानावत्**) पकाये हुए यवो से युक्त (**सवनम्**) ऐश्वर्य्य का (**जुषाणः**) सेवन करता हुआ (**इन्द्रः**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य का देने वाला (**सखा**) मित्र पुरुष (**सख्युः**) मित्र के अभिवादन आदि वा स्तुतियो को (**शृणवत्**) सुने और (**स्वङ्गा**) सुन्दर अङ्गो से विशिष्ट (**सखाया**) मित्रो के तुल्य वर्त्तमान तथा (**सुधुरा**) उत्तम धुरो से युक्त (**वृषणा**) वृष्टि करनेवाले वायु और बिजुली (**त्वाम्**) आप को (**एता**) प्राप्त हुए (**हरी**) ले चलनेवाले घोडो के सदृश सब को (**आ, वहातः**) प्राप्त होते हैं वैसे आप सब लोगो के वचनो को सुनिये और प्रिय कार्य्यों को सिद्ध कीजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वे लोग ही मित्र होने योग्य है कि जो बडे दुःख को प्राप्त होकर भी मित्रो का त्याग नहीं करते और जैसे दो वा बहुत घोडे इकट्ठे होकर यथेष्ट स्थानो मे पहुँचाते है वैसे अपने आत्मा से सदृश प्रिय जन इच्छा की सिद्धि को प्राप्त होते है ॥ ४ ॥

कुविन्मा गोपां करसे जनस्य कुविद्राजानं मघवन्नृजीषिन् ।
कुविन्म ऋषिं पपिवांसं सुतस्य कुविन्मे वस्वो अमृतस्य शिक्षाः ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वज्जन ! जो आप (**जनस्य**) सब लोगो के (**कुवित्**) श्रेष्ठ (**गोपाम्**) धार्मिक पुरुषो के रक्षा करनेवाले (**मा**) मुझको (**करसे**) करें । हे (**मघवन्**) परम प्रशसनीय धनयुक्त (**ऋजीषिन्**) कोमलपन को चाहने वाले ! जो आप जनसमूह का (**राजानम्**) राजा करें वह (**सुतस्य**) उत्पन्न किये हुए सोम के रस को (**पपिवांसम्**) पीते हुए (**कुवित्**) श्रेष्ठ (**ऋषिम्**) सम्पूर्ण वेदो के अर्थ के जानने वाले होने को (**मा**) मुझ को (**शिक्षाः**) शिक्षा दीजिये और आप (**कुवित्**) श्रेष्ठ (**अमृतस्य**) नाश से रहित (**मे**) मेरे (**वस्वः**) धन को करें उन आप की हम लोग सेवा करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो लोग आप लोगो को विद्या विनय और उत्तम शिक्षादान मे बडे राजा करते और वेद के अर्थों को समझा के मोक्ष सिद्ध करते है उनको आप अपने आत्मा के सदृश प्रसन्न करें ॥ ५ ॥

आ त्वा बृहन्तो हरयो युजाना अर्वागिन्द्र सधमादो वहन्तु ।
प्र ये द्विता दिव ऋञ्जन्त्याताः सुसंमृष्टासो वृषभस्य मूराः ॥६॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) अत्यन्त सेवा करने योग्य विद्वन् ! (**ये**) जो (**बृहन्तः**) बडे (**युजानाः**) समाधान देते हुए (**सधमादः**) समान स्थान वाले (**हरयः**) उत्तम प्रकार शिक्षित घोडो के सदृश अग्नि आदि पदार्थ (**त्वा**) आप को (**आ**) सब प्रकार (**वहन्तु**) एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचावें और वे तथा (**द्विता**) दो दो पदार्थों का होना जैसे वैसे विद्वान् (**दिवः**) विद्याओ से प्रकाशमानो को (**ऋञ्जन्ति**) सिद्ध करते है (**सुसंमृष्टासः**) वा श्रेष्ठ रीति से उत्तम प्रकार शुद्ध किये हुए (**आताः**) व्याप्त हुई दिशाओ के सदृश (**वृषभस्य**) बलवान् पदार्थ के वेग को (**प्र, वहन्तु**) प्राप्त हों उनसे जो (**मूराः**) मूढ होवें उन पुरुषों को (**अर्वाक्**) नीचे के स्थल मे आप पहुँचाइये ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् लोग घोडो के सदृश अभीष्ट स्थान में मूढो को पहुँचाते हैं वे सम्पूर्ण समृद्धि कर सकते हैं ॥ ६ ॥

इन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्ण आ यं ते श्येन उशते जभार ।
यस्य मदे च्यावयसि प्र कृष्टीर्यस्य मदे अप गोत्रा ववर्थ ॥७॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) विशेष ऐश्वर्य्य के देने वाले ! आप (**वृषधूतस्य**) बलिष्ट पदार्थों के कंपाने वाले (**वृष्णः**) बलिष्ठ पदार्थ के रस का (**पिब**) पान करो (**श्येन**) बाज पक्षी के सदृश (**यम्**) जिस की (**उशते**) कामना करने वाले (**ते**) आप के लिए जिस को (**आ, जभार**) धारण करता है (**यस्य**) जिस के (**मदे**) आनन्द मे आप (**कृष्टीः**) मनुष्यो को (**प्र, च्यावयसि**) प्राप्त कराते हैं और (**यस्य**) जिस के (**मदे**) आनन्द के निमित्त (**गोत्रा**) पृथिवी (**अप, ववर्थ**) वर्त्तमान है उस की अपने तुल्य सेवा करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो श्येन पक्षी के सदृश शीघ्र चलने और सब के सुख की कामना करनेवाले पुरुष मनुष्यों को सुख देते है उन लोगो के समीप वर्त्तमान होकर विद्या सम्बन्धी व्यवहार के आनन्द को प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥८॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**अस्मिन्**) इस (**वाजसातौ**) ज्ञान और अज्ञान के विभाग और (**भरे**) विद्वान् और अविद्वान् के संग्राम मे (**ऊतये**) विद्या आदि उत्तम गुणो मे प्रवेश होने के लिए (**समत्सु**) धार्मिक और अधार्मिको के विरोध-नामक युद्धो मे (**घ्नन्तम्**) विरोध को नाश करते हुए (**धनानाम्**) ऐश्वर्यों के (**संजितम्**) जीतने का स्वभाव रखनेवाले (**वृत्राणि**) धनों की (**शृण्वन्तम्**) उत्तम प्रकार परीक्षा करते हुए (**उग्रम्**) उत्तम स्वभावयुक्त (**मघवानम्**) सम्पूर्ण विद्याओं के उत्पन्न करने (**नृतमम्**) अतिशय करके विद्या के प्राप्त कराने और (**इन्द्रम्**) अविद्या आदि क्लेशो के नाश करनेवाले को प्राप्त होकर (**शुनम्**) महौषधियो के सेवन से उत्पन्न हुए सुख का (**हुवेम**) ग्रहण करें वैसे इस को प्राप्त होकर आनन्द को प्राप्त हूजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो को चाहिए कि विद्वानो के शरण को पहुँच कर अविद्या और दारिद्र्य का नाश तथा विद्या और लक्ष्मी को उत्पन्न कर निरन्तर आनन्द बढावें ॥ ८ ॥

इस सूक्त मे विद्वान् मित्र और सोमपानादिको के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तेंतालीसवां सूक्त और सातवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य चतुश्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
१, २ निचृद्बृहती, ३, ५ बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।
४ स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले चवालीसवें सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र मे सूर्य्य के विषय को कहते है—

अयं ते अस्तु हर्यतः सोम आ हरिभिः सुतः ।
जुषाण इन्द्र हरिभिर्न आ गह्या तिष्ठ हरितं रथम् ॥१॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) परम ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाले ! (**हर्यतः**) कामना करते हुए (**ते**) आप के (**हरिभिः**) घोडो के सदृश साधनो से जो (**अयम्**) यह (**सोमः**) ऐश्वर्य्यों का समूह (**सुतः**) प्राप्त हुआ (**अस्तु**) हो उस का (**जुषाणः**) सेवन करता हुआ (**हरिभिः**) ले चलने वाले घोडो से (**हरितम्**) अग्नि आदिको से चलाये गये (**रथम्**) मनोहर यान पर (**आ, तिष्ठ**) स्थिर हूजिये इस से (**नः**) हम लोगो को (**आ, गहि**) प्राप्त हूजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वे ही लोग दयालु हैं कि जो अन्य जनो के ऐश्वर्य्य की वृद्धि की इच्छा करें और ऐश्वर्य्य वालो को आते हुए देख के प्रसन्न होवें ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

हर्यन्नुषसमर्चयः सूर्यं हर्यन्नरोचयः ।
विद्वांश्चिकित्वान्हर्यश्व वर्धस इन्द्र विश्वा अभि श्रियः ॥२॥

पदार्थ—हे (**हर्यन्**) कामना करनेवाले ! (**उषसम्**) प्रातःकाल को सूर्य के सदृश सत्पुरुषों का आप (**अर्चयः**) सत्कार करिये और हे (**हर्यन्**) अनेक पदार्थों को प्राप्त होने वा प्राप्त कराने वाले ! (**सूर्यम्**) सूर्य को बिजुली जैसे वैसे न्याय का (**अरोचयः**) प्रकाश करो और हे (**हर्यश्व**) कामना करते हुए ! शीघ्र चलने वाले अश्व वा अग्नि आदि पदार्थों से युक्त (**इन्द्र**) धन की इच्छा करने वाले जिस से (**चिकित्वान्**) ज्ञानवान् (**विद्वान्**) विद्वान् होते हुए (**विश्वाः**) सम्पूर्ण (**अभि**) सम्मुख वर्त्तमान (**श्रियः**) सुन्दर सम्पत्तियो का प्राप्त होने की इच्छा करते हो इस से (**वर्धसे**) वृद्धि को प्राप्त होते हो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य प्रातःकाल के सदृश विद्याओं के प्रकाश मे तत्पर और सूर्य के सदृश धर्माचरण की कामना करते हुए प्रयत्न से ऐश्वर्य्य की इच्छा करें वे सब प्रकार लक्ष्मीयुक्त होकर निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

द्यामिन्द्रो हरिधायसं पृथिवीं हरिवर्पसम् ।
अधारयद्धरितोर्भूरि भोजनं ययोरन्तर्हरिश्चरत् ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष ! जैसे (**इन्द्र**) बिजुली वा सूर्य (**हरिधायसम्**) किरणों को धारण करने वा (**द्याम्**) प्रकाश लोक और (**हरिवर्पसम्**) जिसके रूप का प्रकाश करनेवाली किरणें विद्यमान उस (**पृथिवीम्**) पृथिवी को (**अधारयत्**) धारण करता है और जैसे (**हरि**) हरनेवाला वायु (**ययो**) जिन (**हरितो**) हरनेवाले गुणों के (**अन्त**) मध्य में वर्त्तमान हुआ (**भूरि**) बहुत (**भोजनम्**) पालन वा भक्षण का (**चरत्**) आचरण करता है वैसे आप हूजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग सूर्य के सदृश नियमपूर्वक धर्मयुक्त कर्मों को सिद्ध करते और वायु के सदृश निरन्तर प्रयत्न करते हैं वे बहुत ऐश्वर्य को प्राप्त होकर आनन्दित होते हैं ॥ ३ ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

जज्ञानो हरितो वृषा विश्वमा भाति रोचनम् ।
हर्यश्वो हरितं धत्त आयुधमा वज्रं बाह्वोर्हरिम् ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! जो (**जज्ञान**) उत्पन्न होता हुआ (**हरित**) हरित आदि वर्णों से युक्त (**हर्यश्व**) कामना करते हुए शीघ्र चलनेवाले गुण हैं जिस बिजुली रूप के वह (**वृषा**) वृष्टिकारक (**हरितम्**) कामना करने योग्य (**रोचनम्**) और सब ओर से जिस में प्रीति करते हैं ऐसे (**विश्वम्**) सम्पूर्ण लोक को (**बाह्वो**) भुजाओं के (**हरितम्**) हरनेवाले (**वज्रम्**) शस्त्रों के सदृश किरणों के समूह को (**प्र, आ, धत्ते**) धारण करता और (**आ, भाति**) प्रकाशित होता है उसको जानकर उपयोग करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग जैसे प्रसिद्ध सूर्य्य सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करके आप प्रकाशित होता है वैसे ही सद्विद्या के उपदेश से धर्म का प्रकाश करावें ॥ ४ ॥

इन्द्रो हर्यन्तमर्जुनं वज्रं शुक्रैरभीवृतम् ।
अपावृणोद्धरिभिरद्रिभिः सुतमुद्गा हरिभिराजत ॥५॥८॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! जैसे (**इन्द्र**) सूर्य्य (**शुक्रै**) शीघ्रता करनेवाले गुणों से (**अभीवृतम्**) सब ओर से युक्त (**अर्जुनम्**) रूप और (**वज्रम्**) किरणों के समूह की (**हर्यन्तम्**) कामना करते हुए (**हरिभि**) हरनेवाली किरणों और (**अद्रिभि**) मेघों से (**सुतम्**) सिद्ध हुए पदार्थ को (**अप, अवृणोत्**) दूर करता है वैसे (**हरिभि**) मनुष्यों के साथ राजा (**गा**) पृथिवियों के तुल्य और पदार्थों को (**उत्, आजत**) फेंकता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग सूर्य्य के सदृश विद्या नम्रता सेना और धन आदि का प्रकाश और अविद्या आदि की निवृत्ति कर जिसका उत्तम सहाय उस राजा के साथ सन्नाह करके राज्य का पालन करते हैं वे पूर्ण मनोरथवाले होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में सूर्य्य बिजुली वायु और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह चवालीसवां सूक्त और आठवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषि । इन्द्रो देवता । १, २ निचृद्बृहती; ३, ५ बृहती छन्द । मध्यम स्वर । ४ स्वराडनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वरः ।

अब पांच ऋचावाले पैंतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं—

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा केचिन्नि यमन्विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥१॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त ! आप (**मयूररोमभि**) मयूरों के रोमों के सदृश रोम हैं जिन के उन (**मन्द्रै**) आनन्द को देनेवाले (**हरिभि**) प्रयत्नवान् मनुष्यों के सदृश घोड़ों वा किरणों से (**आ, याहि**) आओ जिसमें (**के चित्**) कोई लोग (**त्वा**) आपको (**पाशिन**) बन्धन के लिए प्रवृत्त हुए (**विम्**) पक्षी को (**न**) तुल्य (**मा**) नहीं (**नि**) अत्यन्त (**यमन्**) निग्रह क्लेश देवें किन्तु (**धन्वेव**) शस्त्र विशेष धनुष् के तुल्य (**तान्**) उनको (**अति, इहि**) अतिक्रमण कर प्राप्त हूजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । राजपुरुषों को चाहिए कि ऐसी सेना ऐसे रथ आदि कि जिनसे युद्धादि व्यवहारसिद्धि के लिए जाने को अति चतुराई के साथ संग्राम करके विजय पावें और जिससे और जन उन को ग्रहण न करें ऐसा उपाय करें ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वृत्रखादो वलंरुजः पुरां दर्मो अपामजः ।
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृळ्हा चिदारुजः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**वृत्रखाद**) मेघों को भक्षण करनेवाला किरण वा वायु (**वलंरुज**) मेघ को नाश करने और (**अपाम्**) जलों को (**अजः**) प्रेरणा करने तथा (**आरुज**) चारों ओर से तोड़नेवाला (**इन्द्रः**) सूर्य्य (**दृळ्हा**) दृढ़ भङ्ग करता है वैसे हम लोग (**चित्**) भी (**पुराम्**) शत्रुओं के नगरों के मध्य में वर्त्तमान वीरों को (**दर्मः**) नाश करें और जैसे (**हर्योः**) दो घोड़ों के (**अभिस्वरे**) चारों ओर शब्द करनेवाले में वर्त्तमान (**रथस्य**) रथ के मध्य में (**स्थाता**) वर्त्तमान होने वाला पुरुष वीर पुरुषों को जीतता है वैसे ही हम लोग भी जीतें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे बिजुली सूर्य और पवन मेघों के अवयवों को काटते हैं वैसे ही धार्मिक राजा आदि लोग शत्रुओं को काटें ॥२॥

गम्भीराँ उदधीँरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव ।
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष ! जिस से आप (**गम्भीरान्**) अथाह (**उदधीनिव**) जल जिन में रहे उन समुद्रों के सदृश और (**गाइव**) पृथिवियों के सदृश (**क्रतुम्**) बुद्धि को (**पुष्यसि**) पूर्ण करते हो (**सुगोपा**) उत्तम प्रकार रक्षा करनेवाले होकर (**यथा**) जैसे (**धेनवः**) गौएँ (**यवसम्**) धान्य तृण आदि (**ह्रदम्**) और जल के स्थान को (**कुल्या इव**) वाटिका आदि में जल चलाने के मार्गों के तुल्य जो (**प्र, आशत**) प्राप्त हो इससे और वैसे आप और ये लोग सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जिन लोगों की समुद्र के सदृश अचल गम्भीर बुद्धि पृथिवी के सदृश क्षमा और पालन का सामर्थ्य, गौ के सदृश दान और नदी के सदृश वृद्धि है वे ही सम्पूर्ण सुखों से युक्त होते हैं ॥ ३ ॥

आ नस्तुजं रयिं भरांशं न प्रतिजानते ।
वृक्षं पक्वं फलमङ्कीव धूनुहीन्द्र संपारणं वसु ॥४॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) धन के दाता ! आप (**अंशम्**) भाग के (**न**) तुल्य (**न**) हम लोगों के लिए (**प्रतिजानते**) प्रतिज्ञा से व्यवहार के सिद्ध करनेवाले के लिए और (**तुजम्**) ग्रहण करने के योग्य (**रयिम्**) धन को (**आ**) सब ओर से (**भर**) दीजिए (**वृक्षम्**) वृक्ष को और (**पक्वम्**) पाकयुक्त (**फलम्**) फल को (**अङ्कीव**) अङ्कुश धारण किये हुए के सदृश (**सम्पारणम्**) उत्तम प्रकार दुःख के पार जाता है जिस से ऐसे (**वसु**) धन को (**धूनुहि**) कंपाइये अर्थात् भेजिए ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । वे ही धार्मिक पुरुष हैं जो अन्य लोगों के सुख के लिए लक्ष्मी धारण करके औरों के दुःख नाश करनेवाले होवें ॥४॥

स्वयुरिन्द्र स्वराळसि स्मद्दिष्टिः स्वयशस्तरः ।
स वावृधान ओजसा पुरुष्टुत भवा नः सुश्रवस्तमः ॥५॥९॥

पदार्थ—हे (**पुरुष्टुत**) बहुतों से प्रशंसित (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्यवाले ! जो आप (**स्वयु**) धन को प्राप्त (**स्वराट्**) स्वतन्त्र राज्यकर्त्ता (**स्मद्दिष्टिः**) कल्याण कर्म का उपदेश देनेवाले और (**स्वयशस्तरः**) अपने यश धन और प्रशंसा से गम्भीर (**असि**) हैं (**स**) वह (**ओजसा**) पराक्रम से (**वावृधान**) वृद्धि को प्राप्त (**सुश्रवस्तम**) श्रेष्ठ धन से युक्त बातचीत के अत्यन्त सुननेवाले (**न**) हम लोगों के लिए (**भव**) होइये ॥ ५ ॥

भावार्थ—वही चक्रवर्ती राजा होने के योग्य होता है कि जो अत्यन्त प्रशंसायुक्त गुण कर्म और स्वभाववाला है और वही राजा सब का वृद्धिकारक होता है ॥५॥

इस सूक्त में सूर्य, विद्वान् और राजा के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह पैंतालीसवां सूक्त और नववां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य षट्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ विराट् त्रिष्टुप्, २, ५ निचृत् त्रिष्टुप्, ३, ४ त्रिष्टुप् छन्द । धैवतः स्वर ॥

अब पांच ऋचावाले छियालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में राजा कैसा हो इस विषय को कहते हैं—

युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराज उग्रस्य यूनः स्थविरस्य घृष्वेः ।
अजूर्यतो वज्रिणो वीर्याणीन्द्र श्रुतस्य महतो महानि ॥१॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के दाता ! जिस (**युध्मस्य**) युद्ध करने और (**स्वराज**) अपने से प्रकाशित (**वृषभस्य**) बलवाले (**उग्रस्य**) तेजस्वी स्वभाव और (**यूनः**) यौवन अवस्था को प्राप्त पुरुष तथा (**स्थविरस्य**) वृद्धावस्थायुक्त पुरुष के और (**घृष्वेः**) शत्रुओं को घसीटनेवाले (**अजूर्यतः**) शरीर की शिथिलता से रहित और (**वज्रिणः**) बहुत प्रकार के शस्त्रों से युक्त (**महतः**) सेवा करने योग्य (**श्रुतस्य**) प्रसिद्ध (**ते**) आप के जो (**महानि**) श्रेष्ठ (**वीर्याणि**) वीर पुरुषों के कर्म हैं उन से युक्त आप हम लोगों से सत्कार पाने योग्य हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—जो सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त युवा वा वृद्ध भी राजा हो, वैसे ही अपने प्रयत्न से अपने सामर्थ्य का बढ़ानेवाला होवे ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

महाँ असि महिष वृष्ण्येभिर्धनस्पृदुग्र सहमानो अन्यान् ।
एको विश्वस्य भुवनस्य राजा स योधया च क्षयया च जनान् ॥२॥

पदार्थ—हे (महिष) अत्यन्त आदर करने योग्य ! (उग्र) बल आदिकों से युक्त और (राजन्) प्रकाशित जिससे आप (वृष्ण्येभिः) बलवान् पुरुषों में उत्पन्न गुणों के साथ (महान्) श्रेष्ठ गुणों से युक्त और (धनस्पृत्) धन के सेवक (एकः) सहाय रहित (अन्यान्) शत्रुओं को (सहमानः) सहते हुए (विश्वस्य) सम्पूर्ण (भुवनस्य) प्राणियों के निवास के स्थान के श्रेष्ठ गुणों से युक्त (राजा, असि) हैं (सः) वह आप (जनान्) प्रसिद्ध वीरो को (योधय) लड़ाइये शत्रुओं को (क्षयय) पराजय को पहुँचाइये (च) और सज्जनों को अपने देश में बसाइये ॥ २ ॥

भावार्थ—जो लोग शरीर और आत्मा का पूर्ण बल करके शत्रुओं को निवारण करते और सज्जनों का सत्कार करके आनन्द देते हैं वे श्रेष्ठ होते हैं ॥२॥

अब बिजुली के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

प्र मात्राभी रिरिचे रोचमानः प्र देवेभिर्विश्वतो अप्रतीतः ।
प्र मज्मना दिव इन्द्रः पृथिव्याः प्रोरोर्महो अन्तरिक्षादृजीषी ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (रोचमानः) प्रीति करता हुआ (विश्वतः) सर्वत्र (अप्रतीतः) प्रसिद्धि को नहीं प्राप्त (ऋजीषी) सीधे स्वभाववाला (इन्द्रः) और पराक्रम से युक्त सूर्य्य के सदृश तेजस्वी बिजुलीरूप अग्नि (मात्राभिः) शब्द आदि वा सूक्ष्म व्यवहारों के अवयवों से (प्र, रिरिचे) अधिक होता है और (देवेभिः) विद्वानों के साथ (प्र) वृद्धि को प्राप्त होता है (मज्मना) बल से (दिवः) प्रकाश से (पृथिव्याः) भूमि (उरोः) अनेक प्रकार गुणों के समूह से युक्त (महः) बड़े (अन्तरिक्षात्) आकाश से (प्र) अधिक होता है वैसा आचरण करते हुए आप लोग प्रतिष्ठा को (प्र) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे विकार को नहीं प्राप्त हुई बिजुली गन्धक आदिकों में वर्त्तमान हुई भी कुछ हानि नहीं करती वैसे ही सब लोगों के साथ मित्रता करके विरोध का त्याग करो ॥ ३ ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

उरुं गभीरं जनुषाभ्युग्रं विश्वव्यचसमवतं मतीनाम् ।
इन्द्रं सोमासः प्रदिवि सुतासः समुद्रं न स्रवत आ विशन्ति ॥४॥

पदार्थ—जो लोग (प्रदिवि) उत्तम प्रकाश में (सुतासः) विद्या और विनय में प्रसिद्ध (सोमासः) ऐश्वर्य्यवाले विद्वान् लोग (जनुषा) जन्म से (उरुम्) अनेक प्रकार के गुणों से युक्त (गभीरम्) गूढ़ अभिप्रायवाले (उग्रम्) सब के साथ मिले हुए (विश्वव्यचसम्) सर्वत्र व्यापक (मतीनाम्) मनुष्यों के (अवतम्) रक्षा करनेवाले (इन्द्रम्) बिजुली रूप अग्नि को (स्रवतः) बहती हुई नदियां (समुद्रम्) समुद्र को (न) जैसे (अभि, आ, विशन्ति) सब ओर से प्रविष्ट होती हैं वैसे जो सब ओर से प्रवेश करते अर्थात् उस में चित्त देते हैं वे उस ऐश्वर्य वाले होते हैं जो ऐश्वर्य कभी नष्ट नहीं होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो लोग बिजुली सम्बन्धी विद्या को जानकर उसके द्वारा उपकार ग्रहण कर सकते हैं वे अनेक प्रकार की लक्ष्मियों को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

यं सोममिन्द्र पृथिवीद्यावा गर्भं न माता बिभृतस्त्वाया ।
तं ते हिन्वन्ति तमु ते मृजन्त्यध्वर्यवो वृषभ पातवा उ ॥५॥१०॥

पदार्थ—हे (वृषभ) बलिष्ठ (इन्द्र) ऐश्वर्य से युक्त करनेवाले ! जो (त्वाया) आपको प्राप्त हुई (पृथिवीद्यावा) भूमि और बिजुली (माता) माता (गर्भम्) गर्भ को (न) जैसे वैसे (यम्) जिस (सोमम्) ऐश्वर्य को (बिभृतः) धारण करते हैं (तम्) उसको (ते) तुम्हारे लिए जो (हिन्वन्ति) वृद्धि करते हैं (तम्, उ) उसी को (ते) आप के लिए जो (अध्वर्यवः) अपनी हिंसा नहीं चाहते हुए बढ़ाते हैं वा तुम्हारे लिए उसी को जो लोग (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं उन की (उ) ही (पातवै) रक्षा के लिए आप उद्युक्त होइये ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो विद्वान् लोग पृथिवी और सूर्य्य के सदृश सब को विद्या और बल से बढ़ाते और उत्तम शिक्षा से पवित्र करते वे माता के सदृश पालन करनेवाले हैं ऐसा जानकर वे सब लोगों से सत्कार करने योग्य हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में राजा बिजुली और पृथिवी आदिकों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह छियालीसवां सूक्त और दशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

अथ पञ्चर्चस्य सप्तचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता।
१—३ निचृत् त्रिष्टुप्; ४ त्रिष्टुप्; ५ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले सैंतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में राजा के विषय को कहते हैं—

मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय ।
आ सिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वं राजासि प्रदिवः सुतानाम् ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त (मरुत्वान्) श्रेष्ठ मनुष्यों से युक्त (वृषभः) बलवान् ! आप (रणाय) संग्राम के और (मदाय) आनन्द के लिए (अनुष्वधम्) अनुकूल स्वधा अन्न वर्त्तमान जिस में ऐसे (सोमम्) श्रेष्ठ ओषधि के रस का (पिब) पान करो और (जठरे) पेट में (मध्वः) मधु की (ऊर्मिम्) लहर को (आ, सिञ्चस्व) सेवन करो जिससे (त्वम्) आप (प्रदिवः) अत्यन्त विद्या और विनय से प्रकाशित के (सुतानाम्) उत्पन्न हुए ऐश्वर्य आदिकों के (राजा) प्रकाशकर्त्ता (असि) हैं इससे ऐसा आचरण करो ॥ १ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप जो विजय आरोग्य बल और अधिक अवस्था की इच्छा करें तो ब्रह्मचर्य धनुर्वेदविद्या जितेन्द्रियत्व और नियमित आहार विहार को करिये ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ।
जहि शत्रूँरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः ॥२॥

पदार्थ—हे (शूर) शत्रुओं के नाशकर्त्ता (इन्द्र) ऐश्वर्य्य से युक्त करने वाले ! (मरुद्भिः) पवनों के सदृश वीर पुरुषों के और (सगणः) गणों के सहित वर्त्तमान (वृत्रहा) मेघ का नाशकर्त्ता सूर्य्य जैसे वैसे (सजोषाः) तुल्य प्रीति का सेवन करनेवाला गणों के सहित वर्त्तमान होकर और पवनों के सदृश वीर पुरुषों के सहित (विद्वान्) सकल विद्याओं का जाननेवाला पुरुष (सोमम्) सोमलता के रस को (पिब) पीजिये और (शत्रून्) शत्रुओं को (अप, जहि) देश से बाहर करके नष्ट करिये (मृधः) संग्रामों की (नुदस्व) प्रेरणा अर्थात् प्रवृत्ति का उत्साह दीजिये (अथ) उसके अनन्तर (विश्वतः) सब ओर से (नः) हम लोगों को (अभयम्) भयरहित (कृणुहि) कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—जो राजा आदि मनुष्य परस्पर मित्र होकर नियमित भोजन विहार ब्रह्मचर्य्य जितेन्द्रिय होने आदि से पूर्ण शरीर आत्मा के बलवाले हों शत्रुओं का नाश कर और संग्रामों को जीतकर प्रजाओं में सब प्रकार भयरहित करते हैं वे ही सर्वत्र भयरहित सुख को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

अब सूर्य्य के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

उत ऋतुभिर्ऋतुपाः पाहि सोममिन्द्र देवेभिः सखिभिः सुतं नः ।
याँ आभजो मरुतो ये त्वान्वहन्वृत्रमदधुस्तुभ्यमोजः ॥३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दुःख के नाशकर्त्ता पुरुष ! आप (ऋतुभिः) वसन्त आदि ऋतुओं के साथ (ऋतुपाः) ऋतुओं की रक्षा करनेवाले सूर्य के सदृश (देवेभिः) विद्वान् (सखिभिः) मित्रों के साथ (सुतम्) उत्पन्न (सोमम्) संसार की (पाहि) रक्षा करो और (यान्) जिन (मरुतः) मरणधर्मवाले मनुष्य (नः) हम लोगों का आप (आ) सब प्रकार (अभजः) सेवन करें (ये) जो लोग (तुभ्यम्) आपके लिए (ओजः) पराक्रम और (वृत्रम्) सब सुखों के कर्त्ता धन को (त्वा) और आप को (अनु, अदधुः) अनुकूलता से धारण करें उनकी आप रक्षा कीजिये (उत) और भी जैसे सूर्य्य मेघ का (अहन्) नाश करता है वैसे शत्रुओं का नाश करिये ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजा आदि मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य वसन्त आदि ऋतुओं से सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करता जलादि रसों का आकर्षण और पुनः वृष्टि करके पालन करता है वैसे ही विद्वान् मित्रों के साथ विचार करके विजय और पुरुषार्थ से सब की रक्षा कीजिए ॥ ३ ॥

फिर राजा के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ ।
ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमं सगणो मरुद्भिः ॥४॥

पदार्थ—हे (हरिवः) उत्तम घोड़ों से युक्त (मघवन्) श्रेष्ठ बहुत धनों वाले (इन्द्र) ऐश्वर्य के कर्त्ता ! (ये) जो (विप्राः) बुद्धिमान् लोग (त्वाम्) आपको (मरुद्भिः) पवनों के सदृश अपने मित्रों के साथ सूर्य (अहिहत्ये) मेघ का नाश हो जिसमें ऐसे (शाम्बरे) मेघसम्बन्धी संग्राम में जैसे वैसे (अवर्धन्) वृद्धि करें और (ये) जो (गविष्टौ) किरणों के समूह में आप की वृद्धि करें (ये) जो युद्ध में (नूनम्) निश्चित (अनु, मदन्ति) अनुकूलता से आनन्द देते हैं उन पवनों के सदृश मित्रों के और (सगणः) वीर पुरुषों के सहित (सोमम्) ओषधियों से उत्पन्न हुए घृत दुग्ध आदि रसों का (पिब) पान कीजिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे नहीं बढ़े हुए मेघ को सूर्य बढ़ाके और बढ़े हुए का नाश करता है वैसे ही धार्मिक राजा आदि पुरुष धार्मिक शान्त पुरुषों की रक्षा और दुष्ट पुरुषों का नाश कर स्वयं प्रसन्न होकर प्रजाओं को प्रसन्न करें ॥ ४ ॥

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥५॥११॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (इह) इस राज्यव्यवहार में (नूतनाय) नवीन (अवसे) रक्षण आदि के लिए (मरुत्वन्तम्) प्रशंसा करने योग्य मनुष्य हों जिस के उस और (वृषभम्) बलवाले और (वावृधानम्) बढ़ने वा बढ़ानेवाले (अकवारिम्) शत्रुओं से रहित (दिव्यम्) शुद्ध गुण कर्म और स्वभाव से युक्त (विश्वासाहम्) सब को सहने और (उग्रम्) दुष्टों के नाश करने (सहोदाम्) बल के देने और (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्यवाले (शासम्) शासन करनेवाले की प्रशंसा करो (तम्) उस की हम लोग (हुवेम) प्रशंसा करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि उसी को अपना राजा करें कि जिसमें सम्पूर्ण राजा के धर्म अङ्ग और उपाङ्ग सहित वर्त्तमान हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में राजा और सूर्य्य के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह सैंतालीसवां सूक्त और ग्यारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्याष्टाचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, २ निचृत् त्रिष्टुप्, ३, ४ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पाँच ऋचावाले अड़तालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में राजा के विषय को कहते हैं—

सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः प्रभर्तुमावदन्धसः सुतस्य ।
साधोः पिब प्रतिकामं यथा ते रसाशिरः प्रथमं सोम्यस्य ॥१॥

पदार्थ—हे राजन् ! (**यथा**) जैसे (**सद्य**) शीघ्र (**जात**) उत्पन्न हुआ (**वृषभः**) वृष्टि करनेवाला (**कनीन**) प्रकाशवान् (**रसाशिर**) रसों का भोजन करनेवाला सूर्य्य (**अन्धस**) अन्न के (**सुतस्य**) उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त (**सोम्यस्य**) ऐश्वर्य में उत्पन्न का (**प्रथमम्**) प्रथम (**आवत्**) रक्षा करे उस प्रकार के आप (**प्रतिकामम्**) कामना कामना के प्रति ओषधियों के रस का (**पिब**) पान करो और इस प्रकार के (**साधो**) उत्तम मार्गों में वर्त्तमान (**ते**) आप का (**ह**) निश्चय से प्रजाओं को (**प्रभर्तुम्**) प्रकर्षता से धारण करने को सामर्थ्य होवे ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे राजा आदि मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य आदि पदार्थ अपने प्रताप और ईश्वर के नियोग से सब पदार्थों की रक्षा करके दोषों का नाश करते हैं वैसे ही साधु पुरुषों की रक्षा करके दुष्ट पुरुषों का नाश करें ॥१॥

अब सन्तान की उत्पत्ति के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यज्जायथास्तदहरस्य कामेंऽशोः पीयूषमपिबो गिरिष्ठाम् ।
तं ते माता परि योषा जनित्री महः पितुर्दम आसिञ्चदग्रे ॥२॥

पदार्थ—हे राजन् ! आप (**यत्**) जिस (**अह**) दिन (**जायथा**) उत्पन्न हुए (**तत्**) उस दिन की (**कामे**) कामना में (**अस्य**) इस (**अंशो**) प्राप्त हुए भाग के (**गिरिष्ठाम्**) मेघ में विद्यमान (**पीयूषम्**) अमृतरूप रस को (**ते**) आपके पिता (**अपिब**) पान करें (**तम्**) उसको आपके (**पितु**) पालक और उत्पादक पिता की (**योषा**) स्त्री आप की (**जनित्री**) उत्पन्न करनेवाली (**माता**) माता (**अग्रे**) पहले (**दमे**) घर में (**महः**) बड़े को (**परि, आ, असिञ्चत्**) चारों ओर से सींचती है ॥ २ ॥

भावार्थ—जब स्त्री और पुरुष गर्भ को धारण करें तब दुष्ट अन्न पान आदि का सेवन त्याग श्रेष्ठ अन्न पान गर्भधारण और सन्तान उत्पन्न करके फिर उसका भी इसी प्रकार पालन और वृद्धि करें जो कि राजा होने को योग्य हो ॥ २ ॥

उपस्थाय मातरमन्नमैट्ट तिग्ममपश्यदभि सोममूधः ।
प्रयावयन्नचरद्गृत्सो अन्यान्महानि चक्रे पुरुधप्रतीकः ॥३॥

पदार्थ—जो (**गृत्स**) बुद्धिमान् (**पुरुधप्रतीक**) बहुतों को धारण करने वालों के प्रति प्राप्त होनेवाला सूर्य्य (**ऊध**) प्रातःकाल की रात्रि को जैसे वैसे (**मातरम्**) पुत्र की माता को (**उपस्थाय**) समीप प्राप्त होकर (**अन्नम**) खाने योग्य पदार्थ की (**ऐट्ट**) प्रशंसा करे और (**प्रयावयन्**) संयोग वा विभाग करता हुआ (**सोमम्**) ऐश्वर्य्य को (**अभि**) चारों ओर से (**अपश्यत्**) देखे और (**अन्यान्**) औरों को (**अचरत**) आचरण करे (**महानि**) बड़े सन्तानों को (**चक्रे**) उत्पन्न करे वही राजा होने योग्य है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य प्रातःकाल की रात्रि को प्राप्त होकर दिन को उत्पन्न करता है वैसे ही सन्तान की माता को सन्तान का पिता प्राप्त होकर गर्भस्थिति करे और वैसे ही संस्कारों को माता और पिता करें कि जैसे सन्तान उत्तम गुण कर्म लक्षण स्वभावों से युक्त राजकर्मों को करने योग्य होवें ॥ ३ ॥

अब प्रजा के पालन का विषय अगले मन्त्रों में कहते हैं—

उग्रस्तुराषाळभिभूत्योजा यथावशं तन्वं चक्र एषः ।
त्वष्टारमिन्द्रो जनुषाभिभूयामुष्या सोममपिबच्चमूषु ॥४॥

पदार्थ—जो (**एषः**) यह (**चमूषु**) भक्षण करनेवाली सेनाओं में (**सोमम्**) ओषधियों के रस को (**आमुष्य**) चोरी करके (**अपिबत्**) पीवे उस (**त्वष्टारम्**) तेजस्वी और शत्रुओं का (**अभिभूय**) तिरस्कार करके (**जनुषा**) जन्म से (**उग्रः**) तेजस्वी (**तुराषाट्**) शीघ्रकारियों को सहनेवाला (**अभिभूत्योजाः**) शत्रुओं के तिरस्कार करनेवाले पराक्रम से युक्त (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्यवाला पुरुष (**यथावशम्**) यथासामर्थ्य (**तन्वम्**) शरीर को (**चक्रे**) करता है वह राज्य करने के योग्य होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् धार्मिक राजा जन हैं वे चोर आदि दुष्ट जनों का तिरस्कार और मादक द्रव्य अर्थात् उन्मत्तता करनेवाले द्रव्यों के सेवनकर्त्ताओं का दण्ड करके और अपने आप अव्यसनी होकर प्रजाओं के पालन करने को समर्थ होवें, वे ही राज्य की वृद्धि करने के योग्य होवें ॥ ४ ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥५॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग (**अस्मिन्**) इस (**वाजसातौ**) सत्य और असत्य व्यवहार के विभाग करनेवाले (**भरे**) पोषण करने योग्य राज्य में (**ऊतये**) रक्षण आदि के लिए (**मघवानम्**) न्याय से इकट्ठे किये गये बहुत धन से सत्कृत (**नृतमम्**) मनुष्यों में उत्तम मनुष्य (**शृण्वन्तम्**) सत्य और असत्य का निश्चय करके आज्ञा देते हुए (**उग्रम्**) दुष्ट जनों में कठिन और श्रेष्ठ पुरुषों में सरल स्वभाव वाले (**समत्सु**) धर्मयुक्त संग्रामों में (**घ्नन्तम्**) दुष्ट पुरुषों के नाशकर्त्ता (**धनानाम्**) धनों के (**सञ्जितम्**) पालन करने वा देनेवाले (**वृत्राणि**) धनों को प्राप्त (**इन्द्रम्**) राजा को प्राप्त होकर (**शुनम्**) राजाओं के धर्म से उत्पन्न हुए सुख को (**हुवेम**) ग्रहण करें वैसे ही ऐसे राजा को प्राप्त होकर आप लोग भी इस का ग्रहण करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—सम्पूर्ण श्रेष्ठ सभासद् विद्वज्जनों को चाहिए कि अवश्य सम्पूर्ण शास्त्रों में निपुण उत्तम गुण कर्म और स्वभाव वाले राजधर्म में चतुर व उत्तम कुल-युक्त अत्यन्त ऐश्वर्य्यवान पुरुष को सब का अधीश करके और राज्य की निरन्तर रक्षा करके चौरादिकों का नाश करें ॥५॥

इस सूक्त में राजधर्म सन्तानोत्पत्ति और राज्यपालन आदि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ।

यह अड़तालीसवां सूक्त और बारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्यैकोनपञ्चाशस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ४ निचृत्त्रिष्टुप्, २, ५ त्रिष्टुप्छन्दः, धैवतः स्वरः । ३ भुरिक् पङ्क्तिः छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले उनचासवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में प्रजा के विषय को कहते हैं—

शंसा महामिन्द्रं यस्मिन् विश्वा आ कृष्टयः सोमपाः काममव्यन् ।
यं सुक्रतुं धिषणे विभ्वतष्टं घनं वृत्राणां जनयन्त देवाः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (**यस्मिन्**) जिसमें (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**सोमपाः**) ऐश्वर्य्य के पालन करने वाले (**कृष्टयः**) मनुष्य (**कामम्**) अभिलाषा को (**आ**) सब प्रकार (**अव्यन्**) इच्छा करें (**वृत्राणाम्**) मेघों के (**घनम्**) समूह को (**विभ्वतष्टम्**) व्यापक परमेश्वर ने रचा (**महाम्**) श्रेष्ठ और सेवा करने योग्य (**इन्द्रम्**) राजा को (**धिषणे**) अन्तरिक्ष और पृथिवी को प्रकाशित करते हुए सूर्य्य के सदृश विद्या और नीति को प्रकाशित करते हुए (**यम्**) जिस (**सुक्रतुम्**) उत्तम कर्म करनेवाली बुद्धि से युक्त पुरुष को (**देवा**) विद्वान् लोग (**जनयन्त**) उत्पन्न करते हैं उस राजा की आप (**शंस**) स्तुति करिये ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान् लोगो ! जैसे बड़ा एक सूर्य्य प्रत्येक भूगोल में वर्त्तमान मेघों का नाश करता और प्राणियों के सुख को उत्पन्न करता है वैसे ही राजा जन दुष्ट पुरुषों का नाश और श्रेष्ठ पुरुषों की इच्छा पूर्ण करके आनन्द देता है ॥ १ ॥

अब राजा के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यं नु नकिः पृतनासु स्वराजं द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम् ।
इनतमः सत्वभिर्यो ह शूषैः पृथुज्रया अमिनादायुर्दस्योः ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! (**यम्, हरिष्ठाम्**) मनुष्य वर्त्तमान हों जिसमें उस (**नृतमम्**) अतिशय करके नायक (**स्वराजम्**) अपने से सूर्य्य के सदृश प्रकाशमान (**पृतनासु**) वीरों की सेनाओं में (**द्विता**) दोपन को (**नकिः**) नहीं (**तरति**) उल्लङ्घन करता है और (**यः**) जो (**पृथुज्रयाः**) तीव्र वेग से युक्त (**इनतम**) अत्यन्त समर्थ (**ह**) निश्चय से (**शूषैः**) बलयुक्त (**सत्वभिः**) शत्रुओं को दुःख देनेवाले वीरों के साथ (**दस्योः**) दुष्ट पुरुष के (**आयुः**) अवस्था का (**नु**) शीघ्र (**अमिनात्**) नाश करे उसको सबका स्वामी करो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस पुरुष को शत्रु का द्विगुना भी बल जीत नहीं सकता और जो अधिक सामर्थ्ययुक्त पुरुष दुष्ट पुरुषों का निरन्तर नाश करता है, उसी को सब सेना का अध्यक्ष करके सदैव विजय करना चाहिए ॥ २ ॥

सहावा पृत्सु तरणिर्नार्वा व्यानशी रोदसी मेहनावान् ।
भगो न कारे हव्यो मतीनां पितेव चारुः सुहवो वयोधाः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (पृत्सु) स्पर्द्धा करते हुए संग्रामों में (तरुत्रिः) शीघ्र चलनेवाले (अर्वा) घोड़े के (न) तुल्य (सहावा) सहनेवाला (रोदसी) अन्तरिक्ष और भूमि के सदृश (वेहनावान्) सेवन बहुत विद्यमान हैं जिस के वह (कारे) करने योग्य व्यवहार में (व्यानशिः) व्याप्त (हव्यः) ग्रहण करने के योग्य (भगः) ऐश्वर्य्य के भोग के (न) तुल्य (मतीनाम्) मनन करने वाले मनुष्यों के (वयोधाः) जीवन को धारण करनेवाला (सुहवः) उत्तम पुकारने की स्तुतियुक्त (चारुः) सुन्दर (पितेव) पिता के सदृश वर्त्तमान है उसी को आप लोग राजा करिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो घोड़े के सदृश वेग और बलयुक्त योद्धा सूर्य्य और भूमि के सदृश सब का सुख देने और ऐश्वर्य्य सदृश कार्य्य की सिद्धि करनेवाला पिता के सदृश सब का पालनकर्त्ता होवे वही राज्याऽभिषेक करने के योग्य होवे ॥ ३ ॥

धर्ता दिवो रजसस्पृष्ट ऊर्ध्वो रथो न वायुर्वसुभिर्नियुत्वान् ।
क्षपां वस्ता जनिता सूर्य्यस्य विभक्ता भागं धिषणेव वाजम् ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो ! जो (दिवः) प्रकाशस्वरूप (सूर्य्यस्य) सूर्य (रजसः) लोकों के समूह का (जनिता) उत्पन्न करने (धर्त्ता) धारण करने वाला (पृष्टः) पूछने योग्य (ऊर्ध्वः) उत्तम (रथः) सुन्दर वाहन के (न) तुल्य (वसुभिः) सम्पूर्ण लोकों से (वायुः) पवन के सदृश बलवान् (क्षपाम्) रात्रि को (वस्ता) आच्छादन करने वाला और (धिषणेव) अन्तरिक्ष और भूमि के सदृश (वाजम्) घोड़े आदि (भागम्) अंश का (विभक्ता) विभाग करने और (नियुत्वान्) नियम करनेवाला है उसको परमात्मा के सदृश राजा मानो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो राजा परमेश्वर के सदृश प्रजाओं में वर्त्तमान है उसी की निरन्तर सेवा करो ॥ ४ ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥५॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग जिस (इन्द्रम्) परमेश्वर के सदृश वर्त्तमान राजा को (धनानाम्) ऐश्वर्य्यों के (ऊतये) रक्षण आदि के लिए (अस्मिन्) इस (भरे) पालन करने योग्य संसार और (वाजसातौ) अपने अपने अंश के दानस्वरूप व्यवहार में (नृतमम्) अत्यन्त न्यायकारी (मघवानम्) बहुत ऐश्वर्य्य वाले (समत्सु) संग्रामों में शत्रुओं के (घ्नन्तम्) नाशकर्त्ता (वृत्राणि) धनों को (शृण्वन्तम्) यथावत् सुनते हुए (उग्रम्) दुष्टों को दुःख देने और (सञ्जितम्) जीतनेवाले राजा को प्राप्त होकर (शुनम्) सुख का (हुवेम) स्वीकार करें उस का आप लोग भी स्वीकार करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—राजाओं को चाहिए कि प्रजाओं में पिता के और ईश्वर के तुल्य वर्त्तमान होकर सम्पूर्ण प्रजाओं का पालन करें ऐसा उपदेश दीजिये ॥ ५ ॥

इस सूक्त में प्रजा और राजा के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह उनचासवां सूक्त और तेरहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, २, ४ निचृत् त्रिष्टुप्, ३, ५ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
अब पांच ऋचा वाले पचासवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में राजा के विषय को कहते हैं—

इन्द्रः स्वाहा पिबतु यस्य सोम आगत्या तुम्रो वृषभो मरुत्वान् ।
ओरुव्यचाः पृणतामेभिरन्नैरास्य हविस्तन्वः१ काममृध्याः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! जो (सोमः) ऐश्वर्य्यों का समूह (तुम्रः) विघ्नकारियों का हिंसक (वृषभः) बलिष्ठ (मरुत्वान्) उत्तम पुरुषों से युक्त (उरुव्यचाः) बहुत श्रेष्ठ गुणों से व्याप्त (इन्द्रः) ऐश्वर्यों का कर्त्ता (स्वाहा) सत्य क्रिया से (यस्य) जिसका (सोमः) ऐश्वर्यों का समूह उस (अस्य) इसके (एभिः) इन वर्त्तमान (अन्नैः) यव आदि अन्नों से (आगत्य) प्राप्त होकर (हविः) ग्रहण करने योग्य वस्तु का (पिबतु) पान कीजिये और (तन्वः) शरीर के (कामम्) मनोरथ को (आ, पृणताम्) सब प्रकार पूर्ण करके सुख दीजिये और उसको आप (आ, ऋध्याः) सिद्ध कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सत्य न्याय से अपने अंश का भोग करके प्रजा के सुख बढ़ाने के लिए अन्याय और दुष्ट पुरुषों का नाश करता है वह पुरुष समृद्धि युक्त होता है ॥ १ ॥

अब प्रीति के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

आ ते सपर्य्यू जवसे युनज्मि ययोरनु प्रदिवः श्रुष्टिमावः ।
इह त्वा धेयुर्हरयः सुशिप्र पिबा त्वस्य सुषुतस्य चारोः ॥२॥

पदार्थ—हे (सुशिप्र) सुन्दर मुखवाले ! आप (ययोः) जिनके (अनु, प्रदिवः) उत्तम प्रकाशों को (श्रुष्टिम्) शीघ्र (आवः) रक्षा करें वे (इह) इस संसार में (सपर्य्यू) सेवा करनेवाले (ते) आप के (जवसे) वेग के लिए (आ, युनज्मि) संयुक्त करता हूं। और जो (हरयः) पुरुषार्थी मनुष्य (त्वा) आप को (धेयुः) धारण करें उनके साथ (तु) शीघ्र (अस्य) इस (सुषुतस्य) उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त (चारोः) अति श्रेष्ठ इस सोमलतारूप ओषधियों के अंश का (पिब) पान कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—इस संसार में जो लोग जिनके सेवक उन स्वामियों को चाहिए कि उन सेवकों का पोषण करें और सब लोग परस्पर प्रीति से सुख की उन्नति करें ॥२॥

गोभिर्मिमिक्षुं दधिरे सुपारमिन्द्रं ज्यैष्ठ्याय धायसे गृणानाः ।
मन्दानः सोमं पपिवाँ ऋजीषिन्त्समस्मभ्यं पुरुधा गा इषण्य ॥३॥

पदार्थ—हे (ऋजीषिन्) सरलस्वभाव और (गृणानाः) स्तुति करते हुए ! (गोभिः) किरणों से (धायसे) धारण करने को (ज्यैष्ठ्याय) वृद्ध होने के लिए (मिमिक्षुम्) सेवन करने की इच्छा करनेवाले को (सुपारम्) सुख से पार जाने के योग्य (इन्द्रम्) विद्या और ऐश्वर्य्यवान् आपको (दधिरे) धारण करो और जिसने (सोमम्) सोमलता के रस को (पपिवान्) पिया (मन्दानः) आनन्द करते हुए (अस्मभ्यम्) हम लोगों को (इषण्य) प्रेरणा करिये (सोमम्) सोम ओषधि के रस को और (पुरुधा) अनेक प्रकारों से (गाः) पृथिवी आदि को धारण करता है उन का आप और वे आप का सत्कार करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य अपने किरणों से वृष्टि करके सबकी पुष्टि करता है वैसे ही विद्वान् लोग पढ़ाने और उपदेश से विद्या और सत्य की वृष्टि करके सब मनुष्यों की पुष्टि करें ॥ ३ ॥

इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च ।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥४॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो (स्वर्यवः) सुख को प्राप्त कराने (कुशिकासः) सम्पूर्ण शास्त्रों के सिद्धान्त जानने और (वाहः) प्राप्त करानेवाले (विप्राः) पूर्ण विद्या से युक्त बुद्धिमान् लोग (मतिभिः) मनुष्यों से (इन्द्राय) अत्यन्त धन से युक्त (तुभ्यम्) आपके लिए (इमम्) इस प्रत्यक्ष (कामम्) मनोरथ को (अक्रन्) करें उन लोगों के इस मनोरथ को (गोभिः) गौ आदि और (अश्वैः) घोड़े आदि और (चन्द्रवता) प्रसिद्ध बहुत सुवर्ण विद्यमान है जिसमें उस (राधसा) धन से आप (पप्रथः) प्रसिद्ध होइये (च) और इनको (मन्दय) पहुँचाइये ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो श्रेष्ठ पुरुषों के साथ अनुकूलता से वर्त्तमान होकर परस्पर ऐश्वर्य्य से और पशु आदि धन आदिकों से इच्छा को पूर्ण करें वे सदा सुखी होवें ॥ ४ ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥५॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग (अस्मिन्) इस (वाजसातौ) विज्ञान के सेवन करने और (भरे) प्रेम से पालन करने योग्य व्यवहार में (ऊतये) ऐक्यभाव में प्रवेश होने के लिए (मघवानम्) श्रेष्ठ धनवाले और (नृतमम्) अत्यन्त प्रीति के प्राप्त करानेवाले और (वृत्राणि) प्रेम के स्थानभूत वस्तुओं को (शृण्वन्तम्) सुननेवाले (समत्सु) विरोध के व्यवहारों में वर्त्तमान कारणों को (घ्नन्तम्) नाश करते हुए (उग्रम्) द्वेष के विनाशकर्त्ता (धनानाम्) द्रव्यों को (सञ्जितम्) उत्तम प्रकार जीतने और (इन्द्रम्) विरोध के नाश करनेवाले को (शुनम्) परस्पर मेल से उत्पन्न सुख को जैसे हम (हुवेम) ग्रहण करें उसका आप लोग भी सेवन करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। वे ही धन्य मनुष्य हैं कि जो विरोध का त्याग करके एक साथ ऐश्वर्य उत्पन्न करते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में परस्पर की प्रीति वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह पचासवां सूक्त और चौदहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ द्वादशर्चस्यैकाधिकपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । ४, ७—९ त्रिष्टुप्; ५, ६ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १—३ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । १०, ११ यवमध्या गायत्री; १२ विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
अब बारह ऋचावाले इकावनवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में राजा के विषय को कहते हैं—

चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्य१मिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (बृहतीः) बड़े विषय अर्थात् तात्पर्य वाली (गिरः) विद्वानों की वाणियों को (दिवेदिवे) प्रतिदिन (सुवृक्तिभिः) उत्तम सविभागों से

जिस (**चर्षणीधृतम्**) मनुष्यो के धारण करनेवाले (**मघवानम्**) बढ़े हुए धन से युक्त (**उक्थ्यम्**) प्रशंसा करने योग्य (**वावृधानम्**) बढ़े हुए (**पुरुहूतम्**) बहुतों से सत्कार किये गये (**अमर्त्यम्**) मरणधर्म से रहित (**जरमाणम्**) स्तुति करते हुए (**इन्द्रम्**) राजा की (**अभ्यनूषत**) प्रशंसा करें उसका आप लोग भी आश्रयण करो ॥ १ ॥

भावार्थ—हे राजपुरुषो ! बहुत जनो से सत्कृत प्रजाओ के धारण करने मे समर्थ जिस राजा की विद्वान् लोग प्रशंसा करें उसी के आप लोग शरण जाओ ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

शतक्रतुमर्णवं शाकिनं नरं गिरो म इन्द्रमुप यन्ति विश्वतः ।
वाजसनिं पूर्भिदं तूर्णिमप्तुरं धामसाचमभिषाचं स्वर्विदम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**मे**) मेरी (**गिरः**) वाणियो को (**अर्णवम्**) समुद्र के सदृश गम्भीर (**शतक्रतुम्**) नाप रहित बुद्धि और (**शाकिनम्**) शक्तियुक्त (**नरम्**) नायक (**वाजसनिम्**) अन्न और विज्ञान के विभागकर्त्ता (**पूर्भिदम्**) शत्रुओ के नगर के भेदन करने और (**तूर्णिम्**) शीघ्रता करनेवाले (**अप्तुरम्**) प्राणो के प्रेरणकर्त्ता (**धामसाचम्**) रक्षा करते हुए (**अभिषाचम्**) सम्मुख भाव और (**स्वर्विदम्**) सुख को प्राप्त (**इन्द्रम्**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देनेवाले को (**विश्वतः**) सब प्रकार (**उप, यन्ति**) प्राप्त होते हैं उस ही के शरण जाओ ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य लोग सम्पूर्ण विद्याओ मे कुशल सामर्थ्ययुक्त सत्यधारणकर्त्ता दुष्ट पुरुषो के ताड़न करनेवाले राजा के समीप जावें तो उनको किसी से भी भय नही होता है ॥ २ ॥

आकरे वसोर्जरिता पनस्यतेऽनेहसः स्तुभ इन्द्रो दुवस्यति ।
विवस्वतः सदन आ हि पिप्रिये सत्रासाहमभिमातिहनं स्तुहि ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**स्तुभः**) फलों को प्राप्त होने (**जरिता**) स्तुति करनेवाला (**अनेहसः**) नही नाश करने योग्य (**वसोः**) धन के (**आकरे**) समूह में (**विवस्वतः**) सूर्य के (**सदने**) स्थान में (**इन्द्रः**) बिजुली के सदृश सबका स्वामी राजा (**पनस्यते**) व्यवहार करता है और विद्वान् के धर्म का (**दुवस्यति**) सेवन करता और (**सत्रासाहम्**) सत्य के सहनेवाले (**अभिमातिहनम्**) अभिमानयुक्त शत्रु के नाश करनेवाले को (**आ, प्रीणाति**) प्रसन्न करता है उसकी (**हि**) निश्चय (**स्तुहि**) स्तुति करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ईश्वर से बिजुली द्वारा उत्पन्न किया गया सूर्य एकत्र वर्त्तमान हुआ सर्वत्र विद्यमान सब वस्तुओ को प्रकाशित करता है वैसे ही एक स्थान मे वर्त्तमान राजा मन्त्री दूत पियादे और सेनादि के प्रबन्ध से सम्पूर्ण राज्य को विद्या और विनय से प्रकाशित करके ऐश्वर्य के समूह से धर्म की उन्नति के लिए व्यवहार करे ॥ ३ ॥

अब प्रजा के प्रशंसा के विषय को अगले मन्त्रों मे कहते हैं—

नृणामु त्वा नृतमं गीर्भिरुक्थैरभि प्र वीरमर्चता सबाधः ।
सं सहसे पुरुमायो जिहीते नमो अस्य प्रदिव एक ईशे ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो ! आप लोग जो (**सबाधः**) बाध के सहित वर्त्तमान (**पुरुमायः**) बहुत कार्यों का कर्त्ता (**एकः**) सहाय रहित सेनाधिपति पुरुष (**अस्य**) इस (**प्रदिवः**) उत्तम प्रकाश का (**ईशे**) स्वामी है (**सहसे**) बल के लिए (**नमः**) अन्न वा सत्कार को (**सम्, जिहीते**) प्राप्त होता है (**वीरम्**) राजविद्या और बल से व्याप्त पुरुष का (**प्र, अर्चत**) सत्कार करिए । और हे राजन् ! जो (**गीर्भिः**) वाणियो और (**उक्थैः**) प्रशंसा के वचनो से (**नृणाम्**) अग्रणी मनुष्यो के (**नृतमम्**) अत्यन्त नायक (**त्वा**) आपका सत्कार करें उनका (**उ**) ही आप सत्कार करिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—विद्वानो को चाहिए कि उस ही की प्रशंसा करें कि जो प्रशंसा योग्य कर्मों को करे ॥ ४ ॥

पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु पुरू वसूनि पृथिवी बिभर्ति ।
इन्द्राय द्याव ओषधीरुतापो रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि ॥५॥१५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**जीरयः**) वृद्ध होनेवाले मनुष्य (**अस्य**) इस राजा के (**मर्त्येषु**) मनुष्यो मे (**पूर्वीः**) अनादि काल से सिद्ध (**निष्षिधः**) अत्यन्त सिद्ध करनेवालियो की (**रक्षन्ति**) रक्षा करते हैं और (**पुरु**) बहुत (**वसूनि**) द्रव्यो को (**पृथिवी**) भूमि के सदृश जो पुरुष (**बिभर्ति**) धारण करता है (**द्यावः**) सूर्य्य आदि के प्रकाश (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य्य के लिए (**रयिम्**) लक्ष्मी और (**वनानि**) सम्मुख ही सुख जिनसे उनको (**उत**) भी (**आपः**) प्राण वा जल जैसे (**ओषधीः**) सोमलता और औषधियो की रक्षा करते हैं वैसे राज्य का (**बिभर्ति**) पोषण करता है वही राजा होने के योग्य हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्यो मे धन विज्ञान और ओषधि धारण करते वे ही राजाओ के कर्मचारी होने के योग्य हैं ॥ ५ ॥

तुभ्यं ब्रह्माणि गिर इन्द्र तुभ्यं सत्रा दधिरे हरिवो जुषस्व ।
बोध्यापिरवसो नूतनस्य सखे वसो जरितृभ्यो वयो धाः ॥६॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्य्य के धारणकर्त्ता ! जो (**गिरः**) वाणियाँ (**तुभ्यम्**) आपके लिए (**ब्रह्माणि**) धनों को और हे (**हरिवः**) उत्तम घोड़े आदि से युक्त ! जो वाणियाँ (**तुभ्यम्**) आपके लिए (**सत्रा**) सत्य को (**दधिरे**) धारण करें उनका आप (**जुषस्व**) सेवन करो । हे (**सखे**) मित्र ! (**नूतनस्य**) नवीन (**अवसः**) रक्षणादि के (**आपिः**) व्याप्त हुए आप उनको (**बोधि**) जानिए हे (**वसो**) धन को प्राप्त ! आप (**जरितृभ्यः**) स्तुतिकर्त्ता विद्वानों के लिए (**वयः**) जीवन को (**धाः**) धारण कीजिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि ऐसी वाणी ग्रहण करें और सुनें कि जिससे धनसंग्रह होता है सत्य की रक्षा की जाती और जीवन बढ़ता है ॥ ६ ॥

अब राजा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याते अपिबः सुतस्य ।
तव प्रणीती तव शूर शर्मन्ना विवासन्ति कवयः सुयज्ञाः ॥७॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्य्य के धारण करनेवाले ! आप (**इह**) इस संसार मे (**सोमम्**) ऐश्वर्य्य करनेवाले की (**पाहि**) रक्षा कीजिए । और हे (**मरुत्वः**) उत्तम धनो से युक्त ! (**यथा**) जिस प्रकार (**शार्याते**) हिंसा करनेवालों को प्राप्त होनेवालो के इस व्यवहार मे (**सुतस्य**) उत्पन्न को आप (**अपिबः**) पान कीजिए । हे (**शूर**) दुष्टो के नाशकर्त्ता ! जो (**सुयज्ञाः**) श्रेष्ठ संयुक्त क्रियाएँ जिनकी वे (**कवयः**) विद्वान् लोग (**तव**) आपकी (**प्रणीती**) उत्तम नीति से और (**तव**) आपके (**शर्मन्**) सुखकारक गृह मे ऐश्वर्य्यकर्त्ता को (**आ, विवासन्ति**) प्राप्त होते हैं उनकी आप रक्षा कीजिए ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जैसे आप अपने राज्य ऐश्वर्य्य न्याय और धर्म की रक्षा करते हैं उसी प्रकार के आपके मन्त्री और नौकर आदि होवें उनका सत्कार आपको सदा ही करना चाहिए ॥ ७ ॥

स वावशान इह पाहि सोमं मरुद्भिरिन्द्र सखिभिः सुतं नः ।
जातं यत्त्वा परि देवा अभूषन्महे भराय पुरुहूत विश्वे ॥८॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से युक्त ! (**इह**) इस राज्य के व्यवहार मे (**सः**) वह (**वावशानः**) कामना करते हुए आप (**मरुद्भिः**) पवनों से सूर्य के सदृश (**सखिभिः**) मित्रो के साथ (**नः**) हम लोगों के (**जातम्**) प्रकट और (**सुतम्**) उत्पन्न (**सोमम्**) ऐश्वर्य की (**पाहि**) रक्षा कीजिए और हे (**पुरुहूत**) बहुतो से प्रशंसित ! (**विश्वे**) सम्पूर्ण (**देवाः**) विद्वान् लोग (**यत्**) जिससे (**महे**) बड़े (**भराय**) पोषण करने योग्य संग्राम के लिए (**त्वा**) आपको (**परि**) सब प्रकार (**अभूषन्**) शोभित करें तिससे आप हम लोगो को सब प्रकार शोभित करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य वायुरूप सहाय से सबकी रक्षा करता है वैसे ही यथार्थवक्ता मित्रो के साथ राजा सम्पूर्ण राज्य की रक्षा करे और जो मन्त्री और नौकर राज्य के हितकारी होवें उनका सब काल में सत्कार करें ॥ ८ ॥

अप्तूर्ये मरुत आपिरेषोऽमन्दन्निन्द्रमनु दातिवाराः ।
तेभिः साकं पिबतु वृत्रखादः सुतं सोमं दाशुषः स्वे सधस्थे ॥९॥

पदार्थ—जो (**दातिवाराः**) छेदन करनेवाले (**मरुतः**) मनुष्य (**अप्तूर्ये**) कर्मों से प्रेरणा करने योग्य (**इन्द्रम्**) राजा को (**अमन्दन्**) आनन्द देवें (**तेभिः**) उनके (**साकम्**) साथ (**एषः**) यह (**आपिः**) सब प्रकार पीनेवाला वा शुभ गुणो से व्याप्त (**वृत्रखादः**) मेघ को स्थिर करनेवाला (**दाशुषः**) दान करनेवाले के (**स्वे**) अपने (**सधस्थे**) तुल्य स्थान में (**सुतम्**) सिद्ध (**सोमम्**) ऐश्वर्य्य को (**अनु, पिबतु**) पीछे पान करे उसको आप राजा निरन्तर प्रसन्न करें ॥९॥

भावार्थ—जो मनुष्य सत्य आचरण की प्रेरणा और दुष्ट आचरणों का निषेध और सबको धार्मिक करके आनन्द देवें उनके साथ राजा आनन्द करे ॥९॥

इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते । पिबा त्वस्य गिर्वणः ॥१०॥

पदार्थ—हे (**गिर्वणः**) प्रार्थित हुए (**राधानाम्**) धनो के (**पते**) पालन करनेवाले ! आप (**ओजसा**) बल से (**अस्य**) इसके (**इदम्**) इस (**सुतम्**) सिद्ध किये गये सोमलतारूप रस का (**पिब**) पान कीजिये (**हि**) निश्चय से और पान करने की इच्छा से इस सोमलता का पान करो ॥ १० ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप निश्चय सब काल मे धन और ऐश्वर्य की रक्षा करके और जो प्राप्त राज्य उसकी देख भाल से वृद्धि करके सुखी होइये ॥१०॥

यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नि यच्छ तन्वम् ।
स त्वा ममत्तु सोम्यम् ॥११॥

पदार्थ—हे राजन् ! (**यः**) जो (**ते**) आपके (**सुते**) उत्पन्न सोमलता के रस में (**स्वधाम्**) अन्न (**अनु, असत्**) पीछे होवे (**सः**) वह (**त्वा**) आपको (**ममत्तु**) आनन्द देवे और आप (**तन्वम्**) शरीर को (**नियच्छ**) ग्रहण कीजिए (**सोम्यम्**) सोमलता में उत्पन्न का पान आदि आचरण कीजिए ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो आपके अनुकूल और धर्मात्मा होकर प्रजाओं को आनन्दित करे वह लक्ष्मीवान् से ऐश्वर्य को प्राप्त होवे और आप इन्द्रियजित् होकर प्रजाओं को सिद्ध कीजिये ॥ ११ ॥

प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः ।

प्र बाहू शूर राधसे ॥१२॥१६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) राजाओं में श्रेष्ठ ! जो (ते) आपके (कुक्ष्योः) पेट के आस पास के भागों में (ब्रह्मणा) धन के साथ रस को (प्र, अश्नोतु) प्राप्त होवे और हे (शूर) वीर पुरुष ! (ते) आपके (शिरः) श्रेष्ठ अङ्ग मस्तक को (बाहू) भुजाओं को (राधसे) धन के लिए प्राप्त होवे उसका आप पालन करिये ॥ १२ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! वही वस्तु आपको खाना तथा पीना चाहिए कि जो पेट में प्राप्त हो तथा विकृत हो रोगों को उत्पन्न करके बुद्धि का न नाश करे और जिससे निरन्तर आप में बुद्धि बढ़कर राज्य और ऐश्वर्य बढ़े ॥ १२ ॥

इस सूक्त में राजा और प्रजा के धर्म वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह इक्यावनवाँ सूक्त और सोलहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथाऽष्टर्चस्य द्विपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ३, ४ गायत्री, २ निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । ६ जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप्; ८ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब आठ ऋचा वाले बावनवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में राजा के विषय को कहते हैं—

धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के धारण करनेवाले ! आप जैसे (प्रातः) प्रातःकाल में (धानावन्तम्) बहुत भूँजे हुए यव विद्यमान जिसके उस (करम्भिणम्) बहुत पुरुषार्थ अर्थात् परिश्रम से शुद्ध किये गये दधि आदि पदार्थों से युक्त (अपूपवन्तम्) उत्तम पूवा विद्यमान जिसके उस (उक्थिनम्) बहुत कहने योग्य वेद के स्तोत्र विद्यमान जिसके उसका (प्रातः) प्रातःकाल सेवन करते हो वैसे (नः) हम लोगों का (जुषस्व) सेवन करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अर्थी जन ऐश्वर्यवाले से याचना करता है वैसे ही राजा जन राजधर्म जानने के लिए श्रेष्ठ यथार्थवक्ता विद्वानों से याचना करे ॥ १ ॥

फिर राजधर्म विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

पुरोळाशं पचत्यं जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च । तुभ्यं हव्यानि सिस्रते ॥२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यों के भोगनेवाले ! आप (पचत्यम्) उत्तम प्रकार पाकयुक्त (पुरोळाशम्) उत्तम संस्कारों से उत्पन्न किये गये अन्न विशेष का (जुषस्व) सेवन करिये तब (गुरस्व) उद्यम करो जिससे (तुभ्यम्) आपके लिए (हव्यानि) हवन करने योग्य पदार्थों को (सिस्रते) प्राप्त हों ॥ २ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप रोगनाशक और बुद्धि के बढ़ानेवाले अन्नपान का भोग कर तथा रोग रहित होकर निरन्तर उद्यम को करो जिससे आपको सम्पूर्ण सुख प्राप्त होवें ॥ २ ॥

पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः । वधूयुरिव योषणाम् ॥३॥

पदार्थ—हे राजन् ! आप (नः) हम लोगों के (पुरोळाशम्) प्रथम देने के योग्य का (घसः) भक्षण करो और हम लोगों के लिए भक्षण कराओ (च) और (योषणाम्) अपनी स्त्री को (वधूयुरिव) अपनी स्त्री विषयिणी इच्छा करने वाले के सदृश (नः) हम लोगों की (जोषयासे) सेवा करो (च) और हम लोग आपकी (गिरः) वाणियों का (जोषयेम) सेवन करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । राजा और प्रजाजन आपस के ऐश्वर्य को अपना ही समझें और जैसे स्त्री की कामना करनेवाला पुरुष प्रिया स्त्री को प्राप्त होकर आनन्दित होता है वैसे ही राजा धर्म करनेवाली प्रजाओं को प्राप्त कर निरन्तर प्रसन्न होवे ॥ ३ ॥

पुरोळाशं सनश्रुत प्रातःसावे जुषस्व नः । इन्द्र क्रतुर्हि ते बृहन् ॥४॥

पदार्थ—हे (सनश्रुत) सत्य और असत्य के विचारकर्त्ताओं से उत्तम कृत्य सुना जिसने ऐसे (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त (हि) जिससे (ते) आपकी (क्रतुः) बुद्धि वा कर्म (बृहन्) बड़ा है जिससे आप (प्रातःसावे) जो प्रातःकाल में किया जाय उसमें (नः) हम लोगों के (पुरोळाशम्) उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्न विशेष का (जुषस्व) सेवन करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जिन पुरुषों में जैसी विद्या और शीलता होवे वैसी ही उन पर उत्तम कृपा करें ॥ ४ ॥

माध्यंदिनस्य सवनस्य धानाः पुरोळाशमिन्द्र कृष्वेह चारुम् ।

प्र यत् स्तोता जरिता तूर्ण्यर्थो वृषायमाण उप गीर्भिरीट्टे ॥५॥१७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) प्रतापयुक्त ! आप (माध्यन्दिनस्य) मध्य दिन में होने वाले (सवनस्य) कर्म विशेष के मध्य में जो (धानाः) भूँजे हुए अन्न और (चारुम्) भक्षण करने योग्य सुन्दर (पुरोळाशम्) अन्न विशेष का आप (इह) इस उत्तम कर्म में (कृष्व) संग्रह कीजिए और (यत्) जो (वृषायमाणः) जल को करनेवाला (तूर्ण्यर्थः) शीघ्र है प्रयोजन जिसका वह (जरिता) आपका सेवाकारी और (स्तोता) प्रशंसा करनेवाला (उप) समीप में (गीर्भिः) वाणियों से (प्र, उप) समीप में (ईट्टे) ऐश्वर्य्यवान् हो वह आपके सत्कार करने योग्य होवे ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो राजा के जन ऋत्विजों के सदृश राज्य की वृद्धि करें उन को राजा सत्कार से प्रसन्न करे ॥ ५ ॥

अब अध्यापक के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

तृतीये धानाः सवने पुरुष्टुत पुरोळाशमाहुतं मामहस्व नः ।

ऋभुमन्तं वाजवन्तं त्वा कवे प्रयस्वन्त उप शिक्षेम धीतिभिः ॥६॥

पदार्थ—हे (पुरुष्टुत) बहुतों से प्रशंसित (कवे) विद्वान् पुरुष ! (प्रयस्वन्तः) प्रयत्न करते हुए हम लोग (धीतिभिः) अंगुलियों से दिखाये गये वचनार्थों से (तृतीये) तीन की पूर्ति करनेवाले (सवने) सायंकाल में करने योग्य कर्म में (पुरोळाशम्) उत्तम संस्कारयुक्त अन्न विशेष और (धानाः) अग्नि से भूँजे गये अन्न विशेषों के तुल्य (ऋभुमन्तम्) श्रेष्ठ बुद्धिमानों से युक्त (वाजवन्तम्) शुष्क अन्न विशेष विद्यमान जिस के उस (आहुतम्) पुकारे गये (त्वा) आप को (उप, शिक्षेम) शिक्षा देवें वह आप (नः) हम लोगों का (मामहस्व) अत्यन्त सत्कार करिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् यज्ञ करनेवाले यजमानों के लिए यज्ञ कृत्य की शिक्षा देते हैं वैसे ही सम्पूर्ण विद्याओं का हस्त आदि क्रियाओं से प्रत्यक्ष अर्थात् अभ्यास करके अन्य जनों के लिए अध्यापक लोग प्रत्यक्ष करावें ॥ ६ ॥

पूषण्वते ते चकृमा करम्भं हरिवते हर्यश्वाय धानाः ।

अपूपमद्धि सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ॥७॥

पदार्थ—हे (शूर) दुष्ट पुरुष के नाशकर्त्ता ! जैसे (वृत्रहा) धन से युक्त विद्वान् पुरुष (पूषण्वते) पुष्टि करनेवाले विद्यमान हैं जिसके उस (हरिवते) उत्तम घोड़े आदि से युक्त के तथा (हर्यश्वाय) हरणशील और शीघ्र चालवाले घोड़े वा अग्नि आदि विद्यमान हैं जिसके उस (ते) आप के लिए (करम्भम्) दधि आदि से युक्त भोजन करने के पदार्थ विशेष और (धानाः) भूँजे हुए अन्न तथा (अपूपम्) पुआ को देवे उसको (सगणः) समूह के सहित वर्त्तमान आप (मरुद्भिः) उत्तम मनुष्यों के पास (अद्धि) भक्षण कीजिए और (सोमम्) उत्तम ओषधि के रस को (पिब) पान कीजिए और वैसे ही हम लोग आप के लिए (चकृम) करें ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्या और नम्रता से युक्त हैं वे श्रेष्ठ राजा के लिए उत्तम पदार्थों को देखकर इस का निरन्तर सत्कार करें और वे राजा से भी सर्वदा सत्कार के योग्य हैं ॥ ७ ॥

अब यज्ञ के अन्न के इकट्ठे करने के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

प्रति धाना भरत तूयमस्मै पुरोळाशं वीरतमाय नृणाम् ।

दिवेदिवे सदृशीरिन्द्र तुभ्यं वर्द्धन्तु त्वा सोमपेयाय धृष्णो ॥८॥१८॥

पदार्थ—हे (धृष्णो) वाणी में चतुर (इन्द्र) दुष्टों के समूह के नाश करनेवाले ! जो (सदृशीः) तुल्यस्वरूपवाली सेना (दिवेदिवे) प्रतिदिन (नृणाम्) अग्रणी पुरुषों के मध्य में (वीरतमाय) अत्यन्त श्रेष्ठ वीर पुरुष (सोमपेयाय) पान किया सोम के रस का जिसने उन आप के लिए (वर्द्धन्तु) वृद्धि को प्राप्त हों और जो विद्वान् लोग (त्वा) आपके लिए वृद्धि करें उन की आप वृद्धि करो और हे विद्वानो ! आप लोग (अस्मै) इस के लिए (धानाः) भूँजे हुए अन्न और (पुरोळाशम्) उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्न विशेष और जो कि (तूयम्) शीघ्र सुखकारक उस को (प्रतिभरत) पूर्ण कीजिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—सम्पूर्ण राजजन और प्रजा के जन राज्य की वृद्धि के लिए सम्पूर्ण पदार्थों को इकट्ठे करें उनसे उत्तम प्रकार परीक्षित वीर सेनाओं को करके और दुष्ट पुरुषों का पराजय और श्रेष्ठ पुरुषों का विजय करके प्रतिदिन आनन्द करना चाहिए ॥ ८ ॥

इस सूक्त में राजा प्रजा और यज्ञान्नसंस्कारादि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह बावनवाँ सूक्त और अठारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ चतुर्विंशत्यृचस्य त्रिपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । १ इन्द्रापर्वतौ;
२—१४, २१—२४ इन्द्र । १५, १६ वाक् । १७—२० रथाङ्गानि
देवताः । १, ५, ९, २१ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ६, ७, १४,
१७, १९, २३, २४ त्रिष्टुप् । ३, ४, ८, १५ स्वराट्
त्रिष्टुप् । ११ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत स्वरः । १२, २२
अनुष्टुप् । २० भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । १०, १६
निचृज्जगती छन्दः । निषाद स्वरः । १३ निचृद्गायत्रीछन्दः ।
षड्ज स्वरः । १८ निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब चौबीस ऋचावाले तिरेपनवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में राजा की सेना के विषय को कहते हैं—

इन्द्रा॑पर्वता बृह॒ता रथे॑न वा॒मीरिष॒ आ व॑हतं सु॒वीराः॑ ।

वी॒तं ह॒व्यान्य॑ध्व॒रेषु॑ देवा॒ वर्धे॑थां गी॒र्भिरिळ॑या॒ मद॑न्ता ॥१॥

पदार्थ—हे सभा और सेना के ईश ! आप दोनो (**इन्द्रापर्वता**) बिजुली और मेघ के सदृश राज्य सेना के अधीश (**बृहता**) बड़े (**रथेन**) वाहन से (**सुवीराः**) सुन्दर वीर जिन से उन (**वामाः**) श्रेष्ठ (**इषः**) अन्न आदि को (**आ, वहतम्**) प्राप्त होइये और (**अध्वरेषु**) नहीं हिंसा करने योग्य यज्ञो मे (**हव्यानि**) देने और ग्रहण करने योग्यो को (**वीतम्**) प्राप्त होइये और (**इळया**) सम्पूर्ण शास्त्रो को प्रकाश करनेवाली वाणी से (**मदन्ता**) कामना करते हुए विद्वान् लोग (**देवा**) उत्तम सुख देनेवाले होकर (**गीर्भिः**) उत्तम प्रकार शिक्षायुक्त वाणियो से (**वर्धेथाम्**) बढ़ें ॥ १ ॥

भावार्थ—हे राजसेनाओ के जन ! जैसे मेघ सम्पूर्ण जलाशय और ओषधियो की रक्षा करता है वैसे ही सेना के पालन करनेवाले पुरुष बहुतसी सामग्रिया से सम्पूर्ण सेनाओ को भोग से परिपूर्ण करिये और सेना बिजुलियो के सदृश शत्रुओ का नाश करें और सब मे सब युद्ध और राजविद्या मे परिपूर्ण होकर सम्पूर्ण मनोरथो को प्राप्त हो ॥ १ ॥

अब राजा के विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

तिष्ठा॒ सु कं॑ मघव॒न्मा परा॑ गाः॒ सोम॑स्य॒ नु त्वा॒ सुषु॑तस्य यक्षि ।

पि॒तुर्न पु॒त्रः सिच॒मा र॑भे त॒ इन्द्र॒ स्वादि॑ष्ठया गि॒रा श॑चीवः ॥२॥

पदार्थ—हे (**मघवन्**) बहुत धनयुक्त (**इन्द्र**) ऐश्वर्य के करनेवाले ! आप (**सुषुतस्य**) उत्तम प्रकार सिद्ध (**सोमस्य**) बड़ी ओषधियों के समूहरूप ऐश्वर्य के समीप के (**कम्**) सुख को (**सु, तिष्ठ**) करिये । और हे (**शचीवः**) उत्तम प्रजाओ से युक्त ! जैसे (**ते**) आपकी (**स्वादिष्ठया**) अत्यन्त मधुर आदि रस से युक्त (**गिरा**) वाणी से (**सिचम्**) सिचन का (**आ, रभे**) प्रारम्भ करें (**त्वा**) आप को (**नु**) शीघ्र (**पुत्रः**) पुत्र (**पितुः**) पिता से (**न**) नही (**आ, रभे**) प्रारम्भ करते है वह आप हम लोगो को (**यक्षि**) प्राप्त होइये और हम लोगो से (**मा**) नही (**परा, गाः**) दूर जाइये ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जैसे पुत्र पिता की सेवा करता है वैसे ही वृद्ध विद्वानो की सेवा करो । और कभी धर्म से पृथक् न होओ, अन्य जनो को सुखी करके सुखी होओ ॥ २ ॥

अब प्रजा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

शंसा॑वाध्वर्यो॒ प्रति॑ मे गृणी॒हीन्द्रा॑य॒ वाहः॑ कृणवाव॒ जुष्ट॑म् ।

एदं ब॒र्हिर्यज॑मानस्य सीदा॒था॑ च भूदु॒क्थमिन्द्रा॑य श॒स्तम् ॥३॥

पदार्थ—हे (**अध्वर्यो**) नही हिंसा करनेवाले ! आप (**इन्द्राय**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त पुरुष के लिए जो (**उक्थम्**) कहने योग्य (**शस्तम्**) प्रशसा किये गये और (**जुष्टम्**) सेवित (**इदम्**) इस (**बर्हिः**) उत्तम स्थान को (**यजमानस्य**) प्राप्त हुए आपको (**भूत्**) प्रशसित होवे उसके ऊपर (**आ, सीद**) विराजो । (**अथ**) अनन्तर (**च**) और अन्यो को प्राप्त होइये और मैं भी प्राप्त होऊँ ऐश्वर्य्य से युक्त पुरुष के लिए जो (**वाहः**) प्राप्त हुओ की (**शंसाव**) प्रशसा करें और सिद्धि (**कृणवाव**) करें उनकी आप (**मे**) मेरे लिए (**प्रति, गृणीहि**) स्तुति करिए ॥३॥

भावार्थ—सब राजा और प्रजा के जनो को चाहिए कि जिन कर्मों से ऐश्वर्य की वृद्धि हो उन कर्मों का सेवन करें । और राजा की आज्ञा मे वर्त्तमान होकर प्रशसा को प्राप्त होवें ॥ ३ ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों मे कहते हैं—

जा॒येदस्तं॑ मघव॒न्त्सेदु॒ योनि॒स्तदित्त्वा॑ यु॒क्ता हर॑यो वहन्तु ।

य॒दा क॒दा च॑ सु॒नवा॑म॒ सोम॑म॒ग्निष्ट्वा॑ दू॒तो ध॑न्वा॒त्यच्छ॑ ॥४॥

पदार्थ—हे (**मघवन्**) ऐश्वर्य से युक्त ! जो (**ते**) आप की (**जाया**) स्त्री (**अस्तम्**) गृह को प्राप्त होवे (**सा**) वह (**इत्**) ही (**उ**) भी सन्तान का (**योनिः**) कारण होवे (**तत्**) उसको और (**त्वा**) आप को (**च, इत्**) ही (**युक्ताः**) सयुक्त (**हरयः**) घोड़े (**सोमम्**) सोमलता के रस को (**वहन्तु**) धारण करें । और (**यदा**) जब (**कदा**) कब हम लोग सोमलता के रस को (**सुनवाम**) सञ्चित करें उस को आप (**दूतः**) शत्रुओ के सन्ताप देनेवाले (**अग्निः**) बिजुली के समान (**धन्वाति**) प्राप्त होवें (**त्वा**) आप को ही (**अच्छ**) उत्तम प्रकार प्राप्त हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—जैसे श्रेष्ठ दो घोड़े से चलनेवाले वाहन से सुखपूर्वक रथ के स्वामी को एक स्थान से दूसरे स्थान को प्राप्त कराते हैं वैसे ही परस्पर में प्रसन्न और योग्य दो विद्वान् गृहाश्रम को शोभित करने को समर्थ हों ॥ ४ ॥

परा॑ याहि मघव॒न्ना च॑ या॒हीन्द्र॑ भ्रातरु॒भय॑त्रा ते॒ अर्थ॑म् ।

यत्रा॒ रथ॑स्य बृह॒तो नि॒धानं॑ वि॒मोच॑नं वा॒जिनो॒ रास॑भस्य ॥५॥१९॥

पदार्थ—हे (**मघवन्**) धनयुक्त और (**इन्द्र**) सज्जनो के प्रति कोमल और दुष्टो के प्रति उग्रस्वभाव वाले ! आप यहा से (**परा, याहि**) दूर जाइये । हे (**भ्रातः**) बन्धु जन ! आप उस से प्राप्त होइये (**यत्र**) जहा (**बृहतः**) बड़े (**रथस्य**) सुन्दर वाहन के (**रासभस्य**) बिजुली आदि के सम्बन्धी के सदृश (**वाजिनः**) वेगयुक्त के (**निधानम्**) स्थापन (**च**) और (**विमोचनम्**) पृथक् करना होवे । (**यत्र**) जहाँ (**उभयत्र**) गमन और आगमन मे (**ते**) आप के (**अर्थम्**) प्रयोजन को हम लोग प्राप्त होवें ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि सर्वत्र भ्रमण, कार्य्यसिद्धि के लिए करे । और नही सदा भ्रमण ही करना किन्तु गृह मे स्थित हो सम्पूर्ण बन्धुओ के साथ मेल करके फिर भी ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिए एक देश से दूसरे देश मे जावें आर आवें ॥ ५ ॥

अब राजा के विषय को अगले मन्त्रों मे कहते हैं—

अपाः॒ सोम॒मस्त॑मिन्द्र॒ प्र या॑हि कल्या॒णीर्जा॒या सु॒रणं॑ गृ॒हे ते॑ ।

यत्रा॒ रथ॑स्य बृह॒तो नि॒धानं॑ वि॒मोच॑नं वा॒जिनो॒ दक्षि॑णावत् ॥६॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्य्य से युक्त स्वामिन् ! (**यत्र**) जिस मे (**बृहतः**) बड़े (**रथस्य**) विमान आदि वाहन के (**वाजिनः**) अग्नि आदि पदार्थ के (**निधानम्**) स्थापन और (**विमोचनम्**) अलग करने को (**दक्षिणावत्**) दक्षिणाओ के तुल्य करें और वहाँ स्थित होकर जो आप के (**गृहे**) गृह मे (**जाया**) स्त्री वर्त्तमान है उस के साथ उस वाहन के ऊपर विराज कर (**अस्तम्**) गृह को (**प्र, याहि**) आइये (**सोमम्**) सम्पूर्ण रोगो के नाश करनेवाले महौषधि के रस का (**अपाः**) पान करिये और पीकर (**सुरणम्**) श्रेष्ठ संग्राम जिस से उसको प्राप्त होइये ॥ ६ ॥

भावार्थ—राजा आदि विमान आदि वाहनो का निर्माण कर और उस मे कला यन्त्रो को रच के तथा अग्नि आदि पदार्थों का स्थित तथा अलग करके अपनी स्त्रियो के सहित गृह मे आवें और देशान्तर को जावें, जो स्त्री शूरवीरा हो तो उस के साथ सग्राम के विजय के लिए जावें ॥ ६ ॥

इ॒मे भो॒जा अङ्गि॑रसो॒ विरू॑पा दि॒वस्पु॒त्रासो॒ असु॑रस्य वी॒राः ।

वि॒श्वामि॑त्राय॒ दद॑तो म॒घानि॑ सहस्रसा॒वे प्र ति॑रन्त॒ आयुः॑ ॥७॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो (**इमे**) ये (**अङ्गिरसः**) प्राणो के सदृश बलयुक्त (**भोजाः**) भोजन करने तथा प्रजा के पालन करनेवाले (**विरूपाः**) अनेक प्रकार के रूप वा विकारयुक्त रूपवाले और (**दिवः**) प्रकाशस्वरूप (**असुरस्य**) शत्रुओ के फेंकनेवाले के (**पुत्रासः**) वायु के समान बलिष्ठ (**वीराः**) युद्धविद्या मे परिपूर्ण (**सहस्रसावे**) सङ्ख्यारहित धन की उत्पत्ति जिस मे उस सग्राम मे (**विश्वामित्राय**) सम्पूर्ण ससार मित्र है जिस का उसके लिए (**मघानि**) अतिश्रेष्ठ धनो को (**ददतः**) देते हुए जन (**आयुः**) जीवन का (**प्र, तिरन्ते**) उल्लङ्घन करते है वे ही लोग आप से सत्कार पूर्वक रक्षा करने योग्य है ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप ऐसे वीरो के सहित प्रसन्न पुष्ट और युद्धविद्या से कुशल सेना की वृद्धि करके सर्वदा विजय को प्राप्त होइये ॥ ७ ॥

अब विद्वानो के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

रू॒पंरू॑पं म॒घवा॑ बोभवीति मा॒याः कृ॑ण्वा॒नस्त॒न्वं१॒॑ परि॒ स्वाम् ।

त्रिर्यद्दि॒वः परि॑ मुहू॒र्तमागा॒त्स्वैर्मन्त्रै॒रनृ॑तुपा ऋ॒तावा॑ ॥८॥

पदार्थ—(**यत्**) जो (**ऋतावा**) सत्य से युक्त (**मघवा**) बहुत धन से युक्त (**सूर्य्यः**) सूर्य्य (**दिवः**) प्रकाशो को (**मुहूर्त्तम्**) दो घड़ी (**स्वैः**) अपने (**मन्त्रैः**) विचारो से (**अनृतुपाः**) नहीं ऋतुओं का पालन करनेवाला होकर (**स्वाम्**) अपने (**तन्वम्**) शरीर को (**त्रिः**) तीन वार (**परि, आ**) सब प्रकार (**अगात्**) प्राप्त होवे और (**रूपं रूपम्**) रूप रूप के प्रति (**मायाः**) बुद्धियो को (**कृण्वानः**) करते हुए (**परि, बोभवीति**) अत्यन्त होता है उसको अध्यापक और उपदेश देने वाला करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो परमेश्वर को लेके पृथिवी पर्यन्त पदार्थों के स्वरूप जानने और शीघ्र अन्य जनो के लिए विज्ञान देने और सूर्य्य के सदृश उत्तम शिक्षा सभ्यता और विनय के प्रकाश करनेवाले होवें वे विद्याधर्म और राजधर्म के मन्त्र बढ़ाने में नियत करने के योग्य हैं ॥ ८ ॥

म॒हाँ ऋषि॑र्देव॒जा दे॒वजू॒तोऽस्त॑भ्ना॒त्सिन्धु॑मर्ण॒वं नृ॒चक्षाः॑ ।

वि॒श्वामि॑त्रो॒ यदव॑हत्सु॒दास॒मप्रि॑यायत कुशि॒केभि॒रिन्द्रः॑ ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यत्**) जो (**महान्**) बड़प्पन रूप परिमाण से सब पदार्थों से बड़ा (**ऋषिः**) मन्त्रो के अर्थों का जाननेवाला (**देवजाः**) विद्वानो मे उत्पन्न (**देवजूतः**) विद्वानो से प्रेरित (**नृचक्षाः**) मनुष्यो का देखनेवाला (**विश्वामित्रः**) सब का मित्र (**इन्द्रः**) अत्यन्त ऐश्वर्य का करनेवाला (**कुशिकेभिः**) कार्यों के सिद्धान्तो को जाननेवालो से जैसे सूर्य, पृथिवी (**सिन्धुम्**) नदी और (**अर्णवम्**) समुद्र को (**अस्तभ्नात्**) धारण करता है वैसे राज्य को धारण करे तो लक्ष्मी को (**अवहत्**) प्राप्त होता है (**सुदासम्**) उत्तम दान को (**अप्रियायत**) प्रिय के सदृश करता है उसका सब लोग सत्कार करे ॥ ९ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य सब लोको से बडा और सबका धारणकर्त्ता तथा प्रकाश करनेवाला है वैसे ही सबके जाननेवाले यथार्थवक्ता पुरुष है ऐसा जानना चाहिए ॥ ९ ॥

हं॒साइ॑व कृणुथ॒ श्लोक॒मद्रि॑भि॒र्मद॑न्तो गी॒र्भिर॑ध्व॒रे सु॒ते सचा॑ ।

दे॒वेभि॑र्विप्रा ऋषयो नृचक्षसो॒ वि पि॑बध्वं कुशिकाः सो॒म्यं मधु॑ ॥१०॥

पदार्थ—हे (**कुशिकाः**) विद्याओं के सिद्धान्तो के जानने (**नृचक्षसः**) मनुष्यो की विद्यादृष्टि से परीक्षा करने और (**ऋषयः**) मन्त्रो के अर्थों को जानने वाले (**विप्राः**) बुद्धिमान् ! आप लोग (**सुते**) उत्पन्न (**अध्वरे**) नहीं हिंसा करने योग्य पढ़ने और पढ़ाने रूप व्यवहार मे (**अद्रिभिः**) मेघो से (**मदन्तः**) आनन्द को प्राप्त होते हुए (**देवेभिः**) विद्वानो के साथ (**श्लोकम्**) उत्तम स्वरूप वाणी को (**कृणुथ**) करो और सत्य के (**सचा**) समूह मे वर्त्तमान (**सोम्यम्**) ऐश्वर्य्य मे श्रेष्ठ (**मधु**) मधुर आदि गुणयुक्त द्रव्य का (**वि, पिबध्वम्**) पान कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थ—अत्यन्त विद्वान् जन विद्वानो के प्रति जितेन्द्रियता धर्मात्मता सुशीलता और सभ्यता को ग्रहण करावें कि जिससे वे भी श्रेष्ठ होकर संसार के कल्याण को करें ॥ १० ॥

उप॒ प्रेत॑ कुशिकाश्चे॒तय॑ध्व॒मश्वं॑ रा॒ये प्र मु॑ञ्चता सु॒दासः॑ ।

राजा॑ वृ॒त्रं ज॑ङ्घन॒त्प्रागपा॒गुद॒गथा॑ यजाते॒ वर॒ आ पृ॑थि॒व्याः ॥११॥

पदार्थ—हे (**कुशिकाः**) जो करने और उपदेश देते वे कुश वे श्रेष्ठ विद्यमान है जिनमे वे कुशिक और जो (**सुदासः**) उत्तम दान देनेवाला (**राजा**) प्रकाशमान (**प्राक्**) प्रथम (**अपाक्**) पश्चिम और (**उदक्**) उत्तर मे (**वृत्रम्**) मेघ के सदृश शत्रु का (**जङ्घनत्**) अत्यन्त नाश करे (**अथ**) इसके अनन्तर (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**वरे**) उत्तम स्थान मे (**आ, यजाते**) यज्ञ करे उस का (**राये**) लक्ष्मी के लिए (**प्र, मुञ्चत**) त्याग करो और उस (**अश्वम्**) घोड़े के सदृश शीघ्र चलनेवाली बिजुली को (**चेतयध्वम्**) जनाओ और (**उप, प्र इत**) प्राप्त होओ ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! जो वीर लोग शत्रुओं का नाश करें उनके लिए बहुत धन और प्रतिष्ठा को देवें । जिससे सम्पूर्ण दिशाओं मे विजय प्रकाशित होवे ॥ ११ ॥

य इ॒मे रोद॑सी उ॒भे अ॒हमिन्द्र॒मतु॑ष्टवम् ।

वि॒श्वामि॑त्रस्य रक्षति॒ ब्रह्मे॒दं भार॑तं॒ जन॑म् ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यः**) जो (**इमे**) ये (**उभे**) दोनो (**रोदसी**) अन्तरिक्ष और पृथिवी (**ब्रह्म**) धन वा ब्रह्माण्ड (**इदम्**) इस वर्त्तमान (**भारतम्**) वाणी के जानने वा धारण करनेवाले उस (**जनम्**) प्रसिद्ध मनुष्य आदि प्राणिस्वरूप की (**रक्षति**) रक्षा करता है जिस (**इन्द्रम्**) परमात्मा की हम (**अतुष्टवम्**) प्रशंसा करें उस (**विश्वामित्रस्य**) सब के मित्र की ही उपासना आप लोग करें ॥ १२ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर से सम्पूर्ण संसार रच कर रक्षित है उस की ही स्तुति प्रार्थना और उपासना निरन्तर करो ॥ १२ ॥

अब प्रजा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वि॒श्वामि॑त्रा अरासत॒ ब्रह्मेन्द्रा॑य व॒ज्रिणे॑ । कर॒दिन्नः॑ सु॒राध॑सः ॥१३॥

पदार्थ—हे (**विश्वामित्राः**) सब के मित्रो ! आप लोग जो (**नः**) हम लोगो को (**सुराधसः**) उत्तम धन से युक्त (**करत्**) करे उस (**इत्**) ही (**वज्रिणे**) धनुर्वेद के जाननेवाले (**इन्द्राय**) राजा के लिए (**ब्रह्म**) धन की (**अरासत**) वृद्धि करें ॥ १३ ॥

भावार्थ—जो राजा सम्पूर्ण प्रजाओं को सुखयुक्त करे उस ही को प्रजा अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त करे ॥ १३ ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

किं ते॑ कृण्वन्ति॒ कीक॑टेषु॒ गावो॒ नाशिरं॑ दु॒ह्रे न त॑पन्ति घ॒र्मम् ।

आ नो॑ भर॒ प्रम॑गन्दस्य॒ वेदो॑ नैचाशा॒खं म॑घवन्रन्धया नः ॥१४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (**ते**) आप के (**कीकटेषु**) अनार्य देशो मे बसने वालो मे (**गावः**) गावो से (**न**) नहीं (**आशिरम्**) दुग्ध आदि को (**दुह्रे**) दुहते है (**घर्मम्**) दिन को (**न**) नहीं (**तपन्ति**) तपाते हैं वे (**किम्**) क्या (**कृण्वन्ति**) करते वा करेंगे और आप (**नः**) हम लोगो के लिए (**प्रमगन्दस्य**) जो कुलीन सुख को प्राप्त होता है उस के (**वेदः**) धन का (**आ**) सब प्रकार से (**भर**) धारण करिये और हे (**मघवन्**) श्रेष्ठ धन से युक्त ! आप (**नः**) हम लोगों के (**नैचाशाखम्**) नीची शक्ति जिसमे उस की (**रन्धय**) निवृत्ति करो ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे म्लेच्छ जनो मे गौओं की, नास्तिक पुरुषो मे धर्म आदि गुणो की वृद्धि नहीं होती और वैसे ही विद्वानो मे ईश्वर को नहीं माननेवाले प्रबल न होवें इससे चाहिए कि मनुष्यो मे नास्तिकत्व को सर्वथा वारण करे ॥ १४ ॥

स॒स॒र्प॒रीरम॑तिं॒ बाध॑माना बृ॒हन्मि॑माय ज॒मद॑ग्निदत्ता ।

आ सूर्य॑स्य दुहि॒ता त॑तान॒ श्रवो॑ दे॒वेष्व॒मृत॑मजु॒र्यम् ॥१५॥२१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**जमदग्निदत्ता**) नेत्र से प्रत्यक्ष दी गई (**ससर्परीः**) अत्यन्त चलनेवाली वाणी (**अजुर्यम्**) हानि से रहित (**सूर्यस्य**) सूर्य्य की (**दुहिता**) कन्या के सदृश वर्त्तमान अन्धकार को नाश करने हुए प्रातःकाल के सदृश (**बृहत्**) बड़े (**अमतिम्**) रूप को (**मिमाय**) नापती है और (**देवेषु**) विद्वानो मे हानि रहित (**अमृतम्**) अमृतस्वरूप (**श्रवः**) सुनने का (**आ, ततान**) विस्तार करती है उस वाणी की सब प्रकार वृद्धि करो ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो ब्रह्मचर्य धर्म का अनुष्ठान और पुरुषार्थों से श्रेष्ठ पुरुषो के समीप से विद्या और उत्तम शिक्षा को मनुष्य ग्रहण करें तो उनको कुछ भी सुख अप्राप्त न होवे ॥ १५ ॥

स॒स॒र्प॒रीर॑भर॒त्तूय॑मे॒भ्योऽधि॒ श्रवः॒ पाञ्च॑जन्यासु कृ॒ष्टिषु॑ ।

सा प॒क्ष्या॒३॒॑ नव्य॒मायु॒र्दधा॑ना॒ यां मे॑ पलस्तिजमद॒ग्नयो॑ द॒दुः ॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**पलस्तिजमदग्नयः**) जाना है प्राजापत्य आदि अग्नियों को जिन्होंने वे और अवस्था और ज्ञान मे वृद्ध पुरुष (**याम्**) जिस को (**ददुः**) देवें (**सा**) वह (**पक्ष्या**) पक्षो मे साध्वी (**पाञ्चजन्यासु**) पाच दिशा तथा प्राणो मे उत्पन्न (**कृष्टिषु**) मनुष्य आदि प्रजाओं मे (**नव्यम्**) नवीन ही (**आयुः**) अन्न वा जीवन को (**दधाना**) धारण करती हुई (**एभ्यः**) इन जानने की इच्छा करनेवालो के लिए (**श्रवः**) अन्न को (**अधि**) उपरि भाग मे (**तूयम्**) शीघ्र (**ददुः**) देवे (**ससर्परी**) सुख की बढ़ानेवाली (**अभरत्**) प्राप्त कराइये ॥ १६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो कार्य की सिद्धि और ऐश्वर्य की उत्पत्ति करने और अवस्था की बढ़ानेवाली सत्य लक्षणो से स्पष्ट वाणी नवीन नवीन विज्ञान और जीवन धारण करती है उसका नित्य धारण करो ॥ १६ ॥

स्थि॒रौ गावौ॑ भवतां वी॒ळुरक्षो॒ मेषा वि व॑र्हि॒ मा यु॒गं वि शा॑रि ।

इन्द्रः॑ पात॒ल्ये॑ ददतां॒ शरी॑तो॒ररि॑ष्टनेमे अ॒भि नः॑ सचस्व ॥१७॥

पदार्थ—हे (**अरिष्टनेमे**) नहीं नाश होने वाले कर्मों को प्राप्त करानेवाले आप (**इन्द्रः**) ऐश्वर्य वाले (**शरीतोः**) दुष्ट स्वभाव से युक्त के नाश करने मे समर्थ हुए (**पातल्ये**) गिरने वाले मे (**ददताम्**) दीजिये और (**वीळु**) प्रशंसायुक्त (**अक्षः**) इन्द्रिय के छिद्र को (**ईषा**) नाश करनेवाला हुआ (**स्थिरौ**) निश्चल (**गावौ**) बैलो का (**मा**) नहीं (**वि, शारि**) नाश करे (**युगम्**) वर्ष को (**मा**) नहीं (**वि, वर्हि**) वन्ध्या हो जिससे कि निश्चल बैल (**भवताम्**) होवे तिस से आप (**नः**) हम लोगो से (**अभि, सचस्व**) सब प्रकार मिलो ॥ १७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि बड़े उपकार करनेवाले गौ आदि पशुओं का कभी नाश नहीं करें । और व्यर्थ समय न बितावें, श्रेष्ठ पुरुषों के साथ सदा ही मेल की रक्षा करें ॥ १७ ॥

बलं॑ धेहि त॒नूषु॑ नो॒ बल॑मिन्द्रान॒ळुत्सु॑ नः ।

बलं॑ तो॒काय॒ तन॑याय जी॒वसे॒ त्वं हि ब॑ल॒दा असि॑ ॥१८॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देनेवाले ! (**हि**) जिस से आप (**बलदाः**) बल के देने वाले (**असि**) हैं इससे (**नः**) हम लोगो के (**तनूषु**) शरीरो मे (**बलम्**) बल को (**धेहि**) धारण करो और (**नः**) हम लोगों को (**अनळुत्सु**) गौ आदिको मे (**बलम्**) बलको धारण करो हम लोगों के (**जीवसे**) जीवन और (**तोकाय**) छोटे बालक तथा (**तनयाय**) कौमार अवस्था को प्राप्त पुरुष के लिये (**बलम्**) पराक्रम को धारण करो ॥ १८ ॥

भावार्थ—हे आचार्य्य ! आप जिससे कि शरीर और आत्मा के बल से युक्त हो इससे हम लोगो मे पूर्ण शरीर और आत्मा के बल को धारण करो ॥ १८ ॥

अ॒भि व्य॑यस्व खदि॒रस्य॒ सार॒मोजो॑ धेहि स्पन्दने शिं॒शपा॑याम् ।

अक्ष॑ वीळो वीळित वी॒ळय॑स्व॒ मा यामा॑द॒स्माद॑व जीहिपो नः ॥१९॥

पदार्थ—हे (**अक्ष**) विद्याओं से व्याप्त ! आप हम लोगो मे (**खदिरस्य**) इस काष्ठ के (**सारम्**) दृढ भाग के सदृश (**ओजः**) बल को (**धेहि**) धारण

कीजिये (**शिंशपायाम्**) इस काष्ठ का वृक्षविशेष (**स्पन्दने**) कुछ चलन मे (**अभि**) सब प्रकार (**व्ययस्व**) खर्च करो । और हे (**वीळो**) बलयुक्त और (**वीळित**) बहुतो मे प्रशंसित पुरुष ! (**नः**) हम लोगो का (**वीळयस्व**) प्रेरणा करो (**अस्मात्**) इस (**यामात्**) प्रहर मे (**मा**) नही (**अव, जीहिपः**) त्यागिये ॥ १९ ॥

भावार्थ—हे आचार्य ! हम लोगो मे दृढ बल का धारण करो श्रेष्ठ कर्मों मे हम लोगों की प्रेरणा करो और कभी मत त्याग करो ॥ १९ ॥

अब राजा के पुरुष के विषय को कहते है—

अयमस्मान्वनस्पतिर्मा च हा मा च रीरिषत् ।
स्वस्त्या गृहेभ्य आवसा आ विमोचनात् ॥२०॥२२॥

पदार्थ—हे राजन् ! जैसे (**अयम्**) यह (**वनस्पतिः**) वन का पालन करने वाला (**अस्मान्**) हम लोगो का त्याग नही करता है वैसे हम लोगो का (**मा**) मत (**हा**) त्याग करिये (**च**) और जैसे सूर्य्य हम लोगो की हिंसा नही करता है वैसे ही आप (**मा, च**) नही (**रीरिषत्**) नाश कीजिये । और (**आ अवसे**) अच्छे निश्चय के लिए (**आ, गृहेभ्यः**) सब प्रकार गृहो से (**स्वस्ति**) सुख हो (**आ, विमोचनात्**) त्याग तक सुख प्राप्त होवे ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अन्न आदि वस्तु सब के रक्षक होवे वैसे राजा के पुरुष सब के पालनकर्त्ता हों और न्याय का त्याग करके अन्याय कभी न करें ॥ २० ॥

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य याच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्टयधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥२१॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त ! (**यः**) जो (**अधरः**) नीच (**नः**) हम लोगो मे द्वेष्टि वैर करता है (**सः**) वह दुःख का (**पदीष्ट**) प्राप्त होवे (**यम्**) जिस को (**उ**) और हम लोग (**द्विष्मः**) द्वेष करे (**तम्**) उसका (**उ**) भी (**प्राणः**) हृदयस्थ वायु (**जहातु**) त्याग करे । और हे (**मघवन्**) बहुत श्रेष्ठ धन से युक्त (**शूर**) दुष्टो के नाशकर्त्ता ! आप (**बहुलाभिः**) बहुत (**श्रेष्ठाभिः**) उत्तम (**ऊतिभिः**) रक्षा आदिको से (**नः**) हम लोगो को (**यात्**) प्राप्त होवे (**अद्य, जिन्व**) प्रसन्न कीजिये ॥ २१ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोगो को दुष्ट कर्म करनेवाला पुरुष द्वेष करने योग्य और धर्मात्मा सत्कार करने योग्य है । जितने प्रजा की रक्षा करने और दुष्ट पुरुषो के निवारण करने मे साधन अपेक्षित होवे उनका ग्रहण करके श्रेष्ठ पुरुषो का पालन और दुष्टो का निवारण राजा आदि निरन्तर करें ॥ २१ ॥

अब राजा के विषय को अगले मन्त्रों मे कहते हैं—

परशुं चिद्वि तपति शिम्बलं चिद्वि वृश्चति ।
उखा चिदिन्द्र येषन्ती प्रयस्ता फेनमस्यति ॥२२॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त ! जो आपकी सेना लोहार (**परशुम्**) परशुरूप शस्त्र को (**चित**) जैसे वैसे शत्रुओं को (**वि, तपति**) विशेष करके सन्ताप देती है (**शिम्बलम्**) सेमर वृक्ष के पुष्प वा पत्र को (**चित्**) जैसे (**वि, वृश्चति**) विशेष करके काटता है (**प्रयस्ता**) प्रेरित हुई (**येषन्ती**) बहता तथा प्राप्त हुआ (**उखा**) पाक करने का पात्र (**चित**) जैसे (**फेनम्**) फेन को वैसे शत्रुओं को (**अस्यति**) फेंकती है उसका आप से सदा सत्कार करने योग्य है ॥ २२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो राजा लोग श्रेष्ठ वीरो की सेना की रक्षा करते है वे ही विजय को प्राप्त होकर शोभित होते है ॥ २२ ॥

न सायकस्य चिकिते जनासो लोधं नयन्ति पशु मन्यमानाः ।
नावाजिनं वाजिना हासयन्ति न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति ॥२३॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो वे (**जनासः**) वीरपुरुष (**लोधम्**) प्राप्त होने वाले को (**न**) नही (**नयन्ति**) प्राप्त होते है (**पशु**) पशु के सदृश (**मन्यमानाः**) जानते हुए (**वाजिना**) घोडे से (**अवाजिनम्**) घोडे जिसमे नही ऐसे संग्राम को (**न**) नही (**हासयन्ति**) हराते हैं और (**अश्वात्**) घोडे से (**पुरः**) प्रथम (**गर्दभम्**) लम्बे कान वाले गदहे को (**न**) नही (**नयन्ति**) प्राप्त कराते हैं उनको (**सायकस्य**) शस्त्र समूह के दान से युक्त करने को आप (**चिकिते**) जानिये ॥ २३ ॥

भावार्थ—वे ही राजा के वीर श्रेष्ठ होवें कि जो युद्धविद्या को जानके सेनाओं के अङ्गों की यथावत् रक्षा स्थिर करने और युद्ध कराने को जानते हैं ॥ २३ ॥

इम इन्द्र भरतस्य पुत्रा अपपित्वं चिकितुर्न प्रपित्वम् ।
हिन्वन्त्यश्वमरणं न नित्यं ज्यावाजं परि णयन्त्याजौ ॥२४॥२३॥४॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त करनेवाले ! आप की सेना के (**भरतस्य**) रक्षा करने और (**चिकितुः**) जाननेवाले के (**न**) तुल्य (**इमे**) ये मेरे (**पुत्राः**) उत्तम प्रकार [illegible] प्राप्त सन्तानो के सदृश सेवक लोग (**अपपित्वम्**) नाश और ([illegible] उत्तम प्रकार प्राप्त कराने को (**अश्वम्**) घोडे को (**अरणम्**) प्रेरणा किये हुए के (**न**) तुल्य (**हिन्वन्ति**) बढाते हैं और (**आजौ**) संग्राम मे (**ज्यावाजम्**) धनुष की तांत के शब्द को (**नित्यम्**) नित्य (**परि**) सब प्रकार (**नयन्ति**) प्राप्त करते हैं उनकी और उन की आप अपने आत्मा के सदृश रक्षा करो ॥ २४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो राजा आदि अपने नाश और वृद्धि को जानते हैं, सेना मे वर्त्तमान साध्यक्ष सेवको को युद्ध कर्म मे चतुर और अनुरक्तो का पुत्र के सदृश पालन करते हैं, उन की सदा ही वृद्धि होती है, पराजय कहां से होवे ॥ २४ ॥

इस सूक्त मे बिजुली, मेघ, विद्वान्, राजा, प्रजा और सेना के कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तिरेपनवां सूक्त और तेईसवां वर्ग तीसरे मण्डल में चौथा अनुवाक समाप्त हुआ ।

卐

अथ द्वाविंशत्यृचस्य चतुःपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । १ निचृत्पङ्क्तिः । ६ भुरिक् पङ्क्तिः । १२ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २, ३, ६, ८, १०, ११, १३, १४ त्रिष्टुप् । ४, ७, १५, १६, १८, २०, २१ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ स्वराट् त्रिष्टुप् । १७ भुरिक् त्रिष्टुप् । १९, २२ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब बाईस ऋचा वाले चौवनवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र मे राजा के विषय को कहते हैं—

इमं महे विदथ्याय शूषं शश्वत्कृत्व ईड्याय प्र जभ्रुः ।
शृणोतु नो दम्येभिरनीकैः शृणोत्वग्निर्दिव्यैरजस्रः ॥१॥

पदार्थ—हे (**कृत्व**) बहुत कार्य करने वाले ! जिसके वह आप (**महे**) बड़े (**ईड्याय**) स्तुति करने के योग्य (**विदथ्याय**) संग्राम मे उत्पन्न हुए के लिए (**इमम्**) इस (**शश्वत्**) निरन्तर (**शूषम्**) बल को (**प्र, जभ्रुः**) अच्छे प्रकार धारण करते हैं उन (**नः**) हम लोगो का आप (**दम्येभिः**) देने के योग्य (**अनीकैः**) सेना मे वर्त्तमान जनो के साथ (**शृणोतु**) सुनिये (**अजस्रः**) निरन्तर वर्त्तमान (**अग्निः**) विद्वान् आप (**दिव्यैः**) श्रेष्ठ कर्मो के साथ हम लोगो का (**शृणोतु**) श्रवण करो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो लोग युद्ध के लिए पूर्ण विद्या और बड़े बल को धारण करें उनका राजजन सुनके निरन्तर सत्कार करें और उनके कृत्य की निरन्तर उन्नति करें जिससे कि प्रसन्न हुए वे विजय मे राजा को सदा शोभित करें ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

महि महे दिवे अर्चा पृथिव्यै कामो म इच्छञ्चरति प्रजानन् ।
ययोर्ह स्तोमे विदथेषु देवाः सपर्यवो मादयन्ते सचायोः ॥२॥

पदार्थ—जो युद्धविद्या को (**प्रजानन्**) जानता और विजय करता और राज्य की (**इच्छन्**) इच्छा करता हुआ (**महे**) बड़े (**दिवे**) प्रकाशमान के और (**पृथिव्यै**) भूमि के राज्य की प्राप्ति के लिए (**चरति**) चलता है उसको जो (**मे**) मेरी (**महि**) बड़ी (**कामः**) अभिलाषा है उसको शोभित करने की इच्छा करता हुआ विजय को प्राप्त होता है उसका (**अर्च**) सत्कार करो । और (**ययोः**) जिन विद्या और राज्य के (**स्तोमे**) प्रशंसा करने योग्य विजय और (**विदथेषु**) संग्रामो मे (**सपर्यवः**) सेवक (**देवाः**) विद्वान् लोग (**ह**) निश्चय (**आयोः**) जीव के (**सचा**) सम्बन्ध से (**मादयन्ते**) प्रसन्न करते है वे दोनो आप उन लोगो को आनन्द दीजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—जो विद्या और राज्य की वृद्धि की कामना करने और अधिक अवस्था वाले युद्धविद्या मे निपुण जन, राजा और मन्त्रियो का लक्ष्मी और विजय से सत्कार करे, उन जनो को राजा और मन्त्री भी सदा ही सुखित करें ॥ २ ॥

युवोर्ऋतं रोदसी सत्यमस्तु महे षु णः सुविताय प्र भूतम् ।
इदं दिवे नमो अग्ने पृथिव्यै सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥३॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वन् पुरुष राजन् ! (**युवोः**) आप दोनो स्वामी सेवक के (**रोदसी**) अन्तरिक्ष और पृथिवी के सदृश (**महे**) बड़े (**सुविताय**) ऐश्वर्य के लिये (**इदम्**) यह (**प्र, भूतम्**) अत्यन्त (**ऋतम्**) प्राप्त होने योग्य कारण (**सत्यम्**) व्यभिचार रहित अर्थात् नही विपरीत होनेवाला (**रत्नम्**) सुवर्ण और हीरा आदि (**नः**) हम लोगो का (**सु, अस्तु**) श्रेष्ठ हो और जैसे मैं (**पृथिव्यै**) भूमि और (**दिवे**) प्रकाशमान के लिये (**नमः**) अन्न आदि का (**सपर्यामि**) सेवन करता और (**प्रयसा**) प्रयत्न से विजय को (**यामि**) प्राप्त होता हूं वैसे आप दोनो वर्ताव कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे भूमि और सूर्य सम्पूर्ण संसार का व्यवहार चलाके लक्ष्मी और अन्न से युक्त करता है वैसे ही राजा आदि पुरुषों को चाहिये कि प्रयत्न से उत्तम कर्मों का सेवन करके अत्यन्त ऐश्वर्य को प्राप्त होवें ॥ ३ ॥

उतो हि वां पूर्व्या आविविद्र ऋतावरी रोदसी सत्यवाचः ।

नरश्चिद्वां समिथे शूरसातौ ववन्दिरे पृथिवि वेविदानाः ॥४॥

पदार्थ—हे (**पृथिवि**) भूमि के सदृश क्षमायुक्त राज्ञि ! जो (**सत्यवाचः**) यथार्थ वाणीवाले (**वेविदानाः**) अत्यन्त जानते हुए आप को (**ववन्दिरे**) प्रणाम करें, और आप आपके स्वामी को (**वाम्**) आप दोनों (**शूरसातौ**) शूरवीर पुरुषों के विभाग और (**समिथे**) सग्राम में (**नरः**) अग्रणी पुरुषों के (**चित्**) सदृश प्रणाम करो और (**उतो**) भी (**ऋतावरी**) सत्य को प्राप्त करानेवाली स्त्री (**रोदसी**) अन्तरिक्ष और पृथिवी के सदृश (**पूर्व्याः**) प्राचीन जनों में चतुर पुरुष आप दोनों को (**हि**) और (**आ, विविद्रे**) सब प्रकार प्राप्त होते हैं वह स्त्री और आप उनका और उसका सत्कार करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वे ही लोग राज्य करने के योग्य हैं कि जो सत्य मानने, सत्य आचरण करने, सत्य वाणी बोलने और इन्द्रियों के जीतनेवाले विद्वान् जन होवें और वे ही रानी योग्य स्त्रियां हैं कि जो उक्त प्रकार के पति के सदृश होवें ॥ ४ ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

को अद्धा वेद क इह प्र वोचद्देवाँ अच्छा पथ्या३ का समेति ।

ददृश्र एषामवमा सदांसि परेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥५॥२४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**इह**) इस विज्ञान में परमात्मा और धर्म को (**अद्धा**) साक्षात् (**कः**) कौन (**वेद**) जाने और (**कः**) कौन पुरुष (**देवान्**) विद्वानों को (**अच्छा**) उत्तम प्रकार (**प्र, वोचत्**) उपदेश देवे (**का**) कौन (**पथ्या**) उत्तम मार्ग से युक्त (**देवान्**) विद्वानों को (**सम्, एति**) प्राप्त होती है और (**एषाम्**) इन विद्वानों के (**परेषु**) सूक्ष्मों को (**अवमा**) नीचे भाग में वर्त्तमान (**सदांसि**) वस्तुएं (**गुह्येषु**) गुप्त अर्थात् रक्षा करने योग्य (**व्रतेषु**) सत्य भाषण आदि नियमों में (**या**) जो ज्ञान और सत्यभाषण आदिकों को (**ददृश्रे**) देखें वे पूर्वोक्त सम्पूर्ण को जानें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस संसार में बिरला ही ऐसा मनुष्य होता है कि जो परमात्मा को जान और उसकी आज्ञा के अनुकूल आचरण स्वीकार करके सत्य का उपदेश देता है ऐसा कोई विद्वान् जो इस संसार में इस लोक और परलोक का ज्ञाता होवे ॥ ५ ॥

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

कविर्नृचक्षा अभि षीमचष्ट ऋतस्य योना विघृते मदन्ती ।

नाना चक्राते सदनं यथा वेः समानेन क्रतुना संविदाने ॥६॥

पदार्थ—हे स्त्री और पुरुष ! (**यथा**) जैसे (**कविः**) सम्पूर्ण विषयों के जानने (**नृचक्षाः**) मनुष्यों के देखनेवाले परमेश्वर (**ऋतस्य**) सत्य कारण के (**योना**) गृह में (**विघृते**) विशेष करके प्रकाशित में (**नाना**) अनेक प्रकार के (**सदनम्**) स्थान को (**चक्राते**) करके हैं (**मदन्ती**) आनन्द करती हुई (**वेः**) पक्षी के (**समानेन**) तुल्य (**क्रतुना**) कर्म से (**संविदाने**) की है प्रतिज्ञा जिन्होंने उन स्त्रियों के सदृश वर्त्तमान अन्तरिक्ष और पृथिवी को (**सीम्**) सब ओर (**अभि, अचष्ट**) प्रकाशित किया, उस की सब लोग उपासना करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर ने अनेक प्रकार के प्रकाश और अप्रकाश से युक्त लोक रचे वही सब को जानने और सबको देखनेवाला परमात्मा निरन्तर उपासना करने योग्य है ॥ ६ ॥

अब शिष्य के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

समान्या वियुते दूरेअन्ते ध्रुवे पदे तस्थतुर्जागरूके ।

उत स्वसारा युवती भवन्ती आदु ब्रुवाते मिथुनानि नाम ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**युवती**) यौवन अवस्था को प्राप्त हुई (**स्वसारा**) भगिनी (**भवन्ती**) वर्त्तमान (**मिथुनानि**) जोड़ों को (**नाम**) सञ्ज्ञा को (**ब्रुवाते**) कहती हैं (**समान्या**) तुल्य स्वभाव वाली (**वियुते**) मिली और नहीं मिली हुई (**दूरेअन्ते**) दूर और समीप में (**ध्रुवे**) दृढ़ (**पदे**) प्राप्त होने योग्य (**उत**) भी (**जागरूके**) प्रसिद्ध अन्तरिक्ष और पृथिवी (**तस्थतुः**) स्थित हैं उनको (**उ**) और जानने के (**आत्**) अनन्तर ऐश्वर्य को प्राप्त होना चाहिए ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रेम से युक्त भगिनीजन मनोवाञ्छित वचनों को कहती हैं और जोड़े वर्त्तमान हैं वैसे ही दूर और समीप में वर्त्तमान प्रकाश और अप्रकाश से युक्त लोक इस संसार में वर्त्तमान हैं ॥ ७ ॥

विश्वेदेते जनिमा सं विविक्तो महो देवान्बिभ्रती न व्यथेते ।

एजद्ध्रुवं पत्यते विश्वमेकं चरत्पतत्रि विषुणं वि जातम् ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो (**एते**) ये अन्तरिक्ष और पृथिवी (**महः**) बड़े अर्थात् श्रेष्ठ (**देवान्**) उत्तम पदार्थों को (**बिभ्रती**) धारण करती हुई (**विश्वा**) सब (**जनिमा**) जन्मों को (**सम्, विविक्तः**) पृथक् करती हैं और (**न**) नहीं (**व्यथेते**) अपने परिधि अर्थात् मण्डल में इधर उधर नहीं हिलते हैं और (**यत्**) जिसमें (**इत्**) ही (**ध्रुवम्**) अन्तरिक्ष (**एजत्**) चलता हुआ (**एकम्**) सहाय रहित अकेला (**विषुणम्**) नीचे को प्राप्त है (**जातम्**) उत्पन्न (**पतत्रि**) गिरने वाला (**चरत्**) प्राप्त होता हुआ (**विश्वम्**) सम्पूर्ण संसार के (**वि, पत्यते**) स्वामी के सदृश वर्त्तमान उस को आप लोग जानें ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! इन पृथिवी सूर्य्यरूप अधिकरण और अन्तरिक्ष में सम्पूर्ण पदार्थ वसने और उत्पन्न होते मरते और नाश को प्राप्त होते हैं ऐसा जानो ॥ ८ ॥

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

सना पुराणमध्येम्यारान्महः पितुर्जनितुर्जामि तन्नः ।

देवासो यत्र पनितार एवैरुरौ पथि व्युते तस्थुरन्तः ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यत्र**) जिसमें (**पनितारः**) व्यवहार करने अर्थात् स्तुति करनेवाले (**देवासः**) विद्वान् लोग (**एवैः**) प्राप्त करने वालों से (**उरौ**) बड़े (**व्युते**) आवरण अर्थात् दूसरे के ढांपने से रहित इस प्रकार प्रसिद्ध (**पथि**) मार्ग में (**अन्तः**) मध्य में (**तस्थुः**) वर्त्तमान हैं (**तत्**) वह (**पितुः**) पालन करने और (**जनितुः**) उत्पन्न करनेवाले (**महः**) श्रेष्ठ पूजा करने योग्य से (**जामि**) उत्पन्न हुआ (**आरात्**) दूर वा समीप से जाना जाय और वह (**नः**) हम लोगों के दूर वा समीप में (**सना**) प्राचीन काल में सिद्ध और (**पुराणम्**) प्रथम नवीन को (**अधि, एमि**) स्मरण करता हूँ उस के मध्य में आप लोग भी हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिसमें सम्पूर्ण संसार स्थित है और जिसकी कही हुई मर्य्यादा से चलते हैं वह सब का पालक उत्पन्न करनेवाला सब पदार्थों में बड़ा अनादि से सिद्ध ब्रह्म उपासना करने योग्य है, जो उस को जाने तो समीप में वर्त्तमान और न जाने तो अत्यन्त दूर वर्त्तमान होता है ॥ ९ ॥

इमं स्तोमं रोदसी प्र ब्रवीम्यृदूदराः शृण्वन्नग्निजिह्वाः ।

मित्रः सम्राजो वरुणो युवान आदित्यासः कवयः पप्रथानाः ॥१०॥२५॥

पदार्थ—जिस (**इमम्**) इस परमेश्वर (**स्तोमम्**) प्रशंसा करने योग्य और (**रोदसी**) अन्तरिक्ष और पृथिवी के सदृश सम्पूर्ण विद्याओं में जानने योग्य प्रकाश और धारण करनेवाले को (**मित्रः**) सब का मित्र (**वरुणः**) श्रेष्ठ हम (**प्र, ब्रवीमि**) उपदेश देते हैं उस को (**ऋदूदराः**) सत्य है हृदय में जिन के वे (**सम्राजः**) अच्छे प्रकार प्रकाशमान (**अग्निजिह्वाः**) अग्नि के सदृश प्रकाशमान सत्य के उपदेश देने वाली जिह्वा है जिन की वे (**युवानः**) युवा अवस्था को प्राप्त (**आदित्यासः**) सूर्य के सदृश पूर्ण विद्या से प्रकाशित (**कवयः**) तीव्र बुद्धि से युक्त (**पप्रथानाः**) प्रख्यात बुद्धिमान् लोग (**शृण्वन्**) सुनो ॥ १० ॥

भावार्थ—जैसे चक्रवर्ती राजा अपनी आज्ञा में सम्पूर्ण न्याय का प्रकाशित करता है वैसे ही यथार्थवक्ता विद्वान् लोग अध्यापन और उपदेश से परमेश्वर और उसकी आज्ञा को प्रसिद्ध करते हैं, और जो लोग अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करके पूर्णविद्या युक्त हैं वे ही इसके कहने सुनने निश्चय और अभ्यास करने और प्रत्यक्ष करने को समर्थ होते हैं ॥ १० ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

हिरण्यपाणिः सविता सुजिह्वस्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानः ।

देवेषु च सवितः श्लोकमश्रेरादस्मभ्यमा सुव सर्वतातिम् ॥११॥

पदार्थ—हे (**सवितः**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के दाता (**सुजिह्वः**) सुन्दर जिह्वा-युक्त (**पत्यमानः**) पति के सदृश आचरण करते हुए ! आप (**दिवः**) बिजुली आदि के (**विदथे**) विज्ञान और (**देवेषु**) पृथिवी आदिकों में (**हिरण्यपाणिः**) हस्त के सदृश तेज से युक्त (**सविता**) सूर्य्य के सदृश (**अस्मभ्यम्**) हम लोगों के लिए जिस (**सर्वतातिम्**) सम्पूर्ण ही (**श्लोकम्**) वाणी का (**अश्रेः**) आश्रय करिये उस को (**च**) और (**आत्**) अनन्तर (**आ**) सब ओर से (**त्रिः**) तीन बार (**आ, सुव**) उत्पन्न करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य लोकों का अधिष्ठाता है वैसे ही विद्वान् सब का अध्यक्ष होवे ॥ ११ ॥

अब शिष्य के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

सुकृत्सुपाणिः स्ववाँ ऋतावा देवस्त्वष्टावसे तानि नो धात् ।

पूषण्वन्त ऋभवो मादयध्वमूर्ध्वग्रावाणो अध्वरमतष्ट ॥१२॥

पदार्थ—हे (**पूषण्वन्तः**) बहुत पुष्टिकर्त्ता विद्यमान हैं जिनके वे (**ऋभवः**) बुद्धिमान् ! आप लोग जैसे (**सुकृत्**) सुन्दर धर्मयुक्त कर्मकर्त्ता (**सुपाणिः**) सुन्दर हस्तयुक्त (**स्ववान्**) बहुत आत्मजन हैं जिसके वह (**ऋतावा**) सत्य का प्रकाश करनेवाला (**त्वष्टा**) प्रकाशकर्त्ता (**देवः**) विद्वान् (**नः**) हम लोगों को (**अवसे**) रक्षण आदि के लिए (**तानि**) उन अपेक्षित पदार्थों को (**धात्**) धारण करे और (**ऊर्ध्वग्रावाणः**) मेघों के सदृश (**अध्वरम्**) पालन करनेवाले व्यवहार को (**अतष्ट**) सूक्ष्म करता है वैसे ही हम लोगों के लिये [illegible] आनन्द दीजिये ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे धार्मिक विद्वान् लोग मेघों के सदृश सब को आनन्द देते हैं वैसे ही सब लोग विद्वानों को आनन्द देवें ॥ १२ ॥

विद्युद्रथा मरुत ऋष्टिमन्तो दिवो मर्या ऋतजाता अयासः ।
सरस्वती शृणवन्यज्ञियासो धाता रयिं सहवीरं तुरासः ॥१३॥

पदार्थ—(**सरस्वती**) विद्यायुक्त स्त्री जिस (**सहवीरम्**) वीर पुरुषों के सहित वर्त्तमान (**रयिम्**) धन को (**विद्युद्रथा**) बिजुली से युक्त हैं वाहन जिन के वे (**मरुत**) मरण धर्मवाले (**ऋष्टिमन्त**) बहुत गतियों से युक्त (**दिव**) कामना करते हुए के सम्बन्धी (**मर्या**) मनुष्य (**ऋतजाता**) सत्य से प्रसिद्ध (**अयास**) विद्याओं को प्राप्त (**यज्ञियास**) शिल्प-व्यवहार के करनेवाले (**तुरास.**) शीघ्रकर्त्ता विद्वान लोग (**शृणवत्**) सुनो और (**धात**) धारण करो वैसे इसको सुने और धारण करे ॥ १३ ॥

भावार्थ—जैसे पुरुष लोग विद्या का अभ्यास करें वैसे ही स्त्रियाँ भी करके लक्ष्मीयुक्त हों । दोनों स्त्री और पुरुष आलस्य का त्याग करके शिल्पविषयक सम्पूर्ण कर्मों को सिद्ध करो ॥ १३ ॥

अब वक्ता के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

विष्णुं स्तोमासः पुरुदस्ममर्का भगस्येव कारिणो यामनि ग्मन् ।
उरुक्रमः ककुहो यस्य पूर्वीर्न मर्द्धन्ति युवतयो जनित्रीः ॥१४॥

पदार्थ—हे विद्वन् (**उरुक्रम**) बहुत पुरुषार्थ वाले ! आप जैसे (**स्तोमास.**) स्तुति करनेवाले (**अर्का**) पूजा करने योग्य (**भगस्येव**) ऐश्वर्य के तुल्य (**कारिण**) करनेवाले विद्वान् लोग (**यामनि**) प्राप्त होने योग्य मार्ग में (**पुरुदस्मम्**) बहुत दुःख नाश हुए जिससे उस (**विष्णुम**) व्यापक को (**ग्मन्**) प्राप्त होते हैं और (**यस्य**) जिसकी (**युवतय**) युवावस्था को प्राप्त (**ककुह**) बडी (**पूर्वी**) प्राचीन काल में वर्त्तमान (**जनित्री**) माताओं का (**न**) नहीं (**मर्धन्ति**) नाश करते हैं वैसे आप वर्त्ताव करो ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग भगवान् की उपासना करनेवाले ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल वर्त्तमान ऐश्वर्ययुक्त हो कर नहीं नाश होने वाली बडी लक्ष्मियों को प्राप्त हो दुःख के पार जाकर बडे सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥

अब राजा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इन्द्रो विश्वैर्वीर्यैः पत्यमान उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
पुरन्दरो वृत्रहा धृष्णुषेणः सङ्गृभ्या न आ भरा भूरि पश्वः ॥१५॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो (**वृत्रहा**) मेघ का नाश करनेवाले सूर्य के सदृश (**पुरन्दर**) शत्रुओं के नगरों का नाश करनेवाला (**पत्यमान**) स्वामी के सदृश आचरण करता हुआ (**धृष्णुसेन**) दृढ सेना और (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त राजा आप (**विश्व**) सम्पूर्ण (**वीर्यै**) पराक्रमों से (**महित्वा**) महिमा से (**उभे**) दोनों (**रोदसी**) न्याय और भूमि के राज्य को (**आ, पप्रौ**) व्याप्त करते हैं वह आप (**भूरि**) बहुत (**न**) हम लोगों और (**पश्व**) पशुओं को (**सङ्गृभ्य**) उत्तम प्रकार ग्रहण करके (**आ, भरे**) सब प्रकार पोषण कीजिये ॥ १५ ॥

भावार्थ—जैसे भूमि और सूर्य सब पदार्थों का धारण और उत्तम, प्रकार पोषण करके बढाते हैं वैसे ही राजा आदि अध्यक्ष सब उत्तम गुणों का धारण प्रजा का पालन, सेना की वृद्धि और शत्रुओं का नाश करके प्रजा की वृद्धि करें ॥१५॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

नासत्या मे पितरा बन्धुपृच्छा सजात्यमश्विनोश्चारु नाम ।
युवं हि स्थो रयिदौ नो रयीणां दात्रं रक्षेथे अकवैरदब्धा ॥१६॥

पदार्थ—हे सभा और सेना के स्वामी ! (**युवम्**) आप दोनों (**हि**) जिस से कि (**न**) हम लोगों के लिए (**रयिदौ**) लक्ष्मी देनवाले (**रयीणाम्**) धनों के (**दात्रम्**) दान की (**रक्षेथे**) रक्षा करते हैं (**अकवै**) कुत्सित भिन्न अर्थात् उत्तम कर्मों से (**अदब्धा**) नहीं हिंसित हुए (**स्थ**) होते हैं और जिनकी (**अश्विनो**) सूर्य चन्द्रमा के तुल्य (**चारु**) सुन्दर (**नाम**) संज्ञा है उन (**बन्धुपृच्छा**) बन्धुओं का कुशलादि पूछनेवाले (**नासत्या**) असत्य के त्यागी (**मे**) मेरे (**पितरा**) पालन करने वालों के सदृश (**सजात्यम्**) समान जाति वाले सुन्दर नाम की रक्षा करो ॥ १६ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग माता और पिता के सदृश सब के लिये विद्या और धन देने वाले धर्मपूर्वक आचरण करते हुए अपने समान जाति वाले तथा अन्य जनों की रक्षा करते हैं वे सबके पूजा करने योग्य होते हैं ॥ १६ ॥

महत्तद्वः कवयश्चारु नाम यद्ध देवा भवथ विश्व इन्द्रे ।
सख ऋभुभिः पुरुहूत प्रियेभिरिमां धियं सातये तक्षता नः ॥१७॥

पदार्थ—हे (**कवय**) विद्वानो ! (**व**) आप लोगों का (**यत्**) जो (**महत्**) बडा (**चारु**) सुन्दर (**नाम**) नाम है (**तत्**) वह और उससे युक्त (**विश्वे**) सम्पूर्ण (**देवा**) विद्वान् और (**ह**) निश्चय आप लोग (**भवथ**) होओ (**प्रियेभि.**) अपने सदृश प्रिय (**ऋभुभि**) बुद्धिमानों के साथ (**इन्द्रे**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य वा राजा में (**सातये**) सत्य और असत्य के विचार के लिए (**न.**) हम लोगों की (**इमाम्**) इस (**धियम्**) बुद्धि की (**तक्षत**) रक्षा करो । और हे (**पुरुहूत**) बहुतों से प्रशंसित हुए राजन् ! आप इनके साथ (**सखा**) मित्र हुए इस बुद्धि को प्राप्त होओ ॥ १७ ॥

भावार्थ—उन लोगों के ही नाम प्रशंसा करने योग्य और प्रसिद्ध होवें कि जो विद्वान् और अविद्वानों से मित्रता को प्राप्त होकर धर्म और अधर्म के विचार के लिए उत्तम बुद्धि सब के लिए देते हैं ॥ १७ ॥

अर्यमा णो अदितिर्यज्ञियासोऽदब्धानि वरुणस्य व्रतानि ।
युयोत नो अनपत्यानि गन्तोः प्रजावान्नः पशुमाँ अस्तु गातुः ॥१८॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (**अदिति**) माता के सदृश (**अर्य्यमा**) न्यायाधीश (**यज्ञियास**) जिसमें हिंसा न हो ऐसे यज्ञ के करनेवाले आप लोगो ! (**न.**) हम लोगों के (**वरुणस्य**) श्रेष्ठ के (**अदब्धानि**) हिंसा भिन्न (**व्रतानि**) सत्य बोलने आदि व्रतों को (**युयोत**) प्राप्त कराइये (**न**) हम लोगों के (**गन्तो**) प्राप्त होने योग्य व्यवहार से (**अनपत्यानि**) नहीं विद्यमान है सन्तान जिनमें उनको प्राप्त कराइये जिस से (**न.**) हम लोगों की (**गातु**) पृथिवी (**प्रजावान्**) सन्तानयुक्त और (**पशुमान्**) बहुत पशुयुक्त (**अस्तु**) हो ॥ १८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! आप लोग हम लोगों को न्यायाधीश और माता के सदृश अन्यायाचरण से अलग करके और सत्य धर्मयुक्त कर्मों को प्राप्त कराके सम्पूर्ण पृथिवी को बहुत प्रजा और असंख्य धनयुक्त करो ॥ १८ ॥

देवानां दूतः पुरुध प्रसूतोऽनागान्नो वोचतु सर्वताता ।
शृणोतु नः पृथिवी द्यौरुतापः सूर्यो नक्षत्रैरुर्वन्तरिक्षम् ॥१९॥

पदार्थ—हे (**पुरुध**) बहुतों को धारण करनेवाले ! (**देवानाम्**) विद्वानों के (**दूत**) सत्य और असत्य समाचार के देने वाले (**प्रसूत**) उत्पन्न आप (**सर्वताता**) सब को ही (**अनागान्**) अपराध से रहित (**न**) हम लोगों को भूमि आदि की विद्याओं का (**वोचतु**) उपदेश दीजिये । और (**नक्षत्रै**) कारण रूप से नहीं नाश होने वालों के साथ (**उरु**) व्यापक (**अन्तरिक्षम्**) आकाश के सदृश नहीं हिलना (**सूर्य्य**) सूर्य्य के समान विद्या का प्रकाश (**पृथिवी**) भूमि के सदृश क्षमा और (**द्यौ**) बिजुली के सदृश विद्या (**उत**) और (**आप**) जलों के सदृश शान्ति (**न**) हम लोगों को प्राप्त हो और हम लोगों के वचनों को (**शृणोतु**) सुनो ॥ १९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो धर्मसभा के अधिकृत लोगों के आधीन में वर्त्तमान उपदेश देने वाले सब को सत्य और असत्य का उपदेश देकर धर्मात्मा करें और उनके प्रश्नों को सुनके समाधान करें और पृथिवी आदिकों के समीप से क्षमा आदि गुणों को ग्रहण करके अन्यों को ग्रहण करा पाखण्ड का नाश और धर्म को प्राप्त करा के सब को श्रेष्ठ करें ॥ १९ ॥

शृण्वन्तु नो वृषणः पर्वतासो ध्रुवक्षेमास इळया मदन्तः ।
आदित्यैर्नो अदितिः शृणोतु यच्छन्तु नो मरुतः शर्म भद्रम् ॥२०॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! आप लोग (**इळया**) प्रशंसित वाणी के सहित वर्त्तमान (**न**) हम लोगों कीर्त्तिमानों को (**शृण्वन्तु**) सुनो (**वृषण**) वृष्टि करने वाले (**ध्रुवक्षेमास**) निश्चित रक्षा है जिन से वे (**पर्वतास**) मेघ जैसे वैसे हम लोगों की (**मदन्त**) प्रसन्न हुए वृद्धि करो । और (**आदित्यै**) पूर्ण विद्वानों के साथ (**अदिति**) माता (**न**) हम लोगों का (**शृणोतु**) सुने (**मरुत.**) मनुष्य लोग (**न**) हम लोगों के लिए (**भद्रम्**) कल्याण करनेवाले (**शर्म**) श्रेष्ठ गृह के सदृश सुख को (**यच्छन्तु**) देवें ॥ २० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि सब प्राणियों में प्रथम उत्तम शिक्षा तदनन्तर विद्या पुनः सत्सङ्ग से कल्याणकारक आचरण उत्तम बातों का श्रवण और उपदेश करके सब के योग अर्थात् भोजन आच्छादन के निर्वाह और कल्याण को सिद्ध करें ॥ २० ॥

सदा सुगः पितुमाँ अस्तु पन्था मध्वा देवा ओषधीः सं पिपृक्त ।
भगो मे अग्ने सख्ये न मृध्या उद्रायो अश्यां सदनं पुरुक्षोः ॥२१॥

पदार्थ—हे (**देवा**) विद्वानो ! आप लोग (**मध्वा**) मधुर आदि गुणों से युक्त (**ओषधी.**) सोमलता आदि ओषधियों को (**सम्**) (**पिपृक्त**) उत्तम प्रकार प्राप्त हो जिससे हम लोगों का (**सुग**) सुखपूर्वक चलते हैं जिसमें और (**पितुमान्**) बहुत अन्न आदि विद्यमान है जिसमें ऐसा (**पन्था**) मार्ग सदा सब काल में (**अस्तु**) हो और हे (**अग्ने**) विद्वन् ! (**मे**) मेरे (**सख्ये**) मित्र के भाव अर्थात् मित्रपन वा धर्म में आप (**न**) नहीं (**मृध्या**) नाश करो मेरा (**भग.**) ऐश्वर्य्य आप का हो और जैसे मैं (**पुरुक्षो**) बहुत अन्न वाले के (**सदनम्**) गृह और (**राय:**) धनों को (**उत्, अश्याम्**) प्राप्त होऊं वैसे आप भी इन गृह धनादि वस्तुओं को प्राप्त होइये ॥ २१ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग वैद्य होकर सर्वदा ओषधियों से रोगों का निवारण करके सब को रोग रहित करें और सदैव मित्रता करके राजा को चाहिए कि दुष्ट डाकू रूप कण्टकों से तथा सबसे रहित सरल मार्ग बनावें कि जिन मार्गों में आकर तथा आकर प्रजाएँ बहुत धनवाली होवें ॥ २१ ॥

स्वर्दस्व हव्या समिषो दिदीह्यस्मद्र्यक् सं मिमीहि श्रवांसि ।

विश्वाँ अग्ने पृत्सु ताञ्जेषि शत्रूनहा विश्वा सुमना दीदिही नः ॥२२॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के सदृश वर्त्तमान ! आप (**अस्मद्र्यक्**) जो हम लोगों को ज्ञान, गमन, प्राप्ति और सत्कार देता है वह (**हव्या**) भोजन करने योग्य (**श्रवांसि**) अन्न व श्रवणों का (**स्वदस्व**) भोग करे (**इषः**) विज्ञानों का (**सम्, दिदिहि**) प्रकाश करो । और अन्न वा श्रवणों को (**सम् मिमीहि**) तोलो और सुनो जिससे कि आप (**पृत्सु**) संग्रामों में (**तान्**) उनको (**विश्वान्**) सम्पूर्ण (**शत्रून्**) शत्रुओं को (**जेषि**) जीतते हो तिससे (**विश्वा**) सब (**अहा**) दिनों को (**सुमनाः**) प्रसन्नचित्त होते हुए (**दीदिहि**) प्रकाशित होइये और (**नः**) हम लोगों को प्रकाशित कीजिये ॥ २२ ॥

भावार्थ—राजा आदि पुरुषों को चाहिए कि बुद्धि के नाश करनेवाले अन्न आदि का त्याग करना कहके विज्ञान बढ़ाके लोक में वार्त्ताओं को सुन के सेनाओं की वृद्धि करके और शत्रुओं को जीतकर सब काल में आनन्द और शोक का त्याग करें और धर्म से प्रजाओं का पालन करके विषयों में आसक्ति का त्याग करके आनन्द करना चाहिए ॥ २२ ॥

इस सूक्त में राजा विद्वान् प्रजा अध्यापक शिष्य ईश्वर श्रोता वक्ता और शूरवीर के कर्म्म और गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह चौवनवां सूक्त और सत्ताईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ द्वाविंशत्यृचस्य पञ्चपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य प्रजापतिर्विश्वामित्रो वाच्यो वा ऋषयः । विश्वेदेवाः । १ उषाः । २-१० अग्निः । ११ अहोरात्रौ । १२-१४ रोदसी । १५ रोदसी द्युनिशौ वा । १६ दिशः । १७—२२ इन्द्रः पर्जन्यात्मा त्वष्टा वाग्निश्च देवता । १, २, ६, ७, ९-१२, १९, २२ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ८, १३, १६, २१ त्रिष्टुप् । १४, १५, १८ विराट् त्रिष्टुप् । १७ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ भुरिक् पङ्क्तिः । ५, २० स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

उषसः पूर्वा अध यद्व्यूषुर्महद्वि जज्ञे अक्षरं पदे गोः ।

व्रता देवानामुप नु प्रभूषन्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१॥

पदार्थ—(**यत्**) जो (**उषसः**) प्रातःकाल से (**पूर्वाः**) प्रथम हुए (**व्यूषुः**) विशेष करके बसते हैं वह (**महत्**) बड़ा (**अक्षरम्**) नहीं नाश होनेवाला (**महत्**) बड़ा तत्त्वनामक (**गोः**) पृथिवी के (**पदे**) स्थान में (**वि, जज्ञे**) उत्पन्न हुआ जो (**एकम्**) द्वितीय और सहाय रहित (**देवानाम्**) पृथिवी आदिकों में बड़े (**असुरत्वम्**) प्राणों में रमनेवाले को (**प्र, भूषन्**) शोभित करता हुआ (**अध**) उसके अनन्तर (**देवानाम्**) विद्वानों के (**व्रता**) नियम (**उप**) समीप में (**नु**) शीघ्र उत्पन्न हुए उसको आप लोग जानिये ॥ १ ॥

भावार्थ—जो बिजुली नामक वस्तु का प्रातःकाल से गमन करते हैं उनके सदृश वर्त्तमान एक द्वितीय रहित ब्रह्म प्रकृति आदि पदार्थों में व्याप्त हुआ वह सबको धारण करता है वही सब के उपासना करने योग्य है ॥ १ ॥

मो षू णो अत्र जुहुरन्त देवा मा पूर्वे अग्ने पितरः पदज्ञाः ।

पुराण्योः सद्मनोः केतुरन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वान् जो (**पुराण्योः**) अनादि काल से सिद्ध बिजुली और आकाश रूप प्रकृतियों (**सद्मनोः**) सबके रहने के स्थानों और (**देवानाम्**) पृथिवी आदि वा जीवों के (**अन्तः**) मध्य में (**केतुः**) ज्ञानस्वरूप (**महत्**) बड़ा (**एकम्**) अपने सदृश द्वितीय पदार्थ रहित ब्रह्म (**असुरत्वम्**) प्राणों में क्रीड़ा करता हुआ है (**अत्र**) इस ब्रह्म वा विज्ञान के व्यवहार में (**नः**) हम लोगों को (**पदज्ञाः**) प्राप्त होने योग्य के जाननेवाले (**पूर्वे**) प्रथम उत्पन्न हुए (**पितरः**) विज्ञानवाले (**मो**) नहीं (**जुहुरन्त**) प्रसहन करें और (**देवाः**) विद्वान् लोग इस विज्ञानरूप व्यवहार में हम लोगों को (**मा**) नहीं (**सु**) उत्तम प्रकार सहें इस प्रकार आप भी यह जानके आपको ये लोग न सहें ॥२॥

भावार्थ—वे ही इस संसार में विद्वान् जन पिता के सदृश होवें कि जो प्रकृति आदि पदार्थों में व्याप्त सर्वान्तर्य्यामी ब्रह्म को उत्तम प्रकार जानके अन्यों को जनावें ॥ २ ॥

वि मे पुरुत्रा पतयन्ति कामाः शम्यच्छा दीद्ये पूर्व्याणि ।

समिद्धे अग्नावृतमिद्वदेम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥३॥

पदार्थ—जिससे (**मे**) मेरी (**पुरुत्रा**) बहुत (**कामाः**) अभिलाषायें (**पतयन्ति**) स्वामी को स्पष्ट कहने की इच्छा करती हैं उन (**पूर्व्याणि**) पूर्व जनों से सिद्ध किये गये (**शमि**) कर्मों को मैं (**अच्छ**) उत्तम प्रकार (**वि**) विशेष करके (**दीद्ये**) प्रकाश करूँ (**समिद्धे**) प्रदीप्त (**अग्नौ**) अग्नि में जैसे (**देवानाम्**) उत्तम पदार्थों के मध्य में (**महत्**) बड़े (**एकम्**) सहाय रहित (**असुरत्वम्**) प्राणों के आधार (**ऋतम्**) सत्य को (**वदेम**) कहें उसको (**इत्**) ही सब लोग कहें ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग आलस्य को त्याग के पूर्व पुरुषों द्वारा किये हुए कर्मों का सेवन करके देवों के देव सबके आधार सत्यस्वरूप और दीपक से घट आदि के सदृश भीतर व्याप्त परमात्मा को साक्षात् देखके अन्य जनों के प्रति उपदेश देवें ॥३॥

समानो राजा विभृतः पुरुत्रा शये शयासु प्रयुतो वनानु ।

अन्या वत्सं भरति क्षेति माता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिन (**पुरुत्रा**) प्राचीन काल से प्रसिद्ध (**शयासु**) शयन करें जिनमें बिजुली आदि पदार्थ उनमें (**प्रयुतः**) विभक्त हुआ फिर मिल गया (**विभृतः**) विशेष करके धारण किया गया (**समानः**) एक (**राजा**) प्रकाशमान सूर्य्य (**शये**) शयन करता है (**वना**) किरणों को सेवन करता है (**अन्या**) भिन्न त्रिगुण स्वरूप प्रकृति (**माता**) माता (**वत्सम्**) पुत्र को धारण करती है और सबको (**क्षेति**) बसाती है वह (**देवानाम्**) सूर्य्यादिक वा विद्वानों के मध्य में (**महत्**) सत्कार करने योग्य (**एकम्**) द्वितीय रहित (**असुरत्वम्**) दूर करता है दुःखों को जो उसका होना उसको आप लोग (**अनु**) शीघ्र जानिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस से प्रकाशित हुए सूर्य्य आदि प्रकाशित होते हैं जो अव्यक्त अर्थात् प्रकृति में सब को उत्पन्न करके तथा धारण कर के माता के सदृश रक्षा करता है और जो यथार्थवक्ता विद्वानों के सत्कार करने योग्य है उस ब्रह्म की आप लोग उपासना करो ॥ ४ ॥

आक्षित्पूर्वास्वपरा अनूरुत्सद्यो जातासु तरुणीष्वन्तः ।

अन्तर्वतीः सुवते अप्रवीता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥५॥२८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**पूर्वासु**) प्राचीन काल में विद्यमान और (**सद्यः**) समान दिन में (**जातासु**) उत्पन्न और (**तरुणीषु**) युवावस्थावालियों के सदृश वर्त्तमान प्रजाओं के (**अन्तः**) मध्य में (**आक्षित्**) जो चारों ओर सर्वत्र बसता है वह (**अनूरुत्**) उपदेश देनेवाला वर्त्तमान है और जिसके उत्पन्न करने से (**अपराः**) उत्पन्न की जाती (**अन्तर्वतीः**) मध्य में कारण विद्यमान है जिनमें उन (**अप्रवीताः**) नहीं व्याप्त अर्थात् गणना से नाप सकने योग्य प्रजा (**सुवते**) उत्पन्न होती हैं वही (**देवानाम्**) उत्तम गुण वाले सूर्य्य आदिकों के मध्य में (**महत्**) सबसे बड़ा (**असुरत्वम्**) सबसे फेंकने वाले और (**एकम्**) चेतनमात्र स्वरूप परमात्मा की आप लोग सेवा करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो उत्पन्न, उत्पन्न हो गईं और उत्पन्न होने वाली प्रजाओं में व्याप्त धारण करने वाला अन्तर्यामी वर्त्तमान है उस परमात्मा की सेवा करो ॥ ५ ॥

शयुः परस्तादध नु द्विमाताबन्धनश्चरति वत्स एकः ।

मित्रस्य ता वरुणस्य व्रतानि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**परस्तात्**) दूसरे देश में (**शयुः**) व्याप्त होकर शयन करनेवाला (**द्विमाता**) दो वायु और आकाश माता हैं जिस अग्नि के वह (**अबन्धनः**) जो बन्धन रहित वह (**वत्सः**) पुत्र के सदृश वर्त्तमान (**एकः**) सहाय रहित (**नु, चरति**) शीघ्र चलता है (**अध**) इसके अनन्तर जो (**देवानाम्**) विद्वानों का (**महत्**) बड़ा (**एकम्**) सहाय रहित तेज (**असुरत्वम्**) फेंकनापन (**ता**) वे (**व्रतानि**) सत्यभाषण आदि कर्म (**मित्रस्य**) मित्र और (**वरुणस्य**) सब में उत्तम और संसार के प्रबन्ध करनेवाले परमात्मा के हैं ऐसा जानना चाहिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो कुछ इस संसार में सूर्य्य आदि वस्तु जो इस संसार में अनेक प्रकार की रचना हैं और जो विचित्ररूप स्वाद आदि वर्त्तमान हैं और सब अपने अपने मण्डल में घूमते हैं प्रलय से प्रथम नहीं नष्ट होते हैं वे ये परमात्मा के कर्म हैं यह जानना चाहिये ॥ ६ ॥

द्विमाता होता विदथेषु सम्राळन्वग्रं चरति क्षेति बुध्नः ।

प्र रण्यानि रण्यवाचो भरन्ते महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस करके निर्माण किया गया (**द्विमाता**) दो वायु और आकाश हैं माता जिस सूर्य्य के वह (**होता**) लेने और देने वाला (**बुध्नः**) अन्तरिक्ष निवास का स्थान विद्यमान है जिसका वह (**विदथेषु**) जानने योग्य पृथिवी आदिकों में (**सम्राट्**) जो उत्तम प्रकार प्रकाशमान है (**अग्रम्**) सबके मध्य केन्द्र स्थान जो कि ऊपर वर्त्तमान उस को (**अनु, चरति**) प्राप्त होता है । बसता वा बसाता (**रण्यानि**) सुन्दर और लोकों में उत्पन्न हुओं को (**प्र, क्षेति**) बसता वा बसाता और जो (**देवानाम्**) विद्वानों में (**महत्**) बड़े (**एकम्**) सहाय रहित (**असुरत्वम्**) प्राणों में रमनेवाले को (**रण्यवाचः**) रमणीय भाषाएँ (**भरन्ते**) धारण वा पोषण करती हैं उस ही ब्रह्म की आप लोग सेवा करो ॥७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर सूर्य्य आदि जगत् को निर्माण धारण और प्रकाश करके पालन करता है और जो सर्वत्र बसता हुआ सबको अपने मे बसाता है जिस एक ही को यथार्थ बोलने वाले विद्वान् लोग सेवते है उस ही की सब लोग उपासना करो ॥ ७ ॥

शूरस्येव युध्यतो अन्तमस्य प्रतीचीनं ददृशे विश्वमायत् ।
अन्तर्मतिश्चरति निष्षिधं गोर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**अन्तमस्य**) समीप मे वर्त्तमान (**युध्यत**) प्रहार करते हुए (**शूरस्येव**) शत्रुओ के मारनेवाले के सदृश जहा (**प्रतीचीनम्**) पीछे से हुए (**आयत्**) प्राप्त होते हुए (**विश्वम्**) सम्पूर्ण ससार (**अन्तः**) मध्य मे (**ददृशे**) देख पडता है और (**गोः**) वाणी का (**महत्**) बडा (**निष्षिधम्**) अत्यन्त शासन करनेवाला (**देवानाम्**) विद्वानो मे (**एकम्**) सहाय रहित (**असुरत्वम्**) प्राणो मे रमनेवाला (**मतिः**) बुद्धिमान् (**चरति**) प्राप्त होता है उस ही को ब्रह्म आप लोग जानें ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे युद्ध करते हुए समीप मे वर्त्तमान और शत्रु के नाशक वीर पुरुष के समीप मे कायर मनुष्य तिरस्कृत हुए पुरुष के सदृश देखा जाता है वैसे ही सम्पूर्ण शक्ति वाले अनन्त परमात्मा के समीप मे सूर्य्य आदिक जगत् क्षुद्र और तिरस्कृत है और जो जगदीश्वर विद्या के खजाने रूप चारो वेदो की वाणी के आभूषण हुओ का शासन करता है उस ही को इष्ट आप लोग मानो ॥ ८ ॥

नि वेवेति पलितो दूत आस्वन्तर्महांश्चरति रोचनेन ।
वपूंषि बिभ्रदभि नो वि चष्टे महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**आसु**) इन प्रजाओ मे (**अन्त.**) भीतर (**नि, वेवेति**) अत्यन्त व्याप्त है (**पलित.**) श्वेत केशो से युक्त (**दूत**) समाचार देने वाले के सदृश (**महान्**) व्याप्त हुआ (**रोचनेन**) अपने प्रकाश से (**चरति**) प्राप्त है (**वपूंषि**) रूपो को (**बिभ्रत्**) धारण करता हुआ (**न**) हम लोगो को (**अभि**) सम्मुख (**वि, चष्टे**) विशेष करके उपदेश देता है वही (**देवानाम्**) विद्वान् हम लोगो का (**एकम्**) द्वितीय से रहित (**असुरत्वम्**) दोषो का फेंकना वाला (**महत्**) बडा पूज्य है आप लोग भी इसकी पूजा करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर योगियो को वायु के द्वारा वृद्ध दूत के सदृश दूर देश मे वर्त्तमान समाचार वा पदार्थ को जनाता है, और अन्तर्यामी हुआ अपने प्रकाश मे सबको प्रकाशित और जीवो के कर्मों का जानकर फलो को देता है अन्तःकरण म वर्त्तमान हुआ न्याय्य और अन्याय्य करने और न करने को चिताता है, वही हम लोगो को अतिशय पूजा करने योग्य ब्रह्म वस्तु है, आप लोग भी ऐसा जानो ॥ ९ ॥

विष्णुर्गोपाः परमं पाति पाथः प्रिया धामान्यमृता दधानः ।
अग्निष्टा विश्वा भुवनानि वेद महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१०॥२९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**अग्नि.**) अग्नि रूप बिजुली के सदृश स्वय प्रकाशित (**विष्णु**) चर और अचर ससार मे व्यापक परमात्मा (**गोपा**) सब की रक्षा करनेवाला परमेश्वर जिन (**परमम्**) उत्तम (**पाथ**) पृथिवी आदि अन्न और (**प्रिया**) कामना करने और सेवा करने योग्य (**अमृता**) नाश से रहित प्रकृति आदि और (**धामानि**) जन्म स्थान और नाम को (**दधान**) धारण और पुष्ट करता हुआ (**पाति**) रक्षा करता है (**ता**) उन (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**भुवनानि**) निवासस्थानो को (**वेद**) जानता है उस (**देवानाम्**) पृथिवी आदिको के मध्य मे (**महत्**) व्यापक हुए (**एकम्**) द्वितीय रहित ब्रह्म (**असुरत्वम्**) सबके फेंकनेवाले को आप लोग जानो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो इस ससार का उत्पन्न, धारण, पालन और नाश करनेवाला है और सब जीवो के हित के लिए अनेक प्रकार के पदार्थों का निर्माण करता है उस ही की आप लोग सेवा करो ॥ १० ॥

नाना चक्राते यम्या वपूंषि तयोरन्यद्रोचते कृष्णमन्यत् ।
श्यावी च यदरुषी च स्वसारौ महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**देवानाम्**) पृथिवी आदिको के समीप से (**महत्**) बडा (**एकम्**) द्वितीय रहित (**असुरत्वम्**) दोषो को फेंकने वाला है उस से व्यवस्थापित (**यत्**) जो (**श्यावी**) अन्धकाररूप (**यम्या**) जो सम्पूर्ण प्राणियो को निद्रा से युक्त करती है वह रात्रि (**च**) और (**अरुषी**) प्रकाशरूप प्रातःकाल (**स्वसारौ**) भगिनी के सदृश वर्त्तमान हुए (**नाना**) अनेक प्रकार के (**वपूंषि**) रूपो को (**चक्राते**) करते हैं (**तयो**) उनका (**अन्यत्**) अन्य प्रातःकाल रूप (**रोचते**) प्रकाशित होता है (**च**) और (**कृष्णम्**) काला वे काम (**अन्यत्**) दूसरा वर्ण रात्रिरूप जो आवरण करता है वह जिससे प्रसिद्ध उसको ब्रह्म जानो ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो परमेश्वर पृथिवी और सूर्य्य के घूमने की व्यवस्था को न करे तो रात्रि और दिन कैसे होवें और जिस जगदीश्वर ने पुरुषार्थ के लिए दिन और शयन करने के लिए रात्रि रची उस ईश्वर का हृदय मे सब ध्यान करो ॥ ११ ॥

माता च यत्र दुहिता च धेनू सबर्दुघे धापयेते समीची ।
ऋतस्य ते सदसीळे अन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१२॥

पदार्थ—हे राजन् ! मैं (**ते**) आपकी (**सदसि**) सभा मे जैसे (**यत्र**) जिस समय (**माता**) मान को देनेवाली माता के सदृश रात्रि (**च**) और (**दुहिता**) कन्या के सदृश प्रातःकाल (**च**) और (**समीची**) उत्तम प्रकार प्राप्त होती हुई (**सबर्दुघे**) पालन करनेवाले दुग्ध आदि के सदृश रस की पूर्ति करते और (**धेनू**) धेनू के सदृश रस को देनेवाली (**ऋतस्य**) जल के सदृश सत्य के सम्बन्ध से (**धापयेते**) पिलाती हैं वैसे ही सभा के (**अन्तः**) मध्य में वर्त्तमान हुआ (**ऋतस्य**) जल के सदृश सत्य का (**देवानाम्**) श्रेष्ठ विद्वानों में (**महत्**) बडे (**एकम्**) द्वितीय रहित (**असुरत्वम्**) दोषो को दूर करनेवाले की (**ईळे**) स्तुति करता हूँ ॥ १२ ॥

भावार्थ—जो सभ्य जन परमेश्वर से डर के उस की आज्ञा के अनुसार जैसे रात्रि और दिन सम्पूर्ण ससार के नियम पूर्वक पालनकर्त्ता होते हैं वैसे ही सभा मे धर्म के विजय और अधर्म के पराजय से प्रजाओ को आनन्दित करें ॥ १२ ॥

अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः ।
ऋतस्य सा पयसापिन्वतेळा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**देवानाम्**) उत्तम पृथिवी आदिको के मध्य मे जो (**महत्**) बडा (**एकम्**) द्वितीय रहित (**असुरत्वम्**) दोषो को दूर करनेवाला वर्त्तमान है उससे युक्त (**धेनु.**) गौ के सदृश वर्त्तमान रात्रि और (**ऊधः**) प्रातःकाल (**अन्यस्या**) दोनो के मध्य मे एक किसी के (**वत्सम्**) बछडे के सदृश पालन करने योग्य को (**रिहती**) नाश करती हुई (**कया**) किस (**भुवा**) पृथिवी के साथ (**मिमाय**) नापती है जो (**नि, दधे**) धारण करती है (**सा**) वह (**ऋतस्य**) सत्य के (**पयसा**) दुग्ध के सदृश जल के साथ (**इळा**) पृथिवी (**अपिन्वत**) सीचती वा सेवन करती है ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमात्मा रात्रि और दिन से पृथिवी मे वर्त्तमान पदार्थों को शयन और जागरण प्रयोजन जिन का उन प्रकाश और अन्धकार और वृष्टि से गौ के सदृश रक्षा करता है उस ही की पूजा करो ॥ १३ ॥

पद्या वस्ते पुरुरूपा वपूंष्यूर्ध्वा तस्थौ त्र्यविं रेरिहाणा ।
ऋतस्य सद्म वि चरामि विद्वान्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**विद्वान्**) विद्यायुक्त मै जो (**ऋतस्य**) सत्य और (**देवानाम्**) विद्वानो मे (**महत्**) बडे (**एकम्**) द्वितीय रहित (**सद्म**) स्थान और (**असुरत्वम्**) दोषो के दूर करनेवाले को (**वि चरामि**) प्राप्त होता हूँ उस से नियमित (**पद्या**) अशो मे होने वाली रात्रि सब को (**वस्ते**) आच्छादित करती घेरती है (**त्र्यविम्**) कार्य्य कारण और जीव नामक तीन वस्तुओ की रक्षा करनेवाले और (**वपूंषि**) रूपो को (**रेरिहाणा**) अत्यन्त चाटती हुई (**ऊर्ध्वा**) उत्तम (**पुरुरूपा**) बहुत रूपयुक्त प्रातःकाल (**तस्थौ**) स्थित है उसको वे और आप लोग जानें ॥ १४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे दिन अनेक रूपो को दिखाता है वैसे ही रात्रि सबको घेरती है, ये ही सत्य के कारण से उत्पन्न हुए और उत्पन्न होनेवाले को जानकर सब के बनाने वाले परमेश्वर को सुखपूर्वक जानो ॥ १४ ॥

पदे इव निहिते दस्मे अन्तस्तयोरन्यद्गुह्यमाविरन्यत् ।
सध्रीचीना पथ्या सा विषूची महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१५॥३०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**देवानाम्**) विद्वानों का जो (**महत्**) बडा (**एकम्**) द्वितीय रहित (**असुरत्वम्**) दोषो का दूर करनेवाला है और जिससे (**दस्मे**) नाश होनेवाले (**पदे इव**) पैरो के सदृश (**निहिते**) धारण किये गये रात्रि और दिन वर्त्तमान है जो अन्य (**सध्रीचीना**) एक साथ सेवन करती हुई (**पथ्या**) अपनी कक्षा को त्याग के अन्यत्र नही जानेवाली (**सा**) वह (**विषूची**) व्याप्त पदार्थों का सेवन करती है (**तयो**) उनके (**अन्त.**) मध्य मे (**अन्यत्**) दूसरा (**गुह्यम्**) गुप्त (**अन्यत्**) अन्य (**आवि.**) रक्षा करनेवाला है उस सब को जानो ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मनुष्य लोग दो पैरों से चलते हैं वैसे ही रात्रि और दिन चलते हैं और जैसे दिन पथ्य है वैसे रात्रि पथ्य नही होती है । इसी प्रकार सर्वान्तर्यामी ब्रह्म को त्याग करके अन्य उपासित हुआ पथ्य नही होता है ॥ १५ ॥

आ धेनवो धुनयन्तामशिश्वीः सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः ।
नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोगों के (**सबर्दुघा**) सब मनोरथो की पूर्ण करनेवाली (**शशया**) शयन करती सी हुई (**अप्रदुग्धा**) नही किसी करके भी बहुत दुही गई (**धेनव**) वाणियां (**अशिश्वी**) बालाओं से भिन्न (**नव्यानव्याः**) नवीन नवीन (**भवन्ती**) होती हुई (**युवतय**) यौवनावस्था को प्राप्त ब्रह्मचारिणी स्त्रियां

जैसे वैसे (देवानाम्) विद्वानों में (महत्) बड़े (एकम्) द्वितीय रहित (असुरत्वम्) दोषों के दूर करनेवाले को (आ, धुनयन्ताम्) अच्छे प्रकार कपाइये ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रथम अवस्था में वर्त्तमान विद्या पढ़ी हुई बालाभिन्न ब्रह्मचारिणी स्त्रियां अपने सदृश पतियों को प्राप्त होकर आनन्दित होती हैं वैसे ही सर्व विद्याओं से युक्त वाणियों को प्राप्त होकर विद्वान् लोग सुखी होते हैं ॥ १६ ॥

यद॒न्यासु॑ वृष॒भो रोर॑वीति॒ सो अ॒न्यस्मि॑न्यू॒थे नि द॑धाति॒ रेतः॑ ।
स हि क्षपा॑वा॒न्त्स भगः॒ स राजा॑ म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥१७॥

पदार्थ—(यत्) जो (वृषभः) बलयुक्त सूर्य्य (अन्यासु) रात्रि और प्रातःकालों में (रोरवीति) अत्यन्त शब्द करता है (सः) वह (अन्यस्मिन्) अन्य (यूथे) समूह में चन्द्र आदिकों में (रेतः) पराक्रम का (निदधाति) स्थापन करता है (हि) जिससे कि (सः) वह (क्षपावान्) रात्रिवान् अर्थात् रात्रि जिसकी सम्बन्धिनी होती और (सः) वह (भगः) ऐश्वर्य्यों का दाता सूर्य्य तथा (सः) वह (राजा) प्रकाशमान होता (देवानाम्) विद्वानों में (महत्) बड़ा (एकम्) एक यह (असुरत्वम्) दोषों को दूर करनेवाला प्राप्त होने योग्य गुण होता है ॥ १७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सूर्य्य रात्रि के अन्त और दिन के आदि में सर्व प्राणियों को निरन्तर जगाके शब्द करा और व्यवहार कराके लक्ष्मियों को प्राप्त कराता है और रात्रि में चन्द्र आदिकों में किरणों को रख के प्रकाश कराता सो यह प्रकाशमान जगदीश्वर से उत्पन्न किया गया ऐसा जानना चाहिए ॥ १७ ॥

अब ईश्वर के गुणों का वर्णन अगले मन्त्रों में करते हैं—

वी॒रस्य॒ नु स्वश्व्यं॑ जनासः॒ प्र नु वो॑चाम वि॒दुर॑स्य दे॒वाः ।
षो॒ळ्हा यु॒क्ताः पञ्च॑पञ्चा॒ वह॑न्ति म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥१८॥

पदार्थ—हे (जनासः) विद्याओं में प्रकट हुए मनुष्यो ! हम (अस्य) इस (वीरस्य) शौर्य्य आदि गुणों को प्राप्त हुए शूर का (स्वश्व्यम्) अति उत्तम अश्वविषयक अच्छे सत्तन का (नु) शीघ्र (प्र, वोचाम) उपदेश देवें जो (युक्ताः) संयुक्त हुए (देवाः) विद्वान् जन (देवानाम्) विद्वानों में (महत्) बड़े (एकम्) एक (असुरत्वम्) दोषों के दूर करने को (विदुः) जानते और जो (षोळ्हा) छः प्रकार की संयुक्त इन्द्रियां और (पञ्चपञ्चा) पांच पांच प्राण जिस विषय को (आ, वहन्ति) प्राप्त होते हैं उसको जानते हैं उनके प्रति हम लोग इस ब्रह्म का (नु) शीघ्र उपदेश देवें ॥ १८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिसकी प्राप्ति में पांच प्राण निमित्त और जिसको सब योगी लोग समाधि से जानते हैं उसी की उपासना भृत्यों के वीरपन को उत्पन्न करनेवाली है ऐसा हम लोग उपदेश देवें ॥ १८ ॥

दे॒वस्त्वष्टा॑ सवि॒ता वि॒श्वरू॑पः पु॒पोष॑ प्र॒जाः पु॑रु॒धा ज॑जान ।
इ॒मा च॒ विश्वा॒ भुव॑नान्यस्य म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥१९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (त्वष्टा) प्रकाश करनेवाला परमेश्वर (देवः) प्रकाशमान (विश्वरूपः) जिससे सम्पूर्ण रूप हैं ऐसे (सविता) प्रेरणा करनेवाले सूर्यमण्डल के सदृश (प्रजाः) उत्पन्न हुए प्राणी अप्राणी को (पुपोष) पुष्ट करता है और (इमा) इन (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) लोकों को (च) भी (पुरुधा) बहुत प्रकार से (जजान) उत्पन्न करता है (अस्य) इस परमेश्वर का यही (देवानाम्) विद्वानों के बीच (महत्) बड़ा (एकम्) एक (असुरत्वम्) दोषों को दूर करनेवाला गुण है ऐसा जानना चाहिए ॥ १९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य जगत् का पालन करता है वैसे ही जगदीश्वर सूर्य्य आदि अनेक प्रकार संसार को बनाकर रक्षा करता है। यही परमात्मा का बड़ा आश्चर्य कर्म है ऐसा जानना चाहिये ॥ १९ ॥

म॒ही समै॑रच्च॒म्वा॑ समी॒ची उ॒भे ते अ॑स्य॒ वसु॑ना॒ न्यृ॑ष्टे ।
शृ॒ण्वे वी॒रो वि॒न्दमा॑नो॒ वसू॑नि म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥२०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर (ते) उन (उभे) दोनों (मही) बड़ी (समीची) उत्तम प्रकार प्राप्त अन्तरिक्ष और पृथिवी को (चम्वा) सेना से जैसे वैसे (सम्, ऐरत्) प्रेरणा करता है वह दोनों (अस्य) इसके (वसुना) द्रव्यों के साथ (न्यृष्टे) निश्चित स्वरूप को प्राप्त हुई हैं (देवानाम्) विद्वानों के उस (महत्) बड़े (एकम्) एक (असुरत्वम्) दोषों के दूर करनेवाले को और (वसूनि) धनों को (विन्दमानः) प्राप्त होता हुआ (वीरः) बल से युक्त मैं ब्रह्म का नित्य (शृण्वे) श्रवण करूं उसको आप लोग भी निरन्तर सुन के उन सबों को प्राप्त हूजिये ॥ २० ॥

भावार्थ—कोई भी पुरुष परमेश्वर की आज्ञापालन के विना बड़े ऐश्वर्य को नहीं प्राप्त होता है और यथार्थवक्ता पुरुषों से सुने विना परमात्मा का बोध किसी को भी नहीं प्राप्त होता है, तिससे सब लोगों को चाहिए कि परमेश्वर की आज्ञा का पालन करके ऐश्वर्य्यवान् होवें ॥ २० ॥

इ॒मां च॑ नः पृथि॒वीं वि॒श्वधा॑या॒ उप॑ क्षेति हि॒तमि॑त्रो॒ न राजा॑ ।
पु॒रः॒सदः॑ शर्म॒सदो॒ न वी॒रा म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥२१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (नः) हम लोगों के (इमाम्) इस अन्तरिक्ष (च) और (पृथिवीम्) भूमि को समीप (विश्वधायाः) सम्पूर्ण को धारण करनेवाली पृथिवी उसके (हितमित्रः) मित्रों को धारण करनेवाले (राजा) विद्या और विनय से प्रकाशमान अधिपति के (न) सदृश (उप, क्षेति) बसता है और (पुरःसदः) आगे चलने और (शर्मसदः) गृह में ठहरनेवाले (वीराः) क्षात्रधर्म से युक्त शूरों के (न) तुल्य विजय देता है वही (देवानाम्) प्रकाशमान राजा लोगों में (महत्) बड़ा (एकम्) सहायरहित (असुरत्वम्) शत्रुओं को दूर करनेवाला हम लोगों से उपासना करने योग्य है ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो धर्मात्मा राजा के सदृश संसार में निवास कराता और धनुर्वेद के जाननेवाले वीर के सदृश विजय दिलाता है वही ब्रह्म हम लोगों को उपासना करने योग्य है ॥ २१ ॥

नि॒ष्षिध्व॑रीस्त॒ ओष॑धीरु॒तापो॑ र॒यिं त॑ इन्द्र पृथि॒वी बि॑भर्ति ।
स॒खाय॑स्ते वाम॒भाजः॑ स्याम म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥२२॥३१॥३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देनेवाले ईश्वर ! जैसे (ते) आप की सृष्टि में (पृथिवी) भूमि (निष्षिध्वरी) अत्यन्त मङ्गल करनेवाली (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधियों को (बिभर्ति) धारण वा पोषण करती है (उत) और (ते) आप के (आपः) जल (रयिम्) लक्ष्मी को धारण करते हैं उसी (देवानाम्) सूर्य्य आदिकों में (महत्) सबसे बड़े (एकम्) द्वितीय रहित (असुरत्वम्) शत्रुओं के नाश करनेवाले को प्राप्त होकर (ते) आप के (वामभाजः) उत्तम कर्मों के सेवन करने वा श्रेष्ठ भोग भोगनेवाले (सखायः) मित्र हम लोग (स्याम) होवें ॥ २२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे जगदीश्वर ! जिन आपने हम लोगों के सुख के लिए सृष्टि में अनेक प्रकार की ओषधियां और जल रचे उन आप के हम लोग उपासना करनेवाले होवें और आप को छोड़ के दूसरे की उपासना कभी न करें ॥ २२ ॥

इस सूक्त में दिन, रात्रि, विद्वान्, अन्तरिक्ष, पृथिवी, राजधर्म और ईश्वर के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह ऋग्वेद की संहिता के तीसरे अष्टक में तीसरा अध्याय इकतीसवां वर्ग और तीसरे मण्डल में पचपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ तृतीयाष्टके चतुर्थाऽध्यायारम्भः ॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥१॥

अथाऽष्टर्चस्य षट्पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । १, ६, ८, निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ७ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब छप्पनवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में ईश्वर के गुणों को कहते हैं—

न ता मि॑नन्ति मा॒यिनो॒ न धीरा॑ व्र॒ता दे॒वानां॑ प्रथ॒मा ध्रु॒वाणि॑ ।
न रोद॑सी अ॒द्रुहा॑ वे॒द्याभि॒र्न पर्व॑ता नि॒नमे॑ तस्थि॒वांसः॑ ॥१॥

अब ऊर्ध्व और अधःस्थान विषयक शिल्पिजनों के कृत्य को कहते हैं—

सुयुग्वहन्ति प्रति वामृतेनोर्ध्वा भवन्ति पितरेव मेधाः ।

जरेथामस्मद्वि पणेर्मनीषां युवोरवश्चकृमा यातमर्वाक् ॥२॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! (**सुयुक्**) उत्तम कृत्य के योगकर्त्ता-जन जिन (**ऊर्ध्वाः**) ऊपर को पहुँचाने वाली (**मेधाः**) बुद्धियों और (**ऋतेन**) सत्य से (**वाम्**) आप दोनों को (**वहन्ति**) प्राप्त होते हैं उनको हम लोगों के (**प्रति**) प्रति पहुँचाओ जो (**पितरेव**) माता और पिता के सदृश पालन करने वाली (**भवन्ति**) होती हैं आप दोनों (**जरेथाम्**) उनकी स्तुति करो । (**अस्मत्**) हमारे लिए (**वि, पणे**) व्यवहार की (**मनीषाम्**) बुद्धि को (**आ**) सब प्रकार (**यातम्**) प्राप्त होओ (**अर्वाक्**) नीचे स्थानों में (**युवोः**) आप दोनों की (**अव**) रक्षा हम लोग (**चकृम**) करें ॥ २ ॥

भावार्थ—जैसे वायु और किरणें सूर्य्य आदि को पहुँचाती हैं वैसे ही उत्तम बुद्धि के सदृश वर्त्तमान स्त्रियाँ सुख को पहुँचाती हैं । और जो विद्वान् लोग मनुष्यों में पिता के सदृश वर्त्तमान हैं उनके प्रति सबको चाहिए कि पुत्र के सदृश वर्त्ताव करें और सब व्यवहार को जानके यथावत् करें ॥ २ ॥

अब अग्नि आदि पदार्थ चालित यानविषयक शिल्पिकृत्य को कहते हैं—

सुयुग्भिरश्वैः सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।

किमङ्ग वां प्रत्यवर्त्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥३॥

पदार्थ—हे (**दस्रौ**) दुःखों को नाश करनेवाले (**अश्विना**) सूर्य्य और चन्द्रमा के सदृश वर्त्तमान अध्यापक और उपदेशक ! आप दोनों (**सुयुग्भिः**) उत्तम प्रकार जोड़े गए (**अश्वैः**) अग्नि आदि पदार्थों से युक्त (**सुवृता**) उत्तम (**रथेन**) विमान आदि वाहन में (**अद्रेः**) मेघ के सदृश हम लोगों की (**इमम्**) इस (**श्लोकम्**) वाणी को (**शृणुतम्**) सुनो और (**अङ्ग**) हे पूर्वोक्त अध्यापक उपदेशको ! जो (**वाम्**) तुम दोनों को (**गमिष्ठा**) अत्यन्त चलनेवाले (**पुराजाः**) प्रथम उत्पन्न हुए (**विप्रासः**) बुद्धिमान् विद्वान् लोग (**आहुः**) कहते हैं वे आप दोनों (**प्रति, अवर्त्तिम्**) अवर्त्तमान अर्थात् अलभ्य पदार्थ को (**किम्**) क्यों नहीं प्राप्त हों किन्तु प्राप्त ही होवें ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग अग्नि आदि विद्या से चलाये वाहनों में व्यवहार करें वे किस किस ऐश्वर्य को न प्राप्त होवें ॥ ३ ॥

आ मन्येथामा गतं कच्चिदेवैर्विश्वे जनासो अश्विना हवन्ते ।

इमा हि वां गोऋजीका मधूनि प्र मित्रासो न ददुरुस्रो अग्रे ॥४॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) अध्यापक और उपदेशक जन ! आप दोनों को (**विश्वे**) सम्पूर्ण (**जनासः**) प्रसिद्ध मनुष्य (**हवन्ते**) ग्रहण करते हैं (**अग्रे**) और प्रथम (**हि**) कि जिससे (**इमा**) इन (**गोऋजीका**) गौवों के दुग्ध आदि से मिले हुए (**मधूनि**) सोमलतारूप ओषधियों के रसों को (**मित्रासः**) मित्र लोगों के (**न**) सदृश (**प्र, ददुः**) देवें । उनको तथा (**उस्रः**) गौओं को (**वाम्**) आप दोनों (**एवैः**) शीघ्र पहुँचानेवाले बिजुली आदि से चलाये गये वाहनों से (**कत**) कब (**आ, गतम्**) प्राप्त हुए (**चित्**) भी (**आ**) सब प्रकार (**मन्येथाम्**) जानिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—विद्वानों की योग्यता है कि जो प्रीति से धार्मिक उत्तम सेवक विद्यार्थी वा श्रोताजन समीप आवें उनको उत्तम विज्ञान आदि देवें । जिससे सब मनुष्य सब के साथ मित्रों के सदृश वर्त्ताव करें ॥ ४ ॥

तिरः पुरू चिदश्विना रजांस्याङ्गूषो वां मघवाना जनेषु ।

एह यातं पथिभिर्देवयानैर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥५॥३॥

पदार्थ—हे (**दस्रौ**) क्लेश के नाशकर्त्ता (**मघवाना**) अत्यन्त उत्तम धनयुक्त (**अश्विना**) शिल्पविद्या के जाननेवाले अध्यापक और उपदेशको ! जो (**वाम्**) आप दोनों (**देवयानैः**) विद्वान् लोग जिनसे चलते उन (**पथिभिः**) मार्गों से (**पुरू**) बहुत (**रजांसि**) लोकों को (**तिरः**) तिर्छे मार्ग से (**आ, यातम्**) प्राप्त होवें तो (**इह**) यहाँ (**वाम्**) तुम दोनों को (**जनेषु**) मनुष्यों में (**इमे**) ये (**मधूनाम्**) माधुर्य गुणों से युक्त पदार्थ सम्बन्धी (**निधयः**) धनों के समूह प्राप्त होवें । और (**आङ्गूषः**) विद्वान् (**चित्**) भी प्राप्त होवे ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो लोग विद्वानों के मार्गों से पदार्थ विद्याओं की खोज करें वे सम्पूर्ण विद्याओं को प्राप्त हों तथा जल स्थल और अन्तरिक्षों में जा आ और लक्ष्मीवान् हो दारिद्र्य का तिरस्कार करके धनवान् होते हुए अन्यजनों को भी ऐसे ही करें ॥ ५ ॥

जो शिल्पी विद्वानों के साथ और लोग परस्पर मित्रता करें, तो क्या पावें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

पुराणमोकः सख्यं शिवं वां युवोर्नरा द्रविणं जह्नाव्याम् ।

पुनः कृण्वानाः सख्या शिवानि मध्वा मदेम सह नू समानाः ॥६॥

पदार्थ—हे (**नरा**) नायक सभा और सेना के ईशो ! (**वाम्**) आप दोनों (**पुराणम्**) प्राचीन काल से सिद्ध (**ओकः**) सब ऋतुओं में सुख देनेवाले स्थान के तुल्य (**शिवम्**) कल्याण करनेवाले (**सख्यम्**) मित्र के कर्म को प्राप्त हूजिये । और (**जह्नाव्याम्**) त्याग करनेवाले की नीति में (**युवोः**) तुम दोनों को (**द्रविणम्**) धन प्राप्त हो (**पुनः**) फिर (**शिवानि**) सुख करने वाले (**सख्या**) मित्र के कर्मों को (**कृण्वानाः**) करते हुए (**समानाः**) तुल्य और उत्तम गुण कर्म स्वभाववाले हम लोग (**मध्वा**) मधुरभाव के (**सह**) साथ (**नु**) शीघ्र (**मदेम**) आनन्द करें ॥६॥

भावार्थ—जो विद्वान् और अविद्वान् लोग परस्पर मैत्री करें वे अनादिसिद्ध कल्याणकारक बड़ा ऐश्वर्य और विज्ञान को प्राप्त होकर धार्मिक होते हुए दुष्ट व्यसनों का त्याग करके सदा ही सुखी होवें ॥६॥

अब शिल्पविद्या उपदेशार्थ आज्ञा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अश्विना वायुना युवं सुदक्षा नियुद्भिश्च सजोषसा युवाना ।

नासत्या तिरोअह्न्यं जुषाणा सोमं पिबतमस्रिधा सुदानू ॥७॥

पदार्थ—हे (**युवाना**) यौवनावस्था को प्राप्त (**नासत्या**) असत्य आचार से रहित (**सुदक्षा**) उत्तम प्रकार चतुर (**सजोषसा**) तुल्य प्रीति के सेवने वाले (**तिरोअह्न्यम्**) तिर्छे दिनों में उत्तम की (**जुषाणा**) सेवा करते हुए (**अस्रिधा**) अहिंसक (**सुदानू**) उत्तम पदार्थ के देने (**अश्विना**) शिल्पविद्या के पढ़ाने और पढ़ने वाले स्वामी और सेवको ! (**युवम्**) आप दोनों (**वायुना**) पवन से (**नियुद्भिः, च**) नियत किये हुए भी वाहनों में स्थित हो और आकर (**सोमम्**) बड़ी ओषधि के रस का (**पिबतम्**) पान कीजिये ॥७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप हिंसा आदि अधर्म व्यवहार को त्याग के वायु बिजुली आदि पदार्थ विद्याओं को जान अन्य जनों के लिए विद्या आदि दे और पूर्ण ब्रह्मचर्य्य का सेवन करके अतिकाल जीओ ॥७॥

अब शिल्पविद्यासिद्ध यान से आने जाने के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अश्विना परि वामिषः पुरूचीरीयुर्गीर्भिर्यतमाना अमृध्राः ।

रथो ह वामृतजा अद्रिजूतः परि द्यावापृथिवी याति सद्यः ॥८॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) सम्पूर्ण विद्याओं में व्याप्त रमते हुए यदि (**वाम्**) आप दोनों को (**ऋतजा**) सत्य से उत्पन्न (**अद्रिजूतः**) मेघ में शीघ्र आनेवाला (**रथः**) वाहन (**द्यावापृथिवी**) भूमि और प्रकाश को (**सद्यः**) शीघ्र (**परि, याति**) सब ओर पहुँचाता है तो उससे (**वाम्**) आप दोनों को (**ह**) निश्चय कर (**गीर्भिः**) वाणियों से जैसे (**अमृध्राः**) अध्यापक और उपदेशक (**यतमानाः**) प्रयत्न करते प्राप्त हों वैसे (**पुरूचीः**) सुखों को पहुँचाने वाली (**इषः**) इच्छासिद्धियों को (**परि, ईयुः**) सब ओर प्राप्त होवें ॥८॥

भावार्थ—जो लोग विमान आदि यानों को अग्नि आदि से रचते हैं वे अभीष्ट सुखों को प्राप्त होकर जहाँ इच्छा हो शीघ्र जा सकते हैं ॥८॥

अब शिल्पविद्याफल को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अश्विना मधुषुत्तमो युवाकुः सोमस्तं पातमा गतं दुरोणे ।

रथो ह वां भूरि वर्पः करिक्रत्सुतावतो निष्कृतमागमिष्ठः ॥९॥४॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) सभा के अधीश और सेना के अधीश ! जो (**ह**) निश्चय (**वाम्**) आप दोनों का (**रथः**) (**भूरि**) बड़े (**वर्पः**) रूप से युक्त (**सुतावतः**) उत्पन्न ऐश्वर्य कोश के (**निष्कृतम्**) सिद्ध हुए विषय को (**आगमिष्ठः**) अतिशय करके प्राप्त होनेवाला (**करिक्रत्**) निरन्तरकारी है उससे जो (**मधुषुत्तमः**) मीठे रसों को निचोड़ने वाला (**युवाकुः**) मिला और अनमिला (**सोमः**) ऐश्वर्य का लाभ है (**तम्**) इस की (**दुरोणे**) गृह में (**पातम्**) रक्षा कीजिए और अन्य देश से अपने देश में (**आ, गतम्**) आइए ॥९॥

भावार्थ—जो मनुष्य शिल्पविद्या से अनेक कलायन्त्रों का निर्माण करके वाहन आदि को रचते हैं वे अपने गृह कुल और देश में पूर्ण ऐश्वर्य कर सकते हैं ॥९॥

इस सूक्त में अश्वि शब्द से शिल्पीजनों का कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अट्ठावनवाँ सूक्त और चौथा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ नवर्चस्यैकोनषष्टितमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । मित्रो देवता ।

१, २, ५ त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।
४ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ६, ९ निचृद्गायत्री ।
७, ८ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले उनसठवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मित्रगुणों का उपदेश करते हैं—

मित्रो जनान्यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (ब्रुवाणः) उपदेश से प्रेरणा करता हुआ (मित्रः) सब का मित्रजन (जनान्) मनुष्यों को (अनिमिषा) दिन और रात्रि में होने वाली क्रिया से (यातयति) पुरुषार्थ कराता जो (मित्रः) सूर्य के समान परमात्मा मित्र (पृथिवीम्) भूमि (उत) और (द्याम्) सूर्यलोक को दिन और रात्रि में होने वाली क्रिया से (दाधार) धारण करता और जो (मित्रः) सब का मित्र (कृष्टीः) खींचने वा जोतने वाली मनुष्य रूप प्रजाओं को दिन और रात्रि में होने वाली क्रिया से (अभि, चष्टे) सब प्रकार उपदेश देता है उस (मित्राय) उक्त सर्व व्यवहार को चलानेवाले मित्र के लिए (घृतवत्) बहुत घृत आदि से युक्त (हव्यम्) हविष्यान्न (जुहोत) दीजिए ॥१॥

भावार्थ—जो मनुष्य लोग सत्य का उपदेश करने सत्य विद्या देने मित्रता रखने सब को धारण करने वाले परमात्मा और सब के व्यवस्थापक राजा का सत्कार करते हैं वे ही सब के मित्र हैं ॥१॥

अब ईश्वर और आप्त विद्वान् के मित्रपन को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान्यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन ।
न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥२॥

पदार्थ—हे (मित्र) मित्र यथार्थवक्ता विद्वान् वा जगदीश्वर ! (यः) जो (मर्तः) मनुष्य (प्रयस्वान्) प्रयत्न वाला (अस्तु) हो और हे (आदित्य) अविनाशिस्वरूप ! जो मनुष्य (ते) आप के (व्रतेन) कर्म से जैसे वैसे अन्य जनों को (प्र, शिक्षति) विद्या ग्रहण कराता वा आप ग्रहण करता है (सः) वह (त्वोतः) आप से रक्षित अन्य जनों से (न) न (हन्यते) मारा जाता (न) और न (जीयते) जीता जाता है (एनम्) इसको (अन्तितः) समीप से (अंहः) पाप (न) नहीं (अश्नोति) प्राप्त होता और (न) न इस को (दूरात्) दूर से पाप प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थ—जो मनुष्य यथार्थवक्ता और स्वामी के गुण कर्म और स्वभाव के सदृश अपने गुण कर्म और स्वभावों को कर के सत्य न्याय से सब को शिक्षा करते हैं वे पापरहित धर्मात्मा होकर यथार्थवक्ता और स्वामी से रक्षित हुए दुष्टों से नाश तथा पराजय को प्राप्त नहीं हो सकते और न वे दूर वा समीप से पक्षपात से पाप का सेवन करते हैं ॥२॥

अनमीवास इळया मदन्तो मितज्ञवो वरिमन्ना पृथिव्याः ।
आदित्यस्य व्रतमुपक्षियन्तो वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ब्रह्मचर्य्य से (अनमीवासः) शरीर और आत्मा के रोग से रहित (इळया) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी वा पृथिवी के राज्य से (मदन्तः) आनन्दित होते हुए (मितज्ञवः) और नपी जङ्घाओं वाले (पृथिव्याः) भूमि और (आदित्यस्य) सूर्य्य के (वरिमन्) बहुत शील और सत्य से युक्त (व्रतम्) क्षमा वा न्यायप्रकाश करनेवाले कर्म को (आ, उपक्षियन्तः) प्राप्त होते हुए (वयम्) हम लोग (मित्रस्य) सब के मित्र ईश्वर वा यथार्थवक्ता पुरुष की (सुमतौ) श्रेष्ठ आज्ञा वा बुद्धि में (स्याम) होवें वैसे आप लोग भी होओ ॥३॥

भावार्थ—जो लोग परमेश्वर और यथार्थवक्ता पुरुषों के साथ मित्रता कर और क्षमा आदि विद्या न्याय के प्रकाश आदि गुणों का स्वीकार करके धर्मयुक्त मार्ग में वर्त्तमान हैं वे ही परमेश्वर और यथार्थवक्ता पुरुषों के प्रिय होते हैं ॥३॥

अयं मित्रो नमस्यः सुशेवो राजा सुक्षत्रो अजनिष्ट वेधाः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥४॥

पदार्थ—सब को जो (अयम्) यह परमात्मा वा यथार्थवक्ता राजा (मित्रः) मित्र (सुशेवः) उत्तम सुख का दाता (सुक्षत्रः) वा जिसका राज्य देश उत्तम प्रकार सुखी (राजा) जो पृथिवी का पालनकर्त्ता (वेधाः) बुद्धिमान् (नमस्यः) और सत्कार करने योग्य है तथा जिसका राज्य देश सुखी (अजनिष्ट) होता है (तस्य) उस (यज्ञियस्य) सत्य व्यवहार के उत्पन्न करनेवाले की (सुमतौ) आज्ञा वा बुद्धि में तथा (सौमनसे) श्रेष्ठ मानस व्यवहार और (भद्रे) कल्याण करनेवाले व्यवहार में (अपि) भी (वयम्) हम लोग (स्याम) प्रसिद्ध में होवें वैसे ही सब लोग हों ॥४॥

भावार्थ—जैसे ईश्वर और यथार्थवक्ता पुरुष धर्म में वर्त्तमान हुए नमस्कार करने के योग्य होते हैं वैसे ही न्याय और विनय से राज्य के पालनकर्त्ता राजा लोग सत्कार करने योग्य होवें और जैसे सज्जन लोग परमेश्वर और यथार्थवक्ताओं के कर्मों वर्त्तमान हैं वैसे ही हम लोगों को चाहिए कि वर्त्ताव करें ॥४॥

अब मित्र के लिये प्रिय पदार्थ देने को अगले मन्त्र में कहते हैं—

महाँ आदित्यो नमसोपसद्यो यातयज्जनो गृणते सुशेवः ।
तस्मा एतत्पन्यतमाय जुष्टमग्नौ मित्राय हविरा जुहोत ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (आदित्यः) सूर्य्य के सदृश अच्छे गुणों का प्रकाश करनेवाला (महान्) बड़े-बड़े गुणों से युक्त (सुशेवः) जिसका उत्तम सुख (यातयज्जनः) जो प्रेरणा करता हुआ जन (नमसा) सत्कार से (उपसद्यः) प्राप्त होने योग्य हो और जिस की सब लोग (गृणते) स्तुति करते हैं (तस्मै) उस (पन्यतमाय) अत्यन्त प्रशंसायुक्त (मित्राय) प्राणों के सदृश वर्त्तमान पुरुष के लिए (अग्नौ) अग्नि में (हविः) हवन करने तथा खाने योग्य पदार्थ के सदृश (एतत्) इस (जुष्टम्) प्रिय पदार्थ को (आ, जुहोत) देओ ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वे ही पूज्य सूर्य्य के सदृश विद्या और धर्म के प्रकाश करनेवाले यथार्थवक्ता विद्वान् लोग हैं कि जो उत्तम गुण और कर्मों में सबको प्रेरणा करें जैसे ऋत्विक् अर्थात् ऋतु ऋतु में हवन करनेवाले लोग अग्नि में अच्छे बनाये हुए हवि अर्थात् होम करने योग्य पदार्थ को होमके संसार को प्रसन्न करते हैं वैसे ही उत्तम गुणों से युक्त विद्यार्थी जनों में विद्या और धर्म को अच्छे प्रकार स्थापन करके सब मनुष्य आदि प्राणियों को सुखी करते हैं ॥५॥

अब प्रजामित्र राजा के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस (चर्षणीधृतः) मनुष्यों के धारण करनेवाले (मित्रस्य) सब के मित्र (देवस्य) विद्वान् राजा का (सानसि) प्राचीन (अवः) रक्षा आदि (चित्रश्रवस्तमम्) जिस के अत्यन्त होने से अद्भुत श्रवण वा अन्न सिद्ध होते (द्युम्नम्) और जो यश करनेवाला धन वा विज्ञान है वही प्रजाओं की रक्षा कर सकता है ॥६॥

भावार्थ—जो लोग अनादि काल से सिद्ध विद्याधन का ग्रहण करके सम्पूर्ण प्रजाओं की रक्षा करते हैं वे इस लोक और परलोक में सुख को प्राप्त होते हैं ॥६॥

अब मित्रपन से ईश्वर के पदार्थरचन और ईश्वरसेवन को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः । अभि श्रवोभिः पृथिवीम् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (सप्रथाः) विस्तारयुक्त जगत् के साथ वर्त्तमान वा (मित्रः) मित्र के सदृश वर्त्तमान जगदीश्वर अपनी (महिना) महिमा से (दिवम्) प्रकाशमय सूर्य को रच के (अभि) सम्मुख (बभूव) होता वा (श्रवोभिः) अन्न आदि पदार्थों के साथ (पृथिवीम्) भूमि को रच के (अभि) सम्मुख होता है उसकी नित्य सेवा करो ॥७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो बड़े सामर्थ्य से सूर्य्य और पृथिवी आदि विस्तार सहित संसार को रच और अन्तर्य्यामिरूप से सब को जान और धारण करके नियम में लाता वही उपासना करने के योग्य है ॥७॥

मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टिशवसे । स देवान्विश्वान्बिभर्ति ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ये (पञ्च) पांच प्राण आदि के सदृश (जनाः) विद्वान् लोग जिस (अभिष्टिशवसे) अपेक्षित बलयुक्त (मित्राय) मित्र के सदृश सब को सुख देनेवाले परमात्मा के लिए (येमिरे) यमादि साधन साधते हैं । (सः) वह (विश्वान्) समस्त (देवान्) सूर्य्य आदिकों का (बिभर्ति) धारण तथा पोषण करता है ऐसा जानो ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे रोके गये प्राणवायु इन्द्रियों को रोकते हैं वैसे ही योगीजन समाधि में परमात्मा को प्राप्त होते हैं ॥८॥

अब मित्रत्व से ईश्वरोपासना विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

मित्रो देवेष्वायुषु जनाय वृक्तबर्हिषे । इष इष्टव्रता अकः ॥९॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (मित्रः) ईश्वर (वृक्तबर्हिषे) छोड़ा है जल जिसने उस (जनाय) मनुष्य आदि के लिए (देवेषु) उत्तम (आयुषु) जीवनों में (इष्टव्रताः) चाहे हुए काम जिनसे होते उनकी (इषः) इच्छाओं को (अकः) पूर्ण करता है उस की सब लोग सेवा करो ॥९॥

भावार्थ—जो परमात्मा अन्याय से रहित भक्त मनुष्यों को सिद्ध इच्छा वाले करता है वही सब लोगों को ध्यान करने योग्य है ॥९॥

यह उनसठवां सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तर्चस्य षष्टितमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । ऋभवो देवता । १३—जगती । ४, ५ निचृज्जगती । ६ विराड्जगती । ७ भुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले साठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजविषय का उपदेश करते हैं—

इहेह वो मनसा बन्धुता नर उशिजो जग्मुरभि तानि वेदसा ।
याभिर्मायाभिः प्रतिजूतिवर्पसः सौधन्वना यज्ञियं भागमानश ॥१॥

पदार्थ—हे (नरः) नायक लोगो ! जो (उशिजः) कामना करते हुए (मनसा) चित्त से (इहेह) इस इस व्यवहार में (वः) आप लोगों का जो (बन्धुता) बन्धुपन उससे (तानि) उन मित्रपने से युक्त कामों को (अभि, जग्मुः)

प्राप्त होते हैं और (याभिः) जिन (मायाभिः) बुद्धियों से (प्रतिजूतिवर्पसः) प्रतीत हुआ वेगयुक्त रूप जिनका वे (वेवसा) धन से (सौधन्वनाः) उत्तम अन्तरिक्ष जिस का उसके पुत्र होते हुए (यज्ञियम्) यज्ञ के योग्य (भागम्) अंश को (आनश) व्याप्त होते और भाग्यशाली होते हैं ॥१॥

भावार्थ—जो मनुष्य इस संसार में सब के साथ भाईपन करके बुद्धि और धन से सुख बढ़ाते वे पूर्ण मनोरथ वाले होते हैं ॥१॥

फिर उसी राजशिक्षा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

याभिः शचीभिश्चमसाँ अपिंशत यया धिया गामरिणीत चर्मणः ।

येन हरी मनसा निरतक्षत तेन देवत्वमृभवः समानश ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (ऋभवः) बुद्धिमान् लोग (याभिः) जिन (शचीभिः) बुद्धियों वा कर्मों से (चमसान्) मेघों का (अपिंशत) अवयवों वाले करते हैं (यया) जिस (धिया) बुद्धि के साथ (चर्मणः) चर्म की प्राप्ति से (गाम्) धेनु को (अरिणीत) प्राप्त होते हैं (येन) जिस (मनसा) विज्ञान से (हरी) धारण और आकर्षण का (निरतक्षत) निरन्तर विस्तार करते हैं (तेन) उससे आप लोग (देवत्वम्) विद्वान्पने को (सम्, आनश) उत्तम प्रकार व्याप्त होओ ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे बुद्धिमान् लोग यहाँ वर्त्ताव करें वैसे ही वर्त्ताव करके विद्वान् होओ ॥ २॥

अब सर्वाधीश परमात्मा की मित्रता का फल अगले मन्त्र में कहते हैं—

इन्द्रस्य सख्यमृभवः समानशुर्मनोर्नपातो अपसो दधन्विरे ।

सौधन्वनासो अमृतत्वमेरिरे विष्ट्वी शमीभिः सुकृतः सुकृत्यया ॥३॥

पदार्थ—जो (ऋभवः) बुद्धिमान् लोग (इन्द्रस्य) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त परमात्मा की (सख्यम्) मित्रता को (सम, आनशु) उत्तम प्रकार प्राप्त होवें तथा जिस (मनो) मनन करनेवाले का (नपात) नहीं गिरना होता उस के लिए (अपस) कर्मों का (दधन्विरे) धारण करते हैं वे (सौधन्वनास) उत्तम ज्ञान के युक्त करनेवाले (शमीभि) कर्मों के साथ (विष्ट्वी) कर्म को करके (सुकृत्यया) उत्तम कर्म की क्रिया से (सुकृत) उत्तम कर्म करनेवाले होते हुए (अमृतत्वम्) मोक्षपदवी को (आ, ईरिरे) प्राप्त होते हैं ॥३॥

भावार्थ—जो लोग परमेश्वर में प्रीति और उसकी आज्ञा के भङ्ग होने से भय तथा धर्म का आचरण करते हैं वे ही मोक्षपदवी को प्राप्त होते हैं ॥३॥

इन्द्रेण याथ सरथं सुते सचाँ अथो वशानां भवथा सह श्रिया ।

न वः प्रतिमै सुकृतानि वाघतः सौधन्वना ऋभवो वीर्याणि च ॥४॥

पदार्थ—हे (सौधन्वना) यथार्थवक्ता पुरुष के पुत्रो ! (वाघत) विद्वान् (ऋभव) बुद्धिमान् आप लोग (सुते) उत्पन्न हुए राज्य में (सचा) विज्ञान और (इन्द्रेण) अत्यन्त ऐश्वर्य से (सरथम्) रथ के साथ वर्तमान सेना को (याथ) प्राप्त हूजिये (अथो) इसके अनन्तर (वशानाम्) कामना करने योग्यों की (श्रिया) लक्ष्मी के (सह) साथ (भवथ) हूजिये जिससे (वः) आप लोगों के (सुकृतानि) धर्मयुक्त कर्म (वीर्याणि, च) और पराक्रम (प्रतिमै) समान (न) नहीं होवें ॥४॥

भावार्थ—जो विद्वान् होकर धर्मयुक्त आचरण में प्रयत्न करते हैं वे लक्ष्मीवान् और अतुल धनों को प्राप्त होकर पराक्रमों को बढ़ाते हैं ॥४॥

इन्द्र ऋभुभिर्वाजवद्भिः समुक्षितं सुतं सोममा वृषस्वा गभस्त्योः ।

धियेषितो मघवन्दाशुषो गृहे सौधन्वनेभिः सह मत्स्वा नृभिः ॥५॥

पदार्थ—हे (मघवन्) प्रशंसितधनयुक्त (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य वाले ! (धिया) बुद्धि से (इषित) प्रेरित आप (वाजवद्भिः) प्रशंसनीय अन्न आदि ऐश्वर्यों से युक्त (ऋभुभि) बुद्धिमानों के साथ (समुक्षितम्) उत्तम प्रकार सींचे (सुतम्) उत्पन्न किये गये (सोमम्) ऐश्वर्य को (गभस्त्यो) हाथों के बल से (आ, वृषस्व) सब प्रकार पुष्टिये (सौधन्वनेभि) बुद्धिमानों के पुत्रों और (नृभि) विद्या आदि व्यवहारों में अग्रगन्ता जनों के (सह) साथ (दाशुष) देने वाले के (गृहे) घर में (मत्स्व) आनन्दित हूजिये ॥५॥

भावार्थ—राजा को चाहिए कि बुद्धिमान् जनों के सहित प्रजाओं की रक्षा और न्याय से ऐश्वर्य की वृद्धि करके तथा राज्य के कर देने वालों को आनन्दित कर के नायकों के साथ प्रजाओं को सदैव आनन्दित करें ॥५॥

इन्द्र ऋभुमान्वाजवान्मत्स्वेह नोऽस्मिन्त्सवने शच्या पुरुष्टुत ।

इमानि तुभ्यं स्वसराणि येमिरे व्रता देवानां मनुषश्च धर्मभिः ॥६॥

पदार्थ—हे (शच्या) बुद्धि वा वाणी से (पुरुष्टुत) बहुतों से प्रशंसा किये गये (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् राजन् ! आप (इह) इस राज्य में (ऋभुमान्) बहुत बुद्धिमान् और (वाजवान्) बहुत अन्न आदि ऐश्वर्य्ययुक्त होते हुए (नः) हम लोगों के (अस्मिन्) इस (सवने) ऐश्वर्य्ययुक्त राज्य में (मत्स्व) आनन्दित होओ जिन (तुभ्यम्) आप के लिए (इमानि) यह वर्त्तमान (स्वसराणि) दिन (येमिरे) नियत होते हैं वह आप (देवानाम्) विद्वानों के (धर्मभिः) धर्मों के सहित (व्रता) सुशील कर्मों को ग्रहण करके (मनुषः) मनुष्यों को (च) भी आनन्दित करो ॥६॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप सदा धर्मात्मा और बुद्धिमानों के सङ्गी और मूर्खों के सङ्ग के त्यागी होकर एक क्षण भी व्यर्थ न व्यतीत करो और जैसे यथार्थवक्ता पुरुष पक्षपात का त्याग करके सब के साथ कपटरहित वर्त्ताव करते हैं वैसा ही वर्त्ताव करो ॥६॥

अब राजप्रसङ्ग से अमात्य और प्रजाकृत्य को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इन्द्र ऋभुभिर्वाजिभिर्वाजयन्निह स्तोमं जरितुरुप याहि यज्ञियम् ।

शतं केतेभिरिषिरेभिरायवे सहस्रणीथो अध्वरस्य होमनि ॥७॥७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले मनुष्यों के स्वामिन् ! आप (इह) इस संसार में (वाजिभिः) वेग आदि गुणों से युक्त (ऋभुभि) बुद्धिमानों के साथ (वाजयन्) प्राप्त कराते हुए (जरितु.) स्तुति करनेवाले विद्वान् की (स्तोमम्) स्तुति को (उप, याहि) प्राप्त हूजिये । और (आयवे) मनुष्य के लिए (इषिरेभिः) इष्ट (केतेभि.) बुद्धियों से (सहस्रणीथः) असंख्य धार्मिकों से प्राप्त होते हुए (अध्वरस्य) न्यायव्यवहार के (होमनि) ग्रहण करने योग्य व्यवहार में (शतम्) असंख्य (यज्ञियम्) राज्यव्यवहार के उत्पन्न करने वाले के समीप प्राप्त हूजिये ॥७॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप इस राज्य में मनुष्यों के हित के लिये असंख्य उत्तम कर्मों को करके धार्मिक मन्त्रिजन और उपदेशकों के साथ यथार्थवक्ता पुरुषों से की हुई प्रशंसा को प्राप्त होकर अगले जन्म में भी मोक्ष को प्राप्त हूजिये ॥७॥

इस सूक्त में राजा मन्त्री और प्रजा के कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह साठवां सूक्त और सातवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तर्चस्यैकाधिकषष्टितमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । उषा देवता ।
१ । ५ । ७ त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ६ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः । ३ । ४ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले एकसठवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में प्रातःकाल की वेला की उपमा से स्त्री के गुणों को कहते हैं—

उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि ।

पुराणी देवि युवतिः पुरन्धिरनु व्रतं चरसि विश्ववारे ॥१॥

पदार्थ—हे (वाजिनि) विज्ञानवाली (मघोनि) अत्यन्त धन से युक्त (देवि) सुन्दर (विश्ववारे) सब प्रकार वरने योग्य स्त्रि ! तुम (उषः) प्रातःवेला के सदृश वर्त्तमान (वाजेन) विज्ञान के साथ (प्रचेताः) उत्तमता से सत्य अर्थ की जनाने वाली होती हुई (गृणतः) सुभ स्तुति करनेवाले की (स्तोमम्) प्रशंसा का (जुषस्व) सेवन करो जिस से कि (पुराणी) प्रथम नवीन (पुरन्धिः) बहुत उत्तम गुणों को धारण करनेवाली (युवतिः) पूर्ण चौबीस वर्ष वाली हुई (व्रतम्) कर्म को (अनु) अनुकूलता से (चरसि) करती हो इससे हृदयप्रिय हो ॥१॥

भावार्थ—हे स्त्रियो ! जैसे प्रातर्वेला सम्पूर्ण प्राणियों को जगा के कार्यों में प्रवृत्त करती है वैसे ही पतिव्रता होकर पतियों के साथ अनुकूलता से वर्त्त प्रशंसित होओ ॥१॥

फिर उसी विषय को प्रकारान्तर से अगले मन्त्रों में कहते हैं—

उषो देव्यमर्त्या वि भाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती ।

आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये ॥२॥

पदार्थ—हे (देवि) उत्तम प्रकार शोभित (उषः) प्रातःवेला के सदृश वर्त्तमान (सूनृताः) उत्तम प्रकार सत्य क्रियाओं को (ईरयन्ती) प्रेरणा करती हुई (चन्द्ररथा) चन्द्रमा के सदृश रथ जिसका ऐसी (अमर्त्या) मरण धर्म से रहित हुई (वि भाहि) शोभित होओ । और (ये) जो (पृथुपाजसः) बहुत बलयुक्त (सुयमास) उत्तम प्रकार नियम करनेवाले (हिरण्यवर्णाम्) तेजोमयी कान्ति को (अश्वा) व्याप्त किरणों के सदृश (त्वा) आप को (आ, वहन्तु) प्राप्त हों उनको सुखपूर्वक आप शोभित करिये ॥२॥

भावार्थ—जैसे चन्द्रमारूप रथवाली प्रातःकाल की वेला तेजःस्वरूप होकर सब को जगाती है वैसे ही उत्तम पण्डिता स्त्रियां अपने अपने पति को सेवा और विनय से सुशील करती हैं ॥२॥

उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः ।

समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व ॥३॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जैसे (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) उत्पन्न हुए लोकों को (प्रतीची) प्राप्त होने और (अमृतस्य) अमृतस्वरूप रस की (केतुः) जनाने

वाली (ऊर्ध्वा) ऊपर का वर्त्तमान (चक्रमिव) पहिये के सदृश चलने वाले (समानम्) तुल्य (अर्थम्) वस्तु को (चरणीयमाना) प्राप्त होती हुई (नव्यसि) अत्यन्त नवीन (उषः) प्रातःकाल की वेला वर्त्तमान और (तिष्ठसि) स्थिर होती है वैसे ही आप (आ, ववृत्स्व) वर्त्ताव करिये ॥३॥

भावार्थ—हे उत्तम स्त्रियो ! जैसे प्रातःकाल सम्पूर्ण भुवनो के खण्डो को प्रकाशित करते हैं वैसे ही उत्तम व्यवहारों को प्रकाशित करो ॥३॥

अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी ।

स्व१र्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद्दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः ॥४॥

पदार्थ—हे स्त्रियो ! जो (स्यूमेव) डोरो सदृश व्याप्त (चिन्वती) बटोरती हुई (मघोनी) अत्यन्त धन से युक्त (स्वसरस्य) दिन की (पत्नी) स्त्री के सदृश वर्त्तमान (स्व जनन्ती) सूर्य्य वा सुख को उत्पन्न करती हुई (सुभगा) सौभाग्य की करने वाली (सुदंसा) उत्तम कर्म जिस मे विद्यमान ऐसी (उषाः) प्रातःकाल की वेला (आ, अन्तात्) सब प्रकार समीप से (दिवः) प्रकाशमान सूर्य्य और (आ) सब प्रकार समीप (पृथिव्याः) पृथिवी के योग से (पप्रथे) प्रख्यात होती है (अव, याति) और प्राप्त होती है वैसे ही आप लोग भी वर्त्ताव करो ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे स्त्रियो ! जैसे दिन का सम्बन्धी प्रातःकाल है वैसे ही छाया के सदृश अपने अपने पति के साथ अनुकूल होकर वर्त्ताव करो और जैसे यह प्रकाश पृथिवी के योग से होता है वैसे पति और पत्नी के सम्बन्ध से सन्तान होते हैं ॥४॥

अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम् ।

ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत्प्र रोचना रुरुचे रण्वसंदृक् ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (रण्वसन्दृक्) सुन्दर पदार्थों के दिखाने (रोचना) रुचि करने और (मधुधा) मधुर पदार्थों को धारण करनेवाली (दिवि) प्रकाश मे (वः) आप लोगो को (प्र, रुरुचे) अच्छी लगती है । और जिससे (वः) आप लोगो के (ऊर्ध्वम्) उत्तम (पाजः) बल का (अश्रेत्) आश्रयण करती है उस (देवीम्) प्रकाशमान और आप लोगो और (विभातीम्) अनेक पदार्थों का प्रकाशित करती हुई (सुवृक्तिम्) उत्तम प्रकार वर्त्तमान (उषसम्) प्रभात वेला को (नमसा) वज्र अर्थात् बिजुली के साथ आप लोग (अच्छ) उत्तम प्रकार (प्र, भरध्वम्) पुष्ट कीजिये ॥५॥

भावार्थ—जैसे प्रातःकाल को सेवन करते हुए लोग उत्तम बल को प्राप्त होते हैं वैसे ही स्नेहपात्र पतिव्रता स्त्री को प्राप्त होकर पुरुष शरीर आत्मबल और आरोग्यपन को प्राप्त होते हैं जिससे दोनो के सदृश होने पर प्रेम बढे ॥५॥

अब प्रातर्वेला ही के गुणों को कहते हैं—

ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात् ।

आयतीमग्न उषसं विभातीं वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः ॥६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् जन ! जो (रेवती) उत्तम धन करनेवाली (ऋतावरी) जिसमे सत्य विद्यमान ऐसी (दिवः) प्रकाश से उत्पन्न हुई वेला (अर्कैः) सूर्य्यों से (अबोधि) जानी जाती (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (आ, अस्थात्) अच्छे प्रकार स्थित करती है उस (आयतीम्) आती और (विभातीम्) प्रकाशित करती हुई (उषसम्) प्रभात वेला को प्राप्त होकर समाधि से जगदीश्वर की (भिक्षमाणः) याचना करते हुए आप (चित्रम्) अद्भुत (वामम्) उत्तम प्रशंसा योग्य (द्रविणम्) धन को (एषि) प्राप्त होते हो ॥६॥

भावार्थ—जो लोग रात्रि के चौथे प्रहर मे जाग के ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करके उत्तम गुणों और ऐश्वर्य्य को मांगते हैं वे पुरुषार्थ से अवश्य इस को प्राप्त होते है ॥ ६ ॥

अब बिजुली और शिल्पियों के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्वृषा मही रोदसी आ विवेश ।

मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं वि दधे पुरुत्रा ॥७॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो बिजुलीरूप अग्नि (बुध्ने) आन्तरिक्ष मे (उषसाम्) प्रातःकालो और (ऋतस्य) सत्य के सम्बन्ध मे (इषण्यन्) अपनी प्रेरणा की इच्छा करता हुआ सा (वृषा) वृष्टि का हेतु (मही) बडी (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (आ, विवेश) प्रविष्ट होता है और (मित्रस्य) मित्र (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष की (मही) बडी पूज्य (माया) बुद्धि (चन्द्रेव) सुवर्णों के सदृश (पुरुत्रा) बहुत रूपयुक्त (भानुम्) सूर्य्य का (विदधे) धारण करता है इससे उस को जान के कार्यों को सिद्ध करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वानो की वाणी और बुद्धि ऐश्वर्य्य को देनेवाली हो और विद्याओं में प्रवेश करके सुखो को देती है वैसे ही सर्वत्र प्रविष्ट हुई बिजुली जानी हुई कार्यों मे प्रयुक्त होकर ऐश्वर्य्य को उत्पन्न करती है ॥ ७ ॥

इस सूक्त में प्रातःकाल स्त्री बिजुली और शिल्पीजनों के गुण वर्णन करने से इसके अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह इकसठवां सूक्त और अष्टम वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथाष्टादशर्चस्य द्विषष्टितमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । १६—१८ विश्वामित्रो जमदग्निर्वा । १—३ इन्द्रावरुणौ । ४—६ बृहस्पतिः । ७—९ पूषा । १०—१२ सविता । १३—१५ सोमः । १६—१८ मित्रावरुणौ देवताः । १ विराट्त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४, ५, १०, ११, १६ निचृद्गायत्री । ६ त्रिपाद्गायत्री । ७, ९, १२—१५, १७, १८ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब अठारह ऋचा वाले बासठवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मित्र अध्यापक और उपदेशकों के विषय को कहते हैं—

इमा उ वां भृमयो मन्यमाना युवावते न तुज्या अभूवन् ।

क्व१ त्यदिन्द्रावरुणा यशो वां येन स्मा सिनं भरथः सखिभ्यः ॥१॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! जो (वाम्) आप दोनो के (इमा) ये वर्त्तमान (मन्यमानाः) आदर किये गये (भृमयः) घूमने आदि (युवावते) आपकी रक्षा करनेवाले के लिए (तुज्याः) हिंसा करने के योग्य (न) नहीं (अभूवन्) होवें वैसे करिये और हे (इन्द्रावरुणा) बिजुली और वायु के सदृश वर्त्तमान ! (येन) जिस यश से (वाम्) आप दोनो के (सखिभ्यः) मित्रो के लिए (सिनम्) अन्न आदि को (स्म) ही (भरथ) धारण करते हो (त्यत्) वह (यशः) यश (उ) ही (क्व) कहां है ॥ १ ॥

भावार्थ—जो अध्यापक और उपदेशक लोग वायु और बिजुली के सदृश उपकार करनेवाले कीर्ति से युक्त और प्रिय आचरण करनेवाले होवें उन के लिए स्नेह से अन्न आदि देना और उन के साथ सदा ही मित्रता की रक्षा करनी चाहिए ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अयमु वां पुरुतमो रयीयञ्छश्वत्तममवसे जोहवीति ।

सजोषाविन्द्रावरुणा मरुद्भिर्दिवा पृथिव्या शृणुतं हवं मे ॥२॥

पदार्थ—हे (इन्द्रावरुणा) बिजुली और जल के सदृश वर्त्तमान ! (मरुद्भिः) पवनो के सदृश सुननेवाले जनो से (दिवा) सूर्य और (पृथिव्या) भूमि के साथ वर्त्तमान होकर आप सुख देते हैं और जैसे (अयम्) यह राजा (उ) क्या (पुरुतमः) अतिशय करके बहुत (रयीयन्) अपने धन की इच्छा करता हुआ (वाम्) आप दोनो की (अवसे) रक्षा आदि के लिए (शश्वत्तमम्) अनादि काल से सिद्ध पदार्थ को (जोहवीति) वारवार देता है वैसे (सजोषौ) तुल्य प्रीति के सेवन करनेवाले आप दोनो (मे) मेरी (हवम्) स्तुति को (शृणुतम्) सुनिये ॥ २ ॥

भावार्थ—जैसे राजा अध्यापक और उपदेश लोग सब के रक्षा वृद्धि और विद्या मे प्रवेश होने के लिए शिक्षा करते है वैसे ही परस्पर की प्रशंसा से पृथिवी आदिको मे ऐश्वर्यों को प्रयत्न से प्राप्त करके परस्पर में प्रीतिवाले सब मनुष्य होओ ॥ २ ॥

अब अगले मन्त्रों में अध्यापक के विषय को कहते हैं—

अस्मे तदिन्द्रावरुणा वसु ष्यादस्मे रयिर्मरुतः सर्ववीरः ।

अस्मान्वरूत्रीः शरणैरवन्त्वस्मान्होत्रा भारती दक्षिणाभिः ॥३॥

पदार्थ—हे (इन्द्रावरुणा) पवन और बिजुली के सदृश वर्त्तमान ! जैसे (अस्मे) हम लोगो मे (तत्) वह (वसु) धन (स्यात्) होवे और (अस्मे) हम लोगो मे (सर्ववीरः) सब वीर जिस से ऐसी (रयिः) लक्ष्मी होवे और हे (मरुतः) मनुष्यो ! जैसे (अस्मान्) हम लोगो को (वरूत्रीः) अत्यन्त श्रेष्ठ विद्या (होत्रा) ग्रहण करने योग्य क्रिया और (भारती) सम्पूर्ण विद्याओं को पूर्ण करती हुई वाणी (शरणैः) दुःख आदिको के नाश करनेवाले (दक्षिणाभिः) दानो से (अस्मान्) हम लोगो की (अवन्तु) रक्षा करें वैसा ही प्रयत्न करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे अध्यापक उपदेशक और राजा लोगो ! जैसे हम लोग धनी लक्ष्मी-वान् और विद्वान् होवें वैसे ही हम लोगो को प्रेरणा करो ॥ ३ ॥

बृहस्पते जुषस्व नो हव्यानि विश्वदेव्य । रास्व रत्नानि दाशुषे ॥४॥

पदार्थ—हे (विश्वदेव्य) सम्पूर्ण विद्वानो मे उत्तम (बृहस्पते) बडी वाणी के पालनकर्त्ता विद्वान् पुरुष ! आप (नः) हम लोगो के लिए (हव्यानि) देने के योग्य पदार्थों का (जुषस्व) सेवन करो और (दाशुषे) देने वाले के लिए (रत्नानि) सुन्दर धनो को (रास्व) दीजिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे अध्यापक ! आप हम लोगो के लिए विद्याओं का सेवन करो । और हे राजन् ! आप विद्या देनेवाले के लिए उत्तम धन दीजिए ॥ ४ ॥

अब अगले मन्त्रों में मित्र के विषय को कहते हैं—

शुचिमर्कैर्बृहस्पतिमध्वरेषु नमस्यत । अनाम्योज आ चके ॥५॥९॥

पदार्थ—हे विद्या के प्रेमी जनो ! आप लोग (अध्वरेषु) जिनमे हिंसा नहीं होती ऐसे विद्या की प्राप्ति के कर्मों मे (अर्कैः) सत्कार करने योग्य विचारो मे वर्त्तमान (शुचिम्) पवित्र (बृहस्पतिम्) वाणीरूप विद्या की रक्षा करनेवाले का (नमस्यत) सत्कार करो । और जो (ओजः) पराक्रम (अनामि) नही नम्र होने वाला और जिसकी मै (आ, चके) कामना करता हूँ उस की आप लोग कामना करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य वेदार्थ के जाननेवाले अध्यापक और उपदेशकों का नमस्कार और सत्कार करते हैं वे पवित्र विद्वान् हुए बल को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

वृषभं चर्षणीनां विश्वरूपमदाभ्यम् । बृहस्पतिं वरेण्यम् ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**चर्षणीनाम्**) विद्याप्रकाश से युक्त मनुष्यों के मध्य में (**वृषभम्**) अत्यन्त उत्तम (**विश्वरूपम्**) कर्मों वा वस्तुओं को रूपित करते हुए अर्थात् उनको यथार्थभाव से प्रकट करते हुए (**अदाभ्यम्**) नहीं हिंसा करने और सत्कार करने योग्य (**वरेण्यम्**) अत्यन्त श्रेष्ठ (**बृहस्पतिम्**) बड़ों के पालन करने वाले राजा का आप लोग आदर करो इससे पराक्रम की कामना करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जैसे राजा का सत्कार करके प्रजाजन ऐश्वर्य्यवान् होते हैं वैसे ही राजा लोग प्रजाओं का सत्कार करके कीर्तियुक्त होते हैं ॥ ६ ॥

अब अगले मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं—

इयं ते पूषन्नाघृणे सुष्टुतिर्देव नव्यसी । अस्माभिस्तुभ्यं शस्यते ॥७॥

पदार्थ—हे (**पूषन्**) पुष्टि करनेवाले (**आघृणे**) सब प्रकार प्रकाशित (**देव**) उत्तम गुणों से युक्त विद्वान् पुरुष वा राजन् ! (**ते**) आप की जो (**इयम्**) यह (**नव्यसी**) अत्यन्त नवीन (**सुष्टुति**) उत्तम प्रशंसा वर्त्तमान है वह (**तुभ्यम्**) आप के लिए (**अस्माभि**) हम लोगों से (**शस्यते**) उच्चारण की जाती है ॥७॥

भावार्थ—जो मनुष्य धर्मसम्बन्धी कर्मों के करने से यशस्वी हैं उनको सुन और देख के सब लोग प्रसन्न होओ ॥ ७ ॥

अब अगले मन्त्र में पठन विषय को कहते हैं—

तां जुषस्व गिरं मम वाजयन्तीमवा धियम् । वधूयुरिव योषणाम् ॥८॥

पदार्थ—हे देव विद्वन् वा राजन् ! आप (**ताम्**) उस (**वाजयन्तीम्**) सत्य और असत्य के जनानेवाली (**मम**) मेरी (**गिरम्**) सत्य भाषण और शास्त्र के विज्ञान से युक्त वाणी का जैसे (**योषणाम्**) निज स्त्री को (**वधूयुरिव**) अपनी स्त्री की रक्षा करनेवाला वैसे (**जुषस्व**) सेवन और (**धियम्**) बुद्धि की (**अव**) रक्षा करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्य लोग, जैसे स्त्री की कामना करनेवाले अपनी अपनी प्रेमपात्र पत्नी की रक्षा और सेवा करते हैं वैसे ही शास्त्र से युक्त वाणी का सेवन करके बुद्धि की निरन्तर सेवा करें ॥ ८ ॥

अब अगले मन्त्रों में परमात्मा के विषय को कहते हैं—

यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति ।

स नः पूषाविता भुवत् ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**य**) जो जगदीश्वर (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**भुवना**) जीव, लोक वा वस्तुओं को (**अभि**) सम्मुख (**विपश्यति**) अनेक प्रकार से देखता है (**सम्, पश्यति**) मिले हुए देखता है (**स**) वह (**न**) हम लोगों का (**पूषा**) पुष्टिकर्त्ता (**अविता**) रक्षक (**भुवत्**) होवे (**च**) और जिससे हम लोग निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होवें ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो सबका रचने देखने और कर्मों के फल देने वाला न्यायाधीश ईश्वर है वही हम लोगों की रक्षा करने और वृद्धि करनेवाला होवे ऐसी हम सब लोग अभिलाषा करें ॥ ९ ॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।

धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१०॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! सब हम लोग (**य**) जो (**न**) हम लोगों की (**धिय**) बुद्धियों को (**प्रचोदयात्**) उत्तम गुण कर्म और स्वभावों में प्रेरित करे उस (**सवितु**) सम्पूर्ण संसार के उत्पन्न करनेवाले और सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य से युक्त स्वामी और (**देवस्य**) सम्पूर्ण ऐश्वर्य के दाता प्रकाशमान सब के प्रकाश करने वाले सर्वत्र व्यापक अन्तर्यामी के (**तत्**) उस (**वरेण्यम्**) सबसे उत्तम प्राप्त होने योग्य (**भर्ग**) पापरूप दु खों के मूल को नष्ट करनेवाले प्रभाव को (**धीमहि**) धारण करें ॥ १०

भावार्थ—जो मनुष्य सबके साक्षी पिता के सदृश वर्त्तमान न्यायेश दयालु शुद्ध सनातन सब के आत्माओं के साक्षी परमात्मा की ही स्तुति और प्रार्थना करके उपासना करते हैं उनको कृपा का समुद्र सबसे श्रेष्ठ परमेश्वर, दुष्ट आचरण से पृथक् करके श्रेष्ठ आचरण में प्रवृत्त करा और पवित्र तथा पुरुषार्थयुक्त करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त कराता है ॥ १० ॥

देवस्य सवितुर्वयं वाजयन्तः पुरंध्या । भगस्य रातिमीमहे ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**पुरन्ध्या**) जिस बुद्धि से बहुत बोधों को धारण करता उससे (**वाजयन्त**) जनाते हुए (**वयम्**) हम लोग (**सवितु**) प्रेरणा करने वाले अन्तर्य्यामी (**देवस्य**) कामना करने के योग्य (**भगस्य**) ऐश्वर्य देनेवाले के (**रातिम्**) दान की (**ईमहे**) याचना करते हैं वैसे आप लोग भी उस बुद्धि की याचना करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग जो बुद्धि को बड़ा पुरुषार्थ से धर्म का अनुष्ठान कर और परमेश्वर की आज्ञा के अनुकूल वर्त्ताव करके अपनी बुद्धि के लिये प्रार्थना करें तो ईश्वर उनको शीघ्र पवित्र और शुद्ध आचरणयुक्त करता है ॥ ११ ॥

देवं नरः सवितारं विप्रा यज्ञैः सुवृक्तिभिः । नमस्यन्ति धियेषिताः ॥१२

पदार्थ—जो (**धिया**) बुद्धि वा कर्म से (**इषिता**) प्रेरणा किये गये (**नर:**) योग से इन्द्रिय और अन्तःकरण के प्राप्त करानेवाले (**विप्रा**) बुद्धिमान् लोग (**सुवृक्तिभि.**) उत्तम प्रकार दोषों का काटना जिन में उन (**यज्ञैः**) शास्त्र का अभ्यास सत्सङ्ग और योगाभ्यासों से (**सवितारम्**) सम्पूर्ण संसार के उत्पन्न करने और (**देवम्**) सुख देनेवाले को (**नमस्यन्ति**) नमस्कार करते हैं वे अभीष्ट सुखों से सम्पन्न होते हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ—जो इन्द्रियों को वश में करनेवाले विद्वान् लोग प्रेम और सत्यभाषणादिस्वरूप धर्म से परमेश्वर की उपासना करते हैं वे सुख से युक्त होते हैं ॥१२॥

सोमो जिगाति गातुविद्देवानामेति निष्कृतम् ।

ऋतस्य योनिमासदम् ॥१३॥

पदार्थ—जो (**गातुवित्**) प्रशंसा जाननेवाले (**सोम**) ऐश्वर्य्य से युक्त (**देवानाम्**) विद्वानों और (**ऋतस्य**) सत्य के (**निष्कृतम्**) निरन्तर जाने गये (**आसदम्**) और जिसमें सब वर्त्तमान होते हैं उस (**योनिम्**) कारण की (**जिगाति**) स्तुति करता है वह अपेक्षित सुख को (**एति**) प्राप्त होता है ॥१३॥

भावार्थ—जो विद्वान् इस अनेक प्रकार के स्वरूप वाले संसार के कारण अव्यक्त को जानता है और इस संसार के रचनेवाले परमात्मा की प्रशंसा करता है वही ऐश्वर्य से युक्त होता है ॥ १३ ॥

अब इस अगले मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं—

सोमो अस्मभ्यं द्विपदे चतुष्पदे च पशवे । अनमीवा इषस्करत् ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**सोम**) चन्द्रमा (**द्विपदे**) मनुष्य आदि (**अस्मभ्यम्**) हम लोगों के (**चतुष्पदे**) गौ आदि के (**च**) और (**पशवे**) अन्य पशु के लिए (**अनमीवा**) रोग निवर्त्तक (**इष**) अन्न आदि ओषधिसमूहों को (**करत्**) करे उसका सब काल में सत्कार करो ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो वैद्य लोग सब दो पैर वाले अर्थात् मनुष्य आदि और चौपाये गौ आदिकों को रोगरहित करें वे सब लोगों को मान करने योग्य होवें ॥ १४ ॥

अब इस अगले मन्त्र में मित्रता के विषय को कहते हैं—

अस्माकमायुर्वर्धयन्नभिमातीः सहमानः । सोमः सधस्थमासदत् ॥१५

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**सोम.**) सुन्दर पथ्य और योग्य व्यवहार में प्रेरणा करता हुआ (**अभिमाती**) शत्रुओं के सदृश रोगों को (**सहमान**) सहन करता हुआ सा (**अस्माकम्**) हम लोगों के (**आयु**) जीवन को (**वर्धयन्**) बढ़ाता हुआ (**सधस्थम्**) साथ के स्थान को (**आ, असदत्**) स्थित हो वह हम लोगों का मित्र और हम लोग उसके मित्र होवें ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो धार्मिक शूरवीर पुरुष शत्रुओं का नाश और मित्रों की रक्षा करके सब सज्जनों की जीवन और विजय से वृद्धि करते हैं उनके साथ सदैव मैत्री की सब लोगों को रखा करनी चाहिए ॥ १५ ॥

अब अगले मन्त्रों में अध्यापक और उपदेशक के विषय को कहते हैं—

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥१६॥

पदार्थ—जो (**सुक्रतू**) उत्तम बुद्धि वा श्रेष्ठ कर्म वाले (**मित्रावरुणा**) प्राण और उदान वायु के सदृश अध्यापक और उपदेशक (**घृतै**) जल आदिकों से (**गव्यूतिम्**) दो कोस (**रजांसि**) लोकों को सिञ्चने वाले के सदृश (**मध्वा**) मधुरता से (**न**) हम लोगों के लिए (**आ, उक्षतम्**) सींचने वाले हैं उन दोनों को हम लोग प्राणों के सदृश प्रिय मानते हैं ॥ १६ ॥

भावार्थ—जो पढ़ाने और उपदेश देने वाले से उपदेश की गई प्राण अर्थात् पवनसम्बन्धी विद्या को जानकर लोकलोकान्तर अर्थात् एक देश से दूसरे देश के व्यवहार से सम्पूर्ण देशों में जाना आना सिद्ध करते हैं वे जल के सदृश शुद्ध अन्त:करण वाले जानने योग्य हैं ॥ १६ ॥

उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः । द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥१७

पदार्थ—हे (**शुचिव्रता**) उत्तम कर्म करनेवाले (**उरुशंसा**) बहुत स्तुतियों से युक्त (**नमोवृधा**) अन्न आदि के बढ़ानेवाले अध्यापक और उपदेशक लोगो ! जिससे कि आप दोनों प्राण और उदान वायु के सदृश (**दक्षस्य**) बल के (**मह्ना**) महत्त्व से (**द्राघिष्ठाभि**) बहुत बड़ी और पुरुषार्थ से युक्त क्रियाओं से (**राजथ**) प्रकाशित होते हैं इस कारण सत्कार करने योग्य हैं ॥ १७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो पवित्रता से युक्त यशस्वी जन बल ऐश्वर्य्य और अन्न आदि की वृद्धि और बड़े श्रेष्ठ कर्म्मों से लोकों में प्रकाशित होते हैं उनकी ही सेवा और सत्कार करो ॥ १७ ॥

गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् ।

पातं सोममृतावृधा ॥१८॥११॥५॥३॥

पदार्थ—(**ऋतावृधा**) सत्य के बढ़ानेवाले (**गृणाना**) स्तुति करते हुए अध्यापक और उपदेशक आप दोनों (**जमदग्निना**) नेत्र अर्थात् प्रत्यक्ष से (**ऋतस्य**) सत्य आचरण के (**योनौ**) स्थान में निरन्तर (**सीदतम्**) बसो और (**सोमम्**) ऐश्वर्य्य की (**पातम्**) रक्षा करो ॥ १८ ॥

भावार्थ—वे ही अध्यापक और उपदेशक होने के योग्य हैं कि जो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से पृथिवी को लेकर परमेश्वरपर्य्यन्त पदार्थों का साक्षात्कार करके सत्यविद्या के आचरण की वृद्धि जिनको प्रिय, जो धर्मयुक्त मार्ग में जावें वे सत्कार करने के योग्य होवें ॥ १८ ॥

इस सूक्त में मित्र अध्यापक पढ़नेवाले श्रोता उपदेशक परमात्मा विद्वान् प्राण और उदान आदि के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है ऐसा जानना चाहिये ॥

यह तीसरे मण्डल में बासठवाँ सूक्त, पाँचवाँ अनुवाक तीसरे अष्टक में ग्यारहवाँ वर्ग और तृतीय मण्डल समाप्त हुआ ॥

॥ अथ चतुर्थं मण्डलम् ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथ चतुर्थमण्डले विंशत्यृचस्य प्रथमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । १, ४–२० अग्निः । २—४ अग्निर्वा वरुणश्च देवता । १ स्वराडतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ अतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः । ३ अष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः । ४, ६ भुरिक्पङ्क्तिः । पञ्चमः स्वरः । ५, १८, २० स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ७,६,१५,१७,१६ विराट् त्रिष्टुप् । ८, १०, ११, १२, १६ निचृत्त्रिष्टुप् । १३, १४ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब चतुर्थ मण्डल में बीस ऋचा वाले प्रथम सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में वाणी विषय को कहते हैं—

त्वां ह्यग्ने सदमित्समन्यवो देवासो देवमरतिं न्येरिर इति क्रत्वा न्येरिरे । अमर्त्यं यजत मर्त्येष्वा देवमादेवं जनत प्रचेतसं विश्वमादेवं जनत प्रचेतसम् ॥१॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! जो (समन्यवः) क्रोध के सहित वर्त्तमान (देवासः) विद्वान् लोग (हि) जिस से कि (अरतिम्) पहुँचाने योग्य (देवम्) उत्तम गुणो के और (सदम्) गृह के तुल्य स्थिति के देनेवाले (त्वाम्) आपकी (इत्) ही (न्येरिरे) प्रेरणा करते हैं इससे (इति) इस प्रकार (क्रत्वा) करके (न्येरिरे) मुझे भी निश्चयकर प्राप्त होवें और उस (मर्त्येषु) मरणधर्मवालो मे (अमर्त्यम्) मरणधर्म से रहित परमात्मा की (यजत) पूजा करो और (आदेवम्) सब प्रकार विद्या आदि के प्रकाश से युक्त (आदेवम्) सब प्रकार देदीप्यमान (प्रचेतसम्) उत्तम ज्ञान से युक्त (जनत) उत्पन्न करो, ऐसा करके (विश्वम्) सब के (आ, देवम्) सब प्रकार प्रकाश और (प्रचेतसम्) उत्तमज्ञानयुक्त (जनत) उत्पन्न करो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो अध्यापक और राजा भौंहें टेढ़ी कर के विद्यार्थी अन्त्री और प्रजाजनो को प्रेरणा करे तो उत्तम श्रेष्ठ विद्वान् और धार्मिक होते हैं । जो मरणधर्म वालो मे मरणधर्मरहित अपने प्रकाशस्वरूप परमात्मा की उपासना कर के सब मनुष्यों को बुद्धिमान् विद्वान् करते हैं वे ही सब काल मे सत्कार करने योग्य और सुखी होते हैं ॥ १ ॥

अब इस अगले मन्त्र में वाणी के विषय को कहते हैं—

स भ्रातरं वरुणमग्न आ ववृत्स्व देवाँ अच्छा सुमती यज्ञवनसं ज्येष्ठं यज्ञवनसम् । ऋतावानमादित्यं चर्षणीधृतं राजानं चर्षणीधृतम् ॥२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् (स) वह आप (भ्रातरम्) प्रियबन्धु के सदृश (वरुणम्) श्रेष्ठजन को (सुमती) श्रेष्ठ बुद्धि से (यज्ञवनसम्) विद्याव्यवहार के विभाग करनेवाले (ज्येष्ठम्) विद्या से वृद्ध अध्यापक (यज्ञवनसम्) राज्यव्यवहार के विभाग करनेवाले (राजानम्) प्रकाशमान नरेश विद्याव्यवहार के विभाग करनेवाले (चर्षणीधृतम्) मनुष्यों के धारणकर्त्ता वा विद्वानो से धारण किये गए (आदित्यम्) सूर्य के सदृश वर्त्तमान (ऋतावानम्) सत्य के विभागकर्त्ता प्रकाशमान (चर्षणीधृतम्) सत्यासत्य की विवेचना करनेवालो के धारण करनेवाले अध्यापक वा उपदेशक (देवान्) और धार्मिक विद्वानों को (अच्छ) अच्छे प्रकार (आ, ववृत्स्व) सब ओर से वर्त्तिये अर्थात् उनके अनुकूल वर्त्तमान कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—हे अध्यापक वा राजन् आप श्रेष्ठ भ्रातृजन वा मन्त्रियों को उत्तम मति और सत्य आचरण से संयुक्त करके संगत कर्मों का सेवन कराओ और सूर्य्य के सदृश विद्या न्याय का प्रकाश निरन्तर करो ॥ २ ॥

सखे सखायमभ्या ववृत्स्वाशुं न चक्रं रथ्येव रंह्यास्मभ्यं दस्म रंह्या । अग्ने मृळीकं वरुणे सचा विदो मरुत्सु विश्वभानुषु । तोकाय तुजे शुशुचान शं कृध्यस्मभ्यं दस्म शं कृधि ॥३॥

पदार्थ— हे (सखे) मित्र (चक्रम्) पहिये के और (आशुम्) शीघ्र चलनेवाले घोड़े के (न) सदृश (सखायम्) स्नेहीजन को (अभि, आ, ववृत्स्व) समीप वर्त्ताइये और हे (दस्म) दुःख के नाशकर्त्ता (रंह्या) प्राप्त होने योग्य (रथ्येव) वाहनो के निमित्त उत्तम स्थानो को जैसे वैसे (अस्मभ्यम्) हम लोगो के लिए (रंह्या) प्राप्त होने योग्यो के सब प्रकार समीप प्राप्त होइये और हे (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशमान आप (सचा) सत्य के संयोग से (वरुणे) उपदेश देनेवाले के विषय मे (मृळीकम्) सुखकर्त्ता को (विदः) प्राप्त होवें और हे (शुशुचान) पवित्र करनेवाले (विश्वभानुषु) सब में सूर्य के सदृश प्रकाश करनेवाले (मरुत्सु) मनुष्यो मे (तुजे) विद्या और बल की इच्छा करनेवाले(तोकाय) पुत्रादि के लिए (शम्) सुख को (कृधि) करो और हे (दस्म) अविद्या के नाश करनेवाले आप (अस्मभ्यम्) हम लोगो के लिए (शम्) सुख (कृधि) करिये ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है—हे मनुष्यो आप लोग सब लोगो के साथ मित्र होकर जैसे घोड़े रथ को ले चलते हैं वैसे मित्रो को उत्तम कर्मो मे प्रवृत्त करो । और श्रेष्ठ मार्ग के सदृश हम लोगों को सरल मर्य्यादा मे पहुँचाइये । जो लोग संसार मे सूर्य्य के सदृश उत्तम गुणो से युक्त हुए सब के आत्माओ को प्रकाशित करके सुख को उत्पन्न करें वे हम लोगों से सत्कार करने योग्य होवें ॥ ३ ॥

त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्वान् पुरुष (विद्वान्) विद्यायुक्त (त्वम्) आप (वरुणस्य) श्रेष्ठ (देवस्य) विद्या के प्रकाश करनेवाले के (हेळः) आदररहित होते हैं जिसमे उस के (अव) निवारण मे (यासिसीष्ठाः) प्रेरणा करो और (यजिष्ठः) अत्यन्त यज्ञ करने और (वह्नितमः) अत्यन्त पहुँचानेवाले (नः) हम लोगो के प्रति (शोशुचानः) अत्यन्त प्रकाशमान हुए आप (विश्वा) सब (द्वेषांसि) द्वेषयुक्त कर्म्मों को (अस्मत्) हम लोगो के समीप से (प्र, मुमुग्धि) अलग कीजिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—वे ही विद्वान् जन हैं कि जो श्रेष्ठ विद्वान् पुरुष का अनादर नहीं करते हैं और वे ही अध्यापक और उपदेशक कल्याणकारी होते हैं जो हम लोगो के दोषो को दूर करके पवित्र करते हैं वे ही हम लोगो से सत्कार करने योग्य हैं ॥ ४ ॥

स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ । अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि ॥५॥१२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् पुरुष (सः) वह (त्वम्) आप (अस्याः) इस (उषसः) प्रातःकाल के (व्युष्टौ) विशेष दाह में (नेदिष्ठः) अत्यन्त समीप स्थित (ऊती) रक्षण आदि कर्म से (नः) हम लोगो के (अवमः) रक्षा करनेवाले (भव) हूजिये (वरुणम्) श्रेष्ठ अध्यापक वा उपदेशक को (रराणः) देते हुए (नः) हम लोगो को (अव, यक्ष्व) प्राप्त हूजिये और (सुहवः) उत्तम प्रकार बुलानेवाले हुए (नः) हम लोगों के लिए (मृळीकम्) सुख करनेवाले कार्य्य का (वीहि) व्याप्त हूजिये और हम लोगो को (एधि) प्राप्त हूजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—वही अध्यापक वा राजा श्रेष्ठ है कि जो उत्तम शिक्षा से हम लोगो की प्रातःकाल के सदृश रक्षा करे । दुष्ट आचरण से अलग करके श्रेष्ठ आचरण करावे ॥ ५ ॥

अस्य श्रेष्ठा सुभगस्य संदृग्देवस्य चित्रतमा मर्त्येषु । शुचि घृतं न तप्तमघ्न्यायाः स्पार्हा देवस्य मंहनेव धेनोः ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वान् (मर्त्येषु) मनुष्यो मे (अस्य) इस सब के पालन करनेवाले (सुभगस्य) प्रशंसित ऐश्वर्य्य और (देवस्य) दिव्य गुण कर्म और स्वभावयुक्त राजा के (चित्रतमा) अत्यन्त अद्भुत और (श्रेष्ठा) उत्तम कर्म (तप्तम्) तपाये गये (शुचि) पवित्र (घृतम्) घी के (न) समान वर्त्तमान हैं तथा (अघ्न्यायाः) न नष्ट करने योग्य (धेनोः) वाणी के वा गौ के तपाये गये पवित्र घी के सदृश (देवस्य) परमात्मा के (स्पार्हा) चाहने योग्य (मंहनेव) अतीव पूजनीय सदृश कर्म वर्त्तमान हैं उन के (संदृक्) उत्तम प्रकार देखनेवाले होते हुए राज्य की वृद्धि करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जिन राजादिकों के अग्नि से तपाये गये स्वच्छ घृत के समान विद्वान् की उत्तम शिक्षित वाणी के मधुर वचनो के समान वचन और परमेश्वरके गुण कर्म स्वभावों के समान गुण कर्म स्वभाव हैं वे अति आश्चर्य्यरूप ऐश्वर्य्य राज्य और अद्भुत कीर्त्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

अब अग्नि के दृष्टान्त से विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

त्रिरस्य ता परमा सन्ति सत्या स्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्नेः ।
अनन्ते अन्तः परिवीत आगाच्छुचिः शुक्रो अर्यो रोरुचानः ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**अग्ने**) अग्नि के सदृश जिस (**अस्य, देवस्य**) उत्तम गुण कर्म और स्वभाववाले इस राजा के जो (**सत्या**) उत्तम व्यवहारों में श्रेष्ठ (**स्पार्हा**) अभिकाङ्क्षा करने के योग्य (**परमा**) उत्तम (**जनिमानि**) जन्म (**सन्ति**) हैं और जो (**रोरुचानः**) अत्यन्त प्रकाशमान (**अर्य्यः**) सब का स्वामी (**शुक्रः**) शीघ्र करनेवाला (**शुचिः**) पवित्र (**परिवीतः**) जिस के सब ओर उत्तम गुण कर्म और स्वभाव व्याप्त वह (**अनन्ते**) परमात्मा वा आकाशविषयक (**अन्तः**) मध्य में (**ता**) उन को (**त्रिः**) तीनवार (**आ, अगात्**) प्राप्त होता है वही सबका अधीश होने योग्य है ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—वही उत्तम कुल में उत्पन्न होता है कि जिस के उत्तम कर्म हों । और जैसे बिजुली अग्नि आदि सीमारहित अन्तरिक्ष में शोभित होता है वैसे ही जो अनन्त जगदीश्वर का ध्यान करके सब ज्ञानवाला शुद्धियुक्त होकर सम्पूर्ण उत्तम प्रशंसा करने योग्य कर्मों के करने को समर्थ होता है ॥ ७ ॥

स दूतो विश्वेदभि वष्टि सद्मा होता हिरण्यरथो रंसुजिह्वः ।
रोहिदश्वो वपुष्यो विभावा सदा रण्वः पितुमतीव संसत् ॥८॥

पदार्थ—(**हिरण्यरथः**) तेजोमय सुन्दर स्वरूपयुक्त सूर्य्य के सदृश जिसका व्यवहार (**रंसुजिह्वः**) सुन्दर जिसकी वाणी (**रोहिदश्वः**) जिसके रक्त आदि गुणों से विशिष्ट अग्नि आदिक घोड़े शीघ्र चलनेवाले वह (**वपुष्यः**) रूपों में प्रसिद्ध (**विभावा**) ऐश्वर्य्यवान् (**रण्वः**) सुन्दर स्वरूपयुक्त (**होता**) देने वा लेनेवाला होता हुआ राजा (**दूतः**) दुष्टों को सन्ताप देते हुए के सदृश (**विश्वा**) सब (**सद्म**) उत्तम कर्म वा स्थानों की (**अभि, वष्टि**) कामना करता है (**सः**) वह (**इत्**) ही (**संसत्**) चक्रवर्तियों की सभा (**पितुमतीव**) जोकि प्रशंसित बहुत अन्न आदि ऐश्वर्य्य से युक्त उसके सदृश (**सदा**) सब काल में उन्नतिशील होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे दूतजन राजाओं के हित करने की इच्छा करते हैं वैसे ही जो राजाजन प्रजा का हित निरन्तर करते हैं वे राजा और सभासद् पुण्य के भजनेवाले होते हैं ॥ ८ ॥

स चेतयन्मनुषो यज्ञबन्धुः प्र तं मह्या रशनया नयन्ति ।
स क्षेत्यस्य दुर्यासु साधन्देवो मर्तस्य सधनित्वमाप ॥९॥

पदार्थ—जो (**सः**) वह (**यज्ञबन्धुः**) न्याय व्यवहार के भ्राता के सदृश वर्त्तमान राजा (**मनुषः**) मन्त्री और प्रजाजनों को (**चेतयत्**) जनावे (**तम्**) उसको जो सभासद् लोग (**मह्या**) बड़ी (**रशनया**) रस्सी से घोड़े के सदृश नीति से (**प्र, नयन्ति**) अच्छे प्रकार प्राप्त करते हैं (**सः**) वह (**अस्य**) इस राज्य के (**दुर्यासु**) न्याय के स्थानों में राजव्यवहार को (**साधन्**) साधता हुआ (**क्षेति**) निवास करता है वह (**देवः**) देनेवाला (**मर्तस्य**) मनुष्यसम्बन्धी (**सधनित्वम्**) धनीपन के साथ वर्त्तमान राज्य को (**आप**) प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे यथार्थवादी अध्यापक और उपदेशक लोग उत्तम शिक्षा से विद्यार्थियों के लिए धर्मयुक्त मर्य्यादा को प्राप्त कराते हैं वैसे ही राजनीति की शिक्षा से राज के लिए राजधर्म के मार्ग को प्राप्त करो । और जो मन्त्री और प्रजा के सहित राजा व्यसन रहित होकर प्रीति से राजधर्म को करता है वह ऐश्वर्ययुक्त जन और राज्य को प्राप्त होकर सुख से निवास करता है ॥ ९ ॥

स तू नो अग्निर्नयतु प्रजानन्नच्छा रत्नं देवभक्तं यदस्य ।
धिया यद्विश्वे अमृता अकृण्वन्द्यौष्पिता जनिता सत्यमुक्षन् ॥१०॥१३॥

पदार्थ—हे राजन् जैसे (**सः**) वह (**अस्य**) इस संसार का (**पिता**) पालन करने और (**जनिता**) उत्पन्न करनेवाला (**द्यौः**) प्रकाशमान (**अग्निः**) अपने से प्रकाशरूप परमात्मा के सदृश राजा (**धिया**) बुद्धि से सबको (**प्रजानन्**) जानता हुआ (**नः**) हम लोगों को (**यत्**) जो (**देवभक्तम्**) देवों से सेवित (**रत्नम्**) सुन्दर धन को (**अच्छ**) उत्तम प्रकार प्राप्त कराता है वैसे आप (**नयतु**) प्राप्त कराइये (**यत्**) जिस में (**तु**) फिर (**विश्वे**) सब (**अमृताः**) जन्म और मृत्यु से रहित जीव (**सत्यम्**) सत्य का (**उक्षन्**) सेवन करते हुए मोक्ष को (**अकृण्वन्**) करते हैं वहाँ ही स्थित हो और सत्य का सेवन और धर्म से राज्य का पालन करके मोक्ष को प्राप्त होइये ॥ १० ॥

भावार्थ—हे राजा आदि मनुष्यो जैसे सब जगत् का पालन और उत्पन्न करनेवाला परमात्मा दया से सब जीवों के सुख के लिए अनेक प्रकार के पदार्थों को रच और दे के अभिमान नहीं करता है वैसे ही आप लोग होइये । और ईश्वर के उत्तम गुण कर्म्म और स्वभावों के तुल्य अपने गुण कर्म्म और स्वभावों को करके राज्य आदि का पालन करके अन्त में मोक्ष को प्राप्त होओ ॥ १० ॥

अब अगले मन्त्रों में अग्निपद से परमात्मा के विषय को कहते हैं—

स जायत प्रथमः पस्त्यासु महो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ।
अपादशीर्षा गुहमानो अन्तायोयुवानो वृषभस्य नीळे ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (**सः**) बिजुलीरूप अग्नि (**प्रथमः**) प्रथम सूर्य्य (**महः**) बड़े (**बुध्ने**) अन्तरिक्ष में (**अस्य**) इस (**रजसः**) लोकों के समूह के (**योनौ**) कारण में (**जायत**) उत्पन्न होता है और जैसे (**गुहमानः**) ढपा हुआ (**अपात्**) पैरों और (**अशीर्षा**) शिर आदि (**आयोयुवानः**) सब प्रकार अत्यन्त मिलाने वा अलग करनेवाला (**वृषभस्य**) वृष्टि करनेवाले सूर्य्य के (**नीळे**) स्थान में (**अन्ता**) समीप में उत्पन्न होता है वैसे ही आप लोग भी (**पस्त्यासु**) घरों में उत्पन्न अर्थात् प्रकट हूजिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो जैसे अन्तरहित आकाश में प्रकृति से महत्तत्त्व अर्थात् बुद्धि आदि के क्रम से यह संसार उत्पन्न हुआ इस संसार में अवयवों से रहित मिलते हुए जीव परमात्मा के समीप में वर्त्तमान हो गृहों में उत्पन्न होते शरीर को धारण करते और त्यागते हैं उस सब के स्वामी का हृदय में ध्यान कर सुखी हूजिए ॥ ११ ॥

प्र शर्ध आर्त प्रथमं विपन्याँ ऋतस्य योना वृषभस्य नीळे ।
स्पार्हो युवा वपुष्यो विभावा सप्त प्रियासोऽजनयन्त वृष्णे ॥१२॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष जैसे (**वृष्णे**) वृष्टि करनेवाले जीव के लिए (**सप्त**) पांच प्राण मन और बुद्धि ये सात (**प्रियासः**) सुन्दर और सेवन करने योग्य (**अजनयन्त**) उत्पन्न करते हैं वैसे (**ऋतस्य**) सत्यकारण के (**योना**) स्थान में (**वृषभस्य**) वृष्टि करनेवाले अग्नि के (**नीळे**) स्थान में (**स्पार्हः**) अभिलाषा करने योग्य (**युवा**) युवावस्था को प्राप्त (**वपुष्यः**) रूपों में श्रेष्ठ और (**विभावा**) अनेक प्रकार की विद्याओं के प्रकाश युक्त हुए आप (**विपन्या**) अनेक प्रकार के व्यवहार में श्रेष्ठ प्रशंसा से (**प्रथमम्**) पहिले (**शर्धः**) बल को (**प्र, आर्त**) प्राप्त हूजिए ॥ १२ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो जैसे प्राण और अन्तःकरण कार्य के साधक और प्रिय होते हैं वैसे ही पुरुषार्थ से कार्य्य और कारण जानकर और परमेश्वर का ज्ञान करके प्रथम अवस्था में शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होकर सुखों को उत्पन्न करो ॥ १२ ॥

अस्माकमत्र पितरो मनुष्या अभि प्र सेदुर्ऋतमाशुषाणाः ।
अश्मव्रजाः सुदुघा वव्रे अन्तरुदुस्रा आजन्नुषसो हुवानाः ॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (**अत्र**) इस संसार वा व्यवहार में (**अस्माकम्**) हम लोगों के (**मनुष्याः**) मनन करने और (**पितरः**) पालन करनेवाले (**ऋतम्**) सत्य को (**आशुषाणाः**) सब प्रकार प्राप्त हुए वा ब्रह्मचर्य से शुष्क शरीरवाले (**अश्मव्रजाः**) मेघों में चलनेवाले (**सुदुघाः**) उत्तम प्रकार कामनाओं के पूर्ण करने वाले (**उषसः**) प्रातःकालों को (**उस्राः**) किरणों के सदृश (**हुवानाः**) पुकारने वाले हुए (**उत्, आजन्**) प्राप्त होते हैं (**अन्तः**) मध्य में (**अभि**) सम्मुख (**प्र, सेदुः**) जाते हैं उन को जो (**वव्रे**) ढांपता है वह भाग्यशाली होता है ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो लोग आप लोगों के पालन करनेवाले ब्रह्मचर्य को धारण करके जैसे सूर्य की किरणें मेघों को वर्षाती हैं वैसे ही बुलाये हुए सत्य का प्रकाश करते हैं उनका जो सत्कार करता है वह भाग्यशाली होता है ॥ १३ ॥

ते मर्मृजत ददृवांसो अद्रिं तदेषामन्ये अभितो वि वोचन् ।
पश्वयन्त्रासो अभि कारमर्चन्विदन्त ज्योतिश्चकृपन्त धीभिः ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो हम लोगों के मनन करने और पालन करनेवाले (**अद्रिम्**) मेघ के (**ददृवांसः**) तोड़नेवाले किरणों के सदृश हम लोगों को (**मर्मृजत**) शुद्ध होकर शुद्ध करते हैं (**एषाम्**) इसके मध्य में (**अन्ये**) दूसरे लोग (**तत्**) इस कारण (**अभितः**) चारों ओर से सम्मुख (**वि, वोचन्**) उपदेश देते (**पश्वयन्त्रासः**) देखे हैं यन्त्र जिन्होंने ऐसे होते हुए (**कारम्**) शिल्पकृत्य का (**अभि, अर्चन्**) सत्कार करते (**धीभिः**) बुद्धियों वा कर्मों से (**ज्योतिः**) प्रकाश को (**विदन्त**) जानने और सबों में (**चकृपन्त**) कृपालु होते हैं (**ते**) वे सब लोगों से सत्कार पाने योग्य होवें ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो वेद उपवेद अंग और उपांगों के पार जाने और शिल्पविद्या के जाननेवाले विद्वान् लोग कृपा से सब को उत्तम प्रकार शिक्षा का उपदेश करके विद्यायुक्त करें वे सब लोगों से सत्कार करने योग्य होवें ॥ १४ ॥

ते गव्यता मनसा दृध्रमुब्धं गा येमानं परि षन्तमद्रिम् ।
दृळ्हं नरो वचसा दैव्येन व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥१५॥१४॥

पदार्थ—जो (**नरः**) वीर पुरुष (**मनसः**) मन से (**गव्यता**) गौओं के समूह के सदृश आचरण करनेवाले (**दैव्येन**) सुन्दर (**वचसा**) वचन से (**गाः**)

किरणों को (वृधम्) बढ़ाने वाले (उक्षम्) सब ओर से मिले हुए (वेनानम्) निकलते अर्थात् नायक (सन्तम्) वर्त्तमान (वृध,धम्) सुख के बढ़ाने वाले को सूर्य (उक्षम्) चलनेवाले (गोमन्तम्) किरणें विद्यमान जिस में ऐसे को (अद्रिम्) मेघ के सदृश (उशिजः) कामना करते हुए (परि, वि, वव्रुः) प्रकट करते हैं (ते) वे कामना को प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥

भावार्थ—जैसे किरणें मेघ को ऊपर को प्राप्त करतीं और वर्षाती हैं वैसे ही विद्वान् जन विचार से दृढ़ ज्ञान को उत्पन्न करते हैं ॥ १५ ॥

ते मन्वत प्रथमं नाम धेनोस्त्रिः सप्त मातुः परमाणि विन्दन् ।

तज्जानतीरभ्यनूषत व्रा आविर्भुवदरुणीर्यशसा गोः ॥१६॥

पदार्थ—जो (मातुः) माता के सदृश (धेनोः) वाणी के (सप्त) सात अर्थात् सात गायत्र्यादि छन्दों में विभक्त (परमाणि) उत्तम व्यवहारों को (विन्दन्) जानते हैं (ते) वे इस के (प्रथमम्) प्रसिद्ध (नाम) स्तुतिसाधक शब्दमात्र को (त्रिः) तीन बार (मन्वत) मानते हैं और जो (यशसा) कीर्ति के साथ वर्त्तमान (आविः) प्रकट (भुवत्) होवे वह (तत्) उस (गोः) वाणी के विज्ञान को जाने और जो कीर्ति से प्रकट होवें वे (अरुणीः) रक्तगुण से विशिष्ट (जानती) विज्ञानवाली (व्राः) प्रकट होने वालियों की (अभि) सब प्रकार (अनूषत) स्तुति करते हैं ॥ १५ ॥

भावार्थ—जैसे कामधेनु दुग्ध आदि से इच्छा को पूर्ण करती है वैसे ही विद्या और उत्तम शिक्षा से युक्त वाणी विद्वानों को प्रसन्न करती है। जो लोग धर्म का आचरण करते हैं वे यशस्वी होकर सर्वत्र प्रसिद्ध होते हैं ॥ १६ ॥

अब सूर्य्य के दृष्टान्त से आत्मा के बल की रक्षा को कहते हैं—

नेशत्तमो दुधितं रोचत द्यौरुद्देव्या उषसो भानुरर्त ।

आ सूर्यो बृहतस्तिष्ठदज्राँ ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ॥१७॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष जैसे (द्यौः) आकाशस्थ (भानुः) प्रकाशमान (सूर्य्यः) सूर्य्य (देव्याः) उत्तम सुख को प्राप्त करानेवाली (उषसः) प्रभातवेला से (दुधितम्) पूर्ण (तमः) अन्धकार को (उत्, नेशत्) नाश करता और (रोचत) प्रकाशित होता (तिष्ठत्) और स्थित रहता है वैसे (बृहतः) बड़े (अज्रान्) संसार में जिन का प्रक्षेप हुआ उन पदार्थों को (पश्यन्) देखते हुए आप (मर्तेषु) मनुष्यों में (वृजिना) बलों को (च) और (ऋजु) सरलभाव को (आ, अर्त) प्राप्त कराओ ॥ १७ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य्य प्रातर्वेला से रात्रि का निवारण करके प्रकाश को उत्पन्न करता है वैसे ही अध्यापक और उपदेशक व्याप्त भी पदार्थों को देख के नम्रता से मनुष्यों में शरीर आत्मा के बल को बढ़ावें ॥ १७ ॥

अब वाणी के विषय को इस अगले मन्त्र में कहते हैं—

आदित्पश्चा बुबुधाना व्यख्यन्नादिद्रत्नं धारयन्त द्युभक्तम् ।

विश्वे विश्वासु दुर्यासु देवा मित्र धिये वरुण सत्यमस्तु ॥१८॥

पदार्थ—हे (वरुण) दुष्ट पुरुषों के बाँधने वाले (मित्र) मित्र जैसे (बुबुधानाः) विशेष कर के जानते हुए (विश्वे) सम्पूर्ण (देवाः) विद्वान् जन (विश्वासु) सब (दुर्य्यासु) स्थानों में (द्युभक्तम्) बिजुली आदि पदार्थों से सेवित (रत्नम्) धन को (धारयन्त) धारण करते हैं। और (आत्) अनन्तर (इत्) ही (पश्चा) पीछे से इसका (वि, अख्यन्) विशेष करके उपदेश दें (आत्) अनन्तर (इत्) ही वह (सत्यम्) सत्य (धिये) बुद्धि वा उत्तम कर्म के लिए (अस्तु) हो ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो लोग ब्रह्मचर्य्य से विद्या, उत्तम शिक्षा, सत्य और धर्माचरणों को धारण करके अन्य जनों के प्रति उपदेश देते हैं वे बुद्धि को बढ़ा के सर्वत्र प्रसिद्ध हो के आनन्द से घरों में रहते हैं ॥ १८ ॥

अब बिजुली के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अच्छा वोचेय शुशुचानमग्निं होतारं विश्वभरसं यजिष्ठम् ।

शुच्यूधो अतृणन्न गवामन्धो न पूतं परिषिक्तमंशोः ॥१९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (अंशोः) प्राप्त सूर्य्य के (परिषिक्तम्) सब ओर से गीले किये हुए (पूतम्) पवित्र वस्तु (शुचि) और पवित्र कर्म को (अन्धः) अन्न के (न) तुल्य वा (गवाम्) गौओं के (ऊधः) प्रभात समय के सदृश (न) नहीं (अतृणत्) हिंसा करता है उस (यजिष्ठम्) अत्यन्त मिलाने (विश्वभरसम्) संसार के धारण करने और (होतारम्) देने और (शुशुचानम्) शुद्ध गुण कर्म और स्वभाव करानेवाले (अग्निम्) बिजुली रूप अग्नि का आप लोगों के प्रति मैं (अच्छ) उत्तम प्रकार (वोचेय) उपदेश दूं ॥ १९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि जैसे बिजुली समान रूप हुई सब की रक्षा करती है और विरुद्ध होने पर नाश करती, वह किरणों का नाश नहीं करती और अन्न के सदृश पालन करनेवाली होकर सबको चलाती है ऐसा जानें ॥ १९ ॥

फिर उक्त विषय को सूर्य्य के सम्बन्ध से भी कहते हैं—

विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम् ।

अग्निर्देवानामव आवृणानः सुमृळीको भवतु जातवेदाः ॥२०॥१५॥

पदार्थ—हे विद्वन् आप (विश्वेषाम्) सम्पूर्ण (यज्ञियानाम्) यज्ञों के अनुष्ठान करनेवालों के (अदितिः) अखण्डित अन्तरिक्ष के तुल्य (विश्वेषाम्) सम्पूर्ण (मानुषाणाम्) मनुष्यों में (अतिथिः) अभ्यागत के सदृश वर्त्तमान (देवानाम्) विद्वानों के (अग्निः) अग्नि के सदृश (अवः) रक्षण को (आवृणानः) सब प्रकार स्वीकार करते हुए (जातवेदाः) उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान हुए (सुमृळीकः) उत्तम प्रकार सुख करनेवाले (भवतु) हूजिये ॥२०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो जैसे यज्ञ के सुगन्धित धूम से शुद्ध हुआ अन्तरिक्ष पूर्णविद्यायुक्त, यथार्थवक्ता उपदेश देनेवाला पुरुष और सूर्य्य सुख देने वाले होते हैं वैसे ही आप लोग सबों के लिए सुख देनेवाले हूजिये ॥ २० ॥

इस सूक्त में विद्वानों से जानने योग्य अग्नि वाणी सूर्य्य बिजुली आदिकों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह प्रथम सूक्त और पन्द्रहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

अथ विंशत्यृचस्य द्वितीयस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता।
१,१६ पङ्क्तिः। १२ निचृत् पङ्क्तिः। १४ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। २, ४—७, ९, ११, १३, १५, १७, १८, २० निचृत्त्रिष्टुप्।
३, १९ त्रिष्टुप्। ८, १०, १५ विराट्त्रिष्टुप्
छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब बीस ऋचा वाले दूसरे सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम द्वितीय मन्त्र में यथार्थ मानने वाले पुरुषों के कृत्य को कहते हैं—

यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा देवो देवेष्वरतिर्निधायि ।

होता यजिष्ठो मह्ना शुचध्यै हव्यैरग्निर्मनुष ईरयध्यै ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो (अग्निः) ईश्वर पावक अग्नि वा बिजुली के सदृश (मर्त्येषु) मरणधर्म वालों में (अमृतः) मृत्युधर्म से रहित (ऋतावा) सत्यस्वरूप (देवेषु) उत्तम पदार्थों वा विद्वानों में (देवः) उत्तम गुण कर्म और स्वभाव वाला सुन्दर (अरतिः) सर्वस्थान में प्राप्त (होता) देनेवाला (मह्ना) महत्त्व से (यजिष्ठः) पूजा करने योग्य (हव्यैः) देनेके योग्यों के सहित (मनुषः) मनुष्यों को (ईरयध्यै) प्रेरणा करने को (शुचध्यै) पवित्र करने को विद्यमान वह हृदय में (निधायि) धारण किया जाता है ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर उत्पत्ति और नाश आदि गुणरहित होने से दिव्यस्वरूप शुद्ध और पवित्र है उसका प्रेरणा और पवित्रता में भजन करो ॥१॥

इह त्वं सूनो सहसो नो अद्य जातो जाताँ उभयाँ अन्तरग्ने ।

दूत ईयसे युयुजान ऋष्व ऋजुमुष्कान्वृषणः शुक्रांश्च ॥२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान (ऋष्वः) विज्ञान को प्राप्त (नः) हम लोगों के (सूनो) पवित्र पुत्र (त्वम्) आप (इह) इस संसार में (अद्य) आज (सहसः) बल से (जातः) विद्या के जन्म में प्रकट हुए (ऋजुमुष्कान्) सरलता से चुरानेवाले (वृषणः) बलयुक्त जनों और (शुक्रान्) शुद्धि करनेवालों का (च) भी (युयुजानः) समाधान करते हुए (दूतः) दुष्टों के सन्ताप देनेवाले के तुल्य (जातान्) विद्वान् और (उभयान्) पढ़ाने और पढ़ने वालों को (अन्तः) मध्य में (ईयसे) प्राप्त होते हो इससे कल्याण करनेवाले हो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मध्य में अग्नि सबका पालन और नाश करने वाला है वैसे ही इस संसार में विद्वान् पुत्र तो पालन करनेवाला और मूर्ख विनाश करनेवाला होता है। जिससे दीर्घ ब्रह्मचर्य से अपने सन्तानों को उत्तम करके कृतकृत्यता अर्थात् जन्मसाफल्य जानो ॥ २ ॥

अब अगले मन्त्रों में प्रजा के कृत्य का वर्णन करते हैं—

अत्या वृधस्नू रोहिता घृतस्नू ऋतस्य मन्ये मनसा जविष्ठा ।

अन्तरीयसे अरुषा युजानो युष्मांश्च देवान्विश आ च मर्तान् ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष जो आप (ऋतस्य) जल की (वृधस्नू) समृद्धि का विस्तार करते हुए (रोहिता) और अग्नि गुण के सहित (घृतस्नू) जल को बहाते हुए (अरुषा) रक्तगुण विशिष्ट (मनसा) मन से भी (जविष्ठा) अत्यन्त वेग वाले (अत्या) मार्ग को व्याप्त होते हुए वायु और अग्नि को (युजानः)

संयुक्त करते हुए (देवान्) विद्वान् (युष्मान्) आप लोगों (च) और (मर्त्तान्) साधारण मनुष्यों को (च) और (विशः) प्रजाओं को (अन्तः) मध्य में (आ) सब प्रकार (ईयसे) प्राप्त होते हो उनको मैं (मन्ये) मानता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य लोग वायु और अग्नि को जन्तों के साथ वाहन के यन्त्रों में संयुक्त करके चलाते हैं वो वेग और प्रहरण नामक जल और भाफ के गुण, मन के सदृश वाहन आदिकों को चलाते हैं ॥ ३ ॥

अर्य्यमणं वरुणं मित्रमेषामिन्द्राविष्णू मरुतो अश्विनोत ।
स्वश्वो अग्ने सुरथः सुराधा एदु वह सुहविषे जनाय ॥४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् पुरुष (सुराधाः) उत्तम धन से (स्वश्वः) उत्तम घोड़ों और (सुरथः) उत्तम वाहनों से युक्त आप (सुहविषे) उत्तम सामग्री वाले (जनाय) मनुष्य के लिए (अर्य्यमणम्) न्याय के अधीश (वरुणम्) श्रेष्ठ गुण वाले (एषाम्) इन के (मित्रम्) मित्र (इन्द्राविष्णू) तथा बिजुली और सूत्रात्मा (मरुतः) पवन (उत) और (अश्विना) सूर्य्य और चन्द्रमा की (आ, वह) प्राप्ति कराइये (उ, इत्) और सभी सुख दीजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! आप अग्नि और जलादि पदार्थों को उत्तम प्रकार जान के और कार्य्यों में संयुक्त कर प्रत्यक्ष करके अन्य जनों के लिए उपदेश दीजिये जिस से कि सब लोग धन धान्य और सुखों से युक्त होवें ॥ ४ ॥

अब राजा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

गोमाँ अग्नेऽविमाँ अश्वी यज्ञो नृवत्सखा सदमिदप्रमृष्यः ।
इळावाँ एषो असुर प्रजावान्दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावान् ॥५॥ १६॥

पदार्थ—हे (असुर) दुष्ट पुरुषों के दूर करनेवाले (अग्ने) विद्वन् पुरुष आप (गोमान्) बहुत गौओं और (अविमान्) बहुत भेड़ों से युक्त (अश्वी) बहुत घोड़ों वाला (यज्ञः) प्राप्त होने योग्य (नृवत्सखा) नायकों से युक्त मनुष्यों में मित्र (इळावान्) बहुत अन्नयुक्त (प्रजावान्) जिसमें बहुत प्रजा विद्यमान ऐसे (पृथुबुध्नः) विस्तार सहित प्रबन्ध वाला (सभावान्) उत्तम सभा विद्यमान जिन की ऐसे (अप्रमृष्यः) दूसरों से नहीं दबाने योग्य हैं तथा (एषः) यह (रयिः) धन (दीर्घः) बड़ा हुआ है वह आप (इत्) ही (सदम्) स्थान को प्राप्त हूजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को वही सभाध्यक्ष करना चाहिए कि जो गौओं भेड़ों और घोड़ों का पालक और दूसरों से नहीं भय करने और दुष्ट जनों के दूर करने वाला, अच्छे प्रबन्ध से युक्त तथा प्रजावाला हो ॥ ५ ॥

अब अगले मन्त्र में राजविषय को कहते हैं—

यस्त इध्मं जभरत्सिष्विदानो मूर्धानं वा ततपते त्वाया ।
भुवस्तस्य स्वतवाँः पायुरग्ने विश्वस्मात्सीमघायत उरुष्य ॥६॥

पदार्थ—हे (ततपते) लम्बे चौड़े बिथरे हुए चराचर पदार्थों की पालना और (अग्ने) अग्नि पवित्र करनेवाले (यः) जो (सिष्विदानः) स्नेहयुक्त (स्वतवान्) अपने से बढ़ा (पायुः) रक्षा करने वाला (त्वाया) आपका प्राप्त होता (ते) आपकी (भुवः) पृथिवी के (इध्मम्) तपे हुए (मूर्धानम्) मस्तक को (जभरत्) पोषण करता है उस की आप (उरुष्य) रक्षा करो (वा) अथवा (तस्य) उसके मस्तक की (सीम्) सब प्रकार रक्षा करो (अघायतः) अपने को पाप की इच्छा करते हुए का (विश्वस्मात्) सब प्रकार से मस्तक काटो ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो लोग आप लोगों के प्रताप शरीर और राज्य की रक्षा करके दुष्टों का सब प्रकार नाश करते हैं उनकी निरन्तर रक्षा करो ॥ ६ ॥

श्रेष्ठजन के कर्त्तव्य के विषय को कहते हैं—

यस्ते भरादन्नियते चिदन्नं निशिषन्मन्द्रमतिथिमुदीरत् ।
आ देवयुरिनधते दुरोणे तस्मिन्रयिर्ध्रुवो अस्तु दास्वान् ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! (यः) जो (दास्वान्) देनेवाला (ते) आप के लिए (अन्नियते) भोजन करनेवालों के निश्चित समय में (अन्नम्) भोजन के पदार्थ को (निशिषत्) अत्यन्त विशेष करता हुआ (मन्द्रम्) आनन्द देनेवाले (अतिथिम्) सत्योपदेशक का (उदीरत्) अच्छे प्रकार प्रेरणा देता और (देवयुः) विद्वानों की कामना करता हुआ (इनधते) ईश्वर को धारण करता है जिसमें उस (दुरोणे) गृह में अन्न का (आ, भरात्) धारण कर (चित्) भी (तस्मिन्) उस में (ध्रुवः) निश्चल (रयिः) धन (अस्तु) हो उसको आप पोषण करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य जिन मनुष्यों का जैसा उपकार करें उन मनुष्यों को चाहिए कि उनका वैसा उपकार करें ॥ ७ ॥

यस्त्वा दोषा य उषसि प्रशंसात्प्रियं वा त्वा कृणवते हविष्मान् ।
अश्वो न स्वे दम आ हेम्यावान्तमंहसः पीपरो दाश्वांसम् ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष (यः) जो (त्वा) आपकी (दोषा) रात्रि में और (उषसि) दिन में (त्वा) आपकी (आ, प्रशंसात्) सब प्रकार प्रशंसा करे (वा) अथवा (यः) जो (हविष्मान्) उत्तम दान की सामग्री से युक्त (हेम्यावान्) जिसके जल में प्रकट हुई रात्रि विद्यमान (तम्) उस (दाश्वांसम्) देनेवाले आपको (स्वे) अपने (दमे) घर में (अंहसः) अपराध से (अश्वः) घोड़े के (न) सदृश (पीपरः) पाले उस (प्रियम्) प्रिय सुख (कृणवते) करते हुए के लिए आप सुख दीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो लोग दिन और रात्रि आप का उत्साह बढ़ावें उनको आप लोग घास आदि से घोड़ों के जैसे वैसे आनन्द देओ ॥ ८ ॥

यस्तुभ्यमग्ने अमृताय दाशद्दुवस्त्वे कृणवते यतस्रुक् ।
न स राया शशमानो वि योषन्नैनमंहः परि वरदघायोः ॥९॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष (यः) जो (तुभ्यम्) आप के लिए (अमृताय) मोक्ष के अर्थ (दाशत्) देवे (त्वे) वा आप में (दुवः) सेवा को (कृणवते) करता है उसके लिए आप भी विज्ञान दीजिये । जो पुरुष (राया) धन से (शशमानः) उछलता और (यतस्रुक्) उद्यत हैं क्रिया के साधन जिसके ऐसा होता हुआ (एनम्) इस को (अंहः) दुःख देनेवाले कर्म (न) नहीं (वि, योषत्) त्याग करें (सः) वह (अघायोः) पापी की हिंसा को (न) नहीं (परि, वरत्) सब ओर से स्वीकार करे ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोकों में जैसे जो लोग प्रीति करते हैं वैसे ही उनमें आप लोग स्नेह करें ॥ ९ ॥

यस्य त्वमग्ने अध्वरं जुजोषो देवो मर्तस्य सुधितं रराणः ।
प्रीतेदसद्धोत्रा सा यविष्ठासाम यस्य विधतो वृधासः ॥१०॥ १७॥

पदार्थ—हे (यविष्ठ) अति युवा (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान विद्वान् पुरुष (यस्य) जिसके (अध्वरम्) हिंसारहित व्यवहार का (त्वम्) आप (जुजोषः) अत्यन्त सेवन करते हैं (देवः) उत्तम सुख के देनेवाले हुए (यस्य) जिस (विधतः) विधान करनेवाले (मर्त्तस्य) मनुष्य के (सुधितम्) उत्तम हित के (रराणः) अत्यन्त देनेवाले हो उसकी (सा) वह (होत्रा) ग्रहण करने योग्य क्रिया (प्रीता) प्रसन्न (इत्) ही अर्थात् सफल (असत्) होवे (वृधासः) वृद्धि करनेवाले होते हुए हम लोग (असाम) प्रसिद्ध होवें और वह हम लोगों को वैसे ही सुख देवे ॥ १० ॥

भावार्थ—जो जिस के सुख को साधे उस पुरुष को चाहिए कि उस उपकार करनेवाले पुरुष को भी सुख देवे ॥ १० ॥

चित्तिमचित्तिं चिनवद्वि विद्वान्पृष्ठेव वीता वृजिना च मर्तान् ।
राये च नः स्वपत्याय देव दितिं च रास्वादितिमुरुष्य ॥११॥

पदार्थ—हे (देव) विद्वन् पुरुष जो (वि) विशेष करके (विद्वान्) विद्यायुक्त पुरुष (पृष्ठेव) पीठों के सदृश (वीता) प्राप्त (वृजिना) पराक्रमों को (मर्त्तान्) मनुष्यों को (च) भी (नः) हम लोगों के (स्वपत्याय) उत्तम सन्तान जिससे उस (राये) धन के लिए (च) और (चित्तिम्) क्रिया संग्रह जिसमें उस क्रिया और (अचित्तिम्) जिसमें संग्रह नहीं किया उसका (चिनवत्) संग्रह करे उसके लिए (दितिम्) खण्डित क्रिया का (रास्व) दीजिये (च) और (अदितिम्) अखण्डित क्रिया का (उरुष्य) सेवन कीजिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जैसे ऊँट आदि पीठों से भार को ले चलते हैं वैसे ही बलवान् पुरुष सब व्यवहार के भार को धारण करते हैं । और व्यवहार में जिसका खण्डन और जिसका मण्डन करने योग्य होवे वह उसका वैसा ही करना चाहिए ॥ ११ ॥

कविं शशासुः कवयोऽदब्धा निधारयन्तो दुर्यास्वायोः ।
अतस्त्वं दृश्याँ अग्न एतान्पड्भिः पश्येरद्भुताँ अर्य एवैः ॥१२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशमान विद्वान् पुरुष जैसे (अदब्धाः) अहिंसनीय (कवयः) बुद्धिमान् पण्डित लोग (कविम्) उत्तम बुद्धि वाले को (दुर्यासु) गृहों में (निधारयन्तः) धारण करते हुए (शशासुः) शासन करते हैं (आयोः) जीवन की वृद्धि का शासन करते हैं (अतः) इस कारण से (त्वम्) आप (एवैः) प्राप्त (पड्भिः) विज्ञान आदिकों से (एतान्) इन प्रत्यक्ष (अद्भुतान्) आश्चर्ययुक्त गुण कर्म और स्वभाववाले (दृश्यान्) देखने योग्य श्रेष्ठ बुद्धि वाले जनों को (अर्यः) स्वामी के समान (पश्येः) देखिये ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो अध्यापक और उपदेशक लोग बुद्धिमान् पुरुषों को पढ़ाते और उपदेश देते हैं उनका सदा ही सत्कार करो जिससे कि मनुष्य लोग आश्चर्ययुक्त गुण कर्म और स्वभाव वाले होवें ॥ १२ ॥

अब अगले मन्त्र में राजा के विषय को कहते हैं—

त्वमग्ने वाघते सुप्रणीतिः सुतसोमाय विधते यविष्ठ ।
रत्नं भर शशमानाय घृष्वे पृथु श्चन्द्रमवसे चर्षणिप्राः ॥१३॥

पदार्थ—हे (घृष्वे) पदार्थों के घिसने वाले (यविष्ठ) अत्यन्त युवन् (अग्ने) अग्नि के सदृश पूर्णविद्या से प्रकाशमान (सुप्रणीतिः) उत्तम प्रकार बनी हुई नीति जिनके विद्यमान (पृथु) जिनका पुरुषार्थ विस्तृत हो रहा है

(अर्वंसिना.) जो मनुष्यों को व्याप्त होने वाले (त्वम्) आप (सुतसोमाय) उत्पन्न किया गया ऐश्वर्य वा ओषधियों का रस जिससे उस (शशमानाय) सब के दुःखों के उल्लङ्घन करनेवाले (विधते) अनेक प्रकार के व्यवहार को यथावत् करते हुए (दाशुषे) बुद्धिमान् के लिए (अवसे) रक्षण आदि के अर्थ (चन्द्रम्) प्रसन्न करनेवाले सुवर्ण और (रत्नम्) रमणीय मनोहर धन का (भर) धारण करो ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे राजन् जो धार्मिक शूरवीर विद्वान् लोग शत्रु के बल के उल्लङ्घन करने, परस्पर पदार्थों के घिसने से बिजुली आदि की विद्या के प्रकाश करने और मनुष्यों की रक्षा करनेवाले मन्त्री आदि नौकर होवें उनके लिए ऐश्वर्य निरन्तर धारण करो ॥ १३ ॥

अब प्रजाजन के कृत्य को कहते हैं—

अधा ह यद्वयमग्ने त्वाया पड्भिर्हस्तेभिश्चकृमा तनूभिः ।
रथं न क्रन्तो अपसा भुरिजोर्ऋतं येमुः सुध्य आशुषाणाः ॥१४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान राजन् (त्वाया) आपको प्राप्त (सुध्य.) उत्तम बुद्धि वाले (आशुषाणाः) शीघ्र विभाग करनेवाले (वयम्) हम लोग (हस्तेभिः) हाथों (पड्भिः) पैरों और (तनूभिः) शरीरों से (यत्) जिस (रथम्) विमान आदि वाहन के (न) सदृश (चकृम) करें (अध) इसके अनन्तर (ह) निश्चय जो (अपसा) कर्म से (भुरिजोः) धारण और पोषण करनेवालों के (ऋतम्) सत्य को (येमुः) प्राप्त होवें उस विमान आदि वाहन के सदृश (क्रन्तः) क्रम से चलनेवाले हूजिये ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । मनुष्यो को चाहिए कि आलस्य त्याग के शरीरादिको से पुरुषार्थ को सदा ही करके प्रजा और राज्य का धर्म से नियम करें जिससे सब लोग धनयुक्त होवें ॥ १४ ॥

अब अगले मन्त्रों में राजा के विषय को कहते हैं—

अधा मातुरुषसः सप्त विप्रा जायेमहि प्रथमा वेधसो नॄन् ।
दिवस्पुत्रा अङ्गिरसो भवेमाद्रिं रुजेम धनिनं शुचन्तः ॥१५॥१८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (उषसः) प्रभात वेला के दिन के समान सात प्रकार के किरणें होते है वैसे ही (मातुः) माता के सदृश वर्त्तमान विद्या से हम लोग (प्रथमाः) प्रथम प्रसिद्ध (विप्राः) बुद्धिमान् (सप्त) सात प्रकार के अर्थात् राजा, प्रधान, मन्त्री, सेना, सेना के अध्यक्ष, प्रजा और चारादि (जायेमहि) होवें और (वेधसः) बुद्धिमान् (नॄन्) नायक पुरुषो को प्राप्त हो और (दिवः) प्रकाश के (पुत्राः) विस्तारने वाले (अङ्गिरसः) जैसे प्राणवायु (अद्रिम्) मेघ को वैसे शत्रु को (रुजेम) छिन्न भिन्न करें (अध) इसके अनन्तर (धनिनम्) बहुत धनयुक्त प्रजा मे विद्यमान को (शुचन्तः) विद्या और विनय से पवित्र करते हुए (भवेम) प्रसिद्ध होवें ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा लोग बुद्धिमान् मन्त्रियो का सत्कार करके रक्षा करते हैं वे सूर्य्य के सदृश प्रकाशित यशवाले होते हैं और सभी काल मे उद्योगियो की रक्षा और दुष्टो का निरन्तर ताडन करें जिससे कि सब शुद्ध आचरण वाले होवें ॥ १५ ॥

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः ।
शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ॥१६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान राजन् (यथा) जिस प्रकार से (नः) हम लोगो के (परासः) होने वाले (प्रत्नासः) हुए (पितरः) उत्पन्न करने वाले पितृ लोग (शुचि) पवित्र, शुद्धि करनेवाले (ऋतम्) सत्यन्याययुक्त व्यवहार को (आशुषाणाः) सब प्रकार बांटते और (उक्थशासः) प्रशंसित शासनो वाले (क्षाम) पृथिवी को (भिन्दन्तः) विदारते हुए (दीधितिम्) नीति के प्रकाश को (अयन्) प्राप्त होते हैं (अध) इसके अनन्तर (अरुणीः) प्राप्त प्रजाओ को (अप व्रन्) स्वीकार करें वैसे (इत्) ही आप हम लोगों मे वर्त्ताव करो ॥१६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो राजा और राजपुरुष प्रजाओं मे पिता के सदृश वर्त्ताव करके सत्य न्याय का प्रकाश कर और अविद्या को दूर करके प्रजाओं को शिक्षा देते हैं वे पवित्र गिने जाते है ॥ १६ ॥

सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तोऽयो न देवा जनिमा धमन्तः ।
शुचन्तो अग्निं ववृधन्त इन्द्रमूर्वं गव्यं परिषदन्तो अग्मन् ॥१७॥

पदार्थ—हे राजा और प्रजाजन आप लोगो (अयः) सुवर्ण को (धमन्तः) तपाते हुओं के (न) सदृश (देवाः) विद्वान् लोग (जनिम) जन्म की (देवयन्तः) कामना करते हुए (सुकर्माणः) जिनके उत्तम कर्म (सुरुचः) वा श्रेष्ठ प्रीति वह (शुचन्तः) पवित्र आचरण को करते और कराते हुए (अग्निम्) प्रसिद्ध अग्नि को (ववृधन्तः) बढ़ाते हैं (परिषदन्तः) और सभा का आचरण करते हुए (ऊर्वम्) हिंसा करनेवाली (इन्द्रम्) बिजुली को (गव्यम्) वाणी-रूप शासन को (अग्मन्) प्राप्त होते हैं वैसा ही आप लोग आचरण करो ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्यो को चाहिये कि धर्मयुक्त कर्मों को करके विद्या और सभा मे प्रीति उत्पन्न करके पवित्रता की कामना करते हुए विद्या और अन्न से बढ़ने वाले बिजुली आदि की विद्या को बढ़ाते हुए चक्रवर्ती राज्य करके आनन्द का निरन्तर भोग करें ॥ १७ ॥

अब राजा के विषय को कहते हैं—

आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद्देवानां यज्जनिमान्त्युग्र ।
मर्तानां चिदुर्वशीरकृप्रन्वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥१८॥

पदार्थ—हे (उग्र) तेजस्वी राजन् आप (देवानाम्) विद्वान् (मर्तानाम्) मनुष्यो के (अन्ति) समीप मे (यत्) जिन (जनिम) जन्मो को (आ, अख्यत्) सब ओर से प्रसिद्ध करते वा (क्षुमति) बहुत अन्न जिसमे विद्यमान उसमे (यूथेव) सेनाजनो के सदृश प्रसिद्ध करते हैं (अर्य्यः) और जैसे स्वामी (चित्) वैसे (उपरस्य) मेघ और (आयोः) जीवन प्राप्त करानेवाले (पश्वः) पशु की (चित्) भी (वृधे) वृद्धि के लिए (उर्वशीः) बहुत व्याप्त होनेवाली क्रियाओं को विद्वान् लोग (अकृप्रन्) कल्पना करते हैं ॥ १८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो मनुष्यो के मध्य मे राजा का जन्म वह बड़े पुण्य से उत्पन्न हुआ ऐसा जानना चाहिए । जो राजा विद्यमान न हो तो कोई भी स्वस्थता को नहीं प्राप्त हो और जैसे मेघ के समीप से सब का जीवन और वृद्धि होती है वैसे ही राजा के समीप से सब प्रजा की वृद्धि और जीवन होता है ॥ १८ ॥

अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
अनूनमग्निं पुरुधा सुश्चन्द्रं देवस्य मर्मृजतश्चारु चक्षुः ॥१९॥

पदार्थ—हे राजन् जैसे (विभातीः) प्रकाश करती हुई (उषसः) प्रभात-वेलाओ को (अनूनम्) और बहुत (सुश्चन्द्रम्) सुन्दर सुवर्ण जिससे होता उसको (मर्मृजतः) अत्यन्त शोधते हुए (देवस्य) कामना करनेवाले के (चारु) सुन्दर (चक्षुः) नेत्र (अग्निम्) और अग्नि को (पुरुधा) बहुत प्रकारो से (अवस्रन्) वसते हैं वैसे ही (ऋतम्) सत्य की सेवा करते और (स्वपसः) उत्तम धर्म-सम्बन्धी कर्म करते हुए हम लोग अत्यन्त शुद्धता तथा कामना करते हुए के हित को (अकर्म) करें और (ते) आपके मित्र (अभूम) होवें ॥ १९ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जैसे सूर्य्य से उत्पन्न प्रातःकाल सब को शोभित करता है वैसे ही ब्रह्मचर्य्य से हुए विद्वान् हम लोग आप की आज्ञानुकूल जैसे वर्तें वैसे ही आप हम लोगो का हित निरन्तर करो और सब हम लोग परस्पर मेल करके और अन्याय दूर करके धर्मसम्बन्धी कर्मों को प्रवृत्त करें ॥ १९ ॥

एता ते अग्न उचथानि वेधोऽवोचाम कवये ता जुषस्व ।
उच्छोचस्व कृणुहि वस्यसो नो महो रायः पुरुवार प्र यन्धि ॥२०॥१९॥

पदार्थ—हे (वेधः) बुद्धिमान् (अग्ने) विद्वान् धार्मिक राजन् हम लोग (कवये) सब विद्या से युक्त (ते) आप के लिए जिन (एता) इन (उचथानि) उचित वचनो को (अवोचाम) कहें (ता) उन का आप (जुषस्व) सेवो और (उत्, शोचस्व) अत्यन्त विचारो (कृणुहि) करो हे (पुरुवार) बहुत आप्त अर्थात् सत्यवादी पुरुषो का स्वीकार करनेवाले (नः) हम लोगो के लिए (महः) बड़े (वस्यसः) अतिशयित निवसे धरे हुए (रायः) धनो को (प्र, यन्धि) उत्तमता से देओ ॥ २० ॥

भावार्थ—राजा को चाहिए कि यथार्थवक्ता ही पुरुषो के वचनों को सुन और उत्तम प्रकार विचार कर सेवन करे उन यथार्थवक्ता पुरुषो के लिए प्रिय वस्तुओं को देकर वे निरन्तर सन्तुष्ट करने योग्य हैं इस प्रकार राजा और यथार्थवक्ता पुरुषों की सभा सब मिलकर सब कर्मों को सिद्ध करें ॥ २० ॥

इस सूक्त मे राजा, प्रजा और यथार्थवक्ता पुरुष के कृत्यवर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह द्वितीय सूक्त और उन्नीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षोडशर्चस्य तृतीयस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता ।
१, ५, ८, १०, १२, १५ निचृत्त्रिष्टुप् । २, १३, १४ विराट् त्रिष्टुप् ।
३, ७, ६ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ स्वराड् बृहतीछन्दः ।
मध्यमः स्वरः । ६, ११, १६ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सोलह ऋचावाले तीसरे सूक्त का वर्णन है उसके प्रथम मन्त्र से सूर्य्यरूप अग्नि के दृष्टान्त से राजप्रजाजनों के कृत्य का वर्णन करते हैं—

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥१॥

पदार्थ—हे यथार्थवक्ता विद्वानो जैसे हम लोग (नः) आपके (अध्वरस्य) न नष्ट करने योग्य राज्य के (अवसे) धर्मात्माओं की रक्षा और दुष्टों के नाश करने के लिए (होतारम्) देने (सत्ययजम्) सत्य ही को प्राप्त होने और (रुद्रम्) दुष्टों के रुलानेवाले (अचित्तात्) जिसमें चित्त नहीं स्थिर होता ऐसी (तनयित्नोः) बिजुली के (हिरण्यरूपम्) तेजरूप के समान रूपवाले वा (रोदस्योः) अन्तरिक्ष और पृथिवी के मध्य में (अग्निम्) सूर्य्य के सदृश (राजानम्) प्रकाशमान न्याय (पुरा) प्रथम करें वैसा हम लोगों के बीच राजा आप लोग (आ, कृणुध्वम्) सब प्रकार करें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वान् लोगो ! राजा और प्रजाजनों के साथ एक सम्मति करके जैसे ईश्वर ने ब्रह्माण्ड के मध्य में सूर्य्य को स्थित करके सब का प्रियसुख साधन किया वैसे ही हम लोगों के मध्य में उत्तम गुण कर्म और स्वभावयुक्त को राजा करके हम लोगों के हित को आप लोग सिद्ध करो जिससे आप लोगों का भी प्रिय सिद्ध होवे ॥ १ ॥

अयं योनिश्चकृमा यं वयं ते जायेव पत्य उशती सुवासाः ।

अर्वाचीनः परिवीतो नि षीदेमा उ ते स्वपाक प्रतीचीः ॥२॥

पदार्थ—हे राजन् (वयम्) हम लोग (ते) आपके (यम्) जिस गृह को (चकृम) बनावें सो (अयम्) यह (योनिः) गृह (पत्ये) स्वामी के लिए (उशती) कामना करती हुई (सुवासाः) सुन्दर वस्त्रों से शोभित (जायेव) मन की प्यारी स्त्री के सदृश (अर्वाचीन) इस वर्त्तमानकाल में हुआ (परिवीतः) सब प्रकार व्याप्त उत्तम गुण जिसमें ऐसा हो उसमें आप (नि, सीद) निवास करो और हे (स्वपाक) उत्तम प्रकार परिपक्व ज्ञानवाले (प्रतीचीः) प्रतीति को प्राप्त होती हुई (इमाः) यह वर्त्तमान प्रजा (उ) और (ते) आप के भक्त हो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । राजा को चाहिए कि ऐसा गृह बनावे कि जो पतिव्रता सुन्दरी मन की प्यारी स्त्री के सदृश सब ऋतुओं में सुख देवे । और वहाँ स्थित हुआ ऐसे कर्म करे कि जिन कर्मों से अपनी प्रजा अनुरक्त होवें ॥ २ ॥

आशृण्वते अदृपिताय मन्म नृचक्षसे सुमृळीकाय वेधः ।

देवाय शस्तिममृताय शंस ग्रावेव सोता मधुषुद्यमीळे ॥३॥

पदार्थ—हे (वेधः) बुद्धिमान् राजन् (यम्) जिसकी मैं (ईळे) स्तुति करता हूँ (आशृण्वते) सब प्रकार सुनते हुए (अदृपिताय) मोहरहित (नृचक्षसे) सत्य और असत्य व्यवहारों को करते हुए जनों के साक्षात् देखने और (सुमृळीकाय) उत्तम प्रकार सुख देनेवाले, सुख और (अमृताय) जल के सदृश शान्तस्वरूप (देवाय) उत्तम गुणों से युक्त आपके लिए (मन्म) विज्ञान का मैं उपदेश देता हूँ वैसे आप (ग्रावेव) मेघ के सदृश (मधुषुत्) मधुरताओं के उत्पन्न करनेवाले (सोता) अभिषेक करनेवाले हुए (शस्तिम्) प्रशंसा की (शंस) स्तुति कीजिए अर्थात् प्रबन्ध से कहिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—वह ही राजा उत्तम होता है कि जो मोह आदि दोषों से रहित होकर सब वचनों का सुनने, सत्य और असत्य को देखने और मेघ के सदृश प्रजा में अनेक प्रकार का भोग प्राप्त करानेवाला न्यायाधीश होवे ॥ ३ ॥

त्वं चिन्नः शम्या अग्ने अस्या ऋतस्य बोध्यृतचित्स्वाधीः ।

कदा त उक्था सधमाद्यानि कदा भवन्ति सख्या गृहे ते ॥४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान राजन् (त्वम्) आप (नः) हम लोगों की (अस्याः) इस प्रजा के (ऋतस्य) सत्य के (शम्यै) कर्म्म के लिए (स्वाधीः) उत्तम प्रकार सब प्रकार विचार करने और (ऋतचित्) सत्य का संग्रह करनेवाला (कदा) कब (बोधि) जानो और (चित्) भी (ते) आपके (गृहे) गृह में (सधमाद्यानि) मेल के स्थानों में श्रेष्ठ और (उक्था) उचित भी (ते) तुम्हारे (सख्या) मित्रों के कर्म्म वा अभिप्राय (कदा) कब (भवन्ति) होते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप जब प्रजा के सत्य न्याय को करेंगे तब ही आप की आज्ञा के अनुकूल वर्त्ताव करके प्रजा एकसम्मति से होगी ॥ ४ ॥

अब उपदेशक विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

कथा ह तद्वरुणाय त्वमग्ने कथा दिवे गर्हसे कन्न आगः ।

कथा मित्राय मीळ्हुषे पृथिव्यै ब्रवः कदर्यम्णे कद्भगाय ॥५॥२०॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान (त्वम्) आप (ह) ही (कथा) किस प्रकार (वरुणाय) श्रेष्ठ की (गर्हसे) निन्दा करते हो (कथा) किस प्रकार (दिवे) प्रकाशमान के लिए निन्दा करते हो (नः) हम लोगों के (आगः) अपराध की (कत्) कब निन्दा करते हो (मीळ्हुषे) सुख बढ़ानेवाले (मित्राय) मित्र के लिए (कथा) किस प्रकार निन्दा करते हो (पृथिव्यै) पृथिवी के सदृश वर्त्तमान स्त्री के लिए (तत्) उस वचन को (कत्) कब (ब्रवः) कहो (अर्यम्णे) न्यायाधीश के लिए और (भगाय) ऐश्वर्य्य के लिए (कत्) कब कहो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जो राजा श्रेष्ठ वा विद्वानों की निन्दा करे वह आप लोगों से रोकने योग्य है और सब राजकर्मों की सिद्धि के लिए समय-व्यवस्था करनी चाहिए और जब जब जो जो कर्म करना हो तब तब वह वह कर्म करना चाहिए । इस प्रकार राजा को उपदेश करना चाहिए । जब मित्रद्रोह का आचरण करे तभी उसको शिक्षा देनी चाहिए । ऐसा करने पर राजा और प्रजा दोनों की निरन्तर उन्नति होवे ॥ ५ ॥

कद्धिष्ण्यासु वृधसानो अग्ने कद्वाताय प्रतवसे शुभंये ।

परिज्मने नासत्याय क्षे ब्रवः कदग्ने रुद्राय नृघ्ने ॥६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशमान आप (धिष्ण्यासु) बुद्धि में उत्पन्न क्रियाओं में (वृधसानः) बढ़नेवालों का विभाग करते हुए (प्रतवसे) श्रेष्ठ बल और (वाताय) विज्ञान के लिए (कत्) कब (ब्रवः) कहो हे (अग्ने) विद्वन् राजन् (परिज्मने) सब ओर भूमि जिसके उस (शुभंये) कल्याण को प्राप्त होनेवाले (नासत्याय) असत्य आचरण से रहित के लिए (कत्) कब कहो (क्षे) पृथिवी राज्य के लिए विद्यमान जिसमें उसमें (नृघ्ने) शत्रुओं के नायकों के नाश करने और (रुद्राय) दुष्ट पुरुषों को रुलानेवाले के लिए (कत्) कब कहो ॥६॥

भावार्थ—राजा आदि अध्यक्षों के प्रति अध्यापक उपदेशक और मन्त्रीजन ऐसा उपदेश देवें कि आप लोग बुद्धि के कामों में वृद्ध बलिष्ठ उत्तम आचरणवाले सत्यवादी और दुष्ट पुरुषों के नाश करनेवाले कब होओगे और उत्तम आचरण करने और दुष्ट आचरण के त्याग में विलम्ब न करो ॥ ६ ॥

अब विद्यार्थियों की परीक्षा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

कथा महे पुष्टिम्भराय पूष्णे कद्रुद्राय सुमखाय हविर्दे ।

कद्विष्णव उरुगायाय रेतो ब्रवः कदग्ने शरवे बृहत्यै ॥७॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् पुरुष आप (रेतः) जल के सदृश शान्त अर्थात् कोमलचित्त होके (महे) बड़े (पुष्टिम्भराय) पुष्टि धारण कराने (पूष्णे) पोषण करनेवाले के लिए (कथा) किस प्रकार (ब्रवः) कहो (सुमखाय) उत्तम प्रकार यज्ञसम्पादन करने और (हविर्दे) देने योग्य वस्तुओं को देनेवाले के लिए तथा (रुद्राय) शत्रुओं में प्रबल के लिए (कत्) कब कहो (उरुगायाय) बहुत प्रशंसा करने योग्य (विष्णवे) व्यापक परमेश्वर के लिए (कत्) कब कहो (शरवे) दुष्टों के नाश करनेवाली (बृहत्यै) बड़ी सेना के लिए (कत्) कब कहो ॥ ७ ॥

भावार्थ—अध्यापक लोगों को विद्यार्थियों को पढ़ा के प्रत्येक अठवाड़े प्रत्येक पक्ष प्रतिमास प्रतिछमाही और प्रतिवर्ष परीक्षा यथायोग्य करनी चाहिए जिससे कि राजकुमारादि सब भ्रमरहित ज्ञानविशिष्ट उत्तमस्वभावयुक्त शरीर और आत्मा के बल सहित धर्मिष्ठ सौ वर्ष जीने और न्याय से राज्य के पालन करनेवाले होवें ॥ ७ ॥

अब अगले मन्त्र में राजविषय को कहते हैं—

कथा शर्धाय मरुतामृताय कथा सूरे बृहते पृच्छ्यमानः ।

प्रति ब्रवोऽदितये तुराय साधा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ॥८॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) प्रसिद्ध उत्तम ज्ञानयुक्त (सूरे) सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान सेना में (पृच्छ्यमानः) पूछे गये आप (मरुताम्) पवनों का जैसे वैसे (ऋताय) सत्य के और (बृहते) बढ़ते हुए (शर्धाय) बल के लिए (कथा) किस प्रकार से (ब्रवः) कहो (तुराय) शीघ्रता करते हुए (अदितये) नहीं नाश होनेवाले अन्तरिक्ष के लिए (कथा) किस प्रकार से (प्रति) निश्चित कहो (चिकित्वान्) ज्ञानवान् होकर (दिवः) प्रकाशों को (साध) सिद्ध करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा लोग वायु के सदृश अपने बल को बढ़ाते, योधा लोगों के शिक्षक और परीक्षकों का सत्कार करते और प्रश्नोत्तर से सब को जान उनके द्वारा कार्य सिद्ध करते हैं वे सूर्य्य के सदृश ऐश्वर्य के प्रकाशक होते हैं ॥ ८ ॥

अब मनुष्य को ब्रह्मचर्य्य आदि से पुरुषार्थ सेवना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ऋतेन ऋतं नियतमीळ आ गोरामा सचा मधुमत्पक्वमग्ने ।

कृष्णा सती रुशता धासिनैषा जामर्येण पयसा पीपाय ॥९॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशमान विद्वान् पुरुष जिस प्रकार से मैं (गोः) पृथिवी वा वाणी के (ऋतेन) सत्य से (नियतम्) नियमयुक्त (ऋतम्) सत्य की (ईळे) स्तुति वा ढूंढ करता हूँ वैसे आचरण करते हुए आप पृथिवी के मध्य में (सचा) प्रसङ्ग से (मधुमत्) श्रेष्ठ मधुर आदि गुणों से युक्त (आमा) कच्चे और (पक्वम्) पक्के पदार्थों की (आ, पीपाय) अच्छे प्रकार वृद्धि करो और जैसे (एषा) यह (कृष्णा) श्याम वर्ण (सती) सज्जन पतिव्रता पतिव्रता स्त्री (रुशता) उत्तम स्वरूप से (जामर्येण) जीवन में सिंचित (पयसा) दुग्ध और (धासिना) अन्न से बढ़ती है वैसे आप वृद्धि को प्राप्त होओ ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य ब्रह्मचर्य से विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त होके और धर्मयुक्त व्यवहार से धर्म का अन्वेषण और इन्द्रियजित् होने से नियम से भोजन करनेवाले होकर पुरुषार्थ करते हैं वे पतिव्रता स्त्री और पुरुष के सदृश आनन्दित होकर सब प्रकार वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

फिर भी पुरुषार्थ कर्त्तव्यता को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ऋतेन हि ष्मा वृषभश्चिदक्तः पुमाँ अग्निः पयसा पृष्ठ्येन ।

अस्पन्दमानो अचरद्वयोधा वृषा शुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥१०॥२१॥

पदार्थ—हे राजन् (हि) जिस से कि आप (ऋतेन) सत्य व्यवहार से (वृषभः) बलिष्ठ (अक्तः) उत्तम गुणों से युक्त (पयसा) रात्रि के साथ (अग्नि) अग्नि के समान (पृष्ठ्येन) पृष्ठ भाग मे होनेवाले दिन में (पुमान्) पुरुषार्थी (अस्पन्दमानः) किञ्चित् चले हुए (वयोधाः) सुन्दर अवस्था जीवन और धनादिकों के धारण करने (वृषा) सुखों की वृष्टि करनेवाले होते हुए (अचरत्) विचरते हैं (पृश्निः) अन्तरिक्ष (ऊधः) और रात्रि के सदृश (चित्) सो भी (शुक्रम्) वीर्य्य को (स्म) ही (दुदुहे) पूरा करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे पृथिवी के पर्वभाग में बिजुली सूर्य रूप से शोभित होती है और दूसरे भाग मे रात्रि के समय छिपी हुई चलती है वैसे ही शयन और जागरण नियम से कर और पुरुषार्थ कर के वीर्य बढ़ा के सौ वर्ष की अवस्थायुक्त हुए सब को आनन्द दीजिए ॥ १० ॥

अब राजा आदि क्षत्रियों के लिए उपदेश अगले मन्त्र में करते हैं—

ऋतेनाद्रिं व्यसन्भिदन्तः समङ्गिरसो नवन्त गोभिः ।

शुनं नरः परि षदन्नुषासमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ॥११॥

पदार्थ—हे (नरः) नायक होते हुए विद्वान् लोगो ! जैसे (गोभिः) किरणों के सदृश वाणियों से (अङ्गिरसः) पवन (ऋतेन) जल के सहित वर्त्तमान (अद्रिम्) मेघ के (सम्, भिदन्तः) अच्छे प्रकार टुकड़े करते हुए (वि, असन्) विविध प्रकार से फेंकते हैं (उषासम्) और प्रातःकाल को (परि, सदन्) प्राप्त होते हैं वा (जाते) उत्पन्न हुए (अग्नौ) अग्नि मे (स्वः) सूर्य्य (आविः) प्रकट (अभवत्) होता है वैसे (शुनम्) सुख की (नवन्त) प्रशंसा करो ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो राजा आदि वीर क्षत्रिय जैसे पवन से युक्त बिजुलियाँ मेघ को इधर उधर चलाय और तोड़ पृथिवी पर गिरा के सब को सुख देती हैं और दूसरी बिजुली का विलोडन करके सूर्य्य को उत्पन्न करती हैं वैसे ही दुष्ट पुरुषों का नाश और न्याय का प्रकाश, बुद्धि का विलोडन और विद्या को उत्पन्न करके सूर्य्य के सदृश प्रकाशमान हुए अतुल सुख को प्राप्त होओ ॥ ११ ॥

अब सत्कृयोग, अद्रोह और रक्षा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ऋतेन देवीरमृता अमृक्ता अर्णोभिरापो मधुमद्भिरग्ने ।

वाजी न सर्गेषु प्रस्तुभानः प्र सदमित्स्रवितवे दधन्युः ॥१२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष जैसे (ऋतेन) सत्य से (मधुमद्भिः) बहुत मधुर आदि गुणों से युक्त (अर्णोभिः) जलों के साथ (अमृक्ताः) नहीं शुद्ध किये गये (देवीः) उत्तम श्रेष्ठ (अमृताः) कारणरूप से नाशरहित (आपः) प्राणरूप पवन (स्रवितवे) जाने को (सदम्) प्राप्त वस्तु (प्र, दधन्युः) धारण करते हैं वैसे (इत्) ही (सर्गेषु) किये हुए कार्य्यों में (वाजी) बहुत अन्नवाले के (न) सदृश (प्रस्तुभानः) अत्यन्त धारण करते हुए आप प्रकट हूजिए ॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो जैसे शुद्ध जल सुखकारी और अशुद्ध दुःख देनेवाले होते हैं वैसे ही उत्तम गुणों का सङ्ग आनन्द-दायक और दोषों का सङ्ग दुःख देनेवाला होता है । और जैसे ऐश्वर्य्ययुक्त धार्मिकजन कृपा से बुभुक्षित आदि का पालन करता वैसे ही सज्जन लोग सब की रक्षा करते हैं ॥ १२ ॥

अब बुद्धिमानों के बुद्धिमत्ता विषय को कहते हैं—

मा कस्य यक्षं सदमिद्धुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापेः ।

मा भ्रातुरग्ने अनृजोर्ऋणं वेर्मा सख्युर्दक्षं रिपोर्भुजेम ॥१३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशमान आप (अनृजोः) कुटिल (कस्य) किसी (प्रमिनतः) अत्यन्त हिंसा करनेवाले (वेशस्य) प्रवेश के (हुरः) कुटिलकार्य्यसम्बन्धी (यक्षम्) वस्तु को (मा) मत (गाः) प्राप्त होओ और कुटिल (आपेः) प्राप्त हुए के (सदम्) प्राप्त होने योग्य वस्तु को (मा) मत प्राप्त होओ कुटिल (भ्रातुः) बन्धु के प्राप्त होने योग्य वस्तु को (मा) मत प्राप्त होओ कुटिल (सख्युः) मित्र के (दक्षम्) बल को (मा) मत (वेः) प्राप्त होओ कुटिल (रिपोः) शत्रु के (ऋणम्) ऋण को (मा) मत प्राप्त होओ जिससे हम लोग सुख का (इत्) ही (भुजेम) व्यवहार करें ॥ १३ ॥

भावार्थ—उन्हीं लोगों को बुद्धिमान् समझना चाहिए कि जो अन्याय से किसी का वस्तु दुष्टदेश हिंसा करनेवाले का तथा न्याय से प्राप्त हुए धन का व्यर्थ खर्च दुष्ट बन्धु का संग और शत्रु का विश्वास नहीं करके आनन्द का भोग करें ॥ १३ ॥

अब राज्यपालन विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

रक्षा णो अग्ने तव रक्षणेभी रारक्षाणः सुमख प्रीणानः ।

प्रति ष्फुर वि रुज वीड्वंहो जहि रक्षो महि चिद्वावृधानम् ॥१४॥

पदार्थ—हे (सुमख) उत्तम न्याय व्यवहार के पालन करनेवाले (अग्ने) राजन् आप (नः) हम लोगों की (रक्ष) रक्षा करो और (महि) बड़े (वावृधानम्) अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हुए की (रारक्षाणः) रक्षा करते (प्रीणानः) प्रसन्न होते वा प्रसन्न करते हुए (प्रति, स्फुर) पुरुषार्थ करो और शत्रु को (वीळु) दृढ़ (वि, रुज) विशेषता से अच्छे प्रकार भग्न करो और (अंहः) पाप का (जहि) नाश करो (रक्षः) दुष्ट शत्रु का भग करो और जिससे (तव) आप के (चित्) भी (रक्षणेभिः) अनेक प्रकार के उपायों से हम लोग सुखी होवें ॥ १४ ॥

भावार्थ—वे ही राजा लोग यश के भागी हैं कि जो दुष्ट पुरुषों की दुष्टता को दूर कर और श्रेष्ठ पुरुषों की श्रेष्ठता बढ़ा के राज्य का निरन्तर पिता के समान अर्थात् पिता अपने पुत्र की पालना करता वैसे पालन करें ॥ १४ ॥

एभिर्भव सुमना अग्ने अर्कैरिमान्स्पृश मन्मभिः शूर वाजान् ।

उत ब्रह्माण्यङ्गिरो जुषस्व सं ते शस्तिर्देववाता जरेत ॥१५॥

पदार्थ—हे (अङ्गिरः) प्राण के सदृश वर्त्तमान (शूर) वीर (अग्ने) विद्वन् राजन् ! आप (एभिः) इन धार्मिक रक्षक और विद्यावान् (अर्कैः) सत्कार करने योग्य (मन्मभिः) विद्वानों के साथ (सुमना) उत्तम मन युक्त (भव) हूजिए और (इमान्) इन (वाजान्) प्राप्त होने योग्य उत्तम गुण कर्म और स्वभाववालों को (स्पृश) ग्रहण करिये (उत) और (ब्रह्माणि) बड़े-बड़े धनों का (सम्, जुषस्व) अच्छे प्रकार सेवन करिये जिससे कि (ते) आपकी (देववाता) विद्वानों से की गई (शस्तिः) प्रशंसा (जरेत) प्रशंसित हो अर्थात् अधिक विख्यात हो ॥ १५ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप यथार्थवक्ता विद्वानों का सग निरन्तर करिये और उनके उपदेश से न्यायपूर्वक राज्य का पालन करके प्रशंसित हूजिए ॥ १५ ॥

अब प्रजा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

एता विश्वा विदुषे तुभ्यं वेधो नीथान्यग्ने निण्या वचांसि ।

निवचना कवये काव्यान्यशंसिषं मतिभिर्विप्र उक्थैः ॥१६॥२२॥

पदार्थ—हे (वेधः) बुद्धिमान् (अग्ने) राजन् ! (विप्रः) मेधावी जन मैं (उक्थैः) प्रशंसा करने योग्य (मतिभिः) विद्वानों के साथ जो (काव्यानि) कवियों ने रचे शास्त्र उन की (अशंसिषम्) प्रशंसा करता हूँ और उन (विश्वा) सम्पूर्ण (एता) इन (निण्या) निर्णय किये गये (निवचना) अत्यन्त अर्थों की कहनेवाले (वचांसि) वचनों को (विदुषे) विद्वान् (कवये) उत्तम बुद्धिवाले (तुभ्यम्) आप के लिए (नीथानि) प्राप्त किये गये प्रशंसू अर्थात् वह आपको प्राप्त हुए ऐसी प्रशंसा करूँ ॥ १६ ॥

भावार्थ—वही निश्चित प्रशंसा जानने योग्य है कि जो धार्मिक विद्वानों से की जाय । अध्यापक और उपदेशक जनों को चाहिए कि पढ़ने और उपदेश देनेवालों को सदा ही सत्यवादी और विद्वान् करें ॥ १६ ॥

इस सूक्त में अग्नि, राज और प्रजादिकों के कृत्य और गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तीसरा सूक्त और बाईसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चदशर्चस्य चतुर्थस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । अग्नीरक्षोहा देवता ।
१,२,४,५,८ भुरिक् पङ्क्तिः । ३ स्वराट् पङ्क्तिः । १२ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः । ३, १०, ११, १५ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् ।
७, १३ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । १४ स्वराड्बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचावाले चौथे सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में राज विषय में सेनापति के काम को कहते हैं—

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन ।

तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥१॥

पदार्थ—हे सेना के ईश ! आप (राजेव) राजा के सदृश (अमवान्) बलवान् (इभेन) हाथी से (याहि) जाइये प्राप्त हूजिए (प्रसितिम्) बढ़ी हुई (पृथ्वीम्) भूमि के (न) सदृश (पाजः) बल (कृणुष्व) करिये जिस से (प्रसितिम्) बन्धन और (तृष्वीम्) प्यासी के प्रति (अनु, द्रूणानः) अनुकूल

शीघ्रता करनेवाले और (अस्ता) फेंकनेवाले (असि) हो इससे (तपिष्ठैः) अतिशय सन्ताप देनेवाले शस्त्र आदिको से (रक्षस.) दुष्टो का (विध्य) पीडा देओ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे राजसम्बन्धी जनो ! आप लोग पृथ्वी सदृश दृढ बल कर के राजा के सदृश न्यायाधीश होकर पिपासित मृगी के पीछे दौड़ते हुए भेड़िये के सदृश दुष्ट डाकू जो कि अनुधावन करते अर्थात् जो कि पथिकादिकों के पीछे दौड़ते उनका नाश करो ॥ १ ॥

अब राजविषय मे सामान्य से राजजनों के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तव॑ भ्रमास॑ आशुया प॑तन्त्यनु॑ स्पृश धृषता शोशु॑चानः ।

तपू॑ष्यग्ने जुह्वा॑ पतङ्गानसं॑न्दितो वि सृ॑ज विष्व॑गुल्काः ॥२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश ! वर्त्तमान जो (तव) आप के (आशुया) शीघ्र (भ्रमास·) भ्रमण (पतन्ति) गिरते हैं उन को (धृषता) प्रगल्भ सेना के साथ (शोशुचानः) अत्यन्त पवित्र हुए (अनु, स्पृश) स्पर्श करो और (जुह्वा) होम के साधन से अग्नि (तपू वि) तपाये गये पदार्थों को जैसे वैसे (पतङ्गान्) अग्निकणो के सदृश वर्त्तमान घोड़ो को अनुकूलता से स्पर्श करो (असन्दित.) खण्डरहित हुए (उल्का·) बिजुलियो को (विष्वक्) सर्व प्रकार (वि, सृज) छोड़िए ॥ २ ॥

भावार्थ—जो राजजन फुरतीवाले होते हुए शीघ्रकार्य्यकारी हो वे अखण्डित-वीर्य्य अर्थात् पूर्णबल वाले होकर बिजुली के प्रयोगो और ब्रह्मास्त्र आदि अस्त्रो को शत्रुओं के ऊपर कर विजय को प्राप्त हो ॥ २ ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

प्रति॒ स्पशो॒ वि सृ॑ज तू॒र्णित॑मो॒ भवा॑ पा॒युर्वि॒शो अ॒स्या अद॑ब्धः ।

यो नो॑ दू॒रे अ॒घशं॑सो॒ यो अन्त्यग्ने॒ माकि॑ष्टे॒ व्यथि॒रा द॑धर्षीत् ॥३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् राजन् ! आप (तूर्णितम·) अत्यन्त शीघ्रकारी होते हुए (स्पश.) अत्यन्त स्पर्श करने अर्थात् मुंह लगनेवालों का (वि, सृज) त्याग करो, और (अस्या·) इस (विश.) प्रजा के (अदब्ध) नही मारने और (पायु:) पालन करनेवाले (प्रति, भव) होओ (य:) जो (अघशंस:) पाप की प्रशसा करनेवाला चोर (न:) हम लोगो के (दूरे) दूर देश मे वा (य:) जो (अन्ति) समीप मे वर्त्तमान हो वह (ते) आप को (व्यथि) पीडारूप (माकि.) मत (आ, दधर्षीत्) ढीठ हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप उत्तम गुणो को ग्रहण करके और प्रजा का पालन करके जो दूर और समीप मे वर्त्तमान डाकू आदि दुष्ट पुरुष उनका नाश करो जिससे सब को सुख हो ॥ ३ ॥

उद॑ग्ने तिष्ठ॒ प्रत्या त॑नुष्व॒ न्य॑१मित्राँ॑ ओषतात्तिग्महेते ।

यो नो॒ अरा॑तिं समिधान च॒क्रे नी॒चा तं ध॑क्ष्यत॒सं न शुष्क॑म् ॥४॥

पदार्थ—हे (समिधान) उत्तम प्रकार प्रकाशमान और (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान आप ! (उत्, तिष्ठ) उद्युक्त हूजिये (आ, तनुष्व) अच्छे प्रकार विस्तृत हूजिये (अमित्रान्) शत्रुओ के (प्रति) प्रति (नि, ओषतात्) निरन्तर दाह देओ । हे (तिग्महेते) अत्यन्त तीव्र वृद्धिवाले ! (य:) जो (न:) हम लोगो के (अरातिम्) एक शत्रु और अनेक शत्रुओ को (नीचा) नीच (चक्रे) कर चुका अर्थात् सब से बढ गया (तम्) उसको (शुष्कम्) गीलेपन से रहित (अतसम्) कूप के (न) सदृश से आप (धक्षि) जलाते हो इस से वह आप राज्य के योग्य हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है । मनुष्यो को चाहिए कि आलस्य त्याग के पुरुषार्थ का विस्तार करके शत्रुओ को जलावें और अन्धकूप के सदृश कारागृह मे उसका बन्धन करें और नीचता को प्राप्त करे । जो लोग ऐसा करते हैं उनकी राजा गुरु के सदृश सेवा करें ॥ ४ ॥

ऊ॒र्ध्वो भ॑व॒ प्रति॑ वि॒ध्याध्य॒स्मदा॒विष्कृ॑णुष्व॒ दैव्या॒न्य॑ग्ने ।

अव॑ स्थि॒रा त॑नुहि यातु॒जूनां॑ जा॒मिमजा॑मिं॒ प्र मृ॑णीहि॒ शत्रू॑न् ॥५।२३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्विन् ! आप (अस्मत्) हम लोगों से (ऊर्ध्व:) उन्नत (अधि) उपरिभाव मे अर्थात् ऊपर मे रहनेवाले (भव) हूजिये (स्थिरा) स्थिर सेना और (दैव्यानि) विद्वानो के किये कर्म्मों का (तनुहि) विस्तार करिये (यातुजूनाम्) वेग को प्राप्त हुए प्राणियो के (जामिम्) भोग और (अजामिम्) अभोग को (आवि:) प्रकट (कृणुष्व) करिये (शत्रून्) शत्रुओं का (प्र, अव, मृणीहि) अच्छे प्रकार नाश करिये और (प्रति, विध्य) बार बार पीड़ा दीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपने से उत्कृष्ट अर्थात् श्रेष्ठों को देख के प्रसन्न होते अनुत्कृष्ट अर्थात् दु:खियो को देख के शोक करते भोगयुक्तो को देख के आनन्दित होते और भोगरहितों को देख के अप्रसन्न होते वे ही राजकर्मों में स्थिर होते हैं ॥ ५ ॥

स ते॑ जानाति सुम॒तिं य॑विष्ठ॒ य ईव॑ते॒ ब्रह्म॑णे गा॒तुमैर॑त् ।

विश्वा॑न्यस्मै सु॒दिना॑नि रा॒यो द्यु॒म्नान्य॒र्यो वि दुरो॑ अ॒भि द्यौ॑त् ॥६॥

पदार्थ—हे (यविष्ठ) अत्यन्त युवावस्थायुक्त (य:) जो (अर्य्य:) स्वामी (ईवते) विद्या से व्याप्त (ब्रह्मणे) वेद जाननेवाले के लिये (गातुम्) प्रशंसित वाणी को (ऐरत्) प्राप्त करावे (अस्मै) इस के लिए (विश्वानि) सम्पूर्ण (सुदिनानि) सुख करनेवाले दिनो (राय:) धनो (द्युम्नानि) प्रकाशित यशों (दुर:) और यश के द्वारो को (अभि, वि, द्यौत्) प्रकाशित करें (स:) वह विद्वान् (ते) आप की (सुमतिम्) श्रेष्ठ बुद्धि को (जानाति) जानता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो लोग नित्य मङ्गल आचरण करनेवाले यशयुक्त अनुरक्त अर्थात् स्नेही शूरवीर और राजव्यवहार के जाननेवाले आप को चितावें उन को आप मित्र जानिये ॥ ६ ॥

सेद॑ग्ने अस्तु सु॒भगः॑ सु॒दानु॒र्यस्त्वा॒ नित्ये॑न ह॒विषा॒ य उ॒क्थैः ।

पिप्री॑षति॒ स्व आयु॑षि दुरो॒णे विश्वेद॑स्मै सु॒दिना॒ सास॑दि॒ष्टिः ॥७॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्या से प्रकाशित सभ्यजन ! (य:) जो (सुभग:) प्रशसनीय ऐश्वर्य्ययुक्त (सुदानु:) उत्तम दान देनेवाला हो (स:, इत्) वही आपका सभासद् (अस्तु) हो (य.) जो (उक्थै:) प्रशंसाओ और (नित्येन) नही नाश होनेवाले (हविषा) हवन करने योग्य पदार्थ से (त्वा) आप को (पिप्रीषति) सुशोभित करने की इच्छा करता है (अस्मै) इसके लिए (स्वे) अपने (आयुषि) जीवन और (दुरोणे) गृह मे (विश्वा) सम्पूर्ण (सुदिना) सुन्दर दिन हों (सा) वह (इष्टि.) यज्ञ करने की क्रिया दोनो लोको मे सुख देनेवाली (इत्) ही (असत्) होवे ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो लोग नित्य प्रेम से न्याय और विनय के द्वारा राज्य की उन्नति करते और राजा और प्रजा के उपद्रव के बिना मङ्गल समय सदा ही प्राप्त कराते हैं वे राजगृह मे अध्यक्ष हो ॥ ७ ॥

अर्चा॑मि ते सुम॒तिं घोष्य॒र्वाक्सं ते॑ वा॒वाता॑ जरतामि॒यं गीः ।

स्वश्वा॑स्त्वा सु॒रथा॑ मर्जयेमा॒स्मे क्ष॒त्राणि॑ धारये॒रनु॒ द्यून् ॥८॥

पदार्थ—हे राजन् ! मैं (ते) आप के (सुमतिम्) श्रेष्ठबुद्धिवाले सभासद् का (अर्चामि) सत्कार करता हूँ जिन (त्वा) आपकी (वावाता) दोषों को नाश करने और विद्या को उत्पन्न करनवाली (इयम्) यह (गी.) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी (घोषि) शब्दयुक्त वचन जैसे हो वैसे (सम्, जरताम्) स्तुति करे उन आपको (स्वश्वा) उत्तम घोड़े (सुरथा) श्रेष्ठ रथ और हम लोग (मर्जयेम) शुद्ध करावें जैसे (ते) आप के धनों को (अनु, द्यून्) अनुदिन प्रतिदिन हम लोग धारण करे वैसे आप (अर्वाक्) पीछे (अस्मे) हम लोगों के लिए (क्षत्राणि) राज्य में उत्पन्न हुए धनो को (धारयें.) धारण करिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—जब राजा सभास्थ जनों को पूछे कि इस अधिकार मे कौन पुरुष रखने योग्य है तब सम्पूर्ण जन धार्मिक योग्य पुरुष के नियत करने मे सम्मति देवें और राजा को भी चाहिए कि योग्य ही पुरुषों को राजकर्म मे नियत करे जिस से कि नित्य प्रशसा बढे ॥ ८ ॥

इ॒ह त्वा॒ भूर्या च॑रे॒दुप॒ त्मन्दोषा॑वस्तर्दीदि॒वांस॒मनु॒ द्यून् ।

क्रीळ॑न्तस्त्वा सु॒मन॑सः सपेमा॒भि द्यु॒म्ना त॑स्थि॒वांसो॒ जना॑नाम् ॥९॥

पदार्थ—हे राजन् ! (इह) इस राजकर्म मे आप (त्मन्) आत्मा में (भूरि) बहुत शुभ कर्म (उप, आ, चरेत्) करें (सुमनस) श्रेष्ठमनयुक्त जन (तस्थिवांस) स्थिर और (अनु, द्यून्) प्रतिदिन (क्रीळन्त:) धनुर्वेदविद्या की शिक्षा के लिए और युद्ध के लिए शस्त्रो का अभ्यास करते हुए हम लोग (जनानाम्) राजा और प्रजा के पुरुषों के मध्य में (दीदिवांसम्) प्रकाशमान वा प्रकाश करते हुए और (द्युम्ना) यश वा धन के सहित वर्त्तमान राजमान (त्वा) आपकी (दोषावस्त·) दिन रात्रि प्रशसा करें जो अश्रेष्ठ कर्म्म करो तो (त्वा) आप की (अभि, सपेम) निन्दा करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो आप दुर्व्यसनो का त्याग कर के धर्म्मसम्बन्धी कर्म्मों को करें तो हम लोग आप के भक्त निरन्तर होवें जो अन्याय करो तो आप का शीघ्र त्याग करें ॥ ९ ॥

यस्त्वा॒ स्वश्वः॑ सुहिर॒ण्यो अ॑ग्न उप॒याति॒ वसु॑मता॒ रथे॑न ।

तस्य॑ त्रा॒ता भ॑वसि॒ तस्य॒ सखा॒ यस्त॑ आति॒थ्यमा॑नु॒षग्जुजो॑षत् ॥१०॥२४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) राजन् ! (य) जो (ते) आपकी (आनुषक्) अनुकूलता से वर्त्तमान (आतिथ्यम्) अतिथि के सदृश सत्कार को (जुजोषत्) निरन्तर सेवा करे (य) जो (सुहिरण्य:) उत्तम सुवर्ण आदि धनयुक्त और (स्वश्व·) सुन्दर घोड़ो से युक्त पुरुष (वसुमता) बहुत धन से युक्त (रथेन) रमणीय वाहन से (त्वा) आप के (उपयाति) समीप प्राप्त होता है (तस्य)

उस के साथ (त्राता) रक्षा करनेवाले (असि) हूजिये और (तस्य) उस के (सखा) मित्र हूजिये ॥ १० ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो आप के राज्य के उपकार करने और सत्कार करनेवाले हों उन के ही मित्र और रक्षा करनेवाले हुए चक्रवर्त्ती हूजिये ॥ १० ॥

अब कुमार और कुमारियों के शिक्षा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

महो रुजामि बन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय ।

त्वं नो अस्य वचसश्चिकिद्धि होतर्यविष्ठ सुक्रतो दमूनाः ॥११॥

पदार्थ—हे राजन् ! जैसे मैं (गोतमात्) अत्यन्त सम्पूर्ण विद्याओं के स्तुति करनेवाले (पितुः) पिता से विद्या को प्राप्त होकर अविद्यादि दोष और शत्रुओं को (रुजामि) भग्नन करता हूँ (तत्, महः) बड़ा कार्य और (वचोभिः) वचनो से (बन्धुता) बन्धुपन (मा) मुझे (अनु, इयाय) प्राप्त हो वैसे यह बन्धुपन आपको प्राप्त हो और हे (होतः) देनेवाले ! (यविष्ठ) अत्यन्त युवा (सुक्रतो) उत्तम बुद्धियुक्त पुरुष (दमूनाः) दमनशील जितेन्द्रिय (त्वम्) आप (अस्य) इस (वचसः) वचन की उत्तेजना से (नः) हम लोगो को (चिकिद्धि) जनाइये ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे कुमार और कुमारियो ! जैसे हम लोग माता पिता और आचार्य्य से उत्तम शिक्षा और विद्या प्राप्त होकर आनन्दित होवें वैसे आप लोग भी हूजिये ॥ ११ ॥

अब प्रजाजनों के रक्षा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अस्वप्नजस्तरणयः सुशेवा अतन्द्रासोऽवृका अश्रमिष्ठाः ।

ते पायवः सध्र्यञ्चो निषद्याग्ने तव नः पान्त्वमूर ॥१२॥

पदार्थ—हे (अमूर) मूर्खतादि दोषो से रहित (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्विन् राजन् ! जो जन (तव) आप के (अस्वप्नजः) जागनेवाले (तरणयः) युवावस्था को प्राप्त (अतन्द्रासः) आलस्य (अवृकाः) चोरीपन (अश्रमिष्ठाः) और अत्यन्त थकावट से रहित (सुशेवाः) उत्तम सुखयुक्त (सध्र्यञ्चः) साथ जाने वा सत्कार करने और (पायवः) पालन करनेवाले नौकर हैं (ते) वे (निषद्य) निरन्तर स्थित होकर (नः) हम लोगो की (पान्तु) रक्षा करें ॥ १२ ॥

भावार्थ—प्रजाजनो को चाहिए कि सदा ही राजा को उपदेश देवें कि हे राजन् ! आप की ओर से हम लोगों की रक्षा मे धार्मिक आलस्यरहित पुरुषार्थी बलवान् जन नियत हों ॥ १२ ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।

ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥१३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश राजन् ! (ये) जो (पायवः) रक्षा करनेवाले (ते) आपके (मामतेयम्) ममतासम्बन्धी कार्य को (पश्यन्तः) देखते हुए (दुरितात्) दुष्ट आचरण वा दुःख से (अन्धम्) नेत्ररहित को जैसे वैसे हम लोगों की (अरक्षन्) रक्षा करते हैं (तान्) उन (सुकृतः) उत्तम कर्म करने वालों का (विश्ववेदाः) सम्पूर्ण विषय जाननेवाले आप (ररक्ष) पालन करो जिससे (इत्) ही (दिप्सन्तः) पाखण्ड की इच्छा करते हुए (रिपवः) शत्रु लोग हम लोगों के (न, अह) निग्रह करने में न (देभुः) दम्भ करें ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जो लोग अपने के सदृश अन्य जनो और आपके पदार्थ को जानते हैं और अपने आत्मा के सदृश अन्यो की रक्षा करते हैं वे ही यथार्थवक्ता आपके सेवक हों जिससे कि शत्रुओ का बल नष्ट होवे ॥ १३ ॥

फिर प्रकारान्तर से राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

त्वया वयं सधन्यस्त्वोतास्तव प्रणीत्यश्याम वाजान् ।

उभा शंसा सूदय सत्यतातेऽनुष्ठुया कृणुह्यह्रयाण ॥१४॥

पदार्थ—हे (अह्रयाण) लज्जारहित (सत्यताते) सत्य आचरण करने वाले राजन् ! आप (अनुष्ठुया) अनुकूलता से (उभा) दोनो (शंसा) प्रशंसाओं को (कृणुहि) करिये और दोषों का (सूदय) नाश करिये जिससे (त्वया) आपके साथ (त्वोताः) आपने पालन किये और (सधन्यः) तुल्य धनवाले हुए (वयम्) हम लोग (तव) आपकी (प्रणीती) उत्तम नीति से (वाजान्) विज्ञान और धन आदि पदार्थों को (अश्याम) प्राप्त होवें ॥ १४ ॥

भावार्थ—सब नौकरो को चाहिए कि राजा के साथ मित्रता और राजा को चाहिए कि सब लोगों के साथ पिता के सदृश वर्त्ताव रखे और परस्पर एक दूसरे की प्रशंसा कर दोषों का नाश और सत्य नीति का प्रचार करके जिस जिस कर्म्म में लज्जा हो उस उसका त्याग कर चक्रवर्त्ती राज्य का भोग करें ॥ १४ ॥

अया ते अग्ने समिधा विधेम प्रति स्तोमं शस्यमानं गृभाय ।

दहाशसो रक्षसः पाह्यस्मान्द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात् ॥१५॥२८॥४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) राजन् ! हम लोग (ते) आप की (अया) इस प्राप्त हुई (समिधा) उत्तम प्रकार प्रदीप्त नीति के साथ जिस (शस्यमानम्) प्रशंसा करने योग्य प्रशंसित होते हुए को (स्तोमम्) प्रशंसनीय (विधेम) करें उस को आप (प्रति, गृभाय) ग्रहण कीजिये (अशसः) निन्दक (रक्षसः) दुष्टाचरणो को (दह) भस्म कीजिये और (द्रुहः) द्रोह से युक्त (निदः) निन्दा करनेवाले का (अवद्यात्) अधर्माचरण से (मित्रमहः) मित्रो का सत्कार करने वाले (अस्मान्) हम लोगो का (पाहि) पालन कीजिये ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो राजा और मन्त्री जन परस्पर सम्मत हुए नम्रता से राज्य की शिक्षा करते है तो द्वेष निन्दा और अधर्माचरण से अलग होकर उत्तम शिष्टाचार करते हुए दशो दिशाओं मे यश को फैलाते हैं ॥ १५ ॥

इस सूक्त मे राजा और प्रजा के कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह चतुर्थ मण्डल में चतुर्थ सूक्त और तीसरे अष्टक में पच्चीसवां वर्ग और चौथा अध्याय समाप्त हुआ ॥
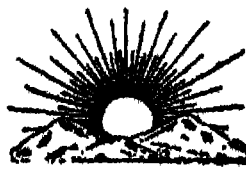
अथ तृतीयाष्टके पञ्चमोऽध्यायः ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१

अथ पञ्चदशर्चस्य पञ्चमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । वैश्वानरो देवता ।
१ विराट् त्रिष्टुप् । २, ४—८, ११ निचृत्त्रिष्टुप् ।
३, ६, ९, १२, १३, १५ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।
१०, १४ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब तृतीयाष्टक में पांचवें अध्याय और चतुर्थ मण्डल में पञ्चम सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि के दृष्टान्त से राजविषय को कहते हैं—

वैश्वानराय मीळ्हुषे सजोषाः कथा दाशेमाग्नये बृहद्भाः ।

अनूनेन बृहता वक्षथेनोप स्तभायदुपमिन्न रोधः ॥१॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो आप (बृहत्) बड़े (भाः) शोभित नापनेवाले और (रोधः) रोकने को (उपमित्) उपमा करता है उस के (न) समान (अनूनेन) न्यूनता से रहित (बृहता) बड़े (वक्षथेन) क्रोध से राज्य को (उप, स्तभायत्) रोके उस (वैश्वानराय) सब में नायक (मीळ्हुषे) सेचन करनेवाले (अग्नये) अग्नि के सदृश वर्त्तमान विद्वान् राजा के लिए (सजोषाः) तुल्य प्रीति के सेवन करनेवाले हम लोग सुख को (कथा) किस प्रकार से (दाशेम) देवें ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग सूर्य और बिजुली के सदृश उत्तम गुणों के प्रकाश करने और जल के रोकनेवाले पदार्थ के सदृश दुष्टों के रोकनेवाले और अपने सदृश सुख दुःख हानि और लाभ को जानते हुए राज्य करते हैं वे दण्ड और न्याय को चला सकते हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

मा निन्दत य इमां मह्यं रातिं देवो ददौ मर्त्याय स्वधावान् ।

पाकाय गृत्सो अमृतो विचेता वैश्वानरो नृतमो यह्वो अग्निः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यः**) जो (**स्वधावान्**) बहुत अन्न आदि ऐश्वर्य्य से युक्त (**अमृतः**) मृत्यु से रहित (**विचेताः**) अनेक प्रकार के अच्छे प्रकार ज्ञात होना वा ज्ञान कराने के प्रकार जिसके ऐसे (**वैश्वानरः**) सम्पूर्ण मनुष्यों में प्रकाशमान (**नृतमः**) अत्यन्त नायक वा मनुष्यों में श्रेष्ठ (**यह्वः**) बड़ा (**सूरः**) उपदेशदाता बुद्धिमान् (**अग्निः**) सूर्य्य के समान (**देवः**) देनेवाला पुरुष (**पाकाय**) परिपक्व व्यवहार वाले (**मर्त्याय, मह्यम्**) मुझ मनुष्य के लिए (**इमाम्**) इस (**रातिम्**) दान को (**ददौ**) देता है उसकी (**मा**) मत (**निन्दत**) निन्दा करो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे राजा और प्रजाजनो ! जो अग्नि आदि के गुणों से युक्त और सबके लिये सुख देनेवाला राजा उत्तम गुणवाला होवे उसकी निन्दा और दुष्ट की प्रशंसा कभी मत करो ॥ २ ॥

अब मेधावी पुरुष को क्या करना चाहिए इस विषय को
अगले मन्त्र में कहते हैं—

साम द्विबर्हा महि तिग्मभृष्टिः सहस्ररेता वृषभस्तुविष्मान् ।
पदं न गोरपगूळ्हं विविद्वानग्निर्मह्यं प्रेदु वोचन्मनीषाम् ॥३॥

पदार्थ—जो (**द्विबर्हाः**) दो अर्थात् विद्या और विनय से वृद्ध (**तिग्मभृष्टिः**) तीव्र परिपाक जिसका ऐसा (**सहस्ररेताः**) परिमाण रहित पराक्रमयुक्त (**वृषभः**) बैल के सदृश श्रेष्ठ (**तुविष्मान्**) बहुत बलयुक्त (**अग्निः**) अग्नि के सदृश तेजस्वी और (**विविद्वान्**) विशेष करके पण्डित (**गोः**) गौ के (**अपगूळ्हम्**) गुप्त (**पदम्**) पैरों के चिह्न के (**न**) सदृश (**मह्यम्**) मुझ जानने की इच्छा करनेवाले के लिए (**मनीषाम्**) बुद्धि और (**महि**) बड़े (**साम**) सिद्धान्तित कर्म को (**प्र, वोचत्**) कहे (**इत्, उ**) फिर वही हम लोगों से सत्कार करने योग्य है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वही श्रेष्ठ विद्वान् है कि जो सब के लिए यथार्थज्ञान करावे । जैसे गौ के पैरों के चिह्न को खोज के गौ को प्राप्त होता है वैसे ही पदार्थविद्या प्राप्त करने योग्य है ॥ ३ ॥

अब सबको सुख करनेवाले राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

प्र ताँ अग्निर्बभसत्तिग्मजम्भस्तपिष्ठेन शोचिषा यः सुराधाः ।
प्र ये मिनन्ति वरुणस्य धाम प्रिया मित्रस्य चेततो ध्रुवाणि ॥४॥

पदार्थ—(**यः**) जो (**अग्निः**) अग्नि के सदृश (**तिग्मजम्भः**) तीक्ष्ण शरीर और शिथिल करनेवाली जम्भवाई वाला (**तपिष्ठेन**) अत्यन्त ताप अर्थात् दीप्तियुक्त (**शोचिषा**) तेज से (**सुराधाः**) उत्तम धन वाले होते हुए (**ये**) जो लोग (**चेततः**) चैतन्य करानेवाले (**वरुणस्य**) श्रेष्ठ (**मित्रस्य**) मित्र के (**प्रिया**) सुन्दर और (**ध्रुवाणि**) निश्चल अर्थात् दृढ़ (**धाम**) जन्म स्थान नामों का (**प्र मिनन्ति**) नाश करते हैं (**तान्**) उनको (**प्र, बभसत्**) तिरस्कार करे वही सब को सुख करनेवाला होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा है । जैसे प्रदीप्त अग्नि प्राप्त हुए शुष्क और गीले पदार्थ को जलाता है वैसे ही जो पुरुष अपने प्रयोजनसाधक स्वार्थी और अन्य पुरुष के सुख नाश करनेवालों को नाश करता है वह प्रशंसित होता है ॥ ४ ॥

अब राजविषय में दण्ड विचार को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः ।
पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता गभीरम् ॥५॥१॥

पदार्थ—जो (**अनृताः**) मिथ्या बोलने और (**असत्याः**) मिथ्या आचरण करनेवाले (**दुरेवाः**) दुष्टव्यसनों से युक्त (**पापासः**) अधर्माचरण करते (**सन्तः**) हुए दुष्ट (**अभ्रातरः**) जैसे बन्धुभिन्न जन (**न**) वैसे और जैसे (**योषणः**) स्त्रियां (**पतिरिपः**) पति की भूमि को (**न**) वैसे (**व्यन्तः**) प्राप्त हुई (**जनयः**) स्त्रियां (**इदम्**) इस (**गभीरम्**) गम्भीर (**पदम्**) स्थान को (**अजनत**) उत्पन्न करती है वे सदा ही ताडन करने योग्य हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जो स्त्री भाई के सदृश अनुकूल नहीं और जो अनुकूल हो तो शत्रु के सदृश विरोध करनेवाली हो और जो घोर पापीजन सब के पीड़ा देनेवाले हों उनका दूर से त्याग करो ॥ ५ ॥

अब अध्यापक विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इदं मे अग्ने कियते पावकामिनते गुरुं भारं न मन्म ।
बृहद्दधाथ धृषता गभीरं यह्वं पृष्ठं प्रयसा सप्तधातु ॥६॥

पदार्थ—हे (**पावक**) पवित्र करनेवाले (**अग्ने**) अग्नि के सदृश वर्त्तमान आप (**कियते**) थोड़े सामर्थ्य से युक्त (**अमिनते**) नहीं हिंसा करनेवाले (**मे**) मेरे लिए (**गुरुम्**) बड़े (**भारम्**) भार के (**न**) सदृश (**मन्म**) विज्ञान को तथा (**धृषता**) ढीठ और (**प्रयसा**) प्रसन्नता के साथ (**इदम्**) इस (**बृहत्**) बढ़ानेवाले (**गभीरम्**) गम्भीर (**पृष्ठम्**) पूछने योग्य (**यह्वम्**) बड़े (**सप्तधातु**) सुवर्ण आदि सातों धातु जिस में ऐसे धन को (**दधाथ**) धारण कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो अल्पज्ञ और विद्यार्थी जन ज्ञानी विद्वान् के समीप से विज्ञान और धन के साधन की कामना करते हैं वे विद्वान् होते हैं ॥ ६ ॥

अब विवाहविषय से उपदेशविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तमिन्न्वेव समना समानमभि क्रत्वा पुनती धीतिरश्याः ।
ससस्य चर्मन्नधि चारु पृश्नेरग्रे रुप आरुपितं जबारु ॥७॥

पदार्थ—हे कन्ये ! जिस (**ससस्य**) शयन करते हुए के (**चर्मन्**) चमड़े में (**चारु**) सुन्दर (**जबारु**) वेग करता हुआ वा आरूढ (**आरुपितम्**) आरोपण किया गया वा जो (**पृश्नेः**) अन्तरिक्ष के (**अभि**) सब ओर है उसके (**अग्रे**) आगे (**अधि, रुपः**) अधिरोपण करनेवाले को (**क्रत्वा**) उत्तम बुद्धि से (**पुनती**) पिता के सम्बन्ध से पवित्र करती हुई (**धीतिः**) उत्तम गुणों के धारण करनेवाली (**समना**) तुल्य हुई (**तम्, इत्**) उसी (**समानम्**) समान पति को (**नु, एव**) शीघ्र ही (**अश्याः**) प्राप्त हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो कन्या अपने समान वर और ब्रह्मचारी अपने तुल्य कन्या के साथ विवाह करे तो अन्तरिक्ष के मध्य में ईश्वर से स्थापित सूर्य्य चन्द्रमा और नक्षत्रों के तुल्य शोभित होते हैं ॥ ७ ॥

अब प्रकाशक विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

प्रवाच्यं वचसः किं मे अस्य गुहा हितमुप निणिग्वदन्ति ।
यदुस्रियाणामप वारिव व्रन्पाति प्रियं रुपो अग्रं पदं वेः ॥८॥

पदार्थ—जो (**मे**) मेरे और (**अस्य**) इस जन के (**वचसः**) वचन के सम्बन्ध में (**गुहा**) बुद्धि में (**हितम्**) स्थित (**प्रवाच्यम्**) प्रकर्षता से कहने योग्य (**निणिक्**) अत्यन्त शुद्ध करनेवाले को (**किम्**) क्या (**उप, वदन्ति**) समीप में कहते हैं (**यत्**) जो (**उस्रियाणाम्**) गौओं के (**वाः**) जल के सदृश वा (**वेः**) पक्षी के (**अग्रम्**) ऊंचे (**पदम्**) स्थान के सदृश (**रुपः**) पृथिवी के (**प्रियम्**) सुन्दर भाग को (**अप, व्रन्**) घेरता है कौन इन दोनों को (**पाति**) पालन करता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! मेरी और इस जन को बुद्धि में वर्त्तमान चेतन क्या और कैसा है जो पशुओं के पालन करनेवाला जल के सदृश रक्षा करता और सबसे प्रिय देख पड़ता है । जो आकाश में पक्षी के पैर के सदृश गुप्त है उस के विज्ञान के लिये हम लोगों के प्रति आप लोग क्या कहते हो ॥ ८ ॥

अब समाधाता के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

इदमु त्यन्महि महामनीकं यदुस्रिया सचत पूर्व्यं गौः ।
ऋतस्य पदे अधि दीद्यानं गुहा रघुष्यद्रघुयद्विवेद ॥९॥

पदार्थ—हे जिज्ञासुजनो ! (**यत्**) जो (**महाम्**) बड़ों की (**अनीकम्**) सेना के सदृश (**महि**) बड़ा वा (**ऋतस्य**) सत्य के (**पदे**) स्थान में जो (**दीद्यानम्**) प्रकाशित होता हुआ विद्यमान है उस को (**गुहा**) बुद्धि में (**रघुष्यत्**) शीघ्र हिलते हुए के समान (**पूर्व्यम्**) पूर्वजनों से उत्पन्न किये गये के समान (**रघुयत्**) शीघ्र जानेवाली (**विवेद**) जानती है (**त्यत्, इदम्, उ**) उस ही (**उस्रिया**) दुग्ध आदि की देनेवाली (**गौः**) गौ के सदृश (**अधि**) अधिक आप लोग (**सचत**) प्राप्त हूजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे श्रोताजनो ! जो बुद्धि की प्रेरणा करने मन्द और शीघ्र चलनेवाला सत्य परमेश्वर के मध्य में प्रकाशमान बलिष्ठ वाज पक्षी के सदृश पराक्रम वाले बछड़े को सुख देती हुई गौ के सदृश सुख देनेवाला वस्तु है वही आप लोगों का स्वरूप है ॥ ९ ॥

अध द्युतानः पित्रोः सचासामनुत गुह्यं चारु पृश्नेः ।
मातुष्पदे परमे अन्ति षद्गोर्वृष्णः शोचिषः प्रयतस्य जिह्वा ॥१०॥२॥

पदार्थ—हे जिज्ञासुजनो ! (**अध**) इस के अनन्तर जो (**पित्रोः**) माता और पिता की उत्तेजना से (**द्युतानः**) प्रकाशमान (**सचा**) सत्य (**आसा**) मुख से (**परमे**) उत्तम (**मातुः**) माता के सदृश वर्त्तमान के (**पदे**) प्राप्त होने योग्य स्थान में (**अन्ति**) समीप (**सत्**) वर्त्तमान (**गोः**) गौ और (**वृष्णः**) वृष्टि करनेवाले के सदृश (**शोचिषः**) प्रकाशमान (**प्रयतस्य**) प्रयत्न करते हुए की (**जिह्वा**) वाणी के सदृश जो (**पृश्नेः**) अन्तरिक्ष के मध्य में (**चारु**) सुन्दर (**गुह्यम्**) गुप्त है उस जीवस्वरूप को (**अमनुत**) जानिये ॥ १० ॥

भावार्थ—जैसे अन्तरिक्ष और पृथिवी के मध्य में वर्त्तमान सूर्य्य उत्तम प्रकार शोभित है और जैसे विद्वान् की वाणी विद्या का प्रकाश करनेवाली है और जैसे अन्तरिक्ष किसी से भी दूर नहीं है वैसे ही उत्तम अपना आत्मारूप वस्तु और परमात्मा समीप में वर्त्तमान है ऐसा जानना चाहिये ॥ १० ॥

ऋतं वोचे नमसा पृच्छ्यमानस्तवाशसा जातवेदो यदीदम् ।
त्वमस्य क्षयसि यद्ध विश्वं दिवि यदु द्रविणं यत्पृथिव्याम् ॥११॥

पदार्थ—हे (**जातवेदः**) ज्ञान से विशिष्ट (**यदि**) यदि आप (**यत्**) जो (**ह**) निश्चयकर (**दिवि**) प्रकाशमान परमात्मा वा सूर्य्य में (**विश्वम्**) सम्पूर्ण

(द्रविणम्) द्रव्य और (यत्) जो (पृथिव्याम्) पृथिवी में (यत्) जो (च) और वायु आदि में वर्त्तमान है और जिसमें (त्वम्) आप (असि) रहते हो उस (अस्य) इन (तव) आपके (आशसा) सब प्रकार प्रशंसित (नमसा) सत्कार से (पृच्छ्यमान) पूछा गया मैं जो (इदम्) इस (ऋतम्) सत्य को आपके प्रति (वोचे) कहूँ वा उपदेश करू ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो ब्रह्म सब स्थान में व्याप्त है और जिसमें सम्पूर्ण पदार्थ बसते हैं उस सत्यस्वरूप का आप लोगो के प्रति मैं उपदेश करता हूँ उसी की उपासना करो ॥ ११ ॥

फिर प्रश्नक विषय को अगले मन्त्रों मे कहते हैं—

किं नो अस्य द्रविणं कद्ध रत्नं वि नो वोचो जातवेदश्चिकित्वान् ।

गुहाध्वनः परमं यन्नो अस्य रेकु पदं न निदाना अगन्म ॥१२॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) विद्यायुक्त (चिकित्वान्) विचारशील आप (अस्य) इस ससार में (नः) हम लोगो का (किम्) क्या (द्रविणम्) यश और (किम्) क्या (रत्नम्) धन है ऐसा (नः) हम लोगो को (कत्, ह) कभी (वि, वोचः) उपदेश कीजिये (यत्) जो (गुहा) बुद्धि के (अध्वनः) मार्ग के (परमम्) उत्तम प्राप्त होने योग्य को प्राप्त हुए (नः) हम लोगो को (रेकु) शङ्कायुक्त (पदम्) प्राप्त होने योग्य स्थान के (न) तुल्य (न) हम लोगों की (निदाना) निन्दा करते हुए (अस्य) इस ससार के मध्य में हो उन को त्याग के (अगन्म) प्राप्त हुए वह क्या है ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! हम लोगो मे क्या यश क्या सुन्दर वस्तु और कौन लोग हम लोगों की निन्दा करनेवाले और क्या शङ्का करने योग्य वस्तु और क्या प्राप्त होने योग्य स्थान है इन के उत्तर कहो ॥ १२ ॥

का मर्यादा वयुना कद्ध वाममच्छा गमेम रघवो न वाजम् ।

कदा नो देवीरमृतस्य पत्नीः सूरो वर्णेन ततनन्नुषासः ॥१३॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (नः) हम लोगो की (का) कौन (मर्यादा) प्रतिष्ठा और कौन (वयुना) कर्म्म हम लोग (रघवः) शीघ्र करनेवाली के (वाजम्) विज्ञान और (वामम्) उत्तम वस्तु को (कत् ह) कभी (अच्छ) उत्तम प्रकार (गमेम) प्राप्त होवें और (कदा) कब (सूरः) सूर्य्य (अमृतस्य) नाशरहित काल की (देवी) प्रकाशमान (पत्नीः) स्त्रियो के सदृश वर्त्तमान (उषासः) प्रातर्वेलाओ के (न) सदृश आप (वर्णेन) तेज से (ततनन्) विस्तृत करेंगे ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । मनुष्य लोग यथार्थवादी विद्वान् से मनुष्य के करने योग्य कर्म्मों और प्राप्त होने योग्य स्थान को पूछें कि आप सूर्य्य मे प्रातःकाल के सदृश हम लोगो को कब विद्वान् करोगे ऐसा पूछें ॥ १३ ॥

अब समाधाता के विषय को अगले मन्त्रों मे कहते हैं—

अनिरेण वचसा फल्ग्वेन प्रतीत्येन कृधुनातृपासः ।

अधा ते अग्ने किमिहा वदन्त्यनायुधास आसता सचन्ताम् ॥१४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! जो (अनिरेण) नही रमने योग्य (प्रतीत्येन) प्रतीति मे प्रसिद्ध हुए (फल्ग्वेन) बडे (कृधुना) छोटे (वचसा) वचन से (अतृपासः) अतृप्त होते हुए (आसता) नही वर्त्तमान बल आदि से (अनायुधासः) विना शस्त्र अस्त्र वालो के सदृश (इह) इस ससार वा इस जन्म में (किम्) क्या (वदन्ति) कहते है (अध) इसके अनन्तर (ते) आपके लिए किसे (सचन्ताम्) प्राप्त होवें इसका उत्तर कहिये ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो श्रोता लोग उपदेश से उत्तर को प्राप्त हुए सन्तुष्ट न होवें वे तब तक पूछें जब कि समाधान को प्राप्त होवें तब उस कर्म का आरम्भ करें ॥१४॥

अस्य श्रिये समिधानस्य वृष्णो वसोरनीकं दम आ रुरोच ।

रुशद्वसानः सुदृशीकरूपः क्षितिर्न राया पुरुवारो अद्यौत् ॥१५॥३॥

पदार्थ—जो (रुशत्) सुन्दर रूप को (वसानः) प्राप्त (सुदृशीकरूपः) उत्तम प्रकार देखने योग्य स्वरूप से युक्त (पुरुवारः) सब से स्वीकार करने योग्य स्वरूप से शोभित तथा (राया) धन से (क्षितिः) पृथिवी के (न) समान (अद्यौत्) प्रकाशित होता है जिस (समिधानस्य) प्रकाशमान (वृष्णः) बलिष्ठ (वसोः) बसानेवाले राजा के (दमे) गृह मे (श्रिये) शोभा वा लक्ष्मी के लिए (अनीकम्) सेना (आ) सब प्रकार (रुरोच) सुन्दर है उस सेना के और (अस्य) इस वर्त्तमान राजा के सम्पूर्ण समाधान और सुख होते हैं ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो अच्छे रूपवान् पृथिवी के सदृश क्षमा आदि गुण वाले और प्रतिष्ठित चक्रवर्ती राजाओं की लक्ष्मी से शोभित हुए उत्तम प्रकार शिक्षित बडी बलवती बडी सेना को बढाते है उनका ही चक्रवर्ती राज्य सभावित होता है औरों का नहीं ॥ १५ ॥

इस सूक्त में बुद्धिमान् राजा अध्यापक उपदेशक प्रश्नकर्त्ता और समाधानकर्त्ता के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ।

यह पाँचवाँ सूक्त और तीसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

अथैकादशर्चस्य षष्ठस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । १, ३, ५, ८, ११ विराट् त्रिष्टुप् । ७ निचृत्त्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २, ४, ९ भुरिक् पङ्क्तिः । ६ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

अब ग्यारह ऋचा वाले छठे सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के विषय को कहते हैं—

ऊर्ध्व ऊ षु णो अध्वरस्य होतरग्ने तिष्ठ देवताता यजीयान् ।

त्वं हि विश्वमभ्यसि मन्म प्र वेधसश्चित्तिरसि मनीषाम् ॥१॥

पदार्थ—हे (होतः) दानकर्त्ता (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्वान् (हि) जिससे (त्वम्) आप (देवताता) विद्वानो की पंक्ति में (यजीयान्) अत्यन्त यजन करनेवाले (नः) हम लोगो के (अध्वरस्य) नही हिंसा करने योग्य धर्मयुक्त व्यवहार के (ऊर्ध्वः) ऊपर अधिष्ठाताजन (वेधसः) बुद्धिमान् विद्वान् के सम्बन्ध मे (विश्वम्) सम्पूर्ण जगत् और (मन्म) विज्ञान के (अभि) सम्मुख (असि) होते और (मनीषाम्, चित्) उत्तम बुद्धि ही के (तिरसि) पार होते हो (उ, सु, प्र तिष्ठ) सो ही स्थित हूजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो लोग विद्वानो के समीप से विद्याओं को प्राप्त होकर सब के रक्षा करने और बुद्धि देनेवाले होवें उन्ही लोगो की प्रतिष्ठा करो ॥ १ ॥

अब विद्वानों के कर्त्तव्य को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अमूरो होता न्यसादि विक्ष्वग्निर्मन्द्रो विदथेषु प्रचेताः ।

ऊर्ध्वं भानुं सवितेवाश्रेन्मेतेव धूमं स्तभायदुप द्याम् ॥२॥

पदार्थ—मनुष्यो को चाहिये कि जो (अमूरः) मूर्खपन से रहित विद्वान् जन होता हुआ (होता) ग्रहण करनेवाला (विक्षु) प्रजाओ और (विदथेषु) सग्रामों मे (अग्निः) अग्नि के सदृश (मन्द्रः) आनन्द देने वाला (प्रचेताः) बुद्धिमान् वा बुद्धिदाता (द्याम्) प्रकाश और (ऊर्ध्वम्) ऊपर वर्त्तमान (भानुम्) किरण को (सवितेव) सूर्य्य के सदृश (धूमम्) धुए को (मेतेव) यथार्थ ज्ञानवाले के सदृश (स्तभायत्) रोकता है न्याय का (अश्रेत्) आश्रय करे वही राज्य कर्म्म मे (उप, नि, असादि) स्थित होवे तो बहुत सुख को प्राप्त होवे ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य्य के सदृश प्रतापी अग्नि के सदृश दुष्टो के दाहक और न्याय और नम्रता से प्रजाओं मे चन्द्रमा के सदृश सग्राम में जीतने वाले राजा को सस्थापित करें तो कभी दुःख को न प्राप्त होवें ॥ २ ॥

यता सुजूर्णी रातिनी घृताची प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः ।

उदु स्वरुर्नवजा नाक्रः पश्वो अनक्ति सुधितः सुमेकः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (सुजूर्णिः) उत्तम प्रकार शीघ्रता करनेवाली (यता) प्राप्त (रातिनी) बहुत देने वाले जिसके ऐसी (प्रदक्षिणित्) दहिनी ओर प्राप्त होने वाली (घृताची) रात्रि (देवतातिम्) श्रेष्ठगुणो से युक्त वेला को (उत्, अनक्ति) शोभा करती है और जैसे उसको (उराणः) बहुतो को जिलाने वाला (सुधितः) उत्तम धारण किये हुए (सुमेकः) सुन्दर प्रकाशमान (नाक्रः) नही किञ्चित् चलने वाला किन्तु वेग मे जाने वाला (नवजाः) नवीनो मे उत्पन्न सूर्य्य (स्वरुः) उपदेश देनेवाले के (न) समान शोभा करता है वैसे विद्वान् वर्त्ताव करें (उ) और वह (पश्वः) पशुओ की न हिंसा न करे ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । उपदेशक लोग रात्रि और दिन में सब के करने योग्य सेवा का उपदेश देवें जिससे कि शयन जागरण आदि से युक्त आहार और विहारों को करके अपने हितो को सिद्ध करनेवाले होवें ॥ ३ ॥

स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्ना ऊर्ध्वो अध्वर्युर्जुजुषाणो अस्थात् ।

पर्यग्निः पशुपा न होता त्रिविष्ट्येति प्रदिव उराणः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (समिधाने) प्रदीप्त (बर्हिषि) अन्तरिक्ष मे वा (स्तीर्णे) आच्छादित (अग्ना) सूर्य्यरूप अग्नि मे (उराणः) बहुत कार्य्य करता हुआ (ऊर्ध्वः) उत्तम (अग्निः) सूर्य्याग्नि (परि, अस्थात्) सब ओर से स्थित हो वा (त्रिविष्टि) आकाश मे (प्र, दिवः) उत्तम प्रकाशो को (एति) प्राप्त होता है (पशुपाः) पशुओ की रक्षा करनेवाले के (न) सदृश (होता) यज्ञ कराने वाला है वैसे ही (जुजुषाणः) सेवा करते हुए (अध्वर्युः) अपने को अहिंसनीय व्यवहार की इच्छा करनेवाले वर्त्ताव करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग अहिंसा आदि कर्म्मों को कर और विद्वान् होकर परोपकारी हो वे अन्तरिक्ष मे सूर्य्य के सदृश उत्तम प्रकार प्रकाशित होवें ॥ ४ ॥

अब ईश्वरविषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

परि त्मना मितद्रुरेति होताग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ।
द्रवन्त्यस्य वाजिनो न शोका भयन्ते विश्वा भुवना यदभ्राट् ॥५॥४॥

पदार्थ—जैसे (**अस्य**) इस सूर्य के (**वाजिन**) घोडे के (**न**) तुल्य (**शोका**) प्रकाश (**द्रवन्ति**) दौडते हैं जो (**अभ्राट्**) दीप्त होता है (**यत्**) जिससे (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**भुवना**) जीवो के ठहरने के अधिकरण लोकलोकान्तर (**भयन्ते**) कपते हैं उस प्रकार वर्त्तमान जो पुरुष (**ऋतावा**) सत्य का विभाग करनेवाला (**मधुवचा**) मधुरवाणी युक्त (**अग्नि**) अग्नि के सदृश (**होता**) यज्ञ करने वाला (**मन्द्र**) आनन्ददाता वा आनन्दित (**मितद्रु**) परिमाणपूर्वक चलने वाला (**त्मना**) अपने से (**परि एति**) प्राप्त होता है, वह सब सुख को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जिस परमात्मा का सब जगह प्रकाश और जिससे सब डरते हैं उसके विज्ञान के लिए सत्य का आचरण और योगाभ्यास सबको करना चाहिये ॥ ५ ॥

अब ईश्वरता लेकर राजगुणो को अगले मन्त्र में कहते हैं

भद्रा ते अग्ने स्वनीक संदृग्घोरस्य सतो विषुणस्य चारुः
न यत्ते शोचिस्तमसा वरन्त न ध्वस्मानस्तन्वी रेप आ धुः ॥६॥

पदार्थ—हे (**स्वनीक**) उत्तम सेनायुक्त ! (**अग्ने**) बिजुली के समान वर्त्तमान जो (**ते**) आप की (**घोरस्य**) दुष्ट (**सत**) श्रेष्ठ पुरुष की तथा (**विषुणस्य**) विषम की (**चारु**) सुन्दर (**भद्रा**) कल्याण करनेवाली (**संदृक्**) समान दृष्टि है (**यत्**) जो (**ते**) आपका (**शोचि**) प्रकाश (**तमसा**) रात्रि से (**ध्वस्मान**) नाश करनेवाले शत्रु (**न**) नहीं (**वरन्त**) निवारण करते हैं जो आपकी (**तन्वि**) विस्तीर्ण नीति उससे (**रेप**) अपराध (**न**) नहीं (आ, धु) सब प्रकार धारण करे वह आप हम लोगो के राजा हूजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—जिस राजा की पक्षपातरहित प्रवृत्ति और जिसकी विस्तीर्ण नीति अविच्छिन्न वर्त्तमान है उसके राज्य मे कोई भी अपराध करने की इच्छा न करे ॥६॥

अब ईश्वर भाव मे माता पिता के सेवाधर्म को अगले मन्त्र मे कहते है—

न यस्य सातुर्जनितोरवारि न मातरापितरा नू चिदिष्टौ ।
अधा मित्रो न सुधितः पावको३ग्निर्दीदाय मानुषीषु विक्षु ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यस्य**) जिस (**सातु**) सत्य और असत्य के विभाग करनेवाले के (**जनितो**) माता और पिता का प्रिय (**न**) नहीं (**अवारि**) स्वीकार किया जाता है और (**चित्**) जिसके (**मातरापितरा**) माता और पिता (**इष्टौ**) पूजा करने योग्य (**न**) नहीं स्वीकार किये जाते हैं वह दुःखी होता (**अधा**) इसके अनन्तर जिसके माता और पिता सत्कृत होवें (**सुधित**) वह उत्तम प्रकार हितकारी (**मित्र**) मित्र के (**न**) और (**अग्नि**) अग्नि के सदृश (**पावक**) पवित्र (**मानुषीषु**) मनुष्यसम्बन्धिनी (**विक्षु**) प्रजाओ मे (**नु, दीदाय**) शीघ्र प्रकाशित होता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जिस पुत्र के विद्यमान रहने पर माता और पिता को दुःख होता और सत्कार नहीं होता है वह भाग्यहीन निरन्तर पीडित होता है और जिस पुत्र की उत्तम सेवा मे माता पिता प्रसन्न होते हैं उसकी प्रजाओ मे प्रशसा और उसको सुख होता है ॥ ७ ॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र मे कहते है—

द्विर्यं पञ्च जीजनन्त्संवसानाः स्वसारो अग्निं मानुषीषु विक्षु ।
उषर्बुधमथर्यो३ न दन्तं शुक्रं स्वासं परशुं न तिग्मम् ॥८॥

पदार्थ—जो विद्वान् लोग (**मानुषीषु**) मनुष्यसम्बन्धिनी (**विक्षु**) प्रजाओ मे (**अग्निम्**) अग्नि को (**संवसाना**) उत्तम प्रकार आच्छादन करनेवाले जैसे (**पञ्च**) पाँच (**स्वसार**) अगुलियो वा (**अथर्य**) नहीं हिंसित स्त्रियाँ (**शुक्रम्**) शुद्ध (**दन्तम्**) दाँत और (**स्वासम्**) सुन्दर मुख को (**न**) वैसे और जैसे (**तिग्मम्**) तीव्र (**परशुम्**) कुठार को (**न**) वैसे (**यम्**) जिस (**उषर्बुधम्**) प्रातःकाल मे जागनेवाले को (**द्वि**) दो वार (**जीजनम्**) उत्पन्न करते हैं वे सम्पूर्ण कार्य्य को सिद्ध कर सकें ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जैसे अगुलियो से सम्पूर्ण कार्य्य सिद्ध होते हैं वैसे ही रात्रि के पिछले प्रहर मे उठ के प्रजाओ के हित को सिद्ध करो। तीक्ष्ण कुठार के सदृश वृक्षो को काट के युवावस्थाविशिष्ट स्त्रियाँ शुद्ध मुख और दाँत को करती उनके सदृश प्रजाओ को शुद्ध कर और सुख देकर द्विजों को विद्या के जन्म से युक्त करो ॥ ८ ॥

अब प्रजा के ईश्वर विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

तव त्ये अग्ने हरितो घृतस्ना रोहितास ऋज्वञ्चः स्वञ्चः ।
अरुषासो वृषण ऋजुमुष्का आ देवतातिमह्वन्त दस्माः ॥९॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) राजन् ! जो (**तव**) आपकी (**रोहितासः**) बढ़ाने वाली (**घृतस्नाः**) जिनसे घृत वा जल शुद्ध और (**ऋज्वञ्चः**) सीधा सत्कार करते तथा (**स्वञ्चः**) उत्तम प्रकार चलते वा प्राप्त होते हैं वह (**हरितः**) अगुली (**वृषण**) बलिष्ठ (**ऋजुमुष्का**) सरल मार्ग को चलनेवाले (**दस्माः**) दुःख के नाशकर्त्ता (**अरुषास**) उत्तम प्रकार शिक्षित घोडो के सदृश (**देवतातिम्**) विद्वानो को (**आ, अह्वन्त**) बुलाते और जो इनसे कर्म्मों को करना जानते हैं वह अगुली और (**त्ये**) वे मनुष्य आपको सम्प्रयुक्त करने योग्य है ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग घोडो के सदृश अपनी अगुलियो से कर्म्मों को करके ऐश्वर्य्य की वृद्धि करते हैं वे दुःखो से रहित होते हैं ॥ ९ ॥

ये ह त्ये ते सहमाना अयासस्त्वेषासो अग्ने अर्चयश्चरन्ति ।
श्येनासो न दुवसनासो अर्थं तुविष्वणसो मारुतं न शर्धः ॥१०॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के सदृश वर्त्तमान ! (**ये**) जो लोग (**ते**) आपके (**सहमाना**) सुख दुःख आदि व्यवहारो के सहनेवाले (**अयास**) विज्ञान को प्राप्त (**त्वेषास**) प्रकाशमान (**श्येनास**) और बाजपक्षी के सदृश शीघ्र चलनेवाले घोडो के (**न**) सदृश (**दुवसनासः**) ले चलने और (**तुविष्वणस**) बलो के मांगने वाले (**मारुतम्**) पवनसम्बन्धी (**शर्धः**) बल को (**न**) जैसे (**अर्चयः**) उत्तम क्रिया वैसे (**अर्थम्**) द्रव्य को (**चरन्ति**) प्राप्त होते हैं (**त्ये**) वे (**ह**) ही अन्य जन आपको सत्कार करने योग्य होते है ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो लोग क्षमा से युक्त धर्म्म सम्बन्धी कर्म्म के आचरण से प्रकाशमान उत्तम यशवाले घोडे के सदृश कार्य्यकर्त्ता और बलवान् हो वे सत्कार करने योग्य होवें ॥ १० ॥

अकारि ब्रह्म समिधान तुभ्यं शंसात्युक्थं यजते व्यू धाः ।
होतारमग्निं मनुषो नि षेदुर्नमस्यन्त उशिजः शंसमायोः ॥११॥६॥

पदार्थ—हे (**समिधान**) प्रकाशमान विद्वन् ! जो (**नमस्यन्तः**) नम्रता और (**उशिजः**) कामना करते हुए (**मनुष**) मनुष्य (**आयो**) जीवन की (**शंसम्**) प्रशसा को और (**होतारम्**) देनेवाले को (**अग्निम्**) अग्नि के सदृश (**नि, सेदु**) प्राप्त होते हैं और जो (**तुभ्यम्**) आपके लिए (**उक्थम्**) स्तुति करने योग्य (**ब्रह्म**) बडे धन की (**शंसाति**) प्रशसा करे (**यजते**) तथा विशेषता ही से मिलते हुए के लिए जिनसे आपने ऐश्वर्य्य (**अकारि**) किया उनको (**वि, उ, धा**) धारण कीजिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् वा राजन् ! जो आपके लिए ऐश्वर्य्य की कामना करते हुए परमेश्वर और विद्वानो को नमस्कार करते हैं वे निरन्तर प्रशसित होते हैं ॥११॥

इस सूक्त मे विद्वान् और ईश्वर के गुण वर्णन करने से इसके अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह छठवां सूक्त और पाँचवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथैकादशर्चस्य सप्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । १ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७, १०, ११ त्रिष्टुप् । ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ३ निचृदनुष्टुप् । ४ अनुष्टुप् छन्दः । ५ विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब एकादश ऋचा वाले सप्तम सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में सर्वगत अग्निशब्दार्थवाच्य व्यापक परमेश्वर के विषय को कहते हैं—

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**इह**) इस ससार मे (**धातृभि**) धारण करने वालो से जो (**अयम्**) यह (**प्रथमः**) पहिला (**होता**) देने और (**यजिष्ठः**) अत्यन्त मेल करनेवाला (**अध्वरेषु**) नहीं हिंसा करने योग्य यज्ञो मे (**ईड्य**) स्तुति करने योग्य (**धायि**) धारण किया गया जिसको (**विशेविशे**) प्रजा प्रजा के लिए (**यम्**) जिस (**चित्रम्**) अद्भुत (**विभ्वम्**) व्यापक परमात्मा को (**अप्नवानः**) पुत्र और पौत्रादिको से युक्त (**भृगव**) परिपक्व विज्ञान वाले लोग (**वनेषु**) याचना करने योग्य जगलो मे (**विरुरुचुः**) विशेष करके प्रकाशित करते अर्थात् अपने चित्त मे रमाते हैं उस परमात्मा का आप लोग ध्यान करो ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! इस ससार मे परमेश्वर ही का आप लोगों को ध्यान करना योग्य है और जिसकी उपासना करके सासारिक और परमार्थिक सुख को प्राप्त होओगे वही ईश्वर इस ससार मे पूजा करने योग्य जानना चाहिये ।

फिर अग्निपदवाच्य ईश्वर विषय को अगले मन्त्रों में कहते है—

अग्ने कदा त आनुषग्भुवद्देवस्य चेतनम् ।
अधा हि त्वा जगृभ्रिरे मर्त्तासो विक्ष्वीड्यम् ॥२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) परमात्मन् ! (देवस्य) सुख देनेवाले और सर्वत्र प्रकाशमान (ते) आप के मनुष्य (कदा) किस काल में (आनुषक्) अनुकूल (भुवत्) हों (अधा) इसके अनन्तर (मर्तासः) मनुष्य लोग (हि) निश्चय से (विक्षु) मनुष्यरूप प्रजाओं में (ईड्यम्) स्तुति करने योग्य (चेतनम्) अनन्त विज्ञान आदि से युक्त (त्वा) आप को कब (जगृभ्रिरे) ग्रहण करें ऐसी हम लोग इच्छा करें ॥ २ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम लोग आपकी निरन्तर प्रार्थना करें और आप की कृपा से ये सब मनुष्य आपके भक्त, आपकी आज्ञा के अनुकूल और आप के उपासक कब होंगे ? हे कृपालो अन्तर्यामिन् ! दया करके सबको अपने में प्रीतिमान् शीघ्र करो ॥ २ ॥

ऋतावानं विचेतसं पश्यन्तो द्यामिव स्तृभिः ।

विश्वेषामध्वराणां हस्कर्तारं दमेदमे ॥३॥

पदार्थ—जो मनुष्य लोग (विश्वेषाम्) सम्पूर्ण (अध्वराणाम्) नहीं हिंसा करने योग्य यज्ञों के (स्तृभिः) नक्षत्रों से (द्यामिव) सूर्य्य के सदृश (दमेदमे) घर-घर में (हस्कर्त्तारम्) प्रकाश करनेवाले (विचेतसम्) जिस से विगतचित्त होता (ऋतावानम्) जिसमें सत्य विद्यमान उसको (पश्यन्तः) देखते हुए ग्रहण करे हुए हैं वे उत्तम प्रकार शोभित होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जो लोग चेतनारहित कारण से युक्त प्रत्येक गृह के प्रकाश करनेवाले को जानते हैं वे सूर्य के प्रकाश में चन्द्र आदिकों के सदृश संसार में प्रकाशित होते हैं ॥ ३ ॥

अब अग्निविषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

आशुं दूतं विवस्वतो विश्वा यश्चर्षणीरभि ।

आ जभ्रुः केतुमायवो भृगवाणं विशेविशे ॥४॥

पदार्थ—(यः) जो विद्वान् (विवस्वतः) सूर्य से (दूतम्) दूत के सदृश (आशुम्) शीघ्र चलने और (विशेविशे) प्रजा के निमित्त (भृगवाणम्) परिपाक के करनेवाले को जैसे (आयवः) ज्ञानवान् मनुष्य (विश्वाः) सम्पूर्ण (चर्षणीः) प्रकाशों और (केतुम्) प्रज्ञान को (अभि, आ, जभ्रुः) धारण करते हैं वैसे धारण करता है वह सम्पूर्ण आनन्दों से युक्त होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सूर्य आदि से बिजुली आदि पदार्थ को ग्रहण करते हैं वे प्रजा के लिए सुख देनेवाले होते हैं ॥ ४ ॥

तमीं होतारमानुषक् चिकित्वांसं नि षेदिरे ।

रण्वं पावकशोचिषं यजिष्ठं सप्त धामभिः ॥५॥६॥

पदार्थ—जो लोग (तम्) उसको अग्नि के सदृश (आनुषक्) अनुकूलता में (होतारम्) ग्रहण करनेवाले (चिकित्वांसम्) विद्वान् (रण्वम्) सुन्दर (सप्त) सात प्राण आदि (धामभिः) स्थानों से (पावकशोचिषम्) अग्नि के तेज के सदृश तेज से युक्त (यजिष्ठम्) अत्यन्त मेल करनेवाले को (ईम्) सब प्रकार से (नि, षेदिरे) प्राप्त होते हैं वे राज्य और ऐश्वर्य से युक्त होते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो लोग बिजुलीरूप अग्नि को सब पदार्थों से निकालना जानते हैं वे अत्यन्त सुखी होते हैं ॥ ५ ॥

तं शश्वतीषु मातृषु वन आ वीतमश्रितम् ।

चित्रं सन्तं गुहा हितं सुवेदं कूचिदर्थिनम् ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! आप लोग (शश्वतीषु) अनादिकाल से वर्त्तमान (मातृषु) आकाश आदि पदार्थों में और (वने) किरण में (सन्तम्) विद्यमान (गुहा) बुद्धि में (हितम्) स्थित (सुवेदम्) उत्तम विज्ञान जिसका (कूचिदर्थिनम्) जो कहीं बहुत अर्थों से युक्त (अश्रितम्) और नहीं सेवन किया गया (आ, वीतम्) व्याप्त (तम्) उस (चित्रम्) अद्भुत गुण कर्म स्वभाववाले बिजुली नामक अग्नि को जान के कार्यों को सिद्ध करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सर्व पदार्थों में अलग ही अलग वर्त्तमान अग्नि को तत्त्व से जानते हैं, वे सब काम साध सकते हैं ॥ ६ ॥

फिर अग्निविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

ससस्य यद्वियुता सस्मिन्नूधन्नृतस्य धामन्रणयन्त देवाः ।

महाँ अग्निर्नमसा रातहव्यो वेरध्वराय सदमिदृतावा ॥७॥

पदार्थ—जो (देवाः) विद्वान् लोग (नमसा) पृथिवी आदि अन्न के साथ वर्त्तमान (रातहव्यः) जिसने ग्रहण करने योग्य पदार्थ दिया (ऋतावा) जो जल का विभाग करनेवाला (महान्) महान् (अग्निः) बिजुली रूप अग्नि (वेः) पक्षी के सदृश (सदम्) प्राप्त होने योग्य स्थान को प्राप्त कराता है (यत्) जिस अग्नि में (सस्मिन्) सब (ऊधन्) अवयव में और (ऋतस्य) सत्य के (धामन्) स्थान में (ससस्य) स्वप्नसम्बन्ध से (वियुता) वियुक्त अर्थात् बिना स्वप्न वस्तुएँ (रणयन्त) शब्द करती हैं उसको (अध्वराय) अहिंसनीय व्यवहार के लिए (इत्) जानते ही हैं वे सत्य के जाननेवाले होते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे बुद्धिमान् पुरुषो ! जो अग्नि शरीर आदि में और निद्रा में प्रसिद्ध होता है वह बड़ा होने से सर्वत्र व्यापक है ॥ ७ ॥

वेरध्वरस्य दूत्यानि विद्वानुभे अन्ता रोदसी सञ्चिकित्वान् ।

दूत ईयसे प्रदिव उराणो विदुष्टरो दिव आरोधनानि ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वन् (सञ्चिकित्वान्) उत्तम प्रकार कार्य करने की इच्छा करनेवाले (विद्वान्) विद्यावान् पुरुष ! (विदुष्टर) अत्यन्त ज्ञाता हुए आप जो (वेः) व्याप्त (अध्वरस्य) न नष्ट करने योग्य व्यवहार के (दूत्यानि) संदेश पहुँचानेवाले के सदृश कर्म्मों को और (अन्तः) मध्य में (उभे) दोनों (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (दूतः) संदेश पहुँचानेवाला (प्रदिवः) प्राचीन (उराणः) बहुत कार्य करता हुआ जाता है उसको जानके (दिवः) प्रकाश के (आरोधनानि) सब प्रकार के ग्रहण करने को (ईयसे) प्राप्त होते हो इससे सुख को प्राप्त होते हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो बिजुली रूप अग्नि सम्पूर्ण शिल्पिजन का दूत के सदृश प्रेरणा करनेवाला, अनादि काल से सिद्ध और सम्पूर्ण पदार्थों में व्याप्त है, उसकी उत्पत्ति और निरोध से बहुत कार्य्यों को सिद्ध करके ऐश्वर्य्य को प्राप्त होओ ॥ ८ ॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

कृष्णं त एम रुशतः पुरो भाश्चरिष्ण्वर्चिर्वपुषामिदेकम् ।

यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदु दूतः ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जिस (रुशतः) उत्तम रूप युक्त प्रीतिकारक (ते) आपका (यत्) जो (कृष्णम्) खींचनेवाला (पुरः) प्रथम (भाः) प्रकाशमान (चरिष्णु) चलनेवाला (वपुषाम्) रूपवाले शरीरों के (एकम्) सहायरहित (अर्चिः) तेज (इत्) ही है उसको हम लोग (एम) प्राप्त होवें और हे विद्वन् ! जैसे (अप्रवीता) नहीं जाती हुई स्त्री (गर्भम्) अन्तःस्वरूप को (दधते) धारण करती है वैसे (ह) निश्चय से (सद्यः) शीघ्र (चित्) भी (जातः) प्रकट (दूतः) दूत के (इत्) सदृश वर्त्तमान (उ) ही (भवसि) होते हो उससे सत्कार करने योग्य हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे अध्यापक कृपालो ! आप बिजुली के तेज की विद्या का हम लोगों के लिए बोध कराइये कि जिस तेज से दूत के सदृश कार्य्यों को हम लोग करावें ॥ ९ ॥

सद्यो जातस्य ददृशानमोजो यदस्य वातो अनुवाति शोचिः ।

वृणक्ति तिग्मामतसेषु जिह्वां स्थिरा चिदन्ना दयते वि जम्भैः ॥१०॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो ! (अस्य) इस (सद्यः) शीघ्र (जातस्य) उत्पन्न हुए विद्युत् रूप अग्निप्रताप के (यत्) जिस (ददृशानम्) देखने योग्य (ओजः) वेगयुक्त बल के (वातः) वायु (अनुवाति) पीछे चलता है जो इस साधारण अग्नि को (शोचिः) प्रज्वलित लपट को (अतसेषु) वृक्ष आदिकों में (तिग्माम्) तीव्र गति को और (जिह्वाम्) वाणी का (वृणक्ति) सेवन करता है और जो (वि, जम्भैः) गमनों के आक्षेपों से (चित्) भी (स्थिरा) दृढ़ (अन्ना) भोजन करने योग्य पदार्थों को (दयते) देता है उस बिजुली रूप अग्नि को जान के कार्यों में प्रयुक्त करो ॥ १० ॥

भावार्थ—जो शिल्पिजन पदार्थों से बिजुली को उत्पन्न करें तो वह बिजुली देखने योग्य पराक्रम और वेग को दिखा अनेक प्रकार के ऐश्वर्यों को देती है ॥१०॥

फिर शिल्पि विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तृषु यदन्ना तृषुणा ववक्ष तृषुं दूतं कृणुते यह्वो अग्निः ।

वातस्य मेळिं सचते निजूर्वन्नाशुं न वाजयते हिन्वे अर्वा ॥११॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (यह्वः) बड़े (अर्वा) घोड़े के सदृश (निजूर्वन्) निरन्तर शीघ्र चलती हुई (अग्निः) बिजुली (तृषुणा) शीघ्रता से युक्त (अन्ना) अन्न आदिक पदार्थों को (तृषु) शीघ्र (ववक्ष) प्राप्त कराती है (तृषुम्) शीघ्र कार्य्यकारी (दूतम्) समाचार पहुँचानेवाले जन के सदृश अपने प्रताप को (कृणुते) करती है और (वातस्य) पवन के (मेळिम्) सङ्गम का (सचते) सम्बन्ध करती है जिसको विद्वान् जन (आशुम्) शीघ्र चलने वाले घोड़े के (न) सदृश (वाजयते) चलाता है मैं (हिन्वे) चलाऊँ उसको आप लोग जानिए ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य बिजुली और वायु आदि के योग की विद्या को जानें तो वे दूत और घोड़े के सदृश दूर वाहन और समाचार को पहुँचा सकें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह सातवाँ सूक्त और सातवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथाष्टर्चस्याष्टमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । १, ४, ५, ६ निचृद् गायत्री । २, ३, ७ गायत्री । ८ भुरिग्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब आठ ऋचावाले आठवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम द्वितीय मन्त्र में अग्निविषय को कहते हैं—

दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**व**) तुम्हारे बीच जिस (**दूतम्**) उत्तम दूत के सदृश वर्त्तमान (**अमर्त्यम्**) नाश से रहित (**विश्ववेदसम्**) सब मे विद्यमान (**यजिष्ठम्**) अत्यन्त मिलानेवाले (**हव्यवाहम्**) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को पहुँचाने वा प्राप्त करानेवाले का (**गिरा**) वाणी से हम लोग जानते है । हे विद्वन् ! जिस से आप कार्य्यों का (**ऋञ्जसे**) सिद्ध करते हो उसको आप लोग जान के कार्य्य मे लगाइये ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! यही बिजुलीरूप अग्नि दूत के सदृश कार्यों का सिद्ध करनेवाला है, एसा आप लोग जानो ॥ १ ॥

स हि वेदा वसुधितिं महाँ आरोधनं दिवः ।

स देवाँ एह वक्षति ॥२॥

पदार्थ - हे मनुष्यो ! जिसको (**दिव**) प्रकाश के (**आरोधनम्**) रोकने और (**वसुधितिम्**) द्रव्यो के धारण करनेवाले को विद्वान् (**वेद**) जानता है (**स**) वह (**हि**) जिससे (**महान्**) बड़ा है और (**स**) वह (**इह**) इस ससार मे (**देवान्**) श्रेष्ठ गुण और भोगो को (**आ, वक्षति**) प्राप्त कराता है ऐसा जानो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो बिजुलीरूप अग्नि श्रेष्ठ भोग और गुणो का दाता सूर्य्य का भी सूर्य्य और सबका धारण करनेवाला व्याप्त है उसको जानके कार्य्यों को सिद्ध करो ॥२॥

फिर अग्नि के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

स वेद देव आनमं देवाँ ऋतायते दमे । दाति प्रियाणि चिद्वसु ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिसको यथार्थवक्ता (**देव**) कामना करता हुआ विद्वान् जन (**वेद**) जानता है (**स**) वह (**देवान्**) पृथिवी आदि पदार्थ वा विद्वानो के (**आनमम्**) सब प्रकार सत्कार करने को (**ऋतायते**) सत्य के सदृश आचरण और (**दमे**) गृह मे (**चित्**) भी (**प्रियाणि**) सुन्दर (**वसु**) द्रव्यो को (**दाति**) देता है ऐसा जानो ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! सम्पूर्ण पृथिवी आदि श्रेष्ठ पदार्थों के बीच जो अग्निदेव है उसमे इन सब ऐश्वर्य का देनेवाला बड़ा देव जानो ॥३॥

स होता सेदु दूत्यं चिकित्वाँ अन्तरीयते । विद्वाँ आरोधनं दिवः ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! (**स**) वह अग्नि (**होता**) पदार्थों का भक्षण करनेवाला (**सः, उ**) वही (**अन्त**) मध्य मे वर्त्तमान (**दूत्यम्**) दूतपने वा दूत के कर्म को (**ईयते**) प्राप्त होता है वही (**दिव**) प्रकाश का (**आरोधनम्**) सब प्रकार रोकने वाला है ऐसा माना है जिसका (**चिकित्वान्**) विशेष ज्ञानवान् (**विद्वान्**) विद्वान् उत्तम प्रकार प्रयोग करता है (**इत्**) उसीको जानके तुम भी प्रयोग करो ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सम्पूर्ण पदार्थों के मध्य मे वर्त्तमान और दूत के सदृश कार्यों को सिद्ध करता है और सूर्य आदि का प्रकाशित करता है वह अवश्य आप लोगो को जानने योग्य है ॥४॥

अब अग्नि विद्या के जाननेवाले विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों मे कहते हैं—

ते स्याम ये अग्नये ददाशुर्हव्यदातिभिः । य ईं पुष्यन्त इन्धते ॥५॥

पदार्थ—(**ये**) जो (**हव्यदातिभि**) देने योग्य वस्तुओं के दानो से (**अग्नये**) अग्निविद्या की प्राप्ति के लिए (**ददाशु**) द्रव्य आदि पदार्थ देते है और (**ये**) जो लोग (**ईम्**) जल को (**पुष्यन्त**) पुष्ट करते हुए (**इन्धते**) प्रकाशित होते हैं (**ते**) वे सुखी हैं उनके साथ हम लोग सुखी (**स्याम**) होवें ॥५॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों की विद्या की प्राप्ति के लिए बहुत खर्चते हैं वे सब से सब प्रकार सब सुखो से पुष्ट हुए आनन्दित होते हैं ॥५॥

ते राया ते सुवीर्यैः ससवांसो वि शृण्विरे ।

ये अग्ना दधिरे दुवः ॥६॥

पदार्थ—(**ये**) जो विद्वान् लोग (**अग्ना**) बिजुलीरूप अग्नि मे (**दुवः**) अभ्यास सेवन को (**दधिरे**) धारण करते और गुणो को (**वि, शृण्विरे**) सुनते हैं (**ते**) वे (**राया**) धन के साथ (**ते**) वे (**सुवीर्यैः**) उत्तम पराक्रम और बल वालो के साथ (**ससवांस**) शयन करते से हुए आनन्दित होते है ॥६॥

भावार्थ—मनुष्य जब तक अग्नि आदि पदार्थों की विद्या का श्रवण और सेवन नही करते हैं तब तक धनाढ्य और पूर्ण बलवाले हो नही सकते है और जैसे सुख से सोते हुए आनन्द को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार अग्नि आदि विद्या को प्राप्त हुए दारिद्रय का नाश करके धन और बल से सदा ही सुखी होते है ॥६॥

अब विद्वानों के पुरुषार्थ का फल कहते हैं—

अस्मे रायो दिवेदिवे सं चरन्तु पुरुस्पृहः । अस्मे वाजास ईरताम् ॥७॥

पदार्थ—मनुष्य लोग (**दिवेदिवे**) प्रतिदिन (**अस्मे**) हम लोगों में (**पुरुस्पृहः**) बहुतो से चाहने योग्य (**रायः**) श्रेष्ठ लक्ष्मियाँ (**सम्, चरन्तु**) मिलें और (**वाजासः**) अन्न आदि ऐश्वर्य्यों के योग (**अस्मे**) हम लोगों को (**ईरताम्**) प्राप्त हो ऐसी अभिलाषा करो ॥७॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि सदा ही पुरुषार्थ से धन, अन्न, राज्य, प्रतिष्ठा और विद्या आदि उत्तम गुणो की उन्नति होती है इस प्रकार निरन्तर इच्छा करनी चाहिए ॥७॥

स विप्रश्चर्षणीनां शवसा मानुषाणाम् । अति क्षिप्रेव विध्यति ॥८॥८॥

पदार्थ—जो (**विप्र**) बुद्धिमान् पुरुष (**शवसा**) बलसे (**चर्षणीनाम्**) ऐश्वर्य्य से प्रकाशमान (**मानुषाणाम्**) मनुष्यो के मध्य में (**क्षिप्रेव**) प्रेरणा किये गयों के सदृश दु खी को (**अति**) अत्यन्त (**विध्यति**) ताड़ता है (**सः**) वही प्रशंसित होता है ॥८॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग अग्नि आदि विद्या के प्रयोगो से मनुष्यो के दारिद्रय का नाश करके ऐश्वर्य्य के योग को उत्पन्न करते हैं वे ही सब लोगो को सत्कार करने योग्य और सब मे भाग्यशाली होते हैं ॥८॥

इस सूक्त मे अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

यह अष्टम सूक्त और अष्टम वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथाष्टर्चस्य नवमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषि । अग्निर्देवता । १, ३, ४ गायत्री । २, ६ विराड्गायत्री । ५ त्रिपाद् गायत्री । ७, ८ निचृद्गायत्री छन्द. । षड्ज स्वर ।

अब आठ ऋचावाले नवमें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि के सदृश होने से विद्वान् का सत्कार कहते हैं—

अग्ने मृळ महाँ असि य ईमा देवयुं जनम् ।

इयेथ बर्हिरासदम् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के सदृश प्रकाशमान ! (**य.**) जो आप (**बर्हि**) उत्तम आसन को (**आसदम्**) बैठनेवाला (**देवयुम्**) अपने को विद्वानो की कामना करते हैं उस (**जनम्**) प्रसिद्ध विद्वान् का (**ईम्**) सब प्रकार (**आ इयेथ**) प्राप्त होते हो इस से (**महान्**) महत्त्व से युक्त (**असि**) हो इससे (**मृळ**) सुखी कीजिय ॥१॥

भावार्थ—जो पुरुष विद्वानो के सग से विद्या की कामना करता और विद्या को प्राप्त होकर मनुष्य आदिको को सुख देता है वही आसन आदि से प्रतिष्ठा देने योग्य होता है ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों मे कहते हैं—

स मानुषीषु दूळभो विक्षु प्रावीरमर्त्यः । दूतो विश्वेषां भुवत् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**मानुषीषु**) मनुष्यसम्बन्धी (**विक्षु**) प्रजाओ मे (**विश्वेषाम्**) सबकी (**प्रावीः**) उत्तम विद्या मे व्याप्त (**अमर्त्य**) मर्त्य के स्वभाव से रहित (**दूत.**) सम्पूर्ण विद्याओ का प्राप्त कराने वाला (**भुवत्**) होता है (**स**) वह इस ससार मे (**दूळभ**) दुर्लभ है ऐसा जानना चाहिए ॥२॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग सब लोगो के सुखसाधक विद्या के देनेवाले और मनुष्यो को धर्म के आचरण मे प्रवेश करानेवाले स्वय धार्मिक होवें वे ससार मे दुर्लभ है ॥२॥

स सद्म परि णीयते होता मन्द्रो दिविष्टिषु ।

उत पोता नि षीदति ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**मन्द्र.**) आनन्द का दाता (**होता**) दानकर्त्ता और (**उत**) भी (**पोता**) पवित्र करनेवाला (**दिविष्टिषु**) पशेष्टि आदि उत्तम व्यवहारो के निमित्त (**सद्म**) बठते है जिसमे उस गृह में (**नि, षीदति**) बैठता है (**स**) वह विद्वान् विद्वानो को (**परि**) सब प्रकार (**णीयते**) प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जहाँ पवित्र आनन्दयुक्त और विद्या आदि के देनेवाले लोग हैं वहीं सम्पूर्ण विनय होता है ॥३

अब विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

उत ग्ना अग्निरध्वर उतो गृहपतिर्दमे । उत ब्रह्मा नि षीदति ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**गृहपतिः**) गृह का स्वामी (**अग्निः**) अग्नि के सदृश (**ग्नाः**) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियो को (**नि, षीदति**) प्राप्त होता (**उत**) और (**ब्रह्मा**) चार वेद का पढ़नेवाला होता हुआ (**अध्वरे**) नहीं

हिंसा करने योग्य यमनयुक्त (दमे) गृह में स्थित होता है (असो) और कर्म करता और (कत) भी सबको बोध कराता है वही सत्कार करने योग्य होता है ऐसा जानो ॥४॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि के सदृश पवित्रक्रिया वाले और चारों वेदों के ज्ञाता और भी उत्तम कर्म्मों के करनेवाले गृह के स्वामी होवें वे ही श्रेष्ठ अधिकारों में वर्त्तमान होवें ॥४॥

वेषि ह्यध्वरीयतामुपवक्ता जनानाम् । हव्या च मानुषाणाम् ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जिससे आप (अध्वरीयताम्) अपने को अहिंसारूप यज्ञ करनेवाले (मानुषाणाम्) मनुष्यों में उत्पन्न (जनानाम्) प्रसिद्ध पुरुषों को (उपवक्ता) उपदेश देनेवालों के भी उपदेशक हुए (हि) ही (हव्या) देने योग्य वस्तुओं को (च) भी (वेषि) प्राप्त होते हो इससे उपदेश करने के योग्य हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो उपदेश देनेवाले लोग धर्म्मके उपदेश देनेवालों को उत्पन्न करते और उत्तम प्रकार शिक्षित और उपदेश देनेके लिए प्रवृत्त करके मनुष्यों को बोध कराते हैं वे ही संसार के कल्याण करनेवाले होते हैं ॥५॥

अब राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वेषीद्वस्य दूत्यं१ यस्य जुजोषो अध्वरम् । हव्यं मर्तस्य वोळ्हवे ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् जो आप (यस्य) जिस (मर्तस्य) मनुष्य के (दूत्यम्) दूतसम्बन्धी कर्म्म को (वेषि) प्राप्त होते हो और जिसके (वोळ्हवे) प्राप्त होने के लिए (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य (अध्वरम्) हिंसारहित व्यवहार का (उ) ही (जुजोषः) सेवन करो (इत्) वही आप (अस्य) इसके दूत होने के योग्य हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे राजा लोगो ! जो पूर्ण विद्यायुक्त बहुत बोलनेवाले स्नेही और धार्मिक जन हैं और जो लोग राज्य के व्यवहार को धारण कर सकते हैं उन शूरवीर मित्रों को समाचारप्रापक बना और राज्यके समाचारों को जान के विशेष प्रबन्ध करो ॥६॥

अस्माकं जोष्यध्वरमस्माकं यज्ञमङ्गिरः । अस्माकं शृणुधी हवम् ॥७॥

पदार्थ—हे (अङ्गिरः) प्राणके सदृश प्रिय राजन् ! जिससे आप (अस्माकम्) हम लोगो के (अध्वरम्) न्यायव्यवहार और (अस्माकम्) हम लोगो के (यज्ञम्) विद्वानो के सत्कार आदि क्रियामय व्यवहार को (जोषि) सेवन करते हो इससे (अस्माकम्) हम लोगोके (हवम्) शब्द अर्थ सम्बन्धरूप विषय को (शृणुधि) सुनिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जिससे कि आप हम लोगो की रक्षा करनेवाले प्रिय हैं इससे अर्थी अर्थात् मुद्दई और प्रत्यर्थी अर्थात् मुद्दालय के वचनो को सुनके निरन्तर न्याय विधान करो ॥७॥

अब प्रजा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

परि ते दूळभो रथोऽस्माँ अश्नोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ॥८॥

पदार्थ—हे राजन् ! आप (येन) जिससे (दाशुषः) विद्या आदि के दान करने वालों की (परि) सब प्रकार (रक्षसि) रक्षा करते हो वह (ते) आपका (दूळभः) दुःख से नाश करने योग्य (रथः) सुन्दर वाहन (अस्मान्) हम लोगो को (विश्वतः) सब प्रकार (अश्नोतु) प्राप्त हो ॥८॥

भावार्थ—हे राजन् ! जिन साधनो और दृढ़ राजसेना के अङ्गो से प्रजा का सब प्रकार रक्षण होवे वे ही हम लोगो से भी प्राप्त करने योग्य हैं ॥८॥

इस सूक्त मे अग्नि, राजा, प्रजा और विद्वानो के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह नवम सूक्त और नवमा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथाष्टर्चस्य दशमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । १ गायत्री ।
२, ३, ४, ७, भुरिग्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । ५, ८, स्वराडुष्णिक् छन्दः ।
६ विराडुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब आठ ऋचावाले दशवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में अग्निशब्दार्थ विषयक विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् ।
ऋध्यामा त ओहैः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! हम लोग (ओहैः) नम्रतायुक्त कर्मों और (स्तोमैः) प्रशंसाओं से (ते) आपके (अद्य) आज (अश्वम्) घोड़े के (न) सदृश और (क्रतुम्) बुद्धि के (न) सदृश जिस (हृदिस्पृशम्) हृदय को प्रिय और (भद्रम्) कल्याण करने वालों की (ऋध्याम) समृद्धि करें (तम्) उसकी आप हम लोगों के लिए समृद्धि करो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्य जैसे घोड़े से मार्ग को शीघ्र जा सकते हैं वैसे श्रेष्ठ बुद्धि को प्राप्त होकर मोक्षमार्ग को शीघ्र पाने के योग्य हैं ॥ १ ॥

अब राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥२॥

पदार्थ—हे (अग्ने, हि) राजन् ! जिस कारण अग्नि के सदृश प्रकाशमान आप हैं इससे (रथीः) बहुत वाहनो से युक्त होते हुए (भद्रस्य) कल्याणकर्त्ता तथा (दक्षस्य) बल (क्रतोः) बुद्धि और (साधोः) उत्तम मार्ग मे वर्त्तमान (ऋतस्य) सत्यन्याय और (बृहतः) बड़े व्यवहार के रक्षक (बभूथ) हूजिये (अध) इसके अनन्तर हम लोगों के राजा हूजिये ॥२॥

भावार्थ—राजा को चाहिए कि सम्पूर्ण बल और विज्ञान से सज्जनो का रक्षण और दुष्ट पुरुषो का ताडन करके सत्य न्याय की उन्नति निरन्तर करें ॥२॥

अब प्रजाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्व१र्ण ज्योतिः ।
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्विन् ! आप (अर्कैः) सत्कार और (एभिः) बुद्धि, बल और साधुओं के सहित (नः) हम लोगो के लिए रक्षक (भव) हूजिये और (अर्वाङ्) अन्य व्यवहार मे वर्त्तमान (स्वः) जैसे सूर्य्य के सदृश सुखकारी (न) वैसे (नः) हम लोगो के ऊपर (ज्योतिः) प्रकाशक हूजिये और (सुमनाः) कल्याणकारक मनयुक्त होते हुए (विश्वेभिः) सम्पूर्ण (अनीकैः) शत्रु और दुष्ट डाकुओं से ग्रहण करने को अशक्य सेनाओ से पालनकर्त्ता हूजिये ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो राजा लोग बल बुद्धि और सज्जनो से सग उत्तम रक्षा कर और वृद्धि कराके प्रजा का पालन करते है वे सूर्य्य के सदृश प्रकाशित यशयुक्त सदा आनन्दित होते हैं ॥३॥

अब अमात्यविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

आभिष्टे अद्य गीर्भिर्गृणन्तोऽग्ने दाशेम ।
प्र ते दिवो न स्तनयन्ति शुष्माः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) बिजुली के सदृश वर्त्तमान राजन् ! हम लोग (अद्य) आज शीघ्र (आभिः) इन (गीर्भिः) बुद्धि आदि की बढ़ानेवाली वाणियो से (ते) आप के लिए (गृणन्तः) स्तुति करते हुए कर धन (दाशेम) देवें जिन (ते) आप के लिए (दिवः) बिजुली के (न) सदृश (शुष्माः) बलपराक्रमयुक्त जन (प्र, स्तनयन्ति) शब्द करते हैं उन आपके लिए राज्य देवें ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो आप बिजुली के तुल्य मन्त्रियो की रक्षा करके हम लोगो की पालना करें तो हम लोग आप की प्रजा हुए आज से लेकर आप की निरन्तर प्रशंसा करें और बहुत धनादि सम्पत्ति देवें ॥ ४ ॥

तव स्वादिष्ठाग्ने संदृष्टिरिदा चिदह्न इदा चिदक्तोः ।
श्रिये रुक्मो न रोचत उपाके ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सूर्य के सदृश प्रकाशमान राजन् ! जो (स्वादिष्ठा) अत्यन्त स्वादुयुक्त मधुर (संदृष्टिः) अच्छी दृष्टि (तव) आप के (उपाके) समीप मे (अह्नः) दिन (चित्) और (अक्तोः) रात्रि के मध्य मे (रुक्मः) प्रकाशमान सूर्य्य के (न) सदृश (श्रिये) लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए (रोचते) प्रकाशित होती है (इदा) वही आप को रक्षा करने योग्य है (चित्) और जो सम्पूर्ण गुणो से युक्त पुरुष राज्य की रक्षा कर सके और शत्रु को रोक सके (इदा) वही आप को गुरु के सदृश सेवा करने योग्य है ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो दिन रात्रि के प्रबन्ध देखने अन्याय का विरोध करने और न्याय की प्रवृत्ति करनेवाला दूत वा मन्त्री होवे वही पहिले सत्कार करके रक्षा करने योग्य है ॥ ५ ॥

फिर प्रजाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

घृतं न पूतं तनूररेपाः शुचि हिरण्यम् ।
तत्ते रुक्मो न रोचत स्वधावः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (स्वधावः) बहुत अन्न से युक्त राजन् जो (अरेपाः) पाप के आचरण से रहित (ते) आपके राज्य मे (रुक्मः) अत्यन्त दिपते हुए के (न) सदृश (रोचत) शोभित होते हैं और जो (शुचि) पवित्र (हिरण्यम्) ज्योति के सदृश सुवर्ण को प्राप्त कराते हैं (तत्) उसको प्राप्त होकर उनके साथ आपका (तनूः) देह (पूतम्) पवित्र (घृतम्) घृत वा जल के (न) सदृश और चिरञ्जीव हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो सूर्य्य के सदृश तेजस्वी, धनयुक्त, कुलीन, पवित्र, प्रशंसित, अपराधरहित, श्रेष्ठ शरीरयुक्त, विद्या और अवस्था में वृद्ध होवें वे आपके और आपके राज्य के रक्षक हों और आप इन लोगों की सम्मति से वर्त्तमान होकर अधिक अवस्था युक्त हूजिए ॥ ६ ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

कृतं चिद्धि ष्मा सनेमि द्वेषोऽग्न इनोषि मर्त्तात् ।

इत्था यजमानादृतावः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (ऋतावः) सत्य से युक्त (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्तमान ! जो आप (हि) ही (चित्) निश्चित (द्वेषः) द्वेष करनेवाले (मर्त्तात्) मनुष्य से वा (इत्था) इस प्रकार (यजमानात्) धर्म मे सङ्ग किये हुए जन से (सनेमि) अनादि सिद्ध और (कृतम्) उत्पन्न किये गये को (इनोषि) विशेषता से प्राप्त होते हैं (स्म) वही राज्य करने योग्य हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे राजा आदि मनुष्यो ! आप लोग शत्रु और मित्रो से उत्तम गुणो को ग्रहण करके सुखो को प्राप्त होइये ॥ ७ ॥

शिवा नः सख्या सन्तु भ्रात्राग्ने देवेषु युष्मे ।

सा नो नाभिः सदने सस्मिन्नूधन् ॥ ८ ॥ १० ॥ अनु० १ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्निके सदृश पवित्र आचरण युक्त जो आप के (नाभिः) मध्य अङ्ग के सदृश (शिवा) मङ्गलकारिणी नीति (सस्मिन्) समस्त (ऊधन्) श्रेष्ठ धनाढ्य मे और (सदने) विराजे जिसमे उस राज्य मे वर्त्तमान है (सा) वह (नः) हम लोगो के (देवेषु) विद्वानो वा उत्तम गुणो मे (युष्मे) आप लोगो को प्रवृत्त करे । जो लोग (सख्या) मित्र और (भ्रात्रा) बन्धु के सदृश वर्त्तमान पुरुष के साथ वर्त्तमानो के तुल्य (नः) हम लोगो की रक्षा करनेवाले (सन्तु) हो उनमें आप विश्वास करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो राजपुरुष परस्पर मित्रता करके प्रजाओ मे पिता के सदृश वर्त्तमान हैं उन लोगो के साथ जो राजनीति का प्रचार करता है, वही सर्वदा राज्य भोगने के योग्य है ॥ ८ ॥

इस सूक्त मे अग्नि, राजा मन्त्री के कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह चतुर्थ मण्डल में दशवाँ सूक्त प्रथम अनुवाक तृतीय अष्टक के पाँचवें अध्याय में दशवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षड्चस्यैकादशस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । १, २, ५, ६, निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ स्वराड्बृहती छन्दः । ऋषभः स्वरः । ४ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब अग्नि की सदृशता से राजगुणों को कहते हैं—

भद्रं ते अग्ने सहसिन्ननीकमुपाक आ रोचते सूर्यस्य ।

रुशद्दृशे ददृशे नक्तया चिदरूक्षितं दृश आ रूपे अन्नम् ॥१॥

पदार्थ—हे (सहसिन्) बहुत बल से युक्त (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्तमान जिन (ते) आपके (उपाके) समीप में (भद्रम्) कल्याणकारक (रुशत्) उत्तम स्वरूपयुक्त (अनीकम्) सेना (सूर्यस्य) सूर्य के किरणो के सदृश (आ, रोचते) प्रकाशित होती है और (नक्तया) रात्रि के सहित चन्द्रमा के सदृश (ददृशे) दीखती (चित्) और सुन्दर (दृशे) देखने के (अरूक्षितम्) रूखेपन से रहित (अन्नम्) भोजन करने योग्य पदार्थ (दृशे) देखने के योग्य (रूपे) रूप मे (आ) प्रकाशित होता है उन आप का सर्वत्र विजय हो यह निश्चय है ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा उत्तम प्रकार शिक्षित सेना उत्तम गुणो और ऐश्वर्य के सहित प्रजाओ का पालन करता और दुष्टो को पीडा देता है वह चन्द्र और सूर्य के सदृश सर्वत्र प्रकाशित होता है ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों मे कहते हैं—

वि षाह्यग्ने गृणते मनीषां खं वेपसा तुविजात स्तवानः ।

विश्वेभिर्यद्वावनः शुक्र देवैस्तन्नो रास्व सुमहो भूरि मन्म ॥२॥

पदार्थ—हे (तुविजात) बहुतो मे प्रसिद्ध (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्या से प्रकाशित (स्तवानः) स्तुति करनेवाले हुए आप (वेपसा) राज्य के पालन आदि कर्म से (मनीषाम्) मन की नियामक बुद्धि और (खम्) आकाश की (गृणते) स्तुति करनेवाले के लिए (वि) विशेष करके (साहि) कर्मों की समाप्ति करो । हे (शुक्र) शीघ्रता करनेवाले (विश्वेभिः) सम्पूर्ण (देवैः) विद्वानो के साथ आप (यत्) जिसे (वावनः) उत्तम प्रकार भजो सेवो (तत्) उस (सुमहः) बहुत बड़े और (भूरि) बहुत (मन्म) विज्ञान को (नः) हम लोगो के लिए (रास्व) दीजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप जितेन्द्रिय हो और बुद्धि को प्राप्त होकर कर्म से प्रारम्भ किये हुए कार्य्य को समाप्त करो और सम्पूर्ण विद्वानो के सहित पूर्ण विज्ञान और प्रजाओ के लिए सुख दीजिए ॥ २ ॥

त्वदग्ने काव्या त्वन्मनीषास्त्वदुक्था जायन्ते राध्यानि ।

त्वदेति द्रविणं वीरपेशा इत्थाधिये दाशुषे मर्त्याय ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! आप (वीरपेशाः) वीर पुरुषों के रूप के सदृश रूपवाले हम लोग (इत्थाधिये) इस प्रकार (त्वत्) आप के समीप से बुद्धि युक्त (दाशुषे) देनेवाले (मर्त्याय) मनुष्य के लिए (काव्या) कवि विद्वानों के निर्मित किये काव्य (त्वत्) आप के समीप से (मनीषाः) यथार्थज्ञान (त्वत्) आप के समीप से (उक्था) प्रशंसा करने (राध्यानि) और सिद्ध करने योग्य द्रव्य (जायन्ते) प्रसिद्ध होते हैं (त्वत्) आप के समीप से (द्रविणम्) धन (एति) प्राप्त होता है । इस से हम लोग आप की सेवा करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो आप विद्वान् जितेन्द्रिय और न्यायकारी होवें तो आप के अनुकरण से सम्पूर्ण मनुष्य सत्य आचरण मे प्रवृत्त हों और ऐश्वर्य्य को प्राप्त होकर सम्पूर्ण प्रजा का हित साध सकें ॥ ३ ॥

अब अग्निसम्बन्ध से विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

त्वद्वाजी वाजम्भरो विहाया अभिष्टिकृज्जायते सत्यशुष्मः ।

त्वद्रयिर्देवजूतो मयोभुस्त्वदाशुर्जूजुवाँ अग्ने अर्वा ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! जो (त्वत्) आप के समीप से प्रेरणा किया गया (विहायाः) जिससे वह बड़ा और शीघ्र जाता है इससे (वाजम्भरः) प्राप्त हुए बहुत भार को धारण करनेवाला (सत्यशुष्मः) सत्यबलयुक्त (अभिष्टिकृत्) अपेक्षितकर्म का कर्त्ता (वाजी) वेगवान् और (जायते) होता है वा जो (त्वत्) आपके समीप से (रयिः) धन (देवजूतः) विद्वानों ने जाना और चलाया हुआ (मयोभुः) सुख की भावना करानेवाला वा जो (त्वत्) आपके समीप से (जूजुवान्) शीघ्र प्राप्त कराने और (अर्वा) शीघ्र जानेवाला (आशुः) शीघ्रगामी (जायते) होता है वह हम लोगो को भी उत्पन्न करने योग्य है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो आप लोगो के पुरुषार्थ से बिजुली आदि स्वरूप अग्निविद्या से प्रसिद्ध होवें तो बहुत भारवाले वाहन का पहुँचानेवाला सुख का हेतु और धन उत्पन्न कराने वा शीघ्र ले चलनेवाला होवे ॥ ४ ॥

फिर अग्नि विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

त्वामग्ने प्रथमं देवयन्तो देवं मर्त्ता अमृत मन्द्रजिह्वम् ।

द्वेषोयुतमा विवासन्ति धीभिर्दमूनसं गृहपतिममूरम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (अमृत) अपने आत्मस्वरूप से नाशरहित (अग्ने) अत्यन्त विद्वान् जो लोग (धीभिः) कर्मों वा बुद्धियो से (मन्द्रजिह्वम्) आनन्द उत्पन्न करनेवाली वाणीयुक्त (द्वेषोयुतम्) द्वेष आदि कर्मवियुक्त (दमूनसम्) इन्द्रियों को रोकनेवाले (अमूरम्) मूर्खता आदि दोष रहित विद्वान् (प्रथमम्) आदिम (देवम्) सुन्दर (गृहपतिम्) गृह के स्वामी (त्वाम्) आपकी (देवयन्तः) कामना करते हुए (मर्त्ताः) मनुष्य (आ, विवासन्ति) सेवा करते हैं उन की आप भी सेवा करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो लोग विद्वान् होकर गृहस्थो को बोध, सब के सन्तानों को ब्रह्मचर्य्य से उत्तम शिक्षा और विद्या ग्रहण करा के तथा अविद्या आदि दोषो को दूर कर के शमदम आदि उत्तम गुणो से युक्त करते है वे ही इस संसार मे सुन्दर होते है ॥ ५ ॥

आरे अस्मदमतिमारे अंह आरे विश्वां दुर्मतिं यन्निपासि ।

दोषा शिवः सहसः सूनो अग्ने यं देव आ चित्सचसे स्वस्ति ॥६॥११॥

पदार्थ—हे (सहसः) बलवान् के (सूनो) सन्तान और (अग्ने) अत्यन्त विद्वान (यत्) जिससे आप (देव) ईश्वर के सदृश (अस्मत्) हम लोगो से (आरे) दूर (अमतिम्) मूर्खजन को (आरे) दूर (अंहः) पापकर्म को और (आरे) दूर (विश्वाम्) समग्र (दुर्मतिम्) दुष्टबुद्धि को निरन्तर अलग करो (यम्) जिसकी (निपासि) अत्यन्त रक्षा करते हो उसको (शिवः) मङ्गलकारी हुए (दोषा) रात्रि और दिन मे (चित्) भी (स्वस्ति) सुख को (आ, सचसे) सम्बन्ध कराते हो इससे हम लोगो से पूजा करने योग्य हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—यह हम लोग निश्चय करते हैं कि जो लोग हम लोगों को अधर्मी और दुष्टबुद्धिवाले पुरुष से दूर करते हैं वे ही दिन रात्रि हम लोगो से सत्कार करने योग्य हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त मे अग्नि राजा विद्वान् पुरुष के गुण वर्णन करने इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह ग्यारहवाँ सूक्त और ग्यारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षड्चस्य द्वादशस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । १, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३, ४ भुरिक् पङ्क्तिः । ६ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले बारहवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में फिर अग्निसादृश्य होने से विद्वानों के विषय को कहते हैं—

यस्त्वामग्न इनधते यतस्रुक्त्रिस्ते अन्नं कृणवत्सस्मिन्नहन् ।

स सु द्युम्नैरभ्यस्तु प्रसक्षत्तव क्रत्वा जातवेदश्चिकित्वान् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (यतःस्रुक्) उद्यत किये हैं हवन करने के पात्र विशेषरूप स्रुवा जिसने ऐसा पुरुष (सस्मिन्) सब मे (अहन्) दिन मे (त्वाम्) आप को (इनवते) ईश्वर से मिलावे और (ते) आप के लिए (अन्नम्) भोजन के पदार्थ को (कृणवत्) सिद्ध करे और हे (जातवेदः) श्रेष्ठज्ञानयुक्त (यः) जो (तव) आप की (क्रत्वा) बुद्धि वा कर्म से (चिकित्वान्) सत्य अर्थ का जाननेवाला होता हुआ (अभि, प्रसक्षत्) प्रसङ्ग को करे (सः) वह (सु, द्युम्नैः) उत्तम यशो वा धनो से (त्रिः) तीन वार युक्त (अस्तु) हो ॥ १ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जो लोग आप के लिए ईश्वरज्ञान, बड़े विहार की विद्या और उत्तमबुद्धि को सब काल में देते हैं वे यश और धन से युक्त करने चाहिएँ ॥ १ ॥

फिर अग्नि के सादृश्य से राजगुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

इ॒ध्मं यस्ते॑ ज॒भर॑च्छश्रमा॒णो म॒हो अ॑ग्ने॒ अनी॑क॒मा स॑प॒र्यन् ।

स इ॑धा॒नः प्रति॑ दो॒षामु॒षासं॒ पुष्य॑न्र॒यिं स॑चते॒ घ्नन्न॒मित्रा॑न् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) राजन् ! (यः) जो (शश्रमाणः) अत्यन्त परिश्रम करता हुआ सेना का स्वामी (ते) आप की (महः) बड़ी (इध्मम्) प्रकाशयुक्त (अनीकम्) विजय को प्राप्त होती हुई सेना की (आ) सब प्रकार (सपर्यन्) सेवा करता हुआ (जभरत्) यथावत् हरे पोषे पुष्ट हो अर्थात् शत्रु बल हरे और आप पुष्ट हो (सः) वह (इधानः) प्रकाशमान होता (प्रति, दोषाम्) प्रत्येक रात्रि और (उषासम्) प्रत्येक दिन (पुष्यन्) पुष्टि पाता (अमित्रान्) और धर्म से द्वेष करनेवाले शत्रुओं का (घ्नन्) नाश करता हुआ (रयिम्) राज्यलक्ष्मी को (सचते) प्राप्त होता है ॥ २ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो आप के सेनाध्यक्ष और न्यायाधीश विद्या विनय और धर्म आदि से प्रकाशमान हुए अपनी प्रजाओं का पालन करते और दुष्ट शत्रुओं का नाश करते हुए विजय को प्राप्त होते हैं, उनके लिये आपको चाहिए कि बहुत प्रतिष्ठा और बहुत धन देकर दिन रात्रि धर्म अर्थ काम मोक्ष की उन्नति करें ॥२॥

अ॒ग्निरी॑शे बृह॒तः क्ष॒त्रिय॑स्या॒ग्निर्वाज॑स्य पर॒मस्य॑ रा॒यः ।

द॒धा॑ति॒ रत्नं॑ विध॒ते यवि॑ष्ठो॒ व्या॑नु॒षङ्मर्त्या॑य स्व॒धावा॑न् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे राजा और प्रजाजनो ! जो (अग्निः) अग्नि के सदृश जन (क्षत्रियस्य) क्षात्रधर्मयुक्त (बृहतः) बड़े (वाजस्य) वेग विज्ञान और (परमस्य) अत्यन्त श्रेष्ठ (रायः) धन आदि के मध्य में (ईशे) ऐश्वर्य्य करता है तथा (यविष्ठ) अत्यन्त युवा अर्थात् शरीर और आत्मा के बल से और (स्वधावान्) बहुत अन्न आदि से युक्त (आनुषक्) अनुकूल हुआ (विधते) विधान करते हुए (मर्त्याय) मरण धर्मवाले मनुष्य के लिए (अग्निः) बिजुली के समान वर्त्तमान (रत्नम्) रमण करने योग्य धन को (वि, दधाति) विधान करता है वह सब लोगो से सत्कार करने योग्य है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य्य और बिजुली के सदृश राज्य और ऐश्वर्य्य की उन्नति करते हुए यश को विस्तारते हैं वे सब से सब प्रकार सत्कार को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

यच्चि॒द्धि ते॑ पुरुष॒त्रा य॑विष्ठा॒चित्ति॑भिश्चकृ॒मा कच्चि॒दागः॑ ।

कृ॒धी ष्व१॒॑स्माँ अदि॑ते॒रना॑गा॒न्व्येनां॑सि शिश्रथो॒ विष्व॑गग्ने ॥४॥

पदार्थ—हे (यविष्ठ) अत्यन्त यौवनावस्था को प्राप्त (अग्ने) विद्या और विनय से प्रकाशित राजन् ! (यत्) जो हम लोग (अचित्तिभिः) चेतनाभिन्नो से (ते) आप के (पुरुषत्रा) पुरुषो मे (चित्) कुछ (आगः) अपराध को (चकृम) करें उन (अस्मान्) हम लोगो को (कत्, चित्) कभी (अनागान्) अपराध से रहित (कृधि) कीजिये जो जो हम लोगो से (एनांसि) पाप होवें उन उन को भी (हि) निश्चय से (विष्वक्) सब प्रकार (वि, शिश्रथः) शिथिल वा उन का वियोग करो और (अदितेः) पृथिवी के (सु) उत्तम राज्य को करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो कदाचित् अज्ञान वा प्रमाद से हम लोग अपराध करें उन को भी दण्ड के बिना क्षमा न कीजिये और हम लोगो को उत्तम शिक्षा से धार्मिक कर के पृथिवी के राज्य के अधिकारी करिये ॥ ४ ॥

फिर विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

म॒हश्चि॑दग्न॒ एन॑सो अ॒भीक॑ ऊ॒र्वाद्दे॒वाना॑मु॒त मर्त्या॑नाम् ।

मा ते॒ सखा॑यः॒ सद॒मिद्रि॑षाम॒ यच्छा॑ तो॒काय॒ तन॑याय॒ शं योः ॥५॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (देवानाम्) विद्वानो के (उत) और (मर्त्यानाम्) अविद्वानों के (अभीके) समीप मे (महः) बड़े (चित्) भी (एनसः) अपराध के (ऊर्वात्) विस्तीर्णभाव से हम लोग विनाश करें अर्थात् उन कर्मों का नाश करें जो अपराध के मूल हैं और (ते) आपके (सखायः) मित्र हुए आप के (सदम्) स्थान को (मा) मत (रिषाम) नष्ट करें और आप (तोकाय) शीघ्र उत्पन्न हुए पांच वर्ष की अवस्थावाले (तनयाय) पुत्र के लिए (शम्) सुख (योः) उत्तम कर्म से उत्पन्न हुआ (इत्) ही (यच्छ) दीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग विद्वानो के समीप स्थित हों और शिक्षा को प्राप्त होकर पापस्वरूप कर्म्म का त्याग कर अन्यो का भी त्याग करें करावें, सब के मित्र होकर कुमार और कुमारियो को उत्तम शिक्षा देकर और सम्पूर्ण विद्या प्राप्त करा के सुखयुक्त करें, वैसा आप लोग भी आचरण करो ॥ ५ ॥

यथा॑ ह॒ त्यद्व॑सवो गौ॒र्यं॑ चित्प॒दि षि॒ताममु॑ञ्चता यजत्राः ।

ए॒वो ष्व१॒॑स्मन्मु॑ञ्चता॒ व्यंहः॒ प्र ता॑र्यग्ने प्रत॒रं न॒ आयुः॑ ॥६॥१२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (यथा) जैसे आप से (नः) हम लोगो के (प्रतरम्) जिस से संसार मे पार होते वह (आयुः) जीवन (प्र, तारि) पार किया जाता है (अंहः) पाप पार किया जाता वैसा हम लोग आपके पार करानेवाले जीवन और अपराध को पार करें हे (यजत्राः) विद्वानों के सत्कार करनेवाले (वसवः) निवास करते हुए जनो ! जैसे आप लोग (त्यत्) उस पाप का (ह) निश्चय कर (अमुञ्चत) त्याग करें (पदि) प्राप्त होने योग्य विज्ञान मे (चित्) भी (सिताम्) शब्दार्थविज्ञानसम्बन्धिनी (गौर्यम्) स्वच्छ वाणी को प्राप्त हूजिये वैसे (एवो) ही (अस्मत्) हम से आप को (सु, वि, मुञ्चत) अच्छे प्रकार विशेषता से दूर कीजिये उसी प्रकार हम लोग भी पाप का त्याग करके उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी को प्राप्त होवें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जैसे धार्मिक यथार्थवक्ता विद्वान् लोग पाप के आचरण का त्याग कर के सत्य आचरण मे अन्यो को अपने सदृश करने की इच्छा करते हैं वैसा ही आप लोग भी आचरण करो ॥ ६ ॥

इस सूक्त मे अग्नि राजा और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह बारहवाँ सूक्त, बारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य त्रयोदशस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता ।

१, २, ४, ५ विराट् त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले तेरहवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में सूर्य के सादृश्य से राजगुणों को कहते हैं—

प्रत्य॒ग्निरु॒षसा॒मग्र॑मख्यद्विभाती॒नां सु॒मना॑ रत्न॒धेय॑म् ।

या॒तम॑श्विना सु॒कृतो॑ दुरो॒णमुत्सूर्यो॒ ज्योति॑षा दे॒व ए॑ति ॥१॥

पदार्थ—जो (विभातीनाम्) प्रकाश करते हुए (उषसाम्) प्रातःकालों के (अग्रम्) ऊपर होना जैसे हो वैसे (अग्निः) अग्नि के सदृश यश को (प्रति, अख्यत्) प्रकट करता और (सुमनाः) प्रसन्नचित होता हुआ (अश्विना) वायु और बिजुली के जैसे (यातम्) प्राप्त हों वैसे (ज्योतिषा) प्रकाश के साथ (देवः) सुख का देनेवाला (सूर्यः) सूर्य जैसे (उत् एति) उदय होता वैसे (सुकृतः) उत्तम कृत्य करनेवाले धर्मात्मा के (रत्नधेयम्) रत्न जिस मे धरे जायं उस (दुरोणम्) गृह को प्राप्त होता वह सुख को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो वायु बिजुली और सूर्य के गुणयुक्त पुरुष प्रजाओं का पालन करते हैं वे उस सत्यन्याय से बहुत रत्नो के कोश को प्राप्त हैं ॥ १ ॥

अब सूर्यलोकादिकों के निमित्तकारण को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ऊ॒र्ध्वं भा॒नुं स॑वि॒ता दे॒वो अ॑श्रेद्द्र॒प्सं दवि॑ध्वद्गवि॒षो न सत्वा॑ ।

अनु॑ व्र॒तं वरु॑णो यन्ति मि॒त्रो यत्सूर्यं॑ दि॒व्या॑रो॒हय॑न्ति ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (सविता) सूर्य्यमण्डल (देवः) प्रकाशमान (सत्वा) चलनेवाला (गविषः) गौओं को प्राप्त होने की इच्छा करते हुए के (न) सदृश (अनु, व्रतम्) अनुकूल कर्म को और (वरुणः) जल और (मित्रः) वायु अनुकूल कर्म को (यन्ति) प्राप्त होते वा (यत्) जिस (सूर्य्यम्) सूर्य्यलोक को (दिवि) अन्तरिक्ष मे (आरोहयन्ति) चढ़ाते है वा सूर्य्यमण्डल (द्रप्सम्) पृथिवीसम्बन्धी भूलोक को (दविध्वत्) अत्यन्त कपाता हुआ (ऊर्ध्वम्) ऊपर वर्त्तमान (भानुम्) किरण का (अश्रेत्) आश्रय करता है यह सब जानो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । इस सृष्टि में परमात्मा ने जैसे सूर्य्य की उत्पत्ति से जल अग्नि और पवन रचे वैसे ही पृथिवी आदिकों के भी निमित्तकारण रचे, यह जानना चाहिए ॥ २ ॥

यं सी॒मकृ॑ण्व॒न्तम॑से वि॒पृचे॑ ध्रु॒वक्षे॑मा॒ अन॑वस्यन्तो॒ अर्थ॑म् ।

तं सूर्यं॑ ह॒रितः॑ स॒प्त य॒ह्वीः स्पशं॒ विश्व॑स्य॒ जग॑तो वहन्ति ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यम्) जिस (अर्थम्) पदार्थरूप सूर्य को (अनवस्यन्तः) न सेवते और क्रिया करते हुए (ध्रुवक्षेमाः) निश्चित रक्षण करते वाले जन (तमसे) अन्धकार के अर्थ (विपृचे) वियोग करने के लिए (सीम्)

सब ओर से (आहुवनम्) निश्चित करते हैं (तम्) उस (विश्वस्य) सम्पूर्ण (जगतः) ससार के (स्पशम्) बाधनेवाले (सूर्य्यम्) सूर्य्य को (सप्त) सात (यह्वीः) बड़ी (हरित.) दिशाओ को (वहन्ति) प्राप्त कराते हैं वैसे ही उत्तम गुणों को प्राप्त कराओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे किरणें सूर्य्य को अन्धकार के दूर करने के लिए धारण करते हैं वैसे ही सम्पूर्ण जगत् की अविद्या दूर करने के लिए और विद्या की रक्षा के लिए सब प्रकार सत्य के उपदेश करो ॥ ३ ॥

अब सूर्य्यदृष्टान्त से विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वहिष्ठेभिर्विहरन्यासि तन्तुमवव्ययन्नसितं देव वस्म ।

दविध्वतो रश्मयः सूर्य्यस्य चर्मेवावाधुस्तमो अप्स्वन्तः ॥४॥

पदार्थ—हे (देव) प्रकाशमान विद्वन् ! जिस से आप (वहिष्ठेभिः) अत्यन्त प्राप्त करानेवालों से सूर्य्य (तन्तुम्) कारण को (विहरन्) प्राप्त होता हुआ और (असितम्) कृष्णवर्ण अन्धकार को (अवव्ययन्) दूर करता हुआ चलता है वैसे (वस्म) निवासस्थान को (अव, यासि) प्राप्त होते हो और जैसे (दविध्वतः) कपाते हुए (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मयः) किरणें (अप्सु) अन्तरिक्ष के (अन्तः) मध्य मे (तमः) अन्धकार को (चर्मेव) जैसे चर्म शरीर को ढाँपता है वैसे (अधुः) ढापते हैं वैसे आप हूजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे उपदेशक ! जैसे सूर्य प्राप्त कराने वाले किरणों के आकर्षणादिको से अपने प्रकाश का विस्तार करता हुआ चर्म से देह के सदृश ढांपता हुआ अन्तरिक्ष के मध्य में विहार करता है वैसे ही अविद्या का नाश और विद्या का प्रकाश करके इस ससार मे विचरिये ॥ ४ ॥

अब सूर्य्यमण्डल प्रश्नोत्तर पूर्वक विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न ।

कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (अयम्) यह (अनायत.) इधर उधर (न) जाता और समीप वर्त्तमान (अनिबद्धः) किसी के आकर्षण से नही बधा (न्यङ्) जो नीचे को होता हुआ (उत्तानः) ऊपर स्थित (कथा) किस प्रकार से (न) नही (अव, पद्यते) नीचे आता और (कया) किस (स्वधया) अन्न आदि पदार्थों से युक्त पृथिवी के साथ (याति) चलता है जो (दिवः) प्रकाश का (स्कम्भः) खम्भे के सदृश धारण करनेवाला (समृतः) उत्तम प्रकार सत्यस्वरूप (नाकम्) दुःखरहित व्यवहार की (पाति) रक्षा करता है उस को (कः) कौन (ददर्श) देखता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! यह सूर्य्य अन्तरिक्ष के मध्य मे स्थित हुआ क्यो नीचे नही गिरता है किससे चलता है और कैसे प्रकाश का धारण करनेवाला और सुखकारक होता है ? इस प्रश्न का उत्तर—परमेश्वर ने स्थापित और धारण किया इस से नीचे नही गिरता है और अपने समीप वर्त्तमान भूगोलो के साथ अपनी कक्षा मे चलता हुआ वर्त्तमान है और सम्पूर्ण समीप मे वर्त्तमान पदार्थों के आकर्षण से धारणकर्त्ता और परमेश्वर की व्यवस्था से सुखकारक वर्त्तमान है यह जानना चाहिए ॥५॥

इस सूक्त मे सूर्य्य और विद्वानो के गुणो का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तेरहवां सूक्त और तेरहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य चतुर्दशस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्लिङ्गोक्ता देवता वा ।

१ भुरिक्पङ्क्तिः । ३ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

२, ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।

अब पांच ऋचा वाले चौदहवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में

अग्निसादृश्य से विद्वानों के गुणों का उपदेश करते हैं—

प्रत्यग्निरुषसो जातवेदा अख्यद्देवो रोचमाना महोभिः ।

आ नासत्योरुगाया रथेनेमं यज्ञमुप नो यातमच्छ ॥१॥

पदार्थ—हे (नासत्या) असत्य आचरण से रहित (उरुगाया) बहुत प्रशसावाले अध्यापक और उपदेशक जनो ! आप दोनों (महोभिः) बड़ो के साथ (रथेन) वाहन से (नः) हम लोगो के प्रकाश्य और प्रकाशकस्वरूप व्यवहार और (इमम्) इस वर्त्तमान (यज्ञम्) यज्ञ को (जातवेदाः) उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान (देव.) प्रकाशमान (अग्निः) बिजुली के सदृश अग्नि (रोचमानाः) प्रकाशमान (उषसः) दिन के मुख अर्थात् प्रारम्भ के (प्रति) प्रति (अख्यत्) प्रकाशित होता है वैसे (अच्छ) उत्तम प्रकार (उप) समीप (आ, यातम्) आओ प्राप्त होओ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो जैसे सूर्य्य प्रातःकाल मे शोभित होता है वैसे ही सत्य के उपदेश से रथ से मार्ग के सदृश विद्या के सुख को प्राप्त कराते हैं वे इस ससार मे कल्याणकारक होते हैं ॥ १ ॥

अब विद्वान् के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो अश्रेज्ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वन् ।

आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वि सूर्यो रश्मिभिश्चेकितानः ॥२॥

पदार्थ—जो (देव.) विद्वान् जैसे (सविता) सूर्य्य (रश्मिभिः) किरणों से (चेकितानः) जनाता हुआ (सूर्य्यः) प्रकाशमान (विश्वस्मै) सब (भुवनाय) संसार के लिये (ज्योतिः) प्रकाश को (कृण्वन्) करता हुआ (द्यावापृथिवी) प्रकाश भूमि (अन्तरिक्षम्) आकाश को (वि, आ, अप्राः,) व्याप्त होता है वैसे (ऊर्ध्वम्) उत्तम (केतुम्) बुद्धि का (अश्रेत्) आश्रय करे वही पूर्ण सुखवाला होवे ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् लोग सम्पूर्ण विद्याओ को पढ़कर ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास से ज्ञान को प्राप्त होकर किरणो से सूर्य्य के सदृश जनो के अन्त करणो को उपदेश से उज्ज्वल करते हैं वे ही सब को सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ २ ॥

अब विदुषी के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आवहन्त्यरुणीर्ज्योतिषागान्मही चित्रा रश्मिभिश्चेकिताना ।

प्रबोधयन्ती सुविताय देव्युषा ईयते सुयुजा रथेन ॥३॥

पदार्थ—हे विद्यायुक्त और उत्तम गुण वाली स्त्रि ! तू जैसे (सुयुजा) उत्तम प्रकार जोड़ते हैं घोड़ो को जिस में उस (रथेन) वाहन के सदृश (रश्मिभिः) अपने किरणो से (चेकिताना) प्राणियों को जनाती हुई और (सुविताय) ऐश्वर्य के लिए (प्रबोधयन्ती) जगाती हुई (ज्योतिषा) प्रकाश से (चित्रा) अद्भुतस्वरूप वाली (अरुणीः) किञ्चित् लाल आभायुक्त कान्तियो को (आवहन्ती) सब प्रकार प्राप्त कराती हुई (मही) बड़ी (देवी) अत्यन्त प्रकाशमान (उषा) प्रात काल की वेला (ईयते) जाती और (आ, अगात्) आती है वैसे आप हूजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सुन्दर प्रिया उत्तम लक्षणो से युक्त अद्भुत रूपवाली पतिव्रता स्त्री पुरुष को प्राप्त होवे वह प्रात काल के सदृश कुल का प्रकाश करती हुई और सन्तानो को उत्तम शिक्षा देती हुई सबको आनन्द देती है ॥ ३ ॥

अब स्त्री पुरुष के गुणों को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

आ वां वहिष्ठा इह ते वहन्तु रथा अश्वास उषसो व्युष्टौ ।

इमे हि वां मधुपेयाय सोमा अस्मिन् यज्ञे वृषणा मादयेथाम् ॥४॥

पदार्थ—हे स्त्री पुरुषो ! (वाम्) आप दोनो जो लोग (वहिष्ठाः) अत्यन्त धारण करनेवाले (रथा.) वाहन (अश्वासः) शीघ्र चलने वाले (उषस.) प्रात काल के (व्युष्टौ) विशिष्ट प्रताप मे है (ते) वे आप दोनो को (इह) इस ससार मे (आ, वहन्तु) अभीष्ट स्थान को पहुँचावें और जो (इमे) ये (हि) जिस कारण (वाम्) आप दोनो के (सोमा) ऐश्वर्य्य के सहित पदार्थ (अस्मिन्) इस (यज्ञे) मेल करने योग्य गृहाश्रम मे (मधुपेयाय) मधुर गुणो से पीने योग्य के लिये होते हैं इस कारण उन का इस ससार मे सेवन करके (वृषणा) पराक्रम वाले होते हुए आप दोनो (मादयेथाम्) आनन्दित होवें ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे स्त्री पुरुषो ! आप लोग यदि रात्रि के चौथे प्रहर मे उठ और आवश्यक कृत्य करके वाहन वा पैरो से सूर्योदय से पहले शुद्ध वायु देश मे भ्रमण करें तो आप लोगो को रोग कभी न प्राप्त होवें जिससे कि बलिष्ठ और अधिक अवस्था वाले हुए इस गृहाश्रम मे बड़े आनन्द को भोगो ॥ ४ ॥

फिर विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न ।

कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥५॥

पदार्थ—जो विद्वान् (अनायतः) दूर नहीं अर्थात् समीप वर्त्तमान (अनिबद्ध) शत्रुवान् पुरुष के समान एकत्र न ठहरने वाला (अयम्) यह (न्यङ्) नित्य आदर करता वा प्राप्त होता (उत्तानः) ऊपर को विस्तरित सा स्थित (कथा) किस प्रकार (न) नही (अव, पद्यते) नीची दशा को प्राप्त होता है और (कया) किस (स्वधया) अपनी गति से (याति) चलता है (समृतः) उत्तम प्रकार सत्यस्वरूप (दिवः) मनोहर सुख के (स्कम्भः) घर का आधार खम्भा जैसे बीच मे ठहरे वैसे (नाकम्) सुख की (पाति) रक्षा करता है इस को (कः) कौन (ददर्श) देखता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! जीव यह नीचे की दशा को किस रीति से न प्राप्त होवे जो अविद्या आदि बन्धन का त्याग करे तो, किस कर्म से सुख को प्राप्त होता है जो धर्म का अनुष्ठान करे, कौन कामनाओ से पूर्ण होता है जो परमात्मा को देवे ॥ ५ ॥

इस सूक्त मे अग्नि विद्वान् स्त्री और पुरुष के कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह चौदहवां सूक्त और चौदहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ दशर्चस्य पञ्चदशस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । १-६ अग्निः । ७, ८ सोमकः साहदेव्यः । ९, १० अश्विनौ देवते । १, २, ४ गायत्री । ३, ५, ६ विराड् गायत्री । ३, ७—१० निचृद् गायत्रीच्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब दश ऋचावाले पन्द्रहवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में अग्निविषय को कहते हैं—

अग्निर्होता नो अध्वरे वाजी सन्परि णीयते । देवो देवेषु यज्ञियः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (नः) हम लोगों के (अध्वरे) व्यवहार में (अग्निः) अग्नि के सदृश उत्तम गुणों से प्रकाशित (होता) धारण करनेवाला (देवेषु) प्रकाशमानों में (देवः) प्रकाशमान (यज्ञियः) यज्ञ के योग्य (वाजी) बलवान् अश्व के समान (सन्) होता हुआ अग्नि (परि, णीयते) प्राप्त किया जाता है वह आप लोगों से भी प्राप्त होने योग्य है ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अग्नि सुप्रयुक्त से सब व्यवहारोंको प्राप्त कराता है वैसे ही विद्वान् सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कराता है ॥१॥

फिर अग्निविद्याविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

परि त्रिविष्ट्यध्वरं यात्यग्नी रथीरिव । आ देवेषु प्रयो दधत् ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो (अग्निः) अग्नि (रथीरिव) श्रेष्ठ रथ आदि से युक्त सेना के स्वामी के सदृश (देवेषु) प्रकाशमान विद्वानों में (प्रयः) कामना करने योग्य अन्न को (दधत्) धारण करता हुआ (त्रिविष्टि) तीन प्रकार के सुख के प्रवेश में (अध्वरम्) सत्कार करने योग्य व्यवहार को (परि, आ याति) सब ओर से प्राप्त होता है वह आप लोगों से कार्य्यों में युक्त करने योग्य है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । हे मनुष्यो ! जैसे उत्तम सेना से युक्त सेनाध्यक्ष पुरुष तीन प्रकार के सुख को प्राप्त होता है वैसे ही अग्निविद्या का जानने वाला शरीर आत्मा और इन्द्रियों के आनन्द को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

फिर अग्निविषय का वर्णन अगले मन्त्र में करते हैं—

परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥३॥

पदार्थ—जो (वाजपतिः) अन्न आदिकों का स्वामी (कविः) सम्पूर्ण विद्याओं का जाननेवाला (अग्निः) बिजुली के सदृश वर्त्तमान (दाशुषे) देने वाले के लिए (रत्नानि) रमण करने योग्य धनों को (दधत्) धारण करता हुआ (हव्यानि) देने योग्य पदार्थों का (परि, अक्रमीत्) परिक्रमण करता अर्थात् समाप होता वही निरन्तर सुखी होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे देनेवाले अन्यों के लिए उत्तम वस्तुओं को देते हैं वैसे ही अग्नि, क्योंकि दूसरे को सुख देने के लिए अग्नि के गुण होते हैं ॥ ३ ॥

अब राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अयं यः सृञ्जये पुरो दैववाते समिध्यते । द्युमाँ अमित्रदम्भनः ॥४॥

पदार्थ—हे राजन् ! (यः) जो (अयम्) यह (द्युमान्) बहुत विद्या के प्रकाश से युक्त (अमित्रदम्भनः) शत्रुओं का नाशकर्त्ता (पुरः) प्रथम (दैववाते) विद्वान् जनों के प्राप्तसुख में (सृञ्जये) पाये हुए शत्रुओं को जिस में जीतता है उस संग्राम में (समिध्यते) प्रकाशित होता है वही आप के सत्कार करने योग्य है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो लोग बड़े संग्राम में तेजस्वी भयरहित आगे चलने वाले और शत्रुओं के नाशकर्त्ता नौकर हों उनका ही आप पुत्र के सदृश पालन करो ॥ ४ ॥

अस्य घा वीर ईवतोऽग्नेरीशीत मर्त्यः । तिग्मजम्भस्य मीळ्हुषः ॥५॥१५

पदार्थ—हे राजन् ! जो (वीरः) वीर (मर्त्यः) मनुष्य (अग्नेः) अग्नि के सदृश (अस्य) इस (ईवतः) श्रेष्ठ गमन करनेवाले (तिग्मजम्भस्य) तीक्ष्ण [illegible] मुख जिसका उस (मीळ्हुषः) पराक्रमी सेनापति के शत्रुओं के मध्य में (ईशीत) समर्थ हो (घ) वही विजय करने योग्य होवे ॥ ५ ॥

भावार्थ—सेनापति को चाहिये कि उन्हीं पुरुषों को सेना में भर्ती कर कि जो लोग शत्रुओं को जीत सकें ॥ ५ ॥

तमर्वन्तं न सानसिमरुषं न दिवः शिशुम् । मर्मृज्यन्ते दिवेदिवे ॥६॥

पदार्थ—हे अग्ने राजन् ! जिस (दिवः) प्रकाश से (शिशुम्) पुत्र को (अरुषम्) शीघ्र चलनेवाले घोड़े के (न) सदृश वा (अर्वन्तम्) रत्नगुणों से विशिष्ट के (न) सदृश (सानसिम्) और विभाग करने योग्य पदार्थ को (दिवेदिवे) प्रति दिन विद्वान् लोग (मर्मृज्यन्ते) शुद्ध करते हैं (तम्) उसको आप पवित्र करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जो मनुष्य घोड़ों के सदृश सन्तानों को शिक्षा देते हैं वे नित्य सुख को बढ़ाते हैं ॥ ६ ॥

अब अध्यापकविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

बोधद्यन्मा हरिभ्यां कुमारः साहदेव्यः । अच्छा न हूत उदरम् ॥७॥

पदार्थ—हे अध्यापक ! (यत्) जो (साहदेव्यः) जो विद्वानों के साथ वर्तमान उन में श्रेष्ठ (कुमारः) ब्रह्मचारी मैं (हूतः) प्रशंसित होता हुआ (अच्छ) पूर्ण (न) न जानूं उस (मा) मुझ को (हरिभ्याम्) घोड़ों के सदृश ([illegible]) [illegible] (उदरम्, बोधत्) अच्छे प्रकार उत्तम बोध दीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—जब कुमार और कुमारियां माता और पिता से शिक्षा को प्राप्त हुए आचार्य के कुल को जावें तब आचार्य के प्रिय आचरण और विनय से उन की प्रार्थना कर के विद्या की याचना करें जो ऐसा करे वह श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त रथ से जैसे वैसे विद्या के पार को जावे ॥ ७ ॥

अब अध्येतृविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

उत त्या यजता हरी कुमारात्साहदेव्यात् । प्रयता सद्य आ ददे ॥८॥

पदार्थ—(त्या) वे दोनों (यजता) देने और (हरी) अविद्या के हरने वाले (प्रयता) प्रयत्न करते हुए अध्यापकोपदेशक (साहदेव्यात्) विद्वानों के साथ रहने वालों में उत्तम (कुमारात्) ब्रह्मचारी से प्रतिज्ञा को ग्रहण करें (उत) और उन दोनों से ब्रह्मचारी विद्या (सद्यः) शीघ्र (आ, ददे) ग्रहण करे ॥ ८ ॥

भावार्थ—जब विद्यार्थी और विद्यार्थिनी पढ़ने के लिए जावें तब उन को चाहिए कि प्रतिज्ञा करें कि हम लोग धर्म्मयुक्त ब्रह्मचर्य्य से आप के अनुकूल वर्त्ताव करके विद्या का अभ्यास करेंगे और मध्य में ब्रह्मचर्य्य व्रत का न लोप करेंगे और अध्यापक लोग यह प्रतिज्ञा करें कि हम निष्कपटता से विद्यादान करेंगे ॥ ८ ॥

अब अध्यापक और उपदेशक विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

एष वां देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः । दीर्घायुरस्तु सोमकः ॥९॥

पदार्थ—हे (देवौ) विद्वानो ! (अश्विना) सम्पूर्ण विद्याओं में व्याप्त आप दोनों जैसे (एषः) यह ब्रह्मचारी (वाम्) आप दोनों अध्यापक और उपदेशक के (साहदेव्यः) विद्वानों के साथ रहनेवालों में श्रेष्ठ (सोमकः) चन्द्रमा के सदृश शीतलस्वभाववाला (कुमारः) ब्रह्मचारी (दीर्घायुः) बहुत काल पर्य्यन्त जीवने वाला (अस्तु) हो वैसा प्रयत्न करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—अध्यापक और उपदेशक ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे धार्मिक अधिक अवस्था वाले और विद्वान् पढ़ने वाले होवें ॥ ९ ॥

तं युवं देवावश्विना कुमारं साहदेव्यम् । दीर्घायुषं कृणोतन ॥१०॥१६

पदार्थ—हे (देवौ) विद्या के देनेवाले (अश्विना) श्रेष्ठ गुणों में व्यापक (युवम्) आप दोनों (तम्) उस पढ़ने वाले (साहदेव्यम्) विद्वानों के उत्तम साथी (कुमारम्) ब्रह्मचारी को (दीर्घायुषम्) अधिक अवस्था वाला (कृणोतन) करो ॥ १० ॥

भावार्थ—हे विद्वानो और विदुषियो ! आप लोग पढ़ाने के लिये प्रवृत्त हो और उत्तम शिक्षा करके और विद्या के योग को सम्पादन करके सब श्रेष्ठ पुरुषों को बहुत कालपर्य्यन्त जीनेवाले करो ॥ १० ॥

इस सूक्त में अग्नि, राजा, अध्यापक और पढ़नेवाले के कर्म्मों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पन्द्रहवां सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथैकविंशत्यृचस्य षोडशस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ४, ६, ८, ९, १२, १९ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ७, १६, १७ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २, २१ निचृत्पङ्क्तिः । ५, १३—१५ स्वराट्पङ्क्तिः । १०, ११, १८, २० भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब इक्कीस ऋचावाले सोलहवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्रपदवाच्य राजविषय को कहते हैं—

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः ।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (इह) इस राज्य में (गृणानः) प्रशंसा करता हुआ (अभिपित्वम्) प्राप्त (सुदक्षम्) श्रेष्ठ बल को (करते) करे (तस्मै) उस के लिए (इत्) ही हम लोग (अन्धः) अन्न आदि को (सुषुम) उत्पन्न करें जिस (अस्य) इस राजा के (हरयः) मनुष्य नहीं (द्रवन्तु) जावें वह (ऋजीषी) सरलनीति वाला (सत्यः) श्रेष्ठों में साधु और (मघवान्) बहुत श्रेष्ठ धन से युक्त जन (नः) हम लोगों के (उप) समीप (आ) सब प्रकार (यातु) प्राप्त होवे ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो राजा हम लोगों के बल को बढ़ावे और नीति से प्रजाओं का पालन करे और जिस राजा के पुरुष भी धार्मिक और प्रजा के पालन में प्रिय हों और हम लोगों को प्रेम से संयुक्त करें उस के लिए हम लोग ऐश्वर्य्य की वृद्धि करें ॥ १ ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन्नो अद्य सवने मन्दध्यै ।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म ॥२॥

पदार्थ—हे (**शूर**) शत्रुओं के नाशक ! जो (**अस्मिन्**) इस (**सवने**) क्रियाविशेषरूप यज्ञ में (**अद्य**) आज (**मन्दध्यै**) आनन्द करने को (**नः**) हम लोगों के (**उशनेव**) सदृश कामना करता हुआ (**वेधा**) बुद्धिमान् जन (**उक्थम्**) कहने योग्य शास्त्र और (**ब्रह्म**) विज्ञान को (**शंसाति**) प्रशंसित करे (**अवुर्याय**) अविद्वानों से उत्पन्न अविद्वान् पुरुष के लिए (**चिकितुषे**) जानने को हम लोगों के क्रियाविशेष यज्ञ में (**अन्ते**) समीप में प्रशंसित करे उस (**अध्वन**) मार्ग के जाने वाले को आप (**न**) न (**अव**) विरोध से (**स्य**) अस्त को प्राप्त कराओ ॥ २ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो बुद्धिमान् सब से विद्याओं की कामना करते हुए उपदेशक हों, उनकी निरन्तर रक्षा करो ॥ २ ॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

कविर्न निण्यं विदथानि साधन्वृषा यत्सेकं विपिपानो अर्चात् ।
दिव इत्था जीजनत्सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ॥३॥

पदार्थ—(**गृणन्तः**) स्तुति और उपदेश करते हुए विद्वान् जन (**अह्ना**) दिन से (**वयुना**) प्रज्ञानों का (**चक्रुः**) करते हैं और (**सप्त**) सात (**कारून्**) कारीगर जनों को (**चित्**) भी करते हैं (**इत्था**) इस प्रकार से (**यत्**) जो (**वृषा**) बलिष्ठ (**सेकम्**) सिंचन को (**विपिपानः**) विशेष करके रक्षा और (**विदथानि**) जानने के योग्यों को (**साधन्**) सिद्ध करता हुआ (**दिवः**) प्रकाशों का (**अर्चात्**) सत्कार करे वह (**निण्यम्**) निश्चित प्रकाशों को (**कविः**) विद्वान् के (**न**) सदृश (**जीजनत्**) उत्पन्न करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो जन विद्या और पुरुषार्थ को बढ़ाते हैं वे सात प्रकार के कारीगरों को करके सब कार्यों को सिद्ध करा कामसिद्धि कर सकें ॥ ३ ॥

स्व१र्यद्वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः ।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यत्**) जो (**सुदृशीकम्**) उत्तम प्रकार देखने योग्य (**महि**) बड़ा (**ज्योतिः**) प्रकाशमय (**स्वः**) सुख (**वेदि**) जाना जाता है (**यत्**) जो (**ह**) निश्चय (**वस्तोः**) दिन को किरणें (**रुरुचुः**) प्रकाशित करते हैं और जिनसे सूर्य्य (**अन्धा**) अन्धकाररूप (**तमांसि**) रात्रियों को (**दुधिता**) दूर की हुई (**विचक्षे**) प्रकाशित करता है तिससे जो (**नृतमः**) अत्यन्त नायक (**अभिष्टौ**) चारों ओर से सङ्गत कर्म्म में (**अर्कैः**) विचारों से (**नृभ्यः**) नायक मनुष्यों के लिये सुख को (**चकार**) करता है वही सब लोगों के सत्कार करने योग्य होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—नित्य नीति और वीरता से अच्छे प्रकार बढ़े हुए राज्यकर्म्म में राजा और प्रजाओं में सब ओर से सुख प्रतिदिन सूर्यप्रकाश के समान बढ़ता है ॥४॥

ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्यु१भे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ॥५॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यः**) जो जगदीश्वर (**इन्द्रः**) सूर्य्य के सदृश राजा (**अभि, बभूव**) हुआ जिसका (**चित्**) भी (**अस्य**) इसका (**महिमा**) बड़प्पन (**वि, रेचि**) विशेष करके शोभित होता है और जो (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**भुवना**) भुवनों को धारण करता है (**अतः**) इस से (**उभे**) दोनों (**रोदसी**) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (**महित्वा**) महत्त्व से (**आ, पप्रौ**) व्याप्त करता है और (**ऋजीषी**) सरल हुआ (**अमितम्**) परिमाणरहित पदार्थ (**ववक्षे**) प्राप्त करता है वही सब से बड़ा समझना चाहिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सब से जगदीश्वर का बड़प्पन अधिक जानते हैं वे इस जगत् में प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद्ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**ये**) जो पवन (**अश्मानम्**) जैसे मेघ को (**चित्**) वैसे (**बिभिदुः**) विदीर्ण करते हैं (**गोमन्तम्**) बहुत गौओं से युक्त (**व्रजम्**) गौओं के स्थान की (**उशिजः**) कामना करते हुओं के समान न्याय को (**वि, वव्रुः**) अस्वीकार करते हैं उन (**निकामैः**) नित्य कामना वाले (**सखिभिः**) मित्रों के साथ जो (**शक्रः**) सामर्थ्य वाला (**विद्वान्**) विद्वान् (**विश्वानि**) सम्पूर्ण (**नर्याणि**) मनुष्यों में उत्तम (**अपः**) कर्मों को (**वचोभिः**) वचनों से (**रिरेच**) पृथक् करता है वही पृथिवी के भोगने के योग्य है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सूर्य्य जैसे मेघ का वैसे दुष्टों के निवारण करनेवाले वा गोपाल लोग जैसे व्रज अर्थात् गौओं के बाड़े से गौओं को वैसे अन्याय से पृथक् करनेवाले जिस पुरुष के मित्र होवें वह मनुष्य राजा होने के योग्य है ॥ ६ ॥

अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन्प्रावत्ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥७॥

पदार्थ—हे (**धृष्णो**) दृढ़ आत्मावाले (**शूर**) वीरपुरुष ! (**सचेताः**) चित्त के सहित वर्त्तमान (**शवसा**) बल से (**पतिः**) स्वामी (**भवन्**) होते हुए आप जैसे सूर्य्य (**वज्रम्**) किरणरूपी वज्र को फटकार (**अपः**) जलों को प्रकट करते (**वृत्रम्**) मेघ को (**वव्रिवांसम्**) फैल प्रकट (**परा, अहन्**) मारता और (**समुद्रियाणि**) समुद्र के योग्य (**अर्णांसि**) जलों की (**पृथिवी**) पृथिवी के सदृश (**प्र, आवत्**) रक्षा करता है वैसे (**ते**) आपकी जो प्रजा की रक्षा करके शत्रुओं का नाश करे उसको आप (**प्र, ऐनोः**) प्रेरणा करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग सूर्य के सदृश प्रजाओं को सुख देते हैं वे ही राजकर्म्मों में प्रेरणा करने योग्य होते हैं ॥ ७ ॥

अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत्सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥८॥

पदार्थ—हे (**पुरुहूत**) बहुतों से प्रशंसित ! जो (**ते**) आपकी (**सरमा**) सरलनीति (**आविः**) प्रकट (**भुवत्**) होवे उससे आप शत्रुओं का (**दर्दः**) नाश करो (**यत्**) जो (**नः**) हम लोगों का (**नेता**) नायक प्रकट होवे उसके साथ (**पूर्व्यम्**) पूर्व (**वाजम्**) वेग का (**आ, दर्षि**) नाश करते हो और जो आप (**अङ्गिरोभिः**) पवनों से सूर्य जैसे (**अपः**) जलों को वैसे (**गृणानः**) स्तुति करते हुए (**गोत्रा**) मेघों के अवयवों को और (**भूरिम्**) बहुत (**अद्रिम्**) मेघ को (**रुजन्**) छिन्न-भिन्न करते हुए वर्त्तमान हो (**सः**) वह आपका सेनापति होवे ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजन् ! जो शुद्धनीति वाले मनुष्य प्रसिद्ध होवें उनकी रक्षा करके न्याय से प्रजाओं का पालन करो ॥ ८ ॥

अच्छा कविं नृमणो गा अभिष्टौ स्वर्षाता मघवन्नाधमानम् ।
ऊतिभिस्तमिषणो द्युम्नहूतौ नि मायावानब्रह्मा दस्युरर्त ॥९॥

पदार्थ—हे (**नृमणः**) मनुष्यों में मन रखनेवाले (**मघवन्**) बहुत धन से युक्त ! (**स्वर्षाता**) सुख के अन्त को प्राप्त आप (**ऊतिभिः**) रक्षण आदि से (**अभिष्टौ**) अभीष्ट की सिद्धि होने पर (**द्युम्नहूतौ**) धन और यश की प्राप्ति जिसमें उसमें (**गाः**) वाणियों का (**नाधमानम्**) ईश्वरीय भाव को पहुँचाते हुए (**कविम्**) विद्वान् को (**अच्छ**) उत्तम प्रकार प्रेरणा करे और जो (**मायावान्**) निकृष्ट बुद्धियुक्त (**अब्रह्मा**) वेद को नहीं जाननेवाला (**दस्युः**) दुष्ट स्वभावयुक्त पुरुष (**अर्त**) नाश हो (**तम्**) उसको आप (**नि, इषणः**) निकालें ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप कपटी मूर्ख और दुष्ट स्वभाववाले मनुष्यों का नाश करके और धार्मिक विद्वानों का सत्कार करके प्रशंसित हुए हम लोगों के राजा हूजिए ॥ ९ ॥

अब राजविषयसम्बन्धिप्रजाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ दस्युघ्ना मनसा याह्यस्तं भुवत्ते कुत्सः सख्ये निकामः ।
स्वे योनौ नि षदतं सरूपा वि वां चिकित्सदृतचिद्ध नारी ॥१०॥१८॥

पदार्थ—हे मनुष्य जो ! (**मनसा**) अन्तःकरण से (**दस्युघ्ना**) दुष्टस्वभाव वालों को मारती (**सरूपा**) गुणादिकों से तुल्य रूपवती (**ऋतचित्**) सत्य को इकट्ठा करनेवाली (**नारी**) मनुष्य की स्त्री (**भुवत्**) हो उसको आप (**आ**) सब प्रकार (**याहि**) प्राप्त हूजिए और जो (**ते**) आपके (**सख्ये**) मित्र के लिए (**कुत्सः**) निन्दित (**निकामः**) निकृष्ट कामनायुक्त होवे उसको आप (**अस्तम्**) प्रक्षिप्त अर्थात् दूर करो आपके (**स्वे**) अपने (**योनौ**) गृह में (**वि, चिकित्सत्**) विशेष चिकित्सा करता है वह दोनों (**ह**) निश्चय से (**वाम्**) आप दोनों के गृह में (**नि, सदतम्**) रहें ॥ १० ॥

भावार्थ—हे पुरुष ! आप निन्दित स्त्री का त्याग करके समानरूपवाली और दोषों के नाश करनेवाली को प्राप्त होओ और दोनों मिलकर प्रीति से अपने गृह में रहो ॥ १० ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यासि कुत्सेन सरथमवस्युस्तोदो वातस्य हर्योरीशानः ।
ऋज्रा वाजं न गध्यं युयूषन्कविर्यदहन्पार्याय भूषात् ॥११॥

पदार्थ—हे राजन् ! जिस से आप (**अवस्युः**) अपनी रक्षा की इच्छा करते हुए (**तोदः**) शत्रुओं के नाशकर्त्ता (**वातस्य**) पवन और (**हर्योः**) घोड़ों के (**ईशानः**) स्वामी होते हुए (**सरथम्**) रथ आदिकों के सहित सेना को (**यासि**) प्राप्त होते हो (**ऋज्रा**) और सरल गमनों को (**गध्यम्**) ग्रहण करने योग्य (**वाजम्**) वेग के (**न**) सदृश (**युयूषन्**) मिलाने की इच्छा करते हुए (**कविः**) श्रेष्ठ बुद्धियुक्त (**कुत्सेन**) निकृष्ट कर्म के सहित वर्त्तमान का (**अहन्**) नाश करता है (**यत्**) जो (**पार्याय**) पार होने के लिए (**भूषात्**) शोभित करे उस को प्राप्त होते हो इस से राज्य करने को समर्थ हो सकते हो ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो लोग निन्दित कर्म्म और निन्दित जन के सङ्ग का त्याग करके सत्यन्याय से प्रजाओं का पालन करते हुए पुरुषार्थ करें वे सब प्रकार से शोभित होवें ॥ ११ ॥

कुत्साय शुष्णमशुषं नि बर्हीः प्रपित्वे अह्नः कुयवं सहस्रा ।
सद्यो दस्यून्प्र मृण कुत्स्येन प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीके ॥१२॥

पदार्थ—हे राजन् ! (यद्रूः) जिन के (अभिके) उत्तम प्रकार प्राप्त होने पर (कुत्साय) निन्दित व्यवहार के लिए (कुषवम्) निकृष्ट यव जिसके उस (शुष्णम्) रसरहित (अशुषम्) दुःख को (नि, बर्हीः) दूर करो और जैसे (सूरः) सूर्य्य (चक्रम्) चक्र के सदृश वर्त्तमान ब्रह्माण्ड को (कुत्सेन) वैसे वज्र से हुए वेग से (सहस्रा) सहस्रों (दस्यून्) दुष्ट चोरों को (सद्यः) शीघ्र (प्र, मुष) नाश कीजिए (अभीके) समीप में (प्र, वृहतात्) छेदन कीजिए ॥ १२ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप वज्र आदि शस्त्रों से दुष्ट चोरों का नाश करके सूर्य्य के सदृश प्रतापी हूजिए ॥ १२ ॥

त्वं पिप्रुं मृगयं शूशुवांसमृजिश्वने वैदथिनाय रन्धीः ।
पञ्चाशत्कृष्णा नि वपः सहस्रात्कं न पुरो जरिमा वि दर्दः ॥१३॥

पदार्थ—हे राजन् ! (त्वम्) आप (वैदथिनाय) विज्ञानवाले के पुत्र के लिए (ऋजिश्वने) सरलता आदि गुणों से बढ़े हुए पुरुष के लिए (पिप्रुम्) व्यापक (शूशुवांसम्) बल से वृद्ध (मृगयम्) मृग को ढूंढनेवाले का (रन्धीः) नाश करो और (अत्कम्) व्याप्त होनेवाले वायु को (जरिमा) अतिवृद्ध अवस्था के (न) सदृश (पुरः) आगे (पञ्चाशत्) पचास और (सहस्रा) सहस्रों (कृष्णा) कृष्णवर्णवाले सैन्यजनों का (नि, वपः) विस्तार करो और दुष्ट पुरुषों का (वि, दर्दः) नाश करो ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । राजा आदि राजपुरुषों को चाहिए कि सेना में हजारों वीरों को रखके और नम्रता से वृद्धावस्था जैसे रूप और बलों को हरती है वैसे ही शत्रुओं के बल को धीरे-धीरे नष्ट कर युद्ध नीति का प्रचार करो ॥ १३ ॥

अब राजविषय में सेनायोग्य पुरुषों के रखने और उनके फल को
अगले मन्त्र में कहते हैं—

सूर उपाके तन्वं१ दधानो वि यत्ते चेत्यमृतस्य वर्पः ।
मृगो न हस्ती तविषीमुषाणः सिंहो न भीम आयुधानि बिभ्रत् ॥१४॥

पदार्थ—हे राजन् ! (यत्) जो (उपाके) समीप में (सूरः) सूर्य्य के सदृश (तन्वम्) तेजस्वि शरीर को (दधानः) धारण करता हुआ (ते) तुम्हारा (अमृतस्य) नित्य वस्तु के (वर्पः) रूप और (मृगः) हरिण के (न) तुल्य वा वेगवान् (हस्ती) हाथी के तुल्य बलवान् वा (सिंहः) सिंह के (न) तुल्य (भीमः) भयङ्कर (आयुधानि) तलवार भुशुण्डी शतघ्न्यादि नामों से प्रसिद्ध आयुधों को (बिभ्रत्) धारण और शत्रुओं की (तविषीम्) बलयुक्त सेना का (उषाणः) दाह करता हुआ (वि, चेति) जनाया जाता है उसका आप सदा सत्कार करके रक्खो ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है हे राजन् ! जो लोग दीर्घ ब्रह्मचर्य से सूर्य्य के समान तेजस्वी रूपवान् और वेगवान् बलिष्ठ सिंह के सदृश पराक्रमी धनुर्वेद के जाननेवाले जन हों उनकी सेना से शत्रुओं को जीतकर सब स्थानों में उत्तम कीर्ति से विदित हूजिए ॥ १४ ॥

अब राजविषय में सेना और अमात्य आदिकों की योग्यता के विषय को
अगले मन्त्र में कहते हैं—

इन्द्रं कामा वसूयन्तो अग्मन्त्स्वर्मीळ्हे न सवने चकानाः ।
श्रवस्यवः शशमानास उक्थैरोको न रण्वा सुदृशीव पुष्टिः ॥१५॥१९॥

पदार्थ—हे राजन् जो (वसूयन्तः) अपने धनों की इच्छा करते हुए (कामाः) कामना करनेवाले (सवने) प्रेरणा करने में (चकानाः) प्रकाशमान (श्रवस्यवः) अपने को अन्न की इच्छा करते हुए (शशमानासः) शत्रुओं के बल का उल्लङ्घन करनेवाले (उक्थैः) प्रशंसित गुणों से (ओकः) गृह के (न) सदृश (स्वर्मीळ्हे) जैसे सुख से युक्त संग्राम में (न) वैसे जो (सुदृशीव) उत्तम प्रकार देखने के योग्य सी (रण्वा) सुन्दर (पुष्टिः) पुष्टि उसको (अग्मन्) प्राप्त होते हैं उसको प्राप्त होकर (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्यवाले को और उन पूर्वोक्त जनों को आप सेना और राज्य के कर्मचारी करिए ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो धन की कामनावाले होवें वे शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाके युद्ध की विद्या और सामग्री पूर्ण करें ॥ १५ ॥

अब राजा और प्रजाजनों की एक सम्मति होने के विषय को
अगले मन्त्र में कहते हैं—

तमिद्व इन्द्रं सुहवं हुवेम यस्ता चकार नर्या पुरूणि ।
यो मावते जरित्रे गध्यं चिन्मक्षू वाजं भरति स्पार्हराधाः ॥१६॥

पदार्थ—हे प्रजाजनो ! (यः) जो (स्पार्हराधाः) इच्छा करने योग्य धनयुक्त पुरुष (मावते) मेरे सदृश (जरित्रे) विद्या की स्तुति करनेवाले के लिए (गध्यम्) ग्रहण करने योग्य (वाजम्) अन्न आदि ऐश्वर्य को (मक्षू) शीघ्र (भरति) धारण करता है (यः चित्) और जो (ता) उन (पुरूणि) बहुत (नर्या) मनुष्यों के लिए हितकारक सैन्य कामों को (चकार) करे (तम्) उस (सुहवम्) उत्तम प्रकार प्रशंसित (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्यवाले को (इत्) ही (वः) आप लोगों के लिए (हुवेम) हवन करें ॥ १६ ॥

भावार्थ—जो राजा और प्रजाजन एक सम्मति कर के उत्तम गुण कर्म्म और स्वभाव से युक्त राजा का स्वीकार करें तो पूर्ण सुख प्राप्त हो ॥ १६ ॥

अब युद्ध की प्रवृत्ति में विजयता विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तिग्मा यदन्तरशनिः पताति कस्मिञ्चिच्छूर मुहुके जनानाम् ।
घोरा यदर्य समृतिर्भवात्यध स्मा नस्तन्वो बोधि गोपाः ॥१७॥

पदार्थ—हे (शूर) वीर ! (अर्य) प्रशंसित (यत्) जो (घोरा) भयङ्कर (समृतिः) युद्ध (भवाति) होवे (अध) इसके अनन्तर (यत्) जो (तिग्मा) तीव्र (अशनिः) बिजुली (जनानाम्) मनुष्यों के (कस्मिञ्चित्) किसी (मुहुके) मोह के प्राप्त करानेवाले वारवार करने योग्य संग्राम के (अन्तः) बीच (पताति) गिरे उसमें (स्मा) ही (गोपाः) रक्षा करनेवाले हुए आप (नः) हम लोगों के (तन्वः) शरीरों को (बोधि) जानिए ॥ १७ ॥

भावार्थ—हे शूरवीरो ! जब बहुत शस्त्रों के संघातयुक्त युद्ध प्रवृत्त होवे तब अपने और अपने सम्बन्धियों के शरीरों की रक्षा करने और शत्रुओं के नाश करने से विजयी हूजिए ॥ १७ ॥

अब कैसे को राजा करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

भुवोऽविता वामदेवस्य धीनां भुवः सखावृको वाजसातौ ।
त्वामनु प्रमतिमा जगन्मोरुशंसो जरित्रे विश्वध स्याः ॥१८॥

पदार्थ—हे (विश्वध) संसार के धारण करनेवाले राजन् ! आप (वाजसातौ) संग्राम में (वामदेवस्य) उत्तमरूप से युक्त विद्वान् और (धीनाम्) बुद्धियों के (अविता) रक्षा करनेवाले (भुवः) हूजिये (अवृकः) चोरीरहित (सखा) मित्र (भुवः) हूजिये और (उरुशंसः) बहुत प्रशंसायुक्त होते हुए (जरित्रे) स्तुति करने योग्य के लिए सुखदायक (स्याः) हूजिये जिससे (त्वाम्) आप के (अनु) पश्चात् (प्रमतिम्) उत्तम बुद्धि को (आ, जगन्म) प्राप्त होवें ॥ १८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सब का स्वामी और वीरपुरुष युद्ध में चतुर, उपदेश देनेवाले और बुद्धिमानों का रक्षक होवे, उसी को राजा करो ॥ १८ ॥

अब राजजन के लिए करने योग्य विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

एभिर्नृभिरिन्द्र त्वायुभिष्ट्वा मघवद्भिर्मघवन्विश्व आजौ ।
द्यावो न द्युम्नैरभि सन्तो अर्यः क्षपो मदेम शरदश्च पूर्वीः ॥१९॥

पदार्थ—हे (मघवन्) बहुत ऐश्वर्य्य से युक्त (इन्द्र) शत्रुओं के नाशकारक राजन् ! हम लोग (एभिः) इन पूर्वोक्त (त्वायुभिः) आपकी कामना करते हुए (मघवद्भिः) बहुत श्रेष्ठ धनों से युक्त (नृभिः) नायक मनुष्यों के साथ (विश्वे) सम्पूर्ण (आजौ) संग्राम में (द्यावः) किरणों के (न) तुल्य और (द्युम्नैः) यशरूप धन से युक्त सत्पुरुषों के साथ (त्वा) आपके आश्रय का (सन्तः) वर्त्तते करते हुए (अर्यः) स्वामी के तुल्य (पूर्वीः) पुरानी (क्षपः) रात्रियों और (शरदः) शरद् ऋतुओं भर (च) भी (अभि, मदेम) सब ओर से आनन्द करें ॥ १९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो लोग धार्मिक शरीर और आत्मा के बल से युक्त सत्य की कामना करते हुए अपने राज्य में हुए धनयुक्त पुरुषों के साथ दृढ़ मेल कर और शत्रुओं को जीत के राज्य की प्रशंसा करते हैं वे सूर्य्य के सदृश कीर्तियुक्त और धनी होकर सब काल में आनन्दित होते हैं ॥ १९ ॥

फिर मन्त्री आदि कर्मचारियों के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

एवेदिन्द्राय वृषभाय वृष्णे ब्रह्माकर्म भृगवो न रथम् ।
नू चिद्यथा नः सख्या वियोषदसन्न उग्रोऽविता तनूपाः ॥२०॥

पदार्थ—(यथा) जैसे राजा (नः) हमारे (सख्या) मित्र के साथ (वियोषत्) धारण करे (उग्रः) तेजस्वी (तनूपाः) शरीर का पालन करनेवाला हुआ (नः) हम लोगों का (नु) शीघ्र (अविता) रक्षक (असत्) होवे (इत्, एव) उसी (वृषभाय) बैल के सदृश बलिष्ठ (वृष्णे) वीर्यवान् (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले के लिए (भृगवः) प्रकाशमान (रथम्) वाहन के (न) सदृश (ब्रह्म, चित्) बड़े भी धन को हम लोग (अकर्म) सिद्ध करें ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जैसे शिल्पीजन विद्या के साथ पदार्थों के संयोग से विमान आदि की रचना करके धनवान् होकर मित्रों का सत्कार करते हैं वैसे ही राजा से सत्कार किये गये हम लोग राजा से ऐश्वर्य की वृद्धि करके सब राजा आदिकों का सत्कार करें ॥ २० ॥

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥२१॥२०॥

पदार्थ—हे (हरिवः) उत्तम घोड़ों से युक्त (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् राजन् ! आप (गृणानः) प्रशंसा करते हुए (जरित्रे) स्तुति करनेवाले के लिए (नद्यः) नदियों के (न) सदृश (इषम्) अन्न आदि ऐश्वर्य की (नु) शीघ्र (पीपेः) वृद्धि करावें और जिन सब लोगों से (नु) शीघ्र (स्तुतः) आप प्रशंसित (अकारि) किये गये उन जनों से (ते) आप के लिये (नव्यम्) नवीन (ब्रह्म) धन अन्न-

रहित मन को (सवत्साः) सेवकों के सहित वर्त्तमान हम लोग (धिया) बुद्धि वा कर्म से (वय्याः) आह्वानों के निमित्त मार्ग के सदृश सिद्ध कर चुकने वाले (स्याम) हों ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जो मनुष्य परीक्षा करनेवाला सब जगह प्रशंसित और नदी के सदृश प्रजाओं को तृप्तिकर्त्ता अश्वसमान सुखपूर्वक दूसरे स्थान को पहुंचानेवाला होवे उसको सर्वाधीश करके नौकरों के सहित हम उसकी आज्ञा के अनुकूल वर्त्ताव करके सब लोग निरन्तर सुखी होवें ॥ २१ ॥

इस सूक्त में इन्द्र राजा मन्त्री और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्वसूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सोलहवां सूक्त और बीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथैकाविंशत्यृचस्य सप्तदशस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ पङ्क्तिः । ७, ६ भुरिक् पङ्क्तिः । १४, १६ स्वराट्पङ्क्तिः १५ याजुषी पङ्क्तिः । २१ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २, १२, १३, १७— १६ निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ५, ६, ८, १०, ११ त्रिष्टुप् । ४, २० विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब इक्कीस ऋचावाले सत्रहवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र से इन्द्रपदवाच्य राजपुरुषों का वर्णन करते हैं—

त्वं महाँ इन्द्र तुभ्यं ह क्षा अनु क्षत्रं मंहना मन्यत द्यौः ।
त्वं वृत्रं शवसा जघन्वान्त्सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानान् ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त राजन् ! जो (त्वम्) आप (महान्) बड़े (क्षाः) भूमियो और (क्षत्रम्) राज्य को (मंहना) जैसे (द्यौः) सूर्य्य वैसे (अनु, मन्यत) मानते हो (ह) उन्हीं (तुभ्यम्) आप के लिए हम लोग भी मानते और जैसे (वृत्रम्) मेघ के सदृश वर्त्तमान शत्रु को (जघन्वान्) नाश करनेवाला (अहिना) मेघ के सदृश बढ़े हुए धन से (सिन्धून्) नदियों को (सृजः) उत्पन्न करावे (त्वम्) आप (शवसा) बल से (जग्रसानान्) शत्रुसेना के अग्रणियों के समान उत्तम जनों को उत्पन्न कराओ ॥ १ ॥

भावार्थ—हे राजसम्बन्धी जनो ! जैसे बड़ा सूर्य वृष्टि से नदियों को पूर्ण करता है वैसे धन और ऐश्वर्य्य से राज्य को शोभित करो । राजा की आज्ञा के अनुकूल वर्त्ताव करके बड़े राज्य को सम्पादन करो ॥ १ ॥

तव त्विषो जनिमन्रेजत द्यौ रेजद्भूमिर्भियसा स्वस्य मन्योः ।
ऋघायन्त सुभ्वः पर्वतास आर्दन्धन्वानि सरयन्त आपः ॥२॥

पदार्थ—हे (जनिमन्) जन्मवाले राजन् ! जिस जगदीश्वर के (त्विषः) प्रताप से (भियसा) भय से (द्यौः) अन्तरिक्ष (रेजत) कम्पित होता और (भूमिः) पृथ्वी (रेजत्) कम्पित होती वैसे (तव) आपके (स्वस्य) निज (मन्योः) क्रोध से शत्रु लोग कांपें और जैसे (सुभ्वः) उत्तम प्रकार वृष्टि जिन से हो ऐसे (पर्वतासः) पर्वतों के सदृश ऊंचे मेघ (ऋघायन्त) बाधित होते (आर्दन्) और नाश करते हैं (आपः) जल और (धन्वानि) स्थल अर्थात् शुष्कभूमियां (सरयन्त) गमन कराती हैं वैसे ही आप की सेना और मन्त्रीजन होवें ॥ २ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप परमेश्वर के सदृश पक्षपात का त्याग कर के मनुष्यों में पिता के सदृश वर्त्ताव करो और जैसे जगदीश्वर के भय से सम्पूर्ण जगत् व्यवस्थित रहता है वैसे ही आप के दण्ड के भय से सब जगत् भोग के लिए कल्पित हो और सूर्य जैसे मेघ की बाधा करता और जलवृष्टि से जगत् को आनन्दित करता है वैसे ही शत्रुओं को बाधित करके सज्जनों को आनन्द दीजिये ॥ २ ॥

भिनद्गिरिं शवसा वज्रमिष्णन्नाविष्कृण्वानः सहसान ओजः ।
वधीद्वृत्रं वज्रेण मन्दसानः सरन्नापो जवसा हतवृष्णीः ॥३॥

पदार्थ—हे राजन् ! जैसे सूर्य (गिरिम्) पर्वत के समान मेघ को (भिनत्) विदीर्ण कर और (वज्रेण) किरण से (वृत्रम्) मेघ का (वधीत्) नाश करता है उस नाश हुए मेघ से (हतवृष्णीः) नष्ट किया गया मेघ जिनका वह (आपः) जल (जवसा) वेग से (सरन्) जाते हैं वैसे ही (मन्दसानः) आनन्द वा (सहसानः) सहन करते (ओजः) और पराक्रम को (आविष्कृण्वानः) प्रकट करते वा (वज्रम्) किरण के समान शस्त्र को (इष्णन्) प्राप्त होते हुए (शवसा) बल से शत्रुओं की सेना का नाश करो और सेना से शत्रुओं का नाश करके रुधिरों को बहाओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलु०—जो लोग सूर्य्य के सदृश न्याय से प्रकाश बल से प्रसिद्ध दुष्टों के नाशकारक और श्रेष्ठ पुरुषों के लिये आनन्ददायक होते हैं वे ही प्रकट यशवाले होकर इस संसार में और परलोक अर्थात् दूसरे जन्म में अखण्ड आनन्द वाले होते हैं ॥ ३ ॥

अब राजसन्तानविचार को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सुवीरस्ते जनिता मन्यत द्यौरिन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमो भूत् ।
य ईं जजान स्वर्यं सुवज्रमनपच्युतं सदसो न भूम ॥४॥

पदार्थ—हे राजन् ! (ते, इन्द्रस्य) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् आप का (द्यौः) बिजुली के सदृश (सुवीरः) श्रेष्ठवीर (जनिता) उत्पन्न करनेवाला (मन्यत) माना जाय और वह (स्वपस्तमः) अतीव उत्तम कर्मों से पूरित (कर्त्ता) करनेवाला (भूत्) हो वा (यः) जो (ईम्) महान् (स्वर्यम्) अत्यन्त सुख के लिये हित और (अनपच्युतम्) नाश से रहित (सुवज्रम्) उत्तम आयुधों वाले पुरुष को (जजान) उत्पन्न कर चुका उसको (सदसः) सभासदों के (न) सदृश हम लोग प्राप्त (भूम) होवें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचकलु०—हे राजन् ! जैसे श्रेष्ठ लोग अति उत्तम राजा को प्राप्त होकर और न्याय का प्रचार करके यशवाले होते हैं, इसी प्रकार यदि आप धर्मयुक्त ब्रह्मचर्य्य से पुत्रेष्टिकर्म्म की रीति से अपनी प्रिया में पुत्र उत्पन्न करें तो वह भी प्रसिद्ध यश वाला होवे ॥ ४ ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

य एक इच्च्यावयति प्र भूमा राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
सत्यमेनमनु विश्वे मदन्ति रातिं देवस्य गृणतो मघोनः ॥५॥२१॥

पदार्थ—(यः) जो (पुरुहूतः) बहुत से बुलाया और प्रशंसा किया गया (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् (कृष्टीनाम्) खेत बोनेवाले आदि प्रजास्थ मनुष्यों का (राजा) उत्तम गुणों से प्रकाशमान राजा (एकः) एक (इत्) ही शत्रुओं को (प्र, च्यावयति) कम्पाता है उसको (मघोनः) बहुत धन से युक्त श्रेष्ठ पुरुषों के समूह के मध्य में (गृणतः) सम्पूर्ण विद्या की स्तुति करते हुए (देवस्य) दिव्यगुणी विद्वानों के समूह में वर्त्तमान (सत्यम्) श्रेष्ठों में साधु (रातिम्) दाता जन को (विश्वे) सम्पूर्ण विद्वान् सभासद् (अनु, मदन्ति) अनुमति देते हैं उस (एनम्) इसको राजा करके हम लोग सुखी (भूम) होवें ॥ ५ ॥

भावार्थ—वही राजा हो सकता है जो एक भी बहुत शत्रुओं को जीत सकता है और वही विजयी होता है जो श्रेष्ठ पुरुषों के सङ्ग और उपदेश को प्राप्त होकर धर्मयुक्त न्याय निरन्तर करता है ॥ ५ ॥

फिर भूपतिविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सत्रा सोमा अभवन्नस्य विश्वे सत्रा मदासो बृहतो मदिष्ठाः ।
सत्राभवो वसुपतिर्वसूनां दत्रे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ॥६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देनेवाले ! जो आप (वसूनाम्) धनाढ्य पुरुषों के बीच (वसुपतिः) धन के स्वामी (सत्रा) सत्य (अभवः) होवें (दत्रे) देने योग्य सुवर्ण आदि धन के होने पर (विश्वाः) सम्पूर्ण (कृष्टीः) मनुष्यादि प्रजाओं को (अधिथाः) धारण करो तो (अस्य) इस राज्य के मध्य में (सत्रा) सत्य (विश्वे) सब (सोमाः) शान्तिगुणसम्पन्न सभ्यजन (सत्रा) सत्य सब (मदासः) आनन्द और (बृहतः) बड़ (मदिष्ठाः) अतीव आनन्द देनेवाले (अभवन्) होवें ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो राजा जैसे अपने निमित्त प्रिय की इच्छा करे वैसे ही प्रजाओं के लिए सुख देवे उसी के उत्तम सभासद् और अत्यन्त ऐश्वर्य्य बढ़ें ॥ ६ ॥

अब राजा के प्रति प्रजापालन प्रकार को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

त्वमध प्रथमं जायमानोऽमे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
त्वं प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण मघवन्वि वृश्चः ॥७॥

पदार्थ—हे (मघवन्) बहुत धन से युक्त (इन्द्र) दुष्ट पुरुषों के नाश करनेहारे राजन् (अमे) गृह में (जायमानः) उत्पन्न होनेवाले (त्वम्) आप (विश्वाः) सम्पूर्ण (कृष्टीः) मनुष्य आदि प्रजाओं को (प्रथमम्) पहिले (अधिथाः) धारण करो (अध) इसके अनन्तर (त्वम्) आप जैसे (प्रवतः) नीचले स्थलों के (प्रति) प्रति (आशयानम्) सब प्रकार सोते हुए के सदृश वर्त्तमान (अहिम्) मेघ को (वज्रेण) किरणों से सूर्य्य नाश करता है वैसे ही दुष्ट पुरुषों का आप (वि, वृश्चः) नाश करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो पुरुष प्रथम से ब्रह्मचर्य्य, विद्या, विनय और सुशीलता से सब में उत्तम होता है और जो राज्यपालन और युद्ध करने को जानता है उसी को राजा करके सुखी होओ ॥ ७ ॥

अब प्रजाजनों से राजा के स्वीकार करने को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम् ।
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (वृत्रम्) मेघ को जैसे सूर्य वैसे शत्रुओं का (हन्ता) नाश करनेवाला पुरुष (वाजम्) अन्न आदि ऐश्वर्य्य का (सनिता) विभाग करनेवाला (उत) भी (मघवा) बहुत धन से युक्त (सुराधाः) धर्मयुक्त व्यवहार से धनसंचयकर्त्ता (मघानि) और धनों का (दाता) देनेवाला हो उस (सत्राहणम्) सत्य से असत्य के नाश करनेवाले (दाधृषिम्) निरन्तर प्रगल्भ (महाम्) महान् (अपारम्) अपारविद्यावाले गम्भीर आशययुक्त (तुम्रम्) प्रेरणा देनेवाले (वृषभम्) बलिष्ठ (सुवज्रम्) सुन्दर शस्त्र और अस्त्रों के प्रयोगकर्त्ता (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्ययुक्त राजा का स्वीकार करो ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो पूर्णविद्यायुक्त सत्यवादी प्रशस्त कीर्तिवाले उत्तम और कर्मों का करानेवाला और अभयदाता पुरुष हो उसी को राज्य के लिए नियत करो ॥ ८ ॥

अब राजा को अमात्य आदि भृत्य कैसे रखने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अयं वृतश्चातयते समीचीर्य आजिषु मघवा शृण्व एकः ।
अयं वाजं भरति यं सनोत्यस्य प्रियासः सख्ये स्याम ॥९॥

पदार्थ—हे राजन् ! (यः) जो (अयम्) यह राजा (वृतः) स्वीकार किया हुआ दोषरहितों को (चातयते) विज्ञान कराता है और जो (मघवा) बहुत उत्तम ऐश्वर्य से युक्त (एकः) अकेला अर्थात् सहायरहित (आजिषु) संग्रामों में (समीचीः) शिक्षाओं को प्राप्त होने वाली सेनाओं का (भरति) पोषण करता है (अयम्) और यह (वाजम्) विज्ञान को पुष्ट करता है (यम्) जिसको यथार्थवक्ता पुरुष (सनोति) संपन्न करता है जिसको मैं (शृण्वे) सुनता हूं (अस्य) इसके (सख्ये) मित्रकर्म में हम लोग (प्रियासः) प्रिय (स्याम) होवें ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो सेनाओं को शिक्षा दिलाता है, विशेष करके युद्ध के समय में उचित बात कहने से योद्धाओं का उत्साह बढ़ाता है और जो जन आपके सम्मुख दोषों को कहते हैं उनकी शिक्षा मे स्थित होकर उन्ही जनों मे मित्रता कर के सम्पूर्ण कार्य्यों को सिद्ध करो ॥ ९ ॥

अब राजा को राज्य करने का प्रकार अगले मन्त्र में कहते हैं—

अयं शृण्वे अध जयन्नुत घ्नन्नयमुत प्र कृणुते युधा गाः ।
यदा सत्यं कृणुते मन्युमिन्द्रो विश्वं दृळ्हं भयत एजदस्मात् ॥१०॥२२॥

पदार्थ—हे राजन् ! उत्तम प्रकार परीक्षा करके स्वीकार किया गया (अयम्) यह जन शत्रुओं का (घ्नन्) नाश करता और (उत) भी (युधा) युद्ध से (जयन्) शत्रुओं को पराजित करता हुआ (गाः) पृथिवी के राज्यों को (प्र, कृणुते) उत्तम प्रकार करता है (उत) और (शृण्वे) जिसको मैं राज्य करने को सुनता हूं (यदा) जब (अयम्) यह (सत्यम्) सत्य को (कृणुते) करता है तब (विश्वम्) सब राज्य (दृळ्हम्) उत्तम प्रकार स्थित होता है जब यह (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाला राजा (मन्युम्) क्रोध को करता है (अध) इसके अनन्तर सब (अस्मात्) इस राजा से सम्पूर्ण उत्तम प्रकार स्थिर भी राज्य (एजत्) कंपता हुआ (भयते) डरता है ॥ १० ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जिस उत्तम कीर्ति को आप सुनें और जो लोग राज्य पालन और युद्ध मे चतुर हों उनका स्वीकार करके सत्याचार से बर्त्ताव कर शान्ति से सज्जनो का अच्छे प्रकार पालन करके दुष्टजनो को निरन्तर दण्ड देवें तभी सब जन धर्म के मार्ग का त्याग करके इधर उधर न चलित होवें ॥ १० ॥

अब राजा कैसे विजय और आनन्द को प्राप्त होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

समिन्द्रो गा अजयत्सं हिरण्या समश्विया मघवा यो ह पूर्वीः ।
एभिर्नृभिर्नृतमो अस्य शाकै रायो विभक्ता सम्भरश्च वस्वः ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो (मघवा) श्रेष्ठधनयुक्त (इन्द्रः) शत्रुओं का नाशकर्त्ता (एभिः) इन (नृभिः) नायकों के साथ (नृतमः) अतिशय नायक हुआ (गाः) भूमियों को (सम्) उत्तम प्रकार (अजयत्) जीते (अश्विया) घोड़े आदि से युक्त (हिरण्या) सुवर्ण आदि धनों को (सम्) उत्तम प्रकार जीते जो (ह) निश्चय से (पूर्वीः) प्राचीन प्रजाओं को (सम्) उत्तम प्रकार जीते जो (अस्य) इस सेना की (शाकैः) शक्तियों से (रायः) धन का (विभक्ता) विभाग करने वाला (वस्वः) धनों का (च) और (सम्भरः) इकट्ठा करने वाला होवे वही राज्य करने को योग्य होवे ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो उत्तम सहाय और उत्तम धन सामग्रीयुक्त तथा शत्रुओं का जीतने और यथायोग्यों के लिये विभाग करके देनेवाला विद्वान् राजा होवे वही विजय को प्राप्त होकर आनन्द करे ॥ ११ ॥

अब प्रजाजनों में किस की राज्य की योग्यता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

कियत्स्विदिन्द्रो अध्येति मातुः कियत्पितुर्जनितुर्यो जजान ।
यो अस्य शुष्मं मुहुकैरियर्ति वातो न जूतः स्तनयद्भिरभ्रैः ॥१२॥

पदार्थ—(यः) जो (मुहुकैः) वारंवार कार्य्य करने वालों से (अस्य) इसके (शुष्मम्) बल को (स्तनयद्भिः) शब्द करते हुए (अभ्रैः) मेघों के साथ (जूतः) वेग को प्राप्त (वातः) वायु के (न) तुल्य विजय को (इयर्ति) प्राप्त होता है और (यः, कियत्) जो कोई (इन्द्रः) तेजस्वी (मातुः) माता का (कियत्) कितना और (जनितुः) उत्पन्न करनेवाले (पितुः) पिता का (कियत्) कितना उपकार (अधि, एति) स्मरण करता है वही राजा (जजान) होता है ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जो मनुष्य माता और पिता का कितना उपकार है ऐसा जानकर प्रत्युपकार करते हैं वे मेघ और वायु के जैसे बिजुली के सदृश बल को प्राप्त होकर वारंवार शत्रुओं को जीतकर प्रकट यश वाले होते हैं ॥ १२ ॥

अब राजा को उत्तम और अनुत्तम को दण्ड और सत्कार करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं कृणोतीयर्ति रेणुं मघवा समोहम् ।
विभञ्जनुरशनिमाँ इव द्यौरुत स्तोतारं मघवा वसौ धात् ॥१३॥

पदार्थ—हे राजन् ! जैसे (मघवा) अत्यन्त धनयुक्त पुरुष (स्तोतारम्) यज्ञ करनेवाले को (वसौ) धन में (धात्) धारण करता है वैसे जो (द्यौः) प्रकाश के सदृश (उत) और भी (अशनिमानिव) बहुत शस्त्र और अस्त्र वाले के सदृश (विभञ्जनुः) शत्रुओं का नाश करता हुआ (मघवा) श्रेष्ठधन से युक्त पुरुष (क्षियन्तम्) निवास करते और (अक्षियन्तम्) नहीं निवास करते हुए को (कृणोति) स्वीकार करता है (समोहम्) उत्तम प्रकार से छिपे हुए (रेणुम्) अपराध को (इयर्ति) प्राप्त होता है उसको (त्वम्) आप शिक्षा दीजिये ॥१३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—हे राजन् ! आप जो अपराध करे उस को दण्ड के विना मत छोड़ो । और जैसे यजमान विद्वान् जन को यज्ञ में स्वीकार करके धन देके सुख देता है वैसे ही श्रेष्ठ सभासदों का स्वीकार करके ऐश्वर्य से सब को आनन्द दीजिये ॥ १३ ॥

अब राजा को वेगवान् यन्त्रों को बना दुष्ट संशोधन करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अयं चक्रमिषणत्सूर्यस्य न्येतशं रीरमत्ससृमाणम् ।
आ कृष्ण ईं जुहुराणो जिघर्ति त्वचो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ॥१४॥

पदार्थ—हे राजन् ! आप जैसे (अयम्) यह (सूर्यस्य) सूर्य के मण्डल के सदृश (चक्रम्) चक्र को (इषणत्) प्राप्त होता है (ससृमाणम्) निरन्तर प्राप्त होते हुए (एतशम्) घोड़े को (नि, रीरमत्) रमाता है (कृष्णः) खींचने वाला (जुहुराणः) कुटिल गमन वाले के सदृश (ईम्) जल को (आ, जिघर्ति) नष्ट करता है (त्वचः) त्वचा के सम्बन्ध मे (रजसः) लोकसमूह और (अस्य) इस के (बुध्ने) अन्तरिक्ष और (योनौ) गृह मे रमता है ऐसा जानकर इसका सत्कार करके दुष्ट पुरुष को ताड़न दीजिये ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य कलाकौशल से चक्रयन्त्रों का निर्म्माण करके वेगयुक्त वाहनों को प्राप्त होकर रमण करते हैं वे ऐश्वर्य को प्राप्त होकर और कुटिलता को त्याग कर सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥

अब राजकर्म की अनर्थता को अगले मन्त्र में कहते हैं—

असिक्न्यां यजमानो न होता ॥१५॥२३॥

पदार्थ—जो राजा (यजमानः) मेल करनेवाले के (न) सदृश (असिक्न्याम्) रात्रि में भयरहित (होता) सुख का देनेवाला होवे वही निरन्तर आनन्द करे ॥ १५ ॥

भावार्थ—जिस राजा के प्रजाजनो मे प्राणियों वा शयन किये हुओं में दण्ड जागता है वह अभय का देनेवाला पुरुष किसी से भी भय को नहीं प्राप्त होता है ।

अब प्रजाजनों को कैसे सुख और ऐश्वर्य हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ।
जनीयन्तो जनिदामक्षितोतिमा च्यावयामोऽवते न कोशम् ॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (गव्यन्तः) अपनी गौओंकी इच्छा (अश्वायन्तः) अपने घोड़ों की इच्छा (वाजयन्तः) विज्ञान वा अन्न की इच्छा (जनीयन्तः) तथा स्त्री की इच्छा करते हुए (विप्राः) बुद्धिमान् हम लोग (सख्याय) मित्र होने के वा मित्रकर्म के लिये (वृषणम्) सुख के वर्षाने वाले पिता (जनिदाम्) जन्म देने वाली माता (अक्षितोतिम्) वा जिसकी रक्षा क्षीण नहीं होती उस नित्यरक्षक पुरुष को और (अवते) कूप में (कोशम्) मेघ के (न) सदृश (इन्द्रम्) वा सूर्य्य के सदृश प्रकाशमान राजा को (आ, च्यावयामः) प्राप्त करावें वैसे इस सब को आप लोग भी औरो को प्राप्त कराओ ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा वाचकलु०—जिनको सुख और ऐश्वर्य की इच्छा हो वे मेघ के सदृश धन वर्षाने और नित्य रक्षा करनेवाले राजा को मित्रभाव के लिये ग्रहण करें ॥ १६ ॥

अब ईश्वरोपासना विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्राता नो बोधि ददृशान आपिरभिख्याता मर्डिता सोम्यानाम् ।
सखा पिता पितृतमः पितॄणां कर्तेमु लोकमुशते वयोधाः ॥१७॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो (नः) हम लोगो का वा हम लोगो को (त्राता) रक्षा करने (ददृशानः) उत्तम प्रकार देखने (आपिः) व्याप्त रहने (अभिख्याता) सम्मुख अन्तर्यामीपने से उपदेश देने (मर्डिता) सुख देने और (सखा) मित्र (पिता) संसार का उत्पन्न करनेवाला (सोम्यानाम्) चन्द्रमा के तुल्य शान्ति

आदि गुणों से युक्त (पितृणाम्) उत्पन्न वा पालन करने वालों का (पितृतमः) अत्यन्त पालन करनेवाला (कर्त्ता) कर्त्तापुरुष (लोकम्) लोक की (उशते) कामना करते हुए के लिए (इम्) सब को (उ) ही (वयोधाः) जीवन वा सुन्दर वस्तु का धारण करनेवाला जगदीश्वर है, ऐसा उसको (बोधि) जानो ।१७।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर मित्र के तुल्य सबका सुखकर्त्ता, सत्य का उपदेश देनेवाला, उत्पन्न करने वालो का उत्पन्नकर्त्ता, पालन करने वालो का पालनकर्त्ता, सब कर्म्मों का देखने वाला, न्यायाधीश, अन्तर्य्यामी अभिव्याप्त है उसी को जानकर उपासना करो ॥ १७ ॥

अब राज्यवर्द्धन प्रकार को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सखीयतामविता बोधि सखा गृणान इन्द्र स्तुवते वयो धाः ।
वयं ह्या ते चकृमा सबाध आभिः शमीभिर्महयन्त इन्द्र ॥१८॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देनेवाले (सखीयताम्) मित्र के सदृश आचरण करते हुए पुरुषो के (सखा) मित्र (अविता) रक्षा करनेवाले (गृणानः) स्तुति करते हुए (स्तुवते) प्रशंसा करनेवाले के लिए (वयः) सुन्दर धन को (धाः) धारण कीजिये । और हे (इन्द्र) सूर्य्य के सदृश विद्या और विनय से प्रकाशित जो (वयम्) हम लोग (हि) ही (ते) आपके लिये (आभिः) इन (शमीभिः) क्रियाओ से (महयन्तः) बड़े के सदृश आचरण करते हुए (वयः) सुन्दर धन को (चकृमा) करें उनको आप (सबाधः) विलोडन के सहित वर्त्तमान होते हुए (आ बोधि) अच्छे प्रकार जानिये ॥ १८ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! यदि राज्य बढ़वाने की आप इच्छा करें तो पक्षपात का त्याग करके सब के साथ मित्र के सदृश वर्त्ताव करिये और श्रेष्ठ पुरुषों की रक्षा करते और दुष्ट पुरुषो को दण्ड देते हुए अपने तेज की प्रसिद्धि करिये ॥ १८ ॥

फिर कैसे जनों को राजा राज्यकर्म्मों में रक्खे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स्तुत इन्द्रो मघवा यद्ध वृत्रा भूरीण्येको अप्रतीनि हन्ति ।
अस्य प्रियो जरिता यस्य शर्मन्नकिर्देवा वारयन्ते न मर्त्ताः ॥१९॥

पदार्थ—हे राजन् ! (यस्य) जिन के (शर्मन्) गृह मे (प्रियः) मनोहर (जरिता) स्तुति करनेवाला (स्तुतः) प्रशंसित (मघवा) बहुत ऐश्वर्य्य से युक्त (इन्द्रः) सूर्य्य के सदृश प्रतापी राजा जैसे सूर्य्य (अप्रतीनि) नहीं प्रतीत (भूरीणि) बहुत (वृत्रा) मेघो के अवयवों को (एकः) सहायरहित अर्थात् अकेला भी (हन्ति) नाश करता है वैसे ही (यत्) जो असहाय (अस्य) इसकी सेना मे (ह) निश्चय से विद्वान् बहुतो का नाश करनेवाला वर्त्ताव करे उसको (देवाः) विद्वान् लोग (नकिः) नहीं (वारयन्ते) रोकते हैं और (न) न (मर्त्ताः) अविद्वान् लोग ॥ १९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—जो राजा सत्य के उपदेशक अपने प्रिय कारक विद्वानो की राजकृत्य में रक्षा करे, उसका पराजय करने को कोई भी नही समर्थ होवे ॥ १९ ॥

अब अमात्य आदि जनों से राजा की न्याय के बीच प्रवृत्ति कराने को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शी करत्सत्या चर्षणीधृदनर्वा ।
त्वं राजा जनुषां धेह्यस्मे अधि श्रवो माहिनं यज्जरित्रे ॥२०॥

पदार्थ—हे राजन् ! (यत्) जो (नः) हम लोगो के लिये (राजा) प्रकाशमान (मघवा) धनदाता (विरप्शी) बड़े (चर्षणीधृत्) मनुष्यो को धारण करनेवाले (अनर्वा) घोड़ो से रहित (इन्द्र) राजा (त्वम्) आप (सत्या) नही नाश होने वाले कार्य्यों को (करत्) सिद्ध करें (एवा) वही आप (जनुषाम्) जन्म वाले (अस्मे) हम लोगो के (माहिनम्) बड़े (श्रवः) श्रवण वा अन्न को (अधि, धेहि) अधिक धारण करें इसी प्रकार (जरित्रे) स्तुति करने वाले के लिये भी ॥ २० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अन्याय मे प्रवर्त्तमान राजा को रोकते हैं वे सत्य के प्रचार करनेवाले होते हुए बड़े सुख को प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥

अब अमात्यादिकों की भी कार्यप्रवृत्ति को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥२१।२४॥

पदार्थ—हे (हरिवः) श्रेष्ठ मनुष्यो से युक्त (इन्द्र) राजन् ! जो (गृणानः) सत्य की स्तुति करते हुए आप हम लोगो से (नु) शीघ्र (स्तुतः) प्रशंसित (अकारि) किये गये वह आप (जरित्रे) स्तुति करनेवाले के लिये (नद्यः) नदियों के (न) सदृश (इषम्) अन्न वा विज्ञान को (पीपेः) बढ़ाओ और हे राजन् ! आप से (नव्यम्) नवीन (ब्रह्म) बड़ा धन (नु) निश्चय से किया गया उन (ते) आप के हम लोग (सदासाः) सेवको के साथ वर्त्तमान (रथ्यः) बहुत वाहनो से युक्त (धिया) बुद्धि वा कर्म से अनुकूल (स्याम) होवें ॥ २१ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अति उत्तम गुण कर्म स्वभाव और विद्या से युक्त और प्रजा के हित के लिये धन और अन्नों को बढ़ाता है उसके अनुकूलपन से वर्त्ताव करके सेना के अङ्गों को दृढ़ सम्पादन करना चाहिये ॥ २१ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा, प्रजा और भृत्यों के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सत्रहवां सूक्त और चौबीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

अथ त्रयोदशर्चस्याष्टादशस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रादिती देवते । १, ८, १२ त्रिष्टुप् । ५-७, ९-११ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ पङ्क्तिः । ३, ४ भुरिक् पङ्क्तिः । १३ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब तेरह ऋचावाले अठारहवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में उत्तम ऐश्वर्यवान् मनुष्य के लिये अच्छे मार्ग का उपदेश करते हैं—

अयं पन्था अनुवित्तः पुराणो यतो देवा उदजायन्त विश्वे ।
अतश्चिदा जनिषीष्ट प्रवृद्धो मा मातरममुया पत्तवे कः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! (यतः) जिस से (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उदजायन्त) उत्तम होते हैं वह (अयम्) यह (अनुवित्तः) अनुकूल प्राप्त (पुराणः) अनादि काल से सिद्ध (पन्थाः) मार्ग है जिससे यह संसार (प्रवृद्धः) बड़ा (जनिषीष्ट) उत्पन्न होवे (अतः) इस कारण से (चित्) भी आप (अमुया) उस उत्पत्ति से (मातरम्) माता को (पत्तवे) प्राप्त होने को (मा) मत (आ, कः) करें ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस मार्ग से यथार्थवक्ता पुरुष जावें उसी मार्ग से आप लोग भी चलो जो बड़ी वृद्धि भी होवे तो भी माता का अपमान किसी को न करना चाहिये ॥ १ ॥

फिर दृष्टान्त से पूर्वोक्त विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

नाहमतो निरया दुर्गहैतत्तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणि ।
बहूनि मे अकृता कर्त्वानि युध्यै त्वेन सं त्वेन पृच्छै ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (अहम्) मैं (दुर्गहा) दुःख से प्राप्त होने योग्यों का नाश करनेवाला (न) न होऊं (पार्श्वात्) पाश से (निः, गमाणि) जाऊं (मे) मेरे (बहूनि) बहुत (अकृता) न किये गये (कर्त्वानि) कर्त्तव्य कर्म हैं (तिरश्चता) तिरछे वाके से (त्वेन) किससे (युध्यै) युद्ध करूं (त्वेन) अन्य से (सम्, पृच्छै) पूछूं वैसे आप (अतः) इस कारण से (एतत्) इस पूर्वोक्त को (निः) अत्यन्त (अय) प्राप्त होओ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे मैं कर्म नहीं करता हूं और करके न किये गये न रखता हूं मेरे साथ जो युद्ध की इच्छा करे उसके साथ युद्ध मे पूछने योग्य को पूछता हूं वैसे इस सब का आचरण करो ॥ २ ॥

अब उत्तम ऐश्वर्यवान् राजा के लिये सेना के सरक्षण विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

परायतीं मातरमन्वचष्ट न नानु गान्यनु नू गमानि ।
त्वष्टुर्गृहे अपिबत्सोममिन्द्रः शतधन्यं चम्वोः सुतस्य ॥३॥

पदार्थ—जैसे (इन्द्रः) शत्रुओ का नाश करनेवाला सेना का ईश (त्वष्टुः) प्रकाश के (गृहे) स्थान मे (सुतस्य) ऐश्वर्य्य से युक्त के (शतधन्यम्) असंख्य धन मे साधु (सोमम्) ओषधियो के रस को (चम्वोः) सेनाओ के मध्य में (अपिबत्) पीता है (परायतीम्) और मरनेवाली (मातरम्) माता को (न) नही (अनु, अचष्ट) प्रसिद्ध करे वैसे मैं (नु) शीघ्र (अनु, गानि) पीछे जाऊं और वैसे मैं (न) न (अनु, गमानि) पीछे जाऊं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—जो सेना के अधीश राजगृह में सत्कार को प्राप्त होकर नियमित आहार और विहार से पूर्ण बल का उत्पन्न करके दोनों अपनी और शत्रुओ की सेना के मध्य मे विवाद का नाश करे वा युद्ध करावें उनका सदा ही विजय और जैसे रोगग्रस्त माता की सन्तान सेवा करते हैं वैसे ही सेना का सेवन करते हैं वे न्याय के अनुगामी होते हैं ॥ ३ ॥

अब उत्तम ऐश्वर्यवान् पुरुष के लिये काल दृष्टान्त से अच्छे मार्ग का उपदेश अगले मन्त्र में करते हैं—

किं स ऋधक्कृणवद्यं सहस्रं मासो जभार शरदश्च पूर्वीः ।
नही न्वस्य प्रतिमानमस्त्यन्तर्जातेषूत ये जनित्वाः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (ये) जो (जनित्वाः) उत्पन्न होनेवाले (अन्तः) बीच (जातेषु) उत्पन्न हुए पदार्थों में (पूर्वीः) अनादि काल से सिद्ध (शरदः) शरद् ऋतुओं को जानते हैं (उत) और जो (अस्य) इसका (प्रतिमानम्) परिमाण साधन (नही) नही (अस्ति) है वा (मासः) चैत्र आदि मासों को (जभार) पोषण करे और (यम्) जिसे (सहस्रम्) सहस्र (ऋधक्) सत्य (कृणवत्) प्रसिद्ध करे (सः) वह (च) और (किम्) किस को (नु) निश्चय से प्राप्त होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यों ! जैसे काल मास आदि अवयवों को धारण करता है और आप अनन्त हुआ संसार में उत्पन्न हुओं में नापनेवाला है वैसे ही आप लोग भी करो ॥ ४ ॥

अब मान करनेवाली माता से उत्तम ऐश्वर्यवान् पुरुष के पालनादि विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अवद्यमिव मन्यमाना गुहाकरिन्द्रं माता वीर्येणा न्यृष्टम् ।
अथोदस्थात्स्वयमत्कं वसान आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ॥५॥२५॥

पदार्थ—जैसे (मन्यमाना) आदर की गई (माता) माता (गुहा) बुद्धि में (वीर्येणा) पराक्रम से (न्यृष्टम्) अत्यन्त प्राप्त (इन्द्रम्) राजा को (अवद्यमिव) निन्दनीय के सदृश (अकः) करती है वैसे ही (जायमानः) उत्पन्न होनेवाला सूर्य (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथ्वी का (आ, अपृणात्) पालन करता है और जैसे (अत्कम्) कूप का (वसानः) आच्छादन करता हुआ जन (स्वयम्) आप ही ऊपर को प्राप्त होवे वैसे जो (उत्, अस्थात्) उठता है वह (अथ) अनन्तर सब जगत् की रक्षा करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है जो माता सूर्य के सदृश जिन अपने सन्तानों को बोध कराती और दुष्ट आचरणों को दूर करके शिक्षा करती है वो वे सन्तान उत्तम होते हैं ॥ ५ ॥

अब मेघ के कृत्य को अगले मन्त्र में कहते हैं—

एता अर्षन्त्यललाभवन्तीर्ऋतावरीरिव संक्रोशमानाः ।
एता वि पृच्छ किमिदं भनन्ति कमापो अद्रिं परिधिं रुजन्ति ॥६॥

पदार्थ—हे जिज्ञासुजन ! जो (एताः) ये नदियां (ऋतावरीरिव) प्रातःकालों के सदृश (संक्रोशमानाः) उच्चस्वर को करती हुई (अललाभवन्तीः) अलल करती हुईं (अर्षन्ति) जाती हैं सो (एताः) ये (किम्) क्या (इदम्) यह (भनन्ति) शब्द करती हैं ऐसा (वि, पृच्छ) विशेष करके पूछिये और ये (आपः) जल (कम्) किस (परिधिम्) घेर और (अद्रिम्) मेघ को (रुजन्ति) भञ्जते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! यह नदियां मेघों की पुत्रियां अर्थात् उन से उत्पन्न हुईं तटों को तोड़ती और अव्यक्त शब्दों को करती हुईं प्रातःकालों के सदृश जाती हैं ऐसे ही सेना शत्रुओं के सम्मुख प्राप्त होवे ॥ ६ ॥

फिर मेघ विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

किमु ष्विदस्मै निविदो भनन्तेन्द्रस्यावद्यं दिधिषन्त आपः ।
ममैतान्पुत्रो महता वधेन वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (मम) मुझ पुत्र के (इन्द्रस्य) सूर्यसम्बन्ध की (निविदः) अत्यन्त ज्ञान जिन से वे वाणी (अस्मै) इस मेघ के लिये (किम्) क्या (उ) और (स्वित्) क्यों (भनन्त) शब्द करती हैं (आपः) जल (अवद्यम्) निन्द्य (दिधिषन्ते) शब्द करते हैं मेरा (पुत्रः) सन्तान (महता) बड़े (वधेन) वध से (एतान्) इनको और (वृत्रम्) मेघ का (जघन्वान्) नाश किये हुए सूर्य्य (सिन्धून्) नदियों को (वि, असृजत्) उत्पन्न करता है ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में अदिति सूर्य्य और मेघ के अलङ्कार से सेना, सभाध्यक्ष और राजा के कृत्य का वर्णन है। जैसे अन्तरिक्ष के पुत्र के समान वर्त्तमान सूर्य्य मेघ का नाश करके नदियों को बहाता है वैसे ही विद्वान् का उत्तम प्रकार शिक्षित पुत्र सेना का अध्यक्ष शत्रुओं का नाश करके सेनाओं को ऐश्वर्य्य प्राप्त कराता है ॥ ७ ॥

अब राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

ममच्चन त्वा युवतिः परास ममच्चन त्वा कुषवा जगार ।
ममच्चिदापः शिशवे ममृड्युर्ममच्चिदिन्द्रः सहसोदतिष्ठत् ॥८॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो (युवतिः) पूर्ण चौबीस वर्ष वाली (त्वा) आप को (ममत्) मदयुक्त करती हुई (चन) भी (परास) पराङ्मुख करती है, जो (ममत्) प्रमादयुक्त करती हुई (कुषवा) निकृष्ट प्रेरणावालों (त्वा) आप को (चन) भी (जगार) निगलती है उसके सङ्ग का त्याग करो और जो (ममत्) मदयुक्त करती हुई (आपः) जलों के सदृश वर्त्तमान माता से (चित्) जैसे (शिशवे) पुत्र के लिये (ममृड्युः) सुख देती है और जो (ममत्) सुख देता हुआ (चित्) सा (इन्द्रः) सूर्य्य के सदृश (सहसा) बल से (उत्, अतिष्ठत्) उठता है उस की सेवा करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो लोग प्रमत्त स्त्रियों में व्यवहार को नहीं प्राप्त होते वे बली होते हैं और जो पुत्र के सदृश प्रजाओं का पालन करते वे उत्तम होते हैं ॥ ८ ॥

ममच्चन ते मघवन्व्यंसो निविविध्वाँ अप हनू जघान ।
अधा निविद्ध उत्तरो बभूवाञ्छिरो दासस्य सं पिणग्वधेन ॥९॥

पदार्थ—हे (मघवन्) बहुत धन से युक्त पुरुष ! जो (ते) आप के (दासस्य) देने योग्य के (वधेन) ताडन से (शिरः) शिर को (सम्, पिणक्) अच्छे पीसता है (व्यंसः) खींच लिये गये हैं बल आदि जिस के ऐसा (निविविध्वान्) अत्यन्त शत्रुओं का नाश करनेवाला (हनू) मुख के आस पास के भागों को (अप) दूर करने में (जघान) नाश करता है (अधा) इस के अनन्तर (ममत्) प्रसन्न होता हुआ (चन) भी (उत्तरः) आगे के समय में होनेवाला (निविद्धः) अत्यन्त बाणों से छेदा गया (बभूवान्) होता है उस को आप दण्ड दीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो विरुद्ध कर्म से प्रजाओं में चेष्टा करता है उसे सदा दृढ़ बंधे को शस्त्रों से व्यथित कर सब प्रकार से बांधो ॥ ९ ॥

गृष्टिः ससूव स्थविरं तवागामनाधृष्यं वृषभं तुम्रमिन्द्रम् ।
अरीळ्हं वत्सं चरथाय माता स्वयं गातुं तन्व इच्छमानम् ॥१०॥

पदार्थ—हे बहुधनयुक्त राजन् ! जैसे (गृष्टिः) एक बार प्रसूता हुई गौ (माता) माता (चरथाय) चरने के लिए (वत्सम्) बछड़े के सदृश (स्थविरम्) स्थूल वा वृद्ध (तवागाम्) बल को प्राप्त (अनाधृष्यम्) प्रगल्भ (तुम्रम्) उत्तम कर्म्मों में प्रेरणा करने और (वृषभम्) बैल के सदृश बलिष्ठ (अरीळ्हम्) शत्रुओं के नाश करनेवाले (स्वयम्) आप (गातुम्) वाणी (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्यवान् सुत की (इच्छमानम्) इच्छा करते हुए को (ससूव) उत्पन्न करती है वैसे मैं आपके लिए पृथ्वी के राज्य का (तन्वे) विस्तार करूं ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजन् जैसे उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त किये हुए अन्न आदि का समय पर नियमित भोजन किया गया शरीर को पुष्ट कर बल को बढ़ा शत्रुओं का विजयनिमित्तक हो राज्य को बढ़ाता है वैसे ही आप न्याय से हम लोगों के सुख की वृद्धि करो ॥ १० ॥

अब सन्तानशिक्षा से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

उत माता महिषमन्ववेनदमी त्वा जहति पुत्र देवाः ।
अथाब्रवीद्वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्त्सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व ॥११॥

पदार्थ—हे (सखे) मित्र (विष्णो) सम्पूर्ण विद्याओं में व्यापक (पुत्र) दुःख से रक्षा करनेवाले ! आप (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् सूर्य्य के सदृश पालनकर्त्ता (वृत्रम्) मेघ के समान अविद्या का (हनिष्यन्) नाश करनेवाले हुए (वितरम्) विविध प्रकार करने योग्य को (वि, क्रमस्व) पुरुषार्थी हूजिए (अथ) इसके अनन्तर (माता) माता (त्वा) आपको (महिषम्) बड़ा (अवेनत्) मानती है जो इस प्रकार (उत) भी जैसे पिता (अब्रवीत्) कहता है वैसे नहीं करें तो (अमी) यह (देवाः) विद्वान् लोग आपका (अनु, जहति) त्याग करते हैं ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सन्तानों की योग्यता है कि जैसे विद्वान् माता पिता ब्रह्मचर्य आदि से विद्या का ग्रहण और शरीर के सुख के वर्धन का उपदेश करें वैसा ही करना चाहिए और जो उत्तम शीलयुक्त पुत्र होते हैं उन्हीं पर यथार्थवक्ता अध्यापक लोग कृपा करते और दुर्व्यसनियों का त्याग करते हैं ॥ ११ ॥

कस्ते मातरं विधवामचक्रच्छयुं कस्त्वामजिघांसच्चरन्तम् ।
कस्ते देवो अधि मार्डीक आसीद्यत्प्राक्षिणाः पितरं पादगृह्य ॥१२॥

पदार्थ—हे पुत्र ! (ते) आप की (मातरम्) माता को (विधवाम्) पतिहीन (कः) कौन (अचक्रत्) करता है (कः) कौन (चरन्तम्) विहार वा (शयुम्) शयन करते हुए (त्वाम्) आपको (अजिघांसत्) मारने की इच्छा करता है (कः) कौन (ते) आपके (देवः) श्रेष्ठ गुणवाला (मार्डीके) सुख करने में (अधि) सर्वोपरि (आसीत्) विराजमान हुआ है (पादगृह्य) हे पैरों को ग्रहण करने योग्य (यत्) जो आपके (पितरम्) उत्पन्न करनेवाले को (प्र, अक्षिणाः) नाश करता है ॥ १२ ॥

भावार्थ—हे सन्तानो ! जो पुरुष वा स्त्रियां आप लोगों के पितरों का नाश करके माताओं को विधवा करें और आप लोगों का नाश करें उन का विश्वास आप लोग न करिये ॥ १२ ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अवर्त्या शुन आन्त्राणि पेचे न देवेषु विविदे मर्डितारम् ।
अपश्यं जायाममहीयमानामधा मे श्येनो मध्वा जभार ॥१३॥२६॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो (मे) मेरी (अमहीयमानाम्) नहीं सत्कार की गई (जायाम्) स्त्री को (श्येनः) बाज पक्षी के सदृश शीघ्र चलनेवाला सब ओर से (आ, जभार) हरता है (अधा) इसके अनन्तर (शुनः) कुत्ते की (अवर्त्या) नहीं वर्त्तने योग्य (आन्त्राणि) और उठे हैं हाड़ जिन से उन स्थूल नाड़ियों के सदृश शरीर को (पेचे) पचाता है इस से (मर्डितारम्) सुख करने वाले आपका मैं (अपश्यम्) दर्शन करूं। वह जैसे (देवेषु) विद्वानों में (मधु)

…प्रचुर विकाल को (न) नहीं (विविदे) प्राप्त होता है वैसे उस को निरन्तर दण्ड दीजिए ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जो पुरुष और स्त्रियां व्यभिचार करें उन को तीव्र दण्ड देकर नाश करो ॥ १३ ॥

इस सूक्त में इन्द्र मेघ राजा और विद्वान् के कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तृतीय अष्टक में पांचवां अध्याय अठारहवां सूक्त और छब्बीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥
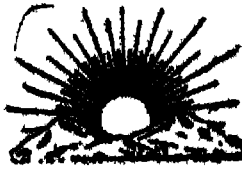
अथ तृतीयाष्टके षष्ठाऽध्यायः ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथैकादशर्चस्यैकोनविंशतितमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ विराट् त्रिष्टुप् । २, ६ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ५, ८ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४, ६ भुरिक् पङ्क्तिः; ७, १० पङ्क्तिः ११ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब तृतीयाष्टक में छठे अध्याय का और उन्नीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्रपदवाच्य राजगुणों का उपदेश करते हैं—

एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्नत्र विश्वे देवासः सुहवास ऊमाः ।
महामुभे रोदसी वृद्धमृष्वं निरेकमिद्वृणते वृत्रहत्ये ॥१॥

पदार्थ—हे (वज्रिन्) प्रशंसित शस्त्र और अस्त्र से युक्त (इन्द्र) शत्रुओं के विदीर्ण करनेहारे ! (अत्र) इस संसार में जो (ऊमाः) रक्षा आदि के करने वाले (सुहवासः) उत्तम प्रकार पुकारनेवाले (विश्वे) सब (देवासः) विद्वान् लोग (महाम्) बड़े (वृद्धम्) सब से विस्तीर्ण (ऋष्वम्) श्रेष्ठ (एकम्) अद्वितीय (त्वाम्) आप को (एवा) ही (वृत्रहत्ये) मेघ के नाश के सदृश शत्रु का नाश जिस संग्राम में उसमें (उभे) दोनों (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी सूर्य के सदृश (इत्) ही (निः, वृणते) स्वीकार करते हैं उन्हीं की आप सेवा करिये ॥ १ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग अतिश्रेष्ठ गुणवाले राजा का स्वीकार करें वे ही पूर्ण सुख वाले होते हैं ॥ १ ॥

अब मेघदृष्टान्त से राजगुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अवासृजन्त जिव्रयो न देवा भुवः सम्राळिन्द्र सत्ययोनिः ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णः प्र वर्तनीररदो विश्वधेनाः ॥२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्ययुक्त ! आप (भुवः) पृथिवी के मध्य में (सम्राट्) उत्तम प्रकार प्रकाशमान चक्रवर्ती (सत्ययोनिः) नहीं नाश होनेवाला कारण वा स्थान जिसका ऐसा सूर्य्य जैसे (परिशयानम्) अन्तरिक्ष में सब ओर से शयन करनेवाले (अहिम्) मेघ का (अहन्) नाश करता है (अर्णः) जल (वर्तनीः) मार्गों को (प्र, अरदः) अर्थात् करोदता है वैसे ही शत्रुओं का नाश करके विराजमान हूजिये जो (विश्वधेनाः) समस्त वाणियोंवाले (जिव्रयः) वृद्ध-जीवनों के (न) समान (देवाः) चन्द्र आदि दिव्य पदार्थों के सदृश विद्वान् जन आप को (अव, असृजन्त) उत्पन्न करते हैं उनका तुम संग करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । हे राजन् ! आप सत्य आचरण करनेवाले हुए यथार्थ वक्ताओं के सहाय से चक्रवर्ती सार्वभौम हूजिए और जैसे सूर्य्य मेघ का नाश करके संसार को सुख देता है वैसे चोर डाकुओं का नाश करके प्रजाओं को आनन्द दीजिये ॥ २ ॥

अतृप्णुवन्तं वियतमबुध्यमबुध्यमानं सुषुपाणमिन्द्र ।
सप्त प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण वि रिणा अपर्वन् ॥३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्ययुक्त ! आप जैसे सूर्य (वज्रेण) वज्र से (आशयानम्) सब ओर से सोते हुए (अहिम्) मेघ का नाश करके (सप्त) सात (प्रवतः) नीचे के मार्गों को प्राप्त करता है वैसे ही (अपर्वन्) पर्व से रहित समय में (अतृप्णुवन्तम्) भोगों में नहीं तृप्त (सुषुपाणम्) उत्तम पानयुक्त (वियतम्) नहीं जितेन्द्रिय (अबुध्यम्) बुद्धि से रहित (अबुध्यमानम्) उपदेश से भी नहीं जानते हुए अधार्मिक जन को दण्ड से (प्रति, वि, रिणाः) विशेष हिंसा करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य किरणों से मेघ को काट के और पृथिवी पर गिरा के नाना प्रकार के मार्गों में बहाता है वैसे ही विद्या से अविद्या का नाश करके दण्ड से अधार्म्मिक पुरुषों को कारागृह अर्थात् जेलखाने में छोड़ के बहुत शाखायुक्त नीति का सर्वत्र प्रचार करें ॥ ३ ॥

अब मेघदृष्टान्त से राजसेनाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अक्षोदयच्छवसा क्षाम बुध्नं वार्ण वातस्तविषीभिरिन्द्रः ।
दृळ्हान्यौभ्नादुशमान ओजोऽवाभिनत्ककुभः पर्वतानाम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (तविषीभिः) बल से युक्त सेनाओं के साथ (इन्द्रः) दुष्ट पुरुषों का नाश करनेवाला (शवसा) बल से (वातः) वायु (क्षाम) सहनयुक्त (बुध्नम्) अन्तरिक्ष और (वाः) उदक को जैसे (न) वैसे (दृळ्हानि) पुष्ट शत्रुसैन्य दलों को (अक्षोदयत्) सञ्चूर्णित करता है तथा (ओजः) पराक्रम की (उशमानः) कामना करता हुआ (औभ्नात्) मृदुता करता है (पर्वतानाम्) मेघों के शिखरों के सदृश (ककुभः) दिशाओं और शत्रुओं को (अव, अभिनत्) तोड़ता है उसी को अपना राजा करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे वायु अग्नि से सूक्ष्म किये हुए जल को अन्तरिक्ष में पहुँचा और वर्षाकर संसार को आनन्द देता है वैसे ही सामग्री विद्या और सेना के सहित राजा दुष्टों को न्यून करके दण्ड और उपदेश से दुष्टों का नाश कर और सज्जनों को सिद्ध करके प्रजाओं को निरन्तर सुख दीजिए ॥ ४ ॥

अब सेनापति के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अभि प्र दद्रुर्जनयो न गर्भं रथा इव प्र ययुः साकमद्रयः ।
अतर्पयो विसृत उब्ज ऊर्मीन्त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥५॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) शत्रुओं के नाश करनेवाले सेनापति ! जो (अद्रयः) मेघ (जनयः) स्त्रियों के (न) तुल्य (गर्भम्) गर्भ को (प्र, अभि, दद्रुः) सब ओर से प्राप्त होते हैं (रथा इव) वाहनों के सदृश (साकम्) साथ (प्र, ययुः) शीघ्र जाते हैं और जैसे उन (विसृतः) जो विशेष करके फैलती (ऊर्मीन्) उन तरङ्गों के सहित (सिन्धून्) नदियों का सूर्य्य (उब्जः) नाश करे वा (अरिणाः) नाश करता है वैसे (त्वम्) आप (वृतान्) स्वीकार किये हुओं को (अतर्पयः) तृप्त करो और आपके भृत्य जावें और स्त्री गर्भ को धारण करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—जिस राजा की मेघ के सदृश ऊंची और वाहनों के सदृश साथ चलने वाली सेनायें चलती हैं उसका सूर्य्य के सदृश विजय होता है ॥ ५ ॥

फिर राजगुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्वं महीमवनिं विश्वधेनां तुर्वीतये वय्याय क्षरन्तीम् ।
अरमयो नमसैजदर्णः सुतरणाँ अकृणोरिन्द्र सिन्धून् ॥६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) राजन् ! (त्वम्) आप (तुर्वीतये) शत्रुओं के नाश करनेवाले के और (वय्याय) प्राप्त होने योग्य सुख के लिए (विश्वधेनाम्) सम्पूर्ण वाणी जिसके लिए उस (क्षरन्तीम्) प्राप्त कराती हुई (अवनिम्) रक्षा करने वाली (महीम्) पृथिवी को प्राप्त होकर हम लोगों को (नमसा) अन्न आदि से (अरमयः) रमाओ और जिनमें (अर्णः) जल (एजत्) [illegible] (सिन्धून्) नदों को (सुतरणान्) सुखपूर्वक तरना जिनका ऐसे (अकृणोः) करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप जो राज्य को प्राप्त हो आप ही आनन्दित हों हम लोगों को नहीं आनन्द देवें तो आपका आनन्द शीघ्र नष्ट हो और आप [illegible]

लोगों के सुख के लिए नदी नद तड़ाग और समुद्र आदिकों के पार उतरने के लिए नौका आदि कला के बनाने का निरन्तर करिये ॥ ६ ॥

अब प्रजाओं के निमित्त राज-उपदेश को अगले मन्त्र में कहते हैं—

प्राग्रुवो नभन्वो३ न वक्वा ध्वस्रा अपिन्वद्युवतीर्ऋतज्ञाः ।
धन्वान्यज्राँ अपृणक्तृषाणाँ अधोगिन्द्रः स्तर्यो३ दंसुपत्नीः ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (इन्द्रः) राजा (वक्वाः) टेढ़ी (ध्वस्राः) विध्वंस करनेवाली सेनाओं को और (नभन्वः) शत्रुओं के नाश करनेवाले वीर पुरुष जैसे (प्राग्रुवः) आगे चलनेवाली नदियों को (न) जैसे (ऋतज्ञाः) सत्य को जाननेवाली (युवतीः) युवती स्त्रियों को (प्र, अपिन्वत्) अच्छे प्रकार सेवे वा सींचे (धन्वानि) और स्थलप्रदेशों को अर्थात् जहाँ तहाँ मार्गस्थानों को (अज्रान्) तथा नित्य चलनेवाले (तृषाणान्) प्यासे मनुष्यादि प्राणियों को (अपृणक्) तृप्त करें वा जो (स्तर्यः) आच्छादन करनेवाली (दंसुपत्नीः) कर्म्म करनेवालों की स्त्रियाँ हो उनके समान (अधोक्) पूर्ण करे अर्थात् उनके समान परिपूर्ण सेना रक्खे वही आप लोगों का राजा होवे ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जिस राजा की नदी के सदृश और शत्रुओं के नाश करनेवाली अन्न और पान आदि से तृप्त और अपने विवर के ढांपने वाली पतिव्रता स्त्रियों के सदृश राजभक्त सेना होवे वही विजय प्राप्त होने योग्य है ॥ ७ ॥

फिर राज्यविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

पूर्वीरुषसः शरदश्च गूर्ता वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ।
परिष्ठिता अतृणद्बद्बधानाः सीरा इन्द्रः स्रवितवे पृथिव्या ॥८॥

पदार्थ—हे राजन् ! जैसे (इन्द्रः) सूर्य्य (पूर्वीः) पुरातन (गूर्ताः) चलती हुई हिंसा करनेवाली (उषसः) प्रभात वेला (वृत्रम्) मेघ को (शरदः) शरद् ऋतुओं (च) और हेमन्तादि ऋतुओं को (जघन्वान्) नष्ट किये हुए (सिन्धून्) नद्यादिकों को (वि) अनेक प्रकार (असृजत्) उत्पन्न करता है (परिष्ठिताः) तथा सब ओर से स्थित (बद्बधानाः) बड़बड़ाती तटों का नाश करती हुई (सीराः) जो बहनेवाली नदियाँ उनको (स्रवितवे) चलने को (पृथिव्या) पृथिवी के साथ (अतृणत्) नाश करता है वैसे ही नीति और सेना को उत्पन्न करके विजय सिद्ध करो और युद्ध के लिए चलती हुई उत्तम प्रकार शिक्षित सेना से शत्रुओं का नाश करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजा प्रातःकाल के सदृश उत्तम नीति और नदी के समूह के सदृश सेना को निर्मित करता है वही पृथिवी के राज्य के योग्य है ॥ ८ ॥

वम्रीभिः पुत्रमग्रुवो अदानं निवेशनाद्धरिव आ जभर्थ ।
व्य१न्धो अख्यदहिमाददानो निर्भूदुखच्छित्समरन्त पर्व ॥९॥

पदार्थ—हे (हरिवः) प्रशंसित घोड़ों से युक्त राजन् ! जैसे (निवेशनात्) अपने स्थान से (वम्रीभिः) उगली हुई पहाड़ियों से (अग्रुवः) नदियाँ तट आदि का ग्रहण करती हैं वैसे ही (अदानम्) दान नहीं करनेवाले (पुत्रम्) पुत्र को (आ, जभर्थ) हरते हो और जैसे (अन्धः) अन्धकार करनेवाला (अहिम्) मेघ को (आददानः) ग्रहण करता हुआ (वि, अख्यत्) विख्यात करता है और (उखच्छित्) गमन वा काटने अर्थात् मार्ग छिन्न भिन्न करनेवाला (निः, भूत्) निरन्तर होता (पर्व) और पालनेवाले को (सम्, अरन्त) अच्छे प्रकार रमाता है वैसे ही नहीं दान करनेवाला गति पाता है ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजन् ! अपना पुत्र भी बुरे लक्षणों वाला हो तो नहीं अधिकार देने योग्य और वर्षाकालों में नदियाँ बढ़ती हैं वैसे ही प्रजाओं की वृद्धि करनी चाहिए ॥ ९ ॥

अब विद्वान् के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

प्र ते पूर्वाणि करणानि विप्राविद्वाँ आह विदुषे करांसि ।
यथायथा वृष्ण्यानि स्वगूर्तापांसि राजन्नर्याविवेषीः ॥१०॥

पदार्थ—हे (विप्र) बुद्धिमान् (राजन्) राजन् (विदुषे) विद्वन् ! (ते) आपके लिये (यथायथा) जैसे जैसे (पूर्वाणि) अनादि काल से सिद्ध (करणानि) जिनसे करें वह कार्य्यसाधन (करांसि) और करने योग्य कर्म्म (वृष्ण्यानि) बलकारक (स्वगूर्ता) अपने से प्राप्त (नर्या) मनुष्यों में हित करनेवाले (अपांसि) कर्म्मों को (आविद्वान्) सब प्रकार से समस्त जानता हुआ (प्र, आह) अच्छे कहता है उनको आप (अविवेषीः) विशेष करके प्राप्त हूजिये ॥ १० ॥

भावार्थ—हे विद्वन् राजन् ! आप सदा श्रेष्ठ पुरुषों की शिक्षा में प्रवृत्त हूजिये और जो जो आपके लिए वे उपदेश देवें वैसे ही करिये ॥ १० ॥

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥२॥

पदार्थ—हे (हरिवः) उत्तम पुरुषों से युक्त ! (इन्द्र) प्रशंसा करने योग्य कर्म्म करनेवाले जिस विद्वान् से (ते) आपका (नव्यम्) नवीन (ब्रह्म) बड़ा धन (अकारि) किया जाता है उस (जरित्रे) स्तुति करनेवाले के लिए (स्तुतः) प्रशंसा को प्राप्त हुए आप (नद्यः) नदियों के (न) सदृश (नु) शीघ्र (पीपेः) वृद्धि दिलाइये और (गृणानः) सत्य की प्रशंसा करते हुए (इषम्) अन्न वा विज्ञान को (नु) शीघ्र दीजिये । इस प्रकार के हुए सम्बन्ध से (रथ्यः) रमण करने योग्य बहुत रथादिकों से युक्त (सदासाः) सेवकों के सहित हम लोग (धिया) बुद्धि वा कर्म्म से अनुकूल (स्याम) होवें ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे राजन् ! जो प्रशंसित कर्म्म करें उनका आप निरन्तर सत्कार करिये और वे आपके अनुकूल हुए और तुम लोग सब धर्म्म, अर्थ और काम के साधक हूजिये ॥ ११ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, मेघ, सेना, सेनापति, राजा, प्रजा और विद्वान् के गुण-वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ।

यह उन्नीसवाँ सूक्त और द्वितीय वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथैकादशर्चस्य विंशतितमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ३, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ५ विराट्त्रिष्टुप् । ८, १० त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ पङ्क्तिः । ७, ९ स्वराट् पङ्क्तिः । ११ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले बीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्रपदवाच्य राजगुणों को कहते हैं—

आ न इन्द्रो दूरादा न आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः ।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ॥१॥

पदार्थ—हे राजा और प्रजाजनो ! जो (अभिष्टिकृत्) अपेक्षित सुख करने वाला (वज्रबाहुः) शस्त्र विशेष जिसकी बाहु में विद्यमान (उग्रः) जो तेजस्वी (नृपतिः) मनुष्यों का पालन करनेवाला (तुर्वणिः) शीघ्रकारी (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् राजा (ओजिष्ठेभिः) अत्यन्त बल आदि गुणों से युक्त मनुष्यों में उत्तम सेनाजनों के साथ (नः) हम लोगों की वा हम लोगों के अर्थ (अवसे) रक्षा आदि के लिए (दूरात्) दूर और (आसात्) समीप से वा (आ) सब प्रकार सेना (यासत्) प्राप्त होवे और (समत्सु) संग्रामों में (पृतन्यून्) अपनी सेना की इच्छा करनेवाले (नः) हम लोगों को (सङ्गे) साथ (आ) प्राप्त होवे वह हम लोगों से सदा ही रक्षा करने और सत्कार करने योग्य है ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! सब प्रकार से रक्षा करनेवाले बड़े बलिष्ठ विद्या और बलयुक्त श्रेष्ठ सेनाजनों के सहित वर्त्तमान और संग्राम में जीतनेवाले राजा का स्वीकार करके सब काल में आनन्द करो ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोऽवसे राधसे च ।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (अर्वाचीनः) इस काल में उत्पन्न (मघवा) न्याय से इकट्ठे किये हुए धन के होने से आदर करने योग्य (वज्री) शस्त्रों और अस्त्रों का जाननेवाला (विरप्शी) बड़ा (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाला राजा (हरिभिः) श्रेष्ठ मनुष्यों के साथ (नः) हम लोगों को वा हम लोगों के (अवसे) अन्न आदि के (राधसे, च) और धन के लिए (अच्छ) उत्तम प्रकार (आ, यातु) प्राप्त हो (इमम्) इस (यज्ञम्) प्रजापालन रूप यज्ञ का (नः) हम लोगों के (वाजसातौ) संग्राम में (अनु, तिष्ठाति) अनुष्ठान करे उसी को राजा मानो ॥ २ ॥

भावार्थ—जो राजा उत्तम सभा के जनों से प्रजा के सुख के लिए अन्न और धन बहुत करके संग्राम में जीतनेवाला न्यायकारी होवे वही राजा होने को योग्य होवे ॥ २ ॥

अब अमात्य के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इमं यज्ञं त्वमस्माकमिन्द्र पुरो दधत्सनिष्यसि क्रतुं नः ।
श्वघ्नीव वज्रिन्त्सनये धनानां त्वया वयमर्य आजिं जयेम ॥३॥

पदार्थ—हे (वज्रिन्) शस्त्र और अस्त्र के प्रयोग जानने और (इन्द्र) बहुत धन के देनेवाले सेनापति जिससे कि (अर्य्यः) स्वामी (त्वम्) आप (अस्माकम्) हम लोगों के (इमम्) इस वर्त्तमान (यज्ञम्) राजधर्म के निर्वाहरूप यज्ञ को और (पुरः) नगरों को (दधत्) धारण करते हुए (नः) हम लोगों की (क्रतुम्) बुद्धि का (सनिष्यसि) सेवन करोगे इससे (त्वया) आप के साथ (वयम्) हम लोग (धनानाम्) धनों के (सनये) सम्यक् विभाग करने के लिए (श्वघ्नीव) भेड़िनी के सदृश (आजिम्) संग्राम को (जयेम) जीतें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जहाँ राजा मन्त्रियों और मन्त्री राजा को प्रसन्न करके और विभाग कर दे और ग्रहण करके प्रीति से बलिष्ठ हुए ही ऐश्वर्य के लिए जैसी भेड़िनी बकरी को मारे वैसे शत्रुओं का नाश करके विजय से भूषित होते हैं वहीं सम्पूर्ण सुख होते हैं ।

फिर राजगुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

उशन्नु षु णः सुमना उपाके सोमस्य नु सुषुतस्य स्वधावः ।
पा इन्द्र प्रतिभृतस्य मध्वः समन्धसा ममदः पृष्ठ्येन ॥४॥

पदार्थ—हे (**उशन्**) कामना करते हुए (**स्वधावः**) अन्न आदि ऐश्वर्य्य से युक्त (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य्यवान् राजन् ! आप (**सुमनाः**) प्रसन्न चित्तवाले हुए (**नः**) हम लोगों के (**उपाके**) समीप में (**सुषुतस्य**) उत्तम प्रकार विद्या और विनय से निष्पन्न अर्थात् प्रसिद्ध (**सोमस्य**) ऐश्वर्य्य युक्त (**प्रतिभृतस्य**) धारण किये गये के प्रति वर्त्तमान जन की (**नु**) निश्चय से (**सु, पाः**) अच्छे प्रकार रक्षा कीजिये और (**मध्वः**) माधुर्य्य आदि गुणों से युक्त पदार्थसम्बन्धी (**अन्धसा**) अन्न आदि से (**पृष्ठ्येन, उ**) और पीछे हुए सुख से (**सम्, ममदः**) अच्छे प्रकार आनन्द कीजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो राजा प्रेम से भृत्यजनों के समूह की ऐश्वर्य्य और अन्न आदि से रक्षा करता है वह कामना की सिद्धि को प्राप्त होकर निरन्तर आनन्द को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

वि यो ररप्श ऋषिभिर्नवेभिर्वृक्षो न पक्वः सृण्यो न जेता ।
मर्यो न योषामभि मन्यमानोऽच्छा विवक्मि पुरुहूतमिन्द्रम् ॥५॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यः**) जो (**नवेभिः**) नवीन अध्ययनकर्त्ता (**ऋषिभिः**) वेदार्थ के जाननेवालों से (**वि, ररप्श**) स्तुति किये जाते हो । (**वृक्षः**) वृक्ष के (**न**) सदृश (**पक्वः**) पके हुए फल आदि युक्त (**सृण्यः**) बल को प्राप्त उत्तम प्रकार शिक्षित सेना के (**न**) सदृश (**जेता**) जीतने वाला (**मर्य्यः**) मनुष्य (**योषाम्**) स्त्री के (**न**) तुल्य प्रजा को (**अभि, मन्यमानः**) प्रत्यक्ष जानता हुआ वर्त्तमान है उस (**पुरुहूतम्**) बहुतों से स्तुति किये गये (**इन्द्रम्**) प्रशंसित गुणों के धारण करनेवाले को जैसे मैं (**अच्छा**) उत्तम प्रकार (**विवक्मि**) विशेष करके उपदेश करता हूँ वैसे इसको आप लोग भी उपदेश दीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जो यथार्थवक्ता जनों में प्रशंसा को प्राप्त वृक्ष के सदृश दृढ़ उत्साहरूप फलवान् अकेला सेना के सदृश जीतने वाला पतिव्रता स्त्री के सदृश प्रजा में प्रसन्न होवे उस प्रशंसित को राजा आप लोग मानो ॥ ५ ॥

गिरिर्न यः स्वतवाँ ऋष्व इन्द्रः सनादेव सहसे जात उग्रः ।
आदर्ता वज्रं स्थविरं न भीम उद्नेव कोशं वसुना न्यृष्टम् ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यः**) जो (**गिरिः**) मेघ के (**न**) सदृश (**स्वतवान्**) अपने गुणों से वृद्ध (**ऋष्वः**) बड़ा (**सनात्**) सब काल में (**एव**) ही (**सहसे**) बल के लिए (**जातः**) प्रसिद्ध (**उग्रः**) तीव्रस्वभाव युक्त (**इन्द्रः**) सूर्य्य के समान प्रतापी (**स्थविरम्**) स्थूल (**वज्रम्**) बिजुलीरूप के (**न**) समान (**आदर्त्ता**) सब प्रकार से शत्रुओं का नाश करनेवाला (**भीमः**) भयङ्कर और (**कोशम्**) मेघ को (**उद्नेव**) जलों के सदृश (**वसुना**) धन से (**न्यृष्टम्**) अत्यन्त प्राप्त करता है वही विजयी होने के योग्य होता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जो मेघ के सदृश बड़ा प्रजाओं का सुख करने और सनातनधर्म्म का सेवन करनेवाला बिजुली के सदृश भयङ्कर, नहीं नाश होने वाले खजाने से युक्त शत्रुओं का नाश करनेवाला और बलवान् होवे वह सबका राजा होने को योग्य है ऐसा जानिये ॥ ६ ॥

न यस्य वर्ता जनुषा न्वस्ति न राधस आमरीता मघस्य ।
उद्वावृषाणस्तविषीव उग्रास्मभ्यं दद्धि पुरुहूत रायः ॥७॥

पदार्थ—हे (**पुरुहूत**) बहुतों के पुकारने वाले (**उग्र**) प्रतापी राजन् (**यस्य**) जिसका (**जनुषा**) जन्म से (**वर्त्ता**) निवारण करनेवाला कोई भी (**न**) नहीं (**अस्ति**) है जिसके (**मघस्य**) धन और (**राधसः**) धनरूप अन्न का (**आमरीता**) सब प्रकार नाश करनेवाला (**न**) नहीं विद्यमान है हे (**उद्वावृषाण**) उत्तमता से अत्यन्त बल करनेवाले की (**तविषीवः**) बलयुक्त सेनावाले जीतने वाला वह आप (**अस्मभ्यम्**) हम लोगों के लिए (**रायः**) धनों को (**नु**) निश्चय से (**दद्धि**) दीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जिसका उत्तम कुल में जन्म और जिसका कुल प्रशंसित कर्म्म किये गये के समान और जिसका संग्राम में वा विचार में रोकने वाला नहीं है वही सुख देने वाला राजा हम लोगों का होवे ऐसी हम लोग इच्छा करें ॥ ७ ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ईक्षे रायः क्षयस्य चर्षणीनामुत व्रजमपवर्तासि गोनाम् ।
शिक्षानरः समिथेषु प्रहावान्वस्वो राशिमभिनेतासि भूरिम् ॥८॥

पदार्थ—हे राजन् ! जिस कारण (**शिक्षानरः**) विद्या के देने से नायक आप (**प्रहावान्**) विजय को प्राप्त तथा (**समिथेषु**) संग्रामों में (**वस्वः**) धन के (**भूरिम्**) बहुत प्रकार के (**राशिम्**) समूह को (**अभिनेता**) सम्मुख पहुँचाने वाले (**असि**) हो और (**चर्षणीनाम्**) मनुष्यों के (**रायः**) धन (**क्षयस्य**) निवास (**उत**) और (**गोनाम्**) स्तुति करने वालों के सम्बन्धी (**व्रजम्**) शस्त्र अस्त्रों को (**अपवर्त्ता**) दूर करनेवाले (**असि**) हो उनको मैं राजा होने को (**ईक्षे**) देखता हूँ ॥ ८ ॥

भावार्थ—वही राजा दिशाओं में यशस्वी होवे कि जो मनुष्यों को विद्या धन और उत्तम वास देकर संग्रामादिकों में निरन्तर सब की रक्षा करे ॥ ८ ॥

अब विद्वानों के उपदेशगुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

कया तच्छृण्वे शच्या शचिष्ठो यया कृणोति मुहु का चिदृष्वः ।
पुरु दाशुषे विचयिष्ठो अंहोऽथा दधाति द्रविणं जरित्रे ॥९॥

पदार्थ—हे राजन् ! जैसे (**शचिष्ठः**) अत्यन्त बुद्धिमान् (**विचयिष्ठः**) अत्यन्त वियोग करनेवाला (**ऋष्वः**) बड़ा विद्वान् (**अंहः**) अपराध को पृथक् करके (**अथा**) अनन्तर (**जरित्रे**) स्तुति करने और (**दाशुषे**) देनेवाले के लिए (**पुरु**) बहुत (**द्रविणम्**) धन को (**दधाति**) धारण करता है और जिन (**का**) किन्हीं (**चित्**) भी उत्तम कर्म्मों को (**यया**) जिस (**कया**) किसी (**शच्या**) बुद्धि वा क्रिया से (**मुहु**) बारबार (**कृणोति**) सिद्ध करता है (**तत्**) उन्हें उस से (**शृण्वे**) सुनूँ ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—मनुष्यों की योग्यता है कि जैसे यथार्थवक्ता जन पापों का त्याग, धर्म्म का आचरण और यथार्थ ज्ञानस्वरूप ज्ञान का धारण करके जगत् के कल्याण के लिए बहुत ज्ञान को फैलाते हैं वैसे ही आप लोग आचरण करो ॥ ९ ॥

मा नो मर्धीरा भरा दद्धि तन्नः प्र दाशुषे दातवे भूरि यत्ते ।
नव्ये देष्णे शस्ते अस्मिन्त उक्थे प्र ब्रवाम वयमिन्द्र स्तुवन्तः ॥१०॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) राजन् ! आप (**नः**) हम लोगों को (**मा**) मत (**मर्धीः**) गीला कीजिये हम लोगों के लिये (**तत्**) उस धन को (**आ, भर**) धारण कीजिये (**यत्**) जो (**ते**) आप के (**अस्मिन्**) इस (**नव्ये**) नवीन (**देष्णे**) देने और (**ते**) आप के (**शस्ते**) प्रशंसित (**उक्थे**) कहने योग्य व्यवहार में (**भूरि**) बहुत द्रव्य है वह (**दाशुषे**) दानशील के लिये (**दातवे**) देने को (**प्र**) अत्यन्त धारण कीजिये और (**नः**) हम सब लोगों के लिए (**दद्धि**) दीजिये और (**स्तुवन्तः**) स्तुति करते हुए (**वयम्**) हम लोग यह आपको (**प्र, ब्रवाम**) उपदेश करें ॥ १० ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आपके नित्य करने योग्य कर्म्म जो जो कहे उस उस का आचरण करो और प्रजा मन्त्री और राज्य की उन्नति के लिये बहुत धन, विद्या और न्याय को फैलाओ ॥ १० ॥

फिर उपदेश विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥४॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सुख के देने वाले ! (**स्तुतः**) प्रशंसित हुए आप (**जरित्रे**) सत्य कहनेवाले के लिए (**नव्यम्**) नवीन (**ब्रह्म**) बड़े धन वा अन्न की (**नु**) शीघ्र (**नद्यः**) नदियों के (**न**) सदृश (**पीपेः**) वृद्धि करो और (**गृणानः**) स्तुति करता हुआ नवीन (**इषम्**) विज्ञान की वृद्धि करो हे (**हरिवः**) बहुत सेना के अङ्गों से युक्त जिसके लिये (**ते**) आपके हम लोगों ने (**धिया**) कर्म से नवीन बड़ा धन वा अन्न (**अकारि**) किया उसके सहाय से (**सदासाः**) समान दान देनेवाले सेवक हम लोग (**रथ्यः**) बहुत सुन्दर रथ आदिकों से युक्त (**नु**) निश्चय (**स्याम**) होवें ॥ ११ ॥

भावार्थ—मन्त्री सेना और प्रजाजनों को श्रेष्ठ कर्म्म करते हुए राजा की स्तुति जैसी कर्त्तव्य है वैसी ही राजा को भी इन उत्तम कर्म्मों में प्रवर्त्तमान लोगों की प्रशंसा करनी चाहिये ॥ ११ ॥

इस सूक्त में इन्द्र राजा अमात्य और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ।

यह बीसवां सूक्त और चौथा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथैकादशर्चस्यैकाधिकविंशतितमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, २, ७, १० भुरिक्पङ्क्तिः । ३ स्वराट् पङ्क्तिः । ११ निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ६, ८ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । ९ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।

अब ग्यारह ऋचावाले इक्कीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्रपदवाच्य राजगुणों को कहते हैं—

आ यात्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः ।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो ! (**यस्य**) जिस राजा की (**द्यौः**) सूर्य्य के (**न**) सदृश (**पूर्वीः**) प्राचीन (**तविषीः**) बलयुक्त सेना हो और सूर्य्य के सदृश (**अभिभूति**) शत्रुओं के तिरस्कार में निमित्त (**क्षत्रम्**) राज्य (**पुष्यात्**) पुष्ट होवे वह (**वावृधानः**) बढ़ने और (**शूरः**) शत्रुओं का नाश करनेवाला (**स्तुतः**) प्रशंसा

को प्राप्त (इन्द्रः) प्रजारक्षक (नः) हम लोगों के (अवसे) रक्षण आदि के लिए (इह) यहाँ राजा और प्रजा के व्यवहार में (उप, आ, यातु) समीप प्राप्त हो और हम लोगों के (सधमात्) समीप स्थान से आनन्द करनेवाला (अस्तु) हो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो राजा बिजुली के सदृश बलिष्ठ सूर्य्य के सदृश उत्तम प्रकार प्रकाशित सेना कर निष्कण्टक अर्थात् दुष्टजनादिरहित राज्य को पुष्ट करे वही इस संसार में सम्पूर्ण प्रतिष्ठा और सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होके शरीर के त्याग के समय मोक्ष को प्राप्त होवे ॥ १ ॥

अब राजगुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

तस्येदिह स्तवथ वृष्ण्यानि तुविद्युम्नस्य तुविराधसो नॄन् ।
यस्य क्रतुर्विदथ्यो३ न सम्राट् साह्वान्तरुत्रो अभ्यस्ति कृष्टीः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यस्य) जिस (तुविद्युम्नस्य) बहुत यशयुक्त (तुविराधसः) बहुत ऐश्वर्य्यवाले राजा के (इह) इस राज्य में (विदथ्यः) जानने योग्य (सम्राट्) सम्पूर्ण भूमि में प्रसिद्ध और प्रकाशमान के (न) सदृश (साह्वान्) सहने वा (तरुत्रः) दुःखों से पार उतारनेवाला (क्रतुः) बुद्धि और राज्य का पालनरूप यज्ञ (अभि, अस्ति) सब ओर से है और (वृष्ण्यानि) बलों में साधु कार्य्य हैं (तस्य, इत्) उसी के (नॄन्) नायक अर्थात् मुख्य (कृष्टीः) मनुष्यों की (स्तवथ) तुम लोग प्रशंसा करो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस की पूर्णबलवाली सेना और बड़ा यश असंख्य धन पूर्णविद्या उत्तम गुण कर्म्म स्वभाव और सहाय होवें वही चक्रवर्त्ती राजा होने के योग्य होता है ॥ २ ॥

आ यात्विन्द्रो दिव आ पृथिव्या मक्षू समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
स्वर्णरादवसे नो मरुत्वान् परावतो वा सदनादृतस्य ॥३॥

पदार्थ—जैसे सूर्य (आ, दिवः) प्रकाश से (पृथिव्याः) भूमि से (उत) और (समुद्रात्) अन्तरिक्ष से (वा) वा (पुरीषात्) जल से (परावतः) दूर देश से (ऋतस्य) सत्य कारण के (सदनात्) स्थान से (वा) वा हम संसारी जनों की रक्षा आदि के लिए (मक्षू) शीघ्र प्राप्त होता है वैसे ही (स्वर्णरात्) सूर्य्य के सदृश नायक से (नः) हम लोगों के (अवसे) रक्षण आदि के लिये (मरुत्वान्) वायुवान् पदार्थ के सदृश प्रशंसित पुरुषों से युक्त होता हुआ (इन्द्रः) सूर्य के समान राजा (आ, यातु) प्राप्त हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जैसे सूर्य्य अन्तरिक्ष प्रकाश भूमि जल और कार्य्य जगत् को व्याप्त होकर सब की रक्षा करता है वैसे ही प्रतापी और उत्तमसहाययुक्त होकर और हम लोगों की उत्तम प्रकार रक्षा करके प्रकाशित हूजिये ॥ ३ ॥

स्थूरस्य रायो बृहतो य ईशे तमु ष्टवाम विदथेष्विन्द्रम् ।
यो वायुना जयति गोमतीषु प्र धृष्णुया नयति वस्यो अच्छ ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (बृहतः) बड़े (स्थूरस्य) स्थूल (रायः) धन का (ईशे) स्वामी होता है (विदथेषु) सङ्ग्रामों में (इन्द्रम्) शत्रु के नाश करनेवाले को (अच्छ) उत्तम प्रकार (नयति) प्राप्त करता है (यः) जो (गोमतीषु) प्रशंसित वाणियों से युक्त सेनाओं में (धृष्णुया) प्रगल्भता और (वायुना) पवन के साथ उत्तम प्रकार (जयति) विजयी होता है (वस्यः) अत्यन्त श्रेष्ठ धन को (प्र) प्रीति के साथ चाहता है (तम्, उ) उसी की हम लोग (स्तवाम) प्रशंसा करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो राजा बड़ी सेनाओं से सङ्ग्रामों में विजय को प्राप्त हो तथा बहुत धनों और प्रतिष्ठा को प्राप्त होकर प्रशंसित होता है उसी की स्तुति करनी चाहिए ॥ ४ ॥

उप यो नमो नमसि स्तभायन्नियर्ति वाचं जनयन्यजध्यै ।
ऋञ्जसानः पुरुवार उक्थैरेन्द्रं कृण्वीत सदनेषु होता ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो (यजध्यै) मेल करने को (वाचम्) उत्तम शिक्षायुक्त वाणी (जनयन्) प्रकट करता हुआ (उक्थैः) प्रशंसित कर्म्मों से (ऋञ्जसानः) अत्यन्त सिद्ध करता हुआ (पुरुवारः) बहुतों से स्वीकार किया गया (होता) न्याय का देनेवाला (सदनेषु) न्याय के स्थानों में (नमसि) अन्न वा सत्कार के निमित्त (नमः) अन्न को (उप, स्तभायन्) स्तम्भित अर्थात् रोकता हुआ (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्य को (आ, कृण्वीत) सिद्ध करे वह अन्न और सत्कार को (इयर्त्ति) प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो राजा विद्या और उत्तम शिक्षा से युक्त नीति को प्रकट करता सत्कार करने के योग्यों का सत्कार करता दुष्टों को दण्ड देता और प्रयत्न करता हुआ राज्य के पालन से ऐश्वर्य्य की उन्नति करता है वही सर्वत्र सत्कृत होता है ॥५॥

अब राजा के साथ प्रजाजनों के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

धिषा यदि धिषण्यन्तः सरण्यान्सदन्तो अद्रिमौशिजस्य गोहे ।
आ दुरोषाः पास्त्यस्य होता यो नो महान्त्संवरणेषु वह्निः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो (नः) हम लोगों के (पास्त्यस्य) गृह में उत्पन्न हुए के (संवरणेषु) आच्छादक अर्थात् ढाँपने वाले व्यवहारों में (वह्निः) पदार्थ पहुँचाने वाले अग्नि के सदृश (महान्) बड़ा (दुरोषाः) क्रोध से रहित (होता) देनेवाला हो (यदि) जो उस के (अद्रिम्) मेघ के सदृश (औशिजस्य) कामना करनेवाले के सन्तान के (गोहे) ढाँपने योग्य गृह में (धिषण्यन्तः) स्तुति करते और (सरण्यान्) सन्मार्ग को प्राप्त जनों को (आ, सदन्तः) निवास देते हुए (धिषा) स्तुति अर्थात् प्रशंसा के साथ आप लोग ग्रहण करो तो आप लोगों को सब सुख प्राप्त होवे ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा आदि मनुष्य प्रशंसित पुरुषों की प्रशंसा करें और प्राप्त हुए पुरुषों की रक्षा करें तो वे श्रेष्ठ होवें ॥६॥

अब राजविषयान्तर्गत राजभृत्यों के कर्म को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सत्रा यदीं भार्वरस्य वृष्णः सिषक्ति शुष्मः स्तुवते भराय ।
गुहा यदीमौशिजस्य गोहे प्र यद्धिये प्रायसे मदाय ॥७॥

पदार्थ—(यत्) जो (शुष्मः) बलवान् (सत्रा) सत्य से (ईम्) सब प्रकार (भार्वरस्य) प्रजा के पालन करनेवाले राजा (वृष्णः) बलिष्ठ की (स्तुवते) प्रशंसा करते हुए (भराय) धारण करनेवाले के लिए (सिषक्ति) सींचता है और (यत्) जो (गुहा) बुद्धि में (औशिजस्य) कामना करनेवालों में चतुर के (गोहे) स्वीकार करने योग्य घर में सत्य का (प्र) सिञ्चन करता है (यत्) जो (अयसे) गमन (मदाय) आनन्द और (धिये) बुद्धि के लिए बुद्धि में प्रज्ञान को (ईम्) सब प्रकार से (प्र) अत्यन्त सींचता है वही सम्पूर्ण लाभ को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो कर्मचारी लोग धर्म से राज्य का शासन करते हुए राजा के राज्य में सत्य न्याय से प्रजाओं का पालन करते हैं वे अतुल आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वि यद्वरांसि पर्वतस्य वृण्वे पयोभिर्जिन्वे अपां जवांसि ।
विदद्गौरस्य गवयस्य गोहे यदी वाजाय सुध्यो३ वहन्ति ॥८॥

पदार्थ—हे राजन् ! (यदी) जो (सुध्यः) उत्तम बुद्धिवाले जन (वाजाय) वेग के लिए (गौरस्य) गौर (गवयस्य) गोसदृश के (गोहे) गृह में (वि, वहन्ति) स्वीकार करते हैं तो सुख को प्राप्त होते हैं और (यत्) जो मैं (पर्वतस्य) मेघ के (पयोभिः) जलों के सदृश पदार्थों और (वरांसि) स्वीकार करने योग्य धर्मयुक्त कर्म्मों का (वृण्वे)स्वीकार करूं और (अपाम्) जलों के (जवांसि) वेगों के सदृश कर्म्मों को (विदत्) प्राप्त होता हुआ राज्य को (जिन्वे) शोभित करता हूं उनका और मेरा आप सत्कार करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे गवय के साधर्म्य को गौ धारण करती है वैसे ही धार्मिक पुरुषों के साधर्म्य को राजा लोग धारण करें और जैसे मेघ जलदान से सब को तृप्त करता है वैसे ही राजा अभयदान से सब को सुख देवे ॥ ८ ॥

भद्रा ते हस्ता सुकृतोत पाणी प्रयन्तारा स्तुवते राध इन्द्र ।
का ते निषत्तिः किमु नो ममत्सि किं नोदुदु हर्षसे दातवा उ ॥९॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सब के लिए सुख देनेवाले ! जिन (ते) आपकी (सुकृता) श्रेष्ठ धर्म्मयुक्त कर्म्म किया जाता जिनसे वे (हस्ता) हाथ (उत) और (प्रयन्तारा) देते हैं जिनसे वे (भद्रा) कल्याण कर्म करनेवाले (पाणी) हाथ (स्तुवते) सत्य बोलते हुए के लिए (राधः) धन देवें उन (ते) आपकी (का) कौन (निषत्तिः) स्थित होते हैं जिससे ऐसी मर्य्यादा वा नीति है (उ) और आप (किम्) क्या (नः) हम लोगों को (ममत्सि) प्रसन्न करते हो और (दातवै) देने को (उ) भी (किम्) क्यों (न, उ) नहीं (उदुत) उत्तम प्रकार (हर्षसे) आनन्दित होते हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जिससे आप हम लोगों को आनन्द देते हो इससे आनन्दित निरन्तर होते हो और जिससे आप सुवर्ण हस्त में धारण किये हुए दानसहित हस्तयुक्त हुए योग्यों का सत्कार करते हो इस से आप की कल्याण करनेवाली नीति है ॥ ९ ॥

एवा वस्व इन्द्रः सत्यः सम्राड्ढन्ता वृत्रं वरिवः पूरवे कः ।
पुरुष्टुत क्रत्वा नः शग्धि रायो भक्षीय तेऽवसो दैव्यस्य ॥१०॥

पदार्थ—हे (पुरुष्टुत) बहुतों से प्रशंसित ! जो (सत्यः) श्रेष्ठ पुरुषों में श्रेष्ठ (इन्द्रः) ऐश्वर्य्य के देनेवाले आप सूर्य (वृत्रम्) मेघ को जैसे वैसे शत्रुओं को (हन्ता, एवा) नाश करनेवाले हों (सम्राट्) सम्पूर्ण भूमि के राजा (पूरवे) धार्मिक मनुष्यों के लिए (वस्वः) धन का (वरिवः) सेवन (कः) करें और जो आप (क्रत्वा) श्रेष्ठ बुद्धि वा उत्तम कर्म्म से (नः) हम लोगों के लिए (रायः) धनों को (शग्धि) देवें उन्हीं (ते) आप के (दैव्यस्य) श्रेष्ठ सुख प्राप्त करानेवाले (अवसः) रक्षण की उत्तेजना से रक्षित मैं धनों का (भक्षीय) सेवन वा भोग करूं ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सूर्य के सदृश प्रकाशित न्याययुक्त अभय का देनेवाला और सब प्रकार से सबका रक्षक नायक होवे वही चक्रवर्ती होने के योग्य होता है ॥ १० ॥

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।

अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥६॥

पदार्थ—हे (हरिवः) विद्वानों के सङ्ग में प्रीति करनेवाले (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त जिस (धिया) बुद्धि से (ते) आप के लिये (नव्यम्) नवीन (ब्रह्म) विद्यारूप धन (अकारि) किया गया और जिसके (रथ्यः) बहुत रथ आदि ऐश्वर्य्य से युक्त (सदासाः) सेवा करनेवालों के सहित वर्त्तमान हम लोग (स्याम) होवें इसके लिए (इषम्) अन्न को (नु) निश्चय (गृणानः) विद्या की स्तुति करता हुआ (नु) शीघ्र (स्तुतः) प्रशंसा को प्राप्त हुए (जरित्रे) सम्पूर्णविद्याओं के अध्यापक के लिये (नद्यः) नदियों के (न) सदृश (पीपेः) वृद्धि करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो जिसके लिए विद्या को देवे उसकी सेवा उसको चाहिए कि यथायोग्य करे ॥ ११ ॥

इस सूक्त में इन्द्र राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इसके अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह इक्कीसवाँ सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथैकादशर्चस्य द्वाविंशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता १, २, ५, १० निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ४ विराट्त्रिष्टुप् । ६, ७ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ८ भुरिक् पङ्क्तिः । ९ स्वराट् पङ्क्तिः । ११ निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचावाले बाईसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्रपदवाच्य राजगुणों को कहते हैं—

यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टि तन्नो महान्करति शुष्म्या चित् ।

ब्रह्म स्तोमं मघवा सोममुक्था यो अश्मानं शवसा बिभ्रदेति ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (इन्द्रः) अत्यन्त सुख का देनेवाला राजा (नः) हम लोगों की (जुजुषे) सेवा करता है (यत्, च) और जो (महान्) बड़ा ऐश्वर्यवाला (आ, वष्टि) कामना करता है (यः) जो (शुष्मी) अत्यन्त बलवान् (मघवा) अति उत्तम धनयुक्त राजा सूर्य्य (अश्मानम्) मेघ को जैसे वैसे (शवसा) बल से (ब्रह्म) बहुत धन वा अन्न (स्तोमम्) प्रशंसा करने योग्य (सोमम्) ओषधि आदि पदार्थसमूह से ऐश्वर्य्य और (उक्था) प्रशंसा करने योग्य वस्तुओं को (चित्) भी (बिभ्रत्) धारण करता हुआ राज्य को (एति) प्राप्त होता है (तत्) वह (नः) हम लोगों को सुख (करति) करता है ऐसा जानो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य मेघ को धारण करता और नाश करता है वैसे ही जो राजा श्रेष्ठों को धारण करता और दुष्टों को दण्ड देता है वही हम लोगों के पालन करने योग्य है ॥ १ ॥

वृषा वृषन्धिं चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्यां नृतमः शचीवान् ।

श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां यस्याः पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (वृषा) अत्यन्त बलवान् (वृषन्धिम्) बलिष्ठों के धारण करनेवाले (चतुरश्रिम्) चतुरङ्ग सेना को प्राप्त जन को (बाहुभ्याम्) भुजाओं से (अस्यन्) फेंकता हुआ (उग्रः) तेजस्वी (नृतमः) अतिशय नायक (शचीवान्) बहुत प्रजावाला (यस्याः) जिस के (पर्वाणि) पूर्ण पालन (श्रिये) लक्ष्मी के लिए समर्थ होते हैं उस (परुष्णीम्) विभागवती (ऊर्णाम्) ढांपनेवाली दुर्बुद्धि को (उषमाणः) जलाता हुआ (सख्याय) मित्र होने के वा मित्र के कर्म्म के लिए (विव्ये) कामना करता है वही हम लोगों का राजा होने को योग्य होवे ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो बाहुबल से दुष्टों का तिरस्कार करता हुआ मनुष्यों के उत्तम गुणों से उत्तम और मित्र के सदृश प्रजाओं को पालता है वही लक्ष्मीवान् प्रजावान् न्यायाधीश राजा होने के योग्य होता है ॥ २ ॥

यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।

दधानो वज्रं बाह्वोरुशन्तं द्याममेन रेजयत्प्र भूम ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (महद्भिः) बड़े गुणों से विशिष्ट (वाजेभिः) वेगयुक्त सेनाजनों और (शुष्मैः) बलों के साथ (महः) बड़ा (जायमानः) उत्पन्न होता हुआ (देवः) विद्वान् (देवतमः) अत्यन्त विद्वान् राजा (बाह्वोः) भुजाओं के बीच (वज्रम्) शस्त्र और अस्त्र को (दधानः) धारण करता हुआ (अमेन) बल से सूर्य्य (द्याम्, भूम, च) प्रकाश और पृथिवी को जैसे (प्र, रेजयत्) कम्पाता है वैसे (उशन्तम्) कामना करते हुए शत्रु को कम्पाता है उस हम लोगों के सुख की कामना करते हुए राजा का हम लोग स्वीकार करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो योग्य दण्ड से सूर्य्य प्रकाश और भूगोलों को कम्पाते हुए के सदृश प्रजाओं को अधर्म्माचरण से कम्पाता है वही पूर्ण विद्वान् राजा होता है ॥ ३ ॥

अब पृथिवी के धारण भ्रमणविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

विश्वा रोधांसि प्रवतश्च पूर्वीर्द्यौर्ऋष्वाज्जनिमन्रेजत क्षाः ।

आ मातरा भरति शुष्म्या गोर्नृवत्परिज्मन्नोनुवन्त वाताः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (ऋष्वात्) बड़े प्रकृतिरूप कारण से (जनिमन्) उत्पत्ति में प्रकट हुई (पूर्वीः) प्राचीनकाल से सिद्ध क्रियाओं को (द्यौः) बिजुली और (क्षाः) पृथिवी (आ, भरति) अच्छे प्रकार धारण करती है (प्रवतः, च) और नीचे के स्थल में वर्त्तमान (विश्वा) सम्पूर्ण प्रजाओं तथा (रोधांसि) रुकावटों को (नृवत्) मनुष्यों के सदृश (आ) अच्छे प्रकार धारण करती है और जो (शुष्मी) बलवान् अग्नि (गोः) पृथिवी के सम्बन्ध में (मातरा) माता और पितारूप राजा और प्रजाजन तथा अन्तरिक्ष और पृथिवी को मनुष्यों के सदृश (रेजत) कम्पाता है जहां (परिज्मन्) सब ओर से व्याप्त अन्तरिक्ष वा विस्तृत भूमि में (वाताः) पवन (नोनुवन्त) अत्यन्त शब्द करते हैं उन को आप लोग जानो ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो प्रकृतिरूप कारण से उत्पन्न हुआ बड़ा अग्नि सम्पूर्ण भूगोलों का आकर्षण करता है, माता और पिता के सदृश सब का पालन करता और अन्तरिक्ष में घुमाता है उस को जान के कार्य्य सिद्ध करो ॥ ४ ॥

अब भूगोल के भ्रमणदृष्टान्त से राजगुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ता तू त इन्द्र महतो महानि विश्वेष्वित्सवनेषु प्रवाच्या ।

यच्छूर धृष्णो धृषता दधृष्वानहिं वज्रेण शवसाविवेषीः ॥५॥७॥

पदार्थ—हे (धृष्णो) अत्यन्त ढीठ (शूर) भयरहित (इन्द्र) परम ऐश्वर्य्य का प्रयोग करनेवाले राजन् ! (यत्) जो (विश्वेषु) सम्पूर्ण (सवनेषु) ऐश्वर्य्य से युक्त लोकों में (महतः) आदर करने योग्य (ते) आपके (महानि) बड़े-बड़े (प्रवाच्या) उत्तमता से कहने योग्य कार्य्य हैं (ता, इत्) उन्हीं को (तु) तो (दधृष्वान्) धारण कराते हुए (धृषता) अत्यन्त ढिठाई और (शवसा) बल से (वज्रेण) किरण से (अहिम्) मेघ को सूर्य्य जैसे वैसे शस्त्र और अस्त्र से (अविवेषीः) प्राप्त हूजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य किरणों से आकर्षण करके सम्पूर्ण भूगोलों को धारण करता है वैसे ही बड़ी सत्पुरुष आदि सामग्री को करके राजा द्वीप और द्वीपान्तरों में स्थित राज्यों को शासन देवे ॥५

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ता तू ते सत्या तुविनृम्ण विश्वा प्र धेनवः सिस्रते वृष्ण ऊध्नः ।

अधा ह त्वद्वृषमणो भियानाः प्र सिन्धवो जवसा चक्रमन्त ॥६॥

पदार्थ—हे (तुविनृम्ण) बहुत धनवाले और (वृषमणः) बलयुक्त पुरुष के मन के सदृश मन से युक्त राजन् ! जैसे (सिन्धवः) नदियाँ (जवसा) वेग से (चक्रमन्त) चलती हैं वैसे (त्वत्) आप के समीप से (भियानाः) भय को प्राप्त शत्रु लोग दूर भागते हैं (अधा) इस के अनन्तर जो (ते) आप के (विश्वा) सम्पूर्ण (सत्या) श्रेष्ठ पुरुषों में साधु कर्म्म अर्थात् उत्तम आचरण और (धेनवः) वाणियाँ (वृष्णः) ब्रह्मचर्य्य आदि से बलिष्ठ (ऊध्नः) विस्तीर्ण बलवालों को (प्र, सिस्रते) अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं (ता) उन को (तु) फिर (ह) निश्चय से आप वेग से (प्र) अत्यन्त सिद्ध करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिस राजा की सफल वाणी और धर्मयुक्त कर्म्म वर्त्तमान है उस से गौओं से बछड़ों के सदृश प्रजा तृप्त होती है और उस से दुष्ट डरते हैं और यश विस्तृत होता है ॥ ६ ॥

अत्राह ते हरिवस्ता उ देवीरवोभिरिन्द्र स्तवन्त स्वसारः ।

यत्सीमनु प्र मुचो बद्बधाना दीर्घामनु प्रसितिं स्यन्दयध्यै ॥७॥

पदार्थ—हे (हरिवः) श्रेष्ठ पुरुषों से और (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त (अत्र) इस राज्य में (अह) ग्रहण करने में (यत्) जो (ते) आप की (बद्बधानाः) प्रबन्ध करनेवाली (स्वसारः) अङ्गुलियों के समान वर्त्तमान बहिनपने का आचरण करती और पढ़ी हुई स्त्रियाँ (स्यन्दयध्यै) बहाने को (दीर्घाम्) लम्बीभूत (प्रसितिम्) बन्धावट की (अनु, स्तवन्त) अनुकूल स्तुति करती हैं (ता, उ) उन्हीं (देवीः) प्रकाशित पढ़ी हुई स्त्रियों को (अवोभिः) रक्षण आदि व्यवहारों से (सीम्) सब प्रकार दुःखरूप बन्धन से आप (अनु, प्र, मुच) अच्छे प्रकार छुड़ाइए ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे राजा आदि मनुष्यो ! जैसे आप लोग ब्रह्मचर्य से विद्याओं को पढ़कर राजनीति से राज्य का पालन करते हैं वैसे ही आप लोगों की स्त्रियाँ स्त्रियों का न्याय करें । ऐसा करने पर दृढ़ राजकर्म्म का प्रबन्ध होता है ऐसा जानना चाहिए ॥ ७ ॥

अब राजनीति के अध्ययन से अध्यापकविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

पिपीळे अंशुर्मद्यो न सिन्धुरा त्वा शमी शशमानस्य शक्तिः ।
अस्मद्र्य१क्छुशुचानस्य यम्या आशुर्न रश्मिं तुव्योजसं गोः ॥८॥

पदार्थ—हे राजन् (मद्यः) आनन्दित करानेवाली (सिन्धुः) नदी जैसे (न) वैसे जिन आप को (अंशुः) पदार्थ पहुंचानेवाला (आ, पिपीळे) पीड़ा देता है उन (शशमानस्य) अधर्म्म का उल्लङ्घन करने (शुशुचानस्य) अत्यन्त शोचने और (गोः) स्तुति करनेवाले आपके (आशुः) शीघ्र चलनेवाले घोड़े के (न) सदृश (यम्याः) रात्रियाँ (रश्मिम्) सूर्य्य के प्रकाश को जैसे वैसे जो (अस्मद्र्यक्) हम को प्राप्त होनेवाली (शक्तिः) सामर्थ्य हम लोगों का पालन करे। वह और (शमी) उत्तम कर्म्म (तुव्योजसम्) बहुत बल और पराक्रमयुक्त (त्वा) आप को प्राप्त होवे ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे प्रजाजनो ! जो लोग अपने राजा को पीड़ा देवें वे आप लोगों से ताड़ना करने योग्य हैं । और जैसे रात्रि किरणों को नष्ट करती है वैसे ही धार्म्मिक राजा के बल को प्राप्त होकर शत्रु दूर होते हैं ॥८॥

अस्मे वर्षिष्ठा कृणुहि ज्येष्ठा नृम्णानि सत्रा सहुरे सहांसि ।
अस्मभ्यं वृत्रा सुहनानि रन्धि जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य ॥९॥

पदार्थ—हे (सहुरे) सहनशील राजन् ! जो आप के (सत्रा) सत्य (वर्षिष्ठा) अत्यन्त वृद्ध (ज्येष्ठा) प्रशंसा करने योग्य (नृम्णानि) धन (सहांसि) और सहन वर्त्तमान हैं उनको (अस्मे) हम लोगों में (कृणुहि) करो (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए दुःख देनेवाले (वनुषः) सेवा करते हुए (मर्त्यस्य) मनुष्य के (वधः) मारने के साधन को (जहि) दूर फेंको और (सुहनानि) उत्तम प्रकार नाश करने योग्य (वृत्रा) मेघ बद्दलों के समान शत्रुओं की सेनाओं का (रन्धि) नाश कीजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे राजा आदि जनो ! आप लोग मिल के प्रजा को पीड़ा देनेवाले के बल का नाश करो और जो आप लोगों के उत्तम वस्तु उनको हम लोगों में धारण कीजिए और जो हम लोगों के उत्तम रत्न उनको आप लोग धरें ॥ ९ ॥

अब उपदेशक विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अस्माकमित्सु शृणुहि त्वमिन्द्रास्मभ्यं चित्राँ उप माहि वाजान् ।
अस्मभ्यं विश्वा इषणः पुरंधीरस्माकं सु मघवन् बोधि गोदाः ॥१०॥

पदार्थ—हे (मघवन्) बहुत धन से युक्त (इन्द्र) राजन् (त्वम्) आप (अस्माकम्) हम लोगों के वचनों को (सु, शृणुहि) उत्तम प्रकार सुनो और (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए (चित्रान्) अद्भुत (वाजान्) अन्न आदिक पदार्थों को (उप, माहि) उपमित कीजिए अर्थात् उत्तमता से मानिए और (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए (विश्वाः) सम्पूर्ण (पुरन्धीः) विज्ञानों को धारण करनेवाली बुद्धियों को (इत्) ही (इषणः) प्रेरित करो और (अस्माकम्) हम लोगों के (गोदाः) गौ को देनेवाले होते हुए आप लोगों को (सु, बोधि) उत्तम प्रकार जानिए ॥ १० ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो लोग हम लोगों के नीति के अनुकूल वचनों को सुनते और हम लोगों को विद्वान् करते हैं उन लोगों की सेवा हम लोगों को चाहिए कि निरन्तर करें ॥ १० ॥

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥८॥

पदार्थ—हे (हरिवः) श्रेष्ठ विद्यार्थियों और (इन्द्र) यज्ञ के ऐश्वर्य्य से युक्त ! जिस से आप (स्तुतः) प्रशंसित हुए (जरित्रे) विद्वान् पुरुष के लिए (इषम्) अन्न को देकर (नद्यः) नदियों के (न) सदृश (नु) शीघ्र (पीपेः) वृद्धि कराओ जिस से आप लोगों से (गृणानः) प्रशंसा करते हुए (नु) निश्चय (अकारि) किये गये और (ते) आप के लिए (नव्यम्) नवीन नवीन (ब्रह्म) धन दिया जाय इस से (रथ्यः) रथयुक्त (सदासाः) दासों के सहित वर्त्तमान हम लोग (धिया) बुद्धि से आप के मित्र (स्याम) होवें ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! जिससे आप सब के लिए विद्या देते हो इससे आप के साथ मित्रता करके आप के लिए बहुत धन और अन्न देकर निरन्तर सत्कार करें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में इन्द्र पृथिवी धारण श्रवण विद्वान् अध्यापक और उपदेशक के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ।

यह बाईसवां सूक्त और आठवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

अथैकादशर्चस्य त्रयोविंशतितमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । १—७, ११ इन्द्रः । ८—१० इन्द्र ऋतदेवो देवता । १—३, ७—९ त्रिष्टुप् । ४, १० निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५, ६ भुरिक् पङ्क्तिः ११ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचावाले तेईसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र से प्रश्नोत्तर विषय को कहते हैं—

कथा महामवृधत् कस्य होतुर्यज्ञं जुषाणो अभि सोममूधः ।
पिबन्नुशानो जुषमाणो अन्धो ववक्ष ऋष्वः शुचते धनाय ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वान् (कस्य) किस (होतुः) न्याय आदि कर्म्म करनेवाले के (महाम्) बड़े (यज्ञम्) मेल करने योग्य व्यवहार का (जुषाणः) सेवन करता हुआ (कथा) किस प्रकार से (अभि, अवृधत्) बढ़ता और जो (ऊधः) उत्तम (सोमम्) दुग्ध आदि रस को (पिबन्) पीता ऐश्वर्य्य की (उशानः) कामना करता और (अन्धः) अन्न की (जुषमाणः) सेवा करता हुआ (ववक्ष) पदार्थ पहुंचाता है (ऋष्वः) तथा बड़ा हुआ (धनाय) धन के लिए (शुचते) पवित्र कराता वा विचार कराता है ॥ १ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! किस से पढ़कर विद्यार्थी कैसे विद्या का सेवन करे और कौन विद्वान् होवे इस प्रश्न का ब्रह्मचर्य्य से वीर्य्य का निग्रह करके विद्या की कामना करता हुआ आचार्य्य के समीप जा और सेवा कर के नियत आहार विहार युक्त हुआ रोगरहित होकर विद्या की प्राप्ति के लिए अत्यन्त प्रयत्न करता है यह उत्तर है ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

को अस्य वीरः सधमादमाप समानंश सुमतिभिः को अस्य ।
कदस्य चित्रं चिकिते कदूती वृधे भुवच्छशमानस्य यज्योः ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वान् (कः) कौन (वीरः) विद्या से प्राप्त शरीर और आत्मबलयुक्त (अस्य) इस अध्यापक वा राजा के (सधमादम्) साथ आनन्द को (आप) प्राप्त होवे (कः) कौन वीर (अस्य) इस के (सुमतिभिः) श्रेष्ठ विद्वानों के साथ (चित्रम्) अद्भुत विज्ञान को (चिकिते) जानता है (कत्) कब (अस्य) इस की विद्या को (सम्, आनंश) प्राप्त होता है और कौन वीर (ऊती) रक्षण आदि से (शशमानस्य) प्रशंसित (यज्योः) सङ्गम करने योग्य सत्य व्यवहार की (वृधे) वृद्धि के लिए (कत्) कब (भुवत्) होवे ॥ २ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् वा राजन् ! कौन किसके साथ पढ़े, कौन किसके साथ न्याय करे वा युद्ध करे, कौन इनमें श्रेष्ठ, इस प्रश्न का जो प्रशंसित कर्मों के अनुष्ठान और वृद्धि करनेवाले होवे, यह उत्तर है ॥ २ ॥

कथा शृणोति हूयमानमिन्द्रः कथा शृण्वन्नवसामस्य वेद ।
का अस्य पूर्वीरुपमातयो ह कथैनमाहुः पपुरिं जरित्रे ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (इन्द्रः) अध्यापक वा राजा (हूयमानम्) स्पर्द्धा करते हुए को (कथा) किस प्रकार (शृणोति) सुनता है और (शृण्वन्) सुनता हुआ (अस्य) इसके (अवसाम्) रक्षण आदिकों की स्पर्द्धा करते हुए को (कथा) किस प्रकार से (वेद) जाने (अस्य) इसकी (पूर्वीः) प्राचीन (उपमातयः) उपमा (ह) ही (काः) कौन हैं अनन्तर (एनम्) इसको (जरित्रे) विद्वान् के लिए (पपुरिम्) पालन करनेवाला (कथा) किस प्रकार (आहुः) कहते हैं ऐसा पूछना चाहिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो विद्यार्थी और राजा के जन यथार्थवक्ता पुरुषों के वचनों वा शास्त्रों को उत्तम प्रकार सुन मान और निश्चय करके पुनः कर्मों का आरम्भ करते हैं वे ही सम्पूर्ण जानने योग्य को जानते हैं ॥ ३ ॥

कथा सबाधः शशमानो अस्य नशदभि द्रविणं दीध्यानः ।
देवो भुवन्नवेदा म ऋतानां नमो जगृभ्वाँ अभि यज्जुजोषत् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (अस्य) इसका (सबाधः) बाधसहित अर्थात् दुःख के सहित वर्त्तमान (कथा) किस प्रकार से (नशत्) नष्ट होता है (द्रविणम्) धन का (अभि, दीध्यानः) सब ओर से प्रकाश और (शशमानः) प्रशंसा करता हुआ (देवः) विद्वान् किस प्रकार (भुवत्) होवे (नवेदाः) नहीं जानने वाला जन (मे) मेरे (ऋतानाम्) सत्य व्यवहारों के सम्बन्ध में (नमः) अन्न को (जगृभ्वान्) ग्रहण किये हुए (यत्) जो जन वह किस प्रकार से (अभि, जुजोषत्) सेवन करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे अध्यापक वा राजन् ! किस प्रकार से इस विद्या का अभय को प्राप्त होवे और किस प्रकार से ये विद्वान् होवें इस प्रश्न का, जो सत्कार से श्रेष्ठ पुरुषों से शिक्षा को ग्रहण करके धर्म्म का सेवन करें, यह उत्तर है ॥ ४ ॥

अब प्रश्नोत्तर से मैत्रीकरणविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

कथा कदस्या उषसो व्युष्टौ देवो मर्तस्य सख्यं जुजोष ।
कथा कदस्य सख्यं सखिभ्यो ये अस्मिन्कामं सुयुजं ततस्रे ॥५॥९॥

पदार्थ—हे विद्वज्जनो (देवः) सूर्य्य के सदृश विद्वान् (अस्याः) इस वर्त्तमान (उषसः) प्रातःकाल के (व्युष्टौ) विशेष प्रकाश में (मर्तस्य) मनुष्य के (सख्यम्) मित्रपने वा मित्र के कर्म का (कत्) कब (कथा) किस प्रकार (जुजोष) सेवन करता है उन (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (अस्य) इसका (सख्यम्) मित्रपन वा मित्रकर्म्म (कत्) कब (कथा) किस प्रकार से होने के योग्य है (ये) जो (अस्मिन्) इस मित्रपने रूप कर्म्म में (सुयुजम्) उत्तम प्रकार मिलाने के योग्य (कामम्) इच्छा का (ततस्रे) विस्तार करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! मनुष्यों को किस के साथ कब मित्रता और किस प्रकार मित्रता का निर्वाह करना चाहिये और मित्रों के साथ कैसे वर्त्तना चाहिए इस प्रश्न का यह उत्तर है कि जब उत्तम प्रकार परीक्षा करे तब उसके साथ मित्रता करो, और जो इस जगत् में सब के साथ मित्राचार करने की कामना करते हैं उनके साथ सदा ही मित्रता की रक्षा करनी चाहिए ॥५॥

फिर भी मैत्रीकरण विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

किमादमंत्रं सख्यं सखिभ्यः कदा नु ते भ्रात्रं प्र ब्रवाम ।
श्रिये सुदृशो वपुरस्य सर्गाः स्व१र्ण चित्रतममिष आ गोः ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् वा राजन् ! (ते) आप के (सखिभ्यः) मित्रो के लिए (भ्रात्रम्) भ्रातृसम्बन्धि कर्म्म के सदृश वर्त्तमान (सख्यम्) मित्रपने वा मित्र के कर्म्म का (कदा) कब (नु) शीघ्र (प्र, ब्रवाम) उपदेश देवें (आत्) इस के अनन्तर (किम्) किस (अमत्रम्) सुपात्र का आप के मित्रो के लिए उपदेश देवें और जो (सुदृशः) उत्तम प्रकार देखने योग्य (अस्य) इसकी (श्रिये) सेवा वा धन के लिए (आ, गोः) पृथिवी से लेकर (सर्गाः) सृष्टियाँ (वपुः) उत्तम रूप युक्त शरीर की (इषे) इच्छा के लिए हैं उनका विज्ञान (चित्रतमम्) अत्यन्त आश्चर्यरूप (स्वः) सुख के (न) सदृश वर्त्तमान है ऐसा उपदेश देवें ॥ ६ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यो का चाहिए कि यथार्थवक्ता विद्वानो से मित्रता सदा ही करें जिससे वे उत्तम उपदेश से सबको सृष्टिविद्या के जाननेवाले धर्म्मात्मा करके बहुत ही उत्तम विज्ञान को देकर सुखी करें ॥ ६ ॥

अब शत्रुनिवारण के अनुकूल सेना की उन्नति के विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

द्रुहं जिघांसन् ध्वरसमनिन्द्रां तेतिक्ते तिग्मा तुजसे अनीका ।
ऋणा चिद्यत्र ऋणया न उग्रो दूरे अज्ञाता उषसो बबाधे ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्र) जहाँ (नः) हम लोगो का जो (उग्रः) तीव्र प्रताप (दूरे) दूर स्थान मे (अज्ञाताः) नहीं जानी गई शत्रुओ की सेनाओ को (उषसः) प्रातःकाल से अन्धकार को जैसे सूर्य्य वैसे (बबाधे) बिलोता है (ऋणया) प्राप्त सेना से (चित्) भी (तुजसे) बल के लिए अथवा शत्रुओं के नाश के लिए (तिग्मा) तीव्र (ऋणा) प्राप्त (अनीका) शत्रुओ से प्राप्त नहीं होने योग्य सैन्यसमूहो को (तेतिक्ते) अत्यन्त तीक्ष्ण करता है (द्रुहम्) द्रोह करने और (ध्वरसम्) हिंसा करनेवाले को (जिघांसन्) नष्ट करने की इच्छा करता हुआ (अनिन्द्राम्) ईश्वरसम्बन्धरहित मार्ग को (बबाधे) बिलोता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जो लोग उत्तम प्रकार शिक्षित, श्रेष्ठ, शत्रुओं को शीघ्र पराजय करनेवाली सेनाओ को सिद्ध करें जिन से दूर स्थान मे भी वर्त्तमान शत्रु लोग डरें, दारिद्र्य और भय को दूरकर अपनी प्रजा को आनन्द देकर दुष्टों का निरन्तर नाश करें उनका आप सदा ही सत्कार करो ॥ ७ ॥

अब सत्याचरणोत्तमताविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति ।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः ॥८॥

पदार्थ—हे राजन् ! जिस (ऋतस्य) सत्य आचार की (पूर्वीः) प्राचीन (शुरुधः) शीघ्र रोकनेवाली अपनी सेना (सन्ति) हैं जिस (ऋतस्य) सत्य की (धीतिः) धारणा करने वाली बुद्धि (वृजिनानि) बलो को प्राप्त होकर शत्रुओ का (हन्ति) नाश करती है और जिसे (ऋतस्य) सत्य की (श्लोकः) वाणी (बधिरा) बधिर (कर्णा) कर्णों का (ततर्द) नाश करती है और जो अन्य जनो को (बुधानः) जनाता और (शुचमानः)पवित्र होकर पवित्र करता हुआ (आयोः) जीवन के उपायो का उपदेश देता है उसका (हि) जिससे गुरु के सदृश सत्कार करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे अध्यापक वा राजन् ! जो जितेन्द्रिय दुष्ट आचार के रोकने और सत्य के प्रचार करनेवाले सत्यवाणीयुक्त और बधिर के सदृश वर्त्तमान अज्ञ पुरुषों को बोध देते हुए ब्रह्मचर्य्य आदि उपदेश से अधिक अवस्था वाले करते हुए क्लेश और शत्रुओ के नाश करनेवाले होवें वे ही अपने आत्मा के सदृश आदर करने योग्य होवें ॥ ८ ॥

ऋतस्य दृळ्हा धरुणानि सन्ति पुरूणि चन्द्रा वपुषे वपूंषि ।
ऋतेन दीर्घमिषणन्त पृक्ष ऋतेन गाव ऋतमा विवेशुः ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (ऋतस्य) सत्य धर्म्म के आचरण से ही (दृळ्हा) दृढ (धरुणानि) जलों के सदृश शान्त आचार (पुरूणि) बहुत (चन्द्रा) आनन्द देनेवाले सुवर्ण आदि (वपुषे) सुन्दर रूपयुक्त शरीर के लिए (वपूंषि) रूपों को प्राप्त (सन्ति) हैं और (ऋतेन) सत्य आचरण से (पृक्षः) उत्तम प्रकार स्पर्श होने योग्य अन्न आदिक (दीर्घम्) चिरकाल रहनेवाले आयु को (इषणन्त) प्राप्त होते हैं (ऋतेन) सत्य आचरण से (गावः) गौवें जैसे बछड़ो के स्थानो को वैसे उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियाँ (ऋतम्) सत्य ब्रह्म को (आ, विवेशुः) प्राप्त होती हैं ऐसा जानो ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे जल से प्राणधारण अन्न आदि की उत्पत्ति और सुन्दर और दीर्घ अवस्था होती है वैसे ही सत्य आचरण से सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य विद्या और बहुत काल पर्य्यन्त जीवन होता है जिससे निरन्तर सत्य ही का आचरण करो ॥ ९ ॥

ऋतं येमान ऋतमिद्वनोत्यृतस्य शुष्मस्तुरया उ गव्युः ।
ऋताय पृथ्वी बहुले गभीरे ऋताय धेनू परमे दुहाते ॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (ऋताय) सत्य के लिए (बहुले) बहुत पदार्थों से युक्त (गभीरे) गम्भीर आश्रय में (पृथ्वी) भूमि और अन्तरिक्ष तथा जैसे (ऋताय) सत्य और जल के लिए (परमे) अति उत्तम (धेनू) गौओं के सदृश वर्त्तमान (दुहाते) प्रातःकाल वैसे (ऋतम्) सत्य को जो (येमानः) नियम करते हुए और वैसे (ऋतम्) सत्य की जो (वनोति) याचना करता है तथा (ऋतस्य) सत्य के जो (शुष्मः) बल को (तुरया) शीघ्रता को प्राप्त (उ) और (गव्युः) निजसम्बन्धिनी पृथिवी वा वाणी को चाहने वाला है वे (इत्) ही सर्वदा पूर्ण सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो लोग मनुष्य के शरीर को प्राप्त होकर नियम से सत्य आचार सत्य याञ्चा करके शीघ्र धार्मिक होते हैं वे भूमि और सूर्य्य सब की कामना की पूर्ति कर सकते हैं ॥ १० ॥

फिर प्रशंसापरत्व से पूर्व विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥१०॥

पदार्थ—हे (हरिवः) बहुत मनुष्ययुक्त (इन्द्र) सत्य ऐश्वर्य्य के देनेवाले जिस (ते) आपका (नव्यम्) नवीन (ब्रह्म) बड़ा विद्यारूप धन जिसने (अकारि) किया उस (जरित्रे) विद्या की इच्छा करनेवाले के लिए (स्तुतः) सत्य आचरण से प्रशंसित (नद्यः) नदियो के (न) सदृश (इषम्) विज्ञानको देकर (नु) शीघ्र (पीपेः) पालन करे और सत्य का (गृणानः) प्रचार करता हुआ कर्म्म को प्राप्त कराके (नु) निश्चय पालन करो और जैसे हम लोग (धिया) बुद्धि से और पुरुषार्थ से (रथ्यः) रथयुक्त और (सदासाः) दासो के सहित वर्त्तमान (स्याम) होवें वैसे आप हूजिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो जैसे आप लोगो में धर्म्मयुक्त नीति का स्थापन करें उनकी सेवा करके मित्र होके सम्पूर्ण विद्याओ को जानिये ॥ ११ ॥

इस सूक्त में प्रश्न उत्तर मैत्री शत्रुओ का निवारण, सेना की उन्नति और सत्य आचरण की उत्तमता का वर्णन करने से इसके अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थके साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तेईसवां सूक्त तथा दशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथैकादशर्चस्य चतुर्विंशतितमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ५, ७ त्रिष्टुप् । ३, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २, ८ भुरिक्पङ्क्तिः। ६ स्वराट् पङ्क्तिः । ११ निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

अब ग्यारह ऋचावाले चौबीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में ब्रह्मचर्य्यवान् के पुत्र की प्रशंसा कहते हैं—

का सुष्टुतिः शवसः सूनुमिन्द्रमर्वाचीनं राधस आ ववर्तत् ।
ददिर्हि वीरो गृणते वसूनि स गोपतिर्निष्षिधां नो जनासः ॥१॥

पदार्थ—हे (जनासः) विद्वान् वीर पुरुषो ! जो (वीरः) विद्या और शौर्य्य आदि गुणों से व्याप्त जन (गृणते) प्रशंसित कर्म्मवान् के लिए (वसूनि) द्रव्यो को (ददिः) देने वाला वर्त्तमान है (सः) वह (हि) जिससे (निष्षिधाम्) अत्यन्त शासन करनेवालो के मङ्गलाचारो से युक्त (नः) हम लोगों का (गोपतिः) पृथिवीपति अर्थात् राजा हो (का) कौन (सुष्टुतिः) उत्तम प्रशंसा और (शवसः) बहुत बलवान् के (सूनुम्) पुत्र को (अर्वाचीनम्) इस समय वाले युवावस्थायुक्त (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देनेवाले का (आ, ववर्त्तत्) वर्त्ताव करावे और कौन (राधसे) धन और ऐश्वर्य्यवान् के लिए धन के योग का वर्त्ताव करावे ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो पूर्ण ब्रह्मचर्य्य को किये हुए का पुत्र और वह स्वयं भी पूर्ण ब्रह्मचर्य्य और विद्या से युक्त और प्रशंसित आचरण करने और सुख देनेवाला होवे वह ही आप का और हम लोगों का राजा हो ॥ १ ॥

अब पूर्वोक्त विषय के अन्तर्गत धनुर्वेदाध्ययन के फल को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

स वृत्रहत्ये हव्यः स ईड्यः स सुष्टुत इन्द्रः सत्यराधाः ।
स यामन्ना मघवा मर्त्याय ब्रह्मण्यते सुष्वये वरिवो धात् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (मघवा) सत्कृत राज्ययुक्त (सुष्वये) ऐश्वर्य की प्राप्ति का अनुष्ठान करनेवाले और (ब्रह्मण्यते) अपने धर्म से धन की इच्छा

करनेवाले (अस्मै) मनुष्य के लिए (वरिवः) सेवन को (आ, धात्) धारण करे (सः) वह (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाला (मावान्) मार्ग में (सः) वह (सत्यराधाः) न्याय से इकट्ठे किये हुए सत्य धन से युक्त (सः) वह (महद्धने) बड़े सङ्ग्राम में (सुष्टुतः) सर्वत्र प्राप्त उत्तम कीर्त्तियुक्त (सः) वह (ईड्यः) प्रशंसा करने योग्य और वह (हव्यः) पुकारने योग्य होवे ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य बाल्यावस्था से लेकर उत्तम चेष्टायुक्त विद्वानों की सेवा करनेवाला उत्तम प्रकार शिक्षायुक्त न्यायमार्ग का अनुगामी धनुर्वेद का जाननेवाला चतुर और युद्ध में भयरहित होवे उसी को राजा करो ॥ २ ॥

तमिन्नरो वि ह्वयन्ते समीके रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत त्राम् ।
मिथो यत्त्यागमुभयासो अग्मन्नरस्तोकस्य तनयस्य सातौ ॥३॥

पदार्थ—हे (रिरिक्वांसः) रेचन कराते हुए (नरः) नायक लोगो (समीके) उत्तम प्रकार प्राप्त सङ्ग्राम में (यत्) जिसको विद्वान् लोग (वि) विशेष करके (ह्वयन्ते) स्पर्द्धा करते हैं (तम्) उसको (इत्) ही (तन्वः) शरीर का (त्राम्) रक्षक (कृण्वत) करिये और हे (नरः) राज्य के नायको ! (तोकस्य) शीघ्र उत्पन्न हुए और (तनयस्य) कुमारावस्था को प्राप्त बालक के (सातौ) उत्तम प्रकार विभाग में (उभयासः) दोनों ओर वर्त्तमान और दुःख का (त्यागम्) त्याग तथा (मिथः) परस्पर शत्रुओं को नष्ट करते हुए जन (अग्मन्) प्राप्त हों उनका सेवन करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे सेना के जनो ! जो भृत्यों का रक्षक उत्साहयुक्त और शूरवीर होवे उसका सत्कार करके और जो सङ्ग्राम को छोड़के भागते हैं उनका नहीं सत्कार करके और अत्यन्त दण्ड देकर विजय को प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

अब अधर्मत्याग से तथा अच्छे कर्म से प्रजा और ऐश्वर्यवृद्धि विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

क्रतूयन्ति क्षितयो योग उग्राशुषाणासो मिथो अर्णसातौ ।
सं यद्विशोऽववृत्रन्त युध्मा आदिन्नेम इन्द्रयन्ते अभीके ॥४॥

पदार्थ—हे (उग्र) तीक्ष्णस्वभावयुक्त राजन् (यत्) जो (क्षितयः) मनुष्य (योगे) मिलने वा यम नियमादिकों के अनुष्ठान में (आशुषाणासः) शीघ्र करनेवाले (मिथः) परस्पर प्रीतियुक्त हुए (अर्णसातौ) प्राप्त विभाग में (क्रतूयन्ति) बुद्धि कर्म्मों की इच्छा करते हैं और (विशः) प्रजा (इन्द्रयन्ते) स्वामी करती हैं (युध्माः) युद्ध करनेवाले (नेमे) नायक अर्थात् अग्रणी लोग (अभीके) समीप में (सम्, अववृत्रन्त) विरोध से धन को प्राप्त हों और (आत्, इत्) उसी समय आपके भृत्य हों ॥ ४ ॥

भावार्थ—योगाभ्यास के बिना बुद्धि नहीं बढ़ती है और बुद्धि के बिना धन और आत्मा की सिद्धि नहीं होती है और विद्या पुरुषार्थ और न्याय के बिना प्रजा का पालन नहीं कर सकते ॥ ४ ॥

अब योग्य आहार विहार विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आदिद्ध नेम इन्द्रियं यजन्त आदित्पक्तिः पुरोळाशं रिरिच्यात् ।
आदित्सोमो वि पपृच्यादसुष्वीनादिज्जुजोष वृषभं यजध्यै ॥५॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जिन के (पुरोळाशम्) उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्न को (पक्तिः) पाक (रिरिच्यात्) बढ़ावे वे (नेमे) अन्य जन (आत्) अनन्तर (इत्) ही (इन्द्रियम्) धन को (यजन्ते) प्राप्त होते हैं और जिसका (आत्) अनन्तर (इत्) ही (सोमः) ऐश्वर्य्य (असुष्वीन्) जो प्राणों को प्राप्त होते हैं उनको (वि, पपृच्यात्) संयुक्त हो वह (आत्) अनन्तर (इत्) ही (यजध्यै) मिलने के लिए (वृषभम्) बलिष्ठ का (जुजोष) सेवन करता है (आत्) अनन्तर (इत्, ह) ही वे सब राज्य और बल को प्राप्त होने के योग्य होवें ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो जन उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्नों का पाककर के रुचिपूर्वक भोजन करते हैं वे बल को प्राप्त होके रोग रहित होने के योग्य होवें और ऐश्वर्य्य को प्राप्त होके धर्म्म और यथार्थवक्ता पुरुषों की सेवा करें ॥ ५ ॥

अब शत्रुजनों को जीतने के लिए राज्यप्रबन्ध को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

कृणोत्यस्मै वरिवो य इत्थेन्द्राय सोममुशते सुनोति ।
सध्रीचीनेन मनसाविवेनन्तमित्सखायं कृणुते समत्सु ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (अस्मै) इस (सोमम्) ऐश्वर्य्य की (उशते) कामना करनेवाले (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य्यवाले राजा के लिए (इत्था) इस प्रकार से (वरिवः) सेवन को (कृणोति) करता है (सध्रीचीनेन) ज्ञापक वा अनुष्ठापक अर्थात् समझाने वा आरम्भ करनेवाले के सहित (मनसा) अन्तःकरण से (अविवेनन्) कामनारहित होता हुआ ऐश्वर्य्य को (सुनोति) उत्पन्न करता और (समत्सु) सङ्ग्रामों में (सखायम्) मित्र को (कृणुते) करता है (तम्) उस को (इत्) ही राजा और प्रधान करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो मनुष्य अपने राज्य के भक्त धर्म्म का सेवन और ऐश्वर्य्य की कामना करने तथा अधर्म्म को छोड़नेवाले सङ्ग्राम में परस्पर अपने जनों में मैत्री करते हुए विद्वान् जन होवें वे ही आपकी राजशासन में संस्थापन करने योग्य हैं ॥ ६ ॥

य इन्द्राय सुनवत्सोममद्य पचात्पक्तीरुत भृज्जाति धानाः ।
प्रति मनायोरुचथानि हर्यन्तस्मिन्दधद्वृषणं शुष्ममिन्द्रः ॥७॥

पदार्थ—(यः) जो (इन्द्रः) राजा (अद्य) आज (इन्द्राय) सुख देनेवाले द्रव्य और ऐश्वर्य्ययुक्त के लिए (सोमम्) ऐश्वर्य्य को (सुनवत्) उत्पन्न करे (पक्तीः) पाकों को (पचात्) पकावे (उत) और (धानाः) यवों को (भृज्जाति) भूँजे (मनायोः) प्रशंसा की कामना करनेवाले की (उचथानि) रुचि करनेवालों को (हर्यन्) कामना करता हुआ (तस्मिन्) उस में (वृषणम्) बल करनेवाले (शुष्मम्) बलयुक्त पुरुष को (प्रति, दधत्) धारण करे वह बहुत जीतनेवाली सेना को प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो राजपुरुष राज्य के लिए ऐश्वर्य्य को बल और सेना के लिए भोजन आदि सामग्रियों को धारण करे वे प्रीतिकारक सुखों को प्राप्त होवें ॥७॥

अब शत्रुओं के विजय से राज्यादि पदार्थों के रक्षण विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यदा समर्यं व्यचेदृघावा दीर्घं यदाजिमभ्यख्यदर्यः ।
अचिक्रदद्वृषणं पत्न्यच्छा दुरोण आ निशितं सोमसुद्भिः ॥८॥

पदार्थ—(यदा) जिस काल में (अर्य्यः) स्वामी ईश्वर अर्थात् राजा (समर्य्यम्) सङ्ग्राम को (वि, अचेत्) चेतन कराता है (यत्) जो (ऋघावा) शत्रुओं का नाश करनेवाला (दीर्घम्) लम्बे बहुत (आजिम्) फेंकते हैं शस्त्र जिस में उस सङ्ग्राम को (अभि, अख्यत्) प्रसिद्धि करावे और (वृषणम्) बलिष्ठ के प्रति (अचिक्रदत्) अत्यन्त चिल्लाता है तब (दुरोणे) गृह में (पत्नी) स्त्री के सदृश (सोमसुद्भिः) ऐश्वर्य्य वा ओषधियों के समूह को उत्पन्न करनेवालों के साथ (आ, निशितम्) अच्छे प्रकार निरन्तर तीक्ष्ण (अच्छ) अच्छा अत्यन्त शब्द करता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पतिव्रता स्त्री सम्पूर्ण ऐश्वर्य्यों की उत्तम प्रकार रक्षा और उन्नति करके पति आदि को आनन्द देती है वैसे ही विद्या और विनययुक्त राजा अपने प्रजाजनों की अच्छे प्रकार रक्षा और ऐश्वर्य्य की वृद्धि करके सब सज्जनों की रक्षा करता है ॥ ८ ॥

अब ज्येष्ठ कनिष्ठ के व्यवहार विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

भूयसा वस्नमचरत्कनीयोऽविक्रीतो अकानिषं पुनर्यन् ।
स भूयसा कनीयो नारिरेचीद्दीना दक्षा वि दुहन्ति प्र वाणम् ॥९॥

पदार्थ—जो (अविक्रीतः) नहीं बेचा गया (भूयसा) बहुत प्रकार से (कनीयः) अत्यन्त अल्प (वस्नम्) हट्टप्रस्तर अर्थात् हटिया में बिछाने का (अचरत्) आचरण करे (सः) वह (पुनः) फिर (यन्) जाता हुआ (भूयसा) बहुत भाव से (कनीयः) अत्यन्त न्यून कर्म को (न) नहीं (अरिरेचीत्) रीता करे और जो (दीनाः) क्षीण (दक्षाः) चतुर जन (वाणम्) वाणी को (वि, प्र, दुहन्ति) अच्छे प्रकार पूरित करते हैं उन को मैं (अकानिषम्) प्रदीप्त करूं और कामना करूं ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अनेक प्रकार के व्यापार करनेवाले अभिमानरहित बुद्धिमान् हुए विद्या और शिक्षा से पूर्ण वाणी को करते हैं वे छोटों को पाल सकते हैं ॥ ९ ॥

क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः ।
यदा वृत्राणि जङ्घनदथैनं मे पुनर्ददत् ॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (कः) कौन (दशभिः) दश अङ्गुलियों और (धेनुभिः) दोहनेवाली गौओं के सदृश वाणियों से (मम) मेरे (इमम्) इस (इन्द्रम्) ऐश्वर्य्य को (क्रीणाति) खरीदता है (यदा) जब जो (वृत्राणि) धनों को (जङ्घनत्) अत्यन्त प्राप्त होता है (अथ) अनन्तर (एनम्) इसको (मे) मेरे लिए (पुनः) फिर (ददत्) देता है तभी ऐश्वर्य्य बढ़े ॥ १० ॥

भावार्थ—कौन ऐश्वर्य्य को बढ़ा सके इस प्रश्न का जो सब प्रकार पुरुषार्थयुक्त उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी से युक्त है यह उत्तर है, क्योंकि जो आदि में ऐश्वर्य्य को प्राप्त होवे वही औरों को देने को योग्य होवे ॥ १० ॥

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥१२॥

पदार्थ—हे (हरिवः) प्रशंसा करने योग्य भृत्यों से युक्त (इन्द्र) ऐश्वर्य्य की इच्छा करनेवाले (स्तुतः) शुद्ध व्यवहार से प्रशंसित (गृणानः) पुरुषार्थ की स्तुति करते हुए आप (जरित्रे) याचना करनेवाले वा जिस की याचना नहीं की गई उसके लिए (नद्यः) नदियों के (न) सदृश (इषम्) अन्न को (नु) निश्चय (पीपेः) बढ़ाओ जिससे (ते) आपका हम लोगों से (धिया) व्यवहार को जाननेवाली बुद्धि वा उत्तम किये हुए कर्म्म से (नव्यम्) देश देशान्तर वा द्वीप द्वीपान्तर से नवीन (ब्रह्म) बहुत धन (अकारि) किया जाता है और आप के साथ (रथ्यः) बहुत रथ आदि से युक्त (सदासाः) भृत्यों के सहित हम लोग ऐश्वर्य्य वाले (नु) शीघ्र (स्याम) होवें ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! यदि आप लोग धन की इच्छा करो तो धर्म्मयुक्त पुरुषार्थ से योग्य क्रिया को निरन्तर करो ॥ ११ ॥

इस सूक्त में ब्रह्मचर्य्यवाले के गुण की प्रशंसा, अधर्म्म के त्याग से और उत्तम कर्म्म से बुद्धि और ऐश्वर्य्य की वृद्धि, नियमित आहार विहार, शत्रु का विजय और ज्येष्ठ कनिष्ठ का व्यवहार कहा गया, इससे इस सूक्त के अर्थ की पूर्वसूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह चौबीसवां सूक्त और बारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथाऽष्टर्चस्य पञ्चविंशतितमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ निचृत् पङ्क्तिः । २, ८ स्वराट् पङ्क्तिः ४, ६ भुरिक्-पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३, ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब आठ ऋचावाले पच्चीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में प्रश्नोत्तरविषय का आरम्भ किया जाता है—

को अद्य नर्यो देवकाम उशन्निन्द्रस्य सख्यं जुजोष ।
को वा महेऽवसे पार्याय समिद्धे अग्नौ सुतसोम ईट्टे ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वान् (अद्य) इस समय (कः) कौन (देवकामः) विद्वानों की कामना करनेवाला (इन्द्रस्य) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त के (सख्यम्) मित्रत्व की (उशन्) कामना करता हुआ (नर्यः) मनुष्यों में श्रेष्ठ धर्म्म का (जुजोष) सेवन करता है (कः, वा) अथवा कौन (महे) बड़े (पार्याय) दुःख के पार उतारने वाले (अवसे) रक्षण आदि के लिए (समिद्धे) प्रसिद्ध (अग्नौ) अग्नि में (सुतसोमः) सोमरस को उत्पन्न करनेवाला हुआ ऐश्वर्य्य को (ईट्टे) प्राप्त होता है यह हम लोग पूछते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—जो विद्या और मित्रता की कामना करनेवाला सम्पूर्ण जगत् का प्रिय आचरण करता और सब का रक्षण करता हुआ अग्नि में होम आदि से प्रजा का हित करे वही जगत् का हित चाहनेवाला है यह उत्तर है ॥ १ ॥

अब राजकर्त्तव्यविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

को नानाम वचसा सोम्याय मनायुर्वा भवति वस्त उस्राः ।
क इन्द्रस्य युज्यं कः सखित्वं को भ्रात्रं वष्टि कवये क ऊती ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वानो (कः) कौन (वचसा) वचनसे (सोम्याय) सोमरूप ऐश्वर्य्य की सिद्धि करनेवाले के लिए (नानाम) नम्र होता है (कः, वा) अथवा कौन वचन से सोमरूप ऐश्वर्य्य की सिद्धि करनेवाले के लिए (मनायुः) विज्ञान की कामना करता हुआ (भवति) होता है (कः) कौन (उस्राः) किरणों के सदृश सब को गुणों से (वस्ते) चाहता है (कः) कौन (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य्ययुक्त के (युज्यम्) जोड़ने योग्य (सखित्वम्) मित्रपने को (कः) अथवा कौन (कवये) बुद्धिमान् के लिए (ऊती) रक्षण आदि कर्म्म से (भ्रात्रम्) भ्रातृपने की (वष्टि) कामना करता है इस का उत्तर कहो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मन, कर्म्म और वचन से नम्र होता है। जो किरणों के तुल्य प्रकाशस्वरूप व्यवहारयुक्त जो जगदीश्वर के साथ मित्रता तथा सब के साथ भ्रातृपन की रक्षा करता और जो विद्वानों के लिए हित करता है वही सम्पूर्ण इष्टफल को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

अब उत्तम मध्यम और निकृष्टों को कर्त्तव्यकर्मविषय का उपदेश अगले मन्त्रों में दिया है—

को देवानामवो अद्या वृणीते क आदित्याँ अदितिं ज्योतिरीट्टे ।
कस्याश्विनाविन्द्रो अग्निः सुतस्यांशोः पिबन्ति मनसाविवेनम् ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वानो (कः) कौन (अद्य) आज (देवानाम्) विद्वानों के (अवः) रक्षण आदि का (वृणीते) स्वीकार करता है (कः) कौन (आदित्यान्) मासों के सदृश वर्त्तमान पूर्ण विद्वानों तथा (अदितिम्) पृथिवी और (ज्योतिः) प्रकाश की (ईट्टे) अधिक इच्छा करता है (कस्य) किस (सुतस्य) उत्पन्न (अंशोः) प्राप्त होने योग्य बड़ी औषध के रस के (मनसा) विज्ञान से (अविवेनम्) दुष्ट कामनाओं से रहित जैसे हो वैसे (अश्विनौ) अन्तरिक्ष पृथिवी (इन्द्रः) सूर्य्य और (अग्निः) बिजुली वा प्रसिद्धरूप अग्निरस को (पिबन्ति) पीते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो विद्वानों के सङ्ग को करते हैं वे सूर्य आदि के सदृश सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त करा सकते हैं। और जो नहीं कामना करने योग्य वस्तु की नहीं कामना करते हैं वे कामनाओं की सिद्धि से युक्त होते हैं यह उत्तर है ॥ ३ ॥

तस्मा अग्निर्भारतः शर्म यंसज्ज्योक्पश्यात्सूर्यमुच्चरन्तम् ।
य इन्द्राय सुनवामेत्याह नरे नर्याय नृतमाय नृणाम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो (अग्निः) अग्नि के सदृश वर्त्तमान (भारतः) धारण करनेवाले का यह धारण करनेवाला (शर्म) गृह के सदृश सुख को (यंसत्) प्राप्त होवे वह (उच्चरन्तम्) ऊपर को घूमते हुए (सूर्य्यम्) सूर्यमण्डल को (ज्योक्) निरन्तर (पश्यात्) देखे (तस्मै) उस (नृणाम्) विद्या और उत्तमशीलयुक्त मनुष्यों के (नृतमाय) अत्यन्त मुखिया (नरे) नायक (नर्याय) मनुष्यों में कुशल (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य्यवान् के लिए (इति) ऐसा (आह) कहता है उस को हम लोग (सुनवाम) उत्पन्न करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो गृह में निवास के सदृश विद्या में निवास करे और ब्रह्मचर्य्य से खगोल आदि विद्या को प्राप्त होवे और मनुष्यों के लिए हित का उपदेश देवे वही उत्तम होता सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवता और सूर्य्य आदि को देखता हुआ सब सुख को देवे ॥ ४ ॥

न तं जिनन्ति बहवो न दभ्रा उर्वस्मा अदितिः शर्म यंसत् ।
प्रियः सुकृत्प्रिय इन्द्रे मनायुः प्रियः सुप्रावीः प्रियो अस्य सोमी ॥५॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (इन्द्रे) अत्यन्त ऐश्वर्य्य होने पर (प्रियः) अन्यों को प्रसन्न करने (सुकृत्) सत्य कर्म्म करने, जनों में (प्रियः) प्रीति करने और प्रियों में (मनायुः) मन के सदृश आचरण करनेवाला धर्म्मयुक्त कर्म्म से (प्रियः) आनन्द और शोक से रहित विद्वानों में (सुप्रावीः) अच्छे प्रकार उत्तम गुणों को प्राप्त विद्वानों में (प्रियः) सुन्दर और (अस्य) इस जगत् के मध्य में (सोमी) अनेक प्रकार के ऐश्वर्य्य से युक्त है (तम्) उस को शत्रु लोग (न) नहीं (जिनन्ति) जीतते हैं (बहवः) अनेक (दभ्राः) नाश करनेवाले (न) नहीं नाश करते हैं (अस्मै) इस के लिए (अदितिः) माता (उरु) बहुत (शर्म) सुख को (यंसत्) देता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो शत्रुरहित परमेश्वर की उपासना करने और सब के प्रिय साधनेवाले जन होते हैं उन को कोई भी शत्रु जीत नहीं सकता है और जैसे माता वा श्रेष्ठ गृह को प्राप्त होकर मनुष्य सुख का आचरण करता है वैसे ही सब सुखों को प्राप्त होकर निरन्तर आनन्दित होता है ॥ ५ ॥

अब राजा अमात्यादिकों के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

सुप्राव्यः प्राशुषाळेष वीरः सुष्वेः पक्तिं कृणुते केवलेन्द्रः ।
नासुष्वेरापिर्न सखा न जामिर्दुष्प्राव्योऽवहन्तेदवाचः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (सुप्राव्यः) उत्तम प्रकार रक्षा करने योग्य (प्राशुषाट्) वेगयुक्त शत्रुओं को सहनेवाला (एषः) यह (वीरः) बलिष्ठ (इन्द्रः) ऐश्वर्य्य-युक्त जन (सुष्वेः) उत्तम प्रकार उत्पन्न अन्न के (केवला) केवल (पक्तिम्) पाक को (कृणुते) करता है और जो (असुष्वेः) आलस्य भरे हुए अर्थात् नहीं उत्पन्न करनेवाले के सम्बन्ध में (आपिः) सब को प्राप्त होनेवाले के (न) सदृश वा (सखा) मित्र के (न) सदृश (जामिः) बन्धु (दुष्प्राव्यः) दुःख में रक्षा करने योग्य और (अवाचः) दुष्ट वचनवाले के (अवहन्ता) विरुद्ध काम का हनन करने-वाला (इत्) ही विरोध को (न) नहीं करता है वही सब का सुखदाता होता है ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो राजपुरुष उत्तम प्रकार संस्कार-युक्त अन्न का भोग तथा मित्र और बन्धुओं के सदृश वर्त्ताव करके दुष्टस्वभाववालों का नाश करते वे दारिद्र्य और पराजय को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

न रेवता पणिना सख्यमिन्द्रोऽसुन्वता सुतपाः सं गृणीते ।
आस्य वेदः खिदति हन्ति नग्नं वि सुष्वये पक्तये केवलो भूत् ॥७॥

पदार्थ—जो (सुतपाः) उत्तम प्रकार धर्म्मात्मा और राग अर्थात् विषयों में प्रीति और प्राणियों में द्वेष से रहित (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्यवाला राजा (रेवता) श्रेष्ठ धनवाले (पणिना) व्यवहारी वैश्य जन आदि और (असुन्वता) नहीं पुरुषार्थ करनेवाले जन के साथ (सख्यम्) मित्रपने को (न) नहीं करता और सब का सत्य न्याय का (सम्, गृणीते) अच्छे प्रकार उपदेश देता है और जो (केवलः) सहायरहित हुआ (सुष्वये) उत्तम प्रकार उत्पन्न करनेवाले (पक्तये) पाककर्त्ता के लिए (भूत) होता है और जो (नग्नम्) निर्लज्ज का (वि, हन्ति) उत्तम प्रकार नाश करता है (अस्य) इस राजा का (वेदः) द्रव्य कभी (आ, खिदति) दीनता अर्थात् नाश को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो राजा धन आदि के लोभ से धनियों के ऊपर प्रसन्न और दरिद्रों के प्रति अप्रसन्न नहीं होता है और जो दुष्टों को उत्तम प्रकार दण्ड देकर श्रेष्ठों की निरन्तर रक्षा करता है, नहीं इस का राज्य कभी खेद को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

अब पक्षपातरहित आचरण विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इन्द्रं परेऽवरे मध्यमास इन्द्रं यान्तोऽवसितास इन्द्रम् ।
इन्द्रं क्षियन्त उत युध्यमाना इन्द्रं नरो वाजयन्तो हवन्ते ॥८॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (परे) श्रेष्ठ (अवरे) निकृष्ट और (मध्यमासः) पक्षपात से रहित जन (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्यवाले को (यान्तः) प्राप्त होते हुए (इन्द्रम्) सब सुख धारण करनेवाले का (अवसितासः) निश्चय किये हुए और (इन्द्रम्) दुष्ट के मारनेवाले को (क्षियन्तः) निवास करते हुए (इन्द्रम्) सब सुख देनेवाले को (वाजयन्तः) जनाते (उत) और (युध्यमानाः) युद्ध करते हुए (नरः) नायक लोग (इन्द्रम्) दुष्टों के नाश करनेवाले की (हवन्ते) स्तुति वा ईर्ष्या करते हैं वे ही राज्यकर्म्म करने को योग्य होवें ॥ ८ ॥

भावार्थ—जिस के राज्य में श्रेष्ठ मध्यस्थ और निकृष्ट अर्थात् नीची श्रेणी में वर्त्तमान अपमानित विद्वान् और अविद्वान् लोग अपने राज्य के प्रिय, शत्रुओं के नाश करनेवाले, धन और स्वामी के भक्त हैं वहां सदा राज्य बढ़ता है ऐसा जानना चाहिए ॥ ८ ॥

इस सूक्त में प्रश्न उत्तर राजा उत्तम मध्यम निकृष्ट मनुष्यों के गुणों का वर्णन राजा के मंत्री के पक्षपात राहित्यरूप आचरण का उपदेश किया इस से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह पच्चीसवां सूक्त और चौदहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

अथ सप्तर्चस्य षड्विंशतितमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता १ पङ्क्तिः । २ भुरिक् पङ्क्तिः । ३, ७ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् ६ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सात ऋचावाले छब्बीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश करते हैं—

अहं मनुरभवं सूर्य्यश्चाहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः ।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा ॥१॥

पदार्थ— हे मनुष्यो ! जो (अहम्) मैं सृष्टि को करनेवाला ईश्वर (मनुः) विचार करने और विद्वान् के सदृश सम्पूर्ण विद्याओं का जनानेवाला (सूर्य्यः, च) और सूर्य्य के सदृश सबका प्रकाशक (अभवम्) हूं और (अहम्) मैं (कक्षीवान्) सम्पूर्ण सृष्टि की कक्षा अर्थात् परम्पराओं से युक्त (ऋषिः) मन्त्रों के अर्थ जाननेवाले के सदृश (विप्रः) बुद्धिमान् के सदृश सब पदार्थों को जाननेवाला (अस्मि) हूं और (अहम्) मैं (आर्जुनेयम्) सरल विद्वान् ने उत्पन्न किये हुए (कुत्सम्) वज्र को (नि) अत्यन्त (ऋञ्जे) सिद्ध करता हूं और (अहम्) मैं (उशना) सब के हित की कामना करता हुआ (कविः) सम्पूर्ण शास्त्र को जाननेवाला विद्वान् हूं उस (मा) मुझको तुम (पश्यत) देखो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर मन्त्रियों अर्थात् विचार करनेवालों में विचार करने और प्रकाश करनेवालों का प्रकाशक विद्वानों में विद्वान् अखण्डित न्याययुक्त सर्वज्ञ और सब का उपकारी है उस ही का विद्या धर्माचरण और योगाऽभ्यास से प्रत्यक्ष करो ॥ १ ॥

फिर ईश्वर के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अहं भूमिमददामार्य्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय ।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (अहम्) सबका धारण करने और सब का उत्पन्न करनेवाला ईश्वर मैं (आर्य्याय) धर्मयुक्त गुण कर्म्म और स्वभाववाले के लिए (भूमिम्) पृथिवी के राज्य को (अददाम्) देता हूं (अहम्) मैं (दाशुषे) देनेवाले (मर्त्याय) मनुष्य के लिए (वृष्टिम्) वर्षा को (अनयम्) प्राप्त कराऊं (अहम्) मैं (अपः) प्राणों वा पवनों को प्राप्त कराऊं जिस (मम) मेरे (वावशानाः) कामना करते हुए (देवासः) विद्वान् लोग (केतम्) बुद्धि वा जनाने के लिए (अनु, आयन्) अनुकूल प्राप्त होते हैं उस मुझको तुम सेवो ॥ २ ॥

भावार्थ - हे मनुष्यो ! जो न्यायकारी स्वभाव वाले के लिए भूमि का राज्य देता सब के सुख के लिए वृष्टि करता और सब के जीवन के लिए वायु की प्रेरणा करता है और जिस के उपदेश के द्वारा विद्वान् होते हैं उसी की निरन्तर उपासना करो ॥ २ ॥

अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नव साकं नवतीः शम्बरस्य ।
शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासमतिथिग्वं यदावम् ॥३॥

पदार्थ - हे मनुष्यो जो (मन्दसानः) आनन्दस्वरूप और आनन्द देनेवाला (अहम्) मैं जगदीश्वर (पुरः) प्रथम (शम्बरस्य) मेघ के (शततमम्) अत्यन्त असंख्यात (वेश्यम्) उत्तम वेशों अर्थात् प्रवेशों में उत्पन्न (नव, नवतीः) निन्नानवे पदार्थों को (साकम्) साथ (वि, ऐरम्) प्रेरणा करूं (सर्वताता) सब में ही मिलने योग्य जगत् में (यत्) जिस (दिवोदासम्) विज्ञान स्वरूप प्रकाश के देनेवाले (अतिथिग्वम्) अतिथियों को प्राप्त हो वा प्राप्त करावे उसकी (आवम्) रक्षा करूं उस मेरी उपासना करो और वह आनन्द युक्त होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर जगत् की उत्पत्ति के प्रथम, चेतनस्वरूप से वर्त्तमान वह सब जगत् को उत्पन्न करके सबके साथ सब का सम्बन्ध करके सब का हित करता है ॥ ३ ॥

अब राजसेनाविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

प्र सु ष विभ्यो मरुतो विरस्तु प्र श्येनः श्येनेभ्य आशुपत्वा ।
अचक्रया यत्स्वधया सुपर्णो हव्यं भरन्मनवे देवजुष्टम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (श्येनः) बाज (विः) पक्षी (श्येनेभ्यः) बाजनामक (विभ्यः) पक्षी विशेषों से (अचक्रया) अविद्यमान चक्राकारगति के साथ (आशुपत्वा) शीघ्र गिर के वेग को (भरत्) धारण करता है वैसे (मरुतः) मनुष्य जन मनुष्यों की सेना के वेगादिगुण को (प्र) विशेषकर के धारण करता है (यत्) जो (सुपर्णः) उत्तम पतनयुक्त (मनवे) मनुष्य के लिए (स्वधया) अन्न आदि से (देवजुष्टम्) विद्वानों से सेवित (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य वस्तु को (प्र) अत्यन्त (सु) उत्तम प्रकार धारण करता है (सः) यह सब स्थानों में सुखकारी (अस्तु) हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! इस सृष्टि और अन्तरिक्ष मे जैसे पक्षी आकाश मे जाकर आते हैं वैसे ही सब लोक और लोकान्तर घूमते हैं जो सृष्टि को जानता है वही मनुष्यादिकों का सुखकारी होता है ॥४॥

भरद्यदि विरतो वेविजानः पथोरुणा मनोजवा असर्जि ।
तूयं ययौ मधुना सोम्येनोत श्रवो विविदे श्येनो अत्र ॥५॥

पदार्थ हे राजजनो ! (यदि) जो (अत्र) इस संसार मे आप लोगो से (मनोजवाः) मन के सदृश वेगयुक्त सेनाओ को (असर्जि) बनाता है तो (अतः) इस स्थान से जैसे (श्येनः) हिंसा करनेवाला वेगयुक्त (विः) पक्षी (वेविजानः) कम्पता हुआ (उरुणा) बहुत (पथा) मार्ग से (तूयम्) शीघ्र (ययौ) जाता है वैसे जो राजा (मधुना) मधुर (सोम्येन) सोम अर्थात् ओषधियो मे उत्पन्न हुए रस से (श्रवः) अन्न आदि को (उत) और सेना को (भरत्) पुष्ट करे वह विजय को (विविदे) प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजजनो ! आप लोग जब तक बाजपक्षी के सदृश वेग युक्त सेना को नहीं करते हैं तबतक विजय से धन का लाभ नहीं हो सकता है ॥ ५ ॥

ऋजीपी श्येनो ददमानो अंशुं परावतः शकुनो मन्द्रं मदम् ।
सोमं भरद्दादृहाणो देवावान्दिवो अमुष्मादुत्तरादादाय ॥६॥

पदार्थ—हे राजन् ! जैसे (ऋजीपी) सीधी चालवाला (श्येनः) बढ़े हुए वेग से युक्त (शकुनः) पक्षी (परावतः) दूर देश से गिर के अपने अपेक्षित पदार्थ को (भरत्) धारण करता है वैसे ही आप (अंशुम्) विज्ञान आदि पदार्थ (मदम्) आनन्द करनेवाले (मन्द्रम्) प्रशंसा करने योग्य (सोमम्) ऐश्वर्य्य को (ददमानः) देते हुए (देवावान्) बहुत विद्वानों से युक्त (अमुष्मात्) परोक्ष (उत्तरात्) आनेवाले (दिवः) बिजुली के प्रकाश से विद्या को (आदाय) ग्रहण करके (दादृहाणः) बढ़ते हुए होवें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे पक्षी पृथिवी से उड़ के अन्तरिक्ष के मार्ग से जाकर और आकर अपने प्रयोजन को सिद्ध करते हैं वैसे ही देश देशान्तर मे विमान आदि से जाकर अपने प्रयोजन को सिद्ध करो ॥ ६ ॥

फिर प्रकारान्तर से पूर्वोक्त विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आदाय श्येनो अभरत्सोमं सहस्रं सवाँ अयुतं च साकम् ।
अत्रा पुरन्धिरजहादरातीर्मदे सोमस्य मूरा अमूरः ॥७॥१५॥

पदार्थ— जो सेना का स्वामी (श्येनः) बाज नामक पक्षी के सदृश (सहस्रम्) सहस्रसंख्यायुक्त (सोमम्) ऐश्वर्य्य वा ओषधि आदि पदार्थ (अयुतं, च) और असंख्य (सवान्) उत्पन्न हुए पदार्थों को (आदाय) ग्रहण करके सेना और राज्य को (अभरत्) धारण करे वह (अमूरः) निर्मोह जन (अत्रा) इस मे (पुरन्धिः) पुर को धारण करनेवाला (सोमस्य) ऐश्वर्य्य सम्बन्धी (मदे) आनन्द के निमित्त (मूराः) मूढ (अरातीः) शत्रुओं का (अजहात्) त्याग करता है वह इसमे (साकम्) साथ ही विजय को प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो शत्रु के बल से अधिक बल शत्रु की सामग्री से सैकड़ो गुणी अधिक सामग्री उत्तम प्रकार शिक्षायुक्त सेना और विद्वानो को अध्यक्ष करके युद्ध करें वे निश्चय विजय को प्राप्त होवें ॥ ७ ॥

इस सूक्त मे ईश्वर और राजसेना के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह छब्बीसवां सूक्त और पन्द्रहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

अथ पञ्चर्चस्य सप्तविंशतितमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ४ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् छन्दः । ५ निचृदतिजगतीछन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले सत्ताईसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र से जीव के गुणों को कहते हैं—

गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा ।
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (**अहम्**) मैं विद्वान् (**गर्भे**) गर्भ मे (**सन्**) वर्त्तमान (**एषाम्**) इन (**देवानाम्**) श्रेष्ठ पृथिवी आदि पदार्थ वा विद्वानों के (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**जनिमानि**) जन्मों को (**अनु, अवेदम्**) अनुकूल जानता हूँ जिस (**मा**) मुझको (**आयसी.**) सुवर्ण वाली वा लोहवाली (**शतम्**) सौ (**पुरः**) नगरी (**अरक्षन्**) रक्षा करती हैं (**अध**) इसके अनन्तर मा मैं (**श्येनः**) बाज पक्षी के सदृश इस शरीर से (**जवसा**) वेग के साथ (**नु**) शीघ्र (**निः**) अत्यन्त (**अदीयम्**) निकलूं ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिये कि सदा सृष्टिविद्या बोध और जन्म मरण की शरीर सम्बन्धिनी विद्या जानें जिससे सदैव निर्भयता वर्त्ते ॥ १ ॥

न घा स मामप जोषं जभारा भीमास त्वक्षसा वीर्येण ।

ईर्मा पुरन्धिरजहादरातीरुत वाताँ अतरच्छूशुवानः ॥२॥

पदार्थ—जो (**शूशुवानः**) बढने (**पुरन्धिः**) बहुत पदार्थों को धारण करने और (**ईर्मा**) प्रेरणा करनेवाला (**त्वक्षसा**) तीव्र (**वीर्य्येण**) बल से (**वातान्**) वायु के सदृश वेगयुक्त पदार्थों के समान (**अरातीः**) शत्रुओ का (**अजहात्**) त्याग करे (**उत**) और शत्रुओं के बल के (**अतरत्**) पार होवे (**सः, घा**) वही (**माम्**) मेरे (**अप, जोषम्**) विपरीत सेवन को (**न**) नहीं (**जभार**) धारण करे इस से मैं (**ईम्**) सब प्रकार सुखयुक्त (**अभि, आस**) सब ओर से होऊं ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य वायु के सदृश बलवान् होकर शत्रुओ को दबाते है वे दुःख को लांघ और बुरे कर्म को त्याग के सुखी होते है ॥ २ ॥

अव यच्छ्येनो अस्वनीदध द्योर्वि यद्यदि वात ऊहुः पुरन्धिम् ।

सृजद्यदस्मा अव ह क्षिपज्ज्यां कृशानुरस्ता मनसा भुरण्यन् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यत्**) जो (**श्येनः**) बाज पक्षी के सदृश वर्त्तमान (**अव, अस्वनीत्**) शब्द करे उपदेश देवे (**अध**) इसके अनन्तर (**यत्**) जो (**द्योः**) प्रकाश के सम्बन्ध मे (**पुरन्धिम्**) बहुत धारण करनेवाले राजा को (**सृजत्**) उत्पन्न करे (**यत्, वा**) अथवा जो शत्रुबल को कम्पावे (**अस्मै, ह**) इसी के लिए (**ज्याम्**) धनुष की तांत को (**अव, क्षिपत्**) प्रेरणा देता है (**अतः**) इस कारण (**कृशानुः**) शत्रुओ को खींचने वाला जैसे वैसे (**मनसा**) अन्तःकरण से (**भुरण्यन्**) पदार्थो का धारण वा पोषण करता हुआ (**अस्ता**) फेंकनेवाला (**वि**) विशेष करके फेंकता है (**यदि**) जो उसको अन्य जन (**ऊहुः**) पहुंचाते हैं तो वह सब स्थान मे विजयी होवे ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सत्य के उपदेश करने शत्रुओ को जीतने और प्रजा के पालन करनेवाले राजा को प्राप्त होवें वे सब प्रकार सुखी होवें ॥ ३ ॥

ऋजिप्य ईमिन्द्रावतो न भुज्युं श्येनो जभार बृहतो अधि ष्णोः ।

अन्तः पतत्पतत्र्यस्य पर्णमध यामनि प्रसितस्य तद्वेः ॥४॥

पदार्थ—जो (**ऋजिप्यः**) सरल मार्ग चलनेवाला वा श्रेष्ठ मनुष्य (**श्येनः**) बाज पक्षी के सदृश (**बृहतः**) बड़े (**ष्णोः**) प्रकाशमान पुरुषार्थ से (**इन्द्रावतः**) ऐश्वर्य्य से युक्तो का (**न**) जैसे वैसे (**भुज्युम्**) भोग करनेवाले का (**अधि, जभार**) अधिक धारण करता है (**अस्य**) इसका (**पर्णम्**) पत्र (**यामनि**) मार्ग मे और (**प्रसितस्य**) बन्धे हुए (**वेः**) पक्षी का जो (**पतत्रि**) गिरनेवाला पत्र (**अन्तः**) मध्य मे (**पतत्**) गिरता है (**तत्**) उसको (**जभार**) धारण करता है वह (**अध**) इसके अनन्तर (**ईम्**) सब प्रकार से आनन्द को प्राप्त होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे बाज पक्षी अपने पुरुषार्थ से बहुत भोग को प्राप्त होता है और शीघ्र चलता है वैसे ही पुरुषार्थ करनेवाले जन बहुत सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तमापिप्यानं मघवा शुक्रमन्धः ।

अध्वर्युभिः प्रयतं मध्वो अग्रमिन्द्रो मदाय प्रति धत्पिबध्यै

शूरो मदाय प्रति धत्पिबध्यै ॥५॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (**मघवा**) बहुत श्रेष्ठ धनयुक्त (**गोभिः**) गौओं से (**अक्तम्**) सम्बद्ध (**आपिप्यानम्**) बढे हुए (**श्वेतम्**) श्वेत वर्ण वाले (**कलशम्**) घड़े (**शुक्रम्**) जल और (**अन्धः**) अन्न को (**पिबध्यै**) पीने के लिये (**मदाय**) आनन्द के लिए (**प्रति, धत्**) धारण करता है (**अध**) और जो (**शूरः**) भय से रहित (**इन्द्रः**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाला (**मदाय**) आनन्द के लिए (**अध्वर्युभिः**) अपने नहीं नाश होने की इच्छा करने वालो के साथ (**मध्वः**) मधुर आदि गुणो के (**अग्रम्**) प्रथम (**प्रयतम्**) प्रयत्न से सिद्ध करने योग्य आनन्द के लिए (**पिबध्यै**) पीने को (**प्रति, धत्**) धारण करता है वह नहीं नष्ट होनेवाले बल को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो नियमित आहार और विहार करने और नहीं हिंसा करनेवाले शूरवीर होवें वे सदा विजय को प्राप्त होवें ॥ ५ ॥

इस सूक्त मे जीव के गुणो के वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह सत्ताईसवां सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्याष्टाविंशतितमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रासोमौ देवते । १ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ विराट्त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २ भुरिक् पङ्क्तिः । ५ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

अब पांच ऋचा वाले अट्ठाईसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से इन्द्रपदवाच्य सूर्य्यदृष्टान्त से राजप्रजागुणों को उपदेश करते हैं—

त्वा युजा तव तत्सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे सस्रुतस्कः ।

अहन्नहिमरिणात्सप्त सिन्धूनपावृणोदपिहितेव खानि ॥१॥

पदार्थ—हे (**सोम**) ऐश्वर्य्य से युक्त (**तव**) आपकी (**सख्ये**) मित्रता के लिए जैसे (**इन्द्रः**) सूर्य्य के सदृश राजा (**मनवे**) मनुष्य के लिए (**सस्रुतः**) चलनेवालो को (**कः**) करता (**अहिम्**) मेघ का (**अहन्**) नाश करता (**सप्त**) सात (**सिन्धून्**) नदियो को (**अरिणात्**) प्रेरित करता और (**खानि**) इन्द्रियां (**अपिहितेव**) घिरी हुई सी (**अपः**) जलो को (**अप, अवृणोत्**) घेरती हैं वैसे (**तत्**) वह (**त्वा**) आपको (**युजा**) युक्त पुरुष के साथ कर्म करने योग्य हो सकता है ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य सब के सुख के लिए वर्षा करके सबको आनन्द देता है वैसे ही विद्वानों की मित्रता सब को आनन्द देनेवाली है यह जानना चाहिए ॥ १ ॥

त्वा युजा नि खिदत्सूर्य्यस्येन्द्रश्चक्रं सहसा सद्य इन्दो ।

अधि ष्णुना बृहता वर्त्तमानं महो द्रुहो अप विश्वायु धायि ॥२॥

पदार्थ—हे (**इन्दो**) ऐश्वर्य्यवान् (**त्वा**) आपको (**युजा**) युक्तजन से (**द्रुहः**) द्वेष करनेवाले का सम्बन्ध (**अप, धायि**) नहीं धारण किया जाता और (**महः**) बड़ी (**वर्त्तमानम्**) वर्त्तमान (**विश्वायु**) सम्पूर्ण अवस्था (**अधि**) अधिक धारण की जाती है (**बृहता**) बड़े (**ष्णुना**) व्याप्त (**सहसा**) बल से (**सद्यः**) शीघ्र (**सूर्य्यस्य**) सूर्य्य की (**इन्द्रः**) बिजुली के सदृश (**चक्रम्**) चक्र को जो (**नि, खिदत्**) दीनता को प्राप्त होता है वह अपेक्षित सुखको प्राप्त होवे ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् राजा से पालित विद्या धर्म्म और ब्रह्मचर्य्य आदि से युक्त अधिकाल पर्य्यन्त जीवने वाले होवें वे शत्रुओ के जीतने वाले होते हैं ॥ २ ॥

अहन्निन्द्रो अदहदग्निरिन्दो पुरा दस्यून्मध्यन्दिनादभीके ।

दुर्गे दुरोणे क्रत्वा न यातां पुरू सहस्रा शर्वा नि बर्हीत् ॥३॥

पदार्थ—हे (**इन्दो**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त प्रजाजन जो (**इन्द्रः**) सूर्य्य के सदृश राजा (**मध्यन्दिनात्**) मध्य दिन मे वर्त्तमान ताप से (**दस्यून्**) बड़े साहस करने वालो का (**अहन्**) नाश करता है (**अग्निः**) अग्नि के सदृश (**अभीके**) समीप मे दुष्टो को (**अदहत्**) जलाता है और (**पुरा**) पहिले से (**दुर्गे**) राजगढ़ (**दुरोणे**) गृह मे (**क्रत्वा**) बुद्धि वा कर्म्म के (**न**) सदृश (**पुरू**) बहुत (**शर्वा**) सम्पूर्ण हिंसको और (**सहस्रा**) हजारो का (**नि, बर्हीत्**) नाश करे वह और आप इस प्रकार से सुख को (**याताम्**) प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मध्याह्न मे सूर्य्य सब को तपाता है वैसे ही न्यायकारी राजा चोरादिको को दुःख देता है और अग्नि के सदृश भस्मीभूत करके सम्पूर्ण हिंसा दूर करे ॥ ३ ॥

विश्वस्मात्सीमधमाँ इन्द्र दस्यून्विशो दासीरकृणोरप्रशस्ताः ।

अबाधेथाममृणतं नि शत्रूनविन्देथामपचितिं वधत्रैः ॥४॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) दुष्टो के नाश करनेवाले आप (**सीम्**) सूर्य्य के सदृश (**दासीः**) देने वाली (**विशः**) प्रजाओ का (**अप्रशस्ताः**) श्रेष्ठ सुख से रहित करते हुए (**अधमान्**) पाप के आचरण करनेवाले (**दस्यून्**) दुष्टो को (**विश्वस्मात्**) सबसे पीडायुक्त (**अकृणोः**) करें । हे राजा और प्रजाजनो ! मिलकर आप दोनों (**वधत्रैः**) वधो से (**शत्रून्**) शत्रुओ को (**अबाधेथाम्**) बाधा देओ और प्रजा को (**अमृणतम्**) सुख देओ (**अपचितिम्**) सत्कार को (**नि**) अत्यन्त (**अविन्देथाम्**) प्राप्त हूजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे राजा आदि राजजनो ! जो साहस कर्म्म करने और जो दुष्ट उपदेश से प्रजा को दोषयुक्त करनेवाले नीच जन होवें उन को निरन्तर बाधा देओ और श्रेष्ठो का सत्कार करो । ऐसा करने पर आप लोगों का बड़ा सत्कार होगा यह जानना चाहिए ॥ ४ ॥

फिर राजप्रजा के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

एवा सत्यं मघवाना युवं तदिन्द्रश्च सोमोर्वमश्व्यं गोः ।

आदर्दृतमपिहितान्यश्ना रिरिचथुः क्षाश्चित्ततृदाना ॥५॥१७॥

पदार्थ—हे (**सोम**) उत्तम गुणों से युक्त (**मघवाना**) बहुत धनों से युक्त राजा और प्रजाजनो (**युवम्**) आप दोनों जो (**सत्यम्**) सत्य (**गोः**) पृथिवी का (**ऊर्वम्**) ढांपने वाला (**अश्व्यम्**) घोड़ों में उत्पन्न हुए को प्राप्त होकर शत्रुओं

को (आ, अवर्तयत्) निरन्तर नाश करो (यत्) उसको (इन्द्र) राजा ग्रहण करके शत्रुओं का नाश करें और जिन (अपिहितानि) घिरे हुए (अर्णा) भोग करने योग्य पदार्थों को (रिरिचथुः) छोड़ो (क्षाः, च) पृथिवियों को (चित्) भी छोड़ो उन को प्राप्त होकर दुष्ट सम्बन्धी (सतुवाना) दुःख के नाश करनेवाले होवें इस प्रकार से (एव) ऐसे ही राजा भी होवे ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो राजा मन्त्री सेना और प्रजाजन परस्पर में स्नेह करके राज्य शिक्षा करें तो इन का कोई भी शत्रु नहीं उपस्थित हो ॥ ५ ॥

इस सूक्त में राजा और प्रजादि के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अट्ठाईसवां सूक्त और सत्रहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्यैकोनत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रः देवता । १ विराट् त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

अब पांच ऋचा वाले उनतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से राजविषय को कहते हैं—

आ नः स्तुत उप वाजेभिरूती इन्द्र याहि हरिभिर्मन्दसानः ।
तिरश्चिदर्यः सवना पुरूण्याङ्गूषेभिर्गृणानः सत्यराधाः ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) राजन् (स्तुतः) प्रशंसित (मन्दसानः) आनन्द करते और (आङ्गूषेभिः) स्तुति करनेवालों से (गृणानः) स्तुति को प्राप्त होते हुए (सत्यराधाः) सत्य में धनयुक्त (अर्यः) स्वामी आप (पुरूणि) बहुत (सवना) ऐश्वर्य्यों को प्राप्त (तिरः) तिरछे (चित्) भी होते हुए (ऊती) रक्षण आदि के लिए (वाजेभिः) अन्न सेना आदि के और (हरिभिः) उत्तम वीर पुरुषों के साथ (नः) हम लोगों को (उप, आ, याहि) प्राप्त हूजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो यहां प्रशंसित गुण कर्म्म और स्वभावयुक्त आपत्काल का निवारण करनेवाला प्रजा के रक्षण में तत्पर श्रेष्ठ सहायवाली उत्तम सेना से युक्त न्यायकारी धर्म्म से इकट्ठे किये हुए धनवाला और अभिमान से रहित होवे उसी को राजा मानो ॥ १ ॥

आ हि ष्मा याति नर्यश्चिकित्वान्हूयमानः सोतृभिरुप यज्ञम् ।
स्वश्वो यो अभीरुर्मन्यमानः सुष्वाणेभिर्मदति सं ह वीरैः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो (अभीरुः) भयरहित (मन्यमानः) सत्य का अभिमान रखनेवाला (स्वश्वः) श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त (चिकित्वान्) ज्ञानवान् (हूयमानः) स्तुति किया गया (नर्यः) मनुष्यों में श्रेष्ठ (हि) जिससे (सोतृभिः) सत्य आचरण करनेवालों के साथ (यज्ञम्) राजा और प्रजा के व्यवहार को (उप, आ, याति, स्म) समीप आता ही है वह (सुष्वाणेभिः) उत्तम प्रकार शब्द करते हुए (वीरैः) शूरता आदि गुणों से युक्त पुरुषों के साथ (सम्, मदति, ह) आनन्द करता ही है ॥ २ ॥

भावार्थ—जैसे चार वेदों का जाननेवाला वेद विद्यानिपुण विद्वानों के साथ यज्ञ को प्राप्त होकर स्तुति किया जाता है वैसे ही श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त मन्त्री और भृत्यों के साथ राजा स्तुति किया जाता है ॥ २ ॥

श्रावयेदस्य कर्णा वाजयध्यै जुष्टामनु प्र दिशं मन्दयध्यै ।
उद्वावृषाणो राधसे तुविष्मान्करन्न इन्द्रः सुतीर्थाभयं च ॥३॥

पदार्थ—हे सत्य के उपदेश करनेवाले आचार्य्य और उपदेशक आप (अस्य) इस के (कर्णा) कानों को (वाजयध्यै) जनाने के लिये (जुष्टाम्) श्रेष्ठ राजाओं से सेवन की गई नीति को (अनु, श्रावय) अनुकूल सुनाइये जिस से यह (दिशम्) दिशा को (मन्दयध्यै) प्रसन्न करने को (उद्वावृषाणः) अतिबलिष्ठ (तुविष्मान्) प्रशंसित बलयुक्त (इन्द्रः) सत्य न्याय को धारण करनेवाला (राधसे) धन के लिए (नः) हमारे (सुतीर्था) सुन्दर, दुःखों को दूर करनेवाले आचार्य्य ब्रह्मचर्य्य और सत्य भाषण आदि जिन में उनको और (अभयम्, च) भय रहित को (इत्) ही (प्र, करत्) करे ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिस राजा के सत्य और न्याय के उपदेश करनेवाले धार्मिक विद्वान् होवें वह राजा विद्या और विनय आदि उत्तम गुणों के सहित होता हुआ सब को भयरहित करके निरन्तर प्रसन्न कर सके ॥ ३ ॥

अच्छा यो गन्ता नाधमानमूती इत्था विप्रं हवमानं गृणन्तम् ।
उप त्मनि दधानो धुर्याशून्त्सहस्राणि शतानि वज्रबाहुः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो (गन्ता) चलनेवाला (ऊती) रक्षण आदि के लिये (इत्था) इस प्रकार से (नाधमानम्) ऐश्वर्य्यवान् प्रशंसित (हवमानम्) ईर्ष्या करनेवाले (गृणन्तम्) स्तुति करते हुए (विप्रम्) बुद्धिमान् को (त्मनि) आत्मा में (उप, दधानः) धारण करता हुआ (सहस्राणि) सहस्रों और (शतानि) सैकड़ों (आशून्) शीघ्र चलनेवाले घोड़ों को (धुरि) रथ के धुर में धारण करता हुआ (अच्छ) उत्तम प्रकार चलनेवाला (वज्रबाहुः) शस्त्र हाथों में लिए राजा होवे वह हम लोगों को भयरहित करने योग्य हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो राजा श्रेष्ठ मनुष्यों को ग्रहण करे वही राज्य बढ़ाने को योग्य होवे ॥ ४ ॥

अब प्रजागुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्वोतासो मघवन्निन्द्र विप्रा वयं ते स्याम सूरयो गृणन्तः ।
भेजानासो बृहद्दिवस्य राय आकाय्यस्य दावने पुरुक्षोः ॥५॥१८

पदार्थ—हे (मघवन्) श्रेष्ठ धनयुक्त (इन्द्र) उत्तम गुणों के धारण करने वाले राजन् (त्वोतासः) आप से रक्षा और वृद्धि को प्राप्त (भेजानासः) सेवन और (गृणन्तः) स्तुति करते हुए (विप्राः) बुद्धिमान् (सूरयः) प्रकाशित विद्या वाले (वयम्) हम लोग (बृहद्दिवस्य) प्रकाशमान (आकाय्यस्य) सब प्रकार शरीर में उत्पन्न (पुरुक्षोः) बहुत अन्नादि से युक्त (ते) आप के (रायः) धन के और (दावने) देनेवाले के लिए स्थिर (स्याम) होवें ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो आप हम लोगों की सब प्रकार से रक्षा करें तो हम लोग अति उन्नतियुक्त होवें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में राजा और प्रजा के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह उनतीसवां सूक्त और अठारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ चतुर्विंशत्यृचस्य त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । १-८, १२-२४ इन्द्रः । ९-११ । इन्द्र उषाश्च देवते । १, ३, ५, ६, ११, १२, १६, १८, १९, २३ निचृद्गायत्री । २, १०, ७, १३-१५, १७, २१, २२, गायत्री । ४, ६ विराड् गायत्री । २० पिपीलिकामध्या गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । ८, २४ विराडनुष्टुप्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब चौबीस ऋचावाले तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से सूर्यदृष्टान्त से राजविषय को कहते हैं—

नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन् ।
नकिरेवा यथा त्वम् ॥१॥

पदार्थ—हे (वृत्रहन्) मेघ को नाश करनेवाले सूर्य के सदृश वर्त्तमान (इन्द्र) राजन् (यथा) जैसे (त्वम्) आप हो वैसे ही (त्वत्) आप से (उत्तरः) पीछे (नकिः) नहीं (अस्ति) है (न) नहीं (ज्यायान्) बड़ा है और (नकि, एव) न उत्तम ही है ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सबसे श्रेष्ठ होवे उसी को राजा करो ॥ १ ॥

सत्रा ते अनु कृष्टयो विश्वा चक्रेव वावृतुः ।
सत्रा महाँ असि श्रुतः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे राजन् जो आप (सत्रा) सत्य आचरण के (महान्) बड़े (श्रुतः) सम्पूर्ण शास्त्र के श्रवण से यशयुक्त (असि) हो तो (ते) आप के सम्बन्ध में (सत्रा) सत्य आचरण से (कृष्टयः) मनुष्य (विश्वा) सम्पूर्ण (चक्रेव) चक्रों के सदृश अर्थात् जैसे गाड़ी में पहिया वैसे (अनु, वावृतुः) वर्त्ताव करें ॥ २ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप न्यायकारी होवें तो सम्पूर्ण प्रजा आपके अनुकूल वर्त्ताव करे ॥ २ ॥

विश्वे चनेदना त्वा देवास इन्द्र युयुधुः ।
यदहा नक्तमातिरः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) शत्रुओं के विदीर्ण करनेवाले (यत्) जो (विश्वे इत्) सभी (देवासः) विद्वान् जन (अना) प्रतिज्ञास्वरूप (अहा) दिनों, और (नक्तम्) रात्रि को (त्वा) आपका आश्रय लेकर शत्रुओं के साथ (युयुधुः) युद्ध करते हैं उनके (चन) भी साथ आप शत्रुओं का (आ, अतिरः) नाश करिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—राजा को चाहिए कि भृत्यजन उत्तम शिक्षित और श्रेष्ठ रक्खें जिस से दिन रात्रि शत्रु लोग छिपे हुए रहें ॥ ३ ॥

यत्रोत बाधितेभ्यश्चक्रं कुत्साय युध्यते ।
मुषाय इन्द्र सूर्यम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान न्यायकारिन् (यत्र) जिस राज्य में (मुषायः) चोरी करनेवाले के सदृश आचरण करनेवाले (बाधितेभ्यः) पीड़ायुक्त जनों से (कुत्साय) शस्त्र और अस्त्र से युक्तजन और (युध्यते) युद्ध करते हुए जन के लिए (सूर्यम्) सूर्य के सदृश वर्त्तमान न्यायरूपी (चक्रम्) चक्र को वर्त्तता है वहां (उत) भी सुख नहीं बढ़ता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो राजा प्रजा की पीड़ा को नहीं वारण करे और सूर्य के सदृश श्रेष्ठ गुणों में प्रकाशमान न हो और प्रजाओं से कर ग्रहण करे वह राजा नहीं होवे ॥ ४ ॥

यत्र देवाँ ऋघायतो विश्वाँ अयुध्य एक इत् । त्वमिन्द्र वनूँरहन् ॥५॥१९॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) तेजस्वी राजन् (एकः) एक (इत्) ही (त्वम्) आप (यत्र) जहाँ (विश्वान्) सम्पूर्ण (देवान्) विद्वानों को (ऋघायतः) बाधते हुए (वनून्) अधर्म्म के सेवन करनेवालो का (अहन्) नाश करें वहां शत्रुओ से (अयुध्यः) नहीं युद्ध करने योग्य अर्थात् शत्रुजन आप से युद्ध न कर सकें ऐसे होवें ॥ ५ ॥

भावार्थ—जब जब दुष्टजन श्रेष्ठो को बाधा देवें तब तब आप सम्पूर्ण अधर्म्मियो को अत्यन्त दण्ड दीजिए ॥ ५ ॥

यत्रोत मर्त्याय कमरिणा इन्द्र सूर्यम् ।

प्रावः शचीभिरेतशम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सुख के देनेवाले ! आप (सूर्यम्) सूर्य्य को वायु के सदृश (शचीभिः) बुद्धियो वा कर्म्मों से (एतशम्) विद्या को प्राप्त घोड़े के सदृश बलवान् की (प्र, आवः,) रक्षा करें (यत्र) जिस राज्य में (मर्त्याय) मनुष्य के लिए (कम्) सुख (अरिणाः) देवें वहाँ (उत) भी दुष्टो को दुःख देवें ॥ ६ ॥

भावार्थ—जहाँ राजा श्रेष्ठो का सत्कार और दुष्टों को दण्ड देकर विद्या और विनय को बढ़ाता है वहाँ सम्पूर्ण प्रजा स्वस्थ होती हैं ॥ ६ ॥

किमादुतासि वृत्रहन्मघवन्मन्युमत्तमः । अत्राह दानुमातिरः ॥७॥

पदार्थ—हे (मघवन्) श्रेष्ठ धनयुक्त (वृत्रहन्) शत्रुओ के नाश करनेवाले ! (मन्युमत्तम.) प्रशसित क्रोधयुक्त आप सूर्य्य मेघ को जैसे वैसे (दानुम्) देनेवाले का (आ, अतिरः) नाश करते हैं (अत्र, अह, आत् किम् उत) अहह ! इस विषय मे तो क्या अनन्तर आप राजा भी (असि) हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो राजा दुष्टो के ऊपर अति क्रोध करने और श्रेष्ठो मे अत्यन्त शान्ति रखनेवाला होता है वही राज्य बढ़ा सकता है ॥ ७ ॥

एतद् घेदुत वीर्यमिन्द्र चकर्थ पौंस्यम् ।

स्त्रियं यद्दुर्हणायुवं वधीर्दुहितरं दिवः ॥८॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दोषो के नाश करनेवाले ! जैसे सूर्य्य (दुर्हणायुवम्) दुःख से नाश करने योग्य की कामना करनेवाले (दिवः) प्रकाश की (दुहितरम्) कन्या के सदृश वर्त्तमान प्रातर्वेला का नाश करता है वैसे (एतत्) इस कर्म और (पौंस्यम्) पुरुषो के लिए हित (वीर्य्यम्) पराक्रम को (चकर्थ) करते हो और आप (घ) शत्रुओ ही का (वधीः, इत्) नाश करते ही हो (यत्) जो (स्त्रियम्) स्त्री (उत) और भृत्य को भी पालिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य रात्रि का नाश और दिन की उत्पत्ति करके प्राणिणो को सुख देता है वैसे ही दुष्ट आचरणो का नाश और श्रेष्ठो का पालन कर और विद्या को उत्पन्न करके सम्पूर्ण प्रजाओ को सुख देवे ॥ ८ ॥

दिवश्चिद् घा दुहितरं महान् महीयमानाम् ।

उषासमिन्द्र सं पिणक् ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) तेजस्वि राजन् ! जैसे (महान्) महानुभाव कोई (दिवः, दुहितरम्) कन्या के सदृश वर्त्तमान सूर्य्य की (महीयमानाम्) विस्तीर्ण (उषासम्) प्रातर्वेला के (चित्) सदृश (सम्, पिणक्) पीसता है वैसे (घ) ही अविद्या और दुष्टो का निवारण करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो राजपुरुष और राजा अन्यायरूप अन्धकार को निवृत्त करके विद्या और न्यायरूप सूर्य्य को उत्पन्न करते वे सूर्य्य के सदृश प्रतापी होते है ॥ ९ ॥

अपोषा अनसः सरत्सम्पिष्टादह बिभ्युषी ।

नि यत्सीं शिश्नथद् वृषा ॥ १० ॥ २० ॥

पदार्थ—जो (वृषा) बलिष्ठ राजा जैसे (बिभ्युषी) भय देनेवाली (उषा) प्रातर्वेला (अनसः) गाड़ी के अग्रभाग के सदृश आगे चलनेवाली (सम्पिष्टात्) चूर्णित हुए (अह) ही अन्धकार मे (अप, सरत्) आगे चलती है (यत्) जो (सीम्) सब प्रकार (नि, शिश्नथत्) शिथिल करती है वैसा आचरण करे वह सूर्य्य के सदृश तेजस्वी होवे ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे रथ का अग्रभाग आगे होता है वैसे ही सूर्य्य के आगे प्रातःकाल चलता है और जैसे सूर्य्य अन्धकार का नाश करता है वैसे राजा अन्याय के आचार का नाश करे ॥ १० ॥

अब सूर्य्य विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

एतदस्या अनः शये सुसम्पिष्टं विपाश्या । ससार सीं परावतः ॥११॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (सीम्) सूर्य्य (अस्याः) इस प्रातःकाल का (एतत्) यह (सुसम्पिष्टम्) उत्तम प्रकार एक स्थान मे पीसा चूर्ण हो जिस मे उस अन्धकार को (अनः) गाड़ी के सदृश (विपाशि) बन्धनरहित मार्ग में (परावतः) दूर देश से (आ, ससार) सब प्रकार चलता है, जिसमें मैं (शये) शयन करूं वैसे इस को आप जानिए ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे श्रेष्ठ वाहन शीघ्र दूर जाते हैं वैसे ही प्रातःकाल दूर जाता है ऐसा जानना चाहिए ॥ ११ ॥

अब मेघसम्बन्धि नदीसंतरण विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

उत सिन्धुं विबाल्यं वितस्थानामधि क्षमि ।

परि ष्ठा इन्द्र मायया ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त ! आप (मायया) बुद्धि से (अधि, क्षमि) पृथिवी के बीच (वितस्थानाम्) विशेष करके स्थित नदी (उत) और (विबाल्यम्) बालपन से रहित अर्थात् छोटे नहीं, बड़े (सिन्धुम्) नद को (परि) सब ओर से (स्थाः) स्थित होते हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! समुद्र नदी के पार होने के लिए बुद्धि से नौका आदि को रच के लक्ष्मीवान् होओ ॥ १२ ॥

अब राजसम्बन्ध से मनुष्य विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

उत शुष्णस्य धृष्णुया प्र मृक्षो अभि वेदनम् ।

पुरो यदस्य संपिणक् ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! (यत्) जिससे आप (शुष्णस्य) बलयुक्त सेना की (धृष्णुया) ढिठाई से (अस्य) इस शत्रु के (पुरः) नगरो को (प्र, मृक्षः) अच्छे प्रकार सींचो अतएव शत्रुओ को (सम्पिणक्) चूर्णित करो (उत) और भी (अभि, वेदनम्) विज्ञान को प्राप्त कराओ ॥ १३ ॥

भावार्थ—वही राजा सम्मत होवे कि जो सेना को बढ़ा और अन्याय के आचरणो को दूर करके विन कहे को अच्छा जाननेवाला होवे ॥ १३ ॥

फिर सूर्यदृष्टान्त से राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि । अवाहन्निन्द्र शम्बरम् ॥१४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) तेजस्वि राजन् आप जैसे सूर्य्य (बृहतः) बड़े (पर्वतात्) पर्वत मे (अधि) ऊपर (शम्बरम्) सुख प्राप्त होता है जिससे उस मेघ को (अव, अहन्) नाश करता और (उत) भी प्रजाओ को पालता है वैसे ही शत्रुओ का नाश करके (कौलितरम्) अत्यन्त कुलीन (दासम्) सेवक का पालन करो ॥ १४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य मेघ से जल को पृथिवी मे गिरा के सब को जिलाता है वैसे ही पर्वत के ऊपर स्थित भी डाकुओ को नीचे गिरा के प्रजाओं का पालन करो ॥ १४ ॥

उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शताऽवधीः ।

अधि पञ्च प्रधीँरिव ॥ १५ ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! आप (प्रधीँरिव) चक्र मे स्थित पैनी कीलो के सदृश वर्त्तमान ससार मे कण्टक दुष्टो का (पञ्च) पाच (शता) सौ वा (सहस्राणि) सहस्रो दुष्टो का (अधि, अवधीः) नाश करो (उत) और (वर्चिनः) बहुत पढ़े हुए (दासस्य) सेवक के जनो को पालिए ॥ १५ ॥

भावार्थ—वह राजा वा राजमान राजपुरुषो से यदि दुष्टो का निवारण करके श्रेष्ठो का सत्कार करे तो सम्पूर्ण जगत् उसका सेवक होवे ॥ १५ ॥

उत त्यं पुत्रमग्रुवः परावृक्तं शतक्रतुः । उक्थेष्विन्द्र आभजत् ॥१६॥

पदार्थ—जो (शतक्रतुः) असंख्यबुद्धियो वा (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्यवान् राजा (उक्थेषु) प्रशंसा करने योग्य शास्त्रो मे (त्यम्) उस (परावृक्तम्) नहीं नष्ट हुए पराक्रमवाले (पुत्रम्) पुत्र को (अग्रुवः) अग्रगामियो के सदृश (आ, अभजत्) सब प्रकार सेवन करता है (उत) और शिक्षा भी देवे वह सिद्धकार्य्य होवे ॥ १६ ॥

भावार्थ—जो राजा माता पुत्रो का जैसे वैसे प्रजाओ का पालन करे उसको प्रजाजन पिता के समान मानें ॥ १६ ॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

उत त्या तुर्वशायदू अस्नातारा शचीपतिः ।

इन्द्रो विद्वाँ अपारयत् ॥ १७ ॥

पदार्थ—(शचीपतिः) प्रजा वा वाणी का पति (विद्वान्) विद्वान् (इन्द्रः) और राजा जिन (तुर्वशायदू) शीघ्र वश करने और यत्न करनेवाले मनुष्य (उत) और (अस्नातारा) स्नान आदि कर्म्मों से रहित मनुष्यों को (अपारयत्) दुःख से पार उतारे (त्या) वे दोनो सुखी होवें ॥१७ ॥

भावार्थ—जिन मनुष्यों को यथार्थवक्ता विद्वान् उत्तम शिक्षा देवें वे दुःख के पार जाकर सुखी होते हैं ॥ १७ ॥

उत त्या सद्य आर्य्या सरयोरिन्द्र पारतः । अर्णाचित्ररथावधीः ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) राजन् ! आप (सद्यः) शीघ्र (त्या) उन दोनों (सरयोः) चलते हुओं के (पारतः) पार से वर्त्तमान (अर्णाचित्ररथा) पहुंचाने

करते आश्चर्य्यकारक रथों का (अवर्तीः) नाश करो (उत) और (आर्य्यौ) उत्तम गुण कर्म्म और स्वभाववालों का पालन करो ॥ १८ ॥

भावार्थ—हे राजन् आप निरन्तर दुष्टों का ताड़न और श्रेष्ठों का सत्कार करो ॥ १८ ॥

अब राज विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अनु द्वा जहिता नयोऽन्धं श्रोणं च वृत्रहन् । न तत्ते सुम्नमष्टवे ॥१९॥

पदार्थ—हे (वृत्रहन्) शत्रुओं के नाश करनेवाले ! जो (नयः) नायक अर्थात् अग्रणी होते हुए आप (अन्धम्) नेत्रों के विज्ञान से विकल (श्रोणं, च) और अज्ञ अर्थात् पङ्गु (द्वा) दोनों (जहिता) छोड़नेवालों का (अनु) पश्चात् पालन करें तो (ते) आप के (तत्) उस (सुम्नम्) सुख को (अष्टवे) व्याप्त होने को कोई भी शत्रु (न) नहीं समर्थ होवे ॥ १९ ॥

भावार्थ—जो राजा अनाथ अन्धादिकों का निरन्तर पालन करे उसका राज्य और सुख कभी नहीं नष्ट होवे ॥ १९ ॥

फिर सूर्यदृष्टान्त से राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत् । दिवोदासाय दाशुषे ॥२०॥२२

पदार्थ—जो (इन्द्रः) तेजस्वी सूर्य्य के सदृश (दिवोदासाय) प्रकाश के देनेवाले और (दाशुषे) देनेवाले के लिए (अश्मन्मयीनाम्) मेघों के समूहों के सदृश पाषाणों से बने हुए (पुराम्) नगरों के (शतम्) सैकड़े को (वि, आस्यत्) काटे वही विजयी होने के योग्य होवे ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जो आप बहुत बढ़े हुए मेघों को जैसे सूर्य्य वैसे अनेक शत्रुओं के नगरों को जीत सकें तो राज्यलक्ष्मी और यश को प्राप्त होने के योग्य होवें ॥ २० ॥

अस्वापयद्दभीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः ।

दासानामिन्द्रो मायया ॥ २१ ॥

पदार्थ—जो (इन्द्रः) राजा (मायया) बुद्धि से (दासानाम्) सेवकों और शत्रुओं के (हथैः) हननसाधनों से (दभीतये) हिंसन करने के लिए (सहस्रा) असंख्य (त्रिंशतम्) वा तीस को (अस्वापयत्) सुलावे वही जीतनेवाला होवे ॥२१॥

भावार्थ—जो सेनापति आदि बुद्धि से शत्रुओं का नाश करें वे सदा ही सुखी होवें ॥ २१ ॥

स घेदुतासि वृत्रहन्त्समान इन्द्र गोपतिः ।

यस्ता विश्वानि चिच्युषे ॥ २२ ॥

पदार्थ—हे (वृत्रहन्) शत्रुओं के नाश करनेवाले ! (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के कर्त्ता (यः) जो (गोपतिः) पृथिवी के स्वामी (समानः) सूर्य्य के सदृश आप (ता) उन (विश्वानि) सब की (चिच्युषे) वृद्धि करते (घ) ही हो (स, इत्) वही बलवान् (उत) और सुखी (असि) होते हो ॥ २२ ॥

भावार्थ—जो राजा सूर्य्य के सदृश न्याय के प्रकाश से रागद्वेषवाला होता हुआ सम्पूर्ण राज्य का पालनकर्त्ता है वही गणना करने योग्य होता है ॥ २२ ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

उत नूनं यदिन्द्रियं करिष्या इन्द्र पौंस्यम् ।

अद्या नकिष्टदा मिनत् ॥ २३ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सब के रक्षा करनेवाले आप (अद्य) आज (यत्) जो (नूनम्) निश्चित (इन्द्रियम्) इन्द्रिय को (उत) और (पौंस्यम्) पुरुषों में श्रेष्ठ कर्म्म को (करिष्याः) करें (तत्) उसकी कोई भी (नकिः) नहीं (आ, मिनत्) हिंसा करे ॥ २३ ॥

भावार्थ—जो राजा वर्त्तमान समय में बल को बढ़ा सके वह शत्रुओं से अजित हुआ निश्चय विजय को प्राप्त होवे ॥ २३ ॥

अब विद्वानों के उपदेशविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वामंवामं त आदुरे देवो ददात्वर्य्यमा ।

वामं पूषा वामं भगो वामं देवः करूळती ॥ २४ ॥ २३ ॥

पदार्थ—(आदुरे) शत्रुओं के नाश करनेवाले राजन् ! (करूळती) जिसके कारीगरों की कामना करनेवाला विद्यमान वह (देवः) विजय का लेनेवाला (ते) आप के लिए (वामं वामम्) प्रशंसा करने योग्य प्रशंसा करने योग्य को (ददातु) देवे और जिसके कारीगरों की कामना करनेवाला विद्यमान वह (अर्य्यमा) न्यायाधीश (वामम्) प्राप्त होने योग्य पदार्थ दे और जिसके कारीगरों की कामना करनेवाला विद्यमान वह (पूषा) पुष्टि करनेवाला (वामम्) सेवन करने योग्य धन को दे और जिसके कारीगरों की कामना करनेवाला विद्यमान वह (भगः) ऐश्वर्य्य से युक्त (देवः) प्रकाशमान (वामम्) श्रेष्ठ विज्ञान को देवे उन सब की आप सदा सेवा करो ॥२४॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो लोग सत्य उपदेश सत्य न्याय यथार्थ विद्या और क्रिया की आप को शिक्षा देवें उन सब का आप निरन्तर सत्कार करो ॥ २४ ॥

इस सूक्त में सूर्य्य, मेघ, मनुष्य, विद्वान् और राजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तीसवां सूक्त और तेईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ पञ्चदशर्चस्यैकत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
१, ७-१०, १४ गायत्री । २, ६, १२, १३, १५ निचृद्गायत्री ।
३ निपादृगायत्री । ४, ५ विराड् गायत्री । ११ पिपीलिकामध्या-
गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचा वाले इकतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में राजप्रजाधर्म विषय को कहते हैं—

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥१॥

पदार्थ—हे राजन् ! (सदावृधः) सर्वदा वृद्धि को प्राप्त होते हुए आप (नः) हम लोगों की (कया) किस (ऊती) रक्षण आदि क्रिया के साथ और (कया) किस (शचिष्ठया) अत्यन्त श्रेष्ठ वाणी बुद्धि वा कर्म्म जो (वृता) संयुक्त उस से (चित्रः) अद्भुत गुण कर्म्म और स्वभाव वाले (सखा) मित्र (आ, भुवत्) हूजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आपको चाहिए कि हम लोगों के साथ वैसे कर्म्म करें कि जिनमें हम लोगों की प्रीति बढ़े ॥ १ ॥

कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः ।

दृळ्हा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! (मदानाम्) आनन्दों और (अन्धसः) अन्न आदि के सम्बन्ध में (मंहिष्ठः) अत्यन्त बड़ा (सत्यः) श्रेष्ठों में श्रेष्ठ (त्वा) आपको (मत्सत्) आनन्द देवे और (आरुजे) सब प्रकार से रोग के लिए (दृळ्हा) दृढ़ (वसु) धनरूप (चित्) भी (कः) कौन होवे अर्थात् रोग के दूर करने को अत्यन्त संलग्न कौन हो ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य्य आदि धर्म्माचरण से यथायोग्य आहार और विहार करें तो उन में कभी दारिद्र्य और रोग नहीं आवे ॥ २ ॥

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतिभिः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो आप (ऊतिभिः) रक्षणादिकों से (जरितॄणाम्) श्रेष्ठ विद्याओं के जाननेवाले (सखीनाम्) सब के मित्र (नः) हम लोगों के (शतम्) सैकड़े (भवासि) होते हो इस से (अभि) सम्मुख (सु) उत्तम प्रकार (अविता) रक्षक हूजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपने आत्मा के सदृश सुख दुःख हानि और लाभ को औरों के भी जानकर दूसरे के प्रिय के लिए वर्त्ताव करें उन में अन्य जन भी मित्रता करें ॥ ३ ॥

अभी न आ ववृत्स्व चक्रं न वृत्तमर्वतः । नियुद्भिश्चर्षणीनाम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! आप (नः) हम लोगों को (वृत्तम्) सब प्रकार से वृद्ध (चक्रम्) चक्र के (न) सदृश श्रेष्ठ कर्म्मों में (अभि, आ, ववृत्स्व) सब ओर से अच्छे प्रकार वर्त्ताइये (नियुद्भिः) और वायु के गमनों के सदृश वेगों के साथ (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (अर्वतः) घोड़ों को वर्त्ताइये ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप सत्य न्याय में वर्त्ताव करके हम लोगों का भी उसी के अनुसार वर्त्ताव कराइये ॥ ४ ॥

फिर राजप्रजाधर्म विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

प्रवता हि क्रतूनामा हा पदेव गच्छसि । अभक्षि सूर्य्ये सचा ॥५॥२४

पदार्थ—हे राजन् ! आप (हि) जिससे (क्रतूनाम्) बुद्धि वा कर्म्मों के (प्रवता) नीचे मार्ग से (पदेव) पैरों के सदृश (आ, गच्छसि) आते हो इस से (ह) निश्चय वैसे ही (सचा) सत्य के साथ में (सूर्य्ये) सूर्य्य में प्रकाश के सदृश धर्म्म का (अभक्षि) सेवन करता हूँ ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे श्रेष्ठ विद्वान् लोग शुद्ध मार्ग से आकर पूर्ण बुद्धि को प्राप्त होते हैं वैसा ही अन्य जन भी वर्त्ताव कर के बुद्धि को प्राप्त हों ॥ ५ ॥

सं यत्त इन्द्र मन्यवः सं चक्राणि दधन्विरे ।

अध त्वे अध सूर्य्ये ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) जीव ! (ते) तेरे (यत्) जो (मन्यवः) क्रोध आदि व्यवहार (चक्राणि) चक्र के सदृश वर्त्तमान कर्म्मों को (सम्, दधन्विरे) धारण करते हैं (अध) अनन्तर (त्वे) आप में बल को धारण करते (अध) इसके अनन्तर वे (सूर्य्ये) सूर्य्य में प्रकाश के सदृश प्रताप को (सम्) धारण करते हैं ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्य ! जो तू दुष्ट आचरण करनेवाले पर क्रोध और श्रेष्ठ आचरण करनेवाले के प्रति हर्ष करे तो सूर्य्य के सदृश प्रतापी होवे ॥ ६ ॥

फिर प्रतिज्ञापालने वाले राजप्रजाधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

उत स्मा हि त्वामाहुरिन्मघवानं शचीपते । दातारमविदीधयुम् ॥७॥

पदार्थ—हे (शचीपते) वाणी और बुद्धि के पालन करनेवाले राजन् ! (हि) जिस से (त्वाम्) आपका (मघवानम्) अत्यन्त श्रेष्ठ बहुत धनवाले (अविदीधयुम्) जुआ आदि दुष्ट कर्म्मों से रहित (दातारम्) देनेवाला (स्म) ही विद्वान् लोग (आहु) कहते हैं (उत) और सेवा भी करें इसके (इत्) उन्हीं को हम लोग भी सेवें ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जो आप लोग धर्मयुक्त कर्म्मों का आचरण करे तो आप लोगो मे ऐश्वर्य्य और दानकर्म्म कभी न नष्ट होवें ॥ ७ ॥

फिर न्यायपालन राजप्रजाधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

उत स्मा सद्य इत्परि शशमानाय सुन्वते । पुरु चिन्मंहसे वसु ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जिस से कि आप (शशमानाय) प्रशंसित और (सुन्वते) पुरुषार्थ से ओषधियो के रस को उत्पन्न करते हुए के लिए (चित्) भी (पुरु) बहुत (वसु) धन को (परि) सब प्रकार (मंहसे) बढ़वाते हो इससे आप (सद्य.) शीघ्र (उत) फिर (स्म) ही (इत्) निश्चित ऐश्वर्य को प्राप्त होते हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य यथार्थवक्ता पुरुषो का सत्कार करते है वे शीघ्र गुणवान् होकर ऐश्वर्य्य से युक्त होवे ॥ ८ ॥

नहि ष्मा ते शतं चन राधो वरन्त आमुरः ।

न च्यौत्नानि करिष्यतः ॥९॥

पदार्थ—हे राजन् (च्यौत्नानि) बलो को (करिष्यत) करते हुए (ते) आप के (शतम) असंख्य (राध.) धन को (चन) भी (आमुर) सब प्रकार रोग करनेवाले (नहि) नहीं (वरन्ते) स्वीकार करते है (न) और न विजय को (स्म) ही प्राप्त होते है ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो आप यथायोग्य न्यायकारी होवें तो आपका धन और बल कभी न नष्ट होवे और सैकडो प्रकार बढ़े ॥ ९ ॥

अस्माँ अवन्तु ते शतमस्मान्त्सहस्रमूतयः ।

अस्मान्विश्वा अभिष्टयः ॥१०॥२५॥

पदार्थ—हे राजन् ! (ते) आप की (सहस्रम्) अनेक प्रकार की (ऊतय) रक्षायें (शतम्) सख्यारहित (विश्वा) सम्पूर्ण (अभिष्टय) इच्छायें (अस्मान्) हम लोगो की (अवन्तु) रक्षा और (अस्मान्) हम लोगो की वृद्धि करें (अस्मान्) तथा हम लोगो को आनन्द देवें ॥ १० ॥

भावार्थ—हे राजन् ! तभी आप सत्य राजा होवे जब अपने और पिता के सदृश हम लोगो का पालन और वृद्धि कराके आनन्द देवें ॥ १० ॥

अस्माँ इहा वृणीष्व सख्याय स्वस्तये । महो राये दिवित्मते ॥११॥

पदार्थ—हे तेजस्वी राजन् ! आप (इह) इस ससार वा राज्य मे (अस्मान्) हम लोगो को (स्वस्तये) सुख के लिए (मह) बडे (दिवित्मते) विद्या धर्म्म और न्याय से प्रकाशित (सख्याय) मित्रत्व के लिए और (राये) धन के लिए (वृणीष्व) स्वीकार करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जैसे आप हम लोगो मे मित्रता रखते हैं वैसे हम लोग भी आप मे सदा ही मित्र हुए वर्त्ताव करें ॥ ११ ॥

अस्माँ अविड्ढि विश्वहेन्द्र राया परीणसा ।

अस्मान्विश्वाभिरूतिभिः ॥१२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त राजन् ! आप (विश्वहा) सम्पूर्ण दिनो को (परीणसा) अनेक प्रकार के (राया) धन के साथ (अस्मान्) हम लोगो को (अविड्ढि) प्रवेश कराइये और (विश्वाभि) सम्पूर्ण (ऊतिभि) रक्षा आदि क्रियाओ से हम लोगो को प्रवेश कराइये अर्थात् युक्त करिये ॥१२॥१३॥

भावार्थ—वही उत्तम राजा और राजपुरुष हैं कि जो सब प्रकार रक्षा से प्रजा को धनाढ्य करें ॥ १२ ॥

फिर प्रजावृद्धिप्रकार से राजप्रजाधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अस्मभ्यं ताँ अपा वृधि व्रजाँ अस्तेव गोमतः ।

नवाभिरिन्द्रोतिभिः ॥१३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्य्य के देने वाले राजन् ! आप (नवाभिः) नवीन (ऊतिभिः) रक्षादिको से (अस्मभ्यम्) हम लोगो के लिए (गोमतः) जिनमें बहुत गौएं विद्यमान और (व्रजान्) बहुत गौएं जाती (तान्) उन गोष्ठो को (अस्तेव) गृहो के समान बढ़ाइये और दुःखो को (अपा, वृधि) न्यून कीजिये, नष्ट कीजिये ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जैसे गोपाल गौओ को बढ़ाके दुग्धादिको से आढ्य होते हैं वैसे ही हम लोगों की वृद्धि करो और आढ्य होकर सदैव आनन्द कीजिये ॥

फिर राजप्रजाधर्म विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अस्माकं धृष्णुया रथो द्युमाँ इन्द्रानपच्युतः ।

गव्युरश्वयुरीयते ॥१४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) राजन् ! जो (अस्माकम्) हम लोगो को (धृष्णुया) दृढ़ता से युक्त (द्युमान्) बहुत कलायन्त्र आदि से प्रकाशित (अनपच्युतः) घटने से रहित (गव्यु.) बहुत गौओ और (अश्वयुः) बहुत घोडों के बल से युक्त (रथः) शीघ्र पहुँचानेवाला विमान आदि विशेष वाहन (ईयते) जाता है उस के साथ शत्रुओ को जीतिये ॥ १४ ॥

भावार्थ—राजा और प्रजाजन ऐसा मानें कि जो राजा के पदार्थ वे हम लोगो के और जो हम लोगों के वे राजा के हैं ॥ १४ ॥

अस्माकमुत्तमं कृधि श्रवो देवेषु सूर्य्य ।

वर्षिष्ठं द्यामिवोपरि ॥१५॥२६॥

पदार्थ—हे (सूर्य्य) सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान राजन् ! आप (उपरि) ऊपर वर्त्तमान (द्यामिव) प्रकाश के सदृश (अस्माकम्) हम लोगो के (उत्तमम्) अत्यन्त श्रेष्ठ (वर्षिष्ठम्) अत्यन्त बढ़े हुए (श्रवः) अन्न आदि वा श्रवण को (देवेषु) विद्वानो मे (कृधि) करिये ॥ १५ ॥

भावार्थ- इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे आकाश में सूर्य्य बड़ा है वैसे ही विद्या और विनय की उन्नति से ऐश्वर्य्य को उत्पन्न करो ॥ १५ ॥

इस सूक्त मे राजा और प्रजा के धर्म्म वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह इकतीसवां सूक्त और छब्बीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ चतुर्विंशत्यृचस्य द्वात्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । १-२२ इन्द्रः ।
२३, २४ इन्द्राश्वौ देवते । १, ८-१०, १४, १६, १८, २२, २३ गायत्री । २, ४, ७ विराड्गायत्री । ३, ५, ६, १२, १३, १५, १९-२१ निचृद्गायत्री । ११ पिपीलिकामध्या गायत्री छन्द । १७ पादनिचृद्गायत्री । २४ स्वराडार्षी गायत्री च छन्द । षड्ज स्वरः ॥

अब चौबीस ऋचावाले बत्तीसवें सूक्त का आरम्भ है, इस के प्रथम मन्त्र में इन्द्रपदवाच्य राजप्रजागुणों को कहते हैं—

आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्द्धमा गहि । महान्महीभिरूतिभिः ॥१॥

पदार्थ - हे (वृत्रहन्) मेघ का नाश करनेवाले सूर्य के सदृश (इन्द्र) राजन् ! आप (अस्माकम्) हम लोगो की (अर्द्धम्) वृद्धि को (आ, गहि) प्राप्त हूजिये और (महीभि.) बड़ी (ऊतिभि) ऊतियो अर्थात् रक्षादिको के साथ (महान्) बडे हुए (न.) हम लोगो को (तु) फिर (आ) प्राप्त होओ ॥१॥

भावार्थ हे राजन् ! जो आप हम लोगो की वृद्धि करें तो हम लोग आप की भांति वृद्धि करें ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों मे कहते हैं—

भृमिश्चिद्घासि तूतुजिरा चित्र चित्रिणीष्वा । चित्रं कृणोष्यूतये ॥२॥

पदार्थ—हे (चित्र) आश्चर्य्यवान् गुणकर्म स्वभावयुक्त (तूतुजिः) शीघ्रकारी (भृमि) भ्रमने वाले आप (ऊतये) रक्षा आदि के लिए (चित्रिणीषु) अद्भुत सेनाओ मे (चित्रम्) अद्भुत व्यवहार को (आ, कृणोषि) करते हो (चित्) और (आ, घ, असि) अभीष्टकारी होते हो इस से सत्कार करने योग्य हो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो आप सब जगह घूमके शीघ्र न्याय करके सब की रक्षा करें तो आप की आश्चर्यजनक प्रजा अद्भुत ऐश्वर्य की उन्नति करे ॥ २ ॥

दभ्रेभिश्चिच्छशीयांसं हंसि व्राधन्तमोजसा । सखिभिर्ये त्वे सचा ॥३॥

पदार्थ—हे सेनापति राजन् ! जो आप (दभ्रेभिः) थोडे वा छोटे (सखिभिः) मित्रो से (चित्) भी (ओजसा) बल से (शशीयांसम्) धर्म्म के उल्लङ्घन करने और (व्राधन्तम्) बहिलिये के सदृश प्रजा के नाश करनेवाले का (हंसि) नाश करते हो और (ये) जो (त्वे) आप मे (सचा) सत्य से वर्त्तमान हैं उनकी रक्षा करते हो तो विजय को कैसे न प्राप्त होते हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो धार्मिक थोड़े भी परस्पर मित्र होकर शत्रुओ के साथ युद्ध करें तो बहुत ही अधर्म्माचारियो को जीतें ॥ ३ ॥

वयमिन्द्र त्वे सचा वयं त्वाभि नोनुमः । अस्माँअस्माँ इदुदव ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) राजन् ! जो (वयम्) हम लोग (त्वे) आप में (सचा) सत्य आचरण से वर्त्ताव करें और (वयम्) हम लोग (त्वा) आप को (अभि, नोनुमः) सब प्रकार निरन्तर नमस्कार करते हैं उन (अस्मानस्मान्) हम लोगो को हम लोगो की निरन्तर (इत्, उत) निश्चित ही (अव) रक्षा करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जैसे हम लोग आप में सत्यभाव से वर्त्ताव और प्रीति से आपका सत्कार करें वैसे ही आप हम लोगों की निरन्तर वृद्धि करें ॥ ४ ॥

स नश्चित्राभिरद्रिवोऽनवद्याभिरूतिभिः । अनाधृष्टाभिरा गहि ॥५॥२७॥

पदार्थ—हे (अद्रिव.) मेघों के सम्बन्ध से युक्त सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान राजन् (सः) वह आप (चित्राभिः) अद्भुत (अनवद्याभिः) प्रशंसा करने योग्य (अनाधृष्टाभिः) शत्रुओं से दबाने को नहीं योग्य (ऊतिभिः) रक्षादिकों के साथ (नः) हम लोगों को (आ, गहि) प्राप्त हूजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे प्रजाजनो ! जैसे राजा आप लोगों की सब प्रकार रक्षा करे वैसे आप लोग भी राजा की सब प्रकार रक्षा करो ॥ ५ ॥

भूयामो षु त्वावतः सखाय इन्द्र गोमतः । युजो वाजाय घृष्वये ॥६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) राजन् ! (त्वावतः) आप से रक्षित (सखायः) मित्र हम लोग (घृष्वये) घिसने और (वाजाय) विज्ञान वा अन्न के लिए (गोमतः) गौओं से युक्त (युजः) युक्त होनेवालों को प्राप्त होकर (सु) सुन्दर (भूयामो) होवें ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो आप पृथिवी आदि से युक्त हम लोगों को ऐश्वर्य्य के साथ युक्त करें तो हम लोग भी आप के साथ युक्त हो ॥ ६ ॥

त्वं ह्येक ईशिष इन्द्र वाजस्य गोमतः । स नो यन्धि महीमिषम् ॥७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त विद्वन् ! जो (हि) जिससे (एकः) सहायरहित (त्वम्) आप (गोमतः) बहुत प्रकार की पृथिवी आदि के सहित (वाजस्य) विज्ञान आदि से युक्त जनसमूह के (ईशिषे) स्वामी हो (सः) वह (नः) हम लोगों के लिये (महीम्) बड़े (इषम्) अन्न आदि को (यन्धि) दीजिए ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् पुरुषार्थ से बड़े ऐश्वर्य्य को प्राप्त होकर अन्य जनों के लिए देता है वही सब का ईश्वर होता है ॥ ७ ॥

अब अध्यापक और उपदेशक के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

न त्वा वरन्ते अन्यथा यद्दित्ससि स्तुतो मघम् ।
स्तोतृभ्य इन्द्र गिर्वणः ॥८॥

पदार्थ—हे (गिर्वण) वाणियों से सत्कार को प्राप्त (इन्द्र) राजन् ! (यत्) जो (स्तुतः) प्रशंसा किये गये आप (स्तोतृभ्यः) विद्वानों के लिए (मघम्) धन को (दित्ससि) देने की इच्छा करते हो उन (त्वा) आप को (अन्यथा) अन्य प्रकार से मनुष्य (न) नहीं (वरन्ते) स्वीकार करते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो इस संसार में देनेवाला होता है वही सब का प्रिय होता और कोई भी उसका विरोधी नहीं होता है ॥ ८ ॥

अभि त्वा गोतमा गिरानूषत प्र दावने । इन्द्र वाजाय घृष्वये ॥९॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) राजन् ! (गोतमाः) श्रेष्ठ वाणी से युक्त जन (गिरा) वाणी से (त्वा) आप की (अभि, अनूषत) सब ओर से स्तुति करें (वाजाय) विज्ञान और अन्न आदि के (घृष्वये) घिसे अर्थात् शुद्ध और (दावने) देनेवाले के लिए (प्र) उत्तम प्रकार स्तुति करें उनकी आप प्रशंसा करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—जिसकी प्रशंसा विद्वान् जन करते हैं वही प्रशंसित मानने के योग्य है ॥९॥

प्र ते वोचाम वीर्या३ या मन्दसान आरुजः । पुरो दासीरभीत्य ॥१०॥२८॥

पदार्थ—हे राजन् (मन्दसानः) कामना करते हुए आप शत्रुओं की (याः) जो (दासीः) सेविकाओं के सदृश (आ, अरुजः) सब प्रकार रोगयुक्त (पुरः) नगरियों को (अभीत्य) सब ओर से प्राप्त होकर जीतते हो उन (ते) आप के (वीर्य्या) बल पराक्रम से युक्त कर्म्मों का हम लोग (प्र, वोचाम) उपदेश करें ॥१०॥

भावार्थ—जो राजा शत्रुओं का पराजय कर सके वही राज्य करने को योग्य हो ॥ १० ॥

ता ते गृणन्ति वेधसो यानि चकर्थ पौंस्या । सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥११॥

पदार्थ—हे (गिर्वणः) वाणियों से स्तुति किये गये (इन्द्र) राजन् ! (यानि) जो (वेधसः) बुद्धिमान् (ते) आप के (पौंस्या) पुरुषों के लिए हितकारक बलों को (गृणन्ति) कहते हैं और जिन को आप (सुतेषु) उत्पन्न पदार्थों में (चकर्थ) करते हो (ता) उन की हम लोग प्रशंसा करें ॥ ११ ॥

भावार्थ—वे ही प्रशंसा करने योग्य कर्म्म होते हैं कि जिन की यथार्थवक्ता जन प्रशंसा करें ॥ ११ ॥

अवीवृधन्त गोतमा इन्द्र त्वे स्तोमवाहसः । ऐषु धा वीरवद्यशः ॥१२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्वन् जो (स्तोमवाहसः) प्रशंसा को प्राप्त करानेवाले (गोतमाः) विद्वान् जन (त्वे) आप में (वीरवत्) वीर पुरुष जिस में विद्यमान उस (यशः) कीर्ति वा धन को (अवीवृधन्त) बढ़ावें (एषु) इन में आप वीरयुक्त कीर्ति वा धन को (आ, धाः) अच्छे प्रकार धारण कीजिए ॥ १२ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो लोग उत्तम कर्म्म से आप की कीर्ति को बढ़ावें उन की कीर्ति आप भी बढ़ाइये ॥ १२ ॥

यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्वम् । तं त्वा वयं हवामहे ॥१३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त जगदीश्वर ! (यत्) जो (त्वम्) आप (शश्वताम्) अनादि काल से हुए प्रकृति आदि पदार्थों के मध्य में (साधारणः) सामान्य से व्याप्त (असि) होते हो (तम्, चित्) उन्हीं (त्वा) आप की (हि) निश्चय (वयम्) हम लोग (हवामहे) स्तुति करते वा आपका आश्रय करते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर अनादि काल से सिद्ध प्रकृति आदि पदार्थों का स्वामी उन का धारण करनेवाला, वह कार्य्य का निर्माणकर्त्ता और कार्य्यों की व्यवस्था करनेवाला अन्तर्यामी है उसी की सदा उपासना करो ॥ १३ ॥

अर्वाचीनो वसो भवास्मे सु मत्स्वान्धसः ।
सोमानामिन्द्र सोमपाः ॥१४॥

पदार्थ—हे (वसो) वास करनेवाले (इन्द्र) राजन् ! (अर्वाचीनः) इस काल में वर्त्तमान (सोमपाः) ऐश्वर्य्य की रक्षा करनेवाले आप (अस्मे) हम लोगों में (अन्धसः) अन्न आदि और (सोमानाम्) अन्य पदार्थों के रक्षक (भव) हूजिए और (सु, मत्स्व) उत्तम प्रकार आनन्द कीजिए ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो राजा प्रजा के पदार्थों की यथायोग्य रक्षा करे वह आगे के समय में सुख की वृद्धियुक्त होवे ॥ १४ ॥

अस्माकं त्वा मतीनामा स्तोम इन्द्र यच्छतु । अर्वागा वर्तया हरी ॥१५॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) राजन् ! (अस्माकम्) हम (मतीनाम्) विचारशील मनुष्यों की (स्तोमः) स्तुति जिन (त्वा) आप को (आ, यच्छतु) प्राप्त होवे वह आप (अर्वाक्) फिर (हरी) अग्नि जल वा घोड़ों को (आ, वर्तय) अच्छे प्रकार वर्त्ताइये ॥ १५ ॥

भावार्थ—जिस विद्या और विनय से युक्त राजा को सब प्रकार प्रशंसा प्राप्त होवे वही प्रजा को नियमयुक्त कर सके ॥१५॥

पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः । वधूयुरिव योषणाम् ॥१६॥

पदार्थ—हे वैद्यराज ! जो (नः) हम लोगों के लिए (घसः) भोग है उस को (पुरोळाशम्, च) और उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्नविशेष की (जोषयासे) सेवा कराओ और (योषणाम्) स्त्री को (वधूयुरिव) वधूयु अर्थात् अपने को वधू की चाहना करनेवाले के सदृश (नः) हम लोगों को (गिरः) वाणियों की (च) भी सेवा कराओ ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो राजा स्त्री की कामना करते हुए पति के सदृश प्रजा की वाणियों को सुन के न्याय करता और ऐश्वर्य्य को धारण करता है वह राज्य में पूज्य होता है ॥ १६ ॥

सहस्रं व्यतीनां युक्तानामिन्द्रमीमहे । शतं सोमस्य खार्यः ॥१७॥

पदार्थ—हे धनाढ्य पुरुष ! (व्यतीनाम्) गमन करनेवाले (युक्तानाम्) उत्तम प्रकार सावधान चित्त हुए जनों का (सहस्रम्) एक सहस्र और (सोमस्य) धान्य आदि ऐश्वर्य्य की (खार्यः, शतम्) सौ खारी अर्थात् सौ मन तुले हुए अन्न आदि पदार्थ हैं उनको (इन्द्रम्) दुष्टों को नाश करनेवाले राजा को प्राप्त होकर (ईमहे) याचना करते हैं ॥ १७ ॥

भावार्थ—जो धनाढ्य जनों को प्राप्त होकर असङ्ख्य पदार्थों की याचना करते हैं वे थोड़ा पाते हैं और जो याचना नहीं करते हैं वे बहुत पाते हैं ॥१७॥

सहस्रा ते शता वयं गवामा च्यावयामसि । अस्मत्रा राध एतु ते ॥१८॥

पदार्थ—हे धन के ईश ! (ते) आप का (राधः) धन (अस्मत्रा) हम लोगों में (एतु) प्राप्त हो और (ते) आप की (गवाम्) गौओं के (सहस्रा) हजारों और (शता) सैकड़ों समूह को (वयम्) हम लोग (आ, च्यावयामसि) प्राप्त कराते हैं ॥ १८ ॥

भावार्थ—हे धनाढ्य ! आप के समीप से हम लोग गौ आदि पदार्थों को प्राप्त होकर औरों के लिए देते हैं और हम लोगों का धन आप को प्राप्त हो ॥१८॥

दश ते कलशानां हिरण्यानामधीमहि । भूरिदा असि वृत्रहन् ॥१९॥

पदार्थ—हे (वृत्रहन्) शत्रुओं के नाश करनेवाले ! जिस से आप (भूरिदाः) बहुतों के देनेवाले (असि) हो इस से (ते) आप के (हिरण्यानाम्) सुवर्ण के बने हुए (कलशानाम्) घटों के (दश) दशसंख्यायुक्त समूह को हम लोग (अधीमहि) प्राप्त होवें ॥ १९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य बहुत देनेवाला होता है उसके मित्र बहुत होते हैं ॥१९॥

भूरिदा भूरि देहि नो मा दभ्रं भूर्या भर । भूरि घेदिन्द्र दित्ससि ॥२०॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) देनेवाले ! जो आप (नः) हम लोगों के लिए (भूरि) बहुत (दित्ससि) देने की इच्छा करते हो वह (भूरिदाः) बहुत देनेवाले आप हम लोगों के लिए (भूरि) बहुत (देहि) दीजिए और (भूरि) बहुत को (आ, भर) सब प्रकार धारण कीजिए (दभ्रम्) थोड़े को (घ) ही (मा) मत दीजिए और थोड़े को (इत्) ही न धारण कीजिए ॥ २० ॥

भावार्थ—जो बहुत देनेवाला है वही प्रशंसा को प्राप्त होता है और जो थोड़ा देनेवाला वह नहीं इस प्रकार प्रशंसित होता है ॥ २० ॥

भूरिदा ह्यसि श्रुतः पुरुत्रा शूर वृत्रहन् । आ नो भजस्व राधसि ॥२१॥

पदार्थ—हे (शूर) शत्रुओं के नाश करनेवाले (वृत्रहन्) धन को प्राप्त राजन् ! आप (हि) जिससे (भूरिदाः) बहुत देनेवाले (असि) हो इससे (पुरुत्रा) बहुतों में प्रतिष्ठित और (श्रुतः) सब जगह प्रसिद्ध यशवाले हो जिस से आप (नः) हम लोगों को (राधसि) अच्छे प्रकार साधते हैं इससे हम लोगों को (आ, भजस्व) अच्छे प्रकार सेवो ॥ २१ ॥

भावार्थ—जो इस संसार में बहुत देनेवाला होता है वही सम्पूर्ण दिशाओं में कीर्तियुक्त होता है ॥ २१ ॥

प्र ते बभ्रू विचक्षण शंसामि गोषणो नपात् ।
माभ्यां गा अनु शिश्रथः ॥२२॥

पदार्थ—हे (गोषण) गौ मांगनेवाले (विचक्षण) उत्तम ज्ञाता जो (बभ्रू) सम्पूर्ण विद्याओं के धारण करनेवाले अध्यापक और उपदेशक को मैं (प्र, शंसामि) प्रशंसा करता हूँ वे (ते) आप के शिक्षक होवें (आभ्याम्) इन के साथ आप (नपात्) नहीं गिरनेवाले होते हुए (गाः) पृथिव्यादिकों को (मा, अनु, शिश्रथः) मत शिथिल करते हैं ॥ २२ ॥

भावार्थ—हे जिज्ञासु ! ज्ञान को चाहनेवाले तू अध्यापक और उपदेशक को पाकर पुरुषार्थ से विद्या और उपदेश का शीघ्र ग्रहण कर, आलस्य मत कर ॥२२॥

कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके । बभ्रू यामेषु शोभेते ॥२३॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! आप जो (बभ्रू) अध्यापक और उपदेशक (यामेषु) प्रहरों में (कनीनकेव) सुन्दर के तुल्य (नवे) नवीन (विद्रधे) विशेष वृद्ध (द्रुपदे) शीघ्र प्राप्त होने योग्य पदार्थ वा वृक्ष आदि द्रव्यों के स्थान और (अर्भके) छोटे बालक के निमित्त (शोभेते) शोभित होते हैं उन के सदृश संसार के उपकार करने वाले होने के योग्य हों ॥ २३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है जो विद्वान् अधिक वा न्यून विज्ञान में वा काम में सुशोभित हों वे जगत् के बीच कल्याण करनेवाले हों ॥ २३ ॥

अरं म उस्रयाम्णेऽरमनुस्रयाम्णे । बभ्रू यामेष्वस्रिधा ॥२४॥२०।६।३॥

पदार्थ—जो (अस्रिधा) नहीं हिंसा करते (बभ्रू) और सत्य को धारण करनेवाले (यामेषु) प्रहरों में (उस्रयाम्णे) किरणों के समान जो यान से जाता उस (मे) मेरे लिए (अरम्) समर्थ और (अनुस्रयाम्णे) शीत देश को जाने वाले मेरे लिए (अरम्) समर्थ होते हैं वे मुझ से सेवन योग्य हैं ॥ २४ ॥

भावार्थ—जो अध्यापक और उपदेशक शीतोष्ण देश निवासी मुझ को पढ़ा और उपदेश दे सकते हैं वे सदैव मुझ से सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ २४ ॥

इस सूक्त में इन्द्र राजा प्रजा अध्यापक और उपदेशक के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह ऋग्वेद संहिता के तीसरे अष्टक में छठा अध्याय तीसवां वर्ग तथा चतुर्थ मण्डल में बत्तीसवां सूक्त और तीसरा अनुवाक पूरा हुआ ॥

अथ तृतीयाष्टके सप्तमोऽध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथैकादशर्चस्य त्रयस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । ऋभवो देवताः । १ भुरिक् त्रिष्टुप् । २, ४, ५, ११ त्रिष्टुप् । ३, ६, १० निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ७, ८ भुरिक् पङ्क्तिः । ९ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

अब ग्यारह ऋचावाले तेंतीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों के विषय को कहते हैं—

प्र ऋभुभ्यो दूतमिव वाचमिष्य उपस्तिरे श्वैतरीं धेनुमीळे ।
ये वातजूतास्तरणिभिरेवैः परि द्यां सद्यो अपसो बभूवुः ॥१॥

पदार्थ—(ये) जो (वातजूताः) वायु से उड़ाये गये त्रसरेणु आदि पदार्थ (एवैः) प्राप्त वेग आदि गुणों और (तरणिभिः) उत्तम प्रकार तैरने आदि क्रियाओं से (सद्यः) शीघ्र (द्याम्) आकाश और (अपसः) कर्मों के प्रति (परिबभूवुः) परिभूत तिरस्कृत अर्थात् रूपान्तर को प्राप्त होते हैं उन से (उपस्तिरे) विस्तार के अर्थ और (ऋभुभ्यः) बुद्धिमानों के लिए (दूतमिव) जैसे दूत दूतपन की इच्छा करे वैसे (श्वैतरीम्) अत्यन्त शुद्ध (धेनुम्) धारण करनेवाली (वाचम्) वाणी को (प्र, इष्ये) प्राप्त करता हूँ उस वाणी से पदार्थ विज्ञान की (ईळे) स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो पुरुष जैसे त्रसरेणु वायु से क्रिया को निरन्तर करते हैं वैसे ही विद्वानों से विद्या को प्राप्त होकर पुरुषार्थ सदा करते हैं वे सर्व विद्याओं से युक्त सुन्दर वाणी को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

अब माता पिता आदि के शिक्षा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यदारमक्रन्नृभवः पितृभ्यां परिविष्टी वेषणा दंसनाभिः ।
आदिद्देवानामुप सख्यमायन्धीरासः पुष्टिमवहन्मनायै ॥२॥

पदार्थ—(ऋभवः) बुद्धिमान् जन (यदा) जब (पितृभ्याम्) विद्वान् माता और पिता से (परिविष्टी) सब प्रकार विद्या को व्याप्त होता जिस से उस क्रिया और (वेषणा) व्याप्त पदार्थ से तथा (दंसनाभिः) उत्तम कर्मों से (देवानाम्) विद्वानों के (सख्यम्) मित्रपन को (अरम्) पूरा (अक्रन्) करते हैं (आत्, इत्) तभी वे (धीरासः) योग से युक्त ध्यान वाले (मनायै) मानने योग्य विद्या के लिये बुद्धि को (उप, आयन्) प्राप्त होते हैं और (पुष्टिम्) सम्पूर्ण अवयवों की पुष्टि को (अवहन्) प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य बाल्यावस्था में पांचवें वर्ष से माता की शिक्षा और आठवें वर्ष से लेकर पिता की शिक्षा को और अड़तालीस वर्ष पर्य्यन्त आचार्य्य की शिक्षा को ग्रहण करते हैं वे ही विद्वान् बुद्धिमान् धार्मिक बहुत काल पर्य्यन्त जीवने और संसार के कल्याण करनेवाले होते हैं ॥ २ ॥

फिर माता पिता से शिक्षा विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

पुनर्ये चक्रुः पितरा युवाना सना यूपेव जरणा शयाना ।
ते वाजो विभ्वाँ ऋभुरिन्द्रवन्तो मधुप्सरसो नोऽवन्तु यज्ञम् ॥३॥

पदार्थ—(ये) जो जन (जरणा) बुढ़ापे को प्राप्त (शयाना) सोते हुए (सना) उत्तम प्रकार सेवा करनेवाले (पितरा) माता पिता को (युवाना) जवान (यूपेव) खम्भ के सदृश पुष्ट (पुनः) फिर (चक्रुः) करें (ते) वे (मधुप्सरसः) सुन्दर स्वरूप और (इन्द्रवन्तः) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त होकर (नः) हम लोगों के (यज्ञम्) पढ़ने पढ़ाने आदि कर्म्म की (अवन्तु) रक्षा करें उस कर्म्म के संग से (विभ्वा) व्यापक जाने गये जगदीश्वर से (वाजः) ज्ञानवान् और (ऋभुः) विद्वान् मैं होऊं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो पितृजन अपने सन्तानों को अतिकाल पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्य से उत्तम स्वभाव और विद्यायुक्त करते हैं वे उन सन्तानों की सेवा से फिर भी वृद्ध हुए युवावस्था वालों के सदृश होते हैं ॥ ३ ॥

यत्संवत्समृभवो गामरक्षन्यत्संवत्समृभवो मा अपिंशन् ।
यत्संवत्समभरन्भासो अस्यास्ताभिः शमीभिरमृतत्वमाशुः ॥४॥

पदार्थ—(यत्) जो (ऋभवः) बुद्धिमान् पितृजन (संवत्सम्) अपने बछड़े के सदृश सन्तानों को शिक्षा देते हैं (गाम्) वाणी की (अरक्षन्) रक्षा करते हैं और (यत्) जो (ऋभवः) बुद्धिमान् पितृ आचार्य्यजन (संवत्सम्) एक हुए और प्रेम से पाले गये सन्तान के सदृश (माः) माताओं को (अपिंशन्) अवयवों के सहित करते हैं अर्थात् भरण पोषण से उनके अङ्गों को पुष्ट करते और (यत्) जो मातृजन (भासः) प्रकाशमान (अस्याः) इस विद्या के (संवत्सम्) एकीभाव को प्राप्त प्रेम से पालित सन्तान का (अभरन्) धारण वा पोषण करते हैं वे बुद्धिमान् पितृजन और मातृजन (ताभिः) उन मातृ पितृ आचार्य्यों की सेवा और विद्या की प्राप्तियों और (शमीभिः) श्रेष्ठ कर्मों से (अमृतत्वम्) मोक्षभाव वा उत्तम आनन्द को (आशुः) प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् पितृजन अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य्य और विद्या से विद्यायुक्त और उत्तम गुण और कर्मों के आचरणयुक्त करते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

अब मनुष्य गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

ज्येष्ठ आह चमसा द्वा करेति कनीयान्त्रीन्कृणवामेत्याह ।
कनिष्ठ आह चतुरस्करेति त्वष्ट ऋभवस्तत्पनयद्वचो वः ॥५॥१॥

पदार्थ—हे (ऋभवः) बुद्धिमानो ! जिस (वः) आप के (वचः) वचन की (त्वष्टा) शिक्षा देनेवाला (पनयत्) प्रशंसा करें (तत्) वह वचन (द्वा) दो (चमसा) चमसों को (कर) करे (इति) इस प्रकार से (ज्येष्ठः) प्रथम उत्पन्न हुआ (आह) कहता है (कनीयान्) पीछे उत्पन्न हुआ छोटा (त्रीन्) तीन को (कृणवाम) करें (इति) इस प्रकार से (आह) कहता है और (कनिष्ठः) कनिष्ठ अर्थात् छोटा (चतुरः) चार को (कर) करे (इति) इस प्रकार से (आह) कहता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—बन्धुजन विद्वान् होकर परस्पर वार्त्तालाप करें कि जैसे बड़ा आज्ञा करे वैसे छोटा और जैसे छोटा कहे वैसा ही ज्येष्ठ आचरण करे । जैसे इस मन्त्र मे (कनीयान्) यह कर्त्तृपद एकवचनान्त और (कृणवाम) यह बहुवचनान्त क्रिया नहीं सगत होती हैं ऐसे जनाना चाहिए अर्थात् अह कर्त्ता की योग्यता मे वय कर्त्ता के पक्ष से योजना कर समझना चाहिए अथवा जैसे हम लोग परस्पर वार्त्तालाप करें वैसे ही आप लोगों को भी परस्पर वार्त्तालाप करना चाहिए और जिस प्रकार सत्य और प्रशंसित वचन होवे उसी प्रकार सब को बोलना चाहिए ॥ ५ ॥

सत्यमूचुर्नर एवा हि चक्रुरनु स्वधामृभवो जग्मुरेताम् ।
विभ्राजमानांश्चमसाँ अहेवावेनत्त्वष्टा चतुरो ददृश्वान् ॥६॥

पदार्थ—जैसे (ऋभवः) बुद्धिमान् जन (एताम्) इस (स्वधाम्) अन्न को (जग्मुः) प्राप्त होते हैं और यथार्थ वक्ताओं के आचरण को (अनु, चक्रुः) करें वैसे (एवा) ही (नरः) मनुष्य (सत्यम्) यथार्थ (ऊचुः) कहे और जो (हि) जिससे (त्वष्टा) जाननेवाला (चतुरः) चार को (ददृश्वान्) देखने वाला होवे वह (विभ्राजमानान्) प्रकाशित हुए (चमसान्) मेघों को (अहेव) दिनो के सदृश चार पदार्थों की (अवेनत्) कामना करता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । मनुष्यो को चाहिए कि इस ससार में यथार्थवक्ताओं का अनुकरण करके जैसे क्रम से वर्त्ताव कर दिन वर्षाऋतु को प्राप्त होते हैं वैसे ही क्रम से कर्म, उपासना और ज्ञान सत्यभाषण आदि को बढ़ाके धर्म अर्थ काम और मोक्ष को सिद्ध कराते हैं यह जानें ॥ ६ ॥

फिर विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

द्वादश द्यून्यदगोह्यस्यातिथ्ये रणन्नृभवः ससन्तः ।
सुक्षेत्राकृण्वन्ननयन्त सिन्धून्धन्वातिष्ठन्नोषधीर्निम्नमापः ॥७॥

पदार्थ—(यत्) जो (ससन्तः) सोते हुए उठकर (ऋभवः) बुद्धिमान् जन जिस प्रकार से (आपः) जलो और (सिन्धून्) नदी वा समुद्रों (धन्व) तथा अन्तरिक्ष और (ओषधीः) ओषधियों से (निम्नम्) नीचे (आ, अतिष्ठन्) स्थित होते हैं वैसे (अगोह्यस्य) अगुप्त से (आतिथ्ये) आतिथ्य मे अतिथिसम्बन्धी सत्कार में (द्वादश) बारह (द्यून्) दिन (रणन्) उपदेश देवें तथा (सुक्षेत्रा) सुन्दर स्थानों को (अकृण्वन्) करते और सुखों को (अनयन्त) प्राप्त होते हैं वे मङ्गल देनेवाले हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वान् जन जैसे सोते हुओ को चेता के जगाते हैं वैसे ही अविद्वानो को उत्तम शिक्षा दे विद्वान् करके आनन्द देवें ॥ ७ ॥

फिर मनुष्य गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

रथं ये चक्रुः सुवृतं नरेष्ठां ये धेनुं विश्वजुवं विश्वरूपाम् ।
त आ तक्षन्त्वृभवो रयिं नः स्ववसः स्वपसः सुहस्ताः ॥८॥

पदार्थ—(ये) जो (ऋभवः) बुद्धिमान् जन (सुवृतम्) उत्तम रचित और अङ्गों वा उपाङ्गों के सहित (नरेष्ठाम्) मनुष्य जिसमे स्थित होते हैं उस (रथम्) विमान आदि वाहन को (चक्रुः) करते हैं और (ये) जो (विश्वरूपाम्) सम्पूर्ण शास्त्र-ज्ञान वाली और (विश्वजुवम्) सम्पूर्ण वेगों से युक्त (धेनुम्) वाणी को प्राप्त होते हैं (ते) वे (स्ववसः) सुन्दर रक्षण आदि कर्म से और (स्वपसः) उत्तम प्रकार धर्मयुक्त (सुहस्ताः) सुन्दर कर्मसाधक हाथों वाले (नः) हम लोगों के लिए (रयिम्) धन को (आ, तक्षन्तु) रचें ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पहिले विद्या को और फिर हस्तक्रिया को ग्रहण करके उत्तम आचरण वाले होते हुए आत्मसम्बन्धी और बाहिर से विशेष ज्ञान को उत्तम प्रकार बोध के शिल्पक्रियासम्बन्धी कार्य्यों को करते हैं वे बुद्धिमान् होते हुए ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

अपो ह्येषामजुषन्त देवा अभि क्रत्वा मनसा दीध्यानाः ।
वाजो देवानामभवत्सुकर्मेन्द्रस्य ऋभुक्षा वरुणस्य विभ्वा ॥९॥

पदार्थ—जो (क्रत्वा) बुद्धि और (मनसा) विज्ञान से (दीध्यानाः) प्रकाशमान (देवाः) विद्वान् जन (हि) जिस कारण (एषाम्) इन पदार्थों की कार्य्यसिद्धि के लिए (अपः) विमान आदि के बनाने मे साधक कर्म का (अभि, अजुषन्त) सब प्रकार सेवन करते हैं और (सुकर्मा) उत्तम कर्म करनेवाला (देवानाम्) विद्वानो (इन्द्रस्य) बिजुली आदि और (वरुणस्य) जल आदि की (विभ्वा) व्याप्ति मे (वाजः) अन्न आदि, विद्वानो के मध्य मे (ऋभुक्षाः) बड़ा (अभवत्) होता है वे और वह श्रीमान् होते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य इस ससार मे सृष्टिस्थ पदार्थों की उत्तम परीक्षा से सयोग और विभाग के द्वारा श्रेष्ठ पदार्थ और कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वे विद्वानो मे श्रेष्ठ और अत्यन्त धनी होते है ॥ ९ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

ये हरी मेधयोक्था मदन्त इन्द्राय चक्रुः सुयुजा ये अश्वा ।
ते रायस्पोषं द्रविणान्यस्मे धत्त ऋभवः क्षेमयन्तो न मित्रम् ॥१०॥

पदार्थ—हे (ऋभवः) बुद्धिमानो ! (ये) जो (मेधया) बुद्धि (उक्था) और प्रशंसाओ से (मदन्तः) आनन्द करते हुए (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के लिए (हरी) घोड़ों के सदृश अग्नि और जल का (अश्वा) शीघ्र चलने वाले और (सुयुजा) उत्तम प्रकार जुड़े हुए (चक्रुः) करते हैं और (ये) जो इस विद्या को जानें (ते) वे आप लोग (मित्रम्) मित्र की (क्षेमयन्तः) रक्षा करते हुए के (न) सदृश (अस्मे) हम लोगो के निमित्त (रायः, पोषम्) धन आदि की पुष्टि को (द्रविणानि) तथा द्रव्यो वा यशो को (धत्त) धारण करो ॥ १० ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! आप लोग सृष्टि के क्रम से पदार्थविद्याओ को प्राप्त होकर अन्य जनो को बोध कराके अपने सदृश करके धनाढ्य करो ॥ १० ॥

इदाह्नः पीतिमुत वो मदं धुर्न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः ।
ते नूनमस्मे ऋभवो वसूनि तृतीये अस्मिन्त्सवने दधात ॥११॥२॥

पदार्थ—हे (ऋभवः) बुद्धिमानो ! जो (देवाः) विद्वान् जन (वः) आप लोगो मे से (अह्नः) दिन के मध्य मे (पीतिम्) पान को (उत) और आप लोगों के (मदम्) आनन्द को (धुः) धारण करें (ते) वे (इदा) इस समय (श्रान्तस्य) तप से नष्ट हुआ है पाप जिसका उसकी सेवा के (ऋते) बिना (सख्याय) मित्रपने के लिए (न) नहीं समर्थ होते हैं वे (अस्मिन्) इस (तृतीये) अन्त्य (सवने) श्रेष्ठ कर्म के निमित्त (अस्मे) हम लोगो मे (वसूनि) धनों को (नूनम्) निश्चययुक्त (दधात) धारण करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो जन वर्त्तमान समय मे यथार्थ पुरुषार्थ को करते हैं वे धनपति होते हैं और जो विद्वानो के सङ्ग को नहीं करते हैं वे धन से रहित हुए दारिद्र्य को भजते हैं ॥ ११ ॥

इस सूक्त मे विद्वान् माता पिता और मनुष्यो के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ।

यह तेतीसवां सूक्त और द्वितीय वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथैकादशर्चस्य चतुस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । ऋभवो देवताः ।
१ विराट् त्रिष्टुप् । २ भुरिक् त्रिष्टुप् । ४—९ निचृत् त्रिष्टुप् ।
१० त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३, ११ स्वराट् पङ्क्तिः ।
५ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचावाले चौंतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके पहले मन्त्र में मेधावी बुद्धिमान् के गुणों को कहते हैं—

ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छेमं यज्ञं रत्नधेयोप यात ।
इदा हि वो धिषणा देव्यह्नामधात्पीतिं सं मदा अग्मता वः ॥१॥

पदार्थ—जैसे (मदाः) आनन्द (वः) आप लोगो के (सम्, अग्मत) सम्यक् प्राप्त होवें जैसे (हि) निश्चित (देवी) श्रेष्ठ गुण वाली (धिषणा) बुद्धि (अह्नाम्) दिनों के बीच (पीतिम्) पान को (अधात्) धारण करती है और हे विद्वान् जनो ! आप (रत्नधेया) धनों को धारण करनेवाली क्रिया के लिए (इमम्) इस (यज्ञम्) विद्या और बुद्धि के बढ़ानेवाले यज्ञ को (उप, यात) प्राप्त होवें वैसे (इदा) इस समय (वाजः) विज्ञानवान् और (इन्द्रः) ऐश्वर्य्य से युक्त (ऋभुः) बुद्धिमान् पुरुष (विभ्वा) ईश्वर की सहायता से (नः) हम लोगों को और (वः) तुम लोगो को (अच्छ) उत्तम प्रकार प्राप्त हो ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे आप लोगों को आनन्द प्राप्त होवे वैसे ही कर्म और बुद्धि की वृद्धि को करो और व्यापक ईश्वर की उपासना भी करो ॥ १ ॥

विदानासो जन्मनो वाजरत्ना उत ऋतुभिरृभवो मादयध्वम् ।
सं वो मदा अग्मत सं पुरन्धिः सुवीरामस्मे रयिमेरयध्वम् ॥२॥

पदार्थ—हे (वाजरत्नाः) विज्ञान आदि रत्नों से युक्त (ऋभवः) बुद्धिमानो! आप लोग (जन्मनः) जन्म से (विदानासः) ज्ञानवान् और विद्या ग्रहण के

लिए प्रतिज्ञा करनेवाले हुए (ऋभुभिः) बुद्धिमानो के साथ (मादयध्वम्) आनन्द कराओ जिससे (वः) आप लोगों को (मदाः) आनन्द (सम्) उत्तम प्रकार (अग्मत) प्राप्त हों (उत) और (पुरन्धिः) नगरों का धारण करनेवाला राज्य प्राप्त हो तथा (अस्मे) हम लोगो के लिए (सुवीराम्) सुन्दर वीरो से युक्त सेना और (रयिम्) लक्ष्मी को (सम्, आ, ईरयध्वम्) सब प्रकार से प्राप्त कराओ ॥२॥

भावार्थ—जो दूसरे विद्यारूप जन्म के होने पर प्राप्त विद्यारूप यौवनावस्था युक्त होते हैं वे विद्वान् होकर विद्वानो से मित्रता करते हैं और अविद्वानों के कल्याण के लिए प्रयत्न करते हैं ॥ २ ॥

अयं वो यज्ञ ऋभवोऽकारि यमा मनुष्वत्प्रदिवो दधिध्वे ।
प्र वोऽच्छा जुजुषाणासो अस्थुरभूत विश्वे अग्रियोत वाजाः ॥३॥

पदार्थ—हे (ऋभवः) बुद्धिमानो ! विद्वानों से जो (अयम्) यह (वः) आप लोगो का (यज्ञः) पढ़ाना और उपदेश करना रूप यज्ञ (अकारि) किया जाता है (यम्) जिसको (मनुष्वत्) विचार करनेवाले विद्वानो के सदृश आप लोग (दधिध्वे) धारणा करो और जो (प्रदिवः) अतिशय विद्या आदि उत्तम गुणों की कामना करते हुए (वः) आप लोगो की (अच्छ) उत्तम प्रकार (आ, जुजुषाणास) अत्यन्त सेवा करते हुए (प्र, अस्थु.) उत्तम स्थित हूजिए (उत) और (विश्वे) सम्पूर्ण (अग्रिया) प्रथम उत्पन्न हुए (वाजा) श्रेष्ठ कर्मों मे वेग जो होवें उनको आप लोग प्राप्त (अभूत) हूजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे बुद्धिमान् विद्यार्थी जनो ! जो आप लोगो के लिए विद्या देवें उनकी कपट रहित प्रीति से सेवा करो और जितेन्द्रिय होकर यथार्थ विद्या को प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

अभूदु वो विधते रत्नधेयमिदा नरो दाशुषे मर्त्याय ।
पिबत वाजा ऋभवो ददे वो महि तृतीयं सवनं मदाय ॥४॥

पदार्थ—हे (वाजाः) बुद्धिमान् (नरः) सत्कर्मों मे अग्रगामी और (ऋभव.) विज्ञानवान् जनो ! (व.) आप लोगो के वा (विधते) विद्या और उत्तम शिक्षा का ग्रहण करते हुए अध्यापक वा उपदेशक जन के तथा (दाशुषे) विद्या के देने वाले (मर्त्याय) मनुष्य के लिए (रत्नधेयम्) रत्नो का पात्र (इदा) इस समय (अभूत्) होवे (उ) और (व.) आप लोगो के लिए जो (मदाय) आनन्द के अर्थ (महि) बड़े (तृतीयम्) तीन सख्या को पूर्ण करनेवाले (सवनम्) सुख और ऐश्वर्य्य को मैं (ददे) देता हूँ उसका आप लोग (पिबत) पान करो और आप लोगो से मैं विद्याग्रहण करता हूँ ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिन लोगो के समीप से विद्या आप लोग ग्रहण करें उनके लिए रत्न दो । जिससे दोनो जगह विद्या और ऐश्वर्य्य बढ़े ॥ ४ ॥

आ वाजा यातोप न ऋभुक्षा महो नरो द्र[illegible] : गृणानाः ।
आ वः पीतयोऽभिपित्वे अह्नामिमा अस्तं नवस्व इव ग्मन् ॥५॥

पदार्थ—हे (ऋभुक्षा) उत्तम गुणो से बड़े (वाजा) ब्रह्मचर्य्य को प्राप्त (मह) आदर करने योग्य (नर.) नायक (द्रविणास.) यशरूप धन की (गृणाना) स्तुति प्रशसा करते हुए आप लोग (न) हम लोगो के (उप, आ,-यात) समीप प्राप्त हूजिये और (अह्नाम्) दिनो की (अभिपित्वे) प्राप्ति होने मे (इमा) यह प्रत्यक्ष (पीतय.) जो पान हैं वह (अस्त, नवस्व इव) जैसे नवीन सुखवाला घर को प्राप्त होता है वैसे (व.) आपको (आ, ग्मन्) प्राप्त हो ॥५॥

भावार्थ—सब मनुष्यो को चाहिए कि ऐसी इच्छा नित्य करें कि हम लोगो को यथार्थवक्ता विद्वान् लोग प्राप्त होवें और दिन रात्रि ऐश्वर्य्य की प्राप्ति होवे । जैसे नवीन विवाहाश्रम का सेवन करते है वैसे ही स्त्री और पुरुष गृह के कृत्यो का सेवन करें ॥ ५ ॥

आ नपातः शवसो यातनोपेमं यज्ञं नमसा हूयमानाः ।
सजोषसः सूरयो यस्य च स्थ मध्वः पात रत्नधा इन्द्रवन्तः ॥६॥

पदार्थ—हे (हूयमानाः) ईर्ष्या करते हुए (शवस) बलयुक्त (नपात.) नहीं गिरना जिनके विद्यमान् (सजोषस) तुल्य प्रीति के सेवनकर्त्ता (रत्नधा) धनों को धारण करनेवाले (इन्द्रवन्तः) ऐश्वर्य्य से युक्त (सूरय.) विद्वान् जनो आप लोग (नमसा) सत्कार से (इमम्) इस (यज्ञम्) विद्यावृद्धि करनेवाले यज्ञ को (उप, आ, यातन) प्राप्त हूजिये (यस्य च) और जिसके (मध्व.) मधुरगुणयुक्त पदार्थ को प्राप्त (स्थ) होओ उसकी नित्य (पात) रक्षा कीजिये ॥६॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि परस्पर मित्रता कर शरीर और आत्मा का बल बढ़ा विद्याधनरूप ऐश्वर्य्य को प्राप्त हो । उसकी उत्तम प्रकार रक्षा कर और बढ़ाके इससे सबको सुखी करें ॥ ६ ॥

सजोषा इन्द्र वरुणेन सोमं सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ।
अग्रेपाभिर्ऋतुपाभिः सजोषा ग्नास्पत्नीभी रत्नधाभिः सजोषाः ॥७॥

पदार्थ—हे (गिर्वणः) वाणियों से स्तुति किये (इन्द्र) ऐश्वर्य्य के देने वाले ! आप (वरुणेन) श्रेष्ठ पुरुषार्थ से (सजोषा.) तुल्य प्रीति के सेवने वाले (सोमम्) ऐश्वर्य्य की (पाहि) रक्षा करो और (अग्रेपाभिः) प्रथम रक्षा करने वाले (मरुद्भिः) मनुष्यो के साथ (सजोषाः) तुल्य प्रीति सेवनेवाले हुए ऐश्वर्य्य की रक्षा करो और आप (रत्नधाभिः) द्रव्यों को धारण करने वाली (ग्नास्पत्नीभि.) पतियो की स्त्रियों के साथ (सजोषाः) समान सेवने वाले ऐश्वर्य्य की रक्षा करो और आप (ऋतुपाभिः) ऋतुओं में रक्षा करनेवालों के साथ (सजोषाः) समान सेवन करनेवाले ऐश्वर्य्य की रक्षा करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग श्रेष्ठ पुरुषों के मेल से ऐश्वर्य्य की उन्नति करो और जो विनाश से पहिले और ऋतुओं मे रक्षा करते हैं और जो अपनी स्त्री पतिव्रता होती है उन मनुष्यो और उस स्त्री के साथ तुल्य प्रीति सुख दुःख और लाभ का सेवन करते हुए सबके प्रिय होओ ॥ ७ ॥

सजोषस आदित्यैर्मादयध्वं सजोषस ऋभवः पर्वतेभिः ।
सजोषसो दैव्येना सवित्रा सजोषसः सिन्धुभी रत्नधेभिः ॥८॥

पदार्थ—हे (ऋभवः) बुद्धिमानो ! आप लोग (आदित्यैः) अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य्य और विद्या का ग्रहण जिन्होंने किया उनके साथ (सजोषसः) समान उत्तम गुण कर्म स्वभाव के सेवन करने और (पर्वतेभिः) मेघों के साथ (सजोषसः) समान उत्तम गुण कर्म स्वभाव के सेवन करने और (दैव्येन) उत्तम स्वरूप वाले (सवित्रा) बिजुली रूप के साथ (सजोषसः) तुल्य प्रीति सेवन करने (रत्नधेभिः) रत्नो को धारण करनेवाले (सिन्धुभिः) नदी वा समुद्रों के साथ (सजोषसः) उत्तम गुण कर्म स्वभाव के सेवन करनेवाले हुए आप हम लोगो को परस्पर (मादयध्वम्) आनन्दित कीजिये ॥८॥

भावार्थ—जो मनुष्य पूर्ण विद्वानो के साथ मेल करके पदार्थ विद्या का ग्रहण करते हैं वे विमान आदि को रच के मेघमण्डल वा उससे ऊपर समुद्र और नदियो मे सुख से विहार करने के योग्य होते हैं ॥ ८ ॥

ये अश्विना ये पितरा य ऊती धेनुं ततक्षुर्ऋभवो ये अश्वा ।
ये अंसत्रा य ऋधग्रोदसी ये विभ्वो नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥९॥

पदार्थ—(ये) जो (ऋभव.) बुद्धिमान् (अश्विना) सम्पूर्ण विद्याओ मे व्याप्त (ये) जो (पितरा) सब प्रकार से पालन करनेवाले और (ये) जो (अश्वा) वेग से मार्ग के बीच व्याप्त होने वाले दो पदार्थ (ये) (असत्रा) गमन आदि के रक्षक और (ये) जो (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी और (ये) जो (विभ्वः) सम्पूर्ण विद्याओ मे व्यापक (नर.) नायक मनुष्य और (ये) जो बुद्धिमान् (ऊती) रक्षण आदि से (धेनुम्) विद्यासहित वाणी को (ततक्षु) सूक्ष्म और विस्तारयुक्त करते हैं और (स्वपत्यानि) उत्तम शिक्षा से सन्तानो को श्रेष्ठ (ऋधक्) यथार्थ भाव से (च[illegible]) वे बड़े भाग्यशाली होवें ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्या और सत्पुरुषो का संग, वृद्धों का सेवन और अपने समीप प्राप्तो की रक्षा करके अपने सन्तानो को श्रेष्ठ करें वे विस्तारयुक्त सुख को प्राप्त होवे ॥ ९ ॥

ये गोमन्तं वाजवन्तं सुवीरं रयिं धत्थ वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
ते अग्रेपा ऋभवो मन्दसाना अस्मे धत्त ये च रातिं गृणन्ति ॥१०॥

पदार्थ—हे (ऋभव.) विद्वानो (ये) जो (गोमन्तम्) बहुत गौओं से युक्त (वाजवन्तम्) बहुत अन्न और विज्ञान के साधनेवाले और (वसुमन्तम्) अनेक प्रकार के द्रव्यो तथा (पुरुक्षुम्) बहुत धन और धान्य के सहित (सुवीरम्) श्रेष्ठ वीरो के प्राप्त करनेवाले (रयिम्) धन का (ये) जो (अग्रेपा.) पहिले रक्षा करने-वाले (मन्दसाना.) आनन्द करते हुए (च) और जो (अस्मे) हम लोगो के लिए (रातिम्) दान की (गृणन्ति) स्तुति करते हैं (ते) वे आप लोग इस को हम लोगो के लिये (धत्थ) धारण करो और इस से हम लोगों में सुख को (धत्त) धारण करो ॥ १० ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! आप लोग जिनके लिए सिद्ध करने योग्य पदार्थ से उत्पन्न सुख को प्राप्त होकर अन्य जनो के लिए देते हैं वे सुपात्रों के लिए दान देने की प्रशसा करते हैं ॥१०॥

नापाभूत न वोऽतीतृषामानिःशस्ता ऋभवो यज्ञे अस्मिन् ।
समिन्द्रेण मदथ सं मरुद्भिः सं राजभी रत्नधेयाय देवाः ॥११॥४॥

पदार्थ—हे (देवा.) विद्वान् और (ऋभवः) बुद्धिमानो ! (अनिःशस्ताः) निरन्तर प्रशसा को प्राप्त आप लोग कही भी (न) नहीं (अप, अभूत) तिरस्कृत हूजिये और जैसे (अस्मिन्) इस (यज्ञे) राज्यपालन करने रूप यज्ञ में (वः) तुम लोगो को (न) नही (अतितृषाम) अतितृष्णा युक्त करें वैसे इस में (इन्द्रेण) ऐश्वर्य्य के साथ (सम्, मदथ) आनन्द करो और (मरुद्भिः) उत्तम मनुष्यों के साथ (सम्) आनन्द करो और (राजभिः) राजा लोगों के साथ (रत्नधेयाय) जिस मे धन रक्खे जाते हैं उस कोष के लिए (सम्) आनन्द करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो लोभ आदि दोषो से रहित हुए राजा और प्रजाजनों के साथ मिलकर गृहाश्रम के व्यवहार की उन्नति करते हैं वे कहीं तिरस्कृत नहीं होते हैं ॥ ११ ॥

इस सूक्त में मेधावी के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिए ॥

यह चौंतीसवां सूक्त और चौथा वर्ग समाप्त हुआ ।

ओ३म्

अथ नवर्चस्य पञ्चत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । ऋभवो देवताः । १, २, ४, ६, ७, ९ निचृत् त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप् छन्दः ॥ धैवतः स्वरः । ३ भुरिक् पङ्क्तिः । ५ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले पैंतीसवें सूक्त का आरम्भ है, इस सूक्त में विद्वान् के विषय को कहते हैं—

इहोपं यात शवसो नपातः सौधन्वना ऋभवो माप भूत ।
अस्मिन् हि वः सवने रत्नधेयं गमन्त्विन्द्रमनु वो मदासः ॥१॥

पदार्थ—हे (शवसः) प्रशंसा करने योग्य बलयुक्त (नपातः) पतनरहित अर्थात् हानि से रहित (सौधन्वना) सुन्दर धनुष अन्तरिक्ष में स्थित जिन के उन के सम्बन्धी (ऋभवः) बुद्धिमानो ! आप लोग (इह) यहां (उप, यात) समीप में प्राप्त हूजिये (वः) आप लोगों के (अस्मिन्) इस (सवने) क्रियामय व्यवहार में (हि) जिस कारण (वः) आप लोगों के (मदासः) आनन्द (रत्नधेयम्) धन धरने के पात्ररूप (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य्ययुक्त जन के (अनु, गमन्तु) पीछे जावें इस कारण इस को प्राप्त हो कर कहीं (मा) मत (अप, भूत) अपमान से युक्त हूजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—जो लोग उत्साह से ऐश्वर्य्य की वृद्धि करने की इच्छा करते हैं वे सब जगह सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य को प्राप्त होकर सर्वत्र सत्कारयुक्त और जो आलस्ययुक्त होते हैं वे दरिद्रपन से अभिभूत अर्थात् सदा तिरस्कृत होते हैं ॥ १ ॥

आगन्नृभूणामिह रत्नधेयमभूत्सोमस्य सुषुतस्य पीतिः ।
सुकृत्यया यत्स्वपस्यया चँ एकं विचक्र चमसं चतुर्धा ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप (सुकृत्यया) सुन्दर क्रिया से (स्वपस्यया) वा सुन्दर कर्म्मों की अपनी इच्छा से (यत्) जिस (एकम्) एक (चमसम्) मेघ के सदृश गर्जना करनेवाले रथ को (चतुर्धा) नीचे ऊपर तिरछी और मध्यम गतिवाला (विचक्र) करते हैं जिससे (सुषुतस्य) उत्तम प्रकार उत्पन्न किये गये (सोमस्य) ऐश्वर्य्य का (पीतिः) पान (अभूत्) होवे और (इह) इस संसार में (ऋभूणाम्) बुद्धिमानों के (रत्नधेयम्) रत्न धरने के पात्ररूप जन को (आ, अगन्) सब प्रकार प्राप्त होवें (च) उसी के गमन आदि कार्य्यों को सिद्ध करो ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य उत्तम हस्तक्रिया और उत्तम कर्म से सर्वत्र पहुँचानेवाले वाहन आदि को रचते हैं वे खाने और पीने योग्य पदार्थ और असंख्य धनों को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

व्यकृणोत चमसं चतुर्धा सखे वि शिक्षेत्यब्रवीत ।
अथैत वाजा अमृतस्य पन्थां गणं देवानामृभवः सुहस्ताः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (सखे) मित्र ! जैसे यथार्थवक्ता विद्वान् जन सत्यविद्या की शिक्षा देते हैं वैसे आप (शिक्ष) शिक्षा देओ और हे (वाजाः) विज्ञानयुक्त (सुहस्ताः) अच्छे हाथों वाले (ऋभवः) बुद्धिमान् जनो ! जैसे मित्र वैसे आप लोग (चमसम्) यज्ञ सिद्ध करानेवाले पात्र के सदृश कार्य्य को (चतुर्धा) चार प्रकार (वि) विशेषता से (अकृणोत) करो और शास्त्रों का (वि) विशेष करके (अब्रवीत) उपदेश देओ (अथ) इस के अनन्तर (इति) इस प्रकारसे (देवानाम्) विद्वानों के (गणम्) समूह को और (अमृतस्य) नाशरहित मोक्ष के (पन्थाम्) मार्ग को (ऐत) प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! परमेश्वर आप लोगों के प्रति चार प्रकार के पुरुषार्थ को सिद्ध करो ऐसा कहता है कि जो परस्पर मित्र होकर कार्य्य की सिद्धि के लिए प्रयत्न करो तो धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि आप लोगों को विना संशय प्राप्त होवे ॥ ३ ॥

किम्मयः स्विच्चमस एष आस यं काव्येन चतुरो विचक्र ।
अथा सुनुध्वं सवनं मदाय पात ऋभवो मधुनः सोम्यस्य ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (ऋभवः) बुद्धिमानो ! (एषः) यह (चमसः) यज्ञपात्र जिस से कि आचमन करता है (स्वित्) सो क्या (किम्मयः) किसी को फेंकता (आस) हुआ है (यम्) जिसको (काव्येन) कवियों के बनाये गये कर्म से (चतुरः) चार प्रकार आप लोग (विचक्र) विधान करते हैं और (मदाय) आनन्द के लिए (मधुनः) ज्ञान से उत्पन्न (सोम्यस्य) ऐश्वर्य्य में श्रेष्ठ पदार्थ के (सवनम्) कार्य्य की सिद्धि करनेवाले को (सुनुध्वम्) उत्पन्न करो । (अथ) इस के अनन्तर इस की (पात) रक्षा करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—कार्य्यों के साधन कैसे और काहे के बने हुए होते हैं यह पूछा जाता है । जो जो विद्या और युक्ति से बनाया गया हो वह वह साधन कार्य्य की सिद्धि करनेवाला होता है यह उत्तर है ॥ ४ ॥

शच्याकर्त पितरा युवाना शच्याकर्त चमसं देवपानम् ।
शच्या हरी धनुतरावतष्टेन्द्रवाहावृभवो वाजरत्नाः ॥ ५ ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (वाजरत्नाः) अन्न आदि पदार्थ और सुवर्ण आदि पदार्थों से युक्त (ऋभवः) बुद्धिमानो ! आप लोग (शच्या) उत्तम बुद्धि से (युवाना) युवावस्था को प्राप्त (पितरा) विज्ञान वाले अध्यापक और उपदेशक को (अकर्त) करिए (शच्या) कर्म से (देवपानम्) देव विद्वान् जन जिस से पान करते हैं उस (चमसम्) पान करने के साधन को (अकर्त) करिये (शच्या) वाणी से (धनुतरौ) शीघ्र पहुँचाने और (इन्द्रवाहौ) ऐश्वर्य्य को प्राप्त करानेवाले (हरी) वायु और बिजुली को (अतष्ट) उत्पन्न करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! आप लोग इस प्रकार यत्न करो जैसे कि मनुष्यों के सन्तान युवावस्था जब तक तब तक प्राप्त पूर्ण विज्ञान वाले होकर पूर्ण युवावस्था में परस्पर प्रीति और अनुमति से स्वयंवर विवाह करके सदा आनन्दित होवें ॥ ५ ॥

यो वः सुनोत्यभिपित्वे अह्नां तीव्रं वाजासः सवनं मदाय ।
तस्मै रयिमृभवः सर्ववीरमा तक्षत वृषणो मन्दसानाः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (वृषणः) बलयुक्त (वाजासः) विज्ञानवाले (ऋभवः) बुद्धिमानो ! (मन्दसानाः) कामना करते हुए आप लोग (यः) जो (वः) आप लोगों के लिए (अह्नाम्) दिनों के मध्य में (अभिपित्वे) अभीष्ट की प्राप्ति होने पर (मदाय) नित्य आनन्द के लिए (तीव्रम्) तेजःस्वरूप (सवनम्) ऐश्वर्य को (सुनोति) उत्पन्न करता है (तस्मै) उसके लिए (सर्ववीरम्) सम्पूर्ण वीर जिससे हों उस (रयिम्) धन को (आ, तक्षत) सिद्ध करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जो आप लोगों की सेवा को तथा आज्ञा के अनुसार कार्य करते हैं उनको विद्वान् और उत्तम प्रकार शिक्षित करके सम्पूर्ण ऐश्वर्य को प्राप्त कराइये ॥ ६ ॥

प्रातः सुतमपिबो हर्यश्व माध्यन्दिनं सवनं केवलं ते ।
समृभुभिः पिबस्व रत्नधेभिः सखीँर्याँ इन्द्र चकृषे सुऽकृत्या ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (हर्यश्व) उत्तम प्रकार चलने योग्य घोड़ों से युक्त (इन्द्र) ऐश्वर्य्य के देनेवाले राजन् ! आप (सुकृत्या) उत्तम धर्मयुक्त कर्म से (यान्) जिन (सखीन्) मित्रों को (चकृषे) करते हो और उन (रत्नधेभिः) धनों को धारण करने वाले (ऋभुभिः) बुद्धिमानों के साथ (प्रातः) प्रातःकाल में (सुतम्) उत्पन्न दूध वा जल (माध्यन्दिनम्) तथा मध्य दिन में उत्पन्न भोजन आदि और (केवलम्) केवल (सवनम्) सम्पूर्ण संस्कारों के रसों से युक्त पीने योग्य पदार्थ का (अपिबः) पान करो (सम्, पिबस्व) अच्छे प्रकार आप पान करिये इस प्रकार (ते) आप का निश्चय कल्याण होवे ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानों के मित्र सबके सुख चाहनेवाले प्रातःकाल मध्यकाल और सायंकाल में करने योग्य कर्मों को करके उत्तम कर्म करनेवाले होवें वे सबके मित्र हुए भाग्यशाली होवें ॥ ७ ॥

ये देवासो अभवता सुकृत्या श्येना इवेदधि दिवि निषेद ।
ते रत्नं धात शवसो नपातः सौधन्वना अभवतामृतासः ॥ ८ ॥

पदार्थ—(ये) जो (देवासः) विद्वान् (सुकृत्या) श्रेष्ठ कर्म से (अभवत) होते और (श्येना इव) बाज के सदृश पुरुषार्थी (दिवि) अन्तरिक्ष में (अधि) ऊपर (निषेद) स्थित होते हैं (ते) वे (इत्) ही (शवसः) बलवान् हुए (नपातः) धर्म से नहीं गिरनेवाले (सौधन्वनाः) जिनका सुन्दर अन्तरिक्ष अर्थात् जिन्होंने यज्ञादि कर्म से अन्तरिक्ष को स्वच्छ किया उनके पुत्र (रत्नम्) सुन्दर धन को (धात) धारण करते हैं और (अमृतासः) मोक्ष सुख को प्राप्त (अभवत) होते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो बाज के सदृश विमान से अन्तरिक्ष में जाते हैं, धर्म के आचरण से विद्वान् होकर अन्य जनों को भी वैसे करते वे ऐश्वर्य्य को प्राप्त हो तथा उसका भोग करके अन्त में मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

यत्तृतीयं सवनं रत्नधेयमकृणुध्वं स्वपस्या सुहस्ताः ।
तदृभवः परिषिक्तं व एतत्सं मदेभिरिन्द्रियेभिः पिबध्वम् ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (सुहस्ताः) सुन्दर धर्म्मसम्बन्धी कर्म्म करनेवाले हाथों से युक्त (ऋभवः) बुद्धिमानो ! (यत्) जो (वः) आप लोगों के लिए (एतत्) यह (परिषिक्तम्) सब प्रकार श्रेष्ठ पदार्थों से युक्त किया हुआ (तत्) उसको (मदेभिः) आनन्दों (इन्द्रियेभिः) चक्षुरादि इन्द्रियों और (स्वपस्या) उत्तम

धर्मसम्बन्धी कर्म की इच्छा से (सम् पिबध्वम्) पान करो और (रत्नधेयम्) जिसमे रत्न धरे जाते हैं उस (तृतीयम्) तीसरे अर्थात् अड़तालीसवें वर्ष पर्य्यन्त सेवित ब्रह्मचर्य्य और (सवनम्) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्यों के प्राप्त करनेवाले कर्म को (अनुष्ठध्वम्) करिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम प्रथम अर्थात् युवावस्था मे विद्या का अभ्यास, द्वितीय अर्थात् मध्यम अवस्था में गृहाश्रम और तृतीय मे न्याय आदि कर्मों का अनुष्ठान करके पूर्ण ऐश्वर्य्य को प्राप्त होओ ॥ ९ ॥

इस सूक्त मे विद्वानो का कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह पैंतीसवां सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ नवर्चस्य षट्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषि । ऋभवो देवता । १, ६, ८ स्वराट् त्रिष्टुप् छन्द । ९ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत स्वर । २-५ विराड् जगती । ७ जगती छन्द. । निषाद स्वर ॥

अब नव ऋचा वाले छत्तीसवें सूक्त का आरम्भ है, इसमे शिल्पविद्या के विषय को कहते हैं—

अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो३ रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः ।
महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (ऋभव.) बुद्धिमानो ! (व.) आप लोगो के लिए (अनश्व) घोड़ो से रहित (अनभीशु) जिसने किसी का दिया नहीं लिया वह (उक्थ्य) प्रशंसा करने योग्य (त्रिचक्र) तीन पहियो से युक्त (रथ) वाहनविशेष (जात.) उत्पन्न हुआ (यत्) जो (महत्) बड़े (रज) लोक समूह के (परि) सब ओर (वर्तते) वर्त्तमान है (तत्) वह (देव्यस्य) विद्वानो मे उत्पन्न कर्म का (प्रवाचनम्) उपदेश सब ओर वर्त्तमान है उससे (द्याम्) प्रकाश (पृथिवीम्, च) और अन्तरिक्ष वा भूमि को आप लोग (पुष्यथ) पुष्ट करो ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अनेक प्रकार के अनेक कलाचक्रो तथा पशु घोड़ा के वाहन से रहित अग्नि और जल से चलाये गये विमान आदि वाहनो को बना पृथिवी, जलो और अन्तरिक्ष मे जा आकर और ऐश्वर्य्य को प्राप्त होकर पूर्ण सुख वाले होओ ॥ १ ॥

रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसोऽविह्वरन्तं मनसस्परि ध्यया ।
ताँ ऊ न्व१स्य सवनस्य पीतय आ वो वाजा ऋभवो वेदयामसि ॥२॥

पदार्थ—हे (वाजा) हस्तक्रिया को प्राप्त हुए (ऋभव) बुद्धिमानो (ये) जो (व) आप लोगों को (अस्य) इस (सवनस्य) शिल्पविद्या मे उत्पन्न हुए कार्य की (पीतये) तृप्ति के लिए (सुचेतसः) उत्तम विज्ञान वाले (मनस) विज्ञान से (ध्यया) ध्यान से (अविह्वरन्तम्) नहीं टेढ़े चलनेवाले (सुवृतम्) उत्तम प्रकार अङ्ग और उपाङ्गो के सहित (रथम्) विमान आदि वाहन को (परि-चक्रु) सब ओर से बनाते हैं और जिनको हम लोग (आ, वेदयामसि) जनाते है (तान्) उन को (नु) निश्चय करके (उ) ही आप लोग शीघ्र ग्रहण कीजिये ॥२॥

भावार्थ—हे बुद्धिमानो ! जो वाहनो के बनाने और चलाने मे चतुर शिल्पीजन होवें उनका ग्रहण और सत्कार करके शिल्पविद्या की उन्नति करो ॥२॥

तद्वो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं देवेषु विभ्वो अभवन्महित्वनम् ।
जिव्री यत्सन्ता पितरा सनाजुरा पुनर्युवाना चरथाय तक्षथ ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (वाजा.) अन्न आदिको से युक्त (ऋभवः) बुद्धिमानो ! (विभ्वः) सकल विद्याओ मे व्याप्त (यत्) जो (व) आप लोगो के प्रति (देवेषु) विद्वानो मे (महित्वनम्) प्रतिष्ठा का (सुप्रवाचनम्) उत्तम प्रकार पढ़ाना और उपदेश करना (अभवत्) होवे (तत्) उसको प्राप्त होकर (जिव्री) जीवते हुए (सन्ता) विद्यमान और (सनाजुरा) सदा वृद्धावस्था को प्राप्त (पितरा) माता पिता (चरथाय) चलने विज्ञान वा भोजन के लिए (पुन) फिर (युवाना) युवावस्था को प्राप्त हुए (तक्षथ) करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे बुद्धिमान् जनो ! जो आप लोग विद्वानो मे स्थित होकर उनसे अध्ययन और उपदेश करें तो ज्ञानवृद्ध होने से युवावस्था को प्राप्त हुए भी वृद्ध होकर सत्कृत होवें ॥ ३ ॥

एकं वि चक्र चमसं चतुर्वयं निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिः ।
अथा देवेष्वमृतत्वमानश श्रुष्टी वाजा ऋभवस्तद्व उक्थ्यम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (वाजाः) ऐश्वर्य्य से युक्त (ऋभव) बुद्धिमान् जनो ! (तत्) वह (वः) आप लोगो का (उक्थ्यम्) प्रशंसा करने योग्य कर्म कि जिस से आप लोग (श्रुष्टी) शीघ्र (धीतिभिः) अङ्गुलियों के सदृश विलेखन गतियो से (चर्मणः) त्वचा को (गाम्) भूमि को (अरिणीत) प्राप्त हूजिए (अथ) इसके अनन्तर इस से (देवेषु) विद्वानो मे (अमृतत्वम्) मोक्षसुख को (आनश) प्राप्त हूजिये और जैसे (एकम्) सहायरहित अर्थात् अकेले (चमसम्) मेघो के सदृश विभक्त (चतुर्वयम्) चार हम लोग (वि, नि, चक्र) करें वैसे आप लोग भी करो ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो प्रशंसित कर्मों को करते हैं वे व्यावहारिक और पारमार्थिक सुख को प्राप्त होकर पण्डितवरो मे प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

ऋभुतो रयिः प्रथमश्रवस्तमो वाजश्रुतासो यमजीजनन्नरः ।
विभ्वतष्टो विदथेषु प्रवाच्यो यं देवासोऽवथा स विचर्षणिः ॥५॥७॥

पदार्थ—हे (देवास.) विद्वानो ! जो (वाजश्रुतासः) विज्ञान के सुनने वाले (नरः) नायकजन (यम्) जिसको (अजीजनन्) उत्पन्न करते हैं (सः) वह (विभ्वतष्टः) व्यापक पदार्थों मे नहीं पण्डित अर्थात् उनको नहीं जाननेवाला (विदथेषु) जनाने योग्य व्यवहारो मे (प्रवाच्य) कहने के योग्य होवे इससे (ऋभुत.) बुद्धिमानो के समीप से (प्रथमश्रवस्तम) अत्यन्त प्रथम श्रवण वा अन्न जिस से वह (रयिः) धन प्राप्त होवे और (यम्) जिस की आप लोग (अवथ) रक्षा करते हो (विचर्षणिः) सम्पूर्ण देखने योग्य पदार्थों को देखनेवाला मनुष्य होवे ॥ ५ ॥

भावार्थ—वे ही विद्वान् उत्तम हैं कि जो विद्यार्थियो का विद्वान् करते हैं उन्हीं को पढ़ाना और उपदेश देना चाहिए जो पदार्थविद्या से रहित होवें, वे ही सुखी होते है जो विद्या और धन को प्राप्त होकर धर्मात्मा होवें ॥ ५ ॥

स वाज्यर्वा स ऋषिर्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः ।
स रायस्पोषं स सुवीर्यं दधे यं वाजो विभ्वाँ ऋभवो यमाविषुः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (ऋभव) बुद्धिमान् जन (विभ्वा) व्यापक पदार्थ से (यम्) जिसको (आविषु.) विद्यायुक्त करें और (यम्) जिसका (वाजः) विज्ञानवान् धारण करता है (स) वह (वचस्यया) अत्यन्त प्रशंसा के साथ (अर्वा) उत्तम गुणो को प्राप्त करानेवाला (वाजी) विज्ञानयुक्त (स) वह (ऋषिः) वेदार्थ को जाननेवाला (स) वह (पृतनासु) शत्रुओ की सेनाओ मे (दुष्टरः) दु.ख से उल्लङ्घन करने योग्य (शूर.) वीर पुरुष (अस्ता) शत्रुओ का फेंकने-वाला होता है (स) वह (राय) धन की (पोषम्) पुष्टि और (स.) वह (सुवीर्य्यम्) उत्तम बल और पराक्रम को (दधे) धारण करता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानो के सग से गुणो के ग्रहण करने की इच्छा करते हैं वे प्रशंसित, शत्रुओं से नहीं जीतने योग्य, धनाढ्य और पराक्रमी होते हैं ॥ ६ ॥

श्रेष्ठं वः पेशो अधि धायि दर्शतं स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन ।
धीरासो हि ष्ठा कवयो विपश्चितस्तान्व एना ब्रह्मणा वेदयामसि ॥७॥

पदार्थ—हे (वाजा) उत्तम स्वभावयुक्त और वेगवाले (ऋभव) बुद्धिमान् आप लोग जिनसे (व) आप लोगो के (श्रेष्ठम्) अत्यन्त प्रशंसा करने योग्य और (दर्शतम्) देखने योग्य (पेश) सुन्दररूप और सुवर्ण तथा (स्तोम) प्रशंसा (अधि) ऊपर (धायि) धारण की जाती है और जो (हि) जिससे (धीरासः) योगी विचारवाले (कवय) बहुत शास्त्रो को देखे अर्थात् विचारे हुए उपदेशक (विपश्चित.) सत्य और मिथ्या को पृथक् करनेवाले विद्वान् जन उपदेशक होवें जिस को और जिन (व.) आप लोगो को (एना) इस (ब्रह्मणा) वेद से (आ, वेदयामसि) जनाते है (तम्) उस और (तान्) उनकी (जुजुष्टन) सेवा करो अर्थात् उस मे और अपने मे प्रीति करो इस के सग से विद्वान् (स्थ) होओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो विद्यार्थी जन श्रेष्ठ अध्यापक और विद्वान् यथार्थवक्ता जनो की सेवा करके शिक्षा ग्रहण करें वे विद्वान् और लक्ष्मीवान् होवें ॥ ७ ॥

यूयमस्मभ्यं धिषणाभ्यस्परि विद्वांसो विश्वा नर्याणि भोजना ।
द्युमन्तं वाजं वृषशुष्ममुत्तममा नो रयिमृभवस्तक्षता वयः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (विद्वांस) विद्वानो (ऋभव) बुद्धिमानो ! (यूयम्) आप लोग (अस्मभ्यम्) हम लोगो के लिए (धिषणाभ्य) बुद्धियों से (विश्वा) सम्पूर्ण (नर्याणि) मनुष्यो मे श्रेष्ठ वा मनुष्यो के लिए हितकारक (भोजना) पालन वा अन्न (द्युमन्तम्) प्रकाशवाले (वृषशुष्मम्) बलियों के बल और (उत्तमम्) श्रेष्ठ (वाजम्) विज्ञान और (रयिम्) धन का तथा (नः) हम लोगो के लिए (वय) जीवन का (आ, तक्षत) विस्तार कीजिये उससे सुख को (परि, आ) सब प्रकार से बढ़ाइये ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् पढ़ाने और उपदेश करने से मनुष्यो की बुद्धि बढ़ाते हैं वे सबके हितैषी जानने चाहिएँ ॥८॥

इह प्रजामिह रयिं रराणा इह श्रवो वीरवत्तक्षता नः ।
येन वयं चितयेमात्यन्यान्तं वाजं चित्रमृभवो ददा नः ॥ ९ ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (**ऋभवः**) बुद्धिमानो ! आप लोग (**इह**) इस संसार में (**नः**) हम लोगों के लिए (**प्रजाम्**) उत्तम सन्तान वा राज्य को (**इह**) इस संसार मे (**रयिम्**) धन को और (**इह**) इस संसार मे (**वीरवत्**) प्रशंसा करने योग्य वीरों के करनेवाले (**श्रवः**) अन्न वा श्रवण को (**ददानाः**) देते हुए (**तक्षत**) प्राप्त कराओ (**येन**) जिस से (**वयम्**) हम लोग (**अन्यान्**) औरो के प्रति (**अभि, चेतयेम**) उत्तम रीति से विज्ञान को कहें (**तम्**) उस (**चित्रम्**) अद्भुत (**वाजम्**) विज्ञान को (**नः**) हम लोगो के लिए (**दत्त**) दीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—जब मनुष्य विद्वानो को प्राप्त होवें तब विज्ञान सत्यश्रवण धन उत्तम प्रजा और शूरवीरयुक्त सेना की याचना करें उनसे यथार्थ विद्या को प्राप्त होकर अन्यों को निरन्तर बोध करावें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में विपश्चित् के गुण कृत्य वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह छत्तीसवां सूक्त और आठवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथाष्टर्चस्य सप्तत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । ऋभवो देवताः । १ विराट् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३, ८ निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ५, ७ अनुष्टुप् । ६ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब आठ ऋचा वाले सैंतीसवें सूक्त का आरम्भ है, इस में आप्त के विषय को कहते हैं—

उप॑ नो वाजा अध्व॒रमृ॑भुक्षा॒ देवा॑ या॒त प॒थिभि॑र्देव॒यानैः॑ ।
यथा॑ य॒ज्ञं मनु॑षो वि॒क्ष्वा॒सु द॑धि॒ध्वे र॑ण्वाः सुदि॒नेष्वह्ना॑म् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (**ऋभुक्षाः**) बड़े (**वाजाः**) विज्ञानवाले (**देवाः**) विद्वानो ! आप लोग (**यथा**) जैसे (**रण्वाः**) सुन्दर (**मनुषः**) विचार करनेवाले (**अह्नाम्**) दिनो के मध्य मे (**सुदिनेषु**) सुख से वर्त्तमान दिनो म और (**आसु**) इन प्रत्यक्ष वर्त्तमान (**विक्षु**) प्रजाओं म (**यज्ञम्**) वैर आदि दोषरहित व्यवहार को धारण करते हैं वैसे ही आप लोग इसको (**दधिध्वे**) धारण कीजिये वैसे (**पथिभिः**) मार्गों (**देवयानैः**) विद्वान् लोग जिसमे जाएँ उन से (**नः**) हम लोगो के (**अध्वरम्**) अहिंसामय यज्ञ को (**उप, यात**) प्राप्त हूजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो जन धार्मिक विद्वानो के मार्ग अर्थात् मर्यादा से चलते है वे प्रजा के हित करने में समर्थ होते हैं ॥ १ ॥

ते वो॑ हृ॒दे मन॑से सन्तु य॒ज्ञा जुष्टा॑सो अ॒द्य घृ॒तनि॑र्णिजो गुः ।
प्र वः॑ सु॒तासो॑ हरयन्त पू॒र्णाः क्रत्वे॒ दक्षा॑य हर्षयन्त पी॒ताः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (**ते**) वे (**हृदे**) हृदय वा (**मनसे**) अन्तःकरण के लिए (**अद्य**) आज (**वः**) आप लोगो के (**घृतनिर्णिजः**) घृत वा जल से शुद्ध किये गये (**जुष्टासः**) विद्वानो से सेवित (**यज्ञाः**) सत्य व्यवहार प्राप्त (**सन्तु**) होवें (**सुतासः**) उत्पन्न हुए (**वः**) आप लोगो को (**गुः**) प्राप्त हों और (**प्र, हरयन्त**) कामना करें तथा (**क्रत्वे**) बुद्धि और (**दक्षाय**) चतुरता के लिए (**पूर्णाः**) पूर्ण (**पीताः**) पालन किये गये (**हर्षयन्त**) प्रसन्न होवें ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग ऐसा पुरुषार्थ करो जिससे पवित्रता बुद्धि और चातुर्य्य बढ़े और जो मांस-मद्य के आहार का त्याग करके उत्तम पदार्थ का भोग करते वे निरन्तर विज्ञान को बढ़ाते हैं ॥ २ ॥

त्र्यु॒दा॒यं दे॒वहि॑तं॒ यथा॑ वः॒ स्तोमो॑ वाजा ऋभुक्षणो द॒दे वः॑ ।
जु॒ह्वे म॑नु॒ष्वदुप॑रासु वि॒क्षु यु॒ष्मे सचा॑ बृ॒हद्दि॑वेषु॒ सोम॑म् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (**वाजाः**) अन्न तथा विज्ञानवाले (**ऋभुक्षणः**) श्रेष्ठजनो ! (**यथा**) जैसे (**वः**) आप लोगों की वा आप लोगो के लिए (**स्तोमः**) प्रशंसा मुझको सुख देती है वैसे आप लोगो के लिए आनन्द को मैं (**ददे**) देता हूँ और जैसे मैं (**मनुष्वत्**) विद्वान् के सदृश (**वः**) आप लोगो को (**उपरासु**) श्रेष्ठ (**विक्षु**) मनुष्य आदि प्रजाओ में (**सचा**) सत्य से (**बृहद्दिवेषु**) महान् दिव्य पदार्थों मे (**त्र्युदायम्**) मन, देह और वचन इन तीनो से जिस को देते हैं उस (**देवहितम्**) विद्वानों के लिए हितकारक (**सोमम्**) ऐश्वर्य्य को (**जुह्वे**) स्पर्द्धा करता हूँ और (**युष्मे**) आप लोगों के लिए सुख देता हूँ वैसे मुझको आप लोग भी बुलाओ और सुख दो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन आप लोगों के लिए सुख देते हैं और आप लोगों के हित की इच्छा करते हैं वैसे ही आप लोग भी उनके लिए आचरण करो ॥ ३ ॥

पीवो॑अश्वाः शु॒चद्र॑था॒ हि भू॒तायः॑शिप्रा वाजिनः सु॒नि॒ष्काः ।
इन्द्र॑स्य सूनो शवसो नपा॒तोऽनु॑ वश्चेत्यग्रि॒यं मदा॑य ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (**पीवोअश्वाः**) मोटे घोड़ों (**शुचद्रथाः**) पवित्र वाहनों और (**अयःशिप्राः**) लोह के सदृश ठुड्डी और नासिका वाले घोड़ों से युक्त (**सुनिष्काः**) सुन्दर सुवर्ण के आभूषणों वाले (**वाजिनः**) वेगयुक्त आप लोग (**हि**) जिस से जीतनेवाले (**भूत**) हूजिये । और हे (**नपातः**) नीचे गिरना अर्थात् नीच दशा को प्राप्त होना जिसके नहीं उस (**शवसः**) बलवान् (**इन्द्रस्य**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाले राजा के (**सूनो**) पुत्र आप (**मदाय**) आनन्द के लिए (**अग्रियम्**) प्रथम हुए सुख और पुरुषार्थ को करो और जैसे हम लोगो से (**वः**) आप लोगो का सुख (**अनु, चेति**) जाना जाता है वैसे आप लोगो को हम लोगो की सुखवृद्धि का प्रयत्न करना चाहिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे राजपुरुषो ! आप लोग विस्तीर्ण बल से युक्त और सेना के अङ्गों के सहित विराजमान और ऐश्वर्य्य से शोभित हुए राज्य के आनन्द की वृद्धि के लिए पुरुषार्थ करो जिससे शत्रुजन आप लोगों का तिरस्कार करने को समर्थ न हो सकें ॥४॥

ऋ॒भुमृ॑भुक्षणो र॒यिं वाजे॑ वा॒जिन्त॑मं॒ युज॑म् ।
इन्द्र॑स्वन्तं हवामहे सदा॒सात॑ममश्विन॑म् ॥ ५ ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (**ऋभुक्षणः**) बड़े विद्वान् ! आप लोग (**वाजे**) संग्राम में (**ऋभुम्**) बुद्धिमान् (**वाजिन्तमम्**) प्रशंसित अतीव बहुत घोड़ों से युक्त (**युजम्**) समाधान करने को योग्य (**इन्द्रस्वन्तम्**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त स्वामी के सहित (**सदासातमम्**) सदा अतिशय करके विभाग करने योग्य (**अश्विनम्**) बहुत उत्तम घोड़े आदि से युक्त (**रयिम्**) धन को हम लोग (**हवामहे**) ग्रहण करते हैं वैसे ही इसको आप लोग बुलावें, ग्रहण करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । आप लोग स्पर्द्धा से परस्पर बल बढ़ाके संग्राम मे शत्रुओ को जीतो ॥ ५ ॥

सेदृ॑भवो॒ यमव॑थ यू॒यमिन्द्र॑श्च॒ मर्त्य॑म् ।
स धी॒भिर॑स्तु॒ सनि॑ता मे॒धसा॑ता॒ सो अर्व॑ता ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (**ऋभवः**) बुद्धिमान् जनो ! (**यूयम्**) आप लोग (**यम्**) जिस (**मर्त्यम्**) मनुष्य की (**अवथ**) रक्षा करते हो और (**इन्द्रः**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य-युक्त राजा (**च**) भी रक्षा करता है (**सः, इत्**) वही (**धीभिः**) बुद्धियो से युक्त (**सः**) वह (**सनिता**) सत्य और असत्य का विभाग करनेवाला और (**सः**) वह (**अर्वता**) घोड़ा आदि से (**मेधसाता**) शुद्ध संग्राम में विजयी (**अस्तु**) होवे ॥६॥

भावार्थ—हे राजसेनाजनो ! जो आप लोगो के अध्यक्ष राजा और बुद्धिमान् रक्षक होवें तो आप लोगो का सर्वत्र विजय और सुख निरन्तर बढ़े ॥ ६ ॥

वि नो॑ वाजा ऋभुक्षणः प॒थश्चि॑तन॒ यष्ट॑वे ।
अ॒स्मभ्यं॑ सूरयः स्तु॒ता विश्वा॒ आशा॑स्तरी॒षणि॑ ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (**वाजाः**) प्रशंसित (**ऋभुक्षणः**) बड़े (**स्तुताः**) स्तुति किये गये (**सूरयः**) विद्वानो ! आप लोग (**अस्मभ्यम्**) हम लोगो के लिए (**यष्टवे**) मिलने को (**पथः**) मार्ग (**वि, चितन**) जनाइये जिस से (**तरीषणि**) दुःख के पार उतरने के सामर्थ्य को प्राप्त होकर (**नः**) हम लोगो की (**विश्वाः**) सम्पूर्ण (**आशाः**) इच्छायें पूर्ण होवें ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य बाल्यावस्था से लेकर विद्वानो की शिक्षा का ग्रहण करें उनकी सम्पूर्ण इच्छाएँ पूर्ण होवे ॥ ७ ॥

तं नो॑ वाजा ऋभुक्षण॒ इन्द्र॒ नास॑त्या र॒यिम् ।
सम॑श्वं॑ चर्ष॒णिभ्य॒ आ पु॒रु श॑स्त म॒घत्त॑ये ॥ ८ ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (**वाजाः**) देनेवाले ! (**ऋभुक्षणः**) बड़े आप लोग जैसे (**नासत्या**) असत्याचार से रहित सभा और न्याय के ईश वैसे (**नः**) हम (**चर्षणिभ्यः**) मनुष्यो के अर्थ (**मघत्तये**) श्रेष्ठ धन की प्राप्ति के लिए (**तम्**) उस (**अश्वम्**) बड़े (**रयिम्**) धन को (**पुरु**) बहुत (**सम्**) उत्तम प्रकार (**आ**) ग्रहण करिये । और हे (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त ! आप इन लोगों की (**शस्त**) प्रशंसा कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो को चाहिए कि राजा और राजपुरुषो से धन की उन्नति सदा करें जिस से बहुत प्रकार का सुख होवे ॥ ८ ॥

इस सूक्त मे विद्वानो के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह सैंतीसवां सूक्त और दसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ दशर्चस्याष्टत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । १ द्यावापृथिव्यौ देवते । २—१० दधिक्रा देवताः । १, ४ विराट् पङ्क्तिः । ६ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २, ३ त्रिष्टुप् । ५, ८—१० निचृत् त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

अब दश ऋचावाले अड़तीसवें सूक्त का आरम्भ है, इस में कैसा राजा हो, इस विषय को कहते हैं—

उतो हि वां दात्रा सन्ति पूर्वा या पूरुभ्यस्त्रसदस्युर्नितोशे ।
क्षेत्रासां ददथुरुर्वरासां घनं दस्युभ्यो अभिभूतिमुग्रम् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! आप और सेनापति (त्रसदस्युः) डरते हैं दस्यु जिस से ऐसे होते हुए जो (हि) जिस कारण (वाम्) आप दोनों के भृत्य (सन्ति) हैं उन (पूरुभ्यः) बहुतों से (या) जो (पूर्वा) प्रथम वर्त्तमान (दात्रा) दाता जन आप दोनों (नितोशे) अत्यन्त वध करने में (क्षेत्रासाम्) क्षेत्रों को विभाग करने और (उर्वरासाम्) बहुत श्रेष्ठ पदार्थों से युक्त भूमि सेवने वाले को (ददथु) देते हो (उतो) और (दस्युभ्य) साहस कर्म्मवाले चोरों के लिए (उग्रम्) कठिन (अभिभूतिम्) पराजय को और उस के साथ चोरों के लिए (घनम्) जिस से नाश करता है उस का प्रहार करके कठिन पराजय को देते हो इससे सत्कार करने योग्य हो ॥ १ ॥

भावार्थ—हे राजा और सेना के अध्यक्ष ! आप दोनों उत्तम प्रकार शिक्षित भृत्यों को रख दुष्टों का नाश करके और विजय को प्राप्त होकर न्याय से राज्य का पालन करो ॥ १ ॥

उत वाजिनं पुरुनिष्षिध्वानं दधिक्रामु ददथुर्विश्वकृष्टिम् ।
ऋजिप्यं श्येनं प्रुषितप्सुमाशुं चर्कृत्यमर्यो नृपतिं न शूरम् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे सभा और सेना के ईश ! आप दोनों जिस के लिए (अर्य्यः) स्वामी (शूरम्) वीर (नृपतिम्) मनुष्यों के पालन करनेवाले राजा के (न) सदृश (वाजिनम्) बहुत वेगयुक्त (पुरुनिष्षिध्वानम्) बहुत शत्रुओं के हटाने वाले (दधिक्राम्) धारण करनेवाली अधिकता के सहित वर्त्तमान (विश्वकृष्टिम्) सब मनुष्य जीतने जिस से उस (उत) और बहुत वेगवाले (उ) और (ऋजिप्यम्) सरलों के पालन करनेवालों में श्रेष्ठ (प्रुषितप्सुम्) जो श्रेष्ठ पदार्थों को भक्षण करने वाले (श्येनम्) शीघ्रगामी बाज के सदृश (चर्कृत्यम्) निरन्तर करने योग्य (आशुम्) पूर्ण मार्ग को व्याप्त होनेवाले को (ददथुः) देवें वह विजय के लिए समर्थ होवे ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो राजजन शिल्पविद्या से उत्पन्न शस्त्र, अस्त्र और उत्तम प्रकार शिक्षित चार अङ्गों से युक्त सेना को सिद्ध करें तो कहीं भी पराजय न होवे ॥ २ ॥

यं सीमनु प्रवतेव द्रवन्तं विश्वः पूरुर्मदति हर्षमाणः ।
पड्भिर्गृध्यन्तं मेधयुं न शूरं रथतुरं वातमिव ध्रजन्तम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! (यम्) जिस को (सीम्) सब ओर से जल (प्रवतेव) नीचे स्थल से जैसे वैसे (द्रवन्तम्) जाते हुए को (अनु) पीछे (विश्व) सब (हर्षमाण) हर्षित होता हुआ (पूरु) मनुष्यमात्र (मदति) आनन्दित होता है वह (मेधयुम्) हिंसा की कामना करते और (शूरम्) वीर पुरुष के (न) सदृश (ध्रजन्तम्) चलते हुए (वातमिव) वायु के सदृश (रथतुरम्) रथ के द्वारा शीघ्र चलनेवाले (पड्भिः) पैरों से (गृध्यन्तम्) अभिकांक्षा करते हुए शत्रु के मारने को समर्थ होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जिस राजा के राज्य में नीचा स्थान जल के सदृश और सब प्रकार से गुणों का पात्र एक होता है उस के समीप योग्य पुरुष रहते हैं ॥ ३ ॥

यः स्मारुन्धानो गध्या समत्सु सनुतरश्चरति गोषु गच्छन् ।
आविर्ऋजीको विदथा निचिक्यत्तिरो अरतिं पर्याप आयोः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! (यः) जो (सनुतर) सनातन विद्या युक्त (समत्सु) संग्रामों में (गध्या) मिले हुए (आरुन्धानः) सब ओर से शत्रुओं को रोकता हुआ (आविर्ऋजीकः) प्रसिद्ध सरल अर्थात् कपटरहित स्वभाववाला (गोषु) पृथिवियों में (गच्छन्) चलता और (निचिक्यत्) देखता हुआ शत्रुओं का (तिरः) तिरस्कार और (अरतिम्) दुःख का निवारण करके (परि, चरति) घूमता है (आपः) जलों के सदृश (आयोः) अवस्था के (विदथा) विज्ञानों को प्राप्त होता है (स्म) उसी को आप अधिकारी करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जो जन अपने राज्य में शान्ति करने, शत्रुओं के राज्य में भय देने और बलयुक्त अधिक अवस्था वाले प्रसिद्ध कीर्तियुक्त होवें उन्हीं को शत्रुओं के जीतने के लिए नियुक्त करो ॥ ४ ॥

उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुमनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु ।
नीचायमानं जसुरिं न श्येनं श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम् ॥ ५ ॥ ११ ॥

पदार्थ—(क्षितयः) मनुष्य (भरेषु) संग्रामों में जिस (एनम्) इस राजा को (वस्त्रमथिम्) वस्त्रों को मथने वाले (तायुम्) चोर को (न) जैसे वैसे (अनु, क्रोशन्ति) पीछे कोशते रोते हैं (जसुरिम्) प्रयत्न करते हुए (श्येनम्) पक्षिविशेष अर्थात् बाज के (न) सदृश (नीचा) नीच कर्मों को (अयमानम्) प्राप्त होने वाले को और (पशुमत्) पशुओं से युक्त (श्रवः) अन्न वा श्रवण को (च) भी (अच्छ) उत्तम प्रकार (यूथम्, च) तथा समूह के पीछे कोशते रोते हैं (उत, स्म) वही तो शीघ्र नष्ट होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो राजा प्रजापालन के बिना कर लेता है, जिस राजा की प्रजा को दुष्ट जन दुःख देते हैं, और जो राजा आप नीच कर्म करनेवाला, बाज पक्षी के सदृश हिंसक, पशु के सदृश मूर्ख और जिस राजा की सेना चोर के सदृश वर्त्तमान है उसका शीघ्र विनाश होता है यह निश्चय है ॥ ५ ॥

उत स्माशु प्रथमः सरिष्यन्नि वेवेति श्रेणिभी रथानाम् ।
स्रजं कृण्वानो जन्यो न शुभ्वा रेणुं रेरिहत्किरणं ददश्वान् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (आशु) इन सेनाओं में (रथानाम्) वाहनों की (श्रेणिभिः) पङ्क्तियों से (स्रजम्) माला के सदृश सेना को (कृण्वानः) करता और (प्रथम) प्रथम (सरिष्यन्) चलनेवाला होता हुआ (नि, वेवेति) जाता है (उत) और (शुभ्वा) उत्तम प्रकार शोभित (जन्यः) उत्पन्न होनेवाले के (न) सदृश और (किरणम्) ज्योति को (ददश्वान्) देनेवाले वायु के सदृश (रेणुम्) धूलि को (रेरिहत्) निरन्तर उड़ाता है (स्म) वही राजा सब ओर से वृद्धि को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो न्याय से प्रजाओं का पालन करता हुआ सेनाओं में अग्रगामी धनुर्वेद का जाननेवाला विजयी चतुर विद्वान् धार्मिक और उत्तम सहाययुक्त राजा होवे वही यशस्वी होकर महाराज होवे ॥ ६ ॥

उत स्य वाजी सहुरिर्ऋतावा शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
तुरं यतीषु तुरयन्नृजिप्योऽधि भ्रुवोः किरते रेणुमृञ्जन् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (स्य) वह (वाजी) विज्ञानयुक्त (सहुरिः) सहनेवाला (ऋतावा) सत्य आचरण से युक्त (यतीषु) नियत सेनाओं में (तुरम्) शीघ्र करनेवाले (तुरयन्) शीघ्र चलाता हुआ (उत) भी (ऋजिप्यः) सरल गतिवालों में श्रेष्ठ (तन्वा) शरीर से (शुश्रूषमाणः) सेवन करता और (ऋञ्जन्) प्रसिद्ध करता हुआ (समर्ये) सङ्ग्राम में (भ्रुवोः) भौंओं की (रेणुम्) धूलि को (अधि, किरते) उड़ाता है वह राजा विजयी और सत्कार करने योग्य होता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—वही राज्य करने योग्य होवे जो विद्वान् सबको सहनेवाला सत्य का सेवी उत्तम सेना और सरलस्वभावयुक्त होवे ॥ ७ ॥

उत स्मास्य तन्यतोरिव द्योर्ऋघायतो अभियुजो भयन्ते ।
यदा सहस्रमभि षीमयोधीद्दुर्वर्तुः स्मा भवति भीम ऋञ्जन् ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (स्म) ही (भीमः) भयङ्कर (ऋञ्जन्) विजय को प्रसिद्ध करता हुआ (भवति) होता है जो (यदा) जब (सहस्रम्) सङ्ख्यारहित (सीम्) सब प्रकार (अभि, अयोधीत्) युद्ध करता है (अस्य, स्म) इसी (दुर्वर्तुः) दुःख से वर्त्तमान (ऋघायत) हिंसा करते हुए (उत) और (अभियुजः) अभियोग करने हुए के समीप से (द्योः) प्रकाशमान (तन्यतोरिव) बिजुली के सदृश सब लोग (भयन्ते) भय करते हैं तभी राजा का प्रताप प्रवृत्त होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो राजा बिजुली के सदृश दुष्टों का नाश करके धार्मिकों का सत्कार करता है वह एक भी सङ्ख्यारहित वीरों के साथ युद्ध करने योग्य होता है और जब यह राजा न्याय से प्रकट दण्ड देनेवाला होवे तब सब दुष्ट जन डर के छिप जाते हैं ॥ ८ ॥

उत स्मास्य पनयन्ति जना जूतिं कृष्टिप्रो अभिभूतिमाशोः ।
उतैनमाहुः समिथे वियन्तः परा दधिक्रा असरत्सहस्रैः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (जनाः) राजा और प्रजाजन (अस्य) इस (कृष्टिप्रः) मनुष्यों को दूतचार अर्थात् गुप्त दूत आदि से पालना करनेवाले (आशोः) सम्पूर्ण विद्याओं में व्याप्त राजा के सङ्ग्राम में (अभिभूतिम्) तिरस्कार और (जूतिम्) न्याय के वेग को (उत) तर्क वितर्क के साथ (पनयन्ति) व्यवहार करते वा प्रशंसा करते हैं (उत) और भी (एनम्) इसको (समिथे) सङ्ग्राम में (वियन्तः) विशेष करके प्राप्त होते हुए (आहु) कहते हैं और जो (दधिक्राः) धारण करने वालों के साथ चलनेवाला (सहस्रैः) असङ्ख्यों के साथ (परा, असरत्) उत्कृष्ट चलता है (स्म) वही जीत सके ॥ ९ ॥

भावार्थ—उसी राजा की विद्वान् जन प्रशंसा करते हैं जो प्रजा के पालन में तत्पर हुआ सबके व्यवहारों को सिद्ध करता है ॥ ९ ॥

आ दधिक्राः शवसा पञ्च कृष्टीः सूर्यइव ज्योतिषापस्ततान ।
सहस्रसाः शतसा वाज्यर्वा पृणक्तु मध्वा समिमा वचांसि ॥ १० ॥ १२ ॥

पदार्थ—जो राजा (शवसा) बल से (सूर्यइव) सूर्य्य के सदृश (दधिक्राः) धारण करनेवालों से प्राप्त होने वाला (पञ्च) पांच (कृष्टीः) मनुष्यों को (ज्योतिषा) प्रकाश से सूर्य्य जैसे (अपः) जलों को वैसे (आ, ततान) विस्तृत,

करता है (सहस्रसाः) हजारों का विभाग करनेवाला (शतसाः) और सैकड़ों का विभागकर्त्ता वर्त्तमान (अर्वा) शीघ्र मार्गों को जानेवाला (वाजी) वेगवान् (अश्वः) सङ्ग के साथ (इमा) इन (वचांसि) वचनों का (सम्, पृणक्तु) सम्बन्ध करे वही राज्य करने के योग्य होता है ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो सूर्य्य के प्रकाश के सदृश न्याय से पाँच प्रकार की प्रजाओं का पालन करता है वह असंख्य आनन्द को प्राप्त होता है ॥ १० ॥

इस सूक्त में राजा के धर्म का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह अड़तालीसवाँ सूक्त और बारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ षडृचस्यैकोनचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः। दधिक्रा देवता। १, ३, ५ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। २, ४ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ६ अनुष्टुप् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अब छः ऋचा वाले उनतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से कैसा राजा हो इस विषय को कहते हैं—

आशुं दधिक्रां तमु नु ष्टवाम दिवस्पृथिव्या उत चर्किराम।
उच्छन्तीर्मामुषसः सूदयन्त्वति विश्वानि दुरितानि पर्षन् ॥१॥

पदार्थ—हम लोग (दिवः) प्रकाश और (पृथिव्याः) भूमि के मध्य में (तम्) उस (आशुम्) शीघ्र चलनेवाले (दधिक्राम्) धारण करने योग्य को धारण करनेवाले की (नु) तर्क वितर्क के साथ (स्तवाम) प्रशंसा करें (उत) और शत्रुओं को (उ) भी (चर्किराम) निरन्तर फेंकें और जो (माम्) मुझको (पर्षन्) सींचें उनकी (उच्छन्तीः) सेवा करती हुई (उषसः) प्रभात वेला (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुःखों वा दुष्टाचरणों को (अति, सूदयन्तु) अत्यन्त दूर करें ॥ १ ॥

भावार्थ—जो राजा हम लोगों के दुःखों को दूर करके जैसे प्रातःकाल अन्धकार को वैसे अन्याय और दुष्टों का निषेध करता है उसी की हम लोग प्रशंसा करें ॥ १ ॥

महश्चर्कर्म्यर्वतः क्रतुप्रा दधिक्राव्णः पुरुवारस्य वृष्णः।
यं पूरुभ्यो दीदिवांसं नाग्निं ददथुर्मित्रावरुणा ततुरिम् ॥२॥

पदार्थ—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु के सदृश वर्त्तमान सभा और सेना के ईश आप दो जन (पूरुभ्यः) बहुतों से (यम्) जिस (ततुरिम्) शीघ्रता करते हुए (दीदिवांसम्) प्रकाशमान (अग्निम्) अग्नि के (न) सदृश विनय को (ददथुः) देते हैं उस (पुरुवारस्य) बहुत श्रेष्ठजनों से स्वीकार किये गये और (दधिक्राव्णः) विद्या की धारणा करनेवालों की कामना करने और (वृष्णः) सुखों के वर्षानेवाले के जो (क्रतुप्राः) बुद्धि के पूर्ण करनेवाले उन (महः) बड़े (अर्वतः) घोड़ों के सदृशों को और कार्य्यों को मैं (चर्कर्मि) निरन्तर करता हूँ ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो राजा बुद्धिवाले और बुद्धि के देनेवालों को सदा धारण करता है वह सूर्य्य के सदृश प्रतापी होता हुआ शीघ्र अपने कार्य्य को सिद्ध कर सकता है ॥ २ ॥

अब प्रजाकृत्य को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यो अश्वस्य दधिक्राव्णो अकारीत्समिद्धे अग्ना उषसो व्युष्टौ।
अनागसं तमदितिः कृणोतु स मित्रेण वरुणेना सजोषाः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! (यः) जो विद्वान् (दधिक्राव्णः) धारण करनेवालों को क्रमण करानेवाले (अश्वस्य) बड़े और विद्या में अर्थात् पदार्थविद्या के गुणों में व्याप्त (उषसः) प्रातःकाल की (व्युष्टौ) अनेक प्रकार की सेवा में और (समिद्धे) बहुत प्रदीप्त (अग्नौ) बिजुली रूप अग्नि में (अनागसम्) अपराधरहित को (अकारीत्) करता है (तम्) उसको (अदितिः) माता व पिता निरपराध (कृणोतु) करे (सः) सो भी (मित्रेण) मित्र (वरुणेन) श्रेष्ठ के साथ (सजोषाः) तुल्य प्रीति सेवनेवाला हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! जो अग्नि में जल आदि पदार्थों के संयोग करने को जाने और जो सज्जनों के साथ मित्रता कर और प्रातःकाल उठके श्रेष्ठ कर्मों को करता है वही सर्वत्र प्रसन्न होता है यह जानो ॥ ३ ॥

दधिक्राव्ण इष ऊर्जो महो यदमन्महि मरुतां नाम भद्रम्।
स्वस्तये वरुणं मित्रमग्निं हवामह इन्द्रं वज्रबाहुम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! हम लोग (स्वस्तये) सुख के लिए (यत्) जिस (महः) बड़ी (दधिक्राव्णः) धारण करनेवालों के चलानेवाले (इषः) अन्न आदि की (ऊर्जः) पराक्रम की (मरुताम्) और मनुष्यों के (भद्रम्) कल्याण करनेवाली (नाम) संज्ञा को (अमन्महि) जानें और (वरुणम्) जल के सदृश शान्ति आदि गुणों से युक्त (मित्रम्) प्राणों के सदृश सब के प्रिय (अग्निम्) बिजुली के सदृश सम्पूर्ण गुणों के प्रकाश करनेवाले (वज्रबाहुम्) शस्त्र और अस्त्रों को फेंकनेवाले बाहुयुक्त (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्यवान् की (हवामहे) प्रशंसा करें वा ग्रहण करें उस संज्ञा और ऐश्वर्य्यवान् को आप लोग जान के अन्यों के प्रति प्रशंसा करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो अन्न आदि सत्कार और भोजन के समय की रीतियों को जान और स्वयं आचरण कर के अन्यों को उपदेश देते और राजा के साथ विरोध नहीं करके प्रजा के साथ मित्र के सदृश आचरण करते हैं वे ही प्रशंसा करने योग्य होते हैं ॥ ४ ॥

अब राजप्रजाकृत्य को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

इन्द्रमिवेदुभये वि ह्वयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः।
दधिक्रामु सूदनं मर्त्याय ददथुर्मित्रावरुणा नो अश्वम् ॥५॥

पदार्थ—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु के सदृश राजा के प्रधान और मन्त्री जो (उदीराणाः) उत्तमता को प्राप्त (यज्ञम्) न्याय व्यवहार को (उपप्रयन्तः) प्राप्त होते हुए (उभये) राजा और प्रजाजन (मर्त्याय) अन्य मनुष्य और (नः) हम लोगों के लिए (दधिक्राम्) न्याय धारण करनेवालों की कामना करनेवाले (सूदनम्) जलादि बहने (अश्वम्) और शीघ्र सुख करनेवाले बोध की (वि) विशेष करके (ह्वयन्ते) प्रशंसा करें और उन उत्तम पदार्थों को (ददथुः) तुम देओ वे आप (इन्द्रमिव) बिजुली के सदृश (इत्, उ) ही कृतज्ञ होओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो राजा और प्रजाजन पक्षपात से रहित न्याययुक्त धर्म का आचरण करते हैं वे शत्रुरहित हुए सबके प्रिय होते हैं ॥५॥

दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।
सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥६॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! जो (नः) हम लोगों के (मुखा) मुख के सहचरित श्रवण आदि इन्द्रियों के प्रति (सुरभि) सुगन्ध आदि गुणों से युक्त द्रव्य को (करत्) करे और (नः) हम लोगों की (आयूंषि) अवस्थाओं को (प्र, तारिषत्) बढ़ावे उस (दधिक्राव्णः) धर्म को धारण करने वा चलनेवाले (अश्वस्य) सम्पूर्ण उत्तम गुणों में व्याप्त (वाजिनः) विज्ञानवाले (जिष्णोः) जयशील राजा की जिस प्रकार मैं आज्ञा को (अकारिषम्) करूँ वैसे ही आप लोग भी करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जो राजा सुगन्ध आदि से युक्त घृत आदि के होम से वायु वृष्टि जलादि को पवित्र कर सब के रोगों का निवारण करके अवस्थाओं को बढ़ाता है और प्रयत्न से सब प्रजाओं का पुत्र के सदृश पालन करता है वह हम लोगों को पिता के सदृश सत्कार करने योग्य है ॥ ६ ॥

इस सूक्त में राजा और प्रजा के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिए ॥

यह उनतालीसवाँ सूक्त और तेरहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ पञ्चर्चस्य चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः। १—४ दधिक्रावा। ५ सूर्य्यश्च देवता। १ निचृत् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। ३ स्वराट् त्रिष्टुप्। ४ भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ५ निचृत् जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अब पाँच ऋचावाले चालीसवें सूक्त का आरम्भ है, इसमें राजा और प्रजा के कृत्य को कहते हैं—

दधिक्राव्ण इदु नु चर्किराम विश्वा इन्मामुषसः सूदयन्तु।
अपामग्नेरुषसः सूर्य्यस्य बृहस्पतेराङ्गिरसस्य जिष्णोः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! जैसे (विश्वाः) सम्पूर्ण (उषसः) प्रातर्वेला (दधिक्राव्णः) वायु आदि के कारण को चलानेवाले की अवस्था को और (माम्) मुझ को (सूदयन्तु) वर्षावें बढ़ावें (इत्, उ) वैसे ही हम लोग संपूर्ण प्रजाओं को (चर्किराम) कार्य्य-संलग्न करावें और जैसे संपूर्ण (उषसः) प्रातःकाल (अपाम्) जलों (अग्नेः) बिजुली (सूर्य्यस्य) सूर्य्य (बृहस्पतेः) बड़ों के पालन करनेवाले (आङ्गिरसस्य) प्राणों में उत्पन्न (जिष्णोः) और जयशील राजा के दोषों को प्रकट करें वैसे (इत्) ही हम लोग सब प्रजाओं को उत्तम कर्म्मों में (नु) शीघ्र संलग्न करावें ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजन् वा राजपुरुषो! आप लोग जैसे प्रातर्वेला सब को चैतन्य करती है वैसे न्याय से सम्पूर्ण प्रजाओं को चैतन्य करो और जैसे प्रातःकाल का निमित्त सूर्य्य और सूर्य्य का निमित्त बिजुली, बिजुली का निमित्त वायु, वायु का कारण प्रकृति और प्रकृति का अधिष्ठाता परमेश्वर है वैसे ही प्रजापालननिमित्त भृत्य, भृत्यनिमित्त अध्यक्ष, अध्यक्षों का निमित्त प्रधान और प्रधान का निमित्त राजा होवे ॥ १ ॥

सत्वा भरिषो गविषो दुवन्यसच्छ्रवस्यादिष उषसंस्तुरण्यसत् ।
सत्यो द्रवो द्रवरः पतङ्गरो दधिक्रावेषमूर्जं स्वर्जनत् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**सत्वा**) प्राप्त करनेवाला (**भरिष:**) धारण और पोषण मे चतुर (**गविष**) गौओ की ओर (**दुवन्यसत्**) सेवा की इच्छा करता हुआ तथा (**इष**) इच्छाओ और (**उषस:**) प्रात कालो को (**तुरण्यसत्**) अपनी शीघ्रता को चाहता हुआ (**श्रवस्यात्**) अपने श्रवण की इच्छा करे तथा जो (**सत्य:**) श्रेष्ठो मे श्रेष्ठ (**द्रव**) स्नेही (**द्रवर**) द्रव मे रमने वा द्रव अर्थात् गीले पदार्थों को देने और (**पतङ्गर**) अग्नि म रमता वा अग्नि को देनेवाला (**दधिक्रावा**) धारण करने योग्य वाहन पर जाता (**इषम्**) अन्न (**ऊर्जम्**) पराक्रम और (**स्व**) सुख का (**जनत्**) उत्पन्न करे वही राजा आप लोगो का सत्कार करने योग्य है ॥ २ ॥

भावार्थ—प्रजाजनो के साथ जो राजा सत्यवादी जितेन्द्रिय सब के सुख की इच्छा करता हुआ न्यायकारी पिता के सदृश वर्त्ताव करे वही प्रजाओं का पालन कर सकता है ॥ २ ॥

उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनु वाति प्रगर्धिनः ।
श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः ॥३॥

पदार्थ—जो जन (**अङ्कसम्**) लक्षणो को (**ध्रजत:**) वेग से जाते हुए (**प्रगर्धिन**) अत्यन्त लोभी (**श्येनस्येव**) बाज पक्षी के सदृश (**ऊर्जा**) पराक्रम से (**तरित्रत**) मार्ग के पार उतारने और (**दधिक्राव्ण**) धारण करनेवालो की धारणा करनेवाले वायु (**अस्य, उत**) और इस (**द्रवत**) दौड़ते तथा (**तुरण्यत**) शीघ्र चलते हुए की (**पर्णम्**) प्रजापालना के (**न**) सदृश और (**वे**) पक्षी के सदृश राजा की प्रजापालना के (**स्म**) ही (**परि**) सब प्रकार (**अनु, वाति**) पीछे चलता है उसके (**सह**) साथ सब मन्त्री जन सम्मति करे ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र म उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिस राजा की बाज पक्षिणी के सदृश सेना पराक्रम वाली है वह उस के द्वारा प्रजा का पालन करके डाकूचोरो का निवारण करे ॥ ३ ॥

उत स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आसनि ।
क्रतुं दधिक्रा अनु संतवीत्वत्पथामङ्कांस्यन्वापनीफणत् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**वाजी**) वेगयुक्त (**ग्रीवायाम्**) कण्ठ मे (**अपिकक्षे**) कांख मे (**आसनि**) मुख मे (**बद्ध**) बँधा और (**दधिक्रा**) धारण करने योग्यो का धारण करनेवाला हुआ (**क्षिपणिम्**) शीघ्र करनेवाले को (**अनु, तुरण्यति**) शीघ्र चलाता है (**उत**) और (**संतवीत्वत्**) बहुत बलवान् होता हुआ (**पथाम्**) मार्गों के (**अङ्कांसि**) चिह्नो को (**क्रतुम्**) बुद्धि वा कर्म के (**अनु**) पीछे (**आपनीफणत्**) अत्यन्त प्राप्त होता है (**स्य**) वह आप लोगो के कार्य्यों मे नियुक्त करने योग्य है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे सब प्रकार शोभित बन्धन से सन्नद्ध किया घोड़ा शीघ्र चलता है वैसे ही अग्नि आदि से चलाये गये वाहन से शीघ्र जाओ ॥ ४ ॥

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥५॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**शुचिषत्**) पवित्रो मे स्थित होने (**वसु**) शरीरादिको मे रहने (**अन्तरिक्षसत्**) अन्तरिक्ष वा आकाश मे स्थित होने (**होता**) दान वा ग्रहण करने और (**वेदिषत्**) वेदी पर स्थित होनेवाला (**अतिथि**) जिसकी कोई तिथि नियत न हो वह (**दुरोणसत्**) गृह मे (**नृषत्**) मनुष्यो मे (**वरसत्**) श्रेष्ठो मे (**व्योमसत्**) अन्तरिक्ष मे (**ऋतसत्**) और सत्य मे स्थित होनेवाला (**अब्जा**) जलो से उत्पन्न (**गोजा**) वा पृथिवी आदिको मे उत्पन्न (**ऋतजा**) तथा सत्य से और (**अद्रिजा**) मेघो से उत्पन्न हुआ (**हंस:**) पापो को हन्ता है और (**ऋतम्**) सत्य का आचरण करता है वही जगदीश्वर का प्रिय होता है ॥५॥

भावार्थ—जो जीव उत्तम गुण कर्म और स्वभाववाले ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल वर्त्ताव करते हैं वे ही परमेश्वर के साथ आनन्द को भोगते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त मे राजा और प्रजा के कृत्यो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह चालीसवां सूक्त और चौदहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथैकादशर्चस्यैकाधिकचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषि. । इन्द्रावरुणौ देवते । १, ५, ६, ११ त्रिष्टुप् । २, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ६ विराट् त्रिष्टुप् छन्द । धैवतः स्वर. । ७ पङ्क्ति । ८, १० स्वराट् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

अब ग्यारह ऋचावाले इकतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र से अध्यापक और उपदेशक के विषय को कहते हैं—

इन्द्रा को वां वरुणा सुम्नमाप स्तोमो हविष्माँ अमृतो न होता ।
यो वां हृदि क्रतुमाँ अस्मदुक्तः पस्पर्शदिन्द्रावरुणा नमस्वान् ॥१॥

पदार्थ—हे (**इन्द्रा**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त (**वरुणा**) श्रेष्ठ आचरण करनेवाले अध्यापक और उपदेशक जन (**वाम्**) तुम दोनो से (**क:**) कौन (**स्तोम:**) प्रशसा (**सुम्नम्**) सुख को (**हविष्मान्**) बहुत पदार्थों से कारण (**अमृत:**) नाश से रहित और (**होता**) दाता जन के (**न**) सदृश (**आप**) प्राप्त होवे । हे (**इन्द्रावरुणा**) प्राण और उदान वायु के सदृश प्रिय बली जनो (**य:**) जो (**अस्मत्**) हम लोगो से (**उक्त**) कहा गया (**नमस्वान्**) बहुत अन्न आदि वा सत्कारों युक्त (**क्रतुमान्**) बहुत श्रेष्ठ बुद्धि वाला (**वाम्**) आप दोनो के (**हृदि**) हृदय मे (**पस्पर्शत्**) स्पर्श करे ॥ १ ॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको ! जो दाता जन के सदृश पुरुषार्थी बुद्धिमान् नम्र शान्त सत्कार करनेवाले और माता पिता से उत्तम प्रकार शिक्षित होवे उन को पढ़ा और उपदेश देकर लक्ष्मीयुक्त और श्रेष्ठ करो ॥ १ ॥

अब राजा और अमात्य विषय को अगले मन्त्रो मे कहते है—

इन्द्रा ह यो वरुणा चक्र आपी देवौ मर्तः सख्याय प्रयस्वान् ।
स हन्ति वृत्रा समिथेषु शत्रूनवोभिर्वा महद्भिः स प्र शृण्वे ॥२॥

पदार्थ—हे (**इन्द्रा**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त (**वरुणा**) उत्तम (**आपी**) सम्पूर्ण विद्याओ को प्राप्त (**देवौ**) विद्वान् जनो ! आप लोगो के मध्य म (**य, प्रयस्वान्**) प्रयत्न करनेवाला (**मर्त**) मनुष्य (**सख्याय**) मित्रपन के लिए (**प्र, चक्रे**) उत्तमता करता है (**स, ह**) वही (**अवोभि:**) रक्षण आदिको के साथ (**वा**) वा (**स**) वह (**महद्भि**) महाशयो के साथ (**समिथेषु**) सग्रामो मे (**वृत्रा**) शत्रुओ की सेनाओ और (**शत्रून्**) शत्रुओ का (**हन्ति**) नाश करता है उस को मैं यशस्वी (**शृण्वे**) सुनता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—हे न्याय करनेवाले राजा और मन्त्रीजनो ! जो आप लोगो के सत्कार करने और शत्रुओ के जीतनेवाले महाशय अर्थात् गम्भीर अभिप्रायवाले मेल-युक्त आप लोगो की मित्रता मे प्रीतिकर्त्ता विजयी होवें उन का सत्कार कर के रक्षा करो ॥ २ ॥

इन्द्रा ह रत्नं वरुणा धेष्ठेत्था नृभ्यः शशमानेभ्यस्ता ।
यदी सखाया सख्याय सोमैः सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते ॥३॥

पदार्थ—हे (**धेष्ठा**) धाता जनो (**इन्द्रा**) राजन् (**वरुणा**) और उत्तम गुणो से युक्त प्रधान (**यदी**) यदि जिन तुम दोनो ने (**शशमानेभ्य**) प्रशसा करते हुए (**नृभ्य**) मनुष्यो के लिए (**ह**) ही (**रत्नम्**) सुन्दर धन दिया तो (**ता**) वे (**सखाया**) परस्पर मित्र आप दोनो (**सख्याय**) मित्रजन के लिए (**सुप्रयसा**) श्रेष्ठ प्रयत्न से (**सुतेभि:**) उत्पन्न किये गये (**सोमै:**) ऐश्वर्य्यों से (**मादयैते**) सुख को प्राप्त हो (**इत्था**) इस प्रकार से आप दोनो निश्चय आनन्दित हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो राजा और मन्त्रीजन उत्तम गुणवाले मनुष्यो का धन आदि से सत्कार करते है वे ही ऐश्वर्य्य को प्राप्त होकर सदा आनन्दित होते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्रा युवं वरुणा दिद्युमस्मिन्नोजिष्ठमुग्रा नि वधिष्टं वज्रम् ।
यो नो दुरेवो वृकतिर्दभीतिस्तस्मिन्मिमाथामभिभूत्योजः ॥४॥

पदार्थ—हे (**इन्द्रा**) शत्रु के नाश करनेवाले राजन् ! और (**वरुणा**) श्रेष्ठ मन्त्रीजन (**उग्रा**) तेजस्वी (**युवम्**) आप दोनो (**अस्मिन्**) इस मे (**ओजिष्ठम्**) अत्यन्त पराक्रमयुक्त (**दिद्युम्**) विद्या और न्याय के प्रकाशरूप (**वज्रम्**) वज्र को ग्रहण कर शत्रुओ का (**नि, वधिष्टम्**) निरन्तर नाश करो तथा (**य**) जो (**दुरेव:**) दु ख से प्राप्त होने योग्य (**वृकति:**) भेड़िये के सदृश शत्रुओ का नाश करनेवाला (**दभीति**) हिंसक (**न**) हम लोगो के लिए (**अभिभूति**) तिरस्कार करनेवाला (**ओज**) पराक्रम है उस को (**मिमाथाम्**) रचो और (**तस्मिन्**) उस मे विश्वास को करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे राजा और मन्त्री जनो ! आप ब्रह्मचर्य्य, विद्या, सत्याचरण और जितेन्द्रियत्वादि गुणो से अतुल बल को बढ़ाके शत्रुओ का निवारण और प्रजाओं का अच्छे प्रकार पालन करके निष्कण्टक राज्यानन्द का निरन्तर भोग करो ॥ ४ ॥

फिर अध्यापकोपदेशक विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

इन्द्रा युवं वरुणा भूतमस्या धियः प्रेतारा वृषभेव धेनोः ।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥५॥१५॥

पदार्थ—हे (**इन्द्रा**) विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त (**वरुणा**) प्रशसित गुणवान् (**प्रेतारा**) प्राप्त होनेवाले (**युवम्**) आप दोनों (**अस्या:**) इस (**धिय:**) बुद्धि के (**धेनो**) गौ के सम्बन्ध में (**वृषभेव**) बैल के सदृश (**भूतम्**) व्यतीत हुए विषय को प्राप्त होओ और जैसे (**सा**) वह (**सहस्रधारा**) असख्य प्रवाहवाली वाणी (**मही**) बड़ी (**गौ:**) चलनेवाली गौ (**पयसा**) दुग्ध आदि से (**यवसेव**) भूसा आदि के सदृश (**न:**) हम लोगो को (**गत्वी**) प्राप्त होकर (**दुहीयत्**) पूर्ण करे वैसे श्रेष्ठ गुणो से पूर्ण करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! आप सब के लिए ऐसी बुद्धि देओ कि जिससे सब पूर्ण मनोरथवाले होवें ॥ ५ ॥

अब राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तोके हिते तनय उर्वरासु सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
इन्द्रा नो अत्र वरुणा स्यातामवोभिर्दस्मा परितक्म्यायाम् ॥६॥

पदार्थ—हे (**इन्द्रा**) ऐश्वर्य्य के देनेवाले राजन् ! (**वरुणा**) श्रेष्ठ मन्त्री आप दोनो (**अत्र**) इस प्रजा मे (**परितक्म्यायाम्**) सब ओर से थोडा जिस मे उस राज्य मे (**च**) और (**उर्वरासु**) भूमियो मे (**सूर**) सूर्य्य के सदृश (**हिते**) हित के सिद्ध करनेवाले (**तोके**) शीघ्र उत्पन्न हुए पुत्र (**तनये**) कुमार (**दृशीके**) और देखने योग्य (**पौंस्ये**) पुरुषार्थ के निमित्त (**नः**) हम लोगो को (**वृषणः**) बलयुक्त करें तथा (**अवोभिः**) रक्षा आदि से (**दस्मा**) दुःख के नाश करनेवाले (**स्याताम्**) होवें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । राजपुरुष जैसे ब्रह्माण्ड मे सूर्य्य वैसे प्रजाओ मे पिता के सदृश वर्त्ताव कर और चोरों का निवारण करके न्याय से प्रजाओ का पालन करें ॥ ६ ॥

अब प्रजा विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं —

युवामिद्ध्यवसे पूर्व्याय परि प्रभूती गविषः स्वापी ।
वृणीमहे सख्याय प्रियाय शूरा मंहिष्ठा पितरेव शम्भू ॥७॥

पदार्थ—हे राजा और मन्त्रीजनो ! (**युवाम्**) तुम दोनो (**हि**) ही को (**पूर्व्याय**) पूर्व राजाओ ने किये (**अवसे**) रक्षण आदि के लिए (**इत्**) ही (**प्रभूती**) समर्थ (**स्वापी**) शयन करते हुए (**शूरा**) भयरहित और शत्रुओ के नाश करनेवाले (**मंहिष्ठा**) अत्यन्त सत्कार करने योग्य (**पितरेव**) जैसे पिता और माता वैसे (**शम्भू**) सुख को करनेवाले (**प्रियाय**) सुन्दर (**सख्याय**) मित्रपन के लिए (**गविषः**) गौओ की इच्छा करनेवाले का हम लोग (**परि, वृणीमहे**) स्वीकार करते हैं इससे आप दोनो हम लोगो के पालन करनेवाले निरन्तर होवें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे प्रजाजनो ! आप लोग उन्हीं राजा आदिकों को स्वीकार करो कि जो पिता के सदृश सब लोगो के पालन करने को समर्थ होवें ॥ ७ ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ता वां धियोऽवसे वाजयन्तीराजिं न जग्मुर्युवयूः सुदानू ।
श्रिये न गाव उप सोममस्थुरिन्द्रं गिरो वरुणं मे मनीषाः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**मे**) मेरी (**गिरः**) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियाँ और (**मनीषा**) बुद्धियाँ (**श्रिये**) धन के लिए (**गावः**) पृथिवी वा गौओ के (**न**) सदृश (**सोमम्**) ऐश्वर्य्य (**इन्द्रम्**) अत्यन्त सुख करनेवाले (**वरुणम्**) श्रेष्ठ जन के (**उप, अस्थुः**) समीप प्राप्त होवें वैसे ही जो (**वाम्**) आप दोनो की (**धियः**) बुद्धियाँ वा कर्म (**अवसे**) रक्षण आदि के लिए (**वाजयन्तीः**) जनाती हुई (**आजिम्**) सग्राम के (**न**) सदृश (**सुदानू**) उत्तम प्रकार के दाता जनो को और (**युवयूः**) आप दोनो की कामना करते हुए प्रजाजनो को (**जग्मुः**) प्राप्त होवें (**ता**) उन का आप दोनो निरन्तर पालन करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे विद्यावाली माता अपने सन्तानो को उत्तम प्रकार शिक्षा दे पालन कर और विद्या से युक्त कर के सुखी करती है वैसे ही राजा प्रजा के प्रति वर्त्ताव करे ॥ ८ ॥

अब राजा और प्रजा के कर्त्तव्य विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इमा इन्द्रं वरुणं मे मनीषा अग्मन्नुप द्रविणमिच्छमानाः ।
उपेमस्थुर्जोष्टार इव वस्वो रघ्वीरिव श्रवसो भिक्षमाणाः ॥९॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो (**इमाः**) ये प्रत्यक्ष कुमारी ब्रह्मचारिणियां (**मे**) मेरी (**मनीषा**) बुद्धियों के सदृश (**इन्द्रम्**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य (**द्रविणम्**) धन वा यश और (**वरुणम्**) श्रेष्ठ स्वभाव की (**इच्छमानाः**) इच्छा करती हुई पढाने-वालियो को (**अग्मन्**) प्राप्त होवें और (**जोष्टार इव**) सेवा करते हुए पुरुषो के समान (**वस्वः**) धन के (**उप, अस्थुः**) समीप स्थित होती (**ईम्**) और प्रत्यक्ष (**श्रवसः**) अन्न की (**रघ्वीरिव**) छोटी ब्रह्मचारिणियो के सदृश (**भिक्षमाणाः**) याचना करती हुई पढानेवाली स्त्रियो के (**उप**) समीप स्थित हुई वे ही कन्या अत्यन्त श्रेष्ठ होती हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे राजन् ! जैसे कन्याजन ब्रह्मचर्य्य से ग्रहण की गई विद्या और उत्तम शिक्षा से यशयुक्त और विद्यावाली होकर अपने अनुकूल पतियों को प्राप्त होकर सदा आनन्दित होती है वैसे ही प्रजाओ के साथ आप और आप के साथ प्रजाजन निरन्तर आनन्द करें ॥ ९ ॥

अब प्रजाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अश्व्यस्य त्मना रथ्यस्य पुष्टेर्नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
ता चक्राणा ऊतिभिर्नव्यसीभिरस्मत्रा रायो नियुतः सचन्ताम् ॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**ता**) वे (**चक्राणा**) करते हुए दो जन (**नव्यसीभिः**) नवीन (**ऊतिभिः**) रक्षा आदि कर्मों से (**अस्मत्रा**) हम लोगो मे वर्त्तमान (**रायः**) धन के सम्बन्ध को प्राप्त होवें और (**नियुतः**) निश्चय युक्त पदार्थ (**सचन्ताम्**) सम्बद्ध होवें वैसे हम लोग (**त्मना**) आत्मा से अपने (**अश्व्यस्य**) शीघ्र चलनेवालो मे उत्पन्न हुए (**रथ्यस्य**) रमण करने योग्य वाहनो मे श्रेष्ठ (**पुष्टेः, नित्यस्य**) पुष्टि के सम्बन्ध मे नित्य वर्त्तमान (**रायः**) धन के (**पतयः**) स्वामी (**स्याम**) होवें ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो को चाहिए कि जैसे युक्त अर्थात् कार्य मे लगे हुए पुरुष सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं वैसे हम लोग सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होवें ऐसी इच्छा करें ॥ १० ॥

फिर राजप्रजाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ नो बृहन्ता बृहतीभिरूती इन्द्र यातं वरुण वाजसातौ ।
यद्दिद्यवः पृतनासु प्रक्रीळान्तस्य वां स्याम सनितार आजेः ॥११॥१६॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) दुष्टो के दमन करनेवाले राजन् और (**वरुण**) सेना के ईश ! (**बृहन्ता**) श्रेष्ठ गुणो से बडे आप दोनो (**बृहतीभिः**) बडी (**ऊती**) रक्षा आदिको से (**वाजसातौ**) सङ्ग्राम मे (**नः**) हम लोगो को (**आ**) सब ओर से (**यातम्**) प्राप्त हूजिए (**यत्**) जो (**दिद्यवः**) विद्या और विनय से प्रकाशमान तेजस्वी (**तस्य**) उस (**आजेः**) सङ्ग्राम के (**सनितारः**) विभाग करनेवाले हम (**पृतनासु**) सेनाओ से (**प्रक्रीळान्**) उत्तम क्रीडा अर्थात् विहारो को प्राप्त होकर (**वाम्**) आप दोनो से विहार को प्राप्त हुए (**स्याम**) होवें उन हम लोगो का आप दोनो सत्कार करें ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जैसे हम लोग आप के प्रति प्रीति से वर्त्ताव करें वैसा ही आप को भी चाहिए कि हम लोगो से वर्त्ताव करें ॥ ११ ॥

इस सूक्त मे अध्यापक, उपदेशक, राजा, प्रजा और मन्त्री के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त से अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह इकतालीसवां सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ दशर्चस्य द्विचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य । त्रसदस्युः पौरुकुत्स्य ऋषिः । १—६ आत्मा । ७—१० इन्द्रावरुणौ देवते । १—६, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् । ८ भुरिक् त्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब दश ऋचा वाले बयालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में राजविषय को कहते हैं—

मम द्विता राष्ट्रं क्षत्रियस्य विश्वायोर्विश्वे अमृता यथा नः ।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (**यथा**) जैसे (**मम**) मुझ (**विश्वायोः**) पूर्ण अवस्थावाले (**क्षत्रियस्य**) क्षत्रिय के (**द्विता**) दो का होना तथा (**विश्वे**) सम्पूर्ण (**अमृताः**) नाश से रहित जन (**नः**) हम लोगो के (**राष्ट्रम्**) राज्य (**क्रतुम्**) और बुद्धि को (**सचन्ते**) सम्बन्धयुक्त करते हैं और (**वरुणस्य**) श्रेष्ठ (**कृष्टेः**) खींचते हुए (**उपमस्य**) उपमायुक्त (**वव्रेः**) स्वीकार करनेवाले मुझ जन की बुद्धि को (**देवाः**) प्रकाशमान जन मेलते है वैसे ही इन मे मैं (**राजामि**) शोभित होता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! इस ससार मे स्वामी और स्व अर्थात् अपना ये दो ही पदार्थ वर्त्तमान हैं और जिस देश मे दीर्घकालपर्यन्त जीवने और न्याययुक्त स्वभाव वाले धार्मिक मन्त्री जन सब प्रकार के गुणग्रहणकर्त्ता श्रेष्ठ उपमा से युक्त वर्त्तमान हैं वहां ही रहता हुआ सज्जन सुख का अत्यन्त भोग करता है ॥ १ ॥

अब ईश्वरविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अहं राजा वरुणो मह्यं तान्यसुर्याणि प्रथमा धारयन्त ।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे जो (**वरुण**) सम्पूर्ण उत्तम प्रबन्धो का कर्त्ता (**राजा**) प्रकाशमान (**अहम्**) मै जगदीश्वर (**वरुणस्य**) उत्तम सम्बन्ध मे और (**वव्रेः**) स्वीकार करने योग्य (**कृष्टेः**) मनुष्य के सम्बन्ध मे तथा (**उपमस्य**) उपमायुक्त जगत् के बीच मे (**राजामि**) प्रकाशित होता हूँ उस (**मह्यम्**) मेरे लिए (**देवा**) विद्वान् जन तृप्त होते है तथा जो (**प्रथमा**) आदि से वर्त्तमान (**असुर्याणि**) मेघादिकों के चिह्न (**तानि**) उनको (**धारयन्त**) धारण करते हैं और (**क्रतुम्**) बुद्धि को (**सचन्ते**) प्राप्त होते हैं वैसे तुम लोग भी आचरण करो ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सर्वत्र व्याप्त, बुद्धि और धन के देनेवाले जगत् के स्वामी मुझ परमात्मा को भजते हैं वे सब सुखों को भजते है ॥ २ ॥

अहमिन्द्रो वरुणस्ते महित्वोर्वी गभीरे रजसी सुमेके ।
त्वष्टेव विश्वा भुवनानि विद्वान्त्समैरयं रोदसी धारयं च ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**इन्द्र:**) अत्यन्त ऐश्वर्य्यवान् (**वरुण:**) सब से उत्तम (**अहम्**) अतीव व्याप्त मैं (**विद्वान्**) सकलविद्यावेत्ता (**त्वष्टेव**) उत्तम शिल्पी के सदृश (**गभीरे**) विस्तारयुक्त (**सुमेके**) सुन्दर गुण से रचे और उत्तम प्रकार फैलाये गये (**रजसी**) सूर्य्य और पृथिवी को (**महित्वा**) पूजित कर (**ते**) उन (**उर्वी**) बहुत पदार्थों को धारण करनेवाले (**रोदसी**) सूर्य्य और पृथिवी लोकों को रच के यहाँ (**विश्वा**) सब (**भुवनानि**) लोकों को (**सम्**) एक होने में (**ऐरयम्**) प्रेरणा करूँ (**धारयम्, च**) और धारण करूँ वा धारण कराऊँ यह जानो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे चतुर पण्डित पूर्ण विद्यावान् शिल्पी जन उत्तम वस्तुओं को रचते हैं वैसे ही मुझ से विचित्र उत्तम जगत् रचा गया धारण किया जाता है और जैसे मैंने रचा वैसे अन्य जीव का सामर्थ्य रचने का नहीं है किन्तु मेरे किये हुए कार्य्य से कुछ ग्रहण कर के अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार रचते हैं यह जानना चाहिए ॥ ३ ॥

अहमपो अपिन्वमुक्षमाणा धारयं दिवं सदन ऋतस्य ।

ऋतेन पुत्रो अदितेर्ऋतावोत त्रिधातु प्रथयद्वि भूम ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**अहम्**) मैं परमात्मा ही (**ऋतस्य**) सत्य प्रकृतिनामक के (**सदने**) सदन में अर्थात् सब के ठहरने के लिए जो ममार उस में (**दिवम्**) बिजुली का (**उक्षमाणा**) सेवा करते हुए (**अप**) जलों वा अन्तरिक्ष की (**अपिन्वम्**) सेवा करता हूँ और (**ऋतेन**) सत्य कारण से (**अदिते**) खण्डरहित अन्तरिक्ष का (**ऋतावा**) सत्य से युक्त (**पुत्र**) पुत्र के सदृश वर्त्तमान (**उत**) निश्चय से (**भूम**) अनेक प्रकार के (**त्रिधातु**) तीन अर्थात् सत्त्वगुण रजोगुण और तमोगुण धारण करनेवाले जिस में उस सम्पूर्ण जगत् को (**वि, प्रथयत्**) विविध प्रकट कर उसको मैं (**धारयम्**) धारण करूँ ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! मेरे बिना इस संसार का धारण करने वाला अन्य कोई भी नहीं है और जैसा तीन अर्थात् सत्त्वादिगुणमय कारण है वैसा ही इस कार्य्य को देखो ॥ ४ ॥

मां नरः स्वश्वा वाजयन्तो मां वृताः समरणे हवन्ते ।

कृणोम्याजिं मघवाहमिन्द्र इयर्मि रेणुमभिभूत्योजाः ॥५॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**स्वश्वा**) सुन्दर घोडे वा अग्नि आदि जिन के विद्यमान और (**माम्**) मुझको (**वाजयन्त**) जानते वा जनाते हुए (**वृता:**) स्वीकार जिन्होंने किया वे (**नर**) नायक जन (**समरणे**) संग्राम में (**माम्**) मेरी (**हवन्ते**) स्पर्द्धा अर्थात् स्वीकार करते हैं वहाँ (**मघवा**) अत्यन्त श्रेष्ठ धनयुक्त (**इन्द्र:**) तेजस्वी (**अभिभूत्योजा**) दुष्टों का अभिभव करनेवाले बल से युक्त (**अहम्**) मैं (**आजिम्**) संग्राम को (**कृणोमि**) करता हूँ (**रेणुम्**) धूलि को (**इयर्मि**) प्राप्त होता हूँ वैसे तुम लोग भी मेरा स्वीकार करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो जन सब वस्तुओं में प्राप्त होने वाले सब के अन्तर्यामि और सर्वशक्तिमान् मुझ परमात्मा की संग्राम में प्रार्थना करते हैं उन्हीं का मैं विजय कराता हूँ और जो धर्म से युद्ध करते हैं उन्हीं का मैं सहायक होता हूँ ॥ ५ ॥

अहं ता विश्वा चकरं नकिर्मा दैव्यं सहो वरते अप्रतीतम् ।

यन्मा सोमासो ममदन्यदुक्थोभे भयेते रजसी अपारे ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**अहम्**) मैं (**ता**) उन (**विश्वा**) सब कामों को (**चकरम्**) निरन्तर करता हूँ तथा जीव (**यत्**) जिस (**दैव्यम्**) विद्वानों में प्रिय (**मा**) मुझ को और (**अप्रतीतम्**) नहीं जाने गये (**सह**) बल को (**वरते**) स्वीकार करता है (**यत्**) जिस (**मा**) मेरी सेवा करते (**सोमास**) ऐश्वर्य्यवाले (**ममदन्**) प्रसन्न होते हैं और मुझसे (**उक्था**) प्रशंसा करने योग्य (**उभे**) दोनों (**अपारे**) पाररहित अपरिमित (**रजसी**) सूर्य्यलोक और भूमिलोक (**भयेते**) कंपते हैं उस मेरे सदृश कोई भी (**नकि**) नहीं है ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो पदार्थ प्रत्यक्ष और जो नहीं प्रत्यक्ष हैं वे सब मुझ से ही बनाये गये । मेरे में अनन्त बल है मुझको प्राप्त होकर सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होते हैं और मेरे ही भय से सब लोगों के सहचारी जीव डरते हैं ॥ ६ ॥

अब ईश्वरोपासना विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

विदुष्टे विश्वा भुवनानि तस्य ता प्र ब्रवीषि वरुणाय वेधः ।

त्वं वृत्राणि शृण्विषे जघन्वान् त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥७॥

पदार्थ—हे (**वेध**) अनन्तविद्यायुक्त (**इन्द्र**) अतीव ऐश्वर्य के दाता जगदीश्वर ! जो (**त्वम्**) आप (**वरुणाय**) श्रेष्ठ जन के लिये वेदों का (**प्रब्रवीषि**) उपदेश देते हो (**तस्य**) उन (**ते**) आपका (**ता**) उन (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**भुवनानि**) लोकों, राज्य को विद्वान् जन (**विदु**) जानते हैं और जो (**त्वम्**) आप (**वृत्राणि**) धनों को (**शृण्विषे**) सुनते हो (**सिन्धून्**) समुद्र वा नदियों को और (**वृतान्**) स्वीकार किये हुओं को (**अरिणा**) प्राप्त होओ वह आप दुष्ट अधर्मियों के (**जघन्वान**) नाशकारी हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जिस से आपने हम पर कृपा करके हम लोगों के कल्याण के लिये वेदों का उपदेश किया जिससे हम लोगों के दोष नाश किये गये और वर्षा के द्वारा पालन किया जाता है उस ही की हम लोग उपासना करते हैं ॥ ७ ॥

अस्माकमत्र पितरस्त आसन्त्सप्त ऋषयो दौर्गहे बध्यमाने ।

त आयजन्त त्रसदस्युमस्या इन्द्रं न वृत्रतुरमर्द्धदेवम् ॥८॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! आपकी कृपा से (**अत्र**) जो इस संसार में (**अस्माकम्**) हम लोगों के (**सप्त**) छः ऋतु और सातवां वायु (**ऋषय:**) प्राप्त हुए (**पितर:**) पालन करनेवाले (**आसन्**) हैं (**ते**) वे (**दौर्गहे**) अत्यन्त गहन (**बध्यमाने**) ताड़ना दिये जाते हुए में (**वृत्रतुरम्**) जो मेघ वा धन की शीघ्रता कराता है उस (**अर्द्धदेवम्**) देव के आधे वा आधे जगत् के देव को (**इन्द्रम्**) सूर्य्य के (**न**) सदृश तथा (**अस्या:**) इस सृष्टि के मध्य में (**त्रसदस्युम्**) दुष्ट डाकू जिससे डरते हैं उसको (**आ, अयजन्त**) सब प्रकार मिलते हैं (**ते**) वे हमारे सुख के करनेवाले हों ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर ने सब के रक्षण के लिये ऋतु आदि पदार्थ रचे उसकी उपासना करके दुःख से भिन्न सुख को जीतो ॥ ८ ॥

पुरुकुत्सानी हि वामदाशद्धव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।

अथा राजानं त्रसदस्युमस्या वृत्रहणं ददथुरर्द्धदेवम् ॥९॥

पदार्थ—हे (**इन्द्रावरुणा**) वायु और बिजुली के सदृश वर्त्तमान जो (**पुरुकुत्सानी**) बहुत निन्दित कर्मों से विशिष्ट (**हव्येभि**) ग्रहण करने योग्य (**नमोभि**) अन्नादिकों से आप दोनों को सुख (**अदाशत्**) देती है (**अथा**) इस के अनन्तर (**अस्या**) इस पृथिवी के (**वृत्रहणम्**) मेघ का नाश करने और (**अर्द्धदेवम्**) आधे जगत् का प्रकाश करनेवाले सूर्य्य के सदृश (**त्रसदस्युम्**) जिससे दुष्ट डाकू जन डरता है उस (**राजानम्**) राजा को (**वाम्**) आप दोनों (**ददथु**) दीजिये उस को और उसको (**हि**) जिससे हम लोग जानें ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिसकी कृपा से सम्पूर्ण पृथिवी धान्य से युक्त हुई और सूर्य्य प्रकट हुआ उसकी निरन्तर उपासना करो ॥ ९ ॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

राया वयं ससवांसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः ।

तां धेनुमिन्द्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीम् ॥१०॥१८॥

पदार्थ—(**हव्येन**) देने और ग्रहण करने योग्य वस्तु से (**देवा:**) विद्वान् जन (**यवसेन**) भूसा आदि से जैसे (**गाव:**) गौएँ वैसे (**राया**) धन से (**वयम्**) हम लोग (**ससवांस**) उत्तम प्रकार शयन करते हुए से (**मदेम**) आनन्द करें । और हे (**इन्द्रावरुणा**) अध्यापक और उपदेशको (**युवम्**) आप दोनों (**विश्वाहा**) सब दिन (**अनपस्फुरन्तीम्**) दृढ निश्चल बुद्धि को उत्पन्न करती और (**ताम्, धेनुम्**) सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करती हुई उस वाणी को (**न**) हम लोगों के लिए (**धत्तम्**) धारण कीजिए ॥ १० ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! हम लोगों में वैसी सम्पूर्ण शास्त्रों में कहे पदार्थ-विषयक वाणी को स्थित करो जिस से हम लोग सदा ही आनन्दित होवें ॥ १० ॥

इस सूक्त में राजा ईश्वर, ईश्वरोपासना और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ।

यह बयालीसवां सूक्त और अठारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तर्चस्य त्रिचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य पुरुमीळाजमीळौ सौहोत्रौ देवते ।

१ त्रिष्टुप् । २, ३, ५—७ निचृत्त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर. ।

४ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वरः ॥

अब सात ऋचावाले तैंतालीसवें सूक्त का आरम्भ है इस में अध्यापकोपदेशक विषय में प्रश्नोत्तर विषय को कहते हैं—

क उ श्रवत्कतमो यज्ञियानां वन्दारु देवः कतमो जुषाते ।

कस्येमां देवीममृतेषु प्रेष्ठां हृदि श्रेषाम सुष्टुतिं सुहव्याम् ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (**क**) कौन (**उ**) और (**कतम:**) कौनसा (**देव:**) विद्वान् (**यज्ञियानाम्**) यज्ञ की सिद्धि करनेवालों की (**वन्दारु**) वन्दना करनेवाले स्वभाव को (**श्रवत्**) सुनता है और (**कतम:**) कौनसा (**जुषाते**) सेवन करता है (**कस्य**) किस के (**हृदि**) हृदय के निमित्त (**इमाम्**) इस (**प्रेष्ठाम्**) अत्यन्त प्रिय (**सुष्टुतिम्**) उत्तम प्रशंसायुक्त (**सुहव्याम्**) उत्तम प्रकार ग्रहण करने योग्य और (**अमृतेषु**) मरणरहितों में (**देवीम्**) प्रकाशमान और विद्यायुक्त स्त्री की (**श्रेषाम**) सेवा करें ॥ १० ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! कौन इस संसार में यज्ञ, कौन यज्ञ के करनेवाले, कौन विद्वान्, कौन विद्यायुक्त स्त्री तथा कौन सेवने और सुनने योग्य है यह पूछा है उत्तर आगे है ॥ १ ॥

को मृळाति कतम आगमिष्ठो देवानामु कतमः शम्भविष्ठः ।
रथं कमाहुर्द्रवदश्वमाशुं यं सूर्यस्य दुहितावृणीत ॥२॥

पदार्थः—(**कः**) कौन (**देवानाम्**) विद्वानों के बीच वा पृथिव्यादिकों में (**मृळाति**) सुख देता है (**कतमः**) कौनसा (**आगमिष्ठः**) अत्यन्त आनेवाला (**उ**) और (**कतमः**) कौनसा (**शम्भविष्ठः**) अत्यन्त कल्याण करनेवाला विद्वान् (**कम्**) किस (**द्रवदश्वम्**) शीघ्र चलनेवाले घोड़ों से युक्त (**आशुम्**) शीघ्रगामी (**रथम्**) रमण करने योग्य वाहन को (**आहुः**) कहते हैं (**यम्**) जिस को (**सूर्यस्य**) सूर्य्य की (**दुहिता**) कन्या के सदृश कान्ति (**अवृणीत**) स्वीकार करती है ॥ २ ॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! हम लोग किस सुखकारक निरन्तर आनेवाले उत्तम प्रकार कल्याणकारक पदार्थ तथा अग्नि और जल के द्वारा चलनेवाले वाहन को उत्तम प्रकार जानें इस प्रकार दो मन्त्रों में कहे हुए प्रश्नों के ये उत्तर हैं । जो जैसे प्रातर्वेला उषा सूर्य्य को वैसे अध्यापक से सुनता, वायु के सदृश विद्या का सेवन करता है और पतिव्रता स्त्री के सदृश विद्यायुक्त स्त्री प्रशंसा के योग्य पति का स्वीकार करती है, जो परोपकारी है वह सुख करनेवाला, बिजुली अतीव आनेवाली, परमेश्वर अत्यन्त कल्याण करनेवाला, विद्वानों के मध्य में विद्वान्, जल अग्नि कलाकौशल से चलाया गया विमान आदि यान प्रशंसा के योग्य होता है, ऐसा जानो ॥ २ ॥

मक्षू हि ष्मा गच्छथ ईवतो द्यूनिन्द्रो न शक्तिं परितक्म्यायाम् ।
दिव आजाता दिव्या सुपर्णा कया शचीनां भवथः शचिष्ठा ॥३॥

पदार्थः—हे अध्यापकोपदेशको ! (**दिव्या**) शुद्ध व्यवहार में उत्पन्न (**सुपर्णा**) उत्तम पालनों से युक्त (**दिवः**) विद्या के प्रकाश से (**आजाता**) सब प्रकार उत्पन्न हुए (**शचिष्ठा**) अत्यन्त बुद्धिमानो ! आप (**इन्द्रः**) बिजुली (**ईवतः**) बहुत गति वाले (**द्यून्**) प्रकाशों को जैसे (**न**) वैसे (**परितक्म्यायाम्**) सब प्रकार हँसनेवालों में युक्त सृष्टि में (**शक्तिम्**) सामर्थ्य को (**गच्छथ**) प्राप्त होते (**हि**) ही हो और (**कया, स्मा**) किसी से (**शचीनाम्**) बुद्धियों वा वाणियों के अत्यन्त जाननेवाले (**मक्षु**) शीघ्र (**भवथः**) होते हो ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो बिजुली के सदृश सामर्थ्य को बढ़ाते हैं वे बुद्धिमान् होकर अतुल लक्ष्मी को संसार में प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

का वां भूदुपमातिः कया न आश्विना गमथो हूयमाना ।
को वां महश्चित्त्यजसो अभीक उरुष्यतं माध्वी दस्रा न ऊती ॥४॥

पदार्थः—हे (**हूयमाना**) आह्वान किये अर्थात् बुलावा दिये हुए प्रशंसा को प्राप्त (**माध्वी**) मधुरता आदि गुणों से युक्त (**दस्रा**) दुःख के नाश करनेवाले (**अश्विना**) विद्या व्याप्त अध्यापक और उपदेशक जनो (**वाम्**) आप दोनों का (**का**) कौन (**उपमातिः**) उपमान (**भूत्**) होता है । और आप दोनों (**कया**) किस रीति से (**नः**) हम लोगों को (**आ, गमथः**) प्राप्त होते हो और (**कः**) कौन (**वाम्**) आप दोनों के (**अभीके**) समीप में (**महः**) बड़ा (**चित्**) भी (**त्यजसः**) त्याग करने योग्य व्यवहार है और समीप में किस (**ऊती**) रक्षण आदि क्रिया से (**नः**) हम लोगों की (**उरुष्यतम्**) सेवा करो ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! तभी आप दोनों की श्रेष्ठ उपमा होती है कि जब हम लोगों को विद्यावान् करो और दुष्ट दोषों को दूर पहुँचाओ ॥ ४ ॥

उरु वां रथः परि नक्षति द्यामा यत्समुद्रादभि वर्त्तते वाम् ।
मध्वा माध्वी मधु वां प्रुषायन्यत्सीं वां पृक्षो भुरजन्त पक्वाः ॥५॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! जो (**वाम्**) आप दोनों का (**रथः**) वाहन (**द्याम्**) आकाश को (**उरु**) बहुत (**परि**) सब ओर से (**नक्षति**) व्याप्त होता है (**यत्**) जो (**वाम्**) आप दोनों को (**समुद्रात्**) अन्तरिक्ष वा जलाशय से (**अभि**) सम्मुख (**आ, वर्त्तते**) वर्त्तमान होता है तथा (**वाम्**) आप दोनों और (**माध्वी**) मधुर नीति (**मध्वा**) मधुर गुण से (**मधु**) मधुर कर्म को (**सीम्**) सब ओर से (**भुरजन्त**) प्राप्त होती है और (**यत्**) जो (**पृक्षः**) सम्बन्धी जन (**पक्वाः**) पूर्ण ज्ञान से युक्त वा जिन का स्वरूप परिपक्व अर्थात् पूर्ण अवस्था वाले (**वाम्**) आप दोनों को (**प्रुषायन्**) प्राप्त होते हैं उन को विद्वान् आप दोनों करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो आप लोगों को विद्वान् करें उन की निरन्तर सेवा करो ॥ ५ ॥

सिन्धुर्ह वां रसया सिञ्चदश्वान्घृणा वयोऽरुषासः परि ग्मन् ।
तदू षु वामजिरं चेति यानं येन पती भवथः सूर्यायाः ॥६॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! जो (**सिन्धुः**) नदी वा समुद्र (**रसया**) रस आदि से (**ह**) तो (**वाम्**) आप दोनों को (**सिञ्चत्**) सींचता है तथा (**वयः**) व्याप्त होनेवाले (**घृणा**) प्रदीप्त (**अरुषासः**) रक्त गुण से विशिष्ट पदार्थ (**अश्वान्**) शीघ्र चलनेवाले अग्न्यादिकों को (**परि, ग्मन्**) सब ओर से प्राप्त होते हैं (**तत्**) उन को और (**वाम्**) आप दोनों को वा (**अजिरम्**) प्राप्त होने योग्य और फेंकनेवाले को (**सु चेति**) उत्तम प्रकार जानता है वा (**येन**) जिससे (**यानम्**) वाहन को प्राप्त होकर (**सूर्यायाः**) सूर्य्य की कान्तिरूप प्रातःकाल के (**पती**) पालन करनेवाले (**भवथः**) होते हो उन को (**ह**) निश्चय जानो ॥६॥

भावार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! आप जैसे उत्तम रस-युक्त जल से वृक्षों और क्षेत्रादि को उत्तम प्रकार सिञ्चन कर और बढ़ा के इन से फलों को प्राप्त होते हैं वैसे ही सब मनुष्यों को पढ़ा उपदेश दे और बुद्धि से बढ़ा कर सुखरूपी फलयुक्त होओ ॥६॥

इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥७॥१९॥

पदार्थः—हे (**वाजरत्ना**) वाधरूपरत्न धन ! जिन के वे (**नासत्या**) असत्य आचरण से रहित (**समना**) तुल्य मनवाले और (**यत्**) जो (**सुमतिः**) उत्तम बुद्धि (**वाम्**) आप दोनों का (**पपृक्षे**) सम्बन्धित होती है (**सा, इयम्**) सो यह (**इहेह**) इस संसार में (**अस्मे**) हम लोगों की उत्तम प्रकार सेवा करे (**युवम्**) आप दोनों (**ह**) ही (**जरितारम्**) स्तुति करनेवाले की (**उरुष्यतम्**) सेवा करें उन (**युवद्रिक्**) आप दोनों को प्राप्त होती (**श्रितः**) और आश्रित हुई (**कामः**) इच्छा सेवें ॥ ७ ॥

भावार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! आप लोग इस संसार में जो बुद्धि आप लोगों को प्राप्त होवे उस को सब के लिए देओ और जैसी अपने हित के लिए इच्छा करते हो वैसी सब के लिए करो ॥७॥

इस सूक्त में अध्यापक और उपदेशक पढ़ने और उपदेश सुननेवाले के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तेतालीसवां सूक्त और उन्नीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तर्चस्य चतुश्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रावृषी । अश्विनौ देवते । १, ३, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सात ऋचावाले चवालीसवें सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र से अध्यापक और उपदेशकविषय में शिल्पविद्याविषय को कहते हैं—

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना सङ्गतिं गोः ।
यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥१॥

पदार्थः—हे (**अश्विना**) अध्यापक और उपदेशक जनो ! (**वयम्**) हम लोग (**अद्य**) आज (**वाम्**) तुम दोनों के (**पृथुज्रयम्**) विस्तीर्ण और बहुत गतिवाले (**तम्**) उस (**रथम्**) रमण करने योग्य वाहन को (**हुवेम**) ग्रहण करें और (**गोः**) पृथिवी के (**सङ्गतिम्**) सङ्ग का ग्रहण करें (**यः**) जो (**वन्धुरायुः**) थोड़ी अवस्थावाला (**सूर्याम्**) सूर्य्यसम्बन्धिनी कान्ति अर्थात् तेज को (**वहति**) प्राप्ति करता है जिस (**पुरुतमम्**) बहुतों को ग्लानि करने (**गिर्वाहसम्**) वाणी से प्राप्त करने वा प्राप्त होने (**वसूयुम्**) और अपने को द्रव्य की इच्छा करनेवाले का ग्रहण करे वही सुखी होता है ॥ १ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस अग्नि और जल से शिल्पविद्या ही साधन जिस का ऐसा रथ आदि उत्पन्न किया जाता है वही अपनी आत्मा के तुल्य सबको प्रसन्न करता है ॥ १ ॥

युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत्ककुहासो रथे वाम् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (**दिवः**) द्रष्टव्य अत्यन्त सुख के (**नपाता**) पतन से रहित (**देवता**) दिव्यगुणसम्पन्न (**अश्विना**) अध्यापक और उपदेशक जनो (**युवम्**) आप दोनों (**शचीभिः**) बुद्धियों से (**ताम्**) उस (**श्रियम्**) लक्ष्मी का (**वनथः**) सेवन करो (**यत्**) जिसको (**वाम्**) आप दोनों के (**रथे**) वाहन में (**युवोः**) आप दोनों के (**पृक्षः**) सम्बन्ध और (**वपुः**) शरीर का (**अभि**) सम्मुख (**सचन्ते**) सम्बन्धयुक्त करती (**ककुहासः**) सम्पूर्ण दिशा (**वहन्ति**) प्राप्त होती है ॥ २ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन बुद्धि को प्राप्त होकर अन्य जनों के लिये देते हैं वे सम्पूर्ण दिशाओं में पूजने अर्थात् सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ २ ॥

को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः ।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्त्तत् ॥३॥

पदार्थः—हे (**अश्विना**) अध्यापक और उपदेशक जनो ! (**अद्य**) आज (**वाम्**) आप दोनों को (**कः**) कौन (**रातहव्यः**) देने योग्य को दिये हुए (**ऊतये**) रक्षण आदि के लिये (**वा**) वा आज (**सुतपेयाय**) उत्पन्न जो पीने योग्य रस उस के लिये (**करते**) करता अर्थात् प्रयत्नयुक्त करता (**वा**) (**वा**) (**अर्कैः**) सत्कारों से सत्कार करता (**वा**) वा (**ऋतस्य**) सत्य के सम्बन्ध में (**पूर्व्याय**)

प्राचीन जनों में चतुर के लिये (नम) अन्न को देता और अनुकूल हुआ (आ, ववर्त्तत्) वर्त्ताव करता है उसका (येमान) जो नियम करते हुए सत्कार करते हैं उनका आप दोनों सत्कार करें । और हे विद्वन्! जिस कारण आप इन दोनों से विद्या को (वनुथे) माँगते हो इससे इन दोनों का निरन्तर सत्कार करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! जो आप दोनों का सत्कार करें उनको उत्तम प्रकार शिक्षित और सभ्य अर्थात् सभा के योग्य करो और जिनसे विद्या का ग्रहण कराओ उनका निरन्तर सत्कार भी करो ॥ ३ ॥

हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (पुरुभू) बहुतों की भावना करानेवाले और (नासत्या) सत्य आचरण वाले अध्यापक और उपदेशक जनो ! आप दोनों (हिरण्ययेन) ज्योतिर्मय और सुवर्ण आदि से शोभित (रथेन) वाहन से (इमम्) इस (यज्ञम्) पढ़ाने और पढ़ने रूप यज्ञ को (उप, यातम्) प्राप्त होओ और (मधुनः) मधुर आदि गुणों से युक्त (सोम्यस्य) सोमलतारूप ओषधियों में उत्पन्न पदार्थ के रस का (पिबाथ) पान करो और (विधते) पुरुषार्थ को करते हुए (जनाय) मनुष्य के लिये (रत्नम्) सुन्दर धन को (दधथ) तुम धारण करते हो वे (इत्) ही सुखी कैसे न होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो शिल्पविद्या के प्रचार करनेवाले हों वे ही संसार के सुख करनेवाले होवें ॥ ४ ॥

अब राजा और अमात्य विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
मा वामन्ये नि यमन्देवयन्तः सं यद्दे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (पूर्व्या) प्राचीनों से किये हुओं में चतुर राजा और मन्त्री जनो ! (वाम्) आप दोनों के (सुवृता) सुन्दर पहिये से युक्त (हिरण्ययेन) सुवर्ण आदि से शोभित (रथेन) विमान आदि वाहन से (पृथिव्या) भूमि की (दिवः) कामना करते हुए (नः) हम लोगों को (अच्छा) उत्तम प्रकार (आ, यातम्) प्राप्त होओ जिससे (अन्ये) अन्य जन (देवयन्तः) कामना करते हुए (वाम्) आप दोनों से (मा) नहीं (नि, यमन्) निग्रह करें और (यत्) जिसको मैं (नाभिः) नाभि के सदृश वर्त्तमान, आप दोनों को (सम्, ददे) अच्छे प्रकार देता हूँ उस का ग्रहण करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब प्रजा और राजाजन राजा और राजा के पुरुषों के सङ्ग की सदा ही इच्छा करें और सदैव सुख और दुःख को भोगें ॥ ५ ॥

नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे ।
नरो यद्वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीळ्हासो अग्मन् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (दस्रा) दुःख के नाश करनेवाले (अश्विना) सूर्य्य और चन्द्रमा के सदृश श्रेष्ठ गुणों से युक्त (यत्) जो (आजमीळ्हासः) बकरों को विद्या से सिञ्चन करनेवालों के पुत्र (नरः) नायकजन (वाम्) आप दोनों को और (सधस्तुतिम्) साथ कीर्त्ति को (अग्मन्) प्राप्त होते और (स्तोमम्) प्रशंसा को (आवन्) प्राप्त होते हैं उन (नः) हम सब लोगों के लिये आप दोनों (पुरुवीरम्) बहुत वीर हों जिससे उस (बृहन्तम्) बड़े (रयिम्) धन को (मिमाथाम्) धारण करो जिससे (उभयेषु) दोनों राजा और प्रजा जनों (अस्मे) हम लोगों में लक्ष्मी (नु) शीघ्र बढ़े ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे राजन् और मुख्य मन्त्रीजनो ! आप दोनों सूर्य्य और चन्द्रमा के सदृश हम लोगों में वर्त्ताव कीजिये और बहुत लक्ष्मी को स्थापित कीजिये जिससे हम लोग धन से युक्त होवें ॥ ६ ॥

अब सज्जनगुण विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥ ७ ॥ २० ॥

पदार्थ—हे (नासत्या) धर्मात्मा अध्यापक और उपदेशक जनो (इहेह) इस संसार में (वाम्) आप दोनों की (यत्) जो (समना) शान्ति आदि गुणों से युक्त (वाजरत्ना) विज्ञानरूप धन की प्राप्ति सिद्ध करनेवाली (सुमतिः) श्रेष्ठ मति है (सा) (इयम्) सो यह (अस्मे) हम लोगों को (पपृक्षे) सम्बन्धयुक्त करे जो यह और (युवद्रिक्) आप दोनों को प्राप्त करानेवाला (कामः) मनोरथ (जरितारम्) सम्पूर्ण विद्याओं के स्तुति करनेवाले को (श्रितः) आश्रित है (ह) उसी का (युवम्) आप (उरुष्यतम्) सेवन करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये सदा इस संसार में यथार्थवक्ता पुरुषों की बुद्धि की इच्छा करें और सत्य की कामना करें जिन से सम्पूर्ण इच्छा पूर्ण होवे ॥ ७ ॥

इस सूक्त में अध्यापक, उपदेशक, राजा, अमात्य और सज्जन के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ।

यह चवालीसवाँ सूक्त और बीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तर्चस्य पञ्चचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । अश्विनौ देवते । १, ३, ४ जगती । ५ निचृज्जगती । ६ विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः । २ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सात ऋचावाले पैंतालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, इसमें सूर्य्यविषय को कहते हैं—

एष स्य भानुरुदियर्त्ति युज्यते रथः परिज्मा दिवो अस्य सानवि ।
पृक्षासो अस्मिन्मिथुना अधि त्रयो दृतिस्तुरीयो मधुनो वि रप्शते ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (एष, स्यः) सो यह (परिज्मा) सब ओर से भूमि में चलता वा त्यागता (भानुः) सूर्य्य (उत्) ऊपर को (इयर्त्ति) प्राप्त होता है (अस्य) इसके (सानवि) आकाशप्रदेश में (रथः) वाहन (युज्यते) जोड़ा जाता है (अस्मिन्) इसमें (त्रयः) वायु, जल और बिजुली (पृक्षासः) सम्बन्ध को प्राप्त (मिथुना) दो-दो मिले हुए प्रकाशित होते हैं इस (मधुनः) मधुर गुण से युक्त के बीच (तुरीयः) चौथा (दृतिः) मेघ (दिवः) प्रशंसायुक्त अन्तरिक्ष के बीच (अधि) ऊपर (वि, रप्शते) विशेष करके शोभित होता है उन सबको जानिये ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो प्रकाशमान् सूर्य्य ब्रह्माण्ड के मध्य में विराजित है और इसके चारों ओर बहुत भूगोल सम्बन्धयुक्त है तथा पृथिवी और चन्द्रलोक एक साथ घूमते हैं और जिसके प्रभाव से वृष्टियाँ होती हैं इस सम्पूर्ण को जानो ॥ १ ॥

उद्वां पृक्षासो मधुमन्त ईरते रथा अश्वास उषसो व्युष्टिषु ।
अपोर्णुवन्तस्तम आ परीवृतं स्वर्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक जनो जैसे (मधुमन्तः) मधुर आदि गुणों से युक्त (पृक्षासः) उत्तम प्रकार सींचे गये (उषसः) प्रभात वेला की (तमः) रात्रि को (अपोर्णुवन्तः) निवारण करते अर्थात् हटाते हुए (व्युष्टिषु) अनेक प्रकार की सेवाओं में (रथाः) वाहनों और (अश्वासः) घोड़ों के सदृश (आ, परीवृतम्) सब प्रकार से घिरे हुए को (स्वः) सूर्य्य के (न) सदृश (शुक्रम्) शुद्ध (आ, रजः) लोक लोकान्तर को (तन्वन्तः) विस्तृत करते हुए सूर्य्यकिरण (वाम्) आप दोनों को (उत्, ईरते) कंपते, चञ्चल होते, ऊपर से प्राप्त होते हैं उनको आप लोग विशेष करके जानो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! ये सब लोक सूर्य्य के सब ओर घूमते हैं और जैसे सूर्य्य की किरणें भूगोल के आधे भाग में स्थित अन्धकार को निवारण करके प्रकाश उत्पन्न करते हैं वैसे ही विद्वान् जन विद्या के दान से अविद्या को निवारण करके विद्या को उत्पन्न करें ॥ २ ॥

मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिरुत प्रियं मधुने युञ्जाथां रथम् ।
आ वर्त्तनिं मधुना जिन्वथस्पथो दृतिं वहेथे मधुमन्तमश्विना ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (अश्विना) सेना के ईश और योद्धा जनो आप दोनों (मधुपेभिः) मधुर रसों के पीनेवाले वीर पुरुषों के साथ (आसभिः) मुखों से (मध्वः) मधुर आदि गुणों से युक्त पदार्थ के (प्रियम्) मनोहर रस को (पिबतम्) पिओ (उत) और (मधुने) जाने गये मार्ग के लिये (रथम्) विमान आदि वाहन को (युञ्जाथाम्) युक्त करो तथा (मधुना) मधुरता गुण युक्त पदार्थ से (वर्त्तनिम्) जिसमें वर्त्तमान होते उस मार्ग को (आ, जिन्वथः) सब प्रकार प्राप्त होते हो और अन्य (पथः) मार्गों को प्राप्त होते हो और जैसे (मधुमन्तम्) मधुर आदि गुणों से युक्त (दृतिम्) जल के चर्मपात्र के सदृश वर्त्तमान मेघ को सूर्य्य और वायु (वहेथे) धारण करते हैं वैसे इस व्यवहार को धारण करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे सेना के ईश और योद्धाजनो ! तुम सेनास्थ वीरों के साथ ऐसे भोजन करो और वाहनों को रचो जिनसे बल की वृद्धि और लक्ष्मी की प्राप्ति हो जैसे वायु और बिजुली वर्षा करके सबको सुखी करते हैं वैसे प्रजा को सुखी करो ॥ ३ ॥

हंसासो ये वां मधुमन्तो अस्रिधो हिरण्यपर्णा उहुव उषर्बुधः ।
उदप्रुतो मन्दिनो मन्दिनिस्पृशो मध्वो न मक्षः सवनानि गच्छथः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे राजा और सेना के ईश जन (वाम्) आप दोनों के (ये) जो (मधुमन्तः) मधुर गमन से युक्त (अस्रिधः) नहीं मारे गये (हिरण्यपर्णाः) तेजोमय वा सुवर्ण आदि से बने हुए पंख जिन के (उषर्बुधः) जो प्रातःकाल में बोध से युक्त (उहुवः) भारों के ले चलने (उदप्रुतः) जल के चलाने (मन्दिनः) आनन्द के देने और (मन्दिनिस्पृशः) आनन्द के स्पर्श करानेवाले (मध्वः) मधुर पदार्थों के सम्बन्ध में (मक्षः) मक्षियों के राजा के (न) सदृश (हंसासः) तथा हंस के सदृश शीघ्र चलनेवाले घोड़े हैं उन से (सवनानि) ऐश्वर्य्यों को आप दोनों (गच्छथः) प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे राजपुरुषो ! आप लोग वाहनों की कलों में अग्नि-जलादि के सम्प्रयोग से शीघ्र जा आकर ऐश्वर्य्य की इच्छा करें तो क्या रत्न को न प्राप्त होवें ॥ ४ ॥

स्वध्वरासो मधुमन्तो अग्नय उस्रा जरन्ते प्रति वस्तोरश्विना ।

यन्निक्तहस्तस्तरणिर्विचक्षणः सोमं सुषाव मधुमन्तमद्रिभिः ॥५॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) राजा और मन्त्री जनो जैसे (**प्रति, वस्तो**) प्रतिदिन की (**स्वध्वरासः**) उत्तम प्रकार क्रियायोगों की सिद्धियाँ जिन में वे (**मधुमन्तः**) मधुर आदि गुणों से युक्त (**अग्नयः**) अग्नि (**उस्रा**) किरणों की (**जरन्ते**) स्तुति करते अर्थात् उन्हें प्रशंसित करते हैं और (**यत्**) जो (**निक्तहस्तः**) शुद्ध हाथों युक्त (**तरणिः**) दुःखों से पार करनेवाला (**विचक्षणः**) अत्यन्त बुद्धिमान् (**अद्रिभिः**) मेघों से (**मधुमन्तम्**) मधुर आदि गुणयुक्त (**सोमम्**) ओषधियों के समूह को (**सुषाव**) उत्पन्न करता है उन और उस को आप दोनों सिद्ध करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! आप लोग शिल्पी विद्वानों के सङ्ग से अग्नि आदि और सोमलता आदि पदार्थों को जान के और अच्छे प्रकार प्रयोग करके अभीष्ट कार्य्यों को सिद्ध करो ॥ ५ ॥

आकेनिपासो अहंभिर्दविध्वतः स्व१र्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ।

सूरश्चिदश्वान्युयुजान ईयते विश्वाँ अनु स्वधया चेतथस्पथः ॥६॥

पदार्थ—हे क्रियाओं में कुशल वाहनों के बनाने और चलानेवाले, आप दोनों जैसे (**अहभिः**) दिनों से (**दविध्वतः**) पदार्थों का नाश करती हुई (**आकेनिपासः**) समीप में अत्यन्त पालन करनेवाली किरणें (**शुक्रम्**) जल और (**रजः**) लोक को (**आ, तन्वतः**) विस्तारयुक्त करते हुए (**स्वः**) सूर्य्य के (**न**) सदृश प्रकाशित होते हैं वा जैसे कोई (**सूरः**) सूर्य्य (**चित्**) भी (**अश्वान्**) शीघ्र चलनेवाले किरणों को (**युयुजानः**) युक्त करता (**ईयते**) प्राप्त होता है वैसे आप दोनों (**स्वधया**) अन्न आदि से (**विश्वान्**) सम्पूर्ण पदार्थों को जान के (**पथः**) मार्गों को (**अनु, चेतथ**) अनुकूल जनाते हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । हे मनुष्यो ! जो आप लोग किरणों और सूर्य्य के सदृश वाहनों में अग्नि से जल को विस्तारो तो जल स्थल और आकाशमार्गों को सुख से जाओ ॥ ६ ॥

प्र वामवोचमश्विना धियन्धा रथः स्वश्वो अजरो यो अस्ति ।

येन सद्यः परि रजांसि याथो हविष्मन्तं तरणिं भोजमच्छ ॥७॥२१॥४

पदार्थ—हे (**अश्विना**) अध्यापक और उपदेशक जनो ! (**यः**) जो (**स्वश्वः**) उत्तमोत्तम घोड़ों से युक्त (**अजरः**) वृद्धावस्थारहित (**रथः**) सुन्दर वाहन (**अस्ति**) है उस की विद्या को (**धियन्धाः**) बुद्धि अर्थात् शिल्पविद्या रूप कर्म को धारण करनेवाला मैं (**वाम्**) आप दोनों को (**प्र, अवोचम्**) उत्तम उपदेश करूं (**येन**) जिससे आप दोनों (**हविष्मन्तम्**) बहुत सामग्री से युक्त (**तरणिम्**) तारनेवाले (**भोजम्**) खान योग्य पदार्थ और (**रजांसि**) लोक वा ऐश्वर्य्यों को (**सद्यः**) शीघ्र (**अच्छ**) उत्तम प्रकार (**परि, याथः**) सब ओर से प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! विद्वान् हम लोग आप लोगों को जिन शिल्पविद्याओं का ग्रहण करावें उन विद्याओं से आप लोग विमान आदि वाहनों को रच शीघ्र गमन और आगमन को करके बहुत भोगों को प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

इस सूक्त में सूर्य्य और अश्वि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह पैंतालीसवां सूक्त और इक्कीसवां वर्ग और चौथा अनुवाक समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तर्चस्य षट्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रवायू देवते ।
१ विराड् गायत्री । २, ३, ५—७ गायत्री । ४ निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले छियालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र से बिजुली की विद्या के विषय को कहते हैं—

अग्रं पिबा मधूनां सुतं वायो दिविष्टिषु । त्वं हि पूर्वपा असि ॥१॥

पदार्थ—हे (**वायो**) वायु के सदृश बलयुक्त (**हि**) जिससे (**त्वम्**) आप (**दिविष्टिषु**) श्रेष्ठ क्रियाओं में (**पूर्वपाः**) पूर्व वर्त्तमान जनों का पालन करनेवाले (**असि**) हो इस से (**मधूनाम्**) मधुर रसों के बीच में (**अग्रम्**) उत्तम (**सुतम्**) उत्पन्न किये गये रस का (**पिबा**) पान कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! जिस से आप सनातन विद्याओं की रक्षा करके सब के लिए देते हो इस से आप इन क्रियाओं में मुखिया होते हैं ॥ १ ॥

शतेना नो अभिष्टिभिर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः ।

वायो सुतस्य तृम्पतम् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (**वायो**) वायुवद्वर्त्तमान विज्ञानयुक्त अध्यापक और उपदेशक ! (**अभिष्टिभिः**) अभीष्ट क्रियाओं से जैसे (**इन्द्रसारथिः**) बिजुलीरूप सारथि जिसका वह (**नियुत्वान्**) बलवान् समर्थ वायु (**शतेना**) असङ्ख्य से (**नः**) हम लोगों को तृप्त करता है वैसे (**सुतस्य**) उत्पन्न किये गये के सम्बन्ध में आप दोनों (**तृम्पतम्**) तृप्त होओ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे वायु के साथ बिजुली, बिजुली के साथ वायु अनेक क्रियाओं को उत्पन्न करते हैं वैसे पृथिवी और जलादिकों से आप अनेक कार्य्यों को सिद्ध करो ॥ २ ॥

आ वां सहस्रं हरय इन्द्रवायू अभि प्रयः । वहन्तु सोमपीतये ॥३॥

पदार्थ—हे (**इन्द्रवायू**) सूर्य्य और पवन ! जो (**हरयः**) हरनेवाले मनुष्य (**वाम्**) आप दोनों को (**सोमपीतये**) सोमलता के पान करने के लिए (**सहस्रम्**) असंख्य (**प्रयः**) मनोहर भाव जैसे हों वैसे (**आ, वहन्तु**) प्राप्त करें, उन को आप दोनों (**अभि**) सब ओर से बोध दीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् जन आप लोगों को पढ़ा और उत्तम प्रकार शिक्षा देकर विद्वान् करते हैं उनकी निरन्तर सेवा करो ॥ ३ ॥

रथं हिरण्यवन्धुरमिन्द्रवायू स्वध्वरम् ।

आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्रवायू**) वायु और बिजुली के सदृश शीघ्रकारी शिल्पविद्या के अध्यापक और उपदेशक जनो ! आप दोनों (**स्वध्वरम्**) नहीं नष्ट हुई उत्तम क्रिया जिसमें और (**हिरण्यवन्धुरम्**) सुवर्ण हैं बन्धन जिस में उस (**दिविस्पृशम्**) आकाश में चलनेवाले (**रथम्**) सुन्दर वाहन को (**हि**) ही (**आ, स्थाथः**) आ स्थित होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक जनो आप लोग प्रीति से सुवर्ण आदि से जड़े हुए वाहनों की विद्या का मनुष्यों के लिए निरन्तर उपदेश देओ कि जिन वाहनों से ये लोग अन्तरिक्ष आदिकों में जा सकें ॥ ४ ॥

रथेन पृथुपाजसा दाश्वांसमुप गच्छतम् । इन्द्रवायू इहा गतम् ॥५॥

पदार्थ—हे (**इन्द्रवायू**) वायु और बिजुलीरूप अग्नि के सदृश प्रतापी राजा और सेना के ईश जनो आप दोनों (**पृथुपाजसा**) विस्तीर्ण बल युक्त (**रथेन**) रमणीय वाहन से (**इह**) इस संग्राम में (**आ, गतम्**) आओ और (**दाश्वांसम्**) दाता जन के (**उप, गच्छतम्**) समीप प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—जैसे वायु और बिजुली बड़े प्रताप से युक्त वर्त्तमान हैं वैसे ही राजा और मन्त्रीजन होवें ॥ ५ ॥

अब सूर्य्ययुक्त वायु विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

इन्द्रवायू अयं सुतस्तं देवेभिः सजोषसा । पिबतं दाशुषो गृहे ॥६॥

पदार्थ—हे (**सजोषसा**) तुल्य प्रीति की कामना करनेवाले (**इन्द्रवायू**) सूर्य्य और वायु के सदृश अध्यापक और उपदेशक ! जो (**अयम्**) यह (**दाशुषः**) दाता जन के (**गृहे**) गृह में (**सुतः**) उत्पन्न किया गया (**तम्**) उसको (**देवेभिः**) विद्वानों वा श्रेष्ठ पदार्थों के साथ जैसे (**पिबतम्**) पान करो वैसे ही सूर्य्य और वायु सब से रस पीते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य और पवन सब के उपकार का निरन्तर करते हैं वैसे ही विद्वानों को करना चाहिए ॥ ६ ॥

इह प्रयाणमस्तु वामिन्द्रवायू विमोचनम् । इह वां सोमपीतये ॥७॥२२

पदार्थ—हे (**इन्द्रवायू**) वायु और बिजुली के सदृश वर्त्तमान राजा और मन्त्री जनो ! जैसे (**इह**) इस में (**वाम्**) आप दोनों का (**प्रयाणम्**) गमन (**अस्तु**) हो और जैसे (**इह**) इस में (**वाम्**) आप दोनों का (**सोमपीतये**) सोमपान के लिए (**विमोचनम्**) त्याग हो वैसे ही वायु और बिजुली वर्त्तमान है ऐसा जानो ॥७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो नित्य इधर-उधर कार्य्यसिद्धि के लिए जावे और आवे, उसी को राजा मानो ॥ ७ ॥

इस सूक्त में बिजुली और वायु के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह छियालीसवां सूक्त और बाईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ चतुर्ऋचस्य सप्तचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । १ वायुः ।
२-४ इन्द्रवायू देवते । १, ३ अनुष्टुप् । ४ निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः । २ भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब चार ऋचावाले सैंतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से वायुसादृश्य से विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।

आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥१॥

पदार्थ—हे (**देव**) विद्वन् ! (**वायो**) वायु के सदृश वर्त्तमान (**स्पार्हः**) ईप्सा करने योग्य (**शुक्रः**) शुद्ध स्वभाव वाला मैं (**दिविष्टिषु**) प्रकाश के बीच जो स्थित क्रिया उनमें (**नियुत्वता**) समर्थ राजा के साथ (**सोमपीतये**) उत्तम रस के पान के लिये (**ते**) आपके (**मध्वः**) मधुर रस के (**अग्रम्**) अग्रभाग को जैसे (**अयामि**) प्राप्त होता हूँ वैसे आप (**आ, याहि**) प्राप्त होओ ॥१॥

भावार्थ—जो वायु के सदृश सर्वत्र विहार करके विद्या का ग्रहण करते हैं वे सर्वत्र ईर्ष्या करने योग्य होते हैं ॥१॥

इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः ।
युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (वायो) बल से युक्त आप (च) और (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्यवान् (युवाम्) आप दोनो (आपः) जैसे जल (निम्नम्) नीचे के स्थल के (न) वैसे जिस प्रकार (इन्दवः) मिलन वाले और सत्कार करने योग्य जन और (सध्र्यक्) एक साथ सत्कार करनेवाला य सब (यन्ति) प्राप्त होते हैं (हि) उसी प्रकार आप दोनो (एषाम्) इन (सोमानाम्) ओषधियो से उत्पन्न हुए रसो के (पीतिम्) पान के (अर्हथः) योग्य है ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे यश जलो को प्राप्त होते है वैसे ही विद्वान् विद्याव्यवहार के योग्य होते है ॥२॥

अब राजा और अमात्य के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती ।
नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (शुष्मिणा) बलयुक्त और (शवसः) बल के (पती) पालन करनेवाले (नियुत्वन्ता) स्वामी और समर्थ (वायो) बडे बल से युक्त (इन्द्रः, च) और राजा (नः) हम लोगो के (ऊतये) रक्षण आदि के और (सोमपीतये) ऐश्वर्य्य के पालन के लिये (सरथम्) समान वाहन को (आ, यातम्) प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो राजा के मन्त्री बल बल के बढानेवाले सामर्थ्य युक्त और न्यायकारी होवें वे आप लोगो के पालन करनेवाले हों ॥३॥

या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।
अस्मे ता यज्ञवाहसेन्द्रवायू नि यच्छतम् ॥ ४ ॥ २३ ॥

पदार्थ—हे (यज्ञवाहसा) यज्ञ को प्राप्त करनेवाले (नरा) नायक (इन्द्रवायू) धनी और विद्वान् तथा राजा और मन्त्री जनो (वाम्) आप दोनो की (याः) जो (नियुतः) निश्चित (पुरुस्पृहः) बहुतो से ईर्ष्या करने योग्य क्रिया (दाशुषे) दाता जन के लिये (सन्ति) हैं (ताः) उन क्रियाओ को (अस्मे) हम लोगो के लिये (नि, यच्छतम्) अतिशय करके दीजिये ॥४॥

भावार्थ—हे राजा और मन्त्री जनो ! आप लोगो को चाहिये कि हम प्रजाजनो की इच्छा पूर्ण करें जिससे हम लोग आप लोगो का पूर्ण काम करें ॥४॥

इस सूक्त मे विद्वान् राजा और अमात्य के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सगति है यह जानना चाहिये ॥

यह सैंतालीसवां सूक्त और तेईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्याष्टचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । वायुर्देवता । १ निचृदनुष्टुप् । २ अनुष्टुप् । ३-५ भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

अब राजा प्रजा के साथ कैसे वर्त्ते इस विषय को प्रथम मन्त्र से कहते हैं—

विहि होत्रा अवीता विपो न रायो अर्यः ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (वायो) विद्वान् (विपः) बुद्धिमान् आप (अर्यः) वैश्यजन (रायः) धनो के (न) जैसे वैसे (अवीता) नाश से रहित क्रियाओ को (होत्राः) ग्रहण करते हुए (विहि) व्याप्त हूजिये और (सुतस्य) उत्पन्न किये रस की (पीतये) रक्षा के लिये (चन्द्रेण) सुवर्णमय (रथेन) वाहन से (आ, याहि) प्राप्त हूजिये ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे बुद्धिमान् वैश्यजन प्रीति से धन की रक्षा करता है वैसे ही आप और आपके भृत्यजन अच्छी प्रीति से प्रजाओ की निरन्तर रक्षा करो ॥१॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्रों मे कहते हैं—

निर्युवाणो अशस्तीर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (वायो) वायु के सदृश गुणो से विशिष्ट राजन् आप (नियुत्वान्) नियम युक्त गमनवाले वायु के और (इन्द्रसारथिः) बिजुली, सूर्य्य वा अग्नि का नियम से चलानेवाले के सदृश (चन्द्रेण) आनन्द देनेवाले सुवर्ण आदि से जडे हुए (रथेन) वाहन से (सुतस्य) उत्पन्न हुए रस के (पीतये) पान करने के लिये (आ, याहि) आइये और जैसे (निर्युवाणः) निश्चय गये युवा जन जिससे वा निरन्तर युवाजन (अशस्तीः) अहिंसाओ का आचरण करते अर्थात् हिंसाओं को नहीं करते हैं वैसे कीजिये ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वायु से अग्नि बढती और शीघ्र चलती है वैसे ही न्याय से पालन की गई प्रजा से राजा वृद्धि को प्राप्त होता है और जो हिंसा नही करते हैं वे शत्रुओ से रहित हुए सब के प्रिय होते हैं ॥२॥

अनु कृष्णे वसुधिती येमाते विश्वपेशसा ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (वायो) राजन् ! जैसे (विश्वपेशसा) सम्पूर्ण उत्तमरूप से (कृष्णे) खीची गई (वसुधिती) सम्पूर्ण लोको की स्थिति जिनमे वे अन्तरिक्ष और पृथिवी (अनु, येमाते) नियम से चलती हैं वैसे ही (सुतस्य) उत्पन्न किये गये पदार्थ की (पीतये) रक्षा के लिये (चन्द्रेण) रत्नो से जडे हुए (रथेन) वाहन के द्वारा आप (आ, याहि) प्राप्त हूजिये ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जैसे भूमि और सूर्य्य बहुत फल देनेवाले वर्त्तमान और नियम से चलते हैं वैसे बहुत फलों के देनेवाले होकर विद्या और विनय के नियम से निरन्तर आइये ॥३॥

वहन्तु त्वा मनोयुजो युक्तासो नवतिर्नव ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (वायो) बलवान् (मनोयुजः) मन से ब्रह्म का योग करनेवाले (युक्तासः) जिन्होने योगाभ्यास किया वे (नव) नौ बार गुनी गई (नवतिः) नब्बे सख्या से युक्त नाडियो से सदृश (त्वा) आप राजा को (वहन्तु) प्राप्त हों वा प्राप्त करावें आप इनके (सुतस्य) प्राप्त राज्य के (पीतये) रक्षण आदि के लिये (चन्द्रेण) सुवर्ण आदि से बने हुए (रथेन) वाहन से (आ, याहि) आइये ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो श्रेष्ठ यथार्थवक्ता जन आपके सहायक होवें तो आप जिस जिस पदार्थ की इच्छा करें वह सब सिद्ध होवे ॥४॥

वायो शतं हरीणां युवस्व पोष्याणाम् ।
उत वा ते सहस्रिणो रथ आ यातु पाजसा ॥ ५ ॥ २४ ॥

पदार्थ—हे (वायो) राजन् ! आप (पोष्याणाम्) पोषण करने योग्य (हरीणाम्) मनुष्यो के (शतम्) असङ्ख्य को (युवस्व) कर्मों के बीच प्रेरणा देओ (उत, वा) अथवा (सहस्रिणः) असङ्ख्य पुरुष और धन से युक्त (ते) आप के (पाजसा) बल से (रथः) वाहन (आ, यातु) सब ओर से प्राप्त हो ॥५॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो राज्य करने की इच्छा करो तो उत्तम सहायो का ग्रहण करो ॥५॥

इस सूक्त मे राजगुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह अडतालीसवां सूक्त और चौबीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षडृचस्यैकोनपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्राबृहस्पती देवते । १ निचृद्गायत्री । २-६ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले उनचासवें सूक्त का आरम्भ है, इसमे राजा और प्रजा की कैसे वृद्धि हो इस विषय को कहते हैं—

इदं वामास्ये हविः प्रियमिन्द्राबृहस्पती । उक्थं मदश्च शस्यते ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्राबृहस्पती) बिजुली और सूर्य्य के सदृश मन्त्री और राजा (वाम्) आप दोनो के (आस्ये) मुख मे (इदम्) यह (प्रियम्) सुन्दर (उक्थम्) प्रशसा करने योग्य (मदः) आनन्द (च) और (हविः) खाने योग्य वस्तु (शस्यते) स्तुति किया जाता है ॥१॥

भावार्थ—जो राजा आदि मनुष्य उत्तम प्रकार सस्कारयुक्त अन्न को खाते हैं वो प्रकाशयुक्त अधिक अवस्था वाले और बलवान् होते है ॥१॥

अयं वां परि षिच्यते सोम इन्द्राबृहस्पती । चारुर्मदाय पीतये ॥२॥

पदार्थ—हे (इन्द्राबृहस्पती) राजा और उपदेशक विद्वान्जनो (वाम्) आप दोनों के मुख मे (मदाय) आनन्द के लिये (पीतये) पान करने को (चारुः) अति उत्तम (सोमः) बडी ओषधि का रस (अयम्) यह (परि) सब प्रकार से (सिच्यते) सीचा जाता है इससे आप समर्थ होवें ॥२॥

भावार्थ—जैसे उत्तमान्न सेवन किया जाता वैसे ही उत्तम रस भी सेवन किया जावे ॥२॥

आ न इन्द्राबृहस्पती गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् । सोमपा सोमपीतये ॥३॥

पदार्थ—हे (सोमपा) सोमलता के रस को पीनेवाले (इन्द्राबृहस्पती) राजा और अध्यापक ! आप दोनों (नः) हम लोगों के (गृहम्) घर को (सोमपीतये) सोमलता के उत्तम रस पीने के लिये (आ, गच्छतम्) आओ (इन्द्रः) और ऐश्वर्य्य वाला जन (च) भी आवे ॥३॥

भावार्थ—हे राजा मन्त्री और धनी जनो ! जैसे हम लोग आप लोगों को निमन्त्रण देकर अन्न आदि से सत्कार करें वैसे ही आप हम लोगों का सत्कार करो ॥ ३ ॥

अस्मे इन्द्राबृहस्पती रयिं धत्तं शतग्विनम् । अश्वावन्तं सहस्रिणम् ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्राबृहस्पती) बिजुली और सूर्य्य के सदृश राजा और प्रधान जनो आप दोनों (अस्मे) हम लोगों के लिये (शतग्विनम्) असङ्ख्यात गौओं और (अश्वावन्तम्) उत्तम घोड़ों आदि से युक्त (सहस्रिणम्) असङ्ख्य पदार्थ जिस में विद्यमान उस (रयिम्) धन को (धत्तम्) धारण करो ॥४॥

भावार्थ—तभी राजा और प्रधानादिकों की प्रशंसा होवे कि जब सब प्रजा को धन और विद्या से युक्त करे ॥४॥

इन्द्राबृहस्पती वयं सुते गीर्भिर्हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥५॥

पदार्थ—हे (इन्द्राबृहस्पती) अध्यापक और उपदेशकजनो ! जैसे (वयम्) हम लोग (गीर्भिः) वाणियों से (अस्य) इस (सोमस्य) ओषधियों से उत्पन्न हुए रस के (पीतये) पान के लिये आप दोनों का (हवामहे) स्वीकार करते हैं वैसे (सुते) रस के उत्पन्न होने पर हम लोगों का स्वीकार करो ॥५॥

भावार्थ—राजा और प्रजाजनों को चाहिये कि परस्पर के सत्कार में बड़े ऐश्वर्य्य का भाग करें ॥५॥

सोममिन्द्राबृहस्पती पिबतं दाशुषो गृहे ।
मादयेथां तदोकसा ॥ ६ ॥ २५ ॥

पदार्थ—हे (तदोकसा) उस स्थान वाले (इन्द्राबृहस्पती) राजा और मन्त्री जनो आप दोनों (दाशुषः) दाता जन के (गृहे) स्थान में (सोमम्) अति उत्तम रस का (पिबतम्) पान करो और हम लोगों को निरन्तर (मादयेथाम्) आनन्द देओ ॥६॥

भावार्थ—राजा आदि जन जैसे स्वयं विद्यायुक्त, धार्मिक, न्यायकारी और आनन्दित होवें वैसे प्रजाजनों को भी करें ॥६॥

इस सूक्त में राजा और प्रजादि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह उनचासवां सूक्त और पच्चीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथैकादशर्चस्य पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । १-९ बृहस्पतिः । १०, ११ इन्द्राबृहस्पती देवते । १-३, ६, ७, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ५, ११ विराट् त्रिष्टुप् । ८, १० त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले पचासवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों को क्या करना चाहिये, इस विषय को कहते हैं—

यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान्बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (त्रिषधस्थः) तीन तुल्य स्थानों वा कर्म उपासना ज्ञान में स्थित होनेवाला (बृहस्पतिः) महान् वा बड़े पदार्थों का पालने वाला सूर्य्य (सहसा) बल से (ज्मः) पृथिवी के (अन्तान्) समीपों को (वि, तस्तम्भ) धारण करे वैसे कर्मोपासना और ज्ञान में स्थित होने और बड़े पदार्थों का पालने वाला (यः) जो विद्वान् (रवेण) उपदेश से जनों को धारण करे (तम्) उस (मन्द्रजिह्वम्) आनन्द देने और कल्याण करनेवाली जिह्वा से युक्त विद्वान् को इनके (पुरः) बड़े नगरों को (दीध्यानाः) उत्तम गुणों से प्रकाशित करते हुए (प्रत्नासः) प्राचीन और प्रथम जिन्होंने विद्या पढ़ी ऐसे (ऋषयः) मन्त्रों के अर्थ जाननेवाले (विप्राः) बुद्धिमान् जन (दधिरे) धारण करें ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य अपनी आकर्षणशक्ति से भूगोलों को धारण करता और भूगोलों में वर्त्तमान पदार्थों को धारण करता है वैसे ही विद्वान् लोग सब मनुष्यों का धारण करके उन के अन्तःकरणों को प्रकाशित करें ॥१॥

अब कौन प्रशंसा के योग्य होते हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे ।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (बृहस्पते) बड़ी वाणी के पालन करनेवाले (ये) जो (मदन्तः) आनन्द देते हुए (धुनेतयः) धर्मात्मा जनों के कम्पानेवालों को कम्पानेवाले (सुप्रकेतम्) उत्तम तीक्ष्ण बुद्धिवाले (पृषन्तम्) विद्यादि उत्तम गुणों को सींचते हुए (सृप्रम्) उत्तम गुणों को प्राप्त (अदब्धम्) नहीं हिंसित (ऊर्वम्) हिंसा करनेवाले जन का (ततस्रे) नाश करते हैं और (नः) हम लोगों को (अभि) चारों ओर से नाश करते हैं उनका निवारण करके आप उनका निवारण करो । हे (बृहस्पते) बड़ी वस्तुओं के पालन करनेवाले जिनके रोकने से (अस्य) इस विद्याव्यवहार के (योनिम्) कारण की आप (रक्षतात्) रक्षा कर ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो लोग डाकू और चोरादिकों का निवारण कर धार्मिक विद्वानों को सुख देकर अङ्ग और उपाङ्गों के सहित विद्या के व्यवहार को बढ़ावें उनका आप लोग सत्कार करें ॥ २ ॥

बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः ।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥३॥

पदार्थ—हे (बृहस्पते) बड़े राज्य के पालन करनेवाले (ते) आपकी (या) जो (परमा) उत्तम नीति है उससे (ऋतस्पृशः) सत्य का स्पर्श करनेवाले आपके (अद्रिदुग्धाः) मेघ से पूर्ण (खाताः) खोदे गये (मध्वः) मधुर आदि गुणवाले जल से युक्त (अवताः) कूप (तुभ्यम्) आपके लिये (अभितः) सब प्रकार से (श्चोतन्ति) सींचते हैं और (विरप्शम्) महान् संसार का (आ, नि षेदुः) सब ओर से स्थित करें (अतः) इससे उनका हम लोग (परावतः) गुणयुक्त सत्कार करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग वृद्ध विद्वान् राजा लोगों के समीप से अनादि काल से सिद्ध नीति का ग्रहण करके मेघों के सदृश प्रजाओं को सुख से सींचो ॥ ३ ॥

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (परमे) उत्तम (व्योमन्) व्यापक में (महः) बड़े (ज्योतिषः) प्रकाश से (प्रथमम्) पहिले (जायमानः) उत्पन्न हुआ (सप्तास्यः) सात किरणरूप मुखों से युक्त (तुविजातः) बहुतों में प्रसिद्ध (सप्तरश्मिः) सात प्रकार के किरणों से युक्त (बृहस्पतिः) बड़ा सूर्य (रवेण) शब्द से अर्थात् गतिशब्द से (तमांसि) रात्रियों को (वि, अधमत्) दूर करता है वैसे बड़ा विद्वान् उपदेश से अविद्या का निवारण करके विद्या को प्रकट करे ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जैसे सूर्य्य में सात प्रकार के रूपवाले तत्त्व मिले हुए वर्त्तमान हैं जिन किरणों के द्वारा सब से रसों को ग्रहण करता है वैसे पाँच ज्ञानेन्द्रिय मन और आत्मा से सब विद्याओं को ग्रहण करके पढ़ाने और उपदेश करने से सबके अज्ञान को दूर करके विद्या के प्रकाश को उत्पन्न करो ॥ ४ ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण ।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद्वावशतीरुदाजत् ॥५॥२६॥

पदार्थ—हे विद्वान् जैसे (सः) वह (हव्यसूदः) हवन करने योग्य पदार्थों को क्षरण कराने अर्थात् अपने प्रताप से अणुरूप करानेवाला (कनिक्रदत्) अत्यन्त शब्द करता हुआ (बृहस्पतिः) बड़ा और सबका पालन करनेवाला सूर्य्य (सुष्टुभा) सुन्दर प्रशंसित (गणेन) किरणसमूह से (फलिगम्) मेघ को (रुरोज) भङ्ग करे और (सः) वह विद्वान् (ऋक्वता) बहुत प्रशंसायुक्त उपदेश देने योग्य विद्यार्थियों के समूह से (रवेण) शब्द से (वलम्) कुटिल चाल को भङ्ग करे और (उस्रियाः) पृथिवी के बीच वर्त्तमान (वावशतीः) अत्यन्त कामना करती हुई प्रजाओं को (उत्, आजत्) प्राप्त होता है वैसे आप वर्त्ताव करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य्य वृष्टि के द्वारा सब प्रजाओं की रक्षा करता और बिजुली के शब्द से सबको जनाता है वैसे ही सब विद्वान् जन विद्या के द्वारा सबके आत्माओं को प्रकाशित करें ॥ ५ ॥

एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥

पदार्थ—हे (बृहस्पते) बड़ों के पालन करनेवाले जैसे हम लोग (यज्ञैः) मिले हुए कर्मों से (विश्वदेवाय) संसार के प्रकाशक (वृष्णे) वृष्टि करने और (पित्रे) पालन करनेवाले के लिये (नमसा) सत्कार वा अन्न आदि से (हविर्भिः) ग्रहण करने योग्य उपदेश वा द्रव्यों से (विधेम) करें अर्थात् क्रिया-विधान करें तथा (वयम्) हम (सुप्रजाः) विद्या और विनयवाली श्रेष्ठ प्रजाओं से युक्त (वीरवन्तः) वीर पुरुषोंवाले लोग (रयीणाम्) धनों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें (एवा) वैसे ही आप हूजिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य मेघ के चमत्कार से सबका पालन करनेवाला है वैसे ही हम लोग वर्त्ताव करके प्रति उत्तम पुरुष और राज्य के स्वामी होवें ॥ ६ ॥

स इद्राजा प्रतिजन्यानि विश्वा शुष्मेण तस्थावभि वीर्येण ।
बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्ति वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजम् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यः**) जो (**सुभृतम्**) उत्तम प्रकार धारण किये गये (**बृहस्पतिम्**) बड़ों मे बड़े (**पूर्वभाजम्**) प्राचीनो से सेवा करने योग्य का (**बिभर्ति**) धारण करता, (**वल्गूयति**) सत्कार करता और (**वन्दते**) कामना करता है जो (**शुष्मेण**) बल (**वीर्य्येण**) और पराक्रम से (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**प्रतिजन्यानि**) प्रत्यक्ष से उत्पन्न होने योग्यों के (**अभि**) सम्मुख (**तस्थौ**) स्थित होता है (**सः, इत्**) वही जगदीश्वर (**राजा**) सबका प्रकाश करनेवाला सब लोगो के सेवा करने योग्य है ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर सम्पूर्ण जगत् को अभिव्याप्त होकर और धारके सूर्य्य को भी धारता है और सम्पूर्ण वेदो का उपदेश देकर प्रशसित वर्त्तमान है और जिसकी सेवा योगिराज करते हैं उसी की नित्य उपासना करो ॥७॥

स इत्क्षेति सुधित ओकसि स्वे तस्मा इळा पिन्वते विश्वदानीम् ।
तस्मै विशः स्वयमेवा नमन्ते यस्मिन्ब्रह्मा राजनि पूर्व एति ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो जन परमेश्वर का भजन करता है (**सः, इत्**) वही (**सुधितः**) उत्तम प्रकार तृप्त हुआ (**स्वे**) अपने (**ओकसि**) निवासस्थान मे (**क्षेति**) निवास करता है तथा (**विश्वदानीम्**) सब काल मे (**तस्मै**) उसके लिये (**इळा**) प्रशसित वाणी वा भूमि (**पिन्वते**) सेवन करती है (**यस्मिन्, राजनि**) जिस प्रकाशमान परमात्मा मे (**ब्रह्मा**) चार वेद का जाननेवाला (**पूर्वः**) अनादि से हुआ प्रथम (**एति**) प्राप्त होता है (**तस्मै**) उस राजा के लिये (**विशः**) प्रजा (**स्वयम्, एवा**) आप ही (**नमन्ते**) नम्र होती हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अन्य सबका त्याग करके एक परमेश्वर ही की आप लोग सेवा करें तो आप लोगो मे लक्ष्मी, राज्यप्रतिष्ठा और यश सदा ही निवास करें ॥ ८ ॥

अप्रतीतो जयति सं धनानि प्रतिजन्यान्युत या सजन्या ।
अवस्यवे यो वरिवः कृणोति ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यः**) जो (**अप्रतीतः**) शत्रुओ से नही पराजित किया गया (**राजा**) राजा (**अवस्यवे**) रक्षा की इच्छा करते हुए (**ब्रह्मणे**) परमात्मा के लिये (**वरिवः**) सेवन को (**कृणोति**) करता है (**तम्**) उसकी (**देवाः**) विद्वान् जन (**अवन्ति**) रक्षा करते हैं और (**या**) जो (**सजन्या**) तुल्य उत्पन्न हुए पदार्थों के साथ वर्त्तमान (**उत**) भी (**प्रतिजन्यानि**) मनुष्य मनुष्य के प्रति वर्त्तमान (**धनानि**) धन हैं उनको सहज स्वभाव से (**सम्, जयति**) अच्छे प्रकार जीतता है ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो राजा परमात्मा ही की उपासना करता और यथार्थवक्ता विद्वानों की सेवा करता है, वही नही नाश होनेवाले राज्य और धन को प्राप्त होकर सदा ही विजयी होता है ॥ ९ ॥

अब राजा कैसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन्यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥१०॥

पदार्थ—हे (**बृहस्पते**) पूर्णविद्वन् ! (**इन्द्रः, च**) और अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाला (**मन्दसाना**) प्रशसित और आनन्दयुक्त (**वृषण्वसू**) बलिष्ठ वीर पुरुषों को निवास करानेवाले आप दोनो (**अस्मिन्**) इस (**यज्ञे**) राज्यपालननामक व्यवहार मे (**सोमम्**) उत्तम ओषधियों के रस का (**पिबतम्**) पान करो और जैसे (**स्वाभुवः**) आप होनेवाले (**इन्दवः**) ऐश्वर्य्य (**वाम्**) आप दोनों को (**आ, विशन्तु**) प्राप्त हो वैसे (**अस्मे**) हम लोगो के लिए (**सर्ववीरम्**) सब वीर हों जिसस उस (**रयिम्**) धन को आप दोनो (**नि, यच्छतम्**) उत्तम प्रकार दीजिए ॥१०॥

भावार्थ—हे राजा और राजोपदेशको ! तुम कभी मदकारक वस्तु का सेवन न करो और राज्यपालन तथा सत्योपदेश से ही प्रजाओ का पालन कर सदैव आनन्दित होओ और हम लोगो के लिए सब ऐश्वर्य्य अच्छे प्रकार देओ ॥ १० ॥

अब प्रजाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

बृहस्पत इन्द्र वर्धतं नः सचा सा वां सुमतिर्भूत्वस्मे ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥११॥२७॥७

पदार्थ—हे (**बृहस्पते**) सम्पूर्ण विद्याओ को प्राप्त (**इन्द्र**) और अत्यन्त ऐश्वर्य्यवाले राजन् ! जो (**वाम्**) आप दोनों की (**सुमतिः**) श्रेष्ठ बुद्धि (**भूतु**) हो (**सा**) वह (**वनुषाम्**) सविभाग करनेवाले (**नः**) हमारे (**सचा**) सत्य के साथ हो और उससे हम लोगो की (**वर्धतम्**) वृद्धि करो, आप दोनो जो (**पुरन्धीः**) बहुत विद्याओ को धारण करनेवाली (**धियः**) बुद्धियो का (**अविष्टम्**) प्राप्त होइए जिससे (**जिगृतम्**) उपदेश दीजिए वे (**अस्मे**) हम लोगो को प्राप्त होवें और जैसे (**अर्य्यः**) स्वामी वैसे आप दोनो हम लोगो के (**अरातीः**) शत्रुओ को (**जजस्तम्**) युद्ध कराइये ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि सर्वदा विद्वानो से विद्याप्राप्तिविषयक याचना करें जिससे उत्तम बुद्धियाँ होवें और शत्रुजन दूर से भागें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में विद्वान् राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

इति श्रीमत्परमहसपरिव्राजकाचार्य्य श्रीमद् विरजानन्द सरस्वती स्वामीजी के शिष्य दयानन्दसरस्वती स्वामिविरचित आर्य्यभाषासुशोभित ऋग्वेदभाष्य में तृतीय अष्टक के सप्तम अध्याय में सत्ताईसवां वर्ग तथा सातवां अध्याय और चतुर्थमण्डल में पाँचवां अनुवाक और पचासवां सूक्त समाप्त हुआ ॥
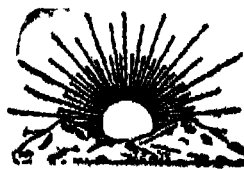
अथ तृतीयाष्टके अष्टमोऽध्यायः ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथैकादशर्चस्यैकाधिकपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । उषा देवता । १, ५, ८, त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ६, ७, ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ पङ्क्तिः, १० भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले इक्कावनवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में प्रातःकाल का वर्णन जिस में ऐसे विषय को कहते हैं—

इदमु त्यत्पुरुतमं पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात् ।
नूनं दिवो दुहितरो विभातीर्गातुं कृणवन्नुषसो जनाय ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**त्यत्**) सो (**इदम्**) यह (**पुरुतमम्**) अतिशय करके अनेक प्रकार का (**ज्योतिः**) तेज अर्थात् प्रकाश (**वयुनावत्**) प्रज्ञान के सदृश (**तमसः**) रात्रि से (**पुरस्तात्**) प्रथम (**अस्थात्**) वर्त्तमान है उस (**दिवः**) प्रकाश के सम्बन्ध से (**विभातीः**) प्रकाश करती हुईं (**दुहितरः**) कन्याओं के सदृश वर्त्तमान (**उषसः**) प्रभातवेलाएं (**जनाय**) मनुष्य आदि के लिये (**गातुम्**) भूमि को (**उ**) तो (**नूनम्**) निश्चय प्रकाशित (**कृणवन्**) करती हैं यह जानो ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग पुरुषार्थ से सूर्य्य के प्रकाश के सदृश विज्ञान को प्राप्त होकर अन्धकार की निवृत्ति के सदृश अविद्या का निवारण करके आनन्दित होओ ॥ १ ॥

अब स्त्री पुरुष के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्तान्मिताइव स्वरवोऽध्वरेषु ।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारोच्छन्तीरव्रञ्छुचयः पावकाः ॥२॥

पदार्थ—हे ब्रह्मचारी जनो ! जो (**उ**) ही (**अध्वरेषु**) गृहाश्रम के व्यवहारों के अनुष्ठानों में (**शुचयः**) पवित्र (**पावकाः**) पवित्र कर्म करने वाली (**स्वरवः**) प्रताप से युक्त (**पुरस्तात्**) पूर्व से (**मिताइव**) विद्या से सम्पूर्ण पदार्थों को जानती सी हुईं (**उषसः**) प्रभात वेलाओं के सदृश कन्याएं (**व्रजस्य**) प्राप्त (**तमसः**) अन्धकार के (**द्वारा**) द्वारों को (**वि, उच्छन्तीः**) विवास कराती हुईं सी (**चित्राः**) विचित्र गुण कर्म स्वभावयुक्त ब्रह्मचारिणी (**अस्थुः**) स्थित होती हैं (**उ**) उन्हीं को विवाह के लिये (**अव्रन्**) स्वीकार करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे ब्रह्मचारी जनो ! जो ब्रह्मचारिणी मेघ के सदृश गम्भीर शब्दयुक्त थोड़ा बोलनेवाली पवित्र और विद्यायुक्त होवें वही प्रथम उत्तम प्रकार परीक्षा करके विवाहने योग्य है ॥ २ ॥

उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्राधोदेयायोषसो मघोनीः ।
अचित्रे अन्तः पणयः ससन्त्वबुध्यमानास्तमसो विमध्ये ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो (**तमसः**) रात्रि के (**अचित्रे**) नहीं आश्चर्य जिसमें ऐसे (**विमध्ये**) विशेष अन्धकार में (**उषसः**) प्रातर्वेलाओं के सदृश (**मघोनीः**) सत्कार किया धन का जिन्होंने उनकी स्त्रियां (**उच्छन्तीः**) और उत्तम प्रकार वास देती हुईं (**अन्तः**) मध्य में (**अबुध्यमानाः**) बोधरहित (**पणयः**) प्रशंसा करने योग्य स्त्रियां (**ससन्तु**) सुख से सोवें और (**राधोदेयाय**) धन देने योग्य व्यवहार के लिये (**भोजान्**) पालन करनेवाले पतियों को (**अद्य**) आज (**चितयन्त**) जनाती हैं वे अच्छे प्रकार ग्रहण करनी चाहिएँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे पुरुषो ! जो कन्या अपने सदृश विदुषी और शुभगुण कर्म स्वभाव वाली होवे वे ही स्त्री होने के लिये स्वीकार करने योग्य हैं ॥ ३ ॥

कुविस्स देवीः सनयो नवो वा यामो बभूयादुषसो वो अद्य ।
येना नवग्वे अङ्गिरे दशग्वे सप्तास्ये रेवती रेवदूष ॥४॥

पदार्थ—हे पुरुषो ! (**सः**) वह (**यामः**) चलनेवाले (**नवः**) नवीन विद्या अवस्था युक्त आप (**बभूयात्**) निरन्तर हूजिये उसी प्रकार (**रेवतीः**) बहुत धन और शोभा से युक्त (**सनयः**) विभाग करनेवाली (**देवीः**) प्रकाशमान (**उषसः**) प्रभात वेलाओं के सदृश कन्या (**वः**) आप लोगों को (**रेवत्**) बहुत प्रशंसित धनवान् जैसे हो वैसे (**ऊष**) निरन्तर बसाती हैं (**वा**) अथवा (**येना**) जिस कारण (**अद्य**) आज दिन (**नवग्वे**) नौ गौओं से युक्त (**दशग्वे**) और दश गौओं से युक्त (**अङ्गिरे**) प्राणों के सदृश प्रिय पति के निमित्त (**सप्तास्ये**) सात प्राण मुख में जिसके उसमें वर्त्तमान हैं इससे उनकी गृहाश्रम के लिये सेवा करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो अधिक विद्या, बल, तुल्यस्वरूप, नवीन युवावस्थायुक्त और सुशील विद्वान् अपने सदृश स्त्री का स्वीकार करे वह सुखी होवे और जो स्त्री पति की कामना करती हुई धन और विद्या की उन्नति करे वह सब मनुष्यों को सुखी करने के योग्य होवे ॥ ४ ॥

यूयं हि देवीर्ऋतयुग्भिरश्वैः परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः ।
प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीवम् ॥५॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यूयम्**) आप लोग जैसे (**चरथाय**) भ्रमण के लिये (**ससन्तम्**) शयन करते हुए (**जीवम्**) प्राणधारी को (**प्रबोधयन्तीः**) जगाती हुई (**उषसः**) प्रातर्वेला (**द्विपात्**) दो पाद वाले मनुष्य आदि और (**चतुष्पात्**) चार पैर वाली गौ आदि के सदृश (**सद्यः**) शीघ्र (**भुवनानि**) लोक लोकान्तरों को प्राप्त होती हैं वैसे (**हि**) ही (**ऋतयुग्भिः**) सत्य से युक्त (**अश्वैः**) बड़े बलिष्ठ और पुरुषार्थियों के साथ (**देवीः**) दिव्य गुण कर्म स्वभाव युक्त स्त्रियों को (**परिप्रयाथ**) सब ओर से प्राप्त होओ ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो जन उत्तम गुणों से युक्त विदुषी सुन्दर अपने सदृश स्त्रियों को प्राप्त होते हैं वे सदा ही प्रातःकाल के सदृश प्रकाशमान और सब के बोधक होते हैं ॥५॥

क्व स्विदासां कतमा पुराणी यया विधाना विदधुर्ऋभूणाम् ।
शुभं यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति न वि ज्ञायन्ते सदृशीरजुर्याः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यत्**) जो (**शुभ्राः**) चमकीली (**सदृशीः**) तुल्य (**अजुर्याः**) नहीं जीर्ण अर्थात् नवीन (**उषसः**) प्रातर्वेलायें (**शुभम्**) कल्याण को (**चरन्ति**) प्राप्त होती हैं (**आसाम्**) इनके मध्य में (**कतमा**) कौनसी (**पुराणी**) पुरानी (**क्व**) किसमें (**विधाना**) करना (**यया**) जिससे (**ऋभूणाम्**) बुद्धिमानों का (**स्वित्**) क्या (**विदधुः**) विधान करें ऐसा (**न**) नहीं (**वि, ज्ञायन्ते**) जाना जाता है इस प्रकार की स्त्रियों को श्रेष्ठ जानें ॥६॥

भावार्थ—जैसे सम्पूर्ण प्रातर्वेला तुल्य होती हैं वैसे ही पतियों के साथ सदृश स्त्रियां प्रशंसा करने योग्य होती हैं वह सदा ही युवावस्था में युवा पुरुषों को प्राप्त होकर आनन्दित हो, नहीं जाना जाता है कि कौन नवीन कौन प्राचीन प्रातर्वेला होती है वैसे ब्रह्मचर्य्य से युक्त कन्या होती है ॥६॥

ता घा ता भद्रा उषसः पुरासुरभिष्टिद्युम्ना ऋतजातसत्याः ।
यास्वीजानः शशमान उक्थैः स्तुवञ्छंसन्द्रविणं सद्य आप ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**ईजानः**) गमन करनेवाला जन (**शशमानः**) प्रशंसा को प्राप्त होता (**उक्थैः**) कहने योग्य वचनों से (**स्तुवन्**) स्तुति करता और (**शंसन्**) प्रशंसा करता हुआ (**यासु**) जिन में (**द्रविणम्**) धन वा यश को (**सद्यः**) शीघ्र (**आप**) प्राप्त होता है (**ताः**) वे (**उषसः**) प्रभात वेला (**भद्राः**) कल्याण करनेवाली जैसी (**पुरा**) पहिले (**आसुः**) हुईं वैसी फिर वर्त्तमान हैं उनके समान जो (**अभिष्टिद्युम्नाः**) प्रशंसित यशरूप धन से युक्त (**ऋतजातसत्याः**) सत्य से उत्पन्न हुए व्यवहारों में श्रेष्ठ ब्रह्मचारिणी हैं (**ताः, घा**) उन्हीं को आप लोग गृहाश्रम के लिये प्राप्त होओ ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य के साथ प्रातर्वेला सदा वर्त्तमान है वैसे ही स्वयंवर जिन्होंने किया ऐसे स्त्री पुरुष यशस्वी और सत्य आचरण वाले होवें ॥७॥

ता आ चरन्ति समना पुरस्तात्समानतः समना पप्रथानाः ।
ऋतस्य देवीः सदसो बुधाना गवां न सर्गा उषसो जरन्ते ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**पुरस्तात्**) पुरस्तात् कृत ब्रह्मचर्य्य परीक्षा अर्थात् प्रथम ब्रह्मचर्य्य की परीक्षा जिनकी की ऐसी (**समानतः**) सदृश पतियों से (**समना**) तुल्य गुण कर्म और स्वभाव वाली (**ऋतस्य**) सत्य की (**देवीः**) जाननेवाली पण्डिता (**पप्रथानाः**) विस्तीर्ण विद्या और सौन्दर्य्य आदि गुणयुक्त कन्या (**सदसः**) श्रेष्ठ पुरुषों को (**बुधानाः**) ज्ञान से जगाती (**उषसः**) प्रातर्वेलाओं के (**समना**) समान और (**गवाम्**) गौओं के (**सर्गाः**) उत्पन्न हुए वृन्दों के (**न**) समान (**आ, चरन्ति**) आचरण करती और (**जरन्ते**) स्तुति करती हैं (**ताः**) उनको विवाहो ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो शिक्षा को ग्रहण किये हुए रूप और कान्ति आदि उत्तम गुणों से युक्त विदुषी ब्रह्मचारिणी कन्या होवे उसी को यथायोग्य विवाहो ॥८॥

अब स्त्रियों के लिये उपदेशविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ता इन्न्वे३॒॑व स॑म॒ना स॑मा॒नीरमी॑तवर्णा उ॒षस॑श्चरन्ति ।
गूह॑न्ती॒रभ्व॒मसि॑तं॒ रुश॑द्भिः शु॒क्रास्त॒नूभि॒ः शुच॑यो रुचा॒नाः ॥९॥

पदार्थ—हे स्त्रियो ! जो (**अमीतवर्णाः**) विद्यमान वर्ण वाली (**समना**) तुल्य (**समानीः**) तुल्यविचारशील (**रुशद्भिः**) नाश करनेवाले गुणों से (**अभ्वम्**) बड़े (**असितम्**) निकृष्ट वर्ण वाले अन्धकार को (**गूहन्तीः**) ढापती हुई (**तनूभिः**) विस्तृत शरीरों से (**शुक्राः**) कान्तिमती और (**शुचयः**) पवित्र (**रुचानाः**) प्रीति करनेवाली (**उषसः**) प्रभात वेलाओं के सदृश (**चरन्ति**) चलती हैं (**ताः**) वे (**इत्**) ही (**नु**) शीघ्र (**एव**) ही जैसे सुख देती हैं वैसे सब को सुखी करो ॥९॥

भावार्थ—जो स्त्रियाँ प्रातर्वेला के सदृश दुःख को नाश करनेवाली और सुख को उत्पन्न करनेवाली हों वे ही आनन्द देने वाली होवें ॥९॥

अब अगले मन्त्र से स्वयंवर विवाह कहा है—

र॒यिं दि॑वो दुहितरो विभा॒तीः प्र॒जाव॑न्तं यच्छता॒स्मासु॑ देवीः ।
स्यो॒नादा व॑ः प्रति॒बुध्य॑मानाः सु॒वीर्य॑स्य॒ पत॑यः स्याम ॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**दिवः**) सूर्य की (**विभातीः**) प्रकाश करती हुई (**दुहितरः**) कन्याओं के सदृश वर्त्तमान किरणें प्रकाश को देती हैं । हे (**देवीः**) विदुषियो ! वैसे (**अस्मासु**) हम लोगों में (**स्योनात्**) सुख से (**प्रजावन्तम्**) बहुत प्रजायुक्त (**रयिम्**) धन को (**आ, यच्छत**) ग्रहण करो (**वः**) तुम को (**प्रतिबुध्यमानाः**) प्रतिबोध कराते हुए हम लोग (**सुवीर्यस्य**) उत्तम पराक्रम युक्त सेना के (**पतयः**) स्वामी (**स्याम**) होवें ॥१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो कन्या प्रभात वेला के सदृश उत्तम प्रकार शोभित सुख को उत्पन्न करती हैं उनके साथ स्वयंवर विवाह से ही मनुष्य श्रीमान् होते हैं ॥१०॥

अब पुरुष के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तद्वो॑ दिवो दुहितरो विभा॒तीरुप॑ ब्रुव उषसो य॒ज्ञके॑तुः ।
व॒यं स्या॑म य॒शसो॒ जने॑षु॒ तद् द्यौश्च॑ ध॒त्तां पृ॑थि॒वी च॑ दे॒वी ॥११॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**विभातीः**) प्रकाश करती हुई (**दिवः**) प्रकाश की (**दुहितरः**) कन्याओं के सदृश वर्त्तमान (**उषसः**) प्रातर्वेला के सदृश स्त्रियाँ (**वः**) आप लोगों का जो विषय है (**तत्**) उसको (**यज्ञकेतुः**) यज्ञ का जनानेवाला मैं आप लोगों को (**उप, ब्रुवे**) उपदेश देता हूँ जैसे (**तत्**) उसको (**देवी**) प्रकाश (**द्यौः**) बिजुली (**च**) और (**पृथिवी, च**) भी (**धत्ताम्**) धारण करे वैसे (**वयम्**) हम लोग (**जनेषु**) विद्वानों में (**यशसः**) यशस्वी (**स्याम**) होवें ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो परस्पर जनों को उपदेश देकर सत्य का ग्रहण कराते हैं वे सूर्य के सदृश प्रकाश करने और भूमि के सदृश प्रजा के धारण करनेवाले होते हैं ॥११॥

इस सूक्त में प्रातःकाल स्त्री और पुरुष के गुण कर्म वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह इक्यावनवाँ सूक्त और दूसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तर्चस्य द्विपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । उषा देवता । १-६ निचृद्गायत्री । ५, ७ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।

अब सात ऋचावाले बावनवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में उषा की तुल्यता से स्त्री के गुणों का वर्णन करते हैं—

प्रति॒ ष्या सू॒नरी॒ जनी॑ व्यु॒च्छन्ती॒ परि॒ स्वसु॑ः ।
दि॒वो अ॑दर्शि दुहि॒ता ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**दिवः**) सुन्दर (**स्वसुः**) भगिनी की (**जनी**) उत्पन्न करनेवाली (**सूनरी**) उत्तम पहुँचाती और (**परि, व्युच्छन्ती**) सब ओर से निवास देती हुई (**दुहिता**) कन्या के सदृश वर्त्तमान प्रातर्वेला (**प्रति, अदर्शि**) एक के प्रति एक देखी जाती है (**स्या**) वह जागे हुए मनुष्य से देखने योग्य है ॥१॥

भावार्थ—वही स्त्री श्रेष्ठ, जो प्रातर्वेला के सदृश वर्त्तमान है ॥१॥

अश्वे॑व चि॒त्रारु॑षी मा॒ता गवा॑मृ॒ताव॑री । सखा॑भूद॒श्विनो॑रु॒षाः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (**चित्रा**) अद्भुत गुण कर्म और स्वभावयुक्त (**अरुषी**) ईषत् लाल वर्ण (**ऋतावरी**) बहुत सत्य का प्रकाश करानेवाली (**उषाः**) प्रातर्वेला (**अश्वेव**) घोड़ी के सदृश वर्त्तमान (**अश्विनोः**) सूर्य और चन्द्रमा की (**सखा**) मित्र (**अभूत्**) हुई वह (**गवाम्**) किरणों की (**माता**) माता के सदृश पालन करनेवाली जाननी चाहिये ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो माता और मित्र के सदृश वर्त्तमान प्रातर्वेला है वह युक्ति से सब पुरुषों से सेवन करने योग्य है ॥२॥

उ॒त सखा॑स्य॒श्विनो॑रु॒त मा॒ता गवा॑मसि । उ॒तोषो॒ वस्व॑ ईशिषे ॥३॥

पदार्थ—हे (**उषः**) प्रातर्वेला के सदृश वर्त्तमान सुन्दर स्त्री ! तू अपने पति की (**सखा**) सखी के सदृश वर्त्तमान (**असि**) है (**उत**) और (**अश्विनोः**) सूर्य और चन्द्रमा के सदृश अध्यापक और उपदेशक की सखी (**असि**) है (**उत**) और (**गवाम्**) किरण वा गौओं की (**माता**) माता (**उत**) और (**वस्वः**) धन की (**ईशिषे**) इच्छा करती है ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वही स्त्री सुख देनेवाली जो मित्र के सदृश आज्ञा पालन और सेवा करनेवाली है वही प्रातर्वेला के सदृश कुल की प्रकाशिका होती है ॥३॥

फिर स्त्रीगुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

या॒व॒यद्द्वे॑षसं त्वा चिकि॒त्वित्सू॑नृतावरि । प्रति॒ स्तोमै॑रभुत्स्महि ॥४॥

पदार्थ—हे (**चिकित्वित्**) जनाने और (**सूनृतावरि**) सत्यवाणी का प्रकाश करनेवाली स्त्री हम लोग (**स्तोमैः**) प्रशंसाओं से (**यावयद्द्वेषसम्**) द्वेष करनेवाले को पृथक् करानेवाली (**त्वा**) तुझको (**प्रति, अभुत्स्महि**) जानें ॥४॥

भावार्थ—जो कभी द्वेष और द्वेष करनेवाले के सङ्ग को नहीं करती और सत्यवाणी और प्रशंसायुक्त है वही स्त्री श्रेष्ठ है ॥४॥

अब स्त्रियों की उत्तम व्यवहारों से प्रशंसा कहते हैं—

प्रति॑ भ॒द्रा अ॑दृक्षत॒ गवां॒ सर्गा॒ न र॒श्मय॑ः । ओषा अ॑प्रा उ॒रु ज्रय॑ः ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (**उरु**) बहुत (**ज्रयः**) अत्यन्त तेज स्वरूप मण्डल को (**रश्मयः**) किरणों के (**न**) सदृश (**भद्राः**) कल्याण करनेवाली (**गवाम्**) पृथिवियों की (**सर्गाः**) सृष्टियाँ, रचना (**प्रति, अदृक्षत**) प्रति समय देखी जाती हैं जैसे (**उषाः**) प्रभातवेला उन को (**आ, अप्राः**) व्याप्त होती है वैसे स्त्री हो ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो स्त्रियाँ किरणों के समान उत्तम व्यवहारों का प्रकाश कराती हैं वे निरन्तर कल्याण के लिये कुल की उन्नति करने वाली होती हैं ॥५॥

अब उषा के तुल्य स्त्रियों के कर्त्तव्य कामों को कहते हैं—

आ॒प॒प्रुषी॑ विभावरि॒ व्या॑वर्ज्योति॑षा॒ तम॑ः । उषो॒ अनु॑ स्व॒धाम॑व ॥६॥

पदार्थ—हे (**उषः**) प्रभात वेला के सदृश उत्तम प्रकाश और (**विभावरि**) प्रशंसित विविध प्रकाश से युक्त उत्तम गुणवाली स्त्री (**आपप्रुषी**) सब ओर से सब विद्याओं को व्याप्त तू (**ज्योतिषा**) प्रकाश से (**तमः**) अन्धकार के सदृश दोषों को (**वि, आवः**) विगतरक्षा अर्थात् रक्षण के विरुद्ध निकाल और (**अनु, स्वधाम्**) अनुकूल अन्न आदि की (**अव**) रक्षा कर ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रभात वेला अपने प्रकाश से अन्धकार का निवारण करती है वैसे ही विद्यायुक्त स्त्रियाँ अपने उत्तम स्वभाव से दोषों का निवारण करके उत्तम प्रकार सत्कारयुक्त अन्न आदि से सबकी उत्तम प्रकार रक्षा करें ॥६॥

आ द्यां त॑नोषि र॒श्मिभि॒रान्तरि॑क्षमु॒रु प्रि॒यम् ।
उष॑ः शु॒क्रेण॑ शो॒चिषा॑ ॥७॥३॥

पदार्थ—हे (**उषः**) प्रभात वेला के सदृश वर्त्तमान स्त्री ! जैसे प्रभातवेला (**रश्मिभिः**) किरणों से (**द्याम्**) प्रकाश और (**उरु**) बहुत (**आ, अन्तरिक्षम्**) सब ओर से अन्तरिक्ष को प्रकाशित करती है वैसे ही तू (**शुक्रेण**) शुद्ध (**शोचिषा**) प्रकाश से (**प्रियम्**) सुन्दर पति का (**आ, तनोषि**) विस्तार करती अर्थात् पति की कीर्त्ति बढ़ाती है इससे सत्कार करने योग्य है ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वही स्त्री बहुत सुख को प्राप्त होती है जो विद्या विनय और उत्तम स्वभावादिकों से अपने पति को नित्य प्रसन्न करती है ॥७॥

इस सूक्त में प्रभात वेला के सदृश स्त्रियों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह बावनवाँ सूक्त और तृतीय वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तर्चस्य त्रिपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । सविता देवता । १, ३, ६, ७ निचृज्जगती । २ विराड्जगती । ४ स्वराड्जगती । ५ जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले त्रेपनवें सूक्त का आरम्भ है, इस में सविता परमात्मा के गुणों का वर्णन करते हैं—

तद्दे॒वस्य॑ सवि॒तुर्वार्यं॑ म॒हद्वृ॑णीमहे॒ असु॑रस्य॒ प्रचे॑तसः ।
छ॒र्दिर्येन॑ दा॒शुषे॒ यच्छ॑ति॒ त्मना॒ तन्नो॑ म॒हाँ उद॑या॒न्देवो॑ अ॒क्तुभि॑ः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग जिस (**सवितुः**) वृष्टि आदि की उत्पत्ति करनेवाले (**देवस्य**) निरन्तर प्रकाशमान (**प्रचेतसः**) जनानेवाले (**असुरस्य**) मेघ के (**महत्**) बड़े (**वार्य्यम्**) स्वीकार करने योग्य पदार्थों वा जलों में उत्पन्न (**छर्दिः**) गृह का (**वृणीमहे**) स्वीकार करते हैं (**तत्**) उसका आप लोग स्वीकार करो (**येन**) जिस कारण से विद्वान् जन (**त्मना**) आत्मा से (**दाशुषे**) दाता जन के लिये स्वीकार करने योग्यों वा जलों में उत्पन्न हुए बड़े गृह को (**यच्छति**) देता है (**तत्**) उसको (**महान्**) बड़ा (**देवः**) प्रकाशमान होता हुआ (**अक्तुभिः**) रात्रियों से (**नः**) हम लोगों के लिये (**उत्, अयाम्**) उत्कृष्टता से देवे ॥१॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन मेघ और सूर्य्य के सम्बन्ध की विद्या को जानते हैं वे दिन और रात्रियों में बड़े कार्य्य को सिद्ध कर के आनन्दित होते हैं ॥१॥

दिवो धर्ता भुवनस्य प्रजापतिः पिशङ्गं द्रापिं प्रति मुञ्चते कविः ।
विचक्षणः प्रथयन्नापृणन्नुर्वजीजनत्सविता सुम्नमुक्थ्यम् ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो ! जो यह (**दिवः**) प्रकाश और (**भुवनस्य**) अनेक भूगोलों से अलङ्कृत अर्थात् शोभित संसार का (**धर्त्ता**) धारण करनेवाला (**प्रजापतिः**) प्रजा का पालनकर्त्ता (**कविः**) तेजयुक्त दर्शनवाला (**पिशङ्गम्**) विचित्र रूपवाले (**द्रापिम्**) कवच को (**प्रति, मुञ्चते**) त्याग करता है और (**विचक्षणः**) अनेक प्रकार से पदार्थों का प्रकाश करनेवाला (**प्रथयन्**) विस्तार करता और (**आपृणन्**) सब प्रकार से पूर्ण करता हुआ (**सविता**) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्यों से युक्त करनेवाला वा समर्थ ऐश्वर्य्यों के देने का निमित्त (**उरु**) बहुत (**उक्थ्यम्**) प्रशंसा करने योग्य (**सुम्नम्**) सुख को (**अजीजनत्**) उत्पन्न करता है वह आप लोगों को यथावत् जानने योग्य है ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर ने प्रजा के धारण प्रकाश और पालन के लिये सूर्य्य बनाया उसी परमेश्वर की उपासना करके बहुत सुख को प्राप्त होइये ॥ २ ॥

आप्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्म्मणे ।
प्र बाहू अस्राक्सविता सवीमनि निवेशयन्प्रसुवन्नक्तुभिर्जगत् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**सविता**) सम्पूर्ण जगत् का उत्पन्न करनेवाला (**देवः**) प्रकाशमान विद्वान् (**सवीमनि**) बड़े ऐश्वर्य्य में (**अक्तुभिः**) रात्रियों के साथ (**जगत्**) सम्पूर्ण संसार को (**निवेशयन्**) प्रवेश कराता और (**प्रसुवन्**) उत्पन्न करता हुआ (**बाहू**) भुजाओं को (**अस्राक्**) उत्पन्न करता वह विद्वान् (**स्वाय**) अपनी (**धर्म्मणे**) धर्म्म की उन्नति के लिए (**श्लोकम्**) श्लाघा प्रशंसा करने योग्य वाणी को (**प्र, कृणुते**) उत्पन्न करता, परमात्मा और (**दिव्यानि**) शुद्ध (**पार्थिवा**) पृथिवी में विदित (**रजांसि**) लोकों को (**आ, अप्राः**) व्याप्त होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर सम्पूर्ण जगत् में अभिव्याप्त हो और उस जगत् को रच के धर्म्म और वेदवाणी का प्रचार करके संसार को व्यवस्थापित अर्थात् जैसा चाहिए वैसा नियत करता उसी को सबका स्वामी जानके निरन्तर उपासना करो ॥ ३ ॥

अदाभ्यो भुवनानि प्रचाकशद्व्रतानि देवः सविताभि रक्षते ।
प्रास्राग्बाहू भुवनस्य प्रजाभ्यो धृतव्रतो महो अज्मस्य राजति ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**अदाभ्यः**) नहीं नष्ट होने योग्य अर्थात् नहीं मन से छोड़ने योग्य (**सविता**) सूर्य्य (**धृतव्रतः**) व्रतों को धारण करनेवाला (**देवः**) सुन्दर (**महः**) बड़े (**अज्मस्य**) अन्तरिक्ष में छोड़े हुए (**भुवनस्य**) लोक (**प्रजाभ्यः**) प्रजाओं के लिए (**व्रतानि**) सत्यभाषण आदि व्रतों को और (**भुवनानि**) लोकोत्पन्न समस्त वस्तुओं को (**प्रचाकशत्**) प्रकाश करता (**बाहू**) बल और वीर्य्य को (**प्र, अस्राक्**) उत्पन्न करता सब को (**अभि**) प्रत्यक्ष (**रक्षते**) रक्षा करता और (**राजति**) प्रकाश करता है वही सब लोगों को उपासना करने योग्य है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर ने प्रजाओं में सम्पूर्ण हित सिद्ध किया और जो भीतर बाहर अभिव्याप्त होके सब के लिये कर्म्मों का फल देता है वही निरन्तर ध्यान करने योग्य है ॥ ४ ॥

त्रिरन्तरिक्षं सविता महित्वना त्री रजांसि परिभूस्त्रीणि रोचना ।
तिस्रो दिवः पृथिवीस्तिस्र इन्वति त्रिभिर्व्रतैरभि नो रक्षति त्मना ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**परिभूः**) सब स्थानों में वर्त्तमान और सब के ऊपर विराजमान (**सविता**) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्यों का उत्पन्न करनेवाला परमेश्वर (**महित्वना**) महिमा और (**त्मना**) आत्मा से (**अन्तरिक्षम्**) भीतर नहीं नाश होने वाले आकाश को (**त्रिः**) तीनवार (**इन्वति**) व्याप्त होता (**त्री**) तीन प्रकार के (**रजांसि**) उत्तम मध्यम निकृष्ट लोकों को व्याप्त होता (**त्रीणि**) तीन प्रकार के (**रोचना**) बिजुली भौतिक और सूर्यरूप ज्योतियों को व्याप्त होता (**तिस्रः**) तीन प्रकार के (**दिवः**) प्रकाशों और (**तिस्रः**) तीन प्रकार की (**पृथिवीः**) भूमियों को व्याप्त होता और (**त्रिभिः**) तीन (**व्रतैः**) नियमों से (**नः**) हम लोगों की (**अभि**) सब ओर से (**रक्षति**) रक्षा करता है वही सर्वदा सेवा करने योग्य है ॥५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर तीन प्रकार के सम्पूर्ण त्रिगुण अर्थात् सत्त्वगुण रजोगुण तमोगुणस्वरूप जगत् को रच के उत्तम नियमों से पालन करता है उसी की उपासना करो ॥ ५ ॥

बृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनो जगतः स्थातुरुभयस्य यो वशी ।
स नो देवः सविता शर्म्म यच्छत्वस्मे क्षयाय त्रिवरूथमंहसः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यः**) जो (**नः**) हम लोगों के लिये (**बृहत्सुम्नः**) अत्यन्त सुख का (**प्रसवीता**) उत्पन्न करनेवाला और (**जगतः**) जङ्गम अर्थात् चेतनता युक्त मनुष्य आदि और (**स्थातुः**) स्थिर स्थावर अर्थात् नहीं चलने फिरनेवाले वृक्ष आदि जगत् के (**निवेशनः**) निवेश अर्थात् स्थिति का करनेवाला (**उभयस्य**) दो प्रकार के जगत् के (**वशी**) वश करने को समर्थ (**देवः**) दाता जगदीश्वर हम लोगों के लिए विद्या को (**यच्छतु**) देवे (**सः**) वह (**सविता**) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य से युक्त (**अस्मे**) हम लोगों के (**क्षयाय**) निवास के लिये (**अंहसः**) दुःख से अलग हुए (**त्रिवरूथम्**) तीन गृह जिसमें उस (**शर्म**) उत्तम प्रकार सुख देनेवाले स्थान को देवे वही हम लोगों का उपासना करने योग्य देव हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर सब जगत् का नियामक और सब जीवों के निवास के लिये अनेक प्रकार के स्थान का रचनेवाला है उस को छोड़ के अन्य किसी की भी उपासना न करो ॥ ६ ॥

आगन्देव ऋतुभिर्वर्धतु क्षयं दधातु नः सविता सुप्रजामिषम् ।
स नः क्षपाभिरहभिश्च जिन्वतु प्रजावन्तं रयिमस्मे समिन्वतु ॥७।४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**सविता**) सम्पूर्ण जगत् का उत्पन्न करनेवाला (**देवः**) निरन्तर प्रकाशमान जगदीश्वर (**ऋतुभिः**) वसन्त आदि ऋतुओं से (**नः**) हम लोगों के (**क्षयम्**) निवास की (**वर्धतु**) वृद्धि करे और हम लोगों को (**आ**) सब प्रकार से (**अगन्**) प्राप्त हो (**सुप्रजाम्**) उत्तम प्रजा और (**इषम्**) अन्न आदि को (**दधातु**) धारण करे (**सः**) वह (**क्षपाभिः**) रात्रियों और (**अहभिः**) दिनों के साथ (**च**) भी (**नः**) हम लोगों को (**जिन्वतु**) प्रसन्न और आनन्दित करे और (**अस्मे**) हम लोगों के लिये (**प्रजावन्तम्**) बहुत प्रजाओं से युक्त (**रयिम्**) धन को (**सम्, इन्वतु**) अच्छे प्रकार देवे ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमात्मा सब दिन सब रात्रियों में सब जगत् की सब प्रकार से रक्षा करता है, सब पदार्थों को रच के हम लोगों के लिये देकर हम लोगों को निरन्तर आनन्दित करता है वह हम लोगों को सदा उपासना करने योग्य है ॥७॥

इस सूक्त में सविता अर्थात् सकल जगत् के उत्पन्न करनेवाले परमात्मा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तिरपनवां सूक्त और चौथा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षड्ऋचस्य चतुःपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । सविता देवता । १ भुरिक् त्रिष्टुप् । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३—५ स्वराट् त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले चौपनवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में सविता परमात्मा के गुणों का वर्णन करते हैं—

अभूद्देवः सविता वन्द्यो नु न इदानीमह्न उपवाच्यो नृभिः ।
वि यो रत्ना भजति मानवेभ्यः श्रेष्ठं नो अत्र द्रविणं यथा दधत् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यः**) जो (**इदानीम्**) इस समय (**अह्नः**) दिन के मध्य में जैसे (**नृभिः**) नायक अर्थात् मुखिया मनुष्यों से (**उपवाच्यः**) उपदेश योग्य और (**नः**) हम लोगों के (**वन्द्यः**) प्रशंसा करने योग्य (**सविता**) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्यों को और (**देवः**) सम्पूर्ण सुखों को देनेवाला (**अभूत्**) होता है जो (**नः**) हम (**मानवेभ्यः**) विचारशीलों के लिये (**रत्ना**) रमण करने योग्य धनों को (**यथा**) जैसे (**वि, भजति**) बांटता और (**अत्र**) इस संसार में (**श्रेष्ठम्**) अत्यन्त उत्तम (**द्रविणम्**) धन वा यश को (**नु**) शीघ्र (**दधत्**) धारण करे वैसे ही हम लोगों को सत्कार करने योग्य है ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । नष्ट उनका भाग्य जो सम्पूर्ण ऐश्वर्य और यश के देनेवाले वन्दना करने योग्य तथा स्तुति उपासना और उपदेश करने योग्य परमात्मा को छोड़ के अन्य की उपासना करते हैं ॥ १ ॥

फिर ईश्वर के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम् ।
आदिद्दामानं सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः ॥२॥

पदार्थ—हे (**सवितः**) सम्पूर्ण संसार के उत्पन्न करनेवाले जगदीश्वर (**हि**) जिससे आप (**यज्ञियेभ्यः**) सत्यभाषण आदि यज्ञानुष्ठान करनेवाले (**देवेभ्यः**) श्रेष्ठ गुण कर्म्म और स्वभावयुक्त जीवों के लिये (**प्रथमम्**) पहिले (**भागम्**) भजने योग्य (**उत्तमम्**) श्रेष्ठ (**अमृतत्वम्**) मोक्ष सुख की (**सुवसि**) प्रेरणा करते हो (**आत्**) इसके अनन्तर (**दामानम्**) दाता जन को (**वि, ऊर्णुषे**) अपनी व्याप्ति से ढांपते हो (**अनूचीना**) अनुचर (**जीविता**) जीवनों को (**इत्**) ही (**मानुषेभ्यः**) मनुष्यों के लिये देते हो इससे हम लोगों को उपासना करने योग्य हो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमात्मा सत्य आचरण में प्रेरणा करता और मुक्तिसुख को देकर सब को आनन्दित करता है उसी की सदा उपासना करो ॥ २ ॥

अब विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने दीनैर्दक्षैः प्रभूती पूरुषत्वता ।
देवेषु च सवितर्मानुषेषु च त्वं नो अत्र सुवतादनागसः ॥३॥

पदार्थ—हे (**सवित**) सम्पूर्ण जगत के उत्पन्न करनेवाले (**अचित्ती**) अविद्या से (**प्रभूती**) बहुत्व से (**दीनैः**) क्षीण अर्थात् दुर्बल (**दक्षैः**) चतुरों से और (**पूरुषत्वता**) उत्तम पुरुषवान् से (**दैव्ये**) विद्वानों में चतुर (**जने**) विद्वान् में (**देवेषु**) विद्वानों (**च**) और (**मानुषेषु**) अविद्वानों में (**च**) भी (**यत**) जो कर्म्म (**चकृमा**) हम लोग करें (**अत्र**) इसमें (**नः**) हम (**अनागसः**) अनपराधियों को (**त्वम्**) आप (**सुवतात**) प्रेरणा करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! आप लोग, जो हम लोग अविद्या से आप लोगों का अपराध करें वह क्षमा करने योग्य है और हम लोगों को अध्यापन और उपदेश से निरपराधी करो ॥ ३ ॥

अब विद्वानों के करने योग्य काम को कहते है—

न प्रमिये सवितुर्दैव्यस्य तद्यथा विश्वं भुवनं धारयिष्यति ।
यत्पृथिव्या वरिमन्ना स्वङ्गुरिर्वर्ष्मन्दिवः सुवति सत्यमस्य तत् ॥४॥

पदार्थ—हे (**वरिमन्**) बहुत गुणों से युक्त (**वर्ष्मन्**) वर्षनेवाले विद्वन् (**यथा**) जैसे (**सवितुः**) सम्पूर्ण संसार के उत्पन्न करनेवाले (**दैव्यस्य**) श्रेष्ठ पदार्थों में साक्षात् किये गये के मध्य में (**यत्**) जो (**विश्वम्**) सम्पूर्ण (**भुवनम्**) संसार को जिसमें प्राणी होते हैं (**धारयिष्यति**) धारण करावेगा (**पृथिव्या**) और भूमि के सम्बन्ध में (**स्वङ्गुरिः**) श्रेष्ठ अङ्गुलियों से युक्त हस्तवाला हुआ (**अस्य**) इस (**दिवः**) सुन्दर का (**यत**) जो (**सत्यम्**) सत्य (**तत**) उसको (**सुवति**) प्रेरणा करता है (**तत्**) उसको प्राप्त होकर जैसे मैं (**न**) नहीं (**प्रमिये**) मरण को प्राप्त होऊं वैसे ही आप (**आ**) आचरण करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जो ब्रह्म सब जगत् का धारण करता और सूर्य और वायु से धारण कराता है, वेद के द्वारा सब सत्य का प्रकाश कराता है, उसी की हम लोग उपासना करें ॥ ४ ॥

इन्द्रज्येष्ठान्बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः क्षयाँ एभ्यः सुवसि पस्त्यावतः ।
यथायथा पतयन्तो वियेमिर एवैव तस्थुः सवितः सवाय ते ॥५॥

पदार्थ—हे (**सवित**) जगदीश्वर आप (**यथायथा**) जैसे जैसे (**बृहद्भ्यः**) बड़े (**एभ्यः**) इन (**पर्वतेभ्यः**) मेघादिकों से (**पस्त्यावतः**) प्रशंसित गृहों से युक्त (**इन्द्रज्येष्ठान्**) बिजुली वा सूर्य बड़े जिनमें उन (**क्षयान्**) निवासों को (**सुवसि**) प्रेरणा करते हो वैसे वैसे (**पतयन्तः**) पति के सदृश आचरण करते हुए (**एव**) ही सब (**वि, येमिरे**) विशेष करके देते हैं और (**ते**) आप के (**सवाय**) ऐश्वर्य्य के लिये (**एव**) ही (**तस्थुः**) स्थित होते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे भगवन् ! आपने सब जीवों के निवासादि व्यवहार के लिये भूमि आदि लोक [illegible] इसी से आप के लिये धन्यवादों का समर्पण करके हम लोग आपके ऐश्वर्य्य में निवास करें ॥ ५ ॥

अब पदार्थोद्देश से ईश्वर की सेवा को कहते है—

ये ते त्रिरहन्त्सवितः सवासो दिवेदिवे सौभगमासुवन्ति ।
इन्द्रो द्यावापृथिवी सिन्धुरद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥६॥५॥

पदार्थ—हे (**सवित**) परमेश्वर (**ते**) आपके (**ये**) जो (**सवासः**) उत्पन्न पदार्थ (**अहन्**) दिन में (**दिवेदिवे**) प्रतिदिन (**सौभगम्**) श्रेष्ठ ऐश्वर्य्य के होने को (**त्रिः**) तीनवार (**आसुवन्ति**) उत्पन्न कराते हैं तथा (**अद्भिः**) जलों और (**आदित्यैः**) और महीनों के साथ (**इन्द्रः**) सूर्य (**द्यावापृथिवी**) प्रकाश भूमि और (**सिन्धुः**) समुद्र भी उत्पन्न कराते हैं वह (**अदितिः**) खण्डरहित परमात्मा आप (**नः**) हम लोगों के लिये (**शर्म**) सुख को (**यंसत्**) दीजिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर की सृष्टि में हम लोग ऐश्वर्य्यवाले होते हैं और हम लोगों के रक्षा करनेवाले सम्पूर्ण पदार्थ हैं उसी का हम लोग निरन्तर भजन करें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में सविता, ईश्वर, विद्वान् और पदार्थों के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह चौवनवां सूक्त और पाँचवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ दशर्चस्य पञ्चपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । १ त्रिष्टुप् । २, निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३, ५ भुरिक् पङ्क्तिः । ६, ७ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ८, ९ विराड् गायत्री । १० गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब दश ऋचावाले पचपनवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् के गुणों का वर्णन करते हैं—

को वस्त्राता वसवः को वरूता द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नः ।
सहीयसो वरुण मित्र मर्तात्को वोऽध्वरे वरिवो धाति देवाः ॥१॥

पदार्थ—हे (**वरुण**) उत्तम विद्वान् ! अध्यापक (**मित्र**) सम्पूर्ण मित्रों के उपदेशक (**सहीयसः**) अत्यन्त सहनेवाले बलिष्ठ (**नः**) हम लोगों के और (**वः**) आप लोगों के (**अध्वरे**) सत्य व्यवहार में (**कः**) कौन (**मर्तात्**) मनुष्य से (**वरिवः**) सेवन का (**धाति**) धारण करता है (**द्यावाभूमी**) प्रकाश और पृथिवी के सदृश आप दोनों हम लोगों की (**त्रासीथाम्**) रक्षा करो । हे (**वसवः**) रहनेवाले (**देवाः**) विद्वानो ! (**वः**) आप लोगों का (**कः**) कौन (**त्राता**) रक्षक है । हे (**अदिते**) नहीं नाश होनेवाले जगदीश्वर ! आप का (**कः**) कौन (**वरूता**) स्वीकार करनेवाला है ॥ १ ॥

भावार्थ—जो परमेश्वर की आज्ञा का पालन करता है वह परमेश्वर से स्वीकार किया जाता है । हे मनुष्यो ! जो हमारा और आप लोगों का रक्षक है वही हम लोगों से सेवा करने योग्य है और जो अहिंसा से सब मनुष्यों को विशाल में धारण करते हैं वह और वे सदा सत्कार करने योग्य हैं ॥ १ ॥

प्र ये धामानि पूर्व्याण्यर्चान्वि यदुच्छान्वियोतारो अमूराः ।
विधातारो वि ते दधुरजस्रा ऋतधीतयो रुरुचन्त दस्माः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**ये**) जो (**पूर्व्याणि**) प्राचीन जनों से प्रत्यक्ष किये गये (**धामानि**) जन्म नाम स्थानों का (**प्र, अर्चान्**) उत्तम सत्कार करें और (**यत्**) जो (**अमूराः**) नहीं मूर्ख (**वियोतारः**) विभाग करनेवाले जन प्राचीन जनों से प्रत्यक्ष किये गये जन्म नाम स्थानों का (**वि, उच्छान्**) विवास करावें और जो (**अजस्राः**) नहीं हिंसा करने और (**ऋतधीतयः**) सत्य के धारण करनेवाले (**विधातारः**) निर्माणकर्त्ता (**दस्माः**) दुःखों के विनाशक जन (**रुरुचन्त**) उत्तम प्रकार शोभित होते हैं (**ते**) वे निरन्तर (**वि, दधुः**) विधान करें ॥ २ ॥

भावार्थ—जो यथार्थवक्ता सब के सुख की इच्छा करनेवाले विद्वान् जन हों वे ही सब के सब सुखों के करने योग्य होवें ॥ २ ॥

अब विद्वानों के विषय में गृहस्थ के कर्म को कहते हैं—

प्र पस्त्या३मदितिं सिन्धुमर्कैः स्वस्तिमीळे सख्याय देवीम् ।
उभे यथा नो अहनी निपात उषासानक्ता करतामदब्धे ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यथा**) जैसे (**उभे**) दोनों (**अहनी**) रात्रि और दिन (**उषासानक्ता**) रात्रि और दिन को (**अदब्धे**) नहीं हिंसित (**करताम्**) करें वैसे (**नः**) हम लोगों का अर्थात् अपना (**निपातः**) अतिशय पालन करनेवाला मैं (**अर्कैः**) मन्त्रों से (**अदितिम्**) खण्डरहित (**पस्त्याम्**) गृह और (**सिन्धुम्**) नदी की (**स्वस्तिम्**) सुख की और (**सख्याय**) मित्रपने के लिये (**देवीम्**) सुन्दर विद्यायुक्त स्त्री की (**प्र, ईळे**) विशेष इच्छा करता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे रात्रि और दिन मिले हुए वर्त्ताव कर के सम्पूर्ण व्यवहार के कारण होते हैं वैसे हम दोनों विशेष करके हित चाहते हुए मित्र के सदृश वर्त्तमान स्त्री और पुरुष उत्तम गृह और बहुत सुख की सदा उन्नति करें ॥ ३ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते है—

व्यर्यमा वरुणश्चेति पन्थामिषस्पतिः सुवितं गातुमग्निः ।
इन्द्राविष्णू नृवदु षु स्तवाना शर्म्म नो यन्तममवद्वरूथम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**अर्यमा**) न्यायकर्त्ता और (**वरुणः**) श्रेष्ठ पुरुष (**पन्थाम्**) धर्मसम्बन्धी मार्ग को (**वि, चेति**) विशेष कर जानता है (**गातुम्**) पृथिवी को (**अग्निः**) अग्नि जैसे वैसे वर्त्तमान (**इषः**) अन्न आदि का (**पतिः**) स्वामी (**सुवितम्**) उत्तम प्रकार उत्पन्न किये गये को विशेष कर जानता है । और हे अध्यापकोपदेशको ! आप दोनों (**इन्द्राविष्णू**) बिजुली और वायु के सदृश (**स्तवाना**) सत्य की प्रशंसा करनेवालो ! (**नृवत्**) प्रधान पुरुष के सदृश (**उ**) और (**नः**) हम लोगों के (**अमवत्**) प्रशस्तरूप से युक्त (**शर्म**) सुख और (**वरूथम्**) गृह को (**सु, यन्तम्**) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे न्यायकारी विद्वान् लोग अधर्म्मसम्बन्धी मार्ग का त्याग करके धर्मसम्बन्धी मार्ग में चलते हैं वैसे आप लोग भी चलें ॥ ४ ॥

आ पर्वतस्य मरुतामवांसि देवस्य त्रातुरव्रि भगस्य ।
पात् पतिर्जन्यादंहसो नो मित्रो मित्रियादुत न उरुष्येत् ॥५॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे मैं (**पर्वतस्य**) मेघ के (**देवस्य**) उत्तम सुख प्राप्त करानेवाले के (**भगस्य**) ऐश्वर्य्य के (**त्रातुः**) रक्षा करनेवाले और (**मरुताम्**) मनुष्यों के (**अवांसि**) अनेक प्रकार रक्षणों को मैं (**आ, अव्रि**) स्वीकार करता हूँ वैसे (**पतिः**) स्वामी आप (**नः**) हम लोगों की (**जन्यात्**) उत्पन्न होनेवाले (**अंहसः**) अपराध से (**पात्**) रक्षा करो और (**नः**) हम लोगों को (**उत**) तो (**मित्रः**) मित्र (**मित्रियात्**) मित्र से (**उरुष्येत्**) सेवन करे ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सत्य के जानने और उसके आचरण करने की इच्छा करें वे सत्य ज्ञान को प्राप्त होकर सत्य के आचरण करनेवाले होवें ॥ ५ ॥

नू रोदसी अहिना बुध्न्येन स्तुवीत देवी अप्येभिरिष्टैः ।
समुद्रं न संचरणे सनिष्यवो घर्मस्वरसो नद्यो३ अप व्रन् ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (**अर्कस्वरसः**) यज्ञ मे अपने रसवाले आप जैसे (**इषुदे**) मिलने और प्राप्त होने योग्य (**अप्येभिः**) जल मे उत्पन्न हुए पदार्थों के साथ (**अनिष्ठन**) विभाग करती हुई (**नद्यः**) नदियाँ (**सञ्चरणे**) सुन्दर गमन में (**समुद्रम्**) अन्तरिक्ष के (**न**) तुल्य (**अप, वृन्**) ढाँपती हैं वैसे (**बुध्न्येन**) अन्तरिक्ष मे हुए (**अहिना**) मेघ के सहित (**देवी**) प्रकाशमान (**रोदसी**) अन्तरिक्ष और पृथिवी की (**नु**) शीघ्र (**स्तुवीत**) प्रशंसा करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे मेघो के जलो से पूर्ण नदियाँ आवरणो को काट कर अन्तरिक्ष मे जलो का प्राप्त होती हैं वैसे ही आप लोग विद्या की दीप्ति को प्राप्त होकर सब विद्याओ की प्रशंसा करो ॥ ६ ॥

देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
नहि मित्रस्य वरुणस्य धासिमर्हामसि प्रमियं सान्वग्नेः ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे हम लोग (**वरुणस्य**) श्रेष्ठ पुरुष (**मित्रस्य**) मित्र और (**अग्नेः**) अग्नि के (**सानु**) शिखर और (**धासिम्**) अन्न के (**प्रमियम्**) नाश करने को (**नहि**) नही (**अर्हामसि**) योग्य होते हैं वैसे (**देवैः**) विद्वानों वा पृथिवी आदिको के साथ (**देवी**) प्रकाशमान विद्यायुक्त माता (**अदितिः**) अखण्डित-ज्ञानवाली (**नः**) हम लोगो की (**नि, पातु**) रक्षा करे और (**अप्रयुच्छन्**) नहीं प्रमाद करता हुआ (**त्राता**) रक्षा करनेवाला (**देवः**) विद्वान् पिता हम लोगो का (**त्रायताम्**) पालन करे ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि किसी सज्जन वा किसी पदार्थ का नाश और नशा करनेवाले द्रव्य का सेवन सदा ही न करे और सदा विद्वानो और माता पिता की शिक्षा का ग्रहण करे ॥ ७ ॥

अग्निरीशे वसव्यस्याग्निर्महः सौभगस्य । तान्यस्मभ्यं रासते ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (**अग्निः**) अग्नि के सदृश पुरुषार्थी (**वसव्यस्य**) धनो म श्रेष्ठ का और जैसे (**अग्निः**) अग्नि (**महः**) बडे (**सौभगस्य**) उत्तम ऐश्वर्य्य के होने की (**ईशे**) इच्छा करता है (**तानि**) उनको (**अस्मभ्यम्**) हम लोगो क लिए (**रासते**) देता है वैसे आप करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! जैसे विद्या से उपजित अर्थात् वश म किया गया अग्नि, कार्य्यों को सिद्ध कर के बडे ऐश्वर्य्य को प्राप्त कराता है वैसे ही सेवा किये गये आप लोग विद्या और उपदेश आदि कार्य्यों को सिद्ध कर के सब को ऐश्वर्य्ययुक्त करो ॥ ८ ॥

उषो मघोन्या वह सूनृते वार्या पुरु । अस्मभ्यं वाजिनीवति ॥९॥

पदार्थ—हे (**उषः**) प्रातःकाल के सदृश वर्त्तमान (**सूनृते**) सत्यवाणीयुक्त (**मघोनि**) प्रशंसित धन की करनेवाली (**वाजिनीवति**) उत्तम विद्या से युक्त पत्नी तू (**अस्मभ्यम्**) हम लोगो के लिये (**पुरु**) बहुत (**वार्य्या**) वर्त्ताव मे लाने योग्य वस्तुओ को (**आ, वह**) सब प्रकार से प्राप्त कराओ ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रभातवेला सब जीवो की प्रिय करनेवाली है वैसे ही विद्यायुक्त स्त्री सब का प्रिय होती है ॥ ९ ॥

तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
इन्द्रो नो राधसा गमत् ॥ १० ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (**सविता**) सूर्य (**भग**) सेवन करने योग्य पदार्थ समुदाय (**वरुण**) उदानवायु (**मित्र**) प्राणवायु (**अर्यमा**) न्यायकारी (**तत्**) उस (**राधसा**) धन से (**नः**) हम लोगों को (**आ**) सब प्रकार (**गमत्**) प्राप्त होता और (**इन्द्रः**) बिजुली (**नः**) हम लोगो को (**सु**) उत्तम प्रकार प्राप्त होती है वैसे आप हूजिये ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! जैसे नियम से सूर्य्य वायु प्राण आदि और बिजुली प्राप्त हैं वैसे ही आप हम लोगो को निरन्तर प्राप्त हूजिये ॥ १० ॥

इस सूक्त मे विद्वानो के गुणो का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पचपनवाँ सूक्त और सप्तम वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तर्चस्य षट्पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते । १, २ त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ५ निचृद्गायत्री । ६ विराड् गायत्री । ७ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले छप्पनवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से द्यावापृथिवी अर्थात् प्रकाश और भूमि के गुणों को कहते हैं—

मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे रुचा भवतां शुचयद्भिरर्कैः ।
यत्सीं वरिष्ठे बृहती विमिन्वन्रुवद्धोक्षा पप्रथानेभिरेवैः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यत्**) जो (**विमिन्वन्**) विशेष करके फेंकता हुआ (**रुवन्**) प्रशंसित शब्दवान् जैसे हो वैसे (**ह**) ही (**उक्षा**) सूर्य के समान विद्वान् (**इह**) यहाँ (**सीम्**) सब ओर से (**शुचयद्भिः**) पवित्र करते हुए (**अर्कैः**) सेवा करने योग्य और (**पप्रथानेभिः**) अत्यन्त विस्तारयुक्त (**एवैः**) सुख को प्राप्त करनेवाले गुणो के साथ वर्त्तमान (**वरिष्ठे**) अतीव श्रेष्ठ (**बृहती**) बढ़ते हुए (**मही**) बडे (**ज्येष्ठे**) अत्यन्त प्रशंसा करने योग्य (**रुचा**) रुचिकार (**द्यावापृथिवी**) सूर्य और भूमि (**भवताम्**) होते है उनको यथावत् विशेष करके जानता है वही सबका कल्याण करनेवाला होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पृथिवी से लेके सूर्य्यपर्य्यन्त पदार्थों को जानते हैं वे धनवान् होकर सबको सुखी करें ॥ १ ॥

देवी देवेभिर्यजते यजत्रैरमिनती तस्थतुरुक्षमाणे ।
ऋतावरी अद्रुहा देवपुत्रे यज्ञस्य नेत्री शुचयद्भिरर्कैः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**अर्कैः**) सत्कार करने योग्य (**शुचयद्भिः**) पवित्रता को कहते हुए (**यजत्रैः**) मिलने योग्य (**देवेभिः**) श्रेष्ठ गुणो वा विद्वानो से जो (**देवी**) प्रकाशमान (**अमिनती**) नहीं हिंसा करनेवाले (**ऋतावरी**) बहुत सत्य से युक्त (**अद्रुहा**) नही द्रोह करने योग्य (**देवपुत्रे**) विद्वान् जन पुत्र जिनके वे (**यज्ञस्य**) संसार के व्यवहार के (**नेत्री**) चलानेवाले (**उक्षमाणे**) सब प्राणियो को सुखो से सींचते हुए (**यजते**) मिलने योग्य सूर्य्य और भूमि (**तस्थतुः**) स्थित होते हैं उनको जान के जो व्यवहारो मे संयुक्त करता है वही भाग्यशाली होता है ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पृथिवी से लेके प्रकृति अर्थात् प्रधानपर्य्यन्त पदार्थों को उनके गुण कर्म्म स्वभाव से यथावत् जानके कार्य्य की सिद्धि के लिये सम्प्रयोग करते हैं वे सदा ही भाग्यशाली होते हैं ॥ २ ॥

स इत्स्वपा भुवनेष्वास य इमे द्यावापृथिवी जजान ।
उर्वी गभीरे रजसी सुमेके अवंशे धीरः शच्या समैरत् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो आप लोगो को (**सः**) जो (**स्वपाः**) श्रेष्ठ कर्मों से युक्त (**धीरः**) धीर जगदीश्वर (**भुवनेषु**) लोको मे (**आस**) विद्यमान है (**इमे**) इन (**उर्वी**) बहुत पदार्थों से युक्त (**गभीरे**) गाम्भीर्य्य आदि गुण सहित (**रजसी**) रजोवृन्दो से बनाये गये (**सुमेके**) एक हुए अर्थात् परस्पर सम्बन्ध युक्त (**अवंशे**) वंश अर्थात् उत्पत्तिक्रम से आगे को रहित और अन्तरिक्ष मे स्थित (**द्यावापृथिवी**) सूर्य्य और भूमि को (**जजान**) उत्पन्न किया (**शच्या**) बुद्धि से (**सम्, ऐरत्**) कम्पाता अर्थात् क्रम से अनुकूल चलाता है (**स, इत्**) वही सदा उपासना करने योग्य है ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर ने असंख्य भूमि आदि लोक आकाश मे रचे और व्यवस्था से वे चलाये हैं वह सदा ही उपासना करने योग्य है ॥ ३ ॥

नू रोदसी बृहद्भिर्नो वरूथैः पत्नीवद्भिरिषयन्ती सजोषाः ।
उरूची विश्वे यजते नि पातं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (**सजोषाः**) तुल्य प्रीति का सेवन करनेवाला विद्वान् (**धिया**) बुद्धि वा कर्म्म से जो (**इषयन्ती**) सुख को प्राप्त कराती हुई (**उरूची**) बहुतो का आदर करनेवाली (**विश्वे**) अन्तरिक्ष मे प्रविष्ट (**यजते**) मिलने योग्य और (**बृहद्भिः**) जो बड़े (**पत्नीवद्भिः**) बहुत स्त्रियो से युक्त (**वरूथैः**) उत्तम गृह उनके साथ वर्त्तमान (**रोदसी**) सूर्य्य और पृथिवी (**नः**) हम लोगो की (**नि**) अत्यन्त (**पातम्**) रक्षा करती है उनको जानता है वैसे इनको जानके हम लोग (**रथ्यः**) बहुत रथ आदि से युक्त (**सदासाः**) सेवको के सहित (**नु**) शीघ्र (**स्याम**) होवें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य बहुत और बडे पदार्थों से युक्त बिजुली और भूमि को विशेष करके जानते हैं वे शीघ्र लक्ष्मीवान् होते हैं ॥ ४ ॥

अब शिल्प विद्या की शिक्षा को अगले मन्त्रो में कहते हैं—

प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे । शुची उप प्रशस्तये ॥५॥

पदार्थ—हे शिल्प विद्या मे प्रवीणो ! जिससे हम लोग (**प्रशस्तये**) प्रशंसित (**शुची**) पवित्र (**महि**) महागुण युक्त (**द्यवी**) प्रकाशमान को (**अभि, उप, प्र, भरामहे**) सब ओर से अच्छे प्रकार धारण करते हैं इससे (**वाम्**) आप दोनो अध्यापक और क्रिया करनेवालो की (**उपस्तुतिम्**) उपमायुक्त प्रशंसा करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जिनके समीप से शिल्प आदि विद्या ग्रहण की जाती है उन का आदर मनुष्य सदा करें ॥ ५ ॥

पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः । ऊह्याथे सनादृतम् ॥६॥

पदार्थ—जो शिल्पविद्या के पढ़ाने और पढ़नेवाले (**स्वेन**) अपने (**दक्षेण**) बलयुक्त (**तन्वा**) शरीर से (**पुनाने**) पवित्र करनेवाली सूर्य और पृथिवी को जान के (**मिथः**) परस्पर (**राजथः**) शोभित होते हैं और (**सनात्**) सनातन से (**ऋतम्**) सत्य का (**ऊह्याथे**) ऊहापोह करते हैं वे सत्कार के योग्य होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो शिल्प विद्या मे निपुण होते हैं उनका सत्कार यथायोग्य राजा आदि को करना चाहिये ॥ ६ ॥

फिर शिल्पविद्या विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

म॒ही मि॒त्रस्य॑ साधथ॒स्तर॑न्ती॒ पिप्र॑ती ऋ॒तम् ।

परि॑ य॒ज्ञं नि षे॑दथुः ॥७॥८॥

पदार्थ—हे विद्वानो जो (**तरन्ती**) दुःख से पार उतारती और (**पिप्रती**) सम्पूर्ण आनन्द को पूर्ण करती हुई (**मही**) बडी सूर्य और पृथिवी (**ऋतम्**) सत्य-कारणरूप (**यज्ञम्**) सग करने अर्थात् आरम्भ करने योग्य यज्ञ को (**परि**) सब प्रकार से (**नि, सेदथुः**) सिद्ध करती और (**मित्रस्य**) सबके मित्र के कार्यों को (**साधथः**) सिद्ध करती उन सूर्य और भूमि को यथावत् जान के उनका सयोग करो अर्थात काम मे लाओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए सबके आधारभूत सब कार्य सिद्ध करनेवाली सूर्य और पृथिवी को जानके अभीष्ट कार्यों को सिद्ध करे ॥ ७ ॥

इस सूक्त मे सूर्य और पृथिवी के गुण और शिल्पविद्या शिक्षा वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥ ७ ॥

यह छप्पनवां सूक्त और आठवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथाष्टर्चस्य सप्तपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषि ॥ १-३ क्षेत्रपति । ४ शुन । ५, ८ शुनासीरौ । ६, ७ सीता देवता । १, ४, ६, ७ अनुष्टुप् छन्द । गान्धार. स्वर । २, ३, ८ त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर. । ५ पुर उष्णिक् छन्द । ऋषभ स्वर ॥

अब आठ ऋचावाले सत्तावनवें सूक्त का आरम्भ है, इसमें कृषिकर्म को कहते हैं—

क्षेत्र॑स्य॒ पति॑ना व॒यं हि॒तेने॑व जयामसि ।

गामश्वं॑ पोषयि॒त्न्वा स नो॑ मृळातीदृशे॑ ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस (**क्षेत्रस्य**) अन्न की उत्पत्ति के आधारस्थान अर्थात् खेतके (**पतिना**) स्वामी से (**वयम्**) हम लोग (**हितेनेव**) हित की सिद्धि करने वाली सेना के सदृश (**गाम्**) पृथिवी (**अश्वम्**) घोडा (**पोषयित्नु**) और पुष्टि करनेवाले द्रव्य को (**जयामसि**) जीतते हैं (**सः**) वह क्षेत्र का स्वामी (**ईदृशे**) ऐसे मे (**नः**) हम लोगो को (**आ, मृळाति**) सुख देवें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। जैसे उत्तम प्रकार शिक्षित और अनुरक्त सेना से वीरजन विजय को प्राप्त होते है वैसे ही कृषि अर्थात् खेतीकर्म मे चतुर जन ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

क्षेत्र॑स्य पते॒ मधु॑मन्तमू॒र्मिं धे॒नुरि॑व॒ पयो॑ अ॒स्मासु॑ धुक्ष्व ।

म॒धु॒श्चुतं॑ घृ॒तमि॑व॒ सुपू॑तमृ॒तस्य॑ नः॒ पत॑यो मृळयन्तु ॥२॥

पदार्थ—हे (**क्षेत्रस्य**) अन्न के उत्पन्न होने की आधारभूमि के (**पते**) स्वामी ! जैसे (**ऋतस्य**) सत्य के (**पतयः**) स्वामी (**घृतमिव**) घृत के सदृश (**मधुश्चुतम्**) मधुर आदि गुणो से युक्त (**सुपूतम्**) उत्तम प्रकार पवित्र विज्ञान को प्राप्त होकर (**नः**) हम लोगो को (**मृळयन्तु**) सुख दीजिए तथा (**धेनुरिव**) गौ के सदृश (**मधुमन्तम्**) मधुर आदि गुणो से युक्त (**ऊर्मिम्**) जलधारा और (**पयः**) दुग्ध का (**अस्मासु**) हम लोगो मे (**धुक्ष्व**) पूर्ण करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे बुद्धिमान् खेती करने-वाले जन सुन्दर शुद्ध अन्नो को उत्पन्न करके सबको आनन्द देते हैं वैसे ही खेती करने वाले जनो की उत्तम प्रकार रक्षा करके सदा उत्साह युक्त करें ॥ २ ॥

मधु॑मती॒रोष॑धी॒र्द्याव॒ आपो॒ मधु॑मन्नो भवत्व॒न्तरि॑क्षम् ।

क्षेत्र॑स्य॒ पति॒र्मधु॑मान्नो अ॒स्त्वरि॑ष्यन्तो॒ अन्वे॑नं चरेम ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**नः**) हम लोगो के लिये (**ओषधी**) यव आदि ओषधियां (**द्यावः**) सूर्य्य आदि प्रकाश और (**आपः**) जल (**मधुमती**) मधुर आदि गुणो से युक्त हो (**अन्तरिक्षम्**) आकाश (**मधुमत्**) मधुर आदि गुणो से युक्त (**भवतु**) हो (**क्षेत्रस्य**) अन्न के उत्पन्न होने की भूमि का (**पतिः**) स्वामी (**नः**) हम लोगो के लिये (**मधुमान्**) मधुर गुणवाला (**अस्तु**) हो और (**अरिष्यन्तः**) अन्यो के साथ नहीं हिंसा करनेवाले हम लोग (**एनम्**) इसको (**अनु, चरेम**) अनुकूल वर्तें ॥ ३ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यो को चाहिये कि वे जैसे अपने लिये उत्तम पदार्थ चाहते हैं वैसे ही अन्य जनो के लिये इच्छा करें ॥ ३ ॥

शु॒नं वा॒हाः शु॒नं नरः॑ शु॒नं कृ॑षतु॒ लाङ्ग॑लम् ।

शु॒नं व॑र॒त्रा ब॑ध्यन्तां शु॒नमष्ट्रा॒मुदि॑ङ्गय ॥४॥

पदार्थ—हे खेती करनेवाले जन ! जैसे (**वाहाः**) बैल आदि पशु (**शुनम्**) सुख को प्राप्त हो (**नरः**) मुखिया कृषीवल (**शुनम्**) सुख को करें (**लाङ्गलम्**) हलका अवयव (**शुनम्**) सुख जैसे हो वैसे (**कृषतु**) पृथ्वी मे प्रविष्ट हो और (**वरत्राः**) बैल को रस्सी (**शुनम्**) सुखपूर्वक (**बध्यन्ताम्**) बांधी जाय वैसे (**अष्ट्राम्**) खेती के साधन के अवयव को (**शुनम्**) सुखपूर्वक (**उत, इङ्गय**) ऊपर चलाओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—खेती करनेवाले जन उत्तम हल आदि सामग्री वृषभ और बीजो को इकट्ठे करके खेतो को उत्तम प्रकार जोतकर उनमे उत्तम अन्नो को उत्पन्न करें ॥ ४ ॥

शुना॑सीराव॒िमां वाचं॑ जुषेथां॒ यद्दि॒वि च॒क्रथुः॒ पयः॑ ।

तेने॒मामुप॑ सिञ्चतम् ॥५॥

पदार्थ—हे (**शुनासीरौ**) क्षेत्र के स्वामी और भृत्य आप दोनों (**यत्**) जिस (**इमाम्**) इस कृषिविद्या को प्रकाश करनेवाली (**वाचम्**) वाणी और (**पयः**) जल को (**दिवि**) कृषिविद्या के प्रकाश मे (**चक्रथुः**) करते है उनकी (**जुषेथाम्**) सेवा करो (**तेन**) इससे (**इमाम्**) इस भूमि को (**उप, सिञ्चतम्**) सींचो ॥५॥

भावार्थ—खेती करनेवाले जन प्रथम खेती के करने की विद्या को ग्रहण करके पश्चात् यथायोग्य खेती कर धन और धान्य से युक्त सदा हो ॥ ५ ॥

अ॒र्वाची॑ सुभगे भव॒ सीते॒ वन्दा॑महे त्वा ।

यथा॑ नः सु॒भगास॑सि॒ यथा॑ नः सु॒फलास॑सि ॥६॥

पदार्थ—हे (**सुभगे**) उत्तम प्रकार ऐश्वर्य्य की बढ़ानेवाली ! (**यथा**) जैसे (**अर्वाची**) नीचे को चलनेवाली (**भव**) हल आदि के सींचनेवाले अवयव लोहे से बनाई गई सीता है वैसे आप (**भव**) हूजिये और जैसे भूमि(**सुभगा**) सौभाग्य से युक्त है वैसे तू (**नः**) हम लोगो की (**असति**) है और (**यथा**) जैसे भूमि (**सुफला**) उत्तम फलो से युक्त है वैसे तू (**नः**) हम लोगो की (**असति**) है इससे हम लोग (**त्वा**) तेरी (**वन्दामहे**) कामना करते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे उत्तम प्रकार सम्पादित खेत की धरती उत्तम अन्नो को उत्पन्न करती है वैसे ही ब्रह्मचर्य्य से विद्या को प्राप्त हुआ जन उत्तम सन्तानो को उत्पन्न करता है और जैसे भूमि का राज्य ऐश्वर्य्यकारक है वैसे ही परस्पर प्रसन्न स्त्री और पुरुष बडे ऐश्वर्य्य वाले होते हैं ॥ ६ ॥

इन्द्रः॒ सीतां॒ नि गृ॑ह्णातु॒ तां पू॒षानु॑ यच्छतु ।

सा नः॒ पय॑स्वती दुहा॒मुत्त॑रामुत्तरां॒ समा॑म् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे खेती करनेवाले जनो ! जो (**पयस्वती**) बहुत जल से युक्त (**नः**) हम लोगो के लिये (**अनु, यच्छतु**) अनुग्रह करे (**सा**) वह आप लोगो को भी प्राप्त हो और जिस (**सीताम्**) भूमि जुतानेवाले वस्तु को (**इन्द्रः**) भूमि का दारण करानेवाला (**नि, गृह्णातु**) ग्रहण करे (**ताम्**) उस (**दुहाम्**) प्रपूरण करनेवाली (**उत्तरामुत्तराम्**) फिर फिर बनाई गई (**समाम्**) शुद्ध सीता अर्थात् भूमि जुतानेवाले वस्तु को (**पूषा**) पुष्टि करनेवाला देवे उसका आप लोग भी सयोग करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—सब कृषिकर्म करनेवाले जन विद्वान् क्षेत्र जानने वालो का अनुकरण करके कृषि की वृद्धि को उत्पन्न करें ॥ ७ ॥

शु॒नं नः॒ फाला॒ वि कृ॑षन्तु॒ भूमिं॑ शु॒नं की॒नाशा॑ अ॒भि य॑न्तु वा॒हैः ।

शु॒नं प॒र्जन्यो॒ मधु॑ना॒ पयो॑भिः॒ शुना॑सीरा शु॒नम॒स्मासु॑ धत्तम् ॥८॥९॥

पदार्थ—जैसे (**फाला**) लोहे से बनाई गई भूमि के खोदने के लिये वस्तुएँ (**वाहैः**) बैल आदिको के द्वारा (**नः**) हम लोगो के लिये (**भूमिम्**) भूमि को (**शुनम्**) सुखपूर्वक (**वि, कृषन्तु**) खोदें (**कीनाशाः**) कृषिकर्म्म करनेवाले (**शुनम्**) सुख को (**अभि, यन्तु**) प्राप्त हो (**पर्जन्यः**) मेघ (**मधुना**) मधुर आदि गुण से और (**पयोभिः**) जलो से (**शुनम्**) सुख को वर्षावे वैसे (**शुनासीरा**) अर्थात् सुख देनेवाले स्वामी और भृत्य कृषिकर्म करनेवाले तुम दोनो (**अस्मासु**) हम लोगो मे (**शुनम्**) सुख को (**धत्तम्**) धारण करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—कृषिकर्म्म करनेवाले मनुष्यो को चाहिये कि उत्तम फाल आदि वस्तुओ को ले हल आदि से भूमि को उत्तम करके अर्थात् गोड के उत्तम सुख को प्राप्त हो वैसे ही अन्य आदि के लिये सुख देवें ॥ ८ ॥

इस सूक्त मे कृषिकर्म्म के वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

यह सत्तावनवां सूक्त और नवम वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथैकादशर्चस्याष्टपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषि । अग्निः सूर्यो वाऽपो वा गावो वा घृतं वा देवता । १ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ८ १० त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत स्वर. । ३ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वरः । ४ अनुष्टुप् ६,७ निचृदनुष्टुप् छन्द । ११ स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वर । ५ निचृदुष्णिक् छन्द । ऋषभः स्वर ॥

अब ग्यारह ऋचावाले अट्ठावनवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से उदक विषय को कहते हैं—

समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारदुपांशुना सममृतत्वमानट् ।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**अंशुना**) सूर्य से (**समुद्रात्**) अन्तरिक्ष से (**मधुमान्**) मधुरगुणयुक्त (**ऊर्मिः**) जल का समूह (**उप, उत्, आरत्**) उत्तमता से प्राप्त होता और (**अमृतत्वम्**) अमृतपन को (**सम्, आनट्**) व्याप्त होता है (**यत्**) जो (**घृतस्य**) जल की (**गुह्यम्**) गुप्त (**नाम**) संज्ञा (**अस्ति**) है वह (**अमृतस्य**) अमृतात्मक कारण की (**नाभिः**) नाभि के सदृश और (**देवानाम्**) विद्वानों वा श्रेष्ठ गुणों की (**जिह्वा**) जिह्वा के सदृश है उसकी विद्या को आप लोग जानो ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! भूमि के समीप से सूर्य के प्रताप से वायु के द्वारा जितना जल आकाश में जाता है वहाँ ईश्वर की सृष्टि के क्रम से मधुर आदि गुणों से युक्त होके और वह वर्षा के अमृतस्वरूप होता है यह जानो ॥१॥

वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः ।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽवमीद् गौर एतत् ॥ २ ॥

पदार्थ—(**चतुःशृङ्गः**) चारवेदशृङ्गों अर्थात् शिखरों के सदृश जिसके ऐसा (**ब्रह्मा**) चार वेद का जाननेवाला जिस (**शस्यमानम्**) प्रशंसा करने योग्य को (**उप, शृणवत्**) समीप में सुने और (**गौरः**) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी में रमने वाला जो (**अवमीत्**) उपदेश देवे सो (**एतत्**) इस (**घृतस्य**) जल की (**नाम**) संज्ञा को (**वयम्**) हम लोग (**प्र, ब्रवाम**) उपदेश देवें और (**अस्मिन्**) इस (**यज्ञे**) वर्षा आदि जलव्यवहार में (**नमोभिः**) अन्न आदि पदार्थों से उसको (**धारयाम**) धारण करावें ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! चार वेद का जाननेवाला यथार्थवक्ता जन जैसा उपदेश करे और जिस सिद्धान्त का निश्चय करे वैसे ही सिद्धान्त का हम लोग भी उपदेश और निश्चय करें ॥२॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर के विज्ञान को कहते हैं—

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आ विवेश ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**महः**) बड़ा सेवा और आदर करने योग्य (**देवः**) स्वप्रकाशस्वरूप और सब को सुख देनेवाला (**मर्त्यान्**) मरणधर्मवाले मनुष्य आदिकों को (**आ**) सब प्रकार से (**विवेश**) व्याप्त होता है (**वृषभः**) और जो सुखों का वर्षानेवाला (**त्रिधा**) तीन श्रद्धा, पुरुषार्थ और योगाभ्यास से (**बद्धः**) बंधा हुआ (**रोरवीति**) निरन्तर उपदेश देता है (**अस्य**) इस धर्म से युक्त नित्य और नैमित्तिक परमात्मा के बोध के (**द्वे**) दो, उन्नति और मोक्षरूप (**शीर्षे**) शिरस्थानापन्न (**त्रयः**) तीन अर्थात् कर्म, उपासना और ज्ञानरूप (**पादाः**) चलने योग्य पैर (**चत्वारि**) और चार वेद (**शृङ्गा**) शृङ्गों के सदृश आप लोगों को जानने योग्य हैं और (**अस्य**) इस धर्म व्यवहार के (**सप्त**) पांच ज्ञानेन्द्रिय वा पांच कर्मेन्द्रिय अन्तःकरण और आत्मा ये सात (**हस्तासः**) हाथों के सदृश वर्त्तमान हैं और उक्त तीन प्रकार से बंधा हुआ व्यवहार भी जानने योग्य है ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! इस परमेश्वर से व्याप्त संसार में यज्ञ के चार वेद और नाम आख्यात उपसर्ग और निपात विश्व, तैजस, प्राज्ञ, तुरीय और धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि शृङ्ग हैं तीन सवन अर्थात् त्रैकालिक यज्ञ तीन काल कर्म उपासना ज्ञान मन वाणी शरीर इत्यादि पाद हैं दो व्यवहार और परमार्थ, नित्य कार्य्य शब्दस्वरूप उदयन और प्रायणीय अध्यापक और उपदेशक इत्यादि शिर हैं गायत्री आदि, सात छन्द सात विभक्तियाँ सात प्राण पांच कर्म्मेन्द्रिय शरीर और आत्मा इत्यादि हस्त हैं। तीन मन्त्र, ब्राह्मण, कल्प और हृदय, कण्ठ शिर में श्रवण, मनन निदिध्यासनों में ब्रह्मचर्य्य, श्रेष्ठ कर्म, उत्तम विचारों के बीच सिद्ध यह व्यवहार महान् सत्कर्त्तव्य और मनुष्यों के बीच प्रविष्ट है यह सब जानें ॥३॥

अब सूर्यदृष्टान्त से विद्वद्विषय को कहते हैं—

त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् ।
इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**देवासः**) विद्वान् जन (**पणिभिः**) प्रशंसित व्यवहार करने वालों के साथ (**गवि**) वाणी में (**गुह्यमानम्**) गुप्त कराया जाता (**त्रिधा**) तीन प्रकारों से (**हितम्**) स्थित और (**घृतम्**) घृत के सदृश आनन्द देनेवाले विज्ञान को (**अनु, अविन्दन्**) अनुकूल प्राप्त होते और (**स्वधया**) अपनी धारण की हुई बुद्धि से (**निः, ततक्षुः**) निरन्तर विस्तार करते हैं। और जैसे (**इन्द्रः**) बिजुली (**वेनात्**) सुन्दर परमात्मा के समीप से (**एकम्**) अव्यक्त अर्थात् प्रकृति को और (**सूर्यः**) सूर्य (**एकम्**) एक को (**जजान**) उत्पन्न करता है वैसे आप लोग भी (**एकम्**) निरन्तर सुख अर्थात् मोक्ष को सिद्ध करो ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे श्रेष्ठ व्यवहारों के साथ वर्त्तमान विद्वान् जन उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी और बुद्धि को तथा बिजुली आदि की विद्या को प्राप्त हो परमेश्वर को जान और उसकी आज्ञा पालन करके सुख का विस्तार करते हैं वैसे ही सब लोग अच्छा आचरण करें ॥४॥

अब मेघविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

एता अर्षन्ति हृद्यात् समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम् ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**आसाम्**) इन धाराओं के (**मध्ये**) मध्य में (**हिरण्ययः**) तेजःस्वरूप वा सुवर्णस्वरूप (**वेतसः**) सुन्दर मैं जो (**घृतस्य**) जल की (**एताः**) ये (**शतव्रजाः**) अपरिमित गति वाली (**धाराः**) धारायें (**हृद्यात्**) हृदय के प्रिय (**समुद्रात्**) अन्तरिक्ष से (**अर्षन्ति**) प्राप्त होती हैं उनको (**अवचक्षे**) कहने को (**अभि, चाकशीमि**) प्रकाश करता हूँ और (**रिपुणा**) शत्रु के साथ (**न**) नहीं बसता हूँ वैसे आप लोग जानो ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वानो ! जैसे आकाश से गिरी हुई वर्षा सब जगत् का पालन करती है वैसे ही आप लोगों से निकली हुई विज्ञान की वाणियाँ सब जगत् की रक्षा करती हैं ॥५॥

फिर उदकविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगाइव क्षिपणोरीषमाणाः ॥६॥

पदार्थ—जिन विद्वानों के (**अन्तः, हृदा**) अन्तर्विराजमान आत्मा और (**मनसा**) शुद्ध अन्तःकरण से (**पूयमानाः**) पवित्रता करती हुई (**धेनाः**) विद्यायुक्त वाणियाँ (**सरितः**) नदियों के (**न**) सदृश (**सम्यक्**) उत्तम प्रकार (**स्रवन्ति**) चलती हैं सो (**एते**) ये विद्वान् (**घृतस्य**) जल की (**ऊर्मयः**) लहरियों और (**क्षिपणोः**) प्रेरणा देनेवाले से (**मृगाइव**) हरिणों के सदृश (**ईषमाणाः**) चलते हुए सब कीर्त्ति को (**अर्षन्ति**) प्राप्त होते हैं ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो सत्य कहते हैं वे ही पवित्रात्मा हो के जल के सदृश शान्त होते हुए मृगों के सदृश शीघ्र ही अपेक्षित सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

अब जलदृष्टान्त से वाणीविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः ।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**पिन्वमानः**) प्रसन्न करता हुआ मैं जैसे (**शूघनासः**) शीघ्रगामिनी (**यह्वाः**) बड़ी (**वातप्रमियः**) वायु को मापनेवाली और (**प्राध्वने**) उत्तम प्रकार से चलने योग्य मार्ग के लिये (**सिन्धोरिव**) नदियों के अर्थात् नदियों की तरङ्गों के समान (**पतयन्ति**) पति के सदृश आचरण करती है तथा (**अरुषः**) लाल रूप वाले (**वाजी**) घोड़ों के (**न**) सदृश (**घृतस्य**) जल की (**धाराः**) धारा (**ऊर्मिभिः**) तरङ्गों से (**काष्ठाः**) दिशाओं के समान तटों को (**भिन्दन्**) विदीर्ण करती है वैसे उपदेशों की वृष्टि करके अविद्याओं का नाश करता हूँ ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जिन विद्वानों के नदियों के प्रवाह सदृश उत्तम उपदेश प्रचलित होते और घोड़ों के समान दुःखों के पार करते हैं वे ही बड़े श्रेष्ठ पुरुष हैं ॥७॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम् ।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**घृतस्य**) घृत की (**धाराः**) धारा और (**समिधः**) काष्ठ (**अग्निम्**) अग्नि को (**नसन्त**) प्राप्त होते हैं वैसे (**कल्याण्यः**) कल्याण करनेवाली (**स्मयमानासः**) कुछ हसती हुई प्रमाणयुक्त हसनेवाली (**योषाः**) स्त्रियाँ (**समनेव**) तुल्य मनवाली पतिव्रता स्त्री के सदृश अभीष्ट पतियों को (**अभि, प्रवन्त**) सम्मुख प्राप्त हों और जैसे (**ताः**) वे सुख को प्राप्त होती हैं वैसे विद्या और धर्म का (**जुषाणः**) सेवन करता हुआ (**जातवेदाः**) विज्ञान से युक्त विद्वान् सबके प्रिय की (**हर्यति**) कामना करता है ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अग्नि और इन्धन के संयोग से प्रकाश होता है वैसे उत्तम अध्यापक और पढ़नेवाले के सम्बन्ध से विद्या का प्रकाश होता है। और जैसे स्वयम्वर जिन्होंने किया ऐसे स्त्री पुरुष परस्पर के सुख की कामना करते हैं वैसे उत्पन्न हुई विद्या जिन को ऐसे योगी जन सब का सुख उत्पन्न कराते हैं ॥८॥

कन्याइव वहतुमेतवा उ अञ्ज्यञ्जाना अभि चाकशीमि ।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत्पवन्ते ॥९॥

पदार्थ—जो (**वहतुम्**) धारण करनेवाले को (**एतवै**) प्राप्त होने को (**कन्याइव**) जैसे कुमारी वैसे (**अञ्जि**) व्यक्त उत्तम लक्षण को (**अञ्जानाः**) प्रकट करती हुई (**घृतस्य**) प्रकाशसम्बन्धिनी (**धाराः**) वाणियाँ (**उ**) और

(यत्र) जहां (सोमः) ऐश्वर्य्य वा ओषधियों का समूह और (यत्र) जहां (यज्ञ) करने योग्य व्यवहार (सूयते) उत्पन्न होता है (तत्) उस कर्म्म को (अभि, पवन्ते) पवित्र कराती हैं उनको मैं (अभि, चाकशीमि) प्रकाशित करता हूँ ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे स्वयंवर करनेवाली कन्या अपने सदृश पति को प्राप्त होने को दिन रात्रि परीक्षा करती है और ऐसे ही पुरुष परीक्षा करता है वैसे अध्यापक और उपदेशक परीक्षक होवें और जिस कर्म्म से ऐश्वर्य्य और क्रिया की शुद्धि होवे वही वचन कहने योग्य है ॥९॥

अ॒भ्य॑र्षत सुष्टु॒तिं गव्य॑मा॒जिम॒स्मासु॑ भ॒द्रा द्रवि॑णानि धत्त।
इ॒मं य॒ज्ञं न॑यत दे॒वता॑ नो घृ॒तस्य॒ धारा॒ मधु॑मत्पवन्ते ॥१०॥

पदार्थ—हे विद्वानो! आप लोग (अस्मासु) हम लोगों में (आजिम्) प्रसिद्ध (गव्यम्) वाणी के लिये हितकारक व्यवहार को और (भद्रा) सेवने योग्य अपेक्षित सुख देनेवाले (द्रविणानि) धनों वा यशों को (धत्त) धारण करो (देवता) विद्वान् जन आप लोग (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ को (नः) हम लोगों के लिये (नयत) प्राप्त कराओ और जैसे (घृतस्य) प्रकाशित बोध के (धाराः) प्रकाश करनेवाली वाणियां (मधुमत्) श्रेष्ठ विज्ञान से युक्त कर्म्म को (पवन्ते) शुद्ध करती हैं वैसे हम लोगों को पवित्र करके (सुष्टुतिम्) उत्तम प्रशंसा को (अभि, अर्षत) प्राप्त हूजिए ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। उन्हीं विद्वानों की प्रशंसा होती है जो सब मनुष्यों में उपदेश द्वारा उत्तम गुणों का धारण करते हैं ॥१०॥

फिर ईश्वर के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

धाम॑न्ते॒ विश्वं॒ भुव॑न॒मधि॑ श्रि॒तम॒न्तः स॑मु॒द्रे हृ॒द्य१॒॑न्तरायु॑षि।
अ॒पामनी॑के समि॒थे य आभृ॑त॒स्तम॑श्याम॒ मधु॑मन्तं त ऊ॒र्मिम् ॥११॥११

पदार्थ—हे भगवान्! जिस (ते) आपके (धामन्) आधाररूप (अन्तः) मध्य (समुद्रे) अन्तरिक्ष और (हृदि, अन्तः) हृदय के मध्य में (आयुषि) जीवन के निमित्त प्राण में (अपाम्) प्राणों की (अनीके) सेना में और (समिथे) संग्राम में (विश्वम्) सम्पूर्ण (भुवनम्) जगत् (अधि) ऊपर (श्रितम्) स्थित है तथा (यः) जो (ते) आपका विद्वानों से (आभृतः) सब प्रकार धारण किया गया (तम्) उस (मधुमन्तम्) माधुर्य्यगुण से युक्त (ऊर्मिम्) रक्षा आदि व्यवहार और आनन्द को हम लोग (अश्याम) प्राप्त होवें उस आपकी उपासना को निरन्तर करें ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! जो जगदीश्वर जगत् को अभिव्याप्त होके सबको धारण कर और उत्तम प्रकार रक्षा करके अन्तर्य्यामिरूप से सर्वत्र व्याप्त है और जिसकी कृपा से विज्ञान, बहुत कालपर्य्यन्त जीवन और विजय प्राप्त होता है उसी की निरन्तर सेवा करो ॥ ११ ॥

इस सूक्त में जल मेघ सूर्य्य वाणी विद्वान् और ईश्वर के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए॥

यह श्रीमान् परमहंसपरिव्राजकाचार्य्य परमविद्वान् श्रीमद्विरजानन्दसरस्वती स्वामीजी के शिष्य श्रीमान् दयानन्दसरस्वती स्वामीजी के बनाये हुए, आर्य्यभाषा से सुशोभित, ऋग्वेदभाष्य के चतुर्थ मण्डल में पञ्चम अनुवाक, अट्ठावनवां सूक्त और ग्यारहवां वर्ग समाप्त हुआ॥

॥ अथ पञ्चमं मण्डलम् ॥

ओ३म् विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथ द्वादशर्चस्य प्रथमस्य सूक्तस्य बुधगविष्ठिरावात्रेयावृषी । अग्निर्देवता ।
१, ३, ४, ६, ११, १२ । निचृत्त्रिष्टुप् २, ७, १० । त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः । ५, ८ स्वराट् पङ्क्तिः । ६ पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

अब बारह ऋचा वाले प्रथम सूक्त का आरम्भ है इस में उपदेश देने योग्य और उपदेश देने वाले के गुणों को कहते हैं—

अबोध्यग्निः सुमिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
युह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन्! जैसे (**समिधा**) इन्धन और घृत आदि से (**अग्निः**) अग्नि (**अबोधि**) जाना जाता अर्थात् प्रज्वलित किया जाता है (**भानवः**) कान्तियें (**जनानाम्**) मनुष्यों की (**आयतीम्**) आती हुई (**धेनुमिव**) दुग्ध देने वाली गौ के तुल्य (**उषासम्**) प्रातर्वेला के (**प्रति**) प्रति (**प्र, सिस्रते**) प्राप्त होतीं और (**वयाम्**) शाखा को (**प्र, उज्जिहानाः**) अच्छे प्रकार त्यागते हुए (**यह्वा इव**) बड़े वृक्षों के सदृश (**नाकम्**) दुःख से रहित अन्तरिक्ष को (**अच्छ**) उत्तम प्रकार प्राप्त होती हैं वैसे आप हूजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो अग्न्यादि पदार्थों की विद्या को ग्रहण कर कार्य्यों में अच्छे प्रकार युक्त करते हैं वे दुःख-रहित हुए वृक्षों के समान बढ़ते हैं ॥ १ ॥

अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।
समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान् देवस्तमसो निरमोचि ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! जो (**सुमनाः**) शुद्ध मनवाला (**होता**) हवन कर्त्ता पुरुष (**यजथाय**) यज्ञ करने के लिये (**ऊर्ध्वः**) ऊपर को चलने वाले (**अग्निः**) अग्नि के सदृश (**देवान्**) विद्वानों वा श्रेष्ठगुणों को (**अबोधि**) जानता और (**प्रातः**) प्रातःकाल में (**अस्थात्**) स्थित होता है वह (**समिद्धस्य**) प्रदीप्त अग्नि के (**रुशत्**) रूप के समान (**अदर्शि**) देखा जाता है और जो (**महान्**) बड़ा (**देवः**) प्रकाशमान सूर्य (**पाजः**) बल को प्राप्त होकर (**तमसः**) अन्धकार से (**निः**) (**अमोचि**) अत्यन्त छुटाया जाता है उसकी आप लोग सेवा करो ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य उत्तम आचरण में अग्नि के सदृश ऊपर को जाने वाले होते हैं वे अविद्या से निवृत्त होकर यशस्वी होते हैं ॥ २ ॥

यदीं गुणस्य रशुनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।
आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! (**यत्**) जो (**शुचिभिः**) पवित्र (**गोभिः**) किरणों से (**अग्निः**) अग्नि के सदृश (**गणस्य**) समूह की (**रशनाम्**) डोरी को (**अजीगः**) अत्यन्त निगलता अर्थात् ग्रहण करता (**आत्**) और (**शुचिः**) पवित्र होता हुआ (**ऊर्ध्वः**) ऊपर को उठा (**अङ्क्ते**) प्रसिद्ध होता है वह (**दक्षिणा**) दक्षिण दिशा में (**युज्यते**) युक्त किया जाता है जो विद्यायुक्त स्त्री (**वाजयन्ती**) प्राप्त कराती हुई (**उत्तानाम्**) ऊपर जाने वाली सामग्री को निरन्तर ग्रहण करती है वह (**ईम्**) प्राप्त हुए (**जुहूभिः**) पान करने के साधनों से पीने योग्य पदार्थ को (**अधयत्**) पान करती है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो समुदाय के सन्तोष को उत्पन्न करते हैं वे किरणों से सूर्य जैसे वैसे सर्वत्र यश से प्रकाशित होते हैं ॥३॥

अग्निमच्छा देवयतां मनांसि चक्षूंषीव सूर्ये सं चरन्ति ।
यदीं सुवाते उषसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्नाम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यत्**) जैसे (**अह्नाम्**) दिनों के (**अग्रे**) अग्रभाग में (**विरूपे**) विरुद्धस्वरूप (**उषसा**) रात्रि और दिन (**ईम्**) प्राप्त हुई क्रिया को (**सुवाते**) उत्पन्न कराते हैं और उन में (**श्वेतः**) श्वेतवर्ण (**वाजी**) जनाने वाला अर्थात् कार्य्यों की सूचना दिलाने वाला दिवस (**जायते**) उत्पन्न होता है जैसे (**अग्निम्**) अग्नि की (**देवयताम्**) कामना करते हुए जनों के बीच (**सूर्ये**) सूर्य्य में (**चक्षूंषीव**) नेत्रों के सदृश परमात्मा में (**मनांसि**) अन्तःकरण (**अच्छा**) उत्तम प्रकार (**सम्, चरन्ति**) प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो! जैसे दिन वैसे विद्वान् जन और जैसे रात्रि वैसे अविद्वान् हैं ॥ ४ ॥

जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्नां हितो हितेष्वरुषो वनेषु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानोऽग्निर्होता नि षसादा यजीयान् ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वन्! जो (**अह्नाम्**) दिनों के (**अग्रे**) अग्रभाग में (**हितेषु**) सुख के कारणों में (**हितः**) हित करनेवाला (**वनेषु**) वनों में (**अरुषः**) मर्मस्थलों में न व्यापी (**दमेदमे**) गृह गृह में (**सप्त**) सात किरणों और (**रत्ना**) धनों को (**दधानः**) धारण करता हुआ (**जेन्यः**) जीतने वाला (**अग्निः**) अग्नि के सदृश (**होता**) मङ्गल क्रियाओं का कर्त्ता (**जनिष्ट**) उत्पन्न होता है और श्रेष्ठ कर्मों में (**नि, ससाद**) प्रवृत्त होवे (**हि**) वही (**यजीयान्**) अत्यन्त यज्ञ करने वाला होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है जैसे दिन के आरम्भ में प्रभातसमय सब का हितकारी होता है वैसे ही श्रेष्ठ कर्म का करनेवाला यजमान सब का हितैषी होता है ॥ ५ ॥

अग्निर्होता न्यसीदद्यजीयानुपस्थे मातुः सुरभा उ लोके ।
युवा कविः पुरुनिःष्ठ ऋतावा धर्त्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! जैसे (**मध्ये**) मध्य में (**इद्धः**) प्रदीप्त (**अग्निः**) बिजुली सदृश (**यजीयान्**) अत्यन्त यज्ञकर्त्ता (**युवा**) बलवान् (**कविः**) उत्तम बुद्धि वाला विद्वान् (**पुरुनिःष्ठः**) अनेक प्रकार की श्रद्धा वा बहुत स्थानों वाला (**ऋतावा**) सत्य का विभाग (**धर्त्ता**) और धारण करने वाला (**होता**) यज्ञकर्त्ता (**सुरभौ**) सुगन्धित (**मातुः**) माता के (**उपस्थे**) समीप में (**लोके**) लोक में (**नि, असीदत्**) निरन्तर स्थित होवे (**उ**) वही (**कृष्टीनाम्**) मनुष्यों का (**उत**) और पशु आदिकों का रक्षक होवे ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अग्नि माता रूप वायु में विराजता हुआ बिजुलीरूप से सबको सुख देता है वैसे ही धार्मिक विद्वान् सब को आनन्द दिलाने के योग्य है ॥ ६ ॥

प्र णु त्यं विप्रमध्वरेषु साधुमग्निं होतारमीळते नमोभिः ।
आ यस्ततान रोदसी ऋतेन नित्यं मृजन्ति वाजिनं घृतेन ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! (**यः**) जो अग्नि (**नमोभिः**) अन्न आदिकों से (**ऋतेन**) सत्य से (**घृतेन**) और जल से (**वाजिनम्**) गति वाले पदार्थ को (**रोदसी**) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (**आ, ततान**) विस्तृत करता अर्थात् अन्तरिक्ष और पृथिवी पर पहुँचाता है उसकी विद्या से जो (**नित्यम्**) नित्य (**मृजन्ति**) शुद्ध करते और (**त्यम्**) उस (**अग्निम्**) अग्नि के सदृश (**होतारम्**) यज्ञ करने वाले (**साधुम्**) श्रेष्ठ (**विप्रम्**) बुद्धिमान् की (**अध्वरेषु**) नहीं हिंसा करने योग्य व्यवहारों में (**नु**) शीघ्र (**प्र, ईळते**) अच्छे प्रकार स्तुति करते हैं, वे सुखी होते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् जन अग्नि को कार्य्यों में सम्प्रयुक्त अर्थात् काम में लाकर धन और धान्य से युक्त होते हैं वैसे ही इसकी विद्या को कार्य्यों में संयुक्त करके प्रत्यक्ष विद्यायुक्त होते हैं ॥ ७ ॥

मार्जाल्यो मृज्यते स्वे दमूनाः कविप्रशस्तो अतिथिः शिवो नः ।
सहस्रशृङ्गो वृषभस्तदोजा विश्वाँ अग्ने सहसा प्रास्यन्यान् ॥८॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के सदृश वर्तमान (**दमूनाः**) इन्द्रियों को वश में रखने वाले (**कविप्रशस्तः**) विद्वानों से प्रशंसा करने योग्य अथवा विद्वानों में प्रशंसा को प्राप्त (**शिवः**) मङ्गलस्वरूप वा मङ्गल करनेवाले (**अतिथिः**) जिनकी आने की कोई तिथि नियत विद्यमान न हो (**सहस्रशृङ्गः**) जो हजारों शृङ्गों के तुल्य तेजों से युक्त (**वृषभः**) बलिष्ठ और वृष्टि करनेवाले (**तदोजाः**) जिनका वही पराक्रम (**मार्जाल्यः**) जो अत्यन्त शुद्ध करने वाले अग्नि के सदृश आप (**स्वे**) अपने में (**प्र, मृज्यते**) शुद्ध किये जाते हैं वह (**सहसा**) बल से (**विश्वान्**) सम्पूर्ण (**नः**) हम लोगों की तथा (**अन्यान्**) अन्यों की रक्षा करते हुए (**असि**) विद्यमान हो उनकी हम लोग सेवा करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—वे ही अतिथि होवें जो इन्द्रियों के दमन करने और मङ्गलाचरण करनेवाले धर्म्मिष्ठ विद्वान् जितेन्द्रिय और सब के प्रिय साधन में प्रीति करने वाले होवें और जैसे अग्नि सब का शुद्ध करने वाला है वैसे ही सम्पूर्ण जगत् के पवित्र करनेवाले अतिथि जन हैं ॥ ८ ॥

प्र सद्यो अग्ने अत्येष्यन्यानाविर्यस्मै चारुतमो बभूथ ।
ईळेन्यो वपुष्यो विभावा प्रियो विशामतिथिर्मानुषीणाम् ॥९॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वन् (**यस्मै**) जिसके लिये आप (**आविः**) प्रकट (**बभूथ**) होते हो वह (**ईळेन्य**) प्रशंसा करने योग्य धर्म्मयुक्त कर्म्म करनेवाला (**वपुष्य**) सुन्दर रूप में प्रसिद्ध (**विभावा**) विशेष करके कान्तियुक्त (**चारुतम**) अत्यन्त सुशील और सुन्दर और (**मानुषीणाम्**) मनुष्यादिस्थ (**विशाम**) प्रजाओं की (**प्रियः**) कामना वा सेवा करने योग्य (**अतिथि**) सर्वत्र घूमने वाला (**प्र**) समर्थ होता है जिस कारण आप (**अन्यान्**) प्रथम उपदेश दिये हुओं को (**सद्य**) तुल्य दिन में (**अति, एषि**) उल्लङ्घन करके प्राप्त होते हो वह आप हम लोगों से सत्कार करने योग्य हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य नित्य भ्रमण करते और प्राप्त हुए जनों को उपदेश कर और नहीं प्राप्त हुओं को उपदेश के लिये प्राप्त होते तथा सब के हितैषी बड़े विद्वान् और यथार्थवादी वे ही अतिथि होने के योग्य हैं ॥ ९ ॥

तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ठ बलिमग्ने अन्तित ओत दूरात् ।
आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि बृहत्ते अग्ने महि शर्म भद्रम् ॥१०॥

पदार्थ—हे (**यविष्ठ**) अतिशय युवा (**अग्ने**) बिजुली के सदृश विद्या में व्याप्त जिस से आप (**अन्तित**) समीप से (**उत**) और (**दूरात्**) दूर से आकर सब को सत्य का उपदेश करते हो इस से (**क्षितय**) गृहस्थ मनुष्य (**तुभ्यम्**) आप के लिए (**बलिम्**) खान और पीने योग्यादि पदार्थों के समूह को (**आ, भरन्ति**) धारण करते हैं और हे (**अग्ने**) पवित्र कार्य्य करनेवाले आप (**भन्दिष्ठस्य**) अत्यन्त श्रेष्ठ आचरण करनेवाले की (**सुमतिम्**) श्रेष्ठ बुद्धि को (**आ, चिकिद्धि**) विशेष करके जानिये और यह (**ते**) आप का (**महि**) सत्कार करने योग्य (**बृहत्**) बड़ा (**भद्रम्**) सेवन करने योग्य सुख का देनेवाला (**शर्म्म**) गृह वा सुख हो ॥१०॥

भावार्थ—जिससे अतिथि जन सब मनुष्यों के सत्य उपदेश से परम उपकार को करते हैं इस से वे अन्न पान स्थान प्रिय वचन और धन आदि से सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ १० ॥

आद्य रथं भानुमो भानुमन्तमग्ने तिष्ठ यजतेभिः समन्तम् ।
विद्वान्पथीनामुर्वन्तरिक्षमेह देवान्हविरद्याय वक्षि ॥११॥

पदार्थ—हे (**भानुम**) कान्तिवाले (**अग्ने**) विद्वन् आप (**इह**) यहां (**अद्य**) इस समय (**यजतेभि**) प्राप्त हुए घोड़े आदिकों से संयुक्त (**समन्तम्**) सब प्रकार दृढ़ अवयवों वाले (**भानुमन्तम्**) कान्तियुक्त (**रथम**) सुन्दर वाहन पर (**आ**) अच्छे प्रकार (**तिष्ठ**) विराजिए इससे (**विद्वान्**) विद्यायुक्त आप (**पथीनाम्**) मार्गों के (**उरु**) व्यापक (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष को और (**हविरद्याय**) खाने योग्य अन्न आदि के लिए (**देवान्**) विद्वान् अतिथियों को जिससे (**आ, वक्षि**) अच्छे प्रकार पहुँचाते हो इससे हम लोगों से सत्कार करने योग्य हो ॥ ११ ॥

भावार्थ—गृहस्थों को चाहिए कि दूर स्थित भी उत्तम अतिथियों को उत्तम वाहनों पर बैठाकर उपदेश के लिए लावें और अन्न आदि से उनका सत्कार करें ॥११॥

अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे ।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ॥१२॥

पदार्थ—हे राजा आदि मनुष्यो अतिथि हम लोग जो (**गविष्ठिर**) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी में स्थित (**नमसा**) सत्कार वा अन्न आदि से (**दिवीव**) जैसे सूर्य्य में वैसे (**अग्नौ**) अग्नि में (**रुक्मम्**) प्रीतिकारक और प्रकाशयुक्त (**उरुव्यञ्चम्**) बहुत व्यापक और (**स्तोमम्**) प्रशंसा करने योग्य का (**अश्रेत्**) आश्रय करे उस (**वृष्णे**) सत्य उपदेश की वृष्टि करनेवाले (**वृषभाय**) बलिष्ट (**मेध्याय**) पवित्र (**कवये**) विद्वान् जन के लिये (**वन्दारु**) प्रशंसा करने योग्य और धर्म्मसम्बन्धी (**वच.**) वचन का (**अवोचाम**) उपदेश करें ॥ १२ ॥

भावार्थ—उन पुरुषों को ही विद्वान् अतिथि जन विशेष उपदेश देवें कि जो पवित्रात्मा विद्या में प्रीति करने और उत्तम क्रियाओं के जानने की इच्छा करनेवाले होवें और जो इन बातों से विपरीत अर्थात् रहित हों उन को अधिकार की योग्यता अर्थात् विशेष उपदेश के समझने का सामर्थ्य साधारण उपदेश के द्वारा प्राप्त करा के अधिकारी करें ॥ १२ ॥

इस सूक्त में उपदेश सुनने और उपदेश के सुनानेवाले का गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ।

यह प्रथम सूक्त और तेरहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ द्वादशर्चस्य द्वितीयस्य सूक्तस्य १, ३—८ । १०—१२ कुमार आत्रेयो वृशो वा जार उभौ वा । २, ९ वृशो जार ऋषि । अग्निर्देवता । १, ३, ७, ८ त्रिष्टुप् । ४, ५, ६, १० निचृत्त्रिष्टुप् । ११ विराट्त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर । २ स्वराट् पङ्क्ति । ९ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर । १२ निचृदति जगती छन्द । निषाद स्वर. ॥

अब बारह ऋचा वाले द्वितीय सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से युवावस्था में विवाह करने के विषय को कहते हैं—

कुमारं माता युवतिः समुब्धं गुहा बिभर्ति न ददाति पित्रे ।
अनीकमस्य न मिनज्जनासः पुरः पश्यन्ति निहितमरतौ ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (**युवति**) पूर्ण अवस्था अर्थात् विवाह करने योग्य अवस्थावाली होकर जिस स्त्री ने विवाह किया ऐसी (**माता**) माता (**समुब्धम्**) तुल्यता से ढपे हुए (**कुमारम्**) कुमार को (**गुहा**) गर्भाशय में (**बिभर्ति**) धारण करती और (**पित्रे**) उस पुत्र के पिता के लिये (**न**) नहीं (**ददाति**) देती है (**अस्य**) इस पिता के (**अनीकम्**) समुदायबल को अर्थात् (**न**) जो नहीं (**मिनत्**) नाश करनेवाला होता हुआ (**अरतौ**) रमणसमय से अन्यसमय में (**निहितम्**) स्थित उस को (**जनास**) विद्वान् जन (**पुर**) पहिले (**पश्यन्ति**) देखते हैं वैसे ही आप लोग आचरण करो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो कुमार और कुमारी ब्रह्मचर्य्य में विद्या पढ़के और सन्तान के उत्पन्न करने की रीति को जान के पूर्ण अवस्था अर्थात् विवाह करने के योग्य अवस्था होने पर स्वयंवर नामक विवाह को करके सन्तान की उत्पत्ति करते हैं तो वे सदा आनन्दित होते हैं ॥ १ ॥

कमेतं त्वं युवते कुमारं पेषी बिभर्षि महिषी जजान ।
पूर्वीर्हि गर्भः शरदो ववर्धापश्यं जातं यदसूत माता ॥२॥

पदार्थ—हे (**युवते**) ब्रह्मचर्य्य से पढ़ी विद्या जिस ने ऐसी पूर्ण अवस्थावाली (**पेषी**) पेष्याकार अर्थात् डिब्बी के आकार करि गर्भाशय में वीर्य्य को स्थिर करने वाली (**महिषी**) महान् रूप, बल और उत्तम स्वभाव आदि के योग से आदर करने योग्य (**त्वम्**) तू (**कम्**) किस (**एतम्**) किया है ब्रह्मचर्य्य जिसने ऐसे इस (**कुमारम्**) बालक का (**बिभर्षि**) पालन करती है और (**माता**) माता (**यत्**) जिसको (**असूत**) उत्पन्न करती तथा (**जातम्**) उत्पन्न हुए को मैं (**अपश्यम्**) देखता हूँ वह (**गर्भ**) गर्भाशय में प्राप्त (**पूर्वी**) प्राचीन (**शरद.**) शरद् ऋतुओं तक निरन्तर (**हि**) जिससे (**ववर्ध**) बढ़ता है उससे (**जजान**) उत्पन्न होता है ॥२॥

भावार्थ—हे कन्याओ ! तुम बाल्यावस्था में सोलह वर्ष के प्रथम और पच्चीस वर्ष के प्रथम कुमारजनो ! विवाह को न करो जो इस प्रकार से ब्रह्मचर्य्य के करने के अनन्तर विवाह को करें उन के सन्तान उत्तमरूप और गुणों से युक्त बहुत कालपर्य्यन्त जीवनवाले और शिष्ट जनों में उत्तम प्रकार मान पानेवाले होते हैं ॥२॥

हिरण्यदन्तं शुचिवर्णमारात् क्षेत्रादपश्यमायुधा मिमानम् ।
ददानो अस्मा अमृतं विपृक्वत्किं मामनिन्द्राः कृणवन्ननुक्थाः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो मैं किया ब्रह्मचर्य्य जिन्होंने ऐसे स्त्री पुरुषों में से (**क्षेत्रात्**) संस्कार की हुई भार्या स्त्री से उत्पन्न हुए (**हिरण्यदन्तम्**) सुवर्ण वा तेज के तुल्य दांतवाले (**शुचिवर्णम्**) पवित्रस्वरूपयुक्त वा अतिसुन्दर और (**आयुधा**) शस्त्र और अस्त्रों का (**मिमानम्**) धारण करनेवाले का (**आरात्**) समीप से (**अपश्यम**) देखूं और (**अस्मै**) इसके लिए (**विपृक्वत**) विशेष करके सम्बद्ध (**अमृतम्**) मोक्षसुख को (**ददान**) देता हुआ मैं हूं उस (**माम्**) मुझ को (**अनिन्द्रा**) ऐश्वर्य्य से रहित (**अनुक्था**) अविद्वान् जन (**किम्**) क्या (**कृणवन्**) करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! पूर्ण शारीर नियत ब्रह्मचर्य्य शिक्षा विद्या युवावस्था और परस्पर प्रीति के विना सन्तानों का विवाह न करें इस प्रकार करते हुए सब जन अति उत्तम सन्तानों को प्राप्त होकर अति ही आनन्द को प्राप्त होते हैं जो इस प्रकार प्रसिद्ध होते हैं उन के समीप दारिद्र्य मूर्खता वा दरिद्री और अविद्वान् जन कुछ भी विघ्न नहीं कर सकते हैं ॥ ३ ॥

क्षेत्रादपश्यं सनुतश्चरन्तं सुमद्यूथं न पुरु शोभमानम् ।
न ता अगृभ्रन्नजनिष्ट हि षः पलिक्नीरिद्युवतयो भवन्ति ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो मैं जिस (**क्षेत्रात्**) संस्कार की हुई स्त्री से उत्पन्न (**चरन्तम्**) व्यवहार करते हुए (**सुमत्**) आपही (**पुरु**) बहुत (**शोभमानम्**) शोभायुक्त (**न**) समान वा (**यूथम्**) सेनासमूह के (**न**) समान बलिष्ठ को (**सनुत**) सनातन से (**अपश्यम्**) देखता हूं (**सः**) वह सुखी (**अजनिष्ट**) होता है और जो ब्रह्मचारिणी कन्यायें उत्तम नियमों वाली हुई युवावस्था के प्रथम पतियों को (**अगृभ्रन्**) ग्रहण करती हैं (**ता**) वे (**हि**) ही (**युवतयः**) युवति हुई पुत्र पौत्रों के अतिसुख से युक्त (**इत्**) और (**पलिक्नी.**) श्वेत केशोंवाली अर्थात् वृद्धावस्थायुक्त (**भवन्ति**) होती हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! यदि आप लोग अपने सन्तानों को अतिकालपर्यन्त ब्रह्मचर्य्य करावें तो वे धमिष्ठ बुद्धियुक्त और चिरञ्जीवी हुए आप लोगों के लिये अतीव सुख देवें ॥ ४ ॥

के मे मर्यकं वि यवन्त गोभिर्न येषां गोपा अरणश्चिदास ।
य ईं जगृभुरव ते सृजन्त्वाजाति पश्व उप नश्चिकित्वान् ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वानो (**के**) कौन (**गोपा**) गौओं के पालन करनेवाले (**गोभि**) गौओं के (**न**) सदृश (**मे**) मेरे (**मर्यकम्**) अल्प मनुष्य को

(वि, यवन्त) दूर करें और (येषाम्) जिनका वह (चित) निश्चित (अरण) निरमिमेवाला (आस) होता है और (ये) जो (पश्वः) पशुओं को (जगृभ्रे) ग्रहण करें (ते) वे (आ, अजाति) अच्छे प्रकार सन्तानों की उत्पत्ति जिस कुल में उसको (उप, सृजन्तु) उत्पन्न कर और जो (ईम्) विद्या ग्रहण करे वे दुःख को (अव) दूर करें और (चिकित्वान्) बुद्धिमान् उत्पन्न करता है वह (न.) हम लोगों का हितैषी है यह समझाओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों के प्रति यह पूछें कौन हम लोगों के थोड़े ज्ञानवाले सन्तानों को उत्तम बुद्धिवाले कर सकें वे विद्वान् यह उत्तर देवें कि जो यथार्थवादी हों वे ही उक्त काम को कर सकें अन्य जन नहीं ॥ ५ ॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वसां राजानं वसतिं जनानामरातयो नि दधुर्मर्त्येषु ।

ब्रह्माण्यत्रेरव तं सृजन्तु निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु ॥६॥१४॥

भावार्थ—जो (वसाम्) वसते हुए प्राणियों और (जनानाम्) सज्जन पुरुषों के (राजानम्) न्याय करनेवाले को और (वसतिम्) निवास को प्रकट करे (तम्) उसको विद्वान् जन (अव, सृजन्तु) न निकालें और जो (निन्दितारः) गुणों में दोषों और दोषों में गुणों का स्थापन करनेवाले (निन्द्यासः) अधर्म के आचरण से निन्दा करने योग्य और (अरातयः) अन्याय से ग्रहण करनेवाले शत्रुजन (मर्त्येषु) मरणधर्मा मनुष्यों में (ब्रह्माणि) बड़े धनों को (नि, दधुः) स्थापन करें वे (अत्रेः) तीन प्रकार के दुःख से रहित के भी दूर स्थित (भवन्तु) हों ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो निकृष्ट कर्म करने और दूसरे के द्रव्य के हरने वाले द्वेषकर्त्ता हों उनको दण्ड देकर निर्जन देश में बाधा और जो स्तुति करनेवाले धर्मिष्ठ होवें उनको समीप में निवास देकर सदा सत्कार करो ॥ ६ ॥

शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्राद्यूपादमुञ्चो अशमिष्ट हि षः ।

एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशान्होतश्चिकित्व इह तू निषद्य ॥७॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! आप (सहस्रात्) असंख्य (यूपात्) मिले या न मिले हुए बन्धन से (निदितम्) निन्दित (शुनःशेपम्) सुख के प्राप्त कराने और इन्द्रियाराम अर्थात् इन्द्रियों में रमण करनेवाले को (चित्) भी (अमुञ्चः) त्याग करो (हि) जिससे (सः) वह (अशमिष्ट) शान्त होता (एव) ही है । हे (होतः) हवन करनेवाले (चिकित्वः) बुद्धिमान् (इह) यहाँ युक्तधर्म सम्बन्धी व्यवहार में (निषद्य) प्रवृत्त होकर (अस्मत्) हम लोगों से (पाशान्) संसाररूप बन्धनों को (तू) फिर (वि, मुमुग्धि) काटिए ॥७॥

भावार्थ—विद्वानों का यही आवश्यक कर्म्म है जो सब मनुष्यों को अविद्या और अधर्म्माचरण से अलग कर विद्वान् धार्मिक बना उनका दुःखबन्धन छुड़ाना निरन्तर करना चाहिए ॥ ७ ॥

हृणीयमानो अप हि मदैयेः प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।

इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ॥८॥

पदार्थ—हे (अग्ने) तीन दोषों के नाश करनेवाले (हृणीयमानः) क्रोध करते हुए आप (हि) ही (मत्) मेरे समीप से (अप, ऐयेः) जाइये और जो (हि) निश्चय (इन्द्रः) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त (विद्वान्) विद्वान् (त्वा) आपको (अनु, चचक्ष) अनुकूल कहे और जो (मे) मेरे लिए (देवानाम्) विद्वानों के बीच (व्रतपाः) सत्य की रक्षा करनेवाला हुआ सत्य को (प्र, उवाच) कहे (तेन) इससे (अनुशिष्टः) शिक्षा को प्राप्त (अहम्) मैं सत्यबोध को (आ, अगाम्) प्राप्त होऊं ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य दुष्ट कर्म स्वभाववाले हों वे दूर रखने योग्य हैं और जो धर्मिष्ठ सत्य का उपदेश करें उनके सङ्ग से शिष्ट अर्थात् श्रेष्ठ होके सुख को प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।

प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे (अग्निः) सूर्य आदि रूप से अग्नि (बृहता) बड़े (ज्योतिषा) प्रकाश से (महित्वा) बड़प्पन से (विश्वानि) सम्पूर्ण वस्तुओं को (आविः) प्रकट (कृणुते) करता है (वि) विशेष करके (भाति) प्रकाशित होता है और (प्र) अत्यन्त (सहते) सहन करता है (शृङ्गे) शृङ्ग के निमित्त (रक्षसे) दुष्टों के विनाश के लिए (विनिक्षे) वा अन्य विनाश के लिए (शिशीते) प्रतापयुक्त होता है वैसे (दुरेवाः) दुष्ट प्राप्त करानेरूप कर्मवाली (अदेवीः) अशुद्ध (मायाः) छल आदि से युक्त बुद्धियों को सब प्रकार से वारण कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य अन्धकार का वारण कर और प्रकाश को उत्पन्न करके भय का निवारण करता है वैसे ही विद्वान् जन घोर अज्ञान का निवारण करके विद्यारूप सूर्य को उत्पन्न करके सबके आत्माओं को प्रकाशित करें ॥ ९ ॥

अब धनुर्वेद के दृष्टान्त से अविद्या निवारण को कहते हैं—

उत स्वानासो दिवि षन्त्वग्नेस्तिग्मायुधा रक्षसे हन्तवा उ ।

मदे चिदस्य प्र रुजन्ति भामा न वरन्ते परिबाधो अदेवीः ॥१०॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (अग्नेः) अग्नि से (तिग्मायुधाः) तीक्ष्ण आयुध युक्त (स्वानासः) उपदेश करनेवाले (दिवि) विद्या के प्रकाश में वर्त्तमान (रक्षसे) दुष्टों के विनाश करने के लिए (हन्तवै) हनने को समर्थ (सन्तु) हूजिए और (उत) भी (मदे) आनन्द के लिए प्रवृत्त हूजिये (चित्, उ) और भी (अस्य) इसके (भामाः) क्रोधों के (न) तुल्य (परिबाधः) सब ओर से बाधनों को (अदेवीः) प्रमादरहित क्रियायें (प्र, रुजन्ति) सब प्रकार भग्न करती और (वरन्ते) स्वीकार करती हैं उनका निवारण करो ॥ १० ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! आप लोग जैसे धनुर्वेद को पढ़े हुए शस्त्र और अस्त्रों के प्रक्षेप अर्थात् चलानेरूप युद्ध में चतुर जन अग्नि सम्बन्धी अस्त्रादिकों से शत्रुओं का निवारण करके विजय को प्रकाशित करते हैं वैसे ही अत्यन्त विद्या के पढ़ाने और उपदेश करने से अविद्याकृत प्रमादों का निवारण करके विद्याकृत श्रेष्ठ गुणों का प्रकाश करो ॥ १० ॥

एतं ते स्तोमं तुविजात विप्रो रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ।

यदीदग्ने प्रति त्वं देव हर्याः स्वर्वतीरप एना जयेम ॥११॥

पदार्थ—हे (तुविजात) बहुत विद्वानों में प्रसिद्ध (अग्ने) विद्वान् जैसे मैं (ते) आपका (स्वपाः) उत्तम कर्म करनेवाला (धीरः) क्षमा आदि गुणों से युक्त और ध्यान करनेवाला (विप्रः) बुद्धिमान जन के (न) सदृश (एतम्) इस श्रेष्ठ गुणों के प्रकाशक (रथम्) सुन्दर वाहन को (अतक्षम्) बनाता हूँ वैसे (त्वम्) आप आचरण कीजिए और हे (देव) सम्पूर्ण विद्या के देनेवाले (यदि) जो आप वाहन को रचिये तो (इत्) ही (स्तोमम्) प्रशंसित व्यवहार जिसमें ऐसे सुख को प्राप्त हूजिए और जैसे हम लोग (एना) इसमे (हर्याः) कामना करने योग्य अर्थात् सुन्दर (स्वर्वतीः) अच्छे सुखों से युक्त (अपः) प्राणों से युक्त (प्रति, जयेम) प्रति जीतें वैसे आप इनको जीतिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन धर्म्मयुक्त कामनाओं को करके विजयी होते हैं वैसे ही आप लोग भी आचरण करो ॥ ११ ॥

तुविग्रीवो वृषभो वावृधानोऽशत्र्वर्यः समजाति वेदः ।

इतीममग्निममृता अवोचन्बर्हिष्मते मनवे शर्म यंसद्धविष्मते मनवे शर्म यंसत् ॥१२॥१५॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे (तुविग्रीवः) बहुत बल वा सुन्दरी ग्रीवायुक्त (वावृधानः) अत्यन्त बढ़ता हुआ (वृषभः) अतीव बलवान् (अर्य्यः) स्वामी (अशत्रु) शत्रुओं से रहित (वेदः) धन का (सम्, अजाति) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे और (बर्हिष्मते) ज्ञान की वृद्धि से युक्त (मनवे) मनुष्य के लिए (शर्म्म) सुख वा गृह को (यंसत्) देवे और (हविष्मते) बहुत उत्तम पदार्थों से युक्त (मनवे) विचारशील पुरुष के लिए (शर्म्म) सुख को (यंसत्) देवे (इति) इस प्रकार से (इमम्) इस (अग्निम्) बिजुली को (अमृताः) आत्मज्ञान जिनको प्राप्त वे (अवोचन्) कहें ॥ १२ ॥

भावार्थ—सब विद्वान् जन ही सब विद्यार्थियों के लिए उत्तम शिक्षा देकर शत्रुता को छुड़ा के सब प्रकार के सुख को प्राप्त होवें ॥ १२ ॥

इस सूक्त में युवावस्था में विवाह और विद्वान् के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह द्वितीय सूक्त और पञ्चदशो वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ द्वादशर्चस्य तृतीयस्य सूक्तस्य वसुश्रुत आत्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता । १ निचृत्पङ्क्तिः । ११ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २, ३, ५, ६, १२ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, १०, त्रिष्टुप् । ९ स्वराट् त्रिष्टुप् । ७, ८, विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब बारह ऋचा वाले तीसरे सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से राजा के कर्त्तव्य को कहते हैं—

त्वमग्ने वरुणो जायसे यत्त्वं मित्रो भवसि यत्समिद्धः ।

त्वे विश्वे सहसस्पुत्र देवास्त्वमिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय ॥१॥

पदार्थ—हे (सहसः) बल के (पुत्र) पालन करनेवाले (अग्ने) विद्या का अभ्यास किये हुए विद्वान् (यत्) जिस के (त्वम्) आप (मित्रः) सखा और (यत्) जिससे (समिद्धः) प्रकाशयुक्त (भवसि) होते हो और जो (त्वम्) आप (वरुणः) दुष्टों के बन्ध करनेवाले श्रेष्ठ (जायसे) होते हो और जो (त्वम्) आप (इन्द्रः) ऐश्वर्य्य के दाता (दाशुषे) देने योग्य (मर्त्याय) मनुष्य के लिए धन देते हो उन (त्वे) आप में (विश्वे) सम्पूर्ण (देवाः) विद्वान् जन प्रसन्न होते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जिसके आप मित्र वा जिससे आप विरुद्ध और उदासीन होते हैं वह आपके साथ सदैव मित्रता रक्खे और आप भी उस के साथ रक्खें ॥ १ ॥

त्वमर्य्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन् गुह्यं बिभर्षि ।
अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद्दम्पती समनसा कृणोषि ॥२॥

पदार्थ—हे (**स्वधावन्**) अच्छे अन्न से युक्त राजन् ! (**यत्**) जिससे (**त्वम्**) आप (**कनीनाम्**) कामना करनेवालों के (**अर्य्यमा**) न्यायाधीश (**भवसि**) होते हो और (**गुह्यम्**) गुप्त (**नाम**) नाम को (**बिभर्षि**) धारण करते हो और (**यत्**) जो (**दम्पती**) विवाहित स्त्री पुरुषों को (**समनसा**) तुल्य मन और दृढ प्रीतियुक्त (**कृणोषि**) करते हो उन आपको सम्पूर्ण विद्वान् जन (**गोभिः**) वाणी आदि पदार्थों से (**सुधितम्**) सुन्दर प्रसन्न (**मित्रम्**) मित्र के (**न**) सदृश (**अञ्जन्ति**) प्रकट करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । वही राजा श्रेष्ठ है जो प्रजाओं का यथार्थ न्याय करता है और जैसे मित्र मित्र को प्रसन्न करता है वैसे ही राजा प्रजाओं को प्रसन्न करे ॥ २ ॥

तव श्रिये मरुतो मर्जयन्त रुद्र यत्ते जनिम चारु चित्रम् ।
पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम् ॥३॥

पदार्थ—हे (**रुद्र**) दुष्टों के रुलानेवाले ! जो (**मरुतः**) मनुष्य (**तव**) आप की (**श्रिये**) लक्ष्मी के लिये (**मर्जयन्त**) शुद्ध करें (**ते**) आपका (**यत्**) जो (**चारु**) सुन्दर (**चित्रम्**) अद्भुत (**पदम्**) प्राप्त होने योग्य (**जनिम**) जन्म उसको शुद्ध करें और (**यत्**) जो आप (**विष्णोः**) व्यापक ईश्वर का (**उपमम्**) उपमायुक्त और (**गोनाम्**) इन्द्रियों वा किरणों का (**गुह्यम्**) गुप्त (**नाम**) नाम (**निधायि**) धारण करें (**तेन**) इसी हेतु से उनका आप (**पासि**) पालन करते हो इससे सत्कार करने योग्य हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! इसीसे आपके जन्म का साफल्य होवे जिससे आप ईश्वर के सदृश पक्षपात का त्याग करके प्रजाओं का पालन करो ॥ ३ ॥

अब प्रजाकृत्य को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तव श्रिया सुदृशो देव देवाः पुरू दधाना अमृतं सपन्त ।
होतारमग्निं मनुषो नि षेदुर्दशस्यन्त उशिजः शंसमायोः ॥४॥

पदार्थ—हे (**देव**) दानशील राजन् ! (**तव**) आपकी (**श्रिया**) लक्ष्मी वा शोभा से (**सुदृशः**) उत्तम प्रकार देखने और (**पुरू**) बहुत (**अमृतम्**) मृत्युरहित अर्थात् अविनाशी पदवी को (**दधानाः**) धारण करते और (**उशिजः**) कामना करते हुए (**आयोः**) जीवन के (**शंसम्**) कहने और (**होतारम्**) ग्रहण करने वाले (**अग्निम्**) अग्नि को (**दशस्यन्तः**) विस्तारते हुए (**देवाः**) विद्वान् (**मनुषः**) मनुष्य (**सपन्त**) आक्रोश करें अर्थात् चिल्ला चिल्ला उसका उपदेश कर रहे हैं वे मृत्युरहित पदवी को (**नि, षेदुः**) प्राप्त होवें ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप यथार्थवक्ता विद्वानों के सङ्ग से विद्याओं का ग्रहण करके लक्ष्मीवान् हो और इस संसार में सुख भोगकर अन्त अर्थात् मरण समय में मुक्ति को प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

फिर राजधर्म को अगले मन्त्र में कहते हैं—

न त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्न काव्यैः परो अस्ति स्वधावः ।
विशश्च यस्या अतिथिर्भवासि स यज्ञेन वनवद्देव मर्त्तान् ॥५॥

पदार्थ—हे (**स्वधावः**) बहुत धन और धान्य से युक्त (**देव**) सुख के देनेवाले (**अग्ने**) विद्वान् वा राजन् आप (**यज्ञेन**) प्रजापालनरूप व्यवहार से (**मर्त्तान्**) मनुष्यों का (**वनवत्**) सेवन करते हो (**न**) न (**त्वत्**) आपके समीप में (**पूर्वः**) प्राचीन (**होता**) दाता (**यजीयान्**) अत्यन्त यज्ञ करनेवाला (**अस्ति**) है और (**न**) न (**काव्यैः**) कवियों के बनाये हुओं से (**परः**) श्रेष्ठ है (**यस्याः**) जिस (**विशः**) प्रजा के (**च**) भी (**अतिथिः**) आदर करने योग्य जो आप (**भवासि**) होवें (**सः**) वह आप उस प्रजा के सत्कार करने योग्य हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो राजा धर्मयुक्त व्यवहार से प्रजाओं का पालन करे वही राज्य करने के योग्य होता है ॥ ५ ॥

फिर प्रजाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वयमग्ने वनुयाम त्वोता वसूयवो हविषा बुध्यमानाः ।
वयं समर्ये विदथेष्वह्नां वयं राया सहसस्पुत्र मर्त्तान् ॥६॥१६॥

पदार्थ—हे (**सहसस्पुत्र**) बल की पालना करनेवाले (**अग्ने**) अग्नि के सदृश तेजस्वी राजन् (**त्वोताः**) आप से रक्षा किये गये (**वसूयवः**) अपने धन की इच्छा करनेवाले (**हविषा**) दान से (**बुध्यमानाः**) बोध को प्राप्त होते हुए (**वयम्**) हम लोग आप से रक्षा की (**वनुयाम**) याचना करें और (**वयम्**) हम लोग (**अह्नाम्**) दिनों के (**विदथेषु**) विशेष ज्ञानसम्बन्धी व्यवहारों में (**समर्ये**) संग्राम के लिए प्रवृत्त होवें और (**वयम्**) हम लोग (**राया**) धन से (**मर्त्तान्**) मनुष्यों को याचें अर्थात् मनुष्यों से मांगें ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! विद्वानों से श्रेष्ठ गुणों की आप लोग प्रार्थना करें तो स्वयं प्रजायें धनवती होवें ॥ ६ ॥

फिर चोरी आदि अपराधनिवारण प्रजापालन राजधर्म को कहते हैं—

यो न आगो अभ्येनो भरात्यधीदघमघशंसे दधात ।
जही चिकित्वो अभिशस्तिमेतामग्ने यो नो मर्चयति द्वयेन ॥७॥

पदार्थ—हे (**चिकित्वः**) विज्ञानवान् (**अग्ने**) अग्नि के सदृश प्रतापी पृथिवी के पालन वाले (**यः**) जो (**नः**) हम लोगों के (**आगः**) अपराध और (**एनः**) पाप को (**अभि, भराति**) सम्मुख धारण करता है उस (**अघशंसे**) चोरीरूप कर्म में जो (**अघम्**) पाप (**इत्**) ही को (**अधि, दधात**) अधिस्थापन करे और (**यः**) जो (**द्वयेन**) पाप और अपराध से (**नः**) हम लोगों को (**मर्चयति**) बाधता है और (**एताम्**) इस (**अभिशस्तिम्**) सब ओर से हिंसा को करता है उसका आप (**जही**) त्याग कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो प्रजा को दोष देने वाले होवें उनको सदा ही दण्ड दीजिये और जो श्रेष्ठ आचरण करनेवाले होवें उनको मानो अर्थात् सत्कार करो ॥७॥

फिर राजधर्म को अगले मन्त्र में कहते हैं

त्वामस्या व्युषि देव पूर्वे दूतं कृण्वाना अयजन्त हव्यैः ।
संस्थे यदग्न ईयसे रयीणां देवो मर्त्तैर्वसुभिरिध्यमानः ॥८॥

पदार्थ—हे (**देव**) श्रेष्ठ गुणों से युक्त (**अग्ने**) अग्नि के सदृश वर्त्तमान (**देवः**) विद्वान् होते हुए आप (**यत्**) जिससे (**अस्याः**) इस प्रजा के मध्य में (**संस्थे**) उत्तम प्रकार स्थित होते हैं जिसमें उसमें (**रयीणाम्**) धनों के बीच (**वसुभिः**) धन आदि पदार्थों से युक्त (**मर्त्तैः**) मरणधर्मवाले मनुष्यों से (**इध्यमानः**) प्रकाशित किये गये (**ईयसे**) प्राप्त होते वा जाते हो और पालन का (**व्युषि**) सेवन करते हो उन (**त्वाम्**) आपको (**हव्यैः**) प्रशंसा करने योग्य पदार्थों से (**दूतम्**) शत्रुओं के नाश करनेवाले (**कृण्वानाः**) करते हुए (**पूर्वे**) पालन करनेवाले विद्वान् जन (**अयजन्त**) मिलें ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो आप विद्या और विनय से न्यायपूर्वक प्रजाओं का निरन्तर पालन करें तो आप को यश, धन, राज्य की उन्नति और उत्तम पुरुष प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

फिर सन्तानशिक्षाविषयक प्रजाकर्म को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अव स्पृधि पितरं योधि विद्वान् पुत्रो यस्ते सहसः सून ऊहे ।
कदा चिकित्वो अभि चक्षसे नोऽग्ने कदाँ ऋतचिद्यातयासे ॥९॥

पदार्थ—हे (**सहसः**) ब्रह्मचर्य्यबल से युक्त पुरुष के (**सूनो**) पुत्र (**चिकित्वः**) बुद्धियुक्त (**अग्ने**) अग्नि के सदृश तेजस्विन् (**ते**) तेरे लिए मैं (**ऊहे**) विशेष तर्क करता हूँ (**यः**) जो तू (**विद्वान्**) विद्यावान् (**पुत्रः**) दुःख से रक्षा करनेवाला है सो (**पितरम्**) पिता अर्थात् अपने पालनेवाले की (**अव, स्पृधि**) अभिकांक्षा कर और दुःख को (**योधि**) दूर कर तथा (**ऋतचित्**) सत्य का सञ्चय करने वाले तुम (**नः**) हम लोगों को (**कदा**) कब (**अभि, चक्षसे**) उपदेश द्वारा और (**कदा**) कब अच्छे कामों में (**यातयासे**) प्रेरणा कराओगे ।

भावार्थ—जो कन्या और बालकों को माता पिता ब्रह्मचर्य से विद्या प्राप्त करावें और पूर्ण युवावस्था में विवाह करावें तो वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होवें ॥ ९ ॥

भूरि नाम वन्दमानो दधाति पिता वसो यदि तज्जोषयासे ।
कुविद्देवस्य सहसा चकानः सुम्नमग्निर्वनते वावृधानः ॥१०॥

पदार्थ—हे (**वसो**) निवास करनेवाले जो अग्नि की (**वन्दमानः**) स्तुति करता हुआ (**देवस्य**) विद्वान् के (**सहसा**) बल से (**सुम्नम्**) सुख की (**चकानः**) कामना करता और (**अग्निः**) अग्नि के सदृश (**वावृधानः**) निरन्तर बढ़ता हुआ (**पिता**) उत्पन्न करने वाला (**यदि**) यदि (**भूरि**) बहुत (**कुवित्**) बड़े जिस (**नाम**) नाम को (**दधाति**) धारण करता और (**वनते**) सेवन करता है (**तत्**) उसका तो आप (**जोषयासे**) सेवन करें ॥ १० ॥

भावार्थ—हे सन्तानो ! जो आपके माता पिता दूसरे विद्यारूप जन्म नामक द्विज ऐसा नाम विधान करते हैं उनका सेवन निरन्तर तुम लोग करो ॥ १० ॥

अब चोरी आदि दोषनिवारण सन्तानशिक्षाकरण प्रजाधर्मविषय को कहते हैं—

त्वमङ्ग जरितारं यविष्ठ विश्वान्यग्ने दुरितातिं पर्षि ।
स्तेना अदृश्रन्रिपवो जनासोऽज्ञातकेता वृजिना अभूवन् ॥११॥

पदार्थ—हे (**यविष्ठ**) अतिशय करके युवा (**अङ्ग**) मित्र (**अग्ने**) अग्नि के सदृश वर्त्तमान जिस से (**त्वम्**) आप (**जरितारम्**) विद्या और गुण की स्तुति करनेवाले पिता की (**अति, पर्षि**) अत्यन्त पालना करते हो (**विश्वानि**) सम्पूर्ण (**दुरिता**) दुःख के प्राप्त करानेवाले कर्म्म वा फलों का त्याग करते हो और जो (**अज्ञातकेताः**) नहीं जानी बुद्धि जिन्होंने वे मूर्ख (**वृजिनाः**) पापाचरणयुक्त वर्जने योग्य (**स्तेनाः**) चोर (**रिपवः**) शत्रु (**अभूवन्**) होते हैं और

जिन को (अनासः) विद्वान् जन (अवृभन्) देखते हैं उनका आप परित्याग करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे उत्तम सन्तानो! आप लोग दुष्ट आचरणों का त्याग, माता पितादि का सत्कार और चोरी कर्म आदि का निवारण करके पुण्य वाले हूजिये ॥ ११ ॥

फिर प्रजाधर्मविषय को कहते हैं—

इमे यामासस्त्वद्रिगभूवन्वसवे वा तदिदागो अवाचि ।
नाहायमग्निरभिशस्तये नो न रीषते वावृधानः परा दात् ॥१२॥१७॥

पदार्थ—हे श्रेष्ठ सन्तान! जो (अयम्) यह (अग्निः) अग्नि के सदृश वर्त्तमान (नः) हम लोगों को (अभिशस्तये) सब प्रकार से हिंसा करने के लिये (न) नहीं (अह) निश्चय (परा, दात) दूर पहुंचावे और (वावृधानः) निरन्तर बढ़ता हुआ (न) नहीं (रीषते) हिंसा करता और (त्वद्रिक्) आपके प्रति प्रस्न कराता (वसवे) धन के लिये (अवाचि) कहा गया (वा) वा (तत्) वह (आगः) अपराध (इत्) ही कहा गया उसको (इमे) ये (यामासः) यम और नियमों से युक्त जन पढ़ावें और उपदेश से पवित्र करें और वे आनन्दित (अभूवन्) होते हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जो विद्वान् जन किसी को भी बिना अपराध के नहीं दोष देते हैं उनको समीप से दूर मत निकालो ॥ १२ ॥

इस सूक्त में राजा और प्रजा को चोरी और अन्य अपराध आदि के निवारण आदि के कहने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तीसरा सूक्त और सत्रहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथैकादशर्चस्य चतुर्थस्य सूक्तस्य वसुश्रुत आत्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता । १, १०, ११ भुरिक् पङ्क्तिः । ४, ७ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २, ९ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले चतुर्थ सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से राजविषय को कहते हैं—

त्वामग्ने वसुपतिं वसूनामभि प्र मन्दे अध्वरेषु राजन् ।
त्वया वाजं वाजयन्तो जयेमाभि ष्याम पृत्सुतीर्मर्त्यानाम् ॥१॥

पदार्थ—हे (अग्ने) बिजुली के सदृश विद्या से व्याप्त (राजन्) उत्तम गुणों से प्रकाशमान राजन् (अध्वरेषु) नहीं हिंसा करने योग्य प्रजापालन और न्यायव्यवहारों में (वसूनाम्) धनों के (वसुपतिम्) धनस्वामी (त्वाम्) आपको मैं (अभि, प्र, मन्दे) सब ओर से आनन्द देऊं वा आनन्द देता हूँ और (त्वया) अधिष्ठातारूप आपके साथ (वाजम्) सङ्ग्राम को (वाजयन्तः) करते वा कराते हुए हम लोग (मर्त्यानाम्) मरण धर्मवाले शत्रुओं की (पृत्सुतीः) सेनाओं को (अभि, जयेम) सब ओर से जीतें, इससे धन और यश से युक्त (स्याम) होवें ॥१॥

भावार्थ—जिनके अधिष्ठाता मुखिया धार्मिक और विद्वान् होवें उनका सदा ही विजय, राज्य की वृद्धि और अतुल लक्ष्मी होती है ॥ १ ॥

हव्यवाळग्निरजरः पिता नो विभुर्विभावा सुदृशीको अस्मे ।
सुगार्हपत्याः समिषो दिदीह्यस्मद्र्यक्सं मिमीहि श्रवांसि ॥२॥

पदार्थ—हे राजन्! जैसे (हव्यवाट्) द्रव्यों को एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुंचावे वा (सुदृशीकः) उत्तम प्रकार देखने योग्य वा दिखानेवाला (अग्निः) शुद्धस्वरूप अग्नि जैसे (विभुः) व्यापक परमेश्वर के सदृश सबका पालन करता और प्रकाशित होता है वैसे (विभावा) अनेक प्रकार के प्रकाश वा ज्ञान से युक्त (अजरः) वृद्धावस्थारहित (नः) हम लोगों के (पिता) पालन करनेवाले होते हुए (अस्मे) हम लोगों के लिए (सुगार्हपत्या) सुन्दर अग्नि आदि पदार्थ समुदायवाले (इषः) अन्नों को (सम्, दिदीहि) अच्छे प्रकार दीजिए और (अस्मद्र्यक्) हम लोगों का आदर करने जनाने वा जाननेवाले होते हुए (श्रवांसि) पढ़ाने आदि कर्म्मों का (सम्, मिमीहि) विधान करिये ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजन्! जैसे बिजुली और भूमि में प्रसिद्ध हुए रूप से अग्नि सबका उपकार करता है और जैसे परमेश्वर असंख्यात पदार्थों के उत्पन्न करने से पितरों के सदृश सबका पालन करता है वैसे ही आप हूजिए ॥ २ ॥

अब प्रजाविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

विशां कविं विश्पतिं मानुषीणां शुचिं पावकं घृतपृष्ठमग्निम् ।
नि होतारं विश्वविदं दधिध्वे स देवेषु वनते वार्याणि ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! आप लोग (घृतपृष्ठम्) जल और घृत आधार में जिसके उस (पावकम्) पवित्र करनेवाले (अग्निम्) अग्नि और (विश्वविदम्) संसार को जाननेवाले के सदृश (मानुषीणाम्) मनुष्यसम्बन्धिनी (विशाम्) प्रजाओं के (विश्पतिम्) प्रजापालक (शुचिम्) पवित्र और (होतारम्) देनेवाले (कविम्) मेधावी जिस राजा को आप लोग (नि, दधिध्वे) अच्छे स्वीकार करें (सः) वह (देवेषु) विद्वानों वा श्रेष्ठ पदार्थों में (वार्याणि) स्वीकार करने योग्यों का (वनते) सेवन करता है ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो अग्नि के सदृश प्रतापी जगदीश्वर के सदृश न्यायकारी विद्वान् और उत्तम लक्षणों वाला राजा होता है वही चक्रवर्त्ती राजा होने योग्य है ॥३॥

जुषस्वाग्न इळया सजोषा यतमानो रश्मिभिः सूर्यस्य ।
जुषस्व नः समिधं जातवेद आ च देवान्हविरद्याय वक्षि ॥४॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) ज्ञान की उत्पत्ति में विशिष्ट (अग्ने) दुष्टों के नाश करनेवाले (इळया) प्रयत्न करते हुए (सजोषाः) तुल्य प्रीति सेवनेवाले आप (सूर्यस्य) सूर्य्य की (रश्मिभिः) किरणों के सदृश (इळया) प्रशंसित वाणी से (नः) हम लोगों के (समिधम्) काष्ठ के तुल्य शत्रु को (जुषस्व) सेवा करो और (हविरद्याय) खाने योग्य पदार्थ के लिये (देवान्) विद्वानों को (आ, वक्षि) प्राप्त कराते अर्थात् पहुँचाते हो उनकी (च) और (जुषस्व) सेवा करो ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे सूर्य्य के प्रकाश से सब जीवों के करने योग्य कर्म्म सिद्ध होते हैं वैसे ही यथार्थवक्ता पुरुषों में राजा के सर्व न्याययुक्त प्रजापालन आदि कर्म्म होते हैं ॥४॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या शत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥५॥१८॥

पदार्थ—हे (अग्ने) बिजुली के सदृश श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न राजन् (जुष्टः) सेवित वा प्रसन्न किये गये (दमूनाः) शम, दम आदि से युक्त (अतिथिः) अकस्मात् आये (दुरोणे) गृह में प्राप्त हुए से (विद्वान्) विद्वान् आप (नः) हम लोगों के (इमम्) इस प्रत्यक्ष (यज्ञम्) अन्न आदि उत्तम पदार्थों के दान को (उप, याहि) प्राप्त हूजिये और (शत्रूयताम्) शत्रुओं के सदृश आचरण करते हुओं की (विश्वाः) सम्पूर्ण (अभियुजः) सम्मुख प्राप्त हुई शत्रुसेनाओं का (विहत्या) अनेक प्रकार के वधों से नाश करके (भोजनानि) प्रजापालन वा खाने योग्य अन्नों का (आ, भर) धारण कीजिये ॥५॥

भावार्थ—जो राजा दुष्टों का नाश करके न्याय से प्रजाओं का पालन करता है वह बहुत ही प्रजा का प्रिय होता है ॥५॥

वधेन दस्युं प्र हि चातयस्व वयः कृण्वानस्तन्वे३ स्वायै ।
पिपर्षि यत्सहसस्पुत्र देवान्त्सो अग्ने पाहि नृतम वाजे अस्मान् ॥६॥

पदार्थ—हे (सहसः पुत्र) बलवान् के पुत्र (नृतम) अतिशय मुख्य (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रतापी राजन् (यत्) जो आप (स्वायै) अपने (तन्वे) शरीर के लिये (वयः) जीवन का (कृण्वानः) करते हुए (वधेन) वध से (दस्युम्) साहसकर्मकारी चोर का (प्र, चातयस्व) अत्यन्त नाश करो वा नाश कराओ। तथा प्रजाओं को (हि) ही (पिपर्षि) प्रसन्न करते हो (सः) वह आप (वाजे) सङ्ग्रामों में (अस्मान्) हम लोगों (देवान्) विद्वानों की (पाहि) रक्षा कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे राजन्! आप सदा चोर डाकुओं का नाश कर धार्मिकों का पालन करें और शत्रुओं को जीतें ॥६॥

अब राजप्रजा विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वयं ते अग्न उक्थैर्विधेम वयं हव्यैः पावक भद्रशोचे ।
अस्मे रयिं विश्ववारं समिन्वास्मे विश्वानि द्रविणानि धेहि ॥७॥

पदार्थ—हे (पावक) पवित्र (भद्रशोचे) कल्याण के प्रकाश करनेवाले (अग्ने) बिजुली के सदृश वर्त्तमान विद्वान् राजा जैसे (वयम्) हम लोग जिन (ते) आपके (उक्थैः) प्रशंसित वचनों से (विश्वानि) सम्पूर्ण (द्रविणानि) यशों को (विधेम) सिद्ध करें वैसे (अस्मे) हम लोगों के लिये इनको (सम्, धेहि) अत्यन्त धारण कीजिये और जैसे (वयम्) हम लोग (हव्यैः) देने और लेने योग्यों से आपकी (विश्ववारम्) विश्वपर्य्यन्त अर्थात् अति उत्तम पदार्थपर्य्यन्त पदार्थों से युक्त (रयिम्) लक्ष्मी को प्राप्त करावें वैसे आप (अस्मे) हम लोगों के लिये इसको (इन्व) व्याप्त कीजिये ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रजा और मन्त्रीजन राजलक्ष्मी को बढ़ावें वैसे ही राजा इन लोगों के लिये धन बढ़ावे। इस प्रकार न्याय से पिता और पुत्र के सदृश वर्त्ताव करके यशस्वी होवें ॥७॥

अस्माकमग्ने अध्वरं जुषस्व सहसः सूनो त्रिषधस्थ हव्यम् ।
वयं देवेषु सुकृतः स्याम शर्मणा नस्त्रिवरूथेन पाहि ॥८॥

पदार्थ—हे (**सहसः, सूनो**) बलवान् और अतिकालपर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्य को धारण किये हुए जन के पुत्र और (**त्रिवरूथ**) तीन अर्थात् प्रजा, भृत्य और अपने कुटुम्ब के जनों के साथ पक्षपात छोड़ के रखनेवाले (**अग्ने**) अग्नि के सदृश तेजस्वी वर्त्तमान राजन् आप (**अस्माकम्**) हम लोगों के (**हव्यम्**) देने योग्य सुख और (**अध्वरम्**) पालनरूप व्यवहार का (**जुषस्व**) सेवन करो और (**त्रिवरूथेन**) वर्षा, शीत और ग्रीष्मकाल में श्रेष्ठ (**शर्म्मणा**) गृह के साथ (**न**) हम लोगों का निरन्तर (**पाहि**) पालन करो जिससे (**वयम्**) हम लोग (**देवेषु**) विद्वानों में (**सुकृत**) धर्म्मसम्बन्धी कर्म्म करनेवाले (**स्याम**) होवें ॥८॥

भावार्थ—सब जन राजा के प्रति यह कहें कि हे राजन् ! आप हम लोगों का पालन यथावत् करिये आप से रक्षित हम लोग निरन्तर धर्माचरणयुक्त होकर आपकी उन्नति को जैसे करें ॥८॥

विश्वा॑नि नो दु॒र्गहा॑ जातवेदः॒ सिन्धुं॒ न ना॒वा दु॑रि॒ताति॑ पर्षि ।

अग्ने॑ अत्रि॒वन्नम॑सा गृणा॒नो॒३॒॑ऽस्माकं॑ बोध्यवि॒ता त॒नूना॑म् ॥९॥

पदार्थ—हे (**अत्रिवत्**) निरन्तर चलने वालों से युक्त (**जातवेदः**) विद्याओं से सम्पन्न (**अग्ने**) धर्म्मिष्ठ राजन् जिससे आप (**नावा**) नौका से (**सिन्धुम्**) नदी वा समुद्र को (**न**) जैसे वैसे (**नः**) हम लोगों के (**विश्वानि**) समस्त (**दुर्गहा**) दुःख से पार जाने को योग्य और (**दुरिता**) दुःख से प्राप्त होने योग्यों के भी (**अति, पर्षि**) पार जाने हो और (**नमसा**) सत्कार वा अन्न आदि से (**गृणानः**) स्तुति करते हुए (**अस्माकम्**) हम लोगों के (**तनूनाम्**) शरीरों के (**अविता**) रक्षक होते हुए (**बोधि**) जानते हो इससे निरन्तर सेवा करने योग्य हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो राजा अध्यापक और उपदेशक जन सब लोगों को दुःख से पार पहुँचाते वे अतुल सुख को प्राप्त होते हैं ॥९॥

यस्त्वा॑ हृ॒दा की॒रिणा॒ मन्य॑मा॒नोऽम॑र्त्यं॒ मर्त्यो॒ जोह॑वीमि ।

जात॑वेदो॒ यशो॑ अ॒स्मासु॑ धेहि प्र॒जाभि॑रग्ने अमृत॒त्वम॑श्याम् ॥१०॥

पदार्थ—हे (**जातवेद**) विज्ञान से युक्त (**अग्ने**) अग्नि के सदृश वर्त्तमान राजन् (**यः**) जो (**मन्यमानः**) जानता हुआ (**मर्त्यः**) मनुष्य मैं (**हृदा**) अन्तःकरण और (**कीरिणा**) स्तुति करनेवाले से (**अमर्त्यम्**) मरणधर्म्म से रहित (**त्वा**) आपकी (**जोहवीमि**) अत्यन्त स्पर्द्धा करूं और जैसे (**प्रजाभिः**) पालन करने योग्य प्रजाओं के साथ (**अमृतत्वम्**) मोक्षभाव को (**अश्याम्**) प्राप्त होऊं वैसे (**अस्मासु**) हम लोगों में (**यशः**) कीर्त्ति को (**धेहि**) धरिये, स्थापना कीजिए ॥ १० ॥

भावार्थ—जैसे प्रजाएँ राजा के हित को सिद्ध करती हैं वैसे ही राजा प्रजा के सुख की इच्छा करे इस प्रकार परस्पर प्रीति से अतुल सुख को प्राप्त होवें ॥१०॥

यस्मै॒ त्वं सु॒कृते॑ जातवेद उ लो॒कम॑ग्ने कृ॒णवः॑ स्यो॒नम् ।

अ॒श्विनं॒ स पु॒त्रिणं॑ वी॒रव॑न्तं॒ गोम॑न्तं र॒यिं न॑शते स्व॒स्ति ॥११॥१९॥

पदार्थ—हे (**जातवेद**) बुद्धि से युक्त (**अग्ने**) विद्वान् (**त्वम्**) आप (**यस्मै**) जिस (**सुकृते**) धर्मात्मा के लिये (**स्योनम्**) सुख का कारण (**लोकम्**) देखने योग्य (**कृणवः**) करते हो (**स, उ**) वही (**अश्विनम्**) अच्छे घोड़े आदि पदार्थों (**पुत्रिणम्**) अच्छे पुत्रों (**वीरवन्तम्**) बहुत वीरों तथा (**गोमन्तम्**) बहुत गौ आदिकों के सहित (**स्वस्ति**) सुखस्वरूप (**रयिम्**) धन को (**नशते**) प्राप्त होता है ॥११॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो आप विद्या और विनय से प्रजाओं को पुत्र आदि ऐश्वर्य्यों से युक्त करें तो ये प्रजाएँ आपका अति सत्कार करें ॥११॥

इस सूक्त में राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चौथा सूक्त और उन्नीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथैकादशर्चस्य पञ्चमस्य सूक्तस्य वसुश्रुत आत्रेय ऋषिः । आप्री देवता । १, ५, ६, ७, ९, १० गायत्री । ३, ८ निचृद्गायत्री । ११ विराड्गायत्री । ४ पिपीलिकामध्या गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । २ आर्च्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले पञ्चम सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से विद्वान् के विषय को कहते हैं—

सुस॑मिद्धाय शो॒चिषे॑ घृ॒तं ती॒व्रं जु॑होतन । अ॒ग्नये॑ जा॒तवे॑दसे ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग (**जातवेदसे**) उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान (**सुसमिद्धाय**) उत्तम प्रकार प्रदीप्त और (**शोचिषे**) पवित्र करनेवाले (**अग्नये**) अग्नि के लिये (**तीव्रम्**) उत्तम प्रकार शुद्ध अर्थात् साफ किये (**घृतम्**) घृत का (**जुहोतन**) होम करो ॥१॥

भावार्थ—जो अध्यापक जन पवित्र अन्तःकरण वालों में विद्या का सस्कार डालते हैं वे सूर्य्य के सदृश प्रताप से युक्त होते हैं ॥१॥

नरा॒शंसः॑ सुषूदती॒मं य॒ज्ञमदा॑भ्यः । क॒विर्हि मधु॑हस्त्यः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**अदाभ्यः**) निष्कपट (**मधुहस्त्यः**) मधुर हस्तवालों में श्रेष्ठ (**नराशंसः**) मनुष्यों से प्रशंसा किया गया (**कविः**) बुद्धिमान् जन (**हि**) जिस कारण (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) विद्या के प्रचारनामक व्यवहार को (**सुषूदति**) अमृत के सदृश टपकाता है इस कारण वह पूर्ण सुखयुक्त होता है ॥२॥

भावार्थ—हे विद्वान् ! जैसे गौ सबके सुख के लिये दुग्ध देती है वैसे सब के सुख के लिये सत्यविद्या के उपदेशों को निरन्तर वर्षाइये ॥२॥

अब राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

ई॒ळि॒तो अ॑ग्न॒ आ व॒हेन्द्रं॑ चि॒त्रमि॒ह प्रि॒यम् । सु॒खै रथे॑भिरू॒तये॑ ॥३॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) आत्मप्रकाशस्वरूप (**ईळितः**) प्रशंसा किये गये आप (**इह**) इस संसार में (**सुखैः**) सुखकारक (**रथेभिः**) वाहनों से (**ऊतये**) रक्षण आदि के लिये (**चित्रम्**) अद्भुत (**प्रियम्**) मनोहर (**इन्द्रम्**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य को (**आ, वह**) सब प्रकार से प्राप्त कीजिये ॥३॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप बड़े ऐश्वर्य्य को प्राप्त हो के प्रजा के रक्षण के लिये सर्वत्र भ्रमण कीजिये ॥३॥

ऊर्ण॑म्रदा॒ वि प्र॑थस्वा॒भ्य१॒॑र्का अ॑नूषत । भवा॑ नः शुभ्र सा॒तये॑ ॥४॥

पदार्थ—हे (**शुभ्र**) शुद्ध आचरण करनेवाले राजन् ! आप (**सातये**) दायविभाग के लिए (**वि, प्रथस्व**) प्रसिद्ध कीजिये और हम लोगों के लिऐ सुखकारी (**भव**) हूजिये । हे (**ऊर्णम्रदा**) रक्षकों के सहित मर्दन करने और (**अर्काः**) मन्त्र और अर्थ के जाननेवाले आप लोगो (**नः**) हम लोगों को सम्पूर्ण विद्याओं से सम्पन्न (**अभि, अनूषत**) कीजिये ॥४॥

भावार्थ—राजा और राजपुरुष विभाग करके अपने अपने अंश अर्थात् हिस्से को ग्रहण करें और प्रजाओं के लिए देवें ॥४॥

अब गृहाश्रमविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

दे॒वीर्द्वारो॒ वि श्र॑यध्वं सुप्राय॒णा न॑ ऊ॒तये॑ । प्रप्र॑ य॒ज्ञं पृ॑णीतन ॥५॥२०॥

पदार्थ—हे पुरुषो ! तुम (**सुप्रायणाः**) उत्तम प्रकार गृहों में प्रवेश हो जिनसे ऐसी (**देवीः**) श्रेष्ठ और शुद्ध (**द्वारः**) द्वारों के सदृश सुख की कारणभूत उत्तम स्त्रियों का (**वि, श्रयध्वम्**) विशेष करके सेवन करो और (**नः**) हम लोगों के (**ऊतये**) रक्षण आदि के लिए (**यज्ञम्**) गृहाश्रमव्यवहार को (**प्रप्र, पृणीतन**) पुष्ट करो ॥५॥

भावार्थ—यदि तुल्य गुण कर्म स्वभाववाले स्त्री पुरुष विवाह करके गृहाश्रम का आरम्भ करें तो पूर्ण सुख पावें ॥५॥

सु॒प्रती॑के वयो॒वृधा॑ य॒ह्वी ऋ॒तस्य॑ मा॒तरा॑ । दो॒षामु॒षास॑मीमहे ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (**सुप्रतीके**) उत्तम विश्वास करने (**वयोवृधा**) सुन्दर जीवन को बढ़ाने और (**यह्वी**) बड़े (**ऋतस्य**) सत्य के (**मातरा**) आदर देनेवाले (**दोषाम्**) रात्रि और (**उषासम्**) दिन की (**ईमहे**) याचना करते हैं वैसे इनकी आप लोग भी याचना करो ॥६॥

भावार्थ—जैसे रात्रि और दिन एक साथ ही वर्त्तमान हैं वैसे ही जिन्होंने विवाह किया ऐसे स्त्री पुरुष वर्त्ताव करें ॥६॥

वात॑स्य॒ पत्म॑न्नीळि॒ता दैव्या॒ होता॑रा॒ मनु॑षः । इ॒मं नो॑ य॒ज्ञमा ग॑तम् ॥७॥

पदार्थ—हे (**ईळिता**) प्रशंसित (**दैव्या**) श्रेष्ठ गुणों में उत्पन्न (**होतारा**) दाता जनो आप दोनों (**वातस्य**) वायु के (**पत्मन्**) गिरते हैं जिसमें उस मार्ग में (**नः**) हम लोगों के (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) मिलने योग्य व्यवहार को (**मनुषः**) और मनुष्यों को (**आ, गतम्**) प्राप्त होवें ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों धर्म्मसम्बन्धी कर्म्म के आचरण से प्रशंसित होकर इस गृहाश्रमव्यवहार को सिद्ध करो ॥ ७ ॥

इळा॒ सर॑स्वती म॒ही ति॒स्रो दे॒वीर्म॑यो॒भुवः॑ । ब॒र्हिः सी॑दन्त्व॒स्रिधः॑ ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**अस्रिधः**) नहीं नाश करनेवाली (**इळा**) प्रशंसित विद्या (**सरस्वती**) वाणी (**मही**) भूमि (**मयोभुवः**) सुख को करानेवाली (**तिस्रः**) तीन (**देवीः**) श्रेष्ठ गुणवती (**बर्हिः**) उत्तम गृहाश्रम को (**सीदन्तु**) प्राप्त हों वैसे ही आप लोग भी प्राप्त होओ ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे स्त्री और पुरुषो ! आप लोग विद्या उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी और भूमि के राज्य को सुख के लिए प्राप्त हूजिए ॥ ८ ॥

अब राजप्रजा विषय को कहते हैं—

शि॒वस्त्व॑ष्टरि॒हा ग॑हि वि॒भुः पोष॑ उ॒त त्मना॑ । य॒ज्ञेय॑ज्ञे न॒ उद॑व ॥९॥

पदार्थ—हे (**त्वष्टः**) सब दुःखों के नाश करनेवाले राजन् ! (**इह**) इस स्थल में कि (**पोषे**) जिससे पुष्ट हो (**विभुः**) व्यापक परमेश्वर के सदृश

(**शिवः**) मङ्गलकारी होते हुए (**त्मना**) आत्मा से (**समेघसे**) मेल करने मेल करने योग्य व्यवहार में (**आ, गहि**) प्राप्त होओ (**उत**) और (**न**) हम लोगों की (**उत्, अव**) उत्तम प्रकार रक्षा करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! आप लोग परमेश्वर के सदृश वर्त्ताव करके सबके कल्याण को करें ॥ ९ ॥

अब विद्याग्रहण विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यत्र वेत्थ वनस्पते देवानां गुह्या नामानि । तत्र हव्यानि गामय ॥१०॥

पदार्थ—हे (**वनस्पते**) वन के पालन करनेवाले आप (**यत्र**) जिसमें (**देवानाम्**) विद्वानों के (**गुह्या**) गुप्त (**नामानि**) नाम (**वेत्थ**) जानते हैं (**तत्र**) वहाँ (**हव्यानि**) देने और लेने योग्य वस्तुओं को (**गामय**) पहुँचाइये ॥१०॥

भावार्थ—जो विद्वानों के हृदयों में स्थित और विद्या के प्रभाव से उत्पन्न हुए नामों को जानते हैं वे बहुत सुख मनुष्यों को प्राप्त कराते हैं ॥ १० ॥

स्वाहाऽग्नये वरुणाय स्वाहेन्द्राय मरुद्भ्यः ।

स्वाहा देवेभ्यो हविः ॥ ११ ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोगों को चाहिए कि (**वरुणाय**) श्रेष्ठ के और (**अग्नये**) बिजुली आदि की विद्या के लिए (**स्वाहा**) सत्य वाणी (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य और (**मरुद्भ्यः**) मनुष्यों के लिये (**स्वाहा**) सत्य क्रिया तथा (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिये (**हविः**) देने योग्य वस्तु और (**स्वाहा**) श्रेष्ठ कर्म्म का प्रयोग करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्य विद्या और श्रेष्ठ कर्म्म में अग्नि की विद्या का ग्रहण कर विद्वानों का सत्कार करके मनुष्यों के हित को निरन्तर करें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में विद्वान्, राजा, गृहाश्रम राजप्रजाविषय और विद्याग्रहण का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह पाँचवाँ सूक्त और इक्कीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ दशर्चस्य षष्ठस्य सूक्तस्य वसुश्रुत आत्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता । १, ८, ९ निचृत् पङ्क्तिः । २, ५ पङ्क्तिः । ७ विराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३, ४ स्वराड्बृहती । ६, १० भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब दश ऋचा वाले छठे सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से अग्निविषय को कहते हैं—

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।

अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् (**यः**) जो (**वसुः**) सब स्थानों में रहनेवाला (**यम्**) जिस (**अस्तम्**) फेंके अर्थात् काम में लाये गये (**अग्निम्**) अग्नि को और (**धेनवः**) गौएँ जिस (**अस्तम्**) प्रेरणा किये गये को तथा (**अर्वन्तः**) जाते हुए और (**आशवः**) शीघ्र चलनेवाले पदार्थ और (**नित्यासः**) नहीं नाश होनेवाले (**वाजिनः**) वेग से युक्त पदार्थ जिस (**अस्तम्**) प्रेरणा किये गये को (**यन्ति**) प्राप्त होते हैं (**तम्**) उसको मैं (**मन्ये**) मानता हूँ उसकी विद्या में आप (**स्तोतृभ्यः**) स्तुति करनेवालों के लिये (**इषम्**) अन्न को (**आ, भर**) अच्छे प्रकार धारण कीजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! यदि आप बिजुली आदि रूपवान् और सब कहीं अभिव्याप्त अग्नि को युक्ति से चलावें तो यह स्वयं वेगवान् होकर औरों को भी शीघ्र चलाता है ॥ १ ॥

सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।

समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वन् (**यः**) जो (**वसुः**) धनरूप (**यम्**) जिसको (**धेनवः**) वाणियाँ (**सम्, आयन्ति**) अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं जिसको (**रघुद्रुवः**) थोड़ा दौड़नेवाले (**अर्वन्तः**) वेगवान् पदार्थ (**सम्**) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं और जिसको (**सुजातासः**) उत्तम प्रकार प्रसिद्ध (**सूरयः**) विद्वान् जन (**सम्**) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं और जिसकी मैं (**गृणे**) प्रशंसा करता हूँ (**सः**) वह (**अग्निः**) अग्नि है उसके प्रयोग से (**स्तोतृभ्यः**) अध्यापकों के लिये (**इषम्**) अन्न को (**आ, भर**) सब प्रकार धारण कीजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग अग्नि आदि पदार्थ के विज्ञान से चतुर होकर अध्यापकों के लिये ऐश्वर्य्य की प्राप्ति कराइए ॥ २ ॥

फिर अग्निविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।

अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो (**विश्वचर्षणिः**) संसार का प्रकाश करनेवाला (**अग्निः**) अग्नि (**हि**) जिससे (**विशे**) प्रजा के लिये (**वाजिनम्**) बहुत वेग वाले को (**ददाति**) देता है और जो (**अग्निः**) अग्नि (**राये**) धन के लिये (**स्वाभुवम्**) स्वयं उत्पन्न होनेवाले को (**याति**) प्राप्त होता है उस विद्या से (**सः**) वह आप (**प्रीतः**) कामना किये गये (**स्तोतृभ्यः**) स्तुति करनेवालों के लिए (**वार्यम्**) स्वीकार करने योग्य (**इषम्**) अन्न आदि का (**आ, भर**) धारण कीजिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! अग्नि ही उत्तम प्रकार साधित किया गया सुख देने वाला होता है जिससे आप लोग ऐश्वर्य की वृद्धि करो ॥ ३ ॥

अब अग्निविद्या के जाननेवाले विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।

यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥४॥

पदार्थ—हे (**देव**) सुख के देनेवाले (**अग्ने**) विद्वन् ! आप (**द्युमन्तम्**) प्रकाशित (**अजरम्**) जरावस्था से रहित अग्नि को प्रज्वलित करते हो और (**यत्**) जो (**ते**) आपकी (**पनीयसी**) अतीव प्रशंसा करने योग्य (**समित्**) समिध् है (**स्या**) वह (**ते**) आपके (**द्यवि**) प्रकाश में (**दीदयति**) प्रज्वलित की जाती है और जिससे (**स्तोतृभ्यः**) स्तुति करनेवालों के लिए (**इषम्**) अन्न आदि को (**ह**) निश्चय से हम लोग (**आ, इधीमहि**) प्रकाशित करें उससे स्तुति करनेवालों के लिए अन्न आदि को आप (**आ, भर**) अच्छे प्रकार धारण कीजिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! जिस अग्नि आदि की विद्या को आप जानते हैं और जिस विद्या से आपकी प्रशंसा होती है उसका हम लोगों को बोध दीजिए ॥४॥

आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य शोचिषस्पते ।

सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥५॥

पदार्थ—हे (**शोचिषः, पते**) प्रकाश के स्वामिन् ! (**सुश्चन्द्र**) अच्छे सुवर्ण से युक्त (**दस्म**) दुःख के नाश करनेवाले (**विश्पते**) प्रजाओं के पालक (**अग्ने**) विद्वान् राजन् (**शुक्रस्य**) शुद्ध (**ते**) आपकी (**ऋचा**) प्रशंसा से (**हविः**) देने योग्य पदार्थ (**आ**) सब प्रकार से (**हूयते**) दिया जाता है और हे (**हव्यवाट्**) देने योग्य वस्तु के देनेवाले (**तुभ्यम्**) आपके लिए सुख दिया जाता है वह आप (**स्तोतृभ्यः**) स्तुति करनेवालों के लिए (**इषम्**) अन्न को (**आ, भर**) अच्छे प्रकार धारण कीजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग अग्नि आदिकों से कार्य्यों को सिद्ध करते हैं उनके काम सिद्ध होते हैं ॥ ५ ॥

प्रो त्ये अग्नयोऽग्निषु विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।

ते हिन्विरे त इन्विरे त इषण्यन्त्यानुषगिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (**अग्नयः**) अग्नि (**अग्निषु**) अग्नि आदि पदार्थों में वर्त्तमान हैं (**त्ये**) वे (**वार्यम्**) स्वीकार करने योग्य (**विश्वम्**) सब जगत् को (**प्रो, पुष्यन्ति**) पुष्ट करते हैं (**ते**) वे स्वीकार करने योग्य पदार्थ की (**हिन्विरे**) वृद्धि कराते हैं (**ते**) वे (**इन्विरे**) प्राप्त होते हैं और (**ते**) वे कार्य्यों के सिद्ध करनेवाले हैं उनको जान के जो (**आनुषक्**) अनुकूलता से (**इषण्यन्ति**) अन्न आदि की इच्छा करते हैं उनकी विद्या से (**स्तोतृभ्यः**) स्तुति करनेवालों के लिये आप (**इषम्**) विज्ञान को (**आ, भर**) धारण कीजिए ॥६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो पृथिवी आदि में अग्नि आदि पदार्थ हैं उनको जानके फिर ईश्वर को जानो ॥ ६ ॥

फिर अग्निविद्या के उपदेश को कहते हैं—

तव त्ये अग्ने अर्चयो महि व्राधन्त वाजिनः ।

ये पत्वभिः शफानां व्रजा भुरन्त गोनामिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥७॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वन् ! (**ये**) जो (**गोनाम्**) गौओं के (**शफानाम्**) खुरों के (**पत्वभिः**) गमनों से (**व्रजा**) वेगों को (**भुरन्त**) धारण करते हैं और जो (**महि**) बड़े (**अर्चयः**) तेज (**वाजिनः**) वेग वाले (**व्राधन्त**) बढ़ते हैं (**त्ये**) वे (**तव**) आपके कार्य्य सिद्ध करनेवाले हैं उनके विज्ञान से (**स्तोतृभ्यः**) स्तुति करनेवालों के लिए (**इषम्**) अन्न को (**आ, भर**) अच्छे प्रकार धारण कीजिए ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे घोड़े और गौएँ पैरों से दौड़ती हैं वैसे ही अग्नि के तेज शीघ्र चलते हैं और जो अग्न्यादिकों के सम्प्रयोग करने को जानते हैं उनकी सब प्रकार वृद्धि होती है ॥ ७ ॥

अब राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

नवा नो अग्न आ भर स्तोतृभ्यः सुक्षितीरिषः ।

ते स्याम य आनृचुस्त्वादूतासो दमेदम इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥८॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) राजन् (**ये**) जो (**स्वादूतास**) स्वादूतास अर्थात् आप दूत जिनके ऐसे हम लोग आपका (**आमृषु**) सत्कार करते है उन (**नः**) हम (**स्तोतृभ्य**) धार्मिक विद्वानो के लिए आप (**सुक्षिती**) सुन्दर पृथिवी वा मनुष्य विद्यमान जिनमे ऐसे (**नवा**) नवीन (**इष**) अन्न आदि को (**आ, भर**) धारण कीजिए जिनसे (**ते**) वे हम लोग उत्साहित (**स्याम**) होवें और आप (**स्तोतृभ्य**) सुपात्र अर्थात् सज्जन विद्वानो के लिये (**दमेदमे**) घर-घर मे (**इषम्**) उत्तम इच्छा को (**आ भर**) धारण कीजिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—वही राजा प्रशंसनीय होता है जो उत्तम भृत्य और अतुल ऐश्वर्य्य को सबके सुख के लिए धारण करता है और दूत और चारो अर्थात् गुप्त सदेश देनेवालो से सब राज्य का सब समाचार जानके यथायोग्य प्रबन्ध करता है ॥ ८ ॥

उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि ।

उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥९॥

पदार्थ—हे (**सुश्चन्द्र**) उत्तम सुवर्ण आदि ऐश्वर्य्य से युक्त (**शवसस्पते**) सेना के स्वामी जो आप (**उभे**) दोनो (**दर्वी**) पाक करने के साधनो अर्थात् चम्मचो को उकट्ठे करके (**आसनि**) मुख मे अर्थात् अग्निमुख मे (**सर्पिष**) घृत आदि को (**श्रीणीषे**) पाक करते हो (**उतो**) और उससे (**न**) हम लोगो को (**उत्, पुपूर्या**) उत्तमता से शोभित [illegible] वह आप (**उक्थेषु**) प्रशंसित धर्मसम्बन्धी कर्मों मे (**स्तोतृभ्य**) [illegible] और पढनेवालो के लिये (**इषम्**) अन्न को (**आ, भर**) धारण कर ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो राजा सेना के भोजन के उत्तम प्रबन्ध को [illegible] आरोग्य के लिये वैद्यो को रखता है वही प्रशंसित होकर राज्य बढाता है ॥ ९ ॥

एवाँ अग्निमजुर्यमुर्गीर्भिर्यज्ञेभिरानुषक् ।

दधदस्मे सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्व्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१०॥२३॥

पदार्थ—हे सेना के स्वामिन् ! जो (**गीर्भि**) वाणियो और (**यज्ञेभि**) संगत कर्मों से (**आश्वश्व्यम्**) घोडो के सदृश वेग आदि गुणो से युक्त (**सुवीर्यम्**) उत्तम पराक्रमवाले (**अग्निम्**) अग्नि को (**आनुषक्**) अनुकूलता से (**अजुर्यमु**) प्रेरणा दें और नियमयुक्त करें (**एव**) उन्ही मे (**अस्मे**) हम लोगो के निमित्त आप उत्तम पराक्रमयुक्त व्यवहार को (**दधत्**) धारण करते है (**उत**) और भी (**त्यत्**) उस (**इषम्**) इष्ट व्यवहार को (**स्तोतृभ्य**) स्तुति करनेवालो के लिए (**आ, भर**) अच्छे प्रकार धारण कीजिए ॥ १० ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो अग्नि आदि की विद्या को जानके अनेक विमान आदि वाहनो को बनाते है उनके लिये अन्न आदि देकर निरन्तर सत्कार कीजिए ॥ १० ॥

इस सूक्त मे अग्नि विद्वान् और राजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह छठा सूक्त और तेईसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ दशर्चस्य सप्तमस्य सूक्तस्येष आत्रेय ऋषि । अग्निर्देवता । १ विराडनुष्टुप् । २ अनुष्टुप् । ३ भुरिगनुष्टुप् । ४, ५, ८, ९ निचृदनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर । ६, ७ स्वराडुष्णिक्छन्द । ऋषभ स्वर । १० निचृद्बृहती छन्द । मध्यम, स्वर ॥

अब दश ऋचावाले सातवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से मित्रता को कहते हैं—

सखायः सं वः सम्यञ्चमिषं स्तोमं चाग्नये ।

वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥१॥

पदार्थ—हे (**सखाय**) मित्र हुए आप लोग जो (**क्षितीनाम्**) मनुष्यो के बीच (**व.**) आप लोगो के लिये (**वर्षिष्ठाय**) अत्यन्त वृष्टि करनेवाले के लिये और (**ऊर्ज**) पराक्रम युक्त के (**नप्त्रे**) नाती के सदृश वर्त्तमान (**सहस्वते**) बलयुक्त (**अग्नये**) अग्नि के लिये (**सम्यञ्चम्**) श्रेष्ठ (**स्तोमम्**) प्रशंसा और (**इषम्**) अन्न आदि को (**च**) भी (**सम्**) अच्छे प्रकार धारण करते हैं उनका सदा सत्कार करो ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! इस संसार मे आप लोग मित्रभाव से वर्त्ताव करके मनुष्य आदि प्रजा के हित के लिये अग्नि आदि की विद्या को प्राप्त होके अन्य जनो के लिये शिक्षा दीजिए ॥ १ ॥

कुत्रा चिद्यस्य समृतौ रण्वा नरो नृषदने ।

अर्हन्तश्चिद्यमिन्धते संजनयन्ति जन्तवः ॥२॥

पदार्थ—हे (**नर**) नायक अर्थात् कार्य्यों मे अग्रगामी मुख्यजनो ! जो (**जन्तव**) जीव (**यस्य**) जिसकी (**समृतौ**) अच्छे प्रकार यथार्थ बोध से युक्त बुद्धि मे (**रण्वा**) रमण करते और (**नृषदने**) मनुष्यो के स्थान मे (**चित्**) भी (**अर्हन्त**) सत्कार करते हुए (**यम्**) जिसको (**इन्धते**) प्रकाशित कराते और (**संजनयन्ति**) उत्तम प्रकार उत्पन्न करते हैं वे (**चित्**) भी (**कुत्रा**) किसी से अनादर को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—जो जीव सब मनुष्यों के हित मे वर्त्तमान हुए यथाशक्ति परोपकार करते हैं वे योग्य हैं ॥ २ ॥

अब विद्वान् के विषय को कहते हैं—

सं यदिषो वनामहे सं हव्या मानुषाणाम् ।

उत द्युम्नस्य शवस ऋतस्य रश्मिमा ददे ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**मानुषाणाम्**) मनुष्यों के बीच (**द्युम्नस्य**) धन वा यश तथा (**ऋतस्य**) सत्य का (**शवसा**) सेना से (**यत्**) जैसे (**हव्या**) देने और लेने योग्य (**इष**) अन्न आदि सामग्रियो का हम लोग (**सम्, वनामहे**) अच्छे प्रकार सेवन करें (**उत**) वा (**रश्मिम्**) प्रकाश का मैं (**सम्, आ, ददे**) ग्रहण करता हूँ वैसे आप लोग भी करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो विद्वान् जन पक्षपात को छोड के यथायोग्य व्यवहार करें मनुष्यो के आत्माओ मे विद्याप्रकाश को धारण करें तो सब योग्य होते हैं ॥ ३ ॥

स स्मा कृणोति केतुमा नक्तं चिद्दूर आ सते ।

पावको यद्वनस्पतीन् प्र स्मा मिनात्यजरः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यत्**) जो (**अजरः**) नाश से रहित (**पावक**) पवित्र करनेवाला (**वनस्पतीन्**) वनो के पालनेवालो को (**स्मा**) ही (**आ, कृणोति**) अनुकरण करता (**नक्तम्**) रात्रि मे (**चित्**) भी (**दूरे**) दूर देश मे (**सते**) सत्पुरुष के लिये (**केतुम्**) बुद्धि देता और दूर स्थान मे वर्त्तमान हुआ (**स्मा**) ही दुष्ट और दासो को (**प्र, आ, मिनाति**) अच्छे प्रकार नाश करता है (**स.**) वह सर्वत्र सत्कृत होता है ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् दूर भी वर्त्तमान हुए रात्रि दिन अग्नि वा वनस्पतियो के सदृश परोपकारी होते हैं वे ही संसार के भूषण अलंकार होते हैं ॥४॥

अव स्म यस्य वेषणे स्वेदं पथिषु जुह्वति ।

अभीमह स्वजेन्यं भूमा पृष्ठेव रुरुहुः ॥५॥२४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यस्य**) जिसके (**वेषणे**) व्याप्त व्यवहार के निमित्त (**पथिषु**) मार्गों मे वीर (**स्वेदम्**) जल को (**स्म**) ही (**अव, जुह्वति**) बहाते और (**भूमा**) पृथिवी के (**अह**) निश्चित (**स्वजेन्यम्**) अपने से जीतने योग्य स्थान को (**पृष्ठेव**) पृष्ठ के सदृश (**अभि, रुरुहु.**) अभिवर्द्धन करते अर्थात् उस पर बढते हैं उसका व्याज (**ईम्**) वैसे ही आप लोग भी करो ॥५॥

भावार्थ—जो मनुष्य मार्गों मे व्याप्त व्यवहारो को जान कर कार्यों को सिद्ध करते हैं वे सुखो को प्राप्त होते हैं ॥५॥

यं मर्त्यः पुरुस्पृहं विदद्विश्वस्य धायसे ।

प्र स्वादनं पितूनामस्ततातिं चिदायवे ॥६॥

पदार्थ—(**मर्त्य**) मनुष्य (**आयवे**) मनुष्य के लिये और (**विश्वस्य**) संसार के (**धायसे**) धारण के लिये (**यम्**) जिस (**पुरुस्पृहम्**) बहुतो से प्रशंसा करने योग्य (**पितूनाम्**) अन्नो के (**स्वादनम्**) स्वाद और (**अस्ततातिम्**) गृहस्थ वा (**चित्**) भी (**प्र, विदत्**) प्राप्त होवे उसको परोपकार के लिए धारण करे ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य को जिस जिस उत्तम वस्तु और ज्ञान की प्राप्ति होवे उस उसको सब के सुख के लिये धारण करें ॥६॥

अब राजविषय को कहते हैं—

स हि ष्मा धन्वाक्षितं दाता न दात्या पशुः ।

हिरिश्मश्रुः शुचिदन्नृभुरनिभृष्टतविषिः ॥७॥

पदार्थ—जो (**हिरिश्मश्रु:**) सुवर्ण के तुल्य डाढी और (**शुचिदन्**) पवित्र दाँतो से युक्त (**अनिभृष्टतविषि**) नही जली सेना जिसकी ऐसा (**ऋभु**) मेधावी (**दाता**) दाता (**पशुः**) पशु (**न**) जैसे (**धन्व**) अन्तरिक्ष जो (**आक्षितम्**) सब ओर से अविनाशी उसको वैसे दुष्टो को (**आ, दाति**) ग्रहण करता है (**सः, हि, ष्मा**) वही निश्चित सुखपूर्वक बढता है ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे नहीं देनेवाला धान्य को कटवा कर भूसे को अलग करके अन्न का ग्रहण करता है और जैसे पशु खुरो से धान्य आदि को तोडता है वैसे ही राजा साहस करनेवाले के दुष्ट मनुष्यों का निरन्तर ताडन करे ॥७॥

अब राजशिक्षा देने विषय को कहते हैं—

शुचिः ष्म यस्मा अत्रिवत्प्र स्वधितीव रीयते ।

सुषूरसूत माता क्राणा यदानशे भगम् ॥८॥

पदार्थ—(**यत्**) जो (**शुचि**) पवित्र (**कृणा**) करती हुई (**माता**) माता (**यस्मै**) जिसके लिये (**स्वधितीव**) वज्र के धारण करनेवाले के सदृश और (**अविवत्**) अविद्यमान तीन वाले के सदृश (**सुषू**) उत्तम प्रकार उत्पन्न करनेवाली (**अघूत**) उत्पन्न करती और (**प्र, रीयते**) मिलती है (**स्म**) वही (**भगम्**) ऐश्वर्य्य को (**आनशे**) प्राप्त होती है ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। जो माता पिता ब्रह्मचर्य्य किये हुए विधिपूर्वक सन्तानो को उत्पन्न करें तो सुख और ऐश्वर्य्य को प्राप्त होवें ॥८॥

अब अग्निशब्दार्थ विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ यस्ते सर्पिरासुतेऽग्ने शमस्ति धायसे ।

ऐषु द्युम्नमुत श्रव आ चित्तं मर्त्येषु धाः॥९॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वन् (**य**) जो (**धायसे**) धारण करनेवाले के लिये (**ते**) आपका (**सर्पिरासुते**) घृतों से सब प्रकार उत्पन्न किये गये मे (**शम्**) सुख (**अस्ति**) है उसको ग्रहण करता (**एषु**) इन (**मर्त्येषु**) मनुष्यो मे (**द्युम्नम्**) यश वा धन को (**आ, धा.**) धारण करता (**श्रव**) अन्न को (**आ**) धारण करता (**उत**) और (**चित्तम्**) सज्ञान को (**आ**) धारण करता है उसके लिए आप ऐश्वर्य्य दीजिये ॥९॥

भावार्थ—जो कोई किसी के लिये विद्या धन और विज्ञान को धारण करता है तो उसके लिये उपकार किया भी पुरुष प्रत्युपकार के लिये वैसे ही सत्कार को करे ॥ ९ ॥

अब अग्निशब्दार्थ राजविषय को कहते हैं—

इति चिन्मन्युमध्रिजस्त्वादातमा पशुं ददे ।

आदग्ने अपृणतोऽत्रिः सासह्याद्दस्यूनिषः सासह्यान्नॄन् ॥१०॥२५॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वन् ! (**अध्रिज**) धारण करनेवालो मे उत्पन्न आप (**मन्युम्**) क्रोध को (**सासह्यात्**) निरन्तर सहे (**अत्रिः**) निरन्तर पुरुषार्थी आप (**अपृणत**) नही पालन करते हुए (**दस्यून्**) दुष्ट साहस करनेवाले चोरो को (**सासह्यात्**) निरन्तर सहें और (**आत्**) सब ओर से (**इष**) इच्छाओं और (**नॄन्**) नीति से युक्त मनुष्यो को निरन्तर सहे (**इति**) इस प्रकार वर्त्तमान (**चित्**) भी (**त्वादातम्**) आप से देने योग्य (**पशुम्**) पशु को मै (**आ, ददे**) ग्रहण करता हूँ ॥१०॥

भावार्थ—जो राज-जन क्रोधादि और दुष्ट व्यसनो का निवारण करके चोर डाकुओ को जीत कर श्रेष्ठ पुरुषो से किये गये अपमान को सहें वे अखण्डित राज्य युक्त होते हैं ॥१०॥

इस सूक्त मे मित्रत्व विद्वान् राजा और अग्नि के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम सूक्त और पच्चीस वाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तर्चस्याष्टमस्य सूक्तस्येष आत्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता ।
१, ५ स्वराड्त्रिष्टुप् । २ भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।
३, ४, ७ निचृज्जगती । ६ विराड्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

अब सात ऋचावाले आठवे सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से अग्निशब्दार्थ गृहाश्रमि के विषय को कहते हैं—

त्वामग्न ऋतायवः समीधिरे प्रत्नं प्रत्नास ऊतये सहस्कृत ।

पुरुश्चन्द्रं यजतं विश्वधायसं दमूनसं गृहपतिं वरेण्यम् ॥१॥

पदार्थ—हे (**सहस्कृत**) बल किये (**अग्ने**) और ब्रह्मचर्य्य किये हुए गृहाश्रमी (**प्रत्नासः**) प्राचीन विद्वान् जन (**ऋतायव**) सत्य की इच्छा करने वाले (**ऊतये**) रक्षण आदि के लिये जिस (**प्रत्नम्**) प्राचीन (**पुरुश्चन्द्रम्**) बहुत सुवर्ण आदि से युक्त (**यजतम्**) आदर करने योग्य (**विश्वधायसम्**) सब व्यवहार और धन के धारण तथा (**दमूनसम्**) इन्द्रिय और अन्त.करण के दमन करनेवाले (**वरेण्यम्**) अतीव स्वीकार करने योग्य और श्रेष्ठ (**गृहपतिम्**) गृहस्थ व्यवहार के पालन करनेवाले (**त्वाम्**) आपको (**सम्, ईधिरे**) उत्तम प्रकार प्रकाशित करावे वह आप इनका सत्कार करो ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो आप लोगो की विद्या और दान आदिकों से वृद्धि करते हैं उनका आप लोग निरन्तर सत्कार करो ॥१॥

त्वामग्ने अतिथिं पूर्व्यं विशः शोचिष्केशं गृहपतिं नि षेदिरे ।

बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतं सुशर्म्माणं स्ववसं जरद्विषम् ॥२॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) गृहस्थ जो (**विशः**) प्रजाएँ (**अतिथिम्**) सदा उपदेश देने के लिए घूमते हुए के सदृश वर्त्तमान (**पूर्व्यम्**) प्राचीनो से किये गये विद्वान् और (**शोचिष्केशम्**) केशों के सदृश न्यायव्यवहार के प्रकाशो से युक्त (**बृहत्केतुम्**) बडी बुद्धिवाले (**पुरुरूपम्**) बहुत रूपो से युक्त सुन्दर आकृतिमान् (**धनस्पृतम्**) धनकी इच्छा से युक्त (**सुशर्माणम्**) प्रशसित गृह वाले (**स्ववसम्**) श्रेष्ठ रक्षण आदि जिनके (**जरद्विषम्**) वा निवृत्त हुआ शत्रुरूपी विष जिनका ऐसे (**गृहपतिम्**) गृहव्यवहार के पालन करनेवाले (**त्वाम्**) आपको (**नि, षेदिरे**) स्थित करती हैं उनका आप निरन्तर सत्कार करें ॥२॥

भावार्थ—गृहस्थ जन सदा ही प्रजा का पालन, अतिथि की सेवा, उत्तम गृह तथा विद्या का प्रचार, बुद्धि की वृद्धि, सब प्रकार से रक्षा तथा राग और द्वेष का त्याग निरन्तर करें ॥२॥

त्वामग्ने मानुषीरीळते विशो होत्राविदं विविचिं रत्नधातमम् ।

गुहा सन्तं सुभग विश्वदर्शतं तुविष्वणसं सुयजं घृतश्रियम् ॥३॥

पदार्थ—हे (**सुभग**) सुन्दर ऐश्वर्य से युक्त (**अग्ने**) अग्नि के सदृश वर्त्त-मान (**मानुषीः**) मनुष्यसम्बन्धिनी (**विश**) प्रजाएँ जिस (**होत्राविदम्**) हवनों के गुणो को जाननेवाले (**विविचिम्**) विवेचक विभाग करने (**रत्नधातमम्**) रत्नो के अतीव धारण करने (**विश्वदर्शतम्**) ससार के प्रकाश करने और (**तुवि-ष्वणसम्**) बहुतो की सेवा करनेवाले (**सुयजम्**) उत्तम प्रकार यज्ञ करते जिससे उस (**घृतश्रियम्**) घृत का आश्रय करते वा घृत मे शोभते हुए (**गुहा**) अन्तः-करण मे (**सन्तम्**) अभिव्याप्त होकर स्थित (**त्वम्**) आपको (**ईळते**) गुणो से प्रकाशित करती हैं उनको हम लोग भी जानें ॥३॥

भावार्थ— हे मनुष्यो ! आप लोग जिस बिजुली रूप अग्नि से जीवन और चेतनता होती है तद्वत् राजा को जान के सुख बढ़ाओ ॥३॥

अब अग्निशब्दार्थ विद्वद्विषय को कहते हैं—

त्वामग्ने धर्णसिं विश्वधा वयं गीर्भिर्गृणन्तो नमसोप सेदिम ।

स नो जुषस्व समिधानो अङ्गिरो देवो मर्तस्य यशसा सुदीतिभिः ॥४॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वन् ! आप जैसे हम लोग (**गीर्भि**) वाणियो से (**गृणन्त.**) स्तुति करते हुए (**विश्वधा**) ससार के धारण करने वा (**धर्णसिम्**) अन्य को धारण करनेवाले (**त्वाम्**) आपके (**नमसा**) सत्कार से (**उप, सेदिम**) समीप प्राप्त होवे और हे (**अङ्गिर**) अङ्गो मे रमते हुए (**सः**) वह (**देवः**) दाता (**समिधान**) प्रकाशमान आप (**मर्तस्य**) मनुष्य के (**सुदीतिभि**) उत्तम दानो से (**यशसा**) जल, अन्न वा धन से (**नः**) हम लोगो का (**जुषस्व**) सेवन करें वैसे (**वयम्**) हम लोग आपके समीप स्थित होवें ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब प्रकार से यह सबका स्वभाव है जो जिस भाव से जिस को प्राप्त होवे और सेवन करे वैसा ही भाव और सेवन उसका होता है ॥४॥

त्वमग्ने पुरुरूपो विशेविशे वयो दधासि प्रत्नथा पुरुष्टुत ।

पुरूण्यन्ना सहसा वि राजसि त्विषिः सा ते तित्विषाणस्य नाधृषे ॥५॥

पदार्थ—हे (**पुरुष्टुत**) बहुतो से प्रशसित (**अग्ने**) राजन् ! जिससे आप (**वि, राजसि**) विशेष प्रकाशमान है (**सा**) वह (**तित्विषाणस्य**) अग्निज्वाला के समान विद्या से प्रकाशमान (**ते**) आपकी (**त्विषिः**) दीप्ति है और वह (**आधृषे**) सब प्रकार से धृष्ट के लिये (**न**) जैसे वैसे (**विशेविशे**) प्रजा प्रजा के लिये (**पुरूणि**) बहुत (**अन्ना**) अन्नो को धारण करती है तथा जिससे (**त्वम्**) आप प्रजा प्रजा के लिये (**पुरुरूप.**) बहुत रूपवाले आप (**प्रत्नथा**) प्राचीन के सदृश (**सहसा**) बल से (**वय**) जीवन को (**दधासि**) धारण करते हो उसको विशेषता से जानिये ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! आप लोग जैसे अग्नि सब जगत् को धारण करता है वैसे सब मनुष्यो को विद्या के प्रकाश मे धारण करो ॥५॥

त्वामग्ने समिधानं यविष्ठ्य देवा दूतं चक्रिरे हव्यवाहनम् ।

उरुज्रयसं घृतयोनिमाहुतं त्वेषं चक्षुर्दधिरे चोदयन्मति ॥६॥

पदार्थ—हे (**यविष्ठ्य**) अत्यन्त युवाजनो मे श्रेष्ठ (**अग्ने**) विद्वन् ! जैसे (**देवा.**) विद्वान् जन (**हव्यवाहनम्**) ग्रहण करने योग्य वाहनो को शीघ्र प्राप्त करनेवाले (**उरुज्रयसम्**) बहुत वेगयुक्त (**घृतयोनिम्**) जल वा प्रदीप्त अथवा कारण है गृह जिसका (**आहुतम्**) जो सब ओर से शब्दयुक्त (**त्वेषम्**) प्रदीप्त तथा (**चोदयन्मति**) बुद्धि को प्रेरणा करने और (**चक्षु**) पदार्थों को दिखानेवाले (**समिधानम्**) प्रकाशमान अग्नि को (**दधिरे**) धारण करते और (**दूतम्**) सब ओर से व्यवहारसाधक (**चक्रिरे**) करते हैं वैसे (**त्वाम्**) आपका हम लोग धारण करें ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य विद्वानो के सङ्ग के बिना अग्नियो के गुण और अग्नि आदि सयोग के गुणो को जानने योग्य नहीं होते है ॥६॥

फिर विद्वद्विषय को कहते है—

त्वामग्ने प्रदिव आहुतं घृतैः सुम्नायवः सुषमिधा समीधिरे ।
स वावृधान ओषधीभिरुक्षितोऽभि ज्रयांसि पार्थिवा वितिष्ठसे ॥७॥

२६।८॥३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! जैसे (सुम्नायव) अपने सुख की इच्छा करनेवाले जन (घृतैः) प्रकाशित करनेवाले साधनों और (सुषमिधा) उत्तम प्रकार प्रकाश करनेवाले इन्धन के साथ (प्रदिवः) अत्यन्त प्रकाश से (आहुतम्) ग्रहण किये गये जिनको (सम्, ईधिरे) उत्तम प्रकार प्रकाशित करते हैं (स) वह (वावृधान) निरन्तर बढ़नेवाले (उक्षित) उत्तम प्रकार सींचे गये आप (ओषधीभिः) सोमलता और यवादिकों से (पार्थिवा) पृथिवी में विदित (अभि) सब ओर से (ज्रयांसि) वेगयुक्त कर्मों को (वि, तिष्ठसे) विशेष करके स्थित करते हो वैसे (त्वाम्) आप को निरन्तर हम लोग सुख देवें ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् जन सब पदार्थों से बिजुली की विद्या को उत्पन्न करते हैं वैसे विद्वान् जन सबसे गुणों को ग्रहण करते हैं ॥७॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य महाविद्वान् श्रीमद्विरजानन्द सरस्वती स्वामीजी के शिष्य श्री दयानन्द सरस्वती स्वामिविरचित आर्य्यभाषाविभूषित ऋग्वेदभाष्य में तृतीयाष्टक में अष्टम अध्याय और छब्बीसवां वर्ग, तीसरा अष्टक तथा पञ्चम मण्डल में अष्टम सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्थाष्टकारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथ सप्तर्चस्य नवमस्य सूक्तस्य गय आत्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता ।
१ स्वराडुष्णिक् । ३, ४ भुरिगुष्णिक्छन्द । ऋषभ स्वर ।
२ निचृदनुष्टुप् । ६ विराडनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर ।
५ स्वराड्बृहती छन्द । मध्यम स्वर ।
७ पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

अब चतुर्थ अष्टक में सात ऋचावाले नवम सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अग्न्यादि पदार्थों के गुणों को कहते हैं—

त्वामग्ने हविष्मन्तो देवं मर्तास ईळते ।
मन्ये त्वा जातवेदसं स हव्या वक्ष्यानुषक् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान जैसे (हविष्मन्त) अच्छे दान आदि से युक्त (मर्तास) मनुष्य (जातवेदसम्) उत्पन्न हुए पदार्थों को जानने वाले (देवम्) प्रकाशमान अग्नि की प्रशंसा करते हैं वैसे (त्वाम्) विद्वान् आपकी (ईळते) स्तुति करते हैं मैं जिन (त्वा) आप को (मन्ये) मानता हूँ (स) वह आप (हव्या) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को (आनुषक्) अनुकूलता से (वक्षि) धारण करते हो ॥ १ ॥

पदार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो अग्नि आदि के गुणों को ढूंढ़ते हैं वे ही विद्या के अनुकूल व्यवहारों को उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

अब विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

अग्निर्होता दास्वतः क्षयस्य वृक्तबर्हिषः ।
सं यज्ञासश्चरन्ति यं सं वाजासः श्रवस्यवः ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वान् जैसे (होता) दाता (अग्नि) अग्नि के सदृश पुरुष (दास्वत) देने वाले के स्वभाव से युक्त (वृक्तबर्हिष) जल से रहित (क्षयस्य) स्थान के मध्य में बसता है वैसे (यम्) जिसको (श्रवस्यव) अपने मन की इच्छा करनेवाले (वाजास) वेग से युक्त (यज्ञास) मिलने योग्य जन (सम्, चरन्ति) उत्तम प्रकार सञ्चार करते है वह (सम्) उत्तम प्रकार जनानेवाला होता है ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य बड़े अवकाशवाले गृहों को रच के पुरुषार्थ से पदार्थ विद्या को प्राप्त हों ॥ २ ॥

फिर अग्निविषय को कहते हैं—

उत स्म यं शिशुं यथा नवं जनिष्टारणी ।
धर्त्तारं मानुषीणां विशामग्निं स्वध्वरम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—(यथा) जैसे माता और पिता (नवम्) नवीन (शिशुम्) बालक को (जनिष्ट) उत्पन्न करते हैं वैसे (स्म) ही (यम्) जिसको (अरणी) काष्ठ-विशेषों के सदृश (मानुषीणाम्) मनुष्य आदि (विशाम्) प्रजाओं के (धर्त्तारम्) धारण करनेवाले (उत) भी (स्वध्वरम्) उत्तम प्रकार अहिंसारूप धर्म को प्राप्त (अग्निम्) अग्नि को विद्वान् जन उत्पन्न करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमाल०—जैसे माता पिता श्रेष्ठ सन्तान को उत्पन्न करके सुख को प्राप्त होते हैं वैसे विद्वान् जन बिजुलीरूप अग्नि को उत्पन्न करके ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

फिर विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

उत स्म दुर्गृभीयसे पुत्रो न ह्वार्याणाम् ।
पुरु यो दग्धासि वनाग्ने पशुर्न यवसे ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वन् ! (ह्वार्याणाम्) कुटिलों के (पुत्र) पुत्र के (न) सदृश (पुरु) बहुत का (दुर्गृभीयसे) दुःख से ग्रहण करते (स्म) ही हो (य) जो अग्नि (वना) वनों को (दग्धा) जलानेवाले के सदृश (उत) भी (यवसे) खाने योग्य घास के लिए (पशु) पशु के (न) सदृश है उससे पदार्थों का जाननेवाले (असि) हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो पदार्थविद्या के ग्रहण के लिए पुत्र और गौ के सदृश वर्त्तमान है वही अग्नि आदि की विद्या को जान सकता है ॥ ४ ॥

अध स्म यस्यार्चयः सम्यक्संयन्ति धूमिनः ।
यदीमह त्रितो दिव्युप ध्मातेव धमति शिशीते ध्मातरी यथा ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यस्य) जिस अग्नि के (अर्चय) तेज (धूमिनः) बहुत धूम से युक्त (सयन्ति) उत्तम प्रकार प्राप्त होते हैं (अध) इसके अनन्तर (यत्) जो (ईम्) सब ओर से (अह) निश्चय ग्रहण करने में (त्रितः) अच्छे प्रकार से जाननेवाला हुआ (दिवि) अन्तरिक्ष में (ध्मातेव) शब्द करनेवाले के सदृश (उप, धमति) शब्द करता है और (यथा) जैसे (ध्मातरी) चलनेवाले में (सम्यक्) उत्तम प्रकार (शिशीते) सूक्ष्म करता है उससे वैसे (स्म) ही कार्यों को सिद्ध करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमाल०—हे मनुष्यो ! सब पदार्थविद्याओं से पहले अग्निविद्या जाननी चाहिए ॥ ५ ॥

फिर मित्रभाव से उक्त विषय को कहते हैं—

तवाहमग्न ऊतिभिर्मित्रस्य च प्रशस्तिभिः ।
द्वेषोयुतो न दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम् ॥६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् (अहम्) मैं (मित्रस्य) मित्र (तव) आप की (ऊतिभिः) रक्षा आदिकों से और (प्रशस्तिभिः) प्रशंसाओं से (च) भी प्रशंसित होऊं वैसे आप हूजिये और सब हम लोग मिल कर (द्वेषोयुतः) द्वेषयुक्तों के (न) सदृश (मर्त्यानाम्) मनुष्यों के (दुरिता) दुःख से प्राप्त हुए दोषों की (तुर्याम) हिंसा करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमाल०—हे मनुष्यो ! जैसे मित्र मित्र की प्रशंसा करता है और शत्रुजन हित का नाश करते हैं वैसे ही मित्रता करके मनुष्यों के दुःखों का हम नाश करें ॥ ६ ॥

तं नो अग्ने अभी नरो रयिं सहस्व आ भर ।
स क्षेपयत्स पोषयद्भुवद्वाजस्य सातय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥७॥१॥

पदार्थ—हे (सहस्वः) बहुत सहन आदि गुणों से युक्त (अग्ने) विद्वन् ! जो आप (नः) हम लोगों के (नरः) नायक अर्थात् कार्यों में अग्रगामियों और (रयिम्) धन को (अभी) सन्मुख (आ भर) सब प्रकार धारण करें (तम्) उनका हमलोग सत्कार करें (सः) वह आप हम लोगों की (क्षेपयत्) प्रेरणा करें और (पोषयत्) पोषण पालन करें (सः) वह (वाजस्य) अन्न आदि के (सातये) संविभाग के लिए (भुवत्) होवें (उत) और (पृत्सु) सङ्ग्रामों में (नः) हम लोगों की (वृधे) वृद्धि के लिए (एधि) हूजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—सुकर्मों के जानने की इच्छा करने वालों को चाहिए कि विद्वानों के प्रति यह प्रार्थना करें कि आप लोग हम लोगों को श्रेष्ठ गुणों में प्रेरित करो और ब्रह्मचर्य आदि से पुष्ट करो और सत्य और असत्य के विभाग करनेवाले और युद्धविद्या में चतुर जन हम लोगों की निरन्तर रक्षा करें ॥ ७ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह नवमा सूक्त और पहला वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तर्चस्य दशमस्य सूक्तस्य गय आत्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता । १, ६ निचृदनुष्टुप् । ५ अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । २, ३ भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ४ स्वराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । ७ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले दशवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से अग्निशब्दार्थ विद्वद्विषय को कहते हैं—

अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।
प्र नो राया परीणसा रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥१॥

पदार्थ—हे (अध्रिगो) धारण करनेवालों को प्राप्त होनेवाले (अग्ने) विद्वन् आप (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए (ओजिष्ठम्) अत्यन्त पराक्रम युक्त (द्युम्नम्) यश वा धन को (आ, भर) चारों ओर से धारण कीजिये और (नः) हम लोगों को (परीणसा) बहुत (राया) धन से (वाजाय) विज्ञान के लिए (पन्थाम्) मार्ग को (प्र) प्राप्त होकर (रत्सि) रमते हो इसमें सत्कार करने योग्य हो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अन्य जनों के श्रेष्ठ उपदेश से पुण्यकीर्ति को बढ़ाते वे धर्म सम्बन्धी यशवाले होते हैं ॥ १ ॥

त्वं नो अग्ने अद्भुत क्रत्वा दक्षस्य मंहना ।
त्वे असुर्यमारुहत्क्राणा मित्रो न यज्ञियः ॥२॥

पदार्थ—हे (अद्भुत) आश्चर्ययुक्त उत्तम गुण कर्म्म और स्वभाव वाले (अग्ने) अध्यापक और उपदेशक (त्वम्) आप (क्रत्वा) बुद्धि से (दक्षस्य) चतुर विद्या और बल से युक्त पुरुष के (मंहना) महत्व से जैसे (त्वे) आप में (असुर्यम्) असुरसम्बन्धी कर्म (क्राणा) करता हुआ (मित्रः) मित्र (यज्ञियः) यज्ञ करने योग्य के (न) सदृश (आ, अरुहत्) बढ़ता है वैसे (नः) हम लोगों को बढ़ाइये ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमाल०—वही उत्तम विद्वान् होता है जो सबके सत्कार के लिए विद्या का उपदेश देता है ॥ २ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्वं नो अग्न एषां गयं पुष्टिं च वर्धय ।
ये स्तोमेभिः प्र सूरयो नरो मघान्यानशुः ॥३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् (ये) जो (नरः) नायक (सूरयः) विद्वान् जन (स्तोमेभिः) वेद में वर्त्तमान स्तुति के प्रकरणों से (मघानि) धनों को (प्र, आनशुः) प्राप्त होवें उनके साथ (त्वम्) आप (नः) हम लोगों और (एषाम्) इन के (गयम्) सन्तान तथा गृह वा धन (च) और (पुष्टिम्) पुष्टि की (वर्धय) वृद्धि कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—विद्वानों को चाहिए कि यथार्थवक्ताओं के सहित सब मनुष्यों के सुख और बल को बढ़ावें ॥ ३ ॥

फिर विद्वद्विषय को कहते हैं—

ये अग्ने चन्द्र ते गिरः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।
शुष्मेभिः शुष्मिणो नरो दिवश्चिद्येषां बृहत्सुकीर्तिर्बोधति त्मना ॥४॥

भावार्थ—हे (चन्द्र) आनन्द देने वाले (अग्ने) विद्वन् ! (ते) आपकी (अश्वराधसः) बिजुली आदि पदार्थों की सिद्धि करनेवाली (गिरः) धर्मसम्बन्धी वाणियों को (ये) जो (शुष्मेभिः) बलों के साथ (शुष्मिणः) बली (दिवः) कामना करते हुए (चित्) भी (नरः) मुख्य नायकजन (शुम्भन्ति) विराजते हैं और (येषाम्) जिनकी इन वाणियों को (बृहत्, सुकीर्तिः) बड़ी उत्तम प्रशंसायुक्त आप (त्मना) आत्मा से (बोधति) जानते हैं वे मित्र हों ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् सदृश गुण कर्म और स्वभाव वाले मित्र होकर अग्नि आदि पदार्थों की विद्याओं को परस्पर जनाते हैं वे सिद्ध मनोरथ वाले होते हैं ॥५॥

अब शिल्पविद्याविषयक विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

तव त्ये अग्ने अर्चयो भ्राजन्तो यन्ति धृष्णुया ।
परिज्मानो न विद्युतः स्वानो रथो न वाजयुः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (तव) आपके सङ्ग से जो (अर्चयः) विद्या और विनय से प्रकाशित (भ्राजन्तः) परस्पर एक दूसरे को प्रकाशित करते हुए (धृष्णुया) न्यायपूर्वक बोलने में ढीठ विद्वान् जन (परिज्मानः) सब ओर से भूमि के राज्य से युक्त (विद्युतः) बिजुलियों के (न) सदृश (वाजयुः) अपने वेग की इच्छा करनेवाले के सदृश और (स्वानः) शब्द करते हुए (रथः) विमान आदि वाहनसमूह के (न) सदृश शिल्पविद्या को (यन्ति) प्राप्त होते हैं (त्ये) वे शीघ्र धनवान् होते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो जन यथार्थ शिल्पविद्या को जानते हैं वे सर्वत्र व्याप्त बिजुली के समान विमान आदि वाहनों के सदृश शीघ्रगामी हों और सब प्रकार से धन को प्राप्त होकर बहुत सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

नू नो अग्न ऊतये सबाधसश्च रातये ।
अस्माकासश्च सूरयो विश्वा आशास्तरीषणि ॥६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् राजन् जो (सबाधसः) बाध के सहित वर्त्तमान (च) और (अस्माकासः) हम लोगों के सम्बन्धी (सूरयः) विद्वान् जन (नः) हम लोगों की (ऊतये) रक्षा आदि के लिये और (रातये) दान के लिये (च) भी (विश्वाः) सम्पूर्ण (आशाः) दिशाओं को (तरीषणि) तरण में हम लोगों को (नू) शीघ्र पहुंचावें वे परोपकारी होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—वे ही चतुर विद्वान् हैं जो विमान आदि वाहनों को रच के भूगोल में चारों ओर घुमाते हैं वे प्रशंसित दान वाले होते हैं ॥ ६ ॥

अब विद्यार्थिविषय को कहते हैं—

त्वं नो अग्ने अङ्गिरः स्तुतः स्तवान आ भर ।
होतर्विभ्वासहं रयिं स्तोतृभ्यः स्तवसे च न उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥७॥

पदार्थ—हे (होतः) दाता और (अङ्गिरः) प्राण के सदृश प्रिय (अग्ने) विद्वन् (स्तुतः) प्रशंसित (स्तवानः) प्रशंसा करते हुए (त्वम्) आप (नः) हम लोगों के लिये (विभ्वासहम्) व्यापकों के अच्छे प्रकार सहनेवाले (रयिम्) धन को (आ, भर) धारण कीजिये तथा (स्तोतृभ्यः) स्तुति करनेवालों और (स्तवसे) स्तुति करनेवाले के लिये (च) भी (नः) हम लोगों को धारण कीजिये (उत) और (पृत्सु) सङ्ग्रामों में (नः) हम लोगों को (वृधे) वृद्धि के लिये (एधि) प्राप्त हूजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—विद्यार्थियों को चाहिये कि विद्वानों की इस प्रकार की प्रार्थना करें कि हे भगवानो अर्थात् विद्यारूप ऐश्वर्य्ययुक्त महाशयो ! आप लोग हम लोगों को ब्रह्मचर्य्य करा और उत्तम शिक्षा तथा विद्या देके और सङ्ग्रामों को जीत कर हम लोगों की निरन्तर वृद्धि करिये ॥ ७ ॥

इस सूक्त में अग्निशब्दार्थ विद्वान् और विद्यार्थी के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह दशवां सूक्त और दूसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षडृचस्यैकादशस्य सूक्तस्य सुतम्भर आत्रेय ऋषि । अग्निर्देवता । १, ३, ५ निचृज्जगती । २ जगती । ४, ६ विराड्जगती छन्द । निषाद स्वर ॥

अब छ ऋचावाले ग्यारहवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र मे अग्नि के गुणों का उपदेश करते है—

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**जनस्य**) मनुष्य की (**गोपा**) रक्षा करने और (**जागृवि**) जागनेवाला (**सुदक्ष**) अच्छे प्रकार बल जिसमे (**घृतप्रतीक**) और घृत वा जल प्रतीतिकार जिसका ऐसा (**शुचि**) पवित्र (**अग्नि**) अग्नि (**बृहता**) बडे (**दिविस्पृशा**) प्रकाश मे स्पर्श करनेवाले से (**नव्यसे**) अत्यन्त नवीन (**सुविताय**) ऐश्वर्य के लिये (**अजनिष्ट**) उत्पन्न होता तथा (**भरतेभ्य**) धारण और पोषण करनेवाले मनुष्यो के लिये (**द्युमत्**) प्रकाश के सदृश (**वि**) विशेष करके (**भाति**) प्रकाशित होता है उसको यथावत् जानिये ॥ १ ॥

भावार्थ—विद्वानो को चाहिये कि अग्नि आदि पदार्थो के गुण अवश्य जाने ॥ १ ॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्रो मे कहते है—

यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समीधिरे ।
इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥२॥

पदार्थ—हे (**नर**) श्रेष्ठ कार्यों मे अग्रणी विद्वान् लोगो जैसे आप लोग (**त्रिषधस्थे**) तीन पदार्थों के सहित स्थान मे (**यजथाय**) मिलने के लिये (**यज्ञस्य**) उत्तम ज्ञान की (**केतुम्**) बुद्धि को तथा (**प्रथमम्**) प्रथम वर्त्तमान (**पुरोहितम्**) प्रथम इसको धारण करें ऐसे (**अग्निम्**) अग्नि के समान प्रकाशमान को (**सम्, ईधिरे**) उत्तम प्रकार प्रकाशित करें वैसे (**स**) वह (**सुक्रतु**) उत्तम बुद्धि वा उत्तम कर्म्मवाले (**होता**) दाता आप (**इन्द्रेण**) बिजुली और (**देवै**) पृथिवी आदिको के साथ (**बर्हिषि**) अन्तरिक्ष मे (**सरथम्**) वाहनो के समूह के सहित (**नि, सीदत्**) स्थित हूजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन विद्या, धर्म और पुरुषार्थ मे स्वय वर्त्ताव करके अन्यो को उसके अनुसार वर्त्ताव कराते हैं वे ही सबको बोध दिलानेवाले होते है ॥२॥

असंमृष्टो जायसे मात्रोः शुचिर्मन्द्रः कविरुदतिष्ठो विवस्वतः ।
घृतेन त्वावर्धयन्नग्न आहुत धूमस्ते केतुरभवद्दिवि श्रितः ॥३॥

पदार्थ—हे (**आहुत**) सत्कार से निमन्त्रित (**अग्ने**) अग्नि के सदृश वर्त्तमान विद्यार्थी जो विद्वान् जन (**विवस्वत**) सूर्य्य से (**घृतेन**) विद्या के प्रकाश से (**त्वा**) आपकी (**अवर्धयन्**) वृद्धि करें और जिन (**ते**) आपकी अग्नि के (**धूम**) धूम के सदृश (**दिवि**) प्रकाशमान मनोहर और सत्कार करने योग्य परमेश्वर मे (**केतु**) जनानेवाले के सदृश बुद्धि (**श्रित**) सेवन की (**अभवत्**) होती है तथा (**मात्रो**) माता के सदृश आदर करनेवाले विद्या और आचार्य्य की शिक्षा को प्राप्त होकर (**असमृष्ट**) अशुद्ध आप अच्छे प्रकार (**मन्द्र**) प्रशंसित और आनन्दित (**शुचि**) पवित्र (**जायसे**) होते हो और (**कवि**) विद्वान् (**उत्, अतिष्ठ**) उठता है उनका हम लोग सत्कार करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो बालक वा कन्या विद्वानो वा पढी हुई स्त्रियो से ब्रह्मचर्य-पूर्वक विद्या को प्राप्त होकर पवित्र होते वे ससार को शोभित करनेवाले होते हैं ॥ ३ ॥

फिर अग्न्यादिको के गुणो को अगले मन्त्र मे कहते है—

अग्निर्नो यज्ञमुप वेतु साधुयाग्निं नरो वि भरन्ते गृहेगृहे ।
अग्निर्दूतो अभवद्धव्यवाहनोऽग्निं वृणाना वृणते कविक्रतुम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**अग्नि**) अग्नि (**न**) हम लोगो के (**यज्ञम्**) मिलने योग्य व्यवहार को (**उप, वेतु**) व्याप्त हो और जैसे (**साधुया**) श्रेष्ठ (**नर**) अग्रणी मनुष्य (**गृहेगृहे**) गृहगृह मे (**अग्निम्**) अग्नि के सदृश (**वि, भरन्ते**) धारण करते हैं और जैसे (**हव्यवाहन**) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को एक देश से दूसरे देशो मे पहुँचानेवाला (**अग्नि**) अग्नि (**दूत**) दूत के सदृश कार्यों का सिद्ध-कर्त्ता (**अभवत्**) होता है और जैसे (**अग्निम्**) अग्नि को (**वृणाना**) स्वीकार करते हुए जन (**कविक्रतुम्**) बुद्धिमान् की बुद्धि को (**वृणते**) स्वीकार करते है वैसे ही आप लोग आचरण करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो अग्नि के सदृश तेजस्वी, सज्जनो के सदृश उपकार करने और प्रत्येक जन के लिए मङ्गल देने वाले है वे सर्वदा सत्कार करने योग्य हैं ॥ ४ ॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों मे कहते है—

तुभ्येदमग्ने मधुमत्तमं वचस्तुभ्यं मनीषा इयमस्तु शं हृदे ।
त्वां गिरः सिन्धुमिवावनीर्महीरा पृणन्ति शवसा वर्धयन्ति च ॥५॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के सदृश पवित्र अन्त करणवाले विद्यार्थी (**तुभ्य**) आपके लिए (**इदम्**) यह (**मधुमत्तमम्**) अतिशय मधुर आदि गुण से युक्त (**वच**) वचन और (**तुभ्यम्**) आप के लिए (**इयम्**) यह (**मनीषा**) बुद्धि (**हृदे**) हृदय के लिए (**शम्**) सुखकारक (**अस्तु**) हो और जो (**सिन्धुमिव**) समुद्र को जैसे वैसे (**अवनी**) रक्षा करनेवाली (**मही**) श्रेष्ठ भूमियो के सदृश आदर करने योग्य (**गिर**) वाणियाँ (**शवसा**) बल वा सेना से (**त्वाम्**) आपको (**आ पृणन्ति**) अच्छे प्रकार पालन करती वा विद्याओ को पूर्ण करती (**वर्धयन्ति, च**) और वृद्धि करती है उन का आप ग्रहण कीजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे विद्यार्थीजनो ! जैसे नदियाँ समुद्र को शोभित करती हैं वैसे ही विद्या और नम्रता से युक्त वाणिया आप लोगो को शोभित करें जिन के प्रताप से आप लोगो के मुखो से सत्य और सब का हितकारक वचन सर्वदा ही निकले ॥ ५ ॥

त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने ।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥६॥३॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्या की इच्छा करनेवाले जैसे (**अङ्गिरस**) प्राणो के सदृश विद्याओ मे व्याप्त जन (**वनेवने**) जगल जगल मे अग्नि के सदृश जीव जीव मे (**शिश्रियाणम्**) व्याप्त (**गुहा**) बुद्धि मे (**हितम्**) स्थित परमात्मा को (**अनु, अविन्दन्**) प्राप्त होते है और जिन (**त्वाम्**) आप को प्राप्त कराते हैं वैसे (**स**) वह आप (**मथ्यमान**) मथे गये विद्वान् (**जायसे**) होते हो और जिससे (**सहस**) विद्या और शरीर के बल से युक्त के (**पुत्रम**) पुत्र और (**सह**) बल (**महत्**) बडे को प्राप्त (**त्वाम्**) आप को (**अङ्गिर**) प्राण के सदृश प्रिय विद्वान् जन (**आहु**) कहे ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे योगी जन सयम अर्थात् इन्द्रियो को अन्य विषयो से रोकने से परमात्मा को प्राप्त होकर नित्य आनन्दित होते है वैसे इस को प्राप्त होकर आप लोग आनन्दित हूजिये ॥ ६ ॥

इस सूक्त मे अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह ग्यारहवां सूक्त और तृतीय वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षडृचस्य द्वादशस्य सूक्तस्य सुतम्भर आत्रेय ऋषि । अग्निर्देवता । १, २ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर । ३, ४, ५ त्रिष्टुप् ६ निचृत्त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

अब छ ऋचावाले बारहवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र मे अग्नि विषय को कहते हैं—

प्राग्नये बृहते यज्ञियाय ऋतस्य वृष्णे असुराय मन्म ।
घृतं न यज्ञ आस्ये३ सुपूतं गिरं भरे वृषभाय प्रतीचीम् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (**आस्ये**) मुख मे और (**यज्ञे**) मिलने योग्य व्यवहार मे (**सुपूतम्**) उत्तम प्रकार पवित्र (**घृतम्**) घृत के (**न**) सदृश पदार्थ को तथा (**बृहते**) बडे (**यज्ञियाय**) यज्ञ के योग्य और (**ऋतस्य**) जल के (**वृष्णे**) वर्षाने और (**असुराय**) प्राणो मे रमनेवाले (**वृषभाय**) बलिष्ठ (**अग्नये**) अग्नि के लिए (**मन्म**) ज्ञान के उत्पन्न करानेवाले कारण को (**प्रतीचीम**) पिछली क्रिया और (**गिरम**) वाणी को (**प्र, भरे**) अच्छे प्रकार धारण करता हूँ वैसे इस के लिए इस को आप लोग भी धारण करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो से जैसे अग्निविद्या के ज्ञान के लिए प्रयत्न किया जाता है उनको चाहिए कि वैसे ही पृथिवी आदि पदार्थों की विद्या के ज्ञान के लिए प्रयत्न करें ॥ १ ॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

ऋतं चिकित्व ऋतमिच्चिकिद्ध्यृतस्य धारा अनु तृन्धि पूर्वीः ।
नाहं यातुं सहसा न द्वयेन ऋतं सपाम्यरुषस्य वृष्णः ॥२॥

पदार्थ—हे (**ऋतम्**) सत्य कारण को (**चिकित्व**) जानने योग्य आप (**ऋतम्**) सत्य ब्रह्म को (**इत्**) निश्चय मे (**चिकिद्धि**) जानिये और (**ऋतस्य**) सत्य के जनानेवाली (**पूर्वी**) प्राचीन (**धारा**) वाणियो को जानिये और अविद्या का (**अनु, तृन्धि**) नाश करिये (**अहम्**) मैं (**सहसा**) बल से (**यातुम्**) जाने की (**न**) नही इच्छा करता हूँ और (**द्वयेन**) कार्य्य कारणस्वरूप बल से (**अरुषस्य**) नही हिंसा करनेवाले (**वृष्ण**) बलिष्ठ के (**ऋतम्**) जल के (**न**) सदृश पदार्थ का (**सपामि**) गम्भीर शब्द से कोशता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन असत्य का खण्डन करके सत्य को धारण करते है और अविद्या का त्याग करके विद्या को धारण करते है वैसे ही आप लोग भी करो ॥ २ ॥

फिर अग्निपदवाच्य विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

कथा नो अग्न ऋतयन्नृतेन भुवो नवेदा उचथस्य नव्यः ।
वेदा मे देव ऋतुपा ऋतूनां नाहं पतिं सनितुरस्य रायः ॥३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! आप (कथा) किस विद्या वा युक्ति से (नः) हम लोगों को जनावें (ऋतेन) सत्य से (ऋतयन्) सत्य का आचरण करता हुआ (भुवः) पृथिवी का (नवेदा) नहीं प्राप्त होनेवाला (उचथस्य) उचित का सम्बन्धी (नव्यः) नवीनों में श्रेष्ठ (ऋतुपाः) ऋतुओं का पालन करनेवाला पृथ्वी-सम्बन्धी (देवः) विद्वान् (अहम्) मैं (ऋतूनाम्) वसन्त आदि ऋतुओं और (अस्य) इस (सनितुः) विभाग करनेवाले (रायः) धन के (पतिम्) स्वामी को (न) नहीं नाश कराता हूँ वैसे आप (मे) मुझ को (वेदाः) जानिये और मुझ को नष्ट मत करिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! सत्य के आचरण से ही पृथ्वी का राज्य प्राप्त होता है और पृथ्वी के राज्य और लक्ष्मी से सब को सुख होता है ॥ ३ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

के ते अग्ने रिपवे बन्धनासः के पायवः सनिषन्त द्युमन्तः ।
के धासिमग्ने अनृतस्य पान्ति क आसतो वचसः सन्ति गोपाः ॥४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) राजन् (ते) आप के (रिपवे) शत्रु के लिए (के) कौन (बन्धनासः) बन्धक और (के) कौन आप के राज्य के (पायवः) पालन करनेवाले (के) कौन (द्युमन्तः) कामना करनेवाले वा प्रकाशयुक्त (सनिषन्त) विभाग करते हैं और हे (अग्ने) विद्या और विनय के प्रकाशक कौन (धासिम्) अन्न की (पान्ति) रक्षा करते हैं (के) कौन (अनृतस्य) असत्य व्यवहार के (आसतः) निन्द्य (वचसः) वचन से (गोपाः) रक्षा करनेवाले (सन्ति) हैं ॥४॥

भावार्थ—हे विद्वन् राजन् ! आप को चाहिए कि इस प्रकार का कर्म करें जिस से शत्रुओं का नाश प्रजा का पालन होवे यह इस का उत्तर है ॥ ४ ॥

सखायस्ते विषुणा अग्न एते शिवासः सन्तो अशिवा अभूवन् ।
अधूर्षत स्वयमेते वचोभिर्ऋजूयते वृजिनानि ब्रुवन्तः ॥५॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! जो (एते) ये (ते) आपके (विषुणाः) विद्या को व्याप्त (सखायः) मित्र हुए (शिवासः) मङ्गल अर्थात् अच्छे आचरण करते (सन्तः) हुए (अशिवाः) अमङ्गल आचरण करनेवाले (अभूवन्) होवें उनका आप के नौकर और आप (अधूर्षत) नाश करो और हे राजा के नौकरो जो (एते) ये (स्वयम्) अपने ही (वचोभिः) वचनों से (वृजिनानि) धनों और बलों का (ब्रुवन्तः) उपदेश देते हुए (ऋजूयते) सरल होते हैं उनका निरन्तर पालन करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों की यह योग्यता है कि जो मित्रजन शत्रु होवें वे निरादर करने योग्य हैं और जो शत्रु मित्र होवें वे सत्कार करने योग्य हैं ॥ ५ ॥

यस्ते अग्ने नमसा यज्ञमीट्ट ऋतं स पात्यरुषस्य वृष्णः ।
तस्य क्षयः पृथुरा साधुरेतु प्रसर्स्राणस्य नहुषस्य शेषः ॥६॥४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) राजन् (अरुषस्य) नहीं हिंसा करने और (वृष्णः) सुख के वर्षानेवाले (तस्य) उन (ते) आप का (सः) जो (पृथुः) विस्तार युक्त (प्रसर्स्राणस्य) अत्यन्त धर्म को प्राप्त हुए (नहुषस्य) मनुष्य के (शेषः) बाकी रहे के सदृश (साधुः) श्रेष्ठ (क्षयः) निवास (नमसा) अन्न आदि से (यज्ञम्) यज्ञ का (ईट्टे) ऐश्वर्य्ययुक्त करता है (सः) वह (ऋतम्) सत्यन्याय की (पाति) रक्षा करता है वह हम लोगों को (आ, एतु) सब प्रकार प्राप्त हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो विद्वानों की सेवा और धर्म की रक्षा करता है उस के रक्षण को आप लोग करके शेष सुख को प्राप्त हूजिये ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह बारहवां सूक्त और चौथा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षड्ऋचस्य त्रयोदशस्य सूक्तस्य सुतम्भर आत्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता । १, ४, ५, निचृद्गायत्री । २, ६ गायत्री । ३ विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले तेरहवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्निपदवाच्य विद्वान् के गुणों को कहते हैं—

अर्चन्तस्त्वा हवामहेऽर्चन्तः समिधीमहि । अग्ने अर्चन्त ऊतये ॥१॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् हम लोग (ऊतये) रक्षण आदि के लिए (त्वा) आपका (अर्चन्तः) सत्कार करते हुए (हवामहे) स्वीकार करते हैं और आपका (अर्चन्तः) सत्कार करते हुए (सम्, इधीमहि) प्रकाश करें और आपका (अर्चन्तः) सत्कार करते हुए विद्वान् होवें ॥ १ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! हम लोग आप लोगों के सत्कार से उत्तम शिक्षा और विद्या को प्राप्त होकर आनन्दित होवें ॥ १ ॥

अब अग्निगुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अग्नेः स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः । देवस्य द्रविणस्यवः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (द्रविणस्यवः) अपने धन की इच्छा करनेवाले हम लोग (अद्य) आज (दिविस्पृशः) परमात्मा में सुख को स्पर्श करनेवाले (देवस्य) प्रकाशमान (अग्नेः) अग्नि के (सिध्रम्) साधक (स्तोमम्) गुण, कर्म और स्वभाव की प्रशंसा को (मनामहे) मानते हैं वैसे इसको आप लोग भी जानो ॥२॥

भावार्थ—जिनकी धन की इच्छा होवे वे अग्नि आदि पदार्थों के विज्ञान को ग्रहण करें ॥ २ ॥

अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा । स यक्षद्दैव्यं जनम् ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् (यः) जो (होता) दाता (अग्निः) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् (नः) हम लोगों की (गिरः) वाणियों का (जुषत) सेवन करता है और जैसे (सः) वह (मानुषेषु) मनुष्यों में (दैव्यम्) श्रेष्ठ गुणों से उत्पन्न (जनम्) विद्वान् जन को (आ, यक्षत्) प्राप्त हो वा सत्कार करे वैसे आप करिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो अग्नि न हो तो कोई भी जीव जिह्वा न चला सके ॥ ३ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! जिससे विद्वान् जन (त्वया) आपके साथ (यज्ञम्) यज्ञ का (वि, तन्वते) विस्तार करते हैं उनके साथ (होता) दाता वा ग्रहण करनेवाले (वरेण्यः) अतिश्रेष्ठ और (सप्रथाः) प्रसिद्ध यशवाले (जुष्टः) सेवन किये गये (त्वम्) आप (असि) हो इससे सत्कार करने योग्य हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग यथार्थवक्ता विद्वानों के सङ्ग से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि करनेवाले यज्ञ का विस्तार करें ॥ ४ ॥

त्वामग्ने वाजसातमं विप्रा वर्धन्ति सुष्टुतम् । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥५॥

पदार्थ—हे (अग्ने) महाविद्वन् ! (विप्राः) बुद्धिमान् जन जिन (वाजसातमम्) विज्ञान और वेगों के विभाग करनेवाले (सुष्टुतम्) उत्तम यशवाले और (सुवीर्यम्) उत्तम पराक्रमयुक्त (त्वाम्) आपकी (वर्धन्ति) वृद्धि करते हैं (सः) वह आप (नः) हम लोगों के लिए उत्तम पराक्रम को (रास्व) दीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो आप लोगों की यथार्थ वक्ता विद्वान् जन सब प्रकार से वृद्धि करें तो आप लोगों का अतुल प्रताप बढ़े ॥ ५ ॥

अग्ने नेमिरराँइव देवास्त्वं परिभूरसि । आ राधश्चित्रमृञ्जसे ॥६॥५॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् (त्वम्) आप जैसे (नेमिः) रथाङ्ग (अरानिव) चक्रों के अङ्गों को वैसे (देवान्) श्रेष्ठ गुणों वा विद्वानों को (परिभूः) सब प्रकार से हुवानेवाले (असि) हो और (चित्रम्) विचित्र (राधः) धन को (आ, ऋञ्जसे) सिद्ध करते हो इससे सत्कार करने योग्य हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे अरादिकों से चक्र उत्तम प्रकार शोभित होता है वैसे ही विद्वानों और उत्तम गुणों से मनुष्य शोभित होते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तेरहवां सूक्त और पांचवां वर्ग समाप्त हुआ

卐

अथ षड्ऋचस्य चतुर्दशस्य सूक्तस्य सुतम्भर आत्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता । १, ४ । ५ । ६ निचृद्गायत्री । २ विराड्गायत्री । ३ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले चौदहवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से अग्निगुणों को कहते हैं—

अग्निं स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् । हव्या देवेषु नो दधत् ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् जो (समिधानः) उत्तम प्रकार स्वयं प्रकाशमान अग्नि (देवेषु) विद्वानों वा श्रेष्ठ गुणोंवाले पदार्थों में (नः) हम लोगों के लिये (हव्या) देने और ग्रहण करने योग्य वस्तुओं को (दधत्) धारण करता है उस (अमर्त्यम्) मरणधर्म से रहित (अग्निम्) अग्नि को (स्तोमेन) गुणों की प्रशंसा से (बोधय) प्रकाशित कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! प्रयत्न से अग्नि आदि पदार्थों की विद्या को प्राप्त होओ ॥ १ ॥

तमध्वरेष्वीळते देवं मर्ता अमर्त्यम् । यजिष्ठं मानुषे जने ॥२॥

पदार्थ—जो (**मर्त्ता**) मनुष्य (**अध्वरेषु**) नहीं नाश करने योग्य धर्मयुक्त व्यवहारों में (**मानुषे**) विचारशील (**जने**) जन में (**तम्**) उस (**अमर्त्यम्**) स्वरूप से नित्य (**यजिष्ठम्**) अतिशय मेल करनेवाले (**देवम्**) श्रेष्ठ गुणवाले अग्नि के सदृश स्वयं प्रकाशित परमात्मा की (**ईळते**) स्तुति करते हैं वे ही बहुत सुख का भोग करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थ के सदृश पदार्थविद्या का ग्रहण करते हैं वे सब प्रकार सुखी होते हैं ॥ २ ॥

तं हि शश्वन्त ईळते स्रुचा देवं घृतश्चुता । अग्निं हव्याय वोळ्हवे ॥३॥

पदार्थ—(**शश्वन्त**) अनादि से वर्त्तमान जीव जैसे यज्ञ करनेवाला और यजमान (**घृतश्चुता**) जो घृत वा जल चुआती उस (**स्रुचा**) यज्ञ सिद्ध करानेवाली स्रुच् उससे (**हव्याय**) देने और लेने के योग्य के लिए (**वोळ्हवे**) धारण करने को (**अग्निम्**) अग्नि की (**ईळते**) प्रशंसा करते हैं वैसे (**हि**) ही योगाभ्यास से (**तम्**) उस परमात्मा (**देवम्**) देव अर्थात् निरन्तर प्रकाशमान की स्तुति करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु० है। जैसे शिल्पीजन अग्नि आदि तत्त्वों की विद्या को प्राप्त होकर और अनेक कार्य्यों को सिद्ध करके प्रयोजनों को सिद्ध करते हैं वैसे मनुष्य परमात्मा को यथावत् जान के अपनी इच्छाओं को सिद्ध करें ॥ ३ ॥

फिर अग्निविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अग्निर्जातो अरोचत घ्नन्दस्यूञ्ज्योतिषा तमः ।
अविन्दद्गा अपः स्वः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो राजा जैसे (**जात**) प्रकट हुआ (**अग्नि**) अग्नि (**ज्योतिषा**) प्रकाश से (**तम**) अन्धकाररूप रात्रि का (**घ्नन्**) नाश करता हुआ (**अरोचत**) प्रकाशित होता और (**गा**) किरणों (**अप**) अन्तरिक्ष और (**स्व**) सूर्य्य को (**अविन्दत्**) प्राप्त होता है वैसे प्राप्त हुए विद्या विनय जिस का वह (**दस्यून्**) दुष्ट चोरों का नाश करते हुए और न्याय से अन्याय का निवारण करके विजय और यश को प्राप्त हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अग्नि अन्धकार का निवारण करके प्रकाशित होता है वैसे राजा दुष्ट चोरों का निवारण करके विशेष शोभित होवे ॥ ४ ॥

अग्निमीळेन्यं कविं घृतपृष्ठं सपर्य्यत । वेतु मे शृणवद्धवम् ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे विद्वान् (**मे**) मेरे (**हवम्**) देने लेने योग्य व्यवहार को (**वेतु**) व्याप्त हो और (**शृणवत्**) सुने वैसे (**ईळेन्यम्**) प्रशंसा करने योग्य (**कविम्**) प्रतापयुक्त दर्शनवाले (**घृतपृष्ठम्**) प्रकाश घृत वा जलपृष्ठ में जिसके उस (**अग्निम्**) अग्नि का (**सपर्यत**) सेवन करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों की विद्या का अभ्यास करें तो वे निरन्तर सुख को सेवें ॥ ५ ॥

अग्निं घृतेन वावृधुः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणिम् ।
स्वाधीभिर्वचस्युभिः ॥६॥६॥ अनु० १ ॥

पदार्थ—जो (**स्तोमेभि**) प्रशंसित कर्मों और (**घृतेन**) घृत से (**विश्वचर्षणिम्**) संसार के प्रकाश करने वाले (**अग्निम्**) अग्नि की (**वावृधु**) वृद्धि करावें उन (**वचस्युभि**) अपने वचन की इच्छा करने वाले (**स्वाधीभि**) उत्तम प्रकार ध्यान से युक्त जनों के साथ सब मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों की विद्या का ग्रहण करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—जैसे ईंधन आदि से अग्नि बढ़ता है वैसे ही सत्सङ्ग से विज्ञान बढ़ता है ॥ ३ ॥

इस सूक्त में अग्नि के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह चतुर्दश सूक्त और पञ्चम मण्डल में प्रथम अनुवाक और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चदशस्य सूक्तस्य धरुण आङ्गिरस ऋषिः। अग्निर्देवता। १, ५ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। २, ४ त्रिष्टुप्। ३ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः।

अब पांच ऋचावाले पन्द्रहवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् और अग्निगुणविषय को कहते हैं—

प्र वेधसे कवये वेद्याय गिरं भरे यशसे पूर्व्याय ।
घृतप्रसत्तो असुरः सुशेवो रायो धर्त्ता धरुणो वस्वो अग्निः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वानो! जैसे मुझ से (**घृतप्रसत्तः**) जल में असक्त होने (**असुरः**) और प्राणों में सुख देने वाला तथा (**सुशेवः**) सुन्दर सुख जिस से ऐसे (**रायः**) धन का (**धर्त्ता**) धारण करने और (**वस्वः**) पृथिवी आदि का (**धरुणः**) धारण करने वाला (**अग्निः**) अग्नि धारण किया जाता है उसके बोध के लिए (**कवये**) विद्वान् और (**वेद्याय**) जानने योग्य के लिए और (**यशसे**) प्रशंसित (**पूर्व्याय**) प्राचीनों में प्राप्त विद्या वाले (**वेधसे**) बुद्धिमान् के लिये (**गिरम्**) वाणी को (**प्र, भरे**) धारण करता हूँ वैसे आप लोग भी इस को इसलिये धारण करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वानो! जो अग्नि आदि पदार्थों की विद्या असाधारण अर्थात् विलक्षण है उसको उत्तम लक्षणवाले बुद्धिमान विद्यार्थियों के लिए ग्रहण कराइये ॥ १ ॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

ऋतेन ऋतं धरुणं धारयन्त यज्ञस्य शाके परमे व्योमन् ।
दिवो धर्मन्धरुणे सेदुषो नॄञ्जातैरजाताँ अभि ये ननक्षुः ॥२॥

पदार्थ—(**ये**) जो (**ऋतेन**) सत्य वा परमात्मा से (**ऋतम्**) सत्य कारणादिक (**धरुणम्**) सब के धारण करने वाले को (**यज्ञस्य**) सम्पूर्ण व्यवहार के (**शाके**) सामर्थ्य के निमित्त (**परमे**) उत्तम (**व्योमन्**) व्यापक (**दिवः**) सूर्य्य आदि से (**धर्मन्**) धर्म (**धरुणे**) और धारण करने वाले में (**जातैः**) उत्पन्न हुए पदार्थों से (**अजातान्**) न उत्पन्न हुए (**सेदुषः**) ज्ञानवान् (**नॄन्**) मनुष्यों को (**अभि, ननक्षुः**) प्राप्त होते हैं वे सत्य विद्या को (**धारयन्त**) धारण करें ॥ २ ॥

भावार्थ—वे ही मनुष्य विद्वान् हैं जो पूर्व और आगे वर्त्तमान विद्वानों को मिलकर परमेश्वर, प्रकृति और जीव के कार्य्य की विद्या को जानते हैं ॥ २ ॥

अंहोयुवस्तन्वस्तन्वते वि वयो महद्दुष्टरं पूर्व्याय ।
स संवतो नवजातस्तुतुर्यात्सिंहं न क्रुद्धमभितः परि ष्ठुः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जिसके सम्बन्ध में (**अंहोयुव**) जो अपराध को दूर करते वे (**तन्वः**) शरीर के मध्य में (**तन्वते**) विस्तार को प्राप्त होते और (**महत्**) बड़े (**दुष्टरम्**) दुःख से पार होने योग्य (**वय**) जीवन को (**वि**) विशेष करके विस्तृत करते और सुख के (**परि**) सब ओर (**स्थुः**) स्थित होते हैं (**सः**) वह उनका सङ्गी (**संवत**) उत्तम प्रकार सेवन किया गया (**नवजात**) नवीन अभ्यास से उत्पन्न हुई विद्या जिसकी ऐसा पुरुष (**पूर्व्याय**) पूर्वज के लिये (**क्रुद्धम्**) क्रोधयुक्त (**सिंहम्**) सिंह के (**न**) सदृश अन्य को (**अभितः**) सब प्रकार से (**तुतुर्यात्**) नाश करे ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य पाप को दूर करके धर्म का आचरण करते हैं वे शरीर और आत्मा के सुख और जीवन की वृद्धि कराते हैं। और जैसे क्रुद्ध सिंह प्राप्त हुए प्राणियों का नाश करता है वैसे प्राप्त हुए दुर्गुणों का सब जन नाश करें ॥ ३ ॥

मातेव यद्भरसे पप्रथानो जनञ्जनं धायसे चक्षसे च ।
वयोवयो जरसे यद्दधानः परि त्मना विषुरूपो जिगासि ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन्! (**यत्**) जिस कारण (**पप्रथान**) प्रसिद्ध विद्यायुक्त आप (**मातेव**) माता के सदृश (**धायसे**) धारण करने और (**चक्षसे**) कहाने को (**च**) भी (**जनञ्जनम्**) मनुष्य मनुष्य का (**भरसे**) पोषण करते हो और (**त्मना**) आत्मा से (**यत्**) जिस कारण (**दधान**) धारण करते हुए (**वयोवय**) सुन्दर जीवन जीवन की (**जरसे**) स्तुति करते हो और (**विषुरूपः**) विद्या जिस को प्राप्त ऐसे हुए सम्पूर्ण पदार्थों की (**परि**) सब प्रकार से (**जिगासि**) प्रशंसा करते हो इस से विद्वान् होते हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन माता के सदृश विद्यार्थियों की रक्षा करते, सब की उन्नति करने की इच्छा करते और ब्रह्मचर्य तथा अवस्था के बढ़ने में कारणरूप कार्य्यों का उपदेश करते हैं वे संसार के आदर करने योग्य होते हैं ॥ ४ ॥

वाजो नु ते शवसस्पात्वन्तमुरुं दोघं धरुणं देव रायः ।
पदं न तायुर्गुहा दधानो महो राये चितयन्नत्रिमस्पः ॥५॥७॥

पदार्थ—हे (**देव**) विद्वन् (**ते**) आप का (**वाज**) वेग (**शवसः**) बल के (**उरुम्**) बहुत (**अन्तम्**) अन्त की (**दोघम्**) तथा उत्तम पूर्ण करनेवाले और (**राय**) धन के (**धरुणम्**) धारण करनेवाले की (**नु**) शीघ्र (**पातु**) रक्षा करें और (**तायु**) चोर (**पदम्**) पैरों के चिह्न को (**न**) जैसे वैसे (**महः**) बड़े (**राये**) धन के लिये (**गुहा**) बुद्धि में सत्य को (**दधान**) धारण करते और (**अत्रिम**) पालन करनेवाले को (**चितयन्**) जनाते हुए आप सब को (**अस्पः**) प्रसन्न कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! जैसे चोर, चोर के पाद के चिह्न को ढूँढ के ग्रहण करता है वैसे ही आत्माओं के सत्य को धारण कर और कामना की पूर्ति करके सब को प्रसन्न करें ॥ ५ ॥

इस सूक्त मे विद्वान् और अग्नि के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ।

यह पन्द्रहवाँ सूक्त और सप्तम वर्ग समाप्त हुआ ।

卐

अथ पञ्चर्चस्य षोडशस्य सूक्तस्य पुरुरात्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता । १,२,३ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ भुरिगुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । ५ बृहती छन्दः । मध्यम स्वरः ॥

अब पाँच ऋचावाले सोलहवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से बिजुली के विषय को कहते हैं—

बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये ।
यं मित्रं न प्रशस्तिभिर्मर्तासो दधिरे पुरः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् (मर्तासः) मनुष्य (प्रशस्तिभिः) प्रशसाओं से (यम्) जिसको (मित्रम्) मित्र के (न) समान (पुरः) प्रथम से (दधिरे) धारण करते हैं उसको (भानवे) प्रकाश के लिये और (देवाय) श्रेष्ठ गुण वाले (अग्नये) बिजुली आदि के लिये (बृहत्) बड़ा (वयः) प्रदीप्त करनेवाला तेज जैसे हो वैसे (हि) ही (अर्चा) पूजिये, आदर करिये ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे मित्र मित्र को धारण करके सुख की वृद्धि को प्राप्त होता है वैसे ही अग्नि आदि पदार्थों की विद्या को प्राप्त होकर विद्वान् जन आनन्द से वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥१॥

स हि द्युभिर्जनानां होता दक्षस्य बाह्वोः ।
वि हव्यमग्निरानुषग्भगो न वारमृण्वति ॥२॥

पदार्थ—जो (जनानाम्) मनुष्यों की (बाह्वोः) भुजाओं के (दक्षस्य) बल का (होता) देने वाला (अग्निः) अग्नि (भगः) सूर्य्य के (न) सदृश (आनुषक्) अनुकूलता से (वारम्) स्वीकार करने और (हव्यम्) देनेयोग्य पदार्थ को (वि, ऋण्वति) विशेष सिद्ध करता है (सः, हि) वही (द्युभिः) धर्मयुक्त कामों से बलवान् होता है ॥२॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन अपने आत्मा के सदृश सब मनुष्यों को जान और विद्या को प्राप्त करा के उन्नति करने की इच्छा करते हैं वे ही भाग्यशाली वर्त्तमान हैं ॥२॥

अब सग्रामविजयविषय को कहते हैं—

अस्य स्तोमे मघोनः सख्ये वृद्धशोचिषः ।
विश्वा यस्मिन्तुविष्वणि समर्ये शुष्ममादधुः ॥३॥

पदार्थ—जो मनुष्य (अस्य) इस (वृद्धशोचिषः) वृद्ध अर्थात् बढ़ी हुई कान्ति जिसकी ऐसे (मघोनः) बहुत धन से युक्त पुरुष की (स्तोमे) प्रशसा मे और (सख्ये) मित्रपन वा मित्र के कार्य्य के लिये (यस्मिन्) जिस (तुविष्वणि) बलसेवन तथा (सम्, अर्य्ये) अच्छे प्रकार स्वामी वा वैश्य मे (शुष्मम्) बल को (आदधुः) सब प्रकार धारण करें वे (विश्वा) सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त होवें ॥३॥

भावार्थ—जो मित्र हो कर शरीर और आत्मा के बल को धारण करके प्रयत्न करते हैं वे सङ्ग्रामादिकों मे विजय को प्राप्त होकर प्रशसित लक्ष्मीवान् होते हैं ॥ ३ ॥

अब राज्य और ऐश्वर्य्यवृद्धि को कहते हैं—

अधा ह्यग्न एषां सुवीर्यस्य मंहना ।
तमिद्यह्वं न रोदसी परि श्रवो बभूवतुः ॥४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) राजन् (एषाम्) इन वीरों और (सुवीर्यस्य) उत्तम पराक्रम वाले के (मंहना) बड़प्पन से जो (तम्) उसको (इत्) ही (यह्वम्) बड़े सूर्य्य (अधा) इसके अनन्तर (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी के (न) सदृश (श्रवः) अन्न जैसे हो वैसे (परि) सब ओर से (बभूवतुः) होते हैं वे (हि) ही विजय को प्राप्त होते हैं ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो बड़ी उत्तम प्रकार शिक्षित सेना को प्राप्त होते हैं उनके ही राज्य का ऐश्वर्य बढ़ता है ॥४॥

नू न एहि वार्य्यमग्ने गृणान आ भर ।
ये वयं ये च सूरयः स्वस्ति धामहे सचोतैधि पृत्सु नो वृधे ॥५॥८॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (ये) जो (सूरयः) विद्वान् (ये, च) और जो (वयम्) हम लोग (स्वस्ति) सुखको (धामहे) धारण करते हैं उनसे (सचा) सम्बद्ध आप (वार्य्यम्) स्वीकार करने योग्य को (नु) शीघ्र और (गृणानः) विद्वानों के गुणों की स्तुति करते हुए (नः) हम लोगों को (आ, इहि) सब प्रकार से प्राप्त हूजिये (उत) और सुख को (आ, भर) सब प्रकार पुष्टि कीजिये तथा (पृत्सु) संग्रामों में (नः) हम लोगों की (वृधे) वृद्धि के लिये (एधि) प्राप्त हूजिये ॥५॥

भावार्थ—जो मनुष्यों के लिये निरन्तर सुख देते हैं उनके साथ मनुष्य सदा उन्नति करें ॥ ५ ॥

इस सूक्त मे बिजुली का विषय संग्रामविजय और राज्यैश्वर्य्य के वर्धन का वर्णन होने मे इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह सोलहवाँ सूक्त और अठारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य सप्तदशस्य सूक्तस्य पुरुरात्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता । १ भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । २ अनुष्टुप् । ३ निचृदनुष्टुप् । ४ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ५ भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यम स्वरः ॥

अब पाँच ऋचावाले सत्रहवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में अग्न्यादि विद्याविषय को कहते हैं—

आ यज्ञैर्देव मर्त्य इत्था तव्यांसमूतये ।
अग्निं कृते स्वध्वरे पूरुरीळीतावसे ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (देव) विद्वन् ! जैसे (पूरुः) मननशील (मर्त्यः) मनुष्य (कृते) किये हुए (स्वध्वरे) शोभन अहिंसामय यज्ञ मे (यज्ञैः) विद्वानों के सत्कारादिक व्यवहारों से (अवसे) विद्या आदि श्रेष्ठ गुणों मे प्रवेश होने के लिये (तव्यांसम्) अत्यन्त वृद्ध बड़े तेजयुक्त (अग्निम्) अग्नि की (ईळीत) प्रशसा करता है (इत्था) इस कारण से (ऊतये) रक्षा आदि के लिए (आ) प्रयोग अर्थात् विशेष उद्योग करो ॥१॥

भावार्थ—जो विद्वानों के सङ्ग मे प्रीति करनेवाले मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों की विद्या को प्राप्त हो कर श्रेष्ठ कर्म को करते हैं वे सब प्रकार से रक्षित होते हैं ॥१॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अस्य हि स्वयशस्तर आसा विधर्मन्मन्यसे ।
तं नाकं चित्रशोचिषं मन्द्रं परो मनीषया ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (विधर्मन्) विशेष धर्म के अनुगामी जो (हि) निश्चय (अस्य) इसके सम्बन्ध मे (स्वयशस्तरः) अत्यन्त अपना यश जिसका ऐसा पुरुष (आसा) मुख वा आसन से वर्त्तमान है और (परः) श्रेष्ठ हुए (मनीषया) बुद्धि से (तम्) उस (मन्द्रम्) आनन्द देनेवाले और (चित्रशोचिषम्) अद्भुत-प्रकाशयुक्त (नाकम्) दुःख से रहित को आप (मन्यसे) जानते हो उसका मैं आदर करता हूँ ॥२॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! आप सदा ही धर्मयुक्त यश को बढ़ानेवाले कर्म्म को करें जिससे अत्यन्त सुखको प्राप्त होवे ॥२॥

अस्य वासा उ अर्चिषा य आयुक्त तुजा गिरा ।
दिवो न यस्य रेतसा बृहच्छोचन्त्यर्चयः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् (यः) जो (असौ) यह (अस्य) इसकी (वै) निश्चय से (अर्चिषा) विद्या की दीप्ति और (गिरा) वाणी से (आयुक्त) युक्त होता (उ) और (यस्य) जिसके (रेतसा) पराक्रम से (दिवः) जैसे मनोहर प्रयोजन के (न) वैसे (अर्चयः) उत्तम सत्कार (बृहत्) बड़े (शोचन्ति) शोभित होते है वह आप दुःखों की (तुजा) हिंसा करो ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिन विद्वानों के सूर्य्य के प्रकाश के सदृश विद्या यशः और कीर्त्ति विलास को प्राप्त होते है वे ही बड़े विज्ञान का उत्पन्न करते है ॥३॥

अब अग्निदृष्टान्त से विद्याविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अस्य क्रत्वा विचेतसो दस्मस्य वसु रथ आ ।
अधा विश्वासु हव्योऽग्निर्विक्षु प्र शस्यते ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् जिसकी (विश्वासु) सम्पूर्ण (विक्षु) प्रजाओं मे (हव्यः) ग्रहण करने योग्य (अग्निः) अग्नि (प्र, शस्यते) प्रशसा को प्राप्त होता है (अधा) इसके अनन्तर (अस्य) इसकी (क्रत्वा) बुद्धि तथा (विचेतसः) जनाने और (दस्मस्य) दुःख के नाश करनेवाले की बुद्धि से (रथे) सुन्दर वाहन मे (वसु) द्रव्य (आ) प्रशसित होता है ॥४॥

भावार्थ—जैसे प्रजा मे अग्नि विराजता है वैसे ही विद्या और विनय से युक्त बुद्धिमान् पुरुष शोभित होते हैं ॥४॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

नू न इद्धि वार्यमासा सचन्त सूरयः ।
ऊर्जो नपादभिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥५॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (**सूरय**) विद्वान् जन (**आसा**) उपवेशन अर्थात् स्थिति से (**नः**) हम लोगो को और (**वार्यम्**) श्रेष्ठ पदार्थों मे उत्पन्न बिजुलीरूप अग्नि को (**सचन्त**) सम्बद्ध करते है वैसे (**नपात्**) नही गिरनेवाले आप (**नः**) हम लोगो के (**अभिष्टये**) अपेक्षित सुख के लिये (**ऊर्जः**) पराक्रमो को (**पाहि**) रक्षा कीजिये और (**पृत्सु**) सग्रामो मे हम लोगो की (**वृधे**) वृद्धि के लिए (**हि**) जिससे (**शग्धि**) समर्थ हूजिये और (**स्वस्तये**) सुख के लिये (**नु**) शीघ्र (**इत्**) ही (**उत**) निश्चय से (**एधि**) प्राप्त हूजिये ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य विद्वानो के अनुकरण को करे तो उत्तम गुणो की प्राप्ति, बल की वृद्धि और सुखपूर्वक विजय को करते हैं ॥५॥

इस सूक्त मे अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सत्रहवां सूक्त और नववां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्याष्टादशस्य सूक्तस्य द्वितो मुक्तवाहा आत्रेय ऋषि । अग्निर्देवता । १, ४ विराडनुष्टुप् । २ निचृदनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वरः । ३ भुरिगुष्णिक् छन्द. । ऋषभ स्वर । ५ भुरिग्बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥

अब पांच ऋचा वाले अठारहवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र मे अग्नि के सदृश अतिथि के विषय को कहते हैं—

प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः ।
विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**य**) जो (**अग्नि**) अग्नि के सदृश पवित्र (**पुरुप्रिय**) बहुतो से कामना किया वा सेवन किया गया (**मर्तेषु**) नाश होनेवाले कार्य्यों मे (**अमर्त्य**) स्वभाव से मरणधर्मरहित (**रण्यति**) रमता है (**विश्वानि**) सम्पूर्ण (**हव्या**) देने योग्यो की (**स्तवेत**) प्रशसा करे और जो (**प्रात.**) प्रात काल के आरम्भ से (**विश**) प्रजाओं को उपदेश देवें वह (**अतिथिः**) आदर करने योग्य यथार्थवक्ता विद्वान् सत्कार करने योग्य होता है ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो आत्मा का जानने वाला, सत्य का उपदेशक, विद्वानो का प्रिय, परमात्मा के सदृश सब के हित को चाहने वाला नित्य क्रीड़ा करता है वह ही सत्कार करने योग्य है ॥१॥

फिर अतिथिविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

द्विताय मृक्तवाहसे स्वस्य दक्षस्य मंहना ।
इन्दुं स धत्त आनुषक् स्तोता चित्ते अमर्त्य ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (**अमर्त्य**) अपने स्वरूप से नित्य जो (**स्तोता**) सत्य विद्या की प्रशसा करनेवाला (**आनुषक्**) अनुकूलता से (**इन्दुम्**) ऐश्वर्य को (**चित्**) ही (**ते**) तेरे लिए (**धत्ते**) धारण करता है (**सः**) वह (**द्विताय**) दो जन्मो से विद्या को प्राप्त (**मृक्तवाहसे**) शुद्ध विज्ञान को प्राप्त करानेवाले (**स्वस्य**) और अपने (**दक्षस्य**) बल के (**मंहना**) बड़प्पन के साथ वर्त्तमान अतिथि के लिये सुख देवें ॥२॥

भावार्थ—जो मनुष्य यथार्थवक्ता अतिथियो का सत्कार करते हैं वे सत्य विज्ञान को प्राप्त हो कर सर्वदा आनन्दित होते हैं ॥२॥

तं वो दीर्घायुशोचिषं गिरा हुवे मघोनाम् ।
अरिष्टो येषां रथो व्यश्वदावन्नीयते ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**येषाम्**) जिन अतिथियो और (**मघोनाम्**) बहुत धन से युक्त (**व**) आप लोगो का (**अरिष्ट**) नही हिंसा करने योग्य (**रथ**) वाहन (**वि, ईयते**) विशेषता से चलता है उनका मै (**हुवे**) आह्वान करता हूं और हे (**अश्वदावन्**) व्याप्ति करनेवाले विज्ञान आदि गुणो के दाता गृहस्थ आप के कल्याण के लिये (**तम्**) उस (**दीर्घायुशोचिषम्**) दीर्घ अर्थात् अधिक अवस्था पवित्र करनेवाली जिसकी ऐसे अतिथि विद्वान् का मै (**गिरा**) वाणी से आह्वान करता हूं ॥३॥

भावार्थ जो अहिंसादि धर्म से युक्त मनुष्य अतिकालपर्य्यन्त जीनेवाले धार्मिक अतिथियो की सेवा करते है वे भी दीर्घायु और लक्ष्मीवान् होकर आनन्दित होते है ॥३॥

चित्रा वा येषु दीधितिरासन्नुक्था पान्ति ये ।
स्तीर्णं बर्हिः स्वर्णरे श्रवांसि दधिरे परि ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**येषु**) जिन अतिथियों मे (**चित्रा**) विचित्र (**दीधितिः**) प्रकाशमान विद्या है और (**आसन्**) आसन वा मुख मे (**उक्था**) प्रशंसा करने योग्य कर्म हैं और (**ये, वा**) अथवा जो (**स्तीर्णम्**) आच्छादित अर्थात् अन्तःकरण मे व्याप्त (**बर्हि**) अन्तरिक्ष के सदृश विज्ञान की (**स्वर्णरे**) सुख से युक्त मनुष्य मे (**पान्ति**) रक्षा करते है और (**श्रवांसि**) अन्नादिकों को (**परि**) सब ओर से (**दधिरे**) धारण करें वे ही श्रेष्ठ अतिथि होते हैं ॥४॥

भावार्थ—जो विद्या के उत्तम गुणो से पूर्ण, सब के हित चाहने वाले, पुरुषार्थी अर्थात् उत्साही और पक्षपात से रहित अतिथिजन उपदेश से सब की रक्षा करते हैं वे ससार के कल्याण करनेवाले होते हैं ॥४॥

ये मे पञ्चाशतं ददुरश्वानां सधस्तुति ।
द्युमदग्ने महि श्रवो बृहत्कृधि मघोनां नृवदमृत नृणाम् ॥५॥१०॥

पदार्थ—(**ये**) जो अतिथि जन (**मे**) मेरे लिए (**अश्वानाम्**) वेग से युक्त अग्नि आदि पदार्थों के (**सधस्तुति**) साथ प्रशसित (**द्युमत्**) यथार्थ ज्ञान के प्रकाश से युक्त (**पञ्चाशतम्**) पञ्चाशतसङ्ख्यायुक्त विज्ञान को (**ददुः**) देनेवाले हो उनके साथ हे (**अग्ने**) विद्वन् आप एक साथ प्रशसित और यथार्थ ज्ञान के प्रकाश से युक्त (**महि**) बड़े (**बृहत**) बहुत (**श्रव.**) अन्न वा श्रवण को (**कृधि**) करिये और हे (**अमृत**) मरणधर्म्म से रहित उन (**मघोनाम्**) बहुत धनवान् (**नृणाम्**) मनुष्यो के (**नृवत्**) मनुष्यो के तुल्य उन्नति का विधान करो ॥५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अतिथिजन पदार्थविद्या को देवें उनका सत्कार यथायोग्य करो ॥५॥

इस सूक्त मे अग्निवत् अतिथि के गुणवर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

यह अठारहवां सूक्त और दशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्यैकोनविंशतितमस्य सूक्तस्य वव्रिरात्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता । १, गायत्री । २ निचृद्गायत्री छन्दः । षड्ज स्वरः । ३ अनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर. । ४ भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभ स्वर । ५ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले उन्नीसवें सूक्त का आरम्भ है इसमें विद्वानों को सिद्ध करने योग्य उपदेश विषय को कहते हैं—

अभ्यवस्थाः प्र जायन्ते प्र वव्रेर्वव्रिश्चिकेत ।
उपस्थे मातुर्वि चष्टे ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (**वव्रेः**) स्वीकार करनेवाले की जो (**अवस्थाः**) विरुद्ध वर्त्ताव को प्राप्त होते हैं जिनमे ऐसी वर्त्तमान दशायें (**प्र, जायन्ते**) उत्पन्न होती हैं उनका (**वव्रि**) स्वीकार करने वाला (**अभि**) सन्मुख (**प्र, चिकेत**) विशेष करके जाने और (**मातु**) माता के (**उपस्थे**) समीप मे (**वि चष्टे**) प्रसिद्ध होता है इनको आप भी जानिये ॥ १ ॥

भावार्थ—ऐसा नही कोई भी प्राणी है कि जिस की उत्तम मध्यम और अधम दशायें न होवें और जो माता पिता और आचार्य से शिक्षित है वही अपनी दशाओं को सुधार सकता है ॥ १ ॥

जुहुरे वि चितयन्तोऽनिमिषं नृम्णं पान्ति ।
आ दृळ्हां पुरं विविशुः ॥२॥

पदार्थ—जो (**अनिमिषम्**) दिन रात्रि (**चितयन्त**) बोध कराते हुए (**वि**) विरुद्ध (**जुहुरे**) कुटिलता करते और (**नृम्णम्**) धन की (**पान्ति**) रक्षा करते हैं वे (**दृळ्हाम्**) दृढ (**पुरम्**) नगर को (**आ, विविशु**) सब प्रकार प्राप्त होते है ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मरण स्वभाव वाले और सत्य के बोधक प्रतिक्षण पुरुषार्थ करते हैं वे राज्य और ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

आ श्वैत्रेयस्य जन्तवो द्युमद्वर्धन्त कृष्टयः ।
निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एना मध्वा न वाजयुः ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जिस (**श्वैत्रेयस्य**) अन्तरिक्ष मे स्थित दिशाओं में उत्पन्न जल के मध्य में (**जन्तवः**) जीव और (**कृष्टय.**) मनुष्य (**वर्धन्त**) वृद्धि को प्राप्त होते है (**एना**) इस (**मध्वा**) मधुर जल से (**वाजयुः**) अन्न की कामना करते हुए के (**न**) सदृश (**बृहदुक्थः**) अत्यन्त प्रशंसित (**निष्कग्रीवः**) एक निष्क का जिसमे चार सुवर्ण प्रमाण से युक्त आभूषण जिसकी ग्रीवा में ऐसा पुरुष (**द्युमत्**) प्रकाश से युक्त सुख को (**आ**) प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! इस संसार में जितने पदार्थ है वे सब जल ही से होते हैं अर्थात् सब का बीज जल ही है ऐसा जान कर सब सुखो को प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

प्रियं दुग्धं न काम्यमजामि जाम्योः सचा ।

घर्मो न वाजजठरोऽदब्धः शश्वतो दभः ॥४॥

पदार्थ—(वाजजठरः) क्षुधा का वेग उदर मे जिससे हो (अदब्धः) जो नही हिसा करने योग्य (शश्वत.) निरन्तर व्याप्त (दभ) और जिस से नाश करता है उस (घर्म.) प्रताप के (न) सदृश वा (सचा) प्रिय (दुग्धम्) दुग्ध के (न) सदृश (सचा) सम्बन्ध से (जाम्यो) खाने योग्य अन्न को देने वाले प्रकाश और पृथिवी के (काम्यम्) कामना करने योग्य पदार्थ को (अजामि) प्राप्त होता हूँ इस से मेरे साथ आप लोग भी इस को करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है—जो सूर्य्य के प्रकाश के सदृश विद्या से व्याप्त दुग्ध के सदृश प्रिय वचन वाले और धर्म की कामना करने हुए जन हैं वे पृथ्वी के सदृश सबके रक्षक होते हैं ॥ ४ ॥

क्रीळन्नो रश्म आ भुवः सं भस्मना वायुना वेविदानः ।

ता अस्य सन्धृषजो न तिग्माः सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः ॥५॥११॥

पदार्थ—हे (रश्मे) किरणों के सदृश वर्त्तमान विद्वन् जैसे बिजुलीरूप अग्नि (भस्मना) भस्म और (वायुना) पवन से (वेविदान.) जनाता अर्थात् अपने को प्रकट करता हुआ (ताः) उन (अस्य) इसकी (धृषज) धृष्टता से उत्पन्न हुओ के (न) सदृश (तिग्मा.) तीव्र (सुसंशिताः) उत्तम प्रकार प्रशसित (वक्ष्यः) ले चलने वाली और (वक्षणेस्थाः) वाहन मे स्थिर गैमी लपटो को धारण करता (सन्) हुआ सुख की (सम्) सभावना करता है वैसे (क्रीळन्) क्रीडा करते हुए आप (न) हम लोगो के सुखकारी (आ, भुवः) हूजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारहै । हे विद्वानो ! जैसे सूर्य की किरणें सर्वत्र फैली हुई सब को सुख देती हैं वैसे ही सब स्थानो मे भ्रमण तथा उपदेश करते हुए आप सब को आनन्द दीजिये ॥ ५ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के सिद्ध करने योग्य उपदेश विषय का वर्णन
करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के
साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह उन्नीसवां सूक्त और ग्यारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ चतुर्ऋचस्य विंशतितमस्य सूक्तस्य प्रयस्वन्त आत्रेय
ऋषय. । अग्निर्देवता । १, ३ विराडनुष्टुप् ।
२ निचृदनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर. ।
४ पङ्क्तिश्छन्द. । पञ्चमःस्वरः ॥

अब चार ऋचा वाले बीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से
अग्निपदवाच्य विद्वान् के गुणों का वर्णन करते हैं—

यमग्ने वाजसातम त्वं चिन्मन्यसे रयिम् ।

तं नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥१॥

पदार्थ—हे (वाजसातम) अतिशय विज्ञान आदि पदार्थों के विभाजक (अग्ने) विद्वन् (त्वम्) आप (गीर्भिः) उत्तम प्रकार उपदेशरूप हुई वाणियों से (यम्) जिस (देवत्रा) विद्वानो मे (श्रवाय्यम्) सुनने योग्य (युजम्) योग करने वाले (रयिम्) धन का अपने लिए (मन्यसे) स्वीकार करते हो (तम्) उस का (चित्) भी (न) हम लोगो को (पनया) व्यवहार से प्राप्त कराइये ॥ १ ॥

भावार्थ—यही धर्मयुक्त व्यवहार है कि जैसी इच्छा अपने लिए होती है वैसी ही दूसरे के लिए करें और जैसे प्राणी अपने लिए दुःख की नहीं इच्छा करते हैं और सुख की प्रार्थना करते है वैसे ही अन्य के लिए भी उनको वर्त्ताव करना चाहिये ॥१ ।

ये अग्ने नेरयन्ति ते वृद्धा उग्रस्य शवसः ।

अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिरे ॥२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् (ये) जो (वृद्धाः) विद्या और अवस्था से वृद्ध जन (ते) आप के (उग्रस्य) उत्तम (शवस.) बल के सम्बन्ध में (सश्चिरे) गमन करने वाले है और (द्वेषः) द्वेष करनेवाले (अप) दूर जाते हैं (अन्यव्रतस्य) धर्म से विरुद्ध आचरण वाले के सम्बन्ध में (ह्वरः) कुटिल आचरण वाले (अप) अलग जाते है वे दुःख की (न) नही (ईरयन्ति) प्रेरणा करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—वे ही वृद्ध हैं जो सत्य बोलते और सब का उपकार करके अपने सदृश सुख देते और कभी धर्म्म से विरुद्ध आचरण नही करते है ॥ २ ॥

होतारं त्वा वृणीमहेऽग्ने दक्षस्य साधनम् ।

यज्ञेषु पूर्व्यं गिरा प्रयस्वन्तो हवामहे ॥३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् जैसे (प्रयस्वन्त.) प्रयत्न करते हुए लोग (गिरा) वाणी से (यज्ञेषु) यज्ञो मे (दक्षस्य) बल के (पूर्व्यम्) प्राचीन यथार्थवक्ता पुरुषो से किये गये (साधनम्) साधन को (हवामहे) देते और (होतारम्) दाता अग्नि का (वृणीमहे) स्वीकार करते हैं वैसे (त्वा) आपका स्वीकार करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है—जैसे मनुष्य परोपकारी का प्रीति से बहुत आदर करते है वैसे ही विद्वान् जनो मे सब उत्तम कर्म्म किये जाते है ॥ ३ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं —

इत्था यथा त ऊतये सहसावन्दिवेदिवे ।

राय ऋताय सुक्रतो गोभिः ष्याम सधमादो वीरैः स्याम सधमादः ॥४॥१२॥

पदार्थ—हे (सहसावन्) बल से तुल्य (सुक्रतो) उत्तम बुद्धि से युक्त (यथा) जैसे (ते) आपके (ऊतये) रक्षण आदि के लिय (दिवेदिवे) प्रतिदिन (ऋताय) धर्मयुक्त व्यवहार से प्राप्त (राये) धन के लिये हम लोग (गोभिः) वाणियो से (सधमाद) साथ स्थानवाले (स्याम) होवें तथा (वीरैः) शूरवीरो के साथ (सधमाद) साथ स्थानवाले (स्याम) होवे (इत्था) इस कारण से आप हूजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो साहस से पुरुषार्थ करते हुए वीर जनो की सेना को ग्रहण करके ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं वे ही सुखी होते है ॥ ४ ॥

इस सूक्त मे अग्नि के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व
सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह बीसवां सूक्त और बारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ चतुर्ऋचस्यैकाधिकविंशतितमस्य सूक्तस्य सस आत्रेय
ऋषि । अग्निर्देवता । १ अनुष्टुप् छन्द । गान्धार.
स्वरः । २ भुरिगुष्णिक् । ३ स्वराडुष्णिक्
छन्द. । ऋषभ. स्वरः । ४ निचृद्बृहती
छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब चार ऋचावाले इक्कीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से
अग्नि विषय को कहते हैं—

मनुष्वत्त्वा नि धीमहि मनुष्वत्समिधीमहि ।

अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान्देवयते यज ॥१॥

पदार्थ—हे (अङ्गिर) प्राणो के सदृश प्रिय (अग्ने) विद्वन् जैसे हम लोग कार्य्य की सिद्धि के लिये अग्नि को (मनुष्वत्) मनुष्य को जैसे वैसे (नि, धीमहि) निरन्तर धारणवाले होवें और (देवयते) श्रेष्ठ गुणो की कामना करते हुए के लिए (देवान्) श्रेष्ठ विद्यायुक्त विद्वानो को (मनुष्वत्) मनुष्यो के समान (सम्, इधीमहि) प्रकाशित करें वैसे (त्वा) आपको उत्तम कर्म्म मे स्थिति करें और आप (मनुष्वत्) मनुष्य के तुल्य (यज) मिलिये अर्थात् कार्य्यों को प्राप्त हूजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो मनुष्य विचारशील होकर श्रेष्ठ गुणो की कामना करते है वे अग्नि आदि पदार्थों की विद्या को जानें ॥ १ ॥

त्वं हि मानुषे जनेऽग्ने सुप्रीत इध्यसे ।

स्रुचस्त्वा यन्त्यानुषक्सुजात सर्पिरासुते ॥२॥

पदार्थ—हे (सुजात) उत्तम प्रकार उत्पन्न (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रताप से वर्त्तमान जैसे अग्नि (सर्पिरासुते) घृत से सब ओर से प्रकाशित हुए से प्रकाशित किया जाता है वैसे (हि) ही (त्वम्) आप (मानुषे, जने) प्रसिद्ध मनुष्य में (सुप्रीतः) उत्तम प्रकार प्रसन्न हुए (इध्यसे) प्रकाशित होते हो और जैसे (त्वा) आप को (स्रुच) यज्ञ के साधन पात्र (आनुषक्) अनुकूलता से (यन्ति) प्राप्त होते हैं वैसे ही आप सब के प्रति अनुकूल हूजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! आप लोग जैसे अग्नि इन्धन और घृत आदिको का प्राप्त होकर वृद्धि को प्राप्त होता है वैसे ही विद्या और उत्तम गुणो को प्राप्त होकर निरन्तर वृद्धि का प्राप्त हूजिये ॥ २ ॥

अब शिल्पविद्यावेत्ता विद्वान् के विषय को कहते हैं—

त्वां विश्वे सजोषसो देवासो दूतमक्रत ।

सपर्यन्तस्त्वा कवे यज्ञेषु देवमीळते ॥३॥

पदार्थ—हे (**कवे**) विद्वन् ! जैसे (**विश्वे**) सम्पूर्ण (**सजोषस**) तुल्य प्रीति के सेवन करनेवाले (**देवास.**) विद्वान् जन (**देवम्**) श्रेष्ठ गुणवाले (**दूतम्**) दूत के सदृश वर्त्तमान अग्नि को (**अक्रत**) करते है और (**सपर्य्यन्त**) सेवा करते हुए जन (**यज्ञेषु**) सत्सङ्गो मे श्रेष्ठ गुणवाले विद्वान् की (**ईळते**) स्तुति करते हैं वैसे (**त्वाम्**) आपकी हम लोग सेवा करे और (**त्वा**) आपका सत्कार करे ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो जन अग्नि से दूतकर्म अर्थात् नौकर के सदृश काम कराते हैं वे सब स्थानो मे प्रशसित ऐश्वर्य वाले होते हैं ॥ ३ ॥

फिर विद्वद्विषय को कहते हैं—

देवं वो देवयज्ययाग्निमीळीत मर्त्यः ।

समिद्धः शुक्र दीदिह्यृतस्य योनिमासदः ससस्य योनिमासदः ॥४॥१३

पदार्थ—हे विद्वानो (**व**) आप लोगो के (**देवयज्यया**) विद्वानो के मेल मे (**मर्त्य**) मनुष्य (**देवम्**) प्रकाशित (**अग्निम्**) अग्नि की (**ईळीत**) प्रशसा करे । हे (**शुक्र**) सामर्थ्यवाले (**समिद्ध**) उत्तम गुणो से प्रकाशित आप (**दीदिहि**) प्रकाश कराओ और (**ऋतस्य**) सत्य परमाणु आदि के (**योनिम्**) कारण को (**आ, असद**) सब प्रकार जानिये और (**ससस्य**) कार्य्य के (**योनिम्**) कारण को (**आ, असद**) सब प्रकार जानिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानो के सङ्ग से कार्य्य और कारणस्वरूप सृष्टि अर्थात् सत्त्व, रज और तमोगुण का साम्यावस्थारूप प्रधान को जान के कार्य को सिद्ध करते हैं वे सृष्टि के क्रम को जान के दुःख को कभी नही प्राप्त होते है ॥ ४ ॥

इस सूक्त मे अग्नि और विद्वानो के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह इक्कीसवां सूक्त और त्रयोदशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ चतुर्ऋचस्य द्वाविंशतितमस्य सूक्तस्य विश्वसामात्रेय ऋषि । अग्निर्देवता । १ विराडनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर । २, ३ स्वराडुष्णिक छन्द । ऋषभ स्वर । ४ बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥

अब चार ऋचावाले बाईसवें सूक्त का आरम्भ है इस मे अग्निविषय को कहते हैं—

प्र विश्वसामन्नत्रिवदर्चा पावकशोचिषे ।

यो अध्वरेष्वीड्यो होता मन्द्रतमो विशि ॥१॥

पदार्थ—हे (**विश्वसामन्**) सम्पूर्ण सामोवाले (**य**) जो (**अध्वरेषु**) यज्ञो मे (**ईड्य**) प्रशसा करने योग्य (**होता**) दाता (**विशि**) प्रजा मे (**मन्द्रतम**) अतिशय आनन्द युक्त होवे उस (**पावकशोचिषे**) अग्नि के प्रकाश के सदृश प्रकाशवाले पुरुष के लिए (**अत्रिवत**) व्यापक विद्यावालो के सदृश (**प्र, अर्चा**) सत्कार कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि धार्मिक जनो का ही सत्कार करे अन्य जनो का नही ॥ १ ॥

न्यग्निं जातवेदसं दधाता देवमृत्विजम् ।

प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वानो जो (**देवव्यचस्तम**) पृथिव्यादिको का धारण करने और अति तोडनवाला (**यज्ञ**) मिलने योग्य (**आनुषक्**) अनुकूलता से (**अद्य**) आज हम लोगो को (**एतु**) प्राप्त हो उस (**ऋत्विजम्**) ऋतुओ मे यज्ञ करनेवाले के सदृश (**जातवेदसम्**) उत्पन्न हुओ मे विद्यमान (**देवम्**) श्रेष्ठ गुण, कर्म और स्वभाववाले (**अग्निम्**) अग्नि को (**प्र, नि, दधाता**) उत्तमता से निरन्तर धारण करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे यज्ञ करनेवाले यज्ञ को पूर्ण करते हैं वैसे ही अग्नि शिल्पविद्या के कृत्य की सिद्धि को पूर्ण करता है ॥२॥

चिकित्विन्मनसन्त्वा देवं मर्तास ऊतये ।

वरेण्यस्य तेऽवस इयानासो अमन्महि ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् (**वरेण्यस्य**) स्वीकार करने और (**अवस**) कामना करने योग्य (**ते**) आप के सङ्ग से (**इयानास**) प्राप्त होते हुए (**मर्तास**) मनुष्य हम लोग (**ऊतये**) रक्षा आदि के लिए (**चिकित्विन्मनसम्**) विज्ञानयुक्त पुरुषो के मन के सदृश मन से युक्त (**देवम्**) विद्वान् (**त्वा**) आप को अग्नि के सदृश (**अमन्महि**) विशेष करके जानें ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि सदा ही विद्वानो के सग से पदार्थविद्या का खोज करें ॥ ३ ॥

अग्ने चिकिद्ध्यस्य न इदं वचः सहस्य ।

तं त्वा सुशिप्र दम्पते स्तोमैर्वर्धन्त्यत्रयो गीर्भिः शुम्भन्त्यत्रयः ॥४॥१४

पदार्थ—हे (**सहस्य**) बल मे श्रेष्ठ (**सुशिप्र**) सुन्दर ठुड्डी और नासिका वाले (**दम्पते**) स्त्री और पुरुष (**अग्ने**) विद्वन् आप जैसे (**अत्रयः**) तीन प्रकार के दुःखो से रहित जन (**स्तोमै**) प्रशसित व्यवहारो से (**वर्धन्ति**) वृद्धि को प्राप्त होते हैं और जैसे (**अत्रय**) काम, क्रोध, और लोभ इन तीन दोषो से रहित जन (**गीर्भि.**) वाणियो से (**शुम्भन्ति**) पवित्र करते हैं वैसे (**नः**) हम लोगो के (**इदम्**) इस (**वच**) वचन को और (**अस्य**) इस के वचन को (**चिकिद्धि**) जानिये (**तम्**) उन (**त्वा**) आपका हम लोग सत्कार करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—जैसे पुरुषार्थी मनुष्य सब की वृद्धि करते हैं और उपदेशक जन सब जनो को पवित्र करते हैं वैसे ही सब मनुष्य आचरण करें ॥ ४ ॥

इस सूक्त मे अग्नि के गुण वर्णन करने इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह बाईसवां सूक्त और चौदहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ चतुर्ऋचस्य त्रयोविंशतितमस्य सूक्तस्य द्युम्नो विश्वचर्षणिर्ऋषि. । अग्निर्देवता । १, २ निचृदनुष्टुप्छन्द । ३ विराडनुष्टुप्छन्द । धैवत स्वर. । ४ निचृत्पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम. स्वर. ॥

अब चार ऋचावाले तेईसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मंत्र से अग्निपदवाच्य वीर के गुणों का उपदेश करते हैं—

अग्ने सहन्तमा भर द्युम्नस्य प्रासहा रयिम् ।

विश्वा यश्चर्षणीरभ्या३सा वाजेषु सासहत् ॥१॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) वीरपुरुष (**य.**) जो (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**प्रासहा**) अत्यन्त शत्रुओ के बलो को सहनेवाली (**चर्षणी**) पराक्रम से प्रकाशमान मनुष्यो की सेनाओ को (**वाजेषु**) सग्रामो मे (**सासहत्**) अत्यन्त सहे और (**आसा**) मुख से (**अभि**) सब प्रकार से उपदेश देवे उस शत्रुओ के बल का (**सहन्तम्**) सहते हुए (**द्युम्नस्य**) धन वा यश के सम्बन्ध मे (**रयिम्**) धन को आप (**आ, भर**) सब प्रकार धारण करो ॥ १ ॥

भावार्थ - जिस की विजय की इच्छा होवे वह शूरवीरो की सेना उत्तम प्रकार शिक्षा की गई रक्खे और वीररस के उपदेश से उत्साह दिलाकर शत्रुओ के साथ लडावे ॥१॥

तमग्ने पृतनाषहं रयिं सहस्व आ भर ।

त्वं हि सत्यो अद्भुतो दाता वाजस्य गोमतः ॥२॥

पदार्थ—हे (**सहस्व**) बहुत बल से युक्त (**अग्ने**) राजन् जो (**हि**) निश्चय से (**सत्य**) श्रेष्ठो मे श्रेष्ठ (**अद्भुत**) आश्चर्य्ययुक्त गुण, कर्म और स्वभाववाला जन (**गोमत**) बहुत धनु और पृथिव्यादिको से युक्त (**वाजस्य**) सुख और धन आदि का (**दाता**) देनेवाला होवे (**तम्**) उस (**पृतनाषहम्**) सेना सहनेवाले को और (**रयिम्**) धन को (**त्वम्**) आप (**आ, भर**) सब ओर से धारण कीजिए ॥२॥

भावार्थ—जो राजा सत्यवादी विद्वानो और विचित्रविद्यायुक्त दृढ और उदार अर्थात् उत्तम आशययुक्त शूरवीरो का धारण पोषण करे वही विजय और लक्ष्मी को प्राप्त होवे ॥ २ ॥

फिर वीरगुणों को अगले मन्त्रो मे कहते हैं—

विश्वे हि त्वा सजोषसो जनासो वृक्तबर्हिषः ।

होतारं सद्मसु प्रियं व्यन्ति वार्या पुरु ॥३॥

पदार्थ—हे राजन् जो (**विश्वे**) सम्पूर्ण (**सजोषस**) तुल्य प्रीति के सेवने वाले (**जनास**) प्रसिद्ध उत्तम आचरणो से युक्त (**वृक्तबर्हिष**) अग्निहोत्र करने वाले और यज्ञ करनेवाले के सदृश सम्पूर्ण विद्याओ मे कुशल जन (**हि**) ही (**सद्मसु**) राजगृहो अर्थात् राजदर्बारो मे (**होतारम्**) दाता और (**प्रियम्**) सुन्दर (**त्वा**) आप का आश्रय करते है वे (**पुरु**) बहुत (**वार्य्या**) स्वीकार करने योग्य धन आदिको को (**व्यन्ति**) प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जो राज्य की उन्नति में प्रीति करनेवाले और धर्म्मिष्ठ भृत्य आप को प्राप्त होवें उन सबका सत्कार करके निरन्तर रक्षा करो ॥ ३ ॥

स हि ष्मा विश्वचर्षणिरभिमाति सहो दधे ।

अग्न एषु क्षयेष्वा रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि ॥४॥१५

पदार्थ—हे (**शुक्र**) सामर्थ्ययुक्त (**अग्ने**) अग्नि के सदृश वर्त्तमान जो (**विश्वचर्षणि**) सपूर्ण विद्याओ का प्रकाश (**एषु**) इन (**क्षयेषु**) निवासस्थानों

में (अभिमाति) अभिमान जिससे हो उस (सह) बल को (दधे) धारण करता (सः, हि) वही (त्वा) निश्चय से जीतनेवाला होता है इसमें आप (नः) हम लोगों के लिए (रेवत्) प्रशस्त धन से युक्त पदार्थ को (दीदिहि) दीजिए और हे (पावक) पवित्र, पवित्राचरण से हम लोगों के लिए (द्युमत्) प्रकाशयुक्त को (आ, दीदिहि) प्रकाश कीजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पूर्ण शरीर और आत्मा के बल को धारण करते वे सब के लिये सुख दे सकते हैं ॥ ४ ॥

इस सूक्त में अग्नि के वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तेईसवां सूक्त और पन्द्रहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ चतुर्ऋचस्य चतुर्विंशतितमस्य सूक्तस्य बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च गोपायना लौपायना वा ऋषयः । अग्निर्देवता । १, २ पूर्वार्द्धस्य साम्नी बृहत्युत्तरार्द्धस्य भुरिग्बृहती । ३ । ४ पूर्वार्द्धस्यो-त्तरार्द्धस्य भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब चार ऋचावाले चौबीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्निपदवाच्य राजविषय को कहते हैं—

अग्ने॒ त्वं नो॒ अन्त॑म उ॒त त्रा॒ता शि॒वो भ॑वा वरू॒थ्य॑: ।

वसु॑र॒ग्निर्वसु॑श्रवा॒ अच्छा॑ नक्षि द्यु॒मत्त॑मं र॒यिं दा॑: ॥१॥२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) राजन् (त्वम्) आप (नः) हम लोगों के हम लोगों को वा हम लोगों के लिये (अन्तमः) समीप में वर्त्तमान (शिवः) मङ्गलकारी (वरूथ्यः) उत्तम गृहों में उत्पन्न (वसुः) बसाने वाले (वसुश्रवाः) धन और धान्य से युक्त (अग्निः) अग्नि के सदृश मङ्गलकारी (उत) और (त्राता) रक्षक (भव) हूजिये और जिस (द्युमत्तमम्) अत्यन्त प्रकाशयुक्त (रयिम्) धन को आप (अच्छ) उत्तम प्रकार (नक्षि) व्याप्त हूजिये और उसको हम लोगों के लिये (दाः) दीजिये ॥ १ ॥ २ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जैसे परमात्मा सब में अभिव्याप्त सबका रक्षक और सबके लिये मङ्गलदाता, सब पदार्थों का दाता और सुखकारी है वैसे ही राजा को होना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

अब अग्निपदवाच्य विद्वान् के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स नो॑ बोधि श्रु॒धी हव॑मुरु॒ष्या णो॑ अघाय॒तः स॑मस्मात् ।

तं त्वा॑ शोचिष्ठ दीदिवः सु॒म्नाय॑ नू॒नमी॑महे॒ सखि॑भ्यः ॥३॥४॥१६॥

पदार्थ—हे (शोचिष्ठ) अत्यन्त शुद्ध करने और (दीदिवः) सत्य के जनाने वाले अग्नि के सदृश तेजस्विजन (सः) वह आप (नः) हम लोगों को (बोधि) बोध दीजिए और (नः) हम लोगों के (हवम्) पढ़े हुए विषय को (श्रुधी) सुनिये (समस्मात्) सब (अघायतः) आत्मा से पाप के आचरण करते हुए से हम लोगों की (उरुष्य) रक्षा कीजिये (तम्) उन (त्वा) आप को (सखिभ्यः) मित्रों से (सुम्नाय) सुख के लिए हम लोग (नूनम्) निश्चित (ईमहे) याचना करते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

भावार्थ—सब प्रजा और राजजनों को चाहिए कि राजा के प्रति यह कहें कि आप सब अपराधों से स्वयं पृथक् होके और हम लोगों की रक्षा करके विद्या का प्रचार और धार्मिक मित्रों के लिए सुख की वृद्धि करके दुष्टों को निरन्तर दण्ड दीजिए ॥ ३ ॥ ४ ॥

इस सूक्त में अग्निपदवाच्य ईश्वर अर्थात् राजा और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह चौबीसवां सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ नवर्चस्य पञ्चविंशतितमस्य सूक्तस्य वसूयव आत्रेया ऋषयः । अग्निर्देवता । १ । ८ निचृदनुष्टुप् । २ । ५ । ६ । ९ अनुष्टुप् । ३ । ७ विराडनुष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब नव ऋचावाले पच्चीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्निविषय को कहते हैं—

अच्छा॑ वो अ॒ग्निमव॑से दे॒वं गा॑सि॒ स नो॒ वसु॑: ।

रास॑त्पु॒त्र ऋ॑षू॒णामृ॒तावा॑ पर्षति द्वि॒ष: ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जिस (देवम्) प्रकाशमान (अग्निम्) अग्नि को (वः) आप लोगों के (अवसे) रक्षण आदि के लिए (अच्छ) उत्तम प्रकार (गासि) प्रशंसा करते हो (सः) वह (वसुः) द्रव्यदाता (ऋषूणाम्) वेद-मन्त्रार्थ जाननेवालों के (ऋतावा) सत्य का विभाग करनेवाला (पुत्रः) सन्तानरूप (द्विषः) शत्रुओं के (पर्षति) पार जाता है अर्थात् उनको जीतता है वैसे ही (नः) हम लोगों के लिए (रासत्) देता है अर्थात् विजय दिलाता है ॥ १ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वानों का श्रेष्ठ पुत्र विद्वान् होकर तथा लोभ आदि दोषों का त्याग करके पितृ आदिकों को सुख देता है वैसे ही अग्नि उत्तम प्रकार सिद्ध किया गया सबको सुख देता है ॥ १ ॥

अब अग्निदृष्टान्त से राजविषय को कहते हैं—

स हि स॒त्यो यं पूर्वे॑ चि॒द्दे॒वास॑श्चि॒द्यमी॑धि॒रे ।

होता॑रं म॒न्द्रजि॑ह्व॒मित्सु॑दी॒तिभि॑र्वि॒भाव॑सुम् ॥२॥

पदार्थ—(पूर्वे) प्राचीन (देवासः) विद्वान् जन (यम्) जिस (होतारम्) देने वाले (मन्द्रजिह्वम्) प्रशंसनीय जिह्वा से युक्त (सुदीतिभिः) उत्तम प्रकाशों के सहित वर्त्तमान को (चित्) और (विभावसुम्) प्रकाशित धन से युक्त अग्नि के सदृश वर्त्तमान (यम्) जिस राजा को (चित्) निश्चय से (इत्) ही (ईधिरे) प्रकाशित करते हैं (सः, हि) वही (सत्यः) सज्जनों में श्रेष्ठ पुरुष राज्य करने को योग्य है ॥ २ ॥

भावार्थ—जिस राजा का यथार्थवक्ता जन सत्कार करें वही निरन्तर राज्य की रक्षा और वृद्धि करने को योग्य हो ॥ २ ॥

अब अग्निसादृश्य से विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

स नो॑ धी॒ती वरि॑ष्ठया॒ श्रेष्ठ॑या च सुम॒त्या ।

अग्ने॑ रा॒यो दि॑दीहि नः सुवृ॒क्तिभि॑र्वरेण्य ॥३॥

पदार्थ—हे (वरेण्य) स्वीकार करने योग्य (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान (सः) वह आप (धीती) धारणावाली (वरिष्ठया) अत्यन्त स्वीकार करने योग्य (श्रेष्ठया) अति उत्तम (सुमत्या) सुन्दर बुद्धि से (नः) हम लोगों के लिए (रायः) धनों को (दिदीहि) दीजिये (सुवृक्तिभिः) उत्तम वर्जनवाली क्रियाओं से (च) भी (नः) हम लोगों की निरन्तर वृद्धि कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो उत्तम बुद्धि की इच्छा करते वा उत्तम बुद्धि को अन्य जनों के लिए देते हैं वे ही सब लोगों से सत्कार करने योग्य हैं ॥ ३ ॥

अ॒ग्निर्दे॒वेषु॑ राजत्य॒ग्निर्मर्ते॑ष्वावि॒शन् ।

अ॒ग्निर्नो॑ हव्य॒वाह॑नो॒ऽग्निं धी॒भिः स॑पर्यत ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (अग्निः) अग्नि के सदृश वर्त्तमान तेजस्वी विद्वान् (देवेषु) विद्वानों वा पृथिवी आदिकों में और जो (अग्निः) बिजुलीरूप अग्नि (मर्त्तेषु) मरणधर्म्म वाले मनुष्य आदिकों में और जो (हव्यवाहनः) हवन करने योग्य पदार्थों को धारण करनेवाला (अग्निः) सूर्य्यादिरूप अग्नि (नः) हम लोगों में (आविशन्) प्रविष्ट हुआ (राजति) प्रकाशित होता है उस (अग्निम्) अग्नि को (धीभिः) बुद्धियों से आप लोग (सपर्यत) सेवो अर्थात् कार्य्य में लाओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जो अनेक प्रकार का अग्नि आप लोगों से जाना जाय अर्थात् अनेक प्रकार के अग्नि का आप लोगों को परिज्ञान हो तो क्या-क्या सुख न पाया जाय ॥ ४ ॥

अ॒ग्निस्तु॑विश्रवस्तमं तु॒विब्र॑ह्माणमुत्त॒मम् ।

अ॒तूर्तं॑ श्राव॒यत्प॑तिं पु॒त्रं द॑दाति दा॒शुषे॑ ॥५॥१७॥

पदार्थ—जो (अग्निः) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् (दाशुषे) दानशील जन के लिए (तुविश्रवस्तमम्) अत्यन्त बहुत अन्न और श्रवण से युक्त और (तुविब्रह्माणम्) चार वेद के जाननेवाले बहुत विद्वानों के युक्त (उत्तमम्) अत्यन्त श्रेष्ठ (अतूर्तम्) नहीं हिंसित और (श्रावयत्पतिम्) सुनाते हुए पालन करनेवाले से युक्त (पुत्रम्) सन्तान को (ददाति) देता है वही अत्यन्त आदर करने योग्य होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! उन लोगों का ही आप लोग सत्कार करो जो सबको विद्वान् और धार्मिक करते हैं ॥ ५ ॥

अ॒ग्निर्द॑दाति॒ सत्प॑तिं सा॒साह॒ यो यु॒धा नृभि॑: ।

अ॒ग्निरत्यं॑ रघु॒ष्यदं॑ जे॒तार॒मप॑राजितम् ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! वह (अग्निः) परमेश्वर वा विद्वान् (सत्पतिम्) श्रेष्ठों के पालन करनेवाले को (ददाति) देता है (यः) जो (अग्निः) अग्नि (युधा) युद्ध करती हुई सेना और (नृभिः) नायक अर्थात् अग्रणी मनुष्यों से (रघुष्यदम्) लघुगमनवान् (जेतारम्) जीतने और (अपराजितम्) नहीं हारनेवाले राजा को (अत्यम्) मार्ग को व्याप्त होने घोड़े को जैसे वैसे (सासाह) सहता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जैसे ईश्वर धर्मिष्ठ जनो के लिए धर्मात्मा राजा को देता है और जैसे उत्तम सेना विद्वान् शूरवीर और धर्मात्मा सेनाध्यक्ष को प्राप्त होकर शत्रुओं को जीतती है वैसे ही वह सब लोगो को आदर करने योग्य है ॥ ६ ॥

अब अग्निपदवाच्य राजदृष्टान्त से विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।

महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥७॥

पदार्थ—हे (**विभावसो**) स्वय प्रकाशित (**यत्**) जिस (**वाहिष्ठम्**) अतिशय प्राप्त करनेवाले का (**अग्नये**) राजा के लिए (**बृहत्**) बडा (**अर्च**) सत्कार करो (**तत्**) उस की (**महिषीव**) बडी अर्थात् पटरानी के सदृश सेवा करो और जो (**त्वत्**) आप से (**रयि**) धन और (**त्वत्**) आप से (**वाजा**) अन्न आदि (**उत्, ईरते**) उत्तमता से उत्पन्न होते हैं उन को हम लोग प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे पतिव्रता नारी अपने पति का निरन्तर सत्कार करती और उससे उत्पन्न हुए अत्यन्त सुख को प्राप्त होती है वैसे ही मनुष्य विद्वानो का आदर करके उनमे उत्पन्न हुई अर्थात् उनके सम्बन्ध से प्रकट हुई बुद्धि को प्राप्त होकर निरन्तर सुखी हो ॥ ७ ॥

अब मेघदृष्टान्त से विद्वद्विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

तव द्युमन्तो अर्चयो ग्रावेवोच्यते बृहत् ।

उतो ते तन्यतुर्यथा स्वानो अर्त त्मना दिवः ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वन् (**तव**) आप के (**द्युमन्त**) बहुत प्रकाशवाली (**अर्चयः**) किरणे हैं उन से जो (**ग्रावेव**) मेघ के सदृश (**बृहत्**) बहुत सत्य (**उच्यते**) कहा जाता (**उतो**) और (**ते**) आप का (**यथा**) जैसे (**तन्यतु**) बिजुली वैसे (**स्वान**) शब्द वर्त्तमान है इस कारण (**त्मना**) आत्मा मे (**दिव**) प्रकाशयुक्त पदार्थो का तुम सब लोग (**अर्त**) प्राप्त होओ ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो मेघ के सदृश गम्भीर शब्द से गूढ अर्थो के उपदेश देते और बिजुली के सदृश पुरुषार्थ करते हैं वे सम्पूर्ण सुखो को प्राप्त होते है ॥ ८ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र मे कहते है—

एवाँ अग्निं वसूयवः सहसानं ववन्दिम ।

स नो विश्वा अति द्विषः पर्षन्नावेव सुक्रतुः ॥९॥१८॥

पदार्थ—हे विद्वन् (**वसूयव**) अपने धन की इच्छा करते हुए हम लोग (**अग्निम्**) बिजुली के सदृश तेजस्वी विद्वान् और (**सहसानम्**) सब को सहने वाले आप की (**ववन्दिम**) प्रशसा करें (**स, एवा**) वही (**सुक्रतु.**) उत्तम बुद्धि वा उत्तम कर्मों से युक्त आप (**नावेव**) जैसे नौका से समुद्र के वैसे (**न**) हम लोगो की (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**द्विष**) द्वेषयुक्त क्रियाओ के (**अति, पर्षत्**) पार करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे बडी नौका से समुद्र आदि के पार सुखपूर्वक जाते है वैसे ही विद्वानो के सग से सब दोषो से साधारणपन से दूर को प्राप्त होते है ॥ ९ ॥

इस सूक्त मे अग्नि और विद्वानो के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

यह पच्चीसवा सूक्त और अठारहवा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ नवर्चस्य षड्विंशतितमस्य सूक्तस्य वसूयव आत्रेया ऋषय. । अग्निर्देवता । १, ६ गायत्री । २, ३, ४, ५, ६, ८ निचृद्गायत्री । ७ विराड्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

अब नव ऋचा वाले छब्बीसवे सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र मे अग्निपदवाच्य विद्वान् के गुणों को कहते हैं—

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया ।

आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥१॥

पदार्थ—हे (**पावक**) पवित्र और शुद्धि करने तथा (**देव**) विद्या के देने वाले (**अग्ने**) विद्वन् जिससे आप (**रोचिषा**) अति प्रीति से युक्त (**मन्द्रया**) विज्ञान और आनन्द देनेवाली (**जिह्वया**) वाणी से इस ससार मे (**देवान्**) विद्वानो और श्रेष्ठ गुणो वा पदार्थों को (**आ, वक्षि**) सब ओर से प्राप्त होते वा प्राप्त कराते हो तथा (**यक्षि**) सत्कार करते और मिलते (**च**) भी हो इससे सत्कार करने योग्य हो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो प्रीति से सत्य उपदेशो को कर और विद्वान् तथा श्रेष्ठ गुणो को प्राप्त होकर अन्यो को प्राप्त कराते हैं वे ही आदर करने योग्य होते हैं ॥ १ ॥

अब अग्निगुणों को कहते हैं—

तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् । देवाँ आ वीतये वह ॥२॥

पदार्थ—हे (**घृतस्नो**) घृत को शुद्ध करनेवाले (**चित्रभानो**) अद्भुतप्रकाश युक्त विद्वान् जैसे घृत को स्वच्छ करनेवाला और अद्भुतप्रकाश से युक्त अग्नि (**वीतये**) प्राप्ति के लिए (**स्वर्दृशम्**) जो सूर्य से देखे गये उन (**त्वा**) आपको धारण करता है (**तम्**) उसको हम लोग (**ईमहे**) याचते हैं वैसे आप (**देवान्**) दिव्य गुण वा विद्वानो को (**आ, वह**) सब ओर से प्राप्त कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो बहुत उत्तम गुणयुक्त अग्नि को मनुष्य विशेष कर के जानें तो बहुत सुख को प्राप्त हो ॥ २ ॥

फिर अग्नि के सादृश्य से विद्वान् के गुणों को कहते हैं—

वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥३॥

पदार्थ—हे (**कवे**) विद्वन् (**अग्ने**) अग्नि के सदृश वर्त्तमान ! हम लोग (**अध्वरे**) अहिसारूप यज्ञ मे (**वीतिहोत्रम्**) व्याप्ति का ग्रहण जिससे उस (**द्युमन्तम्**) प्रकाशवाले अग्नि के सदृश जिन (**बृहन्तम्**) महान् (**त्वा**) आप जो (**सम्, इधीमहि**) उत्तम प्रकार प्रकाशित करें वह आप हम लोगो को शुद्ध विद्या से प्रकाशित करें ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो को चाहिए कि शिल्पविद्या की सिद्धि के लिए अग्नि का सम्प्रयोग करें ॥ ३ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों मे कहते हैं—

अग्ने विश्वेभिरा गहि देवेभिर्हव्यदातये । होतारं त्वा वृणीमहे ॥४॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वन् ! जिन (**होतारम्**) देनेवाले (**त्वा**) आप का हम लोग (**वृणीमहे**) स्वीकार करते है वह आप (**हव्यदातये**) देने योग्य दान के लिए (**विश्वेभिः**) सम्पूर्ण (**देवेभि**) विद्वानो के साथ (**आ, गहि**) प्राप्त हूजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि विद्वानो का सत्कार कर उन्हे बुलावें और विद्वान् जन भी विद्वानो के साथ प्राप्त होकर निरन्तर सत्य का उपदेश करें ॥४॥

यजमानाय सुन्वत आग्ने सुवीर्यं वह । देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥५॥१९॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वन् आप (**देवै.**) विद्वानो के साथ (**बर्हिषि**) अति उत्तम (**सत्सि**) सभा मे (**सुन्वते**) यज्ञ करते हुए (**यजमानाय**) दाता जन के लिए (**सुवीर्यम्**) उत्तम पराक्रम को (**आ, वह**) प्राप्त हूजिये और यज्ञ को (**आ**) अच्छे प्रकार करिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! पालन करनेवाले जन के लिए आप लोग सुख सदा ही दीजिये और सबकी सभा से सब व्यवहारो का निश्चय कीजिये ॥ ५ ॥

फिर अग्निसादृश्य से विद्वद्विषय को कहते हैं—

समिधानः सहस्रजिदग्ने धर्माणि पुष्यसि । देवानां दूत उक्थ्यः ॥६॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के सदृश दुष्टो के जलानेवाले जैसे (**समिधानः**) निरन्तर प्रकाशित हुआ अग्नि (**देवानाम्**) विद्वानो के (**दूत**) समाचार को दूर व्यवहरता वा दूर पहुँचाता और ले आता है वैसे (**सहस्रजित्**) असख्यो के जीतने वाले (**उक्थ्य.**) प्रशसा करने योग्य विद्वानो का निरन्तर प्रकाश करते, समाचार को दूर व्यवहरते वा दूर पहुँचाने और लाने वाले होते हुए जिससे (**धर्माणि**) धर्मसम्बन्धी कर्मों को (**पुष्यसि**) पुष्ट करते हो इससे सत्कार करने योग्य हो ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य विद्या से अग्नि के गुणो को जान के कार्य्य की सिद्धि के लिए जिस अग्नि का सम्प्रयोग करते हैं वह अग्नि मनुष्य के तुल्य कार्य्य की सिद्धि करता है ॥ ६ ॥

अब अग्निधारणविषय को अगले मन्त्र मे कहते है—

न्य१ग्निं जातवेदसं होत्रवाहं यविष्ठ्यम् । दधाता देवमृत्विजम् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो आप लोग (**यविष्ठ्यम्**) अतिशयित युवा जनो मे प्रसिद्ध हुए (**ऋत्विजम्**) यज्ञसाधक और (**देवम्**) दिव्यधाने के सदृश (**जातवेदसम्**) उत्पन्न हुए पदार्थो मे विद्यमान (**होत्रवाहम्**) हवन की हुई वस्तुओ को धारण करने वाले (**अग्निम्**) अग्नि को (**नि, दधाता**) निरन्तर धारण करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे शिल्पविद्या के जाननेवाले जन अपने कार्य्य को सिद्ध करते हैं वैसे ही अग्नि आदि भी कार्य की सिद्धि करते हैं ॥ ७ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः । स्तृणीत बर्हिरासदे ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वानो! जो (**देवव्यचस्तमः**) उत्तम पदार्थों में अतिशय करके व्याप्त (**यज्ञः**) सत्य और सगत व्यवहार (**अद्या**) आज (**आसदे**) सब प्रकार से ठहरने वा जाने के अर्थ (**बर्हि.**) अन्तरिक्ष को (**आनुषक्**) अनुकूलता से (**एतु**) प्राप्त हो उस को आप लोग (**प्र, स्तृणीत**) अच्छे प्रकार आच्छादित करो अर्थात् सुरक्षित रक्खो ॥८ ॥

भावार्थ— जो मनुष्य श्रेष्ठो की सङ्गति कर के शिल्पविद्या की उन्नति करते हैं वे सब के हितैषी होते हैं ॥ ८ ॥

एदं मरुतो अश्विना मित्रः सीदन्तु वरुणः ।
देवासः सर्वया विशा ॥९॥२०॥

पदार्थ—(मरुतः) मनुष्य (मित्रः) मित्र (वरुणः) सब मे उत्तम (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक तथा (देवासः) विद्वान् जन (सर्वया) सम्पूर्ण (विशा) प्रजा से (इदम्) इस आसन पर (आ, सीदन्तु) विराजें ॥९॥

भावार्थ— राजा और श्रेष्ठ जन न्यायासन पर विराज के अन्याय और पक्षपात का त्याग और न्याय कर के प्रजाओ के प्रिय होवें ॥ ९ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह छब्बीसवां सूक्त और बीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षडृचस्य सप्तविंशतितमस्य सूक्तस्य त्र्यरुणस्त्रैवृष्णस्त्रसदस्युश्च पौरुकुत्स्य अश्वमेधश्च भारतोऽत्रिर्वा ऋषयः । १, ५ अग्निः । ६ इन्द्राग्नी देवते । १, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ५, ६ भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले सत्ताईसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में अग्निसादृश्य से विद्वान् के गुणों को कहते हैं—

अनस्वन्ता सत्पतिर्मामहे मे गावा चेतिष्ठो असुरो मघोनः ।
त्रैवृष्णो अग्ने दशभिः सहस्रैर्वैश्वानर त्र्यरुणश्चिकेत ॥१॥

पदार्थ— हे (वैश्वानर) सब मे प्रकाशमान (अग्ने) अग्नि के सदृश (सत्पतिः) श्रेष्ठ जनो के पालने वाले (दशभिः) दश (सहस्रैः) सहस्रों के साथ (अनस्वन्ता) उत्तम शकट आदि वाहनो से युक्त (गावा) गौ अर्थात् वाणी के साथ (चेतिष्ठः) अत्यन्तता से बोध देने वाले (असुरः) प्राणो मे रमत हुए (त्रैवृष्णः) जो तीन मे वर्त्तते वही (त्र्यरुणः) तीनगुणो से युक्त हुए आप (मे) मेरे (मघोनः) अत्यन्त धनयुक्त पुरुषो को (चिकेत) जानें उनका मैं (मामहे) सत्कार करूं ॥ १ ॥

भावार्थ— जो पुरुष शकट आदि वाहनो के चलाने मे चतुर और अनेक सहस्रों पुरुषो के साथ मेल करते है वे धन धान्य और पशुओ से युक्त होते हैं ॥ १ ॥

फिर विद्वान् के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यो मे शता च विंशतिं च गोनां हरी च युक्ता सुधुरा ददाति ।
वैश्वानर सुष्टुतो वावृधानोऽग्ने यच्छ त्र्यरुणाय शर्म ॥२॥

पदार्थ—हे (वैश्वानर) सब मे प्रकाशमान (अग्ने) विद्वन् (यः) जो (सुष्टुतः) उत्तम प्रकार प्रशंसा किया गया (वावृधानः) अत्यन्त बढ़ता अर्थात् वृद्धि को प्राप्त होता हुआ (मे) मेरे (गोनाम्) गौओ के (शता) सैकडा (च) और (विंशतिम्) बीसो सख्या वाले समूह को (च) और (युक्ता) युक्त (सुधुरा) उत्तम धुरा जिनमे उन (हरी) ले चलनेवाले घोडों को (च) भी (ददाति) देता है उस (त्र्यरुणाय) तीन गुणो वाले पुरुष के लिये आप (शर्म) गृह वा सुख को (यच्छ) दीजिये ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो गौ घोडा और हस्ति आदि पशुओ क पालन करनेवाले होवें उनके लिए यथायोग्य मासिक दीजिये ॥२॥

एवा ते अग्ने सुमतिं चकानो नविष्ठाय नवमं त्रसदस्युः ।
यो मे गिरस्तुविजातस्य पूर्वीर्युक्तेनाभि त्र्यरुणो गृणाति ॥३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वन् ! (यः) जो (ते) आपकी (सुमतिम्) सुन्दर बुद्धि को और (तुविजातस्य) बहुतो मे प्रकट हुए (मे) मेरी (गिरः) वाणियों की (चकानः) कामना करता तथा (नविष्ठाय) अतिशय नवीन जन के लिये (नवमम्) नव के पूर्ण करनेवाले की कामना करता हुआ (त्रसदस्युः) त्रसदस्यु अर्थात् जिससे चोर डरते ऐसा (युक्तेन) किया योगाभ्यास जिससे ऐसे मन से (त्र्यरुणः) तीन मन शरीर और आत्मा के सुखो को प्राप्त होता हुआ जन (पूर्वीः) अनादि काल से सिद्ध वाणियों को (अभि, गृणाति) सब ओर से कहता है (एवा) उसीका आप और हम निरन्तर सत्कार करें ॥३॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! आप और मैं जो हमारे समीप से गुणो के ग्रहण करने की इच्छा करता है उसको हम दोनो विद्याग्रहण करावें ॥३॥

अब उपदेशविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यो म इति प्रवोचत्यश्वमेधाय सूरये ।
दधदृचा सनिं यते ददन्मेधामृतायते ॥४॥

पदार्थ—(यः) जो (अश्वमेधाय) शीघ्र पवित्र (सूरये) विद्वान् (मे) मेरे लिये (ऋचा) ऋग्वेदादि से (सनिम्) सेवन करने योग्य तथा सत्य और असत्य की विभाग करनेवाली वाणी को (दधत्) देवे और (ऋतायते) सत्य की कामना करते हुए (यते) यत्न करनेवाले मेरे लिए (मेधाम्) बुद्धि को (ददत्) देवें उसका सत्कार आप करो (इति) इस प्रकार से मेरे प्रति जो (प्रवोचति) उपदेश देता है उसका उपकार मैं मानता हूं ॥४॥

भावार्थ—उपदेशक जन जब अन्य जनो के प्रति उपदेश देवें तब इस प्रकार वेद और शास्त्रो मे कहे और यथार्थवक्ताओ मे आचरण किये गये इस विषय का हम आप लोगो के लिये उपदेश देवें इस प्रकार प्रत्युपदेश करें ॥४॥

यस्य मा परुषाः शतमुद्धर्षयन्त्युक्षणः ।
अश्वमेधस्य दानाः सोमाइव त्र्याशिरः ॥५॥

पदार्थ—(यस्य) जिस (अश्वमेधस्य) चक्रवर्त्तिराज्यपालन की विद्या की (शतम्) असङ्ख्य (परुषाः) कठोर (उक्षणः) मधुर उपदेशों से सींचती और (सोमाइव) सोमलतादिको के सदृश (दानाः) देती हुई (त्र्याशिरः) जीव अग्नि और पवनो से भोगी गई (मा) मुझ को (उद्धर्षयन्ति) उत्साहित करती हैं वे वाणियां मुझ से सहने योग्य हैं ॥५॥

भावार्थ—जो विद्या की इच्छा करें वे सबकी मर्म्म भेदनेवाली वाणियो को सहे और चन्द्रमा के सदृश शान्त होके विद्या और विनय को ग्रहण करें ॥५॥

अब उपदेशविषय में राज्योपदेशविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

इन्द्राग्नी शतदाव्न्यश्वमेधे सुवीर्यम् ।
क्षत्रं धारयतं बृहद्दिवि सूर्यमिवाजरम् ॥६॥२१॥

पदार्थ—हे (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली के सदृश अध्यापक और उपदेशक जनो (शतदाव्नि) असङ्ख्य पदार्थों को देनेवाले (अश्वमेधे) राज्यपालन व्यवहार और (दिवि) प्रकाशयुक्त अन्तरिक्ष मे (सूर्य्यमिव) सूर्य्य के सदृश (सुवीर्य्यम्) उत्तम पराक्रम तथा बलयुक्त और (अजरम्) नाश से रहित (बृहत्) बड़े (क्षत्रम्) क्षत्रियो के कुल वा राज्यदेश को (धारयतम्) धारण करो अर्थात् यथायोग्य उपदेश दीजिये ॥६॥

भावार्थ—हे राजा आदि जनो ! प्रयत्न से आप लोग यथार्थवक्ता बहुत अध्यापक और उपदेशको को अपने और दूसरे के राज्य मे प्रचार कराइये जिससे आप लोगो का राज्य नाशरहित होवे ॥६॥

इस सूक्त मे अग्नि विद्वान् और राजा के गुणो का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सत्ताईसवां सूक्त और इक्कीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षडृचस्याष्टाविंशतितमस्य सूक्तस्य विश्ववारात्रेयी ऋषिः । अग्निर्देवता । १ त्रिष्टुप् । २, ४, ५, ६ विराट् त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले अट्ठाईसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र मे अग्नि के गुणों को कहते हैं—

समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत्प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया वि भाति ।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवाँ ईळाना हविषा घृताची ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (समिद्धः) प्रज्वलित किया गया (अग्निः) अग्नि (दिवि) प्रकाश मे (शोचिः) बिजुलीरूप प्रकाश का (अश्रेत्) आश्रय करता है और (उर्विया) अनेक रूपवाले प्रकाश मे (उषसम्) प्रभातकाल के (प्रत्यङ्) प्रति चलनेवाला (वि, भाति) विशेष करके शोभित होता है और (विश्ववारा) संसार को प्रकट करनेवाली (देवान्) श्रेष्ठ गुणो को (ईळाना) प्रशंसित करती हुई (घृताची) रात्रि और (प्राची) पूर्व दिशा (हविषा) दान और (नमोभिः) अन्नादि पदार्थो के साथ (एति) प्राप्त होती है उस अग्नि को और उस विश्ववारा को आप लोग विशेष करके जानो ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो यह सूर्य्य देख पड़ता है वह अनेक तत्त्वो के द्वारा ईश्वर से बनाया गया और बिजुली के आश्रित है और जिसके प्रभाव से पूर्व आदि दिशायें विभक्त की जाती है और रात्रियां होती हैं उस अग्निरूप सूर्य को जान के संपूर्ण कृत्य सिद्ध करो ॥१॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

समिध्यमानो अमृतस्य राजसि हविष्कृण्वन्तं सचसे स्वस्तये ।

विश्वं स धत्ते द्रविणं यमिन्वस्यातिथ्यमग्ने नि च धत्त इत्पुरः ॥२॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वन् जिससे (**समिध्यमान**) उत्तम प्रकार निरन्तर प्रकाशमान आप (**अमृतस्य**) कारण वा जल के मध्य में (**राजसि**) प्रकाशित होते हो और (**स्वस्तये**) सुख के लिये (**हवि**) खाने योग्य वस्तु को (**कृण्वन्तम्**) करते हुए का (**सचसे**) सम्बन्ध करते हो और आप (**विश्वम्**) सम्पूर्ण (**द्रविणम्**) धन या यश का (**धत्ते**) धारण करते हो तथा (**यम्**) जिनको (**आतिथ्यम्**) अतिथि सत्कार (**इन्वसि**) व्याप्त होता है और (**पुर**) पहिले (**च**) भी आप (**नि, धत्ते**) निरन्तर धारण करते हो इससे (**स , इत्**) वही आप सत्कार करने योग्य हो ॥२॥

भावार्थ—हे विद्वन् जनो ! आप लोग विद्या और विनय से प्रकाशमान अतिथियों की दशा को धारण किये हुए सब स्थानों में भ्रमण करके सम्पूर्ण जनों के लिये सत्य का उपदेश देते हुए यश को निरन्तर पसारिये ॥२॥

अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।

सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ॥३॥

पदार्थ—हे (**शर्ध**) प्रशंसित बल से युक्त (**अग्ने**) विद्वन् (**तव**) आप के (**महते**) बड़े (**सौभगाय**) सुन्दर ऐश्वर्य्य के लिए (**उत्तमानि**) श्रेष्ठ (**द्युम्नानि**) यश वा धन (**सन्तु**) हों और तुम (**सुयमम्**) सुन्दर सत्य आचरणों का ग्रहण जिस में ऐसे (**जास्पत्यम्**) स्त्री के पतिपन को (**आ, कृणुष्व**) अच्छे प्रकार करिये और (**शत्रूयताम्**) शत्रु के सदृश आचरण करते हुओं की (**महांसि**) बड़ी सेनाओं के (**सम्, अभि, तिष्ठ**) सन्मुख स्थित हूजिये ॥३॥

भावार्थ—हे धर्म्मिष्ठो ! हम लोग आपके लिए बड़े ऐश्वर्य्य की इच्छा करें और आप दोनों स्त्री और पुरुष जितेन्द्रिय धर्म्मात्मा बलवान् और पुरुषार्थी होकर सम्पूर्ण दुष्टों की सेना को जीतिये ॥३॥

अब विद्वद्विषय में राज्य प्रकार को अगले मन्त्र में कहते हैं—

समिद्धस्य प्रमहसोऽग्ने वन्दे तव श्रियम् ।

वृषभो द्युम्नवाँ असि समध्वरेष्विध्यसे ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) राजन् जो तुम (**वृषभः**) बलिष्ठ वा उत्तम और (**द्युम्नवान्**) यशस्वी (**असि**) हो और (**अध्वरेषु**) राज्य के पालन आदि व्यवहारों में (**सम्, इध्यसे**) प्रकाशित किये जाते हो उन (**समिद्धस्य**) प्रकाशमान और (**प्रमहसः**) प्रकृष्ट बड़े (**तव**) आपके (**श्रियम्**) धन की मैं (**वन्दे**) प्रशंसा वा सत्कार करता हूँ ॥४॥

भावार्थ—जो राजा अग्नि आदि के गुणों से युक्त हुआ अच्छे न्याय को यथावत् करता है वह यज्ञों में अग्नि के सदृश सर्वत्र प्रकट यशवाला होता है ॥४॥

फिर अग्निदृष्टान्त से पूर्वोक्त विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

समिद्धो अग्न आहुत देवान्यक्षि स्वध्वर ।

त्वं हि हव्यवाळसि ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (**स्वध्वर**) उत्तम प्रकार अहिंसा से युक्त (**आहुत**) सत्कृत (**अग्ने**) अग्नि के सदृश वर्त्तमान जिस प्रकार से (**समिद्ध**) प्रज्वलित किया गया (**हि**) जिस कारण (**हव्यवाट्**) पृथिव्यादिकों की प्राप्ति करनेवाला अग्नि है वैसे (**त्वम्**) आप (**देवान्**) श्रेष्ठ गुणों वा विद्वानों का (**यक्षि**) सत्कार करते हो और पालन करनेवाले (**असि**) हो इससे श्रेष्ठ हो ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य आदि रूप से अग्नि सब की रक्षा करता है वैसा ही राजा होता है ॥५॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ जुहोता दुवस्यताग्निं प्रयत्यध्वरे ।

वृणीध्वं हव्यवाहनम् ॥ ६ ॥ २२ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो आप लोग (**प्रयति**) प्रयत्न से साध्य (**अध्वरे**) शिल्पादि व्यवहार में (**हव्यवाहनम्**) उत्तम पदार्थों का प्राप्त करानेवाले (**अग्निम्**) अग्नि का (**दुवस्यत**) परिचरण करो अर्थात् युक्ति से उसको कार्य्य में लगाओ और (**वृणीध्वम्**) स्वीकार करो तथा अन्य जनों के लिये (**आ, जुहोत**) आदान करो अर्थात् ग्रहण करो ॥६॥

भावार्थ—विद्यार्थिजन जैसे विद्वान् जन शिल्पविद्या का स्वीकार करते हैं वैसे ही स्वयं भी स्वीकार करें ॥६॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह अट्ठाईसवां सूक्त और बाईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चदशर्चस्यैकोनत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—१५ गौरिवीतिः शाक्त्य ऋषिः । १—८ । ९'—१५ इन्द्र उशना वा ९' इन्द्रो देवता । १ भुरिक् पङ्क्तिः । ८ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चमः स्वरः । २, ४, ७ त्रिष्टुप् । ३, ५, ६, ९, १०, ११ निचृत्त्रिष्टुप् । १२, १३, १४, १५ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचा वाले उनतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्रपदवाच्य राजगुणों को कहते हैं—

त्र्यर्यमा मनुषो देवताता त्री रोचना दिव्या धारयन्त ।

अर्चन्ति त्वा मरुतः पूतदक्षास्त्वमेषामृषिरिन्द्रासि धीरः ॥१॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त करनेवाले राजन् जो (**मनुष**) मनुष्य (**देवताता**) विद्वानों से करने योग्य व्यवहार में (**दिव्या**) श्रेष्ठ (**त्री**) तीन (**रोचना**) प्रकाशकों को (**धारयन्त**) धारण करते हैं (**अर्यमा**) व्यवस्थापक अर्थात् किसी कार्य को रीति से संयुक्त करनेवाला (**त्री**) तीन सुखों का धारण करता है और जो (**पूतदक्षा**) पवित्र बलवाले (**मरुत**) मनुष्य (**त्वा**) आपका (**अर्चन्ति**) सत्कार करते हैं (**एषाम्**) इनके (**त्वम्**) आप (**ऋषि**) मन्त्र और अर्थों के जानने वाले (**धीर**) धीर (**असि**) हो ॥१॥

भावार्थ—जो तीन कर्म्म, उपासना और ज्ञान का धारण करके पवित्र होते हैं वे ही बलवान् होकर सत्कृत होते हैं ॥१॥

अनु यदीं मरुतो मन्दसानमार्चन्निन्द्रं पपिवांसं सुतस्य ।

आदत्त वज्रमभि यदहिं हन्नपो यह्वीरसृजत्सर्त्तवा उ ॥ २ ॥

पदार्थ—हे राजन् (**यत्**) जो (**मरुत**) मनुष्य (**मन्दसानम्**) स्तुति किये गये (**सुतस्य**) प्राप्त राज्य की (**पपिवांसम्**) रक्षा करनेवाले (**यत्**) जिन (**इन्द्रम्**) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त आपका (**आर्चन्**) सत्कार करें उनका वह आप (**अनु, आ, अदत्त**) अनुकूलता से ग्रहण करते हैं और जैसे सूर्य (**वज्रम्**) वज्ररूप किरण का (**अभि**) सन्मुख ताड़न करके (**अहिम्**) मेघ का (**हन्**) नाश करता है तथा (**सर्त्तवै**) जाने के लिए (**यह्वी**) बड़ी नदियों को और (**अपः**) जलों को (**असृजत्**) उत्पन्न करता है वैसे (**ईम्**) सब ओर से (**उ**) तर्क वितर्कपूर्वक तुम त्याग करो ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य राजा का सत्कार करते हैं उनका राजा भी सत्कार करे और जैसे सूर्य मेघ का नाश कर और जल का प्रवाह करके सर्व जगत् की रक्षा करता है वैसे राजा दुष्टों का नाश करके श्रेष्ठों की रक्षा करे ॥ २ ॥

उत ब्रह्माणो मरुतो मे अस्येन्द्रः सोमस्य सुषुतस्य पेयाः ।

तद्धि हव्यं मनुषे गा अविन्ददहन्नहिं पपिवाँ इन्द्रो अस्य ॥ ३ ॥

पदार्थ—जिस प्रकार (**इन्द्र**) सूर्य्य रस को पीता है वैसे हे राजन् (**इन्द्रः**) प्रकाशमान आप (**मे**) मेरे (**अस्य**) और इसके भी (**तत् हि**) उसी (**सुषुतस्य**) अच्छे प्रकार श्रेष्ठ बनाये (**सोमस्य**) ऐश्वर्य कारक पदार्थ के (**हव्यम्**) खाने योग्य भाग का (**पेया**) पीजिये जिससे (**मनुषे**) मनुष्य मात्र के लिए आप (**गा**) गौ वा उत्तम वाणियों को (**अविन्दत्**) प्राप्त हों और जैसे (**पपिवान्**) भूमिस्थ जलादि को पान करनेवाला सूर्य (**अहिम्**) मेघ का (**अहन्**) नाश करता है वैसे आप (**अस्य**) इस राज्य के पालन को करिये (**उत**) इसी प्रकार हे (**ब्रह्माण**) चार वेदों के जाननेवाले (**मरुतः**) मनुष्यो ! तुम लोग भी आचरण करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सब वेदों को पढ़कर नहीं खाने और नहीं पीने योग्य वस्तु का वर्जन करके न्यायाधीश के सदृश न्याय और सूर्य्य के सदृश सत्य और असत्य का प्रकाश करते हैं वे महाशय होते हैं ॥ ३ ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आद्रोदसी वितरं वि ष्कभायत्संविव्यानश्चिद्भियसे मृगं कः ।

जिगर्तिमिन्द्रो अपजर्गुराणः प्रति श्वसन्तमव दानवं हन् ॥४॥

पदार्थ—हे राजन् ! जैसे (**इन्द्रः**) सूर्य्य (**रोदसी**) अन्तरिक्ष पृथिवी को (**वितरम्**) विशेष उल्लंघना जैसे हो वैसे (**वि, स्कभायत्**) विशेष करके आकर्षित करता है (**आत्**) और (**संविव्यानः**) उत्तम प्रकार व्याप्त होता हुआ (**भियसे**) भय के लिए (**चित्**) भी (**मृगम्**) हरिण को (**कः**) करता तथा (**जिगर्तिम्**) प्रशंसा वा निगलने को (**अपजर्गुराणः**) आच्छादन से अलग करता हुआ (**दानवम्**) दुष्टप्रकृति मनुष्य को (**अव, हन्**) हनन करे वैसे (**प्रति, श्वसन्तम्**) श्वास लेते हुए प्राणी का निरन्तर प्रतिपालन करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजा सूर्य्य के सदृश राज्य का धारण करते हैं वे जैसे सिंह मृग को व्याकुल करता है वैसे दुष्टों को व्याकुल करते हैं वैसा ही वर्त्ताव करके यश को प्रकट करें ॥ ४ ॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अध॒ क्रत्वा॑ मघवन्तु॒भ्यं॑ दे॒वा अनु॒ विश्वे॑ अददुः सोम॒पेय॑म् ।
यत्सूर्य॑स्य ह॒रित॑: पत॑न्तीः पु॒रः स॒तीरुप॑रा एत॑शे॒ कः ॥५॥२३॥

पदार्थ—हे (**मघवन्**) बहुत धन से युक्त (**यत्**) जो (**सूर्य्यस्य**) सूर्य्य के (**पतन्तीः**) चलती हुई (**पुरः**) पालने वाली वा आगे से (**सतीः**) विद्यमान (**उपराः**) समीप में रमती हुई (**हरितः**) हरिद्वर्ण किरणों को (**एतशे**) घोड़े पर घोड़े के चढ़ने वाले के सदृश (**कः**) करता है उसकी विद्या से (**तुभ्यम्**) आप के लिए जो (**विश्वे**) सम्पूर्ण (**देवाः**) विद्वान् जन (**सोमपेयम्**) सोम ओषधि के पान करने योग्य रस को (**अनु, अददुः**) अनुकूल देते हैं वे (**अध**) इस के अनन्तर (**क्रत्वा**) बुद्धि से विशेष ज्ञानी होते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! सूर्य्यमण्डल में अनेक तत्त्वों के विद्यमान होने से अनेक रूप देख पड़ते हैं यह जानना चाहिये ॥ ५ ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

नव॒ यद॑स्य नव॒तिं च॑ भो॒गान्त्सा॒कं वज्रे॑ण म॒घवा॑ वि॒वृश्च॑त् ।
अर्च॒न्तीन्द्रं॑ म॒रुत॑: स॒धस्थे॒ त्रैष्टु॑भेन॒ वच॑सा बाधत॒ द्याम् ॥६॥

पदार्थ—हे राजन् (**मघवा**) बहुत धन से युक्त आप जैसे सूर्य्य (**वज्रेण**) वज्र के (**साकम्**) साथ (**अस्य**) इस सूर्य्य और जगत् के मध्य में (**यत्**) जिन (**नव**) नव और (**नवतिम्**) नब्बे (**भोगान्**) भोगों को उत्पन्न करता और अन्धकार आदि का (**विवृश्चत्**) नाश करता है तथा जैसे (**मरुतः**) मनुष्य (**सधस्थे**) समान स्थान में (**त्रैष्टुभेन**) तीन प्रकार स्तुति किये गये (**वचसा**) वचन से (**इन्द्रम्**) अत्यन्त ऐश्वर्य वाले का (**अर्चन्ति**) सत्कार करते हैं और (**द्याम्**) कामना की (**च**) भी (**बाधत**) बाधा करते हैं वैसे ही दुःख और दारिद्र्य का नाश करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजन् ! आप काम की आसक्ति का त्याग करके और न्याय से सबका सत्कार करके असङ्ख्य भोगों को प्रजाओं के लिए धारण कीजिये ॥ ६ ॥

फिर सूर्य्यदृष्टान्त से राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सखा॒ सख्ये॑ अपच॒त्तूय॑म॒ग्निर॒स्य क्रत्वा॑ महि॒षा त्री श॒तानि॑ ।
त्री सा॒कमिन्द्रो॒ मनु॑षः सरां॑सि सु॒तं पि॑बद्वृत्र॒हत्या॑य॒ सोम॑म् ॥७॥

पदार्थ—जैसे (**अग्निः**) अग्नि और (**इन्द्रः**) सूर्य (**तूयम्**) शीघ्र (**अस्य**) इस जगत् के मध्य में (**त्री**) तीन भुवनों को प्रकाशित करता हुआ (**सरांसि**) तड़ागों का (**पिबत्**) पान करता है और (**वृत्रहत्याय**) मेघ के नाश करने के लिए (**सुतम्**) वर्षाये गये (**सोमम्**) ऐश्वर्य का (**अपचत्**) पकाता है वैसे (**सखा**) मित्र (**क्रत्वा**) बुद्धि वा कर्म से (**सख्ये**) मित्र के लिए (**साकम्**) सहित (**मनुषः**) मनुष्य के (**महिषा**) बड़े पशुओं के (**त्री**) तीन (**शतानि**) सैकड़ों की रक्षा करे ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य ऊपर नीचे और मध्य भाग में वर्त्तमान स्थूल पदार्थों का प्रकाश करता है वैसे उत्तम मध्यम और अधम व्यवहारों को राजा प्रकट करे और सबके साथ मित्र के सदृश वर्त्ताव करे ॥७॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

त्री यच्छ॒ता म॑हि॒षाणा॒मघो॒ मास्त्री सरां॑सि म॒घवा॑ सो॒म्यापा॑: ।
का॒रं न विश्वे॑ अह्वन्त दे॒वा भर॒मिन्द्रा॑य॒ यदहिं॑ ज॒घान॑ ॥८॥

पदार्थ—हे राजन् ! (**यत्**) जो आप (**अघः**) नहीं मारने योग्य होते हुए (**महिषाणाम्**) बड़े पदार्थों के (**त्री**) तीन (**शता**) सैकड़ों को (**माः**) रचिये और हे (**सोम्याः**) चन्द्रमा के गुणों से सम्पन्न (**मघवा**) बहुत धनवान् होते हुए (**त्री**) तीन (**सरांसि**) मेघमण्डल भूमि और आन्तरिक्ष में स्थित पदार्थों को सूर्य के सदृश प्रजाओं का (**अपाः**) पालन कीजिए और सूर्य (**यत्**) जैसे (**अहिम्**) मेघ का (**जघान**) नाश करता है और जैसे (**विश्वे**) सम्पूर्ण (**देवाः**) विद्वान्-जन (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य के लिए (**कारम्**) कर्त्ता के (**न**) सदृश (**भरम्**) पालन को (**अह्वन्त**) कहते हैं वैसे ऐश्वर्य के लिए प्रयत्न कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जैसे पुरुषार्थी जन को सब स्वीकार करते हैं वैसे ही सूर्य ईश्वरीय नियमों से नियत जलरस का ग्रहण करता है जैसे जन बड़े पदार्थों की उत्तेजना से सैकड़ों काम सिद्ध करते हैं वैसे ही राजा प्रजाजनों से बड़े राजकार्य को सिद्ध करे ॥ ८ ॥

उ॒शना॒ यत्स॑ह॒स्यै॑३॒॑रया॑तं गृ॒हमि॑न्द्र जूजुवा॒नेभि॒रश्वैः॑ ।
व॒न्वा॒नो अत्र॑ स॒रथं॑ ययाथ॒ कुत्से॑न दे॒वैरव॑नोर्ह॒ शुष्ण॑म् ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) राजन् ! आप और (**उशना**) कामना करता हुआ जन तुम दोनों (**सहस्यैः**) बलों में उत्पन्न हुए पदार्थों के साथ (**जूजुवानेभिः**) वेग-वाले (**अश्वैः**) घोड़ों वा अग्नि आदिकों से चलाये गये वाहन पर स्थित हो के (**यत्**) जिस (**गृहम्**) गृह को (**अयातम्**) प्राप्त हूजिये और (**अत्र**) इस जगत् में (**ह**) निश्चय से (**वन्वानः**) याचना करते हुए आप (**कुत्सेन**) वज्र के सदृश दृढ़ कर्म से (**देवैः**) विद्वानों से (**शुष्णम्**) बल की (**अवनोः**) रक्षा करिये और हे मनुष्यो ! आप लोग इन दोनों के साथ (**सरथम्**) रथ के साथ वर्त्तमान जैसे हो वैसे निश्चय से (**ययाथ**) प्राप्त होओ ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो राजा आदि मनुष्य उत्तम प्रकार श्रेष्ठ होवें वे विमान आदि वाहनों को बना सकें और दुष्ट जनों के मारने को समर्थ होवें।

प्रान्यच्च॒क्रम॑वृहः॒ सूर्य॑स्य॒ कुत्सा॑या॒न्यद्वरि॑वो॒ यात॑वेऽकः ।
अ॒नासो॒ दस्यूँ॑रमृणो व॒धेन॒ नि दु॑र्यो॒ण आ॑वृणङ्मृ॒ध्रवा॑चः ॥१०॥२४॥

पदार्थ—हे राजन् आप (**सूर्यस्य**) सूर्य के सदृश (**अन्यत्**) अन्य (**चक्रम्**) चक्र की (**प्र, अवृहः**) उत्तम वृद्धि करिये और (**कुत्साय**) वज्र के लिए (**अन्यत्**) अन्य (**वरिवः**) सेवन को (**यातवे**) प्राप्त होने को (**अकः**) करिये तथा (**अनासः**) मुखरहित (**दस्यून्**) दुष्ट चोरों का (**वधेन**) वध से (**अमृणः**) नाश करिये और (**दुर्योणे**) गृह के प्राप्त होने में (**मृध्रवाचः**) कुत्सित वाणियों वाले जनों को (**नि, आवृणक्**) निरन्तर वर्जिये ॥ १० ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जैसे सूर्य अपने चक्र का आकर्षण से वर्त्ताव करता है वैसे ही विमान आदि वाहनों में राज्य का अनुवर्त्तन करो और चोर तथा दुष्ट वाणीवालों का नाश करके राज्य में नहीं चोरी करने वाले और श्रेष्ठ वचनों वाले जनों का सम्पादन कीजिये ॥ १० ॥

स्तोमा॑सस्त्वा गौरिवीते॒रव॑र्ध॒न्नर॑न्धयो वैदथि॒नाय॒ पिप्रु॑म् ।
आ त्वामृ॒जिश्वा॑ स॒ख्याय॑ चक्रे॒ पच॑न्प॒क्तीरपि॑बः॒ सोम॑मस्य ॥११॥

पदार्थ—हे राजन् ! (**गौरिवीतेः**) वाणी को विशेष प्राप्त अर्थात् जानने वाले आपके सङ्ग से (**स्तोमासः**) प्रशंसित (**अवर्धन्**) वृद्धि को प्राप्त हों उन के साथ (**वैदथिनाय**) सङ्ग्राम करनेवाले से बनाये गये के लिए शत्रुओं का (**अरन्धयः**) नाश करो और जो (**ऋजिश्वा**) सरल कुत्ते सदृश ही मनुष्य (**पिप्रुम्**) व्यापक (**त्वा**) आप को (**सख्याय**) मित्रपने के लिए (**आ, चक्रे**) अच्छे प्रकार कर चुका उसके साथ (**अस्य**) इस जगत् के मध्य में (**पक्तीः**) पाकों का (**पचन्**) पाक करते हुए आप (**सोमम्**) ऐश्वर्य वा ओषधि के रस का (**अपिबः**) पान करिये और जो (**त्वाम्**) आप की रक्षा करें उन सब का आप सत्कार करिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—हे राजन् ! जो उत्तम गुणों से आप की वृद्धि करते और आप को मित्र जानते हैं उन का मित्र करके आप ऐश्वर्य की वृद्धि करो ॥ ११ ॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं —

न॒वग्वा॑सः सु॒तसो॑मास॒ इन्द्रं॒ दश॑ग्वासो अ॒भ्य॑र्चन्त्य॒र्कैः ।
गव्यं॑ चिदू॒र्वम॑पि॒धान॑वन्तं॒ तं चि॒न्नरः॑ शशमा॒ना अप॑ व्रन् ॥ १२॥

पदार्थ—हे विद्वन् (**सुतसोमासः**) सम्पादन की ऐश्वर्य और ओषधियां जिन्होंने (**नवग्वासः**) जो नवीन गति वाले (**दशग्वासः**) जिन्होंने दशों इन्द्रियों को जीता ऐसे (**शशमानाः**) अविद्याओं का उल्लङ्घन करते हुए (**नरः**) नायक जन जिस (**गव्यम्**) गो सम्बन्धी (**चित्**) निश्चित (**ऊर्वम्**) अविद्या के नाश करने वाले (**अपिधानवन्तम्**) आच्छादन से युक्त गुप्त (**इन्द्रम्**) विद्या और ऐश्वर्यवान् का (**अर्कैः**) मन्त्र वा विचारों से (**अभि**) सब प्रकार (**अर्चन्ति**) सत्कार करते और उसकी अविद्या का (**अप, व्रन्**) अस्वीकार करते हैं (**तम्**) उसको (**चित्**) भी आप शिक्षा दीजिये ॥ १२ ॥

भावार्थ—जो नवीन विद्या का ग्रहण करना चाहते और ऐश्वर्य की इच्छा करते और इन्द्रियों के जीतने वाले विद्वान् जन अज्ञानी जनों को बोध देकर विद्वान् करते हैं वे ही सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ १२ ॥

क॒थो नु ते॒ परि॑ चराणि वि॒द्वान्वी॒र्या॑ मघव॒न्या च॒कर्थ॑ ।
या चो॒ नु नव्या॑ कृ॒णवः॑ शविष्ठ॒ प्रेदु॒ ता ते॑ वि॒दथे॑षु ब्रवाम ॥१३॥

पदार्थ—हे (**मघवन्**) श्रेष्ठ धन से युक्त (**या**) जो (**ते**) आपकी (**परि**) सब ओर से (**चराणि**) चलने वाली और प्राप्त होने योग्य (**वीर्या**) पराक्रमयुक्त सेनाओं को (**कथो**) किसी प्रकार (**नु**) निश्चय से (**चकर्थ**) करते हो तथा (**विद्वान्**) विद्वान् आप (**या**) जिन को (**चो**) और (**नव्या**) नवीनों में उत्पन्नों को (**नु**) निश्चय से (**कृणवः**) सिद्ध करते हो। हे (**शविष्ठ**) अतिशय करके बलिष्ठ (**ते**) आप के जिन को (**विदथेषु**) सङ्ग्रामों में हम लोग (**प्र, ब्रवाम**) उपदेश करें (**ता**) उन को (**इत्**) निश्चय से (**उ**) भी आप ग्रहण करो ॥१३॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि सदा ही नवीन नवीन विद्या और नवीन २ कार्य को सिद्ध कर के ऐश्वर्य को प्राप्त होवें इसी प्रकार अन्यों के प्रति उपदेश करें ॥ १३ ॥

एता विश्वा चकृवाँ इन्द्र भूर्यपरीतो जनुषा वीर्येण ।
या चिन्नु वज्रिन्कृणवो दधृष्वान्न ते वर्ता तविष्या अस्ति तस्याः ॥१४॥

पदार्थ—हे (वज्रिन्) उत्तम शस्त्र और अस्त्रो से और (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त राजन् (अपरीत) नहीं वर्जित आप (जनुषा) दूसरे जन्म से और (वीर्येण) पराक्रम से (चित्) भी (एता) इन (विश्वा) सब का (चकृवान्) किये हुए हो और (या) जिन (भूरि) बहुत बलो को (कृणवः) करिये । हे राजन् (ते) आप की निश्चित (तस्याः) उस (तविष्याः) बलयुक्त सेना का (दधृष्वान्) धृष्ट अर्थात् हर्षित किया हुआ (नु) शीघ्र (वर्त्ता) स्वीकार करने वाला कोई भी (न) नहीं (अस्ति) है ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो राजा जन हैं वे ब्रह्मचर्य से विद्याओ को प्राप्त होकर चवालीस वर्ष की अवस्था मे युक्त हुए समावर्त्तन करके अर्थात् गृहस्थाश्रम का विधिपूर्वक ग्रहण कर स्वयम्वर विवाह कर और सेना की वृद्धि करके प्रजा की सब प्रकार से रक्षा करें ॥ १४ ॥

अब विद्वद्विषय में पुरुषार्थरक्षणविषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं-

इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म ।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ॥१५॥२५॥

पदार्थ—हे (शविष्ठ) अतिशय करके बल से और (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त जिन (ते) आपके (नव्या) नवीन धनो को हम लोग (अकर्म) करें और (या) जिन (क्रियमाणा) वर्त्तमान पुरुषार्थ से सिद्ध हुए (ब्रह्म) अन्न वा धनो का आप (जुषस्व) सेवन करो उन (भद्रा) कल्याणकारक (सुकृता) धर्म से उत्पन्न किये हुओ को (वस्त्रेव) जैसे वस्त्र प्राप्त होते वैसे तथा (स्वपाः) सत्य भाषण आदि करने वाला (धीरः) ध्यानवान् योगी और (वसूयुः) अपने को धन की इच्छा करने वाला (रथम्) उत्तम वाहन को (न) जैसे वैसे कल्याणकारक और धर्म से उत्पन्न किये गयो को मैं (अतक्षम्) प्राप्त होऊ ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है—हे मनुष्य ! यश और धन की आशा मे आप लोग आलस्य से पुरुषार्थ का न त्याग करो किन्तु नित्य पुरुषार्थ की वृद्धि से ऐश्वर्य की वृद्धि करके वस्त्र और रथ से जैसे वैसे सुख का भोग करके नवीन यश प्रकट करो ॥ १५ ॥

इस सूक्त मे इन्द्र और विद्वानो के गुणो का वर्णन होने से इस
सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ
सङ्गति जाननी चाहिये ।

यह उनतीसवाँ सूक्त और पच्चीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चदशर्चस्य त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य बभ्रुरात्रेय ऋषिः । इन्द्र ऋणञ्चयश्च देवता । १ । २ । ३ । ४ । ५ । ८ । ९ निचृत्त्रिष्टुप् । १० विराट् त्रिष्टुप् ७ । ११ । १२ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवत. स्वर । ६ । १३ पङ्क्ति. । १४ स्वराट्पङ्क्ति. । १५ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चम स्वर ॥

अब पन्द्रह ऋचा वाले तीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से इन्द्र के विषय को कहते हैं—

क्व स्य वीरः को अपश्यदिन्द्रं सुखरथमीयमानं हरिभ्याम् ।
यो राया वज्री सुतसोममिच्छन्तदोको गन्ता पुरुहूत ऊती ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् (कः) कौन (वीरः) शूर (इन्द्रम्) बिजुली को (अपश्यत्) देखता है (क्व) किस मे (हरिभ्याम्) वेग और आकर्षण से (सुखरथम्) सुख के अर्थ (ईयमानम्) चलते हुए रथ को देखता है (यः) जो (वज्री) शस्त्र और अस्त्रो से युक्त (गन्ता) जाने वाला (पुरुहूत) बहुतो से स्तुति किया गया (सुतसोमम्) इकट्ठा किया ऐश्वर्य जिस मे (तत्) उस (ओकः) गृह की (इच्छन्) इच्छा करता हुआ (ऊती) रक्षण आदि के लिये (राया) धन से बिजुली को देखता है (स्यः) वह सुख के लिए रथ को प्राप्त हो ॥ १ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! कौन बिजुली आदि की विद्या के प्राप्त होने को अधिकारी हैं इस प्रकार पूछता हूँ जो विद्वानो के सङ्ग से यथार्थवक्ता जनो की रीति से विद्या और हस्तक्रिया को ग्रहण करके नित्य प्रयत्न करें यह उत्तर है ॥ १ ॥

अवाचचक्षं पदमस्य सस्वरुग्रं निधातुरन्वायमिच्छन् ।
अपृच्छमन्याँ उत ते म आहुरिन्द्रं नरो बुबुधाना अशेम ॥२॥

पदार्थ—शिल्पविद्या की (इच्छन्) इच्छा करता हुआ मैं जिन (अन्यान्) अन्य विद्वानो को (अपृच्छम्) पूछू (ते) वे (बुबुधानाः) सबोधयुक्त (नरः) नायक जन विद्वान् (मे) मेरे लिये (इन्द्रम्) बिजुली को (आहुः) कहें उस को (अस्य) इस शिल्पविद्या के (निधातुः) धारण करने वाले के (सस्वः) गुप्त (उग्रम्) उग्रगुण, कर्म और स्वभाव वाले (पदम्) प्राप्त होने योग्य विज्ञान को (अनु, आयम्) अनुकूल प्राप्त होऊँ और अन्यो के प्रति (अव, अचचक्षम्) विशेष कहूँ इस प्रकार (उत) भी मित्र के सदृश वर्त्तमान हम लोग अङ्ग और उपाङ्गो के सहित शिल्पविद्याओ को (अशेम) प्राप्त होवें ॥ २ ॥

भावार्थ—जब शिल्प आदि विद्या के जानने की इच्छा करने वाले जन विद्वानो के प्रति पूछें तब उनके प्रति यथार्थ उत्तर देवें इस प्रकार परस्पर मित्र हुए बिजुली आदि की विद्या की उन्नति करें ॥ २ ॥

प्र नु वयं सुते या ते कृतानीन्द्र ब्रवाम यानि नो जुजोषः ।
वेददविद्वाञ्छृणवच्च विद्वान्वहतेऽयं मघवा सर्वसेनः ॥३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्वन् ! (या) जिन (ते) आप के (सुते) उत्पन्न हुए ससार मे (कृतानि) किये हुए कार्यों वा (नः) हम लोगो के (यानि) जिन कार्यों का (जुजोषः) आप सेवते हो उनका (वयम्) हम लोग (नु) शीघ्र (प्र, ब्रवाम) उपदेश देवें और जब (अयम्) यह (मघवा) बहुत धन वाला और (सर्वसेनः) सम्पूर्ण सेनाओ से युक्त (विद्वान्) विद्वान् जन विद्या को (वहते) प्राप्त होता व प्राप्त कराता है तब यह (अविद्वान्) विद्या रहित जन (शृणवत्) श्रवण करे और (वेदत्) विशेष करके जाने (च) भी ॥ ३ ॥

भावार्थ—दो उपाय विद्या की प्राप्ति के लिए जानने चाहियें उनमे प्रथम उपाय यह कि विद्या का अध्यापक यथार्थवक्ता होवे तथा सुनने और पढने वाला पवित्र कपटरहित और पुरुषार्थी होवे । दूसरा उपाय यह है कि श्रेष्ठ विद्वानों का कर्म देखकर आप भी वैसा ही कर्म करें ऐसा करने पर सबको विद्या का लाभ होवे ॥ ३ ॥

अब वीरों के कर्म को कहते हैं—

स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र वेषीदेको युधये भूयसश्चित् ।
अश्मानं चिच्छवसा दिद्युतो वि विदो गवामूर्वमुस्रियाणाम् ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) योगजन्य ऐश्वर्य्य की इच्छा करनेवाले जन जिस प्रकार (एकः) एक सूर्य्य (युधये) युद्ध के लिए (शवसा) बल से (अश्मानम्) मेघ का और (भूयसः) बहुत (चित्) भी मेघो को तथा (गवाम्) चलनेवाले (उस्रियाणाम्) किरणो के (ऊर्वम्) नाश करनेवाले को (चकृषे) करता और दोनों (चित्) निश्चित (वि, दिद्युतः) प्रकाश करते हैं वैसे आप विजय को (विदः) जनाइये एक (जातः) प्रकट हुए आप जिस से (मनः) अन्तःकरण को (स्थिरम्) निश्चल करते हो (इत्) इसी से राज्य को (वेषि) प्राप्त होते हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य और मेघ परस्पर युद्ध करते हैं वैसे राजा शत्रु के साथ सग्राम करे और जैसे सूर्य्य किरणो से सब कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे राजा सेना और मन्त्रीजनो से सम्पूर्ण राजकृत्य सिद्ध करें ॥ ४ ॥

परो यत्त्वं परम आजनिष्ठाः परावति श्रुत्यं नाम बिभ्रत् ।
अतश्चिदिन्द्रादभयन्त देवा विश्वा अपो अजयद्दासपत्नीः ॥५॥२६॥

पदार्थ—हे विद्वन् (यत्) जो (त्वम्) आप (परः) उत्तम (परमः) अत्यन्त श्रेष्ठ (श्रुत्यम्) श्रवण मे उत्पन्न (नाम) सज्ञा को (बिभ्रत्) धारण करते हुए (आजनिष्ठाः) सब प्रकार से प्रकट होते हो वह जैसे (परावति) दूर देश मे स्थित सूर्य्य (विश्वाः) सम्पूर्ण (दासपत्नीः) जल का देनेवाला मेघ जिन का पालनकर्त्ता ऐसे (अपः) जलो को (अजयत्) जीतता है और जैसे (देवाः) विद्वान् जन (इन्द्रात्) बिजुली से (अभयन्त) नहीं डरते हैं वैसे वर्त्तमान होते पर (अतः) इस से (चित्) भी सुख की वृद्धि करिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे दूर स्थित भी सूर्य्य अपने प्रकाश से प्रसिद्ध होता है वैसे ही दूरवर्त्तमान भी यथार्थवक्ता जन प्रकाशित यशवाले होते हैं ॥ ५ ॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

तुभ्येदेते मरुतः सुशेवा अर्चन्त्यर्कं सुन्वन्त्यन्धः ।
अहिमोहानमप आशयानं प्र मायाभिर्मायिनं सक्षदिन्द्रः ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् जैसे (इन्द्रः) बिजुली (मायाभिः) बुद्धियो से (आशयानम्) चारो ओर शयन करते हुए (मायिनम्) निकृष्ट बुद्धिवाले और (ओहानम्) त्याग करते हुए (अहिम्) मेघ को (सक्षत्) प्राप्त होता है और ताड़न करके (अपः) जलो को भूमि मे गिराता है और जैसे (एते) ये (तुभ्य) आप के लिए (सुशेवाः) उत्तम सुखवाले (मरुतः) ऋत्विक् मनुष्य (अर्कम्) सत्कार करने योग्य का (अर्चन्ति) सत्कार करते हैं और (अन्धः) अन्न को (सुन्वन्ति) उत्पन्न करते हैं वैसे (इत्) ही आप के लिए सम्पूर्ण विद्वान् जन सुख (प्र) देवें ॥ ६ ॥

भावार्थ—वे ही विद्वान् जन जगत् के सुख करनेवाले होते हैं जो सूर्य और मेघ के समान जगत् के सुख करनेवाले हैं तथा अपने समान दूसरो के सुख करनेवाले होते हैं ॥ ६ ॥

अब वीरविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वि षू मृधो जनुषा दानमिन्वन्नहन्गवा मघवन्त्संचकानः ।
अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो यदवर्तयो मनवे गातुमिच्छन् ॥७॥

पदार्थ—हे (मघवन्) धन और ऐश्वर्य से युक्त राजन् ! आप (अनुधा) जन्म से (दामन्) दान को (इष्णन्) प्राप्त होते हुए जैसे सूर्य्य (गवा) किरण से मेघ का (अहन्) नाश करता है वैसे (युधः) संग्रामों को जीतिये और (सम्बकान) उत्तम प्रकार कामना करते हुए जैसे (अत्रा) इस व्यवहार में सूर्य (नमुचेः) अपने स्वरूप को नहीं त्यागनेवाले (दासस्य) सेवक के सदृश वर्त्तमान मेघ के (शिरः) उत्तम अङ्ग का (वि) विशेष करके नाश करता है वैसे आप (मनवे) विचारशील धार्मिक मनुष्य के लिए (यत्) जिस (गातुम्) भूमि वा वाणी की (इच्छन्) इच्छा करते हुए हो उस के लिए शत्रु के शिर को (सु) उत्तम प्रकार (अवर्त्तयः) नाश करिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजजनो ! जो सूर्य मेघ को जीत कर जगत् को सुख देता है वैसे दुष्ट शत्रुओं को जीत कर प्रजाओं को सुख दीजिये ॥ ७ ॥

युजं हि मामकृथा आदिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
अश्मानं चित्स्वर्यं१ वर्त्तमानं प्र चक्रियेव रोदसी मरुद्भ्यः ॥८ ।

पदार्थ—हे (इन्द्र) राजन् ! जैसे सूर्य्य (नमुचेः) प्रवाहरूप से नहीं नाश होने और (दासस्य) जल देनेवाले मेघ के (शिरः) शिर के सदृश वर्त्तमान कठिन अङ्ग का (मथायन्) मन्थन करता हुआ (चित्) भी (स्वर्य्यम्) शब्दों में श्रेष्ठ (वर्त्तमानम्) वर्त्तमान (अश्मानम्) व्याप्त होते हुए मेघ को पृथिवी के साथ युक्त करता और (चक्रियेव) जैसे चक्र वैसे (मरुद्भ्यः) पवनों से (रोदसी) (अन्तरिक्ष और पृथिवी को घुमाता है वैसे (आत्) अनन्तर (इत्) ही (माम्) मुझको (हि) ही (युजम्) युक्त (प्र, अकृथाः) अच्छे प्रकार करिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजजनो ! आप लोग जैसे सूर्य्य मेघ को वर्षाय जगत् के सुख को और पवन से भूगोलों को घुमा के दिन रात्रि करता है वैसे ही विद्या और विनय की राज्य में वृष्टिकर अपने अपने कर्म में सब को चलाके सुख और विजय को उत्पन्न करो ॥ ८ ॥

स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेनाः ।
अन्तर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद्युधये दस्युमिन्द्रः ॥९॥

पदार्थ—हे राजन् जैसे (दासः) सेवक के सदृश मेघ (स्त्रियः) स्त्रियों को (आयुधानि) तलवार आदि शस्त्रों के सदृश (चक्रे) करता है (अस्य) इस की (अबलाः) बल से रहित (सेनाः) सेनायें हैं (इन्द्रः) सूर्य्य के सदृश राजा (हि) ही (मा) मुझको (किम्) क्या (करन्) करे और जो (अन्तः) अन्तःकरण में (अख्यत्) प्रकट करता है और जिस (अस्य) इस मेघ की (उभे) दोनों अर्थात् मन्द और तीव्र (धेने) वाणी वर्त्तमान है (अथ) अनन्तर जिसको सूर्य्य (युधये) संग्राम के लिए (उप, प्र, ऐत्) समीप प्राप्त होता है उस के सदृश वर्त्तमान (हि) निश्चित (दस्युम्) दुष्ट डाकू को वश में करे ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वे ही जन दास हैं कि जिनकी स्त्रियां शत्रु के सदृश विजय को देनेवाली वर्त्तमान होवें और जैसे सूर्य्य और मेघ का सङ्ग्राम है वैसे ही दुष्टजनों के साथ राजा का सङ्ग्राम हो ॥ ९ ॥

अब विद्वानों के उपदेशविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

समत्र गावोऽभितोऽनवन्तेहेह वत्सैर्वियुता यदासन् ।
सं ता इन्द्रो असृजदस्य शाकैर्यदीं सोमासः सुषुता अमन्दन् ॥१०॥२७

पदार्थ—हे मनुष्यो (यत्) जो (इहेह) इस जगत् में (गावः) किरणें (वत्सैः) बछड़ों से (वियुताः) वियुक्त (अभितः) चारों ओर से (आसन्) होती हैं (ताः) उनकी आप लोग (अनवन्त) स्तुति प्रशंसा करें और जिस को (अस्य) इस मेघ के (शाकैः) सामर्थ्यों से (अत्र) इस संसार में (इन्द्रः) सूर्य्य (सम्) अच्छे प्रकार (असृजत्) उत्पन्न करता है वा (ईम्) सब ओर से (सुषुताः) उत्तम प्रकार उत्पन्न (सोमासः) पदार्थ वा ऐश्वर्य्यवाले जीव (यत्) जो (अमन्दन्) आनन्दित होते हैं उनको सूर्य्य (सम्) एक साथ उत्पन्न करता है ॥ १० ॥

भावार्थ—जैसे बछड़ों से वियुक्त गौएँ नहीं शोभित होती हैं वैसे ही सन्तानों के सदृश वर्त्तमान सघन अवयवों से रहित मेघ नहीं शोभित होता है ॥ १० ॥

अब वीरराजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यदीं सोमा बभ्रुधूता अमन्दन्नरोरवीद्वृषभः सादनेषु ।
पुरन्दरः पपिवाँ इन्द्रो अस्य पुनर्गवामददादुस्रियाणाम् ॥११॥

पदार्थ—हे राजन् ! जैसे (इन्द्रः) सूर्य (अस्य) इस मेघ के (सादनेषु) स्थानों में (पपिवान्) पीवने और (पुरन्दरः) पुरों को नाश करनेवाला (उस्रियाणाम्) किरणों और (गवाम्) गौओं के (पुनः) फिर तेज को (अददात्) देता है (वृषभः) वृष्टि करनेवाला हुआ (अरोरवीत्) अत्यन्त शब्द करता है (यत्) जिससे (बभ्रुधूताः) विद्या को धारण किये हुओं से पवित्र किये गये (सोमाः) सोम ओषधि के सदृश वर्त्तमान पदार्थ (ईम्) सब ओर से उत्पन्न होते हैं जिससे प्राणी (अमन्दन्) आनन्दित होते हैं वैसे आप प्रजाओं में वर्त्ताव कीजिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा सूर्य्य मेघ के स्वभाव के सदृश स्वभाववाला हुआ धर्म्मशास्त्र में कहे हुए अष्ट मासपरिमाण परिमित प्रजाओं से कर लेता है और चार मास यथेष्ट पदार्थों को देता है इस प्रकार सब प्रजाओं को प्रसन्न करता है वही सब प्रकार से ऐश्वर्य्यवान् होता है ॥ ११ ॥

अब अग्निदृष्टान्त से राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

भद्रमिदं रुशमा अग्ने अक्रन्गवां चत्वारि ददतः सहस्रा ।
ऋणंचयस्य प्रयता मघानि प्रत्यग्रभीष्म नृतमस्य नृणाम् ॥१२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी राजन् ! जिस (ऋणञ्चयस्य) अर्थात् जिस से ऋण बटोरता है उस के और (गवाम्) किरणों के (चत्वारि) चार (सहस्रा) हजार को (ददतः) देते हुए सूर्य के (इदम्) इस (भद्रम्) कल्याण को (रुशमाः) हिंसा करनेवालों के फेंकनेवाले (अक्रन्) करते हैं उस के सदृश वर्त्तमान उस (नृणाम्) मनुष्यों के (नृतमस्य) नृतम अर्थात् अत्यन्त मनुष्यपनयुक्त श्रेष्ठ आप के (मघानि) धनों को हम लोग (प्रयता) प्रयत्न से (प्रति, (अग्रभीष्म) प्रतीति से ग्रहण करें ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य सहस्रों किरणों को देकर सम्पूर्ण जगत् को आनन्दित करता है वैसे ही राजा असंख्य उत्तम गुणों को देकर प्रजाओं को निरन्तर प्रसन्न करे ॥ १२ ॥

सुपेशसं माव सृजन्त्यस्तं गवां सहस्रै रुशमासो अग्ने ।
तीव्रा इन्द्रममन्दुः सुतासोऽक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाः ॥१३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान राजन् ! जो (गवाम्) किरणों के (सहस्रैः) सहस्रों समूहों से (रुशमासः) हिंसकों के नाश करनेवाले (तीव्राः) तीक्ष्ण स्वभावयुक्त जो (सुतासः) विद्या आदि गुणों से उत्पन्न हुए (परितक्म्यायाः) सब प्रकार हसते हैं जिन कर्मों से उनमें हुई (अक्तोः) रात्रि की (व्युष्टौ) प्रभात वेला में (सुपेशसम्) अत्यन्त सुन्दर रूपवाले (मा) मुझको (अस्तम्) गृह के सदृश (अव, सृजन्ति) उत्पन्न करते हैं और (इन्द्रम्) सूर्य के सदृश तेजस्वी राजा को (अमन्दुः) आनन्दित करें उनको आप जान के यथावत् सेवा करो ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो बिजुली और सूर्यरूप अग्नि युक्तिपूर्वक आप लोगों से सेवन किया जाय तो दिन और रात्रि सुखपूर्वक व्यतीत होवें ॥ १३ ॥

औच्छत्सा रात्री परितक्म्या याँ ऋणंचये राजनि रुशमानाम् ।
अत्यो न वाजी रघुरज्यमानो बभ्रुश्चत्वार्यसनत्सहस्रा ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (या) जो (रुशमानाम्) हिंसा करनेवाले मन्त्रियों के (ऋणञ्चये) ऋण को इकट्ठा करता है जिससे उस (राजनि) राजा में (रघुः) छोटा (अज्यमानः) चलाया गया (बभ्रुः) धारण वा पोषण करनेवाले और (अत्यः) मार्ग को व्याप्त होनेवाले (वाजी) वेगयुक्त के (न) सदृश (चत्वारि) चार (सहस्रा) सहस्रों का (असनत्) विभाग करता है (सा) वह (परितक्म्या) आनन्द देनेवाली (रात्री) रात्री सम्पूर्णों को (औच्छत्) निवास देती है यह जानो ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! आप लोग रात्रि और दिन के कृत्यों को जानकर और स्वयं उत्तम प्रकार परीक्षा करके राजा आदिकों के लिए उन कृत्यों का उपदेश दीजिए जिससे ये सब सुखी हों और जैसे शीघ्र चलनेवाला घोड़ा दौड़ता है वैसे ही दिन और रात्रि व्यतीत होता है यह जानना चाहिए ॥ १४ ॥

चतुःसहस्रं गव्यस्य पश्वः प्रत्यग्रभीष्म रुशमेष्वग्ने ।
घर्मश्चित्तप्तः प्रवृजे य आसीदयस्मयस्तम्वादाम विप्राः ॥१५॥२८॥

पदार्थ—(अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान राजन् ! (यः) जो (अयस्मयः) सुवर्ण के सदृश तेजःस्वरूप (तप्तः) तापयुक्त (घर्मः) प्रताप (प्रवृजे) अच्छे प्रकार त्याग करते हैं जिसमें उसमें और (रुशमेषु) हिंसकमन्त्रियों में (आसीत्) वर्त्तमान है (तम्) उस (चतुःसहस्रम्) चार हजार संख्यायुक्त को (गव्यस्य) किरणों के विकार और (पश्वः) पशु के सम्बन्ध में जैसे हम लोग (प्रति, अग्रभीष्म) ग्रहण करें वैसे आप ग्रहण करो और हे (विप्राः) बुद्धिमानजनो आप लोगों के लिए उस (उ) ही को हम लोग (आदाम) सब प्रकार से देवें उसको हमलोगों के लिए आप लोग (चित्) भी दीजिये ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य शीत और उष्ण का सेवन युक्ति से करने को जानते हैं और इसकी विद्या को परस्पर देते हैं वे सर्वदा रोगरहित होते हैं ॥ १५ ॥

इस सूक्त में राजा, वीर, अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तीसवां सूक्त और अट्ठाईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ त्रयोदशर्चस्यैकाधिकत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य अवस्युरात्रेय ऋषिः ।
१-८ । १०-१३ इन्द्रः । ८ इन्द्रः कुत्सो वा । ८ इन्द्र उशना वा । ९ इन्द्रः
कुत्सश्च देवताः । १ । २ । ५ । ७ । ६ । ११ निचृत्त्रिष्टुप् ।
३ । ४ । ६ । १० त्रिष्टुप् । १३ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः । ८ । १२ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

अब तेरह ऋचावाले इकतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से इन्द्रगुणों को कहते हैं—

इन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोति यमध्यस्थान्मघवा वाजयन्तम् ।
यूथेव पश्वो व्युनोति गोपा अरिष्टो याति प्रथमः सिषासन् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (**अरिष्ट**) नहीं मारा गया (**प्रथम**) प्रथम (**सिषासन्**) इच्छा करता हुआ (**मघवा**) अत्यन्त श्रेष्ठ धनरूप कारणयुक्त (**इन्द्रः**) सूर्य के सदृश सेना का ईश (**गोपा**) गौओं का पालन करनेवाला (**पश्वः**) पशुओं के (**यूथेव**) समूहों के सदृश लोकों को (**वि**) विशेषकरके (**उनोति**) प्रेरणा करता और (**वाजयन्तम्**) भूगोलों के चलाते हुए को (**याति**) जाता है और (**यम्**) जिस लोक को (**अध्यस्थात्**) अधिष्ठित होता उससे (**रथाय**) वाहन के लिये (**प्रवतम्**) नीचे स्थल को (**कृणोति**) करता है वैसे आप आचरण करिये ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा रथ आदि के चलने के लिए मार्गों को सुडौल बनाके उन मार्गों से रथ आदि वाहनों पर चढ़के तथा जाय और आय के पशुओं का पालन करनेवाला पशुओं को जैसे वैसे शत्रुओं को रोक के प्रजाओं का निरन्तर पालन करता है वही सब प्रकार वृद्धि को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

आ प्र द्रव हरिवो मा वि वेनः पिशङ्गराते अभि नः सचस्व ।
नहि त्वदिन्द्र वस्यो अन्यदस्त्यमेनांश्चिज्जनिवतश्चकर्थ ॥२॥

पदार्थ—हे (**हरिवः**) श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त (**पिशङ्गराते**) सुवर्ण आदि के देनेवाले और (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले राजन् ! आप (**मा, वि, वेन**) कामना मत करें अर्थात् कामी न हो और (**अमेनान्**) नहीं विद्यमान है प्रक्षेप करनेवाली स्त्रियां जिनकी उनको (**चित्**) उन्हीं (**जनिवतः**) जन्मवाले (**चकर्थ**) करें और (**नः**) हम लोगों का (**अभि, सचस्व**) सब ओर से सम्बन्ध करें और शत्रु के विजय के लिए (**प्र, आ, द्रव**) अच्छे प्रकार दौड़ें जिससे (**त्वत्**) आप से (**वस्यः**) अत्यन्त बसनेवाला (**अन्यत्**) दूसरा (**नहि**) नहीं (**अस्ति**) है वह आप हम लोगों का सुख से सम्बन्ध कीजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—जो अतिकालपर्य्यन्त जीवने, बल बढ़ाने, राज्य करने और वृद्धि करने के लिए यत्न करता है वही कृतकृत्य होता है ॥ २ ॥

उद्यत्सहः सहस आजनिष्ट देदिष्ट इन्द्र इन्द्रियाणि विश्वा ।
प्राचोदयत्सुदुघा वव्रे अन्तर्वि ज्योतिषा संववृत्वत्तमोऽवः ॥३॥

पदार्थ—हे राजन् जैसे (**इन्द्र**) योगरूप ऐश्वर्य से युक्त सूर्य्य (**सहस**) बल से (**यत्**) जिस (**सह**) बल को (**उत, आ, अजनिष्ट**) उत्पन्न करता (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**इन्द्रियाणि**) श्रोत्र आदि इन्द्रियों वा धनों का (**देदिष्टे**) उपदेश देता और (**प्र, अचोदयत्**) प्रेरणा करता और (**सुदुघा**) उत्तम प्रकार कामनाओं को पूर्ण करनेवाली क्रियाओं का (**वव्रे**) स्वीकार करता है वैसे (**अन्तः**) मध्य में (**ज्योतिषा**) प्रकाश से (**संववृत्वत्**) घेरनेवाली (**तमः**) रात्रि की (**वि**) विशेष करके (**अवः**) रक्षा करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो राजा बल से बल और धन से धन को उत्पन्न करके न्याय के प्रकाश से अन्यायरूप अन्धकार का निवारण कर पूर्ण मनोरथों से युक्त प्रजाओं को करके विद्या आदि उत्तम गुणों के ग्रहण के लिए प्रेरणा करता है वही अखण्ड ऐश्वर्य वाला सदा होता है ॥ ३ ॥

अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ।
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥४॥

पदार्थ—हे (**पुरुहूत**) बहुतों से स्तुति किये गये राजन् ! जो (**अनवः**) मनुष्य (**ते**) आपके (**अश्वाय**) शीघ्र गमन के लिए (**रथम्**) वाहन को (**तक्षन्**) रचें और (**त्वष्टा**) सब प्रकार से विद्या से प्रदीप्तजन (**द्युमन्तम्**) प्रकाशयुक्त (**वज्रम्**) शस्त्र और समूह को गिराना है और (**महयन्तः**) प्रशंसा करते हुए (**ब्रह्माणः**) चारों वेदों के जाननेवाले विद्वान् (**अर्कैः**) सत्कार के अत्यन्त सिद्ध करनेवाले विचारों वचनों वा कर्मों से आप (**इन्द्रम्**) अखण्ड ऐश्वर्य्ययुक्त राजा की (**अवर्धयन्**) वृद्धि करते हैं और (**अहये**) मेघ के लिए (**हन्तवै**) नाश करने को वृद्धि करते हैं उनका (**उ**) तर्कपूर्वक आप निरन्तर सत्कार करिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—राजाओं की योग्यता है कि जो अन्तःकरण से राज्य की उन्नति करने की इच्छा करें वे सदा ही सत्कार करने योग्य हैं ॥ ४ ॥

वृष्णे यत्ते वृषणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः ।
अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून् ॥५॥२९॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) दुष्टदलों के नाश करनेवाले राजन् (**यत्**) जिन (**वृष्णे**) वृष्टि करनेवाले (**ते**) आपके लिए (**अर्कम्**) सत्कार करने योग्य को प्रजाजन (**अर्चान्**) सत्कार करें वह जैसे (**वृषणः**) वर्षा के निमित्त (**ग्रावाणः**) मेघ और (**सजोषाः**) समान प्रीति का सेवन करनेवाला और (**अदितिः**) अन्तरिक्ष वर्त्तमान है वैसे हूजिए । और (**ये**) जो (**अरथाः**) वाहनों से (**अनश्वासः**) घोड़ों से रहित (**इन्द्रेषिताः**) स्वामी से प्रेरणा किये गये (**पवयः**) चक्र (**दस्यून्**) दुष्ट चोरों के (**अभि**) सन्मुख (**अवर्त्तन्त**) वर्त्तमान हैं उन का आप निरन्तर सत्कार कीजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो राजाजन मेघ के सदृश सुख वर्षावें और आकाश के सदृश नहीं हिलनेवाले अग्नि आदि के वाहनों को रथ के इधर उधर भ्रमण करके दुष्ट चोरों का नाश करके प्रजाओं को प्रसन्न करें वे भाग्यशाली होते हैं ॥ ५ ॥

अब विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं प्र नूतना मघवन्या चकर्थ ।
शक्तीवो यद्विभरा रोदसी उभे जयन्नपो मनवे दानुचित्राः ॥६॥

पदार्थ—हे (**शक्तीवः**) बहुत प्रकार सामर्थ्य से युक्त (**मघवन्**) श्रेष्ठ ऐश्वर्यवाले राजन् बुद्धिमान् जन (**यत्**) जैसे (**या**) जिन (**पूर्वाणि**) प्राचीन (**करणानि**) साधनों और जिन (**नूतना**) नवीनों को (**प्र**) सिद्ध करते हैं उन साधनों को मैं (**ते**) आपके लिए वैसे (**प्र, वोचम्**) उपदेश करूं और जो (**विभराः**) विशेष करके पोषण करने और (**दानुचित्राः**) अद्भुत दानवाले विद्वान् जन (**मनवे**) मनुष्य के लिए (**उभे**) दोनों (**रोदसी**) अन्तरिक्ष और पृथिवी को जनाते हैं उनके साथ आप मनुष्य के लिए (**अपः**) सूर्य्य जैसे जलों को वैसे शत्रुओं के प्राणों को (**जयन्**) जीतते हुए उनके सुख के लिए सत्कार को (**चकर्थ**) करते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे राजा आदि जनो ! जो विद्वान् जन आप लोगों लिए अनादिकाल से सिद्ध राजनीति और विजय के उपायों की शिक्षा करें उनको अपने आत्मा के सदृश आप लोग सत्कार करें ॥ ६ ॥

तदिन्नु ते करणं दस्म विप्राहिं यद्घ्नन्नोजो अत्रामिमीथाः ।
शुष्णस्य चित्परि माया अगृभ्णाः प्रपित्वं यन्नप दस्यूँरसेधः ॥७॥

पदार्थ—हे (**दस्म**) उपेक्षा करनेवाले (**विप्र**) बुद्धिमान् आप सूर्य्य (**अहिम्**) जैसे मेघ को वैसे दोषों का नाश करते हैं (**अत्र**) वा इस जगत् में (**ओजः, यत्**) जल के सदृश जो बल का गिराना है (**तत्**) वह (**करणम्**) साधन जैसे हो वैसे शत्रु के बल का (**घ्नन्**) नाश करते हुए इस जगत् में तुम (**शुष्णस्य**) बल की वृद्धि का (**अमिमीथाः**) निर्माण करो (**चित्**) और (**मायाः**) बुद्धियों का (**परि, अगृभ्णाः**) सब ओर से ग्रहण करो और (**प्रपित्वम्**) प्राप्ति को (**यन्**) प्राप्त होते हुए (**दस्यून्**) दुष्टों का (**अप, असेधः**) निवारण करें उन (**ते**) आपके लिए (**नु**) तर्क वितर्क के साथ (**इत्**) ही सुख प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वन् ! जैसे ईश्वर ने सूर्य और मेघ का सम्बन्ध रचा वैसे ही अन्य भी बहुत सम्बन्ध रचे यह जानना चाहिए ॥ ७ ॥

त्वमपो यदवे तुर्वशायारमयः सुदुघाः पार इन्द्र ।
उग्रमयातमवहो ह कुत्सं सं ह यद्वामुशनारन्त देवाः ॥८॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्यदाता (**पारः**) पार लगानेवाले होते हुए (**त्वम्**) आप (**तुर्वशाय**) शीघ्र वश करने में समर्थ (**यदवे**) मनुष्य के लिए (**सुदुघाः**) उत्तम प्रकार पूर्ण करने योग्य (**अपः**) जलों के सदृश कर्मों को (**अरमयः**) रमावें और (**उग्रम्**) बड़े कष्ट से जिसको जीत सकें उस (**अयातम्**) न प्राप्त हुए (**कुत्सम्**) कुत्सित को (**ह**) निश्चय (**सम्, अवहः**) अच्छे प्रकार प्राप्त होवें तथा (**यत्**) जिससे (**उशना**) कामना करते हुए (**देवाः**) विद्वान् जन (**अरन्त**) रमें उससे (**ह**) निश्चय (**वाम्**) आप दोनों अर्थात् आप को और पूर्वोक्त मनुष्य को रमावें ॥ ८ ॥

भावार्थ—ऐश्वर्यवाला मनुष्य अन्य जनों के लिए धन और धान्य आदिक देवें और जहां विद्वान् रमें वहां ही सम्पूर्ण जन क्रीड़ा करें ॥ ८ ॥

अब यन्त्रकलाविषय शिल्पकर्म को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

इन्द्राकुत्सा वहमाना रथेना वामत्या अपि कर्णे वहन्तु ।
निः षीमद्भ्यो धमथो निः षधस्थान्मघोनो हृदो वरथस्तमांसि ॥९॥

पदार्थ—हे अध्यापको और उपदेशको ! जैसे (**इन्द्राकुत्सा**) बिजुली और बिजुली का आघात (**रथेन**) वाहन से (**वहमाना**) प्राप्त कराते हुए वर्त्तमान हैं वा विद्वान्जन (**कर्णे**) करते हैं जिससे उसमें (**वाम्**) आप दोनों को (**आ, वहन्तु**) पहुँचावें वैसे (**अत्याः**) निरन्तर चलनेवाले घोड़े (**अपि**) भी सबको प्राप्त कराने को समर्थ होते हैं और जो बिजुली और अग्नि (**अद्भ्यः**) जलों से (**निः, धमथः**) शब्द करते हैं तो वे दोनों (**सधस्थात्**) तुल्य स्थान से (**सीम्**) सब प्रकार प्राप्त कराते और जो (**हृदः**) हृदयों के सदृश प्रिय (**मघोनः**) धनाढ्यपुरुषों को (**निः**) अत्यन्त (**वरथः**) स्वीकार करते हैं तो सुख से (**तमांसि**) अन्धकारों को हटाने को समर्थ होओ ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो अग्नि और जल का संयोग कर शब्द कर और भाफ से यन्त्रकलाओं को ताड़ित करके वाहनादिकों को चलावें तो आप अपने को और मित्रों को धन से युक्त करके दुःखों के पार जावें और अन्यों को भी पार करें ॥ ९ ॥

वातस्य युक्तान्त्सुयुजश्चिदश्वान्कविश्चिदेषो अजगन्नवस्युः ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सखाय इन्द्र ब्रह्माणि तविषीमवर्धन् ॥१०॥३०॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) विद्वन् जो (**ते**) आपके (**अत्र**) इस शिल्पविद्या के जाननेरूप कार्य मे (**सखाय**) मित्र (**विश्वे**) सम्पूर्ण (**मरुत**) ऋतु ऋतु मे यज्ञ करनेवाले विद्वान् जन (**ब्रह्माणि**) धनों का अन्नो की और (**तविषीम्**) सेना की (**अवर्धन्**) वृद्धि करते है और (**वातस्य**) वायु के वेग से (**युक्तान्**) युक्त हुए (**सुयुज**) उत्तम प्रकार पदार्थों के मेल करनेवाले (**चित्**) निश्चित (**अश्वान्**) शीघ्रगामी अर्थात् तीव्र वेगयुक्त अग्नि आदि पदार्थों को (**अजगन्**) चलावें उनको (**एषः**) यह वर्त्तमान (**अवस्यु**) अपने को रक्षण की इच्छा रखनेवाले (**कवि - चित्**) निश्चित बुद्धिमान् आप निरन्तर सत्कार करें ॥ १० ॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्य की इच्छा रखनेवाले पुरुष ! जो जन अग्नि आदि पदार्थों की विद्या से विचित्र आश्चर्यजनक वाहन आदि कार्यों की सिद्धि कर सकते हैं उनके साथ मित्रता करके और उनसे विद्या को प्राप्त हो अभीष्ट कार्यों की सिद्धि करते हुए आप अत्यन्त ऐश्वर्य को प्राप्त होवें ॥ १० ॥

सूरश्चिद्रथं परितक्म्यायां पूर्वं करदुपरं जूजुवांसम् ।
भरच्चक्रमेतशः सं रिणाति पुरो दधत्सनिष्यति क्रतुं नः ॥११॥

पदार्थ—हे विद्वन् जो (**सूर**) सूर्य्य के (**चित्**) सदृश (**परितक्म्यायाम्**) सर्व ओर से हर्ष होते हैं जिस रात्रि मे उस मे (**पूर्वम्**) प्रथम (**रथम्**) सुन्दर वाहन को (**उपरम्**) मेघ के सदृश (**करत्**) करे और (**जूजुवांसम्**) अत्यन्त वेग से युक्त (**चक्रम्**) कलाओं को चलानेवाले चक्र को (**एतश**) जैसे घोड़ा घोड़े वाले को वैसे सब प्रकार (**भरत्**) धारण करे (**पुर**) पहिले चक्र को (**सम्, रिणाति**) प्राप्त होता वाहन का (**दधत्**) धारण करता और (**न**) हम लोगों की (**क्रतुम्**) बुद्धि वा कर्मों का (**सनिष्यति**) सेवन करे उसका आप सब प्रकार सत्कार करें ॥ ११ ॥

भावार्थ इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है । जो मनुष्य कलाकौशल से वाहनो के यन्त्रो को रच के जल और अग्नि के अत्यन्त योग से चक्रो को उत्तम प्रकार चलाय कार्यों को सिद्ध करें तो जैसे सूर्य और पवन मेघ को वैसे बहुत भारयुक्त वाहन को अन्तरिक्ष जल और स्थल मे पहुँचाने को समर्थ होवें ॥ ११ ॥

आयं जना अभिचक्षे जगामेन्द्रः सखायं सुतसोममिच्छन् ।
वदन्ग्रावाव वेदिं भ्रियाते यस्य जीरमध्वर्यवश्चरन्ति ॥१२॥

पदार्थ—हे (**जना**) प्रसिद्ध विद्वान्‌जनो जो (**अयम्**) यह (**इन्द्र**) ऐश्वर्यवाला (**अभिचक्षे**) सब ओर से प्रसिद्ध होने को (**सुतसोमम्**) सपन्न की पदार्थविद्या जिसने ऐसे (**सखायम्**) मित्रकी (**इच्छन्**) इच्छा करता और (**ग्रावा**) गर्जना से युक्त मेघ के सदृश (**वदन्**) उपदेश देता हुआ जन (**वेदिम्**) अग्नि के स्थान को (**अव, आ, जगाम**) प्राप्त होवे (**यस्य**) जिसके (**जीरम्**) वेग को (**अध्वर्यव**) विद्यारूप यज्ञ के सम्पादक अर्थात् उक्त यज्ञ को प्रसिद्ध करनेवाले जन (**चरन्ति**) प्राप्त होते हैं और जो दो शिल्पविद्या को (**भ्रियाते**) धारण करें उन दोनो का सदा ही आप लोग सत्कार करें ॥ १२ ॥

भावार्थ—जो जन विद्या की प्राप्ति तथा विद्या देने के लिए सम्पूर्ण जनो के साथ मित्रता करके मिलें वे सम्पूर्ण विद्या प्राप्त होने को समर्थ होवें ॥ १२ ॥

ये चाकनन्त चाकनन्त नू ते मर्ता अमृत मो ते अंह आरन् ।
वावन्धि यज्यूँरुत तेषु धेह्योजो जनेषु येषु ते स्याम ॥१३॥३१॥

पदार्थ—हे (**अमृत**) आत्मस्वरूप से मरणधर्मरहित विद्वान् (**ये**) जो विद्या विनय और सत्य आचरणो की (**चाकनन्त**) कामना करते हैं तथा अन्यों के लिए भी (**चाकनन्त**) कामना करते हैं (**ते**) वे (**मर्ता**) मनुष्य सत्य की (**नू**) शीघ्र कामना करते है और (**ते**) वे (**अंह**) अपराध को (**मो**) नहीं (**आ, अरन्**) सब प्रकार से प्राप्त हो और वे (**उत**) ही (**यज्यून्**) सत्यभाषण आदि यज्ञ के अनुष्ठान करनेवाले जनो को (**वावन्धि**) बन्धनयुक्त करते है तथा (**येषु**) जिन (**जनेषु**) सत्य आचरण करनेवाले मनुष्यों मे हम लोग (**ते**) आप के मित्र (**स्याम**) होवें (**तेषु**) उन हम लोगो मे आप (**ओज**) पराक्रम का (**धेहि**) धारण कीजिए ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् जनो ! जो जन विद्या सत्य आचरण तथा परोपकार की और अधर्म आचरण के त्याग की कामना करके सब के उपकार की इच्छा करें वे धन्यवादयुक्त होवें और हम लोग भी ऐसे होवें ऐसी इच्छा करें ॥ १३ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान् और शिल्पविद्या के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

यह इकतीसवां सूक्त और इकतीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ द्वादशर्चस्य द्वात्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य गातुरात्रेय ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ७, ९, ११ त्रिष्टुप् । २, ३, ४, १०, १२ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवत. स्वरः । ५, ८ स्वराट्पङ्क्तिः । ६ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः

अब बारह ऋचावाले बत्तीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम-द्वितीय मन्त्र मे इन्द्रपदवाच्य राजगुणों को कहते हैं—

अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्बद्बधानाँ अरम्णाः ।
महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजो वि धारा अव दानवं हन् ॥१॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) शत्रुओ के नाश करनेवाले राजन् ! जिस प्रकार सूर्य (**उत्सम्**) कूप के समान (**महान्तम्**) बड़े (**पर्वतम्**) पर्वताकार मेघ को नाश करके (**बद्बधानाम्**) अत्यन्त बधे हुओ को (**अदर्द.**) नाश करता है और (**अर्णवान्**) नदियो वा समुद्रो का (**सृज**) त्याग करता है वैसे (**त्वम्**) आप (**खानि**) इन्द्रियो का (**वि**) विशेषकर त्याग कीजिये और हम लोगों को (**वि, अरम्णा**) विशेष रमण कराइये और (**यत्**) जो सूर्य (**धारा**) जल के प्रवाहो के सदृश वाणियो का और (**दानवम्**) दुष्ट जन का (**अव, हन्**) नाश करता है (**व**) आप लोगो के लिए (**वि**) विशेष (**वि, असृज**) विशेष कर त्यागना अर्थात् जलादि का त्याग करता है उसका सत्कार प्रशसा उत्तम क्रिया कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है । राजा जैसे सूर्य गिराये हुए मेघ से नदी और समुद्र आदिको को पूर्ण करता और तटो को तोड़ता है वैसे ही अन्याय को गिरा और न्याय से प्रजा का पालन कर के दुष्टो का नाश करे ॥ १ ॥

त्वमुत्साँ ऋतुभिर्बद्बधानाँ अरंह ऊधः पर्वतस्य वज्रिन् ।
अहिं चिदुग्र प्रयुतं शयानं जघन्वाँ इन्द्र तविषीमधत्थाः ॥२॥

पदार्थ—हे (**वज्रिन्**) अच्छे वज्रवाले और (**उग्र**) तेजस्वी (**इन्द्र**) सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान राजन् (**त्वम्**) आप जैसे खेती करनेवाले जन (**ऋतुभि**) वसन्त आदि ऋतुओ मे (**बद्बधानान्**) अत्यन्त बद्ध हुओ को (**उत्सान्**) कूपो के सदृश (**अरह**) चलाता है और जैसे सूर्य्य (**पर्वतस्य**) मेघ के (**ऊध**) जलाधार घनसमूह का (**चित्**) और (**प्रयुतम्**) बहुत प्रकार (**शयानम्**) शयन करते हुए के सदृश आचरण करते हुए (**अहिम्**) मेघ का (**जघन्वान्**) नाश करता है वैसे आप (**तविषीम्**) बलयुक्त सेना का (**अधत्था**) धारण करिए ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे खेती करनेवाले जन कूपो से जल को क्षेत्रो के प्रति प्राप्त कर अन्न उत्पन्न करके सब ऋतुओ मे सुख और ऐश्वर्य्य की वृद्धि करते हैं वैसे ही आप प्रजाओ की उन्नति कीजिये ॥ २ ॥

अब इन्द्रपदवाच्य धनुर्वेदवित् राजगुणों को कहते हैं—

त्यस्य चिन्महतो निर्मृगस्य वधर्जघान तविषीभिरिन्द्रः ।
य एक इदप्रतिर्मन्यमान आदस्मादन्यो अजनिष्ट तव्यान् ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् (**य**) जो (**एक**) एक (**अप्रति**) नहीं है विश्वास जिन के वह (**मन्यमान**) आदर किये गये आप (**तविषीभि**) सेना आदि बलो से जैसे (**इन्द्र**) सेना का स्वामी (**त्यस्य**) उस (**महत**) बड़े (**मृगस्य**) शीघ्र चलनेवाले मेघ का (**वध**) नाश करते हैं जिस मे तदनुकूल (**जघान**) नाश करता है वैसे हम लोगो को (**चित्**) भी प्रकट कीजिए (**आत्**) अनन्तर (**अस्मात्**) इससे जैसे (**अन्य**) भिन्न और जन (**नि**) अत्यन्त (**अजनिष्ट**) उत्पन्न करता है वैसे (**इत्**) ही आप (**तव्यान्**) बलो मे उत्पन्न हम लोगो का ही उत्पन्न कीजिये अर्थात् प्रकट कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य मेघ को जीत-कर अपने प्रताप को प्रकट कर के सब प्राणियो का पालन करता है वैसे ही धनुर्वेद की विद्या को जाननेवाला एक भी अनेको को जीतकर प्रजाओ का पालन करे ॥३॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

त्यं चिदेषां स्वधया मदन्तं मिहो नपातं सुवृधं तमोगाम् ।
वृषप्रभर्मा दानवस्य भामं वज्रेण वज्री नि जघान शुष्णम् ॥४॥

पदार्थ—हे सेना के ईश वीरपुरुष आप (**एषाम्**) इन वीरो के मध्य में (**स्वधया**) अन्न आदि से (**मदन्तम्**) प्रसन्न होता हुआ जो जीव (**त्यम्**) उस के (**चित्**) समान जैसे (**वृषप्रभर्मा**) वर्षनेवाले मेघ को धारण करनेवाला सूर्य्य (**मिह**) वृष्टि के (**नपातम्**) नहीं गिरनेवाले (**सुवृधम्**) सुन्दर बढ़ते हुए (**तमोगाम्**) अन्धकार को प्राप्त अर्थात् सघन घन मेघ को (**जघान**) नाश करें वैसे (**वज्री**) उत्तम शस्त्र और अस्त्रो से युक्त होते हुए (**वज्रेण**) तीव्र शस्त्र से (**दानवस्य**) दुष्टजन के (**शुष्णम्**) सुखानेवाले बलवान् (**भामम्**) क्रोध को (**नि**) निरन्तर नाश करिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जैसे सूर्य्य अति विस्तारयुक्त मेघ का नाश कर भूमि मे गिरा के जगत् की रक्षा करता है वैसे ही अतिप्रबल भी शत्रुओ का नाश कर नीचे गिरा के न्याय से प्रजाओ का पालन कीजिये ॥ ४ ॥

अब शिल्पविद्या के जाननेवाले विद्वान् के गुणों को कहते हैं—

त्वं चिदस्य क्रतुभिर्निषत्तममर्मणो विददिदस्य मर्म ।
यदीं सुक्षत्र प्रभृता मदस्य युयुत्सन्तं तमसि हर्म्ये धाः ॥५॥

पदार्थ—हे (**सुक्षत्र**) श्रेष्ठ क्षत्रियकुल वा धन से युक्त राजन् ! आप (**अस्य**) इस (**अमर्मणः**) मर्म की बातो से रहित शत्रु की (**क्रतुभिः**) बुद्धि वा कर्म्मों से (**निषत्तम्**) स्थित (**त्वम्**) उसको (**चित्**) तथा (**अस्य**) इस मेघ के और (**मदस्य**) आनन्द के (**प्रभृता**) अत्यन्त धारण करने वा पोषण करने मे (**यत्**) जिस (**मर्म**) गुप्त अवयव को (**इत्**) ही (**विदत्**) प्राप्त होवें उसको (**ईम्**) सब प्रकार प्राप्त हुए (**युयुत्सन्तम्**) युद्ध करने की इच्छा करते हुए का (**तमसि**) रात्रि मे (**हर्म्ये**) प्रासाद के ऊपर आप (**धाः**) धारण कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो पदार्थों के गुप्त स्वरूपो को जान के बुद्धि से शिल्पविद्या की वृद्धि करते हैं वे उत्तम राज्य और ऐश्वर्य्ययुक्त होते हैं ॥ ५ ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्रो में कहते हैं—

त्वं चिदित्था कत्पयं शयानमसूर्य्ये तमसि वावृधानम् ।
तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्योच्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघान ॥६॥३२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (**इन्द्रः**) सेना का ईश (**उच्चैः**) उच्चता के साथ (**अपगूर्य्या**) उद्यम कर (**सुतस्य**) उत्पन्न हुए पदार्थ का (**मन्दानः**) आनन्द करता हुआ (**वृषभः**) श्रेष्ठ पुरुष (**तम्**) उसको (**चित्**) भी (**कत्पयम्**) कितने को तथा (**असूर्य्ये**) जिस मे सूर्य्य विद्यमान नही उस (**तमसि**) रात्री मे (**शयानम्**) शयन करते और (**वावृधानम्**) निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होते हुए को (**चित्**) वा मेघ को (**जघान**) नाश करता है (**इत्था**) इस प्रकार से (**त्वम्**) उस शत्रु का भी नाश करे ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य मेघ का नाश करता है अन्धकार का निवारण करके, वैसे ही राजा को चाहिए कि दुष्टो का नाश और श्रेष्ठो का पालन करे ॥ ६ ॥

उद्यदिन्द्रो महते दानवाय वधर्यमिष्ट सहो अप्रतीतम् ।
यदीं वज्रस्य प्रभृतौ ददाभ विश्वस्य जन्तोरधमं चकार ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वन् (**यत्**) जो (**इन्द्रः**) राजा (**महते**) बड़े (**दानवाय**) दान करनेवाले के लिए (**वधः**) वध को (**उत्, यमिष्ट**) उत्तम नियम करे और (**यत्**) जिस (**अप्रतीतम्**) अधर्मिजनो से नही प्राप्त हुए (**सहः**) बलको (**ईम्**) सब ओर से (**वज्रस्य**) शस्त्रप्रहारके (**प्रभृतौ**) उत्तम प्रकार धारण करने मे (**ददाभ**) नाश करता और (**विश्वस्य**) सम्पूर्ण (**जन्तोः**) जीवमात्र के मध्य मे (**अधमम्**) नीचा (**चकार**) करता अर्थात् जो सब पर अपना आक्रमण करता है उस को जान के उत्तम प्रकार प्रयोग करो अर्थात् उससे प्रयोजन सिद्ध करो ॥७॥

भावार्थ—हे राजा आदि जनो ! आप लोग सूर्य्य के सदृश वर्त्ताव कर के राज्य की अधम दशा का निवारण करे ॥ ७ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

त्यं चिदर्णं मधुपं शयानमसिन्वं वव्रं मह्याददुग्रः ।
अपादमत्रं महता वधेन नि दुर्य्योण आवृणङ्मृध्रवाचम् ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वन् जैसे (**उग्रः**) तजस्वी सूर्य्य (**महता**) बड़े (**वधेन**) वध से (**दुर्य्योणे**) गृह मे (**त्यम्**) उस (**चित्**) निश्चित (**अर्णम्**) जल का (**मधुपम्**) मधुर पदार्थों की रक्षा करनेवाले का (**शयानम्**) और सोते हुए के सदृश वर्त्तमान (**असिन्वम्**) नही बद्ध (**वव्रम्**) स्वीकार करने योग्य (**अपादम्**) पादो से रहित और (**अत्रम्**) सर्वत्र व्याप्त होनेवाले (**मृध्रवाचम्**) हिंसित वाणी से युक्त मेघ का (**महि**) अतीव (**आदत्**) ग्रहण करें वा (**नि**) अत्यन्त(**आवृणक्**) स्वीकार करता है वैसे आप वर्त्ताव कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे बिजुली मेघ को भूमि मे गिराती है वैसे आप दुष्टो को नीच दशा को प्राप्त करिये ॥ ८ ॥

को अस्य शुष्मं तविषीं वरात एको धना भरते अप्रतीतः ।
इमे चिदस्य ज्रयसो नु देवी इन्द्रस्यौजसो भियसा जिहाते ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो (**कः**) कौन (**अस्य**) इसके (**शुष्मम्**) बलको और (**तविषीम्**) सेना को धारण करे और (**इमे**) ये (**देवी**) प्रकाशमान दो अग्नि (**इन्द्रस्य**) बिजुली के (**ओजसः**) बल के (**भियसा**) धारण से (**नु**) शीघ्र (**जिहाते**) चलते हैं इन दोनों के मध्य मे (**एकः**) एक (**धना**) धनो को (**भरते**) धारण करता है और दूसरा (**अप्रतीतः**) नहीं प्रत्यक्ष हुआ (**अस्य, चित्**) भी (**ज्रयसः**) वेगवान् का धारण करनेवाला वर्त्तमान है वे ये दोनो सबको (**वराते**) स्वीकार को प्राप्त होवें क्योकि ये सब पदार्थ उन दोनो से धारण किये गये हैं ॥९॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो दो प्रकार का अग्नि—एक तो प्रसिद्ध सूर्य्य पृथ्वी मे प्रसिद्धरूप और दूसरा गुप्त बिजुलीरूप ये ही दोनो सब जगत् को धारण करके चलाते हैं ॥ ९ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों मे कहते हैं—

न्यस्मै देवी स्वधितिर्जिहीत इन्द्राय गातुरुशतीव येमे ।
सं यदोजो युवते विश्वमाभिरनु स्वधाव्ने क्षितयो नमन्त ॥१०॥

पदार्थ—हे (**युवते**) युवावस्था को प्राप्त हुई (**स्वधितिः**) वज्र के सदृश (**देवी**) विदुषी तुम (**अस्मै**) इस (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य्य के लिए यह दो स्त्रियां (**गातुः**) भूमि और (**उशतीव**) कामना करती हुई स्त्री के समान (**यत्**) जैसे (**ओजः**) वीर्य को उत्तम प्रकार ग्रहण करके (**सम्, नि, येमे**) अच्छे प्रकार नियम मे रखती और (**आभिः**) इन क्रियाओ से (**स्वधाव्ने**) धन को धारण करनेवाले के लिए (**विश्वम्**) समस्त व्यवहार का (**अनु, जिहीते**) अनुकूल चलाती हैं तथा जैसे (**क्षितयः**) मनुष्य (**नमन्त**) नम्र होते हैं वैसे आप होइये ॥ १० ॥

भावार्थ—जैसे ब्रह्मचर्य्य को धारण की हुई ब्रह्मचारिणी कन्या पूर्ण चौबीस वर्ष की अवस्था मे युक्त हुई पति की कामना करती हुई, गुण, कर्म्म और स्वभाव के सदृश और प्रिय स्वामी का ग्रहण करती है वैसे ही बिजुली आदि रूप अग्नि सम्पूर्ण संसार का धारण करता है और जैसे गुणवान् जनो को मनुष्य नमते हैं वैसे ही उत्तम लक्षणो से युक्त स्त्रीपुरुषो को सपूर्ण जन नमते हैं ॥ १० ॥

एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं जातं शृणोमि यशसं जनेषु ।
तं मे जगृभ्र आशसो नविष्ठं दोषा वस्तोर्हवमानास इन्द्रम् ॥११॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! किया है अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य जिसने ऐसे (**एकम्**) द्वितीय सहाय से रहित (**सत्पतिम्**) श्रेष्ठो के पालन करनेवाले (**पाञ्चजन्यम्**) प्राण आदि पाच पवन बलवान् जिसके उसके पुत्र और (**जनेषु**) मनुष्यो मे (**जातम्**) प्रसिद्ध और (**यशसम्**) यशस्वी (**त्वा**) आपको (**शृणोमि**) सुनती हूँ (**तम्**) उन (**इन्द्रम्**) अत्यन्त ऐश्वर्य्ययुक्त (**नविष्ठम्**) अत्यन्त नवीन (**मे**) मेरे स्वामी को (**हवमानासः**) ग्रहण करने की इच्छा करते और (**आशसः**) मनोरथ की इच्छा करते हुए जन (**दोषा**) रात्रियो और (**वस्तोः**) दिन का (**नु**) शीघ्र (**जगृभ्रे**) ग्रहण करें ॥ ११ ॥

भावार्थ—ब्रह्मचर्य्य को वेदोक्त समयानुसार धारण किये हुई कन्या प्रसिद्ध जिस का यश ऐसे श्रेष्ठ पुरुष उत्तम स्वभाववाले और उत्तम गुण और रूप से युक्त प्रीति करनेवाले स्वामी के अर्थात् पतिके ग्रहण करने की इच्छा करे वैसे ही ब्रह्मचारी भी अपने सदृश ही जो ब्रह्मचारिणी स्त्री उस का ग्रहण करे ॥ ११ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

एवा हि त्वामृतुथा यातयन्तं मघा विप्रेभ्यो ददतं शृणोमि ।
किन्ते ब्रह्माणो गृहते सखायो ये त्वाया निदधुः काममिन्द्र ॥१२॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्य्य युक्त विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त पति की कामना करती हुई मैं (**हि**) निश्चय से (**विप्रेभ्यः**) बुद्धिमान् जनो के लिए (**मघा**) धनो को (**ददतम्**) देते और (**ऋतुथा**) ऋतु ऋतु के मध्य मे (**यातयन्तम्**) सन्तान के लिए प्रयत्न करते हुए (**त्वाम्**) आप को (**एवा**) ही (**शृणोमि**) सुनाती हूँ और (**ते**) आपके (**ये**) जो (**ब्रह्माणः**) चार वेद के जाननेवाले (**सखायः**) मित्र वे (**त्वाया**) आप मे (**किम्**) क्या (**गृहते**) ग्रहण करते और किस (**कामम्**) मनोरथ को (**निदधुः**) धारण करते है ॥ १२ ॥

भावार्थ—स्त्री ऋतु २ के मध्य मे जाने की कामनावाला है वीर्य्य जिस का ऐसे ऊर्ध्वरेता अर्थात् वीर्य्य का वृथा न छोड़नेवाले ब्रह्मचर्य्य को धारण किये हुए उत्तम स्वभाववाले और विद्यायुक्त उत्तम यशवाले जन को पतिपने के लिए स्वीकार करे उस के साथ यथावत् वर्त्ताव करके पूर्ण मनोरथ करनेवाली और सौभाग्यसे युक्त होवे ।१२

इस सूक्त मे इन्द्र और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

इस अध्याय मे अग्नि विद्वान् और इन्द्रादिको के गुणों का वर्णन होने से इस अध्याय मे कहे हुए अर्थों की पहिले अध्यायो मे कहे हुए अर्थों के साथ संगति है ऐसा जानना चाहिए ॥

यह बत्तीसवां सूक्त और तेतीसवां वर्ग, चौथे अष्टक मे प्रथम अध्याय और पञ्चम मण्डल में द्वितीय अनुवाक समाप्त हुआ ॥
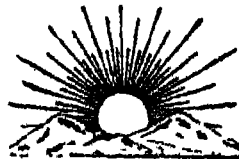
卐

अथ द्वितीयाऽध्यायारम्भः ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथ दशर्चस्य त्रयस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य संवरण प्राजापत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ७, पङ्क्तिः । ३ निचृत्पङ्क्तिः । ४,१० भुरिक्पङ्क्तिः । ५,६ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ८ त्रिष्टुप् । ९ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

अब दूसरे अध्याय का प्रारम्भ है । तथा दश ऋचा वाले तेतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से इन्द्र के गुण को कहते हैं—

महि महे तवसे दीध्ये नॄनिन्द्रायेत्था तवसे अतव्यान् ।
यो अस्मै सुमतिं वाजसातौ स्तुतो जने समर्यश्चिकेत ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो (अतव्यान्) प्रयत्न करता हुआ (स्तुतः) स्तुति किया गया (जने) मनुष्यों के समूह मे (समर्यः) सग्राम की इच्छा करता हुआ (वाजसातौ) सग्राम मे (सुमतिम्) उत्तम बुद्धि को (महे) बड़े (तवसे) बल के लिये (चिकेत) जाने (अस्मै) इस (तवसे) बली (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त के लिये (इत्था) इस प्रकार (महि) बड़े (नॄन्) मनुष्यो का मैं (दीध्ये) प्रकाश करता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो मनुष्य जिस मनुष्य के लिए सुखविषयक उपकार करे वह उसके लिये प्रत्युपकार निरन्तर करे ॥१ ॥

स त्वं न इन्द्र धियसानो अर्कैर्हरीणां वृषन्योक्त्रमश्रेः ।
या इत्था मघवन्ननु जोषं वक्षो अभि प्रार्यः सक्षि जनान् ॥२॥

पदार्थ—हे (वृषन्) सुख की वृष्टि करते हुए (मघवन्) अत्युत्तम धन से युक्त और (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाले (सः) वह (धियसानः) ध्यान करता हुआ (अर्य्यः) स्वामी राजा (त्वम्) आप (अर्कैः) विचारो से (नः) हम लोगो के वा हम लोगो को (हरीणाम्) मनुष्यो के सम्बन्ध मे (योक्त्रम्) एकत्र करने का (अश्रेः) सेवन कीजिये और (याः) जो उत्तम नीतियां हैं उनकी (जोषम्) प्रीति को (अनु, वक्षः) अनुकूल प्राप्त हूजिये (इत्था) इस प्रकार से (जनान्) मनुष्यों को (अभि, प्र, सक्षि) अच्छे प्रकार सम्बन्धित करते हो ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वही उत्तम विद्वान् है जो मनुष्यो को बुद्धि तथा योगाभ्यास आदि से बढ़ावे और सब काल मे नीति के अनुसार कर्म्म कर के प्रजाओं को प्रसन्न करे ॥ २ ॥

न ते त इन्द्राभ्यस्मदृष्वायुक्तासो अब्रह्मता यदसन् ।
तिष्ठा रथमधि तं वज्रहस्ता रश्मिं देव यमसे स्वश्वः ॥३॥

पदार्थ—हे (वज्रहस्त) शस्त्र और अस्त्रो को बाहुओ मे धारण करनेवाले (ऋष्व) महापुरुष (देव) दानशील (इन्द्र) राजन् जो (ते) आपकी (अब्रह्मता) निर्धनता (अयुक्तासः) और योग से रहित पुरुष (न) नहीं (अभि) सम्मुख (असन्) होते हैं (यत्) जब (ते) वे (अस्मत्) हम लोगो से दूर बसते हैं तब (स्वश्वः) उत्तम घोड़ों से युक्त आप (रश्मिम्) किरण के सदृश (तम्) उस (रथम्) सुन्दर वाहन को (आ, यमसे) विस्तृत करते हो इस से इस के (अधि) ऊपर (तिष्ठ) स्थित हूजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्य्य से युक्त ! जो अयोग्य व्यवहार वाले होवें वे हम लोगों के और आप के दूर बसें और आप वाहनो के चलाने की विद्या को विशेष कर के जानें तो युद्ध में भी सामर्थ्य को प्राप्त होवें ॥३॥

फिर इन्द्र के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

पुरू यत्त इन्द्र सन्त्युक्था गवे चकर्थोर्वरासु युध्यन् ।
ततक्षे सूर्याय चिदोकसि स्वे वृषा समत्सु दासस्य नाम चित् ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त (वृषा) बलिष्ठ होते हुए आप (ते) आपके (यत्) जो (पुरु) बहुत (उक्था) प्रशंसित कर्म्म (गवे) गौ आदि पशुओं के हित के लिये (सन्ति) हैं उनको (उर्वरासु) भूमियों में और (समत्सु) सङ्ग्रामों में (युध्यन्) युद्ध करते हुए (चकर्थ) करें और शत्रुओं को (ततक्षे) सूक्ष्म अर्थात् निर्बल करते हो और (सूर्याय) सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान के लिये (चित्) भी (स्वे) अपने (ओकसि) गृह मे (दासस्य) दास के (चित्) निश्चित (नाम) नाम को प्रकट कीजिये ॥४॥

भावार्थ—हे राजन् ! जितनी उत्तम सामग्रियां होवें उनको सेना मे युद्ध के लिए स्थापित कीजिये और जो गृह के लिये वस्तु होवें उनको गृह मे स्थापित कीजिये ॥४॥

वयं ते त इन्द्र ये च नरः शर्धो जज्ञाना याताश्च रथाः ।
आस्माञ्जगम्यादहिशुष्म सत्वा भगो न हव्यः प्रभृथेषु चारुः ॥५॥१॥

पदार्थ—हे (अहिशुष्म) मेघ को सुखानेवाले सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान (इन्द्र) राजन् (ये) जो (ते) आपके (शर्धः) बल और (जज्ञानाः) उत्पन्न तथा (याताः) प्राप्त हुए (नरः) नायक (रथाः, च) और वाहन आदि हैं (ते) वे (अस्मान्) हम लोगो को प्राप्त होवें और जो (भगः) ऐश्वर्य्य के योग के (न) सदृश (प्रभृथेषु) अत्यन्त धारण करने योग्यो मे (हव्यः) ग्रहण करने योग्य (चारु) सुन्दर (सत्वा) स्थिर होनेवाले आप हम लोगों को (आ, जगम्यात्) यथावत् प्राप्त होवें उन आपको (वयम्) हम लोग (च) भी प्राप्त होवें ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे राजन् ! जब हम लोग आपके और आप हम लोगो के मित्र होवें तभी हम लोगो का ऐश्वर्य्य बढ़े और जैसे ऐश्वर्य सबका प्रिय है वैसे ही धर्म्म प्रिय सदा रक्षा करने योग्य है ॥५॥

पपृक्षेण्यमिन्द्र त्वे ह्योजो नृम्णानि च नृतमानो अमर्तः ।
स न एनीं वसवानो रयिं दाः प्रार्यः स्तुषे तुविमघस्य दानम् ॥६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्वन् जो (नृतमानः) नृत्य करता हुआ (अमर्तः) आत्मभाव से मरणधर्म्मरहित मन (त्वे) आप मे (पपृक्षेण्यम्) पूछनेयोग्य (ओजः) पराक्रम (नृम्णानि, च) और मनुष्यो से रमनेयोग्य धनो को धारण करें (सः) वह (एनीम्) प्राप्त होने योग्य को (वसवानः) बसाता हुआ (रयिम्) धन को (दाः) दीजिये (हि) जिससे (तुविमघस्य) बहुत धन के (अर्य्यः) स्वामी होते हुए (दानम्) दान की (प्र, स्तुषे) प्रशंसा करते हो (सः) वह आप (नः) हम लोगो के लिये सुख दीजिये ॥६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग विद्वानो के प्रति पूछने योग्य प्रश्नो को कर, बल को बढ़ाय और ऐश्वर्य्य की वृद्धि करके उत्तम मार्ग मे दान देकर प्रशंसित विद्या और आचरण युक्त होवें ॥६॥

एवा न इन्द्रोतिभिरव पाहि गृणतः शूर कारून् ।
उत त्वचं ददतो वाजसातौ पिप्रीहि मध्वः सुषुतस्य चारोः ॥७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) राजन् ! आप (ऊतिभिः) अन्वेक्षण आदि रक्षा आदिकों से (एवा) ही (गृणतः) उपदेशक (कारून्) शिल्पी (नः) हम लोगो की (अव) रक्षा कीजिये और हे (शूर) भय से रहित (वाजसातौ) सङ्ग्राम में (त्वचम्) त्वचा को आच्छादन करनेवाले कवच को (ददतः) देते हुए (सुषुतस्य) उत्तम प्रकार संस्कार किये गये (मध्वः) मधुर और (चारोः) उत्तम जन के ऐश्वर्य्य का (पाहि) पालन कीजिये और (उत) भी (पिप्रीहि) प्राप्त हूजिये ॥७॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप शूरवीर विद्वान् शिल्पीजनो की रक्षा कर प्रजाओ का निरन्तर पालन करके सङ्ग्राम मे शत्रुओ को जीत कर प्राप्त हूजिये ॥७॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों मे कहते हैं—

उत त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य सूरेस्त्रसदस्योर्हिरणिनो रराणाः ।
वहन्तु मा दश श्येतासो अस्य गैरिक्षितस्य क्रतुभिर्नु सश्चे ॥८॥

पदार्थ—(पौरुकुत्स्यस्य) बहुत वज्र आदि शस्त्र और अस्त्रो को जानने वाले के सन्तान (त्रसदस्योः) जिससे डाकू चोर आदि डरते हैं ऐसे (हिरणिनः) सुवर्ण धन आदि से युक्त (अस्य) इस (गैरिक्षितस्य) पर्वत मे रहनेवाले (सूरेः) बुद्धिमान् जन की (क्रतुभिः) बुद्धि और कर्म्मों के साथ (रराणाः) रमते वा देते हुए (मा) मुझ को (वहन्तु) प्राप्त हों (उत) और भी (त्ये) वे (दश) दश संख्या परिमित (श्येतासः) श्वेत वर्ण वाले घोड़े के सदृश (मा) मुझ को प्राप्त हों उनका मैं (नु) शीघ्र (सश्चे) सम्बन्ध करता हूँ ॥८॥

भावार्थ—जो सत्य धारण करनेवाले और सत्पुरुष जिनके मित्र ऐसे जन बुद्धि को बढ़ाते हुए दुष्टों का निवारण करते हैं उनके साथ मैं मेल करता हूँ ॥८॥

उत त्ये मा मारुताश्वस्य शोणाः क्रत्वामघासो विदथस्य रातौ।
सहस्रा मे च्यवतानो ददान आनूकमर्यो वपुषे नार्चत्॥९॥

पदार्थ—जो (क्रत्वामघास) बुद्धि वा कर्म्म ही है धन जिनका वे (शोणा) रक्त गुण से विशिष्टजन और (मारुताश्वस्य) पवनों के सदृश घोड़ों के सम्बन्धी (विदथस्य) प्राप्त होने योग्य (मे) मेरे वा मेरे लिये (रातौ) दान में (सहस्रा) हजारों को (च्यवतान) प्राप्त होता हुआ जन (उत) भी सुख देने को समर्थ हो (त्ये) वे और जो (ददान.) देता हुआ (वपुषे) सुन्दर शरीर के लिये (मा) मुझको (आनूकम) अनुकूलतापूर्वक (आर्चत्) आदरयुक्त करे वह (अर्य्य) स्वामी भी सब प्रकार से तिरस्कृत नहीं होता है॥९॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! जो हम लोगों के अभीष्ट की सिद्धि करते हैं उनके अभीष्ट की हम लोग भी सिद्धि करें इस प्रकार स्वामी और सेवक भी वर्त्ताव करें॥९॥

उत त्ये मा ध्वन्यस्य जुष्टा लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः।
मह्ना रायः संवरणस्य ऋषेर्व्रजं न गावः प्रयता अपि ग्मन्॥१०॥२॥

पदार्थ—जो (ध्वन्यस्य) ध्वनियों में कुशल और (संवरणस्य) स्वीकार किये हुए (रायः) धन के (मह्ना) महत्त्व से (उत) और (लक्ष्मण्यस्य) श्रेष्ठ लक्षणों में उत्पन्न (ऋषे) मन्त्रों के अर्थ जाननेवाले के सम्बन्ध में (प्रयता) प्रयत्न करते हुए जन हैं (त्ये) वे (गाव) गौवें (व्रजम्) गोष्ठ को (न) जैसे (अपि) निश्चित (ग्मन्) जाती हैं वैसे महत्त्व से (मा) मुझ को भी प्राप्त होते हैं और जो (यताना) यत्न करती हुई (सुरुच.) उत्तम प्रीति वाली मुझ को (जुष्टा) प्रसन्नता पूर्वक प्राप्त हैं उनको सब प्राप्त होवें॥१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य प्रयत्न से नहीं प्राप्त हुए की प्राप्ति प्राप्त हुए की रक्षा करते हैं वे जैसे बछड़ों को गौवें वैसे धन को प्राप्त होते हैं॥१०॥

इस सूक्त में इन्द्र और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए॥

यह तेंतीसवां सूक्त और द्वितीय वर्ग समाप्त हुआ॥

卐

अथ नवर्चस्य चतुस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य संवरणप्राजापत्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। १ भुरिक् त्रिष्टुप्। ६, ९ त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः। २, ४, ५ निचृज्जगती। ३, ७ जगती। ८ विराड्जगतीछन्दः। निषादः स्वरः॥

अब नव ऋचावाले चौंतीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्रगुणयुक्त स्त्री पुरुष का वर्णन करते हैं—

अजातशत्रुमजरा स्वर्वत्यनु स्वधामिता दस्ममीयते।
सुनोतन पचत ब्रह्मवाहसे पुरुष्टुताय प्रतरं दधातन॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (स्वर्वती) सुखवाली (अमिता) अतुल उत्तम गुणों से युक्त (स्वधा) धन को धारण करनेवाली (अजरा) वृद्धावस्था से रहित युवती स्त्री जिस (अजातशत्रुम्) शत्रुओं से रहित (दस्मम्) दुष्टों के नाश करने वाले जनको (अनु, ईयते) अनुकूलता से प्राप्त होती है उस (पुरुष्टुताय) बहुतों से प्रशंसा किये गये (ब्रह्मवाहसे) धन प्राप्त करानेवाले के लिये (प्रतरम्) अच्छे प्रकार पार होते हैं दुःख के जिससे उसको (सुनोतन) उत्पन्न करो और उत्तम अन्न का (पचत) पाक करो और धन आदि का (दधातन) धारण करो॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! जो वैररहित अत्यन्त उत्तम गुणों से युक्त और सब का हितकारी पुरुष अथवा इस प्रकार की स्त्री हो उन दोनों का निरन्तर सत्कार करना योग्य है॥१॥

अब विद्वद्विषय में पाक के गुणों को कहते हैं—

आ यः सोमेन जठरमपिप्रतामन्दत मघवा मध्वो अन्धसः।
यदीं मृगाय हन्तवे महावधः सहस्रभृष्टिमुशना वधं यमत्॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! (यः) जो (उशना) कामना करता हुआ (मघवा) बहुत धन से युक्त जन (सोमेन) सोमलता से उत्पन्न रस से (जठरम्) उदर की अग्नि को (आ, अपिप्रत) अच्छे प्रकार पूर्ण करे और (मध्वः) मधुर आदि गुणों से युक्त (अन्धसः) अन्न आदि का भोग करके (अमन्दत) आनन्द करे और (यत्) जो (महावधः) अत्यन्त नाश करनेवाला (मृगाय) हरिण को (हन्तवे) मारने के लिए (सहस्रभृष्टिम्) हजारों दहन जिससे उस (वधम्) वध को (ईम्) सब प्रकार से (यमत्) देवे वह सब सुख को प्राप्त होता है॥२॥

भावार्थ—जो मनुष्य वैद्यकशास्त्र की रीति से सोमलता आदि ओषधियों के रस के साथ संस्कारयुक्त किये गये अन्नों का भोग करते हैं वे अतुल सुख को प्राप्त होते हैं॥२॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यो अस्मै घ्रंस उत वा य ऊधनि सोमं सुनोति भवति द्युमाँ अह।
अपाप शक्रस्ततनुष्टिमूहति तनूशुभ्रं मघवा यः कवासखः॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो (अस्मै) इसके लिए (घ्रंसे) दिन में (उत) भी (वा) अथवा (ऊधनि) प्रभातसमय में (सोमम्) जलको (सुनोति) पान करता और (अह) विशेष करके ग्रहण करने में (द्युमान्) बहुत विद्या प्रकाशवाला (भवति) होता तथा (यः) जो (शक्र.) शक्तिमान् (ततनुष्टिम्) विस्तार की (ऊहति) तर्कना करता और (यः) जो (कवासखः) विद्वान् जन मित्र जिसके ऐसा (मघवा) प्रशंसित धनयुक्त पुरुष (तनूशुभ्रम्) शुद्ध शरीर वाले की तर्कना करता है वह निरन्तर दुःख को (अपाप) दूर करने की तर्कना करता है॥३॥

भावार्थ—जो मनुष्य दिन और रात्रि पुरुषार्थ करते हैं वे निरन्तर सुखी होते हैं॥३॥

अब प्रजाविषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यस्यावधीत्पितरं यस्य मातरं यस्य शक्रो भ्रातरं नात ईषते।
वेतीद्वस्य प्रयता यतङ्करो न किल्बिषादीषते वस्व आकरः॥४॥

पदार्थ—(शक्र) सामर्थ्यवान् जन (यस्य) जिसके (पितरम्) पिता का (यस्य) जिसकी (मातरम्) माता का और (यस्य) जिसके (भ्रातरम्) भ्राता का (न) नहीं (अवधीत्) नाश करे (अत) इससे इसका (न) नहीं (ईषते) नाश करता और (अस्य) इसके (यतङ्करः) प्रयत्न करनेवाले के (न) सदृश (प्रयता) अत्यन्त दिये हुए को (वेति) कामना करता है (उ) और (वस्व) धनका (आकर) समूह (किल्बिषात्) पाप से पृथक् (इत्) ही (ईषते) प्राप्त होता है॥४॥

भावार्थ—जो पिता माता और भ्रातृ आदि पालन करें उनके पुत्र आदि को चाहिए कि निरन्तर सत्कार करें और जो पापाचरण का त्याग करके धर्म्म का आचरण करते हैं वे सब काल में सुखी होते हैं॥४॥

न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं नासुन्वता सचते पुष्यता चन।
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिरा देवयुं भजति गोमति व्रजे॥५॥३॥

पदार्थ—जो (असुन्वता) नहीं पुरुषार्थ करनेवाले से (पञ्चभि) पाँच इन्द्रियों और (दशभि) दश प्राणों से (आरभम्) आरम्भ करने को (न) नहीं (वष्टि) कामना करता वह (पुष्यता) पुष्टि को करनेवाले से (न) नहीं (सचते) सम्बन्धित होता (जिनाति, चन) और अपमान को प्राप्त होता है (वा) वा (अमुया) इससे (हन्ति) नाश करता है (वा) वा जो (धुनि) कंपनेवाला (गोमति) बहुत गौवें विद्यमान जिसमें उस (व्रजे) गौओं के ठहरने के स्थान में (देवयुम्) विद्वानों की कामना करनेवाले का (आ) सब प्रकार से (भजति) आदर करता और वह सब (इत्) ही सुख का भोग करता है॥५॥

भावार्थ—जो आलस्ययुक्त जन पुरुषार्थ को नहीं करते हैं वे अभीष्टसिद्धि को नहीं प्राप्त होते हैं॥५॥

अब इन्द्र के सादृश्य से राजगुणों को कहते हैं—

वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजोऽसुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः।
इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्यः॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (वृधः) बढ़ानेवाला (इन्द्रः) बिजुली के सदृश राजा (विश्वस्य) सम्पूर्ण जगत् का (दमिता) दमन करने और (विभीषणः) भय देनेवाला है वैसे (वित्वक्षण) विशेष करके दुःख का नाश करनेवाला (समृतौ) संग्राम में (चक्रमासजः) कालरूप चक्र के महीमा में उत्पन्न हुआ जन (विषुणः) विद्या में व्याप्त और (सुन्वत) यज्ञ करने और (असुन्वत) नहीं यज्ञ करनेवाले का दमन करनेवाला होता हुआ (आर्य्य.) ब्राह्मण क्षत्रिय वा वैश्य वर्ण आर्य्य राजा (यथावशम्) यथाशक्ति (दासम्) सेवक शूद्र को (नयति) प्राप्त करता है॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य आर्यो तथा उत्तम गुण, कर्म्म और स्वभाववालों का शूद्र सेवक होता है वैसे ही उत्तम गुण और कर्म्म से युक्त राजा की प्रजा सेवन करनेवाली होती है॥६॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

समीं पणेरजति भोजनं मुषे वि दाशुषे भजति सूनरं वसु।
दुर्गे चन ध्रियते विश्व आ पुरु जनो यो अस्य तविषीमचुक्रुधत्॥७॥

पदार्थ—हे राजन् जो (पणेः) स्तुति किये गये के (भोजनम्) पालन वा अन्न आदि को (भजति) प्राप्त होता और (मुषे) चोर के लिए दण्ड को और

(दाशुषे) दानशील के लिए दान (धन) भी (सम्) उत्तम प्रकार (वि, भजति) बांटता है तथा (यः) जो (अस्य) इस शत्रुजन की (तविषीम्) सेना को (अचुक्रुधत्) अत्यन्त क्रुधित करता है वह (ईम्) सब प्रकार से (विश्वः) सम्पूर्ण (जनः) मनुष्य (दुर्गे) दुःख से प्राप्त होने योग्य व्यवहार वा उत्तम कोट में (पुरु) बहुत (सुनरम्) उत्तम मनुष्य जिसमे उस (वसु) धन का (आ) सेवन करता है और राजा से (ध्रियते) धारण किया जाता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो राजा चोर डाकू आदि जनों के लिए कठिन दण्ड और श्रेष्ठ जनों के लिये प्रतिष्ठा देता है उसका राज्य धन आदि से युक्त वृद्धि को प्राप्त होना और उसका इस ससार मे यश और परलोक मे सुख होता है ॥ ७ ॥

फिर पूर्वोक्त विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

सं यज्जनौ सुधनौ विश्वशर्धसाववेदिन्द्रो मघवा गोषु शुभ्रिषु ।
युजं ह्य१न्यमकृत प्रवेपन्युदीं गव्यं सृजते सत्वभिर्धुनिः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (धुनिः) कपनेवाला (मघवा) अत्यन्त श्रेष्ठ बहुत धन से युक्त (इन्द्रः) राजा और (यत्) जो (सुधनौ) धर्म से उत्पन्न हुए श्रेष्ठ धन से तथा (विश्वशर्धसौ) सपूर्ण बल से युक्त (जनौ) दो जनो को (सम्, अवेत्) अच्छे प्रकार प्राप्त हो और (शुभ्रिषु) उत्तम गुणवाले (गोषु) धेनु और पृथिवी आदिकों मे (हि) जिससे (युजम्) युक्त (अन्यम्) अन्य को (अकृत) करता है और (प्रवेपनी) चलती हुई (गव्यम्) गौओ के लिए हितकारक (ईम्) जल को (सत्वभिः) पदार्थों से (उत्, सृजते) उत्पन्न करता है वह सुख करनेवाला होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—राजा को चाहिए कि अपने राज्य मे उत्तम धनी विद्वान् तथा अध्यापक और उपदेशको की उत्तम प्रकार रक्षा करके उनसे व्यवहार धन और विद्या की उन्नति करे ॥ ८ ॥

सहस्रसामाग्निवेशिं गृणीषे शत्रिमग्न उपमां केतुमर्यः ।
तस्मा आपः संयतः पीपयन्त तस्मिन्क्षत्रममवत्त्वेषमस्तु ॥९॥४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी राजन् (अर्यः) स्वामी आप (सहस्रसाम्) असङ्ख्य पदार्थों के विभाग करने (आग्निवेशिम्) अग्नि को प्रवेश कराने और (शत्रिम्) दुःख के नाश करनेवाले (उपमाम्) दृष्टान्त और (केतुम्) बुद्धि की (गृणीषे) स्तुति करते हो (तस्मै) उन आपके लिए (आपः) जलों के सदृश प्रजाएं (संयतः) इन्द्रियो के निग्रह से युक्त हुई (पीपयन्त) तृप्ति करती हैं (तस्मिन्) उन आप राजा मे (अमवत्) गृह के तुल्य (त्वेषम्) प्रकाश से युक्त (क्षत्रम्) धन वा राज्य (अस्तु) होवे ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा होने की इच्छा करे तो सर्वशास्त्रों मे प्रविष्ट हुई स्वच्छ और उत्तम गुणो से युक्त बुद्धि को प्राप्त होकर जैसे पितृजन पुत्रों का पालन करते वैसे प्रजाओं का पालन करे ऐसा करने पर श्रेष्ठ राज्य बढ़े ॥ ९ ॥

इस सूक्त मे इन्द्र विद्वान् और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह चौतीसवां सूक्त और चौथा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथाष्टर्चस्य पञ्चत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य प्रभूवसुराङ्गिरसो ऋषिः । इन्द्रो देवता, १ निचृदनुष्टुप् , ३ भुरिगनुष्टुप्, ७ अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः, २ भुरिगुष्णिक् ४, ५, ६ स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः, ८ भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब आठ ऋचावाले पैंतीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र से इन्द्रपदवाच्य राजगुणों का वर्णन करते हैं—

यस्ते साधिष्ठोऽवस इन्द्र क्रतुष्टमा भर ।
अस्मभ्यं चर्षणीसहं सस्निं वाजेषु दुष्टरम् ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सूर्य के सदृश न्याय से प्रकाशित राजन् ! (यः) जो (ते) आपकी (अवसे) रक्षा आदि के लिए (साधिष्ठः) अत्यन्त श्रेष्ठ (क्रतुः) बुद्धि है (तम्) उस (चर्षणीसहम्) मनुष्यो को सहनेवाले (सस्निम्) ब्रह्मचर्य्यव्रत और विद्या के ग्रहण से पवित्र (वाजेषु) और सग्रामो मे (दुष्टरम्) दुःख से उल्लंघन करने योग्य को (अस्मभ्यम्) हम लोगो के लिए (आ, भर) सब प्रकार धारण करिये ॥ १ ॥

भावार्थ—वही राजा उत्तम होवे जो दीर्घ ब्रह्मचर्य्य से यथार्थवक्ता जनो से विद्या और विनय को ग्रहण कर के न्याय से राज्य की शिक्षा देवे ॥ १ ॥

यदिन्द्र ते चतस्रो यच्छूर सन्ति तिस्रः ।
यद्वा पञ्च क्षितीनामवस्तत्सु न आ भर ॥२॥

पदार्थ—हे (शूर) वीर (इन्द्र) राजन् ! (यत्) जो (ते) आपकी (चतस्रः) चार साम दाम दण्ड और भेद नामक वृत्ति और (यत्) जो (तिस्रः) तीन उत्तम प्रकार शिक्षित सभा सेना और प्रजा और (पञ्च) पृथिवी अप् तेज वायु आकाश पाँच तत्त्व (सन्ति) हैं (वा) वा (यत्) जो (क्षितीनाम्) मनुष्यो का (अवः) रक्षण आदि है (तत्) उसको (नः) हम लोगो के लिए (सु) उत्तमता से (आ, भर) सब प्रकार धारण करो वा पुष्ट करो ॥ २ ॥

भावार्थ—वही राज्य बढ़ाने को समर्थ होवे कि जो राज्य के अग सब पूर्ण उत्तम प्रकार ग्रहण करे ॥ २ ॥

आ तेऽवो वरेण्यं वृषन्तमस्य हूमहे ।
वृषजूतिर्हि जज्ञिष आभूभिरिन्द्र तुर्वणिः ॥३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त राजन् (हि) जिससे (वृषजूतिः) वृष के वेग के सदृश वेग से युक्त (तुर्वणिः) शीघ्रकारी और श्रेष्ठ गुणो से युक्त मन्त्रियो की याचना करनेवाले आप (आभूभिः) जो विद्या और विनय मे सब ओर से प्रकट होते हैं उनके साथ (जज्ञिषे) प्रकट होते हो उन (वृषन्तमस्य) अत्यन्त बलिष्ठ (ते) आपके (वरेण्यम्) अतीव उत्तम (अवः) रक्षणआदि कर्म्म का हम लोग (आ, हूमहे) उत्तम प्रकार से स्वीकार करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जिससे आप उत्तम गुण, कर्म्म और स्वभाववाले हो और पितृजन जैसे सन्तानो को वैसे हम लोगो का पालन करते हो इससे आपको राजा हम लोग मानते हैं ॥ ३ ॥

अब प्रजा विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वृषा ह्यसि राधसे जज्ञिषे वृष्णि ते शवः ।
स्वक्षत्रं ते धृषन्मनः सत्राहमिन्द्र पौंस्यम् ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) बलवान् पुरुष (हि) जिससे आप (वृषा) बलिष्ठ वा सुख के वर्षानेवाले (असि) है और (राधसे) धनरूप ऐश्वर्य के लिये (जज्ञिषे) प्रकट होते हो जिन (ते) आपका (वृष्णि) सुख वर्षानेवाले (शवः) बल और (स्वक्षत्रम्) अपना राज्य वा अपना क्षत्रियकुल जिन (ते) आपका (धृषत्) प्रगल्भ अर्थात् धृष्ट (मनः) चित्त जिन आपका (सत्राहम्) सत्य धर्म के आचरण का प्रकट करनेवाला दिन और (पौंस्यम्) पुरुषो के लिए हितकारक बल है उन आपको हम लोग राजा मानते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—प्रजाओं को चाहिये कि जो बलवान् पूर्ण विद्या विनय और बल से युक्त, शूरता आदि गुणो से धृष्ट, सदा न्याय और धर्म्माचरणयुक्त हो उसी को राजा मानें ॥ ४ ॥

त्वं तमिन्द्र मर्त्यममित्रयन्तमद्रिवः ।
सर्वरथा शतक्रतो नि याहि शवसस्पते ॥५॥५॥

पदार्थ—(शवसः) बल अर्थात् सेना के (पते) पालक सेना के स्वामिन् (शतक्रतो) अमित बुद्धिवाले (अद्रिवः) मेघयुक्त सूर्य के सदृश राजमान (इन्द्र) ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाले प्रजाजन (सर्वरथा) सपूर्ण वाहनो से युक्त (त्वम्) आप (तम्) उस (अमित्रयन्तम्) शत्रु के सदृश आचरण करते हुए (मर्त्यम्) मनुष्यशरीरधारी को विजय करने के लिए (नि) अत्यन्त (याहि) प्राप्त हूजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो अन्याय से आपका शत्रु होवे उसके शासन के लिए बल के सहित आप नित्य प्राप्त हूजिए ॥ ५ ॥

त्वामिद्वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः ।
उग्रं पूर्वीषु पूर्व्यं हवन्ते वाजसातये ॥६॥

पदार्थ—हे (वृत्रहन्तम) अतिशय करके धन को प्राप्त होनेवाले राजन् (वृक्तबर्हिषः) विदीर्ण किया है हवन किये हुए पदार्थों से अन्तरिक्ष को जिन्होंने ऐसे ऋत्विक् (जनासः) प्रसिद्ध पुण्यात्माजन (वाजसातये) सग्राम वा अन्न आदि के विभाग के लिए (उग्रम्) दुष्टो मे कठिन स्वभाववाले और (पूर्वीषु) प्राचीन प्रजाओं मे (पूर्व्यम्) पूर्व राजाओं से किया गया सत्कार जिनका ऐसे (त्वाम्) आपकी (हवन्ते) स्तुति करते वा ग्रहण करते हैं वह आप उनकी सर्वदा (इत्) ही उत्तम प्रकार रक्षा कीजिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो प्रतिष्ठित क्षत्रियो के कुल मे उत्पन्न हुआ विद्या और विनय आदि से युक्त और प्रजा के पालन मे तत्पर इच्छा जिसकी ऐसा होवे उसको राजा मानो ॥ ६ ॥

अस्माकमिन्द्र दुष्टरं पुरोयावानमाजिषु ।
सयावानं धनेधने वाजयन्तमवा रथम् ॥७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) राजन् आप (अस्माकम्) हम लोगो के (दुष्टरम्) शत्रुओं से दुःख से पार होने योग्य (पुरोयावानम्) नगरको चलते हुए (आजिषु) संग्रामो मे (धनेधने) धन धन मे (सयावानम्) सेना आदि के साथ चलते हुए (वाजयन्तम्) किया अन्वेषण जिसका ऐसे (रथम्) सुन्दर वाहन की (अव) रक्षा करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे राजन्! जो आप हम लोगों के नगर और राज्य की यथावत् रक्षा करने को समर्थ होवें तो हम लोगों के राजा होवें ॥ ७ ॥

अब राज द्वारा विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अस्माकमिन्द्रेहि नो रथमवा पुरन्ध्या ।
वयं शविष्ठ वार्यं दिवि श्रवो दधीमहि दिवि स्तोमं मनामहे ॥८॥६॥

पदार्थ—हे (**शविष्ठ**) अत्यन्त बल से युक्त (**इन्द्र**) राजन् आप (**पुरन्ध्या**) बहुत विद्या को धारण करनेवाली बुद्धि से (**अस्माकम्**) हम लोगो के (**रथम्**) बहुत प्रकार के वाहन को (**आ, इहि**) प्राप्त हूजिए और (**नः**) हम लोगो का निरन्तर (**अवा**) पालन कीजिए जिससे (**वयम्**) हम लोग (**दिवि**) मनोहर राज्य में (**वार्यम्**) स्वीकार करने योग्य (**श्रवः**) श्रवण वा अन्न को (**दधीमहि**) धारण करें और (**दिवि**) प्रशंसा करने योग्य राज्य मे (**स्तोमम्**) सम्पूर्ण शास्त्र के पढ़ने और पढ़ाने को (**मनामहे**) जानें ॥ ८ ॥

भावार्थ—वही प्रजा का प्रिय होता है जो राजा न्याय से प्रजाओ का उत्तम प्रकार पालन करके विद्या और उत्तम शिक्षा की प्रजाओ मे प्रवृत्ति करे ॥ ८ ॥

इस सूक्त मे इन्द्र राजा प्रजा और विद्वान् के गुण वर्णन करने से
इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ
सङ्गति जाननी चाहिए

यह पैंतीसवां सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षडृचस्य षट्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य प्रभूवसुराङ्गिरस ऋषिः ।
इन्द्रो देवता । १, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ६ त्रिष्टुप्
छन्दः । धैवत स्वरः । ३ जगती छन्दः । निषाद स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले छत्तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से
इन्द्र पदवाच्य राजविषय को कहते हैं—

स आ गमदिन्द्रो यो वसूनां चिकेतद्दातुं दामनो रयीणाम् ।
धन्वचरो न वंसगस्तृषाणश्चकमानः पिबतु दुग्धमंशुम् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यः**) जो (**इन्द्रः**) दाता (**वसूनाम्**) द्रव्यो के (**दातुम्**) देने को (**चिकेतत्**) जानता और (**रयीणाम्**) धनो की (**दामनः**) देनेवालियो को जानता है (**सः**) वह (**तृषाणः**) पिपासा से व्याकुल के सदृश और (**धन्वचरः**) अन्तरिक्ष मे चलनेवाले के (**न**) सदृश (**वंसगः**) सत्य और असत्य के विभाग करने वालो को प्राप्त होने वाला और (**चकमानः**) कामना करता हुआ हम लोगो को (**आ**) सब प्रकार से (**गमत्**) प्राप्त होवे और (**अंशुम्**) प्राणो के देने वाले (**दुग्धम्**) दुग्ध का (**पिबतु**) पान करें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो को चाहिए कि जो धन देने, विचार करने, सत्य की कामना करने और मर्यादा को चाहनेवाला होवे उसी को राजा मानें ॥ १ ॥

आ ते हनू हरिवः शूर शिप्रे रुहत्सोमो न पर्वतस्य पृष्ठे ।
अनु त्वा राजन्नर्वतो न हिन्वन् गीर्भिर्मदेम पुरुहूत विश्वे ॥२॥

पदार्थ—हे (**हरिवः**) अच्छे मनुष्य से युक्त (**शूर**) शत्रुओ के नाश करने वाले (**पुरुहूत**) बहुतों से सत्कार किये गये (**राजन्**) राजन् जिन (**ते**) आप को (**शिप्रे**) उत्तम प्रकार शोभित (**हनू**) मुख और नासिका (**गीर्भिः**) सत्य से उज्ज्वल वाणियो से (**हिन्वन्**) चलवाता हुआ (**अर्वतः**) घोड़ों के (**न**) सदृश और (**पर्वतस्य**) पर्वत के (**पृष्ठे**) ऊपर (**सोमः**) सोमलता के (**न**) सदृश व्यवहार (**आ, रुहत्**) प्रकट होता है उन (**त्वा**) आप को (**विश्वे**) सब हम लोग (**अनु, मदेम**) आनन्दित करें तथा आप हम लोगो को आनन्दित करिये ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो राजा सत्सङ्ग करता है वह पर्वत में सोमलता के सदृश सब ओर से वृद्धि को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

चक्रं न वृत्तं पुरुहूत वेपते मनो भिया मे अमतेरिदद्रिवः ।
रथादधि त्वा जरिता सदावृध कुविन्नु स्तोषन्मघवन् पुरूवसुः ॥३॥

पदार्थ—हे (**अद्रिवः**) मेघ और सूर्य के सदृश वर्त्तमान (**पुरुहूत**) बहुतो मे सत्कार पाये हुए (**मघवन्**) बहुत धनो से युक्त (**सदावृध**) सदा वृद्धि करने वाले राजन् ! जिस कारण (**अमतेः, मे**) मुझ निर्बुद्धि का (**इत्**) ही (**मनः**) चित्त (**रथात्**) वाहन से (**वृत्तम्**) वर्त्ते हुए (**चक्रम्**) चक्र के (**न**) सदृश (**भिया**) भय से (**वेपते**) कंपता है उस कारण का आप निवारण कीजिए और जो (**कुवित्**) महान् (**पुरूवसुः**) असङ्ख्य धन से युक्त (**जरिता**) स्तुति करने वाला (**त्वा**) आप की (**नु**) निश्चय (**अधि, स्तोषत्**) स्तुति करे उसका आप सत्कार करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो राजा चोर और साहस करने वाले जनो का प्रयत्न से न निवारण करे और श्रेष्ठ जनो का सत्कार करे तो भय के उद्भव से प्रजायें व्याकुल होवें ॥ ३ ॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

एष ग्रावेव जरिता त इन्द्रेयर्ति वाचं बृहदाशुषाणः ।
प्र सव्येन मघवन्यंसि रायः प्र दक्षिणिद्धरिवो मा वि वेनः ॥४॥

पदार्थ—हे (**हरिवः**) उत्तम मनुष्यो से और (**मघवन्**) धन से युक्त (**इन्द्र**) शत्रुओ के नाश करनेवाले राजन् ! जो (**ते**) आप का (**एषः**) यह (**जरिता**) सम्पूर्ण विद्याओ की प्रशंसा करनेवाला (**ग्रावेव**) मेघ के सदृश (**वाचम्**) उत्तम शिक्षायुक्त वाणी को (**इयर्त्ति**) प्राप्त होता है वह (**बृहत्**) बड़े को (**आशुषाणः**) व्याप्त होता हुआ (**सव्येन**) वाम ओर से (**प्र, दक्षिणित्**) उत्तम प्रकार दहिने भाग से चलने वाला (**रायः**) धन के (**प्र, यंसि**) उत्तम प्रकार प्राप्त होने वा नियम करनेवाले हो वह आप (**वि**) विशेष करके (**वेनः**) कामना करनेवाले (**मा**) न हूजिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो बड़े विद्वान् जन वाणी को ग्रहण कर वा ग्रहण कराय के इन्द्रियो के निग्रह करनेवाले होते हैं वे निष्फल मनोरथवाले नहीं होते हैं किन्तु सत्य काम और असत्य के द्वेषी निरन्तर वर्त्तमान हैं ॥ ४ ॥

वृषा त्वा वृषणं वर्धतु द्यौर्वृषा वृषभ्यां वहसे हरिभ्याम् ।
स नो वृषा वृषरथः सुशिप्र वृषक्रतो वृषा वज्रिन्भरे धाः ॥५॥

पदार्थ—हे (**सुशिप्र**) उत्तम कमल के समान मुखवाले (**वृषक्रतो**) बलवानो की बुद्धि और कर्मों के सदृश बुद्धि और कर्म जिसके वह (**वज्रिन्**) शस्त्र और अस्त्र के ज्ञान से युक्त राजन् ! जो (**वृषा**) सुख वर्षानेवाला (**वृषणम्**) बलिष्ठ (**त्वा**) आप को (**वर्धतु**) बढ़ावे और जो (**वृषा**) वृषके समान बलवान् आप (**द्यौः**) सत्य कामना वाले के सदृश (**वृषभ्याम्**) बल से युक्त (**हरिभ्याम्**) हरणशील हस्तो से (**वहसे**) प्राप्त होते वा प्राप्त कराते हो (**सः**) वह (**वृषा**) दुष्टो की शक्ति रोकनेवाला और आप (**वृषरथः**) बलिष्ठ बैल रथ मे जिसके ऐसे (**वृषा**) विद्या के वर्षानेवाले (**नः**) हम लोगो को (**भरे**) सङ्ग्राम मे (**धाः**) धरिये, धारण कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् तुम लोगोको सर्वदा बढ़ाते हैं उनको आप सङ्ग्राम मे विजय के लिए प्रेरणा कीजिए ॥ ५ ॥

अब शिल्पिकार्य्यविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यो रोहितौ वाजिनौ वाजिनीवान्त्रिभिः शतैः सचमानावदिष्ट ।
यूने समस्मै क्षितयो नमन्तां श्रुतरथाय मरुतो दुवोया ॥६॥७॥

पदार्थ—हे (**मरुतः**) मनुष्यो (**यः**) जो (**वाजिनीवान्**) वेग की क्रियाका जाननेवाला (**त्रिभिः**) तीन (**शतैः**) सैकड़ो से (**अस्मै**) इस (**यूने**) युवा पुरुष के लिए (**सचमानौ**) मिले हुए (**दुवोया**) जो परिचरण को प्राप्त होते हैं उन (**वाजिनौ**) बड़े वेगवाले (**रोहितौ**) बिजुली और प्रसिद्ध अग्नि का (**अदिष्ट**) उपदेश देवें उस (**श्रुतरथाय**) सुने गये वाहन जिसके उसके लिए (**क्षितयः**) मनुष्य (**सम्, नमन्ताम्**) अच्छे प्रकार नम्र होवें ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो विमान आदि वाहन के कार्यों मे अग्नि आदि पदार्थों का संप्रयोग करते हैं वे जितने तीनसौ घोड़ों से वाहन शीघ्र पहुँचाते हैं उतना बल उस कला मे होता है और जो इस प्रकार शिल्पविद्या के कृत्यो मे प्रसिद्ध होते हैं उनका सत्कार सब करते है ॥ ६ ॥

इस सूक्त मे इन्द्र विद्वान् और शिल्पी के कृत्य वर्णन करने से इस
सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ
सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह छत्तीसवां सूक्त और सप्तम वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य सप्तत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य अत्रिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
१ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ विराट् त्रिष्टुप् ।
३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पाँच ऋचावाले सैंतीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम
मन्त्र में इन्द्रविषय को कहते हैं—

सं भानुना यतते सूर्यस्याजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वञ्चाः ।
तस्मा अमृध्रा उषसो व्युच्छान्य इन्द्राय सुनवामेत्याह ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यः**) जो (**आजुह्वानः**) आह्वान किया गया (**घृतपृष्ठः**) जल जिस के पीठ पर ऐसा (**स्वञ्चाः**) उत्तम प्रकार चलनेवाला अग्नि (**सूर्यस्य**) सूर्य की (**भानुना**) किरण से (**सम्**) उत्तम प्रकार (**यतते**)

प्रयत्न करता और जो (अमृध्रा) नहीं हिंसा करने वाली (उषसः) प्रभात-वेलाओं का (वि, उच्छान्) बसावे और जो इस विद्या को जानता है (तस्मै) उस (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त जन के लिए जो (आह) उपदेश देता है (इति) इस प्रकार हम लोग उसको (सुनवाम) उत्पन्न करें ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो बिजुली सूर्य के प्रकाश के साथ वर्त्तमान है उसको आदि लेकर विद्या का जो उपदेश देवे वह हम लोगों की उन्नति करनेवाला होता है यह हम लोग जानें ॥ १ ॥

अब शिल्पी विद्वान् के विषय को कहते हैं—

समिद्धाग्निर्वनवत्स्तीर्णबर्हिर्युक्तग्रावा सुतसोमो जराते ।
ग्रावाणो यस्येषिरं वदन्त्ययदध्वर्युर्हविषाव सिन्धुम् ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो (स्तीर्णबर्हि:) स्तीर्णबर्हि अर्थात् आच्छादित किया अन्तरिक्ष जिसने ऐसा और (युक्तग्रावा) युक्त मेघ जिससे (सुतसोमः) तथा प्रकट हुआ चन्द्रमा जिसमें (समिद्धाग्निः) वह प्रदीप्त हुआ अग्नि सम्पूर्ण पदार्थों का (वनवत्) सम्भोग करता है (यस्य) जिसके (इषिरम्) गमन को (ग्रावाणः) मेघ (वदन्ति) शब्दसे सूचित करते हैं जिसको (अध्वर्युः) शिल्पविद्या की कामना करता हुआ जन (हविषा) अग्नि में छोड़ने योग्य सामग्री से (सिन्धुम्) समुद्र को (अव, अयत्) प्राप्त होता और (जराते) स्तुति करता है उस अग्नि का कार्यों में सम्प्रयोग करो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जो अग्नि पदार्थों में व्याप्त और बहुत उत्तम गुण और क्रियावान् है उसको जानकर कार्यों को सिद्ध करो ॥ २ ॥

अब युवावस्थाविवाह विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम् ।
आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषात्पुरू सहस्रा परि वर्त्तयाते ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे (इयम्) यह (पतिम्) पति की (इच्छन्ती) इच्छा करती हुई (वधूः) स्त्री प्रिय स्वामी को (एति) प्राप्त होती है और (यः) जो स्त्री को प्राप्त होनेवाला प्रिय (इषिराम्) प्राप्त होती हुई (महिषीम्) बहुत श्रेष्ठ गुणवाली स्त्री को प्राप्त होता है और जैसे वे दोनों सम्पूर्ण गृहकृत्य को (वहाते) चलावें जैसे (ईम्) जल वा सम्पूर्ण पदार्थों को अग्नि से चलाया गया (रथः) वाहन चलाता है वह (अस्य) इसके (आ, श्रवस्यात्) आत्मा के श्रवण की इच्छा करने वाले से (घोषात्, च) और शब्द द्वारा (पुरू) बहुतों और (सहस्रा) हजारों के (परि) सब ओर (आ वर्त्तयाते) अच्छे प्रकार वर्त्तमान हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे किया ब्रह्मचर्य्य जिन्होंने ऐसे स्त्री और पुरुष परस्पर पति और स्त्रीभाव की इच्छा करते हैं तथा परस्पर प्रसन्न प्रिय होकर संयुक्त हुए गृहाश्रम के व्यवहार को उत्तम रीतिसे पूर्ण करते हैं वैसे ही जल और अग्नि सम्प्रयुक्त किये गये सम्पूर्ण व्यवहार को सिद्ध करते हैं और बहुत कोसों में भी मुहूर्त्तमात्र में वाहन आदि का शीघ्र पहुँचाते हैं यह सबको जानना चाहिए ॥ ३ ॥

अब शीघ्र यानचालनविषय को कहते हैं—

न स राजा व्यथते यस्मिन्निन्द्रस्तीव्रं सोमं पिबति गोसखायम् ।
आ सत्वनैरजति हन्ति वृत्रं क्षेति क्षितीः सुभगो नाम पुष्यन् ॥४॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिस राजा में (इन्द्रः) बिजुली (गोसखायम्) भूगोल है मित्र जिसका उस (तीव्रम्) तीव्र (सोमम्) जगत् का (पिबति) पान करती (सत्वनैः) और रथ आदि द्रव्यों से (आ, अजति) आती और (वृत्रम्) मेघ का (हन्ति) नाश करती है (सः) वह (राजा) राजा (सुभगः) सुन्दर ऐश्वर्य्य जिससे उस (नाम) प्रसिद्धि को (पुष्यन्) पुष्ट करता हुआ (क्षितीः) मनुष्यों को (क्षेति) बसाता है वा ऐश्वर्य्य करता और (न) न (व्यथते) भय वा पीड़ा को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिस राजा के वश में भूमि, जल, अग्नि और पवन हैं, उस राजा को किसी शत्रु आदि से भय कभी नहीं होता और वह राजा यशस्वी और प्रसिद्ध इस जगत् में होता है ॥ ४ ॥

अब विद्युद्विद्याविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

पुष्यात्क्षेमे अभि योगे भवात्युभे वृतौ संयती सं जयाति ।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति य इन्द्राय सुतसोमो ददाशत् ॥५॥८

पदार्थ—(यः) जो (सूर्य्ये) सूर्य में (प्रियः) कामना करनेवाला (अग्ना) अग्नि में (प्रियः) कामना करता हुआ (भवाति) प्रसिद्ध होवे तथा (क्षेमे) रक्षण में और (योगे) अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति के रक्षण में (अभि) सम्मुख (पुष्यात्) पुष्टि करे तथा (वृतौ) आच्छादन करने में (उभे) दोनों (संयती) मिली हुइयों को जानकर (भवाति) प्रसिद्ध होवे और (सुतसोमः) एकत्र किया ऐश्वर्य जिसने ऐसा जन (इन्द्राय) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए (ददाशत्) देवे वह जन शत्रुओं को (सम्, जयाति) अच्छे प्रकार जीते ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि आदि विद्या की कामना करते हुए योग क्षेम के साधन में चतुर, दाता और न्याय में प्रीति करनेवाले होवें वे ही दुष्टों को जीतने को समर्थ होवें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, शिल्पी, विद्वान् और युवावस्था में विवाह करने का वर्णन, शीघ्र वाहन का चलाना और बिजुली की विद्या का वर्णन किया, इससे इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह सैंतीसवां सूक्त और आठवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्याष्टात्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य अत्रिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ अनुष्टुप् । २, ३, ४, निचृदनुष्टुप् । ५ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले अड़तीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्र के गुणों को कहते हैं—

उरोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।
अधा नो विश्वचर्षणे द्युम्ना सुक्षत्र मंहय ॥१॥

पदार्थ—हे (विश्वचर्षणे) सम्पूर्ण देखने योग्य पदार्थों के देखनेवाले (शतक्रतो) अनन्त बुद्धि से युक्त और (सुक्षत्र) सुन्दर क्षत्र वा द्रव्यवाले (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त जिन (ते) आप के (उरोः) बहुत (राधसः) धन का (विभ्वी) व्याप्त होनेवाला (रातिः) दान है (अधा) इसके अनन्तर न्याय से प्रजाओं का पालन करने हो वह आप (नः) हम लोगों को (द्युम्ना) यश वा धन से (मंहय) बड़े करिये ॥ १ ॥

भावार्थ—जो पूर्ण विद्या से युक्त असंख्य धन देने और सम्पूर्ण व्यवहारों को जाननेवाले अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त उत्तम स्वभाव और नम्रता से युक्त होवे वह राजा प्रजाओं के पालन करने का समर्थ होवे ॥ १ ॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यदीमिन्द्र श्रवाय्यमिषं शविष्ठ दधिषे ।
पप्रथे दीर्घश्रुत्तमं हिरण्यवर्ण दुष्टरम् ॥२॥

पदार्थ—हे (शविष्ठ) अतिबलयुक्त और (हिरण्यवर्ण) सुवर्ण को स्वीकार करनेवाले (इन्द्र) दुःख के नाश करनेवाले (यत्) जो (श्रवाय्यम्) सुनने योग्य और (दुष्टरम्) दुःख से तरने योग्य (इषम्) अन्न आदि को (पप्रथे) प्रकट करता है उस (ईम्) प्राप्त होने योग्य और दुःख से तरने योग्य (दीर्घश्रुत्तमम्) अतिकाल से अधिकतर सुननेवाले को आप (दधिषे) धारण करते हो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो पूर्णविद्या से युक्त धन धान्य पशु और प्रजाओं का बढ़ाने और ब्रह्मचर्य्य से बड़ा पराक्रमवाला है उसीको राजकर्म्मचारी कीजिए ॥२॥

अब राजप्रजाधर्मविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

शुष्मासो ये ते अद्रिवो मेहना केतसापः ।
उभा देवावभिष्टये दिवश्च ग्मश्च राजथः ॥३॥

पदार्थ—हे (अद्रिवः) मेघों के सदृश पर्वत हैं जिसके राज्य में ऐसे राजन् ! जैसे (उभा) दोनों सूर्य और चन्द्रमा (देवौ) उत्तम गुण कर्म और स्वभाववाले (दिवः) अन्तरिक्ष (च) और (ग्मः) पृथिवी के (च) भी मध्य में प्रकाशित हैं वैसे (ये) जो (शुष्मासः) अधिक बलयुक्त (केतसापः) बुद्धि से सम्बन्ध रखनेवाले जन (ते) वे (अभिष्टये) इष्टसिद्धि के लिए (मेहना) वर्णन से प्रजाओं में हैं वह प्रजा और आप निरन्तर (राजथः) प्रकाशित होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य्य और चन्द्रमा सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करते हैं वैसे ही प्रजा और राजा मिलके सम्पूर्ण राजधर्म्म को प्रकाशित करें ॥ ३ ॥

उतो नो अस्य कस्य चिद्दक्षस्य तव वृत्रहन् ।
अस्मभ्यं नृम्णमा भरास्मभ्यं नृमणस्यसे ॥४॥

पदार्थ—हे (वृत्रहन्) जैसे सूर्य्य मेघ का नाश करता है उसके सदृश वर्त्तमान (तव) आपका और (नः) हम लोगों के (उतो) भी (अस्य) इसके (कस्य) किसके (चित्) भी (दक्षस्य) बल सम्बन्धी (नृमणस्यसे) अपने धन की इच्छा करते हो वह आप (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए (नृम्णम्) मनुष्य रमते हैं जिसमें उस धन का (आ, भर) धारण कीजिए और (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए अभय दीजिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—वही श्रेष्ठ मनुष्यों में मुख्य हो जो राज्य के रक्षण में तत्पर होकर वर्त्ताव करे ॥ ४ ॥

न तं आभिरभिष्टिभिस्तव शर्मञ्छतक्रतो ।
इन्द्र स्याम सुगोपाः शूर स्याम सुगोपाः ॥५॥९॥

पदार्थ—हे (**शतक्रतो**) अत्यन्त बुद्धिमान् (**इन्द्र**) राजन् (**ते**) आप की (**आभिः**) इन वर्त्तमान (**अभिष्टिभिः**) इष्ट पदार्थों की इच्छाओं से (**तव**) आपके (**शर्म्मन्**) गृह में हम लोग (**सुगोपाः**) उत्तम प्रकार रक्षा करनेवाले (**स्याम**) होवें और हे (**शूर**) भय से रहित राजन् आपके राज्य वा संग्राम में हम लोग (**सुगोपाः**) यथावत् प्रजा के पालन करनेवाले (**नू**) निश्चय (**स्याम**) होवें ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! हम लोग सत्य प्रतिज्ञा और प्रीति से आपके गृह शरीर राज्य और सेना के सदा ही रक्षक होके कृतकृत्य होवें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान् राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अड़तीसवां सूक्त और नववां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्यैकोनचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्यात्रिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ विराडनुष्टुप् । २, ३, निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ४ स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ५ बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले उनचालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्र के गुणों को कहते हैं—

यदिन्द्र चित्र मेहनास्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥१॥

पदार्थ—हे (**अद्रिवः**) सूर्य के सदृश विद्या के प्रकाश करने वाले (**विदद्वसो**) धन को प्राप्त हुए (**चित्र**) अद्भुत गुण कर्म्म और स्वभाववाले (**इन्द्र**) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त (**यत्**) जो (**त्वादातम्**) आप से शुद्ध किया (**राधः**) द्रव्य (**मेहना**) वृष्टि के सदृश (**अस्ति**) है (**तत्, उभयाहस्ति**) उस उभयाहस्ति अर्थात् दो प्रकार के हाथ प्रवृत्त होते हैं जिसमें ऐसे को (**नः**) हम लोगों के लिए (**आ, भर**) सब प्रकार धारण कीजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—वही राजा धन से युक्त वा कुशली होवे जो वृष्टि के सदृश अन्यों के मनोरथों को वर्षावे ॥ १ ॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर ।
विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावने ॥२॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त आप (**यत्**) जिस (**वरेण्यम्**) स्वीकार करने योग्य (**द्युक्षम्**) धर्म्म और विद्या के प्रकाश से युक्त को (**मन्यसे**) मानते हो (**तत्**) उसको हम लोगों के लिए (**आ, भर**) धारण कीजिए जिससे (**अकूपारस्य**) श्रेष्ठ है पार जिनका (**तस्य**) उन (**ते**) आपके (**दावने**) दाता के लिए (**वयम्**) हम लोग प्रयत्न को (**विद्याम**) जानें ॥ २ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! आप जिस २ उत्तम विषय को जानते हैं उसका हम लोगों के प्रति उपदेश कीजिए जिससे हम लोग आपके राजकार्य्य को पूर्णरूप से करने को समर्थ होवें ॥ २ ॥

यत्ते दित्सु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।
तेन दृळ्हा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥३॥

पदार्थ—हे (**अद्रिवः**) उत्तम प्रकार शोभित पर्वत से युक्त विद्वन् ! (**ते**) आप के (**यत्**) जो (**दित्सु**) देने की इच्छा करनेवाला (**प्रराध्यम्**) अत्यन्त साधने योग्य (**श्रुतम्**) श्रवण और (**बृहत्**) बड़ा (**मनः**) चित्त (**अस्ति**) है (**तेन**) इससे (**चित्**) भी आप (**दृळ्हा**) दृढ़ वस्तुओं की रक्षा करते हो और (**सातये**) धर्म और अधर्म के विभाग के लिए (**वाजम्**) संग्राम का (**आ, दर्षि**) भङ्ग करते हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिस से मनुष्य ब्रह्मचर्य्य विद्या योगाभ्यास और सत्यभाषण आदि के आचरण से सम्पूर्ण विद्याओं से युक्त मन को सिद्ध कर धर्म से सम्पूर्णजनों के हित के लिए दुष्टों को दण्ड देता है इससे वह अति उत्तम है ॥ ३ ॥

अब राजप्रजाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

मंहिष्ठं वो मघोनां राजानं चर्षणीनाम् ।
इन्द्रमुप प्रशस्तये पूर्वीभिर्जुजुषे गिरः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस (**वः**) आप लोगों और (**मघोनाम्**) बहुत ऐश्वर्यों से युक्त (**चर्षणीनाम्**) मनुष्यों के (**मंहिष्ठम्**) अत्यन्त बड़े और (**इन्द्रम्**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देनेवाले (**राजानम्**) राजा को (**प्रशस्तये**) प्रशंसा के लिए (**पूर्वीभिः**) प्राचीन प्रजाओं के साथ (**गिरः**) वाणियों को (**उप, जुजुषे**) समीप में सेवन वा प्रसन्नता से स्वीकृत करते हो वे और वह सर्वत्र सुखी होते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो राजा और जो प्रजाजन परस्पर अनुकूलता अर्थात् प्रीतिपूर्वक वर्त्ताव रखते वे सदा आनन्दित होते हैं ॥ ४ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अस्मा इत्काव्यं वच उक्थमिन्द्राय शंस्यम् ।
तस्मा उ ब्रह्मवाहसे गिरो वर्धन्त्यत्रयो गिरः शुम्भन्त्यत्रयः ॥५॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**इन्द्राय**) अत्यन्त ऐश्वर्य के लिए (**काव्यम्**) कवियों विद्वानों से कामना करने योग्य (**उक्थम्**) प्रशंसित (**शंस्यम्**) स्तुति करने योग्य (**वचः**) वचन का प्रयोग करता है (**अस्मै**) इसके लिए (**इत्**) और (**तस्मै**) उस (**ब्रह्मवाहसे**) धनों को प्राप्त होनेवाले जन के लिए (**अत्रयः**) नहीं हैं तीन प्रकार के दुःख जिनमें वे (**गिरः**) वाणियाँ (**वर्धन्ति**) बढ़ती हैं (**उ**) और (**अत्रयः**) नहीं हैं तीन प्रकार के गुणों के दोष जिनमें वे (**गिरः**) वाणियाँ (**शुम्भन्ति**) उत्तम आचरण कराती हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् जन वाणियों को विद्याभ्यास से शुद्ध करते हैं वे कवित्व और ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में इन्द्र राजा प्रजा और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह उनचालीसवाँ सूक्त और दशम वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ नवर्चस्य चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्यात्रिर्ऋषिः । १—४ इन्द्रः । ५ सूर्यः । ६—९ अत्रिर्देवता । १ निचृदुष्णिक् । २, ३ उष्णिक् । ९ स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ४ त्रिष्टुप् । ५ । ६ । ८ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ७ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले चालीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्र के गुणों को कहते हैं—

आ याह्यद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिब ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (**सोमपते**) ऐश्वर्य के स्वामिन् (**वृषन्**) बैल के सदृश आचरण करते हुए (**वृत्रहन्तम**) अत्यन्त धन को प्राप्त होने और (**इन्द्र**) ऐश्वर्य्य की इच्छा करनेवाले जन (**वृषभिः**) बलिष्ठों के साथ आप (**अद्रिभिः**) मेघों से (**सुतम्**) उत्पन्न हुए (**सोमम्**) सोमलता आदि ओषधियों के रस को (**पिब**) पान करिए और संग्राम को (**आ, याहि**) प्राप्त हूजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—जो ऐश्वर्य की इच्छा करें वे अवश्य बल और बुद्धि की वृद्धि करें ॥ १ ॥

अब मेघ विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ २ ॥

पदार्थ—(**वृषन्**) बल की इच्छा करते हुए (**वृत्रहन्तम**) अतिशय करके शत्रुओं के और (**इन्द्र**) दुःखों के नाश करनेवाले जन जो (**अयम्**) यह (**वृषा**) आनन्द को उत्पन्न करने और (**वृषा**) वृष्टि करनेवाला (**ग्रावा**) मेघ और (**मदः**) आनन्द तथा (**वृषा**) सुख का वर्षानेवाला (**सोमः**) ओषधियों का समूह (**सुतः**) उत्पन्न किया गया है उन (**वृषभिः**) मेघादिकों से कार्य्यों को सिद्ध कीजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मेघ आदि पदार्थ हैं उनसे मनुष्य बहुत कार्यों को सिद्ध कर सकते हैं ॥ २ ॥

फिर इन्द्रपदवाच्य राजा के गुणों को कहते हैं—

वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (**वृषन्**) सुख करनेवाले (**वज्रिन्**) बहुत शस्त्र और अस्त्रों से युक्त (**वृत्रहन्तम**) अत्यन्त दुष्टों के नाश करनेवाले (**इन्द्र**) ऐश्वर्य्य की इच्छा करनेवाले (**वृषा**) वृष्टि करनेवाला (**चित्राभिः**) अद्भुत (**ऊतिभिः**) रक्षादि क्रियाओं और (**वृषभिः**) दुष्टों के सामर्थ्य को बाँधने वालों के साथ वर्त्तमान (**वृषणम्**) बलिष्ठ (**त्वा**) आप को (**हुवे**) बुलाता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान और सब प्रकार गुणों से सम्पन्न, बलिष्ठ, न्यायकारी राजा को स्वीकार करें जिस से सब प्रकार से रक्षा होवे ॥ ३ ॥

ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ् माध्यन्दिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (ऋजीषि) सरलता आदि से युक्त (वज्री) शस्त्र और अस्त्रों का धारण करनेवाला (वृषभः) बलिष्ठ (शुष्मी) बलिष्ठ मन से युक्त (तुराषाट्) हिंसा करनेवाले शत्रुओं को सहने (सोमपावा) श्रेष्ठ ओषधियों के रस का पीने (वृत्रहा) दुष्ट शत्रुओं के नाश करने और (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य का करनेवाला (राजा) विद्या और विनय से प्रकाशमान (हरिभ्याम्) घोड़ों से वाहन को (युक्त्वा) युक्त करके (अर्वाङ्) पीछे (उप, यासत्) समीप प्राप्त होवे और (माध्यन्दिने) मध्याह्न में (सवने) भोजन के समय (मत्सत्) आनन्दित होवे उसी को अधिष्ठाता करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—वही राजा प्रशंसित होवे जो राज्य के अङ्गों और विद्याओं को ग्रहण करके प्रजापालन के लिये प्रयत्न करे ॥४ ॥

अब सूर्यविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यत्त्वा सूर्य्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अक्षेत्रविद्यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः ॥५॥११॥

पदार्थ—हे (सूर्य्य) सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान (यथा) जैसे (अक्षेत्रवित्) क्षेत्र अर्थात् रेखागणित को नहीं जानने वाला (मुग्ध) मूर्ख कुछ भी नहीं कर सकता है वैसे (यत्) जो (स्वर्भानुः) सूर्य्य से प्रकाशित होने वाला बिजुलीरूप (आसुर:) जिस का प्रकट रूप नहीं वह (तमसा) रात्रि के अन्धकार से (अविध्यत्) युक्त होता है जिस सूर्य्य से (भुवनानि) लोक (अदीधयुः) देखे जाते हैं उस के जानने वाले (त्वा) आप का हम लोग आश्रयण करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे बिजुली गुप्त हुई अन्धकार में नहीं प्रकाशित होती है वैसे ही विद्यारहित मूर्खजन का आत्मा नहीं प्रकाशित होता है और जैसे सूर्य्य के प्रकाश से सम्पूर्ण लोक प्रकाशित होते हैं वैसे ही विद्वान् का आत्मा सम्पूर्ण सत्य और असत्य व्यवहारों को प्रकाशित करता है ॥ ५ ॥

फिर सूर्यविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया अवो दिवो वर्त्तमाना अवाहन् ।
गूळ्हं सूर्य्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविन्ददत्रिः ॥६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्वान् (यत्) जो (स्वर्भानोः) सूर्य्य के प्रकाशक के सम्बन्ध में (दिवः) प्रकाशमान (वर्त्तमानाः) स्थित (मायाः) बुद्धियाँ (अपव्रतेन) अन्यथा वर्त्तमान (तमसा) अन्धकार से और (तुरीयेण) चौथे (ब्रह्मणा) धन से (गूळ्हम्) गुप्त बिजली नामक (सूर्य्यम्) सूर्य के उत्पन्न करनेवाले को (अवः) नीचे (अवाहन्) प्राप्त करती हैं (अध) इसके अनन्तर (अत्रिः) निरन्तर चलनेवाला (अविन्दत्) प्राप्त होता है उनको आप जानिये ॥६॥

भावार्थ—जैसे गुप्त बिजुली के प्रकाश बड़े कार्य्य को सिद्ध करते हैं वैसे ही विद्वानों की बुद्धियां सम्पूर्ण विज्ञान कार्य्यों को सिद्ध करती हैं ॥६॥

अब उक्त विषय में राजविषय को कहते हैं—

मा मामिमं तव सन्तमत्र इरस्या द्रुग्धो भियसा नि गारीत् ।
त्वं मित्रो असि सत्यराधास्तौ मेहावतं वरुणश्च राजा ॥७॥

पदार्थ—हे (अत्रे) तीन प्रकार के दुःखों से रहित (इरस्या) अन्न की इच्छा से तथा (भियसा) भय से (द्रुग्धः) द्रोह को प्राप्त (इमम्) इसको और (तव) आपके आश्रित (सन्तम्) हुए (माम्) मुझको (मा) नहीं (नि, गारीत्) निगलिये और जो (त्वम्) आप (मित्रः) मित्र (सत्यराधाः) सत्य आचरण से वा सत्यधन जिनका ऐसे (असि) हो वह आप (राजा) सब के अधिष्ठाता और (वरुणः) श्रेष्ठ सेना का ईश (च) भी (तौ) वे दोनों (इह) इस संसार में (मा) मेरी (अवतम्) रक्षा करो ॥७॥

भावार्थ—हे धर्मिष्ठ राजा और सेना के स्वामी ! अन्याय से किसी के पदार्थ को भी न ग्रहण करें भय और न्याय के अच्छे प्रकार चलाने में राजधर्म से पृथक् न होवें और सदा ही सत्य धर्म में प्रिय हुए मित्र के सदृश प्रजाओं का पालन करो ॥७॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः सपर्य्यन् कीरिणा देवान्नमसोपशिक्षन् ।
अत्रिः सूर्य्यस्य दिवि चक्षुराधात्स्वर्भानोरप माया अघुक्षत् ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (ब्रह्मा) चारों वेदों का जाननेवाला (कीरिणा) सम्पूर्ण विद्याओं की स्तुति करनेवाले से (युयुजानः) मिलता हुआ (नमसा) सत्कार वा अन्न आदि से (देवान्) विद्वानों की (सपर्य्यन्) सेवा करता और विद्यार्थियों को (उपशिक्षन्) समीप प्राप्त विद्या को ग्रहण कराता हुआ (अत्रिः) सम्पूर्ण विद्याओं में व्यापक (स्वर्भानोः) सूर्य्य की कान्ति के सदृश कान्ति जिस की उसके (ग्राव्णः) मेघ से (सूर्य्यस्य) सूर्य के (दिवि) प्रकाश में (चक्षुः) नेत्र का (आ, अधात्) स्थापन करे वह (मायाः) बुद्धियों को प्राप्त होवे और अविद्याओं को (अप, अघुक्षत्) अपशब्दित करे ॥८॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो विद्वानों की सेवा करनेवाला, योगी, विद्या के प्रचार में प्रिय, विद्वान् हो वे वह जैसे बिजुली सूर्य और मेघ के सम्बन्ध से सृष्टि की पालना और दुःख का निवारण होता है वैसे ही अध्यापक और अध्येता के सम्बन्ध से विद्या की रक्षा और अविद्या का निवारण करता है ॥८॥

अब सूर्य और अन्धकार के दृष्टान्त से विद्वान् और अविद्वान् के विषय को कहते हैं—

यं वै सूर्य्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अत्रयस्तमन्वविन्दन्नह्य१न्ये अशक्नुवन् ॥९॥१२॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (स्वर्भानुः) सूर्य से प्रकाशित (आसुरः) मेघ ही (तमसा) अन्धकार से (यम्) जिस (सूर्य्यम्) सूर्य्य को (अविध्यत्) ताड़ित करता है (तम्) उसको (वै) निश्चय करके (अत्रयः) विद्या में दक्ष जन (अनु, अविन्दन्) अनुकूल प्राप्त होवें (नहि) नहीं (अन्ये) अन्य इसके जानने को (अशक्नुवन्) समर्थ होवें ॥९॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मेघ सूर्य्य को ढाँप के अन्धकार को उत्पन्न करता है वैसे ही अविद्या आत्मा का आवरण करके अज्ञान को उत्पन्न करती है और जैसे सूर्य मेघ का नाश और अन्धकार का निवारण करके प्रकाश को प्रकट करता है वैसे ही प्राप्त हुई विद्या अविद्या का नाश करके विज्ञान के प्रकाश को उत्पन्न करती है इस विवेचन को विद्वान् जन जानते हैं अन्य नहीं ॥९॥

इस सूक्त में इन्द्र मेघ सूर्य विद्वान् अविद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह चालीसवां सूक्त और बारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ विंशत्यृचस्यैकचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्यात्रिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । १, २, ६, १५, १८, त्रिष्टुप् । ४, १३ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ३, १४, १६ पङ्क्तिः । ५, ९, १०, ११, १२ भुरिक्पङ्क्तिः । ७, ८ पङ्क्तिश्छन्दः । २० याजुषी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । १९ जगती । १७ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब बीस ऋचावाले एकतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से विश्वेदेवों के गुणों को कहते हैं—

को नु वां मित्रावरुणावृतायन्दिवो वा महः पार्थिवस्य वा दे ।
ऋतस्य वा सदसि त्रासीथां नो यज्ञायते वा पशुषो न वाजान् ॥१॥

पदार्थ—हे (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान वायु के सदृश वर्त्तमान पढ़ने और पढ़ानेवाले जनो (वाम्) आप दोनों और (दिवः) प्रकाशों को (कः) कौन (ऋतायन्) सत्य का आचरण करता हुआ (वा) वा (पार्थिवस्य) पृथिवी में विदितजन के (महः) तेज को कौन (नु) शीघ्र जान (वा) वा (दे) प्रकाशमान विद्वान्जनों (ऋतस्य) सत्य की (सदसि) सभा में (त्रासीथाम्) रक्षा करो (वा) वा (यज्ञायते) यज्ञ की कामना करते हुए के लिए (नः) हम लोगों की रक्षा करिये (वा) वा (पशुषः) पशुओं और (वाजान्) अन्नों के (न) सदृश सब लोगों के लिए भोगों को प्राप्त कराइए ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जो आप लोग पृथिवी आदि पदार्थों की विद्या को जानते हैं तो हम लोगों को उपदेश देवें और सभा में बैठ के सत्य न्याय को करें ॥ १ ॥

ते नो मित्रो वरुणो अर्य्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतो जुषन्त ।
नमोभिर्वा ये दधते सुवृक्तिं स्तोमं रुद्राय मीळ्हुषे सजोषाः ॥२॥

पदार्थ—(ये) जो (मरुतः) मनुष्य (नमोभिः) सत्कार और अन्नादिकों से (मीळ्हुषे) सुख का सेचन करते हुए (रुद्राय) दुष्ट आचरणों के करनेवाले जनों के रुलानेवाले के लिए (सजोषाः) तुल्य प्रीति के सेवन करनेवाले हुए (सुवृक्तिम्) उत्तम प्रकार वर्जन होता है जिससे उस (स्तोमम्) प्रशंसा का (दधते) धारण करते (वा) वा (जुषन्त) सेवन करते हैं (ते) वे (मित्रः) मित्र (वरुणः) श्रेष्ठ आचरण करनेवाला (अर्य्यमा) न्याय का ईश और (इन्द्रः) परमैश्वर्य्यवान् (ऋभुक्षाः) बड़ा विद्वान् (नः) हम लोगों के लिए (आयुः) जीवन का सेवन करें ॥२॥

भावार्थ—उन्हीं विद्वानों को उत्तम समझना चाहिए जो अपने सदृश सब प्राणियों में वर्त्ताव करें ॥२॥

आ वां येष्ठाश्विना हुवध्यै वातस्य पत्मन्रथ्यस्य पुष्टौ ।
उत वां दिवो असुराय मन्म प्रान्धांसीव यज्यवे भरध्वम् ॥३॥

पदार्थ—हे (**येष्ठा**) अत्यन्त नियम के निर्वाहक (**अश्विना**) अध्यापक और उपदेशक जनो ! जैसा (**वाम्**) आप दोनो (**रथ्यस्य**) रथ मे उत्पन्न हुए (**वातस्य**) पवन के (**पत्मन्**) माग म और (**पुष्टौ**) पोषण करने मे (**उत, वा**) अथवा (**असुराय**) मेघ के लिए (**दिव.**) कामना करते हुए के (**अन्धांसीव**) अन्न आदिको के सदृश (**यज्यवे**) यज्ञारम्भ वा यजमान के लिए कारण होते हो वैसे (**हुवध्यै**) ग्रहण करने के लिए (**मन्म**) विज्ञान का (**प्र, आ भरध्वम्**) प्रारम्भ करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मत्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे पढने और पढानेवाला विद्या के प्रचार के लिये प्रयत्न करता है वैसे ही सब मनुष्यो को चाहिए कि निरन्तर प्रयत्न करें ॥ ३ ॥

प्र सक्षणो दिव्यः कण्वहोता त्रितो दिवः सजोषा वातो अग्निः ।
पूषा भगः प्रभृथे विश्वभोजा आजिं न जग्मुराश्वश्वतमाः ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् (**दिव्य**) शुद्ध व्यवहारयुक्त (**कण्वहोता**) बुद्धिमान्, तथा देने और ग्रहण करनेवाले के सदृश जो (**सक्षण**) सहने वाला (**त्रित.**) तीन पृथिवी जल और अन्तरिक्ष मे बढता (**दिव**) श्रेष्ट कामनाओ की इच्छा करता और (**सजोषा**) साथ ही सेवन (**वात**) वायु और (**अग्नि**) अग्नि (**प्रभृथे**) शुद्ध करनेवाले व्यवहार मे (**पूषा**) पुष्टि करने वा (**भग**) ऐश्वर्य्य का देने वा (**विश्वभोजा**) ससार का पालन करनेवाला और (**आश्वश्वतमा**) शीघ्र चलनेवाले घोडे जिनके विद्यमान वे (**आजिम्**) सग्राम को (**जग्मु**) जैसे प्राप्त होते हैं (**न**) वैसे (**प्र**) प्रयत्न किया जाता है वही बहुत भाग की प्राप्ति कराता है ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग अग्नि आदि पदार्थों मे दारिद्र्य का नाश करके धनवान् हूजिए ॥ ४ ॥

प्र वो रयिं युक्ताश्वं भरध्वं राय एषेऽवसे दधीत धीः ।
सुशेव एवैरौशिजस्य होता ये व एवा मरुतस्तुराणाम् ॥५॥१३॥

पदार्थ—हे (**मरुत**) मनुष्यो ! आप लोग (**धी.**) बुद्धियो को (**दधीत**) धारण करो और (**व**) आप लोगो के लिए अर्थात् आप अपने लिए (**युक्ताश्वम्**) युक्त घोडे जिससे उस (**रयिम्**) धन को (**प्र, भरध्वम**) अत्यन्त धारण करो । तथा (**अवसे**) रक्षण आदि के लिये (**एषे**) प्राप्त होने को (**सुशेव**) सुन्दर सुख से युक्त जन (**एवै**) गमनो से (**औशिजस्य**) कामना करनेवाले सन्तान का और (**राय**) धनो का (**होता**) देनेवाला होता है और (**ये**) जो (**व**) आप लोगो के (**तुराणाम**) नाश करनेवालो के नाश करनेवाले (**एवा**) और कामना करनेवाले हैं उनका आप लोग सत्कार करो ॥५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग अग्नि आदि पदार्थों की विद्या से धनवान् होकर सत्यता से सब अनाथो का पालन करो और दुष्टो का ताडन करो ॥५॥

प्र वो वायुं रथयुजं कृणुध्वं प्र देवं विप्रं पनितारमर्कैः ।
इषुध्यव ऋतसापः पुरन्धीर्वस्वीर्नो अत्र पत्नीरा धिये धुः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**अत्र**) इस ससार म (**इषुध्यव**) बाणो के द्वारा युद्ध करने वा (**ऋतसाप**) सत्य सम्बन्ध रखनेवाले विद्वान् जन (**व.**) आप लोगो के लिए (**रथयुजम्**) वाहन से युक्त (**वायुम्**) वेगवाले वायु को (**धु**) धारण करें वा आप लोगो और (**न.**) हम लोगो के लिए (**पत्नी**) स्त्रियो के सदृश वर्त्तमानो को और (**धिये**) बुद्धि के लिये (**वस्वी**) बहुत पदार्थों मे युक्त (**पुरन्धी**) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (**आ**) सब प्रकार धारण करें उनके सग से वेगयुक्त वाहन से युक्त को (**प्र, कृणुध्वम्**) अच्छे प्रकार सिद्ध करें (**अर्कै.**) प्रशसनीय पदार्थों से (**पनितारम्**) स्तुति करने और धर्म्म से व्यवहार करनेवाले (**विप्रम्**) बुद्धिमान् (**देवम्**) विद्वान् को (**प्र**) अच्छे प्रकार प्रकट करो ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे पतिव्रता पत्नी पति आदि को सुख देती हैं वैसे ही वायु के समान वेगयुक्त रथ को और धार्मिक विद्वानो को धारण कर सब को सुखयुक्त करो ॥६॥

उप व एषे वन्द्येभिः शूषैः प्र यह्वी दिवश्चितयद्भिरर्कैः ।
उषासानक्ता विदुषीव विश्वमा हा वहतो मर्त्याय यज्ञम् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**दिव**) विद्याके प्रकाशो को (**चितयद्भि**) जनाते हुए (**अर्कै**) सत्कार करने योग्य विद्वानो के साथ और (**वन्द्येभि**) स्तुति करने योग्य (**शूषै.**) बलो के साथ (**यह्वी**) बडी (**विदुषीव**) पूर्णविद्यायुक्त स्त्री के तुल्य जो (**उषासानक्ता**) रात्रि और दिन (**व**) आप लोगो के (**उप, एषे**) समीप प्राप्त होने को (**मर्त्याय**) मनुष्य के सुख के लिए (**विश्वम्**) सम्पूर्ण (**यज्ञम्**) विद्या के प्रचार आदि को (**हा**) निश्चय (**प्र, आ, वहतः**) सब प्रकार धारण करते हैं उनकी सेवन की विद्या को आप लोग जानें ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे बडी विद्यायुक्त स्त्री सब जगह विद्यायुक्त स्त्रियो और विद्वानो मे सत्कारयुक्त हो और सम्पूर्ण उत्तम गुणो का धारण करके विद्यायुक्त पति आदि की वृद्धि करती है वैसे ही रात्रि और दिन सब व्यवहारो को धारण करके सब जगत् की वृद्धि करते हैं ॥७॥

अभि वो अर्चे पोष्यावतो नॄन्वास्तोष्पतिं त्वष्टारं रराणः ।
धन्या सजोषा धिषणा नमोभिर्वनस्पतीरोषधी राय एषे ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**धन्या**) धन को प्राप्त हुई (**सजोषाः**) तुल्य प्रीति की सेवनेवाली (**धिषणा**) बुद्धि (**नमोभि**) सत्कारो वा अन्न आदिको से (**वनस्पतीन्**) अश्वत्थ आदि और (**ओषधी**) जब सोमलतादिको को तथा (**रायः**) धनो को (**एषे**) प्राप्त होने के लिए समर्थ होती है वैसे (**वास्तो**) निवास के स्थान के (**पतिम्**) पालनेवाले (**त्वष्टारम्**) तेजस्वीजन को (**रराणः**) दाता मैं (**पोष्यावत**) बहुत पोषण करने योग्य पदार्थ जिन के विद्यमान उन (**व**) आप (**नॄन्**) मनुष्यो का (**अभि, अर्चे**) प्रत्यक्ष सत्कार करता हूँ ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मत्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे तीव्र बुद्धि और विद्या से युक्त मनुष्य वैद्यक विद्या को जान कर मनुष्य आदिको का पालन करते है वैसे ही सब के हित की इच्छा करनेवाले मनुष्यो का सदा ही सत्कार करिये ॥ ८ ॥

तुजे नस्तने पर्वताः सन्तु स्वैतवो ये वसवो न वीराः ।
पनित आप्त्यो यजतः सदा नो वर्धान्नः शंसं नर्यो अभिष्टौ ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**ये**) जो (**स्वैतव**) उत्तम गमनवाले (**वसव**) पृथिवी आदि (**वीरा**) बुद्धि और शरीर के बल से युक्त जनो के (**न**) सदृश (**तने**) विस्तीर्ण (**तुजे**) दान म (**न**) हम लोगो के लिए (**पर्वता**) जल के देनेवाले मेघ और दाता जनो के सदृश (**सन्तु**) होवें और जो (**अभिष्टौ**) इष्ट की सिद्धि मे (**पनित**) प्रशसित (**आप्त्य**) यथार्थवक्ता जनो म उत्पन्न (**यजत**) मिलने वा सत्कार करने योग्य जन (**न**) हम लोगो की (**सदा**) सदा (**वर्धात्**) वृद्धि करे और जो (**नर्य्य**) मनुष्यो म श्रेष्ठ (**न**) हम लोगो को (**शसम्**) प्रशसा को प्राप्त करावें उन सब का हम लोग सत्कार करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मत्र म उपमालङ्कार है । जो जन वीर जनो के सदृश शत्रुओ के निवारण करते, मेघ के सदृश देनेवाले और वायु के सदृश वेगयुक्त विद्वान् हम लोगो की नित्य वृद्धि करे उनकी हम लोग भी वृद्धि करें ॥ ९ ॥

वृष्णो अस्तोषि भूम्यस्य गर्भं त्रितो नपातमपां सुवृक्ति ।
गृणीते अग्निरेतरी न शूषैः शोचिष्केशो नि रिणाति वना ॥१०॥१४॥

पदार्थ—हे विद्वन् आप (**वृष्ण**) सुख की वृष्टि करनेवालो की (**अस्तोषि**) प्रशसा करते हो (**त्रित**) तीनो मे वृद्धि करनेवाला (**अपाम्**) मनुष्यो के सदृश प्राणियो के (**नपातम्**) नही पतन जिसका उस (**भूम्यस्य**) पृथ्वी मे हुए (**गर्भम्**) गर्भ की (**सुवृक्ति**) उत्तम गमन के सहित (**गृणीते**) स्तुति करता है इस प्रकार जो (**अग्नि**) पवित्र करनेवाले अग्नि के (**एतरी**) प्राप्त होती हुई के और (**शोचिष्केश**) प्रकाशित विज्ञानवाले के (**न**) सदृश (**शूषै**) बलो से (**वना**) किरणो का (**नि, रिणाति**) जाता वा प्राप्त होता है वही सम्पूर्ण सृष्टि मे उत्पन्न हुए सुख को प्राप्त होता है ॥ १० ॥

भावार्थ—वही पुरुष बहुत धन और आदर को प्राप्त होता है कि जो सृष्टि-क्रम की विद्या को जान कर कार्य्य की सिद्धि के लिए यत्न करता है ॥ १० ॥

कथा महे रुद्रियाय ब्रवाम कद्राये चिकितुषे भगाय ।
आप ओषधीरुत नोऽवन्तु द्यौर्वना गिरयो वृक्षकेशाः ॥११॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो मनुष्य (**आप**) जल (**ओषधी**) सोमलता आदि ओषधियाँ (**वृक्षकेशा**) वृक्ष हैं केशो के समान जिन के वे पर्वत (**गिरयः**) मेघ (**उत**) और (**द्यौ**) सूर्य्य (**वना**) किरणो के सदृश (**न**) हम लोगों की (**अवन्तु**) रक्षा करें उन के सहाय से हम लोग (**महे**) बडे (**चिकितुषे**) जानने योग्य और (**रुद्रियाय**) रुलानेवालो से प्राप्त हुए के लिए (**कथा**) किस प्रकार से (**ब्रवाम**) उपदेश देवें और (**राये**) धन और (**भगाय**) ऐश्वर्य्य के लिए (**कत्**) कब उपदेश देवें ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मत्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्य अपने और अन्यो के रक्षण के लिए विद्वानो का मिल के प्रश्न और उत्तर से सत्य विद्याओ को प्राप्त हो और अन्यो के लिए उपदेश देकर ऐश्वर्य्य की वृद्धि कब करें इस प्रकार नित्य उत्साह करें ॥ ११ ॥

शृणोतु न ऊर्जां पतिर्गिरः स नभस्तरीयाँ इषिरः परिज्मा ।
शृण्वन्त्वापः पुरो न शुभ्राः परि स्रुचो बबृहाणस्याद्रेः ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**स**) वह (**नभ**) जल (**तरीयान्**) तैरने और (**इषिर**) प्राप्त होने योग्य (**परिज्मा**) सर्वत्र प्राप्त होनेवाला (**ऊर्जाम्**) बल से युक्त सेनाओ वा अन्नादिको का (**पति**) स्वामी पालन करनेवाला (**नः**) हम

लोगो की (गिरः) उत्तम शिक्षा से युक्त वाणियो को (शृणोतु) सुने तथा (शुभ्राः) श्वेत वर्णवाले (पुरः) नगरो के (न) सदृश (आप) और जलो के सदृश विद्याओ से व्याप्त विद्वान् जन (नः) हम लोगो की वाणियो को सुनो (ववृहाणस्य) उत्तम प्रकार बढ़े (अद्रेः) मेघ के (ऋ.च·) चलनेवालों के सदृश हम लोगो की वाणियो को विद्वान्जन (परि, शृण्वन्तु) सुनें ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है । वे ही जन विद्वान् होने योग्य हैं जो विद्वानो से पढ़ी हुई विद्या की परीक्षा को प्रसन्नता से देते हैं और वे ही अध्यापक विद्यार्थियो को विद्वान् कर सकते हैं जो प्रीति से उत्तम प्रकार पढ़ा के विरोधियो के सदृश परीक्षा लेते हैं । जो इस प्रकार दोनों प्रयत्न करते हैं वे नदी की उन्नति के समान अच्छे प्रकार बढ़ते हैं ॥ १२ ॥

विदा चिन्नु महान्तो ये व एवा ब्रवाम दस्मा वार्यं दधानाः ।
वयश्चन सुभ्व१ आव यन्ति क्षुभा मर्तमनुयतं वधस्नैः ॥१३॥

पदार्थ—हे (दस्मा.) दुःख की उपेक्षा करनेवाले (महान्त) बड़े श्रेष्ठ जनो (ये) जो (वार्य्यम्) स्वीकार करने योग्य सुख और (वय) जीवन को (चन) भी (दधानाः) धारण करते हुए (सुभ्वः) श्रेष्ठ कर्मों मे प्रवृत्त होनेवाले हम लोग जो (व) आप लोगो को (ब्रवाम) कहे उसको (एवाः) ही (चित्) निश्चय (नु) शीघ्र आप लोग (विदा) जानिये जो (वधस्नैः) ताड़न से स्नान करते अर्थात् पवित्र होते हैं उनके साथ (क्षुभा) उत्तम प्रकार चलने से (अनुयतम्) अनुकूलता से प्रयत्न करते हुए (मर्तम्) मनुष्य को (आ, अव, यन्ति) उत्तम प्रकार प्राप्त होते हैं उनकी आप लोग शिक्षा करो ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन शुभ कर्म्म को करें और उपदेश देवें वैसे ही आप लोग आचरण करो और जो मनुष्यो को क्लेश देते है उनको दण्ड दीजिये ॥ १३ ॥

आ दैव्यानि पार्थिवानि जन्मापश्चाच्छा सुमखाय वोचम् ।
वर्धन्तां द्यावो गिरश्चन्द्राग्रा उदा वर्धन्तामभिषाता अर्णाः ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! मै जिन (दैव्यानि) श्रेष्ठ गुणो मे हुए (पार्थिवानि) पृथिवी मे विदित (जन्म) जन्मो और (अप) कर्म्मों को (च) भी (अच्छा) उत्तम प्रकार (आ, वोचम्) सब ओर से उपदेश करू जिस (उदा) जल से (अर्णाः) समुद्रो के सदृश हम लोगो की (चन्द्राग्राः) सुवर्ण वा आनन्द अग्र अर्थात् परिणाम दशा में जिनके उन (अभिषाता·) चारो ओर से बटी हुई (द्याव·) सत्यकामनाओ का और (गिर) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियों की (वर्धताम्) वृद्धि कीजिय जिसमे (सुमखाय) शोभन यशोवाले के लिए प्राणियो की (वर्धन्ताम्) वृद्धि हो ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र म उपमालकार है । हे मनुष्यो ! आप लोग धर्म्मयुक्त कर्म्मों और श्रेष्ठ गुणो का ग्रहण करके अपनी कामनाओ और वाणी को शोभित करो जैसे जल से नदियां और समुद्र बढते है वैसे ही धर्म्मयुक्त पुरुषार्थ से मनुष्य बढ़ते है ॥ १४ ॥

पदेपदे मे जरिमा नि धायि वरूत्री वा शक्रा या पायुभिश्च ।
सिषक्तु माता मही रसा नः स्मत्सूरिभिर्ऋजुहस्त ऋजुवनिः ॥१५॥१५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (सूरिभि.) विद्वानो और (पायुभि) रक्षको से (च) और (या) जो (मे) मेरे (पदेपदे) प्राप्त होने प्राप्त होने, जानने जानने वा जाने जाने योग्य पदार्थों में (वरूत्री) श्रेष्ठ सुख की देने (जरिमा) और स्तुति करानेवाली (वा) वा (शक्रा) सामर्थ्य मे कारण (माता) माता (रसा) रस आदि गुणो मे युक्त (मही) बड़ी वाणी वा भूमि (ऋजुहस्ता) ऋजु अर्थात् सरल हस्त जिस के वा जिसमे वह (ऋजुवनिः) ऋजु अर्थात् नही जो कुटिल उन पदार्थों के विभक्त करनेवाली (न.) हम लोगो को (सिषक्तु) सम्बन्धित करे वह (स्मत्) ही (नि) निरन्तर (धायि) स्थित की जाती है ॥ १५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे माता सन्तानो की रक्षा करती है वैसे ही विद्वानों के सग से प्राप्त और उत्तम प्रकार शिक्षित विद्या विद्वानो की सब प्रकार रक्षा करती है ॥ १५ ॥

कथा दाशेम नमसा सुदानूनेवया मरुतो अच्छोक्तौ प्रश्रवसो मरुतो अच्छोक्तौ । मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धादस्माकं भूदुपमातिवनिः ॥१६॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (प्रश्रवसः) उत्तम श्रवण वा अन्न जिनका वे (मरुत) मनुष्य हम लोग (एवया) गमन क्रिया से (अच्छोक्तौ) सत्य कथन में (नमसा) सत्कार वा अन्न आदि से (सुदानून्) उत्तम दानो को (कथा) कैसे (दाशेम) देवें जैसे (मरुत) पवन (अच्छोक्तौ) उत्तम वचन में प्रवृत्त कराते हैं वैसे (नः) हम लोगों को इस विषय मे प्रवृत्त करिये । जैसे (बुध्न्यः) अन्तरिक्ष मे हुआ (अहि.) मेघ (अस्माकम्) हम लोगो का (उपमातिवनि·) उपमा का विभाग करनेवाला (भूत्) हो और (रिषे) अन्न के लिए हम लोगों को (मा) नहीं (धात्) धारण करे वैसे आप लोग भी हम लोगो को हिंसा में न प्रवृत्त कीजिये ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो! आप लोग विद्वानो के प्रति प्रश्न करके कि हम लोग क्या देवें और किससे क्या ग्रहण करें ऐसा निश्चय करके व्यवहार करो और जैसे मेघ स्वय छिन्नभिन्न होके अन्यों की रक्षा करता है वैसे ही विद्वान् जन स्वय दूसरे से अपकार किये हुए से छिन्नभिन्न होकर भी अन्यों का सदा उपकार करते हैं ॥ १६ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

इति चिन्नु प्रजायै पशुमत्यै देवासो वनते मर्त्यो व आ देवासो वनते मर्त्यो वः । अत्रा शिवां तन्वो धासिमस्या जरां चिन्मे निर्ऋतिर्जग्रसीत ॥

पदार्थ—हे (देवासः) विद्वान् जनो जो (मर्त्यः) मनुष्य (व) आप लोगों को (पशुमत्यै) बहुत पशु विद्यमान जिस में उस (प्रजायै) प्रजा के लिए (धासिम्) अन्न की (वनते) सेवा करता है और जो (चित्) निश्चय से (इति) इस प्रकार से (अस्याः) इस प्रजा के (तन्व) शरीर की (शिवाम्) मगलस्वरूप (जराम्) वृद्धावस्था को (आ, वनते) अच्छे प्रकार सेवा करता है और जो (मर्त्यः) मनुष्य (चित्) निश्चय से (मे) मेरे शरीर की मगलस्वरूप वृद्धावस्था का सेवन करता है और (निर्ऋति·) भूमि के सदृश (अत्रा) इस प्रजा में (व·) आप लोगो के अन्न को (जग्रसीत) खाता है इस प्रकार हे (देवास) विद्वान् आप लोग हम लोगों के लिए इस को (नु) शीघ्र सिद्ध कीजिये ॥ १७ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् जनो ! आप लोग ऐसा प्रयत्न करो जिससे मनुष्यो की अवस्था बढ़े जब तक मनुष्य वृद्ध नहीं होते तब तक ये परीक्षक भी नहीं होते हैं ।१७।

तां वो देवाः सुमतिमूर्जयन्तीमिषमश्याम वसवः शसा गोः ।
सा नः सुदानुर्मृळयन्ती देवी प्रति द्रवन्ती सुविताय गम्याः ॥१८॥

पदार्थ—हे (देवा) धार्मिक विद्वान् जनो ! जो (सुदानुः) उत्तम दान से युक्त (मृळयन्ती) सुख देती (द्रवन्ती) जानती वा चलती हुई (देवी) विद्यायुक्त स्त्री (सुविताय) ऐश्वर्य्य के लिए (व.) आप लोगों को प्राप्त होती है (ताम्) उस को (ऊर्जयन्तीम्) तथा पराक्रम आदि के दान से वृद्धि कराती हुई (सुमतिम्) श्रेष्ठ बुद्धि को और (इषम्) अन्न को हम लोग (अश्याम) भागें । हे (वसव) उत्तम गुणो मे निवास किये हुए जनो ! जो (गोः) पृथिवी के मध्य मे (शसा) प्रशंसा के साथ वर्त्तमान है (सा) वह (नः) हम लोगो को प्राप्त हो । और हे विद्यायुक्त स्त्री आप इन जनो के (प्रति) प्रति (गम्याः) प्राप्त हूजिये ॥ १८ ॥

भावार्थ—मनुष्य सदा उत्तम प्रकार घृत आदि के सस्कार से युक्त बुद्धि और बल के बढानेवाले अन्न का सदा भोग करें जिससे बुद्धि यश और धन बढ़े ॥१८॥

अभि न इळा यूथस्य माता स्मन्नदीभिरुर्वशी वा गृणातु ।
उर्वशी वा बृहद्दिवा गृणानाभ्यूर्ण्वाना प्रभृथस्यायोः ॥१९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (इळा) प्रशसा करने योग्य वाणी वा भूमि (यूथस्य) समूह की (माता) आदर करनेवाली माता के सदृश (न) हम लोगो की (अभि,-(गृणातु) सब ओर से स्तुति करे (वा) वा (आयोः) जीवन की (उर्वशी) बहुत वश मे होते हैं जिससे ऐसी वाणी (नदीभि) श्रेष्ठो के सदृश नाड़ियो से (स्मत्) ही स्तुति करें (वा) वा (बृहद्दिवा) बड़ा प्रकाश जिसका ऐसी (गृणाना) स्तुति करनेवाली (उर्वशी) और बहुतो को वश मे करनेवाली बुद्धि (अभ्यूर्ण्वाना) समुखता से अर्थों को ढापती हुई (प्रभृथस्य) प्रकर्षता से धारण किये गये जीवन की स्तुति करे ॥ १९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! आप लोग जो सत्य भाषण से युक्त वाणी को धारण करें तो आप लोगो की अवस्था बढ़े ॥१९॥

सिषक्तु न ऊर्जव्यस्य पुष्टेः ॥२०॥१६॥

पदार्थ—जो विद्वान् होवे वह (नः) हम लोगो को (ऊर्जव्यस्य) बहुत बल से प्राप्त (पुष्टे) पुष्टि के योग का (सिषक्तु) सेवन करे ॥ २० ॥

भावार्थ—जो जगत् का उपकार करने वाला होता है वही सम्पूर्ण विद्याओ के सम्बन्ध करने को योग्य होता है ॥ २० ॥

इस सूक्त मे विश्वेदेवो के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह इकतालीसवां सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथाष्टादशर्चस्य द्विचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्यात्रिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः ।
१, ४, ६, ११, १२, १५, १७, १८ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट्त्रिष्टुप् । ३, ५, ७, ८, ९, १३, १४ त्रिष्टुप्छन्द । धैवतः स्वरः । १७ याजुषी पङ्क्तिश्छन्दः । १० भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वर ॥

अब अठारह ऋचावाले बयालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से विश्वेदेवों के गुणों को कहते हैं—

प्र शन्तमा वरुणं दीधिती गीर्मित्रं भगमदितिं नूनमश्याः ।
पृषद्योनिः पञ्चहोता शृणोत्वतूर्तपन्था असुरो मयोभुः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वान् जो (**वरुणम्**) उदान वायु को (**दीधिती**) प्रकाशित करती हुई (**शन्तमा**) अत्यन्त सुख करने वाली (**पृथग्योनि**) वृष्टि है कारण जिसका ऐसी तथा (**पञ्चहोता**) पाँच प्राण ग्रहण करने वाले जिसके ऐसी (**गी**) वाणी वर्त्तमान है उसको (**मित्रम्**) प्राण (**भगम्**) ऐश्वर्य और (**अदितिम्**) आकाश वा भूमि को (**नूनम्**) निश्चय करके (**प्र, अश्याः**) प्राप्त होवे और जो (**अतूर्त्तपन्थाः**) नहीं हिंसित है मार्ग जिसका ऐसा (**मयोभु**) सुखकारक (**असुर**) प्रकाश का आवरण करने वाला मेघ है उसमें स्थित जो वाणी उसको आप (**शृणोतु**) सुनिये ॥ १ ॥

भावार्थ—सब चर और अचर पदार्थों में आकाश के संयोग से वाणीवत्त भाव है उसको विद्वान् ही जान और कार्यों में व्यवहार में ला सकते हैं ॥ १ ॥

प्रति मे स्तोममदितिर्जगृभ्यात्सूनुं न माता हृद्यं सुशेवम् ।

ब्रह्म प्रियं देवहितं यदस्त्यहं मित्रे वरुणे यन्मयोभु ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**अदिति**) पूर्ण सुख की देने वाली (**माता**) माता (**हृद्यम्**) हृदय के प्रिय (**सूनुम्**) सन्तान के (**न**) सदृश जो (**मे**) मेरी (**स्तोमम्**) स्तुति को (**प्रति, जगृभ्यात्**) अत्यन्त ग्रहण करे और (**यत्**) जिस (**सुशेवम्**) उत्तम प्रकार सुख देने वाले (**प्रियम्**) सुन्दर और प्रीतिकारक तथा (**देवहितम्**) देव अर्थात् विद्वानों के लिए हितकारक (**ब्रह्म**) सत्, चित् और आनन्दस्वरूप चेतन (**अस्ति**) है और (**यत्**) जो (**मित्रे**) प्राणवायु और (**वरुणे**) उदान वायु में (**मयोभु**) सुखकारक है उसको (**अहम्**) मैं इष्ट मानता हूँ वैसे आप लोग भी मानिये ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर प्रेमभाव से स्तुति किया गया और जो उसकी आज्ञा का सेवन किया हो तो वह जैसे कृपा करनेवाली माता शीघ्र उत्पन्न हुए बालक पर वैसे धार्मिक उपासक जन पर दया करता है, जो जगदीश्वर सर्वत्र व्याप्त हुआ भी प्राणादिकों में पाया जाता है उस सब काल में सुख देने वाले परमात्मा की हम लोग उपासना करें ॥ २ ॥

उदीरय कवितमं कवीनामुनत्तैनमभि मध्वा घृतेन ।

स नो वसूनि प्रयता हितानि चन्द्राणि देवः सविता सुवाति ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे खेत बोने वाले जन (**मध्वा**) मधुर (**घृतेन**) जल से क्षेत्र आदि सींचकर अन्नादिकों को प्राप्त होते हैं वैसे ही (**एनम्**) इस (**कवीनाम्**) बुद्धिमानों के मध्य में (**कवितमम्**) अत्यन्त बुद्धिमान् को (**उत्, ईरय**) उत्तमता से प्रेरणा देओ तथा (**अभि, उनत्त**) अभ्युदय के अर्थ विद्या और उत्तम शिक्षा से सींचो और हे विद्वन् जिस कवियों के मध्य में श्रेष्ठ कवि की प्रेरणा करो (**सः**) वह (**सविता**) विद्या और ऐश्वर्य का करनेवाला (**देवः**) विद्वान् (**नः**) हम लोगों के लिए (**प्रयता**) प्रयत्न से सिद्ध होने योग्य (**चन्द्राणि**) आनन्द के देने वाले सुवर्ण आदि (**हितानि**) हितकारक (**वसूनि**) द्रव्यों को (**सुवाति**) देवे ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् अध्यापक पुरुषो ! आप लोग जो निश्चय करके सब से उत्तम, सम्पूर्ण विद्याओं से युक्त, श्रेष्ठ विद्वान् होवे उसको, गृहाश्रम न कर ऐसा उपदेश दीजिये जिससे संसार में वर्त्तमान मनुष्यों का बड़ा सुख बढ़े क्योंकि जो निश्चय करके पूर्ण विद्यायुक्त होकर गृहाश्रम को करे वह बहुत व्यापारवान् होने से वीर्य आदि के नाश होने से थोड़ी अवस्थायुक्त होकर निरन्तर मनुष्यों के हित करने को नहीं समर्थ होवे ॥ ३ ॥

समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सं सूरिभिर्हरिवः सं स्वस्ति ।

सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमत्या यज्ञियानाम् ॥४॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त जिससे आप (**नः**) हम (**गोभिः**) इन्द्रियों वा वाणियों के साथ (**सम्, स्वस्ति**) उत्तम सुख (**अस्ति**) है वह (**नः**) हम लोगों को (**मनसा**) विज्ञान के साथ (**सम्, नेषि**) अच्छे प्रकार प्राप्त करते हैं और हे (**हरिवः**) श्रेष्ठ मनुष्यों से युक्त जो (**सूरिभिः**) विद्वानों के साथ सुख है वह हम लोगों को (**सम्**) एक साथ प्राप्त करते हैं और जो (**ब्रह्मणा**) वेद धन वा अन्न के साथ (**देवहितम्**) विद्वानों का हितकारक सुख है वह हम लोगों को (**सम्**) एक साथ प्राप्त करते हैं और जो (**यज्ञियानाम्**) यज्ञ करने वाले (**देवानाम्**) विद्वानों की (**सुमत्या**) श्रेष्ठबुद्धि के साथ विद्वानों का हितकारक सुख है वह हम लोगों के लिए (**सम्**) एक साथ प्राप्त करते हैं इससे सत्कार करने योग्य हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग सत्य वाणी, विद्वानों का सङ्ग, वेद-विद्या और श्रेष्ठ बुद्धि के सहित उत्तम प्रकार शोभित हुए अभीष्ट सुख को प्राप्त हूजिये ॥ ४ ॥

देवो भगः सविता रायो अंश इन्द्रो वृत्रस्य संजितो धनानाम् ।

ऋभुक्षा वाज उत वा पुरन्धिरवन्तु नो अमृतासस्तुरासः ॥५॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**देव**) दाता (**भगः**) ऐश्वर्य से सम्पन्न (**सविता**) प्रेरणा करने वाला (**रायः**) धनों का (**अंशः**) विभाग तथा (**वृत्रस्य**) मेघ और (**धनानाम्**) धनों का (**संजितः**) उत्तम प्रकार जीतने वाला (**इन्द्रः**) सूर्य (**ऋभुक्षाः**) बड़ा (**वाज**) ज्ञानवान् (**उत**) भी (**वा**) वा (**पुरन्धि**) बहुत बुद्धिमान् और (**तुरासः**) शीघ्र कार्य करने वाले तथा (**अमृतासः**) अपने रूप से नहीं नाश होने वाले (**नः**) हम लोगों की (**अवन्तु**) रक्षा करें वैसे ये आप लोगों की भी रक्षा करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य अपने सदृश अन्यों के भी सुख दुःख हानि लाभ प्रतिष्ठा और अप्रतिष्ठा को मानते हैं वे ही प्रशंसा के योग्य होते हैं ॥ ५ ॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

मरुत्वतो अप्रतीतस्य जिष्णोरजूर्यतः प्र ब्रवामा कृतानि ।

न ते पूर्वे मघवन्नापरासो न वीर्यं नूतनः कश्चनाप ॥६॥

पदार्थ—हे (**मघवन्**) अत्यन्त श्रेष्ठ धन से युक्त और अत्यन्त विद्यावाले विद्वान वा अतिबलवान् राजन् (**मरुत्वतः**) प्रशंसित विद्वानों से युक्त (**अप्रतीतस्य**) प्रतीति के अविषय (**अजूर्यतः**) जिसको जीर्ण अवस्था नहीं प्राप्त हुई ऐसे (**जिष्णोः**) जीतने वाले (**ते**) आपके जिन (**कृतानि**) कृत्यों का हम लोग (**प्र, ब्रवामा**) उपदेश देवें उन को (**न**) न (**पूर्वे**) प्राचीनजन (**न**) न (**अपरासः**) पीछे से हुए जन व्याप्त होते हैं और (**नूतनः**) नवीन (**कः, चन**) कोई भी, आप के (**वीर्य्यम्**) पराक्रम को (**न**) नहीं (**आप**) व्याप्त होता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—विद्वानों को चाहिए कि उन्हीं प्रशंसित कर्म वालों के कृत्यों को अन्य जनों के लिए उपदेश देवें जिन के कर्म अप्रतिहत अर्थात् नष्ट नहीं होते हैं ॥ ६ ॥

फिर विद्वानों के उपदेशविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उप स्तुहि प्रथमं रत्नधेयं बृहस्पतिं सनितारं धनानाम् ।

यः शंसते स्तुवते शम्भविष्ठः पुरूवसुरागमज्जोहुवानम् ॥७॥

पदार्थ—हे विद्या और ऐश्वर्य से युक्त (**यः**) जो (**पुरूवसु**) बहुत धनों से युक्त (**शम्भविष्ठ**) अत्यन्त सुखकारक जन (**शंसते**) प्रशंसा करने वाले और (**स्तुवते**) स्तुति करनेवाले के लिये (**प्रथमम्**) पहिले (**रत्नधेयम्**) रत्न धरने योग्य जिससे उस (**जोहुवानम्**) पुकारे गये वा पुकारने वाले के लिए (**बृहस्पतिम्**) बड़ों के पालन करने और (**धनानाम्**) धनों के (**सनितारम्**) उत्तम प्रकार विभाग करने वाले को (**आगमत्**) प्राप्त हो उसकी आप (**उपस्तुहि**) समीप में स्तुति करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—वे ही जन प्रशंसा करने योग्य होते हैं जो सब पदार्थ बाँट अर्थात् विभाग करके खाते हैं ॥ ७ ॥

तवोतिभिः सचमाना अरिष्टा बृहस्पते मघवानः सुवीराः ।

ये अश्वदा उत वा सन्ति गोदा ये वस्त्रदाः सुभगास्तेषु रायः ॥८॥

पदार्थ—हे (**बृहस्पते**) बृहत् अर्थात् विद्या आदि उत्तम पदार्थों की रक्षा करने वाले (**ये**) जो (**तव**) आपकी (**ऊतिभिः**) रक्षा आदिकों के साथ (**अरिष्टाः**) नहीं हिंसा किये गये (**सचमानाः**) सम्बन्ध करते हुए (**मघवानः**) अत्यन्त श्रेष्ठ धन से युक्त (**सुवीराः**) उत्तम वीरजन (**अश्वदाः**) अग्नि आदि वा घोड़ों को देने वाले (**उत**) भी (**वा**) वा (**ये**) जो (**गोदाः**) सुशिक्षित वाणी वा गौओं के देने वाले (**वस्त्रदाः**) वस्त्रों के देने वाले और (**सुभगाः**) सुन्दर ऐश्वर्य वा धन से युक्त (**सन्ति**) हैं (**तेषु**) उनमें (**रायः**) धन होते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो धार्मिक राजा से रक्षा किये गये और प्रशंसित धनों से युक्त दानीजन हैं वे ही यशस्वी होके धनाढ्य होते हैं ॥ ८ ॥

विसर्माणं कृणुहि वित्तमेषां ये भुञ्जते अपृणन्तो न उक्थैः ।

अपव्रतान्प्रसवे वावृधानान्ब्रह्मद्विषः सूर्याद्यावयस्व ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वन् (**ये**) जो (**अपृणन्तः**) नहीं पूर्ण वा नहीं पालन करते हुए (**भुञ्जते**) भोगते हैं और (**नः**) हमारे (**उक्थैः**) उत्तम वाक्यों से (**प्रसवे**) उत्पन्न हुए जगत् में (**वावृधानान्**) अत्यन्त बढ़ते हुए (**अपव्रतान्**) ब्रह्मचर्य सत्यभाषणादि व्रताचाररहित (**ब्रह्मद्विषः**) वेद वा परमात्मा से द्वेष करने वालों को रोकते हैं (**एषाम्**) इन लोगों के (**विसर्माणम्**) उत्पन्न करने वाले (**वित्तम्**) धन वा भोग को (**कृणुहि**) करो और (**सूर्य्यात्**) सूर्य से उनको (**यावयस्व**) पृथक् करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो लोग शुद्ध आचरणों से रहितों को शुद्ध आचरणों के सहित और अविद्वानों को विद्वान् करके नास्तिकों का रोक के अधर्म के आचरण से पृथक् होके निरन्तर सुखी करते वे निरन्तर आदर करने योग्य होते हैं ॥९॥

फिर शिक्षा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

य ओहते रक्षसो देववीतावचक्रेभिस्तं मरुतो नि यात ।

यो वः शमीं शशमानस्य निन्दात्तुच्छ्यान्कामान्करते सिष्विदानः ॥१०॥१८॥

पदार्थ—हे (मरुतः) मनुष्यो (यः) जो (देववीतौ) देव अर्थात् विद्वानों से व्याप्त क्रिया में (रक्षसः) दुष्ट आचरणयुक्त मनुष्यों को (ओहते) प्राप्त कराता है (यः) जो (वः) आप लोगों और (शशमानस्य) प्रशंसा किये गये के (शमीम्) कर्म्म की (निन्दात्) निन्दा करे और (सिषिवान) सम्बन्ध हुआ (दुष्टधान्) क्षुद्रों में हुए (कामान्) मनोरथों को (करते) करे (तम्) उसको (अचक्रेभिः) चक्रों से रहितों के द्वारा दण्ड से (नि, धात) निरन्तर प्राप्त हूजिए ॥ १० ॥

भावार्थ—हे राजा आदि मनुष्यो ! जो बुरी शिक्षा से मनुष्यों को दूषित करते और निन्दा तथा विषयों की आसक्ति में प्रवृत्ति कराते हैं उनको निरन्तर दण्ड दीजिए ॥ १० ॥

अब राज विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

तमु ष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा यो विश्वस्य क्षयति भेषजस्य ।
यक्ष्वा महे सौमनसाय रुद्रं नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य ॥११॥

पदार्थ—हे राजन् अथवा विद्वन् (यः) जो (स्विषुः) सुन्दर बाणों से युक्त (सुधन्वा) उत्तम धनुषवाला शत्रुओं को जीतता है और (यः) जो (विश्वस्य) सम्पूर्ण जगत् के मध्य में (भेषजस्य) ओषधि की प्रवृत्ति का (क्षयति) निवास करता है वा निवास कराता है (तम्) उसकी (महे) बड़े (सौमनसाय) श्रेष्ठ मन के भाव के लिए (स्तुहि) स्तुति कीजिए और श्रेष्ठ कर्म्मों को (यक्ष्वा) मिलाइये वा प्राप्त हूजिए इस (उ) ही (देवम्) श्रेष्ठ गुणों से युक्त (रुद्रम्) और दुष्टों को रुलानेवाले (असुरम्) मेघ को बड़े श्रेष्ठ मन के भाव के लिए (नमोभिः) अन्नादिकों से (दुवस्य) सेवन कीजिए ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो शस्त्र और अस्त्रों के चलाने के लिए युद्ध विद्या में चतुर वैद्यविद्या में निपुण और दुष्टों को दण्ड देनेवाले जन होवें उनकी स्तुति कर अच्छे कर्म्मों में नियुक्त कर और अच्छे प्रकार सेवन कर समस्त राज्यकृत्यों को पूर्ण करो ॥ ११ ॥

अब विद्वत्कर्त्तव्यशिक्षाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

दमूनसो अपसो ये सुहस्ता वृष्णः पत्नीर्नद्यो विभ्वतष्टाः ।
सरस्वती बृहद्दिवोत राका दशस्यन्तीर्वरिवस्यन्तु शुभ्राः ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (ये) जो (अपसः) उत्तम कर्म्म करने (दमूनसः) देने (सुहस्ताः) और उत्तम कर्मों में हाथ लगानेवाले (वृष्णः) पराक्रम से युक्त और (विभ्वतष्टाः) व्यापक ईश्वर से रचे गये जन (नद्यः) नदियों के सदृश (उत) और (बृहद्दिवा) बड़ा विद्याका प्रकाश जिसमें ऐसी (राका) सुख को देनेवाली (सरस्वती) विज्ञान युक्त वाणी के सदृश (दशस्यन्तीः) अभीष्ट मनोरथ को देती हुई और (शुभ्राः) सुन्दर स्वरूप तथा उत्तम आचरण करनेवाली (पत्नीः) विवाहित स्त्रियों का (वरिवस्यन्तु) सेवन करें व अत्यन्त सुख को प्राप्त होवें ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। कन्या और वर जब ब्रह्मचर्य से विद्यायें, पूर्ण युवावस्था और परस्पर की परीक्षा होवे वह स्वयंवर विवाह से पति और पत्नी होकर सौभाग्यवान् होते हैं ॥ १२ ॥

प्र सू महे सुशरणाय मेधां गिरं भरे नव्यसीं जायमानाम् ।
य आहना दुहितुर्वक्षणासु रूपा मिनानो अकृणोदिदं नः ॥१३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (यः) जो मनुष्य (वक्षणासु) बहती हुई नदियों के निमित्त (दुहितुः) कन्या के (रूपा) सुन्दर रूपों (आहनाः) और जो सब ओर से ताड़ित होतीं उनका (मिनानः) मान करता हुआ (नः) हम लोगों को (इदम्) इस वर्त्तमान सुख में पाये हुए (अकृणोत्) करे उनके साथ मैं (महे) बड़े (सुशरणाय) उत्तम आश्रय के लिए (नव्यसीम्) अत्यन्त नवीन (जायमानाम्) प्रसिद्ध (मेधाम्) उत्तम बुद्धि और (गिरम्) वाणी को (प्र, सु, भरे) उत्तम प्रकार धारण करता हूँ ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! समानरूपवाली कन्या को देखके ही उसका सदृश पति कराने के समान बुद्धि और शिक्षित वाणी को बढ़ाके गृहाश्रम से उत्पन्न हुए सुख को सब मनुष्यों के लिए आप लोग प्राप्त कराओ ॥ १३ ॥

प्र सुष्टुतिः स्तनयन्तं रुवन्तमिळस्पतिं जरितर्नूनमश्याः ।
यो अब्दिमाँ उदनिमाँ इयर्ति प्र विद्युता रोदसी उक्षमाणः ॥१४॥

पदार्थ—हे (जरितः) स्तुति करनेवाले आप (यः) जो (अब्दिमान्) मेघों से युक्त और (उदनिमान्) बहुत जलवाला (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (उक्षमाणः) सींचता हुआ (विद्युता) बिजली के साथ मेघ (इयर्ति) प्राप्त होता है और जो (सुष्टुतिः) उत्तम प्रशंसायुक्त है उस (स्तनयन्तम्) गर्जना करते हुए को (नूनम्) निश्चय से (प्र, अश्याः) प्राप्त होओ और आप (रुवन्तम्) शब्द करते हुए (इळः) पृथिवी के (पतिम्) पालन करनेवाले को (प्र) उत्तम प्रकार जनाइये ॥ १४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो मेघ भूमि में वर्त्तमान जीवों का पालन करनेवाला बिजुली के साथ वृष्टि करता और शब्द करता हुआ भूमि को प्राप्त होता है उसको जान के अन्यों को जनाइये ॥ १४ ॥

अब वायुविषयक विद्वत्कर्त्तव्य शिक्षाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

एष स्तोमो मारुतं शर्धो अच्छा रुद्रस्य सूनूँर्युवन्यूँरुदश्याः ।
कामो राये हवते मा स्वस्त्युप स्तुहि पृषदश्वाँ अयासः ॥१५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो (कामः) इच्छा (मा) मुझको (राये) धन के लिए (स्वस्ति) सुख को (हवते) ग्रहण करती है उसकी (उप, स्तुहि) समीप में स्तुति प्रशंसा कीजिए और जो (अयासः) चलते हुए (पृषदश्वान्) सींचनेवाले तथा शीघ्र चलनेवाले पदार्थों को प्राप्त होते हैं उन (युवन्यून्) अपने मिले और नहीं मिले हुए पदार्थों की इच्छा करते हुओं को आप (उत्, अश्याः) अत्यन्त प्राप्त हूजिए और जो (एषः) यह (स्तोमः) प्रशंसा का विषय (मारुतम्) मनुष्यों के इस (शर्धः) बल को ग्रहण करता है उस (रुद्रस्य) प्राण आदि है रूप जिसका ऐसे वायु के (सूनून्) उत्पत्ति के गुणों को (अच्छा) उत्तम प्रकार प्राप्त हूजिए ॥ १५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग वह्नि और मेघविद्या को जानकर पूर्ण मनोरथवाले हूजिए ॥ १५ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

प्रैष स्तोमः पृथिवीमन्तरिक्षं वनस्पतीँरोषधी राये अश्याः ।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥१६॥

पदार्थ—हे विद्वन् (देवोदेव) विद्वान् विद्वान् (सुहव) उत्तम प्रकारग्रहण करनेवाले और दाता आप और जो (एषः) यह (स्तोमः) प्रशंसा करने योग्य मेघ वा वह्नि (राये) धन के लिए (पृथिवीम्) भूमि (अन्तरिक्षम्) आकाश और (ओषधीः) यव आदि ओषधियों तथा (वनस्पतीन्) वट और अश्वत्थ आदि वनस्पतियों को प्राप्त होता है उसको आप (प्र, अश्याः) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिए वह (मह्यम्) मेरे लिए सुखकारक (भूतु) होवे जिससे यह (पृथिवी) पृथिवी (माता) माता के सदृश पालन करनेवाली (नः) हम लोगों को (दुर्मतौ) दुष्ट-बुद्धि में (मा) नहीं (धात्) धारण करे ॥ १६ ॥

भावार्थ—सब स्त्री और पुरुष विद्वान् होकर बिजुली और मेघ आदि की विद्या को ग्रहण करें जिससे यह विद्या आप लोगों की माता के सदृश पालना करे और जैसे माता उत्तम शिक्षा से अपने सन्तानों को उत्तम करती है वैसे ही मेघवृष्टि-विद्या से युक्त भूमि उत्तम अन्न आदिकों को उत्पन्न करती है ॥ १६ ॥

उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥१७॥

पदार्थ—हे (देवाः) विद्वान् जनो जैसे हम लोग (अनिबाधे) विघ्नरहित होने पर (उरौ) बहुत सुख करनेवाले कार्य में विद्वान् (स्याम) होवें वैसे आप लोग करिये ॥ १७ ॥

भावार्थ—अध्यापक विद्वान् जनों को चाहिए कि सम्पूर्ण विद्या के प्रतिबन्धकों का निवारण करके सपूर्ण जनों को विद्वान् करें ॥ १७ ॥

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥१८॥१९॥

पदार्थ—हे (मयोभुवा) सुख के करनेवालो (सुप्रणीती) उत्तम प्रकार वर्त्तीगई नीति जिनसे ऐसे अध्यापक और उपदेशक जनो ! जो आप दोनों (नः) हम लोगों के लिए (रयिम्) लक्ष्मी को (आ, वहतम्) प्राप्त कराइये (उत) भी (वीरान्) श्रेष्ठ शूरता आदि गुणों से युक्त शूरवीर जनों को (आ) प्राप्त कराइये और भी (विश्वानि) सम्पूर्ण (अमृता) नित्य (सौभगानि) सुन्दर ऐश्वर्यों के भावरूप को (आ) प्राप्त कराइये उन (अश्विनोः) अध्यापक और उपदेशकों के (नूतनेन) नवीन (अवसा) रक्षण से हम लोग सम्पूर्ण नित्य सुन्दर ऐश्वर्यों के भावरूपों को (सम्, गमेम) उत्तम प्रकार प्राप्त होवें ॥ १८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! विद्वानों से रक्षित और बोध को प्राप्त हुए आप लोग लक्ष्मी और उत्तम मनुष्यों के सहाय से सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को प्राप्त हूजिए ॥ १८ ॥

इस सूक्त में विश्वेदेव रुद्र और विद्वानों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह बयालीसवां सूक्त और उन्नीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथसप्तदशर्चस्य त्रिचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्यात्रिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः ।
१, ३, ६, ८, ६, १७ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४, ५, १०, ११, १२, १५
त्रिष्टुप् । ७, १३ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १४ भुरिक्पङ्क्तिः
१६ याजुषी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सत्रहऋचावाले तैंतालीसवें सूक्त में विद्वान् के विषय को कहते हैं—

आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्था अमर्धन्तीरुप नो यन्तु मध्वा ।
महो राये बृहतीः सप्त विप्रो मयोभुवो जरिता जोहवीति ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (जरिता) सम्पूर्ण विद्याओं की स्तुति करनेवाला (विप्रः) बुद्धिमान् जन (महः) बड़े (राये) धन के लिए (सप्त) सातप्रकार

की (बृहतीः) बड़ी वाणियों का (जोहवीति) बार-बार उपदेश करता है और उससे प्रेरणा किये गये (मध्वा) मधुर आदि गुणो के साथ और (पयसा) दुग्धदान के साथ (अमर्धन्तीः) नहीं हिंसा करती हुई और (तूर्ण्यर्थाः) शीघ्र चलनेवाले अर्थ जिनमे ऐसी (मयोभुवः) सुख की भावना करानेवाली (धेनवः) गौओ के सदृश वाणियाँ (नः) हम लोगो को (उप, आ, यन्तु) समीप मे उत्तम प्रकार प्राप्त होवें ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य यथार्थवक्ता विद्वानो के सङ्ग से सम्पूर्ण शास्त्रों के विषय से युक्त वाणियो को ग्रहण करके उनकी कृपा से अन्यो के लिये उपदेश देवें वे भी श्रेष्ठ होते हैं ॥ १ ॥

आ सुष्टुती नमसा वर्तयध्यै द्यावा वाजाय पृथिवी अमृध्रे ।
पिता माता मधुवचाः सुहस्ता भरेभरे नो यशसावविष्टाम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोगो से (वाजाय) विज्ञान के लिए (सुष्टुती) श्रेष्ठ प्रशसा से (नमसा) सत्कार वा अन्न आदि से (अमृध्रे) नहीं हिंसा किये गये मे (सुहस्ता) सुन्दर हस्त जिनके वे (यशसौ) यश और धन से युक्त (द्यावा) अन्तरिक्ष और (पृथिवी) पृथिवी (मधुवचा) मधुर वचन जिसका ऐसा वा ऐसी (पिता) पिता और (माता) माता के सदृश (भरेभरे) सग्राम सग्राम मे (नः) हम लागो को (अविष्टाम्) प्राप्त होवे वे (आ,वर्त्तयध्यै) उत्तम प्रकार वर्त्ताव करने को प्राप्त होवें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे माता और पिता अपने सन्तानो को उत्तम प्रकार शिक्षा देकर और वृद्धि करके विजयकारी करते हैं वैसे ही प्राप्त हुई सूर्य्य और पृथिवी की विद्या सर्वत्र विजय को प्राप्त कराती है ॥ २ ॥

अध्वर्यवश्चकृवांसो मधूनि प्र वायवे भरत चारु शुक्रम् ।
होतेव नः प्रथमः पाह्यस्य देव मध्वो ररिमा ते मदाय ॥३॥

पदार्थ—हे (देव) विद्वन् (प्रथम) पहिले आप (होतेव) दाताजन के सदृश (अस्य) इस (मध्वः) मधुर के मध्य मे (नः) हम लागो की (पाहि) रक्षा करिए जिससे हम लोग (ते) आप के (मदाय) आनन्द के लिए (ररिमा) क्रीडा करें । हे (चकृवांसः) कार्य्य करते हुए और (अध्वर्य्यवः) अपनी अहिंसा की इच्छा करते हुए आप लाग (वायवे) वायुविद्या के लिए (मधूनि) विज्ञानो और (चारु) सुन्दर (शुक्रम्) जल को (प्र, भरत) उत्तम प्रकार धारण कीजिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे हवन करनेवाला होम से सब के हित को सिद्ध करता है वैसे ही सबके हित के लिए वायु और जलकी विद्या को विस्तारिये जिससे सब हम लोग आनन्दित हुए वर्त्ताव करें ॥ ३ ॥

दश क्षिपो युञ्जते बाहू अद्रिं सोमस्य या शमितारा सुहस्ता ।
मध्वो रसं सुगभस्तिर्गिरिष्ठां चनिश्चदद्दुदुहे शुक्रमंशुः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (सुगभस्तिः) सुन्दर किरणें जिसकी वह सूर्य्य और (अंशुः) किरण (चनिश्चदत्) प्रसन्न करता है और (मध्वः) मधुर आदि गुणो से युक्त (सोमस्य) ऐश्वर्य के सम्बन्धी (गिरिष्ठाम्) मेघ मे वर्त्तमान (अद्रिम्) मेघ को (रसम्) रस को और (शुक्रम्) जल का (दुदुहे) दुहता है वैसे जो (दश) दशसख्यावाली (क्षिपः) प्रेरणा करते हैं जिनसे वे अङ्गुलियाँ और (या) जो (शमितारा) शान्ति स यज्ञ कर्म के करनेवाले और (सुहस्ता) अच्छे हाथो वाले (बाहू) भुजाओ को (युञ्जते) युक्त करते हैं उन से धर्मसम्बन्धी काम्यों को करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मनुष्य आदि प्राणी अङ्गुलियो से पदार्थो को ग्रहण करते और त्यागते हैं वैसे ही सूर्य्य किरणो से भूमि के नीचे से जल को ग्रहण करके फेंकता अर्थात् वृष्टि करता है ऐसा जानो ॥ ४ ॥

असावि ते जुजुषाणाय सोमः क्रत्वे दक्षाय बृहते मदाय ।
हरी रथे सुधुरा योगे अर्वागिन्द्र प्रिया कृणुहि हूयमानः ॥५॥२०॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त विद्वन् ! जिनसे (ते) आप के (बृहते) बड़े (जुजुषाणाय) प्रीति से सेवन किये गये (क्रत्वे) प्रज्ञान तथा (दक्षाय) चातुर्य्य बल और (मदाय) आनन्द के लिए (सोम) बड़ी ओषधियो का रस वा ऐश्वर्य (असावि) उत्पन्न किया जाय और उनके (योगे) सयोग होने पर (अर्वाक्) नीचे चलनेवाले (सुधुरा) सुन्दर धुरा जिनकी ऐसे (हरी) हरण-शील घोड़ों को (रथे) वाहन मे जोड़ने मे (हूयमान) स्पर्द्धा किये गये आप (प्रिया) सेवन करने योग्य सुन्दर वस्तुओ वा सुखो को (कृणुहि) सिद्ध करिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिससे वृद्धि, बल, आनन्द और पुरुषार्थ बढ़े और अग्नि और घोड़े आदि के चलाने की विद्या प्राप्त होवे वह कर्म्म सदा करना चाहिए ॥ ५ ॥

आ नो महीमरमतिं सजोषा ग्नां देवीं नमसा रातहव्याम् ।
मधोर्मदाय बृहतीमृतज्ञामाग्ने वह पथिभिर्देवयानैः ॥६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् (आ, सजोषाः) सब ओर से तुल्य प्रीति के सेवन करनेवाले आप (नमसा) सत्कार वा अन्न आदि से (पथिभिः, देवयानैः) यथार्थवक्ता विद्वान् चलते हैं जिनमे उन मार्गों से (मधोः) मधुर आदि गुण युक्त से (मदाय) आनन्द के लिए (नः) हम लोगो को (अरमतिम्) विषयो मे नहीं रमण करती हुई (रातहव्याम्) देने योग्य दान जिससे (ग्नाम्) प्राप्त होते हैं ज्ञान का जिनसे तथा (ऋतज्ञाम्) सत्य को जानता है जिससे उस (बृहतीम्) बड़े पदार्थों के विषय से युक्त (देवीम्) देदीप्यमान मनोहर (महीम्) बड़ी वाणी को हम लागो के लिए (आ, वह) प्राप्त कराइये ॥ ६ ॥

भावार्थ—वे ही विद्वान् होते हैं जो सब प्रकार से सब काल मे विद्या की याचना करते हैं और वे ही विद्वान् हैं जो धर्मयुक्त मार्ग मे विरुद्ध कुछ भी आचरण नही करते है ॥ ६ ॥

अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो न विप्रा वपावन्तं नाग्निना तपन्तः ।
पितुर्न पुत्र उपसि प्रेष्ठ आ घर्मो अग्निमृतयन्नसादि ॥७॥

पदार्थ—हे विद्यार्थिन् ! (यम्) जिस (वपावन्तम्) विद्या के बीज के विस्तार को करते हुए के (न) सदृश आप को (अग्निना) अग्नि के सदृश ब्रह्म-चर्य्य से (तपन्तः) सन्ताप दुःख को सहते और विद्या के बीज का विस्तार करते हुए के (न) सदृश (प्रथयन्तः) प्रसिद्ध करते हुए (विप्राः) बुद्धिमान जनो के (न) सदृश अग्नि के समान ब्रह्मचर्य मे सन्ताप दुःख को सहते हुए (अञ्जन्ति) कामना करते वा प्रकट करते हैं और जो (पितुः) पिता के (पुत्रः) पुत्र के सदृश (उपसि) समीप मे (प्रेष्ठ) अत्यन्त प्रिय (घर्मः) यज्ञ वा तप (अग्निम्) अग्नि को (ऋतयन्) सत्य के सदृश आचरण करते हुए (आ, असादि) उत्तम प्रकार स्थित होवे उन का और उसको आप निरन्तर सेवन करके विद्याको ग्रहण करिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे अध्यापक विद्वानो ! तुम लोग जो जितेन्द्रिय उत्तम स्वभावयुक्त शीत उष्ण सुख दुःख आनन्द शोक निन्दा स्तुति आदि द्वन्द्व को सहनेवाले अभिमान और मोह स रहित सत्य आचरणकर्त्ता और परोप-कारप्रिय ब्रह्मचारी विद्यार्थी होवे उनको पुरुषार्थ से विद्वान् करिये ॥ ७ ॥

अच्छा मही बृहती शन्तमा गीर्दूतो न गन्त्वश्विना हुवध्यै ।
मयोभुवा सरथा यातमर्वाग्गन्तं निधिं धुरमाणिर्न नाभिम् ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (बृहती) बड़े ब्रह्म आदिवस्तु को प्रकाश करनेवाली और (शन्तमा) अत्यन्त कल्याणकारिणी (मही) बड़ी (गीः) गाते हैं पदार्थों का जिससे ऐसी वाणी और (मयोभुवा) सुख को उत्पन्न करनेवाले (सरथा) वाहन आदिकों के साथ वर्त्तमान (अश्विना) अध्यापक और उपदेश जनो को (हुवध्यै) बुलाने को जैसे (दूतः) धार्मिक विद्वान् चतुर राजा का दूत (न) वैसे (गन्तु) प्राप्त हूजिए तथा जिससे अध्यापक और उपदेशक जन (नाभिम्) मध्य (धुरम्) वाहन के आधार काष्ठ को (आणिः) कीले के (न) सदृश और (अर्वाक्) सत्य धर्म के पीछे (गन्तम्) चलते हुए (निधिम्) द्रव्य पात्र को (अच्छा) उत्तम प्रकार (आ, यातम्) प्राप्त हूजिए उस को आप लोग प्राप्त होओ ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । वे ही मनुष्य हैं जिनको जैसे राजा का दूत वैसे सम्पूर्ण शास्त्रो मे प्रवीण वाणी प्राप्त होवे और वे ही भाग्यशाली हैं जिन को धर्मयुक्त पुरुषार्थ मे अतुल ऐश्वर्य प्राप्त होवे ॥ ८ ॥

प्र तव्यसो नमउक्तिं तुरस्याहं पूष्ण उत वायोरदिक्षि ।
या राधसा चोदितारा मतीनां या वाजस्य द्रविणोदा उत त्मन् ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो ! जैसे (अहम्) मैं (तुरस्य) शीघ्र कार्य करनेवाले (तव्यसः) बलयुक्त (उत) और (पूष्णः) पुष्टिकारक (वायोः) वायु के (नमउक्तिम्) सत्कार वा अन्न आदि के वचन का (अदिक्षि) उपदेश करता हूँ और (उत) भी (त्मन्) आत्मा मे (या) जो (राधसा) धन से (मतीनाम्) मनुष्यों के (प्र, चोदितारा) अत्यन्त प्रेरणा करनेवाले और (या) जो (वाजस्य) विज्ञान वा अन्न के (द्रविणोदौ) बल से देनेवाले वर्त्तमान हैं उनको उपदेश देता हूँ वैसे आप लोग भी उपदेश दीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् जन विद्या के उपदेश और दान से मनुष्यो को उत्तम प्रकार शिक्षित करते हैं वैसे ही तुम लोग भी करो ॥ ९ ॥

आ नामभिर्मरुतो वक्षि विश्वाना रूपेभिर्जातवेदो हुवानः ।
यज्ञं गिरो जरितुः सुष्टुतिं च विश्वे गन्त मरुतो विश्व ऊती ॥१०॥२१॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) बुद्धि से युक्त (हुवानः) दान करते हुए आप (नामभिः) सञ्ज्ञाओ और (रूपेभिः) रूपो से (विश्वान्) सम्पूर्ण (मरुतः) मनुष्यो को (आ) सब प्रकार (वक्षि) प्राप्त हूजिये (जरितुः) स्तुति करने वाले की (सुष्टुतिम्) स्तुति करनेवाले की उत्तम प्रशंसा को (गिरः) वाणियों को

(यज्ञम्, च) और सङ्गति करने को (विश्वे) सम्पूर्ण (गन्त) प्राप्त होवें तथा (विश्वे) समस्त (मरुतः) मनुष्यों को (ऊती) रक्षण आदि क्रिया से (आ) प्राप्त होवें ॥ १० ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! आप सम्पूर्ण नाम और रूप आदिकों से सम्पूर्ण पदार्थों को सम्पूर्ण मनुष्यों के लिए साक्षात् कराओ जिससे सब मनुष्य प्रशंसित हो कर सबके लिए प्रशंसित विद्याओं को सम्पादित करें ॥ १० ॥

आ नो॑ दि॒वो बृ॑ह॒तः पर्व॑ता॒दा सर॑स्वती यज॒ता ग॑न्तु य॒ज्ञम् ।
हवं॑ दे॒वी जु॑जुषा॒णा घृ॒ताची॑ श॒ग्मां नो॒ वाच॑मुश॒ती शृ॑णोतु ॥११॥

पदार्थ—हे विद्यार्थी जनो जैसे यह (यजता) उत्तम प्रकार प्राप्त होने योग्य (सरस्वती) विज्ञानयुक्त वाणी (दिवः) कामना करते हुए (बृहतः) महदाशय-युक्त (नः) हम लोगों को (पर्वतात्) मेघ से जल के सदृश (आ, गन्तु) सब प्रकार प्राप्त होवे (घृताची) घृत को प्राप्त होने वाली (जुजुषाणा) उत्तम प्रकार से सेवन की गई (देवी) श्रेष्ठ गुण और शास्त्र के बोधसे युक्त (उशती) कामना करती हुई विद्यायुक्त स्त्री (नः) हम लोगों के (यज्ञम्) विद्याव्यवहारका (हवम्) कहने सुनने योग्य व्यवहार को वा (शग्माम्) सुखमयी (वाचम्) वाणी को और हम लोगों को (आ, शृणोतु) अच्छे प्रकार सुने वैसे ही आप लोगों को भी प्राप्त हुई यह आप लोगों के कृत्य को सुने ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । उन्हीं को श्रेष्ठ वाणी प्राप्त होती है जो सत्य की कामना करनेवाले महाशय परोपकारप्रिय धार्मिष्ठ और विद्यार्थियों के परीक्षक होवें ॥ ११ ॥

आ वे॒धसं॒ नील॑पृष्ठं बृ॒हन्तं॒ बृह॒स्पतिं॒ सद॑ने सादयध्वम् ।
सा॒दद्यो॑निं॒ दम॒ आ दी॑दि॒वांसं॒ हिर॑ण्यवर्णमरु॒षं स॑पेम ॥१२॥

पदार्थ—हे बुद्धिमान् जनो आप लोग (नीलपृष्ठम्) नील गुण से युक्त पृष्ठ जिस का उस (बृहन्तम्) बड़े (बृहस्पतिम्) बड़ों के स्वामी (वेधसम्) बुद्धि-मान् को (सदने) सभा के स्थान में (आ, सादयध्वम्) उत्तम प्रकार स्थित कीजिए । और हम लोग (सादद्योनिम्) धर्म सम्बन्धी कारण में स्थित होते और (दीदिवांसम्) निरन्तर प्रकाशमान देनेवाले (हिरण्यवर्णम्) तेजस्वी (अरुषम्) मर्म विद्या में स्थित होते हुए को (दमे) गृह में अर्थात् सभास्थान में (आ, सपेम) अच्छे प्रकार शपथों से नियत करावें ॥ १२ ॥

भावार्थ—वे ही मनुष्य राज्य करने और बढ़ाने को समर्थ होवें जो धार्मिष्ठ और किये हुए उपकारों को जानने वाले कुलीन विद्वानों को सभा में स्थित करें तथा स्थापनसमय में शपथों से आप लोग अन्याय को कभी मत करो ऐसा प्रलम्भन करावें ॥ १२ ॥

आ ध॒र्णसि॑र्बृ॒हद्दि॑वो॒ ररा॑णो॒ विश्वे॑भि॒र्गन्त्वोम॑भि॒र्हुवा॒नः ।
ग्ना वसा॑न॒ ओष॑धी॒रमृ॑ध्रस्त्रि॒धातु॑शृङ्गो वृष॒भो व॑यो॒धाः ॥१३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (धर्णसिः) धारण करने वाला (बृहद्दिवः) बड़े प्रकाश का (रराणः) दान करता हुआ (विश्वेभिः) सम्पूर्ण (ओमभिः) रक्षण आदि के करने वालों के साथ (हुवानः) ग्रहण करता और (ग्नाः) वाणियों को (वसानः) आच्छादित करता हुआ (ओषधीः) सोमलता आदि को (अमृध्रः) नहीं नाश करनेवाला (त्रिधातुशृङ्गः) तीन धातु अर्थात् शुक्ल रक्त कृष्ण गुण शृङ्गों के सदृश जिस के और (वयोधाः) सुन्दर आयु को धारण करनेवाला (वृषभः) वृष्टिकारक सूर्य संसार का उपकारी है वैसे ही आप संसार के उपकार के लिए (आ, गन्तु) उत्तम प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् तीन गुणों से युक्त प्रकृति के जानने, वाणी के जनाने, नहीं हिंसा करने, औषधों से रोगों के निवा-रने और ब्रह्मचर्य आदि के बोध से अवस्था के बढ़ानेवाले होते हैं वे ही संसार के पूज्य होते हैं ॥ १३ ॥

मा॒तुष्प॒दे प॑र॒मे शु॒क्र आ॒योर्वि॑प॒न्यवो॑ रास्पि॒रासो॑ अग्मन् ।
सु॒शेव्यं॒ नम॑सा रा॒तह॑व्याः॒ शिशुं॑ मृजन्त्या॒यवो॒ न वा॒से ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (शुक्रे) शुद्ध (परमे) उत्तम (मातुः) माता के सदृश वर्त्तमान भूमि के (पदे) प्राप्त होने योग्य स्थान में (आयोः) जीवन के (विपन्यवः) विशेषतया स्तुति करने और (रास्पिरासः) दानों की प्रीति करने वाले (रातहव्याः) दिये हुओं के देने योग्य (नमसा) सत्कार वा अन्न आदि से (वासे) वसने में (आयवः) मनुष्य (शिशुम्) शासन करने योग्य बालक को (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं (न) जैसे वैसे (सुशेव्यम्) उत्तम सुखों में हुए व्यव-हार को (अग्मन्) प्राप्त होते हैं वे उत्तम प्रकार सुखों से युक्त होते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे माता शीघ्र उत्पन्न हुए बालक को उत्तम प्रकार शुद्ध करके उत्तम स्थान में रक्षा करती है वैसे ही जो योगाभ्यास में चित्त को शुद्ध करते हैं वे ऐश्वर्य के सहित सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥

बृ॒हद्वयो॑ बृह॒ते तुभ्य॑मग्ने धिया॒जुरो॑ मिथु॒नासः॑ सचन्त ।
दे॒वोदे॑वः सु॒हवो॑ भूतु॒ मह्यं॒ मा नो॑ मा॒ता पृ॑थि॒वी दु॑र्म॒तौ धा॑त् ॥१५॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! जो (धियाजुरः) बुद्धि वा कर्म से प्राप्त हुई वृद्धावस्था जिन को ऐसे (मिथुनासः) स्त्रियों के सहित वर्त्तमान जन (बृहते) वृद्ध (तुभ्यम्) आपके लिए (बृहत्) बड़े (वयः) जीवन को (सचन्त) उत्तम प्रकार प्राप्त होते हैं और (सुहवः) उत्तम प्रकार प्रशंसा करने योग्य (देवोदेवः) विद्वान् विद्वान् (मह्यम्) मेरे लिए सुखकारी (भूतु) हो और (पृथिवी) भूमि के सदृश (माता) माता (नः) हम लोगों को (दुर्मतौ) दुष्ट बुद्धि में (मा) नहीं (धात्) धारण करे ॥ १५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अवस्था और विद्या में वृद्ध आप लोगों को विद्याओं से सम्बन्धित करते हैं और माता के सदृश कृपा से रक्षा करते हैं वे आप लोगों के पूज्य हों ॥ १५ ॥

उ॒रौ दे॑वा अनिबा॒धे स्या॑म ॥१६॥

पदार्थ—हे (देवाः) विद्वान् जनो ! आप लोग जैसे हम लोग (उरौ) बहु (अनिबाधे) व्यवहार में (स्याम) होवें वैसे करिये ॥ १६ ॥

भावार्थ—विद्वानों को चाहिये कि सब मनुष्य जैसे विघ्न रहित होवें वैसा करें ॥ १६ ॥

सम॒श्विनो॒रव॑सा॒ नूत॑नेन मयो॒भुवा॑ सु॒प्रणी॑ती गमेम ।
आ नो॑ र॒यिं व॑हत॒मोत वी॒राना विश्वा॑न्यमृता॒ सौभ॑गानि ॥१७॥२२॥

पदार्थ—हे अध्यापकोपदेशको ! जो (मयोभुवा) सुख के उत्पन्न करने वाले (सुप्रणीती) धर्मसम्बन्धी नीति से युक्त आप (नः) हम लोगों को (रयिम्) धन (उत) और (वीरान्) अति उत्तम पुत्र पौत्र आदिकों को (आ, वहतम्) अच्छे प्रकार प्राप्त करावें और जिन (अश्विनोः) अध्यापक और उपदेशकों के (नूतनेन) नवीन (अवसा) रक्षण आदि से हम लोग (विश्वानि) सम्पूर्ण (अमृता) नाश से रहित (सौभगानि) सुन्दर ऐश्वर्यों के भावों को हम लोग (सम्, आ, गमेम) उत्तम प्रकार प्राप्त होवें वे दोनों हम लोगों से सदा (आ) उत्तम प्रकार सेवन करने योग्य हैं ॥ १७ ॥

भावार्थ—जो अध्यापक और उपदेशक जन सब मनुष्यों को नवीन और प्राचीन विद्या से युक्त कर ऐश्वर्य को प्राप्त कराते हैं वे सदा ही प्रशंसित होते हैं ॥१७॥

इस सूक्त में सम्पूर्ण विद्वानों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तेतालीसवां सूक्त और बाईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चदशर्चस्य चतुश्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य अवत्सार काश्यप अन्ये च ऋषयो दृष्टिलिङ्गाः । विश्वेदेवा देवता । १, १३ विराड्जगती । २, ३, ४, ५, ६ निचृज्जगती । ८, ९, १२ जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ७ भुरिक्त्रिष्टुप् । १०, ११ स्वराट्त्रिष्टुप् । १४ विराट् त्रिष्टुप् । १५ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचावाले चवालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम द्वितीय मन्त्र में सूर्य रूपता से राजगुणों को कहते हैं—

तं प्र॒त्नथा॑ पू॒र्वथा॑ वि॒श्वथे॒मथा॑ ज्ये॒ष्ठता॑तिं बर्हि॒षदं॑ स्व॒र्विद॑म् ।
प्र॒ती॒ची॒नं वृ॒जनं॑ दोहसे गि॒राशुं जय॑न्त॒मनु॒ यासु॒ वर्ध॑से ॥१॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो आप (गिरा) वाणी से (प्रत्नथा) पुराने के सदृश (पूर्वथा) पूर्व के सदृश (विश्वथा) सम्पूर्ण संसार के सदृश (इमथा) इस के सदृश (ज्येष्ठतातिम्) जेठे ही को (बर्हिषदम्) उत्तम आसन वा अन्तरिक्ष में स्थिति होने वाले (स्वर्विदम्) सुख को जानने जिससे उस (प्रतीचीनम्) हम लोगों के सम्मुख सम्मुख प्राप्त होते हुए (वृजनम्) बल को तथा (आशुम्) शीघ्रकारी संग्राम को (जयन्तम्) जीतते हुए को (दोहसे) पूर्ण करते हो (तम) उन आप को और (यासु) जिन में (अनु, वर्धसे) वृद्धि को प्राप्त होते हो उन सेनाओं और उन प्रजाओं की हम लोग निरन्तर वृद्धि करें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो प्राचीन रीति से प्राचीन उत्तम राजाओं के तुल्य पिता के सदृश राज्य का उत्तम प्रकार पालन करके पूर्ण बलयुक्त सेना को कर शीघ्र विजय को प्राप्त हुई प्रजाओं का सुख के अनुकूल वर्त्तावें उन्हीं को उत्तम अधिकार में नियुक्त करिये जिससे राजा और प्रजा का निरन्तर सुख बढ़े ॥ १ ॥

श्रि॒ये सु॒दृशी॒रुप॑रस्य॒ याः स्व॑र्वि॒रोच॑मानः क॒कुभा॑मचो॒दते॑ ।
सु॒गो॒पा अ॑सि॒ न दभा॑य सुक्रतो प॒रो मा॒याभि॑र्ऋ॒त आ॑स॒ नाम॑ ते ॥२॥

पदार्थ—हे (सुक्रतो) उत्तम कर्म और बुद्धि से युक्त विद्वान् आप जैसे (विरोचमानः) प्रकाशमान (स्वः) सूर्य (ककुभाम्) दिशाओं और (उपरस्य) मेघ का प्रकाशमान (आस) वर्त्तमान है वैसे (श्रिये) धन वा शोभा के लिए (याः) जिन (सुदृशीः) सुन्दर दर्शनों वालियों को प्रेरणा करनेवाले और (परः) उत्तम से उत्तम (सुगोपाः) उत्तम प्रकार रक्षा करनेवाले (असि) हो और (अचोदते) नहीं प्रेरणा करने और (दभाय) हिंसा करने वाले जन के लिए (मायाभिः)

बुद्धियों के साथ (न) नहीं वर्त्तमान हो जिन (ते) आप के (ऋते) सत्य में (नाम) नाम वर्त्तमान है उसकी वे प्रजायें सब प्रकार वृद्धिको प्राप्त होती है ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य दिशाओं का प्रकाशक हुआ सब प्रजाओं को सुख देने के लिए वृष्टि करने वाला होता है वैसे ही सब प्रजाओं को न्याय से प्रकाशित करके विद्या और सुख का बढ़ाने वाला राजा होता है ॥ २ ॥

अब मेघविषय से राजगुणों को कहते हैं—

अस्यै हविः सचते सच्च धातु चारिष्टगातुः स होता सहोभरिः ।
प्रसर्स्राणो अनु बर्हिर्वृषा शिशुर्मध्ये युवाजरो विस्रुहा हितः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (अरिष्टगातुः) ऐसा है कि जिस की नहीं हिंसित वाणी वह (सहोभरिः) बलको धारण करने वाला (होता) दाताजन (प्रसर्स्राणः) प्रकर्षता से अत्यन्त चलता हुआ (वृषा) बलिष्ठ (युवा) यौवन अवस्था को प्राप्त (अजरः) वृद्ध अवस्था से रहित (विस्रुहा) रोगोंका नाश करनेवाला (हितः) हितकारी (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (अनु) पश्चात् (सत्) वर्त्तमान को (च) और (धातु) धारण करने वाले (च) और (अस्यै) व्याप्त होने वाले में उत्पन्न (हविः) हवन करने योग्य द्रव्य को (सचते) सम्बन्धित करता है (सः) वह (शिशुः) बालक माता को जैसे वैसे संसार के (मध्ये) बीच में पुण्य से युक्त होता है ॥ ३

भावार्थ—हे राजन् ! जैसे हवन करने वाला सुगन्धि आदि से युक्त, अग्नि में हवन किये हुए द्रव्य से वायु वृष्टि और जल की शुद्धि के द्वारा संसार सुख का उपकार करता है वैसे न्याय और कीर्ति की वासना से युक्त दी हुई विद्या से राज्यदेश को सुखी करिये ॥ ३ ॥

अब सूर्यसंयोग से मेघदृष्टान्त से राजगुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

प्र व एते सुयुजो यामन्निष्टये नीचीरमुष्मै यम्य ऋतावृधः ।
सुयन्तुभिः सर्वशासैरभीशुभिः क्रिविर्नामानि प्रवणे मुषायति ॥४॥

पदार्थ—जैसे (क्रिविः) प्रजा का पालन करनेवाला सूर्य (अभीशुभिः) किरणों से (प्रवणे) नीचे स्थल में (नामानि) जलों को (प्र, मुषायति) अत्यन्त चुराता है वैसे ही हे मनुष्यो ! जो (सुयुजः) जो अच्छे धर्म से युक्त होने वा (एते) राजा आदि जन (वः) आप लोगों के (इष्टये) इष्ट सुख के लिए (यामन्) मार्ग में और (अमुष्मै) परोक्ष सुख के लिए (सुयन्तुभिः) उत्तम नियन्ता जिन में उन (सर्वशासैः) सम्पूर्ण राज्य के शासन करने वालों से (यम्यः) न्यायकारी के लिए हितकारक (ऋतावृधः) सत्य को बढ़ाने वाली (नीचीः) नीची हुई प्रजाओं को सम्पन्न करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य सबके सुख के लिए जल को खींचता है वैसे ही राजा न्याय मार्ग से सम्पूर्ण प्रजाओं को चलाता हुआ उत्तम शिक्षा से युक्त भृत्यों के सहित सब मनुष्यों के हित को सम्पादन करता है ॥ ४ ॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

सञ्जर्भुराणस्तरुभिः सुतेगृभं वयाकिनं चित्तगर्भासु सुस्वरुः ।
धारवाकेष्वृजुगाथ शोभसे वर्धस्व पत्नीरभि जीवो अध्वरे ॥५॥२३॥

पदार्थ—हे (ऋजुगाथ) सरलव्यवहार के स्तुति करनेवाले आप (तरुभिः) वृक्षों से (सञ्जर्भुराणः) उत्तम प्रकार पालन और धारण करते हुए (धारवाकेषु) शास्त्रवाणी के उपदेश करनेवालों में और (चित्तगर्भासु) चेतनतारूप गर्भ जिनमें उनके निमित्त (सुतेगृभम्) उत्पन्न जगत् में ग्रहण किये गये (वयाकिनम्) व्यापी को प्रजाओं में (सुस्वरुः) उत्तम प्रकार उपदेश करनेवाले हुए (अध्वरे) अहिंसायुक्त व्यवहार में (शोभसे) शोभा को प्राप्त हूजिए और (जीवः) जीवते हुए (पत्नीः) स्त्रियों को जैसे वैसे प्रजाओं के (अभि) सन्मुख (वर्धस्व) वृद्धि को प्राप्त हूजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य स्थावर जङ्गमरूप प्रजाओं से उपकार ग्रहण कर सकें वे सदा ही आनन्दित होवें ॥ ५ ॥

यादृगेव ददृशे तादृगुच्यते सं छायया दधिरे सिध्रयाप्स्वा ।
महीमस्मभ्यमुरुषामुरु ज्रयो बृहत्सुवीरमनपच्युतं सहः ॥६॥

पदार्थ—जो (ज्रयः) वेगवाले (सिध्रया) मङ्गलस्वरूप (छायया) छाया से (अप्सु) जलों वा प्राणों में (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए (उरुषाम्) बहुतों के विभाग करनेवाले को (महीम्) बड़ी वाणी और (उरु) बहुत (बृहत्) बड़े (सुवीरम्) सुन्दर और वीर पुरुष जिससे उस (अनपच्युतम्) नाश से रहित (सहः) बल को (सम्, आ, दधिरे) उत्तम प्रकार धारण करते हैं और जिन लोगों से (यादृक्) जैसा (ददृशे) देखा जाता है (तादृक्) वैसा (एव) ही (उच्यते) कहा जाता है वे हम लोगों से निरन्तर सत्कार करने योग्य हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो अन्य जनों में विद्या के बल और धन के संचयको स्थापित करते है और जिनमें जैसा आत्मा में वर्त्तमान है वैसा मन में और जैसा मन में वैसा वाणी से कहा जाता है वे ही यथार्थवक्ता जानने योग्य हैं ॥ ६ ॥

वेत्यध्वर्युर्जनिवान्वा अति स्पृधः समर्यता मनसा सूर्यः कविः ।
घ्रंसं रक्षन्तं परि विश्वतो गयमस्माकं शर्म वनवत्स्वावसुः ॥७॥

पदार्थ—जो (स्वावसुः) अपनों में बसता वा अपनों को जो बसाता है वह (सूर्यः) सूर्य के सदृश (कविः) उत्तम बुद्धिमान् (अध्वर्युः) अग्रगन्ता (जनिवान्) विद्या में जन्मवान् विद्यायुक्त पुरुष (समर्यता) संग्राम की इच्छा करते हुए (मनसा) चित्त से (स्पृधः) स्पर्द्धा करते है जिनमें उन संग्रामों को (अति, वेति) अत्यन्त व्याप्त होता है वह (वै) निश्चय से जैसे सूर्य्य (घ्रंसम्) दिन को वैसे (अस्माकम्) हम लोगों का (विश्वतः) सबसे (रक्षन्तम्) रक्षा करते हुए (गयम्) श्रेष्ठ अपत्य वा धन और (शर्म्म) गृह का (परि) सब प्रकार से (वनवत्) संविभाग करे वह हम लोगों से सत्कार करने योग्य है ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्या और विनय को प्राप्त दुष्टों में उग्र और धार्मिकों में शान्त और सदा ही दुष्टों के साथ युद्ध करने से प्रजाओं की रक्षा करता हुआ सुख में वास करावे वह सूर्य्य सदृश प्रकाशित यशवाला हो ॥ ७ ॥

ज्यायांसमस्य यतुनस्य केतुन ऋषिस्वरं चरति यासु नाम ते ।
यादृश्मिन्धायि तमपस्यया विदद्य उ स्वयं वहते सो अरं करत् ॥८॥

पदार्थ—(यः) जो (अस्य) इस (यतुनस्य) यत्न करनेवाले विद्वान् के (केतुना) प्रज्ञान से (ज्यायांसम्) श्रेष्ठ (ऋषिस्वरम्) ऋषियों के उपदेश को (चरति) प्राप्त होता है और जिन (ते) आपका (यासु) जिन प्रजाओं में (नाम) नाम है और (यादृश्मिन्) जैसे व्यवहार में जो अन्य जनों से (धायि) धारण किया जाता है (तम्) उसको (अपस्यया) अपने कर्म्म की इच्छा से (विदत्) प्राप्त होता और (उ) भी (स्वयम्) स्वयम् (वहते) प्राप्त होता है (सः) वह हम लोगों को (अरम्) समर्थ (करत्) करे ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य यथार्थवक्ता जन के समीप से प्राप्त हुए बोध से स्वयं उत्तम होकर अन्यों को उत्तम प्रकार भूषित करें वे सुख को प्राप्त होते है ॥ ८ ॥

समुद्रमासामव तस्थे अग्रिमा न रिष्यति सवनं यस्मिन्नायता ।
अत्रा न हार्दि क्रवणस्य रेजते यत्रा मतिर्विद्यते पूतबन्धनी ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (यस्मिन्) जिस में (अग्रिमा) अतिश्रेष्ठ (सवनम्) ऐश्वर्य्य का (न) नहीं (रिष्यति) नाश करता है और (आसाम्) इन प्रजाओं के बीच (समुद्रम्) अन्तरिक्ष को (अव, तस्थे) स्थित होता है और (यत्रा) जहाँ (आयता) बहुत धनों की वृद्धि होती है और (पूतबन्धनी) पवित्र गुणों को ग्रहण करनेवाली (मतिः) बुद्धि (विद्यते) विद्यमान है (न) नहीं (अत्रा) इस में (क्रवणस्य) शब्द करनेवाले का (हार्दि) हृदयसम्बन्धी कार्य (रेजते) चलता है ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो प्रजाओं के मध्य में अन्तरिक्ष के सदृश सुखरूपी अवकाश देनेवाले और नहीं हिंसा करनेवाले बुद्धिमान् उपदेशक विद्यमान है वे ही सुखयुक्त होते है ॥ ९ ॥

स हि क्षत्रस्य मनसस्य चित्तिभिरेवावदस्य यजतस्य सध्रेः ।
अवत्सारस्य स्पृणवाम रण्वभिः शविष्ठं वाजं विदुषा चिदर्ध्यम् ॥१०॥२४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (चित्तिभिः) इकट्ठे करनेरूप क्रियाओं से जिस (एवावदस्य) एवावद अर्थात् प्राप्त गुणों का कहते है जिससे वा (यजतस्य) मिलते है जिसमें वा जो (अवत्सारस्य) रक्षकों को प्राप्त होने और (मनसस्य) माना जाता और उस (सध्रेः) तुल्य स्थानवाले (क्षत्रस्य) राजकुल वा राज्य के सम्बन्ध की (स्पृणवाम) इच्छा करें तथा (विदुषा) विद्वान् से (चित्) भी (अर्ध्यम्) अर्द्ध में उत्पन्न की तथा (रण्वभिः) रमणीयों से (शविष्ठम्) अत्यन्त बलिष्ठ (वाजम्) विज्ञानवान् की हम इच्छा करें (सः, हि) वही हम लोगों की इच्छा करें ॥ १० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य दिनरात्रि राज्य की उन्नति करने की इच्छा करते हैं वे महाराज होते है ॥ १० ॥

श्येन आसामदितिः कक्ष्यो३ मदो विश्ववारस्य यजतस्य मायिनः ।
समन्यमन्यमर्थयन्त्येतवे विदुर्विषाणं परिपानमन्ति ते ॥११॥

पदार्थ—जो मनुष्य (श्येनः) प्रशंसनीय गमनवाले घोड़े के सदृश (आसाम्) इन प्रजाओं की (अदितिः) नहीं नाश होनेवाली प्रकृति और (कक्ष्यः) श्रेणियों में उत्पन्न (मदः) आनन्द (विश्ववारस्य) सम्पूर्ण स्वीकार करने योग्य (यजतस्य) मिले हुए (मायिनः) निकृष्ट बुद्धिवाले के (अन्यमन्यम्) अन्य अन्य को (अर्थयन्ति) अर्थ करते अर्थात् याचते हैं और (एतवे) प्राप्त होने को (अन्ति) समीप में (परिपानम्) सब ओर से पान और (विषाणम्) प्रवेश किये हुए को (सम्, विदुः) उत्तम प्रकार जानते हैं वे सुखी होते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो विद्वान् जन दुष्ट बुद्धि वालों को श्रेष्ठ बुद्धियुक्त करते हैं और श्येनपक्षी के सदृश दुष्टों का नाश करते हैं वे जन कल्याणकारक हैं ॥ ११ ॥

सदापृणो यजतो वि द्विषो वधीद्बाहुवृक्तः श्रुतवित्तर्यो वः सचा ।
उभा स वरा प्रत्येति भाति च यदीं गणं भजते सुप्रयावभिः ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो (श्रुतवित्) श्रुत को जाननेवाला (तर्य्यः) जो तैरा जाता वा तैरने के योग्य (सचा) सम्बन्धी (बाहुवृक्तः) बाहुओं से दुष्टों का नाश करनेवाला (यजतः) सत्कर्त्ता (सदापृणः) सदा तृप्ति करनेवाला (सुप्रयावभिः) उत्तम प्रकार चलनेवालों से (द्विषः) धर्म के द्वेष करनेवालों का (वि, वधीत्) विशेष करके नाश करता है (च) और जो (वः) आप लोगों को (प्रति, एति) प्राप्त होता वा विशेष करके जानता है, सत्य (भाति) प्रकाशित होता वा सत्य को प्रकाशित करता और (गणम्) समूह का (भजते) सेवन करता है (सः) वह (उभा) दोनों (वरा) श्रेष्ठ सुनने और सुनानेवालों का (ईम्) ही सत्कार कर सकता है ॥ १२ ॥

भावार्थ—जो बहुत शास्त्रों को सुननेवाले न्याय का आचरण करनेवाले जन दुष्टों का नाश करते हुए श्रेष्ठों का पालन करते हैं वे सदा प्रसन्न होते हैं ॥ १२ ॥

फिर विद्वान् क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सुतम्भरो यजमानस्य सत्पतिर्विश्वासामूधः स धियामुदञ्चनः ।
भरद्धेनू रसवच्छिश्रिये पयोऽनुब्रुवाणो अध्येति न स्वपन् ॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो विद्वान् (यजमानस्य) सत्कार करनेवाले का (सुतम्भरः) उत्पन्न जगत् को धारण करनेवाला (विश्वासाम्) सम्पूर्ण (धियाम्) प्रज्ञान और कर्मों का (उदञ्चनः) उत्कृष्टता को प्राप्त कराने और (ऊधः) ऊपर को पहुँचाने और (सत्पतिः) सत्पुरुषों का पालन करनेवाला (रसवत्) बहुत रस से युक्त (पयः) दुग्ध को जैसे (धेनुः) गौ वैसे विद्या को (भरत्) धारण करता और धर्म का (शिश्रिये) आश्रयण करता और (न) न (स्वपन्) शयन करता हुआ अन्यों के प्रति (अनु, ब्रुवाणः) पढ़कर पीछे उपदेश देता हुआ सत्य का (अधि, एति) स्मरण करता है (सः) वही सत्कार करने योग्य है ॥ १३ ॥

भावार्थ—वही उत्तम पुरुष है जो कृतज्ञ और यथार्थवक्ता जनों की सेवा में प्रिय, सम्पूर्ण मनुष्यों के लिए बुद्धि देने और गौ के सदृश सत्य उपदेश का बढ़ानेवाला और अविद्या आदि क्लेशों से पृथक् वर्त्तमान है वही सब से मेल करने योग्य है ॥ १३ ॥

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥१४॥

पदार्थ—(यः) जो (जागार) अविद्यारूप निद्रा से उठ के जागनेवाला है (तम्) उसको (ऋचः) ऋचाओं के सदृश जन (कामयन्ते) कामना करते हैं और (यः) जो (जागार) अविद्यारूप निद्रा से उठ के जागनेवाला है (तम्) उसको (उ) भी (सामानि) सामवेद के विभाग (यन्ति) प्राप्त होते हैं और (यः) जो (जागार) अविद्यारूप निद्रा से उठके जागनेवाला (तम्) उसको (अयम्) यह (सोमः) सोमलता आदि ओषधियों का समूह वा ऐश्वर्य के सदृश (न्योकाः) निश्चित स्थान वाला (सख्ये) मित्रत्व में (तव) आपका (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ इस प्रकार (आह) कहता है ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो वेदविद्या को प्राप्त होने की इच्छा करते हैं उन को ही वेद विद्या प्राप्त होती और जो मनुष्य आदिकों के साथ मित्रता करना है वह बहुत सुख को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

जो सत्य की कामना करते हैं वे सत्य को प्राप्त होते हैं—

अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥१५॥२५॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (अग्निः) अग्नि के सदृश (जागार) जागृत होता है (तम्) उसकी (ऋचः) प्रशंसित बुद्धि वाले विद्यार्थी जन (कामयन्ते) कामना करते हैं और (अग्निः) जो अग्नि के सदृश वर्त्तमान (जागार) जागृत होता है (तम्) उसको (उ) भी (सामानि) सामवेद में कहे हुए विज्ञान (यन्ति) प्राप्त होते हैं (अग्निः) अग्नि के सदृश वर्त्तमान (जागार) जागृत होता है (तम्) उस को (अयम्) यह (न्योकाः) निश्चित स्थान युक्त (सोमः) विद्या और ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाला (तव) आप की (सख्ये) मित्रता में (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ ऐसा (आह) कहता है ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य आलस्य से रहित पुरुषार्थी धार्मिक होते और जितेन्द्रिय विद्यार्थी होते हैं उन्हीं को विद्या और उत्तम शिक्षा प्राप्त होती है ॥१५॥

इस सूक्त में सूर्य मेघ और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चवालीसवां सूक्त तीसरा अनुवाक और पच्चीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथैकादशर्चस्य पञ्चचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य सदापृण आत्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । १, २ पङ्क्तिः । ५ । ६ । ११ भुरिक्पङ्क्तिः । ८ । १० स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४ । ६ । ७ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचावाले पैंतालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम द्वितीय मन्त्र में आदित्यविषय को कहते हैं—

विदा दिवो विष्यन्नद्रिमुक्थैरायत्या उषसो अर्चिनो गुः ।
अपावृत व्रजिनीरुत्स्वर्गाद्वि दुरो मानुषीर्देव आवः ॥ १॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (स्वः, देवः) श्रेष्ठ गुणों से विशिष्ट सूर्य वा मेघ (मानुषीः) मनुष्य सम्बन्धी (दुरः) द्वारों को (वि, गात्) विशेषतया प्राप्त होता है और (आवः) ढांपता है और (अद्रिम्) मेघ को और (व्रजिनीः) वर्जन क्रियाओं को (उत्, अप, अवृत) अत्यन्त दूर करते हैं वैसे ही (विदः) कामना करते हुए (दिवः) विद्वान् जन (अर्चिनः) सत्कार करनेवाले (उक्थैः) वेदविद्या से उत्पन्न हुए उपदेशों से (आयत्याः) पीछे से हुए (उषसः) प्रभात कालों के सदृश (विष्यन्) व्याप्त होते और (गुः) चलते हैं उनकी निरन्तर सेवा करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो प्रभातकाल और सूर्य के सदृश मनुष्यरूप प्रजाओं में विद्या और धर्म के प्रकाश करने वाले होवें वे ही अध्यापक और उपदेशक होवें ॥ १ ॥

वि सूर्यो अमतिं न श्रियं सादोर्वाद्गवां माता जानती गात् ।
धन्वर्णसो नद्यः खादोअर्णाः स्थूणेव सुमिता दृंहत द्यौः ॥२॥

पदार्थ—जो (द्यौः) कामना करता हुआ (सुमिता) उत्तम प्रकार किया प्रमाण जिन का (स्थूणेव) स्तम्भ के समान विद्या आदि सद्गुणों को (दृंहत) बढ़ाता वा धारण करता तथा (खादोअर्णाः) भक्षण करने योग्य अन्न और जल जिन में और (धन्वर्णसः) स्थल में जल जिन का ऐसी (नद्यः) शब्द करनेवाली नदियों के सदृश वा (जानती) जानती हुई (माता) माता के सदृश शिष्यों और उपदेश करने योग्यों को (गात्) प्राप्त होता है और (सूर्यः) सूर्य (अमतिम्) रूप के (न) सदृश (श्रियम्) लक्ष्मी का (वि, सात्) विशेष करके विभाग करता है (गवाम्) किरणों के (ऊर्वात्) बहुत रूप से ऐश्वर्य को (आ) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वही सब को सुखी करने को योग्य होवे ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सूर्य के सदृश विद्या, माता के सदृश कृपा, नदी के सदृश उपकार और स्तम्भ के सदृश धारण करते हैं वे ही श्रीमान् और सदा सुखी होते हैं ॥ २ ॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अस्मा उक्थाय पर्वतस्य गर्भो महीनां जनुषे पूर्व्याय ।
वि पर्वतो जिहीत साधत द्यौराविवासन्तो दसयन्त भूम ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (महीनाम्) भूमियों और (पर्वतस्य) मेघ के (पूर्व्याय) पूर्वों में उत्पन्न (जनुषे) जन्म के लिए तथा (अस्मै) इस (उक्थाय) प्रशंसित के लिए (गर्भः) कारणभूत (पर्वतः) पक्षी के समान पर्ववान् मेघ वा (द्यौः) कामना करते हुए के सदृश (वि, जिहीत) विशेष चलता है और जिस को (आविवासन्तः) सब ओर घूमते हुए (साधत) सिद्ध करें जिससे दुःख का और (दसयन्त) दोषों का नाश करें उसके तुल्य हम लोग (भूम) होवें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्यार्थियों में विद्या के गर्भ को धारण करते हैं वे मेघ के सदृश सबके सुखकारक होते हैं ॥ ३ ॥

सूक्तेभिर्वो वचोभिर्देवजुष्टैरिन्द्रा न्वग्नी अवसे हुवध्यै ।
उक्थेभिर्हि ष्मा कवयः सुयज्ञा आविवासन्तो मरुतो यजन्ति ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (आविवासन्तः) सत्य का सब प्रकार से सेवन करते हुए (सुयज्ञाः) सुन्दर विद्या और धर्म के प्रचार करनेवाली क्रिया जिन की ऐसे (कवयः) बुद्धिमान् विद्वान् (मरुतः) मनुष्य (सूक्तेभिः) जो उत्तम प्रकार कहे जाय उन (देवजुष्टैः) विद्वानों से सेवित और (उक्थेभिः) प्रशंसा करने वाले (वचोभिः) उत्तम प्रकार शिक्षित वचनों से (हि) निश्चय से (इन्द्रा) बिजुली (अग्नी) और अग्नि को तथा (वः) आप लोगों को (अवसे) रक्षण आदि के लिए (हुवध्यै) ग्रहण करने को (नु) शीघ्र (यजन्ति) मिलते हैं वैसे (स्म) ही आप लोग भी इसी प्रकार मिलो ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन सब के लिए सुख, विद्या और विज्ञान का सेवन करते हुए अग्नि आदि की विद्या को सब के लिए देते हैं वे ही उत्तम होते हैं ॥ ४ ॥

एतो न्व१द्य सुध्योऽभवाम प्र दुच्छुना मिनवामा वरीयः ।
आरे द्वेषांसि सनुतर्दधामायाम प्राञ्चो यजमानमच्छ ॥५॥२६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (**अद्य**) आज (**एतो**) ये हम लोग (**नु**) शीघ्र (**सुध्य**) अच्छी बुद्धि वाले (**अभवाम**) हों और जो (**दुच्छुना**) दुष्ट कुत्तों के सदृश वर्त्तमान उन का (**प्र, मिनवामा**) अत्यन्त नाश करें और (**द्वेषांसि**) द्वेषयुक्त कर्मों को (**आरे**) समीप वा दूर में (**अयाम**) प्राप्त करावें (**प्राञ्च**) प्राचीन काल में वर्त्तमान अधिक अवस्था वाले हम लोग (**सनुत**) सदा (**वरीय**) अत्यन्त श्रेष्ठ (**यजमानम्**) मिलने वाले को (**अच्छ**) उत्तम प्रकार (**दधाम**) धारण करें वैसे आप लोग भी धारण करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य विज्ञान का बढ़ाते दुष्टों का निवारण करते और द्वेष आदि दोषों से रहित हुए सनातन सत्य को धारण करते हैं वे अत्यन्त प्रशंसा के योग्य होते हैं ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यों को उत्तम बुद्धि कैसे प्राप्त होनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

एता धियं कृणवामा सखायोऽप या माताँ ऋणुत व्रजं गोः ।
यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम् ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यया**) जिससे (**मनु**) मनुष्य (**विशिशिप्रम्**) सुन्दर ठुड्डी और नासिका जिसकी उस को (**जिगाय**) जीतता है (**यया**) जिससे (**वङ्कु**) धन की इच्छा करने वाला (**वणिक**) व्यापारी वैश्य (**पुरीषम्**) पूर्ण करने वाले जन को (**आपा**) प्राप्त होता है उस (**धियम्**) बुद्धि को (**सखाय**) मित्र होते हुए हम लोग (**कृणवामा**) करें और जैसे (**या**) जो (**माता**) माता के सदृश (**गो**) किरण से (**व्रजम्**) मेघ को करता है और दुःख को (**अप**) दूर करता है वैसे इस को आप लोग (**ऋणुत**) सिद्ध करिये और बुद्धि को (**आ**) सब प्रकार (**इता**) प्राप्त हूजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि परस्पर में मित्र होकर बुद्धि को बढ़ा औरों के लिए विशेष ज्ञान अच्छे प्रकार देवें जैसे वैश्य धन को प्राप्त होकर बढ़ता है वैसे उत्तम बुद्धि को पाकर बढ़ें ॥ ६ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अनूनोदत्र हस्तयतो अद्रिरार्चन्येन दश मासो नवग्वाः ।
ऋतं यती सरमा गा अविन्दद्विश्वानि सत्याङ्गिराश्चकार ॥७॥

पदार्थ—(**येन**) जिससे (**अत्र**) इस संसार में (**नवग्वा**) नवीन गमन वाले (**दश**) दश (**मास**) चैत्र आदि महीने वर्त्तमान हैं और (**हस्तयत**) हाथ निग्रह किये अर्थात् वशीभूत किये जिसके वह (**अद्रि**) मेघ के सदृश (**आर्चत्**) सत्कार करता हुआ (**अनूनोत्**) प्रेरणा करे और जो (**सरमा**) तुल्य रमनेवाली (**ऋतम**) सत्य को (**यती**) यत्न करती हुई (**गा**) इन्द्रियों को (**अविन्दत्**) प्राप्त होती है और जो (**अङ्गिरा**) अङ्गों का रसरूप प्राण के सदृश (**विश्वानि**) सम्पूर्ण (**सत्या**) सत्य कार्यों को (**चकार**) करता है वे सत्कार करने योग्य हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सर्वदा सत्य आचरण से युक्त हो कर सब के उपकार को सिद्ध करते हैं वे इस संसार में धर्मात्मा गिने जाते हैं ॥ ७ ॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

विश्वे अस्या व्युषि माहिनायाः सं यद्गोभिरङ्गिरसो नवन्त ।
उत्स आसां परमे सधस्थ ऋतस्य पथा सरमा विदद्गाः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (**विश्वे**) सम्पूर्ण प्राणी (**माहिनाया**) महत्त्व से युक्त (**अस्या**) प्रातर्वेला के (**व्युषि**) विशिष्ट निवास में (**गोभि**) किरणों के साथ (**अङ्गिरस**) पवन (**सम्, नवन्त**) अच्छे प्रकार स्तुति करते हैं (**यत्**) जिस से (**आसाम्**) इन प्रातर्वेलाओं के (**परमे**) प्रकृष्ट (**सधस्थे**) साथ के स्थान में (**ऋतस्य**) सत्य वा जल के (**पथा**) मार्ग से (**उत्स**) कूप के सदृश (**सरमा**) प्राप्त हुओं का आदर करनेवाली (**गा**) किरणों को (**विदत्**) जानती है उन उनको आप लोग विशेष कर जानिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रभातवेला में प्राणी प्रसन्न होते हैं वैसे ही सन्देह रहित होकर मनुष्य आनन्दित होते हैं ॥ ८ ॥

फिर सूर्य के समान मनुष्य क्या करें उसका उपदेश करते हैं—

आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः क्षेत्रं यदस्योर्विया दीर्घयाथे ।
रघुः श्येनः पतयदन्धो अच्छा युवा कविर्दीदयद् गोषु गच्छन् ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (**सप्ताश्व**) सात प्रकार की शीघ्र चलने वाली किरणें जिस की ऐसा (**सूर्य्य**) सूर्य्य (**यत्**) जिस (**क्षेत्रम्**) निवास के स्थान को (**अस्य**) इस जगत् सम्बन्धिनी (**उर्विया**) पृथिवी के (**दीर्घयाथे**) चलें जिस में ऐसे बड़े मार्ग में (**रघु**) लघु (**श्येन**) अन्तरिक्षस्थ बाज पक्षी के सदृश अन्तरिक्ष में जाता है वैसे आप सेना के मध्य में (**आ**) सब प्रकार से (**यातु**) प्राप्त हूजिए और जैसे (**गोषु**) पृथिवियों में (**गच्छन्**) चलता हुआ (**दीदयत्**) प्रकाश करता है वैसे (**युवा**) मिले और नहीं मिले हुओं का करनेवाले यौवनावस्था युक्त (**कवि:**) बुद्धिमान् विद्वान् (**अच्छा**) उत्तम प्रकार (**अन्ध.**) अन्न आदि का (**पतयत्**) स्वामी के सदृश आचरण करता है यह जानो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिस सूर्य्य में सात तत्त्व हैं और जो अपने घर को छोड़ के इधर उधर नहीं जाता है और बहुत भूगोलों के मध्य में एक ही प्रकाशित है वैसे ही सब पुरुष होवें ॥ ९ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णोऽयुक्त यद्धरितो वीतपृष्ठाः ।
उद्ना न नावमनयन्त धीरा आशृण्वतीरापो अर्वागतिष्ठन् ॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यत्**) जो (**सूर्य्य**) सूर्य्य (**शुक्रम्**) वीर्य का (**आ, अरुहत्**) आरोहण करता और (**अर्ण**) उदक का (**अयुक्त**) योग करता है और (**वीतपृष्ठा**) व्याप्त हैं लोक लोकान्तरों के पृष्ठ जिन से वे (**हरित:**) जल आदि को हरनेवाले (**धीरा**) ध्यानवान् बुद्धिमान् जन (**उद्ना**) जल से (**नावम्**) नौका को (**न**) जैसे वैसे (**अनयन्त**) प्राप्त होते अर्थात् व्यवहार को पहुँचते हैं (**अर्वाक्**) पीछे (**आशृण्वता**) जो चारों ओर से सुने पड़ते हैं वह (**आप:**) प्राण (**अतिष्ठन्**) स्थिर होते हैं उन सबको आप लोग जानें ॥ १० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सूर्य और जल आदि की विद्याओं को जान के नौका आदि को चलावें वे लक्ष्मीवान् होते हैं ॥१०॥

जो मनुष्य उत्तम बुद्धि की याचना करते हैं वे विद्वान् होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

धियं वो अप्सु दधिषे स्वर्षां ययातरन्दश मासो नवग्वाः ।
अया धिया स्याम देवगोपा अया धिया तुतुर्यामात्यंहः ॥११॥२७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यया**) जिससे (**नवग्वा.**) नवीन गमनवाले (**दश**) दश (**मास**) महीने (**अतरन्**) पार होते हैं (**अया**) इस (**धिया**) बुद्धि से हम लोग (**देवगोपा**) विद्वानों के रक्षक (**स्याम**) होवें और (**अया**) इस (**धिया**) बुद्धि से (**अंह**) पाप वा पाप से उत्पन्न दुःख का (**अति, तुतुर्य्याम**) अत्यन्त विनाश करें (**व.**) आप को (**स्वर्षाम्**) सुख का विभाग करता है जिससे उस (**धियम्**) बुद्धि को (**अप्सु**) प्राणों में मैं (**दधिषे**) धारण करूं ॥११॥

भावार्थ—जो बुद्धिमान्, धनवान् और बल से युक्त होकर सब की रक्षा करते हैं वे दुःखों के पार होते हैं ॥११॥

इस सूक्त में सूर्य्य और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह पैंतालीसवां सूक्त और सत्ताईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथाष्टर्चस्य षट्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य प्रतिक्षत्र आत्रेय ऋषि । १, ६ विश्वेदेवा । ७, ८ देवपत्न्यो देवता । १ भुरिग्जगती । ३,५,६ निचृज्जगती । ४,७ जगतीछन्द. । निषाद स्वर । २,८ निचृत्पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

अब आठ ऋचावाले छियालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में शिल्पविद्या का विद्वान् रथों को रचकर सुख से मार्ग को जाता है इस विषय को कहते हैं—

हयो न विद्वाँ अयुजि स्वयं धुरि तां वहामि प्रतरणीमवस्युवम् ।
नास्या वश्मि विमुचं नावृतं पुनर्विद्वान् पथः पुरएत ऋजु नेषति ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**विद्वान्**) विद्यायुक्त मैं (**स्वयम्**) आप (**अयुजि**) नहीं संयुक्त (**धुरि**) मार्ग में (**हय**) उत्तम प्रकार शिक्षायुक्त घोड़े के (**न**) सदृश (**ताम्, प्रतरणीम्**) पार होते हैं जिससे उस (**अवस्युवम्**) अपनी रक्षा की इच्छा करती हुई को (**वहामि**) प्राप्त होता वा प्राप्त कराता हूँ और (**अस्या.**) इसके सम्बन्ध में (**विमुचम्**) त्यागते हैं जिससे उसको (**न**) नहीं (**वश्मि**) कामना करता हूँ और (**न**) नहीं (**आवृतम्**) ढपे हुए की कामना करता हूँ (**पुन:**) फिर (**पुरएता**) प्रथम जानेवाला (**विद्वान्**) विद्यायुक्त जन (**ऋजु**) सरलता जैसे हो वैसे (**पथ.**) मार्गों को (**नेषति**) प्राप्त करावे ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे विद्वानों से उत्तम प्रकार शिक्षित घोड़े कार्यों को सिद्ध करते हैं वैसे ही प्राप्त हुई विद्या और शिक्षा जिन को ऐसे मनुष्य कार्य्य की सिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥१॥

मनुष्यों को विद्युदादि विद्या अवश्य स्वीकार करने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो ।
उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥२॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त (**अग्ने**) विद्वान् (**वरुण**) श्रेष्ठ (**मित्र**) मित्र (**मारुत**) मनुष्यो मे विदित और (**देवा**) विद्वानो आप (**शर्धः**) बल को (**प्र, यन्त**) प्राप्त होते हैं (**उत**) और हे (**विष्णो**) व्यापनशील (**उभा**) दो (**नासत्या**) असत्य आचरण से रहित जन (**रुद्रः**) दुष्टो को भयकर (**भगः**) ऐश्वर्य्यवान् (**पूषा**) पुष्टिकारक वायु (**अथ**) इसके अनन्तर (**सरस्वती**) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी भी (**ग्नाः**) वाणियो का (**जुषन्त**) सेवन करें ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोगो को चाहिए कि विद्या शरीर बल और योग की वृद्धि करके अग्नि आदि विद्या का स्वीकार करें ॥२॥

इस सृष्टि में मनुष्यों को क्या क्या जानना योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिं स्वः पृथिवीं द्यांमुरुतः पर्वताँ अपः ।
हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शंसं सवितारमूतये ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे मै (**ऊतये**) रक्षा आदि व्यवहार की सिद्धि के लिए (**इन्द्राग्नी**) सूर्य्य और बिजुली (**मित्रावरुणा**) प्राण और उदान वायु तथा (**अदितिम्**) अन्तरिक्ष को (**स्वः**) सूर्य्य और (**पृथिवीम्**) भूमि को (**द्याम्**) प्रकाश को (**मरुतः**) पवनो वा मनुष्यो को (**पर्वतान्**) मेघो वा पर्वतो को (**अपः**) जलो को (**विष्णुम्**) व्यापक धन वा जय को (**पूषणम्**) पुष्टिकारक व्यान वायु और (**ब्रह्मणः**) ब्रह्माण्ड के (**पतिम्**) पालन करनेवाले सूत्रात्मा को (**भगम्**) ऐश्वर्य और (**शंसम्**) प्रशंसा करने योग्य (**सवितारम्**) ससार के उत्पन्न करनेवाले परमात्मा को (**हुवे**) ग्रहण करता हूँ वैसे आप लोग (**नु**) शीघ्र इनको ग्रहण कीजिए ॥३॥

भावार्थ—मनुष्यो का विद्युद्विद्या अवश्य स्वीकार करनी चाहिए ॥३॥

अवश्य मनुष्यों को ईश्वरादिकों का सेवन करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

उत नो विष्णुरुत वातो अस्रिधो द्रविणोदा उत सोमो मयस्करत् ।
उत ऋभव उत राये नो अश्विनोत त्वष्टोत विभ्वानु मंसते ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**नः**) हम लोगो को (**विष्णुः**) व्यापक ईश्वर (**उत**) और (**वातः**) वायु (**उत**) और (**अस्रिधः**) नही हिंसा करने और (**द्रविणोदा**) धन का देनेवाला (**उत**) और (**सोम**) ऐश्वर्य्यवान् (**उत**) और (**ऋभवः**) बुद्धिमान् जन (**उत**) और (**राये**) धन के लिये (**नः**) हम लोगो को (**उत**) और (**अश्विना**) अध्यापक और उपदेशक जन (**उत**) और (**त्वष्टा**) सूक्ष्म करनेवाला (**विभ्वा**) समर्थ से (**अनु, मंसते**) अनुमान करे उनसे विद्वान् (**मयः**) सुख को (**करत्**) सिद्ध करे ॥४॥

भावार्थ—जो मनुष्य ईश्वर आदि पदार्थों की सेवा करते है वे जाननेयोग्य पदार्थों के जाननेवाले होते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

उत त्यन्नो मारुतं शर्ध आ गमद्दिविक्षयं यजतं बर्हिरासदे ।
बृहस्पतिः शर्म पूषोत नो यमद्वरूथ्यं१ वरुणो मित्रो अर्य्यमा ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्या (**दिविक्षयम्**) जिसका प्रकाश मे निवास (**यजतम्**) जो मिलता हुआ (**त्यत्**) वह (**मारुतम्**) मनुष्यसम्बन्धी (**बर्हिः**) उत्तम आसन और (**शर्धः**) बल (**नः**) हम लोगो को (**आ, गमत्**) प्राप्त होवे और (**उत**) भी (**बृहस्पतिः**) बडो का पालन करने और (**पूषा**) पुष्टि करनेवाला (**वरुण**)उदानवायु के सदृश उत्तम (**मित्रः**) प्राणवायु के सदृश प्रिय (**उत**) भी (**अर्य्यमा**) न्यायकारी और (**आसदे**) प्रवेश होने को (**वरूथ्यम्**) गृहो मे श्रेष्ठ (**शर्म**) गृह को प्रवेश होने को (**नः**) हम लोगो को (**यमत्**) देता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य वायु के गुणो को विशेषकर जानें वे सब प्रकार से धन को प्राप्त होवे ॥ ५ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

उत त्ये नः पर्वतासः सुशस्तयः सुदीतयो नद्य१स्त्रामणे भुवन् ।
भगो विभक्ता शवसावसा गमदुरुव्यचा अदितिः श्रोतु मे हवम् ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**पर्वतासः**) मेघो के सदृश (**सुशस्तयः**) उत्तम प्रशंसायुक्त (**नद्यः**) नदियो के सदृश (**सुदीतयः**) प्रशंसित प्रकाशवाले (**नः**) हम लोगो को वा हमारे (**त्रामणे**) पालन व्यवहार के लिए (**भुवन्**) हो (**उत**) और (**उरुव्यचा**) बहुतो मे व्याप्त (**अदितिः**) खण्डन से रहित (**भग**) आदर करने योग्य ऐश्वर्य का योग (**विभक्ता**) विभाग कर देनेवाला (**शवसा**) बल और (**अवसा**) रक्षण आदि से (**आ, गमत्**) सब प्रकार प्राप्त होवे और (**मे**) मेरे (**हवम्**) शब्द को (**श्रोतु**) सुने (**त्ये**) वे और वह सत्कार करने योग्य होवें ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मेघ के सदृश ससार के पालन करनेवाले प्रशंसित न्याय का विधान कर सम्पूर्ण प्रजा की विनति सुन के न्याय करें वे विनययुक्त होते है ॥६॥

राजा के समान राजपत्नी न्याय करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये ।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छत ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**याः**) जो (**देवानाम्**) विद्वानो वा राजाओ के न्याय की (**उशतीः**) कामना करती हुई (**पत्नीः**) स्त्रिया (**नः**) हम लोगो की वा हमारे सम्बन्धी पदार्थों की (**अवन्तु**) रक्षा करें और (**तुजये**) बल और (**वाज-सातये**) सग्राम के लिए (**प्र, अवन्तु**) अच्छे प्रकार रक्षा करें और (**याः**) जो (**पार्थिवासः**) पृथिवी मे विदित (**अपाम्**) जलो के (**व्रते**) स्वभाव मे (**अपि**) भी (**देवीः**) प्रकाशमान (**सुहवाः**) उत्तम आह्वान वाली (**नः**) हम लोगो को (**शर्म**) सुखकारक गृह देवें और (**ताः**) उनको (**नः**) हम लोगो के लिए आप लोग (**यच्छत**) दीजिये ॥७॥

भावार्थ—जैसे राजा लोग पुरुषो का न्याय करें वैसे ही स्त्रियो के न्याय को रानियाँ करें ॥७॥

राजा के समान रानी स्त्रियो का न्याय करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्य१ग्नाय्यश्विनी राट् ।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥८॥२८॥२॥

पदार्थ—(**या**) जो (**राट्**) प्रकाशमान (**इन्द्राणी**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त पुरुष की स्त्री और (**अग्नायी**) अग्नि के सदृश तेजस्वी पुरुष की स्त्री (**अश्विनी**) शीघ्र चलनेवाले की स्त्री और (**देवपत्नीः**) विद्वानो की स्त्रियां न्याय करने के लिए स्त्रियो की (**ग्नाः**) वाणियो को (**व्यन्तु**) व्याप्त हो और (**रोदसी**) अन्तरिक्ष तथा पृथिवी के सदृश (**वरुणानी**) श्रेष्ठ जन की स्त्री (**जनीनाम्**) उत्पन्न करनेवाली स्त्रियो की वाणियो का (**आ, शृणोतु**) सब प्रकार से सुने और (**उत**) भी (**देवीः**) विद्यायुक्त स्त्रिया (**ऋतुः**) ऋतु के सदृश क्रम से उत्पन्न करनेवाली स्त्रियो का जो न्याय उसकी (**व्यन्तु**) कामना करें ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे राजाओ के समीप पुरुष मन्त्री होते है वैसे रानियो के समीप स्त्रिया मन्त्री होवें ॥८॥

यह श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य महाविद्वान् विरजानन्द सरस्वती स्वामीजी के शिष्य श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामी जी से रचे हुए, उत्तम प्रमाणयुक्त ऋग्वेद भाष्य के पाचवें मण्डल मे छियालीसवां सूक्त और चतुर्थ अष्टक में द्वितीय अध्याय और अट्ठाईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ तृतीयाऽध्यायारम्भः ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथ सप्तर्चस्य सप्तचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य प्रतिरथ आत्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । १,२,३,७ त्रिष्टुप् । ४ भुरिक्त्रिष्टुप् । ६ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सात ऋचावाले सैंतालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में स्त्री पुरुषों के गुणों को कहते हैं—

प्र॒यु॒ञ्ज॒ती दि॒व ए॑ति ब्रुवा॒णा म॒ही मा॒ता दु॑हि॒तुर्बो॒धय॑न्ती ।
आ॒वि॒वास॑न्ती युव॒तिर्म॑नी॒षा पि॒तृभ्य॒ आ सद॑ने॒ जोहु॑वाना ॥१॥

पदार्थ—जो (**दिवः**) प्रकाश से प्रातःकाल के सदृश (**ब्रुवाणा**) उपदेश देती (**प्रयुञ्जती**) उत्तम कर्म्म में अच्छे प्रकार योग करती (**दुहितुः**) कन्या का (**बोधयन्ती**) बोध देती और (**मही**) आदर करने योग्य (**आविवासन्ती**) सब प्रकार से सेवती हुई (**सदने**) गृह में (**जोहुवाना**) अत्यन्त प्रशंसा को प्राप्त (**युवतिः**) युवा अवस्था में विद्याओं को पढ़कर विवाह जिसने किया वह (**माता**) आदर करनेवाली माता (**मनीषा**) बुद्धि से (**पितृभ्यः**) पालन करनेवालों से शिक्षा को प्राप्त गृहाश्रम को (**आ**) सब प्रकार से (**एति**) जाती वा प्राप्त होती है वह मङ्गलकारिणी होती है ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो माता पाँचवें वर्ष के प्रारम्भ होने तक सन्तानों को बोध देकर पाँचवें वर्ष में पिता को सौंपती है और पिता भी तीन वर्ष पर्य्यन्त शिक्षा देकर आचार्य्य को पुत्रों को और आचार्य्य की स्त्री को कन्याओं को ब्रह्मचर्य्य से विद्याग्रहण के लिए सौंपता है और वे आचार्यादि भी नियत समयपर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्य को समाप्त करा के और विद्याओं को प्राप्त करा के तथा व्यवहार की शिक्षा देकर गृहाश्रम में प्रविष्ट कराते हैं वे आचार्य और आचार्य्या कुल के भूषक और शोभाकारक होते हैं ॥१॥

अब मनुष्यों को कार्य कारण से विस्तृत अनन्त पदार्थों को जान कर कार्यसिद्धि करनी चाहिए—

अ॒जि॒रास॒स्तद॑प॒ ईय॑माना आत॒स्थि॒वांसो॑ अ॒मृत॑स्य॒ नाभि॑म् ।
अ॒न॒न्तास॑ उ॒रवो॑ वि॒श्वतः॑ सीं॒ परि॒ द्यावा॑पृथि॒वी य॑न्ति॒ पन्थाः॑ ॥२॥

पदार्थ—जो (**अजिरासः**) वेग से युक्त (**ईयमानाः**) प्राप्त होते हुए (**तदपः**) उनके प्राणों को (**अमृतस्य**) नाश से रहित कारण के (**नाभिम्**) मध्य में (**आतस्थिवांसः**) सब ओर से स्थित (**अनन्तासः**) नहीं विद्यमान अन्त जिनका वे (**उरवः**) बहुत (**विश्वतः**) सब ओर (**द्यावापृथिवी**) प्रकाश और भूमि (**सीम्**) सूर्य्य के प्रकाश के सदृश (**परि**) चारों ओर (**यन्ति**) प्राप्त होते हैं उनका (**पन्थाः**) मार्ग जानना चाहिए ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो अवकाश आदि अनन्त पदार्थ हैं उनमें वर्त्तमान असंख्य परमाणु और कारण के मध्य में कारण से उत्पन्न हुए, सूर्य्य और प्रकाश के सदृश विस्तीर्ण हैं ॥२॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

उ॒क्षा स॑मु॒द्रो अ॑रु॒षः सु॑प॒र्णः पूर्व॑स्य॒ योनिं॑ पि॒तुरा वि॑वेश ।
मध्ये॑ दि॒वो निहि॑तः॒ पृश्नि॒रश्मा॒ वि च॑क्रमे॒ रज॑सस्पा॒त्यन्तौ॑ ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**समुद्रः**) सागर (**अरुषः**) सुख को प्राप्त कराने वाला (**सुपर्णः**) सुन्दर पालन जिस का ऐसा और (**दिवः**) प्रकाश के (**मध्ये**) मध्य में (**निहितः**) स्थापित किया गया (**पृश्निः**) अन्तरिक्ष और (**अश्मा**) मेघ (**उक्षा**) सींचनेवाला (**पूर्वस्य**) पूर्ण आकाश आदि और (**पितुः**) पालन करने वाले के (**योनिम्**) कारण को (**आ, विवेश**) सब प्रकार प्रविष्ट होता है और (**रजसः**) लोक में उत्पन्न हुए का (**वि, चक्रमे**) विशेष कर के क्रमण करता और (**अन्तौ**) समीप में (**पाति**) रक्षा करता है वह सब का जानने योग्य है ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग कार्य्य और कारण को जानकर उन के संयोग से उत्पन्न हुए वस्तुओं को कार्य्यों में उपयुक्त करके अपने अभीष्ट की सिद्धि करें ॥ ३ ॥

मनुष्यों को चाहिए कि पृथिवी आदि तत्त्व जगत् के पालक हैं ऐसा जानें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

च॒त्वार॑ ईं बिभ्रति क्षेम॒यन्तो॒ दश॒ गर्भं॑ च॒रसे॑ धापयन्ते ।
त्रि॒धात॑वः पर॒मा अ॑स्य॒ गावो॑ दि॒वश्च॑रन्ति॒ परि॑ स॒द्यो अन्ता॑न् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**अस्य**) इस संसार के मध्य में (**चरसे**) चलने को (**क्षेमयन्तः**) रक्षा करते हुए (**परमाः**) प्रकृष्ट (**त्रिधातवः**) तीन सत्त्व रज और तमोगुण धारण करनेवाले जिन के वे और (**चत्वारः**) चार पृथिवी आदि (**ईम्**) सब ओर से (**गर्भम्**) समस्त जगत् उत्पत्ति के स्थान को (**बिभ्रति**) धारण करते हैं तथा (**दश**) दश दिशाओं को (**धापयन्ते**) धारण कराते हैं और (**सद्यः**) शीघ्र (**दिवः**) प्रकाश के मध्य में (**अन्तान्**) समीपवर्त्ती देशों के (**गावः**) किरणें (**परि, चरन्ति**) चारों ओर चलते हैं ऐसा जानिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! इस संसार के धारण करनेवाले पृथिवी, जल, तेज और पवन हैं और वे कारण से उत्पन्न हो के उपयुक्त होते हैं ॥ ४ ॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इ॒दं वपु॑र्नि॒वच॑नं जनास॒श्चर॑न्ति॒ यन्न॒द्य॑स्त॒स्थुराप॑ः ।
द्वे यदीं॒ बिभृ॒तो मा॒तुर॒न्ये इ॒हेह॑ जा॒ते य॒म्या॒३॒॑ सब॑न्धू ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (**इहेह**) इसी संसार में (**द्वे**) दो (**यम्या**) रात्रि और दिन (**सबन्धू**) तुल्य बन्धु जिनका उनके सदृश वर्त्तमान और (**मातुः**) माता से (**अन्ये**) अन्य (**जाते**) उत्पन्न हुए (**ईम्**) जल का (**बिभृतः**) धारण करते हैं और (**यत्**) जो संसार का उपकार करते हैं और (**यत्**) जो (**जनासः**) विद्वान् जन जैसे (**नद्यः**) नदियाँ (**आपः**) जलों का वैसे (**इदम्**) इस (**निवचनम्**) निश्चित वचन जिसका उस (**वपुः**) शरीर को (**चरन्ति**) प्राप्त होते और (**तस्थुः**) स्थित होते हैं वैसे इनको विशेष कर जानिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि जैसे रात्रि दिन क्रम से व्यवहार करते हैं वैसे क्रम से आहार विहार करके शरीर की रक्षा करनी चाहिए ॥ ५ ॥

मनुष्यों को चाहिए कि युवा अवस्था ही में स्वयंवर विवाह कर इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वि त॑न्वते॒ धियो॑ अस्मा॒ अपां॑सि॒ वस्त्रा॑ पु॒त्राय॑ मा॒तरो॑ वयन्ति ।
उ॒प॒प्र॒क्षे वृष॑णो॒ मोद॑माना दि॒वस्प॒था व॒ध्वो॑ यन्त्यच्छ॑ ॥६॥

पदार्थ—जो (**धियः**) कामना और (**मोदमानाः**) आनन्द करती हुई (**वध्वः**) युवावस्थायुक्त स्त्रियाँ (**पथा**) गृहाश्रम के मार्ग से वर्त्तमान (**उपप्रक्षे**) सम्बन्ध में (**वृषणः**) युवा पुरुषों को (**अच्छ**) उत्तम प्रकार (**यन्ति**) प्राप्त होती हैं वे (**मातरः**) माता (**अस्मै**) इस व्यवहार से सिद्ध (**पुत्राय**) पुत्र के लिए (**धियः**) बुद्धियों और (**अपांसि**) कर्म्मों को (**वि, तन्वते**) विस्तार करती हैं और (**वस्त्रा**) वस्त्रों को (**वयन्ति**) बनाती हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो स्त्री और पुरुष ब्रह्मचर्य्य से विद्याओं को पढ़कर युवावस्था में वर्त्तमान गृहाश्रम की कामना करते हुए परस्पर प्रीति से स्वयंवर विवाह करके धर्म से सन्तानों को उत्पन्न कर और उत्तम प्रकार शिक्षा देकर शरीर और आत्मा के बल का विस्तार करते हैं और जैसे वस्त्रों से शरीर का वैसे गृहाश्रम के व्यवहार का आच्छादन करके आनन्द करते हैं ॥ ६ ॥

तद॑स्तु मित्रावरुणा॒ तद॑ग्ने॒ शं योर॒स्मभ्य॑मि॒दम॑स्तु श॒स्तम् ।
अ॒शी॒महि॑ गा॒धमु॒त प्र॑ति॒ष्ठां नमो॑ दि॒वे बृ॑ह॒ते साद॑नाय ॥७॥१॥

पदार्थ—हे (**मित्रावरुणा**) प्राण और उदान वायु के सदृश वर्त्तमान माता पिता तथा अध्यापक और उपदेशक जन आप दोनों के सङ्ग से (**तत्**) उस (**शम्**) सुख को हम लोग (**अशीमहि**) प्राप्त होवें और (**अग्ने**) हे अग्ने (**अस्मभ्यम्**) हम लोगों के लिए (**तत्**) वह (**अस्तु**) हो (**योः**) दुःख से पृथग्भूत (**इदम्**) यह (**शस्तम्**) प्रशंसा करने योग्य (**अस्तु**) हो और (**गाधम्**) गम्भीर (**उत**) भी (**प्रतिष्ठाम्**) आदर को प्राप्त होकर (**बृहते**) बड़े (**सादनाय**) स्थितिमान् के लिए और (**दिवे**) कामना करते हुए के लिए (**नमः**) सत्कार हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य यथार्थवक्ता विद्वानों और अध्यापकों का सत्कार करते हैं वे ही सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

इस सूक्त में स्त्री पुरुषादि के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह सैंतालीसवाँ सूक्त और पहिला वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्याष्टचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य प्रतिभानुरात्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । १,३ स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २, ४, ५ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले अड़तालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मंत्र में फिर मनुष्यों को किस की इच्छा करनी चाहिए इस विषय को कहते हैं—

कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वयम् ।
आमेन्यस्य रजसो यदभ्र आँ अपो वृणाना वितनोति मायिनी ।।१।।

पदार्थ—(यत्) जो (आमेन्यस्य) चारों ओर से ज्ञान के विषय (रजसः) लोक के मध्य में और (अभ्रे) मेघ में (अपः) जलों का (आ, वृणाना) उत्तम प्रकार स्वीकार करती हुई और (मायिनी) बुद्धि जिस में विद्यमान वह नीति (वितनोति) विस्तारयुक्त करती है उस को (उ) भी (वयम्) हम लोग (महे) बड़े (प्रियाय) सुन्दर (धाम्ने) जन्म, स्थान और नाम स्वरूप के लिए (स्वक्षत्राय) अपने राज्य वा क्षत्रिय कुल के लिए और (स्वयशसे) अपना यश जिससे उस के लिए (कत्) कब (मनामहे) जानें ।। १ ।।

भावार्थ— मनुष्यों को चाहिये कि निरन्तर इस प्रकार से इच्छा करें जिस से राज्य, यश और धर्म्म बढ़े वैसे ही स्वीकार करके अनुष्ठान करें ।। १ ।।

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

ता अत्नत वयुनं वीरवक्षणं समान्या वृतया विश्वमा रजः ।
अपो अपाचीरपरा अपेजते प्र पूर्वाभिस्तिरते देवयुर्जनः ।।२।।

पदार्थ—(देवयुः) विद्वानों की कामना करता हुआ (जनः) जन (वीरवक्षणम्) वीरों के पहुंचाने को (वयुनम्) कर्म वा प्रज्ञान को तथा (समान्या) तुल्य (वृतया) आवरणवाली क्रिया से (विश्वम्) सम्पूर्ण (रजः) लोक लोकान्तर और जिन (अपाचीः) नीचे चलनेवाले (अपराः) अन्य (अपः) जलों को (अप, ईजते) चलाता है वा (पूर्वाभिः) प्राचीन जलों से (प्र, तिरते) पार होता है (ताः) उन जलों को आप लोग (आ) सब ओर से (अत्नत) निरन्तर प्राप्त होओ ।। २ ।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग विद्वानों के संग की कामना करते हुए सम्पूर्ण विद्याओं को ग्रहण कीजिये ।। २ ।।

फिर स्त्री पुरुष कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

आ ग्रावभिरहन्येभिरक्तुभिर्वरिष्ठं वज्रमा जिघर्ति मायिनि ।
शतं वा यस्य प्रचरन्त्स्वे दमे संवर्तयन्तो वि च वर्तयन्नहा ।।३।।

पदार्थ—हे (मायिनि) प्रशंसित बुद्धि से युक्त ! जिससे आप (ग्रावभिः) मेघों (अहन्येभिः) दिनों और (अक्तुभिः) रात्रियों से (वरिष्ठम्) अति श्रेष्ठ (वज्रम्) शस्त्रविशेष को (आ, जिघर्ति) प्रदीप्त करती हो (शतम्, वा) अथवा सैकड़ों का दल (यस्य) जिसके (स्वे) अपने (दमे) गृह में (प्रचरन्) चलता और (अहा) दिनों को (आ, वर्त्तयन्) अच्छे प्रकार व्यतीत करता हुआ व्यवहार को प्रकाशित करता है (च) और जिस की (संवर्त्तयन्तः) उत्तम प्रकार वर्त्तमान किरणें (वि) विशेष फैलती हैं उस को तू विशेष करके जान ।। ३ ।। .

भावार्थ—जो स्त्री और पुरुष भयरहित हों तो सूर्य्य और बिजुली के सदृश दिन रात्रि पुरुषार्थ को करके ऐश्वर्य्य से प्रकाशित हों ।। ३ ।।

राजा कैसे राज्य को करे इस विषय को कहते हैं—

तामस्य रीतिं परशोरिव प्रत्यनीकमख्यं भुजे अस्य वर्पसः ।
सचा यदि पितुमन्तमिव क्षयं रत्नं दधाति भरहूतये विशे ।।४।।

पदार्थ— हे मनुष्यो ! जो (अस्य) इस के (भुजे) पालन के लिए (आख्यम्) कहने योग्य (अनीकम्) सेनादल के (प्रति) प्रति (परशोरिव) परशु के संबन्ध को जैसे वैसे (ताम्) उस (रीतिम्) रीति को (दधाति) धारण करता है (अस्य) इस (वर्पसः) रूप के (सचा) सम्बन्धी (पितुमन्तमिव) अन्नवान् के सदृश (यदि) यदि (भरहूतये) पालन धारण करनेवाली वाणी आह्वान के लिए जिस की उस (विशे) प्रजा के लिए (रत्नम्) रमणीय (क्षयम्) निवासस्थान को धारण करता है तो वही राज्य करने के योग्य होता है ।। ४ ।।

भावार्थ—प्रजा की पालना के गूढनीति से राजा व्यवहारों का अनुष्ठान करे और सब की पालना यथार्थभाव से करे ।। ४ ।।

प्रशंसित सेना जिसकी ऐसा ही राजा जीतनेवाला होने को योग्य है—

स जिह्वया चतुरनीक ऋञ्जते चारु वसानो वरुणो यतन्नरिम् ।
न तस्य विद्म पुरुषत्वता वयं यतो भगः सविता दाति वार्यम् ।।५।।२।।

पदार्थ—जो (वरुणः) श्रेष्ठ (चारु) सुन्दर वस्त्र को (वसानः) धारण करता हुआ (चतुरनीकः) चार प्रकार की सेनायें जिसकी वह (जिह्वया) वाणी से (अरिम्) शत्रु का (यतन्) यत्न करता हुआ (पुरुषत्वता) बहुत पुरुषार्थ के साथ (भगः) ऐश्वर्य्य से युक्त (सविता) सत्य में प्रेरणा करनेवाला (वार्य्यम्) स्वीकार करने योग्य उपदेश को (दाति) देता है (सः) वह (ऋञ्जते) उत्तम प्रकार सिद्ध करता है (यतः) जिससे (वयम्) हम लोग (तस्य) उसके पुरुषार्थ के अन्त को (न) नहीं (विद्म) जानें ।।५।।

भावार्थ—जिसकी उत्तम सेना है वही राजा प्रशंसित होता है ।।५।।

इस सूक्त में विद्वान् और राजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ।।

यह अड़तालीसवां सूक्त और द्वितीय वर्ग समाप्त हुआ ।।

卐

अथ पञ्चर्चस्यैकोनपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य प्रतिप्रभ आत्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । १,२,४ भुरिक्त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।।

अब पांच ऋचावाले उनचासवें सूक्त का प्रारम्भ किया जाता है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को चाहिए कि परोपकार ही करें इस विषय को कहते हैं—

देवं वो अद्य सवितारमेषे भगं च रत्नं विभजन्तमायोः ।
आ वां नरा पुरुभुजा ववृत्यां दिवेदिवे चिदश्विना सखीयन् ।।१।।

पदार्थ—हे मनुष्यो ! मैं (अद्य) आज (वः) आप लोगों के लिये (आयोः) जीवन का (विभजन्तम्) विभाग करते हुए (देवम्) विद्वान् (सवितारम्) ऐश्वर्य्यवान् (रत्नम्) रमणीय धन (भगम्) और ऐश्वर्य्य को (च) भी (आ, ईषे) अच्छे प्रकार चाहता हूँ और हे (पुरुभुजा) बहुतों का पालन करते हुए (नरा) अग्रणी (अश्विना) राजा और प्रजाजनो (सखीयन्) मित्र के सदृश आचरण करता हुआ मैं (चित्) निश्चित (दिवेदिवे) प्रतिदिन (वाम्) आप दोनों को (आ, ववृत्याम्) अच्छे प्रकार वर्त्ताऊं ।।१।।

भावार्थ—जो मनुष्य मित्र होकर दूसरे के लिये सुख की इच्छा करें वे सदा ही आदर करने योग्य होवें ।।१।।

मेघ का कारण क्या है इस विषय को कहते हैं—

प्रति प्रयाणमसुरस्य विद्वान्त्सूक्तैर्देवं सवितारं दुवस्य ।
उप ब्रुवीत नमसा विजानञ्ज्येष्ठं च रत्नं विभजन्तमायोः ।।२।।

पदार्थ—हे जन (विद्वान्) विद्वान् आप (सूक्तैः) अच्छे अर्थों को कहनेवाले वेद के विभागों से (असुरस्य) मेघ की (प्रयाणम्) यात्रा का और (देवम्) प्रकाशित होते हुए (सवितारम्) मेघ को उत्पन्न करनेवाले का (प्रति) प्रत्यक्ष में (दुवस्य) सेवन करो और (नमसा) अन्न आदि के दानरूप सत्कार से (ज्येष्ठम्) अत्यन्त प्रशंसा करने योग्य (रत्नम्) धन को (च) भी (विजानन्) विशेष करके जानता हुआ (आयोः) जीवन के (विभजन्तम्) विभाग करते हुए को (उप, ब्रुवीत) कहे ।।२।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! सूर्य्य ही मेघ आदिकों का उत्पन्न करनेवाला है उस की विद्या का उपदेश दीजिए ।।२।।

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अदत्रया दयते वार्याणि पूषा भगो अदितिर्वस्त उस्रः ।
इन्द्रो विष्णुर्वरुणो मित्रो अग्निरहानि भद्रा जनयन्त दस्माः ।।३।।

पदार्थ—हे मनुष्यो विद्वान् (अदत्रया, वार्य्याणि) खाने और स्वीकार करने योग्य अन्नादिकों को (दयते) देता है और (पूषा) पुष्टिकर्त्ता (भगः) सेवन करने योग्य तथा (अदितिः) माता (उस्रः) किरणों का (वस्ते) आच्छादन करती है और (इन्द्रः) सूर्य्य (विष्णुः) व्यापक बिजुली (वरुणः) उदान (मित्रः) प्राण (अग्निः) प्रसिद्ध अग्नि (दस्माः) और दुःख के नाश करनेवाले (भद्रा) कल्याणकारक (अहानि) दिनों को (जनयन्त) उत्पन्न करते हैं उनको व्यर्थ मत व्यतीत करिये ।।३।।

भावार्थ—जैसे माता अनुग्रह से अन्न पान आदि के दान से सन्तानों का पालन करती है वैसे ही सूर्य्य आदि पदार्थ दिन और रात्रि से सब की रक्षा करते हैं ।। ३ ।।

फिर मनुष्यों को क्या वर्त्ताव करके क्या प्राप्त करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तन्नो अनर्वा सविता वरूथं तत्सिन्धव इषयन्तो अनु ग्मन् ।
उप यद्वोचे अध्वरस्य होता रायः स्याम पतयो वाजरत्नाः ।।४।।

पदार्थ—(अध्वरस्य) अहिंसारूप यज्ञ का (होता) ग्रहण करनेवाला मैं सबके प्रति (यत्) जिसका (उप वोचे) उपदेश करूं (तत्) उसके और (नः) हम लोगों के (वरूथम्) गृह (अनर्वा) घोड़े जिसके नहीं वह और (सविता) सूर्य्य तथा (तत्) उसको (इषयन्तः) प्राप्त होने वा प्राप्त कराते हुए (सिन्धवः) नदियां वा समुद्र (अनु, ग्मन्) पीछे चलते हैं, जिससे (वाजरत्नाः) विज्ञान धन है जिसके ऐसे हम लोग (रायः) धन के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ।।४।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो तुम सूर्य्य आदि के सदृश निरन्तर पुरुषार्थी होओ तो लक्ष्मीवान् होओ ।।४।।

मनुष्यों को क्या करके क्या प्राप्त करना चाहिए इस विषय को
अगले मन्त्र मे कहते हैं—

प्र ये वसुभ्य ईवदा नमो दुर्ये मित्रे वरुणे सूक्तवाचः ।

अवैत्वभ्वं कृणुता वरीयो दिवस्पृथिव्योरवसा मदेम ॥५॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**ये**) जो (**मित्रे**) मित्र (**वरुणे**) उत्तम अतिथि के निमित्त (**ईवत्**) गतिमान् तथा रक्षणवान् पदार्थ को (**प्र, आ, दु**) उत्तम प्रकार देवें वा (**ये**) जो तुम लोग (**वसुभ्य**) धनो के लिए (**नम**) अन्न को (**कृणुता**) सिद्ध करो उनसे युक्त (**सूक्तवाच**) उत्तम प्रशंसित वाणीवाले हम लोग (**दिव , पृथिव्योः**) प्रकाश सूर्य्य और भूमि के मध्य मे जिमसे (**वरीय , अभ्वम्**) अत्युत्तम तथा अत्यन्त धनादि (**अव, एतु**) प्राप्त हो उसकी (**अवसा**) रक्षा से (**मदेम**) आनन्दित हो ॥५

भावार्थ—हे मनुष्यो ! पुरुषार्थ से लक्ष्मी को और उससे अन्न आदि को इकट्ठा कर बड सुख को प्राप्त होकर मबका रक्षण करो ॥५॥

इस सूक्त मे सूर्य और विद्वानो के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की
पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह उनचासवां सूक्त और तीसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । विश्वेदेवा देवता । स्वराडुष्णिक् । २ निचृदुष्णिक् । ३ भुरिगुष्णिक्छन्द । ऋषभ स्वर । ४, ५ निचृदनुष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥

अब पांच ऋचावाले पचासवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र मे मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों के साथ मित्रता से विद्या और धन को प्राप्त होकर यश बढावें इस विषय को कहते है—

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् ।

विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे ॥१॥

पदार्थ—(**विश्वः**) सम्पूर्ण (**मर्तः**) मनुष्य (**नेतु**) अग्रणी (**देवस्य**) विद्वान् की (**सख्यम्**) मित्रता को (**वुरीत**) स्वीकार करें और (**विश्व**) सम्पूर्ण (**राये**) धन के लिये (**इषुध्यति**) बाणो को धारण करता है और जिससे आप (**पुष्यसे**) पुष्ट होते हैं उस (**द्युम्नम्**) यश को आप (**वृणीत**) स्वीकार करिए ॥ १ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यो को चाहिये कि विद्या धन और शरीरपुष्टि की प्राप्ति के लिये विद्वानो की शिक्षा, शरीर और आत्मा से परिश्रम निरन्तर करें ॥१॥

**फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को
अगले मन्त्र में कहते है—**

ते ते देव नेतर्ये चेमाँ अनुशसे

ते राया ते ह्या३पृचे सचेमहि सचथ्यैः ॥२॥

पदार्थ—हे (**नेत**) अग्रणी (**देव**) विद्वन् (**ये**) जो (**ते**) आपके (**अनुशसे**) अनुशासन के लिए (**इमान्**) इनको सम्बन्धित करते है (**ते, ते**) वे वे सत्कार करने योग्य हो (**च**) और जो (**राया**) धन से सब की रक्षा करते हैं (**ते**) वे प्रीति से युक्त होते हैं और जो (**हि**) निश्चित (**आपृचे**) सब ओर से सम्बन्ध के लिये (**सचथ्यै**) पूर्ण सम्बन्धो से उत्पन्न हुओं के साथ वर्त्तमान है उन के साथ हम लोग (**सचेमहि**) मिलें ॥२॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! आप इन वर्त्तमान और समीप मे स्थित जनो को शिक्षा दीजिए और विद्वानो के साथ मिल के विद्याओं को प्राप्त हूजिए ॥२॥

**मनुष्यों को किस का सत्कार करना और क्या प्राप्त करना चाहिए इस
विषय को अगले मन्त्र मे कहते है—**

अतो न आ नॄनतिथीनतः पत्नीर्दशस्यत ।

आरे विश्वं पथेष्ठां द्विषो युयोतु यूयुविः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**अत**) इस कारण से (**न**) हम लोगो और (**नॄन्**) अधर्म्म से अलग कर धर्म्म के मार्ग को चलानेवाले (**अतिथीन्**) जिन के आगमन की तिथि नियत नही उनका (**अत**) इसके अनन्तर (**पत्नी**) स्त्रियो को (**आ**) सब प्रकार से (**दशस्यत**) प्रबल करिये और (**विश्वम्**) सम्पूर्ण जन को तथा (**पथेष्ठाम्**) जो धर्मयुक्त पथ मे स्थित हो उसको (**आरे**) समीप मे प्रबल करिये और (**यूयुवि**) विभाग करनेवाला (**द्विष.**) द्वेष्टा जनो को दूर मे (**युयोतु**) विशेष करके विभक्त करे ॥३॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि धार्मिक अतिथियो का उत्तम प्रकार सेवा कर और मिल के विवेक को प्राप्त होकर द्वेष आदि दोषो को दूर करें ॥३॥

**जो अग्नि के सदृश व्यवहार के धारण करनवाले होवें वे धीर होते हैं
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—**

यत्र वह्निरभिहितो दुद्रवद्द्रोण्यः पशुः ।

नृमणा वीरपस्त्योऽर्णा धीरेव सनिता ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यत्र**) जिसमें (**द्रोण्यः**) शीघ्र चलने वालों मे उत्पन्न (**पशु.**) जो देखा जाता है उसके सदृश (**अभिहितः**) कहा गया वा धारण किया गया (**वह्नि**) प्राप्त करनेवाला अग्नि (**दुद्रवत्**) अत्यन्त चलता है वहाँ (**अर्णा**) प्राप्त करनेवाली (**धीरेव**) ध्यानवती के सदृश (**नृमणा**) मनुष्यों में जिसका मन (**वीरपस्त्य**) जिसके गृह मे वीर बहु पुत्र (**सनिता**) विभाग करनेवाले होवें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो अग्नि के सदृश तेजस्वी और वेग से युक्त होवें वे सत्य और असत्य के विभाग करनेवाले होवें ॥४॥

मनुष्यो को क्या मांगना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

एष ते देव नेता रथस्पतिः शं रयिः ।

शं राये शं स्वस्तय इषः स्तुतो मनामहे देवस्तुतो मनामहे ॥५॥४॥

पदार्थ—हे (**नेत.**) प्राप्ति करानेवाले (**देव**) विद्वान् (**ते**) आपका (**एष**) यह (**रथस्पति**) वाहन का स्वामी (**शम्**) सुखरूप (**रयि.**) धन और (**शम्**) सुख (**राये**) धन के लिए वा (**स्वस्तये**) सुख के लिए (**शम्**) कल्याण (**इष· स्तुत**) अन्न आदि की स्तुति करनेवाला और जो (**देवस्तुतः**) विद्वानो से प्रशंसित है उनका हम लोग (**मनामहे**) याचना करते हैं और हम लोग (**मनामहे**) जानते हैं ॥५॥

भावार्थ—जो विद्वानो मे प्रशंसित और कल्याणकारक पदार्थ होवें उनको हम लोग ग्रहण करें ॥५॥

इस सूक्त मे विद्वानो के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की
इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह पचासवां सूक्त और चतुर्थ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चदशर्चस्यैकपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषि । विश्वेदेवा देवता । १ गायत्री । २, ३, ४ निचृद्गायत्री छन्दः । षड्ज· स्वर । ५, ८, ६, १० निचृदुष्णिक् । ६ उष्णिक । ७ विराडुष्णिक् छन्द. । ऋषभ स्वर । ११निचृत्त्रिष्टुप् । १२ त्रिष्टुप् छन्द. । धैवत स्वर । १३ पङ्क्तिश्छन्द. । पञ्चम· स्वर· । १४,१५ अनुष्टुप्छन्द । गान्धार. स्वर ॥

अब पन्द्रह ऋचावाले इक्यावनवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र मे विद्वान् जन विद्वानों के साथ क्या करें यह उपदेश किया जाता है—

अग्ने सुतस्य पीतये विश्वैरूमेभिरा गहि ।

देवेभिर्हव्यदातये ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वन् आप (**विश्वै.**) सम्पूर्ण (**ऊमेभि·**) रक्षा आदि करनेवाले (**देवेभि**) विद्वानो के साथ (**सुतस्य**) निकाले हुए ओषधिरस के (**पीतये**) पान करने के लिए और (**हव्यदातये**) देने योग्य वस्तु के देने के लिए (**आ, गहि**) प्राप्त हूजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन अत्यन्त विद्वान् के साथ सम्पूर्ण जनो को उत्तम प्रकार बोध देवें तो सब आनन्दित होवें ॥ १ ॥

कैसे मनुष्य को होना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

ऋतधीतय आ गत सत्यधर्म्माणो अध्वरम् ।

अग्नेः पिबत जिह्वया ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (**ऋतधीतय**) सत्य के धारण करनेवाले (**सत्यधर्म्माण.**) सत्य धर्म जिनका ऐसे विद्वानो आप लोग (**अध्वरम्**) अहिंसारूप व्यवहार को (**आ, गत**) प्राप्त हूजिए और (**अग्ने**) अग्नि की (**जिह्वया**) जिह्वा से रस को (**पिबत**) पीजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग सत्यधर्म्म के धारण से अत्यन्त सुख को प्राप्त हूजिये ॥ २ ॥

विद्वानों के साथ विद्वान् क्या करे इस विषय को कहते है—

विप्रेभिर्विप्र सन्त्य प्रातर्यावभिरा गहि ।

देवेभिः सोमपीतये ॥ ३॥

पदार्थ—हे (**सन्त्य**) वर्त्तमान मे श्रेष्ठ (**विप्र**) बुद्धिमान् आप (**प्रातर्यावभि**) प्रातःकाल मे जानेवाले (**देवेभि·**) विद्वानो के और (**विप्रेभि·**) बुद्धिमानो के साथ (**सोमपीतये**) सोमलता नामक ओषधि के रस के पानके लिए (**आ, गहि**) प्राप्त हूजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—जब विद्वानो के साथ विद्वानो का सङ्ग होता है तब ऐश्वर्य का प्रादुर्भाव होता है ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यो को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

अयं सोमश्चमू सुतोऽमत्रे परि षिच्यते ।

प्रिय इन्द्राय वायवे ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**अयम्**) यह (**वायवे**) बलवान् (**इन्द्राय**) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त पुरुष के लिये (**सुत:**) उत्पन्न किया गया (**प्रिय:**) सुन्दर (**सोम:**) ऐश्वर्य का योग (**अमत्रे**) पात्र में (**परि**) सब ओर से (**सिच्यते**) सींचा जाता है वह (**चमू**) दो प्रकार की सेनाओं को सब प्रकार से वृद्धि करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो वैद्यजन ओषधियों के सारभागों को निकालकर रोगरहित मनुष्यों को करें तो सब ऐश्वर्यों से युक्त होते हैं ॥ ४ ॥

मनुष्यों को क्या भोजन करना और क्या पीना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

वायवा याहि वीतये जुषाणो हव्यदातये ।

पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः ॥५॥

पदार्थ—हे (**वायो**) अत्यन्त बल से युक्त आप (**हव्यदातये**) देने योग्य वस्तु के देने के लिए और (**वीतये**) विज्ञान आदि की प्राप्ति के लिए (**अभि, प्रय**) सब ओर से सुन्दर जल का (**जुषाणः**) सेवन करते हुए (**आ, याहि**) प्राप्त हूजिये और (**सुतस्य**) उत्पन्न हुए (**अन्धस**) अन्न के रस का (**पिबा**) पान करिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! आप रोग और प्रमाद के नाश करने और बुद्धि के बढ़ानेवाले अन्न को खाइए और रस को पीजिए ॥ ५ ॥

अब राजा और अमात्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इन्द्रश्च वायवेषां सुतानां पीतिमर्हथः ।

तान् जुषेथामरेपसावभि प्रयः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (**वायो**) मुख्यपुरुष (**इन्द्र च**) और राजा आप दोनों (**एषाम्**) इन वर्त्तमान (**सुतानाम्**) पालना से छोटे अर्थात् सिद्ध हुए पदार्थों के (**पीतिम्**) पान के (**अर्हथ**) योग्य होते हैं (**तान्**) उनका और (**अरेपसौ**) दयालु हुए (**प्रय**) सुन्दर अन्न का (**अभि, जुषेथाम्**) सेवन करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—जहां राजा और मन्त्री धार्मिक होवें वहां सम्पूर्ण योग्यता होवे ॥ ६ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः ।

निम्नं न यन्ति सिन्धवोऽभि प्रयः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**सिन्धव**) नदियां (**निम्नम्**) अर्थात् नीचे स्थल को (**न**) जैसे वैसे (**दध्याशिर**) धारण करने और खाने योग्य (**सुता**) उत्पन्न हुए (**सोमास:**) ऐश्वर्य से युक्त पदार्थ (**वायवे**) वायु के सदृश बलयुक्त (**इन्द्राय**) अत्यन्त ऐश्वर्यवाले के लिए (**प्रय**) अत्यन्त प्रिय को (**अभि**) सब ओरसे (**यन्ति**) प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे नदियां समुद्र को प्राप्त होती हैं वैसे ही बड़ी ओषधियों के सेवन करनेवाले सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

अब अग्नि के समान विद्वान् कैसा है इस विषय को कहते हैं—

सजूर्विश्वेभिर्देवेभिरश्विभ्यामुषसा सजूः ।

आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्निके सदृश तेजस्वी विद्वान् जैसे अग्नि (**विश्वेभि**) सम्पूर्ण (**देवेभि**) पृथिवी आदिकों से (**सजू:**) संयुक्त तथा (**अश्विभ्याम्**) प्रकाशित और अप्रकाशित लोकों तथा (**उषसा**) प्रातःकाल से (**सजू**) संयुक्त (**सुते**) उत्पन्न जगत् में (**अत्रिवत्**) व्यापक के सदृश है वैसे (**आ, याहि**) प्राप्त हूजिए और (**रण**) उपदेश करिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो बिजुली सब पदार्थों में व्याप्त है उसको विशेष करके जानिए ॥ ८ ॥

सजूर्मित्रावरुणाभ्यां सजूः सोमेन विष्णुना ।

आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वन् आप (**मित्रावरुणाभ्याम्**) प्राण और उदान पवनों से (**सजू**) संयुक्त (**सोमेन**) ऐश्वर्य्य वा चन्द्र से और (**विष्णुना**) व्यापक आकाश से (**सजू**) संयुक्त और (**सुते**) उत्पन्न हुए जगत् में (**अत्रिवत्**) व्यापक के सदृश है उसके जानने के लिए (**आ, याहि**) प्राप्त हूजिये और हम लोगों के लिए सत्य का (**रण**) उपदेश कीजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य प्राण और अपान आदि में स्थित बिजुली की विद्या को जानें तो बहुत सुख को प्राप्त होवें ॥ ९ ॥

फिर वह कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सजूरादित्यैर्वसुभिः सजूरिन्द्रेण वायुना ।

आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥ १० ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के समान विद्वान् जो (**आदित्यै:**) महीनों और (**वसुभि:**) पृथिवी आदिकों के साथ (**सजू**) संयुक्त और (**वायुना**) बलवान् (**इन्द्रेण**) जीव के साथ (**सजू:**) संयुक्त (**सुते**) उत्पन्न हुए जगत्में (**अत्रिवत्**) व्यापक के सदृश वर्त्तमान है उसके जनाने के लिए (**आ, याहि**) प्राप्त हूजिये और (**रण**) उपदेश करिये ॥ १० ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो मन सम्बन्धी बिजुलीरूप अग्नि आकाश में स्थित हुआ वर्त्तमान है उसको जानकर कार्य्यों में उपयोग करिये ॥ १० ॥

फिर विद्वद्विषय को कहते हैं—

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।

स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**अश्विना**) अध्यापक और उपदेशक जन (**अनर्वण**) अश्वरहित का (**स्वस्ति**) सुख (**मिमीताम्**) रचें और (**भग**) ऐश्वर्य्य को करनेवाला वायु (**न**) हम लोगों के लिए (**स्वस्ति**) सुख (**देवी**) प्रकाशित (**अदिति**) अखण्डविद्या (**न**) हम लोगों के लिए (**स्वस्ति**) सुख (**सुचेतुना**) उत्तम विज्ञान से (**द्यावापृथिवी**) प्रकाश और भूमि हम लोगों के लिए (**स्वस्ति**) सुख और (**पूषा**) पुष्टि करनेवाला दुग्धादि पदार्थ और (**असुर**) मेघ हम लोगों के लिए सुख को (**दधातु**) धारण करे वैसे आप लोगों के लिए भी वे सुख को धारण करें ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पदार्थविद्या से जिन पदार्थों का उपयुक्त करें अर्थात् काम में लावें वे उनसे उपकार ग्रहण करने को समर्थ होवें ॥ ११ ॥

फिर मनुष्य कैसे विद्यावृद्धि करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।

बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (**स्वस्तये**) सुख के लिए (**वायुम्**) वायुविद्या और (**सोमम्**) ऐश्वर्य्य का (**उप, ब्रवामहै**) उपदेश देवें वैसे सुनकर आप लोग अन्यों के प्रति उपदेश दीजिए और (**य**) जो (**भुवनस्य**) लोक का (**पति**) स्वामी है वह (**स्वस्तये**) उपद्रव दूर होने के लिए (**सर्वगणम्**) सम्पूर्ण समूह जिसमें उस (**बृहस्पतिम्**) बड़ी वाणियों के स्वामी को और (**न**) हम लोगों के लिए (**स्वस्ति**) सुखको धारण करे और जैसे (**आदित्यास**) अड़तालीस वर्षपरिमित ब्रह्मचर्य्य से किया विद्याभ्यास जिन्होंने तथा जो मास के सदृश सम्पूर्ण विद्याओं में व्याप्त वे हम लोगों के अर्थ (**स्वस्तये**) अत्यन्त सुखके लिए (**भवन्तु**) होवें वैसे आप लोगों के लिए भी हों ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य परस्पर पदार्थविद्या को सुन और अभ्यास करके विद्वान् होवें ॥ १२ ॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को कहते हैं—

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।

देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (**अद्य**) आज (**विश्वे, देवा**) सम्पूर्ण विद्वान् जन (**स्वस्तये**) सुख के लिए (**न**) हम लोगों की (**अवन्तु**) रक्षा करें और (**स्वस्तये**) सुख के लिए (**वैश्वानर**) समस्त मनुष्यों में प्रकाशमान (**वसु**) सर्वत्र वसनेवाला (**अग्नि**) अग्नि रक्षा करे और (**ऋभव**) बुद्धिमान् (**देवा**) विद्वान्जन (**स्वस्तये**) विद्यासुख के लिए रक्षा करें और (**रुद्र**) दुष्टों को दण्ड देनेवाला (**स्वस्ति**) सुख की भावना करके (**न**) हम लोगों की (**अंहस**) अपराध से (**पातु**) रक्षा करे ॥ १३ ॥

भावार्थ—विद्वानों की योग्यता है कि उपदेश और अध्यापन से सब मनुष्यों की निरन्तर रक्षा करके वृद्धि करावें ॥ १३ ॥

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।

स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे (**अदिते**) खण्डितविद्या से रहित (**रेवति**) बहुत धन से युक्त आप (**पथ्ये**) मार्गयुक्त कर्म्म में जैसे (**मित्रावरुणा**) प्राण और उदान (**न:**) हम लोगों के लिए (**स्वस्ति**) सुख (**इन्द्र, च**) और वायु (**स्वस्ति**) सुख को (**अग्नि, च**) और बिजुली (**स्वस्ति**) सुख (**न**) हम लोगों के लिए करती है वैसे (**स्वस्ति**) सुख (**कृधि**) करिये ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो सब जीवों के लिए सुख देता है वही विद्वान् प्रशंसित होता है ॥ १४ ॥

मनुष्यों को विद्वानों के संग से जो धर्ममार्ग उससे चलना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।

पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥१५॥१७॥

पदार्थ—हम लोग (**सूर्याचन्द्रमसाविव**) सूर्य्य और चन्द्रमा के सदृश (**स्वस्ति**) सुख (**पन्थाम्**) मार्गों के (**अनु, चरेम**) अनुगामी हों और (**पुन:**)

फिर (ददता) दान करने (अघ्नता) और नहीं नाश करनेवाले (जानता) विद्वान् के साथ (सम्, गमेमहि) मिलें ॥ १५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य और चन्द्रमा नियम से दिनरात्रि चलते है वैसे न्याय के मार्ग को प्राप्त हूजिये । और सज्जनो के साथ समागम करिये ॥ १५ ॥

इस सूक्त मे अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह इक्यावनवां सूक्त और सप्तम वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तदशर्चस्य द्विपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य श्यावाश्व आत्रेय ऋषि । मरुतो देवता । १, ४, ५, १५ विराडनुष्टुप् । २, ७, १० निचृदनुष्टुप् । ६ पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर । ३, ६, ११ विराडुष्णिक् छन्द । ऋषभ स्वर । ८, १२, १३ अनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर । १४ बृहती । १६ निचृद्बृहती । १७ बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥

अब सत्रह ऋचावाले बावनवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से मनुष्य सत्कार करने योग्यो का सत्कार करें इस विषय को कहते हैं—

प्र श्या॑वाश्व धृष्णुया॒र्चा म॒रुद्भि॒र्ऋक्व॑भिः ।
ये अ॑द्रो॒घम॑नुष्व॒धं श्रवो॒ मद॑न्ति य॒ज्ञियाः॑ ॥१॥

पदार्थ—हे (श्यावाश्व) कालीशिखा वाले घोडो से युक्त (ये) जो (यज्ञिया) सत्कार करनेवाले (अद्रोघम्) द्रोह से रहित (अनुष्वधम्, श्रव) अन्न और श्रवण के अनुकूल वर्त्तमान (मदन्ति) आनन्दित होते है उनकी (ऋक्वभि) सत्कार करनेवाले (मरुद्भि) मनुष्यो के साथ (धृष्णुया) दृढता से (प्र, अर्चा) सत्कार करो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सत्कार करने योग्यो का सत्कार करते है वे सब सत्कृत होते है ॥ १ ॥

ते हि स्थि॒रस्य॒ शव॑सः॒ सखा॑यः॒ सन्ति॑ धृष्णु॒या ।
ते याम॒न्ना धृ॑ष॒द्विन॒स्त्मना॑ पान्ति॒ शश्व॑तः ॥ २ ॥

पदार्थ—जो (स्थिरस्य) स्थिर (शवस) बल के (धृष्णुया) दृढत्वादि गुणो से युक्त (सखाय) मित्र (सन्ति) है (ते) वे (हि) ही (त्मना) आत्मा से (यामन्) मार्ग मे (धृषद्विन) बहुत दृढत्व आदि गुणो से युक्त (आ, पान्ति) अच्छे प्रकार पालन करते हैं और जो मार्ग म प्रवृत्त है (ते) वे (शश्वत) निरन्तर पथिको की रक्षा करते है ॥ २ ॥

भावार्थ—विद्वानो का ही मित्रपन और रक्षण स्थिर होता है, अन्य किसी का नही ॥ २ ॥

ते स्प॒न्द्रासो॒ नोक्षणो॒ऽति॑ ष्कन्दन्ति॒ शर्व॑रीः ।
म॒रुता॒मधा॒ महो॑ दि॒वि क्ष॒मा च॑ मन्महे ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वान् जो (मह) बडे (दिवि) प्रकाश और (मरुताम्) मनुष्यो के समीप मे (क्षमा) क्षमा (अधा, च) और इसके अनन्तर (स्पन्द्रास) कुछ चेष्टा करते हुओ के (न) सदृश (उक्षण) सेचन करने वा (शर्वरी) रात्रियो को (अति, स्कन्दन्ति) अत्यन्त प्राप्त होते हैं उनको हम लोग (मन्महे) विशेष प्रकार से जानते है (ते) वे सब मनुष्यो को जानने योग्य है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र म उपमालङ्कार है—जो मनुष्य दिन रात्रि पुरुषार्थ करते हैं वे दु ख का उल्लघन करते है ॥ ३ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

म॒रुत्सु॑ वो दधीमहि॒ स्तोमं॑ य॒ज्ञं च॑ धृष्णु॒या ।
विश्वे॒ ये मानु॑षा यु॒गा पान्ति॒ मर्त्यं॑ रि॒षः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (ये) जो (विश्वे) सब आप लोग (धृष्णुया) दृढ (मानुषा) मनुष्यो के सम्बन्धी (युगा) वर्षो का (स्तोमम्) प्रशसा करने योग्य (यज्ञम्) पुरुषार्थ को (मर्त्यम्, च) और मनुष्य को (रिष) हिंसक से (पान्ति) रक्षते अर्थात् बचाते है उन (व) आप लोगो को हम लोग (मरुत्सु) मनुष्यो मे (दधीमहि) धारण करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो देव और मनुष्यसम्बन्धी युगो और वर्षो को जानते है वे गणित विद्या के जाननेवाले होते है ॥ ४ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है—

अर्ह॑न्तो॒ ये सु॒दान॑वो॒ नरो॒ अस॑ामिशवसः ।
प्र य॒ज्ञं य॒ज्ञिये॑भ्यो दि॒वो अ॑र्चा म॒रुद्भ्यः॑ ॥५॥८॥

पदार्थ—हे विद्वन् (ये) जो (यज्ञियेभ्य) यज्ञ करनेवालो के लिये (यज्ञम्) सत्कारनामक कर्म्म को (अर्हन्त) योग्यता को प्राप्त होने हुए (सुदानव) उत्तम दान देनेवाले (असामिशवस) अखण्डित बलयुक्त (नर) जन (दिव) कामना करते हुए (मरुद्भ्य) मनुष्यो के लिए सत्कारनामक कर्म्म को सिद्ध करते है उनका आप (प्र,अर्चा) सत्कार करिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्य जितने बल बढाने की इच्छा करे उतना ही बढ सकता है ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषयो को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ रु॒क्मैरा यु॒धा नर॑ ऋ॒ष्वा ऋ॒ष्टीर॑सृक्षत ।
अन्वे॑नाँ॒ अह॑ वि॒द्युतो॑ म॒रुतो॒ जज्झ॑तीरिव भा॒नुर॑र्त॒ त्मना॑ दि॒वः ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे (ऋष्वा) बडे (नर) अग्रणी जन (युधा) युद्ध म (ऋष्टी) प्राप्त हुए सेनाओ के जन (आ, अनु, असृक्षत) सब प्रकार अनुकूल उत्पन्न करें और (एनान्) इनका (अह) ग्रहण करने मे (जज्झतीरिव) शब्द करने वा शीघ्र चलने वालियो के सदृश (विद्युत) बिजुली और (मरुत) पवन की (दिव) कामना करते हुए जन और (भानु) दीप्ति (त्मना) आत्मा मे जानने योग्य है उनका आप (रुक्मै) रोचमान प्रदीप्तो से (आ) सब प्रकार (अर्त) प्राप्त हूजिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—विद्वान् जन मनुष्यो के लिए बिजुली आदि विद्याओ को प्राप्त करावे ॥ ६ ॥

ये वा॑वृ॒धन्त॒ पार्थि॑वा॒ य उ॒राव॒न्तरि॑क्ष॒ आ ।
वृ॒जने॑ वा न॒दीनां॑ स॒धस्थे॑ वा म॒हो दि॒वः ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (ये) जो (उरौ) बहुत रूपवाले (अन्तरिक्षे) आकाश म (पार्थिवा) पृथिवी मे जाने गये पदार्थ (वावृधन्त) अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होते है (ये,वा) अथवा जो (नदीनाम्) नदियो के (सधस्थे) समान स्थान मे (वृजने, वा) वा वर्जन है जिसमे उसमे (आ) सब प्रकार अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होते है और (मह) महान् (दिव) कामना करनेवाले वृद्धि को प्राप्त होते हैं उनको आप लोग विशेषकर के जानिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो पृथिवी आदिको की विद्या को जानते है वे सब प्रकार वृद्धि को प्राप्त होते है ॥ ७ ॥

फिर विद्वान् क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

शर्धो॒ मारु॑त॒मुच्छं॑स स॒त्यश॑वस॒मृभ्व॑सम् ।
उ॒त स्म॒ ते शु॒भे नरः॒ प्र स्प॒न्द्रा यु॑जत॒ त्मना॑ ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वन् आप (मारुतम्) मनुष्यो के सम्बन्धी इस (शर्ध) बल और (सत्यशवसम्) सत्य बल जिसका उस (ऋभ्वसम्) बुद्धिमान् को ग्रहण करने वाले की (उत, शस) अच्छे प्रकार स्तुति करो (उत) और (स्म) निश्चित (ते) वे (स्पन्द्रा) धीरतायुक्त गमनवाले (नर) नायक आप लोग (शुभे) उत्तम काय मे (त्मना) आत्मा से परमात्मा को (प्र, युजत) प्रयुक्त करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि उत्तम बल और परमात्मा की निरन्तर प्रशसा करें ॥ ८ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है—

उ॒त स्म॒ ते परु॑ष्ण्या॒मूर्णा॑ वसत शु॒न्ध्यवः॑ ।
उ॒त प॒व्या रथा॑ना॒मद्रिं॑ भिन्द॒न्त्योज॑सा ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (परुष्ण्याम्) पालन करनेवाली मे (शुन्ध्यव) शोधन करनेवाली (रथानाम्) वाहनो के (पव्या) रथ के चक्रो पहियो की कीलो के सदृश (ओजसा) बल म (अद्रिम्) मेघ को (भिन्दन्ति) तोडती है (उत) और वर्षाती है वे (ते) तुम्हारे लिये हो (उत) और (स्म) निश्चित (ऊर्णा) रक्षित हुए यहाँ सत्कार किये गये आप लोग (वसत) बसिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—जैसे मेघ वर्षते हुए पृथिवी का विदीर्ण करते है वैसे ही श्रेष्ठ पुरुषो का सग अशुद्धि का नाश करता है ॥ ९ ॥

मनुष्यों को समस्त विद्या धर्ममार्ग ढूढने चाहिएं इस विषय को कहते हैं—

आप॑थयो॒ विप॑थयो॒ऽन्तस्प॑था॒ अनु॑पथाः ।
ए॒तेभि॒र्मह्यं॒ नाम॑भिर्य॒ज्ञं वि॑ष्टा॒र ओ॑हते ॥१०॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (आपथय) सब ओर से अभिमुख मार्ग जिन का वे और (विपथय) अनेक प्रकार के वा विरुद्ध मार्ग जिनके वे और (अन्तस्पथा) भीतर मार्ग जिनके वे और (अनुपथा) अनुकूल मार्ग जिनका वे (एतेभि) इन मार्गों वा मार्गो म स्थित हुआ और (नामभि) सज्ञाओ से (मह्यम्) मेरे लिए (यज्ञम्) विद्वानो के सत्कार आदि कर्म का (विष्टार) विस्तार (ओहते) प्राप्त होता है ॥ १० ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग सम्पूर्ण विद्याओ और उनसे उत्पन्न हुए क्रिया कौशल मार्गो का यथावत् प्रत्यक्ष करके और अन्यो को भी उत्तम प्रकार जनाओ सिखाओ ॥ १० ॥

मनुष्य क्रम से विद्यादि व्यवहार को प्राप्त होवें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

अधा॒ नरो॒ न्यो॑ह॒तेऽधा॑ नि॒युत॑ ओहते ।
अधा॒ पारा॑वता॒ इति॑ चि॒त्रा रू॒पाणि॒ दर्श्या॑ ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**अधा**) इस के अनन्तर जो (**नरा**) विद्याओं में अग्रणी जन विद्याओं के कार्यों को (**नि**) निश्चय करके (**ओहते**) प्राप्त होता वा प्राप्त कराता है और (**अधा**) इसके अनन्तर (**नियुतः**) निश्चित वायु आदि गमन वाला (**ओहते**) प्राप्त होता वा प्राप्त कराता है (**अधा**) इसके अनन्तर (**पारावता**) दूरदेश में होनेवाले (**दर्शा**) देखने के योग्य (**चित्रा**) अद्भुत (**रूपाणि**) रूपों के (**इति**) इस प्रकार से प्रत्यक्ष करता है वह कृतकृत्य होता है ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि पहले ब्रह्मचर्य से विद्याओं को पढ़ कर उसके अनन्तर कार्यों के रचने में प्रवीणता को प्रत्यक्ष करके फिर अनुमान से दूर में स्थित अदृश्य पदार्थों के विज्ञान को करके आश्चर्ययुक्त कार्य करें ॥ ११ ॥

फिर मनुष्य कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

छन्दःस्तुभः कुभन्यव उत्समा कीरिणो नृतुः ।

ते मे के चिन्न तायव ऊमा आसन्दृशि त्विषे ॥१२॥

पदार्थ—जो (**के**) कोई (**चित्**) भी (**छन्दःस्तुभः**) छन्दों से स्तुति करनेवाले (**उत्सम्**) कूप के सदृश (**कुभन्यवः**) अपने को आर्द्रपन की इच्छा करते हुए (**ऊमाः**) सबके रक्षण आदि करनेवाले (**दृशि**) दर्शक में (**मे**) मेरे (**त्विषे**) शरीर और आत्मा के प्रकाश और बल के लिए (**आसन्**) होवें (**ते**) वे (**नृतु**) नाचनेवाले के सदृश (**आ**) सब ओर से (**कीरिणः**) विक्षेप व्याकुल करनेवाले (**तायवः**) चोर जन (**न**) न होवें ॥ १२ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अन्यजनों के विक्षेप और चोरी करके जैसे पिपासा से व्याकुल के लिए जल वैसे शान्ति के देनेवाले होकर सब के शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते हैं वे ही श्रेष्ठ यथार्थवक्ता होते हैं ॥ १२ ॥

मनुष्यों को किसका संग करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

य ऋष्वा ऋष्टिविद्युतः कवयः सन्ति वेधसः ।

तमृषे मारुतं गणं नमस्या रमया गिरा ॥१३॥

पदार्थ—हे (**ऋषे**) वेदार्थ के जाननेवाले (**ये**) जो (**ऋष्टिविद्युतः**) ऋष्टिविद्युत् अर्थात् बिजली में विज्ञान जिनका वे (**कवयः**) सम्पूर्ण शास्त्रों में निपुण (**ऋष्वाः**) बड़े महाशय (**वेधसः**) बुद्धिमान् जन (**सन्ति**) हैं उनका (**गिरा**) उत्तम प्रकार शिक्षित सत्य कोमल वाणी से (**नमस्या**) सत्कार करिये और इससे (**तम्**) उस (**मारुतम्**) विद्वान् मनुष्यों के (**गणम्**) समूह को (**रमया**) क्रीड़ा से आनन्दित करिये ॥ १३ ॥

भावार्थ—जो महाशय यथार्थवक्ता जनों की सेवा और सत्कार कर उत्तम शिक्षा को प्राप्त होकर सत्य और असत्य के विवेक के लिए उपदेश करके सब मनुष्यों को आनन्दित करते हैं वे सब लोगों से सत्कार पाने योग्य होते हैं ॥ १३ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

अच्छ ऋषे मारुतं गणं दाना मित्रं न योषणा ।

दिवो वा धृष्णव ओजसा स्तुता धीभिरिषण्यत ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे (**ऋषे**) विद्वन् आप (**योषणा**) स्त्री और (**मित्रम्**) मित्र के (**न**) सदृश (**मारुतम्**) मनुष्य सम्बन्धी (**गणम्**) समूह को (**अच्छ**) उत्तम प्रकार प्राप्त हूजिए (**वा**) वा जैसे (**दिवः**) कामना करते हुए (**धृष्णवः**) धृष्ट-प्रगल्भ दृढ़ निश्चयवाले (**स्तुताः**) प्रशंसित जन (**धीभिः**) बुद्धियों और (**ओजसा**) बल आदि से (**दाना**) दानों को देकर मनुष्य सम्बन्धी समूह को (**इषण्यत**) प्राप्त होते हैं वैसे सब प्राप्त हों ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है सम्पूर्ण अध्यापक और पढ़नेवाले मित्र के सदृश परस्पर वर्त्ताव कर के वायु आदि पदार्थों की विद्या का अच्छे प्रकार ग्रहण करें ॥ १४ ॥

फिर मनुष्य विद्वानों के संग से विद्याओं को प्राप्त हों इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

नू मन्वान एषां देवाँ अच्छा न वक्षणा ।

दाना सचेत सूरिभिर्यामश्रुतेभिरञ्जिभिः ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (**मन्वानः**) मननशील पुरुष (**यामश्रुतेभिः**) याम प्रहर सुने गये जिनमें उन (**अञ्जिभिः**) विद्या और श्रेष्ठ गुणों के प्रकट करनेवाले (**सूरिभिः**) विद्वानों के साथ (**एषाम्**) इन मनुष्यों के मध्य में (**देवान्**) श्रेष्ठ विद्वानों वा श्रेष्ठ पदार्थों को (**अच्छा**) उत्तम प्रकार प्राप्त होता और (**वक्षणा**) प्रवाह से (**दाना**) दानों को करता है वह (**नू**) निश्चय दारिद्र्य और अज्ञान को (**न**) नहीं प्राप्त होता है उसको आप लोग (**सचेत**) सम्बन्धित करिये ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानों के संग को प्रिय मानने और विद्या के दान में रुचि करनेवाले होवें वे ही शीघ्र विद्या को प्राप्त होवें ॥ १५ ॥

प्र ये मे बन्ध्वेषे गां वोचन्त सूरयः पृश्निं वोचन्त मातरम् ।

अधा पितरमिष्मिणं रुद्रं वोचन्त शिक्वसः ॥ १६ ॥

पदार्थ—(**ये**) जो (**सूरयः**) विद्वान् जन (**मे**) मेरी (**बन्ध्वेषे**) बन्धुओं की इच्छा के लिए (**गाम्**) वाणी को (**प्र, वोचन्त**) उत्तम प्रकार उच्चारण करते हैं और (**पृश्निम्**) अन्तरिक्ष और (**मातरम्**) माता का (**वोचन्त**) उपदेश करते हैं (**अधा**) इसके अनन्तर (**शिक्वसः**) सामर्थ्यवाले (**इष्मिणम्**) बहुत प्रकार का अन्न जिसका उस (**पितरम्**) पालन करनेवाले पिता और (**रुद्रम्**) दुष्टों के भय देनेवाले का (**वोचन्त**) उपदेश करते हैं वे मुझ से सत्कार करने योग्य हैं ॥ १६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को इस प्रकार जानना चाहिए कि जो हम लोगों के लिए विद्या और उत्तम शिक्षा को देवें वे हम लोगों से सदा आदर करने योग्य होवें ॥१६॥

सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः ।

यमुनायामधि श्रुतमुद्राधो गव्यं मृजे नि राधो अश्व्यं मृजे ॥१७॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जिस (**राधः**) धन को (**यमुनायाम्**) यम और नियमों से अन्वित क्रिया के बीच मैंने (**अधि, श्रुतम्**) सुना और जो (**गव्यम्**) गौओं के हित को (**उत्, मृजे**) उत्तमता से शुद्ध करता हूँ और जो (**अश्व्यम्**) घोड़ों में श्रेष्ठ (**राधः**) द्रव्य का (**नि**) निरन्तर (**मृजे**) स्वच्छ करता हूँ वह (**मे**) मेरे (**सप्त**) सात प्रकार के मनुष्यों के भेद और (**शाकिनः**) सामर्थ्यवाले (**सप्त**) सात (**एकमेका**) एक एक (**शता**) सैकड़ों को जो (**ददुः**) देवें उसको और उन को आप लोग प्राप्त हूजिए और विशेष करके जानिये ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस संसार में मूढ़, मूढ़तर, मूढ़तम, विद्वान्, विद्वत्तर, विद्वत्तम और अनूचान ये सात प्रकार के मनुष्य होते हैं ॥ १७ ॥

इस सूक्त में वायु और विश्वेदेव के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह बावनवाँ सूक्त और दशवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षोडशर्चस्य त्रिपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः । मरुतो देवता. । १ भुरिग्गायत्री । ८, १२ गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः । २ निचृद्बृहती । ९ स्वराड्बृहतीच्छन्दः । १४ बृहतीच्छन्दः । मध्यमः स्वरः । ३ अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ४, ५ उष्णिक् १० १५ विराडुष्णिक् । ११ निचृदुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । ६ पङ्क्तिः । ७, १३ निचृत्पङ्क्तिः । १६ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सोलह ऋचावाले त्रिपनवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अब मनुष्य क्या जानें इस विषय को कहते हैं—

को वेद जानमेषां को वा पुरा सुम्नेष्वास मरुताम् ।

यद्युयुज्रे किलास्यः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो वा विद्वानो (**यत्**) जो (**युयुज्रे**) युक्त होता है वह (**एषाम्**) इन (**मरुताम्**) मनुष्यों वा पवनों के (**जानम्**) प्रादुर्भाव को (**किलास्यः**) निश्चित सुख जिसका वह (**कः**) कौन (**वेद**) जानता है (**कः, वा**) अथवा कौन (**सुम्नेषु**) सुखों में (**पुरा**) प्रथम (**आस**) स्थित है ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्य और वायु आदि पदार्थों के लक्षण और लक्ष्यों को विद्वान् जन ही जानने को समर्थ हो सकते हैं अन्य नहीं ॥ १ ॥

फिर मनुष्य कैसे पूछ के क्या जानें इस विषय को कहते हैं—

ऐतान्रथेषु तस्थुषः कः शुश्राव कथा ययुः ।

कस्मै सस्रुः सुदासे अन्वापय इळाभिर्वृष्टयः सह ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वानो (**रथेषु**) विमान आदि वाहनों में (**एतान्**) इन (**तस्थुषः**) स्थावर काष्ठ आदि पदार्थों को (**कः**) कौन (**आ, शुश्राव**) अच्छे प्रकार सुनाता है और (**कथा**) कैसे मनुष्य (**ययुः**) प्राप्त होते हैं और (**कस्मै**) किसके लिए (**सस्रुः**) प्राप्त होते हैं (**इळाभिः**) अन्न आदिकों से (**वृष्टयः**) वृष्टियाँ और (**आपयः**) प्राप्त होनेवाले पदार्थ (**सह**) एक साथ (**सुदासे**) सुन्दर दास जिसके उस में (**अनु**) अनुकूल प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—कोई ही मनुष्य सम्पूर्ण शिल्पविद्या के व्यवहार करने को समर्थ होता है जो व्याप्त और बहुत उत्तम गुणवाले बिजुली आदि पदार्थों को यथावत् जानता है ॥ २ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ते म आहुर्य आययुरुप द्युभिर्विभिर्मदे ।

नरो मर्या अरेपस इमान्पश्यन्निति ष्टुहि ॥३॥

पदार्थ—(**ये**) जो (**अरेपसः**) दोषों के लेप से रहित (**मर्याः**) मरण धर्मवाले (**नरः**) नायक मनुष्य (**द्युभिः**) कामना करते हुए (**विभिः**) पक्षियों के सदृश (**मदे**) आनन्द के लिए (**मे**) मेरे सत्य को (**आहुः**) कहें और (**आययुः**) जानें वा प्राप्त होवें (**ते**) वे (**इमान्**) इन मनोरथों को (**पश्यन्**) देखते हुए के समान कहें (**इति**) इस प्रकार आप मेरी (**उप, स्तुहि**) समीप में स्तुति करिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन दिनरात्रि परिश्रम से विद्या को प्राप्त होकर अन्यों को उपदेश देवें उनको यथार्थवक्ता जानना चाहिए ॥ ३ ॥

मनुष्य पुरुषार्थ से किस किस को प्राप्त होवे इस विषय को कहते हैं—

ये अ॒ञ्जिषु॒ ये वाशी॑षु॒ स्वभा॑नवः स्र॒क्षु रु॒क्मेषु॑ खा॒दिषु॑ ।
श्रा॒या रथे॑षु॒ धन्व॑सु ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**ये**) जो (**वाशीषु**) वाणियों में (**स्वभानवः**) अपने प्रकाश जिनके वे (**अञ्जिषु**) प्रकट व्यवहारों में (**स्रक्षु**) मालाओं के मणियों में और (**रुक्मेषु**) सुवर्ण आदिकों में वा (**ये**) जो (**खादिषु**) भक्षण आदिकों में (**रथेषु**) वाहनों में और (**धन्वसु**) स्थलों में (**श्राया**) सेवन वा सेवन करते हैं वे प्रसिद्ध होते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पुरुषार्थी होवें वे सब प्रकार से सत्कार को प्राप्त हुए लक्ष्मीवान् होते हैं ॥ ४ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यु॒ष्माकं॑ स्मा॒ रथाँ॒ अनु॑ मु॒दे द॑धे मरुतो जीरदानवः ।
वृ॒ष्टी द्यावो॑ य॒तीरि॑व ॥५॥११॥

पदार्थ—हे (**जीरदानवः**) जीवन हुए (**मरुतः**) मनुष्यो मैं (**युष्माकम्**) आप लोगों के (**मुदे**) आनन्द के लिए (**रथान्**) विमान आदि यानों को (**दधे**) धारण करता हूँ और (**वृष्टी**) वर्षाओं तथा (**द्यावः**) प्रकाशों को (**यतीरिव**) प्रयत्न से सिद्ध होने वाली क्रियाओं के समान (**स्मा**) ही (**अनु**) पीछे आनन्द के लिए धारण करता हूँ ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं अभ्यास से विद्या के प्रकाशों को यज्ञ से वृष्टि का धारण करता हूँ वैसे आप लोग भी इनका धारण कीजिए ॥ ५ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ यं नरः॑ सु॒दान॑वो ददा॒शुषे॑ दि॒वः कोश॒मचु॑च्यवुः ।
वि प॒र्जन्यं॑ सृजन्ति॒ रोद॑सी॒ अनु॒ धन्व॑ना यन्ति वृ॒ष्टयः॑ ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**सुदानवः**) उत्तम विद्या आदि श्रेष्ठ गुणों के दान में युक्त (**दिवः**) कामना करते हुए (**नरः**) नायक मनुष्य (**ददाशुषे**) देनेवाले के लिए (**यम्**) जिस (**कोशम्**) मेघ को (**आ**) चारों ओर से (**अचुच्यवुः**) वर्षावें और (**रोदसी**) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (**पर्जन्यम्**) मेघ को (**वि, सृजन्ति**) विशेषपनया छोडते है उसके (**अनु**) अनुकूल (**धन्वना**) अन्तरिक्ष से (**वृष्टयः**) वर्षायें (**यन्ति**) प्राप्त होती हैं वैसे आप लोग भी आचरण करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वे ही मनुष्य उत्तम दाता हैं जो यज्ञ, जङ्गलों की रक्षा और जलाशयों के निर्माण से बहुत वर्षाओं को करते हैं ॥ ६ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त॒तृ॒दा॒नाः सिन्ध॑वः॒ क्षोद॑सा॒ रजः॒ प्र स॑स्रु॒र्धेन॑वो यथा ।
स्य॒न्ना अश्वा॑इवा॒ध्व॑नो वि॒मोच॑ने॒ वि यद्वर्त॑न्त ए॒न्यः॑ ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यथा**) जिस प्रकार से (**धेनवः**) दुग्ध देनेवाली गौएँ वैसे (**क्षोदसा**) जल से (**ततृदानाः**) भूमि को तोडनेवाली (**सिन्धवः**) नदियाँ (**रजः**) लोकों को (**प्र, सस्रुः**) प्रकर्षित करती हैं । और (**अश्वाइव**) जैसे घोडे दौडते हैं वैसे (**यत्**) जो (**स्यन्नाः**) शीघ्र जानेवाली (**एन्यः**) नदियाँ (**विमोचने**) विमोचन में (**अध्वनः**) मार्गों को (**वि, वर्तन्ते**) वर्तती हैं उन से सम्पूर्ण उपकार ग्रहण करने चाहियें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे दुग्ध देनेवाली गौएँ दुग्ध की वृष्टि करती है वैसे ही नदी तडाग समुद्र आदि और अन्य जलाशय पृथिवी में वृष्टि करते हैं ॥ ७ ॥

फिर मनुष्यों को क्या प्राप्त करना योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते है—

आ या॑त मरुतो दि॒व आन्तरि॑क्षाद॒मादु॒त । माव॑ स्थात परा॒वतः॑ ॥८॥

पदार्थ—हे (**मरुतः**) मनुष्यो आप लोग (**अन्तरिक्षात्**) अन्तरिक्ष (**उत**) और (**अमात्**) गृह से (**दिवः**) कामनाओं को (**आ**) सब प्रकार से (**यात**) प्राप्त हूजिए और (**परावतः**) दूर देश से (**मा**) नहीं (**अव, आ, स्थात**) अच्छे प्रकार से स्थित हूजिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—वे ही मनुष्य कामना की सिद्धि को प्राप्त होते हैं जो विरोध का त्याग करके विद्वान् होते है ॥ ८ ॥

फिर विद्वानों को क्या उपदेश देना योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

मा वो॑ र॒साऽनि॑तभा॒ कुभा॒ क्रुमु॒र्मा वः॒ सिन्धु॒र्नि री॑रमत् ।
मा वः॒ परि॑ ष्ठात्स॒रयुः॑ पु॒री॒षिण्य॒स्मे इत्सु॒म्नम॑स्तु वः ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**अनितभा**) दीप्ति को न प्राप्त (**कुभा**) कुत्सित प्रकाशयुक्त (**क्रुमु**) क्रमण करनेवाली (**रसा**) पृथिवी (**मा**) मत (**वः**) आप लोगों को (**नि**) अत्यन्त (**रीरमत्**) रमण करावे और (**सिन्धुः**) नदी वा समुद्र (**मा**) नहीं (**वः**) आप लोगों को निरन्तर रमण करावें तथा (**सरयुः**) चलनेवाला और (**पुरीषिणी**) पुरी की इच्छा करनेवाली (**मा**) मत (**वः**) आप लोगों को (**परि, स्थात्**) परिस्थित करावे अर्थात् मत आलसी बनावे जिससे (**अस्मे**) हम लोगों के लिए और (**वः**) आप लोगों के लिए (**सुम्नम्**) सुख (**इत्**) ही (**अस्तु**) हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि इस प्रकार का पुरुषार्थ करें कि जिस प्रकार सम्पूर्ण पदार्थ सुख देनेवाले होवें ॥ ९ ॥

फिर विद्वान् जन को मनुष्यों के अर्थ क्या इच्छा करनी चाहिए

इस विषय को अगले मन्त्र में कहते है—

तं वः॒ शर्धं॒ रथा॑नां त्वे॒षं ग॒णं मारु॑तं॒ नव्य॑सीनाम् ।
अनु॒ प्र य॑न्ति वृ॒ष्टयः॑ ॥ १० ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिन (**रथानाम्**) वाहनों और (**नव्यसीनाम्**) नवीनाओं के बीच (**मारुतम्**) मनुष्यों के सम्बन्धी (**गणम्**) समूह को और (**त्वेषम्**) सद्गुणों के प्रकाश का उपदेश करता हूँ और जिसको (**वृष्टयः**) वर्षायें (**अनु, प्र, यन्ति**) प्राप्त होती है (**तम्**) उस (**शर्धम्**) बल को (**वः**) आप लोगों के लिए प्राप्त करता हूँ ॥ १० ॥

भावार्थ—जो विद्वानों की नवीन-नवीन नीति को प्राप्त होते हैं वे बल को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

शर्धं॑शर्धं व एषां॒ व्रातं॑व्रातं ग॒णंग॑णं सुश॒स्तिभिः॑ ।
अनु॑ क्रामेम धी॒तिभिः॑ ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (**धीतिभिः**) जैसे अङ्गुलियों से कर्मों को वैसे (**सुशस्तिभिः**) अच्छी प्रशंसाओं से (**वः**) आप लोगों के और (**एषाम्**) इनके (**शर्धशर्धम्**) बल बल और (**व्रातव्रातम्**) वर्त्तमान वर्त्तमान (**गणगणम्**) समूह समूह को (**अनु, क्रामेम**) उल्लङ्घन करें वैसे आप लोगों को भी करना चाहिए ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य पूर्ण बल को करें तो बहुत बलिष्ठों का भी उत्क्रमण करें ॥ ११ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

कस्मा॑ अ॒द्य सुजा॑ताय रा॒तह॑व्याय॒ प्र य॑युः ।
ए॒ना यामे॑न म॒रुतः॑ ॥ १२ ॥

पदार्थ—जो (**मरुतः**) मनुष्य (**अद्य**) आज (**एना**) इस (**यामेन**) विरक्त हुए से (**कस्मै**) किस (**सुजाताय**) उत्तम विद्याओं में प्रसिद्ध (**रातहव्याय**) दिया दातव्य जिसने उसके लिए (**प्र, ययुः**) प्राप्त होते है वे विद्या के देनेवाले होकर प्रशंसित होते है ॥ १२ ॥

भावार्थ—विद्या आदि उत्तम गुणों के दान के विना विद्वानों की प्रशंसा नहीं होती है ॥ १२ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

येन॑ तो॒काय॒ तन॑याय धा॒न्यं१॒॑ बीजं॒ वह॑ध्वे॒ अक्षि॑तम् ।
अ॒स्मभ्यं॒ तद्ध॑त्तन॒ यद्व॒ ईम॑हे॒ राधो॑ वि॒श्वायु॒ सौभ॑गम् ॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**येन**) जिस कर्म से (**तोकाय**) तुरन्त उत्पन्न हुए सन्तान के और (**तनयाय**) कुमार के लिए (**अक्षितम्**) नाश से रहित (**धान्यम्**) तण्डुल आदि को और (**बीजम्**) बोने के योग्य को (**वहध्वे**) प्राप्त हूजिये और (**यत्**) जिस (**विश्वायु**) सम्पूर्ण आयु के करने और (**सौभगम्**) सौभाग्य को बढ़ानेवाले नाश से रहित (**राधः**) धन की (**वः**) आप लोगों के लिए (**ईमहे**) याचना करते हैं (**तत्**) उस को (**अस्मभ्यम्**) हम लोगों के लिए (**धत्तन**) धारण कीजिये ॥ १३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सन्तानों की रक्षा के लिए धान्य आदि वस्तु की उत्तम प्रकार रक्षा करते है वे नाशरहित सुख को प्राप्त होते है ॥ १३ ॥

फिर मनुष्यों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अती॑याम नि॒दस्ति॒रः स्व॒स्तिभि॑र्हि॒त्वाऽव॒द्यमरा॑तीः ।
वृ॒ष्ट्वी शं योरा॒प उ॒स्रि भे॑ष॒जं स्याम॑ मरुतः स॒ह ॥१४॥

पदार्थ—हे (**मरुतः**) मनुष्यो ! जैसे हम लोग (**निदः**) निन्दा करनेवाले मिथ्यावादियों का (**अति, इयाम**) उल्लङ्घन करें अर्थात् त्याग करें और (**स्वस्तिभिः**) सुख आदिकों से (**तिरः**) तिरस्कीन कर्म और (**अवद्यम्**) निन्दित कर्म (**अरातीः**) और शत्रुओं का (**हित्वा**) त्याग और (**शम्**) सुख (**वृष्ट्वी**) वर्षा करके (**आपः**) जलों को और (**योः**) मिश्रित (**उस्रि**) गौ आदि से युक्त (**भेषजम्**) ओषधि को सुख आदिकों के (**सह**) साथ प्राप्त (**स्याम**) होवें वैसे आप लोगों को होना चाहिए ॥ १४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि निन्दक, निन्दा और पापी पाप को छोड़ शत्रुओं को जीतकर ओषधि आदि के सेवन से शरीर को रोगरहित कर विद्या और योगाभ्यास से आत्मा की उन्नति कर के निरन्तर सुख प्राप्त करें ॥ १४ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों मे कहते हैं—

सुदेवः समहासति सुवीरो नरो मरुतः स मर्त्यः ।
यं त्रायध्वे स्याम ते ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे (**समह**) सत्कार से सहित (**सः**) वह (**सुदेव.**) सुन्दर विद्वान् (**सुवीर.**) सुन्दर वीर (**मर्त्यः**) मनुष्य (**असति**) है (**यम्**) जिसको हे (**मरुत.**) मनुष्यो (**नरः**) अग्रणीजनो (**ते**) वे आप लोग (**त्रायध्वे**) रक्षा करो हम लोग उस के साथ (**स्याम**) होवें ॥ १५ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि अति उन्नत होकर निर्बल प्राणियो की सदा ही रक्षा करें ॥ १५ ॥

स्तुहि भोजान्स्तुवतो अस्य यामनि रणन्गावो न यवसे ।
यतः पूर्वाँ इव सखीँरनु ह्वय गिरा गृणीहि कामिनः ॥१६॥१३॥

पदार्थ—हे विद्वन् (**रणन्**) उपदेश देते हुए आप (**स्तुवत.**) प्रशसा करने वाले (**भोजान्**) पालकों की (**स्तुहि**) स्तुति कीजिये और (**अस्य**) इस रक्षण के (**यामनि**) मार्ग मे (**यत.**) जिससे (**पूर्वानिव**) जैसे पूर्व वैसे वर्त्तमान (**सखीन्**) मित्रो का (**गिरा**) वाणी से (**अनु, ह्वय**) निमन्त्रण करो और मित्रो का (**यवसे**) बुष आदि मे (**गाव**) गौओ के (**न**) सदृश निमन्त्रण करो और (**कामिन.**) श्रेष्ठ मनोरथ जिनका उन की (**गृणीहि**) स्तुति करो ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे विद्वन् ! जो प्रशसा करने योग्य और सब के मित्र और सत्य की कामना करनेवाले होवें उनका सदा ही सत्कार करो ॥ १६ ॥

इस सूक्त म प्रश्न उत्तर और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इसस पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

यह तिरपनवा सूक्त और तेरहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चदशर्चस्य चतुःपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य श्यावाश्व आत्रेय ऋषि ।
मरुतो देवता । १, ३,७, १२ जगती । २ विराड् जगती ।
६ भुरिग् जगती । ११, १५ निचृज्जगती छन्द ।
निषाद स्वर । ४, ८, १० भुरिक् त्रिष्टुप् ।
५, ६, १३, १४ त्रिष्टुप्छन्द ।
गान्धार. स्वर ॥

अब पन्द्रह ऋचावाले चौवनवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र मे विद्वानो को कैसे वर्त्तना चाहिए इस विषय को कहते है—

प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव इमां वाचमनजा पर्वतच्युते ।
घर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत ॥१॥

पदार्थ—हे (**विद्व**) कामना करते हुए विद्वानो आप लोग (**स्वभानवे**) अपनी कान्ति विद्यमान जिसके उस (**मारुताय**) मनुष्यो के सम्बन्धी (**शर्धाय**) बल के लिए (**इमाम्**) इस वर्त्तमान (**वाचम्**) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी का (**प्रानज**) उच्चारण कीजिये अर्थात् उपदेश दीजिये और (**पर्वतच्युते**) मेघ से गिरे वा जो मेघ को वर्षाता (**घर्मस्तुभे**) यज्ञ की स्तुति करता और (**पृष्ठयज्वने**) पृष्ठ से यज्ञ करता (**द्युम्नश्रवसे**) वा यश सुना गया जिसका उसके लिए (**महि**) बड़े (**नृम्णम्**) मनुष्य अभ्यास करते है जिस का उसका (**आ अर्चत**) सत्कार करो ॥ १ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! आप लोग सदा ही ज्ञानरहित पुरुषो को विद्या के दान से ज्ञानवान् करो सत्य और असत्य का विचार करके सत्य का ग्रहण कराय के असत्य का त्याग कराइए और सब के सुख के लिए ऐश्वर्य को इकट्ठा करो ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

प्र वो मरुतस्तविषा उदन्यवो वयोवृधो अश्वयुजः परिज्रयः ।
सं विद्युता दधति वाशति त्रितः स्वरन्त्यापोऽवना परिज्रयः ॥२॥

पदार्थ—हे (**मरुत**) मनुष्यो ! जो (**तविषा.**) बलवान् (**उदन्यवः**) अपने को जल की इच्छा करने (**वयोवृध**) अवस्था से बढ़ने वा अवस्था को बढ़ाने (**अश्वयुज**) शीघ्रगामी पदार्थों को युक्त करने (**परिज्रयः**) और सब ओर जानेवाले जन (**विद्युता**) बिजुली के साथ (**व.**) आप लोगो को (**सम्,-दधति**) उत्तम प्रकार धारण करते और (**वाशति**) वाणी के सदृश आचरण करती है और (**त्रित**) तीन से (**परिज्रय**) सब ओर जाने वाले (**आपः**) जल (**अवना**) रक्षण आदि का (**प्र, स्वरन्ति**) अच्छे प्रकार उच्चारण करते हैं उनका आप लोग सत्कार करो ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य बिजुली आदि की विद्या को जानते है वे सम्पूर्ण सुख को सब के लिए धारण करते हैं ॥ २ ॥

फिर मनुष्य कैसे हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवो वातत्विषो मरुतः पर्वतच्युतः ।
अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृतः स्तनयदमा रभसा उदोजसः ॥३॥

पदार्थ—हे (**नर**) नायकजनो जो (**विद्युन्महस**) बिजुली की विद्या से बड़े श्रेष्ठ (**अश्मदिद्यव.**) विद्या के प्रकाश करनेवाले (**वातत्विष**) वायु विद्या से कान्तियां जिनकी ऐसे और (**पर्वतच्युत.**) मेघो को वर्षाते वा (**अब्दया**) जलो को देनेवाले और (**स्तनयदमा**) शब्द करते गृह जिनके वे (**रभसा**) वेग से युक्त (**उदोजस**) उत्कृष्ट पराक्रम जिन का वे (**मुहु.**) बार बार (**आ**) सब प्रकार से (**ह्रादुनीवृत.**) शब्द करने वाली बिजुली से युक्त (**चित्**) भी (**मरुत.**) मनुष्य हैं उन से मिलिये ॥ ३ ॥

भावार्थ जो बिजुली मेघ, वायु और शब्द आदि की विद्या को जानने वाले है वे सब प्रकार से लक्ष्मीवान् होते है ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

व्य१क्तून्रुद्रा व्यहानि शिक्वसो व्य१न्तरिक्षं वि रजांसि धूतयः ।
वि यदज्राँ अजथ नाव ईं यथा वि दुर्गाणि मरुतो नाह रिष्यथ ॥४॥

पदार्थ—हे (**मरुत**) मनुष्यो (**यत्**) जो (**शिक्वस**) सामर्थ्य से युक्त (**धूतय**) कँपाने वाले (**रुद्रा**) पवन (**अक्तून्**) प्रसिद्धो का प्रकट करते हैं और (**अहानि**) दिनो का (**वि**) विशेष करके परिणाम करते अर्थात् गिनाते है (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष के प्रति (**रजासि**) लोको का (**वि**) विधान करते और (**वि**) विशेष करके चलाते है तथा (**ईम्**) जल को जैसे (**नाव**) बड़ी नौकायें वैसे सम्पूर्ण लोको को चलाते है उन (**अज्रान्**) निरन्तर चलनेवालो को (**वि, अजथ**) प्राप्त हूजिए और (**यथा**) जैसे (**दुर्गाणि**) दुःख से प्राप्त होने योग्यो को (**न**) नही (**अह**) ग्रहण करते म (**वि, रिष्यथ**) नाश करे वैसे विचारिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि वायुविद्या को अवश्य जानें ॥ ४ ॥

फिर मनुष्यो को क्या जानना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तद्वीर्यं वो मरुतो महित्वनं दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम् ।
एता न यामे अगृभीतशोचिषोऽनश्वदां यन्न्ययातना गिरिम् ॥५॥१४॥

पदार्थ—हे (**मरुत**) वायु के सदृश वर्त्तमान मनुष्यो ! (**सूर्य्यः**) सूर्य (**योजनम्**) युक्त करते हैं जिस से उस आकर्षण नामक के (**न**) सदृश और (**महित्वनम्**) बड़प्पन को जैसे वैसे (**दीर्घम्**) विशाल (**व.**) आपके (**तत्**) उस (**वीर्यम्**) पराक्रम का (**ततान**) विस्तृत करता है और (**अगृभीतशोचिष**) नही ग्रहण किया तेज जिन्होंने वे (**यामे**) प्रहर मे (**एता**) ये गमन (**न**) जैसे (**अनश्वदाम्**) नही घोड़े जिस मे उस गमन और (**गिरिम्**) मेघ का देते है और (**यत्**) जिसको आप लोग (**नि, अयातना**) प्राप्त हूजिये उस सब को हम लोग ग्रहण करे ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो लोग सूर्य और मेघो के गुणो को जानकर सामर्थ्य और धन को इकट्ठा करते है वे परोपकारी होते है । ५ ॥

मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः ।
अध स्मा नो अरमतिं सजोषसश्चक्षुरिव यन्तमनु नेषथा सुगम् ॥६॥

पदार्थ—हे (**मरुत**) मनुष्यो ! आप लोगो से (**यत्**) जो (**शर्ध**) बल (**अभ्राजि**) प्रकाशित किया जाता और (**अर्णसम्**) जल को जो तुम लोग (**मोषथ**) चुराइये तो आप लोगो को जैसे (**वृक्षम्**) वट आदि वृक्ष को (**कपनेव**) पवनो के गमन वैसे हम लोग दण्ड देवें (**अध**) इसके अनन्तर हे (**वेधस**) बुद्धिमान् जनो (**सजोषस**) तुल्य प्रीति के सेवन करनेवाले आप लोग (**चक्षुरिव**) नेत्र को जैसे वैसे (**न**) हम लोगो के (**अरमतिम्**) रमणरहित (**यन्तम्**) प्राप्त होने वाले (**सुगम्**) सुख अर्थात् उत्तमता से चलते है जिसमे उसको (**स्म**) ही (**अनुनेषथ**) अनुकूल प्राप्त कीजिये ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र म उपमालङ्कार है । जो सब के शरीर और आत्मा के बल को प्रकाशित करते है वे धन्य है और जो श्रेष्ठ विद्या और गुणो का चुराते उनको धिक्कार धिक्कार ॥ ६ ॥

अब ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति ।
नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ ॥७॥

पदार्थ—हे (**मरुत**) मनुष्यो (**स**) वह (**न**) न (**जीयते**) जीता जाता (**न**) न (**हन्यते**) नाश किया जाता (**न**) न (**स्रेधति**) नाश होता (**न**) न (**व्यथते**) पीड़ित होता और (**न**) न (**रिष्यति**) हिंसा करता है (**अस्य**) इस का (**न**) न (**राय**) धन और (**न**) न (**ऊतय**) रक्षण आदि व्यवहार (**उप, दस्यन्ति**) नाश होते हैं (**यम्**) जिस (**ऋषिम्**) वेदार्थ के जाननेवाले (**वा**) अथवा (**राजानम्**) राजा को (**वा**) भी आप लोग (**सुषूदथ**) रखिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो वृद्धावस्था वा मरणावस्था रहित सत् चित् और आनन्दस्वरूप नित्य गुण कर्म और स्वभाववाला जगदीश्वर है उसकी सब आप लोग उपासना करो ॥ ७ ॥

फिर मनुष्य कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरोऽर्यमणो न मरुतः कबन्धिनः ।

पिन्वन्त्युत्सं यदिनासो अस्वरन्व्युन्दन्ति पृथिवीं मध्वो अन्धसा ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यथा**) जैसे (**नियुत्वन्त.**) निश्चयवान् (**ग्रामजित**) ग्राम को जीतनेवाले (**अर्य्यमण**) न्यायाधीशो के (**न**) सदृश (**कबन्धिन**) बहुत जलो से युक्त (**इनास**) समर्थ (**नर**) नायक (**मरुत**) मनुष्य (**यत्**) जिसको (**उत्सम्**) कूप के समान (**पिन्वन्ति**) तृप्त करते वा (**अस्वरन्**) शब्द करते हैं और (**अन्धसा**) अन्न के साथ (**मध्व.**) मधुर गुणयुक्त होते हुए (**पृथिवीम्**) पृथिवी को (**वि, उन्दन्ति**) विशेष गीली करते हैं वे भाग्यशाली होते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो जल के सदृश शान्ति करनेवाले और सामर्थ्य को बढ़ाते हुए विजय को प्राप्त होते हैं वे लक्ष्मी को प्राप्त होते है ॥ ८ ॥

मनुष्यो को कैसे उपकार लेना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

प्रवत्वतीयं पृथिवी मरुद्भ्यः प्रवत्वती द्यौर्भवति प्रयद्भ्यः ।

प्रवत्वतीः पथ्या अन्तरिक्ष्याः प्रवत्वन्तः पर्वता जीरदानवः ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**इयम्**) यह (**प्रवत्वती**) नीचे के स्थान से युक्त (**पृथिवी**) भूमि और (**प्रवत्वती**) फैलने वाला (**द्यौ**) प्रकाश और (**प्रयद्भ्य**) प्रयत्न करने हुओ से (**मरुद्भ्य**) मनुष्य आदिको के लिए हित-कारक (**भवति**) होता है जिस मे (**प्रवत्वन्त**) गमनशील (**जीरदानव**) जीवन को देने वाले (**पर्वता**) मेघ (**अन्तरिक्ष्या.**) अन्तरिक्ष मे उत्पन्न (**प्रवत्वती**) नीचे चलने वाली (**पथ्या**) मार्ग के लिए हितकारक वृष्टियो को करते हैं वे यथावत् जानने योग्य है ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि पृथिवी के समीप से जितना हो सकता है उतना उपकार ग्रहण करें ॥ ९ ॥

फिर मनुष्यो को कैसे वर्त्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

यन्मरुतः सभरसः स्वर्णरः सूर्य्य उदिते मदथा दिवो नरः ।

न वोऽश्वाः श्रथयन्ताह सिस्रतः सद्यो अस्याध्वनः पारमश्नुथ ॥१०॥

पदार्थ—हे (**सभरस**) तुल्य पालन और पोषण करने वाले (**स्वर्णर**) सुख को प्राप्त कराने और (**दिव**) कामना करते हुए (**नर**) सत्य धर्म मे पहुँचाने वाले (**मरुत**) जनो आप लोग (**उदिते**) उदय को प्राप्त हुए (**सूर्य्ये**) सूर्य मे (**यत्**) जिसको प्राप्त होकर (**मदथ**) आनन्दित होओ उस से (**व**) आप लोगो के (**सिस्रत**) चलने वाले (**अश्वा**) घोड़े (**न**) नहीं (**श्रथयन्त,-अह**) हिंसा करते रुकाते है उन से (**अस्य**) इस (**अध्वन**) मार्ग के (**पारम्**) पार को (**सद्य**) शीघ्र (**अश्नुथ**) प्राप्त हूजिये ॥ १० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सूर्योदय से पहिले उठ के जब तक सोवें नहीं तब तक प्रयत्न करते है दु:ख और दारिद्र्य के अन्त को प्राप्त होकर सुखी और लक्ष्मी-वान् होते है ॥ १० ॥

फिर मनुष्य कौन कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्षःसु रुक्मा मरुतो रथे शुभः ।

अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः ॥११॥

पदार्थ—हे (**मरुत**) मनुष्यो जब (**व**) आप लोगो के वायु के सदृश वर्त्तमान वीरजनो जो आप लोगो के (**असेषु**) कन्धो मे (**ऋष्टय**) शस्त्र और अस्त्र (**पत्सु**) पैरो मे (**खादय**) भोक्ताजन (**वक्ष सु**) वक्ष:स्थलो मे (**रुक्मा**) सुवर्ण अलङ्कार (**रथे**) सुन्दर वाहन मे (**शुभ**) शोभित पदार्थ (**गभस्त्यो**) हाथो के मध्य मे (**अग्निभ्राजस**) अग्नि के सदृश प्रकाशमान (**विद्युत**) बिजु-लियां (**शीर्षसु**) शिरो मे (**वितता**) विस्तृत (**हिरण्ययी**) सुवर्ण जिन मे बहुत ऐसी (**शिप्रा**) पगड़ियां होवें तब हस्तगत विजय होता है ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो राजपुरुष अहर्निश राजकार्यों मे प्रवीण दुर्व्यसनो से विरक्त और सङ्गोपाङ्ग राजसामग्रीवाले हो वे सदैव प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं ॥११॥

तं नाकमर्यो अगृभीतशोचिषं रुशत् पिप्पलं मरुतो वि धूनुथ ।

समच्यन्त वृजनातित्विषन्त यत्स्वरन्ति घोषं विततमृतायवः ॥१२॥

पदार्थ—हे (**मरुत**) वायु के सदृश वेगयुक्त वर्त्तमान जनो आप लोग (**अर्य**) स्वामी ईश्वर के सदृश (**ऋतायव**) अपने सत्य की इच्छा करते हुए (**यत्**) जिस (**विततम्**) विस्तृत (**घोषम्**) वाणी का (**स्वरन्ति**) उच्चारण करते है (**तम्, अगृभीतशोचिषम्**) उस अगृभीतशोचिषम् अर्थात् नहीं ग्रहण की स्वच्छता जिस मे ऐसे (**रुशत्**) अच्छे स्वरूप वाले (**पिप्पलम्**) फलभोग रूप (**नाकम्**) दु:खरहित आनन्द को (**सम्, अच्यन्त**) उत्तम प्रकार प्राप्त हूजिये दु:ख को (**वि**) विशेष करके (**धूनुथ**) कम्पाइये और (**वृजना**) चलते हैं जिन से उन का (**अतित्विषन्त**) प्रकाशित कीजिये तथा प्रकाशित हूजिये ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य ईश्वर के सदृश न्यायकारी सम्पूर्ण जगत् के उपकार करने वाले और उपदेशक हैं वे संसार के भूषक है ॥ १२ ॥

फिर मनुष्यों को क्या इच्छा करनी चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

युष्मादत्तस्य मरुतो विचेतसो रायः स्याम रथ्यो३ वयस्वतः ।

न यो युच्छति तिष्यो३ यथा दिवो३ स्मे रारन्त मरुतः सहस्रिणम् ॥१३॥

पदार्थ—हे (**विचेतस**) अनेक प्रकार का सज्ञान जिनका वे (**रथ्य**) बहुत रथ आदि से युक्त (**मरुत.**) प्राणो के सदृश प्रियजनो हम लोग (**युष्माद-त्तस्य**) आप लोगो से दिये गये (**वयस्वत.**) प्रशंसित जीवन जिस का उस (**राय**) धन के स्वामी (**स्याम**) होवें और (**य**) जो (**अस्मे**) हम लोगो के लिए वा हम लोगो मे (**न**) नहीं (**युच्छति**) प्रमाद करता और (**यथा**) जैसे (**दिव**) प्रकाश के मध्य मे (**तिष्य.**) सूर्य वा पुष्य नक्षत्र है वैसे प्रकाशित होवे और हे (**मरुत**) जनो आप लोग (**सहस्रिणम्**) असंख्य वस्तु हैं विद्यमान जिसके उस को (**रारन्त**) रमण करते है ॥ १३ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि सदा धनाढ्यपन का खोज करें और प्रमाद न करें ॥ १३ ॥

राजादिकों से कौन कौन रक्षा पाने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्रों मे कहते हैं—

यूयं रयिं मरुतः स्पार्हवीरं यूयमृषिमवथ सामविप्रम् ।

यूयमर्वन्तं भरताय वाजं यूयं धत्थ राजानं श्रुष्टिमन्तम् ॥१४॥

—**पदार्थ**—हे (**मरुत**) पुरुषार्थी मनुष्यो ! (**यूयम्**) आप लोग (**स्पार्हवीरम्**) अभिकांक्षित वीर जिस मे उस (**रयिम्**) लक्ष्मी की (**अवथ**) रक्षा कीजिये और (**यूयम्**) आप लोग (**सामविप्रम्**) सामो मे बुद्धिमान् (**ऋषिम्**) वेदार्थ के जाननेवाले की रक्षा कीजिये और (**यूयम्**) आप लोग (**भरताय**) धारण और पोषण के लिए (**अर्वन्तम्**) प्राप्त होते हुए (**वाजम्**) वेग अन्न और विज्ञान आदि को (**धत्थ**) धारण करो और (**यूयम्**) आप लोग (**श्रुष्टिमन्तम्**) अच्छा क्षिप्रकरण जिस मे उस (**राजानम्**) न्याय और विनय से प्रकाशमान को धारण कीजिये ॥ १४ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि उत्तम सहाय से लक्ष्मी विद्वान् सेना और राजा को धारण करें ॥ १४ ॥

तद्वो यामि द्रविणं सद्यऊतयो येना स्व१र्ण ततनाम नॄँरभि ।

इदं सु मे मरुतो हर्यता वचो यस्य तरेम तरसा शतं हिमाः ॥१५॥१६

पदार्थ—हे (**सद्यऊतय**) शीघ्र रक्षण आदि वाले (**मरुत**) मनुष्यो (**व.**) आप लोगो के समीप से जिस (**द्रविणम्**) धन वा यश को (**यामि**) प्राप्त होता हूँ (**तत्**) उसको आप लोग दीजिये (**येना**) जिस से (**स्व**) सुख के (**न**) सदृश (**नॄन्**) मनुष्यो को (**अभि, ततनाम**) सब प्रकार विस्तृत करें और आप लोग (**इदम्**) इस (**मे**) मेरे (**वच.**) वचन की (**सु, हर्यता**) अच्छे प्रकार कामना करिये और (**यस्य**) जिसके (**तरसा**) बल से हम लोग (**शतम्**) सौ (**हिमा**) वर्ष (**तरेम**) पार होवें उससे आप लोग भी पार हूजिये ॥ १५ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! आप लोग यश धन सुख सत्य वचन और बल को बढ़ाय दु:खो के पार हूजिये ॥ १५ ॥

इस सूक्त मे सूर्य बिजुली और सुख के गुण वर्णन करने से इस सूक्त
के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ
सगति जाननी चाहिये ॥

यह चौवनवां सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ दशर्चस्य पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः मरुतो देवता । १,५ जगती । २,४,७,८ निचृज्जगती । ९ विराड्जगती छन्द । निषादः स्वर । ३ स्वराट् त्रिष्टुप् । ६,१० निचृत्त्रिष्टुप् छन्द । गान्धारः स्वरः ॥

अब दश ऋचावाले पचपनवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में फिर मनुष्य कैसे वर्त्तें इस विषय को कहते हैं—

प्रयज्यवो मरुतो भ्राजदृष्टयो बृहद्वयो दधिरे रुक्मवक्षसः ।
ईयन्ते अश्वैः सुयमेभिराशुभिः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिन (अश्वैः) शीघ्रकरने वा (आशुभिः) शीघ्र जाने वाले (सुयमेभिः) सुन्दर यम इन्द्रियनिग्रह आदि जिन के उन जनो से (शुभम्) धर्म युक्त व्यवहार को (यातााम्) प्राप्त होते हुओ के (रथाः) सुन्दर वाहन आदि (ईयन्ते) प्राप्त किये जाते हैं और (प्रयज्यवः) उत्तम मिलने वाले मनुष्य (भ्राजदृष्टयः) शोभित होते विज्ञान जिन के वे (रुक्मवक्षसः) सुवर्ण आदि से युक्त आभूषण जिन के वे (मरुतः) प्राणो के सदृश वर्त्तमान (बृहत्) बड़े (वयः) सुन्दर जीवन को (दधिरे) धारण करें और जो (अनु) पश्चात् (अवृत्सत) वर्त्तमान होते हैं उन के साथ आप लोग भी इस प्रकार प्रयत्न कीजिए ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो आप लोग ब्रह्मचर्य्य आदि से अति काल पर्य्यन्त जीवन वाले योगी पुरुषार्थी होइए ॥ १ ॥

फिर मनुष्य कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

स्वयं दधिध्वे तविषीं यथा विद बृहन्महान्त उर्विया वि राजथ ।
उतान्तरिक्षं ममिरे व्योजसा शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥२॥

पदार्थ—हे राजजनो (यथा) जैसे (महान्तः) गम्भीर आशय वाले आप लोग (तविषीम्) बल युक्त सेना का (स्वयम्) अपने से (दधिध्वे) धारण कीजिए और (बृहत्) बड़े को (विद) जानिए (उर्विया) बहुत से (वि) विशेष कर के (राजथ) शोभित हूजिये और जैसे (शुभम्) कल्याण को (यातााम्) प्राप्त होते हुओ के (रथाः) वाहन (अनु, अवृत्सत) अनुकूल वर्त्तमान हैं (उत) और (अन्तरिक्षम्) आकाश को (वि) विशेष कर के (ममिरे) व्याप्त होते हैं वैसे आप लोग (ओजसा) बल से (वि) विशेष कर के (राजथ) शोभित हूजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! ब्रह्मचर्य्य से शरीर और आत्मा के बल को धारण कर के और क्रियाकुशलता को जान के जैसे ईश्वर अन्तरिक्ष मे सम्पूर्ण पदार्थों को उत्पन्न करता है वैसे ही आप लोग अनेक व्यवहारो को सिद्ध कीजिए ॥ २ ॥

साकं जाताः सुभ्वः साकमुक्षिताः श्रिये चिदा प्रतरं वावृधुर्नरः ।
विरोकिणः सूर्य्यस्येव रश्मयः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥३॥

पदार्थ—हे (नरः) सत्य को पहुंचाने वाले मनुष्यो (सूर्य्यस्येव) सूर्य के जैसे (साकम्) एक साथ (जाताः) उत्पन्न और (सुभ्वः) शोभित (साकम्) साथ मे (उक्षिताः) सींचे हुए (विरोकिणः) अनेक प्रकार की रुचि वर्त्तमान जिन मे वे (रश्मयः) किरण (प्रतरम्) अत्यन्त दुःख से पार करनेवाले व्यवहार को (आ) सब प्रकार (वावृधुः) बढ़ावें वैसे (चित्) भी मित्र होते हुए (श्रिये) शोभा वा धन के लिये प्रवृत्त हूजिये और जैसे (शुभम्) कल्याण को (यातााम्) प्राप्त होने हुओ के (रथाः) सुन्दर वाहन आदि (अनु, अवृत्सत) पीछे वर्त्तमान हैं वैसे सब के उपकार के पीछे वर्तिये ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! आप लोग सूर्य्य की किरणो के सदृश एक साथ ही पुरुषार्थ के लिये उद्यत हूजिए और जैसे कल्याण करने वालो के रथों के पीछे भृत्यजन वर्त्तमान होते हैं वैसे ही धर्म के पीछे वर्त्तमान हूजिये ॥ ३ ॥

आभूषेण्यं वो मरुतो महित्वनं दिदृक्षेण्यं सूर्य्यस्येव चक्षणम् ।
उतो अस्माँ अमृतत्वे दधातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥४॥

पदार्थ—हे (मरुतः) प्राण के सदृश प्रिय आचरण करनेवालो जिन (वः) आप लोगो का (सूर्य्यस्येव) सूर्य्य के सदृश (आभूषेण्यम्) शोभा करने और (दिदृक्षेण्यम्) देखने के योग्य (चक्षणम्) प्रकाश (महित्वनम्) और बड़प्पन है जिससे (उतो) निश्चित (अस्मान्) हम लोगो को (अमृतत्वे) नाशरहित पदार्थों के भाव अर्थात् नित्यपन के वर्त्तमान होने पर (दधातन) धारण कीजिये और जिन (शुभम्) धर्म युक्त मार्ग को (यातााम्) प्राप्त होते हुओ के (रथाः) वाहन (अनु, अवृत्सत) अनुकूल वर्त्तमान हैं उनका हम लोग निरन्तर सत्कार करें ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य्य के सदृश न्याय के प्रकाशक अन्यायरूपी अन्धकार के रोकने वाले धर्म मार्ग के अनुगामी होवें उन की सदा ही आप लोग प्रशंसा करो ॥४॥

उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः ।
न वो दस्रा उप दस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥५॥१७॥

पदार्थ—हे (पुरीषिणः) बहुत प्रकार का पोषण विद्यमान जिन मे वे (मरुतः) मनुष्यो (यूयम्) आप लोग हम लोगो को श्रेष्ठकर्मों में (उत्, ईरयथा) प्रेरणा कीजिये और जैसे पवन (समुद्रतः) अन्तरिक्ष से (वृष्टिम्) वर्षा करते हैं वैसे आप लोग (वर्षयथा) वर्षाइये जिससे (दस्राः) नाश होनेवाले और (धेनवः) वाणियां (वः) आप लोगों को (न) नहीं (उप, दस्यन्ति) उपक्षय करते जैसे (शुभम्) कल्याण को (यातााम्) प्राप्त होते हुओ के (रथाः) वाहन (अनु, अवृत्सत) अनुकूल वर्त्तते हैं वैसे धर्ममार्ग का अनुकूल वर्त्ताव कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वान् जनो ! जैसे पवन अन्तरिक्ष से वृष्टि करके सम्पूर्ण प्राणियो को तृप्त करके दुःख का नाश करते हैं वैसे ही सत्यविद्या के उपदेश की वृष्टि से अविद्यारूप अन्धकार से हुए दुःख का निवारण कीजिये ॥५॥

यदश्वान्धूर्षु पृषतीरयुग्ध्वं हिरण्ययान्प्रत्यत्काँ अमुग्ध्वम् ।
विश्वा इत्स्पृधो मरुतो व्यस्यथ शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥६॥

पदार्थ—हे (मरुतः) वायु के सदृश वेग और बल से युक्त जनो जैसे (शुभम्) कल्याण को (यातााम्) प्राप्त होते हुओ के (रथाः) वाहन (अनु, अवृत्सत) अनुकूल वर्त्तमान हैं वैसे (धूर्षु) विमान आदि यानो के अवयव कोष्ठों मे (यत्) जिन (हिरण्ययान्) ज्योतिर्मय (प्रति, अत्कान्) स्पष्ट (पृषतीः) वायु और जल के गमनो और (अश्वान्) अग्नि आदिको को आप लोग (अयुग्ध्वम्) संयुक्त कीजिये और (अमुग्ध्वम्) त्यागिये उनसे (विश्वाः) सम्पूर्ण (स्पृधः) स्पर्धायें रोष (इत्) ही (वि) विशेष करके (अस्यथ) चलाइये ॥६॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि वायु और जल आदिको को वाहनो मे उत्तम प्रकार युक्त करते हैं वे विजय के लिये समर्थ होकर धर्मसम्बन्धी मार्ग के अनुगामी होते हैं ॥६॥

न पर्वता न नद्यो वरन्त वो यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत् ।
उत द्यावापृथिवी याथना परि शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥७॥

पदार्थ—हे (मरुतः) मनुष्यो आप लोग (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि को (गच्छथ, इत्) प्राप्त ही हूजिये (तत्) उनको (उ) और भी (परि, याथना) सब ओर से प्राप्त हूजिये (उत) और (यत्र) जहां (अचिध्वम्) प्राप्त हूजिये और जैसे (शुभम्) कल्याण को (यातााम्) प्राप्त होते हुओ के (रथाः) वाहन (अनु, अवृत्सत) पश्चात् वर्त्तमान हैं वहां वर्त्तमान हूजिये और जैसे सूर्य्य के सम्बन्ध को (न) न (पर्वताः) मेघ (न) न (नद्यः) नदियां (वरन्त) वारण करती हैं वैसे (वः) आप लोगो को कोई भी रोक नहीं सकते हैं ॥७॥

भावार्थ—जो मनुष्य पृथिवी आदि की विद्या से तथा सृष्टि के क्रम से कार्य्यों को सिद्ध करें उनको दारिद्र्य कभी प्राप्त नहीं होवे ॥७॥

यत्पूर्व्यं मरुतो यच्च नूतनं यदुद्यते वसवो यच्च शस्यते ।
विश्वस्य तस्य भवथा नवेदसः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥८॥

पदार्थ—हे (वसवः) वास करनेवाले (नवेदसः) नहीं विद्यमान धन जिन के वे (मरुतः) मनुष्यो (यत्) जो (पूर्व्यम्) प्राचीन विद्वानो से निष्पन्न किया हुआ (यत्) जो (नूतनम्) नवीन (यत् च) जो (उद्यते) कहा जाता है (यत्, च) और जो (शस्यते) स्तुति किया जाता है (तस्य) उस (विश्वस्य) सम्पूर्ण संसार की वैसे रक्षा करनेवाले (भवथा) हूजिये जैसे (शुभम्) कल्याण को (यातााम्) प्राप्त होते हुओ के (रथाः) वाहन (अनु, अवृत्सत) वर्त्तमान होते हैं ॥८॥

भावार्थ—जो शिक्षा और विद्या के दण्ड से संसार की रक्षा करते हैं वे ही प्रशंसित होकर कल्याण को प्राप्त होते हैं ॥८॥

मृळत नो मरुतो मा वधिष्टनास्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्तन ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥९॥

पदार्थ—हे (मरुतः) विद्वानो आप लोग (नः) हम लोगो को (मृळत) सुखी करिये किन्तु (मा) मत (वधिष्टन) नष्ट करिये और (अस्मभ्यम्) हम लोगो के लिये (बहुलम्) बहुत (शर्म) सुख वा गृह (वि, यन्तन) विशेष करके दीजिये और (अधि, स्तोत्रस्य) अधिक प्रशंसित (सख्यस्य) मित्रपने के (शुभम्) सुख की (गातन) प्रशंसा करिये और जो (यातााम्) प्राप्त होते हुओ के (रथाः) वाहन (अवृत्सत) वर्त्तमान हैं उनके (अनु) अनुगामी हूजिये ॥९॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिये कि विद्वानो से प्रार्थना करके श्रेष्ठ गुणो को ग्रहण करें और सब जगह मित्रता करके सबके लिये सुख प्राप्त कराया जावे ॥९॥

यूयमस्मान्नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः ।
जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१०॥१८॥

पदार्थ—हे (गृणानाः) स्तुति करते हुए (मरुतः) विद्वान् मनुष्यो (यूयम्) आप लोग (वस्यः) अति धन से युक्त (अस्मान्) हम लोगो की रक्षा कीजिये और (अंहतिभ्यः) मारते हैं जिनसे उन अस्त्रों से पृथक् (अच्छा) उत्तम प्रकार (निः नयत) निरन्तर पहुँचाइये और (नः) हम लोगो की (जुषध्वम्) सेवा करिये । और हे (यजत्राः) मिलनेवाले हम लोगो के लिये (हव्यदातिम्) देने

योग्य दान को प्राप्त कराइये जिससे (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनो के (पतयः) पालन करनेवाले (स्याम) होवें ॥१०॥

भावार्थ—जिज्ञासुजन विद्वानो की प्रार्थना इस प्रकार करें कि आप लोग हम लोगो को दुष्ट आचरण से अलग करके धर्मयुक्त मार्ग को प्राप्त कराइये ॥१०॥

इस सूक्त मे मरुत् नाम से विद्वान् आदि के गुणो का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह पचपनवां सूक्त और अट्ठारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ नवर्चस्य षट्पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य श्यावाश्व आत्रेय ऋषि. । मरुतो देवता । १,२,५ निचृद्बृहती । ४ विराड्बृहती । ८, ९ बृहती छन्द । मध्यम स्वर । ३ विराट्पङ्क्ति. । ६, ७ निचृत्पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

विद्वानो के उपदेश से मनुष्य और वायु के गुणो को जानकर फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

अग्ने शर्धन्तमा गणं पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः ।
विशो अद्य मरुतामव ह्वये दिवश्चिद्रोचनादधि ॥१॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् जैसे मैं (रुक्मेभि) प्रकाशमान सुवर्ण आदि वा (अञ्जिभि) सुन्दर पदार्थो से (मरुताम्) मनुष्यों के (पिष्टम्) अवयवीभूत (शर्धन्तम्) बलवान् (गणम्) समूह को (आ) सब ओर से (ह्वये) पुकारता हूं और (अद्य) आज (दिव) प्रकाशमान (रोचनात्) प्रीति के विषय से (चित्) भी (विश) मनुष्यो को (अधि) ऊपर के भाव मे (अव) अत्यन्त पुकारता हू वैसे आप भी आचरण करिये ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमावाचकलुप्तोपमालकार है । जो मनुष्य वायु और मनुष्यो के गुणो को जानते है वे सत्कार करनेवाले होते हैं ॥१॥

यथा चिन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जग्मुराशसः ।
ये ते नेदिष्ठं हवनान्यागमन्तान्वर्ध भीमसंदृशः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्य (ये) जो (ते) आपके लिये (नेदिष्ठम्) अत्यन्त सामीप्य को (आशस) कहनेवाले (जग्मु) प्राप्त होते (तान्) उनकी आप (वर्ध) वृद्धि करिये और (यथा, चित्) जिस प्रकार से आप (हृदा) हृदय से (मे) मेरे लिये (तत्) उसको (मन्यसे) मानते हो उस प्रकार से (हवनानि) देने-लेने योग्य वस्तुएँ (आगमन्) प्राप्त होवे और (भीमसन्दृश) भयङ्कर दर्शन जिन का वे (इत्) ही प्राप्त होते हैं ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है । मनुष्य लोग परस्पर के उपकार से सुखी हो ॥ २ ॥

मीळ्हुष्मतीव पृथिवी पराहता मदन्त्येत्यस्मदा ।
ऋक्षो न वो मरुतः शिमीवाँ अमो दुध्रो गौरिव भीमयुः ॥३॥

पदार्थ—हे (मरुत) मनुष्यो जैसे (व) आप लोगो को (पृथिवी) भूमि (मीळ्हुष्मतीव) वीर्य का देनेवाला सुन्दर स्वामी जिसका उसके समान (अस्मत्) हम लोगो से (पराहता) दूर को प्राप्त (मदन्ती) प्रसन्न होती हुई वर्तमान है उसको (शिमीवान्) अच्छे कर्मोवाला (ऋक्ष) पशुविशेष के (न) समान (आ, एति) प्राप्त होता है तथा (गौरिव) सूर्य्य के सदृश (भीमयु) भयकर युद्ध करनेवाले को प्राप्त होनेवाला (दुध्र) दुख से धारण करने योग्य पुरुष (अम) गृह को प्राप्त होता है वैसे आप लोग भी आचरण करो ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो प्रयत्न करते हुए कर्म्मो को करते है वे सदा सुखी होते है ॥३॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रो मे कहते हैं—

नि ये रिणन्त्योजसा वृथा गावो न दुर्धुरः ।
अश्मानं चित्स्वर्यं पर्वतं गिरिं प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥४॥

पदार्थ—(ये) जो मनुष्य (ओजसा) पराक्रम से (नि, रिणन्ति) प्राप्त होते है (चित्) और जो (यामभि) प्रहरो से (स्वर्यम) शब्दो मे श्रेष्ठ (पर्वतम्) पर्वत के सदृश ऊंचे (गिरिम्) शब्द करानेवाले (अश्मानम्) मेघ को (दुर्धुर) दुरगत है धुरा जिनकी उनके (न) समान (प्र, च्यावयन्ति) गिराते है और (वृथा) व्यर्थ निज अर्थ के विना (गाव) गौओ के सदृश होते हैं वे सब से सत्कार करने योग्य होते है ॥४॥

भावार्थ—इस मत्र मे उपमालकार है । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य की किरणें मेघ को नीचे गिराती है वैसे विद्वान् लोग दोषो को दूर करते है ॥ ४ ॥

उत्तिष्ठ नूनमेषां स्तोमैः समुक्षितानाम् ।
मरुतां पुरुतममपूर्व्यं गवां सर्गमिव ह्वये ॥५॥ १९ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! जैसे मैं (गवाम्) गौओ के (सर्गमिव) जल के सदृश (पुरुतमम्) अत्यन्त बहुत (अपूर्व्यम्) अपूर्व मे हुए को (ह्वये) पुकारता हूँ वैसे (एषाम्) इन (समुक्षितानाम्) उत्तम प्रकार से सीचनेवाले (मरुताम्) मनुष्यो की (स्तोमै) प्रशसाओ से (नूनम्) निश्चय से (उत्तिष्ठ) ऊपर पहुँचिये ॥५॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि सृष्टि के क्रम को जानकर सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त हो ॥ ५ ॥

अब अग्निविद्या के उपदेश को अगले मन्त्रों मे कहते हैं—

युङ्ग्ध्वं ह्यरुषी रथे युङ्ग्ध्वं रथेषु रोहितः ।
युङ्ग्ध्वं हरी अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वान् कारीगरो आप लोग (रथे) वाहन मे (अरुषी) रक्त-गुणो से विशिष्ट घोडियो के सदृश ज्वालाओ को (युङ्ग्ध्वम्) युक्त कीजिये (रथेषु) रथो मे (रोहित) लाल गुणवाले पदार्थो को (युङ्ग्ध्वम्) युक्त कीजिये और (धुरि) अग्रभाग मे (वोळ्हवे) प्राप्त करने के लिए (अजिरा) जानेवाले (हरी) धारण और आकर्षण वा तथा (धुरि) अग्रभाग मे (वोळ्हवे) स्थानान्तर मे प्राप्त होने के लिए (वहिष्ठा) अत्यन्त पहुँचानेवाले (हि) निश्चय अग्नि और पवन को (युङ्ग्ध्वम्) युक्त कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि अग्नि आदि पदार्थों को वाहन आदि के चलाने के लिए निरन्तर युक्त करे ॥ ६ ॥

उत स्य वाज्यरुषस्तुविष्वणिरिह स्म धायि दर्शतः ।
मा वो यामेषु मरुतश्चिरं करत्प्र तं रथेषु चोदत ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (मरुत) मनुष्यो जो (वाजी) वेगवान् (इह) इस मे (अरुष.) मर्मस्थल के (तुविष्वणि) बल का सेवी (दर्शत) देखने योग्य (धायि) धारण किया जाता है (स्य) वह (यामेषु) यम आदि से युक्त उत्तम व्यवहारो वा प्रहरो मे (व) आप लोगो को (चिरम्) बहुत कालपर्य्यन्त (मा) मत (स्म) ही (करत्) करे अर्थात् न निषेध करे (तम्, उत) उसी को (रथेषु) रथो मे (प्र, चोदत) प्रेरित करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो अग्निविद्या का धारण करते हैं उनका सब समय मे सत्कार करो ॥ ७ ॥

फिर वायुगुणो को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे ।
आ यस्मिन्तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी ॥ ८ ॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिस मे (सुरणानि) सुन्दर रमण करने योग्य पदार्थ हैं और वीर (आ) सब प्रकार से (तस्थौ) स्थिर है तथा जिस मे (मरुत्सु) पवनो मे सुन्दर पदार्थों को (बिभ्रती) धारण करते हुए (सचा) सम्बन्ध रखने वाले (रोदसी) पृथिवी और सूर्य्य वर्तमान हैं उस (मारुतम्) मनुष्य और वायु सम्बन्धी (श्रवस्युम्) अपनी श्रवण की इच्छा करनेवाले की ओर (रथम्) विमान आदि वाहन को (नु) शीघ्र (वयम्) हम लोग (आ, हुवामहे) स्पर्द्धा करें ॥८॥

भावार्थ—जैसे पवन भूमि आदि को धारण करते है वैसे ही विद्वान् जन सब मनुष्यो का धारण करे ॥ ८ ॥

फिर विद्वानो के उपदेश विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

तं वः शर्धं रथेशुभं त्वेषं पनस्युमा हुवे ।
यस्मिन्त्सुजाता सुभगा महीयते सचा मरुत्सु मीळ्हुषी ॥९॥२०॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यस्मिन्) जिस कुल मे (सुजाता) उत्तम प्रकार प्रसिद्ध (सुभगा) सौभाग्य से युक्त (सचा) सबद्ध (मीळ्हुषी) सेचन करनेवाली (मरुत्सु) मनुष्यो मे (महीयते) सत्कार की जाती और जिसको सेचन करनेवाली प्राप्त होती है (तम्) उस (पनस्युम्) अपनी स्तुति की इच्छा करते हुए को (आ, हुवे) बुलाता हूँ उस को (व) आप लोगो के (रथेशुभम्) रथ के द्वारा कहते हुए (त्वेषम) प्रकाशमान (शर्धम्) बलयुक्त को पुकारता हूँ ॥ ९ ॥

भावार्थ—जिस कुल मे किया ब्रह्मचर्य्य जिन्होने ऐसे स्त्री और पुरुष वर्त्तमान है उसी कुल को भाग्यशाली जानना चाहिये ॥ ९ ॥

इस सूक्त मे विद्वान् तथा वायु के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह छप्पनवां सूक्त और बीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथाष्टर्चस्य सप्तपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः । मरुतो देवता । १, ४, ५ जगती । २, ६ विराड् जगती । ३ निचृज्जगती छन्द । निषाद स्वर । ७ विराट् त्रिष्टुप् । ८ निचृत्त्रिष्टुप् छन्द । गान्धार. स्वर ॥

अब आठ ऋचा वाले सत्तावनवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में रुद्रगुणों को कहते हैं—

आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसो हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन ।
इयं वो अस्मत्प्रति हर्यते मतिस्तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (**हिरण्यरथाः**) सुवर्ण रथों में जिन के अथवा तेज के सदृश रथ जिनके वे (**सजोषसः**) समान प्रीति सेवने और (**इन्द्रवन्तः**) बहुत ऐश्वर्य्य रखने और (**रुद्रासः**) दुष्टों को रुलानेवाले (**सुविताय**) ऐश्वर्य्य के लिए (**आ**) सब ओर (**गन्तन**) प्राप्त होवें और जो (**इयम्**) यह (**अस्मत्**) हम लोगों के समीप से (**मतिः**) बुद्धि है वह (**वः**) आप लोगों की (**प्रति, हर्यते**) कामना करती है और (**तृष्णजे**) तृष्णायुक्त (**उदन्यवे**) जल की इच्छा करनेवाले के लिए (**उत्साः**) कूप (**न**) जैसे वैसे जो (**दिवः**) कामनाओं की कामना करने हैं वे हम लोगों से निरन्तर सत्कार करने योग्य हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे पिपासा से व्याकुल के लिए जल शान्तिकारक होता है वैसे विद्वान् जन जानने की इच्छा करनेवालों के लिए शान्ति के देनेवाले होते हैं ॥ १ ॥

अब पवनों के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान इषुमन्तो निषङ्गिणः ।
स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथना शुभम् ॥२॥

पदार्थ—हे (**पृश्निमातरः**) अन्तरिक्ष माता के सदृश जिसका ऐसे (**मरुतः**) उत्तम प्रकार शिक्षित जनो आप लोग (**वाशीमन्तः**) उत्तम वाणी जिनकी वा जो (**ऋष्टिमन्तः**) ज्ञानवाले (**मनीषिणः**) वा मन की इच्छा करनेवाले (**सुधन्वानः**) सुन्दर धनुष् जिनका (**इषुमन्तः**) वा बाणों वाले और (**निषङ्गिणः**) अच्छे तरवार आदि पदार्थ जिन के वा जो (**स्वश्वाः**) उत्तम घोड़ों से युक्त (**स्वायुधाः**) सुन्दर आयुधों वाले वा (**सुरथाः**) सुन्दर रथ जिनके ऐसे (**स्थ**) होओ और (**शुभम्**) कल्याणकारक व्यवहार वा संग्राम को (**याथन**) प्राप्त होओ ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि विद्या आदि श्रेष्ठ गुणों को ग्रहण करके सदा ही विजय से युक्त हों ॥ २ ॥

धूनुथ द्यां पर्वतान्दाशुषे वसु नि वो वना जिहते यामनो भिया ।
कोपयथ पृथिवीं पृश्निमातरः शुभे यदुग्राः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (**उग्राः**) तेजस्वियो (**पृश्निमातरः**) जिन की माता के सदृश अन्तरिक्ष उन पवनों के सदृश वेग से युक्त (**यत्**) जो आप लोग (**द्याम्**) बिजुली और (**पर्वतान्**) मेघों को (**धूनुथ**) कँपाइये (**दाशुषे**) दाताजन के लिए (**वसु**) द्रव्य को कम्पन कीजिये जो (**वः**) आप लोगों का (**वना**) जङ्गल (**जिहते**) प्राप्त होते हैं उनको (**यामनः**) जानेवाले आप लोग (**भिया**) भय से (**नि, कोपयथ**) निरन्तर कँपाइये और जैसे पवन (**पृथिवीम्**) पृथिवी को युक्त होते हैं वैसे (**शुभे**) जल के लिये (**पृषतीः**) सेचन करनेवाली जल की धाराओं का (**अयुग्ध्वम्**) युक्त कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे पवन, पृथिवी, मेघ और वन आदिकों को कँपाते हैं और जैसे शत्रुजन शत्रुओं को क्रुद्ध करते हैं वैसे ही विद्वान् जन पदार्थों को मथकर बिजुली आदि को तपाते हैं और कार्य्यों में युक्त करते हैं ॥ ३ ॥

वातत्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजो यमा इव सुसदृशः सुपेशसः ।
पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो जो (**यमाइव**) न्यायाधीशों के सदृश (**वातत्विषः**) वायु की कान्ति के समान कान्ति जिन की ऐसे (**वर्षनिर्णिजः**) वर्ष का निर्णय करनेवाले (**सुसदृशः**) उत्तम प्रकार तुल्य गुण कर्म और स्वभाव युक्त (**सुपेशसः**) उत्तम तुल्यरूप वा सुवर्ण जिनका वे (**पिशङ्गाश्वाः**) सब ओर से पीले वर्ण के घोड़ों वाले (**अरेपसः**) अपराध से रहित (**अरुणाश्वाः**) रक्त वर्ण के घोड़ों वाले (**प्रत्वक्षसः**) अत्यन्त सूक्ष्म करनेवाले (**महिना**) महिमा से (**द्यौरिव**) सूर्य्य के सदृश (**उरवः**) बहुत (**मरुतः**) मनुष्य होवें उनका सत्कार करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य्य के सदृश आत्मा से प्रकाशित और न्यायाधीशों के सदृश व्यवहार करनेवाले विमान आदि वाहन से युक्त हैं उनका निरन्तर सत्कार करो ॥ ४ ॥

पुरुद्रप्सा अञ्जिमन्तः सुदानवस्त्वेषसंदृशो अनवभ्रराधसः ।
सुजातासो जनुषा रुक्मवक्षसो दिवो अर्का अमृतं नाम भेजिरे ॥५॥२१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**पुरुद्रप्साः**) बहुत मोह वाले (**अञ्जिमन्तः**) अच्छी कामना विद्यमान जिन की ऐसे वा (**सुदानवः**) उत्तम दानों के करने और (**त्वेषसंदृशः**) प्रकाशित रूप को देखनेवाले (**अनवभ्रराधसः**) नहीं विद्यमान धन का नाश जिन के ऐसे और (**जनुषा**) जन्म से (**सुजातासः**) उत्तम प्रकार धर्म्मयुक्त व्यवहार से प्रसिद्ध (**रुक्मवक्षसः**) सुवर्ण आदि से जुड़े हुए आभूषण वक्षस्थलों में जिन के वे (**दिवः**) कामना करनेवाले (**अर्काः**) सत्कार करने योग्य जन (**अमृतम्**) नाश से रहित (**नाम**) नाम का (**भेजिरे**) सेवन करें उन का सब प्रकार सत्कार करिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो जन उत्तम गुण कर्म्म और स्वभाव को सब प्रकार ग्रहण करते हैं वे सब प्रकार से सुखी होते हैं ॥ ५ ॥

फिर मरुद्विषय में यान चलाने के फल को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ऋष्टयो वो मरुतो अंसयोरधि सह ओजो बाह्वोर्वो बलं हितम् ।
नृम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु वो विश्वा वः श्रीरधि तनूषु पिपिशे ॥६॥

पदार्थ—हे (**ऋष्टयः**) ज्ञानवान् (**मरुतः**) मनुष्यो (**वः**) आप लोगों के (**अंसयोः**) भुजारूप दण्डों के मूलों में जो (**सहः**) सहन और (**ओजः**) पराक्रम तथा (**बाह्वोः**) बाहुसम्बन्धी (**वः**) आप लोगों का (**बलम्**) बल (**हितम्**) स्थित (**शीर्षसु**) मस्तकों (**अधि**) पर (**नृम्णा**) और मनुष्य रमते हैं जिन में ऐसे (**आयुधा**) शस्त्र और अस्त्र (**रथेषु**) संग्रामार्थ वाहनों में वा (**वः**) आप लोगों के (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**श्रीः**) धन वा शोभा (**अधि, पिपिशे**) अधिक आश्रय की जाती और (**वः**) आप लोगों के (**तनूषु**) शरीर में धन वा शोभा अधिक आश्रयण की जाती उन का आप लोग संग्रहण कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य शरीर और आत्मा में बलिष्ठ और आयुधों की विद्या में निपुण होकर उत्तम वाहन आदि सामग्रियों से युक्त हुए पुरुषार्थ करते हैं वे धनवान् होते हैं ॥ ६ ॥

फिर मरुद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

गोमदश्वावद्रथवत्सुवीरं चन्द्रवद्राधो मरुतो ददा नः ।
प्रशस्तिं नः कृणुत रुद्रियासो भक्षीय वोऽवसो दैव्यस्य ॥७॥

पदार्थ—हे (**रुद्रियासः**) साधन करने वालों में हुए (**मरुतः**) मनुष्यो आप लोग (**नः**) हम लोगों के लिये (**गोमत्**) बहुत गौएँ विद्यमान जिस में वा (**अश्वावत्**) बहुत घोड़ों से युक्त (**रथवत्**) वा प्रशंसित वाहनों के सहित (**चन्द्रवत्**) वा सुवर्ण आदि से युक्त वा आनन्द आदि के देनेवाले (**सुवीरम्**) उत्तम वीर निमित्तक (**राधः**) धन को (**ददा**) दीजिये और (**दैव्यस्य**) विद्वानों से किये गये (**अवसः**) रक्षण आदि के सम्बन्ध में (**नः**) हम लोगों की (**प्रशस्तिम्**) प्रशंसा को (**कृणुत**) करिये जिससे (**वः**) आप लोगों के समीप में एक एक मैं सुख का (**भक्षीय**) सेवन करूं ॥ ७ ॥

भावार्थ—जब मनुष्य सत्पुरुषों का सङ्ग करें तब इस लोक में सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य और परलोक में धर्म्म के अनुष्ठान करने की याचना करें ॥७ ॥

फिर मरुद्विषयक विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥८॥२२॥

पदार्थ—(**हये**) हे (**नरः**) नायक (**मरुतः**) मरणशील जनो (**तुवीमघासः**) बहुत धनों से युक्त (**अमृताः**) अपने स्वरूप से मृत्युरहित (**ऋतज्ञाः**) यथार्थ को जानने वाले (**सत्यश्रुतः**) सत्य को सुने हुए वा सत्य को सुनने वाले (**युवानः**) युवावस्था को प्राप्त (**बृहद्गिरयः**) बहुत प्रशंसावाले (**बृहत्, उक्षमाणाः**) बहुत सेवन किये और (**कवयः**) विद्वान् होते हुए आप लोग (**नः**) हम लोगों को (**मृळता**) सुखी करो ॥८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य यथार्थ वक्ता विद्वानों का सेवन करते हैं वे सत्य विद्या को प्राप्त होकर सदा ही प्रसन्न होते हैं ॥ ८ ॥

इस सूक्त में रुद्र और वायु के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह सत्तावनवां सूक्त और बाईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथाष्टर्चस्याष्टपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ।
मरुतो देवता । १, ३, ४, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप् ।
२, ५ त्रिष्टुप् छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ७ भुरिक्
पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब आठ ऋचावाले अट्ठावनवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में वायुगुणों को कहते हैं—

तमु नूनं तविषीमन्तमेषां स्तुषे गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
य आश्वश्वा अमवद्वहन्त उतेशिरे अमृतस्य स्वराजः ॥ १ ॥

पदार्थ—(**अमृतस्य**) नाश से रहित कारण (**स्वराजः**) जो कि आप प्रकाशमान् उस के सम्बन्ध में (**आश्वश्वाः**) शीघ्र चलनेवाले अग्नि आदि अश्व जिन के वे (**ये**) जो (**अमवत्**) गृहों को जैसे प्राप्त हों वैसे (**वहन्ते**) प्राप्त होते हैं (**उत**) और (**नव्यसीनाम्**) अत्यन्त नवीन प्रजाओं के (**मारुतम्**) पवन सम्बन्धी (**गणम्**) समूह की (**स्तुषे**) स्तुति करने के लिये (**ईशिरे**) ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं (**एषाम्**) इन वीरों के (**उ**) तर्क के साथ (**तविषीमन्तम्**) अच्छी सेना जिस की (**तम्**) उसी को (**नूनम्**) निश्चय प्राप्त होते हैं वे विजयी होते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—जो कार्य्य और कारण स्वरूप संसार के गुण कर्म्म और स्वभावों को जानते हैं वे गृह के सदृश सब को सुखी कर सकते हैं ॥ १ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्वेषं गणं तवसं खादिहस्तं धुनिव्रतं मायिनं दातिवारम् ।
मयोभुवो ये अमिता महित्वा वन्दस्व विप्र तुविराधसो नॄन् ॥२॥

पदार्थ—हे (**विप्र**) बुद्धिमन् ! आप (**त्वेषम्**) प्रकाशित (**तवसम्**) बलवान् (**खादिहस्तम्**) खाद्य हाथों में जिस के (**धुनिव्रतम्**) कंपन के सदृश स्वभाव जिसका वा (**मायिनम्**) उत्तम बुद्धि जिस की उस (**दातिवारम्**) दान के स्वीकार करनेवाले वीरों के (**गणम्**) गणन करने योग्य की (**वन्दस्व**) वन्दना करिये और (**ये**) जो (**महित्वा**) महत्त्व को प्राप्त हो कर (**अमिता**) अतुल शुभ गुणवाले (**मयोभुवः**) सुख को करानेवाले हों उन (**तुविराधसः**) बहुत धन वाले (**नॄन्**) मनुष्यों की वन्दना कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि योग्य धार्मिक विद्वानों का ही सत्कार करें जिस से सत्य बढ़े ॥ २ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ वो यन्तूदवाहासो अद्य वृष्टिं ये विश्वे मरुतो जुनन्ति ।
अयं यो अग्निर्मरुतः समिद्ध एतं जुषध्वं कवयो युवानः ॥३॥

पदार्थ—हे (**कवयः**) बुद्धिमान् (**युवानः**) युवावस्था को प्राप्त हुए (**मरुतः**) मनुष्यो (**ये**) जो (**विश्वे**) सम्पूर्ण (**उदवाहासः**) जल को जो धारण करते हैं उनके सदृश (**मरुतः**) पवन (**वृष्टिम्**) वृष्टि की (**जुनन्ति**) प्रेरणा करते हैं वे (**अद्य**) इस समय (**वः**) आप लोगों को (**आ, यन्तु**) प्राप्त हों और (**यः**) जो (**अयम्**) यह (**समिद्धः**) प्रदीप्त (**अग्निः**) अग्नि है (**एतम्**) इस को आप लोग (**जुषध्वम्**) सेवन करो ॥३॥

भावार्थ—जो वृष्टि करनेवाले वायु और अग्नि आदि को विशेष करके जानते हैं वे उनको वृष्टि करने के लिए प्रेरणा करने को समर्थ होते हैं ॥३॥

फिर मरुद् के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यूयं राजानमिर्यं जनाय विभ्वतष्टं जनयथा यजत्राः ।
युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजूतो युष्मत्सदश्वो मरुतः सुवीरः ॥४॥

पदार्थ—हे (**यजत्राः**) मिलनेवाले (**मरुतः**) उत्तम प्रकार शिक्षित मनुष्यो जो (**युष्मत्**) आप लोगों के समीप (**मुष्टिहा**) मुष्टि से मारनेवाला (**बाहुजूतः**) बाहुओं से बलवान् वा (**युष्मत्**) आप लोगों के समीप (**सदश्वः**) अच्छे घोड़े जिसके ऐसा (**सुवीरः**) सुन्दर वीरजन (**एति**) प्राप्त होता है उसको (**जनाय**) मनुष्य के लिये (**इर्यम्**) प्रेरणा करनेवाले (**विभ्वतष्टम्**) बुद्धिमानों के मध्य में तीव्र बुद्धि और (**राजानम्**) न्याय और विनय से प्रकाशमान राजा को (**यूयम्**) आप (**जनयथा**) प्रकट कीजिये ॥४॥

भावार्थ—मनुष्य सम्पूर्ण उपायों से धर्मयुक्त गुण कर्म और स्वभाववाले राजा और प्रजा पुरुष को सहाय से उत्पन्न करें ॥४॥

अब विद्वानों के उपदेशगुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अरा इवेदचरमा अहेव प्रप्र जायन्ते अकवा महोभिः ।
पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः सं मिमिक्षुः ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वानो जो (**मरुतः**) पवन (**अराइव**) चक्रों के अवयवों के सदृश (**अचरमाः**) नहीं अन्त्यावस्था जिनके वा (**अहेव**) दिनों के सदृश (**अकवाः**) नहीं शब्द करते हुए (**पृश्नेः**) अन्तरिक्ष के (**पुत्राः**) पुत्र (**महोभिः, इत्**) बड़ों के ही साथ (**प्रप्र, जायन्ते**) अत्यन्त उत्पन्न होते और (**सम्, मिमिक्षुः**) अच्छे प्रकार मिलना करते हैं वैसे (**उपमासः**) उपमा के तुल्य (**रभिष्ठाः**) अत्यन्त आरम्भ करनेवाले आप लोग (**स्वया**) अपनी (**मत्या**) बुद्धि से अत्यन्त उत्पन्न होओ ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे वाहन के चक्रों के अङ्ग और दिन क्रम से वर्त्तमान हैं और जैसे पवन जा, आकर वर्षाते हैं वैसे ही मनुष्यों को चाहिये कि क्रम से वर्त्ताव करके बुद्धि से सुख की वृष्टि सब के सुख के लिये करें ॥ ५ ॥

यत्प्रायासिष्ट पृषतीभिरश्वैर्वीळुपविभिर्मरुतो रथेभिः ।
क्षोदन्त आपो रिणते वनान्यवोस्रियो वृषभः क्रन्दतु द्यौः ॥६॥

पदार्थ—हे (**मरुतः**) विद्वान् मनुष्यो आप लोग (**पृषतीभिः**) वेग आदिकों और (**अश्वैः**) शीघ्र चलनेवाले (**रथेभिः**) विमान आदि वाहनों से (**यत्**) जो (**वीळुपविभिः**) दृढ़ चक्रों से (**क्षोदन्ते**) वृष्टि करते हैं और जैसे (**आपः**) जल (**वनानि**) किरणों को (**रिणते**) प्राप्त होते हैं वैसे ही (**उस्रियः**) किरणों में उत्पन्न (**वृषभः**) वर्षानेवाला मेघ (**द्यौः**) कामना करता हुआ किरणों को (**अव, क्रन्दतु**) आह्वान करे और इष्ट को (**प्र, अयासिष्ट**) अत्यन्त प्राप्त हो ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो आप लोग वायु के सदृश शीघ्र गमन और जल के सदृश तृप्ति करनेरूप कार्य को करें तो सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त हों ॥६॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

प्रथिष्ट यामन्पृथिवी चिदेषां भर्तेव गर्भं स्वमिच्छवो धुः ।
वातान्ह्यश्वान्धुर्यायुयुज्रे वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (**एषाम्**) इनके मध्य में (**पृथिवी**) भूमि (**यामन्**) प्रहर में (**गर्भम्**) गर्भ को (**भर्तेव**) स्वामी के सदृश (**प्रथिष्ट**) प्रकट करती है वैसे आप लोग (**स्वम्**) सुख और (**शवः**) गमन को (**इत्**) ही (**धुरि**) वाहन के मध्य में (**धुः**) धारण करते और (**अश्वान्**) शीघ्र चलनेवाले (**वातान्**) पवनों को (**आयुयुज्रे**) सब ओर से युक्त करते और (**चित्**) भी (**रुद्रियासः**) दुष्टों के रुलानेवालों में चतुर हुए (**स्वेदम्**) पसीने के सदृश (**हि**) निश्चय (**वर्षम्**) वृष्टि को (**चक्रिरे**) करते हैं ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य पृथिवी के सदृश क्षमाशील और विस्तीर्ण विद्यावाले वाहनों में पवनरूप घोड़ों को संयुक्त करके और वृष्टि के कारणों का निर्माण करके कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वे सम्पूर्ण सुख कर सकते हैं ॥ ७ ॥

हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥८॥२३॥

पदार्थ—(**हये**) हे (**नरः**) नायक (**मरुतः**) जनो (**तुवीमघासः**) बहुत धनवान् (**अमृताः**) मोक्ष को प्राप्त हुए (**सत्यश्रुतः**) सत्य को यथार्थ सुनने और (**ऋतज्ञाः**) परमात्मा वा प्रकृति को जाननेवाले (**युवानः**) प्राप्त हुई अपने शरीर की यौवन अवस्था जिनको (**बृहद्गिरयः**) जिनके बड़े मेघों के सदृश उपकार करनेवाले गुण वे (**बृहत्**) महत् ब्रह्म का (**उक्षमाणाः**) सेवन करते हुए (**कवयः**) पूर्णविद्यावाले आप लोग (**नः**) हम लोगों को (**मृळत**) सुखी करिये ॥८॥

भावार्थ—जो मनुष्य सम्पूर्ण सत्य विद्याओं को प्राप्त होकर यथार्थवक्ता, परमात्मा और उसकी आज्ञा का सेवन करते हुए महाशय पूर्ण शरीर और आत्मा के बल से युक्त अध्यापन और उपदेश से हम लोगों की वृद्धि करते हैं वे ही सर्वदा हम लोगों से सत्कार करने योग्य हैं ॥८॥

इस सूक्त में विद्वान् तथा वायु के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अट्ठावनवां सूक्त तथा तेईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथाष्टर्चस्यैकोनषष्टितमस्य सूक्तस्य श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः । मरुतो देवता । १, ४ विराड्जगती । २, ३, ६ निचृज्जगती छन्दः । ५ जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ७ स्वराट्त्रिष्टुप् । ८ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब आठ ऋचा वाले उनसठवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में विद्वद्गुणों को कहते हैं—

प्र वः स्पळक्रन्त्सुविताय दावनेऽर्चा दिवे प्र पृथिव्या ऋतं भरे ।
उक्षन्ते अश्वान्तरुषन्त आ रजोऽनु स्वं भानुं श्रथयन्ते अर्णवैः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वानो जो (**सुविताय**) ऐश्वर्य में युक्त और (**दावने**) देनेवाले के लिये (**दिवे**) कामना करते हुए के लिये (**पृथिव्यै**) अन्तरिक्ष वा भूमि के लिये तथा (**वः**) आप लोगों के लिये (**भरे**) धारण करते हैं जिसमें उस व्यवहार में (**ऋतम्**) सत्य को (**प्र, अक्रन्**) अच्छे प्रकार करते हैं और (**अश्वान्**) वेग से युक्त अग्नि आदि को (**उक्षन्ते**) सेवते हैं तथा (**तरुषन्ते**) शीघ्र प्लवित होते हैं तथा (**रजः**) लोक के (**अनु**) पश्चात् (**स्वम्**) अपनी (**भानुम्**) कान्ति को (**अर्णवैः**) समुद्रों वा नदियों से (**प्र, आ, श्रथयन्ते**) सब प्रकार शिथिल करते हैं उनका आप लोग सत्कार करिये और हे राजन् (**स्पळ्**) स्पर्श करनेवाले आप इनका निरन्तर (**अर्चा**) सत्कार कीजिये ॥१॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो मनुष्य शिल्पविद्या से विमानादि को रच के अन्तरिक्षादि मार्गों में जा आकर सबके सुख के लिए ऐश्वर्य्य का आश्रयण करते हैं वे संसार के विभूषक होते हैं ॥१॥

अब वायुगुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अमादेषां भियसा भूमिरेजति नौर्न पूर्णा क्षरति व्यथिर्यती ।
दूरेदृशो ये चितयन्त एमभिरन्तर्महे विदथे येतिरे नरः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (**नरः**) नायकमनुष्यो ! जो (**भूमिः**) पृथिवी (**पूर्णा**) पूर्ण (**नौः**) बड़ी नौका के (**न**) सदृश (**भियसा**) भय से (**व्यथिः**) पीड़ित होनेवाली (**यती**) जाती हुई स्त्री के तुल्य (**एजति**) कांपती है और (**एषाम्**) इन वायु और अग्नि आदि के (**अमात्**) गृह से (**क्षरति**) वर्षाती है उसको (**ये**) जो (**एमभिः**) प्राप्त करानेवाले गुणों से इसके (**अन्तः**) मध्य में (**दूरेदृशः**) जो दूर देखे जाते वा देखनेवाले (**महे**) बड़े के लिये (**चितयन्ते**) उत्तमता से समझाते हैं और (**विदथे**) संग्राम वा विज्ञानयुक्त व्यवहार में (**येतिरे**) प्रयत्न करते हैं वे ही सबको सुखी करने के योग्य होते हैं ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे शूरवीर जनों के समीप से डरनेवाले जन भागते हैं वैसे ही वायु और सूर्य से भूमि कांपती और चलती है और जैसे पदार्थों से पूर्ण नौका अग्नि आदि के योग से समुद्र के पार को शीघ्र जाती है वैसे विद्या के पार मनुष्य जावें और जैसे वीर संग्राम में प्रयत्न करते हैं वैसे ही अन्य मनुष्यों को प्रयत्न करना चाहिये ॥२॥

गवामिव श्रियसे शृङ्गमुत्तमं सूर्यो न चक्षू रजसो विसर्जने ।
अत्याइव सुभ्वश्चारवः स्थन मर्याइव श्रियसे चेतथा नरः ॥ ३॥

पदार्थ—हे (**सुभ्वः**) उत्तम प्रकार होनेवाले (**चारवः**) सुन्दर स्वभावयुक्त वा जानेवाले (**नरः**) नायक मनुष्यो (**शृङ्गम्**) ऊपर के (**उत्तमम्**) उत्तम भाग को (**सूर्य्यः**) सूर्य्य के (**न**) सदृश (**गवामिव**) किरणों के सदृश (**श्रियसे**) सेवने को (**रजसः**) लोक के (**विसर्जने**) त्याग में (**चक्षुः**) प्रकाश करनेवाले के सदृश आप लोग (**स्थन**) हूजिये और (**अत्याइव**) घोड़े के सदृश (**मर्य्याइव**) वा विद्वानों के सदृश आश्रयण करने को आप लोग (**चेतथा**) उत्तम प्रकार जानिये वा जनाइये ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य किरणों, सूर्य्य, घोड़े और मनुष्यों के सदृश प्रकाश, दान, वेग और विवेक को सेवते हैं वे ही उत्तम सुख को प्राप्त होते हैं ॥३॥

को वो महान्ति महतामुदश्नवत्कस्काव्या मरुतः को ह पौंस्या ।
यूयं ह भूमिं किरणं न रेजथ प्र यद्भरध्वे सुविताय दावने ॥४॥

पदार्थ—हे (**मरुतः**) विचार करनेवाले जनो (**महताम्**) बड़े (**वः**) आप लोगों के वा आप लोगों को (**महान्ति**) बड़े विज्ञान आदिकों को (**कः**) कौन (**उत्, अश्नवत्**) उत्तमता से प्राप्त होता है (**कः**) कौन (**काव्या**) बुद्धिमानों के कामों को उत्तमता से प्राप्त होता है (**कः**) कौन (**ह**) निश्चय से (**पौंस्या**) पुरुषों के इन बलों को प्राप्त होता है जिससे (**यूयम्**) आप लोग (**भूमिम्**) पृथिवी को (**किरणम्**) दीप्ति के (**न**) समान (**रेजथ**) कंपावें और (**यत्**) जिसको (**ह**) निश्चय (**सुविताय**) ऐश्वर्य और (**दावने**) देनेवाले के लिये (**प्र, भरध्वे**) धारण कीजिये उसको सब लोग प्राप्त होवें ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में प्रश्न और उत्तर है । कौन यथार्थवक्ता जनों के समीप से बड़े विज्ञानों को प्राप्त होता है और कौन आप्तजनों के कर्म्मों को और कौन वीरों के बलों को प्राप्त होता है, इन प्रश्नों का उत्तर यह है कि पवित्र अन्तःकरणयुक्त और धर्म्म के सुनने की इच्छा करनेवाले धर्मिष्ठ पुरुषार्थी और ब्रह्मचारी हैं ॥४॥

अश्वाइवेदरुषासः सबन्धवः शूराइव प्रयुधः प्रोत युयुधुः ।
मर्याइव सुवृधो वावृधुर्नरः सूर्यस्य चक्षुः प्र मिनन्ति वृष्टिभिः ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो (**सबन्धवः**) तुल्यबन्धु जिनके ऐसे (**नरः**) नायक आप लोग (**अरुषासः**) रक्त आदि गुणों से विशिष्ट (**अश्वाइव, इत्**) घोड़ों के सदृश ही शीघ्र चलिये (**उत**) और (**प्रयुधः**) अत्यन्त युद्ध करनेवाले (**शूराइव**) शूरवीरों के सदृश (**प्र, युयुधुः**) अत्यन्त युद्ध करिये तथा (**सुवृधः**) उत्तम प्रकार बढ़नेवाले (**मर्य्याइव**) मनुष्यों के सदृश (**वावृधुः**) बढ़िये और पवन (**सूर्यस्य**) सूर्य्य देव के (**चक्षुः**) देखना जिसमें उसको (**वृष्टिभिः**) वर्षाओं से जैसे वैसे शत्रुओं की सेनाओं को (**प्र, मिनन्ति**) अत्यन्त नाश करते हैं वे सत्कार करने योग्य हैं ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो घोड़ों के सदृश बलिष्ठ, शूरवीरों के सदृश भयरहित, मनुष्यों के सदृश विचारशील और सूर्य के सदृश अविद्यारूपी अन्धकार के निवारक हैं वे सब के कल्याण के लिये होते हैं ॥५॥

ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसा वि वावृधुः ।
सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो (**अज्येष्ठाः**) नहीं विद्यमान ज्येष्ठ जिनके वा (**अकनिष्ठाः**) नहीं विद्यमान छोटा जिनके वा (**उद्भिदः**) पृथिवी को फोड़कर उगनेवाले तथा (**अमध्यमासः**) नहीं विद्यमान मध्यम जिनके वे (**जनुषा**) जन्म से (**सुजातासः**) उत्तम व्यवहारों में प्रसिद्ध वा (**पृश्निमातरः**) अन्तरिक्ष माता जिनका वे और (**दिवः**) कामना करते हुए (**मर्याः**) मनुष्य (**महसा**) बड़े बल आदि से (**वि, वावृधुः**) विशेष बढ़ते हैं (**ते**) वे (**नः**) हम लोगों की (**अच्छा**) उत्तम प्रकार (**आ, जिगातन**) सब ओर से प्रशंसा करते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्यों में यथायोग्य उत्तम शिक्षा हो तो कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम जन विचारशील होकर यथायोग्य जगत् की उन्नति कर सकें ॥ ६ ॥

फिर शिक्षाविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वयो न ये श्रेणीः पप्तुरोजसान्तान्दिवो बृहतः सानुनस्परि ।
अश्वास एषामुभये यथा विदुः प्र पर्वतस्य नभनूँरचुच्यवुः ॥७॥

पदार्थ—(**ये**) जो (**ओजसा**) पराक्रम से (**वयः**) पक्षियों के (**न**) सदृश (**श्रेणीः**) पङ्क्तियों को (**पप्तुः**) प्राप्त होते और (**बृहतः**) बड़े (**सानुनः**) शिखर के समान (**अन्तान्**) समीप में वर्त्तमान (**दिवः**) व्यवहार करनेवालों को (**परि**) सब ओर से प्राप्त होते हैं (**एषाम्**) इनके जो (**उभये**) दो प्रकार के (**अश्वासः**) शीघ्र चलनेवाले पदार्थ हैं उनको (**यथा**) जिस प्रकार से (**विदुः**) जानते हैं और (**पर्वतस्य**) मेघ के (**नभनून्**) समूहों को (**प्र, अचुच्यवुः**) अत्यन्त वर्षाते वे संसार के आधार होते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे पक्षी पङ्क्तिबद्ध हुए शीघ्र जाते हैं वैसे ही उत्तमप्रकार शिक्षायुक्त नौकर और घोड़े आदि वाहन तीनों मार्गों में शीघ्र जाते हैं ॥ ७ ॥

मिमातु द्यौरदितिर्वीतये नः सं दानुचित्रा उषसो यतन्ताम् ।
आचुच्यवुर्दिव्यं कोशमेत ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः ॥८॥२४॥

पदार्थ—हे (**ऋषे**) विद्या के देनेवाले जैसे (**अदितिः**) माता वा (**द्यौः**) प्रकाश के सदृश (**वीतये**) विज्ञान आदि की प्राप्ति के लिए (**नः**) हम लोगों का (**मिमातु**) आदर करें वैसे आप आदर करिये जैसे (**दानुचित्राः**) अद्भुत दान जिनमें ऐसी (**उषसः**) प्रातर्वेलायें व्यवहारों को सिद्ध कराती हैं वा जैसे (**एते**) ये (**रुद्रस्य**) अन्यायकारियों को रुलानेवाले (**दिव्यम्**) कामना में श्रेष्ठ (**कोशम्**) धन के स्थान को (**आ, अचुच्यवुः**) प्राप्त होवें वैसे (**गृणानाः**) स्तुति करते हुए (**मरुतः**) मनुष्य (**सम्**) उत्तम प्रकार (**यतन्ताम्**) प्रयत्न करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो जन बिजुली, प्रातःकाल और ऋषि के सदृश धन के कोश की इच्छा करते हैं वे प्रतिष्ठित होते हैं ॥ ८ ॥

इस सूक्त में पवन और बिजुली के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह उनसठवां सूक्त और चौबीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथाष्टर्चस्य षष्टितमस्य सूक्तस्य श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः । मरुतो वाग्निश्च देवता । १, ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । २ भुरिक् त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ७, ८ जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को प्रथम मन्त्र में कहते हैं—

ईळे अग्निं स्ववसं नमोभिरिह प्रसत्तो वि चयत्कृतं नः ।
रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणिन्मरुतां स्तोममृध्याम् ॥ १ ॥

पदार्थ—जैसे (**प्रसत्तः**) प्रसन्न (**इह**) इस संसार में मैं (**नमोभिः**) सत्कारों से हूं वैसे सत्कारों से (**स्ववसम्**) उत्तम रक्षण जिस से उस (**अग्निम्**) बिजुली की (**ईळे**) अधिक इच्छा करता और (**कृतम्**) किये काम को (**वि, चयत्**) विवेक करता हूँ और जो (**मरुताम्**) मनुष्यों के समूह (**वाजयद्भिः**) वेगवाले (**रथैरिव**) वाहनों के सदृश पदार्थों से (**नः**) हम लोगों को पहुँचाते हैं उनको मैं (**प्र, भरे**) धारण करता हूँ और (**प्रदक्षिणित्**) प्रदक्षिणा को प्राप्त करानेवाला मैं मनुष्यों की (**स्तोमम्**) प्रशंसा को (**ऋध्याम्**) बढ़ाऊं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । विद्वान् जन को चाहिए कि विद्वानों के संग से अग्नि आदि की विद्या को प्रकट करा के प्रसन्नता संपादित करे ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ ये तस्थुः पृषतीषु श्रुतासु सुखेषु रुद्रा मरुतो रथेषु ।
वना चिदुग्रा जिहते नि वो भिया पृथिवी चिद्रेजते पर्वतश्चित् ॥२॥

पदार्थ—(**ये**) जो (**रुद्राः**) प्राण आदि और (**मरुतः**) मनुष्य (**श्रुतासु**) विद्याओं में (**पृषतीषु**) सेचन करने वालियों में (**सुखेषु**) सुखों में और (**रथेषु**) विमानादि वाहनों में (**आ, तस्थुः**) स्थित होवें (**चित्**) और (**वना**) किरण (**उग्राः**) तीव्र स्वभाव वालों के सदृश (**नि, जिहते**) निरन्तर जाते हैं और (**वः**) आप लोगों के (**भिया**) भय से (**पृथिवी**) भूमि (**चित्**) भी (**रेजते**) कम्पित होती है (**पर्वतः**) मेघ के (**चित्**) समान पदार्थ कम्पित होता है उनका हम लोग निरन्तर सत्कार करें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! उत्तम विद्याओं और उत्तम वाहनों पर स्थित होकर शीघ्र जाने के लिए समर्थ हूजिये ॥ २ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

पर्वतश्चिन्महि वृद्धो बिभाय दिवश्चित्सानु रेजत स्वने वः ।

यत्क्रीळथ मरुत ऋष्टिमन्त आपइव सध्र्यञ्चो धवध्वे ॥३॥

पदार्थ—हे (**ऋष्टिमन्त**) अच्छे विज्ञानवाले (**मरुत**) मनुष्यो (**यत्**) जहा तुम (**क्रीळथ**) क्रीडा करते हो (**आपइव**) जलो के सदृश (**सध्र्यञ्च**) एक साथ गमन करते हुए (**धवध्वे**) कपाओ और (**वः**) आप लोगो के (**स्वने**) शब्द में (**पर्वतः**) मेघ के (**चित**) सदृश (**महि**) बडा (**वृद्ध**) वृद्ध (**बिभाय**) डरता है (**दिवः**) प्रकाश मे (**चित**) भी जैसे वैसे (**सानु**) शिखर के तुल्य (**रेजत**) कम्पित होता है वहा अन्वेषण करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो मनुष्य विद्या के व्यवहार की सिद्धि के लिए क्रीडा करते तथा मित्र होकर कार्य की सिद्धि करते है वे सब प्रकार से आनन्दित होते है ॥ ३ ॥

फिर मनुष्य क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

वरा इवेद्रैवतासो हिरण्यैरभि स्वधाभिस्तन्वः पिपिश्रे ।

श्रिये श्रेयांसस्तवसो रथेषु सत्रा महांसि चक्रिरे तनूषु ॥ ४ ॥

पदार्थ—जो (**श्रेयास**) अत्यन्त कल्याण की इच्छा करते हुए (**तवस**) बलवान् गतिवाले (**रैवतास**) पशुओं मे हुए मनुष्य (**वराइव**) श्रेष्ठो के तुल्य (**इत्**) ही (**हिरण्यै**) सुवर्ण तेज आदिको मे और (**स्वधाभि**) अन्न आदिको से (**तन्व**) शरीरो को (**पिपिश्रे**) स्थूल अवयववाले करते है और (**श्रिये**) लक्ष्मी के लिए (**रथेषु**) वाहनो और (**तनूषु**) शरीरो मे (**सत्रा**) सत्य (**महांसि**) बडे काम (**अभि, चक्रिरे**) करते है वे भाग्यशाली होते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य के शरीर का आश्रय करके लक्ष्मी की इच्छा करते है वे दारिद्रय का नाश करते हैं ॥ ४ ॥

फिर मनुष्य को कैसे होना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है—

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय ।

युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**स्वपा**) श्रेष्ठ कर्म का अनुष्ठान करनेवाला (**युवा**) युवावस्थायुक्त और (**रुद्र**) अन्यो का रुलानेवाला (**पिता**) पालक जन और (**एषाम्**) इन की (**सुदुघा**) उत्तम प्रकार मनोरथ की पूर्ण करनेवाली (**सुदिना**) सुन्दर दिन जिसमे वह (**पृश्नि**) अन्तरिक्ष के सदृश वृद्ध (**मरुद्भ्य**) मनुष्यो के लिए विद्यादि दान देती है वैसे (**अज्येष्ठास**) ज्येष्ठपन से रहित (**अकनिष्ठास**) कनिष्ठपन से रहित (**एते**) ये (**भ्रातर**) बन्धु जन (**सौभगाय**) सुन्दर ऐश्वर्य होने के लिए (**सम्, वावृधु**) बढते है ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पूर्ण युवावस्था मे विद्याओ को समाप्त कर और सुशीलता को स्वीकार कर बहुत ही उत्तम गुण उत्तम स्वभावयुक्त स्त्रियो का विवाहद्वारा स्वीकार कर के प्रयत्न करते है वे ऐश्वर्य को प्राप्त होकर आनन्दित होते है ॥५॥

फिर मनुष्यो को परस्पर कैसे वर्त्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है—

यदुत्तमे मरुतो मध्यमे वा यद्वावमे सुभगासो दिवि ष्ठ ।

अतो नो रुद्रा उत वा न्वस्याग्ने वित्ताद्धविषो यद्यजाम ॥६॥

पदार्थ—हे (**सुभगास**) उत्तम ऐश्वर्यवाले और (**रुद्रा**) मध्यम विद्वान् (**मरुत**) मनुष्यो आप लोग (**यत्**) जिस (**उत्तमे**) उत्तम व्यवहार मे (**मध्यमे**) मध्यस्थ व्यवहार मे (**वा**) वा (**अवमे**) निकृष्ट व्यवहार मे (**यत्**) जहा (**वा**) अथवा अन्यत्र निकृष्ट व्यवहार मे (**दिवि**) शुद्ध व्यवहार मे (**स्थ**) हूजिये वहा (**अत**) इस कारण से (**न**) हम लोगो को उत्तम व्यवहार मे स्थापित कीजिये (**उत, वा**) और अथवा हे (**अग्ने**) अग्नि के सदृश प्रकाशित आत्मावाले (**अस्य**) इस के (**वित्तात्**) धन मे और (**हविष**) भोग करने योग्य से (**यत्**) जिसको (**नु**) निश्चय हम लोग (**यजाम**) प्रेरणा करे वहा आप भी प्रेरणा करिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ व्यवहारो मे यथायोग्य वर्त्ताव करके उत्तम ऐश्वर्यवाले होते है उनका सब लोग सत्कार करें ॥ ६ ॥

फिर मनुष्य क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

अग्निश्च यन्मरुतो विश्ववेदसो दिवो वहध्व उत्तरादधि ष्णुभिः ।

ते मन्दसाना धुनयो रिशादसो वामं धत्त यजमानाय सुन्वते ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यत्**) जो (**अग्नि**) अग्नि के सदृश (**विश्ववेदस**) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य से युक्त (**दिव**) कामना करते हुए (**रिशादस**) हिंसकों के नाश करनेवाले (**मन्दसाना**) आनन्द करते हुए (**धुनय**) दुष्टो के कम्पानेवाले (**मरुत.**) विचारशील मनुष्य आप लोग (**सुन्वते**) यज्ञ करने और (**यजमानाय**) पदार्थों के मेल करनेवाले जन के लिए (**वामम्**) प्रशंसा करने योग्य व्यवहार को (**धत्त**) धारण करो और (**उत्तरात्**) पीछे से (**अधि**) ऊपर के होने मे (**स्नुभि**) इच्छा वालो मे प्रशंसा करने योग्य को (**वहध्वे**) प्राप्त हूजिये (**ते, च**) वे भी आप लोग सदा सब का उपकार करिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वे ही महात्मा हैं जो सब के लिए सत्य का धारण करते है ॥ ७ ॥

अब विद्वानों की सेवा करना अगले मन्त्र में कहते हैं—

अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः ।

पावकेभिर्विश्वमिन्वेभिरायुभिर्वैश्वानर प्रदिवा केतुना सजूः ॥८॥२५॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वन् (**गणश्रिभि**) समुदाय की लक्ष्मियो से (**मन्दसान**) आनन्द करता हुआ (**प्रदिवा**) अत्यन्त प्रकाशवाली (**केतुना**) बुद्धि के साथ (**सजू.**) तुल्य प्रीति को सवनेवाले (**वैश्वानर**) सब मे मुख्य आप (**शुभयद्भि**) उत्तम आचरण करनेवाले (**ऋक्वभि**) सत्कार करने योग्य (**पावकेभि.**) पवित्र (**विश्वमिन्वेभि**) सम्पूर्ण संसार के व्यवहार को प्राप्त कराते हुए (**आयुभि.**) जीवनो से (**मरुद्भि**) मनुष्यो के साथ (**सोमम्**) बडी ओषधियो के रस का (**पिब**) पान करिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यो की योग्यता है कि सदा यथार्थवक्ता, विद्वानो के साथ मिल कर विद्या, अवस्था और बुद्धि को बढाकर औषध के सदृश आहार और विहार को कर के उत्तम आचरण सर्वदा करे ॥ ८ ॥

इस सूक्त मे वायु, अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह साठवां सूक्त और पच्चीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथैकोनविंशत्यृचस्यैकषष्टितमस्य सूक्तस्य श्यावाश्व आत्रेय ऋषि । १-४-११-१६ मरुत । ५-८ शशीयसी तरन्तमहिषी । ९ पुरुमीळ्हो वैददश्वि: १० तरन्तो वैददश्वि । १७-१९ रथवीतिर्दार्भ्यो देवता । १, २, ३, ४, ६ ७, ८, १०, ११ १२, १३ १४, १५, १६, १७, १८, १९ गायत्री छन्द । षड्ज स्वर । ५ अनुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर. । ९ सतोबृहती छन्द । मध्यम. स्वर ॥

अब उन्नीस ऋचावाले एकसठवे सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से प्रश्नोत्तरो से मरुदादिको के गुणों को कहते हैं—

के ष्ठा नरः श्रेष्ठतमा य एकएक आयय ।

परमस्याः परावतः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (**श्रेष्ठतमा**) अत्यन्त कल्याण करनेवाले (**नर**) नायक जनो (**परमस्या**) अत्यन्त श्रेष्ठ के पार जानेवाले (**के**) कौन (**स्था**) ठहरे (**ये**) जो (**परावत**) दूर से आकर उपदेश करते है और जिनके मध्य मे (**एकएक**) एक-एक आप दूर देश से एक को (**आयय**) प्राप्त होवे ॥ १ ॥

भावार्थ—कौन अत्यन्त श्रेष्ठ मनुष्य होते है जो सर्वदा अत्यन्त श्रेष्ठ कर्मों को करे ॥ १ ॥

क्व१वोऽश्वाः क्वा३भीशवः कथं शेक कथा यय ।

पृष्ठे सदो नसोर्यमः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**व**) आप लोगो के (**क्व**) कहा (**अश्वा.**) शीघ्र चलनेवाले घोडे और (**क्व**) कहा (**अभीशव**) अंगुलियां है उन को आप लोग (**कथम्**) किस प्रकार (**शेक**) शीघ्र पहुंचनेवाले हूजिये और (**कथा**) किस प्रकार से (**यय**) जाइये और जैसे (**नसो**) नासिकाओ के (**पृष्ठे**) पीछे के भाग मे (**सद**) जाने करने योग्य वस्तु का (**यम**) नियन्ता है वैसे आप लोग हूजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब कोई विद्वानो को पूछे तब वे उत्तर दें और पक्षपात को छोडकर न्यायाधीशो के सदृश होवें तब सम्पूर्ण बोध को प्राप्त होवें ॥ २ ॥

जघने चोद एषां वि सक्थानि नरो यमुः । पुत्रकृथे न जनयः ॥३॥

पदार्थ—हे (**नर**) नायक जनो (**पुत्रकृथे**) पुत्र करने मे (**जनयः**) माता पिता (**न**) जैसे वैसे (**एषाम्**) इन के (**जघने**) कटि के नीचे के भाग के अवयवो का जो (**चोद**) प्रेरणा करनेवाला है और जो (**सक्थानि**) घुटनो को (**वि, यमु**) नियम से रक्खें उनका आप लोग सत्कार करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है । जैसे उत्पन्न करनेवाले माता पिता सुन्दर नियम से सन्तानोत्पत्ति कर के इन को उत्तम प्रकार नियम युक्त करके उत्तम प्रकार शिक्षित करें वैसे सब करें ॥ ३ ॥

अब विद्वानों के उपदेश विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

परा वीरास एतन मर्यासो भद्रजानयः । अग्नितपो यथासथ ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग (**यथा**) जैसे (**अग्नितप.**) अग्नि से तपाने वाले (**वीरासः**) विद्या और बल से व्याप्त (**मर्यास.**) मनुष्य (**परा**)

दूर के लिए (एतन) प्राप्त हो और (भद्रजानय.) कल्याण के जानने वाले (असथ) होवें वैसे वे सत्कार करने योग्य होवें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो बन्धन के साधन और पाप के आचरण का त्याग कर और त्याग करा के और मुक्ति के साधन को ग्रहण कर और ग्रहण कराके सब को आनन्दित करते हैं उनको आनन्दित करें ॥ ४ ॥

सनत्साश्व्यं पशुमुत गव्यं शतावयम् ।

श्यावाश्वस्तुताय या दोर्वीरायोपबर्बृहत् ॥५॥२६॥

पदार्थ—(या) जो (श्यावाश्वस्तुताय) घोड़ों से प्रशंसित (वीराय) वीर जन के लिये (दोः) भुजा का बल (उप,बर्बृहत्) अत्यन्त समीप मे देती है (सा) वह विद्यायुक्त स्त्री (सनत्) सनातन (अश्व्यम्) घोड़ो मे श्रेष्ठ (गव्यम्) गौओं मे श्रेष्ठ (उत) और (शतावयम्) सौ अवयव जिस मे उस (पशुम्) देखते हुए को बढ़ा सकती है ॥ ५ ॥

भावार्थ—वही स्त्री प्रशंसित होती है जो अपने पति को काम मे आसक्त करके बल का नाश नही करती है और गृह स्थित घोड़े आदि का पालन करके बढ़ाती है ॥ ५ ॥

फिर स्त्री के पुरुषार्थ उपदेश को अगले मन्त्र में कहते हैं—

उत त्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी ।

अदेवत्रादराधसः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे पुरुषो ! जो (स्त्री) स्त्री (अदेवत्रात्) विद्वानो की रक्षा करता है जिससे उससे विरुद्ध (अराधस:) धन विरुद्ध पदार्थ से पृथक् हो कर (पुंस:) पुरुष की (वस्यसी) अत्यन्त धनवाली (उत) और (शशीयसी) अत्यन्त दु:ख को दूर करनेवाली (भवति) होती और (त्वा) आप को सुखी करती है उस को आप सुखयुक्त करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—वही स्त्री पति से आदर करने योग्य होती है जो अन्यायाचरण और नही आदर करने योग्य के आदर करने से रहित हुई पति को सुखी करती है वही पति से निरन्तर आदर करने योग्य होती है ॥ ६ ॥

वि या जानाति जसुरिं वि तृष्यन्तं वि कामिनम् ।

देवत्रा कृणुते मनः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (या) जो (जसुरिम्) प्रयत्न करते हुए को (वि) विशेष करके (जानाति) जानती है (तृष्यन्तम्) पिपासा से व्याकुल हुए के तुल्य को (वि) विशेष करके जानती है और (कामिनम्) कामातुर पुरुष को (वि) विशेष करके जानती है वह (देवत्रा) विद्वानो मे (मन) चित्त (कृणुते) करती है ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो स्त्री पुरुषार्थी, धार्मिक, लोभी और कामातुर पति को जान-कर दोषो के निवारण और गुणो के ग्रहण करने के लिए प्रेरणा करती है वही पति आदि की कल्याण करने वाली होती है ॥ ७ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र मे कहते है—

उत घा नेमो अस्तुतः पुमाँ इति ब्रुवे पणिः स वैरदेय इत्समः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (अस्तुत.) नही प्रशंसा किया गया (उत) और (नेम.) आधे का अधिकारी (घा) ही (वैरदेये) वैर देने योग्य जिस से उस मे (पुमान्) पुरुष और जो (पणि) प्रशंसित वर्त्तमान है (स:, इत्) वही (समा) तुल्य है (इति) इस प्रकार से मैं (ब्रुवे) कहता हूँ ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो आलस्ययुक्त जन श्रेष्ठ कर्मों मे नही प्रवृत्त होता है और दूसरा विद्वान् पुरुष सत्य और असत्य को जानकर सत्य का आचरण नही करता है वे दोनो तुल्य अधर्मात्मा है यह जानना चाहिये ॥ ८ ॥

फिर स्त्री पुरुष के विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

उत मेऽरपद्युवतिर्ममन्दुषी प्रति श्यावाय वर्त्तनिम् ।

वि रोहिता पुरुमीळ्हाय येमतुर्विप्राय दीर्घयशसे ॥ ९ ॥

पदार्थ—जो (प्रति, श्यावाय) धूमिल वर्ण से युक्त अश्व और (पुरु-मीळ्हाय) बहुत वीर्य के सींचने वाले (दीर्घयशसे) बड़े यशस्वी (विप्राय) बुद्धिमान् (मे) मेरे लिए (ममन्दुषी) प्रशंसा करने योग्य और आनन्द करनेवाली (वर्त्तनिम्) मार्ग को (वि, रोहिता) जानेवाली (युवतिः) यौवनावस्था को प्राप्त स्त्री (अरपत्) स्पष्ट उपदेश देती है (उत) और मैं स्पष्ट उपदेश करू वे हम दोनों जैसे श्रेष्ठ गुणो से युक्त स्त्री और पुरुष (येमतुः) नियम करते हैं वैसे वर्त्ताव करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो स्त्री पुरुष परस्पर तुल्य गुण कर्म और स्वभाव वाले हो तो श्रेष्ठ मार्ग, अत्यन्त कीर्ति और आनन्द को प्राप्त हो ॥ ९ ॥

यो मे धेनूनां शतं वैददश्विर्यथा ददत् ।

तरन्तइव मंहना ॥ १० ॥ २७ ॥

पदार्थ—(य) जो (वैददश्वि:) घोड़ो के ज्ञाता का पुत्र (मे) मेरी (धेनूनाम्) गौओं के (शतम्) सैकड़े को (ददत्) देता है (यथा) जैसे (मंहना) बड़ी नौका से (तरन्तइव) तैरते हुओं के समान दु:ख के पार पहुँचाता है वही स्वामी होने के योग्य होता है ॥ १० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सैकड़ो वा हजारो का देने वाला होता है और दुग्ध देनेवाली गौओं की रक्षा करता है वह नौका से नदी वा समुद्र को तरता है वैसे ही बुद्धिमान् स्त्री और पुरुष दु:खरूपी सागर को धर्म के आचरण से तरते हैं ॥१०॥

य ईं वहन्त आशुभिः पिबन्तो मदिरं मधु ।

अत्र श्रवांसि दधिरे ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (ये) जो (आशुभि) शीघ्रकारी गुणो से (मदि-रम्) आनन्दकारक (ईम्) जल को (वहन्ते) प्राप्त होते हैं और (मधु) माधुर्य आदि गुणो से युक्त को (पिबन्तः) पीते हुए (अत्र) यहां (श्रवांसि) अन्न आदिको को (दधिरे) धारण करते है वे ही लक्ष्मीवान् होते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो शीघ्र सुखकारक और बुद्धिवर्धक वस्तुओं का सेवन करते हैं वे यहां लक्ष्मीवान् होते है ॥ ११ ॥

फिर उपदेशविषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

येषां श्रियाधि रोदसी विभ्राजन्ते रथेष्वा ।

दिवि रुक्मइवोपरि ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (येषाम्) जिन विद्वानो का (श्रिया) शोभा वा लक्ष्मी से धर्मयुक्त व्यवहार (दिवि) कामना मे (रुक्मइव) प्रीतिकारक सुवर्ण आदि पदार्थ जैसे वैसे (विभ्राजन्ते) शोभित होते है और जो (रथेषु) विमान आदि वाहनों मे (आ अधि) विराजित होवें वे (उपरि) ऊपर (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी के सदृश प्रकाशित होते है ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो धर्मयुक्त पुरुषार्थ से धन आदि को इकट्ठे करते हैं वे सूर्य के किरणों के सदृश प्रकाशित यशवाले होते है ॥ १२ ॥

फिर स्त्री पुरुष के विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

युवा स मारुतो गणस्त्वेषरथो अनेद्यः । शुभंयावाप्रतिष्कुतः ॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (अनेद्य) नही निन्दा करने योग्य (त्वेषरथ:) प्रकाशवान् वाहन जिसका वह (शुभंयावा) जल को प्राप्त होने वाला (अप्र-तिष्कुत) नही कम्पित दृढ (युवा) यौवनावस्था को प्राप्त (मारुत) पवनो के समूह के सदृश मनुष्यो का (गण) समूह है (स.) वह बहुत कार्यों को सिद्ध कर सकता है ॥ १३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सम्पूर्ण स्त्री पुरुषों का यौवनावस्थायुक्त और विद्वान् करते हैं वे प्रशंसा करने योग्य, कल्याणकारी और दृढ होते है ॥ १३ ॥

फिर उपदेशार्थ विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

को वेद नूनमेषां यत्रा मदन्ति धूतयः ।

ऋतजाता अरेपसः ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो (यत्र) जहां (ऋतजाता) सत्य मे उत्पन्न होने वाले (अरेपस.) अपराध से रहित (धूतय) पाप को कम्पाने वाले (मदन्ति) प्रसन्न होते है वहां (एषाम्) इन वायु आदि के स्वरूप को (नूनम्) निश्चित (क) कौन (वेद) जानता है ॥ १४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! अपराध, अनपराध तथा सत्य और असत्य को कौन जानता है यह हम पूछते हैं जो प्रमाद से रहित और परमेश्वर के भक्त होते है ॥ १४ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों मे कहते हैं—

यूयं मर्त्तं विपन्यवः प्रणेतारं इत्था धिया ।

श्रोतारो यामहूतिषु ॥ १५ ॥ २८ ॥

पदार्थ—हे (विपन्यव:) बुद्धिमानो (यूयम्) आप लोग (प्रणेतारः) प्रेरणा करने और (श्रोतारा) सुननेवाले जन (धिया) बुद्धि वा कर्म से (याम-हूतिषु) उपरम अर्थात् निवृत्ति और आह्वानरूप कर्मों मे (इत्था) इस प्रकार से (मर्त्तम्) मनुष्यो को प्रेरणा करो ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन धर्मयुक्त व्यवहारो मे मनुष्यो को प्रेरणा करके बुद्धिमान् करते हैं वे धन्य होते है हैं ॥ १५ ॥

ते नो वसूनि काम्या पुरुश्चन्द्रा रिशादसः ।

आ यज्ञियासो ववृत्तन ॥ १६ ॥

पदार्थ—जो (यज्ञियास:) यज्ञ के करने (रिशादसः) और हिंसको के मारनेवाले (नः) हम लोगो के (पुरुश्चन्द्रा) बहुत सुवर्ण और (काम्या) सुन्दर (वसूनि) धनो को (आ, ववृत्तन) प्राप्त होते हैं (ते) वे विद्वान् हम लोगो के कल्याणकारी होते हैं ॥ १६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! वे ही संसार में परोपकार के लिए वर्त्तमान हैं जो न्याय से द्रव्य का संग्रह करते हैं ॥ १६ ॥

एतं मे स्तोमंमूर्म्ये दार्भ्याय परा वह ।
गिरो देवि रथीरिव ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे (**देवि**) प्रकाशमान विद्यायुक्त स्त्री (**ऊर्म्ये**) रात्रि के सदृश वर्त्तमान आप (**मे**) मेरी (**एतम्**) इस (**स्तोमम्**) प्रशंसा को सुनिये और (**दार्भ्याय**) विदारण करने वालों में हुए के लिए वर्त्तमान को (**परा, वह**) दूर कीजिये तथा (**रथीरिव**) प्रशंसित रथ वाला जैसे वैसे (**गिरः**) वाणियों का धारण कीजिये ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जैसे प्राणियों के सुख के लिए रात्रि है वैसे ही पति आदिकों के सुख के लिए श्रेष्ठ स्त्री होती है ॥ १७ ॥

उत मे वोचतादिति सुतसोमे रथवीतौ ।
न कामो अप वेति मे ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् आप (**मे**) मेरे लिये (**रथवीतौ**) वाहनों के गमन में (**उत**) और (**सुतसोमे**) उत्पन्न किये हुए ऐश्वर्य्य आदि में सत्य का उपदेश देने योग्य हैं (**इति**) इस प्रकार (**वोचतात्**) उपदेश देवें जिससे (**मे**) मेरी (**काम**) कामना (**न**) नहीं (**अप, वेति**) नष्ट होती है ॥ १८ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिए कि विद्वान् जनों के प्रति यह प्रार्थना करें कि आप लोग हम लोगों को ऐसे उपदेश करो जिससे हम लोगों की इच्छायें सिद्ध होवें ॥ १८ ॥

एष क्षेति रथवीतिर्मघवा गोमतीरनु । पर्वतेष्वपश्रितः ॥१९॥२९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**पर्वतेषु**) मेघों में (**अपश्रित**) आश्रित सूर्य (**गोमतीः**) किरणें विद्यमान जिनमें ऐसे गमनों को (**अनु**) अनुकूल वर्त्तता है वैसे (**एष**) यह (**रथवीतिः**) रथ से मार्ग का व्याप्त होने वाला (**मघवा**) अत्यन्त धनवान् जन (**क्षेति**) निवास करता है ॥ १९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य मेघ का कारण होकर पृथक्स्वरूप है वैसे ही विद्वान् सर्वत्र वास करता हुआ भी मोहरहित होता है ॥ १९ ॥

इस सूक्त में प्रश्न, उत्तर और वायु आदि के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह इकसठवाँ सूक्त और उनतीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ नवर्चस्य द्विषष्टितमस्य सूक्तस्य श्रुतिविदात्रेय ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १, २ त्रिष्टुप् । ३, ४, ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ७, ८, ९ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब नव ऋचावाले बासठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में सूर्य्यगुणों को कहते हैं—

ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां सूर्य्यस्य यत्र विमुचन्त्यश्वान् ।
दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम् ॥१॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक जनो (**यत्र**) जहां विद्वान् जन (**सूर्य्यस्य**) सूर्य्य के (**दश**) दश (**शता**) सैकड़ों (**अश्वान्**) किरणों को (**विमुचन्ति**) छोड़ते और (**सह**) साथ (**तस्थु**) स्थित होते हैं (**वाम्**) तुम दोनों के (**ऋतेन**) सत्य कारण से (**ध्रुवम्**) निश्चल (**ऋतम्**) सत्यस्वरूप (**अपिहितम्**) आच्छादित है (**तत्**) उस (**एकम्**) अद्वितीय (**देवानाम्**) विद्वानों के और (**वपुषाम्**) रूपवाले शरीरों के (**श्रेष्ठम्**) श्रेष्ठभाव को मैं (**अपश्यम्**) देखता हूँ उसको आप लोग भी देखिये ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो यह सूर्य्यलोक है वह परमेश्वर से अनेक तत्त्वों द्वारा रचा गया है इस कारण अनेक गुणों से युक्त है उस को तुम लोग यथावत् जानो ॥ १ ॥

अब मित्रावरुण के गुणों को कहते हैं—

तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्थुषीरहभिर्दुदुह्रे ।
विश्वाः पिन्वथः स्वसरस्य धेना अनु वामेकः पविरा ववर्त्त ॥२॥

पदार्थ—हे (**मित्रावरुणा**) प्राण और उदान वायु के सदृश अध्यापक और उपदेशक जनो (**वाम्**) आप दोनों के जिस (**महित्वम्**) महत्त्व की (**ईर्मा**) निरन्तर चलनेवाला रक्षा करता है (**तत**) उसकी आप दोनों (**पिन्वथः**) तृप्ति कीजिए और जैसे (**अहभिः**) दिनों से किरण (**तस्थुषी**) स्थिर वेलाओं को (**सु**) उत्तम प्रकार (**दुदुह्रे**) पूर्ण करते हैं और (**स्वसरस्य**) दिन के मध्य में (**वाम्**) आप दोनों (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**धेनाः**) वाणियों को तृप्त कीजिए वैसे (**एकः**) सहायरहित केवल एक (**पवि**) पवित्र व्यवहार (**अनु**) अनुकूल (**आ**) (**ववर्त**) वर्त्तमान हो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! आप दोनों मनुष्यों को रात्रि-दिन प्राण उदान और बिजुली की विद्याओं को ग्रहण कराइये जिससे सम्पूर्ण प्रजायें आनन्दित होवें ॥ २ ॥

अधारयतं पृथिवीमुत द्यां मित्रराजाना वरुणा महोभिः ।
वर्धयतमोषधीः पिन्वतं गा अव वृष्टिं सृजतं जीरदानू ॥३॥

पदार्थ—हे (**जीरदानू**) जीवन के देनेवाले (**वरुणा**) श्रेष्ठ (**मित्रराजाना**) प्राण और बिजुली जैसे वायु और बिजुली (**पृथिवीम्**) भूमि को (**उत**) और (**द्याम्**) सूर्य्य को धारण करते हैं वैसे (**अधारयतम्**) धारण कीजिये और जैसे ये दोनों (**महोभि**) बड़े गुणों से (**ओषधीः**) यव आदि ओषधियों को (**वर्धयतम्**) बढ़ावें (**गाः**) पृथिवियों को तृप्त करते हैं वैसे आप दोनों (**पिन्वतम्**) तृप्त कीजिए और जैसे वे दोनों (**वृष्टिम्**) वृष्टि को उत्पन्न करते हैं वैसे (**अव, सृजतम्**) उत्पन्न कीजिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजा और मन्त्रीजनो ! आप दोनों प्राण और सूर्य्य के सदृश वर्त्ताव कर पृथिवी के राज्य का पालन कर वैद्य और ओषधियों की वृद्धि कर और वृष्टि की उन्नति करके सुख के लिए वर्त्ताव कीजिए ॥ ३ ॥

आ वामश्वासः सुयुजो वहन्तु यतरश्मय उप यन्त्वर्वाक् ।
घृतस्य निर्णिगनु वर्तते वामुप सिन्धवः प्रदिवि क्षरन्ति ॥४॥

पदार्थ—हे वाहन के बनाने और चलानेवाले जनो जो जैसे (**वाम्**) आप दोनों के (**सुयुज**) उत्तम प्रकार मिलनेवाले (**यतरश्मयः**) ग्रहण की गई किरणें वा रस्सियाँ जिनकी ऐसे (**अश्वासः**) अग्नि आदि पदार्थ वा घोड़े (**घृतस्य**) जल के (**अर्वाक्**) नीचे से (**आ, वहन्तु**) पहुँचावें और यानों को (**उप, यन्तु**) चलावें और (**निर्णिक्**) निर्णय करनेवाला सारथि (**अनु, वर्त्तते**) प्रवृत्त होता है और (**प्रदिवि**) प्रकाशस्वरूप अग्नि में (**सिन्धवः**) नदियां (**वाम्**) आप दोनों को (**उप, क्षरन्ति**) जल वर्षाती हैं वैसा प्रयत्न कीजिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य वाहनों में यन्त्रकलाओं को रचके नीचे अग्नि और ऊपर जल स्थापित करके और फिर उस अग्नि को प्रदीप्त करके मार्गों में चलावें तो बहुत लक्ष्मियाँ इनको प्राप्त हों ॥ ४ ॥

अनु श्रुताममतिं वर्धदुर्वीं बर्हिरिव यजुषा रक्षमाणा ।
नमस्वन्ता धृतदक्षाधि गर्त्ते मित्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ॥५॥३०॥

पदार्थ—हे (**मित्र**) प्राण के सदृश (**वरुण**) श्रेष्ठ (**धृतदक्षा**) धारण किया बल जिन्होंने वे (**बर्हिरिव**) जल के सदृश (**यजुषा**) सत्सङ्ग वा क्रिया से (**उर्वीम्**) पृथिवी की (**रक्षमाणा**) रक्षा करते हुए (**नमस्वन्ता**) बहुत अन्नवाले (**इळासु**) वाणियों में और (**अन्तः**) मध्य (**गर्त्ते**) गृह में आप दोनों (**आसाथे**) वर्त्तमान हैं और वह (**अनु, श्रुताम्**) पीछे श्रवण किये गये (**अमतिम्**) रूप को (**अधि**) ऊपर को (**वर्धत्**) बढ़ावे उनकी हम लोग परिचर्य्या करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जैसे प्राण और उदान आदि पवन सब जगत् की रक्षा करते हैं वैसे आप लोग रक्षा करें ॥ ५ ॥

अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यं त्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ।
राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्रस्थूणं बिभृथः सह द्वौ ॥६॥

पदार्थ—हे (**वरुण**) अति श्रेष्ठ सभा और सेना के स्वामी राजा और मन्त्री जनो वायु और सूर्य के सदृश (**अक्रविहस्ता**) नहीं हिंसा करनेवाले हस्त जिन के वा दानशील हस्त जिनके वे (**परस्पा**) दूसरों की रक्षा करनेवाले (**राजाना**) प्रकाशमान और (**क्षत्रम्**) राज्य वा धन को (**अहृणीयमाना**) क्रोध से रहित आचरण करते हुए (**द्वौ**) दोनों आप (**इळासु**) पृथिवियों के (**अन्तः**) मध्य में (**सुकृते**) धर्मयुक्त काम में वर्त्तमान (**सह**) साथ (**यम्**) जिसको (**त्रासाथे**) भय देवें उस (**सहस्रस्थूणम्**) सहस्र वा असंख्य थूनीवाले जगत् राज्य वा वाहन को (**बिभृथ**) धारण करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजा और मन्त्रीजन ! आप स्वयं धर्मात्मा होकर सहस्र शाखा जिसकी ऐसे राज्य के रक्षण के लिए दुष्टों को दण्ड देकर और श्रेष्ठों का सत्कार करके यशस्वी होवें ॥ ६ ॥

फिर प्रसङ्ग से विद्युद्विद्या विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा वि भ्राजते दिव्य१श्वाजनीव ।
भद्रे क्षेत्रे निमिता तिल्विले वा सनेम मध्वो अधिगर्त्यस्य ॥७॥

पदार्थ—इस संसार में जो (**हिरण्यनिर्णिक्**) पृथिवी के सुवर्ण और अग्नि के तेज को अत्यन्त निश्चय करने और (**अयः**) जानेवाला (**अस्य**) इस राज्य और जगत् के मध्य में (**दिवि**) प्रकाश में (**भद्रे**) कल्याणकारक (**तिल्विले**) स्नेह के स्थान में (**क्षेत्रे**) निवास करते हैं जिस पुण्य कर्म्म में उस में (**वि, भ्राजते**) विशेष प्रकाशित होता है और (**अश्वाजनीव**) बिजुली के सदृश (**निमिता**) अत्यन्त मापी अर्थात् जाँची गई (**वा**) अथवा (**स्थूणा**) खंभे के सदृश धुकनीति

विशेष प्रकाशित होती है उस और उसको (अधिगर्त्तस्य) अधिक सुन्दर गृह मे हुए (मध्व) मधुरादि पदार्थ के मध्य मे हम लोग (सनेम) विभाग करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य श्रेष्ठ व्यवहार मे विराजमान, बिजुली आदि की विद्या को ग्रहण करते हुए गृह के कृत्य मे यथावत् न्याय को करते है विभाग कर और विभाग देकर कृत्यकृत्य होते हैं वे नीतिवाले होते हैं ॥ ७ ॥

फिर मित्रावरुण के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयःस्थूणमुदिता सूर्यस्य ।

आ रोहथो वरुण मित्र गर्तमतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (मित्र) (वरुण) प्राण और उदान वायु के सदृश वर्त्तमान राजा और मन्त्री जनो आप दोनो जैसे (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (उदिता) उदय मे और (उषसः) प्रातःकाल के (व्युष्टौ) विशेष दाह वा निवास मे (हिरण्यरूपम्) (अयःस्थूणम्) सुवर्ण के खम्भे के सदृश तेजःस्वरूप को (आ,रोहथ) आरोहण करते हैं (अतः) इस कारण से (गर्त्तम्) गृह को अधिष्ठित हो के (अदितिम्) नहीं नष्ट होनेवाले कारण (दितिम्, च) और नाश होनेवाले कार्य का (चक्षाथे) उपदेश करते हैं उन दोनो को हम लोग मिलें ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य के उदय होने पर अन्धकार निवृत्त होता और प्रकाश प्रवृत्त होता है वैसे ही कार्य और कारणरूप विद्या के जाननेवाले राजा और मन्त्रीजन मित्र के सदृश वर्त्ताव करके दृढ न्याय का प्रचार करावें ॥ ८ ॥

यद्बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू अच्छिद्रं शर्म्म भुवनस्य गोपा ।

तेन नो मित्रावरुणावविष्टं सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम ॥९॥३१॥३॥

पदार्थ—हे (सुदानू) उत्तम दान करनेवाले (भुवनस्य) सम्पूर्ण संसार के (गोपा) रक्षक (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान के सदृश वर्त्तमान राजा और मन्त्री जनो आप दोनो जैसे (न, अतिविधे) अतिवेधन करने के अयोग्य (यत्) जिस (बंहिष्ठम्) अत्यन्त वृद्ध (अच्छिद्रम्) छिद्ररहित (शर्म) गृह को प्राप्त हूजिए (तेन) इससे (नः) हम लोगो को (अविष्टम्) व्याप्त हूजिए जिससे हम लोग (सिषासन्तः) विभाग करते हुए (जिगीवांसः) शत्रुओं के धनो को जीतने की इच्छा करनेवाले (स्याम) होवें ॥ ९ ॥

भावार्थ—विद्वान् जन अति उत्तम गृहों को रचकर और वहां विचार करके विजय, विद्या और क्रिया को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

इस सूक्त मे सूर्य, प्राण, उदान और राजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीमद्विरजानन्दसरस्वती स्वामीजी के शिष्य श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिविरचित उत्तम प्रमाण युक्त ऋग्वेदभाष्य में चतुर्थाष्टक में तीसरा अध्याय इकतीसवां वर्ग और पञ्चम मण्डल मे बासठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्थाऽध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथ सप्तर्चस्य त्रिषष्टितमस्य सूक्तस्यार्चनाना आत्रेय ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १, २, ४, ७ निचृज्जगती । ३, ५ ६ जगतीछन्दः । निषादः स्वरः ।

अब चतुर्थाध्याय का आरम्भ है और पञ्चम मण्डल मे सात ऋचावाले त्रेसठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मित्रावरुण विद्वद्विषय को कहते हैं

ऋतस्य गोपावधि तिष्ठथो रथं सत्यधर्म्माणा परमे व्योमनि ।

यमत्र मित्रावरुणावथो युवं तस्मै वृष्टिर्मधुमत्पिन्वते दिवः ॥१॥

पदार्थ—हे (ऋतस्य) ऋत अर्थात् सत्य की (गोपौ) रक्षा करनेवाले और (सत्यधर्म्माणा) सत्य है धर्म जिनका ऐसे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु के सदृश वर्त्तमान राजा और अमात्य जनो (युवम्) आप दोनो (परमे) अति उत्तम (व्योमनि) आकाश के सदृश प्रकाशित व्यापक परमात्मा मे स्थित होकर (रथम्) वाहन पर (अधि,तिष्ठथः) वर्त्तमान हूजिए और (अत्र) इस राज्य मे (यम्) जिसकी (अवथः) रक्षा करते हैं (तस्मै) उसके लिए (दिवः) अन्तरिक्ष से (वृष्टिः) वर्षा (मधुमत्) मधुर आदि श्रेष्ठ गुणो से युक्त (पिन्वते) सिञ्चन करती है ॥ १ ॥

भावार्थ—जहां धार्मिक विद्वान् पुत्र की जैसे वैसे प्रजा की पालना करनेवाले राजा आदि होते हैं वहां उचित काल मे वृष्टि और उचितकाल मे मृत्यु होता है ॥१॥

फिर मित्रावरुणाख्य राजा अमात्य विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

सम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दृशा ।

वृष्टिं वां राधो अमृतत्वमीमहे द्यावापृथिवी वि चरन्ति तन्यवः ॥२॥

पदार्थ—हे (मित्रावरुणा) वायु और सूर्य के सदृश वर्त्तमान (स्वर्दृशा) सुख को दिखाने और (सम्राजौ) उत्तम प्रकार शोभित होनेवाले राजा और मन्त्री जनो आप जैसे (तन्यवः) बिजुलियां (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि को (वि, चरन्ति) विचरती और (वृष्टिम्) वृष्टि को उत्पन्न करती हैं वैसे (अस्य) इस (भुवनस्य) संसार के मध्य (विदथे) संग्राम में (राजथः) प्रकाशित होते हैं हम लोग (वाम्) आप दोनों से (राधः) धन और (अमृतत्वम्) अल होने की (ईमहे) याचना करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वायु और बिजुली वर्षा करके सब मनुष्यो को धन और धान्य से युक्त करते है वैसे धार्मिक राजा और मन्त्री प्रजाओ को ऐश्वर्ययुक्त करें ॥ २ ॥

सम्राजा उग्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुणा विचर्षणी ।

चित्रेभिरभ्रैरुप तिष्ठथो रवं द्यां वर्षयथो असुरस्य मायया ॥३॥

पदार्थ—हे राजा और मन्त्रिजनो जैसे (वृषभा) बलिष्ठ वृष्टि के कारण (पृथिव्याः) भूमि के और (दिवः) प्रकाश के (पती) पालन करनेवाले (विचर्षणी) प्रकाशक (मित्रावरुणा) वायु और सूर्य (चित्रेभिः) अद्भुत (अभ्रैः) मेघो के साथ (उप, तिष्ठथः) समीप म स्थित होते हैं और (असुरस्य) मेघ के (मायया) आच्छादन आदि से वा बुद्धि से (रवम्) शब्द को और (द्याम्) प्रकाश को करते हैं वैसे (उग्रा) तेजस्वी (सम्राजौ) उत्तम प्रकार शोभित होनेवाले आप दोनो प्रजाओ के समीप स्थित होते है और कामनाओ से प्रजाओ को (वर्षयथः) वृष्टियुक्त करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे प्रजाजनो ! जो राजा और मन्त्री आदि जन न्याय और विनय से प्रकाशमान, दुष्टो मे तेजस्वी और कठोर दण्ड के देनेवाले, सूर्य और वायु के सदृश मनोरथो की वृष्टि करनेवाले हैं वे यशस्वी और प्रजाओं के प्रिय होते है ॥ ३ ॥

माया वां मित्रावरुणा दिवि श्रिता सूर्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुधम् ।

तमभ्रेण वृष्ट्या गूहथो दिवि पर्जन्य द्रप्सा मधुमन्त ईरते ॥४॥

पदार्थ—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के सदृश वर्त्तमान राजा और मन्त्री जनो (वाम्) आप दोनो की (दिवि) बिजुली मे (श्रिता) आश्रित (माया) बुद्धि (सूर्य्यः) सूर्य के सदृश जिस (ज्योतिः) प्रकाशरूप (चित्रम्) अद्भुत (आयुधम्) युद्ध करते है जिससे उस शस्त्र को (चरति) प्राप्त होती है (तम्) उसको (अभ्रेण) मेघ से और (वृष्ट्या) वृष्टि से (गूहथः) घेरते हो, हे (पर्जन्य) मेघ के समान वर्त्तमान जन (दिवि) सूर्य के प्रकाश मे (मधुमन्तः) बहुत मधुर कर्म्म विद्यमान जिनके वे (द्रप्सा) विमोह के करनेवाले (ईरते) चलते वा कंपते हैं वैसे आप जानिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो राजा और मन्त्रीजन सूर्य और चन्द्रमा के सदृश तीव्र और शान्तस्वभाव वाले बुद्धिमान वृष्टि के सदृश प्रजाओ का पालन करते है वे सब काल मे सुख की वृद्धि करते हैं ॥ ४ ॥

अब मित्रावरुणवाच्य शिल्प विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

रथं युञ्जते मरुतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्टिषु ।

रजांसि चित्रा वि चरन्ति तन्यवो दिवः सम्राजा पयसा न उक्षतम् ॥५॥

पदार्थ—हे (**दिव.**) कामना करनेवालो के प्रति (**सम्राजा**) उत्तम प्रकार शोभित होनेवाले (**मित्रावरुणा**) प्राण और उदान वायु के सदृश यश और शिल्प के करनेवाली जो (**मरुत.**) कारीगर मनुष्य (**शूर**) भयरहित वीरशत्रु को मारने वाले के (**न**) सदृश (**शुभे**) कल्याण के लिए (**सुखम्**) सुखकारक (**रथम्**) विमान आदि वाहन को (**युञ्जते**) युक्त करते हैं और (**गविष्टिषु**) किरणो की सङ्गतियो मे (**चित्रा**) अद्भुत (**रजांसि**) लोक और (**तन्यवः**) विजुलियाँ (**वि**) विशेष करके (**चरन्ति**) चलती हैं उनके साथ (**पयसा**) जल मे (**नः**) हम लोगो को आप दोनो (**उक्षतम्**) सीचिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो शूरवीर जनो के सदृश सुखकारक रथ पर चढ़कर यथेष्ट स्थान मे घूमते हैं वे अभीष्ट पदार्थ को प्राप्त होते है ॥ ५ ॥

फिर मित्रावरुणवाच्य विद्वद्विषय को अगले मन्त्रो मे कहते हैं—

वाचं सु मित्रावरुणाविरावतीं पर्जन्यश्चित्रां वदति त्विषीमतीम् ।

अभ्रा वसत मरुतः सु मायया द्यां वर्षयतमरुणामरेपसम् ॥६॥

पदार्थ—हे (**मित्रावरुणौ**) पढ़ाने और पढ़नेवाले जनो आप दोनो जैसे (**पर्जन्य**) मेघ (**वदति**) शब्द करता है वैसे (**इरावतीम्**) अन्न विद्यमान जिसमे उस (**त्विषीमतीम्**) अच्छी विद्याओ के प्रकाश से युक्त (**चित्राम्**) अद्भुत (**वाचम्**) वाणी को कहो जैसे (**अभ्रा**) मेघ प्रकाश मे हैं वैसे ही (**मरुतः**) मनुष्य (**सु, मायया**) उत्तमबुद्धि से (**सु**) उत्तम प्रकार (**वसत**) बसें और हे मित्रावरुण (**अरुणाम्**) प्राप्त होने योग्य (**अरेपसम्**) अपराधरहित (**द्याम्**) कामना को आप लोग (**वर्षयतम्**) वृष्टि करिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य विद्या से युक्त वाणी को प्राप्त होकर मेघ के सदृश मनोरथो की वृष्टि करते है वे बुद्धि से विद्वान् करके अपराधरहित करते हैं ॥ ६ ॥

धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया ।

ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजथः सूर्य्यमा धत्थो दिवि चित्र्यं रथम् ॥७॥

पदार्थ—हे (**विपश्चिता**) विद्वान् (**मित्रावरुणा**) प्राण और उदान वायु के सदृश वर्त्तमानो जिससे आप दोनो (**असुरस्य**) मेघ के (**मायया**) आडम्बर से और (**धर्मणा**) धर्म से (**व्रता**) सत्य भाषण आदि व्रतो की (**रक्षेथे**) रक्षा करते है तथा (**ऋतेन**) यथार्थ से (**विश्वम्**) प्रविष्ट होते हैं (**भुवनम्**) वा होते हैं जिसमे उस सम्पूर्ण जगत् को (**हि, राजथ**) विशेष करके प्रकाशित करते हैं और (**दिवि**) प्रकाश मे (**सूर्य्यम्**) सूर्य के सदृश (**चित्र्यम्**) अद्भुत मे हुए (**रथम्**) वाहन को (**आ, धत्थ**) धारण करते है इससे सत्कार करने के योग्य होते हैं ॥७॥

भावार्थ—जो मनुष्य धर्म सम्बन्धी सत्य भाषण आदि व्रत वा कर्म्मों को करते है वे सूर्य के सदृश सत्य से प्रकाशित होते है ॥ ७ ॥

इस सूक्त मे मित्रावरुण और विद्वानो के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह त्रेसठवाँ सूक्त और पहिला वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तर्चस्य चतुःषष्टितमस्य सूक्तस्य अर्चनाना ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १, २ विराडनुष्टुप् । ६ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ३, ५ भुरिगुष्णिक् । ४ उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ७ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

अब सात ऋचावाले चौसठवें सूक्त का प्रारम्भ है इसके प्रथम द्वितीय मन्त्र मे मित्रावरुणपदवाच्य विद्वानो के गुणो को कहते हैं—

वरुणं वो रिशादसमृचा मित्रं हवामहे ।

परि व्रजेव बाह्वोर्जगन्वांसा स्वर्णरम् ॥१॥

पदार्थ—जैसे (**जगन्वांसा**) जाते हुए प्राण और उदान वायु के सदृश वर्त्तमान जन (**स्वर्णरम्**) सुख को प्राप्त करानेवाले को (**बाह्वोः**) भुजाओ की (**व्रजेव**) चलते हैं जिससे उस गति से जैसे वैसे (**वः**) आप लोगो को स्वीकार करते है वैसे हम लोग (**रिशादसम्**) शत्रुओ के रोकनेवाले (**वरुणम्**) उत्तम विद्वान् और (**मित्रम्**) मित्र का (**ऋचा**) स्तुति से (**परि**) सब ओर से (**हवामहे**) स्वीकार करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान्-जन प्रीति से आप लोगो को ग्रहण करते हैं वैसे इनका आप लोग भी स्वीकार करिये ॥ १ ॥

ता बाहवा सुचेतुना प्र यन्तमस्मा अर्चते ।

शेवं हि जार्यं वां विश्वासु क्षासु जोगुवे ॥२॥

पदार्थ—हे प्राण और उदान वायु के सदृश वर्त्तमानो (**ता**) वे दोनो आप (**बाहवा**) बाहु और (**सुचेतुना**) उत्तम विज्ञान से (**अस्मै**) इस (**अर्चते**) सत्कार करनेवाले जन के लिए (**शेवम्**) सुख को (**हि**) ही (**प्र, यन्तम्**) प्रयत्न करते हुए (**वाम्**) आप दोनो का (**जार्यम्**) जरा वृद्धावस्था मे उत्पन्न विषय का मैं (**विश्वासु**) सम्पूर्ण (**क्षासु**) भूमियो मे (**जोगुवे**) उपदेश करता हूँ वैसे उस की आप लोग प्रशसा करो ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सब पृथिवी पर विद्या और बाहुबल से उत्तम पुरुषो के लिए सुख देते हैं उनके लिये हम लोग भी सुख देवें ॥ २ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा ।

अस्य प्रियस्य शर्म्मण्यहिंसानस्य सश्चिरे ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**अस्य**) इस (**प्रियस्य**) सुन्दर (**अहिंसानस्य**) हिंसा से रहित (**मित्रस्य**) मित्र के (**शर्म्मणि**) गृह मे (**यत्**) जिस (**गतिम्**) गमन को विद्वान् जन (**सश्चिरे**) प्राप्त होते हैं उस गमन को मैं (**नूनम्**) निश्चित (**अश्याम्**) प्राप्त होऊ और (**पथा**) मार्ग मे (**यायाम्**) जाऊ ॥ ३ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य विद्वानो का अनुकरण कर और धर्ममार्ग से चल कर उत्तम गति को प्राप्त होवें ॥ ३ ॥

फिर मित्रावरुणपदवाच्य विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

युवाभ्यां मित्रावरुणोपमं धेयामृचा ।

यद्ध क्षये मघोनां स्तोतॄणां च स्पूर्धसे ॥४॥

पदार्थ—हे (**मित्रावरुणा**) अध्यापक और उपदेशक जनो (**युवाभ्याम्**) आप दोनो से (**ऋचा**) स्तुति से (**स्पूर्धसे**) स्पर्धा के लिये (**यत्**) जिस (**मघोनाम्**) बहुत धनवालो के (**स्तोतॄणाम्, च**) और विद्वानो के (**क्षये**) गृह मे (**उपमम्**) उपमा को जैसे मैं (**धेयाम्**) धारण करू वैसे उसको (**ह**) निश्चय आप धारण करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्यो को चाहिए कि विद्वानो की उपमा को ग्रहण करें ॥ ४ ॥

आ नो मित्र सुदीतिभिर्वरुणश्च सधस्थ आ ।

स्वे क्षये मघोनां सखीनां च वृधसे ॥५॥

पदार्थ—हे (**मित्र**) मित्र आप और (**वरुणः**) श्रेष्ठ जन आप दोनो (**सुदीतिभिः**) अच्छे प्रकाशो से (**मघोनाम्**) प्रशसित धन जिनके ऐसे (**सखीनाम्**) मित्रो और (**नः**) हम लोगो की (**वृधसे**) वृद्धि के लिये (**स्वे**) अपने (**क्षये**) निवासस्थान मे (**आ**) सब ओर वसिये (**सधस्थे, च**) और तुल्यस्थान मे (**आ**) सब ओर से वसिये तथा हम लोग भी आप दोनो के निवासस्थान (**च**) और तुल्यस्थान मे बसें ॥ ५ ॥

भावार्थ—वे ही मित्र श्रेष्ठ हैं जो परस्पर की उन्नति के लिये सुखदु.ख और सङ्ग मे प्रयत्न करते है ॥ ५ ॥

फिर विरोध छोड़ धनप्राप्ति विषय को कहते हैं—

युवं नो येषु वरुण क्षत्रं बृहच्च बिभृथः ।

उरु णो वाजसातये कृतं राये स्वस्तये ॥६॥

पदार्थ—हे (**वरुण**) उत्तमो (**च**) और हे मित्र (**युवम्**) आप दोनों (**येषु**) जिन मे (**नः**) हम लोगो के लिये (**बृहत्**) बड़े और (**उरु**) बहुत (**क्षत्रम्**) धन का (**बिभृथ.**) धारण करते हैं और (**नः**) हम लोगो को (**वाजसातये**) सग्राम के लिए (**राये**) धन के और (**स्वस्तये**) सुख के लिये (**कृतम्**) किया उन मे वैसे ही कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो को चाहिए कि विरोध का त्याग कर और उत्तम प्रकार मिलने से उद्यम करके विजय और धन आदि को प्राप्त करें ॥ ६ ॥

उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद्गवि ।

सुतं सोमं न हस्तिभिरा पड्भिर्धावतं नरा बिभ्रतावर्चनानसम् ॥७॥२

पदार्थ—हे प्राण और उदान वायु के सदृश वर्त्तमान (**यजता**) मिलनेवाले (**नरा**) नायक राजा और मन्त्रीजन आप दोनों (**उच्छन्त्याम्**) विवास करती हुई मे तथा (**रुशद्गवि**) प्रकाशमान किरणो से युक्त (**देवक्षत्रे**) विद्वानों के धन वा

राज्य में (सुतम्) उत्पन्न किये गये (सोमम्) ऐश्वर्य को (हस्तिभिः) हाथियों से (न) जैसे वैसे (पद्भिः) पैरों से (आवतम्) प्राप्त होओ और (अर्चनानसम्) श्रेष्ठ नासिका जिसकी उसको (बिभ्रती) धारण करते हुए (मे) मेरे उत्पन्न किये गये ऐश्वर्य को (आ) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे पुरुषार्थी राजजनो ! प्रजाओं का न्याय से पालन करके विद्वानों के धन को प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

इस सूक्त में प्राण और उदान के सदृश वर्त्तमान तथा विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह चौसठवां सूक्त तथा द्वितीय वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षडर्चस्य पञ्चषष्टितमस्य सूक्तस्य रातहव्यात्रेय ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १, ४ अनुष्टुप् । २ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ३ स्वराडुष्णिक् । ५ भुरिगुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । ६ विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले पैंसठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम सूक्त में मित्रावरुण पदवाच्य पढ़ने पढ़ानेवाले वा उपदेश योग्य वा उपदेश देनेवाले के विषय में कहते हैं—

यश्चिकेत स सुक्रतुर्देवत्रा स ब्रवीतु नः ।
वरुणो यस्य दर्शतो मित्रो वा वनते गिरः ॥१॥

पदार्थ—(यः) जो (सुक्रतुः) उत्तम प्रकार बुद्धिमान् और (वरुणः) श्रेष्ठ है (सः) वह (चिकेत) जाने और जो (देवत्रा) विद्वानों में विद्वान् है (सः) वह (नः) हम लोगों को (ब्रवीतु) कहे (वा) वा (यस्य) जिसका (दर्शतः) देखने के योग्य (मित्रः) मित्र है वह हम लोगों की (गिरः) वाणियों को (वनते) पालन करता है ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो हम लोगों के मध्य में अधिक विद्वान् होवे वही उपदेश करे और जो अधिक ज्ञानवान् होवे वह सत्य और असत्य को अलग करे ॥ १ ॥

ता हि श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घश्रुत्तमा ।
ता सत्पती ऋतावृध ऋतावाना जनेजने ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (दीर्घश्रुत्तमा) दीर्घकालपर्यन्त अत्यन्त शास्त्र को सुननेवाले (श्रेष्ठवर्चसा) श्रेष्ठ अध्ययन जिनका ऐसे (राजाना) प्रकाशमान जन वर्त्तमान हैं (ता) वे दोनों और जो (जनेजने) मनुष्य मनुष्य में (सत्पती) श्रेष्ठों के पालन करने और (ऋतावृधा) सत्य को बढ़ानेवाले (ऋतावाना) तथा सत्य विद्यमान जिन में (ता, हि) उन्हीं दोनों का हम लोग निरन्तर सत्कार करें ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य बहुश्रुत, पूर्ण विद्यावाले, सत्य धर्म्म में निष्ठा करनेवाले और जो विद्या की प्रवृत्ति में प्रीति करनेवाले हों वे ही उपदेशक और अध्यापक होवें ॥ २ ॥

ता वामियानोऽवसे पूर्वा उप ब्रुवे सचा ।
स्वश्वासः सु चेतुना वाजाँ अभि प्र दावने ॥३॥

पदार्थ—हे प्राण और उदान के समान वर्त्तमानो (स्वश्वासः) अच्छे घोड़े जिन के वे (सु, चेतुना) उत्तम ज्ञानवान् के साथ (दावने) देनेवाले के लिए (वाजान्) संग्रामों के (अभि, प्र) सम्मुख अच्छे प्रकार कहें उन को मैं (उप, ब्रुवे) समीप में कहूँ । हे अध्यापक और उपदेशक जनो जिन (पूर्वा) प्रथम विद्या पढ़े हुए (वाम्) आप दोनों को (इयानः) प्राप्त होता हुआ (अवसे) रक्षा आदि के लिए वर्त्तमान हूँ (ता) उन (सचा) मिले हुओं के मैं समीप में कहता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—जैसे उपदेशक जन उपदेश देवें वैसे ही जिनको उपदेश दिया जाय वे औरों को भी उपदेश करें ॥ ३ ॥

मित्रो अंहोश्चिदादुरु क्षयाय गातुं वनते ।
मित्रस्य हि प्रतूर्वतः सुमतिरस्ति विधतः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (मित्रः) मित्र (अंहोः) दुष्ट आचरण से (चित्) भी वियुक्त करके (आत्) अनन्तर (उरु) बहुत (क्षयाय) निवास के लिए (गातुम्) पृथिवी को (वनते) सेवन करता है वह (हि) निश्चय से (प्रतूर्वतः) शीघ्र करनेवाले (विधतः) परिचरण करते हुए (मित्रस्य) मित्र की जो (सुमतिः) श्रेष्ठ बुद्धि (अस्ति) है उसको ग्रहण करे ॥ ४ ॥

भावार्थ—वे ही मित्र हैं जो निष्कपटता से और शुद्धभाव से परस्पर के जनों के साथ वर्त्तमान हैं ॥ ४ ॥

वयं मित्रस्यावसि स्याम सप्रथस्तमे ।
अनेहसस्त्वोतयः सत्रा वरुणशेषसः ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (अनेहसः) नहीं हिंसक होते हुए (त्वोतयः) आप से रक्षित और (वरुणशेषसः) उत्तम जन शेष जिनके वे (वयम्) हम लोग (सत्रा) सत्य से युक्त (मित्रस्य) मित्र के (सप्रथस्तमे) अतिविस्तार युक्त (अवसि) रक्षण आदि कर्म्म में (स्याम) प्रवृत्त होवें ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सदा कृतज्ञता करें और कृतघ्नता का दूर से त्याग करें ॥ ५ ॥

युवं मित्रेमं जनं यतथः सं च नयथः ।
मा मघोनः परि ख्यतं मो अस्माकमृषीणां गोपीथे न उरुष्यतम् ॥६॥

पदार्थ—हे (मित्रा) प्राण और उदान के समान वर्त्तमान अध्यापक और उपदेशक जनो (युवम्) आप दोनों (इमम्) इस (जनम्) उपदेश देनेयोग्य जन को (यतथः) प्रेरणा करते और (सम् नयथ, च) प्राप्त कराते हैं तथा (मघोनः) बहुत धनों से युक्त (नः) हम लोगों का मत (परि, ख्यतम्) निरादर कीजिये और (ऋषीणाम्) वेदार्थ के जाननेवाले (अस्माकम्) हम लोगों का (गोपीथे) गौओं के पीने योग्य दुग्ध आदि में (मो) नहीं निरादर करिये और शुभ कर्म में हम लोगों को (उरुष्यतम्) प्रेरणा करिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! आप लोग सब लोगों को प्रयत्न से युक्त करके सुख को प्राप्त कराइये और हे विद्यार्थी जनो वा श्रोतृजनो ! आप लोग हम अध्यापक और उपदेशकों का अपमान मत करो इस प्रकार वर्त्ताव कर सत्य धर्म का सेवन हम लोग करें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में मित्रावरुण पदवाच्य अध्यापक और अध्ययन करने तथा उपदेश करने और उपदेश देने योग्यों के कर्म्मों का वर्णन होने से इस सूक्त की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पैंसठवां सूक्त और तीसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षडृचस्य षट्षष्टितमस्य सूक्तस्य रातहव्य आत्रेय ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १, ५, ६ विराडनुष्टुप् । २ निचृदनुष्टुप् । ३, ४ स्वराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले छियासठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

आ चिकितान सुक्रतू देवौ मर्त रिशादसा ।
वरुणाय ऋतपेशसे दधीत प्रयसे महे ॥१॥

पदार्थ—हे (चिकितान, मर्त) ज्ञान और मरण धर्मयुक्त आप (ऋतपेशसे) सत्यस्वरूप और (प्रयसे) प्रयत्न करते हुए (महे) बड़े (वरुणाय) उत्तम व्यवहार युक्त के लिए (रिशादसा) दुष्टों के मारनेवाले (सुक्रतू) उत्तम बुद्धिमान् (देवौ) दो विद्वानों को (आ) सब प्रकार से (दधीत) धारण करिये ॥ १ ॥

भावार्थ—वही विद्वान् होता है जो विद्वानों का सङ्ग करके बुद्धि को बढ़ाता है ॥ १ ॥

ता हि क्षत्रमविह्रुतं सम्यगसुर्यमाशाते ।
अध व्रतेव मानुषं स्वर्ण धायि दर्शतम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (ता) वे (हि) ही (अविह्रुतम्) नहीं कुटिल (असुर्यम्) विद्वानों के लिए हितकारक (सम्यक्) उत्तम प्रकार चलनेवाले (क्षत्रम्) धन वा राज्य को (आशाते) व्याप्त होते हैं (अध) इसके अनन्तर जिन्होंने हित (मानुषम्) मनुष्य सम्बन्धी (दर्शतम्) देखने योग्य (व्रतेव) कर्म्मों के सदृश और (स्वः) सुख के (न) सदृश (धायि) धारण किया ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । सब मनुष्य धर्मपथ से सुख और कर्म्म को धारण करें ॥ २ ॥

ता वामेषे रथानामुर्वीं गव्यूतिमेषाम् ।
रातहव्यस्य सुष्टुतिं दधृक् स्तोमैर्मनामहे ॥३॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशकजन आप दोनों (एषाम्) इन (रथानाम्) विमान आदि वाहनों का (रातहव्यस्य) दिया है देने योग्य पदार्थ जिसने उसकी (सुष्टुतिम्) उत्तम प्रशंसा को और (गव्यूतिम्) मार्ग को (एषे) प्राप्त होने को प्रवृत्त होते हैं और जैसे विद्वान् जन (स्तोमैः) प्रशंसाओं से इन की (उर्वीम्) पृथिवी को धारण करता है वैसे (ता) उन (दधृक्) प्रगल्भता को प्राप्त (वाम्) आप दोनों को और उस विद्वान् को हम लोग (मनामहे) अच्छे प्रकार जानते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो जगत् के कल्याण के लिए सृष्टिक्रम से पदार्थविद्या को प्रकाशित करते हैं वे धन्य होते हैं ॥ ३ ॥

अधा हि काव्या युवं दक्षस्य पूर्भिरद्भुता ।

नि केतुना जनानां चिकेथे पूतदक्षसा ॥४॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक जनो (**पूतदक्षसा**) पवित्र बल जिन का ऐसे (**युवम्**) आप दोनों (**केतुना**) बुद्धि से अद्भुत आश्चर्य रूप (**काव्या**) कवियों के कर्मों को (**चिकेथे**) जानते हैं (**अधा**) इस के अनन्तर (**हि**) जिस से (**जनानाम्**) मनुष्यों के (**दक्षस्य**) बल सम्बन्धी (**पूर्भिः**) नगरों से (**नि**) निरन्तर कर के जानते हैं उन का हम लोग सदा सत्कार करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—विद्वानों को यह योग्य है कि स्वयं पूर्ण विद्वान् होके अज्ञजनों को अध्यापन और उपदेश से उपकृत करें ॥ ४ ॥

स्त्री भी विद्वानों के समान होकर उत्तमाचरण करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तदृतं पृथिवि बृहच्छ्रवएष ऋषीणाम् ।

ज्रयसानावरं पृथ्वति क्षरन्ति यामभिः ॥५॥

पदार्थ—हे (**पृथिवि**) पृथिवी के सदृश वर्त्तमान विद्या से युक्त स्त्री जैसे मेघ वा यागी जन (**यामभिः**) प्रहरों वा प्रहरों में उत्पन्न कर्म्मों में (**पृथु**) विस्तीर्ण जल को (**अरम्**) पूरा (**अति, क्षरन्ति**) वर्षाते हैं और जैसे (**ज्रयसानौ**) जाते हुए वा विशेष कर के जाना हुए वर्त्तमान हैं वैसे (**ऋषीणाम्**) मन्त्रार्थ जानने वालों के (**तत्**) उस (**बृहत्**) बड़े (**ऋतम्**) सत्य को वा जल को (**श्रवः**) और अन्न वा श्रवण को (**एषे**) प्राप्त होने को प्रवृत्त होओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो स्त्रियां विद्यायुक्त होकर सत्य, धर्म्म और उत्तम स्वभाव का स्वीकार करके मेघ के सदृश सुखों की वृष्टि करती हैं तो वे बड़े सुख को प्राप्त होती हैं ॥ ५ ॥

मनुष्यों को न्याय से राज्य की रक्षा करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ यद्वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः ।

व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ॥६॥४॥

पदार्थ—हे (**ईयचक्षसा**) प्राप्त होने वा जानने योग्य दर्शन वा कथन जिन का वे (**मित्रा**) मित्र (**वाम्**) आप दोनों के (**यत्**) जिस (**व्यचिष्ठे**) अत्यन्त व्याप्त और (**बहुपाय्ये**) बहुतों से रक्षा करने योग्य राज्य (**स्वराज्ये, च**) और अपने राज्य में (**सूरयः**) विद्वान् जन (**वयम्**) हम लोग (**आ**) सब प्रकार से (**यतेमहि**) यत्न करें उस में यत्न करो ॥६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि मित्रता कर के अपने और दूसरे के राज्य की न्याय से रक्षा कर के धर्म की उन्नति करें ॥६॥

इस सूक्त में मित्र और श्रेष्ठ विद्वान् के और विद्या युक्त स्त्री के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह छियासठवां सूक्त और चौथा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य सप्तषष्ठितमस्य सूक्तस्य यज आत्रेय ऋषिः ।

मित्रावरुणौ देवते । १, २, ४ निचृदनुष्टुप् । ३, ५

विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले सरसठवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को किसके तुल्य क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

बळित्था देव निष्कृतमादित्या यजतं बृहत् ।

वरुण मित्रार्यमन्वर्षिष्ठं क्षत्रमाशाथे ॥१॥

पदार्थ—हे (**देवा**) श्रेष्ठ स्वभाव वाले (**आदित्या**) अविनाशी (**मित्र**) मित्र (**वरुण**) श्रेष्ठ आप दोनों (**बृहत्**) बड़े (**निष्कृतम्**) उत्पन्न हुए को (**यजतम्**) उत्तम प्रकार मिलो हे (**अर्य्यमन्**) न्यायकारी (**इत्था**) इस प्रकार से आप भी मिलिये और हे मित्र श्रेष्ठ जनो ! तुम जैसे (**बट्**) सत्य (**वर्षिष्ठम्**) अत्यन्त बढ़े हुए (**क्षत्रम्**) राज्य वा धन को (**आशाथे**) प्राप्त होते हो वैसे इस को न्यायकारी भी प्राप्त हो ॥१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् जन इस संसार में धर्म्म-युक्त कर्म्मों को करें वैसे राज्य का राजा आदि पालन करें ॥१ ॥

फिर मनुष्यों को किसके तुल्य क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ यद्योनिं हिरण्ययं वरुण मित्र सदथः ।

धर्त्तारा चर्षणीनां यन्तं सुम्नं रिशादसा ॥२॥

पदार्थ—हे (**रिशादसा**) दुष्टों को दण्ड देने वाले (**मित्र**) मित्र (**वरुण**) श्रेष्ठ (**चर्षणीनाम्**) मनुष्यों के (**धर्त्तारा**) धारण करनेवाले तुम (**यत्**) जिस (**सुम्नम्**) सुख को (**यन्तम्**) प्राप्त होते हुए और (**हिरण्ययम्**) तेजःस्वरूप (**योनिम्**) कारण को (**आ**) सब प्रकार से (**सदथः**) प्राप्त होते हो उसको हम लोग भी प्राप्त होवें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् जन तेजःस्वरूप बिजुलीरूप सूर्य्य आदि कारण को जान के उपकार करते हैं वैसे ही इसको करके मनुष्य सुख को प्राप्त हों ॥ २ ॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

विश्वे हि विश्ववेदसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।

व्रता पदेव सश्चिरे पान्ति मर्त्यं रिषः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (**विश्वे**) सब (**विश्ववेदसः**) सम्पूर्ण विद्या और ऐश्वर्य्य पाये हुए (**वरुणः**) श्रेष्ठ (**मित्रः**) और सब का मित्र (**अर्यमा**) और न्यायकारीजन (**पदेव**) चलते हैं जिनसे उन चरणों के सदृश (**व्रता**) सत्याचरणरूप कर्म्मों को (**सश्चिरे**) प्राप्त होते वा जाते हैं और (**रिषः**) मारनेवाले से वा हिंसा से (**मर्त्यम्**) मनुष्य की (**पान्ति**) रक्षा करते हैं वे (**हि**) ही आप लोगों से आदर करने योग्य हैं ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे प्राणी पैरों से अभीष्ट—एक स्थान से दूसरे स्थान को जाके अपने प्रयोजन को सिद्ध करते हैं वैसे ही सत्यभाषण आदि कर्म्मों को धर्म्ममार्ग के लिये प्राप्त होकर अभीष्ट आनन्द को सिद्ध करो ॥३॥

फिर विद्वान् कैसे होकर क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ते हि सत्या ऋतस्पृश ऋतावानो जनेजने ।

सुनीथासः सुदानवोंऽहोश्चिदुरुचक्रयः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**हि**) जिससे (**जनेजने**) मनुष्य मनुष्य में जो (**सत्याः**) श्रेष्ठों में श्रेष्ठ (**ऋतस्पृशः**) यथार्थ को स्वीकार करनेवाले (**ऋतावानः**) सत्य मन वा कर्म्म विद्यमान जिनमें वे (**सुदानवः**) सुन्दर श्रेष्ठ विद्या आदि का दान जिनका और (**सुनीथासः**) उत्तम नीति के देने और (**उरुचक्रयः**) बहुत करनेवाले बड़े पुरुषार्थी हुए (**अंहो**) अपराध से (**चित्**) भी पृथक् हुए होवें (**ते**) वे सर्वदा सब प्रकार से सत्कार करने योग्य हों ॥४॥

भावार्थ—जो स्वयं धर्मयुक्त गुण कर्म और स्वभाव वाले हुए दुष्ट आचरण से पृथक् वर्त्ताव करके अन्य मनुष्यों को तादृश अर्थात् अपने समान करते हैं वे धन्यवाद के योग्य हैं ॥४॥

मनुष्य विद्वानों से किस प्रकार विद्याग्रहण करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

को नु वां मित्रास्तुतो वरुणो वा तनूनाम् ।

तत्सु वामेषते मतिरत्रिभ्य एषते मतिः ॥५॥५॥

पदार्थ—हे (**मित्र**) मित्र (**वाम्**) आप दोनों के (**तनूनाम्**) शरीरों को (**कः**) कौन (**आ, ईषते**) सब प्रकार से प्राप्त होता है आप (**वा**) वा (**वरुण**) उत्तम स्वभावयुक्त कौन (**नु**) शीघ्र (**अस्तुतः**) नहीं प्रशंसित है और जो (**वाम्**) आप दोनों की (**मतिः**) बुद्धि हम लोगों को (**आ, ईषते**) सब प्रकार प्राप्त होती है और (**अत्रिभ्यः**) व्याप्त विद्या जिनमें उनके लिए (**मतिः**) मननशील अन्तःकरण की वृत्ति (**सु**) उत्तम प्रकार प्राप्त होती है (**तत्**) उसका हम लोग स्वीकार करें ॥५॥

भावार्थ—जो मनुष्य अध्यापक और उपदेशकों को प्राप्त होकर उनके उपदेश और विद्या का ग्रहण करके उनसे बुद्धि और उत्तम क्रिया का स्वीकार करते हैं वे प्रसिद्ध स्तुतिवाले होते हैं ॥५॥

इस सूक्त में मित्रावरुण और विद्वानों के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह सरसठवां सूक्त और पांचवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्याष्टषष्टितमस्य सूक्तस्य यजत आत्रेय ऋषिः ।

मित्रावरुणौ देवते । १, २ गायत्री । ३, ४ निचृद्गायत्री ।

५ विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को परस्पर क्या करना चाहिये इस विषय को प्रथम मन्त्र में कहते हैं—

प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा ।

महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**वः**) तुम लोगों के जो (**विपा**) अनेक प्रकार से रक्षा करनेवाले (**बर्हिषन्तौ**) बडे अन्न जिन के वे (**बृहत्**) बडे (**ऋतम्**) सत्य से युक्त को ग्रहण करें उन दोनो से (**मित्राय**) मित्र के और (**वरुणाय**) उत्तम आचरण वाले के लिए तुम (**गिरा**) वाणी से (**प्र, गायत**) प्रशंसा करो ॥१॥

भावार्थ—जो अध्यापक और उपदेशक जन सब मनुष्यों को विद्यादि से पवित्र करते हैं वे मनुष्यो मे सर्वदा सत्कार करने योग्य हैं ॥१॥

मनुष्यों को यहां कैसे होना चाहिये इस विषय को
अगले मन्त्र में कहते हैं—

सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च ।

देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ २॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**या**) जो (**घृतयोनी**) घृतयोनी अर्थात् जल कारण जिनका वे (**देवेषु**) विद्वानो मे (**प्रशस्ता**) श्रेष्ठ (**सम्राजा**) उत्तम प्रकार शोभित होनेवाले (**देवा**) दो विद्वान् अर्थात् (**मित्रः**) मित्र (**च**) और (**वरुण**) स्वीकार करने योग्य (**च**) भी (**उभा**) दोनों प्रवृत्त होते हैं उन दोनों का आप लोग बहुत आदर करिये ॥२॥

भावार्थ—जो विद्वानो मे विद्वान् राजपुरुष चक्रवर्त्तिराज्य को सिद्ध कर सकते हैं वे ही यशस्वी होते हैं ॥२॥

फिर राज्य कैसे उन्नति को प्राप्त करना चाहिये इस विषय को
अगले मन्त्र में कहते हैं—

ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य ।

महि वां क्षत्रं देवेषु ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (**नः**) हम लोगो के सम्बन्ध मे (**पार्थिवस्य**) पृथिवी मे विदित (**महः**) बडे (**रायः**) धन के और (**दिव्यस्य**) शुद्ध व्यवहार में हुए का (**शक्तम्**) समर्थ, जिन (**वाम्**) आप दोनो का (**देवेषु**) सत्य विद्या को प्राप्त हुओ मे (**महि**) बडा (**क्षत्रम्**) राज्य वा धन वर्त्तमान है (**ता**) उन आप दोनो का हम लोग सत्कार करें ॥३॥

भावार्थ—हे राजपुरुषो आप लोग जो अपने राज्य की विद्वानो से रक्षा करें तो वह पृथिवी मे विदित हुआ समर्थ होवे ॥३॥

विद्वानों के सदृश इतरजनो को वर्त्ताव करना चाहिये इस
विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते । अद्रुहा देवौ वर्धेते ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**ऋतेन**) सत्य से (**ऋतम्**) सत्य का (**सपन्ता**) आक्रोश करते हुए (**इषिरम्**) प्राप्त होने योग्य (**दक्षम्**) बल को (**आशाते**) व्याप्त होते है और (**अद्रुहा**) द्वेष से रहित (**देवौ**) दो विद्वान् जन (**वर्धेते**) वृद्धि को प्राप्त होते हैं वैसे आप लोग भी प्रयत्न करो ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो को चाहिये कि विद्वानो के सदृश क्रिया कर के सदा ही वृद्धि करें ॥४॥

फिर मनुष्यों को क्या जान कर क्या करना चाहिये इस
विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः । बृहन्तं गर्त्तमाशाते ॥५॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**वृष्टिद्यावा**) वृष्टि और अन्तरिक्ष के कारण (**रीत्यापा**) रीति और जल जिनके सम्बन्ध मे वह (**इषः**) अन्न आदि के (**पती**) पालक वायु और विद्युदग्नि (**दानुमत्याः**) बहुत दान विद्यमान जिसमे उस पृथिवी के मध्य मे (**बृहन्तम्**) बडे (**गर्त्तम्**) गृह को (**आशाते**) व्याप्त होते है उन दोनों को आप लोग जानके उपकार करो ॥५॥

भावार्थ—जो मनुष्य वृष्टि आदि मे कारण सूर्य्य वायु और बिजुली आदि को जानें तो उस कार्य्य को कर सकें ॥५॥

इस सूक्त में मित्र श्रेष्ठ और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ
की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह अरसठवां सूक्त और छठवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

त्री रोचनेति चतुर्ऋचस्यैकोनसप्ततितमस्य सूक्तस्य उरुचक्रिरात्रेय
ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १, २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ४
विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब चार ऋचा वाले उनहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में इस
संसार में मनुष्यों को क्या जान कर क्या करना चाहिये इस
विषयको कहते हैं—

त्री रोचना वरुण त्रीँरुत द्यून्त्रीणि मित्र धारयथो रजांसि ।

वावृधानावमतिं क्षत्रियस्यानु व्रतं रक्षमाणावजुर्यम् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (**मित्र**) प्राणवायु के और (**वरुण**) उदानवायु के सदृश वर्त्तमान जैसे प्राण और उदानवायु वा (**त्री**) तीन अर्थात् भूमि बिजुली और सूर्य्य रूप अग्नि जो (**रोचना**) प्रकाश होने योग्य उनको और (**त्रीन्**) तीन (**द्यून्**) प्रकाशों (**उत**) और (**त्रीणि**) प्रकाशित होने योग्य (**रजांसि**) लोकों को (**वावृधानौ**) बढाते हुए (**क्षत्रियस्य**) राजपूत राजा के (**अमतिम्**) रूप को और (**अजुर्य्यम्**) नही जीर्ण हुए (**अनु व्रतम्**) कर्म वा स्वभाव को (**रक्षमाणौ**) रक्षा करते हुए धारण करते है वैसे इन दोनो को आप दोनो (**धारयथः**) धारण करते है ॥१॥

भावार्थ—इस संसार मे तीन प्रकार का प्रकाश है एक सूर्य का दूसरा बिजुली का तीसरा पृथिवी मे वर्त्तमान अग्नि का, उन तीनों को जो क्षत्रिय आदि जानें वे अक्षयराज्य करने को समर्थ होवें ॥१॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को
अगले मन्त्र में कहते हैं—

इरावतीर्वरुण धेनवो वां मधुमद्वां सिन्धवो मित्र दुह्रे ।

त्रयस्तस्थुर्वृषभासस्तिसृणां धिषणानां रेतोधा वि द्युमन्तः ॥२॥

पदार्थ—हे (**वरुण**) उत्तम कर्म के करनेवाले (**मित्र**) मित्र (**वाम्**) आप दोनो को जो (**इरावतीः**) बहुत अन्न आदि सामग्रिया (**धेनवः**) और वाणिया गौओ के सदृश (**मधुमत्**) मधुमान् जैसे हो वैसे (**दुह्रे**) अच्छे प्रकार पूरित करती है और जो (**सिन्धवः**) नदिया वे (**वाम्**) आप दोनो को उत्तम प्रकार पूरित करती हैं (**तिसृणाम्**) तीन प्रकार के (**धिषणानाम्**) कर्म उपासना और ज्ञान के जाननेवालो के (**त्रयः**) तीन (**द्युमन्तः**) उत्तम कामनाओ से युक्त (**वृषभासः**) वर्षानेवाले (**रेतोधाः**) और जो वीर्य को धारण करता है वह (**वि**) विशेष करके (**तस्थुः**) स्थित होते हैं उनको आप दोनो सप्रयुक्त करिये ॥ २ ॥

भावार्थ—हे सब के मित्र जनो आप लोग गौ के सदृश सुख के देने वाले नदी के सदृश मल के दूर करने बुद्धि के देने और कामनाओ की सिद्धि के देने वाले हूजिये ॥ २ ॥

मनुष्यों को निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमि मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।

राये मित्रावरुणा सर्वतातेळे तोकाय तनयाय शं योः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (**मित्रावरुणा**) प्राण और उदान वायु के सदृश माता और पिता जैसे मैं (**सर्वताता**) सब के सुख देनेवाले यज्ञ मे (**राये**) धन आदि के लिये (**तोकाय**) छोटे (**तनयाय**) कुमार के अर्थ (**प्रातः**) प्रातःकाल (**देवीम्**) श्रेष्ठ बुद्धि को (**अदितिम्**) अखण्डित बोध से युक्त को और (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**मध्यन्दिने**) मध्याह्न (**उदिता**) उदित मे (**योः**) संयुक्त (**शम्**) सुख को (**जोहवीमि**) अत्यन्त ग्रहण करता हूँ और मैं (**ईळे**) प्रशंसा करता हूँ वैसे आप दोनो आचरण कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य कुटुम्ब के पालन के लिए श्रेष्ठ पुरुषो की शिक्षा और वृद्धि के लिए सर्वदा प्रयत्न करते है वे विद्वानो के कुल को करते हैं ॥ ३ ॥

मनुष्यों को क्या क्या जानना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

या धर्त्तारा रजसो रोचनस्योतादित्या दिव्या पार्थिवस्य ।

न वां देवा अमृता आ मिनन्ति व्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवाणि ॥४॥७॥

पदार्थ—हे (**मित्रावरुणा**) प्राण और उदान वायु के समान वर्त्तमान अध्यापक और उपदेशक जनो जो (**अमृताः**) प्राप्त हुआ जीवनमुक्तिसुख जिन को वे (**देवा**) विद्वान् जन (**वाम्**) आप दोनो के (**ध्रुवाणि**) निश्चित (**व्रतानि**) कर्मों का (**न**) नहीं (**आ**) सब प्रकार से (**मिनन्ति**) नाश करते हैं और (**या**) जो (**रोचनस्य**) प्रकाश वाले (**रजसः**) लोक के (**आदित्या**) सूर्यो के (**दिव्या**) प्रकाशमानो के (**उत**) और (**पार्थिवस्य**) पृथिवी में विदित लोक के (**धर्त्तारा**) धारण करने वाले वर्त्तमान है उनको जानिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो वायु बिजुली और सूर्य सम्पूर्ण लोक के धारण करने वाले है वे परमेश्वर से धारण किये गये हैं ऐसा जानकर सम्पूर्ण ईश्वर ने ही धारण किया ऐसा जानना चाहिए ॥ ४ ॥

इस सूक्त मे प्राण उदान और बिजुली के गुण वर्णन करने से इस
सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति
जाननी चाहिये ॥

यह उनहत्तरवां सूक्त और सप्तम वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

पुरूरुणेति चतुर्ऋचस्य सप्ततितमस्य सूक्तस्य उरुचक्रिरात्रेय
ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १—४ गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

अब चार ऋचावाले सत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम द्वितीय मन्त्र में मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण । मित्र वंसि वां सुमतिम् ॥१॥

पदार्थ—हे (**मित्र**) मित्र (**वरुण**) श्रेष्ठ (**हि**) जिससे (**वाम्**) आप दोनों का जो (**पुरूरुणा**) अत्यन्त बहुत (**नूनम्**) निश्चित (**अवः**) रक्षण आदि (**अस्ति**) है और जिस को (**चित्**) निश्चित आप (**वंसि**) सेवन करते हैं और जो (**वाम्**) आप दोनों की (**सुमतिम्**) उत्तम बुद्धि को ग्रहण करना है उन आप दोनों और उसकी हम लोग सेवा करें ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो रक्षक राजपुरुष प्रजाओं की प्रयत्न रक्षा करते हैं वे ही प्रजापुरुषों से सेवा करने योग्य हैं ॥ १ ॥

ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धायसे । वयं ते रुद्रा स्याम ॥२॥

पदार्थ—हे (**अद्रुह्वाणा**) द्वेष से रहित (**रुद्रा**) रोदन से शब्द कराने वाले (**वयम्**) हम लोग (**वाम्**) आप दोनों के (**धायसे**) धारण करने को (**इषम्**) अन्न वा विज्ञान को (**सम्यक्**) उत्तम प्रकार (**अश्याम**) प्राप्त होवें (**ते**) वे हम लोग (**ता**) उन दोनों का सेवन करते हुए सब के धारण करने को (**स्याम**) होवें ॥ २ ॥

भावार्थ—वे ही अध्यापक और उपदेशक कृतकृत्य होवें जो क्रोध और लोभ आदि दोषों से रहित होवें और जो उन से पढ़ते हैं विद्या के धारण में प्रयत्न करते हुए होवें ॥ २ ॥

फिर मनुष्य कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

पातं नो रुद्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा ।
तुर्याम दस्यून्तनूभिः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (**रुद्रा**) दुष्टों के रुलाने वाले सभा और सेना के स्वामी आप दोनों (**सुत्रात्रा**) उत्तम प्रकार पालन करनेवाले के साथ (**पायुभिः**) रक्षणों वा रक्षकों से (**नः**) हम लोगों का (**पातम्**) पालन करिये और (**उत**) भी (**त्रायेथाम्**) रक्षा कीजिये जिससे हम लोग (**तनूभिः**) शरीरों से (**दस्यून्**) दुष्ट चोरों का (**तुर्याम**) नाश करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सभा और सेना के स्वामी निरन्तर प्रजाओं की रक्षा करें उन का रक्षण प्रजा करे ॥ ३ ॥

उत्तमों को किसी पुरुष से भी दान कभी न ग्रहण करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

मा कस्याद्भुतक्रतू यक्षं भुजेमा तनूभिः ।
मा शेषसा मा तनसा ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (**अद्भुतक्रतू**) अद्भुत बुद्धि वा कर्म वालो ! हम लोग (**तनूभिः**) शरीरों से (**कस्य**) किसी के (**यक्षम्**) दान का (**मा**) नहीं (**भुजेम**) सेवन करें और (**शेषसा**) अन्यों के साथ वर्त्तमान हुए (**मा**) नहीं पालन करें और (**तनसा**) पौत्र आदि के सहित (**मा**) नहीं पालन करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—विद्वान् जन ऐसा उपदेश करें जिससे कि किसी से दान कोई भी नहीं ग्रहण करे वैसे ही माता और पिता से पुत्र पौत्र आदि भी दान की रुचि न करें ॥ ४ ॥

इस सूक्त में प्राण उदान और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सत्तरवां सूक्त और अष्टम वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

आ नो गन्तमिति त्र्यृचस्यैकसप्ततितमस्य सूक्तस्य बाहुवृक्तआत्रेय ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १, २, ३ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब तीन ऋचावाले एकहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में फिर अध्यापक और उपदेशक क्या करें इस विषय को कहते हैं—

आ नो गन्तं रिशादसा वरुण मित्र बर्हणा । उपेमं चारुमध्वरम् ॥१॥

पदार्थ—हे (**रिशादसा**) दुष्टों के मारने वाले (**वरुण**) श्रेष्ठ और (**मित्र**) मित्र (**बर्हणा**) बढ़ानेवाले आप दोनों (**इमम्**) इस (**नः**) हम लोगों के (**चारुम्**) सुन्दर (**अध्वरम्**) यज्ञ के (**उप**) समीप (**आ**) सब प्रकार से (**गन्तम्**) प्राप्त होओ ॥ १ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन व्यवहार नामक यज्ञ को करें तो हम लोगों की उन्नति के लिए समर्थ हों ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

विश्वस्य हि प्रचेतसा वरुण मित्र राजथः । ईशाना पिप्यतं धियः ॥२॥

पदार्थ—हे (**प्रचेतसा**) उत्तम ज्ञानवाले (**ईशाना**) समर्थ (**वरुण**) वर के देने और (**मित्र**) सब के सुख करने वालो (**विश्वस्य**) संसार के मध्य में आप दोनों (**राजथः**) प्रकाशित होते हैं और (**धियः**) बुद्धियों को (**हि**) ही (**पिप्यतम्**) बढ़ाइये ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे अन्तरिक्ष में सूर्य और चन्द्रमा प्रकाशित होते हैं वैसे मनुष्यों की बुद्धियों को बढ़ाइये ॥ २ ॥

अब विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

उप नः सुतमा गतं वरुण मित्र दाशुषः । अस्य सोमस्य पीतये ॥३॥

पदार्थ—हे (**मित्र**) मित्र (**वरुण**) श्रेष्ठ आप दोनों (**अस्य**) इस (**दाशुषः**) देने वाले के (**सोमस्य**) बड़ी ओषधियों के रस को (**पीतये**) पीने के लिए (**नः**) हम लोगों के (**सुतम्**) उत्पन्न किये हुए पदार्थ के (**उप**) समीप में (**आगतम्**) आइये ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्य धार्मिक विद्वानों को बुला कर सदा उनका सत्कार करें ॥३॥

इस सूक्त में मित्र श्रेष्ठ और विद्वानों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह इकहत्तरवां सूक्त और नववां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

आ मित्र इति त्र्यृचस्य द्विसप्ततितमस्य सूक्तस्य बाहुवृक्त आत्रेय ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १ । २ । ३ उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब तीन ऋचावाले बहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में मनुष्यों के प्रति कैसे वर्त्तना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

आ मित्रे वरुणे वयं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत् ।
नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ १ ॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक जनो जैसे (**वयम्**) हम लोग (**गीर्भिः**) वाणियों से (**अत्रिवत्**) नहीं विद्यमान तीन प्रकार का दुःख जिस को उस के तुल्य (**मित्रे**) मित्र और (**वरुणे**) उत्तम पुरुष के निमित्त (**आ, जुहुमः**) अच्छे प्रकार होम करते हैं और आप (**सोमपीतये**) सोम रस के पान करने के लिए (**बर्हिषि**) उत्तम गृह व आसन में (**नि, सदतम्**) बैठिये ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मित्र के सदृश वर्त्ताव करके सम्पूर्ण जगत् का सत्कार करते हैं उन के अनुसार सब को वर्त्तना चाहिये ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा धर्मणा यातयज्जना ।
नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (**ध्रुवक्षेमा**) निश्चित रक्षण और (**यातयज्जना**) यत्न कराते हुए जनों वाले मनुष्यो ! जो तुम (**धर्मणा**) धर्म के और (**व्रतेन**) धर्मयुक्त कर्म के साथ वर्त्तमान (**स्थ**) होवें (**सोमपीतये**) सोम पीने के लिए (**बर्हिषि**) उत्तम व्यवहार में (**निसदतम्**) उपस्थित हूजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य निश्चित धर्म व्रत और शील को धारण करते हैं वे दृढ़ सुख से युक्त होते हैं ॥ २ ॥

मनुष्यों को यहां कैसे वर्त्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

मित्रश्च नो वरुणश्च जुषेतां यज्ञमिष्टये ।
नि बर्हिषि सदतां सोमपीतये ॥ ३ ॥ १० ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे स्त्री पुरुषो जैसे (**मित्रः**) मित्र (**च**) और (**वरुणः**) स्वीकार करने योग्य जन (**च**) भी (**इष्टये**) इष्ट सुख के लिए और (**सोमपीतये**) सोमरस के पान के लिए (**नः**) हम लोगों के (**यज्ञम्**) यज्ञ का (**जुषेताम्**) सेवन करिये और (**बर्हिषि**) उत्तम व्यवहार में प्रवृत्त होते हैं वैसे आप दोनों (**नि, सदताम्**) स्थिर हूजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मित्र के सदृश वर्त्ताव करके वाञ्छित सुख के सिद्ध करने की इच्छा करते हैं वे गणना करने योग्य होते हैं ॥ ३ ॥

इस सूक्त में मित्र और श्रेष्ठ विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह ऋग्वेद में बहत्तरवां सूक्त पञ्चम अनुवाक और चतुर्थ अष्टक में दशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ दशर्च इति दशर्चस्य त्रिसप्ततितमस्य सूक्तस्य पौर आत्रेय ऋषिः । अश्विनौ देवते । १, २, ४, ५, ७ निचृदनुष्टुप् । ३, ६, ८, ९ अनुष्टुप्छन्दः । १० विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब दश ऋचावाले तिहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम द्वितीय मन्त्र में फिर स्त्री पुरुष कैसे वर्त्तें इस विषय को कहते हैं—

यदद्य स्थः परावति यदर्वावत्यश्विना ।

यद्वा पुरू पुरुभुजा यदन्तरिक्ष आ गतम् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे स्त्री पुरुषो (यत्) जो (अश्विना) वायु बिजुली (परावति) दूर देश में और (यत्) जो (अर्वावति) निकट देश में (यत्) जो (पुरुभुजा) बहुतों के पालन करनेवाले (वा) वा (यत्) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (पुरु) बहुत (स्थः) स्थित होते हैं उन के विज्ञान के लिए (अद्य) आज (आ, गतम्) आइये ॥ १ ॥

भावार्थ—जो ब्रह्मचर्य्य से विद्या को पढ़कर परस्पर प्रीति से गृहारम्भ करें वे स्त्री पुरुष शिल्प विद्या को भी सिद्ध कर सकें ॥ १ ॥

इह त्या पुरुभूतमा पुरू दंसांसि बिभ्रता ।

वरस्या याम्यध्रिगू हुवे तुविष्टमा भुजे ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मित्र ! जिन (पुरुभूतमा) अत्यन्त बहुत व्यापक (पुरु) बहुत (दंसांसि) कर्म्मों को (बिभ्रता) धारण करते हुए (वरस्या) अत्यन्त श्रेष्ठ और (तुविष्टमा) अत्यन्त बलिष्ठ (अध्रिगू) अधिक चलनेवालों को (इह) इस संसार में (भुजे) भोग के लिये (हुवे) स्वीकार करता हूँ जिन दोनों से इष्टसिद्धि को (यामि) प्राप्त होता हूँ (त्या) उन दोनों को तू भी सम्प्रयुक्त कर ॥ २ ॥

भावार्थ—जहां स्त्री और पुरुष तुल्य गुण कर्म्म स्वभाव और सुरूपवान् हैं वहां सम्पूर्ण पदार्थविद्या होती है ॥ २ ॥

मनुष्य को इसके आगे क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ईर्मान्यद्वपुषे वपुश्चक्रं रथस्य येमथुः ।

पर्यन्या नाहुषा युगा मह्ना रजांसि दीयथः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे स्त्री और पुरुष ! वायु और सूर्य्य के सदृश जो (रथस्य) वाहन के (चक्रम्) चलता है जिस से उस पहिये के सदृश (वपुषे) सुरूप के लिए (अन्यत्) अन्य (ईर्मा) प्राप्त होने वा जानने योग्य (वपुः) सुरूप को मनुष्यों के सम्बन्धी (युगा) वर्ष वा वर्षों के समूहों को (परि) सब ओर से प्राप्त कराओ और (मह्ना) महत्त्व से (रजांसि) लोकों का (दीयथः) नाश करते हो वे कालविद्या जानने योग्य हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो जैसे रथ के पहिये घूमते हैं वैसे दिनरात्रि काल सम्बन्धी चक्र घूमता है जिससे क्षण आदि तथा कल्प और महाकल्प आदि सम्बन्धी गणित विद्या सिद्ध होती है ऐसा जानो ॥ ३ ॥

फिर मनुष्य क्या विशेष जानें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तदू षु वामेना कृतं विश्वा यद्वामनु ष्टवे ।

नाना जातावरेपसा समस्मे बन्धुमेयथुः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! (यत्) जो आप दोनों ने (कृतम्) सिद्ध किया (तत्) उन (एना) इन (विश्वा) सम्पूर्णों की मैं (अनुस्तवे) स्तुति करता हूँ और जो (अरेपसा) अपराधरहित (नाना) अनेक प्रकार (जातौ) प्रकट (वाम्) आप दोनों प्राप्त होते हैं वह (अस्मे) हम लोगों के (बन्धुम्) बन्धु को (सम्, आ, ईयथुः) प्राप्त हूजिये (उ) और उसको मैं (वाम्) आप दोनों की (सु) उत्तम प्रकार प्रेरणा करूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं वायु और बिजुली की विद्या को जानूं वैसे ही आप लोग भी जानिये ॥ ४ ॥

फिर स्त्री कैसी हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ यद्वां सूर्या रथं तिष्ठद्रघुष्यदं सदा ।

परि वामरुषा वयो घृणा वरन्त आतपः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यत्) जो (घृणा) प्रकाशित (अरुषा) लाल चमकते हुए गुणोंवाली (सूर्या) सूर्य्यसम्बन्धिनी प्रातर्वेला के सदृश स्त्री (वाम्) तुम्हारे (रघुष्यदम्) थोड़े चलनेवाले (रथम्) विमान आदि वाहन पर (आ) सब प्रकार से (तिष्ठत्) स्थित होती है जिसको (वाम्) आप दोनों के (वयः) पक्षी (परि, वरन्ते) सब ओर से स्वीकार करते हैं वह (आतपः) चारों ओर से उष्ण करने वाले घर्म्म के सदृश (सदा) सब काल में उपकार करनेवाली होती है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रातःकाल सब प्रकार से प्रिय और सुखकारक है वैसे परस्पर प्रीतियुक्त स्त्री पुरुष प्रसन्न हैं ॥ ५ ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा ।

घर्मं यद्वामरेपसं नासत्यास्ना भुरण्यति ॥ ६ ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (नासत्या) असत्य से रहित (नरा) धर्म्म मार्ग में ले चलने वाले दो नायक जनो (यत्) जो (अत्रिः) आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक आदि तीन प्रकार के दुःख से रहित जन (सुम्नेन) सुख और (चेतसा) चित्त से (युवोः) आप दोनों अध्यापक और उपदेशकों के (घर्मम्) यज्ञ को (चिकेतति) जानता और (आस्ना) मुख से (वाम्) आप दोनों के (अरेपसम्) अपराध रहित यज्ञ को (भुरण्यति) धारण करता है उस को आप जानिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो पुरुष विद्वानों के सङ्ग से अध्ययन और अध्यापन रूप यज्ञ का विस्तार करते हैं वे संसार के उपकारक हैं ॥ ६ ॥

उग्रो वां ककुहो ययिः शृण्वे यामेषु संतनिः ।

यद्वां दंसोभिरश्विनात्रिर्नराववर्तति ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (नरा) नायक (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक जनो (यत्) जो (ययिः) चलनेवाला (ककुहः) बड़ा (उग्रः) तेजस्वी (सन्तनिः) उत्तम प्रकार विस्तारकर्त्ता मैं (यामेषु) प्रहरों में (वाम्) आप दोनों को (शृण्वे) सुनूं और जो (वाम्) आप दोनों के (दंसोभिः) कर्म्मों से (अत्रिः) न तीनवार (आववर्त्तति) अत्यन्त वर्त्तमान हैं उन हम दोनों को आप दोनों बोध कराइये ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सूर्य्य और चन्द्रमा के सदृश नियम से वर्त्ताव करके कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वे सर्वदा उन्नत होते हैं ॥ ७ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

मध्व ऊ षु मधूयुवा रुद्रा सिषक्ति पिप्युषी ।

यत्समुद्राति पर्षथः पक्वाः पृक्षो भरन्त वाम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (मधूयुवा) सोम आदि रस को मिलाने और (रुद्रा) दुष्टों के रुलानेवाले जनो (यत्) जो (पिप्युषी) पान कराती हुई (मध्वः) सोमलता के रस को (उ) तर्क वितर्क से (सुसिषक्ति) अच्छे प्रकार सींचती है उससे आप दोनों (समुद्रा) उत्तम प्रकार द्रवित होनेवालों को (अति, पर्षथः) सींचते हैं जिससे (पक्वाः) पके (पृक्षः) सम्बन्ध हुए फल (वाम्) आप दोनों (भरन्त) पोषण करते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य और वायु वृष्टि से सब को सींचते और पके हुए फलों को उत्पन्न करते हैं वैसे आप लोग भी आचरण करो ॥ ८ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सत्यमिद्वा उ अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा ।

ता यामन्यामहूतमा यामन्ना मृळयत्तमा ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (मयोभुवा) सुखकारक (अश्विना) अन्तरिक्ष और पृथिवी के सदृश अध्यापक और उपदेशक जनो जो (युवाम्) आप दोनों (यामहूतमा) प्रहरों को बुलानेवाले अत्यन्त (यामन्) प्रहर में (आ, मृळयत्तमा) सब ओर से अतीव सुखकारकों को (आहुः) कहते हैं (ता) वे दोनों (यामन्) प्रहर में (वै) निश्चय (सत्यम्) यथार्थ व्यवहार वा जल को (उ) तर्क के साथ (इत्) भी प्रचरित कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—जैसे भूमि और मेघ सब प्राणियों के सुखकारक हैं वैसे ही अध्यापक और उपदेशक जन अत्यन्त सुखकारक हों ॥ ९ ॥

फिर विद्वान् क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इमा ब्रह्माणि वर्धनाश्विभ्यां सन्तु शंतमा ।

या तक्षाम रथाँ इवावोचाम बृहन्नमः ॥ १० ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (अश्विभ्याम्) अन्तरिक्ष और पृथिवी से (या) जो (इमा) ये (वर्धना) वृद्धि को प्राप्त होते जिनसे उन (शंतमा) अत्यन्त सुखकारक (ब्रह्माणि) धनों या अन्नों का (रथानिव) रथों के समान (तक्षाम) आच्छादन करें वा स्वीकार करें वे आप लोगों के लिए सुखकारक (सन्तु) हों उन से (बृहत्) बड़े (नमः) सत्कार का हम (अवोचाम) उपदेश करें ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! आप जैसे वस्त्र आदि से वाहनों को ढांककर शृंगारयुक्त करते हैं वैसे ही धन और धान्यों को उत्तम प्रकार ग्रहण करके उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त करें और शुद्ध अन्न के भोग से बड़े विज्ञान को प्राप्त होकर अन्य जनों को भी इसका उपदेश करें ॥ १० ॥

इस सूक्त में अन्तरिक्ष पृथिवी और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तिहत्तरवां सूक्त और बारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

दश इति दशर्चस्य चतुःसप्ततितमस्य सूक्तस्य आत्रेय ऋषिः । अश्विनौ देवते । १, २, १० विराडनुष्टुप् । ३ अनुष्टुप् । ४, ५, ६, ९ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ७ विराडुष्णिक् । ८ निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को क्या अनुष्ठान करना चाहिए इस विषय को
प्रथम मन्त्र में कहते हैं—

कूष्ठो देवावश्विनाद्या दिवो मनावसू ।
तच्छ्रवथो वृषण्वसू अत्रिर्वामा विवासति ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (मनावसू) मन का बसानेवाले (वृषण्वसू) उत्तमों को बसाने वाले (अश्विना) विद्या से व्याप्त (देवौ) विद्वानो जो (कूष्ठः) पृथिवी मे स्थित होनेवाला (अत्रिः) विद्या प्राप्त जन (अद्य) इस समय (दिवः) प्रकाश के सम्बन्ध मे (वाम्) आप दोनो का (आविवासति) सब प्रकार से सेवन करता है (तत्) उसको आप दोनो (श्रवथः) सुनते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जो आप लोगों का सेवन करते है वे बहुश्रुत विचारशील विद्वान् जन सम्पूर्ण श्रेष्ठ कर्म्मों का सेवन करते हैं और वे दुःख से रहित होते है ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को विद्वानों के प्रति कैसे पूछना चाहिए इस विषय को अगले
मन्त्र मे कहते हैं—

कुह त्या कुह नु श्रुता दिवि देवा नासत्या ।
कस्मिन्ना यतथो जने को वां नदीनां सचा ॥ २ ॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक जनो (त्या) वे (नासत्या) सत्यस्वरूप (कुह) कहां वर्त्तमान हैं और (कुह) कहा (श्रुता) सुने हुए (देवा) श्रेष्ठ गुणवाले होते हैं और तुम (कस्मिन्) किस (जने) जन मे (आ, यतथः) सब ओर से यत्न करते हो उन आप दोनो की (नदीनाम्) नदियो के (सचा) सबन्ध से (कः) कौन (नु.) शीघ्र है जो (दिवि) श्रेष्ठ व्यवहार वा प्रकाश मे प्रयत्न करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिज्ञासु जनो को चाहिए कि विद्वानो के समीप जाकर बिजुली आदि की विद्याओ को पूछें ॥ २ ॥

अब मनुष्यों को क्या पूछना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों मे कहते हैं—

कं याथः कं ह गच्छथः कमच्छा युञ्जाथे रथम् ।
कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वयं वामुश्मसीष्टये ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! आप दोनो (कम्) किम को (याथ) प्राप्त होते हैं और (कम्) किस का (गच्छथः) जाते है (कम्) किम (रथम्) रमण करने योग्य वाहन को (अच्छा) उत्तम प्रकार (युञ्जाथे) युक्त होते हो और (कस्य) किसके (ह) निश्चय से (ब्रह्माणि) धन और धान्यो को (रण्यथः) रमाते हैं (वयम्) हम लोग (इष्टये) इच्छा के लिए (वाम्) आप दोनो की (उश्मसि) कामना करें ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे मनुष्यो ! विद्वान् जन जिसको प्राप्त होवें और युक्त होते तथा इच्छा करते हैं उसी की आप लोग इच्छा करो ॥ ३ ॥

पौरं चिद्ध्युदप्रुतं पौर पौराय जिन्वथः ।
यदीं गृभीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (पौर) पुर मे हुए आप (हि) ही (उदप्रुतम्) जल मे युक्त (पौरम्) मनुष्य के सन्तान को (चित्) निश्चय मे प्राप्त हूजिये और (पौराय) पुर मे हुए मनुष्य के लिए अध्यापक और आप (जिन्वथ) प्राप्त होते हो (गृभीततातये) ग्रहण किया श्रेष्ठ कर्म्मों का विस्तार जिस ने उस के लिए (द्रुह) शत्रु के (पदे) प्राप्त होने योग्य स्थान मे (सिंहमिव) सिंह के सदृश (यत्) जिस को (ईम्) सब ओर से प्राप्त होते हो उस का आप सन्तुष्ट कीजिये ॥४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे एक नगर के वासी जन परस्पर सुख की उन्नति करते हैं वैसे ही अन्य देशवासी भी करें ॥ ४ ॥

फिर मनुष्य कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिमत्कं न मुञ्चथः ।
युवा यदी कृथः पुनरा काममृण्वे वध्वः ॥ ५ ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे स्त्री पुरुषो (जुजुरुष) वृद्धावस्था को प्राप्त जन (च्यवानात्) गमन से (अत्कम्) व्याप्त (वव्रिम्) रूप और व्यभिचार का (प्र, मुञ्चथ.) त्याग करते हो और (यदि) जो (युवा) युवावस्था को प्राप्त पुरुष के (न) समान कार्य्य को (कृथ) करते हो (पुन) फिर (वध्व) स्त्री के (कामम्) मनोरथ को युवावस्था को प्राप्त हुआ मैं (ऋण्वे) सिद्ध करता हूँ वैसे आप दोनो (आ) सब ओर स करिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वृद्धावस्थाओ में रूप का त्याग कर के वृद्धावस्था को प्राप्त होते है वैसे ही दोषो के जानने वाले गुणो का त्याग कर के दोषों का ग्रहण करते हैं ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले
मन्त्र में कहते हैं—

अस्ति हि वामिह स्तोता स्मसि वां सन्दृशि श्रिये ।
नू श्रुतं म आ गतमवोभिर्वाजिनीवसू ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (वाजिनीवसू) बहुत अन्नादि क्रिया को बसाने वाले अध्यापक और उपदेशक जनो (इह) इस ससार मे जो (वाम्) आप दोनों को (स्तोता) प्रशसा करनेवाला (अस्ति) है उस को (हि) जिस से हम लोग प्राप्त (स्मसि) होवें और (वाम्) आप दोनो के (सन्दृशि) सादृश्य मे (श्रिये) धन के लिए (नु) शीघ्र (श्रुतम्) सुनिये और (अवोभि) रक्षणादिको से मुझ को प्राप्त हूजिये (मे) मेरे कथन को सुनने को (आ,गतम्) आइये ॥६ ॥

भावार्थ—जो विद्वानो के गुणो की स्तुति करते हैं वे गुणो से युक्त हो और विद्वानो की समता को प्राप्त होकर श्रीमान् होते हैं ॥६॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को
अगले मन्त्र मे कहते हैं—

को वामद्य पुरूणामा वव्ने मर्त्यानाम् ।
को विप्रो विप्रवाहसा को यज्ञैर्वाजिनीवसू ॥७॥

पदार्थ—हे (विप्रवाहसा) विद्वानो मे प्राप्त होने योग्य (वाजिनीवसू) धन धान्य प्राप्त करानेवालो (पुरूणाम्) बहुत (मर्त्यानाम्) मनुष्यो के मध्य में (कः) कौन (विप्र) बुद्धिमान् (अद्य) आज (वाम्) आप दोनो का (आ, वव्ने) अच्छे प्रकार आदर करता (क.) कौन (यज्ञैः) यज्ञो से विद्या को और (क.) कौन बुद्धि का आदर करता है ॥७॥

भावार्थ—जो विद्या की याचना करते हैं वे विद्वान् के समीप प्राप्त होकर प्रश्न और उत्तरो मे आनन्द कर के लाभ को प्राप्त होवें अन्यो को भी प्राप्त करा सकें ॥७॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को
अगले मन्त्र मे कहते हैं—

आ वां रथो रथानां येष्ठो यात्वश्विना ।
पुरू चिदस्मयुस्तिर आङ्गूषो मर्त्येष्वा ॥८॥

पदार्थ—हे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक जनो ! जो (वाम्) तुम्हारा (रथानाम्) वाहनो के मध्य मे (येष्ठ) अतिशय चलने वाला (रथः) वाहन (यातु) चलें (अस्मयु) हम लोगो को प्राप्त होनेवाली (चित्) भी (मर्त्येषु) मनुष्यो मे (आङ्गूष) अङ्गो मे हुई प्रशसा (पुरू) बहुतो को (आ) सब प्रकार मे प्राप्त हो और दुःखो का (तिर) तिरस्कार करके सुख प्राप्त होता है उसको आप दोनो प्राप्त (आ) हूजिये ॥८॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे अध्यापक और उपदेशक शिल्पीजन उत्तम वाहनो को रचते हैं वैसे सुख के साधनो को आप लोग उत्पन्न कीजिये ॥८॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले
मन्त्र मे कहते है—

शमू षु वां मधूयुवास्माकमस्तु चर्कृतिः ।
अर्वाचीना विचेतसा विभिः श्येनेव दीयतम् ॥

पदार्थ—हे (मधूयुवा) माधुर्य्य गुण से युक्त (विचेतसा) अनेक प्रकार के विज्ञानवाले (अर्वाचीना) सन्मुख चलते हुए दो जनो (वाम्) आप दोनो की जो (चर्कृति) अत्यन्त क्रिया है वह (अस्माकम्) हम लोगो की (अस्तु) हो जिस से आप दोनो (उ) ही (विभि) पक्षियो के साथ (श्येनेव) बाज पक्षी के सदृश (शम्) सुख वा कल्याण को (सु, दीयतम्) उत्तम प्रकार देवें ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। वे ही विद्वान् है जो अपने ऐश्वर्य्य को अन्य जनो के सुख के लिये नियुक्त करते हैं जैसे पक्षियो के साथ श्येन पक्षी शीघ्र चलता है वैसे इनके साथ विद्यार्थी जन पूर्ण रीति से चलें ॥९॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले
मन्त्र में कहते है—

अश्विना यद्ध कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम् ।
वस्वीरू षु वां भुजः पृञ्चन्ति सु वां पृचः ॥१०॥१४॥

पदार्थ—हे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक जनो (यत्) जो (कर्हि, चित्) कभी हम लोगो की (इमम्) इस वर्त्तमान (हवम्) प्रशसा को (शुश्रूयातम्) प्राप्त होओ और जो (पृच) कामना और (वस्वीः) धनसबन्धिनी (भुज.) भोग की क्रियाओ को (वाम्) आप दोनों के सम्बन्ध मे (सु) उत्तम प्रकार (पृञ्चन्ति) सम्बन्धित करते हैं उनकी (ह) निश्चय से (उ) और (वाम्) आप दोनो की हम लोग (सु) उत्तम प्रकार कामना करें ॥ १० ॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन विद्यार्थियो की परीक्षा करते हैं उनको विद्यार्थीजन विद्वान् होकर प्रसन्न करते हैं ॥१०॥

इस सूक्त मे अध्यापक, उपदेशक और विद्वान् के गुण वर्णन करने से
इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति
जाननी चाहिए ॥

यह चौहत्तरवां सूक्त और चौदहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ नवर्चस्य पञ्चसप्ततितमस्य सूक्तस्य अवस्युरात्रेय ऋषिः ।

अश्विनौ देवते । १, ३ पङ्क्तिः । २, ४, ६, ७, ८

निचृत्पङ्क्तिः । ५ स्वराट्पङ्क्तिः । ९ विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब नव ऋचावाले पचहत्तरवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेन प्रति भूषति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥१॥

पदार्थ—हे (माध्वी) मधुर आदि गुणों को प्राप्त करानेवाले (अश्विनौ) अध्यापक परीक्षक जनो जो (स्तोता) स्तुति करने और (ऋषिः) मन्त्र और अर्थ का जाननेवाला (स्तोमेन) स्तवन से (वाम्) आप दोनों के (प्रियतमम्) अत्यन्त प्रिय (वृषणम्) सुख के वर्षाने और (वसुवाहनम्) द्रव्यों के पहुँचाने वाले (रथम्) रमते हैं जिससे उस विमान आदि वाहन को (प्रति, भूषति) शोभित करता है उसके और (मम) मेरे (हवम्) बुलाने को (प्रति, श्रुतम्) सुनिये ॥ १ ॥

भावार्थ—जो अध्यापन और उपदेश करते हैं वे योग्य समय में परीक्षा भी करें ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को किस विषय की इच्छा करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्ना सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥२॥

पदार्थ—हे (दस्रा) दुःख के दूर करने और (हिरण्यवर्तनी) ज्योतिः वा सुवर्ण को वर्त्ताने वालो (सुषुम्ना) उत्तम सुख के युक्त तथा (सिन्धुवाहसा) नदियों को प्राप्त करनेवाला (माध्वी) मधुर गति से युक्त और (अश्विना) शिल्प कार्य्य के जाननेवाला ! जैसे (अहम्) मैं (सना) सदा (विश्वाः) सम्पूर्ण विद्याओं को ग्रहण करता हूँ वैसे आप दोनों (अत्यायातम्) देशों का अतिक्रमण करके आइये और (मम) मेरा (तिरः) तिरस्कारपूर्वक (हवम्) पठित (श्रुतम्) सुनिये ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिन विद्वानों से विद्याओं को आप लोग पढ़ो और वे जब जब परीक्षा करें तब तब तिरस्कार के साथ वर्त्तमान को धारण करें जिससे सबको अच्छे प्रकार विद्या प्राप्त होवे ॥२॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥३॥

पदार्थ—हे (वाजिनीवसू) अन्न आदि से युक्त सामग्री को बसाने और (हिरण्यवर्तनी) सुवर्ण वा ज्योति को वर्त्तानेवाले (रत्नानि) रमणीय धनों को (जुषाणा) सेवा और (बिभ्रतौ) धारण करते हुए (रुद्रा) दुष्टों को भय देनेवाले (अश्विना) विद्या से युक्त (माध्वी) मधुरस्वभाव वालो (युवम्) आप दोनों (नः) हम लोगों को (आ) सब प्रकार से (गच्छतम्) प्राप्त होइये और (मम) मेरे (हवम्) आह्वान को (श्रुतम्) सुनिये ॥३॥

भावार्थ—वे ही भाग्यशाली होवें जो यथार्थवक्ता विद्वानों के समीप जाकर वा उनको बुलाकर प्रयत्न से विद्या का अभ्यास कर के परीक्षा देते हैं ॥३॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सुष्टुभो वां वृषण्वसू रथे वाणीच्याहिता ।
उत वां ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥४॥

पदार्थ—हे (वृषण्वसू) बलिष्ठों को बसानेवाले (माध्वी) मधुर स्वभाव वाले विद्यायुक्त जनो जो (सुष्टुभः) उत्तम स्तुति करनेवाला (वाम्) आप दोनों के (रथे) रथ में रमता है जिससे (वाणीची) वाणी (आहिता) स्थापित की गई (उत) और जो (वाम्) आप दोनों का (ककुहः) बड़ा (मृगः) शुद्ध करने वाला और (वापुषः) शरीर में हुआ (पृक्षः) अन्न को (कृणोति) करता है उसके और (मम) मेरे (हवम्) आह्वान को (श्रुतम्) सुनिये ॥४॥

भावार्थ—वही बड़ा होता है जो विद्वानों के समीप से विद्या और सुशीलता को ग्रहण करता है ॥४॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

बोधिन्मनसा रथ्येषिरा हवनश्रुता ।
विभिश्च्यवानमश्विना नि याथो अद्वयाविनं माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥५॥

पदार्थ—हे (रथ्या) रथों में श्रेष्ठ (इषिरा) चलनेवाले (हवनश्रुता) आह्वान सुना गया जिनका और (बोधिन्मनसा) बोधित मन जिनका ऐसे (माध्वी) मधुर स्वभाववाले (अश्विना) विद्या के अध्यापक और उपदेशक आप दोनों (अद्वयाविनम्) द्वन्द्वभाव से रहित (विभिः) पक्षियों के साथ (च्यवानम्) पूछते हुए को (नि) अत्यन्त (याथः) प्राप्त होते हैं और (मम) मेरे (हवम्) आह्वान को भी (श्रुतम्) सुनिये ॥५॥

भावार्थ—जो मनुष्य शुद्ध अन्तःकरणवाले, प्राप्त हुई शिल्पविद्या जिन को ऐसे और कपटरहित होकर विद्यार्थियों के परीक्षक हैं वे जगत् के मङ्गलकारक होते हैं ॥५॥

मनुष्यों को शिल्पविद्या से कार्य्य सिद्ध करने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ वां नरा मनोयुजोऽश्वासः प्रुषितप्सवः ।
वयो वहन्तु पीतये सह सुम्नेभिरश्विना माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥६॥

भावार्थ—हे (माध्वी) मधुर स्वभावयुक्त (नरा) नायक (अश्विना) शिल्पविद्या के जानने वालो ! आप दोनों (सुम्नेभिः) सुखों के (सह) साथ (पीतये) पान के लिए जो (वाम्) आप दोनों के (मनोयुजः) मन के सदृश युक्त होनेवाले अत्यन्त वेगवान् (प्रुषितप्सवः) जलाया ईंधन आदि जिन्हों ने ऐसे (वयः) व्याप्तिशील (अश्वासः) वेग आदि गुण हैं वे वाहनों को (आ) सब प्रकार से (वहन्तु) पहुँचावें उनके लिए (मम) मेरे (हवम्) आह्वान को (श्रुतम्) सुनिये ॥६॥

भावार्थ—जो मनुष्य पदार्थविद्या से शिल्पसिद्ध कार्य्यों को सिद्ध करें तो अधिक धनी होवें ॥६॥

फिर मनुष्यों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥७॥

पदार्थ—हे (नासत्या) नहीं विद्यमान असत्य व्यवहार जिनके ऐसे (अदाभ्या) नहीं हिंसा करने योग्य (माध्वी) मधुर स्वभाववाले (अश्विनौ) विद्या में व्याप्त आप दोनों (इह) इस संसार में (आ, गच्छतम्) आइये तथा (अर्यया) वैश्य वा स्वामी की स्त्री से (वेनतम्) कामना करो (तिरः) तिरस्कार को (चित्) भी (मा) मत करो (वर्तिः) मार्ग को (परि, यातम्) सब ओर से प्राप्त होओ और (मम) मेरे (हवम्) आह्वान को (वि) विशेष करके (श्रुतम्) सुनो ॥७॥

भावार्थ हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों गृहस्थमार्ग में वर्त्ताव करके धर्म्म से सन्तान और ऐश्वर्य्य की इच्छा करो तथा अध्यापन और परीक्षा सदा ही करो ॥७॥

फिर स्त्रीपुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अस्मिन्यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती ।
अवस्युमश्विना युवं गृणन्तमुप भूषथो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥८॥

पदार्थ—हे (अदाभ्या) नहीं हिंसा करने योग्य (माध्वी) मधुर स्वभाव वाले (शुभः, पती) कल्याणकारक व्यवहार के पालन करनेवाले (अश्विना) ब्रह्मचर्य्य से प्राप्त हुई विद्या जिनको ऐसे स्त्रीपुरुषो (युवम्) आप दोनों (अस्मिन्) इस गृहाश्रम नामक (यज्ञे) उत्तम प्रकार प्राप्त होने योग्य यज्ञ में (जरितारम्) स्तुति करने और (अवस्युम्) अपने कल्याण की इच्छा वा कामना करनेवाले (गृणन्तम्) स्तुति करते हुए जन को (उप, भूषथ) शोभित करते हो (मम) मेरे (हवम्) आह्वान को भी (श्रुतम्) सुनिये ॥८॥

भावार्थ—जो स्त्रीपुरुष गृहाश्रम में वर्त्तमान उत्तम आचरण वाले स्तुतियों से स्तुति करनवाले गृह के कृत्यों को शोभित करते हैं तथा अध्यापन और परीक्षा से विद्या की उन्नति करते हैं वे ही इस जगत् में प्रशंसित होते हैं ॥८॥

फिर स्त्री पुरुष कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अभूदुषा रुशत्पशुराग्निरधाय्यृत्वियः ।
अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥९॥१६॥

पदार्थ—हे (वृषण्वसू) बलिष्ठ दो देहों को वसाते और (दस्रौ) दुःख के नाश करनेवाले (माध्वी) मधुरस्वभाववाले स्त्री पुरुषो जिन (वाम्) आप दोनों को (रुशत्पशुः) पाला पशु जिसने वह (ऋत्वियः) ऋतु ऋतु में यज्ञ करानेवाला (अग्निः) अग्नि (आ, अधायि) स्थापन किया जाता है और (उषाः) प्रातःकाल के सदृश (अभूत्) होवे और (अमर्त्यः) नहीं विद्यमान मनुष्य जिसमे ऐसा (रथः) वाहन (अयोजि) युक्त किया जाता वे आप दोनों (मम) मेरे (हवम्) आह्वान को (श्रुतम्) सुनिये और हे स्त्री के पति जो पत्नी प्रातःकाल के सदृश होवे उसको निरन्तर प्रसन्न करो ॥९॥

भावार्थ—सदा स्त्री पुरुष ऋतुगामी होवें, सदा शरीर के आरोग्य और पुष्टि को करें तथा विद्या की उन्नति करके आनन्द की उन्नति करें ॥९॥

इस सूक्त में अश्विपदव्याप्त विद्वान् स्त्रीपुरुष के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह पचहत्तरवां सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य षट्सप्ततितमस्य सूक्तस्य अत्रिर्ऋषिः । अश्विनौ देवते ।
१, २ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।
३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले छहत्तरवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र से फिर स्त्रीपुरुष कैसे वर्त्तें इस विषय को कहते हैं—

आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥१॥

पदार्थ—हे (रथ्या) वाहनों में प्रवीण (अर्वाञ्चा) नीचे चलनेवाले (अश्विना) स्त्रीपुरुषो जो (विप्राणाम्) बुद्धिमानों की (देवयाः) विद्वानों को प्राप्त होनेवाली (वाचः) वाणियां (अस्थुः) हैं और जो (उषसाम्) प्रभात वेलाओं की (अनीकम्) सेनारूप (अग्निः) सूर्य्यरूप से परिणत हुआ अग्नि (उत्) ऊपर को (भाति) प्रकाशित होता है उन में (इह) इस संसार में (पीपिवांसम्) उत्तम प्रकार बढ़ते हुए (घर्मम्) गृहाश्रम के कृत्यनामक यज्ञ को (नूनम्) निश्चित (अच्छ) अच्छे प्रकार (आ) सब प्रकार से (यातम्) प्राप्त होओ ॥१॥

भावार्थ—हे बुद्धिमान् जनो ! जैसे बिजुली आदि अग्नि बहुत कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे ही स्त्रीपुरुष मिलकर गृहकृत्यों को सिद्ध करें ॥१॥

न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्त्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा ॥२॥

पदार्थ—हे (गमिष्ठा) अतिशय चलनेवाले (शम्भविष्ठा) अतिशय सुखकारक और (नूनम्) निश्चित (उपस्तुता) प्राप्त हुई प्रशंसा से कीर्ति को पाये हुए (अश्विना) स्त्री पुरुषो आप (इह) इस संसार में (संस्कृतम्) किया संस्कार जिसका उसको (न) नहीं (प्र, मिमीत) उत्पन्न करते हो और (अभिपित्वे) सब ओर से प्राप्त होने पर (अवसा) रक्षण आदि से (अवर्त्तिम्) अमार्ग के (प्रति) प्रतिकूल उत्पन्न करते हो और (दाशुषे) दान करनेवाले के लिए (दिवा) दिवस से (अन्ति) समीप में (आगमिष्ठा) चारों ओर अतिशय चलनेवाले होओ ॥ २ ॥

भावार्थ—जो गृहस्थ जन—किया है संस्कार जिनका ऐसे पदार्थों का वृथा नहीं नाश करते हैं वे लक्ष्मीवान् होते हैं ॥ २ ॥

उता यातं संगवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।
दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥३॥

पदार्थ—हे (अश्विना) व्याप्तसुख स्त्रीपुरुषो तुम (अह्नः) दिवस के (मध्यन्दिने) मध्याह्न भाग में और (प्रातः) प्रभात समय में (सूर्य्यस्य) सूर्य-मण्डल के (उदिता) उदय होने में और दिन के (संगवे) साय समय में जिसमें गौएँ संगत होती अर्थात् घर के आतीं (दिवा) दिन (नक्तम्) रात्रि (शन्तमेन) अत्यन्त सुख से (अवसा) रक्षा आदि के साथ (आ, यातम्) आओ (उत) और तुम दोनों की जो (पीतिः) पिआवट (आ, ततान) विस्तृत होती है उसको (इदानीम्) अब (न) नहीं नाश करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—किया विवाह जिन्होंने वे स्त्रीपुरुष प्रातः, मध्याह्न, साय समयों में दिन रात्रि का कल्याण करनेवाले कर्म्मों को सुखों से प्राप्त हों कभी आलस्य मत करें ॥ ३ ॥

फिर गृहस्थों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इदं हि वां प्रदिवि स्थानमोक इमे गृहा अश्विनेदं दुरोणम् ।
आ नो दिवो बृहतः पर्वतादाद्भ्यो यातमिषमूर्जं वहन्ता ॥४॥

पदार्थ—हे (दिवः) प्रकाश से (बृहतः) बड़े (पर्वतात्) मेघ और (अद्भ्यः) जलों से (इषम्) अन्न और (ऊर्जम्) पराक्रम को (आ) सब प्रकार से (वहन्ता) प्राप्त करनेवाले (अश्विना) स्त्रीपुरुषो (नः) हम लोगों को वा हम लोगों के (इदम्) इस (दुरोणम्) गृह को (आ) सब प्रकार से (यातम्) प्राप्त होओ (हि) जिससे (इदम्) यह (वाम्) आप दोनों के (प्रदिवि) उत्तम प्रकाश में (स्थानम्) स्थिर होते हैं जिसमें उस (ओकः) गृह को (इमे) ये (गृहाः) ग्रहण करनेवाले गृहस्थजन प्राप्त होते हैं उनको सब प्रकार से प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो गृहस्थ जन गृहाश्रम से कर्म्मों को पूर्ण रीति से करते हैं वे सब सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

मनुष्यों को चाहिए कि पुरुषार्थ और विद्वानों के संग से ऐश्वर्य्य को प्राप्त करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥५॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (अश्विनोः) अन्तरिक्ष और पृथिवी के सदृश राजा और उपदेशक के (नूतनेन) नवीन (अवसा) अन्न आदि और (मयोभुवा) सुखकारक से और (सुप्रणीती) उत्तम नीति से (नः) हम लोगों के लिए (रयिम्) धन को (आ) सब प्रकार (वहतम्) प्राप्त कराते हुए को (वीरान्) वीरों का (उत) और (विश्वानि) संपूर्ण (अमृता) स्वादु जलों और (सौभगानि) उत्तम धनादि ऐश्वर्यों के भावरूपों को (आ) सब प्रकार प्राप्त कराते हुए को हम लोग (सम्, आ, गमेम) उत्तम प्रकार से प्राप्त होवें वैसे आप लोग भी प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग यथार्थवक्ताओं के उपदेश से राजा की न्यायव्यवस्था के साथ वर्त्ताव करके न्याय से उत्तमपुरुषों को और सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को प्राप्त होते हैं वे अभीष्ट पदार्थों की सिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि, अश्वि, राजा और उपदेशक के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह छहत्तरवां सूक्त और सत्रहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य सप्तसप्ततितमस्य सूक्तस्य अत्रिर्ऋषिः । अश्विनौ देवते । १, २, ३, ४, ५ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले सतहत्तरवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

प्रातर्यावाणा प्रथमा यजध्वं पुरा गृध्रादररुषः पिबातः ।
प्रातर्हि यज्ञमश्विना दधाते प्र शंसन्ति कवयः पूर्वभाजः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो तुम जैसे (पुरा) पहिले (प्रातर्यावाणा) जो सूर्य्य और उषा प्रातर्वेला में चलते हैं उन (प्रथमा) प्रथम और विस्तीर्णस्वरूप वालों को और (अश्विना) अध्यापक और उपदेशकजनों को (यजध्वम्) मिलाओ और (अररुषः) नहीं देनेवाले की (गृध्रात्) अभिकांक्षा से रस को (पिबातः) पीते और (प्रातः, हि) प्रातःकाल ही (यज्ञम्) राज्यपालन को (दधाते) धारण करते हैं उनकी (पूर्वभाजः) पूर्वजनों के आदर करनेवाले (कवयः) बुद्धिमान् जन (प्र, शंसन्ति) प्रशंसा करते हैं वैसे उनको आप लोग जानो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो राजा और उपदेशक जन दिन में शयनरहित और जिनकी विद्वान् जन स्तुति करते हैं उनके सत्सङ्ग से आप लोग कांक्षासिद्धि करो ॥ १ ॥

प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत न सायमस्ति देवया अजुष्टम् ।
उतान्यो अस्मद्यजते वि चावः पूर्वः पूर्वो यजमानो वनीयान् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो आप लोग (प्रातः) प्रभातकाल में (अश्विना) सूर्य्य और उषा का (यजध्वम्) उत्तम प्रकार प्राप्त हूजिये और (हिनोत) वृद्धि कीजिये जहां (न) नहीं (सायम्) सन्ध्याकाल (अस्ति) है वहां जो (देवयाः) श्रेष्ठ गुण और विद्वानों को प्राप्त होनेवाले हैं उनका (अजुष्टम्) सेवन करिये और जो (अन्यः) अन्य (अस्मत्) हम लोगों से (यजते) मिलता है (च) और जो (वि, आवः) विशेष रक्षा करता है वह (उत) भी (पूर्वः पूर्वः) पहिला पहिला (यजमानः) यज्ञ करनेवाला (वनीयान्) अतिशय विभाग करनेवाला होता है उसका भी सत्कार करो ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि प्रतिदिन रात्रि के चौथे शेष प्रहर में उठकर जैसे नियम से अन्तरिक्ष और पृथिवी वर्त्तमान हैं वैसे वर्त्ताव करके सब की रक्षा करें ॥ २ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

हिरण्यत्वङ्मधुवर्णो घृतस्नुः पृक्षो वहन्ना रथो वर्तते वाम् ।
मनोजवा अश्विना वातरंहा येनातियाथो दुरितानि विश्वा ॥३॥

पदार्थ—हे (अश्विना) शिल्पविद्या के जानने वालो (वाम्) आप दोनों का (हिरण्यत्वक्) तेज और सुवर्ण के सदृश त्वचा पर का वर्ण और (मधुवर्णः) देखने योग्य वर्ण जिसका वह (घृतस्नुः) जल को शुद्ध करनेवाला (पृक्षः) अन्न आदि को (वहन्) प्राप्त होता वा प्राप्त कराता हुआ (रथः) विमान आदि वाहन को (आ, वर्तते) सब प्रकार वर्त्तमान है और जिसको (मनोजवाः) मन के सदृश वेगवाले (वातरंहा) वायु के सदृश वेगयुक्त अग्नि आदि पदार्थ प्राप्त होते हैं और (येन) जिस रथ से (विश्वा) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुःख से प्राप्त होने योग्य स्थानान्तरों को (अतियाथः) अत्यन्त प्राप्त होते हैं उसको आप दोनों रचिए ॥३॥

भावार्थ—जो मनुष्य विमानादिकों को अग्नि और जलादिकों से बनावें तो वे विमान आदि मन और वायु के सदृश शीघ्र जाकर लौट आवें ॥ ३ ॥

यो भूयिष्ठं नासत्याभ्यां विवेष चनिष्ठं पित्वो ररते विभागे।

स तोकमस्य पीपरुच्छमीभिरनूर्ध्वभासः सदमित्तुतुर्यात् ॥ ४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो (नासत्याभ्याम्) नहीं विद्यमान असत्य जिनके उनसे (शमीभिः) कर्म्मों के द्वारा (भूयिष्ठम्) अतीव बहुत (चनिष्ठम्) अतिशय अन्न को (विवेष) व्याप्त होता है और (पित्वः) अन्न के (विभागे) विभाग में (ररते) देता है (सः) वह (अनूर्ध्वभासः) नहीं ऊपर कान्तियाँ जिसकी (अस्य) इसके (तोकम्) सन्तान का (पीपरत्) पालन करें वह (इत्) ही (सदम्) प्राप्त दुःख का (तुतुर्यात्) नाश करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो अग्नि और जल से बहुत कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वे जगत् का रक्षण करके सम्पूर्ण दुःख के नाश करने योग्य हैं ॥ ४ ॥

फिर मनुष्य को कैसा वर्त्ताव करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम।

आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥ ५॥ १८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (अश्विनोः) अग्नि और जल के समीप से (नूतनेन) नवीन (मयोभुवा) सुख के साधक (अवसा) रक्षण आदि और (सुप्रणीती) श्रेष्ठ नीति से (नः) हम अपने लिए (रयिम्) धन को (आ, वहतम्) प्राप्त कराते हुए को और हमारे लिये (वीरान्) शूरता आदि गुणों से युक्त पुरुषों को (उत) और (विश्वानि) सम्पूर्ण (अमृता) जलों के सदृश सुखकारक (सौभगानि) सुन्दर ऐश्वर्यों को प्राप्त कराते हुए को (सम्, आ, गमेम) मिलें उन को आप लोग भी (आ) उत्तम प्रकार मिलिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे यथार्थवक्ता जन सब के साथ वर्त्ताव करें वैसे इन सब लोगों को वर्त्ताव करना चाहिये ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि, जल, विद्वान् और राजा के कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सतहत्तरवां सूक्त और अठारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ नवर्चस्याष्टसप्ततितमस्य सूक्तस्य सप्तवध्रिरात्रेय ऋषिः। अश्विनौ देवते। १, २, ३ उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। ४ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ५, ६ अनुष्टुप् ७, ८, ९ निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अब नव ऋचावाले अठहत्तरवें सूक्त का आरम्भ किया है उसके प्रथम मन्त्र से फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम्।

हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ १॥

पदार्थ—हे (नासत्या) सत्य व्यवहार से युक्त तथा (अश्विनौ) वायु और जल के सदृश उपदेश देने वा ग्रहण करने वाले आप दोनों (इह) इस संसार में (हंसाविव) दो हंसों के सदृश (आ, गच्छतम्) आइये और (सुतान्) उत्पन्न हुए पदार्थों के (उप) समीप (आ) सब प्रकार (पततम्) प्राप्त हूजिये तथा (मा, वि, वेनतम्) विरुद्ध कामना मत कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विमान से हंस के सदृश अन्तरिक्ष में जा आकर विरुद्ध आचरण का त्याग करके सत्य की कामना करते हैं वे बहुत सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

अश्विना हरिणाविव गौराविवानु यवसम्।

हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ २॥

पदार्थ—हे (अश्विना) यजमान और यज्ञ करानेवाले आप दोनों (हंसाविव) दो हंसों के सदृश (सुतान्) उत्पन्न हुए ऐश्वर्य आदिकों के (उप) समीप (आ, पततम्) आइये तथा (यवसम्) सोमलता के (अनु) पश्चात् (हरिणाविव) जैसे हरिण दौड़ते हैं वैसे और (गौराविव) जैसे दो मृग दौड़ते हैं वैसे आइये ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य जल और बिजुली को सिद्ध करते हैं वे हरिण के सदृश शीघ्र जाने के योग्य हैं ॥ २ ॥

अश्विना वाजिनीवसू जुषेथां यज्ञमिष्टये।

हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ ३॥

पदार्थ—हे (वाजिनीवसू) विज्ञानक्रिया को बसाने वाले (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक जनो आप लोग (इष्टये) इष्ट सुख की प्राप्ति के लिए (यज्ञम्) विज्ञान की सङ्गतिमय यज्ञ का (आ) सब प्रकार से (जुषेथाम्) सेवन करिये तथा (हंसाविव) दो हंसों के समान (सुतान्) पुत्र के सदृश वर्त्तमान शिक्षा करने योग्य शिष्यों के (उप) समीप (पततम्) प्राप्त हूजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। उपदेशक जन सम्पूर्ण शिक्षा करने योग्य मनुष्यों को पुत्र के सदृश मानकर और सब जगह भ्रमण कर के सत्य उपदेश से कृतकृत्य करें ॥ ३ ॥

फिर स्त्रीपुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अत्रिर्यद्वामवरोहन्नृबीसमजोहवीन्नाधमानेव योषा।

श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेनागच्छतमश्विना शन्तमेन ॥ ४॥ १९॥

पदार्थ—हे (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा के सदृश वर्त्तमान अध्यापक और उपदेशक जनो (यत्) जो (अत्रिः) त्रिविध दुःखरहित (वाम्) आप दोनों को (अवरोहन्) प्राप्त होता हुआ (योषा) स्त्री (नाधमानेव) जो याचना करती उस के समान (ऋबीसम्) सरल को (अजोहवीत्) अत्यन्त आह्वान करता है उस के साथ (श्येनस्य) बाज पक्षी के (नूतनेन) नवीन (शन्तमेन) अतिशय सुखकारक (जवसा) वेग के (चित्) सदृश मन से (आ, अगच्छतम्) आइये ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो विद्वानों के अनुकरण से सरल स्वभाव को स्वीकार करके प्रयत्न करते हैं वे सर्वदा सुखी होते हैं ॥ ४ ॥

वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्याइव।

श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥ ५॥

पदार्थ—हे (अश्विना) विद्या से व्याप्त अध्यापक और परीक्षकजनो (मे) मेरे (हवम्) शब्द को (श्रुतम्) श्रवण को और (सप्तवध्रिम्) नष्ट हुए सात इन्द्रिय जिस के उस का (च) और (मुञ्चतम्) त्याग करो और (वनस्पते) हे वनस्पति (सूष्यन्त्याइव) गर्भवती स्त्री के सदृश (योनिः) कारण आप (वि) विशेष करके (जिहीष्व) त्याग करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। आप लोग यथार्थवक्ता अध्यापक और उपदेशकों की इच्छा करिये और जैसे गर्भवती स्त्री बालक का त्याग करती है वैसे ही अन्तःकरण से अविद्या को दूर करिये ॥ ५ ॥

इस के अनन्तर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये।

मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ॥ ६॥

पदार्थ—हे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशकजनो (युवम्) आप दोनों (मायाभिः) बुद्धियों से (भीताय) भय को प्राप्त (नाधमानाय) उपतप्यमान और (सप्तवध्रये) पाँच ज्ञानेन्द्रियां मन और बुद्धि ये सात नष्ट हुई जिसकी अर्थात् इनकी प्रबलता से रहित उसके लिए और (ऋषये) वेदार्थ के जाननेवाले के लिये (च) भी (सम्, अचथः) उत्तम प्रकार जाइये (वृक्षम्, च) और जो काटा जाता उस वृक्ष को (वि) उत्तम प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—विद्वानों की योग्यता है कि बुद्धि के देने से अविद्यादि भय के कारण डरे हुओं को भय रहित करके तथा संसार में मोह और अधर्म्म के योग से वियुक्त करके सुखी करें ॥ ६ ॥

कैसा गर्भ और जन्म इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः।

एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः ॥ ७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यथा) जिस प्रकार से (वातः) पवन (पुष्करिणीम्) छोटे तालाबों को (सर्वतः) सब ओर से (समिङ्गयति) उत्तम प्रकार हिलाता है वैसे (एवा) ही (ते) आपका (गर्भः) जो धारण किया जाता वह गर्भ (एजतु) कंपित होवे और (दशमास्यः) दश महीनों में हुआ (निरैतु) निकले ऐसा जानो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो स्त्रीपुरुष ब्रह्मचर्य से विद्या को पढ़के विवाह करें तो दशवें मास में प्रसव हो ऐसा जानना चाहिये ॥ ७ ॥

यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति।

एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ॥ ८॥

पदार्थ—हे (दशमास्य) दश महीनों में उत्पन्न हुए (यथा) जिस प्रकार से (वातः) वायु और (यथा) जिस प्रकार से (वनम्) जंगल (यथा) जिस प्रकार से (समुद्रः) समुद्र (एजति) कम्पित होता वा चलता है वैसे (एवा) ही (त्वम्) आप (जरायुणा) देह के ढांपनेवाले के (सह) सहित (अव, इहि) आइये ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। वही गर्भ और उस में स्थित बालक उत्तम होता है जो दशवें महीने में होता है ॥ ८ ॥

दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि ।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥९॥२०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**जीव**) प्राण आदि का धारण करने वाला (**अधि**) ऊपरे (**मातरि**) माता में (**दश**) दश (**मासान्**) महीनों तक (**शशयानः**) शयन करता हुआ (**अक्षत**) घाव से रहित (**कुमार**) बालक (**निरैतु**) निकले वह (**जीव**) जीव (**जीवन्त्या**) जीवती हुई के (**अधि**) ऊपर जीवता है ॥ ९ ॥

भावार्थ—वे ही सन्तान उत्तम होते हैं कि जो दश महीने पूर्ण हो जबतक तबतक गर्भ में स्थित होकर प्रकट होते हैं ॥ ९ ॥

इस सूक्त में अश्विपदवाच्य स्त्रीपुरुष के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह अठहत्तरवां सूक्त और बीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ दशर्चस्यैकोनाऽशीतितमस्य सूक्तस्य सत्यश्रवा आत्रेय ऋषिः । उषा देवता । १ स्वराड्ब्राह्मी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । २, ३, ७ भुरिग्बृहती । १० स्वराड् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । ४, ५, ८ पङ्क्तिः । ६, ९ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब दश ऋचावाले उनासीवें सूक्त का प्रारम्भ है इसमें स्त्री कैसी हो इस विषय को कहते हैं—

महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥१॥

पदार्थ—हे (**उषः**) श्रेष्ठ गुणों से प्रातःकाल के सदृश वर्त्तमान (**वाय्ये**) डोरे के सदृश फैलाने योग्य सन्ततिरूप (**सुजाते**) उत्तम रीति से उत्पन्न (**अश्वसूनृते**) बड़ी प्रिय वाणी जिसकी ऐसी हे स्त्रि ! (**यथा**) जैसे (**दिवित्मती**) जैसे प्रकाश से युक्त प्रातर्वेला (**महे**) बड़े (**राये**) धन के लिए प्रबोध देती है वैसे (**अद्य**) आज (**नः**) हम लोगों को (**बोधय**) जनाइये और (**चित्**) भी (**सत्यश्रवसि**) सत्यों के श्रवण सत्य वा अन्न में (**नः**) हम लोगों को (**अबोधय**) जनाइये ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे प्रातर्वेला दिन को उत्पन्न करके सब को जगाती है वैसे ही विद्यायुक्त स्त्री अपने सन्तानों को अविद्या के सदृश वर्त्तमान निद्रा से उठाकर विद्या को जनाती है ॥ १ ॥

या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥२॥

पदार्थ—हे (**अश्वसूनृते**) बड़े अन्न से युक्त (**सुजाते**) उत्तम संस्कारों से उत्पन्न (**वाय्ये**) जनाने योग्य (**सहीयसि**) अतिशय सहनेवाली (**दिवः**) सूर्य की (**दुहितः**) पुत्री के समान वर्त्तमान स्त्री (**या**) जो तू (**शौचद्रथे**) पवित्र रथ में (**सुनीथे**) श्रेष्ठ न्याय में (**सत्यश्रवसि**) सत्य का श्रवण जिसमें उसमें (**वि, औच्छः**) विशेष बसाती है (**सा**) वह तू हम लोगों को सुख में (**वि, उच्छ**) विशेष बसावे ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रातर्वेला सब को सुख में बसाती है वैसे ही श्रेष्ठ स्त्री आनन्दयुक्त गृहाश्रम में सब को बसाती है ॥२॥

सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥३॥

पदार्थ—हे (**सत्यश्रवसि**) सत्य व्यवहार में प्राप्त अन्न आदि ऐश्वर्य वाली (**सुजाते**) अच्छी विद्या से प्रकट हुई (**वाय्ये**) प्राप्त होने योग्य (**अश्वसूनृते**) बड़े ज्ञान से युक्त (**सहीयसि**) अतिशय सहनशील और (**दिवः**) कामना करते हुए की (**दुहितः**) कन्या के सदृश विदुषी स्त्री (**यो**) जो तू (**आभरद्वसुः**) सब प्रकार से धनों का धारण करनेवाली हुई (**नः**) हम लोगों को (**वि**) विशेष करके (**औच्छः**) निवास करानेवाली है (**सा**) वह आप (**अद्य**) आज उत्तम सुख में (**वि**) विशेष करके (**उच्छ**) निवास कराओ ॥३॥

भावार्थ—जो स्त्रियाँ प्रातर्वेला के सदृश श्रेष्ठ गुणवाली हों तो सब को आनन्द में बसाने के योग्य होती हैं ॥ ३ ॥

अभि ये त्वा विभावरि स्तोमैर्गृणन्ति वह्नयः ।
मघैर्मघोनि सुश्रियो दामन्वन्तः सुरातयः सुजाते अश्वसूनृते ॥४॥

पदार्थ—हे (**मघोनि**) बहुत धन से युक्त (**सुजाते**) उत्तम विद्या से प्रकट हुई (**अश्वसूनृते**) बड़े ज्ञान से युक्त और (**विभावरि**) प्रकाशवती प्रातर्वेला के सदृश वर्त्तमान विद्यायुक्त स्त्री (**ये**) जो विद्वान् जन (**सुश्रियः**) सुन्दर लक्ष्मी जिन की ऐसे (**दामन्वन्तः**) बहुत दानक्रिया से युक्त (**सुरातयः**) सुन्दर दान की इच्छा जिनकी वे (**वह्नयः**) पहुँचाने वाले अग्नियों के समान वर्त्तमान विद्वान् जन (**मघैः**) धनों से और (**स्तोमैः**) स्तोत्रों से (**त्वा**) आपकी (**अभि**) सन्मुख (**गृणन्ति**) स्तुति करते हैं वे आप से सत्कार करने योग्य हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अग्नि प्रातर्वेलाओं का कर्त्ता है वैसे ही शिक्षक जन विद्या की प्राप्ति करने वाले हों ॥ ४ ॥

यच्चिद्धि ते गणा इमे छदयन्ति मघत्तये ।
परि चिद्वष्टयो दधुर्ददतो राधो अह्रयं सुजाते अश्वसूनृते ॥५॥२१॥

पदार्थ—हे (**अश्वसूनृते**) बड़े ज्ञान से युक्त (**सुजाते**) उत्तम विद्या से प्रकट हुई विदुषि स्त्री ! (**यत्**) जो (**इमे**) ये (**वष्टयः**) कामना करते हुए (**ते**) आप के (**गणाः**) समूह (**मघत्तये**) धनदान के लिए (**अह्रयम्**) लज्जा आदि दोष से रहित को (**चित्**) और (**राधः**) धन को (**ददतः**) देनेवालों का (**चित्**) निश्चय (**छदयन्ति**) प्रबल करते हैं वे निश्चय (**हि**) ही सुखों को (**परि, दधुः**) धारण करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रातःकाल के किरणसमूह अपने तेज से सब को ढापते हैं वैसे ही शुभगुण वाली स्त्रियाँ अपने शुभगुणों से सब को आच्छादित करती हैं ॥ ५ ॥

एषु धा वीरवद्यश उषो मघोनि सूरिषु ।
ये नो राधांस्यह्रया मघवानो अरासत सुजाते अश्वसूनृते ॥६॥

पदार्थ—हे (**अश्वसूनृते**) बड़े ज्ञानवाली (**सुजाते**) उत्तम विद्या से प्रकट हुई (**मघोनि**) प्रशंसित धन से युक्त और (**उषः**) प्रातःकाल के सदृश वर्त्तमान उत्तम स्त्री तू (**एषु**) इन स्त्री पुरुषों और (**सूरिषु**) विद्वानों में (**वीरवत्**) वीरजन विद्यमान जिस में उस (**यशः**) यश को (**आ**) सब प्रकार से (**धाः**) धारण कर और (**ये**) जो (**मघवानः**) बहुत धनों से युक्त जन (**नः**) हम लोगों को (**अह्रया**) विना लज्जा से कहे गये (**राधांसि**) अन्नों को (**अरासत**) देवें उनका तू सत्कार कर ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वही प्रशंसित स्त्री है जो पिता और पति के कुल में श्रेष्ठ आचरण से पिता और पति के कुल को प्रकाशित करे ॥ ६ ॥

तेभ्यो द्युम्नं बृहद्यश उषो मघोन्या वह ।
ये नो राधांस्यश्व्या गव्या भजन्त सूरयः सुजाते अश्वसूनृते ॥७॥

पदार्थ—हे (**अश्वसूनृते**) बड़े ज्ञान से युक्त और (**सुजाते**) उत्तम विद्या से प्रकट हुई (**मघोनि**) बहुत धनवती (**उषः**) प्रातःकाल के सदृश वर्त्तमान विदुषि स्त्रि ! (**ये**) जो (**नः**) हम लोगों में (**सूरयः**) विद्वान् जन (**अश्व्या**) घोड़ों के लिए और (**गव्या**) गौओं के लिए हितकारक (**राधांसि**) धनों का (**भजन्त**) सेवन करते हैं (**तेभ्यः**) उन विद्वानों के लिए (**बृहत्**) बड़े (**द्युम्नम्**) धन और (**यशः**) यश को (**आ, वह**) सब प्रकार प्राप्त कराओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन सब के सुख के लिये पदार्थों की वृद्धि करते हैं वे प्रातःकाल के सदृश प्रकाशित यशवाले होकर सुखी होते हैं ॥ ७ ॥

उत नो गोमतीरिष आ वहा दुहितर्दिवः ।
साकं सूर्यस्य रश्मिभिः शुक्रैः शोचद्भिरर्चिभिः सुजाते अश्वसूनृते ॥८॥

पदार्थ—हे (**सुजाते**) उत्तम विद्या से प्रकट हुई (**अश्वसूनृते**) बड़े ज्ञान से युक्त और (**दिवः**) प्रकाशमान की (**दुहितः**) कन्या के सदृश वर्त्तमान स्त्रि (**सूर्यस्य**) सूर्य्य के (**रश्मिभिः**) किरणों के (**साकम्**) साथ (**उत**) और (**शुक्रैः**) शुद्ध (**शोचद्भिः**) पवित्र करनेवाले (**अर्चिभिः**) श्रेष्ठ गुण कर्म्म और स्वभावों के साथ (**नः**) हम लोगों को (**गोमतीः**) गौएँ विद्यमान जिनमें उन (**इषः**) अन्न आदिकों को (**आ, वह**) सब प्रकार से प्राप्त कराइये ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य की किरणों से उत्पन्न उषा उपकार करनेवाली होती है वैसे ही शुभगुण कर्म और स्वभावों के सहित स्त्री आनन्द की उपकार करनेवाली होती है ॥ ८ ॥

व्युच्छा दुहितर्दिवो मा चिरं तनुथा अपः ।
नेत्त्वा स्तेनं यथा रिपुं तपाति सूरो अर्चिषा सुजाते अश्वसूनृते ॥९॥

पदार्थ—हे (**सुजाते**) उत्तम विद्या से प्रकट हुई (**अश्वसूनृते**) बड़े ज्ञान से युक्त (**दिवः**) प्रकाश की (**दुहितः**) कन्या के सदृश वर्त्तमान उत्तम आचरणवाली स्त्रि तू (**अपः**) कर्म को (**चिरम्**) बहुत काल पर्यन्त (**मा**) नहीं (**तनुथाः**) विस्तार कर (**यथा**) जैसे (**रिपुम्**) शत्रु को (**तपाति**) सन्तापित करती है वैसे (**स्तेनम्**) चोर को सन्तापित कर और (**त्वा**) तुझको कोई भी (**न**) नहीं सन्तापयुक्त करे और जैसे (**अर्चिषा**) तेज से (**सूरः**) सूर्य्य सबको तपाता है वैसे (**इत्**) ही तू दुष्टजनों को सन्तापित करके हम लोगों को (**वि, उच्छा**) अच्छे प्रकार बसा ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो स्त्री और पुरुष मन्द, आलसी और चोर नहीं होते हैं वे सूर्य्य के सदृश प्रकाशित होते हैं ॥ ९ ॥

एतावद्वेदुषस्त्वं भूयो वा दातुमर्हसि ।
या स्तोतृभ्यो विभावर्युच्छन्ती न प्रमीयसे सुजाते अश्वसूनृते ॥१०॥

पदार्थ—हे (अश्वसूनृते) बड़े ज्ञान से युक्त (सुजाते) उत्तम विद्या से प्रकट हुई (विभावरि) प्रकाशमान और (उषः) प्रातर्वेला के सदृश वर्त्तमान स्त्री (त्वम्) तू (एतावत्) इतने को (वा) वा (भूयः) अधिक को (वा) भी (दातुम्) देने को (अर्हसि) योग्य है और (या) जो तू (स्तोतृभ्यः) स्तुति करनेवालों के लिये (उच्छन्ती) निवास करती हुई वर्त्तमान है वह तू अपने स्वरूप से (इत्) ही (न) नहीं (प्रमीयसे) मरती है ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे स्त्रीजनो! जैसे उपर्वेला थोड़ी भी बड़े आनन्दों को देती है वैसे तुम होओ ॥ १० ॥

इस सूक्त में प्रातः और स्त्री के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह उनासीवां सूक्त और बाईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षडृर्चस्याऽशीतितमस्य सूक्तस्य सत्यश्रवा आत्रेय ऋषिः । उषा देवता ।
१ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।
३, ४, ५ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले अस्सीवें सूक्त का आरम्भ है इसमें स्त्रियों के गुणों को कहते हैं—

द्युतद्यामानं बृहतीमृतेन ऋतावरीमरुणप्सुं विभातीम् ।
देवीमुषसं स्वरावहन्तीं प्रति विप्रासो मतिभिर्जरन्ते ॥१॥

भावार्थ—हे स्त्रि ! जैसे (विप्रासः) बुद्धिमान् जन (मतिभिः) बुद्धियों से और (ऋतेन) जल के सदृश सत्यसे (द्युतद्यामानम्) प्रहरों को प्रकाश करती और (बृहतीम्) बढ़ती हुई (ऋतावरीम्) बहुत सत्य आचरण से युक्त (अरुणप्सुम्) लाल रूपवाली (विभातीम्) प्रकाश करती हुई (देवीम्) प्रकाशमान और (स्वः) सूर्य्य के सदृश विद्या के प्रकाश का (आ, वहन्तीम्) धारण करती हुई (उषसम्) उपर्वेला की (प्रति) उत्तम प्रकार (जरन्ते) स्तुति करते हैं उनकी तू प्रशंसा कर ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे बुद्धिमान् पति उषःकाल आदि पदार्थों की विद्या का जानकर क्षणभर भी काल व्यर्थ नहीं व्यतीत करते हैं वैसे ही स्त्रियाँ भी व्यर्थ समय न व्यतीत करें ॥ १ ॥

एषा जनं दर्शता बोधयन्ती सुगान्पथः कृण्वती यात्यग्रे ।
बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्वोषा ज्योतिर्यच्छत्यग्रे अह्नाम् ॥२॥

पदार्थ—हे उत्तम स्वभाववाली स्त्रियो ! जैसे (एषा) यह (बृहद्रथा) बड़े रथ जिसके ऐसी (बृहती) बड़ी (विश्वमिन्वा) संपूर्ण जगत् को प्रक्षेप करती अलग करती और (जनम्) मनुष्य को और (दर्शता) देखने योग्य भूमियों को (बोधयन्ती) जनाती हुई (सुगान्) सुखपूर्वक जिनमें चलें उन (पथः) मार्गों को (कृण्वती) प्रकाशित करती हुई (उषा) प्रातर्वेला (अग्रे) दिन से आगे (याति) चलती है और (अह्नाम्) दिनों के (अग्रे) पहिले से (ज्योतिः) प्रकाश को (यच्छति) देती है वैसे तुम होओ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो स्त्रियाँ प्रभातवेला के सदृश अपने पति आदि को सूर्य्योदय से पहिले जगाती, गृह और बाहर के मार्गों को साफ करती, आते हुए पतियों के हाथ जोड़ के आगे खड़ी होती और सब काल में विज्ञान को देती हैं वे ही देश और कुल को शोभन करनेवाली हैं ॥ २ ॥

एषा गोभिररुणेभिर्युजानास्रेधन्ती रयिमप्रायु चक्रे ।
पथो रदन्ती सुविताय देवी पुरुष्टुता विश्ववारा वि भाति ॥३॥

पदार्थ—हे विद्यायुक्त स्त्रि ! जैसे (एषा) यह प्रातर्वेला (अरुणेभिः) चारों ओर रक्त वर्णवाले (गोभिः) किरणों के साथ (युजाना) युक्त और (रयिम्) धन को (अस्रेधन्ती) सिद्ध करती हुई (अप्रायु) नहीं नष्ट होनेवाले को (चक्रे) करती है और (पथः) मार्गों को (रदन्ती) खोदती हुई (पुरुष्टुता) बहुतों से प्रशंसा की गई (विश्ववारा) सम्पूर्ण मनुष्यों से स्वीकार करने योग्य (देवी) प्रकाशित होती हुई (सुविताय) ऐश्वर्य्य के लिये (वि, भाति) विशेष करके प्रकाशित होती है वैसे आप होओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पतिव्रता, विद्यायुक्त और चतुर स्त्री गृह को प्रकाशित करनेवाली होती है वैसे ही प्रातर्वेला ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करनेवाली है ॥ ३ ॥

एषा व्येनी भवति द्विबर्हा आविष्कृण्वाना तन्वं पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥४॥

पदार्थ—हे विद्यायुक्त स्त्रि ! जैसे (एषा) यह प्रातर्वेला (पुरस्तात्) प्रथम (तन्वम्) शरीर को (आविष्कृण्वाना) और संपूर्ण रूपवाले द्रव्यों की प्रकटता करती हुई (द्विबर्हाः) दिन और रात्रि से बढ़ानेवाली (व्येनी) विशेष हरिणी के सदृश वेगयुक्त (भवति) होती है और (ऋतस्य) सत्य के (पन्थाम्) मार्ग को (अनु, एति) अनुगामिनी होती है और (साधु) उत्तम विज्ञान को (प्रजानतीव) विशेष करके जानती हुई सी (दिशः) दिशाओं को (न) नहीं (मिनाति) नाश करती है वैसा तू वर्त्ताव कर ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सती स्त्री गृहाश्रम के मार्ग को प्रकाशित करके सम्पूर्ण सुखों को प्रकट करती है वैसे ही प्रातर्वेला वर्त्तमान है ॥ ४ ॥

एषा शुभ्रा न तन्वो विदानोर्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात् ।
अप द्वेषो बाधमाना तमांस्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात् ॥५॥

पदार्थ—हे श्रेष्ठ लक्षणोंवाली स्त्रि ! जैसे (एषा) यह (उषा) प्रातर्वेला (शुभ्रा) श्वेतवर्णवाली बिजुली के (न) सदृश (तन्वः) शरीरों को (विदाना) जनाती हुई (ऊर्ध्वेव) ऊपर सी स्थित (स्नाती) शुद्ध और (नः) हम लोगों के (दृशये) दर्शन के लिये (अस्थात्) स्थित होती है और (द्वेषः) द्वेष करनेवाले जनों और (तमांसि) रात्रियों को (अप, बाधमाना) निवारण करती हुई (दिवः) सूर्य्य की (दुहिता) कन्या के सदृश वर्त्तमान (ज्योतिषा) प्रकाश से (आ, अगात्) प्राप्त होती है वैसे तू हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे कुलीन स्त्री जलादिकों और इन्द्रियों के निग्रहों से बाहर और भीतर से शुद्ध, गृहस्थान्धकार को निवृत्त करती हुई सब के शरीर की रक्षा करती है और गृह के कृत्यों में चतुर है वैसे ही प्रातर्वेला होती है ॥ ५ ॥

एषा प्रतीची दुहिता दिवो नॄन्योषेव भद्रा नि रिणीते अप्सः ।
व्यूर्ण्वती दाशुषे वार्याणि पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः ॥६॥२३॥

पदार्थ—हे शुभ लक्षणोंवाली स्त्रि ! जैसे (एषा) यह प्रातर्वेला (दिवः) सूर्य्य की (दुहिता) कन्या के सदृश (नॄन्) अग्रणी श्रेष्ठ पुरुषों को (योषेव) स्त्री के सदृश (भद्रा) कल्याण करनेवाली (प्रतीची) पश्चिम दिशा को प्राप्त (अप्सः) सुन्दर रूप को (नि, रिणीते) अत्यन्त प्राप्त होती है और (दाशुषे) देनेवाले के लिए (वार्याणि) स्वीकार करने योग्य धन आदि को (व्यूर्ण्वती) विशेष करके आच्छादित करती हुई (पूर्वथा) पहिली के सदृश (पुनः) फिर (ज्योतिः) ज्योति रूप को (युवतिः) प्राप्त यौवनावस्था वाली के सदृश (अकः) करती है वैसी तुम होओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो स्त्रियाँ शुभ आचरणवाली और युवावस्था को प्राप्त हुई अपने सदृश पतियों को प्राप्त होकर सम्पूर्ण गृहकृत्यों को व्यवस्थापित करती हैं प्रातर्वेला के सदृश अत्यन्त शोभित होती हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में प्रातर्वेला और स्त्री के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अस्सीवां सूक्त और तेईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्यैकाशीतितमस्य सूक्तस्य श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः । सविता देवता ।
१, ५ जगती । २ विराड् जगती । ४ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ।
३ स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले इक्यासीवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मंत्र से योगीजन क्या करते हैं इस विषय को कहते हैं—

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (होत्राः) लेने वा देनेवाले (विप्राः) बुद्धिमान् योगीजन (विप्रस्य) विशेष करके व्याप्त होनेवाले (बृहतः) बड़े (विपश्चितः) अनन्त विद्यावान् (सवितुः) सम्पूर्ण जगत् के उत्पन्न करनेवाले (देवस्य) सम्पूर्ण जगत् के प्रकाशक परमात्मा के मध्य में (मनः) मननस्वरूप मन को (युञ्जते) युक्त करते (उत) और (धियः) बुद्धियों को (युञ्जते) युक्त करते हैं और जो (वयुनावित्) प्रज्ञानों को जाननेवाला (एकः) सहायरहित अकेला (इत्) ही सम्पूर्ण जगत् को (वि, दधे) रचता और जिसकी (मही) बड़ी आदर करने योग्य (परिष्टुतिः) सब ओर व्याप्त स्तुति है वैसे उसमें आप लोग भी चित्त को धारण करो ॥ १ ॥

भावार्थ—अनेक विद्वान् हित, बुद्धि आदि पदार्थों के अधिष्ठान, जगदीश्वर के बीच जो मन और बुद्धि को निरन्तर स्थापन करते हैं वे समस्त ऐहिक और पारलौकिक सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे ।
वि नाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो वि राजति ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (कविः) सर्व पदार्थों का जानने वाला सर्वज्ञ (वरेण्यः) स्वीकार करने योग्य और (सविता) सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का देने वाला ईश्वर

(**द्विपदे**) मनुष्य आदि और (**चतुष्पदे**) गौ आदि के लिए (**भद्रम्**) कल्याण को (**प्र, असावीत्**) उत्पन्न करता और (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**रूपाणि**) सूर्य्य आदिको को (**प्रति, मुञ्चते**) त्याग करता है तथा (**नाकम्**) नहीं विद्यमान दुःख जिस में उस का (**वि, अख्यत्**) प्रकाश करता है वह जैसे (**उषसः**) प्रातःकाल के (**अनु-प्रयाणम्**) पीछे गमन को सूर्य (**वि, राजति**) विशेष कर के शोभित करता है वैसे सूर्य्य आदि को प्रकाशित करता है उस की तुम सब उपासना करो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर ने विचित्र और अनेक प्रकार के जगत् को सम्पूर्ण प्राणियों के सुख के लिए रचा उसी जगदीश्वर की आप लोग उपासना करो ॥ २ ॥

फिर ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यस्य॑ प्र॒याण॒मन्व॒न्य इद्य॒युर्दे॒वा दे॒वस्य॑ महि॒मान॒मोज॑सा ।

यः पार्थि॑वानि विम॒मे स एत॑शो॒ रजां॑सि दे॒वः स॑वि॒ता म॑हित्व॒ना ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो (**यस्य**) जिस जगदीश्वर (**देवस्य**) सब के प्रकाशक के (**प्रयाणम्**) अच्छी तरह चलते हैं जिससे उस मार्ग और (**महिमानम्**) महिमा को (**अनु**) पश्चात् (**अन्ये, इत्**) और ही वसु आदि (**देवाः**) प्रकाश करने वाले सूर्य आदि (**ययुः**) चलते अर्थात् प्राप्त होते हैं और (**यः**) जो (**एतशः**) सबत्र व्याप्त (**सविता**) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्यों का करने और (**देवः**) सम्पूर्ण सुखों का देने वाला (**महित्वना**) महिमा से (**ओजसा**) पराक्रम से और बल से (**पार्थिवानि**) अन्तरिक्ष में विदित कार्य्यों और (**रजांसि**) लोकों का (**विममे**) विशेष करके रचता है (**सः**) वही सब से ध्यान करने योग्य है ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सूर्य आदिकों के धारण करने वालों का धारण करनेवाला और देनेवालों का देनेवाला, बड़ों का बड़ा और प्रकृतिरूप कारण से सम्पूर्ण जगत् का रचता है और जिसके पीछे अर्थात् आश्रय से सब जीव और स्थित है वही सम्पूर्ण जगत् का रचने वाला ईश्वर ध्यान करने योग्य है ॥ ३ ॥

उत या॑सि सवित॒स्त्रीणि॑ रोच॒नोत सूर्य॑स्य र॒श्मिभि॒: समु॑च्यसि ।

उत रात्री॑मुभ॒यत॒: परी॑यस उ॒त मि॒त्रो भ॑वसि देव॒ धर्म॑भिः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (**सवितः**) सम्पूर्ण जगत् का उत्पन्न करनेवाले (**देव**) विद्वान् जो आप (**उत**) निश्चय से (**त्रीणि**) सूर्य्य चन्द्रमा और बिजुली नामक (**रोचना**) प्रकाशकों को (**यासि**) प्राप्त होते (**उत**) और (**सूर्य्यस्य**) सूर्य की (**रश्मिभिः**) किरणों से (**सम् उच्यसि**) उत्तम प्रकार कहते हो (**उत**) और (**उभयतः**) दोनों ओर से (**रात्रीम्**) अन्धकार को (**परि, ईयसे**) दूर करते हो (**उत**) और (**धर्मभिः**) धर्माचरणों से (**मित्रः**) मित्र (**भवसि**) होते हो वह आप हम लोगों से सत्कार करने योग्य हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सबका स्वामी, ईश्वर, तीन—बिजुली, सूर्य्य और चन्द्रमारूप बड़े दीपों को रचके सबत्र व्याप्त और सब का मित्र हुआ और सूर्य आदि को अभिव्याप्त हो और धारण करके प्रकाशित करता है वही सब प्रकार पूज्य है अर्थात् उपासना करने योग्य है ॥ ४ ॥

फिर ईश्वरविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

उ॒तेशि॑षे प्रस॒वस्य॒ त्वमेक॒ इदु॒त पू॒षा भ॑वसि देव॒ याम॑भिः ।

उ॒तेदं विश्वं॒ भुव॑नं॒ वि रा॑जसि श्या॒वाश्व॑स्ते सवितः॒ स्तोम॑मानशे ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (**सवितः**) सत्यव्यवहार में प्रेरणा करने और (**देव**) सम्पूर्ण सुखों के देनेवाले (**ते**) आपका जो (**श्यावाश्वः**) सूर्यलोक (**यामभिः**) प्रहरों से (**स्तोमम्**) प्रशंसा को (**आनशे**) व्याप्त होता है उसके दृष्टान्त से (**उत**) भी (**इदम्**) इस (**विश्वम्**) समस्त (**भुवनम्**) भुवन को (**त्वम्**) आप (**वि, राजसि**) प्रकाशित करते हो (**उत**) और (**पूषा**) पुष्टि करनेवाले (**भवसि**) होते हो (**उत**) और (**एकः**) द्वितीयरहित (**इत्**) ही (**प्रसवस्य**) उत्पन्न हुए जगत् के (**ईशिषे**) ऐश्वर्य्य का विधान करते हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस के महत्त्व के जनाने के लिये सूर्य आदि लोक दृष्टान्त है उसी सम्पूर्ण परमैश्वर्य्य के देनेवाले का तुम ध्यान करो ॥ ५ ॥

इस सूक्त में सत्यव्यवहार में प्रेरणा करनेवाले ईश्वर के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह इक्यासीवाँ सूक्त और चौबीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ नवर्चस्य द्व्यशीतितमस्य सूक्तस्य श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः । सविता देवता । १ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । २, ४, ९ निचृद् गायत्री । ३, ५, ६, ७ गायत्री । ८ विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब नव ऋचावाले ब्यासीवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से मनुष्यों को किसकी उपासना करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं—

तत्स॑वि॒तुर्वृ॑णीमहे व॒यं दे॒वस्य॒ भोज॑नम् ।

श्रेष्ठं॑ सर्व॒धात॑मं॒ तुरं॒ भग॑स्य धीमहि ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**वयम्**) हम लोग (**भगस्य**) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य से युक्त (**सवितुः**) अन्तर्यामी (**देवस्य**) सम्पूर्ण के प्रकाशक जगदीश्वर का जो (**श्रेष्ठम्**) अतिशय उत्तम और (**भोजनम्**) पालन वा भोजन करने योग्य (**सर्वधातमम्**) सब को अत्यन्त धारण करनेवाले (**तुरम्**) अविद्या आदि दोषों के नाश करनेवाले सामर्थ्य का (**वृणीमहे**) स्वीकार करते और (**धीमहि**) धारण करते हैं (**तत्**) उसका तुम लोग स्वीकार करो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सब से उत्तम जगदीश्वर की उपासना करके अन्य की उपासना का त्याग करते हैं वे सम्पूर्ण ऐश्वर्य्यों से युक्त होते हैं ॥ १ ॥

अ॒स्य हि स्वय॑शस्तरं सवि॒तुः कच्च॒न प्रि॒यम् ।

न मि॒नन्ति॑ स्व॒राज्य॑म् ॥ २ ॥

पदार्थ—जो (**हि**) निश्चय से (**अस्य**) इस परमात्मा (**सवितुः**) जगदीश्वर का (**स्वयशस्तरम्**) अपना अपना यश जिसका वह अतिशयित (**प्रियम्**) अत्यन्त प्रिय (**स्वराज्यम्**) अपने राज्य को (**कत्, चन**) कभी (**न**) नहीं (**मिनन्ति**) नष्ट करते हैं वे धार्मिक होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—जो परमात्मा के बीच अज्ञान का नाश करते हैं वे यशस्वी हो कर राज्य को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

स हि रत्ना॑नि दा॒शुषे॑ सु॒वाति॑ सवि॒ता भगः॑ । तं भा॒गं चि॒त्रमी॑महे ॥ ३ ॥

पदार्थ—जो (**सविता**) उत्पन्न करनेवाला (**भगः**) ऐश्वर्य्यवान् परमात्मा (**दाशुषे**) दाताजन के लिये (**रत्नानि**) धनों को (**सुवाति**) उत्पन्न करता है (**तम्**) उसके (**भागम्**) ऐश्वर्य्य सम्बन्धी (**चित्रम्**) अद्भुत को (**ईमहे**) प्राप्त होवें वा जाने और (**स, हि**) वही उदार दाता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सम्पूर्ण रत्नों के देनेवाले परमात्मा की सेवा करते हैं वे अद्भुत ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते है ॥ ३ ॥

अ॒द्या नो॑ देव सवितः प्र॒जाव॑त्सावीः॒ सौभ॑गम् । परा॑ दुः॒ष्वप्न्यं॑ सुव ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (**सवितः**) सम्पूर्ण ऐश्वर्य के देनेवाले स्वामिन् (**देव**) शोभित आप कृपा से (**नः**) हम लोगों के लिये वा हम लोगों के (**अद्य**) आज (**प्रजावत्**) बहुत प्रजाएँ विद्यमान जिसके उस (**सौभगम्**) सुन्दर ऐश्वर्य्य के भाग को (**सावीः**) उत्पन्न कीजिये और (**दुःष्वप्न्यम्**) स्वप्नों में उत्पन्न दुःख को (**परा, सुव**) दूर कीजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो परमेश्वर की प्रार्थना करके धर्म्मयुक्त पुरुषार्थ करते हैं वे बहुत ऐश्वर्य्य वाले होकर सुख और दारिद्र्य से रहित होते हैं ॥ ४ ॥

मनुष्य किस लिए ईश्वर की प्रार्थना करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ ५ ॥ २५ ॥

पदार्थ—हे (**सवितः**) सम्पूर्ण संसार के उत्पन्न करनेवाले (**देव**) और सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करनेवाले जगदीश्वर (**विश्वानि**) सम्पूर्ण (**दुरितानि**) दुष्ट आचरणों को आप (**परा, सुव**) दूर कीजिये और (**यत्**) जो (**भद्रम्**) कल्याणकारक है (**तत्**) उसको (**नः**) हम लोगों के लिए (**आ, सुव**) सब प्रकार से प्राप्त कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! आप कृपा से जितने हम लोगों में दुष्ट आचरण हैं उनको अलग करके धर्म्मयुक्त गुण कर्म्म और स्वभावों को स्थापित कीजिये ॥ ५ ॥

इस जगत् में मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अना॑गसो॒ अदि॑तये दे॒वस्य॑ सवि॒तुः स॒वे । विश्वा॑ वा॒मानि॑ धीमहि ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (**अनागसः**) अपराध से रहित हम लोग (**अदितये**) माता आदि के लिये (**देवस्य**) सर्व सुख देनेवाले (**सवितुः**) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य से युक्त परमात्मा के (**सवे**) जगत्‌रूप ऐश्वर्य्य में (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**वामानि**) सम्भोग करने योग्य धर्मों को (**धीमहि**) धारण करें वैसे आप लोग भी धारण करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् जन इस ईश्वर से रचे हुए संसार में सृष्टिक्रम से विद्या के द्वारा कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वैसे ही अन्य जनों को भी चाहिये कि सिद्ध करें ॥ ६ ॥

आ वि॒श्वदे॑वं॒ सत्प॑तिं सू॒क्तैर॒द्या वृ॑णीमहे । स॒त्यस॑वं सवि॒तार॑म् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (**अद्य**) आज (**सूक्तैः**) उत्तम प्रकार कहे गये सत्य वचनों वा वेदोक्त वचनों से (**विश्वदेवम्**) संसार के प्रकाश करने और (**सत्पतिम्**) प्रकृति आदि पदार्थ और सत्पुरुषों के पालन करनेवाले (**सत्यसवम्**) नहीं नाश होनेवाला सामर्थ्ययोग जिसका उस (**सवितारम्**) सम्पूर्ण पदार्थों के बनानेवाले परमात्मा का (**आ, वृणीमहे**) स्वीकार करते हैं वैसे आप लोग भी स्वीकार कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर को छोड़कर किसी अन्य का आश्रय नहीं करें ॥ ७ ॥

फिर मनुष्य कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को
अगले मन्त्र में कहते हैं—

य इमे उभे अहनी पुर एत्यप्रयुच्छन् । स्वाधीर्देवः सविता ॥८॥

पदार्थ—(यः) जो (अप्रयुच्छन्) प्रमाद को नहीं करता हुआ मनुष्य जैसे (स्वाधीः) उत्तम प्रकार स्थापन किया जाता है जिससे वह (देवः) प्रकाशमान (सविता) श्रेष्ठ कर्म्मों में प्रेरणा करनेवाला सत्य मे वर्त्तमान है वैसे (इमे) इन (उभे) दोनो (अहनी) रात्रि और दिनों का सत्य से (पुरः) आगे (एति) प्राप्त होता है वही भाग्यशाली होता है ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे परमेश्वर अपने नियमों की यथायोग्य रक्षा करता है वैसे ही मनुष्य भी श्रेष्ठ नियमो की यथावत् रक्षा करें ॥८॥

मनुष्यों से कौन परम गुरु माना जाता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन ।
प्र च सुवाति सविता ॥९॥२६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो (श्लोकेन) वाणी से (इमा) इन (विश्वा) सम्पूर्ण प्रज्ञानों और (जातानि) उत्पन्न हुओं को (आश्रावयति) सब प्रकार से सुनाता है वह (च) और (सविता) प्रेरणा करनेवाला हम लोगों को (प्र, सुवाति) प्रेरणा करे ॥९॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर वेद के द्वारा मनुष्यों के लिए सम्पूर्ण विद्याओं का उपदेश करता है वही परमगुरु मानने योग्य है ॥९॥

इस सूक्त में ईश्वर और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह बयासीवां सूक्त और छब्बीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ दशर्चस्य त्र्यशीतितमस्य सूक्तस्य अत्रिर्ऋषिः । पृथिवी देवता । १ निचृत्त्रिष्टुप् । २ स्वराट् त्रिष्टुप् । ३ भुरिक्त्रिष्टुप् । ४ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ।
५, ६ त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।
८, १० भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।
९ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब दश ऋचावाले तिरासीवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मेघ कैसा है इस विषय को कहते हैं—

अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास ।
कनिक्रदद्वृषभो जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भम् ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो (वृषभः) बृहेवाले बैल के सदृश (जीरदानुः) जीवानेवाला (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ (नमसा) अन्न आदि के साथ (आ, विवास) सब ओर से बसता और (ओषधीषु) ओषधियों में (रेतः) जलरूप (गर्भम्) गर्भ को (दधाति) धारण करता है उस (पर्जन्यम्) मेघ को (आभिः) इन वर्त्तमान (गीर्भिः) वाणियों से (अच्छा) उत्तम प्रकार (वद) कहिये और (तवसम्) बल की (स्तुहि) प्रशंसा करिये ॥१॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों से मेघविद्या का यथावत् विज्ञान करें ॥१॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्वं बिभाय भुवनं महावधात् ।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे बढ़ई (वृक्षान्) काटने योग्य वृक्षों को (वि, हन्ति) विशेष कर के काटता है (उत) और न्यायकारी राजा जिन से (विश्वम्) सम्पूर्ण संसार (बिभाय) भय करता है उन (रक्षसः) दुष्ट आचरणवालों का (हन्ति) नाश करता है और (यत्) जो (पर्जन्यः) मेघ (स्तनयन्) शब्द करता हुआ (महावधात्) बड़े हनन से (भुवनम्) जल को वर्षाता है और जैसे (अनागाः) नहीं अपराध जिसमें वह (वृष्ण्यावतः) वर्षने योग्य मेघ जिन मे उनका (ईषते) नाश करता है (उत) और (दुष्कृतः) दुष्ट कर्मों के करनेवालों का (हन्ति) नाश करता है वैसा ही मनुष्य वर्त्ताव करें ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य पालन करने योग्यों का पालन करते हैं और नाश करने योग्यों का नाश करते हैं वे राजसत्ता से युक्त होते हैं ॥२॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्नाविर्दूतान्कृणुते वर्ष्याँ३ अह ।
दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं१ नभः ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (यत्) जो (पर्जन्यः) मेघ (कशया) मारने के लिये रस्सी अर्थात् कोड़े से (अश्वान्) घोड़ों को (अभिक्षिपन्) सम्मुख लाता हुआ (रथीव) बहुत रथवाले के सदृश (वर्ष्यान्) वर्षाओं में श्रेष्ठ (दूतान्) दूतों को (आविः, कृणुते) प्रकट करता है (अह) परतन्त्र करने में वे (दूरात्) दूर से (सिंहस्य) सिंह के सदृश (उत्, ईरते) कम्पाते वा चलते हैं और पर्जन्य (वर्ष्यम्) वर्षाओं में हुए (नभः) अन्तरिक्ष को (कृणुते) करता अर्थात् प्रकट करता है उसको आप (स्तनथाः) पुकारिये ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सारथि घोड़ों को यथेष्ट स्थान में लेजाने को समर्थ होता है वैसे ही मेघ जलों को इधर उधर लेजाता है ॥३॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः ।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यत्) जो (पर्जन्यः) पालनों को उत्पन्न करनेवाला मेघ (रेतसा) जल से (पृथिवीम्) भूमि की (अवति) रक्षा करता है जिससे (विश्वस्मै) सम्पूर्ण (भुवनाय) भुवन के लिए (इरा) अन्न आदिक (जायते) उत्पन्न होता है और बहुल (स्वः) अन्तरिक्ष का (पिन्वते) सेवन करते हैं और जिससे (ओषधीः) ओषधियों को (उत्, जिहते) उत्तमता से प्राप्त होते हैं जिससे (विद्युतः) बिजुलियां (पतयन्ति) पतन होती हैं जहां (वाताः) पवन (प्र) अत्यन्त (वान्ति) चलते हैं उस मेघ को यथावत् तुम विशेष जानो ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोगों को चाहिए कि जिस मेघ से सबका पालन होता है उसकी वृद्धि वृक्षों के लगाने, वनों की रक्षा करने और होम करने से सिद्ध करें जिससे सब का पालन सुख से होवे ॥ ४ ॥

फिर वह मेघ कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यस्य व्रते पृथिवी नंनमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति ।
यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपाः स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥५॥२७॥

पदार्थ—हे (पर्जन्य) मेघ के सदृश वर्त्तमान विद्वन् (यस्य) जिस मेघ के (व्रते) कर्म्म में (पृथिवी) भूमि (नंनमीति) अत्यन्त नम्र होती और (यस्य) जिस मेघ के (व्रते) कर्म्म में (शफवत्) खुर के तुल्य (जर्भुरीति) निरन्तर धारण करती है और (यस्य) जिस मेघ के (व्रते) कर्म में (विश्वरूपाः) अनेक प्रकार की (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधियां उत्पन्न होती हैं उस मेघकी विद्या से युक्त (सः) वह आप (नः) हम लोगों के लिए (महि) बड़े (शर्म) गृहको (यच्छ) दीजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो वृष्टियां न होवें तो किसी का भी जीवन न होवे ॥ ५ ॥

फिर वह मेघ कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः ।
अर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेह्यपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः ॥६॥

पदार्थ—हे (मरुतः) वायुवद्वर्त्तमान मनुष्यो आप लोग (नः) हम लोगों के लिए (दिवः) सूर्य से (वृष्टिम्) वृष्टि को (ररीध्वम्) दीजिए तथा (वृष्णः) वर्षनेवाले (अश्वस्य) बड़े मेघ के (धाराः) प्रवाहों को (प्र, पिन्वत) सींचिए और जो (अर्वाङ्) नीचे वर्त्तमान और (एतेन) इस (स्तनयित्नुना) बिजुली-रूप से (अपः) जलों का (निषिञ्चन्) अत्यन्त सेचन करता हुआ (असुरः) मेघ (नः) हम लोगों के (पिता) उत्पन्न करनेवाले पिता के सदृश पालन करनेवाला (आ, इहि) प्राप्त होता है उसको आप लोग विशेषकरके जानिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जिन कर्मों से वृष्टि अधिक होवे उन कर्मों का सेवन कीजिए ॥ ६ ॥

फिर वह मेघ क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन ।
दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्चं समा भवन्तूद्वतो निपादाः ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो मेघ (गर्भम्) गर्भ को (आ, धाः) चारों ओर से धारण करता और (उदन्वता) बहुत जल के सहित (रथेन) सुन्दर स्वरूप से (अभि) सम्मुख (क्रन्द) शब्द करता और (स्तनय) गर्जता है (दृतिम्) फाड़ने वाले के सदृश जल से पूर्ण को (सु, कर्ष) विशेष करके खोदता और दुःखों का (परि) सब प्रकार से (दीया) नाश करता और (विषितम्) बंधे (न्यञ्चम्) निश्चिन सेवा करते हुए को विशेष करके खिलता अर्थात् चेष्टा में लाता है तथा जिससे हम लोगों के (उद्वतः) ऊर्ध्वस्थान में वर्त्तमान (निपादाः) निश्चित वा नीचे हैं अंश जिनके ऐसे (समाः) वर्ष (भवन्तु) होवें उसको जानिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो निश्चय जल से संसार को पुष्ट करता है और दुःख का नाश करता तथा फलों को उत्पन्न करता है वह मेघ विश्वंभर है ऐसा जानना चाहिए ॥७॥

अब मेघनिमित्त कौन हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात् ।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो सूर्य (**महान्तम्**) बड़े परिमाणवाले (**कोशम्**) धनादिकों के कोश के समान जल से परिपूर्ण मेघ को (**उत्**) (**अचा**) ऊपर प्राप्त होता है और जिससे पृथिवी को (**नि, सिञ्च**) निरन्तर सींचता है और (**पुरस्तात्**) प्रथम (**विषिताः**) व्याप्त (**कुल्या**) रचे गये जल के निकलने के मार्ग (**स्यन्दन्ताम्**) बहें और जो (**घृतेन**) जल से (**द्यावापृथिवी**) पृथिवी और अन्तरिक्ष को (**वि,उन्धि**) अच्छे प्रकार गीला करता है वह (**अघ्न्याभ्यः**) गौओं के लिए (**सुप्रपाणम्**) उत्तम प्रकार प्रकर्षता से पीते हैं जिसमें ऐसा जलाशय (**भवतु**) हो यह जानो ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो बिजुली, सूर्य और वायु मेघ के कारण हैं उनको यथायोग्य प्रयुक्त कीजिए जिससे वृष्टि द्वारा गौ आदि पशुओं का यथावत् पालन होवे ॥ ८ ॥

यत्पर्जन्य कनिक्रदत्स्तनयन् हंसि दुष्कृतः ।
प्रतीदं विश्वं मोदते यत्किं च पृथिव्यामधि ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यत्**) जो (**पर्जन्य**) मेघ (**कनिक्रदत्**) अत्यन्त शब्द करता तथा (**स्तनयन्**) गर्जन करता हुआ (**दुष्कृत**) दुःख से करनेवालों को (**हंसि**) नाश करता है (**यत्**) जो (**किम्**) कुछ (**च**) भी (**इदम्**) यह वर्त्तमान (**पृथिव्याम्**) पृथिवी (**अधि**) पर (**विश्वम्**) सम्पूर्ण जगत वर्त्तमान है वह सब जिस मेघ से (**प्रति, मोदते**) आनन्दित होता है वह बड़ा उपकारी है ॥ ९ ॥

भावार्थ—मेघ से ही सम्पूर्ण प्राणी आनन्दित होते हैं इससे यह मेघ को बनानारूप कर्म्म परमेश्वर का धन्यवाद के योग्य है यह सब लोग जानो ॥ ९ ॥

फिर मनुष्य क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभायाकर्धन्वान्यत्येतवा उ ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय कमुत प्रजाभ्योऽविदो मनीषाम् ॥१०॥२८॥

पदार्थ—हे विद्वन् वैद्य ! जैसे सूर्य (**वर्षम्**) वृष्टि को (**अवर्षी**) वर्षाता है वैसे आप (**उत्, गृभाय**) उत्कृष्टता में ग्रहण कीजिए तथा (**धन्वानि**) जल आदि से रहित देशों को (**अत्येतवै**) प्राप्त होने के लिए (**सु**) उत्तम प्रकार (**अकः**) करिये (**उ**) और (**ओषधीः**) सोमलता आदि ओषधियों को (**भोजनाय**) भोजन के लिए (**अजीजनः**) उत्पन्न कीजिए (**उत**) और भी (**प्रजाभ्यः**) प्रजाओं के लिए (**कम्**) किस को (**अविदः**) जानते हो (**उ**) क्या (**मनीषाम्**) बुद्धि को ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे जगदीश्वर वर्षाओं से प्रजा के हित को सिद्ध करता है वैसे ही धार्मिक राजा प्रजाओं के लिए सुख और अध्यापक बुद्धि को उत्पन्न करे ॥ १० ॥

इस सूक्त में मेघ और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तिरासीवाँ सूक्त और अट्ठाईसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ त्र्यृचस्य चतुरशीतितमस्य सूक्तस्यात्रिर्ऋषिः । पृथिवी देवता । १, २ निचृदनुष्टुप् छन्दः । ३ विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब तीन ऋचा वाले चौरासीवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

बळित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि ।
प्र या भूमिं प्रवत्वति मह्ना जिनोषि महिनि ॥१॥

पदार्थ—हे (**प्रवत्वति**) अत्यन्त नीच स्थान से युक्त (**महिनि**) आदर करने योग्य (**पृथिवि**) भूमि के सदृश वर्त्तमान (**या**) जो तुम (**पर्वतानाम्**) मेघों के (**मह्ना**) महत्त्व से (**भूमिम्**) भूमि का धारण करती (**इत्था**) इस प्रकार से (**बट्**) सत्य को जिस कारण (**बिभर्षि**) धारण करती हो तथा (**खिद्रम्**) दीनता को (**प्र, जिनोषि**) विशेष करके नष्ट करती हो इससे सत्कार करने योग्य हो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे भूमि पर पर्वत स्थिर होकर वर्त्तमान हैं वैसे जिन के हृदय में धर्म आदि श्रेष्ठ व्यवहार हैं वे आदर करने योग्य होते हैं ॥ १ ॥

फिर स्त्री कैसी हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स्तोमासस्त्वा विचारिणि प्रति ष्टोभन्त्यक्तुभिः ।
प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि ॥२॥

पदार्थ—हे (**अर्जुनि**) उषा के समान वर्त्तमान (**विचारिणि**) विचार करनेवाली स्त्री (**या**) जो तू (**वाजम्**) वेग के (**न**) समान (**हेषन्तम्**) शब्द करते हुए (**पेरुम्**) पूर्ण करनेवाले को (**प्र, अस्यसि**) फेंकती है उस (**त्वा**) तेरी (**स्तोमासः**) स्तुति करनेवाले जन (**अक्तुभिः**) रात्रियों से (**प्रति, स्तोभन्ति**) सब प्रकार स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् जन स्तुति करने योग्य जनों की स्तुति करते हैं वैसे ही विद्यायुक्त स्त्री प्रशंसा करने योग्य की प्रशंसा करती है ॥ २ ॥

दृळ्हा चिद्या वनस्पतीन्क्ष्मया दर्धर्ष्योजसा ।
यत्ते अभ्रस्य विद्युतो दिवो वर्षन्ति वृष्टयः ॥३॥२९॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! (**या**) जो (**दृळ्हा**) दृढ़ तुम (**क्ष्मया**) पृथिवी से (**वनस्पतीन्**) वृक्षादिकों को (**दर्धर्षि**) अत्यन्त धारण करती हो और (**यत्**) जो (**चित्**) निश्चित (**ते**) आपके (**अभ्रस्य**) घन की (**दिवः**) अन्तरिक्ष में हुई (**विद्युतः**) बिजुली और (**वृष्टयः**) वर्षायें (**वर्षन्ति**) वर्षती हैं उनको तुम (**ओजसा**) बल से धारण करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो स्त्री पृथिवी के सदृश क्षमा से युक्त और पुत्र पौत्रादि से युक्त होती है वह वृष्टि के सदृश सुखों की वर्षानेवाली होती है ॥ ३ ॥

इस सूक्त में मेघ विद्वान् और स्त्री के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह चौरासीवाँ सूक्त और उनतीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथाष्टर्चस्य पञ्चाशीतितमस्य सूक्तस्य अत्रिर्ऋषिः । वरुणो देवता । १, २ विराट्त्रिष्टुप् । ३, ४, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ७ ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब आठ ऋचावाले पचासीवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके मन्त्र में मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

प्र सम्राजे बृहदर्चा गभीरं ब्रह्म प्रियं वरुणाय श्रुताय ।
वि यो जघान शमितेव चर्मोपस्तिरे पृथिवीं सूर्याय ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्य (**यः**) जो रचनेवाले के सदृश दुष्टों का (**वि, जघान**) नाश करता और (**सूर्य्याय**) रचनेवाले के लिए (**उपस्तिरे**) बिछौने पर (**चर्म**) चमड़े और (**पृथिवीम्**) पृथिवी को (**शमितेव**) जैसे यज्ञमय व्यवहार प्राप्त होता है वैसे आप (**वरुणाय**) श्रेष्ठ (**श्रुताय**) विशेष करके सिद्ध यशवाले तथा (**सम्राजे**) उत्तम प्रकार शोभित के लिये (**बृहत्**) बड़े (**गभीरम्**) थाहरहित (**प्रियम्**) जो प्रसन्न करता उस (**ब्रह्म**) धन वा अन्न का (**प्र, अर्चा**) सत्कार करो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य यजमान के सदृश राजा को सुखी करते हैं वे बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

फिर परमेश्वर ने क्या किया इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पय उस्रियासु ।
हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्स्वग्निं दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रौ ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो जगदीश्वर (**वनेषु**) किरणों वा जङ्गलों में (**अन्तरिक्षम्**) जल का (**अर्वत्सु**) घोड़ों में (**वाजम्**) वेग को और (**उस्रियासु**) पृथिवियों में (**पयः**) जल वा रस को (**हृत्सु**) हृदयों में (**क्रतुम्**) विशेष ज्ञान को (**अप्सु**) आकाश प्रदेशों में (**अग्निम्**) अग्नि को (**दिवि**) प्रकाश में (**सूर्य्यम्**) सूर्य्य को (**अद्रौ**) मेघ में (**सोमम्**) रस का (**अदधात्**) धारण करता है वह (**वरुणः**) श्रेष्ठ परमात्मा सम्पूर्ण जगत् को (**वि, ततान**) विस्तृत करता है ॥२॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जिस जगदीश्वर ने सम्पूर्ण जगत् को विस्तृत किया उसी का निरन्तर ध्यान करो ॥ २ ॥

फिर ईश्वर क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

नीचीनबारं वरुणः कवन्धं प्र ससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम् ।
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (**वरुण**) श्रेष्ठ परमेश्वर (**नीचीनबारम्**) नीचे के स्थानों में वृष्टि करनेवाले (**कवन्धम्**) मेघ को और (**रोदसी**) अन्तरिक्ष और पृथिवी तथा (**अन्तरिक्षम्**) जल को (**प्र, ससर्ज**) उत्तमता से उत्पन्न करता है और (**विश्वस्य**) सम्पूर्ण (**भुवनस्य**) ब्रह्माण्ड का (**राजा**) प्रकाशक परमात्मा (**वृष्टिः**) वृष्टि (**यवम्**) यव आदि धान्य को (**न**) जैसे वैसे (**वि, उनत्ति**) विशेष करके गीला करता है (**तेन**) उससे हम लोग सुखी (**भूम**) होवें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! आप लोग जगत् के रचनेवाले जगदीश्वर की उपासना करके और राजा होकर जैसे धान्य आदि का मेघ वैसे प्रजाओं का पालन कीजिये ॥ ३ ॥

अब राजजन कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

उनत्ति भूमिं पृथिवीमुत द्यां यदा दुग्धं वरुणो वष्ट्यादित् ।
समभ्रेण वसत पर्वतासस्तविषीयन्तः श्रथयन्त वीराः ॥४॥

पदार्थ—हे राजन् (यदा) जब (वरुणः) वायुके सदृश राजा (अभ्रेण) मेघ से (पृथिवीम्) विस्तीर्ण (भूमिम्) भूमि को और (उत) भी (द्याम्) प्रकाश को (सम्, उनत्ति) गीला करता है (आत्) उसके अनन्तर (इत्) ही वायु के सदृश राजा (दुग्धम्) दुग्ध की (वष्टि) कामना करता है और हे (तविषीयन्तः) सेना की कामना करते हुए (वीराः) शूरवीरो आप लोग (पर्वतासः) मेघों के सदृश यहां (वसत) वास करिये और (श्रथयन्त) अर्थात् शत्रुओं का नाश करिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—वे ही राजा लोग श्रेष्ठ हैं जो प्रजा के हित की कामना करते हैं और जैसे मेघ सब के सुखों की वृष्टि करते हैं वैसे ही राजा लोग प्रजाओं की कामनाओं को पूर्ण करें ॥ ४ ॥

अब विद्वान् और ईश्वर क्या करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इमामू ष्वासुरस्य श्रुतस्य महीं मायां वरुणस्य प्र वोचम् ।
मानेनेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ॥५॥३०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (इमाम्) इस (श्रुतस्य) सुने गये (आसुरस्य) मेघ मे उत्पन्न हुए और (वरुणस्य) श्रेष्ठ की (महीम्) आदर करने योग्य वाणी का और (मायाम्) बुद्धि का आप लोगों के लिए (सु, प्र, वोचम्) उत्तम प्रकार उपदेश करूं (उ) और (यः) जो (तस्थिवान्) ठहरनेवाला (मानेनेव) सत्कार से जैसे वैसे (अन्तरिक्षे) आकाश मे (सूर्येण) सूर्य्य के साथ (पृथिवीम्) पृथिवी को (वि, ममे) विस्तारता है उसको ईश्वर जानो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो मेघ की विद्या का जाननेवाले की वाणी और बुद्धि की प्रशंसा करता है और जो परमेश्वर सम्पूर्ण जगत् को रचता है उन दोनों का सदा सत्कार करो ॥ ५ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इमामू नु कवितमस्य मायां महीं देवस्य नकिरा दधर्ष ।
एकं यदुद्ना न पृणन्त्येनीरासिञ्चन्तीरवनयः समुद्रम् ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (इमाम्) इस (कवितमस्य) अतिशय कविजन (देवस्य) विद्वान् की (मायाम्) बुद्धि को (उ) और (महीम्) वाणी को कोई भी (नु) शीघ्र (नकिः) नहीं (आ, दधर्ष) दबाता है और (यत्) जो (उद्ना) जल से (न) जैसे वैसे (एनीः) हिरणियों के सदृश दौड़ती और (आसिञ्चन्तीः) चारों ओर सींचती हुई (अवनयः) रक्षा करनेवाली नदियां (एकम्) एक (समुद्रम्) समुद्र को (पृणन्ति) पूर्ण करती हैं उनको आप लोग यथावत् जानिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य बड़े विद्वानों के समीप से बड़ी बुद्धि और वाणी को प्राप्त होकर अन्यों के लिए प्राप्त कराते हैं वे ही संसार में धन्य होते हैं ॥ ६ ॥

मनुष्यों को चाहिए कि प्रमाद से किसी के भी प्रमाद को करके शीघ्र निवृत्त करावें—

अर्यम्यं वरुण मित्र्यं वा सखायं वा सदमिद्भ्रातरं वा ।
वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा यत्सीमागश्चकृमा शिश्रथस्तत् ॥७॥

पदार्थ—हे (वरुण) श्रेष्ठ विद्वान् (अर्य्यम्यम्) न्यायाधीशों मे हुए और (मित्र्यम्) मित्रों में हुए (वा) अथवा (सखायम्) मित्र और (सदम्) स्थित होते हैं जिसमे उस गृह (इत्) ही (वा) वा (भ्रातरम्) भ्राता (वा) अथवा (वेशम्) प्रविष्ट होनेवाले को (वा) अथवा हे (वरुण) श्रेष्ठ विद्वान् (नित्यम्) नित्य (अरणम्) जलको (वा) वा (सीम्) सब ओर से (यत्) जिस (आगः) अपराध को हम लोग (चकृम) करें (तत्) उस सबको आप (शिश्रथः) प्रयत्न करिये वा नाश करिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे विद्वज्जनो ! अज्ञान वा प्रमाद से श्रेष्ठ पुरुषों मे हमलोग जो प्रमाद करें उस सम्पूर्ण को आप निवृत्त कीजिये ॥ ७ ॥

कौन से मनुष्य सत्कार और कौन तिरस्कार करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म ।
सर्वा ता वि ष्य शिथिरेव देवाधा ते स्याम वरुण प्रियासः ॥८॥३१॥

पदार्थ—हे (वरुण) श्रेष्ठ (देव) विद्वन् (यत्) जो (कितवासः) जुआ करनेवाले (दीवि) जुआरूप कर्म्म मे (न) नहीं (रिरिपुः) आरोपित करते हैं (वा) अथवा (यत्) जिस (सत्यम्) श्रेष्ठों मे श्रेष्ठ को (उत) तर्क वितर्क से (न) न (विद्म) जानें और (यत्) जिसे (घा) ही नहीं जानें (ता) उन (सर्वा) सम्पूर्णों को (शिथिरेव) जैसे शिथिल वैसे आप (वि, ष्य) नष्ट करिये जिससे (अधा) इसके अनन्तर हम लोग (ते) आप के (प्रियासः) प्रसन्न प्यारे (स्याम) होवें ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो छली मनुष्य जुआ आदि कर्म्म करें वे ताड़ना करने योग्य और जो सत्य आचरण करें वे सत्कार करने योग्य हैं ॥ ८ ॥

इस सूक्त मे राजा, ईश्वर, मेघ और विद्वान् के गुण कर्म वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह पचासीवां सूक्त और एकतीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षडृचस्य षडशीतितमस्य सूक्तस्य अत्रिर्ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । १, ४, ५ स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । २, ३ विराडनुष्टुप् छन्दः । ६ विराट्पूर्वानुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले छियासीवें सूक्त का आरम्भ है इसमें विद्वान् जन क्या करते हैं इस विषय को कहते हैं—

इन्द्राग्नी यमवथ उभा वाजेषु मर्त्यम् ।
दृळ्हा चित्स प्र भेदति द्युम्ना वाणीरिव त्रितः ॥१॥

भावार्थ—हे (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली के सदृश अध्यापक और उपदेशको तुम (उभा) दोनों (वाजेषु) संग्रामों में (यम्) जिस (मर्त्यम्) मनुष्य की (अवथः) रक्षा करते हो (सः) वह (चित्) भी (त्रितः) तीन अर्थात् अध्यापन उपदेशन और रक्षण से (वाणीरिव) जैसे वाणियों को वैसे (दृळ्हा) स्थिर (द्युम्ना) धनों वा यशों को (प्र, भेदति) अत्यन्त भेद करता है ॥ १ ॥

भावार्थ—जहां धार्मिक, विद्वान्, शूरवीर, बलिष्ठ और शिक्षक हैं वहां पर कोई भी नहीं दुःख को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

या पृतनासु दुष्टरा या वाजेषु श्रवाय्या ।
या पञ्च चर्षणीरभीन्द्राग्नी ता हवामहे ॥२॥

पदार्थ—हे (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली के समान वर्त्तमान सेनापति और अध्यक्ष (या) जो सेना के शिक्षक और लड़ानेवाले (पृतनासु) सेनाओं में (दुष्टरा) दुःख से उल्लङ्घन करने योग्य (या) जो (वाजेषु) अन्नादिकों वा संग्रामों मे (श्रवाय्या) प्रशंसा करने योग्य (या) जो (पञ्च) पांच (चर्षणीः) प्राणों वा मनुष्यों को (अभि) सन्मुख रक्षा करते हैं (ता) उन दोनों को हम लोग (हवामहे) स्वीकार करें वा प्रशंसा करें ॥ २ ॥

भावार्थ—राजा और सेनापति को चाहिए कि उत्तम प्रकार परीक्षा करके सेना मे अध्यक्ष भृत्यों को रक्खें जिससे सर्वदा विजय होवे ॥ २ ॥

तयोरिदमवच्छवस्तिग्मा दिद्युन्मघोनोः ।
प्रति द्रुणा गभस्त्योर्गवां वृत्रघ्न एषते ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे सूर्य्य (वृत्रघ्ने) मेघ के नाश करनेवाले के लिए (गवाम्) किरणों का (आ, ईषते) सब प्रकार नाश करता है और जो दोनों (द्रुणा) चलनेवाले वर्त्तमान हैं (तयोः इत्) उन्हीं सेनापति और सेनाध्यक्ष और (मघोनोः) बहुत धन से युक्त (गभस्त्योः) भुजाओं के (अमवत्) गृह के सदृश (शवः) बलयुक्त (तिग्मा) तीव्र (दिद्युत्) बिजुली है वैसे उसको आप लोग (प्रति) ग्रहण करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजपुरुषो ! जैसे सूर्य्य मेघ का नाश करके प्रजाओं का पालन करता है वैसे ही आप लोग दुष्टों का नाश करके प्रजाओं की निरन्तर रक्षा कीजिये ॥ ३ ॥

ता वामेषे रथानामिन्द्राग्नी हवामहे ।
पती तुरस्य राधसो विद्वांसा गिर्वणस्तमा ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (रथानाम्) वाहनों और (तुरस्य) शीघ्र सुखकारक (राधसः) धन के (पती) पालन करनेवाले (गिर्वणस्तमाः) अतिशय उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी का सेवन करते हुए (विद्वांसा) विद्या से युक्त (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली (वाम्) और आप दोनों को (एषे) प्राप्त होने के लिए हम लोग (हवामहे) प्राप्त होने की इच्छा करें (ता) उन दोनों को आप लोग भी प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि वायु और बिजुली के सदृश श्रेष्ठ गुणों से व्याप्त विद्वानों के सङ्ग से विद्या और शिक्षा को प्राप्त होकर प्रजाओं मे मित्र के सदृश वर्त्ताव करें ॥ ४ ॥

ता वृधन्तावनु द्यून्मर्ताय देवावदभा ।
अर्हन्ता चित्पुरो दधेंऽशेव देवावर्वते ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (अंशेव) भाग के सदृश सत्कार करने योग्य (मर्ताय) मनुष्य के लिए (अनु, द्यून्) प्रतिदिन (वृधन्ता) बढ़ने वा बढ़ाते हुए (अदभा) नहीं हिंसा करनेवाले (अर्हन्ता) आदर करने योग्य (देवौ) देनेवालों को मैं (पुरः) आगे (दधे) धारण करता हूं और जो (देवौ) प्रकाशमान दोनों (चित्) भी (अर्वते) विज्ञान के लिए वर्त्तमान हैं (ता) उन दोनों का आप लोग सत्कार करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य दिनरात्रि मनुष्यों के हित के लिए प्रयत्न करते हैं वे ही सब से आदर करने योग्य हैं ॥ ५ ॥

एवेन्द्राग्निभ्यामहाविं हव्यं शूष्यं घृतं न पूतमद्रिभिः ।

ता सूरिषु श्रवो बृहद्रयिं गृणत्सु दिधृतमिषं गृणत्सु दिधृतम् ॥६॥३२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जिन (**इन्द्राग्निभ्याम्**) सूर्य और अग्नि से (**अहा**) दिनों को और (**अद्रिभिः**) मेघों से (**घृतम्**) घृत जैसे (**न**) वैसे (**पूतम्**) पवित्र (**हव्यम्**) ग्रहण करने योग्य (**शूष्यम्**) बल में उत्पन्न (**श्रवः**) अन्न होता है तथा (**गृणत्सु**) प्रशंसा करते हुए (**सूरिषु**) विद्वानों में (**बृहत्**) बड़े (**रयिम्**) धन को जो दोनों (**दिधृतम्**) धारण करें तथा (**गृणत्सु**) स्तुति करते हुए विद्वानों में (**इषम्**) विज्ञान को (**वि, दिधृतम्**) विशेष धारण करें (**ता**) वे दोनों (**एव**) ही यथावत् जानने के योग्य हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो विद्वानों में आप लोग निवास करें तो बिजुली और मेघ आदि की विद्या को जानें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में इन्द्र अग्नि और बिजुली के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह छियासीवां सूक्त और बत्तीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ नवर्चस्य सप्ताशीतितमस्य सूक्तस्य एवयामरुदात्रेय ऋषिः । मरुतो देवता । १ अतिजगती । २, ८ स्वराड्जगती । ३, ६, ७ भुरिग् जगती । ४ निचृज्जगती । ५, ९ विराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब नव ऋचावाले सत्तासीवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से मनुष्यों को कैसे क्या प्राप्त होता है इस विषय को कहते हैं—

प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत् ।

प्र शर्धाय प्रयज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (**मरुत्वते**) प्रशंसित मनुष्य जिस में उस (**महे**) बड़े (**विष्णवे**) व्यापक बिजुलीरूप अग्नि के लिये (**गिरिजा**) मेघ में उत्पन्न हुए प्राप्त होते हैं वैसे (**वः**) आप लोगों को (**मतयः**) मनुष्य वा बुद्धियां (**प्र, यन्तु**) प्राप्त होवें और जैसे (**एवयामरुत्**) प्राप्त करानेवालों को प्राप्त होने वालों का मनुष्य (**शर्धाय**) बल के और (**प्रयज्यवे**) अत्यन्त यजन करते हैं जिस से उस (**सुखादये**) उत्तम प्रकार खाने वाले (**तवसे**) बलिष्ठ के लिए तथा (**भन्ददिष्टये**) कल्याण और सुख की सङ्गति के लिए (**धुनिव्रताय**) और कंपित व्रत जिस का उस (**शवसे**) बल के लिए (**प्र**) समर्थ होता है वैसे आप लोग भी इस के लिये समर्थ हूजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—जैसे बिजुलीरूप अग्नि को मेघोत्पन्न गर्जनादि प्रभाव प्राप्त होते हैं क्योंकि वे गर्जनादि प्रभाव अग्नि और वायु से सिद्ध होने योग्य हैं, वैसे बुद्धिमान् पुरुषों को अन्य पुरुष प्राप्त होते हैं। और गुण प्राप्त करानेवाला पुरुष गुणी पुरुष हुआ है और अति उत्तम बल को भी प्राप्त होता है ॥ १ ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

प्र ये जाता महिना ये च नु स्वयं प्र विद्मना ब्रुवत एवयामरुत् ।

क्रत्वा तद्वो मरुतो नाधृषे शवो दाना मह्ना तदेषामधृष्टासो नाद्रयः ॥२॥

पदार्थ—हे (**मरुतः**) मनुष्यो (**ये**) जो (**महिना**) महत्त्व से (**जाताः**) उत्पन्न हुए तथा (**ये**) जो (**विद्मना**) विज्ञान से (**प्र, ब्रुवत**) उपदेश देते हैं (**च**) और जो (**स्वयम्**) अपने से (**नु**) शीघ्र (**प्र**) विशेष करके उपदेश देते हैं और (**एवयामरुत्**) विज्ञान वाला मनुष्य मैं (**क्रत्वा**) बुद्धि वा कर्म से उन (**वः**) आप लोगों के (**तत्**) उस (**शवः**) बल को (**दाना**) देने से वा (**मह्ना**) महत्त्व से (**न**) नहीं (**आधृषे**) दबाने को समर्थ होता हूं तथा (**अद्रयः**) मेघों के (**न**) समान (**अधृष्टासः**) नहीं धर्षण किये गये जो (**एषाम्**) इनका बल है उसको नहीं दबाने को समर्थ होता हूं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य सब के उपकार को करके प्राणवत् प्रिय होते हैं वे ही जगत् के उपकार करने वाले होते हैं ॥ २ ॥

प्र ये दिवो बृहतः शृण्विरे गिरा सुशुक्वानः सुभ्व एवयामरुत् ।

न येषामिरी सधस्थ ईष्ट आँ अग्नयो न स्वविद्युतः प्र स्पन्द्रासो धुनीनाम् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**ये**) जो (**सुशुक्वानः**) उत्तम प्रकार शुद्ध (**सुभ्वः**) और सुन्दर धर्मयुक्त व्यवहार में होने वाले (**दिवः**) कामना करते हुओं वा बिजुली आदिकों को जैसे (**स्वविद्युतः**) अपने स्वरूप से व्याप्त और (**धुनीनाम्**) कम्पन क्रिया से युक्त भूमि आदिकों के (**स्पन्द्रासः**) पिघले हुए वा पिघलाते हुए (**अग्नयः**) अग्नियां (**न**) वैसे (**गिरा**) वाणी से (**बृहतः**) बड़े (**प्र, शृण्विरे**) सुनते हैं और (**येषाम्**) जिनका (**एवयामरुत्**) विज्ञानवाला मनुष्य (**इरी**) प्रेरणा करनेवाला (**सधस्थे**) समान स्थान में (**न**) जैसे वैसे (**प्र, ईष्टे**) स्वामी होता है उनको आप लोग (**आ**) अच्छे प्रकार जानिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो विद्या की कामना करने वाले जन बड़ी विद्याओं को प्राप्त होकर बिजुली आदि पदार्थों को स्वाधीन करते हैं वे ही सिद्ध इच्छा वाले होते हैं ॥ ३ ॥

अब ईश्वर की उपासनाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स चक्रमे महतो निरुरुक्रमः समानस्मात्सदस एवयामरुत् ।

यदायुक्त त्मना स्वादधि ष्णुभिर्विष्पर्धसो विमहसो जिगाति शेवृधो नृभिः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**एवयामरुत्**) विज्ञानवाला मनुष्य (**उरुक्रमः**) जो बहुत क्रम वाला (**समानस्मात्**) तुल्य (**महतः**) बड़े (**सदसः**) गृह से (**निः**) निरन्तर (**चक्रमे**) क्रमण करता है उसको जो (**त्मना**) आत्मा से (**यदा**) जब (**अयुक्त**) युक्त होता है (**ष्णुभिः**) तथा पवित्र गुणों और (**नृभिः**) नायकों के साथ वर्त्तमान (**स्वात्**) अपने से (**विष्पर्धसः**) विशेष करके स्पर्द्धा करनेवाले (**विमहसः**) विशेष करके बड़े गुणों से विशिष्ट और (**शेवृधः**) सुख के बढ़ाने वालों को (**अधि, जिगाति**) प्राप्त होता है (**सः**) वह परमेश्वर उपासना करने योग्य और योगीजन सेवन करने योग्य हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वान् पुरुष के द्वारा परमेश्वर के योग का अभ्यास करते हैं वे सुख के धारण करने वाले होते हैं ॥ ४ ॥

फिर विद्वान् राजाजन कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स्वनो न वोऽमवान्रेजयद्वृषा त्वेषो ययिस्तविष एवयामरुत् ।

येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः स्थारश्मानो हिरण्ययाः स्वायुधास इष्मिणः ॥५॥३३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! वह (**वः**) आप लोगों के मध्य में (**स्वनः**) शब्द के (**न**) समान (**अमवान्**) गृहवाला (**वृषा**) बलिष्ठ और (**त्वेषः**) प्रकाशवान् (**तविषः**) बल से (**ययिः**) प्राप्त होने वाला (**एवयामरुत्**) बुद्धिमान् मनुष्य व्यवहारों को (**रेजयत्**) कंपित कराता है (**येना**) जिस पुरुष से (**सहन्त**) सहन करने वाले (**स्वरोचिषः**) अपने से प्रकाश जिनका ऐसे और (**स्थारश्मानः**) स्थिर किरणों के सदृश व्यवहार जिनके तथा (**हिरण्ययाः**) तेजःस्वरूप ((**स्वायुधासः**) अपने आयुधों वाले और (**इष्मिणः**) बहुत प्रकार की इच्छा वाले जन आप लोग अपने प्रयोजनों को (**ऋञ्जत**) सिद्ध करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो प्रकाशित धर्मयुक्त व्यवहारवाले तथा शम दम आदि से युक्त, तेजस्वी बलवाले और बुद्धिविद्या में कुशल होवें वे ही विजयी होते हैं ॥ ५ ॥

अब विद्वानों को किनका निवारण करके किनका सत्कार करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अपारो वो महिमा वृद्धशवसस्त्वेषं शवोऽवत्वेवयामरुत् । स्थातारो हि प्रसितौ संदृशि स्थन ते न उरुष्यता निदः शुशुक्वांसो नाग्नयः ॥६॥

पदार्थ—हे (**वृद्धशवसः**) बढ़े हुए बल वालो (**स्थातारः**) स्थित होने वाले (**अग्नयः**) अग्नियां (**न**) जैसे वैसे (**वः**) आप लोगों का जो (**अपारः**) अपार (**महिमा**) बड़प्पन और (**एवयामरुत्**) बुद्धिमान् मनुष्य (**त्वेषम्**) प्रकाशित (**शवः**) बल की (**अवतु**) रक्षा करे (**हि**) जिससे कि (**प्रसितौ**) प्रकट बन्धन के रहने पर (**निदः**) निन्दा करनेवाले (**शुशुक्वांसः**) शोक से युक्त होवें (**ते**) वे आप लोग (**संदृशि**) तुल्य दर्शन में (**स्थन**) स्थित हूजिये और (**नः**) हम लोगों का (**उरुष्यता**) सेवन करिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो निन्दक अर्थात् मिथ्यावादी होवें उनको सदा बन्धन में प्रविष्ट करिये और जो महाशय, परोपकारी स्तुति करने और सत्य बोलनेवाले होवें उनका सदा सत्कार करिये ॥ ६ ॥

ते रुद्रासः सुमखा अग्नयो यथा तुविद्युम्ना अवन्त्वेवयामरुत् । दीर्घं पृथु पप्रथे सद्म पार्थिवं येषामज्मेष्वा महः शर्धांस्यद्भुतैनसाम् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**ते**) वे (**सुमखाः**) सुन्दर न्यायाचरण और यज्ञ के करनेवाले (**रुद्रासः**) मध्यम विद्वान् जन (**यथा**) जैसे (**अग्नयः**) अग्नि के सदृश वर्त्तमान (**तुविद्युम्नाः**) बहुत धन और यश से युक्त हुए हम लोगों की (**अवन्तु**) रक्षा करें जिन (**अद्भुतैनसाम्**) अद्भुत बड़े पाप वालों के (**अज्मेषु**) संग्रामों में (**शर्धांसि**) बलों और (**महः**) बड़े (**दीर्घम्**) लम्बे (**पृथु**) विस्तृत वा प्रसिद्ध (**पार्थिवम्**) पृथिवी में विदित (**सद्म**) ठहरते हैं जिसमें उस स्थान को (**एवयामरुत्**) बुद्धिमान् पुरुष (**आ, पप्रथे**) अच्छे प्रकार प्रसिद्ध करता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य अग्नि के सदृश पाप के नाश करने, सत्य के प्रकाश करने और दुष्टों के रुलाने वाले, श्रेष्ठों के पालक हैं वे ही अधिक कीर्ति वाले होते हैं ॥ ७ ॥

अद्वेषो नो मरुतो गातुमेतन श्रोता हवं जरितुरेवयामरुत् । विष्णोर्महः समन्यवो युयोतन स्मद्रथ्यो३ न दंसनाप द्वेषांसि सनुतः ॥८॥

पदार्थ—हे (समन्यव) समान क्रोध वाले (मरुतः) मनुष्यो आप लोग (एवयामरुत्) बुद्धिमान् मनुष्य के सदृश (नः) हम लोगों को (अद्वेषः) द्वेष से रहित करिये । और (गातुम्) पृथिवी को (आ, इतन) प्राप्त हूजिये तथा हम लोगो के (हवम्) श्रेष्ठ व्यवहार को (श्रोता) सुनिये (जरितु.) स्तुति करने योग्य (विष्णोः) व्यापक के (महः) महत्त्व को (स्मत्) ही (युयोतन) संयुक्त कीजिये और (रथ्य) वाहनो के चलाने मे कुशलो के (न) सदृश (सनुतः) सनातन (दंसना) कर्मों को और (अप) दूरीकरण के निमित्त (द्वेषांसि) द्वेषयुक्त कर्मों को संयुक्त कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है । जो विद्वान् और उपदेशक जन मनुष्यो को द्वेष आदि दोषो से रहित करते हैं वे व्यापक ईश्वर के पद को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि श्रोता हवमरक्ष एवयामरुत् । ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि यूयं तस्य प्रचेतसः स्यात दुर्धर्तवो निदः ॥९॥

पदार्थ—हे (यज्ञिया) यज्ञ करने योग्य (यूयम्) आप लोग (एवयामरुत्) बुद्धिमान् मनुष्य के सदृश (न.) हम लोगों को वा हम लोगो के (यज्ञम्) सत्य को प्रकट करनेवाले व्यवहार को (गन्ता) प्राप्त हूजिये और (सुशमि) श्रेष्ठ कर्म और (हवम्) पठन की परीक्षा नामक कर्म को (श्रोता) सुनिये तथा (अरक्ष) नही रक्षा करने योग्य का निवारण करिये और (व्योमनि) आकाश के सदृश व्यापक परमेश्वर मे (पर्वतास) मेघ (न) जैसे वैसे (ज्येष्ठासः) विद्या और अवस्था से वृद्ध और प्रशंसायुक्त वाणी वाले हूजिये और जो आकाश के सदृश व्यापक ईश्वर है (तस्य) उस के (प्रचेतस·) जनाने वाले (स्यात) हूजिये और जो (दुर्धर्तवः) दु·ख से धारण करनेवाले (निदः) निन्दक जन हैं उन के निवारण करने योग्य हूजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे विद्वान् जनो ! आप लोग विद्या के प्रचार नामक व्यवहार के प्रचार से धर्म सम्बन्धी कार्यों को करके अन्यो से भी कराओ और निन्दा आदि दोषो से मनुष्यो को पृथक् करके परमेश्वर की ओर प्रवृत्त करो और स्वयं भी ऐसे होओ ॥ ९ ॥

इस सूक्त मे वायु, विद्वान् और परमेश्वर की उपासना का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य महाविद्वान् विरजानन्द सरस्वती स्वामीजी के शिष्य श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामी जी से रचे हुए, उत्तम प्रमाणयुक्त ऋग्वेद भाष्य में सतासीवां सूक्त चौतीसवां वर्ग तथा पञ्चम मण्डल में छठा अनुवाक और पञ्चम मण्डल भी समाप्त हुआ ॥
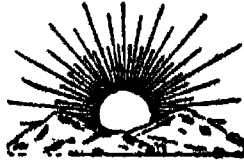
॥ अथ षष्ठं मण्डलम् ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथ त्रयोदशर्चस्य प्रथमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्निर्देवता । १, ७, १३ भुरिक्पङ्क्तिः । २ स्वराट्पङ्क्तिः । ५ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३, ४, ६, ११, १२ निचृत्त्रिष्टुप् । ८, १० त्रिष्टुप् । ९ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब छठे मण्डल में तेरह ऋचावाले प्रथम सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् जन अग्नि के सदृश क्या क्या करें इस विषय को कहते हैं—

त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोतास्या धियो अभवो दस्म होता ।
त्वं सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै ॥१॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के सदृश तेजस्वी (**दस्म**) दुःख के नाश करनेवाले विद्वान् जन जैसे (**प्रथमः**) आदिम (**मनोता**) मन के समान जानेवाले और (**होता**) दान करनेवाले हुए (**त्वम्**) आप (**हि**) निश्चय से (**अस्याः**) इस (**धियः**) बुद्धि की वृद्धि करते हुए सुखयुक्त (**अभवः**) होते हो । और हे (**वृषन्**) वीर्य्य के सींचनेवाले (**त्वम्**) आप (**सीम्**) सब ओर से (**विश्वस्मै**) सम्पूर्ण प्राणियों के लिये (**सहः**) सहनशील (**सहसे**) बल के लिये (**सहध्यै**) सहने को (**दुष्टरीतु**) दुःख से उल्लङ्घन करने योग्य (**अकृणोः**) करते हो वैसे बिजुलीरूप अग्नि करता है ॥ १ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन मूर्ख लोगों से किये हुए अपराधों को सहकर सम्पूर्ण जनों के सुख के लिए प्रयत्न करते हैं वही सब के हितकारी होते हैं ॥ १ ॥

मनुष्य किस रीति से विद्या को प्राप्त होवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अधा होता न्यसीदो यजीयानिळस्पद इषयन्नीड्यः सन् ।
तं त्वा नरः प्रथमं देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनु ग्मन् ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जिस प्रकार से (**होता**) ग्रहण करने और (**यजीयान्**) अत्यन्त यज्ञ करनेवाला पुरुष (**इषयन्**) प्राप्त कराता और (**ईड्यः**) स्तुति करने योग्य (**सन्**) होता हुआ अग्नि (**इळः**) पृथिवी वा वाणी के (**पदे**) स्थान में वर्त्तमान है वैसे होकर आप (**नि, असीदः**) निरन्तर स्थिर हूजिये और जैसे (**देवयन्तः**) कामना करने और (**चितयन्तः**) जनाते हुए (**नरः**) मनुष्य (**प्रथमम्**) आदिम अग्नि को (**अनु, ग्मन्**) पश्चात् चलते हैं वैसे (**अधा**) अनन्तर (**महः**) बड़े (**राये**) धन के लिए (**तम्**) उस (**त्वा**) आपको ये सब पश्चात् प्राप्त होवें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य विद्वानों की कामना करके अग्नि आदि की विद्या का ग्रहण करने की इच्छा करते हैं वे विज्ञानयुक्त होते हैं ॥ २ ॥

फिर विद्वान् जन क्या जानें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वृतेव यन्तं बहुभिर्वसव्यै३स्त्वे रयिं जागृवांसो अनु ग्मन् ।
रुशन्तमग्निं दर्शतं बृहन्तं वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसम् ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् (**जागृवांसः**) विद्या से जागृत विद्वान् जन जिसको (**बहुभिः**) बहुत (**वसव्यैः**) पृथिवी आदिकों में हुए पदार्थों के साथ (**वृतेव**) वर्त्तमान होते हैं जिसमें उस मार्ग से (**यन्तम्**) जाते (**रुशन्तम्**) हिंसा करते (**दर्शतम्**) देखने वाले वा देखने योग्य (**बृहन्तम्**) बड़े (**वपावन्तम्**) बहुत कार्य्यों के संस्कार जमाने के अधिकरण विद्यमान जिसमें उस (**विश्वहा**) सब दिनों वा सब दिनों को (**दीदिवांसम्**) प्रकाशमान वा प्रकाश करते हुए (**अग्निम्**) अग्नि के सदृश विद्यादिरूप के (**अनु, ग्मन्**) पीछे चलते हैं और जो (**त्वे**) आप में (**रयिम्**) धन को धारण करें उसको आप पश्चात् जानिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो निरन्तर सर्वत्र चलते हुए सब के प्रकाशक और सम्पूर्ण पदार्थों में व्यापक और पदार्थों के जलानेवाले बिजुली आदि स्वरूप अग्नि को जानकर कार्य्यों में उपयुक्त करते हैं वे अत्यन्त लक्ष्मी को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

पदं देवस्य नमसा व्यन्तः श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्त संदृष्टौ ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो (**व्यन्तः**) व्याप्त हैं विद्या और क्रियायें जिन में ऐसे और (**श्रवस्यवः**) अपने अन्न की इच्छा करनेवाले आप लोग (**नमसा**) अन्न आदि वा वज्रवच्छेदकत्वगुण से (**देवस्य**) सब में प्रकाशमान अग्नि के (**पदम्**) प्राप्त होने योग्य (**अमृक्तम्**) शुद्धि से रहित (**श्रवः**) पृथिवी के अन्न आदि को (**आपन्**) प्राप्त होते हैं तथा इस सब में प्रकाशक के (**यज्ञियानि**) यज्ञ की सिद्धि के लिए योग्य (**नामानि**) जलों वा संज्ञाओं को (**चित्**) निश्चय से (**दधिरे**) धारण करें और (**ते**) वे (**भद्रायाम्**) कल्याणकारक (**संदृष्टौ**) उत्तम दर्शन में (**रणयन्त**) रमें वा रमण करावें ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों के गुण कर्म्म और स्वभावों को जान कर कार्यों को सिद्ध करते हैं वे अतुल आनन्द को प्राप्त कर सुख के विषय में रमते हैं ॥ ४ ॥

फिर मनुष्यों को क्या प्रयोग करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम् ।
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम् ॥५॥३५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**जनानाम्**) मनुष्यों के (**उभयासः**) दोनों प्रकार के अर्थात् विद्वान् और अविद्वान् जन और (**क्षितयः**) निवासवाले मनुष्य (**पृथिव्याम्**) भूमि में (**रायः**) धनों की और (**त्वाम्**) आपकी (**वर्धन्ति**) वृद्धि करते हैं और (**त्वाम्**) उन आप को उत्तम प्रकार प्रयुक्त करते हैं वह आप (**तरणे**) दुःखों से उद्धार के निमित्त (**त्राता**) रक्षा करनेवाले (**चेत्यः**) चयन समूहों में हुए (**पिता**) पिता के सदृश पालनकर्त्ता और (**माता**) माता के सदृश आदर करनेवाले (**मानुषाणाम्**) मनुष्यों के पालक (**भूः**) होओ और (**सदम्**) स्थिर होते हैं जिस में उस गृह को व्याप्त हुए उन आप को (**इत्**) ही सब लोग विशेष करके जानें ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो पृथिवी आदिकों में वर्त्तमान बिजुलीरूप अग्नि का उत्तम प्रकार प्रयोग करते हैं वे सब के सुख देनेवाले होते हैं ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यों को किसकी सेवा करनी चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सपर्येण्यः स प्रियो विक्ष्व१ग्निर्होता मन्द्रो नि षसादा यजीयान् ।
तं त्वा वयं दम आ दीदिवांसमुप ज्ञुबाधो नमसा सदेम ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो (**विक्षु**) प्रजाओं में (**सपर्येण्यः**) सेवा करने योग्य और (**प्रियः**) कामना करने योग्य अर्थात् सुन्दर (**होता**) ग्रहण करने और (**मन्द्रः**) आनन्द देनेवाला (**यजीयान्**) अतिशय यज्ञकर्त्ता (**अग्निः**) अग्नि (**नि**) अत्यन्त (**ससाद**) स्थित होता है जिन आप में (**सः**) वह प्रयोग किया जाता है (**तम्**) उस (**दमे**) गृह में (**दीदिवांसम्**) प्रकाशमान (**त्वा**) आप को (**ज्ञुबाधः**) जघाओं को बाधते हुए (**वयम्**) हम लोग (**नमसा**) सत्कार वा अन्न आदि से (**उप, आ, सदेम**) समीप होवें ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो अग्नि आदि की विद्या को जानते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

फिर मनुष्यों को कैसे होकर क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तं त्वा वयं सुध्यो३ नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः ।
त्वं विशो अनयो दीद्यानो दिवो अग्ने बृहता रोचनेन ॥७॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के सदृश वर्त्तमान विद्वन् जैसे (**सुध्यः**) उत्तम बुद्धियुक्त (**सुम्नायवः**) अपने सुख की इच्छा करनेवाले (**देवयन्तः**) कामना करते हुए (**वयम्**) हम लोग (**तम्**) उस (**नव्यम्**) नवीन पदार्थों में हुए अग्नि को (**ईमहे**) व्याप्त होवें वैसे (**त्वा**) आपको प्राप्त होवें और हे (**अग्ने**) अग्नि के सदृश विद्या से प्रकाशित जैसे सूर्य्य (**बृहता**) बड़े (**रोचनेन**) प्रकाश से (**दीद्यानः**) प्रकाशित होता हुआ (**दिवः**) कामना करने के योग्य पदार्थों को (**विशः**) प्रजाओं को (**अनयः**) पहुँचाता है वैसे (**त्वम्**) आप इनको प्राप्त कराइये ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् जनों के सदृश अग्नि का अनुचरण करते हैं वे कृतकार्य्य होते हैं ॥ ७ ॥

फिर मनुष्य किस को प्राप्त होवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम् ।
प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम् ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (**शश्वतीनाम्**) अनादिभूत (**विशाम्**) प्रजाओं के मध्य में (**कविम्**) तेजयुक्त दर्शन जिसका ऐसे (**विश्पतिम्**) प्रजा के पालनेवाले (**नितोशनम्**) पदार्थों के नाश करनेवाले (**वृषभम्**) बलिष्ठ और (**चर्षणीनाम्**) मनुष्यों और (**रयीणाम्**) धनों और (**प्रेतीषणिम्**) अच्छे प्रकार से प्राप्त हुओं को प्राप्त होनेवाले (**इषयन्तम्**) प्राप्त कराते हुए और (**यजतम्**) प्राप्त होने योग्य (**राजन्तम्**) प्रकाशित होते हुए (**पावकम्**) पवित्र करनेवाले (**अग्निम्**) अग्नि को उत्तम प्रकार कार्यों में युक्त करें वैसे आप लोग भी सम्प्रयुक्त करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि का शरीर के सदृश सेवन करते हैं वे प्रजा के स्वामी होते हैं ॥ ८ ॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सो अग्न ईजे शशमे च मर्तो यस्त आनट् समिधा हव्यदातिम् ।
य आहुतिं परि वेदा नमोभिर्विश्वेत्स वामा दधते त्वोतः ॥९॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के सदृश वर्त्तमान विद्वन् (**ते**) आपका (**यः**) जो (**मर्त्तः**) मनुष्य (**समिधा**) समिधा से (**हव्यदातिम्**) हवन करने योग्य वस्तुओं के देनेवाले को (**आनट्**) व्याप्त होता है उसको जाननेवाला (**सः**) वह भी उस को (**ईजे**) उत्तम प्रकार प्राप्त होता और (**शशमे**) प्रशंसा करता है (**च**) और (**यः**) जो (**आहुतिम्**) आहुति को अर्थात् जो चारों ओर से होमी जाती उस सामग्री को (**परि**) सब प्रकार से (**वेदा**) जानता है (**सः**) वह (**त्वोतः**) आप से रक्षित हुआ (**नमोभिः**) अन्न आदिकों वा सत्कारों से (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**वामा**) प्रशंसा करने योग्य कर्म्मों को (**इत्**) ही (**दधते**) धारण करता है ॥९॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो प्रशंसित कार्यों का करनेवाला अग्नि है उस को विशेष कर जानिये ॥ ९ ॥

जो पदार्थविद्या प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते हैं वे भाग्यशाली होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अस्मा उ ते महि महे विधेम नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः ।
वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैरा ते भद्रायां सुमतौ यतेम ॥१०॥

पदार्थ—हे (**सहसः**) बलवान् के (**सूनो**) पुत्र (**अग्ने**) विद्वज्जन जैसे (**समिधा**) ईंधन आदि के सदृश विद्या और (**नमोभिः**) अन्न आदिकों से सम्पूर्ण स्त्रियों को जो धारण करते हैं और जो आहुति को देख कर जानता है और जो (**वेदी**) जानने हैं सुखों को जिस में वह होती है उस का (**गीर्भिः**) वाणियों और (**उक्थैः**) कीर्त्तन करने योग्य वचनों से और (**हव्यैः**) भोजन करने योग्य पदार्थों से (**अस्मै**) इस (**महे**) बड़े (**ते**) आप के लिये (**महि**) बहुत (**आ**) सब प्रकार से (**विधेम**) सत्कार करें उन वाणियों के सहित आप लोग (**उ**) भी (**उत**) और हम भी (**ते**) आप की (**भद्रायाम्**) कल्याणकारिणी (**सुमतौ**) उत्तम बुद्धि में (**यतेम**) प्रयत्न करें ॥ १० ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग इस प्राणियों के समुदाय के लिये सामग्री से यज्ञ करें ॥ १० ॥

फिर मनुष्य किस को प्राप्त होवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्य१स्तरुत्रः ।
बृहद्भिर्वाजैः स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितरं वि भाहि ॥११॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वान् (**यः**) जो अग्नि (**भासा**) प्रकाश से और (**श्रवोभिः**) श्रवण आदि व अन्न आदि से (**च**) भी (**श्रवस्यः**) सुनने के योग्य और (**तरुत्रः**) दुःख से पार करनेवाला (**बृहद्भिः**) बड़े और (**स्थविरेभिः**) स्थूल अर्थात् भारी (**वाजैः**) संग्रामों के सहित वर्त्तमान (**रेवद्भिः**) बहुत धनों से युक्त जनों के साथ (**रोदसी**) द्यावापृथिवी को (**वि, आ, ततन्थ**) विशेष कर सब प्रकार विस्तार करता है तथा (**अस्मे**) हम लोगों के लिए उस (**वितरम्**) वितर अर्थात् विविध प्रकार से तरते हैं जिससे उसका (**वि, भाहि**) उत्तम प्रकार प्रकाशित कीजिये ॥११॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन उत्तम विद्या से अग्नि के प्रभाव को जानें तो विस्मय को प्राप्त होकर चकित होवें ॥११॥

फिर विद्वज्जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

नृवद्वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्वः ।
पूर्वीरिषो बृहतीरारेअघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥१२॥

पदार्थ—हे (**वसो**) बसनेवाले विद्वज्जन ! आप (**अस्मे**) हम लोगों में (**तोकाय**) कन्या और (**तनयाय**) पुत्र के लिये (**पश्वः**) पशु गौ आदि को तथा (**सदम्**) वर्त्तमान होते हैं जिसमें उस गृह और (**बृहतीः**) बड़ी (**पूर्वीः**) प्राचीन (**आरेअघाः**) दूर पाप जिनके उन (**इषः**) अन्न आदि सामग्रियों का (**भूरि**) बहुत (**धेहि**) धारण करिये जिसमें (**अस्मे**) हम लोगों के लिये (**इत्**) ही (**नृवत्**) मनुष्यों के सदृश (**भद्रा**) कल्याणकारक (**सौश्रवसानि**) उत्तम प्रकार सत्कार से युक्त अन्न में हुए पदार्थ (**सन्तु**) हों ॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । वे ही विद्वान् हैं जो मातापिताओं के समान सांसारिक जनों के लिए हितकारक वस्तुओं को देते हैं ॥१२॥

अब ईश्वर के तुल्य प्रजापालन विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसूनि राजन्वसुता ते अश्याम् ।
पुरूणि हि त्वे पुरुवार सन्त्यग्ने वसु विधते राजनि त्वे ॥१३॥३६॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वन् (**राजन्**) विद्या और विनय से प्रकाशमान (**ते**) आपके समीप जो (**वसुता**) द्रव्यों का होना उसमें वर्त्तमान (**पुरूणि**) बहुत और (**पुरुधा**) बहुत प्रकारों से धारण किये हुए (**वसूनि**) द्रव्यों को (**त्वाया**) आपके साथ मैं (**अश्याम्**) प्राप्त होऊं और हे (**पुरुवार**) बहुतों से स्वीकार करने योग्य (**अग्ने**) विद्या और विनय से प्रकाशमान (**हि**) निश्चय से (**त्वे**) आप में (**पुरूणि**) बहुत द्रव्य (**सन्ति**) हैं (**राजनि**) राजा (**त्वे**) आपके होने पर (**वसु**) द्रव्य का (**विधते**) विधान करनेवाले के लिये कल्याण होता है वह आप हमारे राजा हूजिये ॥१३॥

भावार्थ—वे ही राजा उत्तम हैं जो परमेश्वर के सदृश पक्षपात का त्याग कर के पुत्र के सदृश प्रजाओं का पालन करते हैं और वे ही प्रजाजन श्रेष्ठ होते हैं जो राजा और ईश्वर के भक्त हैं ॥१३॥

इस सूक्त में अग्नि, विद्वान् और ईश्वर के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

इस अध्याय में मित्रावरुण, अश्वि, सूर्य, वायु और अग्नि आदि के गुण वर्णन करने से इस अध्याय में कहे हुए अर्थ की इससे पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह श्रीमान् परमहंसपरिव्राजकाचार्य्यश्रीमद्विरजानन्दसरस्वती स्वामीजी के शिष्य श्रीमद् दयानन्दसरस्वती स्वामि विरचित आर्य्यभाषाविभूषित ऋग्वेदभाष्य में चतुर्थ अष्टक में चतुर्थ अध्याय, छत्तीसवां वर्ग और छठे मण्डल में प्रथम सूक्त भी समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायारम्भः ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथैकादशर्चस्य द्वितीयस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्निर्देवता । १, ६ भुरिगुष्णिक् । २ स्वराडुष्णिक् । ७ निचृदुष्णिक् । ८ उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ३, ४ अनुष्टुप् । ५, ६, १० निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ११ भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब पञ्चमाध्याय का आरम्भ है, और छठे मण्डल में ग्यारह ऋचावाले दूसरे सूक्त का आरम्भ किया जाता है उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि कैसा होता है इस विषय को कहते हैं—

त्वं हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे ।
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥१॥

पदार्थ—हे (विश्ववेदे) प्रकाश करनेवाले (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान (हि) जिस कारण (त्वम्) आप (क्षितवत्) पृथिवी में हुए के समान (यशः) धन अन्न वा कीर्त्ति को (मित्र.) मित्र (न) जैसे वैसे (पत्यसे) पति के सदृश आचरण करते हो और हे (वसो) बसानेवाले (त्वम्) आप (पुष्टिम्) धातु के साम्य से बल आदि के योग को (न) जैसे वैसे (श्रव) अन्न वा श्रवण का (पुष्यसि) पालन करते हो इससे सुखी होते हो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे पृथिवी में उत्पन्न हुए शुष्क वस्तु रस से रहित होते हैं वैसे विचाररहित और धर्म्मरहित जन दयारहित और कोमलतारहित होते हैं ॥२॥

विद्वानों को इस संसार में कैसा वर्त्ताव करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्वां हि ष्मा चर्षणयो यज्ञेभिर्गीर्भिरीळते।
त्वां वाजी यात्यवृको रजस्तूर्विश्वचर्षणिः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे विद्वन्! जो (चर्षणयः) मनुष्य (यज्ञेभि.) अध्ययन अध्यापन आदिको और (गीर्भिः) वाणियों से (त्वाम्) आपकी (हि) निश्चित (ईळते) स्तुति करते (स्मा) ही हैं (रजस्तूः) लोकों का बढ़ानेवाला (विश्वचर्षणिः) सम्पूर्ण विचारशील मनुष्य जिसके वह (अवृकः) चोर आदिकों के संग से रहित (वाजी) वेग युक्त हुआ (त्वाम्) आपको (याति) प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थ—जो मनुष्य जिस विद्वान् का सेवन करते हैं वह उनके लिए विद्या देवे ॥२॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

सजोषस्त्वा दिवो नरो यज्ञस्य केतुमिन्धते।
यद्ध स्य मानुषो जनः सुम्नायुर्जुह्वे अध्वरे ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन्! (सजोषः) तुल्य प्रीति के सेवन करनेवाले (दिवः) सत्य की कामना करते हुए (नरः) नायक जन (यज्ञस्य) न्यायव्यवहार की (केतुम्) बुद्धि को और (त्वा) आपको (इन्धते) प्रकाशित करते हैं और (यत्) जिससे (ह) निश्चय करके (स्य) वह (मानुषः) विचारशील और (सुम्नायुः) सुख की कामना करनेवाले (जनः) प्रसिद्ध मनुष्य आप (अध्वरे) अहिंसारूप में वर्त्तमान होते हो उसकी मैं (जुह्वे) स्पर्द्धा करता हूँ ॥३॥

भावार्थ—उसी का सङ्ग मनुष्यों को करना चाहिये जिसकी धार्मिक विद्वान् जन प्रशंसा करें ॥३॥

ऋधद्यस्ते सुदानवे धिया मर्त्तः शशमते।
ऊती ष बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन्! (यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य (धिया) बुद्धि से (सुदानवे) उत्तम दान करनेवाले (ते) आप के लिए (ऋधत्) उत्तम प्रकार ऋद्धि करे तथा (शशमते) शान्त हो (स) वह (ऊती) रक्षण आदि कर्म से (बृहतः) बड़े (दिवः) कामना करते हुए का (द्विषः) शत्रु का (अंहः) अपराध (न) जैसे वैसे (तरति) पार होता है ॥४॥

भावार्थ—जो मनुष्य धर्मात्मा जनों के लिए सुख देने वाले होवें वे जैसे धार्मिक जन पाप का नाश करते हैं वैसे ही शत्रुओं का उल्लङ्घन करते हैं ॥४॥

समिधा यस्त आहुतिं निशितिं मर्त्यो नशत्।
वयावन्तं स पुष्यति क्षयमग्ने शतायुषम् ॥५॥१॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् जन (यः) जो (मर्त्यः) मनुष्य (समिधा) अग्नि को प्रदीप्त करनेवाले वस्तु से (ते) आपके लिए (निशितिम्) तीक्ष्ण अतितीव्र (आहुतिम्) आहुति को (नशत्) व्याप्त होता है (सः) वह (वयावन्तम्) बहुत पदार्थों से युक्त (क्षयम्) और गृह (शतायुषम्) सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवनेवाले को प्राप्त होकर (पुष्यति) पुष्ट होता है ॥५॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानों की सेवा से उत्तम गुण कर्म और स्वभाववालों को प्राप्त होते हैं वे सुख की वृद्धि और अतिकाल पर्य्यन्त जीवन से युक्त और अच्छे गृहों वाले होकर शरीर और आत्मा से पुष्ट होते हैं ॥५॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि षञ्छुक्र आततः।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! जैसे (ते) उसका (सूरः) सूर्य्य (न) जैसे वैसे (त्वेषः) प्रदीप्त (धूमः) धूम (शुक्रः) शुद्धि का करनेवाला (आततः) व्याप्त (सन्) होता हुआ (दिवि) प्रकाश में (ऋण्वति) चलता है वैसे (हि) ही (त्वम्) आप (द्युता) प्रकाश और (कृपा) कृपा से (पावक) अग्नि के सदृश वर्त्तमान हुए (रोचसे) प्रकाशित होते हो ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान् जनो! जिस अग्नि के धूम से वायु आदि पदार्थ शुद्ध होते हैं और जो सूर्य्य आदि का कारण है उसी की विद्या को प्राप्त हो कर उत्तम गुणों में आप लोग प्रकाशित हूजिये ॥६॥

फिर मनुष्यों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अधा हि विक्ष्वीड्योऽसि प्रियो नो अतिथिः।
रण्वः पुरीव जूर्यः सूनुर्न त्रययाय्यः ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वन् (हि) जिस कारण से आप (विक्षु) प्रजाओं में (ईड्यः) स्तुति करने के योग्य और (नः) हम लोगों के (प्रियः) कामना करने योग्य (पुरीव) रमणीय पुरी के समान (रण्वः) रमण करता हुआ (जूर्यः) जीर्ण (त्रययाय्यः) रक्षक को प्राप्त होनेवाला (सूनुः) सन्तान (न) जैसे वैसे (अतिथिः) नहीं नियत तिथि जिसकी ऐसे (असि) हो जिससे (अधा) इसके अनन्तर सत्कार करने योग्य हो ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे अतिथिजन प्रजाजनों से सत्कार करने योग्य होते और जैसे यहाँ माता और पिता से सन्तान पालन करने योग्य होते हैं वैसे ही धार्म्मिक विद्वान् जन सत्कार करने योग्य होते हैं ॥७॥

फिर विद्वान् को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

क्रत्वा हि द्रोणे अज्यसेऽग्ने वाजी न कृत्व्यः।
परिज्मेव स्वधा गयोऽत्यो न ह्वार्य्यः शिशुः ॥८॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान प्रतापी जन आप (हि) जिस कारण (क्रत्वा) बुद्धि वा कर्म से (वाजी) वेग से युक्त (न) जैसे वैसे (कृत्व्यः) करने योग्य कर्म्म का (परिज्मेव) सब ओर जाने वाला वह वायु (स्वधा) अन्न (गयः) गृह और (अत्यः) मार्ग को व्याप्त होनेवाला (न) जैसे वैसे (ह्वार्य्यः) कुटिल मार्ग में जाने योग्य (शिशुः) बालक (द्रोणे) जाने योग्य मार्ग में (अज्यसे) प्राप्त किये जाते हो इस कारण से कृतकृत्य हो ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो विद्वान् जन सम्पूर्ण अज्ञ जनों के लिए बुद्धि देकर श्रेष्ठ मार्ग में प्राप्त कराते हैं और माता पिता बालक को जैसे वैसे शिक्षा करते हैं वे अन्न आदि से सत्कार करने योग्य होते हैं ॥८॥

फिर मनुष्यों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्वं त्या चिदच्युताग्ने पशुर्न यवसे।
धामा ह यत्ते अजर वना वृश्चन्ति शिक्वसः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (अजर) जरारूप रोग से रहित (अग्ने) विद्वन्! (यत्) जिन (शिक्वसः) प्रकाशमान (ते) आपके गुण (वना) जङ्गलों को जैसे किरण वैसे दोषों का (वृश्चन्ति) काटते हैं और (त्या, चित्) उन्हीं (अच्युता) नाश से रहित (धामा) स्थानों का (यवसे) भूसे आदि के लिए (पशुः) गौ आदि पशु (न) जैसे वैसे (त्वम्) आप (ह) निश्चय प्राप्त होते हो ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जिन अध्यापकों को गौओं को जैसे बछड़े प्राप्त होकर दुग्ध के सदृश विद्या को ग्रहण करते हैं और जो विद्वान् जन अग्नि के सदृश दोषों का नाश करते हैं वे संसार के कल्याण करनेवाले होते हैं ॥९॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वेषि ह्यध्वरीयतामग्ने होता दमे विशाम्।
समृधो विश्पते कृणु जुषस्व हव्यमङ्गिरः ॥१०॥

पदार्थ—हे (अङ्गिरः) अङ्गों के मध्य में रसरूप (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी (विश्पते) प्रजा के स्वामिन् विद्वन् जो (हि) जिस कारण से (होता) दाता आप (अध्वरीयताम्) अपने अध्वर की इच्छा करते हुए (विशाम्) प्रजाजनों के (दमे) गृह में (वेषि) व्याप्त होते हो वह आप (समृधः) उत्तम प्रकार से ऋद्धिवाले (कृणु) करिए और (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य का (जुषस्व) सेवन करिये ॥१०॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! जैसे अग्नि यज्ञ करने वालों और प्रजाओं के कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे ही विद्वान् जन सब के प्रयोजनों को सिद्ध करते हैं ॥१०॥

अब विद्वानों के विषय को कहते हैं—

अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः।
वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नॄन्द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥११॥२॥

पदार्थ—हे (**मित्रमहः**) मित्र आदर करने योग्य जिस के ऐसे (**देव**) दान करनेवाले (**अग्ने**) अग्नि के सदृश वर्त्तमान जन आप (**नः**) हम लोगों के (**देवात्**) विद्वान् दाता जनों को (**रोदस्योः**) अन्तरिक्ष और पृथिवी के मध्य मे (**सुमतिम्**) श्रेष्ठ बुद्धि का (**अच्छा**) उत्तम प्रकार (**वोचः**) उपदेश करें जिस कारण से (**स्वस्तिम्**) सुख वा शान्ति तथा (**सुक्षितिम्**) उत्तम पृथिवी वा उत्तम निवास को (**इषः**) कामना करते हुए और (**नॄन्**) नायक जनो को (**वीहि**) व्याप्त हूजिये और (**द्विषः**) द्वेष करनेवालों का त्याग करो तथा (**दुरिता**) दुःख के प्राप्त करानेवाले (**अंहांसि**) पापो के हम लोग (**तरेम**) पार होवें (**ता**) उनको (**तरेम**) फिर भी पार हों और (**तव**) आपके (**अवसा**) रक्षण आदि से (**तरेम**) पार होवें ॥११॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानो को मिल कर और बल को प्राप्त हो कर शत्रुओं को जीत कर दुःखरूप सागर से पार हों ॥११॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह द्वितीय सूक्त और द्वितीय वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथाष्टर्चस्य तृतीयस्य सूक्तस्य भारद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्निर्देवता ।
१,३,४ त्रिष्टुप् । २,५,६,७ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।
भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब आठ ऋचावाले तीसरे सूक्त का आरम्भ है, इस मे फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

अग्ने स क्षेषदृतपा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे ।
यं त्वं मित्रेण वरुणः सजोषा देव पासि त्यजसा मर्तमंहः ॥१॥

पदार्थ—हे (**देव**) सुख के देनेवाले (**अग्ने**) बिजुली के सदृश तेजस्वी विद्वान् जैसे (**ऋतपाः**) सत्य का पालन करने और (**ऋतेजाः**) सत्य मे प्रकट होनेवाला सूर्य्य (**उरु**) बड़े (**ज्योतिः**) प्रकाश को (**नशते**) प्राप्त होता है वैसे (**देवयुः**) विद्वानो की कामना करता हुआ (**ते**) आपके (**मित्रेण**) मित्र के सहित (**वरुणः**) श्रेष्ठ (**सजोषाः**) तुल्य प्रीति का सेवन करनेवाला वर्त्तमान है और (**यम्**) जिस (**अंहः**) अपराधी (**मर्तम्**) मनुष्य की (**त्वम्**) आप (**त्यजसा**) त्याग से (**पासि**) रक्षा करते हो (**सः**) वह पुण्यात्मा होता हुआ (**क्षेषत्**) निवास करता है ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ईश्वर से रचा गया सूर्य्य सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है वैसे ही विद्वानो के सङ्ग से हुए विद्वान् सब के आत्माओं को प्रकाशित करते है और जैसे सूर्य्य अन्धकार का नाश करके दिन का प्रकट करता है वैसे ही विद्या को प्राप्त हुआ धार्मिक विद्वान् अविद्या का नाश करके विद्या का प्रकट करता है ॥१॥

ईजे यज्ञेभिः शशमे शमीभिर्ऋधद्वारायाग्नये ददाश ।
एवा चन तं यशसामजुष्टिर्नांहो मर्तं नशते न प्रदृप्तिः ॥२॥

पदार्थ—जो विद्वान् (**यज्ञेभिः**) विद्वानो की सेवा और सत्य भाषण आदिकों के साथ (**ईजे**) उत्तम प्रकार मिलता है और (**शमीभिः**) शुभकर्म्मों से (**शशमे**) शान्त होता है (**ऋधद्वाराय**) उत्तम प्रकार बढ़ानेवाला सत्य स्वीकार करने योग्य व्यवहार जिसका उस (**अग्नये**) अग्नि के सदृश वर्त्तमान भूपाल के लिए (**ददाश**) देता है (**तम्**) उसको (**एव**) ही (**चन**) निश्चय से (**मर्तम्**) मनुष्य को और (**यशसाम्**) धनों वा अन्नों का (**अजुष्टिः**) असेवन (**न**) जैसे वैसे (**अंहः**) अपराध (**न**) नहीं (**नशते**) प्राप्त होता है और (**प्रदृप्तिः**) अत्यन्त मोह प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो सत्यभाषण आदि धर्म्म के अनुष्ठान करनेवाले, योगी, अभय देनेवाले हैं वे पाप और मोह का त्याग करके विज्ञान को प्राप्त होकर सुखी होते हैं ॥२॥

फिर विद्वानों की बुद्धि कैसी होती है इस विषय को कहते हैं—

सूरो न यस्य दृशतिररेपा भीमा यदेति शुचतस्त आ धीः ।
हेषस्वतः शुरुधो नायमक्तोः कुत्रा चिद्रण्वो वसतिर्वनेजाः ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् (**यस्य**) जिन (**हेषस्वतः**) प्रसिद्ध शब्द विद्यमान जिसके उन (**शुचतः**) शोक से व्याकुल (**ते**) आपका (**यत्**) जो (**दृशतिः**) दर्शन और (**अरेपाः**) पाप से रहित और (**भीमा**) भयकारक (**धीः**) बुद्धि (**सूरः**) सूर्य्य के (**न**) जैसे वैसे (**आ, एति**) प्राप्त होती है उसका (**अयम्**) यह (**शुरुधः**) अन्धकार को नाश करनेवाले तेज का धारण करनेवाला सूर्य्य (**अक्तोः**) रात्रि का दूर करनेवाला (**न**) जैसे वैसे (**कुत्रा, चित्**) कहीं भी (**रण्वः**) सुन्दर (**वनेजाः**) किरणों के समुदाय मे उत्पन्न होने और (**वसतिः**) निवास करनेवाला वर्त्तमान है उसकी हम लोग सेवा करें ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जिस विद्वान् की सूर्य्य की ज्योति वा बिजुली के सदृश बुद्धि है वही सम्पूर्ण जितना योग्य उतने विज्ञान को प्राप्त होता है ॥३॥

फिर विद्वानों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तिग्मं चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा ।
विजेहमानः परशुर्न जिह्वां द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जिस (**अस्य**) इस विद्वान् के (**तिग्मम्**) तीव्र (**महि**) बड़े (**वर्पः**) रूप का (**यमसानः**) नियम करता और (**विजेहमानः**) शब्द करता हुआ (**अश्वः**) शीघ्र चलनेवाला घोड़ा (**न**) जैसे वैसे (**आसा**) मुख से (**भसत्**) प्रकाशित करता है । और (**परशुः**) कुठार (**न**) जैसे वैसे (**जिह्वाम्**) वाणी को (**द्रविः**) द्रवी होकर उच्चारण की क्रिया (**न**) जैसे वैसे (**द्रावयति**) गीला करता है और (**दारु**) काष्ठ को (**धक्षत्**) जलावे उसको (**चित्**) निश्चय से हम लोग (**एम**) प्राप्त होवें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे विद्वन् ! जैसे उत्तम प्रकार से शिक्षित घोड़ा मनुष्य को मार्ग में पहुँचाता है वैसे धर्ममार्ग को हम लोगो को पहुँचाइये और जैसे बढ़ई परशु से काष्ठ को काटता है वैसे हम लोगो के दोषों को काटिए और जैसे तालु मे उत्पन्न आर्द्ररस जिह्वा को प्राप्त होता है वैसे विद्या के रस को प्राप्त कराइये तथा जैसे अग्नि काष्ठों को जलाता है वैसे ही हमारे दुर्व्यसनों को जलाइये ॥ ४ ॥

फिर मनुष्य कैसा वर्त्ताव करे इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

स इदस्तेव प्रति धादसिष्यञ्छिशीत तेजोऽयसो न धाराम् ।
चित्रध्रजतिररतिर्यो अक्तोर्वेर्न द्रुषद्वा रघुपत्मजंहाः ॥५॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यः**) जो (**चित्रध्रजतिः**) विचित्रगमनवाला (**अरतिः**) नहीं रमण करता हुआ (**अक्तोः**) रात्रि से और (**वेः**) पक्षी से (**न**) जैसे वैसे (**द्रुषद्वा**) द्रवीभूत आदि पदार्थों मे स्थित होने और (**रघुपत्मजंहाः**) लघुपतन का त्याग करनेवाला ही प्रकट होता है (**सः**) वह अग्नि (**अस्तेव**) फूंकनेवाले के सदृश (**असिष्यन्**) बन्धन को नहीं प्राप्त होता हुआ (**अयसः**) सुवर्ण के (**न**) जैसे (**तेजः**) तेज को वैसे (**धाराम्**) वाणी को (**प्रति, धात्**) धारण करता है वह (**इत्**) ही तेज को (**शिशीत**) तीक्ष्ण करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो मनुष्य अग्नि का बोध और तीक्ष्ण करके युद्ध आदि कार्यों मे प्रयुक्त करते है तो पक्षि के सदृश आकाश मे जाने को समर्थ होवें ॥ ५ ॥

स ईं रेभो न प्रति वस्त उस्राः शोचिषा रारपीति मित्रमहाः ।
नक्तं य ईमरुषो यो दिवा नॄनमर्त्यो अरुषो यो दिवा नॄन् ॥६॥

पदार्थ—(**यः**) जो (**अरुषः**) रक्त गुण के सहित वर्त्तमान (**नक्तम्**) रात्रि को (**ईम्**) सब ओर से (**यः**) जो (**अमर्त्यः**) अपने रूप से मृत्युरहित (**दिवा**) कामना से (**नॄन्**) नायक मनुष्यों को (**यः**) जो (**अरुषः**) मर्मस्थलों मे वर्त्तमान हुआ (**दिवा**) कामना वा प्रीति के साथ (**नॄन्**) नायक जनो के साथ मिलता है (**सः**) वह (**ईम्**) जल और (**रेभः**) आदर करने योग्य विद्वान् वा विद्वानो का सत्कार करनेवाला (**न**) जैसे वैसे (**शोचिषा**) (**दीप्ति**) के सहित वर्त्तमान (**उस्राः**) किरणों को (**प्रति, वस्ते**) आच्छादित करता है और (**मित्रमहाः**) मित्रों का आदर करनेवाला (**रारपीति**) अत्यन्त शब्द करता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य जल का आकर्षण कर और उस जल को वर्षा के प्राणियों के लिए सुख देता है वैसे विद्वान् पुरुष गुणों का आकर्षण कर और गुणों को देकर सब जिज्ञासु जनो को सुख देता है ॥६॥

फिर वह कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

दिवो न यस्य विधतो नवीनोद्वृषा रुक्ष ओषधीषु नूनोत् ।
घृणा न यो ध्रजसा पत्मना यन्ना रोदसी वसुना दं सुपत्नी ॥७॥

पदार्थ—(**यस्य**) जिस वैद्य के (**दिवः**) प्रकाश का (**न**) जैसे वैसे (**विधतः**) विधान करते हुए का (**वृषा**) बलिष्ठ (**रुक्षः**) तेजस्वी जन (**नवीनोत्**) अत्यन्त स्तुति युक्त होता है तथा (**ओषधीषु**) ओषधियों के निमित्त (**नूनोत्**) अत्यन्त स्तुति करता है और (**यः**) जो (**घृणा**) दीप्ति (**न**) जैसे वैसे (**ध्रजसा**) गमन और (**पत्मना**) उद्गमन से (**वसुना**) और धन से (**सुपत्नी**) सुन्दर स्वामी वाली (**रोदसी**) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (**यन्**) प्राप्त होनेवाला वह (**दम्**) इन्द्रियों के निग्रह करनेवाले को (**आ**) सब ओर से अत्यन्त स्तुति करता है वह अग्नि सब से जानने के योग्य है ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है जो अग्नि पृथिवी आदिकों मे पूर्ण हुआ घिसने आदि से प्रकाशित होवे वह मनुष्यों के अनेक प्रकार के कार्यों को करनेवाला होता है ॥ ७ ॥

अब कैसा मनुष्य राजा होने के योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

धायोभिर्वा यो युज्येभिरर्कैर्विद्युन्न दविद्योत्स्वेभिः शुष्मैः ।
शर्धो वा यो मरुतां ततक्ष ऋभुर्न त्वेषो रभसानो अद्यौत् ॥८॥४॥

पदार्थ—हे (**विद्वन्**) (**यः**) जो (**धायोभिः**) धारण करनेवालों वा गुणों से और (**युज्येभिः**) युक्त करने योग्य (**स्वेभिः**) अपने (**शुष्मैः**) बलों और गुणों से (**वा**) वा (**विद्युत्**) बिजुली (**न**) जैसे वैसे अपने (**अर्कैः**) सत्कारों के योग्य कारणों से (**द्यावद्यौत्**) प्रकाशित होता है (**यः**) जो (**वा**) वा (**मरुताम्**) मनुष्यों के (**शर्धः**) बल को (**ऋभुः**) बुद्धिमान जन (**न**) जैसे वैसे (**ततक्ष**) तीक्ष्ण करता है तथा (**त्वेषः**) प्रकाशयुक्त और (**रभसानः**) वेगयुक्त जैसे (**अद्यौत्**) प्रकाशित होता है वही राजा संस्थापित करने योग्य है ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो बिजुली के सदृश प्रतापी, बलवान्, पदार्थों के संयोग और वियोग की विद्या में चतुर, बुद्धिमान्, विद्वान् धर्मात्मा इन्द्रियों को जीतनेवाला और प्रजापालनप्रिय क्षत्रिय होवे वही राजा होने के योग्य होवे ॥ ८ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तीसरा सूक्त और चौथा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथाष्टर्चस्य चतुर्थस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्निर्देवता ।
१ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २, ५, ६, ७ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः ।
३, ४, निचृत्पङ्क्तिः । ८ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।
अब आठ ऋचावाले चौथे सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

यथा होतर्मनुषो देवताता यज्ञेभिः सूनो सहसो यजासि ।
एवा नो अद्य समना समानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान् ॥१॥

पदार्थ—हे (**सहसः**) बलवान् के (**सूनो**) सन्तान और (**होतः**) दान करनेवाले (**उशन्**) कामना करते हुए (**अग्ने**) अग्नि के समान विद्वन् (**यथा**) जैसे (**मनुषः**) मनुष्य आप (**यज्ञेभिः**) मिले हुए साधनों और उपसाधनों से (**देवताता**) श्रेष्ठ यज्ञ में (**यजासि**) यजन करें वैसे आप (**अद्य**) इस समय (**समानान्**) सदृशों और (**उशतः**) कामना करते हुए (**नः**) हम (**देवान्**) विद्वानों को (**समना**) संग्राम में (**एवा**) ही (**यक्षि**) उत्तम प्रकार मिलिए ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् यज्ञ के करनेवाले जन अङ्ग और उपाङ्गों के सहित साधनों से यज्ञ को शोभित करते हैं वैसे ही शूरवीर बलवान् योद्धा और विद्वान् जनों से राजा संग्राम को जीतें ॥ १ ॥

फिर जगदीश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

स नो विभावा चक्षणिर्न वस्तोरग्निर्वन्दारु वेद्यश्चनो धात् ।
विश्वायुर्यो अमृतो मर्त्येषूषर्भुद्भूदतिथिर्जातवेदाः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यः**) जो (**वस्तोः**) दिन और (**चक्षणिः**) प्रकाशक सूर्य और (**अग्निः**) अग्नि के सदृश स्वयं प्रकाशयुक्त (**न**) जैसे वैसे (**नः**) हम लोगों के बीच (**विभावा**) अत्यन्त प्रकाशवाला और (**वेद्यः**) जानने योग्य (**विश्वायुः**) पूर्णावस्थावाला (**मर्त्येषु**) मरणधर्मयुक्त मनुष्यों में (**अमृतः**) नाशरहित और (**उषर्भुत्**) प्रातःकाल में जाना जाता है ऐसा और (**अतिथिः**) जिसके प्राप्त होने की कोई तिथि विद्यमान नहीं उसके समान वर्त्तमान और (**जातवेदाः**) उत्पन्न हुआ में विद्यमान वा उत्पन्न हुए पदार्थों को जाननेवाला (**वन्दारु**) प्रशंसा करने योग्य (**चनः**) अन्न आदि को (**धात्**) धारण करता है (**सः**) वह परमेश्वर हम लोगों का मङ्गल करनेवाला (**भूत्**) हो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर सूर्य के सदृश अपने से प्रकाशित, जाननेयोग्य, अजर, अमर, अतिथि के सदृश सत्कार करने योग्य और सर्वत्र व्याप्त है उसकी सब उपासना करें ॥ २ ॥

द्यावो न यस्य पनयन्त्यभ्वं भासांसि वस्ते सूर्यो न शुक्रः ।
वि य इनोत्यजरः पावकोऽश्नस्य चिच्छिश्नथत्पूर्व्याणि ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**द्यावः**) कामना करते हुए विद्वान् जन (**न**) जैसे वैसे जन (**यस्य**) जिस परमेश्वर की (**अभ्वम्**) बड़ी महिमा की (**पनयन्ति**) स्तुति कराते हैं और (**सूर्यः**) सूर्य (**न**) जैसे वैसे (**शुक्रः**) शुद्ध पवित्र वा बलिष्ठ जन (**भासांसि**) तेजों को (**वस्ते**) आच्छादित करता है और (**यः**) जो (**अजरः**) जरादोष से रहित (**पावकः**) पवित्र और सबको पवित्र करनेवाला (**वि, इनोति**) विशेष व्याप्त होता है और (**अश्नस्य**) व्यापक के मध्य में (**पूर्व्याणि**) पहिले निर्मित वस्तुओं का (**चित्**) भी (**शिश्नथत्**) प्रलय करता है वही जगदीश्वर जानने योग्य है ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर प्रकाशकों का प्रकाशक नित्यों का नित्य और चेतनों का चेतन है उसी का भजन करो ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वद्मा हि सूनो अस्यद्मसद्वा चक्रे अग्निर्जनुषाज्मान्नम् ।
स त्वं न ऊर्जसन ऊर्जं धा राजेव जेरवृके क्षेष्यन्तः ॥४॥

पदार्थ—हे (**सूनो**) संपूर्ण जगत् के रचनेवाले (**वद्मा**) कहने और (**अद्मसद्वा**) भोग्य पदार्थों में प्राप्त रहनेवाले (**अग्निः**) पवित्र (**जनुषा**) जन्म से (**अज्म**) प्राप्त होने और (**अन्नम्**) खाने योग्य पदार्थों को प्राप्त हुए (**असि**) हो और शुद्ध (**चक्रे**) करते हो (**सः**) वह (**हि**) निश्चय से (**त्वम्**) आप (**नः**) हम लोगों के लिए (**ऊर्जसने**) पराक्रम के प्रक्षेपण में (**राजेव**) जैसे प्रकाशमान राजा वैसे (**ऊर्जम्**) पराक्रम को (**धाः**) धारण करिये (**अवृके**) चोर से रहित के (**अन्तः**) मध्य में (**जेः**) जीतिए और (**क्षेषि**) निवास करिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो विद्वान् जन हैं वे ईश्वर के सदृश पक्षपात से रहित और धर्ममार्ग में निवास करते हुए परमेश्वर का भजन करें ॥ ४ ॥

नितिक्ति यो वारणमन्नमत्ति वायुर्न राष्ट्र्यत्येत्यक्तून् ।
तुर्याम यस्त आदिशामरातीरत्यो न ह्रुतः पततः परिह्रुत् ॥५॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यः**) जो विद्वान् (**नितिक्ति**) अत्यन्त तीक्ष्ण किये (**वारणम्**) स्वीकार करने और (**अन्नम्**) खाने योग्य पदार्थ को (**अत्ति**) भक्षण करता और (**वायुः**) पवन (**न**) जैसे वैसे (**अक्तून्**) प्रसिद्ध पदार्थों को (**अति, एति**) व्याप्त होता है और (**यः**) जो (**पततः**) पतनशील (**ते**) आपका (**ह्रुतः**) कुटिलता को प्राप्त हुआ (**अत्यः**) मार्ग को व्याप्त हुए घोड़े के (**न**) समान (**परिह्रुत्**) सब ओर से कुटिल गमन करनेवाला है और जिसके हम लोग (**आदिशाम्**) सब प्रकार से दिये हुओं के (**अरातीः**) शत्रुओं का (**तुर्याम**) नाश करें और (**राष्ट्री**) ईश्वर जैसे वैसे न्याय में वर्त्ताव करें उसका हम लोग सेवन करें ॥५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो शुद्ध खाने और पीने योग्य पदार्थ का सेवन करता है वायु के सदृश बलिष्ठ और ईश्वर के सदृश पक्षपात से रहित होकर न्याय की अपेक्षा से विपरीत दशा को प्राप्त हुओं का मारनेवाला हो उसी को राजा मानो ॥५॥

आ सूर्यो न भानुमद्भिरर्कैरग्ने ततन्थ रोदसी वि भासा ।
चित्रो नयत्परि तमांस्यक्तः शोचिषा पत्मन्नौशिजो न दीयन् ॥६॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के समान वर्त्तमान आप (**भानुमद्भिः**) बहुत प्रकाशवाले (**अर्कैः**) वज्र के सदृश छेदक किरणों से (**सूर्यः**) सूर्य के (**न**) जैसे वैसे (**भासा**) प्रकाश से (**वि, ततन्थ**) अत्यन्त विस्तार युक्त करते हो और जैसे (**चित्रः**) अनेक प्रकार के वर्णों से अद्भुत सूर्य (**रोदसी**) अन्तरिक्ष और पृथिवी को प्रकाशित करता और (**शोचिषा**) प्रकाश से (**अक्तः**) प्रसिद्ध हुआ (**तमांसि**) अन्धकारों को (**परि**) सब ओर से (**नयत्**) दूर करता है वैसे (**पत्मन्**) चलते हैं जन जिसमें उस मार्ग में (**दीयन्**) चलते हुए (**औशिजः**) कामना करते हुए के पुत्र के (**न**) समान सत्य मार्ग में चलते हुए आप धर्म कर्म का (**आ**) सब प्रकार से विस्तार करें ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य अपने प्रकाश से समीप में वर्त्तमान पदार्थों को प्रकाशित करके रात्रि का निवारण करता है वैसे ही उत्तम गुणों को प्रकाशित करके अज्ञानान्धकार का निवारण करिये ॥ ६ ॥

अन्नादि देनेवाले प्रशंसनीय होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने ।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥७॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के समान वर्त्तमान जो आप (**नः**) हम लोगों के (**महि**) बड़े वचन को (**श्रोषि**) सुनते हैं उन (**अर्कशोकैः**) अन्न आदिकों के शोधनों से (**मन्द्रतमम्**) अत्यन्त आनन्द देनेवाले (**त्वाम्**) आपका हम लोग (**ववृमहे**) स्वीकार करते हैं और हे (**नृतमाः**) अत्यन्त अग्रणी जनो आप लोग (**हि**) जिस कारण से जैसे (**देवता**) जगदीश्वर सम्पूर्ण जगत् को प्रसन्न करता है वैसे (**शवसा**) बल और (**राधसा**) धन से (**वायुम्**) प्राण आदि को (**पृणन्ति**) सुखी करते हैं उन (**त्वा**) आपका (**इन्द्रम्**) बिजुली का (**न**) जैसे वैसे हम लोग स्वीकार करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो अन्नादिकों से अत्यन्त आनन्द देनेवाले मनुष्यों में उत्तम मनुष्य सम्पूर्ण संसार को उत्तम बुद्धियुक्त करते हैं वे सत्कार करने के योग्य होते हैं ॥ ७ ॥

अब विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

नू नो अग्नेऽवृकेभिः स्वस्ति वेषि रायः पथिभिः पर्ष्यंहः ।
ता सूरिभ्यो गृणते रासि सुम्नं मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥८॥६॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वन् जो आप (**अवृकेभिः**) चोरों से भिन्न जनों के साथ (**नः**) हम लोगों को (**स्वस्ति**) सुख (**वेषि**) व्याप्त करते हो तथा (**पथिभिः**) उत्तम मार्गों से (**रायः**) धनों का (**नू**) शीघ्र (**पर्षि**) पालन करते हो और (**सूरिभ्यः**) विद्वानों के लिए और (**गृणते**) स्तुति करते हुए के लिए (**सुम्नम्**) सुख को (**रासि**) देते हो तथा (**अंहः**) अपराध को दूर करते हो उन आपके साथ (**ता**) उक्त पदार्थों को प्राप्त होकर (**शतहिमाः**) सौ वर्ष पर्यन्त (**सुवीराः**) श्रेष्ठ वीर हम लोग (**मदेम**) आनन्द करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! चोरी और चोर के सङ्ग और अन्याय से पाप के आचरण का त्याग करके और सुख को प्राप्त होकर सौ वर्ष युक्त होओ ॥ ८ ॥

इस सूक्त में अग्नि, ईश्वर और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चौथा सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तर्चस्य पञ्चमस्य सूक्तस्य भारद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्निर्देवता १, ४, त्रिष्टुप् । २, ५, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । छन्दः । धैवतः स्वरः । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले पञ्चम सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को क्या ग्रहण करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

हुवे वः सूनुं सहसो युवानमद्रोघवाचं मतिभिर्यविष्ठम् ।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अध्रुक् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यः**) जो (**प्रचेताः**) उत्तम बुद्धियुक्त (**पुरुवारः**) बहुतों से स्वीकार किया गया (**अध्रुक्**) नहीं द्रोह करनेवाला जन (**विश्ववाराणि**) संपूर्ण जनों से स्वीकार करने योग्य (**द्रविणानि**) द्रव्यों को (**इन्वति**) व्याप्त होता है उस (**मतिभिः**) मनुष्यों वा बुद्धियों के सहित वर्तमान (**सहसः**) बल के (**सूनुम्**) सन्तान (**युवानम्**) युवावस्था को प्राप्त (**अद्रोघवाचम्**) द्रोहरहित वाणी जिस की ऐसे (**यविष्ठम्**) अतिशय युवावस्था को प्राप्त हुए को (**वः**) आप लोगों के लिए मैं (**हुवे**) ग्रहण करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोगों को चाहिए कि जो पक्षपात से रहित वाद-युक्त, द्रोह से रहित और बुद्धिमानों के संग का सेवन करनेवाले और बहुत विद्वानों से आदर किये गये और ब्रह्मचर्य्य से पूर्ण युवावस्थावाले विद्वान् हों उन्हीं का उपदेश ग्रहण करें ॥ १ ॥

मनुष्यों को किसके होने पर क्या प्राप्त होना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

त्वे वसूनि पुर्वणीक होतर्दोषा वस्तोरेरिरे यज्ञियासः ।
क्षामेव विश्वा भुवनानि यस्मिन्त्सं सौभगानि दधिरे पावके ॥२॥

पदार्थ—हे (**पुर्वणीक**) अनेक सेनाओं से युक्त (**होतः**) दान करनेवाले राजन् (**यस्मिन्**) जिन (**पावके**) अग्नि के सदृश पवित्र (**त्वे**) आप के रक्षक रहने पर (**यज्ञियासः**) यज्ञ के अनुष्ठान करने के योग्य प्रजाजन (**दोषा**) रात्रि में और (**वस्तोः**) दिन में (**क्षामेव**) जैसे पृथिवी वैसे (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**भुवनानि**) लोकों में प्रकट और पञ्चभूत अधिकरण जिनके उन प्राणियों की और (**वसूनि**) धनों की (**आ, ईरिरे**) प्रेरणा करते और (**सौभगानि**) श्रेष्ठ ऐश्वर्य्यों के भावों को (**सम्, दधिरे**) सम्यक् धारण करते हैं उनका हम लोग सत्कार करें ॥ २ ॥

भावार्थ—राजा के रक्षक रहने पर ही प्रजाजन प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होते और ऐश्वर्य्य को प्राप्त होकर सुखयुक्त होते हैं ॥ २ ॥

त्वं विक्षु प्रदिवः सीद आसु क्रत्वा रथीरभवो वार्याणाम् ।
अत इनोषि विधते चिकित्वो व्यानुषग्जातवेदो वसूनि ॥३॥

पदार्थ—हे (**चिकित्वः**) शुद्ध बहुत बुद्धि से युक्त और (**जातवेदः**) उत्पन्न हुआ विज्ञान जिनको ऐसे हे राजन् ! जिस कारण (**त्वम्**) आप (**आनुषक्**) संग करनेवाले होते हुए (**वसूनि**) धनों की (**विधते**) सत्कार करनेवाले के लिए (**वि, इनोषि**) प्रेरणा करते हो और (**आसु**) इन (**विक्षु**) प्रजाओं में (**क्रत्वा**) बुद्धि से (**वार्य्याणाम्**) स्वीकार करने योग्यों के (**रथीः**) बहुत रथोंवाले (**अभवः**) होते हो (**अतः**) इस कारण से (**प्रदिवः**) उत्तम प्रकाश के मध्य में (**सीद**) स्थित होइये ॥ ३ ॥

भावार्थ—वही राजा होने के योग्य होवे जो राजविद्या को अच्छे प्रकार जाने ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने यो अन्तरो मित्रमहो वनुष्यात् ।
तमजरेभिर्वृषभिस्तव स्वैस्तपा तपिष्ठ तपसा तपस्वान् ॥४॥

पदार्थ—हे (**तपिष्ठ**) अत्यन्त तप करनेवाले और (**मित्रमहः**) बड़े मित्रों से युक्त (**अग्ने**) विद्वन् (**यः**) जो (**सनुत्यः**) निश्चित अन्तर्हित अर्थात् मध्य के सिद्धान्तों में प्रकट हुआ अथवा श्रेष्ठ (**नः**) हम लोगों का (**अभिदासत्**) चारों ओर से नाश करता है और (**यः**) जो (**अन्तरः**) भिन्न हम लोगों से (**वनुष्यात्**) याचना करे (**तम्**) उसको (**अजरेभिः**) वृद्धावस्था से रहित (**वृषभिः**) बलिष्ठ युवा (**तव**) आप के (**स्वैः**) अपने जनों के साथ (**तपा**) तपयुक्त करो वा तपस्वी होओ और (**तपसा**) ब्रह्मचर्य्य और प्राणायामादि कर्म्म से (**तपस्वान्**) बहुत तपयुक्त हूजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो आप लोगों से याचना करे उस सुपात्र के लिए यथाशक्ति दान करिये । और जो पीड़ा देवें उसको पीड़ित करो और तपस्वी होकर धर्म का ही आचरण करो ॥ ४ ॥

यस्ते यज्ञेन समिधा य उक्थैरर्केभिः सूनो सहसो ददाशत् ।
स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवसा वि भाति ॥५॥

पदार्थ—हे (**सहसः**) बलवान् के (**सूनो**) पुत्र और (**अमृत**) मरण-धर्म से रहित (**यः**) जो (**यज्ञेन**) विद्वानों के सत्कार नामक यज्ञ और (**समिधा**) सत्य के प्रकाशक वा ईंधन से तथा (**यः**) जो (**अर्केभिः**) आदर करनेयोग्य और (**उक्थैः**) कहने के योग्य पदार्थों से (**ते**) आप के लिए (**ददाशत्**) देता है (**सः**) वह (**मर्त्येषु**) मनुष्यों में (**प्रचेताः**) उत्तम ज्ञानवान् (**राया**) धन (**द्युम्नेन**) यश और (**श्रवसा**) अन्न वा श्रवण से (**वि, भाति**) प्रकाशित होता है इस प्रकार विशेष करके जानो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो प्रशंसित कर्म्म और गुणों के सहित जन इस संसार में प्रयत्न करते हैं वे विद्या, यश और धन से युक्त होकर संसार में प्रसिद्ध होते हैं ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

स तत्कृधीषितस्तूयमग्ने स्पृधो बाधस्व सहसा सहस्वान् ।
यच्छस्यसे द्युभिरक्तो वचोभिस्तज्जुषस्व जरितुर्घोषि मन्म ॥६॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के सदृश प्रतापयुक्त (**यत्**) जो आप (**द्युभिः**) प्रकाशमान दिनों से (**अक्तः**) रात्रि जैसे वैसे (**शस्यसे**) स्तुति किये जाते हो वह आप (**वचोभिः**) वचनों से (**जरितुः**) स्तुति करनेवाले का (**घोषि**) वाणी जिसमें ऐसा (**मन्म**) विज्ञान है (**तत्**) उसका (**जुषस्व**) सेवन करो (**सः**) वह (**सहस्वान्**) सहन करनेवाले आप (**सहसा**) बल से (**स्पृधः**) स्पर्धा करते हैं जिन में उन संग्रामसेनाओं की (**बाधस्व**) बाधा करने हो तथा (**तूयम्**) शीघ्र (**इषितः**) प्रेरित हुए (**तत्**) उसको (**कृधि**) करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् और ईश्वर से प्रेरित हुए शीघ्र आलस्य का त्याग कर के दिन रात्रि धर्म्म, अर्थ और मोक्ष की सिद्धि के लिए प्रयत्न करते हैं वे योग्य होकर दुःखों को बाधित करते हैं ॥ ६ ॥

मनुष्य को किसके संग क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्याम रयिं रयिवः सुवीरम् ।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते ॥७॥७॥

पदार्थ—हे (**अजर**) वृद्धावस्थारहित (**रयिवः**) बहुत धन और (**अग्ने**) विद्या से युक्त राजन् (**तव**) आप के (**ऊती**) रक्षण आदि कर्म्म से हम लोग (**तम्**) उस (**कामम्**) मनोरथ को (**अश्याम**) प्राप्त होवें और (**सुवीरम्**) उत्तम वीरों की प्राप्ति करनेवाले (**रयिम्**) धन को (**अश्याम**) प्राप्त होवें तथा (**वाजयन्तः**) जनाते हुए हम लोग (**वाजम्**) अन्न आदि को (**अभि**) सन्मुख (**अश्याम**) प्राप्त होवें और (**ते**) आपके (**अजरम्**) जीर्ण होने से रहित (**द्युम्नम्**) यश वा धन को (**अश्याम**) प्राप्त होवें ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को ऐसी इच्छा करनी चाहिए कि हम लोग यथार्थ वक्ता जन के उपदेश से इच्छा की सिद्धि, बहुत धन, वीर पुरुषों और नहीं नष्ट होनेवाले यश को प्राप्त होवें ॥ ७ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह पाँचवाँ सूक्त और सातवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तर्चस्य षष्ठस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्निर्देवता । १, २, ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ६, ७ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले छठे सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अब मनुष्यों को सन्तान किस प्रकार उत्पन्न करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

प्र नव्यसा सहसः सूनुमच्छा यज्ञेन गातुमव इच्छमानः ।
वृश्चद्वनं कृष्णयामं रुशन्तं वीती होतारं दिव्यं जिगाति ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यज्ञेन**) संगतिरूप यज्ञ से (**गातुम्**) पृथिवी और (**अवः**) रक्षण की (**इच्छमानः**) इच्छा करता हुआ (**नव्यसा**) अत्यन्त नवीन व्यवहार से (**सहसः**) बलवान् के (**सूनुम्**) सन्तान को और (**कृष्णयामम्**) आकर्षित किया मार्ग जिसने ऐसे (**रुशन्तम्**) हिंसा करते हुए (**वृश्चद्वनम्**) काटता है वह वन जिसमें उसके समान (**वीती**) व्याप्ति से (**होतारम्**) देनेवाले (**दिव्यम्**) शुद्ध व्यवहारों में प्रकट हुए को (**अच्छ**) अच्छे प्रकार (**प्र, जिगाति**) प्राप्त होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! आप लोग ब्रह्मचर्य्य से बलिष्ठ होकर सन्तानों को उत्पन्न करो जिससे रोगरहित, बलयुक्त और उत्तम स्वभावयुक्त सन्तान होकर आप लोगों को निरन्तर सुखयुक्त करें ॥ १ ॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

स श्वि॒तान॒स्त॑न्य॒तू रो॑च॒नस्था॑ अ॒जरे॑भि॒र्नान॑दद्भि॒र्यवि॑ष्ठः ।
यः पा॑व॒कः पु॑रु॒तमः॑ पु॒रूणि॑ पृ॒थून्य॒ग्निर॑नु॒याति॒ भर्व॑न् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यः**) जो (**यविष्ठः**) अत्यन्त युवावस्था से युक्त जैसे वैसे अत्यन्त बली (**पावकः**) पवित्र और पवित्र करनेवाला (**पुरुतमः**) अतीव बहुरूप (**श्वितानः**) शुभ्रवर्ण (**अजरेभिः**) जीर्णपन आदि रोगरहित (**नानदद्भिः**) निरन्तर गर्जनाओं से (**तन्यतुः**) बिजुलीरूप (**रोचनस्थाः**) दीपन में स्थिर (**अग्निः**) अग्नि (**भर्वन्**) दहन करता हुआ (**पुरूणि**) बहुत (**पृथूनि**) विस्तीर्णों के (**अनुयाति**) पश्चात् जाता है (**सः**) वह आप लोगों का उत्तम प्रकार प्रयोग करने योग्य है ॥ २ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! जो आप अंग और उपांग के सहित बिजुली की विद्या को जानें तो बहुत सुख को प्राप्त होवें ॥ २ ॥

वि ते॒ विष्व॒ग्वात॑जूतासो अग्ने॒ भामा॑सः शुचे॒ शुच॑यश्चरन्ति ।
तु॒वि॒म्र॒क्षासो॑ दि॒व्या नव॑ग्वा॒ वना॑ वनन्ति धृष॒ता रु॒जन्तः॑ ॥३॥

पदार्थ—हे (**शुचे**) पवित्र विद्वन् (**ते**) आप के जो (**विष्वक्**) सब का आदर करनेवाला और (**वातजूतासः**) वायु के सदृश वेगयुक्त (**भामासः**) क्रोध (**शुचयः**) पवित्र (**वि, चरन्ति**) विशेष करके चलते हैं (**तुविम्रक्षासः**) बहुतों के साथ मिले हुए (**दिव्याः**) अन्तरिक्ष में हुए (**नवग्वाः**) नवीन गमनवाले (**धृषता**) प्रगल्भता से (**रुजन्तः**) शत्रुओं को भग्न करते हुए (**वना**) आदर करने योग्य पदार्थों का (**वनन्ति**) उत्तम प्रकार सेवन करते हैं वे पवित्र होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो बिजुली के सदृश पवित्र, दुष्टों में क्रोध करनेवाले श्रेष्ठों के साथ मेल करने और नवीन-नवीन विद्या को प्राप्त होनेवाले होवें वे सब स्थानों में विचरते हुए अन्यों को जनावें ॥ ३ ॥

ये ते॑ शु॒क्रासः॒ शुच॑यः शुचिष्मः॒ क्षां वप॑न्ति॒ विषि॑तासो॒ अश्वाः॑ ।
अध॑ भ्र॒मस्त॑ उर्वि॒या वि भा॑ति या॒तय॑मानो॒ अधि॒ सानु॒ पृश्नेः॑ ॥४॥

पदार्थ—हे (**शुचिष्मः**) प्रकाशयुक्त विद्वन् (**ये**) जो (**ते**) आप के (**शुक्रासः**) पराक्रमयुक्त (**शुचयः**) पवित्र (**विषितासः**) व्याप्त (**अश्वाः**) शीघ्र चलनेवाले (**क्षाम्**) भूमि को (**वपन्ति**) बोते हैं (**अध**) इसके अनन्तर (**ते**) आप का (**यातयमानः**) दण्ड देता हुआ (**भ्रमः**) भ्रमण (**उर्विया**) बहुत प्रकार के प्रकाश से (**पृश्नेः**) अन्तरिक्ष के मध्य में (**अधि**) ऊपर के (**सानु**) विभाग में (**वि, भाति**) विशेष शोभित होता है उन सब को आप उत्तम प्रकार शिक्षा दीजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि अपने समीप में पवित्र और यथावद्वक्ता पुरुषों की सदा रक्षा करें अथवा आप भी उनका संग करें ॥ ४ ॥

फिर मनुष्यों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

अध॑ जि॒ह्वा पा॑पतीति॒ प्र वृष्णो॑ गोषु॒युधो॒ नाशनिः॑ सृजा॒ना ।
शूर॑स्येव॒ प्रसि॑तिः क्षा॒तिर॒ग्नेर्दु॒र्वर्तु॑र्भी॒मो द॑यते॒ वना॑नि ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (**गोषुयुधः**) वाणियों में युद्ध करनेवाले (**वृष्णः**) बलिष्ठों को (**जिह्वा**) वाणी (**न**) नहीं (**पापतीति**) अत्यन्त वारंवार प्राप्त होती है (**अध**) इसके अनन्तर (**अशनिः**) बिजुली जैसे वैसे (**सृजाना**) उत्पन्न किया गया (**शूरस्येव**) शूरवीर के सदृश (**अग्नेः**) अग्नि के समान प्रकाशमान (**दुर्वर्तुः**) दुःख के साथ वर्त्तमान से युक्त का (**प्रसितिः**) प्रकृष्ट बन्धन (**क्षातिः**) और नाश (**भीमः**) भयंकर हुआ (**वनानि**) वनों को (**प्र, दयते**) नष्ट करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य धर्म से पतित न होकर धार्म्मिकों में शान्त और दुष्टों में अग्नि के सदृश भयंकर होते हैं वे ही बलवान् गिने जाते हैं ॥ ५ ॥

मनुष्यों को किस के सदृश क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

आ भा॒नुना॒ पार्थि॑वानि॒ ज्रयां॑सि म॒हस्तो॒दस्य॑ धृष॒ता त॑तन्थ ।
स बा॑ध॒स्वाप॑ भ॒या सहो॑भिः॒ स्पृधो॑ वनु॒ष्यन्व॒नुषो॒ नि जू॑र्व ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् राजन् जैसे आप (**भानुना**) किरण से (**तोदस्य**) प्रेरणा के (**धृषता**) ढीठ से (**महः**) बड़े (**पार्थिवानि**) पृथिवी में विदित कार्य्य वा पृथिवी आदि से कृत (**ज्रयांसि**) जानने योग्यों का (**आ**) चारों ओर से (**ततन्थ**) विस्तार करते हैं वैसे (**सः**) वह आप (**सहोभिः**) बलों से (**भया**) भयों को (**अप, बाधस्व**) अतीव बाधा करो और (**वनुषः**) सेवन करने योग्यों का (**वनुष्यन्**) सेवन कराते हुए (**स्पृधः**) संग्रामों का (**नि, जूर्व**) नाश करिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो प्रेम से मित्र होकर जैसे सूर्य्य अन्धकार को वैसे भयों को दूर कर के संग्रामों को जीतते हैं वे प्रतिष्ठित होते हैं ॥ ६ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

स चि॑त्र चि॒त्रं चि॒तय॑न्तम॒स्मे चित्र॑क्षत्र चि॒त्रत॑मं वयो॒धाम् ।
च॒न्द्रं र॒यिं पु॑रु॒वीरं॑ बृ॒हन्तं॒ चन्द्र॑ च॒न्द्राभि॑र्गृण॒ते यु॑वस्व ॥७॥८॥

पदार्थ—हे (**चित्र**) अद्भुत गुण कर्म्म और स्वभाववाले (**चित्रक्षत्र**) अद्भुत राज्य वा धन से युक्त (**चन्द्र**) आह्लादकारक जैसे (**सः**) वह विद्वान् (**चन्द्राभिः**) आनन्द और धन करनेवाली प्रजाओं से (**अस्मे**) हम लोगों के लिए (**चित्रम्**) आश्चर्य्यभूत (**चन्द्रम्**) आनन्द देनेवाले सुवर्ण आदि को (**चितयन्तम्**) जानते हुए तथा (**चित्रतमम्**) अत्यन्त आश्चर्य्ययुक्त रूप और (**वयोधाम्**) जीवन के धारण करने और (**बृहन्तम्**) बड़े (**पुरुवीरम्**) बहुत वीरों के देनेवाले (**रयिम्**) धन की (**गृणते**) स्तुति करता है उस को आप (**युवस्व**) उत्तम प्रकार युक्त करिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अद्भुत गुण कर्म्म और स्वभावों का स्वीकार कर के तथा अन्य जनों को ग्रहण कराय के धनाढ्य कराते हैं वे अद्भुत स्तुतिवाले होते हैं ॥ ७ ॥

इस सूक्त में अग्नि तथा विद्वान् के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह छठा सूक्त और आठवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तर्चस्य सप्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । वैश्वानरो देवता । १ त्रिष्टुप् । २, निचृत्त्रिष्टुप् । ७ स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ निचृत्पङ्क्तिः । ४ स्वराट् पङ्क्तिः । ५पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ६ जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब सात ऋचावाले सातवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से मनुष्यों को कैसा अग्नि जानना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

मू॒र्धानं॑ दि॒वो अ॑र॒तिं पृ॑थि॒व्या वै॑श्वान॒रमृ॒त आ जा॒तम॒ग्निम् ।
क॒विं स॒म्राज॒मति॑थिं॒ जना॑नामा॒सन्ना पात्रं॑ जनयन्त दे॒वाः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (**देवाः**) विद्वान् जन (**दिवः**) प्रकाश वा सूर्य्य के (**मूर्धानम्**) सर्वोपरि विराजमान (**पृथिव्याः**) पृथिवी की (**अरतिम्**) प्राप्ति को (**ऋते**) सत्य में (**जातम्**) प्रसिद्ध (**कविम्**) स्वच्छबुद्धियुक्त वा विद्वान् (**सम्राजम्**) भूगोल के राजा (**जनानाम्**) मनुष्यों के (**अतिथिम्**) आदर करने योग्य (**पात्रम्**) पालन करनेवाले (**वैश्वानरम्**) सम्पूर्ण मनुष्यों में अग्रणी (**अग्निम्**) अग्नि के सदृश वर्त्तमान को (**आ, जनयन्त**) प्रकट करते हैं वे सुखी (**आ, आसन्**) अच्छे प्रकार हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमात्मा के सदृश न्यायकारी हो कर तथा अग्नि के सदृश विद्या और विनय से प्रकाशित हुए चक्रवर्त्तित्व को प्राप्त होते हैं वे सब को सुख देने को योग्य होते हैं ॥ १ ॥

नाभिं॑ य॒ज्ञानां॒ सद॑नं रयी॒णां म॒हामा॑हा॒वम॒भि सं न॑वन्त ।
वै॒श्वा॒न॒रं र॒थ्य॑मध्व॒राणां॑ य॒ज्ञस्य॑ के॒तुं ज॑नयन्त दे॒वाः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**देवाः**) विद्वान् जन जिस (**यज्ञानाम्**) सत्य क्रियामय यज्ञों के (**नाभिम्**) बीच के भाग का और (**महाम्**) महान् (**रयीणाम्**) धनों के (**सदनम्**) स्थान और (**आहावम्**) चारों ओर से स्पर्द्धा करने योग्य (**वैश्वानरम्**) सर्वत्र प्रकाशमान (**रथ्यम्**) रथ को बहाने के योग्य (**अध्वराणाम्**) नहीं नष्ट करने योग्यों के (**यज्ञस्य**) प्राप्त होने योग्य व्यवहार के (**केतुम्**) जाननेवाले को (**सम्, जनयन्त**) अच्छे प्रकार प्रकट करते हैं और (**नवन्त**) स्तुति करते हैं उसकी आप लोग (**अभि**) सम्मुख प्रशंसा करिये ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य व्याप्त और सम्पूर्ण कार्य्यों की सिद्धि के करनेवाले अग्नि को अच्छे प्रकार जान कर वाहनों को प्रकट करते हैं वे कार्य्यसिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं—

त्वद्विप्रो॑ जायते वा॒ज्य॑ग्ने॒ त्वद्वी॒रासो॑ अभिमाति॒षाहः॑ ।
वैश्वा॑नर॒ त्वम॒स्मासु॑ धेहि॒ वसू॑नि राजन्त्स्पृह॒याय्या॑णि ॥३॥

पदार्थ—हे (**वैश्वानर**) सम्पूर्ण जनों में अग्रणी (**अग्ने**) अग्नि के सदृश प्रतापी विद्वान् (**राजन्**) राजन् जिस कारण से (**त्वत्**) आपके समीप से (**विप्रः**) बुद्धिमान् (**वाजी**) वेगयुक्त (**जायते**) होता है और (**त्वत्**) आपके समीप से (**अभिमातिषाहः**) अभिमानयुक्त शत्रुओं के सहनेवाले (**वीरासः**) शूरवीर जन प्रकट होते हैं इससे (**त्वम्**) आप (**अस्मासु**) हम लोगों में (**स्पृहयाय्याणि**) इच्छा के विषय होने योग्य (**वसूनि**) धनों को (**धेहि**) धारण करिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—वही राजा होने को योग्य है जिस के संग से दुष्ट जन भी श्रेष्ठ, कायर भी शूरवीर और कृपण भी दाता होते हैं ॥ ३ ॥

अब द्वितीय जन्म के विषय को कहते हैं—

त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते ।
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन्वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः ॥४॥

पदार्थ—हे (**वैश्वानर**) संपूर्ण जनों को धर्म्म के कार्य्यों में ले चलनेवाले (**अमृत**) मरण धर्म्म से रहित यथार्थवक्ता विद्वन् जन जिन (**त्वाम्**) आप को (**शिशुम्**) बालक को (**न**) जैसे वैसे (**जायमानम्**) उत्पन्न हुए को (**विश्वे**) सम्पूर्ण (**देवाः**) विद्वान् जन (**अभि**) सब ओर से (**सम्**) उत्तम प्रकार (**नवन्ते**) स्तुति करते हैं और जिन (**तव**) आप के (**क्रतुभिः**) बुद्धि के कर्म्मों से मनुष्य लोग (**अमृतत्वम्**) मोक्षपन को (**आयन्**) प्राप्त होते हैं और (**यत्**) जो आप (**पित्रोः**) माता और पिता के सदृश विद्या और आचार्य्य के (**अदीदेः**) प्रकाशक हो वह आप धन्य हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य माता और पिता से जन्म को प्राप्त होकर आठवें वर्ष से प्रारम्भ कर के आचार्य से विद्या के ग्रहण से द्वितीय जन्म को प्राप्त होते हैं वे स्तुति करने योग्य हुए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करने को समर्थ होते हैं ॥ ४ ॥

फिर मनुष्य को क्या प्राप्त करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

वैश्वानर तव तानि व्रतानि महान्यग्ने नकिरा दधर्ष ।
यज्जायमानः पित्रोरुपस्थेऽविन्दः केतुं वयुनेष्वह्नाम् ॥५॥

पदार्थ—हे (**वैश्वानर**) सम्पूर्ण संसार में विद्या और धर्म्म के प्रकाश से अग्रणी (**अग्ने**) अग्नि के सदृश प्रकाशस्वरूप (**यत्**) जो आप (**पित्रोः**) माता पिता के सदृश विद्या और आचार्य्य के (**उपस्थे**) समीप में (**जायमानः**) प्रकट हुआ (**अह्नाम्**) दिनों के मध्य में (**वयुनेषु**) पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्य्यन्त पदार्थों के विज्ञानों में (**केतुम्**) बुद्धि को (**अविन्दः**) प्राप्त होते हो उन (**तव**) आप के (**तानि**) उक्त ब्रह्मचर्य्य विद्याग्रहण सत्यभाषण आदि (**महानि**) बड़े (**व्रतानि**) कर्म्मों को कोई भी (**नकिः**) नहीं (**आ, दधर्ष**) तिरस्कार करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य दूसरे विद्यारूप जन्म को प्राप्त होवें तो उनके सफल कर्म्म होते हैं ऐसा जानना चाहिये ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा सानूनि दिवो अमृतस्य केतुना ।
तस्येदु विश्वा भुवनाधि मूर्धनि वया इव रुरुहुः सप्त विस्रुहः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस (**वैश्वानरस्य**) सम्पूर्ण नरों में विद्या और विनय से प्रकाशमान के (**चक्षसा**) प्रज्ञान से (**विमितानि**) विशेष कर के परिमित (**सानूनि**) प्रान्त स्थानों को (**दिवः**) प्रकाशमान (**अमृतस्य**) नाश से रहित की (**केतुना**) बुद्धि से (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**भुवना**) लोक (**सप्त**) सात प्रकार के (**विस्रुहः**) विशेष करके सरकते आते और (**मूर्धनि**) शिर पर अर्थात् ऊपर (**वया इव**) पक्षियों के सदृश (**अधि**) अधिकतर (**रुरुहुः**) प्रकट होते हैं (**तस्य**) उसका (**इत्**) ही (**उ**) तर्क वितर्क से संग करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो विद्वान् जन परमेश्वर से रचे गये, पक्षियों के सदृश अन्तरिक्ष में चलते हुए लोकों और उनकी गति को बुद्धि से विशेष करके जानें वह विद्वानों के मस्तक के सदृश प्रशंसा करने योग्य होता है ॥ ६ ॥

फिर जगदीश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वि यो रजांस्यमिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो वि दिवो रोचना कविः ।
परि यो विश्वा भुवनानि पप्रथेऽदब्धो गोपा अमृतस्य रक्षिता ॥७॥१०

पदार्थ—हे विद्वान् जनो (**यः**) जो जगदीश्वर (**वैश्वानरः**) सम्पूर्ण मनुष्यों का हित करनेवाला (**सुक्रतुः**) उत्तम कर्म जिस के वह (**कविः**) उत्तम बुद्धि वाला ईश्वर (**दिवः**) प्रकाशमान सूर्य के (**रोचना**) प्रकाशरूप (**रजांसि**) लोकों को (**वि**) विशेष कर के (**अमिमीत**) निर्मित करता तथा (**यः**) जो (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**भुवनानि**) भुवनों को (**परि**) सब ओर से (**पप्रथे**) विस्तारयुक्त करता है वह (**अमृतस्य**) मोक्ष का (**गोपाः**) पालन करनेवाला (**अदब्धः**) अहिंसनीय और (**रक्षिता**) रक्षा करनेवाला (**वि**) विशेष कर के निर्माण करता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर ने सम्पूर्ण लोक निर्मित किये हैं तथा जो सब का रक्षक है उस की सब उपासना करें ॥ ७ ॥

इस सूक्त में सब के हित करनेवाले, विद्वान्, और ईश्वर के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सातवां सूक्त और दशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ सप्तर्चस्याष्टमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । वैश्वानरो देवता । १, ४ जगती । ६ विराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । २, ३, ५, भुरिक् त्रिष्टुप् । ७ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सात ऋचावाले आठवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अब मनुष्यों को क्या जान कर क्या उपदेश करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः प्र नु वोचं विदथा जातवेदसः ।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसी शुचिः सोमइव पवते चारुरग्नये ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस (**पृक्षस्य**) सर्वत्र सम्बन्ध अर्थात् संयुक्त (**अरुषस्य**) नहीं हिंसा करने और (**वृष्णः**) सेचन करने वाले (**जातवेदसः**) उत्पन्न हुओं में विद्यमान के (**सहः**) बल का (**नु**) शीघ्र (**प्र, वोचम्**) उपदेश देऊँ और (**विदथा**) विज्ञानों का (**नू**) शीघ्र उपदेश देऊँ और जिसकी (**सोमइव**) सोमलता जैसे वैसे (**नव्यसी**) अत्यन्त नवीन (**शुचिः**) पवित्र (**चारुः**) सुन्दर (**मतिः**) बुद्धि (**पवते**) पवित्र होती है उस (**वैश्वानराय**) सम्पूर्ण विश्व के प्रकाशक (**अग्नये**) विद्वान् जन के लिए बुद्धि को धारण करूं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जिन मनुष्यों की सोमलताख्य ओषधि के सदृश पवित्र करनेवाली बुद्धि, अतुल बल और अग्निविद्या होती है वे ही आनन्दित होते हैं ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स जायमानः परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत ।
व्य१न्तरिक्षममिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत् ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो आप लोगों को जो (**व्रतपाः**) कर्मों की रक्षा करने वाला (**अग्निः**) अग्नि (**परमे**) श्रेष्ठ और (**व्योमनि**) आकाश के सदृश व्यापक परमेश्वर में (**जायमानः**) उत्पन्न होता हुआ (**व्रतानि**) सत्य भाषण आदि कर्मों की (**अरक्षत**) रक्षा करता तथा (**अन्तरिक्षम्**) जल की (**वि**) विशेष कर के (**अमिमीत**) रक्षा करता और (**सुक्रतुः**) अच्छे कर्मोंवाला (**वैश्वानरः**) सम्पूर्ण मनुष्यों में प्रकाशमान होता हुआ (**महिना**) महत्त्व से (**नाकम्**) दुःख रहित का (**अस्पृशत्**) स्पर्श करता है (**सः**) वह जानने योग्य है ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर ने अपने में सूर्य आदि लोकों के निर्माण से सब का उपकार किया उस के सत्य कर्मों का अनुष्ठान कर के उपासना करो अर्थात् उसी का भजन करो ॥ २ ॥

फिर सूर्य्य कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

व्यस्तभ्नाद्रोदसी मित्रो अद्भुतोऽन्तर्वावदकृणोज्ज्योतिषा तमः ।
वि चर्मणीव धिषणे अवर्तयद्वैश्वानरो विश्वमधत्त वृष्ण्यम् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**अद्भुतः**) आश्चर्यजनक गुण कर्म और स्वभाववाला (**मित्रः**) सब के मित्र के समान वर्त्तमान (**वैश्वानरः**) संपूर्ण मनुष्यों में विराजमान सूर्य (**रोदसी**) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (**वि, अस्तभ्नात्**) धारण करता तथा (**ज्योतिषा**) प्रकाश से (**तमः**) रात्रि का (**अकृणोत्**) करता (**अन्तर्वावत्**) अन्त अर्थात् ब्रह्माण्ड के भीतर अत्यन्त चलता (**चर्मणीव**) जैसे चर्म से रोम धारण किये गये वैसे (**धिषणे**) सब के धारण करने वालियों को (**वि, अवर्तयत**) विशेष करके वर्ताता (**वृष्ण्यम्**) वृक्षों में उत्पन्न वा श्रेष्ठ (**विश्वम्**) संपूर्ण जगत् को (**अधत्त**) धारण करता है उस का तुम लोग प्रयोग करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो जो जगदीश्वर से बनाया गया यह सूर्य जैसे चर्म रोमों को वैसे आकर्षण से लोकों का धारण करता है तथा नियम से चलाता और चलता है वही जगत् के उपकार के लिए समर्थ होता है ॥ ३ ॥

फिर वह वायु कैसा है और क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत विशो राजानमुप तस्थुरृग्मियम् ।
आ दूतो अग्निमभरद्विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावतः ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो जो (**दूतः**) संतापित करानेवाला (**मातरिश्वा**) अन्तरिक्ष में शयन करनेवाला वायु (**परावतः**) दूर स्थित (**विवस्वतः**) सूर्य के (**वैश्वानरम्**) सर्वत्र प्रकाशमान (**अग्निम्**) अग्नि को (**अभरत्**) धारण करता और जिस (**ऋग्मियम्**) ऋचाओं द्वारा प्रमाण किया जाता उस (**राजानम्**) जैसे राजा को वैसे सूर्य को (**विशः**) प्रजाएं (**उप**) समीप में (**आ**) चारों ओर से (**तस्थुः**) प्राप्त होती हैं वैसे सूर्य उपस्थित होता है और जिस (**अपाम्**) प्राणों वा जलों के (**उपस्थे**) समीप में वर्त्तमान को (**महिषाः**) बड़े जन (**अगृभ्णत**) ग्रहण करते हैं उस वायु को आप लोग जानिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—जैसे वायु दूर वर्त्तमान भी सूर्य के तेज को धारण करता है वैसे उत्तम राजा दूर स्थित भी प्रजाओं का पोषण करें ॥ ४ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

युगेयुगे विदथ्यं गृणद्भ्योऽग्ने रयिं यशसं धेहि नव्यसीम् ।
पव्येव राजन्नघशंसमजर नीचा नि वृश्च वनिनं न तेजसा ॥५॥

पदार्थ—हे (**अजर**) वृद्धावस्थारूप दोष से रहित (**राजन्**) प्रकाशमान (**अग्ने**) अग्नि के सदृश वर्त्तमान आप (**तेजसा**) तेज से (**वनिनम्**) किरण विद्यमान जिसमें उसको (**न**) जैसे वैसे वा शूरवीर जन (**पव्येव**) वज्र से जैसे (**नीचा**) नीच को वैसे (**अघशंसम्**) चोर को (**नि**) अत्यन्त (**वृश्च**) काटो और (**गृणद्भ्यः**) स्तुति करने वालों के लिए (**युगेयुगे**) वर्ष वर्ष वा वर्ष

समुदाय वर्गसमुदाय मे (विदथ्यम्) सग्राम और विज्ञानादिको मे (रयिम्) धन (यशसम्) कीर्ति वा अन्न को और (नव्यसीम्) अतिशय नवीन विद्या वा क्रिया को (धेहि) धारण करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र म उपमालङ्कार है । जैसे सूर्य किरणो से सयुक्त मेघ का नाश करता है और जैसे वज्र विदारण करने योग्य पदार्थ को विदारण करता वैसे राजा चोर आदि दुष्टजनो का छेदन भेदन करके धार्मिक जनों के लिए धन आदि ऐश्वर्य का धारण करे ॥ ५ ॥

अस्माकमग्ने मघवत्सु धारयानामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम् ।

वयं जयेम शतिनं सहस्रिणं वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः ॥६॥

पदार्थ—हे (वैश्वानर) ससार के अग्रणी (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्वन् राजन् (वयम) हम लोग (तव) आपकी (ऊतिभि) रक्षा आदि के साथ (शतिनम्) सैकडो प्रकार से योद्धाओ से और (सहस्रिणम्) सहस्रो योद्धाओ से सयुक्त (वाजम्) सग्राम को (जयेम) जीते । तथा हे (अग्ने) तेजस्विन् जैसे (अस्माकम) हम लोगो के (मघवत्सु) बहुत धनो से युक्त प्रजा जनो मे (सुवीर्यम्) उत्तम बल (अजरम्) नाशरहित (क्षत्रम्) राज्य वा धन (अनामि) नम्र होवे वैसा (धारय) धारण करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो राजा और सेना के अध्यक्ष धार्मिक विद्वान् न्यायकारी और जितेन्द्रिय हो तो उनका सर्वत्र विजय होता है ॥ ६ ॥

फिर राजा आदि जनों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं —

अदब्धेभिस्तव गोपाभिरिष्टेऽस्माकं पाहि त्रिषधस्थ सूरीन् ।

रक्षा च नो ददुषां शर्धो अग्ने वैश्वानर प्र च तारीः स्तवानः ॥७॥१०॥

पदार्थ—हे (त्रिषधस्थ) तीन तुल्य स्थानो मे वर्त्तमान (इष्टे) सग करने योग्य (वैश्वानर) विद्या और विनय म प्रकाशमान (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान (स्तवान) प्रशसा करते हुए आप (अदब्धेभि) अहिंसक जनो से (गोपाभि) रक्षाओ के द्वारा (न) हम लोगो (सूरीन्) विद्वानो का (पाहि) पालन करिये और (अस्माकम्) हम लोगो के सम्बन्धियो की (च) भी (रक्षा) रक्षा करिये तथा आपका और (ददुषाम्) देने वालो का (च) और हमारा (शर्ध) बल बढ़े और हम लोगो के साथ आप शत्रुओ का (प्र, तारी) उल्लघन करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जैसे सूर्य ऊपर नीचे और मध्यस्थ लोको को प्रकाशित करता वैसे ही प्रजाजनो की आप सब प्रकार स रक्षा कीजिये और जैसे इस राज्य मे विद्वान् बढे वैसे कार्य करिये ॥ ७ ॥

इस सूक्त म विद्या और विनय से प्रकाशमान, विद्वान्, सूर्य और राजा आदि के गुणो का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह आठवाँ सूक्त और दशवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तर्चस्य नवमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि । वैश्वानरो देवता । १ विराट् त्रिष्टुप् । ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर । २ भुरिक् पङ्क्ति । ३, ४ पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर । ७ भुरिग्जगती छन्द । निषाद स्वर ॥

अब सात ऋचावाले नवम सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा प्रजा परस्पर कैसे वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः ।

वैश्वानरो जायमानो न राजावातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसि ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (अह) दिन (कृष्णम्) रात्रि (च) और (अह) व्याप्तिशील (अर्जुनम्) सरलगमन आदि गुणो को (च) भी (रजसी) रात्रिदिन (वेद्याभि) जानने योग्यो के साथ (वि, वर्त्तेते) विविध प्रकार वर्त्तते हैं और (राजा) राजा के (न) समान (जायमान) उत्पन्न हुआ (वैश्वानर) सपूर्ण करने योग्य कामो मे प्रकाशमान (अग्नि.) अग्नि (ज्योतिषा) प्रकाश से (तमांसि) रात्रियो का (अव, अतिरत्) उल्लघन करता है ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे रात्रिदिन सयुक्त हैं वैसे ही राजा और प्रजा अनुकूल हो और जैसे सूर्य प्रकाश से अन्धकार को निवृत्त करता है वैसे ही राजा विद्या और विनय के प्रकाश से अविद्यारूप अन्धकार को निवृत्त करे ॥ १ ॥

अब अपत्य किस का होता है इस विषय को अगले मन्त्रो में कहते हैं—

नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः ।

कस्य स्वित्पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो (यम्) जिसको (समरे) सग्राम मे (अतमाना) घूमते हुए जन (न) जैसे वैसे (वयन्ति) व्याप्त होते हैं यह (इह) यहाँ (कस्य) किसका (स्वित्) भी (पुत्र.) पवित्र और सुख देनेवाला है (पर) अन्य (अवरेण) द्वितीय (पित्रा) पालक वा आचार्य के साथ (वक्त्वानि) कहने के योग्यों को (वदाति) कहे और जिसको घूमते हुए जन सग्राम मे (न) नहीं व्याप्त होते हैं उस (तन्तुम्) विस्तार को (ओतुम्) रचने को (अहम्) मैं (न) नहीं (वि) विशेष करके (जानामि) जानता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—विद्वानो का यह सिद्धान्त है कि जो दो से उत्पन्न होता है जिस के दो माता और दो पिता हैं वह किस का पुत्र है यह हम लोग नहीं जानते हैं ऐसा प्रश्न है । इसमे सिद्धान्त यह है कि जैसे उत्पन्न करनेवाले माता पिता का पुत्र है वैसे ही आचार्य और विद्या का भी वह द्विज पुत्र है ऐसा सब लोग जानो ॥२॥

स इत्तन्तुं स वि जानात्योतुं स वक्त्वान्यृतुथा वदाति ।

य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन्परो अन्येन पश्यन् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (य.) जो (अमृतस्य) नित्य पदार्थ का (गोपाः) रक्षक (अन्येन) अन्य से (पश्यन्) देखता हुआ (अव.) नीचे (पर:) ऊपर स्थित दूसरा (चरन्) चलता हुआ (ईम्) जल के सदृश शुक्र को (चिकेतत्) जानता है (सः, इत्) वही (तन्तुम्) कारण को (स॰) वह (ओतुम्) रक्षक को (वि, जानाति) विशेष कर के जानता है (स) वह (ऋतुथा) जैसे काल काल मे वैसे (वक्त्वानि) कथन करने योग्यो को (वदाति) कहे ॥३॥

भावार्थ—जो ब्रह्मचर्य के द्वारा यथार्थवक्ताओ से विद्या और शिक्षा को प्राप्त होते हैं वे ही इस जगत् के पूर्ण कारण को जानने को समर्थ होते है ॥ ३ ॥

अब इस देह मे दो जीवात्मा और परमात्मा वर्त्तमान हैं इस विषय को कहते हैं—

अयं होता प्रथमः पश्यतेममिदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु ।

अयं स जज्ञे ध्रुव आ निषत्तोऽमर्त्यस्तन्वा३ वर्धमानः ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो जो (ध्रुव) निश्चय दृढ (निषत्त:) स्थित (प्रथम) पहिला (होता) देने वा ग्रहण करनेवाला (अयम्) यह और (मर्त्येषु) मरणधर्मयुक्त शरीरो मे (इदम्) इस प्रत्यक्ष (अमृतम्) नाश से रहित (ज्योति) सूर्य के सदृश अपने म प्रकाशित चेतन परमात्मा है उस (इमम्) इस को (पश्यत) देखिये और जो (अयम्) यह (अमर्त्य) मरणधर्म से रहित (तन्वा) शरीर से (वर्धमान.) बढ़ता हुआ (आ) चारो ओर से (जज्ञे) प्रकट होता है (सः) वह जीव है ऐसा देखो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! इस शरीर मे दो चेतन नित्य हुए जीवात्मा और परमात्मा वर्त्तमान हैं उन दोनों म एक अल्प, अल्पज्ञ और अल्पदेशस्थ जीव है वह शरीर को धारण कर के प्रकट होता, वृद्धि को प्राप्त होता और परिणाम को प्राप्त होता तथा हीन दशा को प्राप्त होता, पाप और पुण्य के फल का भोग करता है । द्वितीय परमेश्वर ध्रुव निश्चल, सर्वज्ञ, कर्म्मफल के सम्बन्ध से रहित है ऐसा तुम लोग निश्चय करो ॥ ४ ॥

इस शरीर मे क्या क्या जानने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः ।

विश्वे देवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (दृशये) दर्शन के लिए (ध्रुवम्) निश्चल (निहितम्) स्थित (कम्) सुखस्वरूप (ज्योति) अपने से प्रकाशित और सब का प्रकाशक ब्रह्म है उस के आधार म जो (जविष्ठम्) अतिवेगयुक्त (पतयत्सु) पति के सदृश आचरण करते हुओ मे (अन्त:) मध्य मे वर्त्तमान (मन) अन्त करण का व्यापार है उस के आश्रय से (समनस) सहकारि साधन मन जिन का और (सकेता) तुल्य बुद्धि जिन की वे (विश्वे) सम्पूर्ण (देवा॰) अपने अपने विषयो का प्रकाशित करने वाली श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ (एकम्) सहायरहित (क्रतुम्) जीव के प्रज्ञान को (साधु) उत्तम प्रकार (अभि) सन्मुख (वि) विशेष करके (यन्ति) प्राप्त होते है यह आप लोग जानो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! इस शरीर म सच्चिदानन्दस्वरूप अपने से प्रकाशित ब्रह्म, द्वितीय, तृतीय मन, चौथी इन्द्रिया, पाचवें प्राण, छठा शरीर वर्त्तमान है ऐसा होने पर सम्पूर्ण व्यवहार सिद्ध होते हैं जिन के मध्य से सब का आधार ईश्वर, देह अन्त करण प्राण और इन्द्रियों का धारण करनेवाला और जीवादिको का अधिष्ठान शरीर है यह जानो ॥ ५ ॥

अब मनुष्य के शरीर में क्या क्या जानने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वी३दं ज्योतिर्हृदय आहितं यत् ।

वि मे मनश्चरति दूरआधीः किं स्विद्वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वानो जनो (यत्) जो (मे) मेरे (कर्णा) श्रोत्र (वि) विशेष करके (पतयत) स्वामी के सदृश आचरण करते हुए और जो मेरा (चक्षु) देखने की चेष्टा करता है जिससे वह चक्षु (वि) विशेष करके (चरति) चलता है और जो (मे) मेरे (हृदये) हृदय मे (इदम्) यह (आहितम्) स्थित (ज्योति) प्रकाशक (वि) विशेष करके चलता है और जो मेरा (दूरआधी) दूरस्थ पदार्थों का सब प्रकार स चिन्तक (मनः) अन्त करण (वि) विशेष करके चलता है जिससे उस को मैं (किम्) क्या (स्वित्) भी (वक्ष्यामि) कहूँगा और (किम्) क्या (उ) और (नू) शीघ्र (मनिष्ये) विचार करूँगा यह विचारता हूँ उस सब को आप लोग जनाइये ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् जनो ! जो मैं और जो मेरे साधन हैं, उस सब व्यवहार को मेरे लिए जनाइये ॥ ६ ॥

मनुष्यों को किससे डर कर पापाचरण का आचरण न करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

विश्वे॑ दे॒वा अ॑नमस्यन्भिया॒नास्त्वाम॑ग्ने॒ तम॑सि तस्थि॒वांस॑म् ।

वै॒श्वा॒न॒रो॑ऽवतू॒तये॒ नोऽम॑र्त्योऽवतू॒तये॑ नः ॥७॥११॥

पदार्थ—हे (अग्ने) प्रकाशक परमात्मन् (तमसि) अन्धकार मे (तस्थिवांसम्) स्थित (त्वाम्) परमात्मा के सदृश बिजुली मे युक्त को वा प्राण के सदृश परमात्मा को जैसे पृथिवी आदि वैसे (विश्वे) सम्पूर्ण (देवा) विद्वान् जन (भियाना) भय को प्राप्त हुए (अनमस्यन्) नम्र होते हैं वह (वैश्वानरः) सम्पूर्ण ससार के प्रकाशक (अमर्त्यः) मृत्यु धर्म से रहित आप (ऊतये) रक्षा आदि के लिए (नः) हम लोगो की (अवतु) रक्षा कीजिये और (ऊतये) रक्षा आदि के लिए (नः) हम लोगो की (अवतु) रक्षा कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे प्राण और बिजुली को प्राप्त होकर सम्पूर्ण पृथिवी आदिको की स्थिति है और जैसे अग्नि मे सम्पूर्ण प्राणी डरते हैं वैसे ही सर्वव्यापी और सब के अन्तर्यामी परमात्मा को मान के पाप के आचरण से विद्वान् जन डरते हैं इस निमित्त से सब जन इस से डरें ॥ ७ ॥

इस सूक्त मे दिनरात्रि, अपत्य, जीव, परमात्मादिको की स्थिति का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह नवम सूक्त और ग्यारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तर्चस्य दशमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्निर्देवता । १ त्रिष्टुप् । ४ आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २, ३, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ७ प्राजापत्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

पु॒रो वो॑ म॒न्द्रं दि॒व्यं सु॑वृ॒क्तिं प्र॑य॒ति य॒ज्ञे अ॒ग्निम॑ध्व॒रे द॑धिध्वम् ।

पु॒र उ॒क्थेभिः॒ स हि नो॑ वि॒भावा॑ स्वध्व॒रा क॑रति जा॒तवे॑दाः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो आप लोग (वः) आप लोगो के (प्रयति) प्रयत्न से साध्य (अध्वरे) अहिंसनीय (यज्ञे) सङ्गतिस्वरूप यज्ञ मे (उक्थेभिः) कहने के योग्यो से (पुरः) प्रथम (मन्द्रम्) आनन्द देनेवाले वा प्रशसनीय (दिव्यम्) शुद्ध (सुवृक्तिम्) उत्तम प्रकार चलते हैं जिससे उस (अग्निम्) विद्युदादिस्वरूप अग्नि को (दधिध्वम्) धारण करिये और जो (हि) निश्चय करके (विभावा) विशेष करके प्रकाशक (जातवेदाः) प्रकट हुओ को जाननेवाला (नः) हम लोगो को (पुरः) प्रथम (स्वध्वरा) उत्तम प्रकार अहिंसा आदि धर्मों से युक्त (करति) करे (सः) वही हम लोगों से सत्कार करने योग्य है ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे यज्ञ करनेवाले यज्ञ मे अग्नि को प्रथम उत्तम प्रकार स्थापित करके उस अग्नि मे आहुति देकर ससार का उपकार करते हैं वैसे ही आत्मा के आगे परमात्मा को सस्थापित करके वहा मन आदि का हवन करके और प्रत्यक्ष करके उसके उपदेश से जगत् का उपकार करो ॥१॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

तमु॑ द्यु॒मः पु॑र्वणीक होतरग्ने अ॒ग्निभि॒र्मनु॑ष इधा॒नः ।

स्तोमं॒ यम॑स्मै म॒मते॑व शू॒षं घृ॒तं न शुचि॑ म॒तयः॑ पवन्ते ॥२॥

पदार्थ—हे (पुर्वणीक) बहुतो को सविभाग करने और (द्युमः) प्रकाशवान् (होतः) धारण करनेवाले (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्वान् (मनुषः) मनुष्यों को (इधानः) प्रकाशित करते हुए आप और (मतयः) मननशील अन्य मनुष्य (ममतेव) ममता के समान (अग्निभिः) अग्नियो से (अस्मै) इसके लिए (शुचि) पवित्र (घृतम्) घृत वा (शूषम्) बल के (न) समान (यम्) जिसको (पवन्ते) पवित्र करते हैं (तम्, उ) उसी अग्नि की (स्तोमम्) प्रशसा को सुनिये ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्य जिससे पदार्थों को सिद्ध करते हैं वह अग्नि सब को कार्य्यसाधक जानने योग्य है ॥२॥

पीपा॑य॒ स श्रव॑सा॒ मर्त्ये॑षु॒ यो अ॒ग्नये॑ द॒दाश॒ विप्र॑ उ॒क्थैः ।

चि॒त्राभि॒स्तमू॒तिभि॑श्चि॒त्रशो॑चिर्व्र॒जस्य॑ सा॒ता गोम॑तो दधाति ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो (यः) जो (गोमतः) अतिशय स्तुति करनेवाला और (चित्रशोचिः) अनेक प्रकार का प्रकाश जिसका ऐसा (विप्रः) बुद्धिमान् (उक्थैः) प्रशंसित कर्मों और (चित्राभिः) अद्भुत (ऊतिभिः) रक्षादिको से (मर्त्येषु) मनुष्य आदिकों मे (अग्नये) अग्नि के लिए (श्रवसा) अन्नादि से (पीपाय) बढ़ाता और (ददाश) देता है (सः) वह (व्रजस्य) चलते हैं सघन जल जिसमे उस मेघ के (साता) सग्राम से (दधाति) धारण करता है (तम्) उसको आप लोग जानिये ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस अग्नि में अद्भुत गुण कर्म्म स्वभाव हैं उसको अच्छे प्रकार जान कर सप्रयोग करो अर्थात् काम मे लाओ ॥३॥

आ यः प॒प्रौ जाय॑मान उ॒र्वी दू॑रे॒दृशा॑ भा॒सा कृ॒ष्णाध्वा॑ ।

अध॑ ब॒हु चि॒त्तम॒ ऊर्म्या॑यास्ति॒रः शो॒चिषा॑ ददृशे पाव॒कः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो (जायमानः) प्रकट हुआ (कृष्णाध्वा) कर्षित किया अर्थात् जैसे हल से ओलें वैसे पहियो से मलीन मार्ग जिसने वह (दूरेदृशा) जिसमे दूर देखते है उस (भासा) प्रकाश से (उर्वी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (आ) चारो ओर से (पप्रौ) व्याप्त होता है और (अध) इसके अनन्तर (ऊर्म्यायाः) रात्रि का (बहु) बहुत (चित्) भी (तमः) अन्धकार (शोचिषा) प्रकाश से (तिरः) तिरस्कार करता है और (पावकः) पवित्रकर्त्ता हुआ (ददृशे) देखा जाता है उसको आप लोग जानिये ॥४॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिये कि अवश्य बिजुलीरूप अग्नि को जानें ॥४॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रो में कहते हैं—

नू न॑श्चि॒त्रं पु॑रु॒वाजा॑भिरू॒ती अग्ने॑ र॒यिं म॒घव॑द्भ्यश्च धेहि ।

ये राध॑सा॒ श्रव॑सा॒ चात्य॒न्यान्त्सु॒वीर्ये॑भिश्चा॒भि सन्ति॒ जना॑न् ॥५॥

पदार्थ—हे (अग्ने) यथार्थवक्ता विद्वन् आप (पुरुवाजाभिः) बहुत ज्ञान और पुरुषार्थ से युक्त (ऊती) रक्षा आदि क्रियाओं मे (नः) हम लोगो और (मघवद्भ्यः) धन से युक्त जनो के लिए (च) भी (चित्रम्) अद्भुत (रयिम्) धन को (नू) शीघ्र (धेहि) धारण कीजिये (ये) जो (सुवीर्येभिः) श्रेष्ठ बल वा पराक्रम जिनके उन और (राधसा) धन और (श्रवसा) अन्न आदि से (च) भी (अन्यान्) अन्य (जनान्) मनुष्यो का धारण करते हुए (अभि) सम्मुख (सन्ति) हैं वे (अति) अत्यन्त प्रतिष्ठा को (च) भी प्राप्त होते हैं ॥५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो आप लोगो के लिए विद्या और लक्ष्मी को धारण करते हैं उनकी आप लोग अत्यन्त प्रतिष्ठा करो ॥५॥

इ॒मं य॒ज्ञं चनो॑ धा अग्न उ॒शन्यं त॑ आसा॒नो जु॑हु॒ते ह॒विष्मा॑न् ।

भ॒रद्वा॑जेषु दधिषे सुवृ॒क्तिमवी॒र्वाज॑स्य॒ गध्य॑स्य सा॒तौ ॥६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) पुरुषार्थी विद्वन् आप (यम्) जिस (यज्ञम्) परोपकारनामक यज्ञ की (उशन्) कामना करते हुए (चनः) अन्न आदि को (धाः) धारण करें और (आसानः) बैठे हुए (हविष्मान्) बहुत देने और भोग करने योग्य पदार्थ जिनमे वह आप (जुहुते) हवन करते हैं (इमम्) इसकी (गध्यस्य) अभिकाक्षा करने योग्य (वाजस्य) विज्ञान आदि के (सातौ) सग्राम मे (अवीः) रक्षा कीजिये और (भरद्वाजेषु) अन्न आदि को धारण करनेवालों मे (सुवृक्तिम्) उत्तम प्रकार चलते हैं जिसमे उस मार्ग को (दधिषे) धारण कीजिये उन (ते) आपका सम्पूर्ण सुख सुगम हो जाय ॥६॥

भावार्थ—जो परोपकार करते हैं उनको ही अभीष्ट स्वार्थसिद्धि होती है ॥६॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्रो मे कहते हैं—

वि द्वेषां॑सीनु॒हि व॒र्धये॒ळां मदे॑म श॒तहि॑माः सु॒वीराः॑ ॥७॥१२॥

पदार्थ—हे अग्नि के समान परोपकारसाधक विद्वन् ! आप (द्वेषांसि) द्वेष से युक्त कर्म्मों का त्याग करिये कराइये और (इळाम्) वाणी वा अन्न को (वि) विशेष करके (इनुहि) व्याप्त होओ और हम लोगो को (वर्धय) वृद्धि कीजिये जिससे हम लोग (शतहिमाः) सौ वर्ष पर्यन्त (सुवीराः) अच्छे वीर पुरुषों से युक्त होकर (मदेम) आनन्द करें ॥७॥

भावार्थ—विद्वानो को चाहिये कि वह कर्म्म करें और करावें जिसमे मनुष्यो के दोषो की निवृत्ति और बुद्धि, बल तथा अवस्था की वृद्धि होवे ॥७॥

इस सूक्त मे अग्नि और विद्वानो के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

यह दशवां सूक्त और बारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षडृचस्यैकादशस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्निर्देवता । १, ३, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ६ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले ग्यारहवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से फिर विद्वानो को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

यज॑स्व होतरिषि॒तो यजी॑या॒नग्ने॒ बाधो॑ म॒रुतां॒ न प्रयु॑क्ति ।

आ नो॑ मि॒त्रावरु॑णा॒ नास॑त्या॒ द्यावा॑ हो॒त्राय॑ पृथि॒वी व॑वृत्याः ॥१॥

पदार्थ—हे (होतः) दाता और (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वज्जन (यजीयान्) अतिशय यज्ञ करनेवाले (इषितः) प्रेरणा किये गये जैसे (नासत्या) असत्य आचरण से रहित (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु के समान अध्यापक और उपदेशक जन (होत्राय) ग्रहण करने और देनेवाले के लिये (द्यावा) अन्तरिक्ष और (पृथिवी) पृथिवी मिलाते हैं वैसे (नः) हम लोगो को (प्रयुक्ति) प्रयोग करते हैं पदार्थों का जिसमे वह कर्म्म (आ) सब प्रकार से (ववृत्याः) प्रवृत्त कराइये और (मरुताम्) वायु के सदृश मनुष्यो की (बाधः) रुकावट (न) जैसे वैसे वर्त्तमान दिन को निवृत्त कर (यजस्व) उत्तम प्रकार मिलाइये ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् जन प्राण और उदानवायु के सदृश प्रिय और पुरुषार्थी होते है वे सबके लिये सुख प्राप्त कराने योग्य होते हैं ॥ १ ॥

त्वं होता मन्द्रतमो नो अध्रुगन्तर्देवो विदथा मर्त्येषु ।

पावकया जुह्वा३ वह्निरासाग्ने यजस्व तन्वं१ तव स्वाम् ॥२॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के समान परोपकार के सहित वर्त्तमान विद्वान् जन जैसे (**मन्द्रतम**) अतिशय आनन्द करानेवाले (**होता**) दाताजन (**विदथा**) यज्ञ के (**अन्त.**) मध्य मे (**देव**) प्रकाशमान (**वह्नि**) धारण करने वाला अग्नि (**आसा**) मुख के सदृश के (**पावकया**) पवित्र करनेवाली ज्वाला से (**जुह्वा**) ग्रहण करता वा देता जिससे उससे (**न.**) हम लोगो का और (**तव**) आपके सम्बन्ध मे (**स्वाम्**) अपने (**तन्वम्**) शरीर को मिलाना है वैसे (**त्वम्**) आप (**मर्त्येषु**) मनुष्यो मे (**अध्रुक**) किसी से न द्रोह करने वाले होते हुए हम लोगो वा हम लोगो के शरीरो को (**यजस्व**) उत्तम प्रकार मिलिये ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे बिजुली, सूर्य्य और भूमि मे हुआ तेजस्वी पदार्थो के रूप मे अग्नि सम्पूर्ण जगत् का उपकार करता है वैसे विद्वान् जन जगत् को आनन्दित करते है ॥२॥

फिर वे कैसे होकर क्या करें इस विषय को कहते हैं—

धन्या चिद्धि त्वे धिषणा वष्टि प्र देवाञ्जन्म गृणते यजध्यै ।

वेपिष्ठो अङ्गिरसां यद्ध विप्रो मधुच्छन्दो भनति रेभ इष्टौ ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् जो (**हि**) निश्चित (**त्वे**) आपके रहते (**धन्या**) धन को प्राप्त हुई (**धिषणा**) बुद्धि, अन्तरिक्ष वा पृथिवी (**देवान्**) विद्वानो की (**प्र, वष्टि**) कामना करती है उन (**अङ्गिरसाम्**) प्राणो के सदृश विद्वानो के (**जन्म**) जन्म को (**यजध्यै**) उत्तम प्रकार प्राप्त होने को जो (**गृणते**) स्तुति करते है और (**यत**) जो (**ह**) निश्चित (**वेपिष्ठ**) अतिशय कम्पानेवाला (**विप्र**) बुद्धिमान् (**रेभ**) स्तुतिकर्त्ता (**इष्टौ**) विज्ञान के बढानेवाले यज्ञ मे (**छन्द**) माधुर्य गुण से युक्त विज्ञान और (**छन्द**) स्वतन्त्रता को (**भनति**) कहता है (**चित्**) उन्हा सबको हम लोग ग्रहण करें ॥३॥

भावार्थ—जो बुद्धि और विद्वानो के सङ्ग मे विद्या की कामना करने और अन्यो को उपदेश देते हैं वे धन्य है ॥ ३ ॥

फिर विद्वान् जन कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

अदिद्युतत्स्वपाको विभावाग्ने यजस्व रोदसी उरूची ।

आयुं न यं नमसा रातहव्या अञ्जन्ति सुप्रयसं पञ्च जनाः ॥४॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वज्जन (**रातहव्या**) दिये गये देने योग्य (**पञ्च**) पाँच (**जना**) प्राणो के सदृश वर्त्तमान जन (**नमसा**) अन्न आदि से (**यम्**) जिस (**सुप्रयसम्**) उत्तम प्रकार प्रयत्न वाले का (**अञ्जन्ति**) अच्छे प्रकार प्रकट करते है वह (**सु**) उत्तम प्रकार (**अपाक**) नही परिपक्व (**विभावा**) अत्यन्त दीप्तिमान् जन (**आयुम्**) जीवन को (**न**) जैसे वैसे (**अदिद्युतत**) प्रकाशित होता है इस प्रकार आप (**उरूची**) बहुतो को प्राप्त होनेवाले (**रोदसी**) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (**यजस्व**) उत्तम प्रकार प्राप्त हो ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जिस प्रकार से पाच प्राण शरीर का धारण करते है वैसे ही नियमित आहार और विहार करनेवाले जन शरीर की अति कालपर्य्यन्त रक्षा करते है वैसे ही विद्वानो के उपदेश विद्या का प्रतिकाल पर्य्यन्त स्थिर होने वाली करते है ॥४॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले
मन्त्र मे कहते हैं—

वृञ्जे ह यन्नमसा बर्हिरग्नावयामि स्रुग्घृतवती सुवृक्तिः ।

अम्यक्षि सद्म सदने पृथिव्या अश्रायि यज्ञः सूर्ये न चक्षुः ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वानो मैं (**नमसा**) अन्न आदि से (**अग्नौ**) अग्नि मे (**यत्**) जिस (**बर्हिः**) घृत का (**ह**) निश्चय करके (**वृञ्जे**) त्याग करता हूं और जो (**सुवृक्ति**) सुवृक्ति अर्थात् उत्तम प्रकार चलते हैं जिसमे वह (**घृतवती**) बहुत जल से युक्त नदी (**स्रुक्**) बहनेवाली (**अम्यक्षि**) चलती है उस को (**अयामि**) प्राप्त होता हूँ और जो (**यज्ञ**) प्राप्त होने योग्य यज्ञ (**सूर्ये**) सूर्य्य मे (**चक्षु**) नेत्र (**न**) जैसे वैसे (**पृथिव्या**) पृथिवी के (**सदने**) स्थान मे (**सद्म**) रहने का स्थान अर्थात् गृह का (**अश्रायि**) आश्रयण करता है उसका सब लोग अनुष्ठान करो ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे हवन करनेवाले जन अग्नि मे स्रुवा से घृत छोडते हैं वैसे विद्वान् जन अन्य की बुद्धि मे विद्या को छोडें और जैसे सूर्य्य के प्रकाश मे नेत्र व्याप्त होता है वैसे ही हवन किया गया द्रव्य अन्तरिक्ष मे व्याप्त होता है ॥५॥

फिर मनुष्यों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

दशस्या नः पुर्वणीक होतर्देवेभिरग्ने अग्निभिरिधानः ।

रायः सूनो सहसो वावसाना अति स्रसेम वृजनं नांहः ॥६॥१३॥

पदार्थ—हे (**पुर्वणीक**) अनेक सेनाओं से युक्त (**होतः**) दान करनेवाला (**सहस**) बलवान् के (**सूनो**) सन्तान (**अग्ने**) अग्नि के समान वर्त्तमान राजन् (**देवेभि**) निरन्तर प्रकाशमान (**अग्निभिः**) अग्नि के समान वर्त्तमान वीरजनों से (**इधान**) प्रकाशमान अग्नि जैसे वैसे आप (**न.**) हम लोगों के लिये (**रायः**) धनों को (**दशस्य**) देते हैं जिससे वह दशस् है उस अपने की इच्छा करिये, जिससे (**वावसाना**) ढाँपे गये हम लोग (**वृजनम्**) वर्जने योग्य बलको (**न**) जैसे वैसे (**अंह**) अपराध का (**अति, स्रसेम**) अतिक्रमण करें ॥६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि इन्धनों से बढता है वैसे आप लोग पुरुषार्थ से बढिये और जैसे मनुष्य शत्रु का शीघ्र त्याग करते हैं वैसे अन्यायाचरण रूप पाप का शीघ्र त्याग करो ॥६॥

इस सूक्त मे अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ
की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह ग्यारहवां सूक्त और तेरहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षड्ऋचस्य द्वादशस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि । अग्निर्देवता ।
१ त्रिष्टुप् । २ निचृत्त्रिष्टुप् छन्द. । धैवत स्वर । ३ भुरिक्पंक्ति. ।
४, ६ निचृत्पङ्क्ति । ५ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर. ॥

अब छः ऋचावाले बारहवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में मनुष्यों
को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते है—

मध्ये होता दुरोणे बर्हिषो राळग्निस्तोदस्य रोदसी यजध्यै ।

अयं स सूनुः सहस ऋतावा दूरात्सूर्यो न शोचिषा ततान ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (**दुरोणे**) गृह मे (**बर्हिष**) अवकाश के (**मध्ये**) मध्य मे (**होता**) आदान वा ग्रहण करनेवाला (**तोदस्य**) व्यथा के सम्बन्ध मे (**राट्**) प्रकाशमान (**अग्नि**) अग्नि (**रोदसी**) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (**यजध्यै**) मिलने को (**ततान**) विस्तृत करता है वैसे (**स**) सो (**अयम्**) यह (**सहस**) सहनशील का (**सूनु**) अपत्य (**ऋतावा**) सत्य की याचना करनेवाला (**दूरात्**) दूर से (**शोचिषा**) प्रकाश से (**सूर्य्य**) सूर्य (**न**) जैसे वैसे विद्या के प्रकाश को विस्तृत करता है ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो वेदविहित यज्ञ आदि कर्म्मों के करनेवाले जन सूर्य के सदृश उत्तम कर्म्मों के प्रकाशक होवें वे सब के सुख बढाने को समर्थ हो सकते है ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ यस्मिन्त्वे स्वपाके यजत्र यक्षद्राजन्त्सर्वतातेव नु द्यौः ।

त्रिषधस्थस्ततरुषो न जंहो हव्या मघानि मानुषा यजध्यै ॥२॥

पदार्थ—हे (**यजत्र**) मेल करने योग्य (**राजन्**) राजा (**यस्मिन्**) जिन (**अपाके**) बुद्धि के परिपाक अर्थात् पूर्णता से रहित (**त्वे**) आप मे (**सर्वतातेव**) सब की वृद्धि करनेवाला यज्ञ जैसे वैसे (**द्यौ**) बिजुली आदि का प्रकाश (**सु**) उत्तम प्रकार (**आ, यक्षत**) सब ओर से मेल करे वह आप (**नु**) शीघ्र (**त्रिषधस्थ**) तीन पृथिवी अन्तरिक्ष और सूर्य्यलोक मे तुल्य स्थान मे वर्त्तमान (**ततरुष**) तारने और (**जंह**) शीघ्र चलनेवाला (**न**) जैसे वैसे (**हव्या**) देने और ग्रहण करने योग्य (**मानुषा**) मनुष्य सम्बन्धी (**मघानि**) धनो को (**यजध्यै**) प्राप्त होने को यजन कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जहा सूर्य्य के सदृश प्रतापी राजा होता है वहा सम्पूर्ण सुख होते हैं ॥ २ ॥

फिर राजा कैसा होवे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है—

तेजिष्ठा यस्यारतिर्वनेराट् तोदो अध्वन्न वृधसानो अद्यौत् ।

अद्रोघो न द्रविता चेतति त्मन्नमर्त्योऽवर्त्र ओषधीषु ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यस्य**) जिस अग्नि के सदृश राजा की (**तेजिष्ठा**) अतिशय तेजस्विनी (**अरति**) प्राप्ति (**वनेराट्**) सेवन करने योग्य वा किरण मे शोभित होनेवाली (**अध्वन्**) मार्ग मे (**वृधसान**) बढती हुई (**तोद.**) पीडा (**न**) जैसे वैसे (**अद्यौत्**) प्रकाशित होती है वह (**अद्रोघ**) द्रोह से रहित (**न**) जैसे वैसे (**द्रविता**) चलनेवाला (**त्मन्**) आत्मा मे (**अमर्त्य**) मरणधर्म्म से रहित (**अवर्त्र**) नही निवारण करने योग्य (**ओषधीषु**) सोमलता आदि ओषधियों मे (**चेतति**) जनाता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । जिस राजा की तेजस्विनी प्रकृति और प्रेरणा होवे वह द्रोहरहित हुआ जैसे ओषधियां दुःख को वैसे सब के दुःख का निवारण करता है वही कृतकृत्य होता है ॥ ३ ॥

फिर विद्वानो को कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

सास्माकेभिरेतरी न शूषैरग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।

द्र्वन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वोस्रः पितेव जारयायि यज्ञैः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (**अस्माकेभि.**) हम लोगों के साथ (**द्र्वन्न:**) द्रवीभूत अन्न जिससे वह (**जारयायि**) वृद्धावस्था को प्राप्त होने का स्वभाव जिस का उस शरीर का (**वन्वन्**) सेवन करता हुआ (**पितेव**) जैसे पिता वैसे (**अर्वा**) घोडा (**न**) जैसे वैसे (**क्रत्वा**) बुद्धि वा कर्म्म से (**उस्र.**) गौओं का सेवन करता है

जैसे (यमैः) विद्वानों की सेवा आदि (सूर्यैः) बल आदिकों के साथ (अग्निः) अग्नि के समान (जातवेदाः) प्रकट हुओं को जाननेवाला (स्तवे) प्रशंसा करने योग्य (दमे) गृह में और (दुतरी) प्राप्त होने योग्य में (न) जैसे वैसे (आ) प्राप्त होता है (सः) वह राजा हम लोगों से सेवन करने योग्य है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे प्रशंसा करने योग्य गृह में सुख से निवास होता है वैसे ही पिता के सदृश पालन करनेवाले राजा के होने पर प्रजा सुखपूर्वक निवास करती है और जैसे बुद्धि से जितेन्द्रिय होकर और पृथिवी के राज्य को प्राप्त होकर अनाथों की रक्षा करता है वैसे ही विद्वानों को चाहिये कि सत्य उपदेश से सब जगत् की रक्षा करें ॥ ४ ॥

अब कैसी बिजुली है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अध स्मास्य पनयन्ति भासो वृथा यत्तक्षदनुयाति पृथ्वीम् ।
सद्यो यः स्यन्द्रो विषितो धवीयानृणो न तायुरति धन्वा राट् ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो (यः) जो (स्यन्द्रः) बहानेवाला (विषितः) व्याप्त (धवीयान्) अतिशय कम्पाने और (वृथा) व्यर्थ (ऋणः) प्राप्त कराने वाला (तायुः) चोर (न) जैसे वैसे वर्त्तमान अग्नि (यत्) जिन (भासः) प्रकाशों को (तक्षत्) सूक्ष्म करता है (पृथ्वीम्) पृथिवी के (सद्यः) शीघ्र (अनुयाति) पीछे चलता है (अध) इस के अनन्तर (स्म) ही (अस्य) इस राजा के गुणों को विद्वान् जन (पनयन्ति) स्तुति करते हैं उस को जान कर और उसकी विद्या को प्राप्त होकर (राट्) राजा (अति, धन्वा) धनुर्वेद का अत्यन्त जाननेवाला होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे विद्वान् जनो ! जो आप लोग बिजुली की विद्या को जानकर यन्त्रों से घर्षित कर इस को उत्पन्न करके इस बिजुली के साथ मनुष्य आदिकों को युक्त करें तो यह अति कम्पानेवाली और वेगवती होवे और स्वच्छ काच के स्वच्छ पट्टे के अन्तर्गत मनुष्यों को अलग करावें तो यह बिजुली शीघ्र भूमि में प्राप्त होती है सो यह सर्वत्र व्याप्त और प्रशंसा करने योग्य गुणवाली है जिस से राजा लोग शत्रुओं को सहज से जीतकर धनवान् होते हैं ॥ ५ ॥

फिर मनुष्य कैसे होवें इस विषय को कहते हैं—

स त्वं नो अर्वन्निदाया विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिधानः ।
वेषि रायो वि यासि दुच्छुना मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥६। १४॥

पदार्थ—हे (अर्वन्) घोड़े के सदृश शीघ्र चलाते हुए (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रतापी जिस कारण से (त्वम्) आप (विश्वेभिः) सम्पूर्ण (अग्निभिः) बिजुली आदिकों से (इधानः) निरन्तर प्रकाशमान (नः) हम लोगों की (निदायाः) निन्दा करते हुए प्रजाजन के (रायः) धनों को (वेषि) व्याप्त होते हो और (दुच्छुना) दुष्ट श्वा के सदृश वर्त्तमान सेनाओं को (वि, यासि) विशेष प्राप्त होते हो (सः) वह आप और हम लोग (शतहिमाः) सौ हिम वर्ष जिन के वे (सुवीराः) सुन्दर वीर जन (मदेम) हर्षित होवें ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सम्पूर्ण अग्नि आदि पदार्थों से कार्य्यों को सिद्ध कर के जो न्याय की आज्ञा से विरुद्ध प्रजाजन हैं उन को ताड़न करके शान्ति सम्पादित करें क्योंकि इस प्रकार न्याय के आचरण से सम्पूर्ण जन सौ वर्षयुक्त होते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में विद्वान्, राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह बारहवां सूक्त और चौदहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षड्र्चस्य त्रयोदशस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्निर्देवता । १ पङ्क्तिः । २ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३, ४ विराट्त्रिष्टुप् । ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर राजा से क्या प्राप्त होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्वद्विश्वा सुभग सौभगान्यग्ने वि यन्ति वनिनो न वयाः ।
श्रुष्टी रयिर्वाजो वृत्रतूर्ये दिवो वृष्टिरीड्यो रीतिरपाम् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (सुभग) सुन्दर ऐश्वर्य्यवाले (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्वज्जन वा राजन् (वनिनः) वन सम्बन्धी (वयाः) पक्षी (न) जैसे वैसे जन (त्वत्) आप से (विश्वा) सम्पूर्ण (सौभगानि) ऐश्वर्यों के भावों को (वि, यन्ति) विशेष कर प्राप्त होते हैं (वृत्रतूर्ये) मेघ का हनन जिस में उस के सदृश वर्त्तमान संग्राम में (दिवः) अन्तरिक्ष से (अपाम्) जलों की (वृष्टिः) वृष्टि के सदृश (रीतिः) श्लिष्ट जानने वा प्रकाश करानेवाला (ईड्यः) स्तुति करने योग्य (रयिः) धन और (वाजः) अन्न (श्रुष्टी) शीघ्र प्राप्त होते हैं इस से आप सत्कार करने योग्य हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य अन्तरिक्ष से वृष्टि कर के सम्पूर्ण जगत् को तृप्त करता है वैसे ही राजा न्याय से युक्त पुरुषार्थ से ऐश्वर्य्यों को बढ़ा कर प्रजाओं को निरन्तर तृप्त करे ॥ १ ॥

फिर विद्वानों को इस संसार में कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

त्वं भगो न आ हि रत्नमिषे परिज्मेव क्षयसि दस्मवर्चाः ।
अग्ने मित्रो न बृहत ऋतस्यासि क्षत्ता वामस्य देव भूरेः ॥२॥

पदार्थ—हे (देव) देनेवाले (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वन् जिस कारण से (त्वम्) आप (मित्रः) मित्र (न) जैसे वैसे (बृहतः) बड़े (वामस्य) श्रेष्ठ (भूरेः) बहुत (ऋतस्य) सत्य वा जल के (क्षत्ता) छेदक (असि) हैं इस कारण से (दस्मवर्चाः) उपक्षयित अर्थात् निवास कराई वा निवास की कान्ति जिन्होंने तथा (परिज्मेव) जो सब ओर से चलनेवाले वायु के सदृश (भगः) सेवन करने योग्य ऐश्वर्य्य जिनका ऐसे हुए (नः) हम लोगों को (हि) जिस कारण से (रत्नम्) धन को (इषे) प्राप्त होने को (आ) सब ओर से (क्षयसि) निवास करते वा निवास कराते हो इस कारण आदर करने योग्य हो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो विद्वान् जन प्राणों के सदृश धन और ऐश्वर्य्य की शोभा को धारण करते हैं वे मित्र के सदृश वर्त्ताव कर के सब को सुखी करें ॥ २ ॥

फिर विद्वान् जन कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

स सत्पतिः शवसा हन्ति वृत्रमग्ने विप्रो वि पणेर्भर्ति वाजम् ।
यं त्वं प्रचेत ऋतजात राया सजोषा नप्त्रापां हिनोषि ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (ऋतजात) सत्य में प्रकट होनेवाले (प्रचेतः) अच्छे ज्ञान से युक्त (अग्ने) प्रकाशस्वरूप (विप्र) बुद्धिमान् जन (त्वम्) आप जैसे (सत्पतिः) जल का पालक सूर्य्य (शवसा) बल से (वृत्रम्) मेघ का (हन्ति) नाश करता है और (पणेः) व्यवहारकर्त्ता के (वाजम्) अन्न वा विज्ञान को (वि, भर्ति) विशेष कर धारण करता है वैसे (यम्) जिस को (सजोषाः) तुल्य प्रीति के सेवन करनेवाले आप (राया) धन से (अपाम्) जलों के (नप्त्रा) नहीं गिरने वाले के साथ (हिनोषि) वृद्धि करते हो (सः) सो यह सब प्रकार से वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो बुद्धिमान् जन सूर्य्य के सदृश विद्या को प्रकाशित करके अविद्या का नाश करते हैं वे अतुल सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यस्ते सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैर्यज्ञैर्मर्तो निशितिं वेद्यानट् ।
विश्वं स देव प्रति वारमग्ने धत्ते धान्यं पत्यते वसव्यैः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (सहसः) बलिष्ठ के (सूनो) पुत्र (देव) दीप्तिमान् (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वन् (ते) आपका (यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य (गीर्भिः) वाणियों और (उक्थैः) कहने और जानने योग्य वेद के वचनों से और (वेद्या) सुख को प्राप्त करानेवाली वेदी से (निशितिम्) निरन्तर तीक्ष्णता के साथ (आनट्) व्याप्त होता है (वसव्यैः) धनों में प्रकट हुए पदार्थों से तथा (यज्ञैः) विद्वानों के सत्कारादिकों से (विश्वम्) समग्र पदार्थ को (धान्यम्) धान्य को (वा) वा (अरम्) पूर्ण (प्रति, धत्ते) धारण करता और (पत्यते) स्वामी के सदृश आचरण करता है (सः) वह आप से मेल करने योग्य है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! पूर्ण ब्रह्मचर्य्य से शरीर और आत्मा के बल को पूर्ण करके सन्तानों की उत्पत्ति करो ॥ ४ ॥

ता नृभ्य आ सौश्रवसा सुवीराग्ने सूनो सहसः पुष्यसे धाः ।
कृणोषि यच्छवसा भूरि पश्वो वयो वृकायारये जसुरये ॥५॥

पदार्थ—हे (सहसः) बल के सम्बन्ध में (सूनो) बलवान् सन्तान (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान आप (यत्) जिस (शवसा) बल से (पुष्यसे) पुष्टि के लिये (नृभ्यः) नायक जनों से (सुवीरा) सुन्दर वीर जिनके लिए (ता) उन (सौश्रवसा) विद्वान् से सिद्ध किये गये कर्म्मों को (आ, धाः) धारण करते (पश्वः) पशु के (भूरि) बड़े (वयः) जीवन को (कृणोषि) करते हो और (जसुरये) हिंसा करनेवाले (वृकाय) वृक के सदृश वर्त्तमान (अरये) शत्रु के लिये दण्ड देते हो इस कारण से आप न्यायकारी हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो राजा दुष्ट चोरादिकों का निवारण करके प्रजाओं को पुष्ट करता है वह सब का हितैषी होता है ॥ ५ ॥

वद्मा सूनो सहसो नो विहाया अग्ने तोकं तनयं वाजि नो दाः ।
विश्वाभिर्गीर्भिरभि पूर्तिमश्यां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥६॥१५॥

पदार्थ—हे (सहसः) बलिष्ठ के (सूनो) सन्तान (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्वन् (विहायाः) बड़े (वद्मा) सत्य हित के उपदेष्टा आप (नः) हम को (विश्वाभिः) सम्पूर्ण (गीर्भिः) वाणियों से (वाजि) अन्न आदि युक्त के (तोकम्) वृद्धि करने और (तनयम्) सुख के बढ़ानेवाले के अपत्य को (दाः) दीजिये जिससे मैं (पूर्तिम्) पूर्णता को (अश्याम्) प्राप्त होऊं और जिससे हम लोग (शतहिमाः) सौ वर्ष की अवस्था युक्त (सुवीराः) उत्तम वीरोंवाले (अभि, मदेम) सब ओर से आनन्द करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् जनो ! आप अध्यापन और उपदेश से सम्पूर्ण गृहस्थों के पुत्र और पुत्रियों को उत्तम प्रकार शिक्षित करके विद्या से सुखयुक्त करो जिससे दीर्घ अवस्थावाले होकर वे सन्तान भी ऐसा ही आचरण करें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अग्नि, विद्वान् और राजा के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तेरहवां सूक्त और पन्द्रहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षडृचस्य चतुर्दशस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ।
अग्निर्देवता । १, ३ भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ।
२ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ अनुष्टुप् ।
५ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।
६ भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले चौदहवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में
अब मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

अग्ना यो मर्त्यो दुवो धियं जुजोष धीतिभिः ।
भसन्नु ष प्र पूर्व्य इषं वुरीतावसे ॥ १ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो (यः) जो (मर्त्यः) मनुष्य (धीतिभिः) अगुली आदि अवयवो से (अग्ना) अग्नि में (दुवः) सेवन और (धियम्) बुद्धि वा कर्म का (जुजोष) सेवन करता है और (अवसे) रक्षण आदि के लिए (पूर्व्यः) पूर्वजनो से प्रकाशित किया गया (प्र, भसत्) प्रकाशित होवे और (इषम्) अन्न वा विज्ञान को (नु) शीघ्र (वुरीत) स्वीकार करे (सः) वह भाग्यशाली होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य आलस्य आदि दोषो का त्याग कर धर्म से पुरुषार्थ करते हैं वे सम्पूर्ण इष्ट सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

अब मनुष्य क्या करते हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अग्निरिद्धि प्रचेता अग्निर्वेधस्तम ऋषिः ।
अग्निं होतारमीळते यज्ञेषु मनुषो विशः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस (होतारम्) सब को धारण करने वा देनेवाले (अग्निम्) परमात्मा को (प्रचेता) जनानेवाला (अग्निः) बिजुली जैसे वैसे (वेधस्तमः) अतीव विद्वान् (अग्निः) पवित्र (ऋषिः) मन्त्र और अर्थों को जाननेवाला और (मनुषः) विचार करनेवाले (विशः) मनुष्य (यज्ञेषु) सन्ध्योपासन आदि श्रेष्ठ कर्म्मों में (ईळते) स्तुति करते हैं उस (इत्) ही की (हि) निश्चित आप लोग प्रशंसा करो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप सब लोगो का परमेश्वर ही स्तुति करने, मानने, हृदय में धारण करने और उपासना करने योग्य है ऐसा निश्चय करो ॥२॥

नाना ह्य१ग्नेऽवसे स्पर्धन्ते रायो अर्यः ।
तूर्वन्तो दस्युमायवो व्रतैः सीक्षन्तो अव्रतम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् जो (हि) निश्चय (नाना) अनेक (अव्रतम्) धर्म्मयुक्त कर्म्म से रहित (दस्युम्) दुष्टजन की (तूर्वन्तः) हिंसा करते और (व्रतैः) कर्म्मों से (सीक्षन्तः) सहन की इच्छा करते हुए (आयवः) मनुष्य (अवसे) रक्षण आदि के लिए (स्पर्धन्ते) दूसरे की बड़ाई को नहीं सहते हैं उनके (रायः) धन का (अर्यः) स्वामी सत्कार करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो दुष्टों के निवारण में प्रयत्न करते हैं वे मनुष्य धनवान् होते हैं ॥ ३ ॥

फिर उत्तम मनुष्य क्या करता है इस विषय को कहते हैं—

अग्निरप्सामृतीषहं वीरं ददाति सत्पतिम् ।
यस्य त्रसन्ति शवसः संचक्षि शत्रवो भिया ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यस्य) जिसके (शवसः) बल से (संचक्षि) सम्मुख (भिया) भय से (शत्रवः) शत्रुजन (त्रसन्ति) व्याकुल होते हैं वह (अग्निः) बड़ा बलिष्ठ वीर पुरुष (अप्साम्) श्रेष्ठ कर्म्मों के विभाग करने और (ऋतीषहम्) दूसरे के पदार्थों के प्राप्त करानेवाले शत्रुओं को सहनकर्त्ता (सत्पतिम्) श्रेष्ठों के पालक (वीरम्) वीर पुरुष को (ददाति) देता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय और विद्वान् होकर शरीर और आत्मा के सामर्थ्य को नहीं दूर करते हैं उन से शत्रुजन डरके भागते हैं अथवा वश को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अग्निर्हि विद्मना निदो देवो मर्त्तमुरुष्यति ।
सहावा यस्यावृतो रयिर्वाजेष्ववृतः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (अवृतः) नहीं स्वीकार किया गया (सहावा) सहनेवाला (देवः) निरन्तर प्रकाशमान (अग्निः) अग्नि के सदृश पवित्रों से बड़ा हुआ मुनि (मर्त्तम्) मनुष्य को (उरुष्यति) सेवता है उसको (हि) जिससे (विद्मना) ज्ञान से विशेष करके जानें और (यस्य) जिसके (वाजेषु) संग्रामों में (अवृतः) नहीं आच्छादित किया गया (रयिः) धन होता है उससे (निदः) निन्दा करनेवालों का निवारण कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—सब पदार्थों को उत्पन्न करती हुई बिजुली को मनुष्य जानें जिस विज्ञान से आग्नेयादि नामक अस्त्र सिद्ध होते हैं उसका सब काल में खोज करो ॥५॥

फिर विद्वानों को प्रतिदिन क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नॄन्द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥ ६ ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे (मित्रमहः) मित्रों से आदर करने योग्य (देव) सुख के देनेवाले (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्या के प्रकाश से युक्त विद्वन् आप (नः) हम लोगो (देवान्) विद्वानों को तथा (रोदस्योः) अग्नि और पृथिवी सम्बन्धिनी (सुमतिम्) उत्तम बुद्धि को (अच्छा) उत्तम प्रकार (वोचः) कहिये (सुक्षितिम्) उत्तम भूमि जिस में उस (स्वस्तिम्) सुख को (वीहि) प्राप्त हूजिये और (दिवः) कामना करते हुए (नॄन्) मनुष्यों से पदार्थविद्या को कहिये जिस से (तव) आप के (अवसा) रक्षण आदि से (द्विषः) द्वेष से युक्त जनों (अंहांसि) पापों और (दुरिता) दुष्ट आचरणों दुर्व्यसनों का (तरेम) उल्लङ्घन करें तथा (ता) उन निन्दादिकों का (तरेम) उल्लङ्घन करें और कुसंग से हुए दोषों का (तरेम) उल्लङ्घन करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् जनो ! जितनी विद्या को आप लोग प्राप्त होओ उतनी का अन्य जनों के लिए यथावत् उपदेश करो और सत्य उपदेश से मनुष्यों के दुष्ट व्यसनों को दूर करो और आप अधर्म्म के आचरण से पृथक् वर्त्ताव करो और सत्संग तथा पुरुषार्थ से दृढ़ होकर दुःखों से पार होकर सुख को प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह चौदहवां सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथैकोनविंशत्यृचस्य पञ्चदशस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा ऋषिः ।
अग्निर्देवता १, २, ५ निचृज्जगती । ३ निचृदतिजगती । ७ जगती ८ विराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ४, १४ भुरिक् त्रिष्टुप् । ६, १०, ११, १६ त्रिष्टुप् ।
१३ विराट् त्रिष्टुप् । १९ त्रिष्टुप् । ६ निचृदतिशक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः । १२ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । १५ ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । १७ विराडनुष्टुप् १८ स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब उन्नीस ऋचावाले पन्द्रहवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अब मनुष्यों को क्या जानना चाहिये इस विषय को कहते है—

इममू षु वो अतिथिमुषर्बुधं विश्वासां विशां पतिमृञ्जसे गिरा ।
वेतीद्दिवो जनुषा कच्चिदा शुचिर्ज्योक्चिदत्ति गर्भो यदच्युतम् ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् जिस कारण से आप (इमम्) इस (विश्वासाम्) सम्पूर्ण (विशाम्) मनुष्य आदि प्रजाओं के (पतिम्) पालक (अतिथिम्) अतिथि के समान वर्त्तमान (उषर्बुधम्) प्रातःकाल में जगानेवाले को (ऋञ्जसे) सिद्ध करते हैं (गर्भः) अन्तस्थ के समान जो (उ) तर्कनासहित (दिवः) पदार्थबोध की (जनुषा) उत्पत्ति से (सु, वेति) अच्छे प्रकार व्याप्त होता (इत्) ही है तथा (कत्) कभी (चित्) भी (यत्) जो (शुचिः) पवित्र (अच्युतम्) नाश से रहित वस्तु को (ज्योक्) निरन्तर (अत्ति) भोगता है और (वः) आप लोगो की (गिरा) वाणी से (चित्) निश्चित (आ) आज्ञा करता है वह विद्वान् होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे अतिथि सत्कार करने योग्य है वैसे ही पदार्थविद्या का जानने वाला सत्कार करने योग्य है, जो सब के अन्तःस्थ नित्य बिजुली की ज्योति को जानते हैं वे अभीप्सित सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

मित्रं न यं सुधितं भृगवो दधुर्वनस्पतावीड्यमूर्ध्वशोचिषम् ।
स त्वं सुप्रीतो वीतहव्ये अद्भुत प्रशस्तिभिर्महयसे दिवेदिवे ॥२॥

पदार्थ—हे (अद्भुत) महाशय (यम्) जिस (मित्रम्) मित्र को (न) जैसे वैसे (सुधितम्) उत्तम प्रकार स्थित को (वनस्पतौ) किरणों के पालक सूर्य में (ईड्यम्) उत्तम गुणों से प्रशंसा करने योग्य (ऊर्ध्वशोचिषम्) ऊपर को ज्वाला जिसकी उस को (भृगवः) विद्वान् मनुष्य (दधुः) धारण करते हैं (सः) वह (त्वम्) आप (प्रशस्तिभिः) प्रशंसा करने योग्य धर्म्मयुक्त क्रियाओं से (दिवेदिवे) प्रतिदिन (सुप्रीतः) उत्तम प्रकार प्रसन्न हुए (वीतहव्ये) व्याप्त हुआ ग्रहण करने योग्य वस्तु जिससे उस में (महयसे) सत्कार किये जाते हो इससे सेवन करने योग्य हो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे मित्र कार्यों को सिद्ध करता है वैसे ही अग्नि उत्तम प्रकार प्रयोग किया गया कार्यों को सिद्ध करता है ॥ २ ॥

फिर मनुष्य कैसे होवें इस विषय को कहते हैं—

स त्वं दक्षस्यावृको वृधो भूरर्यः परस्यान्तरस्य तरुषः । रायः सूनो सहसो मर्त्येष्वा छर्दिर्यच्छ वीतहव्याय सप्रथो भरद्वाजाय सप्रथः ॥३॥

पदार्थ—हे (सहसः) बलवान् के (सूनो) सन्तान जो (त्वम्) आप (बलस्य) बल के (अवृकः) नहीं चोर (वृधः) बढ़ानेवाले (परस्य) अत्यन्त (अन्तरस्य) भिन्न (तरुषः) तारने वाले (रायः) धन के (अर्यः) स्वामी (मर्त्येषु) मनुष्यों में (सप्रथः) तुल्य प्रसिद्धि वाले (वीतहव्याय) प्राप्त हुआ प्राप्त होने योग्य जिस को उस (भरद्वाजाय) धारण किया विज्ञान जिस ने उस के लिए दाता (भू) होओ (सः) वह (सप्रथः) विस्तृत विज्ञान के सहित आप (छर्दि) गृह को (आ, यच्छ) आदान कीजिये अर्थात् लीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सब प्रकार से बल की वृद्धि करें तो लक्ष्मीयुक्त कैसे न हों ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

द्युतानं वो अतिथिं स्वर्णरमग्निं होतारं मनुषः स्वध्वरम् ।
विप्रं न द्युक्षवचसं सुवृक्तिभिर्हव्यवाहमरतिं देवमृञ्जसे ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वान् जो आप (वः) आप लोगों के (अतिथिम्) अतिथि के समान (द्युतानम्) सत्यार्थ के प्रकाशक (स्वर्णरम्) सुख को प्राप्त कराने और (मनुषः) मनुष्य के (होतारम्) ग्रहण करनेवाले (स्वध्वरम्) उत्तम प्रकार यज्ञ जिससे उस (अग्निम्) अग्नि को (सुवृक्तिभिः) अच्छे प्रकार चलते हैं जिन क्रियाओं से उन के सहित जैसे वैसे (द्युक्षवचसम्) द्योतक वचन के प्रकाशक (हव्यवाहम्) धारण करने योग्य का वहन करने और (अरतिम्) प्राप्त करानेवाले (देवम्) प्रकाशमान (विप्रम्) बुद्धिमान् को (न) जैसे वैसे (ऋञ्जसे) सिद्ध करते हो उसका हम लोग सत्कार करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे बुद्धिमान् जन यथायोग्य कर्मों को करने को समर्थ होता है वैसे ही युक्ति से अच्छे प्रकार प्रयोग किया अग्नि सम्पूर्ण व्यापार सिद्ध करने को समर्थ होता है ॥ ४ ॥

फिर मनुष्यों को क्या प्रकाशित करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुच उषसो न भानुना ।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः ॥५॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो (भानुना) किरण से (उषसः) प्रभातवेला (न) जैसे वैसे (पावकया) अग्नि की क्रिया से और (चितयन्त्या) जनाती हुई (कृपा) कृपा से (क्षामन्) पृथिवी में (रुरुचे) प्रकाशित किया जाता है (घृणे) प्रदीप्त में (न) जैसे वैसे (रणे) संग्राम में (ततृषाणः) पिपासा से व्याकुल (अजरः) जरा से रहित (यः) जो (यामन्) चलते हैं जिस में उस मार्ग में (एतशस्य) घोड़े का चलाने वाला (तूर्वन्) हिंसन करता हुआ (न) जैसे वैसे (नू) शीघ्र (आ) प्रकाशित होता है वह सेवा करने योग्य है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य के किरण प्रातःकाल को प्रकाशित करते हैं वैसे ही विद्वान् जन सब के अन्तःकरणों को प्रकाशित करें ॥ ५ ॥

फिर मनुष्य को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अग्निमग्निं वः समिधा दुवस्यत प्रियम्प्रियं वो अतिथिं गृणीषणि ।
उप वो गीर्भिरमृतं विवासत देवो देवेषु वनते हि वार्यं देवो देवेषु वनते हि नो दुवः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (गृणीषणि) स्तुति करने योग्य व्यवहार में समिधा इन्धनों से (वः) आप लोगों के (अग्निमग्निम्) अग्नि अग्नि का और (वः) आप लोगों के (प्रियम्प्रियम्) कामना करने योग्य कामना करने योग्य (अतिथिम्) अतिथि का (उप, वनते) समीप में सेवन करता (हि) ही है और जो (देवेषु) श्रेष्ठ गुणयुक्तों में (देवः) प्रकाशमान (गीर्भिः) वाणियों से (वः) आप लोगों को (वार्यम्) स्वीकार करने योग्य व्यवहार (अमृतम्) कारणरूप से नाशरहित का सेवन करता है और जो (हि) निश्चल (देवेषु) पितृरूप विद्वानों में (देवः) दाता जन (नः) हम लोगों के लिए (दुवः) सेवन को (वनते) स्वीकार करता है उसका (दुवस्यत) सेवन करो उसका (विवासत) सेवन करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग जैसे विद्वान् का वैसे अग्नि का भी मेल करावें जिससे अभीष्ट कार्य सिद्ध होवें ॥ ६ ॥

समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम् ।
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (समिधा) इन्धन के समान पदार्थ से (समिद्धम्) प्रकाशित हुए (अग्निम्) अग्नि को जैसे वैसे वर्त्तमान को (अध्वरे) अहिंसारूप यज्ञ में (ध्रुवम्) निश्चल (शुचिम्) पवित्र और (पावकम्) पवित्र करनेवाले (होतारम्) दाता (पुरुवारम्) बहुत विद्वानों से सत्कार किये गये (अद्रुहम्) द्रोह से रहित (जातवेदसम्) प्रकट हुई विद्या जिसकी ऐसे (विप्रम्) विद्या और विनय से बुद्धिमान् को (गिरा) वाणी से (पुरः) आगे (गृणे) स्तुति करता हूँ (कविम्) पूर्ण विद्या से युक्त को जैसे वैसे (सुम्नैः) सुखों से हम लोग (ईमहे) याचना करें वैसे आप लोग भी याचना करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग सत्य के प्रकाशक विद्वानों से विद्या की याचना करो तथा इस विद्या को प्राप्त होकर अन्यों को देओ ॥ ७ ॥

मनुष्यों से किसकी उपासना करने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥८॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश स्वयं प्रकाशमान भगवन् (युगेयुगे) वर्ष वर्ष वा सत्ययुग आदि में जिस (हव्यवाहम्) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को धारण करनेवाले (ईड्यम्) स्तुति करने योग्य (पायुम्) पालन करनेवाले (विश्पतिम्) मनुष्य आदि प्रजाओं के पालक (जागृविम्) सदा जागनेवाले (अमृतम्) नाश से रहित (दूतम्) दुःखों के दूर करनेवाले (विभुम्) व्यापक परमात्मा (त्वाम्) आपको (देवासः) विद्वान् (च) और योगी (मर्तासः) मरण धर्म्मवाले (च) भी (नमसा) सत्कार से (दधिरे) धारण करें (नि, षेदिरे) स्थित होते हैं उसको हम लोग धारण करें तथा उसमें स्थित होवें ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! आप लोग प्रतिदिन सर्वव्यापी, न्यायेश, दयालु, सब धन्यवादों के योग्य, परमात्मा ही की उपासना करो ॥ ८ ॥

फिर वह उपासित ईश्वर क्या करता है इस विषय को कहते हैं—

विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे ।
यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥९॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सम्पूर्ण दुःखों का जलाने अर्थात् दूर करनेवाले परमेश्वर जो आप (रजसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (देवानाम्) विद्वानों के (दूतः) दोषों के दूर करने अथवा धर्म अर्थ और मोक्ष को प्राप्त करानेवाले होते हुए (व्रता) कर्मों को (विभूषन्) शोभित करते और (उभयान्) विद्वान् और अविद्वान् मनुष्यों को (अनु) पीछे शोभित करते हुए अन्तरिक्ष और पृथिवी को (सम्, ईयसे) व्याप्त होते हैं और (यत्) जिस (ते) आपकी (धीतिम्) धारणा वा बुद्धि को (सुमतिम्) श्रेष्ठ बुद्धि को हम लोग (आवृणीमहे) स्वीकार करें वह (अध) इसके अनन्तर (त्रिवरूथः) तीन उत्तम मध्यम निकृष्ट गृहों के सदृश निवासस्थानवाले आप (नः) हम लोगों के लिए (शिवः) कल्याणकारी (स्म) ही (भव) हूजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य जगत् के रचनेवाले ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल वर्त्ताव करते हैं तथा उसके गुण कर्म और स्वभावों के सदृश अपने गुण कर्म और स्वभावों का करते हैं उनको वह जैसे दूत वैसे सब विद्या के समाचार को जनाता हुआ सहज से मुक्ति के पद को प्राप्त करता है इससे सब काल में ही इसकी उपासना करनी चाहिए ॥ ९ ॥

फिर उसका ज्ञान और उपासना आवश्यक है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चमविद्वांसो विदुष्टरं सपेम ।
स यक्षद्विश्वा वयुनानि विद्वान् प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत् ॥१०॥१८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (अविद्वांसः) विद्या से रहित जन (तम्) उस (सुप्रतीकम्) सुन्दर कर्म किये जिसने तथा (सुदृशम्) योगाभ्यास में देखने योग्य वा उत्तम प्रकार दिखाने और (स्वञ्चम्) अच्छे प्रकार जानने वा प्राप्त करानेवाले (विदुष्टरम्) अत्यन्त विद्वान् ईश्वर को नहीं विशेष करके जानते और न उपासना करते हैं उनको हम लोग (सपेम) शाप देते हैं और जो (विद्वान्) प्रकट विद्याओं से युक्त (अग्निः) अग्नि के समान स्वयं प्रकाशित हुआ (विश्वा) सम्पूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञानों और (अमृतेषु) नाशरहित कारण जीवों में (हव्यम्) देने योग्य विज्ञान को (प्र, वोचत्) अत्यन्त कहता है (सः) वह हम लोगों को (यक्षत्) प्राप्त करावे ॥ १० ॥

भावार्थ—जो परमात्मा को नहीं जानते और उसकी आज्ञा के अनुकूल आचरण नहीं करते हैं उनको धिक् है धिक् है और जो उसकी उपासना करते हैं वे धन्य हैं। और जो हम लोगों के लिए वेद द्वारा सम्पूर्ण विज्ञानों का उपदेश देता है उसी की हम सब लोग उपासना करें ॥ १० ॥

तमग्ने पास्युत तं पिपर्षि यस्त आनट् कवये शूर धीतिम् ।
यज्ञस्य वा निशितिं वोदितिं वा तमित्पृणक्षि शवसोत राया ॥११॥

पदार्थ—हे (शूर) भयरहित दुष्ट दोषों के विनाश करने और (अग्ने) अविद्यारूप अन्धकार के नाश करनेवाले (यः) जो (ते) आपकी आज्ञा को (आनट्) व्याप्त होता है उस (कवये) विद्वान् के लिए (धीतिम्) धारणा को देते हो (तम्) उसकी (पासि) रक्षा करते हो (उत) और (तम्) उसकी (पिपर्षि) पालना करते वा श्रेष्ठ गुणों से पूरित करते हो (वा) वा (यज्ञस्य) यज्ञ की (निशितिम्) अत्यन्त तीक्ष्णता का वा (उदितिम्) उदय का (वा) वा (पृणक्षि) सम्बन्ध करते हो (तम्) उसका (वा) वा (शवसा) बल से (उत) और (राया) धन से भी सम्बन्ध करते हो वह (इत्) ही आप उपासना करने योग्य हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो सत्यभाव से जगदीश्वर की उपासना करते हैं उनकी ईश्वर सब प्रकार से रक्षा कर धर्मयुक्त गुण कर्म और स्वभावों में प्रेरणा कर तथा शरीर और आत्मा का बल अच्छे प्रकार देकर मोक्ष को प्राप्त कराता है ॥ ११ ॥

फिर ईश्वर किस निमित्त उपासना करने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

त्वम॑ग्ने वनुष्य॒तो नि पा॑हि॒ त्वमु॑ नः सहसावन्नव॒द्यात् ।
सं त्वा॑ ध्वस्म॒न्वद॒भ्ये॑तु॒ पाथः॒ सं र॒यिः स्पृ॑ह॒याय्यः॑ सह॒स्री ॥१२॥

पदार्थ—(**सहसावन्**) अत्यन्त बलयुक्त (**अग्ने**) श्रेष्ठ गुणों के देनेवाले (**त्वम्**) आप (**वनुष्यतः**) याचना करते हुए (**नः**) हम लोगों की (**अवद्यात्**) निन्द्य आचरण से (**त्वम्**) आप (**नि, पाहि**) नित्य रक्षा करिये और जो (**स्पृहयाय्यः**) स्पृहा कराने योग्य (**सहस्री**) सम्पूर्ण सुख जिसमें वह (**रयिः**) धन और जो (**ध्वस्मन्वत्**) नाशवाला (**पाथः**) अन्न आदि हम लोगों को (**सम्, अभि, एतु**) उत्तम प्रकार प्राप्त हो उससे युक्त हम लोग (**उ**) भी (**त्वा**) आपकी (**सम्**) अच्छे प्रकार उपासना करें ॥ १२ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो धर्म से याचना किया गया जगदीश्वर अधर्म के आचरण से अलग करके धर्म को प्राप्त कराता है और जो आनन्द सुख को भी देता है उसी को रक्षक, सब ऐश्वर्य देनेवाला तथा इष्ट देव जानो ॥१२॥

अ॒ग्निर्होता॑ गृ॒हप॑तिः॒ स राजा॒ विश्वा॑ वेद॒ जनि॑मा जा॒तवे॑दाः ।
दे॒वाना॑मु॒त यो मर्त्या॑नां॒ यजि॑ष्ठः॒ स प्र य॑जतामृ॒तावा॑ ॥१३॥

पदार्थ—हे विद्वानो (**यः**) जो (**गृहपतिः**) गृह का पालक जैसे वैसे ब्रह्माण्ड का प्रबन्ध करने (**होता**) धारण करने तथा (**जातवेदाः**) प्रकट हुए पदार्थों को जाननेवाला और सब का (**राजा**) न्याय करने तथा (**ऋतावा**) सत्य और असत्य का विभाग करने (**यजिष्ठः**) अतिशय यज्ञ करने वा पदार्थों का मेल करानेवाला (**अग्निः**) सबका प्रकाशक (**देवानाम्**) दिव्य पदार्थों वा विद्वानों के मध्य में (**उत**) और (**मर्त्यानाम्**) मनुष्यों के (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**जनिमा**) जन्मों को (**वेद**) जानता है (**सः**) वह हम लोगों का (**प्र, यजताम्**) अत्यन्त प्राप्त करावे (**सः**) वह हम लोगों का राजा होवे ऐसा हम लोग निश्चय करते हैं वैसे आप लोग भी जानो ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सम्पूर्ण जगत् और जीवों के कर्मों को जानकर फलों का दाता है वही सत्य राजा है ऐसा जानना चाहिए ॥ १३ ॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय को कहते हैं—

अग्ने यद॒द्य वि॒शो अ॑ध्वरस्य होतः॒ पाव॑कशोचे॒ वेष्ट्वं हि यज्वा॑ ।
ऋ॒ता य॑जासि महि॒ना वि यद्भूर्ह॒व्या व॑ह यविष्ठ॒ या ते॑ अ॒द्य ॥१४॥

पदार्थ—हे (**पावकशोचे**) पवित्र प्रकाश और (**होतः**) दान करने तथा (**यविष्ठ**) अतिशय मिलाने वा विभाग कराने और (**अग्ने**) सम्पूर्ण प्रजा की पीड़ाओं को दूर करनेवाले (**यत्**) जो (**यज्वा**) मेल करनेवाले (**त्वम्**) आप (**हि**) निश्चय से (**अद्य**) इस समय (**विशः**) मनुष्य आदि प्रजा के (**वेः**) आकाशगन्ता पक्षी के समान (**अध्वरस्य**) अहिंसामय (**ऋता**) सत्य सुख के प्राप्त करानेवाले यज्ञ में (**यजासि**) यजन करते हो (**यत्**) जो आप (**महिना**) महत्त्व से (**वि**) विशेष करके (**भूः**) होवें और (**या**) जो वस्तु (**ते**) आप के वर्त्तमान में (**अद्य**) इस समय हैं उन (**हव्या**) देने योग्यों को हम लोगों के लिये (**वह**) प्राप्त करिये ॥ १४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण करता है और जो व्यापक अहिंसा आदि धर्म के अनुष्ठान के लिये आज्ञा देता है वह ही सबसे उपासना करने योग्य है ॥ १४ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अ॒भि प्रयां॑सि॒ सुधि॑तानि॒ हि ख्यो नि त्वा॑ दधीत॒ रोद॑सी॒ यज॑ध्यै ।
अवा॑ नो मघव॒न्वाज॑साताव॒ग्ने विश्वा॑नि दुरि॒ता त॑रेम॒ ता त॑रेम॒ तवा-
व॑सा तरेम ॥ १५ ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे (**मघवन्**) अत्यन्त श्रेष्ठ धन से युक्त (**अग्ने**) अतितेजस्वी जो आप (**सुधितानि**) उत्तम प्रकार तृप्ति करनेवाले (**प्रयांसि**) कामना करनेवाले योग्य अन्न आदि वस्तुओं को (**हि**) निश्चित (**नि, दधीत**) अच्छे प्रकार धारण करें और आप विद्वानों को (**अभि, ख्यः**) सम्मुख कहते हो और आप (**यजध्यै**) मेल करने को (**रोदसी**) अन्तरिक्ष और पृथिवी को धारण करिये तथा (**वाजसातौ**) संग्राम में (**नः**) हम लोगों की (**अवा**) रक्षा करिये जिन (**त्वा**) आपका आश्रय करके हम लोग (**ता**) उन (**विश्वानि**) सम्पूर्ण (**दुरिता**) दुःख के प्राप्त करानेवाले पापों का (**तरेम**) उल्लंघन करें (**तव**) आपके (**अवसा**) रक्षण आदि से (**तरेम**) दुःखसागर के पार जावें और निरन्तर (**तरेम**) सम्पूर्ण दोषों का त्याग करें ॥ १५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अन्न और पानादिक जीवन के हितकारक पदार्थों को धारण करता, अन्तर्यामी होने से सत्य का उपदेश करता उसके आश्रय से ही सम्पूर्ण दुःखों के पार प्राप्त होओ ॥ १५ ॥

अग्ने॒ विश्वे॑भिः स्वनीक दे॒वैरूर्णा॑वन्तं प्रथ॒मः सी॑द॒ योनि॑म् ।
कु॒ला॒यिनं॑ घृ॒तव॑न्तं सवि॒त्रे य॒ज्ञं न॑य॒ यज॑मानाय सा॒धु ॥१६॥

पदार्थ—हे (**स्वनीक**) सुन्दर सेनावाले (**अग्ने**) विद्वान् राजन् (**प्रथमः**) प्रसिद्ध आप (**विश्वेभिः**) सम्पूर्ण (**देवैः**) विद्वानों वा वीर पुरुषों के साथ (**ऊर्णावन्तम्**) बहुत ऊर्णा के वस्त्रों से युक्त (**योनिम्**) गृह में (**सीद**) वर्त्तमान हो (**सवित्रे**) संसार को उत्पन्न करने और (**यजमानाय**) पदार्थों को मिलानेरूप विद्या को जाननेवाले के लिए (**कुलायिनम्**) गृह आदि सामग्री से और (**घृतवन्तम्**) बहुत घृत आदि पदार्थों से युक्त (**यज्ञम्**) संगति स्वरूप व्यवहार को (**साधु**) उत्तम प्रकार (**नय**) प्राप्त कराइये ॥ १६ ॥

भावार्थ—हे विद्यायुक्त राजजनो ! आप लोग विद्वानों के सहाय से न्याय के गृहों में ठहर के न्याय करिये और सब मनुष्यों को न्यायमार्ग पर चलाइये जिससे सब श्रेष्ठ मार्ग में स्थित होकर परोपकारी होवें ॥ १६ ॥

फिर बिजुली को किससे निकालें इस विषय को कहते हैं—

इ॒मम् उ॒ त्यम॑थर्व॒वद॒ग्निं म॑न्थन्ति वे॒धसः॑ ।
यम॑ङ्कू॒यन्त॒मान॑य॒न्नमू॑रं श्या॒व्या॑भ्यः ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**वेधसः**) बुद्धिमान् विद्वान् जन (**श्याव्याभ्यः**) रात्रियों में हुई क्रियाओं से (**यम्**) जिस (**अङ्कूयन्तम्**) प्रसिद्ध चिह्न प्राप्त होते जिसमें (**इमम्**) इस (**उ**) और (**त्यम्**) जो नहीं प्रत्यक्ष हुआ उस (**अग्निम्**) बिजुलीरूप अग्नि का (**अथर्ववत्**) जैसे अथर्ववेद में मन्थन कहा है वैसे (**अमूरम्**) मूढ़ से भिन्न का (**मन्थन्ति**) मन्थन करते और कार्य की सिद्धि को (**आ, अनयन्**) अच्छे प्रकार प्राप्त करते हैं उसका आप लोग भी मन्थन करके कार्यों को सिद्ध करिये ॥ १७ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन भूमि, अन्तरिक्ष, वायु, आकाश और सूर्य आदि से मन्थन करके बिजुली को निकालते हैं वे अनेक कार्यों को सिद्ध करने को समर्थ होते हैं ॥ १७ ॥

मनुष्यों को सृष्टि से कौन कौन उपकार ग्रहण करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

जनि॑ष्वा दे॒ववी॑तये स॒र्वता॑ता स्व॒स्तये॑ ।
आ दे॒वान्व॑क्ष्य॒मृताँ॑ ऋता॒वृधो॑ य॒ज्ञं दे॒वेषु॑ पिस्पृशः ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् आप (**देववीतये**) श्रेष्ठ गुणों की प्राप्ति के लिए और (**स्वस्तये**) सुख की प्राप्ति के लिए (**सर्वताता**) सम्पूर्ण सुख के करनेवाले शिल्प-कारीगरीरूप यज्ञ में (**अमृतान्**) नाशरहित (**ऋतावृधः**) सत्य व्यवहार के बढ़ाने वाले (**देवान्**) श्रेष्ठ गुणों वा भोगों को (**आ, वक्षि**) प्राप्त कराइये और (**देवेषु**) विद्वानों में (**यज्ञम्**) सुख के देनेवाले यज्ञ का (**पिस्पृशः**) स्पर्श कराइये इसमें सुखों को (**जनिष्वा**) प्रकट कीजिए ॥ १८ ॥

भावार्थ—विद्वानों को चाहिए कि सृष्टि में वर्त्तमान पदार्थों से विद्या के द्वारा श्रेष्ठ भोगों को प्राप्त होकर अपने लिए अनेक प्रकार के सुख को उत्पन्न करें ॥ १८ ॥

फिर गृहस्थों को कैसा प्रयत्न करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

व॒यमु॑ त्वा गृहपते जनाना॒मग्ने॒ अक॑र्म स॒मिधा॑ बृ॒हन्त॑म् ।
अ॒स्थू॒रि नो॒ गार्ह॑पत्यानि सन्तु ति॒ग्मेन॑ न॒स्तेज॑सा॒ सं शि॑शाधि ॥१९॥

पदार्थ—हे (**गृहपते**) गृहस्थों के पालन करनेवाले (**अग्ने**) अग्नि के समान वर्त्तमान (**वयम्**) हम लोग (**जनानाम्**) मनुष्यों के मध्य में (**त्वा**) आपका आश्रय करके (**समिधा**) प्रदीपक साधन से अग्नि को (**बृहन्तम्**) बड़ा (**अकर्म**) करें (**उ**) और (**नः**) हम लोगों का (**अस्थूरि**) चलनेवाला वाहन और (**गार्हपत्यानि**) गृहपति से संयुक्त कर्म जिस प्रकार से सिद्ध (**सन्तु**) हों उस प्रकार से (**तिग्मेन**) तीव्र (**तेजसा**) तेज से आप (**नः**) हम लोगों को (**सम्, शिशाधि**) उत्तम प्रकार शिक्षा दीजिये ॥ १९ ॥

भावार्थ—हे गृहस्थजनो ! आप लोग आलस्य का त्याग करके सृष्टिक्रम से विद्या की उन्नति करके अन्य विद्यार्थियों को विद्या ग्रहण कराइये जिस से सब सुख बढ़ें ॥ १९ ॥

इस सूक्त में अग्नि, विद्वान्, ईश्वर और गृहस्थ के कार्यों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह पन्द्रहवां सूक्त और उन्नीसवां वर्ग और छठे मण्डल का पहिला अनुवाक समाप्त हुआ ॥

卐

अथाष्टचत्वारिंशदृचस्य षोडशस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्नि-र्देवता । १, ६, ७ आर्ची उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । २, ३, ४, ५, ८, ९, ११, १३, १४, १५, १७, १८, २१, २४, २५, २८, ३२, ४० निचृद्-गायत्री । १०, १९, २०, २२, २३, २९, ३१, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४१ गायत्री । २६, ३० विराड्गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः । १२, १६, ३३, ४२, ४४ साम्नीत्रिष्टुप् । ४३, ४५ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २७ आर्चीपंक्तिः । ४६ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ४७, ४८ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब अड़तालीस ऋचावाले सोलहवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् क्या करें इस विषय को कहते हैं—

त्वम॑ग्ने य॒ज्ञानां॒ होता॒ विश्वे॑षां हि॒तः। दे॒वेभि॒र्मानु॑षे॒ जने॑॥ १॥

पदार्थ—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! जिस कारण से (त्वम्) आप (यज्ञानाम्) प्राप्त होने योग्य व्यवहारों के (होता) देनवाले और (विश्वेषाम्) सब के (हितः) हितकारी हो इससे (देवेभिः) विद्वानों के साथ (मानुषे) मनुष्यसम्बन्धी (जने) मनुष्य में प्रेरणा करनेवाले होओ ॥ १ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जैसे ईश्वर सब का हितकारी और सम्पूर्ण सुखों का देनेवाला तथा विद्वानों के सग से जानने योग्य है वैसे आप लोग भी अनुष्ठान करो ॥ १ ॥

फिर विद्वान् क्या करें इस विषय को कहते हैं—

स नो॑ म॒न्द्राभि॑रध्व॒रे जि॒ह्वाभि॑र्यजा म॒हः। आ दे॒वान् व॑क्षि॒ यक्षि॑ च॥ २॥

पदार्थ—हे विद्वन् अग्नि के सदृश तेजस्वी (सः) वह आप (अध्वरे) सब प्रकार अनुष्ठान करने योग्य धर्मयुक्त व्यवहार में (मन्द्राभिः) आनन्द करनेवाली (जिह्वाभिः) विद्या और विनय से युक्त वाणियों से (नः) हमलोगों को (यज) प्राप्त कराइये और (महः) बड़े अथवा सत्कार करने योग्यों को और (देवान्) श्रेष्ठ गुणों वा विद्वानों को (आ, वक्षि) प्राप्त कराइये और सबको (यक्षि, च) भी प्राप्त कराइये ॥ २ ॥

भावार्थ—विद्वान् जन विद्या की प्राप्ति के लिये सब को सदा उपदेश देवें जिससे श्रेष्ठ गुणोंवाले मनुष्य होवें ॥ २ ॥

कौन उपदेश करने योग्य होवें इस विषय को कहते हैं—

वेत्था॒ हि वे॑धो॒ अध्व॑नः प॒थश्च॑ दे॒वाञ्ज॑सा। अग्ने॑ य॒ज्ञेषु॑ सुक्रतो॥ ३॥

पदार्थ—हे (सुक्रतो) उत्तम ज्ञान वा उत्तमकर्मयुक्त (देव) विज्ञान के देनेवाले (वेधः) मेधावी (अग्ने) प्रकाशात्मा (हि) जिस से आप (यज्ञेषु) विद्या और धर्म के प्रचार नामक व्यवहारों में (अञ्जसा) स्वतन्त्रतायुक्त वेग से (अध्वनः) मार्गों को और (पथः) मार्गों को (च) भी (वेत्था) जानते हो इससे हम लोगों को जनाइये ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस संसार में जो मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के मार्गों को जानें वे ही अन्यों को भी उपदेश देवें न कि इतर अज्ञ जन ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

त्वामी॑ळे॒ अध॑ द्वि॒ता भ॑र॒तो वा॒जिभि॑ः शु॒नम्।
ई॒जे य॒ज्ञेषु॑ य॒ज्ञिय॑म्॥ ४॥

पदार्थ—हे विद्वन् जैसे मैं (यज्ञेषु) समागमरूप यज्ञों में (यज्ञियम्) यज्ञ करने योग्य (त्वाम्) आप विद्वान् की (ईळे) प्रशंसा करता हूँ (अध) इसके अनन्तर (द्विता) दो पढ़ाने और पढ़नेवाले वा उपदेश करने वा उपदेश पाने योग्यों का (भरतः) धारण और पोषण करनेवाला मैं (वाजिभिः) विज्ञानादिकों से (शुनम्) सुख की (ईजे) संगति करता हूँ वैसे आप संगति कीजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—विद्वानों को चाहिये कि परस्पर विद्या की उन्नति करके अन्यों को ग्रहण करावें ॥ ४ ॥

मनुष्य किसका सत्कार करें इस विषय को कहते हैं—

त्वमि॒मा वार्या॑ पु॒रु दिवो॑दासाय सुन्व॒ते। भ॒रद्वा॑जाय दा॒शुषे॑॥ ५॥ २१॥

पदार्थ—हे विद्वन् जिस कारण से (त्वम्) आप (दिवोदासाय) कामना करने योग्य पदार्थ के देने और (सुन्वते) सोमलतारूप ओषधि आदि की सिद्धि करनेवाले और (भरद्वाजाय) धारण किया विज्ञान जिसने उसके और (दाशुषे) विज्ञान के देनेवाले के लिये (इमा) इन (पुरु) बहुत (वार्या) स्वीकार करने योग्यों को देते हो इससे प्रशंसा करने योग्य हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सत्य के उपदेशकों और विद्या के प्रचारकों का सदा ही सत्कार करें अन्य जनों का नहीं ॥ ५ ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

त्वं दू॒तो अम॑र्त्य॒ आ व॑हा॒ दैव्यं॒ जन॑म्।
शृ॒ण्वन् विप्र॑स्य सुष्टु॒तिम्॥ ६॥

पदार्थ—हे विद्वन् (अमर्त्यः) साधारण मनुष्यों के स्वभाव से विरुद्ध (दूतः) सम्पूर्ण पदार्थविद्याओं के समाचार के जनानेवाले (त्वम्) आप (विप्रस्य) बुद्धिमान् की (सुष्टुतिम्) सुन्दर प्रशंसा को (शृण्वन्) सुनते हुए (दैव्यम्) विद्वानों से सिद्ध किये गये विद्वान् (जनम्) जन को (आ, वह) सब प्रकार से प्राप्त कराइये ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे परीक्षा करनेवालो ! आप लोग पक्षपात का त्याग करके विद्यार्थियों की यथावत् परीक्षा करके विद्यायुक्त कीजिये ॥ ६ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

त्वाम॑ग्ने स्वा॒ध्यो॒३॒॑ मर्ता॑सो दे॒ववी॑तये। य॒ज्ञेषु॑ दे॒वमी॑ळते॥ ७॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्या और विनय से प्रकाशात्मा विद्वन् जैसे (स्वाध्यः) उत्तम प्रकार चारों ओर से ध्यान करनेवाले (मर्तासः) मनुष्य (देववीतये) विद्या आदि श्रेष्ठ गुणों की प्राप्ति के लिये (यज्ञेषु) पढ़ाने पढ़ने और उपदेश नामक व्यवहारों में (त्वाम्) पूर्ण विद्यायुक्त यथार्थवक्ता आप (देवम्) विज्ञान के देनेवाले की (ईळते) स्तुति करते हैं उस प्रकार से हम लोग प्रशंसा करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्यार्थियों को चाहिये कि विद्या की प्राप्ति के लिये विद्वानों का सेवन करें और जैसे सृष्टि के पदार्थों में अग्नि प्रशंसित है वैसे ही मनुष्यों में धार्मिक विद्वान् हैं यह जानना चाहिये ॥ ७ ॥

फिर अध्यापक और पढ़नेवाले परस्पर कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

तव॒ प्र य॑क्षि सं॒दृश॑मु॒त क्रतुं॑ सु॒दान॑वः। विश्वे॑ जुषन्त का॒मिनः॑॥ ८॥

पदार्थ—हे विद्वान् जो (सुदानवः) श्रेष्ठ दान के दाता (विश्वे) सब (कामिनः) कामना करनेवाले जन (तव) विद्वान् आपके (सन्दृशम्) अच्छे दर्शन (उत) और (क्रतुम्) बुद्धि वा कर्म्म का (जुषन्त) सेवन करते हैं उनका आप उनके दान से (प्र, यक्षि) मेल कराइये ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जैसे विद्या की कामना करनेवाले आप लोगों की कामना करते हैं वैसे ही आप लोग विद्यार्थियों की कामना करो ॥ ८ ॥

फिर राजा प्रजाओं में कैसे वर्त्ताव करे इस विषय को कहते हैं—

त्वं होता॒ मनु॑र्हितो॒ वह्नि॑रा॒सा वि॒दुष्ट॑रः। अग्ने॒ यक्षि॑ दि॒वो विशः॑॥ ९॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् राजन् (वह्निः) प्राप्त करनेवाले अग्नि जैसे वैसे (होता) दाता (मनुर्हितः) मनुष्यों के हितकारी (विदुष्टरः) अत्यन्त विज्ञानवाले (त्वम्) आप (आसा) मुख से (दिवः) कामना करती हुई (विशः) प्रजाओं को (यक्षि) सुखयुक्त करिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे प्रजाजनो ! जैसे राजा आप लोगों की कामना करता और सुख देने की इच्छा करता है वैसे आप लोग भी उस राजा की कामना करके उसके लिये निरन्तर सुख दीजिये ॥ ९ ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

अग्न॒ आ या॑हि वी॒तये॑ गृणा॒नो ह॒व्यदा॑तये।
नि होता॑ सत्सि ब॒र्हिषि॑॥ १०॥ २२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् जिस कारण से आप (गृणानः) स्तुति करते हुए (होता) दाता (बर्हिषि) उत्तम सभा में (वीतये) विद्या आदि श्रेष्ठ गुणों की व्याप्ति के लिए और (हव्यदातये) देने योग्य के दान के लिये (नि, सत्सि) उत्तम प्रकार जानते हो इससे हम लोगों की उत्तम दीप्ति को (आ याहि) सब प्रकार प्राप्त होओ ॥ १० ॥

भावार्थ—जहां विद्वान् जन विद्या की वृद्धि करने की इच्छा करते हैं वहाँ सब सुखी होते हैं ॥ १० ॥

फिर मनुष्य परस्पर क्या करें इस विषय को कहते हैं—

तं त्वा॑ स॒मिद्भि॑रङ्गिरो घृ॒तेन॑ वर्धयामसि। बृ॒हच्छो॑चा यविष्ठ्य॥ ११॥

पदार्थ—हे (यविष्ठ्य) अत्यन्त युवा जनों में साधु (अङ्गिरः) बिजुली के समान वर्त्तमान जैसे यज्ञ करनेवाले जन (समिद्भिः) उत्तम प्रकार प्रकाशक समिधरूप काष्ठों और (घृतेन) घृत से अग्नि की वृद्धि करते हैं वैसे ज्ञान के कारण उपदेश से (तम्) उन (त्वा) आपकी हम लोग (वर्धयामसि) वृद्धि करते हैं और आप (बृहत्) बहुत (शोचा) विचारिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजा आदि जन जैसे घृत से अग्नि की वैसे शिक्षा और सत्कार से शूर जनों की वृद्धि करते हैं वे सदा विजय को प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥

फिर मनुष्यों को परस्पर कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

स नः॑ पृ॒थु श्र॒वाय्य॒मच्छा॑ देव विवाससि। बृ॒हद॑ग्ने सु॒वीर्य॑म्॥ १२॥

पदार्थ—हे (देव) विद्या के देनेवाले (अग्ने) अग्नि के समान कार्य्य के साधक जैसे अग्नि वैसे जिस कारण से आप (नः) हम लोगों के लिए (पृथु) विस्तारयुक्त (श्रवाय्यम्) सुनने योग्य (बृहत्) बड़े (सुवीर्य्यम्) श्रेष्ठ बलयुक्त (अच्छा) अच्छे प्रकार (विवाससि) सेवा करते हो इससे (सः) वह आप सत्कार करने योग्य हो ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो जिसका उपकार करते हैं वे उसके सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ १२ ॥

मनुष्य किस किससे बिजुली का ग्रहण करें इस विषय को कहते हैं—

त्वाम॑ग्ने॒ पुष्क॑रा॒दध्यथ॑र्वा॒ निर॑मन्थत। मू॒र्ध्नो विश्व॑स्य वा॒घतः॑॥ १३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वन् जैसे (वाघतः) बुद्धिमान् जन (विश्वस्य) सम्पूर्ण जगत् के (मूर्ध्नः) ऊपर वर्त्तमान के (पुष्करात्) अन्तरिक्ष से (अधि) ऊपर अग्नि को (निः, अमन्थत) मथते हैं वैसे (अथर्वा) अहिंसक मैं (त्वाम्) आपको प्रकाशित करता हूँ ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वान् जनो ! जैसे पदार्थविद्या के जाननेवाले सूर्य्य आदि के समीप से बिजुली को ग्रहण करके कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वैसे ही आप लोग भी सिद्ध करो ॥ १३ ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

तमुं त्वा दृध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः । वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् राजन् (**तम्, उ**) उन्ही (**वृत्रहणम्**) मेघो के नाश करनेवाले (**पुरन्दरम्**) मेघो के पुरो को नाश करनेवाले सूर्य्य को जैसे वैसे (**त्वा**) आप को (**अथर्वण**) नही हिंसा करनेवाले का (**पुत्र**) पुत्र (**दध्यङ्**) धारण करनेवाले विद्वानो को प्राप्त होने और (**ऋषि**) मन्त्र और अर्थ का जाननेवाला (**ईधे**) प्रदीप्त करता है वैसे आप मुझको करिये ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वान् जनो ! जैसे ईश्वर ने प्रकाशस्वरूप और जगत् का उपकारक सूर्य्य रचा है वैसे विद्या से प्रकाशित जनो को विद्वान् करो ॥ १४ ॥

फिर मनुष्यो को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तमुं त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् ।
धनञ्जयं रणेरणे ॥ १५ ॥ २३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**पाथ्य**) मार्गों मे हुए (**वृषा**) वर्षानेवाले सूर्य्य के समान वीर्य्य का सींचनेवाला (**दस्युहन्तमम्**) डाकुओं को अतिशय मारनेवाले (**रणेरणे**) प्रत्येक सग्राम मे (**धनञ्जयम्**) धन को जीतें (**तम्**) उन (**त्वा**) आप को (**सम् ईधे**) प्राप्त कराता है वैसे आप मुझको (**उ**) भी प्राप्त कराइये ॥ १५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! यदि आप लोग बिजुली की विद्या को प्राप्त होकर युद्ध करो तो आप लोगो का बहुत धन और ऐश्वर्य्य का देनेवाला मै बिजुली आदि से विजय कराऊ ॥ १५ ॥

एह षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वन् जन (**एभि**) इन (**इन्दुभि**) सोमलताओ वा चन्द्रकिरणो से आप (**वर्धासे**) वृद्धि को प्राप्त होते हो उन से (**आ, इहि**) प्राप्त हूजिये (**इत्था**) इस प्रकार से (**इतरा**) पीछे की (**ते**) आप की (**गिर**) वाणियो को (**सु, ब्रवाणि**) उत्तम प्रकार उपदेश करू और आप (**उ**) तर्क वितर्क से सुने ॥ १६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य हम लोग विद्याओ को पढ़कर सबको उपदेश देवें इस प्रकार इच्छा करते हैं वे हम लोगो को प्राप्त होवें ॥ १६ ॥

मनुष्यों को कहां मन स्थित करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् । यत्रा सदः कृणवसे ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् (**यत्र**) जहाँ (**ते**) आपका (**मन**) विचारात्मक चित्त है और (**उत्तरम्**) पार होते हैं जिस से उस (**दक्षम्**) बल को (**च**) भी आप (**दधसे**) धारण करते हो (**तत्र**) वहाँ (**सद**) स्थित होते हैं जिस मे उस को (**कृणवसे**) करते हो तथा (**क्व**) कहाँ निवास करते हो इनका उत्तर कहिये ॥ १७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जहाँ जगदीश्वर वा योगाभ्यास मे आप लोगो का अन्त करण पवित्र होकर कार्य्य की सिद्धि को करता है वहाँ ही आप लोग भी प्रवृत्ति करिये ॥ १७ ॥

मनुष्यो की किस प्रकार इच्छा सिद्ध होती है इस विषय को कहते है—

नहि ते पूर्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां वसो । अथा दुवो वनवसे ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे (**वसो**) वसानेवाले (**ते**) आप के (**नेमानाम्**) अन्नो के (**पूर्तम्**) पूर्ण करनेवाले को कोई भी (**नहि**) नही (**अक्षिपत्**) फेंकता है और नही (**भुवत्**) होवे इससे (**अथा**) इसके अनन्तर (**दुव**) सेवा का (**वनवसे**) स्वीकार करिये ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सत्य आचरण को करते हैं उनकी कामना की पूर्ति कभी भी नही नष्ट की जाती है ॥ १८ ॥

अब अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्रों मे कहते हैं—

आग्निरगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः । दिवोदासस्य सत्पतिः ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो जो (**दिवोदासस्य**) प्रकाश के देने वाले का (**भारत**) धारण करने वा पोषण करने और (**वृत्रहा**) मेघ को नाश करने वाला (**पुरुचेतन**) बहुत चेतन जिस मे वह (**सत्पति**) श्रेष्ठ स्वामी (**अग्नि**) अग्नि के सदृश तेजस्वी सूर्य (**आ, अगामि**) प्राप्त किया जाता है उसका हम लोग सेवन करें ॥ १९ ॥

भावार्थ—जैसे इस देह मे साधन और उपसाधनों के सहित जीव बहुत कर्मों को करता है वैसे ही विद्वान् सम्पूर्ण कर्मों को सिद्ध करता है ॥ १९ ॥

स हि विश्वाति पार्थिवा रयिं दाशन्महित्वना ।
वन्वन्नवातो अस्तृतः ॥ २० ॥ २४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (**अस्तृतः**) नहीं हिंसित (**अवातः**) पवन से वर्जित (**महित्वना**) महत्त्व से (**वन्वन्**) सेवन करता हुआ अग्नि (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**पार्थिवा**) पृथिवी मे विदित वस्तुओ और (**रयिम्**) धन को (**अति-दाशत्**) अत्यन्त देता है (**स, हि**) वही सब लोगों से जानने योग्य है ॥ २० ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अग्नि बहुत सुख को देता है उसका क्यो नहीं सेवन किया जावे ॥ २० ॥

फिर मनुष्यो को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

स प्रत्नवन्नवीयसाग्ने द्युम्नेन संयता । बृहत्ततन्थ भानुना ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वन् जैसे सूर्य (**भानुना**) किरण से (**प्रत्नवत्**) प्राचीन के सदृश (**बृहत्**) बड़े को (**ततन्थ**) विस्तृत करता है वैसे (**स**) वह आप (**नवीयसा**) अत्यन्त नवीन (**संयता**) उत्तम प्रकार देते हैं जिससे उस (**द्युम्नेन**) धन वा यश से हम लोगो को विस्तृत करो ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सूर्य के सदृश यशस्वी होते है वे नवीन नवीन प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥

मनुष्यों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

प्र वः सखायो अग्नये स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।
अर्च गाय च वेधसे ॥ २२ ॥

पदार्थ—हे (**सखाय**) मित्रो जो (**व**) आप लोगो की (**स्तोमम्**) स्तुति और (**यज्ञम्**) सत्य व्यवहार को (**च**) भी उत्पन्न करता है उसका आप लोग सत्कार करो और हे विद्वन् जो आप मे जैसे मित्र वैसे वर्त्तता है उस (**वेधसे**) बुद्धिमान् (**अग्नये**) अग्नि के समान वर्त्तमान के लिए आप (**धृष्णुया**) दृढ़ता के साथ (**प्र, अर्च**) अच्छे प्रकार सत्कार करिये (**गाय, च**) और प्रशंसा करिये ॥ २२ ॥

भावार्थ—सूर्य ही यज्ञफलो की प्राप्ति का साधक है वैसे यथार्थ कहने और करनेवाले, धर्मात्मा जन परोपकार मे कुशल होते हैं ऐसा जानकर संसार मे वर्त्ताव करें ॥ २२ ॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय को कहते है—

स हि यो मानुषा युगा सीदद्धोता कविक्रतुः ।
दूतश्च हव्यवाहनः ॥ २३ ॥

पदार्थ—(**य**) जो (**हव्यवाहन**) हवन किये गये द्रव्यो को प्राप्त कराने पहुचानेवाला और (**दूत**) दूतवत् वर्त्तमान (**च**) भी अग्नि (**मानुषा**) मनुष्य-सम्बन्धी (**युगा**) वर्ष वा वर्षसमुदायो का (**सीदत्**) प्राप्त होता है (**स, हि**) वही (**होता**) दाता (**कविक्रतु**) बड़ा विद्वान् जैसे वैसे कार्य का साधक होता है ॥ २३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो अग्नि धार्मिक और विद्वानो के कार्यों का करनेवाला होता है उसका विद्वान् जन कार्यों की सिद्धि के लिये सम्प्रयुक्त करें ॥ २३ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

ता राजाना शुचिव्रतादित्यान् मारुतं गणम् ।
वसो यक्षीह रोदसी ॥ २४ ॥

पदार्थ—हे (**वसो**) श्रेष्ठ गुणो के वसाने वाले आप (**इह**) इस संसार मे (**ता**) उन दोनो मित्र के सदृश वर्त्तमान (**शुचिव्रता**) पवित्र कर्मवाले (**राजाना**) प्रकाशमान हुए तथा (**आदित्यान्**) बारह महीनो और (**मारुतम्**) मनुष्य सम्बन्धी इस (**गणम्**) समूह को (**रोदसी**) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (**यक्षि**) उत्तम प्रकार प्राप्त कराइये ॥ २४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पढ़ाने और पढ़ने वाले आदिकों की सेवा करके पदार्थ विद्या का ग्रहण करते हैं वे सुखी होते हैं ॥ २४ ॥

उत्तम जन का व्यवहार वा संग निष्फल नहीं होता इस विषय को कहते हैं—

वस्वी ते अग्ने सन्दृष्टिरिषयते मर्त्याय । ऊर्जो नपादमृतस्य ॥ २५ ॥ २५ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के समान वर्त्तमान (**ते**) आप की (**वस्वी**) पृथिवी आदि वसु सम्बन्धिनी (**सन्दृष्टि**) उत्तम प्रकार देखने जिससे वह दृष्टि (**इषयते**) अन्न वा विज्ञान की कामना करते हुए (**मर्त्याय**) मनुष्य के लिये (**अमृतस्य**) नाशरहित और (**ऊर्जः**) बल आदि से युक्त की (**नपात्**) नहीं गिरने वाली होती है ॥ २५ ॥

भावार्थ—जिस विद्वान् का विद्यादर्शन—विद्या पढ़ना निष्फल नहीं होता और जिससे पढ़कर विद्यार्थी जन विद्वान् होते हैं उसका सदा सत्कार करो ॥ २५ ॥

फिर विद्वान् को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

क्रत्वा दा अस्तु श्रेष्ठोऽद्य त्वा वन्वन् सुरेक्णाः ।
मर्त आनाश सुवृक्तिम् ॥ २६ ॥

पदार्थ—(श्रेष्ठ) धर्मयुक्त गुण कर्म और स्वभाव से अतिशय युक्त (सुवेदाः) सुन्दर धन वाला (मर्त्तः) मनुष्य (अद्य) आज (क्रत्वा) बुद्धि वा कर्म से (सुदुर्गम्) उत्तम प्रकार जाते हैं दुःख जिस के द्वारा उसका (आनाश) व्याप्त हो और (त्वा) आप का (अन्वत्) सेवन करता हुआ सुखी (अस्तु) हो और आप विद्या के (दा) देनेवाले होओ ॥ २६ ॥

भावार्थ—वे ही उत्तम जन गणनीय हैं जो विज्ञान को देते हैं ॥ २६ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ते ते॑ अग्ने॒ त्वोता॑ इ॒षय॑न्तो॒ विश्व॒मायुः॑ ।

तर॑न्तो अ॒र्यो अरा॑तीर्व॒न्वन्तो॑ अ॒र्यो अरा॑तीः ॥२७॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्या से प्रकाशमान जो (ते) आप का (अर्य्यः) स्वामी आज्ञा देवे उस को आप करिये और जो (त्वोता) आप से रक्षित (इषयन्तः) अन्न की कामना करते और (विश्वम्) सम्पूर्ण (आयुः) जीवन के (तरन्तः) पार होते हुए (अरातीः) नहीं विद्यमान दान जिनमें उन कृपण विरोधियों का (वन्वन्तः) विभाग करते हुए तथा (अरातीः) जिन में दान नहीं उन शत्रुओं को विशेष करके जीतते हैं वे (ते) आप के सम्बन्धी होवें आप इन के (अर्य्यः) स्वामी होओ ॥

भावार्थ—जो ब्रह्मचर्य आदि से रोगों को दूर करके चिरंजीवी होवें वे धार्मिक सम्पूर्ण कार्यों में अध्यक्ष हों ॥ २७ ॥

फिर राजा को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अ॒ग्निस्ति॒ग्मेन॑ शो॒चिषा॒ यास॒द्विश्वं॒ न्य१॒॑त्रिण॑म् ।

अ॒ग्निर्नो॑ वनते र॒यिम् ॥२८॥

पदार्थ—हे राजन् जैसे (अग्निः) अग्नि (तिग्मेन) तीव्र (शोचिषा) प्रकाश से प्राप्त हुए वस्तु को जनाता है वैसे जो (विश्वम्) सम्पूर्ण (अत्रिणम्) शत्रु के प्रति (नि, यासत्) प्रयत्न करे और वैसे जो (अग्निः) अग्नि के सदृश (नः) हम लोगों के लिए (रयिम्) द्रव्य का (वनते) सेवन करता है उसको अध्यक्ष करिये ॥ २८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । राजा को चाहिए कि अधिकारियों के नियत करने में प्रजा की सम्मति भी ग्रहण करे ऐसा होने पर कभी भी उपद्रव नहीं होता है ॥ २८ ॥

सु॒वीरं॑ र॒यिमा भ॑र॒ जात॑वेदो॒ विच॑र्षणे । ज॒हि रक्षां॑सि सुक्रतो ॥२९॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) उत्पन्न हुआ प्रज्ञानबल जिनके उन (विचर्षणे) तेजस्वी तथा (सुक्रतो) उत्तम बुद्धि और कर्म से युक्त राजन् आप (सुवीरम्) सुन्दर वीर जिस से होते हैं उस (रयिम्) धन को (आ, भर) सब ओर से धारण करिये और (रक्षांसि) दुष्टाचारियों को (जहि) नष्ट करिये ॥ २९ ॥

भावार्थ—राजा को चाहिए कि सदा ही धन आदि से धार्मिक विद्वान् और क्षत्रिय कुल में हुए वीरों की उत्तम प्रकार रक्षा करे और दुष्टों का सदा तिरस्कार करे ॥ २९ ॥

फिर राजा और विद्वान् क्या करें इस विषय को कहते हैं—

त्वं नः॑ पा॒ह्यंह॑सो॒ जात॑वेदो अघाय॒तः । रक्षा॑ णो ब्रह्मणस्कवे ॥३०॥२६॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) विद्या से युक्त (ब्रह्मणः) वेद के (कवे) कहने वाले (त्वम्) आप (नः) हम लोगों की (अंहसः) अधर्माचरण से (पाहि) रक्षा कीजिये और (नः) हम लोगों की (अघायतः) अपने पाप करते हुए से (रक्षा) रक्षा कीजिये ॥

भावार्थ—हे राजन् वा विद्वन् ! आप दोनों हम लोगों को अधर्म्माचरण और अधर्म का आचरण करते हुए से अलग करके सुख को बढ़ाइये ॥ ३० ॥

फिर न्यायाधीश क्या करें इस विषय को कहते हैं—

यो नो॑ अग्ने दु॒रेव॒ आ मर्तो॑ व॒धाय॒ दाश॑ति ।

तस्मा॑न्नः पा॒ह्यंह॑सः ॥ ३१ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) न्यायाधीश (यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य (नः) हम लोगों को (वधाय) मारने के लिये (दुरेवः) दुष्ट आचरण को (दाशति) देता है (तस्मात्) उस (अंहसः) अधर्माचरण से (नः) हम लोगों की (पाहि) रक्षा कीजिये ॥ ३१ ॥

भावार्थ—हे न्यायाधीश ! जो करने के बिना अपराध को स्थापित करते हैं उन के लिए आप तीव्र दण्ड को दीजिये ॥ ३१ ॥

फिर राजा को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

त्वं तं दे॑व जि॒ह्वया॒ परि॑ बाधस्व दु॒ष्कृत॑म् ।

मर्तो॒ यो नो॒ जिघां॑सति ॥ ३२ ॥

पदार्थ—हे (देव) विद्यायुक्त न्यायाधीश (त्वम्) आप (यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य (नः) हम लोगों को (जिघांसति) मारने की इच्छा करता है (तम्) उस (दुष्कृतम्) दुष्ट कर्म करनेवाले को (जिह्वया) वाणी से (परि) सब ओर से (बाधस्व) पीड़ित करिये ॥ ३२ ॥

भावार्थ—हे राजन् वा विद्वन् ! जो न्यायधर्म का त्याग कर के पक्षपात से अधर्म करता है उसको शीघ्र निरन्तर दण्ड दीजिये ॥ ३२ ॥

भ॒रद्वा॑जाय स॒प्रथः॒ शर्म॑ यच्छ सहन्त्य । अग्ने॒ वरे॑ण्यं॒ वसु॑ ॥३३॥

पदार्थ—हे (सहन्त्य) शान्त जनों में हुए (अग्ने) दाता जन आप (भरद्वाजाय) विज्ञान और अन्न को धारण किये हुए जन के लिये (सप्रथः) प्रसिद्धि के सहित वर्त्तमान (शर्म) गृह को और (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य (वसु) द्रव्य को (यच्छ) दीजिये ॥ ३३ ॥

भावार्थ—हे श्रेष्ठ गृहस्थ ! आप सदा ही सुपात्र धार्मिकजन के लिए दान दीजिये ॥३३॥

अ॒ग्निर्वृ॒त्राणि॑ जङ्घनद् द्रविण॒स्युर्वि॑प॒न्यया॑ ।

समि॑द्धः शु॒क्र आहु॑तः ॥ ३४ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् उद्योगवाले जैसे (शुक्रः) शीघ्रकारिणी (समिद्धः) प्रदीप्त (अग्निः) बिजुली (वृत्राणि) धनों को (जङ्घनत्) अत्यन्त प्राप्त होती है वैसे (द्रविणस्युः) अपने धन की इच्छा करनेवाले (आहुतः) सब प्रकार सत्कार को प्राप्त आप (विपन्यया) विशिष्ट उद्यम से धनों को प्राप्त होओ ॥३४॥

भावार्थ—जो निरन्तर उद्यम करते वे दारिद्र्य का नाश करते हैं ॥३४॥

फिर ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

गर्भे॑ मा॒तुः पि॒तुष्पि॒ता वि॑दिद्यु॒तानो अ॒क्षरे॑ ।

सी॒दन्नृ॒तस्य॒ योनि॒मा ॥ ३५ ॥ २७ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो जो (अक्षरे) नहीं नाश होनेवाले अपने रूप, कारण वा जीव में (ऋतस्य) सत्य के (योनिम्) गृह को (आ) सब ओर से (सीदन्) प्राप्त होता हुआ (मातुः) माता का जैसे वैसे भूमि का और (पितुः) पिता का जैसे वैसे सूर्य्य का (पिता) पालक और (गर्भे) गर्भ में (विदिद्युतानः) विशेष करके प्रकाशमान है उसको सम्पूर्ण संसार का जनक जानो ॥३५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो उत्पन्न करनेवालों का उत्पादक, प्रकाशकों का प्रकाशक है उसकी सब लोग उपासना करें ॥३५॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ब्रह्म॑ प्र॒जाव॒दा भ॑र॒ जात॑वेदो॒ विच॑र्षणे । अग्ने॒ यद्दी॒दय॑द्दि॒वि ॥३६॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) धन से युक्त (विचर्षणे) बुद्धिमान् (अग्ने) अग्नि के समान गृहस्थ (यत्) जो ज्योति (दिवि) प्रकाश में (दीदयत्) प्रकाशित करती है उससे (प्रजावत्) प्रजा में विद्यमान जिसमें उस (ब्रह्म) धन वा अन्न को (आ, भर) सब प्रकार से धारण वा पोषण करिये ॥३६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अग्नि में, जो सूर्य्य में और जो बिजुली में तेज है उसके विज्ञान से धन और धान्य की उन्नति करिये ॥३६॥

मनुष्य कैसी वाणी को प्रयुक्त करे इस विषय को कहते हैं—

उप॑ त्वा र॒ण्वसं॑दृशं॒ प्रय॑स्वन्तः सहस्कृत । अग्ने॑ ससृ॒ज्महे॒ गिरः॑ ॥३७॥

पदार्थ—हे (सहस्कृत) सहसा कार्य्यकर्त्ता (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् (प्रयस्वन्तः) प्रयत्न करते हुए हम लोग जिन (गिरः) वाणियों को (ससृज्महे) अत्यन्त प्रकट करें उनसे (रण्वसंदृशम्) रमणीय के तुल्य (त्वा) आपको (उप) समीप में अत्यन्त प्रकट करें ॥३७॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे अपने प्रयोजन की प्रिय वाणी हृदय को प्रिय होती है वैसे अन्य जनों के प्रयोजन को भी समझें ॥३७॥

फिर मनुष्यों को क्या प्राप्त करने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

उप॑ छा॒यामि॑व॒ घृणे॒रग॑न्म॒ शर्म॑ ते व॒यम् । अग्ने॒ हिर॑ण्यसंदृशः ॥३८॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (ते) आपके (घृणेः) प्रदीप्त सूर्य्य से (छायामिव) छाया को जैसे वैसे (शर्म) गृह को (हिरण्यसंदृशः) तेज के सदृश समान दर्शन जिनका ऐसे (वयम्) हम लोग (उप) समीप (अगन्म) प्राप्त होवें ॥३८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे विद्वन् ! हम लोग सब ऋतुओं में हुए सूर्य्य को जैसे वैसे प्रकाशमान आपके गृह को प्राप्त होकर छाया के सदृश सेवन करें ॥३८॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

य उ॒ग्र इ॑व शर्य॒हा ति॒ग्मशृ॑ङ्गो॒ न वंस॑गः । अग्ने॒ पुरो॑ रु॒रोजि॑थ ॥३९॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी (यः) जो आप (वंसगः) सेवन करने योग्य व्यवहार को प्राप्त होने और (शर्य्यहा) मारने योग्य को मारने वाले (तिग्मशृङ्गः) तीव्र शृङ्गों के सदृश किरणों वाले सूर्य्य के (न) समान शत्रुओं के (पुरः) आगे (उग्रःइव) तेजस्वी जन जैसे वैसे (रुरोजिथ) भग्न करते हो उन आप का हम लोग सत्कार करें ॥३९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो राजा आदि अधिकारी जन सूर्य्य जैसे वैसे तेजस्वी होवें वे शत्रुओं के जीतने को समर्थ होवें ॥३९॥

आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति ।

विशामग्निं स्वध्वरम् ॥ ४० ॥ २८ ॥

पदार्थ—जो (**यम्**) जिसको (**हस्ते**) हाथ में (**खादिनम्**) भक्षण करने वाले के (**न**) समान और (**जातम्**) उत्पन्न हुए (**शिशुम्**) बालक के (**न**) समान (**विशाम्**) मनुष्यादि प्रजाओं के (**स्वध्वरम्**) सुन्दर यज्ञ जिससे हो उस (**अग्निम्**) प्रकाशमान अग्नि को (**आ, बिभ्रति**) सब ओर से धारण करते हैं वे उससे कृतकृत्य होते हैं ॥४०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो हाथ में आवले को जैसे वैसे गोदी में लड़के को जैसे वैसे अग्निविद्या को जानते हैं वे प्रजा के स्वामी होते हैं ॥४०॥

फिर मनुष्यों को क्या प्राप्त करने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमम् । आ स्वे योनौ नि षीदतु ॥४१॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो आप लोग (**देववीतये**) श्रेष्ठ गुणों की प्राप्ति के लिये (**वसुवित्तमम्**) अतिशय धन को जानने और (**देवम्**) देनेवाले को (**स्वे**) अपने (**योनौ**) गृह में (**प्र, आ, भरता**) उत्तमता से अच्छे प्रकार धारण करिये वा हरिये जिससे मनुष्य सुख में (**नि, षीदतु**) निरन्तर स्थिर होवे ॥४१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप श्रेष्ठ गुणों की प्राप्ति के लिये अग्नि आदि पदार्थों को जानिये ॥४१॥

विद्वानों को चाहिए कि श्रेष्ठ गृहस्थों का सत्कार करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिम् । स्योन आ गृहपतिम् ॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो (**जातवेदसि**) प्राप्त हुई विद्या जिसमें उसमें (**आ, जातम्**) अच्छे प्रकार प्रसिद्ध (**प्रियम्**) प्रिय (**अतिथिम्**) अतिथि के समान वर्त्तमान को (**स्योने**) सुख में (**गृहपतिम्**) गृह के स्वामी को (**आ, शिशीत**) अच्छे प्रकार तीक्ष्ण करिये ॥ ४२ ॥

भावार्थ—जो व्याप्त बिजुली को प्रज्वलित कराते हैं वे सब स्थानों में विजय आदि को प्राप्त होते हैं ॥४२॥

अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः ।

अरं वहन्ति मन्यवे ॥ ४३ ॥

पदार्थ—हे (**देव**) श्रेष्ठ गुण के देने और (**अग्ने**) शिल्पक्रिया की कुशलता को जाननेवाले विद्वन् (**ये**) जो (**साधवः**) श्रेष्ठ गमन वाले (**तव**) आपके (**अश्वासः**) वेग आदि गुण (**मन्यवे**) क्रोध के लिये (**अरम्**) समर्थ को (**वहन्ति**) प्राप्त होते हैं उनको (**हि**) ही आप वाहनों में (**युक्ष्वा**) संयुक्त करिये ॥४३॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन अग्नि आदि का योजन वाहनों में करते हैं वे पूर्ण मनोरथ वाले होते हैं ॥४३॥

मनुष्यों को किसका सत्कार करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये । आ देवान्त्सोमपीतये ॥४४॥

पदार्थ—हे विद्वन् आप (**नः**) हम लोगों को (**अच्छा**) उत्तम प्रकार (**सोमपीतये**) सोमलतारूप ओषधि के रस के पान के लिए (**आ, याहि**) सब ओर से प्राप्त होओ और (**प्रयांसि**) अत्यन्त प्रिय वस्तुओं को (**अभि**) चारों ओर से (**आ**) सब प्रकार (**वह**) प्राप्त होओ और (**वीतये**) ज्ञान के लिए (**देवान्**) विद्वानों को सब ओर से प्राप्त होओ ॥४४॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सत्कार के लिये विद्वानों का आह्वान करें ॥४४॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत् । शोचा वि भाह्यजर ॥४५॥२९॥

पदार्थ—हे (**भारत**) धारण करनेवाले (**अजर**) जरा दोष से रहित (**अग्ने**) विद्वन् आप (**अजस्रेण**) निरन्तर (**द्युमत्**) प्रकाश वाले को (**दविद्युतत्**) प्रकाशित करते हो उसके लिये आप (**उत्, शोचा**) अत्यन्त प्रकाशित हूजिये और (**वि, भाहि**) विशेष कर के प्रकाशित करिये ॥४५॥

भावार्थ—जैसे ब्रह्माण्ड में सूर्य्य निरन्तर प्रकाशित होता है वैसे ही विद्वान् जन सत्य व्यवहार में प्रकाशित हों ॥४५॥

मनुष्यों को किस की उपासना करनी चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वीती यो देवं मर्तो दुवस्येदग्निमीळीताध्वरे हविष्मान् ।

होतारं सत्ययजं रोदस्योरुत्तानहस्तो नमसाऽऽविवासेत् ॥४६॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो (**यः**) जो (**हविष्मान्**) बहुत दान करनेवाला (**उत्तानहस्तः**) ऊपर स्थित हस्त जिसके ऐसा (**मर्त्तः**) मनुष्य (**वीती**) कामना से (**अध्वरे**) अहिंसा आदि लक्षणयुक्त योग में जिस (**होतारम्**) दान करनेवाले (**सत्ययजम्**) सत्य प्राप्त करानेवाले (**देवम्**) मनोहर (**अग्निम्**) अग्नि के सदृश स्वयं प्रकाशित परमात्मा का (**दुवस्येत्**) सेवन करे और (**रोदस्योः**) अन्तरिक्ष और पृथिवी के (**नमसा**) सत्कार से (**आ, विवासेत्**) अच्छे प्रकार सेवन करे उस परमात्मा की आप लोग (**ईळीत**) प्रशंसा करो ॥४६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर की योगी जन उपासना करते हैं उसकी आप लोग भी उपासना करो ॥४६॥

आ ते अग्न ऋचा हविर्हृदा तष्टं भरामसि ।

ते ते भवन्तूक्षण ऋषभासो वशा उत ॥४७॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) जगदीश्वर ! जिन (**ते**) आपके (**हविः**) अन्तःकरण और (**तष्टम्**) अत्यन्त शुद्ध किये गए स्वरूप को हम लोग (**ऋचा**) प्रशंसारूप ऋग्वेद आदि से और (**हृदा**) हृदय से (**आ, भरामसि**) अच्छे प्रकार पोषण करते हैं उन (**ते**) आपकी कृपा से हमारे और (**ते**) आपके सम्बन्धी (**उक्षणः**) सेवन करनेवाले (**ऋषभासः**) उत्तम (**उत**) भी (**वशाः**) कामना करते हुए (**भवन्तु**) होवें ॥४७॥

भावार्थ—जो सत्यभाव से और अन्तःकरण से जगदीश्वर की आज्ञा का सेवन करते हैं वे सब प्रकार से उत्कृष्ट होते हैं ॥४७॥

अब ईश्वरविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अग्निं देवासो अग्रियमिन्धते वृत्रहन्तमम् ।

येना वसून्याभृता तृळ्हा रक्षांसि वाजिना ॥४८॥३०॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (**देवासः**) विद्वान् जन (**वृत्रहन्तमम्**) मेघ के अत्यन्त नाश करनेवाले और (**अग्रियम्**) आगे प्रकट हुए (**अग्निम्**) अग्नि को (**इन्धते**) प्रकाशित करते हैं और (**येना**) जिन (**वाजिना**) वेग वा विज्ञान से (**आभृता**) चारों ओर से धारण किये गये (**वसूनि**) धनों को प्रकाशित करते हैं और (**रक्षांसि**) दुष्ट जनों को (**तृळ्हा**) हिंसित करते हैं वैसे ही दोषों का नाश करके परमात्मा का प्रकाशित करते हैं इस प्रकार आप लोग भी करो ॥४८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे यज्ञ करनेवाले जन यज्ञ में वेदी पर अग्नि का प्रज्वलित कर के हवन की सामग्री छोड़ के संसार का उपकार करते हैं वैसे ही योग में युक्त संन्यासी जन परमात्मा का सबके हृदय में अच्छे प्रकार प्रकाशित कर के दोषों का नाश करते हैं ॥४८॥

इस सूक्त में अग्नि, विद्वान् और ईश्वर के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

इस अध्याय में अग्नि, विश्वेदेव, सूर्य्य, इन्द्र, वैश्वानर, वायु, यज्ञ, राजधर्म्म, विद्वान् और ईश्वर के गुण वर्णन करने से इस अध्याय के अर्थ की इससे पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह श्रीमत् परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमत् विरजानन्द सरस्वती स्वामीजी के शिष्य परम विद्वान् श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामी से रचे गये ऋग्वेदभाष्य में चतुर्थ अष्टक में पाँचवाँ अध्याय, तीसवाँ वर्ग और छठे मण्डल में सोलहवाँ सूक्त भी समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षष्ठाऽध्यायारम्भः ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथ पञ्चदशर्चस्य सप्तदशस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, २, ३, ४, ११, त्रिष्टुप् । ५, ६, ८, विराट्त्रिष्टुप् । ७, ९, १०, १२, १४, निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १३ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । १५ आर्च्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब चतुर्थ अष्टक में छठे अध्याय और छठे मण्डल में पन्द्रह ऋचा वाले सत्रहवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम-द्वितीय मन्त्र में फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

पिबा सोममभि यमुग्र तर्द ऊर्वं गव्यं महि गृणान इन्द्र ।
वि यो धृष्णो वधिषो वज्रहस्त विश्वा वृत्रममित्रिया शवोभिः ॥१॥

पदार्थ—हे (**वज्रहस्त**) शस्त्र है हस्त मे जिनके ऐसे (**धृष्णो**) अत्यन्त दृढ़ (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाले (**यः**) जो (**शवोभिः**) बलो से (**वृत्रम्**) मेघो को सूर्य्य जैसे वैसे (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**अमित्रिया**) शत्रुओ को आप (**वि**) विशेष करके (**वधिषः**) नाश करिये और हे (**उग्र**) तेजस्विन् (**महि**) बड़े (**गव्यम्**) गौओं के घृत की (**गृणानः**) स्तुति करते हुए (**यम्**) जिस (**ऊर्वम्**) हिंसा करने योग्य की (**अभि, तर्द**) हिंसा करिये उसके सम्बन्ध मे वह आप (**सोमम्**) महौषधि के रस को (**पिब**) पीजिये ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य ब्रह्मचर्य्य, विद्या और सत्कर्म से दुष्टो का दूर करके श्रेष्ठो का स्वीकार करते है वे शत्रुओ का नाश करते हैं ॥१॥

स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रो यः शिप्रवान् वृषभो यो मतीनाम् ।
यो गोत्रभिद्वज्रभृद्यो हरिष्ठाः स इन्द्र चित्राँ अभि तृन्धि वाजान् ॥२॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) दुष्टो के विदीर्ण करनेवाले (**यः**) जो (**ऋजीषी**) सरलस्वभाव (**तरुत्रः**) सम्पूर्ण दुःख से उत्तीर्ण हुए आप है (**सः**) वह आप (**ईम्**) प्राप्त वस्तु का (**पाहि**) पालन करिये और (**यः**) जो (**शिप्रवान्**) सुन्दर ठुड्डी और नासिका वाले (**वृषभः**) बलिष्ठ और (**यः**) जो (**मतीनाम्**) मनुष्यो के मध्य मे बलिष्ठ (**यः**) जो (**वज्रभृत्**) वज्र का धारण करने वाले (**गोत्रभित्**) गोत्र के नाश करनेवाले हैं (**यः**) जो (**हरिष्ठाः**) अतिशय हरनेवाले हैं (**सः**) वह आप (**चित्रान्**) अद्भुत (**वाजान्**) हिंसको का (**अभि, तृन्धि**) सब ओर से नाश करिये ॥२॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो प्रजा के रक्षक, दुष्टो से हिंसक जन होवें उनका आप सत्कार करिये ॥२॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः ।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥३॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) दुष्टो के नाश करनेवाले (**प्रत्नथा**) प्राचीन जन जैसे वैसे आप (**ब्रह्म**) वेद की (**पाहि**) रक्षा कीजिये और जो वेद (**त्वा**) आपकी (**मन्दतु**) प्रशसा करे उसको आप (**श्रुधि**) सुनिये उससे (**वावृधस्व**) बढ़िये और (**उत**) भी (**गीर्भिः**) वाणियो से (**सूर्य्यम्**) परमेश्वर का (**आविः**) प्राकट्य (**कृणुहि**) करिये तथा (**इषः**) अन्न का (**पीपिहि**) पान करिये और (**शत्रून्**) शत्रुओ का (**अभि, तृन्धि**) सब प्रकार से नाश करिये और दोषों का (**जहि**) त्याग करिये और (**गाः**) पृथिवियो को (**एवा**) ही प्राप्त हूजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो श्रद्धा से परमेश्वर की उपासना करके विद्यार्थियो की परीक्षा करते हैं वे जगत् के प्रिय होते है ॥ ३ ॥

फिर राजा और प्रजा जन परस्पर कैसा वर्त्ताव करें इस विषयको अगले मन्त्रों में कहते हैं—

ते त्वा मदा बृहदिन्द्र स्वधाव इमे पीता उक्षयन्त द्युमन्तम् ।
महामनूनं तवसं विभूतिं मत्सरासो जर्हृषन्त प्रसाहम् ॥४॥

पदार्थ—हे (**स्वधावः**) बहुत अन्न से युक्त और (**इन्द्र**) ऐश्वर्य्ययुक्त जो (**इमे**) ये (**पीताः**) पान किये गये (**मदाः**) आनन्द और (**मत्सरासः**) आनन्द करते हुए जन (**द्युमन्तम्**) बहुत मनोरथो से युक्त (**महाम्**) बड़े (**अनूनम्**) न्यूनता से रहित (**तवसम्**) बलिष्ठ (**विभूतिम्**) बड़े ऐश्वर्य्य से युक्त (**प्रसाहम्**) अत्यन्त सहनेवाले को (**बृहत्**) बहुत (**उक्षयन्त**) सेचन करते हैं और (**जर्हृषन्त**) अत्यन्त प्रसन्न हो (**ते**) वे (**त्वा**) आप का सत्कार करें ॥४॥

भावार्थ—जिन सज्जनो का राजा सत्कार करें वे राजाओ को भी प्रसन्न करें ॥४॥

येभिः सूर्य्यमुषसं मन्दसानोऽवासयोऽप दृळ्हानि दर्द्रत् ।
महामद्रिं परि गा इन्द्र सन्तं नुत्था अच्युतं सदसः परि स्वात् ॥५॥१॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त राजन् (**मन्दसानः**) कामना करते हुए आप (**येभिः**) जिन से (**सूर्य्यम्**) सूर्य्य और (**उषसम्**) प्रातर्वेला को जैसे वैसे (**गाः**) पृथिवियों को (**परि, अवासयः**) सब प्रकार बसाइये तथा (**दृळ्हानि**) दृढ़ पदार्थों को (**अप, दर्द्रत्**) पुष्ट करिये उनसे (**महाम्**) बड़े (**अद्रिम्**) मेघ के समान (**सन्तम्**) वर्त्तमान (**अच्युतम्**) नाश से रहित को (**स्वात्**) अपने से (**सदसः**) सभा से (**परि**) चारो ओर (**नुत्थाः**) प्रेरित करिये ॥५॥

भावार्थ—वही राजा श्रेष्ठ होता है जो दुष्टो को विदीर्ण कर के श्रेष्ठो की सभा से सम्पूर्ण प्रजाओ का शासन करता है ॥५॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रो में कहते हैं—

तव क्रत्वा तव तद्दंसनाभिरामासु पक्वं शच्या नि दीधः ।
और्णोर्दुर उस्रियाभ्यो वि दृळ्होदूर्वाद्गा असृजो अङ्गिरस्वान् ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् (**तव**) आप की (**क्रत्वा**) बुद्धि से और (**तव**) आप के (**दंसनाभिः**) कर्म्मों से हम लोग (**आमासु**) नही पाकदशा को प्राप्त हुओ मे (**तत्**) उस (**पक्वम्**) उत्तम प्रकार सस्कारयुक्त विज्ञान को प्राप्त होवें और आप इस को (**शच्या**) बुद्धि वा प्रजा से (**नि, दीधः**) धारण कराते हो और जो (**उस्रियाभ्यः**) किरणो से (**दुरः**) गृहद्वारो को (**और्णोः**) आच्छादित करे तथा (**ऊर्वात्**) हिंसन से (**गाः**) भूमियो को (**उत्, असृजः**) अच्छे प्रकार रचे और (**अङ्गिरस्वान्**) बहुत प्रकार के प्राण विद्यमान जिसमें वह (**दृळ्हा**) दृढ़ो को (**वि**) विशेष करके रचे उस का हम लोग सत्कार करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानो से शिक्षा को प्राप्त होकर सब का सत्कार करते हैं वे राज्य को प्राप्त हो कर सूर्य्य के सदृश प्रकाशित होते है ॥ ६ ॥

पप्राथ क्षां महि दंसो व्युर्वीमुप द्यामृष्वो बृहदिन्द्र स्तभायः ।
अधारयो रोदसी देवपुत्रे प्रत्ने मातरा यह्वी ऋतस्य ॥७॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सूर्य्य के सदृश ऐश्वर्य्य करनेवाले जैसे सूर्य्य (**महि**) बड़े (**दंसः**) कर्म्म को (**उर्वीम्**) विस्तृत (**क्षाम्**) भूमि को और (**द्याम्**) प्रकाश को (**वि, उप, पप्राथ**) विशेष कर समीप मे पूरित करता है और (**ऋष्वः**) बड़ा महात्मा जन (**बृहत्**) बड़े को (**स्तभायः**) स्तम्भित करता है वैसे आप पूरित कीजिये और जैसे यह सूर्य्य (**ऋतस्य**) सत्य कारण के समीप से प्रकट हुए (**देवपुत्रे**) विद्वानो के पुत्र के समान वर्त्तमान (**प्रत्ने**) प्राचीन (**मातरा**) माता के सदृश आदर करनेवाले (**यह्वी**) बड़े (**रोदसी**) भूमि और सूर्य्य लोक को धारण करता है वैसे आप (**अधारयः**) धारण करते हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य भूगोलो को धारण करके पिता के सदृश सपूर्ण प्रजाओ का पालन करता है वैसे ही आप लोग यहा वर्त्ताव करो ॥ ७ ॥

फिर मनुष्यों को कौन उपासना करने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

अध त्वा विश्वे पुर इन्द्र देवा एकं तवसं दधिरे भराय ।
अदेवो यदभ्यौहिष्ट देवान्त्स्वर्षाता वृणत इन्द्रमत्र ॥८॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देनेवाले स्वामिन् जगदीश्वर जो (**विश्वे**) सम्पूर्ण (**देवाः**) विद्वान् जन (**भराय**) पालन के लिए (**त्वा**) आप (**एकम्**) जिन के समान दूसरा नही उन (**तवसम्**) बल आदि के बढानेवाले को (**पुरः**) आगे (**दधिरे**) धारण करते हैं उनको आप विज्ञान से धारण करते हो और (**यत्**)जो विद्वान् जन और जो (**स्वर्षाताः**) सुखो का विभाग करनेवाला (**अदेवः**) प्रकाश से रहित (**देवान्**) विद्वानों के (**अभि**) सन्मुख (**औहिष्ट**) विशेष करके तर्कित करता और सज्ञान को नही प्राप्त होता है और जो (**अत्र**) इस संसार मे (**इन्द्रम्**) अत्यन्त ऐश्वर्य्ययुक्त का (**वृणते**) स्वीकार करते है वे (**अध**) इस के अनन्तर सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमात्मा ही की उपासना करते हैं वे अत्यन्त ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं और जो विद्या से हीन होकर विद्वानों के साथ कुतर्क करता है वह कुछ भी यहा नही पाता है ॥ ८ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

अध द्यौश्चित्ते अप सा नु वज्राद् द्वितानमद्भियसा स्वस्य मन्योः ।
अहिं यदिन्द्रो अभ्योहसानं नि चिद्विश्वायुः शयथे जघान ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यत्**) जो (**इन्द्रः**) सूर्य्य (**ओहसानम्**) तर्क से जानने योग्य (**अहिम्**) मेघ का (**अभि**) सब ओर से (**जघान**) नाश करता है वैसे जो (**चित्**) कोई (**विश्वायु**) सम्पूर्ण अवस्था से युक्त (**नि**) निरन्तर (**शयथे**) शयन करता है (**अध**) इसके अनन्तर जो (**द्यौ**) कामना करती हुई (**चित्**) भी (**वज्रात्**) बिजुली के प्रहार से (**भियसा**) भय से (**द्विता**) दो प्रकार (**अनमत्**) नमती है वैसे हे विद्वन् (**स्वस्य**) अपने (**मन्योः**) क्रोध से (**सा**) वह (**नु**) निश्चय से (**ते**) आपका दुःख (**अप**) दूर करे ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग सूर्य्य और मेघ के सदृश वर्त्ताव करके परस्पर पालन करो ॥ ९ ॥

अब राजपुरुष कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते है—

अध त्वष्टा ते मह उग्र वज्रं सहस्रभृष्टिं ववृतच्छताश्रिम् ।
निकाममरमणसं येन नवन्तमहिं सं पिणगृजीषिन् ॥१०॥२॥

पदार्थ—हे (**ऋजीषिन्**) सरल स्वभाववाले (**उग्र**) तेजस्विन् (**ते**) आप के हस्त मे (**मह**) बड़े (**सहस्रभृष्टिम्**) हजारों का छेदन करने और (**शताश्रिम्**) सैकड़ो का आश्रयण करनेवाले और (**निकामम्**) नित्य कामना किये जाने (**अरमणसम्**) जिस में नही रमते हैं शत्रु उस (**वज्रम्**) शस्त्रविशेष को धारण कराता है (**अध**) इस के अनन्तर (**येन**) जिससे (**त्वष्टा**) छेदन करनेवाले आप (**नवन्तम्**) स्तुति करते हुए नम्र के सदृश को (**अहिम्**) मेघ को जैसे सूर्य्य वैसे (**सम्, पिणक्**) अच्छे प्रकार पीसते हैं तथा (**ववृतत्**) वर्त्ताव करते है उन आपको हम लोग भी धारण करें ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे वीरपुरुषो ! जैसे धनुर्वेद के जाननेवाले वीरपुरुष शस्त्रों को धारण करें वैसे आप लोग भी धारण करो ॥१०॥

वर्धान्यं विश्वे मरुतः सजोषाः पचच्छतं महिषाँ इन्द्र तुभ्यम् ।
पूषा विष्णुस्त्रीणि सरांसि धावन्वृत्रहणं मदिरमंशुमस्मै ॥११॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सूर्य्य के समान वर्त्तमान राजन् (**सजोषा**) तुल्य प्रीति के सेवनेवाले (**विश्वे**) सम्पूर्ण (**मरुत.**) मनुष्य (**यम्**) जिन आप की (**वर्धान्**) वृद्धि करें और जो (**पूषा**) पुष्टि करनेवाला (**धावन्**) दौड़ता हुआ (**विष्णुः**) व्यापक बिजुलीरूप (**त्रीणि**) तीन (**सरांसि**) चलते है जिन में उन अन्तरिक्ष आदिकों को व्याप्त होता है वैसे दौड़ते हुए (**अस्मै**) इस के लिए (**मदिरम्**) आनन्द करनेवाले (**अंशुम्**) विभक्त (**वृत्रहणम्**) मेघ को जैसे सूर्य्य वैसे शत्रुओं को मारता है और जो (**तुभ्यम्**) आप के लिए (**शतम्**) सौ (**महिषान्**) बड़े पदार्थों को देता है और जो परोपकार के लिए (**पचत्**) पाक करे उसको आप लोग जानिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—जैसे प्रजाजन राजा और राज्य को बढ़ावें वैसे राजा इनकी निरन्तर वृद्धि करे ॥ ११ ॥

अब राजा आदि क्या करें इस विषय को कहते हैं—

आ क्षोदो महि वृतं नदीनां परिष्ठितमसृज ऊर्मिमपाम् ।
तासामनु प्रवत इन्द्र पन्थां प्रार्दयो नीचीरपसः समुद्रम् ॥१२॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सूर्य्य के समान वर्त्तमान राजन् जैसे सूर्य्य (**नदीनाम्**) नदियों के (**महि**) बड़े (**वृतम्**) स्वीकार किये गये (**परिष्ठितम्**) सब ओर से वर्त्तमान (**क्षोद**) जल को और (**अपाम्**) जलों की (**ऊर्मिम्**) तरङ्ग को (**असृज**) उत्पन्न करता है (**तासाम्**) उन के (**प्रवत**) नीचे स्थान से (**अनु**) पश्चात् (**पन्थाम्**) मार्ग को (**अपस**) कर्म्म की (**नीचीः**) नीचली भूमियों को और (**समुद्रम्**) अन्तरिक्ष वा बड़े समुद्र को (**प्र, आ, आर्दय**) प्राप्त कराता है वैसे आप सेना और प्रजा को सुख प्राप्त कराके शत्रुओं को नीची दशा को प्राप्त कराइये ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा आदि जन सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान हैं वे प्रजापालन और शत्रु के निवारण करने को समर्थ होते है ॥१२॥

फिर राजा और प्रजाजन कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

एवा ता विश्वा चकृवांसमिन्द्रं महामुग्रमजुर्यं सहोदाम् ।
सुवीरं त्वा स्वायुधं सुवज्रमा ब्रह्म नव्यमवसे ववृत्यात् ॥१३॥

पदार्थ—हे राजन् जो (**ता**) उन (**विश्वा**) सम्पूर्णों को और (**चकृवांसम्**) करते हुए (**महाम्**) बड़े (**उग्रम्**) तेजस्वी (**अजुर्य्यम्**) नही जीर्ण हुए (**सहोदाम्**) बल के देनेवाले (**स्वायुधम्**) उत्तम शस्त्र के चलाने में चतुर (**सुवज्रम्**) प्रशस्त वज्ररूप अस्त्र के चलाने में समर्थ (**सुवीरम्**) उत्तम वीरों से युक्त (**इन्द्रम्**) अत्यन्त ऐश्वर्य्यवाले शत्रु के नाशक (**त्वा**) आप को (**एव**) ही (**अवसे**) रक्षण आदि के लिये और न्याय करने के लिये (**आ, ववृत्यात्**) सब ओर से वर्त्ताव करे वह (**नव्यम्**) नवीनों मे हुए (**ब्रह्म**) बड़े धन वा अन्न को बढ़ाने को समर्थ होवे ॥१३॥

भावार्थ—पिता के सदृश प्रजाओं के पालक, धनुर्वेद राजनीति और युद्धविद्या मे कुशल राजा की सब लोग वृद्धि करे और इन लोगों की यह राजा निरन्तर वृद्धि करे ॥ १३ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

स नो वाजाय श्रवस इषे च राये धेहि द्युमत इन्द्र विप्रान् ।
भरद्वाजे नृवत इन्द्र सूरीन्दिवि च स्मैधि पार्ये न इन्द्र ॥१४॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के प्राप्त करानेवाले (**सः**) वह राजा आप (**द्युमत**) विज्ञान के प्रकाश से युक्त (**नः**) हम लोगों (**विप्रान्**) बुद्धिमान् विद्वानों को (**वाजाय**) वेग वा विज्ञान के लिये (**श्रवसे**) श्रवण के लिये (**इषे**) अन्न के लिये और (**राये**) धन के लिये (**च**) भी (**धेहि**) धारण करिये और हे (**इन्द्र**) दुःख और दारिद्र्य के विनाशक आप (**नृवतः**) अच्छे मनुष्यों से युक्त हम (**सूरीन्**) विद्वानों को (**भरद्वाजे**) राज्य के पुष्ट करने वा पालन करनेवाले व्यवहार मे और (**दिवि**) सुन्दर न्याय के प्रकाश मे (**च**) भी धारण करिये और हे (**इन्द्र**) विद्या और ऐश्वर्य्य के बढ़ानेवाले आप (**पार्य्ये**) पार करने योग्य मे भी (**नः**) हम लोगों के बढ़ानेवाले (**स्म**) ही (**एधि**) होओ ॥ १४ ॥

भावार्थ—राजाओं को योग्य है कि सम्पूर्ण अधिकारों मे सम्पूर्ण विद्याओं मे चतुर, धार्म्मिक, कुलीन और राजभक्तों को संस्थापित कर के सब प्रकार से राज्य की उन्नति करें ॥ १४ ॥

अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१५॥३॥

पदार्थ—हे राजन् (**अया**) इस नीति से (**शतहिमा.**) सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवनेवाले (**सुवीरा.**) उत्तम वीर जनों से युक्त हुए हम लोग (**देवहितम्**) विद्वानों के लिये हितकारी (**वाजम्**) विज्ञान का (**सनेम**) विभाग करें और (**मदेम**) आनन्द करें ॥ १५ ॥

भावार्थ—राजा को चाहिये कि विद्वानों का सङ्ग और विनय से राज्यपालन के लिये उत्तम वीर जनों को अधिकृत करें ॥ १५ ॥

इस सूक्त मे अग्नि, विद्वान्, राजा, मन्त्री और प्रजा के कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्तके अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह सत्रहवां सूक्त और तीसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चदशर्चस्याष्टादशस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ४, ६, १४ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ८, ११, १३ त्रिष्टुप् । ७, १० विराट्त्रिष्टुप् । १२ भुरिक्त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर । ३, १५ भुरिक्पङ्क्ति । ५ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम. स्वर । ६ ब्राह्म्युष्णिक्छन्दः । ऋषभ स्वर. ॥

अब पन्द्रह ऋचावाले अठारहवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम द्वितीय मन्त्र में फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा वन्वन्नवातः पुरुहूत इन्द्रः ।
अषाळ्हमुग्रं सहमानमाभिर्गीर्भिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनाम् ॥१॥

पदार्थ—हे राजन् (**य.**) जो (**अभिभूत्योजा.**) अभिभव अर्थात् शत्रुओं के पराजय करने के लिये पराक्रम से युक्त (**अवातः**) नही हिंसित (**पुरुहूतः**) बहुतों से प्रशंसित (**वन्वन्**) विभाग करता हुआ (**इन्द्रः**) दुःख को विदीर्ण करनेवाला है (**तम**) उस (**अषाळ्हम्**) नही सहने योग्य (**उग्रम्**) तीव्र स्वभाववाले और (**चर्षणीनाम्**) मनुष्यों मे (**वृषभम्**) अतिश्रेष्ठ और (**सहमानम्**) शत्रुओं के वेग को सहनेवाले को (**आभि**) इन (**गीर्भि**) वाणियों से (**स्तुहि**) स्तुति करिये (**उ**) और उसमे (**वर्ध**) वृद्धि को प्राप्त हूजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप सदा स्तुति करने योग्य की स्तुति करिये, निन्दा करने योग्य की निन्दा करिये, तथा सत्कार करने योग्य का सत्कार करिये और दण्ड देने योग्य को दण्ड दीजिये ॥ १ ॥

स युध्मः सत्वा खजकृत्समद्वा तुविम्रक्षो नदनुमाँ ऋजीषी ।
बृहद्रेणुश्च्यवनो मानुषीणामेकः कृष्टीनामभवत्सहावा ॥२॥

पदार्थ—हे राजन् जो (**युध्म.**) युद्ध करनेवाला (**सत्वा**) बलवान् (**समद्वा**) अच्छे प्रकार स्वादु भोजन करनेवाला (**तुविम्रक्षः**) बहुत स्नेहयुक्त (**नदनुमान्**) बहुत शब्द विद्यमान जिस मे ऐसा और (**ऋजीषी**) सरल चलने वाला (**बृहद्रेणुः**) बड़ी धूलि जिस मे वह (**च्यवन**) जानेवाला (**मानुषीणाम्**) मनुष्य सम्बन्धिनी सेनाओं और (**कृष्टीनाम्**) मनुष्यों के मध्य मे (**एकः**) सहायरहित (**सहावा**) सहनशील (**खजकृत्**) संग्राम करनेवाला वीर (**अभवत्**) होवे (**स.**) वही आप से राज्य की रक्षा के निमित्त नियुक्त करने योग्य है ॥ २ ॥

भावार्थ—राजा को चाहिए कि राजकर्म्मचारी को उत्तम प्रकार परीक्षा करके राज्य-व्यवहार मे नियुक्त करे जिससे प्रजा के सुख की वृद्धि हो ॥ २ ॥

फिर राजा को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

त्वं ह नु त्यददमायो दस्यूँरेकः कृष्टीरवनोरार्याय ।
अस्ति स्विन्नु वीर्यं१ तत्त इन्द्र न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः ॥३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) राजन् जो (ते) आप का (वीर्यम्) बल (अस्ति) है (स्वित्) क्या ? (नु) शीघ्र जो (न) नहीं (अस्ति) है और (स्वित्) भी (ऋतुथा) ऋतु जैसे वैसे जो (वि, वोचः) कहते हो (तत्) उस का (त्वम्) आप (अवनोः) सेवन करिये (तत्) वह मेरा हो और (दस्यून्) दुष्ट चोरों को (एकः) सहायरहित हुए आप (अदमायः) दमन करिये वह आप (ह) निश्चय (कृष्टीः) मनुष्यों को (आर्य्याय) द्विज के लिये (नु) शीघ्र उत्तम प्रकार सेवन करिये (त्यत्) उस को हम लोग भी ऐसे करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—राजाओं का यह मुख्य कर्म्म है कि सम्पूर्ण दुष्ट चोरों का निवारण करके प्रजाओं का पालन करें ॥ ३ ॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सदिद्धि ते तुविजातस्य मन्ये सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य ।
उग्रमुग्रस्य तवसस्तवीयोऽरध्रस्य रध्रतुरो बभूव ॥४॥

पदार्थ—हे (सहिष्ठ) अतिशय सहनेवाले (तुविजातस्य) बहुतो मे प्रसिद्ध जिन (ते) आप का जो (हि) निश्चित (सहः) बल है उस को (सत्) नित्य होनेवाला पदार्थ मैं (मन्ये) मानता हूँ तथा (तुरतः) शीघ्र करनेवाले (तुरस्य) शीघ्र आरम्भ करनेवाले (उग्रस्य) तीव्र और (अरध्रस्य) नहीं हिंसा करनेवाले के (तवसः) बल से (उग्रम्) तीव्र (तवीयः) अतिशय बल को मैं मानता हूँ वह आप (रध्रतुरः) हिंसकों के हिंसक (इत्) ही (बभूव) होवें ॥ ४ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यो को चाहिये कि जिसमे जैसे गुण कर्म्म और स्वभाव होवें वैसे ही मानें ॥ ४ ॥

फिर मनुष्यों को परस्पर कैसा वर्ताव करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

तन्नः प्रत्नं सख्यमस्तु युष्मे इत्था वदद्भिर्वलमङ्गिरोभिः ।
हन्नच्युतच्युद्दस्मेषयन्तमृणोः पुरो वि दुरो अस्य विश्वाः ॥५॥४॥

पदार्थ—हे न्यायकारी राजा आदि जनो आप लोगो के साथ (नः) हम लोगो की जैसे (तत्) वह (प्रत्नम्) प्राचीन (सख्यम्) मित्रता (अस्तु) हो (इत्था) इससे जैसे वैसे (युष्मे) आप लोगो के (वदद्भिः) कहते हुओ के साथ हम लोगो की मित्रता हो और जैसे (अङ्गिरोभिः) पवनो के साथ (अच्युतच्युत्) नही चञ्चल अर्थात् स्थिर को चञ्चल करनेवाला सूर्य्य (वलम्) मेघ का (हन्) नाश करता है वैसे हे (दस्म) दुःख के नाश करनेवाले (इषयन्तम्) प्राप्त हुए वा जाने हुए को आप (ऋणोः) सिद्ध करिये और जैसे (अस्य) इस जगत् के (दुरः) द्वारो को सूर्य्य प्रकाशित करता है वैसे आप (विश्वाः) सम्पूर्ण (पुरः) नगरियो को (वि) विशेषकर सिद्ध करिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यो को चाहिये कि यथाशक्ति उत्तमों के साथ मित्रता ही करें, वह कभी नष्ट न होवे ऐसा प्रयत्न करें और जैसे सूर्य्य सब को प्रकाशित करता है वैसे राजा न्याय से सम्पूर्ण राज्य को प्रकाशित करे ॥ ५ ॥

फिर राजा को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

स हि धीभिर्हव्यो अस्त्युग्र ईशानकृन्महति वृत्रतूर्ये ।
स तोकसाता तनये स वज्री वितन्तसाय्यो अभवत्समत्सु ॥६॥

पदार्थ—हे राजन् जैसे (सः) वह (धीभिः) ज्ञान वा बुद्धियो से (हव्यः) ग्रहण करने योग्य (महति) बड़े (वृत्रतूर्य्ये) सग्राम मे (ईशानकृत्) ईश्वरता करनेवालों को पुरुषार्थी करनेवाला (अस्ति) है और (सः) वह (तोकसाता) सन्तानो के विभाग होने से (तनये) पुत्र के लिये (उग्रः) तेजस्वी और (सः) वह (हि) ही (वितन्तसाय्यः) अत्यन्त विस्तार करने योग्य (वज्री) शस्त्र है बाहुओं मे जिसके ऐसा (समत्सु) संग्रामों मे (अभवत्) होता है वैसे आप करिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । राजा को चाहिये कि सब कर्म्मचारियों को योग्य सिद्ध करे जिससे सर्वदा विजय होवे ॥ ६ ॥

स मज्मना जनिम मानुषाणाममर्त्येन नाम्नाति प्र सर्स्रे ।
स द्युम्नेन स शवसोत राया स वीर्येण नृतमः समोकाः ॥७॥

पदार्थ—हे राजन् जैसे यह सेवक (मज्मना) बल से (सः) वह (द्युम्नेन) धन वा यश से (सः) वह (शवसा) विशेष बल से (सः) वह (राया) धन से और (उत) भी (सः) वह (वीर्य्येण) पराक्रम से (मानुषाणाम्) मनुष्यों के (अमर्त्येन) मरणधर्म्म से रहित कारण से और (नाम्ना) सज्ञा से (जनिम) जन्म अर्थात् प्रकट होने को (अति, प्र, सर्स्रे) अत्यन्त प्राप्त होता है वह (समोकाः) एक स्थानवाला (नृतमः) मनुष्यो के मध्य में अतिशय उत्तम होवे वैसे आप करिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—राजा को चाहिये कि जैसे प्रजा और राजा के जन प्रसिद्धि, बल, धन, यश और पराक्रम को प्राप्त होवें वैसे प्रयत्न करे ॥ ७ ॥

फिर मनुष्य कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

स यो न मुहे न मिथू जनो भूत्सुमन्तुनामा चुमुरिं धुनिं च ।
वृणक्पिप्रुं शम्बरं शुष्णमिन्द्रः पुरां च्यौत्नाय शयथाय नू चित् ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वन् जैसे (इन्द्रः) सूर्य्य (चुमुरिम्) भोजन करने (पिप्रुम्) व्याप्त होने (धुनिम्) शब्द करने (शुष्णम्) सुखाने और (शम्बरम्) सुख को स्वीकार करानेवाले मेघ को (पुराम्) पूर्ण धनों के (च्यौत्नाय) गमन और (शयथाय) शयन के लिये (नू) शीघ्र (वृणक्) काटता है वैसे (च) और (यः) जो (सुमन्तुनामा) उत्तम प्रकार जानने योग्य नाम जिस का वह (जनः) मनुष्य (न) नही (मुहे) मोह को प्राप्त होता और (न) न (मिथू) परस्पर (भूत्) होता है (सः) वह (चित्) भी सत्कार करने योग्य है ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य मेघ का निर्माण करके और वर्षा के बद्ध नही होता है वैसे ही मनुष्य धर्म्मयुक्त कार्य्यों को करके सज्जनो के साथ वर्त्ताव करके मोहित नही होते किन्तु सुखी होते हैं ॥ ८ ॥

फिर राजजन क्या करें इस विषय को कहते हैं—

उदावता त्वक्षसा पन्यसा च वृत्रहत्याय रथमिन्द्र तिष्ठ ।
धिष्व वज्रं हस्त आ दक्षिणत्राभि प्र मन्द पुरुदत्र मायाः ॥९॥

पदार्थ—हे (पुरुदत्र) बहुत दान करनेवाले (इन्द्र) राजन् आप (उदावता) ऊर्ध्व गमन और (पन्यसा) शुद्ध व्यवहार तथा (त्वक्षसा) सूक्ष्मीकरण से (वृत्रहत्याय) सग्राम के लिये (रथम्) रथ पर (आ) सब प्रकार से (तिष्ठ) स्थित हो और (दक्षिणत्रा) दहिने (हस्ते) हाथ मे (वज्रम्) शस्त्र और अस्त्र को (धिष्व) धारण करिये (मायाः) बुद्धियो को (च) और प्राप्त होकर (अभि, प्र, मन्द) सब प्रकार से प्रशसा करिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो उत्कृष्टता में सम्पूर्ण विषयो को जाननेवाली बुद्धियो को प्राप्त होकर शस्त्र और अस्त्रो को धारण करके युद्ध के लिये जाते हैं वे विजय को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

अग्निर्न शुष्कं वनमिन्द्र हेती रक्षो नि धक्ष्यशनिर्न भीमा ।
गम्भीरय ऋष्वया यो रुरोजाध्वानयद्दुरिता दम्भयच्च ॥१०॥५॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दुष्टता के नाशक राजन् (यः) जो (अग्निः) अग्नि जैसे (शुष्कम्) सूखे (वनम्) वन को (न) वैसे (रक्षः) दुष्ट जन को (धक्षि) जलाते हो और जिन आपका (हेतिः) वज्र (अशनिः) बिजुली (न) जैसे वैसे (भीमा) जिससे जन भय करते वह सेना है उस (ऋष्वया) बड़ी (गम्भीरया) अथाह बलयुक्त सेना से आप शत्रुओ को (रुरोज) रोगयुक्त करते हो उनको (अध्वानयत्) कपाते हो और (दुरिता) दुष्ट आचरणो को (च) भी (दम्भयत्) नष्ट करते हो उनसे जिस कारण दुष्टजन को (नि) अत्यन्त जलाते हो इससे अपराजित हो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे राजा आदि जनो ! जैसे अग्नि ज्वाला से सूखे और गीले भी वन को जलाता है वैसे उत्तम प्रकार शिक्षित तथा बड़ी सेना से शत्रुओ को भय करिये और शत्रुओ को जलाइये ॥ १० ॥

आ सहस्रं पथिभिरिन्द्र राया तुविद्युम्न तुविवाजेभिरर्वाक् ।
याहि सूनो सहसो यस्य नू चिददेव ईशे पुरुहूत योतोः ॥११॥

पदार्थ—हे (तुविद्युम्न) बहुत प्रशसा से युक्त (पुरुहूत) बहुतो से आह्वान किये गये (सहसः) बलवान् के (सूनो) पुत्र (इन्द्र) दुष्टता के नाशक राजन् आप (पथिभिः) मार्गों (राया) धन और (तुविवाजेभिः) बहुत वेग वा बहुत संग्रामो के साथ (अर्वाक्) पीछे से (सहस्रम्) अनेको को (आ) सब ओर से (याहि) प्राप्त हूजिये और (यस्य) जिस (योतोः) मिश्रित और अमिश्रित करनेवाले का (चित्) भी (अदेवः) विद्वान् से भिन्न जन (ईशे) इच्छा करता है उसको (नु) शीघ्र प्राप्त होओ ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप विद्या और विनय के मार्ग से प्रजाओ का पिता के सदृश पालन करके यशस्वी होकर सत्य और असत्य का यथावत् निर्णय करिये ॥ ११ ॥

फिर कौन गुणवाला होता है इस विषय को कहते हैं—

प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेर्दिवो ररप्शे महिमा पृथिव्याः ।
नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जिस (तुविद्युम्नस्य) बहुत प्रशसारूप धन से युक्त (स्थविरस्य) विद्या और अवस्था से वृद्ध (घृष्वेः) दुष्टो के घिसनेवाले (दिवः) सुन्दर (पुरुमायस्य) बहुत श्रेष्ठ कर्म्मों मे बुद्धि जिसकी उस (सह्योः) सहनशील

का (**महिमा**) महत्त्व (**पृथिव्याः**) भूमि से (**प्र, रिरिचे**) अलग फैलता है (**अस्य**) इसका (**न**) न (**शत्रुः**) वैरी (**न**) (**प्रतिमानम्**) मान वा सादृश्य और (**न**) न (**प्रतिष्ठिः**) प्रतिष्ठित (**अस्ति**) है ॥ १२ ॥

भावार्थ—जो विद्यामे वृद्ध, अमित प्रशसा और महिमावाले, सत्यकी कामना करते हुए, बहुत बुद्धिमान् और शम दम आदि गुणो से युक्त होवें उनका कोई भी शत्रु न बराबर और न उनसे अधिक प्रतिष्ठित होता है ॥ १२ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

प्र तत्ते अद्या करणं कृतं भूत्कुत्सं यदायुमतिथिग्वमस्मै ।
पुरू सहस्रा नि शिशा अभि क्षामुत्तूर्वयाणं धृषता निनेथ ॥१३॥

पदार्थ—हे राजन् ! (**यत्**) जिस (**कुत्सम्**) वज्र के सदृश दृढ़ (**अतिथिग्वम्**) अतिथियो को प्राप्त होनेवाले (**आयुम्**) जीवन को (**अस्मै**) इसके लिये आप (**उत् , निनेथ**) उन्नति प्राप्त करिये जिस (**धृषता**) दृढ़त्व से (**तूर्वयाणम्**) शीघ्रगामी वाहन जिसका उस (**क्षाम्**) पृथिवी को (**पुरू**) बहुत (**सहस्रा**) हजारो की (**अभि**) चारो ओर से (**नि, शिशा.**) शिक्षा दीजिये (**तत्**) वह (**ते**) आप का (**अद्या**) आज (**करणम्**) साधन (**कृतम्**) किया गया (**प्र, भूत्**) होवे ॥ १३ ॥

भावार्थ—जहाँ राजा आदि जन अधिक अवस्था वाले, अतिथि जनो के सेवक, पक्षपात का त्याग कर के प्रजा के पालक हैं वहा सम्पूर्ण कार्य्य सिद्ध होते हैं ॥ १३ ॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को कहते है—

अनु त्वाहिघ्ने अध देव देवा मदन्विश्वे कवितमं कवीनाम् ।
करो यत्र वरिवो बाधिताय दिवे जनाय तन्वे गृणानः ॥१४॥

पदार्थ—हे (**देव**) विद्वन् (**यत्र**) जहाँ (**बाधिताय**) विलोडित हुए (**दिवे**) कामना करते हुए (**जनाय**) जन के और (**तन्वे**) शरीर के लिये (**वरिव**) सेवन की (**गृणान**) स्तुति करता हुआ जन (**कर**) कार्य्यों को करनेवाला है वहाँ (**अहिघ्ने**) मेघ को नष्ट करनेवाले सूर्य के लिये जैसे वैसे जिस (**कवीनाम्**) विद्वानो के मध्य मे (**कवितमम्**) अत्यन्त विद्वान् (**त्वा**) आपको (**विश्वे**) सब (**देवा**) विद्वान् जन (**अनु, मदन्**) आनन्दित करते है उन आपका आश्रयण करके (**अध**) इस के अनन्तर निरन्तर हम लोग सुखी होवें ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य उत्तम, यथार्थवक्ता, विद्वानो का उत्तम प्रकार सेवन कर विद्याओ को प्राप्त होकर अन्यो को जनाते हैं वे प्रसन्न होते हैं ॥ १४ ॥

फिर मनुष्य को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

अनु द्यावापृथिवी तत्त ओजोऽमर्त्या जिहत इन्द्र देवाः ।
कृष्वा कृत्नो अकृतं यत्ते अस्त्युक्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः ॥१५॥६॥

पदार्थ—हे (**कृत्नो**) करनेवाले (**इन्द्र**) राजन् (**ते**) आप के समीप से जो (**अमर्त्या**) साधारण मनुष्यो के स्वभाव से विलक्षण स्वभाव वाले (**देवा**) विद्वान् जन (**यत्**) जो (**अकृतम्**) नही किया गया कर्म और (**नवीय**) अतिशय नवीन वचन (**उक्थम्**) कहने योग्य (**अस्ति**) है (**तत्**) उस (**ते**) आपके वचन को (**जिहते**) प्राप्त होते और (**द्यावापृथिवी**) भूमि और सूर्य को (**अनु**) पश्चात् प्राप्त होते है उनको आप (**यज्ञै**) मेल करनेरूप व्यवहारो से (**जनयस्व**) प्रकट कीजिये और (**ओज**) पराक्रम को (**कृष्वा**) करिये ॥ १५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग भूमि और बिजुली आदि की विद्या से नवीन-नवीन कार्य सिद्ध करिये ॥ १५ ॥

इस सूक्त मे इन्द्र, विद्वान् और राजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह अठारहवां सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ त्रयोदशर्चस्यैकोनविंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि. । इन्द्रो देवता । १,३,१३ भुरिक्पङ्क्तिः । ६ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २,४,६,७ निचृत्त्रिष्टुप् । ५,१०,११,१२ विराट्त्रिष्टुप् छन्द । ८ त्रिष्टुप् छन्द । धैवतः स्वर ॥

अब तेरह ऋचावाले उन्नीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अब सूर्य कैसा है इस विषय को कहते हैं—

महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः ।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (**महान्**) बडा (**इन्द्रः**) सूर्य (**चर्षणिप्राः**) मनुष्यो मे बिजुलीरूप से व्याप्त होने (**उत**) और (**द्विबर्हा.**) अन्तरिक्ष और वायु से बढ़ने और (**अमिनः**) नही हिंसा करनेवाला (**अस्मद्र्यक्**) हम लोगो के सन्मुख हुआ (**उरु**) बहुत (**पृथु.**) विस्तीर्ण (**सुकृतः**) उत्तम प्रकार उत्पन्न किया गया (**भूत्**) हो तथा (**सहोभि**) बलो और (**कर्तृभिः**) कर्म करनेवालों के साथ (**वीर्याय**) पराक्रम के लिये (**नृवत्**) मनुष्य जैसे वैसे (**आ, वावृधे**) सब ओर से बढ़ता है उसको जान कर इष्टसिद्धि करिये ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे मित्र मित्र के साथ कार्य की सिद्धि के निमित्त प्रयत्न करता है वैसे ही ईश्वर से निर्मित बिजुली वा सूर्य सम्पूर्ण कर्मकारियो का सहयोगी होता है ॥१॥

मनुष्यों को किस प्रकार से उन्नति करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इन्द्रमेव धिषणा सातये धाद्बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।
अषाळ्हेन शवसा शूशुवांसं सद्यश्चिद्यो वावृधे असामि ॥२॥

पदार्थ—(**य**) जो (**धिषणा**) बुद्धि वा कर्म से (**सातये**) सविभाग के लिये (**बृहन्तम्**) पृथिवी के समीप से अतिविस्तीर्ण (**ऋष्वम्**) जानेवाले (**अजरम्**) वृद्धावस्था से रहित (**युवानम्**) युवाजन को जैसे वैसे (**अषाळ्हेन**) शत्रुओ से नही सहने योग्य (**शवसा**) बल से (**शूशुवांसम्**) व्याप्तिमान् (**इन्द्रम्**) सूर्य के सदृश अत्यन्त ऐश्वर्य वाले को (**धात्**) धारण करता है वह (**एव**) ही (**सद्यः**) शीघ्र (**असामि**) अत्यन्त (**चित्**) निश्चित (**वावृधे**) वृद्धि को प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थ—जैसे बडे मित्र को प्राप्त होकर मनुष्य वृद्धि को प्राप्त होते हैं वैसे ही बिजुली की विद्या को प्राप्त होकर अतुल वृद्धि को प्राप्त होते है ॥२॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

पृथू करस्ना बहुला गभस्ती अस्मद्र्य१क्सं मिमीहि श्रवांसि ।
यूथेव पश्वः पशुपा दमूना अस्माँ इन्द्राभ्या ववृत्स्वाजौ ॥३॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले और न्याय के ईश ! जो आपके (**पृथू**) विस्तीर्ण (**करस्ना**) जो करनेवालो को शुद्ध करनेवाले (**बहुला**) जिनमे बहुतो का ग्रहण करते वे (**गभस्ती**) दोनो हाथ वर्त्तमान है उन दोनो से (**पशुपा**) पशुओ के रखनेवाले (**पश्व**) पशु के (**यूथेव**) समूह जैसे वैसे (**अस्मद्र्यक्**) हम लोगो की सेवा करनेवाले होते हुए (**श्रवांसि**) अन्नो वा श्रवणो का (**सम्, मिमीहि**) उत्तम प्रकार ग्रहण करिये और (**दमूना.**) इन्द्रियो का निग्रह करनेवाले हुए (**आजौ**) सङ्ग्राम मे (**अस्मान्**) हम लोगो के (**अभि**) चारो ओर से (**आ, ववृत्स्व**) अच्छे प्रकार वर्ताव करिये ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । वे ही लक्ष्मीवान् होते है जो आलस्य का त्याग करके सदा सत्कर्म के लिये प्रयत्न करते हैं और जैसे पशुओ के पालनेवाले पशुओ का पालन करके समृद्ध अर्थात् धनवान् होते हैं वैसे ही पुरुषार्थी जन दारिद्र्य का विनाश करके धन के स्वामी होते है ॥३॥

फिर मनुष्य कैसे होवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तं व इन्द्रं चतिनमस्य शाकैरिह नूनं वाजयन्तो हुवेम ।
यथा चित्पूर्वे जरितार आसुरनेद्या अनवद्या अरिष्टाः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यथा**) जैसे (**इह**) इस ससार मे (**पूर्वे**) प्राचीन (**अनेद्या.**) नही निन्दा करने योग्य (**अनवद्या.**) प्रशसनीय (**अरिष्टाः**) नही हिंसित (**जरितार**) स्तुति करनेवाले (**आसु**) होते है वैसे (**चित्**) भी (**अस्य**) इसके (**शाकै**) सामर्थ्यविशेषो से (**तम्**) उस (**चतिनम्**) आनन्द और (**इन्द्रम्**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देनेवाले को तथा (**व**) तुम लोगो को (**नूनम्**) निश्चित (**वाजयन्त**) जनाते हुए हम लोग (**हुवेम**) ग्रहण करें ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे प्रशसा करने योग्य यथार्थवक्ता पुरुष धर्मयुक्त कर्मों मे वर्ताव करके कृतकृत्य होते हैं वैसे ही वर्ताव करके सब मनुष्य कृतकार्य होवें ॥४॥

फिर मनुष्यो को कैसा होना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

धृतव्रतो धनदाः सोमवृद्धः स हि वामस्य वसुनः पुरुक्षुः ।
सं जग्मिरे पथ्या१ रायो अस्मिन्त्समुद्रे न सिन्धवो यादमानाः ॥५॥७॥

पदार्थ—हे विद्वानो जिसको (**अस्मिन्**) इस व्यवहार मे (**यादमानाः**) चारो ओर से जाती हुई (**सिन्धव**) नदिया (**समुद्रे**) समुद्र मे (**न**) जैसे वैसे (**पथ्या**) मार्ग मे श्रेष्ठ (**रायः**) धन (**सम्, जग्मिरे**) प्राप्त होते हैं (**सः, हि**) वही (**धृतव्रत**) धारण किये कर्म जिसने वह (**सोमवृद्धः**) ऐश्वर्य वा ओषधि से बढ़ा हुआ (**धनदा.**) धनका देनेवाला (**पुरुक्षुः**) बहुत अन्न से युक्त (**वामस्य**) प्रशसा करने योग्य (**वसुन**) धन का स्वामी होता है ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे नदियाँ वेग से समुद्र को प्राप्त होकर स्थिर होती है वैसे ही धार्मिक तथा उद्योगी पुरुष की लक्ष्मी सेवा करती है ॥ ५ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

शविष्ठं न आ भर शूर शव ओजिष्ठमोजो अभिभूत उग्रम् ।
विश्वा द्युम्ना वृष्ण्या मानुषाणामस्मभ्यं दा हरिवो मादयध्यै ॥६॥

पदार्थ—हे (हरिवः) प्रशंसनीय मनुष्यों वाले (शूर) भयरहित (अभिभूते) दुष्टों के अभिभव करनेवाले आप (नः) हम लोगों को और (शविष्ठम्) अतिशय बलिष्ठ (उग्रम्) तीव्र (ओजः) प्राणधारण को और (ओजिष्ठम्) अत्यन्त पराक्रमयुक्त (शवः) बल को (आ, भर) सब प्रकार से धारण करो और इससे (मानुषाणाम्) मनुष्य जाति में वर्त्तमानों के सम्बन्ध में (विश्वा) सम्पूर्ण (वृष्ण्या) उत्तम जनों के लिये हितकारक (द्युम्ना) प्रकाशित यशों वा धनों को (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (मादयध्यै) आनन्द देने को (दाः) दीजिये ॥६॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप राज्य के पालने योग्य गुणों को धारण कर के न्याय से राज्य का पालन करिये ॥६॥

यस्ते मदः पृतनाषाळमृध्र इन्द्र तं न आ भर शूशुवांसम् ।
येन तोकस्य तनयस्य साती मंसीमहि जिगीवांसस्त्वोताः ॥७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) राजन् (ते) आपका (यः) जो (अमृध्रः) नहीं हिंसा करने और (पृतनाषाट्) सेनाओं को सहनेवाला (मदः) आनन्द है (येन) जिससे (जिगीवांसः) जीतनेवाले (त्वोताः) आप से रक्षित हम लोग (तोकस्य) सन्तान (तनयस्य) सुकुमार के (सातौ) संविभाग में रक्षा और विद्यादान को (मंसीमहि) जानें और आप (तम्) उस (शूशुवांसम्) श्रेष्ठ गुणों से व्याप्त को (नः) हम लोगों के लिये (आ, भर) सब प्रकार से धारण करिये ॥७॥

भावार्थ—हे प्रजाजनो ! आप लोग राजा के प्रति यह कहो कि हम लोगों के सन्तान जिस प्रकार उत्तम शिक्षित हों वैसे नियमों को करिये जिससे विजय और आनन्द बढ़ें ॥७॥

आ नो भर वृषणं शुष्ममिन्द्र धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
येन वंसाम पृतनासु शत्रून्तवोतिभिरुत जामीँरजामीन् ॥८॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दुष्टों के बलनाशक आप (नः) हम लोगों के लिये (वृषणम्) शत्रुओं के सामर्थ्य को रोकनेवाली (शुष्मम्) सेना और (धनस्पृतम्) धन को पूरण करते जिससे उस (शूशुवांसम्) शुभगुणव्यापिनी (सुदक्षम्) उत्तम बल की चतुराई को (आ) सब ओर से (भर) धारण करिये (येन) जिससे हम लोग (तव) आपके (ऊतिभिः) रक्षण आदिकों से (जामीन्) सम्बन्धी बन्धु आदिकों का (उत) और (अजामीन्) असम्बन्धी दुष्ट (शत्रून्) शत्रुओं का (पृतनासु) मनुष्यों की सेनाओं में (वंसाम) विभाग करें ॥८॥

भावार्थ—राजाओं को चाहिये कि ऐसा प्रयत्न करें जिससे मित्र और शत्रु पृथक् पृथक् प्रतीत होवें और वैसी ही सेना रखनी चाहिये जिससे शत्रु नष्ट होवें ॥ ८ ॥

फिर सम्पूर्ण जनों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

आ ते शुष्मो वृषभ एतु पश्चादोत्तरादधरादा पुरस्तात् ।
आ विश्वतो अभि समेत्वर्वाङिन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥९॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के करनेवाले जैसे (अस्मे) हम लोगों के लिये (पश्चात्) पीछे से (स्वर्वत्) बहुत प्रकार सुख विद्यमान जिसमें उस (द्युम्नम्) प्रकाशस्वरूप यश वा धन को (एतु) प्राप्त हूजिये और (उत्तरात्) बाईं ओर से बहुत प्रकार सुख जिसमें उस प्रकाशस्वरूप यश वा धन को (आ) सब ओर से प्राप्त हूजिये और (अधरात्) नीचे से बहुविध सुखवाले प्रकाशस्वरूप यश वा धन को (आ) सब ओर से प्राप्त हूजिये तथा (विश्वतः) सब ओर से प्रकाशस्वरूप यश वा धन के (आ) सब प्रकार से (अभि, एतु) सम्मुख हूजिये और (अर्वाङ्) नीचे से बहुत सुखवाले सम्पूर्ण प्रकाशस्वरूप यश वा धन को (सम्) उत्तम प्रकार प्राप्त हूजिये तथा (पुरस्तात्) आगे से बहुत प्रकार सुख जिस में उस प्रकाशस्वरूप यश वा धन को अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये वैसे (ते) आपका (शुष्मः) उत्तम बलयुक्त (वृषभः) बलिष्ठ (आ) सब ओर से प्राप्त होवे और आप हम लोगों के लिये इसको (धेहि) धारण करिये ॥९॥

भावार्थ—हे राजा और प्रजाजनो ! जैसे सब दिशाओं से सम्पूर्ण जनों को सुख और यश प्राप्त होवें वैसे यत्न का अनुष्ठान करिये ॥९॥

नृवत्त इन्द्र नृतमाभिरूती वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः ।
ईक्षे हि वस्व उभयस्य राजन्धा रत्नं महि स्थूरं बृहन्तम् ॥१०॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले (राजन्) विद्या और विनय से प्रकाशमान जैसे हम लोग (ते) आपके (नृतमाभिः) अति उत्तम मनुष्य विद्यमान जिनमें उन (ऊती) रक्षण आदिकों से (नृवत्) मनुष्यों के तुल्य (वामम्) प्रशंसा करने योग्य कर्म का (वंसीमहि) विभाग करें और (श्रोमतेभिः) सुनाने योग्य वचनों से (उभयस्य) दोनों राजा और प्रजा में वर्तमान (वस्वः) धन का मैं (ईक्षे) दर्शन करता हूँ वैसे आप (बृहन्तम्) बड़े (महि) आदर करने योग्य (स्थूरम्) स्थिर (रत्नम्) सुन्दर धन को (हि) ही (धाः) धारण करिये ॥१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। राजजनों तथा प्रजाजनों और राजा को चाहिये कि प्रयत्नों से प्रशंसित विद्या और बहुत धन की निरन्तर वृद्धि करें ॥१०॥

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो हम लोग (इह) इस राज्यकर्म में जिसका (नूतनाय) नवीन (अवसे) रक्षण आदि के लिये (मरुत्वन्तम्) श्रेष्ठ मनुष्य विद्यमान जिसके उस (वृषभम्) अतिश्रेष्ठ पूर्णबल वाले (वावृधानम्) अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होते हुए (अकवारिम्) नहीं विद्यमान हैं शब्द करते हुए शत्रु जिसके उस (दिव्यम्) सुन्दर (शासम्) पक्षपात का त्याग करके शासन करने वाले (विश्वासाहम्) सम्पूर्ण कष्ट को सहनेवाले (उग्रम्) तेजस्वी (सहोदाम्) बल देनेवाले (इन्द्रम्) शरीर आत्मा और राज शोभा से अत्यन्त शोभित का (हुवेम) हम स्वीकार करें (तम्) उसका आप लोग भी आह्वान कर स्वीकार कीजिये ॥११॥

भावार्थ—राजजनों और प्रजाजनों को चाहिये कि सब के रक्षण के लिये सब से उत्तम गुण कर्म और स्वभाव वाले राजा का स्वीकार करें और वह राजा सबकी सम्मति से सत्य न्याय का निरन्तर आचरण करें ॥११॥

जनं वज्रिन्महि चिन्मन्यमानमेभ्यो नृभ्यो रन्धया येष्वस्मि ।
अधा हि त्वा पृथिव्यां शूरसातौ हवामहे तनये गोष्वप्सु ॥१२॥

पदार्थ—हे (वज्रिन्) अच्छे शस्त्र और अस्त्र के धारण करनेवाले राजन् आप (एभ्यः) इन (नृभ्यः) उत्तम प्रकार शिक्षित अग्रणी मनुष्यों के लिये उस (महि) महान् (मन्यमानम्) अभिमान करनेवाले (जनम्) मनुष्य का (रन्धया) नाश करिये और (अधा) इसके अनन्तर (येषु) जिनके निमित्त (शूरसातौ) शूरवीर विभक्त होते हैं जिस संग्राम में उसमें (अस्मि) हूँ उसकी रक्षा कीजिये (हि) जिससे (पृथिव्याम्) विस्तीर्ण भूमि में (गोषु) पृथिवियों वा धनों में और (अप्सु) जलों वा प्राणों में (तनये) सन्तान के लिये जिन (त्वा) आपको (हवामहे) स्वीकार करते हैं वह आप (चित्) भी हम लोगों का सत्कार कीजिये ॥१२॥

भावार्थ—हे राजसम्बन्धी जनो ! जो मिथ्या अभिमान करनेवाला जन श्रेष्ठ पुरुषों को पीड़ा देवे उसको दण्ड दीजिये और युद्धविद्या से सम्पूर्ण जनों का रक्षण करिये जिससे भूमि में आप लोगों की प्रशंसा प्रसिद्ध होवे ॥१२॥

वयं त एभिः पुरुहूत सख्यैः शत्रोःशत्रोरुत्तर इत्स्याम ।
घ्नन्तो वृत्राण्युभयानि शूर राया मदेम बृहता त्वोताः ॥१३॥८॥

पदार्थ—हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित (शूर) वीर राजन् (वयम्) हम लोग (ते) आपके (एभिः) इन वर्त्तमान पहिले कहे गये और उत्तरों से प्रतिपादित (सख्यैः) मित्र के कर्मों से (शत्रोःशत्रोः) शत्रु शत्रु की सेनाओं का (घ्नन्तः) नाश करते हुए (उत्तरे) विजय के अनन्तर समय में (स्याम) प्रकट होवें और (उभयानि) राजा और प्रजा में वर्त्तमान (वृत्राणि) धनों को प्राप्त होकर आपकी (बृहता) बड़ी (राया) राज्यलक्ष्मी से तथा (त्वोताः) आप से पालना किये हुए (इत्) ही (मदेम) आनन्द को प्राप्त होवें ॥१३॥

भावार्थ—जो राजा और राजप्रजाजन मित्र के सदृश होवें तो सम्पूर्ण शत्रुओं को जीत कर बड़ी राज्यलक्ष्मी में प्रकाशित होवें ॥१३॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा और प्रजाजनों के कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह उन्नीसवां सूक्त और आठवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ त्रयोदशर्चस्य विंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ।
इन्द्रो देवता । १ आर्च्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । २, ३, ७, १२
पङ्क्तिः । ४, ६ भुरिक्पङ्क्तिः । १३ स्वराट्पङ्क्तिः १०
निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ५, ८, ९, ११
निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब तेरह ऋचावाले बीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में
अब मनुष्यों को किस की इच्छा करनी चाहिये इस विषय
को कहते हैं—

द्यौर्न य इन्द्राभि भूमार्यस्तस्थौ रयिः शवसा पृत्सु जनान् ।
तं नः सहस्रभरमुर्वरासां दद्धि सूनो सहसो वृत्रतुरम् ॥१॥

पदार्थ—हे (सहसः) बल से (सूनो) श्रेष्ठ पुत्र (इन्द्र) अत्यन्त श्रेष्ठ धन से युक्त (यः) जो (द्यौः) बिजुली वा सूर्य के (न) समान प्रकाशित (रयिः) धन है इस का (अर्यः) स्वामी (शवसा) बल से (पृत्सु) संग्रामों में (जनान्) मनुष्यों के प्रति (अभि) सम्मुख (तस्थौ) वर्त्तमान होवे (तम्) उस (सहस्रभरम्) असंख्य को धारण करनेवाले (वृत्रतुरम्) जैसे मेघों को वैसे

शत्रुओं का नाश करता है जिससे उस तथा (उर्वरासाम्) बहुत श्रेष्ठ भूमियों में श्रेष्ठ विजय को (नः) हम लोगों के लिये (वद्धि) दीजिये जिससे हम लोग लक्ष्मी-वान् (भूम) होवें ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य बिजुली के सदृश पराक्रमी और सूर्य के सदृश प्रतापयुक्त हुए सङ्ग्रामों में साहसिक होवें वे विजयवान् होवें ॥१॥

दिवो न तुभ्यमन्विन्द्र सत्रासुर्यं देवेभिर्धायि विश्वम् ।
अहिं यद्वृत्रमपो वव्रिवांसं हन्नृजीषिन् विष्णुना सचानः ॥२॥

पदार्थ—हे (ऋजीषिन्) सरल धर्म में युक्त (इन्द्र) राजन् जैसे सूर्य (विष्णुना) व्यापक जगदीश्वर वा बिजुली से (सचान) मिलने वाला (यत्) जिसको (अपः) जलों के (वव्रिवांसम्) विभाग करते हुए (वृत्रम्) आच्छादन करनेवाले (अहिम्) मेघ को (हन्) नाश करता है वैसे (देवेभिः) विद्वानों से (तुभ्यम्) आपके लिये (सत्रा) सत्य से (दिवः) कामना करते हुए (न) जैसे वैसे (विश्वम्) सम्पूर्ण (असुर्यम्) मूर्ख पापी जनों का ऐश्वर्य (अनु, धायि) पीछे धारण किया जाता है ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य आठ महीने में जल के रसों का आकर्षण के द्वारा हरण करके चातुर्मास्य में वर्षाता है वैसे ही राजा आठ महीने करों को ग्रहण कर अभय की वृष्टि करके प्रजा का पालन करे ॥ २ ॥

तूर्वन्नोजीयान् तवसस्तवीयान् कृतब्रह्मेन्द्रो वृद्धमहाः ।
राजाभवन् मधुनः सोम्यस्य विश्वासां यत्पुरां दर्त्नुमावत् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यत्) जो शत्रुओं का (तूर्वन्) नाश करता हुआ (ओजीयान्) अतिशय पराक्रमयुक्त जन (तवसः) बल का (तवीयान्) अत्यन्त प्रशंसित (कृतब्रह्मा) किया धन वा अन्न जिसने वह (वृद्धमहाः) बड़े सहायक जिसके ऐसा (इन्द्रः) ऐश्वर्य का बढ़ानेवाला (राजा) प्रकाशमान राजा (अभवत्) होवे और (सोम्यस्य) रस आदिकों में हुए (मधुनः) मधुर आदि गुणों से युक्त के और (विश्वासाम्) सम्पूर्ण (पुराम्) नगरियों के (दर्त्नुम्) नाश करनेवाले की (आवत्) रक्षा करे उसी को राजा करिये ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो पराक्रमी, बली जनों में बली विद्वानों में विद्वान्, वृद्ध जनों में वृद्ध और जीतने हुए भृत्यों का सत्कार करनेवाला होवे उसी को राज्य में अभिषिक्त करके सुखी हूजिये ॥३॥

शतैरपद्रन्पणय इन्द्रात्र दशोणये कवयेऽर्कसातौ ।
वधैः शुष्णस्याशुषस्य मायाः पित्वो नारिरेचीत्किं चन प्र ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अन्न देनेवाले राजन् आप जो (पणयः) व्यवहारों के जाननेवाले (शतैः) सौ संख्या से परिमित वा असंख्य (वधैः) वधों से (अत्र) इस राजव्यवहार में (अपद्रन्) नहीं द्रवित होते हैं और (अर्कसातौ) अन्न आदि के विभाग में (दशोणये) दश न्यून जिसमें उस (कवये) विद्वान् के लिये (अशुषस्य) शोषण से रहित (शुष्णस्य) बलिष्ठ की (मायाः) बुद्धियों का (पित्वः) अन्न आदि (किम्, चन) कुछ भी (न) नहीं (प्र, अरिरेचीत्) अच्छे प्रकार प्रसंग करता है उनका सत्कार करिये अर्थात् प्रशंसा करिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो धर्ममार्ग का त्याग करके उन्मार्ग में चलते हैं उनको राजा नित्य दण्ड देवे और जो दश इन्द्रियों से अधर्म का त्याग करके धर्म का आचरण करते हैं उनका निरन्तर सत्कार करे ॥४॥

महो द्रुहो अप विश्वायु धायि वज्रस्य यत्पतने पादि शुष्णः ।
उरु ष सरथं सारथये करिन्द्रः कुत्साय सूर्यस्य सातौ ॥५।९॥

पदार्थ—हे राजन् आप से (वज्रस्य) शस्त्र और अस्त्रविशेष के (पतने) गिरने में जो (द्रुहः) द्रोह करने वालों को (अप, पादि) दूर करे जिससे (महः) अत्यन्त (विश्वायु) सम्पूर्ण जीवन (धायि) धारण किया जाय और (यत्) जो (इन्द्रः) शत्रुओं का नाशक सेना का स्वामी (सारथये) वाहन चलाने वाले के लिए (सरथम्) वाहन के सहित वर्त्तमान का (सूर्यस्य) सूर्य के (सातौ) उत्तम प्रकार विभाग में (कुत्साय) वज्र के प्रहार के लिये (उरु) बहुत (कः) करे (सः) वह (शुष्णः) बलिष्ठ का सम्बन्धी सत्कार करने योग्य है ॥ ५ ॥

भावार्थ—राजा को चाहिये कि द्रोह आदि दोषों का त्याग करके ब्रह्मचर्य आदि से सम्पूर्ण जनों को अधिक अवस्था वाले करके रथ आदि सेना के अङ्गों को सूर्य के तुल्य प्रकाशित करके सत्य और असत्य के विभाग से प्रजाओं का पालन करे ॥ ५ ॥

फिर राजा को किस का निषेध करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

प्र श्येनो न मदिरमंशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
प्रावन्नमीं साप्यं ससन्तं पृणग्राया समिषा सं स्वस्ति ॥ ६ ॥

पदार्थ—जो राजा (मदिरम्) मादक द्रव्य और (अंशुम्) वैद्यकविद्या की रीति से विभाग किये गये का सेवन करते हुए और (नमुचेः) नहीं त्याग करनेवाले (दासस्य) सेवक के (शिरः) मस्तक को (श्येनः) बाज पक्षी (न) जैसे वैसे (प्र, मथायन्) अत्यन्त मथन करता हुआ (अस्मै) इसके लिए कठिन शिष्य को (नमीम्) नम्र (साप्यम्) कर्म के अन्त करनेवाले को (ससन्तम्) सोते हुए को करके (प्र, आवत्) रक्षा करे और (राया) धन से (स्वस्ति) सुख को (सम्, पृणक्) उत्तम प्रकार पूर्ण करता है तथा (इषा) अन्न आदि से सुख को (सम्) अच्छे प्रकार पूर्ण करता है वह सम्राट् होने के योग्य होवे ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। राजाओं का यह उचित कर्म है कि जो मादक द्रव्य का सेवन करे उन को अत्यन्त दण्ड देके, यथायोग्य सत्कार से अप्रमादियों का सत्कार करें वे साम्राज्य करने को योग्य होवें ॥ ६ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वि पिप्रोरहिमायस्य दृळ्हाः पुरो वज्रिञ्छवसा न दर्दः ।
सुदामन्तद्रेक्णो अप्रमृष्यमृजिश्वने दात्रं दाशुषे दाः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (वज्रिन्) शस्त्र और अस्त्रों को धारण करनेवाले (सुदामन्) उत्तम प्रकार से दाता राजन् आप (अहिमायस्य) मेघ का ढाँप लेना जैसे वैसे कपटता जिसकी उस (पिप्रोः) व्यापक की (दृळ्हाः) दृढ़ (पुरः) नगरियों को (शवसा) बल से (न) नहीं (वि, दर्दः) विशेष नष्ट कीजिए और जो (अप्रमृष्यम्) नहीं सहने योग्य (दात्रम्) दान को (ऋजिश्वने) सरलता आदि गुणों के बढ़ानेवाले (दाशुषे) दान देने योग्य पुरुष के लिए (दाः) दीजिये (तत्) उस (रेक्णः) धनदान को हम लोगों के लिये भी दीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—राजा को चाहिए कि छल आदि का त्याग कर और अपने नगरों को दृढ़ करके कभी छेदन न करें और सुपात्र के लिए दान दें और कुपात्र का तिरस्कार करें ॥ ७ ॥

स वेतसुं दशमायं दशोणिं तूतुजिमिन्द्रः स्वभिष्टिसुम्नः ।
आ तुग्रं शश्वदिभं द्योतनाय मातुर्न सीमुप सृजा इयध्यै ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो (स्वभिष्टिसुम्नः) उत्तम प्रकार अभीष्ट सुखवाले (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त राजा (सः) वह आप (द्योतनाय) प्रकाश के लिये (वेतसुम्) व्यापनशील (दशमायम्) दश अङ्गुलियों के तुल्य प्रमाण जिस का उस (दशोणिम्) दश प्रकार से परित्याग जिसका और (तूतुजिम्) बल से युक्त (तुग्रम्) ग्रहण करने वाले (इभम्) हाथी को (इयध्यै) प्राप्त होने के लिये (मातुः) माता से (न) जैसे वैसे (सीम्) सब ओर से (शश्वत्) निरन्तर (आ, उप, सृजा) समीप प्रकट कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—वही राजा धनवान् होवे कि जो दश इन्द्रियों से उत्तम कर्म और विज्ञान को बढ़ा के अभीष्ट सुख की निरन्तर उन्नति करे और माता के सदृश प्रजाओं का पालन करे ॥ ८ ॥

स ईं स्पृधो वनते अप्रतीतो बिभ्रद्वज्रं वृत्रहणं गभस्तौ ।
तिष्ठद्धरी अध्यस्तेव गर्ते वचोयुजा वहत इन्द्रमृष्वम् ॥९॥

पदार्थ—(सः) वह प्रताप से युक्त राजा (वृत्रहणम्) जिससे मेघ का नाश करता है उस (वज्रम्) वज्र को (गभस्तौ) किरण में सूर्य जैसे वैसे (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (अप्रतीतः) शत्रुओं से नहीं जाना गया (स्पृधः) स्पर्द्धा करता है जिन में उनका और (ईम्) जल का (वनते) सेवन करता है और (हरी) घोड़े जैसे धारण और आकर्षण को वैसे वा (अस्तेव) प्रेरणा करने वाला सारथि जैसे वैसे (गर्ते) गृह में (अधि, तिष्ठत्) स्थित होता है वैसे आप जो (वचोयुजा) वचन से युक्त करने वाले दोनों (ऋष्वम्) बड़े (इन्द्रम्) बिजुली के सदृश राजा को (वहतः) पहुँचाते हैं उन को वाहनों में युक्त करिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—राजा सदा ही अपने विचार को छिपावे जब कार्य सिद्ध होवे तभी लोग प्रकट जानें और शस्त्रों को धारण कर सेनाओं को उत्तम प्रकार शिक्षा देकर बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होवे ॥ ९ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

सनेम तेऽवसा नव्य इन्द्र प्र पूरवः स्तवन्त एना यज्ञैः ।
सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्द्धन्दासीः पुरुकुत्साय शिक्षन् ॥१०॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य और सुख के देनेवाले (ते) आप के (अवसा) रक्षण आदि से हम लोग (सप्त) सात (पुरः) नगरियों का (सनेम) विभाग करें और जैसे (पूरवः) मनुष्य (एना) इस (अवसा) रक्षण आदि से और (यज्ञैः) श्रेष्ठ व्यवहाररूप यज्ञों से (स्तवन्ते) स्तुति करते हैं इससे (नव्यः) नवीनों में हुए आप उनसे स्तुति करिये और (यत्) जो (शर्म) गृह और (शारदीः) शरत्काल में हुई (दासीः) सेविकाओं को प्राप्त होके (पुरुकुत्साय) बहुत शस्त्रवाले के लिए (शिक्षन्) शिक्षा देता हुआ दुःखों को (प्र, दर्त्) नष्ट करता है और शत्रुओं को (हन्) मारता है वह सब से सत्कार करने योग्य है ॥ १० ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे राजा विनय से वर्त्तमान है वैसे ही सब वर्त्तमान होवें और पुरुषार्थ से सुन्दर पुरों का निर्माण करके उन सब ऋतुओं में सुख देनेवालों में निवास करते हुए दुःखों को दूर फेंकें ॥ १० ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भूर्वरिवस्यन्नुशने काव्याय ।

परा नववास्त्वमनुदेयं महे पित्रे ददाथ स्वं नपातम् ॥११॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त (पूर्व्यः) प्राचीनों से किये गये विद्वान् (त्वम्) आप (वृधः) वृद्धि करनेवालों की (वरिवस्यन्) सेवा करते हुए (उशने) कामना करते हुए (काव्याय) विद्वानों से उत्तम प्रकार शिक्षित के लिए दाता (भूः) हूजिये (स्वम्) अपने (नपातम्) पतन से रहित (अनुदेयम्) पश्चात् देने योग्य (नववास्त्वम्) नवीन निवास को (महे) बड़े (पित्रे) पालन करनेवाले के लिए (ददाथ) दीजिये और नहीं (परा) पीछे लीजिये अर्थात् न लौटाइये ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो राजा सब का यथायोग्य सत्कार करता है वह पिता के तुल्य होता है ॥ ११ ॥

त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।

प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सब के पालन करने वाले (धुनिः) शत्रुओं के कम्पानेवाले (त्वम्) आप (धुनिमतीः) शब्द करती हुई प्रजायें (सीराः) नाड़ियें तथा (अपः) जल और (स्रवन्तीः) नदियाँ (समुद्रम्) समुद्र वा अन्तरिक्ष को (न) जैसे वैसे (स्वस्ति) सुख का (ऋणोः) प्रसिद्ध कीजिये और हे (शूर) वीर (यत्) जो आप (तुर्वशम्) शीघ्र वश को प्राप्त होनेवाले (यदुम्) यत्नशील मनुष्य का (प्र, अति, पर्षि) प्रसिद्ध अत्यन्त पालन करते हो वह आप हम लोगों को (पारया) दुःख से पार कीजिये ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे राजन् आप मंगल और सुख के देनेवाले शब्दों से युक्त और आनन्दित प्रजाओं को करें और जैसे नदियाँ समुद्र को प्राप्त होकर स्थिर होती हैं वैसे प्रजायें आप को प्राप्त होकर निश्चल होवें ऐसा करिये ॥ १२ ॥

तव ह त्यदिन्द्र विश्वमाजौ सस्तो धुनीचुमुरी या ह सिष्वप् ।

दीदयदित्तुभ्यं सोमेभिः सुन्वन्दभीतिरिध्मभृतिः पक्थ्य१र्कैः ॥१३॥१०॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सुख के धारण करनेवाले (तव) आपके (या) जो (धुनीचुमुरी) शब्द और भोग (आजौ) संग्राम में (विश्वम्) सम्पूर्ण का पालन करते हैं और जो (सस्तः) शयन करता हुआ (ह) निश्चय से (सिष्वप्) सोता हुआ (दीदयत्) प्रकाश करता है और जो (दभीतिः) हिंसा करने और (इध्मभृतिः) काष्ठ का धारण करने वाला (पक्थी) पाचक (अर्कैः) अन्नों से और (सोमेभिः) ऐश्वर्य और ओषधि आदिकों से (सुन्वन्) उत्पन्न करता हुआ (तुभ्यम्) आपके लिये (इत्) ही सुख को देवे (त्यत्) उसको (ह) निश्चय से और उन सबों का सदा सत्कार करिये ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप बहुत बोलनेवाले, भोक्ता, वीर जनों का सत्कार करके सेनाओं को प्रबल करिये ॥ १३ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान्, राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह बीसवाँ सूक्त और दशवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ द्वादशर्चस्यैकविंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ।
इन्द्रो देवता । १, २, ९, १०, १२ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ५, ६, ११ त्रिष्टुप् । ३, ७ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।
८ स्वराड् बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः ।

अब बारह ऋचावाले इक्कीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में फिर उस राजा का किस अर्थ आश्रय करें इस विषय को कहते हैं—

इमा उ त्वा पुरुतमस्य कारोर्हव्यं वीर हव्या हवन्ते ।

धियो रथेष्ठामजरं नवीयो रयिर्विभूतिरीयते वचस्या ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (वीर) भय से रहित जो (पुरुतमस्य) अतिशय बहुत गुणों से विशिष्ट (कारोः) कारीगर के (हव्यम्) देने योग्य को (हवन्ते) ग्रहण करते हैं और जो (इमाः) ये वर्त्तमान प्रजायें (हव्याः) देने योग्य (धियः) बुद्धियों को और जो (रथेष्ठाम्) रथ में स्थित होने वाले (नवीयः) अतिशय नवीन (अजरम्) वृद्धावस्था से रहित शरीर को (रयिः) धन और (वचस्या) वचन में हुआ (विभूतिः) ऐश्वर्य (ईयते) प्राप्त होता है उनसे युक्त (त्वा) आपका (उ) तर्क वितर्क से हम लोग सत्कार करें ॥ १ ॥

भावार्थ—जो पुरुष प्रशंसा करने योग्य बुद्धि का स्वीकार करके उससे वृद्धावस्था और रोग से रहित अत्यन्त लक्ष्मी और ऐश्वर्य को प्राप्त होता है उस शिल्पीजनप्रिय राजा का सत्कार करना चाहिये ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

तमु स्तुष इन्द्रं यो विदानो गिर्वाहसं गीर्भिर्यज्ञवृद्धम् ।

यस्य दिवमति मह्ना पृथिव्याः पुरुमायस्य रिरिचे महित्वम् ॥२॥

पदार्थ—हे राजन् (यः) जो (विदानः) जानता हुआ (गीर्भिः) वाणियों से (गिर्वाहसम्) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी के प्राप्त कराने वाले (यज्ञवृद्धम्) यज्ञ में आदर करने योग्य विद्वान् और (दिवम्) कामना करते हुए (इन्द्रम्) परमैश्वर्यप्रद जन को प्राप्त होकर (पृथिव्याः) पृथिवी और (यस्य) जिस (पुरुमायस्य) बहुत कपट से युक्त दुष्ट जन की (मह्ना) महिमा से (महित्वम्) महिमा को (अति, रिरिचे) बढ़ाता है और जिसकी आप (उ) तर्क वितर्क से (स्तुषे) प्रशंसा करते हो (तम्) उस जन का हम लोग स्वीकार करें ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अत्यन्त ऐश्वर्य के बढ़ानेवाले सूर्य के सदृश प्रकाशमान राजा को सत्य का उपदेश करें वे महिमा को प्राप्त होकर दुःख से अतिरिक्त होते हैं ॥ २ ॥

स इत्तमोऽवयुनं ततन्वत्सूर्येण वयुनवच्चकार ।

कदा ते मर्ता अमृतस्य धामेयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर जो आप (सूर्येण) सूर्य से (तमः) रात्रि जैसे वैसे ज्ञानप्रकाश से (अवयुनम्) अज्ञानान्धकार को नष्ट (चकार) करते हैं और (वयुनवत्) बुद्धि के सदृश और बुद्धि का (ततन्वत्) विस्तार करते हुए हैं (सः, इत्) वही सेवा करने योग्य हैं । हे (स्वधावः) बहुत अन्न से युक्त (मर्ताः) मनुष्य (अमृतस्य) मरणरहित जगदीश्वर के (ते) आप के सम्बन्ध में (धाम) धारण करते जिसमें उसको मिलाने की इच्छा करते हुए (कदा) कब (न) नहीं (मिनन्ति) नष्ट करते हैं अर्थात् दोष के कारण को दूर करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य अहिंसा धर्म का स्वीकार कर और विज्ञान बढ़ाय के परमेश्वर की प्राप्ति की चिकीर्षा करते हैं वे विस्तीर्ण सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को विद्वानों के प्रति क्या-क्या पूछना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

यस्ता चकार स कुह स्विदिन्द्रः कमा जनं चरति कासु विक्षु ।

कस्ते यज्ञो मनसे शं वराय को अर्क इन्द्र कतमः स होता ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दुःखविदारक विद्वन् (यः) जो (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्य का करनेवाला (कुह स्वित्) कहीं (ता) उन को (चकार) करता है और (कासु) किन (विक्षु) प्रजाओं में (सः) वह (कम्) सुख को और (जनम्) मनुष्य को (आ, चरति) आचरण करता अर्थात् प्राप्त होता है और (ते) आपके (वराय) श्रेष्ठ (मनसे) विचारशील चित्त के लिये (कः) कौन (यज्ञः) मेल करनारूप यज्ञ (शम्) सुख को करता है और (कः) कौन (अर्कः) आदर करने योग्य और (कतमः) कौनसा (सः) वह (होता) दाता होता है इन के उत्तरों को कहिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! उन बुद्धि की वृद्धियों को कौन कर सके, उपकार के लिये बुद्धियों में कौन चलाता है, कौन आदर करने योग्य और कौन दाता होता है इन प्रश्नों के समाधानों को कहिये ॥ ४ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

इदा हि ते वेविषतः पुराजाः प्रत्नास आसुः पुरुकृत्सखायः ।

ये मध्यमास उत नूतनास उतावमस्य पुरुहूत बोधि ॥५॥११॥

पदार्थ—हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसा किये गये (पुरुकृत्) बहुतों को करनेवाले प्रतापयुक्त राजन् (ये) जो (हि) निश्चित (पुराजाः) पूर्व प्रकट हुए (प्रत्नासः) प्राचीन (मध्यमासः) मध्य अवस्था में हुए और (उत) भी (नूतनासः) नवीन (ते) आपके (सखायः) मित्र (आसुः) हैं उनको (इदा) इस समय तथा (वेविषतः) व्याप्त हुए और (उत) भी (अवमस्य) आधुनिक के सम्बन्धियों को आप (बोधि) चेतन करिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो आप लोगों के साथ मैत्री का आचरण करते हैं वे वृद्ध, वृद्धतर तथा मध्यम और भी तुल्य अवस्थावाले होवें उन में मित्रता की निश्चय रक्षा करिये ऐसा होने पर निश्चित राज्य की वृद्धि होती है, यह ही पूर्वमन्त्र में कहे हुए प्रश्नों का उत्तर है ॥ ५ ॥

तं पृच्छन्तोऽवरासः पराणि प्रत्ना त इन्द्र श्रुत्यानु येमुः ।

अर्चामसि वीर ब्रह्मवाहो यादेव विद्म तात्त्वा महान्तम् ॥६॥

पदार्थ—हे (वीर) शूरता आदि गुणों से युक्त (इन्द्र) विद्वन् जो (अवरासः) आधुनिक जिज्ञासु अर्थात् ब्रह्म को जानने की इच्छा करनेवाले जन (तम्) उन

(**महान्तम्**) महाशय (**त्वा**) आपको (**पृच्छन्त**) पूछते हुए हैं (**ते**) वे (**पराणि**) उत्तरकाल मे वर्त्तमान और (**प्रत्ना**) पूर्वकाल मे स्थित (**अ त्था**) वेद मे प्रतिपादित विषयो को (**अनु, येमु**) अनुकूल नियम मे लाते हैं उनका हम लोग (**अर्चामसि**) सत्कार करते हैं और हे (**मघवाह**) धन और धान्य को प्राप्त करानेवाले विद्वान् हम लोग (**यान्**) जितनो को (**विद्म**) जानें (**तान्**) उतनो (**एव**) ही को आप लोग जानिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोगो को मित्रतापूर्वक मेल कर तथा पूर्व और पर विज्ञानो को प्राप्त होकर अत्यन्त सुख को प्राप्त होना चाहिये ॥ ६ ॥

अभि त्वा पाजो रक्षसो वि तस्थे महि जज्ञानमभि तत्सु तिष्ठ ।

तव प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण धृष्णो अप ता नुदस्व ॥७॥

पदार्थ—हे (**धृष्णो**) दृढ राजन् (**तव**) आपका जो (**महि**) बडा (**जज्ञानम्**) सुखजनक (**पाजः**) बल (**रक्षसः**) दुष्ट मनुष्यो के (**अभि, वि, तस्थे**) सन्मुख विशेषकर स्थित होता है (**तत्**) वह (**त्वा**) आपको प्राप्त होवे और आप उसके (**अभि, सु, तिष्ठ**) सन्मुख स्थित हूजिये उस (**प्रत्नेन**) प्राचीन (**युज्येन**) युक्त करने के योग्य (**सख्या**) मित्र और (**वज्रेण**) शस्त्र और अस्त्रो के समूह से आप (**ता**) उन शत्रु सेनाओ को (**अप, नुदस्व**) दूर करिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे राजजन ! जो राजपुरुष दुष्टो के लिये दण्ड देते और श्रेष्ठो का पालन करते है उनका आप सत्कार करिये ॥ ७ ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

स तु श्रुधीन्द्र नूतनस्य ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः ।

त्वं ह्याऽपिः प्रदिवि पितृणां शश्वद्बभूथ सुहव एष्टौ ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (**वीर**) दुष्टो के नाश करने और (**कारुधाय**) शिल्पी विद्वानो के धारण करनेवाले (**इन्द्र**) न्याय के स्वामी विद्वन् (**त्वम्**) आप (**नूतनस्य**) नवीन की (**एष्टौ**) सब प्रकार से यज्ञक्रिया मे (**सुहव**) उत्तम प्रकार ज्ञान और विज्ञानवाले (**शश्वत्**) निरन्तर (**बभूथ**) हूजिये (**स**) वह आप (**तु**) तो (**हि**) निश्चय से (**पितृणाम्**) पितरो अर्थात् पालको की (**प्रदिवि**) प्रकृष्ट कामना मे (**आपि**) व्याप्त होनेवाले हुए (**ब्रह्मण्यत**) धन प्राप्ति की इच्छा करते हुओ का सत्कार करिये और उनके वचनो का (**श्रुधि**) सुनिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—वही उत्तम विद्वान् है जो ज्ञानवृद्ध जनो से विद्यासम्बन्धी वचनो को सुन के उत्तम शिल्पिजनो की रक्षा करके सदा अपेक्षित पदार्थ की प्राप्ति मे सुखी होता है ॥ ८ ॥

ऊतये वरुणं मित्रमिन्द्रं मरुतः कृष्वावसे नो अद्य ।

प्र पूषणं विष्णुमग्निं पुरन्धिं सवितारमोषधीः पर्वतांश्च ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वन् आप (**अद्य**) इस समय (**नः**) हम लोगो को (**ऊतये**) रक्षा आदि के लिये (**वरुणम्**) उदान और (**मित्रम्**) प्राण वायु (**इन्द्रम्**) बिजुली को (**मरुतः**) पवनो को (**प्र, कृष्व**) अच्छे प्रकार करिये और (**अवसे**) ज्ञान आदि के लिये (**पूषणम्**) पुष्टि करनेवाले समान वायु (**विष्णुम**) व्यापक व्यान और धनञ्जय वायु को वा हिरण्यगर्भ परमात्मा को और (**अग्निम्**) प्रसिद्ध अग्नि (**पुरन्धिम्**) सब को धारण करनेवाले सूत्रात्मा (**सवितारम्**) सूर्यमण्डल (**ओषधीः**) सोमलता आदि ओषधियों और (**पर्वतान् च**) मेघो वा पर्वतो को (**प्र**) अच्छे प्रकार करिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे विद्वान्जनो ! हम लोगो के लिए जैसे पृथिवी आदि पदार्थ सुखकारक होवें वैसे करिये ॥ ९ ॥

फिर मनुष्यो को किसकी उपासना करनी चाहिए इस विषय को कहते है—

इम उ त्वा पुरुशाक प्रयज्यो जरितारो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।

श्रुधी हवमा हुवतो हुवानो न त्वावाँ अन्यो अमृत त्वदस्ति ॥१०॥

पदार्थ—हे (**प्रयज्यो**) यत्न से मेल करने को योग्य (**पुरुशाक**) बहुत सामर्थ्य से युक्त परमेश्वर जो (**इमे**) ये (**जरितारः**) विद्या के लाभ की स्तुति करनेवाले जन (**अर्कैः**) सत्कारो से (**त्वा**) आपका (**अभि, अर्चन्ति**) सब ओर से सत्कार करते हैं । हे (**अमृत**) नाशरहित जिन (**त्वत्**) आप से (**त्वावान्**) आपके सदृश (**अन्य**) अन्य दूसरा (**न**) नही (**अस्ति**) है वह (**हुवान**) प्रशंसा करते हुए आप उन (**हुवतः**) स्तुति करते हुओ को और (**हवम्**) उच्चारित शब्द को (**आ**) सब प्रकार (**श्रुधि**) सुनिये (**उ**) और उन का स्वीकार करिये ॥ १० ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन परमात्मा की स्तुति और प्रार्थना करके उपासना करते है वैसे आप लोग भी उपासना करो और उसके सदृश वा उससे अधिक कोई भी नही है ऐसा जानो ॥ १० ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों मे कहते है—

नु म आ वाचमुप याहि विद्वान् विश्वेभिः सूनो सहसो यजत्रैः ।

ये अग्निजिह्वा ऋतसाप आसुर्ये मनुं चक्रुरुपरं दसाय ॥११॥

पदार्थ—हे (**सहसः**) बलवान् के (**सूनो**) सन्तान (**विद्वान्**) विद्यायुक्त जन आप (**मे**) मेरी (**वाचम्**) वाणी को (**उप, आ, याहि**) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये और (**ये**) जो (**अग्निजिह्वा**) अग्नि के समान तीव्र प्रज्वलित जिह्वा जिन की (**ऋतसापः**) सत्य से युक्त होनेवाले (**आसुः**) होते हैं उन (**विश्वेभि.**) सम्पूर्ण (**यजत्रै**) मिलने योग्यो के साथ (**नु**) शीघ्र मेरे उपदेश को प्राप्त हूजिये और (**ये**) जो (**उपरम्**) मेघ को जैसे वैसे (**दसाय**) शत्रुओ के नाश होने के लिये (**मनुम**) विचारशील मनुष्य को (**चक्रु.**) करते हैं उनका सदा सत्कार करिये ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य सदा ही सत्यवादी विद्वानो को उत्तम प्रकार मिलें और प्रतिज्ञा से सत्य का आचरण करें ॥ ११ ॥

स नो बोधि पुरएता सुगेषूत दुर्गेषु पथिकृद्विदानः ।

ये अश्रमास उरवो वहिष्ठास्तेभिर्न इन्द्राभि वक्षि वाजम् ॥१२॥१२॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सुख और ऐश्वर्य के प्राप्त करानेवाले (**स**) वह आप (**पुरएता**) अग्रगामी (**सुगेषु**) सुगम व्यवहारो मे (**उत**) और (**दुर्गेषु**) दुःख से प्राप्त होने योग्यो मे (**पथिकृत्**) मार्ग को करनेवाले (**विदानः**) जानते हुए (**नः**) हम लोगो को (**बोधि**) जानें और (**ये**) जो (**अश्रमासः**) थकावट से रहित (**उरव**) बहुत (**वहिष्ठा**) अतिशय पहुँचानेवाले हैं (**तेभिः**) उनके साथ (**नः**) हम लोगो को वा हम लोगो के लिये (**वाजम्**) विज्ञान को (**अभि, वक्षि**) प्राप्त कराइये ॥ १२ ॥

भावार्थ—वही विद्वान् जो सबका मङ्गलकारी, स्वय धर्ममार्ग को प्राप्त होकर औरो को धर्ममार्ग मे चलनेवाले करे, जो सदा सत्सग करता है वही सब से उत्तम होकर विज्ञान देने को योग्य होता है ॥ १२ ॥

इस सूक्त मे इन्द्र, विद्वान्, ईश्वर और राजा के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह इक्कीसवा सूक्त और बारहवा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथैकादशर्चस्य द्वाविंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि । इन्द्रो देवता । १, ७ भुरिक्पङ्क्ति । ३ स्वराट् पङ्क्ति । १० पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चम स्वर । २, ४, ५ त्रिष्टुप् । ६, ८ विराट्त्रिष्टुप् । ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप्छन्द. । धैवत. स्वर. ॥

अब ग्यारह ऋचावाले बाईसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को किसकी उपासना करनी चाहिए इस विषय को कहते है—

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः ।

यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**य**) जो (**चर्षणीनाम्**) मनुष्यो के मध्य मे (**एक**) अकेला (**इत्**) ही (**हव्य**) स्तुति करने और ग्रहण करने योग्य है (**तम्**) उस (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्य का देनेवाले को (**आभि**) इन (**गीर्भि**) वाणियो से मै (**अभि, अर्चे**) सब प्रकार से सत्कार करता हूँ और (**य**) जो (**वृषभ**) श्रेष्ठ (**वृष्ण्यावान्**) बल आदि बहुत प्रियगुणो से युक्त (**सत्य**) तीनो कालो मे अबाध्य (**सत्वा**) सर्वत्र स्थित (**पुरुमाय.**) बहुतो का रचनेवाला (**सहस्वान्**) अत्यन्त बल से युक्त हुआ (**पत्यते**) स्वामी के सदृश आचरण करता है उसका सत्कार करता हूँ उस परमेश्वर का आप लोग सत्कार करिये ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अद्वितीय, सब से उत्तम, सच्चिदानन्दस्वरूप न्यायकारी और सबका स्वामी है उसका त्याग करके अन्य की उपासना कभी न करो ॥१॥

तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः ।

नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जिस (**नक्षद्दाभम्**) प्राप्त दोषो के नाश करने और (**ततुरिम्**) दुःख से पार करनेवाले (**पर्वतेष्ठाम्**) मेघ मे वर्त्तमान बिजुली के समान शुद्धस्वरूप और (**अद्रोघवाचम्**) द्रोहरहित वाणीवाले (**शविष्ठम्**) अत्यन्त बल से युक्त परमात्मा को (**नः**) हम लोगो के (**पूर्वे**) पहिले (**नवग्वाः**) नवीन गमन वाले (**विप्रासः**) बुद्धिमान् और (**सप्त**) सात सख्या से युक्त अर्थात् पाच प्राण और मन बुद्धि इनके सदृश वर्त्तमान (**पितर**) पितृजन (**अभि**) सम्मुख (**वाजयन्तः**) बुद्धि को देते हुए उपदेश देते हैं (**तम्**) उसकी (**उ**) आप लोग उपासना करो और (**मतिभिः**) मननशील मनुष्यो से यही सेवा करने योग्य है ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जिसकी योगीजन योग से उपासना करते हैं उसी का योगाभ्यास से ध्यान करो ॥ २ ॥

तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।

यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान्तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥३॥

पदार्थ—हे (**हरिव.**) अच्छे मनुष्यो के सहित वर्त्तमान विद्वान् (**यः**) जो (**अस्कृधोयु·**) व्यापक (**अजर.**) जरा आदि रोग से रहित (**स्वर्वान्**) बहुत सुख विद्यमान जिसमे वह वर्त्तमान है (**तम्**) उसको (**मादयध्यै**) आनन्दित करने के लिये (**आ,भर**) सब प्रकार से धारण करिये और (**तम्**) उस को (**अस्य**) इस (**पुरुवीरस्य**) बहुत वीरो को प्राप्त करानेवाले (**नृवतः**) अच्छे मनुष्य विद्यमान

जिसमें उस (पुरुक्षोः) बहुत ध्यान से युक्त (रायः) धन के (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले की हम लोग (ईमहे) याचना करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य विज्ञान आदि की प्राप्ति के लिये परमात्मा से ही याचना करें ॥ ३ ॥

फिर विद्वान् क्या करे इस विषय को कहते हैं—

तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥४॥

पदार्थ—हे (दुध्र) दुःख से धारण करने योग्य और (पुरुहूत) बहुतों से सत्कार किये गये (पुरूवसो) बहुत धनों से युक्त (इन्द्र) विद्या और उपदेश के करनेवाले (यदि) जो आप (नः) हम लोगों के लिए (तत्) उसको (वि, वोचः) विशेष कहिए जिसको (चित्) निश्चित (ते) आपके (पुरा) पहले भी (जरितारः) विद्या और गुणों की स्तुति करनेवाले (सुम्नम्) सुख का (आनशुः) भोग करते हैं (ते) आपका (कः) कौन (असुरघ्नः) दुष्ट कर्मकारियों का नाश करनेवाला (भागः) अंश (खिद्वः) दीन और (किम्) कौन (वयः) जीवन है इसको आप कहिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! आपको वह विज्ञान हम लोगों के लिए देने योग्य है जिससे विद्वान् जन आनन्द करते हैं ॥ ४ ॥

फिर स्त्री कैसे पति का ग्रहण करे इस विषय को कहते हैं—

तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः ।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥५॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यस्य) जिसके (इषे) अन्न आदि के लिए (गीः) वाणी (तुविग्राभम्) बहुतों को ग्रहण करने (तुविकूर्मिम्) बहुत काम करने और (रभोदाम्) वेग से युक्त बल के देनेवाले (तुम्रम्) ग्लानि से युक्त जन को और (गातुम्) भूमि का (अच्छ) अच्छे प्रकार (नक्षते) प्राप्त होती है (तम्) उस (वज्रहस्तम्) शस्त्र और अस्त्रों से युक्त हाथोंवाले (रथेष्ठाम्) रथ में स्थित होते हुए (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् पुरुष को (पृच्छन्ती) पूछती हुई (वेपी) बुद्धिवाली और (वक्वरी) वचन शक्तिवाली स्त्री (नू) निश्चय होवे उसका हम लोग भी आश्रयण करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—कन्या को चाहिए कि सब बातों को पूछ कर हृदयप्रिय पति का स्वीकार करे ॥ ५ ॥

फिर स्त्री और पुरुष परस्पर कैसे बर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।
अच्युता चिद्वीळिता स्वोजो रुजो वि दृळ्हा धृषता विरप्शिन् ॥६॥

पदार्थ—हे (स्वतवः) अपना बल जिसके ऐसे (विरप्शिन्) महागुणों से युक्त (स्वोजः) उत्तम पराक्रमयुक्त प्रतापी आप (अया) इस (मायया) बुद्धि से जैसे वैसे स्त्री से रमण करिये वह स्त्री (वावृधानम्) बढ़े हुए (त्यम्) उस पति को प्राप्त होकर (मनोजुवा) मन के सदृश वेगयुक्त (पर्वतेन) मेघ से बिजुली जैसे वैसे रमण करे और ये दोनों (धृषता) ढीठपन से (रुजः) रोगों का नाश करके (ह) निश्चय से युक्त (अच्युता) अविनाशी से (वीळिता) स्तुतिरूप (वि) विशेष करके (दृळ्हा) दृढ़ (चित्) भी कर्म्मों को करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों प्रेम से मिल के गृहाश्रमों के कृत्य में हर्ष से, रोग निवृत्ति तथा प्रीति से मेल करके सन्तानों को उत्पन्न करो ॥ ६ ॥

फिर मनुष्यों को किसका नित्य ध्यान करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत्परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (अनिमानः) परिमाण से रहित (सुवह्मा) उत्तम प्रकार चलानेवाला (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त जगदीश्वर (नव्यस्या) अतिशय नवीन (धिया) बुद्धि वा कर्म से (वः) आप लोगों और (नः) हम लोगों के लिए (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुर्गहाणि) दुःख से प्राप्त होने योग्यों को नाश करनेवाले धर्मयुक्त कर्मों को (परितंसयध्यै) चारों ओर से सुशोभा करने के लिए (अति, वक्षत्) अत्यन्त प्राप्त करावे (तम्) उस (शविष्ठम्) अत्यन्त बलवान् (प्रत्नम्) पुरातन को (प्रत्नवत्) प्राचीन के सदृश मान कर हम लोग सेवा करें और (सः) वह भी हम लोगों का गुरु हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमात्मा हम सब लोगों के सम्पूर्ण दुःखों को बुद्धिदान से दूर करके धर्माचरण से सकोचित करता है उस परमात्मा का आत्मा से निरन्तर ध्यान करो ॥ ७ ॥

फिर विद्वान् जनों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।
तपा वृषन्विश्वतः शोचिषा तान्ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥८॥

पदार्थ—हे (वृषन्) बलिष्ठ विद्वान् आप (शोचिषा) प्रकाश से (विश्वतः) सब ओर से (दिव्यानि) श्रेष्ठ गुण कर्म और स्वभाववाले वस्तुओं (अन्तरिक्षा) अन्तरिक्ष के सहचारी (पार्थिवानि) पृथिवी में हुए पदार्थों को (आ, दीपयः) सब प्रकार से प्रकाशित कीजिए और (ब्रह्मद्विषे) ईश्वर वा वेद से द्वेष करनेवाले और (द्रुह्वणे) द्रोह करनेवाले (जनाय) जन के लिए सब प्रकार से (तपा) सन्ताप करिये और जो सज्जनों को सन्तापयुक्त करते हैं (तान्) उनको (शोचय) शोक कराइये तथा (क्षाम्) पृथिवी को (अपः, च) और जलों को प्रकाशित करिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् जनो ! आप लोग पृथिवी आदि पदार्थों को जानकर अन्यों को जनाइये और दुष्टजनों को उपदेश से पवित्र करिये ॥ ८ ॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसन्दृक् ।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥९॥

पदार्थ—हे (अजुर्य) जीर्ण अवस्था से रहित (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले (राजा) प्रकाशमान आप (भुवः) पृथिवी और (पार्थिवस्य) पृथिवी में हुए (जगतः) संसार और (दिव्यस्य) शुद्ध कामना करने योग्य सुन्दर (जनस्य) मनुष्यों के (त्वेषसन्दृक्) न्याय प्रकाश को देखने वा दिखानेवाले होते हुए (दक्षिणे) दाहिने (हस्ते) हाथ में (वज्रम्) शस्त्र और अस्त्र को (धिष्व) धारण करिये और (विश्वाः) सम्पूर्ण (मायाः) बुद्धि को (वि, दयसे) विशेष करके दीजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—वही राजा उत्तम है कि जो न्यायशील, धार्मिक, जितेन्द्रिय होकर सम्पूर्ण जगत् का पिता के समान पालन करके सम्पूर्ण विद्याओं को अच्छे प्रकार देता है ॥ ९ ॥

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्सुतुका नाहुषाणि ॥१०॥

पदार्थ—हे (वज्रिन्) शस्त्र और अस्त्र के धारण करनेवाले (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य करनेवाले आप (यया) जिससे (दासानि) शूद्र के कुलों को (आर्याणि) द्विज कुल और (सुतुका) उत्तम प्रकार बढ़नेवाले (नाहुषाणि) मनुष्य सम्बन्धी (वृत्रा) धनों को (आ) सब प्रकार (करः) करते हैं उस (अमृध्राम्) नहीं हिंसा करनेवाली (बृहतीम्) बड़ी सेना को (शत्रुतूर्याय) शत्रुओं के नाश के लिए करिये और उससे (नः) हम लोगों के लिए (संयतम्) किया है संयम जिस के निमित्त उस (स्वस्तिम्) सुख को करिये ॥ १० ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप सत्यविद्या के दान और उपदेश से शूद्र के कुल में उत्पन्न हुओं को भी द्विज करिये और सब प्रकार से ऐश्वर्य को प्राप्त कराय तथा शत्रुओं का निवारण करके सुख की वृद्धि कीजिए ॥ १० ॥

स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥११॥१४॥

पदार्थ—हे (प्रयज्यो) अत्यन्त यज्ञ करनेवाले (पुरुहूत) बहुतों से आदर किये गये (वेधः) बुद्धियुक्त (सः) वह आप (देव) विद्वान् के (न) समान (विश्ववाराभिः) सबसे स्वीकार करने योग्य गमनों में और (आभिः) इन (नियुद्भिः) निश्चित गमनवाले घोड़ों से जैसे वैसे (नः) हम लोगों को (आ, गहि) प्राप्त हूजिए और (याः) जिन रीतियों को (अदेवः) विद्वान् जन से भिन्न (न) नहीं (आ, वरते) अच्छे प्रकार स्वीकार करता है (मद्र्यद्रिक्) मेरे सन्मुख हुए आप (तूयम्) शीघ्र (आ, याहि) प्राप्त हूजिए ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो रीति विद्वानों की है उसको अविद्वान् जन नहीं स्वीकार करते हैं इससे विद्वानों और अविद्वानों का पृथक् स्थान है यह जानना चाहिये ॥ ११ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान्, ईश्वर, राजा और प्रजाके धर्मका वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह बाईसवां सूक्त और चौदहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ दशर्चस्य त्रयोविंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ३, ८, ९ निचृदनुष्टुप् । ५, ६, १० त्रिष्टुप् । ७ विराडनुष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २, ४ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब दश ऋचा वाले तेईसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्र विषय को कहते हैं—

सुत इत्त्वं निमिश्ल इन्द्र सोमे स्तोमे ब्रह्मणि शस्यमान उक्थे ।
यद्वा युक्ताभ्यां मघवन्हरिभ्यां बिभ्रद्वज्रं बाह्वोरिन्द्र यासि ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) शत्रुओं के नाशक जो (त्वम्) आप (स्तोमे) प्रशंसा के निमित्त (ब्रह्मणि) धन में (निमिश्लः) अत्यन्त मिले हुए (सोमे) ऐश्वर्यके (सुते) उत्पन्न होने पर (शस्यमाने) प्रशंसा करने योग्य और (उक्थे) सुनने

वा कहने योग्य मे (युक्ताभ्याम्) जुड़े हुए (हरिभ्याम्) हरणशील मनुष्यो से (बाह्वोः) भुजाओं में (वज्रम्) वज्र को (बिभ्रत्) धारण करते हुए (यासि) जाते हो और (यत्) जो (वा) वा हे (मघवन्) बहुत धनो से युक्त (इन्द्र) परमैश्वर्यप्रद आप प्राप्त होते हैं वह आप (इत्) ही सत्कार करने योग्य हैं ॥१॥

भावार्थ—जो राजा नही प्रमाद करते, पिता के सदृश प्रजाओं का पालन करते और शस्त्रो का धारण करते हुए तथा दुष्टोका निवारण करते हुए हैं उनका राज्य स्थिर होता है ॥ १ ॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते है—

यद्वा दिवि पार्ये सुष्विमिन्द्र वृत्रहत्येऽवसि शूरसातौ ।

यद्वा दक्षस्य बिभ्युषो अबिभ्यदरन्धयः शर्धत इन्द्र दस्यून् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दुष्ट जनो के नाश करनेवाले (यत्) जो आप (पार्ये) पार मे हुए (दिवि) कामना करने योग्य के निमित्त (वृत्रहत्ये) मेघ के हनन (वा) वा (शूरसातौ) शूर जनो से विभाग करने योग्य सग्राम मे (सुष्विम्) उत्तम प्रकार उत्पन्न करनेवाले की (अवसि) रक्षा करते हो और (यत्) जो (वा) वा आप (दक्षस्य) बली (बिभ्युषः) भय करनेवाले का (अबिभ्यत्) भय करते हैं वह आप हे (इन्द्र) प्रतापी जन (शर्धतः) बलयुक्त से (दस्यून्) हठ से दूसरे पदार्थ ग्रहण करनेवालो का (अरन्धयः) नाश करिये ॥ २ ॥

भावार्थ—वही राजा होने को योग्य होवे कि जो युद्ध मे अपनी सेना की रक्षा करे और शत्रु तथा चोरो का नाश करे ॥ २ ॥

पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं प्रणेनीरुग्रो जरितारमूती ।

कर्ता वीराय सुष्वय उ लोकं दाता वसु स्तुवते कीरये चित् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (ऊती) रक्षण आदि क्रिया मे (प्रणेनी) अत्यन्त न्याय करने और (पाता) रक्षा करनेवाला (उग्र) तेजस्वी (इन्द्रः) ऐश्वर्यकारी राजा (सुतम्) उत्पन्न किये गये (सोमम्) सोमलता आदि औषधियो के रस को और (जरितारम्) स्तुति करनेवाले को करता है वह हम लोगो का राजा हो और जो (उ) तर्क वितर्क से (वीराय) पराक्रमयुक्त (सुष्वये) उत्तम प्रकार अच्छे पदार्थों के उत्पन्न करनेवाले (स्तुवते) स्तुति करते हुए (कीरये) स्तुति करनेवाले के लिए (दाता) दाता और (कर्त्ता) कार्य करनेवाला (लोकम्) लोक को (वसु) और धन को (चित्) भी करता है वह हम लोगो का अग्रणी (अस्तु) हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! उसी को राजा मानो जो सम्पूर्ण शास्त्रो का जानने वाला, पुरुषार्थी, धार्मिक और इन्द्रियो को वश मे रखनेवाला होवे ॥ ३ ॥

गन्तेयान्ति सवना हरिभ्यां बभ्रिर्वज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः ।

कर्ता वीरं नर्यं सर्ववीरं श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः ॥४॥

पदार्थ—हे (स्तोमवाहाः) समूहो को धारण करनेवाले मनुष्यो जो (हरिभ्याम्) अध्यापक और उपदेशक मनुष्यो के साथ (इयान्ति) इतने (सवना) ऐश्वर्यकारक कर्म्मों को (गन्ता) प्राप्त होनेवाला (वज्रम्) अस्त्र विशेष को (बभ्रिः) पुष्ट करने वा धारण करने तथा (सोमम्) सोमलता के रस का (पपिः) पान करने और (गाः) गौओं को (ददिः) देनेवाला (गृणतः) स्तुति करते हुओं को और (हवम्) प्रशसा करने योग्य को (श्रोता) सुननेवाला (सर्ववीरम्) सपूर्ण वीर जिससे उस (नर्यम्) मनुष्यो मे श्रेष्ठ (वीरम्) वीर जन को (कर्त्ता) करनेवाला होवे उसको राजा मानो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सम्पूर्ण राजकर्मों मे निपुण हो उसको राजा करके न्याय से राज्य का पालन करो ॥ ४ ॥

फिर मनुष्यों को परस्पर कैसा वर्त्ताव करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

अस्मै वयं यद्वावान तद्विविष्म इन्द्राय यो नः प्रदिवो अपस्कः ।

सुते सोमे स्तुमसि शंसदुक्थेन्द्राय ब्रह्म वर्धनं यथासत् ॥५॥१५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो (प्रदिवः) अत्यन्तपन से कामना करते हुआ (नः) हम लोगो और (अपः) कर्म को (कः) करता है और (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त जन के लिए (उक्था) प्रशसा करने योग्य कर्मों का (शंसत्) कहे और (यथा) जैसे (ब्रह्म) धन (वर्धनम्) बढता है जिससे वह (असत्) होवे और (अस्मै) पूर्व मन्त्र मे कहे हुए (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिए (वयम्) हम लोग (यत्) जिसको (विविष्मः) व्याप्त होते है (तत्) उसका जो (वावान) उत्तम प्रकार सेवन करता है वैसे उसकी (सुते) उत्पन्न किये गये (सोमे) ऐश्वर्य मे हम लोग (स्तुमसि) स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो धन के सदृश सबके बढानेवाले हैं वे अत्यन्त ऐश्वर्य को प्राप्त होकर प्रयत्न करते हैं ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

ब्रह्माणि हि चकृषे वर्धनानि तावत्त इन्द्र मतिभिर्विविष्मः ।

सुते सोमे सुतपाः शन्तमानि रान्द्र्या क्रियास्म वक्षणानि यज्ञैः ॥६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) प्रतापयुक्त ! जितने (वर्धनानि) वृद्धि करनेवाले (ब्रह्माणि) धनो को आप (चकृषे) करते हो (तावत्) उतने (ते) आपके लिए (मतिभिः) उत्तम मनुष्यो के साथ हम लोग (विविष्मः) व्याप्त होवें तथा (सुतपाः) पदार्थों की रक्षा करनेवाला तथा (हि) निश्चय कर हम लोग (सुते) उत्पन्न हुए (सोमे) ऐश्वर्य मे (यज्ञैः) धनप्रापक व्यवहारो से निश्चय कर (शन्तमानि) अत्यन्त सुखकारक (रान्द्र्या) रमण करने योग्यो को (वक्षणानि) प्राप्त करानेवाले (क्रियास्म) करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि उत्तम आचरण को देख के वैसा ही आचरण करें और सब मिल के ऐश्वर्य को प्राप्त होकर न्याय से प्रजा की रक्षा करें ॥ ६ ॥

स नो बोधि पुरोळाशं रराणः पिबा तु सोमं गोऋजीकमिन्द्र ।

एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदोरुं कृधि त्वायत उ लोकम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के धारण करनेवाले (सः) वह आप (पुरोळाशम्) उत्तम प्रकार सस्कारयुक्त अन्न का (रराणः) देते हुए (गोऋजीकम्) इन्द्रिय सरल जिससे उस (सोमम्) बडी ओषधियो के रस को (पिबा) पीजिए और (नः) हम लोगो को (बोधि) जानिये और (यजमानस्य) यजमान के (इदम्) इस (बर्हि) उत्तम आसन पर (आ, सीद) सब प्रकार से विराजिये तथा (उरुम्) बहुत (लोकम्) देखने योग्य को (उ) और (त्वायतः) आपकी कामना करते हुओं को (तु) तो (कृधि) करिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो लोग रोग के हरनेवाले भोजनो और जलपानादि को देते हैं और परोपकार करते है वे यहाँ प्रशसा करने योग्य हैं ॥ ७ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

स मन्दस्वा ह्यनु जोषमुग्र प्र त्वा यज्ञास इमे अश्नुवन्तु ।

प्रेमे हवासः पुरुहूतमस्मे आ त्वेयं धीरवस इन्द्र यम्याः ॥८॥

पदार्थ—हे (उग्र) तेजस्विन् (इन्द्र) विद्या और क्रिया मे कुशल जिस बुद्धि से (इमे) ये (यज्ञासः) सम्पूर्ण धर्मयुक्त व्यवहार (त्वा) आपको (अश्नुवन्तु) प्राप्त हों और जो (इमे) ये (हवासः) दान, आदान और अदन नामक अर्थात देना लेना खाना (पुरुहूतम्) बहुतो से प्रशंसित (त्वा) आपको (प्र) प्राप्त हो सो (इयम्) यह (धीः) बुद्धि (अस्मे) हम लोगो की वा हम लोगों मे (अवसे) रक्षा के लिए हो आप उसको (आ, यम्याः) अच्छे प्रकार विस्तारिये तथा हम लोगो मे (प्र) अच्छे प्रकार दीजिए उनके साथ (हि) जिससे (जोषम्) प्रीति को (अनु) अनुकूल (सः) वह आप (मन्दस्वा) आनन्द करिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिन कर्मों और जिस बुद्धि मे विज्ञान और आनन्द बढते हैं उनकी आप लोग वृद्धि करिये ॥ ८ ॥

फिर मनुष्यों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

तं वः सखायः सं यथा सुतेषु सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।

कुवित्तस्मा असति नो भराय न सुष्विमिन्द्रोऽवसे मृधाति ॥९॥

पदार्थ—हे (सखायः) मित्र जनो (यथा) जैसे (सोमेभिः) ऐश्वर्य की प्रेरणा आदि क्रियाओ से (सुतेषु) उत्पन्न हुओ मे (वः) आप लोग और (नः) हम लोगो के (भराय) पालन के लिए (अवसे) रक्षण आदि के लिए जो (इन्द्रः) राजा (न) नहीं (मृधाति) हिंसा करे (तम्) उस (भोजम्) पालन करनेवाले (सुष्विम्) उत्पन्न करने वा ऐश्वर्य करनेवाले (इन्द्रम्) शत्रु के विनाश करनेवाले राजा को आप लोग (सम्, पृणता) उत्तम प्रकार सुखी करिये (तस्मै) उसके लिए (ईम्) जल से (कुवित्) बडा (असति) होवे ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य राग और द्वेष का त्याग करके परस्पर रक्षण करते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

एवेदिन्द्रः सुते अस्तावि सोमे भरद्वाजेषु क्षयदिन्मघोनः ।

असद्यथा जरित्र उत सूरिरिन्द्रो रायो विश्ववारस्य दाता ॥१०॥१६॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यथा) जैसे (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्यवाला जन (सुते) उत्पन्न हुए इस ससार मे (सोमे) ऐश्वर्य में (इत्) निश्चय (भरद्वाजेषु) विज्ञान को धारण किये हुओं मे (अस्तावि) स्तुत किया जाता है और जैसे (सूरिः) विद्वान् और (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त जन (जरित्रे) स्तुति करनेवाले जन के लिए (विश्ववारस्य) सम्पूर्ण स्वीकार जिसमें उस (रायः) धन का (दाता) देनेवाला (उत) निश्चय से (क्षयत्) निवास करे और (इत) निश्चय कर (मघोनः) धन से युक्त जनों की रक्षा करता हुआ हो वह (एव) ही उस प्रकार का सुखी (असत्) होवे ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो मनुष्य इस संसार मे धर्मयुक्त कर्म करते हैं वे सर्वदा स्तुति किये जाते हैं, जैसा देना प्रियकारक होता है वैसा लेना नही प्रियकारक होता है ॥ १० ॥

इस सूक्त मे इन्द्र, विद्वान राजा और प्रजा के गुणवर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह ऋग्वेदभाष्य मे छठे मण्डल मे दूसरा अनुवाक तेईसवां सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ दशर्चस्य चतुर्विंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, २ भुरिक् पङ्क्तिः । ३, ५, ६ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ४, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप् । १० विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ९ ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब दश ऋचा वाले चौबीसवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है उसके प्रथम मन्त्र में अब राजा को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

वृषा मद इन्द्रे श्लोक उक्था सचा सोमेषु सुतपा ऋजीषी ।
अर्चत्र्यो मघवा नृभ्य उक्थैर्द्युक्षो राजा गिरामक्षितोतिः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् पदार्थ में (श्लोकः) वाणी (वृषा) बलिष्ठ (मदः) आनन्दित (सचा) मेल किये हुए (सुतपाः) अच्छा तपस्वी (ऋजीषी) सरल गुण कर्म स्वभाव वाला (मघवा) न्याय से इकट्ठे किये हुए धन से युक्त (अक्षितोतिः) नित्य रक्षित (द्युक्षः) दीप्तिमान् (राजा) प्रकाश करता हुआ (उक्थैः) प्रशसनीय कर्मों से (सोमेषु) ऐश्वर्यों में (उक्था) प्रशंसित कर्मों को (गिराम्) न्याय और विद्यायुक्त वाणियों के सम्बन्ध में (नृभ्यः) मनुष्यों के लिये जो (अर्चत्र्यः) सत्कार करती हुई प्रजा हैं उनका सुनने वाला हो वही राज्य करने योग्य हो यह जानो ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! उत्तम कामों को करके सत्यवादी, इन्द्रियों को जीतने वाला, पिता के समान प्रजापालक वर्त्तमान हो वही सर्वत्र प्रकाशित कीर्तिवाला हो ॥ १ ॥

फिर राजा और प्रजाजनों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

ततुरिर्वीरो नर्यो विचेताः श्रोता हवं गृणत उर्व्यूतिः ।
वसुः शंसो नरां कारुधाया वाजी स्तुतो विदथे दाति वाजम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (ततुरिः) शत्रुओं का मारनेवाला (वीरः) वीरता आदि गुणों से युक्त (नर्यः) मनुष्यों में श्रेष्ठ (विचेताः) अनेक प्रकार की बुद्धिवाला और (हवम्) प्रशसा करने योग्य व्यवहार की (गृणतः) प्रशसा करते हुओं के (श्रोता) विवादविषयक वचनों का सुनने वाला (उर्व्यूतिः) पृथिवी की रक्षा जिससे (नराम्) मनुष्यों का अग्रणी (वसुः) वास कराने और (शंसः) प्रशसा करनेवाला (कारुधायाः) कारीगर धारण किये जाते जिससे वह (वाजी) विज्ञानवाला (स्तुतः) प्रशंसित हुआ (विदथे) सग्राम में (वाजम्) विज्ञान को (दाति) देता है उसकी आप लोग सेवा करो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो मनुष्यों में उत्तम, अधिक बल और बुद्धियुक्त, यथार्थ का सुननेवाला तथा संग्राम में बुद्धिविद्या का देनेवाला है उस ही का सदा सत्कार करो ॥ २ ॥

फिर सूर्य और पृथिवी का कैसा वर्त्ताव है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अक्षो न चक्र्योः शूर बृहन्प्र ते मह्ना रिरिचे रोदस्योः ।
वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वया व्यूतयो रुरुहुरिन्द्र पूर्वीः ॥३॥

पदार्थ—हे (शूर) वीर पुरुष (पुरुहूत) बहुतों से आदर किये गये (इन्द्र) राजन् जैसे (ते) आपके (मह्ना) महत्त्व से (रोदस्योः) अन्तरिक्ष और पृथिवी के मध्य में (पूर्वीः) प्राचीन (वि, ऊतयः) विविध रक्षण आदि क्रियायें (चक्र्योः) पहियों की (अक्षः) धुरी के (न) समान (प्र, रुरुहुः) अच्छे प्रकार प्रकट होवें और हे (बृहन्) महान् (वृक्षस्य) वृक्ष की बढ़वार (नु) जैसेवैसे (ते) आपकी (वयाः) अवस्था (रिरिचे) प्रकट होती है उसको सब लोग जानें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे पहियों की धारण करनेवाली धुरी वृक्ष की शाखाओं के समान बढ़ती है और अन्तरिक्ष में स्थित होती है वैसे सूर्य के चारों ओर सम्पूर्ण भूगोल घूमते हैं और वैसे ही न्याय के मार्ग से प्रजायें चलती हैं ॥ ३ ॥

फिर राजा और प्रजा को कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

शचीवतस्ते पुरुशाक शाका गवामिव स्रुतयः संचरणीः ।
वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र दामन्वन्तो अदामानः सुदामन् ॥४॥

पदार्थ—हे (पुरुशाक) बहुत सामर्थ्यवान् (इन्द्र) दुःख के नाश करने वाले (शचीवतः) बुद्धि और प्रजा से युक्त (ते) आपकी (गवामिव, स्रुतयः) गौओं की गतियों के सदृश (सञ्चरणीः) अच्छे प्रकार चलनेवाली सुमियां (शाकाः) और सामर्थ्यवाली (वत्सानाम्) बछड़ों की (तन्तयः) विस्तृत पंक्तियों के (न) सदृश (ते) आपकी प्रजा हैं, हे (सुदामन्) अच्छे नियमों में बंधे हुए जो (दामन्वन्तः) बहुत बन्धनों वाले होवें वे आप से (अदामानः) बन्धनरहित करने योग्य हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । वे ही राजाजन प्रशंसित प्रतापवाले होते हैं जो अन्याय और पीड़ा आदि के बन्धन से प्रजाओं को छुड़ाकर धर्ममार्ग में चलाते हैं और जैसे बछड़ों को बढ़ानेवाली गौ होती है वैसे ही प्रजा के बढ़ानेवाले राजपुरुष हों ॥ ४ ॥

अन्यदद्य कर्वरमन्यदु श्वोऽसच्च सन्मुहुराचक्रिरिन्द्रः ।
मित्रो नो अत्र वरुणश्च पूषार्यो वशस्य पर्येतास्ति ॥५॥१७॥

पदार्थ—जो (इन्द्रः) राजा (अद्य) आज (अन्यत्) अन्य (उ) और (श्वः) आनेवाले दिन में (अन्यत्) अन्य (कर्वरम्) करने योग्य कर्म को (आचक्रिः) सब प्रकार से करनेवाला (सत्) हुआ (मुहुः) बारबार (असत्) होवे वह (च) और (अत्र) इस संसार में (नः) हम लोगों का (मित्रः) मित्र (वरुणः) श्रेष्ठ (पूषा) पुष्टि करनेवाला (अर्यः) स्वामी (च) और (वशस्य) वशवर्त्ती का (पर्येता) सब ओरसे प्राप्तजन (अस्ति) है वह पूर्ण सुखवाला होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो राजा प्रतिदिन बारबार सत्य कर्म का आचरण करता है वह सब के न्याय करने में पक्षपात का त्याग करके मित्र के सदृश होता है और सब इसके वश में होते हैं ॥ ५ ॥

वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः ।
तं त्वाभिः सुष्टुतिभिर्वाजयन्त आजिं न जग्मुर्गिर्वाहो अश्वाः ॥६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) राजन् जो (त्वत्) आप से रक्षित हुए (पर्वतस्य) पर्वत के (पृष्ठात्) पीठ से (आपः) जल (न) जैसे वैसे (उक्थेभिः) प्रशसा करने योग्य कर्मों के अनुष्ठानों से और (यज्ञैः) अच्छे कर्मों के अनुष्ठानों से जिन (त्वा) आपको (गिर्वाहः) वाणियों के प्राप्त करानेवाले (अश्वाः) बड़े विद्वान्जन (वि) विशेष करके (अनयन्त) पहुंचाते हैं (तम्) उन आपको (आभिः) इन प्रत्यक्ष (सुष्टुतिभिः) उत्तम स्तुतियों से (वाजयन्तः) प्रसन्न कराते हुए शूरवीर जन (आजिम्) सग्राम को (न) जैसे वैसे (जग्मुः) प्राप्त होवें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे राजन् ! जैसे पर्वतके ऊपर वर्त्तमान जल शीघ्र जाकर जलाशय को प्राप्त होता है वैसे जो आपकी प्रजाओं के हित के चाहने वाले जन आपको प्राप्त होते हैं उनके सहित ही आप सदा उन्नत हूजिये ॥ ६ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

न यं जरन्ति शरदो न मासा न द्याव इन्द्रमवकर्शयन्ति ।
वृद्धस्य चिद्वर्धतामस्य तनूः स्तोमेभिरुक्थैश्च शस्यमाना ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो जिस (अस्य) इस जीव (वृद्धस्य) वृद्ध विद्वान् का (तनूः) शरीर (स्तोमेभिः) स्तुति करने योग्य और इन (उक्थैः) कहने के योग्य पदार्थों से (च) भी (शस्यमाना) प्रशसा करने योग्य (चित्) भी (वर्धताम्) बढ़े और (यम्) जिस (इन्द्रम्) परमात्मा को (शरदः) शरत् आदि ऋतुयें (न) नहीं (जरन्ति) जीर्ण करती हैं और (मासाः) चैत्र आदि महीने (न) नहीं जीर्ण करते हैं तथा (द्यावः) सूर्य आदि (न) नहीं (अवकर्शयन्ति) दुर्बल कर सकते हैं उस विद्वान् और परमात्मा का आप लोग सेवन करिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—वही विद्वान् वृद्ध होकर वृद्धि को प्राप्त होता है जो सब को अच्छे बुद्धिमान्, सुशील तथा धर्माचरण करनेवाले करता है और जो निर्विकार और जन्म मरण बुढ़ापा आदि दोषों से रहित परमात्मा की उपासना करते हैं वे प्रशसा करने योग्य होते हैं ॥ ७ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

न वीळवे नमते न स्थिराय न शर्धते दस्युजूताय स्तवान् ।
अज्रा इन्द्रस्य गिरयश्चिदृष्वा गम्भीरे चिद्भवति गाधमस्मै ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वानो जो (दस्युजूताय) दुष्टों के संग के लिये (वीळवे) प्रशसा करने योग्य बल के लिये (न) नहीं (नमते) नम्र होता (स्थिराय) स्थिर गभीर पुरुष के लिये (न) नहीं नम्र होता तथा (शर्धते) बल के लिये (न) न (स्तवान्) स्तुति करे जिस (इन्द्रस्य) बिजुली के (ऋष्वाः) बड़े (अज्राः) फेंकनेवाले गुण (गिरयः) मेघों के (चित्) सदृश हैं (अस्मै) इसके लिये (गाधम्) ग्रहण किया परिमाण (गम्भीरे) गुरुपन में (चित्) भी (भवति) होता है उसकी प्रशसा करिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे बिजुलियां अथाह गुण वाली हैं वैसे ही परमात्मा के असंख्य गुण हैं और जो परमात्मा और यथार्थवक्ता जनों का त्याग करके दुष्टों का संग करते हैं वे सब काल में दुःखी होते हैं ॥ ८ ॥

फिर उस ही विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

गम्भीरेण न उरुणामत्रिन्प्रेषो यन्धि सुतपावन्वाजान् ।
स्था ऊ षु ऊर्ध्व ऊती अरिषण्यन्नक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाम् ॥९॥

पदार्थ—हे (अमत्रिन्) बहुत बल से युक्त और (सुतपावन्) उत्पन्न पदार्थों के पवित्र करनेवाले आप (गम्भीरेण) गम्भीर और (उरुणा) बहुत से (नः) हम लोगों को (इषः) अन्न आदिक (यन्धि) दीजिये (उ) और (ऊती) रक्षण आदि क्रियाओं से (ऊर्ध्वः) ऊपर वर्त्तमान (अरिषण्यन्) नहीं हिंसा करते हुए (अक्तोः) रात्रि से (व्युष्टौ) प्रभातकाल में और (परितक्म्यायाम्)

रात्रि मे (वाजान्) विज्ञान आदिकों को (सु, प्र) अति उत्तम प्रकार (स्था) स्थित हूजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो यम और नियमो से युक्त हुए कार्य की सिद्धि के लिये दिनरात्रि प्रयत्न करें वे उत्तम होते हैं ॥ ९ ॥

सचस्व नायमवसे अभीक इतो वा तमिन्द्र पाहि रिषः ।
अमा चैनमरण्ये पाहि रिषो मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१०॥१८॥

पदार्थ— हे (**इन्द्र**) राजन् वा विद्वान् आप (**अवसे**) रक्षण आदि के लिये (**अभीके**) समीप मे (**नायम्**) न्याय को (**सचस्व**) प्राप्त हूजिये (**इतः**) यहां से (**वा**) वा (**रिषः**) हिंसा करनेवाले से (**पाहि**) रक्षा कीजिये और (**एनम्**) इसकी (**अमा**) गृहमे और (**अरण्ये**) वन मे (**पाहि**) रक्षा कीजिये (**रिषः, च**) और दुष्ट आचरण से भी, जिससे (**सुवीराः**) सुन्दर वीर जिनके ऐसे हम लोग (**शतहिमाः**) सौ वर्ष पर्यन्त (**मदेम**) आनन्द करें ॥ १० ॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन है वे दूर वा समीप मे वर्त्तमान हुए न्यायाचरण और योगाभ्यास से बुद्धि को बढाये हुए वस्ती और जङ्गलो मे पुरुषार्थ से प्रजाजनो की रक्षा करें ॥ १० ॥

इस सूक्त मे राजा, विद्वान् और ईश्वर के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह चौबीसवां सूक्त और अठारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ नवर्चस्य पञ्चविंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ।
इन्द्रो देवता । १, ५ पङ्क्तिः । ३ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।
२,७,८,९ निचृत्त्रिष्टुप् । ४,६ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले पच्चीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र मे अब राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

या त ऊतिरवमा या परमा या मध्यमेन्द्र शुष्मिन्नस्ति ।
ताभिरू षु वृत्रहत्येऽवीर्न एभिश्च वाजैर्महान्न उग्र ॥१॥

पदार्थ—हे (**शुष्मिन्**) प्रशसित बल से युक्त (**उग्र**) तेजस्विन् (**इन्द्र**) न्यायाधीश राजन् (**ते**) आपकी (**या**) जो (**अवमा**) निकृष्ट खराब और (**या**) जो (**मध्यमा**) मध्यम और (**या**) जो (**परमा**) उत्तम (**ऊतिः**) रक्षा (**अस्ति**) है (**ताभिः**) उनसे (**वृत्रहत्ये**) मेघ के नाश के समान नाश जिसमे उस सग्राम मे (**नः**) हम लोगो की (**सु**) उत्तम प्रकार (**अवीः**) रक्षा कीजिये (**ऊ**) और (**एभिः**) इन (**वाजैः**) वेग आदि उत्तम गुणो से (**च**) भी (**महान्**) बडे हुए (**नः**) हम लोगो की रक्षा कीजिये ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जो आप प्रजाओ की सब प्रकार से रक्षा करें तो प्रजा भी आपकी सब प्रकार से रक्षा करेंगी ॥ १ ॥

फिर सेना का स्वामी क्या करे इस विषय को अगले मन्त्रों मे कहते हैं—

आभिः स्पृधो मिथतीररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र ।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्याय विशोऽव तारीर्दासीः ॥२॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सेना के स्वामी आप (**आभिः**) इन रक्षाओ वा सेनाओ से (**मिथतीः**) शत्रुओ की सेनाओ का नाश करते हुए (**स्पृधः**) सग्रामो को (**अरिषण्यन्**) नहीं हिंसा करते (**अमित्रस्य**) शत्रु की सेनाओ को (**मन्युम्**) क्रोध करके (**व्यथया**) पीडा दीजिये और (**आभिः**) इन रक्षा और सेनाओ से (**आर्याय**) उत्तम जन के लिये (**विश्वाः**) सम्पूर्ण (**अभियुजः**) अभियुक्त होने (**विषूचीः**) व्याप्त होनेवाली (**दासीः**) सेविकाओ को और (**विशः**) प्रजाओ को (**अव, तारीः**) दुःख से पार करिये ॥२॥

भावार्थ—वे ही सेना के स्वामी सत्कार करने योग्य है जो अपनी सेना को उत्तम प्रकार शिक्षा दे तथा उत्तम प्रकार रक्षा कर और सत्कार करके युद्ध विद्या मे चतुर करके डाकुओ और अन्यायकारी शत्रुओ का निवारण करके अच्छी प्रजाओं की निरन्तर रक्षा करें ॥ २ ॥

इन्द्र जामय उत येऽजामयोऽर्वाचीनासो वनुषो युयुज्रे ।
त्वमेषां विथुरा शवांसि जहि वृष्ण्यानि कृणुही पराचः ॥३॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सेना के स्वामी (**त्वम्**) आप (**ये**) जो (**अर्वाचीनासः**) इस काल मे हुए (**जामयः**) पतिव्रता स्त्रियो के सदृश और (**उत**) भी (**अजामयः**) मौतिया जैसे वैसे शत्रु जन (**वनुषः**) सविभाग करनेवालो को (**युयुज्रे**) युक्त होते अर्थात् मिलते हैं (**एषाम्**) इन शत्रुओ की (**विथुरा**) पीडा देनेवाली (**शवांसि**) सेनाओं को (**त्वम्**) आप (**जहि**) नष्ट कीजिये और अपनी सेनाओं को (**वृष्ण्यानि**) बलिष्ठ (**कृणुही**) करिये और शत्रुओ का (**पराचः**) पराङ्मुख कीजिये अर्थात् हटाइये ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वे ही मन्त्री उत्तम हैं जो धार्मिक प्रजाओ की पुत्र के सदृश रक्षा करते हैं और दुष्टो को दण्ड देते हैं और अपनी सेनाओं को बढाके शत्रुओ की सेना को पराजित करते हैं ॥३॥

फिर राजा और मन्त्रीजन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

शूरो वा शूरं वनते शरीरैस्तनूरुचा तरुषि यत्कृण्वैते ।
तोके वा गोषु तनये यदप्सु वि क्रन्दसी उर्वरासु ब्रवैते ॥४॥

पदार्थ—हे राजजनो जैसे (**शूरः**) शूरवीर पुरुष (**तनूरुचा**) शरीरो में हुई प्रीति से और (**शरीरैः**) शरीरो से (**तरुषि**) दुःख से पार करनेवाले सङ्ग्राम मे (**शूरम्**) शूरवीर जन का (**वनते**) आदर करता है (**वा**) वा दोनों (**यत्**) जिसको (**कृण्वैते**) करें और (**क्रन्दसी**) कोशते हुए (**यत्**) जो (**तोके**) शीघ्र उत्पन्न हुए (**तनये**) सुकुमार बालक के होने पर (**उर्वरासु**) पृथिवी आदि के कारणो मे (**गोषु**) वाणियो मे (**वा**) अथवा (**अप्सु**) जलो मे (**वि, ब्रवैते**) कहें वैसे आप लोग भी हूजिये ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे सङ्ग्राम मे शूरजन शूरवीरो का विभाग करके युद्ध करते हैं वैसे ही राजा और अमात्य श्रेष्ठ और अधर्मों का विभाग करके अधिकारों मे युक्त करके आज्ञा देवे और जैसे खेती की विद्या से खेतीहारो को जनावें वैसे ही अपने सन्तानो को उत्तम शिक्षा से विद्या ग्रहण के लिये ब्रह्मचर्य मे प्रवृत्त करावें ॥४॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

नहि त्वा शूरो न तुरो न धृष्णुर्न त्वा योधो मन्यमानो युयोध ।
इन्द्र नकिष्ट्वा प्रत्यस्त्येषां विश्वा जातान्यभ्यसि तानि ॥५॥१९॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सेना के स्वामिन् ! जैसे (**त्वा**) आपको (**मन्यमानः**) मानता हुआ (**शूरः**) शूरवीर जन (**त्वा**) आपसे (**नहि**) नहीं (**युयोध**) युद्ध करता और (**न**) न (**तुरः**) हिंसा वा शीघ्र करनेवाला (**न**) न (**धृष्णुः**) ढीठ (**न**) और न (**योधः**) प्रतियोधा (**त्वा**) आपसे (**अभि**) सब प्रकार से युद्ध करता है, किन्तु आपके (**प्रति**) प्रति कोई भी (**नकिः**) नहीं (**अस्ति**) है और (**एषाम्**) इनकी जो (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**जातानि**) प्रसिद्ध सेना हैं जिस कारण (**तानि**) उनको आप जीत कर जीतते हुए (**असि**) हैं इससे प्रशसा को प्राप्त होते हैं ॥५॥

भावार्थ—राजा और राजपुरुषो को चाहिये कि विशेष करके सेनाजनों से ऐसा पराक्रम और विज्ञान बढावें जिससे कोई भी युद्ध करने की इच्छा न करे ॥ ५ ॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स पत्यत उभयोर्नृम्णमयोर्यदी वेधसः समिथे हवन्ते ।
वृत्रे वा महो नृवति क्षये वा व्यचस्वन्ता यदि वितन्तसैते ॥६॥

पदार्थ—हे राजन् जो आप (**उभयोः**) दोनो अर्थात् प्रजा और सेना के मध्य मे (**पत्यते**) स्वामी के सदृश आचरण करते हो (**सः**) वह आप (**यदि**) यदि (**नृम्णम्**) मनुष्य रमते है जिसमे उस धन को (**अयोः**) मिलावें वा अलग करें और (**वृत्रे**) धन (**वा**) वा (**महः**) बडे (**नृवति**) प्रशसायुक्त नर विद्यमान जिसमे उस (**क्षये**) गृह मे (**व्यचस्वन्ता**) व्याप्त होनेवाले (**वितन्तसैते**) अत्यन्त युद्ध करें तो दोनो अर्थात् प्रजा और सेना के मध्य में एक विजय का प्राप्त होवे और (**यदि, वा**) अथवा जो (**वेधसः**) बुद्धिमान् के (**समिथे**) सङ्ग्राम मे (**हवन्ते**) स्पर्द्धा करते हैं वे अवश्य विजय को प्राप्त होते हैं ॥६॥

भावार्थ—जो राजा पक्षपात का त्याग करके शत्रु और मित्र का सत्य न्याय करता है और सब अधिकारो मे धार्मिक, बुद्धिमान् जनो को रखता है और सब प्रकार से सेना मे कुलीन, दृढ, राजभक्तो को नियुक्त करता है वही सर्वदा विजयी होता है ॥ ६ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

अध स्मा ते चर्षणयो यदेजानिन्द्र त्रातोत भवा वरूता ।
अस्माकासो ये नृतमासो अर्य इन्द्र सूरयो दधिरे पुरो नः ॥७॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले राजन् (**ये**) जो (**ते**) आपके (**अस्माकासः**) हमारे (**नृतमासः**) अतिशय मुखिया और (**सूरयः**) विद्वान् जन (**चर्षणयः**) सम्पूर्ण व्यवहारो मे चतुर मनुष्य (**नः**) हम लोगो के (**पुरः**) नगरो को (**दधिरे**) धारण करें और उनके (**अर्यः**) स्वामी होते हुए (**अध**) अनन्तर (**त्राता**) रक्षा करनेवाले (**भव**) हूजिये और हे (**इन्द्र**) दुष्टो के नाश करनेवाले (**यत्**) जिससे आप (**एजान्**) भयभीतो को कम्पानेवाले करिये और (**उत**) भी (**वरूता**) श्रेष्ठ (**स्म**) ही हूजिये ॥७॥

भावार्थ—हे राजन् ! विश्वासयुक्त, कुलीन, मुख्य राज्य मे हुए जनों को इस राज्य और सेना के मध्य मे रक्षा के निमित्त नियुक्त करिये और उनकी रक्षा निरन्तर करिये ॥७॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये ।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषह्ये ॥८॥

पदार्थ—हे (मघवन्) अत्यन्त श्रेष्ठ (इन्द्र) शत्रुओं के नाश करनेवाले राजन् आपको चाहिये कि (नृषाह्ये) मनुष्यों से सहने योग्य संग्राम में (देवेभिः) विद्वानों के साथ (महे) बृहत् को (अनु, दायि) देवें और (ते) आपके (इन्द्रियाय) धन के लिये (ते) आपके (क्रत्वा) सत्य से (विश्वम्) सम्पूर्ण जगत् को (अनु) पश्चात् देवें और (वृत्रहत्ये) मेघ के नाश करने के समान सङ्ग्राम में (क्षत्रम्) राज्य वा धन को (अनु) पश्चात् देवें और (सहः) बल को (अनु) पश्चात् देवें और (ते) आपके मनुष्यों से सहन योग्य सङ्ग्राम में सुख को (अनु) पश्चात् देवें ॥८॥

भावार्थ—हे क्षत्रियकुल में उत्पन्न हुए जन ! आप उत्तम कर्मों को करिये और उनके साथ अनुकूल हुए उनका धन आदि से निरन्तर सत्कार करिये और सदा ही सत्य के उपदेशक विद्वानों के सङ्ग से सम्पूर्ण राजविद्या को जानकर निरन्तर प्रचार करिये ॥८॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

एवा नः स्पृधः समजा समत्स्विन्द्र रारन्धि मिथतीरदेवीः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो भरद्वाजा उत त इन्द्र नूनम् ॥९॥२०॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सम्पूर्ण सुखों के देनेवाले आप (स्पृधः) ईर्ष्या करते हुए (नः) हम लोगों को (समत्सु) संग्रामों में (एव) ही (सम्, अज) विशेष करके जनाइये और (अदेवीः) श्रेष्ठ गुणों से नहीं विशिष्ट (मिथतीः) नाश करती हुई शत्रुओं की सेनाओं को संग्रामों में (रारन्धि) नष्ट करिये और हे (इन्द्र) शत्रुओं के बल को दूर करनेवाले (ते) आपकी (अवसा) रक्षा आदि से (वस्तोः) दिन के मध्य में (नूनम्) निश्चय से (गृणन्तः) स्तुति करते हुए (उत) भी (भरद्वाजाः) शुद्ध विज्ञान को धारण किये हुए हम लोग विजय को (विद्याम) जानें ॥९॥

भावार्थ—जो राजा अच्छे योद्धा वीरों को प्रथम ही उत्तम प्रकार शिक्षा देकर युद्धों में प्रेरणा करता है उस सब प्रकार से रक्षा करनेवाले राजा का सब शूरवीर जन आश्रय करते हैं ॥९॥

इस सूक्त में इन्द्र, शूरवीर, सेनापति और राजा के कृत्य का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पच्चीसवाँ सूक्त और बीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथाष्टर्चस्य षड्विंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ पङ्क्तिः । २, ४ भुरिक्पङ्क्तिः । ३ विराट्पङ्क्तिः । ५ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ६ विराट्त्रिष्टुप् । ७ त्रिष्टुप् । ८ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब आठ ऋचा वाले छब्बीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा और प्रजाजन परस्पर कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

श्रुधी न इन्द्र ह्वयामसि त्वा महो वाजस्य सातौ वावृषाणाः ।
सं यद्विशोऽयन्त शूरसाता उग्रं नोऽवः पार्ये अहन्दाः ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) राजन् (वावृषाणाः) बल को करते हुए (विशः) मनुष्य आदि प्रजा हम लोग (महः) बड़े (वाजस्य) वेग आदि गुणों से युक्त के (सातौ) शूरों का विभाग जिसमें उस सङ्ग्राम में (यत्) जिससे (त्वा) आपको (ह्वयामसि) जनावें तिससे आप (नः) हम लोगों के लिये वचनों को (श्रुधी) सुनिये और जो (शूरसातौ) शूरों का विभाग जिसमें उस सङ्ग्राम में (नः) हम लोगों को (सम्, अयन्त) प्राप्त होते हैं उस (पार्ये) पालन करने योग्य (अहन्) दिन में (उग्रम्) तेजस्वी को (अवः) रक्षण (दाः) दीजिये ॥१॥

भावार्थ—राजाओं को यह अति योग्य है कि प्रजा कहे उसको ध्यान से सुनें जिससे राजा और प्रजाजनों का विरोध न होवे और प्रतिदिन सुख बढ़े ॥१॥

त्वां वाजी हवते वाजिनेयो महो वाजस्य गध्यस्य सातौ ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं तरुत्रं त्वां चष्टे मुष्टिहा गोषु युध्यन् ॥२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दुष्टों के नाश करनेवाले जैसे (वाजिनेयः) ज्ञानवती का सन्तान और (वाजी) वेगयुक्त ज्ञानी जन (गध्यस्य) सबसे प्राप्त होने योग्य (वाजस्य) विज्ञान के (सातौ) उत्तम प्रकार विभाग में (त्वाम्) आपको (हवते) बुलावे वैसे (वृत्रेषु) धनों में (सत्पतिम्) श्रेष्ठों के पालन करनेवाले (त्वाम्) आपको मैं (महः) बड़ा (चष्टे) कहता हूँ और (गोषु) प्राप्त होने योग्य भूमियों में (युध्यन्) युद्ध करता हुआ (मुष्टिहा) मुष्टि से मारनेवाला मारता हुआ धनों में (त्वाम्) आपको मैं (तरुत्रम्) पार करनेवाला कहता हूँ ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजन् ! जहाँ जहाँ प्रजाजन आपको प्राप्त होने की इच्छा करते हैं वहाँ वहाँ आप उपस्थित हूजिये ॥२॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्वं कविं चोदयोऽर्कसातौ त्वं कुत्साय शुष्णं दाशुषे वर्क् ।
त्वं शिरो अमर्मणः पराहन्नतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥३॥

पदार्थ—हे तेजस्विराजन् (त्वम्) आप (अर्कसातौ) अन्न आदि के विभाग में (कविम्) विद्वान् को (चोदयः) प्रेरणा करिये और (त्वम्) आप (कुत्साय) वज्र के लिये और (दाशुषे) दान करनेवाले के लिये (शुष्णम्) बल को (वर्क्) काटते हो और (त्वम्) आप (अमर्मणः) नहीं विद्यमान मर्म जिसमें उसके (शिरः) शिर को (परा, अहन्) दूर करिये और (अतिथिग्वाय) अतिथियों को प्राप्त होनेवाले के लिये (शंस्यम्) प्रशंसा करनेयोग्य कर्म को (करिष्यन्) करते हुए वर्त्तमान हो इससे आप सत्कार करने योग्य हो ॥३॥

भावार्थ—राजा विद्या और विनय आदि श्रेष्ठ गुणों से युक्त जनों को राजकार्यों में युक्त करे और उन्नति को करता हुआ विद्या आदि का दाता होकर प्रशंसा को प्राप्त होवे ॥३॥

त्वं रथं प्र भरो योधमृष्वमावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
त्वं तुग्रं वेतसवे सचाहन्त्वं तुजिं गृणन्तमिन्द्र तूतोः ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सेना के स्वामिन् (त्वम्) आप (रथम्) सुन्दर वाहन को (प्र, भर) धारण करिये तथा (वृषभम्) बलिष्ठ (दशद्युम्) दश अङ्गुलियों से प्रकाश देनेवाले और (योधम्) युद्ध करनेवाले से (युध्यन्तम्) युद्ध करते हुए (ऋष्वम्) बड़े की (आवः) रक्षा करिये और (त्वम्) आप (वेतसवे) व्याप्त ऐश्वर्य वाले में (सचा) सम्बन्ध से (तुग्रम्) तेजस्वी को (अहन्) दूर करिये और (त्वम्) आप (गृणन्तम्) स्तुति करते हुए (तुजिम्) बलिष्ठ को (तूतोः) बढ़ाइये ॥४॥

भावार्थ—जो राजा रथ और युद्धकुशल वीरों को बढ़ाता है वह अत्यन्त सुख को प्राप्त होता है ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्वं तदुक्थमिन्द्र बर्हणा कः प्र यच्छता सहस्रा शूर दर्षि ।
अव गिरेर्दासं शम्बरं हन्प्रावो दिवोदासं चित्राभिरूती ॥५॥२१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सुख के देनेवाले राजन् जिससे (त्वम्) आप (चित्राभिः) अद्भुत (ऊती) रक्षाओं से (तत्) उस (उक्थम्) प्रशंसनीय वचन को (बर्हणा) बढ़ने से (कः) करें और हे (शूर) शत्रुओं के नाश करनेवाले (शता) सैकड़ों और (सहस्रा) हजारों का (प्र, दर्षि) नाश करते हो और (गिरेः) मेघ के (दासम्) सेवक और (शम्बरम्) कल्याण करनेवाले का (अव, हन्) नाश करते हो और सूर्य जैसे वैसे नाश करते हो वह आप (दिवोदासम्) प्रकाश के समान उत्पन्न दानशील अर्थात् दान देनेवाले की (प्र, आवः) रक्षा करो ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजन् ! आप सर्वदा प्रजा की वृद्धि, दुष्टों का नाश और विद्वानों की सेवा करो जिससे असंख्य सुख होवे ॥५॥

त्वं श्रद्धाभिर्मन्दसानः सोमैर्दभीतये चुमुरिमिन्द्र सिष्वप् ।
त्वं रजिं पिठीनसे दशस्यन्षष्टिं सहस्रा शच्या सचाहन् ॥६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) राजन् (त्वम्) आप (श्रद्धाभिः) सत्य की धारणाओं से और (सोमैः) ऐश्वर्यों से (मन्दसानः) आनन्द करते हुए (दभीतये) दुःख के नाश के लिये (चुमुरिम्) भोजन करनेवाले को (सिष्वप्) सुलाइये और (त्वम्) आप (शच्या) बुद्धि वा कर्म से (सचा) साथ (पिठीनसे) पिठी के सदृश नासिका जिसकी उसके लिये (रजिम्) पङ्क्ति (षष्टिम्) साठ (सहस्रा) हजार (दशस्यन्) देता हुआ जैसे सूर्य मेघ का (अहन्) नाश करता है वैसे शत्रुओं का हनन कीजिये ॥६॥

भावार्थ—हे राजन् ! सदा ही पूर्ण प्रीति और न्याय से प्रजापालन करो और हजारों धार्मिक विद्वानों को अधिकारों में स्थापित करके यश बढ़ाओ ॥६॥

अहं चन तत्सूरिभिरानश्यां तव ज्याय इन्द्र सुम्नमोजः ।
त्वया यत्स्तवन्ते सधवीर वीरास्त्रिवरूथेन नहुषा शविष्ठ ॥७॥

पदार्थ—हे (शविष्ठ) बलिष्ठ और (सधवीर) तुल्य स्थान में वर्त्तमान वीर जन (इन्द्र) सुख के देनेवाले (वीराः) वीर (नहुषा) मनुष्य विद्वान् (यत्) जिसकी (स्तवन्ते) प्रशंसा करते हैं (तत्) उसको (त्रिवरूथेन) तीन प्रकार के शीत उष्ण और वर्षा में सुखकारक गृह जिनके उन (त्वया) आपके और (सूरिभिः) विद्वानों के साथ (अहम्) मैं (आनश्याम्) प्राप्त होऊं और (चन) भी (तव) आपका जो (ज्यायः) प्रशंसा करने योग्य (सुम्नम्) सुख और (ओजः) पराक्रम है उसको प्राप्त होऊं ॥७॥

भावार्थ—जो विद्वानों के संग से पुरुषार्थी होकर प्रशंसा करने योग्य, धर्मयुक्त कर्म को करते हैं वे बली होकर उत्तम सुख को प्राप्त होते हैं ॥७॥

वयं ते अस्या इन्द्र द्युम्नहूतौ सखायः स्याम महिन प्रेष्ठाः ।
प्रातर्दनिः क्षत्रश्रीरस्तु श्रेष्ठो घने वृत्राणां सनये धनानाम् ॥८॥२२॥

पदार्थ—हे (**महिन**) बड़े श्रेष्ठ (**इन्द्र**) सब के सुख देनेवाले (**वयम्**) हमलोग (**ते**) आपकी (**अस्याम्**) इस (**द्युम्नहूतौ**) धन वा यश में आह्वान जिसमें उसमें (**प्रेष्ठाः**) अतिशय प्रिय (**सखायः**) मित्र (**स्याम**) होवें और आप (**प्रातर्दनिः**) प्रातःकाल में देता जिनका वह (**वृत्राणाम्**) धर्म के आवरण करनेवालों के (**घने**) नाश करने में (**धनानाम्**) धनों के (**सनये**) विभाग के लिये (**श्रेष्ठः**) अत्यन्त प्रशंसनीय (**क्षत्रश्री**) राज्यलक्ष्मीवान् (**अस्तु**) होवें ॥८॥

भावार्थ—जो राजा गुणग्राही, पुरुषार्थी, श्रेष्ठ जनों का पालन करने और दुष्ट जनों का निवारण करनेवाला तथा सबका मित्र होवे उसके साथ सज्जनों को चाहिये कि मित्रता करें ॥८॥

इस सूक्त में इन्द्र, परीक्षक, श्रेष्ठ, राजा और प्रजा के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह छब्बीसवां सूक्त और बाईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथाष्टर्चस्य सप्तविंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । १-७ इन्द्रः । ८ अभ्यावर्त्तिनश्चायमानस्य दानस्तुतिर्देवता । १, २ स्वराट् पङ्क्तिः । ३, ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५, ७, ८ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ६ ब्राह्मी उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब आठ ऋचावाले सत्ताईसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में प्रश्नों को कहते हैं—

किमस्य मदे किम्वस्य पीताविन्द्रः किमस्य सख्ये चकार ।
रणा वा ये निषदि किं ते अस्य पुरा विविद्रे किमु नूतनासः ॥१॥

पदार्थ—हे वैद्यराज (**इन्द्र**) दुःख के नाश करने वाले ने (**अस्य**) इसके (**मदे**) आनन्द में (**किम्**) क्या (**चकार**) किया (**अस्य**) इसके (**पीतौ**) पान करने में (**किम्**) क्या (**उ**) ही किया (**अस्य**) इसके (**सख्ये**) मित्रपने में क्या किया और (**ये**) जो (**वा**) वा (**निषदि**) बैठते हैं जिसमें उस गृह में (**रणाः**) रमते हुए (**अस्य**) इसके (**पुरा**) सम्मुख (**किम्**) क्या (**विविद्रे**) जानते हैं और (**किम्**) क्या (**उ**) और (**नूतनासः**) नवीन जन जानते हैं वे (**किम्**) क्या अनुष्ठान करते हैं ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में सोमलता आदि के रस के पानविषयक प्रश्न हैं उनके उत्तर अगले मन्त्र में जानने चाहिएँ ॥१॥

अब किस-किस द्रव्य का सेवन करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र कहते हैं—

सदस्य मदे सद्वस्य पीताविन्द्रः सदस्य सख्ये चकार ।
रणा वा ये निषदि सत्ते अस्य पुरा विविद्रे सदु नूतनासः ॥२॥

पदार्थ—हे जिज्ञासु जनो (**इन्द्र**) पूर्ण विद्यावाला वैद्य (**अस्य**) इस सोमलता आदि बड़ी ओषधिसमूह के (**मदे**) आनन्द में (**सत्**) प्रमाद से रहित सत्य ज्ञान (**चकार**) करे और (**अस्य**) इसके (**पीतौ**) पान करने में (**सत्**) प्रमाद से रहित सत्य ज्ञान को (**उ**) भी करे और (**अस्य**) इसके (**सख्ये**) मित्रपने में (**सत्**) प्रमादरहित सत्य ज्ञान को करे (**ये, वा**) अथवा जो (**निषदि**) बैठते हैं जिसमें उस गृह अर्थात् बैठक में (**रणाः**) रमते हुए (**अस्य**) इसके (**सत्**) प्रमादरहित सत्य ज्ञान को (**विविद्रे**) प्राप्त होते हैं (**ते**) वे (**पुरा**) पहिले (**नूतनासः**) नवीन जन (**सत्**) प्रमादरहित सत्य ज्ञान को (**उ**) ही प्राप्त होते हैं ॥२॥

भावार्थ—मनुष्य लोग मादक द्रव्य के सेवन का त्याग करके सर्वदा बुद्धि, बल, आयु और पराक्रम के बढ़ाने वालों का सेवन करें जिससे सदा ही सुख बढ़े ॥२॥

फिर मनुष्यों को किसका ध्यान करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

नहि नु ते महिमनः समस्य न मघवन्मघवत्त्वस्य विद्म ।
न राधसोराधसो नूतनस्येन्द्र नकिर्ददृश इन्द्रियं ते ॥३॥

पदार्थ—हे (**मघवन्**) न्याय से इकट्ठे किये हुए धन से युक्त (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले जिन (**ते**) आपकी (**महिमनः**) महिमा का और (**समस्य**) तुल्यता का कोई (**नु**) भी (**नहि**) नहीं (**ददृशे**) देखा जाता है तथा हम लोग (**मघवत्त्वस्य**) बहुत धन से युक्तपने के तुल्य कुछ भी (**न**) नहीं (**विद्म**) जानें और (**नूतनस्य**) नवीन (**राधसोराधसः**) धन धन के तुल्य (**नकिः**) नहीं देखा जाता है और (**ते**) आपका (**इन्द्रियम्**) इन्द्रिय (**न**) नहीं देखा जाता है उनकी उपासना को हम लोग करें ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिसकी महिमा के समान महिमा, ऐश्वर्यसामर्थ्य के समान सामर्थ्य और स्वरूप नहीं विद्यमान है उसी सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, जगदीश्वर का निरन्तर ध्यान करो ॥३॥

फिर राजा और प्रजा को कैसा वर्त्ताव करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

एतत्त्यत्त इन्द्रियमचेति येनावधीर्वरशिखस्य शेषः ।
वज्रस्य यत्ते निहतस्य शुष्मात्स्वनाच्चिदिन्द्र परमो ददार ॥४॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सूर्य के समान राजन् (**परमः**) श्रेष्ठ आप (**यत्**) जिसको (**ददार**) विदीर्ण करते हैं (**त्यत्**) उस (**एतत्**) इसको (**ते**) आपकी (**वज्रस्य**) बिजुली के समीप से (**निहतस्य**) गिराये गए का (**इन्द्रियम्**) मन (**अचेति**) जनाता है (**येन**) जिससे (**वरशिखस्य**) श्रेष्ठ शिखा वाले (**ते**) आपका (**शेषः**) शेष है और आप (**अवधीः**) नाश करें और बिजुली (**चित्**) जैसे (**शुष्मात्**) बल और शोषण से (**स्वनात्**) शब्द से भय देती है वैसे ही आप दुष्टों को भयभीत करिये ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो राजा बिजुली के समान पराक्रमी, विज्ञान को बढ़ानेवाला, न्याय के व्यवहार में सूर्य के सदृश प्रकाशित होता है वही राजाओं में शिरोमणि समझना चाहिये ॥४॥

फिर वह कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वधीदिन्द्रो वरशिखस्य शेषोऽभ्यावर्तिने चायमानाय शिक्षन् ।
वृचीवतो यद्धरियूपीयायां हन्पूर्वे अर्धे भियसापरो दर्त् ॥५॥२३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यत्**) जो (**शेषः**) अवशिष्ट (**इन्द्रः**) सूर्य (**वृचीवतः**) अविद्या का छेदन प्रशंसित जिसके उस (**वरशिखस्य**) श्रेष्ठ शिखा वाले के समान मेघ के (**अभ्यावर्त्तिने**) चारों ओर घूमनेवाले के लिए जैसे वैसे (**चायमानाय**) सत्कार करने वाले के लिये (**शिक्षन्**) विद्या देता हुआ (**भियसा**) भय से (**हरियूपीयायाम्**) विचारशील मनुष्यों की इच्छा करते हुओं की पानक्रिया में (**पूर्वे**) सम्मुख (**अर्धे**) अर्द्ध भाग में (**हन्**) नाश करता वा (**वधीत्**) नाश करे (**अपरः**) अन्य बिजुलीरूप अग्नि उसको (**दर्त्**) विदीर्ण करता है वैसे वर्त्तमान उपदेशक का हम लोग सत्कार करें ॥५॥

भावार्थ—जो मनुष्य पूर्व अवस्था में विद्वानों से विद्या ग्रहण करके बुरे व्यसनों का त्याग करते उत्तमस्वभावयुक्त होते हैं वे अधर्माचरण से डरते हैं ॥५॥

फिर राजा को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्रिंशच्छतं वर्मिण इन्द्र साकं यव्यावत्यां पुरुहूत श्रवस्या ।
वृचीवन्तः शरवे पत्यमानाः पात्रा भिन्दाना न्यर्थान्यायन् ॥६॥

पदार्थ—(**पुरुहूत**) बहुतों से स्तुति किये गये (**इन्द्र**) सेना के स्वामिन् (**त्रिंशच्छतम्**) तीस सैकड़े (**वर्मिणः**) कवच का धारण किये हुए (**वृचीवन्तः**) रोग से आच्छादित करते हुए (**शरवे**) हिंसन के लिये (**पात्रा**) शत्रुओं के रहनों को (**भिन्दानाः**) विदीर्ण करते और (**पत्यमानाः**) पति के सदृश आचरण करते हुए (**साकम्**) साथ (**यव्यावत्याम्**) यवों से बने पदार्थों के पाक जिसमें उस सेना में सब लोग (**श्रवस्या**) अन्त में होने वाले (**न्यर्थानि**) निश्चित अर्थ जिनमें उन प्रयोजनों को नहीं (**आयन्**) प्राप्त होते हैं उनका आप सत्कार करिये ॥६॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो वीरपुरुष राजविद्या में निपुण, कार्यों के आरम्भ में दृढ़ प्रयोजन, सिद्ध वस्त्रोंवाले होवें वे आपसे सेना में सत्कारपूर्वक रखने योग्य हैं ॥६॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यस्य गावावरुषा सूयवस्यू अन्तरू षु चरतो रेरिहाणा ।
स सृञ्जयाय तुर्वशं परादाद्वृचीवतो दैववाताय शिक्षन् ॥७॥

पदार्थ—हे राजन् (**यस्य**) जिसके (**अरुषा**) चारों ओर से रक्त (**सूयवस्यू**) अपने उत्तम यवों की इच्छा करती और (**रेरिहाणा**) आस्वादन करती हुई (**गावौ**) किरणों के सदृश सेना और राजनीति प्रजा के (**अन्तः**) मध्य में (**सु, चरतः**) उत्तम प्रकार चलती हैं (**सः**) वह (**दैववाताय**) श्रेष्ठ वायु के विज्ञान और (**सृञ्जयाय**) उत्पादन के लिए (**वृचीवतः**) छेदन वाले के (**तुर्वशम्**) मनुष्य का (**शिक्षन्**) शिक्षा देता (**उ**) और दुर्गुण को (**परा अदात्**) दूर करे और अखण्डित राज्य को प्राप्त होवे ॥७॥

भावार्थ—जो राजा नीति और सेना की वृद्धि करता है वह अखण्डित राज्य को प्राप्त होता है ॥७॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

द्वयाँ अग्ने रथिनो विंशतिं गा वधूमतो मघवा मह्यं सम्राट् ।
अभ्यावर्ती चायमानो ददाति दूणाशेयं दक्षिणा पार्थवानाम् ॥८॥२४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान जो (वधूमन्तः) अच्छी श्रेष्ठ वधुयें और (रथिनः) श्रेष्ठ रथों वाले होवें जिन (द्वयान्) प्रजा और सेना के जनों को (मघवा) प्रशंसित धन वाले (सम्राट्) उत्तम प्रकार से शोभित और (अभ्यावर्त्ती) जीतने को चारों ओर से वर्त्तमान (चायमानः) आदर किये गये आप (विंशतिम्) बीस (गाः) गौओं को जैसे वैसे (ददाति) देते वह आप (मह्यम्) मेरे लिए जो (पार्थवानाम्) राजाओं की (इयम्) यह (दूणाशा) दुर्लभ नाश जिसका ऐसी (दक्षिणा) आपसे दी गई है उससे उनको प्रसन्न करिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो राजा कुलीन, विद्या और व्यवहार में निपुण, धार्मिक राजा और प्रजाजनों को भयरहित करता है वह अतुल प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, ईश्वर, राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सत्ताईसवां सूक्त और चौबीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथाष्टर्चस्याष्टाविंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । १ । ३-८¹ गावः । २ । ८² गाव इन्द्रो वा देवता । १, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ स्वराट् त्रिष्टुप् । ५, ६ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३, ४ जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ८ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

अब मनुष्य किरणों के गुणों को जानें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ गावो॑ अग्मन्नु॒त भ॒द्रम॑क्र॒न्त्सीद॑न्तु गो॒ष्ठे र॒णय॑न्त्व॒स्मे ।
प्र॒जाव॑तीः पुरु॒रूपा॑ इ॒ह स्यु॒रिन्द्रा॑य पू॒र्वीरु॒षसो॒ दुहा॑नाः ॥१॥

पदार्थ—हे (मनुष्यो) जैसे (इह) यहां (अस्मे) हम लोगों के लिए (गावः) किरणें (आ, अग्मन्) प्राप्त होती हैं (उत) और (रणयन्तु) शब्द करावें तथा (भद्रम्) कल्याण को (अक्रन्) करती हैं वे (गोष्ठे) गौओं के बैठने के स्थान में (सीदन्तु) प्राप्त हों और जैसे (पुरुरूपाः) बहुत रूपवाली (पूर्वीः) प्राचीन (दुहानाः) मनोरथ को पूर्ण करती हुई (उषसः) प्रभात वेलाएं (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त के लिये (प्रजावतीः) बहुत प्रजाओं वाली (स्युः) होवें वैसे आप लोगों के लिए भी हों ॥ १ ॥

भावार्थ—जो वृक्षों के लगाने और सुगन्ध आदि से युक्त धूम से पवन के किरणों को शुद्ध करें तो ये सब को सुखयुक्त करते हैं ॥ १ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इन्द्रो॒ यज्व॑ने पृण॒ते च॑ शिक्ष॒त्युपेद्द॑दाति॒ न स्वं मु॑षायति ।
भूयो॑भूयो र॒यिमिद॑स्य व॒र्धय॒न्नभि॑न्ने खि॒ल्ये नि द॑धाति देव॒युम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (इन्द्रः) राजा (अस्य) इस संसार के मध्य में (रयिम्) विद्यारूप धन को (इत्) (वर्धयन्) बढ़ाता हुआ (अभिन्ने) इकट्ठे हुए व्यवहार में और (खिल्ये) टुकड़ों में हुए के बीच (च) भी (देवयुम्) विद्वानों की कामना करते हुए विद्वान् को (भूयोभूयः) वारंवार (नि, दधाति) निरन्तर धारण करता है और (स्वम्) अपने ज्ञान को (न) नहीं (मुषायति) चुराता है और (यज्वने) यज्ञ के करने वाले के लिए (उप, शिक्षति) विद्या देता है और (पृणते) सुखयुक्त करता है (च) और (ददाति) देता है वह (इत्) ही सबको बढ़ा सकता है ॥२॥

भावार्थ—वे ही विद्वान् यथार्थवक्ता हैं जो निष्कपटता से वार वार प्रतिदिन विद्याकोश को योग्य के लिये देते हैं ॥ २ ॥

अब कौन उत्तम दान है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

न ता न॑शन्ति॒ न द॑भाति॒ तस्क॑रो॒ नासा॑माम॒त्रो व्यथि॒रा द॑धर्षति ।
दे॒वाँश्च॒ याभि॒र्यज॑ते॒ ददा॑ति च॒ ज्योगित्ताभिः॑ सचते॒ गोप॑तिः स॒ह ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (याभिः) जिन विद्याओं से यजमान (देवान्) विद्वानों को (यजते) मिलता और (ददाति) देता (च) भी है तथा (ज्योक्) निरन्तर (इत्) ही (ताभिः) उन विद्याओं के (सह) साथ (गोपतिः) गौओं का स्वामी (सचते) मिलता है (न) न (आसाम्) इनका (आमित्रः) शत्रु और (व्यथिः) पीड़ा (च) भी (आ, दधर्षति) तिरस्कार करती है (ताः) वे विद्याएं (न) नहीं (नशन्ति) नष्ट होती हैं तथा (तस्करः) चोर उनका (न) नहीं (दभाति) नाश करता है उन विद्याओं को आप लोग ब्रह्मचर्यादि से ग्रहण करिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! सब के लिए अधिक सुख करने, नहीं नष्ट होने और निरन्तर बढ़ने वाले और चोर आदिकों से हरने के अयोग्य विद्यादान ही है यह जानो ॥ ३ ॥

वह विद्या किस को प्राप्त होती और किस को नहीं प्राप्त होती है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

न ता अर्वा॑ रे॒णुक॑काटो अश्नुते॒ न सं॑स्कृत॒त्रमुप॑ यन्ति॒ ता अ॒भि ।
उ॒रु॒गा॒यमभ॑यं॒ तस्य॒ ता अनु॒ गावो॒ मर्त॑स्य॒ वि च॑रन्ति॒ यज्व॑नः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (ताः) उन विद्याओं को (रेणुककाटः) रेणुकाओं के कूप के समान अन्धकार हृदय वाला (अर्वा) घोड़े के समान बुद्धिहीन विषयासक्त जन (न) नहीं (अश्नुते) प्राप्त होता है और मूढ़जन (संस्कृतत्रम्) संस्कारयुक्त की रक्षा करने वाले को प्राप्त होकर (ताः) उनके (न) नहीं (अभि) सन्मुख (उप, यन्ति) समीप प्राप्त होते हैं किन्तु वे (उरुगायम्) बहुतों से प्रशंसनीय (अभयम्) निर्भय जन के सन्मुख समीप प्राप्त होती हैं और (ताः) वे विद्यायें (गावः) किरणों के समान (तस्य) उस (यज्वनः) विद्वानों के सेवक और प्राप्त होते हुए (मर्त्तस्य) विचारशील मनुष्य के (अनु, वि चरन्ति) पश्चात् चलती हैं तथा विशेष करके प्राप्त होती हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अशुद्ध आहार और विहार करने वाले, लम्पट, चुगुल और कुसंगी हैं उनको विद्या कभी नहीं प्राप्त होती है । और जो पवित्र आहार और विहार करने वाले, जितेन्द्रिय, यथार्थवक्ता, सत्संगी, पुरुषार्थी हैं उन को विद्या प्राप्त होती है ऐसा जानिये ॥ ४ ॥

मनुष्यों को चाहिए कि अवश्य विद्या की प्राप्ति की इच्छा करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

गावो॒ भगो॒ गाव॒ इन्द्रो॑ मे अच्छा॒न् गावः॒ सोम॑स्य प्रथ॒मस्य॑ भ॒क्षः ।
इ॒मा या गावः॒ स ज॑नास॒ इन्द्र॑ इ॒च्छामीद्धृ॒दा मन॑सा चि॒दिन्द्र॑म् ॥५॥

पदार्थ—हे (जनासः) विद्वान् मनुष्य जैसे (प्रथमस्य) पहिले (सोमस्य) ऐश्वर्य की सेवने वाली (गावः) गौएं बछड़ों को दुग्ध देती हैं वैसे (गावः) किरणों के समान जन और (भगः) ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाला (गावः) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियों को और (इन्द्रः) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त (भक्षः) सेवा करने योग्य जन (मे) मेरे लिए (अच्छान्) देवें और (याः) जो (इमाः) ये (गावः) वाणियां जिसकी हैं (सः) वह (इन्द्रः) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त मुझको शिक्षा देवें और मैं (हृदा) आत्मा तथा (मनसा) विज्ञान से (चित्) भी (इन्द्रम्) ऐश्वर्ययुक्त जन की (इत्) ही (इच्छामि) इच्छा करता हूं ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य आत्मा और अन्तःकरण से विद्या की प्राप्ति की इच्छा करते हैं वे सब सुख का भोग करते हैं ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यों का क्या अवश्य कर्त्तव्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यू॒यं गा॑वो मेदयथा कृ॒शं चि॑दश्री॒रं चि॑त्कृणुथा सु॒प्रती॑कम् ।
भ॒द्रं गृ॒हं कृ॑णुथ भद्रवाचो बृ॒हद्वो॒ वय॑ उच्यते स॒भासु॑ ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वानो (यूयम्) आप लोग जो (गावः) वाणियां हैं उन को (मेदयथा) मधुर करिये (चित्) और (अश्रीरम्) अमङ्गलस्वरूप और अधर्माचरण करने वाले को (कृशम्) क्षीण (कृणुथा) करिये और (चित्) भी (सुप्रतीकम्) उत्तम प्रतीति कराने वाले द्वार आदि जिसमें उस (भद्रम्) कल्याण करने शुद्ध वायु जल और वृक्ष वाले (गृहम्) गृह को (कृणुथ) करिये और (सभासु) प्राप्त विद्वानों से प्रकाशमान सभाओं में (भद्रवाचः) जो कल्याण करने वाली सत्यभाषण से युक्त वाणियां उनको स्वीकार करिये और जो (वः) आप लोगों का (बृहत्) बड़ा (वयः) जीवन (उच्यते) कहा जाता है उसको करिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य कोमल, सत्य, धर्मयुक्त वाणी तथा सर्व ऋतुओं में सुख करने वाले घर को, सभा को और अधिक अवस्था को करते हैं वे संसार में कल्याण करनेवाले होते हैं ॥ ६ ॥

अब प्रजाओं का कैसे पालन करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

प्र॒जाव॑तीः सू॒यव॑सं रि॒शन्तीः॑ शु॒द्धा अ॒पः सु॑प्रपा॒णे पिब॑न्तीः ।
मा व॑ स्ते॒न ई॑शत॒ माघशं॑सः॒ परि॑ वो हे॒ती रु॒द्रस्य॑ वृज्याः ॥७॥

पदार्थ—हे राजन् जैसे गौओं का पालन करने वाला (सूयवसम्) सुन्दर घास आदि को (रिशन्तीः) भक्षण करती हुई (सुप्रपाणे) सुन्दर जलपान के स्थान में (शुद्धाः) निर्मल (अपः) जलों को (पिबन्तीः) पीती हुई (प्रजावतीः) श्रेष्ठ सन्तान वाली गौओं का पालन करता है वैसे आप प्रजाओं का पालन करिये और जैसे (वः) आप लोगों की प्रजाओं को (स्तेनः) चोर और (अघशंसः) पाप करने वाला डाकू (मा) नहीं (ईशत) मारने में समर्थ होवे वैसे (वः) आप लोगों के सम्बन्ध में (रुद्रस्य) रौद्र कर्म के करने वाले का (हेतिः) वज्र इनको (मा) मत (परि, वृज्याः) परिवर्जन करे ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो पिता के सदृश प्रजाओं का पालन करते और शुद्ध भोजन और विहार वाली करके पुरुषार्थ करते और चोर आदि दुष्टों का छेदन करते हैं वे राजा, अमात्य और भृत्य प्रशंसा करने योग्य होते हैं ॥ ७ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

उपे॒दमु॑प॒पर्च॑नमा॒सु गोषूप॑ पृच्यताम् ।
उप॑ ऋष॒भस्य॒ रेत॒स्युपे॑न्द्र॒ तव॑ वी॒र्ये॑ ॥८॥२५॥६॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य के करने वाले (**ऋषभस्य**) श्रेष्ठ (**तव**) आपके (**वीर्ये**) पराक्रम मे प्रजाओं के साथ (**उप, पृच्यताम्**) सम्बन्ध करिये तथा (**रेतसि**) पराक्रम मे आपका (**उप**) सम्बन्ध करना चाहिये और (**आसु**) इन (**गोषु**) पृथिवियो वा वाणियो मे (**उपपर्चनम्**) समीप सम्बन्ध (**उप**) सम्बन्ध करना चाहिये और (**इदम्**) इस राजनीति का (**उप**) सबध करना चाहिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो राजा आदि मनुष्य विद्वान् होकर सभा मे परस्पर की एक सम्मति करके विरोध के नाश करने मे एकता में प्रयत्न करते हैं वे अखण्डित सामर्थ्यवाले होते हैं ॥ ८ ॥

इस सूक्त मे गौ, इन्द्र, विद्या, प्रजा और राजा क धर्म का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

इस अध्याय मे इन्द्र, सोम, सूर्य, प्रातःकाल, राज्य, विश्वेदेव, योद्धा, मित्रत्व, जगदीश्वर, अग्नि, अन्तरिक्ष, पृथिवी, राजा, प्रजा, पवन, कारीगर, न्यायेश उपदेशक, वाणी और विद्या के गुण वर्णन करने से इस अध्याय के अर्थ की इससे पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह श्रीमान् परमहंस परिव्राजकाचार्य विरजानन्द सरस्वती स्वामी जी के शिष्य श्रीमान् दयानन्द सरस्वती स्वामी से रचित उत्तम प्रमाणों से युक्त, ऋग्वेद भाष्य के चतुर्थ अष्टक में छठा अध्याय, पच्चीसवाँ वर्ग और छठे मण्डल में अट्ठाईसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तमोऽध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथ षडृचस्यैकोनत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि । इन्द्रो देवता । १, ३, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर । २ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर । ६ ब्राह्मी उष्णिक् छन्द । ऋषभ स्वर ॥

अब छः ऋचावाले उनतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र मे मनुष्यों को कैसा बर्त्ताव करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

इन्द्रं वो नरः सख्याय सेपुर्महो यन्तः सुमतये चकानाः ।
महो हि दाता वज्रहस्तो अस्ति महामु रण्वमवसे यजध्वम् ॥१॥

पदार्थ—हे (**नर**) नायक जनो जो (**महः**) बड़े विज्ञान को (**यन्त**) प्राप्त होते और (**सुमतये**) उत्तम बुद्धि के लिये (**चकाना**) कामना करते हुए (**व**) आप लोगो के (**सख्याय**) मित्रपने के लिये (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्य के करने वाले को (**सेपु**) शपथ करते हैं तथा (**हि**) जिस कारण जो (**मह**) बड़े विज्ञान का (**दाता**) देनेवाला और (**वज्रहस्त**) शस्त्र और अस्त्रो से युक्त हाथो वाला (**अस्ति**) है उस (**रण्वम्**) रमणीय उपदेशक (**महाम्**) महान् महाशय सर्वाध्यक्ष को (**ऊ**) ही (**अवसे**) रक्षण आदि के लिये (**यजध्वम्**) मिलिये वा सत्कार करिये ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो जो आप लोगो के साथ मित्रत्व के लिये दृढ शपथ करके तन, मन और धनो से उपकार के लिए प्रयत्न करते हैं उनका आप लोग सर्वदा सत्कार करिये तथा इनके साथ मित्रपन से वर्त्ताव करिये ॥ १ ॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

आ यस्मिन्हस्ते नर्या मिमिक्षुरा रथे हिरण्यये रथेष्ठाः ।
आ रश्मयो गभस्त्योः स्थूरयोराध्वन्नश्वासो वृषणो युजानाः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ऐश्वर्य करने वाले के (**यस्मिन्**) जिस (**हस्ते**) हस्त में (**रश्मय**) किरणो के समान (**आ**) सब ओर से (**मिमिक्षु**) सिञ्चन करते सम्बन्ध करते हैं तथा (**नर्या**) मनुष्यो के लिए हितकारक शस्त्र और अस्त्र जिस के (**हिरण्यये**) तेज के विकार से बने हुए (**रथे**) रथ मे और (**रथेष्ठा**) रथ पर स्थित होने वाले जन और (**स्थूरयो**) स्थूल (**गभस्त्यो**) बाहुओ के मध्य में शस्त्र और अस्त्र हैं तथा जिसके वाहनो मे (**वृषण**) बलिष्ठ (**अश्वासः**) घोड़ो के समान बड़े बिजुली आदि पदार्थ (**आ**) सब ओर से (**युजाना**) युक्त (**अध्वन्**) मार्ग मे यानो का (**आ**) लाते हैं वे सुखो से जनो का (**आ**) अच्छे प्रकार सम्बन्ध करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा शस्त्र और अस्त्र के जानने वाले, श्रेष्ठ, धार्मिक, शूर तथा विमान आदि वाहनो के बनानेवाले शिल्पियो और बिजुली आदि की विद्याओ और विद्वानों का सत्कार करके रक्षा करता है उसी के सूर्य के किरणों के समान यश बढ़ते हैं ॥ २ ॥

फिर वह राजा कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षुर्धृष्णुर्वज्री शवसा दक्षिणावान् ।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वर्ण नृतविषिरो बभूथ ॥३॥

पदार्थ—हे (**नृतो**) नायक अग्रणी जन जिन (**ते**) आपके (**पादा**) पाद (**दुवः**) कार्य सेवन को (**श्रिये**) लक्ष्मी के लिये (**आ, मिमिक्षु**) चारों ओर सींचते हैं और (**शवसा**) बल से (**धृष्णु**) ढीठ (**वज्री**) शस्त्र और अस्त्रो को धारण करनेवाले (**दक्षिणावान्**) उत्तम दक्षिणावान (**दृशे**) देखने के लिये (**कम्**) सुख करने वाले सुन्दर (**सुरभिम्**) सुगन्ध को और (**अत्कम्**) व्याप्तिशील वस्त्र को (**वसान**) धारण करते हुए (**स्व**) सुख को (**न**) जैसे (**इषिर**) ज्ञानवान् वैसे जो आप (**बभूथ**) प्रसिद्ध हो उन आपकी हम लोग सेवा करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जिन आपके आश्रय से अत्यन्त लक्ष्मी, वास, ओढ़ना, वाहन, सुख और प्रतिष्ठा प्राप्त होती है वह आप हम लोगो से कैसे नहीं सेवन करने योग्य है ॥ ३ ॥

फिर वह कैसा होवे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स सोम आमिश्लतमः सुतो भूद्यस्मिन्पक्तिः पच्यते सन्ति धानाः ।
इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकारा उक्था शंसन्तो देववाततमाः ॥४॥

पदार्थ—हे (**नर**) विद्वानो मे अग्रगी जनो (**यस्मिन्**) जिस राजा के होने पर (**पक्ति**) पाक (**पच्यते**) पकाया जाता है (**धाना**) भूंजे हुए अन्न हैं (**आमिश्लतम**) चारो ओर से अत्यन्त मिला हुआ (**सुत**) उत्पन्न (**सोम**) ऐश्वर्य का योग वा ओषधि का रस (**भूत्**) होता है और जिस (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्य-कारक की (**स्तुवन्त**) प्रशंसा करते हुए (**ब्रह्मकारा**) धन वा अन्न को करने वाले (**देववाततमा**) अतिशय विद्वानो वा पदार्थों को प्राप्त होने वाले (**उक्था**) कहने योग्य वचनो का (**शंसन्त**) उपदेश देते हुए (**सन्ति**) हैं (**स**) वह आप हम लोगो के राजा हूजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो वह धार्मिक राजा न होवे तो सब व्यवहार लोप होवें कि जिसके होने पर धन धान्य और ऐश्वर्य को धारण करती हैं वे धर्मयुक्त प्रजाएँ होती हैं ॥ ४ ॥

अब ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

न ते अन्तः शवसो धाय्यस्य वि तु बाबधे रोदसी महित्वा ।
आ ता सूरिः पृणति तूतुजानो यूथेवाप्सु समीजमान ऊती ॥५॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर जिस (**अस्य**) इस (**ते**) आप ईश्वर के (**शवसः**) बल की (**अन्तः**) सीमा किसी से भी (**न**) नहीं (**धायि**) धारण की जाती है (**तु**) और जो (**महित्वा**) बड़प्पन से (**रोदसी**) अन्तरिक्ष और पृथिवी

को (वि, बाबधे) बाँधता है और जिस आपके (ता) उन कर्मों को (ऊती) रक्षण आदि क्रिया से (सम्रीक्षमाणः) उत्तम प्रकार मिलता हुआ (तूतुजानः) शीघ्र कार्य करने वाला (सूरिः) विद्वान् (अप्सु) प्राणो वा जलो मे (यूथेव) समूह के सदृश सब को (आ, पृणाति) सुखी करता है वह आप लोगो से स्तुति करने योग्य है ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अनन्त गुण कर्म और स्वभावयुक्त और सब का प्रबन्ध करने वाला, उपासना किया हुआ सुख का देनेवाला ईश्वर है वही सब से उपासना करने योग्य है ॥ ५ ॥

अब ईश्वरत्व में राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

एवेदिन्द्रः सुहव ऋष्वो अस्तूती अनूती हिरिशिप्रः सत्वा ।
एवा हि जातो असमात्योजाः पुरू च वृत्रा हनति नि दस्यून् ॥६॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (सुहवः) सुन्दर पुकारना जिसका ऐसा (ऋष्वः) बड़ा (हिरिशिप्रः) हरे रंग की ठुड्डी और नासिकायुक्त (सत्वा) परिश्रम से पुरुषार्थ करने और (इन्द्रः) ईश्वर की उपासना करनेवाला राजा (ऊती) रक्षा वा (अनूती) अरक्षा से सुख करने वाला (जातः, च) और प्रसिद्ध (अस्तु) हो वह (एव) ही (इत्) निश्चय से आनन्द देने वाला होवे और जो (हि) निश्चय से (असमात्योजाः) नहीं तुल्य पराक्रम जिसका वह (पुरू) बहुत (वृत्रा) धनों की वृद्धि करता है और (दस्यून्) दुष्ट चोरों का (नि, हनति) नित्य नाश करता है वह (एवा) ही चक्रवर्ती राजा होने के योग्य है ॥ ६ ॥

भावार्थ—वही बड़ा राजा है जो नीति के जानने वालों की रक्षा करके धर्मिष्ठ प्रजाओं का पालन करके चोर आदि पापियों को नहीं ग्रहण करता है वह सज्जनों से सेवन करने योग्य है ॥ ६ ॥

इस सूक्त मे इन्द्र, मित्रपन, देने वाले और युद्ध करने वाले तथा ईश्वर के गुणो का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह उनतीसवां सूक्त और पहिला वर्ग समाप्त हुआ ।

卐

अथ पञ्चर्चस्य त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, २, ३ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ५ ब्राह्मी उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र मे राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं—

भूय इद्वावृधे वीर्यायँ एको अजुर्यो दयते वसूनि ।
प्र रिरिचे दिव इन्द्रः पृथिव्या अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (इन्द्रः) सूर्य के समान वर्त्तमान जन (दिवः) प्रकाशमान पदार्थान्तर और (पृथिव्याः) भूमि से (अर्धम्) भूगोल का अर्द्ध भाग (उभे) दोनो (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी भूगोल के (प्रति) प्रति अर्द्धभाग प्रकाशित होता है और सब से (प्र, रिरिचे) समर्थ होता है तथा (अस्य) इसके (इत्) ही आकर्षण से सम्पूर्ण लोक वर्त्तमान हैं उस (इत्) ही प्रकार से जो राजा (वीर्याय) पराक्रम के लिये (भूयः) फिर (वावृधे) बढ़ता और (एकः) सहायरहित (अजुर्यः) युवा हुआ (वसूनि) धनो को (दयते) देता है वही श्रेष्ठ होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा सूर्य के समान श्रेष्ठ गुणो, श्रेष्ठ सहायो और उत्तम सामग्री से प्रकाशमान यशस्वी होता है और जैसे सूर्य सम्पूर्ण भूगोलो के सम्मुख स्थित भूगोल के अर्द्धभागो का प्रकाश करता है वैसे ही न्याय और अन्याय के बीच मे से न्याय का ही प्रकाश करे और सब के लिये दोनो को देवे ॥ १ ॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अधा मन्ये बृहदसुर्यमस्य यानि दाधार नकिरा मिनाति ।
दिवेदिवे सूर्यो दर्शतो भूद्वि सद्मान्युर्विया सुक्रतुर्धात् ॥२॥

पदार्थ—हे राजन् ! जैसे (दर्शतः) देखने वा पूछने योग्य (सुक्रतुः) शुभ कर्म करने वाला (सूर्यः) सूर्य (दिवेदिवे) प्रतिदिन जो (अस्य) इसके (बृहत्) बड़े (असुर्यम्) मेघ के सम्बन्धी का और (यानि) जिन वायुदलों का (दाधार) धारण करता है और इसको (नकिः) नहीं (आ, मिनाति) नष्ट करता है और (उर्विया) पृथिवी के साथ (सद्मानि) स्थानों को (धात्) धारण करता है वैसे आप (वि, भूत्) होते हैं (अधा) इसके अनन्तर ऐसे हुए आपको राजा मैं (मन्ये) मानता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य प्रतिदिन मेघ को धारण करके वर्षा के पृथिवी और पृथिवीस्थ पदार्थों का नाश नहीं करके धारण करता है वैसे ही राज्य को धारण करके सुख को वर्षा के प्रजा के साथ न्यायकर्मों को राजा धारण करें ॥ २ ॥

अद्या चिन्नू चित्तदपो नदीनां यदाभ्यो अरदो गातुमिन्द्र ।
नि पर्वता अद्मसदो न सेदुस्त्वया दृळ्हानि सुक्रतो रजांसि ॥३॥

पदार्थ—हे (सुक्रतो) श्रेष्ठ कर्मों को उत्तम प्रकार जानने वाले (इन्द्र) सूर्य के समान वर्त्तमान (चित्) जैसे सूर्य (गातुम्) भूमि का (अरदः) आकर्षण करता है तथा (नदीनाम्) नदियों के समीप से (अपः) जलों का आकर्षण करता है और (यत्) जो (आभ्यः) इन नदियो से खींचता (तत्) वह (चित्) भी वर्षता है वैसे (अद्या) आज आप (नू) शीघ्र करिये और जैसे सूर्य से (रजांसि) लोक विशेष (दृळ्हानि) धारण किये गए वैसे आज (अद्मसदः) उत्तम प्रकार खाने योग्यो मे स्थित होनेवाले (पर्वताः) मेघ (न) जैसे वैसे (त्वया) रक्षक वा स्वामी आप से प्रजा और राजजन (नि, सेदुः) स्थित होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जैसे सूर्य सम्पूर्ण पदार्थों से आठ महीने रस धारण करके मेघमण्डल मे स्थापित करके वर्षाओं मे वर्षा के प्रजाओ को सुखी करता है वैसे आप आठ मासो मे प्रजाओं से कर लेकर वर्षाकाल मे देवें ॥ ३ ॥

फिर ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सत्यमित्तन्न त्वावाँ अन्यो अस्तीन्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान् ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णोऽवासृजो अपो अच्छा समुद्रम् ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सूर्य के सदृश अपने मे प्रकाशमान जगदीश्वर जिससे आपसे बनाया गया सूर्य (परिशयानम्) चारो ओर से सोते हुए से (अहिम्) व्याप्त होने वाले मेघ का (अहन्) नाश करता है और (अर्णः) भ्रमर पड़ते जल वा अन्य (अपः) जलो और (समुद्रम्) सागर वा अन्तरिक्ष को (अच्छा) उत्तम प्रकार (अव, असृजः) उत्पन्न करता है इससे (अन्यः) और (त्वावान्) आपके सदृश कोई भी दूसरा (ज्यायान्) बड़ा नहीं है (न) न (देवः) विद्वान् वा प्रकाशमान और (न) न (मर्त्यः) साधारण मनुष्य (अस्ति) है (तत्) वह (सत्यम्) श्रेष्ठो मे श्रेष्ठ (इत्) ही है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर ने जगत् के पालन के लिये आकर्षण करने और वृष्टि तथा प्रकाश करने वाला सूर्य और मेघ बनाया इस कारण से जगदीश्वर के तुल्य कोई भी नहीं है फिर अधिक कहां से हो यह सत्य जानिये ॥ ४ ॥

त्वमपो वि दुरो विषूचीरिन्द्र दृळ्हमरुजः पर्वतस्य ।
राजाभवो जगतश्चर्षणीनां साकं सूर्यं जनयन्द्यामुषासम् ॥५॥२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले जगदीश्वर जैसे सूर्य (पर्वतस्य) मेघ के (दृळ्हम्) दृढ़ भाग को भग करता और (विषूचीः) व्याप्त (दुरः) द्वारो को प्रकाशित करता हुआ (अपः) जलो वा प्राणो को (वि) विशेष कर वर्षाता है तथा (जगतः) ससार के (चर्षणीनाम्) मनुष्यो का (राजा) राजा होता है वैसे (त्वम्) आप (सूर्यम्) सूर्य और (द्याम्) प्रकाश को और (उषासम्) दिन के मुख्य प्रभात को (जनयन्) उत्पन्न करते हुए सबके (साकम्) साथ व्याप्त हुए दुःख को (अरुजः) नष्ट कीजिये और ससार के मनुष्यो के राजा (अभवः) हूजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो सूर्य आदि का उत्पन्न करने वाला प्रकाशक और धारण करनेवाला तथा सम्पूर्ण पदार्थों मे व्याप्त जगदीश्वर है उसकी आत्मा के साथ निरन्तर उपासना करो ॥ ५ ॥

इस सूक्त मे इन्द्र, राजा, सूर्य और ईश्वर के गुणो का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

यह तीसवां सूक्त और दूसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्यैकत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य सुहोत्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । ५ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १ निचृत्त्रिष्टुप् । २ स्वराट् पङ्क्तिः । ३ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ४ निचृदतिशक्वरी छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले इकतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में ईश्वर कैसा है इस विषय को कहते हैं—

अभूरेको रयिपते रयीणामा हस्तयोरधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
वि तोके अप्सु तनये च सूरेऽवोचन्त चर्षणयो विवाचः ॥१॥

पदार्थ—हे (रयीणाम्) द्रव्यो के बीच (रयिपते) धन के स्वामिन् (इन्द्र) ऐश्वर्य के देनेवाले राजन् आप जो (विवाचः) अनेक प्रकार की विद्या और शिक्षा से युक्त वाणियोवाले (चर्षणयः) मनुष्य (अप्सु) प्राणो वा अन्तरिक्ष तथा (तोके) शीघ्र उत्पन्न हुए सन्तान (तनये, च) और ब्रह्मचारी कुमार और (सूरे) सूर्य में विद्याओं को (वि, अवोचन्त) विशेष कहते हैं उन (कृष्टीः) मनुष्य आदि प्रजाओं को (हस्तयोः) हाथों में आंवले के सदृश (आ, अधिथाः) अच्छे प्रकार धारण करिये और (एकः) सहायरहित हुए प्रजा के पालन करनेवाले (अभूः) हूजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। परमेश्वर का स्वभाव है कि जो सत्य का उपदेश देते हैं उनको सदा उत्साहित करता और रक्षा मे धारण करता और ऐश्वर्य्य को प्राप्त कराता है और जैसे विनय से युक्त एक भी राजा राज्यपालन करने को समर्थ होता है वैसे ही सर्व शक्तिमान् परमात्मा सम्पूर्ण सृष्टि की सदा रक्षा करता है ॥ १ ॥

फिर मनुष्य क्या जानें इस विषय को कहते हैं—

त्वद्भियेन्द्र पार्थिवानि विश्वाच्युता चिच्च्यावयन्ते रजांसि ।

द्यावाक्षामा पर्वतासो वनानि विश्वं दृळ्हं भयते अज्मन्ना ते ॥२॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) बिजुली के सदृश वर्त्तमान (**ते**) आपके (**भिया**) भय से (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**अच्युता**) नाश से रहित (**पार्थिवानि**) पृथिवी मे विदित जन्तु विशेष (**रजांसि**) लोको को (**चित्**) निश्चित (**च्यावयन्ति**) चलाते हैं तथा जैसे सूर्य्य से (**द्यावाक्षामा**) अन्तरिक्ष और पृथिवी तथा (**पर्वतास**) पर्वत और (**वनानि**) जगल (**विश्वम्**) सम्पूर्ण जगत् को चलाते है वैसे (**त्वत्**) आपसे (**दृळ्हम्**) दृढ विश्व (**अज्मन्**) मार्ग मे (**आ, भयते**) अच्छे प्रकार भय करता है ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे न्यायकारी वीर पुरुष से कायर जन डरते हैं वैसे ही बिजुली से सब प्राणी डरते हैं ॥ २ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

त्वं कुत्सेनाभि शुष्णमिन्द्राशुषं युध्य कुयवं गविष्टौ ।

दश प्रपित्वे अध सूर्य्यस्य मुषायश्चक्रमविवे रपांसि ॥ ३॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देनेवाले राजन् (**त्वम्**) आप (**शुष्णम्**) बल और (**अशुषम्**) शुष्करहित को (**कुत्सेन**) वज्र से (**गविष्टौ**) किरणो के समागम मे (**कुयवम्**) कुत्सित यव जिसमे उसको (**अभि, युध्य**) अभियोधन करो (**अध**) इसके अनन्तर (**प्रपित्वे**) प्राप्ति मे (**दश**) दश (**रपांसि**)हिसनो को (**मुषाय**) चुराओ और (**सूर्य्यस्य**) सूर्य्य के (**चक्रम्**) चक्र को (**अविवेः**) व्याप्त होओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप अधर्मी शत्रु के साथ ही युद्ध करिये धर्मात्मा के साथ न करिये ऐसा करने पर जिस प्रकार सूर्य्य के आगे और भूगोल चक्र के समान घूमते हैं वैसे ही प्रजाजन आपका देखकर पुरुषार्थ से चलेंगे ॥ ३ ॥

फिर राजा क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्वं शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्थाप्रतीनि दस्योः ।

अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो दिवोदासाय सुन्वते सुतक्रे भरद्वाजाय गृणते वसूनि ॥४॥

पदार्थ—हे (**शचीवः**) उत्तम बुद्धिवाले (**सुतक्रे**) उत्तम प्रकार प्रसन्न अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले राजन् (**त्वम्**) आप जैसे सूर्य्य (**शम्बरस्य**) मेघ के समान शत्रु के (**शतानि**) सैकड़ो (**पुरः**) नगरो का (**अव, जघन्थ**) नाश करते हो वैसे (**दस्योः**) दूसरे के द्रव्य चुरानेवाले दुष्टजन के (**अप्रतीनि**) नही जाने गये भी सैकड़ो नगरो का नाश करिये और (**शच्या**) उत्तमशिक्षायुक्त वाणी वा उत्तम कर्म्म से इनको (**अशिक्षः**) शिक्षा दीजिये और (**यत्र**) जहाँ (**दिवोदासाय**) विज्ञान के देने तथा (**सुन्वते**) सार के निकालनेवाले (**गृणते**) स्तुति करते हुए (**भरद्वाजाय**) विज्ञान के धारण करनेवाले के लिये (**वसूनि**) द्रव्यो को दीजिये वहा इससे विद्या का प्रचार कराइये ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है। जो राजा सूर्य्य के सदृश न्याय का प्रकाश करनेवाला और मेघ के सदृश विद्या आदि के प्रचार के लिये बहुत धन का देनेवाला होता है वही सर्वत्र विजय को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

स सत्यसत्वन्महते रणाय रथमा तिष्ठ तुविनृम्ण भीमम् ।

याहि प्रपथिन्नवसोप मद्रिक् प्र च श्रुत श्रावय चर्षणिभ्यः ॥५॥३॥

पदार्थ—हे (**सत्यसत्वन्**) शुद्ध अन्तःकरण आदि इन्द्रियों युक्त (**प्रपथिन्**) उत्तम मार्ग वाले और (**तुविनृम्ण**) बहुत धन से युक्त (**सः**) वह आप (**महते**) बड़े (**रणाय**) सग्राम के लिये (**रथम्**) सुन्दर वाहन पर (**आ, तिष्ठ**) स्थित हूजिये और (**अवसा**) रक्षण आदि से (**भीमम्**) भयकर सग्राम को (**उप, याहि**) प्राप्त हूजिये तथा (**मद्रिक्**) मेरे सम्मुख हुए विद्वानो से (**श्रुत**) सुनिये (**चर्षणिभ्यः, च**) और मनुष्यो के लिये (**प्र, श्रावय**) सुनाइये ॥ ५ ॥

भावार्थ - जो राजा सत्यवादियो से राजनीति के कृत्य को सुनकर अन्यो को सुना कर शुद्धचित्त वाला सब के रक्षणके लिय दुष्टो का पराजय करता है वही बहुत लक्ष्मीवाला होता है ॥ ५ ॥

इस सूक्त मे इन्द्र और राजा के कृत्य का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह इकतीसवां सूक्त और तृतीय वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य द्वात्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य सुहोत्र ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
१ भुरिक्पङ्क्तिः । २ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।
३, ५ त्रिष्टुप् । ४ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले बत्तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् जन क्या करें इस विषय को कहते हैं—

अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय ।

विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यासा स्थविराय तक्षम् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (**आसा**) मुख से (**अस्मै**) इस (**महे**) बड़े (**वीराय**) बल पराक्रम तथा विद्यायुक्त के लिये और (**तवसे**) बल के लिये (**तुराय**) शीघ्र कार्य्य करनेवाले तथा (**विरप्शिने**) प्रशसित (**वज्रिणे**) प्रशसित शस्त्र और अस्त्रो से युक्त (**स्थविराय**) वृद्धजन के लिये (**अपूर्व्या**) नही विद्यमान है पूर्व जिससे उस मे हुए (**पुरुतमानि**) अतिशय बहुत (**शन्तमानि**) अतीव कल्याण करने वाले (**वचांसि**) वचनो का (**तक्षम्**) उपदेश करूं वैसे आप लोग भी अन्यों को उपदेश दीजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वानो को चाहिये कि सदा ही सब के लिये सत्य उपदेश करें जिससे अतुल सुख होवे ॥ १ ॥

स मातरा सूर्येणा कवीनामवासयद्रुजदद्रिं गृणानः ।

स्वाधीभिर्ऋक्वभिर्वावशान उदुस्रियाणामसृजन्निदानम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (**सूर्य्येण**) सूर्य्य के सहित बिजुलीरूप अग्नि (**अद्रिम्**) मेघ को (**रुजत्**) स्थिर करता और (**कवीनाम्**) विद्वानो के (**मातरा**) माता पिता को (**अवासयत्**) वसाता है वैसे ही जो राजा (**स्वाधीभिः**) सुन्दर ध्यान जिनके उन नीतियो और (**ऋक्वभिः**) प्रशसा के योग्य व्यवहारो के साथ (**गृणान**) स्तुति करता और (**वावशानः**) कामना करता हुआ जैसे सूर्य्य (**उस्रियाणाम्**) किरणों के (**निदानम्**) निश्चय को वैसे निश्चय को (**उत्, असृजत्**) उत्पन्न करता है (**सः**) वह राजा सब से सत्कार करने योग्य है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है। हे राजन् ! जैसे सूर्य्य किरणो से सबको प्रकाशित करता है वैसे ही विनय आदिको से सम्पूर्ण राज्य को प्रकाशित करिये और जैसे श्रेष्ठ पुत्र माता पिता की सेवा करते हैं वैसे ही राजधर्म का सेवन करिये ॥ २ ॥

राजा कैसे जनों के साथ मित्रता करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स वह्निभिर्ऋक्वभिर्गोषु शश्वन्मितज्ञुभिः पुरुकृत्वा जिगाय ।

पुरः पुरोहा सखिभिः सखीयन्दृळ्हा रुरोज कविभिः कविः सन् ॥३॥

पदार्थ—हे सज्जनो ! जो (**मितज्ञुभिः**) सकुचित जांघवाले बैठे हुए विद्वानों और (**ऋक्वभिः**) प्रशसित (**वह्निभिः**) धारण करनेवाले (**कविभिः**) विद्वानों से (**कविः**) विद्वान् (**सन्**) हुआ और (**सखिभिः**) मित्रो से (**सखीयन्**) मित्र के सदृश आचरण करता हुआ (**पुरोहा**) नगरों का नाश करनेवाला (**दृळ्हाः**) कम्पन क्रिया से रहित (**पुरः**) शत्रुओ के नगरो का (**रुरोज**) भग करता है और (**गोषु**) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियो मे (**शश्वत्**) निरन्तर (**पुरुकृत्वा**) बहुत करके शत्रुओ को (**जिगाय**) जीतता है (**सः**) वही आप लोगो से मानने योग्य है ॥३॥

भावार्थ—जो मनुष्य प्रशसित, बलिष्ठ, थोड़े बोलने वाले, विद्वान् मित्रों के साथ मित्रता कर राज्य को प्राप्त होकर दुष्टो का नाश करके धार्मिको की रक्षा करते हैं वे कृतकृत्य होते हैं ॥ ३ ॥

स नीव्याभिर्जरितारमच्छा महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।

पुरुवीराभिर्वृषभ क्षितीनामा गिर्वणः सुविताय प्र याहि ॥४॥

पदार्थ—हे (**वृषभ**) बलयुक्त (**गिर्वणः**) उत्तम वाणियो से सेवा किये गये अत्यन्त ऐश्वर्य के करनेवाले राजन् (**स**) वह आप (**नीव्याभिः**) प्राप्त कराने योग्य पदार्थों मे होनेवाली तथा (**वाजेभिः**) वेग और विज्ञान आदि गुणवालो तथा (**महद्भिः**) महाशयो और (**शुष्मैः**) प्रशसित बलवालो से युक्त (**पुरुवीराभिः**) बहुत वीर जिनमे उन सेनाओ के साथ (**क्षितीनाम्**) मनुष्यों की (**सुविताय**) प्रेरणा के लिये (**प्र, आ, याहि**) अच्छे प्रकार यात्रा करिये और (**महः**) बड़े (**जरितारम्, च**) और स्तुति करनेवाले को (**अच्छ**) उत्तम प्रकार प्राप्त हूजिये ॥४॥

भावार्थ—जो मनुष्य धार्मिक, बलिष्ठ और उत्तम प्रकार से शिक्षित पुरुषों की सेनाओ से विजय के लिये प्रयत्न करे वह निश्चय कर विजय को प्राप्त होवे ॥४॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स सर्गेण शवसा तक्तो अत्यैरप इन्द्रो दक्षिणतस्तुराषाट् ।

इत्था सृजाना अनपावृदर्थं दिवेदिवे विविषुरप्रमृष्यम् ॥५॥४॥

पदार्थ—हे (राजन्, सः) वह आप जैसे सूर्य्य (अपः) जलों को प्रकट करता है वैसे (सवतः) प्रसन्न (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले (अत्यैः) घोड़ों के समान वेग वाले पदार्थों से और (दक्षिणतः) दहिने पसवाड़े से (सर्त्तवे) उत्तम प्रकार प्रकट करने योग्य (शवसा) बल से (तुराषाट्) हिंसकों को सहनेवाले तथा (अनपावृत्) असत्य को नहीं स्वीकार करनेवाले हुए आप (दिवेदिवे) प्रतिदिन (अप्रमृष्यम्) नहीं विचारने योग्य (अर्थम्) द्रव्य का सब ओर से स्वीकार करिये और जैसे (सुजानाः) उत्तम प्रकार शिक्षितजन कृत्य को (विविशुः) व्याप्त होते हैं (इत्था) इस हेतु से कर्त्तव्य कर्म्मों में प्रविष्ट हूजिये ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य अधर्म्म से करने योग्य अनर्थ को नहीं करता है वह सूर्य्य के सदृश प्रकाशित यश वाला होता है और जैसे सूर्य्य वृष्टि करके सब को हर्षित करता वैसे ही राजा शुभगुणों की वर्षा करके सब को आनन्दित करे ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान् और राजा के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए॥

यह बत्तीसवां सूक्त और चौथा वर्ग समाप्त हुआ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य त्रयस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य शुनहोत्र ऋषिः। इन्द्रो देवता।
१, २, ३ निचृत्पङ्क्तिः। ४ भुरिक्पङ्क्तिः। ५ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः
पञ्चमः स्वरः॥

अब पांच ऋचावाले तेंतीसवें सूक्त का प्रारम्भ किया जाता है उसके प्रथम मन्त्र में राजा क्या करके क्या करावे इस विषय को कहते हैं—

य ओजिष्ठ इन्द्र तं सु नो दा मदो वृषन्त्स्वभिष्टिर्दास्वान्।
सौवश्व्यं यो वनवत्स्वश्वो वृत्रा समत्सु सासहदमित्रान् ॥१॥

पदार्थ—हे (वृषन्) तेजस्वी (इन्द्र) ऐश्वर्य्य के देनेवाले (यः) जो (ओजिष्ठ) अतिशय बली (मदः) हर्षित हुए (स्वभिष्टिः) अच्छी सङ्गति वाले (दास्वान्) दाता वह आप (नः) हम लोगों के लिये (सौवश्व्यम्) सुन्दर घोड़ो और बड़े पदार्थों में हुए को (सु) उत्तम प्रकार (दा) दीजिये और (यः) जो (स्वश्वः) अच्छे घोड़ोंवाला हुआ (वृत्रा) धनोंकी (वनवत्) याचना करता है तथा (समत्सु) संग्रामों में (अमित्रान्) शत्रुओं को (सासहत्) अत्यन्त सहता है (तम्) उसका हम लोग सत्कार करें ॥१॥

भावार्थ—जो अभय देनेवाला और संग्रामों में जीतनेवाला तथा दिन रात अपने बल को बढ़ाता है वही सब का सुखी करने को योग्य है ॥१॥

त्वां हीन्द्रावसे विवाचो हवन्ते चर्षणयः शूरसातौ।
त्वं विप्रेभिर्वि पणीँरशायस्त्वोत इत्सनिता वाजमर्वा ॥२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दुःख के नाश करनेवाले राजन् जो (हि) जिससे (अर्वा) घोड़े के समान श्रेष्ठ गुणों के ग्रहण करनेवाले वेगवाले (सनिता) विभाग करनेवाले (त्वोतः) आप से रक्षित जन (वाजम्) विज्ञान को प्राप्त होता है उसके सहित (त्वम्) आप (विप्रेभिः) मेधावी जनों के साथ (पणीन्) प्रशंसितों को (वि, अशायः) सुलाइये उस (इत्) ही (त्वाम्) आपकी (अवसे) रक्षा आदि के लिये (शूरसातौ) शूर वीर जनों के विभागरूप संग्राम में (विवाचः) अनेक प्रकार की विद्या से युक्त वाणियों वाले (चर्षणयः) विद्वान् जन (हवन्ते) स्तुति करते हैं ॥२॥

भावार्थ—जो राजा धार्मिक विद्वानों के साथ राज्य का पालन करे तो उसकी कौन नहीं प्रशंसा करे ॥२॥

त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान्दासा वृत्राण्यार्या च शूर।
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणां नृतम ॥३॥

पदार्थ—हे (नृणाम्) मुखियाजनों में (नृतम) अत्यन्त मुखिया (शूर) दुष्टों के नाशक (इन्द्र) राजन् (त्वम्) आप (तान्) उन (अमित्रान्) दुष्ट सब को पीड़ा देनेवाले और (आर्य्या) धर्मिष्ठ उत्तम जनों को (च) और (उभयान्) दो प्रकार के विभाग करके दुष्ट और पीड़ा देनेवालों का (पृत्सु) सङ्ग्रामों में (वनेव) अग्नि जैसे वनों का वैसे (वधीः) नाश करिये और (सुधितेभिः) उत्तम प्रकार से तृप्त किये गये (अत्कैः) घोड़ों से (आ, दर्षि) विदीर्ण करते हो और धर्मिष्ठ उत्तम जनों की रक्षा करते हो तथा (दासा) देने योग्य (वृत्राणि) धनों को प्राप्त होते हो इससे विवेकी हो ॥३॥

भावार्थ—जो राजा उत्तम, अनुत्तम, धार्मिक और अधार्मिकों का परीक्षा से विभाग करके उत्तमों की रक्षा करता और दुष्टों को दण्ड देता है वही सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य को प्राप्त होता है ॥३॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स त्वं न इन्द्राकवाभिरूती सखा विश्वायुरविता वृधे भूः।
स्वर्षाता यद्ध्वयामसि त्वा युध्यन्तो नेमधिता पृत्सु शूर ॥४॥

पदार्थ—हे (शूर) शूरवीर शत्रुजनों के नाश करने और (इन्द्र) सुख के देने वाले (यत्) जो (त्वम्) आप (अकवाभिः) नहीं निन्दा करनेवालों और (ऊती) रक्षाओं से (नः) हमारे (सखा) मित्र (विश्वायुः) सम्पूर्ण अवस्था से युक्त (अविता) रक्षक (वृधे) वृद्धि के लिये (भूः) होवें (सः) वह आप (स्वर्षाता) सुख के देनेवाले हुये जीतने वाले हूजिये उन (त्वा) आपको (नेमधिता) धार्मिक और अधार्मिक के मध्य में धार्मिकों के ग्रहण करने वाले (पृत्सु) संग्रामों या सेनाओं में (युध्यन्तः) युद्ध करते हुए हम लोग (ह्वयामसि) पुकारें ॥४॥

भावार्थ—हे राजन्! जैसे मित्र मित्र के लिये प्रिय आचरण करता है वैसे ही प्रजा के लिये हित आचरण करिये और जहां जहां प्रजायें आपको पुकारें वहां वहां उपस्थित हूजिये और शत्रुओं के जीतने में प्रयत्न करिये ॥४॥

फिर वह राजा कैसा वर्त्ताव करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

नूनं न इन्द्रापराय च स्या भवा मृळीक उत नो अभिष्टौ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्मन्दिवि ष्याम पार्ये गोषतमाः ॥५॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दुःखों के नाश करनेवाले आप (नः) हम लोगों के (मृळीकः) सुखकारक (भव) हूजिये और (उत) भी (अपराय) अन्य के लिये (नूनम्) निश्चय कर सुखकारक (स्याः) हूजिये और (नः) हम लोगों के (अभिष्टौ) अपेक्षित सुख में (च) प्रवृत्त हूजिये (इत्था) इस कारण से (गृणन्तः) स्तुति करते हुए (गोषतमाः) वाणियों को अत्यन्त सेवनेवाले हम लोग (महिनस्य) बड़े आपके (पार्य्ये) पूर्ण करने और (दिवि) कामना करने योग्य (शर्मन्) गृह में (स्याम) होवें ॥५॥

भावार्थ—जो राजा अपने और दूसरे का पक्षपाती न होकर प्रजा के रक्षण में यत्न करनेवाला होवे तो सम्पूर्ण प्रजा प्रेम के स्थान में बंधी हुई होकर राजा की दिनरात स्तुति करें ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह तेंतीसवां सूक्त और पांचवां वर्ग समाप्त हुआ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य चतुस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य शुनहोत्र ऋषिः। इन्द्रो देवता।
त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब पांच ऋचावाले चौंतीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मंत्र में राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

सं च त्वे जग्मुर्गिर इन्द्र पूर्वीर्वि च त्वद्यन्ति विभ्वो मनीषाः।
पुरा नूनं च स्तुतय ऋषीणां पस्पृध्र इन्द्रे अध्युक्थार्का ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्या के देने वाले जो (त्वे) कोई (त्वत्) आपके समीप से (पूर्वीः) प्राचीन (गिरः) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियों को (च) भी (यन्ति) प्राप्त होते हैं (च) और श्रेष्ठ गुणों से (सम्) उत्तम प्रकार (जग्मुः) मिलते हैं तथा (विभ्वः) श्रेष्ठ गुणों से व्याप्त (मनीषाः) गमन करनेवाले हुए परस्पर (वि) विशेष करके प्राप्त होते हैं और (ऋषीणाम्) वेद के मन्त्रों के अर्थ जानने वालों और यथार्थ उपदेश करने वालों के (पुरा) आगे (स्तुतयः, च) प्रशंसाओं को भी (नूनम्) निश्चय से (पस्पृध्रे) स्पर्द्धा करते हैं और (इन्द्रे) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देनेवाले के लिये (उक्थार्का) प्रशंसित और आदर करने योग्य वचनों की (अधि) अधिक स्पर्धा करते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे राजन्! इस संसार में कोई योग्य, कोई अयोग्य, जन होते हैं उनमें प्रशंसा करने योग्य सज्जनों के साथ मेल करके उत्तम सहाय वाले हुए धर्म्म से राज्यपालन निरन्तर करिये ॥१॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

पुरुहूतो यः पुरुगूर्त ऋभ्वाँ एकः पुरुप्रशस्तो अस्ति यज्ञैः।
रथो न महे शवसे युजानोऽस्माभिरिन्द्रो अनुमाद्यो भूत् ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वज्जनो (यः) जो (पुरुहूतः) बहुतों से सत्कार किया गया (पुरुगूर्तः) बहुतों से उद्यम कराया गया (पुरुप्रशस्तः) बहुतों में उत्तम (एकः) सहायरहित (रथः) विमान आदि वाहन (न) जैसे वैसे (महे) बड़े (शवसे) बल के लिये (यज्ञैः) विद्वानों के सत्कार और सङ्ग तथा दानों से और (ऋभ्वा) बड़े बुद्धिमान् से (युजानः) युक्त हुआ (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्य का देनेवाला (अस्माभिः) हम लोगों के साथ (अनुमाद्यः) पीछे से प्रसन्न होने योग्य (भूत्) होवे वह हम लोगों का आनन्दकारक (अस्ति) है उस राजा को आप लोग भी मानिये ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे घोड़ो और अग्नि आदिकों से युक्त रथ अभीष्ट कार्य्यों को करता है वैसे ही उत्तम सहायों के सहित राजा राज्य के कार्य्यों को पूर्ण करने को समर्थ होता ॥२॥

फिर वह राजा कैसा होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

न यं हिंसन्ति धीतयो न वाणीरिन्द्रं नक्षन्तीदभि वर्धयन्तीः।
यदि स्तोतारः शतं यत्सहस्रं गृणन्ति गिर्वणसं शं तदस्मै ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वानो (**यम्**) जिस (**इन्द्रम्**) पूर्ण विद्या वाले और अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाले राजा को (**इत्**) ही (**धीतयः**) अङ्गुलियां (**न**) नहीं (**हिंसन्ति**) नष्ट करती हैं और जिस पूर्णविद्या और अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाले राजा को (**वाणी**) वाणियां (**न**) नही नष्ट करती हैं और जिस पूर्ण विद्यावाले और अत्यन्त ऐश्वर्य्ययुक्त राजा को (**वर्धयन्ती**) बढाती हुई अङ्गुलियाँ और वाणियाँ (**अभि, नक्षन्ति**) प्राप्त होती हैं और (**यदि**) जो उस (**गिर्वणसम्**) वाणियो से सेवा करने और मांगनेवाले पूर्ण विद्या और अत्यन्त ऐश्वर्य्ययुक्त राजा की (**स्तोतारः**) स्तुति करने वाले जन (**गृणन्ति**) स्तुति करते हैं तो (**यत्**) जो (**अस्मै**) इस स्तुति करनेवाले के लिये (**शतम्**) सैकडो और (**सहस्रम्**) असंख्य प्रकार का (**शम्**) सुख प्राप्त होता है (**तत्**) वह लोगो को भी प्राप्त हो ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिसको शत्रु से की हुई विरुद्ध क्रियायें और निन्दित वाणियाँ नहीं पीडित करती हैं उस हर्ष और शोक से रहित राजा को अतुल सुख प्राप्त होता है ॥३॥

अस्मा एतद्दिव्य१र्चेव मासा मिमिक्ष इन्द्रे न्ययामि सोमः ।

जनं न धन्वन्नभि सं यदापः सत्रा वावृधुर्हवनानि यज्ञैः ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् जिस (**दिवि**) सुन्दर शुद्ध व्यवहार मे (**इन्द्रे**) दुष्टो के नाश करनेवाले राजा के होने पर (**मासा**) चैत्र आदि महीने (**वावृधुः**) बढते हैं और (**यज्ञैः**) विद्वानो के सत्कारो से (**अर्चेव**) सत्क्रिया के समान (**सत्रा**) सत्य कारण से (**यत्**) जो (**हवनानि**) दान आदि कर्म्म बढते हैं तथा (**धन्वन्**) बालुका से युक्त स्थान मे (**आपः**) जल (**जनम्**) मनुष्य को (**न**) जैसे वैसे (**सम्, अभि**) उत्तम प्रकार चारो ओर से बढते हैं (**एतत्**) यह (**अस्मै**) इसके लिये (**सोमः**) उत्पन्न करनेवाला मैं जैसे (**नि, अयामि**) निरन्तर प्राप्त होता हूँ वैसे आप इसको (**मिमिक्षः**) सींचिये ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे सत्कार करने योग्य का सत्कार और निर्जल स्थान मे हुए को जल का मिलना सुखकारक होता है वैसे ही यज्ञ का अनुष्ठान और श्रेष्ठ ऐश्वर्य्य सब के आनन्दकारक होते हैं ॥४॥

फिर विद्वानों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिए इस विषय को

अगले मन्त्र में कहते हैं—

अस्मा एतन्मह्याङ्गूषमस्मा इन्द्राय स्तोत्रं मतिभिरवाचि ।

असद्यथा महति वृत्रतूर्य इन्द्रो विश्वायुरविता वृधश्च ॥५॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यथा**) जैसे (**मतिभिः**) विचारशील मनुष्यो से (**अस्मै**) इस उपदेश के लिये (**एतत्**) यह (**महि**) बडा (**आङ्गूषम्**) प्राप्त होने योग्य (**स्तोत्रम्**) स्तोत्र (**अवाचि**) कहा जाता है और वैसे (**अस्मै**) इस (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य्य के करनेवाले राजा के लिये यह बडा प्राप्त होने योग्य स्तोत्र कहा जाता है और जैसे (**इन्द्र**) शत्रुओ का नाश करनेवाला योद्धा (**महति**) बडे (**वृत्रतूर्ये**) सङ्ग्राम मे (**वृधः**) बढाने और (**अविता**) रक्षा करनेवाला (**विश्वायुः, च**) और पूर्ण अवस्थायुक्त (**असत्**) होवे वैसे आप लोगो को भी करना चाहिये ॥५॥

भावार्थ—जो अविद्वान् हो वे विद्वानो के अनुकरण से अपना वर्त्ताव उत्तम करें ॥५॥

इस सूक्त मे इन्द्र, राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चौंतीसवां सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य नर ऋषि । इन्द्रो देवता ।

१ विराट्त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ५ त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वरः । २ पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

अब पांच ऋचा वाले पेंतीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा के प्रति कैसा उपदेश करें इस विषय को कहते हैं—

कदा भुवन्रथक्षयाणि ब्रह्म कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यं दाः ।

कदा स्तोमं वासयोऽस्य राया कदा धियः करसि वाजरत्नाः ॥१॥

पदार्थ—हे राजन् ! आपके (**कदा**) कब (**रथक्षयाणि**) वाहन के रहने के स्थान (**भुवन्**) होते हैं और (**कदा**) कब (**स्तोत्रे**) प्रशंसा के साधन मे (**सहस्रपोष्यम्**) असंख्य जनो के पुष्ट करने योग्य (**ब्रह्म**) धन को (**दाः**) दीजिए और (**कदा**) कब (**अस्य**) इसके (**राया**) धन से (**स्तोमम्**) प्रशंसा को (**वासयः**) बसाइये और आप (**कदा**) कब (**वाजरत्नाः**) धन और धान्य की बढानेवाली (**धियः**) उत्तम बुद्धियो वा उत्तम कर्मों को (**करसि**) करें ॥ १ ॥

भावार्थ—सब सभा मे बैठनेवाले, विद्वान् जन और उपदेशक जन राजा से यह कहें कि आप कब सेना के अङ्गो और पुष्टि करनेवाले ऐश्वर्य और उत्तम बुद्धियो को करेंगे ॥ १ ॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

कर्हि स्वित्तदिन्द्र यन्नृभिर्नॄन्वीरैर्वीरान्नीळयासे जयाजीन् ।

त्रिधातु गा अधि जयासि गोष्विन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥२॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सेना के धारण करनेवाले आप (**कर्हि**) किस समय मे (**स्वित्**) कहिये (**वीरैः**) शूरता और बल आदि से युक्त (**नृभिः**) उत्तम मनुष्यो से (**वीरान्**) धृष्टता आदि गुणो से युक्त (**नॄन्**) श्रेष्ठ मनुष्यों की (**नीळयासे**) प्रशंसा कीजिए और (**गाः**) पृथिवियो को कब (**अधि जयासि**) जीतियें और हे (**इन्द्र**) प्रतापी तथा सेना के धारण करनेवाले आप (**गोषु**) पृथिवियो मे और (**अस्मे**) हम लोगो में (**यत्**) जो (**स्वर्वत्**) बहुत सुख से युक्त (**त्रिधातु**) सोना चांदी और तांबा ये तीन धातु जिसमे ऐसा (**द्युम्नम्**) धन वा यश है (**तत्**) उसको हम लोगो मे (**धेहि**) धारण करिये सो ऐसा करके (**आजीन्**) सङ्ग्रामों को (**जय**) जीतिये ॥ २ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप विद्वानो के साथ विद्वानो का तथा शूरवीर जनों के साथ शूरवीरो का अच्छे प्रकार ग्रहण करके तथा सङ्ग्रामो को जीत कर और पृथिवी के राज्य को प्राप्त कर न्यायाचरण से प्रजाओ का पालन करके बडे यश वा धन को बढाइये ॥ २ ॥

कर्हि स्वित्तदिन्द्र यज्जरित्रे विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः शविष्ठ ।

कदा धियो न नियुतो युवासे कदा गोमघा हवनानि गच्छाः ॥३॥

पदार्थ—हे (**शविष्ठ**) अतिशय बली (**इन्द्र**) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त राजन् आप (**कर्हि**) कब (**स्वित्**) कहिये ! (**जरित्रे**) स्तुति करनेवाले के लिए (**यत्**) जो (**विश्वप्सु**) अनेक रूप (**ब्रह्म**) धन (**कृणवः**) करेंगे (**तत्**) उसको इसके लिए हम लोग भी करें तथा (**नियुतः**) अत्यन्त श्रेष्ठ गुणों से युक्त (**न**) जैसे वैसे (**धियः**) बुद्धियो को (**कदा**) कब (**युवासे**) मिलाइयेगा और (**गोमघा**) पृथिवी के राज्य से सत्कृत धनो तथा (**हवनानि**) ग्रहण करने योग्यों को (**कदा**) कब (**गच्छाः**) प्राप्त हूजियेगा ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप सम्पूर्ण धन, पूर्ण बुद्धियां और उत्तम क्रियाओं को कब करियेगा ? अर्थात् शीघ्र इनको करिये ॥ ३ ॥

स गोमघा जरित्रे अश्वश्चन्द्रा वाजश्रवसो अधि धेहि पृक्षः ।

पीपिहीषः सुदुघामिन्द्र धेनुं भरद्वाजेषु सुरुचो रुरुच्याः ॥४॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) विद्या और ऐश्वर्य के देनेवाले राजन् (**सः**) वह आप (**जरित्रे**) विद्या और गुण के प्रकाश करनेवाले के लिए जो (**गोमघाः**) पृथिवी के राज्यरूप धनवाले (**अश्वश्चन्द्राः**) घोडे हैं सुवर्ण जिनके वे (**वाजश्रवसः**) अन्न और विद्या श्रवण युक्त (**पृक्षः**) सम्बन्ध करने योग्य हैं उनको हम लोगों में (**अधि, धेहि**) धारण करिये और (**इषः**) प्राप्त होने योग्य रसो को (**पीपिहि**) पीजिए और (**भरद्वाजेषु**) धारण किया विज्ञान जिन्होंने उन विद्वानों में (**सुदुघाम्**) उत्तम प्रकार कामना पूर्ण करनेवाली (**धेनुम्**) विद्या और शिक्षा से युक्त वाणी को (**सुरुचः**) तथा उत्तम प्रीतिवालो को (**रुरुच्याः**) प्रीतियुक्त करिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! अपनी प्रजाओ में पूर्ण विद्या और सम्पूर्ण धन को धारण कर और शरीर के आरोग्यपन को बढा के धर्म मे रुचि करिये ॥ ४ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तमा नूनं वृजनमन्यथा चिच्छूरो यच्छक्र वि दुरो गृणीषे ।

मा निररं शुक्रदुघस्य धेनोराङ्गिरसान्ब्रह्मणा विप्र जिन्व ॥५॥७॥

पदार्थ—हे (**विप्र**) बुद्धिमान् जन (**शक्र**) सामर्थ्य और अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त राजन् (**यत्**) जो (**वृजनम्**) चलते हैं जिससे वा जिसमे उसकी (**नूनम्**) निश्चित (**आ, गृणीषे**) प्रशंसा करते हो (**तम्**) उसकी (**चित्**) भी (**वि**) निरन्तर प्रशंसा करते हो और (**शूर**) भयरहित और शत्रुओं के मारनेवाले आप (**दुरः**) द्वारों को (**जिन्व**) पुष्ट करिये तथा (**शुक्रदुघस्य**) शीघ्र पूर्ण करनेवाली (**धेनोः**) वाणी के (**आङ्गिरसान्**) प्राणो मे श्रेष्ठों को (**ब्रह्मणा**) बडे धन वा अन्न से (**अरम्**) अच्छे प्रकार से (**नि**) प्रसन्न कीजिए और कभी (**अन्यथा**) अन्यथा (**मा**) न करिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो राजा आदि जन प्रजाओं का सुख से शोभित कर अन्याय से अन्यथा आचरण नही करते वे सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त होते है ॥ ५ ॥

इस सूक्त मे इन्द्र, विद्वान्, राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पेंतीसवां सूक्त और सातवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य षट्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य नर ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

१ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।

४, ५ भुरिक्पङ्क्तिः । ३ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः

पञ्चमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले छत्तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा कैसा होकर क्या धारण करे इस विषय को कहते हैं—

सत्रा मदासस्तव विश्वजन्याः सत्रा रायोऽध ये पार्थिवासः ।

सत्रा वाजानामभवो विभक्ता यद्देवेषु धारयथा असुर्यम् ॥१॥

पदार्थ—हे राजन् (तव) आपके (ये) जो (विश्वजन्याः) सम्पूर्ण जन्य सुख जिनमें वे (सत्रा) सत्य (मदासः) आनन्द देनेवाले और (सत्रा) सत्य (रायः) धन (सत्रा) सत्य (पार्थिवासः) पृथिवी में विदित और (वाजानाम्) अन्न आदिकों के सत्य (विभक्ता) विभागों को प्राप्त हुए हैं उनके आप धारण करनेवाले (अभवः) हूजिए (अध) इसके अनन्तर (यत्) जो (देवेषु) विद्वानों में (असुर्येषु) अविद्वानों में हुआ है उसको (धारयथाः) धारण कराइये ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो इस संसार में बुद्धि और आनन्द के बढ़ानेवाले, विद्या और अन्नादि से युक्त और विद्वानों के साथ सत्संग करनेवाले हैं उनको धारण करके सत्य और असत्य के विभाग करनेवाले हूजिए ॥ १ ॥

फिर मनुष्य कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

अनु प्र येजे जन ओजो अस्य सत्रा दधिरे अनु वीर्याय ।
स्यूमगृभे दुधयेऽर्वते च क्रतुं वृञ्जन्त्यपि वृत्रहत्ये ॥२॥

पदार्थ—हे राजन् जो (जन) मनुष्य जैसे शूरवीरजन (अस्य) इस संसार के मध्य में (सत्रा) सत्य (ओजः) बल को (दधिरे) धारण करते हैं और (वृत्रहत्ये) संग्राम में (स्यूमगृभे) एक दूसरे के मिले हुए ग्रहण करनेवाले (वीर्याय) पराक्रम के लिए (क्रतुम्) बुद्धि को (अनु) पीछे धारण करते हैं (च) और (दुधये) मारनेवाले (अर्वते) प्राप्त हुए के लिए बुद्धि का (अपि) भी (वृञ्जन्ति) त्याग करते हैं वैसे (अनु, प्र, येजे) यत्न करता है उसको और उनको आप ग्रहण करिये और हिंसकों को वर्जिये ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य न्याय और दया से युक्त बुद्धि को धारण कर, धर्मयुक्त कर्मों को कर, दुष्टता को दूर कर और युद्ध में विजय प्राप्त करके श्रेष्ठों की संगति करते हैं वे दिन रात्रि बुद्धि को बढ़ा सकते हैं ॥ २ ॥

फिर उत्तम मनुष्य को क्या प्राप्त होता है इस विषय को कहते हैं—

तं सध्रीचीरूतयो वृष्ण्यानि पौंस्यानि नियुतः सश्चुरिन्द्रम् ।
समुद्रं न सिन्धव उक्थशुष्मा उरुव्यचसं गिर आ विशन्ति ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जिस (उरुव्यचसम्) बहुत श्रेष्ठ गुणों में व्यापक (इन्द्रम्) सत्य धर्म और न्याय के धारण करनेवाले को (उक्थशुष्माः) कहे बल जिनसे वे (गिरः) वाणियाँ (समुद्रम्) समुद्र को (सिन्धवः) नदियाँ (न) जैसे वैसे (आ, विशन्ति) सब प्रकार से प्राप्त होती हैं (तम्) उसको (सध्रीचीः) एक साथ गमन करनेवाली (नियुतः) वायु की निश्चित गतियों के समान क्रिया और (ऊतयः) रक्षण आदि क्रियाएं (वृष्ण्यानि) दुष्टों के सामर्थ्य को रोकनेवाले (पौंस्यानि) वचन भी (सश्चुः) प्राप्त होवें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे नीचे चलनेवाली नदियाँ समुद्र को सब ओर से प्राप्त होती हैं वैसे ही धार्मिक राजा को सम्पूर्ण बल, सब रक्षायें और उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियाँ भी प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥

फिर राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं—

स रायस्खामुप सृजा गृणानः पुरुश्चन्द्रस्य त्वमिन्द्र वस्वः ।
पतिर्बभूथासमो जनानामेको विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) धन के स्वामिन् राजन् जैसे (विश्वस्य) सम्पूर्ण (भुवनस्य) संसार का स्वामी (असमः) जिसके समान और नहीं (सः) वह (एकः) सहायरहित (राजा) प्रकाशमान राजा है वैसे आप (जनानाम्) धार्मिक मनुष्यों और (पुरुश्चन्द्रस्य) बहुत सुवर्ण जिसमें उसके (रायः) लक्ष्मी के (वस्वः) धन के (पतिः) स्वामी (बभूथ) हूजिए और (गृणानः) स्तुति करते हुए (त्वम्) आप (खाम्) नदी के समान धन के कोश को (उप, सृजा) बनाइये ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजा लोगो ! जैसे ईश्वर पक्षपात का त्याग करके सबका न्याय से पालन करनेवाला है वैसे ही होकर आप लोग धन के स्वामी हूजिए ॥ ४ ॥

स तु श्रुधि श्रुत्या यो दुवोयुर्द्यौर्न भूमाभि रायो अर्यः ।
असो यथा नः शवसा चकानो युगेयुगे वयसा चेकितानः ॥५॥८॥

पदार्थ—हे ऐश्वर्य से युक्त (यः) जो (द्यौः) प्रकाश (न) जैसे वैसे (दुवोयुः) सेवा की कामना करता हुआ (अर्यः) स्वामी (शवसा) बल से (चकानः) कामना करता हुआ (युगेयुगे) प्रतिवर्ष (वयसा) अवस्था से (चेकितानः) जानता हुआ (श्रुत्या) श्रवण से (यथा) जैसे (नः) हम लोगों के समाचार को सुनता है और जैसे (सः) वह (असः) हो तथा (रायः) धनों को प्राप्त हुए हम लोग प्रकाश जैसे वैसे (भूम) होवें वैसे (तु) तो आप सब की बात को (अभि,श्रुधि) सुनें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे परीक्षक विद्यार्थियों के अध्ययन की परीक्षा करके विद्वान् करता है वैसे ही राजा यथार्थ न्याय को करके प्रजाओं को प्रसन्न करे ॥ ५ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान् और राजा के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह छत्तीसवाँ सूक्त और आठवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य सप्तत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ४, ५ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २, ३ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पाँच ऋचा वाले सैंतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

अर्वाग्रथं विश्ववारं त उग्रेन्द्र युक्तासो हरयो वहन्तु ।
कीरिश्चिद्धि त्वा हवते स्वर्वानृधीमहि सधमादस्ते अद्य ॥१॥

पदार्थ—हे (उग्र) तेजस्विन् (इन्द्र) प्रजा के स्वामिन् जो (युक्तासः) नियुक्त किये गये (हरयः) घोड़ों के तुल्य शिल्पी मनुष्य (ते) आपके (विश्ववारम्) सम्पूर्ण सुख स्वीकार करनेवाले (रथम्) सुन्दर वाहन को (वहन्तु) प्राप्त करावें और जो (स्वर्वान्) बहुत सुख विद्यमान जिसमें वह (कीरिः) स्तुति करनेवाला विद्वान् (हि) ही (त्वा) आपको (हवते) पुकारता है उनके (सधमादः) तुल्य स्थानवाले हम लोग (ऋधीमहि) समृद्ध होवें । और जिन (ते) आपके (अर्वाक्) पीछे (अद्य) इस समय जो सुख को प्राप्त होते हैं वे (चित्) भी इस समय सुखों से भूषित होते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—जो राजा धार्मिक और अनुकूल मनुष्यों का सत्कार करता है उस की सब धर्मिष्ठ विद्वान् सदा सेवा करते हैं ॥ १ ॥

फिर मनुष्य परस्पर कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

प्रो द्रोणे हरयः कर्माग्मन्पुनानास ऋज्यन्तो अभूवन् ।
इन्द्रो नो अस्य पूर्व्यः पपीयाद् द्युक्षो मदस्य सोम्यस्य राजा ॥२॥

पदार्थ—जो (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्यवाला (अस्य) इस (सोम्यस्य) ऐश्वर्य में हुए (मदस्य) आनन्द का (द्युक्षः) अन्तरिक्ष के सदृश भूमि जिसकी वह (पपीयात्) बड़े और (पूर्व्यः) पूर्वजनों से उत्पन्न किया गया (नः) हम लोगों का (राजा) प्रकाशमान राजा होवे और जो (पुनानासः) पवित्र (ऋज्यन्तः) सरल के सदृश आचरण करते हुए (हरयः) मनुष्य (द्रोणे) परिमाण में (कर्म) कर्म्म को (प्रो) अच्छे प्रकार (अग्मन्) प्राप्त होते हैं और (अभूवन्) प्रसिद्ध होते हैं वे अन्यों को भी पवित्र करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—जो राजा आदि श्रेष्ठ जन स्वयं पवित्र और श्रेष्ठ स्वभाववाले और सरल होकर श्रेष्ठ कर्म्मों को करके न्याय से हम लोगों की रक्षा करते हैं वे हम लोगों से सत्कार करने योग्य हैं ॥ २ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

आसस्राणासः शवसानमच्छेन्द्रं सुचक्रे रथ्यासो अश्वाः ।
अभि श्रव ऋज्यन्तो वहेयुर्नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत् ॥३॥

पदार्थ—जो (आसस्राणासः) चारों ओर से गमन करनेवाले (रथ्यासः) वाहनों में श्रेष्ठ (अश्वाः) घोड़े जैसे वैसे (अभि,श्रव) चारों ओर से सुननेवाले (ऋज्यन्तः) सरल के समान आचरण करते हुए विद्वान् जन (शवसानम्) बलयुक्त (इन्द्रम्) राजा को (नु) शीघ्र (वहेयुः) प्राप्त होवें और जो (चित्) भी इन को (अच्छ) अच्छे प्रकार (सुचक्रे) सुन्दर करता है वह (वायोः) पवन के (अमृतम्) नाशरहित स्वरूप को प्राप्त होकर दुःखों को (नु) शीघ्र ही (वि, दस्येत्) उपेक्षा करे ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे प्रजाजनो ! जैसे राजा आप लोगों की वृद्धि करे वैसे आप लोग भी इसकी वृद्धि करिये और सब योगाभ्यास करके प्राणों में वर्त्तमान परमात्मा को जान कर दुःखों का नाश करो ॥ ३ ॥

वरिष्ठो अस्य दक्षिणामियर्तीन्द्रो मघोनां तुविकूर्मितमः ।
यया वज्रिवः परियास्यंहो मघा च धृष्णो दयसे वि सूरीन् ॥४॥

पदार्थ—हे (वज्रिवः) प्रशंसित शस्त्र और अस्त्र से तथा (धृष्णो) दृढ़ उत्साह से युक्त (यया) जिस दक्षिणा से आप (अंहः) अपराध का (परियासि) सब प्रकार से परित्याग करते हो (सूरीन्) विद्वानों (मघा, च) और धनों को (वि) विशेष करके (दयसे) देते हो उस (अस्य) इस राज्य के (मघोनाम्) बहुत धनों से युक्तों की (दक्षिणाम्) बढ़ानेवाली दक्षिणा को (तुविकूर्मितमः) अत्यन्त बहुत करने और (वरिष्ठः) अत्यन्त स्वीकार करनेवाले (इन्द्रः) राजा हुए आप (इयर्ति) प्राप्त होते हैं इससे सत्कार करने योग्य हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—वही राजा स्थिर राज्य करने योग्य है जो विद्वानों और धार्मिक जनों पर दया करता और दुष्ट जनों का त्याग करता है तथा पुरुषार्थी होकर दूतरूप चक्षुवाला हुआ प्रजा के पालन में यत्नवाला होता है ॥ ४ ॥

इन्द्रो वाजस्य स्थविरस्य दातेन्द्रो गीर्भिर्वर्धतां वृद्धमहाः ।
इन्द्रो वृत्रं हनिष्ठो अस्तु सत्वा ता सूरिः पृणति तूतुजानः ॥५॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (इन्द्रः) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त और (स्थविरस्य) स्थूल (वाजस्य) अन्न आदि का (दाता) देनेवाला और जो (इन्द्रः) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त राजा (गीर्भिः) वाणियों से (वर्धताम्) बढ़े और (वृद्धमहाः) वृद्धों से सत्कार किया (इन्द्रः) सूर्य (वृत्रम्) मेघ का जैसे वैसे

शत्रुओं का (हनिष्ठः) अत्यन्त मारनेवाला (अस्तु) हो और जो (तुतुजानः) शीघ्र करनेवाला (तव्याः) मनोगुण से युक्त (सूरिः) विद्वान् (ता) उन धनों को (आ, पृणति) अच्छे प्रकार सुखयुक्त करता है उसका तुम सब लोग सत्कार करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अभय का देनेवाला, विद्या से वृद्धों और आप्तों का सेवक, दुष्टों का मारनेवाला, शीघ्रकर्त्ता, विद्वान् मनुष्य हो उसी को तुम लोग राजा मानो ॥ ५ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा और प्रजा के कर्म्मों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सैंतीसवां सूक्त और नवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्याष्टत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ । ३ । ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले अड़तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मंत्र में मनुष्यों को कैसे विद्वान् की सेवा करनी चाहिए इस विषय को कहते हैं—

अपादित उदु नश्चित्रतमो महीं भर्षद् द्युमतीमिन्द्रहूतिम् ।
पन्यसीं धीतिं दैव्यस्य यामन् जनस्य रातिं वनते सुदानुः ॥१॥

पदार्थ—जो (अपात्) पैरों से रहित (इतः) प्राप्त हुआ (चित्रतमः) अत्यन्त अद्भुत गुण कर्म और स्वभाववाला (सुदानुः) उत्तम दानवाला (नः) हम लोगों के लिए (द्युमतीम्) विद्या के प्रकाशवाली (इन्द्रहूतिम्) अत्यन्त ऐश्वर्य की प्रकाशिका (पन्यसीम्) प्रशंसा करने योग्य (दैव्यस्य) श्रेष्ठ गुण अथवा विद्वानों में हुए (जनस्य) मनुष्य की (धीतिम्) धारणा से युक्त बुद्धि को और (महीम्) महती वाणी को तथा (यामन्) चलते हैं जिसमें उस मार्ग में (रातिम्) दान को (उत्, भर्षत्) धारण करता (उ) और (वनते) सेवन करता है वह विद्वान् मङ्गल करनेवाला होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस यथार्थवक्ता विद्वान् की सबके ऊपर दया, विद्यादान, निष्कपटता और उत्तम दृष्टि वर्त्तमान है वही सबसे सत्कार करने योग्य होता है ॥ १ ॥

फिर मनुष्य क्या ग्रहण करके सेवा करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

दूराच्चिदा वसतो अस्य कर्णा घोषादिन्द्रस्य तन्यति ब्रुवाणः ।
एयमेनं देवहूतिर्ववृत्यान्मद्र्यगिन्द्रमियमृच्यमाना ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जिस (अस्य) इस (इन्द्रस्य) राजा के (दूरात्) दूर से (चित्) भी (वसतः) निवास करते हुए के (कर्णा) दोनों कान (घोषात्) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी से जो (आ, तन्यति) अच्छे प्रकार शब्दित करता है और जो (देवहूतिः) विद्वानों से प्रशंसा की गई (इयम्) यह वाणी (एनम्) इस (इन्द्रम्) ऐश्वर्य से युक्त विद्वान् को (आ) चारों ओर से (ववृत्यात्) वर्त्तित करे और (इयम्) यह (ऋच्यमाना) स्तुति की गई और जो (मद्र्यक्) मुझ सरीखा (ब्रुवाणः) उपदेश करता हुआ है उसका वर्त्ताव उसकी आप लोग सेवा करो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिसका आत्मा श्रोत्रों के द्वारा विद्या से तृप्त होवे और जिसको सम्पूर्ण विद्या से युक्त वाणी प्राप्त होवे उसी का उत्तम प्रकार सेवन करके पूर्ण विद्या को प्राप्त हूजिये ॥ २ ॥

तं वो धिया परमया पुराजामजरमिन्द्रमभ्यनूष्यर्कैः ।
ब्रह्मा च गिरो दधिरे समस्मिन्महांश्च स्तोमो अधि वर्धदिन्द्रे ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वानो जैसे तुम (ब्रह्म) वेद को और (च) आप लोगों की (परमया) अत्यन्त उत्तम (धिया) बुद्धि वा कर्म से (तम्) उस (पुराजाम्) पहिले प्रकट हुए (अजरम्) जीर्ण होने से रहित (इन्द्रम्) बिजुली की भी प्रशंसा करो वैसे (अर्कैः) सूर्यों से मैं इसकी (अभि, अनूषि) स्तुति करता हूँ और जैसे (च) भी (अस्मिन्) इस (इन्द्रे) अत्यन्त ऐश्वर्य में (च) भी (महान्) बड़ा (स्तोमः) प्रशंसा करने योग्य गुण कर्म और स्वभाववाला (अधि, वर्धत्) बढ़ता है और जैसे आप विद्वानों की (गिरः) वेदवाणियों को (सम्, दधिरे) उत्तम प्रकार धारण करते हैं वैसे हम लोग अनुष्ठान करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य विद्वानों के उपदेश और पुरुषार्थ से बिजुली आदि की विद्यायुक्त बुद्धि को स्वीकार करते हैं वे यहाँ स्तुति करने योग्य होते हैं ॥ ३ ॥

अब मनुष्य क्या बढ़ावें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वर्धाद्यं यज्ञ उत सोम इन्द्रं वर्धाद् ब्रह्म गिर उक्था च मन्म ।
वर्धाहैनमुषसो यामन्नक्तोर्वर्धान्मासाः शरदो द्याव इन्द्रम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यम्) जिस (इन्द्रम्) बिजुली आदि की विद्या को (यज्ञः) श्रेष्ठों की संगति आदि स्वरूप और (उत) भी (सोमः) प्रेरणा करनेवाला विद्वान् (वर्धात्) बढ़ावे और (ब्रह्म) धन को (वर्धात्) बढ़ावे तथा (उक्था) प्रशंसा करने योग्य वचनों और (मन्म) विज्ञानों और (गिरः) वाणियों को (च) भी (वर्ध) बढ़ावे और (अह) इसके अनन्तर (एनम्) इस (उषसः) प्रभात से और (अक्तोः) रात्रि से (यामन्) चलते हैं जिसमें उस मार्ग में (मासाः) महीने (शरदः) ऋतुएँ और (द्यावः) प्रकाशयुक्त दिन वा प्रकाश (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य को (वर्धान्) बढ़ावें वे हम लोगों को बढ़ावें ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वानों का सत्कार और संगतिस्वरूप व्यवहार, बिजुली आदि की विद्या को तथा अत्यन्त ऐश्वर्य और पूर्ण आयु को बढ़ाता है वैसे ही आप लोग सम्पूर्ण श्रेष्ठ व्यवहारों को दिनरात्रि बढ़ाइये ॥ ४ ॥

एवा जज्ञानं सहसे असामि वावृधानं राधसे च श्रुताय ।
महामुग्रमवसे विप्र नूनमा विवासेम वृत्रतूर्येषु ॥५॥१०॥

पदार्थ—हे (विप्र) बुद्धियुक्त (असामि) उपमारहित को (सहसे) बल के लिए (जज्ञानम्) विद्या और विनयों से प्रकट हुए को (राधसे) असंख्य धनयुक्त के लिए (श्रुताय) सम्पूर्ण विद्याओं का किया श्रवण जिसने उस के लिए (च) भी (वावृधानम्) बढ़ते हुए को (वृत्रतूर्येषु) शत्रुओं से हिंसा करने योग्य संग्रामों में (अवसे) रक्षण आदि के लिए (महाम्) बड़े (उग्रम्) तेजस्वी की हम लोग (नूनम्) निश्चित (आ) सब प्रकार से (विवासेम) नित्य सेवा करें उस (एव) ही की आप भी सेवा करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जब मनुष्य सम्पूर्ण श्रेष्ठ गुण कर्म और स्वभावों में वर्त्तमान शूरवीर विद्वान् की सेवा कर और विद्या को ग्रहण करके बल आदि को बढ़ावें तो वे कौनसा उत्तम कार्य न सिद्ध कर सकें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान्, उत्तम बुद्धि और वाणी के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अड़तीसवां सूक्त और दशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्यैकोनचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ३ विराट् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ४, ५ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले उनचालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

मन्द्रस्य कवेर्दिव्यस्य वह्नेर्विप्रमन्मनो वचनस्य मध्वः ।
अपा नस्तस्य सचनस्य देवेषो युवस्व गृणते गोअग्राः ॥१॥

पदार्थ—हे (देव) अत्यन्त विद्वन् आप (वह्नेः) सम्पूर्ण विद्याओं के धारण करनेवाले अग्नि के सदृश (कवेः) विद्वान् और (दिव्यस्य) सुन्दर इच्छाओं में श्रेष्ठ (मन्द्रस्य) आनन्दित होते और आनन्दित करते हुए (विप्रमन्मनः) विद्वान् का विज्ञान जिसमें उस (मध्वः) माधुर्य आदि गुणों से युक्त (वचनस्य) वचन के व्यवहार का (अपाः) पालन करिये और (तस्य) उस (सचनस्य) सम्बद्ध हुए की (गृणते) स्तुति करते हुए के लिए (गोअग्राः) वाणी उत्तम जिनमें उन (इषः) अन्न आदि वा इच्छाओं का (नः) हम लोगों के लिए (युवस्व) संयुक्त कीजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! आप ऐसा प्रयत्न करिये जिससे हम लोगों को दिव्य सुख, दिव्य विद्या और दिव्य ऐश्वर्य प्राप्त होवे ॥ १ ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अयमुशानः पर्यद्रिमुस्रा ऋतधीतिभिर्ऋतयुग्युजानः ।
रुजदरुग्णं वि वलस्य सानुं पणीँर्वचोभिरभि योधदिन्द्रः ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वन् जैसे (अयम्) यह (ऋतधीतिभिः) जल के धारण करनेवाले गुणों से (उस्राः) किरणों का (युजानः) धारण करता हुआ (इन्द्रः) सूर्य (अद्रिम्) मेघ का (परि रुजत्) विभाग करता है और (वलस्य) मेघ के (सानुम्) शिखर के आकार मेघ का नाश करने को (अभि, वि, योधत्) सब ओर से विशेषकर युद्ध करता है वैसे (ऋतयुक्) सत्य से युक्त होनेवाला (उशानः) कामना करता हुआ (वचोभिः) वचनों से उत्तम जन का (अरुग्णम्) रोगरहित और (पणीन्) प्रशंसा करने योग्य व्यवहारों को सिद्ध कीजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वान् जनो ! जैसे सूर्य अपनी किरणों से भूमि से जल का आकर्षण कर धारण कर और मेघ के आकार का नाश करके पृथिवी के ऊपर गिराय सम्पूर्ण व्यवहारों को सिद्ध करता है वैसे ही विद्वानों से श्रेष्ठ विद्याओं का आकर्षण कर धारण करके उत्तम विद्यार्थियों में वर्षाय और अविद्या का नाश करके विज्ञान से धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष के व्यवहारों को सिद्ध करो ॥ २ ॥

फिर विद्वान् जन कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

अयं द्योतयदद्युतो व्यक्तून्दोषा वस्तोः शरद इन्दुरिन्द्र ।
इमं केतुमदधुर्नू चिदह्नां शुचिजन्मन उषसश्चकार ॥३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान विद्वन् जैसे (अयम्) यह (इन्दुः) क्रीडा करने वाला सूर्य्य (अद्युतः) नहीं प्रकाश करनेवाले भूमि आदिकों को और (अक्तून्) रात्रियों को (दोषा) प्रभातकालों को (वस्तोः) दिन को (शरदः) शरद् आदि ऋतुओं को (वि, द्योतयत्) प्रकाशित करता है और (अह्नाम्) दिनों के (चित्) भी (शुचिजन्मनः) सूर्य्य से जन्म जिसका उस (उषसः) प्रभात वेला की प्रकटता को (चकार) करता है वैसे (इमम्) इस (केतुम्) बुद्धि को प्रकाशित कीजिये और जैसे इस प्रकाशस्वरूप सूर्य्य को प्रभात वेलायें (अदधुः) धारण करें वैसे (नु) शीघ्र विद्या के प्रकाश को धारण करिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वान् जनो ! आप लोग जैसे सूर्य्य अप्रकाशक भूमि आदि का प्रकाश करने और आनन्द करनेवाला पवित्रक्षण आदि समयों का निर्म्माण करता है वैसे मनुष्यों के आत्माओं के प्रकाशक हुए विद्या की वृद्धि करनेवाले कर्म्मों को निष्पन्न कीजिये और कर्मों का प्रचार कराइये ॥ ३ ॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अयं रोचयदरुचो रुचानोऽयं वासयद्व्यृतेन पूर्वीः ।
अयमीयत ऋतयुग्भिरश्वैः स्वर्विदा नाभिना चर्षणिप्राः ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो जैसे (अयम्) यह (अरुचः) प्रकाश से रहित चन्द्र आदिकों को (रुचानः) प्रकाशित करता हुआ सूर्य्य सम्पूर्ण जगत् को (रोचयत्) प्रकाशित करता है वैसे विद्या से सब मनुष्यों को प्रकाशित करिये जैसे (अयम्) यह सूर्य्य (ऋतेन) जल के सदृश सत्य से (पूर्वीः) पहिले उत्पन्न हुई प्रजाओं को (वि, वासयत्) विशेष बसाता है वैसे सम्पूर्ण प्रजाओं को सत्य विज्ञान से संयुक्त करिये और जैसे (अयम्) यह सूर्य्य (ऋतयुग्भिः) जल के युक्त करनेवालों से (अश्वैः) महान् शीघ्रगामी किरणों और (स्वर्विदा) सुख को जानते हैं जिससे उस (नाभिना) मध्य के आकर्षण आदि बन्धन से (चर्षणिप्राः) विद्या आदि गुणों से मनुष्यों के प्रति व्याप्त होने वाला हुआ (ईयते) जाता है वैसे सत्य के युक्त कराने वाले बड़े गुणों से सुख देनेवाले आत्मा के आकर्षण से और वक्तृत्व से श्रोताओं को व्याप्त होते हुए जहां तहां जाइये ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन सूर्य्य के सदृश प्रकाशात्मा होकर अविद्याका विनाश कर और मनुष्यों को विद्या से प्रकाशित करते हैं और सत्य आचरण के प्रति आकर्षित करते हैं वे धन्य हैं ॥ ४ ॥

नू गृणानो गृणते प्रत्न राजन्निषः पिन्व वसुदेयाय पूर्वीः ।
अप ओषधीरविषा वनानि गा अर्वतो नॄनृचसे रिरीहि ॥५॥११॥

पदार्थ—हे (राजन्) विद्या और विनय से प्रकाशमान (प्रत्न) प्राचीन तथा दीर्घ आयु युक्त आप (गृणते) स्तुति करते हुए के लिये (गृणानः) स्तुति करते हुए (वसुदेयाय) द्रव्य देने योग्य जिससे उसके लिये (पूर्वीः) पूर्ण सुखवाले (इषः) अन्न आदिकों को (अपः) जलों को (ओषधीः) यव आदिकों को (अविषा) नहीं विद्यमान विष जिनमें उन (वनानि) जङ्गलों को (गाः) धेनु आदिकों को (अर्वतः) अश्व आदिकों को और (नॄन्) मनुष्य आदिकों को (ऋचसे) प्रशंसित कर्म्म के लिए (पिन्व) सेवन करिये और (नु) शीघ्र (रिरीहि) याचना करिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो राजा सत्यवादी है और सत्य बोलनेवालों को प्रसन्न करता है और विद्वानों से विद्या और विनय को प्राप्त होकर सदा ही प्रजा के सुख को चाहता है तथा यज्ञ और उत्तम सुगन्धित फल पुष्प से युक्त वृक्षों से और लता आदिकों से सब को सुखयुक्त करता हुआ, जल ओषधि वृक्ष गौ घोड़ा और मनुष्यों के सुख की वृद्धि के लिये परमेश्वर वा विद्वानों से याचना करता है वही इस लोक और परलोक के अनन्त आनन्द को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान्, सूर्य और राजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह उनतालीसवां सूक्त और ग्यारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ।
इन्द्रो देवता । १, ३ विराट् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।
४ भुरिक्पङ्क्तिः । ५ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले चालीसवें सूक्त का प्रारम्भ किया जाता है उसके प्रथम मन्त्र में राजा को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मदायाव स्य हरी वि मुचा सखाया ।
उत प्र गाय गण आ निषद्याथा यज्ञाय गृणते वयो धाः ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) राजन् जो (तुभ्यम्) आपके लिए (मदाय) हर्ष के अर्थ (सुतः) उत्पन्न किया गया सोमलता का रस है उसको (पिब) पीजिये उससे (अव, स्य) विनाश को अन्त करिये अर्थात् निश्चित रहिए और (उत) भी (हरी) संयुक्त घोड़ों के सदृश वर्त्तमान राजा और प्रजाजन (वि, मुचा) जो कि दुःख का त्याग करनेवाले (सखाया) मित्र होते हुए हैं उनकी (प्र, गाय) स्तुति करिये और (गणे) गणना करने योग्य विद्वानों के समूह में (निषद्य) स्थित होकर (अथा) इसके अनन्तर (गृणते) सत्य विद्या को धारण करनेवाले की नहीं प्रशंसा करनेवाले के लिए तथा (यज्ञाय) सत्य से संयुक्त होने वाले के लिए (वयः) कामना करने योग्य अवस्था को (आ) सब प्रकार से (धाः) धारण करिए ॥ १ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप सोमलता आदि बड़ी ओषधियों के रस का पान कर, रोग रहित होकर, सत्य और असत्य का निर्णय कर, सब मित्रों की स्तुति करके, विद्वानों की सभा में स्थित होकर और सत्य न्याय का प्रचार करके, दीर्घ ब्रह्मचर्य्य से विद्याग्रहण के लिए सम्पूर्ण बालिका और बालकों को प्रवृत्त कराके सम्पूर्ण प्रजाओं को अधिक अवस्था वाली करिये ॥ १ ॥

अब मनुष्यों को क्या खाना और क्या पीना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अस्य पिब यस्य जज्ञान इन्द्र मदाय क्रत्वे अपिबो विरप्शिन् ।
तमु ते गावो नर आपो अद्रिरिन्दुं समह्यन्पीतये समस्मै ॥२॥

पदार्थ—हे (विरप्शिन्) बड़े गुण से विशिष्ट (इन्द्र) राजन् (यस्य) जिस (अस्य) इसके (मदाय) आनन्द देने वाले (क्रत्वे) प्रज्ञान के लिए रस को (अपिबः) पान किया उस रस को आप फिर (जज्ञानः) प्रसिद्ध होते हुए (पिब) पान करिये और जिन (ते) आपके (गावः) किरणों के सदृश (नरः) मनुष्य और (आपः) जल और (अद्रिः) मेघ (इन्दुम्) जल को जैसे वैसे (तम्, उ) उसको ही प्राप्त होते हैं और (अस्मै) इस (पीतये) पान के लिए (सम्, अह्यन्) अच्छे प्रकार व्याप्त होते हुए आप (सम्) उत्तम प्रकार पान करिये ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जिस भोजन और पान से बुद्धि और बल बढ़े उसका भोजन और उसका पान करिये और उसका भोजन कराइए और पान कराइये तथा उसका भोजन और पान न करिए और न कराइए जिससे बुद्धिभ्रंश होवे ॥ २ ॥

फिर राजा और राजा के जन क्या करें इस विषय को कहते हैं—

समिद्धे अग्नौ सुत इन्द्र सोम आ त्वा वहन्तु हरयो वहिष्ठाः ।
त्वायता मनसा जोहवीमीन्द्रा याहि सुविताय महे नः ॥३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देनेवाले (वहिष्ठाः) अतिशय प्राप्त करानेवाले (हरयः) घोड़ों के सदृश मनुष्य (समिद्धे) उत्तम प्रकार प्रदीप्त (अग्नौ) अग्नि में और (सुते) उत्पन्न हुए (सोमे) बड़ी ओषधि के रस में (त्वा) आपको (आ, वहन्तु) सब प्रकार से प्राप्त करावें और हे (इन्द्र) दुःख दारिद्र्य के विदारनेवाले जिन (त्वायता) आपको प्राप्त हुए (मनसा) विज्ञान से मैं आपको (जोहवीमि) अत्यन्त पुकारता हूँ वह आप (महे) बड़ी (सुविताय) प्रेरणा के लिए (नः) हम लोगों को (आ, याहि) सब प्रकार से प्राप्त हूजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप उत्तम मनुष्यों के साथ वैद्यों की उत्तम प्रकार परीक्षा कर, उत्तम रसों और अन्नों को सम्पन्न कर, उसका भोजन कर, एकमत कर और प्रजा जनों की रक्षा करके अत्यन्त ऐश्वर्य्य को प्राप्त होकर हम लोगों को भी संयुक्त करिए ॥ ३ ॥

फिर राजा आदिकों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ याहि शश्वदुशता ययाथेन्द्र महा मनसा सोमपेयम् ।
उप ब्रह्माणि शृणव इमा नोऽथा ते यज्ञस्तन्वे३ वयो धात् ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त धन के देनेवाले जो (यज्ञः) सद्विद्या और व्यवहार को बढ़ानेवाला व्यवहार (नः) हम लोगों के और (ते) आप के (तन्वे) शरीर के लिए (वयः) जीवन को (धात्) धारण करता है उससे (अथा) इसके अनन्तर (इमा) इन (ब्रह्माणि) धनों को वा वेदों को आप (महा) बड़े (मनसा) विज्ञानयुक्त चित्त से (उशता) कामना करते हुए विद्वान् के साथ (शृणवः) सुनिए और (शश्वत्) निरन्तर (ययाथ) प्राप्त हूजिए तथा (सोमपेयम्) पीने योग्य सोमलता के रस को पीने के लिए (उप, आ, याहि) समीप प्राप्त हूजिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् राजा आदि जनो ! आप लोग विद्वानों के साथ मेल कर, बुद्धि और बल के बढ़ानेवाले आहार और विहार को कर, परस्पर विचार करके ब्रह्मचर्य्य आदि से अवस्था को बढ़ावें जिससे सब महाशय प्राप्त होवें ॥ ४ ॥

यदिन्द्र दिवि पार्ये यदृधग्यद्वा स्वे सदने यत्र वासि ।
अतो नो यज्ञमवसे नियुत्वान्त्सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ॥५॥१२॥

पदार्थ—हे (**गिर्वणः**) उत्तम शिक्षित वाणी से स्तुति किए गए (**इन्द्र**) विद्वन् (**यत्**) जो (**पार्थ्ये**) पालन करने योग्य राज्य मे (**दिवि**) कामना करने योग्य मे (**यत्**) जो (**ऋधक्**) यथार्थ और (**यत्**) जो (**वा**) वा (**स्वे**) अपने (**सदने**) स्थान मे (**यत्र**) जहाँ (**वा**) वा आप (**असि**) हो (**अतः**) इस कारण से (**नः**) हम लोगो के (**अवसे**) रक्षण आदि के लिए (**नियुत्वान्**) नियत करनेवाले ईश्वर के सदृश (**सजोषा.**) तुल्य प्रीति के सेवन करनेवाले हुए (**मरुद्भिः**) उत्तम मनुष्यो के साथ (**यज्ञम्**) सत्कार करने योग्य न्याय व्यवहार की (**पाहि**) रक्षा कीजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आपको चाहिए कि सदा ही राज्य का उत्तम प्रकार रक्षण, सत्य का प्रचार और अपने सदृश सब का ज्ञान और ईश्वर के सदृश पक्षपात का त्याग करके महाशय धार्मिक श्रेष्ठ जनो के साथ प्रजा का पालन निरन्तर करें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, सोम ओशधि, राजा और प्रजा के कृत्य का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह चालीसवां सूक्त और बारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्यैकचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि । इन्द्रो देवता । १ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३, ४ त्रिष्टुप् छन्द । धैवतः स्वर । ५ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम. स्वर. ।

अब पांच ऋचावाले इकतालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

अहेळमान उप याहि यज्ञं तुभ्यं पवन्त इन्दवः सुतासः ।
गावो न वज्रिन्त्स्वमोको अच्छेन्द्रा गहि प्रथमो यज्ञियानाम् ॥१॥

पदार्थ—हे (**वज्रिन्**) शस्त्र और अस्त्र को धारण करने और (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले (**यज्ञियानाम्**) यज्ञ का पालन करने के योग्यो मे (**प्रथम**) पहिला (**अहेळमान**) सत्कार किया गया जिस (**यज्ञम्**) आहार विहार नामक यज्ञ को (**तुभ्यम्**) आपके लिये और (**सुतास**) उत्पन्न किये गये (**इन्दव**) सोमलता आदि के जल (**पवन्ते**) पवित्र करते हैं उसके (**उप, याहि**) समीप आइये और (**गाव**) गौवें (**न**) जैसे (**स्वम्**) अपने (**ओक**) निवास स्थान को वैसे (**अच्छ, आ, गहि**) अच्छे प्रकार सब ओर से प्राप्त हूजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! प्रजाजनो से उत्तम गुणो के योग के कारण सब से सत्कार किये गये राज्य के पालन नामक व्यवहार को यथावत् प्राप्त हूजिये और जैसे गौयें अपने बछड़े और स्थानो को प्राप्त होती हैं वैसे प्रजा के पालन के लिये विनय को प्राप्त हूजिये ॥ १ ॥

फिर वे क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

या ते काकुत्सुकृता या वरिष्ठा यया शश्वत्पिबसि मध्व ऊर्मिम् ।
तया पाहि प्र ते अध्वर्युरस्थात्सं ते वज्रो वर्त्ततामिन्द्र गव्युः ॥२॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) धर्म्म के धारण करनेवाले मनुष्यो के स्वामिन् (**ते**) आपकी (**या**) जो (**सुकृता**) सत्य भाषण आदि उत्तम क्रिया से युक्त और (**या**) जो (**वरिष्ठा**) अतिशय उत्तम (**काकुत्**) उत्तम प्रकार शिक्षा की गई वाणी (**यया**) जिससे आप (**ऊर्मिम्**) तरग को जैसे वैसे (**मध्व**) मधुर आदि गुणो से युक्त के रस को (**शश्वत्**) निरन्तर (**पिबसि**) पान करते हो और जिससे (**ते**) आपका (**अध्वर्यु**) अपने अहिंसारूप व्यवहार की कामना करते हुए अच्छे प्रकार से (**प्र, अस्थात्**) स्थित होते हो और जिससे (**ते**) आपका (**वज्र**) शस्त्र और अस्त्रो का समूह (**सम्, वर्त्तताम्**) उत्तम प्रकार वर्त्तमान होवे (**तया**) उससे (**गव्यु**) पृथ्वीराज्य की इच्छा करनेवाले हुए सम्पूर्ण प्रजाओ का (**पाहि**) पालन करिये ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । राजा और राजा के सभासद् उत्तम प्रकार सत्कार की विद्या से युक्त सत्यभाषण से उज्ज्वलित वाणियो को प्राप्त होकर उनसे प्रजापालन आदि व्यवहारो को निरन्तर सिद्ध करें ॥ २ ॥

फिर वे किसके लिए क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

एष द्रप्सो वृषभो विश्वरूप इन्द्राय वृष्णे समकारि सोमः ।
एतं पिब हरिवः स्थातरुग्र यस्येशिषे प्रदिवि यस्ते अन्नम् ॥३॥

पदार्थ—हे (**हरिव**) अच्छे मनुष्यो से युक्त (**स्थात**) स्थित होनेवाले (**उग्र**) तेजस्विन् राजन् (**यस्य**) जिस (**ते**) आपका (**एषः**) यह (**द्रप्सः**) दुष्टो का विमोह करना (**वृषभ.**) सुख का वर्षानेवाला (**विश्वरूप**) अनेक प्रकार के स्वरूपवाला (**सोम**) बड़ी २ ओषधियो से उत्पन्न हुआ रस (**वृष्णे**) बल आदि के गुण के करने और (**इन्द्राय**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य को प्राप्त करानेवाले के लिए (**सम्, अकारि**) किया जाता है (**य**) जो (**प्रदिवि**) अच्छे प्रकार सुन्दर व्यवहार मे (**अन्नम्**) भोजन करने योग्य पदार्थ को प्राप्त कराता (**एतम्**) इस को आप (**पिब**) पान करिये और इसके (**ईशिषे**) स्वामी हूजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिस राजा के अनेक प्रकार के उत्तम प्रबन्ध, उत्तम ओषधियाँ, उत्तम सेना और धार्मिक विद्वान् अधिकारी हैं वही सम्पूर्ण प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सुतः सोमो असुतादिन्द्र वस्यानयं श्रेयाञ्चिकितुषे रणाय ।
एतं तितिर्व उप याहि यज्ञं तेन विश्वास्तविषीरा पृणस्व ॥४॥

पदार्थ—हे (**तितिर्व.**) शत्रुओ के बल को उल्लङ्घन करनेवाले (**इन्द्र**) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त जो (**अयम्**) यह (**चिकितुषे**) विचार करने को इष्ट (**रणाय**) संग्राम के लिए (**श्रेयान्**) अतिशय कल्याण को प्राप्त (**वस्यान्**) अतिशय वास करनेवाले (**असुतात्**) नहीं उत्पन्न किये गये पदार्थों से (**सोमः**) बड़े ऐश्वर्य्यों का योग (**सुत**) उत्पन्न किया गया है (**एतम्**) इस (**यज्ञम्**) उत्तम प्रकार प्राप्त होने योग्य के आप (**उप, याहि**) समीप प्राप्त हूजिये (**तेन**) उससे (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**तविषी**) बलयुक्त सेनाओ को (**आ, पृणस्व**) सब प्रकार से सुखी करिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो राजा छोटे भी संग्राम के लिए बड़ी सामग्री को इकट्ठी करते हैं वे शत्रुओ को जीतते हुए सम्पूर्ण प्रजाओ को निरन्तर सुखी करने के योग्य हैं ॥ ४ ॥

फिर वह कैसा हुआ क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ह्वयामसि त्वेन्द्र याह्यर्वाङरं ते सोमस्तन्वे भवाति ।
शतक्रतो मादयस्वा सुतेषु प्रास्माँ अव पृतनासु प्र विक्षु ॥५॥१३॥

पदार्थ—हे (**शतक्रतो**) असंख्य बुद्धियुक्त तथा उत्तम कर्म्म करने और (**इन्द्र**) सब प्रकार से रक्षा करनेवाले (**ते**) आपके (**तन्वे**) शरीर के लिए जो (**सोम**) बड़ी ओषधि आदि का रस (**अर्वाङ्**) नीचे चलनेवाला (**प्र, भवाति**) प्रभाव को प्राप्त होता है उसको आप (**याहि**) प्राप्त हूजिये और जिन (**त्वा**) आपको हम लोग (**आ, ह्वयामसि**) पुकारते हैं वह आप (**सुतेषु**) उत्पन्न हुए ऐश्वर्यों मे (**अस्मान्**) हम लोगो का (**प्र, अव**) उत्तम प्रकार रक्षा करो और (**पृतनासु**) मनुष्यो वा सेनाओ मे और (**विक्षु**) प्रजाओ मे (**अरम्**) अच्छे प्रकार (**मादयस्व**) आनन्द करो वा आनन्द कराओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो राजा अपने ऐश्वर्य से सम्पूर्ण प्रजाओ की न्याय से रक्षा करता है वह प्रशंसित, अधिक अवस्था वाला और आनन्दयुक्त वा आनन्द करानेवाला भी होता है ॥ ५ ॥

इस सूक्त मे इन्द्र, राजा और सोम के रस का गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह इकतालीसवां सूक्त और तेरहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ चतुर्ऋचस्य द्विचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ स्वराडुष्णिक्छन्दः । ऋषभ स्वर । २ निचृदनुष्टुप् । ३ अनुष्टुप् । ४ भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब चार ऋचावाले बयालीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा और प्रजाजन परस्पर कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
अरंगमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरे ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वान् राजन् आप (**जग्मये**) विज्ञान की अधिकता के लिये (**अपश्चादध्वने**) उत्तम व्यवहारो मे आगे चलने तथा (**अरङ्गमाय**) विद्या के पार जाने और (**पिपीषते**) पान करने की इच्छा करनेवाले (**विदुषे**) यथार्थवक्ता विद्वान् के लिये और (**अस्मै**) इस (**नरे**) अग्रणी मनुष्य के लिये (**विश्वानि**) सम्पूर्ण उत्तम वस्तुओ को (**भर**) धारण करिये और यह भी आपके लिये इनको (**प्रति**) धारण करे ॥ १ ॥

भावार्थ—जो राजा विद्वानो के लिये सम्पूर्ण धन वा सामर्थ्य को धारण करता है और जो विद्वान् राजा आदि के हित के लिये प्रयत्न करते हैं वे सर्वदा उन्नत होते हैं ॥ १ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् ।
अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो आप लोग (**सुतेभि**) उत्पन्न किये गये (**सोमेभिः**) ऐश्वर्यों वा ओषधियो के समूहो से (**इन्दुभिः**) आनन्दकारक जलो से तथा (**अमत्रेभिः**) उत्तम पात्रो से (**सोमपातमम्**) अतिशय सोमरस के पीनेवाले (**ऋजीषिणम्**) सरल धार्मिक जनो की इच्छा करने के स्वभाववाले (**एनम्**) इस (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्य के

देनेवाले राजा की (ईम्) सब ओर से (आ) सब प्रकार से (प्रत्येतन) प्रतीति करिये ॥ २ ॥

भावार्थ—हे राजा और प्रजाजनो ! आप लोग यथार्थवक्ता तथा राजा आदि विद्वानों में विश्वास करिये और वे आप लोगों में विश्वास करें इस प्रकार दोनों ओर आनन्द बढ़े ॥ २ ॥

फिर परस्पर क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यदीं सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ ।

वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तन्तमिदेषते ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो जो जो (विश्वस्य) सम्पूर्ण राज्य का (मेधिरः) मेल करने और (धृषत्) दुष्टों का दबानेवाला (आ, ईषते) प्राप्त होता और राजा के व्यवहार को (वेदा) जानता है (तन्तम्, इत्) उसी उसको (यदि) जो (सुतेभिः) उत्पन्न किये (इन्दुभिः) आनन्दकारक (सोमेभिः) ऐश्वर्यों से आप लोग (प्रतिभूषथ) सुशोभित कीजिये तो वह भी आप लोगों को उत्तम प्रकार शोभित करे ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो उत्तम उत्तम मनुष्यों का सत्कार करते हैं वे सबको श्रेष्ठ गुणों से शोभित करते हैं ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अस्माअस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।

कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्परत् ॥ ४ ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे (अध्वर्यो) नहीं हिंसा करनेवाले आप (अस्माअस्मै) इसके लिये (अन्धसः) अन्न आदि के (समस्य) तुल्य (जेन्यस्य) जीतने योग्य (शर्धतः) बल के और (अभिशस्तेः) चारों ओर से प्रशंसित (कुवित्) महान् (सुतम्) उत्पन्न किये गये को (प्र, भरा) धारण करिये इससे (इत्) ही हम लोगों का आप (अवस्परत्) पालन करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् सब के लिये सम्पूर्ण उत्तम पदार्थों को समर्पित करते हैं और जितने सामर्थ्य का धारण करते हैं उतना सब ओरों के रक्षण के लिये करते हैं उन सब को भाग्यशाली गिनना चाहिये ॥ ४ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा, विद्वान् और प्रजा के कृत्य का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह बयालीसवां सूक्त और चौदहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ चतुर्ऋचस्य त्रिचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, २, ३, ४ उष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब चार ऋचावाले तेंतालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयः ।

अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य प्राप्त करानेवाले (सः) वह (अयम्) यह (सोमः) बुद्धि और बल का बढ़ानेवाला रस (ते) आपके लिये (सुतः) उत्पन्न किया गया है उसका आप (पिब) पान करिये और (शम्बरम्) मेघ को सूर्य्य जैसे वैसे (मदे) आनन्दकारक (दिवोदासाय) विज्ञान के देनेवाले के लिये दुःख के देनेवाले दुष्ट का (रन्धयः) नाश करिये और (यस्य) जिसकी कुकर्म के अनुष्ठान में इच्छा होवे (त्यत्) उसका नाश करिये ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजा आदि जनो ! आप धार्मिक जनों को पीड़ा देनेवाले मनुष्यों को यथावत् दण्ड दीजिये और वैद्यकशास्त्र में कही हुई रीति से बड़ी ओषधियों के रस को निकालकर उसका सेवन कर रोगरहित होकर सम्पूर्ण प्रजाओं को रोगरहित करिये ॥ १ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यस्य तीव्रसुतं मदं मध्यमन्तं च रक्षसे ।

अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) बल के देनेवाले (यस्य) जिसके (तीव्रसुतम्) तेजस्वियों से कर्म्मों द्वारा उत्पन्न किये (मदम्) आनन्द के देनेवाले (मध्यम्) मध्य में हुए (अन्तम्) और अन्त में वर्त्तमान की (च) भी (रक्षसे) रक्षा करते हो (सः) वह (अयम्) यह (सोमः) उत्तम ओषधियों का रस (ते) आपके लिये (सुतः) उत्पन्न किया उसका आप (पिब) पान करिये ॥ २ ॥

भावार्थ—हे विद्यायुक्त राजन् ! आप वैसी ही ओषधियों को प्रकट करिये जिस से सब का सुख बढ़े ॥ २ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यस्य गा अन्तरश्मनो मदे दृळ्हा अवासृजः ।

अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सम्पूर्ण रोगों के नाश करनेवाले (यस्य) जिस (अश्मनः) मेघ के (अन्तः) मध्य में (दृळ्हाः) दृढ़ (गाः) किरणों को (मदे) आनन्द के लिये (अवासृजः) उत्पन्न करता है उसके सम्बन्ध से (सः) वह (अयम्) यह (सोमः) रोगों को नाश करनेवाला ओषधियों का रस (ते) आपके लिये (सुतः) निर्म्माण किया गया उसको आप (पिब) पीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जिसके परमाणु मेघमण्डल में भी वर्त्तमान हैं ओषधियों से उसका निर्म्माण वैद्यक रीति से कर और उसका सेवन करके रोगरहित हूजिये ॥ ३ ॥

फिर वे क्या करें इस विषय को कहते हैं—

यस्य मन्दानो अन्धसो माघोनं दधिषे शवः ।

अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ४ ॥ १५ ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) वैद्यराज ! (यस्य) जिस (अन्धसः) अन्न आदि की (मन्दानः) स्तुति करते हुए आप (माघोनम्) बहुधनयुक्त की और (शवः) बल का हेतु उसको (दधिषे) धारण करते हो (सः) वह (अयम्) यह (सोमः) ऐश्वर्य करनेवाला रस (ते) आपके लिये (सुतः) उत्पन्न किया गया उसको आप (पिब) पीजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिससे बल, बुद्धि और सुख बढ़े उसी रस और अन्न का निरंतर सेवन करो ॥ ४ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, सोम और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह ऋग्वेद के छठे मण्डल में तृतीय अनुवाक, तेंतालीसवां सूक्त और चौथे अष्टक में सातवें अध्याय में पन्द्रहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ चतुर्विंशत्यृचस्य चतुश्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ३, ४ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । २, ५ स्वराडुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । ६ आसुरी पङ्क्तिः । ७ भुरिक्पङ्क्तिः । ८ निचृत्पङ्क्तिः । ९, १२, १६ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । १०, ११, १३, २२ विराट्त्रिष्टुप् । १४, १५, १७, १८, २० २४ निचृत्त्रिष्टुप् । १९, २१, २३ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब चौबीस ऋचावाले चवालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा आदि को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

यो रयिवो रयिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।

सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (स्वधापते) अन्न के स्वामिन् (रयिवः) अच्छे धनोंवाले (इन्द्र) धन के धारण करनेवाले (यः) जो (रयिन्तमः) अत्यन्त धनाढ्य और (यः) जो (द्युम्नैः) धनों वा यशों से (द्युम्नवत्तमः) अत्यन्त यशोधन युक्त (सुतः) निर्म्माण किया गया (सोमः) ऐश्वर्य्य (मदः) आनन्द देनेवाला (ते) आपका (अस्ति) है (सः) वह आपसे सत्कार करके स्वीकार करने योग्य है ॥ १ ॥

भावार्थ—हे राजा आदि जनो ! आप लोगों को चाहिये कि अपने राज्य में बहुत धनाढ्य विद्वानों का सत्कार करके रक्षा करें जिससे निरन्तर लक्ष्मी बढ़े ॥ १ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यः शग्मस्तुविशग्म ते रायो दामा मतीनाम् ।

सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (तुविशग्म) अनेक प्रकार के सुखोंवाले (स्वधापते) अन्न आदिकों के स्वामिन् (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त (यः) जो (ते) आपका (शग्मः) सुखयुक्त (रायः) धनों को (मतीनाम्) विचारशीलों को (दामा) देने योग्य (सुतः) उत्पन्न किया गया (मदः) आनन्दकारक (सोमः) ऐश्वर्य्यों का समूह (अस्ति) है (सः) वह (ते) आपके धर्म्म की कीर्ति करनेवाला हो ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य धन आदि ऐश्वर्य्य से धर्म्म और विद्या की उन्नति करते हैं वे ही बहुत सुख और धनवाले होते हैं ॥ २ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र से कहते हैं—

येन वृद्धो न शवसा तुरो न स्वाभिरूतिभिः ।

सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (स्वधापते) अपने पदार्थों के धारण करनेवाले (इन्द्र) राजन् आप (येन) जिस ऐश्वर्य से और (शवसा) बल से (वृद्धः) वृद्ध (न) जैसे वैसे वा (तुरः) हिंसक (न) जैसे वैसे (स्वाभिः) अपनी (ऊतिभिः) रक्षाओं से (मदः) आनन्द देनेवाला (सः) वह (सोमः) ओषधियों का रस (सुतः) उत्पन्न किया गया (ते) आपका (अस्ति) है उसकी आप वृद्धि कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस पुरुषार्थ से विद्वान् होकर युवा भी वृद्ध होते हैं उसको निरन्तर संचित कीजिये अर्थात् संग्रह कीजिये ॥ ३ ॥

फिर मनुष्य को किसकी स्तुति करनी चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स्वर्युवो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।

इन्द्रं विश्वासाहं नरं मंहिष्ठं विश्वचर्षणिम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो मैं (वः) आप लोगों और (त्यम्) उसको (उ) वितर्कपूर्वक (अप्रहणम्) अन्याय से नहीं किसी को मारनेवाले (शवसः) सेना के (पतिम्) स्वामी (विश्वासाहम्) संपूर्ण शत्रुओं की सेनाओं को सहनेवाले (मंहिष्ठम्) अत्यन्त महान् और (विश्वचर्षणिम्) धार्मिक मनुष्य काम देखनेवाले जिसके उस (नरम्) अग्रणी (इन्द्रम्) दुष्टाचार शत्रुओं के विनाशक मनुष्य की (गृणीषे) प्रशंसा करता हूँ जिसकी आप स्तुति करते हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोगों को उसकी प्रशंसा करनी चाहिये जो नित्य न्यायकारी, सबको सहनेवाला, महाशय, युद्ध आदि राजकर्म्मों मे निपुण, दुष्टों का विदारक, दृढ उत्साही, मनुष्य होवे ॥ ४ ॥

फिर मनुष्य को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यं वर्धयन्तीद्गिरः पतिं तुरस्य राधसः ।

तमिन्न्वस्य रोदसी देवी शुष्मं सपर्यतः ॥ ५ ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यम्) जिस (तुरस्य) दु:ख के नाश करनेवाले (राधसः) धन के (पतिम्) स्वामी ऐश्वर्य्य मे युक्त को (इत्) ही (गिरः) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियां (वर्धयन्ति) बढ़ाती है और (अस्य) इसके (देवी) सुन्दर प्रकाशमान (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी (शुष्मम्) बल का (नु) शीघ्र (सपर्यतः) सेवन करते हैं (तम्, इत्) उसी की आप लोग वृद्धि करके सेवा करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य श्रेष्ठ गुण कर्म्म और स्वभावो मे वृद्धि को प्राप्त जन की वृद्धि करते हैं वे पञ्चतत्वमय राज्य का भोग करते है ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तद्व उक्थस्य बर्हणेन्द्रायोपस्तृणीषणि ।

विपो न यस्योतयो वि यद्रोहन्ति सक्षितः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यस्य) जिसके (सक्षितः) तुल्य निवास और (ऊतयः) रक्षण आदि कर्म (विपः) बुद्धिमान् जन (न) जैसे वैसे (यत्) जिसको (वि) विशेष करके (रोहन्ति) जमाते हैं (तत्) उसको (वः) आप लोगो के (उक्थस्य) प्रशंसित कर्म्म के (बर्हणा) बढ़ाने से (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के लिये (उपस्तृणीषणि) ढापने योग्य को हम लोग बढ़ावें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है । हे मनुष्यो ! जो विद्वानो के सदृश प्रजा के रक्षण से ऐश्वर्य्य को बढाते हैं वे सब प्रकार से बढते हैं ॥ ६ ॥

फिर राजा क्या करके क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अविदद्दक्षं मित्रो नवीयान्पपानो देवेभ्यो वस्यो अचैत् ।

ससवान्त्स्तौलाभिर्धौतरीभिरुरुष्या पायुरभवत्सखिभ्यः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे राजन् जो (नवीयान्) अतिशय थोड़ी अवस्थावाला (पपानः) पालन करता हुआ (मित्रः) सब का मित्र (ससवान्) अच्छे अन्नवाला (पायुः) रक्षक हुआ (स्तौलाभिः) स्थूल मे हुई (धौतरीभिः) शत्रुओं को कम्पानेवाली सेनाओ से (देवेभ्यः) विद्वानों के और (सखिभ्यः) मित्रो के लिये (वस्यः) अत्यन्त वास का कारण (अचैत्) बटोर और (उरुष्या) रक्षा करे और सबका मित्र (अभवत्) हो वह अतुल (दक्षम्) बल को (अविदत्) पाता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सब का मित्र, युवा, धन धान्य आदि से युक्त, सब का रक्षक, बडी सेनावाला, विद्वान् राजा होवे वही धार्म्मिको के रक्षण के लिये सत्य बल को प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

अब मनुष्यों को कैसा वर्त्ताव करके क्या प्राप्त करके क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते है—

ऋतस्य पथि वेधा अपायि श्रिये मनांसि देवासो अक्रन् ।

दधानो नाम महो वचोभिर्वपुर्दृशये वेन्यो व्यावः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (वेधाः) बुद्धिमान् (ऋतस्य) सत्य के (पथि) मार्ग मे (श्रिये) लक्ष्मी के लिये (अपायि) रक्षा करता है और (देवासः) विद्वान् जन (मनांसि) मनो को (अक्रन्) करते है और (वचोभिः) वचनो से (महः) कीर्ति के योग से बड़ी (नाम) प्रसिद्धि को (दृशये) दिखाने के लिये (वपुः) अच्छे रूपवाले शरीर को (दधानः) धारण करता (वेन्यः) सुन्दर होता और (वि, आवः) रक्षा करता है वैसे आप लोग भी यत्न करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । मनुष्यों को चाहिये कि सर्वदा धर्ममार्ग मे चलकर धन की उन्नति के लिए मनो को निश्चित करें और धर्म से प्राप्त हुए धन से अनाथों का पालन, विद्या और धन की वृद्धि तथा औषधदान और मार्गशुद्धि करके सब दिशाओं में प्रशंसा विस्तारें ॥ ८ ॥

अब राजा और प्रजाजन परस्पर का हित कैसे करें इस विषय को कहते हैं—

द्युम्नतमं दक्षं धेह्यस्मे सेधा जनानां पूर्वीररातीः ।

वर्षीयो वयः कृणुहि शचीभिर्धनस्य सातावस्माँ अविड्ढि ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे राजन् आप (शचीभिः) बुद्धियों वा कर्मों वा प्रजाओ के साथ (अस्मे) हम लोगो मे (द्युम्नतमम्) प्रशंसित अत्यन्त विद्या के प्रकाश से युक्त (दक्षम्) बल को (धेहि) धारण करिये और कार्य्यों को (सेधा) सिद्ध कीजिये और (जनानाम्) मनुष्यों की (पूर्वीः) प्राचीन (अरातीः) नहीं दान करने की क्रियाओ को दूर कीजिये तथा (वर्षीयः) अतिशय श्रेष्ठ (वयः) सुन्दर अवस्था को (कृणुहि) करिये और (धनस्य) धन के (सातौ) संविभाग मे (अस्मान्) हम लोगो का (अविड्ढि) प्रवेश कराइये ॥ ९ ॥

भावार्थ—प्रजाजनो को राजा की ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये कि हे राजन् ! आप जो हम लोगों का बलयुक्त, कृपणता से रहित और ब्रह्मचर्य्य आदि से दीर्घ अवस्थावाले पुरुषार्थी और सब प्रकार से रक्षा करके भयरहित करके धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष के साधन मे प्रवेश कराइये तो आपकी हम लोग सर्वदा वृद्धि करें ॥ ९ ॥

अब राजा और प्रजाजन परस्पर कहां प्रेरणा करें इस विषय को कहते हैं—

इन्द्र तुभ्यमिन्मघवन्नभूम वयं दात्रे हरिवो मा वि वेनः ।

नकिरापिर्ददृशे मर्त्यत्रा किमङ्ग रध्रचोदनं त्वाहुः ॥ १० ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे (अङ्ग) अंग के तुल्य वर्त्तमान (हरिवः) प्रशंसित मनुष्यों से और (मघवन्) बहुत धनो से युक्त (इन्द्र) पूर्णविद्यावाले राजन् (दात्रे) दान करने के स्वभाववाले (तुभ्यम्) आपके लिए (इत्) ही देनेवाले (वयम्) हम लोग (अभूम) होवें आप हम लोगो की (मा) मत (वि, वेनः) कामना करिये और (आपिः) व्याप्त होनेवाला हुआ मैं आपको विरुद्ध दृष्टि से (नकिः) नहीं (ददृशे) देखता हूँ तथा (मर्त्यत्रा) मनुष्यो मे आप (किम्) किस की इच्छा करते हो जिससे (रध्रचोदनम्) धन की प्राप्ति के लिये प्रेरणा करनेवाले आपको विद्वान् जन (आहुः) कहते हैं इससे हम लोग आपका आश्रयण करें ॥ १० ॥

भावार्थ—हे राजा और प्रजाजनो ! जैसे आप लोग आपस के लिए धन आदि से और सुख दान से सबको श्रेष्ठ कर्म्मों मे प्रेरणा करिये वैसे मिल के सत्य न्यायपालन का अनुष्ठान करिये ॥ १० ॥

मनुष्यों को क्या नहीं करके क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

मा जस्वने वृषभ नो ररीथा मा ते रेवतः सख्ये रिषाम ।

पूर्वीष्ट इन्द्र निःषिधो जनेषु जह्यसुष्वीन्प्र वृहापृणतः ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (वृषभ) बलयुक्त (इन्द्र) दु:खो के नाश करनेवाले राजन् आप (जस्वने) अन्याय से दूसरे के धन को अन्यत्र प्राप्त करानेवाले दुष्ट राजा के लिए (नः) हम लोगो का (मा) मत (ररीथाः) दीजिये और हम लोग (ते) आप (रेवतः) बहुत धनवाले के (सख्ये) मित्रपने के लिए (मा) नहीं (रिषाम) क्रुद्ध होवें और जो (ते) आपके (जनेषु) मनुष्यो मे (पूर्वीः) प्राचीन (निःषिधः) सुखकारक क्रियायें है उनको दीजिए (असुष्वीन्) उत्पत्ति के नहीं करनेवालो का (जहि) त्याग करिये और (अपृणतः) दु:ख के देनेवाले दुर्जन से हम लोगो का (प्र, वृह) पृथक् करिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो हम लोगों को पीडा देवें उनके आधीन मत करिये और कल्याण मे क्रियाओ को प्राप्त कराइये वैसे हम लोग भी इस सब को आपके लिए करें इस प्रकार मित्र होकर अभीष्ट मनोरथों को सब हम लोग प्राप्त होवें ॥ ११ ॥

फिर वह राजा किसके सदृश क्या करे इस विषय को कहते हैं—

उदभ्राणीव स्तनयन्नियर्तीन्द्रो राधांस्यश्व्यानि गव्या ।

त्वमसि प्रदिवः कारुधाया मा त्वादामान आ दभन्मघोनः ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे राजन् जिससे (स्तनयन्) शब्द करता हुआ (कारुधायाः) विद्वान् शिल्पीजनो का धारण करनेवाला (इन्द्रः) बिजुली के सदृश वा (अभ्राणीव) वायु के दलो के सदृश (अश्व्यानि) घोडों मे हितकारक (गव्या) गौओं मे हितकारक (राधांसि) सम्पूर्ण सुखों के करनेवाले धनो को (उत्) भी (इयर्त्ति) प्राप्त होता है और (प्रदिवः) अत्यन्त सुन्दर (मघोनः) धन से युक्त जनो को वह ग्रहण करनेवाला है और (अदामानः) अदाता जन (त्वा) आपको (मा) मेरी (आ, दभन्) हिंसा करें और धन से युक्त जनो की मत हिंसा करें जैसे (त्वम्) आप जो कर चुके (असि) हैं तो आप में कौन नम्र होता है ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है । जिस की मेघो की घटाओं के समान बलवती सेना, बिजुली के समान पराक्रमयुक्त वर्त्तमान है और जिससे सब कृषी संग्रह किये जाते हैं वही धन धान्य राज्य और पशु आदि पदार्थों को प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

कौन इस पृथिवी पर राजा होने के योग्य है इस विषय को कहते हैं—

अध्वर्यो वीर प्र महे सुतानामिन्द्राय भर स ह्यस्य राजा ।

यः पूर्व्याभिरुत नूतनाभिर्गीर्भिर्वावृधे गृणतामृषीणाम् ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे (अध्वर्यो) नहीं हिंसा करनेवाले (वीर) दुष्टों की हिंसा करने वाले (यः) जो (राजा) राजा (गृणताम्) प्रशंसा करनेवाले (ऋचीषाणाम्) मन्त्रों के अर्थ जाननेवालो की (पूर्व्येभिः) पूर्व जनो से सेवित (उत) और (नूतनाभिः) नवीन वर्त्तमान (गीर्भिः) वाणियों से (वावृधे) वृद्धि को प्राप्त होता है (स., इत्) वही (अस्य) इस राज्य का राजा होने को योग्य हो वैसे आप (सुतानाम्) उत्पन्न हुए पदार्थों के (महे) बड़े (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के लिए इन को (प्र, भर) धारण करिये ॥ १३ ॥

भावार्थ—वही राज्य पालन करने और बढ़ाने को समर्थ होता है जो यथार्थवक्ताओं के सहित, उत्तम प्रकार शिक्षित और न्यायेश होवे और वही विद्वान् होता है जो शिष्ट जनों से नित्य उपदेश सुनता है ॥ १३ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अस्य मदे पुरु वर्पांसि विद्वानिन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघान ।
तमु प्र होषि मधुमन्तमस्मै सोमं वीराय शिप्रिणे पिबध्यै ॥१४॥

पदार्थ—जो (विद्वान्) विद्यायुक्त जैसे (इन्द्रः) सूर्य्य (वृत्राणि) मेघों का (जघान) नाश करता है वैसे (अस्य) इस ओषधियों के समूह के (मदे) आनन्दकारक रस में (अप्रती) नहीं विश्वास किये गये (पुरु) बहुत (वर्पांसि) सुन्दर रूपों का निर्माण करके स्वीकार करे (तम्) उसके प्रति (उ) भी (मधुमन्तम्) मधुर आदि गुणों से युक्त द्रव्य के साथ (सोमम्) बड़ी ओषधियों के रस को (अस्मै) इस (शिप्रिणे) उत्तम ठुड्डी और नासिका वाले (वीराय) भयरहित जन के लिए (पिबध्यै) पीने को आप (प्र, होषि) देते हो इससे सत्कार करने योग्य हो ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सूर्य के सदृश न्याय और विजय के प्रकाशक, युक्त आहार और विहार वाले और महौषधियों के रस को पीने वाले हैं वे अनेक प्रकार के पदार्थों को प्राप्त होकर इस जगत् में आनन्द करते हैं ॥ १४ ॥

पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं हन्ता वृत्रं वज्रेण मन्दसानः ।
गन्ता यज्ञं परावतश्चिदच्छा वसुर्धीनामविता कारुधायाः ॥१५॥१८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्य का देने वाला (सुतम्) उत्पन्न हुए (सोमम्) ओषधिरस को (पाता) पान करने वाला (वज्रेण) शस्त्र और अस्त्रो के समूह से (मन्दसानः) कामना करता हुआ (वृत्रम्) मेघ को सूर्य्य जैसे वैसे शत्रुओं को (हन्ता) मारने (यज्ञम्) श्रेष्ठ क्रियास्वरूप व्यवहार को (गन्ता) प्राप्त होने (परावतः) दूर देश से (चित्) भी (कारुधायाः) शिल्पी जनों का धारण करने वाला और (वसुः) बसाने वाला होता हुआ (धीनाम्) उत्तम कर्मों की (अच्छा) अच्छे प्रकार (अविता) रक्षा करने वाला है वह अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त (अस्तु) हो उसका आप लोग निरन्तर सत्कार करो ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो राजा आदि मनुष्य वैद्यकशास्त्र की रीति से उत्पन्न किये ओषधियों के रस को पीते हैं तथा शस्त्र और अस्त्र की विद्या से दुष्टों का निवारण कर के न्यायप्रचार नामक कर्म्म का प्रचार करके सत् कर्म के करने और शिल्पविद्या के जानने वालों का सङ्ग्रह करके आलस्य का त्याग करके श्रेष्ठ कर्मों में प्रवृत्त होते वे ही यहां प्रशंसनीय होते हैं ॥ १५ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

इदं त्यत्पात्रमिन्द्रपानमिन्द्रस्य प्रियममृतमपायि ।
मत्सद्यथा सौमनसाय देवं व्यस्मद्द्वेषो युयवद्व्यंहः ॥१६॥

पदार्थ—हे विद्वन् आप (सौमनसाय) अच्छे मन के होने के लिए (यथा) जैसे (इदम्) इस (त्यत्) उस (इन्द्रपानम्) ओषधियो के रस वा ऐश्वर्य के पान वा रक्षण को (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के स्वामी जीव के (प्रियम्) प्रीतिकारक (अमृतम्) अच्छे प्रकार स्वादिष्ट (पात्रम्) जिससे पान करता वा रक्षा करता है उसको (अपायि) पीता है । और जिससे (मत्सत्) आनन्दित होता है तथा (देवम्) श्रेष्ठ गुण कर्म युक्त वस्तु का पान करता है और (अस्मत्) हम लोगों से (द्वेषः) द्वेष आदि से युक्त कर्म वा शत्रु को (वि, युयवत्) वियुक्त करता है और हम लोगों से (अंहः) पापाचरण को (वि) पृथक् करता है वैसा आचरण करो ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिससे मन में प्रमाद और द्वेष न होवे उसी का पान करना चाहिये और जैसे अपने आत्मा की सब रक्षा करते हैं वैसे अन्य सभी की रक्षा करें ॥१६॥

एना मन्दानो जहि शूर शत्रूञ्जामिमजामिं मघवन्नमित्रान् ।
अभिषेणाँ अभ्यादेदिशानान्पराच इन्द्र प्र मृणा जही च ॥१७॥

पदार्थ—हे (शूर) दुष्टों को मारने वाले (मघवन्) बहुत धनों से युक्त (इन्द्र) दुष्टों के विदारने वाले आप (एना) इससे (मन्दानः) प्रशंसित हुए (जामिम्) भ्राताओं आदि को (अजामिम्) दूसरी सम्बन्ध रहित को (शत्रून्) धर्म के विरोधियों (अमित्रान्) मित्रभाव रहित वैरियों का (जहि) त्याग करो (अभिषेणान्) सम्मुख सेना जिनकी उन (आदेदिशानान्) अत्यन्त आज्ञा करने वाले (पराचः) पश्चिम की ओर अर्थात् पीछे मुख किये हुओं को (अभि, प्र, मृण) बाधा करो (च) और अविद्या आदि दोषों का (जही) त्याग करो ॥ १७ ॥

भावार्थ—हे राजन् सेना के स्वामिन् ! आप ब्रह्मचर्य और सोमलता के रस के पान आदि से स्वयं आनन्दित हुए वीरों को आनन्द देकर सम्पूर्ण शत्रुओं को जीतो ॥ १७ ॥

फिर राजा और प्रजाजनों को निरन्तर क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आसु ष्मा णो मघवन्निन्द्र पृत्स्वस्मभ्यं महि वरिवः सुगं कः ।
अपां तोकस्य तनयस्य जेष इन्द्र सूरीन्कृणुहि स्मा नो अर्धम् ॥१८॥

पदार्थ—हे (मघवन्) बहुत धन से युक्त (इन्द्र) दुष्टों के मारने वाले आप (आसु) इन (पृत्सु) वीर मनुष्यों की सेनाओं में (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए (महि) बड़े (सुगम्) उत्तम प्रकार चलते हैं जिसमें उस (वरिवः) सेवन को (कः) करें (नः) हम लोगों को (स्मा) ही विजयी करें और हे (इन्द्र) सम्पूर्ण ऐश्वर्य के देने वाले आप (अपाम्) प्राणों के (तोकस्य) शीघ्र उत्पन्न हुए अपत्य के और (तनयस्य) सुकुमार के बोध के लिए और शत्रुओं को (जेषे) जीतने के लिए (नः) हम लोगों को (सूरीन्) युद्ध विद्या में कुशल विद्वान् और (अर्धम्) अच्छे प्रकार समृद्धि को (स्मा) ही (कृणुहि) करिये ॥ १८ ॥

भावार्थ—राजा वैसा यत्न करे जैसे अपनी सेनाएँ उत्तम प्रकार शिक्षित, जीतने वाली और बलयुक्त होवें और सम्पूर्ण बालक और कन्यायें ब्रह्मचर्य्य से विद्यायुक्त होकर समृद्धि को प्राप्त हुए सत्य न्याय और धर्म का निरन्तर सेवन करें ॥ १८ ॥

फिर राजा और मन्त्रीजन कैसे होवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ त्वा हरयो वृषणो युजाना वृषरथासो वृषरश्मयोऽत्याः ।
अस्मत्राञ्चो वृषणो वज्रवाहो वृष्णे मदाय सुयुजो वहन्तु ॥१९॥

पदार्थ—हे अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त राजन् जैसे (वृषणः) बलयुक्त (युजानाः) जिन के सावधान आत्मा और (वृषरथासः) बलयुक्त सेना के अङ्ग जिनके वे (वृषरश्मयः) किरणों के सदृश विजय सुख के वर्षाने वाले तेजस्वी (अत्याः) सम्पूर्ण श्रेष्ठ गुण और कर्मों में व्यापी (अस्मत्राञ्चः) शत्रुओं से हम लोगों की रक्षा करने वालों को प्राप्त होने और (वृषणः) शत्रुशक्ति के रोकने वाले (वज्रवाहः) शस्त्र और अस्त्रों की विद्या को धारण करने तथा (सुयुजः) उत्तम प्रकार युक्त होने वा युक्त कराने वाले (हरयः) उत्तम प्रकार शिक्षित घोड़ों के सदृश मनुष्य (वृष्णे) बलकारक (मदाय) आनन्द के लिए (त्वा) आप को (वहन्तु) प्राप्त हों वा प्राप्त करावें वैसे इनको आप प्रीति में (आ) प्राप्त हूजिये ॥ १९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । राजा को चाहिये कि उत्तम प्रकार परीक्षा करके उत्तम गुण कर्म और स्वभाववाले मनुष्यों को राज्य कर्म के अधिकारों में नियुक्त करे तथा आप भी श्रेष्ठ गुण कर्म और स्वभाववाला होवे ॥ १९ ॥

आ ते वृषन्वृषणो द्रोणमस्थुर्घृतप्रुषो नोर्मयो मदन्तः ।
इन्द्र प्र तुभ्यं वृषभिः सुतानां वृष्णे भरन्ति वृषभाय सोमम् ॥२०॥१९॥

पदार्थ—हे (वृषन्) बल से युक्त (इन्द्र) सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से सम्पन्न जो (ते) आपके (वृषणः) बलिष्ठ (घृतप्रुषः) जल को पूर्ण करने वाले (ऊर्म्मयः) समुद्र आदि के जल के तरङ्ग (न) जैसे वैसे आपको (मदन्तः) आनन्द देते हुए (वृषभिः) बलिष्ठ वैद्यों से (सुतानाम्) उत्पन्न किये हुए (सोमम्) बड़ी ओषधियों के रस को (वृष्णे) बल के और (वृषभाय) बल की इच्छा करनेवाले (तुभ्यम्) आपके लिए (प्र, भरन्ति) अच्छे प्रकार धारण करते हैं तथा (द्रोणम्) जाते हैं जिस विमान आदि वाहन से उस पर (आ) सब प्रकार से (अस्थुः) स्थित होते हैं उनको आप प्रसन्न करिये ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे राजन् ! जो सत्यभाव से आपके राज्य के हित करने की इच्छा करते हैं उनको आप सुखी रखिये और जैसे वायु से जल के तरङ्ग उठते हैं वैसे ही सत्संग से बुद्धियां बढ़ती हैं ऐसा जानो ॥२०॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वृषासि दिवो वृषभः पृथिव्या वृषा सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम् ।
वृष्णे त इन्दुर्वृषभ पीपाय स्वादू रसो मधुपेयो वराय ॥२१॥

पदार्थ—हे (वृषभ) शत्रुओं के सामर्थ्य के प्रतिबन्धक ऐश्वर्य्य से युक्त जिससे आप (दिवः) सूर्य्य के (वृषभः) बलिष्ठ और श्रेष्ठ (पृथिव्याः) भूमि से (वृषा) वर्षानेवाले और (सिन्धूनाम्) नदियों वा समुद्रों के (वृषा) वर्षाने वाले और (स्तियानाम्) मिले हुए नहीं चलने और चलनेवाले प्राणी और

अप्राणियो के (वृषभः) अत्यन्त करनेवाले (असि) हैं (ते) आप (वराय) उत्तम (वृष्णे) सुख के वर्षानेवाले के लिए (पीपाय) पान को (स्वादुः) स्वाद से युक्त (इन्दुः, रसः) सोमलता का रस (मधुपेयः) महत के साथ पीने योग्य हो ॥ २१ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो आप बिजुली, भूमि, नदी, समुद्र, अन्तरिक्ष, स्थावर और जङ्गम पदार्थों की विद्या और उपयोग को जानिये तो आपको बडा आनन्द प्राप्त होवे ॥ २१ ॥

फिर वह राजा किसका सत्कार करे इस विषय को कहते हैं—

अयं देवः सहसा जायमान इन्द्रेण युजा पणिमस्तभायत् ।

अयं स्वस्य पितुरायुधानीन्दुरमुष्णादशिवस्य मायाः ॥२२॥

पदार्थ—हे राजन् जो (अयम्) यह (इन्द्रेण) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से (युजा) युक्त होनेवाले राजा से (सहसा) बल से (जायमानः) उत्पन्न हुआ (देवः) श्रेष्ठ गुणवाला विद्वान् (पणिम्) स्तुति करने योग्य व्यवहार को (अस्तभायत्) स्थिर करता है और जो (अयम्) यह (इन्दुः) आनन्दकारक (स्वस्य) अपने (पितुः) पिता के (आयुधानि) शस्त्र और अस्त्रो को स्थिर करता है और (अशिवस्य) अमगल की (मायाः) बुद्धियो को (अमुष्णात्) चुराता है उसका आप गुरु के सदृश सत्कार करिये ॥ २२ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो धर्म्मयुक्त व्यवहार को स्वय करके सर्वत्र प्रचार करते हैं और युद्धविद्या मे और उपदेश में कुशल हुए अमगल का सब प्रकार नाश करके कल्याण को उत्पन्न करते हैं वे आपसे सत्कार को प्राप्त हों ॥ २२ ॥

फिर विद्वान् कैसे होवें इस विषय को कहते हैं—

अयमकृणोदुषसः सुपत्नीरयं सूर्ये अदधाज्ज्योतिरन्तः ।

अयं त्रिधातु दिवि रोचनेषु त्रितेषु विन्ददमृतं निगूळ्हम् ॥२३॥

पदार्थ—हे विद्वान्‌जनो जैसे (अयम्) यह सूर्य्य (उषसः) प्रातःकालवेलाओ को (सुपत्नीः) सुन्दर भार्य्याओ के सदृश (अकृणोत्) करता है वैसे एक स्त्री के ग्रहणरूप व्रतधारी आप लोग हो और जैसे (अयम्) यह परमात्मा (सूर्य्ये) सूर्य्य के (अन्तः) मध्य मे (ज्योतिः) प्रकाश को (अदधात्) धारण करता है वैसे आत्माओ मे विद्या के प्रकाश को धारण करिये और जैसे (अयम्) यह ईश्वर (दिवि) प्रकाश मे (त्रितेषु) प्रसिद्ध बिजुली और सूर्य में (रोचनेषु) प्रकाशमानो मे (अमृतम्) नाश से रहित (निगूळ्हम्) अत्यन्त लुप्त अतीन्द्रिय (त्रिधातु) सत्व रज और तमःस्वरूप जगत् को (विन्दत्) प्राप्त होता है वैसे प्रकृति आदि जगत् को जानिये ॥ २३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो इस जगत् में विवाहित एक स्त्री के ग्रहणरूप व्रतधारी, विद्या और अविद्या के प्रकाशक, कार्य्य कारण स्वरूप गुप्त पदार्थों की विद्या के जाननेवाले होवें वे सूर्य्य, ईश्वर और यथार्थवक्ता जन के सदृश मन्तव्य होवें ॥ २३ ॥

विद्वान्‌जन ईश्वर के सदृश वर्त्तमान करें इस विषय को कहते हैं—

अयं द्यावापृथिवी वि ष्कभायदयं रथमयुनक् सप्तरश्मिम् ।

अयं गोषु शच्या पक्वमन्तः सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्सम् ॥२४॥२०॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो जैसे (अयम्) यह ईश्वर (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि को (वि) विशेष करके (स्कभायत्) धारण करता है और (अयम्) यह सबको धारण करनेवाला ईश्वर (सप्तरश्मिम्) सात प्रकार की विद्यारूप किरणें जिसमे उस (रथम्) सुन्दर सूर्य्यलोक को (अयुनक्) युक्त करता है और (अयम्) यह धारण और नहीं धारण करनेवाला परमात्मा (सोमः) सब जगत् को उत्पन्न करनेवाला (शच्या) सत्य कर्म्म से (गोषु) पृथिवियो वा धेनु आदि के (अन्तः) मध्य मे (उत्सम्) कूप के सदृश जल से क्लेदित को जैसे वैसे (दशयन्त्रम्) सूक्ष्म और स्थूल दश प्रकार के भूत प्राणी यन्त्रित जिस मे उस (पक्वम्) पके हुए को (दाधार) धारण करता है वैसे आप लोग भी धारण कीजिये ॥ २४ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् जनो ! जो सूर्य्य के सदृश न्याय को, पृथिवी के सदृश क्षमा का, सबके धारण और दुग्ध आदि रसो को और सब जगत् को यथावत् निर्माण करके धारण करता है वैसे आप लोग भी इस सब को धारण करिये ॥ २४ ॥

इस सूक्त मे इन्द्र, विद्वान् और ईश्वर के गुण कर्मों के वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चवालीसवाँ सूक्त और बीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ त्रयस्त्रिंशदृचस्य पञ्चचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः । १-३० इन्द्रः । ३१-३३ बृबुस्तक्षा । १, २, ३, ८, १४, २०, २१, २२, २३, २४, २८, ३०, ३२ गायत्री । ४, ७, ९, १०, ११, १२, १३, १५, १६, १७, १८, १९, २५, २६, २९ निचृद्गायत्री । ५, ६, २७ विराड्गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः । ३१ आर्च्युष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । ३३ अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब तैंतीस ऋचावाले पैंतालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् ।

इन्द्रः स नो युवा सखा ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो (युवा) शरीर और आत्मा के बल से युक्त (इन्द्रः) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्यों का देनेवाला राजा (सुनीती) सुन्दर न्याय से (परावतः) दूर देश से भी (तुर्वशम्) हिंसकों को वश में करनेवाले (यदुम्) यत्न करते हुए मनुष्य को (आ) सब प्रकार से (अनयत्) प्राप्त करावे (सः) वह (नः) हम लोगो का (सखा) मित्र हो ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम उस राजा के साथ मैत्री करो जो सत्य न्याय से दूर देश मे स्थित भी शिक्षा, विनय और परोपकार में कुशल, श्रेष्ठ मनुष्य को सुसत्कार अपने समीप लाता है उस राजा के साथ मित्र हुए वर्त्ताव करो ॥ १ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते है—

अविप्रे चिद्वयो दधदनाशुना चिदर्वता । इन्द्रो जेता हितं धनम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (इन्द्रः) शत्रुओ का नाश करनेवाला (अविप्रे) बुद्धि रहित मे (चित्) भी (वयः) सुन्दर जीवन वा विज्ञान को (दधत्) धारण करता है तथा (अनाशुना) घोड़े से रहित शीघ्र आनेवाले वाहन से (अर्वता) घोड़े से (चित्) भी (हितम्) सुखकारक (धनम्) द्रव्य को (जेता) जीतने वाला धारण करता है वह यशस्वी होता है यह जानना चाहिये ॥ २ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् राजा बालको और अज्ञो मे अध्यापन और उपदेश के प्रचार से विद्या को धारण करता है वह यशस्वी होकर बिना सेना के भी राज्य को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः । नास्य क्षीयन्त ऊतयः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (अस्य) इस राजा की (महीः) बडी (उत) और (पूर्वीः) प्राचीन वेदो मे कही हुई (प्रणीतयः) उत्तम नीति और (ऊतयः) रक्षण आदि क्रियायें हैं (अस्य) इस की (प्रशस्तयः) श्रेष्ठ कीर्तियाँ (न) नहीं (क्षीयन्ते) क्षीण होती हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो राजाजन नित्य बडी राजधर्म्मनीति को धारण करके पुत्र के सदृश प्रजाओ का पालन करते हैं उनका नाशरहित यश होता है ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को किसका सत्कार करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

सखायो ब्रह्मवाहसेऽर्चत प्र च गायत । स हि नः प्रमतिर्मही ॥४॥

पदार्थ—हे (सखायः) मित्रो ! आप लोग (ब्रह्मवाहसे) वेद और ईश्वर के विज्ञान प्राप्त कराने के लिए जिसका (प्र, अर्चत) अत्यन्त सत्कार करो (गायत, च) और प्रशंसा करो जिससे (नः) हम लोगो के लिए (प्रमतिः) अच्छी बुद्धि (मही) और बड़ी वाणी दी जाती है (सः, हि) वही जगदीश्वर और विद्वान् हम लोगों से उपासना और सेवा करने योग्य है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग परस्पर मित्र होकर परमेश्वर और सब के कल्याण के लिये प्रवृत्त यथार्थवक्ता तथा उपदेशक का सदा ही सत्कार करो जिससे हम लोगो को उत्तम बुद्धि और वाणी प्राप्त होवे ॥ ४ ॥

फिर राजा और मन्त्रियों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

त्वमेकस्य वृत्रहन्नविता द्वयोरसि । उतेदृशे यथा वयम् ॥५॥२१॥

पदार्थ—हे (वृत्रहन्) मेघ को नाश करनेवाले सूर्य के समान शत्रुओ के मारनेवाले राजन् (यथा) जैसे (वयम्) हम लोग (ईदृशे) ऐसे व्यवहार मे (एकस्य) सहाय रहित के (उत) और (द्वयोः) राजा और प्रजाजनो के रक्षक होते हैं वैसे जिससे (त्वम्) आप (अविता) रक्षक (असि) हो इससे सत्कार करने योग्य हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जैसे हम लोग पक्षपात का त्याग करके अपने और अन्य जन का यथावत् न्याय करें वैसे ही आप करिये ऐसे धर्म्मयुक्त व्यवहार मे वर्त्तमान हम लोगो की सदा ही वृद्धि और मोक्ष होते है ॥ ५ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

नयसीद्वति द्विषः कृणोष्युक्थशंसिनः । नृभिः सुवीर उच्यसे ॥६॥

पदार्थ—हे राजन् जिससे आप (द्विषः) द्वेष करनेवालों को (उक्थशंसिनः) वेद की प्रशंसा करनेवाले (कृणोषि) करते हो और उपाय का उल्लङ्घन करके धर्म्म को (अति, नयसि) अत्यन्त प्राप्त होते वा प्राप्त करते हो (उ) और (नृभिः) नायक अग्रणी मनुष्यो से (सुवीरः) श्रेष्ठ वीरो से युक्त हुए सब के प्रति (उच्यसे) उपदेश किये जाते हो इससे (इत्) ही आदर करने योग्य हो ॥६॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो आप नम्रतायुक्त, विद्वान् होवें तो वेद में कहे हुए धर्म्म से द्वेष करनेवालों को भी वेदोक्त धर्म्म में प्रीति करनेवाले उपदेश वा विनय से कर सकते हो ॥६॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसं गीर्भिः सखायमृग्मियम् । गां दोहसे हुवे ॥७॥

पदार्थ—हे राजन् जैसे मैं (धीभिः) सुशिक्षायुक्त, मधुर, सत्यवाणियो से (दोहसे) दोहने पूरण करने को (गाम्) गौ के (न) समान (सखायम्) सब के मित्र (सुष्टवम्) स्तुतियों से स्तुति करने योग्य (ब्रह्मवाहसम्) वेदों के शब्दार्थ सम्बन्ध और स्वरों के प्राप्त करानेवाले (ब्राह्मणम्) चतुर्वेदवेत्ता विद्वान् को (हुवे) बुलाता और उसकी प्रशंसा करता हूं वैसे इसको आप बुला और उसकी प्रशंसा करो ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन वेदपारगन्ता, आप्त, विद्वान् का आश्रय लेकर सभ्य विपश्चित् होते हैं वैसे इनके सङ्ग से तुम भी विद्वान् वा चतुर होओ ॥७॥

फिर क्या करके राजा ऐश्वर्य्य को प्राप्त होवे इस विषय को कहते हैं—

यस्य विश्वानि हस्तयोरूचुर्वसूनि नि द्विता ।

वीरस्य पृतनाषहः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो ! (यस्य) जिस राजादि विद्वान् (वीरस्य) शत्रु के बल को दबानेवाले के (हस्तयोः) हाथों में (विश्वानि) सम्पूर्ण (वसूनि) द्रव्यों को (पृतनाषहः) शत्रुओं की सेना को सहनेवाले (नि) निश्चित (ऊचुः) कहते हैं उसके साथ (द्विता) दोनों राजा और प्रजा तथा उपदेश देनेवाले और उपदेश देने योग्यपने की रक्षा करो ॥८॥

भावार्थ—जो राजा विद्या और विनय से पुत्र के सदृश प्रजाओं की पालना करे तो सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य और सम्पूर्ण सुख उसके आधीन ही होवे जिससे उत्तम मन्त्री और प्रशंसित सेना को प्राप्त होकर राजा प्रजाजनों के कल्याण को कर सकता है ॥८॥

फिर मनुष्य किसका निवारण करके किसको प्राप्त होवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वि दृळ्हानि चिदद्रिवो जनानां शचीपते । वृह माया अनानत ॥९॥

पदार्थ—हे (अद्रिवः) मेघों के करनेवाले सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान (अनानत) शत्रुओं के समीप में नम्रता से रहित (शचीपते) प्रजा के स्वामिन् आप (मायाः) कपटों को (वृह) काटो और (चित्) भी (जनानाम्) मनुष्यों की (दृळ्हानि) निश्चित सेनाओं को करके शत्रुओं का (वि) विशेष करके नाश करिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—वह राजा आचार्य्य वा अध्यापक उत्तम होवे जो छल आदि दोषों का निवारण करके मनुष्यों को धर्म्म के आचरण से युक्त निरन्तर करे ॥९॥

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

तमु त्वा सत्य सोमपा इन्द्र वाजानां पते ।

अहूमहि श्रवस्यवः ॥ १० ॥ २२ ॥

पदार्थ—हे (सत्य) श्रेष्ठों में श्रेष्ठ (सोमपा) ऐश्वर्य की रक्षा करने तथा (वाजानाम्) विज्ञान और अन्न आदिकों के (पते) पालने और (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले (श्रवस्यवः) अपने अन्न आदि की इच्छा करनेवाले हम लोग (त्वा) आपकी (अहूमहि) प्रशंसा करें वैसे (तम्, उ) उन्हीं को सब लोग पुकारें ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् वा विद्वन् ! आप श्रेष्ठ गुण कर्म्म और स्वभाव से युक्त होकर प्रजा के पालन में तत्पर सुशील और इन्द्रियों के जीतने वाले जब तक होंगे तबतक हम लोग आपको मानेंगे ॥१०॥

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

तमु त्वा यः पुरासिथ यो वा नूनं हिते धने ।

हव्यः स श्रुधी हवम् ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे राजन् (यः) जो आप (हिते) सुखकारक (धने) धन में (पुरा) प्रथम से (आसिथ) थे और (यः) जो (वा) वा (नूनम्) निश्चित सुखकारक धन में (हव्यः) पुकारने के योग्य हो (तम्, उ) उन्हीं (त्वा) आपको हम लोग सुनावें (सः) वह आप हम लोगों की (हवम्) बात को (श्रुधी) सुनिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो राजा सब के हित की इच्छा करे और सब को धन और ऐश्वर्य्य से युक्त करता है वह बलिष्ठ और निर्बलों की बातों को प्रीति से सुन कर यथार्थ न्याय करता है उसीका सब लोग निरन्तर सत्कार करें ॥११॥

फिर राजा आदिकों को क्या प्राप्त करके क्या प्राप्त करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

धीभिरर्वद्भिरर्वतो वाजाँ इन्द्र श्रवाय्यान् ।

त्वया जेष्म हितं धनम् ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) शत्रुओं के नाश करनेवाले जैसे हम लोग (धीभिः) बुद्धियों वा कर्म्मों से (अर्वद्भिः) गमन करते हुए घोड़ों से (वाजान्) वेगयुक्त (श्रवाय्यान्) सुनने को इष्ट (अर्वतः) घोड़ों के सदृश प्राप्त होकर (त्वया) आपके साथ (हितम्) सुखकारक (धनम्) धनको (जेष्म) जीतें वैसे आप हम लोगों के साथ सुख से वर्त्ताव करो ॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब राजा आदि जन एक सम्मति कर उत्तम सेना के अङ्गों को सम्पादन कर और अन्यायकारी दुष्टों को जीत कर न्याय से प्राप्त हुए धन से सब का हित करें तभी अपने हित की सिद्धि से युक्त होवें ॥ १२ ॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

अभूरु वीर गिर्वणो महाँ इन्द्र धने हिते । भरे वितन्तसाय्यः ॥१३॥

पदार्थ—हे (गिर्वणः) वाणियों से याचना किये गये (वीर) शूरता आदि गुणों से युक्त (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले आप (महान्) महाशय (वितन्तसाय्यः) अत्यन्त विजय में होनेवाले हुए (हिते) सुखकारक (धने) धनमें (उ) और (भरे) संग्राम में जीतने वाले (अभूः) हूजिये ॥१३॥

भावार्थ—जो राजा सब के हित के प्राप्त होने की इच्छा करता हुआ पुरुषों में ज्ञानी, किये हुए को जाननेवाला और योद्धाओं का प्रिय होवे उसके सदा ही विजय से प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य्य बढ़ें ॥१३॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

या त ऊतिरमित्रहन्मक्षूजवस्तमासति । तया नो हिनुही रथम् ॥१४॥

पदार्थ—हे (अमित्रहन्) शत्रुओं के मारनेवाले (या) जो (ते) आपकी (मक्षूजवस्तमा) शीघ्र अतिशय वेग से युक्त (ऊतिः) रक्षा आदि क्रिया (असति) होवे (तया) उससे (नः) हम लोगों को (रथम्) विमान आदि वाहन को प्राप्त कराके (हिनुही) वृद्धि कीजिये ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो राजा वेग आदि गुणों से युक्त रक्षा से प्रजाओं को प्रसन्न करके उन्नति करे वही निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होवे ॥१४॥

फिर वह राजा किससे किस को जीते इस विषय को कहते हैं—

स रथेन रथीतमोऽस्माकेनाभियुग्वना ।

जेषि जिष्णो हितं धनम् ॥ १५ ॥ २३ ॥

पदार्थ—हे (जिष्णो) जीतनेवाले (सः) वह (रथीतमः) अतिशय करके बहुत रथों वाले आप (अभियुग्वना) विभक्त होने वाले (अस्माकेन) हमारे (रथेन) वाहन से (हितम्) प्रवृद्ध (धनम्) धन को (जेषि) जीतते हो इससे प्रशंसा करने योग्य होते हो ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो राजा प्रशंसनीय वाहन आदि से बहुत धन को जीतता है वह प्रशंसनीय होता है ॥१५॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं—

य एक इत्तमु ष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः ।

पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य (यः) जो (एकः) सहायरहित (इत्) ही (कृष्टीनाम्) मनुष्यों का (पतिः) स्वामी (विचर्षणिः) देखनेवाला (वृषक्रतुः) बलयुक्त बुद्धिवाला (जज्ञे) होता है (तम्) उस वीर पुरुष की (उ) ही (स्तुहि) प्रशंसा करिये ॥१६॥

भावार्थ—हे प्रजाजनो ! जो सम्पूर्ण विद्या और श्रेष्ठ गुण कर्म स्वभाववाला निरन्तर न्याय से प्रजाओं के पालन में तत्पर होवे उसको राजा मानो दूसरे क्षुद्राशय को नहीं ॥१६॥

यो गृणतामिदासिथापिरूती शिवः सखा ।

स त्वं न इन्द्र मृळय ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दुःखों के नाश करनेवाले राजन् (यः) जो (गृणताम्) प्रशंसा करनेवाले (नः) हम लोगों के (आपिः) श्रेष्ठ गुणों से व्यापक (शिवः) मङ्गलकारी (सखा) मित्र (आसिथ) होते हो (सः, इत्) वही (त्वम्) आप (ऊती) रक्षण आदि क्रिया से हम लोगों को (मृळय) सुखी करो ॥ १७ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो आप शत्रुरहित और संसार के मित्र, सब के मङ्गल करनेवाले प्रजाओं में हूजिये तो शीघ्र धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करिये ॥ १७ ॥

फिर राजा आदि क्या ध्यान करके क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

धिष्व वज्रं गभस्त्यो रक्षोहत्याय वज्रिवः ।

सासहीष्ठा अभि स्पृधः ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे (वज्रिवः) प्रशंसित शस्त्र और अस्त्रों के चलाने में चतुर और अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त राजन् आप (रक्षोहत्याय) दुष्टों के मारने के लिये (गभस्त्योः) हाथों के मध्य में (वज्रम्) शस्त्र और अस्त्रों के समूह को (धिष्व)

धारण करिये तथा (स्पृधः) स्पृहा करने योग्य सङ्ग्रामों के (अभि) सन्मुख (सासहीष्ठाः) अत्यन्त सहिये ॥१८॥

भावार्थ—हे राजन् वा सेना के जनो ! आप लोग शस्त्र और अस्त्रों के चलाने में चतुर होकर डाकू आदि शत्रुओं का नाश करके सहनशील हूजिये ॥१८॥

मनुष्य कैसे जन की प्रशंसा करें इस विषय को कहते हैं—

प्र॒त्नं र॑यी॒णां यु॒जं सखा॑यं कीरि॒चोद॑नम् । ब्रह्म॑वाहस्तमं हुवे ॥१९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे मैं (रयीणाम्) धनों के (युजम्) युक्त करानेवाले (कीरिचोदनम्) विद्यार्थियों के प्रेरक (ब्रह्मवाहस्तमम्) अतिशय वेद और ईश्वर की जो विद्या उसके प्राप्त करानेवाले (प्रत्नम्) प्राचीन (सखायम्) सबके मित्र की (हुवे) स्तुति करता हूँ वैसे इसकी आप लोग भी प्रशंसा करो ॥१९॥

भावार्थ—जो सम्पूर्ण जनों के हितकारक, अत्यन्त विद्वान्, सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग के लिए अध्यापन और उपदेश से प्रेरणा करनेवाले, स्थिर मित्र का सत्कार करके प्रशंसा करते हैं वे ही गुणग्राहक होते हैं ॥१९॥

फिर मनुष्यों को कैसा राजा करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

स हि विश्वा॑नि॒ पार्थि॑वाँ॒ एको॒ वसू॑नि॒ पत्य॑ते ।
गिर्व॑णस्तमो॒ अध्रि॑गुः ॥ २० ॥ २४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (सः) वह (हि) जिससे (एकः) सहायरहित (गिर्वणस्तमः) अतिशयित वाणियों से प्रशंसा करने योग्य (अध्रिगुः) सत्य-गमनवाला राजा (विश्वानि) समस्त (पार्थिवा) पृथिवी में जाने हुए (वसूनि) द्रव्यों को (पत्यते) स्वामी के सदृश आचरण करता है इससे हम लोगों से सत्कार करने योग्य है ॥२०॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो विलक्षण बुद्धि और विद्या से युक्त, पृथिवी आदि पदार्थों की विद्या का जानने वाला, प्रशंसा करने योग्य गुण कर्म और स्वभावयुक्त और सत्य आचरण करनेवाला जन होवे उसीको राजा करो ॥२०॥

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर किसकी शोभा करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स नो॑ नि॒युद्भि॒रा पृ॑ण॒ कामं॒ वाजे॑भिर॒श्विभिः॑ ।
गोम॑द्भि॒र्गोप॑ते धृ॒षत् ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे (गोपते) इन्द्रियों के स्वामिन् (सः) वह (धृषत्) ढीठ्यधर्षण करनेवाले आप (वाजेभिः) विज्ञान और अन्न आदि के करनेवाले (नियुद्भिः) निश्चित कारण तथा (गोमद्भिः) प्रशंसित भूमि, गौ और वाणी से युक्त (अश्विभिः) सूर्य्य और चन्द्रमा आदिकों से (नः) हम लोगों के (कामम्) मनोरथ की (आ) सब प्रकार से (पृण) पूर्त्ति करिये ॥२१॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो आप हम लोगों के मनोरथ की पूर्त्ति करिये तो हम लोग भी आपकी इच्छा की पूर्त्ति करें ॥२१॥

फिर मनुष्य किसके लिए क्या करे इस विषय को कहते हैं—

तद्वो॑ गाय सु॒ते सचा॑ पुरुहू॒ताय॒ सत्व॑ने । शं यद्गवे॒ न शा॒किने॑ ॥२२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यत्) जो (वः) आप लोगों के लिए प्रशंसा करते हैं (तत्) वे (शाकिने) सामर्थ्ययुक्त (गवे) स्तुति करनेवाले के लिए (न) जैसे वैसे (सुते) उत्पन्न हुए इस संसार में (सचा) संयुक्त सत्य से (पुरुहूताय) बहुतों से प्रशंसित (सत्वने) शुद्ध अन्तःकरण वाले के लिए हो उनकी हे (इन्द्र) ऐश्वर्य्य से युक्त आप (शम्) सुखपूर्वक (गाय) स्तुति कीजिये ॥२२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सम्पूर्ण विद्याओं के पार जाने वाले के अध्यापन और उपदेशरूप कर्म्म से सबका मङ्गल बढ़ता है वैसे ही उत्तम राजा से प्रजा का सुख उन्नत होता है ॥२२॥

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

न घा॒ वसु॒र्नि य॑मते दा॒नं वाज॑स्य॒ गोम॑तः । यत्सी॒मुप॒ श्रव॒द्गिरः॑ ॥२३॥

पदार्थ—(यत्) जो जन (गोमतः) प्रशंसित वाणी से युक्त (वाजस्य) विज्ञान का (वसुः) वास दिलानेवाला (दानम्) दान को (नि) अत्यन्त (यमते) देता है (गिरः) वाणियों को (सीम्) सब प्रकार से (उप, श्रवत्) सुने वह (न, घा) नहीं मारा जाता है ॥२३॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्या और अभयदान देना और सम्पूर्ण विद्वानों से सत्य सुनता है वह इस संसार में विघ्नों से नहीं मारा जाता है ॥२३॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं—

कु॒वित्स॑स्य॒ प्र हि व्र॒जं गोम॑न्तं दस्यु॒हा गम॑त् ।
शची॑भि॒रप॑ नो वरत् ॥ २४ ॥

पदार्थ—जो (दस्युहा) दुष्ट चोरों को मारनेवाला राजा (शचीभिः) बुद्धि वाले कर्मों से (कुवित्सस्य) अत्यन्त विभाग करनेवाले के (गोमन्तम्) प्रशंसित गौवें विद्यमान और (व्रजम्) चलते हैं जिसमें उसको (अप, वरत्) प्राप्त होता है वह (हि) ही (नः) हम लोगों को (प्र, वरत्) स्वीकार करे ॥२४॥

भावार्थ—जो राजा दुष्टजनों को दूर करके न्याय व्यवहार के प्रचार के लिए उत्तम जनों का स्वीकार करता है वह बड़े सत्य और असत्य का विचार करनेवाला होता है ॥ २४ ॥

फिर धर्मात्मा राजा की सब प्रशंसा करें इस विषय को कहते हैं—

इ॒मा उ॑ त्वा शतक्रतो॒ऽभि प्र णो॑नुवु॒र्गिरः॑ ।
इन्द्र॑ व॒त्सं न मा॒तरः॑ ॥ २५ ॥ २५ ॥

पदार्थ—हे (शतक्रतो) अथाह बुद्धि वाले (इन्द्र) आदर देनेवाले (वत्सम्) बछड़े की माता (न) जैसे वैसे जो (इमाः) ये प्रजायें और (गिरः) वाणियां (त्वा) आपकी (प्र, नोनुवुः) अत्यन्त प्रशंसा करें उनकी (उ) वितर्क के साथ (अभि) सब प्रकार से स्तुति करिये ॥२५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे राजन् ! जैसे गौवें प्रेम से अपने बछड़ों को प्रसन्न करती हैं वैसे ही उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियां सब को आनन्द देती है ऐसा जानो ॥२५॥

किनकी मित्रता नहीं जीर्ण होती है इस विषय को कहते हैं—

दू॒णाशं॑ स॒ख्यं तव॒ गौर॑सि वीर गव्य॒ते । अश्वो॑ अश्वाय॒ते भ॑व ॥२६॥

पदार्थ—हे (वीर) वीरता आदि गुणों से युक्त राजन् वा विद्वान् जो आप (गव्यते) गौ के सदृश आचरण करते हुए के लिए (गौः) गाय जैसे वैसे (अश्वायते) घोड़ों के सदृश आचरण करते हुए के लिए (अश्वः) घोड़ा जैसे वैसे (असि) हैं और जिन (तव) आपका प्रेम के आस्पद में बन्धा हुआ (दूणाशम्) दुर्लभ नाश जिसका वह (सख्यम्) मित्रपन है वह आप हम लोगों के मित्र (भव) हूजिये ॥२६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे गौओं में बैल और घोड़ियों में घोड़ा प्रसन्न सदा ही होता है वैसे ही सज्जनों की मित्रता अविनाशिनी होती है ऐसा सब लोग जानें ॥२६॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं—

स म॑न्दस्वा॒ ह्यन्ध॑सो॒ राध॑से त॒न्वा॑ म॒हे । न स्तो॒तारं॑ नि॒दे क॑रः ॥२७॥

पदार्थ—हे विद्वन् (हि) जिससे आप (तन्वा) शरीर से (महे) बड़े (राधसे) धन के लिए (अन्धसः) अन्न आदि से (मन्दस्वा) आनन्दित हूजिये वा आनन्दित करिये और (निदे) निन्दा करनेवाले के लिए (स्तोतारम्) स्तुति करनेवाले को (न) नहीं (करः) करिये इससे (सः) वह आप जनों को प्रिय हैं ॥ २७ ॥

भावार्थ—हे राजा और प्रजाजनो ! आप लोग अन्न आदि से सब को आनन्दित करिये । और निन्दा न करने योग्यों की मत निन्दा करिये तथा ऐश्वर्य्य की वृद्धि के लिए निरन्तर प्रयत्न करिये ॥२७॥

अब किसके लिए कहां क्या प्राप्त होवे इस विषय को कहते हैं—

इ॒मा उ॑ त्वा सु॒तेसु॑ते॒ नक्ष॑न्ते गिर्वणो॒ गिरः॑ । व॒त्सं गावो॒ न धे॒नवः॑ ॥२८॥

पदार्थ—हे (गिर्वणः) वाणियों से प्रशंसा करने योग्य (सुतेसुते) उत्पन्न उत्पन्न हुए इस संसार में (इमाः) ये (गिरः) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियां (वत्सम्) बछड़े को (धेनवः) दुग्ध की देनेवाली (गावः) गौएँ (न) जैसे वैसे (त्वा) आपको (नक्षन्ते) व्याप्त हों वे (उ) और हम लोगों को भी प्राप्त हों ॥२८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो श्रेष्ठ आचरण करनेवाले हैं उनको गौ जैसे बछड़े को वैसे सम्पूर्ण विद्या और वाणियां प्राप्त होती हैं ॥२८॥

फिर कौन उत्तम है इस विषय को कहते हैं—

पु॒रू॒तमं॑ पुरू॒णां स्तो॑तॄ॒णां विवा॑चि । वाजे॑भिर्वाजय॒ताम् ॥२९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो वाणियां (वाजेभिः) अन्न आदिकों से (वाजयताम्) प्राप्त करानेवाले (पुरूणाम्) बहुत (स्तोतॄणाम्) विद्वानों के (विवाचि) अनेक प्रकार की सत्य अर्थ का प्रकाश करनेवाली वाणियां जिसमें उस व्यवहार में (पुरूतमम्) अतिशय बहुत विद्यायुक्त व्यवहार को प्राप्त होती हैं वे हम लोगों को निश्चित प्राप्त हों ॥२९॥

भावार्थ—वे ही बहुतों में उत्तम हैं जो विद्या, विनय और धर्माचरण को प्राप्त हुए हैं ॥२९॥

राजा और प्रजाजन एक मति करें इस विषय को कहते हैं—

अ॒स्माक॑मिन्द्र भूतु ते॒ स्तोमो॒ वाहि॑ष्ठो॒ अन्त॑मः ।
अ॒स्मान् रा॒ये म॒हे हि॑नु ॥ ३० ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) धन के देनेवाले (अस्माकम्) हम लोगों का (वाहिष्ठः) अतिशय धारण करने वाला (अन्तमः) समीप में वर्त्तमान (स्तोमः)

प्रशंसास्वरूप व्यवहार (ते) आपका बढ़ानेवाला (बृबु) होवे और जो आपके समीप में वर्त्तमान अतिशय धारण करनेवाला प्रशंसारूप व्यवहार हो वह (अस्मान्) हम लोगों को (महे) बड़े (राये) धन के लिए (हिनु) बढ़ावे ॥३०॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो ऐश्वर्य्य आपका वह प्रजा का और जो प्रजा का वह आपका हो ऐसा करने के बिना राजा और प्रजा की उन्नति का नहीं सम्भव है ॥ ३० ॥

अब व्यापार-विषय को कहते हैं –

अधि बृबुः पणीनां वर्षिष्ठे मूर्धन्नस्थात् । उरुः कक्षो न गाङ्ग्यः ॥३१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (उरुः) बहुत (कक्षः) जलका उल्लंघन करनेवाला टापू वा तट आदि (गाङ्ग्यः) पृथिवी को प्राप्त होनेवाले के समीप में वर्त्तमान (न) जैसे वैसे (पणीनाम्) प्रशंसा करने योग्य व्यवहार करनेवालों के (वर्षिष्ठे) अतिशय वृद्ध (मूर्धन्) मस्तक में (बृबुः) काटनेवाला (अधि) ऊपर (अस्थात्) स्थित होता है वह आप लोगों से कार्य्य में उत्तम प्रकार संयुक्त करने योग्य है ॥३१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे पृथिवियों में जाती हुई नदी के मध्यस्थ टापू और तट समीप में वर्त्तमान हैं वैसे ही व्यापारियों के समीप में शिल्पीजन वर्त्तमान होवें ॥३१॥

अब विद्या आदि के दान से क्या होता है इस विषय को कहते हैं—

यस्य वायोरिव द्रवद्भद्रा रातिः सहस्रिणी । सद्यो दानाय मंहते ॥३२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यस्य) जिसकी (सहस्रिणी) असंख्य पदार्थ दिये जाते हैं जिसमें वह (भद्रा) मङ्गल करनेवाली (रातिः) दान-क्रिया (वायोरिव) वायु के सदृश (द्रवत्) प्राप्त होती वा शीघ्र जाती है वह (सद्यः) शीघ्र (दानाय) दान के लिए (मंहते) बढ़ता है ऐसा जानना चाहिये ॥३२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो विद्या आदि के दान में प्रिय जन होवें वे वायु के सदृश पूर्ण अभीष्ट सुख को प्राप्त होते हैं और जो शिल्पविद्या की वृद्धि करते हैं वे असंख्य धन को प्राप्त होते हैं ॥३२॥

तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः ।
बृबुं सहस्रदातमं सूरिं सहस्रसातमम् ॥३३॥२६॥

पदार्थ—जो (नः) हम लोगों के (विश्वे) सब (कारवः) कारीगर जन (सहस्रदातमम्) अतिशय असंख्य देनेवाले (बृबुम्) मुख्य शिल्पी (सहस्रसातमम्) अतिशय असंख्य पदार्थ बांटनेवाले (सूरिम्) विद्वान् को (सु) उत्तमता से (आ) सब प्रकार (गृणन्ति) स्वीकार करते हैं वे (तत्) उस अतुल ऐश्वर्य्य को (सदा) सर्व काल में प्राप्त होते हैं और जो इन में (अर्यः) स्वामी वा वैश्य होवे वह इनका उत्तम प्रकार सत्कार कर रक्षा करे ॥३३॥

भावार्थ—जो जन क्रिया में निपुण विद्वानों और कारीगरों की प्रशंसा करते हैं वे असंख्य धन को प्राप्त होकर असंख्य धन देने योग्य होते हैं ॥३३॥

इस सूक्त में राजनीति, धन के जीतनेवाले, मित्रपन, वेद के जाननेवाले ऐश्वर्य्य से युक्त, दाता, कारीगर और स्वामीके कृत्य का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पैंतालीसवां सूक्त और छब्बीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ चतुर्दशर्चस्य षट्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रः प्रगाथं वा देवता । १ निचृदनुष्टुप् । ५,७ स्वराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । २ स्वराड्बृहती । ३, ४ भुरिग्बृहती । ८, ९ विराड्बृहती । ११ निचृद्बृहती । १३ बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । ६ ब्राह्मी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । १० पङ्क्तिः । १२, १४ विराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब चौदह ऋचावाले छियालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में फिर शिल्पविद्या को कहते हैं—

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त जन (कारवः) कारीगर (नरः) जन हम लोग (त्वाम्) आपको (हि) ही (वाजस्य) विज्ञान के (साता) विभाग में (हवामहे) ग्रहण करें और (वृत्रेषु) धनों में (सत्पतिम्) श्रेष्ठों के पालनेवाले (त्वाम्) आपको पुकारें तथा (अर्वतः) घोड़ों को जैसे सारथि वैसे (त्वाम्) आपको (काष्ठासु) दिशाओं में (इत्) ही पुकारें ॥१॥

भावार्थ—हे धन से युक्त ! जो आप हम लोगों के सहायक होवें तो आपके सङ्ग से हम लोग शिल्पविद्या से अनेक पदार्थों को रचकर आपको बड़ा धनी करें ॥१॥

फिर मनुष्य शिल्पविद्या से क्या पाते हैं इस विषय को कहते हैं—

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः स्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥२॥

पदार्थ—हे (अद्रिवः) मेघ से युक्त सूर्य्य के समान वर्त्तमान (चित्र) अद्भुत विद्या वाले (वज्रहस्त) हाथ में शस्त्र और अस्त्र को धारण किये हुए (इन्द्र) ऐश्वर्य्य से युक्त (सः) वह (त्वम्) आप (धृष्णुया) निश्चयपने वा ढिठाई से (महः) बड़े की (स्तवानः) प्रशंसा करते हुए (सत्रा) सत्य विज्ञान से (वाजम्) सङ्ग्राम को (न) जैसे वैसे (जिग्युषे) जीतनेवाले (नः) हम लोगों के लिए (गाम्) गौ को (रथ्यम्) और वाहन के लिए हितकारक (अश्वम्) घोड़ों को (सम्, किर) सङ्कीर्ण करो—इकट्ठा करो ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे राजा आदि मनुष्यो ! जैसे जीतनेवाले योद्धा जन सङ्ग्राम में विजय को प्राप्त होकर धन और प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं वैसे ही शिल्पविद्या में चतुर जन बड़े ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं ॥२॥

फिर मनुष्य सङ्ग्राम में कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
सहस्रमुष्क तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥३॥

पदार्थ—हे (सहस्रमुष्क) असंख्य पराक्रम वाले (तुविनृम्ण) बहुत धनों से युक्त (सत्पते) विद्वानों के पालनेवाले अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त (यः) जो (विचर्षणिः) विद्वान् मनुष्य (सत्राहा) सत्य दिनों में (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त को पुकारता है वैसे (तम्) उसकी (वयम्) हम लोग (हूमहे) प्रशंसा करते हैं और आप (समत्सु) सङ्ग्रामों में (नः) हम लोगों की (वृधे) वृद्धि के लिए (भवा) हूजिये ॥३॥

भावार्थ—उसी की हम लोग प्रशंसा करते हैं जो प्रतिदिन हम लोगों की रक्षा करता है और उसी की हम लोग संग्राम में रक्षा करें ॥३॥

फिर राजा और प्रजाजन किसकी प्रतिज्ञा करें इस विषय को कहते हैं—

बाधसे जनान्वृषभेव मन्युना घृषौ मीळ्ह ऋचीषम ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने तनूष्वप्सु सूर्ये ॥४॥

पदार्थ—हे (ऋचीषम) ऋचा के सदृश प्रशंसा करने योग्य अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त राजन् जो (मन्युना) क्रोध से (वृषभेव) बलयुक्त बैल जैसे वैसे (घृषौ) दुष्टों के घर्षण में (मीळ्हे) सङ्ग्राम में (जनान्) मनुष्यों की बाधा करते हैं जिससे आप उनकी (बाधसे) बाधा करते हो और (अस्माकम्) हम लोगों के (तनूषु) शरीरों में और (अप्सु) प्राणों में (महाधने) सङ्ग्राम में (अविता) रक्षा करनेवाले हुए (सूर्य्ये) सूर्य्य में प्रकाश जैसे वैसे हम लोगों को (बोधि) जनाइये इससे आप आदर करने योग्य हैं ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे राजन् ! हम लोग दुष्टों के बाधने के लिये और सङ्ग्राम में अपने लोगों की रक्षा के लिये आपका स्वीकार करें तथा आप हम लोगों को सत्य न्यायकृत्य सदा ही जनाइये ॥४॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥५॥२७॥

पदार्थ—हे (सुशिप्र) सुन्दर ठुड्ढी और नासिका युक्त (चित्र) अद्भुत गुण कर्म्म और स्वभाव वाले (वज्रहस्त) शस्त्र और अस्त्र हाथ में जिसके ऐसे और (इन्द्र) श्रेष्ठ गुणों के धारण करनेवाले आप (ज्येष्ठम्) अतिशय प्रशंसित (ओजिष्ठम्) अतिशय बल के देने (पपुरि) पालन करने और पुष्टि करनेवाले (श्रवः) अन्न वा श्रवण को (नः) हम लोगों के लिए (आ, भर) धारण करो (येन) जिससे (उभे) दोनों (इमे) इन (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (आ) सब प्रकार से (प्राः) व्याप्त होओ ॥५॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप ऐसे गुण कर्म्म और स्वभाव का स्वीकार करें जिससे न्याय, भूमि, राज्य, सेना और विजय को धारण करने को समर्थ होवें ॥५॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं—

त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन्देवेषु हूमहे ।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान्सुषहान्कृधि ॥६॥

पदार्थ—हे (वसो) सुख में बसानेवाले (राजन्) विद्या और विनय से प्रकाशमान हम लोग (विश्वा) सम्पूर्ण कार्य्यों के प्रति और (देवेषु) विद्वानों में (अवसे) रक्षण आदि के लिए (उग्रम्) तेजस्वी और (चर्षणीसहम्) शत्रुओं की सेना के सहनेवाले (त्वाम्) आपको (सु, हूमहे) पुकारें और आप (नः) हम लोगों के (अमित्रान्) शत्रुओं को (सुषहान्) सुख से सहने योग्य (कृधि) करिये और (पिब्दना) पीसने योग्य शत्रुसैन्यों को (विथुरा) व्यथायुक्त करिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो राजा मन्त्री और प्रजाजनों के सुख और दुःख को अपने सदृश जान कर जैसे शत्रुओं का पराभव होवे वैसा उपाय करनेवाला होवे उसी को सब लोग पिता के सदृश मानें ॥६॥

फिर राजा को कहां क्या धारण करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥७॥

पदार्थ—(इन्द्र) प्रजा के प्रिय को धारण करनेवाले आप (कृष्टिषु) मनुष्यों में और (नाहुषीषु) मनुष्य सम्बन्धी प्रजाओं में (यत्) जो (ओजः) बलकारक अन्न आदि (नृम्णम्) धन (च) और होवे उसको (आ, भर) धारण करिये (वा) वा (पञ्च) पाँच तत्त्वों और (क्षितीनाम्) राजसम्बन्धिनी भूमियों के मध्य में (यत्) जो (द्युम्नम्) शुद्ध यश है अथवा (सत्रा) सत्य (विश्वानि) सम्पूर्ण (पौंस्या) पुरुषार्थ से उत्पन्न हुए बल वर्त्तमान हैं उनको (आ) धारण करिये ॥७॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो आप सम्पूर्ण प्रजाओं को धन धान्य और विद्या से युक्त करिये तो पञ्चतत्त्वनामक राज्य को प्राप्त होकर धवलित यश को प्राप्त हूजिये ॥७॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

यद्वा तृक्षौ मघवन्द्रुह्यावा जने यत्पूरौ कच्च वृष्ण्यम् ।
अस्मभ्यं तद्रिरीहि सं नृषाह्येऽमित्रान्पृत्सु तुर्वणे ॥८॥

पदार्थ—हे (मघवन्) न्याय से धन इकट्ठा करनेवाले आप (तृक्षौ) विद्या और श्रेष्ठ गुणों से प्राप्त (द्रुह्यौ) द्रोह करने योग्य (जने) मनुष्य में (यत्) जो (रिरीहि) प्राप्त कराइये और (पूरौ) पूर्ण बलवाले मनुष्य में (यत्) जो (वृष्ण्यम्) उत्तमों में हितकारक जो बल उसीको प्राप्त कराइये (तत्) वह (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (च) और (कत्) कब प्राप्त कराइये और कब (वा) वा हम लोगों के (अमित्रान्) शत्रुओं को (नृषाह्ये) मनुष्यों से सहने योग्य सङ्ग्राम में (पृत्सु) सेनाओं में (तुर्वणे) हिंसन के लिये (सम्) अच्छे प्रकार (आ) सब ओर से प्राप्त कराइये ॥८॥

भावार्थ—हे राजन् ! जब आप उत्तम मनुष्यों में प्रतिष्ठा और दुष्टों में तिरस्कार धारण करें तभी शत्रुओं के विजय के लिये योग्य होवें ॥८॥

मनुष्य कैसे गृह को बनावें इस विषय को कहते हैं—

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥९॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यों से युक्त आप (त्रिधातु) तीन सुवर्ण चांदी और तांबा ये धातु जिसमें उस (त्रिवरूथम्) शीत उष्ण और वर्षा ऋतु में उत्तम (शरणम्) आश्रय करने योग्य (स्वस्तिमत्) बहुत सुख से युक्त (छर्दिः) गृह को (यच्छ) ग्रहण करिये वा दीजिये और जिन (मघवद्भ्यः) बहुत धन वालों के और (मह्यम्) मुझ धनयुक्त के लिए (च) भी ग्रहण करिये वा दीजिये (एभ्यः) इन वर्त्तमानों के लिए (दिद्युम्) सुप्रकाश को (च) भी (यावया) संयुक्त कराइये ॥९॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जो सब ऋतुओं में सुखकारक, धन धान्य से युक्त, वृक्ष, पुष्प, फल, शुद्ध वायु, जल तथा धार्मिक और धनाढ्यों से युक्त गृह उसको बना कर वहां निवास करें जिससे सर्वदा आरोग्य से सुख बढ़े ॥९॥

फिर वह राजा किन का क्या करे इस विषय को कहते हैं—

ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥१०॥२८॥

पदार्थ—हे (गिर्वणः) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियों से सेवा किये गये (मघवन्) बहुत धन से युक्त (इन्द्र) शत्रुओं को नाश करनेवाले (ये) जो (धृष्णुया) ढीठपन आदि से (गव्यता) वाणी के सदृश आचरण करते हुए (मनसा) मन से (शत्रुम्) शत्रु का (आदभुः) सब प्रकार से नाश करते हैं (अध) इसके अनन्तर इसकी सेना का (अभिप्रघ्नन्ति) सम्मुख अत्यन्त नाश करते हैं उसके साथ (स्मा) ही (नः) हम लोगों के (तनूपाः) अपने और अन्यों के शरीरों के रक्षक (अन्तमः) समीप में स्थित (भव) हूजिये ॥१०॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो ठग आदि दुष्ट शत्रुओं के बांधनेवाले तथा प्रजाओं के पालन में तत्पर धार्मिक जन हों उनके विश्वास से राज्य के कृत्यों को शोभित करिये ॥ १० ॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

अध स्मा नो वृधे भवेन्द्र नायमवा युधि ।
यदन्तरिक्षे पतयन्ति पर्णिनो दिद्यवस्तिग्ममूर्धानः ॥११॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य्य के बढ़ानेवाले सेना के स्वामी (यत्) जो (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (पर्णिनः) पक्षियों के समान (दिद्यवः) प्रकाशमान (तिग्ममूर्धानः) ऊपर वर्त्तमान योद्धा जन (युधि) सङ्ग्राम में (पतयन्ति) जाते हैं (अध) इसके अनन्तर विजय को (नायम्) प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं उनके साथ (नः) हम लोगों की (वृधे) वृद्धि के लिए (भव) प्रसिद्ध हूजिये और सङ्ग्राम में हम लोगों की (स्मा) ही निरन्तर (अव) रक्षा कीजिये ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजन् ! आप विमान आदि वाहनों को स्थापित कर पक्षियों के सदृश अन्तरिक्ष मार्ग से गमन और आगमन करके तथा उत्तम पुरुषों के साथ विजय को प्राप्त होकर सब से श्रेष्ठ हूजिये ॥ ११ ॥

यत्र शूरासस्तन्वो वितन्वते प्रिया शर्म पितॄणाम् ।
अध स्मा यच्छ तन्वे तने च छर्दिरचित्तं यावय द्वेषः ॥१२॥

पदार्थ—हे ऐश्वर्य्य के बढ़ानेवाले (यत्र) जहां (शूरासः) युद्ध में चतुर जन (पितॄणाम्) अपने पिता और स्वामियों के (तन्वः) शरीर को (वितन्वते) बढ़ाते हैं और (प्रिया) प्रिय (शर्म) गृहों को बढ़ाते हैं (अध) इसके अनन्तर (तन्वे) शरीर के लिए (तने) बढ़े हुए व्यवहार में (च) भी (अचित्तम्) चलनता से रहित (छर्दिः) गृह को आप (यच्छ) ग्रहण करिये वहां (द्वेषः) शत्रुओं को (स्म) ही (यावय) पृथक् कराइये ॥१२॥

भावार्थ—हे राजन् ! शूर धार्मिक जनों की सत्कारपूर्वक उत्तम प्रकार रक्षा कर शत्रुओं का निवारण कर उत्तम गृहों में पितरों और स्वामी जनों के लिए सुन्दर भोगों को देकर अपने यश का विस्तार करो ॥१२॥

फिर मनुष्यों को कैसे गमनादिक करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

यदिन्द्र सर्गे अर्वतश्चोदयासे महाधने ।
असमने अध्वनि वृजिने पथि श्येनाँइव श्रवस्यतः ॥१३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) वीर शत्रुओं के नाश करनेवाले (यत्) जहां (सर्गे) मिलने योग्य (महाधने) बड़े धन जिससे उस और (असमने) नहीं विद्यमान सङ्ग्राम जिसमें ऐसे (वृजिने) बलकारक (अध्वनि) मार्ग में और (पथि) आकाशमार्ग में (श्येनानिव) बाजों को जैसे वैसे ((श्रवस्यतः) सुख की इच्छा करते हुए (अर्वतः) घोड़े आदि को (चोदयासे) प्रेरणा करिये वहां आपका दूर भी स्थित स्थान निकटसा होवे ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! युद्ध के विना भी जब जब कार्य्य के लिए गमन आप करें तब तब शीघ्र ही जाना चाहिये और शिथिलता पैरों से वा वाहन से जाने में नहीं करनी चाहिये ॥१३॥

फिर ये राजा आदि क्या करें इस विषय को कहते हैं—

सिन्धूँरिव प्रवण आशुया यतो यदि क्लोशमनु ष्वणि ।
आ ये वयो न वर्वृतत्यामिषि गृभीता बाह्वोर्गवि ॥१४॥२९॥

पदार्थ—हे राजन् आप (यदि) जो (प्रवणे) नीचे के स्थान में (सिन्धूनिव) नदियों को जैसे वैसे (आशुया) शीघ्र चलनेवाले घोड़ों से वा (ष्वणि) शब्द के होने और (आमिषि) मांस के देखने पर (वयः) पक्षी (न) जैसे वैसे (गवि) पृथिवी में (क्लोशम्) कोश को (अनु, वर्वृतति) अत्यन्त वा वारम्वार प्राप्त होते हैं वा (बाह्वोः) बाहुओं में (गृभीताः) ग्रहण की गई किरणें वा कलायें यथावत् जाती हैं तो दूसरे स्थान में प्राप्त होना दुर्लभ नहीं है (ये) जो (यतः) जहां से जाते (आ) आते हैं वे भी ऐसा करें ॥१४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो तुम जैसे जल ऊंचे स्थान से नीचे के स्थान को शीघ्र जाता है और जैसे बाज आदि पक्षी मांस के लिए शीघ्र जाते हैं वैसे भूमि अन्तरिक्ष वा जल में वाहनों से शीघ्र जाओ ॥१४॥

इस सूक्त में राजा वीर सङ्ग्राम गृह शूरवीर और यान कृत्य के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह छियालीसवां सूक्त और उनतीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथैकत्रिंशदृचस्य सप्तचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—३१ गर्ग ऋषिः । १—५ सोमः । ६—१९—२०, २१—३१ इन्द्रः । २० लिङ्गोक्ता देवताः । २२—२५ प्रस्तोकस्य सार्ञ्जयस्य दानस्तुतिः । २६—२८ रथः । २९—३१ दुन्दुभिर्देवता ॥ १, ३, ५, २१, २२, २८ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ८, ११, विराट् त्रिष्टुप् । ६, ७, १०, १५, १६, १८, २०, २९, ३० त्रिष्टुप् । २७ स्वराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २, ९, १२, १३, २३, ३१ भुरिक्पङ्क्तिः । १४, १७ स्वराट् पङ्क्तिः । २३ आसुरीपङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । १९ बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः । २४, २५ विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब एकतीस ऋचावाले सैंतालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में क्या करके राजा शत्रुओं से नहीं सहने योग्य होवे इस विषय को कहते हैं—

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतो न्व१स्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥१॥

पदार्थ—हे शूरवीर जनो जो (अयम्) यह (स्वादुः) सुन्दर स्वाद से युक्त (किल) निश्चय करके (उत) और (अयम्) यह (मधुमान्) मधुरादि गुणों से युक्त (किल) निश्चय करके (अयम्) यह (तीव्रः) तेजस्वी और वेगयुक्त (उत) और (अयम्) यह (रसवान्) बड़ी ओषधि का प्रशंसित रसयुक्त सार है (अस्य) इसके (उतो) भी (पपिवांसम्) पीनेवाले (इन्द्रम्) राजा आदि शूरवीर को (आहवेषु) संग्रामों में (नु) शीघ्र (कः, चन) कोई भी (न) नहीं (सहते) सहता है ॥ १ ॥

भावार्थ—जो ब्रह्मचर्य्य, जितेन्द्रियत्व और युक्त आहार विहारों से शरीर और आत्मा के बल से युक्त होते हैं उनको संग्रामों में सहने को शत्रु समर्थ नहीं हो सकते हैं ॥ १ ॥

फिर मनुष्य किसका सेवन करके क्या करें इस विषय को कहते हैं—

अयं स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद ।
पुरूणि यश्च्यौत्ना शम्बरस्य वि नवतिं नव च देह्यो३ हन् ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (इन्द्रः) सूर्य्य के सदृश प्रतापी राजा और जो (अयम्) यह (इह) इस संसार में (स्वादुः) अच्छे स्वाद से युक्त (मदिष्ठः) अतिशय आनन्द देनेवाला (आस) होता और (यस्य) जिसके पान करने से (ममाद) प्रसन्न होता है उसका पान करके जैसे (इन्द्रः) सूर्य प्रतापयुक्त (शम्बरस्य) मेघ के (नव, च) नव (नवतिम्) नब्बे प्रकार मेघगतियों का (वि, हन्) नाश करता है उस प्रकार से (देह्यः) वृद्धि करने के योग्य हुआ (वृत्रहत्ये) संग्राम में शत्रुओं की (पुरूणि) बहुत (च्यौत्ना) सेनाओं का नाश करे वही विजयी होवे ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिसका उत्तम स्वाद और जिससे बल बुद्धि तथा पराक्रम बढ़ते हैं उसके सेवन से शत्रुओं को जीत कर निष्कण्टक राज्य का सेवन करो ॥ २ ॥

फिर सोम ओषधि क्या करती है इस विषय को कहते हैं—

अयं मे पीत उदियर्ति वाचमयं मनीषामुशतीमजीगः ।
अयं षळुर्वीरमिमीत धीरो न याभ्यो भुवनं कच्चनारे ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (अयम्) यह (पीतः) पान किया गया सोमलता का रस (मे) मेरी (वाचम्) वाणी को (उशतीम्) कामना करती हुई (मनीषाम्) बुद्धि को (उत् इयर्त्ति) बढ़ाता है जिससे (अयम्) यह जन कामना को (अजीगः) प्राप्त होता है जिससे (अयम्) यह (षट्) छः प्रकार की (उर्वीः) भूमियों को (धीरः) ध्यान करनेवाला बुद्धिमान् जन (न) जैसे (अमिमीत) निर्म्माण करता है और (याभ्यः) जिनसे (आरे) दूर वा समीप में (कत्) कभी (चन) भी (भुवनम्) संसार को रचता है यह वैद्यकशास्त्र की रीति से बनाने योग्य है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिस पिये हुए से वाणी, बुद्धि, शरीर बढ़े और जिससे शास्त्र उत्तम प्रकार ग्रहण किए जायं इसका ही सेवन करना चाहिए न कि बुद्धि आदिकों के नाश करनेवाले का ॥ ३ ॥

फिर वह सोम क्या करता है इस विषय को कहते हैं—

अयं स यो वरिमाणं पृथिव्या वर्ष्माणं दिवो अकृणोदयं सः ।
अयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्व१न्तरिक्षम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो (अयम्) यह (सोमः) सोमलता का रस (तिसृषु) तीन भूमि आदिकों (प्रवत्सु) नीचे के स्थलों में (पीयूषम्) अमृत को (दाधार) धारण करता है और जो (अयम्) यह (पृथिव्याः) पृथिवी से (वरिमाणम्) श्रेष्ठपने को और (दिवः) सूर्य्य के प्रकाश से (वर्ष्माणम्) वृष्टि करने वालों को (अकृणोत्) करता है (सः) वह सब मनुष्यों से उत्तम प्रकार ग्रहण करने योग्य और जो (अयम्) यह (उरु) बहुत (अन्तरिक्षम्) मध्य में नहीं नष्ट होनेवाले को धारण करता है (सः) वह यह सब का सुख करनेवाला है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सोमलतारूप ओषधि का रस वायु के साथ भूमि को, किरणों के साथ सूर्य्य को धारण करता है उसको ग्रहण और सेवन करके सब रोगरहित होओ ॥ ४ ॥

अयं विदच्चित्रदृशीकमर्णः शुक्रसद्मनामुषसामनीके ।
अयं महान्महता स्कम्भनेनोद्द्यामस्तभ्नाद्वृषभो मरुत्वान् ॥५॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (अयम्) यह (वृषभः) वृष्टि करनेवाला (मरुत्वान्) बहुत वायु विद्यमान जिसमें ऐसा सूर्य्य (शुक्रसद्मनाम्) शुद्धस्थानों और (उषसाम्) प्रभातवेलाओं को (अनीके) सेना में (चित्रदृशीकम्) आश्चर्य्ययुक्त दर्शन जिसका ऐसे (अर्णः) जल को (विदत्) प्राप्त होता है और जो (अयम्) यह (महान्) बड़ा (महता) बड़े (स्कम्भनेन) धारण से (द्याम्) प्रकाश को (उत्, अस्तभ्नात्) ऊपर को उठाता है उसको कार्य्य का उपयोगी करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वान् जनो आप लोग सूर्य्य के सदृश प्रातःकाल से लेकर प्रयत्न से विद्याओं को प्रकाशित करके सुख को प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं—

धृषत्पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम् ।
माध्यन्दिने सवन आ वृषस्व रयिस्थानो रयिमस्मासु धेहि ॥६॥

पदार्थ—हे (शूर) भय से रहित (इन्द्र) सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान सेना के स्वामिन् जैसे (वृत्रहा) मेघ का नाश करनेवाला (माध्यन्दिने) मध्य दिन में की गई (सवने) प्रेरणा में (वसूनाम्) पृथिवी आदिकों के मध्य से जल को अत्यन्त पीता है वैसे (समरे) सङ्ग्राम में (धृषत्) ढीठ हुए (कलशे) पात्र में (सोमम्) बड़ी ओषधियों के रस को (पिब) पीजिये और (रयिस्थानः) धनों से युक्त हुए (आ, वृषस्व) बलिष्ठ हूजिये और (अस्मासु) हम लोगों में (रयिम्) धन को (धेहि) धारण करिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । हे राजन् ! जैसे मध्याह्न में वर्त्तमान सूर्य्य सम्पूर्ण समीप में वर्त्तमान जगत् को प्रकाशित करता है वैसे न्याय में वर्त्तमान हुए आप वादी और प्रतिवादी जनों की व्यवस्था करके राजनीति से न्याय को प्रकाशित कीजिये ॥ ६ ॥

इन्द्र प्र णः पुरएतेव पश्य प्र नो नय प्रतरं वस्यो अच्छ ।
भवा सुपारो अतिपारयो नो भवा सुनीतिरुत वामनीतिः ॥७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दुष्टों के नाश करनेवाले राजन् आप (पुरएतेव) आगे चलनेवाले के सदृश (नः) हम लोगों को (प्र,पश्य) अच्छे प्रकार देखिये और (नः) हम लोगों के (प्रतरम्) शत्रुओं के बल के उल्लंघन को (अच्छ) अच्छे प्रकार (प्र, नय) प्राप्त करिये और (नः) हम लोगों के शत्रुओं के बल का उल्लङ्घन और (वस्यः) अतिशय धन को अच्छे प्रकार प्राप्त कराइये और हम लोगों का (सुपारः) सुन्दर पार जिनसे ऐसे (अतिपारयः) अत्यन्त पार करनेवाले (भवा) हूजिये तथा (सुनीतिः) अच्छे न्याय वाले और (उत) भी (वामनीतिः) प्रशंसित नीति वाले (भवा) हूजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो राजा मनुष्यों की परीक्षा लेनेवाला और सब को न्याय मार्ग से ऐश्वर्य्य को प्राप्त कराने और दुःख से और सङ्ग्राम से पार पहुँचानेवाला और सदा धर्मपूर्वक नीतियुक्त होवे वही इस संसार में प्रशंसा को पावे ॥ ७ ॥

राजा अपने आश्रितों के प्रति कैसा वर्त्ताव करे इस विषय को कहते हैं—

उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता ॥८॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) न्याय को प्राप्त करानेवाले राजन् जिस (स्थविरस्य) विद्या और विनय से वृद्ध (ते) आपके (शरणा) शत्रुओं के नाश करनेवाले (बृहन्ता) बड़े (ऋष्वौ) श्रेष्ठ (बाहू) बल और वीर्य्य से युक्त भुजाओं को हम लोग (उप, स्थेयाम) प्राप्त होवें वह (विद्वान्) विद्वान् आप जिससे (नः) हम लोगों को (उरुम्) बहुत (स्वर्वत्) अत्यन्त सुख से युक्त (ज्योतिः) ज्ञान का प्रकाश और (अभयम्) भय से रहित (स्वस्ति) सुख (लोकम्) दर्शन वा वृद्धि को (अनु, नेषि) प्राप्त कराते हो इससे हम लोगों से आदर करने योग्य हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—राजा बड़े प्रयत्न से अपने अधीन प्रजाओं को विद्या और अभय सुख से युक्त करे जिससे सब प्रजा अनुकूल होवें ॥ ८ ॥

फिर वह राजा किन के प्रति कैसा वर्त्ताव करे इस विषय को कहते हैं—

वरिष्ठे न इन्द्र वन्धुरे धा वहिष्ठयोः शतावन्नश्वयोरा ।
इषमा वक्षीषां वर्षिष्ठां मा नस्तारीन्मघवन्रायो अर्यः ॥९॥

पदार्थ—हे (शतावन्) सेनाओं से युक्त (मघवन्) बहुत धनवाले (इन्द्र) ऐश्वर्य्यवान् राजन् (रायः) धन के (अर्यः) स्वामी आप (वहिष्ठयोः) अतिशय ले चलनेवाले (अश्वयोः) शीघ्र पहुंचाने वालों के (वरिष्ठे) अतिशय श्रेष्ठ (वन्धुरे) प्रेम बन्धन में वाहन से (नः) हम लोगों को (आ, धा.) सब प्रकार से धारण करिये तथा (इषम्) अन्न को (आ, वक्षि) प्राप्त हूजिये और (नः) हम लोगों को (वर्षिष्ठाम्) अतिशय वृद्ध (इषाम्) अन्न आदिकों को (मा) नहीं (तारीत्) अलग करिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—प्रजा और सेना के जनों को चाहिये कि राजा से ऐसी प्रेरणा करें कि आप हम लोगों को उत्तम वाहनों में उत्तम प्रकार बैठाकर अधिक धन प्राप्त कराइये जिससे हम लोगों के बन्धन को कभी मनुष्य न करें अर्थात् हम लोगों को कभी न ठगें ॥ ९ ॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

इन्द्र मृळ मह्यं जीवातुमिच्छ चोदय धियमयसो न धाराम् ।
यत्किं चाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम् ॥१०॥३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सबके लिये सुख के धारण करनेवाले आप (मा) मुझको (मृळ) सुखी करिये और (मह्यम्) मेरे लिये (जीवातुम्) जीवन की (इच्छ) इच्छा करिये और (अयसः) सुवर्ण के (न) समान (धियम्) बुद्धि वा धर्म्मयुक्त कर्म्म को और (धाराम्) प्रगल्भ वाणी को (चोदय) प्रेरणा करिये और (त्वायुः)

आपकी कामना करता हुआ (अहम्) मैं (यत्) जो (किम्) कुछ (च) भी (वचामि) कहता हूँ (तत्) उस (इदम्) इसको (जुषस्व) सेवन करिये और (चेकितानम्) विद्वान् जिसके सम्बन्ध में ऐसा मुझको (कृधि) करिये ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है हे राजन् ! जैसे सब जन सुवर्ण आदि धन की इच्छा करते हैं वैसे ही आप अपनी प्रजा के पालन की इच्छा करिये और सम्पूर्ण प्रजायें जैसे उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी, यथार्थ ज्ञान, अवस्था और विद्वानों के संग को प्राप्त होवें वैसे करिये ॥ १० ॥

फिर वह राजा क्या करे और प्रजाएँ उसका किस लिये आश्रयण करें इस विषय को कहते हैं—

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (मघवा) अत्यन्त श्रेष्ठ धन से युक्त (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्यवाला (नः) हम लोगों के लिये (स्वस्ति) सुख को (धातु) धारण करे उसको (हवेहवे) सङ्ग्राम सङ्ग्राम में (त्रातारम्) पालन करनेवाले (अवितारम्) ज्ञानादि के देने और (इन्द्रम्) अविद्या से दुष्ट जन के नाश करनेवाले (सुहवम्) सुन्दर पुकारना वा संग्राम जिसका उस (शूरम्) निर्भयत्व आदि गुणों से युक्त (इन्द्रम्) श्रेष्ठ गुणों के धारण करनेवाले (शक्रम्) समर्थ (पुरुहूतम्) बहुतों से पुकारे गये (इन्द्रम्) सेना के धारण करनेवाले को (ह्वयामि) पुकारता हूँ वैसे इसको आप लोग भी पुकारो ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य जैसे सर्वत्र सहायक परमेश्वर को पुकारते हैं वे वैसे ही राजा का भी सर्वत्र आश्रयण करें ॥ ११ ॥

फिर वह कैसा हो और उसकी रक्षा कौन करे इस विषय को कहते हैं—

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (सुत्रामा) उत्तम प्रकार रक्षा करनेवाला (स्ववान्) बहुत अपने जन विद्यमान जिसके ऐसा (विश्ववेदाः) सम्पूर्ण विज्ञान को जाननेवाला (इन्द्रः) दुष्टता का नाश करनेवाला (अवोभिः) रक्षण आदि से हम लोगों का (सुमृळीकः) उत्तम प्रकार सुख करनेवाला (भवतु) हो तथा (द्वेषः) द्वेष आदि दोषों से युक्त जनों का (बाधताम्) निवारण करे और (अभयम्) निर्भयपन (कृणोतु) करे उस (सुवीर्यस्य) सुन्दर पराक्रम वा ब्रह्मचर्य्य वाले के हम लोग (पतयः) पालन करनेवाले स्वामी (स्याम) होवें उसके रक्षक आप लोग भी हूजिये ॥ १२ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो जो राजा सम्पूर्ण विद्या और किये हुए पूर्ण ब्रह्मचर्य्य से युक्त बहुत मित्रों वाला और अपने सदृश श्रेष्ठ का रक्षक, दुष्टों को दण्ड देनेवाला, सब प्रकार से निर्भयता करता है उसकी रक्षा सब को चाहिये कि सब प्रकार से करें ॥ १२ ॥

फिर राजा और प्रजाजन कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद्द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (वयम्) हम लोग (तस्य) उस पहिले प्रतिपादन किये विद्या और विनय से युक्त राजा के और (यज्ञियस्य) विद्वानों की सेवा सङ्ग और विद्या के दान करने के योग्य की (सुमतौ) सुन्दर बुद्धि में (सौमनसे) उत्तम धर्म से युक्त मानस व्यवहार में (भद्रे) कल्याण करनेवालों में (अपि) भी निश्चय से वर्त्तमान (स्याम) होवें और जो (स्ववान्) अपने सामर्थ्य से युक्त (इन्द्रः) विद्या देनेवाला (अस्मे) हम लोगों की (सुत्रामा) उत्तम प्रकार पालना करनेवाला होता हुआ हम लोगों के (आरात्) समीप वा दूर से (चित्) भी (द्वेषः) धर्म से द्वेष करनेवालों को (सनुतः) सदा ही (युयोतु) पृथक् करे (सः) वह हम लोगों से सदा सत्कार करने योग्य है ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे राजा और प्रजाजनो ! जिस शुद्ध, न्याय और श्रेष्ठ गुणों में राजा वर्त्ताव करे वैसे इस विषय में हम लोग भी वर्त्ताव करें और सब मिलकर मनुष्यों से दोषों को दूर करके गुणों को संयुक्त करके सब काल में न्याय और धर्म के पालन करनेवाले होवें ॥ १३ ॥

फिर उस राजा का कौन गुण सेवन करते हैं इस विषय को कहते हैं—

अव त्वे इन्द्र प्रवतो नोर्मिर्गिरो ब्रह्माणि नियुतो धवन्ते ।
उरु न राधः सवना पुरूण्यपो गा वज्रिन्युवसे समिन्दून् ॥१४॥

पदार्थ—हे (वज्रिन्) शस्त्र और अस्त्रों से युक्त (इन्द्र) राजन् जो (त्वे) आप में (नियुतः) निश्चित सत्यवाद जिनमें ऐसी (गिरः) श्रेष्ठ वाणियां (ब्रह्माणि) धनों वा अन्नों को और (प्रवतः) नम्रों को (ऊर्मिः) लहर (न) जैसे वैसे (अव, धवन्ते) चलाती हैं और (उरु) बहुत (राधः) धनों को (न) जैसे वैसे (पुरूणि) बहुत (सवना) प्रेरणायें प्राप्त होती हैं और जिस कारण (अपः) जलों (गाः) भूमि वा वाणियों को और (इन्दून्) आनन्दों को (सम्, युवसे) संयुक्त करते हो इससे आप श्रेष्ठ हो ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जो ब्रह्मचर्य्य आदि श्रेष्ठ कर्म्मों को करते हैं उनको नीचे के स्थान को जल जैसे और पुरुषार्थी को लक्ष्मी जैसे वैसे सम्पूर्ण विद्या, सम्पूर्ण ऐश्वर्य और सम्पूर्ण आनन्द प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥

फिर कौन किनसे पूछें और समाधान करें इस विषय को कहते हैं—

क ईं स्तवत्कः पृणात्को यजाते यदुग्रमिन्मघवा विश्वहावेत् ।
पादाविव प्रहरन्नन्यमन्यं कृणोति पूर्वमपरं शचीभिः ॥१५॥३२॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो इस संसार में (कः) कौन (ईम्) प्राप्त होने योग्य परमात्मा की (स्तवत्) स्तुति करे और (कः) कौन सबका (पृणात्) पालन करे (कः) कौन सत्य का (यजाते) यजन करे कि (यत्) जो (मघवा) बहुत धनवाला (शचीभिः) कर्म्मों से (विश्वहा) सब दिन (उग्रम्) तेजस्वी (इत्) ही की (अवेत्) रक्षा करे तथा (पादाविव) चरणों के जैसे वैसे (अन्यमन्यम्) दूसरे दूसरे को (प्रहरन्) मारता हुआ (पूर्वम्) पहिले वाले को (अपरम्) पीछे (कृणोति) करता है ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे विद्वान् जनो ! हम लोग आप लोगों से पूछते हैं कि इस संसार में कौन ईश्वर की प्रशंसा करता, कौन सब का न्याय से पालन करता और कौन विद्वानों का सत्कार करता है, इन प्रश्नों का क्रम से उत्तर—जो विद्या के योग से धन से युक्त है वह सर्वदा परमेश्वर ही की स्तुति करता है और जो न्यायकारी राजा पक्षपात का त्याग कर अपराधी को दण्ड देता और धार्मिक का सत्कार करता है वह सर्वरक्षक है और जो स्वयं विद्वान् गुण और दोषों का जानने वाला है वही विद्वानों का सत्कार करने योग्य है ये उत्तर हैं ॥ १५ ॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं—

शृण्वे वीर उग्रमुग्रं दमायन्नन्यमन्यमतिनेनीयमानः ।
एधमानद्विळुभयस्य राजा चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान् ॥१६॥

पदार्थ—हे मन्त्रीजनो जो (वीरः) शूरता आदि गुणों से युक्त जन (उग्रमुग्रम्) तेजस्वी तेजस्वी जन को (दमायन्) इन्द्रियों का निग्रह कराता हुआ और (अन्यमन्यम्) दूसरे दूसरे को (अतिनेनीयमानः) अत्यन्त न्याय की व्यवस्था को प्राप्त कराता हुआ (एधमानद्विट्) वृद्धि को प्राप्त होते हुओं से द्वेष करनेवाला और (उभयस्य) राजा तथा प्रजाजन समुदाय का (राजा) न्याय और विनय से प्रकाशमान राजा (इन्द्रः) विद्या और विनय को धारण करनेवाला (विशः, मनुष्यान्) प्रजाजनों को (चोष्कूयते) निरन्तर पुकारता है उसको मैं न्यायेश (शृण्वे) सुनता हूँ ॥ १६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो मनुष्य दुष्टों दुष्टों को ताड़न करता, श्रेष्ठों-श्रेष्ठों का सत्कार करता, अन्य की वृद्धि देख कर द्वेष करनेवालों को दण्ड देता और प्रसन्नों का सत्कार करता हुआ सम्पूर्ण वादी और प्रतिवादी के वचनों को यथावत् सुन के सत्य न्याय को करता है वही राजा होने के योग्य है ॥ १६ ॥

फिर वह राजा क्या नहीं करके क्या करे इस विषय को कहते हैं—

परा पूर्वेषां सख्या वृणक्ति वितर्तुराणो अपरेभिरेति ।
अनानुभूतीरवधून्वानः पूर्वीरिन्द्रः शरदस्तर्तरीति ॥१७॥

पदार्थ—जो सूर्य्य के सदृश (इन्द्रः) राजा (पूर्वेषाम्) पूर्वजनों के (सख्या) मित्र से (वितर्तुराणः) विशेष करके अत्यन्त हिंसा करता और (अनानुभूतीः) अनुभव से रहित जनों को (अवधून्वानः) नीचे को कम्पाता हुआ (परा, वृणक्ति) त्यागता है और (अपरेभिः) अन्यों के साथ (एति) जाता है वह जैसे सूर्य्य (पूर्वीः) प्राचीन (शरदः) शरद् आदि ऋतुओं को वैसे वर्षों के (तर्तरीति) अत्यन्त पार होता है ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा वृद्धजनों के मित्रपन का त्याग करके नीच मित्रों को प्राप्त होता है वह कल्याण से च्युत होता है और जो अनभिज्ञ मित्रों का त्याग करके अभिज्ञों को मित्र करता है वही पूर्ण आयु भर सुख से पार होता है ॥ १७ ॥

फिर यह जीवात्मा कैसा होता है इस विषय को कहते हैं—

रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश ॥१८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (इन्द्रः) जीव (मायाभिः) बुद्धियों से (प्रतिचक्षणाय) प्रत्यक्ष कथन के लिए (रूपंरूपम्) रूप रूप के (प्रतिरूपः) प्रतिरूप अर्थात् उसके स्वरूप से वर्त्तमान (बभूव) होता है और (पुरुरूपः) बहुत शरीर धारण करने से अनेक प्रकार का (ईयते) पाया जाता है (तत्) वह (अस्य) इस शरीर का (रूपम्) रूप है और जिस (अस्य) इस जीवात्मा के (हि) निश्चय करके (दश) दश संख्या से विशिष्ट और (शता) सौ संख्या से विशिष्ट (हरयः) घोड़ों के समान इन्द्रिय अन्तःकरण और प्राण (युक्ताः) युक्त हुए शरीर को धारण करते हैं वह इसका सामर्थ्य है ॥ १८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे बिजुली पदार्थ के प्रति तद्रूप होती है वैसे ही जीव शरीर शरीर के प्रति तत्स्वभाववाला होता है और जब बाह्य विषय के देखने की इच्छा करता है तब उसको देख के तत्स्वरूपज्ञान इस जीव को होता है और जो जीव के शरीर में बिजुली के सहित असंख्य नाड़ी हैं उन नाड़ियों से यह सब शरीर के समाचार को जानता है ॥ १८ ॥

फिर वह जीव इस देह में कैसा वर्त्ताव करे इस विषय को कहते हैं—

युजानो हरिता रथे भूरि त्वष्टेह राजति ।
को विश्वाहा द्विषतः पक्ष आसत उतासीनेषु सूरिषु ॥१९॥

पदार्थ—जैसे (कः) कोई भी सारथि (रथे) सुन्दर वाहन के सदृश शरीर में (हरिता) ले चलनेवाले घोड़ों को (युजानः) जोड़ता हुआ (भूरि) बहुत (राजति) प्रकाशित होता है वैसे (त्वष्टा) सूक्ष्म करनेवाला जीव (इह) इस शरीर में (राजति) प्रकाशित होता है और (कः) कौन (इह) इस शरीर में (विश्वाहा) सब दिन (द्विषतः) द्वेष से युक्त का (पक्षः) ग्रहण करता (आसते) है और (उत) भी (आसीनेषु) स्थित (सूरिषु) विद्वानों में मूर्ख का आश्रय कौन करता है ॥ १९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! सदा ही मूर्खों का पक्ष त्याग के विद्वानों के पक्ष मे वर्त्ताव करिये और जैसे अच्छा सारथी घोड़ों को अच्छे प्रकार जोड़कर रथ मे, सुख से गमन आदि कार्यों को सिद्ध करता है वैसे जितेन्द्रिय जीव सम्पूर्ण अपने प्रयोजनों को सिद्ध कर सकता है और जैसे कोई दुष्ट सारथी घोड़ों से युक्त रथ मे स्थित होकर दुःखी होता है वैसे ही अजित इन्द्रियाँ जिसमें ऐसे शरीर मे स्थित होकर जीव दुःखी होता है ॥ १९ ॥

फिर मनुष्य कैसे आरोग्य को प्राप्त होवें इस विषय को कहते हैं—

अगव्यूति क्षेत्रमागन्म देवा उर्वी सती भूमिरंहूरणाभूत् ।
बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टावित्था सते जरित्र इन्द्र पन्थाम् ॥२०॥२३॥

पदार्थ—हे (बृहस्पते) बड़ों के पालन करने (चिकित्सा) रोगो की परीक्षा करने और (इन्द्र) रोग और दोषों के दूर करनेवाले वैद्यराज आपके सहाय से (उर्वी) बहुत फल आदि से युक्त (सती) वर्त्तमान (अंहूरणा) चलनेवालों का संग्राम जिसमें वह (भूमिः) पृथिवी (अभूत्) होती है और जहाँ (अगव्यूति) दो कोश के परिणाम से रहित (क्षेत्रम्) निवास करते हैं जिस स्थान मे ऐसा स्थान होता है उसको (देवाः) विद्वान् हम लोग (आ, अगन्म) सब प्रकार से प्राप्त होवें (इत्था) इस प्रकार से वा इस हेतु से (गविष्टौ) उत्तम प्रकार शिक्षितवाणी की सङ्गति मे (सते) वर्त्तमान (जरित्रे) स्तुति करनेवाले के लिए (पन्थाम्) मार्ग को (प्र) अच्छे प्रकार प्राप्त होवें ॥ २० ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो श्रेष्ठ वैद्य होवें उनके साथ मित्रता से रोग रहित, अधिक अवस्था वाले, बलिष्ठ, विद्वान् हो और भूमि के राज्य को प्राप्त होकर जहाँ कहीं विमान आदि वाहनो से जा,आ, कर विद्वानो के मार्ग का आश्रयण करो ॥ २० ॥

फिर राजा और प्रजाजन कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

दिवेदिवे सदृशीरन्यमर्धं कृष्णा असेधदप सद्मनो जाः ।
अहन्दासा वृषभो वस्नयन्तोदव्रजे वर्चिनं शम्बरं च ॥२१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (जाः) प्रकट हुआ सूर्य्य (दिवेदिवे) प्रतिदिन (सदृशीः) तुल्यस्वरूपयुक्त (कृष्णाः) खराब वर्णवाली वा खोदी गईं पृथिवियों और (अन्यम्) अन्य (अर्धम्) आधे को (च) भी (असेधत्) अलग करता है और (सद्मनः) निवास करते हैं जिसमे उस गृह के अन्धकार को (अप) अलग करता है तथा (वृषभः) वृष्टि करनेवाला (उदव्रजे) जल जाते हैं जिसमें उसमें (वर्चिनम्) प्रकाशमान (शम्बरम्) मेघ का (अहन्) नाश करता है वैसे (वस्नयन्ता) निवास करते हुए के समान आचरण करते हुए राजा और प्रजाजन (दासा) अपेक्षा करनेवाले हुए वर्त्ताव करें ॥ २१ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य और मेघ समस्त पृथिवी का आकर्षण कर प्रकाश और जलयुक्त करते हैं। वा जैसे सूर्य इस पृथिवी के अर्द्धभाग को प्रकाशित करता और वर्षा को करता है तथा अन्धकार का निवारण कर सबको सुखी करता है वैसे ही राजा और प्रजाजन सत्य को खैंच असत्य को त्याग कर अन्याय का निवारण कर न्याय का प्रचार कर और उत्तम विद्या के उपदेशों की वृष्टि कर सब मनुष्यों को सुखी करें ॥ २१ ॥

फिर वे राजा और प्रजाजन परस्पर कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इन्द्र दश कोशयीर्दश वाजिनोऽदात् ।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राधः शाम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म ॥२२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सूर्य्य के सदृश अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त जो (ते) आपके (वाजिनः) बहुत अन्नों से युक्त (राधसः) धन की (दश) दश (कोशयीः) कोशों खजानों को प्राप्त होनेवाली भूमियों को (प्रस्तोकः) स्तुति करनेवाला (अदात्) देता है और (दश) दशगुणी सम्पादित करता और जिस (अतिथिग्वस्य) अतिथियों को प्राप्त होनेवाले के (दिवोदासात्) प्रकाश देनेवाले से प्राप्त हुए (राधः) धन को (शाम्बरम्) और मेघ में हुए (वसु) जलनामक द्रव्य को हम लोग (प्रति, अग्रभीष्म) ग्रहण करें उसको (इत्) ही (नु) शीघ्र आप हम लोगो के लिए दीजिए उसको ही शीघ्र हम लोग आपके लिए देवें ॥ २२ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो आपके राज्य में असंख्य धनों को देने, वृष्टि करने तथा अतिथियों के सङ्ग का सेवन करनेवाला जन होवे उसकी रक्षा को आप करिये और जो हम लोगों को धन प्राप्त होवे उसको आपके लिए हम लोग देवें और जो आपको प्राप्त होवे उसको हम लोगों के लिए दीजिये ॥ २२ ॥

फिर मन्त्रीजन राजा से क्या प्राप्त होवें इस विषय को कहते हैं—

दशाश्वान्दश कोशान्दश वस्त्राधि भोजना ।
दशो हिरण्यपिण्डान्दिवोदासादसानिषम् ॥२३॥

पदार्थ—हे ऐश्वर्य्य से युक्त राजन् (दिवोदासात्) सुन्दर धन के देनेवाले आपसे (दश) दश संख्या से युक्त (अश्वान्) घोड़ों और (दश) दश संख्या से युक्त (कोशान्) दशगुने धन से पूर्ण खजानों और (दश) दश प्रकार के (वस्त्रा) वस्त्रों को और दश प्रकार के (अधिभोजना) अधिक भोजनों को और (दशो) दश प्रकार के (हिरण्यपिण्डान्) सुवर्ण आदि समूहों को मैं (असानिषम्) सविभाग करके प्राप्त होऊं ॥ २३ ॥

भावार्थ—जो धार्मिक, शूरवीर और शत्रुओं के जीतने वाले, राजभक्त और प्रजा के पालन मे तत्पर विद्वान् मन्त्रीजन होवें वे घोड़े आदि सम्पूर्ण पदार्थों को दशगुने राजा के समीप से प्राप्त होवें ॥ २३ ॥

फिर वह राजा अधिकार किसके लिए देवे इस विषय को कहते हैं—

दश रथान्प्रष्टिमतः शतं गा अथर्वभ्यः । अश्वथः पायवेऽदात् ॥२४॥

पदार्थ—हे राजन् वा गृहस्थ लोगो ! जैसे (अश्वथः) भोजन करनेवाला बुद्धिमान् जन (पायवे) पालन के लिए (अथर्वभ्यः) नहीं हिंसा करनेवालों को (प्रष्टिमतः) बहुत इच्छा विद्यमान जिनमें उन (दश) दश संख्या से विशिष्ट (रथान्) वाहनों को और (शतम्) सौ (गाः) गौओं को (अदात्) देवे वैसे आप भी दीजिये ॥ २४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजा आदि जन पालन करने योग्य के लिए पशु रथ आदि के रक्षण के अधिकार को देते हैं वे अच्छी सामग्री से युक्त होते हैं ॥ २४ ॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

महि राधो विश्वजन्यं दधानान्भरद्वाजान्त्सार्ञ्जयो अभ्ययष्ट ॥२५॥२४॥

पदार्थ—जो (सार्ञ्जयः) अनेक प्रकार के न्याययुक्त व्यवहारों को बनानेवाले का सन्तान (महि) बड़े (विश्वजन्यम्) संसार से वा सम्पूर्ण से उत्पन्न होने योग्य वा सम्पूर्ण सुख को उत्पन्न करनेवाले (राधः) धन को (दधानान्) धारण करनेवाले (भरद्वाजान्) अन्न आदि के धारण कर्त्ताओं के (अभि, अयष्ट) सन्मुख जावे वह राजा चक्रवर्ती होवे ॥ २५ ॥

भावार्थ—जो ब्रह्मचर्य से शरीर और आत्मा को बलिष्ठ कर और सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य को बढ़ाके उत्तम पुरुषों को ग्रहण करता है वही राजा राज्य को बढ़ाने के योग्य होवे ॥ २५ ॥

फिर वह राजा कैसे मित्रों की इच्छा करे इस विषय को कहते हैं—

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः संनद्धो असि वीळयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥२६॥

पदार्थ—हे (वनस्पते) किरणों के पालन करनेवाले सूर्य्यके समान वर्त्तमान (हि) जिससे (वीड्वङ्गः) बलिष्ठ अङ्ग जिनके वह (प्रतरणः) पार करनेवाले (सुवीरः) अच्छे प्रकार वीरों से युक्त (गोभिः) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियों के साथ (सन्नद्धः) अच्छे प्रकार तैयार हुए आप (असि) हो इससे (अस्मत्सखा) हम लोगों के मित्र (भूयाः) हूजिये और (आस्थाता) स्थिति से युक्त हुए हम लोगों को (वीळयस्व) दृढ़ कराइये (ते) आपकी सेना (जेत्वानि) जीतने योग्य शत्रुओं की सेनाओं को (जयतु) जीते ॥ २६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि धार्मिक बलवान् के साथ मित्रता करें जिससे सर्वदा विजय हो ॥ २६ ॥

फिर मनुष्यों को किन से उपकार ग्रहण करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज ॥२७॥

पदार्थ—हे विद्वन् आप (दिवः) बिजुली से वा सूर्य्य से (पृथिव्याः) भूमि वा अन्तरिक्ष से (वनस्पतिभ्यः) वट आदि वनस्पतियों से (ओजः) बल (उद्भृतम्) उत्तम रीति से धारण किया गया वा (सहः) बल (परि) सब प्रकार से (आभृतम्) सन्मुख धारण किया गया और (गोभिः) किरणों से (अपाम्) जलों के (ओज्मानम्) बलकारी (परि) सब ओर से (आवृतम्) ढाँपे गये

(इन्द्रस्य) बिजुली के (वज्रम्) प्रहार को और (रथम्) विमान आदि वाहन विशेष को (हविषा) सामग्री के दान से (परि,भज) उत्तम प्रकार प्राप्त हूजिये ॥२७॥

भावार्थ—जो मनुष्य सब ओर से बल को ग्रहण करके जलों के बलकारी मेघ को जैसे वैसे सुख को बर्षाते हैं वे सब प्रकार से सत्कृत होते हैं ॥ २७ ॥

फिर राजा को बिजुली से क्या सिद्ध करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः ।
सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥२८॥

पदार्थ—हे (देव, रथ) सुन्दर विद्वन् राजन् आप जो (मरुताम्) मनुष्यों की (अनीकम्) सेना के सदृश (इन्द्रस्य) बिजुली की (वज्रः) चमक वा शब्द (मित्रस्य) प्राण के (गर्भः) मध्य में स्थित और (वरुणस्य) श्रेष्ठ वायु का (नाभि) बन्धन है (सः) वह (नः) हम लोगो की (इमाम्) इस (हव्यदातिम्) देने योग्य दान की क्रिया को (जुषाणः) सेवन करता हुआ (हव्या) ग्रहण करने योग्यो को देता है उसको आप (प्रति, गृभाय) प्रतीति से ग्रहण करिये ॥ २८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वान् जनो ! बिजुली आदि पदार्थों और सम्पूर्ण मूर्त्त द्रव्यो के मध्य मे वर्त्तमान कर्म्मों से युक्त सेना को करके विजय से शोभित हूजिये ॥ २८ ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अप सेध शत्रून् ॥२९॥

पदार्थ—हे (दुन्दुभे) दुन्दुभि के सदृश गर्जने वाले जैसे (स) वह जगदीश्वर (पृथिवीम्) भूमि वा अन्तरिक्ष को और (उत) भी (द्याम्) सूर्य्य वा बिजुली को (विष्ठितम्) विशेष करके स्थित (जगत्) व्यतीत होनेवाले संसार को (मनुताम्) जाने उस ज्ञान से (पुरुत्रा) सम्पूर्ण पदार्थों मे हुए (इन्द्रेण) बिजुलीरूप अस्त्र से और (देवैः) विद्वान् वीरो से (सजूः) संयुक्त आप (शत्रून्) शत्रुओ को (दूरात्) दूर से (दवीय) अति दूर (अप, सेध) हराइये और जो (ते) आपके कल्याण को जाने उसकी उपासना करके सब को (उप, श्वासय) समझाइये ॥ २९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! जैसे ईश्वर ने पृथिवी और सूर्यादि सम्पूर्ण संसार को अपनी सत्ता से स्थापित किया वैसे ही बिजुली सम्पूर्ण द्रव्यो मे अभिव्याप्त होकर मध्य मे प्रविष्ट है, ईश्वर की उपासना और बिजुली आदि के प्रयोगो से दूर पर स्थित भी शत्रुओ को जीत कर सब को जिलाओ ॥ २९ ॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा निः ष्टनिहि दुरिता बाधमानः ।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीळयस्व ॥३०॥

पदार्थ—हे (दुन्दुभे) दुन्दुभी के समान वर्त्तमान आप (नः) हम लोगों के लिए (बलम्) सामर्थ्य को और (ओजः) पराक्रम को (आ, धाः) धारण करिये और शत्रुओ को (आ) सब ओर से (क्रन्दय) रुलाइये और बुलाइये तथा हम लोगों को (निः) अत्यन्त (स्तनिहि) शब्द कराइये और (दुरिता) दुष्ट व्यसनों को (बाधमानः) नष्ट करते हुए (दुच्छुनाः) दुष्ट कुत्तों के समान वर्त्तमान शत्रुओ के (अप, प्रोथ) जीतने को पर्याप्त हूजिये अर्थात् शत्रुओ को असमर्थ करिये जिससे आप (इन्द्रस्य) बिजुली की (मुष्टिः) मुष्टि के समान दुष्टो के मारने वाले (असि) हो इससे हम लोगो को (वीळयस्व) बलयुक्त करिये ॥ ३० ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप ऐसे बल को धारण करिये जिससे दुष्ट व्यसन, और दुष्ट शत्रु नष्ट होवें और प्रजाओ के पोषण करने को समर्थ होओ ॥ ३० ॥

फिर राजा आदि जन क्या करें इस विषय को कहते हैं—

आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥३१॥३५॥७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) शत्रुओ के विदीर्ण करनेवाले राजन् आप जैसे (दुन्दुभिः) नगाड़ा (केतुमत्) प्रशंसा योग्य बुद्धियुक्त (वावदीति) निरन्तर बजता, वैसे (इमाः) यह (अश्वपर्णाः) महान् पक्षों वाली अपनी सेनाएं (प्रत्यावर्त्तय) लौटाइये और उनसे (अमूः) यह शत्रुसेनाएं दूर (आ, अज) फेंकिये जो (अस्माकम्) हमारे (रथिनः) प्रशंसित रथ वाले (नरः) नायक वीर हमारे शत्रुओं को (जयन्तु) जीतें और जो विजय के लिए (सम् चरन्ति) सम्यक् विचरते हैं वे (नः) हम लोगो को सुशोभित करें ॥ ३१ ॥

भावार्थ—हे राजा आदि जनो ! तुम लोग दुन्दुभि आदि वादित्रो से भूषित, हर्ष वा पुष्टि से युक्त सेनाओ को अच्छे प्रकार रखकर इनसे दूरस्थ भी शत्रुओं को अच्छे प्रकार जीतकर प्रजाओ को धर्मयुक्त व्यवहार से पालन करो ॥ ३१ ॥

इस सूक्त मे सोम, प्रश्नोत्तर, बिजुली, राजा, प्रजा, सेना और वादित्रों के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

इस अध्याय मे इन्द्र, सोम, ईश्वर, राजा, प्रजा, मेघ, सूर्य, वीर, सेना, यान, यज्ञ, मित्र, ऐश्वर्य्य, प्रज्ञा, बिजुली, बुद्धिमान्, वाणी, सत्य, बल, पराक्रम, राजनीति, संग्राम और शत्रुविजय आदि गुणो का वर्णन होने से इस अध्याय की पूर्वाध्याय के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमद्विरजानन्दसरस्वती स्वामी के शिष्य श्रीमद्दयानन्दसरस्वती स्वामिविरचित, सुप्रमाणयुक्त, आर्यभाषाविभूषित, ऋग्वेदभाष्य के चौथे अष्टक में सप्तम अध्याय पैंतीसवां वर्ग और छठे मण्डल मे सैंतालीसवां सूक्त भी समाप्त हुआ ॥

卐

अथ अष्टमाऽध्यायारम्भः ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथ द्वाविंशत्यृचस्याष्टचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः । तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम् । १—१० अग्निः । ११, १२, २०, २१ मरुत । १३—१५ मरुतो लिङ्गोक्ता देवता वा । १६—१९ पूषा । २२ पृश्निर्द्यावाभूमि वा । १, ४, ५, १४ बृहती । ३, १६ विराड्बृहती । १०, १२, १७ भुरिग्बृहती छन्द । मध्यमः स्वर. । २ आर्ची जगती छन्दः । १५ निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः । ६, २१ त्रिष्टुप् । ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत स्वर । ९ भुरिगनुष्टुप् । २० स्वराडनुष्टुप् । २२ अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वर. । ११, १६ उष्णिक् । १३, १८ निचृदुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वर. ॥

अब चतुर्थाष्टक के अष्टमाध्याय का आरम्भ है इसमें बाईस ऋचावाले अड़तालीसवें सूक्त के प्रथम मन्त्र में विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय का वर्णन करते हैं—

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो (वः) आपके (यज्ञायज्ञा) यज्ञयज्ञ में (गिरागिरा, च) और वाणी २ से (अग्नये) अग्नि (दक्षसे) जो कि विलक्षण है उसके लिए (वयम्) हम लोग प्रयत्न करें । और (अमृतम्) नाश से रहित (जातवेदसम्) जातवेदस् अर्थात् जिससे विद्या उत्पन्न हुई ऐसे अग्नि (प्रियम्) मनोहर (मित्रम्) मित्र के (न) समान तुम लोगो की मैं जैसे (प्रप्र, शंसिषम्) वारंवार प्रशंसा करूं वैसे आप भी हम लोगों की प्रशंसा कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन आप लोगों की प्रीति उत्पन्न करें वैसे आप भी हमारे कार्य साधने के लिए प्रीति उत्पन्न कीजिए ॥ १ ॥

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को कहते हैं—

ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (अयम्) यह (अस्मयुः) हम लोगों की कामना करनेवाला तथा (हव्यदातये) देने योग्य दान के लिए (अविता) रक्षा करनेवाला (भुवत्) होवे और (वाजेषु) संग्रामों में रक्षा करनेवाला (भुवत्) हो तथा (वृधः) वृद्धि करने वा रक्षा करनेवाला हो (उत) और (तनूनाम्) शरीरों का (त्राता) पालन करनेवाला हो उसको (ऊर्जः) पराक्रम के (नपातम्) नपातन कराने अर्थात् न विनाश करानेवाले की अच्छे प्रकार रक्षा कर हम सुख (दाशेम) देवें (सः, हिन) वही हमारे लिए सुख देवे ॥ २ ॥

भावार्थ—हे प्रजासेनाजनो ! जो राजा संग्राम वा असंग्राम में सबकी रक्षा करनेवाला निरन्तर हो तदनुकूल वर्त्ताव कर हम लोग उसके लिए पुष्कल सुख देवें ॥२॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वृषा ह्यग्ने अजरो महान्विभास्यर्चिषा ।
अजस्रेण शोचिषा शोशुचच्छुचे सुदीतिभिः सु दीदिहि ॥३॥

पदार्थ—हे (शुचे) विद्या और विनय से प्रकाशित (अग्ने) पावक के समान वर्त्तमान (हि) जिससे (वृषा) अत्यन्त बलवान् (अजरः) जरा अवस्था से रहित (महान्) बड़े आप (अजस्रेण) निरन्तर (अर्चिषा) सत्कार वा दीप्ति से (शोचिषा) वा प्रकाश से (शोशुचत्) निरन्तर पवित्र करते हुए (सुदीतिभिः) उत्तम दीप्तियों से सबको (विभासि) विशेषता से प्रकाशित करते हैं इससे हम लोगों को (सु, दीदिहि) प्रकाशित कीजिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आपको चाहिए कि निरन्तर विद्या और विनय के प्रकाश से और दुष्ट व्यसनों के नाश से प्रजा की निरन्तर पालना करो ॥ ३ ॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

महो देवान्यजसि यक्ष्यानुषक्तव क्रत्वोत दंसना ।
अर्वाचः सीं कृणुह्यग्नेऽवसे रास्व वाजोत वंस्व ॥४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान राजन् आप (अर्वाचः) जो प्राप्त होते उन (महः) महान् अत्युत्तम महात्मा (देवान्) विद्वान्जनों से (यजसि) सङ्गत होते हैं और (आनुषक्) अनुकूलता में (दंसना) कर्मों को (यक्षि) संगत करते हैं उन (तव) आपकी (क्रत्वा) प्रज्ञा से हम लोग उनको सत्कृत करें (उत) और (अवसे) रक्षा के अर्थ हम लोगों के लिए (रास्व) दीजिये और (सीम्) सब ओर से सुख (कृणुहि) कीजिए (उत) और (वाजा) अन्नों का (वंस्व) सेवन कीजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मूर्खों को विद्वान् करते हैं वे महत् अनुकूल सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यमापो अद्रयो वना गर्भमृतस्य पिप्रति ।
सहसा यो मथितो जायते नृभिः पृथिव्या अधि सानवि ॥५॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यम्) जिस (ऋतस्य) जलके (गर्भम्) गर्भरूप संसार को (आपः) जल (अद्रयः) मेघ और (वना) किरण (पिप्रति) पूर्ण करते हैं और (यः) जो (नृभिः) नायक मनुष्यों से (सहसा) बलसे (मथितः) मथा हुआ (पृथिव्याः) पृथिवी के (अधि) ऊपर (सानवि) पर्वत के शिखर पर (जायते) प्रसिद्ध होता है उस अग्नि को तुम अच्छे प्रकार युक्त करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सब में व्याप्त होकर रहनेवाले अग्नि को विद्वान् जन प्राप्त होते और मथ के प्रदीप्त करते हैं वे भूमि के राज्य करने में अधिष्ठाता होते हैं ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

आ यः पप्रौ भानुना रोदसी उभे धूमेन धावते दिवि ।
तिरस्तमो ददृश ऊर्म्यास्वा श्यावास्वरुषो वृषा श्यावा अरुषो वृषा ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो तुम (यः) जो (भानुना) किरण से (उभे) दोनों (रोदसी) द्यावापृथिवी को (आ, पप्रौ) व्याप्त होता और (धूमेन) धूम से (दिवि) अन्तरिक्ष में (धावते) दौड़ता है तथा (श्यावासु) काली (ऊर्म्यासु) रात्रियों में जो (तमः) अन्धकार उसको (तिरः) तिरस्कार कर (अरुषः) लाल रंगवाला (वृषा) वर्षा का निमित्त है और जिसकी (श्यावाः) वेगवती किरणें विद्यमान हैं जो (अरुषः) कुछ लाली लिए हुए है वह (वृषा) वर्षा करनेवाला सूर्य्य (आ, ददृशे) अच्छे प्रकार देखा जाता है उसे (आ) अच्छे प्रकार जानो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जिस बिजुलीरूप आग से भूमि और सूर्य्य दिखाते हैं, जिससे अधिक वेगवान् कोई नहीं तथा जो अन्धकार की निवृत्ति करनेवाला है उसका अच्छे प्रकार प्रयोग करो ॥ ६ ॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा । भरद्वाजे समिधानो
यविष्ठ्य रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि ॥७॥

पदार्थ—हे (शुक्र) शीघ्र कर्म करने (पावक) वा पवित्र करने (यविष्ठ्य) वा अतीव युवा अवस्था रखने वा (देव) देनेवाले (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वन् जैसे अग्नि (बृहद्भिः) महान् (अर्चिभिः) तेजों से (भरद्वाजे) विज्ञानादि के धारण करनेवाले व्यवहार में (समिधानः) अच्छे प्रकार देदीप्यमान (नः) हमारे लिये (द्युमत्) प्रशस्त प्रकाश वा (रेवत्) प्रशस्त ऐश्वर्य्य से युक्त धन को देता है वैसे (शुक्रेण) शुद्ध (शोचिषा) न्याय के प्रकाश से उसे (दीदिहि) प्रकाशित कीजिये, तथा विद्या और नम्रता (दीदिहि) दीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् जन सूर्य के समान शुभ गुणों में बल वा सुशीलता से लक्ष्मी को प्राप्त होकर प्रकाशित होते हैं वे सत्कार करने योग्य हैं ॥ ७ ॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

विश्वासां गृहपतिर्विशामसि त्वमग्ने मानुषीणाम् ।
शतं पूर्भिर्यविष्ठ पाह्यंहसः समेद्धारं शतं हिमाः स्तोतृभ्यो ये च ददति ॥८॥

पदार्थ—हे (यविष्ठ) शरीर और आत्मा के बल से युक्त (अग्ने) दुष्टों के दाह करनेवाले (ये) जो (स्तोतृभ्यः) स्तुति करनेवाले विद्वानों से (शतम्) सौ (हिमाः) वृद्धि वा हेमन्त आदि ऋतुओं तक (समेद्धारम्) अच्छे प्रकार प्रकाश करनेवाले को (ददति) देते (च) और शुभ गुणों को ग्रहण कर दूसरों को देते हैं उनके साथ युक्त (विश्वासाम्) समस्त (मानुषीणाम्) मनुष्यसम्बन्धी (विशाम्) प्रजाजनों के बीच जिससे (त्वम्) आप (गृहपतिः) घर के स्वामी (असि) हैं वा (पूर्भिः) नगरों के साथ इनके लिये (शतम्) सौ पदार्थ देते हैं इस कारण हम लोगों की (अंहसः) दुष्ट आचरण से (पाहि) रक्षा करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो इस प्रजा में विद्या और धर्म आदि शुभ गुणों को ग्रहण कराते हैं उनका तुम निरन्तर सत्कार करो और वे आपका भी सत्कार करें ॥८॥

फिर विद्वान् जन सतानों को कैसे शिक्षा दें इस विषय को कहते हैं—

त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥९॥

पदार्थ—हे (वसो) वास करानेवाले (अग्ने) बिजुली के समान पुरुषार्थी जन (चित्र.) अद्भुत पुरुषार्थ करनेवाले (त्वम्) आप (ऊत्या) रक्षा से (नः) हम लोगों के (राधांसि) समृद्ध धनों की रक्षा करो तथा (अस्य) इसके (रायः) धन की (चोदय) प्रेरणा करो जिस कारण आप (विदा) विज्ञानवान् और (रथीः) बहुत प्रशंसायुक्त रथ वाले (असि) हैं इस कारण से (तु) फिर (नः) हम लोगों के (तुचे) सन्तान के लिये (गाधम्) बुद्धि विलोडन की प्रेरणा करो ॥९॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! आप जैसे इन हमारे सतानों की बुद्धि के विलोडने से विद्या प्राप्ति हो वैसे अनुविधान कीजिये तथा जैसे पुरुषार्थी जन धन और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये प्रेरणा करता है वैसे ही आप शिक्षा दीजिये ॥ ९ ॥

फिर मनुष्यों को कौन सत्कार करने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।
अग्ने हेळांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च ॥१०॥२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) पढ़ाने वाले जिस कारण (त्वम्) आप (अप्रयुत्वभिः) न मिले हुए अर्थात् अलग २ विद्यमान (अदब्धैः) हिंसारहित (पर्तृभिः) पालना करनेवाले व्यवहारों से (नः) हमारे (तोकम्) शीघ्र उत्पन्न हुए सतान वा (तनयम्) सुन्दर कुमार की (पर्षि) पालना करते हो और (अदेवानि) अशुद्ध (दैव्या) विद्वानों में कहे गये (हेळांसि) अनादरों और (ह्वरांसि) कुटिल कर्म्मों को (च) भी (युयोधि) अलग करते हो इससे सत्कार करने योग्य हो ॥ १० ॥

भावार्थ—जो अध्यापक वा उपदेशक पढ़ाने तथा उपदेश करने से शुभ गुणों को ग्रहण करा कर सबके दोषों का निवारण कराते हैं वे ही सदा सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ १० ॥

कौन इस संसार में मित्र हैं इस विषय को कहते हैं—

आ सखायः सबर्दुघां धेनुमजध्वमुप नव्यसा वचः ।
सृजध्वमनपस्फुराम् ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (सखायः) मित्रवर्गो तुम (नव्यसा) अतीव नवीन पढ़ाने वा उपदेश करने से (सबर्दुघाम्) समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाली (अनपस्फुराम्) निश्चल दृढ़ (धेनुम्) वाणी को (अजध्वम्) प्राप्त करिये तथा (वचः) अर्थात् वचन को (उप, आ, सृजध्वम्) विविध प्रकार की विद्या से युक्त करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो सुहृद् होकर सत्य, सुन्दरशिक्षायुक्त, वाणी और विद्या को विद्यार्थियों को ग्रहण कराते हैं वे संसार के सुख करनेवाले होते हैं ॥ ११ ॥

अब माता जन सन्तानों को सदा शिक्षा देवें इस विषय को कहते हैं—

या शर्धाय मारुताय स्वभानवे श्रवोऽमृत्यु धुक्षत ।
या मृळीके मरुतां तुराणां या सुम्नैरेवयावरी ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो (या) जो विद्या और सुन्दरशिक्षायुक्त विद्या पढ़ाने वा उपदेश करनेवाली (मारुताय) मनुष्यो के इस (स्वभानवे) अपनी विशेष बुद्धि के प्रकाश वा (शर्धाय) बल के लिये (अमृत्यु) जिसमे मृत्युभय विद्यमान नहीं उस (श्रव) श्रवण को (धुक्षत) परिपूर्ण करे वा (या) जो विदुषी स्त्री (मृळीके) सुख करनेवाले व्यवहार मे (तुराणाम्) शीघ्रकारी (मरुताम्) मनुष्यो के बीच मृत्युभय जिसमे नहीं उस श्रवण को परिपूर्ण करे तथा (सुम्नैः) सुखो से (या) जो शिक्षा करने वा (एवयावरी) दुःख निवारणेवाली सन्तानो की शिक्षा करती है वही यहा मानने योग्य होती है ॥ १२ ॥

भावार्थ—वे ही स्त्रिया धन्य हैं जो अपने सतानो को विद्या और सुन्दर शिक्षा करने व कराने को निरतर प्रयत्न करती हैं ॥ १२ ॥

भरद्वाजायाव धुक्षत द्विता ।
धेनुं च विश्वदोहसमिषं च विश्वभोजसम् ॥ १३ ॥

पदार्थ—जो विदुषी माता (भरद्वाजाय) जिसने विज्ञान धारण किया उसके लिये (विश्वदोहसम्) जिससे समस्त विज्ञान को पूर्ण करती उस (धेनुम्) विद्या युक्त वाणी को (अव, धुक्षत) परिपूर्ण करती है और (विश्वभोजसम्) समस्त मनुष्यमात्र के पालक (इषम्) अन्न वा विज्ञान को (च) भी परिपूर्ण करती है वह (द्विता) दोनो विज्ञान वा अन्न की चेष्टा वाली (च) भी इस प्रचारिणी क्रिया से होती है ॥ १३ ॥

भावार्थ—जो स्त्रीजन सत्यभाषणयुक्त वाणी और सर्वोत्तम सत्य विद्या को सन्तानो के लिये देती है वे ही देवी विदुषी स्त्रिया बहुत मान करने के योग्य होती हैं ॥ १३ ॥

फिर मनुष्य किसकी प्रशसा करें इस विषय को कहते हैं—

तं व इन्द्रं न सुक्रतुं वरुणमिव मायिनम् ।
अर्यमणं न मन्द्रं सप्रभोजसं विष्णुं न स्तुष आदिशे ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् आप जिस इस (इन्द्रम्) बिजुली के समान तीव्रबुद्धि के (न) समान (सुक्रतुम्) उत्तम बुद्धि वाले (वरुणमिव) वरुण के समान (मायाम्) कुत्सित बुद्धि वाले वा (अर्यमणम्) न्यायाधिपति के (न) समान (मन्द्रम्) आनन्द देनेवाले (विष्णुम्) व्यापक जगदीश्वर के (न) समान (सप्रभोजसम्) प्राप्त हुए पदार्थों के पालने की (स्तुषे) प्रशसा करते है (तम्) उसको (वः) तुम लोगो के लिये (आदिशे) आज्ञा पालन के अर्थ मैं उसकी प्रशसा करता हूँ ॥१४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य्य के समान विद्या-प्रकाशक, व्याध के समान दुष्टो के मारने वाले, आप्त विद्वान् के समान न्याय के करनेवाले, ईश्वर के समान सर्व के पालन वाले, सत्य के उपदेश करनेवाले तथा धर्म करनेवाले मनुष्य की प्रशसा करते है वे ही इस ससार मे परीक्षा करनेवाले होते हैं ॥१४॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते है—

त्वेषं शर्धो न मारुतं तुविष्वण्यनर्वाणं पूषणं सं यथा शता ।
सं सहस्रा कारिषच्चर्षणिभ्य आँ आविर्गूळ्हा वसू करत्सुवेदा नो वसू करत् ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो (यथा) जैसे (सुवेदा) सुशोभित विज्ञान जिसका वह (नः) हम लोगो के लिये (त्वेषम्) दीप्तिमत् (तुविष्वणि) बहुत शब्दो वाले (मारुतम्) मनुष्यसबंधी (शर्धः) बल के (न) समान (अनर्वाणम्) अविद्यमान है अश्व जिसमे उस पदार्थ को (पूषणम्) पुष्टि करनेवाला (करत्) करे वा जैसे (चर्षणिभ्यः) मनुष्यो के लिये (शता) सैकडो वा (सहस्रा) सहस्रो (गूळ्हा) गुप्त (वसू) धनो को (आ, सम्, कारिषत्) सब और अच्छे प्रकार सिद्ध करे और गुप्त (वसू) विज्ञान वा धनो को (सम्, आविष्करत्) प्रकट करे वैसे इनको आप करें ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है । हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन विज्ञानदान से गुप्त विद्याओं को तुम्हारे लिये प्रकट करते है और आपके शारीरिक और आत्मिक बल को बढाते है वैसे इनको तुम बढाओ ॥ १५ ॥

फिर मनुष्य परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को कहते हैं—

आ मा पूषन्नुप द्रव शंसिषं नु ते अपिकर्ण आघृणे ।
अघा अर्यो अरातयः ॥ १६ ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (पूषन्) पुष्टि करनेवाले (आघृणे) सब ओर से प्रकाशमान जिन (ते) आपके (अपिकर्णे) ढपे हुए कर्ण मे मैं (नु) शीघ्र सत्य की (शंसिषम्) प्रशंसा करू सो (अर्यः) स्वामी हुए आप (आ) सब ओर से (मा) मेरे (उप,-द्रव) समीप आओ और जो (अरातयः) न देनेवाले जन हों उन्हे शीघ्र (अघाः) हनिये अर्थात् मारिये ॥ १६ ॥

भावार्थ—हे पालनीय जन ! आप रक्षा के लिए मेरे समीप आओ, मैं सत्यो-पदेश से तुम्हे विचक्षण करू तथा हम सब लोग मिलके दुष्टों का विनाश करें ॥१६॥

मनुष्यों को क्या न करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

मा काकम्बीरमुद्वृहो वनस्पतिमशस्तीर्वि हि नीनशः ।
मोत सूरो अह एवा चन ग्रीवा आदधते वेः ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् आप (काकंबीरम्) कौओ की पुष्टि करनेवाले (वन-स्पतिम्) वन आदि वृक्ष को (मा, उत्, वृह) मत उच्छिन्न करो तथा (अशस्तीः) और अप्रशसित (हि) ही कर्मों की (वि, नीनश) विशेषता से निरन्तर नाश करो और (सूर.) सूय (अह', एव) दिन मे ही जैसे (वेः) पक्षी के (ग्रीवाः) कण्ठो को (चन) निश्चय मे (आदधते) अच्छे प्रकार धारण करते हैं वैसे (उत) तो हम लोगो को (मा) मत पीडा देओ ॥ १७ ॥

भावार्थ—किसी मनुष्य को श्रेष्ठ वृक्ष वा वनस्पति न नष्ट करने चाहियें किन्तु इनमे जो दोष हो उनको निवारण करके इन्हे उत्तम सिद्ध करने चाहियें, हे मनुष्य ! जैसे श्येन बाज पक्षी और पखेरुओ की गर्दने पकड घोटता है वैसे किसी को दुःख न देओ ॥ १७ ॥

किनकी मित्रता नहीं नष्ट होती है इस विषय को कहते हैं—

दृतेरिव तेऽवृकमस्तु सख्यम् । अच्छिद्रस्य दधन्वतः ।
सुपूर्णस्य दधन्वतः ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् (अच्छिद्रस्य) अखण्डित और (दधन्वतः) दृढता से धारण करनेवाले (दृतेरिव) मेघ के समान (सुपूर्णस्य) अच्छे प्रकार परिपूर्ण प्रसिद्ध (दधन्वत) विद्या और शुभ गुणो के धारण करनेवालो को धारण करनेवाले (ते) तुम्हारी (अवृकम्) चोरी से रहित (सख्यम्) मित्रता (अस्तु) हो ॥१८॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है । जैसे मेघ और भूमि का मित्रवत् व्यवहार है वैसे ही धार्मिक विद्वानों की मित्रता अजर अमर वर्तमान है ॥ १८ ॥

मनुष्यों को कैसा होना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

परो हि मर्त्यैरसि समो देवैरुत श्रिया ।
अभि ख्यः पूषन्पृतनासु नस्त्वमवा नूनं यथा पुरा ॥१९॥

पदार्थ—हे (पूषन्) पुष्टि करनवाले (यथा) जैसे (हि) जिस कारण (पुरा) पहिले (त्वम्) आप (नः) हमारी (पृतनासु) मनुष्य सेनाओं में (अभि,-ख्य) सब ओर से अच्छे प्रकार कथन करते हैं वैसे (नूनम्) निश्चित (मर्त्यैः) साधारण मनुष्य वा (देवैः) विद्वान् (उत) और (श्रिया) लक्ष्मी के साथ (परः) उत्कृष्ट अत्युत्तम वा (समः) समान (असि) है इससे (अवा) रक्षा कीजिये ॥१९॥

भावार्थ—जो विद्वानो के तुल्य है वह विद्वान्, जो मनुष्यो के तुल्य है वह मध्यम और जो पशुओ के तुल्य हैं वह अधम मनुष्य है इसको सब जानें ॥ १९ ॥

फिर मनुष्यो को कैसी नीति धारण करनी चाहिये इस विषय को कहते है—

वामी वामस्य धूतयः प्रणीतिरस्तु सूनृता ।
देवस्य वा मरुतो मर्त्यस्य वेज्यानस्य प्रयज्यवः ॥ २० ॥

पदार्थ—हे (धूतय.) कपन करानेवाले (प्रयज्यव.) उत्तमता से यज्ञसंपादका तुम मे (वामस्य) प्रशसा करने योग्य का सम्बन्धी (वामी) बहुत प्रशसित कर्मकर्त्ता और (देवस्य) विद्वान् की (वा) वा (मरुतः) मरणधर्मा तथा (ईजानस्य) यज्ञकर्त्ता (वा) वा (मर्त्यस्य) साधारण मनुष्य की (सूनृता) सत्यभाषणादि युक्त (प्रणीति.) उत्तम नीति (अस्तु) हो ॥ २० ॥

भावार्थ—आप्त राजा मन्त्रियो का उपदेश देवे कि—आप लोग न्यायकारी तथा धर्मात्मा होकर पुत्र के समान प्रजाजनो का पालें ॥ २० ॥

किस राजा की पुण्यरूप कीर्ति होती है इस विषय को कहते हैं—

सद्यश्चिद्यस्य चर्कृतिः परि द्यां देवो नैति सूर्यः । त्वेषं शवो दधिरे नाम यज्ञियं मरुतो वृत्रहं शवो ज्येष्ठं वृत्रहं शवः ॥२१॥

पदार्थ—(यस्य) जिस राजा की (चर्कृति) निरन्तर उत्तम क्रिया (देवः) देदीप्यमान (सूर्य) सविता और (द्याम्) प्रकाश के (न) समान (सद्यः) शीघ्र विनय को (परि, एति) सब ओर से प्राप्त होती वा जिसके (मरुतः) प्रजाजन (त्वेषम्) देदीप्यमान (नाम) संज्ञा (यज्ञियम्) यज्ञ संपादक और (शवः) बल को (दधिरे) धारण करते हैं वा (वृत्रहम्) शत्रुओ के नाश करनेवाले (शवः) बल वा (ज्येष्ठम्) प्रशंसित (वृत्रहम्) धन प्राप्त करनेवाले (शवः, चित्) बल को भी धारण करते हैं उसका सर्वत्र विजय होता है ॥ २१ ॥

भावार्थ—जो राजा विद्या और विनय से युक्त, पुरुषार्थी, दृढ प्रतिज्ञा करनेवाला, जितेन्द्रिय, धार्मिक, सत्यवादी होकर धार्मिक विद्वानों को अधिकार में संस्थापन कर पुत्र के समान प्रजाजनों को पालता है उसकी इस जगत् में सूर्य्य के समान कीर्ति फैलती है ॥ २१ ॥

अब प्रजा के कृत्य को कहते हैं—

सकृद्ध द्यौरजायत सकृद्भूमिरजायत ।
पृश्न्या दुग्धं सकृत्पयस्तदन्यो नानु जायते ॥ २२ ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (ह) निश्चय के साथ (द्यौः) सूर्य (सकृत्) एकवार (अजायत) उत्पन्न होता है तथा (भूमिः) भूमि (सकृत्) एकवार (अजायत) उत्पन्न होती है और (पृश्न्याः) अन्तरिक्ष में उत्पन्न होनेवाली सृष्टियाँ (सकृत्) एकवार उत्पन्न होती हैं तथा (दुग्धम्) दूध और (पयः) जल एकवार उत्पन्न होता है (तत्) उससे (अन्य) और (न) नहीं (अनु, जायते) अनुकरण करता वैसे तुम जानो ॥ २२ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जिस ईश्वर ने सूर्य आदि जगत् एकवार उत्पन्न किया वह इस सृष्टि के साथ नहीं उत्पन्न होता किन्तु इस सृष्टि से भिन्न अर्थात् भेद को प्राप्त होकर सब को शीघ्र उत्पन्न करता है उसी का ध्यान तुम लोग करो ॥ २२ ॥

इस सूक्त में अग्नि, मरुत्, पूषा, पृश्नि, सूर्य, भूमि, विद्वान्, राजा और प्रजा के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह अड़तालीसवां सूक्त और चतुर्थ वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चदशर्चस्यैकोनपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य ऋजिश्वा ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । १, ३, ४, १०, ११ त्रिष्टुप् । ५, ६, ९, १३ निचृत्त्रिष्टुप् । ८, १२ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २, १४ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ७ ब्राह्म्युष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । १५ अतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचावाले उनचासवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

स्तुषे जनं सुव्रतं नव्यसीभिर्गीर्भिर्मित्रावरुणा सुम्नयन्ता ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (नव्यसीभिः) अतीव नवीन (गीर्भिः) शीघ्र सुशिक्षित वाणियों से (सुव्रतम्) जिसके शुभ व्रत अर्थात् कर्म हैं उस (जनम्) मनुष्य की ओर (सुम्नयन्ता) सुख प्राप्ति करानेवाले (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान पढ़ाने और उपदेश करनेवाले की मैं (स्तुषे) स्तुति करता हूँ तथा जो (मित्रः) मित्र (वरुणः) श्रेष्ठ (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी और (सुक्षत्रासः) जिनका सुन्दर राज्य और धन है ऐसे वर्त्तमान हैं (ते) वे (इह) यहाँ (आ, गमन्तु) आवें और (ते) वे (श्रुवन्तु) श्रवण करें ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो तुमको नवीन २ विद्या का उपदेश करते हैं उनको बुलाकर वा उनसे मेलकर उनसे सुनकर विद्याओं को प्राप्त होओ ॥ १ ॥

फिर मनुष्य किसकी स्तुति करें इस विषय को कहते हैं—

विशोविश ईड्यमध्वरेष्वदृप्तक्रतुमरतिं युवत्योः ।
दिवः शिशुं सहसः सूनुमग्निं यज्ञस्य केतुमरुषं यजध्यै ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (अध्वरेषु) अहिंसनीय व्यवहारों में (विशोविशः) प्रजा प्रजा के बीच (अरतिम्) विषयों में बिना रमते हुए (अदृप्तक्रतुम्) जिसकी बुद्धि मोहित नहीं हुई उस (ईड्यम्) स्तुति करने योग्य (युवत्योः) युवावस्था को प्राप्त हुए स्त्री पुरुष के (दिवः) मनोहर व्यवहार सम्बन्धी (शिशुम्) बालक को (सहसः) वा बलवान् के (सूनुम्) उस पुत्र को जो (अग्निम्) अग्नि के समान वर्त्तमान तथा (अरुषम्) कुछ लाल रंग युक्त और (यज्ञस्य) यज्ञादि कर्म का (केतुम्) अच्छे प्रकार समझानेवाला है (यजध्यै) सङ्ग करने के लिए स्तुति करो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो ब्रह्मचर्य्य से युवा अवस्था को प्राप्त स्त्री पुरुषों के उत्तम बल से उत्पन्न, अग्नि के समान तेजस्वी हो उसको राजा वा अधिकारी करो ॥ २ ॥

अब स्त्री पुरुष कैसे होकर कैसे वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

अरुषस्य दुहितरा विरूपे स्तृभिरन्या पिपिशे सूरो अन्या ।
मिथस्तुरा विचरन्ती पावके मन्म श्रुतं नक्षत ऋच्यमाने ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे स्त्रीपुरुषो वा राजा और प्रजाजनो ! जैसे (अरुषस्य) कुछ लाल रंग वाले अग्नि के (विरूपे) विविधरूप वा विरुद्धस्वरूप दिन और रात्रि (मिथस्तुरा) परस्पर हिंसा करनेवाले (विचरन्ती) विविध गति से प्राप्त होते हुए (ऋच्यमाने) स्तूयमान (पावके) पवित्र (दुहितरा) कन्याओं के समान वर्त्तमान हैं उनमें (अन्या) और अर्थात् दोनों से अलग रात्रिरूप कन्या (स्तृभिः) नक्षत्रादिकों के साथ (पिपिशे) पीसती हुई अंग के समान वर्त्तमान है (अन्या) और दिनरूप कन्या अर्थात् (सूरः) सूर्य्य किरणों से पीसती हुई वर्त्तमान है वे दोनों समस्त जगत् को (नक्षतः) व्याप्त होते हैं वैसे मिलकर प्रीति से (श्रुतम्) श्रवण वा (मन्म) विज्ञान को तुम दोनों प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्यरूप अग्नि के रात्रि दिन पुत्री के समान वर्त्तमान हैं तथा दोनों विलक्षण सदा सम्बन्ध करनेवाले होते हैं, वैसे ही विचित्र वस्त्र और आभूषणवाले, विविध विद्यायुक्त और प्रशंसित होते हुए विद्या विज्ञान और धर्मोन्नति में सम्बन्ध और प्रीति करनेवाले स्त्री पुरुष हों ॥ ३ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्राम् ।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (प्रयज्यो) उत्तमता से यज्ञ करनेवाले (पत्यमानः) ऐश्वर्य की इच्छा करते हुए (कविः) विद्वान् आप जो (द्युतद्यामा) जिससे विशेषकर पदार्थ प्रकाशित होते हैं ऐसी (बृहती) बड़ी (मनीषा) बुद्धि है उससे जो (बृहद्रयिम्) जिसमें बहुत धन सिद्ध होता उस (विश्ववारम्) और जो समस्त उत्तम व्यवहारको स्वीकार करता वा (रथप्राम्) रथ का परिपूर्ण करता वा (कविम्) विद्वान् के समान क्रमपूर्वक बुद्धि प्राप्त होती उस (वायुम्) वायु और इसके (नियुतः) निश्चित गतिवाले वेगरूप घोड़ो को (अच्छा) (प्र, इयक्षसि) मिलते हैं तो कौन २ चाहे हुए पदार्थ को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य शुद्ध बुद्धि और योगाभ्यास से सर्व सुख देने तथा सर्व जगत् के धारण करनेवाले पवन को प्राणायाम से वश करते हैं वे सर्व सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

फिर मनुष्य किससे किसको प्राप्त होवें इस विषय को कहते हैं—

स मे वपुश्छदयदश्विनोर्यो रथो विरुक्मान्मनसा युजानः ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥ ५ ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो (यः) जो (अश्विनोः) प्राण और अपान के (विरुक्मान्) विविध दीप्तियुक्त (मनसा) अन्तःकरण से (युजानः) युक्त होता हुआ (रथः) रमणीय व्यवहार (मे) मेरे (वपुः) शरीर वा रूप को (छदयत्) बली करता है तथा (येन) जिससे (तनयाय) सन्तान के लिए (त्मने, च) और अपने लिये (नरा) नायक अग्रगामी (नासत्या) जिनके असत्य विद्यमान नहीं वे अध्यापक और उपदेशक योगीजन (इषयध्यै) चलने के लिये जो (वर्तिः) मार्ग है उसको (याथः) प्राप्त होते हैं (सः) वह तुम लोगों को चाहिए कि जानकर अन्तःकरण से आत्मा में निरन्तर यत्न करने योग्य हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस वायु से योगीजन विविध प्रकार के विज्ञान को प्राप्त होते हैं तथा जिससे सब जगत् वा सब प्राणी जीते हैं उसके अभ्यास से परमात्मा को जानकर मुक्तिपथ से आनन्द को प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

पर्जन्यवाता वृषभा पृथिव्याः पुरीषाणि जिन्वतमप्यानि ।
सत्यश्रुतः कवयो यस्य गीर्भिर्जगतः स्थातर्जगदा कृणुध्वम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (वृषभा) वृष्टि करानेवाले यजमान और पुरोहितो ! जैसे (पर्जन्यवाता) मेघस्थ पवन (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष से (अप्यानि) जलों में प्रसिद्ध हुए (पुरीषाणि) जलों को पहुँचाते हैं वैसे तुम (जिन्वतम्) पहुँचो वा पदार्थ को पहुँचाओ और (सत्यश्रुतः) जो सत्य को सुननेवाले जन हैं वे (कवयः) विद्वान् होते हुए जलों को (आ, कृणुध्वम्) अच्छे प्रकार सिद्ध करें । हे (स्थातः) स्थिर होने वाले विद्वान्जन (यस्य) जिसकी (गीर्भिः) वाणियों से (जगतः) संसार के बीच (जगत्) जगत् को विशेषता से जानते हो उसका आप सत्कार करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य पवन के समान जगत् के हित करनेवाले तथा सत्य के सुननेवाले हैं वे ही जगत् को जानकर औरों को इस जगत् का ज्ञान दे सकते हैं ॥ ६ ॥

फिर कैसी स्त्री सुख देवे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ।
ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (पावीरवी) शुद्ध करनेवाली (चित्रायुः) चित्र विचित्र जिसकी आयु वह (सरस्वती) विज्ञानयुक्त (वीरपत्नी) वीर पतिवाली (कन्या) मनोहर (ग्नाभिः) सुन्दर शिक्षित वाणियों से (धियम्) शस्त्रोत्थ प्रज्ञा उत्तम बुद्धि वा कर्म को (धात्) धारण करती है वा जो (गृणते) स्तुति करनेवाले मेरे लिये (अच्छिद्रम्) छेद रहित व्यवहार को तथा जो (सजोषाः) समान प्रीति की सेवनेवाली होती हुई स्तुति करनेवाले मेरे लिये (शरणम्) आश्रय को वा जो (दुराधर्षम्) दुःख से धृष्टता के योग्य (शर्म) घर वा सुख को (यंसत्) देती है वही मुझसे सर्वदा सत्कार करने योग्य है ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो विदुषी शुभगुण कर्म स्वभाववाली कन्या हो उसी को वीर पुरुष विवाहे, जिसका संग वा प्रीति कभी नष्ट न हो तथा जो सर्वदा सुख दे वह पत्नी पति से सर्वदा सत्कार करने योग्य है ॥ ७ ॥

फिर मनुष्यों को किसका सेवन करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानळर्कम् ।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियं सीषधाति प्र पूषा ॥८॥

पदार्थ—जो (पूषा) पुष्टि करनेवाला (कामेन) कामना से (पथस्पथः) मार्गों मार्गों को (परिपतिम्) स्वामी को छोड के वा सब ओर से स्वामी को और (वचस्या) वचन में उत्तम व्यवहारों को (कृतः) किये हुए (अर्कम्) सत्कार करने योग्य क्रियामय व्यवहार को (अभि, आनट्) सब ओर से व्याप्त होता है तथा (नः) हम लोगों के लिए (शुरुधः) शीघ्र रोकनेवाली (चन्द्राग्राः) जितने तीर सुवर्ण उत्तम विद्यमान उनको (रासत्) देवे तथा (धियंधियम्) प्रज्ञा प्रज्ञा वा कर्म कर्म को (प्र, सीषधाति) अच्छे प्रकार सिद्ध करता है (सः) वह उपदेशकर्त्ता तथा न्याय करनेवाला हम लोगों का हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो तुमको सन्मार्ग दिखाकर दुष्ट मार्गों का निवारण कर सत्याचरण करनेवाले स्वामी का सेवन करा और दुष्टपति का निवारण कराके बुद्धि को बढाता है वही तुम लोगों को सत्कार करने योग्य होता है ॥ ८ ॥

फिर मनुष्य किसका सेवन करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

प्रथमभाजं यशसं वयोधां सुपाणिं देवं सुगभस्तिमृभ्वम् ।
होता यक्षद्यजतं पस्त्यानामग्निस्त्वष्टारं सुहवं विभावा ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (अग्निः) पावक के समान वर्त्तमान (विभावा) विशेषता से प्रकाशमान (होता) दानशील जन (त्वष्टारम्) छेदन भेदन करनेवाले (सुहवम्) बुलाने योग्य वा (पस्त्यानाम्) घरों के बीच (यजतम्) सग करने योग्य वा (ऋभ्वम्) बुद्धिमान् (सुगभस्तिम्) सुन्दर प्रकाशक (प्रथमभाजम्) अगलों को सेवते हुए (यशसम्) कीर्तिमान् तथा (वयोधाम्) जीवन धारण करनेवाले तथा (सुपाणिम्) सुन्दर व्यवहारवाले वा शोभन धर्म कर्मकारी हस्त जिसके उस (देवम्) दान करनेवाले विद्वान्जन का (यक्षत्) सग करे वही तुमको सग करने योग्य है ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य विद्यावृद्ध, अग्नि के समान विद्याजन्य दुःख के जलानेवाले विद्वानों की सेवा करते हैं वे घर में दीपक के समान उपदेश देने योग्यों के आत्माओं के प्रकाश करने को योग्य हैं ॥९॥

फिर मनुष्यों को कौन प्रशंसा करने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ ।
बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्नमृधग्घुवेम कविनेषितासः ॥१०॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् जैसे (कविना) विद्वान् से (इषितासः) प्रेरणा किये हुए हम लोग (आभिः) इन वर्त्तमान (गीर्भिः) वाणियों से (भुवनस्य) ससार के (पितरम्) पालनेवाले (अक्तौ) रात्रि में (रुद्रम्) दुष्टों को रुलाने और (बृहन्तम्) बढाने वाले (ऋष्वम्) बड़े (अजरम्) जरावस्थारहित (सुषुम्नम्) सुन्दर सुखयुक्त (रुद्रम्) रोग भगानेवाले जन की (ऋधक्) सत्य (हुवेम) स्तुति करें वैसे इस रुद्र का आप (दिवा) कामना वा विद्यादीप्ति में (वर्धया) बढ़ाओ ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्य विद्वान् से प्रेरणा को पाये हुए विद्या और नम्रता के व्यवहार में वृद्ध होकर सब जगत् के पालनेवाले परमात्मा की सत्य व्यवहार में प्रशंसा करें जिससे अविनाशी सुख को सब प्राप्त हों ॥ १० ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

आ युवानः कवयो यज्ञियासो मरुतो गन्त गृणतो वरस्याम् ।
अचित्रं चिद्धि जिन्वथा वृधन्त इत्था नक्षन्तो नरो अङ्गिरस्वत् ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (युवानः) युवा पुरुष (यज्ञियासः) सत्य प्रिय व्यवहार को करने योग्य हैं तथा (कवयः) सर्व शास्त्रवेत्ता (मरुतः) मनुष्य (अङ्गिरस्वत्) प्रशंसित वायुओं के समान (वरस्याम्) स्वीकार करने योग्य प्रशंसा को तथा (गृणतः) सत्य की प्रशंसा करनेवाले विद्वानों को (आ, गन्त) प्राप्त हों तथा (अचित्रम्) साधारण (वृधन्तः) बढ़ाने और (इत्था) इस प्रकार से (नक्षन्तः) व्याप्त होते हुए (नरः) नायक मनुष्य (चित्) ही (जिन्वथा) प्राप्त हों वे (हि) ही जगत्‌हितैषी होते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य विद्वान् तथा युवावस्थावाले होकर और अच्छी क्रिया कर सबको बढ़ाते हैं वे वृद्धियुक्त होते हैं ॥ ११ ॥

फिर मनुष्य किसके तुल्य किसको प्राप्त हों इस विषय को कहते हैं—

प्र वीराय प्र तवसे तुरायाजा यूथेव पशुरक्षिरस्तम् ।
स पिस्पृशति तन्वि श्रुतस्य स्तृभिर्न नाकं वचनस्य विपः ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (विपः) मेधावीजन (स्तृभिः) नक्षत्रों से (नाकम्) जिसमें दुःख नहीं विद्यमान उस अन्तरिक्ष को (न) जैसे (तन्वि) शरीर में (श्रुतस्य) सुने हुए (वचनस्य) वचन का वा (अजा) छाग (यूथेव) समूहों को जैसे वैसे वा (पशुरक्षिः) पशुओं की रक्षा करनेवाला (अस्तम्) घर को जैसे वैसे (वीराय) शूरता आदि गुणों से युक्त (तवसे) बढ़नेवाले (तुराय) दुःखनाशक के लिये घर का (प्र, पिस्पृशति) अत्यन्त स्पर्श करता (सः) वह सुखों का (प्र) अच्छे प्रकार अत्यन्त स्पर्श करता है ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्य जैसे भेड़ बकरी दौड़ के अपने झुण्ड को वा जैसे सायंकाल में गोपाल घर को वैसे समस्त विद्या के श्रवण को प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

फिर मनुष्यों को क्या जानने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

यो रजांसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद्विष्णुर्मनवे बाधिताय ।
तस्य ते शर्मन्नुपदद्यमाने राया मदेम तन्वा३ तना च ॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो (विष्णुः) चराचर में प्रवेश होता वह जगदीश्वर (बाधिताय) पीडित (मनवे) मनुष्य के लिये (पार्थिवानि) पृथिवी में सिद्ध हुए (रजांसि) लोकों को (त्रिः) तीन बार (चित्) ही (विममे) रचता है (तस्य) उसके सम्बन्ध में (ते) आपके (उपदद्यमाने) समीप ग्रहण किये (शर्मन्) घर में (तना) विस्तृत (राया) धन (तन्वा, च) और शरीर के साथ हम लोग (मदेम) आनन्दित हों ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर सब जगत् का निर्माण करके मनुष्यादिकों का उपकार करता है उसके आश्रय से ही हम लोग धनवान् और बहुत आयु वाले हों ॥ १३ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

तन्नोऽहिर्बुध्न्यो अद्भिरर्कैस्तत्पर्वतस्तत्सविता चनो धात् ।
तदोषधीभिरभि रातिषाचो भगः पुरन्धिर्जिन्वतु प्र राये ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (अर्कैः) सत्कार साधनों वाले (अद्भिः) जलादिकों के और (ओषधीभिः) सोमलतादि ओषधियों के साथ (बुध्न्यः) अन्तरिक्ष में प्रसिद्ध हुआ (अहिः) मेघ (नः) हम लोगों के लिये (राये) धन के लिये (चनः) अन्नादिक को वा (तत्) उस गृह को (धात्) धारण करता वा (तत्) उसको (पर्वतः) पर्वताकार मेघ धारण करता वा (तत्) उसको (सविता) सूर्य धारण करता वा (तत्) उसको (रातिषाचः) दान करनेवाले धारण करते उसको (पुरन्धिः) जगत् का धारणकर्त्ता (भगः) ऐश्वर्यवान् (प्र, जिन्वतु) अच्छे प्रकार प्राप्त करावे उसको (अभि) सब ओर से प्राप्त करावे ॥ १४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे परमेश्वर ने प्राणियों के उपकार के लिये जगत् बनाया वैसे इससे तुम लोग पुष्कल उपकार ग्रहण करो ॥ १४ ॥

फिर दाताओं को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

नू नो रयिं रथ्यं चर्षणिप्रां पुरुवीरं मह ऋतस्य गोपाम् ।
क्षयं दाताजरं येन जनान्त्स्पृधो अदेवीरभि च क्रमाम विश आदेवीभ्य१श्नवाम ॥१५॥७॥४॥

पदार्थ—हे विद्वानो (येन) जिससे (स्पृधः) स्पर्द्धा करते हुए (जनान्) मनुष्यों को तथा (अदेवीः) विद्यारहित (विशः) प्रजाओं को हमलोग (अभि, क्रमाम) अनुक्रम से प्राप्त हों वा (आदेवीः) सब ओर से निरन्तर प्रकाशमान विदुषी (च) और प्रजाओं को हम लोग (अभि, अश्नवाम) सब ओर से प्राप्त हों । तथा (रथ्यम्) विमान आदि रथों में हितरूप (चर्षणिप्राम्) मनुष्यों को व्याप्त होने तथा (पुरुवीरम्) बहुत वीरों के कारण (क्षयम्) निवास कराने को (अजरम्) हानिरहित अर्थात् पुष्ट (महः) और बड़े (ऋतस्य) सत्य की (गोपाम्) रक्षा करनेवाले (रयिम्) धन को (नः) हम लोगों के लिये (नू) शीघ्र (दात) दीजिये ॥ १५ ॥

भावार्थ—वे ही देनेवाले उत्तम हैं जो धर्म से धनादिकों को संचित कर विद्यादिसद्गुणरूप परोपकार के लिये देते हैं और वही धन है जिससे विदुषी वा अविदुषी प्रजाएं अत्यन्त सुख पाय हर्षित हों ॥ १५ ॥

इस सूक्त में समस्त विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह ऋग्वेद के छठे मण्डल में चतुर्थ अनुवाक, उनचासवां सूक्त तथा चतुर्थ अष्टक के आठवें अध्याय में सातवां वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अथ पञ्चदशर्चस्य पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य ऋजिश्वा ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । १, ७ त्रिष्टुप् । ३, ५, ६, १०, ११, १२ निचृत्त्रिष्टुप् ४, ८ १३ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २ स्वराट्पङ्क्तिः । ९ पङ्क्तिः । १४ भुरिक्पङ्क्तिः । १५ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचा वाले पचासवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् जन किसलिये क्या करें इस विषय को कहते हैं—

हुवे वो देवीमदितिं नमोभिर्मृळीकाय वरुणं मित्रमग्निम् ।
अभिक्षदामर्यमणं सुशेवं त्रातॄन्देवान्त्सवितारं भगं च ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे मैं (नमोभिः) सत्कार और अन्नादिकों के साथ (वः) तुम लोगों के (अभिशस्तान्) जो भिक्षा नहीं देते उनके (मृळीकाय) सुख के लिये (अदितिम्) जो माता नहीं उस (देवीम्) देदीप्यमान विदुषी वा (वरुणम्) उदान के समान सर्वोत्कृष्ट वा (मित्रम्) प्राण के समान प्यारे वा (अग्निम्) अग्नि तथा (अर्यमणम्) न्यायकारी और (सुशेवम्) सुन्दर सुख वाले जन को वा (त्रातॄन्) रक्षा करनेवाले वा (देवान्) विद्वानों वा (सवितारम्) सत्कर्मों मे प्रेरणा देनेवाले राजा (भगम्, च) और ऐश्वर्य्य को (हुवे) बुलाता वा देता हूँ वैसे इनको हमारे लिये तुम बुलाओ वा देओ ॥ १ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन सुपात्रों के लिये भिक्षा देते और सबको पुरुषार्थी कर उनके लिये विदुषी माता वा वरुण आदि को लेते हैं वे जगत् के हितैषी हैं ॥१॥

अब मनुष्य निरन्तर क्या करें इस विषय को कहते हैं—

सुज्योतिषः सूर्य्य दक्षपितॄननागास्त्वे सुमहो वीहि देवान् ।

द्विजन्मानो य ऋतसापः सत्याः स्वर्वन्तो यजता अग्निजिह्वाः ॥२॥

पदार्थ—हे (सूर्य) सूर्य के समान वर्त्तमान (ये) जो (अनागास्त्वे) अनपराधिपन मे (द्विजन्मानः) उत्पत्ति और विद्याप्राप्तिरूप जन्मवाले (ऋतसापः) सत्य से सम्बन्ध करते वा (सत्याः) प्रतिज्ञा करते (स्वर्वन्तः) वा बहु सुखयुक्त (यजताः) समस्त विद्याओ का संग करते (अग्निजिह्वाः) वा अग्नि के समान सत्य विद्या से सुन्दर प्रकाशित जिह्वाएं जिनकी वा (सुज्योतिषः) सुन्दर विनय के प्रकाश करनेवाले विद्वान् हो उन (सुमहः) श्रेष्ठ महान् महाशय (दक्षपितॄन्) चतुर पिता और विद्या पढ़ानेवाले (देवान्) विद्वानों को आप निरन्तर (वीहि) प्राप्त होओ वा उनकी कामना करो ऐसा होने पर सर्वदा कल्याण प्राप्त होवे ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य के समान विद्या और धर्म के प्रकाश करनेवाले अध्यापक, उपदेशक वा विद्वानो की सेवा करते हैं वे भी वैसे ही होते है ॥ २ ॥

फिर विद्वान् जन किसके तुल्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

उत द्यावापृथिवी क्षत्रमुरु बृहद्रोदसी शरणं सुषुम्ने ।

महस्करथो वरिवो यथा नोऽस्मे क्षयाय धिषणे अनेहः ॥३॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको ! तुम (यथा) जैसे (रोदसी) बहुत कार्य और (सुषुम्ने) सुन्दर सुख करनेवाली (धिषणे) व्यवहारो को धारण करनेवाली (द्यावापृथिवी) बिजुली और भूमि (नः) हमारे (उरु) बहुत (बृहत्) महान् (शरणम्) आश्रय और (क्षत्रम्) धन राज्य वा क्षत्रियकुल को सिद्ध करते हैं वैसे (महः) बड़े (वरिवः) सेवन (उत) और (अनेहः) न नष्ट करने योग्य व्यवहार (अस्मे) हम लोगो मे (क्षयाय) निवास करने के लिए (करथः) सिद्ध करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो अध्यापन और उपदेश करने वाले जन सूर्य और भूमि के तुल्य सब को विद्यादान, धारण और शरण देते है तथा जो सत्य, यथार्थवक्ता और विद्वानों की सेवा करते है वे सर्वथा माननीय होते हैं ॥३॥

फिर विद्वान् कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ नो रुद्रस्य सूनवो नमन्तामद्या हूतासो वसवोऽधृष्टाः ।

यदीमर्भे महति वा हितासो बाधे मरुतो अह्वाम देवान् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यत्) जो (हूतासः) बुलाए हुए (अधृष्टाः) अप्रगल्भ (वसवः) आदि कोटिवाले विद्वान् जन (बाधे) विलोडन के निमित्त (अर्भे) थोड़ी अवस्थावाले (महति, वा) वा बहुत अवस्थावाले जन में (हितासः) हित करनेवाले वा (रुद्रस्य) दुष्टों के रुलानेवाले के (सूनवः) सन्तान (मरुतः) मनुष्य (नः) हमलोगों को (अद्य) आज (आ, नमन्ताम्) अच्छे प्रकार नमें उन (देवान्) विद्वानों को हमलोग (ईम्) सब ओर से (अह्वाम) चाहें ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन, चक्रवर्ती राजा वा क्षुद्र जन में पक्षपात छोड़ कर हित के लिये वर्त्तमान, नम्र, विद्वानों के प्रिय मनुष्य हैं वे यहां भाग्यशाली होते है ॥४॥

फिर विद्वान् जनों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

मिम्यक्ष येषु रोदसी नु देवी सिषक्ति पूषा अभ्यर्धयज्वा ।

श्रुत्वा हवं मरुतो यद्ध याथ भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते ॥५॥८॥

पदार्थ—हे (मरुतः) मनुष्यो (येषु) जिन वायु आदि पदार्थों में (रोदसी) प्रकाश और भूमि (देवी) जो कि दिव्यगुणवाली हैं उनको (अभ्यर्धयज्वा) मुख्य के आधे से संगत होनेवाला (पूषा) पुष्टि करनेवाला मेघ (सिषक्ति) सींचता है आप इससे (नु) शीघ्र (मिम्यक्ष) शीघ्र जाइये (यत्) जो (ह) निश्चय कर (भूमा) भूमि में वा (प्रविक्ते) प्रकर्षकर चलने योग्य (अध्वनि) मार्ग मे (रेजन्ते) कांपते वा जाते हैं उनके (हवम्) शब्द को (श्रुत्वा) सुनकर उनको तुम (याथ) प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो! तुम सूर्य्य और पृथिवी के तुल्य प्रकाश और क्षमाशील होकर सबके प्रश्नों को सुनकर समाधान देओ, जैसे भूमि आदि लोक अपने अपने मार्ग में नियम से जाते हैं वैसे नियम से धर्म मार्ग में जाओ ॥ ५ ॥

फिर विद्वानों को क्या उपदेश कर क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

अभि त्यं वीरं गिर्वणसमर्चेन्द्रं ब्रह्मणा जरितर्नवेन ।

श्रवदिद्धवमुप च स्तवानो रासद्वाजाँ उप महो गृणानः ॥६॥

पदार्थ—हे (जरितः) स्तुति करनेवाले जन आप (महः) बहुत (वाजान्) अन्नादिकों की (गृणानः) प्रशसा करते हुए (उप, रासत्) समीप मे दें और (स्तवानः) स्तुति करते हुए (हवम्) सत्य की प्रशंसा को (उप, श्रवत्) सुनें (इत्) ही तथा (नवेन) नवीन (ब्रह्मणा) धन वा अन्नादि से (त्यम्) उस (गिर्वणसम्) वाणियों से सेव्यमान (वीरम्) वीरवान् तथा (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् का (च) भी (अभि, अर्च) सब ओर से सत्कार करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! आप सबके प्रश्नों को सुनकर समाधान देते हुए और अन्नादि पदार्थों की प्राप्ति कराते हुए धार्मिक वीरों को और धनाढ्यों को सर्वदा शिक्षा देवें जिससे इनका ऐश्वर्य अन्याय मार्ग में नष्ट न हो ॥ ६ ॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को कहते हैं—

ओमानमापो मानुषीरमृक्तं धात तोकाय तनयाय शं योः ।

यूयं हि ष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (मातृतमाः) अतीव माता के समान कृपालु तथा (जनित्रीः) उत्पन्न करनेवाली (तोकाय) थोड़ी आयु वाले सतान वा (तनयाय) सुन्दर कुमार सतान के लिये (शम्) सुख करती हैं वैसे (यूयम्) तुम (आपः) जलों के समान (अमृक्तम्) अशुद्ध जन को वा (ओमानम्) रक्षा आदि करनेवाले को और (मानुषीः) मनुष्य सम्बन्धी प्रजाओ को (धात) धारण करो तथा (स्थातुः) स्थावर वा (जगतः) जंगम (विश्वस्य) संसार के (हि) जिस कारण तुम (भिषजः) वैद्य (स्था) हो, वा जैसे न्यायाधीश सबको सुख (योः) पहुँचाता है वैसे यहां वर्त्तो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे अध्यापक और उपदेशको! तुम अपवित्र जन को सत्य ग्रहण कराकर शुद्ध करो तथा सब जगत् की रक्षा करने के निमित्त अविद्यारूपी रोग के निवारण करनेवाले होते हुए सब को माता के तुल्य पालो ॥ ७ ॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को कहते हैं—

आ नो देवः सविता त्रायमाणो हिरण्यपाणिर्यजतो जगम्यात् ।

यो दत्रवाँ उषसो न प्रतीकं व्यूर्णुते दाशुषे वार्याणि ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो (दत्रवान्) दान देनेवाला (हिरण्यपाणिः) हाथ मे सुवर्णादि लिये हुए और (यजतः) सग करनेवाला (देवः) दिव्यगुण कर्म स्वभावयुक्त (सविता) सूर्य के तुल्य (त्रायमाणः) रक्षक जन (उषसः) प्रभातवेला के (न) समान समय से (दाशुषे) देनेवाले के लिये (प्रतीकम्) प्रतीति करने वाले पदार्थ और (वार्याणि) स्वीकार करने योग्य पदार्थों को (व्यूर्णुते) आच्छादित करता है तथा (नः) हम लोगो को (आ, जगम्यात्) सब ओर से निरतर प्राप्त हो उसको हम लोग सदा सुखी करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो दानशील प्रभातवेला के समान सुन्दर प्रकाश करनेवाले जन सबके लिये विद्या और अभयदान देते हैं वे ससार मे श्रेष्ठ गिने जाते हैं ॥ ८ ॥

फिर मनुष्यों को किससे क्या प्रार्थना करनी योग्य है इस विषय को कहते है—

उत त्वं सूनो सहसो नो अद्या देवाँ अस्मिन्नध्वरे ववृत्याः ।

स्यामहं ते सदमिद्राती तव स्यामग्नेऽवसा सुवीरः ॥९॥

पदार्थ—हे (सहसः) शरीर और आत्मा के बल से युक्त विद्वान् के (सूनो) विद्यासम्बन्धी पुत्र (अग्ने) अग्नि के तुल्य प्रकाशित आत्मावाले (त्वम्) आप (अद्य) आज (अस्मिन्) इस (अध्वरे) न नष्ट करने योग्य विद्या प्राप्ति के व्यवहार में (नः) हम (देवान्) विद्वानों को वा दिव्य भोगों को (आ, ववृत्याः) अच्छे प्रकार प्रवृत्त कीजिये जिससे (अहम्) मैं (सदम्) प्राप्त होने योग्य पदार्थ को पाकर (ते) आपके (रातौ) दान कर्म में स्थिर (स्याम्) होऊँ (उत) और (तव) आपके (अवसा) रक्षा आदि कर्म से (सुवीरः) सुन्दर योद्धाओं वाला मै (इत्) ही होऊ ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! यदि आप सब हमको सुख पहुँचाइये तो हम विद्या देनेवाले महावीर होकर आपकी सेवा निरन्तर करें ॥ ९ ॥

फिर मनुष्यों को किनके सग से कैसे होना योग्य है इस विषय को कहते हैं—

उत त्या मे हवमा जग्म्यातं नासत्या धीभिर्युवमङ्ग विप्रा ।

अत्रिं न महस्तमसोऽमुमुक्तं तूर्वतं नरा दुरितादभीके ॥१०॥९॥

पदार्थ—हे (अङ्ग) मित्र (नासत्या) सत्य आचरण करनेवाले (विप्रा) मेधावी अध्यापक और उपदेशक (नरा) नायक सब में श्रेष्ठजन (त्या) वे (युवम्) तुम दोनों (धीभिः) उत्तम बुद्धि वा कर्मों से (मे) मेरे (अभीके) समीप मे

(इषम्) लेने योग्य पदार्थ को (आ, अवृण्वातम्) सब ओर से प्राप्त होओ (उत) और जैसे (महः) महान् (तमसः) अन्धकार से (अग्निम्) सूर्य को (न) वैसे (दुरितात्) अधर्माचरण से (अमुञ्चतम्) छुड़ाओ और दुर्गुणों को (दुर्वतम्) नष्ट करो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे सूर्योदय को प्राप्त होकर सब पदार्थ अन्धकार से छूट जाते हैं वैसे धार्मिक विद्वान् को प्राप्त होकर अविद्या से मनुष्य मुक्त होते हैं ॥ १० ॥

फिर मनुष्य कैसे हों इस विषय को कहते हैं—

ते नो रायो द्युमतो वाजवतो दातारो भूत नृवतः पुरुक्षोः ।
दशस्यन्तो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता अप्या मृळता च देवाः ॥११॥

पदार्थ—हे (देवाः) विद्वानो ! जो तुम (नः) हमारे (द्युमतः) जिस की प्रशसायुक्त कामना विद्यमान उस (वाजवतः) बहुत अन्नादि पदार्थयुक्त (नृवतः) बहुत उत्तम मनुष्ययुक्त (पुरुक्षोः) बहुत अन्न वाले पदार्थ के (दशस्यन्तः) देनेवाले और (रायः) धन के (दातारः) देनेवाले (भूत) होओ (ते) वे (च) और जो (दिव्याः) उत्तम (पार्थिवासः) पृथिवी के बीच हुए (गोजाताः) अन्तरिक्ष मे प्रसिद्ध (अप्याः) और जलों में प्रसिद्ध हैं वे भी आप हम लोगो को (मृळता) सुखी करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! तुम निरन्तर प्राप्त होने योग्य विद्या और धनों को प्राप्त होकर सब मनुष्यो को सुखी करो ॥ ११ ॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को कहते हैं—

ते नो रुद्रः सरस्वती सजोषा मीळ्हुष्मन्तो विष्णुर्मृळन्तु वायुः ।
ऋभुक्षा वाजो दैव्यो विधाता पर्जन्यावाता पिप्यतामिषं नः ॥१२॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको (सरस्वती) बहुत विज्ञानयुक्त (सजोषाः) समान प्रीति सेवने वाले (पर्जन्यावाता) मेघ और वात के समान आप दोनो जैसे (ते) वे अर्थात् (रुद्रः) दुष्टो को रुलानेवाला (विष्णुः) व्यापक अग्नि (वायुः) पवन (ऋभुक्षाः) मेधावी जन (वाजः) अन्न (दैव्यः) विद्वानों से किया हुआ व्यवहार और (विधाता) विधान करनेवाला ये सब (मीळ्हुष्मन्तः) बहुत वीर्य सेचक आदि गुणो वाले होते हुए (नः) हम लोगो को (मृळन्तु) सुखी करें वैसे (नः) हम लोगो के लिये (इषम्) अन्नादि पदार्थों को (पिप्यताम्) बढ़ाओ ॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! जैसे ईश्वर से निर्मित किये हुए पृथिवी आदि पदार्थ प्राणियो को सुखी करते हैं वैसे ही तुम विद्यादान से सबको सुखी करो ॥ १२ ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

उत स्य देवः सविता भगो नोऽपां नपादवतु दानु पप्रिः ।
त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः सजोषा द्यौर्देवेभिः पृथिवी समुद्रैः ॥१३॥

पदार्थ—हे विद्वन् आप जैसे (स्यः) वह (देवः) देदीप्यमान (सविता) उत्पत्ति करनेवाला सूर्य (भगः) सेवने योग्य प्राण (उत) और (अपाम्) जलो के बीच (नपात्) न गिरने वाला विद्युत रूप अग्नि तथा (देवेभिः) दिव्य गुणो के और (जनिभिः) जन्म वा जन्म देनेवालों के साथ (त्वष्टा) छिन्न भिन्नकर्त्ता (सजोषाः) समान प्रीति का सेवने वाला (देवेभिः) सूर्यादि वा दिव्य पदार्थों के साथ (द्यौः) सूर्य (समुद्रैः) समुद्रो के साथ (पृथिवी) भूमि (दानु) दान को (पप्रिः) पूर्ण करते हुए (नः) हम लोगो की (अवतु) रक्षा करें ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे ईश्वर से रचे हुए सूर्यादि पदार्थ सब मनुष्य आदि प्राणियो के कार्यसिद्धि के निमित्त हैं वैसे आप लोग भी सबकी कार्यसिद्धि करनेवाले हो ॥ १३ ॥

फिर मनुष्यों को क्या आकांक्षा करने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः ।
विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (एकपात्) जिसका जगत् मे एक पाद है (अजः) जो कभी नहीं उत्पन्न होता वह परमात्मा (नः) हमारी उस प्रार्थना को (शृणोतु) सुने जिससे (बुध्न्यः) अन्तरिक्ष मे होनेवाला (अहिः) मेघ (पृथिवी) भूमि (समुद्रः) अन्तरिक्ष (उत) और (ऋतावृधः) सत्य के बढ़ानेवाले (हुवानाः) और आह्वान करनेवाले तथा (विश्वे, देवाः) समस्त विद्वान् (कविशस्ताः) कवि मेधावी जनो से प्रशंसित वा पढ़ाये हुए और (स्तुताः) प्रशसित (मन्त्राः) वेद की श्रुति वा वेदविचार हम लोगो की (अवन्तु) रक्षा करें ॥ १४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जो जन्म मरणादि व्यवहार से रहित जगदीश्वर है उसकी कृपा और पुरुषार्थ से तथा सम्पूर्ण पृथिवी आदि पदार्थों के विज्ञान से अपनी २ उन्नति निरंतर करो ॥ १४ ॥

फिर जिज्ञासु जन कैसे हों इस विषय को कहते हैं—

एवा नपातो मम तस्य धीभिर्भरद्वाजा अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
ग्ना हुतासो वसवोऽधृष्टा विश्वे स्तुतासो भूता यजत्राः ॥१५॥१०॥

पदार्थ—हे (यजत्राः) संग करनेवालो जैसे (मम) मेरी और (तस्य) उसकी (धीभिः) बुद्धि वा कर्मों से (भरद्वाजाः) धारण किया है विज्ञान जिन्होंने वे सज्जन और (नपातः) पातरहित (हुतासः) सत्कार से ग्रहण किये हुए (स्तुतासः) प्रशंसा को प्राप्त (विश्वे) सब विद्वान् मेरी और उसकी बुद्धि वा कर्मों से (अर्कैः) विचारों से (ग्नाः) वाणियो को (अभि, अर्चन्ति) सब ओर से सत्कृत करते हैं वैसे (एवा) ही (अधृष्टाः) धृष्टता रहित (वसवः) विद्यादिकों मे बसने वाले तुम (भूत) होओ ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्यार्थी विद्या और प्रगल्भता की इच्छा करते हैं वे यथार्थवक्ता तथा ईश्वर के गुण कर्म और स्वभावों को धारण कर इष्ट मति और विद्या को प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥

इस सूक्त मे विश्वेदेवो के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पचासवां सूक्त और पंद्रहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षोडशर्चस्यैकपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य ऋजिश्वा ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । १, २, ३, ५, ७, १०, ११, १२ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ४, ६, ९ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । १३, १४, १५ निचृदुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । १६ निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब सोलह ऋचावाले इक्यावनवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में फिर मनुष्यों को क्या चाहने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

उदु त्यच्चक्षुर्महि मित्रयोराँ एति प्रियं वरुणयोरदब्धम् ।
ऋतस्य शुचि दर्शतमनीकं रुक्मो न दिव उदिता व्यद्यौत् ॥१॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको ! जो तुम लोगों को (त्यत्) वह उत्तम (महि) बड़ा वस्तु वा (वरुणयोः) उदान के समान वर्त्तमान दो सज्जनों का (प्रियम्) प्रिय पदार्थ वा (मित्रयोः) दो मित्रों का अध्यापक और अध्येताओं का वा शरीर के बाहर और भीतर रहनेवाले प्राण वायुओं का (अदब्धम्) अविनष्ट व्यवहार वा (ऋतस्य) सत्य का (शुचि) पवित्र (दर्शतम्) देखने योग्य (दिवः) बिजुली की उत्तेजना से (उदिता) सूर्योदयकाल मे (रुक्मः) प्रकाशमान सूर्य के (न) समान (अनीकम्) सेना समूह के समान कार्य सिद्धि का पहुँचाने वाला (चक्षुः) जिससे देखते हैं वह (वि, अद्यौत्) विशेषता से प्रकाशित होता है (आ, उत्, एति) उत्कृष्टता से प्राप्त होता है तो आप लोग (उ) तर्क वितर्क से विद्वान् होओ ॥१॥

भावार्थ—जो मनुष्य धर्म से यान पाने की इच्छा करते हैं वे सूर्य के प्रकाश के तुल्य विज्ञान को प्राप्त होते हैं जो सत्य पदार्थ की विद्या की उन्नति करते हैं वे सर्वत्र सत्कृत होते हैं ॥ १ ॥

फिर मेधावी जन क्या जानें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वेद यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः ।
ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान् ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (अर्यः) स्वामी (विप्रः) बुद्धिमान् (सूरः) सूर्य के समान (एवान्) प्राप्त होने योग्य पदार्थों के तुल्य (एषाम्) इन (देवानाम्) विद्वानो के (सनुतः) सर्वदा (जन्म) उत्पन्न होने वा (त्रीणि) तीन (विदथानि) जनाने के योग्य कर्म उपासना और ज्ञानो को (मर्तेषु) मनुष्यो में (वृजिना) बलों और (ऋजु, च) सरल व्यवहार को (पश्यन्) देखता हुआ (अभि, आ, चष्टे) सब ओर से प्रकाशित करता है वह (च) भी इन उक्त पदार्थों को (वेद) जानता है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य मनुष्यों के विद्या-जन्म को जानते हैं वे मनुष्यो मे पूर्ण शरीर और आत्मा के बल को पाय सब पदार्थों के जानने योग्य होते हैं, जो कर्म उपासना और ज्ञानो को प्राप्त होते हैं वे स्वामी होते हैं ॥ २ ॥

फिर मनुष्य किन की प्रशंसा करें इस विषय को अगले मंत्र में कहते हैं—

स्तुष उ वो मह ऋतस्य गोपानदितिं मित्रं वरुणं सुजातान् ।
अर्यमणं भगमदब्धधीतीनच्छा वोचे सधन्यः पावकान् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (सधन्यः) धन्य प्रशंसितों के साथ वर्त्तमान मैं (वः) तुम्हारे (महः) बड़े (ऋतस्य) सत्य के (गोपान्) पालनेवालों वा (अदितिम्) अखण्डित विद्या वा प्रकृति वा (मित्रम्) मित्र वा (वरुणम्) इच्छा करने योग्य वा (अर्यमणम्) न्यायाधीश वा (भगम्) ऐश्वर्य वा (अदब्धधीतीन्) अविनष्ट अध्ययन व्यवहार वालो वा (सुजातान्) सुन्दर प्रसिद्ध वा (पावकान्) पवित्र करने वाले पदार्थों की (स्तुषे) प्रशंसा करता हूँ (उ) और तुम्हारे प्रति (अच्छा) अच्छे प्रकार (वोचे) कहूँ उस मुझे तुम अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानों की प्रशंसा करे वा विद्वानों का संग कर सत्य प्रकृति आदि पदार्थविद्या आदि पदार्थों को जान कर औरों को पढ़ाते हैं वे सबके पवित्र करने वाले हैं ॥ ३ ॥

फिर मनुष्य कैसे राजजनों को मानें इस विषय को कहते हैं—

रिशादसः सत्पतीँरदब्धान्महो राज्ञः सुवसनस्य दातॄन् ।
यूनः सुक्षत्रान्क्षयतो दिवो नॄनादित्यान्याम्यदितिं दुवोयु ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे मैं (रिशादसः) हिंसक वा नाश करनेवाले वा (सत्पतीन्) सत्य के पालनेवाले वा (अदब्धान्) विनाश को प्राप्त हुए उनको वा न हिंसने वाले वा (सुवसनस्य) सुन्दर वास के (दातॄन्) देनेवाले वा (सुक्षत्रान्) उत्तम धन और राज्यों को वा (अदितिम्) अखण्डित नीति को (क्षयतः) स्थिर होते हुए (दिवः) कामना करने योग्य और काम करने वा (नॄन्) मनुष्यों वा (आदित्यान्) किया है अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य जिन्होंने उन वा (यूनः) जवान मनुष्यों वा (दुवोयु) सेवन की कामना करनेवालों को तथा (महः) महान् (राज्ञः) राजाओं को मैं (यामि) प्राप्त होता हूँ वैसे ऐसों को तुम भी प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो चोर आदि के निकालने और धर्मात्माओं के पालनेवाले, हिंसादि दोषों से रहित, सब के लिए सुख से निवास देनेवाले, पूर्ण विद्यायुक्त, जितेन्द्रिय, न्याय से पिता के समान प्रजा के पालनेवाले, पूर्ण यौवनयुक्त, दुष्ट व्यसनों से रहित, गुणग्राही जन हों उन्हीं को तुम स्वामी मानो और क्षुद्र हृदय वालों को न मानो ॥ ४ ॥

पितादिकों को संतानों के लिए क्या करना योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

द्यौ३ष्पितः पृथिवि मातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृळता नः ।
विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्त ॥५॥११॥

पदार्थ—हे (पितः) पालनेवाले (द्यौः) सूर्य्य के समान तुम हे (मातः) माता (पृथिवि) भूमि के समान तुम हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशात्मा (भ्रातः) भ्राता तुम (अध्रुक्) द्रोहरहित होते हुए (वसवः) सुख वास के देनेवाले तुम सब (नः) हमको (मृळता) सुखी करो हे (अदिते) अखण्डित ज्ञान और ऐश्वर्य्यवती पण्डिता स्त्री जैसे (विश्वे) सब (आदित्याः) पूर्ण की है ब्रह्मचर्य्य से विद्या जिन्होंने वे सज्जन (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए (बहुलम्) बहुत पदार्थयुक्त (शर्म) सुख करनेवाले घर को (वि, यन्त) देते हैं वैसे (सजोषाः) समान एकसी प्रीति की सेवने वाली तू बहुत सुख और विद्या को दे ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिनका सूर्य के समान सुन्दर शिक्षा से पालनेवाला पिता पृथिवी के समान सहनशीलता आदि गुण और विद्यायुक्त माता, अग्नि के समान प्रकाशमान भ्राता वर्तमान है वही सुखी होता है तथा जैसे पूर्ण विद्यावान् जन सन्मार्ग को पूछते हैं वैसे ही विद्या पढ़नेवाले पढ़ाने वालों का निरन्तर सत्कार करते हैं ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यों को किसकी इच्छा नहीं करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं—

मा नो वृकाय वृक्ये समस्मा अघायते रीरधता यजत्राः ।
यूयं हि ष्ठा रथ्यो नस्तनूनां यूयं दक्षस्य वचसो बभूव ॥६॥

पदार्थ—हे (यजत्राः) सङ्ग करनेवालो (यूयम्) तुम (वृकाय) चोर के लिए वा (वृक्ये) चोरों में उत्पन्न हुए व्यवहार के निमित्त (समस्मै, अघायते) अघ की इच्छा करनेवाले सर्वजन के लिए (नः) हम लोगों को (मा, रीरधता) मत नष्ट करो तथा (नः) हमारे (तनूनाम्) शरीरों के (दक्षस्य) बलयुक्त (वचसः) वचन का (रथ्यः) रथों में साधु उत्तम जो व्यवहार उसके समान (यूयम्) तुम (स्थ) हो (हि) जिससे सुख करनेवाले (बभूव) होओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्यों को चोर आदि दुष्टों का व्यवहार कभी नहीं कर्त्तव्य है और जो धर्मात्मा, अजातशत्रु अर्थात् जिन के शत्रु नहीं हुआ तथा सबकी रक्षा करनेवाले हों उनकी तुम निरंतर सेवा करो ॥६॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

मा व एनो अन्यकृतं भुजेम मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे ।
विश्वस्य हि क्षयथ विश्वदेवाः स्वयं रिपुस्तन्वं रीरिषीष्ट ॥७॥

पदार्थ—हे (वसवः) वास के हेतु (विश्वदेवा.) सब विद्वानो ! तुम (विश्वस्य) संसार के बीच (यत्) जो (चयध्वे) इकट्ठा करो और (हि) जिससे जिसको (क्षयथ) निवास करो जैसे (रिपुः) शत्रु (स्वयम्) अपने शरीर को (तन्वम्) आप (रीरिषीष्ट) निरन्तर मारे वैसे उस (वः) तुम्हारे (अन्यकृतम्) और से किये हुए (एनः) अपराध को हम लोग (मा, भुजेम) मत भोगें (तत्) उस दुष्ट कर्म को (मा) मत (कर्म) करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वानो तुम किसी दुष्ट का अनुकरण मत करो, अपने शरीर को नष्ट मत करो तथा और के किये हुए अपराध के संगी मत होओ ॥ ७ ॥

मनुष्य सर्वेव नम्र हों इस विषय को कहते हैं—

नम इदुग्रं नम आ विवासे नमो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
नमो देवेभ्यो नम ईश एषां कृतं चिदेनो नमसा विवासे ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (नमः) नमस्कार करने योग्य ब्रह्म (पृथिवीम्) भूमि (उत) और (द्याम्) सूर्य को (दाधार) धारण करते उस (उग्रम्) तीव्र (नमः) नमस्कार करने योग्य ब्रह्म का मैं (आ, विवासे) सेवन करूं (देवेभ्यः) विद्वानों के लिए (नमः) अन्न की सेवा करूं (नमः) सत्कार वा (नमः) अन्न की (ईशे) इच्छा करूं उस (नमसा) सत्कार से (एषाम्) इनके (कृतम्) किये उत्तम कर्म (चित्) और (एनः) अनुत्तम कर्म का (इत्) ही (आ, विवासे) योग्य सेवन करूं ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! सबसे नमस्कार करने योग्य परमेश्वर के सहायरूप से हम लोग उत्तम क्रिया को धारण कर और दुष्टता को निवार विद्वानों के लिए हित सिद्ध कर सबका उपकार सदैव करें ॥ ८ ॥

फिर सबको कौन नमस्कार करने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं—

ऋतस्य वो रथ्यः पूतदक्षानृतस्य पस्त्यसदो अदब्धान् ।
ताँ आ नमोभिरुरुचक्षसो नॄन्विश्वान्व आ नमे महो यजत्राः ॥९॥

पदार्थ—हे (यजत्राः) अच्छे व्यवहार का सङ्ग करते हुए सज्जनो (रथ्यः) रथों में उत्तम व्यवहार वर्त्तने वाला मैं (ऋतस्य) सत्य के (पूतदक्षान्) पवित्र बलों वा (ऋतस्य) यथार्थ धर्मयुक्त व्यवहार के (पस्त्यसदः) जो घरों में स्थिर होते उन (अदब्धान्) अविनष्ट कार्य्यों वा नष्ट न करनेवाले पदार्थों वा (उरुचक्षसः) बहुत दर्शनों वा (विश्वान्) समग्र (महः) महाशय (नॄन्) उत्तम विद्वान् (वः) आप लोगों को (आ, नमे) अच्छे प्रकार नमस्कार करता हूँ जो हम लोगों को सत्य बोध कराते हैं (तान्) उन (वः) आप लोगों का (नमोभिः) बहुत सत्कारों से हम लोग निरंतर (आ) अच्छे प्रकार सत्कार करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम सब से उत्कृष्ट विद्या वाले, धर्मिष्ठ, परोपकारी जनों ही को सदा नमो, तथा इन से विनय (नम्रता) को प्राप्त होओ ॥ ९ ॥

फिर कौन सत्कार करने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं—

ते हि श्रेष्ठवर्चसस्त उ नस्तिरो विश्वानि दुरिता नयन्ति ।
सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निर्ऋतधीतयो वक्मराजसत्याः ॥१०॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (हि) जिससे (ते) वे (श्रेष्ठवर्चसः) श्रेष्ठ पढ़ने वाले (सुक्षत्रासः) उत्तम राज्य वा धनयुक्त (वरुणः) श्रेष्ठजन (मित्रः) मित्र (अग्निः) अग्नि के समान शुद्धान्तःकरण पुरुष, इनके समान वर्त्तमान (ऋतधीतयः) सत्य के धारण करनेवाले (वक्मराजसत्याः) कहनेवाले राजाओं में सत्य के प्रतिपादन करनेवाले सज्जन (नः) हम लोगों के (विश्वानि) समस्त (दुरिता) दुष्टाचरणों को (तिरः) तिरस्कार को (नयन्ति) पहुँचाते हैं उस कारण से (उ) ही (ते) वे मान करने योग्य हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिससे विद्वान् धर्मात्मा जन निष्कपटता से औरों के हित साधने वाले, विद्यादान और उपदेश द्वारा सब दुष्ट आचरणों को निवार के सत्य आचरण में प्रवृत्त करनेवाले हैं इसी से सत्कार करने योग्य हैं ॥ १० ॥

फिर किसके तुल्य कौन मानने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं—

ते नू इन्द्रः पृथिवी क्षाम वर्धन्पूषा भगो अदितिः पञ्च जनाः ।
सुशर्माणः स्ववसः सुनीथा भवन्तु नः सुत्रात्रासः सुगोपाः ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जिससे (ते) वे (इन्द्र.) बिजुली (पृथिवी) अन्तरिक्ष (क्षाम) भूमि (पूषा) वायु (भगः) ऐश्वर्यवान् जन और (अदितिः) जन्म देनेवाली माता के समान (सुशर्माणः) प्रशंसित घरों वाले (स्ववसः) जिन की सुन्दर रक्षा और (सुनीथाः) न्याय विद्यमान वे (पञ्च, जनाः) पाँच प्राणों के समान उत्तम मनुष्य हैं इससे (नः) हमको (वर्धन्) बढ़ावें और (नः) हमारे (सुगोपाः) सुन्दर गौ वा पृथिव्यादिकों के रक्षा करनेवाले तथा (सुत्रात्रासः) उत्तमता से पालना करनेवाले (भवन्तु) हों ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिससे विद्वान् जन बिजुली, भूमि, अन्तरिक्ष, प्राण, ऐश्वर्य और माता के तुल्य सबके बढ़ाने वा पालनेवाले हैं इसी से पूज्य होते हैं ॥ ११ ॥

फिर कौन धन्यवाद के योग्य हैं इस विषय को कहते हैं—

नू सद्मानं दिव्यं नंशि देवा भारद्वाजः सुमतिं याति होता ।
आसानेभिर्यजमानो मियेधैर्देवानां जन्म वसूयुर्ववन्द ॥१२॥

पदार्थ—हे (देवाः) विद्वानो जो (भारद्वाजः) विज्ञान को धारण किये (होता) देनेवाला (सुमतिम्) शोभन बुद्धि को (याति) प्राप्त होता है वह (नु) शीघ्र (दिव्यम्) मनोहर (सद्मानम्) जिसमें स्थिर होता उस घर को (नंशि) व्याप्त होता है । जो (वसूयुः) द्रव्यों की कामना करने और (यजमानः) यज्ञ करनेवाला (मियेधैः) प्रेरणा देनेवाले (आसानेभिः) बैठे हुए ऋत्विजों के साथ (देवानाम्) विद्वानों के (जन्म) उत्पन्न होने की (ववन्द) प्रशंसा करते हैं उसका तुम सत्कार करो ॥ १२ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो राजा के विद्या और जन्म की प्रशंसा करते हैं वे दुःख सुख को प्राप्त होते हैं जैसे बहुत विद्वानों के साथ यज्ञ करनेवाला यज्ञ को सुभू-

चित कर समस्त जगत् का उपकार करता है वैसे ही विद्वान् जन पढ़ाने और उपदेशो से सब को प्राज्ञ (उत्तम ज्ञाता) कर प्रशसा को प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥

फिर कौन दूर करने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं—

अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम् ।
दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥१३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् (त्यम्) उस (दविष्ठम्) अतीव दूर (वृजिनम्) त्यागने योग्य (दुराध्यम्) वा दुःख से वश करने योग्य (रिपुम्) विद्याशत्रु (स्तेनम्) चोर को (सुगम्) सुगम (कृधी) करो, हे (सत्पते) सत्य के पालने वाले आप (अस्य) इसका (अप) दूरीकरण करो ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम विद्या का अभ्यास कर शरीर और आत्मा के बल से युक्त होते हुए दु साध्य भी शत्रुओ को सुसाध्य अर्थात् उत्तमता से सूधे करो जिससे वे दूर स्थित ही भय से सद्धर्म के अनुष्ठान करनेवाले हों ॥ १३ ॥

फिर किससे मित्रता कर कौन दूर करने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं—

ग्रावाणः सोम नो हि कं सखित्वनाय वावशुः ।
जही न्य१त्रिणं पणिं वृको हि षः ॥१४॥

पदार्थ—हे (सोम) प्रेरणा देनेवाले जो (ग्रावाण.) मेघो के समान (सखित्वनाय) मित्रपन के लिए (नः) हम लोगो को (हि) ही (वावशु·) चाहते हैं वे (कम्) सुख को प्राप्त हो जो (अत्रिणम्) दूसरे का सर्वस्व हरनेवाला (पणिम्) व्यवहार-कर्त्ता का सबन्ध करता है (स., हि) वही (वृकः) चोर है इस हेतु से इसे आप (नि, जही) निरतर मारो ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यदि धर्मात्मा विद्वान् जन धर्मिष्ठ विद्वानो के साथ मित्रता रखते हैं तो वे निरतर सुख को प्राप्त होकर मेघ के समान सबको बढ़ाके दुष्ट आचरण करनेवाले छलियो को शीघ्र मारते हैं ॥ १४ ॥

कौन इस संसार में आनन्द के देनेवाले हैं इस विषय को कहते हैं—

यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः ।
कर्त्ता नो अध्वन्ना सुगं गोपा अमा ॥१५॥

पदार्थ—हे (सुदानवः) उत्तम गुणो के देनेवाले विद्वानो (इन्द्रज्येष्ठाः) सूर्यलोक महान् ज्येष्ठ जिन लोको का उनके समान वर्त्तमान (अभिद्यव·) पदार्थज्ञान के भीतर प्रकाशमान (गोपा) रक्षा करनेवाले (अध्वन्) मार्ग मे (न.) हम लोगो को तथा (सुगम्) सुन्दरता से जिसमे जाते (अमा) ऐसे घर का (आ,-कर्त्त) प्रकट करो उस (हि) ही घर मे (यूयम्) तुम (स्थ) स्थित होओ ॥१५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है । जो मनुष्य दुर्गम मार्गों को सुगम करते हैं और उत्तम घरो को बनाकर आप तथा औरों को निवास करते कराते हैं वे ही जगत् मे सुख करनेवाले होते हैं ॥ १५ ॥

फिर कैसे मार्ग सिद्ध करने चाहियें इस विषय को कहते हैं—

अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम् ।
येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥१६॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (येन) जिससे वीर जन (विश्वा) सब (द्विष) शत्रुओ को (परि, वृणक्ति) सब ओर से दूर करता और (वसु) धन को (विन्दते) प्राप्त होता है उस (अनेहसम्) न नष्ट करने योग्य और (स्वस्तिगाम्) जिसमे सुख को प्राप्त होते उस (पन्थाम्) मार्ग को हम लोग (अपि) भी (अगन्महि) प्राप्त हो ॥ १६ ॥

भावार्थ—राजादि मनुष्य ऐसे मार्गों को बनावें जिनमे जाते हुओ को चोरो का भय न हो और द्रव्य का भी लाभ हो ॥ १६ ॥

इस सूक्त मे विश्वे देवो के कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह इक्यावनवां सूक्त और तेरहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तदशर्चस्य द्विपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य ऋजिश्वा ऋषि । विश्वेदेवा देवता । १, ४, १५, १६ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ३, ६, १३, १७ त्रिष्टुप् छन्द. । धैवत स्वर. । ५ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर । ७, ८, ११ गायत्री । ९, १०, १२ निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज. स्वरः । १४ विराड् जगती छन्दः । निषाद स्वरः ॥

अब सत्रह ऋचावाले बावनवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्रमें किस से अधिक सुख होता है इस विषय को कहते हैं—

न तद्दिवा न पृथिव्यानु मन्ये न यज्ञेन नोत शमीभिराभिः ।
उब्जन्तु तं सुभ्वः१ पर्वतासो नि हीयतामतियाजस्य यष्टा ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (सुभ्वः) जो अच्छे होते हैं वे (पर्वतासः) मेघ (तम्) उसको (उब्जन्तु) कुटिल करें वैसे (अतियाजस्य) जो अतीव यज्ञ करने के योग्य हैं उसका (यष्टा) संग करनेवाला वर्त्तमान है वह (तत्) उस कारण से (दिवा) दिनमे (न) न (नि, हीयताम्) छोड़ने योग्य है (न) न (पृथिव्या) भूमि से (न) न (यज्ञेन) होम आदि कर्म से (न) न (उत) और (आभिः) क्रियाओ से वा (शमीभिः) कर्म्मों से छोड़ने योग्य है उसे मैं (अनु, मन्ये) अनु-कूलता से मानता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ—जो सुख मेघो से उत्पन्न होता है वह सुख न दिवस से, न पृथिवी न सगति न कर्म से होता है इससे यज्ञ करनेवाला ही सुखभागी होता है ॥ १ ॥

फिर कौन मनुष्य निन्दा करने और वर्जने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं—

अति वा यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यः क्रियमाणं निनित्सात् ।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषमभि तं शोचतु द्यौः ॥२॥

पदार्थ—हे (मरुतः) मनुष्यो (यः) जो (नः) हम लोगो को (अति, मन्यते) अत्यन्त मानता है (वा) वा (यः) जो (क्रियमाणम्) क्रियमाण (ब्रह्म) धन को अत्यन्त मानता है (वा) वा (निनित्सात्) निन्दा करने को चाहे (तम्) उस (ब्रह्मद्विषम्) धन के द्वेषीजन को (द्यौः) कामना करता हुआ विद्वान् (अभि, शोचतु) सब ओर से शोचे (तस्मै) इसके लिए (तपूंषि) तेजोमय व्यवहार (वृजिनानि) बाधक (सन्तु) हों ॥ २ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जो मनुष्य अतिमान, धनाधिको से द्वेष और अच्छे सज्जनो की निन्दा करते हैं वे दण्ड देने, निन्दा करने और शोच करने योग्य होते हैं ॥ २ ॥

फिर मनुष्य कैसे परीक्षक हों इस विषय को कहते हैं—

किमङ्ग त्वा ब्रह्मणः सोम गोपां किमङ्ग त्वाहुरभिशस्तिपां नः ।
किमङ्ग नः पश्यसि निद्यमानान् ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥३॥

पदार्थ—हे (अङ्ग) मित्र (सोम) ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाले जन (किम्) क्या (त्वा) तुझे (ब्रह्मणः) धन का (गोपाम्) रक्षा करनेवाला (आहुः) कहें, हे (अङ्ग) मित्र (किम्) क्या (त्वा) तुझे (अभिशस्तिपाम्) सामने प्रशसा रखने वाले कहते हैं । हे (अङ्ग) सखे मित्र तू (नः) हमलोगो को (किम्) क्या (पश्यसि) देखता है । हे मित्र तू (निद्यमानान्) निन्दा प्राप्त (नः) हमलोगो को क्या देखता है (ब्रह्मद्विषे) वेद विद्याद्वेषीजन के लिये (तपुषिम्) अति तपे हुए (हेतिम्) वज्र को क्या नहीं देखता (अस्य) इस पर वज्र प्रहार कर ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम इस धन के रक्षक क्यो नहीं होते हो, स्तुति (प्रशसा) करनवाले हम लोगो को निन्दा करनेवाले भ्रम से मत देखो, जो निश्चय धनपति तथा वेद विद्या से द्वेष करते है उनका सग युद्ध बिना मत करो ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को कैसा आचरण करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमानाः ।
अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासोऽवन्तु मा पितरो देवहूतौ ॥४॥

पदार्थ—हे उपदेश करनेवालो तुम (देवहूतौ) दिव्यगुण वा विद्वानो के संग्रह मे जैसे (जायमानाः) उत्पद्यमान (उषसः) प्रभातवेलाएं (माम्) मेरी (अवन्तु) रक्षा करें तथा (पिन्वमाना·) सेवन करती हुई (सिन्धवः) नदियां (मा) मेरी (अवन्तु) रक्षा करें और (ध्रुवास.) निश्चल (पर्वतास.) शैल पहाड़ (मा) मेरी (अवन्तु) रक्षा करें और (पितर.) पिता वा पढ़ानेवाले वा ऋतु वसत आदि (मा) मेरी (अवन्तु) रक्षा करें वैसी शिक्षा करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम इस प्रकार युक्त आहार विहार करो जिसमे सब सृष्टिस्थ पदार्थ दुःख देनेवाले न हों और शुभगुणो को तुम लोग प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

विश्वदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।
तथा करद्वसुपतिर्वसूनां देवाँ ओहानोऽवसागमिष्ठः ॥५॥१४॥

पदार्थ—हे विद्वन् (अवसा) रक्षा आदि के साथ (आगमिष्ठः) अतीव आने और (वसूनाम्) वसुओ के बीच (वसुपति.) पदार्थों की पालना करनेवाले और (ओहान) रक्षक आप जैसे हम लोगो का (देवान्) विद्वान् (करत्) करें वैसे हम लोग (विश्वदानीम्) सर्वदा (सूर्यम्) सूर्यमण्डल जो (उच्चरन्तम्) ऊपर जो चढ़ता है उसे (पश्येम) देखें और (नु) शीघ्र (सुमनसः) प्रसन्नचित्त (स्याम) होवें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है । जैसे प्रीति से अध्यापक और उपदेशक विद्यार्थियो को और उपदेश सुननेवालो को विद्वान् करके सुखी करते हैं वैसे ही पढ़नेवालों और उपदेश सुनने वालो को चाहिए कि विद्वान् होकर भी इनका सदा सत्कार करें ॥ ५ ॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठः सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना ।
पर्जन्यो न ओषधीभिर्मयोभुरग्निः सुशंसः सुहवः पितेव ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (अवसा) रक्षा आदि से (नेदिष्ठम्) अतीव समीप को (आजग्मिवः) अतीव आने वाला वा (सिन्धुभिः) नदियों से (पिन्वमाना) संयुक्त (सरस्वती) प्रशंसित सरस् वेग जिसका उस नदी के समान (सुशसः) शोभन प्रशंसा तथा (सुहवः) शोभन सत्कारवाले (अग्नि) अग्नि के समान (ओषधीभिः) ओषधियों से युक्त (पर्जन्यः) मेघ (मयोभुः) सुख हुवाने तथा (पितेव) जन्म देनेवाले पिता के समान (इन्द्र) परमैश्वर्यवान् राजा (नः) हम लोगों की पालना करता है वह राजा हम लोगों से निरन्तर सत्कार करने योग्य है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मंत्र मे उपमालंकार है । जो राजा न्याय और पुरुषार्थ से प्रजा की निरन्तर रक्षा करता है उसकी पिता के समान प्रजाजन पालना करते हैं ॥ ६ ॥

फिर पढ़नेवालों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते है—

विश्वे॑ देवास॒ आ ग॑त शृणु॒ता म॑ इ॒मं हव॑म् ।

एदं ब॒र्हिर्नि षी॑दत ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (विश्वे, देवासः) सब विद्वानो ! तुम हमारे प्रति समीप (आ, गत) आओ तथा (इदम्) इस (बर्हिः) उत्तम आसन पर (नि, सीदत) निरन्तर स्थिर होओ तथा (मे) मुझ विद्यार्थी के (इमम्) इस (हवम्) सुने पढ़े विषय को (आ, शृणुत) अच्छे प्रकार सुनो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में "नेदिष्ठम्" यह पद पिछले मन्त्र से अनुवृत्ति में आता है । विद्यार्थियो को चाहिए कि परीक्षा करनेवाले विद्वानों की प्रार्थना कर परीक्षा में सुनाने योग्य समस्त सुना और पढ़ा विषय उनके समीप में निवेदन करें तथा वे परीक्षक भी अच्छे प्रकार परीक्षा कर गुण और दोषों का उपदेश दें ऐसा करने पर पढ़ना निर्दोष हो ॥ ७ ॥

फिर अध्यापक और अध्ययन करनेवाले परस्पर कैसे वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

यो वो॑ देवा घृ॒तस्नु॑ना ह॒व्येन॑ प्रति॒भूष॑ति ।

तं विश्व॒ उप॑ गच्छथ ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (देवाः) पढ़ाने और उपदेश करनेवाले विद्वानो (यः) जो (घृतस्नुना) घृत के समान शुद्ध (हव्येन) लेने देने योग्य वा प्रशंसित पढ़ने और सुनने से (वः) तुमलोगो को (प्रतिभूषति) प्रत्यक्षता से सुभूषित करता है (तम्) उसके (विश्वे) सब तुम लोग (उप, गच्छथ) समीप प्राप्त होओ ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सत्य विद्यादान से सब तुम लोगो को सुभूषित करता है उसे तुम सब प्रतिभूषित करो अर्थात् बदले में सुशोभित करो ॥ ८ ॥

फिर मनुष्यों को कैसा नियम करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

उप॑ नः सू॒नवो॒ गिरः॑ शृ॒ण्वन्त्व॒मृत॑स्य॒ ये । सु॒मृ॒ळी॒का भ॑वन्तु नः ॥९॥

पदार्थ—हे राजन् वा विद्वानो (ये) जो (नः) हमारे (सूनवः) सतान हों वे (अमृतस्य) नाशरहित विज्ञान की (गिरः) विद्यायुक्त वाणियो को (उप, शृण्वन्तु) समीप मे सुनें तथा (सुमृळीका) सुन्दर सुखवाले होकर (नः) हमारी सेवा करनेवाले (भवन्तु) हों ॥ ९ ॥

भावार्थ—पितृजनों को राजनीति वा अपने कुल में यह दृढ़ नियम करना चाहिये कि जितने हमारे संतान हैं वे ब्रह्मचर्य्य से समस्त विद्याओं के ग्रहण के लिये ब्रह्मचर्य्य आश्रम को करें, जो इसका विनाश करे उसे राजा वा कुलीन निरन्तर दण्ड देवें ॥ ९ ॥

फिर मनुष्य क्या कामना कर विद्याओं को प्राप्त होवें इस विषय को कहते है—

विश्वे॑ दे॒वा ऋ॑ता॒वृध॑ ऋ॒तुभि॑र्हवन॒श्रुतः॑ ।

जु॒षन्तां॒ युज्यं॒ पयः॑ ॥ १० ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे (ऋतावृधः) सत्यविद्या को बढ़ानेवालो (हवनश्रुतः) जो अध्ययन को सुनते हैं वे (विश्वे, देवाः) सब विद्वान् आप लोग (ऋतुभिः) वसन्तादिकों के साथ (युज्यम्) समाधान करने योग्य (पयः) दूध, जल वा अन्न को (जुषन्ताम्) सेवें ॥ १० ॥

भावार्थ—जो अध्ययन करने और परीक्षा कराने को चाहें वे मद करने, कुत्सित बुद्धि वा नाश करनेवाले पदार्थों को छोड़ के दुग्ध आदि बुद्धि के बढ़ानेवाले उत्तम पदार्थों को सेवें ॥ १० ॥

फिर मनुष्य किसके साथ क्या करें इस विषय को कहते हैं—

स्तो॒त्रमिन्द्रो॑ म॒रुद्ग॑ण॒स्त्वष्टृ॑मान्मि॒त्रो अ॑र्य॒मा ।

इ॒मा ह॒व्या जु॑षन्त नः ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो आप जो (मरुद्गणः) जिसके उत्तम मनुष्यों का समूह और (त्वष्टृमान्) उत्तम शिल्पीजन विद्यमान हैं तथा (मित्रः) जो कि सबका मित्र (अर्यमा) न्याय करनेवाला और (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् राजा हो उसके साथ (नः) हमारे (स्तोत्रम्) उस स्तोत्र को जिससे स्तुति करते हो और (इमा) इन (हव्या) देने लेने योग्य अन्नादि पदार्थों को (जुषन्त) सेवो ॥ ११ ॥

भावार्थ—वे ही मनुष्य चाहे हुए पदार्थों को पा सकते हैं जो सबके लिये श्रेष्ठ पुरुष को अधिष्ठाता करते हैं ॥ ११ ॥

फिर मनुष्य कैसे राजा को करें इस विषय को कहते हैं—

इ॒मं नो॑ अग्ने अध्व॒रं होत॑र्वयुन॒शो य॑ज । चि॒कि॒त्वान्दैव्यं॒ जन॑म् ॥१२॥

पदार्थ—हे (होतः) देनेवाले (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान राजन् आप (वयुनशः) उत्तम ज्ञान से (नः) हमारे (इमम्) इस (अध्वरम्) न नष्ट करने योग्य न्याय व्यवहार को (चिकित्वान्) जाननेवाले आप (दैव्यम्) विद्वानों से सत्कार को प्राप्त हुए (जनम्) शुभाचरणो से प्रसिद्ध जन को (यज) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ १२ ॥

भावार्थ—हे राजा प्रजाजन ! आप जो हमारे बीच शुभ गुण कर्म स्वभावयुक्त हो उसी को राज्य करने में अच्छे प्रकार युक्त करो ॥ १२ ॥

फिर मनुष्यों को कौन बुलाकर सत्कार करने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं—

विश्वे॑ देवाः शृणु॒तेमं हवं॑ मे॒ ये अ॒न्तरि॑क्षे॒ य उप॒ द्यवि॒ ष्ठ ।

ये अ॑ग्निजि॒ह्वा उ॒त वा॒ यज॑त्रा आ॒सद्या॒स्मिन्ब॒र्हिषि॑ मादयध्वम् ॥१३॥

पदार्थ—हे (विश्वे, देवाः) सब विद्वानो (ये) जो (अन्तरिक्षे) भीतर अविनाशी आकाश मे (ये) जो (द्यवि) प्रकाश में (ये) जो (अग्निजिह्वाः) सत्य से प्रकाशमान जिह्वा जिनकी (उत, वा) अथवा (यजत्रा) संग करने योग्य हों उन सबके साथ (मे) मेरे (इमम्) इस (हवम्) सुने पढे और जाने हुए विषय को (उप, शृणुत) समीप मे सुनो और समीप मे (स्थ) स्थिर होओ तथा (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) उत्तम आसन वा स्थान मे (आसद्य) बैठ के हम लोगों को (मादयध्वम्) आनन्दित करो ॥ १३ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को सदैव जो विमानस्थ अन्तरिक्ष मे, वा जो बिजुली की विद्या मे कुशल हैं और जो पढ़ाने वा परीक्षा करने मे निपुण, धर्मिष्ठ, आप्त, विद्वान् हों उनके निकट जाकर और उनको अपने समीप बुलाकर सत्कार कर इनसे सुनना चाहिये और सुना हुआ सुनाना चाहिये जिससे सुनने मे वा विज्ञान मे भ्रम न हो॥१३॥

फिर कौन संग करने योग्य हैं इस विषय को कहते है—

विश्वे॑ दे॒वा मम॑ शृण्वन्तु य॒ज्ञिया॑ उ॒भे रोद॑सी अ॒पां नपा॑च्च॒ मन्म॑ ।

मा वो॒ वचां॑सि परि॒चक्ष्या॑णि वोचं सु॒म्नेष्विद्वो॒ अन्त॑मा मदेम ॥१४॥

पदार्थ—हे (विश्वे, देवाः) सब विद्वानो आप (उभे) दोनो (रोदसी) आकाश और पृथिवी के तुल्य सब की रक्षा करने वाले (यज्ञियाः) सज्जनो का संग करने वाले होते हुए (मम) मेरे (वचांसि) वचनों को (शृण्वन्तु) सुनिये तथा (वः) आपके (अपाम्) प्राणों के (नपात्) न विनाश करने वाले (मन्म) विज्ञान को विरुद्ध मैं (मा, वोचम्) मत कहूँ (परिचक्ष्याणि, च) और सब ओर से कहने के योग्यो की प्रशसा करूं इस प्रकार वर्त्तमान हम लोग (वः) आपके (अन्तमाः) समीप स्थिर होते हुए (सुम्नेषु) सुखो मे (इत्) सर्वदैव (मदेम) आनन्दित हों ॥ १४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जिन विद्वानों का वचन असत्य नही होता तथा जिनका संग सर्वदा सुख और विज्ञान का बढ़ाने वाला है और जो भूमि और सूर्य के तुल्य सब के पालने वाले और विवाद सुनकर पक्षपात को छोड़ न्याय करने वाले हों उनके निकट स्थिर होकर सदैव आनन्द को प्राप्त होओ ॥ १४ ॥

फिर मनुष्यों से कौन नित्य सत्कार करने योग्य हैं इस विषयको कहते हैं—

ये के च॒ ज्मा म॒हिनो॒ अहि॑माया दि॒वो ज॑ज्ञि॒रे अ॒पां स॒धस्थे॑ ।

ते अ॒स्मभ्य॑मि॒षये॒ विश्व॒मायुः॒ क्षप॑ उ॒स्रा व॑रिवस्यन्तु दे॒वाः ॥१५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (ये) जो (के, च) कोई भी (महिनः) महान् जैसे (ज्मा) पृथिवी के बीच (अहिमायाः) मेघ की कुटिल गतिया (दिवः) सूर्य के प्रकाश से (अपाम्) जलों के (सधस्थे) समान स्थानवाले मेघमंडल मे (जज्ञिरे) उत्पन्न होती हैं वैसे वर्त्तमान (अस्मभ्यम्) हम लोगो के लिये (इषये) अन्न वा विज्ञान के अर्थ (क्षपः) रात्रि (उस्राः) दिन और (विश्वम्) पूर्ण (आयुः) जीवन को (वरिवस्यन्तु) सेवें (ते) वे (देवाः) दिव्यगुण वा विद्वान् जन हम लोगों से निरन्तर सेवने योग्य हैं ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो इस वर्त्तमान समय में दिन रात्रि मनुष्यो के आरोग्य, आयु और विज्ञान के बढ़ाने और मेघ के समान पुष्टि करने वाले हों वे ही सब से सत्कार करने योग्य हैं ॥ १५ ॥

फिर वे विद्वान् कैसे क्या करें इस विषय को कहते हैं—

अग्नी॑पर्जन्या॒ववतं॒ धियं॑ मे॒ऽस्मिन्हवे॑ सुहवा सुष्टु॒तिं नः॑ ।

इळा॑म॒न्यो ज॒नय॒द्गर्भ॑म॒न्यः प्र॒जाव॑ती॒रिष॒ आ ध॑त्तम॒स्मे ॥१६॥

पदार्थ—हे (सुहवा) सुन्दर प्रशंसित अध्यापक और उपदेशको तुम (अग्नी, पर्जन्यौ) बिजुलीरूप अग्नि और मेघ के तुल्य (अस्मिन्) इस (हवे) प्रशंसनीय धर्मयुक्त व्यवहार में तुम दोनों (मे) मेरी (धियम्) बुद्धि की (अवतम्) रक्षा करो तथा (नः) हमारी (सुष्टुतिम्) शोभन प्रशंसा की रक्षा करो जैसे अग्नि और मेघ के बीच (अन्यः) और बिजुलीरूप अग्नि (इळाम्) महान् वाणी

को (अभ्व.) और मेघ (गर्भम्) गर्भरूप (जनयत्) उत्पन्न करता है वैसे (अस्मे) हमारी (प्रजावती.) बहुप्रशंसित प्रजायुक्त (इष.) अन्नादि पदार्थों की इच्छाओं को (आ, धत्तम्) सब ओर से धारण करो ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो वह्नि और मेघ के समान सब की वृद्धि के बढ़ानेवाले वा रक्षा करनेवाले, सब प्रजाजनों को सुख में धारण करते हैं वे जैसे मेघ पृथिवी पर गर्भ को धारण कर ओषधियों को उत्पन्न करता और जैसे अग्नि वाणी को विधान करता अर्थात् बिजुलीरूप होकर तड़कता है वैसे वे सुखों का विधान करनेवाले होते हैं यह आप जानो ॥ १६ ॥

फिर कौन इस संसार में आनन्द देनेवाले होते हैं इस विषय को कहते हैं—

स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्नौ सूक्तेन महा नमसा विवासे ।

अस्मिन्नो अद्य विदथे यजत्रा विश्वे देवा हविषि मादयध्वम् ॥१७॥

पदार्थ—हे (यजत्रा) संग करानेवालो (विश्वे, देवा) सब विद्वानो तुम (अद्य) आज के दिन (अस्मिन्) इस (विदथे) विज्ञानमय यज्ञ में जैसे मैं (सूक्तेन) वेदमन्त्र समूह से (महा, नमसा) अन्नादि समूह से (स्तीर्णे) इन्धनादि से आच्छादित (बर्हिषि) यज्ञकुण्ड में (समिधाने) प्रदीप्त (अग्नौ) अग्नि के बीच (आ,-विवासे) सब ओर से सेवन करूं वैसे (नः) हम लोगों का (हविषि) देने वा भोजन करने योग्य अन्नादि पदार्थों में (मादयध्वम्) सुखी करो ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे इन्धनों से प्रदीप्त अग्नि में वेदमन्त्रों से सुगन्ध्यादियुक्त होम किया पदार्थ सब जगत् को सुखी करता है वैसे सुपात्रों में विद्वानों की बोई हुई विद्या सब जगत् को आनन्दित करती है ॥ १७ ॥

इस सूक्त में विश्वेदेवों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह बावनवां सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ दशर्चस्य त्रिपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । पूषा देवता । १, ३, ४, ६, ७, १० गायत्री । २, ५, ९ निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । ८ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब दश ऋचावाले त्रिपनवें सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य किसके लिये किसका सेवन करें इस विषय को कहते हैं—

वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये । धिये पूषन्नयुज्महि ॥१॥

पदार्थ—हे (पूषन्) पुष्टि करनेवाले (पथः) मार्ग के (पते) स्वामिन् (वयम्) हम लोग (उ) ही (वाजसातये) संग्राम का विभाग करनेवाली (धिये) प्रज्ञा के लिये (त्वा) आपको (रथम्) विमान आदि यान के (न) समान (अयुज्महि) प्रयुक्त करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य उत्तम बुद्धि पाने के लिये विद्वानों की सेवा करते हैं वे वेगवान् रथ से एक स्थान से दूसरे स्थान के समान एक विद्या से दूसरी विद्या को शीघ्र प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

अब स्त्रीपुरुषों को क्या चाहने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

अभि नो नर्यं वसुं वीरं प्रयतदक्षिणम् । वामं गृहपतिं नय ॥२॥

पदार्थ—हे पुष्टि करनेवाले आप (नः) हम लोगों को (प्रयतदक्षिणम्) जिससे प्रयत्नपूर्वक दक्षिणा दी गई उस (नर्यम्) मनुष्यों में उत्तम (वसु) धन और (वामम्) प्रशंसित (वीरम्) शुभलक्षणयुक्त पुरुष को (गृहपतिम्) गृहस्वामी को भी (अभि, नय) सब ओर से पहुंचाओ ॥ २ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् वा विदुषी ! आप हम लोगों के लिये उत्तम पति, उत्तम भार्या, प्रशंसित धन की प्राप्ति कराके उत्तम शिक्षा से धर्म्म आचरण की प्राप्ति कराइये ॥ २ ॥

फिर विद्वान् जन किसके लिये क्या प्रेरणा करें इस विषय को कहते हैं—

अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय । पणेश्चिद्वि म्रदा मनः ॥३॥

पदार्थ—हे (आघृणे) सब ओर से प्रकाशात्मन् (पूषन्) पुष्टि करनेवाले विद्वन् आप (अदित्सन्तम्) देने की अनिच्छा करते हुए (चित्) भी देनेवाले को (दानाय) देने के लिये (चोदय) प्रेरणा देओ (चित्) फिर भी देनेवाले को और अपने (मनः) मन को भी प्रेरणा देओ और (पणेः) जुआ खेलने वाले के भी अन्तःकरण को (वि, म्रदा) विशेषता से मर्दो अर्थात् दण्ड देओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे अध्यापक उपदेशक वा राजन् ! विद्यादि शुभगुणों की प्रवृत्ति के लिये न देनेवालों को भी दान करने के लिये प्रेरणा देओ और जुआ खेलनेवाले पाखण्डियों को मारो अर्थात् ताड़ना देओ ॥ ३ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि ।

साधन्तामुग्र नो धियः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (उग्र) तेजस्वी सेनापति आप (वाजसातये) विज्ञान वा धन की प्राप्ति वा संग्राम के लिये (पथः) मार्ग से (वि, चिनुहि) संचय करो तथा (मृधः) संग्रामों में प्रवृत्त दुष्टों को (वि, जहि) विशेषता से मारो जिससे (नः) हमारी (धियः) बुद्धियां कार्यों को (साधन्ताम्) सिद्ध करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप उत्तम निर्भय मार्गों को बनाओ उनमें विपथगामियों को मारो जिससे सब की बुद्धि उत्तम कर्मों की उन्नति करने के लिये प्रवृत्त हो ॥४॥

फिर राजा से कौन पीड़ा देने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं—

परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे । अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥५॥१७॥

पदार्थ—हे (कवे) विद्वन् राजन् आप (आरया) उत्तम कोड़ा से (पणीनाम्) द्यूत आदि व्यवहार करनेवाले पुरुषों के (हृदया) हृदयों को (परि, तृन्धि) सब ओर से मारो (अथ) इसके अनन्तर (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (ईम्) सब ओर से दुष्टों को (रन्धय) पीड़ित करो और हमारे लिये सुख देओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो अपवित्र शिक्षा देनेवाले और छली पुरुष अपने राज्य में हों उनको अच्छे प्रकार दण्डो जिससे न्यायमार्ग के बीच हम लोग सुखी हों ॥ ५ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वि पूषन्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम् ।

अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (पूषन्) पुष्टि करनेवाले आप दुष्टों को (ईम्) सब ओर से (रन्धय) अति पीड़ित करो तथा (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (हृदि) हृदय में (प्रियम्) प्यारे पदार्थ की (इच्छ) इच्छा करो (अथ) इसके अनन्तर (आरया) कोड़ा से बैलों के समान (पणेः) प्रशंसित व्यवहार करनेवाले के असम्बन्धी जनों को (वि, तुद) विशेषता से पीड़ा देओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप दुष्टों को दण्ड देकर श्रेष्ठों का सत्कार कर सब को श्रेष्ठ कर्मों में प्रेरणा देओ ॥ ६ ॥

आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे । अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥७॥

पदार्थ—हे (कवे) विद्वन् आप (पणीनाम्) व्यवहार करनेवालों के (किकिरा) व्यवस्थापत्रों को (आ, रिख) सब ओर से लिखो तथा दुष्टों के (हृदया) हृदयों को (रन्धय) अति पीड़ा देओ (अथ) इसके अनन्तर (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (ईम्) सुख (कृणु) करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—राजा वादी और प्रतिवादी अर्थात् झगड़ालू प्रतिझगड़ालुओं का लिखापढ़ी पूर्वक न्याय करे ॥ ७ ॥

फिर विद्वान् को कैसे किसके लिये प्रेरणा करनी योग्य है इस विषय को कहते हैं—

यां पूषन्ब्रह्मचोदनीमारां बिभर्ष्याघृणे ।

तया समस्य हृदयमा रिख किकिरा कृणु ॥८॥

पदार्थ—हे (पूषन्) पुष्टि करनेवाले (आघृणे) सब ओर से न्याय के प्रकाश करनेवाले आप (याम्) जिस (ब्रह्मचोदनीम्) विद्या और धन की प्राप्ति के लिये प्रेरणा करने तथा (आराम्) काष्ठ के विभाग करनेवाली आरी को (बिभर्षि) धारण करते हो (तया) उससे (समस्य) तुल्य के समान अर्थात् जो सब में बुद्धि वाला है उसके (हृदयम्) हृदय को (आ, रिख) अच्छे प्रकार लिखो और (किकिरा) उत्तम गुणों को विकीर्ण (कृणु) करो फैलाओ ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप विद्या और धन की प्राप्ति की प्रेरणा के समान राजनीति को धारण करो जिससे सब की न्यायव्यवस्था हो ॥ ८ ॥

मनुष्यों को क्या बढ़ाकर किसकी प्रार्थना करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं—

या ते अष्ट्रा गोओपशाघृणे पशुसाधनी । तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥९॥

पदार्थ—हे (आघृणे) सब ओर से पशुविद्या के प्रकाश करनेवाले (या) जो (ते) आपकी (अष्ट्रा) व्याप्त होनेवाली (गोओपशा) जिसमें गौएँ परस्पर सोती हैं और (पशुसाधनी) जिससे पशुओं को सिद्ध करते हैं वह क्रिया वर्त्तमान है (तस्याः) उससे (ते) आपके (सुम्नम्) सुख को हम लोग (ईमहे) जांचते अर्थात् मांगते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस क्रिया से पशु बढ़ें उस क्रिया को बढ़ाकर सुख को मांगो ॥ ९ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत ।

नृवत्कृणुहि वीतये ॥ १० ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे पशु पालनेवाले विद्वन् आप (नः) हम लोगों के लिये (वीतये) प्राप्ति के अर्थ (गोषणिम्) गौओं को अलग २ करनेवाली (उत) और (अश्वसाम्) घोड़ों का विभाग करनेवाली (उत) और (वाजसाम्) अन्नादि पदार्थों का विभाग करनेवाली (धियम्) उत्तम बुद्धि को (नृवत्) मनुष्यों के तुल्य (कृणुहि) करो ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को गौ, अश्व और धन धान्य की वृद्धि के लिये पुरुषार्थी जनों के समान महान् पुरुषार्थ करना योग्य है ॥ १० ॥

इस सूक्त में राजमार्ग, डाकुओं का निवारण, उत्तम दक्षिणा देनेवालों को प्रेरणा, दुष्टों को मारना, श्रेष्ठों की पालना और पशुओं का बढ़ाना कहा है इस कारण इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी योग्य है ॥

यह त्रेपनवाँ सूक्त और अठारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

अथ दशर्चस्य चतुःपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । पूषा देवता । १, २, ४, ६, ७, ८, ९ गायत्री । ३, १० निचृद्गायत्री । ५ विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब दश ऋचावाले चौवनवें सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को किसका संग चाहने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

सं पूषन्विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति । य एवेदमिति ब्रवत् ॥१॥

पदार्थ—हे (पूषन्) पुष्टि करनेवाले विद्वन् (यः) जो (इदम्) यह (एव) इसी प्रकार है (इति) ऐसा (ब्रवत्) उपदेश करे (यः) जो सत्य के (अनुशासति) अनुकूल शिक्षा दे उस (विदुषा) विद्वान् के साथ हम लोगों को (अञ्जसा) साक्षात् (सम्, नय) अच्छे प्रकार उन्नति को पहुँचाओ ॥ १ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! हम लोगों को जो सत्यविद्या का उपदेश करें उनका सत्कार कर उनके संग से हम लोग विद्वान् होकर उपदेशकर्त्ता हों ॥ १ ॥

मनुष्यों को किसका संग निरन्तर विधान करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

समु पूष्णा गमेमहि यो गृहाँ अभिशासति ।
इम एवेति च ब्रवत् ॥ २ ॥

पदार्थ—(यः) जो विद्वान् (इमे) ये पदार्थ (एव) इसी प्रकार हैं (इति) ऐसा (ब्रवत्) कहे (उ) और (च) भी (गृहान्) गृहस्थों को (अभिशासति) सन्मुख होकर शिक्षा दे उस (पूष्णा) पुष्टि करनेवाले वैद्य विद्वान्जन के साथ हम लोग (सम्, गमेमहि) संग करें ॥ २ ॥

भावार्थ—जो विद्वान्जन निश्चय से पृथिव्यादि पदार्थों की विद्या के अध्यापन और उपदेश से तथा हस्तक्रिया से साक्षात् कर सके तथा राजनीति आदि व्यवहारों की अनुकूलता से शिक्षा दे उसी विद्वान् का संग हम लोग सदा करें ॥ २ ॥

किसका कर्त्तव्य नष्ट नहीं होता इस विषय को कहते हैं—

पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽव पद्यते ।
नो अस्य व्यथते पविः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जिस (अस्य) इस (पूष्णः) पुष्टि करनेवाले शिल्पी विद्वान् का (चक्रम्) कलायन्त्रादि (न, रिष्यति) हिंसन नहीं करता तथा (कोशः) धनसमूह (न, अव, पद्यते) अप्राप्त नहीं होता अर्थात् प्राप्त ही होता है और (पविः) शस्त्रास्त्रविद्या (नो) नहीं (व्यथते) व्यथित होती अर्थात् अभुगत जिस को नहीं व्यथते उसी का संग हम लोग करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिस विद्वान् का पूर्ण बल है, जिसका एकछत्र राज्य है, जिसका कोश सब ओर से पूरा होता और शत्रुओं से जिसका शस्त्र नहीं नष्ट होता है उसके राज्य में सब जन निर्भय होकर बसें ॥ ३ ॥

कौन महान् श्रीमान् होता है इस विषय को कहते हैं—

यो अस्मै हविषाविधन्न तं पूषापि मृष्यते । प्रथमो विन्दते वसु ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वानो (यः) जो (हविषा) देने वा लेने से (अस्मै) इस के लिये (वसु) बहुत धन का (अविधत्) विधान करता है वा (प्रथमः) पहिला कारक धन (विन्दते) पाता है (तम्) उसको (पूषा) पुष्टि करनेवाला (अपि) भी (न) नहीं (मृष्यते) सहता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो पहिले से शिल्प विद्या को पाकर क्रिया से पदार्थों का निर्माण करता है वह बहुत धन को प्राप्त होता है उसके सदृश पुष्ट कोई नहीं होता है ॥ ४ ॥

कौन राज्य पाता है इस विषय को कहते हैं—

पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः । पूषा वाजं सनोतु नः ॥५॥१९॥

पदार्थ—जो (पूषा) पुष्टि करनेवाला विद्वान् (नः) हमारे लिये (वाजम्) धन को (सनोतु) देवे जो (पूषा) पुष्टि करनेवाला (अर्वतः) घोड़ों के समान अश्वादि पदार्थों की (रक्षतु) रक्षा करे वह (पूषा) शिल्पिजनों की पुष्टि करने वाला (नः) हमलोगों को तथा (अनु, गाः) अनुकूल पृथिवी और वाणियों को (एतु) प्राप्त हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो पहिले औरों का उपकार करता वा पदार्थों को इकट्ठा करता है वह सब के सहाय से भूमि के राज्य आदि को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

किस के संग से विद्या और राज्य को प्राप्त होवें इस विषय को कहते हैं—

पूषन्ननु प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः । अस्माकं स्तुवतामुत ॥६॥

पदार्थ—हे (पूषन्) पुष्टि करनेवाले आप (सुन्वतः) यज्ञ के सम्पादन करनेवाले (यजमानस्य) यज्ञकर्त्ता के (उत) और (स्तुवताम्) विद्या की प्रशंसा करनेवाले (अस्माकम्) हमलोगों की (गाः) सुन्दर शिक्षित वाणी वा भूमियों को (अनु, प्र, इहि) अनुकूलता से प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे शिल्पी विद्वान्जन ! आप राजधनादि के सहाय से हम से वा शिक्षा देनेवालों से विद्याओं को पाकर भूमिराज्य को प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

किसी को हिंसा नहीं करनी चाहिए इस विषय को कहते हैं—

माकिर्नेशन्माकीं रिषन्माकीं सं शारि केवटे । अथारिष्टाभिरा गहि ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वन् जो कभी (माकिः) न (नेशत्) नष्ट हो तथा किसी को (माकीम्) न (रिषत्) नष्ट करे (अथ) इसके अनन्तर (केवटे) कुए में (माकीम्) न (सम्, शारि) नष्ट करे वा कुएं के निमित्त किसी को न नष्ट करे उसको पाकर (अरिष्टाभिः) अहिंसित क्रियाओं से आप हम लोगों को (आ, गहि) प्राप्त हूजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो नष्ट कर्म नहीं करता न किसी को नष्ट करता है तथा कुएं के जल से भी किसी को नहीं पीड़ा देता वही सबसे संग करने योग्य और न हिंसा करनेवाला होता है ॥ ७ ॥

मनुष्यों को किससे धन पाने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

शृण्वन्तं पूषणं वयमिर्यमनष्टवेदसम् । ईशानं राय ईमहे ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (वयम्) हम लोग (इर्यम्) प्रेरणा देने योग्य (अनष्टवेदसम्) अनष्टविज्ञान धन तथा (ईशानम्) ईश्वरता का शील रखने और (शृण्वन्तम्) सुनने और (पूषणम्) पुष्टि करनेवाले सज्जन विद्वान् को प्राप्त होकर (रायः) धनों को (ईमहे) माँगते हैं वैसे इसको प्राप्त होकर तुम सब धन को माँगो ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो सुपात्र और कुपात्र, विद्वान् और अविद्वान् तथा धार्मिक और अधार्मिक की परीक्षा करनेवाला हो उसीके सकाश से पुरुषार्थ से धन पाना चाहिए ॥८॥

कौन किसमें अहिंसक हों इस विषय को कहते हैं—

पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन । स्तोतारस्त इह स्मसि ॥९॥

पदार्थ—हे (पूषन्) पालन करनेवाले धर्मात्मन् जिस (ते) आपके (इह) इस संसार में (स्तोतारः) विद्या की स्तुति करनेवाले (वयम्) हम लोग (स्मसि) हैं उस (तव) आपके (व्रते) कर्म में (कदा, चन) कभी भी हम लोग (न, रिष्येम) नष्टकर्त्ता न होवें ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो सत्य विद्याओं की प्रशंसा करनेवाले मनुष्य हों वे विद्वानों के काम में हिंसा करनेवाले न हों ॥ ९ ॥

किन गुणों से कैसे मनुष्य होते हैं इस विषय को कहते हैं—

परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् ।
पुनर्नो नष्टमाजतु ॥ १० ॥ २० ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (पूषा) पुष्टि करनेवाला दानशील (दक्षिणम्) दहिने (हस्तम्) हाथ को धारण करे वह (पुनः) फिर (नष्टम्) नष्ट हुई भी और वस्तु को (परस्तात्) पीछे से (परि, दधातु) सब ओर से धारण करे (नः) हम लोगों को फिर (आ, अजतु) अच्छे प्रकार दे वा प्राप्त हो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस लोक में जो देनेवाला है वही उत्तम है, जो लेनेवाला है वह मध्यम है और जो चोरी से प्राप्त करनेवाला है वह निकृष्ट है यह जानना चाहिये ॥१०॥

इस सूक्त में विद्वानों का सङ्ग, शिल्पियों की प्रशंसा, उत्तम गुणों की याचना, हिंसा छोड़ना और दान की प्रशंसा कही है इससे इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चौवनवाँ सूक्त और बीसवाँ वर्ग पूरा हुआ ॥

ओ३म्

अथ षडृचस्य पञ्चपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । पूषा देवता। १, २, ५, ६ गायत्री । ३, ४ विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।

अब छः ऋचावाले पचपनवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में किसका संग करना योग्य है इस विषय को कहते हैं—

एहि वां विमुचो नपादाघृणे सं सचावहै । रथीर्ऋतस्य नो भव ॥१॥

पदार्थ—हे (आघृणे) सब ओर से देदीप्यमान (नपात्) जो नहीं गिरते वह आप (नः) हमारे लिये (ऋतस्य) सत्य के सम्बन्धी (रथीः) बहुत रथोंवाले (भव) हों तथा आप हम लोगों को (आ, इहि) प्राप्त होओ । हे अध्यापक और उपदेशको (वाम्) तुम दोनों को हे उक्त विद्वन् आप (विमुचः) छोड़ो तथा आप और मैं (सम्, सचावहै) सम्बन्ध करें ॥ १ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् सत्य की पालना करनेवाला, सत्य का उपदेशक हो वह और सुननेवाला, मित्र होकर तथा सत्य विद्या को प्राप्त होकर औरों को भी विद्या को प्राप्त करावें ॥ १ ॥

फिर कैसे पुरुष से धन प्राप्त करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

रथीतमं कपर्दिनमीशानं राधसो महः । रायः सखायमीमहे ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग जिस (महः) महान् (राधसः) धन के वा (रायः) साधारण धन के (ईशानम्) ऐश्वर्य्य से युक्त (रथीतमम्) जिसके बहुत रथ विद्यमान (कपर्दिनम्) जो जटाजूट ब्रह्मचारी (सखायम्) मित्र विद्वान् उसकी (ईमहे) याचना करते हैं उसकी तुम भी याचना करो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो ब्रह्मचारी होकर विद्या पढ़ा हुआ पुरुषार्थी तथा बहुत धन का स्वामी है उसी से विद्या पढ़कर धन को प्राप्त होओ ॥ २ ॥

अब कौन सब को सुख देनेवाला होता है इस विषय को कहते हैं—

रायो धारास्याघृणे वसो राशिरजाश्व । धीवतोधीवतः सखा ॥३॥

पदार्थ—हे (अजाश्व) अविनाशी बिजुलीरूप घोड़ेवाले (आघृणे) विद्या से प्रकाशमान विद्वान् जिससे आप (वसोः) वास करानेवाले (रायः) धन की (राशिः) ढेरी के समान वा (धारा) प्राप्ति करानेवाली वाणी के समान (धीवतोधीवतः) प्राज्ञ प्राज्ञ के (सखा) मित्र (असि) हो इससे सत्कार करने योग्य हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य प्राज्ञ पुरुषो के मित्र, पदार्थ विद्याओ के जानने वाले तथा धनाढ्य हों वे सब के सुख देनेवाले होते हैं ॥ ३ ॥

फिर किन गुणों से उत्कृष्ट होता है इस विषय को कहते हैं—

पूषणं न्व१जाश्वमुप स्तोषाम वाजिनम् । स्वसुर्यो जार उच्यते ॥४॥

पदार्थ—(यः) जो (स्वसुः) बहिन के समान वर्त्तमान उषा का (जारः) जीर्ण करानेवाला (उच्यते) कहा जाता है उस (वाजिनम्) ज्ञान और बल का देनेवाला (अजाश्वम्) जिसमे बकरी और घोड़े विद्यमान (पूषणम्) जो पुष्टि करने वाला है उस आदित्य की हम (नु) शीघ्र (उप, स्तोषाम) प्रशसा करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजा आदि मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य रात्रि का निवारण करनेवाला है वैसे ही प्रजाजनो मे जारकर्म मे वर्त्तमान मनुष्यो का निवारण करो ॥ ४ ॥

फिर मनुष्य क्या जानें इस विषय को कहते हैं—

मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः ।
भ्रातेन्द्रस्य सखा मम ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (इन्द्रस्य) बिजुली के (भ्राता) भ्राता के समान (मम) मेरा (सखा) मित्र (नः) हमलोगो के (दिधिषुम्) धारण करनेवाले को (शृणोतु) सुने और जो (स्वसुः) भगिनी के समान उषा का (जारः) निवारण करनेवाला (मातुः) माता का धारण करनेवाला है उसको मैं (अब्रवम्) कहूँ और उसको सब जानें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि का मित्र वायु है, और रात्रि का निवारण करनेवाला सूर्य भी है वैसे ही धार्मिक मेरे मित्र और मैं भी उनका मित्र होकर रात्रि के समान वर्त्तमान अविद्या का हम सब निवारण करें ॥ ५ ॥

फिर मनुष्य क्या जानके किसको प्राप्त होते हैं इस विषय को कहते हैं—

आजासः पूषणं रथे निशृम्भास्ते जनश्रियम् ।
देवं वहन्तु बिभ्रतः ॥ ६ ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (निशृम्भाः) नित्यसम्बन्ध करनेवाले (अजासः) पुष्टिकर्त्ता सूर्य्य के किरणरूप अश्व (पूषणम्) पुष्टि करनेवाले सूर्य्य वा (जनश्रियम्) जिसके मनुष्यो की शोभा विद्यमान उस (देवम्) दिव्यगुणवाले विद्वान् के (बिभ्रतः) धारण अर्थात् पुष्टि करनेवालो और धारण करनेवालों को (रथे) रमणीय जगत् मे (आ, वहन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त करें (ते) वे सर्व चाही हुई वस्तु को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! तुम शरीर और आत्मा की पुष्टि करनेवाले पदार्थों को जानकर और उनसे उपयोग लेकर ऐश्वर्य्य को प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

इस मन्त्र मे पूषा और आदित्य के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पचपनवां सूक्त और इक्कीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षड्ऋचस्य षट्पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । पूषा देवता । १, ४, ५ गायत्री । २, ३ निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । ६ स्वराडुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले छप्पनवें सूक्त का प्रारम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में किसको किसके लिए क्या उपदेश करने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणम् । न तेन देव आदिशे ॥१॥

पदार्थ—(यः) जो (करम्भात्) करम्भ करमन्था नामक अन्न को खाने वाला (देवः) विद्वान् (एनम्) बिजुली आदि रूपवाले (पूषणम्) पुष्टि करने वाले को (आदिदेशति) सब ओर से अच्छे प्रकार उपदेश करता है (इति) इस प्रकार (तेन) उसके साथ मैं अन्यथा (न, आदिशे) नहीं सब ओर से प्रशसा करता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सत्य का उपदेश करते हैं वे सब आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

फिर वह कैसा होता है इस विषय को कहते हैं—

उत घा स रथीतमः सख्या सत्पतिर्युजा । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (युजा) युक्त (सख्या) मित्र के साथ (सत्पतिः) सज्जनो की पालना करनेवाला (उत) और (रथीतमः) अतीव रथयुक्त (इन्द्रः) सूर्य के समान राजा जैसे सूर्य (वृत्राणि) मेघों को मारता है वैसे (जिघ्नते) शत्रुओ को मारता है (सः) वह (घा) ही कृतकृत्य होता है ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सत्य तथा सत्पुरुषो के साथ मित्रता तथा दुष्टों के साथ उदासीनता करते हैं वे दुष्टों को निवार कर श्रेष्ठों का स्वीकार कर सकते हैं ॥ २ ॥

फिर मनुष्यों को कैसा आचरण करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

उतादः परुषे गवि सूरश्चक्रं हिरण्ययम् । न्यैरयद्रथीतमः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (रथीतमः) अतीव रथादि पदार्थों से युक्त (सूरः) वीर पुरुष (अदः) उस (हिरण्ययम्) सुवर्णादि युक्त वा तेजोमय (चक्रम्) चक्र को (नि, ऐरयत्) निरन्तर प्रेरित करे वह (उत) निश्चय से (परुषे) कठोर व्यवहार मे और (गवि) वाणी मे नही प्रवृत्त हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य कठोर भाषण को छोड़ कोमल भाषण करता है वह सदा आनन्दी होता है ॥ ३ ॥

फिर विद्वान् क्या करे इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यदद्य त्वा पुरुष्टुत ब्रवाम दस्र मन्तुमः । तत्सु नो मन्म साधय ॥४॥

पदार्थ—हे (पुरुष्टुत) बहुतो से प्रशसा को प्राप्त (दस्र) दुःख को नष्ट करनेवाले (मन्तुमः) प्रशस्तविज्ञानयुक्त (अद्य) आज हम (यत्) जिस ज्ञान को (त्वा) तुझको (ब्रवाम) कहें वह तू (नः) हमारे लिये (तत्) उस (मन्म) विज्ञान को (सु, साधय) अच्छे प्रकार सिद्ध कर ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को सर्वदा सन्मुख वा अन्यत्र सत्य ही कहना चाहिये जिससे सत्य ज्ञान सर्वत्र बढ़े ॥ ४ ॥

इमं च नो गवेषणं सातये सीषधो गणम् । आरात्पूषन्नसि श्रुतः ॥५॥

पदार्थ—हे (पूषन्) पुष्टि करनेवाले जिससे आप (आरात्) समीप वा दूर से (श्रुतः) सुने हुए (असि) हो इससे (सातये) सविभाग करने के लिये (नः) हमारे (इमम्) इस (गवेषणम्) वाणी आदि पदार्थों की प्रेरणा करनेवाले को तथा (गणम्) अन्य पदार्थों के समूह को (च) भी (सीषधः) साधो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! जिससे आप आप्त विद्वानों के गुणो से युक्त हैं इससे हम मनुष्यो के सबो को विद्वान् करो ॥ ५ ॥

फिर सब को विद्वानों के लिए क्या इच्छा करनी चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

आ ते स्वस्तिमीमह आरेअघामुपावसुम् ।
अद्या च सर्वतातये श्वश्च सर्वतातये ॥ ६ ॥ २२ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् (सर्वतातये) सम्पूर्ण सुख सिद्ध करनेवाले यज्ञ के लिये (ते) तेरे लिये (अद्य) आज (च) और (श्वः) आगामी दिन (च) भी (सर्वतातये) सर्वसुख करनेवाले और पदार्थ के लिये (आरेअघाम्) जिससे पाप दूर पहुचे तथा (उपावसुम्) वा समीप धन आदि पदार्थ विद्यमान उस (स्वस्तिम्) सुख को हम (आ, ईमहे) अच्छे प्रकार मांगते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! जिससे आप पापाचरण से अलग तथा सब के कल्याण करनेवाले हैं इससे आपके लिये सदैव सुख की इच्छा हम लोग करें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में उपदेशक, श्रोता और पूषा शब्द के अर्थ का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छप्पनवां सूक्त और बाईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षड्ऋचस्य सप्तपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रापूषणौ देवते । १, ६ विराड्गायत्री । २, ३ निचृद्गायत्री । ४, ५ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले सत्तावनवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को किसके साथ मित्रता करनी चाहिए इस विषय का वर्णन करते हैं—

इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसातये ॥ १॥

पदार्थ—(इन्द्रा, पूषणा) परम ऐश्वर्य्य युक्त को तथा सबको पुष्टि करने वाले को (वयम्) हम लोग (सख्याय) मित्रता तथा (स्वस्तये) सुख वा (वाजसातये) अन्नादिकों का जिसमें विभाग है उसके लिये (नु) शीघ्र (हुवेम) स्वीकार करें ॥ १ ॥

भावार्थ—जो सब में मित्रता विधान कर सबके सुख की चाहना करते हैं उन्हीं को हम लोग स्वीकार करें ॥ १ ॥

फिर विद्वज्जन किसके तुल्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

सोममन्य उपासदत्पातवे चम्वोः सुतम् । करम्भमन्य इच्छति ॥२॥

पदार्थ—हे परमैश्वर्य्ययुक्त और सब की पुष्टि करनेवाले तुम दोनो में से (अन्यः) एक जन (चम्वोः) आकाश और पृथिवी के बीच (सुतम्) उत्पन्न हुए (सोमम्) ऐश्वर्य्य के (पातवे) पीने को (उप, असदत्) दूसरे के समीप बैठता है (अन्यः) और दूसरा (करम्भम्) भोगने योग्य पदार्थ को (इच्छति) चाहता है उन दोनों को हम लोग मित्रता आदि के लिये स्वीकार करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् जनो ! जैसे सूर्य और चन्द्रमा द्यावा और पृथिवी के बीच वर्त्तमान होते हुए हैं, इन दोनो में से सूर्य रस को लेता है और चन्द्रमा रस को देता है वैसे ही तुम सब वर्त्तो ॥ २ ॥

फिर इन दोनों से मनुष्यों को क्या प्राप्त होना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

अजा अन्यस्य वह्नयो हरी अन्यस्य सम्भृता ।
ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! उन दोनो के बीच जिस (अन्यस्य) भूमि के सम्बन्धी (वह्नयः) पदार्थ को एक स्थान से दूसरे स्थान मे पहुँचानेवाले (अजाः) नित्य अर्थात् जो नष्ट नहीं होते वा जिस (अन्यस्य) और दूसरे बिजुलीरूप अग्नि के (हरी) हरणशील (सम्भृता) अच्छे प्रकार धारण किये हुए धारण और आकर्षण गुण वर्त्तमान हैं (ताभ्याम्) उनसे जो (वृत्राणि) धनों को (जिघ्नते) प्राप्त होता है उसका तुम सत्कार करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! मिले हुए भूमि और बिजुली की उत्तेजना से तुम धनों को प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः । तत्र पूषाभवत्सचा ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यत्) जो (वृषन्तमः) अतीव वर्षा करनेवाला (इन्द्रः) बिजुली रूप अग्नि (रितः) अपनी कक्षाओं में घूमनेवाली (महीः) भूमि और (अपः) जलों को (अनयत्) पहुँचाता है (तत्र) वहाँ (पूषा) भूमि (सचा) संयुक्त (अभवत्) होती है उसको तुम लोग जानो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! जो बिजुली पृथिवी और जल के बीच स्थिर हुई सब को समय समय पर प्रतिस्थान पहुंचाती है उसके साथ पृथिवी वर्त्तमान है उसको जान कलायन्त्रों से उसे उठाकर सब कामो को सिद्ध करो ॥ ४ ॥

फिर मनुष्यों को क्या जानकर क्या आरम्भ करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

तां पूष्णः सुमतिं वयं वृक्षस्य प्र वयामिव । इन्द्रस्य चा रभामहे ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (वयम्) हम लोग जिस (पूष्णः) पृथिवी सम्बन्धिनी (सुमतिम्) उत्तम बुद्धि को (वृक्षस्य) काटने योग्य पदार्थ की (वयामिव) वृक्ष की दृढ़ विस्तीर्ण शाखा के समान वा (इन्द्रस्य) बिजुलीरूप अग्नि सम्बन्धिनी उत्तम मति का (च) भी (प्र, आ, रभामहे) आरम्भ करें (ताम्) उसको तुम भी प्रारम्भ करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! तुम भूगर्भविद्या और विद्युद्विद्या को प्राप्त होकर कार्यसिद्धि के लिये क्रिया का आरम्भ करो ॥५॥

फिर मनुष्यों को क्या प्राप्त होने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

उत्पूषणं युवामहेऽभीशूँरिव सारथिः । मह्या इन्द्रं स्वस्तये ॥६॥२३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (मह्यै) पृथिवी और (स्वस्तये) सुख के लिये (सारथिः) नियन्ता अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचानेवाला (अभीशूनिव) रश्मियों के समान (पूषणम्) भूमि को और (इन्द्रम्) विद्युद्रूप अग्नि को (उत्, युवामहे) उत्तमता से अलग करते हैं वैसे ही तुम भी करो ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। यदि मनुष्य भूमि और बिजुली का विभाग करें तो बहुत सुख पावें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में भूमि और बिजुली के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सत्तावनवां सूक्त और तेईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ चतुर्ऋचस्याष्टपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । पूषा देवता । १ त्रिष्टुप् । ३,४ विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २ विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब चार ऋचावाले अट्ठावनवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मंत्र में फिर मनुष्य क्या करके क्या पाते हैं इस विषय को कहते हैं—

शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (स्वधावः) बहुत अन्नवाले और (पूषन्) पुष्टिकर्त्ता जन (ते) आपका (अन्यत्) और (शुक्रम्) शुद्धरूप तथा (ते) आपका (अन्यत्) रूप है सो तुम दोनो (विषुरूपे) व्याप्तरूप (अहनी) रात्रि दिन में (यजतम्) मिलो और (द्यौरिव) सूर्य्य प्रकाश के समान (विश्वाः) संपूर्ण (माया) बुद्धियों को तुम (अवसि) रक्खो जिन (ते) आपकी (भद्रा) कल्याण करनेवाली (रातिः) दानक्रिया (इह) यहां (अस्तु) हो वह (हि) ही आप सत्कार करने योग्य (असि) हैं ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो पुरुष दिन रात्रि के समान क्रम से कामो को सिद्ध करते हैं वे सब सामग्री को पाकर सूर्य्य के प्रकाश के समान उत्तम कीर्त्तिवाले होते हैं ॥१॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को कहते हैं—

अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो धियंजिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः ।
अष्ट्रां पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत्संचक्षाणो भुवना देव ईयते ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (अजाश्वः) भेड़ बकरी और घोड़ों को रखनेवाला (पशुपाः) जो पशुओं की रक्षा करनेवाला तथा (वाजपस्त्यः) घर मे अन्नों को रखनेवाला (धियंजिन्वः) बुद्धि को तृप्त करता है वह (विश्वे) समग्र (भुवने) संसार मे (अर्पितः) स्थापन किया हुआ (पूषा) पुष्टि करनेवाला (शिथिराम्) शिथिल और (अष्ट्राम्) पदार्थों मे व्याप्त बुद्धि और (भुवना) गृहों की (सञ्चक्षाणः) अच्छे प्रकार कामना वा उनका उपदेश करता हुआ (देवः) विद्वान् (ईयते) प्राप्त होता वा जाता है तथा (उद्वरीवृजत्) उत्तमता से वर्जता है उसका तुम लोग सेवन करो ॥२॥

भावार्थ—जो मनुष्य भुवनस्थ सब पदार्थों को मिले वा न मिले जान कर कार्य्यों को करते हैं वे बुद्धिमान् होते हैं ॥२॥

फिर विद्वान् किसको बना कहां जाकर क्या पावे इस विषय को कहते हैं—

यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।
ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य कामेन कृत श्रव इच्छमानः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (कृत) किये हुए विद्वन् (पूषन्) भूमि के समान पुष्टियुक्त (याः) जो (ते) आपकी (हिरण्ययीः) तेजोमयी सुवर्णादिकों से सुभूषित (नावः) प्रशंसनीय नौकाएँ (समुद्रे) समुद्र वा (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (अन्तः) भीतर (चरन्ति) जाती हैं (ताभिः) उनसे (कामेन) कामना करके (श्रवः) अन्नादिक की (इच्छमानः) इच्छा करते हुए (सूर्यस्य) सूर्य्य के (दूत्याम्) दूत की क्रिया के समान कामना को (यासि) प्राप्त होते हो इससे धन्य हो ॥३॥

भावार्थ—जो मनुष्य सुदृढ़ नावें और भू-विमानों को भूमि पर और अन्तरिक्ष मे चलनेवाले यानों को अन्तरिक्ष मे चलने को रचते और उनसे देश देशान्तरों को जाय आकर अपनी इच्छा को पूरी करते हैं वे ही सूर्य्य के समान प्रकाशित कीर्तिवाले होते हैं ॥३॥

फिर कौन विद्या को प्राप्त होने के योग्य होते हैं इस विषय को कहते हैं—

पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इळस्पतिर्मघवा दस्मवर्चाः ।
यं देवासो अददुः सूर्यायै कामेन कृतं तवसं स्वञ्चम् ॥ ४ ॥ २४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यम्) जिसको (देवासः) विद्वान् जन (कामेन) कामना से (कृतम्) किये हुए (तवसम्) बलिष्ठ (स्वञ्चम्) सुन्दरता से जाते हुए अर्थात् शरीर और आत्मा के बल से युक्त युवा मनुष्य को (सूर्यायै) सूर्य के समान शुभ गुण और स्वभावों से प्रकाशित कन्या के लिये (अददुः) देते हैं वह (सुबन्धुः) सुन्दर भ्राता वा मित्रों वाला (मघवा) बहुत ऐश्वर्य्ययुक्त (दस्मवर्चाः) नष्ट होते हुए पदार्थों मे प्रकाश रखनेवाला (पूषा) भूमि के समान पुष्ट वा पुष्टि करनेवाला (दिवः) बिजुली और (पृथिव्याः) भूमि तथा (इळः) वाणी का (पतिः) स्वामी होता हुआ सुख को (आ) ग्रहण करता है ॥४॥

भावार्थ—जो ब्रह्मचर्य्य से पूर्ण युवावस्था को प्राप्त हुए अपने सदृश वधुओं को प्राप्त होकर ऋतुगामी अर्थात् ऋतुकाल में स्त्रीभोग करनेवाले होकर सुन्दर पुष्ट अङ्ग और बुद्धि बल विद्या और शिक्षा को प्राप्त हों वे ही भूगर्भ वा विद्युदादि विद्या को प्राप्त हो सकते हैं और क्षुद्राशय नहीं ॥४॥

इस सूक्त मे विद्वान् के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अट्ठावनवां सूक्त और चौबीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ दशर्चस्यैकोनषष्टितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । १,३,४,५ निचृद्बृहती । २ विराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । ६,७,९ भुरिगनुष्टुप् । १० अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । ८ उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब दश ऋचा वाले उनसठवें सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य क्या करके बलिष्ठ हों इस विषय को कहते हैं—

प्र नु वोचा सुतेषु वां वीर्या३ यानि चक्रथुः ।
हतासो वां पितरो देवशत्रव इन्द्राग्नी जीवथो युवम् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली के समान अध्यापक और उपदेशको (युवम्) तुम दोनो (यानि) जिन (सुतेषु) उत्पन्न हुए पदार्थों मे (वीर्या) पराक्रमों को (चक्रथुः) किया करते हो उनसे (वाम्) तुम दोनो के जो (देवशत्रवः) विद्वानों से द्वेष करनेवाले शत्रु (हतासः) नष्ट हों और तुम दोनो बहुत समय तक (जीवथः) जीवते हो यह (वाम्) तुम दोनों को मैं (नु) शीघ्र (प्र, वोचा) उपदेश देता हूँ जिससे तुम दोनो के (पितरः) पालनेवाले भी ऐसा (वाम्) तुम दोनो को उपदेश दें ॥१॥

भावार्थ—जो मनुष्य उत्पन्न हुए मनुष्यो मे पराक्रम की उन्नति करते हैं उन के शत्रु विलय (नाश) को प्राप्त होते हैं ॥१॥

फिर अध्यापक और उपदेशक कैसे हों इस विषय को कहते हैं—

बळित्था महिमा वामिन्द्राग्नी पनिष्ठ आ ।
समानो वां जनिता भ्रातरा युवं यमाविहेहमातरा ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्राग्नी) पवन और अग्नि के तुल्य राजप्रजाजनो जो (वाम्) तुम दोनो का (पनिष्ठः) अतीव प्रशंसित (बट्) सत्य (महिमा) प्रताप वा (वाम्) तुम दोनो का (समानः) तुल्य (जनिता) उत्पादन करनेवाला पिता (इहेहमातरा) यहां यहां जिनकी माता वे (यमौ) नियन्ता अर्थात् गृहस्थी के चलानेवाले (भ्रातरा) भाई वर्त्तमान हैं उनको (इत्था) इस प्रकार से (युवम्) तुम (आ, जीवथ) जिलाते हो ॥२॥

भावार्थ—जो अध्यापक और उपदेशक बिजुली और सूर्य्य के तुल्य विद्याओ मे व्याप्त तथा परोपकारी हैं वे सत्य महिमावाले होते हैं ॥२॥

फिर विद्वान् जन क्या जानकर कैसे हों इस विषय को कहते हैं—

ओकिवांसा सुते सचाँ अश्वा सप्ती इवादने ।
इन्द्रा न्व१ग्नी अवसेह वज्रिणा वयं देवा हवामहे ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (देवा) विद्वान् (वयम्) हम लोग (अवसा) रक्षा आदि से (इह) इस संसार में (सुते) निष्पन्न हुए व्यवहार मे (सचा) अच्छे प्रकार युक्त (अश्वा) और व्याप्त हुए (वज्रिणा) प्रशंसित शस्त्र अस्त्र वाले (ओकिवांसा) सङ्ग और सम्बन्ध को प्राप्त हुए (सप्तीइव) जैसे दो घोड़े (आदने) भक्षण करने योग्य घास अन्न के निमित्त वर्त्तमान वैसे (इन्द्राग्नी) पवन और बिजुली की (नु) शीघ्र (हवामहे) प्रशंसा करते हैं वैसे इनकी तुम भी प्रशंसा करो ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् जन सदा मिले हुए वायु और बिजुली इन दोनो पदार्थों को जानते है वे इस संसार मे अद्भुत क्रियाओ को कर सकते है ॥३॥

फिर विद्वान् जन कैसे हों इस विषय को कहते है—

य इन्द्राग्नी सुतेषु वां स्तवत्तेष्वृतावृधा ।
जोषवाकं वदतः पज्रहोषिणा न देवा भसथश्चन ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (पज्रहोषिणा) प्राप्त हुई वाणी वा घोषयुक्त (ऋतावृधा) सत्य बढानेवाले (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली के समान अध्यापक और उपदेशको (यः) जो (तेषु) उन (सुतेषु) उत्पन्न हुए पदार्थों मे (वाम्) तुम दोनो की (स्तवत्) प्रशंसा करे वा जो (देवा) विद्वान् जन (चन) भी (न) नहीं (भसथः) व्यर्थ वाद करते हैं उस सर्वजन के प्रति तुम दोनो (जोषवाकम्) प्रीति करनेवाले वचन (वदतः) कहते हो वह सर्वजन भी तुम्हारे प्रति कहे ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! सर्व पदार्थों मे प्रविष्ट वायु और बिजुली को जानकर ऐश्वर्य को प्राप्त होकर झूठी असत्य क्रिया और लोक विद्वेषी जनो को जान सबके उपकार के लिये सत्य प्रिय वाक्य सर्वदा कहो ॥४॥

कौन मनुष्य पदार्थविद्या को जानने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

इन्द्राग्नी को अस्य वां देवौ मर्त्तश्चिकेतति ।
विषूचो अश्वान् युयुजान ईयत एकः समान आ रथे ॥ ५ ॥ २५ ॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको (कः) कौन (अस्य) इस जगत् के बीच वर्त्तमान (मर्त्तः) मनुष्य (विषूचः) व्याप्त (अश्वान्) शीघ्रगामी बिजुली आदि पदार्थों को (समाने) समान (रथे) विमान आदि यान मे (युयुजानः) युक्त करता हुआ (एकः) एक विद्वान् (देवौ) दिव्यगुणकर्मस्वभावयुक्त (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली को (चिकेतति) जानता है वह (वाम्) तुम दोनो को (आ, ईयते) प्राप्त होता है ॥५॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! कौन यहां पदार्थविद्या का जाननेवाला, विमान आदि यानो का निर्माण करनेवाला शीघ्रगामी हो, इसका उत्तर पीछे दिया यह तुम सुनो ॥५॥

बिजुली का जानने वाला क्या कर सकता है इस विषय को कहते हैं—

इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः ।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत् ॥६॥

पदार्थ—जो (जिह्वया) वाणी से (वावदत्) निरन्तर कहता है और जो (इयम्) यह (अपात्) पैररहित (पूर्वा) पूर्ण वा अग्रस्थ (पद्वतीभ्यः) पैरों से की हुई गतियो से (शिरः) शिर के तुल्य मुख्य वचन को (हित्वी) त्याग कर बिजुली (आ, अगात्) प्राप्त होती है तथा (त्रिंशत्) आकाश और प्रकाश को छोड कर सब भूमि आदि पदार्थ रूपी (पदा) स्थानों को (नि, अक्रमीत्) क्रम क्रम से पहुँचती और शीघ्र (चरत्) चलती है इसमे (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली को जानता है वही मनुष्य बिजुली की विद्या को जाननेवाला होता है ॥६॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! आप यदि बिजुली की विद्या को अच्छे प्रकार ग्रहण करो तो सब यानो से शीघ्र जाने को तथा और काम सिद्ध कर सकते हो ॥६॥

कौन विजयी होते हैं इस विषय को कहते हैं—

इन्द्राग्नी आ हि तन्वते नरो धन्वानि बाह्वोः ।
मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्क्तं गविष्टिषु ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (नरः) नायक मनुष्य (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली को (आ, तन्वते) विस्तारते हैं और (बाह्वोः) भुजाओं में (हि) ही (धन्वानि) धनुषो को धारण कर (अस्मिन्) इस (महाधने) संग्राम में हम सब को विस्तारते हैं और (गविष्टिषु) किरणों की जिनमे मिलावट है उन क्रियाओं में प्रवीण होते हुए जैसे वायु और बिजुली (नः) हम लोगों को (मा, परा, वर्क्तम्) मत छोड़ें वैसा करते हैं उनको हम लोग मिलें ॥७॥

भावार्थ—जो राजा प्रजाजन बिजुली आदि से आग्नेयादि अस्त्रों को बनाय संग्राम के जीतनेवाले होते हैं वे इस संसार मे राज्यैश्वर्य्य से सुख बढा सकते हैं ॥७॥

फिर विद्वान् जन किस किस से बिजुली का संग्रह करें इस विषय को कहते हैं—

इन्द्राग्नी तपन्ति माघा अर्यो अरातयः ।
अप द्वेषांस्या कृतं युयुतं सूर्यादधि ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे सभा सेनाधीशो जो (अरातयः) शत्रुजन (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली को (तपन्ति) तपाते हैं उनके (द्वेषांसि) द्वेषयुक्त कामों को (अप, कृतम्) नष्ट करो और (सूर्य्यात्) सवितृमण्डल से (अधि) ऊपर जानेवाली बिजुली को (आ, युयुतम्) अलग करो । हे राजन् (अर्यः) स्वामी आप इन शिल्पीजनों को (मा, अघाः) मत मारो ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे राजसहित राजप्रजा जनो! जो आप लोग सूर्यादिकों से बिजुली ग्रहण करना जानो तो शत्रुजनो को जीतकर द्वेषीजनों के दूर करने को समर्थ होओ ॥ ८ ॥

कौन उत्तम धन को प्राप्त होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इन्द्राग्नी युवोरपि वसु दिव्यानि पार्थिवा ।
आ न इह प्र यच्छतं रयिं विश्वायुपोषसम् ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली के समान सभा सेनाधीशो तुम यदि (इह) यहां (नः) हमारी (विश्वायुपोषसम्) समस्त आयु के पुष्ट करने वाले (रयिम्) धन को (प्र, आ, यच्छतम्) अच्छे प्रकार देओ तो (युवोः) तुम्हारे (अपि) भी (दिव्यानि) अतीव उत्तम (पार्थिवा) पृथिवी मे उत्पन्न हुए (वसु) धन आधीन हों ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सभा सेनापति बिजुली की विद्या को जानकर तुम्हारे लिये देते हैं वे पूर्ण आयु करनेवाले धर्म से प्राप्त समग्र ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

मनुष्य क्या करके बिजुली की विद्या जानें इस विषय को कहते हैं—

इन्द्राग्नी उक्थवाहसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ।
विश्वाभिर्गीर्भिरा गतमस्य सोमस्य पीतये ॥ १० ॥ २६ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली के समान पदार्थों को जानते हुए (उक्थवाहसा) प्रशंसित विद्या की प्राप्ति कराने और (हवनश्रुता) हवनों को सुनने वाला ! (स्तोमेभिः) प्रशंसाओ से और (विश्वाभिः) समस्त (गीर्भिः) विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त वाणियों के साथ (अस्य) इस (सोमस्य) महौषधियों के रस के (पीतये) पीने को (आ, गतम्) आओ ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वे ही बिजुली की विद्या को जाननेयोग्य होते हैं जो विद्वानों से विद्या पाने को प्रयत्न करते हैं ॥ १० ॥

इस सूक्त मे इन्द्र और अग्नि के गुणो का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह उनसठवां सूक्त और छब्बीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चदशर्चस्य षष्टितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । १, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४, ६, ७ विराड्गायत्री । ५, ९, ११ निचृद्गायत्री । ८, १०, १२ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । १३ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । १४ निचृदनुष्टुप् । १५ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचावाले साठवें सूक्त का प्रारम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में कौन ऐश्वर्य को पाता है इस विषय को कहते हैं—

श्नथद्वृत्रमुत सनोति वाजमिन्द्रा यो अग्नी सहुरी सपर्यात् ।
इरज्यन्ता वसव्यस्य भूरेः सहस्तमा सहसा वाजयन्ता ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो विद्वान् (सहुरी) सहनशील (इरज्यन्ता) ऐश्वर्य को सिद्ध करते हुए वा (सहस्तमा) अतीव सहन करनेवाले (सहसा) बल से (वाजयन्ता) अन्नादिकों की इच्छा करते हुए (इन्द्रा, अग्नी) पवन और बिजुली को (श्नथत्) ताड़ता है (उत) और (सनोति) प्राप्त होता है तथा (वसव्यस्य) नादि पदार्थों में हुए (भूरेः) बहुत सुख से (वृत्रम्) धन को प्राप्त होता है और (वाजम्) अन्न को (सपर्यात्) सेवे वही ऐश्वर्य को पावे ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो आप वायु और बिजुली की विद्या को जानो तो महान् ऐश्वर्यवाले होकर महान् राज्य के स्वामी होओ ॥ १ ॥

मनुष्य क्या करके सुख पाते हैं इस विषय को कहते हैं—

ता योधिष्टमभि गा इन्द्र नूनमपः स्वरुषसो अग्न ऊळ्हाः ।
दिशः स्वरुषस इन्द्र चित्रा अपो गा अग्ने युवसे नियुत्वान् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त (अग्ने) विद्वान् वा आप (स्वः) आदित्य (उषसः) प्रभातवेलाओं को जैसे वैसे (गाः) पृथिवी और (नूनम्) निश्चय से (अपः) कर्म को (युवसे) संयुक्त करते हो और जिनसे (दिशः) दिशायें (ऊळ्हाः) प्राप्त हुई (ता) उनको जानकर तुम दोनों (अभि, योधिष्टम्) सब ओर से युद्ध करो । हे (इन्द्र) दुःखविदारक (दुःख के नाश करनेवाले) वा (अग्ने) विद्वान् जन (नियुत्वान्) ईश्वर के समान न्यायाधीश आप (स्वः) आदित्य (उषसः) प्रभातवेलाओं के समान (चित्राः) चित्रविचित्र (अपः) उदक (गाः) और वाणियों को संयुक्त करते हो इससे ईश्वर के समान न्यायकर्त्ता हो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य वायु और बिजुली के तुल्य पराक्रमी होकर युद्ध का आचरण करें वे उषाकाल को जैसे सूर्य उसी के समान प्रजाओं को न्याय से प्रकाश को प्राप्त कराय कर और सर्व दिशाओं में कीर्तिवाले हो अद्भुत वाणी, बलों और भूमि के राज्य को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

फिर राजा जन कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मैरिन्द्र यातं नमोभिरग्ने अर्वाक् ।
युवं राधोभिरकवेभिरिन्द्राग्ने अस्मे भवतमुत्तमेभिः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) बिजुली के समान राजजन वा (अग्ने) अग्नि के समान सभ्यजन वायु और बिजुली के समान वर्त्तमान दोनों पुरुषो ! जैसे (वृत्रहणा) मेघ को हननेवाले बिजुली के दो भाग (वृत्रहभिः) उन कर्म्मों से जिनसे मेघ को मारते वा (शुष्मैः) बलों से वा (नमोभिः) अन्नादि पदार्थों से (अर्वाक्) पीछे आते हैं वैसे (युवम्) तुम दोनों (अकवेभिः) असंख्य (राधोभिः) धनों से हम लोगों को (आ, यातम्) प्राप्त होओ । हे (इन्द्र) दुष्टविदारक वा (अग्ने) पापियों को संतप्त करनेवाले (उत्तमेभिः) श्रेष्ठ कर्मों से (अस्मे) हम लोगों के लिये सुख करने वाले (भवतम्) होओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा और राजमन्त्री वायु और बिजुली के समान उपकारी हों वे असंख्य धन को प्राप्त हों ॥ ३ ॥

मनुष्यों को चाहिये कि वायु और बिजुली को यथावत् जानें इस विषय को कहते हैं—

ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् । इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥ ४ ॥

पदार्थ—(ययोः) जिनका (इदम्) यह (विश्वम्) समस्त जगत् वा (पप्ने) जिनसे प्रवृत्त हुए व्यवहार में (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली (पुरा) पहिले (कृतम्) किये हुए इस विश्व को (न) नहीं (मर्धतः) नष्ट करते हैं (ता) उनको मैं (हुवे) ग्रहण करता हूँ ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिन वायु और बिजुली से सब जगत् व्यवहार करता है तथा जो संसार में स्थिर हो किसी को नष्ट नहीं करते हैं और विकार को प्राप्त हुए वे नष्ट करते हैं, मनुष्यों को चाहिये कि उनको जानकर यथावत् उपकार करें ॥४

फिर वायु और बिजुली कैसे हैं इस विषय को कहते हैं—

उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे ।
ता नो मृळात ईदृशे ॥ ५ ॥ २७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो हम लोग (उग्रा) तेजस्वी (विघनिना) विशेष हनने वाले (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली को (हवामहे) ग्रहण करते हैं उनसे (मृधः) संग्रामों को जीतते हैं जो (ईदृशे) ऐसे युद्धप्रचारक व्यवहार में (नः) हम लोगों को (मृळातः) सुखी करते हैं (ता) उन दोनों को तुम भी जानो ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को वायु और बिजुली यथावत् जान और उनका सम्प्रयोग कर संग्रामों को जीत सुख पाना चाहिये ॥ ५ ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को कहते हैं—

हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती । हतो विश्वा अप द्विषः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (आर्या) उत्तम गुणकर्मस्वभावयुक्त (सत्पती) सज्जन पुरुषों के व्यवहारों के पालनेवाले सूर्य्य और बिजुली (वृत्राणि) मेघ के अवयवों को जैसे वैसे (विश्वा) समस्त (द्विषः) शत्रुजनों को (अप, हतः) मारते हैं वा (दासानि) दानों को (हतः) नष्ट करते हैं वा दुःखों को (हतः) दूर करते हैं वे सत्कार करने योग्य हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो श्रेष्ठ गुणकर्मस्वभाव वाले मनुष्य, सत्य धर्मनिष्ठ आप्त सज्जनों के पालने और दुष्टों को हरने वाले हों उनका सदा सत्कार करो ॥६॥

फिर वे दोनों कैसे हैं इस विषय को कहते हैं—

इन्द्राग्नी युवामिमे३ऽभि स्तोमा अनूषत । पिबतं शम्भुवा सुतम् ॥७॥

पदार्थ—हे (शम्भुवा) सुख की भावना करानेवाले (इन्द्राग्नी) सूर्य्य और बिजुली के समान सभासेनाधीशो (युवाम्) आप दोनों जो (इमे) ये (स्तोमाः) प्रशंसायें (अभि, अनूषत) प्रशंसा करती हैं उनसे (सुतम्) सब ओर से उत्पन्न किये हुए दूध आदि रस को (पिबतम्) पिओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे सभासेनाधीशो ! आप लोग पथ्य आचार से सदा ओषधियों के रस को पीके अरोगी होकर प्रशंसित कर्मों को करो ॥ ७ ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को कहते हैं—

या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।
इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (नरा) नायक (इन्द्राग्नी) विद्या और ऐश्वर्य्ययुक्त अध्यापक और उपदेशको ! (वाम्) तुम दोनों की (याः) जो (पुरुस्पृहः) बहुतों की चाहना करते जिनसे वे (नियुतः) निश्चित (सन्ति) हैं (ताभिः) उन इच्छाओं से (दाशुषे) दान देनेवाले के लिये (आ, गतम्) आओ ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परोपकार करने की इच्छा करते हैं वे ही सत्पुरुष होते हैं ॥ ८ ॥

फिर वे क्या करें इस विषय को कहते हैं—

ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥९॥

पदार्थ—हे (नरा) नायक (इन्द्राग्नी) बिजुली और वायु के समान सज्जनो तुम दोनों (ताभिः) उन इच्छाओं से (सोमपीतये) सोमपान के लिये (इदम्) इस (सुतम्) अच्छे प्रकार सत्कार किये हुए (सवनम्) जिससे उत्पन्न करते हैं उसके (उप, आ, गच्छतम्) समीप प्राप्त होओ ॥ ९ ॥

भावार्थ—यजमान जन विद्वानों को बुलाकर सदैव सत्कार करें और सत्कार पाये हुए वे लोग भी यजमानों को धर्मपथ को प्राप्त करावें ॥ ९ ॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को कहते हैं—

तमीळिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् ।
कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥ १० ॥ २८ ॥

पदार्थ—हे विद्वान्जन जैसे सूर्य्य (अर्चिषा) सत्कार से (विश्वा) समस्त (वना) किरणों का (परिष्वजत्) सब ओर से सम्बन्ध करता है तथा (कृष्णा) पदार्थों की खींचों को (कृणोति) करता है वैसे (यः) जो (जिह्वया) जिह्वा से सत्य आचरण का सम्बन्ध करे (तम्) उसकी आप (ईळिष्व) प्रशंसा वा याचना करो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य के प्रकाश से सब पदार्थ यथावत् दीखते हैं वैसे ही विद्या से सब पदार्थ प्रकाशित होते हैं ॥ १० ॥

फिर मनुष्यों को किसके लिये क्या सेवन करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः । द्युम्नाय सुतरा अपः ॥११॥

पदार्थ—(यः) जो (मर्त्यः) मनुष्य (इद्धे) प्रदीप्त व्यवहार में (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य के (द्युम्नाय) यश वा धन के लिये (सुतराः) सुन्दरता से जिन में तैरें उन (अपः) जलों को और (सुम्नम्) सुख को (आविवासति) सब ओर से सेवता है वह भाग्यवान् होता है ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्य जैसे प्रदीप्त अग्नि में सुगन्ध्यादि पदार्थों का हवि होमकर सिद्धकाम होते हैं वैसे जो यश से धर्मकीर्ति के वा स्वर्ग के लिये प्रयत्न करते हैं वे निरन्तर श्रीमान् होते हैं ॥ ११ ॥

फिर मनुष्यों को किससे क्या करने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

ता नो वाजवतीरिष आशून्पिपृतमर्वतः । इन्द्रमग्निं च वोळ्हवे ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जो (नः) हमारे लिये (वाजवतीः) प्रशस्त विज्ञानयुक्त (इषः) अन्नादि पदार्थों और (आशून्) शीघ्रगामी (अर्वतः) घोड़ों को (पिपृतम्) पूर्ण करते हैं (ता) उन (इन्द्रम्) बिजुली रूप अग्नि (अग्निम्, च)

और प्रसिद्ध अग्नि को (वोळ्हवे) विमान आदि यानों को बहाने के लिये सग्रह करो ॥ १२ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम बिजुली आदि पदार्थों से विमान आदि यानो को चलाकर इच्छाओ को पूर्ण करो ॥ १२ ॥

फिर शिल्पीजन उनसे क्या करें इस विषयको कहते हैं—

उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै ।

उभा दाताराविषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे शिल्पविद्या के अध्यापक और उपदेश करनेवालो जैसे (वाम्) तुम्हारे समीप स्थिर होकर (आहुवध्यै) आह्वान करने को (उभा) दोनो (इन्द्राग्नी) सूर्य्य और बिजुली को (राधसः) धन सम्बन्धी (मादयध्यै) आनन्द देने को (उभा) दोनों को (सह) एक साथ (उभा) और दोनो को (इषाम्) अन्नादि पदार्थों के वा (रयीणाम्) धनादि पदार्थों के (दातारौ) देनेवाले तथा (उभा) दोनो को (वाजस्य) विज्ञान वा संग्राम के (सातये) संविभाग के लिये मैं (हुवे) स्वीकार करता हूं वैसे ही (वाम्) तुम दोनो को इस विद्या का बोध कराऊं ॥१३॥

भावार्थ—जो मनुष्य वायु और बिजुली को यथावत् जान के कार्य्यों मे उनका अच्छे प्रकार प्रयोग करते हैं वे श्रीपति होते हैं ॥ १३ ॥

फिर मनुष्यों को किन के साथ मित्रता करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं—

आ नो गव्येभिरश्व्यैर्वसव्यै३रुप गच्छतम् ।

सखायौ देवौ सख्याय शंभुवेन्द्राग्नी ता हवामहे ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको (इन्द्राग्नी) सूर्य और बिजुली के समान वर्त्तमान वा शम्भुवा सुख की भावना करानेवाले (देवौ) विद्वान् (सखायौ) मित्र (न) हम लोगो को (सख्याय) मित्रता के लिये (गव्येभि) गौ घृत आदि पदार्थ (अश्व्यैः) अश्वादिको में हुए गुणों और (वसव्यैः) धनादिकों में हुए सुखों के साथ वर्त्तमान तुम दोनो को हम लोग (हवामहे) बुलाते हैं (ता) वे तुम दोनो हम लोगों के (उप, आ, गच्छतम्) समीप आओ ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य विद्वानो के मित्र होकर पदार्थविद्या सिद्ध करने की इच्छा करते हैं वे अवश्य विज्ञान को प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥

फिर वे दोनों क्या करें इस विषय को कहते हैं—

इन्द्राग्नी शृणुतं हवं यजमानस्य सुन्वतः ।

वीतं हव्यान्या गतं पिबतं सोम्यं मधु ॥ १५ ॥ २९ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली के समान वर्त्तमान अध्यापक और उपदेशको तुम दोनो (सुन्वत) पदार्थविद्या से बहुत पदार्थों को उत्पन्न करते हुए (यजमानस्य) शुभ गुण देनेवाले मेरे (हवम्) पढ़े विषय को (शृणुतम्) सुनो और (हव्यानि) उत्तम पदार्थों को (वीतम्) प्राप्त होओ वा व्याप्त होओ उनके समीप (आ, गतम्) आओ और (सोम्यम्) शान्ति शीतलता के जो योग्य है उस (मधु) मधुरादि युक्त रस को (पिबतम्) पिओ ॥ १५ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यो को चाहिये कि आमन्त्रण से विद्वानों को बुलाकर इनका सत्कार कर इनसे अपनी विद्या की परीक्षा कराय अधिक विद्या ग्रहण करें ॥१५॥

इस सूक्त मे इन्द्र और अग्नि के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह साठवां सूक्त और उनतीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ चतुर्दशर्चस्यैकषष्टितमस्य सूक्तस्य बार्हस्पत्य ऋषि । सरस्वती देवता । १, १३ निचृज्जगती । २ जगती । ३ विराड्जगती छन्द. । निषाद. स्वर । ४, ६, ११, १२ निचृद्गायत्री । ५, ६, १० विराड् गायत्री । ७, ८ गायत्री छन्द । षड्ज स्वर । १४ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चम स्वर ॥

अब चौदह ऋचावाले एकसठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में यह वाणी क्या देती है इस विषय को कहते हैं—

इयमददाद्रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे ।

या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति ॥१॥

पदार्थ—हे (सरस्वति) विदुषी (या) जो (इयम्) यह (वध्र्यश्वाय) बढ़ानेवाले घोडो से युक्त (दाशुषे) दानशील के लिये (रभसम्) वेग (ऋणच्युतम्) ऋण से छूटे (दिवोदासम्) विद्या प्रकाश के देनेवाले को (अददात्) देती है तथा (शश्वन्तम्) अनादि वेदविद्याविषय जो कि (अवसम्) रक्षक तथा (पणिम्) प्रशसनीय है उसको (आचखाद) स्थिर करती है वह (ते) आपके (तविषा) बल से (ता) उन (दात्राणि) दानो को देती है यह जानो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो स्त्री विद्या शिक्षायुक्त वाणी को ग्रहण करती है वह अनादिभूत वेदविद्या को जानने योग्य होती है वह जिसके साथ विवाह करे उसका महोभाग्य होता है यह जानने योग्य है ॥ १ ॥

फिर वह क्या करती है इस विषयको अगले मन्त्र में कहते हैं—

इयं शुष्मेभिर्बिसखाइवारुजत्सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः ।

पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो (इयम्) यह (शुष्मेभि) बलो से (बिसखाइव) कमल के तन्तु को खोदने वाले के समान (तविषेभिः) बलों और (ऊर्मिभिः) तरङ्गो से (गिरीणाम्) मेघों के (सानु) शिखर को (अरुजत्) भङ्ग करती है उस (पारावतघ्नीम्) आरपार को नष्ट करनेवाली (सरस्वतीम्) वेगवती नदी को (धीतिभिः) धारण और (सुवृक्तिभि.) छिन्नभिन्न करनेवाली क्रियाओं से (अवसे) रक्षा के लिये जैसे हम लोग (आ, विवासेम) सेवें वैसे तुम भी इसको सदा सेवो ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । जैसे कमलनाल तन्तुओं को खोदने वाला कमलनाल तन्तुओ को प्राप्त होता है वैसे ही पुरुषार्थी मनुष्य उत्तम विद्या को प्राप्त होते हैं और जैसे बिजुली मेघ के अगो को छिन्न भिन्न करती है वैसे ही सुन्दर शिक्षित वाणी अविद्या के अगों और संशयों को नाश करती है ॥ २ ॥

सरस्वति देवनिदो नि बर्हय प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः ।

उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (वाजिनीवति) विज्ञान, क्रिया और (सरस्वति) विद्यायुक्त स्त्री तू (देवनिद) जो विद्वानो की निन्दा करते हैं उनको (नि, बर्हय) निकाल (उत) और (विश्वस्य) समग्र (बृसयस्य) अविद्या छेदन करनेवाले (मायिनः) प्रशसित बुद्धियुक्त विद्वान् की (प्रजाम्) प्रजा को (अविन्दः) प्राप्त हो तथा (क्षितिभ्य.) पृथिवियो से (अवनी) रक्षा करनेवाली भूमियो को प्राप्त हो और (एभ्यः) इन भूमि के भीतरी देशों से (विषम्) जल को (अस्रवः) चुआओ निकालो ॥३॥

भावार्थ—वही पडिता स्त्री श्रेष्ठ है जो विद्वान् और विद्या के निन्दकों को निकाल विद्या के प्रशसको (बडाई करनेवालो) का सत्कार करती और जो भूगर्भादि विद्या जानने वाली समस्त प्रजा को विद्याऽभिमुख करती है ॥ ३ ॥

फिर वह कैसी रक्षा करने वाली है इस विषय को कहते हैं—

प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । धीनामवित्र्यवतु ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे सन्तानो जो (देवी) विदुषी (वाजेभिः) अन्नादिको के साथ (वाजिनीवती) प्रशस्तविज्ञान वा क्रिया से युक्त वा (सरस्वती) विज्ञानयुक्त वाणी से युक्त (न) हमारी (धीनाम्) बुद्धियों की (अवित्री) रक्षा करनेवाली (प्र,-अवतु) अच्छे प्रकार रक्षा करे उसको तुम स्वीकार करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—माताजनों को चाहिये कि अपने सन्तानों को बाल्यावस्था मे अच्छी शिक्षा देकर विद्या से विद्वान् कर उनके साथ अतुल सुख भोगें ॥ ४ ॥

फिर वह किसके तुल्य क्या करती है इस विषय को कहते हैं—

यस्त्वा देवि सरस्वत्युपब्रूते धने हिते । इन्द्रं न वृत्रतूर्ये ॥५॥३०॥

पदार्थ—हे (देवि) विदुषी (सरस्वति) विज्ञानयुक्ता भार्या (यः) जो (त्वा) तुझे (वृत्रतूर्ये) मेघ के हिंसन मे (इन्द्रम्) बिजुली के (न) समान (हिते) सुख करनेवाले (धने) द्रव्य के निमित्त (उपब्रूते) कहता है उस विद्वान् पति की तू सेवा कर ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है । हे पुरुषो ! जैसे पतिव्रता विदुषी स्त्रिया तुम लोगो को सत्य ग्रहण कराकर प्रिय वचन कहती हैं वैसे इनके साथ तुम भी हित करो ॥ ५ ॥

फिर वह क्या करती है इस विषय को कहते हैं—

त्वं देवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनि । रदा पूषेव नः सनिम् ॥६॥

पदार्थ—हे (देवि) कामना करनेवाली (वाजिनि) प्रशस्तविज्ञानयुक्त (सरस्वति) विदुषी स्त्री (त्वम्) तू (न) हमारी (सनिम्) सत्य और असत्य के विभाग करनेवाली बुद्धि को (वाजेषु) प्राप्तव्य पदार्थों मे (पूषेव) भूमि के समान (अव) पालो और (रदा) विशेषता से लिखो ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे वरानने सुन्दर मुखवाली ! तुम पृथिवी के समान सबका धारण करो और प्रज्ञा देओ ॥ ६ ॥

फिर वह कैसी है इस विषय को कहते हैं—

उत स्या नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्त्तनिः । वृत्रघ्नी वष्टि सुष्टुतिम् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (हिरण्यवर्त्तनि.) जिसमें विद्याव्यवहार का वर्त्ताव है वह (घोरा) दुष्टों को दुःख देनेवाली (वृत्रघ्नी) मेघ की हनने वाली बिजुली के समान (सरस्वती) विज्ञान भरी हुई वाणी (नः) हम लोगों को सुखी करती (स्या) वह (उत) भी हमारी (सुष्टुतिम्) सुन्दर प्रशंसा की (वष्टि) कामना करती है ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो बिजुली की चमक दमक के समान सुन्दर शोभा वाली विदुषी स्त्री घर के कार्यों की प्रकाश करनेवाली तथा सन्तानों की शिक्षा की कामना करती है वही यहां सौभाग्यवती होती है ॥ ७ ॥

फिर वह वाणी कैसी है इस विषय को कहते हैं—

यस्या अनन्तो अह्रुतस्त्वेषश्चरिष्णुरर्णवः । अमश्चरति रोरुवत् ॥८॥

पदार्थ— हे मनुष्यो (अस्याः) जिस वाणी का (अह्रुतः) अकुटिल सरल (त्वेषः) प्रकाश वा (चरिष्णुः) जाने वाले (अमन्तः) निःसीम (अर्णवः) समुद्र के तुल्य आकाश (रोरुवत्) निरंतर शब्द करता वा (अमः) फैलनेवाला (चरति) प्राप्त होता है उसको तुम जानो ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जितना आकाश है उतना ही शब्द अनन्त है जैसे समुद्र में जल पूरा है वैसे आकाश में शब्द है यह जानो ॥ ८ ॥

फिर वह कैसी है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

सा नो विश्वा अति द्विषः स्वसॄरन्या ऋतावरी ।

अतन्नहेव सूर्यः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (सा) वह (ऋतावरी) उषा, प्रभातवेला (नः) हमारे (विश्वाः) समस्त (द्विषः) द्वेषी जनों को (अति) अतिक्रमण (अतन्) कराती है और (सूर्यः) सूर्य (अहेव) दिनों को जैसे (अतन्) व्याप्त होता वैसे (अन्याः) और (स्वसॄः) भगिनियों के समान वर्त्तमान गत विगत प्रभातवेलाओं का संयोग करती है ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो वाणी अच्छे प्रकार प्रयोग की हुई सुख और अन्यथा कही हुई दुःख प्रदान करती है । जो सत्यवादी हैं वे ही मिथ्या कहना नहीं चाहते जैसे सूर्य समस्त मूर्तिमान् द्रव्यों को प्रकाशित करता है वैसे ही यह वाणी सब व्यवहारों को प्रकाशित करती है ॥ ९ ॥

उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा ।

सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥ १० ॥ ३१ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (नः) हमारी (सरस्वती) वह सरस्वती जिसको बहुत अन्तरिक्ष का सम्बन्ध है तथा (प्रियासु) सुख देनेवाली क्रिया वा स्त्रियों में (प्रिया) मनोहर (सप्तस्वसा) जिसके सात अर्थात् पांच प्राण मन और बुद्धि बहिन के समान वर्त्तमान तथा (सुजुष्टा) अच्छे प्रकार सेवित की हुई (उत) और (स्तोम्या) स्तुति करने योग्य (भूत्) हो वैसे तुम्हारी भी हो ॥ १० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सब ओर से शुद्धि करनेवाली सत्य वाणी को जानते हैं वे ही प्रशंसा करने योग्य होते हैं ॥ १० ॥

फिर वह कैसी है और क्या करती है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

आपप्रुषी पार्थिवान्युरु रजो अन्तरिक्षम् । सरस्वती निदस्पातु ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (पार्थिवानि) अन्तरिक्ष में प्रसिद्ध हुए वा विदित हुए (उरु) बहुत (रजः) परमाणु आदि पदार्थों को तथा (अन्तरिक्षम्) आकाश को (आपप्रुषी) सब ओर से व्याप्त (सरस्वती) विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त वाणी हम लोगों को (निदः) निन्दकों से (पातु) बचावे ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो वाणी सर्वत्र आकाश में व्याप्त है उसको जान के इससे किसी की भी निन्दा अर्थात् गुणों में दोषारोपण और दोषों में गुणारोपण कभी न करो ॥ ११ ॥

त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती । वाजेवाजे हव्या भूत् ॥१२॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (त्रिषधस्था) तीन समान स्थानों में स्थित (सप्तधातुः) सात प्राण आदि जिसकी धारणा करनेवाले (पञ्च) पांच प्राणों से (जाता) प्रसिद्ध (वाजेवाजे) प्रत्येक व्यवहार वा प्रत्येक संग्राम में (हव्या) उच्चारण करने योग्य (वर्धयन्ती) वृद्धि को प्राप्त कराती (भूत्) हो उसका युक्ति के साथ अच्छे प्रकार प्रयोग करो ॥ १२ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन वाणी के योग को जानते हैं तो क्या क्या बढ़ा नहीं सकते हैं ॥ १२ ॥

प्र या महिम्ना महिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा ।

रथइव बृहती विभ्वने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (या) जो (महिम्ना) बड़प्पन से (महिना) बड़ी (अपसाम्) कर्म करनेवालों में (अपस्तमा) अतीव कर्म करनेवाली और (रथइव) रमणीय आकाश के समान (बृहती) बढ़ती हुई (विभ्वने) विभुत्व के लिये (चिकितुषा) समझानेवाली (उपस्तुत्या) जिससे कि समीप स्तुति करता उससे (कृता) जगदीश्वर ने उत्पन्न की हुई (सरस्वती) जिसमें विज्ञान वर्त्तमान वह वाणी (द्युम्नेभिः) प्रकाश जो यशरूप हैं उनसे (अन्याः) प्रत्येक प्राणी के प्रति भिन्न २ है अर्थात् नाना प्रकार वाणी है (आसु) उनमें जो (प्र, चेकिते) विज्ञान कराती उसको यथावत् जानके सत्य वाणी का अच्छे प्रकार प्रयोग करो ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! विद्या, सुशिक्षा, सत्संग, सत्यभाषण और योगाभ्यासादिकों से निष्पन्न हुई वाणी यह व्याप्त वा समर्थ है उसको तुम जानो ॥१३॥

सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरीः पयसा मा न आ धक् ।

जुषस्व नः सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥ १४ ॥

३२ ॥ ८ ॥ ४ ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (सरस्वति) बहुत विद्या से युक्त विदुषी स्त्री जो तू (नः) हमारे (वस्यः) अतीव ओढ़ने योग्य वस्त्र आदि को (अभि, नेषि) सन्मुख लाती है सो तू सुशिक्षित वाणी से हीन हम लोगों को (मा) मत (अप, स्फरीः) अवृद्ध करे किन्तु वृद्धियुक्त करे और (पयसा) विशेष रस से अलग कर (नः) हम लोगों को (मा, आ, धक्) मत दाह दे और (वेश्या) समीप प्रवेश करने योग्य (सख्या) मित्रपन से (च) भी (नः) हम लोगों को (जुषस्व) सेवे तथा (त्वत्) तेरे (अरणानि) अरमणीय (क्षेत्राणि) निवासियों को हम लोग (मा, गन्म) मत प्राप्त हों इससे तू सत्कार करने योग्य है ॥ १४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो विदुषी स्त्रियाँ—जैसे विद्या और उत्तम शिक्षा से युक्त वाणी सर्वत्र अच्छे प्रकार रक्षाकर सर्वथा वृद्धि देती है वा जो सत्यभाषण आदि से दुःख को नहीं प्राप्त कराती उसके तुल्य वर्त्तमान हैं वे हम लोगों को शोकादिकों से अलग कर मित्रता से अच्छे प्रकार सेवन करतीं और सर्वदैव आनन्दित करती हैं ॥ १४ ॥

इस सूक्त में वाणी के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य परमविद्वान् श्रीमान् विरजानन्द सरस्वती स्वामीजी के शिष्य श्रीमान् दयानन्द सरस्वती स्वामी से विरचित सुप्रमाणयुक्त आर्यभाषा से विभूषित ऋग्वेदभाष्य में चतुर्थ अष्टक में अष्टम अध्याय और बत्तीसवां वर्ग और चतुर्थ अष्टक भी तथा छठे मण्डल में पञ्चम अनुवाक और एकसठवां सूक्त भी समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चमाऽष्टकारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथैकादशर्चस्य द्विषष्टितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अश्विनौ देवते । १, २ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ६, ७, ८, १० निचृत्त्रिष्टुप् । ५, ९, ११ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब बिजुली और अन्तरिक्ष कैसे हैं इस विषय को कहते हैं—

स्तुषे नरा दिवो अस्य प्रसन्ताश्विना हुवे जरमाणो अर्कैः ।

या सद्य उस्रा व्युषि ज्मो अन्तान्युयूषतः पर्युरू वरांसि ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (जरमाणः) स्तुति करता हुआ मैं (अर्कैः) मन्त्रों से (या) जो (व्युषि) विशेष दाह के निमित्त (उस्रा) जिनकी किरणें विद्यमान हैं (प्रसन्ता) विभाग करनेवाले (नरा) नायक (अश्विना) व्यापनशील बिजुली और अन्तरिक्ष (अस्य) इस (दिवः) प्रकाश के तथा (ज्मः) पृथिवी के (अन्तान्) समीपस्थ पदार्थों को (उरू) बहुत (वरांसि) उत्तम वस्तुओं को (सद्यः) शीघ्र (परि, युयूषतः) अच्छे प्रकार अलग २ करते उनकी (स्तुषे) स्तुति करता हूं तथा (हुवे) ग्रहण करता हूं वैसे इनकी स्तुति कर तुम भी ग्रहण करो ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अन्तरिक्ष और विद्युत् सर्वाधिकरण और सब पदार्थों के बीच ठहरे हुए वर्त्तमान हैं उनके बीच बिजुली विभाग करनेवाली और अन्तरिक्ष आधार वर्त्तमान है उनके गुणों को सब जानो ॥ १ ॥

फिर वे दोनों कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ता यज्ञमा शुचिभिश्चक्रमाणा रथस्य भानुं रुरुचू रजोभिः ।

पुरू वरांस्यमिता मिमानापो धन्वान्यति याथो अज्रान् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको ! तुम जो (शुचिभिः) पवित्र गुणों से (यज्ञम्) सर्वसंगत व्यवहार को (आ, चक्रमाणा) आक्रमण करते हुए (रथस्य) रमणीय जगत् के (भानुम्) प्रकाश करनेवाले को (रजोभिः) परमाणु वा लोकों के साथ (पुरु) बहुत (अमिता) अपरिमित (वरांसि) स्वीकार करने योग्य पदार्थों को (मिमाना) निर्माण करनेवाले वा (अपः) जल जो (धन्वानि) अन्तरिक्षस्थ हैं उनको और (अज्रान्) प्रक्षिप्त पदार्थों को (याथः) प्राप्त होते हैं और जिनसे सब (रुरुचुः) रुचते हैं (ता) उनको (अति) अत्यन्त प्राप्त होते हो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! यदि तुम वायु और बिजुली को यथावत् जानो तो अमित आनन्द को प्राप्त होओ ॥ २ ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ता ह त्यद्वर्तिर्यदरध्रमुग्रेत्था धियं ऊहथुः शश्वदश्वैः ।

मनोजवेभिरिषिरैः शयध्यै परि व्यथिर्दाशुषो मर्त्यस्य ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (यत्) जो (उग्रा) तेजस्वी वायु और बिजुली (अश्वैः) महान् वेगादि गुणों से वा (इषिरैः) प्राप्त (मनोजवेभिः) मनोवेग-वालों से (दाशुषः) दानशील (मर्त्यस्य) मनुष्य के (त्यत्) उस (वर्त्तिः) मार्ग को तथा (अरध्रम्) असमृद्ध व्यवहार और (धियः) बुद्धि वा कर्मों को (शश्वत्) निरन्तर (ऊहथुः) चलाते हैं वा (शयध्यै) सोने को (व्यथिः) व्यथा को (ह) निश्चय से (परि) पहुँचाते हैं (ता) उनको (इत्था) इस प्रकार के वर्त्तमान जानकर तुम अच्छे प्रकार प्रयुक्त करो अर्थात् कलायन्त्रों में जोड़ो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जब तुम वायु और बिजुली के गुणों को जानोगे तभी पूर्ण ऐश्वर्य को पाओगे ॥ ३ ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

ता नव्यसो जरमाणस्य मन्मोप भूषतो युयुजानसप्ती ।

शुभं पृक्षमिषमूर्जं वहन्ता होता यक्षत्प्रत्नो अध्रुग्युवाना ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (युयुजानसप्ती) वेग वा आकर्षणयुक्त होनेवाले हैं वे (युवाना) संयुक्त होनेवाले वायु बिजुली (नव्यसः) अतीव नवीन (जरमाणस्य) प्रशंसा करनेवाले के (मन्म) विज्ञान को (उप, भूषतः) पूर्ण करते हैं वा जो (शुभम्) उदक (पृक्षम्) अन्न (इषम्) इच्छा और (ऊर्जम्) पराक्रम को (वहन्ता) पहुँचानेवालों को (अध्रुक्) किसी से न द्रोह करनेवाला (प्रत्नः) जिसने पहिले विद्या पढ़ी वह (होता) ग्रहण करनेवाला पुरुष (यक्षत्) प्राप्त हो (ता) उनको तुम भी प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो वायु और बिजुली विज्ञान के विषय, घोड़े के समान शीघ्र जानेवाले और सब उत्तम २ पदार्थों की प्राप्ति करानेवाले हैं उनसे चाहे हुए कार्य्यों को सिद्ध करो ॥ ४ ॥

ता वल्गू दस्रा पुरुशाकतमा प्रत्ना नव्यसा वचसा विवासे ।

या शंसते स्तुवते शम्भविष्ठा बभूवतुर्गृणते चित्रराती ॥ ५ ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे मैं (या) जो (वल्गू) अत्युत्तम (दस्रा) दुःख को नष्ट करनेवाले (प्रत्ना) प्राचीन (नव्यसा) अत्यन्त नवीन (वचसा) परि-भाषण करने योग्य (पुरुशाकतमा) अतीव सामर्थ्यवाले (चित्रराती) जिनसे अद्भुत दान होता वे (शंसते) प्रशंसा करनेवाले (स्तुवते) वा प्रशंसा पाये हुए वा (गृणते) सत्य उपदेश करनेवाले के लिये (शम्भविष्ठा) अतीव सुख की भावना करानेवाले (बभूवतु) होते हैं (ता) उनकी (आ, विवासे) सेवा करता हूँ वैसे उनकी तुम भी सेवा करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो वायु और बिजुली कारण रूप से सनातन और कार्यरूप से नूतन, बहुत शक्तिमान्, वेगादि गुण-युक्त, कल्याणकारी वर्त्तमान हैं उनको यथावत् जानो ॥ ५ ॥

फिर उनसे क्या सिद्ध होता है इस विषय को कहते हैं—

ता भुज्युं विभिरद्भ्यः समुद्रात्तुग्रस्य सूनुमूहथू रजोभिः ।

अरेणुभिर्योजनेभिर्भुजन्ता पतत्रिभिरर्णसो निरुपस्थात् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो जो बिजुली और वायु (विभिः) पक्षियों के समान (अद्भ्यः) जलों वा (समुद्रात्) सागर वा अन्तरिक्ष वा (अर्णसः) जल के (उपस्थात्) समीप स्थित होनेवाले से (पतत्रिभिः) गमनशीलों के समान (अरेणुभिः) रज जिनमें नहीं उन (योजनेभिः) अनेक योजनों से युक्त (रजोभिः) ऐश्वर्य्यप्रद मार्गों से (तुग्रस्य) बलिष्ठ (सूनुम्) सन्तान के समान वर्त्तमान को (निः, ऊहथुः) निरन्तर पहुँचाते और (भुजन्ता) पालना करनेवाले (भुज्युम्) भोगने योग्य आनन्द की पालना करते हैं (ता) उनको तुम जानो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो बिजुली और वायु विमान आदि यानों को अन्तरिक्ष में पक्षियों के समान चलानेवाले वेग से पहुँचाते हैं उनको समीपस्थ कर अभीष्ट सुखों को प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

फिर उनसे क्या होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वि जयुषा रथ्या यातमद्रिं श्रुतं हवं वृषणा वध्रिमत्याः ।

दशस्यन्ता शयवे पिप्यथुर्गामिति च्यवाना सुमतिं भुरण्यू ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक सज्जनो ! (वध्रिमत्याः) जिसमें बहुत वर्धन विद्यमान उस भूमि वा अन्तरिक्ष के बीच (जयुषा) जयशील (रथ्या) रथ के लिए हितकारी (वृषणा) वर्षा तथा (दशस्यन्ता) बल करानेवाले (अद्रिम्) मेघ को (वि, यातम्) विशेषता से प्राप्त होते हैं और (सुमतिम्) सुन्दर मति को (च्यवाना) शीघ्र जानेवाले (भुरण्यू) पालना वा धारणकर्त्ता (गाम्) वाणी को (इति) इस प्रकार के (शयवे) सोने के लिये (पिप्यथुः) बढ़ाते हैं उनके (हवम्) विद्या विषयक शब्द को तुम (श्रुतम्) सुनो ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो विमान आदि को चलाने वा संग्राम में जय कराने वा प्रज्ञा और बल के देने, वर्षा करनेवाले तथा सोने जागने और वाणी के हेतु हैं उनको जान कार्य्यसिद्धि के लिये अच्छे प्रकार प्रयोग करो ॥ ७ ॥

फिर मनुष्य क्या धारण करें इस विषय को कहते हैं—

यद्रोदसी प्रदिवो अस्ति भूमा हेळो देवानामुत मर्त्यत्रा ।

तदादित्या वसवो रुद्रियासो रक्षोयुजे तपुरघं दधात ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (वसवः) पृथिवी आदि (रुद्रियासः) प्राण वा जीव वा (आदित्याः) काल के अवयवों के समान प्रथम मध्यम और उत्तम विद्वानो ! तुम (यत्) जो (प्रदिवः) उत्तम प्रकाश के वा (देवानाम्) विद्वानों के सम्बन्ध में (उत) और (मर्त्यत्रा) मनुष्यों में (भूमा) व्यापक (हेळः) अनादर (रोदसी) द्यावा पृथिवी को प्राप्त (अस्ति) है और जैसे उक्त प्रकार के विद्वान् जन (तत्) उसको (दधात) धारण करते हैं वैसे (रक्षोयुजे) दुष्टों के युक्त करनेवाले के लिये (तपुः) सताप और (अघम्) अपराध को धारण करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त, सब को धारण करने वा सब का नियम करनेवाला है उसको धारण कर और अच्छे प्रकार ध्यान कर सुखी होओ और जो ऐसा नहीं करता है उस पर कठोर दण्ड धरो ॥ ८ ॥

फिर वह क्या करे इस विषय को कहते हैं—

य ईं राजानावृतुथा विदधद्रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत् ।

गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य द्रोघाय चिद्वचस आनवाय ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (यः) जो (मित्रः) मित्र वा (वरुणः) श्रमादि-गुण युक्त जन (गम्भीराय) गम्भीर (आनवाय) सब ओर से नवीन (वचसे) वचन के लिये (चित्) और (द्रोघाय) द्रोह तथा (रक्षसे) दुष्ट आचरणवाले के लिये (अस्य) इसके ऊपर (हेतिम्) वज्र को (रजसः) और लोकजात के (ऋतुथा) ऋतुओं से (राजानौ) प्रकाशमान सूर्य और चन्द्रमा के तुल्य सभासेना-पति को (विदधत्) विधान करता हुआ (ईम्) सब ओर से (चिकेतत्) जानता है उसको तुम उत्साह देओ ॥ ९ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य्य चन्द्रमा ऋतुओं को बाँट और अन्धकार निवारण कर जगत् को सुखी करते हैं वैसे ही विद्यादि शुभगुणों का प्रचार संसार में अच्छे प्रकार समर्थन, सत्य और असत्य का विभाग और अविद्यान्धकार का निवारण कर विद्वान् जन सब को आनन्दित करते हैं ॥ ९ ॥

फिर सभा सेनापति जगत् के उपकार के लिए क्या करें इस विषय को कहते हैं—

अन्तरैश्चक्रैस्तनयाय वर्तिर्द्युमता यातं नृवता रथेन ।

सनुत्येन त्यजसा मर्त्यस्य वनुष्यतामपि शीर्षा ववृक्तम् ॥ १० ॥

पदार्थ—जो राजा लोग (अन्तरैः) भिन्न २ (चक्रैः) लोकों के घूमने के लिये परिधियों से वर्त्तमान (द्युमता) प्रकाशमान (नृवता) जिसमें उत्तम नर विद्यमान उस (रथेन) रमणीय विमानादि यान वा (सनुत्येन) प्रेरणा करने योग्य के साथ वर्त्तमान (त्यजसा) त्याग के साथ (मर्त्यस्य) मनुष्य के (तनयाय) पुत्र के लिये (वर्तिः) मार्ग को (आ, यातम्) प्राप्त होवें और मार्ग का विधान कर (वनुष्यताम्) क्रोध करने वा बाधावालों के (शीर्षा) शिरों को (अपि) भी (ववृक्तम्) छिन्न भिन्न करें उनका सबको सत्कार करना चाहिये ॥ १० ॥

भावार्थ—यदि सभासेनापति मनुष्य सन्तानों का ब्रह्मचर्य्य और विद्याभ्यास आदि का प्रबन्ध करें तो सब विद्वान् होकर अनेक उत्तम कार्य करते और दुष्टों तथा शत्रुओं के निवारने को समर्थ हों ॥ १० ॥

फिर वे क्या करें इस विषय को कहते हैं—

आ परमाभिरुत मध्यमाभिर्नियुद्भिर्यातमवमाभिरर्वाक् ॥

दृळ्हस्य चिद्गोमतो वि व्रजस्य दुरो वर्तं गृणते चित्रराती ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (विश्वराती) अङ्कुत दान वाले सभासेनाधीशो ! तुम (अवमाभिः)निकृष्ट (मध्यमाभिः) मध्यम (उत) और (परमाभिः) उत्तम (नियुद्भिः) वायु की गतियों से (आ, यातम्) आओ तथा (अर्वाक्) पीछे (शुष्कस्य) अति पुष्टके (चित्) भी (गोमतः) बहुत गौएँ वा किरणें जिसमें विद्यमान उस (व्रजस्य) मेघ के (दुरः) द्वारों को (गृणते) स्तुति करने वाले के लिये (वि, वर्त्तम्) विशेषता से वर्त्ताओ ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे राज प्रजाजनो ! जैसे सब भूगोल वायु की गतियों के साथ जाते आते हैं और जैसे शिल्पीजन विमान से मेघमण्डल पर जाते हैं वैसे ही तुम भी प्रयाण करो ॥ ११ ॥

इस सूक्त में अश्वियों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह बासठवां सूक्त और दूसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

क्वेत्येकादशर्चस्य त्रिषष्टितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अश्विनौ देवते । १ स्वराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । २,४, ६, ७ पङ्क्तिः । ३, १० भुरिक्पङ्क्तिः । ८ स्वराट् पङ्क्तिः । ११ आसुरीपङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ५,९, निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ एकादश ऋचावाले तिरसठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में सभासेनापति किसको प्राप्त होते हैं इस विषय को कहते हैं—

क्व१ त्या वल्गू पुरुहूताद्य दूतो न स्तोमोऽविदन्नमस्वान् ।
आ यो अर्वाङ् नासत्या ववर्त प्रेष्ठा ह्यसथो अस्य मन्मन् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (वल्गू) शोभन वाणी वाले (पुरुहूता) बहुतों से प्रशंसा को प्राप्त (प्रेष्ठा) अतीव प्रिय (नासत्या) सत्यस्वभावयुक्त सभासेनाधीशो (यः) जो (अर्वाङ्) नीचे आनेवाला (अद्य) आज (नमस्वान्) बहुत अन्नयुक्त वा सत्कृत (स्तोमः) स्तुति करने योग्य (दूतः) समाचार पहुँचानेवाले के (न) समान जन (अविदत्) प्राप्त होता वा (क्व) कहां (अस्य) इसके (मन्मन्) विज्ञान में जो (आ, ववर्त्त) अच्छे प्रकार वर्त्तमान है (त्या, हि) वे ही तुम दोनों (असथः) होते हो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो इस जगत् के विज्ञान के निमित्त प्रयत्न करते हैं वे कहीं भी दुःखित नहीं होते हैं ॥१॥

फिर वे क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अरं मे गन्तं हवनायास्मै गृणाना यथा पिबाथो अन्धः ।
परि ह त्यद्वर्तिर्याथो रिषो न यत्परो नान्तरस्तुतुर्यात् ॥२॥

पदार्थ—हे सभासेनाधीशो तुम (त्यत्) उस (वर्त्तिः) मार्ग को (परि, याथः) सब ओर से जाते हो (यत्, ह) जिसमें (परः) शत्रुजन (अन्तरः) भिन्न (रिषः) हिंसकों के (न) समान किसी को (न) न (तुतुर्यात्) मारे (यथा) जैसे (मे) मेरे (अस्मै) इस (हवनाय) ग्रहण के लिये (अरम्) पूर्णतया (गन्तम्) जाओ वैसे (गृणाना) स्तुति करनेवाले होते हुए (अन्धः) रस को (पिबाथः) पिओ ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । राजजनों से वैसा प्रबन्ध किया जाय जैसे मार्गों में कोई भी चोर और शत्रु किसी को पीड़ा न दे ॥२॥

अकारि वामन्धसो वरीमन्नस्तारि बर्हिः सुप्रायणतमम् ।
उत्तानहस्तो युवयुर्ववन्दा वां नक्षन्तो अद्रय आञ्जन् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे सभासेनाधीशो जो (युवयुः) तुम दोनों की इच्छा करनेवाला (उत्तानहस्तः) ऊपर को हाथ उठाये हुए (वरीमन्) अतीव उत्तम व्यवहार में (वाम्) तुम दोनों से (अन्धसः) अन्न आदि के सम्बन्ध में (सुप्रायणतमम्) उत्तमता से जाते हैं जिसमें वह (बर्हिः) अन्तरिक्ष (अकारि) प्रसिद्ध किया जाता वा दुःख से (अस्तारि) तारा जाता उसको जानके (ववन्द) वन्दना करता है, जो विद्यादि शुभगुणों में (नक्षन्तः) प्राप्त होते हुए (अद्रयः) मेघों के समान (वाम्) तुम दोनों की (आ, आञ्जन्) अच्छे प्रकार कामना करते हैं उनकी तुम दोनों कामना करो ॥३॥

भावार्थ—जो होम से वायु आदि पदार्थों को शुद्धकर विमान आदि यानों से अन्तरिक्ष में जाते तथा सुख और उत्तम गुणों को व्याप्त होते हुए मेघ के समान सबके सुख और उन्नतियों को चाहते हैं वे उत्तम सुख पाते हैं ॥३॥

ऊर्ध्वो वामग्निरध्वरेष्वस्थात्प्र रातिरेति जूर्णिनी घृताची ।
प्र होता गूर्तमना उराणोऽयुक्त यो नासत्या हवीमन् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (नासत्या) सत्य व्यवहारयुक्त सभासेनाधीशो (वाम्) तुम दोनों का यदि (यः) जो (गूर्तमनाः) उद्यम करने को मन जिसका वह (उराणः) बहुत पदार्थ सिद्ध करनेवाला (होता) दानशीलजन (अध्वरेषु) अहिंसादि धर्मयुक्त व्यवहारों में (ऊर्ध्वः) ऊपर जानेवाला (अग्निः) अग्नि के समान (अस्थात्) स्थिर होता है और (घृताची) रात्रि के समान (जूर्णिनी) वेगवती (रातिः) दानक्रिया (प्र, एति) प्राप्त होती है वा (हवीमन्) होम कर्म में (प्र, अयुक्त) अच्छे प्रकार प्रयुक्त होता उसका सदा सत्कार करो ॥४॥

भावार्थ—हे सभासेनाधीशो ! जो मनुष्य राज व्यवहार में सत्य और उत्साह से प्रवृत्त होते हैं उनका सत्कार आप लोग करें ॥४॥

फिर वे किसके समान कैसे हों इस विषय को कहते हैं—

अधि श्रिये दुहिता सूर्यस्य रथं तस्थौ पुरुभुजा शतोतिम् ।
प्र मायाभिर्मायिना भूतमत्र नरा नृतू जनिमन्यज्ञियानाम् ॥५॥ २॥

पदार्थ—हे (मायिना) प्राज्ञ (पुरुभुजा) बहुतों की पालना करनेवाले (नृतू) अवगन्ता (नरा) नायक राजसभा सेनाधीशो तुम (मायाभिः) बुद्धियों से (अत्र) इस (यज्ञियानाम्) सत्सङ्गति के योग्य मनुष्यों के (जनिमन्) जन्म में जैसे (सूर्यस्य) सूर्य की (दुहिता) पुत्री के समान उषा (शतोतिम्) जिससे सैकड़ों रक्षायें होतीं उस (रथम्) रमणीय किरण के (अधि, तस्थौ) ऊपर स्थित होती वैसे (श्रिये) शोभा वा लक्ष्मी के लिये (प्र, भूतम्) समर्थ होओ ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो उषा के समान यानादि साधनों से राज्यश्री की प्राप्ति के लिये विद्वानों के विद्याजन्म को कराते हैं वे असंख्य रक्षा को प्राप्त होके इस जगत् में अधिष्ठाता होते हैं ॥५॥

फिर राजादि किसके लिए किसको प्राप्त होके कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

युवं श्रीभिर्दर्शताभिराभिः शुभे पुष्टिमूहथुः सूर्यायाः ।
प्र वां वयो वपुषेऽनु पप्तन्नक्षद्वाणी सुष्टुता धिष्ण्या वाम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (धिष्ण्या) दृढ़ प्रगल्भो जो (वाम्) तुम दोनों जैसे (वयः) पक्षी (पप्तन्) गिरते हैं वैसे (शुभे) कल्याणरूपी (वपुषे) सुरूप के लिये (सुष्टुता) उत्तम प्रशंसा को प्राप्त (वाणी) वेदवाणी (अनु, नक्षत्) अनुकूलता से व्याप्त वा प्राप्त हो और जो (युवम्) तुम दोनों (दर्शताभिः) द्रष्टव्य (आभिः) इन (श्रीभिः) राजनीति की शोभाओं से (सूर्यायाः) उषासम्बन्धिनी प्रजा से वाणी की (पुष्टिम्) पुष्टि को (प्र, ऊहथुः) प्राप्त कराते हो वे (वाम्) तुम दोनों निरन्तर पुष्टि करो ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! यदि तुम लोग राज्य करने की और राज्यलक्ष्मी को प्राप्त करने की इच्छा करते हो तो प्रयत्न से और समस्त धन आदि से विद्यायुक्त वाणी को प्राप्त होओ और जैसे पक्षी अपने आश्रय को प्राप्त होते इसी प्रकार तुम धर्मयुक्त नीति को प्राप्त होकर जैसे उषाकाल दिन को वैसे यश को प्रकाशित करो ॥६॥

फिर मनुष्य किससे क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ वां वयोऽश्वासो वहिष्ठा अभि प्रयो नासत्या वहन्तु ।
प्र वां रथो मनोजवा असर्जीषः पृक्ष इषिधो अनु पूर्वीः ॥७॥

पदार्थ—हे (नासत्या) सत्य आचरण करनेवाले जो (वाम्) तुम दोनो के (वहिष्ठाः) अतीव यानों के लेजाने वाले (मनोजवाः) मन के समान जिनकी गति है (अश्वासः) शीघ्रगामी अग्नि आदि (वयः) पक्षियों के समान (प्रयः) अन्नादि पदार्थ को (आ, अभि, वहन्तु) सन्मुख पहुँचावें जिससे (पृक्षः) अच्छे प्रकार प्राप्त होने योग्य (इषिधः) इच्छा प्रकाश करनेवाली (पूर्वीः) प्राचीन (इषः) अन्नादि वस्तुओं से से प्रत्येक (अनु, असर्जि) रची जाती वह (रथः) रथ (वाम्) तुम दोनों को (प्र) पहुँचावे ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो आप लोग अग्न्यादि पदार्थों के प्रयोगों को जानो तो विमानादि यानों से पक्षियों के समान अन्तरिक्ष में जा सको, जिससे चाहे हुए पदार्थों को प्राप्त होकर सर्वथा आनन्दित होओ ॥७॥

फिर राजा प्रजाजन कैसे वर्त्ताव कर क्या पावें इस विषय को कहते हैं—

पुरु हि वां पुरुभुजा देष्णं धेनुं न इषं पिन्वतमसक्राम् ।
स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च रसाश्च ये वामनु रातिमग्मन् ॥८॥

पदार्थ—हे (पुरुभुजा) बहुतों की पालना करनेवालो (वाम्) तुम दोनों (नः) हमारे लिये (पुरु, देष्णम्) बहुत देने योग्य पदार्थ (धेनुम्) वाणी और (असक्राम्) सङ्ग को उल्लंघन करनेवाला (इषम्, च) अन्न वा विज्ञान को भी (पिन्वतम्) सुखयुक्त करो अर्थात् पुष्ट करो । जो (हि) निश्चित (स्तुतः) प्रशंसा को प्राप्त है (च) वह भी (वाम्) तुम दोनों की पुष्टि दे (ये) जो (वाम्) तुम दोनों के (माध्वी) माधुर्यादिगुणयुक्त (सुष्टुतिः) श्रेष्ठ प्रशंसा (रसाः, च) और रस हैं उनसे (रातिम्) दान को (अनु, अग्मन्) प्राप्त होते हैं उनसे हमको युक्त कराइये ॥८॥

भावार्थ—जो राजा प्रजाजन परस्पर के उपकार के लिये प्रयत्न करें तो इनको सर्व प्रशंसा और सकल ऐश्वर्य भी प्राप्त होवें ॥८॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

उत म ऋज्रे पुरयस्य रघ्वी सुमीळ्हे शतं पेरुके च पक्वा ।
शाण्डो दाद्धिरणिनः स्मद्दिष्टीन्दश वशासो अभिषाच ऋष्वान् ॥९॥

पदार्थ—जो मनुष्य (अभिषाचः) सम्मुख सम्बन्ध करते वा (वशासः) वश को प्राप्त होते हैं तथा (पुरयस्य) जो पहिले प्राप्त होता उस (मे) मेरे (ऋज्रे) कोमलता से प्रिय (सुमीळ्हे) सुन्दर सेचने योग्य (उत) और (पेरुके) पालन करनेवाले व्यवहार में (रघ्वी) छोटी क्रिया (पक्वा, च) और पके फलों को (शाण्डः) सूक्ष्मता करनेवाला (दात्) देता है उन (हिरणिनः) हिरण वाले (स्मद्दिष्टीन्) प्रशंसित दर्शन वाले (ऋष्वान्) बड़े बड़े (दश) दश घोड़े वा रथों को वा (शतम्) और सैकड़ों को मैं प्राप्त होऊँ ॥९॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो मेरे वशीभूत, प्रीतियुक्त, महान् (बड़े बड़े) सहायक होते हैं उनके आधीन मैं भी होऊं इस प्रकार परस्पर का वशभाव हुए पीछे उत्तम असंख्य कार्य्य कर सकूं ॥९॥

फिर राजा और सेनापति क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

सं वां शता नासत्या सहस्राश्वानां पुरुपन्था गिरे दात् ।
भरद्वाजाय वीर नू गिरे दाद्धता रक्षांसि पुरुदंससा स्युः ॥१०॥

पदार्थ—हे (पुरुदंससा) बहुत उत्तम कर्म्मों वाले (नासत्या) अधर्माचरण रहित जो (वाम्) तुम दोनों का (पुरुपन्था) बहुत प्रकार का मार्ग (अश्वानाम्) घोड़े वा अग्नि आदि पदार्थों की (गिरे) वाणी के लिये (शता) सैकड़ों वा (सहस्रा) हजारों प्रकारों को (सम्, दात्) अच्छे प्रकार देता है जो (भरद्वाजाय) धारण किया विज्ञान जिसने उसके लिये वा (गिरे) राजनीतियुक्त वाणी के लिये सैकड़ों और हजारों प्रकारों को (दात्) देता जिससे (रक्षांसि) राक्षस (हता) नष्ट (स्युः) हों, हे (वीर) वीर उससे आप दुष्टों को (नू) शीघ्र मारो ॥१०॥

भावार्थ—हे राजा और सेनापतियो ! जो धार्मिक न्यायसे राज्य की पालना करने और शत्रुओं से अपनी सेना की रक्षा करने के लिए यत्न करे उसके लिए असंख्य धन और प्रतिष्ठा निरन्तर करो ॥१०॥

आ वां सुम्ने वरिमन्त्सूरिभिः ष्याम् ॥ ११ ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे राजा और सेनापतियो ! जिस प्रकार मैं (सूरिभिः) अत्यन्त बुद्धिमान् विद्वानों के साथ (वरिमन्) अतीव श्रेष्ठ (सुम्ने) सुख में (आ, स्याम्) सब ओर से होऊं अर्थात् प्रसिद्ध होऊं वैसा (वाम्) आप विधान करो ॥११॥

भावार्थ—राजा और सेनापतियों को सर्वदा धार्मिक विद्वानों का सत्कार करना चाहिये जिससे यह सब के सुख की उन्नति दिलावें ॥११॥

इस सूक्त में अश्वियों का गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह त्रेसठवां सूक्त और चौथा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षड्चस्य चतुःषष्टितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । उषा देवता । १, २, ६ विराट्त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ४ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

अब स्त्रियां कैसी श्रेष्ठ होती हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

उदु श्रिय उषसो रोचमाना अस्थुरपां नोर्मयो रुशन्तः ।
कृणोति विश्वा सुपथा सुगान्यभूदु वस्वी दक्षिणा मघोनी ॥१॥

पदार्थ—हे पुरुषो जो स्त्रियां (रोचमानाः) दीप्तिमती (उषसः) प्रभात वेलाओं के समान वा (अपाम्) जलों की (रुशन्तः) हिंसती अर्थात् कूलों को विदारती हुई (ऊर्मयः) तरङ्गों के (न) समान (श्रिये) शोभा के लिए (उत्, अस्थुः) उठती हैं वे (उ) ही सुख देने वाली हैं जो (वस्वी) वसुओं की यह (दक्षिणा) दक्षिणा के समान (मघोनी) परमधनयुक्त (अभूत्) होती है वह उषा के समान (उ) ही (विश्वा) समस्त (सुपथा) शुभ मार्ग वाले (सुगानि) जिनमें सुन्दरता से चलें उन कामों को (कृणोति) करती है ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे पुरुषो ! जैसे प्रभातवेलायें रुचि करनेवाली होती हैं वैसी हुई स्त्रियां श्रेष्ठ हैं वा जैसे जलतरंगें तटों को छिन्नभिन्न करती हैं वैसे ही जो स्त्रियां दुःखों को छिन्नभिन्न करती हैं और जो दिन के तुल्य समस्त गृहकृत्यों को प्रकाशित करती है वे ही सर्वदा मंगलकारिणी होती हैं ॥१॥

फिर वह कैसी हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

भद्रा ददृक्ष उर्विया वि भास्युत्ते शोचिर्भानवो द्यामपप्तन् ।
आविर्वक्षः कृणुषे शुम्भमानोषो देवि रोचमाना महोभिः ॥ २॥

पदार्थ—हे (उषः) प्रभातवेला के समान वर्त्तमान (देवि) विदुषी जिससे तू (भद्रा) कल्याणकारिणी (ददृक्षे) देखी जाती है तथा (उर्विया) बहुरूप हुई घर के कामों का (उत्, वि, भासि) विशेषकर उत्तम प्रकाश करती है जिस (ते) तेरी (शोचिः) उत्तम नीति का प्रकाश (भानवः) किरणें जैसे (द्याम्) अन्तरिक्ष को (अपप्तन्) जाती प्राप्त होती वैसे (वक्षः) छाती का (आविः, कृणुषे) प्रकाश करती है वा (महोभिः) महान् शुभ गुणकर्म स्वभावों से (शुम्भमाना) सुन्दर शोभायुक्त और (रोचमाना) विद्या और विनय से प्रकाशित होती हुई सुख देती है इससे अच्छे प्रकार सत्कार करने योग्य है ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे स्त्रियो ! तुम चतुरता से सब पति आदि को संतोष देकर, घर के कामों को यथावत् अनुष्ठान कर, अतिविषयासक्ति को छोड़ और सुन्दर शोभायुक्त होकर सदैव पुरुषार्थ से धर्मयुक्त कामों को सूर्य के समान प्रकाशित करो ॥२॥

फिर वे कैसी हों इस विषय को कहते हैं—

वहन्ति सीमरुणासो रुशन्तो गावः सुभगामुर्विया प्रथानाम् ।
अपेजते शूरो अस्तेव शत्रून्बाधते तमो अजिरो न वोळ्हा ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे स्त्री तू (अजिरः) जो शीघ्र नहीं जाता उस पुरुष के (न) समान और (वोळ्हा) विवाहित स्त्री (शत्रून्) शत्रुओं को (शूरः) बल वा पराक्रम आदि योग से निर्भय (अस्तेव) शस्त्र और अस्त्रों को अच्छे प्रकार फेंकने वाले के समान (अप, ईजते) दूर करती तथा प्रभातवेला जैसे (तमः) अन्धकार वा रात्रि को (बाधते) नष्टभ्रष्ट करे वा जैसे (अरुणासः) लाल काली पीली धौली आदि (रुशन्तः) पदार्थों को छिन्नभिन्न करती हुई (गावः) किरणें सब पदार्थों को (सीम्) सब ओर से (वहन्ति) पहुँचाती हैं वैसे (उर्विया) बहुत पुरुषार्थयुक्त हो । हे पुरुष ! उषा को जैसे सूर्य वैसे इस (प्रथानाम्) अत्यन्त सुन्दरता से प्रख्यात भार्या को (सुभगाम्) सौभाग्ययुक्त करो ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो प्रभातवेला के समान सुप्रकाश, सुरूपवती, सूर्य किरणों के तुल्य घर के कामों की व्यवस्था का निर्वाह करनेवाली, शूरवीर के समान व्यथा अर्थात् परिश्रम की थकावट न मानने वाली स्त्रियां हों उनका निरन्तर सत्कार कर सौभाग्ययुक्त करो ॥३॥

फिर वह स्त्री कैसी हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सुगोत ते सुपथा पर्वतेष्ववाते अपस्तरसि स्वभानो ।
सा न आ वह पृथुयामन्नृष्वे रयिं दिवो दुहितरिषयध्यै ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (स्वभानो) अपनी दीप्तियुक्त (पृथुयामन्) बहुत पदार्थों की प्राप्ति करानेवाले (ऋष्वे) महान् गुणयुक्त विद्वान् आप इस स्त्री के साथ (रयिम्) लक्ष्मी को (आ, वह) प्राप्त कराइये और (नः) हम लोगों की रक्षा करिये तथा (अपः) जलों के समान दुःखों को (तरसि) तरते अर्थात् उनसे अलग होते हो । और (अवाते) निर्वात होने से (पर्वतेषु) पर्वतों में जैसे सुगम से जाते हो । तथा जो (ते) तुम्हारी (सुगा) सुन्दरता से जाने योग्य स्त्री वा हे (दिवः) प्रकाश की (दुहितः) कन्या के समान वर्त्तमान स्त्री तू पति को (इषयध्यै) प्राप्त होने को योग्य हो (उत) और तेरा पति तेरे मन का प्रिय हो (सा) सो तू हम लोगों को (सुपथा) अच्छे मार्ग से सुख प्राप्त करा ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अच्छी नीति वाले राजजन पर्वतों में भी अच्छे मार्गों को बनाय सब मार्ग चलनेवालों को सुखी करते हैं वा जैसे उषा (प्रभातवेला) मार्गों को प्रकाशित कराती वैसे ही उत्तम परस्पर प्रसन्न स्त्री पुरुष धर्ममार्ग का संशोधन कर परोपकार का प्रकाश कराते हैं ॥४॥

फिर वे स्त्री पुरुष कैसे वर्त्ताव वर्त्तें इस विषय को कहते हैं—

सा वह योक्षभिरवातोषो वरं वहसि जोषमनु ।
त्वं दिवो दुहितर्या ह देवी पूर्वहूतौ मंहना दर्शता भूः ॥५॥

पदार्थ—हे (दिवः) सूर्य की (दुहितः) कन्या के तुल्य तथा (उषः) उषा प्रभातवेला के समान वर्त्तमान श्रेष्ठ मुख वाली (या) जो (अवाता) वायुरहित (उक्षभिः) वीर्यसेचकों से युक्त (वरम्) श्रेष्ठ (जोषम्) प्रीति से चाहे हुए पति को (अनु) अनुकूलता से (त्वम्) तू (वहसि) प्राप्त होती (सा) वह मुझ पति को (आ, वह) सब ओर से प्राप्त हो (या) जो (ह) ही (पूर्वहूतौ) पूर्व सत्कार करने योग्यों के आह्वान के निमित्त (मंहना) सत्कार करने और (दर्शता) देखने योग्य (देवी) विदुषी तू (भूः) हो सो मेरी प्रिया स्त्री हो ॥५॥

भावार्थ—जैसे उषा रात्रि के अनुकूल वर्त्तमान नियम से अपने काम को करती है वैसे ही नियमयुक्त स्त्री अपने घर के कामों को करे तथा ब्रह्मचर्य के अनन्तर अपने मन के प्यारे पति को विवाह कर प्रसन्न होती हुई पति को निरन्तर प्रसन्न करे ऐसे ही पति भी उस अनुकूल आचरण करनेवाली को सदैव आनन्दित करे ॥५॥

फिर वे स्त्री पुरुष परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को कहते हैं—

उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥६॥५॥

पदार्थ—हे (उषः) उषा के समान वर्त्तमान (देवि) मनोहररूपवती जो तू (व्युष्टौ) विविध गुणों से सेवा करने योग्य प्रभातवेला में (सते) वर्त्तमान (दाशुषे) सुख देनेवाले (मर्त्याय) मनुष्य पति के लिये (अमा) घरों को (भूरि)

बहुत (वामम्) प्रशंसित कर्म जैसे हों वैसे (वसति) प्राप्त होती उस (ते) तेरे (ये) जो (पितुभाजः) उत्तम अन्न के सेवनेवाले (नरः) मनुष्य वे (च) भी (वसतेः) निवास के सम्बन्ध में (वयः) पक्षियों के (चित्) समान तेरे सुरूप को देख (उत्, अपप्तन्) उड़ते हैं उनमें से स्वयंवर विधि से सर्वथा प्रसन्न पति को तू प्राप्त हो ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो वधू और वर स्वयंवर विवाह से परस्पर प्रसन्न होकर विवाह करते हैं वे सूर्य्य और और उषा के समान गृहाश्रम को उत्तम आचार से अच्छे प्रकार प्रकाशित कर सर्वदा आनन्दित होते हैं ॥६॥

इस सूक्त में उषा और सूर्य के तुल्य स्त्रियों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चौंसठवां सूक्त और पांचवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

अथ षडृचस्य पञ्चषष्टितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । उषा देवता । १ भुरिक्पङ्क्तिः । ५ विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २, ३ विराट्त्रिष्टुप् । ४, ६ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले पैंसठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में फिर वह स्त्री कैसी हो इस विषय को कहते हैं—

एषा स्या नो दुहिता दिवोजाः क्षितीरुच्छन्ती मानुषीरजीगः ।
या भानुना रुशता राम्यास्वज्ञायि तिरस्तमसश्चिदक्तून् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे स्वीकार करने योग्य (या) जो (रुशता) रूप से (भानुना) किरण के साथ वर्त्तमान (राम्यासु) रात्रियों में (अज्ञायि) जानी जाय (तमसः) अन्धकार से (चित्) भी (अक्तून्) रात्रियों को (तिरः) तिरस्कार करती तथा (मानुषीः) मनुष्यसम्बन्धी प्रजाओं को (क्षितीः) और पृथिवियों को (उच्छन्ती) विशेष निवास कराती हुई (दिवोजाः) सूर्य्य से उत्पन्न हुई उषा के समान (अजीगः) जगाती है (नः) हमारी (एषा) सो (स्या) यह (दुहिता) कन्या है तुम ग्रहण करो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो कन्या उषा के तुल्य वा बिजुली के तुल्य अच्छे प्रकाश को प्राप्त, विद्या विनय और हाव भाव कटाक्षों से पति आदि को आनन्दित करती है वा जैसे सूर्य्य रात्रि को दूर कर सब प्रजा को प्रकाशित करता है वैसे घर से अविद्या और अन्धकार को निवार विद्या से सब को प्रकाशित करती है वही उत्तम स्त्री होती है ॥१॥

फिर वे स्त्री कैसी हों इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वि तद्ययुररुणयुग्भिरश्वैश्चित्रं भान्त्युषसश्चन्द्ररथाः ।
अग्रं यज्ञस्य बृहतो नयन्तीर्वि ता बाधन्ते तम ऊर्म्यायाः ॥२॥

पदार्थ—हे पुरुषो ! जो कन्याएँ जैसे (चन्द्ररथाः) जिनका सुवर्ण के समान रमणीयरूप है वे (उषसः) प्रभातवेलाएँ (अरुणयुग्भिः) जो अरुण किरणों की योजना करती हैं उन (अश्वैः) बड़ी बड़ी किरणों से (ययुः) प्राप्त होती हैं (तत्, चित्रम्) उस आश्चर्य्य को (वि, भान्ति) विशेषता से प्रकाशित करती हैं तथा (बृहतः) महान् (यज्ञस्य) संग करने योग्य गृहस्थों के व्यवहार के (अग्रम्) अगले भाग को (नयन्तीः) प्राप्त कराती हुई (ऊर्म्यायाः) रात्रि के (तमः) अन्धकार को (वि, बाधन्ते) नष्ट करती हैं (ताः) उनके समान दुःखान्धकार को दूर करनेवाली वधुओं को तुम प्राप्त होओ ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । हे मनुष्यो ! तुम अपने सदृश गुणकर्मस्वभावयुक्त प्रभातवेलाओं के समान आनन्द देनेवाली, विद्या और नम्रता आदि गुणों से सुशील, ब्रह्मचारिणी कन्याओं को प्राप्त होकर उनको निरन्तर आनन्द देकर आप आनन्द को प्राप्त होओ ॥२॥

श्रवो वाजमिषमूर्जं वहन्तीर्नि दाशुष उषसो मर्त्याय ।
मघोनीर्वीरवत्पत्यमाना अवो धात विधते रत्नमद्य ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे पुरुषो ! जो (उषसः) प्रभातवेलाओं के समान (दाशुषे) विद्यादि शुभगुण देनेवाले (विधते) सेवा करते हुए (मर्त्याय) मनुष्य के लिए (श्रवः) श्रवण (वाजम्) विज्ञान (इषम्) अन्न और (ऊर्जम्) पराक्रम को (वहन्तीः) प्राप्त कराती तथा (मघोनीः) बहुत उत्तम धनवाली (वीरवत्) वीर के समान (पत्यमानाः) प्राप्त होती हुई स्त्रियाँ (अद्य) इस समय (रत्नम्) रमणीय (अवः) रक्षा को प्राप्त होतीं उनको तुम (नि, धात) निरन्तर धारण करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो उषा के समान वर्त्तमान सत्यशास्त्र श्रवणादियुक्त, बलिष्ठ, विचक्षण (विचित्रविविध बुद्धियुक्त) धन और ऐश्वर्य की बढ़ानेवाली, रक्षा में तत्पर, विदुषी स्त्रियां हों उनके बीच से अपनी अपनी प्रिया भार्य्या को सब ग्रहण करें ॥ ३ ॥

इदा हि वो विधते रत्नमस्तीदा वीराय दाशुष उषासः ।
इदा विप्राय जरते यदुक्था नि ष्म मावते वहथा पुरा चित् ॥४॥

पदार्थ—हे वीर पुरुषो ! जैसे (उषासः) उषाकाल, उन्हीं के समान वर्त्तमान भार्य्याओं को जो प्राप्त होओ तो (इदा) अब (हि) ही (वः) तुमको (विधते) सेवन करते हुए के लिए (रत्नम्) रमणीय धन (अस्ति) विद्यमान है वा (इदा) अब (दाशुषे) देते हुए (वीराय) बलिष्ठ जन के लिए और (इदा) अब (जरते) स्तुति करनेवाले (विप्राय) मेधावी पुरुष के लिए (मावते) जो मेरे सदृश है उसके लिए (पुरा) पहिले (चित्) भी (यत्) जो (उक्था) कहने के योग्य वचन हैं (स्म) उन्हीं को (नि, वहथा) निवाहो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो उषा के समान वर्त्तमान भार्य्याएँ तुम लोगों को प्राप्त हों तो इसी जन्म में सब सुख तुम लोगों को प्राप्त हों क्योंकि अविरोध से वर्त्तमान स्त्री पुरुषों को सदैव यश प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

फिर वह कैसी है इस विषय को कहते हैं—

इदा हि त उषो अद्रिसानो गोत्रा गवामङ्गिरसो गृणन्ति ।
व्यर्केण बिभिदुर्ब्रह्मणा च सत्या नृणामभवद्देवहूतिः ॥ ५ ॥

पदार्थ—(अद्रिसानो) मेघ के बीच शिखर [चोटी] रखनेवाली (उषः) प्रभातवेला के समान वर्त्तमान उत्तम स्त्री जैसे (ते) तेरे सम्बन्धी (अङ्गिरसः) पवनों के तुल्य (अर्केण) सूर्य्य (ब्रह्मणा) परमेश्वर वा वेद से (च) भी सूर्य को (गोत्रा) पृथिवी के समान वा (गवाम्) किरणों के सम्बन्ध को (वि, गृणन्ति) प्रस्तुत करते हैं और (बिभिदुः) विदीर्ण करते हैं वैसे (इदा) अब (हि) ही (देवहूतिः) विद्वान् जन जिससे बुलाते हैं वैसी तू प्रसिद्ध होती है सो तू (नृणाम्) मनुष्यों के बीच (सत्या) विद्यमान पदार्थों में उत्तम (अभवत्) होती है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे किरणें प्रभातवेला से सूर्यप्रकाश की निमित्त हैं वैसे ही सत्य व्यवहारों को सिद्ध करने और दुष्ट व्यवहारों का विरोध करनेवाली उषा है वैसी श्रेष्ठ स्त्री होती है ॥ ५ ॥

फिर वह किसके समान क्या करके किसको प्राप्त होती है इस विषयों को कहते हैं—

उच्छा दिवो दुहितः प्रत्नवन्नो भरद्वाजवद्विधते मघोनि ।
सुवीरं रयिं गृणते रिरीह्युरुगायमधि धेहि श्रवो नः ॥६॥६॥

पदार्थ—हे (दिवः) बिजुली की (दुहितः) कन्या के समान वर्त्तमान (मघोनि) परमपूजित धनयुक्त पत्नी तू (नः) हम लोगों का (विधते) विधान करनेवाले के लिए (प्रत्नवत्) प्राचीन कारण जिसमें विद्यमान उसके वा (भरद्वाजवत्) कर्णों के तुल्य (उच्छा) विवास कराओ अर्थात् एक देश से दूसरे देश में वास कराओ (गृणते) और प्रशंसा करनेवाले तेरे पति के लिए वा (नः) हम लोग जो सम्बन्धी हैं उनके लिए (उरुगायम्) बहुत अपत्य धन वा गृह जिससे प्राप्त होते हैं उसे और (श्रवः) अन्न वा श्रवण तथा (सुवीरम्) शोभन वीर जिससे उस (रयिम्) धन को (अधि, धेहि) अधिकता से धारण कर और तू मुझ से इस उक्त विषय को (रिरीहि) मांग ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे वीर पुरुष ! बिजुली का प्रकाश और संप्रयोग किया हुआ सत्य ऐश्वर्य को उत्पन्न करता है वैसे ही शुभ आचरण करनेवाली पत्नी घर का सौभाग्य बढ़ाती है और जैसे आचार्य प्रति समय सुन्दर शिक्षा और विद्या को विद्यार्थियों को ग्रहण कराते हैं वैसे ही विद्वान् स्त्री पुरुष अपने सन्तानों को विद्या और सुन्दर शिक्षा ग्रहण करावें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में उषा के तुल्य स्त्री जनों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पैंसठवां सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

अथैकादशर्चस्य षट्षष्टितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । मरुतो देवता । १, ६, ११ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ५ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३, ४, निचृत्पङ्क्तिः । ६, ७, १० भुरिक्पङ्क्तिः । ८ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचावाले छियासठवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में फिर वह किसके तुल्य क्या करती है इस विषय को कहते हैं—

वपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्तु समानं नाम धेनु पत्यमानम् ।
मर्तेष्वन्यद्दोहसे पीपाय सकृच्छुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे पत्नि ! जैसे (ऊधः) रात्रि और (पृश्निः) अन्तरिक्ष (सकृत्) एक बार (शुक्रम्) शीघ्र वीर्य करनेवाले को (दुदुहे) परिपूर्ण करता है वैसे (धेनु) वाणी के समान तू (मर्तेषु) मनुष्यों में (पत्यमानम्) जाते हुए पति को (अन्यत्) और को जैसे वैसे (दोहसे) पूर्ण करने को (पीपाय) बढ़ाओ [वृद्धि-देओ] ऐसी हुई जो तू उसका जो (चित्) निश्चित (समानम्) समान (एकसा) (वपुः) सुन्दर रूप और (नाम) नाम है (तत्) वह (चिकितुषे) विज्ञानवान् पति के लिए (नु, अस्तु) शीघ्र हो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे पुरुष ! जैसे रात्रि और समीप में मायारूपी अन्तरिक्ष वर्षा से ढीला अर्थात् मेघ से ढका हुआ अन्तरिक्ष अन्ध-

कारयुक्त होता है वैसे ही गुणकर्मस्वभावयुक्त स्त्री पति के सुख के लिए समर्थ होती है जैसे गौ बछड़ों को पालती है वैसे विदुषी (विद्या पढ़ी हुई) माता सन्तानों की यथावत् रक्षा कर सकती है ॥ १ ॥

फिर विद्वान् जन कैसे हों इस विषय को कहते हैं—

ये अग्नयो न शोशुचन्निधाना द्विर्यत्त्रिर्मरुतो वावृधन्त ।

अरेणवो हिरण्ययास एषां साकं नृम्णैः पौंस्येभिश्च भूवन् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (ये) जो यत्न करते हुए (हिरण्ययासः) बिजुली के तेज से बढ़े हुए (अरेणवः) धूलि जिनमे नहीं वे (मरुतः) पवनो के समान (नृम्णैः) धनो और (पौंस्येभिः) पुरुषार्थ बलो के (साकम्) साथ (भुवन्) हों (एषाम्) इन के सम्बन्ध में (यत्) जो (द्विः) दोवार वा (त्रिः) तीनवार (वावृधन्त) निरन्तर बढ़ते है (च) और (इधानाः) प्रकाशमान (अग्नयः) अग्नियो के (न) समान (शोशुचन्) निरन्तर शुद्ध करते वे भाग्यशाली होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो अग्नि के समान पवित्र हुए पवित्र करनेवाले वृद्धि को प्राप्त हुए बढ़ानेवाले, पवन के समान बलिष्ठ और चक्रवर्ति राजा के समान लक्ष्मी के साथ वर्त्तमान विद्वान् हो उन्हीं को तुम सेवो ॥ २ ॥

किन स्त्री पुरुषों के पुत्र उत्तम होते हैं इस विषय को कहते हैं—

रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्रा यांश्चो नु दाधृविर्भरध्यै ।

विदे हि माता महो मही षा सेत्पृश्निः सुभ्वे३ गर्भमाधात् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (ये) जो (मीळ्हुषः) वीर्य सींचनेवाले (रुद्रस्य) वायु के समान बलिष्ठ के (पुत्राः) पुत्र (सन्ति) हैं (यान्, चो) और जिनको (भरध्यै) पोषण वा धारण करने के लिए (दाधृविः) धारण करनेवाली (मही) जो महान् सत्कार करने योग्य है (सा) वह (माता) मान करनेवाली (आ, अधात्) अच्छे प्रकार धारण करती है और (सा, इत्) वही (पृश्निः) अन्तरिक्ष के समान विस्तारवाली (सुभ्वे) जो सुन्दर प्रसिद्ध होता है उस (विदे) जानने-वाले के लिए (हि) ही (महः) महान् (गर्भम्) गर्भ को (नु) शीघ्र अच्छे प्रकार धारण करती है उन सबको और उस माता रूप स्त्री को तुम सब भाग्ययुक्त जानो ॥ ३ ॥

भावार्थ—वे ही मनुष्य कल्याणरूप होते है जिनके माता पिता ऐसे हैं कि जिन्होंने पूरा ब्रह्मचर्य किया हो ॥ ३ ॥

कौन श्रेष्ठ होते हैं इस विषय को कहते हैं—

न य ईषन्ते जनुषोऽया न्व१न्तः सन्तोऽवद्यानि पुनानाः ।

निर्यद्दुह्रे शुचयोऽनु जोषमनु श्रिया तन्वमुक्षमाणाः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (ये) जो (जनुषः) जन्मो को (न) नहीं (ईषन्ते) नष्ट करते किन्तु (अया) इस नीति से (अन्तः) बीच मे (सन्तः) सत्पुरुष हुए (अवद्यानि) निन्द्य कर्मों को (नु) शीघ्र छोड़ के (पुनानाः) शरीर को पवित्र करते हुए होते हैं और (यत्) जो (शुचयः) पवित्र जन (अनु, जोषम्) सेवा के अनुकूल (श्रिया) लक्ष्मी से (तन्वम्) शरीर को (उक्षमाणाः) सेचन करते हुए (अनु, निर्, दुह्रे) अनुक्रम से जन्म पूरा करते हैं वे धन्य होते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य ब्रह्मचर्यादि व्रतो को छोड़ मूढ़ होकर, शीघ्र विवाहकर, नपुंसक के अर्थात् हीजड़ा के समान होकर, निर्बल, रोगी और लम्पट, मनुष्यों के बीच जिसकी कहावत हो रही हो तथा दुष्टव्यसन जिसको होता है ऐसे पुरुष सौ वर्ष से पहिले ही शरीर को नष्ट भ्रष्ट कर मनुष्य शरीर के फल को न पाकर दुर्भाग्यवश निष्फल होते हैं ॥ ४ ॥

यहां दो प्रकार के पुरुष होते हैं इस विषय को कहते हैं—

मक्षू न येषु दोहसे चिदया आ नाम धृष्णु मारुतं दधानाः ।

न ये स्तौना अयासो मह्ना नू चित्सुदानुरव यासदुग्रान् ॥५॥७॥

पदार्थ—(येषु) जिन मनुष्यो मे (चित्) निश्चय से (दोहसे) कामों के पूरे करने की शक्ति नहीं है वा जो (अयाः) प्राप्त होते हुए (धृष्णु) दृढ़, प्रगल्भ (मारुतम्) मनुष्यो के इस (नाम) प्रसिद्ध व्यवहार को (आ, दधानाः) धारण करते हुए हैं वा (ये) जो (अयासः) चलते हुए (स्तौनाः) चोर (न) नहीं है और जो (सुदानुः) उत्तम दान देनेवाला उन (उग्रान्) कठिन स्वभाववालो को (मक्षू) शीघ्र (न) न (अव, यासत्) प्राप्त करे उनका (चित्) शीघ्र (मह्ना) महत्त्व से (नू) शीघ्र सत्कार करे उनको यथावत् सब जानें ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! इस जगत् मे दो प्रकार के मनुष्य हैं एक शक्ति और विद्या से हीन, दुष्ट कर्म करनेवाले हैं, दूसरे शक्तिमान, श्रेष्ठ कर्म धारण करनेवाले हैं, उनमें जो दुष्कर्म करनेवालो का सत्कार नहीं करते और श्रेष्ठों का सत्कार करते हैं वे शीघ्र महान् चाहे हुए सुख को पाते हैं ॥ ५ ॥

फिर मनुष्य क्या करके कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

त इदुग्राः शवसा धृष्णुषेणा उभे युजन्त रोदसी सुमेके ।

अध स्मैषु रोदसी स्वशोचिरामवत्सु तस्थौ न रोकः ॥ ६ ॥

पदार्थ—जो (धृष्णुषेणाः) दृढ़ सेनावाले (शवसा) बल से (उग्राः) तेजस्वी (उभे) दोनो (सुमेके) सुन्दर रूपवाले (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (युजन्त) युक्त होते हैं (अध) तदनन्तर (स्म) ही (एषु) इन (अमवत्सु) प्रशंसित गृहवालों में (रोदसी) आकाश और पृथिवी के बीच (स्वशोचिः) अपनी दीप्तिवाला विद्युत् अग्नि (आ, तस्थौ) अच्छे प्रकार स्थित है और (न) नहीं (रोकः) शब्दायमान है (ते) वे सब (इत्) ही सुखी होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य बिजुली की विद्या को लेकर दृढ़ सेनावाले होते हैं उनको शत्रुजन रोक नहीं सकते हैं तथा जो उत्तम घरों में निवास करते हैं वे प्रकाशित बुद्धिवाले होते हैं ॥ ६ ॥

अनेनो वो मरुतो यामो अस्त्वनश्वश्चिद्यमजत्यरथीः ।

अनवसो अनभीशू रजस्तूर्वि रोदसी पथ्या याति साधन् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) मनुष्यो (वः) तुम्हारा चलन (अनेनः) निष्पाप (अस्तु) हो और (यामः) जिसमें जाते हैं उस प्रहर के समान जो (अनश्वः) ऐसा है कि जिसके घोड़े नहीं हैं (अरथीः) रथ नहीं हैं (अनवसः) अन्न जिसके नहीं है और (अनभीशुः) बलयुक्त बाहु नहीं हैं तथा जो (रजस्तूः) जल को बढ़ाता है वह (चित्) निश्चय के साथ (यम्) जिसको (अजति) प्रक्षिप्त करता फेंकता है वा (रोदसी) आकाश और पृथिवी के बीच निरन्तर (साधन्) साधता हुआ (पथ्याः) मार्गों मे उत्तम गतियों को (वि, याति) विशेषता से जाता है उसको तुम स्वीकार करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम पक्षपात-रूपी पाप को छोड़ के निर्बलो की निरन्तर रक्षा कर भूगर्भविद्या और विद्युत विद्या को अच्छे प्रकार सिद्ध कर भूमि और उदक तथा अन्तरिक्ष के मार्गों को उत्तम यानों से जाकर आओ ॥ ७ ॥

किन से रक्षा किये जाने पर भय नहीं है इस विषय को कहते हैं—

नास्य वर्ता न तरुता न्वस्ति मरुतो यमवथ वाजसातौ ।

तोके वा गोषु तनये यमप्सु स व्रजं दर्ता पार्ये अध द्योः ॥८॥

पदार्थ—हे (मरुतः) विद्वानो ! तुम (वाजसातौ) अन्नादि पदार्थों के विभाग मे (यम्) जिसको (गोषु) गौ आदि पशु वा पृथिवी विभागों वा (अप्सु) जलो वा (तोके) संतान (वा) वा (तनये) सुकुमार इन सब में (यम्) जिसकी (अवथ) रक्षा करते हो (अस्य) इस व्यवहार का कोई (वर्ता) वर्त्ताव कराने और कोई (न) नहीं है और कोई (तरुता) उक्त व्यवहार का उल्लंघन करानेवाला (न, अस्ति) नहीं है (सः) वह (अध) इसके अनन्तर (पार्ये) पार करने योग्य व्यवहार मे (द्योः) प्रकाश के (व्रजम्) मेघ के समान शत्रु सेना को (दर्ता, नु) शीघ्र विदीर्ण करनेवाला है ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिनके विद्वान् जन रक्षा करनेवाले हों उनको कहीं से भय नहीं प्राप्त होता, जैसे सूर्य से वर्षा होकर जगत् निर्भय होता है वैसे ही धार्मिक विद्वानों के संग से समस्त राज्य निर्भय होता है ॥ ८ ॥

फिर मनुष्य किसके लिए क्या धारण करके क्या करें इस विषय को कहते हैं—

प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय मारुताय स्वतवसे भरध्वम् ।

ये सहांसि सहसा सहन्ते रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वानो (ये) जो (सहसा) बल वा उत्साह से (सहांसि) बलों को (सहन्ते) सहते हैं उनके लिए तुम (चित्रम्) अद्भुत (अर्कम्) अन्न वा वज्र को (प्र, भरध्वम्) अच्छे प्रकार धारण करो । हे (अग्ने) विद्वान् जैसे (मखेभ्यः) सग्राम आदि जो सग करने योग्य हैं उनके लिए (पृथिवी) भूमि (रेजते) कम्पित होती है तथा (स्वतवसे) अपने बल से युक्त (तुराय) शीघ्रता करने और (मारुताय) मनुष्यों के सहयोगी (गृणते) स्तुति करनेवाले विद्वान् के लिए अद्भुत अन्न वा वज्र को धारण करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे कंपती हुई भूमि यज्ञसामग्री को उत्पन्न करती है वैसे ही बड़े-बड़े शूरवीर विद्वानों के लिए अन्नादि पदार्थ और अस्त्र शस्त्र समूह तथा उनकी विद्या की निरन्तर उन्नति करो ऐसा होने से न सहने योग्य शत्रुओं को सहने और पराजय करने को सामर्थ्य उत्पन्न होता है यह जानो ॥ ९ ॥

फिर किसके तुल्य कैसे शूरवीर सिद्ध करने चाहिएं इस विषय को कहते हैं—

त्विषीमन्तो अध्वरस्येव दिद्युत्तृषुच्यवसो जुह्वो३ नाग्नेः ।

अर्चत्रयो धुनयो न वीरा भ्राजज्जन्मानो मरुतो अधृष्टाः ॥१०॥

पदार्थ—जो (अध्वरस्येव) अहिंसामय यज्ञ के समान वा (जुह्वः) जिनसे हवन करते उनके (न) समान (तृषुच्यवसः) जो शीघ्र जानेवाले (अग्नेः) अग्नि के (अर्चत्रयः) सत्कारकर्त्ता (धुनयः) कंपते हुए पदार्थों के (न) समान (त्विषीमन्तः) विद्या विनयादि के प्रकाश से युक्त (भ्राजज्जन्मानः) देदीप्यमान जन्म है जिनका तथा (अधृष्टाः) जो शत्रुओं से धृष्टता को नहीं प्राप्त होते (मरुतः) वे पवन के समान बली (वीराः) वीर (दिद्युत्) प्रकाश के समान वर्त्तमान हों उन्हीं से विजय को प्राप्त होओ ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे राजा आदि जनो ! जैसे वज्र के बीच वर्त्तमान लपट शीघ्र ही अन्तरिक्ष को जाती है वैसे शिक्षा के बीच वर्त्तमान जन शीघ्र विजय के लिए जा सकते हैं जैसे धुओं से अग्नि प्रदीप्ति की जाती है वैसे शिक्षा और सत्कार से वीरों की सेना को प्रदीप्त करना चाहिए जैसे अग्नि की लपटें और शब्द होते हैं वैसे ही तुम्हारी सेना के प्रकाश और शब्द बहुत हों ॥ १० ॥

फिर मनुष्यों को किनके साथ कैसा जन राज्य का अधिकारी करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

तं वृधन्तं मारुतं भ्राजदृष्टिं रुद्रस्य सूनुं हवसा विवासे ।
दिवः शर्धाय शुचयो मनीषा गिरयो नाप उग्रा अस्पृध्रन् ॥११॥८॥

पदार्थ—जो (शुचयः) पवित्र (मनीषाः) मनस्वी अर्थात् उत्साही मन वाले (उग्राः) तेजस्वी (गिरयः) मेघ और (आपः) जलों के (न) समान (दिवः) मनोहर पदार्थ के (शर्धाय) बल के लिए (अस्पृध्रन्) स्पर्द्धा करें उन के साथ (वृधन्तम्) आप बढ़ते वा दूसरों को बढ़ाते हुए (मारुतम्) पवनों की विद्या जाननेवाले (भ्राजदृष्टिम्) प्रकाशमान दृष्टियुक्त (रुद्रस्य) किया है चवालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य जिसने उसके (तम्) उस (सूनुम्) पुत्र को (हवसा) लेने के व्यवहार से मैं (आ, विवासे) सेवता हूँ ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो मनुष्य मेघ के समान उन्नति करने, प्रजा के पालने, जल के समान पुष्टि करनेवाले, पवित्र आशययुक्त, तेजस्वी और मनोहर बल के बढ़ानेवाले हों उनके साथ यदि राजा राज्य-शिक्षा करे तो कहीं भी पराजय और अपकीर्ति न हो ॥ ११ ॥

इस सूक्त में पवनों के गुणों के समान विद्वानों और वीरों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छियासठवां सूक्त और आठवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथैकादशर्चस्य सप्तषष्टितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । मित्रा-वरुणौ देवते । १,६ स्वराट्पङ्क्तिः । २,१० भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३,७,८,११ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ५ त्रिष्टुप् । ६ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचावाले सरसठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम द्वितीय मन्त्र में मनुष्यों को किनका सत्कार करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

विश्वेषां वः सतां ज्येष्ठतमा गीर्भिर्मित्रावरुणा वावृधध्यै ।
सं या रश्मेव यमतुर्यमिष्ठा द्वा जनाँ असमा बाहुभिः स्वैः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (विश्वेषाम्) सब (सताम्) सज्जन जो (वः) आप लोग उनमें (या) जो (ज्येष्ठतमा) अतीव ज्येष्ठ (यमिष्ठा) अतीव नियम को वर्त्तनेवाले (असमा) अतुल्य अर्थात् सब से अधिक (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान अध्यापक और उपदेशक (वावृधध्यै) अत्यन्त बढ़ने के लिये (जनान्) मनुष्यों को (रश्मेव) किरण वा रज्जु के समान (गीर्भिः) वाणियों से (सम्, यमतुः) नियमयुक्त करते हैं और (द्वा) दोनों सज्जन (स्वैः) अपनी (बाहुभिः) भुजाओं से मनुष्यों को किरण वा रस्सी के समान नियम में लाते हैं उन अध्यापक और उपदेशकों का सदैव सत्कार करो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो विद्या और उत्तम शील आदि गुणों से श्रेष्ठ, अधर्म से निवृत्त कर धर्म के बीच प्रवृत्त करानेवाले, अध्यापन और उपदेश से सूर्य के समान उत्तम बुद्धि के प्रकाश करनेवाले हों उन्हीं का सदा सत्कार करो ॥१॥

इयं मद्वां प्र स्तृणीते मनीषोप प्रिया नमसा बर्हिरच्छ ।
यन्तं नो मित्रावरुणावधृष्टं छर्दिर्यद्वां वरूथ्यं सुदानू ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (सुदानू) सुन्दर दान देनेवालो (प्रिया) मनोहर (मित्रावरुणौ) अध्यापक और उपदेशको (वाम्) तुम दोनों की (नमसा) सत्कार वा अन्नादिकों के साथ (इयम्) यह (मनीषा) विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त बुद्धि (मत्) मुझ से (प्र, स्तृणीते) अच्छे प्रकार सर्व विषयों को आच्छादित करती है तथा (यत्) जो (वाम्) तुम दोनों के (वरूथ्यम्) घर के बीच उत्पन्न हुए (बर्हिः) अतीव विशाल तथा (अच्छ) अच्छे प्रकार (यन्तम्) प्राप्त होते हुए और (नः) हमारे (अधृष्टम्) शत्रुओं की न धृष्टता को प्राप्त (छर्दिः) घर को (उप) समीप से ढांपती है वह सब को अच्छे प्रकार ग्रहण करने योग्य है ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिनके संग से हमको उत्तम बुद्धि और घर प्राप्त होते हैं उनको सदैव सुख मानो ॥२॥

फिर कौन निरन्तर सत्कार करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ यातं मित्रावरुणा सुशस्त्युप प्रिया नमसा हूयमाना ।
सं यावप्नःस्थो अपसेव जनाञ्छ्रुधीयतश्चिद्यतथो महित्वा ॥३॥

पदार्थ—हे (प्रिया) सब को तृप्त करनेवाले (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान प्रिय पुरुषो (नमसा) सत्कार से (हूयमाना) बुलाये हुए तुम दोनों (जनान्) मनुष्य के (उप, आ, यातम्) समीप आओ तथा (सुशस्ति) सुन्दर प्रशंसा को प्राप्त होओ (यौ, चित्) जो निश्चय से (महित्वा) बड़प्पन से (यतथः) यत्न करते हैं वा (श्रुधीयतः) अपने अन्न की इच्छा करते हैं वे दोनों (अप्नःस्थः) सन्तानों में ठहरनेवाला (अपसेव) कर्म से जैसे हम लोगों को (सम्) प्राप्त होवें ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम अध्यापक और उपदेशकों को सदा सत्कार से बुलाकर उनका सत्कार कर विद्या और सत्योपदेश को संसार के बीच विस्तारो । हे अध्यापक और उपदेशको ! तुम प्रयत्न से माता और पिता के समान मनुष्यों को उत्तम शिक्षा देकर विद्यावान् सर्वोपकार करनेवालों को सिद्ध करो ॥३॥

फिर सब मनुष्यों को कौन सत्कार करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अश्वा न या वाजिना पूतबन्धू ऋता यद्गर्भमदितिर्भरध्यै ।
प्र या महि महान्ता जायमाना घोरा मर्ताय रिपवे नि दीधः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (या) जो (अश्वा) घोड़े वा महाशय जनों के (न) समान (वाजिना) बहुत वेग वा विज्ञानयुक्त (पूतबन्धू) पवित्र बन्धु वाले (ऋता) सत्य आचार के रखनेवाले (अदितिः) माता के तुल्य (महि) महान् जन (यत्) जिस (गर्भम्) गर्भ को (भरध्यै) धारण करने को प्रवर्त्तमान वा (या) जो (महान्ता) महात्मा (जायमाना) उत्पन्न हुए (रिपवे, मर्ताय) शत्रुजन के लिये (घोरा) भयङ्कर (प्र, नि, दीधः) और कारागार में निरन्तर शत्रु जनों को डाल देते हैं उनको अपने आत्मा के तुल्य सत्कार करो ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो कुलीन, जिनका महान् पक्ष, विद्वान् माता पिता से उत्पन्न हुए, उत्तम शिक्षायुक्त, महाशय, माता के तुल्य मनुष्यों पर कृपा करते, वा पढ़ाने और उपदेश करने से सब पर उपकार करते, तथा दुष्टों को रोकते हुए विद्वान् होते हैं उन्हीं की सेवा, संग, उन्हीं से उपदेश और विद्या पढ़ना निरन्तर करो ॥४॥

फिर मनुष्यों को कौन सत्कार करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

विश्वे यद्वां मंहना मन्दमानाः क्षत्रं देवासो अदधुः सजोषाः ।
परि यद्भूथो रोदसी चिदुर्वी सन्ति स्पशो अदब्धासो अमूराः ॥५॥९॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको (यत्) जो तुम दोनों (उर्वी) बहुत पदार्थों से युक्त (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी के समान विद्या और क्षमा से युक्त (भूथः) होते हो उन (वाम्) तुम्हारे संग से (यत्) जो (मंहना) सत्कार करनेवाले (मन्दमानाः) आनन्द वा सत्कार को प्राप्त वा स्तुति करते (सजोषाः) एकसी प्रीति को सेवनेवाले (स्पशः) अविद्यान्धकार का विनाश करने और विद्या-प्रकाश का स्पर्श करनेवाले (अदब्धासः) हिंसा को न प्राप्त और हिंसा न करने वाले (अमूराः) मूढतादि दोषरहित (विश्वे, देवासः) समस्त कामना करते हुए विद्वान् जन (सन्ति) हैं वे ही (चित्) निश्चित (क्षत्रम्) धन वा राज्य को (परि, अदधुः) सब ओर से धारण करते हैं उनका वा उन तुम लोगों का सब हम लोग निरन्तर सत्कार करें ॥५॥

भावार्थ—वे ही आप्त विद्वान् जन हैं जिनका पढ़ना उपदेश और संग शीघ्र सफल होता है जिनके संग से हिंसा आदि दोषरहित विद्वान् होकर पक्षपात को छोड़ सब प्राणियों को अपने आत्मा के तुल्य सुख देते हैं ॥५॥

फिर कौन यहां संग करने योग्य और सुख के बढ़ाने वाले हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ता हि क्षत्रं धारयेथे अनु द्यून्दृंहेथे सानुमुपमादिव द्योः ।
दृळ्हो नक्षत्र उत विश्वदेवो भूमिमातान्द्यां धासिनायोः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको जो (हि) जिस कारण से हैं (ता) वे तुम दोनों (अनु, द्यून्) प्रतिदिन (क्षत्रम्) राज्य वा धन को (धारयेथे) धारण करते हो तथा (द्योः) सूर्य की (उपमादिव) उपमा से जैसे वैसे (सानुम्) शिखर को (दृंहेथे) बढ़ाते हो जिनके संग से (विश्वदेवः) सब का प्रकाश करने वाला (दृळ्हः) दृढ (उत) और (नक्षत्रः) जो नहीं नष्ट होता ऐसा होता हुआ (भूमिम्) भूमि और (द्याम्) मनोहर विद्या को प्राप्त होकर (धासिना) अन्न से (आयोः) जीवन को बढ़ाता है उन पूर्वोक्त दोनों तथा उसको जो (आ, अतान्) सब ओर से प्रकाशित करें वे निरन्तर सुखी होते हैं ॥६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो जो अध्यापक और उपदेशक प्रतिदिन सूर्य के समान विद्याव्यवहार को सम्यक् प्रकाशित कर राज्यधन और आयु को बढ़ाते, सब को सुख की धारणा कराते, जिनको प्राप्त होकर सब जन विद्वान् होते हैं उनका संग निरन्तर करो ॥६॥

फिर कौन किसके समान मेधावी विद्यार्थियों को धारण करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ता विग्रं धैथे जठरं पृणध्या आ यत्सद्म सभृतयः पृणन्ति ।
न मृष्यन्ते युवतयोऽवाता वि यत्पयो विश्वजिन्वा भरन्ते ॥७॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको जैसे (अवाताः) पतियों को न प्राप्त हुई (सनुतयः) समान पतियों वाली (युवतयः) युवति स्त्रियां समान पतियों को (भरन्ते) धारण करती अर्थात् प्राप्त होती वे (न) नहीं (आ, पृणन्ति) पूरे सुख को प्राप्त होती क्योंकि और सौतें नहीं (मृष्यन्ते) सहती हैं (यत्) जो (सद्म) घर को सुखयुक्त करती हैं और (यत्) जो (वयः) अन्न के समान (वि) विविध प्रकार से सुख देती हैं तथा जो तुम दोनो (जठरम्) उदर में ठहरे हुए अग्नि को (पृणध्यै) सुखी करने के लिये (विप्रम्) बुद्धिमान् पुरुष को (धेथे) धारण करते हो। हे (विश्वजिन्वा) संसार की पुष्टि करने वाले आप उन स्त्रियों तथा (ता) उन दोनों को निरन्तर सेवो ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे समान गुण कर्म स्वभाव रूप स्त्री पुरुष अत्यन्त प्रीति से विवाह कर कभी विरोध नहीं करते हैं वैसे ही विद्वान् जन और विद्यार्थीजन विद्वेष नहीं करते हैं ऐसे प्रेम के साथ वर्त्तमान सब सदैव आनन्दित होते हैं ॥७॥

फिर किनके संग से विद्वान् हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ता जिह्वया सदमेदं सुमेधा आ यद्वां सत्यो अरतिर्ऋते भूत् ।
तद्वां महित्वं घृतान्नावस्तु युवं दाशुषे वि चयिष्टमंहः ॥८॥

पदार्थ—हे (घृतान्नौ) बहुत घृत और अन्नवाले अध्यापक और उपदेशक जनो (वाम्) तुम दोनों के उपदेश से (सुमेधाः) उत्तम जिसकी बुद्धि वह (अरतिः) सत्य उपदेश को प्राप्त होता हुआ (सत्यः) सज्जनों में उत्तम जन (जिह्वया) वाणी से (आ, इदम्, सदम्) सब ओर से जिसमें विद्वान्जन स्थिर होते हैं उस सत्य वचन को पाकर (ऋते) सत्य धर्म में (आ, भूत्) प्रसिद्ध होवे (यत्) जो (युवम्) आप दोनों (दाशुषे) दानशील पुरुष के लिये (अंहः) पाप को (वि, चयिष्टम्) विगत चयन करते हैं (तत्) वह (वाम्) तुम दोनों की (महित्वम्) महिमा (अस्तु) हो (ता) उन तुम दोनों का हम लोग निरन्तर सत्कार करें ॥८॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिनकी उत्तेजना से तुम लोग विद्या को प्राप्त होओ वा उपदेश ग्रहण करो उनका धन्यवाद आदि से निरन्तर सत्कार करो, जिनके संग से मनुष्य सत्य आचरण वाले उत्तम ज्ञाता होते हैं वे ही महाशय हैं ॥८॥

कौन विद्वानों के प्रिय वा अप्रिय होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

प्र यद्वां मित्रावरुणा स्पूर्धन्प्रिया धाम युवधिता मिनन्ति ।
न ये देवास ओहसा न मर्ता अयज्ञसाचो अप्यो न पुत्राः ॥९॥

पदार्थ—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान अध्यापक और उपदेशको (यत्) जो (स्पूर्धन्) स्पर्द्धा करते हुए जन (वाम्) तुम दोनों के (प्रिया) प्रिय (धाम) धाम जिनमें स्थापन करते हैं उन (युवधिता) तुम दोनों हित करने वालों को (न) न (प्र, मिनन्ति) नष्ट करते हैं वा (ये) जो (देवासः) विद्वान् जन (ओहसा) प्राप्त बल वा वेग से (अयज्ञसाचः) जो यज्ञ से सम्बन्ध नहीं करते वे (मर्त्ताः) मनुष्य (न) नहीं नष्ट करते हैं वे (अप्यः) कर्मों में प्रसिद्ध के (न) समान और (पुत्राः) पुत्रों के समान होते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अध्यापक और उपदेशकों का अप्रिय आचरण नहीं करते हैं वे सत्पुत्रों के समान होते हैं और जो अप्रिय का आचरण करते हैं वे शत्रुओं के तुल्य होते हैं ॥९॥

फिर कौन तिरस्कार करने योग्य और सत्कार करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वि यद्वाचं कीस्तासो भरन्ते शंसन्ति के चिन्निविदो मनानाः ।
आद्वां ब्रवाम सत्यान्युक्था नकिर्देवेभिर्यतथो महित्वा ॥ १० ॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको यदि तुम दोनों (महित्वा) महिमा से (देवेभिः) विद्वानों के साथ विद्यावृद्धि के लिये (नकिः) न (यतथः) यत्न करते हो तो (वाम्) तुम दोनों के प्रति हम लोग (सत्यानि) उत्तम पदार्थों में भी उत्तम (उक्था) कहने वा सुनने के योग्य विषयों को (आत्, ब्रवाम) पीछे कहें (यत्) जो (कीस्तासः) मेधावीजन (वाचम्) वाणी को (वि, भरन्ते) विशेषता से धारण करते हैं और (के, चित्) कोई (मनानाः) विचार करते हुए (निविदः) उत्तम वाणियों की (शंसन्ति) प्रशंसा करते हैं उनको सर्वदा तुम पढ़ाओ ॥१०॥

भावार्थ—राजा और राजजनों को और प्रजास्थ विद्वानों को भी कौन विद्वान् अच्छी शिक्षा देने योग्य हैं जो निष्कपटता से अपनी शक्ति के अनुकूल पढ़ाने से विद्या प्रचार न करें और जो प्रीति के साथ विद्याओं को पाकर सर्वत्र प्रचार करते हैं वे ही सदा सत्कार करने योग्य हैं ॥१०॥

फिर कौन विद्वान् होते हैं इस विषय को कहते हैं—

अवोरित्था वां छर्दिषो अभिष्टौ युवोर्मित्रावरुणावस्कृधोयु ।
अनु यद्गावः स्फुरानृजिप्यं धृष्णुं यद्रणे वृषणं युनजन् ॥११॥१०॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको (यत्) जो (गावः) किरणें वा धेनु हैं उनको (स्फुरान्) स्फूर्त्ति वाले पदार्थों वा (ऋजिप्यम्) कोमल वा सरल पदार्थों के पालने वालों में हुए (धृष्णुम्) दृढ़ प्रगल्भ (वृषणम्) बलिष्ठ को (रणे) संग्राम में कोई (युनजन्) जोड़ता हुआ विजय को प्राप्त होता है हे (मित्रावरुणौ) वायु और सूर्य्य के समान वर्त्तमान (अवोः) रक्षा करनेवाले (वाम्) तुम दोनों के (छर्दिषः) घर के (अभिष्टौ) सन्मुख यज्ञक्रिया में (यत्) जो प्रयत्न करता है तथा (युवोः) तुम दोनों के सम्बन्ध में (अस्कृधोयु) जो अपने को लघुता नहीं चाहता (इत्था) इस हेतु से (अनु) अनुकूलता से यत्न करता है उसका सदैव सत्कार करो ॥११॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको ! जो विद्यार्थी जन तुम्हारे काम को अपने काम के समान जानते हैं वेही दीर्घ आयु वाले, प्रशंसित विद्यायुक्त, धार्मिक परोपकारी होते हैं ॥११॥

इस सूक्त में प्राण और उदान के समान अध्यापक और उपदेशकों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह सरसठवां सूक्त और दशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथैकादशर्चस्याष्टषष्टितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रावरुणौ देवते । १,४,११ त्रिष्टुप् । ६ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २ भुरिक् पङ्क्तिः । ३,७,८ स्वराट् पङ्क्तिः । ५ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ९,१० निचृज्जगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचावाले अरसठवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों को अच्छे प्रकार कौन पढ़ावें चाहियें इस विषय को कहते हैं—

श्रुष्टी वां यज्ञ उद्यतः सजोषा मनुष्वद्वृक्तबर्हिषो यजध्यै ।
आ य इन्द्रावरुणाविषे अद्य महे सुम्नाय मह आववर्तत् ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्रावरुणौ) वायु और बिजुली के समान अध्यापक और उपदेशको (यः) जो (उद्यतः) उद्योगी (सजोषाः) अपने आत्मा के तुल्य औरों का प्रीति से सेवन करता (मनुष्वत्) मनुष्य के तुल्य (वृक्तबर्हिषः) सक्षोभित किया जल जिसने उसका और (वाम्) तुम्हारा (यज्ञः) संग करने योग्य शिष्य (आ, यजध्यै) अच्छे प्रकार संग करने को (अद्य) आज (महे) महान् (सुम्नाय) सुख वा (महे) बहुत (इषे) विज्ञान वा अन्न के लिये (श्रुष्टी) शीघ्र (आववर्त्तत्) अच्छे प्रकार वर्त्तमान है उसको तुम दोनों पढ़ाओ ॥१॥

भावार्थ—हे पढ़ाने और उपदेश करनेवालो ! जो आप लोगों के सुख के लिये प्रयत्न करते हुए पुरुषार्थी, प्रीतिमान्, शीघ्रकारी वर्त्तमान हैं उन पवित्र, जितेन्द्रिय धार्मिक विद्यार्थियों को निरन्तर सत्य का उपदेश करो ॥१॥

फिर कौन यहां राजजन उत्तम और सत्कार करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ता हि श्रेष्ठा देवताता तुजा शूराणां शविष्ठा ता हि भूतम् ।
मघोनां मंहिष्ठा तुविशुष्म ऋतेन वृत्रतुरा सर्वसेना ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (हि) ही (देवताता) सत्यव्यवहार यज्ञ में (श्रेष्ठा) उत्तम (तुजा) दुष्टों की हिंसा करने वाले (शूराणाम्) निर्भय जनों में (शविष्ठा) अतीव बलवान् (भूतम्) होते हैं और जो (हि) निश्चय के साथ (मघोनाम्) धनाढ्यों के बीच (मंहिष्ठा) अतीव सत्कार करने योग्य (ऋतेन) सत्य आचरण से (तुविशुष्मा) बहुत बल और सेना से युक्त (वृत्रतुरा) जो मेघ के समान बढ़े हुए शत्रुओं का विनाश करने वाले (सर्वसेना) समग्र सेनाओं से युक्त सभा और सेनाधीश वर्त्तमान हैं (ता) वे सत्कार करने योग्य हैं और (ता) वे ही उत्तम अधिकार में स्थापन करने योग्य हैं ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सत्य न्याय से प्रजा की पालना करने में प्रयत्न करते हुए, सब प्रकार की विद्या और सर्वोत्तम सेनाओं से युक्त, दुष्टों की हिंसा से श्रेष्ठ, धनाढ्य और वीर पुरुषों की रक्षा करनेवाले होवें वे धन्यवाद के योग्य हैं ॥२॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ता गृणीहि नमस्येभिः शूषैः सुम्नेभिरिन्द्रावरुणा चकाना ।
वज्रेणान्यः शवसा हन्ति वृत्रं सिषक्त्यन्यो वृजनेषु विप्रः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् जन (विप्रः) मेधावी बुद्धिमान् आप जिन में से (अन्यः) सूर्य वा बिजुली (वज्रेण) किरण समूह के समान शस्त्रास्त्र और (शवसा) बल से (वृत्रम्) मेघ के समान शत्रु को (हन्ति) मारती है और जो (अन्यः) वायु के समान (वृजनेषु) मार्गों वा बलों में (सिषक्ति) सींचता है (ता) उन दोनों (इन्द्रावरुणा) वायु और बिजुली के समान (सुम्नेभिः) सुखों से (चकाना) कामना करते हुए (शूषैः) बलों और (नमस्येभिः) अन्नों के बीच सिद्ध हुए पदार्थों से सत्कार को प्राप्त हुओं की (गृणीहि) प्रशंसा करो ॥३॥

भावार्थ—जो सभा सेनापति सूर्य और वायु के समान प्रजा के पालनेवाले, उत्तम जनों से दुष्टों को निवारने वाले, मेघों के समान प्रजाजनों की कामनाओं को पूरित करते हैं वे सब से सत्कार करने योग्य हैं ॥३॥

फिर वे किन के साथ क्या करें इस विषय को कहते हैं—

ग्नाश्च यन्नरश्च वावृधन्त विश्वे देवासो नरां स्वगूर्ताः ।
प्रैभ्य इन्द्रावरुणा महित्वा द्यौश्च पृथिवि भूतमुर्वी ॥ ४ ॥

पदार्थ—(यत्) जो (विश्वे, देवासः) समस्त विद्वान् जन (नरः, च) और विद्वानों के बीच अग्रगामी (स्वगूर्ताः) अपने पराक्रम से उद्यमी जन (नराम्) मनुष्यों की (ग्नाः) वाणी तथा अपनी (च) भी वाणियों को प्राप्त होकर (वावृधन्त) सब ओर से बढ़ते हैं (प्र, एभ्यः) उत्कर्ष से इनके (इन्द्रावरुणा) बिजुली और सूर्य्य के समान वा (उर्वी) विस्तृत (पृथिवि) पृथिवी (द्यौः, च) और प्रकाश के समान वर्त्तमान (महित्वा) महिमा से (भूतम्) प्रसिद्ध होवें । वे सब जन मनुष्यों से सत्कार करने योग्य हैं ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जो विद्या, धर्म और विनय से बढ़ते हैं उन उद्यमियों के साथ इन प्रजाजनों की पालना करो ॥४॥

फिर राजसेनाजन क्या करें इस विषय को कहते हैं—

स इत्सुदानुः स्ववाँ ऋतावेन्द्रा यो वां वरुण दाशति त्मन् ।
इषा स द्विषस्तरेद्दास्वान्वंसद्रयिं रयिवतश्च जनान् ॥५॥११॥

पदार्थ—हे (इन्द्रा, वरुण) सूर्य्य और वायु के समान वर्त्तमान सभासेनाधीशो (वाम्) तुम दोनों का (यः) जो (सुदानुः) उत्तम देनेवाला (स्ववान्) जिसके अपने लोग बहुत विद्यमान हैं (ऋतावा) जो सत्य को भजता है वह (त्मन्) आत्मा में अभयपन (दाशति) देता है जो (दास्वान्) देनेवाला होता हुआ (द्विषः) शत्रुजनों को (तरेत्) तरे और (रयिवतः) बहुधनवान् (जनान्, च) जनों को भी (रयिम्) धन का (वंसत्) विभाग करे (सः, इत्) वही सर्वोत्तम और (सः) वह राजा होने योग्य है ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य वर्षा करा कर और वायु प्राण धारण करा कर यह दोनों सब प्राणियों को निर्भय करते हैं वैसे जो संग्राम के बीच अच्छे प्रकार सन्मुख हैं उनसे पाये हुए धन का यथावत् विभाग कर सोलहवाँ भाग भृत्यों के लिये देते हैं तथा वहाँ संग्राम में जो योद्धा जावें उनके लिये उससे सोलहवाँ भाग देते हैं वे ही विजयी होकर आपस में प्रसन्न होते हैं ॥ ५ ॥

फिर राजाजन क्या करें इस विषय को कहते हैं—

यं युवं दाश्वध्वराय देवा रयिं धत्थो वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
अस्मे स इन्द्रावरुणावपि ष्यात्प्र यो भनक्ति वनुषामशस्तीः ॥६॥

पदार्थ—हे (इन्द्रावरुणौ) बिजुली और वायु के समान वर्त्तमान सभा सेनाधीश (देवा) देने वालो (युवम्) तुम दोनों (दाश्वध्वराय) जिससे अहिंसामय यज्ञ देने योग्य होता है उसके लिये (अस्मे) हम लोगों में (यम्) जिस प्रशस्त (रयिम्) धन (वसुमन्तम्) बहुत ऐश्वर्य्ययुक्त और (पुरुक्षुम्) बहुत अन्न वाले जन को (धत्थः) धारण करो (यः) जो (वनुषाम्) राज्य को माँगनेवाले शत्रुओं की (अशस्तीः) अप्रशंसाओं को (प्र, भनक्ति) अच्छे प्रकार भञ्जित करता है (सः) सो (अपि) ही अतीव स्थिर (स्यात्) हो ॥६॥

भावार्थ—हे सभासेनाधीशो ! जो तुम लोग उत्तम बुद्धि और अतुल लक्ष्मी को हम लोगों में धरो तो हम लोग सदैव विजयी होकर विजय, राज्य और ऐश्वर्य्य को बढ़ावें ॥६॥

फिर कौन राजा योग्य है इस विषय को कहते हैं—

उत नः सुत्रात्रो देवगोपाः सूरिभ्य इन्द्रावरुणा रयिः ष्यात् ।
येषां शुष्मः पृतनासु साह्वान्प्र सद्यो द्युम्ना तिरते ततुरिः ॥७॥

पदार्थ—हे (इन्द्रावरुणा) वायु और बिजुली के समान वर्त्तमान प्रशंसित राजा (येषाम्, पृतनासु) जिन शूरवीरों की सेनाओं में (शुष्मः) बलवान् (साह्वान्) सहनशील (ततुरिः) उत्तीर्ण होनेवाला सेनापति वर्त्तमान है । तथा जो (सद्यः) शीघ्र (द्युम्ना) धन और यशों को (प्र, तिरते) उत्तमता से प्राप्त होता है वा जिसके पराक्रम से (रयिः) लक्ष्मी (स्यात्) हो (उत) और (नः) हम लोग (सूरिभ्यः) विद्वान् हैं उनके लिये (सुत्रात्रः) जो अच्छों की रक्षा करनेवालों की रक्षा करनेवाला (देवगोपाः) विद्वानों का रक्षक हो वही राजा होने योग्य है ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो सूर्य के समान प्रतापी, पवन के समान बलवान् विद्यावान् के समान नम्रता और शूरवीरों की रक्षा करनेवाले हों वे सर्वत्र शीघ्र शत्रुओं को जीत के यशस्वी होकर धनवान् होते हैं ॥७॥

फिर वे राजप्रजाजन कैसे वर्त्तें इस विषय को कहते हैं—

नू न इन्द्रावरुणा गृणाना पृङ्क्तं रयिं सौश्रवसाय देवा ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्धोऽपो न नावा दुरिता तरेम ॥८॥

पदार्थ—हे (इन्द्रावरुणा) सूर्य और चन्द्रमा के तुल्य वर्त्तमान (नः) हम लोगों को (गृणाना) प्रशंसा करते और (देवा) देनेवाले राजप्रजाजनो जैसे तुम दोनों (सौश्रवसाय) उत्तम यश होने के लिये (रयिम्) धन का (पृङ्क्तम्) सम्बन्ध करो (इत्था) ऐसे (महिनस्य) बड़े के (शर्धः) बल की (गृणन्तः) प्रशंसा करते हुए हम लोग (नावा) नाव से (अपः) जलों को (न) जैसे वैसे (दुरिता) दुःख से उल्लङ्घन करने योग्य कष्टों को (नू) शीघ्र (तरेम) तरें ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो राजप्रजाजन आपस में प्रीति वाले होकर अन्नादि पदार्थों के लिये धन इकट्ठा करते हैं वे सूर्य और चन्द्रमा के तुल्य प्रतापी होकर जैसे बड़ी नौका से दुःख से तरने योग्य समुद्रों से जन पार होते हैं वैसे ही बड़े २ दुःख और दरिद्रों को शीघ्र तरते हैं ॥८॥

फिर वह राजा कैसा है और उसके लिये क्या उपदेश देना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

प्र सम्राजे बृहते मन्म नु प्रियमर्च देवाय वरुणाय सप्रथः ।
अयं य उर्वी महिना महिव्रतः क्रत्वा विभात्यजरो न शोचिषा ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वन् (यः) जो (अयम्) यह (सप्रथः) सत्कीर्ति से विख्यात और (महिव्रतः) बड़े २ धर्मयुक्त कर्म जिसके विद्यमान वह (क्रत्वा) प्रज्ञा वा कर्म से (महिना) और महिमा वा (शोचिषा) अपने प्रकाश से (अजरः) वृद्धावस्थारूपी रोग से रहित सूर्य जीवात्मा वा परमात्मा के (न) समान (उर्वी) सूर्यमण्डल और पृथिवी को (विभाति) प्रकाशित करता है उस (वरुणाय) सब से उत्तम (देवाय) अभय देनेवाले (बृहते) बड़े (सम्राजे) अच्छे सूर्य के समान विद्या और नम्रता से प्रकाशमान के लिये (प्रियम्) प्रीति करनेवाले (मन्म) विज्ञान को आप (नु) शीघ्र (प्र, अर्च) सत्कार देवें ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे विद्वान् जनो ! जो सूर्य के तुल्य, जीव के तुल्य वा परमात्मा के तुल्य शुभ गुण कर्म स्वभावों से देदीप्यमान, विद्या और विनय से युक्त, उत्तम यत्न के साथ वाणी मन और शरीर से पिता के समान प्रजाजनों की पालना करने को प्रयत्न करता है उस चक्रवर्ती, सर्वोत्कृष्ट, विद्वान् और सत्कार करने योग्य राजा के लिये राज्य में सत्य नीति को आप लोग समझावें जिससे यह सर्वत्र धर्मयुक्त यशवाला हो ॥ ९ ॥

फिर वे राज प्रजाजन क्या कर कैसे हों इस विषय को कहते हैं—

इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रता ।
युवो रथो अध्वरं देववीतये प्रति स्वसरमुप याति पीतये ॥१०॥

पदार्थ—हे (इन्द्रावरुणा) बिजुली के समान वर्त्तमान (सुतपौ) सुन्दर ब्रह्मचर्य आदि अनुष्ठान तप जिनका और (धृतव्रता) जिन्होंने उत्तम कर्म धारण किये हैं वे सभा और सेनाधीशो जिन (युवोः) तुम लोगों का (रथः) विमान आदि यान (देववीतये) दिव्यगुणों की प्राप्ति और (पीतये) उत्तमोत्तम रस पीने के लिये (प्रति, स्वसरम्) प्रतिदिन (अध्वरम्) अहिंसामय यज्ञ को (उप, याति) प्राप्त होता है वे (इमम्) इस (सुतम्) उत्पन्न किये हुए (मद्यम्) जिससे जीव आनन्द को प्राप्त होता है उस (सोमम्) बड़ी २ ओषधियों के रस को (पिबतम्) पिओ ॥१०॥

भावार्थ—हे राजप्रजाजनो ! तुम प्रतिदिन सोमलता आदि उत्पन्न किये हुए सर्व रोगों के हरने, बल, बुद्धि, पराक्रम बढ़ानेवाले, हिंसारहित, महौषधियों के रस को पीकर धर्मात्मा होओ ॥ १० ॥

फिर वे क्या करके क्या करावें इस विषय को कहते हैं—

इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ।
इदं वामन्धः परिषिक्तमस्मे आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयेथाम् ॥११॥१२॥

पदार्थ—हे (इन्द्रावरुणा) बिजुली और वायु के समान वर्त्तमान (वृषणा) बलवान् राजा प्रजाजनो ! तुम (मधुमत्तमस्य) अतीव मधुरादिगुणयुक्त (वृष्णः) बल करनेवाले (सोमस्य) बड़ी २ ओषधियों के रसों के सेवन से (आ, वृषेथाम्) बलिष्ठ होओ जिन (वाम्) तुम दोनों का (इदम्) यह (परिषिक्तम्) सब ओर से सींचा हुआ (अन्धः) अन्न है वे तुम (अस्मे) हम लोगों में वा हम को (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) अवकाश में (आसद्य) बैठ के (मादयेथाम्) आनन्दित करो ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सोमलतादि रसयुक्त अन्न वा पान से आप आनन्दित होकर हमको आनन्दित करते हैं वे ही सब से सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ ११ ॥

इस सूक्त में इन्द्र वरुण के समान राजाप्रजा के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अरसठवाँ सूक्त और बारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

अथाष्टर्चस्यैकोनसप्ततितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्राविष्णू देवते । १, ३, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४, ८ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ ब्राह्म्युष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब आठ ऋचावाले उनहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा और शिल्पीजन क्या करके क्या करें इस विषय को कहते हैं—

सं वां कर्मणा समिषा हिनोमीन्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य ।
जुषेथां यज्ञं द्रविणं च धत्तमरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्राविष्णू**) सूर्य्य और बिजुली के समान वर्त्तमान महाराज और शिल्पीजनो जिन (**वाम्**) तुम दोनों को मैं (**कर्मणा**) अतीव चाहे हुए काम से (**सम् हिनोमि**) अच्छे प्रकार बढ़ाता हूँ (**अस्य**) इस (**अपसः**) काम के (**पारे**) पार में (**इषा**) अन्नादि पदार्थों से (**सम्**) अच्छे प्रकार बढ़ाता हूँ वे (**अरिष्टैः**) हिंसकरहित (**पथिभिः**) मार्गों से (**नः**) हम लोगों को (**पारयन्ता**) पार करते हुए तुम (**यज्ञम्**) संगतिकरण कार्य (**द्रविणम्, च**) और धन वा यश को (**जुषेथाम्**) सेवो और हम लोगों के लिये (**धत्तम्**) धारण कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे अध्यापक और उपदेशको ! जैसे वायु और बिजुली विमानादिकों मे अच्छे प्रकार जोड़े हुए गतिरूप कर्म के विषय को स्थान मे पार पहुँचाते हैं वैसे उनकी विद्या मे तुमको प्रेरणा देकर जिस प्रकार हम लोग बढ़ावें उस प्रकार बढ़कर निर्विघ्न मार्गों मे हम लोगो को लेजा के धन और यश की प्राप्ति निरन्तर कराइये उन आप लोगों की सेवा हम लोग निरन्तर करें ॥ १ ॥

फिर वे दोनों कैसे हैं और क्या करें इस विषय को कहते हैं—

या विश्वासां जनितारा मतीनामिन्द्राविष्णू कलशा सोमधाना ।

प्र वां गिरः शस्यमाना अवन्तु प्र स्तोमासो गीयमानासो अर्कैः ॥२॥

पदार्थ—हे राजा और शिल्पीजनो (**या**) जो (**विश्वासाम्**) समस्त (**मतीनाम्**) बुद्धियों के (**जनितारा**) उत्पन्न करनेवाले (**सोमधाना**) जिनके बीच सोम धरते हैं वे (**कलशा**) घट के समान वर्त्तमान (**इन्द्राविष्णू**) सूर्य और बिजुली जिन (**वाम्**) तुम दोनो मे (**अर्कैः**) मन्त्र वा सत्कारों से (**शस्यमानाः**) प्रशंसा को प्राप्त होती हुई (**गिरः**) वाणी (**गीयमानासः**) सुन्दरता से गाई हुई तथा (**स्तोमासः**) जो स्तुति किये जाते हैं वे सब को (**प्र, अवन्तु**) अच्छे प्रकार पालें उन सबों की तुम लोग (**प्र**) अच्छे प्रकार रक्षा करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! जो वायु और बिजुली बुद्धि बढ़ाने और सब विद्याओं के धारण करनेवाले वर्त्तमान हैं उनके अच्छे प्रकार प्रयोग से अर्थात् कार्यों में लाने से विद्या, शिक्षा तथा वाणियों की अच्छे प्रकार रक्षा करो ॥ २ ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को कहते हैं—

इन्द्राविष्णू मदपती मदानामा सोमं यातं द्रविणो दधाना ।

सं वामञ्जन्त्वक्तुभिर्मतीनां सं स्तोमासः शस्यमानास उक्थैः ॥३॥

पदार्थ—हे (**इन्द्राविष्णू**) वायु और बिजुली के समान सभासेनापतियो (**मदानाम्**) आनन्दों के बीच (**मदपती**) आनन्द के पालने और (**द्रविणः**) धन वा यश के (**दधाना**) धारण करनेवालो ! तुम दोनो (**सोमम्**) ऐश्वर्य्य को (**आ, यातम्**) प्राप्त होओ (**वाम्**) तुम दोनो को (**मतीनाम्**) मनुष्यों के बीच (**अक्तुभिः**) रात्रियों से और (**उक्थैः**) वेदस्थ स्तोत्रों से (**शस्यमानासः**) प्रशंसायुक्त की जाती (**स्तोमासः**) स्तुतियां (**सम्, अञ्जन्तु**) अच्छे प्रकार प्रकट करें जिससे प्रीति के साथ तुम दोनो हम लोगों को (**सम्**) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो वायु और बिजुली के समान सबके आनन्द के बढ़ाने वाले, मनुष्यों से प्रशस्त किये जाते और विद्या वा धन को अच्छे प्रकार देते हुए प्रयत्न करते हैं वे ही राजकर्म के योग्य होते हैं ॥ ३ ॥

फिर उस राजा को कौन प्राप्त होकर क्या करते हैं इस विषय को कहते हैं—

आ वामश्वासो अभिमातिषाह इन्द्राविष्णू सधमादो वहन्तु ।

जुषेथां विश्वा हवना मतीनामुप ब्रह्माणि शृणुतं गिरो मे ॥४॥

पदार्थ—हे (**इन्द्राविष्णू**) वायु और सूर्य के तुल्य वर्त्तमान सभासेनाधीशो (**वाम्**) तुम दोनों को (**अश्वासः**) महात्माजन (**अभिमातिषाहः**) अभिमानयुक्त शत्रुओं को सह सकते हैं वे (**सधमादः**) समान स्थान को (**आ, वहन्तु**) प्राप्त करें उन (**मतीनाम्**) मनुष्यों के (**विश्वा**) सब (**हवना**) देने लेने योग्य (**ब्रह्माणि**) धनों को (**जुषेथाम्**) सेवो और (**मे**) मेरी (**गिरः**) वाणियों को भी (**उप, शृणुतम्**) समीप मे सुनो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! यदि बुद्धिमान्, अतीव बलवान् और शत्रुओं के बल के सहने वाले मनुष्य आपको प्राप्त होवें तो वे सब ऐश्वर्य और विद्या को संसार में विस्तारें ॥ ४ ॥

फिर वे क्या करें इस विषय को कहते हैं—

इन्द्राविष्णू तत्पनयाय्यं वां सोमस्य मद उरु चक्रमाथे ।

अकृणुतमन्तरिक्षं वरीयोऽप्रथतं जीवसे नो रजांसि ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे राजा और प्रजाजनो जो (**इन्द्राविष्णू**) वायु और सूर्य्य (**सोमस्य**) ऐश्वर्य्य का (**मदे**) आनन्द प्राप्त होने पर (**तत्**) उस (**अन्तरिक्षम्**) भूमि और सूर्य्य के बीच का पोल को (**पनयाय्यम्**) प्रशंसा के योग्य करते हैं उनकी (**वाम्**) तुम (**उरु, चक्रमाथे**) बहुत कामना करो और (**वरीयः**) अत्यन्त श्रेष्ठ को (**अप्रथतम्**) विख्यात करो उससे (**नः**) हम लोगों के (**जीवसे**) जीवन को तथा (**रजांसि**) ऐश्वर्य्यों को (**अकृणुतम्**) सिद्ध करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे राजप्रजाजनो ! जैसे यज्ञ से शोधे हुए वायु और बिजुली समस्त चराचर जगत् को प्रशंसा के योग्य और नीरोग करते हैं वैसे विज्ञान कर उनसे हमारे ऐश्वर्य्य और जीवन को अधिक करो ॥ ५ ॥

फिर उन्हें कैसे सिद्ध कर क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

इन्द्राविष्णू हविषा वावृधानाग्राद्वाना नमसा रातहव्या ।

घृतासुती द्रविणं धत्तमस्मे समुद्रः स्थः कलशः सोमधानः ॥६॥

पदार्थ—हे ऋत्विज और यजमानो ! जैसे (**हविषा**) होमे हुए पदार्थ से (**वावृधाना**) निरन्तर शुद्धि म बढ़े वा बढ़ाने (**अग्राद्वाना**) अग्रभाग के भोगने को विभाग करनेवाले और (**नमसा**) अन्नादि पदार्थ से (**रातहव्या**) देने योग्य देने वाले (**घृतासुती**) सब ओर से जिनकी घी से प्रेरणा होती वे (**इन्द्राविष्णू**) वायु और सूर्य (**अस्मे**) हम लोगो मे (**द्रविणम्**) धन और यश को धरते हैं वैसे तुम (**धत्तम्**) धरो तथा (**सोमधानः**) सोमादि ओषधि जिसमे स्थापन की जाती और (**समुद्रः**) अच्छे प्रकार जलत गे लेते है जिसमें वह अन्तरिक्ष वा मेघ (**कलशः**) घट के समान वर्त्तमान है उसके समान (**स्थः**) होते हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे ऋत्विग् और यजमान आदि जनो ! सुगन्धित और घृतादि पदार्थों के होम से वायु और सूर्य को शुद्ध कर सबके भाग्य की सिद्धि कर सबके सुख को बढ़ाने वाले होओ ॥ ६ ॥

इन्द्राविष्णू पिबतं मध्वो अस्य सोमस्य दस्रा जठरं पृणेथाम् ।

आ वामन्धांसि मदिराण्यग्मन्नुप ब्रह्माणि शृणुतं हवं मे ॥७॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको (**दस्रा**) दुःख के विनाश करनेवालो (**वाम्**) तुम दोनो को जो (**मध्वः**) मधुरगुणयुक्त (**अस्य, सोमस्य**) सोम आदि ओषधियों से उत्पन्न हुए इस रस के (**मदिराणि**) आनन्द करनेवाले (**अन्धांसि**) अन्न (**अग्मन्**) प्राप्त होवें उनको (**इन्द्राविष्णू**) वायु और बिजुली के समान (**पिबतम्**) पिओ और उनसे (**जठरम्**) उदर को (**आ, पृणेथाम्**) अच्छे प्रकार भरो फिर (**मे**) मेरे (**ब्रह्माणि**) पढ़े हुए वेदस्तोत्रों को और (**हवम्**) नित्य के वेदपाठ को (**उप, शृणुतम्**) समीप मे सुनो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य औषधों से शरीर के रोगों का तथा विद्या, सत्सग और धर्म के अनुष्ठान से आत्मा के रोगों को निवार के वायु और बिजुली के समान बलिष्ठ हो विद्याभ्यास करके विद्यार्थियों की परीक्षा करते हैं वे सब के दुःखों को निवृत्त कर आनन्द दे सकते हैं ॥ ७ ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को कहते हैं—

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः ।

इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥८॥१४॥

पदार्थ—हे (**विष्णो**) बिजुली के समान व्याप्त होनेवाले (**इन्द्र, च**) और परमैश्वर्य्यवान् वायु के समान वर्त्तमान तुम दोनो (**यत्**) जो (**सहस्रम्**) असंख्य सेना समूह है (**तत्**) उसे (**त्रेधा**) तीन प्रकार (**अपस्पृधेथाम्**) स्पर्द्धा अर्थात् तर्क वितर्क से स्थापित करो और उसे (**वि, ऐरयेथाम्**) विविध प्रकार से यथास्थान स्थित कराओ ऐसा करो तो तुम (**उभा**) दोनो (**जिग्यथुः**) विजय को प्राप्त होते हो (**न**) नहीं (**परा, जयेथे**) पराजय को प्राप्त होते हो तथा (**एनोः**) इनके बीच (**कतरः**) कोई एक (**चन**) भी (**न**) नहीं (**परा, जिग्ये**) पराजित होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे सेनाबल के अधीशो ! यदि आप लोग सर्वदा सेना की उन्नति के लिये और युद्धविद्या की वृद्धि के लिये प्रयत्न कीजिये तो सर्वत्र जीतिये कहीं भी न पराजित हूजिये ॥ ८ ॥

इस सूक्त मे इन्द्र और विष्णु के समान सभा और सेनेश आदि के कर्म्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह उनहत्तरवां सूक्त और तेरहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षडृचस्य सप्ततितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते । १ ५ निचृज्जगती । २, ३, ४, ६ जगतीच्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले सत्तरवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में भूमि और सूर्य कैसे वर्त्तमान हैं इस विषय को कहते हैं—

घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।

द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो तुम (**भुवनानाम्**) समस्त लोकों सम्बन्धी (**अभिश्रिया**) सब ओर से कान्तियुक्त (**उर्वी**) बहुत पदार्थों से युक्त और (**पृथ्वी**) विस्तार से युक्त (**घृतवती**) जिनमे बहुत उदक वा दीप्ति विद्यमान वे तथा (**मधुदुघे**) जो मधुरादि रसों से परिपूर्ण करनेवाले (**सुपेशसा**) जिनका शोभायुक्त रूप वा जिनसे

दीप्तिमान सुवर्ण उत्पन्न होता (भूरिरेतसा) जिन से बहुत वीर्य्य वा जल उत्पन्न होता और (अजरे) जो आजीर्ण अर्थात् छिन्न भिन्न नहीं वे (वरुणस्य) सूर्य्य वा वायु के (धर्मणा) आकर्षण = खींचने वा धारण करने आदि गुण से (विष्कभिते) विशेषता से धारण किये हुए (द्यावापृथिवी) भूमि और सूर्य्य हैं उन्हें यथावत् जानो ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप भूगर्भ और बिजुली की विद्या को जानो और जो दो पदार्थ सूर्य्य तथा वायु से धारण किये हुए हैं उनसे बल की वृद्धि और कामना की पूर्णता करो ॥ १ ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को कहते हैं—

असश्चन्ती भूरिधारे पयस्वती घृतं दुहाते सुकृते शुचिव्रते ।

राजन्ती अस्य भुवनस्य रोदसी अस्मे रेतः सिञ्चतं यन्मनुर्हितम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (असश्चन्ती) अलग अलग वर्त्तमान (भूरिधारे) जिनकी बहुत धारायें विद्यमान (पयस्वती) जो बहुत जल से युक्त (सुकृते) जो ईश्वर ने सुन्दर बनाये वा अच्छे कर्म करानेवाले और (शुचिव्रते) पवित्र कर्मयुक्त हैं तथा (अस्य) इस (भुवनस्य) ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में (राजन्ती) प्रकाशमान हैं वे (रोदसी) आकाश और पृथिवी (अस्मे) हम लोगों में (यत्) जो (मनुर्हितम्) मनुष्यों का हित करनेवाला है उस (घृतम्) जल को (दुहाते) पूर्ण करते हैं उस (रेतः) जल वा वीर्य्य को (सिञ्चतम्) सींचते हैं उन्हें यथावत् उपकार के लिये प्राप्त होओ ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! सूर्य्य और भूमि ही सब जगत् की रक्षा के निमित्त बहुत उदक आदि पदार्थयुक्त और सब के काम को पूर्ण करते हैं उनको यथावत् जान कर कार्य्य की सिद्धि के लिए अच्छे प्रकार उनका प्रयोग करो ॥ २ ॥

फिर इनको जान कौन कैसा होता है इस विषय को कहते हैं—

यो वामृजवे क्रमणाय रोदसी मर्तो ददाश धिषणे स साधति ।

प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि युवोः सिक्ता विषुरूपाणि सव्रता ॥३॥

पदार्थ—हे राजा प्रजाजनो ! जो (धिषणे) प्रज्ञा और प्रगल्भता के कारण (रोदसी) आकाश और पृथिवी (वाम्) तुम लोगों को (ऋजवे) सरलपन के लिये और (क्रमणाय) गमन वा आगमन के लिये होती हैं उनको (यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य (ददाश) देता है (सः) वह कार्यों को (प्र, साधति) प्रसिद्ध करता है और (प्रजाभिः) उत्पन्न हुए पदार्थों के साथ (जायते) प्रसिद्ध होता है और (युवोः) तुम्हारे (धर्मणः) धर्म से (विषुरूपाणि) व्याप्तरूप (सव्रता) समान कर्मों को तथा (सिक्ता) वीर्य्य वा उदकों को सींचे हुए करते हैं वे (परि) सब ओर से सिद्ध करने योग्य हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो भूगर्भविद्या और द्यावापृथिवी के कर्मों को जानते हैं वे प्रजा, पशु, विद्या और राज्य से युक्त होते हैं ॥ ३ ॥

फिर वे कैसे हैं और क्या प्राप्त करते हैं इस विषय को कहते हैं—

घृतेन द्यावापृथिवी अभीवृते घृतश्रिया घृतपृचा घृतावृधा ।

उर्वी पृथ्वी होतृवूर्ये पुरोहिते ते इद्विप्रा ईळते सुम्नमिष्टये ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (विप्राः) मेधावी बुद्धिमान् पुरुष (घृतेन) जल से तथा (उर्वी) बहुत गुण और पदार्थों से युक्त (अभीवृते) सब ओर से वर्त्तमान (घृतश्रिया) अत्यन्त प्रकाश वा अवकाश धन जिन का (घृतपृचा) जो प्रकाश वा जल से अच्छे प्रकार सम्बन्ध किये हुए और (घृतावृधा) तेज से बढ़ते हैं तथा (होतृवूर्ये) होता जन जिनसे स्वीकार होते और (पुरोहिते) आगे से हित को धारण करते हुए (इष्टये) संग के लिये (पृथ्वी) बहुत विस्तारयुक्त जो (द्यावापृथिवी) बिजुली और अन्तरिक्ष हैं उनकी (ईळते) प्रशंसा करते हैं (ते, इत्) वे ही सब से (सुम्नम्) सुख पाते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे उत्तम बुद्धिमान् जन बिजुली और अन्तरिक्ष की विद्या को जान के कार्यों में लगाते हैं वैसे तुम भी उनका प्रयोग करो ॥ ४ ॥

फिर उनसे क्या करने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

मधु नो द्यावापृथिवी मिमिक्षतां मधुश्चुता मधुदुघे मधुव्रते ।

दधाने यज्ञं द्रविणं च देवता महि श्रवो वाजमस्मे सुवीर्यम् ॥५॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको जो (मधुश्चुता) मधुर जल के वर्षाने और (मधुदुघे) मधुर जल से काम पूरे करने (मधुव्रते) जिनके मधुर काम (देवता) जो दिव्यरूप (अस्मे) हम लोगों में (यज्ञम्) संगतिमय व्यवहार (द्रविणम्) धन (महि) महान् (श्रवः) अन्न (वाजम्) विज्ञान (सुवीर्यम्, च) और उत्तम पराक्रम को भी (दधाने) स्थापन करते हुए (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि यह दोनों पदार्थ वर्त्तमान हैं उनसे तुम (नः) हमारे लिये (मधु) मधुर जल के (मिमिक्षताम्) सींचने की इच्छा करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे भूमि और सूर्य्य सत्य कर्मयुक्त, इच्छा पूरी करने और मधुरादि रस देने, धन, अन्न, बल और विज्ञान के बढ़ाने वाले हों वैसा अनुष्ठान करो ॥ ५ ॥

फिर वे कैसे किसके तुल्य और क्या करते हैं इस विषय को कहते हैं—

ऊर्जं नो द्यौश्च पृथिवी च पिन्वतां पिता माता विश्वविदा सुदंससा ।

संरराणे रोदसी विश्वशम्भुवा सनिं वाजं रयिमस्मे समिन्वताम् ॥६॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (विश्वविदा) जिन से सर्व सुख को प्राप्त होते हैं (सुदंससा) जिनसे सुन्दर काम सिद्ध होते हैं (संरराणे) जो अच्छे प्रकार सुख देते हैं और (विश्वशम्भुवा) जो सब के लिये सुख की भावना कराने वे (रोदसी) बहुपदार्थयुक्त द्यावापृथिवी (अस्मे) हम लोगों में (सनिम्) अच्छे प्रकार विभाग को और (वाजम्) विज्ञान वा अन्न तथा (रयिम्) धन को (सम्, इन्वताम्) उत्तमता से व्याप्त हों तथा (पिता) पिता के समान (द्यौः) सूर्य्य वा विद्युत् अग्नि (च) और (माता) माता के समान (पृथिवी) भूमि (च) भी (नः) हमारे लिये (ऊर्जम्) अन्न वा पराक्रम को (पिन्वताम्) सुखपूर्वक परिपूर्ण करें उनको यथावत् जानो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! आप जो सूर्य पिता के समान, जो पृथिवी माता के समान ये दोनों सर्व सुख देने वा धन और ऐश्वर्य्य की प्राप्ति कराने वा मंगल करानेवाले उत्तम क्रियायुक्त और बल वा पराक्रम देनेवाले वर्त्तमान हैं उनको उत्तम यत्न के साथ कैसे न जानो ॥ ६ ॥

इस सूक्त में द्यावापृथिवी और उनके समान अध्यापक और उपदेशक वा ऋत्विक् और यजमानों के काम का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सत्तरवां सूक्त और चौदहवां वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अथ षडृचस्यैकसप्ततितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । सविता देवता । १ जगती । २, ३ निचृज्जगतीछन्दः । निषादः स्वरः । ४ त्रिष्टुप् । ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले एकसत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम द्वितीय मन्त्र में फिर राजा कैसा हो इस विषय को कहते हैं—

उदु ष्य देवः सविता हिरण्यया बाहू अयंस्त सवनाय सुक्रतुः ।

घृतेन पाणी अभि प्रुष्णुते मखो युवा सुदक्षो रजसो विधर्मणि ॥१॥

पदार्थ—जो (मखः) यज्ञ के समान सुख करनेवाला (विधर्मणि) विशेष धर्म में (सुदक्षः) सुन्दर बल जिसका वह (युवा) ज्वान (सुक्रतुः) उत्तम बुद्धियुक्त (सविता) ऐश्वर्य्यवान् (देवः) विद्वान् (सवनाय) ऐश्वर्य के लिये (घृतेन) जल वा घी से युक्त (पाणी) प्रशंसा करने योग्य (हिरण्यया) सुवर्ण आदि आभूषण युक्त (बाहू) भुजाओं को (उत्, अयंस्त) उठाता है (स्यः, उ) वही (रजसः) लोक के विरोधियों को (अभि, प्रुष्णुते) सब ओर से भस्म करता है ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् अतिबल से युक्त भुजाओंवाला, अत्यन्त बुद्धिमान्, विशेषता में धर्मात्मा होकर ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये निरन्तर उद्यम करता है वह ऐश्वर्य को प्राप्त होकर फिर सब प्रजा के धर्म में प्रवेश कर जैसे यज्ञ सुख देता है वैसे सुखी करता है ॥ १ ॥

देवस्य वयं सवितुः सवीमनि श्रेष्ठे स्याम वसुनश्च दावने ।

यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो निवेशने प्रसवे चासि भूमनः ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वान् राजा (यः) जो (द्विपदः) मनुष्यादि दो पगवाले जीव और (यः) जो (चतुष्पदः) गो आदि चार पग वाले पशु आदि जीवों के (भूमनः) बहुरूपी (विश्वस्य) समग्र संसार के (प्रसवे) उस उत्पन्न हुए स्थान में (निवेशने) जिसमें सब निवेश करते हैं अभिव्याप्त होकर विराजमान है उस (सवितुः) सकल जगत् के उत्पन्न करनेवाले (देवस्य) अपने आप प्रकाशमान परमेश्वर के (श्रेष्ठे) प्रशंसित व्यवहार में (सवीमनि) उत्पन्न हुए जगत् में (वसुनः, च) धन के भी (दावने) देने में जैसे (वयम्) हम लोग उद्यत (स्याम) हों वैसे तुम (च) भी जिस कारण (असि) हो इससे यहाँ राजा होओ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! जैसे इस जगत् में जगदीश्वर अभिव्याप्त होकर सब की रक्षा करता है वैसे ही इस जगत् में व्याप्त होकर विद्या और विनय से समस्त राज्य को पुत्र के समान पालो ॥ २ ॥

फिर वह राजा कैसा और किससे क्या करे इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वं शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् ।

हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥३॥

पदार्थ—हे (सवितः) अच्छे कामों में प्रेरणा देनेवाले राजन् ! (त्वम्) आप (अद्य) अब (अदब्धेभिः) न नष्ट करने वा न नष्ट होने और (शिवेभिः) सुख करने वा मंगल विधान करनेवाले (पायुभिः) रक्षा के निमित्तों से (नः) हमारे (गयम्) संतान धन और घर की (परि, पाहि) सब ओर से रक्षा करो तथा (हिरण्यजिह्वः) सुवर्ण के समान सत्य से जिसकी वाणी प्रकाशित है ऐसे होते हुए

(नव्यसे) अतीव नवीन (सुविताय) ऐश्वर्य्य के लिए हमारे पुत्रादिकों की (रक्ष) रक्षा करो जैसे (अघशंसः) चोर (नः) हम लोगों के प्रति (माकिः) न (ईशत) विघ्नों के करने को समर्थ हो वैसा करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा प्रयत्न के साथ प्रजाओं की अच्छे प्रकार रक्षा कर डाकुओं को मारे वही नवीन नवीन ऐश्वर्य्य को उत्पन्न कर निरन्तर प्रजाजनों का प्यारा और धार्मिक हो ॥ ३ ॥

उदु ष्य देवः सविता दमूना हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमस्थात् ।
अयोहनुर्यजतो मन्द्रजिह्व आ दाशुषे सुवति भूरि वामम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (दमूनाः) दमनशील (हिरण्यपाणिः) सुवर्ण आदि हाथ में लिये हुए (अयोहनुः) लोहे के समान दृढ़ ठोढ़ी रखने और (यजतः) संग करनेवाला (मन्द्रजिह्वः) जिसकी आनन्द देनेवाली वाणी विद्यमान वह (सविता) ऐश्वर्य्यदाता और (देवः) सुख देनेहारा विद्वान् (प्रतिदोषम्) जैसे रात्रि रात्रि के प्रति सूर्य्य उदय होता है वैसे प्रजा पालन करने के लिये (उत्, अस्थात्) उठता है तथा (दाशुषे) दान करनेवाले के लिये (भूरि) बहुत (वामम्) प्रशंसा योग्य कर्म के प्रति (आ, सुवति) उद्योग करने में प्रेरणा देता है (स्य, उ) वही राजा होने को योग्य होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे ईश्वर से नियुक्त किया सूर्य्यलोक प्रतिक्षण अपनी क्रिया को नहीं छोड़ता वैसे ही जो राजा न्याय से राज्य पालने के लिये प्रतिक्षण उद्योग करता है, एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोता तथा सब मनुष्यों को उत्तम कर्मों के बीच प्राप्त वर्त्ताकर उन्हें प्रेरणा देता है वही शम दम आदि शुभगुणों से युक्त राजा होने योग्य है यह सब जानें ॥ ४ ॥

फिर राजा किसके तुल्य कैसा हो इस विषय को कहते हैं—

उदू अयाँ उपवक्तेव बाहू हिरण्यया सविता सुप्रतीका ।
दिवो रोहांस्यरुहत्पृथिव्या अरीरमत्पतयत्कच्चिदभ्वम् ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (सविता) सूर्य्यमण्डल (दिवः) आकाश को (रोहांसि) चढ़ाइयों को (अरुहत्) चढ़ता है और (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष के मध्य में भूमि के समस्त (अभ्वम्) महान् न्याय को (अरीरमत्) वर्त्तावे (चित्) और (पतयत्) पति के समान आचरण करे वैसे जिसकी (सुप्रतीका) सुन्दर प्रतीति करनेवाले काम जिनसे होते ऐसे (हिरण्यया) हिरण्य के समान सुदृढ़ सुशोभित (बाहू) भुजा वर्त्तमान हैं वह (उ) ही (उपवक्तेव) समीप कहनेवाले के समान (कत्) कब (उत्, अयान्) उदय हो ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । हे राजन् ! आप सब सूर्य के समान न्याय और विनय से प्रकाशित सुन्दर दृढ़ अङ्गयुक्त, श्रेष्ठ धर्मज्ञ विद्वानों के समान वक्ता होओ । जैसे इस जगत् में सर्वोपकार के लिये ईश्वर ने सूर्य बनाया है वैसे ही सब के सुख के लिये राजा बनाया है ॥५॥

फिर वह प्रजाओं के लिये क्या करे इस विषय को कहते हैं—

वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यं सावीः ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥६।१५।

पदार्थ—हे (सवितः) ऐश्वर्य्य के देनेवाले (देव) दिव्यगुणयुक्त राजन् ! जैसे (हि) जिस कारण से आप (अद्य) अब (वामम्) प्रशंसा करने योग्य सुख (उ) और (श्वः) अगले दिन (वामम्) प्रशंसा करने योग्य सुख तथा (दिवेदिवे) प्रतिदिन (वामम्) अति उत्तम सुख (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (सावीः) उत्पन्न करो उससे उस (अया) इस (धिया) प्रज्ञा वा कर्म से (भूरेः) बहुत प्रकार के (वामस्य) प्रशंसित (क्षयस्य) घर के (वामभाजः) वामभाज अर्थात् प्रशंसित सुख भोगनेवाले हम लोग (स्याम) हों ॥६॥

भावार्थ—हे राजन् ! जिससे आप हम प्रजाजनों के लिये प्रशंसनीय सुख को उत्पन्न करते और रक्षा का विधान करते हो वैसे हम लोग सुख से धन, घर और प्रशंसित कामों के सेवने वाले होकर आपकी आज्ञा में नित्य वर्तें ॥६॥

इस सूक्त में सविता, राजा और प्रजा के कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह इकहत्तरवां सूक्त और पन्द्रहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ पञ्चर्चस्य द्विसप्ततितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ।
इन्द्रासोमौ देवते । १ निचृत्त्रिष्टुप् । २,४,५ विराट्त्रिष्टुप् ।
३ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब बहत्तरवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथममन्त्र में अध्यापक और उपदेशक किसके तुल्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

इन्द्रासोमा महि तद्वां महित्वं युवं महानि प्रथमानि चक्रथुः ।
युवं सूर्यं विविदथुर्युवं स्वर्विश्वा तमांस्यहतं निदश्च ॥१॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको जैसे (इन्द्रासोमा) बिजुली और चन्द्रमा (सूर्यम्) सूर्य्य को (विविदथुः) प्राप्त होते हैं वैसे (युवम्) तुम न्याय-रूपी सूर्य्य को प्राप्त होओ जैसे यह बड़े कामों को करते हैं वैसे (वाम्) तुम्हारा (तत्) वह (महि) महान् (महित्वम्) बड़प्पन है और वैसे (युवम्) तुम (महानि) प्रशंसायोग्य (प्रथमानि) ब्रह्मचर्य्य और विद्या ग्रहण और दान आदि कामों को (चक्रथुः) करो (युवम्) तुम जैसे यह दोनों (विश्वा) समस्त (तमांसि) रात्रि के समान अविद्या आदि अन्धकारों को नष्ट करते हैं वैसे अविद्या और अन्याय से उत्पन्न हुए पापों को (अहतम्) नष्ट करो और (स्वः) सुख की प्राप्ति करो वा कराओ (निदः, च) और निन्दक तथा पाखण्डियों को निरन्तर नष्ट करो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे प्रजाजनो ! जैसे सूर्य को प्राप्त होकर चन्द्र आदि लोक प्रकाशित होते हैं वैसे ही अध्यापक और उपदेशकों का संग कर सब प्रकाशित आत्मावाले हो ॥१॥

फिर वे किसके तुल्य क्या करते हैं इस विषय को कहते हैं—

इन्द्रासोमा वासयथ उषासमुत्सूर्यं नयथो ज्योतिषा सह ।
उप द्यां स्कम्भथुः स्कम्भनेनाप्रथतं पृथिवीं मातरं वि ॥२॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको जैसे (इन्द्रासोमा) वायु और बिजुली (उषासम्) प्रभातकाल को (उत्) और (सूर्यम्) सूर्य्यमण्डल को बसाते हैं वैसे विद्या और न्याय से प्रजाजनों को तुम (वासयथः) बसाओ जैसे दोनों (ज्योतिषा) ज्योति के (सह) साथ (द्याम्) प्रकाश को रोके वैसे अच्छे व्यवहार को (उप, स्कम्भथुः) व्यवहार करनेवाले के समीप रोको जैसे यह दोनों (स्कम्भनेन) रोकने से (मातरम्) माता के समान वर्त्तमान (पृथिवीम्) पृथिवी को विस्तारते हैं वैसे ही राज्य को (वि, अप्रथतम्) विशेषता से विस्तारो और सुख को (नयथः) प्राप्त करो ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे अध्यापक और उप-देशको ! जैसे बिजुली और पवन सूर्य्य आदि लोकों का निवास कराते हैं वैसे ही प्रजाजनों को अच्छे उपदेश से सुख में बसाओ ॥२॥

फिर वे किसके तुल्य कैसे वर्त्ताव करावें इस विषय को कहते हैं—

इन्द्रासोमावहिमपः परिष्ठां हथो वृत्रमनु वां द्यौरमन्यत ।
प्रार्णांस्यैरयतं नदीनामा समुद्राणि पप्रथुः पुरूणि ॥३॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको तुम दोनों जैसे (इन्द्रासोमौ) बिजुली और पवन (परिष्ठाम्) सब ओर से स्थित होनेवाले (वृत्रम्) सूर्यावरक (अहिम्) मेघ को (हथः) छिन्नभिन्न करते और (अपः) जलों को (आ, पप्रथुः) व्याप्त होते हैं वैसे अविद्या को नष्ट भ्रष्ट कर विद्या को विस्तारो । जैसे यह दोनों (नदी-नाम्) नदियों के (पुरूणि) बहुत (समुद्राणि) उन स्थानों को जिनमें अच्छे प्रकार जलतरङ्ग लेते हैं तथा (अर्णांसि) जलों को प्रेरणा देते हैं वैसे शास्त्रों के बीच मनुष्यों के अन्तःकरणों को (प्र, ऐरयतम्) प्रेरित करो ऐसे (वाम्) तुम दोनों के बीच एक (द्यौः) प्रकाश के समान (अमन्यत) मानता है दूसरा (अनु) तदनुगामी होता है ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे अध्यापक और उपदेशको ! जैसे वायु और बिजुली मेघ को नष्ट भ्रष्ट कर जल को वर्षाते हैं वैसे कुत्सित शिक्षा को विनष्ट कर अच्छी शिक्षा की वर्षा करो ॥३॥

फिर वे किसके तुल्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

इन्द्रासोमा पक्वमामास्वन्तर्नि गवामिद्दधथुर्वक्षणासु ।
जगृभथुरनपिनद्धमासु रुशच्चित्रासु जगतीष्वन्तः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको ! तुम दोनों जैसे (इन्द्रासोमा) पवन और बिजुली (आमासु) न पकी हुई सामग्रियों के (अन्तः) बीच (पक्वम्) पाक को (नि, दधथुः) स्थापन करते हैं और (गवाम्) किरणों के बीच (इत्) निश्चित तथा (आसु) इन (वक्षणासु) नदियों में (अनपिनद्धम्) खुला हुआ (जगृभथुः) ग्रहण करते हैं तथा इन (चित्रासु) अद्भुत (जगतीषु) सृष्टियों के (अन्तः) बीच (रुशत्) सुरूप को धारण करते हैं वैसे तुम वर्त्तो ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो बिजुली और सोम के समान सब में दृढ़ ज्ञान स्थापन कर नदी के प्रवाह के तुल्य आगे चलाते हैं वे संसार में कल्याण करने वाले होते हैं ॥४॥

फिर वे किसके तुल्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

इन्द्रासोमा युवमङ्ग तरुत्रमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथे ।
युवं शुष्मं नर्यं चर्षणिभ्यः सं विव्यथुः पृतनाषाहमुग्रा ॥५॥१६॥

पदार्थ—हे (अङ्ग) हे मित्र अध्यापक और उपदेशक (युवम्) तुम दोनों (इन्द्रासोमा) वायु और बिजुली के समान वर्त्तमान (तरुत्रम्) दुःख से तारने और (अपत्यसाचम्) संतान के बीच व्याप्त होने वाले (श्रुत्यम्) श्रवणों में उत्तम ज्ञान को (रराथे) देओ और (युवम्) तुम दोनों (चर्षणिभ्यः) मनुष्यों के लिये (उग्रा)

तेजस्वी होते हुए (पृतनाषाहम्) सेनाओं को सहने वाले (नर्यम्) मनुष्यों में उत्तम (शुष्मम्) बल को (सम्, पिपृथुः) अच्छे प्रकार युक्त करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे अध्यापक वा उपदेशको ! आप लोग पवन और बिजुली के समान सर्वत्र अनुकूलता से संग वाले होते हुए उत्तम संतानों को उत्पन्न कर मनुष्यों के हित करनेवाले शरीर और आत्मा के बल को उत्पन्न करें जिससे शत्रुओं की सेना को सह सकें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, सोम, अध्यापक और उपदेशकों के काम का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह बहत्तरवां सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ त्र्यृचस्य त्रिसप्ततितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । १, २ त्रिष्टुप् । ३ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब तीन ऋचावाले तिहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा किसके तुल्य कैसा हो इस विषय को कहते हैं—

यो अद्रिभित्प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत्पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥१॥

पदार्थ—हे राजन् (यः) जो (प्रथमजाः) प्रथम उत्पन्न हुआ (अद्रिभित्) मेघों का विदीर्ण करने और (ऋतावा) जल को अच्छे प्रकार सेवने वाला (बृहस्पतिः) पृथिवी आदि रक्षक और (आङ्गिरसः) वायु और बिजुलियों में उत्पन्न हुआ (हविष्मान्) जिसमें हवी होम हुए विद्यमान जो (द्विबर्हज्मा) दो से बढ़ता है उससे युक्त भूमि जिसकी वह (प्राघर्मसत्) प्रताप का सेवनेवाला (नः) हमारा (पिता) पालने वाले के समान (वृषभः) वर्षा करानेवाला मेघों को छिन्नभिन्न करनेवाला (रोदसी) आकाश और पृथिवी को प्राप्त हो (आ, रोरवीति) बिजुली आदि के योग से सब ओर से शब्द करता है उसके तुल्य तुम होओ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा मेघ का सूर्य जैसे वैसे शत्रुओं का विदीर्ण करनेवाला, ज्येष्ठ, महात्मा, धर्मात्मा जनों की पालना करनेवाला, प्रजावान्, पृथिवी पर सुख वर्षानेहारा होकर प्रजाओं में न्याय का निरन्तर उपदेश करे वही पृथिवी के तुल्य क्षमाशील और प्रतापवान् तथा प्रजाजनों में पिता के समान वर्त्ते ॥ १ ॥

फिर उस राजा को कैसे सेना के अधिकारी करने चाहियें इस विषय को कहते हैं—

जनाय चिद्य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
घ्नन्वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूँरमित्रान्पृत्सु साहन् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो (देवहूतौ) विद्वानों के बुलाने में (बृहस्पतिः) बड़ों की पालना करनेवाले सूर्यलोक के समान (ईवते) समीप आने वाले (जनाय) मनुष्य के लिये (लोकम्) देखने योग्य सुख वा स्थान को प्रकाशित (चकार) करता है तथा (पृत्सु) संग्रामों में (साहन्) सहन करता हुआ (अमित्रान्) विरोधी उदासीन जनों को (जयन्) जीतता और (शत्रून्) शत्रुओं को (घ्नन्) मारता हुआ तथा (वृत्राणि) धनों को प्राप्त होता हुआ (पुरः) शत्रुओं के नगरों को (वि, दर्दरीति) निरन्तर विदीर्ण करता है वह (उ, चित्) ही सेनापति होने योग्य है ॥ २ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो न्याय से प्रजा पालने के लिये प्रसन्न, पूर्णशरीरात्म-बलयुक्त, वीर, विद्वान् होवें वे सेनापति हों जिससे शत्रुओं के जीतने और उनकी सेना के सहने और उसे छिन्न भिन्न करने तथा विजय और धन को पाने को समर्थ हों ॥ २ ॥

फिर वह कैसा हो इस विषय को कहते हैं—

बृहस्पतिः समजयद्वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन्त्स्वरप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥३॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (महः) महान् (देवः) देदीप्यमान (एषः) यह (बृहस्पतिः) सूर्य के समान वेदवाणी की पालनेवाला (गोमतः) बहुत किरणों से युक्त (व्रजान्) मेघों को छिन्न भिन्न कर (अपः) जलों को वर्षा के जगत् की पालना करता है वैसे शत्रुओं से (अप्रतीतः) न प्रतीति को प्राप्त होता हुआ (बृहस्पतिः) बड़े राज्य की यथावत् रक्षा करनेवाला राजा (अर्कैः) वज्र आदि के साथ प्रजाजनों के (सिषासन्) काम पूरे करने की इच्छा कर (अमित्रम्) शत्रु को (हन्ति) मारता है तथा शत्रुओं को (सम्, अजयत्) अच्छे प्रकार जीतता है तथा (वसूनि) धनों को प्राप्त होता और (स्वः) अन्तरिक्ष के समान अक्षय सुख को उत्पन्न करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा सूर्य के समान विद्या, विनय और अच्छे सहाय से प्रकाशमान, प्रजाजनों की पालना करता और सब के लिये अभयदान देता हुआ दुष्टकर्म करनेवालों की निवृत्ति करता है वही वहाँ राजाओं में महान् राजा होता है ॥ ३ ॥

इस सूक्त में बृहस्पति के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह तिहत्तरवां सूक्त और सत्रहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ चतुर्ऋचस्य चतुःसप्ततितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः, सोमारुद्रौ देवते । १, २, ४ त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब चार ऋचावाले चौहत्तरवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा और वैद्य कैसे श्रेष्ठ हों इस विषय को कहते हैं—

सोमारुद्रा धारयेथामसुर्यं प्र वामिष्टयोऽरमश्नुवन्तु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधाना शं नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१॥

पदार्थ—हे (सोमारुद्रा) चन्द्रमा और प्राण के तुल्य राजा और वैद्यजनो तुम दोनो (असुर्यम्) मेघ के इस कर्म को (धारयेथाम्) धारण करो जिससे (वाम्) तुम को (इष्टयः) इच्छाओं की प्राप्तियां (अरम्) पूरी (प्र, अश्नुवन्तु) मिलें तथा (दमेदमे) घर २ में (सप्त) सात (रत्ना) रमणीय हीरा आदि को (दधाना) धारण किये हुए (नः) हमारे (द्विपदे) दो पग वाले मनुष्य आदि के लिये (शम्) सुख करनेवाले (भूतम्) होओ और (चतुष्पदे) गौ आदि चौपाये जीवों के लिये (शम्) सुख करनेवाले होओ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो राजा चन्द्रमा के तुल्य और जो वैद्य प्राण के तुल्य सबको निर्भय और नीरोग करें वे सब सुखों को प्राप्त होते हैं जो प्रजा के घर घर में धन और आरोग्य को बढ़ावें वे द्विपद वाले चार पग वालों से बहुत सुखों को प्राप्त होते हैं ॥

फिर वे किसको निवारण कर क्या उत्पन्न करें इस विषय को कहते हैं—

सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश ।
आरे बाधेथां निर्ऋतिं पराचैरस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥२॥

पदार्थ—हे (सोमारुद्रा) ओषधी और प्राणों के समान सुख उत्पन्न करने वाले राजा और वैद्य जनो ! तुम (या) जो (अमीवा) रोग (नः) हमारे (गयम्) घर वा संतान को (आविवेश) प्रवेश करता है उस (विषूचीम्) विषूच्यादि को (वि, वृहतम्) छिन्न भिन्न करो तथा (पराचैः) पराजित हुए दुष्टों की (निर्ऋतिम्) दुःख देनेवाली कुनीति को (आरे) दूर (बाधेथाम्) हटाओ, जिस कारण (अस्मे) हम लोगों में (भद्रा) सेवन करने योग्य (सौश्रवसानि) उत्तम अन्नादि पदार्थों में सिद्ध अन्न (सन्तु) हों ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा और वैद्यवर रोगों को शरीर के प्रवेश से पहिले ही दूर करते हैं तथा कुनीति और कुपथ्य को भी पहिले दूर करते हैं उनके पुरुषार्थ से सब मनुष्य बहुत धन धान्य और आरोग्यपनों को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

फिर वे क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् ।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥३॥

पदार्थ—हे (सोमारुद्रा) यज्ञ से शुद्ध किये हुए सोमलता और वायु के समान राजा और वैद्यो (युवम्) तुम (यत्) जो (नः) हमारे (तनूषु) शरीरों में (कृतम्) किया हुआ और (बद्धम्) लगा हुआ (एनः) कुपथ्यादि वा अपराध (अस्ति) है उसे (अस्मत्) हम से (मुञ्चतम्) छुड़ाओ और हमारे रोगों को (अव, स्यतम्) नष्ट करो तथा (अस्मे) हमारे (तनूषु) शरीरों में (विश्वा) समस्त (एतानि) यह (भेषजानि) ओषधें (धत्तम्) स्थापन करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! आप वैद्य विद्या का प्रचार कर हमारे शरीरों को नीरोग कर और पुरुषार्थ में प्रवेश कराके दुःखों को अलग कर अच्छे वैद्यों का सत्कार करो ॥ ३ ॥

तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृळतं नः ।
प्र नो मुञ्चतं वरुणस्य पाशाद्गोपायतं नः सुमनस्यमाना ॥४॥१८॥

पदार्थ—हे (सोमारुद्रौ) शुद्ध ओषधी और प्राणों के समान वर्त्तमान (तिग्मायुधौ) तेज आयुधों तथा (तिग्महेती) पैने वज्रवाले (सुशेवौ) अच्छे सुखयुक्त वैद्य और राजा जनो तुम (इह) इस संसार में (नः) हम लोगों को (सु, मृळतम्) अच्छे प्रकार सुखी करो तथा (नः) हम लोगों को (वरुणस्य) उदान के समान बलवान् रोग के (पाशात्) बन्धन से (प्र, मुञ्चतम्) छुड़ाओ और (सुमनस्यमाना) सुन्दर विचारवान् होते हुए (नः) हम लोगों की निरन्तर (गोपायतम्) रक्षा करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे महौषधि और अहिप्राण वायु सबकी सदा पालना करते हैं वैसे उत्तम राजा और वैद्यजन समस्त उपद्रव और रोगों से निरन्तर रक्षा करते हैं ॥ ४ ॥

इस सूक्त में ओषधि और प्राण के समान वैद्य और राजा के कामों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चौहत्तरवां सूक्त और अठारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथैकोनविंशत्यृचस्य पञ्चसप्ततितमस्य सूक्तस्य पायुर्भारद्वाज ऋषिः । १ वर्म । २ धनुः । ३ ज्या । ४ आर्त्नी । ५ इषुधिः । ६ सारथिः । ६ रश्मयः । ७ अश्वाः । ८ रथः । ९ रथगोपाः । १० लिङ्गोक्ता देवता । ११, १२, १५, १६ इषवः । १३ प्रतोदः । १४ हस्तघ्नः । १७—१९ लिङ्गोक्तादेवता सङ्ग्रामाशिषः । (१७ युद्धभूमिर्ब्रह्मणस्पतिरदितिश्च । १८ कवचसोमवरुणाः । १९ देवा ब्रह्म च) १, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४, ५, ७, ८, ९, ११, १४, १८ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ६ जगती । १० विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः । १२, १९ विराडनुष्टुप् । १५ निचृदनुष्टुप् । १६ अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । १३ स्वराडुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । १७ पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब उन्नीस ऋचावाले पचहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में शूरवीर किसे धारण कर क्या २ करें इस विषय को कहते हैं—

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥१॥

पदार्थ—हे वीर (यत्) जो (जीमूतस्येव) मेघ के समान (प्रतीकम्) प्रतीति करनेवाला वर्म (भवति) होता है उससे (वर्मी) कवचधारी होकर (समदाम्) सहकारों के साथ वर्त्तमान सङ्ग्रामों के (उपस्थे) समीप (याति) जाता है तथा (अनाविद्धया) शस्त्रास्त्ररहित अर्थात् अनविधे (तन्वा) शरीर से (त्वम्) तुम शत्रुओं को (जय) जीतो (सः) सो (वर्मणः) कवच का (महिमा) महत्व (त्वा) तुम्हें (पिपर्तु) पाले ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मेघ के समान सुन्दर कवचों को धारण कर युद्ध करते हैं वे घाव से रहित शरीरवाले हुए वैरियों को जीत सकते हैं, जिस २ प्रकार से शरीर में घाव करनेवाले शस्त्र नोकदार न हों उन २ उपायों का वीरजन सदैव आश्रय करें ॥ १ ॥

फिर वीर किससे क्या करें इस विषय को कहते हैं—

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥२॥

पदार्थ—हे वीर पुरुषो जो (धनुः) धनुष् (शत्रोः) शत्रु के (अपकामम्) काम का विनाश (कृणोति) करता है जिस (धन्वना) धनुष् से जैसे हम (गाः) भूमियों को (धन्वना) धनुष् से (आजिम्) सङ्ग्राम को (जयेम) जीतें (धन्वना) धनुष् से (तीव्राः) कठिन तेज (समदः) संग्रामों को (जयेम) जीतें और (धन्वना) धनुष् से (सर्वाः) सब (प्रदिशः) दिशा प्रदिशाओं में स्थित जो शत्रुजन उनको (जयेम) जीतें वैसे उससे तुम भी उनको जीतो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य धनुर्वेद को पढ़ के पूरा शस्त्र और अस्त्र बनाने का अभ्यास कर प्रयोग करने को जानते हैं वे ही सर्वत्र विजयी होते हैं ॥ २ ॥

फिर वे किससे कौन क्रिया को करते हैं इस विषय को कहते हैं—

वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियं सखायं परिषस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयं समने पारयन्ती ॥३॥

पदार्थ—हे शूरवीर जो (इयम्) यह (ज्या) प्रत्यञ्चा अर्थात् धनुष् की तांति (वक्ष्यन्तीव) जैसे विदुषी कहनेवाली होती वैसे (प्रियम्) अपने प्यारे (सखायम्) मित्र के समान वर्त्तमान पति को (परिषस्वजाना) सब ओर से सङ्ग किये हुए (योषेव) पत्नी स्त्री (कर्णम्) कान को (आ, गनीगन्ति) निरन्तर प्राप्त होती है वैसे (अधि) (धन्वन्) धनुष् के ऊपर (वितता) विस्तारी हुई तांति (समने) सङ्ग्राम में (पारयन्ती) पार को पहुंचाती हुई (शिङ्क्ते) गूंजती है उस (इत्) ही को तुम यथावत् जानकर उसका प्रयोग करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे वीर पुरुषो ! जैसे प्रिय मित्र पति के साथ स्त्री पियारी सबद्ध अर्थात् प्रेम की डोरी से बंधी हुई है और जैसे विद्यार्थिनी कन्याओं के साथ पढ़ानेवाली विदुषी स्त्री बंधी हुई दुःख से और अविद्या से पार पहुंचाती है वैसे ही यह धनुष् की प्रत्यञ्चा युद्ध से पार पहुंचा कर सदैव सुखी करती है ॥ ३ ॥

फिर वे वीर किससे क्या करें इस विषय को कहते हैं—

ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे ।
अप शत्रून्विध्यतां संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥४॥

पदार्थ—हे वीर पुरुषो (ते) वे दोनों (इमे) ये (संविदाने) प्रतिज्ञा पालने वालियों के समान वा (अमित्रान्) शत्रुजनों को (विष्फुरन्ती) कंपाती (आर्त्नी) वेग से जाती और (आचरन्ती) सब ओर से प्रिय आचरण करती हुई (योषा) पत्नी स्त्री जैसे (समनेव) समान मनवाली वैसे वा (पुत्रम्) पुत्र को जैसे (मातेव) माता वैसे (उपस्थे) समीप में विजय को (बिभृताम्) धारण करें और (शत्रून्) शत्रुजनों को (अप, विध्यताम्) पीड़ें ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे वीरजनो ! जैसे समान प्रीति की सेवनेवाली पत्नी पति को तथा माता पुत्र को निरन्तर सुखी करती है वैसे शस्त्र और अस्त्रों से शत्रुओं को निवारो ॥ ४ ॥

फिर वीरों को क्या धारण करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य ।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥५॥१९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (बह्वीनाम्) बहुत बाणों की (पिता) पालना करनेवाले के समान (अस्य) इसके (बहुः) बहुत (पुत्रः) पुत्र के समान बाण (समना) सङ्ग्रामों को (अवगत्य) प्राप्त होकर (इषुधिः) धनुष् (चिश्चा) चीचों शब्द (कृणोति) करता है तथा (पृष्ठे) पीठ पर (निनद्धः) नित्य बंधा और (प्रसूतः) उत्पन्न होता हुआ (सर्वाः) समस्त (सङ्काः) सङ्ग्रामस्थ वीरयों की टोली (पृतनाः, च) और सेनाओं को (जयति) जीतता है वह तुम लोगों को यथावत् बना कर धारण करना चाहिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे वीर पुरुषो यदि धनुष् को तुम धारण करो तो शत्रुओं को विदीर्ण करके पुत्रों के प्रति पिता जैसे वैसे प्रजा पालना करके समस्त शत्रुसेनाओं को जीत सको ॥ ५ ॥

फिर वीरजन किसके तुल्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः ।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वान् वीरपुरुषो जैसे (सुषारथिः) अच्छा सारथि (रथे) रथ पर (तिष्ठन्) स्थित होता हुआ (यत्रयत्र) जहां २ (पुरः) पहिले (कामयते) कामना करता है वहां वहां (वाजिनः) वेगवाले अश्वों को (नयति) प्राप्ति कराता है जैसे (रश्मयः) किरणें सूर्य के (पश्चात्) पीछे (अनु, यच्छन्ति) अनुकूल नियम से जाती हैं वैसे वहां वहां (अभीशूनाम्) बाहुओं की (महिमानम्) महिमा को (मनः) और चित्त को तुम (पनायत) व्यवहार में लाओ वा उसकी स्तुति करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजा आदि वीरपुरुषो! तुम जितेन्द्रिय होकर अपने कार्य के पार रथ से अच्छे सारथि के समान जाओ तथा प्रधान के अनुकूल जानेवाले बड़े व्यवहार को करके सुन्दर शिक्षा को भृत्यों को पहुँचा कर काम सिद्धि करो ॥ ६ ॥

फिर मनुष्य किन से किन्हें जीतें इस विषय को कहते हैं—

तीव्रान्घोषान्कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः ।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान्क्षिणन्ति शत्रूँरनपव्ययन्तः ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (प्रपदैः) अति उत्तम गमनों से (अवक्रामन्तः) इधर उधर जाते और (अनपव्ययन्तः) व्यर्थ खर्च को न प्राप्त होते हुए तथा (रथेभिः) रमणीय यानों के (सह) साथ (वाजयन्तः) आप जाते वा दूसरों को ले जाते हुए (वृषपाणयः) वृष के समान व्यवहार जिनका वे (अश्वाः) घोड़े वा अग्नि आदि पदार्थ (तीव्रान्) तीक्ष्ण (घोषान्) शब्दों को (कृण्वते) करते हैं और (अमित्रान्) वैर करते हुए (शत्रून्) शत्रुजनों को (क्षिणन्ति) क्षीण करते हैं उनका तुम क्षीण करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे राजपुरुषो ! तुम घोड़ों को अच्छे प्रकार शिक्षा देकर तथा अग्नि आदि का सम्प्रयोग और शत्रुओं का आक्रमण कर जीतो ॥ ७ ॥

फिर मनुष्य कहां ठहर कर क्या करें इस विषय को कहते हैं—

रथवाहनं हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म ।
तत्रा रथमुप शग्मं सदेम विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (सुमनस्यमानाः) सुन्दर विचार करते हुए (वयम्) हम लोग (यत्र) जहां (आयुधम्) शस्त्र (निहितम्) स्थापित किया वा जहां (अस्य) इसका (वर्म) कवच और जिस (अस्य) इसका (हविः) लेने योग्य (नाम) नाम है (तत्रा) वहां इस (रथवाहनम्) जिससे रथ चलाया जाता है उसको वा (शग्मम्) सुख को और (रथम्) रमणीय यान को (विश्वाहा) सब दिनों (उप, सदेम) प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम लोग अच्छे विचार के साथ अग्नि आदि के सम्प्रयोग से बनाये हुए आयुधों से युक्त उत्तम यान द्वारा सर्वदैव शत्रुओं को ताड़ना देओ ॥ ८ ॥

फिर राजपुरुष कैसे हों इस विषय को कहते हैं—

स्वादुषंसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः ।
चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः ॥९॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो (स्वादुषंसदः) स्वादिष्ट अन्नों के भोगने को स्थिर होते वा न्याय करने को सभा में स्थिर होते हैं वा (वयोधाः) जो अवस्थाओं को धारण करते हैं वा (कृच्छ्रेश्रितः) जो अति दुःख में भी धर्म का आश्रय करते हैं वा (शक्तीवन्तः) प्रशस्त बहुत शक्ति विद्यमान जिनके वा (गभीराः) जो गम्भीर आशय वाले हैं वा (चित्रसेनाः) जिनकी चित्रविचित्र सेना है तथा (इषुबलाः) शस्त्र और अस्त्रों से युक्त जिनकी सेना और (अमृध्राः) जो अहिंसन करनेवाले (सतोवीराः) सत्य बल से युक्त (व्रातसाहाः) जो शत्रुसमूहों को सहते हैं वे (उरवः) बहुत पुत्रों की (पितरः) पिता जैसे धर्मिष्ठ वैसे विज्ञान और अवस्था से बड़े हुए पालनेवाले जन प्रजा की पालना करते हुए धर्मिष्ठ मनुष्य हों उनसे तुम प्रजाओं की पालना निरन्तर करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम सभ्य, पिता के समान प्रजाजनों की पालना करनेवाले, बहुत अवस्था से युक्त और दुःख को पाकर न कंपनेवाले, सामर्थ्यवान्, गम्भीर आशय, अद्भुत सेना तथा शस्त्र और अस्त्रों की विद्या में कुशल, बल से युक्त, शत्रुसमूह का सहनेवाला और बहुत गुण कर्मों से युक्त जो पुरुष उसी का राज्याभिषिञ्चन काम में अभिषेक करो ॥ ९ ॥

फिर मनुष्य परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को कहते हैं—

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा ।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥१०॥२०॥

पदार्थ—हे (पितरः) पिता के समान प्रजाजनों पर कृपा करनेवाले (सोम्यासः) शान्तियुक्त गुणों के योग्य (ब्राह्मणासः) वेद और ईश्वर के जानने वाले विद्वानो ! तुम (नः) हम लोगों को अधर्म के आचरण से अलग रक्खो जैसे (अनेहसा) न हिंसा करनेवाली (शिवे) मंगलकारिणी (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी (नः) हमारे लिये हों वैसे उपदेश करो जैसे (पूषा) विद्या और विनय से पुष्टिकारक (ऋतावृधः) सत्य का बढ़ानेवाला (नः) हम लोगों की (दुरितात्) दुष्ट आचरण से (पातु) पालना करे जिसमें (अघशंसः) चोर हम लोगों को (माकिः) न (ईशत) मारने के लिये समर्थ हों, हे राजन् तुम इनकी निरन्तर (रक्ष) रक्षा करो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो विद्वान् जन तुम लोगों को शिक्षा और विनय देवें तथा बिजुली और भूगर्भविद्या से सुख से संपन्न करें और अधर्माचरण से अलग रक्खें तथा जो राजा चोर आदि दुष्टों से निरन्तर रक्षा करे उस सब की तुम निरन्तर सेवा करो ॥ १० ॥

फिर भूमि कैसी वेगवाली है और युद्ध करनेवाले युद्ध क्यों करते हैं इस विषय को कहते हैं—

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (गोभिः) किरण वा धेनुओं से (सन्नद्धा) अच्छे प्रकार से बधी और (प्रसूता) उत्पन्न हुई भूमि (मृगः) मृग के समान (पतति) जाती है (अस्याः) इसके बीच (दन्तः) जिससे दबाते हैं वह दांत वर्त्तमान है जो (सुपर्णम्) सुन्दर पालना करनेवाले को (वस्ते) उढ़ाता है और (यत्रा) जिस संग्राम में (नरः) योद्धा नर (च) भी (सम्, द्रवन्ति) अच्छे प्रकार दौड़ते हैं (वि) विशेष धावन करते हैं (तत्र) वहाँ (इषवः) बाण (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (शर्म) सुख जैसे (यंसन्) देवें वैसा अनुष्ठान करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो भूमि परमेश्वर ने पालना के लिए बनाई है और मृग के समान शीघ्र जाती है तथा जिसके लिए बहुत संग्राम होता है उसकी प्राप्ति के निमित्त वीरता का संग्रह करो ॥ ११ ॥

फिर मनुष्यों को किससे कैसे शरीर करने चाहिएं इस विषय को कहते हैं—

ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः ।
सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥१२॥

पदार्थ—हे विद्वान् राजा जो आप (ऋजीते) सीधे चलते हो वह (नः) हम लोगों को (परि, वृङ्धि) सर्व प्रकार वृद्धि देओ और (सोमः) जो ओषधियों का रस निकालनेवाला विद्वान् जैसे (नः) हम लोगों का (तनूः) शरीर (अश्मा) पत्थर के समान दृढ़ (भवतु) हो वैसा (अधि, ब्रवीतु) ऊपर २ उपदेश करे और (अदितिः) माता के समान भूमि (नः) हम लोगों के लिए (शर्म) सुख वा घर (यच्छतु) देवे ॥ १२ ॥

भावार्थ—राजा ऐसा प्रयत्न करे जैसे दीर्घ ब्रह्मचर्य से विषयासक्ति के त्याग से और व्यायाम से क्षत्रियों के शरीर पाषाण के तुल्य कठिन हों और उपदेशक भी सबको ऐसा ही उपदेश करें जिससे सब दृढ़ शरीर आत्मावाले हों ॥ १२ ॥

फिर रानी संग्राम में क्या करे इस विषय को कहते हैं—

आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ उप जिघ्नते ।
अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥१३॥

पदार्थ—हे (अश्वाजनि) घोड़ों को पटकी देनेवाली रानी तू जो वीरजन (एषाम्) इन शत्रुओं के (सानु) अंगों को (आ, जङ्घन्ति) सब ओर से निरन्तर काटते हैं तथा (जघनान्) नीच कर्म करनेवालों को (उप, जिघ्नते) उपस्थित होकर मारते हैं उन (प्रचेतसः) उत्तम विज्ञानवाले (अश्वान्) बड़े२ बलवान् शूरवीर पुरुषों को (समत्सु) संग्रामों में (चोदय) प्रेरो ॥ १३ ॥

भावार्थ—संग्राम में राजा के अभाव में रानी सेनापति हो और जैसे राजा युद्ध कराने को वीरों को प्रेरणा दे वैसे ही वह भी आचरण करे ॥ १३ ॥

फिर राजा और भृत्य परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को कहते हैं—

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्पुमान्पुमांसं परि पातु विश्वतः ॥१४॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो (हस्तघ्नः) हाथों से मारनेवाला (ज्यायाः) प्रत्यञ्चा के सबकी (हेतिम्) वज्र के समान बाण को (परिबाधमानः) सब ओर से रोकता और (विद्वान्) जानने योग्य को जानता हुआ (पुमान्) पुरुषार्थीजन (अहिरिव) मेघ के समान (भोगैः) भोगों के साथ (बाहुम्) अपने स्वामी की भुजा को और (विश्वा) समस्त (वयुनानि) ज्ञानों को (परि, एति) सब ओर से प्राप्त होता है वा (विश्वतः) सब ओर से (पुमांसम्) पुरुषार्थी की (परि, पातु) अच्छे प्रकार पालना करे उसका सर्वदा सत्कार करो ॥ १४ ॥

भावार्थ—हे वीरो ! जो राजा समस्त मेघ के समान भोगवृष्टि करता है तथा समग्रविद्यायुक्त होता हुआ सबकी सब ओर से तृप्ति करता है उसकी सब जन सब ओर से निरन्तर रक्षा करें ॥ १४ ॥

फिर रानी कैसी हो इस विषय को कहते हैं—

आलाक्ता या रुरुशीर्ष्ण्यथो यस्या अयो मुखम् ।
इदं पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नमः ॥१५॥२१॥

पदार्थ—(या) जो (आलाक्ता) विष से युक्त (रुरुशीर्ष्णी) रुरु जाति के मृग के शिर के समान जिसका शिर और (अथो) इसके अनन्तर (यस्याः) जिसका (इदम्, अयः) लोहेयुक्त (मुखम्) मुख है उस धारण करनेवाली (पर्जन्यरेतसे) मेघ के जल के समान वीर्यवती (देव्यै) दिव्य और (इष्वै) गमन करती हुई शूरवीर स्त्री के लिए (बृहत्) बहुत (नमः) अन्न हो ॥ १५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो रानी धनुर्वेद जानती हुई शस्त्र अस्त्र फेंकनेवाली है उसका वीरों को निरन्तर सत्कार करना चाहिए ॥ १५ ॥

फिर सेनापति सेना को क्या आज्ञा दे इस विषय को कहते हैं—

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
गच्छामित्रान्प्र पद्यस्व मामीषां कं चनोच्छिषः ॥१६॥

पदार्थ—हे (शरव्ये) बाणों को व्याप्त होनेवालों में उत्तम (ब्रह्मसंशिते) वेद जाननेवाले सेनापति से प्रशंसा पाई हुई सेना तू (अवसृष्टा) शत्रुओं के ऊपर पड़ी हुई (परा) हम लोगों से पराङ्मुख (पत) जाओ तथा (अमित्रान्) शत्रुओं के समीप (गच्छ) पहुँचो (प्र, पद्यस्व) प्राप्त होओ अर्थात् शत्रुजनों पर चढ़ाई करो और (अमीषाम्) परोक्षस्थ शत्रुओं के बीच (कम्, चन) किसी को भी (मा) मत (उत्, शिषः) शेष छोड़ो ॥ १६ ॥

भावार्थ—सेनापति पहले सेना को अच्छी शिक्षा देकर जब संग्राम में उपस्थित हो तब अपनी सेना को आज्ञा दे कि शत्रुओं के बीच से एक को भी न छोड़ ॥१६॥

यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तत्रा नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥१७॥

पदार्थ—हे राजन् (यत्र) जिस संग्राम में (कुमाराः) कुमार अर्थात् जिनका मुण्डन हो गया है उन (विशिखाइव) बिना चोटीवालों के समान (बाणाः) बाण (सम्पतन्ति) अच्छे प्रकार गिरते हैं (तत्रा) वहाँ (नः) हमारे लिए जैसे (ब्रह्मणः) धन के (पतिः) पालक धनकोश का ईश (विश्वाहा) सब दिनों (शर्म) सुख (यच्छतु) देवे और (अदितिः) भूमि (शर्म) सुख (यच्छतु) देवे वैसे विधान करो ॥ १७ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जब संग्राम के लिए सेना जावे तब किसी पदार्थ के बिना किसी भृत्य को क्लेश न हो वैसा अनुष्ठान कीजिये ऐसे किये पीछे आपका ध्रुव विजय हो ॥ १७ ॥

फिर योद्धाओं के प्रति अध्यक्ष कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥१८॥

पदार्थ—हे योद्धा वीर मैं (ते) तेरे (मर्माणि) शरीरस्थ जीवन हेतु अङ्गों को (वर्मणा) कवच से (छादयामि) ढांपता हूं (सोमः) ऐश्वर्यसंपन्न (राजा) राजा (अमृतेन) जल आदि से (त्वा) तुझे (अनु) अनुकूलता से (वस्ताम्) ढांपे तथा (वरुणः) सेना की पालना करनेवाला उत्तम विद्वान् (उरो) बहुत (वरीयः) अत्यन्त श्रेष्ठ अन्न आदि (ते) तेरा (कृणोतु) करे तथा (जयन्तम्) शत्रुओं को जीतते हुए (त्वा) तुझे (देवाः) उपदेशक विद्वान् वा अधिष्ठाता जन (अनु, मदन्तु) अनुकूलता से हर्षित करें वा करावें ॥ १८ ॥

भावार्थ—सेनाध्यक्षों को चाहिये कि सब वीरों के शरीर की रक्षा करनेवाले कवचों को यथावत् करें और सर्वाधीश राजा अमृतात्मक अर्थात् अमृत के समान भोग सबके लिए देवे तथा वस्त्र और शस्त्र आदि पदार्थ भी देवे । और युद्ध करते हुए सब को सब अध्यक्ष हर्ष देवें और उत्साहित करें तथा आप भी हर्ष पावें और उत्साह करें ऐसा करने पर क्योंकर हार हो ॥ १८ ॥

फिर सेनाध्यक्ष संग्राम में क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यो नः स्वो अरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥१९॥२२॥७॥६॥

पदार्थ—हे सेनापति (यः) जो (नः) हमारे (स्वः) अपना (अरणः) संग्राम रहित यथावत् संग्राम नहीं करता (यः, च) और जो (निष्ट्यः) शत्रु से विदाई कराने योग्य दूरस्थ होते हुए तथा अपनी सेना को (जिघांसति) मारने की इच्छा करता है (तम्) उसको (सर्वे) सब (देवाः) विद्वान् जन (धूर्वन्तु) मारें तथा (मम) मेरा (अन्तरम्) समीप में रमता हुआ (ब्रह्म) सर्वव्यापक चेतन (वर्म) कवच के समान रक्षा करनेवाला हो ॥ १९ ॥

भावार्थ—सेनापति के जो अपने भृत्य उत्साह से युद्ध न करें और जो अपने नौकरों के मारने की इच्छा करे उन सबको विद्वान् और सभीश शीघ्र मारें तथा युद्ध के समय सब वीर परमेश्वर ही को अपना रक्षा करनेवाला जानें ॥ १९ ॥

इस सूक्त में वर्म अर्थात् कवच बख्तर आदि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यपरमविद्वान् श्रीमद्विरजानन्दसरस्वती
स्वामीजी के शिष्य श्रीमद् दयानन्दसरस्वतीस्वामीजी के बनाये हुए
आर्यभाषा से सुभूषित के छठे मंडल में छठा अनुवाक
और पचहत्तरवां सूक्त और छठा मण्डल भी तथा
पञ्चमाष्टक के प्रथमाध्याय में
बाईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

प्रकाशक:-

दयानन्द-संस्थान

नई दिल्ली-५